॥ अथ श्रीकाशी खंडोत्तरार्धं प्रारभ्यते ॥

॥ अथ श्रीकाशीखण्डपूर्वार्धं प्रारम्भः ॥

व्यास
सुत

पार्वती
शिव

अगस्ति

काशीखण्डपूर्वार्द्धाध्यायानुक्रमणिका समाप्ता ॥

अथ काशीखण्डपूर्वार्द्धाध्यायानुक्रमणिकाप्रारम्भः ॥

समाप्ताचेयं काशीखण्डोत्तरार्द्धाध्यायानुक्रमणिका ॥

अथ काशीखण्डोत्तरार्द्धाध्यायानुक्रमणिकाप्रारम्भः ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥

अथ स्कन्दपुराण काशीखण्ड सटीक पूर्वार्द्ध ॥

सच्चिदानन्दसन्दोहं भक्तैकामोदमन्दिरम् । सादरंप्रणुवेभक्त्याश्रीगोपीजनवल्लभम् ॥ गुरूणांसच्चिदानन्दसन्दोहात्मस्वरूपिणाम् । पादाम्भोजरजोजोपी स्यांसदाहंभवेभवे ॥ दोहा ॥ इस पहलेअध्यायमें विन्ध्यपहार बखान । नारदको संवाद सुनि पुनि उसका बदिजान ॥ मदिराछन्द ॥ जो शिवप्यारी हिमाचलकेरी कुमारीके अंगसे जायकहैं । दैहिक दैविक भौतिक तापसे हीन सदा सब लायक हैं ॥ हाथीसमूहशिरोमणिको मुख लायेहुये गणनायक हैं । ध्यावत हैं उनको हम सो सिधिनाथ के स्वामी सहा-

श्रीगणेशाय नमः ॥ तंमन्महेमहेशानं महेशानप्रियार्भकम् ॥ गणेशानंकरिगणेशाननमनामयम् ॥ १ ॥ भूमिष्ठापिनयात्रभूस्त्रिदिवतोप्युच्चैरधःस्थापियायाबद्धाभुविमुक्तिदास्युरमृतंयस्यांमृताजन्तवः ॥ यानित्यंत्रिजगत्पवित्रतटिनीतीरेसुरैःसेव्यते साकाशीत्रिपुरारिराजनगरी पायादपायाज्जगत् ॥ २ ॥ नमस्तस्मैमहेशाय यस्यमन्ध्यात्रयंच्छलात् ॥ यातायातंप्रकुर्वन्तित्रिजगत्पतयोऽनिशम् ॥ ३ ॥ अष्टादशपुराणानां कर्त्तासत्यवतीसुतः ॥ सूताग्रेकथयामास कथांपापा

यक हैं ॥ १ ॥ घनाक्षरी ॥ भूमिमाहिं टिकी जोई भूमि नाहीं होई याने शिवके त्रिशूलपर कोई जन जाने हैं । नीचे बसी तोभी ब्रह्माण्ड के भी ऊंचे लसी बसुधामें बँधी जो विमोक्षदेनी आने हैं ॥ जामें मरे जीवजेते होत हैं अमर तेते गङ्गातट नित्य जाकी देव सेव ठानेहैं । सोई शम्भुराजधानी सिद्धिनाथ मनमानी काशी ज्ञान खानी जग जालसे बचाने हैं ॥ २ ॥ प्रात मध्य अरु साम नामहैं जाके सन्ध्याकाल । उनके मिस से ब्रह्म विष्णु हर तीनि लोकके पाल ॥ करत निरन्तर याता-यातहि याने जग रचनादि । नमस्कार उन सूर्य्य देव के जो बड़ ईश अनादि ॥ अथवा जिनकी जग उतपति थिति नाश त्रिसन्ध्या नाम । उसके मिससे तीनिलोक

पति विधि हरि हर गुण धाम ॥ करते आवागमन निरन्तर उन महेश के अर्थ । नमस्कार बहुवार करोहीं जो हैं सत्य समर्थ ॥ ३ ॥ दोहा ॥ दश अरु आठ पुराण के करनेवाले व्यास । पापहरनहारी कथा कह्यो सूत के पास ॥ ४ ॥ श्रीव्यासदेवजी बोले कि कभी श्रीनर्मदा नदी के जल में नहा सब प्राणियोंके अर्थ धर्म काम मोक्ष-दायक पार्वतीनायक ॐकारनाथ को भली भांति से पूज ब्रह्मतेजवाले नारदजी ॥ ५ ॥ जातेहुये आगे विन्ध्यपर्वत को देखते भये जो कि संसारमें तीनों तापों के नाशक नर्मदा के जल से सेवित या बहुत पवित्र है ॥ ६ ॥ शोभासहित स्थावर जंगम दोनो रूप से भी इस वसुधा को अतिशय करके नाम के समान अर्थवाली करता याने स्थावर रूपसे अपनामे उपजे रत्नों के द्वारा और जङ्गम से अपने शिखर पर विहरनेको आये वसु अग्नि आदि देवों से वसुमती नाम को सिद्ध करता ॥ ७ ॥

पनोदिनीम् ॥ ४ ॥ श्रीव्यासउवाच ॥ कदाचिन्नारदः श्रीमान्स्नात्वा श्रीनर्मदाम्भसि ॥ श्रीमदोङ्कारमभ्यर्च्य सर्वदं सर्वदेहिनाम् ॥ ५ ॥ व्रजन्विलोकयांचक्रे पुरो विन्ध्यं धराधरम् ॥ संसारतापसंहारिरेवावारिपरिष्कृतम् ॥ ६ ॥ द्वैरूप्येणापि कुर्वन्तं स्थावरेणाचरेणाच ॥ साभिख्येनं यथार्थाख्यामुच्चैर्वसुमतीमिमाम् ॥ ७ ॥ रसालयं रसालैस्तैरशोकैः शोकहारिणम् ॥ तालैस्तमालैर्हिन्तालैः सालैः सर्वत्र शालितम् ॥ ८ ॥ खपुरैः खपुराकारं श्रीफलं श्रीफलैः किल ॥ गुरुश्रियं त्वगुरुभिः कपिपिङ्गं कपित्थकैः ॥ ९ ॥ वनश्रियः कुचाकारैर्लकुचैश्च मनोहरम् ॥ सुधाफलसमारम्भिरम्भाभिः परिभासितम् ॥ १० ॥ सुरङ्गैश्चापि नारङ्गैरङ्गमण्डपसच्छ्रियः ॥ वानीरैश्चापि जम्बीरैर्बीजपूरैः प्रपूरितम् ॥ ११ ॥ अनिलालोलकङ्कोलवल्लीहल्लीसकायितम् ॥

उन प्रसिद्ध आंव के वृक्षों से छःरसों का स्थान, अशोकों से शोकहारी, तार तमाल याने कनकोहर खजूर और शखुवा या शाल वृक्षोंसे सबओर शोभित ॥ ८ ॥ सुपारीके वृक्षोंसे आकाश को पूरते देहवाला या आकाश गृहके समान आकार धार और प्रसिद्ध है कि विल्वों से शोभा का फलनेहार अगररो अधिक शोभावान्, कैथो से वानर श्रंग रंग के समान या श्रेष्ठ पीला ॥ ९ ॥ व वनदेवी के कुचो के आकार बडहलो से मनोहर, अमृत के समान फलोंसे सम्बन्ध है जिनका उन केलाओंसे प्रकाशित ॥ १० ॥ अच्छे रंगवाले नारंगियों से लक्ष्मीके रंगमन्दिर याने नृत्यस्थानके समान और वेंत जंभीरी व विजौरा निंबुओं से भी परिपूरित ॥ ११ ॥ वायुसे डोलती कङ्कोल

या अशोक की लताओं से फागुसा खेलता हरफारयोरी की किञ्चित् क्रीड़ाओं रो नृत्यलीला का स्थान ॥ १२ ॥ कुछ कांपते कपूर केला के पातों की संज्ञा से थके पथिकों को विश्रामके लिये बुलाता सा॥ १३ ॥ संदेसरा या नागकेशरोंके पल्लवों से पुरुष हाथीसा चंचल पल्लवरूप हाथोंसे मालतीके गुच्छे रूप कुचों को मलतासा॥१४॥ फूटे अनार के फलों से अपने अनुरागी मनको दिखातासा वन में पतिरूपसे वासंती लता स्त्री को लिपटाता सा ॥ १५ ॥ आकाश में गये याने अतिऊंचे अनगंत फल पांति वाले गूलरि वृक्षों से सबओर करोड़ों ब्रह्माण्डों को धारते अनन्त याने नारायणसा ॥ १६ ॥ वनदेवियों की नाक से छबीले कटहलों व सुवा की चोंच के

लवलीलवलीलाभिर्लास्यलीलालयंकिल ॥ १२ ॥ मन्दान्दोलितकर्पूरकदलीदलसंज्ञया ॥ विश्रमायश्रमापन्नानाह्व यन्तमिवाध्वगान् ॥ १३ ॥ पुन्नागमिवपुन्नागपल्लवैःकरपल्लवैः ॥ कलयन्तमिवाऽलोलैर्मल्लिकास्तवकस्तनम् ॥ १४ ॥ विदीर्णदाडिमैःस्वान्तं दर्शयन्तन्तुरागवत् ॥ माधवीन्धवरूपेणश्लिष्यन्तमिवकानने ॥ १५ ॥ उदुम्बरैरम्बरगैरनन्त फलमालितैः ॥ ब्रह्माण्डकोटीर्बिभ्रन्तमनन्तमिवसर्वतः ॥ १६ ॥ पनसैर्वननासाभैः शुकनासैःपलाशकैः ॥ पलाश नाह्विरहिणांपत्रत्यक्तैरिवावृतम् ॥ १७ ॥ कदम्बवादिनोनीपान्दृष्ट्वाकण्टकितैरिव ॥ समन्ततोभ्राजमानं कदम्बकक दम्बकैः ॥ १८ ॥ नमेरुभिश्चमेरूच्चशिखरैरिवराजितम् ॥ राजादनैश्चमदनैः सदनैरिवकामिनाम् ॥ १९ ॥ तटेतटेपटु वटैरुच्चैःपटकुटीवृतम् ॥ कुटजस्तबकैर्भान्तमधिष्ठितबकैरिव ॥ २० ॥ करमर्दैःकरीरैश्चकरञ्जैश्चकरम्बकैः ॥ सहस्र करवद्भान्तमर्थिप्रत्युद्गतैःकरैः ॥ २१ ॥ नीराजितमिवोद्दीपै राजचम्पककोरकैः ॥ सपुष्पशाल्मलीभिश्च जितपद्माक

रमान फूले पलाशों से वियोगियों का मांस नाशने से झरे पत्तों के से वृक्षों से घिरासा ॥ १७ ॥ हम कदम्ब हैं यों कहते छोटे कदम्बों को देख रोमाञ्चित से कदम्ब समूहों से विराजमान ॥ १८ ॥ मेरुके ऊंचे शृङ्ग के समान रुद्राक्षवृक्ष चिरौंजी और कामियों के घरसे बनेफूले धतूरो से विराजित ॥ १९ ॥ ऊंचे ऊंचे देशों में ऊंचे मनोहर बरगद वृक्षों से कपड़े की कुटियों की नाईं घिरा, बैठे बगुलाओं से कुरैयाके गुच्छों से शोभित ॥ २० ॥ करौंदा, करील, कन्जा और धाराकदम्बों से याचकों

के प्रति उठाये हाथों से अनेक हस्त सा सोहता ॥ २१ ॥ अधिक छबीली राजचंपाकी कलियों से नीराजित याने आरती कियागयासा फूले सेमरों से कमलाकर सरोवर की शोभा को जीते ॥ २२ ॥ कही ऊंचे पीपलों कहीं सुवर्ण केतकियों कहीं अमिलतासों और कहीं कञ्जों से शोभायमान ॥ २३ ॥ बेर बन्धूक याने दुपहरी जियापोता और तेंदुवा समेत इंगुलों से विराजित व कच्चा नींबुओं से दयाका स्थान ॥ २४ ॥ टपकते महुवा के फूलो से पृथ्वीरूपधारी भक्तभयहारी शिवको अपने हाथ से छूटे मोतियो से निरन्तर पूजतासा ॥ २५ ॥ साल अर्जुन सहिंजन व विजयसारों करके पङ्खाओ के पवन से सेवितसा खजूर समेत नारियर के वृत्तों से आकाश में छत्रधरी

रश्रियम् ॥ २२ ॥ क्वचिच्चलदलैरुच्चैः क्वचित्काञ्चनकेतकैः ॥ कृतमालैर्नक्तमालैः शोभमानंक्वचित्क्वचित् ॥ २३ ॥ ककन्धुबन्धुर्जावैश्च गुञ्जजीवैर्विराजितम् ॥ सतिन्दुकेङ्गुदीभिश्च करुणैः करुणालयम् ॥ २४ ॥ गलन्मधूककुसुमैर्धरारूपधरं हरम् ॥ स्वहस्तमुक्तमुक्ताभिरर्चयन्तमिवानिशम् ॥ २५ ॥ सर्जार्जुनाञ्जनैर्वीजैर्व्यजनैर्वीज्यमानवत् ॥ नारिकेलैःसखर्जूरैर्धृतच्छत्रमिवाम्बरे ॥ २६ ॥ अमन्दैःपिचुमन्दैश्च मन्दारैःकोविदारकैः ॥ पाटलातिन्तिणीघोण्टाशाखोटैःकरहाटकैः ॥ २७ ॥ उद्दण्डैश्चापिशेहुण्डैरेरण्डैर्गुडपुष्पकैः ॥ वकुलैस्तिलकैश्चैव तिलकाङ्कितमस्तकम् ॥ २८ ॥ अक्षैःपुक्षैः शल्लकीभिर्देवदारुहरिद्रुमैः ॥ सदाफलसदापुष्पवृक्षवल्लीविराजितम् ॥ २९ ॥ एलालवङ्गमरिचकुलुञ्जनवनावृतम् ॥ जम्ब्वाम्रातकभल्लातशेलुश्रीपर्णिवर्णितम् ॥ ३० ॥ शाकशङ्खवनैरम्यंचन्दनैरक्तचन्दनैः ॥ हरीतकीकर्णिकारधात्रीवन

सा ॥ २६ ॥ सोहते नींव पारिजातक कचनार लाललोध या पाडर अमिली बेर सिहोर मैनफर ॥ २७ ॥ बहुते सेहुंडो महुवा मैनसिरी और तिलक याने पुष्पवृक्ष या मरुवा के वृक्षों से गोपीचन्दनादि तिलक करके अङ्कित माथवाला सा ॥ २८ ॥ बहेडा पाकर शालई देवदारु और हलदुआ के साथ सदा फलफूलवाली वृक्ष लताओं से विराजित ॥ २९ ॥ इलाची लौंग मरिच कचनार या बेंतके वन मे घिरा जामुन अम्बार भिलावां लसोढ़ा खम्भारि या कायफर या सेमर या अगेथ या हठवृक्षों से कथित याने लक्षित ॥ ३० ॥ शाक कक्कूंदनि के वन चन्दन व लाले चन्दनों से रमणीक, हड़ कठचम्पा या नैनियां और अभला के वनकी शोभा करनेवाला या उन

वॅनों के गहने पहने ॥ ३१ ॥ दाख पान पिपरी या जीरा आदि सैकड़ों लताओं से घिरा, बेला जूही कुन्द मोतिया या मालिकांगनी लताओं से सुगन्धित ॥ ३२ ॥ भ्रमत भौंर भीर वाली चमेली या मालतियों से मण्डित, गोपियोंके साथ रासकरनेको भौंरों के मिस आये अनेक रूपधारी वृन्दावनविहारी सा ॥ ३३ ॥ अनेक मृगगणों से व्याप्त अनेक पक्षियों से शब्दित अनेक नदी तड़ागके सोताओं और छोटेजलाशयों से सब ओर आवृत ॥ ३४ ॥ शोभा से शून्य स्वर्ग भूमिको त्यागआये से अनेक देव समूहों से भोगकी इच्छाकरके सब ओर से बसागया ॥ ३५ ॥ पत्ते फूलों से ऐसी वैसी अर्घ्य देतासा मोरों की बोली करके दूरसे स्वागत

विभूषणम् ॥ ३१ ॥ द्राक्षावल्लीनागवल्लीकणावल्लीशतावृतम् ॥ मल्लिकायूथिकाकुन्दमदयन्तीसुगन्धिभम् ॥ ३२ ॥ भ्रमद्भ्रमरमालाभिर्मालतीभिरलंकृतम् ॥अलिच्छलागतंकृष्णं गोपीरन्तुमनेकशः ॥ ३३ ॥ नानामृगगणाकीर्णं नाना पक्षिविनादितम् ॥ नानासरित्सरःस्रोतःपल्वलैःपरितोवृतम् ॥ ३४ ॥ तुच्छश्रियःस्वर्गभूमीःपरिहायागतैरिव ॥ नाना सुरनिकायैश्च विष्वग्भोगेच्छयोषितम् ॥ ३५ ॥ उत्सृजन्तमिवार्घ्यंवै पत्रपुष्पैरितस्ततः ॥ केकिकेकारवैर्दूरात्कुर्वन्तं स्वागतङ्किल ॥ ३६ ॥ अथसूर्यशताभासं नभसिद्योतिताम्बरम् ॥ नारदंदृष्टवाञ्शैलो दूरात्प्रत्युज्जगामतम् ॥ ३७ ॥ ब्रह्मसूनुवपुस्तेजोदूरीकृतदरीतमाः ॥ तमागच्छन्तमालोक्यमानसंतमउज्जहौ ॥ ३८ ॥ ब्रह्मतेजःसमुद्भूतसाध्वसःसा धुसत्क्रियः ॥ कठिनोपिपरित्यज्यधत्तेमृदुलताङ्किल ॥ ३९ ॥दृष्ट्वामृदुलतांतस्य द्वैरूप्येपिसनारदः ॥ मुमुदेसुतरांसन्तः

करतासा याने भलेआयेहो यों कहता है ॥ ३६ ॥ अनन्तर सैकड़ों सूर्य्य से प्रकाशवान् आकाश को दीपित करते नारद को विन्ध्य पर्वत ने आकाश में देखा दूरसे उनके सम्मुख गमन किया ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजी के पुत्र याने नारद की देहके तेजसे दूर किया गया कंदराओं का अँधेरा जिसका उसने उन मुनिको आते देख हृदयके अज्ञान को त्यागदिया ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणके तेजसे भये भय उद्वेग या आदरवाला सुकर्मी हो कठिन पत्थरने भी कठोरताको तज निश्चय कर कोमलता को धर लिया ॥ ३९ ॥ स्थावर जंगम दोनों रूपमें उसकी कोमलता को देख वे नारदजी भी अधिक आनन्दित भये क्योंकि विनयसे गहाजाता है अन्तःकरण जिनका ऐसेही

साधु होते हैं ॥ ४० ॥ छोटे व बडेको अपने घर आते देख जो छोटाही नम्रताको धारता वही बड़ा बड़ा बड़ा नहीं ॥४१॥ उन मुनिनाथके प्रति गल झुकाये भूमिमें माथ मिलाये उस ऊंचे शिखवाले भी पर्वतने प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ ननसे भी ऊंचे उसको दोनों हाथोंके आगे भागोंसे उठा आशीर्वादसे बढा उसके दिये आसनमें मुनि बैठे ॥ ४३ ॥ उसने दही सहत घी पानीसे पखारे अक्षत दूब तिल कुश फूल इनआठ अंगवाले अर्घ्योंसे पूजा ॥ ४४ ॥ दिये अर्घ्यको लिये थके मुनिको पांव चापने आदि सेवासे श्रमहीन देख अनन्तर विन्ध्याचल बोला ॥ ४५ ॥ आज अबहीं आपकी पद कमल की धूरिसे रजोगुणी स्वभाव या रजोगुण सब ओरसे हरगया और

प्रश्रयग्राह्यमानसाः ॥ ४० ॥ गृहानायान्तमालोक्य गुरुंवाऽगुरुमेववा ॥ योऽगुरुर्नम्रतांधत्तेसगुरुर्नगुरुर्गुरुः ॥ ४१ ॥ तं प्रत्युच्चैःशिराःसोपि विनम्रतरकन्धरः ॥ शैलस्त्विलामिलन्मौलिः प्रणनाममहामुनिम् ॥ ४२ ॥ तमुत्थाप्यकराग्राभ्यामाशीर्भिरभिनन्द्यच ॥ तदुद्दिष्टासनंभेजे मनसोपिसमुच्छ्रितम् ॥ ४३ ॥ सदध्नामधुनाज्येन नीरार्द्राक्षतदूर्वया ॥ तिलैःकुशैःप्रसूनैस्तमष्टाङ्गार्घ्यैरपूजयत् ॥ ४४ ॥ गृहीतार्घ्यंकिलश्रान्तं पादसंवाहनादिभिः ॥ गतश्रममथालोक्य बभाषेऽवनतोगिरिः ॥ ४५ ॥ अद्यमद्यःपरिहृतंत्वदङ्घ्रिरजसारजः ॥ त्वदङ्गसङ्गिमहसा सहसाऽप्यान्तरंतमः ॥ ४६ ॥ सफलर्धिरहंचाद्य सुदिवाद्यचमेमुने ॥ प्राक्कृतैःसुकृतैरद्य फलितंमेचिरार्जितैः ॥ ४७ ॥ धराधरत्वंकुलिषुमान्यंमेऽद्यभविष्यति ॥ इतिश्रुत्वातदाकिञ्चिदुच्छ्वस्यास्थितवान्मुनिः ॥ ४८ ॥ पुनरूचेकुलिवरःसंभ्रमापन्नमानसः ॥ उच्छ्वासकारणंब्रह्मन् ब्रूहिसर्वार्थकोविद ॥ ४९ ॥ अदृष्टंतवनोदृष्टं यदिष्टंविष्टपत्रये ॥ अनुक्रोशोत्रमयिचेदुच्यतांप्रणतोस्म्यहम् ॥ ५० ॥

आपके अङ्गमें लगे जगमगे तेजसे अकस्मात् अन्तःकरण का तम याने अज्ञानभी शांतभया ॥ ४६ ॥ हे मुने! आज मैं सफल वृद्धि या सामग्रीवाला हूं व आज मेरा अच्छा दिन और बहुत दिनके बटोरे आगेके किये मेरे सुकर्म्म आज फले॥ ४७ ॥ आज मेरा धराधरत्व याने पृथिवी धारनेका भाव कुल पर्वतोमें माननीय होगा यों सुन तब कुछ ऊंचीश्वासले मुनि टिके याने रहगये ॥ ४८ ॥ फिर डरभुत मन पर्वतवर बोला कि हे सर्वज्ञ ब्राह्मण! ऊंचेश्वासका कारण कहो॥४९॥ यह किसीने नहीं देखा कि तीन लोकोमें जो अभिलषित वस्तु वह आपकी देखी न हो अथवा जो हम लोगोंकी भावी वह आपकी देखीहै जो यहां मेरेपर क्याहो तो कहो मै नमस्कार करताहूं॥५०॥

आपके आनेसे उपजे आनन्द समूहसे सघन सनेह सहित गद्गद वचन मैं बार बार बोलने के समर्थ नहीं तो भी एक बार कहताहूं ॥ ५१ ॥ सुमेरु आदि पर्वतों में पृथिवी धरने की सामर्थ्य पुराने लोग कहते हैं परन्तु उनके एकीभाव होनेसे केवल मैंही भूमिको धरता हूं ॥ ५२ ॥ पार्वती का पिता शिवका सम्बन्धी याने ससुर और पर्वतों का आदिराजा होनेसे वह एक हिमवान् सज्जनोंके मानसे भरा है याने अपने राजगुणसे नहीं ॥ ५३ ॥ सोने से भरने रत्नमयी किनारा धरने और देवोंके घर होनेसे भी सुमेरु मान्य कहीं मेरा मत नहीं क्योंकि उसमें थोड़ा सारहै ॥ ५४ ॥ पृथिवीधरण लीला संयुत सैकड़ों से अधिक पर्वत क्या यहां सज्जनोंके मान्य नहीं किन्तु

त्वदागमनजानन्दसन्दोहैर्मेदुरारवः ॥ अलन्नवक्तुमसकृत्तथाऽप्येकंवदाम्यहम् ॥ ५१ ॥ धराधरणसामर्थ्यं मेर्वादौपूर्वपूरुषैः ॥ वर्ण्यतेसमुदायात्तदऽहमेकोदधेधराम् ॥ ५२ ॥ गौरीगुरुत्वाद्धिमवानादिपत्याच्चभूभृताम् ॥ संबन्धित्वात्पशुपतेः सएकोमान्यभृत्सताम् ॥ ५३ ॥ नमेरुःस्वर्णपूर्णत्वाद्रत्नसानुतयाथवा ॥ सुरसद्मतयावापि कापिमान्योमतोमम ॥ ५४ ॥ परंशतंनकिंशैला इलाकलनकेलयः ॥ इहसन्तिसतांमान्या मान्यास्तेतुस्वभूमिषु ॥ ५५ ॥ मन्देहदेहसन्देहादुदयैकदयाश्रितः ॥ निषधोनौषधिधरोऽप्यस्तोप्यस्तामितप्रभः ॥ ५६ ॥ नीलश्चनीलीनिलयो मन्दरोमन्दलोचनः ॥ सर्पालयःसमलयो रायंनावैतिरैवतः ॥ ५७ ॥ हेमकूटत्रिकूटाद्याः कूटोत्तरपदास्तुते ॥ किष्किन्धक्रौञ्चसह्याद्या भारसह्यानतेभुवः ॥ ५८ ॥ इतिविन्ध्यवचःश्रुत्वा नारदोऽचिन्तयद्धृदि ॥ अखर्वगर्वसंसर्गो नमहत्त्वायकल्पते ॥ ५९ ॥ श्री

वे अपनी भूमि में ही मान्य हैं ॥ ५५ ॥ मंदेहा नाम राक्षसों की देहके सन्देह से याने उनका नाश देख एक दया को आधार करता है पुराणों में कथा है कि मन्देहा नाम राक्षस रात में ब्रह्मा के शापसे मरते और सूर्योदय समय उदय पर्वत में जीवतेहैं निषध पर्वत ओषधियों का धारक नहीं और अस्ताचल की आभा अस्त होगई है ॥ ५६ ॥ नीलगिरि अन्धकार का आधार मन्दराचल मन्द प्रकाशवान् वह मलय सर्प्पोंका स्थान रैवतगिरि धनको नहीं जानता ॥ ५७ ॥ जे हेमकूट त्रिकूटादि वे नाम के अन्तमें कूट पदवाले हैं किष्किन्ध क्रौंच सह्य और मैनाक आदि जो छोटे पर्वत वे भूमिका भार सहने के योग्य नहीं ॥ ५८ ॥ यों विंध्यका वचन सुन नारदने मन

व्यर्थ इन विचारों से क्या सबके कर्त्ता श्रीविश्वनाथ के शरण को जावों वे मुझे बुद्धि देंगे ॥ ७७ ॥ विश्वनाथही सब अनाथों के नाथ गाये जाते हैं क्षणभर मनमें चिंतनाकर कि विना संशय यों होवे ॥ ७८ ॥ यही करूंगा बेर विताना अच्छा नहीं शत्रु और रोग पण्डितोंके छोड़ने योग्य नहीं ॥ ७९ ॥ ग्रह नक्षत्र या राशिसमूह समेत सूर्य्य सुमेरु को बड़ा बलवान् मानतेहुये निश्चय नित्यही प्रदक्षिणा करते हैं ॥ ८० ॥ संग्राम याने स्पर्धामें दृष्टि है जिसकी वह विन्ध्याचल यों निश्चयकर अनन्त आकाश के अन्त को करते से कँगूरों से बढ़ा ॥ ८१ ॥ किसी लोगोंके साथ कहीं किसी करके विरोध करना न चाहिये जो करने योग्यहै तो यत्नसे जैसे कोई जन

षां विश्वनाथोहिगीयते ॥ क्षणंमनसिसंचिन्त्य भवेदित्थमसंशयम् ॥ ७८ ॥ एतदेवकरिष्यामि नेष्टंकालविलम्बनम् ॥ विचक्षणैरुपेक्ष्यौन वर्द्धमानौपरामयौ ॥ ७९ ॥ मेरुंप्रदक्षिणीकुर्यान्नित्यमेवदिवाकरः ॥ सग्रहर्क्षगणोनूनं मन्यमानो बलाधिकम् ॥ ८० ॥ इतिनिश्चित्यविन्ध्याद्रिर्ववृधेसमृधेक्षणः ॥ अनन्तगगनस्यान्तं कुर्वद्भिःशिखरैरिव ॥ ८१ ॥ केश्चित्सार्धंविरोधोन कर्तव्यःकेनचित्कचित् ॥ कर्तव्यश्चेत्प्रयत्नेन यथानोपहसेज्जनः ॥ ८२ ॥ निरुद्ध्यब्राध्नमध्वानं कृतकृत्यइवाद्रिराट् ॥ स्वस्थोऽभवद्भवाधीना प्राणिनांहिभविष्यता ॥ ८३ ॥ यमद्ययमकर्तासौ दक्षिणंप्रक्रमिष्यति ॥ स कुलीनःसचश्रीमान्समहान्महितःसच ॥ ८४ ॥ यावत्स्वशक्तिंशक्तोपि नदर्शयतिकर्हिचित् ॥ तावत्सलङ्घ्यःसर्वेषां ज्वलनोदारुगोयथा ॥ ८५ ॥ इतिचिन्तामहाभारं त्यक्त्वातस्थौस्थिरोद्यमः ॥ आकाङ्क्षमाणस्तरणेरुदयंब्राह्मणोयथा ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपूर्वार्द्धेविन्ध्यवर्धनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ * ॥ * ॥

न हँसे ॥ ८२ ॥ सूर्य्य की दक्षिण और उत्तर गली को रोंक पर्वतराज कृतार्थ सा स्वस्थ हुआ क्योंकि सब प्राणियों की भाषी ईश्वर के अधीन है ॥ ८३ ॥ ये सूर्य्य आज जिसको दक्षिण से घूमेंगे वही कुलीन वही शोभावान् वही महान् और वही पूजित है ॥ ८४ ॥ जबलों समर्थ अपनी शक्ति को कभी नहीं दिखाता तौलों वह वैसे सबके उल्लंघने योग्य होताहै कि जैसे काठ में टिकी आग ॥ ८५ ॥ यों चिन्ताके बडे बोझ को त्याग ब्राह्मण के समान सूर्य्य के उदय को चाहता अचल उद्यम हो वह टिका ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेविन्ध्यवर्धनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ ॥

दोहा ॥ इस दुसरे अध्यायमें रवि मग रुकने बाद ॥ देव गये विधिलोकको पाये प्रभू प्रसाद ॥ १ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि इस स्थावर जङ्गम जन्तुसमूह के व्यापक या फलरूप अन्धकार या अज्ञानके नाशक सूर्य्य पवित्र पसरनेवाली किरणोंसे उदयाचलमें उगे यहाँ ज्योतिष और पुराणोंकी रीति से भी यों जानना चाहिये कि पातालसे ऊपर उठते सूर्य्य को जे जहां देखें उनका वही उदयाचल तथा जहाँ भूमि से पाताल को जाते देखें वही स्थान अस्ताचलहै ॥ १ ॥ वैदिक धर्म्मों को बढ़ाते, अन्धकार या तमोगुण की निष्ठा को नीचे या अनादर करते रात में कली से बँधे मुखवाली प्यारी कमलिनी को फुलाते ॥ २ ॥ हव्य (देवों) कव्य (पितरों) भूतबलि (भूतोंके देने योग्य को) देवआदिकों का बर्ताते दिनके पहले दूसरे तीसरे हिस्से जे कि सुकर्म्म करने के कालहैं उनको करते यहाँ क्रमसे दिनके पहले देव दूसरे

व्यासउवाच ॥ सूर्यआत्मास्यजगतस्तस्थुषस्तमसोरिपुः ॥ उदियायोदयगिरौशुचिप्रसमरैःकरैः ॥ १ ॥ संवर्द्धय न्सतांधर्मान्न्यक्कुर्वंस्तामसींस्थितिम् ॥ पद्मिनींबोधयंस्त्विष्टां रात्रौमुकुलिताननाम् ॥ २ ॥ हव्यंकव्यंभूतबलिंदेवादीनांप्रवर्तयन् ॥ प्राह्णापराह्णमध्याह्नक्रियाकालंविजृम्भयन् ॥ ३ ॥ असतांहृदिवक्त्रेषु निर्दिशंस्तमसःस्थितिम् ॥ यामिनीकालकलितं जगदुज्जीवयन्पुनः ॥ ४ ॥ यस्मिन्नभ्युदितेजातः सम्यक्पुण्यजनोदयः ॥ अहोपरोपकरणंसद्यःफलतिनेतिचेत् ॥ ५ ॥ सायमस्तमितःप्रातः कथंजीवेद्रविःपुनः ॥ सानुरागकरस्पर्शैः प्राचीमाश्वास्यखण्डिताम्[१] ॥ ६ ॥ यामंभुक्त्वातथाग्नेयीं ज्वलन्तींविरहादिव ॥ लवङ्गैलामृगमदचन्द्रचन्दनचर्चिताम् ॥ ७ ॥ ताम्बूलीरागरक्तौष्ठीं द्राक्षा

भूत और तीसरे भाग में पितरोंकी पूजा करनाचाहिये ॥ ३ ॥ असज्जनों के मन व मुखोंमें तमोगुणी स्थिति को देते रातरूप कालसे निगले जगत्‌को फिर उठा जिलाते हुये श्रीसूर्य्यजी उगे ॥ ४ ॥ जिनके उगतेही भलीभांति से धार्मिक जनोंका उदय या मंदेहानाम राक्षसों का जीनाहुआ आश्चर्य्य है जो यह कहो कि पराया उपकार शीघ्र नहीं फलता तो यह नहीं याने फलताहै ॥ ५ ॥ जो ऐसा न हो तो सामको अथये सूर्य्य फिर प्रभातकाल कैसे उगें अनुराग समेत याने अरुणोदयके किरणरूप हाथों के परसने से पूर्वदिशा खण्डितानायिकाको आश्वासन कर ॥ ६ ॥ वैसे विरह से जलती सी आग्नेयी को पहरभर भोग तदनन्तर लौंग इलाची कस्तूरी

१ जिसका पति अन्य स्त्री के भोग से चिह्नित प्रात काल आवे उस स्त्रीको खण्डिता कहते हैं ऐसही रातमें अन्यत्र रह सूर्य जी प्रात पूर्वदिशा के समीप आते हैं यों उपमा ठीकहै ॥

कपूर चन्दनसे चर्चो ॥ ७ ॥ पान के रससे या लालीसे लाले ओठवाली और दाख के गुच्छे जिसके कुचाग्र हरफारयोरी की लतायें भुजलता, अशोक के पल्लव अंगुलियाँ ॥ ८ ॥ मलयाचल का याने चन्दन से सुगन्धित वायु श्वारा, क्षीरसागर श्रेष्ठ वस्त्र व त्रिकूट पर्वत के सोने और रत्न, अङ्ग में है जिसके सुवेलपर्वत नितंब याने कटिका पीछा भाग ॥ ९ ॥ कावेरी गोदावरी जंघा, चोलदेश कंचुकी वस्त्र (चोलिया) से घिरी, सह्य दर्दुर दोनों पहाड़ कुच कान्तीपुरी मेखलाभूषण (करधनी) ॥ १० ॥ अच्छी कोमल मरहटी बोली विलाससे मनोहर और गुनागरी नागरीको आज भी कोलापुरकी महालक्ष्मी नहीं तजती॥ ११ ॥उस अत्यन्त दक्ष दक्षिण दिशाको दिशाओं

स्तबकस्तुस्तनीम् ॥ लवलीवल्लिदोर्वल्लीं कङ्कोलीपल्लवाङ्गुलिम् ॥ ८ ॥ मलयानिलनिःश्वासां क्षीरोदकवराम्बराम् ॥ त्रिकूटस्वर्णरत्नाङ्गीं सुवेलाद्रिनितम्बिनीम् ॥ ९ ॥ कावेरीगौतमीजङ्घांचोलचोलांशुकावृताम् ॥ सह्यदर्दुरवक्षोजां कान्तीकाञ्चीविभूषणाम् ॥ १० ॥ सुकोमलमहाराष्ट्रीवाग्विलासमनोहराम् ॥ अद्यापिनमहालक्ष्मीर्याविमुञ्चतिसद्गुणाम् ॥ ११ ॥ सुदक्षदक्षिणामाशामाशानाथःप्रतस्थिवान् ॥ क्रमन्तःसर्वमर्वन्तो हेलयाहेलिकस्यखम् ॥ १२ ॥ नशेकुरग्रतो गन्तुं ततोऽनूरुर्व्यजिज्ञपत् ॥ १३ ॥ अनूरुरुवाच ॥ भानोमानोन्नतोविन्ध्यो निरुध्यगगनंस्थितः ॥ स्पर्धतेमेरुणाप्रेप्सुस्त्वद्दत्तान्तुप्रदक्षिणाम् ॥ १४ ॥ अनूरुवाक्यमाकर्ण्यसवितात्दृद्यचिन्तयत् ॥ अहोगगनमार्गोपि रुध्यतेचातिविस्मयः ॥ १५ ॥ व्यासउवाच ॥ सूरःशूरोपिकिंकुर्यात्प्रान्तरेवर्त्मनिस्थितः ॥ त्वरावानपिकोरुद्धं मार्गमेकोविलङ्घयेत् ॥ १६॥

के स्वामी सूर्य्य जी चले क्रम या अनादर कर सब आकाश को चलते, सूर्य्य के घोडे ॥ १२ ॥ जब आगे जानेको न समर्थ हुये तब अनूरुनाम सारथी ने जनाया॥ १३ ॥ अनूरु बोले, हे भानो प्रकाशवन् ! गर्व से बढ़ा आकाश को रोंक टिका विन्ध्याचल तुम्हारी दी प्रदक्षिणा का चाही हो सुमेरु से स्पर्धा याने डाह करताहै ॥ १४ ॥ अनूरु का वचन सुन अधिक विस्मयवान् सूर्य्य ने मनमें चिन्तना किया कि आश्चर्य है आकाशकी गली भी रोकीगई॥ १५ ॥ रोलाछन्द ॥ कह्यो सूतसे व्यास यदपि है सूरज शूरा । शून्य गलीमे टिके करैं क्या कारज पूरा ॥ वेगवन्त भी कौन जौन रोके मगकाहीं । जाय अकेल उलंघि होइ जो साथी नाहीं ॥ १६ ॥

हाथीरूपी राहु शुंडसे गसे शसेसे । क्षणभरि रहते जो न भाव तन तेज लसेसे ॥ रोकैंगे आकाश गली में करहिं कहा सो । ब्रह्मा या प्रारब्ध ईश बलवान् महा सो ॥ १७॥ दोवैछन्द ॥ चारकोस की योजन संज्ञा ज्योतिषमें हम हेरे। दोहजार दो सौ दो योजन गने मनुष्यों केरे ॥ आध पलक के काल हाल से चलेजात हैं जोई । विधिवश बड़ी बेर लग मग में टिके सूर्य्य जी सोई ॥ १८ ॥ बहुतकाल बीततेही सूर्य्य की किरण समूह पड़ने से उपजे अधिक तापसे तपाये पूर्व और उत्तरके वासी बहुत व्याकुल हुये ॥ १९ ॥ सोतेही नींद से मूंदी आंखिवाले पच्छू और दक्षिणके लोग, नक्षत्र ग्रह समेत आकाश को देखने लगे ॥ २० ॥ सूर्य्य के न होने से दिन नहीं याने दिन तो सूर्य्योदय से चारही पहर होताहै चन्द्रमाके न होने से रात नहीं जो कहो कि विना चन्द्रमाके भी अमावसकी रात होती है उसपर कहते हैं कि बन्द

राहुबाहुग्रहव्यग्रो यःक्षणंनावतिष्ठति ॥ शून्यमार्गेनिरुद्धःसकिङ्करोतुविधिर्बली ॥ १७ ॥ योजनानांसहस्रेद्वे द्वे शतेद्वेचयोजने ॥ योजनस्यनिमेषार्धाद्यातिसोपिचिरंस्थितः ॥ १८ ॥ गतेबहुतिथेकाले प्राच्योदीच्याभृशार्दिताः ॥ चण्डरश्मेःकरव्रातपातसन्तापतापिताः ॥ १९ ॥ पाश्चात्त्यादाक्षिणात्याश्चनिद्रामुद्रितलोचनाः ॥ शयिताएववीक्षन्ते सताराग्रहमम्बरम् ॥ २० ॥ अहोनाहस्कराभावान्निशानैवाऽनिशाकरात् ॥ अस्तंगतर्क्षान्नभसःकःकालस्त्वेषनेक्ष्यते ॥ २१ ॥ ब्रह्माण्डंकिमकाण्डेवै लयमेष्यतितत्कथम् ॥ परापतन्तिनाद्यापि पारावाराइतस्ततः ॥ २२ ॥ स्वाहास्वधावषट्कारवर्जितेजगतीतले ॥ पञ्चयज्ञक्रियालोपाच्चकम्पेभुवनत्रयम् ॥ २३ ॥ सूर्योदयात्प्रवर्तन्ते यज्ञाद्याःसकलाःक्रियाः॥

है चलना जिनका वे नक्षत्र हैं जिसमें ऐसा आकाश कारण होने से भी याने रात में तो नक्षत्रादि चलते हैं तो यह कौनसा कालहै नहीं लखाजाता ॥ २१ ॥ क्या विना समयमेंही ब्रह्माण्ड प्रलयको प्राप्तहोगा वह कैसे आजभी समुद्रके इस उस पारकी प्रजायें ऐसी वैसी नही आना जाना करतीं या अबहीं समुद्र ऐसी वैसी नहीं उमड़ते ॥ २२ ॥ देव पितर और ऋषियों के लिये भाग देने में क्रमसे स्वाहा, स्वधा, वषट् ये शब्द कहेजाते हैं उनसे रहित पृथिवीतल में होम, तर्प्पण, बलिवैश्वदेव, वेदोंके मन्त्रों का पाठ और आतिथिपूजा याने आपनेवाले लोगों को भोजनादि देना इन पांच यज्ञों के लोप होनेसे तीनों लोक कांप उठे ॥ २३ ॥ सूर्य्य के उदय से

सब यज्ञादि क्रियायें बहुतभांति से वर्तमान होती हैं उनसे यज्ञों में खाते देवादिकों की तृप्ति उसके सूर्य्यही कारणहैं ॥ २४ ॥ चित्रगुप्त आदि सबजन सूर्य्य सेही काल को जानते व जन्म पालन घालन के केवल कारण सूर्य्य हैं ॥ २५ ॥ उन सूर्य्यदेवकी चाल रुकने से तीनों लोक रुके जो जहां वह वहां चित्र में धरासा सब रहा॥ २६ ॥ एकओर रातके अँधेरे और एकओर दिनके घामसे बहुतों का नाश व जगत् डरसे कम्पित हुआ ॥ २७ ॥ यों देव दैत्य मनुष्य सर्पादिवाले लोक के व्याकुल होतेही हाय असमय में यह क्या भया प्रजायें रोईं और भागीं ॥ २८ ॥ तदनन्तर जगत्‌को व्याकुल देख या विचारकर सबदेव ब्रह्माजीके शरण गये और अनेक भांतिके

ताभिर्यज्ञभुजांतृप्तिःसवितातत्रकारणम् ॥ २४ ॥ चित्रगुप्तादयःसर्वे कालंजानन्तिसूर्यतः ॥ स्थितिसर्गविसर्गाणां कारणंकेवलंरविः ॥ २५ ॥ तत्सूर्यस्यगतिस्तम्भात् स्तम्भितंभुवनत्रयम् ॥ यद्यत्रतत्स्थितंतत्र चित्रन्यस्तमिवाखिलम् ॥ २६ ॥ एकतस्तिमिरान्नैशादेकतस्तुदिवातपात् ॥ बहूनांप्रलयोजातः कान्दिशीकमभूज्जगत् ॥ २७ ॥ इतिव्याकुलितेलोके सुरासुरनरोरगे ॥ आःकिमेतदकाण्डेभूद्रुरुदुर्दुद्रुवुःप्रजाः ॥ २८ ॥ ततःसर्वेसमालोक्य ब्रह्माणंशरणंययुः ॥ स्तुवन्तोविविधैःस्तोत्रै रत्तरक्षेतिचाब्रुवन् ॥ २९ ॥ देवाऊचुः ॥ नमोहिरण्यगर्भाय ब्रह्मणेब्रह्मरूपिणे ॥ अविज्ञातस्वरूपाय कैवल्यायामृतायच ॥ ३० ॥ यन्नदेवाविजानन्ति मनोयत्रापिकुण्ठितम् ॥ नयत्रवाक्प्रसरति नमस्तस्मैचिदात्मने ॥ ३१ ॥ योगिनोयंहृदाकाशे प्रणिधानेननिश्चलाः ॥ ज्योतीरूपंप्रपश्यन्ति तस्मैश्रीब्रह्मणेनमः ॥ ३२ ॥ कालात्परा

स्तोत्रोंसे स्तुति करते राखो राखो यों बोले ॥ २९ ॥ ब्रह्माण्ड भीतरहै जिनके अन्तर्यामी विराट्‌रूप और नहीं विशेषकर जानागया स्वरूप जिनका नित्यमुक्त आनन्दमय उन आपके नमस्कार है ॥ ३० ॥ इन्द्रियां या उनके देव जिनको नहीं जानते जहां मन सामर्थ्यहीन जहां वाणी नहीं पसरती उन चेतनरूपके नमस्कारहै॥ ३१॥ योगीजन जिनको आकाश से शुद्ध अन्तःकरण में एकाग्रता या भक्ति विशेष से ज्योतिरूप याने आपही आपसे प्रकाशित देखते हैं उन सावित्री समेत ब्रह्मा के नमस्कार है ॥ ३२ ॥ निमेष आदि द्विपरार्ध पर्य्यन्त काल से परे मायासे कालरूप याने काल जिनका व्यापार है अथवा सबके नाशक अपनी या अपने भक्तों की

इच्छा से शरीरोंमें सोते याने अवतारधारी सत, रज, तम तीनों गुणोंके और प्रकृतिके रूपके नमस्कार है ॥ ३३ ॥ सतोगुणरूप विष्णु रजोरूप ब्रह्मा तमोरूप रुद्र जगत्के पालन जन्म नाश कर्त्ता के नमस्कार है ॥ ३४ ॥ बुद्धि याने महत्तत्त्व रूप व वैकारिक तैजस, तामस तीनप्रकार अहंकाररूपके नमस्कार तथा शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध रूप और गुदा लिंग हाथ पांव वाक् पांच कर्म्म इन्द्रियरूपके नमस्कार है ॥ ३५ ॥ मन याने अन्तःकरणरूप व श्रवण त्वचा नेत्र जिह्वा नासिका पांच ज्ञान इन्द्रिय रूप के नमस्कार, पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश पञ्चभूतरूप और स्थूलरूप आपके नमस्कारहै ॥ ३६ ॥ ब्रह्माण्डरूप और उस के भीतर व्यापक अथवा कारण कार्य्य रूपके नमस्कार अबके और आगे के जगत् के रूप आपके नमस्कार है ॥ ३७ ॥ जो कुछ वस्तु अनित्य व नित्य है उसके रूप, स्थूल सूक्ष्म या

यकालाय स्वेच्छयापुरुषायच ॥ गुणत्रयस्वरूपाय नमःप्रकृतिरूपिणे ॥ ३३ ॥ विष्णवेसत्त्वरूपाय रजोरूपायवेधसे ॥ तमसेरुद्ररूपाय स्थितिसर्गान्तकारिणे ॥ ३४ ॥ नमोबुद्धिस्वरूपाय त्रिधाहंकृतयेनमः ॥ पञ्चतन्मात्ररूपाय पञ्चकर्मेन्द्रियात्मने ॥ ३५ ॥ नमोमनःस्वरूपाय पञ्चबुद्धीन्द्रियात्मने ॥ क्षित्यादिपञ्चरूपाय नमस्तेविषयात्मने ॥ ३६ ॥ नमो ब्रह्माण्डरूपाय तदन्तर्वर्तिनेनमः ॥ अर्वाचीनपराचीनविश्वरूपायतेनमः ॥ ३७ ॥ अनित्यनित्यरूपाय सदसत्पतये नमः ॥ समस्तभक्तकृपयास्वेच्छाविष्कृतविग्रह ॥ ३८ ॥ तवनिःश्वसितंवेदास्तवस्वेदोखिलंजगत् ॥ विश्वभूतानिते पादः शीर्ष्णोद्यौःसमवर्तत ॥ ३९ ॥ नाभ्याआसीदन्तरिक्षंलोमानिचवनस्पतिः ॥ चन्द्रमामनसोजातश्चक्षोःसूर्यस्तव प्रभो ॥ ४० ॥ त्वमेवसर्वंत्वयिदेवसर्वं स्तोतास्तुतिःस्तव्यइहत्वमेव ॥ ईशात्वयावास्यमिदंहिसर्वं नमोस्तुभूयोपिनमो

कारण कार्य्य के स्वामी के नमस्कार है हे सबभक्तोंपर कृपाकरके प्रकटकिये रूपवाले ! ॥ ३८ ॥ वेद आपके श्वास और आपके पसीना याने जलतत्त्व में धरे शक्ति विशेषरूप अथवा अपञ्चीकृत जल आदि तत्त्वरूप सम्पूर्ण जगतहै व सब जीवजात आपका एक अंशहैं अर्थात् आपकी त्रिपाद विभूति नित्यहै और आपके शिरसे दिवलोक भलीभांति से बर्ता है ॥ ३९ ॥ नाभि याने तोंदी से आकाश, विना फूल के फल वाले वृक्ष रोम और हे स्वामिन् ! आप के मन से चन्द्रमा व आंख से सूर्य्य उपजे ॥ ४० ॥ हे देव ! सबकुछ आपही व सब आप में है स्तुतिकर्त्ता, स्तुति और स्तुति के योग्यभी यहां आपही हो तथा आप ईश्वर सेही यह सब जगत् भली

भांति से बधा कि जैसे सूत से कपड़ा अथवा सत्ता व चैतन्य से व्यापने के योग्यहै आपके बारबार नमस्कारहो ॥ ४१ ॥ यों ब्रह्माजीको प्रशंस देवतालोग पृथिवी में दण्डके समान गिरपड़े तब प्रसन्न ब्रह्माजी देवों से बोले ॥ ४२ ॥ हे विनम्रहुयेदेवो! बराबर अर्थवाली इस स्तुतिसे मैं संतुष्टहूं उठो प्रसन्नहो उत्तम वर मांगो ॥ ४३ ॥ श्रद्धावान् पवित्र जो पुरुष प्रतिदिन इस स्तुति से मुझ व महादेव व विष्णुको प्रशंसेगा उससे हम सब सदा संतुष्टहों ॥ ४४ ॥ सब वाञ्छित पूत पोता पशु धन सौभाग्य आयुप् आरोग्य अभयता और संग्राममें जीतिको देंगे ॥ ४५ ॥ वैसे लोक परलोक के भोगों सायुज्य मुक्तिको भी देंगे और जो जो उसका प्यारा या इच्छित वह वह सब

नमस्ते ॥ ४१ ॥ इतिस्तुत्वाविधिंदेवा निपेतुर्दण्डवत्क्षितौ ॥ परितुष्टस्तदाब्रह्मा प्रत्युवाचदिवौकसः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यथार्थयाऽनयास्तुत्या तुष्टोस्मिप्रणताःसुराः ॥ उत्तिष्ठतप्रसन्नोस्मि वृणुध्वंवरमुत्तमम् ॥ ४३ ॥ यःस्तोष्यत्यनयास्तुत्या श्रद्धावान्प्रत्यहंशुचिः ॥ मांवाहरंवाविष्णुंवा तस्यतुष्टाःसदावयम् ॥ ४४ ॥ दास्यामःसकलान्कामान् पुत्रान्पौत्रान्पशून्वसु ॥ सौभाग्यमायुरारोग्यं निर्भयत्वंरणेजयम् ॥ ४५ ॥ ऐहिकामुष्मिकान्भोगानपवर्गंतथाऽव्ययम् ॥ यद्यदिष्टतमंतस्य तत्तत्सर्वंभविष्यति ॥ ४६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पठितव्यःस्तवोत्तमः ॥ अभीष्टदइतिख्यातस्तवोयंसर्वसिद्धिदः ॥ ४७ ॥ पुनःप्रोवाचतान्वेधाः प्रणिपत्योत्थितान्सुरान् ॥ स्वस्थास्तिष्ठतभोयूयं किमत्रापिसमाकुलाः ॥ ४८ ॥ एतेवेदामूर्तिधरा इमाविद्यास्तथाखिलाः ॥ सदक्षिणाअमीयज्ञाः सत्यंधर्मस्तपोदमः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मचर्यमिदंचैषा

होगा ॥ ४६ ॥ उस कारण स्तोत्रों में उत्तम सब सिद्धिदान अभीष्टद इस नामसे प्रसिद्ध यह स्तोत्र सब यत्नसे पढ़ने योग्य है ॥ ४७ ॥ प्रणामकर उठे देवों से ब्रह्माजी फिर बोले हे देवताओ ! तुम स्वस्थ टिको यहांभी क्यों बहुत व्याकुलहो ॥ ४८ ॥ इस सत्यलोकमें ये स्वरूपवान् वेद वैसे सम्पूर्ण याने शिक्षा कल्पज्योतिष छन्द निरुक्त व्याकरण मीमांसा न्याय पुराण धर्म्मशास्त्र वैद्यक धनुर्वेद सङ्गीत और अर्थशास्त्र ये चौदह विद्यायें दक्षिणा समेत ये अग्निष्टोमादि यज्ञ सत्यवचन धर्म्म तप कृच्छ्रचान्द्रायण व्रतादि, विषयों से इन्द्रियों की निवृत्ति या उनका रोकना ॥ ४९ ॥ यह ब्रह्मचर्य्य अर्थात् स्त्रीका दरसन परसन खेलनों सुमिरना गुप्त बतलाना संकल्प निश्चय

क्रियासे आनन्द होना इस अष्टांग मैथुनका त्याग और ये दयारूप सरस्वती और वेदस्मृति पुराणों कहे अनुष्ठानों में किया पुरुषार्थ जिन्होंने वे ये लोगहैं ॥ ५० ॥ यहां कहीं क्रोध नहीं व ईर्षा, लोभ, कामना अधारणा याने देहादि रोंकने की अशक्ति, डर तन मन वचन से प्राणियों की पीड़ा कुटिलाई, अभिमान, निन्दा गुणों में दोष प्रकटना और अपवित्रता भी नहीं है ॥ ५१ ॥ जे ब्राह्मण वेदों में रत तपस्याके सनेही विरक्त मास छः मास चौमासादि में उपास व्रतादि करनेवाले ॥ ५२ ॥ पतिव्रता स्त्रियां व अन्य जे ब्रह्मचारी और जे परस्त्रीमें नपुंसक हैं वे ये हैं हे देवो ! देखो ॥५३॥ ये मा बापके सेवक ये गऊ रक्षाके लिये मरे व्रत दान जप यज्ञ पढ़ना

करुणाभारतीत्वियम् ॥ श्रुतिस्मृतीतिहासार्थचरितार्थाअमीजनाः ॥ ५० ॥ नेहक्रोधोनमात्सर्यं लोभःकामोऽधृतिर्भयम् ॥ हिंसाकुटिलतागर्वो निन्दासूयाऽशुचिःक्वचित् ॥ ५१ ॥ येब्राह्मणाब्रह्मरतास्तपोनिष्ठास्तपोधनाः ॥ मासोपवासषण्मासचातुर्मास्यादिसद्व्रताः ॥ ५२ ॥ पातिव्रत्यरतानार्योयेचान्येब्रह्मचारिणः ॥ तेचामीपश्यतसुरायेषण्ढाःपरयोषिति ॥ ५३ ॥ मातापित्रोरमीभक्ता अमीगोग्रहणेहताः ॥ व्रतेदानेजपेयज्ञे स्वाध्यायेद्विजतर्पणे ॥ ५४ ॥ तीर्थेतपस्युपकृतौ सदाचारादिकर्मणि ॥ फलाभिलाषिणीबुद्धिर्नयेषान्तेजनाअमी॥ ५५ ॥ गायत्रीजाप्यनिरता अग्निहोत्रपरायणाः॥ द्विमुखीगोप्रदातारः कपिलादानतत्पराः ॥ ५६ ॥ निःस्पृहाःसोमपायेवै द्विजपादोदपाश्चये ॥ मृताःसारस्वतेतीर्थे द्विजशुश्रूषकाश्चये ॥ ५७ ॥ प्रतिग्रहसमर्थाहि येप्रतिग्रहवर्जिताः ॥ तएतेमत्प्रियाविप्रास्त्यक्ततीर्थप्रतिग्रहाः ॥ ५८ ॥ प्रयागेमाघमासोयैरुषःस्नातोऽमलात्मभिः ॥ मकरस्थेरवौशुद्धास्तइमेसूर्यवर्चसः ॥ ५९ ॥ वाराणस्यांपाञ्चनदेत्र्यहं

या वेदादिकों का पाठ ब्राह्मणों का भोजनादिकों से तृप्त करना ॥ ५४ ॥ तीर्थ तपस्या उपकार और अच्छे आचारआदि कर्म्म में जिनकी फल चाहनेहारी बुद्धि नहीं वे लोग ये हैं ॥ ५५ ॥ गायत्री जपने में रत, नित्य होम में परायण ब्याती गऊके दाता उजले पावँकी गऊ देनेमें तत्पर ॥ ५६ ॥ चाहनारहित जे सोमपीते जे ब्राह्मणों का चरणामृत पीते जे प्रभास या पृथूदक तीर्थ में मरे जे ब्राह्मणों के सेवक ॥ ५७ ॥ जे दान देने में समर्थ दान लेनेसे वर्जित और त्यागाहै तीर्थमें दान लेना जिन्होंने वे ये ब्राह्मण मेरे प्यारे हैं ॥ ५८ ॥ मकरके सूर्य्य होतेही जिन विमल मनवालों ने प्रयागमे बड़े सबेरे स्नान से माघ महीने को बिताया वे ये शुद्ध व सूर्य्य के समान

तेजस्वी हैं ॥ ५९ ॥ काशीके मध्य पंचनद में जिन्होंने कातिक के तीनदिन नहाया वे ये शुद्धअङ्ग अपाप और पुण्यके भागी हैं ॥ ६० ॥ मणिकर्णिका में नहा जिन्होंने धनों से ब्राह्मणों को तृप्त किया वे ये सब भोगों से भरेपुरे हो मेरे लोक में प्रलय पर्य्यन्त बसेंगे ॥ ६१ ॥ फिर उस पुण्य से प्रेरित हो काशी में जा विश्वनाथ की प्रसन्नता से सन्देहरहित मोक्षको प्राप्त होंगे ॥ ६२ ॥ काशी में मनुष्यों से किया गया जो थोड़ा भी सुकर्म्म,उसका फल कल्याणरूप मोक्षही अन्य जन्मोंमें भी होताहै ॥ ६३ ॥ आश्चर्य्य है कि विश्वनाथ के क्षेत्र में मरण से भी डर नहीं जहां सब लोग मृत्युको प्यारे पाहुन की नाईं परखते हैं ॥ ६४ ॥ जिन्होंने कुरुक्षेत्र में ब्राह्मणों को

स्नातास्तुकार्तिके ॥ अमीतेशुद्धवपुषः पुण्यभाजोतिनिर्मलाः ॥ ६० ॥ स्नात्वातुमणिकर्णिक्यां प्रीणिताब्राह्मणाधनैः ॥ तएतेसर्वभोगाढ्याः कल्पंस्थास्यन्तिमत्पुरे ॥ ६१ ॥ ततःकाशींसमासाद्य तेनपुण्येननोदिताः ॥ विश्वेश्वरप्रसादेन मोक्षमेष्यन्त्यसंशयम् ॥ ६२ ॥ अविमुक्तेकृतंकर्मयदल्पमपिमानवैः ॥ श्रेयोरूपंतद्विपाको मोक्षंजन्मान्तरेष्वपि ॥ ६३ ॥ अहोवैश्वेश्वरेक्षेत्रे मरणादपिनोभयम् ॥ यत्रसर्वेप्रतीक्षन्ते मृत्युंप्रियमिवातिथिम् ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणेभ्यःकुरुक्षेत्रे यैर्दत्तंवसुनिर्मलम् ॥ निर्मलाङ्गास्तएतेवै तिष्ठन्तिममसन्निधौ ॥ ६५ ॥ पितामहंसमासाद्य गयायांयैःपितामहाः ॥ तर्पिताब्राह्मणमुखे तेषामेतेपितामहाः ॥ ६६ ॥ नस्नानेननदानेन नजपेननपूजया ॥ मल्लोकःप्राप्यतेदेवाः प्राप्यतेद्विजतर्पणात् ॥ ६७ ॥ सोपस्कराणिवेश्मानि मुसलोलूखलादिभिः ॥ यैर्दत्तानिसशय्यानि तेषांहर्म्याण्यमूनिवै ॥ ६८ ॥ ब्रह्मशालांकारयन्ति वेदमध्यापयन्तिच ॥ विद्यादानञ्चयेकुर्युः पुराणंश्रावयन्तिच ॥ ६९ ॥ पुराणानिचयेदद्युः पुस्त

अच्छा शुद्ध धन दिया वे अमल अङ्गवाले ये मेरे समीप टिके हैं ॥ ६५ ॥ ब्रह्माजीके पास पहुँच गया में जिन्होंने ब्राह्मणों के मुखमें पितरोंको तृप्त किया याने उनकी तृप्ति के लिये ब्राह्मणों को खिलाया पिलाया उनके ये पितर हैं ॥ ६६ ॥ हे देवो ! स्नान दान जप व पूजा से मेरा लोक नहीं मिलता किन्तु ब्राह्मणोंकी तृप्ति से मिलता है ॥६७॥ काँड़ी मूसलों के साथ सामग्री सनेत शय्यासंयुत घरोंको जिन्होंने दिया उनके ये महल हैं ॥ ६८ ॥ जे वेद पढ़ने का घर बनवाते वेद पढ़ाते विद्याका

दान करते पुराण सुनाते ॥ ६९ ॥ जे पुराण देते व अन्य पोथी भी देते हैं और जे धर्म्मशास्त्र की पोथी देते उनका वास इस मेरे लोकमें होताहै ॥ ७० ॥ यज्ञ ब्याह और व्रतके अर्थ जे ब्राह्मण को अखण्ड धन देते वे यहां अग्नि से जगमगाते हैं ॥ ७१ ॥ अन्न धन देनेसे वैद्यके पोषण करनेमें तत्परहो जो आरोग्यशाला याने औषध बर्ताने के लिये घर बनवावे वह सब भोगों से संयुतहो कल्पपर्य्यन्त यहां बसे ॥ ७२ ॥ जे दुष्टोंके रोंकने से तीर्थों को छुड़ाते वे मेरे मन्दिर में अंग से उपजे पुत्र के समान मान पाते हैं ॥ ७३ ॥ विष्णु शिव और मेरे भी ब्राह्मणही प्यारे हैं साक्षात् उनके रूपसे हम पृथिवी में विचरते हैं ॥ ७४ ॥ एकही फल साधन का समूह

कानिददत्यपि ॥ धर्मशास्त्राणियेदद्युस्तेषांवासोत्रमेपुरे ॥ ७० ॥ यज्ञार्थञ्चविवाहार्थे व्रतार्थेब्राह्मणायवै ॥ अखण्डंवसु येदद्युस्तेत्रस्युर्वसुवर्चसः ॥ ७१ ॥ आरोग्यशालांयःकुर्याद्वैद्यपोषणतत्परः ॥ आकल्पमत्रवसति सर्वभोगसमन्वितः ॥ ७२ ॥ मुक्तीकुर्वन्तितीर्थानि येचदुष्टावरोधतः ॥ ममावरोधेतेमान्या औरसास्तनयाइव ॥ ७३ ॥ विष्णोर्वाममवाश म्भोर्ब्राह्मणाएवसुप्रियाः ॥ तेषांमूर्त्यावयंसाक्षाद्विचरामोमहीतले ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणाश्चैवगावश्च कुलमेकंद्विधाकृतम् ॥ एकत्रमन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरेकत्रतिष्ठति ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणाजङ्गमंतीर्थं निर्मितंसार्वभौमिकम् ॥ येषांवाक्योदकेनैव शुद्ध्य न्तिमलिनाजनाः ॥ ७६ ॥ गावःपवित्रमतुलं गावोमङ्गलमुत्तमम् ॥ यासांखुरोत्थितोरेणुर्गङ्गावारिसमोभवेत् ॥ ७७ ॥ शृङ्गाग्रेसर्वतीर्थानि खुराग्रेसर्वपर्वताः ॥ शृङ्गयोरन्तरेयस्याः साक्षाद्गौरीमहेश्वरी ॥ ७८ ॥ दीयमानाञ्चगांदृष्ट्वा नृत्य न्तिप्रपितामहाः ॥ प्रीयन्तेऋषयःसर्वे तुष्यामोदैवतैःसह ॥ ७९ ॥ रोरूयन्तेचपापानि दारिद्र्यंव्याधिभिःसह ॥ धात्र्यः

ब्राह्मण और गऊ दोरूपसे कियागया एक ओर मन्त्र व एक ओर हविष्यान्न टिकाहै ॥ ७५ ॥ ब्राह्मणलोग सबसे रहनेवाला चलता तीर्थ बनाये गये हैं जिनके वचन जलसे मलिनमन जन शुद्ध होते हैं ॥ ७६ ॥ गौवें अतौल पवित्र गौवें उत्तम मंगल हैं जिनके खुरों से उठी धूरि गङ्गाजल के समान है ॥ ७७ ॥ सींगोंके आगे सब तीर्थ खुरों के आगे सब पर्वत और जिसके सींगोंके बीचमें साक्षात् शिवकी शक्ति श्रीगौरी देवी बसती हैं ॥ ७८ ॥ दीजाती गऊ को देख पितर आनन्द से नाचते सब

ऋषि प्रसन्न होते हम सब देवों के साथ सन्तुष्ट होते हैं ॥ ७९ ॥ दरिद्र रोगसहित सब पाप रोते हैं माता की नाईं सब भांतिसे गौवें लोकके पोपनेवाली हैं ॥ ८० ॥ गौवों के स्तुति नमस्कार और प्रदक्षिणा करके उस जनने सातद्वीप पृथिवी की प्रदक्षिणा किया ॥ ८१ ॥ जो लक्ष्मी सब प्राणियो में व सब देवों में टिकी है वह देवी गऊरूप से मेरे पापको नाशे ॥ ८२ ॥ जो लक्ष्मी विष्णु के हृदय में व अग्नि की स्वाहा पितरों की स्वधाहै वह गऊ सदा वर देनेवाली होवे ॥ ८३ ॥ गोवर साक्षात् यमुना गोमूत्र मङ्गलमयी नर्मदा और जिन गौओं का दूध गङ्गाजल है इनसे अधिक पवित्र क्या है ॥ ८४ ॥ जिससे गौओ के अङ्ग अङ्गमें चौदहो लोक टिके उस का-

सर्वस्यलोकस्य गावोमातेवसर्वथा ॥ ८० ॥ गवांस्तुत्वानमस्कृत्य कृत्वाचैवप्रदक्षिणाम् ॥ प्रदक्षिणीकृतातेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ८१ ॥ यालक्ष्मीःसर्वभूतानां यादेवेपुव्यवस्थिता ॥ धेनुरूपेणसादेवी ममपापंव्यपोहतु ॥ ८२ ॥ विष्णोर्वक्षसिया लक्ष्मीः स्वाहाचैवविभावसोः ॥ स्वधायापितृमुख्यानां साधेनुर्वरदासदा ॥ ८३ ॥ गोमयंयमुनासाक्षाद्गोमूत्रंनर्मदाशुभा ॥ गङ्गाक्षीरन्तुयासांवैकिंपवित्रमतःपरम् ॥ ८४ ॥ गवामङ्गेपुतिष्ठन्ति भुवनानिचतुर्दश ॥ यस्मात्तस्माच्छिवंमेस्यादिहलोकेपरत्रच ॥ ८५ ॥ इतिमन्त्रंसमुच्चार्य धेनूर्वाधेनुमेववा ॥ योदद्याद्द्विजवर्याय ससर्वेभ्योविशिष्यते ॥ ८६ ॥ मया चविष्णुनासार्द्धं शिवेनचमहर्षिभिः ॥ विचार्यगोगुणान्नित्यंप्रार्थनेतिविधीयते ॥ ८७ ॥ गावोमेपुरतःसन्तु गावोमेसन्तु पृष्ठतः ॥ गावोमेहृदयेसन्तु गवांमध्येवसाम्यहम् ॥ ८८ ॥ नीराजयतियोङ्गानि गवांपुच्छेनभाग्यवान् ॥ अलक्ष्मीःकलहोरोगास्तस्याङ्गाद्यान्तिदूरतः ॥ ८९ ॥ गोभिर्विप्रैश्चवेदैश्च सतीभिःसत्यवादिभिः ॥ अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धा

रण इस उस लोकमें मेरा कल्याणहो ॥ ८५ ॥ यों मन्त्र पढ़ वहुती गौओं या एक भी गऊ को जो ब्राह्मणवर को देता वह सवसे श्रेष्ठ होताहै ॥ ८६ ॥ विष्णु शिव और वडे ऋषियो के साथ मैं गौओं के गुणों को विचार रोज यो प्रार्थना करताहूं ॥ ८७ ॥ गौवें मेरे आगे हों गौवें मेरे पीछे हों गौवें मेरे हृदयमें याने उनकी भक्तिहो मैं गौवों के बीच में वसों ॥ ८८ ॥ जो भाग्यवान् गौवो की पूंछ से अपने अङ्गो को पोंछता उसकी देह से दरिद्र कलह रोग सोग सव दूर भागजाते हैं ॥ ८९ ॥ गऊ

ब्राह्मण वेद पतिव्रता स्त्री सत्य वचन बोलनेवाले लोभरहित दानी ये सात जनें सातद्वीप पृथिवी को धारते हैं ॥ ९० ॥ मेरे लोकसे परे लोक वैकुण्ठ यों गायाजाता उसके ऊपर कौमार लोक उससे परे पार्वती का लोक है ॥ ९१ ॥ उसके ऊपर शिवलोक उसके लगे गोलोक उसमें शिवकी प्यारी सुशीलाआदि गौओं की मातायें हैं ॥ ९२ ॥ जे मनुष्य गौओं के सेवक व गौओं के दाता वे सब सामग्रियों से भरेपुरेहो इन लोकों में से किसी लोकमें रहते हैं ॥ ९३ ॥ जहाँ दूध बहनेवाली व जहाँ खीर कीचसे भरी नदिया और जहां बुढ़ाई नहीं बाधती वहां गौओं के दाता जातेहैं ॥ ९४ ॥ वेद स्मृति पुराणों के पण्डित व उनके कहे आचारकर्त्ता ब्राह्मण कहाते

र्यते मही ॥ ९० ॥ ममलोकात्परोलोको वैकुण्ठइतिगीयते ॥ तस्योपरिष्टात्कौमार उमालोकस्ततःपरम् ॥ ९१ ॥ शिवलोकस्तदुपरि गोलोकस्तत्समीपतः ॥ गोमातरःसुशीलाद्यास्तत्रसन्तिशिवप्रियाः॥९२॥गवांशुश्रूषकायेच गोप्रदायेच मानवाः ॥ एषामन्यतमेलोके तेस्युःसर्वसमृद्धयः ॥ ९३ ॥ यत्रक्षीरवहानद्यो यत्रपायसकर्दमाः ॥ नजराबाधतेयत्र तत्रगच्छन्तिगोप्रदाः ॥ ९४ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणज्ञा ब्राह्मणाःपरिकीर्तिताः ॥ तदुक्ताचारचरणा इतरेनामधारकाः ॥ ९५ ॥ श्रुतिस्मृतीतुनेत्रेद्वे पुराणंहृदयंस्मृतम् ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यांहीनोन्धः काणःस्यादेकयाविना ॥ ९६ ॥ पुराणहीनाद्धृच्छून्यात्काणान्धावपितौवरौ ॥ श्रुतिस्मृत्युदितोधर्मः पुराणेपरिगीयते ॥ ९७ ॥ तद्ब्राह्मणायगौर्देया सर्वत्रसुखमिच्छता ॥ नदेयाद्विजमात्राय दातारंसोप्यधोनयेत् ॥ ९८ ॥ यस्यधर्मेऽस्तिजिज्ञासा यस्यपापाद्भयंमहत् ॥ श्रोतव्यानिपुराणानि धर्ममूलानितेनवै ॥ ९९ ॥ चतुर्दशसुविद्यासु पुराणंदीपउत्तमः ॥ अन्धोपिनतदालोकात्संसाराब्धौक्वचित्पतेत् ॥१००॥

और तो नामधारी याने नामही से ब्राह्मणहैं ॥ ९५ ॥ वेद स्मृति ये दोनों आंखें व पुराण हृदय कहा गयाहै वेद स्मृतियों से रहित अन्धा एक विना काना होताहै ॥९६॥ तो भी पुराणहीन हृदय सूने से अन्धा व काना श्रेष्ठ क्योंकि वेद स्मृतियों का कहा धर्म पुराणों में गायाजाता है ॥ ९७ ॥ इससे उस वेद स्मृति पुराण पाठी ब्राह्मण के लिये सुखका चाही गऊ देवै नाम के ब्राह्मण को न देना चाहिये वह दाता कोभी नीचे याने नरकमें पठाताहै ॥ ९८ ॥ जिसकी धर्म्म जानने की इच्छा जिसका पापसे बड़ा डर उस जन करके धर्म्म के कारण पुराण सुनने योग्य हैं ॥ ९९ ॥ चौदहो विद्याओंमें पुराण दीपक है अन्धा भी उसके उजेले से संसारसागर में कहीं न

पड़ेगा ॥ १०० ॥ मेरे लोकके चाही लोग सदा पुराणों को सुनें गङ्गा के किनारे बसें रोज ब्राह्मणों को तृप्त करें ॥ १०१ ॥ यों संक्षेप से मैंने सत्यलोकका हालचाल और डरसे पीड़ित जनों का जो अभय वह भी कहा हे देवो ! मत डरो ॥ १०२ ॥ सूर्य्य मार्ग का रोंकनेवाला विन्ध्याचल सुमेरुसे डाह करताहै उसके अर्थ तुम आये हो तुमसे उसका उपाय बताताहूं ॥ १०३ ॥ ब्रह्माजी बोले कि विश्वनाथ स्वामी में चित्त को लगा उग्रतपस्या करते बड़े तपस्वी, मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्य मुनि हैं ॥ १०४ ॥ जो काशी बड़ा क्षेत्र सबकी मुक्ति का कारण ओंकार या श्रीरामषडक्षर मन्त्रके देने के लिये आप शिवजीसे बसागया है ॥ १०५ ॥ तहां जा उन मुनि को जांचो

श्रोतव्यानिपुराणानि वस्तव्यंजाह्नवीतटे ॥ तर्पणीयाद्विजानित्यं ममलोकेप्सुभिःसदा ॥१०१॥ इत्युद्देशान्मयाख्याता सत्यलोकव्यवस्थितिः ॥ अभयंयद्भयार्तानां नभेतव्यञ्चहेसुराः ॥१०२॥ स्पर्धतेमेरुणाविन्ध्यो ब्रध्नाध्वपरिरोधकृत् ॥ तदर्थमागतायूयंतदुपायंदिशामिवः ॥१०३॥ब्रह्मोवाच ॥ अस्त्यगस्त्यस्तप्यमानस्तपउग्रंमहातपाः ॥ मैत्रावरुणिराधायचित्तंविश्वेश्वरेविभौ॥१०४॥अविमुक्तेमहाक्षेत्रेसर्वेषांमुक्तिहेतुके तारकस्योपदेशार्थं विश्वेशाऽधिष्ठितेस्वयम्॥१०५॥ याचध्वंतत्रगत्वातंसवःकार्यंविधास्यति॥तेनैकदावितालोकावातापील्वलभक्षणात्॥१०६॥अतिमित्रंतत्रतेजोमित्रावरुणजेमुनौ॥तदाप्रभृतिलोकेषुकोगस्त्यान्नैवबिभ्यति॥१०७॥इत्युक्त्वान्तर्दधेवेधास्तेपिप्रमुदिताननाः॥देवाःपरस्परंप्रोचुरहोधन्यतमावयम्॥१०८॥प्रसङ्गतोपिद्रष्टव्यौकाशीकाशीपतीशिवौ॥ अहोअहोभिर्बहुभिःफलितोनोमनोरथः ॥१०९॥ उत्फुल्लपद्मनयनानिर्मिताःसुकृताशिनः ॥ तावेवचरणौधन्यौकाशीमभिप्रयायिनौ ॥ ११० ॥ येयंकथाश्रुतास्माभि

वे तुम्हारा काम करेंगे एक समय उन्होंने वातापी और इल्वलराक्षसके खाने से लोकों को बचाया ॥ १०६ ॥ मित्रावरुण के पुत्र उन मुनिमें सूर्य्य से अधिक तेजहै तब से लगा लोकों में अगस्त्य से को नहीं डरता ॥ १०७ ॥ यों कह ब्रह्माजी अन्तर्द्धान हुये उन देवोंने आपुसमें कहा कि अहो हम बड़े धन्य हैं ॥ १०८ ॥ इस प्रसंग से मंगलमयी काशी और कल्याणकारी शिवजी देखने योग्य हैं आश्चर्य्य है कि बहुते दिनों में हमारा मनोरथ फला ॥ १०९ ॥ यों सम्पूर्ण चिन्तना किया जिन्होंने और आनन्द से फूले कमल के समान नेत्र जिनके वे देव बड़े सुकर्मी या धन्य हैं क्योंकि जे काशीके सम्मुख चलते वेई पावँ धन्य हैं ॥ ११० ॥ ब्रह्मा मे कही जो

कथा हमने सुना उसके सुननेसे उत्पन्न पुण्य से आज काशीमें पहुँचेंगे ॥ १११ ॥ पुण्यकी अधिकता से एकही क्रिया दो प्रयोजनों करनेवाली प्राप्त कीजाती है यों कहते प्रसन्नमुख देव काशी को भलीभांति से आये ॥ ११२ ॥ व्यासजी बोले कि इस लोकमें जे मनुष्य इस परमपुण्यरूप कथाको सुनेंगे वे सब पापों को दूरकर पुत्र स्त्री से संयुतहो ॥ ११३ ॥ सब सुखोंको भोग इस लोकमे वंशको थाप फिर सत्यलोकमें बहुत काल टिक कैवल्य मोक्षको जावेंगे ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे भाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपूर्वार्धेसत्यलोकवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

वेधसासमुदीरिता॥तस्याःश्रवणजातपुण्यात्प्राप्नुमस्त्वद्यकाशिकाम्॥१११॥एकाक्रियाद्व्यर्थकरीप्राप्यतेपुण्यगौरवात्॥ एवंवदन्तोहृष्टास्याःसुराःकाशींसमाययुः ॥ ११२ ॥ व्यासउवाच ॥ इदंपुण्यतमाख्यानंयेश्रोष्यन्तीहमानवाः॥ विधूय सर्वपापानिपुत्रदारसमन्विताः ॥ ११३ ॥ इहवंशंपरिस्थाप्यभुक्त्वासर्वसुखानिच॥ सत्यलोकेचिरंस्थित्वाततोयास्यन्ति शाश्वतम् ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपूर्वार्द्धेसत्यलोकवर्णनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ ❀ ॥

सूतउवाच ॥ भगवन्सूतभव्येशसर्वज्ञानमहानिधे ॥ अवाप्यकाशींगीर्वाणैःकिमकारिवदाच्युत ॥ १ ॥ अधीत्येमां कथांदिव्यांनतृप्तिमधियाम्यहम् ॥ शेवधिस्तपसांदेवैरगस्तिःप्रार्थितःकथम् ॥ २ ॥ कथंविन्ध्योप्यवापस्वांप्रकृतिं तादृगुन्नतः॥तववागमृताम्भोधौमनोमेस्नातुमुत्सुकम्॥३॥इतिकृत्स्नंसमाकर्ण्यव्यासःपाराशरोमुनिः॥ श्रद्धावतेस्वशि ष्यायवक्तुंसमुपचक्रमे ॥ ४ ॥ पाराशरउवाच ॥ शृणुसूतमहाबुद्धेभक्तिश्रद्धासमन्वितः ॥ शुकवैशम्पायनाद्याःशृण्व

दो० । इरा तिसरे अध्याय में गे सुर कुम्भज पास । उनके आश्रम को कथन कीन्हे हिये हुलास ॥ सूतजी बोले कि हे ऐश्वर्य सम्पन्न, हुये होनेवाले के नाथ, सब ज्ञानों के बड़े निधान, निर्विकार विष्णु अवतार हे व्यासजी ! काशीमें जा देवों ने क्या किया ॥ १ ॥ इस दिव्य कथा को पढ़ मैं तृप्ति को नहीं जाता याने सुनने की इच्छा बनी है तपस्या के निधान अगस्त्यजी देवों से कैसे प्रार्थेगये ॥ २ ॥ वैसा ऊंचा विन्ध्याचल भी कैसे अपनी प्रकृति को पहुँचा आप के वचन अमृत समुद्र में नहाने को मेरा मन उत्सुक है ॥ ३ ॥ यों सम्पूर्ण प्रश्न को सुन पराशर के पुत्र श्रीव्यास मुनि ने श्रद्धावान् अपने शिष्यके लिये कहने को लगा किया ॥ ४ ॥

व्यास जी बोले हे बड़ी बुद्धिवाले सूत! भक्ति व श्रद्धासमेत तुम सुनो और शुकदेव वैशम्पायन आदि ये बालक भी सुनें ॥ ५ ॥ तदनन्तर महामुनियों समेत देवलोग काशी में पहुँच पहले शीघ्र विधान से मणिकर्णिका में ॥ ६ ॥ वस्त्र सहित नहा अनन्तर किया सन्ध्यादि क्रियाको जिन्होंने वे देवादि और पितरों को कुश गन्ध तिल जलसे भलीभांति से तरप ॥ ७ ॥ अलग अलग तीर्थवासी चाही सबजनों को रत्न सोना वस्त्र घोड़े गौवें ॥ ८ ॥ सोने रूपे से बने विचित्र बर्तन अमृत के समान स्वादिल पकवान शक्कर समेत खीर ॥ ९ ॥ दूध दही घी आदि सहित खानेकी चीजोंका देना अनेक अनाज दान सुगन्ध चन्दन कपूर पान चारु चँवर ॥ १० ॥ तोशक

न्त्वेतेचबालकाः ॥ ५ ॥ ततोवाराणसींप्राप्य गीर्वाणाःसमहर्षयः ॥ अविलम्बंप्रथमतोमणिकर्ण्यांविधानतः ॥ ६ ॥ सचैलमभिमज्ज्याथकृतसन्ध्यादिसत्क्रियाः ॥ सन्तर्प्यतर्प्यादिपितॄन्कुशगन्धतिलोदकैः ॥ ७ ॥ तीर्थवासार्थिनःसर्वान्सन्तर्प्यचपृथक्पृथक् ॥ रत्नैर्हिरण्यवासोभिरश्वाभरणधेनुभिः ॥ ८ ॥ विचित्रैश्चतथापात्रैःस्वर्णरौप्यादिनिर्मितैः ॥ अमृतस्वादुपक्वान्नैःपायसैश्चसशर्करैः ॥ ९ ॥ सगोरसैरन्यदानैर्धान्यदानैरनेकधा ॥ गन्धचन्दनकर्पूरैस्ताम्बूलैश्चारुचामरैः ॥ १० ॥ सतूलैर्मृदुपर्यङ्कैर्दीपिकादर्पणासनैः ॥ शिबिकादासदासीभिर्विमानैःपशुभिर्गृहैः ॥ ११ ॥ चित्रध्वजपताकाभिरुल्लोचैश्चन्द्रचारुभिः ॥ वर्षाशनप्रदानैश्च गृहोपस्करसंयुतैः ॥ १२ ॥ उपानत्पादुकाभिश्च यतिनश्चतपस्विनः ॥ योग्यैःपट्टदुकूलैश्च विविधैश्चित्ररल्लकैः ॥ १३ ॥ दण्डैःकमण्डलुयुतैरजिनैर्मृगसम्भवैः ॥ कौपीनैरुच्चमञ्चैश्च परिचारककाञ्चनैः ॥ १४ ॥ मठैर्विद्यार्थिनामन्नैरतिथ्यर्थंमहाधनैः ॥ महापुस्तकसम्भारैर्लेखकानाञ्चजीवनैः ॥ १५ ॥ बहुधौ

तकिया समेत कोमल सूतसे बिने पलंग दीप दर्पण आसन पीनस पालकी आदि सेवक सेवकी विमान पशु घर ॥ ११ ॥ रंग बिरंग के ध्वजा पताका चन्द्र चांदनी से मनोरम वितान याने चँदोवा घरकी सामग्री समेत वर्षा चौमासा के लिये भोजन दान ॥ १२ ॥ पनहीं पादुकादिकों से तरप संन्यासी तथा तपस्वियों को उचित रेशमी वस्त्र बहुत भांति के विचित्र कम्बल ॥ १३ ॥ कमण्डलु समेत दण्ड मृगों के चर्म्म कोपीन ऊंचे बैठका सेवकों के देने योग्य सोनो से ॥ १४ ॥

व विद्यार्थियों के मठों अन्न अतिथियों के लिये धन अनेक पुस्तकों के समूह लेखकों की जीविका ॥ १५ ॥ बहुत भांति के औषधों के दान अनेक वस्त्र धन या यज्ञ दान ग्रीष्मऋतुमें पौशला के लिये द्रव्य हेमंत में अँगेठी लेने का धन ॥ १६ ॥ छाता छानी घर बंगला आदिके अर्थ वर्षाकालके योग्य बहुत वस्तु रात में पढ़ने का दीप पांवों में लगाने की चीजें आदिकों से ॥ १७ ॥ पौराणिक पण्डितों को प्रति देवमन्दिरों में धन तथा देवालयोंमें नाच गान करने के अर्थ अनेक सामग्री॥ १८॥ देवमन्दिर पोतने को चूना दान अनेकभांति के पुराने मन्दिरोंका बनवाना चित्र लिखनेका मोल रंग माला भूषण ॥ १९ ॥ बहुती बातीके दीप गूगुल दशाङ्गधूप याने

पधदानैश्च सत्रदानैरनेकशः ॥ ग्रीष्मेप्रपार्थद्रविणैर्हेमन्तेग्निष्टिकेन्धनैः ॥ १६ ॥ छत्राच्छादनिकाद्यर्थैं र्वर्षाकालोचितैर्बहु ॥ रात्रौपाठप्रदीपैश्च पादाभ्यञ्जनकादिभिः ॥ १७ ॥ पुराणपाठकांश्चापि प्रतिदेवालयंधनैः ॥ देवालयेनृत्यगीतकरणार्थैरनेकशः ॥ १८ ॥ देवालयसुधाकार्यैर्जीर्णोद्धारैरनेकधा ॥ चित्रलेखनमूल्यैश्च रङ्गमालादिमण्डनैः ॥ १९ ॥ नीराजनैर्गुग्गुलभिर्दशाङ्गादिसुधूपकैः ॥ कर्पूरवर्तिकाद्यैश्चदेवार्चार्थैरनेकशः ॥ २० ॥ पञ्चामृतानांस्नपनैः सुगन्धस्नपनैरपि ॥ देवार्थमुखवासैश्च देवोद्यानैरनेकशः ॥ २१ ॥ महापूजार्थमाल्यादिगुम्फनार्थैस्त्रिकालतः ॥ शङ्खभेरीमृदङ्गादिवाद्यनादैःशिवालये ॥ २२ ॥ घण्टागडुककुम्भादिस्नानोपस्करभाजनैः ॥ श्वेतैर्मार्जनवस्त्रैश्च सुगन्धैर्यक्षकर्दमैः ॥ २३ ॥ जपहोमैःस्तोत्रपाठैः शिवनामोच्चभाषणैः ॥ रासक्रीडादिसंयुक्तैश्चलनैःसप्रदक्षिणैः ॥ २४ ॥ एवमादिभिरुद्दण्डैः

छः भाग कूट दोभाग गुड़ तीन भाग लाह पांचभाग नख हड़ राल जटामांसी चन्दन तीनभाग मोथा चारभाग गूगुल एकभाग और देवपूजा के लिये अनेकों कपूर बाती ॥ २० ॥ घी,दूध,दही,शहद,शक्कर इस पञ्चामृत के स्नान सुगन्धों के स्नान देवों के लिये मुखवास पान लवंग इलायची आदि अनेक देवों की फुलवाई ॥ २१ ॥ महापूजा के अर्थ मालाआदि गूँधने को धन त्रिकाल शिवालय में शङ्ख नगारा मृदंगादि बाजाओं के शब्द ॥ २२ ॥ घंटा गेड़ुवा गगराआदि नहवाने की सामग्री के पात्र उजले अँगौछा सुगन्ध, कपूर अगर कस्तूरी कङ्कोल का कीच ॥ २३ ॥ जप होम स्तोत्रों के पाठ शिवनामों का ऊंचे स्वर से कहना रास क्रीड़ादिकों से संयुत

प्रदक्षिणा समेत चलना ॥ २४ ॥ इत्यादि बहुत भांति के अनेक कर्म्मकाण्डोंसे पांच रात्रिके कालतक काशीमें बस अनेक तीर्थोंको कर ॥ २५ ॥ दीन अनाथोंको तृप्तकर विश्वनाथ स्वामीको प्रणाम ब्रह्मचर्य्यआदि नियमोंसे यों तीर्थको साध ॥ २६ ॥ बारबार विश्वनाथके दर्शन नमस्कार स्तुतिकर पराये उपकारके अर्थ वहां गये जहां अगस्त्य मुनि टिके थे ॥ २७ ॥ जो कि अपने नामसे शिवलिङ्गको थाप उसके आगे कुंडकर शतरुद्रिय सूक्तसे जपते अचल मनवाले हैं ॥ २८ ॥ उनको दूर से देख देवों ने विचारा कि दूसरे सूर्य्य के समान, जगमगाती आग से अङ्गों करके सबसे उजले ॥ २९ ॥ क्या साक्षात् बड़वानलही देहधर तपस्या करताहै वृक्ष से अधिक अडोल

क्रियाकाण्डैरनेकशः ॥ पञ्चरात्रमुषित्वातु कृत्वातीर्थान्यनेकशः ॥ २५ ॥ दीनानाथांश्चसन्तर्प्य नत्वाविश्वेश्वरंविभुम् ॥ ब्रह्मचर्यादिनियमैस्तीर्थमेवंप्रसाध्यच ॥ २६ ॥ पुनःपुनर्विश्वनाथं दृष्ट्वास्तुत्वाप्रणम्यच ॥ जग्मुःपरोपकारार्थमगस्तिर्यत्रतिष्ठति ॥ २७ ॥ स्वनाम्नालिङ्गमास्थाप्य कुण्डंकृत्वातदग्रतः ॥ शतरुद्रियसूक्तेन जपन्निश्चलमानसः ॥ २८ ॥ तन्दृष्ट्वाद्दूरतोदेवा द्वितीयमिवभास्करम् ॥ ज्वलज्ज्वलनसङ्काशैरङ्गैःसर्वत्रसोज्ज्वलम् ॥ २९ ॥ साक्षात्किंवाडवाग्निर्वा मूर्त्यावैतप्यतेतपः ॥ स्थाणुवन्निश्चलतरं निर्मलंसन्मनोयथा ॥ ३० ॥ अथवासर्वतेजांसि श्रित्वेमांब्राह्मणींतनुम् ॥ शीलयन्तिपरंधाम शान्तंशान्तपदाप्तये ॥ ३१ ॥ तपनस्तप्यतेऽत्यर्थं दहनोपिहिदह्यते ॥ यत्तीव्रतपसाद्यापि चपलाऽचपलाभवत् ॥ ३२ ॥ यस्याश्रमेऽत्रदृश्यन्ते हिंस्राअपिसमन्ततः ॥ सत्त्वरूपाश्रमीसत्त्वास्त्यक्त्वावैरंस्वभावजम् ॥ ३३ ॥ शुण्डादण्डेनकरटिः सिंहंकण्डूयतेऽभयः ॥ अष्टापदाङ्केस्वपितिकेसरीकेसरोद्भटः ॥ ३४ ॥ सूकरःस्त

सन्तों के मनसे निर्मल ॥ ३० ॥ अथवा सब तेज इस ब्राह्मण देहमें टिक शान्तपद पानेके लिये शान्त परमप्रकाश को करते हैं ॥ ३१ ॥ सूर्य्य अत्यन्त तपते आग भी जलती जिसकी तीव्र तपस्यासे आज बिजुली भी थिरहुई ॥ ३२ ॥ जिसके इस आश्रम में सबओर ये दुष्ट जन्तु भी स्वाभाविक वैर को त्याग सतोगुणी दीखते हैं ॥ ३३ ॥ निडर हाथी सूँड़ि से सिंहको खजुवाता कांधों के बालों से उन्नत सिंह शरभके अङ्क में सोता ॥ ३४ ॥ नागरमोथा में नेत्र लगाये खड़े खररोमवाला बलवान्

वराह अपने यूथ को त्याग बाघके साथ चरता ॥ ३५ ॥ भूमि खोदनेवाला भी सूकर जैसे अनते वैसे यहां भूमिका खोदना नहीं करता क्योंकि जिससे सब काशी लिङ्गमयी इससे उस डरसे बँधा है ॥ ३६ ॥ आश्चर्य्य है कि वराह के बच्चे को गोद में कर तेंदुवा खेलावता व बाघ के बच्चों को उठा अलगकर बाघिनि को हरिण का बालक ॥ ३७ ॥ जिसकी पूंछ डोलती है वह फेनासमेत मुखसे पीता है अंगुली चलाता वानर ॥ ३८ ॥ सोते जटीले रीछके मरी लीखों को देख देख दांतों के आगे से खाता गौओं के समान पूंछवाले लाले मुख काले यूथपति वानर ॥ ३९ ॥ जातिके स्वभाव की ईर्षा को त्याग एक में रमते बार बार पीठ खजुलाने से उन भेड़ियों

ऽधरोमापि विहायनिजयूथकम् ॥ चरेद्वनशुनांमध्येमुस्तान्यस्तेक्षणोबली ॥ ३५ ॥ भूदारोपिनभूदारं तथाकुर्याद्यथाऽन्यतः ॥ सर्वालिङ्गमयीकाशी यतस्तद्भीतियन्त्रितः ॥ ३६ ॥ क्रोडीकृत्यक्रोड़पोतं तरक्षुःक्रीडयत्यहो ॥ शार्दूलबालानुत्सार्य शार्दूलीमेणपोतकः ॥ ३७॥ चलत्पुच्छोथपिबतिफेनिलेनाननेनवै ॥ स्वपन्तंलोमशंभल्लं वानरश्चलदङ्गुलिः ॥ ३८ ॥ यूकांसंवीक्ष्यवीक्ष्यैव भक्षयेद्दन्तकोटिभिः ॥ गोलाङ्गूलारक्तमुखा नीलाङ्गायूथनायकाः ॥ ३९ ॥ जातिस्वभावमात्सर्यं त्यक्त्वैकत्ररमन्तिच ॥ शशाःक्रीडन्तिचवृकैस्तैःपृष्ठलुण्ठनैर्मुहुः ॥ ४० ॥ आखुश्चाखुभुजःकर्णं कण्डूयेतचलाननः ॥ मयूरपुच्छपुटगो निद्रात्योतुःसुखाधिकम् ॥ ४१ ॥ स्वकण्ठंघर्षयत्येव केकिकण्ठेभुजङ्गमः ॥ भुजङ्गमफटापृष्ठे नकुलःस्वकुलोचितम् ॥ ४२ ॥ वैरंपरित्यज्यलुठेदुत्प्लुत्योत्प्लुत्यलीलया ॥ आलोक्यमूषकंसर्पश्चरन्तंवदनाग्रतः ॥ ४३ ॥ क्षुधान्धोपिनगृह्णाति सोपितस्माद्बिभेतिनो ॥ प्रसूयमानांहरिणीं दृष्ट्वाकारुण्यपूर्णदृक् ॥ ४४ ॥ तद्दृष्टिपातंमु

के साथ शशा (चौगड़ा) खेलते ॥ ४० ॥ मुख डुलाता मूश बिलार का कान खजुलाता मोर के पंख पात्र पर बैठा बिलार अधिक सुखसे सोता ॥ ४१ ॥ सर्प अपने कण्ठ को मोर के गलमें रगड़ता नेउरा साँप की फणा पीठमें अपने कुल के उचित ॥ ४२ ॥ वैर को त्याग लीलासे कूद बैठता या लोटता व चलते मूश को देख सर्प मुख के अग्रभाग से ॥ ४३ ॥ नहीं पकड़ता भूंख से व्याकुल भी है और वह मूश उससे नहीं डरता ब्याती मृगी को देख दया से भरी दृष्टिवाला हो ॥ ४४ ॥

उसके ओर दृष्टिपात को त्यागता हुआ बाघ दूर जाता यह आश्चर्य्य है बाघिनि बाघ का चरित तथा हरिणी हरिण के चरित को दोनों सखी की नाईं आनन्दित आपुस में बतलाती हैं ॥ ४५ ॥ बड़े धन्वाधारी भी भिल्ल को देख ढीठा शंबरनाम हरिण गली को नहीं छोड़ता वहभी उसको खजुलाताहै ॥ ४६ ॥ निश्शंक रोहित मृग बनभैंसा को भलीभांति से परसता चमरमृग की स्त्री भिल्लिनि के बालों से अपनी पूंछ को नापती है ॥ ४७ ॥ मुनि के तेज से बँधे नीलगाह व साही ये दोनों बड़े बैरको त्याग एक स्थानमें बसे ॥ ४८ ॥ जीति के चाही भेंड़ा या मल्ल मूड़ लड़ानेको नहीं भिड़ते हरिणके बच्चेको स्यार भी कोमलता समेत हाथसे परसता ॥ ४९ ॥

क्षन्वै व्याघ्रोदूरंव्रजत्यहो ॥ व्याघ्रीव्याघ्रस्यचरितं मृगीमृगविचेष्टितम्॥उभेकथयतोऽन्योन्यं सख्याविवमुदान्विते॥ ४५ ॥ दृष्ट्वाप्युद्दण्डकोदण्डं शवरंशम्बरोमृगः ॥ धृष्टोनवर्त्मत्यजति सोपिकण्डूयतेपितम् ॥ ४६ ॥ रोहितोऽरण्य महिषमुद्घर्षतिनिराकुलः ॥ चमरीशबरीकेशैः संमिमीतेस्वबालधिम् ॥ ४७ ॥ गवयःशल्यकश्चाऽयमुभावेकत्रातिष्ठतः ॥ तीव्रमात्सर्यमुत्सृज्य मुनितेजोनियन्त्रितौ ॥ ४८ ॥ हुण्डौचमुण्डयुद्धाय नसज्जेतेजयैषिणौ ॥ एणशावंसृगालोपि मृदुस्पृशतिपाणिना ॥ ४९ ॥ तृणवन्तितृणगुल्मादीञ्छ्वापदास्त्वापदास्पदम् ॥ लोकद्वयेदुःखदंहि धिक्तन्मांसस्यभक्षणम् ॥ ५० ॥ यःस्वार्थंमांसपचनंकुरुतेपापमोहितः ॥ यावन्त्यस्यतुरोमाणि तावत्सनरकेवसेत् ॥ ५१ ॥ परप्राणैस्तुयेप्राणान् स्वान्पुष्णन्तिहिदुर्धियः॥ आकल्पंनरकान्भुक्त्वा तेभुज्यन्तेत्रतैःपुनः ॥ ५२ ॥ जातुमांसंनभोक्तव्यं प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ भोक्तव्यन्तर्हिभोक्तव्यं स्वमांसंनेतरस्यच ॥५३॥ वरमेतेश्वापदावैमैत्रावरुणिसेवया ॥ येषान्नहिं

श्वापद याने बाघ आदि दुष्ट जन्तु भी खर गूंथी खाते क्योंकि दोनों लोक में भी दुःखदायक विपत्ति के स्थान उन मांस खाने को धिक्कारहै ॥ ५० ॥ पाप से मोहित जो अपने अर्थ मांस पकाता वह जितने इस पशु के रोम उतने वर्ष नरक में बसता है ॥ ५१ ॥ जे अज्ञानी पराये प्राणों से अपने प्राणोको पोषते वे कल्पपर्य्यन्त नरक भोग फिर इस लोकमें उनसे खाये जाते हैं ॥ ५२ ॥ कण्ठ में प्राण रहगये हों तो भी मांस न खाना चाहिये खावे तो आपन मांस आनका नहीं ॥ ५३ ॥

अगस्त्य की सेवा से ये श्वापदआदि श्रेष्ठ जिनकी परपीड़ा में बुद्धि नहीं और परपीड़क पुरुष नहीं ॥ ५४ ॥ तलैयों में आगे घूमती भी मछलियों को बगला नहीं खाता तथा छोटी मछलियों को बड़ी भी नहीं खातीं ॥ ५५ ॥ एक ओर सब मांस एक ओर मछली का मांस इस स्मृति को इन्होंने क्या निश्चय की है इससे ये मछलियों को तजते हैं ॥ ५६ ॥ यह बाज भी बटेर को देख पिछौंड़ा होता आश्चर्य्य है कि यहां मलिनवासनावाले भौंर भ्रमते हैं ॥ ५७ ॥ मद पीने में आसक्तलोग बहुत काल नरकभोग बार बार भ्रम के भागी भौंर होते हैं ॥ ५८ ॥ इससे पुराण के पण्डित या शिवज्ञानियों करके शिव के तत्त्व को जान स्पष्ट अर्थ की यह गाथा गाई

सनेबुद्धिर्नतुहिंसापरानराः ॥५४॥ बकोपिपल्वलेमत्स्यान्ना आत्यग्रेचरानपि॥ नमहान्तोप्यमहतोमत्स्यामत्स्यान्दन्ति वै ॥ ५५॥ एकतःसर्वमांसानिमत्स्यमांसन्तथैकतः ॥ स्मृतिःस्मृतेतिकिन्त्वेभिरतो मत्स्याञ्जहत्यमी ॥ ५६ ॥ श्येनोपिव तिंकान्दृष्ट्वाभवत्येषपराङ्मुखः॥ चित्रमत्रापिमधुपाभ्रमन्तिमलिनाशयाः ॥ ५७ ॥ सुचिरंनरकान्भुक्त्वा मदिरापानल म्पटाः ॥ मधुपाएवजायन्ते भ्रान्तिभाजःपुनःपुनः ॥ ५८ ॥ अतएवपुराणेषु गाथेतिपरिगीयते ॥ स्फुटार्थात्रपुराणज्ञैर्ज्ञा त्वातत्त्वंपिनाकिनः ॥ ५९ ॥ क्वमांसंक्वशिवेभक्तिः क्वमद्यंक्वशिवार्चनम् ॥ मद्यमांसरतानाञ्च दूरेतिष्ठतिशङ्करः ॥ ६० ॥ विनाशिवप्रसादंहि भ्रान्तिःक्वापिननश्यति ॥ अतएवभ्रमन्त्येते भ्रमराःशिववर्जिताः ॥ ६१ ॥ इत्याश्रमचरान्दृ ष्ट्वा तिर्यञ्चोपिमुनीनिव ॥ अबोधिविबुधैरित्थं प्रभावःक्षेत्रजस्त्वयम् ॥ ६२ ॥ यतोविश्वेश्वरेणैतेतिर्यञ्चोप्यत्रवासिनः॥ निधनावसरेमोच्यास्तारकस्योपदेशतः ॥ ६३ ॥ ज्ञात्वाक्षेत्रस्यमाहात्म्यं योवसेत्कृतनिश्चयः ॥ तन्तारयतिविश्वेशो

जाती है ॥ ५९ ॥ कहां मांस कहां शिवकी भक्ति कहां मद कहां शिवकी पूजा याने बहुत अन्तर क्योंकि मदपिया मांसभक्षियों के दूरमें शङ्करजी रहते हैं ॥ ६० ॥ विना शिवकी प्रसन्नता के भ्रम कहीं नहीं नशता इससेही शिवसे रहित भौंर भ्रमते हैं ॥ ६१ ॥ यों मुनिके आश्रमचारी पशु जन्तुओंको मुनियोंके समान देख देवोंने जाना कि यह इस काशीक्षेत्र का प्रभावहै ॥ ६२ ॥ जिससे यहां के वासी पशु जन्तु भी मरणसमयमें तारकमन्त्र मन्त्र सुनानेसे शिव करके संसारसे छुड़ाने योग्यहैं ॥ ६३ ॥

इससे क्षेत्रमाहात्म्य को ज़ान निश्चय किये जो बसे उसको जीते या मरतेही विश्वनाथजी तारते हैं ॥ ६४ ॥ किसी रहस्य जानते लोग संसार बन्धन से छूटते और जड़जन्तु भी पापहीन हो मोक्ष पाते हैं ॥ ६५ ॥ यों आश्चर्य्य में परायण देव जौलों मुनिके आश्रम को जाते तौलों फिर पक्षी समूह को देख बहुत आनन्दित हुये ॥ ६६ ॥ हम मानते हैं कि सारस, सारसी के कण्ठ में कण्ठधर अचलहो सोता नहीं किन्तु निश्चय कर शङ्कर को ध्यावता है ॥ ६७ ॥ अपनी चोंच के दोनों अग्रभागों से खजुलाती हंसी पंख चलनोंसे रति चाही हंस को वर्जती ॥ ६८ ॥ चकवा से रतिके लिये रोंकी चकई अपनी बोली से यों कहती कि हे का-

जीवन्तमथवामृतम् ॥ ६४ ॥ अविमुक्तरहस्यज्ञा मुच्यन्तेज्ञानिनोनराः ॥ अज्ञानिनोपितिर्यञ्चो मुच्यन्तेगतकिल्बिषाः ॥ ६५ ॥ इत्याश्चर्यपरादेवा यावद्यान्त्याश्रमंमुनेः ॥ तावत्पक्षिकुलंदृष्ट्वा भृशंमुमुदिरेपुनः ॥ ६६ ॥ सारसोलक्ष्मणाकण्ठे कण्ठमाधायनिश्चलः ॥ मन्यामहेननिद्राति ध्यायेद्विश्वेश्वरंकिल ॥ ६७ ॥ कण्डूयमानावरटास्वचञ्चुपुटकोटिभिः ॥ हंसंकामयमानन्तु वारयेत्पक्षधूननैः ॥ ६८ ॥ निरुध्यमानाचक्रेण चक्रीकेङ्कितभाषणैः ॥ वदतीतिकिमत्रापि कामिताकामिनांवर ॥ ६९ ॥ कलकण्ठःकिलोत्कण्ठंमञ्जुगुञ्जतिकुञ्जगः ॥ ध्यानस्थःश्रोष्यतिमुनिः पारावत्येतिवार्यते ॥ ७० ॥ केकीकेकांपरित्यज्य मौनंतिष्ठतितद्भयात् ॥ चकोरश्चन्द्रिकाभोक्ता नक्तव्रतमिवास्थितः ॥ ७१ ॥ पठन्तीसारिकासारं शुकंसम्बोधयत्यहो ॥ अपारावारसंसारसिन्धुपारप्रदःशिवः ॥ ७२ ॥ कोकिलःकोमलालापैः कलयन्किलकाकलीम् ॥ कलिकालौकलयतःकाशिस्थान्नेतिभाषते ॥ ७३ ॥ मृगाणांपक्षिणामित्थं दृष्ट्वाचेष्टांत्रिविष्ट

मियों में श्रेष्ठ ! क्या यहां भी कामभाव है ॥ ६९ ॥ कुञ्ज में बैठा कबूतर ऊंचे को कण्ठकर मनहर शब्द करता कबूतरी बर्जती कि ध्यान में टिके मुनि सुनेंगे ॥ ७० ॥ उन अगस्त्यके डर से केका बोली को तज मोर चुप बैठा व रात में भोजननेमीकी नाई टिका चकोर चांदनी को भोगता ॥ ७१ ॥ परमार्थ को पढ़ती मैना सुवा को सम्बोधती कि हे शुक ! अपार संसारसमुद्र के पारदाता शिव हैं ॥ ७२ ॥ महीन मञ्जु बोली को बोलती कोकिला यों कहती कि काशीवासी जनों को

कलियुग और कालभी नहीं चलाता ॥ ७३ ॥ इस भांति से मृग पक्षियों के व्यापार को देख देवोंने अवसर बिना गिरपड़ने से कष्ट है जिस में उस स्वर्ग को बहुत नि-
दर डाला ॥ ७४ ॥ काशीवासी ये पक्षी मृग पशु धन्य जिनका फिर संसार मे आना नहीं हम लोग देव नहीं क्योंकि फिर जन्म धरते हैं ॥ ७५ ॥ स्वर्गवाले हम
काशी के पतित जनों के बराबर कहीं नहीं क्योंकि काशी में गिरने से डर नहीं स्वर्ग में गिरने से बड़ा डर है ॥ ७६ ॥ मासभर उपास आदिकों से भी काशी का
वास श्रेष्ठ और अनते वैरी वर्जित विचित्र छत्र छाया संयुत राज्य नहीं ॥ ७७ ॥ काशी में जिस पदको अनादर से शशा मशाभी पाते वह पद अनते अष्टांग योग

पम् ॥ अकाण्डपातसंकष्टं निनिन्दुस्त्रिदशाबहु ॥ ७४ ॥ वरमेतेपक्षिमृगाः पशवःकाशिवासिनः ॥ येषांनपुनरावृत्तिर्नदे
वानपुनर्भवाः ॥ ७५ ॥ काशीस्थैःपतितैस्तुल्या नवयंस्वर्गिणःक्वचित् ॥ काश्यांपाताद्भयंनास्ति स्वर्गेपाताद्भयंमहत् ॥
७६ ॥ वरंकाशीपुरीवासो मासोपवसनादिभिः ॥ विचित्रच्छत्रसच्छायं राज्यंनान्यत्रनीरिपु ॥ ७७ ॥ शशकैर्मशकैःका
श्यां यत्पदंहेलयाप्यते ॥ तत्पदंनाप्यतेऽन्यत्र योगयुक्त्यापियोगिभिः ॥ ७८ ॥ वरंवाराणसीरङ्को निःशङ्कोयोयमाद
पि ॥ नवयन्त्रिदशायेषां गिरितोपीदृशीदशा ॥ ७९ ॥ ब्रह्मणोदिवसाष्टांशे पदमैन्द्रंविनश्यति ॥ सलोकपालंसार्कञ्च स
चन्द्रग्रहतारकम् ॥ ८० ॥ परार्धद्वयनाशेपि काशीस्थोयोननश्यति ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन काश्यांश्रेयःसमाचरेत् ॥ ८१ ॥
यत्सुखंकाशिवासेत्र नतद्ब्रह्माण्डमण्डपे ॥ अस्तिचेत्तत्कथंसर्वे काशीवासाभिलाषुकाः ॥ ८२ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषु य

जोड़ने से भी योगियों को नहीं मिलता ॥ ७८ ॥ काशी का दरिद्री श्रेष्ठ जो यमराजसे भी निश्शंक और हम देव श्रेष्ठ नहीं विन्ध्याचल से भी जिनकी ऐसी दशा है ॥
७९ ॥ हजार चौयुगी बीतने से ब्रह्माजीका एक दिन उसके आठयें हिस्से सायंकाल में लोकपाल सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र समेत इन्द्रका स्थान नशाता ॥ ८० ॥
ऐसेही तीस दिनोंका मास बारहमासका वर्ष, पचास वर्षका एक परार्ध दो परार्ध याने ब्रह्माके सौ वर्ष बीतनेपर प्रलयमें भी जो काशीवासी वह नहीं नशता उसकारण
सब यत्नसे काशीमें कल्याण करे ॥ ८१ ॥ इस काशीमें बसने से जो सुख वह ब्रह्माण्ड भवन के भीतर भरेमें कहीं नहीं जो हो तो सब कोऊ काशीमें रहने के अभिलाषी

कैसे रहैं ॥ ८२ ॥ और सहस्रों जन्मों में जो पुण्य कमाई गई उस पुण्य बदलेसे इस काशीमें वास मिलता ॥ ८३ ॥ जो शिवजी कोप करें तो पायेहुवाभी सिद्धि को नहीं पहुँचे उससे सदा शरणागतपालक विश्वनाथरक्षक के पास जावे ॥ ८४ ॥ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम चार पुरुषार्थ जैसे काशीमें संपूर्णहै वैसे अनते कहींनहीं ॥ ८५ ॥ जो आलस से भी घरसे विश्वनाथ के मन्दिर को चले उसका पग पगमें अश्वमेधयज्ञ से अधिक धर्म्म होताहै ॥ ८६ ॥ जो उत्तरवाहिनी गङ्गा में नहा विश्वेश्वर के दर्शन को बड़ी श्रद्धा से जाता उसके कल्याण का अन्त नहीं है ॥ ८७ ॥ गङ्गा का दर्शन स्पर्शन स्नान आचमन सन्ध्या करना जप तर्प्पण देवपूजा ॥ ८८ ॥ कपाल-

त्पुण्यंसमुपार्जितम् ॥ तत्पुण्यपरिवर्तेन काश्यांवासोऽत्रलभ्यते ॥ ८३ ॥ लब्धोपिसिद्धिंनोयायाद्यदिक्रुध्येत्रिलोचनः ॥ तस्माद्विश्वेश्वरंनित्यं शरण्यंशरणंव्रजेत् ॥ ८४ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ अखण्डंहियथाकाश्यां नतथान्यत्रकुत्रचित् ॥ ८५ ॥ आलस्येनापियोयायाद्गृहाद्विश्वेश्वरालयम् ॥ अश्वमेधाधिकोधर्मस्तस्यस्याच्चपदेपदे ॥ ८६ ॥ यःस्नात्वोत्तरवाहिन्यां यातिविश्वेशदर्शने ॥ श्रद्धयापरयातस्य श्रेयसोन्तोनविद्यते ॥ ८७ ॥ स्वर्धुनीदर्शनात्स्पर्शात् स्नानादाचमनादपि ॥ सन्ध्योपासनतोजप्यात्तर्पणाद्देवपूजनात् ॥ ८८ ॥ पञ्चतीर्थावलोकाच्च ततोविश्वेश्वरेक्षणात् ॥ श्रद्धास्पर्शनपूजाभ्यां धूपदीपादिदानतः ॥ ८९ ॥ प्रदक्षिणैःस्तोत्रजपैर्नमस्कारैस्तुनर्त्तनैः ॥ देवदेवमहादेव शम्भोशिवशिवेतिच ॥ ९० ॥ धूर्जटेनीलकण्ठेशपिनाकिञ्छशिशेखर ॥ त्रिशूलपाणेविश्वेश रक्षरक्षेति भाषणैः ॥ ९१ ॥ मुक्तिमण्डपिकायाञ्च निमेषार्धोपवेशनात् ॥ तत्रधर्मकथालापात्पुराणश्रवणादपि ॥ ९२ ॥ नित्यादिकर्मकरणात्तथातिथिसमर्चनैः ॥ परोपकरणाद्यैश्च धर्मस्स्यादुत्तरोत्तरः ॥ ९३ ॥ शुक्लपक्षेयथाचन्द्रः कलयाकलयैध

मोचन, पापमोचन, ऋणमोचन, कुलस्तम्भ, वैतरणी इन पांच तीर्थों का देखना विश्वनाथजी का दर्शन श्रद्धा से स्पर्शन पूजा धूपदीपादि देना ॥ ८९ ॥ प्रदक्षिणा स्तोत्र पाठ नमस्कार नाचना हे देवदेव महादेव शम्भो शिव शिव ॥ ९० ॥ धूर्जटे नीलकण्ठ ईश चन्द्रशेखर त्रिशूलहस्त विश्वनाथ! रक्षो रक्षो यों बोलना ॥ ९१ ॥ मुक्तिमण्डप में आध पलक भी बैठना वहां धर्म की कथाओं का कहना पुराणों का भी सुनना ॥ ९२ ॥ नित्यकर्म्मादि करना अतिथि (आये पाहुनों) का पूजना और

परोपकार आदिकों से अधिक से अधिक धर्म होताहै ॥ ९३ ॥ जैसे उजेरे पाख में रोज रोज कला कला से चन्द्रमा यों काशीवासीजनों का धर्म्मसमूह पग पग में बढ़ता॥९४॥श्रद्धा है बिया जिसका ब्राह्मणों के पद धोवन जलसे सींचा पूर्वोक्त चौदह और चार याने अठारह विद्यायें शाखा न्यायसे कमाये धन फूल मोटा कास महीन मोक्ष ये दो फल ऐसा यह धर्म्मवृक्ष सेव्य है ॥ ९५ ॥ यहां देवीजी सब अर्थों को देती यहां ढुंढिराज गणेशजी सब कामों को पूरते और यहां विश्वनाथजी तारकमन्त्र देने से मरण समय में सब जन्तुवों को संसार से छुड़ाते हैं ॥ ९६ ॥ काशी में धर्म्म वह सत्य तप दया दान चारपांवों से पूर्ण काशीमें अर्थ वह बहुत भांति का काशी

ते ॥ एवंकाश्यांनिवसतां धर्मराशिःपदेपदे ॥ ९४ ॥ श्रद्धाबीजोविप्रपादाम्बुसिक्तः शाखाविद्यास्ताश्चतस्रोदशापि ॥ पुष्पाण्यर्थाद्वे फलेस्थूलसूक्ष्मे मोक्षःकामोधर्म्मवृक्षोयमीड्यः ॥ ९५ ॥ सर्वार्थानामत्रदात्रीभवानीसर्वान्कामान्पूरयेदत्रढुण्ढिः ॥ सर्वाञ्जन्तून्मोचयेदन्तकालेविश्वेशोत्रश्रोत्रमन्त्रोपदेशात ॥ ९६ ॥ काश्यांधर्मस्तच्चतुष्पादरूपः काश्यामर्थःसोप्यनेकप्रकारः ॥ काश्यांकामःसर्वसौख्यैकभूमिः काश्यांश्रेयस्तत्तुकिंनात्रयच्च ॥ ९७ ॥ विश्वेश्वरोयत्रनतत्रचित्रं धर्मार्थकामामृतरूपरूपः ॥ स्वरूपरूपःसहिविश्वरूपस्तस्मान्नकाशीसदृशीत्रिलोकी ॥ ९८ ॥ इतिब्रुवाणागीर्वाणा ददृशुस्तूटजंमुनेः ॥ होमधूपसुगन्धाढ्यं वटुभिर्बहुभिर्वृतम् ॥ ९९ ॥ श्यामाकाञ्जलियाच्ञार्थमृषिकन्यानुयायिभिः ॥ धृतोपग्रहदर्भास्यैर्मृगशावैरलंकृतम् ॥१००॥ सार्द्रवल्कलकौपीनैर्वृक्षशाखावलम्बिभिः॥बद्धविम्ब

में काम वह सब सुखों को मुख्य स्थान काशीमें कैवल्यमोक्ष भी है वह क्या जो यहां नहीं याने सब कुछहै ॥ ९७ ॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष देनेके लिये लीलादेहवाले सच्चिदानन्दरूप वे सब जगत् के रूप या सब प्रतीति कियाजाता है जिनमें वेही विश्वनाथजी जहां वहां चारों फलोंका होना आश्चर्य्य नहीं उससे काशी के समान तीनोंलोक नहीं ॥ ९८ ॥ यों कहते देवों ने मुनिकी कुटी को देखा जोकि होम और धूप के धुवांसे सुगन्धित बहुत विद्यार्थियों से संयुत ॥ ९९ ॥ सोलह टंका सावांके चावल मांगने के अर्थ ऋषिपुत्रियोंके पीछे चलते व धराहै बन्दीरूप कुशों को मुखमें जिन्होंने उन हरिण के बच्चों से भूषित ॥ १०० ॥ ओदे बकलों की लँगोटी ल-

गाये वृक्षों की डालों को पकड़े खडे मुनिजनों से वह कुटी घिरी कि मानों सब दिशाओं में विघ्नरूप मृगों के बांधने के लिये मृगफांसें लगाई गई हैं ॥ १०१ ॥ पतिव्रता स्त्रियों में चूडामणि के समान श्रेष्ठ लोपामुद्रा के पद मुद्रासे चिह्नित, पर्णकुटीके आंगन को देख देवों ने नमस्कार किया ॥ १०२ ॥ समाधि को त्यागे कान में रुद्राक्षमाला को धरे कुशासनी या संन्यासियों के आसन में बैठे ब्रह्मा के समान श्रेष्ठ ॥ १०३ ॥ अगस्त्यजी को आगे देख इन्द्रसमेत प्रसन्नमुख सब देव,जय जय यों बोले ॥ १०४ ॥ मुनिने उन सबको उठा यथोचित आसनों में बैठाल आशिषाओं से बढ़ानेका कारण पूंछा ॥ १०५ ॥ व्यासजी बोले, अत्यन्त पुण्यरूप इस कथाको

मृगान्दिक्षुवागुराभिरिवावृतम्॥१०१॥पतिव्रताशिरोरत्नलोपामुद्राङ्घ्रिमुद्रया॥मुद्रितंवीक्ष्यसन्नेमुःपर्णशालाऽङ्गणंसुराः॥१०२॥विसर्जितसमाधिञ्च धृतकर्णाक्षमालिकम्॥अधिष्ठितबृसीपृष्ठं परमेष्ठिवदुत्कटम् ॥१०३॥ पुरोगस्त्यंसमालोक्य सर्वेदेवाःसवासवाः ॥ प्रहृष्टवदनाःप्रोचुः प्रोच्चैर्जयजयेतिच ॥१०४ ॥ मुनिरुत्थायतान्सर्वानुपावेश्ययथोचितम् ॥ आशीर्भिरभिनन्द्याथपप्रच्छागमकारणम् ॥१०५॥ व्यासउवाच ॥इदंपुण्यतमाख्यानं श्रुत्वाभक्तिसमन्वितः ॥ पठित्वापाठयित्वाच व्रतश्रद्धावताम्पुरः ॥ १०६ ॥ विधूयसर्वपापानि ज्ञात्वाऽज्ञात्वाकृतान्यपि ॥ हंसवर्णेनयानेन गच्छेच्छिवपुरंध्रुवम् ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽगस्त्याश्रमवर्णनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ * ॥ * ॥

सूतउवाच ॥ मुनिपृष्टास्तदादेवा भगवंस्तेकिमब्रुवन् ॥ सर्वलोकहितार्थाय तदाख्याहिमहामुने ॥ १ ॥ श्रीव्यासउवाच ॥ अगस्तिवचनंश्रुत्वा बहुमानपुरस्सरम् ॥ धिषणाधिपतेरास्यं विबुधाव्यालुलोकिरे ॥ २ ॥ वाक्पतिरुवाच ॥ श्रृ

सुन व व्रत श्रद्धावालों के आगे पढ़ पढ़ाकर भक्तिसमेत मनुष्य ॥ १०६ ॥ जान अजान किये सब पापों को दूरकर हंस समान श्वेत विमान से शिवलोक को निश्चय जावे ॥ १०७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेऽगस्त्याश्रमवर्णनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । इस चौथे अध्यायमें वर्णन सहित प्रणाम । श्रीअगस्त्यमुनिकी त्रिया लोपामुद्रा नाम ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे मुनियोंमें महान् भगवान् व्यासजी! उस समय अगस्त्य मुनि से पूंछे उन देवोंने क्या कहा सब लोगों के हित के लिये उसको कहो ॥ १ ॥ श्रीव्यासजी बोले, अधिक आदरपूर्वक अगस्त्य का वचन सुन देवतालोग

बृहस्पति का मुख देखने लगे ॥ २ ॥ बृहस्पति ने कहा, हे बड़े भाग्यवान् या महान् अंशवाले अगस्त्यजी ! देवों के आने का कारण सुनो आप धन्यहो कृतार्थ हो और महात्माओं के मध्य में भी माननीय हो ॥ ३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! प्रतिआश्रम प्रतिपर्वत प्रतिवनमें क्या कोई तपस्वी नहीं याने हैं परन्तु आप की मर्य्यादा औरही है ॥ ४ ॥ तुममें तपस्या की सम्पत्ति या शोभा तुममें अचलब्रह्म तेज अर्थात् वेदवर्चस् तुममे उत्तम पुण्य लक्ष्मी तुममें महत्त्व या उदारता और तुममें ब्रह्म विचारवाला मनहै ॥ ५ ॥ पतिव्रत मङ्गलमयी यह लोपामुद्रा नाम स्त्री तुम्हारी छायासी हैं जिनकी कथा पुण्य करनेवालीही है ॥ ६ ॥ पतिव्रताओंमें वशिष्ठ ब्रह्मा अत्रि कौशिक ब्राह्मण स-

एवगस्तेमहाभाग देवागमनकारणम् ॥ धन्योसिकृतकृत्योसि मान्योसिमहतामपि ॥३॥ प्रत्याश्रमंप्रतिनगं प्रत्यरण्यं तपोधनाः ॥ किन्नसन्तिमुनिश्रेष्ठकाचिदन्यैवतेस्थितिः ॥४॥ तपोलक्ष्मीस्त्वयीहास्ति ब्राह्मंतेजस्त्वयिस्थिरम् ॥ पुण्यलक्ष्मीस्त्वयिपरा त्वय्यौदार्यंमनस्त्वयि ॥ ५ ॥ पतिव्रतेयंकल्याणी लोपामुद्रासधर्मिणी ॥ तवाङ्गच्छाययातुल्या यत्कथापुण्यकारिणी ॥ ६ ॥ पतिव्रतास्वरुन्धत्या सावित्र्याप्यनसूयया ॥ शाण्डिल्ययाचसत्याच लक्ष्म्याचशतरूपया ॥ ७ ॥ मेनयाचसुनीत्याच संज्ञयास्वाहयातथा ॥ यथैषावर्ण्यतेश्रेष्ठा नतथान्येतिनिश्चितम् ॥ ८ ॥ भुङ्क्तेभुक्तेत्वयिमुने तिष्ठतित्वयितिष्ठति ॥ विनिद्रितेचनिद्राति प्रथमंप्रतिबुध्यते ॥ ९ ॥ अनलंकृतमात्मानं तवनोदर्शयेत्कचित् ॥ कार्यार्थंप्रोषितेक्वापि सर्वमण्डनवर्जिता ॥ १० ॥ नचतेनामगृह्णीयात्तवायुष्यविवृद्धये ॥ पुरुषान्तरनामापि नगृह्णातिकदाचन ॥ ११ ॥ आकुष्टापिनचाक्रोशेत्ताडितापिप्रसीदति ॥ इदंकुरुकृतंस्वामिन्मन्यतामितिवक्तिच ॥ १२ ॥ आहूताग्

हेश विष्णु मनु ॥ ७ ॥ हिमवान् उत्तानपाद सूर्य्य तथा अग्निकी स्त्री के समान, जैसे ये बखानी जाती वैसे अन्य स्त्री नहीं यह निश्चय कियागयाहै ॥ ८ ॥ हे ज्ञानवान् ! तुम्हारे भोजन करने के बाद खाती टिकते टिकती सोते सोती आप से पहले जागती ॥ ९ ॥ विना भूषित अपना को तुमका कहीं नहीं दिखाती किसी काम के अर्थ आप के विदेश जातेही सब अलङ्कारों से हीन होती ॥ १० ॥ तुम्हारी आयु बढ़नेके लिये तुम्हारा नाम नहीं लेती कभी और पुरुपका नाम भी नहीं गहती (कहती) ॥ ११ ॥ बकी झकी भी गई कभी नहीं निन्दती ताड़ितहुई भी प्रसन्न होती हे स्वामिन् ! यह काम करो मानों यों बोलती ॥ १२ ॥ बुलाई हुई घरके कामों को त्याग

शीघ्र आती औरयों कहती कि हे नाथ ! आपने किसलिये बुलाया वह प्रसाद कहा या कियाजावे ॥ १३ ॥ बहुत काल द्वारे नहीं ठहरती न सोवनेआदि से द्वारे को सेवती आप के विना दिवाये कुछ किसीको देती भी नहीं ॥ १४ ॥ विना कहे आपही पूजाकी सब सामग्री साजती नियम जल कुश पत्ती फूल अक्षतादि॥१५॥जो जिसकाल में उचित उस अवसर को परखती उस सबको उद्वेगरहित आनन्दित हुई लगे धरती ॥ १६ ॥ स्वामी के जूंठे मीठे अन्न फलादिको सेवती पतिकी दी वस्तु को महाप्रसाद कह गहती या चहती ॥ १७ ॥ देव पितर अतिथि (पाहुनआदि) दासी दास समूह गऊ और याचक अथवा संन्यासीआदि गणों के लिये भाग न ला खाती

हकार्याणि त्यक्त्वागच्छतिसत्वरम् ॥ किमर्थंव्याहृतानाथसप्रसादोविधीयताम् ॥ १३ ॥ नचिरन्तिष्ठतिद्वारिनद्वारमुपसेवते ॥ अदापितन्त्वयाकिञ्चित्कस्मैचिन्नददात्यपि ॥ १४ ॥ पूजोपकरणंसर्वमनुक्तासाधयेत्स्वयम् ॥ नियमोदकबर्हीषिपत्रपुष्पाक्षतादिकम् ॥ १५ ॥ प्रतीक्षमाणावसरं यथाकालोचितंहियत् ॥ तदुपस्थापयेत्सर्वमनुद्विग्नातिहृष्टवत् ॥ १६ ॥ सेवतेभर्तुरुच्छिष्टमिष्टमन्नंफलादिकम् ॥ महाप्रसादइत्युक्त्वा पतिदत्तंप्रतीच्छति ॥ १७ ॥ अविभज्यनचाश्नीयाद्देवपित्रतिथिष्वपि ॥ परिचारकवर्गेषु गोषुभिक्षुकुलेषुच ॥ १८ ॥ संयतोपस्करादक्षाहृष्टाव्ययपराङ्मुखी ॥ कुर्यात्त्वयाननुज्ञाता नोपवासव्रतादिकम् ॥ १९ ॥ दूरतोवर्जयेदेषा समाजोत्सवदर्शनम् ॥ नगच्छेत्तीर्थयात्रादिविवाहप्रेक्षणादिषु ॥ २० ॥ सुखसुप्तंसुखासीनं रममाणंयदृच्छया ॥ आन्तरेष्वपिकार्येषु पतिंनोत्थापयेत्कचित् ॥ २१ ॥ स्त्रीधर्मिणीत्रिरात्रन्तु स्वमुखंनैवदर्शयेत ॥ स्ववाक्यंश्रावयेन्नापि यावत्स्नातानशुद्धितः ॥ २२ ॥ सुस्नाताभर्तृवदनमीक्षतेन्यस्यनक

नहीं ॥ १८ ॥ धोये कपड़े गहने पहने चतुर प्रसन्न, खर्च के ओर मुख न करनेवाली व आपकी आज्ञा पाये विना उपास व्रतादिको नहीं करती ॥ १९ ॥ यह सभा और उत्सवों का देखना दूरसे बराती तीर्थ यात्रादि विवाह देखने में नहीं जाती ॥ २० ॥ सुखसे सोते सुखसे बैठे पौढ़े जैसे तैसे रमते स्वामीको एकान्त के याने जरूरी कामों में भी कहीं नहीं उठाती ॥ २१ ॥ रजस्वला हुई तीनराति अपना मुख नहीं दिखाती जबलौं न नहाती तौलौं अपना वचन भी न सुनाती शुद्ध होनेसे ॥ २२ ॥

नीके नहाई पतिका मुख देखती और का कहीं नहीं या मनमें स्वामी का ध्यानधर श्रीसूर्य्यदेवके दर्शन करती ॥ २३ ॥ हरदी कुंकुम सेंदुर काजल चोली पान मंगल के अच्छे भूषण ॥ २४ ॥ शिरके बालों का झारना मीड़ना तैलादिकों से झलकाना बेनी गूंधना हाथ कान आदि अङ्गों के गहने को पतिकी आयु को चाहती पतिव्रता नहीं दुराती ॥ २५ ॥ धोबिन या रजस्वला के तिसरे दिनवाली स्त्री कारणोंसे धर्म्म कर्म्मों में संदेह करती पाखण्डिनी या बौद्धमति या और अभागिनीके साथ सखी भाव को सती कहीं नहीं करती ॥ २६ ॥ यह कहीं पति की वैरिणी स्त्री से न बतलाती न कहीं अकेले होती न कहीं नंगी नहाती ॥ २७ ॥ काँडी मूसल

चित् ॥ अथवामनसिध्यात्वा पतिंभानुंविलोकयेत् ॥ २३ ॥ हरिद्रांकुङ्कुमञ्चैव सिन्दूरंकज्जलंतथा ॥ कूर्पासकञ्चताम्बूलं माङ्गल्याभरणंशुभम् ॥ २४ ॥ केशसंस्कारकबरीकरकर्णादिभूषणम् ॥ भर्त्तुरायुष्यमिच्छन्ती दूरयेन्नपतिव्रता ॥ २५ ॥ नरजक्यानहेतुक्या तथाश्रमणयानच ॥ नचदुर्भगयाक्वापिसखित्वंकुरुतेसती ॥ २६ ॥ भर्तृविद्वेषिणींनारीं नैषासम्भाषतेक्वचित् ॥ नैकाकिनीक्वचिद्भूयान्ननग्नास्नातिचक्वचित् ॥ २७ ॥ नोलूखलेनमुसले नवर्द्धन्यांदृषद्यपि ॥ नयन्त्रकेनदेहल्यां सतीचोपविशेत्क्वचित् ॥ २८ ॥ विनाव्यवायसमयंप्रागल्भ्यंनक्वचिच्चरेत् ॥ यत्रयत्ररुचिर्भर्त्तुस्तत्रप्रेमवतीसदा ॥ २९ ॥ इदमेवव्रतंस्त्रीणामयमेवपरोवृषः ॥ इयमेकादेवपूजाभर्त्तुर्वाक्यंनलङ्घयेत् ॥ ३० ॥ क्लीबंवादुरवस्थंवा व्याधितं वृद्धमेववा ॥ सुस्थितंदुःस्थितंवापि पतिमेकंनलङ्घयेत् ॥ ३१ ॥ हृष्टाहृष्टेविषण्णास्या विषण्णास्येप्रियेसदा ॥ एकरूपा भवेत्पुण्या सम्पत्सुचविपत्सुच ॥ ३२ ॥ सर्पिर्लवणतैलादिक्षयेपिचपतिव्रता ॥ पतिंनास्तीतिनब्रूयादायासेषुनयोज

बढ़नी चाकी जांत और डेहरीपर पतिव्रता कहीं नहीं बैठती ॥ २८ ॥ न मैथुन समय विना कहीं ढिठाई करती जहां जहां स्वामीकी रुचि वहां वहां सदा प्रेमवाली ॥२९॥ स्त्रियोंका यही व्रत यही परमधर्म यह उत्तम देवपूजा जोकि स्त्री पतिका वचन न टाले ॥ ३० ॥ नपुंसक दुष्ट वयस रोगी बूढ़ नीके नकारे प्रकार जैसे कैसे टिके एक पतिका उल्लंघन न करे ॥ ३१ ॥ प्यारे के सुख से सुख दुःखसे दुःख सम्पति व विपतिमें पुण्यवाली स्त्री एक रूपहोवे ॥ ३२ ॥ पतिव्रता स्त्री घी लोन तेल आदि चुकने में

भी पतिसे नहीं कहे कि नहीं है और परिश्रमों में न जोड़े ॥ ३३ ॥ तीर्थ नहाने की चाहिनी स्त्री पतिका चरणामृत पीवे क्योंकि स्त्रीके लिये पतिही शिव व विष्णु से अधिकहै ॥ ३४ ॥ पतिका उल्लंघन कर जो व्रत उपास नियम को करती वह पतिकी आयुको हरती और मरीहुई नरकको जाती ॥ ३५ ॥ क्रोधवती जो दुष्टास्त्री पतिसे कहीगई हुई उत्तर देती वह गाउँमें कूकरीव जनहीन वनमें स्यारी होती ॥ ३६ ॥ स्त्रियोंका यह एक उत्तम नियम कहागया कि पतिके पदपूज निश्चयकर भेजन करना चाहिये ॥ ३७ ॥ ऊंचे आसन को न सेवे परघर न जावे कभी लाजकारी वचन बोलने योग्य नहीं ॥ ३८ ॥ गीला न वतलाना चाहिये लड़ाई दूरतजे बड़े लोगो

येत् ॥ ३३ ॥ तीर्थस्नानार्थिनीनारी पतिपादोदकंपिबेत् ॥ शङ्करादपिविष्णोर्वा पतिरेकोधिकःस्त्रियः ॥ ३४ ॥ व्रतोपवासनियमं पतिमुल्लङ्घ्ययाचरेत् ॥ आयुष्यंहरतेभर्त्तुर्मृतानिरयमृच्छति ॥ ३५ ॥ उक्ताप्रत्युत्तरंदद्याद्यानारीक्रोधतत्परा ॥ सरमाजायतेग्रामे सृगालीनिर्जनेवने ॥ ३६ ॥ स्त्रीणांहिपरमश्चैको नियमःसमुदाहृतः ॥ अभ्यर्च्यचरणौभर्त्तुर्भोक्तव्यं कृतनिश्चयम् ॥ ३७ ॥ उच्चासनंनसेवेत नव्रजेत्परवेश्मसु ॥ नत्रपाकरवाक्यानि वक्तव्यानिकदाचन ॥ ३८ ॥ अपवादो नवक्तव्यः कलहंदूरतस्त्यजेत् ॥ गुरूणांसन्निधौकापि नोच्चैर्ब्रूयान्नवाहसेत् ॥ ३९ ॥ याभर्तारंपरित्यज्य रहश्चरतिदुर्मतिः ॥ उलूकीजायतेक्रूरा वृक्षकोटरशायिनी ॥ ४० ॥ ताडितातांडितुंचेच्छेत्साव्याघ्रीवृषदंशिका ॥ कटाक्षयतिया ऽन्यंवै केकराक्षीतुसाभवेत् ॥ ४१ ॥ याभर्तारंपरित्यज्य मिष्टमश्नातिकेवलम् ॥ ग्रामेवासूकरीभूयाद्वल्गुर्वापिस्वविड्भुजा ॥ ४२ ॥ यात्वंकृत्याप्रियंब्रूते मूकासाजायतेखलु ॥ यासपत्नींसदेर्ष्येत दुर्भगासापुनःपुनः ॥ ४३ ॥ दृष्टिंविलुप्यभ

के लगे कभी ऊंचे न बैठे न हँसे ॥ ३९ ॥ जो दुष्टबुद्धिवाली पतिको छोड़ जार के साथ एकान्त याने रतिआदि करती वह कुटिला वृक्षके बिलों ने रोनेहारी घुघुवा होती ॥ ४० ॥ पतिसें ताड़ित हुई जो ताड़ने को चाहती वह बाघिनि व बिलाई तथा जो और पतिके और नेत्रों से कटाक्ष करती वह तिरछाकोनी नयनी होती ॥ ४१ ॥ जो पतिको त्याग केवल आपही नीक मीठखावे वह सोर व आपन विष्ठा खाने वाली चमगूदरी या हरिलिनी होवे ॥ ४२ ॥ जो तुंकर याने रिरकार कठोर कहती वह

निश्चय गूंगी होती जो सौत से सदा ईर्षाकरे वह बार बार विधवा अभागिनी होवे ॥ ४३ ॥ पतिकी दृष्टिको वस्त्रादि से ओटकर जो किरी परपुरुषको देखती वह कानी कुमुखी कुरूपा हो जन्मती ॥४४॥ बाहर से आये देख वेगवतीहुई पानी भोजन पान पंखा पदचापना आदि ॥४५॥ नर्म वचन वैरो खेद दुरानेवारे और अनेक उपायोंसे जो प्रीतिवती स्त्री प्यारे पतिको प्रसन्नकरे उसने तीनों लोकोंको प्रसन्न किया ॥ ४६ ॥ पिता तौल समेत या थोड़ेही सुखको देता थोड़ेको भाई थोड़ेको पुत्र और अगित अर्थात् अतौल दाता पतिको सदा पूजे ॥ ४७ ॥ देव गुरु धर्म तीर्थ व्रत ये सब पतिही है इससे सबको तज एकपतिही को भलीभांति से पूजे ॥ ४८ ॥ जैसे बिन जीव

तुर्या कञ्चिदन्यंसमीक्षते ॥ काणाचविमुखीचापि कुरूपाचापिजायते ॥ ४४ ॥ बाह्यादायान्तमालोक्य त्वरिताचजला शनैः ॥ ताम्बूलैर्व्यजनैश्चैव पादसंवाहनादिभिः ॥ ४५ ॥ तथैवचाटुवचनैः खेदसन्नोदनैःपरैः ॥ याप्रियंप्रीणयेत्प्रीता त्रिलोकीप्रीणितातया ॥ ४६ ॥ मितंददातिहिपिता मितंभ्रातामितंसुतः ॥ अमितस्यहिदातारं भर्तारंपूजयेत्सदा॥४७॥ भर्तादेवोगुरुर्भर्ता धर्मतीर्थव्रतानिच ॥ तस्मात्सर्वंपरित्यज्य पतिमेकंसमर्चयेत् ॥ ४८ ॥ जीवहीनोयथादेहः क्षणाद शुचितांव्रजेत् ॥ भर्तृहीनातथायोषित्सुस्नाताप्यशुचिःसदा ॥ ४९ ॥ अमङ्गलेभ्यःसर्वेभ्यो विधवात्यक्तमङ्गला ॥ विधवादर्शनात्सिद्धिः क्वापिजातुनजायते ॥ ५० ॥ विहायमातरञ्चैकांसर्वांमङ्गलवर्जिताम् ॥ तदाशिषमपिप्रा ज्ञस्त्यजेदाशीविषोपमाम् ॥ ५१ ॥ कन्याविवाहसमयेवाचयेयुरितिद्विजाः ॥ भर्तुःसहचरीभूयाज्जीवतोजीवतोपि वा ॥ ५२ ॥ भर्त्तासदानुयातव्योदेहवच्छाययास्त्रिया ॥ चन्द्रमाज्योत्स्नयायद्वद्विद्युत्वान्विद्युतायथा ॥ ५३ ॥ अनु

की देह अशुद्धता को पहुँचती वैसे नीके नहाईहुई भी पतिसे रहित स्त्री सदा अपवित्र है ॥ ४९ ॥ अमंगलों को सजे मंगलोंको तजे विधवा सब से अधिक अमंगल क्योंकि विधवा के देखने से कहीं भी सिद्धि नहीं उपजती ॥ ५० ॥ परन्तु सब अमङ्गलों से हीन एक माताको त्याग याने उसका दर्शन सदा शुभदहै और बुद्धि-मान् उस विधवा के आशीर्वाद को सर्पके समान बरावे ॥ ५१ ॥ कन्या के ब्याह समय में ब्राह्मणादि तीनवर्ण यो बँचावें कि यह जिये मरे पतिकी सँघातिनी होवे॥ ५२ ॥ छायासे देहकी नाई स्त्री से सदा स्वामी पीछे जाने योग्य कि जैसे चांदनीसे चन्द्रमा जैसे बिजुली से मेघ ॥ ५३ ॥ जो आनन्द से चिता में चढ़ने के लिये पति

के पीछे श्मशान को जाती वह विना सन्देह पद पदमें अश्वमेधयज्ञ का फलपाती॥ ५४ ॥ जैसे सर्प पकड़नेवाला बल करके बिलसे सर्प्प को ऊपर को खींचता वैसे प
तिव्रता पतिको यमदूतों से छुड़ा स्वर्ग को पठाती ॥ ५५ ॥ उसके कुकर्म्मी पति को भी त्याग सती को देख यमदूत दूर भागते ॥ ५६ ॥ हम यमदूत वैसे आग व विजुली
से नहीं डरते जैसे चिता में पड़ती पतिव्रता को देख डरते हैं ॥ ५७ ॥ पतिव्रता के तेज को देख सूर्य्य अतिशय तपते आग भी जलती व सब तेज कांपते ॥ ५८ ॥ जि

व्रजतिभर्त्तारंगृहात्पितृवनंमुदा ॥ पदेपदेऽश्वमेधस्यफलंप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ५४ ॥ व्यालग्राहीयथाव्यालंबलादुद्धरते
बिलात् ॥ एवमुत्क्रम्यदूतेभ्यःपतिंस्वर्गंनयेत्सती ॥ ५५ ॥यमदूताःपलायन्तेसतीमालोक्यदूरतः ॥ अपिदुष्कृतकर्मा
णंसमुत्सृज्यचतत्पतिम् ॥ ५६ ॥ नतथाबिभीमोवह्नेर्नतथाविद्युतोयथा ॥ आपतन्तींसमालोक्यवयंदूताःपतिव्रताम् ॥
५७ ॥ तपनस्तप्यतेत्यन्तंदहनोपिचदह्यते ॥ कम्पन्तेसर्वतेजांसिदृष्ट्वापातिव्रतंमहः ॥ ५८ ॥ यावत्स्वलोमसंख्या
स्तितावत्कोट्ययुतानिच ॥ भर्त्रास्वर्गसुखंभुङ्क्तेरममाणापतिव्रता ॥ ५९ ॥ धन्यासाजननीलोकेधन्योसौजनकःपुनः ॥
धन्यःसचपतिःश्रीमान्येषांगेहेपतिव्रता ॥ ६० ॥ पितृवंश्यामातृवंश्याःपतिवंश्यास्त्रयस्त्रयः ॥ पतिव्रतायाःपुण्येनस्वर्ग
सौख्यानिभुञ्जते ॥ ६१ ॥ शीलभङ्गेनदुर्वृत्ताःपातयन्तिकुलत्रयम् ॥ पितुर्मातुस्तथापत्युरिहामुत्रचदुःखिताः ॥ ६२ ॥
पतिव्रतायाश्चरणोयत्रयत्रस्पृशेद्भुवम् ॥ तत्रेतिभूमिर्मन्येतनात्रभारोस्तिपावनी ॥ ६३ ॥ बिभ्यत्पतिव्रतास्पर्शंकुरुते

तनी अपने रोमोंकी गिन्ती उतने किरोड़ दश हजारवर्ष पति से रमतीहुई सती स्त्री स्वर्ग सुखको भोगती ॥ ५९ ॥ लोकमें वह माता पिता और श्रीमान् पति धन्य जिन
के घरमें पतिव्रताहो ॥ ६० ॥ माता पिता पतिके वंश के तीनतीन पुरुखा पतिव्रताकी पुण्य से स्वर्ग के सुखों को भोगते हैं ॥ ६१ ॥ शीलके तोड़ने से इस उस लोक में
दुखित दुष्टा स्त्रियां माता पिता पतिकी तीन पुरितयोंको नरक में डालती हैं ॥ ६२ ॥ पतिव्रता का पद जहां जहां पृथिवी को परसता वहां वहां भूमि यों मानती कि यहां

मुझ में भार नहीं और पवित्रहूं ॥ ६३ ॥ डरतेहुये सूर्य्य चन्द्रमा वायु अपने पवित्र होने के लिये पतिव्रता का परस करते और तौर से नहीं ॥ ६४ ॥ पानी सदा पतिव्रता का परस चाहते कि आज हमारी जड़ता का नाशहुआ व आज हम औरे के पवित्रकर्ता हुये ॥ ६५ ॥ रूप सुघराई लुनाई से गर्वीली स्त्रियां क्या घर घर नहीं परन्तु पतिव्रता स्त्री विश्वनाथ की भक्तिही से मिलती है ॥ ६६ ॥ स्त्री गृहस्थ की मूल (जड़) स्त्री सुखका कारण धर्म्म फलों की प्राप्ति और संतति की बढ़ती होने के लिये स्त्रीही है ॥ ६७ ॥ यह लोक व परलोक ये दोनों स्त्री से जीतेजाते विना स्त्री वाला देव पितर अतिथिआदि को नहीं पूजता ॥ ६८ ॥ वहीं गृहस्थ जानने योग्य

भानुमानपि ॥ सोमोगन्धवहश्चापिस्वपावित्र्यायनान्यथा ॥ ६४ ॥ आपःपतिव्रतास्पर्शमभिलष्यन्तिसर्वदा ॥ अद्यजाड्यविनाशोनोजातास्त्वद्याऽन्यपावनाः ॥ ६५ ॥ गृहेगृहेनकिंनार्योरूपलावण्यगर्विताः ॥ परंविश्वेशभक्त्यैवलभ्यते स्त्रीपतिव्रता ॥ ६६ ॥ भार्यामूलंगृहस्थस्यभार्यामूलंसुखस्यच ॥ भार्याधर्मफलावाप्त्यैभार्यासन्तानवृद्धये ॥ ६७ ॥ परलोकस्त्वयंलोकोजीयतेभार्ययाद्वयम् ॥ देवपित्रातिथीज्यादिनाभार्यःकर्मचार्हति ॥ ६८ ॥ गृहस्थःसहिविज्ञेयोयस्यगेहेपतिव्रता ॥ ग्रसतेऽन्याप्रतिपदंराक्षस्याजरयाथवा ॥ ६९ ॥ यथागङ्गाऽवगाहेनशरीरंपावनंभवेत् ॥ तथापतिव्रतादृष्ट्या शुभयापावनंभवेत् ॥ ७० ॥ अनुयातिनभर्त्तारंयदिदैवात्कथञ्चन ॥ तत्रापिशीलंसंरक्ष्यंशीलभङ्गात्पतत्यधः ॥ ७१ ॥ तद्वैगुण्यादपिस्वर्गात्पतिःपततिनान्यथा ॥ तस्याःपिताचमाताचभ्रातृवर्गस्तथैवच ॥ ७२ ॥ पत्यौमृतेचयायोषिद्वैधव्यं पालयेत्क्वचित् ॥ सापुनःप्राप्यभर्त्तारंस्वर्गभोगान्समश्नुते ॥ ७३ ॥ विधवाकबरीबन्धोभर्तृबन्धायजायते ॥ शिरसोवपनं

कि जिसके घरमें पतिव्रता हो अन्य स्त्री पग पगमें ग्रसती व बुढ़ाईरूप राक्षस से ग्रसी जाती ॥ ६९ ॥ जैसे गङ्गा नहाने से वैसे पतिव्रता की शुभदृष्टि से देह पवित्रहोती ॥ ७० ॥ जो प्रारब्ध कर्म्मके वश किसी भांतिसे पतिके पीछे स्त्री न जावे या साथही चितामें नजले तोभी पतिव्रताका धर्म्म बचाना चाहिये पातिव्रत्य तोड़ने से नीचे पड़ती है ॥ ७१ ॥ उसके दुष्ट आचारसे उसका पति पिता माता भ्राता आदि स्वर्गसे पतित होता अन्यथा नहीं ॥ ७२ ॥ पति मरतेही जो स्त्री कहीं विधवापन को पालती वह फिर पतिको पा स्वर्ग के भोगोंको पहुँचती ॥ ७३ ॥ विधवाका पाटी पारना बेनी गुहना जूरा बाँधना स्वामीके बांधनेके लिये होता उस कारण सदा विधवाका

सूड़ मुड़ाना चाहिये ॥७४॥ सदा एकबार भोजन करनेयोग्य दुबारा नहीं तीन राति पाँच राति पंद्रह दिनका व्रत ॥ ७५ ॥ मासभर उपास ❀चान्द्रायण + कृच्छ्रपराक व ।तप्त कृच्छ्र व्रतको करे ॥ ७६ ॥ जब फल साग दूधआदि भोजनके नियमसे तौलों प्राणोंकी रक्षा करै कि जौलों प्राण आपही न निकले ॥ ७७ ॥ पलँगमें सोती विधवा स्त्री पतिको नरकमें गिराती उसकारण पतिके सुखकी चाहसे भूमिमें सोना चाहिये ॥७८॥ वह विधवास्त्री देहमें तेल उबटन और सुगंधोंका संयोग कहीं न करै ॥ ७९ ॥ रोज रोज नाम गोत्र पूर्वक पति श्वसुल परश्वसुल का तर्पण करने योग्यहै ॥८०॥ स्वामी समझ विष्णुकी पूजाकरे और तौरसे नहीं विष्णुरूपधारी दुखहारी पतिहीको सदा

तस्मात्कार्यंविधवयासदा ॥ ७४ ॥ एकाहारःसदाकार्योनद्वितीयःकदाचन ॥ त्रिरात्रंपञ्चरात्रंवापक्षव्रतमथापिवा ॥ ७५ ॥ मासोपवासंवाकुर्य्याच्चान्द्रायणमथापिवा ॥ कृच्छ्रंपराकंवाकुर्यात्तप्तकृच्छ्रमथापिवा ॥ ७६ ॥ यवान्नैर्वाफलाहारैःशाकाहारैःपयोव्रतैः ॥ प्राणयात्रांप्रकुर्वीतयावत्प्राणःस्वयंव्रजेत् ॥ ७७ ॥ पर्यङ्कशायिनीनारीविधवापातयेत्पतिम् ॥ तस्माद्भूशयनंकार्यंपतिसौख्यसमीहया ॥ ७८ ॥ नचाङ्गोद्वर्तनंकार्यंस्त्रियाविधवयाक्वचित् ॥ गन्धद्रव्यस्यसंयोगोनैव कार्यस्तयापुनः ॥ ७९ ॥ तर्पणंप्रत्यहंकार्यंभर्तुःकुशतिलोदकैः ॥ तत्पितुस्तत्पितुश्चापिनामगोत्रादिपूर्वकम् ॥ ८० ॥ विष्णोस्तुपूजनंकार्यंपतिबुद्ध्यानचान्यथा ॥ पतिमेवसदाध्यायेद्विष्णुरूपधरंहरिम् ॥ ८१ ॥ यद्यदिष्टतमंलोकेयच्चपत्युःसमीहितम् ॥ तत्तद्गुणवतेदेयं पतिप्रीणनकाम्यया ॥ ८२ ॥ वैशाखेकार्त्तिकेमाघे विशेषनियमांश्चरेत् ॥ स्नानंदानंतीर्थयात्रां विष्णोर्नामग्रहंमुहुः ॥ ८३ ॥ वैशाखेजलकुम्भाश्च कार्त्तिकेघृतदीपकाः ॥ माघेधान्यतिलोत्सर्गः स्वर्ग

ध्यानधरे ॥ ८१ ॥ लोकमें जोजो प्यारी चीज व पति से चही गईहो उससे उसको गुणवान् केलिये पतिकी तृप्तिकी कामनासे देना चाहिये ॥८२॥ वैशाख कातिक माह महीनोंमें स्नान दान तीर्थ जाना विष्णुनामलेना आदि विशेष नियमोंको करे ॥ ८३ ॥ वैशाखमें पानीसे पूरेकलश कातिकमें घीके दिया माहमें धान तिल आदि का देना

❀ उजेरे पाख में एक एक कौर भोजन बढ़ावे अँधेरे में घटावे अमावस में उपासकरे सो चान्द्रायण ॥ + बारह दिन कुछ न खावे वह पराककृच्छ्र है ॥ । तीन दिन छः टका उष्ण जल, तीन दिन तीनटका उष्ण दूध, तीनदिन एक टका उष्णघी, तीनदिन वायुभोजन से तप्तकृच्छ्र व्रतहोताहै ॥

स्वर्गलोकमें विशेष होता है ॥ ८४ ॥ वैशाखमें पौशाला करना व देवताओंपर जलधारा देना चाहिये जूता पंखा छाता महीन कपड़े चंदन ॥ ८५ ॥ कपूर पान फूल अनेको पानीके पात्र फूलोंके स्थान ॥ ८६ ॥ गुलाब आदि विचित्र पीनेकी चीजें दाख केलाके फल ये सब श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके लिये देनेयोग्य, कि मेरा पति तृप्तहोवे ॥ ८७ ॥ कातिक में यव या एकही अन्न खावे भॅटा सूरन और सुवाकी नासाके समान सेमको बरावे ॥ ८८ ॥ कातिकमें तेल सहत कांस व बेल अमला आदिके संधान को

लोकेविशिष्यते ॥ ८४ ॥ प्रपाकार्याचवैशाखे देवेदेयागलन्तिका ॥ उपानद्व्यजनंछत्रं सूक्ष्मवासांसिचन्दनम् ॥ ८५ ॥ सकर्पूरञ्चताम्बूलं पुष्पदानंतथैवच ॥ जलपात्राण्यनेकानितथापुष्पगृहाणिच ॥ ८६ ॥ पानानिचविचित्राणि द्राक्षार म्भाफलानिच ॥ देयानिद्विजमुख्येभ्यः पतिर्मेप्रीयतामिति ॥ ८७ ॥ ऊर्जेयवान्नमश्नीयादेकान्नमथवापुनः ॥ वृन्ताकं सूरणञ्चैव शुकशिम्बींचवर्जयेत् ॥ ८८ ॥ कार्त्तिकेवर्जयेत्तैलंकार्त्तिकेवर्जयेन्मधु ॥ कार्त्तिकेवर्जयेत्कांस्यं कार्त्तिकेचापि सन्धितम् ॥ ८९ ॥ कार्त्तिकेमौननियमे घण्टांचारुप्रदापयेत् ॥ पत्रभोजीकांस्यपात्रं घृतपूर्णंप्रयच्छति ॥ ९० ॥ भूमि शय्याव्रतेदेया शय्याश्लक्ष्णासतूलिका ॥ फलत्यागेफलंदेयं रसत्यागेचतद्रसम् ॥ ९१ ॥ धान्यत्यागेचतद्धान्यमथवा शालयःस्मृताः ॥ धेनूर्दद्यात्प्रयत्नेन सालङ्काराःसकाञ्चनाः ॥ ९२ ॥ एकतःसर्वदानानि दीपदानन्तथैकतः ॥ कार्त्तिके दीपदानस्य कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ९३ ॥ किञ्चिदभ्युदितेसूर्ये माघस्नानंसमाचरेत् ॥ यथाशक्त्याचनियमान् मा

छोड़े ॥८९॥ कातिकमें बोलबन्द नियम होतेही मनोरमघंटा दिलावे या देवे कांसेके पात्रमें खाताहुआ घीसे भरा कांसका पात्र दानकरे ॥ ९० ॥ भूमिशयन व्रतमें तोसक तकिया समेत शुभशय्या देनाचाहिये फलोंके त्याग में फल और रसके छोड़नेमें वह रस देने योग्य हैं ॥ ९१ ॥ धान्य के त्याग में वह अनाज या धान कहे गये व भूषण सोनासमेत गौओंको यत्नसे देवे ॥ ९२ ॥ एक ओर सब दान एक ओर दीपदान कातिक में आनदान दीपदानकी सोलहीं कलाके भी योग्य नहीं होते ॥ ९३ ॥

अरुणोदय सें माह स्नान करे माघ नहानेवाला अपनी शक्ति के अनुसार नियमों को निबाहे ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणोंको पकवान खिलावे संन्यासी तपस्वियों को लड्डू फेनी बरा इंडरीआदि से छकावे ॥ ९५ ॥ जे चीज़ें घीमें पाकी मिर्च समेत शुद्धकपूरसे सुगन्धित भीतर खांडभरी आंखों को आनन्द देती सुवासवाली हों उनसे भी ॥९६॥ सूखे काठों के बोझ रुई भरे पहिरन और अच्छे घेरवाली तोसक तकिया इन सबके जाड़ा दुराने के लिये देवे ॥ ९७ ॥ मँजीठ से रँगे लालवस्त्र रुईवाली पटी याने सलूकाआदि जायफल लवांगों से संयुत बहुते पान ॥ ९८ ॥ विचित्र कम्बल वायु वर्जित घर कोमल जूता या पादुका सुगन्ध समेत उबटनों को भी देवे ॥ ९९ ॥

घस्नायीसमाचरेत् ॥ ९४ ॥ पक्वान्नैर्भोजयेद्विप्रान् यतिनोपितपस्विनः ॥ लड्डुकैःफेणिकाभिश्च वटकेण्डरिकादिभिः ॥ ९५ ॥ घृतपक्वैःसमरिचैः शुचिकर्पूरवासितैः ॥ गर्भेशर्करयापूर्णैर्नेत्रानन्दैःसुगन्धिभिः ॥ ९६ ॥ शुष्केन्धनानांभारांश्च दद्याच्छीतापनुत्तये ॥ कञ्चुकंतूलगर्भञ्च तूलिकांसूपवीतिकाम् ॥ ९७ ॥ मञ्जिष्ठारक्तवासांसि तथातूलवतींपटीम् ॥ जातीफललवङ्गैश्च ताम्बूलानिबहून्यपि ॥ ९८ ॥ कम्बलानिविचित्राणि निर्वातानिगृहाणिच ॥ मृदुलाःपादरक्षाश्च सुगन्ध्युद्वर्त्तनानिच ॥ ९९ ॥ घृतकम्बलपूजाभिर्महास्नानपुरःसरम् ॥ कृष्णागुरुप्रभृतिभिर्गर्भागारेप्रधूपनैः ॥ १०० ॥ स्थूलवर्तिप्रदीपैश्च नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥ भर्तृस्वरूपोभगवान् प्रीयतामितिचोच्चरेत् ॥ १०१ ॥ एवंविधैश्चविधवा विविधैर्नियमैर्व्रतैः ॥ वैशाखान्कार्त्तिकान्माघानेवमेवातिवाहयेत् ॥ १०२ ॥ नाधिरोहेदनड्वाहं प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ कञ्चुकन्नपरीदध्याद्वासोनविकृतन्न्यसेत् ॥ १०३ ॥ अपृष्ट्वातुसुतान्किञ्चिन्नकुर्याद्भर्तृतत्परा ॥ एवंचर्यापरानित्यं विधवा

घी से बनी कम्बल पूजा जोकि बदरीनारायण में प्रसिद्ध व बड़े स्नानपूर्वक देवमन्दिर के भीतर काला अगरआदि धूप ॥ १०० ॥ मोटी बातीके दीप और अनेकभांति नैवेद्यसे पतिरूप भगवान् तृसहों विधवा यों कहे ॥ १०१ ॥ विधवा ऐसे अनेक नियमव्रतोसे वैशाख कातिक माघ महीनोंको बितावे ॥ १०२ ॥ जो प्राण निकलकर कण्ठ में गये हों तोभी बैलकी सवारी में न चढ़े चोली न पहने विचित्र वस्त्रको न धारण करे ॥ १०३ ॥ पति प्रीतमें परायणहुई पुत्रोंसे पूंछे विना कुछ काम न करे यो

१ इडरी जगन्नाथपुरी में प्रसिद्ध है ॥

नित्य आचार में तत्पर विधवा भी शुभ मानीजाती है ॥ १०४ ॥ यों धर्मसंयुत विधवा पतिव्रता स्त्री पतिलोक को जाती कहीं नहीं दुखपाती ॥ १०५ ॥ जो पतिव्रता पतिको देवसे पूजती उससे व गंगासे भेद नहीं वह साक्षात् गौरीशङ्करके समान इरासे ज्ञानवान् उसको पूजे ॥१०६॥ बृहस्पतिजी बोले, हे पतिके पदकमलोंमें नेत्र या दृष्टि धारिणी महामातः लोपामुद्रे ! आज गंगा नहाने का फल मिला जो तुम्हारा दर्शन हुआ ॥ १०७ ॥ यों बड़े भागवाली राजपुत्री पतिव्रता को प्रशंस प्रणामकर सब अर्थों के पण्डित देवगुरूने अगस्त्यमुनि से कहा ॥ १०८ ॥ तुम ॐकार ये लोपामुद्रा श्रुति तुम आपहीआप तपोरूप ये क्षमा तुम फल और ये अच्छे कर्म की क्रिया हे

पिशुभामता ॥ १०४ ॥ एवंधर्मसमायुक्ता विधवापिपतिव्रता ॥ पतिलोकानवाप्नोति नभवेत्कापिदुःखभाक् ॥ १०५ ॥ नगङ्गयातयाभेदो यानारीपतिदेवता ॥ उमाशिवसमासाक्षात्तस्मात्तांपूजयेद्बुधः ॥ १०६ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ गङ्गास्नानफलंत्वेतद्यज्जातंतवदर्शनम् ॥ लोपामुद्रेमहामातर्भर्तृपादाम्बुजेक्षणे ॥ १०७ ॥ इतिस्तुत्वामहाभागां राजपुत्रींपतिव्रताम् ॥ प्रणम्यचगुरुःप्राह मुनिंसर्वार्थकोविदः ॥ १०८ ॥प्रणवस्त्वंश्रुतिरियं क्षमैषात्वंस्वयंतपः ॥ सत्क्रियेयंफलंत्वं हि धन्योसीतिमहामुने ॥ १०९ ॥ इदंपातिव्रतंतेजो ब्रह्मतेजोभवान्परम् ॥ तत्राप्येतत्तपस्तेजः किमसाध्यतमन्तव ॥ ११० ॥ तवनाविदितंकिञ्चित्तथापिचवदाम्यहम् ॥ यदर्थमागतादेवास्तन्मुनेत्वंनिशामय ॥ १११ ॥ अयंशतमखः श्रीमान् वृत्रहाकुलिशायुधः ॥ सिद्ध्यष्टकंहियद्द्वारि दृक्प्रसादंसमीक्षते ॥ ११२ ॥ यस्यपुर्याःपरिसरे कामधेनुव्रजश्चरेत् ॥ यत्पौराःकल्पवृक्षाणां नित्यंछायासुशेरते ॥ ११३ ॥ यद्रथ्यासुचतिष्ठन्ति तेचिन्तामणिकर्कराः ॥ अयमग्निर्जग

महामुने ! तुम धन्यहो ॥ १०९ ये पतिव्रत धर्म्म का तेज आप उत्तम ब्रह्मतेज तहांभी यह तपस्या का तेज इससे आप का क्या अधिक असाध्य याने सबकुछ साध सकेहो ॥ ११० ॥ वह कुछ नहीं जो आपका जाना नहो तोभी मैं कहताहूं हे मुने ! जिस प्रयोजनको देव आये उसको सुनो ॥ १११ ॥ वृत्रासुरविदारी वज्र आयुधधारी ये ऐश्वर्य्यवान् इन्द्रहैं जिसके द्वारे में आठों सिद्धियां दृष्टि की प्रसन्नता को देखतीहैं ॥ ११२ ॥ जिसकी पुरी के पर्य्यन्त में कामधेनुओं का समूह चरता व जिसके पुरवासी सदा कल्पवृक्षों की छाया में सोते ॥ ११३ ॥ जिसकी गलियों में चिन्तामणियां छोटे पत्थरों या कंकरों के समान दिखेहैं यह जगत का कारण अग्नि

देव यह धर्मराज ॥ ११४ ये निर्ऋति वरुण वायु कुबेर ईशान आदिदेव जे कि समर्थ व सब कामों के लिये सुकर्म्मियों से पूजे जाते हैं ॥ ११५ ॥ ये मांगनेवाले व जगत् के उपकार के अर्थ आप याचने योग्य और वह सबका उपकार आप का वचनमात्र उद्यम से साध्य है ॥ ११६ ॥ कोई विन्ध्यनाम पर्वत सुमेरुके डाह से सूर्य्य की गली को रोंकता बढ़ा आप उसकी बढ़ती निवारो ॥ ११७ ॥ जे स्वभाव से कठिन जे गली रोंकनेवाले जे पराये डाहसे बढ़े उनकी बढ़ती बढ़ाईहुई अशुभ होती ॥ ११८ ॥ यों बृहस्पति का वचन सुन महामुनि अगस्त्यजी क्षणभर मौनहो एकाग्रचित्तकर वैसे होगा यों बोले ॥११९॥ तुम्हारा काम साधोंगा यों देवोंको बिदाकर फिर

द्योनिर्धर्मराजस्त्वयंपुनः ॥ ११४ ॥ निर्ऋतिर्वरुणोवायुः श्रीदरुद्रादयस्त्वमी ॥ आराध्यन्तेचचारित्रैः सर्वकामार्थमीश्वराः ॥ ११५ ॥ समभ्यर्थयितारोमी त्वंयाच्यस्तुजगत्कृते ॥ वाङ्मात्रोद्यमसाध्यन्तत् तवविश्वोपकारकम् ॥ ११६ ॥ कश्चिच्छैलोविन्ध्यनामा भानुमार्गावरोधकः ॥ वर्धितःस्पर्धयामेरोस्तद्वृद्धिंत्वंनिवारय ॥ ११७ ॥ येचस्वभावकठिनायेचमार्गावरोधकाः ॥ येस्पर्धयावृद्धिमन्तस्तद्वृद्धिर्वर्धिताऽशुभा ॥ ११८ ॥ इतिश्रुत्वागुरोर्वाक्यमविचार्यमहामुनिः ॥ क्षणंमुनिःसमाधायतथेतिप्रत्युवाचह ॥ ११९ ॥ साधयिष्यामिवःकार्यंविसर्ज्येतिदिवौकसः ॥ पुनश्चिन्तापरोभूत्वाऽगस्तिर्ध्यानपरोभवत् ॥ १२० ॥ वेदव्यासउवाच ॥ इमंपतिव्रताऽध्यायंश्रुत्वास्त्रीपुरुषोपिवा ॥ पापकञ्चुकमुत्सृज्यशक्रलोकंप्रयास्यति ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपतिव्रताख्याननंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ * ॥

पाराशरउवाच ॥ ततोध्यानेनविश्वेशमालोक्यसमुनीश्वरः ॥ सूतप्रोवाचतांपुण्यांलोपामुद्रामिदंवचः ॥ १ ॥

विचारसमेत हो अगस्त्यजी ध्यानधारी हुये ॥ १२० ॥ श्री व्यासदेवजी बोले, कि, स्त्री व पुरुष इस पतिव्रताध्याय को सुन पाप केंचुलके त्याग इन्द्रलोक को जावेगा ॥ १२१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपतिव्रताख्याननंनामचतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इस पञ्चम अध्याय में देवोंका हितजान । तिययुत चले अगस्त्यमुनि काशीपुरी बखान ॥ पराशरमुनिके पुत्र वेदव्यासजी बोले, हेलोमहर्षण नाम सूत तदनन्तर उन

अगस्त्य मुनिनायक ने ध्यान से विश्वनाथ को देख उन पतिव्रता लोपामुद्रा से इस वचन को कहा ॥ १ ॥ हे श्रेष्ठ जघने ! देखो यह क्या प्राप्तभया कहां वह काम कहां मुनि गलियों के चलनेवाले हम ॥ २ ॥ जिन इन्द्रने अनादर से पर्वतों को पत्तहीन किया वे कैसे एक पर्वत में शिथिल सामर्थ्य हुये ॥ ३ ॥ जिनके आंगन में कल्पवृक्ष जिनका हथियार वज्र जिनके द्वारे आठो अणिमादिक सिद्धियां वे सिद्धिके लिये ब्राह्मण से प्रार्थना करें ॥४॥ आश्चर्य्य है कि दावानल ने भी जिन पर्वतों को व्याकुल किया उनकी बढ़ती रोंकनेमें वह अग्निकी शक्ति कहांगई ॥ ५ ॥ सब प्राणियों के नियमकारी दण्डधारी जो यह यमराज स्वामी वह क्या उस एक पत्थर

अयिपश्यवरारोहेकिमेतत्समुपस्थितम् ॥ क्वतत्कार्यंक्वचवयंमुनिमार्गानुसारिणः ॥ २ ॥ येनगोत्रभिदागोत्रा विपक्षाहेलयाकृताः ॥ भवेत्कुण्ठितसामर्थ्यःसकथंगिरिमात्रके ॥ ३ ॥ कल्पवृक्षोऽङ्गणेयस्यकुलिशंयस्यचा युधम् ॥ सिद्ध्यष्टकंहियद्द्वारिससिद्ध्यैप्रार्थयेद्द्विजम् ॥ ४ ॥ क्रियन्तेव्याकुलाःशैलाअहोदावाग्निनापिये ॥ तद्वृद्धिस्त म्भनेशक्तिःक्वगतासाशुशुक्षणेः ॥ ५ ॥ नियन्तासर्वभूतानांयोसौदण्डधरःप्रभुः ॥ सकिंदण्डयितुंनालमेकंतंग्रा वमात्रकम् ॥ ६ ॥ आदित्यावसवोरुद्रास्तुषिताःसमरुद्गणाः ॥ विश्वेदेवास्तथादस्रौयेचान्येपिदिवौकसः ॥ ७ ॥ येषांदृक् पातमात्रेणपतन्तिभुवनान्यपि ॥ तेकिंसमर्थानोकान्तेनगवृद्धिनिषेधने ॥ ८ ॥ आज्ञातंकारणंतच्चस्मृतंवाक्यंसुभाषित म् ॥ काशीमुद्दिश्ययद्गीतंमुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ९ ॥ अविमुक्तंनमोक्तव्यंसर्वथैवमुमुक्षुभिः ॥ किन्तुविघ्नाभविष्य न्तिकाश्यांनिवसतांसताम् ॥ १० ॥ उपस्थितोयंकल्याणिसोऽन्तरायोमहानिह॥नशक्यतेऽन्यथाकर्तुंविश्वेशोविमुखो

मात्र के दण्ड देनेको समर्थ नहीं ॥ ६ ॥ अदितिके पुत्र विष्णु शक्रादि बारह आठ वसु आप ध्रुवादि ग्यारह रुद्र अज एक पाद आदि छत्तीस तुषितनाम देवगण उनचास वायु पूतात्मा आदि विष्कुम्भादि दश विश्वेदेवा दोनों अश्विनी कुमार और जे अन्य भी देवता हैं ॥ ७ ॥ हे प्रिये ! जिनकी दृष्टि पड़नेमात्र से अनेक लोक पतित हों वे क्या पर्वत की बढ़ती रोंकने में समर्थ नहीं ॥ ८ ॥ सुधहुई या पीड़ाहै मैंने जाना और उस अच्छे कहे वचन को सुमिरा जोकि काशी को उद्देशकर सिद्धान्तवादी या निर्णयकारी मुनियों से गायागया है ॥ ९ ॥ मोक्ष इच्छावाले सब प्रकार से काशीको न छोड़ें किन्तु काशीमें बसते सज्जनों का विघ्नहोंगे ॥ १० ॥ हे

कल्याणि ! वह यह बड़ा विघ्न यहां पास पहुँचा और तौर करने योग्य नहीं क्योंकि जिससे विश्वनाथजी विमुख याने प्रसन्न नहीं ॥ ११ ॥ ब्राह्मणों के आशीर्वाद से आश्चर्य्यरूप काशी जो मिलीहो तो उसको छोंड़नेका चाही मोक्षकी इच्छावाला पुरुष आनन्दसे हीनहै वह मन्दमति हाथेमें धरे हृदय में तृप्तिकारी कौलको त्याग हाथकी टिहुनी चाटता है ॥ १२ ॥ खेदहै कि मूर्खकी नाई लोग पुण्यकी एक राशि रूप इस काशीको क्यों तजें कमलकी कन्द या क्रांदरक्या प्रति डुबकी में मिलेगा वैसे यह क्या फिर मिलने में सुलभ है ॥ १३ ॥ संसार विघ्न बराने के लिये शिवको सौंपीगई पुण्यकी राशि जिसमें उस काशीको शास्त्र व महात्माओंके मुख से जान

यतः ॥ ११ ॥ काशींद्विजाशीर्भिरहोयदाप्ताकस्तांमुमुक्षुर्यदिवामुमुक्षुः ॥ ग्रासंकरस्थंसविसृज्यहृद्यंस्वकूर्परंलेढिविमूढ चेताः ॥ १२ ॥ अहोजनाबालिशवत्किमेतांकाशींत्यजेयुःसुकृतैकराशिम् ॥ शालूककन्दःप्रतिमज्जनंकिलभेतत्तद्द त्सुलभाकिमेषा ॥ १३ ॥ भवान्तरावर्जितपुण्यराशिंकृच्छ्रैर्महद्भिर्ह्यवगम्यकाशीम् ॥ प्राप्यापिकिंमूढधियोन्यतोवैयि यासवोदुर्गतिमुद्वियासवः ॥ १४ ॥ क्वकाशिकाविश्वपदप्रकाशिकाक्वकार्यमन्यत्परितोतिदुःखम् ॥ तत्पण्डितोन्यत्र कुतःप्रयातिकिंयातिकूष्माण्डफलंह्यजास्ये ॥ १५ ॥ काशींप्रकाशीकृतपुण्यराशिंहाशीघ्रनाशीविसृजेन्नरःकिम् ॥ नूनंस्वनूनंसुकृतंतदीयंमदीयमेवंविवृणोतिचेतः ॥ १६ ॥ नरोनरोगीयदिहाविहायसहायभूतांसकलस्यजन्तोः ॥ काशीमनाशीःसुकृतैकराशिमन्यत्रयातुंयततांनचान्यः ॥ १७ ॥ वित्रस्तपापांत्रिदशैर्दुरापांगङ्गासदापांभवपाशशापाम् ॥ शि

बडे कष्ट से पहुँच भी दुर्गति को जाया चाहते मूढ़बुद्धि लोग क्या अनते जानेकी इच्छावाले होतेहैं ॥ १४ ॥ कहां परब्रह्म की प्रकाशिका काशिकापुरी कहां सब ओरसे दुखदायक अन्यकाम उसकारण पण्डित क्या अनतेजाता और क्या बकरी के मुखमें कुम्हड़ा समाताहै ॥ १५ ॥ खेदहै कि, विश्वनाथ या शास्त्र से प्रकट कीगईहै पुण्यकी राशि जिसमें ऐसी काशीको शीघ्र मरणधर्म्मधारी मनुष्य क्यों तजे निश्चय हुआ मेरा चित्त यों विचारता है कि पीछे से उसकी पुण्यहीन हुई ॥ १६ ॥ जो अनते जाने को यत्नकरते जनोंके मध्य मे जो जन सब प्राणीकी सहाय करनेवाली मोक्षकी राशि काशीको न तज आनन्द से अकाम होता तो वह संसार रोग से रहितहै आन

नहीं ॥ १७ ॥ अज्ञानभञ्जनी देवोंका दुर्लभ व गङ्गाका अच्छा जल सब ओर से है जिसमें संसार फांसको काटती गौरीशंकर से न छोंड़ी मोक्ष मोतीकी सूतीसमान काशीको जीवन्मुक्त भी मन वचन तन से नहीं तजते ॥ १८ ॥ हे लोगो! क्या तुम पापोंसे व्याप्त व विधाता से छलेगये हो जिससे बड़े परिश्रमके भारसे बड़ी पुण्य के मोलसे मिली काशी को पहुँच भी छोंड़कर कहीं जानेको उद्यत हो ॥ १९ ॥ आश्चर्य्य और जनोंकी जड़ताहै कि जो जगमगाते गङ्गाजलसे मनको रमाती प्रलय में भी शिवके त्रिशूल के ऊपर धरी काशीको तज अनते चित्त चलाते हैं ॥ २० ॥ विस्मय है कि रेरे जनो! केवल शोचपानी से पूरे संसारसमुद्र के बीचमें पड़े नीक

वाविमुक्तामम्तैकशुक्तिंमुक्ताविमुक्तांनपरित्यजन्ति ॥ १८ ॥ हंहोकिमंहोनिचिताःप्रलब्धाबंहीयसायासभरेणकाशीम् ॥ प्रभूतपुण्यद्रविणैकपण्यांप्राप्यापिहित्वाक्वचगन्तुमुद्यताः ॥ १९ ॥ अहोजनानांजडताविहायकाशींयदन्यत्रनयन्तिचेतः ॥ परिस्फुरद्गाङ्गजलाभिरामांकामारिशूलाग्रधृतांलयेपि ॥ २० ॥ रेरेभवेशोकजलैकपूर्णेपापेस्मलोकाःपतिताब्धिमध्ये ॥ विद्राणनिद्राणविरोधिपापांकाशींपरित्यज्यतरिंकिमर्थम् ॥ २१ ॥ नसत्पथेनापिनयोगयुक्त्यादानैर्नवानैवतपोभिरुग्रैः ॥ काशीद्विजाशीर्भिरहोसुलभ्याकिंवाप्रसादेनचविश्वभर्त्तुः ॥ २२ ॥ धर्मस्तुसम्पत्तिभरैःकिलोह्यतेप्यर्थोहिकामैर्बहुदानभोगकैः ॥ अन्यत्रसर्वंसचमोक्षएकः काश्यांनचान्यत्रतथायथात्र ॥ २३ ॥ क्षेत्रंपवित्रंहियथाऽविमुक्तंनान्यत्तथायच्छ्रुतिभिःप्रयुक्तम् ॥ नधर्मशास्त्रैर्नचतैःपुराणैस्तस्माच्छरण्यंहिसदाऽविमुक्तम् ॥ २४ ॥ सहोवाचेतिजाबालिरारुणेसिरिडामता ॥ वरणापिङ्गलानाडीतदन्तस्त्वविमुक्तकम् ॥ २५ ॥ सासुषुम्णापरानाडीत्रयंवाराणसीत्वसौ ॥

नागा देखनेवाले तुम मोक्षविरोधी पापोंको पछाड़ती काशी नौकाको त्याग किसलिये दुःख सहतेहो ॥ २१ ॥ अच्छे आचार योगयुक्ति दान और उग्र तपस्याओं से नहीं किन्तु ब्राह्मणों के आशीर्वाद या कि विश्वनाथ की प्रसन्नता से काशी सुलभ होती ॥ २२ ॥ अनते सम्पत्तिसमूहोंसे धर्म व बहुते दान विस्तारोंसे कामोंसहित अर्थ भी यह सब और वह मुख्यमोक्ष जो प्राप्त कियाजाता वह जैसे काशी में वैसे अन्यत्र नहीं निश्चय है ॥ २३ ॥ जिस कारण जैसे वेदों से कहा काशीक्षेत्र पवित्र वैसा आन धर्मशास्त्र व पुराणों से कहीं नहीं गायागया उससे काशी सदा शरणागतको सुख देतीहै ॥ २४ ॥ वे प्रसिद्ध जाबालि ऋषि आनन्द से यों बोले कि हे आरुणे! असि

नदी इड़ा नाड़ी व वरणा पिङ्गला और उन दोनों के बीचमें काशी ॥ २५ ॥ वह उत्तम सुषुम्णा येती नाड़ी यह वाराणसी हैं उस कारण यहां मरणसमय श्रवणमें शिवजी ॥ २६ ॥ तारकमन्त्र को कहते उस से सब जन्तु भी ब्रह्मही होते यों यह श्लोक है परमार्थनिरूपक या वेदो के पण्डित निश्चय से कहते हैं ॥ २७ ॥ कि ऐश्वर्य्यसम्पन्न शिवजी मरणसमय में ॐकार या राम षडक्षर मन्त्र देने से इरा काशीवासी सब जन्तुओं को संसारसे छुड़ाते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥ २८॥ न काशी के समान आन क्षेत्र न काशी के बराबर आधार और न अविमुक्तेश्वरके सम लिङ्ग यह बारबार सत्य है ॥ २९ ॥ काशीको तज जो अनते स्नेह करता वह हाथ से

तदत्रोत्क्रमणेसर्वजन्तूनांहिश्रुतौहरः ॥ २६ ॥ तारकंब्रह्मव्याचष्टेतेनब्रह्मभवन्तिहि ॥ एवंश्लोकोभवत्येषआहुर्वैवेद वादिनः॥ २७॥ भगवानन्तकालेऽत्रतारकस्योपदेशतः॥ अविमुक्तेस्थिताञ्जन्तून्मोचयेन्नात्रसंशयः ॥ २८ ॥ नाविमुक्त समंक्षेत्रंनाविमुक्तसमागतिः ॥ नाविमुक्तसमंलिङ्गंसत्यंसत्यंपुनःपुनः ॥ २९ ॥ अविमुक्तंपरित्यज्ययोन्यत्रकुरुतेरतिम् ॥ मुक्तिंकरतलान्मुक्त्वासोन्यांसिद्धिङ्गवेषयेत् ॥ ३० ॥ इत्थंमुनिश्चित्यमुनिर्महात्माक्षेत्रप्रभावंश्रुतितःपुराणात्॥ श्रीविश्व नाथेनसमंनलिङ्गंपुरीनकाशीसदृशीत्रिकोट्याम् ॥ ३१ ॥ श्रीकालराजञ्चततःप्रणम्यविज्ञापयामाससमुनीश्वर्यः ॥ आ पृच्छनायाहमिहागतोस्मिश्रीकाशिपुर्यास्तुयतःप्रभुस्त्वम् ॥ ३२ ॥ हाकालराजप्रतिभूतमत्रप्रत्यष्टमिप्रत्यवनीसुतार्क म् ॥ नाराधयेमूलफलप्रसूनैः किमद्ययनागस्यपराग्दृक्स्याः ॥ ३३ ॥ हाकालभैरवभयाननितोभयार्तान्माभैष्टचेति

मोक्ष को छोड़ आन सिद्धि को हेरता या प्रार्थता है ॥ ३० ॥ श्रीविश्वनाथ के समान आन लिंग व तीनकरोड़ तीर्थों में काशीसी पुरी नहींयो वेद पुराण से क्षेत्र के माहात्म्य को निश्चयकर महात्मा अगस्त्यमुनि ॥ ३१ ॥ जो कि ज्ञानीश्वरों में श्रेष्ठ उन्होंने तदनन्तर कालराज को प्रणाम विज्ञापना किया कि जिससे आप काशीपुरी के प्रभूहो इससे मैं पूंछने के लिये यहां आप के पास आयाहूं ॥ ३२ ॥ कष्टहै कि हे कालराज ! प्रतिचतुर्दशी प्रतिअष्टमी प्रतिमंगल और सूर्य्यवारको क्या मैंने मूल फल फूलो से नहीं पूजा क्यों पापरहित मेरेमें अपराध सहित दृष्टिवाले हो अर्थात् किस दोषसे मुझको काशीसे निकालते हो ॥ ३३ ॥ हा कालभैरवजी ! सबओर डरसे व्याकुल मनुष्यो के प्रति

मतिडरो यों व वचनों से आपन हाथ पसार तीव्र पापनाशक भयङ्कर रूप धार क्या आप काशीवासीजनों को नहीं पालते याने रक्षा करते हो ॥ ३४ ॥ हे यक्षराज चन्द्रमा से चारुदेह पूर्णभद्रकुमार काशीवासी लोगों के रक्षक श्रेष्ठ दण्डपाणि जी ! आप निश्चयसे तपस्या करके उपजे सब दुःखको जानते हो मुझको बाहर क्यों पठाते हो ॥ ३५ ॥ तुम निश्चयकर अन्न जीव ज्ञान और मोक्षकेभी दाता हो व जटासमूह तथा सर्पराजके हारोंसे जनोंके मरणसमय अलङ्कार करतेहो ॥ ३६ ॥ सम्भ्रम उद्भ्रम नास दोनों तुम्हारे गण यहां टिके लोगों का वृत्तान्त विचारने में पण्डित हैं बड़ा महामोह या उद्वेगको उपजा दुष्टोंको इस क्षेत्र से क्षणमें दूर करते हैं ॥ ३७ ॥ हे ढुंढिविनायक

भणनैःस्वकरंप्रसार्य ॥ मूर्तिंविधायविकटाङ्कुपापभोक्रींवाराणसीस्थितजनान्परिपातिकिंन ॥ ३४ ॥ हेयक्षराजरज नीकरचारुमूर्ते श्रीपूर्णभद्रसुतनायकदण्डपाणे ॥ त्वंवैतपोजनितदुःखमवैषिसर्वं किंमांबहिर्नयसिकाशिनिवासिरक्षिन् ॥ ३५ ॥ त्वमन्नदस्त्वंकिलजीवदातात्वंज्ञानदस्त्वंकिलमोक्षदोपि ॥ त्वमन्त्यभूषाङ्करुषेजनानांजटाकलापैरुरगेन्द्रहारैः ॥ ३६ ॥ गणौत्वदीयौकिलसम्भ्रमोद्भ्रमावत्रस्थवृत्तान्तविचारकोविदौ ॥ सम्भ्रान्तिमुत्पाद्यपरामसाधून्क्षेत्रात्क्षणंदूरय तस्त्वमुष्मात ॥ ३७ ॥ शृणुप्रभोढुण्ढिविनायकत्वंवाचंमदीयान्तुरटाम्यनाथवत् ॥ त्वत्स्थाःसमस्ताःकिलविघ्नपूगाः किमत्रदुर्वृत्तवदास्थितोहम् ॥ ३८ ॥ शृण्वन्त्वमीपञ्चविनायकाश्चचिन्तामणिश्चापिकपर्दिनामा ॥ आशागजाख्यौचवि नायकौतौशृणोत्वसौसिद्धिविनायकश्च ॥ ३९ ॥ परापवादोनमयाकिलोक्तःपरापकारोपिमयाकृतोन ॥ परस्वबुद्धिःपर दारबुद्धिःकृतामयानात्रकएषपाकः ॥ ४० ॥ गङ्गात्रिकालंपरिसेवितामया श्रीविश्वनाथोपिसदाविलोकितः ॥ यात्राःकृ

स्वामिन् ! तुम मेरे वचनको सुनो अनाथ की नाईं कहताहूं निश्चय सब विघ्नसमूह आपमें टिके हैं क्या मैं यहां दुराचारी के समान टिकाहूं याने नहीं ॥ ३८ ॥ मोद प्रमोद आमोद सुमोद दुर्मोद नामक ये पांचों चिन्तामणि कपर्दी व आशागज नाम वे विनायक और यह सिद्धिविनायकभी सुनें ॥ ३९ ॥ मैंने यहां आनका अपवाद निन्दा आदि आनका अपकार परधन और परस्त्री की बुद्धि नहीं किया यह काशी त्यागरूप कौन से कर्म्म का फल है ॥ ४० ॥ मैंने त्रिकाल (प्रातः मध्याह्न सन्ध्या) में

गङ्गा नहाया श्रीविश्वनाथ को सदा देखा प्रतिपर्वों में यात्रा किया यह विघ्नका कारण कौन विपाक है ॥ ४१ ॥ हे मातः विशालाक्षि भवानि ! हे मङ्गले ! हे सौभाग्य देने में दक्षे ज्येष्ठेशि ! हे विश्वे ! हे विधे ! हे विश्वभुजे ! हे श्रीचित्रघंटे विकटे और दुर्गे ! तुम्हारे नमस्कार हो ॥ ४२ ॥ ये सब साखी काशीवासी देवतायें निश्चयसे सुनें मैं यहां से अपने प्रयोजन को नहीं जाता देवसमूहों से प्रार्थित क्याकरूं आनके उपकार के लिये क्या नहीं कियाजाता ॥ ४३ ॥ दधीचिने पहले क्या हाड़ नहीं दिया क्या वामन भिक्षुक के लिये बलिने त्रिलोक नहींदिया क्या मधु व कैटभ अपना शिर नहीं दिया क्या गरुड़ विष्णुके वाहन नहीं हुये ॥४४॥ वे अगस्त्य मुनीश्वर

तास्ताःप्रतिपर्वसर्वतः कोयंविपाकोममविघ्नहेतुः ॥ ४१ ॥ मातर्विशालाक्षिभवानिमङ्गले ज्येष्ठेशिसौभाग्यविधानसुन्दरि ॥ विश्वेविधेविश्वभुजेनमोस्तुते श्रीचित्रघण्टेविकटेचदुर्गिके ॥ ४२ ॥ साक्षिण्यएताःकिलकाशिदेवताः शृण्वन्तुनस्वार्थमहंव्रजाम्यतः ॥ अभ्यर्थितोदेवगणैःकरोमिकिंपरोपकारायनकिंविधीयते ॥ ४३ ॥ दधीचिरस्थीनिनकिंपुराददौजगत्त्रयंकिंनददेऽर्थिनेबलिः ॥ दत्तःस्मकिंनोमधुकैटभौशिरोबभूवताक्ष्र्योपिचविष्णुवाहनम् ॥ ४४ ॥ आपृच्छ्यचसर्वान्समुनीन्मुनीश्वरःसबालवृद्धानपितत्रवासिनः ॥ तृणानिवृक्षांश्चलताःसमस्ताःपुरींपरिक्रम्यचनिर्ययौच ॥ ४५ ॥ प्रोषितस्यपरितोपिलक्षणैर्नीचवर्त्मपरिवर्तिनोपिवा॥ चन्द्रमौलिमवलोक्ययास्यतःकस्यसिद्धिरिहनोपरिस्फुरेत्॥४६॥ वरंहिकाश्यांतृणवृक्षगुल्मकाश्चरन्तिपापंनचरन्तिनान्यतः ॥ वयञ्चराणांप्रथमाधिगस्तुनोवाराणसींहाद्यविहायगच्छतः ॥ ४७ ॥ असिंह्युपस्पृश्यपुनःपुनर्मुनिःप्रासादमालाःपरितोविलोकयन् ॥ उवाचनेत्रेसरलेप्रपश्यतंकाशींयुवांक

वहां के वासी सब छोटे बड़े भी मुनियों से पूंछ खर वृक्ष सब लतायें और पुरीको प्रदक्षिणाकर निकलचले ॥ ४५ ॥ इस संसार में शिवके दर्शन कर जानेवाले किस के कामकी सिद्धि न हो याने हो चहो वह सबसुलक्षणों से रहित कुकर्म्मसहितभी होवे ॥ ४६ ॥ काशी में घास वृक्ष गुच्छे श्रेष्ठ जे कि न पाप करते न अनते पधरते और यद्यपि हम जंगमों में मुख्य मनुष्य जाति में बड़े ब्राह्मण हैं तो भी हा आज काशी छोंड़जाते हमको धिक्हो ॥ ४७ ॥ बारबार असि नदीमें आचमनव स्नानकर

देवमण्डप समूहों को देखते अगस्त्यमुनि बोले हे सरलसनेहवाली आंखो! काशी को देखो खेद है कि कहां तुम और कहां यह पुरी॥ ४८ ॥ आज आपुस में हाथसे हाथ पकड़ ताड़ी बजा या बना डांड़ के वासी भूत समूह यथेच्छ हँसे पुण्य या मोक्षकी मुख्यराशी काशीको त्याग मैं जाताहूं ॥ ४९ ॥ आश्चर्य्य है कि स्त्रीसहित भी वे अगस्त्यमुनि विरही की नाईं यों बहुत विलापकर हे काशि! हे काशि! फिर आवो दृष्टि दो ऐसे बकते खेद से बाल्मीकीयरामायण में प्रसिद्ध उस कराकुलपक्षी के जोड़ाके समान बड़ी मूर्च्छा को पहुँचे ॥ ५० ॥ क्षणभर टिक यों कह कि हे शिव! हे शिव! हे शिव! हे प्यारी लोपामुद्रे! हम तुम दोनोंजने जाते हैं वे देवलोग बड़े

क्कपुरीत्वियंबत ॥ ४८ ॥ स्वैरंहसन्त्वद्यविधायतालिकांमिथःकरेणापिकरंप्रगृह्य ॥ सीमाचराभूतगणाव्रजाम्यहंवि हायकाशींसुकृतैकराशिम् ॥ ४९ ॥ इत्थंविलप्यबहुशःसमुनिस्त्वगस्त्यस्तत्क्रौञ्चयुग्मवदहोअबलासहायः ॥ मूर्च्छा मवापमहतींविरहीवजल्पन् हाकाशिकाशिपुनरेहिचदेहिदृष्टिम् ॥ ५० ॥ स्थित्वाक्षणंशिवशिवेतिशिवेतिचोक्त्वा यावःप्रियेतिकठिनाहिदिवौकसस्ते ॥ किंनस्स्मरेस्त्रिजगतीसुखदानदक्षंत्र्यक्षं प्रहित्यमदनंयदकारितैस्तु ॥ ५१ ॥ या वद्व्रजेत्रिचतुराणिपदानिखेदात्स्वेदोदबिन्दुकणिकाञ्चितभालदेशः ॥ प्रत्युद्गमाऽकरणतःकिलमे विनाशस्तावद्धरा भयभरादिवसंचुकोच ॥ ५२ ॥ तपोयानमिवारुह्यनिमेषार्धेनवैमुनिः ॥ अग्रेददर्शतंविन्ध्यं रुद्धाम्बरमथोन्नतम् ॥ ५३ ॥ चकम्पेचाचलस्तूर्णंदृष्ट्वैवाग्रस्थितंमुनिम् ॥ तमगस्त्यंसपत्नीकं वातापील्वलवैरिणम् ॥ ५४ ॥ तपःक्रोधसमुत्थाभ्यां

कठिन हैं जिन्होंने तीनों लोकों के सुखदेने में कुशल त्रिनेत्र शिवके पास काम को पठा बाणों से बेधकर जो किया उस वृत्तान्त को क्या तुम नहीं सुमिरती ॥ ५१ ॥ खेद से पसीना के बिन्दुकणों करके पूजित माथवाले मुनिनाथ जौलों तीनचार पग चले तौलों सामने उठना आदि न करनेसे मेरा विनाश होगा इस भय के भार से भूमि सकुचसी गई ॥ ५२ ॥ अनन्तर तपस्या के विमान में चढ़ से आधेही पलक भांजने के काल में मुनिने आगे आकाश रोंके ऊंचे विन्ध्याचल को देखा ॥ ५३ ॥ वातापी व इल्वल राक्षस के शत्रु स्त्रीसमेत आगे खड़े उन अगस्त्यमुनि को देख शीघ्रही पर्वत कांपा ॥ ५४ ॥ जो कि तपस्या व कोपसे उठीं और काशी के विरह से

उपजीं इन तीन अग्नियों से प्रलयाग्नि के वेगवान् जगमगाते हैं ॥ ५५ ॥ पृथ्वी में समाने को चाही सा पर्वत बहुत छोटाहो यों बोला कि आप आज्ञारूप प्रसाद करो मैं सेवकहूं ॥ ५६ ॥ अगस्त्यजी ने कहा , हे पण्डित विंध्य ! तू साधु है व मुझको यथातथ्य से जानता है जौलों मेरा फिर आना होवे तौलों बहुत छोटा हो ॥ ५७ ॥ यों कह उस पतिव्रता के साथ तपस्या के निधान मुनि ने अपने पद परने से दक्षिणदिशा को सनाथ किया ॥ ५८ ॥ उस समय उन महामुनि के जातेही कांपता पर्वत ऊपरको कण्ठ जैसेहो वैसे देखनेलगा जो मुनि गये उससे भला भया ॥ ५९ ॥ मैं आज फिर जन्मा हूं कि जिससे अगस्त्यसे न शापा

काशीविरहजन्मना ॥ प्रलयानलवत्तीव्रं ज्वलन्तंत्रिभिरग्निभिः ॥ ५५ ॥ गिरिःखर्वतरोभूत्वा विविक्षुरवनीमिव ॥ आज्ञाप्रसादःक्रियतां किङ्करोस्मीतिचाब्रवीत् ॥ ५६ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ विन्ध्यसाधुरसिप्राज्ञमाञ्च जानासितत्त्वतः ॥ पुनरागमनंचेन्मे तावत्खर्वतरोभव ॥ ५७ ॥ इत्युक्त्वादक्षिणामाशां सनाथामकरोन्मुनिः ॥ निजैश्चरणविन्यासैस्त यासाध्व्यातपोनिधिः ॥ ५८ ॥ गतेतस्मिन्मुनिवरे वेपमानस्तदागिरिः ॥ पश्यत्युत्कण्ठमिवच गतश्चेत्साध्वभूत्ततः ॥ ५९ ॥ अद्यजातःपुनरहं नशप्तोयदगस्तिना ॥ नमयासदृशोधन्य इतिमेनेसवैगिरिः ॥ ६० ॥ अरुणोपिचतत्काले कालज्ञोऽश्वानकालयत् ॥ जगत्स्वास्थ्यमवापोच्चैः पूर्ववद्भानुसञ्चरैः ॥ ६१ ॥ अद्यश्वोवापरश्वोवाप्यागमिष्यतिवैमुनिः ॥ इतिचिन्तामहाभारैर्गिरिराक्रान्तवत्स्थितः ॥ ६२ ॥ नाद्यापिमुनिरायाति नाद्यापिगिरिरेधते ॥ यथाखलजनानांहि मनोरथमहीरुहः ॥ ६३ ॥ विवर्धिषतियोनीचः परासूयांसमुद्वहन् ॥ दूरेतद्वृद्धिवार्तास्ताम्प्राग्वृद्धेरपिसंशयः ॥ ६४ ॥ मनो

गया मेरे समान आन धन्य नहीं उस पर्वतने यों निश्चय माना ॥ ६० ॥ उससमय काल के जाननेवाले अरुण नाम सूर्य्यसारथि ने घोड़ोंको चलाया पहलेकी नाई सूर्य्यके फिरने से जगत् ऊंची या अधिक सावधानी को प्राप्तहुआ ॥ ६१ ॥ आज कल व परसों मुनि निश्चय आवेंगे यों चिन्ताके भारी भारसे दबासा पर्वत टिका ॥ ६२ ॥ न आज भी मुनि आये न आजभी पर्वत बढ़ा जैसे दुष्टोंका मनोरथरूप वृक्ष वैसे ज्योंका त्यों रहगया ॥ ६३ ॥ औरको ईर्षादोष पहुचाता जो नीच नर बढ़ने

की इच्छा करता उसकी बढ़नेकी बात दूररहै पहली बढ़ती का भी सन्देहहै ॥ ६४ ॥ दुष्टोंके मनोरथ नहीं सधते सिद्धहुये भी निश्चय नशते हैं उससे विश्वेश्वर से पालित जगत् कल्याणवाला है ॥ ६५ ॥ जैसे विधवा स्त्रियोंके कुच ऊंचे उठ उठ वहीं बिलाते वैसे दुष्टों के मनोरथ॥६६॥ जैसे नकारी नदी थोड़ी वर्षासे कूल काटती वैसे खलकी सम्पत्ति भी थोड़ी कामना पूर पड़नेसे अपने कुलके काटनेवाली होती है ॥ ६७ ॥ और की शक्तिको न जान जो जन निज सामर्थ्य दिखाता वह जैसे उपहासको जाता वैसे यहां यह पर्वत ॥६८॥ व्यासजी बोले, मनोरम गोदावरी नदीके किनारे विचरते भी मुनिनें काशीके बिछोहसे भये उस अधिक तापको न तजा ॥६९॥

रथानसिद्धयेयुः सिद्धानश्यन्त्यपिध्रुवम् ॥ खलानान्तेनकुशलिविश्वंविश्वेशरक्षितम् ॥ ६५ ॥ विधवानांस्तनायद्वद्वृथैव विलयन्तिच ॥ उन्नम्योन्नम्यतत्रोच्चैस्तद्वत्खलमनोरथाः ॥ ६६ ॥ भवेत्कूलंकषायद्वदल्पवर्षेणकन्नदी ॥ खलर्धिरल्पवर्षेण तद्वत्स्यात्स्वकुलङ्कषा ॥ ६७ ॥ अविज्ञायान्यसामर्थ्यंस्वसामर्थ्यंप्रदर्शयेत् ॥ उपहासमवाप्नोति तथैवायमिहाचलः ॥ ६८ ॥ व्यासउवाच ॥ गोदावरीतटंरम्यं विचरन्नपिवैमुनिः ॥ नतत्याजचतंतापं काशीविरहजंपरम् ॥ ६९ ॥ उदीचीदिक्स्पृशमपिसमुनिर्मातरिश्वनम् ॥ प्रसार्यबाहुसंश्लिष्य काश्याःपृच्छेदनामयम् ॥ ७० ॥ लोपामुद्रेनसामुद्रा कापीहजगतीतले ॥ वाराणस्याःप्रदृश्येत तत्कर्तानयतोविधिः॥७१॥ क्वचित्तिष्ठन्क्वचिज्जल्पन् क्वचिद्धावन्क्वचित्स्खलन् ॥ क्वचिच्चोपविशंश्चेति बभ्रामेतस्ततोमुनिः ॥ ७२ ॥ ततोव्रजन्ददर्शाग्रे पुण्यराशिस्तपोधनः ॥ चञ्चच्चन्द्रशताभासां भाग्यवानिवसुश्रियम् ॥ ७३ ॥ विजित्यभानुनाभानुंदिवापिसमुदित्वराम् ॥ निर्वापयन्तीमिवतांस्वचेतस्तापस

वे मुनि उत्तर दिशाके परसी पवनके ओर बाहें बढ़ा लिपटा काशीका कुशल पूंछते हैं ॥ ७० ॥ हे लोपामुद्रे ! काशी की वह कोई परिपाटी इस जगत्में नहीं देखपड़े क्योंकि जिससे उसके कर्ता ब्रह्मा नहीं अर्थात् शिवने स्वयं बनायाहै ॥७१॥ कहीं टिकते कहीं बकते कहीं धावते कहीं गिरते कहीं बैठते मुनि यों इतउत दौड़े॥७२॥ तदनन्तर गोदावरी के तीर में विचरते तपोधन पुण्यों की राशिरूप अगस्त्य ने अच्छी सम्पत्तिको भाग्यवान् के समान उन देवीको आगे देखा जोकि चमकते चन्द्र सैकड़ा से छबीली ॥७३॥

ज्योति से सूर्य्यको जीत दिनमेंभी जगमगाती उस प्रसिद्ध दैत्यों के अस्त्रोंसे उपजी अपने मनकी तपनि परंपराको बुझाती सी॥ ७४ ॥ वहां बहुत कालसे वसी महालक्ष्मी नाम से प्रसिद्धहैं और अगस्त्य ने मनमें यों देखा कि ॥ ७५ ॥ रातिमें कमल सिकुड़ते अमावसों मे चन्द्रमा कहीं जाता क्षीरसागर में मन्दर पहाड़ के हाहाकार से ये यहां टिकीसी ॥ ७६ ॥ विष्णु जिस कालको लगा इनको आदर से हृदय में धारा यह प्रसिद्ध है उस समय से लगा सौत सरस्वती की ईर्षा वशसे निश्चय करके यहां बसीसी ॥ ७७ ॥ सूकररूप से तीनों लोकों को सताते बड़े दैत्यको मार रमणीक उस कोलापुर नगर में टिकी ॥ ७८ ॥ उन मनमाने फल देनेवाली महा-

न्तातिम् ॥ ७४ ॥ तत्रागस्त्योमहालक्ष्मीं ददर्शेसुचिरंस्थिताम् ॥ ७५ ॥ रात्रावब्जेषुसङ्कोचो दर्शेष्वब्जःक्वचिद्व्रजेत् ॥ क्षीरोदेमन्दरत्रासात्तदत्राध्युषितामिव ॥ ७६ ॥ यदारभ्यदधारैनां माधवोमानतःकिल ॥ तदारभ्यस्थितांनूनं सपत्नीर्ष्यावशादिव ॥ ७७ ॥ त्रैलोक्यंकोलरूपेण त्रासयन्तंमहासुरम् ॥ विनिहत्यस्थितान्तत्र रम्येकोलापुरेपुरे ॥ ७८ ॥ सम्प्राप्याथमहालक्ष्मीं मुनिवर्यःप्रणम्यच ॥ तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिरिष्टदांहृष्टमानसः ॥ ७९ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ मातर्नमामिकमलेकमलायताक्षि श्रीविष्णुहृत्कमलवासिनिविश्वमातः ॥ क्षीरोदजेकमलकोमलगर्भगौरि लक्ष्मिप्रसीदसततंनमतांशरण्ये ॥ ८० ॥ त्वंश्रीरुपेन्द्रसदनेमदनैकमातर्ज्योत्स्नासिचन्द्रमसिचन्द्रमनोहरास्ये ॥ सूर्येप्रभासिचजगत्त्रितयेप्रभासिलक्ष्मिप्रसीदसततंनमतांशरण्ये ॥ ८१ ॥ त्वंजातवेदसिसदादहनात्मशक्तिर्वेधास्त्वयाजगदिदंविविधंविद

लक्ष्मी के पास पहुँच प्रणामकर प्रसन्न मन मुनिमुख्य ने प्यारी बोलियों से स्तुति किया ॥ ७९ ॥ अगस्त्यजी बोले, हे मातः कमले कमलसमदीर्घनयने श्रीविष्णु-हृदयकमलनिवासिनि ! हे जगदम्बिके क्षीरसागर की कुमारि ! हे कमल के कोमलगर्भसे गौर अंगवाली ! हे प्रणमते पुरुषोंकी पालिनि ! हे लक्ष्मि ! स नमस्कार करताहूं सदा प्रसन्न हो ॥ ८० ॥ हे प्रद्युम्नकी मुख्यमाता याने रुक्मिणि ! हे चन्द्रके समान मनोहरमुखि प्रणमते पुरुषो की पालिनि ! हे लक्ष्मि ! तुम महेन्द्र के मन्दिर में सम्पत्ति या शोभा चन्द्र में चांदनी सूर्य्यमें प्रभा और तीनों लोकों में छविहो सदा प्रसन्नहो ॥ ८१ ॥ हे प्रणमते पुरुषोंकी पालिनि लक्ष्मि ! जो तुम अग्निमे जलानेकी

शक्ति तुमहीं से ब्रह्मा इस अनेक भांति के जगत् को करते और आपसेही विष्णु सम्पूर्ण जगत्को पोषते वह तुम प्रसन्नहो ॥ ८२ ॥ हे निर्मले ! रुद्रभी तुम्हारे त्यागे को हरते हैं तुम इस जगत् को पालती घालती व बनाती और कार्य्यकारणरूपा या स्थूलसूक्ष्मरूपाहो हे संसाररोगनाशिनि ! तुम्हारी प्राप्तिसेही विष्णुजी वंदनीय हुये हे प्रणमते पुरुषों की पालिनि लक्ष्मि ! सदा प्रसन्न हो ॥ ८३ ॥ वह पुरुष संपूर्ण लोक में शूर गुणी पण्डित धन्य कुल शील व कला समूहों से माननीय मुख्य और पवित्र है जिसमें तुम्हारी दयादृष्टि पड़े ॥ ८४ ॥ हे सर्वस्वरूपे ! मनुष्य हाथी घोड़ा स्त्री समूह तृण तड़ाग देवकुल घर अन्न रत्न पक्षी पशु शय्या

ध्यात् ॥ विश्वंभरोपिबिभृयादखिलंभवत्यालक्ष्मिप्रसीदसततंनमतांशरण्ये ॥ ८२ ॥ त्वत्त्यक्तमेतदमलेहरतेहरोपि त्वंपासिहंसिविदधासिपरावरासि ॥ ईड्योबभूवहरिरप्यमलेत्वदाप्त्यालक्ष्मिप्रसीदसततंनमतांशरण्ये ॥ ८३ ॥ शूरःस एवसगुणीसबुधःसधन्योमान्यःसएवकुलशीलकलाकलापैः ॥ एकःशुचिःसहिपुमान्सकलेपिलोकेयत्रापतेत्तवशुभेक रुणाकटाक्षः ॥ ८४ ॥ यस्मिन्वसेःक्षणमहोपुरुषेगजेऽश्वेस्त्रैणेतृणेसरसिदेवकुलेगृहेऽन्ने ॥ रत्नेपतत्रिणिपशौशयनेधरायां सश्रीकमेवसकलेतदिहास्तिनान्यत् ॥ ८५ ॥ त्वत्स्पृष्टमेवसकलंशुचितांलभेतत्वत्त्यक्तमेवसकलंत्वशुचीहलक्ष्मि ॥ त्वन्ना मयत्रचसुमङ्गलमेवतत्रश्रीविष्णुपत्निकमलेकमलालयेऽपि ॥ ८६ ॥ लक्ष्मींश्रियञ्चकमलांकमलालयाञ्चपद्मांरमांनलिन युग्मकराञ्चमाञ्च ॥ क्षीरोदजाममृतकुम्भकरामिराञ्चविष्णुप्रियामितिसदाजपतांक्वदुःखम् ॥ ८७ ॥ इतिस्तुत्वाभगवतींम हालक्ष्मींहरिप्रियाम् ॥ प्रणनामसपत्नीकः साष्टाङ्गंदण्डवन्मुनिः ॥ ८८ ॥ श्रीरुवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्तेमित्रावरुणसम्भ

भूमि जिसमें तुम क्षणभर भी बसतीहो वह इसलोक में शोभासमेत है आन नहीं ॥ ८५ ॥ हे विष्णुकान्ते कमले कमलवासिनि लक्ष्मि ! तुमसे छुवा हुवा सब पवित्रता को पाता इस लोकमें तुमसे तजा सब अपावन और जहां तुम्हारा नाम वहां सुमंगलही है ॥ ८६ ॥ लक्ष्मी श्री कमला कमलालया पद्मा रमा नलिनयुग्मकरा मा क्षीरोदजा अमृतकुंभकरा इरा विष्णुप्रिया यों तुम्हारे नाम जपते लोगोंका दुःख कहां याने कहीं नहीं ॥ ८७ ॥ यों ऐश्वर्य्यवती विष्णुप्रिया महालक्ष्मी की स्तुतिकर स्त्री

सभेत मुनिने दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ८८ ॥ श्रीमहालक्ष्मी जी बोलीं, हे मित्र व वरुण के वीर्य्य से उत्पन्न अगस्त्य! उठ उठ तेरा कल्याणहो हे शुभव्रतवाली पति-व्रते लोपामुद्रे! तूभी उठउठ॥ ८९॥ मैं इस स्तुति से प्रसन्नहूं जो मनमें इच्छितहो वह वर मांगो हे निर्मले महाभागे राजकुमारि लोपामुद्रे! तुम यहां बैठो॥ ९०॥ तुम्हारे अ-ङ्गके सुलक्षणों और इन तुम्हारे परमपवित्रव्रतों से दैत्यके अस्त्र से दही देहको बुझाया चाहतीहूं ॥ ९१ ॥ यों उन मुनिपत्नी से कह भलीभांति लिपटा लक्ष्मीजीने प्रीति करके बहुते सुहाग सूचक भूषणों से भूषित किया॥ ९२ ॥ फिर बोली कि हे मुने! तुम्हारे मनके तापका कारण मैंने जाना काशी के बिछोह से उपजी आग स-

व॥ पतिव्रतेत्त्वमुत्तिष्ठलोपामुद्रेशुभव्रते॥ ८९॥ स्तुत्यानयाप्रसन्नाहंव्रियतांयद्धृदीप्सितम् ॥ राजपुत्रिमहाभागेत्वमिहोपवि शामले॥ ९० ॥ त्वदङ्गलक्षणैरेभिःसुपवित्रैश्चतेव्रतैः॥ निर्वापयितुमिच्छामिदैत्यास्त्रैस्तापितांतनुम् ॥ ९१ ॥ इत्युक्त्वासु निपत्नींतांसमालिङ्ग्यहरिप्रिया॥ अलञ्चकारचप्रीत्याबहुसौभाग्यमण्डनैः ॥ ९२ ॥ पुनराहमुनेजानेतवहृत्तापकारणम् ॥ सचेतनंदुनोत्येवकाशीविश्लेषजोऽनलः ॥ ९३ ॥ यदासदेवोविश्वेशोमन्दरंगतवान्पुरा ॥ तदाकाशीवियोगेनजाता तस्येदृशीदशा ॥ ९४ ॥ तत्प्रवृत्तिंपुनर्ज्ञातुंब्रह्माणंकेशवंगणान् ॥ गणेश्वरञ्चदेवांश्चप्रेषयामासशूलधृक् ॥ ९५ ॥ ते चकाशीगुणान्सर्वेविचार्यचपुनःपुनः ॥ व्रजन्त्यद्यापिनक्वापितादृगस्तिक्वपुरी ॥ ९६ ॥ इतिश्रुत्वाथसमुनिःप्रत्युवाच श्रियंततः ॥ प्रणिपत्यमहाभागोभक्तिगर्भमिदंवचः ॥ ९७ ॥ यदिदेयोवरोमह्यंवरयोग्योऽस्म्यहंयदि ॥ तदावाराणसीप्रा

चेतन जनको जलातीहैही ॥ ९३ ॥ जब वे विश्वनाथ देव पहले मन्दरपर्वत के गये तब काशी के विरह से उनकी ऐसी दशा हुई ॥ ९४ ॥ फिर उसके हालचाल जानने के लिये ब्रह्मा विष्णु गण गणेश और देवोंको भी शिवने पठाया ॥ ९५ ॥ वे सब बार बार काशी के गुणोको विचार अबभी कहीं जाते नहीं वैसी पुरी कहां है ॥ ९६ ॥ यों सुन अनन्तर बड़े भाग्यवान् वे मुनि महालक्ष्मी के प्रणाम कर तब भक्ति से भरा यह वचन बोले ॥ ९७ ॥ जो मुझे वर देने योग्य व जो मैं वरके योग्यहूं तो

काशी की प्राप्ति फिर हो यही मेरा वर है ॥ ९८ ॥ तुम्हारी भक्तिसे मेरे किये स्तोत्रको जे सदा पढ़ेंगे उनका संताप और दरिद्रता मतहो मतहो ॥ ९९ ॥ मित्रों का बिछोह धननाश वंशविच्छेद मतहो और सबओर जीतिहो ॥ १०० ॥ महालक्ष्मीजी बोलीं कि हे मुने ! जो तुमने कहा यों सबहो इस स्तोत्र का पाठ मेरे सान्नी-प्य का कारण है ॥ १०१ ॥ जो पढे उसके घर में दरिद्रता व कालकर्णी राक्षसी न पैठे हाथी घोड़ा पशुओं की शान्ति के लिये इस स्तोत्र को सदा पढ़े ॥ १०२ ॥ पूतना शाकिनी डाकिनी आदि बालग्रहों से दबाये बच्चों के रोगों का बहुत उत्तम शान्ति करनेवाला है भोजपत्र में लिख गले में बांधे ॥ १०३ ॥ यह मेरे बीज-

प्तिःपुरस्त्वेषमेवरः ॥ ९८ ॥ येपठिष्यन्तिचस्तोत्रंत्वद्भक्त्यामत्कृतंसदा ॥ तेषांकदाचित्सन्तापोमास्तुमास्तुदरिद्रता ॥ ९९ ॥ मास्तुचेष्टवियोगश्चमास्तुसम्पत्तिसंक्षयः ॥ सर्वत्रविजयश्चास्तुविच्छेदोमास्तुसन्ततेः ॥ १०० ॥ ॥ श्रीरुवाच ॥ एवमस्तुमुनेसर्वंयत्त्वयापरिभाषितम् ॥ एतत्स्तोत्रस्यपठनंममसान्निध्यकारणम् ॥ १०१ ॥ अलक्ष्मीःकालकर्णीचतद्गेहेनविशेत्क्वचित् ॥ गजाश्वपशुशान्त्यर्थमेतत्स्तोत्रंसदाजपेत् ॥ १०२ ॥ बालग्रहाभिभूतानांबालानांशान्तिकृत्परम् ॥ भूर्जपत्रेलिखित्वातुबध्नीयात्कण्ठदेशतः ॥ १०३ ॥ इदंबीजरहस्यंमेरक्षणीयंप्रयत्नतः ॥ श्रद्धाहीनेनदातव्यंनदेयञ्चाशुचौक्वचित् ॥ १०४ ॥ अन्यच्चशृणुविप्रेन्द्रभविष्येद्वापरेभवान् ॥ एकोनत्रिंशकेब्रह्मन्सत्यंव्यासोभविष्यति ॥ १०५ ॥ तदावाराणसींप्राप्यसिद्धिंप्राप्स्यस्यभीप्सिताम् ॥ व्यस्यवेदान्पुराणानिधर्मान्समुपदिश्यच १०६ ॥ हितञ्चतेवदाम्येकंमांप्रतन्तत्समाचर ॥ पश्यकिञ्चिदितोगत्वास्कन्दमग्रेस्थितंप्रभुम् ॥ १०७ ॥ वाराणस्यारहस्यञ्चयथावच्छिवभाषि

मन्त्र से अधिक गोप्य सदा यत्न से रक्षाके योग्य है श्रद्धारहित अपवित्र को कहीं नहीं देवे ॥ १०४ ॥ हे मुनीश्वर ब्रह्मन् ! और भी सुनो कि आनेवाले उन्तीसयें द्वापर में आप व्यास होंगे ॥ १०५ ॥ तब काशी में जा वेद पुराणों का विस्तार और धर्मोंका भलीभांति उपदेशकर मनमानी सिद्धि पावोगे ॥ १०६ ॥ एक तुम्हारे हितकी बात बतातीहूं उसको अबहीं करो यहांसे कुछ दूर जा आगे टिके स्वामिकार्त्तिकेय को देखो ॥ १०७ ॥ हे ब्रह्मन् ! वे छःमुखवाले स्कन्द ठीक ठीक शिव

की कही तुम्हारे तुष्टिकारी काशीरहस्य को कहेंगे ॥ १०८ ॥ वे अगस्त्यजी यों वर पा महालक्ष्मी के प्रणामकर तहां गये जहां मयूरवाहन कार्त्तिकेयजी हैं ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेऽगस्तिप्रस्थानंनामपञ्चतमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । इस छठयें अध्याय में परउपकार प्रशस्ति । तीर्थमहात्म्य अनेक विधि तिय से कह्यो अगस्ति ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले, हे महाभाग सूत ! वेद के तुल्य उस कथाको सुनो जिसको अन्तःकरणमें धर नर अर्थ धर्म काम मोक्ष नाम चार पुरुषार्थों का भागी याने हिस्सेदार होताहै ॥ १ ॥ तदनन्तर स्त्री समेत वे मुनि श्री-

तम् ॥ तत्तुष्टिकरंब्रह्मन्कथयिष्यतिषण्मुखः ॥ १०८ ॥ इतिलब्ध्वावरंसोथमहालक्ष्मींप्रणम्यच ॥ ययावगस्तिर्यत्रास्तिकुमारःशिखिवाहनः ॥ १०९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽगस्त्यप्रस्थानंनामपञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

पाराशर्यउवाच ॥ शृणुसूतमहाभागकथांश्रुतिसहोदराम् ॥ यांवैहृदिनिधायेहपुरुषःपुरुषार्थभाक् ॥ १ ॥ ततःश्रीदर्शनानन्दसुधाधाराधुनींमुनिः ॥ अवगाह्यसपत्नीकःपरांमुदमवापसः ॥ २ ॥ वह्निकुण्डसमुद्भूतसूतनिर्मलमानस ॥ शृणुष्वैकंपुराविद्भिर्भाषितंयत्सुभाषितम् ॥ ३ ॥ परोपकरणंयेषांजागर्तिहृदयेसताम् ॥ नश्यन्तिविपदस्तेषांसम्पदःस्युःपदेपदे ॥ ४ ॥ तीर्थस्नानैर्नसाशुद्धिर्बहुदानैर्नतत्फलम् ॥ तपोभिरुग्रैस्तन्नाप्यमुपकृत्यायदाप्यते ॥ ५ ॥ परोपकृत्यायोधर्मोधर्मोदानादिसम्भवः ॥ एकत्रतुलितौधात्रातत्रपूर्वोभवद्गुरुः ॥ ६ ॥ परिनिर्मथ्यवाग्जालंनिर्णीतमिदमेवहि ॥ नोप

महालक्ष्मीजी के दर्शन से उपजे आनन्द अमृतधारा नदीमें नहा महाआनन्दको अटे ॥ २ ॥ हे पृथुराजके यज्ञमें हुये सूतके समान निर्मल मन लोमहर्षण सूत ! आगे के पण्डितों का कहा जो एक अच्छा वचन उसको सुनो ॥ ३ ॥ जिन सन्तों के मनमें आनका उपकार जागता उनकी विपत्तियां बिलातीं पग पगमें सम्पत्तियां होती हैं ॥ ४ ॥ तीर्थ नहाने से वह पवित्रता नहीं बहुते दानों से वह फल नहीं उग्र तपस्याओं से वह नहीं मिलता जो उपकार करने से मिलता है ॥ ५ ॥ पर उपकार और दान आदि सुकर्म से हुये धर्म्म को ब्रह्मा ने तौला उन दोनों में पहला गरू भया ॥ ६ ॥ वचनसमूह याने सब शास्त्रों को मथ यह निर्णय ठीक

ठहरा कि पराये उपकार के समान आन धर्म और अपकारसे अधिक अधर्म्म नहीं ॥७॥ उपकारी अगस्त्य का यह दृष्टान्तहुवा कहा वैसा काशी से उपजा दुःख कहां वैरा श्रीमहालक्ष्मीजी के मुखका दर्शन ॥ ८ ॥ जिससे आयु और अनेक भांति का धन हाथी के कानके अग्रभाग के समान चञ्चल उसकारण बुद्धिमान्का केवल पराया उपकार करना चाहिये ॥ ९ ॥ जिन लक्ष्मीका नाम लेनें या पाने से मनुष्य कहीं नहीं अमाता यामे महान्होता साक्षात् उन लक्ष्मीको देख अगस्तिमुनि कृतार्थ हुये ॥ १० ॥ अनन्तर आगेगये वे दूरसे उस श्रीपर्वत को देखते भये जिसमें त्रिपुरके शत्रु महादेवजी बसते हैं ॥ ११ ॥ तब प्रसन्नमन मुनि ने स्त्री से यह बचन कहा कि

कारात्परोधर्मोनापकारादघंपरम् ॥ ७ ॥ उपकर्तुरगस्त्यस्यजातमेतन्निदर्शनम् ॥ क्वतादृक्काशिजंदुःखंक्वतादृक्श्रीमुखेक्षणम् ॥ ८ ॥ करिकर्णाग्रचपलंजीवितंविविधंवसु ॥ तस्मात्परोपकरणंकार्यमेकंविपश्चिता ॥ ९ ॥ यल्लक्ष्मीनाममात्राप्त्यानरोनोमातिकुत्रचित् ॥ साक्षात्समीक्ष्यतांलक्ष्मींकृतकृत्योभवन्मुनिः ॥ १० ॥ गच्छन्नग्रेददर्शासौदूराच्छ्रीशैलमैक्षत ॥ यत्रसाक्षान्निवसतिदेवःश्रीत्रिपुरान्तकः ॥ ११ ॥ उवाचवचनंपत्नींतदाप्रीतमनामुनिः ॥ इहस्थितैवपश्यत्वंकान्तेकान्ततरंपरम् ॥ १२ ॥ श्रीशैलशिखरंश्रीमद्दिदन्तद्यद्विलोकनात् ॥ पुनर्भवोमनुष्याणांभवेऽत्रनभवेत्क्वचित् ॥ १३ ॥ गिरिश्चतुरशीत्यायंयोजनानांहिविस्तृतः ॥ सर्वलिङ्गमयोयस्मादतःकुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ १४ ॥ ॥ लोपामुद्रोवाच ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामियद्याज्ञास्वामिनोभवेत् ॥ ब्रूतेहियाऽननुज्ञातापत्यासापतिताभवेत् ॥ १५ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ किंवक्तुकामादेवित्वंब्रूहितत्त्वमशङ्किता ॥ नत्वादृशीनांवाक्यंहिपत्युःखेदायजायते ॥ १६ ॥ ततःप्र

हे छबीली ! यहां खड़ीही तुम उत्तम जगमगातेको देखो ॥ १२ ॥ जो यह शोभावान् श्रीशैलका शृंग उसके दर्शनसे इससंसार में मनुष्योंका जन्म फिर कहीं नहीं होता॥ १३ ॥ तीनसौ छत्तिसकोस विस्तारवाला यह पर्वत जिससे सब लिंगमयहै उससे प्रदक्षिणाकरे॥ १४॥ श्रीलोपामुद्राजी बोलीं, जो स्वामीकी आज्ञाहो तो कुछ विज्ञापना करना चाहतीहूं पतिकी प्रेरणा पाये विना जो स्त्री बोलती वह पतित होती है॥१५॥ अगस्त्यजी बोले हे देवि ! तुम क्या कहा चाहती शङ्कारहितहो उसको कहो तुम समान

स्त्रियोंका कहना पतिके खेदकेलिये नहींहोताहै॥१६॥ तदनंतर मुनिको प्रणामकर नम्रता समेत उन देवीने अपना संदेह दुराने व सबके हितके अर्थ पूंछा॥ १७॥ श्रीलोपामुद्राजी बोलीं, श्रीशैलके शृंगको देखकर फिर जन्म नहीं होताहै जो यह सत्य है तो आप किस लिये काशीको चाहते हो ॥ १८ ॥ अगस्तिजीने कहा, हे श्रेष्ठजघने निर्मले ! सुन तैंने सत्य पूंछा ब्रह्मविचारियों ने बारबार यह निर्णय कियाहै ॥ १६ ॥ व मोक्षदायक स्थान अनेकहैं उनमें भी निर्णय कियागया उन स्थानों को तुमसे कहताहूं क्षणभर मन देनेवालीहो ॥ २० ॥ पहले प्रयाग नाम तीर्थराज प्रसिद्ध जो कि सब तीर्थों की कामना के लिये हित याने उनके वर्ष भरेके पापको नशाता व

च्चसादेवीप्रणम्यमुनिमानता ॥ सर्वेषाञ्च हितार्थायस्वसन्देहापनुत्तये ॥ १७ ॥ ॥ लोपामुद्रोवाच ॥ ॥ श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वापुनर्जन्मनविद्यते ॥ इदमेवहिसत्यञ्चेत्किमर्थङ्काशिरिष्यते ॥ १८ ॥ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ ॥ आकर्णयवरारोहेसत्यं पृष्टन्त्वयामले ॥ निर्णीतमसकृच्चैतन्मुनिभिस्तत्त्वचिन्तकैः ॥ १६ ॥ मुक्तिस्थानान्यनेकानिकृतस्तत्रापिनिर्णयः ॥ तानितेकथयाम्यत्रदत्तचित्ताभवक्षणम् ॥ २० ॥ प्रथमंतीर्थराजन्तुप्रयागाख्यंसुविश्रुतम् ॥ कामिकंसर्वतीर्थानांधर्मकामार्थमोक्षदम् ॥ २१ ॥ नैमिषञ्चकुरुक्षेत्रंगङ्गाद्वारमवन्तिका॥ अयोध्यामथुराचैवद्वारकाप्यमरावती ॥ २२ ॥ सरस्वतीसिन्धुसङ्गोगङ्गासागरसङ्गमः॥ कान्तीचत्र्यम्बकञ्चापिसप्तगोदावरीतटम् ॥ २३ ॥ कालञ्जरंप्रभासश्चतथाबदरिकाश्रमः ॥ महालयस्तथोङ्कारक्षेत्रंवैपौरुषोत्तमम् ॥ २४ ॥ गोकर्णोभृगुकच्छश्चभृगुतुङ्गश्चपुष्करम् ॥ श्रीपर्वतादितीर्थानिधारातीर्थं तथैवच ॥ २५ ॥ मानसान्यपितीर्थानिसत्यादीनिचवैप्रिये ॥ एतानिमुक्तिदान्येवनात्रकार्याविचारणा ॥ २६ ॥ गयाती

मुक्तिदाता है ॥ २१ ॥ नैमिषारण्य कुरुक्षेत्र हरद्वार अवन्ती (उज्जैन) अयोध्या मथुरा द्वारका अमरावती गंगा ॥ २२ ॥ सरस्वती व सिन्धुनदीका संगम गंगासागर कांतीपुरी त्र्यम्बक (ब्रह्मगिरि महाराष्ट्रमें प्रसिद्ध जहांसे गोदावरी नदी निकली) सप्तगोदावरीतट (आन्ध्रदेश मे) ॥ २३ ॥ कालंजर प्रभासक्षेत्र बदरिकाश्रम महालय (गौडदेशमे) अमरकंटक जगन्नाथपुरी ॥ २४ ॥ गोकर्णतीर्थ (द्राविड़देशमें) भृगुकच्छ और भृगुतुंग-(गुजरातमें) पुष्कर श्रीशैल आदि तीर्थ धारातीर्थ (जो द्राविड़में कुमारधारा नाम) ॥ २५ ॥ हे प्यारी ! सत्य दया कोमलता ज्ञानादि मनके तीर्थ ये मुक्तिदाताही है इसमे विचार नहीं करने योग्य ॥ २६ ॥ गया तीर्थ जो कहा

गया वह पितरों का मोक्षदायक है वहां श्राद्ध करने से उनके पुत्र पुरिखों के ऋण सेछूटते हैं ॥ २७ ॥ श्रीलोपामुद्राजी बोलीं, हे महामते! जिन मानस तीर्थोंको भी आपने संक्षेपसे कहा वे यहां कौन कौनहैं यह कहनेके योग्यहो ॥ २८ ॥ अगस्त्यजी बोले, हे पापहने! कहे हुये मुझसे मानके तीर्थोंको, सुनो जिनमें नीकेनहाकर नर उत्तम गति (मोक्ष) को पाता है ॥ २९ ॥ व परपीड़ारहित सत्य वचन क्षमा निषिद्ध विषयों से अंतःकरण का रोंकना सब प्राणियों में दया सीधापन ॥ ३० ॥ विषयों से बाहरकी इन्द्रियों का लौटना संतोष अष्टांग मैथुन त्याग मधुर वचन बोलना ॥ ३१ ॥ धर्म्म अधर्म्म ईश्वर जीवका जानना देह इंद्रियादिका धारना कहागया तप

र्थञ्चयत्प्रोक्तंतत्पितॄणांहिमुक्तिदम् ॥ पितामहानामृणतोमुक्तास्तत्तनयाअपि ॥ २७ ॥ ॥ सधर्म्मिण्युवाच ॥ मानसान्यपितीर्थानियान्युक्तानिमहामते ॥ कानिकानिचतानीहह्येतदाख्यातुमर्हसि ॥ २८ ॥ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ॥ शृणुतीर्थानिगदतोमानसानिममानघे ॥ येषुसम्यङ्नरःस्नात्वाप्रयातिपरमाङ्गतिम् ॥ २९ ॥ सत्यंतीर्थंक्षमातीर्थंतीर्थमिन्द्रियनिग्रहः ॥ सर्वभूतदयातीर्थंतीर्थमार्जवमेवच ॥ ३० ॥ दानंतीर्थंदमस्तीर्थंसन्तोषस्तीर्थमुच्यते ॥ ब्रह्मचर्यंपरंतीर्थंतीर्थञ्चप्रियवादिता ॥ ३१ ॥ ज्ञानंतीर्थंधृतिस्तीर्थंतपस्तीर्थमुदाहृतम् ॥ तीर्थानामपितत्तीर्थंविशुद्धिर्मनसःपरा ॥ ३२ ॥ नजलाप्लुतदेहस्यस्नानमित्यभिधीयते ॥ सस्नातोयोदमस्नातःशुचिःशुद्धमनोमलः ॥ ३३ ॥ योलुब्धःपिशुनःक्रूरोदाम्भिकोविषयात्मकः ॥ सर्वतीर्थेष्वपिस्नातःपापोमलिनएवसः ॥ ३४ ॥ नशरीरमलत्यागान्नरोभवतिनिर्मलः ॥ मानसेतुमलेत्यक्तेभवत्यन्तःसुनिर्मलः ॥ ३५ ॥ जायन्तेचम्रियन्तेचजलेष्वेवजलौकसः ॥ नचगच्छन्तितेस्वर्गमविशुद्धमनोम

कृच्छ्र चांद्रायणादि और मनकी शुद्धतायाने विषयों का विचार करना वह सब तीर्थोंमें बड़ा तीर्थहै ॥ ३२ ॥ पानीसे भीगे देहका स्नान नहीं कहाजाता उसने नहाया जिसने मनकी शुद्धतासे नहाया शुद्ध मन वाला निर्मल व पवित्र है॥ ३३ ॥ जो लोभी परदोषसूचक दुष्ट दंभी व विषयीहै वह पापी सब तीर्थों में नहायाभी मलिनही बना रहताहै ॥ ३४ ॥ देहका मैल तजनेसे मनुष्य मलहीन नहीहोताहै मनके मल बिलग होनेसे भीतरसे विमलहोजाताहै ॥३५॥ जलके वासी जंतु जलमेंही जन्मते व मरते

परंतु स्वर्ग को नहीं जाते क्योंकि वे अशुद्ध मनवाले हैं ॥ ३६ ॥ विषयों में अतिशय सनेह यही मनका मल कहाता और उनमें सनेह न करनाही इस मनकी निर्मलता कहीगई है ॥ ३७ ॥ उसके भीतर भया अंतःकरण जोकि दुष्ट हुवा वह नहाने से नहीं शुद्ध होता सैकडों पानी से धोये मदिराभरे भांड़ेकी नाईं अशुद्ध रहता ॥ ३८ ॥ जो निर्म्मल भाव न हो तो दान यज्ञ या पूजा तपस्या माटी जलसे शौच तीर्थों की सेवा धर्मशास्त्रों का सुनना ये सब तीर्थ हैं ॥ ३९ ॥ इन्द्रियसमूह को रोंके पुरुष जहां बसे वहां उसका कुरुक्षेत्र नैमिष पुष्कर और गङ्गादि तीर्थ हैं ॥ ४० ॥ ध्यान से पवित्र ज्ञानपानी से पूर्ण राग द्वेष मलका नाशक जो ऋषियों

लाः ॥ ३६ ॥ विषयेष्वतिसंरागोमानसोमलउच्यते ॥ तेष्वेवहिविरागोस्यनैर्मल्यंसमुदाहृतम् ॥ ३७ ॥ चित्तमन्तर्गतं दुष्टंतीर्थस्नानान्नशुध्यति ॥ शतशोथजलैर्धौतंसुराभाण्डमिवाशुचिः ॥ ३८ ॥ दानमिज्यातपःशौचंतीर्थसेवाश्रुतं तथा ॥ सर्वाण्येतानितीर्थानियदिभावोननिर्मलः ॥ ३९ ॥ निगृहीतेन्द्रियग्रामोयत्रैवचवसेन्नरः ॥ तत्रतस्यकुरुक्षेत्रंनैमिषंपुष्कराणिच ॥ ४० ॥ ध्यानपूतेज्ञानजलेरागद्वेषमलापहे ॥ यःस्नातिमानसेतीर्थेसयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ४१ ॥ एतत्तेकथितंदेविमानसंतीर्थलक्षणम् ॥ भौमानामपितीर्थानांपुण्यत्वेकारणंशृणु ॥ ४२ ॥ यथाशरीरस्योद्देशाःकेचिन्मेध्यतमाःस्मृताः ॥ तथापृथिव्यामुद्देशाःकेचित्पुण्यतमाःस्मृताः ॥ ४३ ॥ प्रभावादद्भुताद्भूमेःसलिलस्यचतेजसा ॥ परिग्रहान्मुनीनाञ्च तीर्थानांपुण्यतास्मृता ॥ ४४ ॥ तस्माद्भौमेषुतीर्थेषु मानसेषुचनित्यशः ॥ उभयेष्वपियःस्नाति सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ४५ ॥ अनुपोष्यत्रिरात्राणितीर्थान्यनभिगम्यच ॥ अदत्त्वाकाञ्चनङ्गाश्चदरिद्रोनामजायते ॥ ४६ ॥

से सेवित मानस तीर्थ उसमें जो नहाता वह उत्तम सुख को पाता ॥ ४१ ॥ हे देवि ! मैंने यह मानस तीर्थ का लक्षण कहा पृथिवीके तीर्थों में पवित्रता होने में कारण सुनो ॥ ४२ ॥ जैसे देहके कोई उत्तम अंग बहुतही पवित्र वैसे भूमिके कोई देश परमपुण्यरूप कहे गये हैं ॥ ४३ ॥ भूमिके अद्भुत प्रभाव और जलके तेजसे तथा मुनियोंके ग्रहण करने से तीर्थोंकी पुण्यताई बताई गई है ॥ ४४ ॥ उससे भूमिके और मनके इनदोभाँतिके तीर्थों में जो रोज नहाता वह उत्तम मोक्षको पहुँचता है ॥ ४५ ॥

तीनरात उपास या निवास न कर तीर्थों को तजा सोना और गौओं को न दे प्रसिद्ध दरिद्री होता है ॥ ४६ ॥ तीर्थोंके संमुख चलने से जो फल उसको बहुती दक्षिणा दीजातीं जिनमें उन अग्निष्टोमादि यज्ञोंसे भी नहीं पाता ॥ ४७ ॥ जिसके हाथ पांव मन विद्या तप कीर्ति ये सब नियम समेत हैं याने न दान लेता न किसी को पीड़ा देता आंखों से देख जन्तुओं को बचाचलता किसीका अनभल नहीं विचारता मन्त्रजपादि उपासना करता अपने धर्म्मको नहीं तजता व और लोगों से बड़ाई कियाजाता वह तीर्थोंके फलको प्राप्तहोताहै ॥ ४८ ॥ जो दानलेने से निवृत्त जिस किस वस्तुसे सन्तुष्ट अहङ्कार से छूटा वह तीर्थफल पाता ॥ ४९ ॥ दंभ याने ऊपरसे धर्मात्मा बनना भीतर से नहीं उस भावसे रहित न किसी कामका लगालगाता थोड़ा खाता इन्द्रियोंको जीते और जो सबसङ्गोंसे छूटा वह तीर्थफल पाता॥५०॥

अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वाविपुलदक्षिणैः ॥ नतत्फलमवाप्नोतितीर्थाभिगमनेनयत् ॥ ४७ ॥ यस्यहस्तौचपादौचमनश्चैवसुसंयतम् ॥ विद्यातपश्चकीर्तिश्चसतीर्थफलमश्नुते ॥४८॥ प्रतिग्रहादुपावृत्तःसन्तुष्टोयेनकेनचित् ॥ अहङ्कारविमुक्तश्चसतीर्थफलमश्नुते ॥ ४९ ॥ अदम्भकोनिरारम्भोलघ्वाहारोजितेन्द्रियः ॥ विमुक्तःसर्वसङ्गैर्यःसतीर्थफलमश्नुते ॥ ५० ॥ अकोपनोऽमलमतिःसत्यवादीदृढव्रतः ॥ आत्मोपमश्चभूतेषुसतीर्थफलमश्नुते ॥ ५१ ॥ तीर्थान्यनुसरन्धीरःश्रद्दधानःसमाहितः ॥ कृतपापोविशुद्ध्येतकिंपुनःशुद्धकर्मकृत् ॥५२॥ तिर्यग्योनिंनवैगच्छेत्कुदेशेनैवजायते ॥ नदुःखीस्यात्स्वर्गभाक्चमोक्षोपायञ्चविन्दति ॥ ५३ ॥ अश्रद्दधानःपापात्मानास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः ॥ हेतुनिष्ठश्चपञ्चैतेनतीर्थफलभागिनः ॥ ५४ ॥ तीर्थानिचयथोक्तेनविधिनासञ्चरन्तिये ॥ सर्वद्वन्द्वसहाधीरास्तेनराःस्वर्गभागिनः ॥ ५५ ॥ तीर्थयात्राञ्चि

जो क्रोधरहित विमल बुद्धि सत्य बोलता दृढ़ नियमवाला सब प्राणियों में अपने समान बर्ताव करता वह तीर्थफल पाता॥५१॥ तीर्थोंको जाता धर्म व अधर्म का ज्ञाता श्रद्धावान् सावधान हुआ पापी भी शुद्धहोता फिर सुकर्मकर्ता का क्या कहना ॥ ५२ ॥ तीर्थोंको जाता पुरुष न पशुयोनिमें जाता न कुदेशमें जन्मता न दुःखी होता किन्तु स्वर्गका भागी हो मोक्षके उपायको पाता है ॥ ५३ ॥ श्रद्धारहित बिडालव्रती (याने धर्मकी ध्वजा धारता गुप्त पाप करता) पाखण्डी संशयात्मा कारणों से सुकर्म्मों में सन्देहकारी ये पांच जन तीर्थफलके भागी नहीं ॥ ५४ ॥ जे यथोक्त विधानसे तीर्थ करते वे सब सुखदुःख शीत घाम आदि सहतें बुद्धिमान् मनुष्य स्वर्गके हिस्सेदार

होते हैं ॥ ५५ ॥ तीर्थयात्रा करनेकी इच्छावाला पुरुष पहले घरमें उपासकर श्रीगणेश पितर ब्राह्मण साधुओं को यथाशक्ति पूज ॥ ५६ ॥ पारणाकारी प्रसन्न चित्त और नियमधारी हो चले तीर्थों में आ पितरों को पूज जैसा फल कहागया वैसे फलका भागी होता है ॥ ५७ ॥ तीर्थ में ब्राह्मण परखने योग्य नहीं अन्नके चाहीका खिलाना पिलाना चाहिये सतुवा विनामाड़े के भात व खीरसे पिण्डदान करे ॥ ५८ ॥ पीना व गुडसे करे यह ऋषियों से देखागया अर्घ आवाहन रहित श्राद्ध तहां करना चाहिये ॥ ५९ ॥ समय व असमय सबकाल में तीर्थमें जा श्राद्ध तर्पणादि शीघ्र करने योग्य, विघ्न न करे॥ ६० ॥ किसी प्रसङ्ग से तीर्थमें जा स्नानकरे तो स्नानका फल

कीर्षुःप्रा‌ग्विधार्यापोषणंगृहे॥गणेशञ्चपितॄन्विप्रान्साधून्भक्त्याप्रपूज्यच ॥ ५६ ॥ कृतपारणकोहृष्टोगच्छेन्नियमधृक् पुनः॥ आगत्याभ्यर्च्यचपितॄन्यथोक्तफलभाग्भवेत्॥५७॥नपरीक्ष्योद्विजस्तीर्थेष्वन्नार्थीभोज्यएवच ॥ सक्तुभिःपिण्ड दानञ्चचरुणापायसेनच ॥ ५८ ॥ कर्त्तव्यमृषिभिर्दृष्टंपिण्याकेनगुडेनच ॥ श्राद्धंतत्रप्रकर्त्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम्॥५९॥ अकालेप्यथवाकालेतीर्थेश्राद्धञ्चतर्पणम्॥ अविलम्बेनकर्त्तव्यंनैवविघ्नंसमाचरेत् ॥ ६० ॥ तीर्थंप्राप्यप्रसङ्गेनस्नानंतीर्थे समाचरेत्॥स्नानजंफलमाप्नोतितीर्थयात्राश्रितंनच ॥६१॥ नृणांपापकृतांतीर्थेपापस्यशमनंभवेत् ॥ यथोक्तफलदंतीर्थं भवेच्छुद्धात्मनांनृणाम् ॥ ६२ ॥ षोडशांशंसलभतेयःपरार्थञ्चगच्छति ॥ अर्धंतीर्थफलंतस्ययःप्रसङ्गेनगच्छति ॥ ६३ ॥ कुशप्रतिकृतिंकृत्वातीर्थवारिणिमज्जयेत् ॥ मज्जयेच्चयमुद्दिश्यसोष्टमांशंलभेतवै ॥ ६४ ॥ तीर्थोपवासःकर्त्तव्यःशिरसोमुण्डनंतथा ॥ शिरोगतानिपापानियान्तिमुण्डनतोयतः ॥ ६५ ॥ यदह्नितीर्थप्राप्तिःस्यात्ततोह्नःपूर्ववासरे ॥ उपवा

पावे तीर्थयात्रा का नहीं ॥ ६१ ॥ तीर्थ मे पापी पुरुषों के पापका नाशहोता तीर्थ श्रद्धावाले मनुष्योंका फल होता है ॥ ६२ ॥ जो पराये अर्थ जाता वह सोलहवां अंशफल पाताहैजो किसी प्रसङ्गसे जाता उसको आधातीर्थफलहोताहै॥६३॥व जो कुशाकीपुतली बनाय व जिसका नामले तीर्थके जलमें नहवावे यहनिश्चय आठवांहिस्सा फलपावे॥६४॥ तीर्थमे उपास और मूड मुडाना करने योग्यहै कि जिससे शिरमें प्राप्त पाप मुडनसे जातेहैं॥६५॥ जिस दिनमें तीर्थ की प्राप्ति होवे उस दिनके पहले दिनमें उपास करना

चाहिये और पहुँचने के दिन श्राद्धदाता होवे ॥ ६६ ॥ तीर्थोंके प्रसंगसे तीर्थयात्राके अंगको भी मैंने तेरे आगे कहा यही स्वर्ग का साधन व मुक्तिकाभी उपायहै ॥ ६७ ॥ इन तीर्थों या इस लोकमें काशी कांची हरिद्वार अयोध्या द्वारका मथुरा और उज्जयिनी ये सात पुरियां मोक्षदाहैं ॥ ६८ ॥ व सब याने चौरासी योजन श्रीशैल मोक्षदायकहै उससे भी अधिक केदार और श्रीपर्वत व केदार से भी परे प्रयाग मोक्षदाताहै ॥६९॥ व तीर्थराज प्रयाग से भी काशी विशेषहै जैसे संदेहरहित काशीमें मुक्ति होती है वैसे कहीं नहीं ॥७०॥ क्योंकि अन्य अनेक मुक्तिक्षेत्र भी काशी पहुँचानेवाले हैं काशीमें जा संसार से छूटै और तौर करोड़ों तीर्थोंसे नहीं ॥७१॥ मैं इस अर्थमें पुराने इति-

सस्तुकर्तव्यःप्राप्ताह्निश्राद्धदोभवेत् ॥ ६६ ॥ तीर्थप्रसङ्गात्तीर्थाङ्गमप्युक्तंत्वत्पुरोमया ॥ स्वर्गसाधनमेवैतन्मोक्षोपायश्च वैभवेत् ॥ ६७ ॥ काशीकान्तीचमायाख्यात्वयोध्याद्वारवत्यपि ॥ मथुरावन्तिकाचैताःसप्तपुर्योत्रमोक्षदाः ॥ ६८ ॥ श्रीशैलोमोक्षदःसर्वःकेदारोपिततोऽधिकः ॥ श्रीशैलाच्चापिकेदारात्प्रयागंमोक्षदंपरम् ॥ ६९ ॥ प्रयागादपितीर्थाग्र्याद विमुक्तंविशिष्यते ॥ यथाविमुक्तेनिर्वाणंनतथाकाप्यसंशयम् ॥ ७० ॥ अन्यानिमुक्तिक्षेत्राणिकाशीप्राप्तिकराणिच ॥ काशींप्राप्यापिमुच्येतनान्यथातीर्थकोटिभिः ॥ ७१ ॥ अत्रार्थेकथयिष्येहमितिहासंपुरातनम् ॥ यश्चाविष्णुगणैरुक्तं द्विजायशिवशर्मणे ॥ ७२ ॥ तीर्थाध्यायमिमंश्रुत्वानरोनियतमानसः ॥ श्रावयित्वाद्विजांश्चापिश्रद्धाभक्तिसमन्वितान् ॥ ७३ ॥ क्षत्रियान्धर्मनिरतान्वैश्यान्सन्मार्गवर्तिनः ॥ शूद्रान्द्विजेषुभक्तांश्चनिष्पापोजायतेद्विजः ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेतीर्थाध्यायोनामषष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

हास को कहूंगा जैसे शिवशर्मा ब्राह्मण से विष्णु के गणोंने कहाहै ॥ ७२ ॥ मनको रोंके मनुष्य इस तीर्थाध्यायको सुन व श्रद्धाभक्तिसमेत ब्राह्मणों को सुना ॥ ७३ ॥ धर्म्म कर्म्म में निरत क्षत्रियों सुमार्गी वैश्यों और द्विजों मे सेवा या सनेहवाले शूद्रोंको सुना ब्राह्मण विपाप होताहै ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेतीर्थाध्यायोनामषष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । या सतयें अध्यायमें काशी आदिक सात । मुक्तिपुरी वर्णन हितहि शिवशर्म्मा की बात ॥ अगस्त्यजी बोले कि, ब्राह्मणोंमें बड़ा सज्जन कोई ब्राह्मण मथुरापुरीमें हुवा उसका पुत्र महातेजस्वी व शिवशर्मा नामसे प्रसिद्ध था ॥ १ ॥ विधिवत् वेदोंका पाठ पढ़ व तत्त्वसे अर्थको जान व धर्मशास्त्रोंको पढ़ व पुराणोंको अधिकता से प्राप्त होकर ॥ २ ॥ अंग याने शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष् इनको अभ्यासकर सब ओरसे न्यायादि तर्कों को मनसे मथ धर्ममीमांसा व ब्रह्ममीमांसा (वेदांत) दोनोंको देख धनुर्वेद में नहा ॥ ३ ॥ आयुर्वेद (वैद्यक) को विचार नृत्य गीतादि के शास्त्रोंमें श्रम कियेथा जो कि भरतादि मुनियों से कहेगयेहैं और बृहस्पति

अगस्तिरुवाच ॥ मथुरायांद्विजःकश्चिदभूद्भूदेवसत्तमः ॥ तस्यपुत्रोमहातेजाःशिवशर्मेतिविश्रुतः ॥ १ ॥ अधीत्य वेदान्विधिवदर्थंविज्ञायतत्त्वतः ॥ पठित्वाधर्मशास्त्राणिपुराणान्यधिगम्यच ॥ २ ॥ अङ्गान्यभ्यस्यतर्कांश्चपरिलोड्य समंततः ॥ मीमांसाद्वयमालोक्यधनुर्वेदंविगाह्यच ॥ ३ ॥ आयुर्वेदंविचार्य्यापिनाट्यवेदेकृतश्रमः ॥ अर्थशास्त्राण्यने कानिप्राप्याश्वगजचेष्टितम् ॥ ४ ॥ कलासुचकृताभ्यासोमन्त्रशास्त्रविचक्षणः ॥ भाषाश्चनानादेशानांलिपीर्ज्ञात्वाविदे शजाः ॥ ५ ॥ अर्थानुपार्ज्यधर्मेणभुक्त्वाभोगान्यदृच्छया ॥ उत्पाद्यपुत्रान्सुगुणांस्तेभ्योह्यर्थंविभज्यच ॥ ६ ॥ यौवनंग त्वरंज्ञात्वाजरांदृष्ट्वाश्रितांश्रुतिम् ॥ चिन्तामवापमहतींशिवशर्माद्विजोत्तमः ॥ ७ ॥ पठतोमेगतःकालस्तथोपार्जयतोध नम् ॥ नाराधितोमहेशानःकर्मनिर्मूलनक्षमः ॥ ८ ॥ नमयातोपितोविष्णुःसर्वपापहरोहरिः ॥ सर्वकामप्रदोनॄणांगणे

शुक्रादिको के कहे बहुते अर्थ शास्त्रों व घोडे हाथियोंकी चेष्टाको कहते शास्त्रोंको प्राप्तहो ॥ ४ ॥ कहने से बाकी चौंसठ कलाओ में अभ्यासकर्ता मंत्र शास्त्र गारुड या तंत्र उनमें पंडित अनेक देशोकी बोली और अन्यदेशों के अक्षरों को जान ॥ ५ ॥ धर्मसे धन बटोर जिरी किसी भांतिसे भोगोंको भोग अच्छे गुनागर पुत्र उपजा उन को धन बांट ॥ ६ ॥ गई जवानी को जान लोगोसे कही कानमें आई बुढ़ाई को देख ब्राह्मणों में उत्तम शिवशर्म्मा बड़ी चिन्ताको प्राप्तभया कि ॥ ७ ॥ पढ़ते व धन कमाते मेरा काल बीता और कर्म्मोंकी जड़ उखाड़नेमें समर्थ शिवजी न पूजेगये ॥ ८ ॥ मैंने सब पापहारी संसारी जीवोके उपकारी विष्णुको न तोषा व सब कामदायक

नगणनायक को न पूजा ॥ ९ ॥ अज्ञान या अन्धकार समूह के हरनेहार सूर्य्य को मैंने कहीं नहीं पूजा और संसारबन्धन के काटनेवाली जगदम्बा महामाया को न ध्याया ॥ १० ॥ व मैंने सब यज्ञोंसे बढ़तीदायक देवों को न छकाया पापनशाने के लिये तुलसीवन की सेवा न किया ॥ ११ ॥ शुद्ध अन्न और मीठे रसोंसे मैंने ब्राह्मणों को न तर्पा जे कि इस उस लोकमें विपत्तियोंसे उबारकारहैं ॥ १२ ॥ और बहुते फल फूलों समेत अच्छी छाया सचिक्कण पल्लववाले लोक परलोक फलदाता वृक्ष गलीमें न लगाये गये ॥ १३ ॥ व अपने अनुकूल रेशमीवस्त्र चोली व प्रतिअंगों के गहनोंसे इस उस लोकमें सुवास देती सुग्धा स्त्रियां न भूषीगईं ॥ १४ ॥ यमलोक के निवारने

शोनार्चितोमया ॥ ९ ॥ तमस्तोमहरःसूर्योनार्चितोवैमयाक्वचित् ॥ महामायाजगद्धात्रीनध्याताभवबन्धहृत ॥ १० ॥ नप्रीणितामयादेवायज्ञैःसर्वैःसमृद्धिदाः ॥ तुलसीवनशुश्रूषानकृतापापशान्तये ॥ ११ ॥ नमयातर्पिताविप्राःमृष्टान्नैर्मधुरैरसैः ॥ इहापिचपरत्रापिविपदामनुतारकाः ॥ १२ ॥ बहुपुष्पफलोपेताःसुच्छायाःस्निग्धपल्लवाः ॥ पथिनारोपितावृक्षा इहामुत्रफलप्रदाः ॥ १३ ॥ दुकूलैःस्वानुकूलैश्चचोलैःप्रत्यङ्गभूषणैः ॥ नालंकृताःसुवासिन्यइहामुत्रसुवासदाः ॥ १४ ॥ द्विजायनोर्वरादत्तायमलोकनिवारिणी ॥ सुवर्णंनसुवर्णायदत्तंदुरितहृत्परम् ॥ १५ ॥ नालंकृतासवत्सागौःपात्रायप्रतिपादिता ॥ इहपापपहन्त्र्याशुसप्तजन्मसुखावहा ॥ १६ ॥ ऋणापनुत्तयेमातुःकारितोनजलाशयः ॥ नातिथिस्तोषितःक्वापिस्वर्गमार्गप्रदर्शकः ॥ १७ ॥ छत्रोपानत्कुण्डिकाश्चनाध्वगायसमर्पिताः ॥ यास्यतःसंयमिन्यांहिस्वर्गमार्गसुखप्रदाः ॥ १८ ॥ नचकन्याविवाहार्थंवसुकापिमयार्पितम् ॥ इहसौख्यसमृद्ध्यर्थंदिव्यकन्यार्पकंदिवि ॥ १९ ॥ नवाजपेयावभृथे

वाली सब सस्यों से पूर्ण पृथिवी ब्राह्मणको न दिया न अच्छेवर्ण के लिये पापहारी सोना दियागया ॥ १५ ॥ बछड़े समेत भूषणों से भूपित गऊको सुपात्रके लिये न सौंपा जो कि इसलोक में पापनाशिनी व सातजन्म सुख पहुँचानेवाली है ॥ १६ ॥ माताका ऋण दूर करनेके लिये कुवां बावली तड़ागादि न कराया स्वर्गकी गलीका दिखानेवाला अतिथि कहीं भी नहीं तुष्ट कियागया ॥ १७ ॥ गली चलतों के लिये छतुरी पनहीं कमण्डलु न सौंपेगये जो कि यमलोक को भी जाते जन का स्वर्गकी गलीके सुखोंके दायकहैं ॥ १८ ॥ न मैंने कन्याओंकेब्याहके अर्थ कहीं धन दिया जो कि इस लोकमें सुख बढ़ानेके लिये और स्वर्गनें दिव्य कन्याओंका दाता होताहै ॥ १९ ॥

मैंने लोभके वश इस जन्म व आनमें भी शुद्ध खानेपीनेकी चीजें देते वाजपेययज्ञांतस्नान में न नहाया ॥ २० ॥ देवमन्दिर बना मैंने शुभ शिवलिंग को न थापा जिस लिंगके थापित होतेही सब जगत् थापित होताहै ॥ २१ ॥ सब समृद्धिदायक विष्णुमन्दिर न किया गया न मैंने सूर्य्य गणेशादि देवोंकी मूर्त्तियां बनवाया ॥ २२ ॥ गौरी व महालक्ष्मीजीको चित्रमें भी न लिखा क्योंकि इन देवोकी प्रतिमा करनेसे कुरूप और अभागी नहीं होता ॥ २३ ॥ दिव्यवस्त्रों की समृद्धि के लिये विचित्र उजले महीन कपड़े ब्राह्मणो को न दियेगये ॥ २४ ॥ मैंने सब पाप पछाड़ने के अर्थ घीसे भीगे मन्त्रोसे पवित्र तिलोको प्रज्वलित अग्निमें न होमा ॥ २५ ॥

स्नातोलोभवशादहम् ॥ इहजन्मनिचान्यस्मिन्बहुमृष्टान्नपानदे ॥ २० ॥ नमयास्थापितंलिङ्गंकृत्वादेवालयंशुभम् ॥ यस्मिन्संस्थापितेलिङ्गेविश्वंसंस्थापितंभवेत् ॥ २१ ॥ विष्णोरायतनंनैवकृतंसर्वसमृद्धिदम् ॥ नचसूर्यगणेशानांप्रतिमाःकारितामया ॥ २२ ॥ नगौरीनमहालक्ष्मीश्चित्रेपिपरिलेखिते ॥ प्रतिमाकरणेचैषांनकुरूपोनदुर्भगः ॥ २३ ॥ सुसूक्ष्माणिविचित्राणिनोज्ज्वलान्यम्बराण्यपि ॥ समर्पितानिविप्रेभ्योदिव्याम्बरसमृद्धये ॥ २४ ॥ नतिलाश्चघृतेनाक्ताःसुसमिद्धेहुताशने ॥ हुतावैमन्त्रपूताश्चसर्वपापपनुत्तये ॥ २५ ॥ श्रीसूक्तंपावमानीच ब्राह्मणोमण्डलानिच ॥ जप्तंपुरुषसूक्तन्न पापारिशतरुद्रियम् ॥ २६ ॥ अश्वत्थसेवानकृता त्यक्त्वाचार्कत्रयोदशीम् ॥ सद्यःपापहरासाहि नरात्रौनभृगोर्दिने ॥ २७ ॥ शयनीयंनचोत्सृष्टं मृदुलाचप्रतूलिका ॥ दीपीदर्पणसंयुक्तं सर्वभोगसमृद्धिदम् ॥ २८ ॥ अजाश्वमहिषीमेषी दासीकृष्णाजिनन्तिलाः ॥ सकरम्भास्तोयकुम्भानासनंमृदुपादुके ॥ २९ ॥ पादाभ्यङ्गंदीपदानं प्रपादानंविशेषतः ॥ व्य

श्रीसूक्त हिरण्यवर्णां हरिणीं इत्यादि, पावमानी स्वादिष्ठययामदिष्ठयापवस्व सोमधारया इत्यादि, ब्राह्मण अग्निर्वैदेवानामवमोविष्णुःपरमः इत्यादि, मण्डल यदेतन्मण्डलंतपति तन्महः इत्यादि अथवा ऋग्वेद में प्रसिद्ध दश मण्डल, पुरुषसूक्त सहस्रशीर्षादि, शतरुद्रिय अथातः शतरुद्रियंजुहोति अत्रैव सर्वोग्निः संस्कृतः इत्यादि पापनाशक मन्त्रोको न जपा ॥ २६ ॥ सूर्य्यवार तेरसि तिथिको छोड़ पीपलकी सेवा न किया वह शीघ्रही पाप पछाड़ती रात और शुक्रवारमें नहीं ॥ २७ ॥ सब भोगवृद्धि देनेवाली दीपक शीशा समेत शय्या व कोमल बिछौना न दिया ॥ २८ ॥ छागी भैंस भेड़ी सेवकी कालामृगचर्म तिल दही व सेतुवा समेत पानीसे पूर्ण घड़े कोमल खराऊं

और आसन न दियेगये ॥ २९ ॥ पांवोंमें चुपरने की चीजें दीपदान विशेष से पौसाला दान ब्याना वस्त्र पान वैसे अन्यभी मुखसुगन्धकारक वस्तु ॥ ३० ॥ नित्यश्राद्ध बलिवैश्वदेव अतिथिपूजा और अन्यवस्तुवे इन सबको दे यमलोकमें भी प्रशंसनीय घरोंमें पैठतेहैं ॥ ३१ ॥ वे पुण्यसेवी जन यम यमदूत यमदण्डोंको भी नहीं देखते यह भी मैंने नहीं किया ॥ ३२ ॥ कृच्छ्र चांद्रायणादि व्रत नक्तव्रत याने रात्रि में भोजनका नियम जोकि देहके शुद्ध करनेवाले उनकोभी मैंने कहीं नहीं किया ॥३३॥ गौओंका रोज चारा न दिया गौओंका खजोंना भी न किया गोलोकसुखदात्री गऊ कीचके बीच मग्नहुई भी न उबारीगई ॥ ३४ ॥ मैंने मांगे धनों से मंगनों को न

जनंवस्त्रताम्बूलं तथान्यन्मुखवासकृत् ॥ ३० ॥ नित्यश्राद्धंभूतबलिं तथाऽतिथिसमर्चनम् ॥ विशन्त्यन्यानिदत्त्वाच प्रशस्यानियमालये ॥ ३१ ॥ नयमंयमदूतांश्च नयामीरपियातनाः ॥ पश्यन्तितेपुण्यभाजो नैतच्चापिकृतंमया ॥ ३२ ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनितथानक्तव्रतानिच ॥ शरीरशुद्धिकारीणि नकृतानिकचिन्मया । ३३ ॥ गवाह्निकन्नवोदत्तं गोकण्डूतिर्नवैकृता ॥ नोद्धृतापङ्कमग्नागौर्गोलोकसुखदायिनी ॥ ३४ ॥ नार्थिनःप्रार्थितैरर्थैः कृतार्थाहिमयाकृताः ॥ देहिदेहीतिजल्पाको भविष्याम्यन्यजन्मनि ॥ ३५ ॥ नवेदानचशास्त्राणि नार्थोदारानवासुताः ॥ नक्षेत्रंनचहर्म्यादि मायान्तमनुयास्यति ॥ ३६ ॥ शिवशर्मेतिसञ्चिन्त्य बुद्धिंसन्धायसर्वतः ॥ निश्चिकायमनस्येवं भवेत्क्षेमतरंमम ॥ ३७ ॥ यावत्स्वस्थोऽस्तिमेदेहो यावन्नेन्द्रियविक्लवः ॥ तावत्स्वश्रेयसांहेतुं तीर्थयात्राङ्करोम्यहम् ॥ ३८ ॥ दिनानिपञ्चषाण्ये वमतिवाह्यगृहेद्विजः ॥ शुभेतिथौशुभेवारे शुभलग्नबलेद्विजः ॥ ३९ ॥ उपोष्यरजनीमेकां प्रातःश्राद्धंविधायच ॥ ग

कृतार्थ किया इससे अन्य जन्म में दे दे यों बकनेवाला हूंगा ॥ ३५ ॥ वेद शास्त्र धन धनिया पुत्र खेत और महलआदि यह कुछ जाते मेरेके पीछे न जायगा ॥ ३६ ॥ शिवशर्म्माने सबसे बुद्धिको भलीभांतिसे धार विचारकर यों निश्चय किया कि मेरा अतिशय कल्याण होवे ॥ ३७ ॥ जौलों मेरा शरीर स्वस्थ जौलों इन्द्रियों में विकार नहीं तौलों मैं अपने कल्याणोंके कारण तीर्थयात्राकरूं॥३८॥पिंजरामें पक्षीके समान यों घरमें पांच छः दिन बिता शुभतिथि शुभदिन शुभलग्नके बलमें वह ब्राह्मण ॥ ३९ ॥

एक राति उपासे पौढ़ प्रातःकाल श्राद्धकर गणेश व ब्राह्मणों के नमस्कार और भोजनकर चला जोकि सुबुद्धि था ॥ ४० ॥ उस मोक्षमें स्नेहकर्त्ता सब जन्तुवों के लिये कैवल्य पदकी बड़ी सीढ़ी परंपरा तीर्थयात्राको यों निश्चयकर ॥ ४१ ॥ अनंतर कुछदूर गलीमें जा दो दण्ड या क्षणभर बाट में विश्रामकर उस ब्राह्मणने विचारा कि मैं पहले कहांजाऊँ ॥ ४२ ॥ पृथिवी मे बहुते तीर्थहैं और आयु व मन चंचल है उससे सातों पुरियोंको जाऊँ जिससे उनमें सब तीर्थहैं ॥ ४३ ॥ अयोध्यापुरीने जा सरयू नहा उन उन तीर्थोंमें पिंडदानसे पितरोंको तर्प ॥ ४४ ॥ पांचराति बस ब्राह्मणों को खिलापिला अतिआनंदित ब्राह्मण तीर्थोंके राजा प्रयागको गया ॥ ४५ ॥ जहां

गणेशान्ब्राह्मणान्नत्वा भुक्त्वाप्रस्थितवान्सुधीः ॥ ४० ॥ इतिनिश्चित्यनिर्वाणपदनिःश्रेणिकांपराम् ॥ सर्वेषामेवजन्तूनां तत्रसंस्थितिकारिणाम् ॥ ४१ ॥ अथपन्थानमाक्रम्य कियन्तमपिसद्विजः ॥ मुहूर्तंपथिविश्रम्याचिन्तयत्प्राक्क्वयाम्य हम् ॥ ४२ ॥ भुवितीर्थान्यनेकानि लोलमायुश्चलंमनः ॥ ततःसप्तपुरीर्यायां सर्वतीर्थानितत्रयत् ॥ ४३ ॥ अयोध्यांश्चपु रींगत्वा सरयूमवगाह्यच ॥ तत्तत्तीर्थेषुसन्तर्प्य पितॄन्पिण्डप्रदानतः ॥ ४४ ॥ पञ्चरात्रमुषित्वातु ब्राह्मणान्परिभोज्यच ॥ प्रयागमगमद्विप्रस्तीर्थराजंसुहृष्टवत् ॥ ४५ ॥ सिताऽसितेसरिच्छ्रेष्ठे यत्रास्तांसुरदुर्लभे ॥ यत्राप्लुतोनरःपापः परंब्र ह्माधिगच्छति ॥ ४६ ॥ क्षेत्रंप्रजापतेःपुण्यंसर्वेषामेवदुर्लभम् ॥ लभ्यतेपुण्यसम्भारैर्नान्यथाऽर्थस्यराशिभिः ॥ ४७ ॥ दमयन्तींकलिङ्गाख्यङ्कलिन्दतनयांशुभाम् ॥ आगत्यमिलितायत्रपुण्यास्वर्गतरङ्गिणी ॥ ४८ ॥ प्रकृष्टंसर्वयागेभ्यःप्रया गमितिगीयते ॥ यज्वनांपुनरावृत्तिर्नप्रयागार्द्रवर्ष्मणाम् ॥ ४९ ॥ यत्रस्थितःस्वयंसाक्षाच्छूलटङ्कोमहेश्वरः ॥ तत्राप्लु

देवोंकाभी दुर्लभ नदियों में श्रेष्ठ उजली काली याने गङ्गा व यमुनाहैं जिनमें नहाय नर परमेश्वरको पहुँचताहै ॥४६॥ जो कि प्रजापति ब्रह्मा या विष्णुका क्षेत्र सबकाही दुर्लभ पुण्यरूप वह पुण्यसमूहों से मिलता अन्यथा धनकी राशि से नहीं ॥ ४७ ॥ जहां गङ्गा जी कलिकालको दबाती यमुनाको आ मिलीहै ॥ ४८ ॥ प्र (उत्तम या बड़ा) याग (यज्ञोंसे) जो वह प्रयाग यों गाया जाताहै प्रयागके पानी से भींगी देहवाले यज्ञकर्ताओं का संसार मे फिर आना नहीं ॥ ४९ ॥ जहां शूलटङ्कवाले

साक्षात् शिवजी आपही टिके जोकि वहां नहाये प्राणियोंके मुक्तिमार्गके शिक्षकहैं ॥ ५० ॥ तहां सात पाताललों मूलवाला अक्षयवट वृक्ष प्रसिद्धहै प्रलयमेंभी जिसमें चढ़ मार्कण्डेयमुनि बसे हैं॥५१॥ वह वटवृक्षरूपधारी ब्रह्मा जाननीय हैं व उसके समीपमें सनेहसे ब्राह्मणों को खिला पिला मनुष्य मोक्षका भागी होता है ॥५२॥ व जहां वैकुंठसे आये आदर पाये साक्षात् लक्ष्मीपति माधव रूपसे प्राणियों को विष्णुके परम पदको पठाते हैं॥५३ ॥व जहां काली उजली दोनों दिव्य नदियां वेदोंसे पढ़ी गईहैं वहां भीगे अंगवाले पुरुष अमर याने मुक्त होते हैं यह निश्चयहै॥ ५४॥ शिवलोक ब्रह्मलोक व श्रेष्ठ उमालोक कुमारलोक वैकुंठ सत्यलोक और सबओरसे ॥ ५५॥ व तपोलोक

तानांजन्तूनांमोक्षवर्त्मोपदेशकः ॥ ५० ॥ तत्राऽक्षय्यवटोऽप्यस्तिसप्तपातालमूलवान् ॥ प्रलयेपियमारुह्यमृकण्डतनयोवसत् ॥ ५१ ॥ हिरण्यगर्भोविज्ञेयःससाक्षाद्वटरूपधृक् ॥ तत्समीपेद्विजान्भक्त्यासम्भोज्याक्षयपुण्यभाक् ॥ ५२ ॥ यत्रलक्ष्मीपतिःसाक्षाद्वैकुण्ठादेत्यमानवान् ॥ श्रीमाधवस्वरूपेणनयेद्विष्णोःपरम्पदम् ॥ ५३ ॥ श्रुतिभिःपरिपठ्येतेसिताऽसितसरिद्वरे ॥ तत्राप्लुताङ्गाह्यमृतंभवन्तीतिविनिश्चितम् ॥ ५४ ॥ शिवलोकाद्ब्रह्मलोकादुमालोकवरात्पुनः ॥ कुमारलोकाद्वैकुण्ठात्सत्यलोकात्समन्ततः ॥ ५५ ॥ तपोजनमहर्भ्यश्चसर्वेस्वर्लोकवासिनः ॥ भुवोलोकाच्चभूर्लोकान्नागलोकात्तथाऽखिलात् ॥ ५६ ॥ अचलाहिमवन्मुख्याःकल्पवृक्षादयोनगाः ॥ स्नातुंमाघेसमायान्तिप्रयागमरुणोदये॥५७॥ दिगङ्गनाःप्रार्थयन्तियत्प्रयागानिलानपि ॥ तेपिनःपावयिष्यन्तिकिंकुर्मःपङ्गवोवयम् ॥ ५८ ॥ अश्वमेधादियागाश्चप्रयागस्यरजःपुनः ॥ तुलितंब्रह्मणापूर्वंनतेतद्रजसासमाः ॥ ५९ ॥ मज्जागतानिपापानिबहुजन्मार्जितान्यपि ॥ प्रयागनामश्रवणात्क्षीयन्तेऽतीवविह्वलम् ॥ ६० ॥ धर्मतीर्थमिदंसम्यगर्थतीर्थमिदंपरम् ॥ कामिकंतीर्थमेतच्चमोक्षतीर्थमिदं

जनलोक महर्लोक व स्वर्लोकके वासी और भुवर्लोक भूर्लोक तथा संपूर्ण पाताललोकसेभी ॥५६॥ हिमवान् आदि पर्वत कल्पतरु आदि वृक्ष माघ मासमें अरुणोदय समय में प्रयाग नहाने आते हैं ॥५७ ॥ व दिशा रूप स्त्रियां जिस प्रयाग के पवनको प्रार्थतीहैं कि येभी हमको पवित्र करेंगे क्याकरें हम पदरहितहैं॥५८॥ और अश्वमेधादि यज्ञों व प्रयाग की धूलिको ब्रह्माने पहले तौला परन्तु वे उस धूलिके बराबर न भये॥५९ ॥मज्जाके मध्य पैठे बहुत विह्वलहो पापभी प्रयागका नाम सुनने से नशते हैं॥ ६० ॥

निश्चय करके यह अर्थ धर्म काम और मोक्षका उत्तम तीर्थहै॥ ६१॥ ब्रह्महत्यादि पाप तौलौं प्राणियों में गर्जते हैं जौलौं जन माघमासमें पापहारी प्रयागमें नहीं नहातेहैं ६२॥ और विष्णुके उस प्रसिद्ध सच्चिदानंद परम पदको पंडित लोग देखतेहैं यह जो वेदोंमें बारबार पढ़ाजाताहै उसका साधन होने से प्रयागही वहहै ॥ ६३ ॥ व रजोगुणी ब्रह्मारूपा सरस्वती तमोगुणी रुद्ररूपा यमुना और सतोगुणी विष्णुरूपा गंगा ये तीनों यहां निर्गुण ब्रह्मको प्राप्त करतीहैं ॥६४॥ ब्रह्मकीगलीमें जाते शुद्धदेह व श्रद्धा और विना श्रद्धासे नहाये जन्तु के लिये यह गङ्गा यमुना संगमकी वेणी सीढ़ी सी है॥ ६५॥ व नाशरहित सुखकी भूमि लोकोंमें प्रसिद्ध लोलार्क वा बिन्दुमाधव दोनों

ध्रुवम् ॥ ६१ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानितावद्गर्जन्तिदेहिषु ॥ यावन्मज्जन्तिनोमाघेप्रयागेपापहारिणि ॥ ६२ ॥ तद्विष्णोःपरमंपदंसदापश्यन्तिसूरयः ॥ एतद्यत्पठ्यतेवेदेतत्प्रयागंपुनःपुनः ॥ ६३ ॥ सरस्वतीरजोरूपातमोरूपाकलिन्दजा ॥ सत्त्वरूपाचगङ्गात्रनयन्तिब्रह्मनिर्गुणम् ॥ ६४ ॥ इयंवेणीहिनिःश्रेणीब्रह्मणोवर्त्मयास्यतः ॥ जन्तोर्विशुद्धदेहस्यश्रद्धाऽश्रद्धाप्लुतस्यच ॥ ६५ ॥ काशीतिकाचिदबलाभुवनेषुरूढालोलार्ककेशवविलोलविलोचनाच ॥ तद्दोर्युगञ्चवरणासिरियंतदीयावेणीतियाऽत्रगदिताऽक्षयशर्मभूमिः ॥ ६६ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ सुधर्मिणिगुणांस्तस्यकोत्रवर्णयितुंक्षमः ॥ तीर्थराजप्रयागस्यतीर्थैःसंसेवितस्यच ॥ ६७ ॥ पापिनांयानिपापानिप्रसह्यक्षालितान्यहो ॥ तच्छुद्ध्यैसेव्यतेतीर्थैःप्रयागमधिकंततः ॥ ६८ ॥ प्रयागस्यगुणाञ्ज्ञात्वाशिवशर्माद्विजःसुधीः ॥ तत्रमाघमुषित्वाऽथप्रापवाराणसींपुरीम् ॥ ६९ ॥ प्रवेशएवसंवीक्ष्यसदेहलिविनायकम् ॥ अन्वालिम्पत्ततोभक्त्यासाज्यसिन्दूरकर्दमैः ॥ ७० ॥ निवेद्यमोदकान्प

चञ्चल नेत्रहैं जिसके व वरणा और असि नदी दोनों बाहैं हैं जिसकी ऐसी कोई अकथनीया काशी स्त्री उसकी यह बालोंकी वेणी है जो इस प्रयाग में कहीगई है॥ ६६ ॥ अगस्तिजी बोले, कि हे सुधर्मिणि ! तीर्थ समूहोसे सेवित तीर्थराज उस प्रयाग के गुण कहनेको कौन समर्थ है ॥ ६७ ॥ क्योंकि अन्य तीर्थोंमें जे पापियोंके पाप हठ से धोये गयेहैं तदनन्तर उनकी शुद्धिके लिये वे प्रयाग को सेवतेहैं उससे वह अधिक है ॥ ६८ ॥ और सुबुद्धि शिवशर्म्मा ब्राह्मण प्रयाग के गुणोंको जान तहां माघ महीने में बस उसके बाद काशीपुरी को गया ॥ ६९ ॥ उसने पुरी में पैठतेही देहली विनायक को देख तदनन्तर भक्ति करके घीके साने सेंदुर के कीचसे लेपा ॥ ७० ॥

व पांच लड्डुवों की नैवेद्य लाया जोकि बड़े विघ्नसमूहों से अपने दासों को बचातेहैं उसके बाद क्षेत्र के भीतर प्रवेश किया ॥ ७१ ॥ फिर वह आ मणिकर्णिकामें शिव गणों के समान पाप पुण्य कर्म्म रहित मनुष्यसमूहों से घिरी उत्तरवाहिनी गंगा को देख ॥ ७२ ॥ विमल जल में वस्त्र समेत शीघ्र नहा ब्रह्मादि देव मधुच्छन्द आदि ऋषि सनकादिक मनुष्य कव्यवाडनलादि दिव्य पितृ और अपने पितरों को तर्पणकर विशुद्ध बुद्धि को गहे कर्मकाण्डका पण्डित वह ॥ ७३ ॥ शीघ्रही पांचतीर्थ कर याने वरणा असि संगम पञ्चनद मणिकर्णिका और दशाश्वमेध में जा तदनन्तर अपने धन के अनुसार विश्वनाथको पूज फिर फिर शिवकी पुरी को देख

अवञ्चयन्तंनिजंजनम् ॥ महोपसर्गवर्गेभ्यस्ततोऽन्तःक्षेत्रमाविशत् ॥ ७१ ॥ आगत्यदृष्ट्वामणिकर्णिकायामुदग्वहां स्वर्गतरङ्गिणींसः ॥ सञ्चीणपुण्येतरपुण्यकर्मणांनृणांगणैःस्थाणुगणैरिवावृताम् ॥ ७२ ॥ सचैलमाप्लुत्यजलेऽमलेऽमलेऽविलम्बमालम्बितशुद्धबुद्धिः ॥ सन्तर्प्यदेवर्षिमनुष्यदिव्यपितॄन्पितॄन्स्वान्सहिकर्मकाण्डवित् ॥ ७३ ॥ विधाय चद्राक्सहिपञ्चतीर्थिकांविश्वेशमाराध्यततोयथास्वम् ॥ पुनःपुनर्वीक्ष्यपुरींपुरारेरिदंमयालोकिनवेतिविस्मितः ॥ ७४॥ नस्वःपुरीसात्वनयापुरासमंसमञ्जसापिप्रतिसाम्यमावहेत् ॥ प्रबन्धभेदाद्व्यतिरिक्तपुस्तकप्रतिर्यथासह्लिपिभेदभङ्गतः ॥ ७५ ॥ पयोपियत्रत्यमचिन्त्यवैभवंदिविस्थितासाधुसुधाप्यतेमुधा ॥ तथाप्रसूतेस्तुपयोधरेपयोनपीयतेपीतमिदंयदिक्कचित् ॥ ७६ ॥ अनामयाश्चिन्तनयानयेशितुर्जनामनाग्यत्रविनापिनाकिना ॥ नकर्मसत्कर्मकृतोपिकुर्व

यों विस्मित हुआ कि इस अविमुक्त क्षेत्रको मैंने कभी देखा या नहीं ॥ ७४ ॥ वह प्रसिद्ध स्वर्गपुरी अमरावती, प्रबन्धके भेदसे याने वहां के वासियों का बहुत बन्धन यहां वालों का नहीं अथवा उसको ब्रह्माजी कल्प कल्प में रचते हैं इसको शिवने एकही बार रचा उसमें थोड़े रत्न इसमें अनेक इस भेदसे भले विचार करके भी इस काशीपुरी की बराबरी नहीं पहुँचती जैसे अध्यात्मशास्त्र के भाग के भेदसे कामादि शास्त्रोंकी पोथी समताको नहीं प्राप्तहोती है ॥ ७५ ॥ व जहां का दूधभी अचिन्त्य सामर्थ्यवाला याने मुक्ति देनेमें समर्थहै तो स्वर्ग में टिका अमृत वृथा प्रार्थाजाताहै जैसे जो कहीं यह दूध पियागया हो तो वैसा माताके कुच में नहीं पीताहै ॥ ७६ ॥ जहां

सुकर्मकर्ता भी वेदों के स्वामी शिव के ध्यान से अरोगहो विश्वनाथ के विना कुछ काम नहीं करते याने कर्म्मों को शिव में समर्पते हैं इस से सब भांति शिव के गणोंका अनुकरण करते हैं ॥ ७७ ॥ इससे यह काशी किसी से नहीं कही कहजाती जिससे यहां टिके प्राणी के मरणकाल में फल देने को सम्मुख शिवजी पूर्व पुण्य समूहो से ओंकार मंत्रको अङ्गीकार कराते हैं ॥ ७८ ॥ जिससे संसारी जीवो के लिये चिंतामणि के समान शिवजी यहां मरणसमय में अकस्मात् सज्जनों के काने या जनों के दहिने काने में ओंकार या रामषडक्षरमंत्र को कहते हैं उससे यह मणिकर्णिका इस नाम से गाई जाती है॥ ७९ ॥ व मोक्ष लक्ष्मी के सिंहासनकी मणि या मुक्तिदायक स्थानों में मणि के समान श्रेष्ठ और मुक्ति लक्ष्मी के पदकमलों की कर्णिका याने मध्य वेदी के बराबर है उससे जिसको जन मणिकर्णिका कहते वह यहहै॥ ८० ॥ जरायुज (जे

तेऽनुकुर्वते सर्वगणांश्च सर्वतः ॥७७॥ नवर्ण्यते कैः किल काशिकेयं जन्तोः स्थितस्यात्र यतोऽन्तकाले ॥ पचेलिमैः प्राक्तनपुण्यभारैरोङ्कारमोङ्कारयतीन्दुमौलिः ॥ ७८ ॥ संसारिचिन्तामणिरत्र यस्मात्तं तारकं सज्जनकर्णिकायाम् ॥ शिवोऽभिधत्ते सहसान्तकाले तद्गीयते सौ मणिकर्णिकेति ॥ ७९ ॥ मुक्तिलक्ष्मीमहापीठमणिस्तच्चरणाब्जयोः ॥ कर्णिकेयं ततः प्राहुर्यां जना मणिकर्णिकाम् ॥ ८० ॥ जरायुजाण्डजोद्भिज्जाः स्वेदजा ह्यत्र वासिनः ॥ नसमा मोक्षभाजस्ते त्रिदशैर्मुक्तिदुर्दशैः ॥ ८१ ॥ ममजन्म वृथा जातं दुर्वृत्तस्य जडात्मनः ॥ नाद्य यावन्मयैक्षिष्ट काशिका मुक्तिकाशिका ॥ ८२ ॥ पुनः पुनश्च तत्क्षेत्रमतिथीकृत्य नेत्रयोः ॥ विचित्रं च पवित्रं च तृप्तिं नाधिजगाम ह ॥ ८३ ॥ सप्तानां च पुरीणां हि धुरीणामवयाम्यहम् ॥ वाराणसीं सुनिर्वाणविश्राणनविचक्षणाम् ॥ ८४ ॥ तथापि न चतस्रोऽन्या मया दृग्गोचरीकृताः ॥ तासां प्रभावं विज्ञायाप्यागमिष्या

ओझरी से घिरे माता के पेट से उत्पन्न) अंडज (अंडासे) व भूमिको फोड़ निकलते वे उद्भिज्ज और स्वेदज (जे पसीना से उपजते) ये चार प्रकार के देहधारी, जे यहां बसते हैं वे मुक्ति के भागी हो मोक्ष दुर्लभ है जिनको उन देवों के समान नहीं किंतु अधिक हैं ॥ ८१ ॥ तौलौं मुझ कुकर्मी जड़बुद्धी का जन्म वृथा हुवा जौलौं मोक्षकी प्रकाशिका काशिकापुरी को न देखा ॥ ८२ ॥ यों बारबार उस विचित्र पवित्र क्षेत्र को आंखों के विषय कर आनंद से वह ब्राह्मण तृप्ति को न पहुँचा ॥ ८३ ॥ और अच्छी मुक्ति देने में निपुण व सातो पुरियों में श्रेष्ठ काशी को मैं जानताहूं ॥ ८४ ॥ तोभी अन्य चार पुरियां मुझ से नहीं देखीगईं उनका प्रभाव जान मैं फिर यहां

आऊंगा ॥ ८५ ॥ यह विचार निश्चय वर्षभर रोज रोज तीर्थयात्रा करता हुवा भी वह सब तीर्थोंको न पहुँचा और काशी में तिल तिलपर तीर्थ हैं ॥ ८६ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे देवि! अनेक प्रमाणोंसे इस क्षेत्रके उत्तम गुणोंको जानता भीतर निष्ठावाला वह ब्राह्मण तो भी काशीसे निकला यह आश्चर्य्यहै ॥ ८७ ॥ परन्तु, हे सुन्दरि ! प्रमाण समेत शास्त्र क्याकरें भवितव्यमहामाया रोंकनेको कौन समर्थहै ॥ ८८ ॥ऊंचे स्थान में टिके भी चले जलकी नाईं चित्तको कौन उलटे जिससे उनदोनोका स्वभावही चञ्चलहै ॥८९॥ उसके बाद क्रमसे देश देशान्तरों को चलताहुआ वह शिवशर्म्मा, कलि व कालसे रहित महाकालकी पुरीमें पहुँचा ॥९०॥ जो कल्प कल्पमें जगत्को भखे

स्यहंपुनः ॥ ८५ ॥ तीर्थयात्रांप्रतिदिनंकुर्वन्नूनंसवत्सरम् ॥नप्रापसर्वतीर्थानितीर्थंकाश्यान्तिलेतिले ॥ ८६ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ जानन्नपिगुणान्देविक्षेत्रस्यास्यपरान्द्विजः ॥ नानाप्रमाणैःप्रवणोनिरगात्सतथाप्यहो ॥ ८७ ॥ किंकुर्वन्तिहि शास्त्राणिसप्रमाणानिसुन्दरि ॥ महामायांभवित्रींतांकोनिवारयितुंक्षमः ॥ ८८ ॥ कःसमुच्चलितंचेतस्तोयंवासंप्रतीपयेत् ॥ प्रोच्चस्थानस्थितमपिस्वभावोयच्चलस्तयोः ॥ ८९ ॥ शिवशर्माव्रजन्सोथदेशाद्देशान्तरंक्रमात् ॥ महाकालपुरींप्रापकलिकालविवर्जिताम् ॥ ९० ॥ कल्पेकल्पेखिलंविश्वंकालयेद्यःस्वलीलया ॥ तंकालंकलयित्वायो महाकालोभवत्किल ॥ ९१ ॥ पापादवन्तीसाविश्वमवन्तीतिनिगद्यते ॥ युगेयुगेन्यनाम्नीसाकलावुज्जयिनीतिच ॥ ९२ ॥ विपन्नो यत्रवैजन्तुःप्राप्यापिशवतांस्फुटम् ॥ नपूतिगन्धमाप्नोतिसमुच्छ्वयतिनकचित् ॥ ९३ ॥ यमदूतानयस्यांहिप्रविशन्तिकदाचन ॥ परःकोटीनिलिङ्गानितस्यांसन्तिपदेपदे ॥ ९४ ॥ हाटकेशोमहाकालस्तारकेशस्तथैवच ॥ एकंलिङ्गं त्रिधाभूत्वात्रिलोकींव्याप्यसंस्थितम् ॥ ९५ ॥ ज्योतिःसिद्धवटेज्योतिस्तेपश्यन्तीहयेद्विजाः ॥ अथवाश्रीमहाकाल

उसकालको भी अपनी लीला से खा जो शिवजी महाकालहुये॥९१॥ व पापसे सबको बचाती वह अवंती यों कहातीहै और युग युगमें अन्य नामवाली वह कलियुगमें उज्जयिनी नामसे प्रसिद्धहै ॥९२॥ जहां मराहुआ जन्तु मुर्दापनको पहुँच भी दुर्गन्धको कहीं नहीं प्राप्तहोता न फूलताहै ॥ ९३ ॥ व यमदूत जिसमें कभी नहीं पैठते क्योंकि वहां पगपगमें करोड़ोंसे अधिक शिवलिंगहैं ॥ ९४ ॥ और हाटकेश्वर महाकाल वैसेही तारकेश नामसे तीन प्रकारका हो एकही लिंग त्रिलोकमें व्याप भलीभांति से टिकाहै ॥ ९५॥ इस

उज्जयिनी में जे ब्राह्मणादिवर्ण हैंवे सिद्धवटमें जो ज्योतिर्लिङ्ग उस ज्योति को देखते और जे महाकाल के दर्शन करतेहैं वे पुण्यों के समूह हैं ॥ ९६ ॥ जिन कष्टवाले लोगोंनेभी कहीं उसमहाकाल लिंगको देखावे न महापापोंसे छुवेगये व न यमगणोंसे देखेगये ॥ ९७ ॥ सूर्य्य रथकेघोड़े आकाशमें महाकालके मण्डपकी पताकाओंके अग्रभागों से परसित पीठवाले हो क्षणभर अरुण (सूर्य्यसारथी) की कोडा घात को नाशते हैं इससे यह सूचित हुवा कि वह मन्दिर बहुत ऊंचा है ॥ ९८ ॥ व महाकाल महाकाल महाकाल यों निरन्तर जपते जनको श्रीकृष्ण और शिवजी सुमिरते हैं ॥ ९९ ॥ वह ब्राह्मण ऐसे महाकाल को पूज वहां से या तदनन्तर त्रिलोक

द्रष्टारःपुण्यराशयः ॥ ९६ ॥ महाकालस्यतल्लिङ्गं येर्दृष्टंकष्टिभिःक्वचित ॥ नस्पृष्टास्तेमहापापैर्नदृष्टास्तेयमोद्भटैः ॥ ९७ ॥ महाकालपताकाग्रैः स्पृष्टपृष्ठास्तुरङ्गमाः ॥ अरुणस्यकशाघातं क्षणंविश्रमयन्तिखे ॥ ९८ ॥ महाकालमहाकाल महाकालेतिसन्ततम् ॥ स्मरतःस्मरतोनित्यं स्मरकर्तृस्मरान्तकौ ॥ ९९ ॥ एवमाराध्यभूतेशं महाकालंततोद्विजः ॥ जगामनगरींकान्तीं कान्तांत्रिभुवनादपि ॥ १०० ॥ लक्ष्मीकान्तःस्वयंसाक्षाज्जन्तूंस्तत्रनिवासिनः ॥ श्रीकान्तानेवकुरुते परत्रेहचनिश्चितम् ॥ १०१ ॥ दृष्ट्वाकान्तींकान्तिमतीं कान्तिमद्भिर्निषेविताम् ॥ कान्तिमानभवत्सोपि नाकान्तिस्तत्रकस्यचित् ॥ १०२ ॥ तत्रकृत्यञ्चयत्कृत्यं तत्कृत्वासर्वकृत्यवित् ॥ सप्तरात्रमुषित्वातु ययौद्वारवतींपुरीम् ॥ १०३ ॥ चतुर्णामपिवर्गाणां यत्रद्वाराणिसर्वतः ॥ अतोद्वारवतीत्युक्ता विद्वद्भिस्तत्त्ववेदिभिः ॥ १०४ ॥ अस्थीन्यपिचजन्तूनां यत्रचक्राङ्कितान्यहो ॥ किंचित्रंतत्रयत्रस्युः शङ्खचक्राङ्कितैःकरैः ॥ १०५ ॥ अन्तकःशिक्षयत्येवं निजदूता

से भी छबीली कांती पुरी को गया ॥ १०० ॥ जहां साक्षात् आप विष्णुजी बसतेहैं जन्तुओंको इस उस लोकमें लक्ष्मीपति करतेहैं यह निश्चय कियागयाहै॥ १०१ ॥ श्रीमान् जनोंसे सेवित शोभावाली काञ्चीपुरीको देख वहभी सुन्दर छबीलाभया क्योंकि वहां किसीकी अशोभा नहीहै॥ १०२ ॥ और जो तहां करने योग्यकर्म्म है उसको कर कर्मों का पण्डित वह द्वारकापुरी को गया ॥ १०३ ॥ जहां धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चतुर्वर्गों के द्वार सब ओर है इसकारण तत्त्वज्ञानियों ने द्वारवती कहा ॥ १०४ ॥ आश्चर्य्य है कि जहां जन्तुओ के हाड़भी चक्रसे चिह्नित है तहां जो प्राणी शङ्ख चक्रादिको से अङ्कित हाथों से विष्णुरूप हों तो क्या विचित्र है॥ १०५ ॥

यानेसीढ़ी कहाहै क्योंकि इससें नहाये जन उस विष्णु के परमपदको जाते हैं॥ ११६ ॥ तीर्थमें उपवास और राति में जागरणकर प्रातःकाल गंगामें नहाय सब तर्पण योग्यों का भलीभांति तर्पणकर॥ ११७॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ ने जौलो पारण करनेको चाहा तौलों जूड़ी से दबाहुआ अत्यन्त व्याकुल हो वह कांपनेलगा॥ ११८ ॥ एकतो अकेला व परदेशी था दूसरे ज्वरसे पीड़ित इससे बड़ी चिन्ताको पहुँचा कि यह क्या प्राप्तहुआ॥ ११९॥ व धन और जीनेमें आशाछोंड़कर चिन्तासमुद्र में ऐसा मग्नहुआ कि जैसे अथाह महासागर में टूटी नौकावाला नावोंका बनिया डूबताहै ॥ १२० ॥ कहां मेरा स्थान कहां स्त्री कहां पुत्र कहां वह धन कहां वह विचित्र महल और कहां वह पुस्तकों का समूहहै॥ १२१॥ अभी आयु

हरिद्वारंजगुर्जनाः ॥ अत्राप्लुतानरायान्ति तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ ११६ ॥ तीर्थोपवासकंकृत्वा निशाजागरणंतथा ॥ प्रातःस्नात्वाचगङ्गायां तर्प्यान्सन्तर्प्यसर्वतः॥११७॥ यावत्सपारणंकर्तुमियेषद्विजसत्तमः ॥ तावच्छीतज्वराक्रान्तश्च कम्पेऽत्यर्थमातुरः ॥ ११८ ॥ वैदेशिकस्तथैकाकी तथाऽतिज्वरपीडितः ॥ चिन्तामवापमहतीं किमेतत्समुपस्थितम् ॥ ११९ ॥ चिन्तार्णवेनिमग्नोभूत्त्यक्ताशोजीवितेधने ॥ सांयात्रिकइवागाधे भिन्नपोतोमहार्णवे ॥ १२० ॥ क्वक्षेत्रंक्वकलत्रं मे क्वपुत्राःक्वचतद्वसु ॥ क्वतद्विचित्रंवैहर्म्यं क्वसापुस्तकसम्भृतिः ॥ १२१ ॥ अद्यापिनायुःपर्याप्तं पलितंनतथामयि ॥ ज्वरोयंदारुणःप्राप्तः कालश्चातिदारुणः ॥ १२२ ॥ मृत्युर्मूर्ध्निकृतावासो वासोदूरेव्यवस्थितः ॥ अग्नौगृहोपरिप्राप्ते कूपन्तुखनयेदिह ॥ १२३ ॥ किमेभिश्चिन्तनैर्व्यर्थैस्तितापकरैर्मम ॥ चिन्तयामिहृषीकेशं शिवदंशिवमेवच ॥ १२४ ॥ अथवामुक्त्युपायोवै मयैकःसदनुष्ठितः ॥ मुक्तिपुर्यस्तुसप्तैताः स्वनेत्रविषयीकृताः ॥ १२५ ॥ स्वर्गापवर्गयोरेकः सा

नहीं पूरीभई व बुढ़ाई नहीं आईहै परन्तु यह दारुण ज्वर प्राप्तहुआहै और कालकी जाननेहारी बड़ीदारुण मृत्यु भी॥ १२२॥ माथमेंचढ़ी है और घर दूरहै घरपर आग आनेसे यहां क्या कुवांखनें॥ १२३॥ व जो मेरे तापकर्ताहैं इन बिन प्रयोजनोंके चिन्तनों सेक्याहै इससे कल्याण कारी विष्णु व शिवको चिन्तताहूँ ॥ १२४॥ अथवा मैंने मुख्य मुक्तिका उपाय साधाहै जोकि येसातोपुरियां अपने आंखोंके विषय कीगईहैं॥ १२५॥ क्योंकि स्वर्ग और मोक्षमें एक निश्चयसे पण्डितोंको साधना चाहिये उन दोनोंमें एकके भी न साधने

यमराजजी अपने दूतों को यों बारबार सिखाते कि जो द्वारका का नाम भी लेते वे त्यागने योग्य हैं ॥ १०६ ॥ वह सुगन्ध चन्दन में कहां सोने में वह रंग कहां और तीर्थ में भी वह पवित्रता कहां जैसे वहां के गोपीचन्दन में है ॥ १०७ ॥ हे दूतो ! सुनो जिसका माथ गोपीचन्दन से चिह्नितहो उसको जलती आगकी नाई यत्न से दूर तजो ॥ १०८ ॥ हे भटो ! जे तुलसीमाला से भूपित जे तुलसी नामजापी जे तुलसीवनको पालते वे दूर से त्याज्य हैं ॥ १०९ ॥ युग युग में द्वारका के रत्नों को चोराता समुद्र आजभी लोक में रत्नाकर कहाता है ॥ ११० ॥ व कालसे प्रेरित जे जन्तु द्वारका मे मरते वे वैकुण्ठ में पीले पट पहने और चार बांहवाले होते हैं ॥ १११ ॥

न्मुहुर्मुहुः ॥ तेत्याज्यायैर्द्वारवत्या नामापिपरिगृह्यते ॥ १०६ ॥ श्रीखण्डेक्कसआमोदः स्वर्णेवर्णःकताहशः ॥ तत्पावित्र्यंकवैतीर्थे तद्गोपीचन्दनेयथा ॥ १०७ ॥ दूताःशृण्वन्तुयद्भालं गोपीचन्दनलाञ्छितम् ॥ ज्वलदिङ्गलवत्सोपि दूरेत्याज्यःप्रयत्नतः ॥ १०८ ॥ तुलस्यलङ्कृतायेये तुलसीनामजापकाः ॥ तुलसीवनपालाये तेत्याज्यादूरतोभटाः ॥ १०९ ॥ युगेयुगेद्वारवत्या रत्नानिपरितोमुषन् ॥ अब्धीरत्नाकरोद्यापि लोकेषुपरिगीयते ॥ ११० ॥ द्वारवत्यांम्रियन्तेये जन्तवःकालनोदिताः ॥ चतुर्भुजाःस्युर्वैकुण्ठे तेपीताम्बरधारिणः ॥ १११ ॥ तत्रापिसन्तर्प्यपितॄन्ससदेवर्षिमानवान् ॥ तत्रतेषुचतीर्थेषु सस्नौसर्वेष्वतन्द्रितः ॥ ११२ ॥ ततोमायापुरींप्राप्तो दुष्प्रापांपापकारिभिः ॥ यत्रसावैष्णवीमाया मायापाशैर्नपाशयेत् ॥ ११३ ॥ केचिद्वदुर्हरिद्वारं मोक्षद्वारंततःपरे ॥ गङ्गाद्वारञ्चकेप्याहुः केचिन्मायापुरींपुनः ॥ ११४ ॥ यतोविनिर्गतागङ्गा ख्याताभागीरथीभुवि ॥ यन्नामोच्चारणात्पुंसां पापंयातिसहस्रधा ॥ ११५ ॥ वैकुण्ठस्यैकसोपानं

वहां जाकर देवर्षि मनुष्यों सहित पितरों का तर्पण कर फिर वहां उन प्रसिद्ध सब तीर्थों में आलसरहित होताहुआ उसने नहाया ॥ ११२ ॥ व वहां से मायापुरी में प्राप्तहुआ जोकि पापियों को दुर्लभ है व जहां विष्णुकी माया मायाफांससे नहीं फांसतीहै ॥ ११३ ॥ उसको कोई हरिद्वार कोई मोक्षद्वार कोई गङ्गाद्वार और कोई मायापुरी कहते है ॥ ११४ ॥ जिससे निकली गङ्गा भागीरथी नामसे पृथिवी में प्रसिद्ध है जिनका नाम कहनेसे पापीजनोंका पाप सहस्रभांति से भागता है ॥ ११५ ॥ लोगोंने हरिद्वारको वैकुण्ठका सोपान

से पीछेतापसे तपताहै॥१२६॥व मेरी इस असावधानी चिन्तासे क्याहै संग्रामनमें व तीर्थमें मरना श्रेष्ठहै जैसो मेरा होताहै॥१२७॥ क्या अभागीकी नाईं कहीं गलीमें अबहीं मरूं यहां गङ्गामे मरताहूँ मूर्खकी नाईं आज मुझे चिन्ता क्या है॥१२८॥व चर्म हाडोंकी राशि रूपइस देह करके यहीं मरनेरो मैं मुक्तिको निश्चय पाऊंगा॥१२६॥ यो चिन्तना करते उसके बडी दारुण पीड़ाहुई व करोड़ बीछि डसे की जो दशा होतीहै उसको वह प्राप्तभई॥१३०॥मैं कहां हूं कौनहूँ व कौन नहीं यह सब सुध बिसरगई व चौदह दिनतक टिक जौलों मरणको प्राप्तहुआ॥ १३१ ॥ तौलों वैकुण्ठलोकसे विमान आया जिसमें गरुड़से चिह्नित ऊंची ध्वजाहै ॥१३२॥ और जोकि सोनेके रेशमीवस्त्रवाली अच्छी कन्यायें

ध्ये।हिविदुषाध्रुवम् ॥ तयोरसाधनेपश्चात्सन्तापेनचतप्यते॥ १२६ ॥ अथवाचिन्तयाकिंमे त्वनयादुरवस्थया ॥ रणेवा मरणंश्रेयस्तीर्थेवात्रयथाममम ॥ १२७ ॥ किमहंमन्दभागीव रथ्यांकापिम्रियेधुना ॥ भागीरथ्यांम्रियेचाद्य काचिन्ता ममभूढवत् ॥ १२८ ॥ चर्मास्थिसञ्चयेनाहमनेनवपुषाध्रुवम् ॥ प्राप्स्यामिनिधनादत्रासिद्धिंनैःश्रेयसींध्रुवम् ॥ १२९ ॥ एवं चिन्तयतस्तस्यपीडासीदतिदारुणा ॥ कोटिवृश्चिकदष्टस्ययावस्थातामवापसः ॥ १३० ॥ स्मर्तव्यंविस्मृतंसर्वंकाहंको हंनवेतिच ॥ दिनानिसप्तसप्तेतिस्थित्वापञ्चत्वमागतः ॥ १३१ ॥ तावद्वैकुण्ठभुवनाद्विमानंसमुपस्थितम् ॥ तार्क्ष्यो पलाञ्छितोयत्रध्वजश्चातिसमुच्छ्रितः ॥ १३२ ॥ अधिष्ठितंसुकन्यानांस्वर्णकौशेयवाससाम् ॥ चामरव्यग्रहस्तानांसहस्रे णातिविस्तृतम् ॥ १३३ ॥ पुण्यशीलसुशीलाभ्यांगणाभ्यांचविराजितम् ॥ चतुर्भुजाभ्यांस्वास्याभ्यांकिङ्किणीजाल मालितम् ॥ १३४ ॥ तद्विमानमथारुह्यपीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ अलंचक्रेनभोवर्त्मसद्विजोदिव्यभूषणः ॥ १३५ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसप्तपुरीवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

जिनके हाथ चौर चलानेसे स्थिर नहीं हैं उनके हजारा से न्ढ़ागया व बड़ाभारी है ॥१३३॥व सुन्दर मुखवाले चतुर्भुज पुण्यशील और सुशीलनाम दो गणोंसे शोभित और क्षुद्रघण्टिकाओं के समूह से जिराने सालहुई है ॥ १३४ ॥ तदनन्तर दिव्य गहने पहने पीताम्बरधर चतुर्भुजरूप उस ब्राह्मणने आकाशगलीको भूषितकिया॥१३५॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषानन्देसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेमायापुरीवर्णनन्नामसप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । इस अठयें अध्यायमें कहि पिशाचका श्लोक । गुह्यकगण गंधर्ववर विद्याधर यमलोक ॥लोपामुद्राजी बोलीं कि हे प्राणनाथ! पुण्यपुरीके आधार, पुण्यरूप व आपके मुखकमलसे कही इस कथाको सुन मैं तृप्तिको नहीं जातीहूं ॥ १ ॥ हे स्वामिन्! मोक्षकीपुरी हरिद्वारमें ब्राह्मणोत्तम शिवशर्म्मा मराभी कैवल्य मुक्तिको न प्राप्त हुआ उसका कारण कहो ॥२॥ अगस्त्यजी बोले कि हे प्रियवचनि! इन पुरियों में साक्षात् मोक्ष नहींहै इसी अर्थको उद्देशकर मैंने पहले कथा सुनाहै ॥३॥ हे कांते! पापनाशिनी विचित्र अर्थवाली उस कथाको सुन जो पुण्यशील व सुशीलकरके शिवशर्माके लिये कहीगईहै ॥ ४ ॥ शिवशर्मा बोला कि हे कमलनेत्र पुण्यरूप विष्णुपार्षदो!

लोपामुद्रोवाच ॥ जीवितेशकथामेतांपुण्यांपुण्यपुरीश्रिताम् ॥ नतृप्तिमधिगच्छामिश्रुत्वात्वच्छ्रीमुखेरिताम् ॥ १ ॥ मायापुर्यांमुक्तिपुर्यांशिवशर्माद्विजोत्तमः ॥ मृतोपिमोक्षंनैवापब्रूहितत्कारणंविभो ॥ २ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ साक्षान्मोक्षोनचैतासुपुरीषुप्रियभाषिणि ॥ पुरोद्दिश्यामुमेवार्थमितिहासोमयाश्रुतः ॥ ३ ॥ शृणुकान्तेविचित्रार्थांकथांपापप्रणाशिनीम् ॥ पुण्यशीलसुशीलाभ्यां कथितांशिवशर्मणे ॥ ४ ॥ शिवशर्मोवाच ॥ अयिविष्णुगणौपुण्यौ पुण्डरीकदलेक्षणौ ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोहं प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ५ ॥ ननामयुवयोर्वेद्मिवेद्म्याकृत्याचकिञ्चन ॥ पुण्यशीलसुशीलाख्यौ युवांभवितुमर्हथः ॥ ६ ॥ गणावूचतुः ॥ भगवद्भक्तियुक्तानां किमज्ञातंभवादृशाम् ॥ एतदेवहिनौनाम यदुक्तंश्रीमतात्वया ॥ ७ ॥ यदन्यदपितेचित्ते प्रष्टव्यंतदशङ्कितम् ॥ सम्प्रच्छस्वमहाप्राज्ञ प्रीत्यातत्प्रब्रवावहे ॥ ८ ॥ इतिश्रुत्वासवचनंभगवद्गणभाषितम् ॥ अतिप्रीतिकरंहृद्यंततस्तौप्रत्युवाचह ॥ ९ ॥ द्विजउवाच ॥ कएषलोकोऽल्पश्रीकःस्व

दोनों हाथ जोड़े मैं कुछ विज्ञापना करनेका चाहीहूं ॥ ५ ॥ तुम दोनों जनोंका नाम नहीं जानता व शोभासे कुछ समझताहूं कि आप पुण्यशील व सुशीलनामक होने योग्यहौ ॥ ६ ॥ गणोंने कहा कि,आप सरीखे भगवद्भक्तोंका क्या नहीं जानाहै यही हमारा नामहै जो श्रीमान् तुमने कहाहै ॥७॥ हे महापण्डित! जो और भी तुम्हारे मनमें पूछने योग्यहो उसको निस्सदेह पूछो प्रसन्नता से उसको हम कहैंगे ॥ ८ ॥ विष्णुगणोंके कहे उस वचनको सुन वह उनसे सुठि सुखकारी प्यारी वाणी बोला कि ॥९॥

थोडी पुण्यवाले जनोंकी देहैहैं जिसमें वह थोड़ी संपत्ति या शोभासंयुत यह कौन लोक है ये कुरूपजन कौन हैं यह मेरे आगे कहो ॥१०॥ गण बोले कि यह पिशाच लोक है यहां मांसभक्षी बसते हैं जे देकर पछिताते व नाहीं नाहीं करदेते भी हैं ॥ ११ ॥ हे मित्र ! प्रसंग से एक बार शिवको पूज अशुद्ध मन थोड़ी पुण्य थोड़ी लक्ष्मीवाले वे ये पिशाच हैं ॥ १२ ॥ उससे आगे जाता ब्राह्मण, हृष्ट पुष्ट लोगोसे संयुत उसको देखता भया जो कि तुँदारे व मोटे मुख व मेघ से गंभीर वचन व बहुत रोमवाले और काले जनोंसे बसा लोक है ॥ १३ ॥ उसने पूंछा कि हे गणो ! ये लोग कौनहैं व यह कौन लोक है किस पुण्य से है कहो ॥ १४ ॥ गण बोले कि

ल्पपुण्यजनाकृतिः ॥ कइमेविकृताकाराब्रूतमेतन्ममाग्रतः ॥ १० ॥ गणावूचतुः ॥ अयंपिशाचलोकोऽत्रवसन्तिपि
शिताशनाः ॥ दत्त्वानुतापभाजोये नोनोकृत्वाददत्यपि ॥ ११ ॥ शिवंप्रसङ्गतोभ्यर्च्यसकृत्त्वशुचिचेतसः ॥ अल्प
पुण्याल्पलक्ष्मीकाः पिशाचास्तइमेसखे॥ १२ ॥ ततोगच्छन्ददर्शाग्रे हृष्टपुष्टजनावृतम् ॥ पिचण्डिलैःस्थूलवक्त्रैर्मेघ
गम्भीरनिःस्वनैः ॥ १३ ॥ लोकैरध्युषितंलोकं श्यामलाङ्गैश्चलोमशैः ॥ गणौकथयतांकेमीको लोकःपुण्यतःकुतः ॥
१४ ॥ गणावूचतुः ॥ गुह्यकानामयंलोकस्त्वेतेवैगुह्यकाःस्मृताः ॥ न्यायेनोपार्ज्यवित्तानि गूहयन्तिचयेभुवि॥ १५ ॥
स्वमार्गगाधनाढ्याश्च शूद्रप्रायाःकुटुम्बिनः ॥ संविभज्यचभोक्तारः क्रोधासूयाविवर्जिताः॥ १६ ॥ नतिथिंनवारञ्च
संक्रान्त्यादिनपर्वच ॥ नाधर्मंनचधर्मंच विदन्त्येतेसदासुखाः॥ १७ ॥ एकमेवहिजानन्तिकुलपूज्योहियोद्विजः ॥ त
स्मैगाःसंप्रयच्छन्तिमन्यन्तेतद्वचःस्फुटम्॥ १८ ॥ समृद्धिभाजोह्यत्रापितेनपुण्येनगुह्यकाः ॥ भुञ्जतेस्वर्गसौख्या

यह गुह्यकोंका लोक है ये गुह्यक कहाते हैं जे न्यायसे धन, कमा भूमि में गुप्त गाड़ते हैं ॥ १५ ॥ अपनी गलीमें चलते धनी, शूद्रों के समान, कुटुंबवाले, कोप ईर्षा निंदादि दोषोंसे रहितहो बांटकर खाते पीते हैं ॥ १६ ॥ व तिथि दिन संक्रांति आदि पर्व धर्म और अधर्मको नहीं जानते हैं ये सदा सुखीहैं ॥ १७ ॥ केवल एक बात जानते हैं कि जो ब्राह्मण कुलपूज्यहो उसको गोदान देते व उसका कहामानतेहैं यह प्रकटहै ॥१८॥ यहां भी उस पुण्यसे समृद्धिसेवी गुह्यक लोग सब ओर से

निडरहो देवोंकीनाई स्वर्गके सुखोंको भोगते हैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर आगे आँखों के सुखदायक लोककी देखकर उसने पूंछा हे गणो ! ये लोग कौनहैं व यह लोककौन है क्यानामहै कहो ॥२०॥ विष्णुके गण बोले कि यह गन्धर्वोंका लोक है ये गन्धर्व शुभव्रती देवोंके गायकहो चरण चलाते व स्तुति पढ़ते हैं ॥ २१ ॥ व गीत जानने वाले हैं गानासे राजाओं को सन्तुष्ट करते हैं धनसे मोहितहो धनियों को प्रशंसते हैं ॥ २२ ॥ व राजाओं की प्रसन्नतासे मिले अच्छेवस्त्र धन अनेक चीजें व कपूरादि सुगन्धोंको ॥ २३ ॥ ब्राह्मणोंके लिये देतेहैं व राति और दिनमें गीतगाते हैं उनका मनगान्धर्ववेदमें बसताहै वे नाट्यशास्त्र में परिश्रम करनेवाले हैं ॥२४॥ उस पुण्यसे इन

निर्देववच्चाकुतोभयाः ॥१६॥ ततोविलोकयामासलोकंलोचनशर्मदम् ॥ केऽमीजनास्त्वसौलोकःकिंनामावदतांगणौ ॥ ॥ २० ॥ गणावूचतुः ॥ गान्धर्वस्त्वेषलोकोऽमीगन्धर्वाश्चशुभव्रताः ॥ देवानांगायनाह्येतेचारणाःस्तुतिपाठकाः ॥ २१ ॥ गीतज्ञाअतिगीतेनतोषयन्तिनराधिपान् ॥ स्तुवन्तिचधनाढ्यांश्चधनलोभेनमोहिताः ॥ २२ ॥ राज्ञांप्रसादलब्धानि सुवासांसिधनान्यपि ॥ द्रव्याण्यपिसुगन्धीनि कर्पूरादीन्यनेकशः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणेभ्यःप्रयच्छन्ति गीतंगायन्त्यहर्निशम् ॥ श्रुतावेवमनस्तेषां नाट्यशास्त्रकृतश्रमाः ॥ २४ ॥ तेनपुण्येनगान्धर्वो लोकस्त्वेषांविशिष्यते ॥ ब्राह्मणास्तोपितायैर्हि गीतविद्यार्जितैर्धनैः ॥ २५ ॥ गीतविद्याप्रभावेन देवर्षिर्नारदोमहान् ॥ मान्योवैष्णवलोकेवै श्रीशम्भोश्चातिवल्लभः ॥ २६ ॥ तुम्बुरुर्नारदश्चोभौ देवानामतिदुर्लभौ ॥ नादरूपीशिवःसाक्षान्नादतत्त्वविदौहितौ ॥ २७ ॥ यदिगीतंक्वचिद्गीतं श्रीमद्धरिहरान्तिके ॥ मोक्षस्तुतत्फलंप्राहुःसान्निध्यमथवातयोः ॥ २८ ॥ गीतज्ञोयदिगीतेन नाप्नोति

का गन्धर्वलोक विशेष होताहै जिससे गानविद्यासे बटोरे धनोंसे ब्राह्मणलोग निश्चय सन्तोषेगयेहैं ॥ २५ ॥ व गीतविद्या के प्रभावसे देवोंके ऋषि महात्मा नारदजी विष्णु लोकमें आदरित और शिवके भी अत्यन्त प्यारे हैं ॥ २६ ॥तुम्बुरु व नारद ये दोनों देवोंमें भी बहुत माननीयहैं क्योंकि जिससे साक्षात् शिवजी, निषाद ऋषभ गांधार षड्ज मध्यम धैवत और पञ्चम इन सातस्वरों के स्वरूपवाले नादतत्त्व के पण्डित हैं ॥२७॥ जो कहीं श्रीविष्णु व शिवके समीपमे गीत गायागया उसका फल मोक्ष

अथवा उनकी सामीप्यमुक्ति होती है यों कहते हैं ॥ २८ ॥ जो गायकजन गाने से परमपद को न पहुँचे तो रुद्रका गण हो उन के साथ आनंदित होता है ॥ २९ ॥ इस लोकमें सदा कालसे यह स्मृति कहीजाती है उस कारण विष्णु व शिव ये दोनों देव गीतोंकी पंक्तिसे सदा पूजनेयोग्य हैं ॥ ३० ॥ यों सुनता शिवशर्म्मा क्षण में फिर और मनोहरलोक में पहुँचा अनन्तर गणों से पूंछताभया कि किस नामका यह नगरहै ॥ ३१ ॥ गणोंने कहा कि यह विद्याधरों का लोक है अनेक विद्याओं में निपुण ये विद्यार्थियों का अन्न पादुका पट कम्बल ॥ ३२ ॥ और जे औषध उन विद्यार्थियोंके रोगोंके नाशकहैं उनको भी देतेहैं व विद्या के गर्वसे हीनहो बहुती कलाओं को

परमम्पदम् ॥ रुद्रस्यानुचरोभूत्वा तेनैवसहमोदते ॥ २९ ॥ अस्मिल्लोकेसदाकालं स्मृतिरेषाप्रणीयते ॥ तद्गीतमालयापूज्यौ देवौहरिहरौसदा ॥ ३० ॥ इतिशृण्वन्क्षणात्प्राप पुनरन्यन्मनोहरम् ॥ शिवशर्माथपप्रच्छ किंसञ्ज्ञंनगरन्त्विदम् ॥ ३१ ॥ गणावूचतुः ॥ असौवैद्याधरोलोको नानाविद्याविशारदाः ॥ एतेविद्यार्थिनामन्नमुपानहत्तकम्बलम् ॥ ३२ ॥ औषधान्यपियच्छन्ति तत्पीडाशमनानिहि ॥ नानाकलाःशिक्षयन्ति विद्यागर्वविवर्जिताः ॥ ३३ ॥ शिष्यंपुत्रेणपश्यन्ति वस्त्रताम्बूलभोजनैः ॥ अलंकृताश्चसत्कन्या धर्मादुद्वाहयन्तिच ॥ ३४ ॥ अभिलाषधियानित्यं पूजयन्तीष्टदेवताः ॥ एतैःपुण्यैर्वसन्तीह विद्याधरवराइमे ॥ ३५ ॥ यावदित्थंकथांचक्रुस्तावत्संयमिनीपतिः ॥ धर्मराजोभिसंप्राप्तो देवदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ३६ ॥ सौम्यमूर्तिर्विमानस्थो धर्मज्ञैःपरिवारितः ॥ सेवाकर्मसुचतुरैर्भृत्यैस्त्रिचतुरैःसह ॥ ३७ ॥ धर्मराजउवाच ॥ साधुसाधुमहाबुद्धे शिवशर्मन्द्विजोत्तम ॥ कुलोचितंब्राह्मणानां भवताप्रतिपादितम् ॥ ३८ ॥ वेदाभ्यासः

सिखातेहैं ॥ ३३ ॥ व वस्त्र बीरा खानेपीने की चीजोंसे शिष्यको पुत्र के समान देखते व भूपणों से भूषित कन्याओंको धर्म्मसे व्याह कराते हैं ॥ ३४ ॥ व फलोंकी कामना बुद्धिसे इष्टदेवों को पूजते है इन पुण्यों से ये विद्याधर यहां बसते हैं ॥ ३५ ॥ जौलो वे तीनों यों कथा करते थे तौलों संयमिनीपुरी के स्वामी धर्मराज भी देवदुन्दुभियों के शब्दसे सामने भलीभांतिसे पहुँचे ॥ ३६ ॥ जोकि सौम्य सतोगुणसंयुत देहधारी विमान में बैठे सेवाकर्म्म में चतुर तीन चार सेवकों के साथ धर्मज्ञलोगोंसे घेरेहैं ॥ ३७ ॥ धर्म्मराजजी बोले कि हे महाबुद्धे ब्राह्मणोत्तम शिवशर्म्मन् ! आपने ब्राह्मणकुल के उचित कामको साधा यह बहुत अच्छा हुआ ॥ ३८ ॥ तुमने पहिले

वेदोंका अभ्यास किया व गुरुओं को संतुष्टकिया व धर्मशास्त्र और पुराणों में आदरित धर्म्मको देखा ॥ ३९ ॥ व शीघ्र मरजानेवाली देहको मोक्षपुरियों के पानीसे दखारा और आप जीने व मरने में पण्डित हैं ॥ ४० ॥ कुगन्धसंयुत सदैव अपवित्र मलादिको का पात्र जो शरीरहै उसको तुमने अच्छेतीर्थों की पुण्यरूप बाज़ार में विकानेयोग्य वस्तुसे भलीभांति बदलाई किया ॥ ४१॥ इससेही विद्वान्लोग पण्डिताई को आदरतेहैं जो दिन वृथा नहीं बिताते वेही पंडित हैं॥ ४२ ॥ व पांच छः निमेष याने पलक भांजने के कालतक मरणधर्मक शरीर में प्राण व्यापार करते (श्वास लेते) हैं उन में भी निन्दित पापकर्म्म में न वर्ते ॥ ४३ ॥ क्योंकि देह सदा अचल नाशवाली है व

कृतः पूर्वं गुरवश्चापितोषिताः ॥ धर्मशास्त्रपुराणेषु दृष्टोधर्मस्त्वयाऽऽदृतः ॥ ३९ ॥ क्षालितंमुक्तिपुर्यद्भिराशुगन्तृशरीरकम् ॥ कोविदोऽस्तिभवानेव जीवितेजीवितेतरे ॥ ४० ॥ कलेवरंपूतिगन्धि सदैवाशुचिभाजनम् ॥ सुतीर्थपुण्यपण्येन सम्यग्विनिमितंत्वया ॥ ४१ ॥ अतएवहिपाण्डित्यमाद्रियन्तेविचक्षणाः ॥ अहःक्षेपंनक्षिपन्तिक्षणमेकंहितेबुधाः ॥ ४२ ॥ निमेषान्पञ्चषान्मर्त्ये प्राणन्तिप्राणिनोध्रुवम् ॥ तत्रापिनप्रवर्तेयुरघकर्मणिगर्हिते ॥ ४३ ॥ स्थिरापायःसदाकायो नधनंनिधनेऽवति ॥ तन्मूढःप्रौढकार्येकिंनयतेतभवानिव ॥ ४४ ॥ सत्वरङ्गत्वरञ्चायुर्लोकःशोकसमाकुलः ॥ तस्माद्धर्मेमतिःकार्या भवतेवसुधार्मिकैः ॥ ४५ ॥ सत्कर्मणोविपाकोऽयं तववन्द्यौममाप्यहो ॥ यदेतौभगवद्भक्तौ सखित्वंभवतो गतौ ॥ ४६ ॥ समाज्ञादीयतांतस्मात्साहाय्यंकरवाणिकिम् ॥यत्कर्तव्यंमादृशैस्तेतत्कृतंभवतैवहि ॥ ४७॥ अद्यधन्यतरोस्मीहयद्दृष्टौभगवद्गणौ ॥ सेवासदैवमेज्ञाप्या श्रीमच्चरणसन्निधौ ॥ ४८ ॥ ततःप्रस्थापितस्ताभ्यां प्राविशत्स्वपुरींयमः॥

मरने में धन नहीं बचाता है उसी से मूढजन मोक्ष के काम में आपकी नाई क्यों न यत्न करे ॥ ४४ ॥ जिससे आयुर्दाय शीघ्र चलीजानेवाली है व लोक शोक समेत है उससे आपकी नाई धर्मज्ञलोगों को धर्म में बुद्धि करना चाहिये ॥ ४५ ॥ आश्चर्य्य है कि यह अच्छे कर्मों का फल जो कि तुम्हारे व हमारे वन्दनीय ये भगवान् के भक्तगण आपकी मित्रता को प्राप्तभये ॥ ४६ ॥ उस कारण मुझे आज्ञादो क्या सहायता करों जो मेरे समानोंसे करने योग्य उसको तो आपनेही किया ॥ ४७ ॥ आज यहां मै बड़ा धन्यहूं कि जिससे विष्णुगण देखेगये व श्रीवैकुण्ठनाथके चरणकमलों के समीप में सेवा मेरे लिये विज्ञापना करने योग्य है ॥ ४८ ॥ त-

दनन्तर उन गणों से पठाये यमराज अपनी पुरी में पैठे और यमके जातेही उस ब्राह्मण ने उन दोनों से पूंछा ॥ ४९ ॥ शङ्का है कि ये साक्षात् धर्मराज बड़े सौम्य रूप हैं इनके वचन धर्म्मसमेत व मन प्रसन्नकारक हैं ॥ ५० ॥ वही यह संयमनी पुरी अतिशय सुलक्षणवाली है जिसका नाम भी सुन पापीलोग बहुतही डरते हैं ॥ ५१ ॥ मनुष्यलोक में लोग यमराज के रूपको और प्रकार से कहते हैं व मैंने इनको और तौर से देखाहै हे गणो ! उस कारण को कहो ॥ ५२ ॥ कौनलोग इसलोक को नहीं देखते तथा यहां कौन लोग बसते हैं यहभी इनका कौन रूप है व अन्यभी कौनहै वह जनायाजावे ॥ ५३ ॥ गण बोले कि हे सौम्य ! सुनो शङ्कारहित पुण्य-

अप्राक्षीच्चततोविप्रस्तौगणौप्रस्थितेयमे ॥ ४९ ॥ शिवशर्मोवाच ॥ साक्षादयंधर्मराजोननुसौम्यतराकृतिः ॥ धर्म्याण्ये ववचांस्यस्य मनःप्रीतिकराणिच ॥ ५० ॥ पुरीसंयमनीसेयमतीवशुभलक्षणा ॥ आकर्ण्ययस्यनामापि पापिनोऽतीव बिभ्यति ॥ ५१ ॥ यमरूपंवर्णयन्ति मर्त्यलोकेऽन्यथाजनाः ॥ अन्यथाऽयंमयादृष्टो ब्रूतंतत्कारणंगणौ ॥ ५२ ॥ के नपश्यन्त्यमुंलोकं निवसन्तितथात्रके ॥ इदमेवास्यकिंरूपंकिञ्चान्यच्चनिवेद्यताम् ॥५३॥ गणावूचतुः ॥ शृणुसौम्यसुसौ म्योऽसौ दृश्यतेऽत्रभवादृशैः ॥ धर्ममूर्तिःप्रकृत्यैव निःशङ्कैःपुण्यराशिभिः ॥ ५४ ॥ अयमेवहिपिङ्गाक्षः क्रोधरक्तान्त लोचनः ॥ दंष्ट्राकरालवदनो विद्युल्ललनभीषणः ॥ ५५ ॥ ऊर्ध्वकेशोऽतिकृष्णाङ्गः प्रलयाम्बुदनिःस्वनः ॥ कालदण्डो द्यतकरो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ ५६ ॥ आनयैनंपातयैनं बधानाशुञ्चदुर्दम ॥ घातयैनंसुदुर्वृत्तं मूर्ध्नितीव्रमयोघनैः ॥ ५७ ॥ आताडयैनंदुर्वृत्तं धृत्वापादौशिलातले ॥ उत्पाटयास्यनेत्रेत्वं निधायचरणाङ्गले ॥ ५८ ॥ एतस्यगल्लावुत्फुल्लौ

राशि आप सरीखे लोगों का यहां ये स्वभावसेही धर्मरूपहो दीखपड़ते हैं ॥ ५४ ॥ और येही कुछ पीले नेत्र क्रोध से कोरे या बीच में लाले लोचनवाले व दाढ़ों से करालमुख और बिजुलीसी जीभ से भयानक ॥ ५५ ॥ व ऊपर को बाल बढ़ाये काले रंगसे अङ्गवाले प्रलयकाल के मेघसम शब्द करनेहारे व हाथ में कालदण्डको उ-ठाये हुये कुटिल मुखवाले हैं ॥ ५६ ॥ इसको ला इसको नीचे गिरा इसको बांध इसको दण्डदे व इस पापी के मूड़ में वेगसे लोहमुद्गरों से मार ॥ ५७ ॥ व पत्थर के नीचे पांवों को दाब व इस कुकर्मी को ताड़ व तू गलेपर पांव धर व इसकी आंखें उखाड़ ॥ ५८ ॥ व इसके फूले गालों को छूरा से शीघ्र काट व इसके गले में फांसी

इस पापीके पराई लुगाई बांध कर वृक्षमें लटका ॥ ५९ ॥ व काठ की नाई आरा से इसका मूड़ चीर फाड़ व इसके मुखको कठिन लात घातसे मार व चूर्णकर ॥६०॥ व परस्त्री के अंग में नखपंक्तिदाता दुष्टकी देह के रोमों के बिलो मे सब की ओर पसरे हाथ को छेद व इस परस्त्री घर जानेवाले के पांवों को दुखण्ड कर॥ ६१ ॥ हे विकटमुखदूत ! बालू ओर सूजों से कोच ॥ ६२ ॥ व इस परस्त्रीमुखचुम्बक के मुख में थूंक व अन्य के दोष कहनेवाले के मुख में तीखा कीला डाल ॥ ६३ ॥ व कंकरों से जोकि भूजने का पात्रहै उस में इस परसंतापी को भूज ॥ ६४ ॥ हे क्रूरलोचन ! निर्दोष में सदा दोषके आरोप करनेवाले इस के मुखको पीब और

क्षुरेणाशुविपाटय ॥ पाशेनकण्ठंबद्ध्वास्य समुल्लम्बयभूरुहे ॥ ५९ ॥ विदारयास्यमूर्धानं करपत्रेणदारुवत् ॥ पार्ष्णिघातैर्घ्नतास्यास्यं समुच्चूर्णयदारुणैः ॥ ६० ॥ परदारप्रसृमरंकरंछिन्धयस्यपापिनः ॥ परदारगृहंयातुः पादौचास्यविखण्डय ॥ ६१ ॥ सूचीभीरोमकूपेषु तनुंव्यधिहिसर्वतः ॥ दातुःपरकलत्राङ्गे नखपङ्क्तीर्दुरात्मनः ॥ ६२ ॥ परदारमुखाघ्रातुर्मुखेनिष्ठीवयास्यहि ॥ वक्तुःपरापवादस्य कीलंतीक्ष्णंमुखेक्षिप ॥ ६३ ॥ भर्जयेनञ्चणकवत्तप्तबालुककर्परैः ॥ आष्ट्रेविकटवक्त्रत्वं परसन्तापकारिणम् ॥ ६४ ॥ दोषारोपंसदाकर्तुरदोषेक्रूरलोचन॥निमज्जयास्यवदनं पूयशोणितकर्दमे ॥६५॥ अदत्तपरवस्तूनांगृह्णतःकरपल्लवम् ॥ आप्लुत्याप्लुत्यतैलेनतप्ताङ्गारेपचोत्कट ॥ ६६ ॥ अपवादंगुरोर्वक्तुर्निन्दाकर्तुःसुपर्वणाम् ॥ तप्तलोहशलाकाश्चमुखेभीषणनिक्षिप ॥६७॥ परमर्मस्पृशश्चास्यपरच्छिद्रंप्रकाशितुः॥सुतप्तायोमयाञ्छङ्कून्सर्वसन्धिषुरोपय ॥ ६८ ॥ अन्येनदीयमानेस्वेनिषेद्धुःपापकारिणः ॥ आच्छेत्तुःपरवृत्तीनांजिह्वांछिन्धयस्यदुर्मु

खून के कीच में डुबादे ॥ ६५ ॥ हे उत्कट ! विना दिये आन की चीजों को लेते इसके हाथपल्लव को तेल से भिगा भिगा बरते अंगार में पका ॥ ६६ ॥ हे भीषण ! गुरुका अपवाद कहते व देवोंकी निन्दा करतेके मुखमें ताती लोहकी शलाका (सलाई) को छोंड़ ॥ ६७ ॥ आनके मर्मस्पर्शी याने मर्मवचन बोलते व पराये दोषोको उघाड़ते इसके सब जोड़ोमें बहुत तपाये लोहके सूजोंको गाड़॥६८॥ हे दुर्मुख ! धन देतेहुये औरको रोंकते आनकी वृत्तियों को छीनते या तोड़ते इस

पापीकी जीभको काटले ॥ ६९ ॥ हे शूकरमुख ! देवद्रव्य और ब्राह्मणद्रव्य को खाते इसको पेटफाड़ विष्ठाके कीड़ोंसे भर ॥ ७० ॥ हे अन्धक ! जो देव ब्राह्मण व अतिथिके अर्थ कभी नहीं पकावे है उस इस अपने लिये पाककर्ता को कुम्भीपाक में पचा ॥ ७१ ॥ हे उग्रास्य ! बालक वधिक विश्वासघाती और कृतघ्न (उपकार को न मानते) को बड़ेवेग से महारौरव में पहुँचादे ॥ ७२ ॥ व ब्राह्मणहन्ता को अन्धतामिस्रमें मदपिया को पीब और रक्तसे भरे कुण्डमें सुवर्णचोर को कालसूत्र में गुरु की शय्यापर बैठनेवाले को अवीचिनरक में ॥ ७३ ॥ वैसे उनके समीपीजन को असिपत्रवन में वर्षदिनपर्य्यन्त और इन महापापियों को तातेतेल से भरे कराह

ख ॥ ६९ ॥ देवस्वभोक्तुःक्रोडास्यब्राह्मणस्वस्यभोजिनः ॥ विदार्योदरमस्याशुविट्कीटैःपरिपूरय ॥ ७० ॥ नदेवार्थेन विप्रार्थेनातिथ्यर्थेपचेत्क्वचित् ॥ तममुंस्वार्थपक्तारंकुम्भीपाकेपचान्धक ॥ ७१ ॥ उग्रास्याशिशुहन्तारमसुंविश्रम्भघातिनम् ॥ कृतघ्नंनयवेगेनमहारौरवरौरवम् ॥ ७२ ॥ ब्रह्मघ्नंचान्धतामिस्रेसुरापंपूयशोणिते ॥ कालसूत्रेहेमचौरमवीचौगुरुतल्पगम् ॥ ७३ ॥ तत्संसर्गिणमावर्षमसिपत्रवनेतथा ॥ एतान्महापातकिनस्तप्ततैलकटाहके ॥ ७४ ॥ आप्लुत्याप्लुत्यदुर्दंष्ट्रकाकोलैर्लोहतुण्डकैः ॥ सन्तोद्यमानान्पापिष्ठान्नित्यंकल्पंनिवासय ॥ ७५ ॥ स्त्रीघ्नंगोघ्नंचमित्रघ्नंकूट शाल्मलिपादपे ॥ उल्लम्बयचिरंकालमूर्ध्वपादमधोमुखम् ॥ ७६ ॥ त्वचमस्यचखंदंशैस्त्रोटयत्वंमहाभुज ॥ आश्लेषितुर्मित्रपत्न्याभुजावुत्पाटयाशुच ॥ ७७ ॥ ज्वालाकीलेमहाघोरेनरकेऽमुंनिपातय ॥ योवह्निनादाहयतिपरक्षेत्रंपरालयम् ॥ ७८ ॥ कालकूटेचगरदंकूटसाक्ष्याभिवादिनम् ॥ मानकूटंतुलाकूटंकण्ठमोटेनपातय ॥ ७९ ॥ लालापिबे

में ॥ ७४ ॥ बिलोड़ बिलोड़ हे दुर्दंष्ट्र ! तू लोह के समान चोंचवाले द्रोण कागों से काटेजाते पापियों को हज़ार चौयुगीतक बसा ॥ ७५ ॥ हे कूट ! स्त्री गऊ और मित्रघाती के पाँवोंको ऊपरकर और नीचेको मुखकर बहुतकाल पर्य्यन्त सेमरवृक्ष में लटकादे ॥ ७६ ॥ हे महाभुज ! मित्रकी स्त्रीको लिपटाते इसकी खालको शस्त्रों से काढ़ और बाहों को शीघ्र उखाड़ले ॥ ७७ ॥ व इसको ज्वालाकील नामक बड़ेघोरनरक में गिरादे जो आगसे पराये खेत और परघर को जलाताहै ॥ ७८ ॥ व जो विषदेता झूंठीसाखी देता नापमें छलता तौलमें छलता है उसको कपड़ाकी नाईं कंठमर्दन से कालकूट में डालदे ॥ ७९ ॥ हे दुष्प्रेक्ष्य ! तीर्थके जलमें थूंकते को लालापिब

यानेलार पीनेवाले नरक में पठा और गर्भघाती को आमपाक में व औरेंको तपानेवाले को शूलपाक में ॥ ८० ॥ और रस बेंचनेवाले ब्राह्मण को कोल्हू में गेर व प्रजाओं का पीड़ा करते राजाको अँधवाकुवां में गिरादे ॥ ८१ ॥ हे हलायुध ! गऊ तिल घोड़ा बेंचते अधम ब्राह्मण को और भांग व मदिरा बेंचनेवाले ॥ ८२ ॥ इस वैश्यको मूसर कांड़ीमें बार बार कांड़ व ब्राह्मण को अपमानते व ऊंचे आसन पर बैठते शूद्रको भी ॥ ८३ ॥ हे दीर्घग्रीव ! अधोमुखनरकमें पीड़ादे ॥ ८४ ॥ ब्राह्मणको जीतते शूद्र/ब्राह्मण से अहङ्कार करते वैश्य/यज्ञपूजादि कराते क्षत्रिय/वेदवर्जित ब्राह्मण ॥ ८५ ॥ व लाह लोन मांस तेल विष घी हथियार और ऊखकी मिठाई बेंच-

चक्षुष्प्रेक्ष्यतीर्थाप्सुष्ठीविनंनय ॥ आमपाकेचगर्भघ्नंशूलपाकेऽन्यतापिनम् ॥ ८० ॥ रसविक्रयिणंविप्रमिक्षुयन्त्रेप्रपीडय ॥ प्रजापीडाकरंभूपमन्धकूपेनिपातय ॥ ८१ ॥ गोतिलांश्चतुरङ्गांश्चविक्रेतारंद्विजाधमम् ॥ मातुलान्याःसुरायाश्चविक्रेतारंहलायुध ॥ ८२ ॥ मुसलोलूखलेवैश्यंकण्डयैनंपुनःपुनः ॥ शूद्रंद्विजावमन्तारंद्विजाग्रेमञ्चसेविनम् ॥ ८३ ॥ अधोमुखेचनरकेदीर्घग्रीवप्रपीडय ॥ ८४ ॥ शूद्रंब्राह्मणजेतारंवैश्यंब्राह्मणमानिनम् ॥ क्षत्रियंयाजकंचापिविप्रंवेदविवर्जितम् ॥ ८५ ॥ लाक्षालवणमांसानांसतैलविषसर्पिषाम् ॥ आयुधेक्षुविकाराणांविक्रेतारंद्विजाधमम् ॥ ८६ ॥ पाशपाणेकशापाणेबद्धैतांश्चरणेदृढम् ॥ घातयन्तौकशाघातैर्नयतंतप्तकर्दमे ॥ ८७ ॥ इमांस्त्रियंश्लेषयाशुपुंश्चलींकुलकल्मषाम् ॥ तेनोपपतिनासार्धंतप्तायसमयेनच ॥ ८८ ॥ स्वयंगृहीत्वानियमंयस्त्यजेदजितेन्द्रियः ॥ तंप्रापयदुराधर्षंबहुभ्रमरदंशके ॥ ८९ ॥ इत्यादिजल्पन्दूतैःश्रूयतेदूरतोयमः ॥ स्वकर्मशङ्कितैःपापैर्दृश्यतेतिभयङ्करः ॥ ९० ॥ येप्रजाः

नेवाले अधम ब्राह्मण को भी पीड ॥ ८६ ॥ हे पाशपाणे ! हे कशापाणे ! पांवमें पोढ़ बांध इनको कोडोंके घातसे ताड़ते तुम तप्तकर्दम में पहुँचावो ॥ ८७ ॥ व कुल में दाग लगानेवाली इस कुलटा स्त्री को ताते लोह से बनाये उस अन्यपतिके साथ लिपटावो ॥ ८८ ॥ व इन्द्रियो को न जीते हुये जो नियम को गह आपही तज-ताहै उस दुष्टको भ्रमरदशकनरक मे प्राप्तकरो ॥ ८९ ॥ इत्यादि वचन बोलते यमराजजी कुकर्मियों करके दूरसे सुनेजाते है और अपने कर्मोंसे शङ्कित पापियो को

भयानक दीखतेहैं ॥९०॥ व जे इस लोकमें अपने और सयाने ब्याहीस्त्रीमें निज बीजसे उपजे पुत्रोंके समान पालते व धर्मसे दण्ड देतेहैं वे राजा इन यमराज के सभासद् (सभामें बैठनेवाले) होते हैं ॥ ९१ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी ये जिसके देशमें अपनी क्रियाको करतेहैं वे कालसे मरणको प्राप्तहुये राजालोग इनके सभासद् होतेहैं ॥ ९२ ॥ व जिनकी राज्यमें दीन दुराचारी विपत्तिसे गसा और शोचका सेवी ये लोग नहीं दीखतेहैं वे राजा इनके सभासद्हैं ॥ ९३ ॥ व ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और अन्यभी जे अपने धर्ममें तत्पर व नियमवालेहैं वे यमपुरी में बसते हैं ॥ ९४ ॥ शिबि सुधन्वा वृषपर्वा जयद्रथराज सहस्रजित् कुक्षि-

पालयन्तीहपुत्रानेवनिजौरसान् ॥ दण्डयन्तिचधर्मेणभूपास्तेऽस्यसभासदः ॥ ९१ ॥ वर्णाश्रमाश्चयद्राष्ट्रेऽनुतिष्ठन्ति निजांक्रियाम् ॥ कालेनापन्ननिधनाभूपास्तेऽस्यसभासदः ॥९२॥ नैवदीनोनदुर्वृत्तोनापद्ग्रस्तोनशोकभाक् ॥ येषांराष्ट्रे प्रदृश्यन्तेभूपास्तेऽस्यसभासदः ॥ ९३ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःस्वधर्मनिरताःसदा ॥ अन्येपियेसंयमिनःसंयमिन्यां वसन्तिते ॥ ९४ ॥ उशीनरःसुधन्वाचवृषपर्वाजयद्रथः ॥ रजिःसहस्रजित्कुक्षिर्दृढधन्वारिपुञ्जयः ॥ ९५ ॥ युवनाश्वो दन्तवक्रोनाभागोरिपुमङ्गलः ॥ करन्धमोधर्मसेनःपरमर्दःपरान्तकः ॥ ९६ ॥ एतेचान्येचबहवोराजानोनीतिवर्तिनः ॥ धर्माधर्मविचारज्ञाःसुधर्मायांसमासते ॥ ९७ ॥ अन्यच्चतेप्रवक्ष्यामियेनपश्यन्तिभास्करिम् ॥ दण्डपाशोद्यतकरान्दू तानुग्राननान्कचित् ॥ ९८ ॥ गोविन्दमाधवमुकुन्दहरेमुरारेशम्भोशिवेशशशिशेखरशूलपाणे ॥ दामोदराच्युतजना र्दनवासुदेवत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति ॥ ९९ ॥ गङ्गाधरान्धकरिपोहरनीलकण्ठवैकुण्ठकैटभरिपोकमठाब्ज

दृढधन्वा शत्रुञ्जय ॥ ९५ ॥ युवनाश्व दन्तवक्र और वह नाभाग जिससे शत्रुवों काभी शुभहै व करंधम धर्मसेन परमर्दन और परान्तक ॥९६॥ ये तथा अन्यभी अनेक राजा जे राजनीति में बर्तनेवाले व धर्म अधर्म के पण्डितहैं वे सुधर्म्मा सभामें बसतेहैं ॥ ९७ ॥ और भी तुमसे कहताहूं कि जे यमराज व दण्डपाशधारी उग्रमुख दूतों को नहीं देखते हैं उनके लिये एक उपाय यहहै ॥ ९८ ॥ श्रीयमराजजी अपने दूतोंको सिखाते हैं कि हे गोधनिक, श्रीपते, मुक्तिद, पापहरण, मुरशत्रो ! हे कल्याण-कर, सुखस्वरूप, ऐश्वर्य्यकेस्वामिन्, चन्द्रचूड, त्रिशूलपाणे! हे रस्सीसे बांधे उदरवाले, अपतित जनों के गतिरूप, जगद्वासी देव ! ऐसा जो जपते हैं हे भटो ! वे सदा

त्यागनेयोग्य हैं ॥ ६६ ॥ हे गंगाधर, अन्धकदैत्यवैरिन्, संसारहर, विषसे नीलकण्ठ ! हे विकुण्ठा के पुत्र, कैटभदैत्यशत्रो, कच्छपरूप, कमलहस्त ! हे भूतों के स्वामिन्, भग्नकुठार या खण्डत्रिशूल, सुखदायक, पार्वतीपते ! ऐसा जो जपते हैं हे भटो ! वे सदा त्यागनेयोग्य हैं ॥ १०० ॥ हे व्यापक, नृसिंहरूप, मधुदैत्यविनाशन, सुदर्शनचक्रहस्त ! हे गौरीपते, कैलासपर्वतशयन,सुखकर, चन्द्रमुकुट ! हे सर्वान्तर्यामिन्, दैत्यदलन, शार्ङ्गधन्वाहस्त ! ऐसा जो जपते हैं हे भटो ! वे सदा त्यागने योग्य हैं ॥ १०१ ॥ हे मृत्युञ्जय, अधर्षणीय, त्रिनेत्र, कामशत्रो ! हे लक्ष्मीपते, पीताम्बरधर, मेघश्याम, सूर के वंशमें उत्पन्न ! हे ईश्वर, गजचर्मवस्त्र, देवोंके मुख्य स्वामिन् ! ऐसा जो जपते हैं हे भटो ! वे सदा त्यागने योग्य हैं ॥ १०२ ॥ हे लक्ष्मीनाथ, मधुवैरिन्, मायाजीवसे परे,सवके कारण, हे नीलकण्ठ ! दिगम्बर, शान्तरूप,

पाणे ॥ भूतेशखण्डपरशोमृडचण्डिकेशत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति ॥ १०० ॥ विष्णोनृसिंहमधुसूदनचक्रपाणेगौरीपतेगिरिशशङ्करचन्द्रचूड॥नारायणासुरनिबर्हणशार्ङ्गपाणेत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति॥१०१॥मृत्युञ्जयोग्रविषमेक्षणकामशत्रो श्रीकान्तपीतवसनाम्बुदनीलशौरे॥ ईशानकृत्तिवसनत्रिदशैकनाथत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति॥१०२॥लक्ष्मीपतेमधुरिपोपुरुषोत्तमाद्यश्रीकण्ठदिग्वसनशान्तपिनाकपाणे॥ आनन्दकन्दधरणीधरपद्मनाभत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति॥१०३॥ सर्वेश्वरत्रिपुरसूदनदेवदेवब्रह्मण्यदेवगरुडध्वजशङ्खपाणे॥त्र्यक्षोरगाभरणबालमृगाङ्कमौले त्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति ॥१०४॥ श्रीरामराघवरमेश्वररावणारेभूतेशमन्मथरिपोप्रमथाधिनाथ ॥ चाणूरमर्दनहृषीकपतेमुरारेत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति ॥१०५॥ शूलिन्गिरीशरजनीश

पिनाकधनुर्धारिन् ! हे आनन्द के मूल, वराहरूप से भूमिधर, कमलोदर ! ऐसा जो जपते हैं हे भटो ! वे सदा त्यागने योग्य है॥ १०३ ॥ हे सर्वेश्वर, त्रिपुरनाशक, देवोंकेदेव ! हे ब्रह्मण्योंमे विराजमान या ब्राह्मणों के हितकारी देव ! हे गरुड़ध्वज,शंखहस्त ! हे त्रिलोचन, सर्पभूषण, बालचन्द्रभाल ! ऐसा जो जपते हैं हे भटो ! वे सदा त्यागने योग्य हैं ॥ १०४ ॥ हे श्रीसहित परब्रह्म या श्रीरमण, रघुवंशमें उत्पन्न, सीतापते, रावणशत्रो ! हे प्राणियो के नाथ, कामवैरिन्, गणेश्वर ! हे चाणूरमर्दन, इन्द्रियों के स्वामिन्, सुरदैत्यवैरिन् या अविद्यानाशक ! ऐसा जो जपते हैं हे भटो ! वे सदा त्यागने योग्य हैं ॥ १०५ ॥ हे त्रिशूलास्त्रधारिन्,कैलासपर्वतेश, चन्द्रकला-

भूषण, हे कंसनाशक, तीनकालों से अबाधित, केशिदैत्यविनाशन, हे प्रलयसमयमें सबके दाहक, त्रिनयन, उत्पत्तिकारिन्, आकाशादि पञ्चतत्त्वों के नाथ, त्रिपुरवैरिन्! ऐसा जो जपते हैं हे भटो! वे सदा त्यागने योग्य हैं ॥ १०६॥ हे गोपीनाथ या मायापते, यदुवंशस्वामिन्, वसुदेवपुत्र! हे कर्पूरके समान गौर, वृषभध्वज, ललाटनयन! हे गोवर्द्धनधर, धर्मधुरीणोंके रक्षक अथवा धर्मधुरीधारिन्, गोपाल! ऐसा जो जपतेहैं हे भटो! वे सदा त्यागने योग्यहैं ॥१०७॥ सर्वाधार सूक्ष्मरूप या अचल या स्थावर जङ्गमरूप, त्रिचक्षु, पिनाकधर, कामशत्रो! हे भक्तपापोंके कर्षक, किसीसे न रोंके जानेवाले, लक्ष्मीनिधान, पापनाशक! हे सर्वेश्वर, गंगाजलसे भीगे जटासमूह! ऐसा जो

कलावतंसकंसप्रणाशनसनातनकेशिनाश॥ भर्गत्रिनेत्रभवभूतपतेपुरारेत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति ॥ १०६ ॥ गोपीपतेयदुपतेवसुदेवसूनोकर्पूरगौरवृषभध्वजभालनेत्र॥गोवर्द्धनोद्धरणधर्मधुरीणगोपत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति॥ १०७॥ स्थाणोत्रिलोचनपिनाकधरस्मरारेकृष्णानिरुद्धकमलाकरकल्मषारे ॥ विश्वेश्वरत्रिपथगार्द्रजटाकलापत्याज्याभटायइतिसन्ततमामनन्ति॥१०८॥ अष्टोत्तराधिकशतेनसुचारुनाम्नांसंदर्भितांललितरत्नकदम्बकेन ॥ सन्नायकांदृढगुणांद्विजकण्ठगांयःकुर्यादिमांस्रजमहोसयमंनपश्येत् ॥१०९॥ इत्थंद्विजेन्द्रनिजभृत्यगणान्सदैवसंशिक्षयेदवनिगान्सहिधर्मराजः ॥ अन्येपियेहरिहराङ्कधराधरायांतेदूरतःपुनरहोपरिवर्जनीयाः ॥ ११० ॥ अगस्तिरुवाच ॥ योधर्मराजरचितांललितप्रबन्धांनामावलींसकलकल्मषबीजहन्त्रीम् ॥ धीरोत्रकौस्तुभभृतःशशिभूषणस्यनित्यंज

जपतेहैं हे भटो! वे सदा त्यागनेयोग्य हैं ॥ १०८ ॥ हे शिवशर्माब्राह्मण! पदलालित्यका समूह है जिसमें उस नामोंके आठ अधिक एक सैकड़ा से गुही सत् याने विष्णु व शिव नायक हैं जिसके व भगवत् शरण रूप गुण (सूत्र) है जिसका उस इस मालाको जो जन कण्ठगत करे वह यमको न देखे ॥ १०९ ॥ हे ब्राह्मणेन्द्र! वही धर्मराजजी भूमिलोक को जाते अपने सेवकसमूहोंको सदैव भलीभांति से सिखाते हैं कि जे अन्यलोग भी भूमिमें विष्णु व शिवके चिह्न शंख चक्र रुद्राक्ष और विभूति आदिकोंको धारतेहैं अहो दूतो! वे दूरसे वराने योग्यहैं ॥ ११० ॥ अगस्त्यजी बोले कि धर्म्मराजकी रची रम्यरचनावाली सब पापों के बीजरूप अज्ञाननाशिनी विष्णु

व शिवकी नाममालाको जो बुद्धिमान् सदा जपे वह फिर माताके कुचोंका रस न पीवे याने मुक्तहोवे ॥ १११ ॥ हे प्रिये लोपामुद्रे! यों पापरहित मनोरम कथाको सुनता प्रसन्नमुख शिवशर्म्मा आगे अप्सराओं की पुरी को देखताभया ॥ ११२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेयमलोकवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । लोक अप्सरन को कह्यो या नवयें अध्याय । सूर्यदेव को लोकपुनि वैसे अटन उपाय ॥ शिवशर्म्मा बोला कि, सुन्दरता, दीप्ति व सौभाग्य की निधि होकर दिव्य गहने पहने व अच्छेभोगों से संयुत ये स्त्रियां कौनहैं ॥ १ ॥ गणोंने कहा कि ये देवोंकी वेश्याहैं जो कि प्यार करनेवाली व गाना जानती व नाचने में निपुण

पेत्स्तनरसंसपिबेन्नमातुः ॥ १११ ॥ इतिशृण्वन्कथांरम्यांशिवशर्माप्रियेऽनघाम् ॥ प्रहृष्टवक्त्रःपुरतोददर्शाप्सरसांपुरीम् ॥ ११२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेयमलोकवर्णनन्नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ⊛ ॥

शिवशर्मोवाच ॥ काइमारूपलावण्यसौभाग्यनिधयःस्त्रियः ॥ दिव्यालङ्कारधारिण्योदिव्यभोगसमन्विताः ॥ १ ॥ गणावूचतुः ॥ एतावारविलासिन्योयज्ञभाजांप्रियङ्कराः ॥ गीतज्ञान्नृत्यकुशलावाद्यविद्याविचक्षणाः ॥ २ ॥ कामकेलिकलाभिज्ञाद्यूतविद्याविशारदाः ॥ रसज्ञाभाववेदिन्यश्चतुराश्चोचितोक्तिषु ॥ ३ ॥ नानादेशविशेषज्ञानानाभाषासुकोविदाः ॥ सङ्केतोदन्तनिपुणानैकाःस्वैरचरामुदा ॥ ४ ॥ लीलानर्मसुसाभिज्ञाःसुप्रलापेषुपण्डिताः ॥ यूनांमनांसिसततंस्वैर्हावैरमयन्त्यमूः ॥ ५ ॥ निर्मथ्यमानात्क्षीरोदात्पूर्वमप्सरसस्त्वमूः ॥ निःसृतास्त्रिजगज्जेतुर्मोहनास्त्रंमनोभुवः ॥ ६ ॥

होकर बाजाओं की विद्यामें पण्डिता हैं ॥ २ ॥ व कामकेलिकला की अथवा पुरुषोंकी अभिलाषा परिहास व शिल्पकी जाननेहारी व जुवां खेलने की विद्यामें कुशल व शृंगारादि रसों और अभिप्रायों को जानती हुई उचित बातोंमें चतुर हैं ॥ ३ ॥ व बहुत देश विशेषों व बहुती बोलियो की बोलनेवाली व रहस्य वृत्तान्त मे दक्ष होकर अनेक आनन्द से अपनी इच्छा के अनुसार जाती आती हैं ॥ ४ ॥ व लीला क्रीड़ा और कौतुकों में अभिज्ञान समेत व अच्छे वचनों में विदुषी होकर ये अपने हावों याने शृङ्गारभावों के व्यापारों से युवा मनुष्यों के मनो को रमाती हैं ॥ ५ ॥ पहले मथेजाते क्षीरसागर से निकली ये अप्सरायें त्रिलोकविजयी कामका मोहन अस्त्र

हैं ॥ ६ ॥ उर्वशी मेनका रम्भा चन्द्रलेखा तिलोत्तमा वपुष्मती कान्तिमती लीलावती उत्पलावती ॥ ७ ॥ अलम्बुषा गुणवती स्थूलकेशी कलावती कलानिधि गुणानिधि कर्पूरतिलका उर्वरा ॥ ८ ॥ अनङ्गलता मदनमोहिनी चकोराक्षी चन्द्रकला मुनिमनोहरा ॥ ९॥ ग्रावद्रावा तपोद्वेष्टी चारुनासा सुकर्णा दारुसंजीविनी सुश्री क्रतुशुल्का शुभानना ॥ १० ॥ तपःशुल्का तीर्थशुल्का दानशुल्का हिमावती पञ्चाश्वमेधिका राजसूयार्थिनी ॥ ११ ॥ अष्टाग्निहोमिका और वाजपेयशतोद्भवा इत्यादि अप्सराओंका

उर्वशीमेनकारम्भाचन्द्रलेखातिलोत्तमा ॥ वपुष्मतीकान्तिमतीलीलावत्युत्पलावती ॥ ७ ॥ अलम्बुषागुणवतीस्थूलकेशीकलावती ॥ कलानिधिर्गुणनिधिःकर्पूरतिलकोर्वरा ॥ ८ ॥ अनङ्गलतिकाचापितथामदनमोहिनी ॥ चकोराक्षीचन्द्रकलातथामुनिमनोहरा ॥ ९ ॥ ग्रावद्रावातपोद्वेष्टीचारुनासासुकर्णिका ॥ दारुसञ्जीविनीसुश्रीःक्रतुशुल्काशुभानना ॥ १० ॥ तपःशुल्कातीर्थशुल्कादानशुल्काहिमावती ॥पञ्चाश्वमेधिकाचैवराजसूयार्थिनीतथा ॥ ११ ॥ अष्टाग्निहोमिकातद्वद्वाजपेयशतोद्भवा ॥ इत्याद्यप्सरसांश्रेष्ठंसहस्रंषष्टिसम्मितम् ॥ १२ ॥ एतस्मिन्नप्सरोलोकेवसन्त्यन्याश्चपिस्त्रियः ॥ सदास्खलितलावण्याःसदास्खलितयौवनाः ॥ १३ ॥ दिव्याम्बरादिव्यमाल्यादिव्यगन्धानुलेपनाः ॥ दिव्यभोगैःसुसम्पन्नाःस्वेच्छाविधृतविग्रहाः ॥ १४ ॥ कृत्वामासोपवासानिस्खलन्तिब्रह्मचर्यतः ॥ सकृद्वाद्विकृत्वोवात्रिःकृत्वोदैवयोगतः ॥ १५ ॥ ताइमादिव्यभोगिन्योरूपलावण्यसम्पदः ॥ निवसन्त्यप्सरोलोकेसर्वकामसमन्विताः ॥ १६ ॥ कृत्वाव्रतानिसाङ्गानिकामिकानिविधानतः ॥ भवन्तिस्वैरचारिण्योदेवभोग्याइहागताः ॥ १७ ॥ पतिव्रतधृ

श्रेष्ठ साठिसंख्य कहजाराहै ॥ १२ ॥ व सदा अच्युत लोनाई और सदा अच्युत जवानीवाली अन्यभी स्त्रियां इस अप्सरालोक में बसती हैं ॥ १३ ॥ व दिव्यवस्त्र व दिव्य सुगन्ध और दिव्य अङ्गरागहैं जिनके वे दिव्य भोगोंसे भरी व अपनी इच्छासे रूपधारिणी हैं ॥ १४ ॥ जो कि स्त्रियां मासभर उपवासकर दैवयोगसे एक दो व तीनबार ब्रह्मचर्य्यसे च्युत होती हैं ॥ १५ ॥ वे ये सुन्दरता दीप्ति संपत्तिवाली दिव्य भोगिनियां सब अभिलाषों से संयुतहो अप्सरालोक में बसती हैं ॥ १६ ॥ व विधिसे अंगसमेत

सकाम व्रतोंको कर यहां आई स्वैरिणीहो देवोंसे भोगने योग्यहैं॥ १७ ॥हे ब्राह्मण ! किसी बलवान् पुरुष करके बलसे गहीगई जे पतिव्रता स्त्रियां पतिबुद्धि से कभी उसको रमाती हैं वे ये हैं ॥ १८ ॥ व पतिके परदेशी होतेही जे सदा ब्रह्मचर्य्यव्रताहो दैवयोग से एकबार भी व्यभिचार करती हैं वे ये सुनयनी हैं ॥ १९ ॥ व सुगन्धदार फूल अच्छी बासवाला चन्दन अच्छा उजला कपूर महीन कपड़े ॥ २० ॥ कोमल तारवाले याने बराबर व बड़े पुराने पोढे पत्ते जोकि अग्रभाग समेत व सोनेके रंग मोटे व काले शिरवाले हैं ॥ २१ ॥ व सुगन्ध सुपारीआदि सामग्रियों से भरेहैं और जो कि नागलताके हैं उनको तथा हे ब्राह्मणोत्तम ! विचित्र भूषणवती शय्या और

तानार्य्योबलेनबलिनाधृताः ॥ भर्तृबुद्ध्यारमन्तेतंकदाचित्ताइमाद्विज ॥ १८ ॥ भर्तरिप्रोषितेयाश्चब्रह्मचर्यव्रताःसदा ॥ विप्लवन्तेसकृद्दैवात्ताएतावामलोचनाः ॥ १९ ॥ कुसुमानिसुगन्धीनिसुवासंचन्दनंतथा॥सुगौरंचापिकर्पूरंसुसूक्ष्माण्यम्बराणिच ॥ २० ॥ पर्णानिऋजुताराणिजीर्णानिकठिनानिच ॥ साग्राणिस्वर्णवर्णानिस्थूलनीलशिराणिच ॥ २१ ॥ सुवासोपस्कराढ्यानिनागवल्ल्याद्विजोत्तम ॥ शय्याविचित्राभरणारतिशालोचितानिच ॥ २२ ॥ बहुकौतुकवस्तूनिसम्चर्य्यद्विजदम्पती ॥ भोगदानमिदंकाम्यंप्रतिसंक्रमणंरवेः ॥ २३ ॥ किंवाप्रतिव्यतीपातमेकसंवत्सराव्वधि ॥ कोदादितिच मन्त्रेणयादद्याद्वरवर्णिनी ॥ २४ ॥ कामरूपधरोदेवःप्रीयतामितिवादिनी ॥ साश्रेष्ठाऽप्सरसांमध्येवसेत्कल्पमिहाङ्गना ॥ २५॥ कन्यारूपधराकाचिद्दयाभुक्ताकेनचित्क्वचित् ॥ देवरूपेणतंकालमारभ्यब्रह्मचारिणी ॥ २६ ॥ तदेववृत्तंध्यायन्तीनिधनंयातिकालतः ॥ दिव्यरूपधरासेहजायतेदिव्यभोगभाक् ॥ २७ ॥ निदानमप्सरोलोकस्यैतिच्छृणुवन्द्विज।

रतिमन्दर के योग्य ॥ २२ ॥ जो बहुती कौतुक की चीजैहैं उनसे संयुत इस काम्य भोगदान को ब्राह्मणी समेत ब्राह्मण का पूजनकर सूर्य्यकी प्रतिसंक्रान्ति ॥ २३ ॥ व प्रतिव्यतीपातयोगमें एक वर्षलग जो स्त्री, कोदात् कस्माअदात्कामोदात्कामायादात्कामोदाताकामः प्रतिगृहीता कामैतत्ते इस मन्त्रसे देवे ॥ २४ ॥ और कामरूपधारी देव प्रसन्नहों यों कहनेवाली होवे वह स्त्री अप्सराओं के बीचमे श्रेष्ठहो हजार चौयुगी तक यहां बसे ॥ २५ ॥ व किसी देवरूपसे कहीं भोगीगई रूपवती कोई कन्या उस कालको लगा ब्रह्मचारिणीहो ॥ २६ ॥ उसी चरित्र याने देव मिलाप को ध्यावतीव कालसे मरणको प्राप्तहोतीहुई वह यहां सुठि सुन्दरी व दिव्यभोगसेविनी उपज्ती

है ॥ २७ ॥ यों अप्सरालोकके कारणको सुनता विमान में बैठा वह ब्राह्मणनायक अनन्तर क्षणभरमें उस सूर्य्यलोक को गया ॥२८॥ जैसे कि सब ओर केशरों से घिरा कदम्ब का फूलहो वैसेही सब से सूर्य्यरश्मियों करके देदीप्यमान है ॥ २९ ॥ तब वह ब्राह्मण दूर से उन सूर्य्यदेव को जान जोकि दो कमलों को गहेहैं व नव हज़ार योजन परिमाण के ॥ ३० ॥ विचित्र एक पैहावाले व सात घोड़ोंसे संयुत व रस्सी धरे अनूरुसारथिसे आगे चढ़ायेगये ॥ ३१ ॥ व अप्सरा मुनि गन्धर्व सर्प यक्ष और राक्षसों करके उपलक्षित, वेगवान् रथसे चलते हैं उनको हाथ जोड़कर प्रणमता भया ॥ ३२ ॥ व उसके प्रणाम को कटाक्ष से आदरित कर वह सूर्य्यदेव भी क्षणमें

ग्रणीः ॥ सौरंलोकमथप्राप्यक्षणेनसविमानगः ॥ २८ ॥ यथाकदम्बकुसुमंकिञ्जल्कैःसर्वतोवृतम् ॥ देदीप्यमानंहि तथासमन्ताद्भानुभानुभिः ॥ २९ ॥ दूराद्रविंसविज्ञायधृततामरसद्वयम् ॥ नवभिर्योजनानांचसहस्रैःसम्मितेनह ॥३०॥ विचित्रैणैकचक्रेणसप्तसप्तियुतेनच ॥ अनूरुणाधिष्ठितेनपुरतोधृतरश्मिना ॥ ३१ ॥ अप्सरोमुनिगन्धर्वसर्पग्रामणिनैर्ऋतैः ॥ स्यन्दनेनातिजविनाप्रणनामकृताञ्जलिः ॥ ३२ ॥ तस्यप्रणामंदेवोपिभ्रूभङ्गेनानुमन्यच ॥ अतिदूरंनभोवर्त्मव्यतिचक्रामसत्क्षणात् ॥ ३३ ॥ प्रक्रान्तेद्युमणौदूरंशिवशर्मातिशर्मवान् ॥ प्रोवाचभगवद्भक्तौकथंलभ्यंरवेःपदम् ॥ ३४ ॥ एतदिच्छाम्यहंश्रोतुमाचक्षाथांममाग्रतः ॥ सतांसाप्तपदींमैत्रीतन्मेमैत्र्याप्रणोदितौ ॥ ३५ ॥ गणावूचतुः ॥ शृणु द्विजमहाप्राज्ञत्वय्यकथ्यन्नकिञ्चन ॥ सत्सङ्गादेवसाधूनांसत्कथासंप्रवर्तते ॥ ३६ ॥ नियन्तासर्वभूतानांयएकःकारणंपरम् ॥ अनामागोत्ररहितोरूपादिपरिवर्जितः ॥ ३७ ॥ आविर्भावतिरोभावौयद्भ्रूनर्तनवर्तिनौ ॥ सएवंवक्तिसततं

आकाशमार्गको बहुत दूरतक लांघिगये ॥ ३३ ॥ व सूर्य्यके दूर जातेही अतिशयसुखी शिवशर्म्मा ने भगवान्‌के भक्तोंसे कहा कि सूर्य्यका लोक किस प्रकारसे लहनेयोग्य है ॥ ३४ ॥ मैं यह सुना चाहताहूं आप मेरेआगे कहो जिससे सन्तोंकी सातपदकी मित्रता होतीहै उस कारण मुझकरके तुम मित्रता से प्रेरेगयेहो ॥ ३५ ॥ विष्णु के गण बोले कि हे महापण्डित ब्राह्मण ! सुनो तुमसे कुछ अकथनीय नहीं है क्योंकि साधुओं के अच्छे संगसेही अच्छी कथा बर्तती है ॥ ३६ ॥ जो कि सब जन्तुओं के नियमकर्ता (स्वामी) एक व परमकारण नाम गोत्र और रूपादिकोंसे रहितहैं ॥ ३७ ॥ व जिनकी भौंह नाचनेसे बर्तने शील, उत्पत्ति व प्रलय ये दोनों

होतेहैं वह सबके अन्तर्यामी वेदोंके स्थापक पुरुष परमेश्वर यों कहाते हैं कि ॥ ३८ ॥ जो वह आदित्य में पुरुषहै सो वह हमहैं यह स्पष्टहै कि जे आनकी उपासना करते हैं वे अन्धतामिस्रनरक में पैठते हैं ॥ ३९ ॥ हे द्विजेन्द्र! अबाधित अर्थवाली इस श्रुतिको यों निश्चयकर ब्राह्मणलोग बारबार उनको उपासते हैं ॥ ४० ॥ जो यथासमय में सूर्य्यरूपिणी परदेवता को अथवा सूर्य्यदेवतावाली उपनयनक्रिया या गायत्रीमन्त्रको पाय प्रातः मध्याह्न और सन्ध्या इन तीनों कालोंमें सूर्य्यको न उपासे वह सात दिन में पतितहोवे इसमें संशय नहीं है ॥४१॥ प्रातःकाल तौलों जपता खड़ारहे जौलों सूर्य्यका आधा उदय न हो और पश्चिमसन्ध्या में आसन पर बैठा बोलबंद

सर्वात्मावेदपूरुषः ॥३८॥ योसावादित्यपुरुषःसोसावहमितिस्फुटम् ॥ अन्धंतमःप्रविशन्तियेचैवान्यमुपासते ॥ ३९ ॥ निश्चितार्थांश्रुतिमिमांब्राह्मणासोद्विजोत्तम ॥ तमेकमुपतिष्ठन्तेनिश्चित्येतिपुनःपुनः ॥ ४० ॥ उपलभ्यचसावित्रींनोपतिष्ठेतयःपराम् ॥ कालेत्रिकालंसप्ताहात्सपतेन्नात्रसंशयः ॥ ४१ ॥ तावत्प्रातर्जपंस्तिष्ठेद्यावदर्धोदयोरवेः ॥ आसनस्थोजपेन्मौनीप्रत्यगातारकोदयात् ॥ ४२ ॥ सादित्यांमध्यमांसन्ध्याञ्जपेदादित्यसम्मुखः ॥ काललोपोनकर्तव्यस्ततःकालंप्रतीक्षयेत् ॥ ४३ ॥ कालेफलन्त्योषधयःकालेपुष्पन्तिपादपाः ॥ वर्षन्तितोयदाःकालेतस्मात्कालंनलङ्घयेत् ॥ ४४ ॥ मन्देहदेहनाशार्थमुदयास्तमयेरविः ॥ समीहतेद्विजोत्सृष्टंमन्त्रतोयाञ्जलित्रयम् ॥ ४५ ॥ गायत्रीमन्त्रतोयाढ्यंदत्तंयेनाञ्जलित्रयम् ॥ कालेसवित्रेकिंनस्यात्तेनदत्तंजगत्त्रयम् ॥ ४६ ॥ किंकिंनसवितासूतेकालेसम्यगुपासितः ॥ आयुरारोग्यमै

किये विप्र नक्षत्र उदय पर्य्यन्त जपे ॥ ४२ ॥ व मध्यगत सूर्य्यसमेत मध्यमा याने मध्याह्न की सन्ध्या में सूर्य्यके सम्मुखहो जपे और कालका लोप करनेयोग्य नहीं है उस कारण कालको परखे ॥ ४३ ॥ क्योंकि कालमें ओषधियां फलती हैं व कालमें वृक्ष फूलते हैं और कालमें मेघ वर्षते हैं उससे कालको न उलंघे ॥ ४४ ॥ व श्रीसूर्य्यजी मन्देहनाम राक्षसों की देहके नाशके अर्थ उदय और अस्तसमय में ब्राह्मणोंसे दीगई मन्त्र से मन्त्रित जलकी तीन अञ्जलियों को चाहते हैं ॥ ४५ ॥ जिसने सन्ध्याओं के कालमें सूर्य्यके लिये गायत्रीमन्त्र से अभिमन्त्रित जलकी तीन अञ्जली दिया उसने क्या त्रिलोक नहीं दिया ॥ ४६ ॥ समयमें सम्यक् उपासना किये सूर्य्य

क्या क्या नहीं उपजाते हैं आयुष् आरोग्य ऐश्वर्य्य धन पशु ॥ ४७ ॥ मित्र पुत्र स्त्री अनेक भांतिके क्षेत्र आठ प्रकारकी अणिमादि सिद्धियां स्वर्ग और मोक्षको भी देतेहैं ॥ ४८ ॥ अठारह विद्याओं में मीमांसा बहुत श्रेष्ठहै उससे भी न्यायादि तर्कशास्त्र उनसे पुराण ॥ ४९ ॥ उनसे धर्मशास्त्र उनसे वेद बहुतगरू हैं हे ब्राह्मण ! उनसे उपनिषद् श्रेष्ठहैं और उनसे अधिक गायत्री है ॥ ५० ॥ क्योंकि ॐकार समेत गायत्री सब मन्त्रों में दुर्लभ है व ऋग् यजुः साम नाम तीनोंवेदों में गायत्री से अधिक कुछ नहीं गायाजाता है ॥ ५१ ॥ गायत्री के समान मन्त्र काशी के बराबर पुरी और विश्वनाथके तुल्य अन्य लिंग नहींहै यह बारबार सत्यहै ॥ ५२ ॥ व गायत्री

श्वर्यंवसूनिसपशूनिच ॥ ४७ ॥ मित्रपुत्रकलत्राणिक्षेत्राणिविविधानिच ॥ भोगानष्टविधांश्चापिस्वर्गंचाप्यपवर्गकम् ॥ ४८ ॥ अष्टादशसुविद्यासुमीमांसातिगरीयसी ॥ ततोपितर्कशास्त्राणिपुराणंतेभ्यएवच ॥ ४९ ॥ ततोपिधर्मशास्त्राणि तेभ्योगुर्वीश्रुतिर्द्विज ॥ ततोप्युपनिषच्छ्रेष्ठा गायत्रीचततोधिका ॥ ५० ॥ दुर्लभासर्वमन्त्रेषु गायत्रीप्रणवान्विता ॥ न गायत्र्याधिकंकिञ्चित्त्रयीषुपरिगीयते ॥ ५१ ॥ नगायत्रीसमोमन्त्रो नकाशीसदृशीपुरी ॥ नविश्वेशसमंलिङ्गं सत्यंसत्यंपुनःपुनः ॥ ५२ ॥ गायत्रीवेदजननीगायत्रीब्राह्मणप्रसूः ॥ गातारन्त्रायतेयस्माद्गायत्रीतेनगीयते ॥ ५३ ॥ वाच्यवाचकसम्बन्धो गायत्र्याःसवितुर्द्वयोः ॥ वाच्योसौसवितासाक्षाद्गायत्रीवाचिकापरा ॥ ५४ ॥ प्रभावेणैवगायत्र्याः क्षत्रियः कौशिकोवशी ॥ राजर्षित्वंपरित्यज्यब्रह्मर्षिपदमीयिवान् ॥ ५५ ॥ सामर्थ्यंप्रापचात्युच्चैरन्यद्भुवनसर्जने ॥ किंकिंनदद्याद्गायत्रीसम्यगेवमुपासिता ॥ ५६ ॥ नब्राह्मणोवेदपाठान्नशास्त्रपठनादपि ॥ देव्यास्त्रिकालमभ्यासाद्ब्राह्मणःस्याद्द्विजोन्य

वेदों की माता और ब्राह्मणों की माता है जिससे जपतेजनको (त्रायते) रक्षती है उस कारण से गायत्री कहाती है ॥ ५३ ॥ गायत्री व सूर्य्य इन दोनों का वाच्यवाचक सम्बन्ध है वह साक्षात् सूर्य्य अर्थरूप या बुलाने योग्य हैं और मन्त्रों में परे गायत्री बुलाने या कहनेवाली है ॥ ५४ ॥ गायत्री के प्रभावसेही जितेन्द्रिय क्षत्रिय विश्वामित्र राजर्षिभावको तजकर ब्रह्मर्षिपदको प्राप्तहुये ॥ ५५ ॥ और अन्यलोक सिरजने में अधिक सामर्थ्य को पहुँचे हैं भलीभांति से उपासित गायत्रीही किस किस फलको नहीं देती याने सब फलको देती है ॥ ५६ ॥ व वेद पढ़ने से और शास्त्र पढ़ने से भी ब्राह्मण नहीं होताहै किन्तु त्रिकाल में गायत्रीदेवी के अभ्यास

यानै बारबार जपनेसे ब्राह्मण होवेहै और तौरसे नहीं ॥ ५७ ॥ गायत्रीही विष्णु व शिव व ब्रह्मा और वेदत्रयी है उस कारण ॥ ५८ ॥ वे ऐश्वर्य्यसम्पन्न, किरणमाली सब तेजोंकी राशि निमेषादि कालरूप और काल के वर्तावनेवाले स्वामी दिनकर सूर्य जी देवत्रय याने ब्रह्मा विष्णु रुद्ररूप हैं ॥ ५९ ॥ सार असार के ज्ञानी हमारे लोक वैकुण्ठके वासी जन सदा सूर्य्यका उद्देश कर इस श्रुतिको भी कहते या उदाहरण देतेहैं ॥ ६० ॥ हे जनो ! यह देव सब दिशा व प्रदिशाओं मे अनुव्यातहो वर्तमान है व वही सबके पूर्व याने आदि अन्तसे रहित हुआहै वही माता के गर्भ के भीतर टिकता है वही उपजा व आगे उपजनेवाला, प्रति पदार्थ में प्राप्तहै और सबओर

था ॥ ५७ ॥ गायत्र्येवपरंविष्णुर्गायत्र्येवपरःशिवः ॥ गायत्र्येवपरोब्रह्मा गायत्र्येवत्रयीततः ॥ ५८ ॥ देवत्रयंसभगवानंशुमालीदिवाकरः ॥ सर्वेषांमहसांराशिः कालःकालप्रवर्तकः ॥ ५९ ॥ अर्कमुद्दिश्यसततमस्मल्लोकनिवासिनः ॥ श्रुतिंह्युदाहरन्तीमां सारासारविवेकिनः ॥ ६० ॥ एषोहदेवःप्रदिशोनुसर्वाःपूर्वोहजातःसउगर्भेअन्तः ॥ सएवजातःसजनिष्यमाणःप्रत्यङ्जनास्तिष्ठतिसर्वतोमुखः ॥ ६१ ॥ सदैवमुपतिष्ठेरन्सौरैःसूक्तैरतन्द्रिताः ॥ येनमन्त्यन्नतेविप्राविप्रा भास्करसन्निभाः ॥ ६२ ॥ पुष्यार्केप्यथहस्तार्के मूलार्केप्यथवाद्विज ॥ उत्तरार्केऽथयत्कार्यं तत्फलत्येवनान्यथा ॥ ६३ ॥ पौषेमास्यर्कदिवसेयःस्नात्वाभास्करोदये ॥ दानंहोमंजपंकुर्यादर्चामर्कस्यसुव्रतः ॥ ६४ ॥ श्रद्धावानेकभक्तश्च कामक्रोधविवर्जितः ॥ सहाप्सरोभिर्द्युतिमान्सवसेदत्रभोगवान् ॥ ६५ ॥ अयनेविषुवेचापि षडशीतिमुखेषुवा ॥ विष्णुप

मुखहै जिसका ऐसाहो टिकाहै ॥ ६१ ॥ जे ब्राह्मण व क्षत्रियादिक आलसरहित हो यहां सदैव "उदुत्यञ्जातवेदसंदेवंवहन्तिकेतवः" इत्यादि सूर्य्यसूक्तोंसे उपस्थान करते और नमतेहैं वे सूर्य्यके बराबर हैं ॥ ६२ ॥ हे ब्राह्मण ! सूर्य्यवार पुष्य हस्त मूल और उत्तराओंमे जो कार्य्य है उसके ये फलते हैं अन्यथा नहीं ॥ ६३ ॥ व जो पूस मासमें सूर्य्योदयसमय में नहा अच्छे नियमवालाहो दान होम जप और सूर्य्य की पूजाकरे ॥ ६४ ॥ व एकबार खाता श्रद्धावान् काम क्रोधसे हीन होवे वह छबीला भोगवान् हो यहां अप्सराओं के साथ बसे ॥ ६५ ॥ व मकर कर्क, तुला मेष, धन मिथुन, कन्या मीन, वृष वृश्चिक और सिंह कुम्भ, इन संक्रान्तियोंमें जे अच्छेव्रत

वाले लोग बड़ेदान देतेहैं ॥ ६६ ॥ व जे पण्डित घीसमेत तिलोंको होमते ब्राह्मण खिलाते और पितरों को उद्देशकर श्राद्ध करते हैं ॥ ६७ ॥ व जे बड़ी पूजा करते और महामन्त्रों को जपते हैं वे इस सूर्य्यलोक में सूर्य्यके समान दीप्तिमान् होतेहैं ॥ ६८ ॥ व जे संक्रान्तियों में सूर्य्यके सेवकहैं वे दरिद्री दुःखसे पीड़ित रोगी कुरूप और अभागी नहीं है किन्तु सदा सुखीहैं ॥ ६९ ॥ व जिन्होंने संक्रान्तियोंमें न दान दिया न तीर्थोंके जलोंमें नहाया और कपिलाके घीमें भीगे तिलोंसे विशेष अन्य दिनसे अधिक होमको न किया ॥ ७० ॥ वे आंखोंसे हीनमुखवाले व द्वारे द्वारे दे दे बोलते और फाटे पुराने वस्त्रसमेतहो दीखते हैं ॥ ७१ ॥ व जो सुकर्मी पुण्यात्मा कुरुक्षेत्रमें

दांश्चयेदद्युर्महादानानिसुव्रताः ॥ ६६ ॥ तिलाञ्जुह्वतिसाज्यांश्च ब्राह्मणान्भोजयन्तिच ॥ पितॄनुद्दिश्यचश्राद्धं येकुर्वन्तिविपश्चितः ॥ ६७ ॥ महापूजांश्चयेकुर्युर्महामन्त्राञ्जपन्तिच ॥ तेऽत्रवैकर्तनेलोके विकर्तनसमप्रभाः ॥ ६८ ॥ नदरिद्रानदुःखार्ता नव्याधिपरिपीडिताः ॥ संक्रमेष्वर्कभक्तायेनविरूपानदुर्भगाः ॥ ६९ ॥ संक्रमेषुनयैर्दत्तंनस्नातंतीर्थवारिषु ॥ विशेषहोमोनकृतःकपिलाज्याप्लुतैस्तिलैः ॥ ७० ॥ तेदृश्यन्तेप्रतिद्वारं विहीननयनाननाः ॥ देहिदेहीतिजल्पन्तो देहिनःसपटच्चराः ॥ ७१ ॥ समंकृष्णलकेनापि योदद्यात्काञ्चनंकृती ॥ सूर्यग्रहेकुरुक्षेत्रे सवसेदत्रपुण्यभाक् ॥ ७२ ॥ सर्वंगङ्गासमन्तोयं सर्वेब्रह्मसमाद्विजाः ॥ सर्वंदेयंस्वर्णसमंराहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ ७३ ॥ दत्तंजप्तंहुतंस्नातं यत्किञ्चित्सदनुष्ठितम् ॥ भानूपरागेश्राद्धादि तद्धेतुर्ब्रध्नसन्निधेः ॥ ७४ ॥ रविवारेसंक्रमश्चेदुपरागोऽथवाभवेत् ॥ तदायदर्जितं पुण्यं तदिहाक्षयमाप्यते ॥७५॥ भानुवारोयदाषष्ठ्यां सप्तम्यामथजायते ॥ तदायत्सुकृतंकर्म कृतन्तादिहभुज्यते॥७६॥

सूर्य्यग्रहण के समय में घुँघुचीभर भी सोनादेवे वह पुण्यसेवी यहां बसे ॥ ७२ ॥ व राहुसे ग्रसित सूर्य्यके होतेही सब जल गङ्गा सब दान सोना और सब ब्राह्मण ब्रह्माके बराबर होतेहैं ॥ ७३ ॥ व सूर्य्यके उपरागोंमें जो कुछ दिया जपा नहाया और श्राद्धादि सुकर्म्म कियागया वह सूर्य्य के समीप जानेका कारण है ॥ ७४ ॥ और जो रविवारमें संक्रान्ति व ग्रहणहों तब जो पुण्य कमाईगईहो वह यहां क्षयरहित पहुँचाईजाती है ॥ ७५ ॥ व जब छठि तिथि व सप्तमी में सूर्य्यवार होताहै तब जो

पुण्यकर्म कियागया वह यहां भोगाजाता है ॥ ७६ ॥ सर्वज्ञ या मन्त्ररूप, दीप्तिमान्, सहस्रकिरण, तपन, तापकर्त्ता, लोकरक्षक, भक्तरोगच्छेदक, रश्मिमान् या तेजस्वी, सर्वकर्मा, अग्निस्वरूप ॥ ७७ ॥ जगद्रूप, विश्वकर्ता, मृताण्डमध्योत्पन्न, जलवर्षक, किरणवान्, अदितिपुत्र, तप्तकर, जलधनोत्पादक, त्रयीमूर्ति, जगद्वर्धक, दिनकर्त्ता, ७८ ॥ द्वादशरूप, सप्ततुरङ्ग, प्रभाकर, दिनकर, आकाशगमन, जगत्पिता, दीप्तिकर, श्रीमान्, लोकप्रकाशक, ग्रहनाथ ॥ ७९ ॥ त्रिलोकपति, लोकसाक्षी, अन्धकारशत्रु, नित्य, पवित्र, रश्मिहस्त, तीक्ष्णकिरण, संसारतारक या नौकास्वरूप, बहुतेजस्स्थान ॥ ८० ॥ द्युलोकमणि, हरिद्वर्णाश्व, सर्वपूज्य या अतिशयगमन, अंशुमान्, भयनाशन,

हंसोभानुःसहस्रांशुस्तपनस्तापनोरविः ॥ विकर्तनोविवस्वांश्च विश्वकर्माविभावसुः ॥ ७७ ॥ विश्वरूपोविश्वकर्ता मार्तण्डोमिहिरोंऽशुमान् ॥ आदित्यश्चोष्णगुःसूर्योऽर्यमाब्रध्नोदिवाकरः ॥ ७८ ॥ द्वादशात्मासप्तहयो भास्करो हस्करःखगः ॥ सूरःप्रभाकरःश्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥ ७९ ॥ त्रिलोकेशोलोकसाक्षी तमोरिःशाश्वतःशुचिः ॥ गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्तरणिःसुमहोरणिः ॥ ८० ॥ द्युमणिर्हरिदश्वोर्को भानुमान्भयनाशनः ॥ छन्दोश्ववेदवेद्यश्च भास्वान्पूषावृषाकपिः ॥ ८१ ॥ एकचक्ररथोमित्रो मन्देहारिस्तमिस्रहा ॥ दैत्यहापापहर्ताच धर्मोधर्मप्रकाशकः ॥ ८२ ॥ हेलिकश्चित्रभानुश्चकलिघ्नस्तार्क्ष्यवाहनः ॥ दिक्पतिःपद्मिनीनाथः कुशेशयकरोहरिः ॥ ८३ ॥ घर्मरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डांशुःकश्यपात्मजः ॥ एभिःसप्ततिसंख्याकैः पुण्यैःसूर्यस्यनामभिः ॥ ८४ ॥ प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमस्कारसमन्वितैः ॥ प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वादृष्ट्वादिवाकरम् ॥ ८५ ॥ विगृह्यपाणियुग्मेन ताम्रपात्रंसुनिर्मलम् ॥ जानुभ्या

गायत्र्यादिछन्दोमयतुरङ्गवान्, वेदवेद्य, प्रकाशवान्, जगत्पोषक, पुण्यफलद, पापनाशक, ॥ ८१ ॥ एकचक्ररथ, सर्वमित्र, मन्देहराक्षसवैरी, तमोहन्ता, दैत्यघाती, भक्तपापहर्त्ता, धारक, धर्मप्रकाशी ॥ ८२ ॥ आकाशचर, सप्तप्रकाररश्मि, कलिनाशक, अनूरुसारथि, दिशानाथ, कमलिनीपति, कमलहस्त, अज्ञानहर, ॥ ८३ ॥ उष्णकिरण, कष्टसाध्यदर्शन और कश्यपपुत्र ये सूर्य्य के सत्तर संख्यकनाम जो कि पुण्यरूप ॥ ८४ ॥ आदि मे ओंकार अन्त में चतुर्थी विभक्ति और नमःसमेत उनसे

श्रीसूर्य्य को देख देख एक एक नाम कहताहुआ ॥ ८५ ॥ दोनों हाथों से शुद्ध ताम्रका पात्र ले पांवों की गांठों से पृथिवी को पहुँच पात्र को पानी से पूर ॥ ८६ ॥ व उसके बीच में छोड़े लाले चन्दन से मिश्रित कनैर आदि के फूल दूब के अँगुसा और अक्षतों से ॥ ८७ ॥ ध्यानपूर्वक उस पात्रको शिर के समीप आन अमूल्य अतिउत्तम श्रीसूर्य्यदेव को अर्घ देवे व अनते दृष्टि और मन न हो जिसका ॥ ८८ ॥ वह इन रहस्यरूप सत्तर नामोंसे उदय और अस्तसमय में प्रतिमन्त्र सूर्य के नमस्कार करे ॥ ८९ ॥ यों करता मनुष्य कभी दरिद्री व दुःखी नहीं होता है और अन्य जन्मों के बटोरे घोर रोगों से छूटता है ॥ ९० ॥ और औषध वैद्य व पथ्य लेने को

मवनींगत्वा परिपूर्यजलेनच ॥ ८६ ॥ करवीरादिकुसुमै रक्तचन्दनमिश्रितैः ॥ दूर्वाङ्कुरैरक्षतैश्च निर्दिष्टैःपात्रमध्यतः ॥ ८७ ॥ दद्यादर्घ्यमनर्घ्याय सवित्रेध्यानपूर्वकम् ॥ उपमौलिसमानीय तत्पात्रंनान्यदृङ्मनाः ॥ ८८ ॥ प्रतिमन्त्रंनमस्कुर्यादुदयास्तमयेरविम् ॥ अनयानामसप्तत्या महामन्त्ररहस्यया ॥ ८९ ॥ एवंकुर्वन्नरोजातुनदरिद्रोनदुःखभाक् ॥ व्याधिभिर्मुच्यतेघोरैरपिजन्मान्तरार्जितैः ॥ ९० ॥ विनौषधैर्विनावैद्यैर्विनापथ्यपरिग्रहैः ॥ कालेननिधनंप्राप्तः सूर्यलोकेमहीयते ॥ ९१ ॥ इत्येकदेशःकथितोभानुलोकस्यसत्तम ॥ महातेजोनिधेरस्य कोविशेषमवैत्यहो ॥ ९२ ॥ स्वकर्णविषयीकुर्वन्निति पुण्यकथामिमाम् ॥ क्षणादालोकयांचक्रे महेन्द्रस्यमहापुरीम् ॥ ९३ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ श्रुत्वासौरींकथामेतामप्सरोलोकसंयुताम् ॥ नदरिद्रोभवेत्क्वापिनाधर्मेषुप्रवर्तते ॥ ९४ ॥ ब्राह्मणैःसततंश्राव्यमिदमाख्यानमुत्तमम् ॥ वेदपाठेनयत्पुण्यं तत्पुण्यफलदायकम् ॥ ९५ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याः शृण्वन्तोऽध्यायमुत्तमम् ॥ पात

कामही नहीं है कालसे मृत्युको प्राप्तहो सूर्य्यलोक में पूजाजाताहै ॥ ९१ ॥ हे सन्तों में उत्तम महातेजके निधान ! इस सूर्य्यलोक का एक देश कहागया और इसको विशेष से को जानताहै याने कोई नहीं ॥ ९२ ॥ यों इस पुण्य कथा को अपने कानो के विषय करता याने सुनता शिवशर्म्मा क्षण में इन्द्रकी महापुरी को देखताभया ॥ ९३ ॥ अगस्त्यजी बोले कि अप्सरालोक वर्णन समेत इस सूर्य्यसम्बन्धिनी कथा को सुन न कहीं दरिद्री होता है व न अधर्मों में बर्तता है ॥ ९४ ॥ वेदपाठसे जो पुण्य उस पुण्यका दाता यह उत्तम आख्यान ब्राह्मणों को निरन्तर सुनना चाहिये ॥ ९५ ॥ क्योंकि इस उत्तम अध्याय को सुनतेहुये ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य यहां

पापों को तजकर उत्तम मोक्ष को जायँगे ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेऽप्सरःसूर्य्यलोकवर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दो० । इन्द्र अग्निके लोक कहि या दशयें अध्याय । स्तोत्र पुत्रसुखदानि यक अभिलाषाष्टक आय ॥ शिवशर्मा बोला कि मनको बहुतही रमाती नेत्रों को आनन्दसमूह देती यह उत्तम पुरी कौन व किस स्वामी की है ॥ १ ॥ विष्णुगणों ने कहा कि हे सुतीर्थ फलवाले वृक्ष के समान महाभाग शिवशर्मन् ब्राह्मण ! यहां सब जन रमते हैं यह इन्द्रकी पुरी है ॥ २ ॥ जिसको बड़े तपस्या के बल से विश्वकर्मा ने बनाया व दिनमें भी जिसकी उजेरी राजघर पंक्तिकी शोभा को आश्रय करती है ॥ ३ ॥

कानिविसृज्येह गतिंयास्यन्त्यनुत्तमाम् ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽप्सरःसूर्यलोकवर्णनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवशर्मोवाच ॥ रमयन्तीमनोतीव केयंकस्येयमीशितुः ॥ नयनानन्दसन्दोहदायिनीपूरनुत्तमा ॥ १ ॥ गणावूचतुः ॥ शिवशर्मन्महाभाग सुतीर्थफलितद्रुम ॥ लोकोऽत्ररमतेविप्र सहस्राक्षपुरीत्वियम् ॥ २ ॥ तपोबलेनमहता विहिताविश्वकर्मणा ॥ दिवापिकौमुदीयस्याः सौधश्रेणीश्रियंश्रयेत् ॥ ३ ॥ यदाकलानिधिःक्वापि दर्शेदृश्यत्वमावहेत् ॥ तदास्वप्रेयसींज्योत्स्नां सौधेष्वेषुनिगूहयेत् ॥ ४ ॥ यदच्छभित्तौवीक्ष्यस्वमन्ययोषिद्विशङ्किता ॥ मुग्धानाशुविशेच्चित्रमपिस्वांचित्रशालिकाम् ॥ ५ ॥ हर्म्येषुनीलमणिभिर्निर्मितेष्वत्रनिर्भयम् ॥ स्वनीलिमानमाधाय तमोहःस्वपितिष्ठति ॥ ६ ॥ चन्द्रकान्तशिलाजालस्रुतमात्रामलञ्जलम् ॥ तत्रचादायकलशैर्नेच्छन्त्यन्यज्जलञ्जनाः ॥ ७ ॥ कुवि

व जब चन्द्रमा अमावस में कहीं अदृश्यता को प्राप्तकरता है तब राजमहलोंमें चांदनी को चोराता या चलाता है ॥ ४ ॥ जिसकी निर्मल भीतों में अपनाको देख अन्य स्त्री से शङ्कित मुग्धा शीघ्र अपनी चित्रसारी में नहीं पैठती यह विचित्रहै ॥ ५ ॥ और अन्धकार यहां कालीमणियों से बनाये महलों में अपनी श्यामताको धर दिन और उजेली रातों मे भी निडरता से टिकता है ॥ ६ ॥ व तहां चन्द्रकांतमणिसमूहों से चुवे मात्र विमल जलको घड़ों से भरतेहुये लोग और पानी को नहीं

इच्छते हैं ॥ ७॥ व इस पुरी में कपड़ा बिननेवाले और सोनार नहीं हैं जिससे यहां कल्पवृक्षही वस्त्र व गहने देता है ॥ ८ ॥ व यहां विचारविद्या के पण्डित ज्यो-
तिषी नहीं हैं जिससे शीघ्र सबके मनकी वाञ्छाओं को चिन्तामणिही जानती या गनती है॥ ९ ॥ व व्यञ्जन बनाने में दक्ष रसोईदार यहां नहीं हैं जिससे इस पुरी में
एक कामधेनुही अनेक रसों को दुहदेतीहै ॥ १० ॥ व घोड़े समूहोंके बीच जिसकी कीर्त्ति ऊंचे सुनेजानेवाली है वह घोड़ों में श्रेष्ठ बलसे अधिक उच्चैःश्रवा यहां है ॥
११ ॥ व श्वेत पत्थरों से उज्ज्वल चलते दूसरे कैलास के समान हाथियों में श्रेष्ठ चार दांतवाला ऐरावत यहां विराजता है॥ १२ ॥ व वृक्षों में रत्न पारिजात, स्त्रियों में

न्दानचसन्त्यत्र नचतेपश्यतोहराः ॥ चैलान्यलंकृतीरत्र यतःकल्पद्रुमोर्पयेत् ॥ ८ ॥ गणकानात्रविद्यन्ते चिन्ताविद्या
विशारदाः ॥ यतश्चिकेतिसर्वेषां चिन्तांचिन्तामणिर्द्रुतम् ॥ ९ ॥ सूपकारानसन्त्यत्र रसकर्मविचक्षणाः ॥ दुग्धेसर्वरसा
नेका कामधेनुरतोयतः ॥ १० ॥ कीर्तिरुच्चैःश्रवायस्य सर्वतोवाजिराजिषु ॥ रत्नमुच्चैःश्रवाःसोत्र हयानांपौरुषाधिकः ॥
११ ॥ ऐरावतोदन्तिवरश्चतुर्दन्तोत्रराजते ॥ द्वितीयइवकैलासो जङ्गमस्फटिकोज्ज्वलः ॥ १२ ॥ तरुरत्नंपारिजातः स्त्री
रत्नंसोर्वशीत्विह ॥ नन्दनंवनरत्नञ्च रत्नंमन्दाकिनीह्यपाम् ॥ १३ ॥ त्रयस्त्रिंशत्सुराणांयाकोटिःश्रुतिसमीरिता ॥ प्रतीक्ष
तेसाऽवसरं सेवायैप्रत्यहंत्विह ॥ १४ ॥ स्वर्गेष्विन्द्रपदादन्यन्नविशिष्येतकिञ्चन ॥ यद्यत्त्रिलोक्यामैश्वर्यं नतत्तुल्यमने
नहि ॥ १५ ॥ अश्वमेधसहस्रस्य लभ्यंविनिमयेनयत् ॥ किन्तेनतुल्यमन्यत्स्यात्पवित्रमथवामहत् ॥ १६ ॥ अर्चिष्म
तीसंयमिनी पुण्यवत्यमलावती ॥ गन्धवत्यलकेशीचनैतत्तुल्यामहर्धिभिः ॥ १७ ॥ अयमेवसहस्राक्षस्त्वयमे

रत्न वह उर्वशी, वनोंमें रत्न नन्दन और जलों याने नदियोंमें रत्न आकाशगङ्गाभी यहांहै ॥१३॥ व वेदोंसे कही जे देवोंकी तेंतीस करोड़ हैं वे यहां प्रतिदिन सेवाके अवकाश
को परखती हैं ॥ १४ ॥ और स्वर्ग सें कुछभी नहीं इन्द्रस्थान से विशेष होता क्योंकि तीनों लोकों में जो जो ऐश्वर्य है वह उसके तुल्य नहीं है ॥ १५ ॥ जो कि हजार
अश्वमेध यज्ञके बदलेसे मिलताहै उसके बराबर पवित्र व महान् आन क्याहो ॥१६॥ व अग्नि,यम ,निर्ऋति,वरुण,वायु,कुबेर और ईशानकी पुरियां भी बड़ी ऋद्धियोंसे

इसके समान नहीं है ॥१७॥ और यही इन्द्रदेव सहस्रनेत्र हैं यही स्वर्गनाथहैं व यही शतमन्यु नामसे भी कहेजाते हैं ॥ १८ ॥ और अग्नि आदि जे सातो लोकपालहैं वे इनकी उपासना करते हैं व यही नारदादि मुनियों करके आशीर्वादोंसे प्रशंसे जाते हैं ॥ १९ ॥ व इनकी स्थिरता से सबकी स्थिरता इच्छी जाती है व महेन्द्र के हारसे त्रिलोककी हार होती है ॥ २० ॥ इसी इन्द्रलोकके चाही हो उग्र संयमवाले दानव मनुष्य दैत्य गन्धर्व यक्ष और राक्षसभी तपस्या करते है ॥ २१ ॥ व इन्द्रका ऐश्वर्य्य पाने के चाही हो अश्वमेधयज्ञकर्त्ता सगरादि राजाओंने बड़ा यत्न कियाहै ॥ २२ ॥ जो कोई पृथिवी में निर्विघ्न सौ यज्ञोंको करता है वह इन्द्रियजित् इन्द्रपुरीमें इन्द्रा-

वदिवस्पतिः ॥ शतमन्युरयंदेवो नामान्येतानिनामतः ॥ १८ ॥ सप्तापिलोकपालाये तएनंसमुपासते ॥ नारदाद्यै र्मुनिवरैरयमाशीर्भिरीड्यते ॥ १९ ॥ एतत्स्थैर्येणसर्वेषांलोकानांस्थैर्यमिष्यते ॥ पराजयान्महेन्द्रस्यत्रैलोक्यं स्यात्पराजितम् ॥ २० ॥ दनुजामनुजादैत्यास्तपस्यन्त्युग्रसंयमाः ॥ गन्धर्वयक्षरक्षांसि महेन्द्रपदलिप्सवः ॥ २१ ॥ सगराद्यामहीपाला वाजिमेधविधायकाः ॥ कृतवन्तोमहायत्नं शक्रैश्वर्यजिघृक्षवः ॥ २२ ॥ निष्प्रत्यूहंक्रतुशतं यः कश्चित्कुरुतेऽवनौ ॥ जितेन्द्रियोमरावत्यां सप्राप्नोतिपुलोमजाम् ॥ २३ ॥ असमाप्तक्रतुशता वसन्त्यत्रमहीभुजः ॥ ज्योतिष्टोमादिभिर्यागैर्येयजन्त्यपितेद्विजाः ॥ २४ ॥ तुलापुरुषदानादिमहादानानिषोडश ॥ येयच्छन्त्यमलात्मान स्तेलभन्तेऽमरावतीम् ॥ २५ ॥ अक्लीबवादिनोधीराः संग्रामेष्वपराङ्मुखाः ॥ विक्रान्तावीरशयने तेऽत्रतिष्ठन्तिभूभु जः ॥ २६ ॥ इत्युद्देशात्समाख्याता महेन्द्रनगरीस्थितिः ॥ यायजूकावसन्त्यत्र यज्ञविद्याविशारदाः ॥ २७ ॥ इमामर्चि

णीको पाताहै ॥ २३ ॥ व नहीं पूरीभई सौ अश्वमेधयज्ञें जिनकी वे राजालोग और जे ब्राह्मण ज्योतिष्टोमादियज्ञोंसे पूजते हैं वे भी यहां बसते हैं ॥ २४ ॥ व जे शुद्ध-चित्त, तुलापुरुष आदि सोलह महादान देतेहैं वे इन्द्रपुरीको पातेहैं ॥ २५ ॥ व जे वीरता बोलते धीर संग्राम से नहीं भागते हैं और वीरशय्या में मरतेहै वे भूप यहां बसते हैं ॥ २६ ॥ यज्ञविद्यामें पण्डित यज्ञशील लोग यहां टिकते हैं यों नाममात्र से इन्द्रपुरी की स्थिति कहीगई ॥ २७ ॥ और इस शुभ अर्चिष्मती नाम अग्निपुरी

को देखो जे अग्नि के भक्तहैं वे अच्छे व्रतवाले यहां बसते हैं ॥ २८ ॥ जे इन्द्रियों को जीते दृढ़ सत्त्वसंयुत पुरुष और स्त्रियां भी अग्नि में प्रवेश करे वे सब अग्निके समान तेजवाले होवें ॥ २९ ॥ अग्निहोत्र (नित्ययज्ञ) मे रत ब्राह्मण तथा अग्निसेवी ब्रह्मचारी और जे पंचाग्नि तापते हैं वे अग्निलोकमें अग्निसम तेजस्वी होते हैं ॥ ३० ॥ जो शीतकाल में जाड़ जानेके लिये काठोंका बोझ देवे व अँगेठी बनावे वह अग्निके समीप में बसे ॥ ३१ ॥ व श्रद्धा समेत जो अनाथ मुर्दाका अग्निसंस्कारकरे याने जलावे व जो असमर्थहो तो और को आज्ञा देवै वह अग्निलोक में पूजा पावे ॥ ३२ ॥ व जो उदर की अग्नि बढ़नेके लिये मन्दाग्निरोगीको अग्नि

ष्मतींपश्य वीतिहोत्रपुरींशुभाम् ॥ जातवेदसियेभक्तास्तेत्रसन्त्यत्रसुव्रताः ॥ २८ ॥ अग्निप्रवेशंयेकुर्युर्दृढसत्त्वाजितेन्द्रियाः॥ स्त्रियोवासत्त्वसम्पन्नास्तेसर्वेह्यग्नितेजसः ॥ २९ ॥ अग्निहोत्ररताविप्रास्तथाग्निब्रह्मचारिणः ॥ पञ्चाग्निव्रतिनोयेवै तेऽग्निलोकेऽग्नितेजसः ॥ ३० ॥ शीतेशीतापनुत्त्यैयस्त्विधस्भारान्प्रयच्छति ॥ कुर्यादग्निष्टिकांवाऽथ सवसेदग्निसन्निधौ ॥ ३१ ॥ अनाथस्याग्निसंस्कारं यःकुर्याच्छ्रद्धयान्वितः ॥ अशक्तःप्रेरयेदन्यं सोग्निलोकेमहीयते ॥ ३२ ॥ जठराग्निविवृद्ध्यैयो दद्यादाग्नेयमौषधम् ॥ मन्दाग्नयेसपुण्यात्मा वह्निलोकेवसेच्चिरम् ॥ ३३ ॥ यज्ञोपस्करवस्तूनि यज्ञार्थंद्रविणन्तुवा ॥ यथाशक्तिप्रदद्याद्यो ह्यर्चिष्मत्यांवसेत्सवै ॥ ३४ ॥ अग्निरेकोद्विजातीनां निःश्रेयसकरःपरः ॥ गुरुर्देवोव्रतंतीर्थं सर्वमग्निर्विनिश्चितम् ॥ ३५ ॥ अपावनानिसर्वाणिवह्निसंसर्गतःक्षणात् ॥ पावनानिभवन्त्येव तस्माद्यः पावकःस्मृतः ॥ ३६ ॥ अपिवेदंविदित्वायस्त्यक्त्वावैजातवेदसम् ॥ अन्यत्रबध्नातिरतिंब्राह्मणोनसवेदवित् ॥ ३७ ॥ अ

बढ़ानेवाली दवाई देवे वह पुण्यात्मा अग्निलोक में बहुत कालतक बसे ॥ ३३ ॥ व जो यज्ञके अर्थ अपनी शक्तिके अनुसार यज्ञसामग्रीकी चीजें और धन भी देवे वह निश्चय अग्निपुरी में बसे ॥ ३४ ॥ इससे एक अग्निदेवही ब्राह्मणादि तीनोंवर्णों का मुक्तिदाता परमदेव गुरु व्रत तीर्थ और सब कुछ है यह निश्चय कियागया है ॥ ३५ ॥ क्योंकि सब अपवित्रवस्तुवें अग्निके संयोग से क्षण में पवित्र होती हैं उससे जो पावक कहाता है ॥ ३६ ॥ व जो ब्राह्मण वेदोंको जानभी अग्निको तज

३८

और में सनेह बांधता है वह वेद जाननेवाला नहीं है ॥ ३७ ॥ यह अग्निदेव साक्षात् सबके अन्तरात्मा याने अन्तःकरण के साक्षी निश्चित हैं जोकि खायेगये मांसके कवलोंको पकाता और स्त्रियोंके कोखमें गर्भवाले बालककी मांसपिण्डीको नहीं ॥३८॥ और अग्निरूपिणी प्रत्यक्ष तैजसी शिवकी मूर्त्ति लोकोंके करने व हरने और पालनेवाली है इसके विना क्या दीखता है ॥ ३९ ॥ यह अग्नि साक्षात् परमेश्वरकी आंखहै इसके विना अन्धकारमय लोकमें को प्रकाश करता है ॥ ४० ॥ व इसके खाये धूप दीप नैवेद्य दूध दही घी और मिठाई को सब देव स्वर्गमें सेवते हैं ॥ ४१ ॥ शिवशर्म्मा बोला कि यह अग्निदेव कौन व किसका पुत्र है इसने कैसे

न्तरात्माह्ययंसाक्षान्निश्चितोह्याशुशुक्षणिः ॥ मांसग्रासान्पचेत्कुक्षौ स्त्रीणांनोमांसपेशिकाम् ॥ ३८ ॥ तैजसीशाम्भवी मूर्तिःप्रत्यक्षादहनात्मिका ॥ कर्त्रीहन्त्रीपालयित्री विनैनांकिंविलोक्यते ॥ ३९ ॥ चित्रभानुरयंसाक्षान्नेत्रंत्रिभुवनेशितुः ॥ अन्धन्तमोमयेलोके विनैनङ्कःप्रकाशकः ॥ ४० ॥ धूपप्रदीपनैवेद्यपयोदधिघृतैक्षवम् ॥ एतद्भुक्तंनिषेवन्ते सर्वेदिविदिवौकसः ॥ ४१ ॥ शिवशर्मोवाच ॥ कोयंकृशानुःकस्यायंसूनुःकथमिदंपदम् ॥ आग्नेयंलब्धमेतेन ब्रूतमेतन्ममाग्रतः ॥ ४२ ॥ गणावूचतुः ॥ आकर्णयमहाप्राज्ञ वर्णयावोयथातथम् ॥ योयंयस्ययथाऽनेन प्रापिज्योतिष्मतीपुरी ॥ ४३ ॥ नर्मदायास्तटेरम्ये पुरेनर्मपुरेपुरा ॥ पुरारिभक्तःपुण्यात्माभवद्विश्वानरोमुनिः ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्याश्रमेनिष्ठो ब्रह्मयज्ञरतःसदा ॥ शाण्डिल्यगोत्रःशुचिमान् ब्रह्मतेजोनिधिर्वशी ॥ ४५ ॥ विज्ञाताखिलशास्त्रार्थो लौकिकाचारचञ्चुरः ॥ कदाचिच्चिन्तयामास हृदिध्यात्वामहेश्वरम् ॥ ४६ ॥ चतुर्णामप्याश्रमाणां कोतीवश्रेयसेसताम् ॥ यस्मिन्प्राप्नोतिसंक्षुण्णे

इस आग्नेयस्थानको लहा यह मेरे आगे कहो ॥ ४२ ॥ विष्णुगण बोले कि हे महापण्डित ! सुन यह जो है व जिसका पुत्रहै और जैसे इसको ज्योतिष्मतीपुरी मिली वैसे हम दोनों यथातथ्य कहते हैं ॥ ४३ ॥ आगे नर्मदाके किनारे नर्मपुर में शिवका भक्त पुण्यात्मा विश्वानर नाम मुनि हुआ ॥ ४४ ॥ जोकि ब्रह्मचर्य्य आश्रममें टिका, सदा वेदपाठरूप यज्ञमें रत व शाण्डिल्यगोत्र व पवित्रतावान् ब्रह्मतेजका निधान इन्द्रियजित् ॥ ४५ ॥ व सम्पूर्ण शास्त्रोंके अर्थोंका ज्ञाता और लोकव्यवहारमें निपुण

था उसने कभी मनमें महेशको ध्यानधर चिन्तना किया कि ॥ ४६ ॥ चार आश्रमोंमें भी सन्तोंके कल्याण के लिये कौनहै जिसके भलीभांति के निबाहे से लोक पर-
लोकमें सुख होताहै ॥ ४७ ॥ यह कल्याणकर यह कल्याणकर यह सुखसाध्य है यों मनमें सबको विचार गृहस्थाश्रमकी प्रशंसा किया ॥ ४८ ॥ क्योंकि ब्रह्मचारी
गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी इन सबका आधार गृहस्थहीहै यह अन्यथा नहीं ॥४९॥ जिससे कि गृहस्थही प्रति दिनमें देव मनुष्य पितर और पशु पक्षीआदिकोंको जीविका
देताहै उससे गृहाश्रमी श्रेष्ठहै ॥ ५० ॥ व विना नहाये विना होमकिये विना दान दिये जो गृहस्थ कुछ खाता पीताहै वह देवादिकों का ऋणीहो नरकको जाताहै ॥

**परत्रेहचवासुखम् ॥ ४७ ॥ इदंश्रेयस्त्विदंश्रेयस्त्विदंतुसुकरंभवेत् ॥ इत्थंसर्वंसमालोड्य गार्हस्थ्यंप्रशशंसह ॥ ४८ ॥
ब्रह्मचारीगृहस्थोवा वानप्रस्थोऽथभिक्षुकः ॥ एषामाधारभूतोसौ गृहस्थोनान्यथेतिच ॥ ४९ ॥ देवैर्मनुष्यैःपितृभिस्ति
र्यग्भिश्चोपजीव्यते ॥ गृहस्थःप्रत्यहंयस्मात्तस्माच्छ्रेष्ठोगृहाश्रमी ॥ ५० ॥ अस्नात्वाचाप्यहुत्वावाऽदत्त्वावाश्नातियोगृ
ही ॥ देवादीनामृणीभूत्वा नरकंप्रतिपद्यते ॥ ५१ ॥ अस्नाताशीमलंभुङ्क्ते त्वजपीपूयशोणितम् ॥ अहुताशीक्रिमीन्भु
ङ्क्तेप्यदत्त्वाविड्भोजनः ॥ ५२ ॥ ब्रह्मचर्यंहिगार्हस्थ्ये यादृक्कल्पनयोज्झितम् ॥ स्वभावचपलेचित्ते क्वतादृग्ब्रह्मचारि
णि ॥ ५३ ॥ हठाद्वालोकभीत्यावा स्वार्थाद्वाब्रह्मचर्यभाक् ॥ सङ्कल्पयतिचित्तेचेत्कृतमप्यकृतंतदा ॥ ५४ ॥ परदारपरि
त्यागात्स्वदारपरितुष्टितः ॥ ऋतुकालाभिगामित्वाद्ब्रह्मचारीगृहीरितः ॥ ५५ ॥ विमुक्तरागद्वेषोयः कामक्रोधविवर्जितः ॥
साग्निःसदारःसगृहीवानप्रस्थाद्विशिष्यते ॥ ५६ ॥ वैराग्याद्गृहमुत्सृज्य गृहधर्मान्हृदिस्मरेत् ॥ समवेदुभयभ्रष्टो वान**

५१ ॥ जोकि नहाये विना जपे विना होमकिये विना दानदिये विना कुछ खाताहै वह क्रमसे मल पीबयुक्त रक्त कीड़ा और विष्ठा खाता है ॥ ५२ ॥ जैसा छूटेबन्धन
ब्रह्मचर्य्य गृहस्थी में है वैसा स्वभावसेही चञ्चलचित्तवाले ब्रह्मचारीमें कहां है ॥ ५३ ॥ जो कि हठसे व लोकके डरसे और स्वार्थसे ब्रह्मचारीहो मनमें ब्रह्मचर्य्य विरोधीकर्म
करनेका विचार करताहै तो कियाहुआ भी ब्रह्मचर्य्य न कियाहुआ होजाताहै ॥५४॥ व अन्यकी स्त्रीका त्याग अपनी स्त्रीसे सन्तोष और रजस्वलास्नान के पीछे उसके
पास जानेसे गृहस्थ भी ब्रह्मचारी कहाताहै ॥ ५५ ॥ और प्रीति वैर काम क्रोधसे रहित व अग्निसेवा और स्त्रीसहित जो गृहस्थहै वह वानप्रस्थसे विशेष होताहै ॥५६॥

जो वैराग्य से घरको तज हृदयमें घरके धर्म्मोंको सुमिरै वह दोनोंसे भ्रष्टहोवे क्योंकि वह न वानप्रस्थ है और न गृहस्थ है ॥ ५७ ॥ जो जिसी किसी प्रकार से सन्तुष्टहो विना मांगे प्राप्तभई वृत्तिसे बर्ततांहै वह गृहस्थ संन्यासी से अधिकहै ॥ ५८ ॥ जोकि संन्यासी कभी कुछ मांगे व जो दुर्लभहो उस चीजको मांगे और भोजनमें सन्तुष्ट न हो वह अपने आश्रम से भ्रष्टहोवे ॥ ५९ ॥ इस प्रकारसे गुण व अवगुणको विचार उस वैश्वानर ब्राह्मणने योग्य जो कुलमें उपजी कन्या उसकोव्याहा ॥ ६० ॥ अग्निसेवा में रत, पञ्चयज्ञमें परायण, नित्यस्नान समेत सन्ध्या, जप, होम, देवपूजा और अतिथिपूजा इन छःकर्मो का कर्त्ता व देव पितर और अतिथि ये प्यारे हैं

प्रस्थोनवागृही ॥ ५७ ॥ अयाचितोपस्थितयायोवृत्त्यावर्ततेगृही ॥ येनकेनापिसन्तुष्टो भिक्षुकात्सविशिष्यते ॥ ५८ ॥ प्रार्थयेद्यत्कचित्किञ्चिद्दुष्प्रापंवाभविष्यति ॥ अशनेषुनसन्तुष्टः सयतिःपतितोभवेत् ॥ ५९ ॥ गुणागुणंविचार्येत्थंसवै विश्वानरोद्विजः ॥ उद्ववाहविधानेन स्वोचितांकुलकन्यकाम् ॥ ६० ॥ अग्निशुश्रूषणरतः पञ्चयज्ञपरायणः ॥ षट्कर्म निरतोनित्यं देवपित्रतिथिप्रियः ॥ ६१ ॥ धर्मार्थकामान्युक्तात्मा सोर्जयन्स्वस्वकालतः ॥ परस्परमसङ्कोचं दम्पत्यो रानुकूल्यतः ॥ ६२ ॥ पूर्वाह्णेदैविकंकर्म सोकरोत्कर्मकाण्डवित् ॥ मध्यंदिनेमनुष्याणां पितृणामपराह्णके ॥ ६३ ॥ एवं बहुतिथेकाले गतेतस्याग्रजन्मनः ॥ भार्याशुचिष्मतीनामकामपत्नीवसुव्रता ॥ ६४ ॥ अपश्यन्त्यङ्कुरमपि सन्ततेःस्व र्गसाधनम् ॥ विज्ञायशङ्करंकान्तं प्रणिपत्यव्यजिज्ञपत् ॥ ६५ ॥ शुचिष्मत्युवाच ॥ आर्यपुत्रार्यधिषणप्राणनाथप्रियव्र

जिसके ॥ ६१ ॥ वह मन जोड़नेवाला व आपुस में विना संकोच स्त्री पुरुष की प्रसन्नता से अपने अपने समय में धर्म अर्थ और काम को इकट्ठे करताहुआ घर में बसा ॥ ६२ ॥ व उस कर्मकाण्ड के पण्डित ने दिनके पहिले हिस्से में देवों का कर्म दुपहर में मनुष्यों का और तीसरे पहर में पितरों का कर्म किया ॥ ६३ ॥ यों बहुत काल बीते उस ब्राह्मण की स्त्री जो कि शुचिष्मती नाम अच्छेव्रतवाली व काम की स्त्री रतिसी थी ॥ ६४ ॥ वह स्वर्ग का साधन सन्तान का अंकुर याने पुत्रादि को न देखतीहुई कल्याणकर्ता पति को जान प्रणामकर जनाती भई ॥ ६५ ॥ शुचिष्मती बोली कि हे सुकर्म्मी के पुत्र सुबुद्धि प्राणनाथ ! व्रतों के प्यारकरनेहारे

होवे क्योंकि वही शिव जो सबके कर्त्ता हैं ॥ ७५ ॥ उन शम्भु ने वाक्इन्द्रिय रूप से इसके मुख में टिक जो कहा उसको अन्यथा करने को कौन समर्थ है यह होवे गा ॥ ७६ ॥ तदनन्तर एक स्त्री के नियम में स्थित शोभावान् व धनवान् विश्वानर मुनि उस स्त्री से बोला कि हे छबीली ! योंहीं होगा ॥ ७७ ॥ इसप्रकार उस स्त्री का आश्वासनकर वह मुनि तहां तपस्या को गया जहां साक्षात् काशीके नाथ विश्वनाथजी अधिकता से टिके हैं ॥ ७८ ॥ अनन्तर उसने काशी में जा मणिकर्णिका को देख सैकरों जन्मों के बटोरे दैहिक, दैविक, भौतिक इन तीनतापों को भी त्याग दिया ॥ ७९ ॥ व विश्वनाथादि सब लिङ्गों को देख सब कुण्ड कुवां

खेस्थित्वावाक्स्वरूपेणशम्भुना ॥ व्याहृतंकोऽन्यथाकर्तुमुत्सहेतभवेदिदम् ॥ ७६ ॥ ततःप्रोवाचतांपत्नीमेकपत्नीव्रते स्थितः ॥ विश्वानरमुनिःश्रीमानितिकान्तेभविष्यति ॥ ७७ ॥ इत्थमाश्वास्यतांपत्नींजगामतपसेमुनिः ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षात्काशीनाथोधितिष्ठति ॥ ७८ ॥ प्राप्यवाराणसींतूर्णंदृष्ट्वाथमणिकर्णिकाम् ॥ तत्याजतापत्रितयमपिजन्मशतार्जितम् ॥ ७९ ॥ दृष्ट्वासर्वाणिलिङ्गानि विश्वेशप्रमुखानिच ॥ स्नात्वासर्वेषुकुण्डेषुवापीकूपसरःसुच ॥ ८० ॥ नत्वाविनायकान्सर्वान्गौरीःसर्वाःप्रणम्यच ॥ सम्पूज्यकालराजंचभैरवंपापभक्षणम् ॥ ८१ ॥ दण्डनायकमुख्यांश्च गणान्स्तुत्वाप्रयत्नतः ॥ आदिकेशवमुख्यांश्चकेशवान्परितोष्यच ॥ ८२ ॥ लोलार्कमुख्यसूर्यांश्चप्रणम्यचपुनःपुनः ॥ कृत्वापिण्डप्रदानानिसर्वतीर्थेष्वतन्द्रितः ॥ ८३ ॥ सहस्रभोजनाद्यैश्चयतीन्विप्रान्प्रतर्प्यच ॥ महापूजोपचारैश्चलिङ्गान्यभ्यर्च्यभक्तितः ॥ ८४ ॥ असकृच्चिन्तयामासकिंलिङ्गंक्षिप्रसिद्धिदम् ॥ यत्रानिश्चलतामेतितपस्तनयकाम्यया ॥ ८५ ॥

बावली और तड़ागों में नहा ॥ ८० ॥ सब विनायक व सब देवियों के प्रणामकर पापनाशक कालराज भैरवको पूज ॥ ८१ ॥ यत्न से दण्डनायकआदि गणों की स्तुतिकर व आदिकेशव मुख्यहैं जिनमें उन विष्णुस्वरूपों को सन्तोष ॥ ८२ ॥ लोलार्कआदि सूर्योंको बारबार प्रणाम आलसरहित हो सब तीर्थोंमें पिण्डदानकर ॥ ८३ ॥ हजार भोजनादिकों से संन्यासी और ब्राह्मणों को तृप्तकर बड़ी पूजाके उपचारोंसे भक्तिकरके लिङ्गोंको पूज ॥ ८४ ॥ बार बार विचारा कि कौन लिङ्ग शीघ्र

आपके पद पूजने से इस लोक में मुझको कुछ दुर्लभ नहीं है ॥ ६६ ॥ जे भोग स्त्रियों को उचित हैं वे आपके प्रसादसे मुझकरके अतिशय कर भोगेगये हैं प्रसंग से उनको कहती हूं ॥ ६७ ॥ अच्छे कपड़े अच्छे घर अच्छी शय्या अच्छी दासी माला ताम्बूल अन्न और पान (पीने की चीजें) ये आठ भोग निजधर्मवालों के हैं ॥ ६८ ॥ हे नाथ ! एक मेरा प्रार्थित बहुत दिन से मन में टिका है जो कि गृहस्थों के योग्य है उसके देने के लिये आप समर्थहो ॥ ६९ ॥ विश्वानर बोला कि हे अच्छे कटिवाली प्रियहितचाहिनि सुभागिनि ! तुझे क्या अदेयहै इससे उसको मांग मैं शीघ्रही दूंगा ॥ ७० ॥ हे कल्याणि ! सब शुभकर्त्ता शिवकी प्रसन्नतासे इसउस

त ॥ नदुर्लभम्मास्तीह किञ्चित्त्वचरणार्चनात् ॥ ६६ ॥ येवैभोगाःसमुचिताः स्त्रीणांतेत्वत्प्रसादतः ॥ अलङ्कृत्यम यामुक्ताः प्रसङ्गाद्वच्मितान्यपि ॥ ६७ ॥ सुवासांसिसुवासाश्चसुशय्यासुनितम्बिनी ॥ स्रक्ताम्बूलान्नपानाश्चअष्टौ भोगाःस्वधर्मिणाम् ॥ ६८ ॥ एकंमेप्रार्थितंनाथचिरायहृदिसंस्थितम् ॥ गृहस्थानांसमुचितंतत्त्वंदातुमिहार्ह सि ॥ ६९ ॥ विश्वानरउवाच ॥ किमदेयंहिसुश्रोणितवप्रियहितैषिणि ॥ तत्प्रार्थयमहाभागेप्रयच्छाम्यविलम्बित म् ॥ ७० ॥ महेशितुःप्रसादेनममकिञ्चिन्नदुर्लभम् ॥ इहामुत्रचकल्याणिसर्वकल्याणकारिणः ॥ ७१ ॥ इतिश्रुत्वावचः पत्युस्तस्यसापतिदेवता ॥ उवाचहृष्टवदनायदिदेयोवरोमम ॥ ७२ ॥ वरयोग्यास्मिचेन्नाथनान्यंवरमहंवृणे ॥ महेश सदृशंपुत्रंदेहिमाहेश्वरानघ ॥ ७३ ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वाशुचिष्मत्याःशुचिव्रतः ॥ क्षणंसमाधिमाधायहृद्येतत्समचि न्तयत् ॥७४॥ अहोकिमेतयातन्व्याप्रार्थितंह्यतिदुर्लभम् ॥ मनोरथपथाद्दूरमस्तुवासाहिसर्वकृत् ॥ ७५ ॥ तेनैवास्यासु

लोक में मुझको कुछ दुर्लभ नहीं है ॥ ७१ ॥ यों पतिका वचन सुन प्रसन्नमुखी उस पतिव्रता ने कहा कि जो मुझको वरदेने योग्य है ॥ ७२ ॥ और हे नाथ ! जो मैं वर के योग्यहूं तो अन्यवर मांगती नहीं किन्तु हे महेशभक्त ! अपाप आप मुझे शिवके समान पुत्र दो ॥ ७३ ॥ यों उस शुचिष्मतीका वचनसुन पवित्रव्रत विश्वानरने क्षणभर समाधि ला हृदय में यह चिन्तना किया ॥ ७४ ॥ कि आश्चर्य्य है इस स्त्री ने क्या मांगा जो कि बहुतदुर्लभ व मनोरथमार्ग से दूर है अथवा

सिद्धिदाताहै जिसमें पुत्रकी कामनासे तपस्या स्थिरताको प्राप्तहोवै ॥ ८५ ॥ क्योंकि श्रीॐकारनाथ, कृत्तिवासेश्वर, कालेश, वृद्धकालेश, कलशेश्वर ॥ ८६ ॥ केदारेश्वर, कामेश्वर, चन्द्रेश, त्रिलोचन, ज्येष्ठेश्वर, जम्बुकेश, जैगीषव्येश्वर ॥ ८७ ॥ दशाश्वमेधेश्वर, ईशान, द्रुमिचण्डेश्वर, दृक्केश्वर, गरुडेश, गोकर्णेश्वर, गणेश्वर ॥ ८८ ॥ ढुंढि आशागजसिद्धेश्वर, धर्मेश, तारकेश, नन्दिकेश, निवासेश, पत्रीश, प्रीतिकेश्वर ॥ ८९ ॥ पर्वतेश, पशुपति, ब्रह्मेश्वर, मध्यमेश्वर, बृहस्पतीश्वर, तिल-

श्रीमदोङ्कारनाथंवाकृत्तिवासेश्वरंकिमु ॥ कालेशंवृद्धकालेशंकलशेश्वरमेवच ॥ ८६ ॥ केदारेशंतुकामेशंचन्द्रेशंवात्रिलोचनम् ॥ ज्येष्ठेशंजम्बुकेशंवाजैगीषव्येश्वरंतुवा ॥ ८७ ॥ दशाश्वमेधमीशानंद्रुमिचण्डेशमेवच ॥ दृक्केशंगरुडेशंचगोकर्णेशंगणेश्वरम् ॥ ८८ ॥ ढुण्ढ्याशागजसिद्धाख्यंधर्मेशंतारकेश्वरम् ॥ नन्दिकेशंनिवासेशंपत्रीशंप्रीतिकेश्वरम् ॥ ८९ ॥ पर्वतेशंपशुपतिंब्रह्मेशंमध्यमेश्वरम् ॥ बृहस्पतीश्वरंवाथविभाण्डेश्वरमेवच ॥ ९० ॥ भारभूतेश्वरंकिंवामहालक्ष्मीश्वरंतुवा ॥ मरुत्तेशंतुमोक्षेशंगङ्गेशंनर्मदेश्वरम् ॥ ९१ ॥ मार्कण्डंमणिकर्णीशंरत्नेश्वरमथापिवा ॥ अथवायोगिनीपीठंसाधकस्यैवसिद्धिदम् ॥ ९२ ॥ यामुनेशंलाङ्गलीशंश्रीमद्विश्वेश्वरंविभुम् ॥ अविमुक्तेश्वरंवाथविशालाक्षीशमेवच ॥ ९३ ॥ व्याघ्रेश्वरंवराहेशंव्यासेशंवृषभध्वजम् ॥ वरुणेशंविधीशंवावसिष्ठेशंशनीश्वरम् ॥९४॥ सोमेश्वरंकिमिन्द्रेशंस्वर्लीनंसङ्गमेश्वरम् ॥ हरिश्चन्द्रेश्वरंकिंवाहरिकेशेश्वरंतुवा ॥ ९५ ॥ त्रिसन्ध्येशंमहादेवमुपशान्तिशिवंतथा ॥ भवानीशंकपर्दीशंकन्दुकेशंमखेश्वरम् ॥ ९६ ॥ मित्रावरुणसंज्ञंवाकिमेषामाशुपुत्रद

भाण्डेश्वर ॥ ९० ॥ भारभूतेश्वर, लक्ष्मीश्वर, मरुत्तेश, मोक्षेश, गंगेश, नर्मदेश ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेयेश्वर, मणिकर्णिकेश्वर, रत्नेश्वर अथवा योगिनीपीठ साधक का सिद्धिदाता है ॥ ९२ ॥ व यामुनेश, लांगलीश, श्रीविश्वनाथ, अविमुक्तेश्वर, विशालाक्षीश्वर ॥ ९३ ॥ व्याघ्रेश्वर, वराहेश्वर, व्यासेश्वर, वृषध्वज, वरुणेश, विधीश्वर, वसिष्ठेश्वर, शनीश्वर ॥ ९४ ॥ सोमेश्वर, इन्द्रेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, संगमेश्वर, हरिश्चन्द्रेश्वर, हरिकेशेश्वर ॥ ९५ ॥ त्रिसन्ध्येश्वर, महादेव, उपशान्ति, शिव,

भवानीश, कपर्दीश, कन्दुकेश्वर, मखेश्वर ॥ ९६ ॥ और मित्रावरुणेश्वर संज्ञक अनेक लिङ्ग हैं इनमें कौन शीघ्र पुत्रदाताहै तब वह सुबुद्धि विश्वानरमुनि क्षणभर यों विचारकर ॥ ९७ ॥ कि भूलेहाल को मैंने जाना व मेरा मनोरथ फला व सिद्धों से सेवित जो लिङ्गहै वह सब सिद्धिकर्त्ता और सबसे परे है ॥ ९८ ॥ जिसके दर्शन पर्शन से मन सुखका भागी होताहै व जहां स्वर्गका द्वार सदा उघार रहता है ॥ ९९ ॥ व रात दिन पूजाके अर्थ देवनाथ से प्रार्थनाकर उस पञ्चमुद्रापीठ में जोकि सब जन्तुओं का सिद्धिदाता है ॥ १०० ॥ व जहां सिद्धिरूपिणी वह विकटा देवी प्रकट हैं व साक्षात् सिद्धिविनायकजी जहां टिके भक्तों के ॥ १०१ ॥ विघ्नसमूहो

म् ॥ क्षणंविचार्यसमुनिरितिविश्वानरःसुधीः ॥ ९७ ॥ आज्ञातंविस्मृतंतावत्फलितोमेमनोरथः ॥ सिद्धैःसंसेवितंलिङ्गं सर्वसिद्धिकरम्परम् ॥ ९८ ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्यस्यमनोनिर्वृतिभाग्भवेत् ॥ उद्घाटितंसदैवास्तेस्वर्गद्वारंहियत्रवै ॥ ९९ ॥ दिवानिशंपूजनार्थंविज्ञाप्यत्रिदशेश्वरम् ॥ पञ्चमुद्रेमहापीठेसिद्धिदेसर्वजन्तुषु ॥ १०० ॥ यत्रसाविकटादेवीप्रकटासिद्धिरूपिणी ॥ यत्रस्थितानांभक्तानांसाक्षात्सिद्धिविनायकः ॥१०१॥ निर्धूयविघ्नजालानि सर्वाःसिद्धीःप्रयच्छति ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रे सिद्धिक्षेत्रंहितत्परम् ॥ १०२ ॥ यत्रवीरेश्वरंलिङ्गं महागुह्यतमम्मतम् ॥ तिलान्तरापिनोकाश्यां भूमिर्लिङ्गंविनाक्वचित् ॥ १०३ ॥ परंवीरेशसदृशंनलिङ्गंत्वाशुसिद्धिदम् ॥ धर्मदंचार्थदंसम्यक्कामदंमोक्षदंतथा ॥ १०४ ॥ यथावीरेश्वरंलिङ्गंकाश्यांनान्यत्तथाध्रुवम् ॥ पञ्चस्वरोत्रगन्धर्वः परांसिद्धिमगात्पुरा ॥ १०५ ॥ विद्याधरःस्वच्छविद्योवसुपूर्णश्चयक्षराट् ॥ नृत्यन्तीनिजभावेन पुराह्यत्राप्सरोवरा ॥ १०६ ॥ सदेहाकोकिलालापा लिङ्गमध्येलयंगता

को दूरकर सब सिद्धियों को देते हैं वह सिद्धिक्षेत्र महाक्षेत्र काशी में परे है ॥ १०२ ॥ जहां वीरेश्वर नामालिङ्ग बहुतही गुप्त मानागया व काशी में तिलभर भूमि लिंग विना कहीं नहीं है ॥ १०३ ॥ परन्तु वीरेश्वर के समान आन लिंग शीघ्र सिद्धिदायक धर्म अर्थ व अच्छे काम और मोक्षका दाता नहीं है ॥ १०४ ॥ जैसे काशी में वीरेश्वर लिंग है वैसे अन्य नहीं यह निश्चय है पहले पञ्चस्वर नाम गन्धर्व यहां उत्तम सिद्धिको प्राप्तभया ॥ १०५ ॥ व स्वच्छविद्यनाम विद्याधर व वसुपूर्ण नाम यक्षराज ने भी सिद्धि पाया व पूर्वकाल में अपने भाव से नाचती अप्सराओं में श्रेष्ठ ॥ १०६ ॥ कोकिलालापा लिंग के बीच में सदेहलीन

हुई है व शतरुद्रियको जपता वेदशिरानाम ऋषिभी ॥ १०७ ॥ मन्त्रज्योतिरूपलिंग में देह समेत पहले पैठगया है व शिवभक्तों में उत्तम चन्द्रमौलि व भरद्वाज ये दोनों ॥ १०८ ॥ वीरेश्वर को पूज गातेहुये लयको गये याने लीनभये हैं व नागों का राजा शंखचूड़भी रात में अपने फणाकी मणियों से ॥ १०९ ॥ बहुते नीराजना (आरतियों) करके छःमास में यहां सिद्धि को पहुँचाहै व वेणुप्रिय नामक पति के साथ हंसपदी किन्नरी भी ॥ ११० ॥ अच्छे स्वरसे गातीहुई परे मोक्षभूमि को गई है व यहां अनगंत सहस्रों सिद्ध सिद्धिको प्राप्तभये हैं॥१११॥उस कारण यह सब से परे वीरेश्वरलिंग सिद्धलिंग कहाताहै ॥११२॥ व वीरेश्वरको पूज विदेहका पुत्र जय-

ऋषिर्वेदशिरानाम जपन्वैशतरुद्रियम् ॥ १०७ ॥ मन्त्रज्योतिर्मयेलिङ्गे सशरीरोविशत्पुरा ॥ चन्द्रमौलिभरद्वाजावुभौपाशुपतोत्तमौ ॥ १०८ ॥ वीरेश्वरंसमभ्यर्च्य गायमानौलयंगतौ ॥ शङ्खचूडोहिनागेन्द्रः स्वफणामणिभिर्निशि ॥ १०९ ॥ षण्मासात्सिद्धिमगमद्बहुनीराजनैरिह ॥ किन्नरीहंसपद्यत्र भर्त्रावेणुप्रियेणवै ॥ ११० ॥ गायन्तीसुस्वरंयाता परांनिर्वाणभूमिकाम् ॥ असंख्याताःसहस्राणि सिद्धाःसिद्धिमिहागताः ॥ १११ ॥ सिद्धलिङ्गमिहाख्यातं तस्माद्वीरेश्वरम्परम् ॥ ११२ ॥ वीरेश्वरंसमाराध्य भ्रष्टराज्योजयद्रथः ॥ हत्वारिपूनस्खलितं राज्यंप्रापविदेहजः ॥ ११३ ॥ विदूरथोऽथनृपतिरपुत्रःपुत्रवानभूत् ॥ वीरेश्वरप्रसादेन मगधाधिपतिर्वशी ॥ ११४ ॥ वसुदत्तोत्रचवणिक् सुतांवसुसुतोपमाम् ॥ अब्दमभ्यर्च्यवीरेशं रत्नदत्तोप्यवाप्तवान् ॥ ११५ ॥ अहमप्यत्रवीरेशं समाराध्यत्रिकालतः ॥ आशुपुत्रमवाप्स्यामि यथाभिलषितंस्त्रिया ॥ ११६ ॥ इतिकृत्वामतिंधीरो विप्रोविश्वानरःकृती ॥ चन्द्रकूपजलैःस्नात्वा जग्राह

द्रथ जिसका राज्यसिंहासन छूटगया था उसने वैरियों को मार अखण्ड राज्यपाया॥११३॥अनन्तर जितेन्द्रिय व पुत्र रहित मगह देशका नरेश विदूरथ राजा भी वीरेश्वरकी प्रसन्नतासे पुत्र सहित हुआ॥ ११४ ॥ व वशुदत्त वैश्य और रत्नदत्त ने भी यहांएक वर्ष वीरेश्वरको पूज सत्यवती के समान पुत्रीको पाया॥ ११५ ॥ इस से मैं भी यहां त्रिकाल मे वीरेश्वरको भलीभांतिसे पूज शीघ्र वैसा पुत्र पाऊं गा जैसा स्त्री से चहागया है ॥ ११६ ॥ यों बुद्धिकर पण्डित पुण्यात्मा विश्वानर ब्राह्मण ने चन्द्रकूप के

जलों से नहा व्रती हो नियम को गहा॥ ११७ ॥ और वह मासभर दिनमें एकवार खाताथा व एकमास तक राति में व एकमास विनामांगी वस्तु को खाताथा और एकमास भोजन का त्यागी भया ॥ ११८ ॥ व एक मास दूधपीनेका व्रती एकमास फलाहारी एकमास मूठी भर तिलखाने और एकमास में पानी पीनेवाला हुआ ॥ ११९ ॥ व उसने मासभर पञ्चगव्यखाया व एकमास में चान्द्रायण व्रत किया व एकमास में कुशों के आगे का धोवन जल पिया व मासभर बयार भखनेवाला हुआ ॥ १२० ॥ उसके बाद तेरहें महीना में प्रातःकाल गङ्गानहा प्रसन्नहुआ वह ब्राह्मण जौलों श्रीवीरेश्वर के समीप आवे ॥ १२१ ॥ तौलों तपस्वी ने लिङ्ग के बीच में देखा जो कि

नियमंव्रती ॥ ११७ ॥ एकाहारोभवन्मासं मासंनक्ताशनोभवत् ॥ अयाचिताशनोमासं मासंत्यक्ताशनःपुनः ॥११८॥ पयोव्रतोभवन्मासं मासंशाकफलाशनः ॥ मासंमुष्टितिलाहारो मासंपानीयभोजनः ॥ ११९ ॥ पञ्चगव्याशनोमासं मासंचान्द्रायणव्रती ॥ मासंकुशाग्रजलभुङ्मासंश्वसनभक्षणः ॥ १२० ॥ अथत्रयोदशेमासि स्नात्वात्रिपथगाम्भसि ॥ प्रत्यूषएववीरेशं यावदायातिसद्विजः ॥ १२१ ॥ तावद्विलोकयाञ्चक्रे मध्येलिङ्गंतपोधनः ॥ विभूतिभूषितंबालमष्टवर्षाकृतिंशुभम् ॥ १२२ ॥ आकर्णपूर्णनेत्रञ्चसुरक्तदशनच्छदम् ॥ चारुपिङ्गजटामौलिं नग्नंप्रहसिताननम् ॥ १२३ ॥ शैशवोचितनेपथ्यधारिणंचित्तहारिणम् ॥ पठन्तंश्रुतिसूक्तानि हसन्तञ्चस्वलीलया ॥ १२४ ॥ तमालोक्यस्तुतिंचक्रे रोमकञ्चुकितोमुदा ॥ प्रोच्चरद्गद्गदालापोनमोस्त्वितिपुनःपुनः ॥ १२५ ॥ विश्वानरउवाच ॥ एकंब्रह्मैवाद्वितीयंसमस्तंसत्यंसत्यंनेहनानास्तिकिञ्चित् ॥ एकोरुद्रोनद्वितीयोवतस्थेतस्मादेकंत्वांप्रपद्येमहेशम् ॥ १२६ ॥ एकःकर्तात्वंहिसर्वस्यश

भस्म से भूषित आठ वर्ष का स्वरूप शुभ ॥ १२२ ॥ व काने पर्य्यन्त पूरे नेत्र व लाले ओंठवाले व सुन्दर पीली जटायें हैं मूड में जिनके या उक्त जटाओं से मुकुट बांधे व नङ्गे मन्द मुसकाते ॥ १२३ ॥ व बालपन के योग्य गहने पहने मनोहर वेदके सूक्तोंको पढ़ते और अपनी लीला से हँसते हैं ॥ १२४ ॥ उनको देख आनन्द से खड़े रोम कञ्चुक से बनगये जिसके उस गद्गद वचनवाले ने बार बार यों कहा कि नमस्कार हो नमस्कारहो ॥ १२५ ॥ विश्वानर बोला कि दूसरे भेदसे रहित एक ब्रह्मही सबकुछ है सत्य सत्य यहां बहुतभांति का कुछ नहीं है व भेदरहित केवल संसार दुःखनाशक रुद्र टिके हैं इससे तुम एक महेश को भजता हूं ॥ १२६ ॥

हे शम्भो ! एक तुम सबके कर्त्ताहो जैसे एक सूर्य्य प्रतिजलों में अनेक दीखतेहैं वैसे रूपरहित एकरूप भी तुम बहुतेरूपों में हो उससे तुम विना और स्वामी को नहीं भजताहूं ॥ १२७ ॥ जिन परमेश्वर के जानतेही सबसे यह प्रपञ्च (जगत्) वैसे होताहै जैसे रस्सीमें सर्प सूतीमे चांदी और मृगतृष्णा में पानीका प्रवाह याने आ-रोपित असत्य है व आधार सत्यहै उन महेशको भजताहूं ॥ १२८ ॥ हे शम्भो ! जिससे जलमें शीतलता आगमें जलाने की शक्ति सूर्य्यमें ताप चन्द्रमें आह्लाद (प्र-सन्नता) फूलमें सुगन्ध और जो दूधके बीचमें घी है वह तुमहो उससे आपको भजताहूं ॥ १२९ ॥ विना कानके तुम शब्दको सुनतेहो नासिका हीनभी तुम सूंघते हो पदरहित तुम दूर आतेजातेहो विना आंखके देखतेहो और रसना (जीभ) से रहित भी रसोंके जाननेवालेहो तुमको कौन नीकेजानता है इससे तुमको भजता

म्भोनानारूपेष्वेकरूपोस्यरूपः ॥ यद्वत्प्रत्यप्स्वर्कएकोप्यनेकस्तस्मान्नान्यंत्वांविनेशंप्रपद्ये ॥ १२७ ॥ रज्जौसर्पःशुक्तिकायाञ्चरूप्यंनैरःपूरस्तन्मृगाख्येमरीचौ ॥ यद्वत्तद्वद्विष्वगेषप्रपञ्चोयस्मिन्ज्ञातेतंप्रपद्येमहेशम् ॥ १२८ ॥ तोयेशैत्यंदाहकत्वञ्चवह्नौतापोभानौशीतभानौप्रसादः ॥ पुष्पेगन्धोदुग्धमध्येपिसर्पिर्यत्तच्छम्भोत्वंततस्त्वांप्रपद्ये ॥ १२९ ॥ शब्दंगृह्णास्यश्रवास्त्वंहिजिघ्रेरघ्राणस्त्वंव्यङ्घ्रिरायासिदूरात् ॥ व्यक्षःपश्येस्त्वंरसज्ञोप्यजिह्वःकस्त्वांसम्यग्वेत्त्यतस्त्वांप्रपद्ये ॥ १३० ॥ नोवेदस्त्वामीशसाक्षाद्धिवेदनोवाविष्णुर्नोविधाताऽखिलस्य ॥ नोयोगीन्द्रानेन्द्रमुख्याश्चदेवाभक्तोवेदत्वामतस्त्वांप्रपद्ये ॥ १३१ ॥ नोतेगोत्रंनेशजन्मापिनाख्यानोवारूपंनैवशीलंनदेशः ॥ इत्थंभूतोपीश्वरस्त्वंत्रिलोक्याःसर्वान्कामान्पूरयेस्तद्भजेत्वाम् ॥ १३२ ॥ त्वत्तःसर्वंत्वंहिसर्वंस्मरारेत्वंगौरीशस्त्वञ्चनग्नोऽतिशान्तः ॥ त्वंवैवृद्धस्त्वं

हूं इन्द्रिय इन्द्रियोंके देवता और इन्द्रियोंके स्थान, तीनके होनेसे इन्द्रियोंका काम होताहै जैसे चक्षुगोलक न हो तो चक्षुइन्द्रिय कहां रहै और सूर्य्यदेवता न हों तो आंखमें देखनेकी शक्ति न हो ऐसे तुममें चौदहौ त्रिपुटियों का काम नहींहै सदा दिव्य इन्द्रियवालेहो ॥ १३० ॥ हे ईश्वर ! वेदभी साक्षात् तुमको नहीं जानता न विष्णु न सबके कर्त्ता ब्रह्मा न योगीश्वर न इन्द्रादिदेव किन्तु भक्तजन जानता है इससे मैं तुमको भजताहूं ॥ १३१ ॥ तुम्हारे गोत्र जन्म नाम रूप शील और देश नहीं है ऐसेभी ईश्वर तुम सबके अभिलाषोंको पूर्ण करतेहो उससे तुमको भजताहूं ॥१३२॥ हे कामशत्रो ! तुमसे सब जगत् है व सब कुछ तुमहींहो व तुम पार्वती के पति तुम

नङ्ग तुम बहुत शान्तस्वरूप तुमहीं बूढ़े व तुम युवा और तुम बालकहो जो कुछवस्तुहै वह तुम क्या नहींहो इससे तुम्हारे ओर नयाहूं ॥ १३३ ॥ यों स्तुतिकर अतिआनन्दित वह ब्राह्मण जौलों दण्डके समान भूमिमे गिरा तौलो सव वूढ़ोंसे वूढ़े वे बालकरूप शिव बोले कि हे ब्राह्मण ! वरको अङ्गीकारकर ॥ १३४ ॥ तदनन्तर उठ प्रसन्नमन पुण्यात्मा विश्वानरमुनि ने कहा कि हे प्रभो ! आप सर्वज्ञका क्या नहीं जाना याने सब जानतेहो ॥ १३५ ॥ सबके साक्षी सर्वरूप सब फलदाता ऐश्वर्य्यसम्पन्न समर्थ आप मुझको दीनता करनेवाली याचनामें क्या जोड़ते हो ॥ १३६ ॥ यों पवित्र, पवित्रव्रत विश्वानरका वचन सुन शीघ्र मन्दमुसकाय बालरूप शिव बोले कि ॥ १३७ ॥

युवात्वञ्चबालस्त्वंयत्किन्नास्यतस्त्वांनतोस्मि ॥ १३३ ॥ स्तुत्वेतिधूमौनिपपातविप्रःसदण्डवद्यावदतीवहृष्टः ॥ तावत्सबालोखिलवृद्धवृद्धः प्रोवाचभूदेववरंवृणीहि ॥ १३४ ॥ ततउत्थायहृष्टात्मा मुनिर्विश्वानरःकृती ॥ प्रत्यब्रवीत्किमज्ञातं सर्वज्ञस्यतवप्रभो ॥ १३५ ॥ सर्वान्तरात्माभगवान् सर्वःसर्वप्रदोभवान् ॥ याच्ञांप्रतिनियुङ्क्षेमां किमीशोदैन्यकारिणीम् ॥ १३६ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य देवोविश्वानरस्यह ॥ शुचेःशुचिव्रतस्याशु शुचिस्मित्वाब्रवीच्छिशुः ॥ १३७ ॥ बालउवाच ॥ त्वयाशुचेशुचिष्मत्यां योभिलाषःकृतोहृदि ॥ अचिरेणैवकालेन सभविष्यत्यसंशयः ॥ १३८ ॥ तवपुत्रत्वमेष्यामि शुचिष्मत्यांमहामते ॥ ख्यातोगृहपतिर्नाम्ना शुचिःसर्वामरप्रियः ॥ १३९ ॥ अभिलाषाष्टकंपुण्यं स्तोत्रमेतत्त्वयेरितम् ॥ अब्दंत्रिकालपठनात्कामदंशिवसन्निधौ ॥ १४० ॥ एतत्स्तोत्रस्यपठनंपुत्रपौत्रधनप्रदम् ॥ सर्वशान्तिकरंचापि सर्वापत्परिनाशनम् ॥ १४१ ॥ स्वर्गापवर्गसम्पत्तिकारकंनात्रसंशयः ॥ प्रातरुत्थायसुस्नातो लिङ्गमभ्यर्च्य

हे पवित्र ! तुमने शुचिष्मती स्त्रीमें होनेके लिये हृदय में जो अभिलाषा किया वह विना संशय थोड़ेकाल में होगी ॥ १३८ ॥ हे महामते ! सब देवोंका प्यारा पवित्र गृहपतिनाम से प्रसिद्ध मैं शुचिष्मती में तुम्हारे पुत्रभाव को प्राप्तहूंगा ॥ १३९ ॥ यह तुम्हारा कहा पुण्यरूप अभिलाषाष्टकनाम स्तोत्र एकवर्ष त्रिकाल शिवके समीप में पढ़नेसे सब कामनाओंका दाता होगा ॥ १४० ॥ इस स्तोत्रका पढ़ना, पुत्र पौत्र और धनका दाता व सब शान्तिकर सब विपत्तिविनाशन ॥ १४१ ॥ व स्वर्ग मोक्ष

के साथ मृकण्ड, दाल्भ्य, उद्दालक ॥ २२ ॥ धौम्य, उपमन्यु और वत्सआदिमुनि तथा मुनियों की कन्यायें ये सब उस गृहपति अग्निका शान्तिकर्म्म करने के लिये धन्य विश्वानर के घरको आये ॥ २३ ॥ व बृहस्पति समेत ब्रह्मा, गरुड पर सवार विष्णु, नन्दी भृङ्गीगण और पार्वती सहित शिव ॥ २४ ॥ इन्द्रादिदेव, पाताल के वासी नाग व बहुते रत्नोंकोले नदियों समेत समुद्र ॥ २५ ॥ और सहस्रों स्थावर (जोकि नहीं चलते वे) चलनेवाला रूप धरकर आये व उस बड़ेभारी उत्सवमें विना समय की चटकीली चांदनी चमकतीभई ॥ २६ ॥ और आप ब्रह्माजीने जातकर्म्म के कहनेवाली श्रुतिको विचार उस बालक का जातकर्म्म किया व यह नाम

थभार्गवः ॥ मृकण्डःसहपुत्रेण दाल्भ्यउद्दालकस्तथा ॥ २२ ॥ धौम्योपमन्युवत्साद्या मुनयोमुनिकन्यकाः ॥ तच्छा न्त्यर्थंसमाजग्मुर्धन्यंविश्वानराश्रमम् ॥ २३ ॥ ब्रह्माबृहस्पतियुतो देवोगरुडवाहनः ॥ नन्दिभृङ्गिसमायुक्तो गौर्यासहवृ षध्वजः ॥ २४ ॥ महेन्द्रमुख्यागीर्वाणा नागाःपातालवासिनः ॥ रत्नान्यादायबहुशः ससरित्कामहाब्धयः ॥ २५ ॥ स्थावराजङ्गमंरूपं धृत्वायाताःसहस्रशः ॥ महामहोत्सवेतस्मिन् बभूवाकालकौमुदी ॥ २६ ॥ जातकर्मस्वयंचक्रे तस्य देवःपितामहः ॥ श्रुतिंविचार्यतद्रूपां नाम्नागृहपतिस्त्वयम् ॥ २७ ॥ इतिनामददौतस्मै देयमेकादशेहनि ॥ नामकर्मवि धानेन तदर्थंश्रुतिमुच्चरन् ॥ २८ ॥ अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यःप्रजायावसुवित्तमः ॥ अग्नेगृहपतेभिद्युम्नमभिसहआय च्छस्व ॥ २९ ॥ अग्नेगृहपतेस्थित्या परामपिनिदर्शयन् ॥ चतुर्निगममन्त्रोक्तैराशीर्भिरभिनन्द्यच ॥ ३० ॥ कृत्वाबा लोचितांरक्षां हरेणहरिणासह ॥ निर्ययौहंसमारुह्य सर्वेषांप्रपितामहः ॥ ३१ ॥ अहोरूपमहोतेजस्त्वहोसर्वाङ्गलक्षणम् ॥

से गृहपति होगा ॥ २७ ॥ यों ग्यारहवें दिनमें नामकर्म्म के विधान से उस नाम करने के अर्थ वेदको पढ़ते ब्रह्माने उसके लिये देनेयोग्य नामको दियाकि॥ २८ ॥ जो यह गार्हपत्यनामक गृहपति अग्निहै वह प्रजाका बड़ा धनदाता या धनजनाता है इससे याचताहूं कि हे गृहपते अग्ने ! हमारे सम्मुख द्युम्न (यश या अन्न) और बलको पठावो या दो ॥ २९ ॥ और शाखाभेद से अग्नेगृहपतेस्थित्या इस अन्य श्रुतिको दिखातेहुये व चारवेदोंके मन्त्रोंसेकहे आशीर्वादोंसे बढ़ाय॥ ३० ॥ बालक की उचित रक्षाकर विष्णु और शिवकेसाथ हंसमें चढ़ सबके परबाबा ब्रह्माजी चलेगये ॥ ३१ ॥ अहो (आश्चर्य्यकर) बालकका रूप तेज सब अङ्गोंका लक्षण और

पात्रों को कर कि जे पसरे मोतियों से युक्त व कपूर अगर कस्तूरी और कक्कोल के कीचसे भरे थे ॥ १२ ॥ जिनमें वज्र व वैदूर्य्यमणियों के दीपक बरे हरदी के पीठा चूरण धरे श्रेष्ठरूप मर्कतमणि शंख सूती दही ॥ १३ ॥ पद्मराग मूंगा रत्नरूप कुंकुमवाले व जो कि गोमेद पुष्पराग और इन्द्रनील मणियों के विचित्र बने मालाओं को भजते थे ॥ १४ ॥ और विद्याधरी किन्नरी तथा हाथों में मंगल वस्तु लिये चौंर लाती सहस्रों देवियां ॥ १५ ॥ गन्धर्व नाग व यक्षों की स्त्रियां जो कि शुभस्वरवाली हैं वे अनेकों, ललितगाना गातीहुई वहां आईं ॥ १६ ॥ व मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अंगिरा, वसिष्ठ, कश्यप, हम (अगस्त्य) विभाण्ड, माण्डव्य ॥

रतलेमुदा ॥ मुक्तमुक्ताफलाढ्यानि यक्षकर्दमवन्तिच ॥ १२ ॥ वज्रवैदूर्यदीपानिहारिद्रालेपनानिच ॥ गारुत्मतैकरूपाणि शङ्खशुक्तिदधीनिच ॥ १३ ॥ पद्मरागप्रवालाख्यरत्नकुङ्कुमवन्तिच ॥ गोमेदपुष्परागेन्द्रनीलसन्माल्यभाञ्जिच ॥ १४ ॥ विद्याधर्यश्चकिन्नर्यस्तथाऽमर्यःसहस्रशः ॥ चामरव्यग्रहस्ताग्रमङ्गल्यद्रव्यपाणयः ॥ १५ ॥ गन्धर्वोरगयक्षाणां सुवासिन्यःशुभस्वराः ॥ गायन्त्योललितंगीतं तत्राजग्मुरनेकशः ॥ १६ ॥ मरीचिरत्रिःपुलहः पुलस्त्यःक्रतुरङ्गिराः ॥ वसिष्ठःकश्यपश्चाहं विभाण्डोमाण्डवीसुतः ॥ १७ ॥ लोमशोलोमचरणो भरद्वाजोथगौतमः ॥ भृगुस्तुगालवोगर्गो जातूकर्ण्यःपराशरः ॥ १८ ॥ आपस्तम्बोयाज्ञवल्क्यदक्षवाल्मीकिमुद्गलाः ॥ शातातपश्चलिखितः शिलादःशङ्खउञ्छभुक् ॥ १९ ॥ जमदग्निश्चसंवर्तो मतङ्गोभरतोंशुमान् ॥ व्यासःकात्यायनःकुत्सः शौनकःसुश्रुतःशुकः ॥ २० ॥ ऋष्यश्टङ्गोथदुर्वासा रुचिर्नारदतुम्बुरू ॥ उत्तङ्कोवामदेवश्चच्यवनोसितदेवलौ ॥ २१ ॥ शालङ्कायनहारीतौ विश्वामित्रो

१७ ॥ लोमश, लोमचरण, भरद्वाज, गौतम, भृगु, गालव, गार्ग्य, जातूकर्ण्य, पराशर ॥ १८ ॥ आपस्तम्ब, याज्ञवल्क्य, दक्ष, बाल्मीकि, मुद्गल, शातातप, लिखित, शिलाद, शंख, उञ्छभुक् ॥ १९ ॥ जमदग्नि, संवर्त, मतंग, भरत, अंशुमान्, व्यास, कात्यायन, कुत्स, शौनक, सुश्रुत, शुकदेव ॥ २० ॥ ऋष्यशृङ्ग, दुर्वासा, रुचि, नारद, तुम्बुरु, उत्तंक, वामदेव, च्यवन, असित, देवल ॥ २१ ॥ शालङ्कायन, हारीत, विश्वामित्र, भार्गव (परशुराम) मार्कण्डेय नाम पुत्र

धान कर्म्म करतेही उसकी स्त्री गर्भिणी हुई ॥ २ ॥ तब गर्भका बल बाढ़ने के लिये फरकने से पहिलेही उस पण्डित ने गृह्यसूत्रमें कहे वेदविधान से भलीभांति पुंसवन कर्म किया ॥ ३ ॥ अनन्तर उस कर्मकाण्डी पण्डित ने अठयें मास में गर्भ का रूप बढ़ानेवाले सीमन्तको और सुखसे उत्पत्ति सिद्धिके लिये शोष्यन्तीक्रिया को किया ॥ ४ ॥ इसके बाद मङ्गल भया कि शुभलग्न केन्द्रस्थान में बृहस्पति और विषम घरों में शुभग्रहों के होतेही अच्छे नक्षत्र में वह चन्द्र से श्रेष्ठमुखवाला ॥ ५ ॥ व दीप्ति से सौरि को प्रकाशता व सब अरिष्टों का नाशक प्रसिद्ध पुत्र उस शुचिष्मती में हुआ ॥ ६ ॥ जो कि भूः भुवः स्वः इन तीन लोकों के वासी लोगों

श्रिता ॥ गृह्योक्तविधिनासम्यक् कृतंपुंस्त्वविवृद्धये ॥ ३ ॥ सीमन्तोथाष्टमेमासि गर्भरूपसमृद्धिकृत् ॥ सुखप्रसवसिद्ध्यै च तेनाकारिक्रियाविदा ॥ ४ ॥ अथातःससुतारासु ताराधिपवराननः ॥ केन्द्रेगुरौशुभेलग्ने सुग्रहेष्वयुगेषुच ॥ ५ ॥ अरिष्टंदीपयन्दीप्त्या सर्वारिष्टविनाशकृत् ॥ तनयोनामतस्यांतु शुचिष्मत्यांबभूवह ॥ ६ ॥ सद्यःसमस्तसुखदोभूर्भुवःस्वर्निवासिनाम् ॥ गन्धवाहागन्धवाहा दिग्वधूमुखवासनाः ॥ ७ ॥ इष्टगन्धप्रसूनौघैर्ववर्षुस्तेघनाघनाः ॥ देवदुन्दुभयो नेदुः प्रसेदुःसर्वतोदिशः ॥ ८ ॥ परितःसरितःस्वच्छा भूतानांमानसैःसह ॥ तमोऽताम्यत्तुनितरां रजोपिविरजोभवत् ॥ ९ ॥ सत्त्वाःसत्त्वसमायुक्ता वसुधासीच्छुभातदा ॥ कल्याणीसर्वतोवाणी प्राणिनःप्रीणयन्त्यभूत् ॥ १० ॥ तिलोत्तमोर्वशीरम्भा प्रभाविद्युत्प्रभाशुभा ॥ सुमङ्गलाशुभालापा सुशीलाढ्यावराङ्गनाः ॥ ११ ॥ क्वणत्कङ्कणपाणि कृत्वाक

का तत्क्षण सब सुखदाता था तब दिशा स्त्रियों के मुख सुगन्धित करते वायु भी सुगन्ध बहनेवाले हुये ॥ ७ ॥ व सघन मेघप्यारे सुगन्ध संयुत फूलसमूहों से बरसे व देवों की नगरियां बाजीं व सब से दिशायें प्रसन्नहुई ॥ ८ ॥ प्राणियों के मन समेत सबओर नदियां विमल भई व अन्धकार या अज्ञान बहुतही विनश गया रज भी रज से रहित हुआ याने नशा ॥ ९ ॥ व प्राणी सतोगुण समेत हुये और उस समय पृथ्वी भी मंगलमयी हुई व सब जन्तुको तृप्तकरती वाणी सब ओर से भई ॥ १० ॥ व तिलोत्तमा, उर्वशी, रम्भा, प्रभा, विद्युत्प्रभा, शुभा, सुमंगला, शुभालापा ये अच्छे शील से भरी अप्सरायें ॥ ११ ॥ आनन्द से हाथों में बाजते कङ्कणवाले

और सम्पत्तियों का कर्त्ताहै इसमें संशय नहीं है प्रातःकाल उठनीके नहाय, शिवलिङ्ग को पूज ॥ १४२ ॥ व एकवर्ष इस स्तोत्रको पढताहुआ अपुत्रजन भी पुत्रवान् होवे व वैशाख कार्तिक और माघमास में विशेष नियमों से संयुत ॥ १४३ ॥ जो स्नान के समय में इसको पढ़े वह सब फलपावे व कार्तिकमास के प्रसादसे बिकाररहित मैं ॥ १४४ ॥ तेरे पुत्रभाव को प्राप्तहूंगा और जो इसको पढ़ेगा उसको भी पुत्र दूंगा यह अभिलाषाष्टक जिसी किसीका देनेयोग्य नहीं है ॥ १४५ ॥ यत्नसे गुप्तरखना चाहिये क्योंकि बड़ीबांझकाभी सन्ततिकारकहै स्त्रीव पुरुषकरके भी नियमसे शिवलिङ्गके लगे ॥ १४६ ॥ वर्षभर पढ़ागया यह स्तोत्र पुत्रदाता होताहै इसमें

शाम्भवम् ॥ १४२ ॥ वर्षंजपन्निदंस्तोत्रमपुत्रःपुत्रवान्भवेत् ॥ वैशाखेकार्तिकेमाघे विशेषनियमैर्युतः ॥ १४३ ॥ यःपठेत्स्नानसमये सलभेत्सकलंफलम् ॥ कार्तिकस्यतुमासस्यप्रसादादहमव्ययः ॥ १४४ ॥ तवपुत्रत्वमेष्यामि यस्त्वन्यस्तत्पठिष्यति ॥ अभिलाषाष्टकमिदं नदेयंयस्यकस्यचित् ॥ १४५ ॥ गोपनीयंप्रयत्नेन महावन्ध्याप्रसूतिकृत् ॥ स्त्रियावापुरुषेणापि नियमाल्लिङ्गसन्निधौ ॥ १४६ ॥ अब्दंजप्तमिदंस्तोत्रं पुत्रदंनात्रसंशयः ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेबालः सोपिविप्रोगृहंगतः ॥ १४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेइन्द्राग्निलोकवर्णनन्नामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ * ॥

अगस्तिरुवाच ॥ शृणुसुश्रोणिसुभगे वैश्वानरसमुद्भवम् ॥ पुण्यशीलसुशीलाभ्यां यथोक्तंशिवशर्मणे ॥ १ ॥ अथकालेनतद्योषिदन्तर्वत्नीबभूवह ॥ विधिवद्विहितेतेन गर्भाधानाख्यकर्मणि ॥ २ ॥ ततःपुंसवनंतेन स्पन्दनात्प्राग्विप

संशय नहींहै यों कह बालकरूप महादेवजी अन्तर्द्धानहुये और वह ब्राह्मणभी अपने घरको गया ॥ १४७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितइन्द्राग्निलोकवर्णनन्नामदशमोध्यायः ॥ १० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । ग्यारह के अध्याय में अग्निलोक विस्तार । विश्वानरवर सुतजनम सकल सुलक्षण वार ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे सुकटि, सुभागिनि, लोपामुद्रे ! पुण्यशीलसुशील नाम दोनो गणों ने जैसे शिवशर्म्मा ब्राह्मण से कहा वैसे विश्वानर के पुत्रकी उत्पत्ति सुनो ॥ १ ॥ तदनन्तर समय में उस करके शास्त्रोक्त विधानके समान गर्भा-

अहो शुचिष्मतीका भाग्यहै कि जिससे आप शिवजी प्रकटहुये ॥ ३२ ॥ अथवा यह आश्चर्य्य होना शिवके भक्तजनों में क्या विचित्र है कि जो आप रुद्रजी प्रकटहोवें जिरासे शिवके पूजक रुद्रही हैं ॥ ३३ ॥ यों परस्पर प्रशंसते व आनन्द से खड़े रोमवाले वे सब जन विश्वानर से पूंछे जहांसे आये थे वहांगये ॥ ३४ ॥ इससे गृहस्थ लोग पुत्रको चाहतेहैं जिससे यह सनातनकी श्रुतिहै कि पुत्र से सबलोकों को जीतता है ॥ ३५ ॥ अपुत्रका घर शून्यहै अपुत्रका धन कमाना वृथाहै अपुत्रका वंशाच्छेद है और अपुत्र से अधिक अन्य अपवित्र नहींहै ॥ ३६ ॥ व पुत्र से अधिक लाभ सुख और मित्र इस उस लोकमें कहीं नहीं है ॥ ३७ ॥ अपने वीर्य्यसे ब्याही

अहोशुचिष्मतीभाग्यमाविरासीत्स्वयंहरः ॥ ३२ ॥ अथवाकिमिदंचित्रंशर्वभक्तजनेष्वहो ॥ आविर्भवेत्स्वयंरुद्रो यतोरुद्रास्तदर्चकाः ॥ ३३ ॥ इतिस्तुवन्तस्त्वन्योन्यंजग्मुःसर्वेयथागतम् ॥ विश्वानरंसमापृच्छ्य संप्रहृष्टतनूरुहाः ॥ ३४ ॥ अतःपुत्रंसमीहन्ते गृहस्थाश्रमवासिनः ॥ पुत्रेणलोकाञ्जयति श्रुतिरेषासनातनी ॥ ३५ ॥ अपुत्रस्यगृहंशून्यमपुत्रस्यार्जनंवृथा ॥ अपुत्रस्यान्वयश्छिन्नो नापवित्रंह्यपुत्रतः ॥ ३६ ॥ नपुत्रात्परमोलाभो नपुत्रात्परमंसुखम् ॥ नपुत्रात्परमंमित्रं परत्रेहचकुत्रचित् ॥ ३७ ॥ औरसःक्षेत्रजःक्रीतो दत्तःप्राप्तःसुतासुतः ॥ आपत्सुरक्षितश्चान्यः पुत्राःसप्तात्रकीर्तिताः ॥ ३८ ॥ एषामन्यतमःकार्यो गृहस्थेनविपश्चिता ॥ पूर्वपूर्वःसुतःश्रेयान् हीनःस्यादुत्तरोत्तरः ॥ ३९ ॥ गणावूचतुः ॥ निष्क्रमोथचतुर्थेऽस्य मासिपित्राकृतोगृहात् ॥ अन्नप्राशनमब्दार्धे चूडाब्देचार्थवत्कृता ॥ ४० ॥ कर्णवेधंततःकृत्वा श्रवणर्क्षेसकर्मवित् ॥ ब्रह्मतेजोभिवृद्ध्यर्थं पञ्चमेऽब्देव्रतंददौ ॥ ४१ ॥ उपाकर्मततःकृत्वा वेदानध्यापयत्सु

स्त्रीसे हुआ व अपनी स्त्रीमें अन्य पुरुष के वीर्य्य से उपजा व मोललिया व किसी से दियागया व आपही से प्राप्तभया व पुत्र लेनेका करारकर ब्याह करने से कन्या का पुत्र और विपत्तियों में पालाहुआ ये सात पुत्र इस लोक में कहेगये हैं ॥ ३८ ॥ सुजान गृहस्थ का इनमें एक कोई करना चाहिये क्रमसे पहला पहला पुत्र श्रेष्ठहै और उस के पाछे पाछेका कहाहुआ हीन है ॥ ३९ ॥ विष्णुगण बोले कि अनन्तर चौथे मास में पिताने इस बालक का घरसे बाहर लेजाना किया व छमाही में पसनी वर्ष में यथाविधि चोटी कीगई याने मुण्डनभया ॥ ४० ॥ उसके बाद उस कर्मकाण्डी ने कनछेदन कर ब्रह्मतेज बढ़ने के अर्थ पंचयें वर्ष में

व्रत दिया याने यज्ञोपवीत कर्म किया ॥ ४१ ॥ व उपाकर्म्म जो कि श्रावणी पूनोंमें कियाजाता है उसको कर उस सुबुद्धि ने वेद पढ़ाया व अंग पद और क्रम समेत वेदों को विधि से तीन वर्षमें वह पढ़ताभया ॥ ४२ ॥ व विनय आदि अच्छे गुणों को प्रकट करते शक्तिमान् बालक ने साखीमात्र (निमित्तमात्र) गुरु के मुख से सब विद्यासमूह को पढ़ा ॥ ४३ ॥ तदनन्तर नवयें वर्ष में माता पिता की सेवा में रत विश्वानर के पुत्र गृहपति को जान स्वेच्छाचारी मुनि ॥ ४४ ॥ जो कि देवों के ऋषि व सुबुद्धि और नारदनामवाले हैं वे विश्वानर की कुटी में आ तहां क्रम से अर्घ आसनके लेनेवालेहो कुशल पूंछतेभये ॥ ४५ ॥ नारदजीबोले कि हे महाभाग

धीः ॥ त्र्यब्दंवेदान्सविधिनाऽध्यैष्टसाङ्गपदक्रमान् ॥ ४२ ॥ विद्याजातंसमस्तञ्च साक्षिमात्राद्गुरोर्मुखात् ॥ विनयादिगुणानाविष्कुर्वन्जग्राहशक्तिमान् ॥ ४३ ॥ ततोथनवमेवर्षेपित्रोःशुश्रूषणेरतम् ॥ वैश्वानरंगृहपतिं दृष्ट्वाकामचरोमुनिः ॥ ४४ ॥ विश्वानरोटजंप्राप्य देवर्षिर्नारदःसुधीः ॥ पप्रच्छकुशलंतत्र गृहीतार्घासनःक्रमात् ॥ ४५ ॥ नारदउवाच ॥ विश्वानरमहाभाग शुचिष्मतिशुभव्रते ॥ कुरुतेयुवयोर्वाक्यमयंगृहपतिःशिशुः ॥ ४६ ॥ नान्यत्तीर्थंनवादेवो न गुरुर्नचसत्क्रिया ॥ विहायपित्रोर्वचनं नान्योधर्मःसुतस्यहि ॥ ४७ ॥ नपित्रोरधिकंकिञ्चित्त्रिलोक्यांतनयस्यहि ॥ गर्भधारणपोषाभ्यां पितुर्मातागरीयसी ॥ ४८ ॥ अम्भोभिरभिषिच्यस्वं जननीचरणच्युतैः ॥ प्राप्नुयात्स्वर्धुनीशुद्ध कबन्धाधिकशुद्धताम् ॥ ४९ ॥ संन्यस्ताखिलकर्मापि पितुर्वन्द्योहिमस्करी ॥ सर्ववन्द्येनयतिनाप्रसूर्वन्द्याप्रयत्नतः ॥ ५० ॥

विश्वानर ! हे शुभव्रते, शुचिष्मति ! यह गृहपति बालक तुम दोनों का कहाकरताहै ॥ ४६ ॥ व माता और पिता के वचन को छोंड पुत्र के लिये अन्यतीर्थ देव गुरु अच्छी क्रिया और अन्य धर्म नहीं है ॥ ४७ ॥ पुत्रके लिये माता व पितासे अधिक तीन लोक में कुछ भी नहीं है तो भी गर्भ के धारने व पोषने से माताही पिता से बहुत गरू है ॥ ४८ ॥ और पुत्र माता के पावों से चुये पानी से अपना को अभिषेक कर याने सींच गंगा का शुद्ध जल धारने से अधिक पवित्रता को पहुँचे ॥ ४९ ॥ व सब कर्मों को त्यागे सन्यासी पिता से भी वन्दनीय है व सबसे वन्दित सन्यासी से अधिक माता यत्न करके वन्दने योग्य है ॥ ५० ॥

यहीबड़ी उग्र तपस्याहै व यही श्रेष्ठ व्रतहै और यही परमधर्म है जो कि माता व पिताका संतुष्ट करना कहाताहै ॥ ५१ ॥ व क्षोभरहित देहादिकोंसे विनम्र जो तुम्हारा पुत्र गृहपति है उसका जैसे मैं मान्यहूं वैसे अन्य अधम के पुत्रका नहींहूं यों मानता हूं ॥ ५२ ॥ हे विश्वानर के पुत्र ! भली भांति से सामने आ, मेरे गोद में बैठ दहिना हाथ दिखा मैं लक्षण परखूं गा ॥ ५३ ॥ मुनि से यों कहागया भक्ति से नयाभया वह छबीला बालक, पिता की आज्ञा पा नारदमुनि के प्रणामकर लगे आ बैठा ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उसका सब अंग तालु जीभ और दंतों को भी देख त्रिगुण किये व कुंकुमरँगे सूत को आन ॥ ५५ ॥ गौरीशङ्कर और गणेश को सु-

इदमेवतपोत्युग्रमिदमेवपरंव्रतम् ॥ अयमेवपरोधर्मोयत्पित्रोःपरितोषणम् ॥ ५१ ॥ मन्येमान्योनाधमस्यतथान्यस्ययथायुवाम् ॥ सुखाकारैर्विनीतस्य शिशोर्गृहपतेरहम् ॥ ५२ ॥ वैश्वानरसमभ्येहि ममोत्सङ्गेनिषीदभो ॥ लक्षणानिपरीक्षेहं पाणिंदर्शयदक्षिणम् ॥ ५३ ॥ इत्युक्तोमुनिनाबालः पित्रोराज्ञामवाप्यसः ॥ प्रणम्यनारदंश्रीमान् भक्त्याप्रह्वउपाविशत् ॥ ५४ ॥ ततोदृष्ट्वास्यसर्वाङ्गं तालुजिह्वाद्विजानपि ॥ आनीयकुङ्कुमारक्तं सूत्रञ्चत्रिगुणीकृतम् ॥ ५५ ॥ स्मृत्वाशिवौगणाध्यक्ष मूर्ध्वीभूतमुदङ्मुखम् ॥ मुनिःपरिममौबालमापादतलमस्तकम् ॥ ५६ ॥ तिर्यगूर्ध्वसमोमाने योष्टोत्तरशताङ्गुलः ॥ समवेत्पृथिवीपालो बालोऽयंतेयथाद्विज ॥ ५७ ॥ पञ्चसूक्ष्मःपञ्चदीर्घःसप्तरक्तःषडुन्नतः ॥ त्रिपृथुर्लघुगम्भीरो द्वात्रिंशल्लक्षणस्त्विति ॥ ५८ ॥ पञ्चदीर्घाणिशस्यानि यथादीर्घायुषोस्यवै ॥ भुजौनेत्रेहनुर्जानु नासाऽस्यतनयस्यते ॥ ५९ ॥ ग्रीवाजङ्घामेहनैश्च त्रिभिर्ह्रस्वोयमीडितः ॥ स्वरेणसत्त्वनाभिभ्यांत्रिगम्भीरःशिशुः

मिर ऊपरको उठखड़े हुये उत्तरमुख बालक को पायँ के नीचे से मूड़ेतक मुनिने नापा ॥ ५६ ॥ और कहा कि हे ब्राह्मण विश्वानर ! तिरछा ऊंचे नाप में बराबर आठअधिक सौ अंगुलका जो यह तुम्हारा पुत्र है वह यथावत् लोकपाल होगा यहां तिरछा नाप वह है जो कि दोनों हाथ पसारने से चौड़ाई होती है ॥ ५७ ॥ जिसके पांचअंग महीन, पांच बड़े, सातलाले, छः ऊंचे, तीन मोटे चौड़े, तीनछोटे और तीन गहरे हैं यह यों बत्तिस लक्षणवाला है ॥ ५८ ॥ जैसे इस दीर्घजीवी के पांचअंग प्रशस्त हैं वैसे इस तुम्हारे पुत्र के बाहु नेत्र हनु (कपोलों का परभाग) जानु (गांठों के ऊपर) और नासिका ये पांच लम्बेहैं ॥ ५९ ॥ कपोल, जङ्घा

गरदन

(मोखा) और लिंग इन तीन छोटे अंगों से यह प्रशंसितहै व स्वर, सत्त्व (अंतःकरण) और नाभी (तोंदी) ये तीन अंग गहरे हैं जिसके वह पुत्र शुभ है ॥ ६० ॥ व चर्म, बाल, अंगुलि, दांत और अंगुलियों की गांठें ये पांच वैसे इसके महीन हैं जैसे दिशानाथ पदका भागी होगा ॥ ६१ ॥ व हृदय कोख कांध अलक हाथ और मुख ये छः इस बालक में वैसे ऊंचे दीखते हैं जैसे बडे ऐश्वर्य्य का सेवी होगा ॥ ६२ ॥ हाथों का तल, आंखों का अन्त, तालु, जीभ, नीचे का ओठ, ऊपर का ओठ और नह समेत जो सात अंग इसमें लाले हैं वे राज्यसुख देनेवाले हैं ॥ ६३ ॥ व माथ कटि और छाती ये तीन अंग विस्तारयुक्त हैं जिसके वह यह जैसे हो वैसे सब तेजों से अधिक ऐश्वर्य्य पावेगा यह और तौरसे न होगा ॥ ६४ ॥ व इस बालक के हाथ कछुही की पीठ से कठिन व काम करने के न योग्य हैं

शुभः॥६०॥त्वक्केशाङ्गुलिदशनाः पर्वाण्यङ्गुलिजान्यपि॥तथास्यपञ्चसूक्ष्माणि दिक्पालपदभाग्यथा॥६१॥वक्षःकुक्ष्यलकंस्कन्धंकरंवक्त्रंषडुन्नतम् ॥ तथाऽत्रदृश्यतेबाले महदैश्वर्यभाग्यथा ॥ ६२ ॥ पाण्योस्तललोचनेत्रान्ते तालुजिह्वाधरौष्ठकम् ॥ सप्तारुणञ्चसनखमस्मिन्राज्यसुखप्रदम् ॥ ६३ ॥ ललाटकटिवक्षोभिस्त्रिविस्तीर्णोयथाह्यसौ ॥ सर्वतेजोतिगैश्वर्यं तथाप्राप्स्यतिनान्यथा ॥ ६४ ॥ कमठीपृष्ठकठिनावकर्मकरणौकरौ ॥ राज्यहेतूशिशोरस्य पादौचाध्वनिकोमलौ ॥ ६५ ॥ अच्छिन्नातर्जनींव्याप्य तथारेखास्यदृश्यते॥कनिष्ठापृष्ठनिर्याता दीर्घायुष्यंयथार्पयेत् ॥ ६६ ॥ पादौसुमांसलौरक्तौ समौसूक्ष्मौसुशोभनौ ॥ समगुल्फौस्वेदहीनौस्निग्धावैश्वर्यसूचकौ ॥ ६७ ॥ स्वल्पाभिःकररेखाभिरारक्ताभिःसदासुखी॥लिङ्गेनकृशह्रस्वेन राजराजो भविष्यति॥६८॥उत्कटासनगुल्फास्फिग्नाभिरस्यापिवर्तुला॥दक्षिणाव

और पांव गली चलने में कोमल हैं इससे राज्य के कारण हैं ॥ ६५ ॥ वैसे इसके हाथ में अंगुठा के लगे की अंगुली को व्याप याने उसके भीतर तक भई और कनिष्ठा (छगुनियां) के पाछे लों गई व विना कटी रेखा वैसे दीखती है जैसे बड़े आयुर्दाय को देती है ॥ ६६ ॥ व सुमांसल (अच्छे मांसवाले या बलवान्) लाले सीधे सूक्ष्म याने थोड़ा मोटे, सुन्दर बराबर घुटुनावाले, पसीना रहित और सचिक्कण पांव इसके ऐश्वर्य्य के सूचक हैं ॥ ६७ ॥ अरुण वरण, थोड़ी हाथकी रेखाओं और पतले छोटे लिङ्गसे सदासुखी लोकपाल होगा ॥ ६८ ॥ व जे बड़े आसन के योग्यहैं वे कटिमें टिके मांसपिण्ड हैं जिसके और दाहिने

ओरको घेर अरुण जैसे हो वैसे बड़े ऐश्वर्य्य के सूचनेवाली इसकी तोंदीभी गोलाकारहै ॥ ६९ ॥ व जो इसके मूततेही दक्षिणओरको घूमनेवाली एकही धारा निकले व जो वीर्य्यमें मछरी और शहदकासा गन्धहो तो राजा होगा ॥ ७० ॥ इसके विस्तारयुक्त बलवान् चीकन रिफचू (कटिस्थमांसपिण्ड) सुखके उचित हैं और अच्छे लम्बे याने जानु लगजाते सुन्दर आलम्बनवाले भुजदण्डभी दिशा पालनेके योग्य हैं ॥ ७१ ॥ व श्रीवत्स (दहिने ओर को घूमी रेखा) वज्र चक्र कमल मछरी धन्वा और दण्ड इनके धारनेवाली वैसी इसके हाथकी रेखाहै जैसे स्वर्गका स्वामी होवेगा ॥ ७२ ॥ व बत्तिस दांत और हाथीकी सूंड़ से बना शङ्खके समान तीनरेखा संयुत गल व क्रौंचपक्षी नगारा हंस और मेघ इनके तुल्य स्वर है जिसका वह यह सर्वेश्वर से अधिक होगा ॥ ७३ ॥ यह शहदके समान कुछ पीलेनेत्रवाला है इससे

तेमरुणंमहदैश्वर्यसूचिका ॥ ६९ ॥ धारैकामूत्रयत्यस्मिन्दक्षिणावर्तिनीयदि ॥ गन्धश्चमीनमधुनोर्यदिवीर्येतदान्नृपः॥ ७० ॥ विस्तीर्णौमांसलौस्निग्धौस्फिचावस्यसुखोचितौ ॥ वामावर्तौसुप्रलम्बौ दोषौदिग्रक्षणोचितौ ॥ ७१ ॥ श्रीवत्सवज्रचक्राब्जमत्स्यकोदण्डदण्डभृत् ॥ तथास्यकरगारेखायथास्यात्रिदिवस्पतिः ॥ ७२ ॥ द्वात्रिंशद्दशनश्चायंकरकम्बुशिरोधरः ॥ क्रौञ्चदुन्दुभिहंसाभ्रस्वरःसर्वेश्वराधिकः ॥ ७३ ॥ मधुपिङ्गलनेत्रोऽसौनैनंश्रीस्त्यजतिक्वचित् ॥ पञ्चरेखललाटस्तुतथासिंहोदरःशुभः ॥ ७४ ॥ ऊर्ध्वरेखाङ्कितपदोनिःश्वसन्पद्मगन्धवान् ॥ अच्छिद्रपाणिःसुनखोमहालक्षणवानयम् ॥ ७५ ॥ किन्तुसर्वगुणोपेतंसर्वलक्षणलक्षितम् ॥ सम्पूर्णनिर्मलकलंपातयेद्विधुवद्विधिः ॥ ७६ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनरक्षणीयस्त्वसौशिशुः ॥ गुणोपिदोषतांयातिवक्रीभूतेविधातरि ॥ ७७ ॥ शङ्केऽस्यद्वादशेवर्षेप्रत्यूहोविद्युद

इस को लक्ष्मी कभी नहीं तजेगी व पांच रेखा हैं जिसमें ऐसा माथ तथा सिंह का सा उदर (पेट) है जिसका वह यह मङ्गलसंयुत है ॥ ७४ ॥ व ऊर्ध्वरेखा याने ऊंचेको गई रेखाओंसे चिह्नित है पावँ जिसका व श्वास लेते कमल से सुगन्धवाला व छेदरहित घनी अंगुलियांहैं जिनमें वैसे हाथ और सुन्दर नख हैं जिसके वह यह बड़ा सुलक्षणवान् है ॥ ७५ ॥ किन्तु सम्पूर्ण स्वच्छ सोलहकला के चन्द्रकी नाईं याने जैसे राहुके द्वारा चन्द्रमा को वैसे सब गुण समेत सब सुलक्षणों से चिह्नित इसको विधाता गिरावेगा ॥ ७६ ॥ उस कारण सब यत्नसे यह बालक बचानेयोग्यहै क्योंकि विधाताके कुटिल होतेही गुणभी दोषभाव को प्राप्त होताहै ॥ ७७ ॥

शंका करता हूं कि इसका बारहें वर्ष में बिजुली की अग्नि याने वज्रपात से विघ्न (अपमृत्यु) है यों कह वे बुद्धिमान् नारदजी जहांसे आये वहांको गये ॥ ७८ ॥ और नारद के उस कहने को सुन स्त्रीसमेत विश्वानर उसी समय दारुण वज्रका गिरना मानताभया ॥ ७९ ॥ हा मैं हनागयाहूं यों वचन से छाती पीटनेलगा व पुत्रके शोचसे बहुत व्याकुलहो बड़ी मूर्च्छाको पहुँचा ॥ ८० ॥ व अत्यन्त व्याकुल हैं इन्द्रियां जिसकी वह दुःखसे पीड़ित शुचिष्मती भी दीनस्वर से हाहाशब्दों करके अतिशय दुस्सह जैसेहो वैसे रोनेलगी ॥ ८१ ॥ हा पुत्र ! हा गुणनिधान ! हा बापका कहा करनेवाले ! हा मुझ अभागिनिकी कोखमें किसलिये आया ! ॥८२॥ हा पुत्र ! मैं तेरे

ग्नितः ॥ इत्युक्त्वानारदोधीमान्सजगामयथागतम् ॥ ७८ ॥ विश्वानरःसपत्नीकस्तच्छ्रुत्वानारदेरितम् ॥ तदैवमन्य
मानोभूद्वज्रपातंसुदारुणम् ॥ ७९ ॥ हाहतोस्मीतिवचसाहृदयंसमताडयत् ॥ मूर्च्छामवापमहतींपुत्रशोकसमाकुलः ॥
८० ॥ शुचिष्मत्यपिदुःखार्तारुरोदातीवदुःसहम् ॥ आर्तस्वरेणहाशब्दैरत्यन्तव्याकुलेन्द्रिया ॥ ८१ ॥ हाशिशोहागुणनिधे
हापितुर्वाक्यकारक ॥ हाकुतोमन्दभाग्यायाजठरेमेसमागतः ॥ ८२ ॥ त्वदेकपुत्रांहापुत्रकोऽत्रमांत्रायतेपुरा ॥ त्वदृते
त्वद्गुणोर्म्याढ्येपतितांशोकसागरे ॥ ८३ ॥ हाबालहाविमलहाकमलायताक्षहालोकलोचनचकोरकुरङ्गलक्ष्मन् ॥ हा
ताततातनयनाब्जमयूखमालिन् हामातुरुत्सवसहस्रसुखैकहेतो ॥ ८४ ॥ हापूर्णचन्द्रमुखहासुनखाङ्गुलीकहाचाटुकारव
चनामृतवीचिपूर ॥ दुःखैःकियद्भिरहहाङ्गमयात्वमाप्तःकिंकिंकृतंगृहपतेनमयात्वदाप्त्यै ॥ ८५ ॥ नोपोबलिर्नबतकासु

गुणलहरों से भरेपुरे शोचसमुद्र में पहलेही पड़ीहूं व तू एक बालकहै जिसके ऐसी मुझको तेरे विना यहां को रक्षेगा ॥ ८३ ॥ हा बाल ! हा विमल ! हा कमलदलसे चौंडे नेत्रवाले ! हा लोगोंके नयन चकोरों के सुखदायकचन्द्र ! हा तात ! हा नेत्रकमलों के सूर्य्य ! हा माता के उत्सव हजारों के सुख के मुख्यकारण !॥ ८४ ॥ हा पूरे चन्द्र के समान मुख ! हा अच्छे नख अंगुलीवाले ! हा मनोहरवचन ! हे अमृतलहरसमूह के सागर ! हे प्यारे गृहपते! खेद है कि कितने दुःखों से तू मुझे मिला है व तेरे पाने के लिये मैंने क्या क्या नहीं किया ॥ ८५ ॥ हे विश्वनाथ में समर्पित पुण्य से लाभहुये बच्चे! खेद है कि तेरे लिये मैंने किन देवों में पूजा

नहीं दिया व किन अच्छे तीर्थों को नहीं सेया और कौन कौन नियम औषध (दवाई) मन्त्र और यन्त्रों को नहीं साधा याने सबकुछ किया है ॥ ८६ ॥ हे संसार समुद्र के पारकार नौकारूप ! हे सौख्य के सागर ! हे पुत् नाम नरकसिन्धुके शोषक वड़वानल ! तू दुःख के भार को हर व मुखचन्द्रको दिखा और अपने वचन अमृत के सींचने से पिताको जिला ॥ ८७ ॥ अहह इसके जन्मसमय के महोत्सवमें होनहारे अनिष्ट को जान वे सब देव इकट्ठे साथ मिलेहुये क्यों आये थे जो कि इस एक में टिके सब गुण शील कलासमूह सुन्दरता और सुलक्षणों के परखने से पूरे आनन्दवाले थे ॥ ८८ ॥ हे शम्भो ! हे महेश ! हे करुणानिधान ! हे त्रिशूल-

चदेवतासुतीर्थानिकानिनमयाध्युषितानिवत्स ॥ केकेमयाननियमौषधमन्त्रयन्त्राःसंसाधितास्तवकृतेसुकृतैकलभ्य ॥ ८६ ॥ संसारसागरतरेहरदुःखभारंसारंमुखेन्दुमभिदर्शयसौख्यसिन्धो ॥ पुन्नामतीव्रनरकार्णववाडवाग्ने संजीवयस्व पितरंनिजवाक्सुधोक्षैः ॥ ८७॥ किंदेवताअहहजन्ममहोत्सवेऽस्यज्ञात्वेतिभाविमिलितायुगपत्समस्ताः ॥ एकस्थसर्वगुण शीलकलाकलापसौन्दर्यलक्षणपरीक्षणपूर्णहर्षाः ॥ ८८ ॥ शम्भोमहेशकरुणाकरशूलपाणेमृत्युञ्जयस्त्वमितिवेदविदो वदन्ति ॥ त्वद्दत्तबालतनयेयदिकालकालःस्यादेवमत्रवदकस्यभवेन्नपातः ॥८९॥ हाहन्तहन्तभवताभवतापहारीकस्मा द्विधेऽत्रविदधेबहुभिःप्रयत्नैः ॥ बालोविशालगुणसिन्धुमगाधमध्यंसद्रत्नसारमखिलंसविधंविधाय ॥ ९० ॥ हाकालबा लकवतीकिमुतेनराज्ञीत्वत्कालतांनहृतवान्नसुताननेन्दुः ॥ बालेतिकोमलमृणाललताङ्गलीलेदम्भोलिनिष्ठुरकठोरकु

हस्त ! तुम मृत्यु के जीतनेवाले हो यों वेदों के पण्डित कहते हैं जो तुम्हारे दिये बालपन पुत्र में काल (यम) से काल (मरण) होवे तो कहो किसका गिरना न होगा ॥ ८९ ॥ हे विधातः ! विगाद है कि आपने बहुत यत्नों से विधि समेत सम्पूर्ण अथाह और अच्छे रत्न हैं सार वस्तु जिस में उस विशाल गुणों के समुद्र को कर संसारतापहारी बालक को क्यों बनाया ॥ ९० ॥ हा काल ! क्या तेरी रानी पुत्रवती नहीं है और तेरे पुत्र के मुखचन्द्र ने तेरे किये मारणभाव को नहीं हरा है यह नहीं किन्तु हरा है इससे बहुत कोमल कमल लता के समान अंगोंकी लीला है जिसकी ऐसे बालक में तुम वज्रसे निठुर भयंकर कुल्हाड़ी की नाईं दाढ़ों

वाले क्यों हो भाव कि अपने पुत्रका पालना पराये पुत्रका मारना यह तुमका उचित नहीं है ॥ ९१ ॥ कष्ट या आश्चर्य्य है कि यों बहुत विलापकर नेत्रों के आंसू धारा बरसने से उपजी नदियों का सैकड़ा कि जिसमें ऊंची लहरेंथीं उसको बालक के शोचसे उत्पन्न आगकी तपनि से तपी हुई उसने बडी गम्भीर ताती ऊर्ध्व स्वास लेकर शोष लिया ॥ ९२ ॥ उसके उन करुणाभरे रोदनोंको सुन बहुधा वृक्ष और लतायेंभी वार वार बयार के मिष मूड़ डुलाय फूल आंसू गिरने व पक्षियोंके बोलरूप व्याकुल शब्दों से रोती सी दीखती हैं॥ ९३ ॥ व उसने खुले गर पीड़ित स्वरों से निश्चय वैसे रोया कि जैसे पर्वतों की कन्दरायें है मुख जिनके व रुकगया पक्षियों और मृगों का आना

ठारदंष्ट्रः ॥९१॥ इत्थंविलप्यबहुशोनयनाम्बुधारासम्पातजाततटिनीशतमुत्तरङ्गम् ॥ सातोकशोकजनितानलतापतप्ता प्रोच्छ्वस्यदीर्घविपुलोष्णमहोशुशोष॥९२॥ आकर्ण्यतत्करुणवत्परिदेवितानितानिद्रुमाव्रततयःकुसुमाश्रुपातैः ॥ प्रायो रुदन्तिपततांविरुतार्तरावैरालोल्यमौलिमसकृत्पवनच्छलेन॥९३॥ रुरोदन्तया किलतथाबहुमुक्तकण्ठमार्तस्वरैःप्रतिरव च्छलतोयथोच्चैः ॥ तद्दुःखतोनुरुरुदुर्गिरिकन्दरास्याःसर्वादिशःस्थगितपत्रिमृगागमाहि ॥ ९४ ॥ श्रुत्वार्तनादमि तिविश्वनरोपिमोहं हित्वोत्थितःकिमितिकिंत्विति किंकिमेतत् ॥ उच्चैर्वदन्गृहपतिःक्वसमेबहिःस्थः प्राणोन्तरात्म निलयःसकलेन्द्रियेशः ॥ ९५ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ ततोदृष्ट्वासपितरौ बहुशोकसमावृतौ ॥ स्मित्वोवाचततोमात स्त्रासस्त्वीदृक्कुतोहिवाम् ॥ ९६ ॥ नमांकृतवपुस्त्राणंभवच्चरणरेणुभिः ॥ कालःकलयितुंशक्तो वराकीचञ्चलाल्पिका ॥ ९७ ॥ प्रतिज्ञांशृणुततातौ यदिवांतनयोह्यहम् ॥ करिष्येहंतथातेन विद्युन्मत्तस्त्रसिष्यति ॥ ९८ ॥ मृत्युञ्जयंसमा

जाना जिनमें ऐसी सबदिशायें भी उसके दुःख से प्रतिशब्द के मिष ऊंचे स्वरसे पीछे से रोनेलगीं ॥ ९४ ॥ व यों आर्तशब्द को सुन मोह को तज यह क्या क्या यों ऊंचे बोलताहुआ विश्वानर भी उठा कि मेरा बाहर रहनेवाला प्राण आत्माके भीतर का वासी सब इन्द्रियों का स्वामी वह गृहपति कहां हैं॥ ९५ ॥ अगस्त्यजी बोले कि तदनन्तर बहुत शोचसे घिरे माता और पिताको देख उस बालने मुसकुराकर कहा कि हे मातः ! हे पितः ! किस कारण तुम दोनोंका ऐसा त्रास है ॥ ९६ ॥ क्योंकि आपके पांवोंकी धूरोंसे कियागया देहका रक्षण जिसका उस मुझको मारनेको काल भी समर्थ नहीं है और बापुरी बिजुली तो थोड़ीहै ॥ ९७ ॥ हे तातौ (मातापितरौ)!

प्रतिज्ञा सुनो कि जो मैं तुम्हाराही पुत्रहूं तो वैसा करूंगा जिससे उस मुझसे बिजुली भी डरैगी ॥ ९८ ॥ और सन्तों के सब मनमाने फलदाता व सर्वज्ञ कालके काल बड़े चलानेवाले मृत्युको जीते शिवजीको पूजूंगा॥ ९९॥ उससमय यों उराका वचन सुन अकाल अमृतवर्षा से बुझी तापवाले वे बूढ़े ब्राह्मण स्त्री पुरुष बोले कि ॥ १०० ॥ विना मेघके जल बरसा व नहीं है क्षीरसागर जिसमें वह अमृतका उदय और नहीं है चन्द्रमा जिसमें वह चांदनीकी कांति किससे हमको अधिक सुखित करती है ॥ १ ॥ और फिर कहो फिर कहो यह कैसा कैसा कि कालभी मारने को समर्थ नहीं है और बापुरी बिजुली तो थोड़ी होती है ॥ २ ॥ व शिवदेवकी पूजा

राध्य सर्वज्ञंसर्वदंसताम् ॥ कालकालंमहाकालं कालकूटविषादिनम् ॥ ९९ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य जरितौद्विजदम्पती ॥ अकालामृतवर्षौघशान्ततापौतदोचतुः ॥ १०० ॥ अपयोदपयोवृष्टिरदुग्धाब्धिःसुधोदयः ॥ अनिन्दुःकौमुदीकान्तिः कुतोनौसुखयत्यलम् ॥ १ ॥ पुनर्ब्रूहिपुनर्ब्रूहि कीदृक्कीदृक्पुनःपुनः ॥ कालःकलयितुंनालंवराकीचञ्चलालिपिका ॥ २ ॥ आवयोस्तापनाशाय महोपायस्त्वयेरितः ॥ मृत्युञ्जयस्यदेवस्य समाराधनलक्षणः ॥ ३ ॥ तद्गच्छशरणंतात नातः परतरंहितम् ॥ मनोरथपथातीतकारिणःकालहारिणः ॥ ४ ॥ किंनश्रुतंत्वयातात श्वेतकेतुंयथापुरा ॥ पाशितंकालपाशेन ररक्षत्रिपुरान्तकः ॥ ५ ॥ शिलादतनयंमृत्युग्रस्तमष्टाब्दमर्भकम् ॥ शिवोनिजजनंचक्रे नन्दिनंविश्वनन्दिनम् ॥ ६ ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतं प्रलयानलसंनिभम् ॥ पीत्वाहालाहलंघोरमरक्षद्भुवनत्रयम् ॥ ७ ॥ जालन्धरंमहादर्पं हतत्रैलोक्यसम्पदम् ॥ चरणाङ्गुष्ठरेखोत्थचक्रेणानिजघानयः ॥ ८ ॥ यएकेषुनिपातोत्थज्वलनैस्त्रि

लक्षणवाला उपाय हमारे ताप नाश के लिये तुम करके कहागया ॥ ३ ॥ हे तात! इससे अधिक और हित नहीं है उस कारण मनोरथ के मार्ग्ग रो परे फलके कर्त्ता कालके हर्त्ता शिवके शरण जा ॥ ४ ॥ हे प्यारे ! क्या पहले तूने नहीं सुना कि त्रिपुरके नाशक ने जैसे कालफांससे बांधे श्वेतकेतु मुनि की रक्षा किया॥ ५ ॥ व मृत्युसे गसे आठ वर्षके शिलादपुत्र को सब जगत्से वंदित नन्दी नाम निज गण किया ॥ ६ ॥ व क्षीरसागर के मथने से भये प्रलयाग्निके समान घोर विषको पीकर त्रिलोकको बचाया ॥ ७ ॥ व जिन्होंने तीनलोकों की संपत्ति हरनेहारे बड़े गर्बीले जालंधर दैत्यको पांवके अँगुठे की रेखासे उठे चक्रसे मारा ॥ ८ ॥ व जिन शिवने

विष्णुको बाण बना एकही बाण चलाने या गिरनेसे उठी आगसे आगेही त्रिपुर को जलाया ॥ ६ ॥ व आगे जिन्होंने त्रिलोक के ऐश्वर्य्य मदसे मूढ़ व दश हज़ार वर्ष त्रिशूलमें नाथे हुये उस अंधक दैत्यको सूर्य्य से सुखवाया ॥ १० ॥ व ब्रह्मादि देवों के देखतेही तीन लोकों की जीतिसे बढ़े कामदेवको दृष्टि के निपातसे अनंग (बिना अंग) की पदवी को पहुँचाया ॥ ११ ॥ हे पुत्र! जो ब्रह्मादि देवों के मुख्य कर्त्ता व मेघोंपर चढ़े व मृत्युरहित और जगत् की रक्षाके लिये मणिरूपहैं उन शिवके शरण जा ॥ १२ ॥ यों माता पिताकी आज्ञा पा उनके पावोंको प्रणाम कर प्रदक्षिणा घूम बहुत आश्वासनकर निकला ॥ १३ ॥ और वह गृहपति, महा-

पुरंपुरा ॥ विधायपत्रिणंविष्णुं ज्वालयामासधूर्जटिः ॥ ९ ॥ अन्धकंयस्त्रिशूलाग्रप्रोतंवर्षायुतंपुरा ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यसंमूढं शोषयामासभानुना ॥ १० ॥ कामंदृष्टिनिपातेन त्रैलोक्यविजयोर्जितम् ॥ निनायानङ्गपदवीं वीक्षमाणेष्वजादिषु ॥ ११ ॥ तंब्रह्माद्येककर्तारं मेघवाहनमच्युतम् ॥ प्रयाहिपुत्रशरणं विश्वरक्षामणिंशिवम् ॥ १२ ॥ पित्रोरनुज्ञांप्राप्येति प्रणम्यचरणौतयोः ॥ प्रदक्षिणमुपावृत्य बह्वाश्वास्यविनिर्ययौ ॥ १३ ॥ सम्प्राप्यकाशींदुष्प्रापां ब्रह्मनारायणादिभिः ॥ महासंवर्तसंवृत्ततापाद्विश्वेशपालिताम् ॥ १४ ॥ स्वर्धुन्याहारयष्ट्येवराजितांकण्ठभूमिषु ॥ विचित्रगुणशालिन्या हारनीहारगौरया ॥ १५ ॥ बहुसंसारसन्तापसन्तप्तजनतोद्भवम् ॥ वारयन्तींवरणया छिन्दन्तीमसिधारया ॥ १६ ॥ यल्लभ्यतेचकैवल्यं सुदृढाष्टाङ्गयोगतः ॥ विकासयन्तींतत्सम्यक् काशिकांयांजगुर्बुधाः ॥ १७ ॥ संसारतापतप्ताभ्यां लोचनाभ्यांसदृष्टवान् ॥ कर्णाकर्णप्रकीर्णाभ्यां प्राग्ययौमणिकर्णिकाम् ॥ १८ ॥ तत्रस्नात्वावि

प्रलय में भली भांतिसे बर्तते तापसे विश्वनाथ करके पाली व ब्रह्मा और विष्णु आदिकों का दुर्लभ जो काशीहै उसमें पहुँच ॥ १४ ॥ जोकि मोती बरफ़ से उजली है व विचित्र गुणोंसे शोभित व गंगारूप हार दंडीसे कंठस्थानीय भूमियोंमें विराजती सीहै ॥ १५ ॥ और बहुते संसारके संतापसे भली भांतिसे तपे जनसमूहोंकी उत्पत्तिको वरणा नदी से बराती है व असिकी धारासे काटती है ॥१६॥ और अच्छे दृढ़ प्राणायामादि अष्टांगयोगसे जो मिलताहै उसको भली भांतिसे फुलाती या प्रकाशती है व ज्ञानी जन जिसको काशिका कहते हैं॥ १७॥उस मणिकर्णीकाको वह कानोंके सुननेसे विस्तारयुक्त व संसारके तापसे तपे नेत्रोंसे देखता भया और पहले वहां गया॥१८॥

व विधानसे उसमें नहाय तीनलोकके देहधारी जीवोंके रक्षाकारी विश्वनाथ स्वामीको देख उसने प्रणाम और पूजा किया ॥१९॥ और वह उस लिंगको देख देख मनमें बहुत संतुष्ट हुआ कि परमानन्द कन्द यह नाम स्पष्ट है संशय नहीं ॥ २० ॥ व आश्चर्य्यहै कि चलते व न चलते देहधारियोंसे संयुत त्रिलोकमें मुझसे अधिक धन्य नहीं है जिससे मैंने आज विश्वनाथ स्वामी को देखा ॥ २१ ॥ (उत्प्रेक्षा है कि) क्या यह तीन लोकों के वरका सब धन लिंगाकारहुआ है व क्षीरसागर से उठा अमृत का पिण्ड है ॥ २२ ॥ कि यह आत्मज्ञान ज्योति का पहला अंकुरहै व ब्रह्मानन्द का अच्छा मूल है कि ब्रह्मरसायन है ॥ २३ ॥ कि जो योगियों के हृदयकमल

धानेन दृष्ट्वाविश्वेश्वरंविभुम् ॥ त्रैलोक्यप्राणिसन्त्राणकारिणंप्रणनामह ॥ १९ ॥ आलोक्यालोक्यतल्लिङ्गं तुतोषहृद येबहु ॥ परमानन्दकन्दाख्यं स्फुटमेतन्नसंशयः ॥ २० ॥ अहोनमत्तोधन्योस्ति त्रैलोक्येसचराचरे ॥ यदद्राक्षिषम ग्राहं श्रीमद्विश्वेश्वरंविभुम् ॥ २१ ॥ त्रिलोकीसारसर्वस्वंपिण्डीभूतमिदंकिल ॥ किंवापीयूषपिण्डोयमुद्धृतःक्षीरनी रधेः ॥ २२ ॥ आत्मावबोधमहसः किमसौप्रथमाङ्कुरः ॥ ब्रह्मानन्दसुकन्दोवा किमुब्रह्मरसायनम् ॥ २३ ॥ योगिहृ त्पद्मनिलयं यदनाकारमुच्यते ॥ तदाकारत्वमापेदे किमिदंलिङ्गकैतवात् ॥ २४ ॥ ब्रह्माण्डभाण्डमथवा नानारत्नौ घपूरितम् ॥ अथवामोक्षवृक्षस्य फलमेतन्नसंशयः ॥ २५ ॥[१]निर्वाणलक्ष्म्याःकिमथ केशपाशःसुपुष्पयुक् ॥ कैवल्य मल्लीवल्ल्याः किं स्तबकःस्तावकार्थदः ॥ २६ ॥ निःश्रेयसश्रियःकिंवाऽऽनन्दक्रीडनकन्दुकः ॥ अपवर्गोदयाद्रेः किं मुदियायसुधाकरः ॥ २७ ॥ संसारमोहतिमिरभिदुरःकिमसौरविः ॥ किमुकल्याणरमणीरम्यशृङ्गारदर्पणः ॥ २८ ॥

का वासी निराकार कहाजाता है वह यह लिंग के मिस से रूप को प्राप्तभया है ॥ २४ ॥ अथवा ब्रह्माण्डपात्र अनेक रत्नसमूह से पूरागया है व यह मोक्षवृक्षका फल है इसमें संशय नहीं ॥ २५ ॥ कि अच्छे फूलों से युक्त, निर्वाण लक्ष्मी की चोटी है कि स्तुतिकर्ताओं का फलदाता कैवल्य व बेला की लताका गुच्छाहै ॥ २६ ॥ कि मुक्ति लक्ष्मी का आनन्द से खेलने का गेंद है कि अपवर्ग उदयाचल का चन्द्रमा उगा है ॥ २७ ॥ कि यह संसार के मोह अन्धकारका विदारक सूर्य है

१ निर्वाण, कैवल्य, निश्रेयस, अपवर्ग ये मुक्तिभेदों के नाम हैं ॥

का रमणीक, शृंगारकी शोभा लखने का शीशा है ॥ २८ ॥ आ (सुधहुई) मैंने जाना यह और कुछ नहीं है किन्तु यह अनेक कर्म्मबीजों
है ॥ २९ ॥ जिससे सबके कर्मनामक सब बीजों का इसमें नाश होता है उससे यह विश्वलिंग है ॥ ३० ॥ और महामुनि नारद ने मेरेभाग
मय में आकर जो वैसे कहाथा उससे मैं कृतकृत्यहूं ॥ ३१ ॥ यों सुखसुधारसों से पारणाकर तदनन्तर उसने भी शुभ दिनमें सबके हितदायक
से थाप व नहीं किया बुद्धि जिन्हों ने उनके दुष्कर भयानक नियमों को गहा ॥ ३२ ॥ और गंगा के अमृत समान उन जलों से भरे आठ अ-

वेदन्यत्सर्वेषांदेहधारिणाम् ॥ अनेककर्मबीजानां बीजपूरोऽयमद्भुतः ॥ २९ ॥ विश्वेषांविश्वबीजानां क
नांलयोयतः ॥ अस्मिन्निर्वाणदेलिङ्गे विश्वलिङ्गमिदंततः ॥ ३० ॥ ममभाग्योदयेनैव नारदेनमहर्षिणा ॥ त
त्यतथोक्तंयत्कृतकृत्योस्म्यहंततः ॥ ३१ ॥ इत्यानन्दामृतरसैर्विधायसहिपारणम् ॥ ततःशुभेऽह्निसंस्थाप्य लि
सर्वहितप्रदम् ॥ ३२ ॥ जग्राहनियमान्घोरान् दुष्करानकृतात्मनाम् ॥ अष्टोत्तरशतैःकुम्भैः पूर्णैर्गङ्गामृतद्रवैः ॥
३ ॥ संस्नाप्यवाससापूतैः पूतात्माप्रत्यहंशिवम् ॥ नीलोत्पलमयींमालां समर्पयतिसोऽन्वहम् ॥ ३४ ॥ अष्टाधि
कसहस्रैस्तु सुमनोभिर्विनिर्मिताम् ॥ सपक्षार्धेनषण्मासं कन्दमूलफलाशनः ॥ ३५ ॥ शीर्णपर्णाशनःपक्षे त्वाषण्मा
संबभूवसः ॥ षण्मासंवायुभक्षोभूत्षण्मासंजलविन्दुभुक् ॥ ३६ ॥ एवंवर्षद्वयंतस्य व्यतिक्रान्तंतथासतः ॥ जन्मतो
द्वादशेवर्षे तद्वचोनारदेरितम् ॥ ३७ ॥ सत्यंकरिष्यन्निवतमभ्यगात्कुलिशायुधः ॥ उवाचचवरंब्रूहि ददामितन्मनसि

धिक सौघडों से ॥ ३३ ॥ प्रतिदिन शिव को नहवा जो कि वस्त्र से पवित्र याने छाने धरे थे फिर वह शुद्धमन या पवित्रदेहवाला रोज रोज काले कमल की उस
माला को पहराता था ॥ ३४ ॥ जो कि आठ अधिक हजार फूलोंसे बनाई जातीथी और वह छःमहीनातक पन्द्रहें दिनसे कन्दमूल और फलोके खानेवालाहुआ ॥ ३५ ॥
व फिर छःमहीनातक पन्द्रहे दिनमें गिरे पाके पत्तों का व छमाही बयार और छमाही पानीका बिन्दु खानेवाला हुआ ॥ ३६ ॥ यों वैसे बसते उसके दो वर्ष बीतगये तब
जन्म से बारहवे वर्ष में नारद के कहे उस वचन को ॥ ३७ ॥ सत्यसा करते व वज्र आयुधधारी इन्द्र जी उसके सामने गये और बोले कि मनमे टिके जिस वर को

कह वह दूं ॥ ३८ ॥ हे ब्राह्मण ! मैं इन्द्र तेरे शुभव्रतों से प्रसन्न हूं यों इन्द्रका वचन सुन मुनिका बालक ॥ ३९ ॥ जो कि बुद्धिमान् था उसने सुवाके समान प्यारे स्वादिल अक्षर कहा कि हे वृत्रासुरके वैरिन् इन्द्र ! वज्र है हाथ में जिसके ऐसे तुमको मैं जानताहूं ॥ ४० ॥ मैं तुमसे वर न बरूंगा क्योंकि मेरे वरदाता शिवजी हैं ॥ ४१ ॥ इन्द्र जी बोले कि हे बालक ! मुझ से अधिक अन्य शंकर (शिवया, सुखकर) नहीं है मैं देवोंका देव हूं तू मूर्खता छोड़ मुझसे श्रेष्ठ अभिलाप को मांग ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणबोला कि हे अहल्यापते, असाधो, पर्वतशत्रो, पाकदैत्यविनाशन ! मैं शिवसे अन्य दूसरे देव को नहीं प्रार्थता हूं यह स्पष्ट है ॥ ४३ ॥ यों

स्थितम् ॥ ३८ ॥ अहंशतक्रतुर्विप्र प्रसन्नोस्मिशुभव्रतैः ॥ इत्याकर्ण्यमहेन्द्रस्य वाक्यंमुनिकुमारकः ॥ ३९ ॥ उवाचमधुरंधीरः कीरवन्मधुराक्षरम् ॥ मघवन्वृत्रशत्रोत्वां जानेकुलिशपाणिनम् ॥ ४० ॥ नाहंवृणेवरंत्वत्तः शङ्करोवरदोस्तिमे ॥ ४१ ॥ इन्द्रउवाच ॥ नमत्तःशङ्करोस्त्यन्यो देवदेवोस्म्यहंशिशो ॥ विहायबालिशत्वंत्वं वरंयाचस्वमांवरम् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ गच्छाहल्यापतेऽसाधो गोत्रारेपाकशासन ॥ नप्रार्थयेपशुपतेरन्यंदेवान्तरंस्फुटम् ॥ ४३ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ उद्यम्यकुलिशंघोरं भीषयामासबालकम् ॥ ४४ ॥ सदृष्ट्वाबालकोवज्रं विद्युज्ज्वालाशताकुलम् ॥ स्मरन्नारदवाक्यञ्च मुमूर्छभयविह्वलः ॥ ४५ ॥ अथगौरीपतिःशम्भुराविरासीत्तमोनुदः ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रंते स्पर्शैःसञ्जीवयन्निव ॥ ४६ ॥ उन्मील्यनेत्रकमले सुप्तेइवदिवाक्षये ॥ अपश्यदग्रेचोत्थाय शम्भुमर्कशताधिकम् ॥ ४७ ॥ भालेलोचनमालोक्य कण्ठेकालंवृषध्वजम् ॥ वामाङ्गसंनिविष्टाद्रितनयंच

उसका वचन सुन क्रोध से लाले लोचनवाले इन्द्रने भयंकर वज्रको उवा बालक को डरवाया ॥ ४४ ॥ तब बिजुली की ज्वालाओं के सैकड़ा से संयुत वज्रको देख व नारदका वचन सुमिरता वह बालक विकलहो मूर्च्छित हुआ ॥ ४५ ॥ अनंतर अज्ञान या अंधकारको दूर करते व उठ, उठ तेरा कल्याणहो यो कहते व हाथों के पर्शने से जियाते से पार्वती केपति शिवजी प्रकटहुये ॥ ४६ ॥ और उसने दिन के अंत याने रातमें सोते से नेत्रकमलों को खोल उठकर आगे सैकड़ों सूर्य्यों से अधिक शंभुको देखा ॥ ४७ ॥ कि जिनके भाल में नेत्र व कंठमें श्याम वरण और वृप ध्वजामें व बायें अंगमें पार्वतीजी बैठीहैं और जिनके माथमें चन्द्रमा चम-

कता है ॥ ४८ ॥ व जो जटाजूट से विराजते हैं व त्रिशूल तथा आजगवनाम धन्वा जिनका आयुधहै व झलकते कपूरसे गौर रंग अंग है और पहिना गयाहै हाथी का चर्म जिन करके उनको ॥ ४९ ॥ गुरुओं के वचन और शास्त्रसे शिवजान आनन्द के आंसुओं से संयुत व बंधे गलवाला व रोमोंका उठना कञ्चुक से बना है जिसके ऐसाहो ॥ ५० ॥ जैसे चित्रमें लिखा पुतला होताहै वैसे बर्त्तता हुआ अपना और अन्यको भी बिसर क्षणभर थँभासा टिका ॥ ५१ ॥ जब स्तुति व नमस्कार और कुछ जतानेको अतिशय समर्थ न भया तब मन्दमुसकाय शिवजी बोले कि ॥ ५२ ॥ हे बालक, गृहपते ! तुम जाने गये कि वज्र उठाये हाथवाले

न्द्रशेखरम् ॥ ४८ ॥ कपर्देनविराजन्तं त्रिशूलाजगवायुधम् ॥ स्फुरत्कर्पूरगौराङ्गं परिणद्धगजाजिनम् ॥ ४९ ॥ परिज्ञा यमहादेवं गुरुवाक्यतआगमात् ॥ हर्षवाष्पाकुलःसन्नकण्ठोरोमाञ्चकञ्चुकः ॥ ५० ॥ क्षणंस्थगितवत्तस्थौ चित्रकृत्रिमपुत्रकः ॥ यथातथासुसम्पन्नो विस्मृत्यात्मानमेवच ॥ ५१ ॥ नस्तोतुंननमस्कर्तुं किञ्चिद्विज्ञप्तुमेवच ॥ यदासनशशाकलं तदास्मित्वाऽऽहशङ्करः ॥ ५२ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शिशोगृहपतेशक्रादूज्रोद्यतकरादहो ॥ ज्ञातोभीतोसिमाभैषीर्जिज्ञासातेकृतामया ॥ ५३ ॥ ममभक्तस्यनोशक्रो नवज्रंनान्तकोपिवा ॥ प्रभवेदिन्द्ररूपेण मयैवत्वंहिभीषितः ॥ ५४ ॥ वरंददामितेभद्र त्वमग्निपदभाग्भव ॥ सर्वेषामेवदेवानां वदनंत्वंभविष्यसि ॥ ५५ ॥ सर्वेषामेवभूतानां त्वमग्नेऽन्तश्चरोभव ॥ धर्मराजेन्द्रयोर्मध्ये दिगीशोराज्यमाप्नुहि ॥ ५६ ॥ त्वयेदंस्थापितंलिङ्गं तवनाम्नाभविष्यति ॥ अग्नीश्वरइतिख्यातं सर्वतेजोभिबृंहणम् ॥ ५७ ॥ अग्नीश्वरस्यभक्तानां नभयंविद्युदग्निजम् ॥ अग्निमान्द्यभयंनैव नाकालमर

इन्द्रसे डरेहो मतडरो मैंने तुम्हारा भाव जाननेकी इच्छा किया ॥ ५३ ॥ व इन्द्र वज्र और कालभी मेरे भक्तके लिये नहीं समर्थ होताहै इन्द्र रूप मैंनेही तुमको डरवायाहै ॥ ५४ ॥ हे कल्याण ! तुम को वर देताहूं कि तुम अग्निपदके भागीहो और सब देवोंके भी मुखहोगे ॥ ५५ ॥ हे अग्ने ! तुम सब प्राणियोंके भीतर विचरनेवाले हो व इन्द्र और यमराज के बीचमें याने पूर्व दक्षिणके मध्य कोणमें दिक्पालहो व राज्यको प्राप्तहोवो ॥ ५६ ॥ और तुमसे थापित व सब तेजोंका वर्धक

सुन जो यह पुण्यरूपा और पुण्यजनों से बसीगई है ॥ २ ॥ इसमें औरेके द्रोही जे राक्षस सदा बसते हैं ये जातिमात्ररो राक्षस हैं और सदाचारों से धार्मिक हैं ॥ ३ ॥ व अधम वर्ण मे उपजे भी वे वेदस्मृतियों से कही गलीवाले होकर खाने पीनेकी चीजों में स्मृतियों से न कहेको कभी नहीं आदरते हैं ॥ ४ ॥ व निकृष्ट जाति में उत्पन्न भी वे परस्त्री परधन और पराये द्रोहसे पीछेहैं मुख फेरे हैं व धर्मानुसारी हैं ॥ ५ ॥ जे लोग ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवा से उपजे धनोंसे अपनाको पोषते हैं व ब्राह्मणोंसे बतलाने आदिमें सदा सकुचे अंगवाले होतेहैं ॥ ६ ॥ व बुलायेहुये ब्राह्मणोंके लगे आतेहैं व मुखों में वस्त्रलायेहुये बतलाते हैं व जय जीव

निवसन्त्यस्यामपरद्रोहिणःसदा ॥ जातिमात्रेणरक्षांसि वृत्तैःपुण्यजनाइमे ॥ ३ ॥ स्मृत्युक्तश्रुतिवर्त्मानो जातावर्णावरेष्वपि ॥ नाद्रियन्तेऽन्नपानानामस्मृत्युक्तंकदाचन ॥ ४ ॥ परदारपरद्रव्यपरद्रोहपराङ्मुखाः ॥ जाताजातौनिकृष्टायामपिपुण्यानुसारिणः ॥ ५ ॥ द्विजातिभक्त्युत्पन्नार्थैरात्मानंपोषयन्तिये ॥ सदासङ्कुचिताङ्गाश्च द्विजसम्भाषणादिषु ॥ ६ ॥ आहूतावस्त्रवदना वदन्तिद्विजसन्निधौ ॥ जयजीवभगोनाथ स्वामिन्नितिहिवादिनः ॥ ७ ॥ तीर्थस्नानपरानित्यं नित्यंदेवपरायणाः ॥ द्विजेषुनित्यंप्रणताः स्वनामाख्यानपूर्वकम् ॥ ८ ॥ दमदानदयाक्षान्तिशौचेन्द्रियविनिग्रहाः ॥ अस्तेयसत्याहिंसाश्च सर्वेषांधर्महेतवः ॥ ९ ॥ आवश्येषुसदोद्युक्ता येजातायत्रकुत्रचित् ॥ सर्वभोगसमृद्धास्ते वसन्त्यत्रपुरोत्तमे ॥ १० ॥ म्लेच्छाअपिसुतीर्थेषु येमृतानात्मघातकाः ॥ विहायकाशींनिर्वाणविश्राणान्तेऽत्रभोगिनः ॥ ११ ॥

भगोः नाथ और स्वामिन् इन पदों को कहते हैं ॥ ७ ॥ व सदा तीर्थ नहाने में तत्पर व सदा देवपूजा में परायण और अपना नाम कहने पूर्वक ब्राह्मणों से नये भये रहते हैं ॥ ८ ॥ और बाहरकी इन्द्रियोंकी निश्चलता, दान, दया व क्रोध में भी क्षमा व बाहर और भीतर दो प्रकारका शौचभाव शुद्धहोने से व इन्द्रियो का रोकना, मनवचन कर्मसे पराये धनका न हरना, प्राणिपीड़ा रहित यथार्थ प्रियबोलना तन मन और वचनसे किसीको पीड़ा न देना ये सबके धर्मके कारणहैं ॥ ९ ॥ व जहीं कहीं उपजे जे आवश्यक कर्मों में सदा उद्योग (उद्यम) वाले हैं वे सब अभिलाषों से पूर्णहो उस उत्तम पुरमें बसते हैं ॥ १० ॥ व मुक्ति देनेवाली काशी को छोड़

यह लिंग तुम्हारे नामसे अग्नीश्वर यों प्रसिद्धहोगा ॥ ५७ ॥ अग्नीश्वरके भक्तोंका बिजुली व मन्दाग्निरोगका डर और अकाल मरण कहीं नहींहोगा ॥ ५८ ॥ व काशी में सब समृद्धिदायक अग्नीश्वरको पूज भाग्यसे अनते भीमराहुआ अग्निके लोकमें पूजाजाता है ॥ ५९ ॥ उसके बाद काशीको फिर पहुँच मोक्ष पावे और वीरेश्वर के पूर्व व गंगाके पश्चिम किनारेमें ॥६०॥ अग्नीश्वरको पूज मनुष्य माता पिता व अपने जनोंके साथ मित्र और भाइयोंसे संयुतहो अग्निके लोकमें बसे ॥ ६१ ॥ हे दिशाके नाथ! तुम इस विमानमें चढ़कर जावो यों कह उसके बंधुओंको आन मातापिता के देखतेही ॥ ६२ ॥ अग्निको दिक्पालता में अभिषेककर शिवजी उस लिंगमें पैठगये ॥

णंकचित् ॥ ५८ ॥ अग्नीश्वरंसमभ्यर्च्य काश्यांसर्वसमृद्धिदम् ॥ अन्यत्रापिमृतोदैवादग्निलोकेमहीयते ॥ ५९ ॥ ततःकाशींपुनःप्राप्य कल्पान्तेमोक्षमाप्नुयात् ॥ वीरेश्वरस्यपूर्वेण गङ्गायाःपश्चिमेतटे ॥ ६० ॥ अग्नीश्वरंसमाराध्य वह्निलोकेवसेन्नरः ॥ पितृभ्यांस्वजनैःसार्धं मित्रबन्धुसमायुतः ॥ ६१ ॥ विमानमिदमारुह्य प्रयाह्येवदिशःपते ॥ इत्युक्त्वानीयतद्बन्धून् पित्रोश्चपरिपश्यतोः ॥ ६२ ॥ दिक्पतित्वेऽभिषिच्याग्निं तत्रलिङ्गेशिवोविशत् ॥ ६३ ॥ गणावूचतुः ॥ इत्थमग्निस्वरूपंते शिवशर्मन्प्रवर्णितम् ॥ किमन्यच्छ्रोतुकामोसि कथयावस्तदीरय ॥१६४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डेवह्निलोकवर्णनन्नामैकादशोध्यायः ॥ ११ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवशर्मोवाच ॥ नैर्ऋतादीन्क्रमाल्लोकानाख्यातंपुरुषोत्तमौ ॥ पुरुषोत्तमपादाब्जपरागोद्धूसरालकौ ॥ १ ॥ गणावूचतुः ॥ आकर्णयमहाभाग संयमिन्याःपुरींपराम् ॥ दिक्पतेर्निर्ऋतस्यासौ पुण्यापुण्यजनोषिता ॥ २ ॥ राक्षसा

६३ ॥ विष्णुगणबोले कि हे शिवशर्मन्! मैंने यों अग्निका स्वरूप तुमसे कहा और क्या सुननेके चाही हो बोलो हम वह कहैंगे ॥ १६४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेअग्निलोकवर्णनन्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० ॥ बारह के अध्यायमें निर्ऋतिलोक कहिदीन। और वरुण के लोकको वर्णन बहुविधि कीन ॥ शिवशर्मा बोला कि हे पुरुषों में उत्तम विष्णु के पदकमलों की धूरि से धूसर अलकवाले, तुम दोनों क्रमसे नैर्ऋत्यआदि लोकों को कहो ॥ १ ॥ गण बोले कि हे महाभाग! यमपुरी से पश्चिम भई निर्ऋत दिक्पाल की पुरीको

अन्य अच्छे तीर्थों में जे आत्मघाती न होकर मरेहैं वे यहां भोगसंयुत होतेहैं ॥ ११ ॥ व जे आत्मघाती लोगहैं वे अंधे अँधेरे नरकको जाते हैं और वे हजारों नरकों को भोग गाँवके सूकर होतेहैं ॥ १२ ॥ उस कारण सुजानजनका आत्मघात न करना चाहिये क्योंकि इस और उस परलोकमें भी आत्मघातियोंका शुभ नहींहै ॥ १३ ॥ सारवस्तु के जनानेवाले कोई लोग सब तीर्थोंके स्वामी व सब अभिलापदायक प्रयागमें अपनी इच्छा के अनुसार मरना कहते हैं ॥ १४ ॥ व जे कोई नीच जाति भी दयाधर्म की गलीमें चलते व पराये उपकार करने में स्थित हैं वे सुठि सज्जन यहां बसते हैं ॥ १५ ॥ और अब अवसरमें इस दिक्पालके स्वरूपको कहताहूं सुनो कि

अन्धन्तमोविशेयुस्ते येचैवात्महनोजनाः ॥ भुक्त्वानिरयसाहस्रंतेचस्युर्ग्रामसूकराः ॥ १२ ॥ आत्मघातोनकर्तव्यस्तस्मात्क्वापिविपश्चिता ॥ इहापिचपरत्रापि नशुभान्यात्मघातिनाम् ॥ १३ ॥ यथेष्टमरणंकेचिदाहुस्तत्त्वावबोधकाः ॥ प्रयागेसर्वतीर्थानां राज्ञिसर्वाभिलाषदे ॥ १४ ॥ अन्त्यजाअपियेकेचिद्दयाधर्मानुसारिणः ॥ परोपकृतिनिष्ठास्ते वसन्त्यत्रतुसत्तमाः ॥ १५ ॥ अस्यस्वरूपंवक्ष्यावो दिक्पतेःक्षणतःशृणु ॥ मध्येविन्ध्याटविपुरा पकणस्थजनाग्रणीः ॥ १६ ॥ पल्लीपतिरभूदुग्रः पिङ्गाक्षइतिविश्रुतः ॥ निर्विन्ध्यायास्तटेशूरःक्रूरकर्मपराङ्मुखः ॥ १७ ॥ घातयेद्दूरसंस्थोपि यःपान्थपरिपन्थिनः ॥ व्याघ्रादीन्दुष्टसत्त्वांश्च सहिनस्तिप्रयत्नतः ॥ १८ ॥ जीवेन्मृगयुधर्मेण तत्रापिकरुणापरः ॥ नविश्वस्तान्पक्षिमृगान्नसुप्तान्नव्यवायिनः ॥ १९ ॥ नतोयगृध्नून्नशिशून्नान्तर्वत्निवलक्षणान् ॥ सघातयतिधर्मज्ञो जातिधर्मपराङ्मुखः ॥ २० ॥ श्रमातुरेभ्यःपान्थेभ्यः सविश्रामंप्रयच्छति ॥ हरेत्क्षुधांक्षुधार्तानामुपानद्भ्योऽनुपानहे ॥ २१ ॥ मृगत्व

पहले विंध्याचलके वनके बीच मे शबरोंके-स्थानवासियों में मुख्य ॥ १६ ॥ व शबरस्थानों का स्वामी दृढ़पराक्रमी कठिन या दयारहितों के कर्म्मसे विमुख और शूरथा वह निर्विन्ध्या नदीके किनारे पिंगाक्ष यों नामसे प्रसिद्धहुवा ॥ १७ ॥ दूर टिका भी जो मगमें लगते ठगों को मारता और यत्नसे बाघ आदि दुष्ट जन्तुओं को हनताथा ॥ १८ ॥ शिकारी के धर्म से जीविका करताथा उसमें भी दया में तत्पर रहता क्योंकि जे विश्वास किये व सोये व मैथुन करते थे उन पक्षी व मृगों को ॥ १९ ॥ व भूंखे व प्यासे व बालक और गर्भलक्षणवालों को भी जाति के धर्म से मुखफेर वह धर्म्मज्ञ न मारता था ॥ २० ॥ और वह थके बटोहियों को विश्राम

देता था व भूंख से पीडितों की भूंख हरताथा व विना जूतावालों को जूता देताथा ॥ २१ ॥ व वस्त्रहीनोंको कोमल मृगचर्म देता और दुर्गम गली के बीच बटोहियों के पीछे चलता था ॥ २२ ॥ और उनसे धन लेना न चाहताथा यों अभय देताथा कि विन्ध्य वन भरेमें दुष्टोंसे भये डरका हरता मेरा नाम लेना चाहिये ॥२३॥ व वह सदा सब लालेवस्त्रवाले तपस्वियों को पुत्र के समान देखता था व वेभी तीर्थ तीर्थ प्रति उसको निश्चय आशीर्वाद देते थे ॥ २४ ॥ यों पिङ्गाक्ष के टिकतेही वह वन नगर सा होगया उसके गली चलतेही डरभुतहुआ कोई न बटोही को रोंकता था ॥ २५ ॥ उसके पिताका भाई याने काका जो लगे के गावँमें बसताथा उस काके कभी बड़े

चोतिमृदुला विवस्त्रेभ्योतिसर्जति ॥ अनुव्रजतिकान्तारे प्रान्तरेपथिकान्पथि ॥ २२ ॥ नजिघृक्षतितेभ्योर्थमभयंचेति यच्छति ॥ आविन्ध्याटविमेनाम ग्राह्यंदुष्टभयापहम् ॥ २३ ॥ नित्यंकार्पटिकान्सर्वान् सपुत्रेणप्रपश्यति ॥ तेऽपिचप्र तितीर्थंहितमाशीर्वादयन्तिवै ॥ २४ ॥ इतितिष्ठतिपिङ्गाक्षेसाटवीनगरायिता ॥ अध्वनीनेऽध्वगान्कोपि नरुणद्धिससा ध्वसः ॥ २५ ॥ कदाचित्तत्पितृव्येण समीपग्रामवासिना ॥ श्रुतःकार्पटिकानांहि सार्थःसार्थोमहास्वनः ॥ २६ ॥ लुब्ध कस्तद्धनेलुब्धःक्षुद्रस्तन्निधनोद्यतः ॥ सरुरोधतमध्वानमग्रेगत्वाऽतिगूढवत् ॥ २७ ॥ तदायुष्यस्यशेषेण पिङ्गाक्षोमृ गयाङ्गतः ॥ तस्मिन्नरण्येतन्मार्गं निकषाप्युषितोनिशि ॥ २८ ॥ परप्राणद्रुहांपुंसां नसिद्ध्येयुर्मनोरथाः ॥ विश्वंकुश लितेनैतद्विश्वेशपरिरक्षितम् ॥ २९ ॥ नचिन्तयेदनिष्टानितस्मात्कृष्टिःकदाचन ॥ विधिदृष्टंयतोभाविकलुषंभाविकेव लम् ॥ ३० ॥ तस्मादात्मसुखंप्रेप्सुरिष्टानिष्टंनचिन्तयेत् ॥ चिन्तयेच्चेत्तदाचिन्त्योमोक्षोपायोनचेतरः ॥ ३१ ॥ व्युष्टा

शब्दवाला धन समेत लाले वस्त्रवाले तपस्वियों का समूह सुनागया ॥ २६ ॥ व उस धनका लोभी वह अधम व्याध उनके मारनेको उद्यतहो आगे जा बहुत छिपासा गली रोकता भया ॥ २७ ॥ उस समय आयु शेष होने से शिकार को गया पिङ्गाक्ष भी उस वन में उस गलीके समीप में रातको बसाथा ॥ २८ ॥ उसमें कारण कह- तेहैं कि पराये प्राणों से द्रोह करते पुरुषों के मनोरथ न सिद्धहों जिससे यह सब जगत् विश्वनाथ से रक्षित है उससे क्षेमवान् है ॥ २९ ॥ उस कारण पण्डितजन किसीका बुरा न विचारे जिससे दैवसे देखागया होगा और उस दुष्टको केवल पापही होगा ॥ ३० ॥ उससे अपने सुखका चाही भला बुरा या प्यारा न प्यारा कुछ न

विचारे जो विचारे तो मोक्षका उपाय विचारने योग्यहै आन नहीं ॥ ३१ ॥ पछिले पहर प्रभातवाली रात में बड़ा हल्ला हुआ कि हे भटो ! झट मारो गिरावो नङ्गा करो ॥ ३२ ॥ व हे भटो ! हम लालेवस्त्रवाले तपस्वी हैं मतमारो बचावो और जो हमारा धन है उसको विना परिश्रम लूटलेवो ॥ ३३ ॥ हम अनाथ बटोही विश्वनाथ में परायण व उनसे सनाथ हैं वे भी दूर याने यद्यपि सब जगत् के नाथ हैं तो भी हमारे अभाग से दूर हुये से हैं गली में याचते हमलोगों का नाथ और कौन है ॥ ३४ ॥ पिङ्गाक्ष के विश्वास से नहीं कहीं से डर जिनका ऐसे हम सदा आया जाया करते हैं वहभी इस वनसे दूर है ॥ ३५ ॥ अनन्तर लालेवस्त्रवाले तपस्वियों का

यामथयामिन्यामभूत्कोलाहलोमहान् ॥ घातयध्वंपातयध्वंनग्नयध्वंद्रुतंभटाः ॥ ३२ ॥ मामारयध्वंत्रायध्वंभटाःकार्पटिकावयम् ॥ अनायासंलुण्ठयध्वंनयध्यंचयदस्तिनः ॥ ३३ ॥ वयंपान्थाअनाथाःस्मोविश्वनाथपरायणाः ॥ सनाथास्तेनदूरंसनाथतांपथिकोऽपरः ॥ ३४ ॥ वयंपिङ्गाक्षविश्वासादस्मिन्मार्गेऽकुतोभयाः ॥ यातायातंसदाकुर्मःसचदूरइतोवनात् ॥ ३५ ॥ इतिश्रुत्वाऽथपिङ्गाक्षोभटःकार्पटिकेरितम् ॥ दूरान्माभैष्टमाभैष्टब्रुवन्नितिसमागतः ॥ ३६ ॥ तत्कर्मसूत्रेराकृष्टोभिल्लःकार्पटिकप्रियः ॥ तूर्णंतदायुष्यमिवतत्रोपस्थितवान्क्षणात् ॥ ३७ ॥ कोयंकोयंदुराचारःपिङ्गाक्षेमयिजीवति ॥ उल्लुलुण्ठयिषुःपान्थान्प्राणलिङ्गसमान्मम ॥ ३८ ॥ इतितद्वाक्यमाकर्ण्यतारात्क्षस्ततपितृव्यकः ॥ धनलोभेनपिङ्गाक्षेपापंपापोऽव्यचिन्तयत् ॥ ३९ ॥ कुलधर्मंव्यपास्यैषवर्ततेकुलपांसनः ॥ चिरंचिन्तितमद्यामुंघातयिष्याम्यसंशयम् ॥ ४० ॥ विचार्येतिसदुष्टात्माभृत्यानाज्ञापयत्क्रुधा ॥ आदावेनंघातयन्तुततःकार्पटिकानिमान् ॥ ४१ ॥ त

कहना सुन पिङ्गाक्ष सुभट मतडरो मतडरो यों दूर से पुकारता धायाआया ॥ ३६ ॥ व लाले वस्त्रवाले तपस्वियों का प्यारा या प्यार करनेहारा व उनके प्रारब्ध कर्म्म सूत से खींचाहुवा पिङ्गाक्ष भिल्ल उनके आयुष् के समान शीघ्र क्षण में समीप पहुँचा ॥ ३७ ॥ और मुझ पिङ्गाक्ष के जीवतेही हमारे प्राणप्यारे पथिकों का लूटना चाहता दुष्ट यह कौनहै यह कौनहै ॥ ३८ ॥ यों उसका कहना सुन उसके पापी पितृव्यने धन के लोभसे पिङ्गाक्ष में बुरा विचारा ॥ ३९ ॥ कि कुलके धर्म्म को तज यह कुलदूपक बर्तता है यों मैंने बहुतकाल से चिन्तना किया इससे आज इसको निस्सन्देह मराडालूंगा ॥ ४० ॥ यों विचार उस दुष्टबुद्धि ने क्रोध से सेवकों को आज्ञा दिया

कि पहले इसको व पीछेसे कपड़ियों को मारो ॥ ४१ ॥ तदनन्तर उस अकेले के साथ वे सम्पूर्ण कुकर्मी लड़ने लगे व जिस किस भांति से उनको वह अपनी बस्ती के लगे लाया ॥ ४२ ॥ व इन मेरे बाणों से धन्वा बाण और कवच काटेगये इस से जो मैं समर्थहूं तो इनको मारूंगा ॥ ४३ ॥ यों अभिलाष करते उसने पराये अर्थ प्राणों को तजा व निर्भय हो वे लालेवस्त्रवाले तपस्वी उसकी बस्ती में प्राप्तहुये ॥ ४४ ॥ और मरणकाल में जो भाव होता है उसके अनुसार फल होवे है इससे नैर्ऋतीदिशा याने दक्षिण पश्चिमके बीच कोण में हुये जनों का स्वामी वह नैर्ऋती दिशा में दिक्पाल पद को प्राप्त भया ॥ ४५ ॥ यों इसके स्वरूपको हमने तुमसे

तोऽयुध्यन्दुराचारास्तेनैकेनचतेखिलाः ॥ यथाकथंचित्तानानयत्सचस्वापसथान्तिकम् ॥४२॥ आच्छिन्नंहिधनुर्बाणंछिन्नंसन्नहनंशरैः ॥ असूदयिष्यमेतांस्तदभविष्यंयदीश्वरः ॥४३॥ अभिलष्यन्नितिप्राणानत्याक्षीत्सपरार्थतः ॥ तेपिकार्पटिकाःप्राप्तास्तत्पल्लींगतसाध्वसाः ॥ ४४ ॥ यामतिस्त्वन्तकालेस्याद्गतिस्तदनुरूपतः ॥ दिगीशत्वमतःप्राप्तोनिर्ऋत्यांनैर्ऋतेश्वरः ॥ ४५ ॥ इत्थमस्यस्वरूपंतेआवाभ्यांसमुदीरितम् ॥ एतस्योत्तरतोलोकोवरुणस्यायमद्भुतः ॥ ४६ ॥ कूपवापीतडागानांकर्तारोनिर्मलैर्धनैः ॥ इहलोकेमहीयन्तेवारुणेवरुणप्रभाः ॥ ४७ ॥ निर्जलेजलदातारःपरसन्तापहारिणः ॥ अर्थिभ्योयेप्रयच्छन्तिचित्रच्छत्रकमण्डलून् ॥ ४८ ॥ पानीयशालिकाःकुर्युर्नानोपस्करसंयुताः ॥ दद्युर्धर्मघटांश्चापिसुगन्धोदकपूरितान् ॥ ४९ ॥ अश्वत्थसेकंयेकुर्युःपथिपादपरोपकाः ॥ विश्रामशालाकर्तारःश्रान्तसन्तापनोदकाः ॥ ५० ॥ ग्रीष्मोष्महन्तिमायूरपिच्छादिरचितान्यपि ॥ चित्राणितालवृन्तानिवितरन्तितपागमे ॥ ५१ ॥ रस

कहा इसके उत्तर यह अद्भुत वरुण का लोक है ॥ ४६ ॥ निर्मल याने न्यायसे कमाये धनसे कुवां बावली और तड़ागों के कर्ता लोग इस वरुणलोकमें वरुण के समान छबीले हो पूजेजाते हैं ॥ ४७ ॥ जे जलहीन देश में पानी के दानी औरों के संताप हरलेते याचकों को विचित्र छत्र व कमंडलु देते हैं ॥ ४८ ॥ व जे अनेक जल पीने के पात्र लवंग कपूर इलायची आदि सामग्रियों समेत पौशाला करते हैं व सुगंध सहित पानीसे पूरे धर्म घड़ोंको देते हैं ॥ ४९ ॥ व जे पीपलका सींचना करते व गलीमें वृक्ष लगाते व टिकने के लिये शाला बनवाते व थके लोगों की तपनिको दुराते हैं ॥ ५० ॥ व जे ग्रीष्मके आने में मोरपंखादिकों से

रचे व ग्रीष्मतापके नाशक व विचित्र ताड़के पत्रादिकोंसे बने ब्यानों को देते हैं ॥ ५१ ॥ व घामेके ऋतुमें यत्नसे तृप्त होने तक रसीले सुगंधित शीतल पानीकी ची-
जों को देते हैं ॥ ५२ ॥ व ऊख बोयेगये खेतों और अनेक भांतिके ऊखोंसे बने बहुत विकारों याने गुड़ खांड़आदिकों को भी ब्राह्मणों के लिये संकल्प देते हैं ॥ ५३ ॥
व दूध दही और छांछ आदि गोरसों के दाता व गौवें भैंसी देनेवाले व पानी के फुहाड़ा चलाने व छायाके लिये घरोंके कर्ताहैं ॥ ५४ ॥ और जे देवमंदिरों में बहुती धारा-
वाली गलंतिका देते हैं जे कि गौड़ देशमें झरा नाम से प्रसिद्धहैं तीर्थ जानेमें रुपया आदि देनेपरते करको हरते हैं वे तीर्थोंकी गलीको झारा बहारा करते हैं ॥ ५५ ॥

वन्तिसुगन्धीनिहिमवन्तिततपर्तुषु ॥ विश्राणयन्तिवातृप्तिपानकानिप्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ इक्षुक्षेत्राणिसङ्कल्प्यब्राह्मणेभ्यो
ददत्यपि ॥ तथानानाप्रकारांश्चविकारानैक्षवान्बहून् ॥ ५३ ॥ गोरसानांप्रदातारस्तथागोमहिषीप्रदाः ॥ धारामण्डप
कर्तारश्छायामण्डपकारिणः ॥ ५४ ॥ देवालयेषुयेदद्युर्बहुधारागलन्तिकाः ॥ तीर्थेवाकरहर्तारस्तीर्थमार्गावनेजकाः ॥
५५ ॥ अभयंयेप्रयच्छन्तिभयार्तोद्यतपाणयः ॥ निर्भयावारुणेलोकेतेवसन्तिलसन्तिच ॥ ५६ ॥ विपाशयन्तियेपुण्या
दुर्वृत्तैःकण्ठपाशितान् ॥ तेपाशपाणेर्लोकेस्मिन्निवसन्त्यकुतोभयाः ॥ ५७ ॥ नौकाद्युपायैर्नद्यादौ पान्थान्येतारय
न्त्यपि ॥ तारयन्त्यपिदुःखाब्धेस्तत्रनागरिकाद्विज ॥ ५८ ॥ घट्टान्पुण्यतटिन्यादेर्बन्धयन्तिशिलादिभिः ॥ तोयार्थिसु
खसिद्ध्यर्थंयेनरास्तेत्रभोगिनः ॥ ५९ ॥ वितर्षयन्तियेपुण्यास्तृषिताञ्छीतलैर्जलैः ॥ तेऽत्रैववारुणेलोकेसुखसन्ततिभा

व डरसे पीड़ितों के अवलंबनके लिये उद्यतहैं हाथ जिनके ऐसे जे लोग आनको अभयदान देते हैं वे वरुणके लोकमें निडरहो बसते और शोभते हैं ॥ ५६ ॥ व जे
दुष्टोंकरके फांसों से गरबांधे जन्तुवों को बंधनसे हीन करते हैं वे सब ओरसे निर्भय होकर इस वरुणलोकमें बसतेहैं ॥ ५७ ॥ हे ब्राह्मण ! जे नौका आदि उपायों से
नदी आदिकों में पथिकों को पार उतारतेहैं उनको उस वरुणलोकमें दिव्य स्त्रियां दुःख-समुद्रसे तारती हैं ॥ ५८ ॥ व जे जल चाहियों की सुखसिद्धि के लिये मनो-
रम या धर्मरूपिणी नदी आदिके घाटों को पत्थरादिकों से बँधाते हैं वे यहां भोगवान् होते हैं ॥ ५९ ॥ व जे धर्मात्मा सीरे पानियों से प्यासोंको प्यासरहित करते हैं

वे इस वरुणलोक में सुख और सन्तान के हिस्सेदार हैं ॥ ६० ॥ यही वरुण जलजन्तुओंके स्वामी सब कर्मों में साखी और सब जलाशयों के नाथ हैं ॥ ६१ ॥ इन महात्मा व लोकपति वरुणकी उत्पत्ति को सुनो कि अतौल बुद्धिवाला एक मुनि हुवा जो कि प्रजाओं के पति कर्दमका ॥ ६२ ॥ पुत्र शुचिष्मान् इस नामसे प्रसिद्ध कहा जाता था विनयके योग्य व स्थिरता माधुरी और धीरतादि गुणों से व्याप्त और सबका हितकारी था ॥ ६३ ॥ वह निर्मल जलवाले या पितृ कन्या अच्छोदाके तड़ागमे नहाने गया वहां लड़कों के साथ पानीके खेलोंमें आसक्त हुये उसको सूस ने खींचा ॥ ६४ ॥ तदनंतर उस मुनिकुमारके हरजातेही अत्यंत अनिष्ट कहने का शील है

गिनः ॥ ६० ॥ जलाशयानांसर्वेषामयमेकतमःपतिः ॥ प्रचेतायादसांनाथःसाक्षीसर्वेषुकर्मसु ॥ ६१ ॥ अस्योत्पत्तिं शृणुपतेर्वरुणस्यमहात्मनः ॥ आसीन्मुनिरमेयात्माकर्दमस्यप्रजापतेः ॥ ६२ ॥ शुचिष्मानितिविख्यातस्तनयोविन योचितः ॥ स्थैर्यमाधुर्यधैर्याद्यैर्गुणैरुपचितोहितः ॥ ६३ ॥ अच्छोदेसरसिस्नातुं सगतोबालकैःसह ॥ जलक्रीडनसंस क्तं शिशुमारोहरच्चतम् ॥ ६४ ॥ ततस्तस्मिन्मुनिसुते हृतेऽत्याहितशंसिभिः ॥ तैःसमागत्यशिशुभिः कथितंतत्पितुःपु रः ॥ ६५ ॥ हरार्चनोपविष्टस्य समाधौनिश्चलात्मनः ॥ श्रुतबालविपत्तेश्च चचालनमनोहरात् ॥ ६६ ॥ अधिकंशीलया मास ससर्वज्ञंत्रिलोचनम् ॥ पश्यञ्छम्भोःसमीपेस भुवनानिचतुर्दश ॥ ६७ ॥ नानाभूतानिभूतानि ब्रह्माण्डान्तर्गता निच ॥ चन्द्रसूर्यर्क्षताराश्च पर्वतान्सरितोद्रुमान् ॥ ६८ ॥ समुद्रानन्तरीयाणि ह्यरण्यानिसरांसिच ॥ नानादेवनिकायां श्च बह्वीर्दिविषदांपुरीः ॥ ६९ ॥ वापीकूपतडागानि कुल्याःपुष्करिणीर्बहु ॥ एकस्मिन्कापिसरसि जलक्रीडापरा

जिनका उन बालकों ने उसके बापके आगे आकर कहा ॥ ६५ ॥ जो कि शिवजीकी पूजाके लिये बैठा व समाधि में अचल मनवाला था और सुना बालक की विपत्तिको जिसने उसका मन महादेव से अनते न गया ॥ ६६ ॥ शम्भुके समीप चौदहों लोकोंको देखते उसने सर्वज्ञ शिवको अधिक चिन्तना किया ॥ ६७ ॥ तब ब्रह्माण्डके भीतरगये बहुत भांतिसे भये जन्तु, चन्द्र, सूर्य्य, राशि, नक्षत्र, पर्वत, नदी, वृक्ष ॥ ६८ ॥ व समुद्रके बाहरहुयेवन, सरोवर व बहुते देवोंके घर बहुती देवोंकी पुरियां ॥ ६९ ॥

बावली कुवां ताल तलैया और बहुती खंतियां भी देखपड़ीं व कहीं एक तड़ाग में पानी के खेलोंमें परायण ॥ ७० ॥ बहुते मुनिकुमार जे कि डुबकी लगाना ऊपर आना हाथ पिचकारियोंसे छूटी पानी की धाराओंसे सींचना ॥७१॥ और हाथोंसे थपथपाते पानी के शब्दों से दिशाओं के मुखोंको शब्दित कराते हैं ऐसे जलखेलों से आसक्त बहुते बालकों ॥ ७२ ॥ और उनके बीच में सूसि से खींचेजाते बहुत विकल अपने पुत्र को भी उस कर्दम योगी ने देखा ॥ ७३ ॥ अनन्तर किसी जलदेवता करके उस कठिन या निर्दय जलजन्तु से हठ से ला समुद्रको सौंपेगये उस पुत्र को देखा ॥ ७४ ॥ और हाथ में त्रिशूल घाले व कोप से लाले नेत्रवाले किसी रुद्र

यणान् ॥७०॥ बहून्मुनिकुमारांश्च मज्जनोन्मज्जनादिभिः ॥ करयन्त्रविनिर्मुक्ततोयधाराभिषेचनैः ॥७१॥ करताडित पानीयशब्ददिङ्मुखनादिभिः ॥ जलखेलनकैरित्थं संसक्तान्बहुबालकान् ॥ ७२ ॥ तेषांमध्येददर्शाथ समाधिस्थःस कर्दमः ॥ स्वंशिशुंशिशुमारेण नीयमानंसुविह्वलम् ॥ ७३ ॥ कयाचिज्जलदेव्याथ तस्माच्चक्रूरयादसः ॥ प्रसह्यनीत्वो दधये दृष्टवांस्तंसमर्पितम् ॥ ७४ ॥ निर्भर्त्स्यसरितांनाथं केनचिद्रुद्ररूपिणा ॥ त्रिशूलपाणिनेत्युक्तं क्रोधताम्राननेनच ॥ ७५ ॥ कुतोजलानामधिपशिवभक्तस्यबालकः ॥ प्रजापतेःकर्दमस्य महाभागस्यधीमतः ॥ ७६ ॥ अज्ञात्वाशिवसामर्थ्यं भवताचिरमासितः ॥ भयत्रस्तेनतद्वाक्यश्रवणात्तमुदन्वता ॥ ७७ ॥ बालंरत्नैरलङ्कृत्य बद्ध्वातंशिशुमारकम् ॥ समर्पितंसमानीय शम्भुपादाब्जसन्निधौ ॥ ७८ ॥ नत्वाविज्ञापयत्तञ्च नापराध्याम्यहंविभो ॥ अनाथनाथविश्वेश भक्तापत्तिविनाशन ॥ ७९ ॥ भक्तकल्पतरोशम्भोऽनेनायंदुष्टयादसा ॥ अनायिनमयानाथ भवभक्तजनार्भकः ॥ ८० ॥ ग

रूपी ने समुद्र को बहुत भर्त्सन कर यों कहा कि ॥ ७५ ॥ हे जलों के महाराज ! शिव के भक्त व भारी भाग्यवान् बुद्धिमान् प्रजापति कर्दम के इस पुत्र को क्यों ॥ ७६ ॥ आपने शिवसामर्थ्यको न जान बहुत कालतक बसायाहै ऐसा उसका वचन सुननेसे डरसे त्रास संयुत उस समुद्रने ॥७७॥ उस सूसिको बांध व बालकको रत्नोंसे भूषितकर ला शिवके समीप में सौंपा ॥ ७८ ॥ व नमस्कार कर उनसे जनाया कि हे स्वामिन् अनाथों के नाथ भक्तोंकी विपत्तिविदारण विश्वनाथ ! मैंने नहीं अपराध किया ॥ ७९ ॥ हे भक्तों के मनमाने फल देने को कल्पवृक्ष के समान सबके नाथ शम्भो ! यह शिवके भक्तजन का पुत्र दुष्ट जलजन्तु से आनागया है मुझसे

नहीं ॥ ८० ॥ अनन्तर उस प्रसिद्ध गणने शिवके मनमें बसे भाव को जान उस जलजन्तु को पाश से बांध बालक के हाथ में सौंपा ॥ ८१ ॥ फिर हे बच्चे ! अपने घरको जा और हे कर्दम ! इस अपने पुत्रको ले यों शिवकी आज्ञासे गणके कहतेही वह कर्दम ॥ ८२ ॥ बड़ा बुद्धिमान् समाधि समयमें यों सब सुनताहुआ जौलों आंखें खोल समाधि को छोड ॥ ८३ ॥ भलीभांतिसे आगे निहारनेलगा तौलों पासमें उस पुत्रको देखता भया जो कि सूसिको गहे व कानोंमें गहने पहनेहै ॥ ८४ ॥ व पानीसे भीगे गभुवारे बालों के अग्रभाग व कुछ लाले रंगवाले नेत्रों के कोर व कुछ सचिक्कण अंग व खालमें आन ढंग और उद्वेग या भय से भराहै मन जिसका ॥८५॥ उस

गणेनतेनविज्ञाय शम्भोरथमनोगतम् ॥ पाशेनबद्धातद्यादःशिशुहस्तेसमर्पितम् ॥ ८१ ॥ गृहाणेमंस्वतनयं पार्षदेशङ्कराज्ञया ॥ याहिस्वभवनंवत्स ब्रुवतीतिसकर्दमः ॥ ८२ ॥ समाधिसमयेसर्वमितिशृण्वन्नुदारधीः ॥ उन्मील्यनयने यावत्प्रणिधानंविसृज्यच ॥ ८३ ॥ संपश्यतेशिशुंतावत्पुरतःसमवैक्षत ॥ गृहीतशिशुमारञ्च पार्श्वेऽलङ्कृतकर्णिकम् ॥ ८४ ॥ तोयार्द्रकाकपक्षाग्रं कषायनयनाञ्चलम् ॥ किञ्चिद्विरूक्षंत्वक्क्षोभं सम्भ्रमापन्नमानसम् ॥ ८५ ॥ कृतप्रणाममालिङ्ग्य जिघ्रंस्तन्मुखपङ्कजम् ॥ पुनर्जातमिवामंस्तपश्यंश्चापिमुहुर्मुहुः ॥ ८६ ॥ शतानिपञ्चवर्षाणि प्रणिधानास्थितस्यहि ॥ कर्दमस्यव्यतीतानि शम्भुमर्चयतस्तदा ॥ ८७ ॥ कर्दमोपिचतत्कालमज्ञासीत्क्षणसङ्गतम् ॥ यतोनप्रभवेत्कालो महाकालस्यसन्निधौ ॥ ८८ ॥ ततस्तंतनयःपृष्ट्वा पितरंप्रणिपत्यच ॥ जगामतूर्णंतपसे श्रीमद्वाराणसींपुरीम् ॥ ८९ ॥ तत्रतप्त्वातपोघोरं लिङ्गंसंस्थाप्यशाम्भवम् ॥ पञ्चवर्षसहस्राणि स्थितःपाषाणनिश्चलः ॥ ९० ॥ आविरासीन्म

प्रणाम किये हुये बालक को लिपटाकर मुख कमलको सूंघते बार बार देखते कर्दमने फिर उपजासा माना ॥ ८६ ॥ उससमय समाधि में टिके शिवको पूजते कर्दम के पांचसौ वर्ष बीते थे ॥ ८७ ॥ परन्तु कर्दम ने उसकाल को भी क्षणमात्रके समान बीता जाना जिससे महाकाल शिवके समीपमें काल भी नहीं समर्थ होताहै ॥ ८८ ॥ तदनन्तर वह बालक पिता के प्रणामकर पूंछ तपस्या के लिये श्रीकाशीपुरी को गया ॥ ८९ ॥ और वह वहां उग्र तपस्याकर शिव के लिङ्ग को थाप पांचहजारवर्ष

पत्थरसे अचल होकर टिका ॥९०॥ तब उसके तपसे सन्तुष्ट महादेवजी प्रकटहुये और बोले कि हे कर्दमके पुत्र ! कह कौन उत्तमवर दूं ॥९१॥ कर्दमका पुत्र शुचिष्मान् बोला कि हे भक्तोंपर दयाकर स्वामिन् ! जो प्रसन्नहो तो मुझे सब जलों और सब जलजन्तुओं का राज्यदो ॥ ९२ ॥ यों सुन सब मनमाने फलदायक सबके नायक परमेश्वरने वहां उसको वरुण के श्रेष्ठ लोक में अभिषेक किया ॥ ९३ ॥ व समुद्रों में उपजे रत्न सागर नदियां ताल तलैयां बावली सोता ॥ ९४ ॥ सब जलाशयों और पश्चिम दिशाके नायक होकर हाथ में पाशधारे व सब देवों के प्यारेहो ॥ ९५ ॥ व तुझे सबका हित करनेवाला आन भी वर देताहूं तेरा थापा यह लिंग तेरे नाम से

हादेवस्तुष्टस्तत्तपसाततः ॥ उवाचकार्दमेब्रूहि कन्ददामिवरोत्तमम् ॥ ९१ ॥ कार्दमिरुवाच ॥ यदिनाथप्रसन्नोसि भक्ता नामनुकम्पक ॥ सर्वासामाधिपत्यंमे देह्यपांयादसामपि ॥ ९२ ॥ इतिश्रुत्वामहेशानः सर्वचिन्तितदःप्रभुः ॥ अभ्यषि ञ्चततंतत्र वारुणेपरमेपदे ॥ ९३ ॥ रत्नानामब्धिजातानामब्धीनांसरितामपि ॥ सरसांपल्वलानाञ्च वाप्यम्बुस्रोतसांपु नः ॥ ९४ ॥ जलाशयानांसर्वेषां प्रतीच्याश्चापिवैदिशः ॥ अधीश्वरःपाशपाणिर्भवसर्वामरप्रियः ॥ ९५ ॥ ददामिवरम न्यञ्च सर्वेषांहितकारकम् ॥ त्वयैतत्स्थापितंलिङ्गं तवनाम्नाभविष्यति ॥ ९६ ॥ वरुणेशमितिख्यातं वाराणस्यांसुसि द्धिदम् ॥ मणिकर्णेशलिङ्गस्य नैर्ऋत्यांदिशिसंस्थितम् ॥ ९७ ॥ आराधितंसदापुंसां सर्वजाड्यविनाशकृत् ॥ वरुणेश स्ययेभक्ता नतेषांमद्भयंक्वचित् ॥ ९८ ॥ नसन्तापभयंतेषांनापायमरणंक्वचित् ॥ जलोदरभयंनैवनभयंवैतृषःक्वचित् ॥ ९९ ॥ नीरसान्यन्नपानानि वरुणेश्वरसंस्मृतेः ॥ सरसानिभविष्यन्ति नात्रकार्याविचारणा ॥ १०० ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेश

प्रसिद्ध होगा ॥ ९६ ॥ जो कि वरुणेश यों कहाता काशी में सब सिद्धिदाता व मणिकर्णेश्वर के नैर्ऋत्य कोण में टिका ॥ ९७ ॥ व पूजितहुआ पुरुषों के सब अज्ञान का नाशकहै और जे वरुणेश्वरके सेवकहैं उनका मेरा डर कहीं नहीं ॥ ९८ ॥ व उनका ज्वर व ताईका डर अपमृत्यु जलोदररोग और प्यास का भी डर कहीं नहींहै ॥ ९९ ॥ व वरुणेश्वरके सुमिरने से निरसभी अन्न पान रसीले होंगे इसमें विचार न करना चाहिये ॥१००॥ यों कह शिवजी अन्तर्द्धान हुये और तबसे लगा वह ब्राह्मण

भी वरुण होकर अपने बन्धुओं के साथ इसलोक को भूषित करताहुआ टिका ॥ १०१॥ यह वरुणलोकका स्वरूप तुमसे कहागया जिसको सुन मनुष्य अपमृत्यु से कहीं नहीं बाधाजाता ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभापाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेवरुणलोकवर्णनन्नामद्वादशोध्यायः ॥ १२ ॥ ❀ ॥

दो० । तेरह के अध्याय में वायूपुरी बखान । वैसे कही कुबेरकी अलकापुरी सुजान ॥ श्रीविष्णु के गण बोले कि हे महाभाग्य के निधान ब्राह्मण ! वरुणपुरी के उत्तर ओर में गन्धवती नाम मनोरम इस वायुकी पुरी को देख ॥ १ ॥ इस में प्रभंजन नाम व जगत्का प्राण, दिशानाथ वायु, श्रीमहादेव को पूज दिक्पाल पदको पाया

म्भुर्वरुणोपिस्वबन्धुभिः ॥ इमंलोकमलंकुर्वंस्तदारभ्यस्थितोद्विजः ॥ १०१ ॥ इदंवरुणलोकस्य स्वरूपन्तेनिरूपितम् ॥ यच्छ्रुत्वाननरःक्वापि दुरपायैःप्रबाध्यते ॥ १०२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेनिर्ऋतिवरुणलोकवर्णनन्नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गणावूचतुः ॥ इमांगन्धवतींपुण्यां पुरींवायोर्विलोकय ॥ वारुण्याउत्तरेभागे महाभाग्यनिधेद्विज ॥ १ ॥ अस्यांप्रभञ्जनोनाम जगत्प्राणोदिगीश्वरः ॥ आराध्यश्रीमहादेवं दिक्पालत्वमवाप्तवान् ॥ २ ॥ पुराकश्यपदायादः पूतात्मेतिच विश्रुतः ॥ धूर्जटेराजधान्यांस चचारविपुलंतपः ॥ ३ ॥ वाराणस्यांमहाभागो वर्षाणामयुतंशतम् ॥ स्थापयित्वामहालिङ्गं पावनंपवनेश्वरम् ॥ ४ ॥ यस्यदर्शनमात्रेण पूतात्माजायतेनरः ॥ पापकञ्चुकमुत्सृज्य सवसेत्पावनेपुरे ॥ ५ ॥ ततस्तस्योग्रतपसा तपसांफलदःशिवः ॥ आविरासीत्ततोलिङ्गाज्ज्योतीरूपोमहेश्वरः ॥ ६ ॥ उवाचचप्रसन्नात्मा करुणामृ

है ॥ २ ॥ जो कि पहले कश्यपका पुत्र पूतात्मा नाम से प्रसिद्ध था उसने शिवकी राजधानी में बड़ातप किया ॥ ३ ॥ व जब वह महाभाग्यवान्, काशी मे दशहजार वर्षलों पवनेश्वर नामक पवित्र उस महालिंगको थाप तपस्या करताभया ॥ ४ ॥ कि जिसके दर्शनमात्र से मनुष्य शुद्ध अन्तःकरणवाला होता है और पाप केंचुल को तज वह वायुलोक में बसता है ॥ ५ ॥ तदनन्तर उसके घोर तप से सबकी तपस्याओं के फलदाता परमेश्वर शिवजी ज्योतिरूपहो उस लिंगसे प्रकट हुये ॥ ६ ॥

१ यद्यपि बारह आदित्यों में वरुणदेव अदितिके पुत्र हैं तोभी यहा यह कल्पभेद से जानना चाहिये ॥

जोकि प्रसन्नमन और दयाके अमृतसमुद्र हैं वे बोले कि हे अच्छेव्रतवाले शुद्धचित्त ! उठ उठ वर मांग ॥ ७ ॥ हे पूतात्मन् ! इस दारुण तपस्या और लिंग पूजने से स्थावर जंगमरूप तीनोंलोकों में तुझे कुछ अदेय नहीं है ॥ ८ ॥ पूतात्मा बोला कि हे देवों के देव महादेव याने आपही आपसे प्रकाशमान ! हे देवों के निर्भय-दाता ! हे ब्रह्मा विष्णु और इन्द्रादि सब देवोंके स्थानदायक ! हे सबके नायक ! ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! नेति नेति कहते व सैकड़ों मार्गोंको प्राप्त, वाजसनेयी वेदभी आपको नहीं पाते हैं कि आप किस रूपवाले हो ॥ १० ॥ व ब्रह्मा विष्णु और बृहस्पति के भी वचनों के विषय नहीं हो इससे हे स्वामिन् गणों के नाथ या अज्ञाननाशक ! आप

तसागरः ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठपूतात्मन्वरंवरयसुव्रत ॥ ७ ॥ अनेनतपसोग्रेण लिङ्गस्याराधनेनच ॥ तवादेयंनपूतात्मंस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥ ८ ॥ पूतात्मोवाच ॥ देवदेवमहादेव देवानामभयप्रद ॥ ब्रह्मनारायणेन्द्रादिसर्वदेवपदप्रद ॥ ९ ॥ वेदास्त्वांनचविन्दन्ति किमात्मकइतिप्रभो ॥ प्राप्ताःशतपथत्वञ्च नेतिनेतीतिवादिनः ॥ १० ॥ ब्रह्मविष्णवोरपिगिरां गोचरोनचवाक्पतेः ॥ प्रमथेशंकथंस्तोतुं मादृशःप्रभवेत्प्रभो ॥ ११ ॥ प्रसह्यप्रामिमीतेश भक्तिर्मांस्तुतिकर्मणि ॥ करोमि किंजगन्नाथ नवश्यानीन्द्रियाणिमे ॥ १२ ॥ विश्वन्त्वंनास्तिवैभेदस्त्वमेकःसर्वगोयतः ॥ स्तुत्यंस्तोतास्तुतिस्त्वञ्च सगुणोनिर्गुणोभवान् ॥ १३ ॥ सर्गात्पुराभवानेको रूपनामविवर्जितः ॥ योगिनोपिनतेतत्त्वं विन्दन्तिपरमार्थतः ॥ १४ ॥ यदैकलोनशक्तोपि रन्तुंस्वैरचरप्रभो ॥ तदिच्छातवयोत्पन्ना सेव्याशक्तिरभूत्तव ॥ १५ ॥ त्वमेकोद्वित्वमापन्नः

की स्तुति करनेको मेरे समान कौन कैसे समर्थ होगा ॥ ११ ॥ हे ईश ! हे जगन्नाथ ! यद्यपि मेरे शक्ति नहीं है तो भी आपकी भक्ति मुझको हठसे स्तुतिकर्म्म में बर्ताती है मैं क्या करूं इन्द्रियां मेरे वश नहीं हैं ॥ १२ ॥ भेद नहीं है क्योंकि जिससे एक तुम सब में प्राप्त या परिपूर्ण हो इससे सब जगत् तुमहीं हो व प्रशंसनीय प्रशंसक प्रशंसा व प्रपंचसहित और प्रपंचरहित भी आपही हो ॥ १३ ॥ व सृष्टिके पहले रूपोंसे हीन आप एक याने भेदसे विहीन हो व परमार्थ (शब्दादिकोंके अगोचर याने उनके भीतर न आने) से योगी भी तुम्हारे तत्त्वको नहीं पाते हैं ॥ १४ ॥ हे स्वतंत्र ! जब अकेले तुम न खेलसके तब जो आपके इच्छा उपजी है वह सेवने

योग्य तुम्हारी शक्ति हुई ॥ १५ ॥ एक आपही,शिव व शक्तिके भेदसे दो भावको प्राप्तभये हो आप ऐश्वर्य्यसम्पन्न ज्ञानरूपहो और इच्छा शक्तिस्वरूपाहै॥१६॥ शिवशक्ति स्वरूप तुम दोनों जनोंने अपनी लीलासे क्रियाशक्तिको उपजाया जिससे यह सब जगत् हुआ ॥ १७ ॥ ज्ञानशक्तिवाले आप शिव व इच्छाशक्ति श्रीपार्वती हैं और क्रियाशक्तिमय यह सब जगतहै उससे तुम इसके कारणहो ॥ १८ ॥ ब्रह्मा आपका दहिना अंग विष्णु बायां अंगहैं व चन्द्रमा सूर्य्य और अग्नि ये तीन आंखें हैं जिनकी ऐसे तुमहौ व ऋग् यजुः साम नाम तीनोंवेद तुम्हारे श्वासहैं ॥१९॥ आपके पसीनासे समुद्र आपका कान वायु आपकी बाहें दशादिशायें और ब्राह्मणलोग आपका मुख कहे

शिवशक्तिप्रभेदतः ॥ त्वंज्ञानरूपोभगवान् स्वेच्छाशक्तिस्वरूपिणी ॥ १६ ॥ उभाभ्यांशिवशक्तिभ्यां युवाभ्यांनिजली लया ॥ उत्पादिताक्रियाशक्तिस्ततःसर्वमिदंजगत् ॥ १७ ॥ ज्ञानशक्तिर्भवानीश इच्छाशक्तिरुमास्मृता ॥ क्रियाशक्ति रिदंविश्वमस्यत्वंकारणंततः ॥ १८ ॥ दक्षिणाङ्गंतवविधिर्वामाङ्गंतवचाच्युतः ॥ चन्द्रसूर्याग्निनेत्रस्त्वं त्वन्निःश्वासःश्रु तित्रयम् ॥ १९ ॥ त्वत्स्वेदादम्बुनिधयस्तवश्रोत्रंसमीरणः ॥ बाहवस्तेदशदिशो मुखन्तेब्राह्मणाःस्मृताः ॥ २० ॥ राज न्यवर्यास्तेबाहूवैश्याऊरुसमुद्भवाः ॥ पद्भ्यांशूद्रस्तवेशानकेशास्तेजलदाःप्रभो ॥ २१ ॥ त्वंपुंप्रकृतिरूपेण ब्रह्माण्ड मसृजःपुरा ॥ मध्येब्रह्माण्डमखिलं विश्वमेतच्चराचरम् ॥ २२ ॥ अतस्त्वत्तोनमन्येऽहं किञ्चिद्भिन्नंजगन्मय ॥ त्वयि सर्वाणिभूतानि सर्वभूतमयोभवान् ॥ २३ ॥ नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यंनमोनमः ॥ अयमेववरोनाथ त्वयिमेऽस्तु स्थिरामतिः ॥ २४ ॥ इत्युक्तवतिदेवेशस्तस्मिन्पूतात्मनिप्रभुः ॥ स्वमूर्तित्वंसमारोप्य दिक्पालपदमादधे ॥ २५ ॥ सर्व

गये हैं ॥ २० ॥ हे प्रभो ! हे ईशान ! आपकी भुजायें क्षत्रियश्रेष्ठ हैं व वैश्य ऊरू याने कटिके नीचेसे उपजे हैं और आपके पांवोंसे शूद्र उपजाहै व मेघ आपके बाल हैं ॥ २१ ॥ आपने पहले पुरुष प्रकृति रूपसे ब्रह्माण्ड को सिरजा है उस ब्रह्माण्ड के बीचमें यह सब स्थावर जंगम रूप जगतहै ॥ २२ ॥ हे जगत्रूप ! इससे मैं आपसे विलग कुछ नहीं मानता हूं आप में सब जन्तु हैं और आप सब जन्तुओं के रूपवाले हो ॥ २३ ॥ हे नाथ ! आपके बार बार नमस्कारहै यही बड़ा वरहै कि आपमें मेरी अचल मतिहो याने अखण्ड चित्तवृत्ति लगी रहै ॥ २४ ॥ यों उस पूतात्माके कहतेही देवों के स्वामी समर्थ शिवजीने अपने स्वरूपभावको आरोपण कर दिक्पाल के

स्थान में बैठाया ॥ २५ ॥ व मेरे रूपसे सबके भीतर गया व सब तत्त्वों के जनावनेवाला तू सबके आयुका रूप होगा ॥ २६॥ तेरे थापे इस लिंग को जे लोग देखेंगे वे तेरे लोक में सब भोगों से भरे पुरे और सुख के भागी होंगे ॥ २७ ॥ जन्मके बीच में एक बारभी मनुष्य यथोक्त विधान से याने जैसे चही वैसे पवमानेस्वरलिंग को सुगन्ध स्नान आदि से पूज ॥ २८ ॥ सुगन्ध संयुत चन्दन और फूलों से भी पूज मेरे लोक में आदर पाता है ज्येष्ठेश्वर से पश्चिम और वायुकुण्ड के उत्तर में ॥ २९ ॥ पवमानेश्वर को पूज उसीक्षण पवित्र होता है यों वर देकर महादेवजी उस लिंग में समागये ॥ ३० ॥ विष्णुगण बोले कि यों गन्धवती

गोममरूपेण सर्वतत्त्वावबोधकः ॥ सर्वेषामायुषोरूपं भवानेवभविष्यति ॥ २६ ॥ तवलिङ्गमिदंदिव्यं येद्रक्ष्यन्तीहमानवाः ॥ सर्वभोगसमृद्धास्ते त्वल्लोकसुखभागिनः ॥ २७ ॥ पवमानेश्वरंलिङ्गं मध्येजन्मसकृन्नरः ॥ यथोक्तविधिनापूज्य सुगन्धस्नपनादिभिः ॥ २८ ॥ सुगन्धचन्दनैःपुष्पैर्ममलोकेमहीयते ॥ जेष्ठेशात्पश्चिमेभागे वायुकुण्डोत्तरेणतु ॥ २९ ॥ पावमानंसमाराध्य पूतोभवतितत्क्षणात्॥इतिदत्त्वावरान्देवस्तस्मिँल्लिङ्गेलयंययौ ॥ ३० ॥ गणावूचतुः ॥ इति गन्धवतीपुर्याः स्वरूपंतेनिरूपितम् ॥ तस्याःप्राच्यांकुबेरस्य श्रीमत्येषालकापुरी ॥ ३१ ॥ शम्भोःसखित्वमापेदे नाथोस्याभक्तियोगतः ॥ निधीनांपद्ममुख्यानां दाताभोक्ताहरार्चनात् ॥ ३२ ॥ शिवशर्मोवाच ॥ कोसौकस्यपुनःकीदृग्भक्तिरस्यसदाशिवे ॥ ययासखित्वमापन्नो देवदेवस्यधूर्जटेः ॥ ३३ ॥ इतिश्रोतुंममनः श्रुतिगोचरताङ्गतम् ॥ युवयोर्वाक्सुधास्वादमेदुरोदरमन्थरम् ॥ ३४ ॥ गणावूचतुः ॥ शिवशर्मन्महाप्राज्ञ परिशुद्धेन्द्रियेश्वर ॥ सुतीर्थक्षालिता

पुरी के स्वरूप को तुमसे कहा उसके पूर्व ओरमें धन या शोभासे भरी यह कुबेरकी अलकानाम पुरी है ॥ ३१ ॥ इसका स्वामी सनेह जोड़ने से शिवके सखाभाव को प्राप्तभया और शिवकी पूजासे पद्मादि नवनिधियों के देने व भोगनेवालाहै ॥ ३२॥ शिवशर्मा बोला कि यह कौन व किसका पुत्रहै और शिवमें इसकी कैसी वहभक्ति है जिससे देवोंके देव महादेवकी मित्रता को पहुँचा ॥ ३३ ॥ आपके वचन अमृत का स्वाद लेने से स्निग्ध याने तृप्त जो उदरका बीच उससे स्थिर मेरामन यह सुनने को श्रवण इन्द्रिय के गोचरता को गया याने कानों में लगा है ॥ ३४ ॥ विष्णु के गण बोले कि हे महापण्डित, सुठिशुद्धमन, अच्छे तीर्थों में धोये सम्पूर्ण

जन्मों के महापाप जिसने ऐसे शिवशर्मन् ! ॥ ३५ ॥ प्रीतियुक्त तुम मित्रसे कुछ अकथनीय नहीं है क्योंकि साधुओं के साथ भलीभांति से बतलाना सब धर्मों या मुक्तियों के लिये होता है ॥ ३६ ॥ काम्पिल्य नगरमें सोमयज्ञकर्ताके कुल में उत्पन्न वेदविद्या में बड़ा पण्डित यज्ञदत्त नाम दीक्षित हुआ ॥ ३७ ॥ जो कि वेद व वेदों के छःअंग व्याकरणादि और वेदोंके अर्थों को जानता व शास्त्रों के कहे आचारों में कुशल व राजाओं से आदरित, बहुतधनी, बड़ादानी सुयश का पात्रथा ॥ ३८ ॥ व अग्निसेवा में रत और वेद पढ़ने में तत्परथा उसका पुत्र गुणनिधि चन्द्रमण्डल के समान गोररंग अंगवाला था ॥ ३९॥ अनन्तर कियागयाहै

शेषजन्मजातमहामल ॥ ३५ ॥ सुहृदिप्रेमसम्पन्ने त्वय्यनुद्यंनकिञ्चन ॥ साधुभिःसहसंवादः सर्वश्रेयोऽभिवृद्धये ॥ ३६ ॥ आसीत्काम्पिल्यनगरे सोमयाजिकुलोद्भवः ॥ दीक्षितोयज्ञदत्ताख्यो यज्ञविद्याविशारदः ॥ ३७ ॥ वेदवेदाङ्गवेदार्थान् वेदोक्ताचारचञ्चुरः ॥ राजमान्योबहुधनो वदान्यःकीर्तिभाजनम् ॥ ३८ ॥ अग्निशुश्रूषणरतोवेदाध्ययनतत्परः ॥ तस्यपुत्रोगुणनिधिश्चन्द्रबिम्बसमाकृतिः ॥ ३९ ॥ कृतोपनयनःसोथ विद्यांजग्राहभूरिशः ॥ अथपित्रानभिज्ञातो द्यूतकर्मरतोऽभवत् ॥ ४० ॥ आदायादायबहुशो धनंमातुःसकाशतः ॥ ददातिद्यूतकारेभ्यो मैत्रींतैश्चचकारसः ॥ ४१ ॥ सन्त्यक्तब्राह्मणाचारः सन्ध्यास्नानपराङ्मुखः ॥ निन्दकोवेदशास्त्राणां देवब्राह्मणनिन्दकः ॥ ४२ ॥ स्मृत्याचारविहीनस्तु गीतवाद्यविनोदभाक् ॥ नटपाखण्डिभण्डैश्च बद्धप्रेमपरम्परः ॥ ४३ ॥ प्रेरितोपिजनन्यास नयातिपितुरन्तिकम् ॥ गृहकार्यान्तरव्यग्रो दीक्षितोदीक्षितायिनीम् ॥ ४४ ॥ यदायदैवतांपृच्छेदयेगुणनिधिःसुतः ॥ नदृश्यतेमयागेहे

यज्ञोपवीत कर्म जिसका वह अनेक विद्याओं को गहता भया उसके बाद बापसे न जानागया वह जुवा खेलने में रतहुआ ॥ ४० ॥ व उसने माता के लगे से बहुत धन ले ले जुवारियों को दिया और उनसे मित्रता किया ॥ ४१ ॥ व ब्राह्मणों के आचार को छांड़े नहाने व सन्ध्यावन्दन से विमुख वेद शास्त्रों और ब्राह्मणों का निन्दक ॥४२॥ वधर्मशास्त्रोंके कहे आचारोंसे रहित व गाने बजाने से विनोद सहित रहताथा व नट,पाखण्डी और भांड़ोंके साथ बांधी है प्रीतिकी परंपरा जिसने ॥ ४३ ॥ वह मातासे पठाया भी पिताके पास न जाताथा और घरके और कामों में आसक्त दीक्षित जोकि दीक्षितायिनी याने उसकी स्त्रीथी ॥ ४४ ॥ उस से जब जब पूंछें कि

अये सुन्दरि ! घर में गुणनिधिपुत्र मुझे नहीं दीखता है कहां जाता व क्या करता है ॥ ४५ ॥ तब तब वह कहे कि अबहीं वह बाहर गयाहै इतने कालमें नहा देवोंको पूज ॥ ४६ ॥ पाठकर पढ़ने के अर्थ दो तीन मित्रोंके साथ गयाहै यों एक पुत्रवाली उसकी माता दीक्षितको बहलाती थी ॥ ४७ ॥ उसके कर्म्म व उसकेहाल को वह दीक्षित न जानता था और उसने इस पुत्रके सोलहें वर्षमें केशान्त कर्म्मको कर ॥ ४८ ॥ अपने गृह्यसूत्र याने आश्वलायनसूत्र में कहे विधान से ब्याह कराया व कोमल जैसेहो वैसे उसकी माता गुणनिधि पुत्रको ॥ ४९ ॥ सिखाती थी क्योंकि सनेहसे उसका मन भीगाथा कि हे पुत्र ! तेरा पिता बहुत क्रोधीहै जो तेरेहालको

क्रयातिविदधातिकिम् ॥ ४५ ॥ तदातदेतिसाब्रूयादिदानींसबहिर्गतः ॥ स्नात्वासमर्च्यवैदेवानेतावन्तमनेहसम् ॥ ४६ ॥ अधीत्याध्ययनार्थंसद्वित्रैर्मित्रैःसमंययौ ॥ एकपुत्रेतितन्माता प्रतारयतिदीक्षितम् ॥ ४७ ॥ नतत्कर्मचतद्वृत्तं किञ्चिद्वेत्तिसदीक्षितः ॥ सचकेशान्तकर्मास्य कृत्वावर्षेऽथषोडशे ॥ ४८ ॥ गृह्योक्तेनविधानेन पाणिग्राहमकारयत् ॥ प्रत्यहंतस्यजननी सुतंगुणनिधिंमृदु ॥ ४९ ॥ शास्तिस्नेहार्द्रहृदया क्रोधनस्तेपितेत्यलम् ॥ यदिज्ञास्यतितेवृत्तं त्वांच मांताडयिष्यति ॥ ५० ॥ आच्छादयामितेनित्यं पितुरग्रेकुचेष्टितम् ॥ लोकमान्योस्तितेतातःसदाचारैर्नवैधनैः ॥ ५१ ॥ ब्राह्मणानांधनंपुत्र सद्विद्यासाधुसङ्गमः ॥ सच्छ्रोत्रियास्त्वनूचाना दीक्षिताःसोमयाजिनः ॥ ५२ ॥ इतिरूढिमिहप्राप्ता स्तवपूर्वपितामहाः ॥ त्यक्त्वादुर्वृत्तसंसर्गं साधुसङ्गरतोभव ॥ ५३ ॥ सद्विद्यासुमनोधेहि ब्राह्मणाचारमाचर ॥ तवानुरूपा रूपेण वयसाकुलशीलतः ॥ ५४ ॥ ऊनविंशतिकोऽसित्वमेषाषोडशवार्षिकी ॥ तवपत्नीगुणनिधे साध्वीमधुरभाषि

जानेगा तो हम तुम दोनोंको ताड़ेगा ॥ ५० ॥ मैं पिताके आगे तेरे कुकर्म्म को सदा छिपाती हूं तेरा पिता अच्छे आचार और नवीनधनों से लोकमें माननीयहै ॥ ५१ ॥ हे पुत्र ! अच्छी विद्या व साधुओं की सङ्गति यही ब्राह्मणों का धनहै क्योंकि अङ्गसमेत वेदोंको पढ़े व वेदोक्तकर्म्म करते सोमयज्ञ करनेवाले दीक्षित ॥ ५२ ॥ यहां इस संज्ञाको तुम्हारे बाबाआदि पुरुषा प्राप्तभये हैं इससे कुकर्मियों का सङ्ग छोंड़ सज्जनों के सङ्गमें सनेहवालेहो ॥ ५३ ॥ अच्छी विद्याओंमें मनको धरो ब्राह्मणों के आचार करो व अवस्था, कुल और अच्छाहाल चाल या स्वभाव इन सबसे तेरे अनुरूप ॥ ५४ ॥ सोलह वर्षकी मधुरवचनी पतिव्रता यह तेरी स्त्रीहै और तू उन्नीस

वर्पकाहै हे गुणनिधे ! ॥ ५५ ॥ इस अच्छे बर्तनेवाली को अङ्गीकारकर पिताके सनेह समेतहो तेरा श्वशुरभी गुण और शीलसे सबमें माननीय है ॥ ५६ ॥ हे बालक ! उस कारण क्या तू लजाता नहीं कुचाली छोड़ और हे पुत्र ! तेरे मामाभी विद्या शील और कुलआदिकों से अतुल हैं याने उनकी बराबरी कोई नहीं करसक्ता ॥ ५७ ॥ तू उनको भी नहीं डरता है माता व पिता इन दोनोंके वंशसे तू शुद्धहै इससे सुचालचल और सब घरोंमें टिके ब्राह्मणों के इन बालकों को देख ॥ ५८ ॥ व घरमें भी विनयआदि अच्छेगुणों से भरे जे तेरे पिताके शिष्यहैं उनको भी देख हे पुत्र ! राजाभी जो तेरे कुकर्म्म को सुनेगा ॥ ५९ ॥ तो तेरे पितामें श्रद्धातज वृत्ति

णी ॥५५॥ एतांसंवृणुसद्वृत्तां पितृभक्तियुतोभव ॥ श्वशुरोपिहितेमान्यः सर्वत्रगुणशीलतः ॥ ५६ ॥ ततोऽपत्रपसेकिंनत्य जदुर्वृत्ततांशिशो ॥ मातुलास्तेऽतुलाःपुत्र विद्याशीलकुलादिभिः ॥ ५७ ॥ तेभ्योपिनबिभेषित्वं शुद्धोस्युभयवंशतः ॥ पश्यैतान्प्रतिवेश्मस्थान् ब्राह्मणानांकुमारकान् ॥ ५८ ॥ गृहेपिशिष्यान्पश्यैतान् पितुस्तेविनयोचितान् ॥ राजापिश्रो ष्यतियदातवदुश्चेष्टितंसुत ॥ ५९ ॥ श्रद्धांविहायतेताते वृत्तिलोपंकरिष्यति ॥ बालचेष्टितमेवैतद्वदन्त्यद्यापितेजनाः ॥ ६० ॥ अनन्तरंहसिष्यन्तियुक्तंदीक्षितताऽस्त्विति ॥ सर्वेप्याक्षारयिष्यन्तितवविप्रंचमांचवै ॥ ६१ ॥ मातुश्चारित्रंतन योधत्तेदुर्भाषणैरिति ॥ पितापितेनपापीयान्श्रुतिस्मृतिपथीनकिम् ॥ ६२ ॥ तदंघ्रिलीनमनसोममसाक्षीमहेश्वरः ॥ नचर्तुस्नातयापीहमुखंदुष्टस्यवीक्षितम् ॥ ६३ ॥ अहोबलीयान्सविधिर्येनजातोभवानिति ॥ प्रतिक्षणंजनन्येतिशि क्ष्यमाणोतिदुर्मदः ॥ ६४ ॥ नतत्याजचतद्धर्मंदुर्बोधोव्यसनीयतः ॥ मृगयामद्यपैशुन्यवेश्याचौर्यदुरोदरैः ॥ ६५ ॥

या जीविका का लोप करेगा अभी तो लोग तेरे कर्म्मको बालचेष्टितही कहते याने न समझका कर्म्म मानते हैं ॥ ६० ॥ अनन्तर हसैंगे कि ऐसेही दीक्षितता उचित ही व तेरे बाप और मुझको भी दूषेंगे ॥ ६१ ॥ कि पुत्र दुष्टवचनों से माता का चरित्र धारता है तेरा पिताभी पापी नहीं है क्या वेद और धर्म्मशास्त्रों की कही गली में चलनेवाला नहीं किन्तु है ॥ ६२ ॥ उसमें मनलागी मेरे महेशजी साखी हैं क्योंकि मासिकधर्म्म में नहाई भी मैंने इस लोक में किसीदुष्ट का मुख नहीं देखा ॥ ६३ ॥ आश्चर्य्य है कि वह दैव बड़ा बली है कि जिससे तू हुआ यों प्रतिक्षण मातासे सिखाया जाता भी बड़ा अहङ्कारी ॥ ६४ ॥ वह उस धर्म

को न तजता भया क्योंकि जिससे दुष्टज्ञानवान् और व्यसनी था शिकार मदिरा शठता वेश्या चोरी जुवा ॥ ६५ ॥ और परस्त्री इन व्यसनों से वह संयुत था इनसे यहांको न खण्डित होवे और उस दुर्बुद्धि ने घर के बीच में जिस जिस वस्तुको देखा उस उसको लेकर ॥ ६६ ॥ जुवारियों को दिया कुप्पा समेत वस्त्रादि और बापकी नवरत्नमयी मुँदरी को माताके हाथ से ले ॥ ६७ ॥ एकसमय जुवारी के हाथमें दिया कि जिससमय उसकी माता सोती थी दैवयोग से एक दिन राजा के घर से आते दीक्षितने जुवारी के हाथ में मुँदरीको चीन्हा व उससे कहा कि यह मुँदरी तुमने किससे पाया है बार बार हठसे उसका पूँछा वह बोला कि क्या ॥ ६८ । ६९ ॥ मेरेपर भार चढ़ाता है हे ब्राह्मण ! क्या मैंने चोरी से लियाहै तेरेपुत्रनेही मुझको यह दिया है ॥ ७० ॥ वह पहले दिन मेरी माताकी सारीभी जीतलेगया था फिर केवल हमकोही नहीं यह मुँदरी सौंपा ॥ ७१ ॥ उसने और जुवारियों को भी बहुत धन दिया है रत्नकुप्पा रेशमी वस्त्र झाड़ी आदि ॥ ७२ ॥ व कांसे और तांबे के विचित्र पात्र भी दिया है व प्रतिदिन नङ्गाकर जुवारियों से माराजाताहै ॥ ७३ ॥ हे ब्राह्मण ! पृथ्वीमण्डल में उसके बराबर कोई जुवारी नहीं है आजलों तुमने जुवारीशिरोमणि ॥ ७४ ॥ अवि-

सपारदारैर्व्यसनैरेभिःकोत्रनखण्डितः ॥ यद्यन्मध्येगृहेपश्येत्तत्तन्नीत्वासुदुर्मतिः ॥ ६६ ॥ अर्पयेद्द्यूतकाराणांसकुप्यं वसनादिकम् ॥ नवरत्नमयींमातुःकरतःपितुरूर्मिकाम् ॥ ६७ ॥ स्वपन्त्यास्त्वेकदाऽऽदायदुरोदरिकरेऽर्पयत् ॥ एकदागच्छताराजभवनान्निजमुद्रिका ॥ ६८ ॥ दीक्षितेनपरिज्ञातादैवाद्द्यूतकृतःकरे ॥ उवाचदीक्षितस्तंचकुतोलब्धात्वयोर्मिका ॥ पृष्टस्तेनाथनिर्बन्धादसकृत्प्रत्युवाचाकिम् ॥ ६९ ॥ ममाक्षिपसिविप्रोच्चैःकिंमयाचौर्यकर्मणा ॥ लब्धामुद्रात्वदीयेनपुत्रेणैषाममार्पिता ॥ ७० ॥ मममातुर्हिपूर्वेद्युर्जित्वानीतोहिशाटकः ॥ नकेवलंममाप्येतदङ्गुलीयंसमर्पितम् ॥ ७१ ॥ अन्येषांद्यूतकर्तॄणांभूरितेनार्पितंवसु ॥ रत्नकुप्यदुकूलानिभृङ्गारुप्रभृतीनिच ॥ ७२ ॥ भाजनानिविचित्राणिकांस्यताम्रमयानिच ॥ नग्नीकृत्यप्रतिदिनंवध्यतेद्यूतकारिभिः ॥ ७३ ॥ नतेनसदृशःकश्चिदाक्षिकोभूमिमण्डले ॥ अद्ययावत्त्वयाविप्रदुरोदरशिरोमणिः ॥ ७४ ॥ कथंनाज्ञायितनयोऽविनयानयकोविदः ॥ इतिश्रुत्वात्रपाभारविनम्रतरकन्धरः ॥ ७५ ॥ प्रावृत्यवास

नय और अनीति के पण्डित को क्यों नहीं जाना यों सुन लाज के भार से शिर झुकायेहुआ दीक्षित ॥ ७५ ॥ वस्त्र से मूड़ मूंद अपने घरमें पैठा अनन्तर बैठकर उस महापतिव्रता स्त्री से बोला ॥ ७६ ॥ हे दीक्षितायिनि! कहां हो व तेरापुत्र गुणनिधि कहां है अथवा वह कहीं टिकाहो उससे क्या है वह मेरीशुभमुद्रिका कहां है ॥ ७७ ॥ अंग उबटने के समय में जिसको तैंने मेरी अंगुली से हराथा व जो कि नवरत्नमयी है उसको आन झट मुझे दे ॥ ७८ ॥ यों उसका वचन सुन डरभुत वह दीक्षितायिनीबोली कि दुपहरकी सन्ध्यावन्दनादि क्रिया को करलो ॥ ७६ ॥ हे अतिथियों के प्यार करनेहार ! देव पूजाके अर्थ उपहार याने फूल धूपादि सब सा-

सामौलिंप्राविशन्निजमन्दिरम् ॥ महापतिव्रतामास्यपत्नींप्रोवाचतामथ ॥ ७६ ॥ दीक्षितायिनिकुत्रासिकतेगुणनिधिःसुतः ॥ अथतिष्ठतुकिंतेनक्वसाममशुभोर्मिका ॥ ७७॥ अङ्गोद्वर्तनकालेयात्वयामेऽङ्गुलितोहृता ॥ नवरत्नमयीशीघ्रंतामानीयप्रयच्छमे ॥ ७८ ॥ इतिश्रुत्वाथतद्वाक्यंभीतासादीक्षितायिनी॥ प्रोवाचसातुमाध्याह्नींक्रियांनिष्पादयत्वथ ॥ ७९ ॥ व्यग्रास्मिदेवपूजार्थमुपहारादिकर्मणि ॥ समयोयमतिक्रामेदतिथीनांप्रियातिथे ॥ ८० ॥ इदानीमेवपक्वान्नकरणव्यग्रयामया ॥ स्थापिताभाजनेक्वापिविस्मृतेतिनवेद्म्यहम् ॥ ८१ ॥ दीक्षितउवाच ॥ हंहोसत्पुत्रजननिनित्यंसत्यप्रभाषिणि ॥ यदायदात्वांसंपृच्छेतनयःक्वगतस्त्विति ॥ ८२॥ तदातदेतित्वंब्रूयानाथेदानींसनिर्गतः ॥ अधीत्याध्ययनार्थंचद्वित्रैर्मित्रैःसयुग्बहिः ॥ ८३ ॥ कुतस्त्वच्छाटकःपत्निमाञ्जिष्ठोयोमयाऽर्पितः ॥ लम्बतेवस्त्रधान्यांयस्तथ्यंब्रूहिभयंत्यज ॥ ८४ ॥ सांप्रतंनेक्ष्यतेसोपिभृङ्गारुर्मणिमण्डितः ॥ पट्टसूत्रमयीसापित्रिपटीकनृपार्पिता ॥ ८५ ॥

मग्री बटोरने आदि कर्मोंमें मैं (व्यग्र स्वस्थचित्त नहीं) हूं और यह अतिथियों का समय बीताजाता है ॥ ८० ॥ इस समय में पकवान करने को असावधान हुई मैंने किसी पात्र में धरा व बिसरगई मैं नहीं जानती हूं ॥ ८१ ॥ दीक्षित बोला कि हे सुपुत्र की मातः ! हे सदासत्यवचानि ! जब जब मैंने यों पूंछा कि पुत्र कहां गया ॥ ८२ ॥ तब तब तैंने कहा कि हे नाथ ! पाठकर पढ़नेके अर्थ दो तीन मित्रों समेत वह अबहीं बाहर निकलगया है ॥ ८३ ॥ हे स्त्रि ! जो मेरी दीहुई मँजीठ की रँगी तेरीसारी अरगनीमें लटकती थी वह कहां है सत्यकह डरतज ॥ ८४ ॥ व मणियोंसे मण्डित वह गिड़वा भी इस समय नहीं दीखता है व वह राजाका दिया तिगुना

उपन्ना भी कहां है ॥ ८५ ॥ व वह दक्षिणी कांसपात्र कहां है वह गौड़देशकी बनी तांबेकी घड़ी कहां है वह हाथीदांतकी छोटी मचिया कहां है ॥ ८६ ॥ और चन्द्रकान्त पत्थरसे बनी व पर्वतदेशकी व हाथ में दिया लिये व भूषण समेत वह पुतली कहां है ॥ ८७ ॥ हे कुलजे ! बहुत कहने से क्या है मैं तुम्हसे वृथा क्रोध करता हूं जब दूसरा ब्याह करूंगा तब खाऊँगा ॥ ८८ ॥ उस कुलदूषक दुष्ट से मैं असन्तान हूं तू उठ कुश और जल ला उसको तिलाञ्जलि दूं ॥ ८९ ॥ क्योंकि कुलदूषण कुपुत्र से मनुष्यों को अपुत्रता भली है कुलके अर्थ एकको तजे यह सदाकी नीतिहै ॥ ९० ॥ यों कह नहा नित्यकर्म्म कर उसी दिनमें किसी वैदिककी कन्याको पाकर

क्वदाक्षिणात्यंतत्कांस्यंगौडीताम्रघटीक्वसा ॥ नागदन्तमयीसाक्वसुखकौतुकमञ्चिका ॥ ८६ ॥ क्वसापर्वतदेशीयाच न्द्रकान्तशिलोद्भवा ॥ दीपिकाव्यग्रहस्ताग्रासालंकृच्छालभञ्जिका ॥ ८७ ॥ किंबहूक्तेनकुलजेतुभ्यंकुप्याम्यहंवृथा ॥ तदाभ्यवहरिष्येहमुपयंस्याम्यहंयदा ॥ ८८ ॥ अनपत्योस्मितेनाहंदुष्टेनकुलदूषिणा ॥ उत्तिष्ठानयदर्भाम्बुतस्मैदद्यां तिलाञ्जलिम् ॥ ८९ ॥ अपुत्रत्वंवरंनृणांकुपुत्रात्कुलपांसनात् ॥ त्यजेदेकंकुलस्यार्थेनीतिरेषासनातनी ॥ ९० ॥ स्नात्वा नित्यविधिंकृत्वातस्मिन्नेवाह्निकस्यचित् ॥ श्रोत्रियस्यसुतांप्राप्यपाणिंजग्राहदीक्षितः ॥ ९१ ॥ श्रुत्वातथासवृत्तान्तंप्राक्त नंस्वंविनिन्द्यच ॥ कांश्चिद्दिशंसमालोच्यनिर्ययौदीक्षिताङ्गजः ॥ ९२ ॥ चिन्तामवापमहतींकयामिकरवाणिकिम् ॥ ना हमभ्यस्तविद्योस्मिनचैवास्तिधनोस्म्यहम् ॥ ९३ ॥ देशान्तरेह्यस्तिधनःसद्विद्यःसुखमेधते ॥ भयमस्तिधनेचौरात्सवि द्यःसर्वतोऽभयः ॥ ९४ ॥ यायजूककुलेजन्मक्वकमेव्यसनंतथा ॥ अहोबलीयान्सविधिर्भाविकर्मानुसन्धयेत् ॥ ९५ ॥

दीक्षितने हाथ गहा याने ब्याहा ॥ ९१ ॥ और वह दीक्षित का पुत्र वैसा पहले का हाल सुन अपना को निदर विचार किसी दिशाको निकलगया ॥ ९२ ॥ व बहुती चिंताको प्राप्तभया कि कहांजाऊं क्या करूं मैं विद्याका अभ्यास करनेवाला व धनवान् नहींहूं ॥ ९३ ॥ यद्यपि विदेशमें धनी व पण्डित सुखसे बढ़ता है तौभी धनमें चोरसे डर और पण्डित सबसे निडर है ॥ ९४ ॥ कहां यज्ञकर्त्ताओं के कुलमें मेरा जन्म कहां वैसा व्यसन अहो बड़ा बलवान् दैव या विधाता होनेवाले कर्म्म से

जोडता है ॥ ९५ ॥ मैं भीख मांगने न जाऊंगा व मेरा परचई कहीं नहीं है और न पासमें कुछ धन है यहां को रक्षक होवे ॥ ९६ ॥ सदा सूर्य्य उगते ही मेरी माता शुद्ध भोजन देतीथी आज यहां किससे मांगों जो मेरे उपजानेवाली है वह यहां नहीं है ॥ ९७ ॥ यों उसको चिंतना करतेही सूर्य्य अस्ताचलको गये व इसीसमय में कोई शिवभक्त मनुष्य जोकि शिवरात्रि में उपासाथा वह ॥ ९८ ॥ शिवके पूजनेके लिये बड़े उपहार याने पूजासामग्रियोंको ले नगरके बाहर गया ॥ ९९ ॥ और पकवानों का सुगन्ध सूंघ भूँखा वह गुणनिधिभी उसके पीछे गया कि शिवके लिये दिये इस अन्नको मैं रातमें गहोंगा ॥ १०० ॥ इस आशाको अवलम्बन याने आधार कर शिव

भिक्षितुंनाधिगच्छामिनमेपरिचितःक्वचित् ॥ नचपार्श्वेधनंकिञ्चित्किमत्रशरणंभवेत् ॥ ९६ ॥ सदानभ्युदितेभानौप्रसूर्मेमृष्टभोजनम् ॥ दद्यादद्यात्रकंयाचेयाचेहजननीनमे ॥ ९७ ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यभानुरस्ताचलंगतः ॥ एतस्मिन्नेवसमये कश्चिन्माहेश्वरोनरः ॥ ९८ ॥ महोपहारानादायनगराद्बहिरभ्यगात् ॥ समभ्यर्चितुमीशानंशिवरात्रावुपोषितः ॥ ९९ ॥ पक्वान्नगन्धमाघ्रायक्षुधितःसतमन्वगात् ॥ इदमन्नंमयाग्राह्यंशिवायोपस्कृतंनिशि ॥ १०० ॥ इत्याशामवलम्ब्याथद्वारिशम्भोरुपाविशत् ॥ ददर्शचमहापूजांतेनभक्तेननिर्मिताम् ॥ १ ॥ विधायनृत्यगीतादिभक्ताःसुप्ताःक्षणंयदा ॥ नैवेद्यंसतदादातुंगर्भागारंविवेशह ॥ २ ॥ दीपंमन्दप्रभंदृष्ट्वापक्वान्नावेक्षणायसः ॥ निजचैलाञ्चलाद्वर्तिंदत्त्वासमुददीपयत् ॥ ३ ॥ ततःपक्वान्नमादायत्वरितंगच्छतोबहिः ॥ तस्यपादतलाघातात्प्रसुप्तःकोप्यबुध्यत ॥ ४ ॥ कोयंकोयंत्वरापन्नश्चोरोयंगृह्यतामिति ॥ यावद्ब्रूयात्समागत्यतावत्सपुररक्षकैः ॥ ५ ॥ पलायमानोनिहतःक्षणात्पञ्चत्वमागतः ॥ अभ

के द्वारेपर बैठा व उस भक्तसे करी महापूजाको देखता भया ॥ १ ॥ जब नाच गान कर भक्तजन क्षणभर सोये तब वह नैवेद्य लेनेको मन्दिरके भीतर पैठा ॥ २ ॥ और उसने पकवान हेरने के लिये दीपको मंदज्योति देख अपने कपड़े के खण्ड से बाती बनाके दियाको दीपित किया ॥ ३ ॥ तदनन्तर पक्वान्नले शीघ्र बाहर जातेहुये उसका पद लगने से कोई सोया जन जागपड़ा ॥ ४ ॥ यह कौनहै यह कौनहै यह वेगवान् चोरहै पकड़ाजावे यों जौलों वह कहे तौलों वहां आकर पुरपालों से ॥ ५ ॥

भागताहुवा वह मारागया और मृत्युको प्राप्तभया व भावी पुण्यके बलसे उसने नैवेद्य न खाया ॥ ६ ॥ अनन्तर वहां आ उसको पाश मुद्गर हाथवाले व यमपुरी ले जाने के चाही यमराजके भयानक भटोंने बांधा ॥ ७ ॥ तौलों त्रिशूल हाथों में हैं जिनके वे शिवके पार्षद उसके आननेको छोटी घटीसमूहके मालावाले दिव्य विमानको लेआये ॥ ८ ॥ और शङ्करके गणोंको देख डरे नये उन यमदूतोंने यों कहा कि हे शिवगणो ! यह ब्राह्मण बड़ा दुष्टहै ॥ ९ ॥ व यह कुलके आचारों से उलटा व माता पिताके कहने से विमुख व सत्य और माटी जलकी शुद्धता से भ्रष्ट व सन्ध्यास्नानादिकों से हीनहै ॥ १० ॥ इसके कर्म्म तो दूररहे किंतु यहां प्रत्यक्ष देखो

न्वयचनैवेद्यंभाविपुण्यबलान्नसः ॥ ६ ॥ अथबद्धःसमागत्यपाशमुद्गरपाणिभिः ॥ निनीषुभिःसंयमिनींयामैःसविकटैर्भटैः ॥ ७ ॥ तावत्पारिषदाःप्राप्ताःकिङ्किणीजालमालितम् ॥ दिव्यंविमानमादायतंनेतुंशूलपाणयः ॥ ८ ॥ शम्भोर्गणान् समालोक्यभीतैस्तैर्यमकिङ्करैः ॥ अवादिप्रणतैरित्थंदुर्वृत्तोयंगणाद्विजः ॥ ९ ॥ कुलाचारप्रतीपोयंपित्रोर्वाक्यपराङ्मुखः ॥ सत्यशौचपरिभ्रष्टःसन्ध्यास्नानविवर्जितः ॥ १० ॥ आस्तांदूरेस्यकर्माणिशिवनिर्माल्यहारकः ॥ प्रत्यक्षतोऽत्र वीक्षध्वमस्पृश्योयंभवादृशाम् ॥ ११ ॥ शिवनिर्माल्यभोक्तारःशिवनिर्माल्यलङ्घकाः ॥ शिवनिर्माल्यदातारःस्पर्शस्तेषांह्यपुण्यकृत् ॥ १२ ॥ विषमालोड्यवापेयंश्रेयोवाऽनशनंपरम् ॥ सेवितव्यंशिवस्वंनप्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ १३ ॥ यूयंप्रमाणंधर्मेषुयथानचतथावयम् ॥ अस्तिचेद्धर्मलेशोस्यगणास्तच्छृणुमोवयम् ॥ १४ ॥ इत्थंतद्वाक्यमाकर्ण्य

शिवनिर्माल्यका चोर व तुम्हारे छूनेयोग्य नहीं है ॥ ११ ॥ क्योंकि जे शिवनिर्माल्यके खाने व लांघने और देनेवाले हैं उनका छूना अधर्मकारी है ॥ १२ ॥ विषभी घोर पीनेयोग्य व उपास करना श्रेष्ठ या कल्याण या धर्म्महै और प्राण गरेमें गतहों जिनके उनका भी शिवद्रव्य न खाना चाहिये अर्थात् नर्मदेश्वर स्वयंभूत (आपही आप उपजे) ज्योतिर्लिङ्गादि व चन्द्रकांत से बने व हृदयमें ध्यान व मूर्तिसे टिके लिंगोंका चरणामृत और अर्पित नैवेद्यादि भी खाने पीनेके योग्यहै औरोंका नहीं॥ १३ ॥ परन्तु तुमलोग जैसे धर्मके प्रमाणहो वैसे हम नहीं हैं जो इसके धर्म्म का किंचित् अंशहो तो हम सुनें॥ १४ ॥ यों उनका वचन सुन तदनन्तर शिवके पार्ष-

दोंने कहा कि हे यमगणो! जे महीन शिवसम्बन्धी धर्म्म हैं वे आप समान ॥ १५ ॥ स्थूलदृष्टियोंके देखने योग्य कैसे होसके हैं जोकि सूक्ष्मदृष्टियों करके देखने योग्य हैं और इस अपापी याने पुण्यात्माने जिस कर्म्मको किया उसको यहां सुनो ॥ १६ ॥ उसने शिवरात्रिमें अपने वस्त्रसे दिया में बातीदे लिंगके शिरमें पड़ती छायाको निवाराहै ॥ १७ ॥ हे यमके सेवको ! वहां प्रसंगसे शिवके नाम सुनते व लेतेभी इसका औरभी उत्तम धर्म्महुवा ॥ १८ ॥ व चतुर्दशी में उपासे अचलचित्त इसने भक्तों कीगई विधिपूर्वक पूजाको देखाहै ॥ १९ ॥ इससे भागगये पाप जिसके ऐसा यह कलिंगदेशका राजा होगा हे दूतो ! तुम जैसे आयेहो वैसे जावो ॥ २० ॥ यों शिवके

प्रोचुःपारिषदास्ततः ॥ किङ्कराःशिवशर्मायेसूक्ष्मास्तेवैभवादृशाः ॥ १५ ॥ स्थूललक्ष्यैःकथंलक्ष्यालक्ष्यायेसूक्ष्मदृष्टिभिः ॥ अनेनानेनसाकर्मयत्कृतंशृणुतेहतत् ॥१६॥ पतन्तीलिङ्गशिरसिदीपच्छायानिवारिता ॥ स्वचैलाञ्चलतोऽनेनदत्त्वादीपेदशांनिशि ॥१७॥ अपरोपिपरोधर्मोजातस्तत्रास्यकिङ्कराः ॥ शृण्वताशिवनामानिप्रसङ्गादपिगृह्णता ॥ १८ ॥ भक्तेनविधिनापूजाक्रियमाणानिरीक्षिता ॥ उपोषितेनभूतायामनेनास्थिरचेतसा ॥ १९ ॥ कलिङ्गराजोभविताऽधुनाविधुतकल्मषः ॥ एषद्विजवरोदूतायूयंयातयथागताः ॥ २० ॥ पार्षदैर्यमदूतेभ्योमोचितस्त्विवतिसद्विजः ॥ अरिन्दमस्यतनयःकलिङ्गाधिपतेर्दमः ॥ २१ ॥ क्रमाद्राज्यमवाप्याथपितर्युपरतेयुवा ॥ नान्यंधर्मंविजानातिदुर्दमोभूपतिर्दमः ॥ २२ ॥ शिवालयेषुसर्वेषुदीपदानादृतेद्विज ॥ ग्रामाधीशान्समाहूयसर्वान्स्वविषयस्थितान् ॥ २३ ॥ इत्थमाज्ञापयामाससमेदण्ड्योभविष्यति ॥ यस्ययस्याभितोग्रामंयावन्तश्चशिवालयाः ॥ २४ ॥ तत्रतत्रसदादीपोद्योतनीयोऽविचारितम् ॥

पार्षदों करके यमदूतों से छुड़ाया गया वह गुणनिधि ब्राह्मण अरिंदम नामक कलिंगदेशके राजाका दम नाम पुत्रहुवा ॥ २१ ॥ व क्रमसे युवाहो पिताके मरतेही राज्य पाकर दुष्टोंके दण्डदाता दम राजाने आन धर्म्मको न जाना ॥ २२ ॥ सब शिवमंदिरोंमें दीपदानको छोंड़ याने उसने शिवालयोंमें दीपक जलवायाथा और हे शिवशर्मन् ब्राह्मण ! अपने राज्यके वासी सब गांवोंके छोटे राजाओं को बुला ॥ २३ ॥ यों आज्ञा दिया कि जो यह न करेगा वह मुझसे दण्डके योग्यहोगा जिस जिसके गावँके चारों

ओरमें जितने शिवालयहों ॥ २४ ॥ उस उसकरके वहां वहां विना विचारही सदा दीपक बारना उचितहै मेरी आज्ञाभंगदोषसे निस्संदेह मैं शिर काटोंगा ॥ २५ ॥ यों उसके डरसे उनने प्रति शिवालयों में दिया दीपित किया और जौलों जिया तौलों इसी धर्मसे बर्तताभया वह दम राजा ॥ २६ ॥ बहुती धर्म्म बढ़तीको पहुँच कालधर्मके वश होगया याने मरा व वह दिया की वासनाके संयोगसे बहुते दीपोंको दीपितकर ॥ २७ ॥ अलकापुरीका स्वामी कुबेर हुवा जोकि रत्नके दीपोंकी शिखा-ओंका सेवता या उनका आधार है यों शिवके लिये कियागया थोड़ाभी कर्म समय में फलताहै ॥ २८ ॥ इससे यों जान सुखचाहियों को शिवमें भक्ति करना चाहिये

ममाज्ञाभङ्गदोषेणशिरश्छेत्स्याम्यसंशयम् ॥२५॥ इतितद्भयतोदीप्तादीपाःप्रतिशिवालयम् ॥ अनेनैवसधर्मेणयावज्जीवंदमोनृपः ॥ २६ ॥ धर्मर्द्धिंमहतींप्राप्यकालधर्मवशंगतः ॥ सदीपवासनायोगाद्बहून्दीपान्प्रदीप्यवै ॥ २७ ॥ अलकायाःपतिरभूद्रत्नदीपशिखाश्रयः ॥ एवंफलतिकालेनशिवेऽल्पमपियत्कृतम् ॥ २८ ॥ इतिज्ञात्वाशिवेकार्यंभजनंस्वसुखार्थिभिः ॥ क्वसदीक्षितदायादःसर्वधर्मपराङ्मुखः ॥ २९ ॥ स्वार्थदीपदशोद्योतलिङ्गमौलितमोहरः ॥ कलिङ्गविषयेराज्यंप्राप्तोधर्मरतिःसदा ॥ ३० ॥ शिवालयेसमुद्दीप्यदीपान्प्राग्वासनोदयात् ॥ क्वैषादिक्पालपदवीशिवशर्मन्विलोकय ॥ मनुष्यधर्मणानेनसाम्प्रतंयेहभुज्यते ॥३१॥ गणावूचतुः ॥ सर्वदैवशिवेनासौसखित्वञ्चयथेयिवान् ॥ तदप्येकमनाविप्रसंशृणुष्वब्रवावहै ॥ ३२ ॥ पाद्मेकल्पेपुराविप्रब्रह्मणोमानसात्सुतात् ॥ पुलस्त्याद्विश्रवाजज्ञेतस्यवैश्रवणःसुतः ॥ ३३ ॥ तेनेयमलकाभुक्तापुरीविश्वकृताकृता ॥ आराध्यत्र्यम्बकंदेवमत्युग्रतपसापुरा ॥३४॥ व्यतीतेतत्रकल्पे

कहां वह सब धर्म्मोंसे विमुख दीक्षित का पुत्र ॥ २९ ॥ स्वार्थके लिये दीपमें बाती बारने से शिवलिंगके ऊपरका अँधेरा हरनेवाला होकर कलिंग देशमें राज्यको प्राप्त हो सदा धर्मसनेही हुवा ॥ ३० ॥ और पहली वासनाके उदय होनेसे शिवालयोंमें दीपोंको दीपितकर कहां यह लोकपालकी पदवीहुई हे शिवशर्म्मन् ! देख जोकि इस समय यहां मनुष्य धर्म्मवालेसे भोगीजाती है ॥ ३१ ॥ विष्णुके गण बोले कि हे ब्राह्मण ! यह जैसे शिवके साथ सदा सखाभावको प्राप्तभया उसको एकाग्रमनहो सुन हम कहते हैं ॥ ३२ ॥ हे विप्र ! पहले पाद्मकल्पमें ब्रह्माके मानसीपुत्र पुलस्त्य से विश्रवा उपजा और उसका पुत्र वैश्रवण कुबेर हुवा ॥ ३३ ॥ उसने आगे बहुत

दारुण तपस्या से शिवको पूज विश्वकर्माकी बनाई इस अलकापुरीको भोगा ॥ ३४ ॥ पाद्मकल्पके बीतेपर मेघवाहनकल्प केवर्तमान होतेही यज्ञदत्तके पुत्र इस धन-दाताने दुष्कर तप किया ॥ ३५ ॥ व उस दीपदानके देने मात्रसे शिवकी भक्तिका प्रभाव जान चैतन्यके प्रकाशनेवाली शंभुकी काशीपुरीमें पहुँच ॥ ३६ ॥ उस चित्त रत्नदीपकको प्रज्वलितकर कि जिसमें ग्यारहरुद्र बाती हैं और जो अनन्य याने एक मेंही मन लागनेवाली भक्ति तैलसे पूर्ण है उस तेजके ध्यानसे अचल ॥ ३७ ॥ शिव के साथ एकता भावनापात्रहै जिसका व जोकि तपस्यारूप अग्निसे बढ़ाया व काम क्रोधादि जे बड़े विघ्न पांखी हैं उनके आघातसे रहित है ॥ ३८ ॥ व प्राणायाम है वायुका न होना जिसमें व जोकि विमल भलीभांतिकी भावना ज्ञानसे निर्मलहै और अच्छीभक्ति रूप फूलों या मनकी वृत्तिके विशेषरूप अहिंसा, इन्द्रियोंका रोक-

वैप्रवृत्तेमेघवाहने ॥ याज्ञदत्तिरसौश्रीदस्तपस्तेपेसुदुःसहम् ॥ ३५ ॥ भक्तिप्रभावंविज्ञायशम्भोस्तद्दीपमात्रतः ॥ पुरींपुरारेःसंप्राप्यकाशिकाञ्चित्प्रकाशिकाम् ॥ ३६ ॥ शिवैकदशमुद्बोध्यचित्तरत्नप्रदीपकम् ॥ अनन्यभक्तिस्नेहाढ्यंतन्महोध्याननिश्चलम् ॥ ३७ ॥ शिवैक्यसुमहापात्रंतपोग्निपरिबृंहितम् ॥ कामक्रोधमहाविघ्नपतङ्गाघातवर्जितम् ॥ ३८ ॥ प्राणसंरोधनिर्वातंनिर्मलंनिर्मलेक्षणात् ॥ संस्थाप्यशाम्भवंलिङ्गंसद्भावकुसुमार्चितम् ॥ ३९ ॥ तावत्ततापसतपस्त्वगस्थिपरिशेषितम् ॥ यावद्बभूवतद्वर्ष्मवर्षाणामयुतंशतम् ॥ ४० ॥ ततःसहविशालाक्ष्यादेवोविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ अलकापतिमालोक्यप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ४१ ॥ लिङ्गेमनःसमाधायस्थितंस्थाणुस्वरूपिणम् ॥ उवाचवरदोस्मीतितप्त्वालमलकापते ॥ ४२ ॥ उन्मील्यनयनेयावत्सपश्यतितपोधनः ॥ तावदुद्यत्सहस्रांशुसहस्राधिकतेजसम् ॥ ४३ ॥ पुरोददर्शश्रीकण्ठंचन्द्र

ना, विचार, ज्ञान, सब प्राणियोंमें दया, तपस्या और क्षमा इन आठभांतिके फूलों से पूजित शिवलिंगको थाप ॥ ३९ ॥ व हाड़ चर्म शेषहैं जिसमें ऐसा उसका शरीर जौलों न होगया तौलों वह दश लाख वर्षतक तपस्या करताभया ॥ ४० ॥ तदनन्तर विशालाक्षी देवीसमेत आप विश्वनाथ महादेवजी ने प्रसन्न मनसे ॥ ४१ ॥ अलकापुरीका स्वामी जोकि लिंगमें मन लगाकर अचलहो टिकाथा उससे यों कहा कि हे अलकापते ! मैं प्रसन्न व वरदाताहूं अब अधिक तपस्या करके क्याहै ॥ ४२ ॥ उस तपस्वीने जौलों आंखें उघाड़कर देखा तौलों उगते सहस्रों सूर्य्योंसे अधिक तेजवाले ॥ ४३ ॥ कालेगल चन्द्रमाथ पार्वतीनाथको आगे देखा व उनके तेजसे

दबगया नेत्रोंका तेज जिसका ऐसा वह आंखें खोल-॥ ४४ ॥ मनोरथ मार्गसे दूर गयेभये महादेवजीसे बोला कि हे नाथ ! अपने देखने में मुझे शक्तिदो॥ ४५ ॥ हे स्वामिन् अन्तर्यामिन् ऐश्वर्य्यवाल चन्द्रभाल ! आपके नमस्कारहो अन्यवर से क्या यही बड़ा वर जोकि साक्षात् आप दीखते हैं ॥ ४६ ॥ यों उसका वचन सुन उसको हाथकी गदोरीसे परस देवोंके देव पार्वतीपतिने दर्शनकी शक्तिदिया ॥ ४७ ॥ तब उसने नेत्र पसार पहले पार्वतीजी को देखा कि शिवके समीपमें यह सर्वांगसुन्दरी स्त्री कौनहै ॥ ४८ ॥ व इसने मेरे तपसे अधिक क्या तप कियाहै जिससे इस की सौभाग्य संपत्ति और नायक की प्रीतिका पात्र रूपभी बहुत आश्चर्य्यदायक

चूडमुमाधवम् ॥ तत्तेजःपरिभूताक्षितेजाःसंमील्यलोचने॥ ४४ ॥ उवाचदेवदेवेशंमनोरथपथातिगम् ॥ निजाङ्घ्रिदर्शने नाथदृक्सामर्थ्यंप्रयच्छमे ॥ ४५ ॥ अयमेववरोनाथयत्त्वंसाक्षान्निरीक्ष्यसे ॥ किमन्येनवरेणेशनमस्तेशशिशेखर ॥ ४६॥इतितद्वचनंश्रुत्वादेवदेवउमापतिः॥ददौदर्शनसामर्थ्यंस्पृष्ट्वापाणितलेनतम् ॥ ४७॥ प्रसार्यनयनेपूर्वमुमामेवव्य लोकयत्॥ शम्भोःसमीपेकायोषिदेषासर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४८ ॥अनयाकिन्तपस्तप्तंममापितपसोधिकम् ॥ अहोरूपमहोप्रे मसौभाग्यश्रीरहोभृशम् ॥ ४९ ॥ क्रूरदृग्वीक्षतेयावत्पुनःपुनरिदंवदन् ॥ तावत्पुस्फोटतन्नेत्रंवामंवामविलोकनात् ॥ ५० ॥ अथदेव्यब्रवीद्देवंकिमसौदुष्टतापसः ॥ असकृद्वीक्ष्यमांवक्रिन्यक्कुर्वन्मेतपःप्रभाम् ॥ ५१ ॥ असकृद्दक्षिणेनाक्ष्णा पुनर्मामेवपश्यति॥असूयमानोमेरूपंप्रेमसौभाग्यसम्पदः॥ ५२॥ इतिदेवीगिरंश्रुत्वाप्रहस्यप्राहतांप्रभुः ॥ उमेत्वदीयः पुत्रोयंनचक्रूरेणचक्षुषा ॥ ५३ ॥ संपश्यतेतपोलक्ष्मींतवकिन्त्वधिवर्णयेत् ॥ इतिदेवींसमाभाष्यतमीशःपुनरब्रवी

है ॥ ४९ ॥ बारबार यह कहताहुवा वह जौलों क्रूरदृष्टिहो देखताभया तौलों वक्रविलोकन से उसका वामनेत्र फूटगया ॥ ५० ॥ अनन्तर देवीजीने महादेवजीसे कहा कि यह दुष्टतपस्वी बारबार मुझको देख मेरी तपस्याकी छविको नीचे करता बोलता है ॥ ५१ ॥ व मेरे रूप प्रेम और सौभाग्यसंपत्तिमें दोषारोप करताहुवा दहिने नेत्रसे फिर मुझको देखताहै ॥ ५२ ॥ यों देवीका वचन सुन हँसकर शंकरने कहा कि हे पार्वति ! यह तेरा पुत्र कुटिल नेत्रसे न ॥ ५३ ॥ देखेगा किंतु तेरी तपोलक्ष्मीको अधिक

बखानता है यों देवीजीसे कह फिर शिवजी उससे बोले कि ॥ ५४ ॥ हे वत्स ! इस तपसे संतोषित मैं तुझे वर देताहूं तू पद्मादि आठ निधियोंका नाथ व गुह्यकों का स्वामीहो ॥ ५५ ॥ हे अच्छे व्रतवाले ! तू यक्ष किंपुरुष और राजाओंका राजा तथा पुण्यजन याने राक्षसजातियोंका पति व सबका धनदाताहो ॥ ५६ ॥ हे मित्र ! मेरी तेरी मित्रता होगी व तेरी प्रीति बढ़ती के लिये मैं अलकापुरी के समीप तेरे पासमें वास करूंगा ॥ ५७ ॥ आ इसके पांवोंमें पड़ यह तेरी माता है यों वरदे फिर लीलाकारी शिवजीने पार्वती से कहा हे देवेशि ! इस तपस्वी पुत्र में निश्चयसे प्रसन्नता कर ॥ ५८ ॥ तब देवीजी बोलीं कि हे वत्स ! शिव में तेरा अचल सनेह

त॥५४॥वरान्ददामितेवत्सतपसानेनतोषितः॥निधीनामधिनाथस्त्वंगुह्यकानांभवेश्वरः॥५५॥यक्षाणांकिन्नराणांचराजाराज्ञाञ्चसुव्रत ॥ पतिःपुण्यजनानाञ्चसर्वेषांधनदोभव ॥५६ ॥ मयासख्यञ्चतेनित्यंवत्स्यामिचतवान्तिके॥ अलकांनिकषामित्रतवप्रीतिविवृद्धये ॥ ५७॥ आगच्छपादयोरस्याःपततेजननीत्वियम् ॥ इतिदत्त्वावरान्देवःपुनराहशिवांशिवः॥प्रसादंकुरुदेवेशितपस्विन्यङ्गजेऽत्रवै॥ ५८॥ देव्युवाच॥वत्सतेनिश्चलाभक्तिर्भवेभवतुसर्वदा॥ भवैकपिङ्गोनेत्रेणवामेनस्फुटितेनह ॥ ५९ ॥ देवेनदत्तायेतुभ्यंवराःसन्तुतथैवते ॥ कुबेरोभवनाम्नात्वंममरूपेर्ष्ययासुत ॥ ६० ॥ त्वयेदंस्थापितंलिङ्गंतवनाम्नाभविष्यति ॥ सिद्धिदंसाधकानाञ्चसर्वपापहरंपरम् ॥६१ ॥ नधनेनवियुज्येतनसख्यानचबान्धवैः ॥ कुबेरेश्वरलिङ्गस्यकुर्याद्योदर्शनंनरः॥ ६२ ॥ विश्वेशाद्दक्षिणेभागेकुबेरेशंसमर्चयेत् ॥ नरोलिप्येतनोपापैर्नदारिद्र्येणनोऽसुखैः ॥६३ ॥ इतिदत्त्वावरान्देवोदेव्यासहमहेश्वरः॥धनदायाविवेशाथधामवैश्वेश्वरंपदम् ॥ ६४॥ गणावूचतुः ॥

हो व तू फूटे वामनेत्र से एकपिंग याने एक आंख में कुछ पीले रंगवालाहो ॥ ५९ ॥ व तेरे लिये जे वर देवसे दिये गये हैं वे वैसे होंगे हे पुत्र! मेरे रूपकी ईर्षा से नाम करके तू कुबेर याने कुदेह हो ॥ ६० ॥ और तेरे नामसे तेरा थापा यह लिंग साधकोंका सिद्धिदाता श्रेष्ठ और सब पापों का हरनेवाला होगा ॥ ६१ ॥ जो नर कुबेरेश्वर लिंगका दर्शन करेगा वह धन मित्र और बांधवों का वियोगी न होगा ॥ ६२ ॥ जो विश्वेश्वर से दक्षिण ओर में कुबेरेश्वरको पूजेगा वह पाप दरिद्र और दुःख से न लिप्तहोगा ॥ ६३ ॥ यों देवीके साथ शिव जी धननाथ को वरदे अनंतर उत्तम विश्वनाथ के धाम (घर या तेज) में पैठगये ॥ ६४ ॥ विष्णु के गण बोले कि यों यह

धनद याने कुबेर श्रीशम्भुकी श्रेष्ठ मित्रताको प्राप्त भया व अलकापुरी के समीप में यह शिवका स्थान कैलासहै ॥ ६५ ॥ यों यक्षेश्वरों की पुरीका स्वरूप तुम से कहा गया जिसको सुनकर नर निस्संदेह सब पापों से छूटता है ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेगन्धवत्यलकावर्णनन्नामत्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चौदह के अध्याय में ईशलोक को हाल । चन्द्रलोक वर्णन बहुरि प्राप्ति उपाय विशाल ॥ विष्णुजीके गण बोले कि अलका के आगे यह बड़े ऐश्वर्य्यवाली

इत्थंसखित्वंश्रीशम्भोःप्रापैषधनदःपरम् ॥ अलकांनिकषाचैषकैलासःशङ्करालयः ॥ ६५ ॥ पुर्यायक्षेश्वराणान्तेस्वरूपमितिवर्णितम् ॥ यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्योनरोमुच्येदसंशयम् ॥ ६६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेगन्धवत्यलकावर्णनंनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गणावूचतुः ॥ अलकायाःपुरोभागेपूरैशानीमहोदया ॥ अस्यांवसन्तिसततंरुद्रभक्तास्तपोधनाः ॥ १ ॥ शिवस्मरणसंसक्ताःशिवव्रतपरायणाः ॥ शिवसात्कृतकर्माणःशिवपूजारताःसदा ॥ २ ॥ साभिलाषास्तपस्यन्तिस्वर्गभोगोस्त्विवतीहनः ॥ तेऽत्ररुद्रपुरेरम्येरुद्ररूपधरानराः ॥ ३ ॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यमुख्याएकादशापिवै ॥ रुद्राःपरिवृढाश्चात्रत्रिशूलोद्यतपाणयः ॥ ४ ॥ पुर्यष्टकञ्चदुष्टेभ्योदेवद्रुग्भ्योह्यवन्तिते ॥ प्रयच्छन्तिवरान्नित्यंशिवभक्तजनेवराः ॥ ५ ॥ एतैरपितपस्तप्त्वाप्राप्यवाराणसींपुरीम् ॥ ईशानेशंमहालिङ्गंपरिस्थाप्यशुभप्रदम् ॥ ६ ॥ ईशानेशप्रसादेनदिश्यैश्यांहिदिगीश्वराः ॥

ईशानकी पुरी है इसमें निरंतर रुद्रके भक्त तपस्वी बसते हैं ॥ १ ॥ जे कि शिवके सुमिरने में लगे व शिवके व्रतोंमें परायण शिवको कर्म्म समर्प्पे और सदा शिवपूजा के सनेही हैं ॥ २ ॥ व जे अभिलाष समेत तपस्या करते हैं कि यहां हम का स्वर्ग का भोगहोवे वे नर रुद्ररूप धर इस पुरीमें हैं ॥ ३ ॥ व अजैकपाद् और अहिर्बुध्न्य आदि ग्यारह रुद्र यहां नायक हैं जे कि त्रिशूलहस्त हैं ॥ ४ ॥ वे शिवभक्त जनों में श्रेष्ठ होकर असुरोंसे आठ पुरियोंकी रक्षाकरते व नित्य वर देते हैं ॥ ५ ॥ इन्होंने भी काशीपुरी में जा शुभदायक ईशानेश्वर महालिंगको थाप तप किया ॥ ६ ॥ ईशानेश्वर के प्रसाद से ऐशानी दिशा याने उत्तर पूर्व के बीच कोण में दिक्पाल हुये जे

ग्यारहों भी एकही साथ चलते व जटाके मुकुट से मंडितहैं ॥ ७ ॥ व जिनके शुद्ध अंग व माथमें नेत्र गलेमें श्याम और ध्वजामें बैलका चिह्न है व अगणित सहस्र जे रुद्र भूतल में हैं ॥ ८ ॥ वे सब भोगसमृद्धिसंयुत होकर इस ऐशानी पुरी में बसतेहैं व काशी में ईशानेश्वर को पूजकर जे अन्य देशों में भी ॥ ९ ॥ मर वे उस पुण्यसे यहां पुरोहित होतेहैं व जे अष्टमी और चतुर्दशी तिथि में ईशानेश्वर को पूजतेहैं ॥ १० ॥ वे निस्संदेह इस उस लोकमें रुद्र जानने योग्य हैं और ईशानेश्वर के समीप राति में जागरणकर ॥ ११ ॥ व जिसी किसी चतुर्दशी में उपासे रह मनुष्य फिर गर्भको नहीं भजताहै यों स्वर्गकी गलीमें विष्णुगणोंसे कही कथाको सुनकर ॥ १२ ॥

एकादशाप्येकचराजटामुकुटमण्डिताः ॥ ७ ॥ भालनेत्रानीलगलाः शुद्धाङ्गावृषभध्वजाः ॥ असङ्ख्याताःसहस्राणि येरुद्राअधिभूतलम् ॥ ८ ॥ तेऽस्यांपुरिवसन्त्यैश्यां सर्वभोगसमृद्धयः ॥ ईशानेशंसमभ्यर्च्य काश्यांदेशान्तरेष्वपि ॥ ९ ॥ विपन्नास्तेनपुण्येन जायन्तेऽत्रपुरोहिताः ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यामीशानेशंयजन्तिये ॥ १० ॥ तएवरुद्राविज्ञेया इहामुत्राप्यसंशयम् ॥ कृत्वाजागरणंरात्रावीशानेश्वरसंनिधौ ॥ ११ ॥ उपोष्यभूतांयांकाञ्चिन्ननरोगर्भभाक्पुनः ॥ स्वर्गमार्गेकथामित्थं शृण्वन्विष्णुगणोदिताम् ॥ १२ ॥ शिवशर्मादिवाप्युच्चैरपश्यच्चन्द्रचन्द्रिकाम् ॥ आह्लादयन्तीं बहुशः समंसर्वेन्द्रियैर्मनः ॥ १३ ॥ चमत्कृत्यचमत्कृत्य कोयंलोकोहरेर्गणौ ॥ पप्रच्छशिवशर्मातौ प्रोचतुस्तञ्चतौद्विजम् ॥ १४ ॥ गणावूचतुः ॥ शिवशर्मन्महाभाग लोकएषकलानिधेः ॥ पीयूषवर्षिभिर्यस्य करैराप्याय्यतेजगत् ॥ १५ ॥ पितासोमस्यभोविप्र जज्ञेऽत्रिर्भगवानृषिः ॥ ब्रह्मणोमानसात्पूर्वं प्रजासर्गंविधित्सतः ॥ १६ ॥ अनुत्तरंनामतपो

शिवशर्म्माने दिन में भी सब इन्द्रियों के साथ मनको बहुत आनन्द देती अधिक चन्द्र चांदनी को देखा ॥ १३ ॥ जोकि चमत्कार करके चमचमाती है उसको देख शिवशर्म्माने उनसे पूछा कि हे विष्णुके गणो ! यह कौन लोकहै तब वे गण उस ब्राह्मण से बोले कि ॥ १४ ॥ हे महाभाग शिवशर्मन् ! यह चंद्रमाका लोक है जिसकी अमृतवर्षती किरणों से जगत् बढ़ाया जाता है ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मण ! पूर्वकाल में प्रजाओं की सृष्टिकरने के चाही ब्रह्माजी के मनसे चन्द्रमा के पिता ऐश्वर्य्यसम्पन्न

अत्रि ऋषि उपजे ॥ १६ ॥ जिन्होने पहले दिव्य तीनहजार वर्षलों उस तप को किया कि जिससे अधिक अन्य नहीं है और हमने यहां यह सुना है कि॥ १७॥ अमृतत्वको प्राप्तसा जो उनका रेत ऊपरको गया वह दशभांतिकी दिशाओंको दीपता हुआ दोनों नेत्रों से सब ओरमें चुवा ॥ १८ ॥ तब ब्रह्मासे प्रेरित दशदिशा देवियों ने उस गर्भको धारा और यद्यपि उन्होंने इकट्ठे हो धारण किया तोभी वे धारनेको न समर्थ भई ॥ १९ ॥ व जब वे दिशायें उसगर्भ के धारने को न समर्थ हुई तब उनके साथ सोम (चन्द्र) पृथिवी में गिरा ॥ २० ॥ और उस गिरे चन्द्रमा को देख लोकोंके परबाबा ब्रह्माजीने लोगों के हितकी कामना से रथमें बैठाया ॥ २१ ॥

येनतप्तंहिततपुरा ॥ त्रीणिवर्षसहस्राणि दिव्यानीतिहिनोश्रुतम् ॥ १७ ॥ ऊर्ध्वमाचक्रमेतस्य रेतःसोमत्वमीयिवत् ॥ नेत्राभ्यांतच्चसुस्राव दशधाद्योतयद्दिशः ॥ १८ ॥ तंगर्भंविधिनादिष्टा दशदेव्योदधुस्ततः ॥ समेत्यधारयामासुर्नैवताः समशक्नुवन् ॥ १९ ॥ यदानधारणेशक्तास्तस्यगर्भस्यतादिशः ॥ ततस्ताभिःसजूःसोमो निपपातवसुन्धराम् ॥ २० ॥ पतितंसोममालोक्य ब्रह्मालोकपितामहः ॥ रथमारोपयामास लोकानांहितकाम्यया ॥ २१ ॥ सतेनरथमुख्येन सागरान्तांवसुन्धराम् ॥ त्रिःसप्तकृत्वोद्रुहिणश्चकाराभिप्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥ तस्ययत्स्रुवितंतेजः पृथिवीमन्वपद्यत ॥ तदौषध्यःसमुद्भूता याभिःसन्धार्यतेजगत् ॥ २३ ॥ सलब्धतेजाभगवान् ब्रह्मणावर्धितःस्वयम् ॥ तपस्तेपेमहाभाग पद्मानां दशतीर्दश ॥ २४ ॥ अविमुक्तंसमासाद्य क्षेत्रंपरमपावनम् ॥संस्थाप्यलिङ्गममृतं चन्द्रेशाख्यंस्वनामतः ॥ २५ ॥ बीजौषधीनांतोयानां राजाभूदग्रजन्मनाम् ॥ प्रसादाद्देवदेवस्यविश्वेशस्यपिनाकिनः ॥ २६ ॥ तत्रकूपंविधायैकममृतोद

व उन ब्रह्माजीने उरा रथमुख्य से इक्कीसबार इस चन्द्रमाको समुद्र पर्यन्त पृथिवीका प्रदक्षिणा कराया ॥ २२ ॥ व जो उसका चुवा तेज पृथिवीको पहुँचा उससे वैसे वे ओषधियां उपजीं कि जिनसे जगत् पोषाजाता है ॥ २३ ॥ हे महाभाग ! ब्रह्माजीसे बढ़ाया व ऐश्वर्य्यसम्पन्न और पायाहै तेजको जिसने वह आपही सौपद्मवर्षलों तपस्या करताभया ॥ २४ ॥ और परम पवित्र काशीक्षेत्रमें जा अपने नामसे चन्द्रेश्वरनामक अमृत लिंगको थाप ॥ २५ ॥ देवोंके देव विश्वनाथ शिवकी प्रसन्नता

से बीज ओषधी जल और ब्राह्मणों का राजाहुआ ॥ २६ ॥ व जिसका जल पी और नहाने से मनुष्य अज्ञान से छूटता है उस अमृतोद इस नामसे कहे कूपको वहां बनवाकर ॥ २७ ॥ जो चन्द्रमा आपही प्रसन्न महादेवजी करके जगत् संजीविनी उत्तम उस एक कलाको ले माथमें धारागया ॥ २८ ॥ उसके बाद दक्षसे शापाहुआ अमावस्यान्तमाससमाप्तिमें क्षीणता को प्राप्तहो वह चन्द्रमा फिरभी उस कला से बढ़ायाजाता है ॥ २९ ॥ और अमृतवालों या सोमयज्ञकर्त्ताओं में श्रेष्ठ वह चन्द्रमा उस महाराज्य को पाकर सहस्रों सैकड़ा या लक्ष दक्षिणाहै जिसमें उस राजसूययज्ञ को करताभया ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मण ! हमने यह सुनाहै कि चन्द्रमा ने उन ब्रह्मर्षि

मितिस्मृतम् ॥ यस्याम्बुपानस्नानाभ्यांनरोऽज्ञानात्प्रमुच्यते ॥ २७ ॥ तुष्टेनदेवदेवेन स्वमौलौयोधृतःस्वयम् ॥ आदा यतांकलामेकां जगत्सञ्जीवनींपराम् ॥ २८ ॥ पश्चाद्दक्षेणशप्तोपि मासोनेक्षयमाप्यच ॥ आप्याय्यतेसौकलया पुनरेव तयाशशी ॥ २९ ॥ सतत्प्राप्यमहाराज्यं सोमःसोमवतांवरः ॥ राजसूयंसमाजह्रे सहस्रशतदक्षिणम् ॥ ३० ॥ दक्षि णामददत्सोमस्त्रीँल्लोकानितिनोश्रुतम् ॥ तेभ्योब्रह्मर्षिमुख्येभ्यः सदस्येभ्यश्चभोद्विज ॥ ३१ ॥ हिरण्यगर्भोब्रह्माऽ त्रिर्भृगुर्यत्रर्त्विजोभवन् ॥ सदस्योभूद्धरिस्तत्र मुनिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ ३२ ॥ तंसिनीचकुहूश्चैव द्युतिःपुष्टिःप्रभावसुः ॥ कीर्तिर्धृतिश्चलक्ष्मीश्च नवदेव्यःसिषेविरे ॥ ३३ ॥ उमयासहितंरुद्रं सन्तर्प्याध्वरकर्मणा ॥ प्रापसोमइतिख्यातिं दत्तां सोमेनशम्भुना ॥ ३४ ॥ तत्रैवतप्तवान्सोमस्तपःपरमदुष्करम् ॥ तत्रैवराजसूयञ्च चक्रेचन्द्रेश्वराग्रतः ॥ ३५ ॥ तत्रैव ब्राह्मणैःप्रीतैरित्युक्तोसौकलानिधिः ॥ सोमोस्माकंब्राह्मणानां राजात्रैलोक्यदक्षिणः ॥ ३६ ॥ तत्रैवदेवदेवस्य विलोच

श्रेष्ठ और सदस्य इन सबोंके लिये त्रिलोक को दक्षिणा दिया ॥ ३१ ॥ व जिसयज्ञमें ब्रह्माजी ब्रह्मा व और अत्रि भृगु मरीचि आदि ऋषि ऋत्विज् हुयेथे उसमें बहुते मुनियों समेत विष्णुजी सदस्य भये ॥ ३२ ॥ व सिनीवाली कुहू द्युति पुष्टि प्रभा वसु कीर्ति धृति और लक्ष्मी ये नव देवियां उस चन्द्रमा को सेवती भई ॥ ३३ ॥ और चन्द्रमा ने यज्ञकर्म्म से पार्वती सहित शिवको तृप्तकर उमा समेत शम्भु से दीगई सोम इस प्रसिद्धि को पाया ॥ ३४ ॥ व उसी काशीक्षेत्र में चन्द्रमा ने परम दुष्कर तपस्या किया उसमेंही चन्द्रेश्वर के आगे राजसूय किया ॥ ३५ ॥ व वही प्रसन्न ब्राह्मणों करके यह चन्द्रमा यों कहागया कि त्रिलोक दक्षिणावाले तुम सोम

हम ब्राह्मणोंके राजाहो ॥३६॥ और उसी स्थानमें महादेवके नेत्र पदको प्राप्तभया व त्रिलोकके आनन्दके कारण प्रसन्नमन महादेव करके ॥ ३७॥ उसके तपोबलसे वह यों कहागया कि तुम हमारी अन्य मूर्त्तिहो इससे तुम्हारे उदयको पाकर जगत् सुखित होगा ॥ ३८ ॥ सूर्य्य के घामसे घेरा तुम्हारी अमृतमयी रश्मियोंसे छुवाहुआ स्थावर जङ्गम जगत् बड़ी ग्लानि को तजेगा ॥ ३९ ॥ यों कह महेशने आनन्द से अन्य वरोंको भी दिया कि हे द्विजराज ! तुनने यहां निश्चय ते जो अत्यन्त उग्रतपस्या किया ॥ ४० ॥ व तुमने जो यज्ञकर्म्म दानको मुझमें समर्पा व चन्द्रेश्वरनामक इस मेरे लिङ्गको थापा ॥ ४१ ॥ उससे हे चन्द्र ! यहां तुम्हारे नामके लिङ्गमें सर्व-

नपदङ्गतः ॥ देवेनप्रीतमनसा त्रैलोक्याह्लादहेतवे ॥ ३७ ॥ त्वंममास्यपरामूर्तिरित्युक्तस्तत्तपोबलात् ॥ जगत्तवोदयंप्राप्य भविष्यतिसुखोदयम् ॥ ३८ ॥ त्वत्पीयूषमयैर्हस्तैः स्पृष्टमेतच्चराचरम् ॥ भानुतापपरीतञ्च परांग्लानिंविहास्यति ॥ ३९ ॥ एतदुक्त्वामहेशानो वरानन्यानदान्मुदा ॥ द्विजराजतपस्तप्तं यदत्युग्रंत्वयात्रवै ॥ ४० ॥ यच्चक्रतुक्रियोत्सर्गस्त्वयामह्यंनिवेदितः ॥ स्थापितंयत्त्विदंलिङ्गं ममचन्द्रेश्वराभिधम् ॥ ४१ ॥ ततोत्रलिङ्गेत्वन्नाम्नि सोमसोमार्धरूपधृक् ॥ प्रतिमासंपञ्चदश्यां शुक्लायांसर्वगोप्यहम् ॥ ४२ ॥ अहोरात्रंवसिष्यामि त्रैलोक्यैश्वर्यसंयुतः ॥ ततोत्रपूर्णिमायान्तु कृतास्वल्पापिसत्क्रिया ॥ ४३ ॥ जपहोमार्चनध्यानदानब्राह्मणभोजनम् ॥ महापूजाचसानूनं ममप्रीत्यैभविष्यति ॥ ४४ ॥ जीर्णोद्धारादिकरणं नृत्यवाद्यादिकार्पणम् ॥ ध्वजारोपणकर्मादितपस्वियतितर्पणम् ॥ ४५ ॥ चन्द्रेश्वरेकृतंसर्वं तदानन्त्यायजायते ॥ अन्यच्चतेप्रवक्ष्यामि शृणुगुह्यंकलानिधे ॥ ४६ ॥ अभक्तायचनाख्येयं नास्तिकायश्रुतिद्रुहे ॥

व्यापी भी गौरीशङ्कर रूपमें प्रति उजेली पूनोंको ॥ ४२ ॥ त्रिलोकके ऐश्वर्य्य से संयुतहो रातों दिनमें बसूंगा उस कारण पूर्णमासी में यहां थोड़ाभी किया सुकर्म ॥ ४३ ॥ जप होम पूजा ध्यान दान और ब्रह्मभोज यह सब निश्चय मेरी प्रीतिके लिये महापूजन होगा ॥ ४४ ॥ व टूटे फूटे मन्दिरादिकों को जहां तहां बनवाके नयासा करना व नाच गान बाजादिकों का सौंपना व ध्वजा गाड़ने आदि कर्म्म व तपस्वी और संन्यासियों को भोजनादिक से सन्तुष्ट करना ॥ ४५ ॥ यह सब जो थोड़ा भी चन्द्रेश्वर के समीप में कियागया वह अनन्त फलके लिये होताहै हे कलानिधान ! तुझसे और भी गोप्य बात कहताहूं सुन ॥ ४६ ॥ जो कि असक्त और वेदविनिंदको से

कहने योग्य नहीं है हे चन्द्र ! जब सोमवारमें अमावसहो ॥ ४७ ॥ तब चतुर्दशी में सज्जनों का आदरसे उपास करना चाहिये हे सोम ! सुन कि पहले किया नित्यकर्म्म जिसने वह ॥ ४८ ॥ शनैश्चर तेरसिके शाम समय में चन्द्रेश्वर नामक लिंगको भलीभांति से पूज रात में भोजन कर उसी तेरसि मे नियम गह ॥ ४९ ॥ चतुर्दशी में उपास और रात में जागरण कर प्रातःकाल सोमवार अमावस के योग में चन्द्रोदतीर्थ के जल से नहाय ॥ ५० ॥ विधिवत् सन्ध्योपासन कर फिर किया जल की सब क्रिया याने तर्प्पणादि जिसने वह चन्द्रोद तीर्थ के समीप में विधिपूर्वक श्राद्धकरे ॥ ५१ ॥ व अश्रद्धा मल दूरहोने के लिये शास्त्रों से कहे वसु रुद्र आदित्य

अमावास्यायदासोमजायतेसोमवासरे ॥ ४७ ॥ तदोपवासःकर्तव्यो भूतायांसद्भिरादरात् ॥ कृतनित्यक्रियःसोम त्रयोदश्यांनिशामय ॥ ४८ ॥ शनिप्रदोषेसंपूज्य लिङ्गंचन्द्रेश्वराह्वयम् ॥ नक्तंकृत्वात्रयोदश्यां नियमंपरिगृह्यच ॥ ४९ ॥ उपोष्यचचतुर्दश्यां कृत्वाजागरणंनिशि ॥ प्रातःसोमकुहूयोगे स्नात्वाचन्द्रोदवारिभिः ॥ ५० ॥ उपास्यसन्ध्यां विधिवत्कृतसर्वोदकक्रियः ॥ उपचन्द्रोदतीर्थेषु श्राद्धंविधिवदाचरेत् ॥ ५१ ॥ आवाहनार्घ्यरहितं पिण्डान्दद्यात्प्रयत्नतः ॥ वसुरुद्रादितिसुतस्वरूपपुरुषत्रयम् ॥ ५२ ॥ मातामहांस्तथोद्दिश्य तथान्यानपिगोत्रजान् ॥ गुरुश्वशुरबन्धूनां नामान्युच्चार्यपिण्डदः ॥ ५३ ॥ कुर्वञ्छ्राद्धञ्चतीर्थेस्मिन् श्रद्धयोद्धरतेखिलान् ॥ गयायांपिण्डदानेन यथातुष्यन्तिपूर्वजाः ॥ ५४ ॥ तथाचन्द्रोदकुण्डेऽत्र श्राद्धैस्तृप्यन्तिपूर्वजाः ॥ गयायाञ्चयथामुच्येत्सर्वर्णात्पितृजान्नरः ॥ ५५ ॥ तथा प्रमुच्यतेचर्णाच्चन्द्रोदेपिण्डदानतः ॥ यदाचन्द्रेश्वरंद्रष्टुंयायात्कोपिनरोत्तमः ॥ ५६ ॥ तदान्नृत्यन्तिमुदितास्तत्पूर्वप्र

रूप बाप बाबा परबाबाको आवाहन और अर्घ्य से रहित यत्नसे पिण्ड देवे ॥ ५२ ॥ वैसे नाना आदि तीनपुरुषों और गोत्र में उत्पन्न अन्य लोगोंको भी उद्देश कर व गुरु श्वशुर और बन्धुओं के भी नाम कह पिंडदाता होवे ॥ ५३ ॥ इस तीर्थ में श्रद्धासे श्राद्धकरताहुआ सम्पूर्ण पुरिखों को उबारे जैसे गया में पिण्ड देने से पितर तृप्त होते हैं ॥ ५४ ॥ वैसे इस चन्द्रोद कुण्ड में भी श्राद्धों से सन्तुष्ट होते हैं जैसे गयामें पिण्डदानसे मनुष्य पितरों के ऋण से छूटता है ॥ ५५ ॥ वैसे चन्द्रोद कुण्ड में पि-

एडदेने से ऋणसे छूटेहै जब कोई मनुष्य चन्द्रेश्वर के दर्शनको चलता है ॥ ५६ ॥ तब उस के आनंदित पितर नाचते हैं कि यह इस चन्द्रोदतीर्थ में हमारा तर्प्पण करेगा ॥ ५७ ॥ व हमारे अभाग से जो न करेगा तो उस तीर्थ का जल परसने से हमारी तृप्तिहोगी ॥ ५८ ॥ व जो वह मूर्ख जलको न छुवेगा तो तृप्त होने के लिये दर्शनभी करेगा इससे यों व्रतवाला श्राद्धकर अनन्तर चन्द्रेश्वर को परस ॥ ५९ ॥ ब्राह्मण और संन्यासियों को तृप्तकर तब पारण करे हे चन्द्र ! यों काशी में सोमवारी अमावस को व्रत करतेही मेरी दयासे देवऋषि और पितर इन तीनों के ऋणसे छूटाहुवा होवै ॥ ६० ॥ व तारक ज्ञान मिलने के लिये क्षेत्रके विघ्न निवारनेवाली

पितामहाः ॥ अयंचन्द्रोदतीर्थेस्मिंस्तर्पणंनःकरिष्यति ॥ ५७ ॥ अस्माकंमन्दभाग्यत्वाद्यदिनैवकरिष्यति ॥ तदातत्तीर्थसंस्पर्शादस्मत्तृप्तिर्भविष्यति ॥ ५८ ॥ स्पृशेन्नापियदामन्दस्तदाद्रक्ष्यतितृप्तये ॥ एवंश्राद्धंविधायाथस्पृष्ट्वाचन्द्रेश्वरंव्रती ॥ सन्तर्प्यविप्रांश्चयतीन्कुर्याद्वैपारणंततः ॥ ५९ ॥ एवंव्रतेकृतेकाश्यां सदर्शेसोमवासरे ॥ भवेदृणत्रयान्मुक्तो मृगाङ्कमदनुग्रहात् ॥ ६० ॥ अत्रयात्रामहाचैत्र्यां कार्याक्षेत्रनिवासिभिः ॥ तारकज्ञानलाभाय क्षेत्रविघ्ननिवर्तिनी ॥ ६१ ॥ चन्द्रेश्वरंसमभ्यर्च्य यद्यन्यत्रापिसंस्थितः ॥ अघौघपटलींभित्त्वा सोमलोकमवाप्स्यति ॥ ६२ ॥ कलौचन्द्रेशमहिमानाभाग्यैरवगम्यते ॥ अन्यच्चतेप्रवक्ष्यामि परंगुह्यंनिशापते ॥ ६३ ॥ सिद्धयोगीश्वरंपीठमेतत्साधकसिद्धिदम् ॥ सुरासुरेषुगन्धर्वनागविद्याधरेष्वपि ॥ ६४ ॥ रक्षोगुह्यकयक्षेषु किन्नरेषुनरेषुच ॥ सप्तकोट्यस्तुसिद्धानामत्रसिद्धा ममाग्रतः ॥ ६५ ॥ षण्मासंनियताहारो ध्यायन्विश्वेश्वरीमिह ॥ चन्द्रेश्वरार्चनायातान् सिद्धान्पश्यतिसोऽग्रगा

यात्रा चित्रानक्षत्र संयुत चैत्रकी पूनों में यहां क्षेत्रवासियों को करना चाहिये ॥ ६१ ॥ जो चन्द्रेश्वरको पूजकर अन्यत्रभी मरेगा तो भी पापसमूहकी पंक्ति को विदार सोमलोक को पावे या जावेगा ॥ ६२ ॥ और कलियुग में चन्द्रेश्वरकी महिमा अभागी जनों करके नहीं जानी जाती है हे चन्द्र ! अन्य भी अधिक गोप्य वचन को तुझसे कहताहूं कि ॥ ६३ ॥ यह सिद्ध योगीश्वर नामक पीठ साधकों का सिद्धिदाताहै क्योंकि देव, दैत्य, गन्धर्व, नाग, विद्याधर ॥ ६४ ॥ राक्षस, गुह्यक, यक्ष, किन्नर और मनुष्यों में भी सातकरोड़ सिद्ध यहां मेरे आगे सिद्धभयेहैं ॥ ६५ ॥ और छःमास तक भोजनके नियमवाला जो पुरुष है वह यहां विश्वेश्वरी याने सिद्धेश्वरी

को ध्याताहुआ चन्द्रेश्वरके दर्शन को आवे व आगेगये मेव सिद्धों को देखता है ॥ ६६ ॥ व साक्षात् सिद्धयोगीश्वरी देवी उसको वर देनेवाली होती है इससे सिद्ध-
योगीश्वरी के दर्शन से तुमका भी बड़ी सिद्धिहोगी ॥ ६७ ॥ पृथ्वी में साधकों की सिद्धि के लिये बहुत पीठ हैं परन्तु पृथ्वी की पीठि मे योगीश्वरी पीठ से अधिक
अन्य शीघ्र सिद्धिदाता नहीं है ॥ ६८ ॥ हे चन्द्र ! जहां तुमने चन्द्रेश्वर लिंग को थापा यही वह पीठ है जो कि अज्ञानियों से देखने योग्य नहीं है ॥ ६९ ॥ काम
क्रोध लोभ चाह गर्व के जीतनेवाले लोग मेरी पराशक्ति उस सिद्धेश्वरी को देखते हैं ॥ ७० ॥ व जे भक्त प्रति अष्टमी प्रति चतुर्दशी को सिद्धयोगीश्वरी

न्॥६६॥सिद्धयोगीश्वरीसाक्षाद्वरदातस्यजायते॥तवापिमहतीसिद्धिः सिद्धयोगीश्वरीक्षणात्॥६७॥ सन्तिपीठान्य
नेकानि क्षितौसाधकसिद्धये ॥ परंयोगीश्वरीपीठाद्भूपृष्ठेनाशुसिद्धिदम् ॥ ६८ ॥ यत्रचन्द्रेश्वरंलिङ्गं त्वयेदंस्थापितंश
शिन् ॥ इदमेवहितत्पीठमदृश्यमकृतात्मभिः ॥ ६९ ॥ जितकामाजितक्रोधा जितलोभस्पृहास्मिताः ॥ योगीश्वरींप्र
पश्यन्ति ममशक्तिंपरांहिताम् ॥ ७० ॥ येतुप्रत्यष्टमिजनास्तथाप्रतिचतुर्दशि ॥ सिद्धयोगीश्वरीपीठे पूजयिष्यन्ति
भाविताः ॥ ७१ ॥ अदृष्टरूपांसुभगां पिङ्गलांसर्वसिद्धिदाम् ॥ धूपनैवेद्यदीपाद्यैस्तेषामाविर्भविष्यति ॥ ७२ ॥ इतिद
त्त्वावराञ्छम्भुस्तस्मैचन्द्रमसेद्विज ॥ अन्तर्हितोमहेशानस्तत्रैवविश्वेश्वरपुरे ॥ ७३ ॥ तदारभ्यचलोकेऽस्मिन् द्विजरा
जोधिपोभवत्॥दिशोवितिमिराःकुर्वन्निजैःप्रसृमरैःकरैः ॥७४॥सोमवारव्रतकृतः सोमपानरतानराः॥सोमप्रभेणयानेन
सोमलोकंवसन्तिहि ॥७५॥ चन्द्रेश्वरसमुत्पत्तिं तथाचान्द्रमसन्तपः ॥ यःश्रोष्यतिनरोभक्त्याचन्द्रलोकेसइज्यते ॥७६॥

पीठ में ॥ ७१ ॥ नहीं देखागया रूप जिसका उस सुभगा पिङ्गला सर्वसिद्धिदात्री देवी को धूप दीप नैवेद्यादिकों से पूजेंगे वह उनको प्रकट होगी ॥ ७२ ॥ हे शिव-
शर्मन् ब्राह्मण ! यों सुनकर महेशजी चन्द्रमा को वरदे विश्वनाथ के उस पुर में अन्तर्द्धान हुये ॥ ७३ ॥ और तबसे लगा अपने पसारे किरणों से दिशाओं को अ-
न्धकार से रहित करताहुआ चन्द्रमा इस लोक में राजाभया ॥ ७४ ॥ सोमवार व्रत करनेवाले और सोमयज्ञ में सोमपीने में रत मनुष्य चन्द्र से चमकते विमान
से चन्द्रलोक मेंही बसते हैं ॥ ७५ ॥ जो मनुष्य चन्द्रेश्वरकी उत्पत्ति और चन्द्रमा की तपस्या को सनेह से सुनेगा वह चन्द्रलोक में पूजित होगा ॥ ७६ ॥

अगस्त्य जी बोले कि स्वर्गमार्ग में शिवशर्मा से सुखकारिणी श्रमहारिणी इस शुभ कथाको कहते हुये विष्णुगण तदनन्तर नक्षत्रलोक को गये ॥ ७७ ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेचन्द्रलोकवर्णनंनामचतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पन्द्रह के अध्यायमें सुनियो सुचित सुजान । नक्षत्रन को लोक अरु बुधको लोक बखान ॥ अगस्त्य जी बोले हे साथही धर्मवाली महाभागे लोपामुद्रेस्त्रि ! शिवशर्मा के लिये विष्णुगणोंकी कही कथा को सुन ॥ १ ॥ शिवशर्मा बोला कि हे गणो ! यह चन्द्रमा की अद्भुत कथा सुनीगई सब कथाओं के पण्डित आप अब

अगस्तिरुवाच ॥ शिवशर्मणिशर्मकारिणींपथिदिव्येश्रमहारिणींगणौ ॥ कथयन्तौतुकथामिमांशुभामुडुलोकंपरिजग्मतुस्ततः ॥ ७७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसोमलोकवर्णनन्नामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ * ॥

अगस्तिरुवाच ॥ शृणुपत्निमहाभागे लोपामुद्रेसधर्मिणि ॥ कथांविष्णुगणाभ्याञ्च कथितांशिवशर्मणे ॥ १ ॥ शिवशर्मोवाच ॥ अहोगणौविचित्रेयं श्रुताचान्द्रमसीकथा ॥ उडुलोककथांख्यातं विष्वगाख्यानकोविदौ ॥ २ ॥ गणावूचतुः ॥ पुरासिसृक्षतःसृष्टिं स्रष्टुरङ्गुष्ठपृष्ठतः ॥ दक्षःप्रजाविनिर्माणे दक्षोजातःप्रजापतिः ॥ ३ ॥ षष्टिर्दुहितरस्तस्य तपोलावण्यभूषणाः ॥ सर्वलावण्यरोहिण्यो रोहिणीप्रमुखाःशुभाः ॥ ४ ॥ ताभिस्तप्त्वातपस्तीव्रं प्राप्यवैश्वेश्वरींपुरीम् ॥ आराधितोमहादेवः सोमःसोमविभूषणः ॥ ५ ॥ यदातुष्टोयमीशानो दातुंवरमथाययौ ॥ उवाचचप्रसन्नात्मा याचध्वंवरमुत्तमम् ॥ ६ ॥ शम्भोर्वाक्यमथाकर्ण्य ऊचुस्ताश्चकुमारिकाः ॥ यदिदेयोवरोऽस्माकंवरयोग्याःस्मशङ्कर ॥ ७ ॥

नक्षत्रलोककी कथा कहो ॥ २ ॥ विष्णुजी के गण बोले कि पहिले सृष्टिको सिरजते ब्रह्माजी के अँगूठे की पीठसे प्रजा बनाने में दक्ष याने कुशल दक्षनाम प्रजापति हुआ ॥ ३ ॥ व तपस्या में प्रवीणता भूषण है जिनका वे सबमें सलोनी शुभ रोहिणी आदि साठि कन्यायें उसके भईं ॥ ४ ॥ व काशीपुरीमें जा तीव्र तपस्याकर उन करके पार्वती समेत चन्द्रभूषण शिवजी पूजेगये ॥ ५ ॥ अनन्तर जब सन्तुष्ट ये महेशजी वर देने को आये व प्रसन्नचित्तहो बोले कि उत्तम वर मांगो ॥ ६ ॥ तब

शङ्करका वचन सुन उन कुमारियों ने कहा कि हे शङ्कर ! जो हमको वर देय है और हम वरदेने के योग्य हैं ॥ ७ ॥ तो हे महादेव ! जो आपका भी संसार तापका हर्ता व रूप से आपकी समताकर्ता है वह हमारा भर्ता होवे ॥ ८ ॥ वरणा नदीके रम्य किनारे संगमेश्वर के समीप में नक्षत्रेश्वर नाम बड़ेभारी लिंग को थाप ॥ ९ ॥ उन्हों ने देवोंके हजार वर्षलों पुरुषों से भी दुष्कर पुरुषों कीसी बड़ी तपस्या किया ॥ १० ॥ उससे संतुष्ट विश्वनाथजी ने उन सबको उत्तम वर दिया जो कि एककी स्त्रियां और एक पतिमें स्थिर चित्तवालीहैं ॥ ११ ॥ विश्वेश्वरजी बोले कि जिससे पहले यह ऐसा अत्यन्त घोर तप ईर्षावश से तुम स्त्रियों करके नहीं सहागया

भवतोपिमहादेव भवतापहरोहियः ॥ रूपेणभवतातुल्यः सनोभर्ताभवत्विति ॥ ८ ॥ लिङ्गंसंस्थाप्यसुमहन्नक्षत्रेश्वरसंज्ञितम् ॥ वरणायास्तटेरम्ये सङ्गमेश्वरसन्निधौ ॥ ९ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तु पुरुषायितसंज्ञितम् ॥ तपस्तप्तंमहत्ताभिः पुरुषैरपिदुष्करम् ॥ १० ॥ ततस्तुष्टोहिविश्वेशो व्यतरद्वरमुत्तमम् ॥ सर्वासामेकपत्नीनामेकत्रस्थिरचेतसाम् ॥ ११ ॥ श्रीविश्वेश्वरउवाच ॥ नक्षान्तंहितपोत्युग्रमेतदन्याभिरीदृशम् ॥ पुराऽबलाभिस्तस्माद्वोनामनक्षत्रमत्रवै ॥ १२ ॥ पुरुषायितसंज्ञेन तप्तंयत्तपसाधुना ॥ भवतीभिस्ततःपुंस्त्वमिच्छयावोभविष्यति ॥ १३ ॥ ज्योतिश्चक्रेसमस्तेऽस्मिन्नग्रगण्याभविष्यथ ॥ मेषादीनाञ्चराशीनां योनयोयूयमुत्तमाः ॥ १४ ॥ ओषधीनांसुधायाश्च ब्राह्मणानांचयःपतिः ॥ पतिमत्योभवत्योपि तेनपत्याशुभाननाः ॥ १५ ॥ भवतीनामिदंलिङ्गं नक्षत्रेश्वरसंज्ञितम् ॥ पूजयित्वानरोगन्ता भवतीलोकमुत्तमम् ॥ १६ ॥ उपरिष्टान्मृगाङ्कस्य लोकोवस्तुभविष्यति ॥ सर्वासान्तारकाणाञ्च मध्येमान्याभविष्यथ ॥ १७ ॥

उससे यहां तुम्हारा नक्षत्र नाम होगा ॥ १२ ॥ और जिससे आपने पुरुषायितनामक अच्छे तप से तपस्या किया उस कारण इच्छा से तुम्हारा पुरुषभाव भी होगा ॥ १३ ॥ व मेषादिराशियों का कारण उत्तम तुम इस सम्पूर्ण ज्योतिश्चक्र में मुख्य होवोगी ॥ १४ ॥ व जो ओषधी अमृत और ब्राह्मणों का स्वामी है उस पति से सुमुखी आपलोग पतिवाली होवेंगी ॥ १५ ॥ और आपके इस नक्षत्रेश्वर लिङ्ग को पूज मनुष्य तुम्हारे उत्तम लोक को जानेवाला होगा ॥ १६ ॥ व चन्द्रमा के ऊपर

तुम्हारा लोक होगा व तुम सब ताराओं के बीचमें बड़ी होवोगी ॥ १७ ॥ जे नक्षत्रों के पूजक और नक्षत्रों के व्रतकर्ता हैं वे नक्षत्रों के समान छबीले होकर तुम्हारे लोक में बसेंगे ॥ १८ ॥ जो काशी में नक्षत्रेश्वर के दर्शन करेंगे उनको नक्षत्र ग्रह और राशियों की पीड़ा कभी न होगी ॥ १९ ॥ अगस्त्यजी बोले कि विष्णु में चित्त है जिनका ऐसे गणों के यों नक्षत्रगण की कथा कहतेही अनन्तर बुधका लोक शिवशर्माके नेत्रों के अतिथिभावको प्राप्तहुआ याने देख पड़ा ॥ २० ॥ शिवशर्मा बोला कि हे विष्णुगणो! बतावो कि जो मेरे मनको बहुत तृप्त करताहै वह यह चन्द्रमा कासा किसका अनूप लोक है ॥ २१ ॥ गण बोले कि हे शिवशर्मन्!

नक्षत्रपूजकायेच नक्षत्रव्रतचारिणः ॥ तेवोलोकेवसिष्यन्ति नक्षत्रसदृशप्रभाः ॥ १८ ॥ नक्षत्रग्रहराशीनां बाधास्तेषांकदाचन ॥ नभविष्यन्तियेकाश्यां नक्षत्रेश्वरवीक्षकाः ॥ १९ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ अतिथित्वमवापनेत्रयो र्बुधलोकःशिवशर्मणस्त्वथ ॥ गणयोर्भगणस्यसंकथांकथयित्रोरितिविष्णुचेतसोः ॥ २० ॥ शिवशर्मोवाच ॥ कस्य लोकोयमतुलो ब्रूतंश्रीभगवद्गणौ ॥ पीयूषभानोरिवमेमनःप्रीणयतेतराम् ॥ २१ ॥ गणावूचतुः ॥ शिवशर्मन्शृणुकथा मेतांपापापहारिणीम् ॥ स्वर्गमार्गविनोदाय तापत्रयविनाशिनीम् ॥ २२ ॥ योसौपूर्वंमहाकान्तिरावाभ्यांपरिवर्णितः ॥ साम्राज्यपदमापन्नो द्विजराजस्तवाग्रतः ॥ २३ ॥ दक्षिणाराजसूयस्य येनात्रिभुवनंकृता ॥ तपस्ततापयोत्युग्रं पद्मा नांदशतीर्दश ॥ २४ ॥ अत्रिनेत्रसमुद्भूतः पौत्रोवैद्रुहिणस्ययः ॥ नाथःसर्वौषधीनांच ज्योतिषांपतिरेवच ॥ २५ ॥ निर्म लानांकलानांच शेवधिर्यश्चगीयते ॥ उद्यन्परोपतापंयः स्वकरैर्गलहस्तयेत् ॥ २६ ॥ मुदंकुमुदिनीनांयस्तनोतिजगता

स्वर्गगली में विनोद के लिये महापापहारिणी- तीन तापविदारिणी इसकथाको सुन ॥ २२ ॥ द्विजराज पद को प्राप्त बड़ा छबीला जो यह पहले हम करके तुम्हारे आगे कहागया ॥ २३ ॥ जिसने त्रिलोक को राजसूययज्ञ का दक्षिणा किया है व जो सौ पद्म बरसलों बहुत घोर तपस्या तपताभया ॥ २४ ॥ व जो अत्रि की आंखसे उपजा व ब्रह्माजी का पोता सब ओषधियों का स्वामी व नक्षत्रों का पति है ॥ २५ ॥ और जो निर्मल कलाओं का निधान गायाजाता है व उगताहुआ

जो आनकी बड़ी तपनि को गल पकड बाहर बहाता है ॥ २६ ॥ व दिशा स्त्री के सुन्दर शृंगार देखने को गोले शीशा के समान जो जगत् के सहित अनारों का आनन्द विस्तारता है ॥ २७ ॥ अन्य बहुत गुण कहने से क्या है इससे चन्द्र के समान आन नहीं है कि जिससे जिसकी कला को सर्वज्ञ शिवजी ने अपने उत्तम अंग याने शिरसे भूषण किया ॥ २८ ॥ और ऐश्वर्य्य के मद से मोहित उसनेही अङ्गिरा के पुत्र, चचेरे भाई व पुरोहित गुरु बृहस्पति की स्त्री ॥ २९ ॥ जो कि तारानाम व रूपवती थी उसको शीघ्र वेग से हरलिया और वह बहुते देवों व ऋषियों करके वरजा भी गया परन्तु रूपवान् था ॥ ३० ॥ इससे ब्राह्मणों के राजा उस चन्द्रमाका

सह ॥ दिग्वधूचारुशृङ्गारदर्शनादर्शमण्डलः ॥ २७ ॥ किमन्यैर्गुणसम्भारैरतोपिनसमंविधोः ॥ निजोत्तमाङ्गेसर्वज्ञः कलांयस्यावतंसयेत् ॥ २८ ॥ बृहस्पतेःसवैभार्यामैश्वर्यमदमोहितः ॥ पुरोहितस्यापिगुरोर्भ्रातुराङ्गिरसस्यवै ॥ २९ ॥ जहारतरसातारां रूपवान्रूपशालिनीम् ॥ वार्यमाणोपिगीर्वाणैर्बहुदेवर्षिभिःपुनः ॥ ३० ॥ नायंकलानिधेर्दोषो द्विजराजस्यतस्यवै ॥ हित्वात्रिनेत्रंकामेन कस्यनोखण्डितंमनः ॥ ३१ ॥ ध्वान्तमेतदभितःप्रसारियत्तच्छमायविधिनाविनिर्मितम् ॥ दीपभास्करकरामहौषधंनाधिपत्यतमसस्तुकिञ्चन ॥ ३२ ॥ आधिपत्यमदमोहितंहितंशंसितंस्पृशतिनोहरेर्हितम् ॥ दुर्जनंविहिततीर्थमज्जनैःशुद्धधीरिवविरुद्धमानसम् ॥ ३३ ॥ धिग्धिगेतदधिकर्द्धिचेष्टितंचंक्रमेक्षणविलक्षितं यतः ॥ वीक्षतेक्षणमचारुचक्षुषाघातितेनविपदःपदेनच ॥ ३४ ॥ कःकामेननिर्जितस्त्रिजगतांपुष्पायुधेनाप्यहोकःको

यह दोष निश्चय नहीं है क्योंकि शिवको छोड़ किसका मन काम से खण्डित नहींहोताहै ॥ ३१ ॥ जो यह सब ओरसे पसरनेवाला अन्धकार है उसके नाश के लिये ब्रह्माजीने दीपक व सूर्य्यरश्मिरूप ओषधि बनाया परन्तु ऐश्वर्य अहङ्कार अन्धकार के लिये कुछ भी नहीं है ॥ ३२ ॥ जो जीवों का हितकारी हरिका सम्बन्धी व कथाओं का कहना व सुनना और निषिद्धकर्म्म बरानाआदि कहागया है वह उसको वैसे नहीं छूता कि जैसे विहित तीर्थ नहाने से शुद्ध है बुद्धि जिसकी वह दुष्ट मन दुर्जन को नहीं छूता है ॥ ३३ ॥ जो अविवेक का नेत्र, बुद्धिनाशक, विपत्तियों का स्थान व जिससे मनुष्य पृथ्वीआदि घूमनासा उलटा देखता याने अहित को

को दूर बहाया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर सन्देह को प्राप्त देवोत्तमों ने तारा से कहा कि सत्य बोलो यह पुत्र चन्द्रमा और बृहस्पति इन दोनों में किसका है ॥ ४३ ॥ यों देवों से पूछी व बहुत लजाती हुई तारा जब न बोली तब उसको अतितेजस्वी बालकने शाप देने का आरम्भ किया ॥ ४४ ॥ उस समय उस कुमार को निवार ब्रह्माने तारासे सन्देह को पूंछा और हाथजोड़े उसने ब्रह्मा से यों कहा कि यह गर्भ चन्द्रमा काहै ॥ ४५ ॥ तब ओषधियों के राजा व प्रजाओं के पति उस चन्द्रमा ने तारा के गर्भ को शिर सूंघ उस बुद्धिमान् बालक का बुध यों नाम किया ॥ ४६ ॥ तदनन्तर तेजरूप और बलकरके सब देवों से अधिक व तपस्या में कियाहै निश्चय

न्नास्तारामूचुःसुरोत्तमाः ॥ सत्यंब्रूहिसुतःकस्य सोमस्याथबृहस्पतेः ॥ ४३ ॥ पृच्छ्यमानायदादेवैर्नाहताराऽतिसत्रपा ॥ तदासाशप्तुमारब्धा कुमारेणातितेजसा ॥ ४४ ॥ तंनिवार्यतदाब्रह्मा तारांपप्रच्छसंशयम् ॥ प्रोवाचप्राञ्जलिःसातंसो मस्येतिपितामहम् ॥ ४५ ॥ तदासमूर्द्धन्युपाघ्राय राजागर्भंप्रजापतिः ॥ बुधइत्यकरोन्नाम तस्यबालस्यधीमतः ॥ ४६ ॥ ततश्चसर्वदेवेभ्यस्तेजोरूपबलाधिकः ॥ बुधःसोमंसमापृच्छ्य तपसेकृतनिश्चयः ॥ ४७ ॥ जगामकाशींनिर्वाणरा शिंविश्वेशपालिताम् ॥ तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठाप्य स्वनाम्नाबुधेश्वरम् ॥ ४८ ॥ तपश्चचारचात्युग्रमुग्रंसंशीलयन्हृदि ॥ व र्षाणामयुतंबालो बालेन्दुतिलकंशिवम् ॥ ४९ ॥ ततोविश्वपतिःश्रीमान् विश्वेशोविश्वभावनः ॥ बुधेश्वरान्महालिङ्गा दाविरासीन्महोदयः ॥ ५० ॥ उवाचचप्रसन्नात्माज्योतीरूपोमहेश्वरः ॥ वरंब्रूहिमहाबुद्धे बुधान्यविबुधोत्तमः ॥ ५१ ॥ तवानेनातितपसा लिङ्गसंशीलनेनच ॥ प्रसन्नोस्मिमहासौम्य नादेयंत्वयिविद्यते ॥ ५२ ॥ इतिश्रुत्वावचःसोथ मेघग

जिसने वह बुध चन्द्रमा से पूंछ ॥ ४७ ॥ विश्वनाथकी पाली व मुक्तिराशी काशीको गया वहां अपने नाम से बुधेश्वर लिङ्ग को थाप वह ॥ ४८ ॥ बालक बाल चन्द्रमा भाल में तिलकसा है जिनके उन कल्याणकर्ता विश्वनाथ को हृदय में ध्यावता हुआ दशसहस्र वर्षतक बड़ा घोरतप करता भया ॥ ४९ ॥ तब विश्वके नायक जगतसुखदायक लक्ष्मीवान् महान् उदयवाले विश्वनाथजी बुधेश्वरनाम महालिङ्ग से प्रकट हुये ॥ ५० ॥ और प्रसन्नमन ज्योतिरूप महेशजी बोले कि हे महाबुद्धे बुध ! आनदेवों में महान् तू वर मांग ॥ ५१ ॥ हे महाशोभन ! तेरे इस तप और लिङ्ग को थाप पूजने से मैं प्रसन्नहूं तुझे कुछ अदेय नहीं याने सब देने योग्य है ॥ ५२ ॥

हित मानता है उस अधिक बढ़ती के व्यापार को धिक्कार है ॥ ३४ ॥ आश्चर्य्य है कि फूल हैं धन्वा जिसका उस कामने तीनोंलोकों में किसको नहीं जीता व कौन क्रोध के वशीभूत नहीं भया व कौन लोभसे नहीं मोहि गया व स्त्रीके नयनभालाने किसके हृदय को नहीं बिदारा व उससे भिन्न होकर कौन विपत्तिको नहीं पहुँचा और अच्छे नेत्रवाला भी कौन राज्यलक्ष्मी को लह अन्धे की पदवी को नहीं प्राप्तहुआ ॥ ३५ ॥ जो कि ऐश्वर्य्य लक्ष्मी अत्यन्त चंचल है उसको पाकर पाप पुण्य कर्म्म कमाया गया वह स्थिर याने अवश्यकर सुख दुःखदायक होताहै उस कारण सदा सज्जनों का हितकारक अच्छा कर्म्म करनाचाहिये यह शास्त्र में प्रसिद्ध है ॥ ३६ ॥ जब उस उद्धटने बृहस्पति के लिये तारा को न दिया तब आजगवनाम याने छाग और गऊ के सींगों से बने धन्वाको लेकर रुद्रजीने सहायता वा पीछे से रक्षा

धस्यवशङ्गतोननचकोलोभेनसम्मोहितः ॥ योषिल्लोचनभल्लभिन्नहृदयःकोनाप्तवानापदं कोराज्यश्रियमाप्यनान्धपद वींयातोपिसल्लोचनः ॥ ३५ ॥ आधिपत्यकमलातिचञ्चलाप्राप्यतांचयदिहार्जितंकिल ॥ निश्चलंसदसदुच्चकैर्हितंकार्य मार्यचरितैःसदैवतत् ॥ ३६ ॥ नयदाङ्गिरसेतारां सव्यसर्जयदुल्बणः ॥ रुद्रोथपार्ष्णिजग्राह गृहीत्वाजगवन्धनुः ॥ ३७ ॥ तेनब्रह्मशिरोनाम परमास्त्रंमहात्मना ॥ उत्सृष्टंदेवदेवायतेनतन्नाशितंततः ॥ ३८ ॥ तयोस्तद्युद्धमभवद्घोरंवैतारका मयम् ॥ ततस्त्वकाण्डब्रह्माण्डभङ्गाद्भीतोभवद्विधिः ॥ ३९ ॥ निवार्यरुद्रंसमरात्संवर्तानलवर्चसम् ॥ ददावाङ्गिरसे तारां स्वयमेवपितामहः ॥ ४० ॥ अथान्तर्गर्भमालोक्य तारांप्राहबृहस्पतिः ॥ मदीयायांनतेयोनौ गर्भोधार्यःकथञ्चन ॥ ४१ ॥ इषीकास्तम्बमासाद्य गर्भंसाचोत्ससर्जह ॥ जातमात्रःसभगवान् देवानामाक्षिपद्वपुः ॥ ४२ ॥ ततःसंशयमाप

किया ॥ ३७ ॥ उस चन्द्रमा महात्मा ने महादेव के लिये ब्रह्मशिरनाम बड़े अस्त्रको छोड़ा तदनन्तर उन्होंने उसको विनाशडाला ॥ ३८ ॥ व उनदोनों का वह तारा के कारण भयंकर युद्ध हुआ उससे ब्रह्माजी अनवसर जगत्प्रलय होने से डरभुतहुये ॥ ३९ ॥ और प्रलयाग्नि के समान तेजवाले रुद्रको संग्राम से निवार आप ब्रह्मा जीनेही बृहस्पति को तारा दिया ॥ ४० ॥ अनन्तर उसके उदर के भीतर गर्भ को देख या जान बृहस्पति ने तारा से कहा कि मेरी योनि में तुम्हकरके किसी भांतिसे गर्भधारने योग्य नहीं है ॥ ४१ ॥ तब उसने वहुत ऊंचे तृण के गुच्छे याने कुंजवनमें जा गर्भ को तजा तब उत्पन्नमात्र उस ऐश्वर्य्यसम्पन्न बालक ने देवों के रूप

अनन्तर मेघों का गम्भीर गर्जन जैसेहो वैसे यों सूखा से सूखी सस्य के जीवनके समान वचन को सुन उस ॥ ५३ ॥ बालक ने नेत्र उघाड़ जौलों आगे देखा तौलों तीन आंखवाले चन्द्रभाल को लिंग में देखा ॥ ५४ ॥ बुध बोला कि पूतात्मानाम वायुरूप या शुद्धचित्त आप के नमस्कारहो हे ज्योतिरूप याने आप से प्रकाशमान ! आपके नमस्कारहो हे जगत्रूप ! रूपों को उल्लंघनकर वर्त्तते याने उनसे विलग आपके नमस्कार हो ॥ ५५ ॥ भक्तों के सब तापनाशक मंगलमूर्ति के नमस्कार हो सर्वज्ञ व सबके कारण आपके नमस्कारहो ॥ ५६ ॥ दीनदयालु, भक्तिसे मिलने योग्य कर्म्मों के फलदायक व तपस्वियों के तप या ज्ञानरूप आप के न-

म्भीरनिःस्वनम् ॥ अवग्रहपरिम्लानसस्यसञ्जीवनोपमम् ॥ ५३ ॥ उन्मील्यलोचनेयावत्पुरःपश्यतिबालकः ॥ तावल्लिङ्गेददर्शाथ त्र्यम्बकंशशिशेखरम् ॥ ५४ ॥ बुधउवाच ॥ नमःपूतात्मनेतुभ्यं ज्योतीरूपनमोस्तुते ॥ विश्वरूप नमस्तुभ्यं रूपातीतायतेनमः ॥ ५५ ॥ नमःसर्वार्तिनाशाय प्रणतानांशिवात्मने ॥ सर्वज्ञायनमस्तुभ्यं सर्वकर्त्रेनमोस्तुते ॥ ५६ ॥ कृपालवेनमस्तुभ्यं भक्तिगम्यायतेनमः ॥ फलदात्रेचतपसां तपोरूपायतेनमः ॥ ५७ ॥ शम्भोशिव शिवाकान्त शान्तश्रीकण्ठशूलभृत् ॥ शशिशेखरसर्वेशशङ्करेश्वरधूर्जटे ॥ ५८ ॥ पिनाकपाणेगिरिशशितिकण्ठ सदाशिव ॥ महादेवनमस्तुभ्यं देवदेवनमोस्तुते ॥ ५९ ॥ स्तुतिंकर्तुंनजानामिस्तुतिप्रियमहेश्वर ॥ तवपादाम्बुजद्वन्द्वे निर्द्वन्द्वाभक्तिरस्तुमे ॥ ६० ॥ अयमेववरोनाथ प्रसन्नोसियदीश्वर ॥ नान्यंवरंवृणेत्वत्तः करुणामृतवारिधे ॥ ६१ ॥ ततः प्राहमहेशानस्तत्स्तुत्यापरितोषितः ॥ रौहिणेयमहाभागसौम्यसौम्यवचोनिधे ॥ ६२ ॥ नक्षत्रलोकादुपरितवलोको

मस्कारहो ॥ ५७ ॥ हे सुखकर सुखस्वरूप पार्वतीनाथ निर्विकार नीलकण्ठ त्रिशूलधारिन् सबके स्वामिन् कल्याणकारिन् ईश, भाररूप जटाधर !॥ ५८॥ हे पिनाकनाम धन्वा संयुत हाथवाले कैलास पर्वतशयन कालकण्ठ सदा कल्याणदायक महादेव ! हे देवों के देव ! आपके नमस्कारहो ॥ ५९ ॥ हे स्तुति के प्यार करनेहार महेश ! मैं स्तुति करने नहीं जानताहूं आपके पदकमल युगल में मेरी दुविधारहित भक्तिहो ॥ ६० ॥ हे दया अमृत के सागर परमेश्वर स्वामिन् ! जो प्रसन्न हो तो यही वर दो आपसे आन कुछ नहीं मांगताहूं ॥ ६१ ॥ तदनन्तर उसकी स्तुति से सन्तुष्ट महेशजी बोले कि हे महाभाग, रौहिणेय याने सौतेली माता रोहिणी के सुखदायक

वचनों के निधान! हे सौम्य! हे सौम्य!॥ ६२ ॥ नक्षत्रलोक के ऊपर तेरा लोक होगा और तू सब ग्रहों के बीच में बड़ी पूजा पावेगा ॥ ६३ ॥ हे बुध! तेरा थापा यह लिंग सबका ज्ञानदायक अज्ञाननाशक और तेरे लोकमें वासदायक है ॥ ६४ ॥ यों कह ऐश्वर्य्यसम्पन्न शङ्कर अन्तर्धान हुये व महादेव के प्रसाद से बुध स्वर्लोक को गया ॥ ६५ ॥ विष्णु के गण बोले कि काशी में बुधेश्वर के पूजने से पाया ज्ञान जिसने वह मनुष्य अथाह संसारसमुद्र को प्राप्त हो भी न डूबेगा अच्छे जनों के नेत्रों का सुख देने को चन्द्रमा से चमकता छबीले मुखवालाहो इस बुधलोक में बसेगा ॥ ६६ ॥ चन्द्रेश्वर के पूर्वओर में बुधेश्वर लिंग के दर्शनकर नर मरणसमयमें

भविष्यति ॥ मध्येसर्वग्रहाणांच सपर्यांलप्स्यसेपराम् ॥ ६३ ॥ त्वयेदंस्थापितंलिङ्गं सर्वेषांबुद्धिदायकम् ॥ दुर्बुद्धिहरणंसौम्य त्वल्लोकवसतिप्रदम् ॥ ६४ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्शम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ बुधःस्वर्लोकमगमद्देवदेवप्रसादतः ॥ ६५ ॥ गणावूचतुः ॥ काश्यांबुधेश्वरसमर्चनलब्धबुद्धिःसंसारसिन्धुमधिगम्यनरोह्यगाधम् ॥ मज्जेन्नसज्जनविलोचनचन्द्रकान्तिः कान्ताननस्त्वधिवसेच्चबुधेऽत्रलोके ॥ ६६ ॥ चन्द्रेश्वरात्पूर्वभागे दृष्ट्वालिङ्गंबुधेश्वरम् ॥ नबुद्ध्याहीयतेजन्तुरन्तकालेपिजातुचित् ॥ ६७ ॥ गणौयावत्कथामित्थं चक्रातेबुधलोकगाम् ॥ तावद्विमानंसंप्राप्तं शुक्रलोकमनुत्तमम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेनत्तत्रबुधलोकयोर्वर्णनन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ * ॥

गणावूचतुः ॥ शिवशर्मन्महाबुद्धे शुक्रलोकोयमद्भुतः ॥ दानवानांचदैत्यानां गुरुरत्रवसेत्कविः ॥ १ ॥ पीत्वावर्षसहस्रंवै कणधूमंसुदुःसहम् ॥ यःप्राप्तवान्महाविद्यां मृत्युसञ्जीवनींहरात् ॥ २ ॥ इमांविद्यांनजानाति देवाचार्योतिदुष्क

भी बुद्धि से हीन कभी नहीं होताहै ॥ ६७ ॥ विष्णु के गणों ने जौलों यों बुधलोककी कथा किया तौलों विमान, अतिउत्तम शुक्रलोक को पहुँचा ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेनक्षत्रबुधलोकवर्णनन्नामपञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सोलह के अध्यायमें लखिय सहित विस्तार । शुक्रलोक वर्णन तथा यथा शुक्र अवतार ॥ विष्णुजीके गण बोले कि हे महाबुद्धे शिवशर्मन्! यह अद्भुत शुक्रलोक है यहां दानवों और दैत्यों का गुरु शुक्र बसै है ॥ १ ॥ जिसने हजारवर्षलों कनों व भूसी का धुवां जो कि बड़े दुःख से सहाजाता है उसको पीकर महा

देव से मृत्युसंजीविनी नाम महाविद्या को पाया है ॥ २ ॥ शिव पार्वती कार्तिकेय और गणेश जी को छोंड़ दुःख से मिलनेवाली इस विद्या को देवगुरु बृहस्पति भी नहीं जानते हैं ॥ ३ ॥ शिवशर्मा बोला कि शुक्र इस नाम से कहाता वह कौन है जिसका यह उत्तम लोक है व उसने कैसे शिवसे सञ्जीवनीविद्या पाया है ॥ ४ ॥ हे प्रभो ! हे देवौ ! जो मुझ में प्रीति है तो यह कहो तदनन्तर उन देवों ने शुक्र की उत्तम कथा को कहा कि ॥ ५ ॥ जिसको सुन श्रद्धासमेत जन अपमृत्यु से छूटते हैं व भूत प्रेत और पिशाचों से डर भी नहीं होता है ॥ ६ ॥ एक समयमें बिदारने के न योग्य पर्वतव्यूह व वज्रव्यूहसे बनीं सेनाओं के स्वामी अन्धकासुर

राम् ॥ ऋतेमृत्युञ्जयात्स्कन्दात्पार्वत्यागजवक्त्रतः ॥ ३ ॥ शिवशर्मोवाच ॥ कोसौशुक्रइतिख्यातो यस्यायंलोकउत्तमः ॥ कथंतेनचविद्याप्ता मृत्युसञ्जीवनीहरात् ॥ ४ ॥ आचख्यातामिदंदेवौ यदिप्रीतिर्मयिप्रभू ॥ ततस्तौस्माहतुर्देवौशुक्रस्यपरमांकथाम् ॥ ५ ॥ यांश्रुत्वाचापमृत्युभ्योहीयन्तेश्रद्धयायुताः ॥ भूतप्रेतपिशाचेभ्योनभयंचापिजायते ॥ ६ ॥ आजौप्रवर्तमानायामन्धकान्धकवैरिणोः ॥ अनिर्भेद्यागिरिव्यूहवज्रव्यूहाधिनाथयोः ॥ ७ ॥ अपसृत्यततोयुद्धादन्धकः शुक्रसंनिधिम् ॥ अधिगम्यबभाषेदमवरुह्यरथात्ततः ॥ ८ ॥ भगवंस्त्वामुपाश्रित्यवयंदेवांश्चसानुगान् ॥ मन्यामहेतृणैस्तुल्यान्रुद्रोपेन्द्रादिकानपि ॥ ९ ॥ कुञ्जराइवसिंहेभ्योगरुडेभ्यइवोरगाः ॥ अस्मत्तोबिभ्यतिसुरागुरोयुष्मदनुग्रहात् ॥ १० ॥ वज्रव्यूहमनिर्भेद्यांविविशुर्दैत्यदानवाः ॥ विधूयप्रमथानीकंह्रदंतापार्दिताइव ॥ ११ ॥ वयंत्वच्छरणंभूत्वा पर्वताइवनिश्चलाः ॥ स्थित्वाचरामानिःशङ्काब्राह्मणेन्द्रमहाहवे ॥ १२ ॥ आत्मभावेनचवयंपादौतवसुखप्रदौ ॥ स

और महादेव का संग्राम होतेही ॥ ७ ॥ उस युद्ध से भागकर शुक्र के समीपमें जाय रथ से उतर अन्धक ने यह कहा कि ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! आपका आसरा कर हम लोग सेवकों समेत रुद्र उपेन्द्रादि देवों को तृणके समान मानते हैं ॥ ९ ॥ हे गुरो ! आपकी दया से हमसे देव यों डरते हैं कि जैसे सिंहों से हाथी और गरुड़ों से सर्प्प डरते हैं ॥ १० ॥ तापसे पीड़ितजन जैसे जलभरे कुण्ड में वैसे दैत्य और दानव शिवगण सेना को कँपाकर बिदारने के न योग्य वज्रव्यूह में पैठे हैं ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मणेन्द्र ! हम आपकी सहायता को प्राप्तहो पर्वत के समान अचल टिक निःशंकहो संग्राममें फिरते हैं ॥ १२ ॥ व स्त्री पुत्र समेत हम प्राप्त भक्तिसे रात दिन आप

के सुखद पावों को सेवते हैं ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मण ! प्रसन्न हो आप शरण में आये हम सवों की सब ओर से रक्षाकरो हुंड तुहुंड कुजंभ और जंभ को देखो ॥ १४ ॥ व पाक कार्त्तस्वन विपाक पाकहारी और वह चन्द्रदमन जो कि शूर व शूर देवों का घाती है ॥ १५ ॥ व मृत्यु के मथनेवाले वड़े वली शिवगणों से दबाया गया है उसको तथा द्रविड़ देश के जनोंसे काटे चन्दन के समान गणोंके मारेपड़े अन्य दैत्योंको भी देखो ॥ १६ ॥ और पहले सहस्र वर्षलों कनोंका धुवां पीकर आपने जो श्रेष्ठ विद्या पाया है उसका यह अवसर आया है ॥ १७ ॥ इससे दैत्यों को जियातेहुये तुम्हारी विद्याका वह फलहै जो कि आपके जिवाये इनको सब शिवगण देखें ॥

दाराःससुताश्चैवशुश्रूषामोदिवानिशम् ॥ १३ ॥ अभिरक्षाभितोविप्रप्रसन्नःशरणागतान् ॥ पश्यहुण्डंतुहुण्डंचकुजम्भंजम्भमेवच ॥ १४ ॥ पाकंकार्तस्वनंचैवविपाकंपाकहारिणम् ॥ तंचन्द्रदमनंशूरंशूरामरविदारणम् ॥ १५ ॥ प्रमथैर्भीमविक्रान्तैःक्रान्तंमृत्युप्रमाथिभिः ॥ सूदितान्पतितांश्चैवद्राविडैरिवचन्दनान् ॥ १६ ॥ यापीत्वाकणधूमंवैसहस्रंशरदांपुरा ॥ वराविद्यात्वयाप्राप्ता तस्याःकालोयमागतः ॥ १७ ॥ अथविद्याफलंतत्ते दैत्यान्सञ्जीवयिष्यतः ॥ पश्यन्तुप्रमथाःसर्वे त्वयासञ्जीवितानिमान् ॥ १८ ॥ इत्यन्धकवचःश्रुत्वा स्थिरधीर्भार्गवोमुनिः ॥ किञ्चित्स्मितंतदाकृत्वा दानवाधिपमब्रवीत् ॥ १९ ॥ दानवाधिपतेसर्वं तथ्यंयद्भाषितंत्वया ॥ विद्योपार्जनमेतद्धि दानवार्थंमयाकृतम् ॥ २० ॥ पीत्वावर्षसहस्रंवै कणधूमंसुदुःसहम् ॥ एषाप्राप्तेश्वराद्विद्या बान्धवानांसुखावहा ॥ २१ ॥ एतयाविद्ययासोहं प्रमथैर्मथितान्रणे ॥ उत्थापयिष्येम्लानानि धान्यान्यम्बुधरोयथा ॥ २२ ॥ निर्व्रणान्नीरुजःस्वस्थान् सुप्त्वेवपुनरुत्थि

१८॥ यों अन्धक का वचन सुन अडोलबुद्धि व भृगुवंश में उत्पन्न शुक्रमुनि ने तब कुछ मन्दहास कर दानवराज से कहा ॥ १९ ॥ कि हे दानवों के महाराज ! जो तुमने कहा वह सब सत्य है क्योंकि मैंने दानवो के अर्थ यह विद्या का संग्रह किया है ॥ २० ॥ व हजार बरसलों वहुत दुःसह कनों के धूम को पी बांधवों के सुख पहुँचानेवाली यह विद्या शिवजी से प्राप्तभई है ॥२१॥ व मैं संग्राम में गणों के मारे दैत्यो को यों उठाऊंगा कि जैसे मेघ सूखे धानों को उठाता है ॥ २२॥

हे राजन् ! इसी क्षण में तुम घावहीन अरोग स्वस्थ और सोकर उठे से उठे दानवों के देखनेवाले हो ॥ २३ ॥ यों दानवराज से कह एक एक दैत्य का उद्दे-शकर शुक्र ने विद्या को जपा तब वे हथियार लिये यों उठे ॥ २४॥ जैसे सज्जनों करके अभ्यास किये वेद व वर्षा समय में मेघ और जैसे बड़ी विपत्ति में ब्राह्मणों के लिये श्रद्धासे दिये धन फल देने को उठते हैं ॥ २५ ॥ जिवाये गये उन तुहुण्ड आदि बड़े असुरोंको देख वे दैत्य पानी से पूर्ण मेघ की नाईं गर्जे ॥ २६ ॥ तब शुक्रके जिवाये उन दानवों को देख गणेश्वरोंने आपस में यों कहा कि इसभांतिसे महादेव को जनाना चाहिये ॥ २७ ॥ व गणेश्वरों के अद्भुत रूप उस युद्धयज्ञ

तान् ॥ अस्मिन्मुहूर्त्तेद्रष्टासि दानवानुत्थितान्नृप ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वादानवपतिं विद्यामावर्त्तयत्कविः ॥ एकैकंदैत्यमुद्दि श्य तउत्तस्थुर्धृतायुधाः ॥ २४ ॥ वेदाइवसदभ्यस्ताः समयेवायथाम्बुदाः ॥ ब्राह्मणेभ्योयथादत्ताः श्रद्धयार्थामहापदि ॥ २५ ॥ उज्जीवितांस्तुतान्दृष्ट्वा तुहुण्डाद्यान्महासुरान् ॥ विनेदुःपूर्वदेवास्ते जलपूर्णाइवाम्बुदाः ॥ २६ ॥ शुक्रेणोज्जी वितान्दृष्ट्वा दानवांस्तान्गणेश्वराः ॥ विज्ञाप्यमेवदेवेशेह्येवंतेऽन्योन्यमब्रुवन् ॥ २७ ॥ आश्चर्यरूपेप्रमथेश्वराणां तस्मिंस्तथावर्त्ततियुद्धयज्ञे ॥ अमर्षितोभार्गवकर्मदृष्ट्वा शिलादपुत्रोभ्यगमन्महेशम् ॥ २८ ॥ जयेतिचोक्त्वाजययोर्निं मुग्रमुवाचनन्दीकनकावदातम् ॥ गणेश्वराणांरणकर्मदेवदेवैश्चसेन्द्रैरपिदुष्करंयत् ॥ २९ ॥ तद्भार्गवेणाद्यकृतंवृथानः सञ्जीव्यतानाजिमृतान्विपक्षान् ॥ आवर्त्यविद्यांमृतजीवदात्रीमेकैकमुद्दिश्यसहेलमीश ॥ ३० ॥ तुहुण्डहुण्डादिकुजम्भ जम्भविपाकपाकादिमहासुरेन्द्राः ॥ यमालयादद्यपुनर्निवृत्ताविद्रावयन्तःप्रमथांश्चरन्ति ॥ ३१ ॥ यदिह्यसौदैत्यवरान्नि

के वैसे वर्तमान होतेही शुक्र का कर्म्म देख कुपित नन्दीश्वरजी ईश्वरके सम्मुख गये ॥ २८ ॥ जय जय यों कह जीति के कारण सुवर्णसे सुन्दर शिव से नन्दी-श्वरजी बोले कि हे देव ! गणेश्वरोंका संग्राम कर्म्म जो कि इन्द्र समेत देवोंकाभी दुष्कर है ॥ २९ ॥ हे ईश ! लीलासहित जैसे हो वैसे शुक्रने एक एकको उद्देशकर मृतसंजीविनी विद्याको जप संग्राममें मरे उन वैरियोंको जिला आज हमारे उस कर्म्मको वृथा कियाहै ॥ ३० ॥ आज यमके घरसे फिर लौटे तुहुण्ड हुण्ड कुजम्भ जम्भ

विपाक और पाक आदि महादानवेन्द्र रणमें गणेश्वरोंको भगातेहुये विचरते हैं ॥ ३१ ॥ हे महेश ! जो यह मारे दैत्यों को बार बार यहां जिलावेगा तो हम गणेश्वरों की जीति व शान्ति भी कैसे होगी ॥ ३२ ॥ यों गणनायक नन्दीश्वर करके कहेगये व गणेश्वरों के स्वामी हँसतेहुये शिवजी, तब सब गणेशों के राजा उस नन्दी से बोले ॥ ३३ ॥ हे नन्दिन् ! बहुतही वेगवान् तुम जावो और जैसे बाज लवाके अंडेसे उपजे बच्चे को वैसे दैत्यों के बीच से ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्र को शीघ्र उठालावो ॥ ३४ ॥ बैल और सिंहकासा शब्द है जिनका वे यों शिवसे कहेहुये नन्दीश्वरजी शीघ्र सेना में पैठकर वहां गये जहां भृगुवंशके दीपक शुक्रजी विद्यमान थे ॥ ३५ ॥ व

रस्तान्सञ्जीवयेदत्रपुनःपुनस्तान् ॥ जयःकुतोनोभवितामहेशगणेश्वराणांकुतएवशान्तिः ॥ ३२ ॥ इत्येवमुक्तःप्रमथेश्वरेणसनन्दिनावैप्रमथेश्वरेशः ॥ उवाचदेवःप्रहसंस्तदानींतंनन्दिनंसर्वगणेशराजम् ॥ ३३ ॥ नन्दिन्प्रयाहित्वरितोतिमात्रंद्विजेन्द्रवर्यंदितिनन्दनानाम् ॥ मध्यात्समुद्धृत्यतथानयाशुश्येनोयथालावकमण्डजातम् ॥ ३४ ॥ सएवमुक्तोवृषभध्वजेननन्नादनन्दीवृषसिंहनादः ॥ जगामतूर्णञ्चविगाह्यसेनांयत्राभवद्भार्गववंशदीपः ॥ ३५ ॥ तंरक्ष्यमाणंदितिजैःसमस्तैःपाशासिवृक्षोपलशैलहस्तैः ॥ विक्षोभ्यदैत्यान्बलवान्जहारकाव्यंसनन्दीशरभोयथेभम् ॥ ३६ ॥ स्रस्ताम्बरंविच्युतभूषणंच विमुक्तकेशंबलिनागृहीतम् ॥ विमोचयिष्यन्तइवानुजग्मुः सुरारयःसिंहरवान्सृजन्तः ॥ ३७ ॥ दम्भोलिशूलासिपरश्वधानामुद्दण्डचक्रोपलकम्पनानाम् ॥ नन्दीश्वरस्योपरिदानवेन्द्रावर्षंववर्षुर्जलदाइवोग्रम् ॥ ३८ ॥ तंभार्गवंप्राप्यगणाधिराजोमुखाग्निनाशस्त्रशतानिदग्ध्वा ॥ आयातप्रवृद्धेऽसुरदेवयुद्धेभवस्यपार्श्वेऽय

पाश तलवार वृक्ष पत्थर और पर्वत हैं हाथों मे जिनके उन सब दैत्यों से रखाये जाते उस शुक्र को बलवान् वे नन्दीश्वरजी दैत्यों को मथ यों हरलाये जैसे हाथी को शरभ हरता है ॥ ३६ ॥ बलवान् से पकड़े गये व नीचे गिड़े कपड़े व चुये भूषण और छूटे हैं बाल जिसके उस शुक्र को छुडाते से वीर गर्जित शब्दो को सिरजते दैत्य भी पीछे दौड़े ॥ ३७ ॥ व मेघों की नाई दानवेन्द्रों ने नन्दीश्वरके ऊपर वज्र त्रिशूल तलवार परसा व बहुत प्रचण्ड चक्र पत्थर और कॅपानेवाले वायु सम्बन्धी अस्त्रों की घोर वर्षा किया ॥ ३८ ॥ व व्याकुल किया शत्रुसेन को जिसने वह गणों के नायक नन्दीश्वरजी उस शुक्र को पा मुख की आग से अस्त्रों के

सैकड़ों को जलाकर बढ़ेहुये देव दैत्य युद्धमें शिवके पासमें आये ॥ ३९ ॥ हे भगवन् ! वह शुक्र यहहै यों उन नन्दी ने शीघ्र शिवको जनाया और उन महादेवने जैसे पवित्र जनकी दीहुई पूजा को वैसे शुक्र को गह लिया ॥ ४० ॥ व कुछ भी न कह याने चुपचाप उन जगत्रक्षक ने फलकी नाई शुक्रको मुख में डाल दिया तब उन सब दैत्यों ने ऊंचेस्वर से बहुत खेदवाले हा हा शब्दको छोड़ा यानेकिया ॥ ४१ ॥ जब शिवजी से शुक्र निगलेगये तब दैत्य जन यों जीत से निराशहुये कि जैसे सूंड़िसे हीन हाथी विना सींग के बैल ॥ ४२ ॥ देह से हीन जीवसमूह पढ़ने से रहित ब्राह्मण उद्यमहीन सज्जन भाग्यवर्जित उद्यम ॥ ४३ ॥ पति से हीनस्त्री

थितारिसैन्यः ॥ ३९ ॥ अयंसशुक्रोभगवन्नितीदंनिवेदयामासभवायशीघ्रम् ॥ जग्राहशुक्रंसचदेवदेवोयथोपहारंशुचिनाप्रदत्तम् ॥ ४० ॥ नकिञ्चिदुक्त्वासहिभूतगोप्ताचिक्षेपवक्त्रेफलवत्कवीन्द्रम् ॥ हाहारवस्तैरसुरैःसमस्तैरुच्चैर्विमुक्तोहहहेतिभूरि ॥ ४१ ॥ काव्येनिगीर्णेगिरिजेश्वरेणदैत्याजयाशारहिताबभूवुः ॥ हस्तैर्विमुक्ताइववारणेन्द्राःशृङ्गैर्विहीनाइवगोवृषाश्च ॥ ४२ ॥ शरीरहीनाइवजीवसङ्घाद्दिजायथाचाध्ययनेनहीनाः ॥ निरुद्यमाःसत्त्वगुणायथावैयथोद्यमाभाग्यविवर्जिताश्च ॥ ४३ ॥ पत्याविहीनाश्चयथैवयोषायथाविपक्षाइवमार्गणौघाः ॥ आयूंषिहीनानियथैवपुण्यैर्वृत्तेनहीनानियथाश्रुतानि ॥ ४४ ॥ विनायथावैभवशक्तिमेकांभवन्तिहीनाःस्वफलैःक्रियौघाः ॥ तथाविनातंद्विजवर्यमेकंदैत्याजयाशाविमुखाबभूवुः ॥ ४५ ॥ नन्दिनापहृतेशुक्रेगिलितेचविषादिना ॥ विषादमगमन्दैत्याहीयमानरणोत्सवाः ॥ ४६ ॥ तान्वीक्ष्यविगतोत्साहानन्धकःप्रत्यभाषत ॥ कविंविक्रम्यनयतानन्दिनावञ्चितावयम् ॥ ४७ ॥ तनूर्विनाहृताःप्राणाःस

विना परके बाणसमूह पुण्यों से हीन आयु अच्छे आचार विचार से रहित पढ़ना सुनना ॥ ४४ ॥ और जैसे विश्वनाथकी एक शक्ति विना सब क्रियासमूह अपने फलों से हीन होते हैं वैसे वे दैत्य एक उस ब्राह्मणश्रेष्ठ विना जीति की आशासे विमुख हुये ॥ ४५ ॥ व नन्दीश्वर के हरे शुक्र को शिवके निगलतेही हीनहुआ संग्राम का उत्सव जिनका वे दैत्य विषाद को प्राप्त भये ॥ ४६ ॥ और उन उत्साहरहितों को देख अन्धक उनके प्रति बोला कि उद्यमकर या दौड़ शुक्रको लेजाते

नन्दी करके हम सब छलेगये ॥ ४७ ॥ क्योंकि उसने आज हम सब के शरीरों को छोड़ प्राणों को हरलिया व धीरता शूरता ज्ञान यश उत्साह तेज और उद्यम ॥ ४८ ॥ ये सब हमारे एकही साथ तबहीं हरे जब एक शुक्रजी हरगये उन हमको धिक् है कि जिन्हों ने अपने कुलपूज्य व ब्राह्मणों के कुल में उत्तम व सब कामों में समर्थ व रक्षक और गुरु को विपत्ति में न बचाया ॥ ४९ ॥ उससे धीरजधर तुम लोग यहां शत्रुओं से लड़ो और मैं नन्दी समेत सब शिवगणों को मारूंगा ॥ ५० ॥ व आजही इन्द्रादि देवों के साथ अपने अधीनहुये इन गणों को मार शुक्रको यों छुड़ाऊंगा कि जैसे योगीजन जीव को कर्म्मों से छुड़ाता है ॥ ५१ ॥ और जो

वैषामद्यतेननः ॥ धैर्यंवीर्यंगतिःकीर्तिःसत्त्वंतेजःपराक्रमः ॥ ४८ ॥ युगपन्नोहृतंसर्वमेकस्मिन्भार्गवेहृते ॥ धिगस्मान् कुलपूज्योयैरेकोपिकुलसत्तमः॥गुरुःसर्वसमर्थश्चत्राताऽत्रातोनचापदि ॥ ४९ ॥ तद्धैर्यमवलंब्येहयुध्यध्वमरिभिःसह ॥ सूदयिष्याम्यहंसर्वान्प्रमथान्सहनन्दिना ॥ ५० ॥ अद्यैतान्विवशान्हत्वासहदेवैःसवासवैः ॥ भार्गवंमोचयिष्यामि जीवंयोगीवकर्मतः ॥ ५१ ॥ सचापियोगीयोगेनयदिनामस्वयंप्रभुः ॥ शरीरात्तस्यनिर्गच्छेदस्माकंशेषपालिता ॥ ५२ ॥ इत्यन्धकवचःश्रुत्वादानवामेघनिःस्वनाः ॥ प्रमथानर्दयामासुर्मर्तव्येकृतनिश्चयाः ॥ ५३ ॥ सत्यायुषिननोजातुशक्ताः स्युःप्रमथाबलात् ॥ असत्यायुषिकिंगत्वात्यक्तास्वामिनमाहवे ॥ ५४ ॥ येस्वामिनंविहायाजौबहुमानधनाजनाः ॥ यान्तितेयान्तिनियतमन्धतामिस्रमालयम् ॥ ५५ ॥ अयशस्तमसाख्यातिंमलिनीकृत्यभूरिशः ॥ इहामुत्रापिसु खिनोनस्युर्भग्नारणाजिरात् ॥ ५६ ॥ किंदानैःकिंतपोभिश्चकिंतीर्थपरिमज्जनैः ॥ धरातीर्थेयदिस्नातंपुनर्भवमला

वे प्रसिद्ध योगीराज समर्थ आपही योगबल से उन शिवके शरीर से निकलेंगे तो हम सब बचे लोगों के रक्षक होंगे ॥ ५२ ॥ यों अन्धक का वचन सुन मरने में किया निश्चय जिन्हों ने उन मेघसे गर्जतेहुये दैत्यों ने शिवगणों को पीड़ितकिया ॥ ५३ ॥ जो हमारा जीवन है तो रुद्रगण बल से मारने को समर्थ न होंगे और आयु के न होतेही संग्राम में स्वामी को छोड़ भागने से क्या है ॥ ५४ ॥ क्योंकि बहुतमान धनवाले जो लोग रण में स्वामी को छोड़ जाते हैं वे नियम किये गये अन्धतामिस्र स्थान को जाते हैं ॥ ५५ ॥ व संग्राम आगन से भागे लोग अयश अन्धकार से कीर्त्तिको बहुत मलिनकर इस उस लोकमें भीसुखी न होंगे ॥ ५६ ॥

का

अ

और जो फिर संसार में जन्म लेने रूप मलके नाशनेवाले युद्धभूमि तीर्थ में नहाया गया तो दान तप और आन तीर्थस्नान करने से क्याहै ॥ ५७ ॥ यों आपुस में भलीभांति से विचार धार वे दैत्य दानवलोग रण में नगारा बजाय गणों को मथने लगे ॥ ५८ ॥ तहां बाण तलवार वज्रसमूह कटकट शब्दवाले पत्थरों के यन्त्र भुशुण्डी (क्रमसे ऊंचे लोहकीलों से जड़ी लकड़ी या बन्दूख) गुफना शक्ति भाला फरसा ॥ ५९ ॥ खट्वांग (एक पावा समेत खटिया की पाटी) पट्टिश त्रिशूल लाठी और मुसलोंसे परस्पर बहुत मारते हुये युद्ध करते भये ॥ ६० ॥ व खींचे धन्वा उड़ते बाण भिन्दिपाल और भुशुण्डी जो कि विष से भरी हैं उनका शब्दहुआ ॥

पहे ॥ ५७ ॥ संप्रधार्येतितेऽन्योन्यंदैत्यास्तेदनुजास्तथा ॥ ममन्थुःप्रमथानाजौरणभेरीर्निनाद्यच ॥ ५८ ॥ तत्रबाणासिवज्रौघैःकटङ्कटशिलामयैः ॥ भुशुण्डीभिन्दिपालैश्चशक्तिभल्लपरश्वधैः ॥ ५९ ॥ खट्वाङ्गैःपट्टिशैःशूलैर्लकुटैर्मुसलैरलम् ॥ परस्परमभिघ्नन्तःप्रचक्रुःकदनंमहत् ॥ ६० ॥ कार्मुकाणांविकृष्टानांपततांचपतत्रिणाम् ॥ भिन्दिपालभुशुण्डीनांक्ष्वेडितानांरवोऽभवत् ॥ ६१ ॥ रणतूर्यनिनादैश्चगजानांबहुबृंहितैः ॥ हेषारवैर्हयानाञ्चमहान्कोलाहलोऽभवत् ॥ ६२ ॥ प्रतिस्वनैरवापूरिद्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ अभीरूणाञ्चभीरूणांमहारोमोद्गमोऽभवत् ॥ ६३ ॥ गजवाजिमहारावस्फुटच्छब्दग्रहाणिच ॥ भग्नध्वजपताकानिक्षीणप्रहरणानिच ॥ ६४ ॥ रुधिरोद्गारचित्राणिव्यश्वहस्तिरथानिच ॥ पिपासितानिसैन्यानिमुमूर्छुरुभयत्रवै ॥ ६५ ॥ दृष्ट्वासैन्यञ्चप्रमथैर्भज्यमानमितस्ततः ॥ दुद्रावरथमास्थायस्वयमेवान्धकोगणान् ॥ ६६ ॥ शरवज्रप्रहारैस्तैर्वज्राघातैर्नगाइव ॥ प्रमथानेशिरेवातैर्निस्तोयाइवतोयदाः ॥ ६७ ॥

६१ ॥ व युद्ध की तुरहियों का बाजना हाथियों का चिघड़ना और घोड़ों का हिनहिनाना इन सबसे बड़ा कोलाहल भया ॥ ६२ ॥ जो पृथ्वी और द्युलोक का बीच है वह प्रति शब्दों से भरगया व सडर निडर सबजनों के रोमों का उठनाहुआ ॥ ६३ ॥ हाथी घोड़ों के बड़े शब्दसे फूटे कानवाली टूटी ध्वजा पताकायें व हीनहुये हथियार जिनके ॥ ६४ ॥ व रुधिर बहने से विचित्र, हाथी घोड़ा रथों से रहित और प्यासी सेनायें भी दोनों ओर मूर्च्छित हुई ॥ ६५ ॥ व गणों करके ऐसी वैसी बिदारी सेना को देख रथ में चढ़ अन्धक आपही गणों के सामने दौड़ा ॥ ६६ ॥ व विना जल के मेघों की नाईं व वज्र के घात से पर्वतों के समान उन बाण वज्रोंके प्रहारों

से रुद्रगण नष्टहुये ॥ ६७ ॥ तब अन्धक ने आते जाते दूर और लगे टिके जनको देख एक एक को जितने रोम हैं उतने बाणों से ताड़ित किया ॥ ६८ ॥ व गणेश कार्त्तिकेय नन्दी सोमनन्दी नैगमेय शाख और विशाख जो कि बहुत बलीहैं ॥ ६९ ॥ इत्यादि दारुण गणोंने जो कि त्रिशूल शक्ति बाणसमूहों की धारा बरसने वाले थे उन्हों ने अन्धक को भी अन्धा किया ॥ ७० ॥ तदनन्तर रुद्रगण और दानवदलमें बड़ा हल्लाहुआ उस महान्शब्द से शम्भु के उदर में टिके शुक्रजी ॥ ७१ ॥ जोकि विना गलीके वायुकी नाईं छेद खोजते फिरतेथे वह सात पाताल समेत सात लोकोंको रुद्रकी देहमें देखताभया ॥ ७२ ॥ व ब्रह्मा विष्णु इन्द्र सूर्य्य व अप्सराओं के

यान्तमायान्तमालोक्यदूरस्थंनिकटस्थितम् ॥ प्रत्येकंरोमसंख्याभिर्व्यधाद्बाणैस्तदान्धकः ॥ ६८ ॥ विनायकेनस्कन्देननन्दिनासोमनन्दिना ॥ नैगमेयेनशाखेनविशाखेनबलीयसा ॥ ६९ ॥ इत्याद्यैस्तुगणैरुग्रैरन्धकोप्यन्धकीकृतः ॥ त्रिशूलशक्तिबाणौघधारासम्पातपातिभिः ॥ ७० ॥ ततःकोलाहलोजातःप्रमथासुरसैन्ययोः ॥ तेनशब्देनमहताःशुक्रः शम्भूदरेस्थितः ॥ ७१ ॥ छिद्रान्वेषीभ्रमन्सोथविनिकेतोयथानिलः ॥ सप्तलोकान्सपातालान्रुद्रदेहेव्यलोकयत् ॥ ७२ ॥ ब्रह्मनारायणेन्द्राणामादित्याप्सरसांतथा ॥ भुवनानिविचित्राणियुद्धञ्चप्रमथासुरम् ॥ ७३ ॥ सवर्षाणांशतंकुक्षौभवस्यपरितोभ्रमन् ॥ नतस्यददृशेरन्ध्रंशुचेरन्ध्रंखलोयथा ॥ ७४ ॥ शाम्भवेनाथयोगेनशुक्ररूपेणभार्गवः ॥ चस्कन्दाथननामापिततोदेवेनभाषितः ॥ ७५ ॥ शुक्रवन्निःसृतोयस्मात्तस्मात्त्वंभृगुनन्दन ॥ कर्मणानेनशुक्रस्त्वंममपुत्रोसिगम्यताम् ॥ ७६ ॥ जठरान्निर्गतेशुक्रेदेवोपिमुमुदेतराम् ॥ भ्रमन्श्रेयोभवद्यन्मेनमृतोजठरेद्विजः ॥ ७७ ॥ इत्येव

अद्भुत लोक व गण और दानवों के युद्धको भी ॥ ७३ ॥ सैकड़ों वर्षतक शिवकी कोखमें चारोंतरफ घूमतेहुये उन्होंने उन शिवके छिद्रको न देखा जैसे पवित्रजन के छिद्रको दुष्ट नहीं देखता ॥ ७४ ॥ और शुक्रजी शम्भुकी कृपासे पाये उपाय करके वीर्य्यरूप से निकले अनन्तर नमस्कार भी करतेभये व महादेवसे योंकहे गये ॥ ७५ ॥ कि हे भृगुनन्दन ! जिरासे तुम शुक्रके समान निकले हो उससे जावो इस कर्म्म से शुक्रनाम तुम मेरे पुत्रहो ॥ ७६ ॥ पेटसे शुक्रके निकलतेही

महादेव भी बहुतही आनन्दित हुये कि जो उदरमें घूमता हुआ ब्राह्मण न मरा यह हमको पुण्यहुई ॥ ७७ ॥ यों महादेवसे कहे सूर्य्यके समान तेजवाले शुक्रजी जैसे मेघों की पंक्तिमें चन्द्रमा पैठता है वैसे दैत्योंके दलमें पैठगये ॥ ७८ ॥ और जैसे चन्द्रमाके उदय में लहरों की मालावाला महासमुद्र आनन्द पाताहै वैसे शुक्र के उदय से उस दानव सैन्यसागर ने आनन्द पाया ॥ ७९ ॥ व अन्धक और महादेव के महासंग्राम के होतेही वही भार्गवनन्दन यों शुक्रनाम से हुये ॥ ८० ॥ हे अच्छेव्रतवाले शिवशर्म्मन् ! शुक्रने जैसे शम्भुकी दयासे मृतसंजीविनीनाम उस उत्तमविद्याको पाया वह सुनो ॥ ८१ ॥ विष्णुके गण बोले कि पहले यह भृगुवंशी शुक्र अण्डज स्वे-

मुक्तोदेवेनशुक्रोर्कसदृशद्युतिः ॥ विवेशदानवानीकंमेघमालांयथाशशी ॥ ७८ ॥ शुक्रोदयान्मुदंलेभेसदानवमहार्णवः ॥ यथाचन्द्रोदयेहर्षमूर्मिमालीमहोदधिः ॥ ७९ ॥ अन्धकान्धकहन्त्रोर्वैवर्तमानेमहाहवे ॥ इत्थंनाम्नाभवच्छुक्रःसवैभार्गवनन्दनः ॥ ८० ॥ यथाचविद्यांतांप्रापमृतसञ्जीवनींपराम् ॥ शम्भोरनुग्रहात्काव्यस्तन्निशामयसुव्रत ॥ ८१ ॥ गणावूचतुः ॥ पुराऽसौभृगुदायादोगत्वावाराणसींपुरीम् ॥ अण्डजस्वेदजोद्भिज्जजरायुजगतिप्रदाम् ॥ ८२ ॥ संस्थाप्यलिङ्गंश्रीशम्भोःकूपंकृत्वातदग्रतः ॥ बहुकालंतपस्तेपेध्यायन्विश्वेश्वरंप्रभुम् ॥ ८३ ॥ राजचम्पकधत्तूरकरवीरकुशेशयैः ॥ मालतीकर्णिकारैश्चकदम्बैर्बकुलोत्पलैः ॥ ८४ ॥ मल्लिकाशतपत्रीभिःसिन्दुवारैःसकिंशुकैः ॥ अशोकैःकरुणैःपुष्पैःपुन्नागैर्नागकेसरैः ॥ ८५ ॥ क्षुद्राभिर्माधवीभिश्चपाटलाबिल्वचम्पकैः ॥ नवमल्लीविचिकिलैःकुन्दैःसमुचुकुन्दकैः ॥ ८६ ॥ मन्दारैर्बिल्वपत्रैश्चद्रोणैर्मरुबकैर्बकैः ॥ ग्रन्थिपर्णैर्दमनकैःसुरभूचूतपल्लवैः ॥ ८७ ॥ तुलसीदेवगन्धारी

दज उद्भिज और जरायुज इन चार प्रकार के देहधारियों की मुक्तिदेनेवाली काशीपुरीमें जाकर ॥ ८२ ॥ श्रीशङ्करका लिंग थापकर और उसके आगे कूपकरके विश्वनाथ स्वामीको ध्यान करताहुआ बहुत कालतक तपस्या किया ॥ ८३ ॥ व राजचंपा धतूर कनैर कमल मालती कटचंपा या नैनिया कदम्ब सौनसिरी अनार ॥ ८४ ॥ बेला सेवती स्योंड़ी पलाश अशोक कन्नानींबू पुष्पलता सँदेसरा नागकेशर ॥ ८५ ॥ छोटी बासन्तीलता पाटलि बिल्व चंपा नेवारि मैनफल कुन्द मुचुकुन्द ॥ ८६ ॥ पारिभद्र या श्वेतमदार गूमा बेलपत्र मरुवा या पियाबांसा या छोटेपत्ते की तुलसी बक गठिवन या धनहर नाम सुगन्धद्रव्य चौंना देवपुष्प आमके पल्लव ॥ ८७ ॥

तुलसी देवगन्धा बृहत्पत्री कुशके फूल तगर अगस्त्य पियाशाल या रालवृक्ष देवदारु ॥ ८८ ॥ कचनार लालकटसरैया या सेवती गुलाब और पीला पियाबांसा इन प्रत्येक फूलों व पल्लवों और अन्यभी ॥ ८९ ॥ सैकड़ों सहस्रों पत्तोंसे उसने शिवको पूजा व लाखोंबार यत्नकरके दोसौ छप्पन टकाभर पंचामृत ॥ ९० ॥ और सुगन्धदार स्नान की चीजोंसे देवेश को बहुतही नहवाया व सहस्रोंबार चन्दनों और कपूर अगर कस्तूरी केशर कंकोल या चन्दन इन सबसे बने यक्षकर्दमों से ॥ ९१ ॥ सुगन्ध उबटन के पीछे लेपन किया व बहुत नाच गान भेट वेदोक्तस्तुति ॥ ९२ ॥ सहस्रनाम और अन्य स्तोत्रोंसे भी शङ्कर की स्तुति किया यों शुक्रने पांच सहस्रवर्ष लों

बृहत्पत्रीकुशाङ्कुरैः॥नन्द्यावर्तैरगस्त्यैश्चसशालैर्देवदारुभिः॥८८॥काञ्चनारैःकुरुबकैर्दूर्वाङ्कुरकुरण्टकैः॥प्रत्येकमेभिःकुसुमैःपल्लवैरपरैरपि ॥ ८९ ॥ पत्रैःशतसहस्रैश्चससमानर्चशङ्करम् ॥ पञ्चामृतैर्द्रोणमितैर्लक्षकृत्वःप्रयत्नतः ॥ ९० ॥ स्नपयामासदेवेशंसुगन्धस्नपनैर्बहु ॥ सहस्रकृत्वोदेवेशंचन्दनैर्यक्षकर्दमैः ॥ ९१ ॥ समालिलिम्पदेवेशंसुगन्धोद्वर्तनान्यनु ॥ गीतनृत्योपहारैश्चश्रुत्युक्तस्तुतिभिर्बहु ॥ ९२ ॥ नाम्नांसहस्रैरन्यैश्चस्तोत्रैस्तुष्टावशङ्करम् ॥ सहस्रंपञ्चशरदामित्थंशुक्रःसमर्चयन् ॥ ९३ ॥ यदादेवंनालुलोकेमनागपिवरोन्मुखम् ॥ तदान्यंनियमंघोरंजग्राहातीवदुःसहम्॥९४॥ प्रक्षाल्यचेतसोत्यन्तंचाञ्चल्याख्यंमहामलम् ॥ भावनावारिभिरसकृदिन्द्रियैःसहितस्यच ॥ ९५ ॥ निर्मलीकृत्यतच्चेतोरत्नंदत्त्वापिनाकिने ॥ प्रपपौकणधूमौघंसहस्रंशरदांकविः ॥९६ ॥ प्रससादतदादेवोभार्गवायमहात्मने ॥ तस्माल्लिङ्गाद्विनिर्गत्यसहस्रार्काधिकद्युतिः ॥ ९७ ॥ उवाचचविरूपाक्षःसाक्षाद्दाक्षायणीपतिः ॥ तपोनिधेप्रसन्नोस्मिवरंवरयभा-

भलीभांतिसे पूजा किया ॥ ९३ ॥ जब कुछभी वरदानदेनेकेसम्मुख महादेवको न देखा तब बड़े दुस्सह दारुण अन्य नियमोंको ग्रहण किया ॥ ९४ ॥ व बारबार भावनाकरके इन्द्रियों समेत अन्तःकरण के अत्यन्त चञ्चलतामलको धोय ॥ ९५ ॥ विमल कर उस चित्तरत्नको शिवके लिये देकर याने उनमें मन लगाय शुक्रने हजारों वर्षतक कनोंका धुवां पिया ॥ ९६ ॥ तब महादेवजी भृगुवंशी महात्मासे प्रसन्नहुये और उस लिङ्गसे निकल कर हजारों सूर्यों से अधिक ज्योति है जिनकी ॥ ९७ ॥ ऐसे

सतीके पति साक्षात् शिव जी बोले कि हे तपस्या के निधान भार्गव ! मैं प्रसन्न हूं वर मांग ॥ ९८ ॥ यों शङ्कर का वचनसुनकर उमगे आनन्द समूह से खड़ेहुये रोमोंसे व्याप्तहै शरीर जिसका वह कमलनेत्रवाला ब्राह्मण ॥ ९९ ॥ सन्तुष्ट व विकसित नयनपलकवाला हो माथ में हाथजोड़ अञ्जलीधर जयजय यों कहताहुआ अष्टमूर्त्ति शिवकी स्तुति करताभया ॥ १०० ॥ हे सूर्य्यरूप जगदीश्वर ! जिससे आप इन किरणों से सम्पूर्ण अन्धकार को तिरस्कार कर याने जीत निशाचरोंके वाञ्छितों को नाशको पहुँचातेहो और तीनोंलोकोंके हितके लिये आकाश में बहुत जगमगाते हो उससे आप के नमस्कारहो ॥ १ ॥ हे अमृतसमूह से परिपूर्ण चन्द्र-

गंव॥ ९८ ॥ निशम्येतिवचःशम्भोरम्भोजनयनोद्विजः ॥उद्यदानन्दसन्दोहरोमाञ्चाञ्चितविग्रहः ॥ ९९ ॥ तुष्टात्राष्टतनुं तुष्टःप्रफुल्लनयनाञ्चलः ॥ मौलावञ्जलिमाधायवदन्जयजयेतिच ॥ १०० ॥ भार्गवउवाच ॥ त्वंभासिरश्मिरभि भूयतमःसमस्तमस्तंनयस्यभिमतानिनिशाचराणाम् ॥ देदीप्यसेदिनमणेगगनेहितायलोकत्रयस्यजगदीश्वरतंनम स्ते ॥ १ ॥ लोकेतिवेलमतिवेलमहामहोभिर्निर्मासिकौमुदमुदञ्चसमुत्समुद्रम् ॥ विद्राविताखिलतमाःसुतसोहिमांशोपी यूषपूरपरिपूरिततंनमस्ते ॥ २ ॥ त्वंपावनेपथिसदागतिरस्युपास्यःकस्त्वांविनाभुवनजीवनजीवतीह ॥ स्तब्धप्रभञ्जन विवर्धितसर्वजन्तोसन्तोषिताहिकुलसर्वगतंनमस्ते ॥ ३ ॥ विश्वैकपावकनतावकपावकैकशक्तेर्ऋतेऽमृतवतामृतदिव्य कार्यम् ॥ प्राणित्यदोजगदहोजगदन्तरात्मंस्तत्पावकप्रतिपदंशमदंनमस्ते ॥ ४ ॥ पानीयरूपपरमेशजगत्पवित्रचि

रूप ! जिससे सब अन्धकारके भगानेवाले वे बहुत अच्छे आप लोकमें प्रतिक्षण मर्यादरहित बहुते महातेज से अनारआदिकों का आनन्द और आनन्दसमुद्र को निर्माण करतेहो उससे आपके नमस्कार है ॥ २ ॥ हे लोकों के प्राणभूत सब जन्तुओंके वर्धक सर्पकुल के सन्तोषदायक कठोरों के मर्दन करनेवाले ! हे सर्वगत ! सदा चलना है जिसका वह तुम जिससे वेदमार्ग में पूजनीयहो व तुम विना इस लोकमें को जीवता है उससे आपके नमस्कार है ॥ ३ ॥ हे जगत् में एक पवित्र मरणरहित विश्वके अन्तर्यामिन् अग्निरूप देव ! इन्द्रिय और आकाशादि पञ्चतत्त्वमय यह जगत् आपकी पवित्रमुख्य सामर्थ्य विना नहीं व्यापार करसक्ता उससे

प्रतिक्षण सुखद जैसेहो वैसे आप के नमस्कार है ॥ ४ ॥ हे जलरूप, परमेश्वर, जगत्पवित्र ! हे विचित्रसुचरित्र विश्वनाथ ! जिससे आप इस अद्भुत सबजगत् को पीने नहाने से पवित्र व विमल करतेहो इससे आपके निश्चय नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥ हे दयासमेत आकाशरूप ईश्वर ! विकसनेवाला यह जगत् बाहर भीतर भी ठौर देनेसे आपसेही सदा श्वासा लेताहै और स्वभाव से आपकरके संकोच को प्राप्त होताहै उससे मैं आपके नमस्कार करताहूं ॥ ६ ॥ हे पृथ्वीस्वरूप विभोविश्वनाथ ! हे परोंसेपर अज्ञान के वैरिन् ! हे पार्वतीसर्प्पभूषण ! इस ब्रह्माण्ड में इस सब जगत् को आपसे अन्य कौन धारता या पोषता है याने कोई नहीं उससे

त्वंविचित्रसुचरित्रकरोषिनूनम् ॥ विश्वंपवित्रममलंकिलविश्वनाथपानावगाहनतएतदतोनतोऽस्मि॥५॥ आकाशरूपबहिरन्तरुतावकाशदानाद्विकस्वरमिहेश्वरविश्वमेतत् ॥ त्वत्तःसदासदयसंश्वसितिस्वभावात्सङ्कोचमेतिभवतोऽस्मिनतस्ततस्त्वाम्॥६॥ विश्वम्भरात्मकबिभर्तिविभोऽत्रविश्वंकोविश्वनाथभवतोन्यतमस्तमोरे ॥ तत्त्वांविनानशमिनांहिमजाहिभूषस्तव्योऽपरःपरपरप्रणतस्ततस्त्वाम् ॥ ७ ॥ आत्मस्वरूपतवरूपपरंपराभिराभिस्ततंहरचराचररूपमेतत् ॥ सर्वान्तरात्मनिलयप्रतिरूपरूपनित्यंनतोऽस्मिपरमात्मतनोऽष्टमूर्ते ॥ ८ ॥ इत्यष्टमूर्तिभिरिमाभिरुमाभिवन्द्यवन्द्यातिवन्द्यभवविश्वजनीनमूर्ते॥ एतत्ततंसुविततंप्रणतप्रणीतसर्वार्थसार्थपरमार्थततोनतोऽस्मि ॥ ९ ॥ अष्टमूर्त्यष्टकेनेष्टंपरिष्टुत्वेतिभार्गवः ॥ भर्गभूमिमिलन्मौलिःप्रणनामपुनःपुनः॥ १० ॥ इतिस्तुतोमहादेवोभार्गवेणातितेजसा ॥ उत्थाप्यभूमे

क्षमावालों के मध्यमें आपके विना और को स्तुतिके योग्यहै उस कारण मैं आपके नित्यही नमस्कार करताहूं ॥ ७ ॥ हे आत्मस्वरूप सबके अन्तःकरण के वासिन् अज्ञानहारिन् रूपोंके प्रतिरूपधारिन् ! हे ब्रह्मस्वरूप अष्टमूर्ते ! इन आपके रूपोंकी परम्पराओंसे यह स्थावर जङ्गम जगत् व्याप्तहै इससे मैं आपके सदा नमस्कार करता हूं ॥ ८ ॥ हे पार्वती से वन्दनीय ! हे वन्दनीयों से अधिक वन्दनीय शिव ! विश्वजनोंमें एक मुख्य भक्तोंको मिलने योग्य हे सब अर्थसमूहों के मध्य परमार्थस्वरूप ! यों इन आठ मूर्त्तियों से यह विस्तारयुक्त जगत् व्याप्तहै उस कारण मैं आपके नमस्कार करताहूं ॥ ९ ॥ यों शुक्रने अष्टमूर्त्तियों के अष्टकसे इष्टदेव शिवकी स्तुति

कर भूमि में धरगया है शिर जिसका उसने बारबार प्रणाम किया ॥ १० ॥ और यों अत्यन्त तेजस्वी शुक्रसे प्रशंसित महादेवजी प्रणाम करते हुये उस ब्राह्मणको बाहोंसे पकड़ भूमिसे उठाय ॥ ११ ॥ दांतोंकी दीप्तिसे दिशाओं के अन्तर को दीपित करते हुये यों बोले कि अन्यसे न कियागया यह अत्यन्त घोर तप ॥ १२ ॥ व लिङ्ग थापने की पुण्य लिङ्गका पूजना व पवित्र अचल चित्तरत्नका देना ॥ १३ ॥ और काशीक्षेत्रमें शुद्धकर्म करना इन सबोंसे तुझको मैं दोनों पुत्रोंके समान देखताहूं इससे तुझे कुछ अदेय नहींहै ॥ १४ ॥ इसी देहसे मेरे पेट के भीतर गया और मेरे लिङ्गमार्ग से निकलाहुआ तू पुत्रभाव को प्राप्तहोगा ॥ १५ ॥ व जो गणोंकाभी दुर्लभ है वह

बाहुभ्यांधृत्वातंप्रणतंद्विजम् ॥ ११ ॥ उवाचदशनज्योत्स्नाप्रद्योतितदिगन्तरः ॥ अनेनात्युग्रतपसाह्यनन्याचरितेन च ॥ १२ ॥ लिङ्गस्थापनपुण्येनलिङ्गस्याराधनेनच ॥ चित्तरत्नोपहारेणशुचिनानिश्चलेनच ॥ १३ ॥ अविमुक्तमहाक्षेत्रेप वित्राचरणेनच ॥ त्वांसुताभ्यांप्रपश्यामितवादेयंनकिञ्चन ॥ १४ ॥ अनेनैवशरीरेणममोदरदरींगतः ॥ मद्वरेन्द्रियमार्गेण पुत्रजन्मत्वमेष्यसि ॥ १५ ॥ अन्यंवरंप्रयच्छामिदुष्प्रापंपार्षदैरपि ॥ हरौहिरण्यगर्भेपिप्रायशोऽहंजुगोपयाम् ॥ १६ ॥ मृतसञ्जीवनीनामविद्यायाममनिर्मला ॥ तपोबलेनमहतामयैवपरिनिर्मिता ॥ १७ ॥ त्वांतांतुप्रापयास्यद्यमन्त्ररूपांम हाशुचे ॥ योग्यतातेऽस्तिविद्यायास्तस्याःशुचितपोनिधे ॥ १८ ॥ यंयमुद्दिश्यनियतमेतामावर्तयिष्यसि ॥ विद्यांविद्ये श्वरश्रेष्ठसप्राणिष्यतिध्रुवम् ॥ १९ ॥ अत्यर्कमत्यग्निचतेतेजोव्योम्न्यतितारकम् ॥ देदीप्यमानंभविताग्रहाणांप्रव रोभव ॥ २० ॥ अभित्वांयेकरिष्यन्तियात्रांनार्योनरोपिवा ॥ तेषांत्वदृष्टिपातेनसर्वंकार्यंप्रणंक्ष्यति ॥ २१ ॥ तवोदयेभविष्य

अन्यवर देताहूं कि बहुधा जिसको ब्रह्मा और विष्णुसे भी बचाताहूं ॥ १६ ॥ व जो बड़े तपोबल से मेरीही बनाई मृतसंजीविनी नाम मेरी विमलविद्या है ॥ १७ ॥ उस मन्त्ररूपा को आज तुझे दूंगा हे महापवित्र! हे पवित्र तपस्याके निधान! उस विद्या के लिये तेरी योग्यता है ॥ १८ ॥ हे विद्याओं के स्वामियों में श्रेष्ठ! तू जिस जिस को उद्देशकर इस विद्याको जपेगा वह वह निश्चय जीवेगा ॥ १९ ॥ व आकाश में जगमगाता हुआ तेरा तेज सूर्य्य अग्नि और नक्षत्रों से अधिक होगा व तू ग्रहों में श्रेष्ठहोगा ॥ २० ॥ व जे स्त्रियां और पुरुष तेरे सम्मुख यात्राकरेंगे उनके सब काम तेरी दृष्टि पड़ने से विनशैंगे ॥ २१ ॥ हे सुव्रत! यहां तेरे उदय में मनुष्यों

के विवाहादि सब धर्म्म कर्म सफलहोंगे ॥ २२ ॥ वे सब अशुभ तिथियां भी तेरे दिनके संयोग से शुभहोंगी व तेरे भक्त अधिक वीर्य्यवान् और अनेक पुत्र पुत्रियों से संयुतहोंगे ॥ २३ ॥ और तेरे थापे शुक्रेश्वरनाम इस लिङ्गको जे मनुष्य पूजेंगे उनके सब कामोंकी सिद्धिहोगी ॥ २४ ॥ एक वर्ष पर्यन्त प्रति शुक्रवार को रात्रि में भोजन के नेमी जे नर व जे तेरे दिन शुक्रकूप में स्नान तर्प्पणादि जलक्रिया कर ॥ २५ ॥ शुक्रेश्वर को पूजेंगे उनका जो फल है उसको सुनो वे मनुष्य अखण्डवीर्य्य पुत्रवान् अधिकशुक्रवाले ॥ २६ ॥ व पुरुष सामर्थ्य और सौभाग्यसे संयुत होंगे इसमें संशय नहीं है सुखसे बसते वे लोग विघ्नों से रहित होंगे यों

न्तिविवाहादीनिसुव्रत ॥ सर्वाणिधर्मकार्याणिफलवन्तिनृणामिह ॥ २२ ॥ सर्वाश्चतिथयोमन्दास्तवसंयोगतःशुभाः ॥ तवभक्ताभविष्यन्तिबहुशुक्राबहुप्रजाः ॥ २३ ॥ त्वयेदंस्थापितंलिङ्गंशुक्रेशमितिसंज्ञितम् ॥ येऽर्चयिष्यन्तिमनुजास्ते षांसिद्धिर्भविष्यति ॥ २४ ॥ आवर्षंप्रतिशुक्रंयेनक्तव्रतपरानराः ॥ त्वद्दिनेशुक्रकूपेयेकृतसर्वोदकक्रियाः ॥ २५ ॥ शुक्रे शमर्चयिष्यन्तिशृणुतेषांतुयत्फलम् ॥ अवन्ध्यशुक्रास्तेमर्त्याःपुत्रवन्तोऽतिरेतसः ॥ २६ ॥ पुंस्त्वसौभाग्यसम्पन्नाभवि ष्यन्तिनसंशयः ॥ व्यपेतविघ्नास्तेसर्वेजनाःस्युःसुखवासिनः ॥ इतिदत्त्वावरान्देवस्तत्रलिङ्गेलयंययौ ॥ २७ ॥ गणावूचतुः ॥ शुक्रेश्वरस्ययेभक्ताःशुक्रलोकेवसन्तिते ॥ विश्वेश्वराद्दक्षिणतःशुक्रेशोऽस्तिपरंतप ॥ २८ ॥ तस्यदर्शनमात्रेणशुक्रलोके महीयते ॥ इत्येषाशुक्रलोकस्यस्थितिरुक्तामहामते ॥ २९ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ इत्थंसधर्मिणिकथांशुक्रलोकस्यसुव्रते ॥ शृ खन्नाङ्गारकंलोकमालुलोकेऽथसद्विजः ॥ १३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेशुक्रलोकवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः १६

वर देकर महादेवजी उस लिङ्ग में समागये ॥ २७ ॥ विष्णु के गण बोले कि जे शुक्रेश्वर के भक्त हैं वे शुक्रलोक में बसते हैं हे परंतप ! विश्वनाथ के दक्षिण में शुक्रेश्वर लिंग है ॥ २८ ॥ उसके दर्शनमात्र से मनुष्य शुक्रलोक में पूजा जाता है हे महामते ! यों यह शुक्र लोक का हाल मैंने कहा ॥ २९ ॥ अगस्त्यजी बोले हे साथ धर्मवाली पतिव्रते लोपामुद्रे ! यों शुक्रलोक की कथा सुनतेहुये उस ब्राह्मण ने मंगल का लोक देखा ॥ १३० ॥ इति श्री स्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथ त्रिवेदिविरचितेशुक्रलोकवर्णनन्नामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । रात्रह के अध्यायमें भौम बृहस्पति जानि । तैरो तीजे सूर्य्यसुत शनिको लोक बखानि ॥ शिवशर्मा बोला कि हे देवौ ! मैंने शुक्रकी शुभकथा को सुना जिसके सुनने मात्र से मेरे कान तृप्तहुये ॥ १ ॥ और आगे यह शोकनशावन पावन किस धर्म्मनिधान का लोक है मुझ से इसके बताने को आप तैयार होवें ॥ २ ॥ व आपके मुखसे सुखसे निकले अमृतरूप वचन को कानपात्रों से पानकर मैं तृप्तिको नहीं पहुँचता हूं ॥ ३ ॥ विष्णुजीके गण बोले कि हे शिवशर्म्मन् ! आनन्दसे जान यह मंगल का लोक है जैसे यह मंगल पृथ्वी का पुत्र हुआ है वैसे हम इसकी उत्पत्ति कहते हैं ॥ ४ ॥ कि पहले सतीके विरह से तपस्या करते शङ्कर के माथ

शिवशर्मोवाच ॥ शुक्रसम्बन्धिनीदेवौकथाश्राविमयाशुभा ॥ यस्याःश्रवणमात्रेणप्रीणितेश्रवणेमम ॥ १ ॥ कस्यपुण्यनिधेर्लोकःशोकहृत्त्वेषनिर्मलः ॥ एतदाख्यातुमुद्युक्तौभवन्तौभवतांमम ॥ २ ॥ धयित्वाश्रोत्रपात्राभ्यांवाणीममृतरूपिणीम् ॥ नतृप्तिमधिगच्छामिभवन्मुखसुखोद्गताम् ॥ ३ ॥ गणावूचतुः ॥ लोहिताङ्गस्यलोकोयंशिवशर्मन्निबोधह ॥ उत्पत्तिंचास्यवक्ष्यावोभूसुतोयंयथाभवत् ॥ ४ ॥ पुरातपस्यतःशम्भोर्दाक्षायण्यावियोगतः ॥ भालस्थलात्पपातैकःस्वेदबिन्दुर्महीतले ॥ ५ ॥ ततःकुमारःसंजज्ञेलोहिताङ्गोमहीतलात् ॥ स्नेहसंवर्धितःसोथधात्र्याधात्रीस्वरूपया ॥ ६ ॥ माहेयइत्यतःख्यातिंपरामेषगतःसदा ॥ ततस्तेपेतपोत्युग्रमुग्रपुर्यांपुरानघ ॥ ७ ॥ असिश्चवरणाचापिसरितौयत्रशोभने ॥ धुनद्योत्तरवाहिन्यामिलितेऽत्रजगद्धिते ॥ ८ ॥ सर्वगोपिहिविश्वेशोयत्रनित्यंप्रकाशते ॥ मुक्तयेसर्वजन्तूनांकालोज्झितस्वकर्मणाम् ॥ ९ ॥ अमृतंहिभवन्त्येवमृतायत्रशरीरिणः ॥ अनुग्रहंसमासाद्यपरंविश्वेश्वरस्यह ॥ १० ॥ अपुनर्भवदे

से एक पसीनाका बूंद भूमिमें गिरा ॥ ५ ॥ उस करके पृथ्वीसे लाले रंग अंगवाला कुमार उत्पन्न भया अनन्तर वह दाई माई रूप भूमि से सनेह समेत बढ़ायागया ॥ ६ ॥ इससे यह माहेय याने पृथ्वी का पुत्र इस प्रसिद्धि को सदा पहुँचा है पापरहित ! तदनन्तर उसने उस काशीमें घोर तप किया कि ॥ ७ ॥ जहां जगत्की हितकारिणी असि और वरणा ये दोनों नदियां उत्तरवाहिनी गंगा में मिली हैं ॥ ८ ॥ व समय में तजा निज देहों को जिन्हों ने उन सब जन्तुओं के मोक्ष के लिये जहां सर्वव्यापी श्री शिव सदा शोभते हैं ॥ ९ ॥ व जहां मरे देहधारी जीव जात विश्वनाथ के उत्तम अनुग्रह को पहुँच आनन्द से कैवल्य होते याने कर्मबन्धन से छूटते

हैं ॥ १० ॥ व जे काशी में तन तजनेवाले हैं वे सांख्ययोग और अनेक व्रतों के विनाही फिर जन्महीन होते हैं ॥ ११ ॥ तहां कम्बल और अश्वतर इन दोनों नागों के उत्तर ओर में पांचमुद्रनामक महास्थान याने अविद्या स्मिता राग द्वेष अभिनिवेश इन पांच मायाओं का या आकाशादि पांच तत्त्वों का नाश होता है जिसमें उस महापीठमें विधि करके अपने नामसे अंगारकेश्वरलिंगको भलीभांतिसे थाप ॥ १२ ॥ उस महात्माने तौलों तपस्या किया कि जौलों उसकी देहसे जलते अंगारकासा तेज निकला ॥ १३ ॥ उससे वह सब लोकों में अंगारक नाम से कहाता है तब उससे सन्तुष्ट हुये शिवजीने बड़े ग्रहपदको दिया ॥ १४ ॥ व जे मनुष्य श्रेष्ठ मंगल

हास्तेयेविमुक्तेतनुत्यजः ॥ विनासाङ्ख्येनयोगेनविनानानाव्रतादिभिः ॥ ११ ॥ संस्थाप्यलिङ्गंविधिनास्वनाम्नाङ्गारकेश्वरम्॥पाञ्चमुद्रेमहास्थानेकम्बलाश्वतरोत्तरे ॥ १२ ॥ ज्वलदङ्गारवत्तेजोयावत्तस्यशरीरतः ॥ विनिर्ययौतपस्तावत्तेन तप्तंमहात्मना ॥ १३ ॥ ततोङ्गारकनाम्नाससर्वलोकेषुगीयते ॥ तस्यतुष्टोमहादेवोददौग्रहपदंमहत् ॥ १४ ॥ अङ्गारक चतुर्थ्यायेस्नात्वोत्तरवहाम्भसि॥ अभ्यर्च्याङ्गारकेशानंनमस्यन्तिनरोत्तमाः ॥ १५ ॥ नतेषांग्रहपीडाचकदाचित्क्वापि जायते ॥ अङ्गारकेनसंयुक्ताचतुर्थीलभ्यतेयदि ॥ १६ ॥ उपरागसमंपर्व तदुक्तंकालवेदिभिः ॥ तस्यांदत्तंहुतंजप्तं सर्वं भवतिचाक्षयम् ॥ १७ ॥ श्रद्धयाश्राद्धदायेवै चतुर्थ्यङ्गारयोगतः ॥ तेषांपितॄणांभविता तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ १८ ॥ अङ्गारकचतुर्थ्यांतु पुराजज्ञेगणेश्वरः ॥ अतएवतुतत्पर्व प्रोक्तंपुण्यसमृद्धये ॥ १९ ॥ एकभक्तव्रतीतत्र संपूज्यगणनायकम् ॥ किञ्चिद्दत्त्वातमुद्दिश्य नविघ्नैरभिभूयते ॥ २० ॥ अङ्गारेश्वरभक्तायेवाराणस्यांनरोत्तमाः ॥ तेऽस्मिन्नङ्गारके

चौथिको उत्तरवाहिनी गंगाजल में नहा अंगारकेश्वरको पूज प्रणाम करेंगे ॥ १५ ॥ उनका कभी कहीं ग्रहोंकी पीड़ा न होगी व जो मंगलवार से संयुत चौथि तिथि मिले ॥ १६ ॥ तो उसको ज्योतिषियोंने ग्रहणके समान पर्व कहाहै उसमें दियागया होमा और जपा सब अक्षयफलवाला होताहै ॥ १७ ॥ जे मंगल चौथिमें श्रद्धासे श्राद्धके करनेवाले हैं उनके पितरों का बारह बरस की तृप्तिहोगी ॥ १८ ॥ व आगे गणेशजी मंगल चौथिमें उपजेहैं इससेभी वह पर्व पुण्य बढती के लिये कहागया है ॥ १९ ॥ उसमें एकबार भोजनकर व्रतकर्त्ता मनुष्य गणेशको पूज व उनको उद्देशकर कुछ यथाशक्ति दानदे विघ्नोंसे नहीं दबायाजाता है ॥ २० ॥ व जे पुरुषश्रेष्ठ

काशीमें अंगारकेश्वरके भक्तहैं वे बहुत बढ़तीवालेहो इस मंगललोकमें बसतेहैं॥२१॥ अगस्त्यजी बोले कि यों मनोरम पुण्यवती कथाको विष्णुगणों के कहतेही बृहस्पति की पुरी आंखोंकी पहुनाई को पहुँची याने देखपड़ी ॥ २२ ॥ अनन्तर आंखों को आनन्द करतीहुई बृहस्पति की उस पुरीको देख शिवशर्म्मा ने पूँछा कि यह अति उत्तमपुरी किसकी है ॥ २३ ॥ विष्णुगण बोले कि हे मित्र ! हम गलीका खेद दुराने के लिये तेरे आगे अनेक इतिहास कहते हैं और अब इस पुरी की कथासुन ॥२४॥ आगे आनन्द से तीनोंलोकों की रचना करने चाहते ब्रह्माजीके अपने समान सात मानसीपुत्र प्रकटहुये ॥ २५ ॥ जिनमें मरीचि अत्रि और अङ्गिरा मुख्य हैं व वे सब

लोके वसन्तिपरमर्द्धयः ॥ २१ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ इत्थंकथयतोरेव रम्यांपुण्यवतींकथाम् ॥ भगवद्गणयोःप्राप नेत्रातिथ्यंगुरोःपुरी ॥ २२ ॥ नेत्रानन्दकरींदृष्ट्वा शिवशर्माऽथतांपुरीम् ॥ पप्रच्छाचार्यवर्यस्य कस्येयंपूरनुत्तमा ॥ २३ ॥ गणावूचतुः ॥ सखेसुखंसमाख्यावो नानाख्येयंतवाग्रतः ॥ अध्वखेदापनोदाय पुनरस्याःपुरःकथाम् ॥ २४ ॥ विधेर्विधित्सतःपूर्वं त्रिलोकीरचनांमुदा ॥ आविरासुःसुताःसप्त मानसाःस्वस्यसंनिभाः ॥ २५ ॥ मरीच्यत्र्यङ्गिरोमुख्याः सर्वे सृष्टिप्रवर्तकाः ॥ प्रजापतेरङ्गिरसस्तेष्वभूद्देवसत्तमः ॥ २६ ॥ सुतश्चाङ्गिरसोनामबुद्ध्याविबुधसत्तमः ॥ शान्तोदान्तोजितक्रोधो मृदुवाङ्निर्मलाशयः ॥ २७ ॥ वेदवेदार्थतत्त्वज्ञः कलासुकुशलोऽमलः ॥ पारदृश्वातुसर्वेषां शास्त्राणांनीतिवित्तमः ॥ २८ ॥ हितोपदेष्टाहितकृदहितात्यहितःसदा ॥ रूपवान्शीलसम्पन्नो गुणवान्देशकालवित् ॥ २९ ॥ सर्वलक्षणसम्भारसम्भृतोगुरुवत्सलः ॥ ततापतापसींवृत्तिंकाश्यांसमहतींदधत ॥ ३० ॥ महल्लिङ्गंप्रतिष्ठाप्य शाम्भवंभूरिभा

सृष्टिकर्त्ताहैं उनमें अङ्गिरा प्रजापति के देवपूज्य बृहस्पति हुये ॥ २६ ॥ और अङ्गिरा का पुत्र होनेसे वह पुत्र आङ्गिरस नामसे प्रसिद्ध है जोकि बुद्धिसे देवों या पण्डितों में बड़े श्रेष्ठ व मनवश किये व बाहर की इन्द्रियों को रोंके व क्रोधजीते व कोमल वचन व विमलचित्त ॥ २७ ॥ व वेदों और वेदोंके अर्थोंका सिद्धान्त जानता चौंसठ कलाओं में निपुण निर्मल सब शास्त्रोंका पारदर्शी नीतिमें परमपण्डित ॥ २८ ॥ व हित सिखाताहुआ हितकारी व सदा अहितों के ऊपर वर्त्तमान व रूपवान् सदाचार संयुत या सुशील गुणवान् देशकाल को जानता ॥ २९ ॥ व सब सुलक्षण समूहोंसे भरा गुरुओं का प्यारा और वह बड़ी तपस्वियों की वृत्तिको धारताहुआ काशी

में तपस्या करताभया ॥ ३० ॥ व बहुत भक्तिहै जिसके वह शिवके महालिङ्ग को थाप देवोंके दश हजार वर्षलों भारी तपस्यावाला हो अच्छा तेजस्वी हुआ ॥ ३१ ॥ तदनन्तर तेजोंके राशिरूप, ऐश्वर्यसम्पन्न, जगत् के कर्त्ता या सुखदायक विश्वनायक प्रसन्न हुये शिवजी उस लिङ्गसे प्रकटहो बोले कि ॥ ३२ ॥ मैं प्रसन्नहूं वह वर मांग जो तेरे मनमें बर्तताहै यों शङ्कर को देख आनन्दित हो उसने स्तुति किया ॥ ३३ ॥ हे कल्याणकर एकरूप, चन्द्रसे गौर और अर्थ धर्म काम और मोक्षदायक, प्रलय में सबके घायक, सर्वस्वरूप सदाशुद्ध, पवित्रजनों की दीहुई महापूजाओं के ग्राहक ! हे भक्तोंकी घोर संसारताप परम्परा के हरनेहार ! आपकी

वनः ॥ अयुतंशरदांदिव्यं दिव्यतेजामहातपाः ॥ ३१ ॥ ततःप्रसन्नोभगवान्विश्वेशोविश्वभावनः ॥ आविर्भूयततोलि ङ्गान्महसांराशिरब्रवीत् ॥ ३२ ॥ प्रसन्नोस्मिवरंब्रूहि यत्तेमनसिवर्तते ॥ इतिशम्भुंसमालोक्य तुष्टावेतिसहृष्टवान् ॥ ३३ ॥ आङ्गिरसउवाच ॥ जयशङ्करशान्तशशाङ्करुचेरुचिरार्थदसर्वदसर्वशुचे ॥ शुचिदत्तगृहीतमहोपहृतेहृतभक्तज नोद्धततापतते ॥ ३४ ॥ ततसर्वहृदंबरवरदनतेनतवृजिनमहावनदाहकृते ॥ कृतविविधचरित्रतनोसुतनोतनुविशिख विशोषणधैर्यनिधे ॥ ३५ ॥ निधनादिविवर्जितकृतनतिकृत्कृतिविहितमनोरथपन्नगभृत् ॥ नगभर्तृसुतार्पितवामव पुःस्ववपुःपरिपूरितसर्वजगत् ॥ ३६ ॥ त्रिजगन्मयरूपविरूपसुदृक्दृगुदञ्चनकुञ्चनकृतहुतभुक् ॥ भवभूतपतेप्रमथैकप तेपतितेष्वपिदत्तकरप्रसृते ॥ ३७ ॥ प्रसृताखिलभूतलसंवरणप्रणवध्वनिसौधसुधांशुधर ॥ धरराजकुमारिकयापरया

जयहो ॥ ३४ ॥ हे सबके हृदय आकाश में व्यापक वरदायक, नम्रस्वरूप ! व प्रणत लोगोंके पापरूप बड़े वनके जलानेवाले, कियेगये अनेक भांतिके चरित्र जिससे ऐसी देहवाले हे सुभगशरीर ! हे कामबाणशोषक ! हे वीरता के निधान ! आपकी जयहो ॥ ३५ ॥ हे मरणादि विकाररहित नमस्कार किये जनो के करनेहार ज्ञानियोंके मोक्षदातार सर्प अलङ्कारधार पार्वती से व्याप्त वाम अङ्गवाले ! हे ब्रह्मरूप से सब जगत् में परिपूर्ण ! ॥ ३६ ॥ हे विश्वरूप मायामय रूपरहित सुनेत्र, आंखोंके चलाने सिकोडने में अग्निकर सिरजनहार आकाशादि पञ्चभूतों के स्वामिन् गणोंके नायक ! हे पतितभक्तोंके लिये भी हाथ अवलम्बनदायक तथा ॥ ३७ ॥ हे सब

भूतलमें घेर पसारनवार ॐकारशब्द आधार चन्द्रधर पराशक्ति पर्वतराजकुमारीसे सब ओर सन्तुष्ट ! हे शिव ! मैं आपके नमस्कार करताहूं ॥ ३८ ॥ हे महेश्वर! स्वप्रकाश, वेदवाणी या सरस्वती के नाथ, महाराज समर्थ ऐश्वर्य्यप्रद ! हे कैलाशपर्वतशयन पार्वती के पति सुखदेनेवाले चन्द्राभरण ! हे भक्तिविरोधियों के पीड़ाकर ! आप त्रिलोक को सुखितकरो ॥ ३९ ॥ हे अज्ञाननाशक या भक्तपापहर, अखण्डज्ञान ! आपके दर्शन से यह मैं कालसे भी नहीं डरताहूं आप महापोह को हरो जो कहो कि मैं तत्त्वज्ञान से अज्ञान को नाशताहूं तो इस पर कहताहूं कि कल्याणरूप आप के पदकमलों के नमस्कार से अन्यमत को कल्याणरूप नहीं मानताहूं उससे आप के नमस्कार करताहूं ॥ ४० ॥ जिससे इस विस्तारयुक्त सम्पूर्ण जगत् में शिवका सन्तुष्ट करनाही गुणकारी व मुख्य और पापहारी है इससे तम, रज और सत् इन तीनों

परितःपरितुष्टनतोस्मिशिव ॥ ३८ ॥ शिवदेवगिरीशमहेशविभोविभवप्रदगिरिशशिवेशमृड ॥ मृडयोडुपतिध्रजगत्रितयंकृतयन्त्रणभक्तिविघातकृताम् ॥ ३९ ॥ नकृतान्ततएषबिभेमिहरप्रहराशुमहाघममोघमते ॥ नमतान्तरमन्यदवैमिशिवंशिवपादनतेःप्रणतोस्मिततः ॥ ४० ॥ विततेऽत्रजगत्यखिलेऽघहरंहरतोषणमेवपरंगुणवत् ॥ गुणहीनमहीनमहावलयंप्रलयान्तकमीशनतोस्मिततः ॥ ४१ ॥ इतिस्तुत्वामहादेवं विररामाङ्गिरःसुतः ॥ व्यतरच्चमहेशानः स्तुत्यातुष्टोवरान्बहून् ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ बृहतातपसानेन बृहतांपतिरेध्यहो ॥ नाम्नाबृहस्पतिरितिग्रहेष्वच्यो भवद्विज ॥ ४३ ॥ अस्माल्लिङ्गार्चनान्नित्यं जीवभूतोसिमेयतः ॥ अतोजीवइतिख्यातिं त्रिषुलोकेषुयास्यसि ॥ ४४ ॥ वाचांप्रपञ्चैश्चतुरैर्निष्प्रपञ्चोयतःस्तुतः ॥ अतोवाचांप्रपञ्चस्यपतिर्वाचस्पतिर्भव ॥ ४५ ॥ अस्यस्तोत्रस्यपठनादपिवाग्

गुणोंसे परे सर्पराज का कङ्कण धरे और प्रलय में सबके कालरूप आप ईश्वर के नमस्कार करताहूं ॥ ४१ ॥ यों महादेव की स्तुतिकर अङ्गिराके पुत्रने विश्रामकिया और स्तुतिसे सन्तुष्ट महेशने बहुते वरोंको दिया ॥ ४२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे ब्राह्मण ! इस बड़े तपसे बड़ोंके स्वामी याने इन्द्रादि देवोंके गुरुहोय बृहस्पति इस नामसे बढ़ो व ग्रहोंमें पूज्यहोवो ॥ ४३ ॥ और नित्य इस लिङ्गके पूजनेसे जिससे तुम हमारे जीवभूत याने परमप्यारेहो इससे तीनोंलोकोंमें जीव इस नामको या प्रसिद्धि को पहुँचोगे ॥ ४४ ॥ व जिससे तुम करके वचनों के विस्तार से परब्रह्म मैं प्रशंसागया हूं इससे वचनविस्तार के स्वामी तुम वाचस्पतिहो ॥ ४५ ॥ व तीन

वर्ष त्रिकाल इस स्तोत्रके पाठसे जिस पुरुष के प्रति सरस्वती उदितहों उसकी संस्कृत वाणीहोगी ॥ ४६ ॥ जो इस वायव्यनाम याने वायुके समान शीघ्र फल-दायक या रुद्र विष्णु और ब्रह्मा इन तीन देवोंके मिलानेवाले स्तोत्रको रोज रोज पढ़ेगा वह बड़ा काम उत्पन्न होनेमें भी बुद्धिसे न घटेगा ॥ ४७ ॥ व नियम से मेरे समीप मे इस स्तोत्रके पाठसे अविचारी लोगोंकी भी कुकर्मों में प्रवृत्ति न होगी ॥ ४८ ॥ इस स्तोत्रको पढ़ताहुआ जन ग्रहोंसे भई पीडाको कभी न पहुँचेगा उस कारण यह स्तोत्र मेरे आगे पढ़ने योग्यहै ॥ ४९ ॥ जो मनुष्य नित्य प्रातःकाल उठ इस स्तुतिको पढ़ेगा मैं उसकी दारुण बाधाओं को हरूंगा ॥ ५० ॥ और यत्नसे तेरे

दियाच्चयम् ॥ तस्यस्यात्संस्कृतावाणी त्रिभिर्वर्षैस्त्रिकालतः ॥ ४६ ॥ समुत्पन्नेमहाकार्ये नसबुद्ध्याप्रहीयते ॥ यःपठिष्यत्यदःस्तोत्रं वायव्याख्यंदिनेदिने ॥ ४७ ॥ अस्यस्तोत्रस्यपठनान्नियतंममसन्निधौ ॥ नदुर्वृत्तौप्रवृत्तिःस्यादविवेकवतान्नृणाम् ॥ ४८ ॥ अदःस्तोत्रंपठन्जन्तुर्जातुपीडांग्रहोद्भवाम् ॥ नप्राप्स्यतिततोजप्यमिदंस्तोत्रंममाग्रतः ॥ ४९ ॥ नित्यंप्रातःसमुत्थाय यःपठिष्यतिमानवः ॥ इमांस्तुतिंहरिष्येऽहं तस्यबाधाःसुदारुणाः ॥ ५० ॥ त्वत्प्रतिष्ठितलिङ्गस्य पूजांकृत्वाप्रयत्नतः ॥ इमांस्तुतिमधीयानो मनोवाञ्छामवाप्स्यति ॥ ५१ ॥ इतिदत्त्वावरान्शम्भुःपुनर्ब्रह्माणमाह्वयत् ॥ सेन्द्रान्देवगणान्सर्वान् सयक्षोरगकिन्नरान् ॥ ५२ ॥ तानागतान्समालोक्य शिवोब्रह्माणमब्रवीत् ॥ विधेविधेहिमद्वाक्यादमुंवाचस्पतिंमुनिम् ॥ ५३ ॥ गुरुंसर्वसुरेन्द्राणां परितःस्वगुणैर्गुरुम् ॥ अभिषिञ्चविधानेनदेवाचार्यपदेमुदे ॥ ५४ ॥ अतीवधिषणाधीशो ममप्रीतोभविष्यति ॥ महाप्रसादइत्याज्ञां शिरस्याधायतत्क्षणात् ॥ ५५ ॥ सुरज्येष्ठःसुराचार्यं

थापेलिङ्ग की पूजाकर इस स्तोत्रको पढ़ताहुआ पुरुष मनमाने फल पावेगा ॥ ५१ ॥ यों वर दे शङ्करने फिर ब्रह्मा इन्द्रसमेत देवसमूह यक्ष उरग और किन्नर इन सबको बुलाया ॥ ५२ ॥ व उनको आये देख शिवजीने ब्रह्मा से कहा कि हे ब्रह्मन्! मेरे कहनेसे इस मुनिको वाचस्पति बनावो ॥ ५३ ॥ और जोकि अपने गुणोंसे सब ओर गरू व सब देवेन्द्रोंका गुरु या उनमें बड़ाहै उसको आनन्द के लिये देवाचार्यपद में अभिषेककरो ॥ ५४ ॥ क्योंकि यह वाचस्पति हमारा अतिशय प्याराहोगा और मुझपर

बड़ी प्रसन्नताहुई यों जान उसी जगह शिरमें आज्ञाधर ॥ ५५ ॥ ब्रह्माजीने अङ्गिरा के पुत्रको देवोंका आचार्य किया तब देवोंकी नगरियां बाजीं और अप्सराओं के समूह नाचे ॥ ५६ ॥ व आनन्दित मुख सब देवोंने गुरुकी पूजाकिया व वशिष्ठादि मुनियों ने वेदमन्त्रों से पवित्र पानीसे सब ओरसे सींचा ॥ ५७ ॥ फिर शिवजीने बृहस्पति को अन्यवर दिया कि हे अङ्गिरा के पुत्र धर्मात्मन् देवपूज्य ! हे कुलवर्द्धक! सुन ॥ ५८ ॥ सुबुद्धि बढ़ानेवाला आपका थापा लिंग काशीमें बृहस्पतीश्वर इस नामसे प्रसिद्ध होगा ॥ ५९ ॥ व बृहस्पतिवार और पुष्यनक्षत्र के योगमें मनुष्य इस लिंगको पूजि जो करेंगे वह कर्म्म शीघ्रही सिद्धिको पहुँचेगा ॥ ६० ॥ और कलि-

चकाराङ्गिरसंतदा ॥ देवदुन्दुभयोनेदुर्ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ५६ ॥ गुरुपूजांव्यधुःसर्वे गीर्वाणामुदिताननाः ॥ अभिषिक्तोवशिष्ठाद्यैर्मन्त्रपूतेनवारिणा ॥ ५७ ॥ पुनरन्यंवरंप्रादाद्गिरीशःपतयेगिराम् ॥ शृणुवाङ्गिरसधर्मात्मन् देवेज्यकुलनन्दन ॥ ५८ ॥ भवतास्थापितंलिङ्गं सुबुद्धिपरिवर्धनम् ॥ बृहस्पतीश्वरइतिख्यातंकाश्यांभविष्यति ॥ ५९ ॥ गुरुपुष्यसमायोगे लिङ्गमेतत्समर्च्यच ॥ यत्करिष्यन्तिमनुजास्तत्सिद्धिमधियास्यति ॥६०॥ बृहस्पतीश्वरंलिङ्गं मयागोप्यंकलौयुगे॥अस्यसन्दर्शनादेव प्रतिभाप्रतिलभ्यते ॥६१॥ चन्द्रेश्वराद्दक्षिणतोवीरेशान्नैर्ऋतेस्थितम् ॥ आराध्यधिषणेशंवै गुरुलोकेमहीयते ॥ ६२ ॥ गुर्वङ्गनागमनजंपापंषण्माससेवनात् ॥ अवश्यंविलयंयाति तमःसूर्योदयाद्यथा ॥ ६३ ॥ अतएवहिगोप्तव्यं महापातकनाशनम् ॥ बृहस्पतीश्वरंलिङ्गं नाख्येयंयस्यकस्यचित् ॥ ६४ ॥ इतिदत्त्वा वरान्देवस्तत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥ द्रुहिणोगुरुणासार्द्धं सेन्द्रोपेन्द्रोबृहस्पतिम् ॥ ६५ ॥ अस्मिन्पुरेभिषिच्याथ विसृज्य

युगमें मुझकरके बृहस्पतीश्वरलिंग रक्षा करने या गुप्त राखने योग्यहै इसके दर्शन सेही अच्छाज्ञान मिलता है ॥ ६१ ॥ इससे चन्द्रेश्वर के दक्षिण व वीरेश्वर के नैर्ऋत्यकोण में टिके बृहस्पतीश्वर को पूज बृहस्पतिलोकमें निश्चय पूजाजाताहै ॥ ६२ ॥ गुरुस्त्री भोगने का पाप छः मासतक इस लिंगकी सेवासे अवश्य नाशहो जाताहै कि जैसे सूर्य्य के उदयमें अन्धकार नष्ट होताहै ॥ ६३ ॥ इससे बड़े पापोंका नाशक बृहस्पतीश्वरलिंग छिपाने योग्यहै जिसी किसीसे न बताना चाहिये ॥ ६४ ॥ यों वर दे महादेवजी तहां अन्तर्द्धान हुये और इन्द्र उपेन्द्रसमेत दैत्यगुरु शुक्र के साथ ब्रह्माजी बृहस्पति को ॥ ६५ ॥ इस पुरीमें अभिषेककर अनन्तर इन्द्रादि देवों

को बिदादे हे ब्राह्मण ! विष्णुकी सम्मतिवाले वे अपने लोकको भूषित करतेभये याने गये ॥ ६६ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे लोपामुद्रे ! उस शिवशर्माने बृहस्पतिलोकके आगे जा ज्योतिसमूह से भूपित शनिका लोक देखा ॥ ६७ ॥ हे पवित्रहसनि ! वहां उस ब्राह्मण से पूँछे उन गणश्रेष्ठों ने ब्राह्मणवर को वह पुरी दिखाया ॥ ६८ ॥ गण बोले कि हे ब्राह्मण ! मरीचि के पुत्र कश्यपसे दक्षकी कन्याअदिति में सूर्य्य उपजे व त्वष्टा प्रजापति की कन्यासंज्ञा उनकी स्त्री भई ॥ ६९ ॥ उसके बाद रूप मुग्धा अवस्थासे शोभतीसंज्ञा जगमगाते तपसे संयुतहुई उससे पतिकी प्यारीथी ॥ ७० ॥ उसने मण्डलके तेजकरके लक्षित सूर्य्यके उस तेजसमूह को अपने अंगोंमें धारा

न्द्रादिकान्सुरान् ॥ अलञ्चकारस्वंलोकं विष्णुनाऽनुमतोद्विज ॥ ६६ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ अतिक्रम्यगुरोर्लोकं लोपामुद्रेददर्शसः ॥ शिवशर्मापुरींसौरेः प्रभामण्डलमण्डिताम् ॥ ६७ ॥ पृष्टौतेनचतौतत्र तांपुरींप्रददर्शतुः ॥ द्विजेनाद्विजवर्याय गणवर्यौशुचिस्मिते ॥ ६८ ॥ गणावूचतुः ॥ मारीचेःकश्यपाज्जज्ञे दाक्षायण्यांद्विजोष्णगुः ॥ तस्यभार्याभवत्संज्ञा पुत्रीत्वष्टुःप्रजापतेः ॥ ६९ ॥ भर्तुरिष्टाततस्तस्माद्रूपयौवनशालिनी ॥ संज्ञाबभूवतपसा सुदीप्तेनसमन्विता ॥ ७० ॥ आदित्यस्यहितद्रूपं मण्डलस्यतुतेजसा ॥ गात्रेषुपरिदग्धयौवै नातिकान्तमिवाभवत् ॥ ७१ ॥ नखल्वयंमृतोऽण्डस्थ इतिस्नेहादभाषत॥ तदाप्रभृतिलोकेयं मार्तण्डइतिचोच्यते ॥ ७२ ॥ तेजस्त्वभ्यधिकंतस्यसाऽसहिष्णुर्विवस्वतः ॥ येनातितापयामास त्रैलोक्यंतिग्मरश्मिभृत् ॥ ७३ ॥ त्रीण्यपत्यानिभोब्रह्मन् संज्ञायांमहसांनिधिः ॥ आदित्योजनयामास कन्यांद्वौचप्रजापती ॥ ७४ ॥ वैवस्वतंमनुंज्येष्ठंयमंचयमुनांततः ॥ नातितेजोमयंरूपं सोढुंसाऽलंविवस्व

किन्तु उसका अंग अत्यन्त छबीला न भया भाव कि वह तेजको न सहसकी ॥ ७१ ॥ और उसने सनेह समेत कोपसे यों कहा कि ये गर्भमे टिकेही न मरे तब से लगा लोकमें यह सूर्य्य मार्तण्ड इस नामसे कहाते हैं ॥ ७२ ॥ व तीक्ष्ण किरणधारीने जिससे त्रिलोकको तपाया उन सूर्य्यके उस अधिक तेजको वह न सहतीभई ॥ ७३ ॥ हे ब्रह्मन् ! तेजोंके निधान सूर्य्यने संज्ञामें प्रजाओं केस्वामी दो पुत्र और एक कन्या इन तीन लकड़े उपजाया ॥ ७४ ॥ जेठे वैवस्वत मनु फिर यम और उसके बाद

यमुना उपजी परन्तु सूर्य्य को अधिक तेजोमय रूपसहनेको संज्ञा न समर्थहुई ॥ ७५ ॥ तब उसने अपनी इच्छासे मायामयी सवर्णानाम छायाको बनाया तदनन्तर हाथ जोड़े नमितहो छाया संज्ञासे बोली कि ॥ ७६ ॥ हे देवि ! तुम्हारी आज्ञा करनेवाली मुझको सिखावो क्या करूं तब संज्ञाने छायासे कहा कि हे सवर्णे सुन्दरि ! सुन ॥ ७७ ॥ हे कल्याणि ! मैं त्वष्टाके घर जाऊँगी और तू मेरी आज्ञासे मेरे इस घरमें निशङ्क बस ॥ ७८ ॥ यह मनु और ये जोरीवा यम तथा यमुना ये तीनो बालक तुझकरके अपने लड़कों की दृष्टिसे देखने योग्यहैं ॥ ७९ ॥ हे शुचिस्मिते ! यह हाल तुमका पतिसे नं कहना चाहिये यों सुन छाया त्वष्टाकी पुत्री देवीसे बोली

तः ॥ ७५ ॥ मायामयींततश्छायां सवर्णांनिर्ममेस्वतः ॥ प्राञ्जलिःप्रणताभूत्वा संज्ञांछायातदाब्रवीत् ॥ ७६ ॥ तवाज्ञाकारिणींदेवि शाधिमांकरवाणिकिम् ॥ संज्ञोवाचततश्छायांसवर्णेशृणुसुन्दरि ॥ ७७ ॥ अहंयास्यामिसदनं त्वष्टुस्त्वंपुनरत्रमे ॥ भवनेवसकल्याणि निर्विशङ्कममाज्ञया ॥ ७८ ॥ मनुरेषयमावेतौ यमुनायमसंज्ञकौ ॥ स्वापत्यदृष्ट्याद्रष्टव्यमेतद्बालत्रयंत्वया ॥ ७९ ॥ अनाख्येयमिदंवृत्तं त्वयापत्यौशुचिस्मिते ॥ इत्याकर्ण्यथसात्वाष्ट्रीं देवींछायाजगादह ॥ ८० ॥ आकचग्रहणान्नाहमाशापाच्चकदाचन ॥ आख्यास्यामिचरित्रंते याहिदेवियथासुखम् ॥ ८१ ॥ इत्यादिश्यसवर्णांसा तथेत्युक्तासवर्णया ॥ पितुरन्तिकमासाद्य नत्वात्वष्टारमब्रवीत् ॥ ८२ ॥ पितःसोढुंनशक्नोमि तेजस्तेजोनिधेरहम् ॥ तीव्रंतस्यार्यपुत्रस्य काश्यपस्यमहात्मनः ॥ ८३ ॥ निशम्योदीरितंतस्याः पित्रानिर्भर्त्सिताबहु ॥ भर्तुःसमीपंयाहीति नियुक्तासापुनःपुनः ॥ ८४ ॥ चिन्तामवापमहतींस्त्रीणांधिक्चेष्टितंत्विति ॥ निनिन्दबहुधात्मानं स्त्रीत्वंचा

कि ॥ ८० ॥ बाल पकड़ने व शापदेने पर्यन्त मैं तेराहाल कभी न कहूँगी हे देवि ! तू यथासुख जा ॥ ८१ ॥ यों छायाको आज्ञादे व वैसेहोगा यों छायासे कही वह पिताके लगेजा नमस्कार कर त्वष्टासे बोली कि ॥ ८२ ॥ हे पिताजी ! तेजके निधान महात्मा बड़ेलोगोंके बालक उन काश्यप का तीक्ष्णतेज सहने को मैं नहीं समर्थ होतीहूं ॥ ८३ ॥ यों उसका कहना सुन पिताकरके बहुत डेरवाईगई व स्वामी के समीप जा यों बारबार आज्ञा दीगई या पठाई भई वह ॥ ८४ ॥ यों बड़ी चिन्ताको

पहुँची कि स्त्रियोंके व्यापार को धिक्कार है और उसने अनेक प्रकार से अपनाको व स्त्रीभाव को निदरा ॥ ८५ ॥ स्त्रियोंका स्वातन्त्र्य याने अपने अधीन होना कहीं नहीं है परवश जीनेको धिक्है क्योंकि लडिकई युवापन और बुढ़ाई में भी क्रमसे पिता पति तथा पुत्र से डर होताहै ॥ ८६ ॥ दुःखकी बातहै कि विना विचारे करनेवाली मैंने मूढतासे पतिका घर तजा और अब जो न जानीगईभी मैं स्वामीके घरको जाऊँ॥ ८७ ॥ तो तहां भी परिपूर्ण मनोरथवाली सवर्णा है अनन्तर पितासे डेरवाईहुई मैं यहांहीं रहूँगी ॥ ८८ ॥ क्योंकि तहां तापकारी तीव्रकिरणधारी स्वामी भी माता और पितासे अधिक भयङ्कर हैं अहो लोगोंकरके जो उपाख्यान कहाजाता है वही यह

तिनिनिन्दसा ॥ ८५ ॥ स्वातन्त्र्यंनकचित्स्त्रीणांधिगस्वातन्त्र्यजीवितम् ॥ शैशवेयौवनेप्रान्ते पितृभर्तृसुताद्भयम् ॥ ८६ ॥ त्यक्तंभर्तृगृहंमौग्ध्याद्धन्तदुर्वृत्तयामया ॥ अविज्ञातापिचेद्यायामथपत्युर्निकेतनम् ॥ ८७ ॥ तत्रास्तिसासवर्णावै परिपूर्णमनोरथा ॥ अथावतिष्ठेसात्रैव पित्रानिर्भर्त्सिताप्यहम् ॥ ८८ ॥ ततोतिचण्डश्चण्डांशुः पित्रोरतिभयङ्करः ॥ अहोयदुच्यतेलोकैरुपाख्यानमिदंहितत् ॥ ८९ ॥ स्फुटंदृष्टंमयाद्येति स्वकराङ्गारकर्षणम् ॥ नष्टंभर्तृगृहंमौग्ध्याच्छ्रेयोवानपितुर्गृहम् ॥ ९० ॥ वयश्चप्रथमंचारु रूपंत्रैलोक्यकाङ्क्षितम् ॥ सर्वाभिभवनंस्त्रीत्वंकुलंचातीवनिर्मलम् ॥ ९१ ॥ पतिश्चताहृक्सर्वज्ञो लोकचक्षुस्तमोपहः ॥ सर्वेषांकर्मणांसाक्षी सर्वःसर्वत्रसञ्चरः ॥ ९२ ॥ मह्यंश्रेयःकथंवास्यादितिसापरिचिन्त्यच ॥ अगच्छद्वडवाभूत्वा तपसेपर्यनिन्दिता ॥ ९३ ॥ उत्तरांश्चकुरून्प्राप चरन्तीनीरसन्तृणम् ॥ व्युत्तेपेचतपस्तीव्रं पतिमाधायचेतसि ॥ तपोबलेनतत्पत्युः संहिष्येतेजइत्यलम् ॥ ९४ ॥ मन्यमानोथतांसंज्ञां सवर्णायां

है कि ॥ ८९ ॥ अपने हाथसे बरते अङ्गारका धरना आज मैंने प्रकट देखा कि मूढ़पनीसे पतिका घर नष्टहुआ और पिताका घर कल्याणकारी हो या न हो ॥ ९० ॥ क्योंकि पहली अवस्था व सुन्दररूप जोकि त्रिलोक से वाञ्छित है व सबका तिरस्कार है जिससे वह स्त्रीभाव व बहुत विमलकुल ॥ ९१ ॥ और वैसाही स्वामी जो कि सर्वज्ञ व लोकोंके या लोगोंके नेत्रोंके देव अन्धकारहार व सब कर्मोंके साखी व शिवस्वरूप और सर्वत्र विचरनेवाले हैं ॥ ९२ ॥ मेरा कल्याण कैसे होवे यों चिंतना कर सब ओरसे अनिन्दित वह घोड़ीरूप होकर तपस्या को गई ॥ ९३ ॥ व रसरहितखर चरतीहुई उत्तर कुरुखण्ड मे पहुँची व पतिको मनमें थाप तीव्रतपस्या करती

भई कि पतिके उस अधिक तेजको तपस्या के बलसे सहोंगी ॥ ९४ ॥ और उसको संज्ञा मानतेहुये सूर्य्यने सवर्णा में उत्तम व अठयें मनु सावर्णि नाम पुत्रको उपजाया ॥ ९५ ॥ व दूसरा पुत्र शनैश्चर तथा तीसरी भद्रानाम कन्या उपजी जिसको तपती कहते हैं और सौतिभाव व स्त्रीस्वभावसे सवर्णाने अपने लड़कों में ॥ ९६ ॥ जैसे अधिक सनेह किया वैसे पहलेवालों में नहीं तब जेठे मनुने भोजन भूषण लालन और पालन में उस भेद को क्षमा किया ॥ ९७ ॥ परन्तु सावर्णिआदि छोटे भाइयों में माताके अधिक सनेह को यम न सहसके और कभी कोप व बालपनी व होनहार की गुरुता से ॥ ९८ ॥ यमने छायाको पांवसे मारा तब वह सावर्णिकी

तदारविः ॥ सावर्णिंजनयामास मनुमष्टमजुत्तमम् ॥ ९५ ॥ शनैश्चरंद्वितीयञ्च सुतांभद्रांतृतीयिकाम् ॥ सवर्णास्वेष्वप त्येषु सापत्न्यात्स्त्रीस्वभावतः ॥ ९६ ॥ चकाराभ्यधिकंस्नेहं नतथापूर्वजेष्वथ ॥ मनुस्तत्क्षान्तवाञ्ज्येष्ठो भक्ष्याल ङ्कारलालने ॥ ९७ ॥ कनिष्ठेष्वधिकंदृष्ट्वा सावर्ण्यादिषुनोयमः ॥ कदाचिद्रोषतोबाल्याद्भाविनोर्थस्यगौरवात् ॥ ९८ ॥ पदासन्तर्जयामास यमःसंज्ञासरूपिणीम् ॥ तंशशापचसाक्रोधात्सावर्णेर्जननीतदा ॥ ९९ ॥ जिघांसतात्वयापाप मांयदङ्घ्रिःसमुद्यतः ॥ अचिरात्तत्पतत्वेष तवेतिभृशदुःखिता ॥ १०० ॥ मातृशापपरित्रस्तो यमोपिपितुरग्रतः ॥ श शंससर्वंतद्वृत्तं रक्षरक्षेत्युवाचच ॥ १ ॥ मात्रासुतेषुसर्वेषु वर्तनीयंसमंयतः ॥ तस्यांमयोद्यतःपादो नदेहेपरिपातितः ॥ २ ॥ बाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हसि ॥ गोपतेशापतोमातुर्मापतत्वङ्घ्रिरेषमे ॥ ३ ॥ विवस्वानुवाच ॥ अप राधसहस्रेपि जननीनशपेत्सुतम् ॥ तस्मात्किमपिभोबालभविष्यत्यत्रकारणम् ॥ ४ ॥ येनत्वांसाऽशपत्क्रोधाद्धर्मज्ञं

माता उनको शापती भई कि ॥ ९९ ॥ हे पाप ! जिससे मारनेका चाही तैंने पांव उठाया उस कारण तेरा यह पांव शीघ्रही कटपड़े यों कह बहुत दुःखितहुई ॥ १०० ॥ व माता के शापसे डरेहुये यमभी पिताके आगे उस वृत्तान्त को बताया और बचावो बचावो यों कहते भये ॥ १ ॥ जिससे सब पुत्रोंमें माताका बराबर बर्तना चाहिये इससे मैंने उसके ओर पांव उठाया किन्तु देहमें नहीं गिराया ॥ २ ॥ लड़कई अथवा मोहसे जो कुछ हुवा उसके क्षमाकरनेको आप समर्थहो हे किरणों के स्वामिन् ! माता के शापसे मेरा यह पांव मत गिरे ॥ ३ ॥ सूर्य्यजी बोले कि हे बालक ! हजारों अपराधमें भी माता पुत्रको नहीं शाप देतीहै इससे इसमें कुछ का-

रणहोगा ॥ ४ ॥ जिससे धर्मज्ञ व सत्य वचन बोलतेहुये तुझको उसने शाप दिया और माताका शाप किसीसे अन्यथा करने योग्य कहीं नहीं है ॥ ५ ॥ इस से चींटीआदि कीड़े इस पांवसे मांसले भूमिको जायँगे यों शाप घटित होवे और आपभी बचायेगये ॥ ६ ॥ यों पुत्रका आश्वासन कर सूर्य्यजी रनिवास को जाते भये और बड़ीबेरलों उस स्त्रीको देख स्वामीजी वचन बोले कि॥ ७ ॥ हे सुन्दरि ! तुम बराबर बालकों में भी लहुरे सावर्णिआदिकों में अधिक स्नेह कैसे करती हो ॥ ८ ॥ अनन्तर वह जब पूंछतेहुये सूर्य्यसे न बोली तब उन्होंने मनको सावधान कर सबजाना ॥ ९ ॥ तदनन्तर उसने शाप देनेको उद्यत ऐश्वर्य्यसम्पन्न से

सत्यवादिनम् ॥ मातृशापोन्यथाकर्तुं नशक्यःकेनचित्कचित् ॥ ५ ॥ कृमयोमांसमादाय यास्यन्त्यस्मान्महीतलम् ॥ इत्थन्तुचरितार्थःस्याच्छापस्त्रातोभवानपि ॥ ६ ॥ इतिपुत्रंसमाश्वास्य रविरन्तःपुरंययौ ॥ चिरमालोक्यतांभार्यामुवाचसवितावचः ॥ ७ ॥ अयिभामिनिबालेषुसमेष्वपिकुतस्त्वया ॥ विधीयतेऽधिकःस्नेहः सावर्ण्यादिष्वनादिषु ॥ ८ ॥ नाचचक्षेयदासाऽथ भास्वतेपरिपृच्छते ॥ तदात्मानंसमाधाय सोज्ञासीत्सर्वमेवहि ॥ ९ ॥ ततोभगवतेशप्तुमुद्यतेसाशशंसह ॥ यथावृत्तंतथातथ्यं तुतोषभगवानपि ॥ १० ॥ तथ्यभाषणतस्तान्तु रविर्ज्ञात्वानिरागसम् ॥ नशशापचसंक्रुद्धो ययौचत्वष्टुरन्तिकम् ॥ ११ ॥ त्वष्टापिचयथान्यायंसान्वयंतिग्मतेजसम् ॥ निर्दग्धुकामंकोपेन प्रागानर्चमुदा तदा ॥ विज्ञायतदभिप्रायं त्वष्टोवाचाशुतंरविम् ॥ १२ ॥ त्वष्टोवाच ॥ तवातितेजसोभीता प्राप्योत्तरकुरून्रवे ॥ वडवारूपमास्थाय वनेचरतिशाद्वले ॥ १३ ॥ द्रष्टाहितांभवानद्यस्वांभार्यामार्यचारिणीम् ॥ अधृष्यांसर्वभूतानां तेजसां

जैसा हाल सत्य था वैसा सब कहा और भगवान्भी सन्तुष्टहुये ॥ १० ॥ व सत्यबोलनेसे उसको पापहीन जान सूर्य्यजीने न शापदिया किन्तु बहुत कुपित होकर त्वष्टा के लगेगये ॥ ११ ॥ तब तेजसे जलने चाहते अनुगामियों समेत त्वष्टाने तीक्ष्ण तेजधारी सूर्य्यको जैसे चही वैसे पहलेही पूजाव आनन्द से उनका अभिप्राय जान शीघ्र उनसे यों कहा कि ॥ १२ ॥ हे रविजी ! जोकि आपके अधिक तेजसे डरीहुई उत्तर कुरुखण्ड में जा घोड़ीका रूपधर हरेतृण से भरे वनमें चरती है ॥ १३ ॥

उस धर्मचारिणी अपनी स्त्रीको आप आज देखोगे जोकि तेजोंके नियम से सब जन्तुओं करके धर्षणे योग्य नहीं है याने उससे कोई ढिठाई नहीं करसक्ता ॥ १४ ॥ और जिससे उनकेही सम्मत से वह सूर्य्य यत्नसे शानमें चढ़ाय त्वष्टाकरके रेतेगये उससे अधिक छबीलेभये ॥ १५ ॥ अनन्तर पाया आज्ञा जिराने उस सूर्य्यने शीघ्रही उत्तर कुरुखण्ड में जा बड़ा तप करती व साक्षात् तपस्यामयी लक्ष्मीसी ॥ १६ ॥ घोड़ीरूप स्त्रीको देखा जिसका वडवानलके समान तेजहै जोकि योगमाया से नि-रस खर खातीहै ॥ १७ ॥ उस अश्वरूपिणी त्वष्टाकी पुत्रीको अपापिनी जान उन सूर्य्यने अश्वरूप से मुखमें मुख मिलाया ॥ १८ ॥ तब परपुरुष की शङ्कासे सब

नियमेनच ॥ १४ ॥ त्वष्ट्रायन्त्रक्षितःसूर्यस्तस्यैवानुमतेनच ॥ भ्रमिमारोप्ययत्नेन सोतिकान्ततरोऽभवत् ॥ १५ ॥ लब्धानुज्ञोऽथसविता गत्वोत्तरकुरूनरम् ॥ साक्षात्तपोमयींलक्ष्मीं चरन्तीञ्चतपोमहत् ॥ १६ ॥ ददर्शवडवारूपां वाडवानलतेजसम् ॥ नीरसानितृणान्येव खादन्तींयोगमायया ॥ १७ ॥ अनेनसंसविज्ञाय तांत्वाष्ट्रीमश्वरूपिणीम् ॥ सहरिर्हरिरूपेण मुखेनसमभावयत् ॥ १८ ॥ त्वरमाणाचपरितः परपूरुषशङ्कया ॥ सातन्निरवमच्छुक्रंनासिकाभ्यांविवस्वतः १९ ॥ देवौतस्मादजायेतामश्विनौभिषजांवरौ ॥ स्वरूपमनुरूपञ्च द्युमणिस्तामदर्शयत् ॥ २० ॥ तुतोषसापितंदृष्ट्वा मित्रंनेत्रमुदावहम् ॥ पतिंपतिव्रताकान्तं स्वान्तसन्तापहारिणम् ॥ २१ ॥ निर्वृत्तिंचपरांप्राप दुष्प्रापंतपसाथकिम् ॥ तपएवपरंश्रेयस्तपएवपरंधनम् ॥ २२ ॥ तपएवहिदेवत्वेकारणंपरसम्मतम् ॥ शिवशर्मन्यदेतद्धि दृश्यतेचातिदीप्तिमत् ॥ २३ ॥ ज्योतिश्चक्रस्वरूपञ्च व्योम्न्युपर्यधएवच ॥ तत्सर्वमिहजानीहि सुमहत्तापसम्महः ॥ २४ ॥ एवंशनैश्च

ओरमें वेगसे धावती वह सूर्य्यके उस वीर्य्यको नाकके छेदोंसे उबकतीभई ॥ १९ ॥ और उसी शुक्रसे अश्विनीकुमार नाम दो देव उपजे जोकि वैद्योंमें श्रेष्ठहै और सूर्य्यने उसको उसके अनुरूप अपना सुन्दर स्वरूप दिखाया ॥ २० ॥ व आंखोंके आनन्दकारी मनसन्तापहारी शोभावान् अपने पति उन सूर्य्यको देख वह पतिव्रता भी सन्तुष्ट हुई ॥ २१ ॥ और उत्तम सुखको पहुँची क्योंकि तपस्या से क्या दुर्लभ है तपही परे कल्याण तपही सबसे परे धन ॥ २२ ॥ और तपही देवता होने में मुख्य कारण मानागया है हे शिवशर्मन् ! यहभी जो अधिक दीप्तिवाला दीखता है ॥ २३ ॥ जोकि आकाश में ऊँचे और नीचे ज्योतिश्चक्ररूप है उस सबको यहां तपस्या का

तेज जानो ॥ २४ ॥ यों सूर्य्यसे सवर्णा में शनैश्चर उपजा अनन्तर उसने देवोंसे वन्दित काशीमें जा ॥२५॥ शिवका लिंग थाप बहुत भारी तपस्याकर शिवके पूजने से ऊंचे इस लोक और ग्रहपद को पाया ॥ २६ ॥ काशीमें सुन्दर शनैश्चरेश्वर को देख व शनिवारमें उसके पूजने से शनैश्चर की पीड़ा न होवेगी ॥ २७ ॥ विश्वनाथ के दक्षिण और शुक्रेश्वरके उत्तरओर में शनैश्चरेश्वर को पूज इस लोकमें आनन्द को प्राप्त होता है ॥ २८ ॥ पुण्यरूप इस अध्याय को सुन ग्रहों की पीड़ा नहीं होतीहै और काशीमे बसते उस सज्जन को महामारीआदि किसी उपद्रव से डर नहीं ॥ १२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते

रोजज्ञे सवर्णायांविवस्वतः ॥ सोऽथवाराणसींगत्वा सर्वत्रिदशवन्दिताम् ॥ २५ ॥ तप्त्वातपोऽतिविपुलं लिङ्गंसंस्थाप्य शाङ्करम् ॥ इमंलोकमवापोच्चैर्ग्रहत्वञ्चहरार्चनात् ॥ २६ ॥ शनैश्चरेश्वरंदृष्ट्वा वाराणस्यांसुशोभनम् ॥ शनिबाधान जायेत शनिवारेतदर्चनात् ॥ २७ ॥ विश्वेशाद्दक्षिणेभागेशुक्रेशादुत्तरेणहि ॥ शनैश्चरेशमभ्यर्च्य लोकेऽत्रपरिमोदते ॥ २८ ॥ श्रुत्वाऽध्यायमिमंपुण्यं ग्रहपीडानजायते ॥ नोपसर्गभयंतस्य काश्यांनिवसतःसतः ॥ १२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभौमगुरुशनिलोकवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ * ॥ * ॥

अगस्तिरुवाच ॥ इतिशृण्वन्कथांरम्यां शिवशर्माऽथमाथुरः ॥ मुक्तिपुर्यांसुसंस्नातो मायापुर्यांगतासुकः ॥ १ ॥ नेत्रयोःप्राघुणीचक्रे.ततःसप्तर्षिमण्डलम् ॥ व्रजन्सवैष्णवंलोकमन्तेविष्णुपुरीक्षणात् ॥ २ ॥ उवाचचप्रसन्नात्मास्तुतश्चारणमागधैः ॥ प्रार्थितोदेवकन्याभिस्तिष्ठतिष्ठेतिचक्षणम् ॥ ३ ॥ स्थितासुतासुनिःश्वस्य मन्दभाग्यावयंति

भौमगुरुशनिलोकवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० ॥ अष्टादश अध्याय में सातऋषिन को लोक । वर्णन किय विस्तार से देखैं जे मतिओक ॥ अगस्त्यजी बोले कि यों मन रमानेवाली कथाको सुनता शिवशर्मा जोकि मथुरापुरी का वासी व मुक्तिपुरीमें नहायाहुआ हरिद्वारमें मरा ॥ १ ॥ तदनन्तर उसने सात ऋषियों के मण्डलको आंखोके प्रत्यक्ष किया और अन्त याने मरण समय मे विष्णुपुरी देखने से विष्णुलोक को जाताहै ॥ २ ॥ व प्रसन्नचित्त व चारण तथा मागधनाम देवभेदो से प्रशंसित व क्षणभर टिको टिको यों देवकन्याओं से

प्रार्थितहो तब बोला ॥ ३ ॥ जब वे ऊर्ध्वश्वास ले यों रहगईं कि हम अभागिनी हैं वह पुण्यात्मा बड़े पुण्यलोकों को गयाहै ॥ ४ ॥ यों उनका वचन सुनता व विमान में बैठाहुआ वह बोला कि हे देवो ! यह तेजोमय अनूप अच्छा कि किसका लोकहै ॥ ५ ॥ यों ब्राह्मणका वचनसुन गणश्रेष्ठोंने कहा कि हे शिवमें मन लगानेवाले शिवशर्मन् ! जे सात ऋषि सदा शुद्धहैं ॥ ६ ॥ वे ब्रह्मासे प्रेरित प्रजाओं को बनानेकेलिये यहां बसते हैं मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, अङ्गिरा ॥ ७ ॥ और महाभाग्यवान् वसिष्ठ जी ये ब्रह्माके मनसे उपजे सात पुत्र पुराणों में सात ब्राह्मण इस निश्चयको पहुँचे हैं ॥ ८ ॥ व सम्भूति अनसूया क्षमा प्रीति सन्नति स्मृति और अरुन्धती ये लोककी

ति ॥ गतःपुण्यतमाँल्लोकानसौयत्पुण्यवत्तमः ॥ ४ ॥ इतिशृण्वन्मुखात्तासां वचनानिविमानगः ॥ देवौकस्यायमतु लो लोकस्तेजोमयःशुभः ॥ ५ ॥ इतिद्विजवचःश्रुत्वा प्रोचतुर्गणसत्तमौ ॥ शिवशर्मन्छिवमते सदासप्तर्षयोमलाः ॥ ६ ॥ वसन्तीहप्रजाःस्रष्टुं विनियुक्ताःप्रजासृजा ॥ मरीचिरत्रिःपुलहः पुलस्त्यःक्रतुरङ्गिराः ॥ ७ ॥ वसिष्ठश्चमहाभागो ब्रह्मणोमानसाःसुताः ॥ सप्तब्रह्माणइत्येते पुराणेनिश्चयङ्गताः ॥ ८ ॥ संभूतिरनसूयाच क्षमाप्रीतिश्चसन्नतिः ॥ स्मृति रूर्जाक्रमादेषां पत्न्योलोकस्यमातरः ॥ ९ ॥ एतेषांतपसाचैतद्धार्यतेभुवनत्रयम् ॥ उत्पाद्यब्रह्मणापूर्वमेतेप्रोक्तामहर्ष यः ॥ १० ॥ प्रजाःसृजतरेपुत्रा नानारूपाःप्रयत्नतः ॥ ततःप्रणम्यब्रह्माणं तपसेकृतनिश्चयाः ॥ ११ ॥ अविमुक्तंसमा साद्य क्षेत्रंक्षेत्रज्ञाधिष्ठितम् ॥ मुक्तयेसर्वजन्तूनामविमुक्तंशिवेनयत् ॥ १२ ॥ प्रतिष्ठाप्यचलिङ्गानि स्वस्वनाम्नाङ्कितानि च ॥ शिवेतिपरयाभक्त्या तेपुस्तप्यन्तपोऽत्युग्रम् ॥ १३ ॥ तुष्टस्तत्तपसाशम्भुः प्राजापत्यपदंददौ ॥ लिङ्गान्यत्रीश्वरादी

मातायें क्रमसे इन सातोंकी स्त्रियां हैं ॥ ९ ॥ व इनकी तपस्या से यह त्रिलोक धाराजाता है क्योंकि पहले उत्पन्नकर ब्रह्माजी करके ये महर्षि कहेगये कि ॥ १० ॥ हे पुत्रो ! बहुत भांतिके रूपहैं जिनके ऐसी प्रजाओं को यत्नसे सिरजो तब ब्रह्माके प्रणाम कर तपस्यामें निश्चय किये वे ॥ ११ ॥ काशीक्षेत्र को जा जोकि ईश्वर से बसाभया व सब जन्तुओंके मोक्षके लिये शिवसे कभी नहीं तजागयाहै ॥ १२ ॥ वहां अपने नामोंसे चिह्नित लिंगोंको थाप शिवमें परमभक्ति से बहुत घोर तपस्या करते

भये ॥ १३ ॥ तब उस तपस्या से सन्तुष्ट शङ्कर ने प्रजापति का पद दिया व काशी में यत्नसे अत्रीश्वरादि लिंगोंको देख ॥ १४ ॥ वे उजले तेजवाले लोग इस प्राजा-
पत्यलोक में बसते हैं गोकर्णेश तड़ाग के पश्चिम किनारे में थापे ॥ १५ ॥ अत्रीश्वर लिंगके दर्शनकर ब्रह्मतेज बढ़ताहै व कर्कोट बावलीके ईशान कोणमें जो मरीचि
का उत्तम कुण्डहै ॥ १६ ॥ उसमें नहायकर मनुष्य सूर्य्य के समान शोभता है व तहां मरीचीश्वर नाम लिंग थापागया है ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण ! उस लिंग के दर्शन
से मरीचिके लोकको जाताहै व वह पुरुषश्रेष्ठ शोभासे सूर्य्यसा सोहता है ॥ १८ ॥ व स्वर्गद्वारके पश्चिममें पुलहेश्वर और पुलस्त्येश्वर हैं उन लिंगोंको लख मनुष्य प्राजा-

नि दृष्ट्वाकाश्यांप्रयत्नतः ॥ १४ ॥ प्राजापत्येऽत्रतेलोके वसन्त्युज्ज्वलतेजसः ॥ गोकर्णेशस्यसरसः प्रत्यक्तीरेप्रति
ष्ठितम् ॥ १५ ॥ लिङ्गमत्रीश्वरंदृष्ट्वा ब्रह्मतेजोभिवर्धते ॥ कर्कोटवाप्याईशाने मरीचेःकुण्डमुत्तमम् ॥ १६ ॥ तत्र
स्नात्वानरोभक्त्या भ्राजतेभास्करोयथा ॥ मरीचीश्वरसंज्ञन्तु तत्रलिङ्गंप्रतिष्ठितम् ॥ १७ ॥ तल्लिङ्गदर्शनाद्विप्र मारी
चंलोकमाप्नुयात् ॥ कान्त्यामरीचिमालीव शोभतेपुरुषर्षभः ॥ १८ ॥ पुलहेशपुलस्त्येशौ स्वर्गद्वारस्यपश्चिमे ॥ तौ
दृष्ट्वामनुजोलोके प्राजापत्येमहीयते ॥ १९ ॥ हरिकेशवनेरम्ये दृष्ट्वैवाङ्गिरसेश्वरम् ॥ इहलोकेवसेद्विप्र तेजसापरिबृं
हितः ॥ २० ॥ वरणायास्तटेरम्ये दृष्ट्वावासिष्ठमीश्वरम् ॥ क्रत्वीश्वरञ्चतत्रैव लभतेवसतिन्त्विह ॥ २१ ॥ काश्यामेता
निलिङ्गानि सेवितानिशुभैषिभिः ॥ मनोभिवाञ्छितंदद्युरिहलोकेपरत्रच ॥ २२ ॥ गणावूचतुः ॥ शिवशर्मन्महाभाग
तिष्ठतेसात्रसुन्दरी ॥ अरुन्धतीमहापुण्या पतिव्रतपरायणा ॥ २३ ॥ यस्याःस्मरणमात्रेण गङ्गास्नानफलंलभेत् ॥

पत्यलोक में पूजाजाता है ॥ १९ ॥ हे ब्राह्मण ! रमणीक हरिकेशवन में आङ्गिरसेश्वरको देख तेजसे बढ़ाहुआ इस काशी या सप्तर्षिलोकमें बसेहै ॥ २० ॥ व वरणानदी
के मनोरमतीर मे वसिष्ठेश्वर और वहांही क्रत्वीश्वरलिंग के दर्शनकर यहां वासपाताहै ॥ २१ ॥ और काशीमें शुभचाही लोगोंसे सेवित ये लिंग यहां और परलोकमें
भी मनमाना फल देतेहैं ॥ २२ ॥ विष्णुजी के गण बोले किहे शिवशर्मन् महाभाग ! यहां वह महापुण्या पतिव्रता सुन्दरी अरुन्धती नाम वसिष्ठ की स्त्री रहतीहै ॥ २३ ॥

जिसके सुमिरने मात्रसे मनुष्य गङ्गास्नान का फल पावे क्योंकि रनिवास के आने जानेवाले दो तीन लोगों समेत समर्थ॥ २४ ॥ श्रीनारायणदेवजी जोकि पातिव्रतधर्म से बहुत सन्तुष्ट हैं उन्होंने आनन्द से लक्ष्मीके आगे सदा जिसकी कथाको किया है कि ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मि ! हे सुन्दरि ! पतिव्रताओं में जैसा अरुन्धती का शुद्ध अन्तःकरण है वैसा अन्य किसीका कहीं भी नहीं है ॥ २६ ॥ वह सुन्दरता शील कुलीनता कलाओं में निपुणता पतिकी सेवा ॥ २७ ॥ मधुरता गम्भीरता और आचार्य्योंका सन्तोषण करना ये सब जैसे अरुन्धती के हैं हे प्रिये! हे देवि! वैसे औरी स्त्रियोंके कहीं नहीं हैं ॥ २८ ॥ जे अवसर में अरुन्धती का नामभी लेती हैं वे शुद्ध

अन्तःपुरचरैर्द्वित्रैः पवित्रैःसहितोविभुः ॥ २४ ॥ सदानारायणोदेवो यस्याश्चक्रेकथांमुदा ॥ कमलायाःपुरोभागे पातिव्रत्यसुतोषितः ॥ २५ ॥ पतिव्रतास्वरुन्धत्याः कमलेविमलाशयः ॥ यथास्तिनतथाऽन्यस्याः कस्याश्चित्कापिभामिनि ॥ २६ ॥ नतद्रूपंनतच्छीलं नतत्कौलीन्यमेवच ॥ नतत्कलासुकौशल्यं पत्युःशुश्रूषणंनतत् ॥ २७॥ नमाधुर्यंनगाम्भीर्यं नचार्यपरितोषणम् ॥ अरुन्धत्यायथादेवि तथाऽन्यासांकचित्प्रिये ॥ २८ ॥ धन्यास्तायोषितोलोके सभाग्याः शुद्धबुद्धयः ॥ अरुन्धत्याःप्रसङ्गेया नामापिपरिगृह्णते ॥ २९ ॥ यदापतिव्रतानांतु कथाऽस्मद्भवनेभवेत् ॥ तदाप्राथमिकींरेखामेषाऽलङ्कुरुतेसती ॥ ३० ॥ ब्रुवतोरितिसंकथांतथागणयोर्वैष्णवयोर्मुदावहाम् ॥ ध्रुवलोकउपागतस्ततोनयनातिथ्यमतथ्यवर्जितः ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसप्तर्षिलोकवर्णनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

बुद्धिवाली सुभागिनी स्त्रियां लोकमें धन्यहैं ॥ २९ ॥ जब हमारे वैकुण्ठलोक में पतिव्रताओं की कथा होती है तब यह अरुन्धती पतिव्रता पहलीरेखा को भूषित करती है याने इसकी गन्ती पहले कीजाती है ॥ ३० ॥ तदनन्तर आनन्ददायिनी तथा कथाको यों कहतेहुये विष्णुगणोंकी आंखों के अतिथिभाव को वह ध्रुवका लोकलगे प्राप्तभया जोकि ब्रह्मा के दिनवाले प्रलय से हीनहै ॥ ३१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेसप्तर्षिलोकवर्णनन्नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ वनइस के अध्याय में जानिलेहु मतिवान। कीन बहुत विस्तार से ध्रुव को लोक बखान ॥ शिवशर्मा बोला कि हे सज्जनों में श्रेष्ठो! दोनों पावोंके एकरूप होनेसे एक पांव से टिकासा यह को भ्रमता है जोकि अनेक वायुमयी रस्सियों से व्याकुल हस्तांगुलीवाला व चञ्चलनेत्र ॥ १ ॥ व त्रिलोकमण्डप के खम्भाके समान व किरणों से घिरा व अतोल सूर्य्यादि ज्योतिसमूह को तुलासे तौलतासा है ॥ २ ॥ व आकाश का विस्तार नापता थवई या सुतार सा है व आकाश चौक में वामन अवतार का बड़ाभारी पाददण्ड है ॥ ३ ॥ अथवा आकाशरूप तड़ागके बीच खंभा का स्वरूपधारी यह को है हे देवौ! बड़ी कृपाकरके मुझसे कहो ॥ ४ ॥ यों उस

शिवशर्मोवाच ॥ तिष्ठन्नेकेनपादेन कोयंभ्रमतिसत्तमौ ॥ अनेकरशनाव्यग्रहस्ताग्रोव्यग्रलोचनः ॥ १ ॥ त्रिलोकीमण्डपस्तम्भसन्निभोभाभिरावृतः ॥ अतुलंज्योतिषांराशिं तुलयातुलयन्निव ॥ २ ॥ सूत्रधारइवव्योमव्यायामपरिमापकः ॥ त्रैविक्रमोङ्घ्रिदण्डोवा प्रोद्दण्डोगगनाङ्गणे ॥ ३ ॥ अथवाम्बरकासारसारयूपस्वरूपधृक् ॥ कोयंकथयतंदेवौ कृपयापरयामम ॥ ४ ॥ निशम्येतिवचस्तस्य वयस्यस्यविमानगौ ॥ प्रणयादाहतुस्तस्मै ध्रुवांध्रुवकथांगणौ ॥ ५ ॥ गणावूचतुः ॥ मनोःस्वायम्भुवस्यासीदुत्तानचरणःसुतः ॥ तस्यक्षितिपतेर्विप्र द्वौसुतौसम्बभूवतुः ॥ ६ ॥ सुरुच्यामुत्तमोज्येष्ठः सुनीत्यांतुध्रुवोपरः ॥ मध्येसभंनरपतेरुपविष्टस्यचैकदा ॥ ७ ॥ सुनीत्याराजसेवायै नियुक्तोऽलङ्कृतोर्भकः ॥ ध्रुवोधात्रेयिकापुत्रैः समंविनयतत्परः ॥ ८ ॥ सगत्वोत्तानचरणं क्षोणीशंप्रणनामह ॥ दृष्ट्वोत्तमंतदुत्सङ्गे निविष्टंजनकस्यवै ॥ ९ ॥ प्राप्यसिंहासनस्थस्य नृपतेर्बाल्यचापलात् ॥ आरोढुकामस्त्वभवत्सौनीतेयस्तदाध्रुवः ॥ १० ॥

व्यवहारी का वचनसुन विमान में बैठे विष्णुगण ध्रुवकी अचलफलवाली कथाको कहनेलगे ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मण! स्वायम्भुवमनु का पुत्र उत्तानपाद हुआ उस राजाके दो पुत्र भये ॥ ६ ॥ सुरुचिरानी में जेठपुत्र उत्तमनामक और सुनीति में ध्रुव नामक लहुरा लड़का उपजा एक समय सभाके बीच बैठे नरेश के पास में ॥ ७ ॥ सुनीति ने गहने पहनाकर विनय में तत्पर ध्रुव बालक को धाईके पुत्रोंके साथ राजाकी सेवाके लिये पठाया ॥ ८ ॥ वह वहां जा उत्तानपाद भूपको प्रणाम करता भया तदनन्तर उस पिता के गोद में बैठे अपने भाई उत्तमको भी देख ॥ ९ ॥ तब सुनीति का पुत्र ध्रुवभी बालपन की चञ्चलता से ऊँचे सिंहासन

में बैठे राजाके गोदमें चढ़नेका चाहीहुआ ॥१०॥ चढ़ने चाहते उस ध्रुवको देख सुरुचिने कहा कि हे अभागिनीके पुत्र! क्या तू राजाके गोदमें चढ़ना चाहताहै ॥११॥ हे बालक! हे अभागिनी के उदर से उत्पन्न! तैंने मूर्खबुद्धिता से इस सिंहासनमें बैठनेके लिये पुण्य नहीं किया ॥ १२ ॥ और जो पुण्य हो तो तू अभागिनी के उदर में क्यों भयाहै इस अनुमान सेही अपनी थोड़ी पुण्यताको जानले ॥ १३ ॥ क्योंकि राजकुमार भी होकर तैंने मेरे उदरको नहीं भूषित किया याने तू मुझसे नहीं उपजा है और अच्छी कोखमें उपजे अतिउत्तम उस उत्तमको देखले ॥ १४ ॥ जोकि राजा के गोदमें लालित है और जो इस ऊंचे सिंहासन पर बैठने की रुचिहै ॥ १५ ॥ तो

आरुरुक्षुमवेक्ष्यामुं सुरुचिर्ध्रुवमब्रवीत् ॥ दौर्भगेयाकिमारोढुमिच्छेरङ्कंमहीपतेः ॥ ११ ॥ बालबालिशबुद्धित्वादभाग्या जठरोद्भव ॥ अस्मिन्सिंहासनेस्थातुं नत्वयासुकृतंकृतम् ॥१२ ॥ यदिस्यात्सुकृतंतत्किं दुर्भगोदरगोऽभवः ॥ अनेनैवा नुमानेन बुध्यस्वस्वाऽल्पपुण्यताम् ॥ १३ ॥ भूत्वाराजकुमारोपि नालंकुर्याममोदरम् ॥ सुकुक्षिजममुंपश्य त्वमुत्त ममनुत्तमम् ॥ १४ ॥ अधिजानुधराजानेर्मानेनपरिबृंहितम् ॥ प्रांशोःसिंहासनस्यास्य रुचिश्चेदधिरोहणे ॥ १५ ॥ कु क्षिंहित्वाकिमवसः सुरुचेश्चसुरोचिषम् ॥ मध्येभूपसभंबालस्तयेतिपरिभर्त्सितः ॥ १६ ॥ पतन्निपीतबाष्पाम्बुर्धैर्यात्कि ञ्चिन्नचोक्तवान् ॥ उचिताऽनुचितंकिञ्चिन्नोचिवान्सोपिपार्थिवः ॥ १७ ॥ नियन्त्रितोमहिष्याश्च तस्याःसौभाग्यगौर वात् ॥ विसृज्यचसभालोकं शोकंसंमृज्यचेष्टितैः ॥ १८ ॥ शैशवैःसशिशुर्नत्वा नृपंस्वसदनंययौ ॥ सुनीतिर्नीतिनिल यमवलोक्याथबालकम् ॥ १९ ॥ मुखलक्ष्म्यैवचाज्ञासीद्ध्रुवंसमवमानितम् ॥ अभिसृत्यचतंबालं मूर्धन्युपाघ्रायसा

मुझ सुरुचिकी अच्छी तेजवाली कोखिको छोड़कर अन्यत्र याने सुनीति की कोखिमें क्यों वास कियाहै यों राजाकी सभाके बीच में सुरुचिने उस बालकको डर-वाया ॥ १६ ॥ और निकलतेहुये आंसुवों को पीलिया याने रोंकलियाहै जिसने ऐसा वह ध्रुव धीरतासे कुछभी न कहा और वह राजाभी उचित अनुचित कुछ न बोला ॥ १७ ॥ क्योंकि उस पटरानीकी सौभाग्य की अधिकाई से बँधा याने वशीभूत था और सभाके जनोंको छोड़ लड़कोंके खेलसे शोकको दूरकरके ॥१८॥ भूपके प्रणामकर वह लड़का अपने घरको गया अनन्तर सुनीतिने नीतिनिधान याने नीतिके जानने वाले उस बालकको देख ॥१९॥ मुखकी शोभासेही ध्रुवको अनादर कियेगये जाना

और उसने उस बालकके सम्मुख जा बार बार शिरसूंघ ॥ २० ॥ सांत्वनसमेत जैसे हो वैसे कुम्हिलाने ऐसे को लिपटा लिया अनन्तर वह एकान्तरनिवासमें बसी सु-
नीतिको देख ॥ २१ ॥ बहुते बड़े निश्वासको ले माताके आगे रोनेलगा व आंसू आंखोमें हैं जिसके उस रानीने समझाकर मुख पोछ ॥ २२ ॥ किससे कि कोमल
हाथ व कोमल, रेशमी आंचल के घिसनों से और माताने तब पूंछा कि रोनेका कारण कह ॥ २३ ॥ हे बालक ! नरपाल के होतेही किसने तेरा अपमान कियाहै तद-
नन्तर पानी पीकर पानलेकर मातासे पूंछाहुआ ध्रुव उपरोध समेत याने समीप में आवरण सहित जैसेहो वैसे उससे बोला कि ॥ २४ ॥ हे जननि ! मैं तुमसे पूंछता

सकृत् ॥ २० ॥ किञ्चित्परिम्लानमिवससान्त्वंपरिषस्वजे ॥ अथदृष्ट्वासुनीतिंस रहोन्तःपुरवासिनीम् ॥ २१ ॥ दीर्घंनिः
श्वस्यबहुशो मातुरग्रेरुरोदह ॥ सान्त्वयित्वाश्रुनयना वदनंपरिमार्ज्यच ॥ २२ ॥ दुकूलाञ्चलसंपर्कैर्मृदुलैर्मृदुपाणि
ना ॥ पप्रच्छतनयंमाता वदरोदनकारणम् ॥ विद्यमानेनरपतौशिशोकेनाऽपमानितः ॥ २३ ॥ अपोऽथसमुपस्पृश्यताम्बू
लंपरिगृह्यच ॥ मात्रापृष्टःसोपरोधं ध्रुवस्तांपर्यभाषत ॥ २४ ॥ संपृच्छेजननित्वाहं सम्यक्शंसममाग्रतः ॥ भार्यात्वेपिचसा
मान्ये कथंसासुरुचिःप्रिया ॥ २५ ॥ कथंनभवतीमातः प्रियाक्षितिपतेरसि ॥ कथमुत्तमतांप्राप्त उत्तमःसुरुचेःसुतः ॥
२६ ॥ कुमारत्वेपिसामान्ये कथंत्वहमनुत्तमः ॥ कथंत्वंमन्दभाग्यासिसुकुक्षिःसुरुचिःकथम् ॥ २७ ॥ कथंनृपासनं
योग्यमुत्तमस्यकथंनमे ॥ कथंमेसुकृतंतुच्छमुत्तमस्योत्तमंकथम् ॥ २८ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य सुनीतिर्नीतिमच्छि
शोः ॥ किञ्चिदुच्छ्वस्यशनकैः शिशुकोपोपशान्तये ॥ २९ ॥ स्वभावमधुरांवाणीं वक्तुंसमुपचक्रमे ॥ सापत्नंप्रतिघंत्य

हूं मेरे आगे भलीभांतिसे कहो कि स्त्रीभावके बराबर होनेमें भी सुरुचि क्यों प्यारी है ॥ २५ ॥ हे मातः ! आप क्यों राजा के प्यारी नहींहो व सुरुचिका पुत्र उत्तम क्यो
उत्तमताको प्राप्तहुआहै ॥ २६ ॥ और कुमारपन के सामान्य होतेभी मैं क्यों हीनहूं क्यों तुम अभागिनी हो व क्यों सुरुचि अच्छी कोखिवाली है ॥ २७ ॥ क्यों राज-
सिंहासन उत्तम के योग्यहै और मेरे क्यो नहींहै क्यों मेरी पुण्यकम और क्यों उत्तम की अधिक है ॥ २८ ॥ यों नीतिवाले ध्रुवका वचन सुन धीरेसे कुछ ऊंचेश्वास ले

पुत्रका क्रोध शान्तहोनेके लिये प्रतिकूल सौतिपन को तज नीतिमें निपुण वह स्वभावसेही मधुरवाणी कहनेको प्रारम्भ करतीभई ॥ २९।३० ॥ सुनीति बोली कि हे बड़ी बुद्धिवाले प्यारे! तुझको सब जनातीहूं अपमानमें ज्ञान मतकर ॥३१॥ उसने जो कहाहै वह सब सही अन्यथा नहींहै वह पतिकी पटरानी व रानियोंमें राजाकी प्यारीहै॥ ३२ ॥ हे तात ! उसने अन्यजन्मोंमें जो पुण्य कमाया है उस पुण्यकी वृद्धिसे सुरुचिमें राजा बहुत अच्छी रुचि रखनेवाला है ॥ ३३ ॥ और जे मेरे समान मन्दभागिनी स्त्रियोंमें थापीहैं उनमें रानीभाव होना केवल कहनूतिमात्रहै किन्तु उस राजा की प्रीति नहींहै ॥ ३४ ॥ और राजसिंहासन के योग्य उत्तम महापुण्य समूह से

क्ता राजनीतिविदांवरा ॥ ३० ॥ सुनीतिरुवाच ॥ अयितातमहाबुद्धे विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ निवेदयामितेसर्वं माऽप मानेमतिंकृथाः ॥ ३१ ॥ तथायदुक्तंतत्सर्वं तथ्यमेवनचान्यथा ॥ सापत्युर्महिषीराज्ञो राज्ञीनामतिवल्लभा ॥ ३२ ॥ तयाजन्मान्तरेतात यत्पुण्यंसमुपार्जितम् ॥ तत्पुण्योपचयाद्राजा सुरुच्यांसुरुचिर्भृशम् ॥ ३३ ॥ मादृश्योमन्दभाग्यायाः प्रमदासुप्रतिष्ठिताः ॥ केवलंराजपत्नीत्ववादस्तासुनतद्रुचिः ॥ ३४ ॥ महासुकृतसम्भारैरुत्तमश्चोत्तमोदरे ॥ उवासतस्याःपुण्याया नृपसिंहासनोचितः ॥ ३५ ॥ आतपत्रंचचन्द्राभं शुभेचापिचचामरे ॥ भद्रासनंतथोच्चंच सिन्धुराश्चमदोद्धुराः ॥ ३६ ॥ तुरङ्गमाश्चतुरगास्त्वनाधिव्याधिजीवितम् ॥ निःसपत्नंशुभंराज्यं प्राज्यंहरिहरार्चनम् ॥ ३७ ॥ विपुलंचकलाज्ञानमधीतमपराजितम् ॥ तथाजयोरिषड्वर्गे स्वभावात्सात्त्विकीमतिः ॥ ३८ ॥ दृष्टिःकारुण्यसम्पूर्णा वाणीमधुरभाषिणी ॥ अनालस्यंचकार्येषु तथागुरुजनेनतिः ॥ ३९ ॥ सर्वत्रशुचितातात सापरोपकृतिःसदा ॥

उस सुभागिनी के गर्भमें बसाहै ॥ ३५ ॥ क्योंकि चन्द्रमा से श्वेतछत्र दो ठौर शुभ चौंर ऊँच सिंहासन मतवाले हाथी ॥ ३६ ॥ व शीघ्रगामी घोड़े व मन तनके रोगों से रहित जीवन व प्रजासुख व निकंटक शुभराज्य विष्णु और शिवका पूजना ॥ ३७ ॥ व बहुत कलाओं का जानना व न हाराहुआ पढ़ना शत्रुषड्वर्ग मे या मनसमेत शब्दादि विषयवाली इन्द्रियों में जीति व स्वभावही से सतोगुणीबुद्धि ॥ ३८ ॥ व दयाभरी दृष्टि मधुर वचन व कामोंमें न आलस व बड़ेलोगों में नवता ॥ ३९ ॥ और

हे तात ! सबसे पवित्रता व वह सदा औरोंका उपकार व उदारतावाली मनकी वृत्ति व सदा अदीन बोलना ॥ ४० ॥ व सभा आंगन में पाण्डित्य व संग्राम में ढिठाई बन्धुवर्गों में सिधाई व मोललेने देनेमें कठिनाई ॥ ४१ ॥ व स्त्रियों के व्यवहारों में कोमलता व प्रजाओं में प्यार करना व ब्राह्मणों से सदा डर व अच्छे आचारवालों की वृत्तिसे जीवना ॥ ४२ ॥ गंगाके किनारे वास तीर्थ व युद्धभूमि में मरण याचकों से और विशेषकर शत्रुओंसे विमुख न होना ॥४३॥ परिवार जनोंके साथ भोग दानो से अव्यर्थ दिनोंका आना याने रोज दानदेना व नित्यही विद्याका व्यसन करना सदा माता पिताके अनुकूल काम करना ॥ ४४ ॥ व सदा सुयश और धर्मका बटोरना

औजस्वलामनोवृत्तिः सदैवादीनवादिता ॥ ४० ॥ सदोजिरेचपाण्डित्यं प्रागल्भ्यंचरणाङ्गणे ॥ आर्जवंबन्धुवर्गेषु काठिन्यंक्रयविक्रये ॥ ४१ ॥ मार्दवंस्त्रीप्रयोगेषु वत्सलत्वंप्रजासुच ॥ ब्राह्मणेभ्योभयंनित्यं वृद्धवृत्त्युपजीवनम् ॥ ४२ ॥ वासोभागीरथीतीरेतीर्थेवामरणंरणे ॥ अपराङ्मुखताऽर्थिभ्यः प्रत्यर्थिभ्योविशेषतः ॥ ४३ ॥ भोगःपरिजनैःसार्द्धं दानावन्ध्यदिनागमः ॥ विद्याव्यसनितानित्यं नित्यंपित्रोरुपस्थितिः ॥ ४४ ॥ यशसःसञ्चयोनित्यं नित्यंधर्मस्यसञ्चयः ॥ स्वर्गापवर्गयोःसिद्धिः सदाशीलस्यमण्डनम् ॥ ४५ ॥ सद्भिश्चसङ्गतिर्नित्यं मैत्रीचपितृमित्रकैः ॥ इतिहासपुराणानामुत्कण्ठाश्रवणेसदा ॥ ४६ ॥ विपद्यपिपरंधैर्यं स्थैर्यंसम्पत्समागमे ॥ गाम्भीर्यंवाग्विलासेषु औदार्यंपात्रपाणिषु ॥ ४७ ॥ देहपरैकाकृशतातपोभिर्नियमैर्यमैः ॥ एतैर्मनोरथफलैः फलन्त्येवतपोद्रुमाः ॥ ४८ ॥ तस्मादल्पतपस्त्वाहं त्वंचाहंचमहामते ॥ प्राप्यापिराजसान्निध्यं राजलक्ष्म्यानभाजनम् ॥ ४९ ॥ मानापमानयोस्तस्मात्स्वकृतंकारणंप

स्वर्ग व मोक्षका साधना व सदा शीलका भूषण याने सुवृत्तिसे रहना ॥ ४५ ॥ व नित्य सन्तोंकी संगति पिताके मित्रोंसे मित्रता इतिहास महाभारतादि पुराण ब्राह्मय और पद्मादि उनके सुनने में सदा उत्कण्ठा ॥ ४६ ॥ व विपत्तिमें भी बड़ी धीरता सम्पत्ति जुड़ने में थिरता बतलाने में गम्भीरता सुपात्रों के हाथोंमें दानदेना ॥ ४७ ॥ व कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रत नियम (शौच सन्तोष तप मन्त्रोंका जप भक्ति) यम अहिंसा सत्य चोरी न करना ब्रह्मचर्य्य और बहुत संग्रह न करना इनसे केवल देहमें दुबराई होना इन वाञ्छित फलोंकरके तपस्यारूप वृक्ष फलतेहैं ॥ ४८ ॥ हे महामते ! उस कारण थोड़ी तपस्या होनेसे तू और मैं राजाकी सामीप्यको पहुँचभी राजलक्ष्मी

का पात्र नहीं हूं ॥ ४९ ॥ उससे आदर व अनादरका मुख्य कारण अपना कर्म्महीहै क्योंकि ब्रह्मा भी अपने किये हुये उस कुकर्म्मको मिटाने के लिये नहीं समर्थ हैं हे पुत्र ! इससे तू मत शोच दैवही वाञ्छित देगा ॥ ५० ॥ यों अच्छी नीतिसमेत सुनीति के वचन सुनकर सुनीतिके पुत्र ध्रुवजी उत्तर कहनेलगे ॥ ५१ ॥ ध्रुव बोले कि हे मातः तपस्विनि सुनीते ! सावधान हो मेरा वचन सुन मुझे बालक यों मान मत अपमान कर ॥ ५२ ॥ जो मैं अत्यन्त पवित्र मनुवंशमें उपजा व उत्तानपादका पुत्र व तेरी कोखमें हुआहूं ॥ ५३ ॥ और हे मातः ! जो सब सम्पत्तियों का कारण तपस्याहीहै तो उस स्थानको प्राप्तहुआ जान जोकि अन्य लोगोंको दुःखसे मिलने योग्य

रम् ॥ स्रष्टापिनापमार्ष्टुंतत्परीष्टेस्वकृतांकृतिम् ॥ माशोचस्त्वमतःपुत्र दिष्टमिष्टंसमर्पयेत् ॥ ५० ॥ इत्याकर्ण्यसुनीत्यास्तन्महावाक्यंसुनीतिमत् ॥ सौनीतेयोध्रुवोवाचमाददेवक्तुमुत्तरम् ॥ ५१ ॥ ध्रुवउवाच ॥ जनयित्रिसुनीतेमे शृणु वाक्यमनाकुलम् ॥ माबालइतिमत्वामामवमंस्थास्तपस्विनि ॥ ५२ ॥ यद्यहंमानवेवंशे जातोस्म्यत्यन्तपावने ॥ उत्तानपादतनयस्त्वदीयोदरसम्भवः ॥ ५३ ॥ तपएवहिचेन्मातः कारणंसर्वसम्पदाम् ॥ तत्तदासादितंविद्धि पदमन्यैर्दुरासदम् ॥ ५४ ॥ एकमेवहिसाहाय्यं कुरुमातरतन्द्रिता ॥ अनुज्ञादानमात्रंच आशीर्भिरभिनन्दय ॥ ५५ ॥ सापिज्ञात्वामहावीर्यं कुमारंकुक्षिसम्भवम् ॥ महत्योत्साहसम्पत्त्या राजमानमुवाचतम् ॥ ५६ ॥ अनुज्ञातुंनशक्ताऽहं त्वामुत्तानशयाङ्गज ॥ साष्टैकवर्षदेशीयं तथापिकथयाम्यहम् ॥ ५७ ॥ सपत्नीवाक्यभल्लीभिर्भिन्नेमहतिमेहृदि ॥ तवबाष्पौघवारीणि नतिष्ठन्तिकरोमिकिम् ॥ ५८ ॥ तानिमन्येऽत्रमार्गेण स्रवन्त्यविरतंशिशो ॥ स्रवन्तीश्चचिकीर्षन्ति प्रति

है ॥ ५४ ॥ हे मातः ! आलस्यरहितहो एकही सहायता करो कि आज्ञा देनामात्र और आशीर्वादों से बढ़ावो ॥ ५५ ॥ उसने भी अपनी कोखमें हुये बड़े वीर्य्यवाले महाशोभासे विराजते कुमारको देख कहा कि ॥ ५६ ॥ हे उत्तानपाद के पुत्र ! कुछ कम नववर्ष के भये तुझे मैं आज्ञा देनेको समर्थ नहींहूं तो भी कहतीहूं कि ॥ ५७ ॥ सौति के वचन भालासे भेदे मेरे महान् हृदय में तेरे आंसुओं का पानी नहीं ठहरता है क्या करूं ॥ ५८ ॥ हे बालक ! मैं यहां यह प्रसिद्ध मानतीहूं कि जैसे न वन्दहों वैसे

तेरे नेत्रमार्ग से वे आंसू चूते हैं और उलटा जल बढ़नेवाली नदियों को करना चाहते हैं ॥ ५९ ॥ हे तात! हे प्यारे! जिसका तू एक पुत्रहै और तेरे आधार मुख्य जीवनहै व तेरे मुखमें लगीहैं आंखें जिसकी उस मुझका तू लकुटी के समानहै ॥ ६० ॥ हे तात! कितने कष्टोंसे इष्टदेवों की प्रार्थनाकर तू मिला है व तेरे मुखचन्द्र के उदय से मेरा मन क्षीरसमुद्र ॥ ६१ ॥ आनन्द दूधसे कुचोंको पूर किनारोके ऊपर उमड़ा होताहै व तेरे अङ्गके रांगसेहुये सुखसमूहसे शीतल भई मैं पानी पीकर ॥ ६२ ॥ पानले पुलकावली पटको तान सेज में सुखसे सोतीहूं ॥ ६३ ॥ हे चन्द्रमुख! तेरे मुखके दोनों ओठ दूध समुद्र से बढ़ाये अमृतको पीवती भीमैं ग्लानिको नहीं

कूलजलाः किल ॥ ५९ ॥ त्वदेकतनयातात त्वदाधारैकजीविता ॥ त्वमङ्गयष्टिरसिमेत्वन्मुखासक्तलोचना ॥ ६० ॥ लब्धोसिकतिभिःकष्टैरिष्टाःसंप्रार्थ्यदेवताः ॥ त्वन्मुखेन्दूदयेतात मन्मनःक्षीरनीरधिः ॥ ६१ ॥ आनन्दपयसापूर्य कुचाबुद्वेलितोभवेत् ॥ त्वदङ्गसङ्गसम्भूतसुखसन्दोहशीतला ॥ ६२ ॥ सुखंशयेसुशयनेप्रावृत्यपुलकाम्बरम् ॥ अपोऽथसमुपस्पृश्य ताम्बूलंपरिगृह्यच ॥ ६३ ॥ त्वदास्यस्यौष्ठपुटकदुग्धवार्धिविवर्धिताम् ॥ सुधांसुधांशुवदनधयन्त्यपिधिनोमिन ॥ ६४ ॥ त्वदीयःशीतलालापः प्रापश्रुतिपथंयदा ॥ सपत्नीवाक्यदवथुस्तदैवस्यात्सवेपथुः ॥ ६५ ॥ यदङ्गनिद्रासिचिरंध्यायन्त्यस्मितदेत्यहम् ॥ कदानिद्रादरिद्रोसौ भवितार्कोदयेऽब्जवत् ॥ ६६ ॥ यदोपेयागृहान्वत्स खेलित्वाबालखेलनैः ॥ तदानर्घ्यार्घ्यमुत्कण्ठस्तनौस्यातामिवोन्मुखौ ॥ ६७ ॥ यदासौधाद्विनिर्यायाः पद्मरेखाङ्कितंपदम् ॥ प्राणानान्तोयियासूनां तदातदवलम्बनम् ॥ ६८ ॥ यदायदाबहिर्यासि पुत्रत्रिचतुरंपदम् ॥ तदातदाममप्राणः कण्ठप्राघुणिकी

पहुँचतीहूं ॥ ६४ ॥ व जब तेरा कोमल वचन कानोके छेदोंमें पैठताहै तबहीं सौति का बोल डगडोल होताहै ॥ ६५ ॥ हे पुत्र! जब तू बहुत कालतक सोताहै तब मैं यों विचारतीहूं कि कब यह कमल की नाई निद्राका दरिद्री होगा याने जैसे सूर्योदय में कमल फूलता है वैसे इसके झपके नयन खुलेंगे ॥ ६६ ॥ हे वत्स! जब तू बाल खेलकर घरको आताहै तब मेरे कुच अमोल अर्घ देनेको उन्नत मुख होते से याने दूधसे चुचुवाते हैं ॥ ६७ ॥ और जब तू राजमन्दिर से निकलजाता है तब कमलरेखा से चिह्नित जो तेरा पद पृथिवी में बनता है वह जाने चाहते प्राणोंका अवलम्बन होताहै ॥ ६८ ॥ हे पुत्र! जब जब तू तीन चार पद बाहर जाताहै तब

तब मेरा प्राण कण्ठका अतिथि होताहै याने कण्ठलों निकल आताहै ॥ ६९ ॥ हे पुत्र ! आश्चर्य्य है कि तेरे बाहर विलम्ब करतेही मेरे मन चकोर चन्द्रमामें जाने कासा शीघ्रता करता है ॥ ७० ॥ अनन्तर तपस्या के लिये तेरे जातेही सन्ताप संयुत तप करनेवाले कठिन मेरे प्राण कण्ठवनतट में टिकैंगे ॥ ७१ ॥ यों पीछे से आज्ञा पाय ध्रुव क्षणभर माताके पद कमलोंको अपने शिरकेकेशरूप कीचसे घिरे हुयेकर चल दिया ॥ ७२ ॥ और उस सुनीतिने भी धीरतासूतसे गूंधा नेत्रकमल की मालाको ध्रुवके लिये भेंटदिया ॥ ७३ ॥ व माताने उसकी गली में रक्षाके अर्थ शत्रुओंसे नहीं रोंकनेयोग्य पसरना जिनका ऐसे असंख्य अपने आशीर्वादों को उसके

भवेत् ॥ ६९ ॥ चित्रंपुत्रत्वरयतियातुंमेमानसाण्डजः ॥ सुधाधाराधरइवबहिश्चिरयतित्वयि ॥ ७० ॥ अथतिष्ठन्तुकठिनाः प्राणाःकण्ठाटवीतटे ॥ तपस्यन्तोतिसन्तप्तास्तपसेत्वयियास्यति ॥ ७१ ॥ इत्यनुज्ञामनुप्राप्य जननीचरणाम्बुजौ ॥ क्षणंमौलिजजम्बालजडौकृत्वाध्रुवोययौ ॥ ७२ ॥ तयापिधैर्यसूत्रेण सुनीत्यापरिगुम्फ्यच ॥ नेत्रेन्दीवरजामाला ध्रुवस्योपायनीकृता ॥ ७३ ॥ मात्रातन्मार्गरक्षार्थं तदातदनुगीकृताः ॥ परैरवार्यप्रसराः स्वाशीर्वादाःपरःशताः ॥ ७४ ॥ स्वसौधात्सविनिर्गत्य बालोऽबालपराक्रमः ॥ अनुकूलेनमरुता दर्शिताध्वाऽविशद्वनम् ॥ ७५ ॥ सुमरुत्तरुशाखाग्रप्रसारणमिषेणसः ॥ कृताहूतिरिवप्रेम्णावनेनवनमाविशत् ॥ ७६ ॥ समातृदैवतोभिज्ञः केवलंराजवर्त्मनि ॥ न वेदकाननाध्वानं क्षणंदध्यौनृपात्मजः ॥ ७७ ॥ यावदुन्मील्यनयने पुरःपश्यतिसध्रुवः ॥ तावद्ददर्शसप्तर्षीनतर्कितगतीन्वने ॥ ७८ ॥ बालिशेष्वसहायेषु भवेद्भाग्यंसहायकृत् ॥ अरण्यान्यांरणेगेहे ततोभाग्यंहिकारणम् ॥ ७९ ॥ क्वराज

अनुगामी किया ॥ ७४ ॥ व प्रसन्न वायुने दिखाया गली जिसको ऐसा वह बड़ा पराक्रमी बालक महल से निकल वनमें पैठा ॥ ७५ ॥ और अच्छी बयारसे वृक्षोंके पल्लवों का पसारना बहाना है जिसमें उस वनकरके प्रीतिसे बुलायासा वह वन में पैठा ॥ ७६ ॥ व केवल राजमार्गके जाननेवाला व माताहै देवता जिसकी उस राजकुमार ने जब वनकी गली न जाना तब क्षणभर ध्यान किया ॥ ७७ ॥ उस ध्रुवने जौलों आंखें खोल आगे देखा तौलों वनमें अखण्डित गमन या ज्ञानवाले सात ऋषियों को देखा ॥ ७८ ॥ क्योंकि सहायरहित मूर्खोंमें भी भाग्य सहायक है उस से रण व घरमें वनवासी जन्तुओं की भाग्यही कारण है ॥ ७९ ॥ कहां राजकुमार

बालक और कहां गह्विनवन इससे हे भवितव्यते ! बलसे अपने अधीन करती तेरे नमस्कार है ॥ ८० ॥ जहां जिसका जो भला बुरा होनै योग्यहै उसको वहीं खींचकर उसकी भाविनी रस्सी दिलातीहै ॥ ८१ ॥ यह मनुष्य बुद्धिकी बढ़तीसे अन्यभांति से बनाता है परन्तु भगवती भवितव्यता करके दैव और तौरसे करता है ॥ ८२ ॥ क्योंकि अवस्था व अनेक भांतिके चित्र बनाना व चतुराई बल और उद्यम लोगों का हित नहीं करता है किन्तु पूर्वजन्म का किया कर्म्मही कारण है ॥ ८३ ॥ अनन्तर सूर्य्यसे अधिक तेजस्वी व भाग्यसूत से खींचकर समीप में आनेगये उन सप्तर्षियों को देख वह बहुत आनन्दित हुआ ॥ ८४ ॥ जे कि अच्छेमाथों में तिलक

तनयोबालो गहनंकचतद्वनम् ॥ बलात्स्ववसात्प्रकुर्वत्यै नमस्तेभवितव्यते ॥ ८० यत्रयस्यहियद्भाव्यं शुभंवाऽशुभमेव च ॥ आकृष्यभाविनीरज्जुस्तत्रतस्यहिदापयेत् ॥ ८१ ॥ अन्यथाविदधात्येष मानवोबुद्धिवैभवात् ॥ भगवत्याभवित्र्याऽसौ विदध्याद्विधिरन्यथा ॥ ८२ ॥ नवयोनचवैचित्र्यंनचित्रंविदधेहितम् ॥ नबलंनोद्यमःपुंसां कारणंप्राकृतंकृतम् ॥ ८३ ॥ अथदृष्ट्वाससप्तर्षीन् सप्तसप्त्यतितेजसः ॥ भाग्यसूत्रैरिवाकृष्योपनीतान्प्रमुमोदह ॥ ८४ ॥ तिलकाङ्कितसद्भालान् कुशोपग्रहिताङ्गुलीन् ॥ कृष्णाजिनोपविष्टांश्चयज्ञसूत्रैरलंकृतान् ॥ ८५ ॥ साक्षसूत्रकरान्किंचिद्विनिमीलितलोचनान् ॥ सुधौतसूक्ष्मकाषायवासःप्रावरणान्वितान् ॥ ८६ ॥ अकाण्डेपिमहाभागान् मिलितान्सप्तनीरधीन् ॥ चित्रंविपद्विनिर्मग्नानुद्दिधीर्षूनिवप्रजाः ॥ ८७ ॥ उपगम्यविनम्रांसः प्रबद्धकरसंपुटः ॥ ध्रुवोविज्ञापयांचक्रे प्रणम्यललितंवचः ॥ ८८ ॥ ध्रुवउवाच॥ अवेतमांमुनिवराःसुनीत्युदरसम्भवम् ॥ उत्तानपादतनयंध्रुवंनिर्विण्णमानसम् ॥ ८९ ॥

लगाये व हाथोंकी अंगुलियों में कुशोंकी पैंती पहने व मृगचर्म्म में बैठे व जनेऊ से भूषितहैं ॥ ८५ ॥ व सूतसे गुही रुद्राक्षकी मालाओं को हाथोंमें लिये व अधखुली आंखें किये व धोये महीन कुछ लालेवस्त्रवाले ॥ ८६ ॥ व विपत्ति में डूबी प्रजाओं को उबारने के चाही और अनवसर में इकट्ठे हुये सात समुद्रों के समान बड़े भाग्यवान् हैं उन सप्तर्षियों के ॥ ८७ ॥ समीप में जाय हाथ जोड़े व नीचे को झुके हैं कन्ध जिसके उस ध्रुवने प्रणामकर ललित वचन कहा कि ॥ ८८ ॥ हे

मुनिश्रेष्ठो ! उस मुझ ध्रुवको सुनीति के पेटसे हुआ उत्तानपाद का पुत्र विरक्त जानो ॥ ८९ ॥ जोकि आपके चरण कमलोंसे सनाथ हुये इस वनको आया व बहुधा सबमें अजान और बड़ी बढ़ती में मन लगायाहूं ॥ ९० ॥ तब वे सप्तर्षि बालवयस तेजस्वी स्वभाव सेही सुघर स्वरूप अतिशय नीतिचतुर और कोमल गम्भीर वचन बोलनेवाले ध्रुवको देखकर ॥ ९१ ॥ लगे बैठाल बहुत विस्मितहो लड़के से बोले कि हे विशालनयन राजकुमार बालक ! ॥ ९२ ॥ हम विचारकर भी नहीं जानतेहैं तू अपने खेदका कारण कह इस समय तुझको धनकी चिन्ता नहीं है और अनादर भी कहांहै क्योंकि घरमें माताहै ॥ ९३ ॥ और शोभासे युत शरीर भी आरोग

इदंवनमनुप्राप्तंसनाथंयुष्मदङ्घ्रिभिः ॥ प्रायोनभिज्ञंसर्वत्रमहर्द्धेषितमानसम्॥९०॥तेदृष्ट्वोर्जस्वलंबालं स्वभावमधुराकृतिम् ॥ अनर्घ्यनयनेपथ्यं मृदुगम्भीरभाषिणम् ॥ ९१ ॥ उपोपवेश्यशिशुकं प्रोचुर्वैविस्मिताभृशम् ॥ अहोबालविशालाक्ष महाराजकुमारक ॥ ९२ ॥ विचार्यापिनजानीमोवदनिर्वेदकारणम् ॥ अद्यतेह्यर्थचिन्तानो क्वापमानःप्रसूर्गृहे ॥ ९३ ॥ नीरुक्शरीरसम्पत्तिर्निर्वेदेकिन्नुकारणम् ॥ अनवाप्ताभिलाषाणां वैराग्यंजायतेनृणाम् ॥ ९४ ॥ सप्तद्वीपपतेराज्ञः कुमारस्त्वंतथाकथम् ॥ स्वभावभिन्नप्रकृतौ लोकेस्मिन्नमनोगतम् ॥ ९५ ॥ अवगन्तुंहिशक्येत यूनोवृद्धस्यवाशिशोः ॥ इतिश्रुत्वावचस्तेषां सहजप्रेमनिर्भरम् ॥ ९६ ॥ वाचंजग्राहसतदाशिशुःप्रांशुमनोरथः ॥ ध्रुवउवाच ॥ प्रेषितोराजसेवार्थं जनन्याऽहंमुनीश्वराः ॥ ९७ ॥ राजाङ्कमारुरुक्षुर्हि सुरुच्यापरिभर्त्सितः ॥ उत्तमंचोत्तमीकृत्य माञ्चमन्मातरंतथा ॥ ९८ ॥ धिक्कृत्यप्रशशंसस्वं निर्वेदेकारणंत्विदम् ॥ निशम्येतिशिशोर्वाक्यं परस्परमवेक्ष्यते ॥ ९९ ॥

है तो वैराग्य का कारण क्याहै क्योंकि नहीं पाया मनमाने फल जिन्होंने उन लोगोंको वैराग्य होताहै ॥ ९४ ॥ और तू सातद्वीपों के स्वामी राजाका पुत्रहै इससे उस तरह कैसे होसक्ताहै व मायासे बिलग बिलग अनेक वासनावाले इस लोकमें जो मनमें प्राप्तहै न कि॥९५॥जवाने व बूढ़े और लड़केका भी वह हाल जाननेयोग्य होसकेहै यों उनके सहजप्रीति से भरे वचनको सुनकर ॥ ९६ ॥ ऊँचा मनोरथ है जिसका उस बालक ने तब वचनको गहा ध्रुव बोले कि हे मुनीश्वरो ! राजाकी सेवाके अर्थ मातासे पठाया मैं ॥ ९७ ॥ राजाके गोदमें चढ़नेकी इच्छावाला सुरुचिकरके बहुत डरवाया गयाहूं और उसने उत्तमको उत्तमकर मुझको वैसे मेरी माताको ॥९८॥

धिक्कारकर कहाहै यह वैराग्यमें अपना कारण है यों बालक का वचन सुन आपुस में देख उन्होंने ॥ ९९ ॥ क्षत्रियजाति या उसके स्वभाव की प्रशंसा किया आश्चर्य्य है कि लड़कामें भी क्षमा नहीं है ॥ १०० ॥ ऋषि बोले कि अहो बालक ! क्या हमारे करने योग्यहै व तेरा कौन मनोरथ है जौलों ज्ञात होवे याने जानाजावे तौलों हम लोगोंके श्रवणगोचर कर ॥ १ ॥ ध्रुव बोले कि हे मुनियो ! उत्तम से उत्तम जो मेरा भाई उत्तमहै वह पिताके दिये उस राजसिंहासन के ऊपर बैठे ॥ २ ॥ और हे अच्छे व्रतवालो ! आपसे कीगई इस सहायता को चाहताहूं कि बहुधा लड़कई से मैं नहीं जानताहूं वह उपाय कहो ॥ ३ ॥ जो अन्य राजाओं करके न भोगागया व

क्षात्रमेवशशंसुस्तदहोबालेपिनक्षमा ॥ १०० ॥ ऋषयऊचुः ॥ किमस्माभिरहोकार्यं कस्तवास्तिमनोरथः ॥ ज्ञातोभवतुतावत्सनःश्रवोगोचरीकुरु ॥ १ ॥ ध्रुवउवाच ॥ मुनयोममयोबन्धुरुत्तमश्चोत्तमोत्तमः ॥ पित्रादत्तंस्सोऽध्यास्तांतद्भद्रासनमुत्तमम् ॥ २ ॥ भवत्कृतंहिसाहाय्यमेतदिच्छामिसुव्रताः ॥ प्रायोजानेनबालत्वादुपदेशस्तदुच्यताम् ॥ ३ ॥ अनन्यनृपभुक्तंयद्यदन्येभ्यःसमुच्छ्रितम् ॥ इन्द्रादिदुरवापंयत्कथंलभ्यंदुरासदम् ॥ ४ ॥ पित्रोत्सृष्टंनकाङ्क्षामि काङ्क्षामिस्वभुजार्जितम् ॥ मनोरथपथातीतं भवेद्यत्पितुरप्यहो ॥ ५ ॥ पितृसम्पत्तिभोक्तारः प्रायशोनयशोधनाः ॥ नरोत्तमास्तुतेज्ञेया येपित्राधिक्यदर्शिनः ॥ ६ ॥ उपार्जितंहिपित्रायेनाशयन्तियशःश्रुतम् ॥ धनंनिधनमेवास्तु तेषांदुर्बुद्धचेतसाम् ॥ ७ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्य मुनयःसुनयोर्जितम् ॥ यथार्थमेवंप्रत्यूचुर्मरीच्याद्यास्तथाध्रुवम् ॥ ८ ॥ मरीचिरुवाच ॥ अनर्चिताच्युतपदः पदमापद्यतेकथम् ॥ यथातथात्वमात्थाङ्ग नातथ्यंकथयाम्यहम् ॥ ९ ॥ अत्रिरुवाच ॥ अनास्वा

औरों से अधिक ऊंचा व इन्द्रादि देवोंको दुःखसे प्राप्त और हरएकको दुर्लभहै वह कैसे मिलने योग्य होवे ॥ ४ ॥ क्योंकि मैं पिताके दियेको नहीं चाहताहूं अपने भुजबलसे कमाये उसको चाहताहूं जोकि पिताके भी मनोरथ मार्गसे भिन्नहोवे ॥ ५ ॥ जे पिताकी सम्पत्ति के भोगनेवाले हैं उनके सुयशरूप धन नहीं है जे पितारो अधिक दिखाते हैवे लोगोंमें उत्तम जाननेयोग्यहैं ॥ ६ ॥ जे पिताके कमाये सुयश और प्रसिद्ध धनको नाशतेहैं उन दुर्बुद्धियों को मरणही हो ॥ ७ ॥ यो उसके नीतिसे बाढ़े परमार्थवचन को सुन मननशील मरीच्यादि भी वैसे यथार्थ वाक्यको ध्रुवके प्रति बोले ॥ ८ ॥ मरीचि बोले कि हे प्यारे ! तुम जैसे स्थानको कहतेहो वैसे को

नहीं पूजागया विष्णुका चरण कमल जिस करके वह कैसे पावेगा ॥ ९ ॥ अत्रि बोले कि जिसने गोविन्दके पद कमल की धूरिके रसको नहीं पिया याने नहीं सेवा किया वह मनोरथमार्गसे परे समृद्धस्थान को नहीं जावेहै ॥ १० ॥ अङ्गिरा बोले कि जो यहां लक्ष्मीपति के पदकमलों को भलीभांति से ध्यावे है वह उनके उस बड़े स्थानको पावैहै जोकि सब सम्पत्तियों का घरहै ॥ ११ ॥ पुलस्त्य बोले कि हे ध्रुव ! जिनके सुमिरनेमात्र से महापापों का विस्तार आत्यन्तिक नाशको प्राप्त होताहै वे विष्णु सब फलोंके दाताहैं ॥ १२ ॥ पुलह बोले कि जिनको प्रकृति पुरुषसे परे परब्रह्म कहतेहैं व जिनकी मायासे सब विस्तार है वे विष्णु सब देवेंगे ॥ १३ ॥ क्रतु बोले

दितगोविन्दपदाम्बुजरजोरसः ॥ मनोरथपथातीतं स्फीतंनाकलयेत्पदम् ॥ १० ॥ अङ्गिराउवाच ॥ अदवीयःपदंत स्य सर्वासांसम्पदामिह ॥ कमलाकान्तकान्ताङ्घ्रिकमलेयःसुशीलयेत् ॥ ११ ॥ पुलस्त्यउवाच ॥ यस्यस्मरणमात्रेण महापातकसन्ततिः ॥ परमान्तमवाप्नोतिसविष्णुःसर्वदोध्रुव ॥ १२ ॥ पुलहउवाच ॥ यदाहुःपरमंब्रह्म प्रधानपुरुषात्प म् ॥ यन्माययाततंसर्वं सर्वदास्यातिसोच्युतः ॥ १३ ॥ क्रतुरुवाच ॥ योयज्ञपुरुषोविष्णुर्वेदवेद्योजनार्दनः ॥ अन्तरा त्माऽस्यजगतः सतुष्टःकिन्नयच्छति ॥ १४ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ यद्भ्रूनर्तनवर्तिन्यः सिद्धयोऽष्टौनृपात्मज ॥ तमाराध्य हृषीकेशमपवर्गोप्यदूरतः ॥ १५ ॥ ध्रुवउवाच ॥ सत्यमुक्तंमुनीशाना विष्णोराराधनंप्रति ॥ कथंवाभगवानिज्यः सवि धिश्चोपदिश्यताम् ॥ १६ ॥ मुनयऊचुः ॥ तिष्ठतागच्छतावापि स्वपताजाग्रतातथा ॥ शयानेनोपविष्टेन जप्योनारा यणःसदा ॥ १७ ॥ द्वादशाक्षरमन्त्रेण वासुदेवात्मकेनच ॥ ध्यायंश्चतुर्भुजंविष्णुं जप्त्वासिद्धिंनकोगतः ॥ १८ ॥ अत

कि जो यज्ञोंमें पूजनीय पुरुष व वेदोंसे जाननेयोग्य और जनोंसे याचेजाते हैं वे अन्तर्य्यामी विष्णु प्रसन्नहो क्या नहीं देतेहैं ॥ १४ ॥ वसिष्ठ बोले कि हे राजकुमार ! आठौ सिद्धियां जिनकी भौंह नाचने से बर्ततीहैं उन इन्द्रियनाथ को पूज मोक्षभी समीपही है ॥ १५ ॥ ध्रुव बोले कि हे मुनीश्वरो ! आपने विष्णुकी उपासनाके प्रति सत्य कहा परन्तु वे भगवान् किस प्रकार से पूजने योग्यहैं वह विधि कहो ॥ १६ ॥ सप्तर्षि बोले कि खड़े व चलते व सोते व जागते व पौढ़े और बैठे मनुष्यकरके सदा नारायण जपने योग्यहैं ॥१७॥ वासुदेवरूप बारह अक्षरके याने (ॐनमोभगवते वासुदेवाय) इस मन्त्रसे चतुर्भुज विष्णुको ध्याता हुआ जपकरके सिद्धिको कौन नहीं

गया है ॥ १८ ॥ अरसी के फूलसी कारी भारी छवि है जिनकी व पीताम्बरधारी व अविनाशी सब घटवासी को क्षणभर देखता हुआ पृथ्वी में को नहीं सिद्ध होता है ॥ १६ ॥ क्योंकि वासुदेवको जपताहुआ मनुष्य पुत्र स्त्री मित्र राज्य स्वर्ग और मोक्ष इन सबको निस्सन्देह पाता है ॥ २० ॥ वासुदेव के जप में लगे पापी लोगों को भी विघ्न और दारुण यमदूत निश्चय से नहीं छू सक्ते हैं ॥ २१ ॥ और राज्यचाही महासमृद्धिसंयुत व वैष्णव तेरे बाबा ने भी इस मन्त्र की उपासना किया है ॥ २२ ॥ हे सुठि सज्जन ! तू इस मन्त्रसे वासुदेवमें परायण हो शीघ्र मनमानी बढ़तीको पहुँच ॥ २३ ॥ यों कह सब महात्मा मुनीश्वर अन्त-

सीपुष्पसङ्काशं पीतवाससमच्युतम् ॥ क्षणंसर्वात्मकंपश्यन् कोनसिध्यतिभूतले ॥ १९ ॥ पुत्रान्कलत्रंमित्राणि राज्यंस्वर्गापवर्गकम् ॥ वासुदेवंजपन्मर्त्यः सर्वंप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ २० ॥ वासुदेवजपासक्तानपिपापकृतोजनान् ॥ नोपस्पृशन्तिवैविघ्ना यमदूताश्चदारुणाः ॥ २१ ॥ पितामहेनतेप्येष महामन्त्रउपासितः ॥ मनुनाराज्यकामेन वैष्णवेनमहर्द्धिना ॥ २२ ॥ त्वमप्येतेनमन्त्रेण वासुदेवपरोभव ॥ यथाभिलषितामृद्धिंक्षिप्रमाप्नुहिसत्तम ॥ २३ ॥ इत्युक्त्वान्तर्हिताःसर्वे महात्मानोमुनीश्वराः ॥ वासुदेवमनाभूत्वा ध्रुवोपितपसेगतः ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेध्रुवलोकवर्णनेध्रुवोपदेशोनामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

गणावूचतुः ॥ औत्तानपादिर्निर्गत्य ततःकाननतोद्विज ॥ रम्यंमधुवनंप्राप यमुनायास्तटेमहत् ॥ १ ॥ आद्यंभगवतःस्थानं तत्पुण्यंहरिमेधसः ॥ पापोपिजन्तुस्तत्प्राप्य निष्पापोजायतेध्रुवम् ॥ २ ॥ जपन्सवासुदेवाख्यं परंब्रह्मनिरा

र्द्धानहुये व वासुदेवमें लगाहै मन जिसका ऐसा हो ध्रुव भी तप कोगया ॥ २४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेध्रुवलोकवर्णने ध्रुवोपदेशोनामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । कहब बीस अध्याय में सात ऋषिन उपदेश ॥ यमुनातट मधुवन बसत ध्रुव को तप सुविशेश ॥ हे ब्राह्मण ! उत्तानपादका पुत्र उस वनसे निकल यमुना के किनारे वनों में बड़े मधुवन को गया ॥ १ ॥ जो कि मधुवन संसार को हरता है ज्ञान जिनका उन भगवान् का मुख्य स्थान है उसमें पहुँच पापी भी

जन्तु निष्पाप होता है ॥ २ ॥ वहां सब उपद्रवरहित वासुदेव नामक परब्रह्म के जपते व ध्यानसे निश्चल हैं नेत्र जिसके ऐसे उस बालकने सकल जगतको उन वासुदेवमय देखा ॥ ३ ॥ व सब दिशाओं में हरि व सूर्य्य की किरणों में हरि व स्यार हरिण और सिंहरूप होकर हरिही वनमें प्राप्तहैं ॥ ४ ॥ जल में मेढ़क कच्छपादि रूप से तथा राजाओं की घुड़सारों में घोड़े आदि रूप से भगवान् हरिही विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ व पातालमें शेष रूप और आकाश में अनन्तरूप विष्णुजी बसे हैं एकही वे अनन्त रूपों के भेदों से अनन्तता को प्राप्तहैं ॥ ६ ॥ जो नित्यही देवों में बसै है व जो सब देवोंका घर है वह वासुदेव है क्योंकि जिससे माया के

मयम् ॥ अपश्यत्तन्मयंविश्वं ध्यानस्तिमितलोचनः ॥ ३ ॥ हरिर्हरित्सुसर्वासु हरिर्हरिमरीचिषु ॥ शिवामृगमृगेन्द्रादि रूपःकाननगोहरिः ॥ ४ ॥ जलेशाल्लूरकूर्मादिरूपेणभगवान्हरिः ॥ हरिरश्वादिरूपेण मन्दुरास्वपिभूभुजाम् ॥ ५ ॥ अनन्तरूपःपाताले गगनेऽनन्तसञ्ज्ञकः ॥ एकोप्यनन्ततांयातो रूपभेदैरनन्तकैः ॥ ६ ॥ देवेषुयोवसेन्नित्यं देवानांव सतिर्हियः ॥ सवासुदेवःसर्वत्र दी०येद्यद्वासनावशात् ॥ ७ ॥ विष्लृव्याप्तावयंधातुर्यत्रसार्थकताङ्गतः ॥ विष्णुनामस्वरू पेहि सर्वव्यापनशीलिनि ॥ ८ ॥ सर्वेषाञ्चहृषीकाणामीशनात्परमेश्वरः ॥ हृषीकेशइतिख्यातो यःससर्वत्रसंस्थितः ॥ ९ ॥ नच्यवन्तेपियद्भक्ता महतिप्रलयेसति ॥ अतोऽच्युतोऽखिलेलोकेसएकःसर्वगोऽव्ययः ॥ १० ॥ इदंचराचरंविश्वं योबभारस्वलीलया ॥ भृत्यास्वरूपसम्पत्त्या सोऽत्रविश्वम्भरोऽखिलम् ॥ ११ ॥ तस्येक्षणेसमीक्षेते नान्यद्विष्णुप

वशसे व्यापतेहैं ॥ ७ ॥ व व्याप्ति अर्थ में वर्तमान यह विष्लृधातु सबमें व्यापनशीलवाले जिन विष्णुजीके नाम रूप में सार्थकताको प्राप्त हुवाहै ॥ ८ ॥ व सब इन्द्रियों के स्वामी होने से जो परमेश्वर हृषीकेश इस नाम से कहेगये हैं वे सब से टिके हैं ॥ ९ ॥ जिससे महाप्रलय होते भी जिनके भक्त नहीं नशते हैं इससे सब लोक में वही एक अच्युत व सब घटवासी और अविनाशी है ॥ १० ॥ भरने व अपने रूपकी सम्पत्ति याने कैवल्य की प्राप्ति से जिन्हों ने सम्पूर्ण इस स्थावर जंगम जगत को लीला करके धारा या पोषा है वे यहां विश्वम्भर कहाते हैं ॥ ११ ॥ और उसके नेत्रों ने विष्णुपद के विना अन्य को न देखा जिससे केवल कमलनयनही निर-

खने योग्यहैं इनसे अन्य नहीं ॥ १२ ॥ हे मुकुन्द गोविन्द दामोदर चतुर्भुज ! इस शब्द विना उसके कान भी आन शब्द गहनेवाले न भये ॥ १३ ॥ व शङ्ख और चक्र से चिह्नित उसके हाथ भी गोविन्दपदपूजा और उनके प्यारे कर्म्म के भी विना आन काम करनेहारे नहीं हैं ॥ १४ ॥ व उसका मन और सब विचार को तज भक्तभयहारी भगवान् के आध्यात्मिकादि दुःखरहित चरणारविन्दों को चिन्तता था इससे स्थिरता को पहुँचा ॥ १५ ॥ व बहुत तप करते उसके पांव कि जिनके विष्णु जी रक्षक हैं वे नारायण का आंगन तज अनते न चलतेथे ॥ १६ ॥ व महासार याने सब सबका सिद्धान्त सेवन करते व तपतेहुये उसने गोविन्द

दादृते ॥ निरीक्ष्यःपुण्डरीकाक्षो नान्योनियमतोह्यतः ॥ १२ ॥ नान्यशब्दग्रहौतस्य जातौशब्दग्रहावपि ॥ विनामुकुन्दगोविन्द दामोदरचतुर्भुज ॥ १३ ॥ गोविन्दचरणार्थार्चांतत्प्रियंकर्मवैविना ॥ शङ्खचक्राङ्कितौतस्य नान्यकर्मकरौकरौ ॥ १४ ॥ निर्द्वन्द्वचरणद्वन्द्वं तन्मनोमनुतेहरेः ॥ हित्वान्यन्मननंसर्वं निश्चलत्वमवापह ॥ १५ ॥ चरणौविष्णुशरणौ हित्वानारायणाङ्गणम् ॥ तस्यनोचरतोन्यत्र चरतोविपुलन्तपः ॥ १६ ॥ वाणीप्रमाणीक्रियते गोविन्दगुणवर्णने ॥ जोषंसमासतातेन महासारंतपस्यता ॥ १७ ॥ नितान्तकमलाकान्तनामधेयसुधारसम् ॥ रसयन्तीनरसनातस्यान्यरससस्पृहा ॥ १८ ॥ श्रीमुकुन्दपदद्वन्द्वपद्मामोदप्रमोदितम् ॥ गन्धान्तरंनतद्घ्राणं परिजिघ्रत्यशीघ्रगम् ॥ १९ ॥ त्वगिन्द्रियंमधुरिपोः परिस्पृश्यपदद्वयम् ॥ सर्वस्पर्शसुखंप्राप तस्यभूजानिजन्मनः ॥ २० ॥ शब्दादिविषयाधारं सारंदामोदरंपरम् ॥ ध्रुवेन्द्रियाणिसंप्राप्य कृतार्थान्यभवंस्तदा ॥ २१ ॥ लुप्तानिसर्वतेजांसि तत्तपस्तपनोदये ॥ चन्द्र

के गुण कर्म कहने में वाक्इन्द्रिय को प्रमाण किया ॥ १७ ॥ व केवल लक्ष्मीनाथके नाम अमृतरस को स्वाद लेती उसकी रसना (जीभ) अन्य रसो में अभिलाष समेत नहीं हुई ॥ १८ ॥ व श्रीमुकुन्द के दोनों पद कमलों के सुगन्ध से आनन्दित उसकी घ्राण इन्द्रिय याने नासिका भी अन्य स्थिर गन्ध को न सूंघती थी ॥ १९ ॥ उस राजकुमारकी त्वक् इन्द्रिय मुरदैत्यके वैरी विष्णुके दोनों पावोंको परस सब स्पर्शके सुख को प्राप्त हुई ॥ २० ॥ तब शब्द स्पर्श रूप रस गन्धादि विषयों के आधार व साररूप सबसे परे दामोदर को पहुँच ध्रुवकी इन्द्रियां कृतार्थ हुईं ॥ २१ ॥ और संदीपित हुये तीनों लोक जिससे यों उसकी तपस्यारूप सूर्य के उदय

होतेही चन्द्रमा सूर्य्य अग्नि और नक्षत्रादिकों के सब तेज लुप्तहुये ॥ २२ ॥ व इन्द्र चन्द्र वरुण अग्नि वायु कुबेर यमराज और नैर्ऋत्यआदि लोकपाल अपने स्थानों में शङ्कावाले भये कि यह इनको लेवेगा ॥ २३ ॥ व अपने अधिकार के निमित्त बाढ़ीहै मानसी व्यथा जिनके वे विमानों से चलते हुये वसुमुख्य देवभी अत्यन्त त्रास को पहुँचे ॥ २४ ॥ और ध्रुव पृथ्वी में जहां जहां पांव धरते थे तहां तहां उनके भारसे दबी भूमि भी नवती थी ॥ २५ ॥ आश्चर्य्य है कि उसके अङ्गका संग भया जिनका वे यमुनादिकों के और अनते के भी जल जड़ता को याने मलको तज उसके डरसे रसीले व सहज स्वभाववाले हुये ॥ २६ ॥ व सब ओर जितने

सूर्यानलर्क्षाणां प्रदीपितजगत्त्रये ॥ २२ ॥ इन्द्रचन्द्राग्निवरुणसमीरणधनाधिपाः ॥ यमनैर्ऋतमुख्याश्च जाताःस्वप दशङ्किताः ॥ २३ ॥ वैमानिकास्तथाऽन्येपि वसुमुख्यादिवौकसः ॥ ततोध्रुवात्समुत्रेसुः स्वाधिकारैधिताधयः ॥ २४ ॥ यत्रयत्रध्रुवःपादंमिनोतिपृथिवीतले ॥ धरातस्यभराक्रान्ताविनमेत्तत्रतत्रवै ॥ २५ ॥ अहोतदङ्गसङ्गीनि त्यक्त्वाजाड्यंज लान्यपि ॥ रसवन्तिपदस्थानि स्फुरन्त्यन्यत्रतद्भयात् ॥ २६ ॥ यावन्तिविष्वक्तेजांसि सिद्धरूपगुणानिच ॥ नेत्राति थीनितावन्ति तत्तपस्तेजसाऽभवन् ॥ २७ ॥ अहोनिजगुणस्पर्शः सततंमातरिश्वना ॥ दूरदेशान्तरस्थोपि तत्त्वचोवि षयीकृतः ॥ २८ ॥ व्योम्नापिशब्दगुणिना ध्रुवाराधनबुद्धिना ॥ शब्दजातस्त्वशेषोपि तत्कर्णशरणीकृतः ॥ २९ ॥ आराधितोऽनुदिवसं सम्भूतैरपिपञ्चभिः ॥ तपएवपरंमेने गोविन्दार्पितमानसः ॥ ३० ॥ कौस्तुभोद्भासितहृदः पीतकौ शेयवाससः ॥ ध्यानात्तेजोमयंविश्वं तेनैक्षिनृपसूनुना ॥ ३१ ॥ मरुत्वतातिमहती चिन्ताप्तातत्तपोभयात् ॥ मत्पदं

तेज और सिद्धों के रूप और गुण हैं उतने उसकी तपस्या के तेजसे आंखोंके अतिथि हुये याने देखपड़े ॥ २७ ॥ आश्चर्य्य है कि सदा दूरदेशान्तर में टिके भी अपने गुण स्पर्श को वायु ने उसकी त्वक् इन्द्रिय के गोचर किया ॥ २८ ॥ व ध्रुव के पूजने में बुद्धि है जिसकी ऐसे शब्दगुणवाले आकाश करके भी सम्पूर्ण शब्द समूह उसके कानोंके शरण किया गया ॥ २९ ॥ यों रोज रोज पृथ्वी आदि पञ्चभूतों से पूजित व गोविन्द में सौंपा अन्तःकरण जिसने उसने तपस्या कोही श्रेष्ठ माना ॥ ३० ॥ व उस राजपुत्रने कौस्तुभमणि से जगमग ज्योतियुतहै हृदय जिनका उन रेशमी पीताम्बरवाले वासुदेवके ध्यान से जगत्को तेजोमय देखा ॥ ३१ ॥

व उसके तपस्या के डर से इन्द्र को बहुतभारी चिन्ता प्राप्त हुई कि ध्रुव जो मेरे स्थान को चहेगा तो निश्चय हरलेगा ॥ ३२ ॥ योगियों के अहिंसादि यमों के रोंकने को समर्थ जो अप्सराओं का समूह है वह भी युवा पुरुष में प्रभुता करताहै इस बालक में नहीं क्या करूं ॥ ३३ ॥ तपस्वियों की तपस्या नाशने को मेरे सहायक काम और क्रोध ये दोनों इस ध्रुव लड़के में न समर्थ होंगे॥ ३४॥इससे मेरा एकही उपाय बालकमें निश्चय प्रभुता करेगा कि उसके डरके लिये यहां भयंकर रूपवाली भूतों की पंक्तिको पठाऊं ॥ ३५ ॥क्योंकि बालक होनेसे भूतों करके डरवाया वह निश्चय तपको तजेगा यों निश्चय कर इन्द्र ने भूतपंक्तिको पठाया॥ ३६॥

चेदाकाङ्क्षिष्यदहरिष्यद्ध्रुवंध्रुवः ॥ ३२ ॥ समर्थस्त्वप्सरोवर्गोनियन्तुंयमिनांयमान् ॥ सतुयूनिप्रभवतिनात्रबालेकरोमि किम् ॥ ३३ ॥ तपस्विनान्तपोहन्तुं द्वौमत्साहाय्यकारिणौ ॥ कामक्रोधौनतावस्मिन् प्रभवेतांशिशौध्रुवे ॥ ३४ ॥ एक एवकिलोपायो बालेमेप्रभविष्यति ॥ भूतालींभीषणाकारांप्रहिणोमीहतद्भिये ॥ ३५ ॥ बालत्वाद्भीषितोभूतैस्तपस्त्य क्ष्यत्यसौध्रुवम् ॥ इतिनिश्चित्यभूतालीं प्रेषयामासवासवः ॥ ३६ ॥ भल्लूकाकारसर्वाङ्ग उष्ट्रलम्बशिरोधरः ॥ कश्चिद्दुर्दर्शदशनस्त्वभ्यधावत्तमर्भकम् ॥ ३७ ॥ तंव्याघ्रवदनःकश्चिद्व्यादायविकटाननम् ॥ द्विपोच्चदेहसंस्थानो मुहुर्गर्जन्समभ्यगात् ॥ ३८ ॥ रयात्तुमांसकंभुञ्जन् कश्चिद्विकटदंष्ट्रकः ॥ रोषात्तमभिदुद्राव दृष्ट्वासन्तर्जयन्निव ॥ ३९ ॥ अतितीक्ष्णैर्विषाणाग्रैस्तटानुच्चान्विदारयन् ॥ खुराग्रैर्दलयन्भूमिंमहोक्षोऽभिजगर्जतम् ॥ ४० ॥ कश्चिद्द्विपन्नगीभूयफटाटोपभयानकः ॥ अतिलोलद्विरसनःपुस्फूर्जनिकषाचतम् ॥ ४१ ॥ कश्चिच्चमहिषाकारःक्षिपञ्छृङ्गाग्रतोगिरीन् ॥ लाङ्गूल

जिसका भालू की नाईसब अंग व ऊंट कासा लम्बा गर और जो कि विकट दांतवाला था वह कोई उस लड़के को धावा ॥ ३७ ॥ व हाथी से ऊंची देहकी स्थितिवाला व्याघ्रमुख कोई भयानक मुखको पसार गर्जता हुआ उसके सामने चला ॥ ३८ ॥ व बड़े वेग से मांस खाता व रक्त पीता व दारुण दाढ़वाला कोईभली भांति तर्जतासा क्रोधसे उसके सम्मुख दौडा ॥ ३९ ॥ व अधिक तीक्ष्ण सींगों से ऊंचे तटों को बोझता याने उझलता व खुरों के अग्रभागों से भूमि खनताहुवा बड़ाभारी बैलरूप कोई उसके सामने गर्जने लगा ॥ ४० ॥ कोई भुवंगम हो फणके विस्तार से भयानक लुबलुबाती दो जीभवाला वह उसके समीप मे फुफुकत भया ॥ ४१ ॥

तादितधरःश्वसन्वेगात्तमाप्तवान् ॥ ४२ ॥ कश्चिद्दावानलालीढखर्जूरद्रुमसन्निभम् ॥ बिभ्रदूरुद्वयंभूतोऽव्यात्तास्य स्तमभीषयत् ॥ ४३ ॥ मौलिजैरभ्रसङ्घर्षंकुर्वन्दीर्घकृशोदरः ॥ निमग्नपिङ्गनयनःकश्चिद्भीषयतिस्मतम् ॥ ४४ ॥ कृपाणपाणिर्भग्नास्योवामहस्तकपालधृत् ॥ प्रचण्डंक्ष्वेडयन्कश्चिदभ्यधावत्तमर्भकम् ॥ ४५ ॥ विशालशालमादा यकुर्वन्किलकिलारवम् ॥ कश्चित्तमभितोयातिकालोदण्डधरोयथा ॥ ४६ ॥ तमःसङ्केतसदनंव्याघ्रंवैवदनंमहत् ॥ कृतान्तकन्दराकारंबिभ्रत्कश्चित्तमभ्यगात ॥ ४७ ॥ उलूकाकारतांधृत्वाफूत्कारैरतिदारुणैः ॥ हृदयाकम्पनैःक श्चिद्भीषयामासतंध्रुवम् ॥ ४८॥ यक्षिणीकाचिदानीयरुदन्तंकस्यचिच्छिशुम् ॥ अपिबद्रुधिरंकोष्ठाच्चखादास्थिमृणा लवत् ॥ ४९ ॥ पिपासिताद्यरुधिरंतेपिपास्याम्यहंध्रुव ॥ यथास्यबालस्यतथाचर्वित्वास्थीनिवादिनी ॥ ५० ॥ आनीय तृणदारूणिपरिस्तीर्यसमंततः ॥ दावाग्निंज्वालयामासकाचिद्वात्याविवर्धितम् ॥ ५१ ॥ वेतालीरूपमास्थायभंक्काका

कोई भैंसारूप हो सींगों के अग्र से पर्वतों को बहाता व पूंछसे पृथ्वी को ताड़ता व श्वास लेताहुआ उसके पासमें आया ॥ ४२ ॥ व दावानल से जरे खजूर वृक्ष के समान ऊंची दो जंघोंको धारते हुये किसी भूत ने उसको डरवाया ॥ ४३ ॥ व बारों से बद्दलों को घिसता व जिसका दीर्घ दुर्बल पेट है वह गहरे गड़े नेत्रवाला उसको डरवाता भया ॥ ४४ ॥ व बांये हाथ में खोपड़ी लिये और दहिने में दुधारा किये व प्रचण्ड पट्टे बाजी करता व टूटे फूटे मुखवाला कोई उस लड़के के सामने धावा ॥ ४५ ॥ व बड़ाभारी शालका वृक्ष ले किलकिला शब्दकरता हुआ जैसे दण्डधारी कालहो वैसे उसके सम्मुख गया ॥ ४६ ॥ जो कि मुख अन्धकार का सङ्केत स्थान व बाघकासा बना व कालकी मुखकन्दरा के आकार है उसको धारताहुआ कोई उसके सामने आया ॥ ४७ ॥ व किसी ने उल्लू का वेष धर हृदय कँपानेवाले फुफुकारों से उस ध्रुवको डरवाया ॥ ४८ ॥ व किसी यक्षिणी ने किसी के रोते लड़के को लेकर कोठे से रक्त पिया व कमलमूल से उजले हाड़ों को खाया ॥ ४९ ॥ और वह यों बोलती थी कि हे ध्रुव ! जैसे इस लड़के के वैसे तेरे हाड़ चब प्यासी मैं आज तेरा रुधिर पीवोंगी ॥ ५० ॥ व कोई बौंड़री ने खर लकड़ी आन सबओर

से बिद्या बढ़ाई दावाग्नि को जलाया ॥ ५१ ॥ व उसको कँपातीहुई किसीने वेताली का वेषधर वृक्ष व पर्वतों को तोड़ आकाशगली को बहुतही रोंक लिया ॥ ५२ ॥ सुनीति के रूपसे कोई यक्षिणी उस ध्रुवको दूरसे देख बहुत दुःखसे व्याकुल हुई बार बार छाती पीट रोतीथी ॥ ५३ ॥ और दयासे भरी वत्सलता को विस्तारती हुई वह बहुती मायासे बनये प्यारे वचन बोली ॥ ५४ ॥ हे वत्स! हे शरणागतवत्सल! तू एक रक्षकहै जिसका उस मुझको मृत्यु मारने चाहती है राख राख ॥ ५५ ॥ प्रति गाउँ प्रति पुर प्रति गली प्रति वन व प्रति आश्रम प्रति पर्वतों में तेरे हेरने से व्याकुलहुई मैं थकीहूं ॥ ५६ ॥ रे बालक! जबसे लगा तू तपस्याको घरसे निकलचला

चित्तरून्गिरीन् ॥ रुरोधगगनाध्वानंकम्पयन्तीचतंभृशम् ॥ ५२ ॥ अन्यासुनीतिरूपेणतमभिप्रेक्ष्यदूरतः ॥ रुरोदातीवदुःखार्तावक्षोघातंमुहुर्मुहुः ॥ ५३ ॥ उवाचचवचश्चाटुबहुमायाविनिर्मितम् ॥ कारुण्यपूर्णवात्सल्यमतीवातन्वतीसती ॥ ५४ ॥ त्वदेकशरणांवत्सवतमृत्युर्जिघांसति ॥ रक्षरक्षगतांशुंमांशरणागतवत्सल ॥ ५५ ॥ प्रतिग्रामंप्रतिपुरंप्रत्यध्वंप्रतिकाननम् ॥ प्रत्याश्रमंप्रतिगिरिंश्रान्तात्वदीक्षणातुरा ॥ ५६ ॥ यदाप्रभृतिरेबालनिरगात्तपसेभवान् ॥ तदेवदिनमारभ्यनिर्गताऽहंत्वदीक्षणे ॥ ५७ ॥ तैस्तैःसपत्नीदुर्वाक्यैर्दुनोषित्वंयथार्भक ॥ तथाऽहमपिदूनास्मिनितरांतद्वचोऽग्निना ॥ ५८ ॥ ननिद्रामिनजागर्मिनाश्नामिनपिबाम्यहम् ॥ ध्यायामिकेवलंत्वाऽहंयोगिनीवावियोगिनी ॥ ५९ ॥ निद्रादरिद्रनयनास्वप्नेपिनतवाननम् ॥ आनन्दिसर्वथायन्मेमन्दभाग्याविलोकये ॥ ६० ॥ त्वदाननप्रतिनिधिर्विधुर्विधुरयामया ॥ उदितवरोपिनालोकितापंवैत्यक्तुकामया ॥ ६१ ॥ त्वदालापसमालापंकलयन्किलकाकलीम् ॥ को

उस दिनकोही लगा मैं तेरे देखनेको निकली हूं ॥ ५७ ॥ हे बच्चे ! जैसे तुम उन उन सौतिके वाक्योंसे संतप्तहोतेहो वैसे मैं भी उसके वचनरूप अग्निसे बहुतही तपीहूं ॥ ५८ ॥ न सोवों न जागों न खावों न पीवों किन्तु योगिनी की नाईं वियोगिनी मैं केवल तुझको ध्यावती हूं ॥ ५९ ॥ नीदका दरिद्र है आंखोंमे जिसके ऐसी अभागिनी मैं जो मुझको सब प्रकार से आनन्ददायक उस तेरे मुखको सपनमें भी नहीं देखतीहूं ॥ ६० ॥ ताप तजनेकी चाहिनी विरहिनी मैने तेरे मुखके समान उगते

चन्द्रको भी न देखा ॥ ६१ ॥ शोचसे न बांधे बालोंसे व्याप्तहैं कान जिसके ऐसी मैंने तेरे आलाप के समान मधुरशब्द को बोलते कोकिलको भी न सुना ॥६२॥ हे ध्रुव ! पुत्रस्नेहमयी मायाकरके तेरे वियोग से क्षुभित बहुतही संतप्त मैंने तेरे अङ्गसङ्ग से कोमल वायुको भी नहीं कहीं देहमें लगाया ॥ ६३ ॥ हे ध्रुव ! तेरेलिये पैदर चलती रानी मैंने कौने कौने देश नदी और पहाड़ों को नहीं नांघा ॥ ६४ ॥ इस सबको ध्रुवसे हीन देखतीमैं अन्धी कीगई इससे मेरी अन्धयष्टिता को प्राप्तहो याने जैसे अन्धेको लकुटी सहायक होतीहै वैसे मुझको होकर मुझ माताकी रक्षाकर ॥ ६५ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ ! कहां ये तेरे कोमलअङ्ग कहां यह कठिन देहवाले पुरुषों से

किलोपिमयाकर्णिनालकाकीर्णकर्णया ॥ ६२ ॥ त्वदङ्गसङ्गमधुरोध्रुवधूपितयामया ॥ नानिलोपिमयाश्लिङ्गिकाचिद्दि श्रान्तयाभृशम् ॥ ६३ ॥ केदेशाःकाश्चसरितःकेशैलास्त्वत्कृतेध्रुव ॥ मयाचरणचारिण्याराजपत्न्यानलङ्घिताः ॥ ६४ ॥ अध्रुवंसर्वमेवैतत्पश्यन्त्यन्धीकृतास्म्यहम् ॥ धात्रींत्रायस्वमांपुत्रप्राप्यत्वंमेऽन्धयष्टिताम् ॥ ६५ ॥ मृदुलानि तवाङ्गानिक्केमानिक्कतपस्त्विदम् ॥ परुषंपुरुषैःसाध्यंपरुषाङ्गैर्नरर्षभ ॥ ६६ ॥ अनेनतपसावत्सत्वयाऽऽप्यंकिमनेनसा॥ धराधीशतनूजत्वादधिकंतद्वदाधुना ॥ ६७ ॥ अनेनवयसाबालखेलनीयंत्वयाऽनिशम् ॥ बालक्रीडनकैरन्यैःसव यःशिशुभिःसमम् ॥ ६८ ॥ ततःकौमारमासाद्यवयोऽभिध्यानशीलिना ॥ भवतासर्वविद्यानांभाव्यंवैपारदृश्वना ॥ ६९ ॥ वयोथचतुरंप्राप्ययोषास्रक्चन्दनादिकान् ॥ निर्वेक्ष्यसिबहून्भोगानिन्द्रियार्थान्कृतार्थयन् ॥ ७० ॥ उत्पाद्याथ बहून्पुत्रान्गुणिनोधर्मवत्सलान् ॥ परिसंक्रामितश्रीकस्तेष्वथोत्वंतपश्चर ॥ ७१ ॥ इदानीमेवतपसिबाल्येवयसिकःश्र

साधनेयोग्य तप ॥ ६६ ॥ हे वत्स! पापहीन तुझकरके इस तपस्या के द्वारा राजकुमारता से अधिक क्या साधनीयहै उसको शीघ्र कह ॥ ६७ ॥ हे बाल ! समान अवस्था वाले लड़कों के साथ इस पनमें तुझको सदा खेलना चाहिये ॥ ६८ ॥ उसके बाद कौमार अवस्था को प्राप्त अनुसन्धान शीलवाले तुझको सब विद्याओं का पारगामी होना चाहिये ॥ ६९ ॥ अनन्तर चतुराई होतीहै जिसमें उस चतुर यौवन को पहुँच इन्द्रियों के विषयों को कृतार्थ करता तू स्त्री माला चन्दनादि बहुते भोगोंको भोगे गा ॥ ७० ॥ उसके बाद बहुते गुणवान् धर्मवान् पुत्रोंको उपराज उनमें थापागया धन जिसकरके ऐसाहो तू तपकर ॥ ७१ ॥ अबहीं बाल्यावस्था में तपकरने में क्या

श्रम याने अनन्तश्रम हैं उसमें यह दृष्टान्त कि पायेंके अँगुठा के समीप कण्डेकी आग कब शिरको पहुँचेगी ॥ ७२ ॥ शत्रुओंसे हारा व किसीसे हरागया आदर जिस का व नष्टहुआ धन जिसका इन लोगोंका तपस्या करना उचित उनमें आप को हो ॥ ७३ ॥ हरागया मान जिसका उस करके तपस्या करनेयोग्य इस वचनको सुन तातीश्वासले फिर ध्रुवने हृदयमें हरिको ध्याया ॥ ७४ ॥ मातासे न बोल व भूतों का डर तज फिरभी ध्रुव नारायण के ध्यानमें परायण हुआ ॥ ७५ ॥ भय दिखाती उसी भयंकर भूतपंक्ति ने उसके सबओर सुदर्शनचक्र को देखा ॥ ७६ ॥ जोकि सूर्य्य के सबओर उगे मण्डल के समान व ऊँचे याने अधिक जगमगाती ज्योति

मः ॥ पादाङ्गुष्ठकरीषाग्निःकदामौलिमवाप्स्यति ॥ ७२ ॥ विपत्तपरिभूतेनहृतमानेनकेनचित् ॥ परिभ्रष्टश्रियावापि तप्तव्यंतेषुकोभवान् ॥ ७३ ॥ हृतमानेनतप्तव्यंनिशम्येतिवचोध्रुवः ॥ दीर्घमुष्णंहिनिःश्वस्यपुनर्दध्यौहरिंहृदि ॥ ७४ ॥ जनयित्रीमनाभाष्यभूतभीतिंविहायच ॥ ध्रुवोऽच्युतध्यानपरःपुनरेवबभूवह ॥ ७५ ॥ सापिभूतावलीभीतिंबहु भीषणभूषणा ॥ दर्शयन्तीतमभितोऽद्राक्षीच्चक्रंसुदर्शनम् ॥ ७६ ॥ परितःपरिवेषाभंसूर्यस्योच्चैःस्फुरत्प्रभम् ॥ रक्ष णायचरक्षोभ्यस्तस्याधोक्षजनिर्मितम् ॥ ७७ ॥ भूतावलीतमालोक्यस्फुरच्चक्रंसुदर्शनम् ॥ ज्वालामालाकुलंतीव्रंरक्ष न्तंपरितोध्रुवम्॥७८॥अतीवनिष्कम्पहृदंगोविन्दार्पितचेतसम् ॥ तपोङ्कुरमिवोद्भिद्यमेदिनींसमुदित्वरम् ॥ ७९ ॥ सा पिप्रत्युतभीतातंध्रुवंध्रुवविनिश्चयम् ॥ नमस्कृत्ययथायातंयाताव्यर्थमनोरथा ॥ ८० ॥ गर्जत्कादम्बिनीजालंव्योम्नि वैव्याकुलंयथा॥ वृथाभवतिसंप्राप्यमनागनिललोलताम् ॥ ८१ ॥ अथजम्भारिणासार्धंभीताःसर्वेदिवौकसः ॥ संमन्त्र्य

वाला और राक्षसों से उसकी रक्षाके लिये विष्णुसे बनायागया है ॥ ७७ ॥ भूतोंकी पङ्गति, तीव्र व ज्वालाओं की मालासे संयुत उस जगमगाते सुदर्शनचक्र को देख जोकि सबओर से उस ध्रुवकी रक्षाकरता ॥ ७८ ॥ जोकि ध्रुव अत्यन्त कम्पसे हीनहृदय गोविन्दमें मन लगाये और पृथ्वी के ऊपर फोड़कर उठे तपस्या के अंगुसाके समान है ॥ ७९ ॥ बरन डरीहुई वही भूतपंक्ति, अचल निश्चयवाले उस ध्रुवको नमस्कार कर व्यर्थमनोरथा हो जैसे आई वैसे गई ॥ ८० ॥ प्रसिद्ध है कि जैसे आ- काश में गर्जता मेघपंक्ति का समूह थोड़ीभी बयार की चञ्चलता को प्राप्तहो व्याकुलहुआ वृथा होताहै ॥ ८१ ॥ हे ब्राह्मण ! अनन्तर इन्द्रसहित डरे सब देवलोग

भलीभांति से सलाहकर वेगवान्हो ब्रह्माके शरणगये ॥ ८२ ॥ ब्रह्माजी को प्रणाम सबओरसे स्तुतिकर पूँछागया आनेका कारण जिनका वे बोलनेका अवसर देख ज-नातेभये ॥ ८३ ॥ देव बोले, हे धातः ! तपस्या करते सुतेजसी उत्तानपाद के पुत्रने सब त्रिलोकवासियों को तपाया ॥ ८४ ॥ हे तात ! ध्रुव के मनोरथ को भलीभांति से नहीं जानते कि वह अच्छी भारी तपस्यावाला हम लोगोंमें किसका स्थान हरने का चाहीहै ॥ ८५ ॥ यों देवोंसे विज्ञापन किये ब्रह्माजी हँसकर अनन्तर ध्रुवसे डरे मन जिनके उन सबके प्रति बोले ॥ ८६ ॥ हे देवो ! अचलस्थान के अभिलाषी उस ध्रुवसे डरनेयोग्य नहीं तुम सब तापहीन होजावो वह तुम्हारे स्थान को नहीं चाह-

त्वरिताजग्मुर्ब्रह्माणंशरणंद्विज ॥ ८२ ॥ नत्वाविज्ञापयामासुःपरिष्टुत्यपितामहम् ॥ वचोऽवसरमालोक्यपृष्टागमन कारणाः ॥ ८३ ॥ देवाऊचुः ॥ धातरुत्तानपादस्यतनयेनसुवर्चसा ॥ तपतातापिताःसर्वेत्रिलोकीतलवासिनः ॥ ८४ ॥ सम्यक्संविद्महेतातध्रुवस्यनमनीषितम् ॥ पदंपरिजिहीर्षुःसकस्यास्मासुमहातपाः ॥ ८५ ॥ इति विज्ञापितोदेवैर्विहस्य चतुराननः ॥ प्रत्युवाचाथतान्सर्वान्ध्रुवतोभीतमानसान् ॥ ८६ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नभेतव्यंसुरास्तस्माद्ध्रुवाद्ध्रुवपदैषिणः॥ व्रजन्तुविज्वराःसर्वेनसवःपदमिच्छति ॥ ८७ ॥ नतस्माद्भगवद्भक्ताद्भेतव्यंकेनचित्कचित ॥ निश्चितंविष्णुभक्तायेन तेस्युःपरतापिनः ॥ ८८ ॥ आराध्यविष्णुंदेवेशंलब्ध्वातस्मात्स्वकाङ्क्षितम् ॥ भवतामपिसर्वेषांपदानिस्थिरयिष्यति ॥ ८९ ॥ निशम्येतिचगीर्वाणाःप्रणीतंब्रह्मणावचः ॥ प्रणिपत्यस्वधिष्ण्यानिप्रहृष्टाःपरिवव्रजुः ॥ ९० ॥ अथनारायणोदेव स्तंदृष्ट्वादृढमानसम् ॥ अनन्यशरणंबालं गत्वाताक्ष्यरथोऽब्रवीत् ॥ ९१ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ प्रसन्नोस्मिमहाभाग व

ता ॥ ८७ ॥ उस भगवद्भक्त से किसीका कहीं नहीं डरना चाहिये क्योंकि यह निश्चितहै कि जे विष्णुके भक्त वे पराये तपानेहारे न होंगे ॥ ८८ ॥ देवोंके स्वामी विष्णु को पूज उनसे अपना वाञ्छित पा वह आप सबके भी स्थानोंको थिर करेगा ॥ ८९ ॥यों ब्रह्माका कहा वचन सुन आनन्दितहो देवलोग नमस्कारकर अपने लोकों कोगये ॥ ९० ॥ अनन्तर अचलचित्त अनन्यशरणागत उस बालकको देख गरुड़है रथ जिनका वे नारायण देव जा बोले ॥ ९१ ॥ हे अच्छेव्रतवाले महाभाग ! मैं प्र-

सन्नहूं वरमांगो हे बालक ! बहुत दुंबले हो इस तपसे लौटो ॥ ६२ ॥ उसने वचन अमृतको सुन सबओरसे आंखें उघाड़ इन्द्रनीलमणि कीसी ज्योतिसमूहको देखा॥ ६३ ॥ जोकि आगे आगे अत्यन्त फूले कमलों के समूहों से प्रफुल्लित सबओर द्यावाभूमिरूप सरसी समान सोहती है ॥ ६४ ॥ ध्रुवने तब पृथ्वी और द्युलोकका जो बीचहै उस सबको लक्ष्मीदेवीके कटाक्षसमूहोंके विषय कियेगये से देखा प्रस्फुरती मेघपंक्ति के बीच बिज्जुमाला के समान दीप्तिहै जिनकी उन पीताम्बरधर वासुदेव को उसने आगे आंखोंका अतिथि किया याने देखा मेघसे श्यामस्वरूप और बिजुलीसे वनमाला समझना चाहिये ॥ ६५।६६ ॥ उस समय ध्रुवने गरुड़वाहन विष्णुको यों

रंवरयसुव्रत ॥ तपसोऽस्मान्निवर्तस्व चिरंखिन्नोसिबालक ॥ ९२ ॥ वचोऽमृतंसमाकर्ण्य पर्युन्मील्यविलोचने ॥ इन्द्रनीलमणिज्योतिः पटलींपर्यलोकयत् ॥ ९३ ॥ प्रत्यग्रविकसन्नीलोत्पलानांनिकुरम्बकैः ॥ प्रोत्फुल्लितांसमन्ताच्च रोदसीसरसीमिव ॥ ९४ ॥ लक्ष्मीदेवीकटाक्षौघैः कटाक्षितमिवाखिलम् ॥ ध्रुवस्तदानिरैक्षिष्ट द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥९५॥ प्रोद्यत्कादम्बिनीमध्यविद्युद्दामसमानरुक् ॥ पुरःपीताम्बरःकृष्णस्तेननेत्रातिथीकृतः ॥ ९६ ॥ नभोनिकषपाषाणो मेरुकाञ्चनरेखितः ॥ यथातथाध्रुवेणैक्षि तदागरुडवाहनः ॥ ९७ ॥ सुनीलगगनंयद्वद्भूषितन्तुकलावता ॥ पीतेनवाससा युक्तं सददर्शहरिंतदा ॥ ९८ ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याथ परितःपरिलुठ्यच ॥ रुरोददृष्ट्वेवचिरंपितरंदुःखितःशिशुः ॥ ९९ ॥ नारदेनसनन्देन सनकेनसुसंस्तुतः ॥ अन्यैःसनत्कुमाराद्यैर्योगिभिर्योगिनांवरः ॥ १०० ॥ कारुण्यवाष्पनीरार्द्रपुण्डरीकविलोचनः ॥ ध्रुवमुत्थापयाङ्के चक्रीधृत्वाकरेणतम् ॥ १ ॥ हरिस्तुपरिपस्पर्श तदङ्गंधूलिधूसरम् ॥ करा

देखा कि जैसे सुमेरु सोनेसे अङ्कित आकाश कसौटी पत्थरहो ॥ ६७ ॥ उसने उस समय पीताम्बर संयुत विष्णुको यों देखा कि जैसे अच्छा काला आकाश सायङ्काल में उदय होते चन्द्रमा से युक्तहो ॥ ६८ ॥ अनन्तर दण्डवत् प्रणामकर सबओर रो लोट पिताको देख दुःखित बालककी नाई बहुत रोदन किया ॥ ६६ ॥ नारद सनन्दन सनक और सनत्कुमारादि अन्य योगीश्वरों से भी प्रशंसित योगियो के वरदायक ॥ १०० ॥ दयाभावसे आये आंसू जलसे भीगेनेत्र जिनके उन चक्रधारी

ने हाथ धर उस ध्रुवको उठाया ॥ १ ॥ और भक्तभयहारीने शस्त्र गहनेसे अच्छे कठोर दोनों हाथोंसे धुरियाने उसके अङ्गको पोंछा ॥ २ ॥ उन देव देवजी के स्पर्शन मात्र से सुन्दर संस्कृतवाली शुभकारिणी वाणी उस ध्रुवके मुखसे प्रवृत्तहुई तदनन्तर ध्रुवजी हरिकी स्तुति करतेभये ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेध्रुवाख्यानेभगवद्दर्शनंनामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ इकइस के अध्याय में प्रणमि ध्रुवस्तुति कीन। ह्वै प्रसन्न भगवान भल अचलवास तेहि दीन ॥ ध्रुवजी बोले सुवर्ण वर्ण ब्रह्माण्डके आधार सकल सृष्टि कर्त्ता और सोनाहै वीर्य्य जिनका उन ज्ञानदायक आपके नमस्कारहो ॥ १ ॥ रुद्ररूप या अज्ञानहारी प्रलयकारी आकाशादि तत्त्वरूप हुये व सब प्राणियो के स्वामी

भ्यांसुकठोराभ्यां नित्यंशस्त्रपरिग्रहात् ॥ २ ॥ स्पर्शनाद्देवदेवस्य सुसंस्कृतमयीशुभा ॥ वाणीप्रवृत्तातस्यास्यात्तुष्टावाथध्रुवोहरिम् ॥ १०३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेध्रुवाख्यानेभगवद्दर्शनन्नामविंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥

ध्रुवउवाच ॥ नमोहिरण्यगर्भाय सर्वसृष्टिविधायिने ॥ हिरण्यरेतसेतुभ्यं सुहिरण्यप्रदायिने ॥ १ ॥ नमोहरस्वरूपाय भूतसंहारकारिणे ॥ महाभूतात्मभूताय भूतानांपतयेनमः ॥ २ ॥ नमःस्थितिकृतेतुभ्यं विष्णवेप्रभविष्णवे ॥ तृष्णाहरायकृष्णाय महाभारसहिष्णवे ॥ ३ ॥ नमोदैत्यमहारण्यदाववह्निस्वरूपिणे ॥ दैत्यद्रुमकुठाराय नमस्तेशार्ङ्गपाणये ॥ ४ ॥ नमःकौमोदकीव्यग्रकराग्रायगदाधर ॥ महादनुजनाशाय नमोनन्दकधारिणे ॥ ५ ॥ नमःश्रीपतयेतुभ्यं नमश्चक्रधरायच ॥ धराधरायवाराहरूपिणेपरमात्मने ॥ ६ ॥ नमःकमलहस्ताय कमलावल्लभायते ॥ नमोम

आपके नमस्कारहो ॥ २ ॥ जगत्पालक व्यापक प्रभुतावाले विषयवासना हरनहारे सदानन्दरूप और वराह कूर्मादि अवतारों से भारसहने का शीलहै जिनका ऐसे आपके नमस्कार हो ॥ ३ ॥ दैत्य महावन जलाने को दावानल व दैत्यवृक्ष काटने को कुल्हाड़ी के समान शार्ङ्गधन्वा हाथवाले आपके नमस्कारहो ॥ ४ ॥ हे गदाधर ! कौमोदकी नाम गदा गहने को उद्योगवाली अँगुलियां हैं जिनकी नन्दकखड्गधारी दानवक्षयकारी आपके नमस्कारहो ॥ ५ ॥ लक्ष्मीजी के वर सुदर्शनचक्रधर पृथ्वी के आधार वराह अवतार परमेश्वर आपके नमस्कार हो ॥ ६ ॥ लीलाकमल को हाथ में लिये लक्ष्मी को प्यार किये व जिनके मत्स्यादि अवताररूप और उरमें कौस्तुभ-

मणिहै उन आपके नमस्कारहो ॥ ७ ॥ वेदान्त से जाननेयोग्य, भृगुलता या दक्षिणावर्त रोमावलीवाले सत्त्वादि गुणरूप गुणसहित याने जीव और गुणोंसे रहित परब्रह्म आपके नमस्कारहो ॥ ८ ॥ भुवनकमल है नाभिमें जिनके व पञ्चजन दैत्य की देहसे हुये शङ्खको गहे तेजोरूप देव या सबमें बसे देव या वसुदेवके पुत्र देवकी के नन्दन या विद्या बढ़ानेवाले आपके नमस्कारहो ॥ ९ ॥ बहुत बड़ा तेजहै जिनका व किसीसे रोके न गये कंसके या अज्ञानके नाशक चाणूरमर्दन आपके नमस्कार हो ॥ १० ॥ हे दामोदर ! हे इन्द्रियेश्वर गोविन्द अच्युत लक्ष्मीनाथ इन्द्रके ऊपर इन्द्र कैटभ दैत्यके शत्रो मधुसूदन ! और हे अधोक्षज याने इन्द्रियोंके ज्ञानसे परे ! आपके नमस्कार

स्त्यादिरूपाय नमःकौस्तुभवक्षसे ॥ ७ ॥ नमोवेदान्तवेद्याय नमःश्रीवत्सधारिणे ॥ नमोगुणस्वरूपाय गुणिनेगुणवर्जिते ॥ ८ ॥ नमस्तेपद्मनाभाय पाञ्चजन्यधरायच ॥ वासुदेवनमस्तुभ्यं देवकीनन्दनायच ॥ ९ ॥ प्रद्युम्नायनमस्तुभ्यमनिरुद्धायतेनमः ॥ नमःकंसविनाशाय नमश्चाणूरमार्दिने ॥ १० ॥ दामोदरहृषीकेश गोविन्दाच्युतमाधव ॥ उपेन्द्रकैटभाऽराते मधुहन्तरधोक्षज ॥ ११ ॥ नारायणायनरकहारिणेपापहारिणे ॥ वामनायनमस्तुभ्यं हरयेशौरयेनमः ॥ १२ ॥ अनन्तायनमस्तुभ्यमनन्तशयनायच ॥ रुक्मिणीपतयेतुभ्यं रुक्मिप्रमथनायच ॥ १३ ॥ चैद्यहन्त्रेनमस्तुभ्यं दानवारेसुरारये ॥ मुकुन्दपरमानन्दनन्दगोपप्रियायच ॥ १४ ॥ नमस्तेपुण्डरीकाक्ष दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ नमोगोपालरूपाय वेणुवादनकारिणे ॥ १५ ॥ गोपीप्रियायकेशिघ्ने गोवर्धनधरायच ॥ रामायरघुनाथाय राघवायनमोनमः ॥ १६ ॥ रावणारेनमस्तुभ्यं विभीषणशरण्यद ॥ अजायजयरूपाय रणाङ्गणविचक्षण ॥ १७ ॥ क्षणादिका

हो ॥ ११ ॥ जीवोंके आधार यमलोकके नरक या नरकनाम दैत्यके विदारण पाप पछारण वामन अज्ञानहर शूरके वंशमें उत्पन्न आपके नमस्कारहो ॥ १२ ॥ अन्तसे रहित शेषपर सोते रुक्मिणीके पति व रुक्मीका मदमर्दनवारे आपके नमस्कारहो ॥ १३ ॥ हे दानववैरिन् मुक्तिदायक ! हे परमानन्द दैत्यविनाशनवारे शिशुपालको मारे नन्दगोप के प्यारे ! आपके नमस्कारहो ॥ १४ ॥ हे कमलनयन ! हे दनुजेन्द्रों के मारण ! गोपरूप धारण वंशी बजानेवाले आपके नमस्कारहो ॥ १५ ॥ राधादिगोपियों के रंता केशी के हंता गोवर्द्धनधार रामावतार जीवोंके नाथ रघुवंश में उत्पन्न आपके नमस्कारहो ॥ १६ ॥ हे रावणशत्रो विभीषणको आश्रयदायक ! हे संग्राम आंगन में पण्डित !

जन्म रहित जयरूप आपके नमस्कारहो ॥ १७ ॥ क्षणादि कालरूप अनेकरूप व शार्ङ्गधन्वा गदा चक्रवारे दैत्यसमूह मारे आपके नमस्कारहो ॥ १८ ॥ हे बलियज्ञ प्रमथन ! हे भक्तवरप्रद बलवान् बलभद्ररूप सुरभूपके मित्र ! आपके नमस्कारहो ॥ १९ ॥ हे हिरण्यकशिपु की छाती विदार संग्रामके प्यार करणहार ब्रह्मण्यदेव ब्राह्मणों और गौओंके हितकारी ! आपके नमस्कारहो ॥ २० ॥ धर्म्मरूप सतोगुणी सहस्रों शिरवाले नवद्वार देहमें सोते परमेश्वर आपके नमस्कारहो ॥ २१ ॥ हे सहस्राक्ष ! हे सहस्रपद ! हे सहस्रमूर्त्ते ! हे यज्ञपुरुष ! हे लक्ष्मीपते सूर्य्यरूप ! आप के नमस्कार हो ॥ २२ ॥ वेदोंसेही जाननेयोग्यरूप वेदभूप वेदरूप वेदव्यास अच्छे आ-

लरूपाय नानारूपायशार्ङ्गिणे ॥ गदिनेचक्रिणेतुभ्यं दैत्यचक्रविमर्दिने ॥ १८ ॥ बलायबलभद्राय बलारातिप्रियाय च ॥ बलियज्ञप्रमथननमोभक्तवरप्रद ॥ १९ ॥ हिरण्यकशिपोर्वक्षोविदारणरणप्रिय ॥ नमोब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहितायच ॥ २० ॥ नमस्तेधर्मरूपाय नमःसत्त्वगुणायच ॥ नमःसहस्रशिरसे पुरुषायपरायच ॥ २१ ॥ सहस्राक्षसहस्राङ्घ्रे सहस्रकिरणायच ॥ सहस्रमूर्तेश्रीकान्त नमस्तेयज्ञपूरुष ॥ २२ ॥ वेदवेद्यस्वरूपाय नमोवेदप्रियायच ॥ वेदायवेदगादिने सदाचाराध्वगामिने ॥ २३ ॥ वैकुण्ठायनमस्तुभ्यंनमोवैकुण्ठवासिने ॥ विष्टरश्रवसेतुभ्यं नमोगरुडगामिने ॥ २४ ॥ विष्वक्सेननमस्तुभ्यं जगन्मयजनार्दन ॥ त्रिविक्रमायसत्याय नमःसत्यप्रियायच ॥ २५ ॥ केशवायनमस्तुभ्यं मायिनेब्रह्मगायिने ॥ तपोरूपायतपसां नमस्तेफलदायिने ॥ २६ ॥ स्तुत्यायस्तुतिरूपाय भक्तस्तुतिरतायच ॥ नमस्तेश्रुतिरूपायश्रुत्याचारप्रियायच ॥ २७ ॥ अण्डजायनमस्तुभ्यंस्वेदजायनमोस्तुते ॥ जरायुजस्वरूपायनमउद्भि

चार गलीमें चलनशील आपके नमस्कारहो ॥ २३ ॥ विकुण्ठा के पुत्र वैकुण्ठवासी वेदोंसे सुनेजाते गरुड़पर चढ़जाते आपके नमस्कारहो ॥ २४ ॥ हे सब ओर चलती सेनावाले ! हे जगन्मय ! हे जनार्दन वामनरूप सदा सत्य व सत्यके प्यार कर्त्तार ! आपके नमस्कारहो ॥२५॥ ब्रह्मा और रुद्रहुये जिनसे व शक्तिमान् वेदगायक तपस्यारूप तपोंके फलदायक आपकेनमस्कारहो ॥ २६ ॥ स्तुतिके योग्य स्तुतिरूप भक्तोंकी स्तुतिमें प्रीतिमान् वेदरूप वेदोंके आचारोंसे प्रसन्न आपके नमस्कारहो॥२७॥

अण्डज पिण्डज स्वेदज उद्भिज्जरूप आपके नमस्कारहो ॥ २८ ॥ आप देवों में इन्द्ररूप ग्रहोंमें सूर्य्य लोकों में सत्यलोक व समुद्रोंमें क्षीरसागरहो ॥ २९ ॥ नदियों में गंगा तड़ागोंमें मानससर पर्वतोंमें हिमवान् और आप गौओंमें कामधेनुहो ॥३०॥ आप धातुओं में सुवर्ण पत्थरों में स्फटिक फूलोंमें नीलकमल और वृक्षोंमें तुलसी हो ॥ ३१ ॥ सब पूजनीय शिलाओं में शालग्राम मुक्तिदायक क्षेत्रोंमे काशी व तीर्थोंकी पंक्तिमे प्रयाग ॥ ३२ ॥ हे ईश! वर्णों याने रंगोंमें श्वेतवर्ण दोपदवालोंमें ब्राह्मण

ज्जरूपिणे ॥ २८ ॥ देवानामिन्द्ररूपोसि ग्रहाणामसिभानुमान् ॥ लोकानांसत्यलोकोऽसि सिन्धूनांक्षीरसागरः ॥ २९ ॥ सुरापगाऽसिसरितां सरसांमानसंसरः ॥ हिमवानसिशैलानां धेनूनांकामधुग्भवान् ॥ ३० ॥ धातूनांहाटकमसि स्फटिकश्चोपलेष्वसि ॥ नीलोत्पलंप्रसूनेषु वृक्षेषुतुलसीभवान् ॥ ३१ ॥ सर्वपूज्यशिलानांवैशालग्रामशिलाभवान् ॥ मुक्तिक्षेत्रेषुकाशीत्वं प्रयागस्तीर्थपङ्क्तिषु ॥ ३२ ॥ वर्णेषुश्वेतवर्णोऽसि द्विपदांब्राह्मणोभवान् ॥ गरुडोस्यण्डजेष्वीश व्यवहारेषुवाग्भवान् ॥ ३३ ॥ वेदेषूपनिषद्रूपो मन्त्राणांप्रणवोह्यसि ॥ अक्षराणामकारोसि यज्वनांसोमरूपधृक् ॥ ३४ ॥ प्रतापिनामग्निरसिक्षमाऽसित्वंक्षमावताम् ॥ दातॄणामसिपर्जन्यः पवित्राणांपरोह्यसि ॥ ३५ ॥ चापोसिसर्वशस्त्राणां वातोवेगवतामसि ॥ मनोसीन्द्रियवर्गेषु निर्भयाणांकरोह्यसि ॥ ३६ ॥ व्योमव्याप्तिमतांत्वंवै परमात्माऽसिचात्मनाम् ॥ सन्ध्योपास्तिर्भवान्देव सर्वनित्येषुकर्मसु ॥ ३७ ॥ क्रतूनामश्वमेधोसि दानानामभयंभवान् ॥ लाभानांपुत्रलाभोसि वसन्तस्त्वमृतुष्वहो ॥ ३८॥ युगानांप्रथमोसित्वं तिथीनान्त्वंकुहूह्यसि ॥ पुष्योसिनक्षत्रगणे संक्रमःसर्वपर्वसु ॥ ३९॥

पक्षियों में गरुड़ लोकव्यवहारमें वाणी आपहो ॥ ३३ ॥ वेदोंमें उपनिषद् रूप मन्त्रोंमें ॐकार अक्षरों में अकार और यज्ञकर्त्ताओं में चन्द्ररूपधारी हो ॥ ३४ ॥ प्रतापियोंमें अग्नि क्षमावालों में क्षमा दानियोंमें पर्जन्य याने मेघोंकी अधिष्ठात्री देवता पवित्रों में परमपवित्र ॥ ३५ ॥ सब शस्त्रोंमें धन्वा वेगवानोंमें वायु इन्द्रियों के वर्गमें मन निडरोंमें हाथ ॥ ३६ ॥ व्यापनेवालोंमें आकाश चैतन्योंमें परमात्मा व हे देव ! सब नित्यकर्मोंमें सन्ध्योपासन आपहीहो ॥ ३७॥ यज्ञोंमे अश्वमेध दानोमे अभयदेना

लाभोंमें पुत्रका लाभ ऋतुओंमें वसन्त ॥ ३८ ॥ युगोंमें पहला याने सत्ययुग तिथियों में अमावस नक्षत्रोंके गणमें पुष्य सब पर्वों में संक्रान्ति ॥ ३९ ॥ योगों में व्यतीपात तृणोंमें कुश हे प्रभो! सब पुरुषार्थोंमें मोक्ष आपहीहो ॥ ४० ॥ हे अज ! आप इस जगत्के मध्य सब बुद्धियोंमें धर्मबुद्धि सब वृक्षोंमें पीपल लताओंमें सोमवल्लीहो॥ ४१ ॥ अहो विष्णो ! सब पवित्र साधनोंमें प्राणायाम सब लिंगों में सब फलदायक श्रीविश्वनाथ ॥ ४२ ॥ मित्रोंमें स्त्री और सब बन्धुओंमें धर्म आपही हो हे नारायण ! इस स्थावर जंगमरूप जगत् में आपसे अन्य कुछ नहीं ॥ ४३ ॥ माता पिता मित्र महाधन सौख्यों का संभार आयु और जीव भी आपही हो ॥ ४४ ॥ वह कथा जि-

योगेषुव्यतिपातस्त्वं तृणेषुहिकुशोभवान् ॥ उद्यमानांहिसर्वेषां निर्वाणंत्वमसिप्रभो ॥ ४० ॥ सर्वासामिहबुद्धीनां धर्मबुद्धिर्भवानज ॥ अश्वत्थःसर्ववृक्षेषु सोमवल्लीलतासुच ॥ ४१ ॥ प्राणायामोसिसर्वेषु साधनेषुशुचिष्वहो ॥ सर्वदःसर्वलिङ्गेषु श्रीमान्विश्वेश्वरोभवान् ॥ ४२ ॥ मित्राणांहिकलत्रन्त्वंधर्मस्त्वंसर्वबन्धुषु ॥ त्वत्तोनान्यज्जगत्यस्मिन्नारायणचराचरे ॥ ४३ ॥ त्वमेवमातात्वंतातस्त्वंसुहृत्त्वंमहाधनम् ॥ त्वमेवसौख्यसम्पत्तिस्त्वमायुर्जीवनेश्वरः ॥ ४४ ॥ साकथायत्रतेनाम तन्मनोयत्त्वदर्पितम् ॥ तत्कर्मयत्त्वदर्थंवै तत्तपोयद्भवत्स्मृतिः ॥ ४५ ॥ तद्धनंधनिनांशुद्धंयत्त्वदर्थे व्ययीकृतम् ॥ सएवसकलःकालो यस्मिञ्जिष्णोत्वमर्च्यसे ॥ ४६ ॥ तावच्चजीवितंश्रेयो यावत्त्वंहृदिवर्तसे ॥ रोगाः प्रशममायान्ति त्वत्पादोदकसेवनात् ॥ ४७ ॥ महापापानिगोविन्द बहुजन्मार्जितान्यपि ॥ सद्योविलयमायान्ति वासुदेवेतिकीर्तनात् ॥ ४८ ॥ अहोपुंसांमहामोहस्त्वहोपुंसांप्रमादता ॥ वासुदेवमनादृत्य यदन्यत्रकृतश्रमाः ॥ ४९ ॥

समें आपका नाम वह मन जो आपमें समर्पित वह कर्म जो आप के अर्थ और वह तप जो कि आपका सुमिरना ॥ ४५ ॥ वही धनियों का शुद्ध धन जो कि आपके अर्थ खर्च कियागया हे विष्णो ! सोई सम्पूर्ण काल कि जिसमें आप पूजे जाते हो ॥ ४६ ॥ जौलों हृदय में आप बर्तते तौलों जीना श्रेष्ठ व आपके चरणामृतकी सेवा से रोग नाश हो जाते हैं ॥ ४७ ॥ हे गोविन्द ! बहुते जन्मोंके कमाये बड़े पाप वासुदेव यों कहने से शीघ्रही नाश को प्राप्त होते हैं ॥ ४८ ॥ खेद है कि

यह लोगों का बड़ा मोह व प्रमादहोना जो कि वासुदेव को अनादर कर अनते किये श्रमवाले हैं ॥ ४९ ॥ जो कि भगवान् का कीर्त्तन यही मंगल होना यही धन बटोरना और यही जीने का फल है ॥ ५० ॥ न अधोक्षज से परे धर्म न नारायणसे परे अर्थ न केशव से परे आन काम और न हरिके विना मोक्ष ॥ ५१ ॥ यही बड़ी हानि यही उपद्रव और यही बड़ा अभाग जो कि वासुदेवको न सुमिरे या ध्यावे ॥ ५२ ॥ आश्चर्यहै कि पुत्र मित्र स्त्री धन राज्य स्वर्ग और मोक्ष देनेवाली भगवान् की पूजा मनुष्यों के लिये क्या क्या नहीं करती ॥ ५३ ॥ पापहरती रोग नाशती मानसी व्यथाको रोंकती शीघ्रही धर्म बढ़ाती और मनोरथ को भी देती है ॥ ५४ ॥ भगवान् के दोनों पद

इदमेवहिमाङ्गल्यमिदमेवधनार्जनम् ॥ जीवितस्यफलंचैतद्यद्दामोदरकीर्तनम् ॥ ५० ॥ अधोक्षजात्परोधर्मो नार्थोनारायणात्परः ॥ नकामःकेशवादन्यो नापवर्गोहरिंविना ॥ ५१ ॥ इयमेवपराहानिरुपसर्गोयमेवहि ॥ अभाग्यंपरमंचैतद्वासुदेवंनयत्स्मरेत् ॥ ५२ ॥ हरेराराधनंपुंसां किंकिंनकुरुतेबत ॥ पुत्रमित्रकलत्रार्थराज्यस्वर्गापवर्गदम् ॥ ५३ ॥ हरत्यघंध्वंसयतिव्याधीनाधीन्नियच्छति ॥ धर्मंविवर्धयेत्क्षिप्रं प्रयच्छतिमनोरथम् ॥ ५४ ॥ भगवच्चरणद्वन्द्वनिर्द्वन्द्वध्यानमुत्तमम् ॥ पापिनापिप्रसङ्गेन विहितंस्वहितंपरम् ॥ ५५ ॥ पापिनांयानिपापानि महोपपदभाञ्ज्यपि ॥ सुलीनध्यानसम्पन्नो नामोच्चारोहरेर्हरेत् ॥ ५६ ॥ प्रमादादपिसंस्पृष्टो यथाऽनलकणोदहेत ॥ तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनामहरेदघम् ॥ ५७ ॥ नितान्तंकमलाकान्ते शान्तंचित्तंविधाययः ॥ संशीलयेत्क्षणंनूनं कमलातत्रनिश्चला ॥ ५८ ॥ अयमेवपरोधर्मस्त्विदमेवपरन्तपः ॥ इदमेवपरंतीर्थं विष्णुपादाम्बुयत्पिबेत् ॥ ५९ ॥ तवोपहारंभक्तयायःसेवतेयज्ञपूरुष ॥ सेवितस्ते

कमलों में अचल ध्यान मुख्य है जो पापी करके व किसी प्रसंग से याने धनादि मिलने के लिये भी कियागया तो भी बड़ा अपने को हित है ॥ ५५ ॥ जे महाउपपद के भागी या पापियों के पाप याने महापाप उसको अचल ध्यान से सम्बद्ध हरिका नामोच्चारण हरताहै ॥ ५६ ॥ जैसे प्रमाद से भी छुईहुई आग की चिनगारी जलावे वैसे दोनों ओठों से छुवा हरिका नाम पापको हरे ॥ ५७ ॥ जो एकान्त शांतचित्तको लक्ष्मी के कान्त में थाप क्षणभर भी भलीभांति से ध्यावे उसमें लक्ष्मी निश्चल होवें ॥ ५८ ॥ यही परे धर्म यही परे तप और यही परे तीर्थ जो कि विष्णुका चरणामृत पीवे ॥ ५९ ॥ हे यज्ञपुरुष ! जो आपकी नैवेद्यको सेवता उसने बड़ी

बुद्धि से नियमकर यज्ञ में देवों के देने योग्य पवित्र पदार्थ को सेवन किया ॥ ६० ॥ जो मनुष्य शङ्ख में विष्णु का चरणामृतभर नहाता उसने यज्ञान्तस्नान में व गङ्गाजल से नहाया ॥ ६१ ॥ जिसने तुलसीदलों से शालग्राम को पूजा वह स्वर्ग में पारिजात के फूलोंकी मालाओं से पूजाजाता है ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र व अन्य कोई हो जोई विष्णु की भक्ति से संयुक्त वह सबसे उत्तम जाननेयोग्य है ॥ ६३ ॥ शङ्ख चक्र से चिह्नित देह शिर में तुलसी की मंजरी धरे और गोपीचन्दन से लीपे अंग जिसके वह जो देखागया तो पाप कैसे या कहां ॥ ६४ ॥ जो गोमतीचक्र समेत शालग्रामकी बारह मूर्तियों को प्रतिदिन पूजता वह वैकुण्ठमें आदर पाता

ननियतं पुरोडाशोमहाधिया ॥ ६० ॥ सचैवावभृथस्नातःसचगङ्गाजलाप्लुतः ॥ विष्णुपादोदकंकृत्वा शङ्खेयःस्नाति मानवः ॥ ६१ ॥ शालग्रामशिलायेन पूजितातुलसीदलैः ॥ सपारिजातमालाभिःपूज्यतेसुरसद्मनि ॥ ६२ ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवैश्यः शूद्रोवायदिवेतरः ॥ विष्णुभक्तिसमायुक्तो ज्ञेयःसर्वोत्तमश्चसः ॥ ६३ ॥ शङ्खचक्राङ्किततनुः शिरसामञ्जरीधरः ॥ गोपीचन्दनलिप्ताङ्गो दृष्टश्चेत्तदघंकुतः ॥ ६४ ॥ प्रत्यहंद्वादशशिलाः शालग्रामस्ययोऽर्चयेत् ॥ द्वारवत्याःशिलायुक्ताः सवैकुण्ठेमहीयते ॥ ६५ ॥ तुलसीयस्यभवनेप्रत्यहंपरिपूज्यते ॥ तद्गृहंनोपसर्पन्ति कदाचिद्यमकिङ्कराः ॥ ६६ ॥ हरिनामाक्षरमुखंभालेगोपीमृदाङ्कितम् ॥ तुलसीमालितोरस्कंस्पृशेयुर्नयमानुगाः ॥ ६७ ॥ गोपीमृत्तुलसीशङ्खः शालग्रामःसचक्रकः ॥ गृहेपियस्यपञ्चैते तस्यपापभयंकुतः ॥ ६८ ॥ येमुहूर्ताःक्षणायेचयाःकाष्ठायेनिमेषकाः ॥ ऋतेविष्णुस्मृतेर्यातास्तेषुमुष्टोयमेनसः ॥ ६९ ॥ कद्वयक्षरंहरेर्नामस्फुलिङ्गसदृशंज्वलत् ॥ महतीपातकानाञ्च राशि

है ॥ ६५ ॥ जिस घरमें प्रतिदिन तुलसी पूजी जाती उस घरको यमदूत कभी नहीं आते ॥ ६६ ॥ जिसके मुखमें हरिके नामोंके अक्षर माथ में गोपीचन्दन का तिलक उर में तुलसी की माला उसको यमदूत छूते नहीं ॥ ६७ ॥ गोपीचन्दन तुलसी शङ्ख गोमतीचक्रसमेत शालग्राम ये पांच जिसके घरमें हैं उसको पापों से डर कैसे होगा ॥ ६८ ॥ जिसके जे दो दण्ड जे क्षण याने पल जे अठारह निमेष और जे पलक भांजने के काल विष्णु के सुमिरण विना बीते उनमें वह यम करके मूसागया ॥ ६९ ॥

कहां आगकी चिनगारी के समान ज्वलता दो अक्षर हरिका नाम कहां रुई की बराबर पापों की बड़ी राशि ॥ ७० ॥ मुक्तिदायक परमआनन्दरूप गोविन्दको तज आन को न सेवों न सुमिरों ॥ ७१ ॥ यहां हरि के विना आन को न नमों न प्रशंसों न आंखों से देखों न छुवों न पास जावों और न गावों ॥ ७२ ॥ जल थल पाताल वायु आग पर्वत विद्याधर दैत्य देव किन्नर नर ॥ ७३ ॥ खर स्त्री समूह पत्थर वृक्ष गुच्छ लता और सब ओर उरमें दक्षिणावर्त्त रोमावलीवाले अनूप श्याम स्वरूप को देखता हूं ॥ ७४ ॥ सबों के हृदय में जीवरूप से बसे प्रत्यक्ष आप सबके साखी हो सब ओर प्राप्त आप के विना बाहर भीतर आनको नहीं जानता हूं ॥ ७५ ॥ हे

स्तूलोपमाक्च ॥ ७० ॥ गोविन्दंपरमानन्दं मुकुन्दंमधुसूदनम् ॥ त्यक्त्वान्यंनैवजानामि नभजामिस्मरामिन ॥ ७१ ॥ ननमामिनचस्तौमि नपश्यामीहचक्षुषा ॥ नस्पृशामिनवायामि गायामिनहरिंविना ॥ ७२ ॥ जलेस्थलेचपातालेप्य निलेचानलेऽचले ॥ विद्याधरासुरसुरे किन्नरेवानरेनरे ॥ ७३ ॥ तृणेस्त्रैणेचपाषाणे तरुगुल्मलतासुच ॥ सर्वत्रश्यामल तनुं वीक्षेश्रीवत्सवक्षसम् ॥ ७४ ॥ सर्वेषांहृदयावासः साक्षात्साक्षीत्वमेवहि ॥ बहिरन्तर्विनात्वान्तु नह्यन्यंवेद्मिसर्वग म् ॥ ७५ ॥ इत्युक्त्वाविररामासौ शिवशर्मन्ध्रुवस्तदा ॥ देवोपिभगवान्विष्णुस्तमुवाचप्रसन्नदृक् ॥ ७६ ॥ श्रीभगवानु वाच ॥ अयिबालविशालाक्ष ध्रुवध्रुवमतेऽनघ ॥ परिज्ञातोमयासम्यक्तवहृत्स्थोमनोरथः ॥ ७७ ॥ अन्नाद्भवन्तिभूता नि वृष्टेरन्नसमुद्भवः ॥ तद्वृष्टेःकारणंसूर्यः सूर्याधारोध्रुवैधिभोः ॥ ७८ ॥ ज्योतिश्चक्रस्यसर्वस्य ग्रहर्क्षादेःसमन्ततः ॥ गगनेभ्रमतोनित्यं त्वमाधारोभविष्यसि ॥ ७९ ॥ मेढीभूतस्तुवैसर्वान्वायुपाशैर्नियन्त्रितान् ॥ आकल्पंतत्पदंतिष्ठ आ

शिवशर्मन् ! यों कह जब ध्रुव ने विश्राम किया तब प्रसन्ननेत्र भगवान् विष्णुदेव भी उससे बोले ॥ ७६ ॥ हे बालक विशालनयन अचलबुद्धे अपाप ध्रुव ! मैंने तेरे हृदय में टिके मनोरथको नीके जाना ॥ ७७ ॥ हे ध्रुव ! अन्न से सब जन्तु होते जल वर्षनेसे अन्न उत्पन्न उस वर्षने का कारण सूर्य्य तू सूर्य्यका आधार हो ॥ ७८ ॥ सदा सबओर आकाश में भ्रमते ग्रह राशि नक्षत्रादि सब ज्योतिश्चक्रका तू आधार होगा ॥ ७९ ॥ वायुरस्सियों से जोड़े सब नखतसमूहों को घुमाते हुये मेढ़ीभूत

(मड़नी माड़ने के लिये बैलों के बांधने को बीच में गाड़ी खम्भा से हो) कल्प पर्यन्त उस स्थान में टिको ॥ ८० ॥ पहले मैंने श्रीमहादेव को पूज जो यह स्थान पाया उसको तुमने तप से लिया ॥ ८१ ॥ हे ध्रुव ! कोई चार युग लों कोई मन्वन्तर याने हजार चौयुगी के चौदहें हिस्से लों टिकते और तुम इस स्थान में कल्पपर्य्यन्त राज्य करोगे ॥ ८२ ॥ हे ध्रुव ! मनुने भी जिसको नहीं पाया तो मनुसे हुये मनुष्योंका क्या वह इन्द्रादि देवों का दुर्लभ स्थान तेरे अधीन कियागया ॥ ८३ ॥ इस स्तोत्र से प्रसन्न मैं अन्य वर देता हूं कि तेरी माता सुनीति भी तेरे समीप प्राप्तहोगी ॥ ८४ ॥ व एकाग्रचित्त जो मनुष्य इस स्तोत्र श्रेष्ठ को त्रिसन्ध्य याने प्रातः दु-

मयञ्ज्योतिषाङ्गणान् ॥ ८० ॥ आराध्यश्रीमहादेवं पुरापदमिदंमया ॥ आसादियत्तदेतत्तेतपसाप्रतिपादितम् ॥ ८१ ॥ केचिच्चतुर्युगंयावत्केचिन्मन्वन्तरंध्रुव ॥ तिष्ठन्तित्वन्तुवैकल्पं पदमेतत्प्रशास्यसि ॥ ८२ ॥ मनुनापिनयत्प्रापि किमन्यैर्मानवैर्ध्रुव ॥ तत्पदंविहितंत्वत्साच्छक्राद्यैरपिदुर्लभम् ॥ ८३ ॥ अन्यान्वरान्प्रयच्छामिस्तवेनानेनतोषितः ॥ सुनीतिरपितेमातात्वत्समीपेचरिष्यति ॥ ८४ ॥ इदंस्तोत्रवरंयस्तु पठिष्यतिसमाहितः ॥ त्रिसन्ध्यंमनुजस्तस्य पापंयास्यतिसंक्षयम् ॥ ८५ ॥ नतस्यसदनंलक्ष्मीः परित्यक्ष्यत्यसंशयम् ॥ नजनन्यावियोगश्च नबन्धुकलहोदयः ॥ ८६ ॥ ध्रुवस्तुतिरियंपुण्या महापातकनाशिनी ॥ ब्रह्महापिविशुध्येत काकथेतरपापिनाम् ॥ ८७ ॥ महापुण्यस्यजननी महासम्पत्तिदायिनी ॥ महोपसर्गशमनी महाव्याधिविनाशिनी ॥ ८८ ॥ यस्याऽस्तिपरमाभक्तिर्मयिनिर्मलचेतसः ॥ ध्रुवस्तुतिरियंतेन जप्यामत्प्रीतिकारिणी ॥ ८९ ॥ समस्ततीर्थस्नानेन यत्फलंलभतेनरः ॥ तत्फलंसम्यगाप्नोति जपन्

पहर और शाम समय में पढ़ेगा उसका पाप नाश होजावेगा ॥ ८५ ॥ निस्सन्देह उसके घरको लक्ष्मी न तजेगी माताका बिछोह व भाइयों का झगड़ा न होगा॥८६॥ यह ध्रुवस्तुति पुण्यरूप व बड़े पापोंके नाशनेवाली है इसके पाठसे ब्रह्मघाती भी बहुत शुद्धहोवे और पापियोंकी क्या कथाहै ॥ ८७ ॥ महापुण्य की माता महाधनदायिनी ग्रहादि महापीड़ा की नाशिनी और महारोगों की विनाशिनी है ॥ ८८ ॥ मुझ में जिस शुद्धचित्तकी उत्तम भक्तिहो उसको यह ध्रुवस्तुति पढ़ना चाहिये जो कि मेरी प्रीतिके

करनेवाली है ॥ ८९ ॥ मनुष्य सब तीर्थ नहानेसे जो फल पाता उसके फलको भलीभांति से जपता आनन्द से इस स्तोत्र करके पहुँचता है ॥ ९० ॥ मेरी प्रीति करनेवारे अनेक स्तोत्र हैं परन्तु इस ध्रुवस्तुति की सोलहींकला के योग्य होते नहीं ॥ ९१ ॥ श्रद्धासहित बड़ी आनन्द से इस स्तोत्र को सुन मनुष्य पापोंसे छूटता व महापुण्य को पाताहै ॥ ९२ ॥ पुत्रहीन पुत्र पावे दरिद्री धन पावे और ध्रुवस्तुति पढ़ने से भक्तिरहितभी भक्ति पावे ॥ ९३ ॥ अनेक दानदे अनेक व्रतकर मनुष्य जैसे लाभोंको लहता वैसे इस स्तुति से ॥ ९४ ॥ सब कामोंको व अनेक जपोंको तज सब कामना देनेवाली यह ध्रुवस्तुति जपने योग्यहै ॥ ९५ ॥ श्रीभगवान् बोले हे बड़े बुद्धिमान् ध्रुव!

स्तुत्यानयामुदा ॥ ९० ॥ सन्तिस्तोत्राण्यनेकानि ममप्रीतिकराणिच ॥ ध्रुवस्तुतेर्नचैतस्याः कलामर्हन्तिषोडशीम् ॥ ९१ ॥ श्रुत्वापीमांस्तुतिंमर्त्यः श्रद्धयापरयामुदा ॥ पातकैर्मुच्यतेसद्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥ ९२ ॥ अपुत्रःपुत्रमाप्नोति निर्धनोधनमाप्नुयात् ॥ अभक्तोभक्तिमाप्नोति कीर्तनाच्चध्रुवस्तुतेः ॥ ९३ ॥ दत्त्वादानान्यनेकानि कृत्वानानाव्रतानिच ॥ यथालाभानवाप्नोति तथास्तुत्याऽनयानरः ॥ ९४ ॥ त्यक्त्वासर्वाणिकार्याणि त्यक्त्वाजप्यान्यनेकशः ॥ ध्रुवस्तुतिरियंजप्या सर्वकामप्रदायिनी ॥ ९५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ध्रुवावधेहिवक्ष्यामि हितंतवमहामते ॥ येनतेनिश्चलंसम्यक्पदमेतद्भविष्यति ॥ ९६ ॥ अहंजिगमिषुस्त्वासंपुरींवाराणसींशुभाम् ॥ साक्षाद्विश्वेश्वरोयत्र तिष्ठतेमोक्षकारणम् ॥ ९७ ॥ विपन्नानाञ्चजन्तूनां यत्रविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ कर्णेजापंप्रकुरुते कर्मनिर्मूलनक्षमम् ॥ ९८ ॥ अस्यसंसारदुःखस्य सर्वोपद्रवदायिनः ॥ उपायएकएवास्ति काशिकानन्दभूमिका ॥ ९९ ॥ इदंरम्यमिदंनेतिबीजंदुःखमहातरोः ॥

सुन तेरा हित कहताहूं जिससे यह तेरा स्थान भलीभांति से अचल होगा ॥ ९६ ॥ मैं उस मंगलमयी काशीपुरी जाने को चाहीहूं जहां मोक्ष के कारण विश्वनाथ जी प्रत्यक्ष टिके ॥ ९७ ॥ व जहां विश्वेश्वर आपही मरे जन्तुओं के कानमें कर्मों की जड़ उखाड़ने में समर्थ जप को करते हैं ॥ ९८ ॥ सकल उपद्रवदायक इस संसारदुःखका एकही उपाय व आनन्द का स्थान काशीहै ॥ ९९ ॥ यह रम्यहै यह नहीं यों दुःखरूप बड़े वृक्षका बीज जब काशीमें मरनेसमय शिव उपदेशज्ञानाग्निसे जल

गया तब फिर दुःखका अवसर कैसे होगा ॥ १०० ॥ जिससे प्राप्त होनेयोग्य प्राप्त होता व जिससे फिर नहीं शोचाजाता और जो बड़े सुखका स्थान वह काशी है ॥ १ ॥ जो पुरुष मोक्षका घर शिवका आनन्दवन छोड़ अनते बसे उसके सुखका उदय कैसे ॥ २ ॥ सेरवा याने खपरी हाथमें जिसके उसका काशीके मध्य चाण्डाल के घरोंकी गलियों में भीखके अर्थ भ्रमना श्रेष्ठ अनते अकण्टक राज्य नहीं ॥ ३ ॥ मैं नित्य नियम से जगत्पूज्य शिवके पूजने को वैकुण्ठलोक से उन शिवसे पूजित काशीको आताहूं ॥ ४ ॥ त्रिलोककी रक्षा करनेमें समर्थ जो मुझ में बड़ी शक्तिहै उसके कारण सुदर्शनचक्रदायक पार्वतीनायकही हैं ॥ ५ ॥ पहले भक्तभयहारीने पांवके

तस्मिन्काश्यग्निनादग्धे दुःखस्यावसरः कुतः ॥ १०० ॥ प्राप्यंसंप्राप्यतेयेन नभूयोयेनशोच्यते ॥ परायानिर्वृतेः स्थानं यत्तदानन्दकाननम् ॥ १ ॥ अमृतायनमुत्सृज्य पुरुषोन्यत्रयोवसेत् ॥ आनन्दकाननंशम्भोः कुतस्तस्यसुखोदयः ॥ २ ॥ वरंशरावहस्तस्य चाण्डालागारवीथिषु ॥ भिक्षार्थमटनंकाश्यां राज्यंनान्यत्रनीरिपु ॥ ३ ॥ वैकुण्ठनगरात्काशीं नित्यंविश्वेशमर्चितुम् ॥ अहमायामिनियमाज्जगदर्च्यन्तदर्चिताम् ॥ ४ ॥ मयियापरमाशक्तिस्त्रिलोक्यारक्षणक्षमा ॥ तत्रहेतुर्महेशानः ससुदर्शनचक्रदः ॥ ५ ॥ पुराजालन्धरंदैत्यं ममापिपरिकम्पनम् ॥ पादाङ्गुष्ठाग्ररेखोत्थं चक्रंसृष्ट्वाहरोऽहरत् ॥ ६ ॥ तच्चचक्रंमयालब्धं नेत्रपद्मार्चनाद्विभोः ॥ एतत्सुदर्शनाख्यंवै दैत्यचक्रप्रमर्दनम् ॥ ७ ॥ तन्मयातवरक्षार्थं भूतविद्रावणंपरम् ॥ तावत्प्रणुन्नंपुरतस्ततश्चाहमिहागतः ॥ ८ ॥ काशीमिदानींयास्यामि विश्वेश्वरविलोकने ॥ अद्ययात्राऽस्तिमहती कार्त्तिक्यांबहुपुण्यदा ॥ ९ ॥ कार्त्तिकस्यचतुर्दश्यां विश्वेशंयोविलोकयेत् ॥ स्ना

अँगुठा की आगेवाली रेखासे उपजाये चक्रको तज मेरे भी कँपानेवारे जालन्धर दैत्यको मारा ॥ ६ ॥ मैंने नेत्रकमल की पूजा सामर्थ्य से दैत्यसमूह मर्दनेवाले उस इस सुदर्शननाम चक्रकोपाया ॥ ७ ॥ मैंने पहले भूत भागनेवारे उस उत्तमचक्र को तेरी रक्षाके अर्थ आगे पठाया उसके बाद मैं यहां आया ॥ ८ ॥ इस समय विश्वेश्वर के दर्शनके लिये काशीको जाऊँगा क्योंकि आज कार्त्तिककी पूनोंमें बहुत पुण्यदा यात्राहै ॥ ९ ॥ जो कार्त्तिककी चतुर्दशीमें उत्तरवाहिनी गंगा नहाकर विश्वनाथ

को देखता उसका संसार में फिर आना नहीं ॥ १० ॥ विष्णुजी यों कह आनन्द से सघन ध्रुवको गरुड़पर चढ़ा क्षणमें शिवसे बसी काशीको गये ॥ ११ ॥ तदनन्तर पांचकोसवालीके डांड़में पहुँच गरुड़से उतर ध्रुवका हाथपकड जनार्दनदेव ॥ १२ ॥ भगवान् मणिकर्णिकामें नीकेनहाकर व विश्वनाथको पूजकर उसका हित करना चाहते हुये ध्रुवसे बोले ॥ १३ ॥ इस काशीक्षेत्र में यत्नसे लिंग थापो कि जैसे तुमका त्रिलोक थापने की पुण्य जोकि कभी क्षीण नहीं वह हो ॥ १४ ॥ अनते एक लाख लिंगोको थाप जो फल प्राप्त कियाजाता वह यहां एकसे मिलता ॥ १५ ॥ जो यहां कालबीतने से टूटने फूटने को प्राप्त देवालयको जीर्णोद्धार याने पुराने को नयासा

त्वाचोत्तरवाहिन्यां नतस्यपुनरागतिः ॥ १० ॥ इत्युक्त्वाताक्ष्यमारोप्य ध्रुवमानन्दमेदुरम् ॥ क्षणाद्वाराणसींप्राप हरिः स्मरहरोषिताम् ॥ ११ ॥ पञ्चक्रोश्याश्चसीमानं प्राप्यदेवोजनार्दनः ॥ वैनतेयादवारुह्य करेधृत्वाध्रुवन्ततः ॥ १२ ॥ मणिकर्ण्यांपरिस्नाय विश्वेशमभिपूज्यच ॥ ध्रुवंबभाषेभगवान्हितंतस्यचिकीर्षयन् ॥ १३ ॥ लिङ्गंस्थापययत्नेन क्षेत्रेऽत्रैवाविमुक्तके ॥ त्रैलोक्यस्थापनंपुण्यं यथाभवतितेऽक्षयम् ॥ १४ ॥ नियुतंयत्परिस्थाप्यलिङ्गानिफलमाप्यते ॥ अन्यत्रतदिहैकेनलिङ्गेनपरिलभ्यते ॥ १५ ॥ कालेनभङ्गमापन्नंजीर्णोद्धारंकरोतियः ॥ इहतस्यफलस्यान्तःप्रलयेपिनजायते ॥ १६ ॥ वित्तशाठ्यंपरित्यज्यप्रासादंयोऽत्रकारयेत् ॥ तेनदत्तोभवेत्सर्वोमेरुर्नियुतयोजनः ॥ १७ ॥ कूपवापीतडागानिशक्त्यायोऽत्रतुकारयेत् ॥ अन्यत्रकरणात्तस्यपुण्यंकोटिगुणाधिकम् ॥ १८ ॥ इज्यार्थमत्रयःकुर्यात्सुरम्यांपुष्पवाटिकाम् ॥ पुष्पेपुष्पेफलंतस्यसुवर्णकुसुमाधिकम् ॥ १९ ॥ अत्रब्रह्मपुरींकृत्वायोविप्रेभ्यःप्रयच्छति ॥ वर्षाशनेनसंयु

करताहै उसके फलका अन्त प्रलयमें भी नहीं ॥ १६ ॥ वित्तशाठ्य (चुटई) को तज जो यहां देवमन्दिर करावे उस करके चारलाख कोसका सुमेरु सोनेका पर्वत दिया हुआ होवे ॥ १७ ॥ जो अपनी शक्तिके अनुसार यहां कुवां बावली और तड़ाग बनवावे उसका अनते बनवाने से करोड़ गुण अधिक पुण्यहोवे ॥ १८ ॥ जो यहां पूजा के अर्थ अच्छी रमणीक फुलवाई करे उसको फूल फूल में सुवर्णके फूलसे अधिक फलहो ॥ १९ ॥ जो वर्षदिन के भोजन से संयुत ब्रह्मपुरी बनवा यहां ब्राह्मणों को

देता उसके पुण्यका फलसुन ॥ २० ॥ समुद्र के जल व पृथ्वीके त्रसरेणु घटें परन्तु शिवलोक में बसते उसकी पुण्यका नाश नहीं तीस परमाणु का एक त्रसरेणु होता है जाले में सूर्य्यकी किरणों परने से जे बहुत सूक्ष्म किनका उड़ते दीखते उनमें से एकके साठिवें हिस्सेको परमाणु कहते हैं यह सबका सम्मत है किन्तु शार्ङ्गधर ने तीसके हिस्से को परमाणु माना इससे क्या उससे केवल बहुत सूक्ष्म समझना चाहिये ॥ २१ ॥ जो यहां जीविका समेत मठ बनवा तपस्वियोंको दे वह भी पहले फलका आधारहो ॥ २२ ॥ जो यहां महापुण्योंको कर श्रीविश्वनाथमें समर्पे उसका फिर लौटना घोर संसारसमुद्र में नहीं ॥ २३ ॥ इस लोकमें अनन्त यों कहना

क्षांतस्यपुण्यफलंशृणु ॥ २० ॥ क्षीयन्तेसलिलान्यब्धेर्भौमाश्चत्रसरेणवः ॥ क्षयोनतस्यपुण्यस्यशिवलोकेसमासतः ॥ २१ ॥ मठानपितपस्विभ्यःकारयित्वाऽत्रयोर्पयेत् ॥ जीवनोपायसंयुक्तान्सोपिपूर्वफलाश्रयः ॥ २२ ॥ कृत्वामहान्तिपुण्यानियोऽत्रविश्वेश्वरेऽर्पयेत् ॥ नतस्यपुनरावृत्तिर्घोरेसंसारसागरे ॥ २३ ॥ अनन्तइतिवादोयंमयिलोकेऽत्रगीयते ॥ परंकाशीगुणानांहिमयाप्यन्तोनलभ्यते ॥ २४ ॥ तस्मात्प्रयत्नतःकाश्यांध्रुवश्रेयःसमाश्रयेत् ॥ काशीश्रेयःफलंपुंसामक्षयायोपजायते ॥ २५ ॥ गणावूचतुः ॥ ध्रुवमित्युपदिश्याथजगामगरुडध्वजः ॥ ध्रुवोपिलिङ्गंसंस्थाप्यवैद्यनाथसमीपतः ॥ २६ ॥ प्रासादंसुमहत्कृत्वाकृत्वाकुण्डंतदग्रतः ॥ विश्वेश्वरंसमभ्यर्च्यकृतकृत्योगृहंययौ ॥ २७ ॥ ध्रुवेश्वरंसमभ्यर्च्यध्रुवकुण्डेकृतोदकः ॥ ध्रुवलोकमवाप्नोतिनरोभोगसमन्वितः ॥ २८ ॥ ध्रुवस्यपरमाख्यानंयःपठेत्पाठयेदपि ॥ सविष्णुलोकमासाद्यजायतेविष्णुवल्लभः ॥ २९ ॥ नरोध्रुवस्यचरितंप्रसङ्गेनस्मरन्नपि ॥ नपापैरभिभूयेतमहत्पु

मुझमें गायाजाता परन्तु मैं भी काशीके गुणोंका अन्त नहीं पाता ॥ २४ ॥ हे ध्रुव ! इससे काशीमें यत्नसे धर्म्मको सेवे काशीकी पुण्यका फल लोगोंके मोक्षके लिये होताहै ॥ २५ ॥ श्रीविष्णु के गण बोले ध्रुवको यों सिखा अनन्तर विष्णुजी गये व ध्रुवभी वैद्यनाथ के समीपमें लिंगको थाप ॥ २६ ॥ देवमन्दिर बनवा उसके आगे कुण्ड खनवा विश्वेश्वर को भलीभांति से पूज कृतार्थ हो घरगया ॥ २७ ॥ ध्रुवकुण्डमें किया जलक्रिया जिसने वह नर ध्रुवेश्वर को नीके पूज भोगोंसे युक्तहो ध्रुव लोकको जाताहै ॥ २८ ॥ जो ध्रुवके आख्यानको पढ़े व पढ़ावे भी वह वैकुण्ठ में जा विष्णुका प्यारा होवे ॥ २९ ॥ किसी प्रसंग से भी ध्रुवके चरित को सुमि-

रता मनुष्य पापों से न हारे व बड़ी पुण्यको प्राप्तहोवे ॥ १३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेध्रुवस्तुतिर्नामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

दो० ॥ बाइसके अध्यायमें महर्लोक जनलोक । तप अरु सत्यसुलोककहि काशीस्तुति शिवश्लोक ॥ शिवशर्मा बोले, हे गणौ ! अधिक आश्चर्यकर पुण्यरूप महापाप नाशन इस ध्रुवाख्यान को सुन मैं तृप्तहूं ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले, ब्राह्मण जौलों यों कहता तौलों वायुसे वेगवान् विमान स्वर्गलोक से अधिक अद्भुत महर्लोक को गया ॥ २ ॥ अनन्तर सब ओर तेजसे घिरे लोकको देख उन गणोंसे यह कहा कि यह मनोहर कौन लोकहै ॥ ३ ॥ तदनन्तर वे ब्राह्मणसे बोले कि हेबड़ीबुद्धिके

ण्यमवाप्नुयात् ॥ १३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेध्रुवस्तुतिर्नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ * ॥

शिवशर्मोवाच ॥ ध्रुवाख्यानमिदंरम्यंमहापातकनाशनम् ॥ महाश्चर्यकरंपुण्यंश्रुत्वातृप्तोस्मिभोगणौ ॥ १ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ इत्थंयावद्द्विजोब्रूतेविमानंवायुवेगगम् ॥ तावत्प्रापमहर्लोकंस्वर्लोकात्परमाद्भुतम् ॥ २ ॥ द्विजोऽथलोकंसंवीक्ष्यसर्वतोमहसावृतम् ॥ तौगणौप्रत्युवाचेदंकोऽयंलोकोमनोहरः ॥ ३ ॥ तावूचतुस्ततोविप्रंनिशामयमहामते ॥ अयंसहिमहर्लोकःस्वर्लोकात्परमाद्भुतः ॥ ४ ॥ कल्पायुषोवसन्त्यत्रतपसाधूतकल्मषाः ॥ विष्णुस्मरणसंक्षीणसमस्तक्लेशसञ्चयाः ॥ ५ ॥ निर्व्याजप्रणिधानेनदृष्ट्वातेजोमयंजगत् ॥ महायोगसमायुक्तावसन्त्यत्रसुरोत्तमाः ॥ ६ ॥ इत्थंकथांकथयतोर्भगवद्गणयोःप्रिये ॥ क्षणार्धेनविमानंतज्जनलोकंनिनायतान् ॥ ७ ॥ निवसन्त्यमलायत्रमानसाब्रह्मणःसुताः ॥ सनन्दनाद्यायोगीन्द्राःसर्वेतेह्यूर्ध्वरेतसः ॥ ८ ॥ अन्येतुयोगिनोयेवैह्यस्खलद्ब्रह्मचारिणः ॥ सर्वद्वन्द्वविनिर्मु

निधान ! सुन कि स्वर्गलोक से अधिक अद्भुत वह महर्लोक यहीहै ॥ ४ ॥ हजार चौयुगी जीनेवाले तपस्या से पापोंको भगाये व विष्णुके सुमिरने से क्षीणहुआ सब पापोंके समूह जिनके वे तपस्वी यहां बसते हैं ॥ ५ ॥ कपटहीन भक्तिसे जगत्को तेजोमय देख बड़ेयोगयुक्तदेव श्रेष्ठ यहां बसते हैं ॥ ६ ॥ हे प्यारी लोपामुद्रे ! यों विष्णुगणों के कथा कहतेही उस विमान ने उनको आधेक्षण में जनलोकलों पहुँचाया ॥ ७ ॥ ब्रह्माके मनसे उपजे पुत्र निर्मल योगीश्वर ऊर्ध्वरेता याने जिनका

वीर्य्य कभी नीचे नहीं गिरता वे सब सनन्दनादिक जहां बसतेहैं ॥ ८ ॥ जे अन्यभी योगी अखण्ड ब्रह्मचारी अमलमन और शीत उष्णादि द्वन्द्वसे हीन वे भी बसते हैं ॥ ९ ॥ मनके समान वेगसे चलते उस विमान ने जनलोक के आगे तपलोकको उनके नेत्रगोचर किया ॥ १० ॥ जहां हिरण्यगर्भ के उपजाये वैराजनामक वे देव दाह से हीनहो बसते कि जिनके मन वासुदेव भगवान् में लगे व वासुदेवमेंही सब कर्म समर्पे हैं ॥ ११ ॥ जे इन्द्रियों को जीते भोग चाहना रहित हैं वे तपस्या से गोविन्द को सन्तुष्ट कर इस तपलोक में जा बसते हैं ॥ १२ ॥ जे शीला बिन जीविका करते दन्तरूप चाकीकाही पीसा खाते पत्थरों का कूटा भोजन पाते सौ-

त्कास्तेवसन्त्यतिनिर्मलाः ॥ ९ ॥ जनलोकात्तपोलोकस्तेषांलोचनगोचरः ॥ कृतस्तेनविमानेनमनोवेगेनगच्छता ॥ १० ॥ वैराजायत्रतेदेवावसेयुर्दाहवर्जिताः ॥ वासुदेवेमनोयेषांवासुदेवार्पितक्रियाः ॥ ११ ॥ तपसातोष्यगोविन्दमभिला षविवर्जिताः ॥ तपोलोकमिमंप्राप्यवसन्तिविजितेन्द्रियाः ॥१२॥ शिलोञ्छवृत्तयोयेवैदन्तोलूखलिकाश्चये ॥ अश्मकु ट्टाश्चमुनयःशीर्णपर्णाशिनश्चये ॥ १३ ॥ ग्रीष्मेपञ्चाग्नितपसोवर्षासुस्थण्डिलेशयाः ॥ हेमन्तशिशिरार्धेयेत्तपन्ति सलिलेत्तपाः ॥ १४ ॥ कुशाग्रनीरविप्रुषस्तृषितायतयोऽपिबन् ॥ वाताशिनोतिक्षुधिताःपादाग्राङ्गुष्ठभूस्पृशः ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वदोषोरविदृशस्त्वेकाङ्घ्रिस्थाणुनिश्चलाः ॥ येवैदिवानिरुच्छ्वासामासोच्छ्वासाश्चयेपुनः ॥ १६ ॥ मासोपवासव्रतिन श्चातुर्मास्यव्रताश्चये ॥ ऋत्वन्ततोयपानाये येषण्मासोपवासकाः ॥ १७ ॥ येचवर्षनिमेषावै वर्षधाराम्बुतर्षकाः ॥ ये

नधारी जे सूखे गिरे पत्ते चबते ॥ १३ ॥ ग्रीष्म याने वृष मिथुनकी संक्रान्ति में चारोंदिशाओंमें आगबार बीचमें बैठ पँचई सूर्य्यकी तपनि समेत पञ्चाग्नि तापते वर्षामें भूमिमें या चौतरेपर सोते आधे हेमन्त व आधे शिशिर याने पूसमाहमें जलमें राति बिताते ॥ १४ ॥ प्यासे भी मुखमें कुशोंके आगे भागोंसे पानीके किनका छिड़कते यथेच्छ नहीं पीते संन्यासी विषयकामना हीन बहुत भूँखे बयार भखते पांवके अंगुठा के आगेसे भूमिको छू खड़े ॥ १५ ॥ ऊर्द्ध्वबाहू सूर्य्यके सामने चितौते एक पांवसे वृक्ष के समान अचल दिनभरे में एक श्वासको नीचे उतारते जे एक मासमें एकश्वास को ऊपर खींचते ॥ १६ ॥ मासभर उपास के व्रतवाले व जे चौमासा में विधिवत् व्रतकरते व दोमासके बाद पानी पीते जे छः मास उपास करते ॥ १७ ॥ व जे वर्षभर में पलक भांजते वर्षते पानीकेही प्यासे जे अचल वृक्षादि की उपमाको अटे व देहमें

मृगोंका देह रगड़ना सुखदाता है जिनका ॥ १८ ॥ व बालों की जटा वनके बिलोंके बीचमें किया थल्ल कुरपक्षियों ने जिनके व देहोंमें बिबैरें लगीं नसोंसे बांधेहाड़ समूह जिनके याने बहुतही दुबले ॥ १९ ॥ लताओं के विस्तारों से ढपे अङ्गवाले और बहुत रोज एकत्र रहनेसे जिनकी देहोंमें अन्न तृणादि जगेहैं ॥ २० ॥ इत्यादि तपस्याओं से क्लेशित देह जे तपस्या के धनी वे सब ओरसे निडर और ब्रह्माकेसम आयुवाले हो तपोलोक में बसते हैं ॥ २१ ॥ जौलों उस महात्मा शिवशर्मा ने गणोंके मुखसे यों सुना तौलों बड़ा उज्ज्वल सत्यलोक आंखोंका अतिथिहुआ याने दिखाना ॥ २२ ॥ वहां उसके साथ विमानसे उतर वेगवान्, उन गणोंने सब

चस्थाणूपमांप्राप्ता मृगकण्डूतिसौख्यदाः ॥ १८ ॥ जटाटवीकोटरान्तःकृतनीडाण्डजाश्रये ॥ प्ररूढवामलूराङ्गाः स्नायुनद्धास्थिसञ्चयाः ॥ १९ ॥ लताप्रतानैःपरितो वेष्टितावयवाश्रये ॥ सस्यानिचप्ररूढानि यदङ्गेषुचिरस्थिति ॥ २० ॥ इत्यादिसुतपःक्लिष्टवर्ष्माणोयेतपोधनाः ॥ ब्रह्मायुषस्तपोलोके तेवसन्त्यकुतोभयाः ॥ २१ ॥ यावदित्थंसपुण्यात्मा शृणोतिगणयोर्मुखात् ॥ तावन्नेत्रातिथीभूतः सत्यलोकोमहोज्ज्वलः ॥ २२ ॥ त्वरावन्तौगणौतत्र विमानादवरुह्यतौ ॥ स्रष्टारंसर्वलोकानां तेनसार्द्धंप्रणेमतुः ॥ २३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ गणावसौद्विजोधीमान्वेदवेदाङ्गपारगः ॥ स्मृत्युक्ताचारचञ्चुश्च प्रतीपःपापकर्मसु ॥ २४ ॥ अयिद्विजमहाप्राज्ञ जानेत्वांशिवशर्मक ॥ साधूक्तंत्वयावत्स सुतीर्थप्राणमोक्षणात् ॥ २५ ॥ सत्वरङ्गत्वरंसर्वं यच्चैतद्भवतेक्षितम् ॥ दैनंदिनप्रलयतःसृजामिचपुनःपुनः ॥ २६ ॥ आवैराजंप्रतिपदमुपसंहरते

लोक सिरजनेहारे ब्रह्माजी के प्रणाम किया ॥ २३ ॥ ब्रह्माजी बोले, हे गणौ ! यहब्राह्मण वेदवेदाङ्गोंको पढ़ पारगया व धर्मशास्त्रोक्त आचारके सम्मुख पापोंसे विमुख और बुद्धिमान् है ॥ २४ ॥ हे महापण्डित ब्राह्मण शिवशर्मक ! हे वत्स ! मैं तुझको जानताहूं तैंने अच्छे तीर्थमें प्राण छोड़ने से भला किया ॥ २५ ॥ और आपने जो यह सब देखा वह शीघ्र चलनेवाला याने नाश समेत है दिन दिनके प्रलय से बारबार बनाताहूं यहां यह जानना चाहिये कि भूः भुवः स्वः ये तीनों लोक ब्रह्माके एकदिन भर रहते फिर नशते व रात के बाद दिनके आरम्भ में सिरजेजाते और महः जनः तपः सत्य ये चारलोक ब्रह्माके सौ वर्षके बाद नशते तब ब्रह्माजी भी नहीं जीते उसको महाप्रलय कहते हैं तब उतनेही कालके बाद फिर कारण समेत जगत्की सृष्टि होती है ॥ २६ ॥ रुद्रजी प्रति दिन महर्लोक को डांड़कर त्रिलोकको हरते हैं तो

मसाके समान मरणधर्मी मनुष्यों की क्या कथा हैं ॥ २७ ॥ परन्तु पूजनीय, कर्मभूमि उस भरतखण्डमेंही चारभांति जन्तुसमूह के बीच मनुष्यों का एकही गुणहै॥ २८ ॥ मनसहित चञ्चलइन्द्रियोंको जीत सब गुणगणके वैरी लोभको त्याग ॥ २९ ॥ धर्मके वंशका नाशक धनराशि नाशक और बुढ़ाई बाल उजलाई करनेवाले काम को विचार से बाहर कर ॥ ३० ॥ विवेक से उस क्रोधवैरी को जीत जोकि तपस्या सुयश धन या शोभा और देहका नाशक व तामसी गति याने नरकको पठानेवा-लाहै ॥ ३१ ॥ प्रमादका पालनकारक सम्पत्तिनिवारक व उन्मत्तता का एक स्थानदायक उस गर्भको सदा सबओर से तज ॥ ३२ ॥ सन्तजनों में भी दोष लगानेका

हरः ॥ काकथामशकाभानां नृणांमरणधर्मिणाम् ॥ २७ ॥ चतुर्षुभूतग्रामेषु ह्येकएवगुणोन्नृणाम् ॥ तस्मिन्वैभारतेवर्षे कर्मभूमौमहीयसि ॥ २८ ॥ चपलानिविनिर्जित्येन्द्रियाणिमनसासह ॥ विहायवैरिणंलोभं विश्वग्गुणगणस्यच ॥२९॥ धर्मवंशहरंकाममर्थसञ्चयहारिणम् ॥ जरापलितकर्तारं विनिष्कृत्यविचारतः ॥ ३० ॥ जित्वाक्रोधरिपुंधैर्यात्तपसोयशसःश्रियः ॥ शरीरस्यापिहर्तारं नेतारंतामसींगतिम् ॥ ३१ ॥ सदामदंपरित्यज्य प्रमादैकपदप्रदम् ॥ प्रमादैकशरण्यंच सम्पदांविनिवर्तकम् ॥ ३२ ॥ सर्वत्रलघुताहेतुमहंकारंविहायच ॥ दूषणारोपणेयत्नं कुर्वाणंसज्जनेष्वपि ॥ ३३ ॥ हित्वामोहंमहाद्रोहरोपणंमतिघातिनम् ॥ अत्यन्तमन्धीकरणमन्धतामिस्रदर्शकम् ॥ ३४ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तं परिक्षुण्णंमहाजनैः ॥ धर्मसोपानमारुह्य यदिहायान्तिहेलया ॥ ३५ ॥ कर्मभूमिंसमीहन्तेसर्वेस्वर्गौकसोद्विज ॥ यत्तत्रार्जितभोक्तारःपदेषूच्चावचेष्वमी ॥ ३६ ॥ नार्यावर्तसमोदेशोनकाशीसदृशीपुरी ॥ नविश्वेशसमंलिङ्गंक्वापिब्रह्माण्ड

यत्न करते सबओर छोटाई के कारण अहङ्कार को भी दूर बहा ॥ ३३ ॥ व बड़ा ज्ञाननाशक अन्धतामिस्र नरकप्रकाशक बुद्धिविदारी द्रोहथापनकारी मोहको तज ॥ ३४ ॥ व वेद स्मृति पुराणों से कहे बड़ेजनों से छाने या किये धर्मसोपान याने धर्मसीढ़ीपर चढ़ अनादर कर जो यहां आते हैं ॥ ३५ ॥ हे ब्राह्मण ! सब स्वर्गवासी कर्मभूमि को चाहते हैं जिससे ये ऊँचे नीचे स्थानों में वहां की कमाई के भोगीहैं ॥ ३६ ॥ आर्य्यावर्त्त के समान देश काशीकी तुल्य पुरी और विश्वेश्वर के समान

लिंग ब्रह्माण्डगोलमें भी कहीं नहीं ॥ ३७ ॥ सब सम्पतिबढ़तियोंसे भरेपुरे दुःख रहित बहुत भांतिके जे सब स्वर्गहैं उननें सुकर्महीं का फलहै॥ ३८॥ ब्रह्माण्डमण्डल में स्वर्ग से अधिक सुन्दर आन नहीं क्योंकि सबलोग तपस्या दान व्रतादिकोंसे स्वर्गके लिये यत्न करते हैं ॥ ३९ ॥ पाताल से आये नारद ने देवों के बीच यों कहा है कि पाताल स्वर्गसेभी रमणीयहैं॥ ४० ॥जहां आनन्दकारिणी उजली निर्मल अच्छी ज्योति से जगमगाती नागोंकी देहोंके गहनोंमें गुही मणियांहैं वह पाताल किसके समान याने उसकी सरबर का कोई नहीं ॥ ४१ ॥ दैत्य व दानवों की कुमारियों से ऐसी वैसी शोभित पातालमें किस जीवन्मुक्तकी भी प्रीति होती नहीं ॥ ४२ ॥ तहां

मण्डले ॥ ३७ ॥ सन्तिस्वर्गाबहुविधाःसुखेतरविवर्जिताः ॥ सुकृतैकफलाःसर्वेयुक्ताःसर्वसमृद्धिभिः ॥ ३८ ॥ स्वर्लोकाद धिकंरम्यंनहिब्रह्माण्डगोलके॥ सर्वेयतन्तेस्वर्गायतपोदानव्रतादिभिः ॥ ३९ ॥ स्वर्लोकादपिरम्याणिपातालानीति नारदः ॥ प्राहस्वर्गसदांमध्येपातालेभ्यःसमागतः ॥ ४० ॥ आह्लादकारिणःशुभ्रामणयोयत्रसुप्रभाः ॥ नागाङ्गाभरण प्रोताःपातालंकेनतत्समम् ॥ ४१ ॥ दैत्यदानवकन्याभिरितश्चेतश्चशोभिते ॥ पातालेकस्यनप्रीतिर्विमुक्तस्यापिजा यते ॥ ४२ ॥ दिवार्करश्मयस्तत्रप्रभांतन्वन्तिनातपम् ॥ शशिनश्चनशीतायनिशिद्योतायकेवलम् ॥ ४३ ॥ यत्रनज्ञा यतेकालोगतोपिदनुजादिभिः ॥ वनानिनद्योरम्याणिसरम्यांसिसरांसिच ॥ ४४ ॥ कलाःपुंस्कोकिलालापाःसुचैलानि शुचीनिच ॥ भूषणान्यतिरम्याणिगन्धाद्यमनुलेपनम् ॥ ४५ ॥ वीणावेणुमृदङ्गादिनिस्वनाःश्रुतिहारिणः ॥ हाटकेशं महालिङ्गंयत्रवैसर्वकामदम् ॥ ४६ ॥ एतान्यन्यानिरम्याणिभोगयोग्यानिदानवैः ॥ दैत्योरगैश्चभुज्यन्तेपातालान्तर

दिनमें सूर्य्यकी किरणें प्रभा पसारतीं ताप नहीं और चन्द्रमाकी भी किरणें रातमें केवल उजेलेके लिये जाड़ेके नहीं ॥ ४३ ॥ जहां दानवादि गये कालको नहीं जानते रमणीकवन नदी स्वच्छजल से भरे तड़ाग ॥ ४४ ॥ व विद्या कोकिलाओं के बोल पवित्र सुवस्त्र सुठि सुन्दर गहने सुगन्धादि लेपन ॥ ४५ ॥ श्रवणसुखद वीणा वंशी मृदंगादिकों के शब्द व जहां सब कामनादायक हाटकेश्वर नाम महालिंग ॥४६ ॥ इनको और भोगने योग्य अन्य चीजोंको भी दानव दैत्य उरगादि पाताल

वासी भोगते हैं ॥ ४७ ॥ हे ब्राह्मण ! सब ओरसे सुमेरु-को आश्रयकर टिका इलावृतखण्ड पातालसे भी रम्यहै ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मण ! जहां सदा पुण्यात्मा लोग सबभोगों को भोगते व मृगनयनी स्त्रियां नित्यही मुग्धाहैं ॥ ४९ ॥ पुण्य के पलटे से कमाई पाई यह फल भोगकी भूमि कहाती है तीर्थमें देह तजे तेरे रारीखे लोगोंसे भोगीजाती है ॥ ५० ॥ जोकि सत्य बोलते पुत्र खेत गृहादिकोंके नेहसे हीन व पराये उपकारके लिये खर्चभया सुख आयु और धनसमूह जिनका ॥ ५१ ॥ समुद्र के बीच टिके अनेकों द्वीपहै परन्तु जम्बूद्वीप के समान द्वीप भूतल में कहीं नहीं ॥ ५२ ॥ उसमें नवखण्ड उनमें भरतखण्ड उत्तम देवोंको भी दुर्लभ यह कर्मभूमि

गोचरैः ॥ ४७ ॥ पातालेभ्योपिवैरम्यंद्विजवर्षमिलावृतम् ॥ रत्नसानुंसमाश्रित्यपरितःपरिसंस्थितम् ॥ ४८ ॥ सदासुकृतिनोयत्रसर्वभोगभुजोद्विज ॥ नवयौवनसम्पन्नानित्यंयत्रमृगीदृशः ॥ ४९ ॥ भोगभूमिरियंप्रोक्ताश्रेयोविनिमयार्जिता ॥ भुज्यतेत्वद्विधैर्लोकैस्तीर्थाभित्यक्तदेहकैः ॥ ५० ॥ अक्लीबभाषिभिश्चापिपुत्रक्षेत्राद्यहीनकैः ॥ परोपकारसंक्षीणसुखायुर्धनसञ्चयैः ॥ ५१ ॥ सन्तिद्वीपाह्यनेकावैपारावारान्तरस्थिताः ॥ जम्बूद्वीपसमोद्वीपोनक्वापिजगतीतले ॥ ५२ ॥ तत्रापिनववर्षाणिभारतंतत्रचोत्तमम् ॥ कर्मभूमिरियंप्रोक्तादेवानामपिदुर्लभा ॥ ५३ ॥ अष्टौकिंपुरुषादीनिदेवभोग्यानितानितु ॥ तेषुस्वर्गात्समागत्यरमन्तेत्रिदिवौकसः ॥ ५४ ॥ योजनानांसहस्राणिनवविस्तारतस्त्विदम् ॥ भारतंप्रथमंवर्षंमेरोर्दक्षिणतःस्थितम् ॥ ५५ ॥ तत्रापिहिमविन्ध्याद्रेरन्तरंपुण्यदंपरम् ॥ गङ्गायमुनयोर्मध्येह्यन्तर्वेदीभुवःपराः ॥ ५६ ॥ कुरुक्षेत्रंहिसर्वेषांक्षेत्राणामधिकंततः ॥ ततोपिनैमिषारण्यंस्वर्गसाधनमुत्तमम् ॥ ५७ ॥ नैमिषारण्यतोपिहस

कहीगई ॥ ५३ ॥ जे आठ किंपुरुषादिखण्ड वे देवोंके भोगनेयोग्य हैं स्वर्गसे आ देव उनमें रमते ॥ ५४ ॥ सुमेरु के दक्षिण स्थित यह मुख्य भरतखण्ड विस्तार से नवहजार योजनों काहै ॥ ५५ ॥ उसमें भी हिमवान् व विन्ध्याचल का बीच बड़ापुण्यदायक तहांभी गंगा यमुना के मध्यमें अन्तर्वेदि नाम पृथिवी बहुत उत्तम ॥ ५६ ॥ उससे सब क्षेत्रों में अधिक कुरुक्षेत्र और उससे उत्तम स्वर्गका साधन नैमिषवन है ॥ ५७ ॥ इस सब भूमण्डल में नैमिषारण्य तथा सब तीर्थोंसे भी प्रयाग

परमउत्तम है ॥ ५८ ॥ स्वर्ग मोक्ष सब मनमाने फलदायक बड़ाक्षेत्र प्रयाग तीर्थनायक यों कहागया ॥ ५९ ॥ और हे ब्राह्मण ! मैंने पहले सब यज्ञोंको एकओर तुला में धरा और दूसरे ओरमें कामना पूरने से कामदायक या सबसे चहेजाते उसरमणीक तीर्थनायक को ॥ ६० ॥ दक्षिणा दानादिकों से पुष्ट यज्ञोंसे बहुत बड़ा देख विष्णु रुद्रादिकों ने उसका प्रयाग नाम किया ॥ ६१ ॥ प्रातः दुपहर साम त्रिकालमें जिस प्रयाग का नाममात्र सुमिरने से सुमिरते मनुष्य की देहमें कहीं कभी नहीं पाप बसता ॥ ६२ ॥ पापसे रक्षाकारी अनेक तीर्थ कीहुई पापोंसे शुद्धतासे अधिक देनेको समर्थ नहीं ॥ ६३ ॥ अनगन्त जन्मोंमें की जो पापोंकी राशि व्रत दान तप

र्वस्मिन्क्षितिमण्डले ॥ सर्वेभ्योपिहितीर्थेभ्यस्तीर्थराजोविशिष्यते ॥ ५८ ॥ स्वर्गदोमोक्षदश्चैवसर्वकामफलप्रदः ॥ प्रयागस्तन्महत्क्षेत्रंतीर्थराजइतिस्मृतः ॥ ५९ ॥ यागाःसर्वेमयापूर्वंतुलयाविधृताद्विज ॥ तच्चतीर्थवरंरम्यंकामिकंकामपूरणात् ॥ ६० ॥ दृष्ट्वाप्रकृष्टंयागेभ्यःपुष्टेभ्योदक्षिणादिभिः ॥ प्रयागमितितन्नामकृतंहरिहरादिभिः ॥ ६१ ॥ नाममात्रस्मृतेर्यस्यप्रयागस्यत्रिकालतः ॥ स्मर्तुःशरीरेनोजातुपापंवसतिकुत्रचित् ॥ ६२ ॥ सन्तितीर्थान्यनेकानिपापत्राणकराणिच ॥ नशक्तान्यधिकंदातुंकृतैनःपरिशुद्धितः ॥ ६३ ॥ जन्मान्तरेष्वसङ्ख्येषुयःकृतःपापसञ्चयः ॥ दुष्प्रणोद्योहिनितरांव्रतैर्दानैस्तपोजपैः ॥ ६४ ॥ सतीर्थराजगमनोद्यतस्यशुभजन्मनः ॥ अङ्गेषुवेपतेऽत्यन्तंद्रुमोवातहतोयथा ॥ ६५ ॥ ततःक्रान्तार्धमार्गस्यप्रयागदृढचेतसः ॥ पुंसःशरीरान्निर्यातुमपेक्षतेपदान्तरम् ॥ ६६ ॥ भाग्यान्नेत्रातिथीभूतेतीर्थराजेमहात्मनः ॥ पलायतेद्रुततरंतमःसूर्योदयेयथा ॥ ६७ ॥ सप्तधातुमयीभूततनौपापानियानिवै ॥ केशेषुतानितिष्ठन्ति

और जपसे बहुतही दुःखसे दुरानेयोग्य ॥ ६४ ॥ वह बयार के झोंके वृक्षके समानप्रयाग जानेको उद्यत सुजानके अंगोंमें झट थरथराती है ॥ ६५ ॥ तदनन्तर प्रयाग में दृढ़ मनलगाये आधी गली में गये पुरुष की देहसे निकलने को पगपग में चाहतीहै ॥ ६६ ॥ भाग्यसे महात्मा का तीर्थराज का दर्शन होतेही शीघ्रही भागती कि जैसे सूर्य्यके उदयमें अन्धकार ॥ ६७ ॥ त्वचा मांस रक्त मेदा अस्थि (हाड़) मज्जा शुक्र इन सातों धातुओं से भई देहमें जेई पाप बालोंमें टिकते वे भी मुण्डन से

जाते ॥ ६८ ॥ यों पापहीनहो मनमें जिस जिस अभिलाप को चिंतनकर उजलीगङ्गा काली यमुना के सङ्गमजल में नहाता उस उसको पाता यह अन्यथा नहीं॥ ६९ ॥ भारी पुण्यकी राशि व मनमाने अच्छे भोग और स्वर्गको भी जाता तथा चाह रहित मनुष्य उस नहाने की पुण्यसे मोक्षको पहुँचता है ॥ ७० ॥ अन्य कामनाओं को तज मोक्ष चाहता जो नहाता वह भी अभिलापदायक तीर्थनायकसे मोक्ष पाता ॥ ७१ ॥ भारत नाम बड़े खण्डमें जो प्रयागको तज कामना चाहता है वह उस अभिलाप को स्पष्ट नहींपाता ॥ ७२ ॥ हे ब्राह्मण ! मैं सत्यलोक व प्रयाग में अन्तर नहीं जानताहूं जे वहां सुकर्म्म करते वे मेरे लोकके वासी होते ॥

वपनाद्यान्तितान्यपि ॥ ६८ ॥ एवंनिष्कलुषीभूयततःस्नायात्सितासिते ॥ यंयंकाममभिध्यायतंतमाप्नोतिनान्यथा ॥ ६९ ॥ पुण्यराशिंचविपुलंपुण्यान्भोगानथेप्सितान् ॥ स्वर्गंप्राप्नोतितत्पुण्यान्निष्कामोमोक्षमाप्नुयात् ॥ ७० ॥ स्नायाद्योभिलषन्मोक्षंकामानन्यान्विहायच ॥ सोपिमोक्षमवाप्नोतिकामदात्तीर्थराजतः ॥ ७१ ॥ तीर्थराजंपरित्यज्ययोऽन्यस्मात्काममिच्छति ॥ भारताख्येमहावर्षेसकामंनाप्नुयात्स्फुटम् ॥ ७२ ॥ सत्यलोकेप्रयागेचनान्तरंवेद्म्यहंद्विज ॥ तत्रयेशुभकर्माणस्तेमल्लोकनिवासिनः ॥ ७३ ॥ तीर्थाभिलाषिभिर्मर्त्यैस्सेव्यंतीर्थान्तरंनहि ॥ अन्यत्रभूमिवलये तीर्थराजात्प्रयागतः ॥ ७४ ॥ यथान्तरंद्विजश्रेष्ठभूपेत्वितरसेवके ॥ दृष्टान्तमात्रंकथितंप्रयागेतरतीर्थयोः ॥ ७५ ॥ यथाकथञ्चित्तीर्थेऽस्मिन्प्राणत्यागंकरोतियः ॥ तस्यात्मघातदोषोनप्राप्नुयादीप्सितान्यपि ॥ ७६ ॥ यस्यभाग्यवतश्चात्र तिष्ठन्त्यस्थीन्यपिद्विज ॥ नतस्यदुःखलेशोपिकापिजन्मनिजायते ॥ ७७ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानांप्रायश्चित्तंचिकीर्षु

७३ ॥ भूगोल में अनते तीर्थराज प्रयाग से अन्य तीर्थ, तीर्थों के अभिलापी लोगोंसे सेवने योग्य नहीं ॥ ७४ ॥ हे ब्राह्मण ! जैसे राजा व आनके सेवकमें फरक है वैसे प्रयाग और अन्य तीर्थमें दृष्टान्तमात्र कहा ॥ ७५ ॥ जो यहां जिसी किसी भांतिसे प्राण त्याग करता उसका आत्मघात दोष नहीं किन्तु चहे फलोंको भी पहुँचता है ॥ ७६ ॥ हे ब्राह्मण ! यहां जिस सुभागी के हाड़ भी पड़ेहैं उसका किसी जन्ममें दुःखलेशभी नहीं होता ॥ ७७ ॥ ब्रह्महत्यादि पापोंका उद्धार करनेकी

इच्छावाले करके ब्राह्मण के वचन से प्रयाग सेवने योग्य इसमें सन्देह नहीं ॥ ७८ ॥ हे ब्राह्मणेन्द्र ! बहुत कहने से क्या महान् उदय के चाहीजन करके भूतल में भारी उजले कालेजल का सङ्गम सेवनेयोग्यहै ॥ ७९ ॥ सब लोकोंमें तीर्थराज प्रयागसे भी अधिक काशीमें मरने से विना परिश्रम मुक्ति होतीहै ॥ ८० ॥ काशी-क्षेत्र प्रयाग से भी रमणीक नीक इसमें संशय नहीं क्योंकि जहां प्रत्यक्ष आप विश्वनाथजी टिके हैं ॥ ८१ ॥ विश्वनाथ से अधिक टिके काशीनाम अविमुक्तक्षेत्र से अधिक कुछ इस ब्रह्माण्डमण्डल में कहीं रमणीक नहीं ॥ ८२ ॥ पांच कोस प्रमाणवाला यह काशीक्षेत्र ब्रह्माण्ड के भीतर प्राप्त भी ब्रह्माण्ड के वीच नहीं ॥

णा ॥ प्रयागंविधिवत्सेव्यंद्विजवाक्यान्नसंशयः ॥ ७८ ॥ किंबहूक्तेनविप्रेन्द्रमहोदयमभीप्सुना ॥ सेव्यंसितासितंतीर्थंप्रकृष्टंजगतीतले ॥ ७९ ॥ प्रयागतोपितीर्थेशात्सर्वेषुभुवनेष्वपि ॥ अनायासेनवैमुक्तिःकाश्यांदेहावसानतः ॥ ८० ॥ प्रयागादपिवैरम्यमविमुक्तंनसंशयः ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षात्स्वयंसमधितिष्ठति ॥ ८१ ॥ अविमुक्तान्महाक्षेत्राद्विश्वेशसमधिष्ठितात् ॥ नचकिञ्चित्क्वचिद्रम्यमिहब्रह्माण्डगोलके ॥ ८२ ॥ अविमुक्तमिदंक्षेत्रमपिब्रह्माण्डमध्यगम् ॥ ब्रह्माण्डमध्येनभवेत्पञ्चक्रोशप्रमाणतः ॥ ८३ ॥ यथायथाहिवर्धेतजलमेकार्णवस्यच ॥ तथातथोन्नयेदीशस्तत्क्षेत्रंप्रलयादपि ॥ ८४ ॥ क्षेत्रमेतत्त्रिशूलाग्रेशूलिनस्तिष्ठतिद्विज ॥ अन्तरिक्षेनभूमिष्ठंनेक्षन्तेमूढबुद्धयः ॥ ८५ ॥ सदाकृतयुगंचात्रमहापर्वसदाऽत्रवै ॥ नग्रहाऽस्तोदयकृतोदोषोविश्वेश्वराश्रमे ॥ ८६ ॥ सदासौम्यायनंतत्रसदातत्रमहोदयः ॥ सदैवमङ्गलंतत्रयत्रविश्वेश्वरस्थितिः ॥ ८७ ॥ यथाभूमितलेविप्रपुर्यःसन्तिसहस्रशः ॥ तथाकाशीनमन्यत्राकापि

८३ ॥ क्योंकि प्रलयसमयमें सात समुद्रोंका एकहोनेसे एक हुये समुद्रका जल जैसे जैसे बढ़ता वैसे वैसे उस क्षेत्रको ईश्वर शिवजी उठातेहैं ॥ ८४ ॥ हे ब्राह्मण ! यह क्षेत्र शिवके त्रिशूलपर आकाशमें टिका है भूमिवासी नहीं उसको मन्दमति लोग नहीं देखते ॥ ८५ ॥ यहां सदा सतयुग व सदा महापर्वभी और विश्वनाथके इस स्थानमें ग्रहोंके उदय व अस्तोंका दोष भी नहीं ॥ ८६ ॥ वहां सदा उत्तरायण वहां सदा महोदय व वहां सदैव मङ्गल जहां विश्वनाथका टिकनाहै ॥ ८७ ॥ हे ब्राह्मण ! जैसे भू-

तलमें सहस्रों पुरियां हैं वैसे यह लोकोंसेपरे काशी कहींभी मानने योग्य नहीं ॥ ८८ ॥ हे विप्रेन्द्र ! चौदह लोक मेरे बनाये परन्तु इस पुरीके बनानेवाले विश्वनाथ स्वामी आपही हैं ॥ ८९ ॥ आगे यमराज ने बहुत काल बड़ी दुष्कर तपस्याकर काशीको छोड़ त्रिलोक का अधिकार पाया ॥ ९० ॥ सब स्थावर जङ्गम जन्तुओं के जे कर्म्म वेभी काशीवासी लोगोंके कर्म्म बिन चित्रगुप्त के गोचरहैं ॥ ९१ ॥ हेब्राह्मणोत्तम ! काशीपुरी के बीचमें यमदूतों का पैठना कभी कहीं नहीं वहां उन शिवके गण रक्षक हैं ॥ ९२ ॥ उस काशीमें देह छोड़तों के शिक्षक नियमकर्त्ता विश्वनाथ व वहांके पापियों के दण्डदाता कालभैरव हैं ॥ ९३ ॥ वहां पाप करनेयोग्य नहीं क्योंकि

लोकोत्तरातियम् ॥ ८८ ॥ मयासृष्टानिविप्रेन्द्रभुवनानिचतुर्दश ॥ अस्याःपुर्याविनिर्मातास्वयंविश्वेश्वरःप्रभुः ॥८९॥ पुरायमस्तपस्तप्त्वाबहुकालंसुदुष्करम् ॥ त्रैलोक्याधिकृतिंप्राप्तस्त्यक्त्वावाराणसींपुरीम् ॥ ९० ॥ चराचरस्यसर्वस्ययया निकर्माणितानिवै ॥ गोचरेचित्रगुप्तस्यकाशीवासिकृताद्दते ॥ ९१ ॥ प्रवेशोयमदूतानांनकदाचिद्द्विजोत्तम ॥ मध्येका शीपुरींकापिरक्षिणस्तत्रतद्गणाः ॥ ९२ ॥ स्वयंनियन्ताविश्वेशस्तत्रकाश्यांतनुत्यजाम् ॥ तत्रापिकृतपापानांनिय न्ताकालभैरवः ॥ ९३ ॥ तत्रपापंनकर्तव्यंदारुणारुद्रयातना ॥ अहोरुद्रपिशाचत्वंनरकेभ्योपिदुःसहम् ॥ ९४ ॥ पाप मेवहिकर्तव्यंमतिरस्तियदीदृशी ॥ सुखेनान्यत्रकर्तव्यंमहीह्यस्तिमहीयसी ॥ ९५ ॥ अपिकामातुरोजन्तुरेकांरक्षतिमा तरम् ॥ अपिपापकृताकाशीरक्ष्यामोक्षार्थिनैकिका ॥ ९६ ॥ परापवादशीलेनपरदाराभिलाषिणा ॥ तेनकाशीनसंसेव्या क्वकाशीनिरयःक्वसः ॥ ९७ ॥ अभिलष्यन्तियेनित्यंधनंचात्रप्रतिग्रहैः ॥ परस्वंकपटैर्वापिकाशीसेव्यानतैर्नरैः ॥९८॥

बड़ी घोर रुद्रयातना और नरकों से भी दुःसह पिशाचभाव होता ॥ ९४ ॥ जो ऐसीबुद्धिहै कि पाप करना चाहिये तो सुखसे अनते करनेयोग्य भूमि बड़ीभारीहै ॥९५॥ कामसे व्याकुलभी जन्तु एक माताको बचाता वैसे मोक्षचाही पापीका भी एक काशीको बचाना चाहिये ॥ ९६ ॥ जो मनुष्य परदोष कहनशील व परस्त्रीका चाही उस करके काशी भलीभांति सेवनेयोग्य नहीं क्योंकि कहां काशी कहां वह नरक ॥ ९७ ॥ जे यहां नित्यदान लेनेसे व कपट से धन चाहते उनके सेवनेयोग्य काशी

नहीं ॥ ९८ ॥ काशीमें परपीड़ाकरनेवाले कर्मको नर नित्यही बरावै जो वह भी यहां होवै तो दुष्टचित्तोंका काशीका बसना क्याहै ॥ ९९ ॥ जे विश्वनाथ की भक्ति तज अन्य देवोंमें परायण सर्वथा उनके बसनेयोग्य काशी नहीं ॥ १०० ॥ हे ब्राह्मण ! जे मनुष्य अर्थ और कामके चाही उनके सेवनेयोग्य काशी नहीं क्योंकि जिससे यह मोक्षकाक्षेत्रहै भाव कि धर्म व मोक्षके चाहीका बसना चाहिये ॥ १ ॥ जे शिवके निन्दक वेदनिन्दामें तत्पर व वेदोक्त आचारसे उलटा उनके सेवनेयोग्य काशी नहीं ॥ २ ॥ जे परद्रोहमें बुद्धिलाते परदोष प्रकटाते और आनको सताते उनकी सिद्धिको काशी नहीं ॥ ३ ॥ जे दुर्बुद्धि मनसे भी काशीको नहीं प्रशंसतेया उससे

परपीडाकरंकर्मकाश्यांनित्यंविवर्जयेत् ॥ तदेवचेत्किमत्रस्यात्काशीवासोदुरात्मनाम् ॥ ९९ ॥ त्यक्त्वाविश्वेश्वरींभक्तिंयेऽन्यदेवपरायणाः ॥ सर्वथातैर्नवस्तव्याराजधानीपिनाकिनः ॥ १०० ॥ अर्थार्थिनस्तुयेविप्रयेचकामार्थिनोनराः ॥ अविमुक्तंनतैःसेव्यंमोक्षक्षेत्रमिदंयतः ॥ १ ॥ शिवनिन्दापरायेचवेदनिन्दापराश्चये ॥ वेदाचारप्रतीपायेसेव्यावाराणसीनतैः ॥ २ ॥ परद्रोहधियोयेचपरेर्ष्याकारिणश्चये ॥ परोपतापिनोयेवैतेषांकाशीनसिद्धये ॥ ३ ॥ मनसापिनयेकाशीमभिनन्दन्तिदुर्धियः ॥ तेषांनिर्वाणवार्तापिदूरेदुर्वृत्तचेतसाम् ॥ ४ ॥ ज्ञानेननविनामोक्षः कश्चिदस्तीहभूतले ॥ तज्ज्ञानंनव्रतैर्लभ्यमपिचान्द्रायणादिभिः ॥ ५ ॥ तुलापुरुषमुख्यैश्चदानैश्चश्रद्धयान्वितैः ॥ देशेकालेचविधिनापात्रेभ्यःप्रतिपादितैः ॥ ६ ॥ नयमैर्ब्रह्मचर्याद्यैर्नियमैर्नार्चनादिभिः ॥ शरीरशोषणैरुग्रैर्नतपोभिर्द्विजोत्तम ॥ ७ ॥ नमहामन्त्रजप्यैश्चगुरुभिःप्रतिपादितैः ॥ नस्वाध्यायैर्यथोक्तैश्चनाग्निशुश्रूषणैःपरैः ॥ ८ ॥ नसेवयागुरूणांचनश्राद्धैर्देवता

नहीं प्रसन्न होते उन दुष्टचित्तों का मोक्षकी वार्त्ता दूरहै ॥ ४ ॥ इस पृथिवीतलमें ज्ञान विना मोक्ष कहीं नहीं वह ज्ञान चान्द्रायणादि व्रतोंसे भी मिलनेयोग्य नहीं ॥ ५ ॥ श्रद्धासमेत व विधिसे अच्छेदेश अच्छेकाल मे सुपात्रों को दिये तुला पुरुष आदि दान ॥ ६ ॥ अहिंसादि यम शौचादि नियम ब्रह्मचर्य्यादि याने अष्टाङ्ग मैथुन त्याग पूजनादि देहसुखाना घोर तप और हे ब्राह्मणोत्तम ! ॥ ७ ॥ गुरुवों से दिये महामन्त्रोंके जप यथोक्त विधिसे वेदादि पढ़ना, श्रेष्ठ, अग्नि की सेवा ॥ ८ ॥ गुरुवों

की सेवा श्राद्ध देवपूजा और अनेक तीर्थोंको जानेसे भी ज्ञान नहीं मिलता है॥ ९॥ क्योंकि योग (चित्तवृत्तियोंको रोंकना) के विना ज्ञान नहीं होताहै और गुरुकी बताई गली व सदा अभ्यासवशसे तत्त्वार्थचिन्तन करनेको ही योग कहतेहैं ॥ १०॥ उस योगके दूरसे सबतेकी बातोंका सुनना आदि अनेकों विघ्नहैं इसकारण एक जन्म में योगसे ज्ञान नहीं होताहै ॥ ११ ॥ हे सुव्रत ! तप जपआदि व योग विनाही इस काशीमें एकही जन्मसे मुक्ति मिलतीहै ॥ १२॥ हे ब्राह्मणोत्तम ! तैंने काशीमें जो पुण्य कमायाहै उस पुण्यका उत्तरफल तुझको बड़ाभारी है ॥ १३ ॥ उन गणोंके सुनतेही ऐसा कहकर ब्रह्माजीने विश्राम किया और विष्णु में मन है जिसका वह

चनैः ॥ ननानातीर्थयात्राभिर्ज्ञानंसमधिगम्यते ॥ ९ ॥ नयोगेनविनाज्ञानंयोगस्तत्त्वार्थशीलनम् ॥ गुरूपदिष्टमार्गेण सदाभ्यासवशेनच ॥ १० ॥ तस्यान्तरायाबहवःसुदूरश्रवणादयः ॥ अतोनप्राप्यतेज्ञानंयोगादेकेनजन्मना ॥ ११ ॥ विनातपोजपाद्यैश्वविनायोगेनसुव्रत ॥ निःश्रेयोलभ्यतेकाश्यामिहैकेनैवजन्मना ॥ १२ ॥ त्वयाशुद्धधियाकाश्यांय च्छ्रेयःसमुपार्जितम् ॥ तच्छ्रेयसोप्युदर्कस्तेमहानस्तिद्विजोत्तम ॥ १३ ॥ उक्त्वेतिविरराम।जःशृण्वतोर्गणयोस्तयोः ॥ सोपिप्रमुदितश्चाभूच्छिवशर्मामहामनाः ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेब्रह्मकृतकाशीप्रशंसानामद्वा विंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

शिवशर्मोवाच ॥ सत्यलोकेश्वरविधेसर्वेषांप्रपितामह ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोस्मिनभयाद्वक्तुमुत्सहे ॥ १ ॥ ब्रह्मोवाच॥ यत्त्वंप्रष्टुमनाविप्रज्ञातंतत्तन्मनोगतम् ॥ पिपृच्छिषुस्त्वंनिर्वाणंगणौतत्कथयिष्यतः ॥ २ ॥ नैतयोर्विष्णुगणयोरगोच

शिवशर्मा भी अतिशय आनन्दित हुआ ॥ ११४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेब्रह्मकृतकाशीप्रशंसानामद्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

दो० ॥ तेइसके अध्यायमहँ श्रीशिव कृपानिधान । लोकराज्य हरिको दियो उत्सवसहित विधान ॥ शिवशर्मा बोले कि हे सत्यलोक के नाथ ब्रह्मन् ! सबके परबाबा के समान मैं कुछ विज्ञापना किया चाहताहूं परन्तु डरसे नहीं कहसक्ताहूं॥ १ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हे ब्राह्मण ! तू जो पूँछनेको मनवालाहै उस तेरे मनमें प्राप्त प्रश्न

को मैंने जाना कि तू मोक्ष पूँछनेका चाहीं है इससे उसको ये गण कहैंगे ॥ २ ॥ इस ब्रह्माण्डमण्डल में जो कुछ है वह इन विष्णुगणों की इन्द्रियों के बाहर नहीं है ये सब जानतेहैं ॥ ३ ॥ यों कहकर ब्रह्मा से आदरित वे भगवान् के गण भी लोककर्त्ता के प्रणाम करचले ॥ ४ ॥ और फिर अपने विमान परचढ़ वैकुण्ठ के सामने गये तहां चलतेहुये ब्राह्मणने गणोंसे फिर पूँछा कि ॥ ५ ॥ हे गणो ! हम कितनी दूर आये हैं और अभी कितनी दूरजाना है हे मङ्गलरूपौ ! और कुछ आपसे पूँछताहूं उसको भी प्रीतिसे कहो ॥ ६ ॥ कांची उज्जयिनी द्वारका काशी पँचई अयोध्या हरिद्वार और मथुरा ये सात पुरियां मोक्षदा हैं ॥ ७ ॥ उनमें से अन्य छः पुरियों

रमिहास्तिहि ॥ सर्वमेतौविजानीतोयत्किञ्चिद्ब्रह्मगोलके ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वासत्कृतास्तेवैब्रह्मणाभगवद्गणाः ॥ प्रणम्यलोक कर्तारंतेऽपिहृष्टाःप्रतस्थिरे ॥४॥ पुनःस्वयानमारुह्यवैकुण्ठमभितोययुः॥गच्छतापिपुनस्तत्रद्विजेनापृच्छितौगणौ॥५॥ शिवशर्मोवाच ॥ कियद्दूरंवयंप्राप्ता गन्तव्यंचकियत्पुनः ॥ पृच्छाम्यन्यच्चवांभद्रौ ब्रूतंप्रीत्यातदप्यहो ॥६॥ कांच्यवन्ती द्वारवती काश्ययोध्याचपञ्चमी ॥ मायापुरीचमथुरा पुर्यःसप्तविमुक्तिदाः ॥ ७ ॥ विहायषट्पुरीश्चान्याः काश्यामेवप्रति ष्ठिता ॥ मुक्तिर्विश्वसृजातत्किममुक्तिर्नसम्प्रति ॥ ८ ॥ इतिसर्वममपुरः प्रसादाद्वक्तुमर्हतम् ॥ इतितद्वाक्यमाकर्ण्य गणावूचतुरादरात ॥ ९ ॥ गणावूचतुः ॥ यथार्थंकथयावस्तेयत्पृष्टंभवतानघ ॥ विष्णुप्रसादाज्जानीवो भूतंभाविभवत्त था ॥ १० ॥ विप्रावभासतेयावत्किरणैःपुष्पवन्तयोः ॥ तावतीभूःसमुद्दिष्टा ससमुद्राद्रिकानना ॥ ११ ॥ वियच्चतावदुप रिविस्तारपरिमण्डलम् ॥ योजनानाञ्चनियुते भूमेर्भानुर्व्यवस्थितः ॥ १२ ॥ भानोःसकाशादुपरिलक्षेलक्ष्यःक्षपाक

को छोंड़ ब्रह्माजीने काशीमेंही मुक्तिकी प्रतिष्ठा किया वह क्याकारणहै जिससे इससमय मेरी मुक्ति नहीं हुई है ॥ ८ ॥ उस सबको प्रसन्नतासे मेरे आगे कहनेके लिये तुम दोनोंजने समर्थ हो ऐसा उसका वचनसुनकर गणोंने आदर से कहा ॥ ९ ॥ गण बोले कि हे अपाप ! तैंने जो पूँछा है उस को हम सत्य कहते हैं क्योंकि श्री विष्णु के प्रसाद से हम भूत भविष्य वर्तमान तीनोंकाल का हाल जानते हैं ॥ १० ॥ हे ब्राह्मण ! सूर्य्य व चन्द्रमा की किरणों से जहांतक प्रकाशजाता है उतनी समुद्र पर्वत वनसमेत पृथिवी भलीभांति से दिखाई गई है ॥ ११ ॥ व ऊपर उतनाही आकाश विस्तार व गोलाकार है पृथिवी से चार लाख कोस

ऊँचे सूर्य्य टिके हैं॥ १२ ॥ व सूर्य्य के समीप से लाख योजन ऊपर चन्द्रमा दीखता है चन्द्रमा से लाख योजन ऊँचे नक्षत्रोंका मण्डलहै ॥ १३ ॥ नक्षत्रमण्डल से आठलाख कोस ऊंचे बुध बुधसे दोलाख योजनमें शुक्र शुक्रसे दोलाखयोजन ऊंचे मङ्गल ॥ १४ ॥ मंगल से दोलाख योजन ऊँचे बृहस्पति बृहस्पति से दोलाख योजन ऊँचे शनैश्चर ॥ १५ ॥ शनैश्चर से चारलाख कोस ऊँचे सप्तर्षियोंका मण्डल और सप्तर्षियों से लाख योजन ऊंचे ध्रुवजी टिकेहैं ॥ १६ ॥ भूतलमें जो कुछ वस्तु पावोंसे जानेयोग्य है वह समुद्रद्वीप पर्वत व वनसमेत भूर्लोक इसनामसे कहागयाहै ॥ १७ ॥ भूर्लोकसे सूर्य्यतक भुवर्लोक कहाताहै हे ब्राह्मण ! सूर्य्यसे ध्रुवलोकतक

रः ॥ नक्षत्रमण्डलंसोमाल्लक्षयोजनमुच्छ्रितम् ॥ १३ ॥ उडुमण्डलतःसौम्य उपरिष्टाद्विलक्षतः ॥ द्विलक्षेतुबुधाच्छुक्रः शुक्राद्भौमोद्विलक्षके ॥ १४ ॥ माहेयादुपरिष्टाच्च सुरेज्योनियुतद्वये ॥ द्विलक्षयोजनोत्सेधः सौरिर्देवपुरोहितात् ॥ १५ ॥ दशायुतसमुच्छ्रायं सौरेःसप्तर्षिमण्डलम् ॥ सप्तर्षिभ्यःसहस्राणां शताद्धूर्ध्वंध्रुवःस्थितः ॥ १६ ॥ पादगम्यंहियत्किञ्चिद्वस्त्वस्तिधरणीतले ॥ तद्भूर्लोकइतिख्यातः साब्धिद्वीपाद्रिकाननम् ॥ १७ ॥ भूर्लोकाच्चभुवर्लोको ब्रध्नावधिरुदाहृतः ॥ आदित्यादाध्रुवंविप्र स्वर्लोकइतिगीयते ॥ १८ ॥ महर्लोकःक्षितेरूर्ध्वमेककोटिप्रमाणतः ॥ कोटिद्वयेतुसङ्ख्यातो जनोभूर्लोकतोजनैः ॥ १९ ॥ चतुष्कोटिप्रमाणस्तुतपोलोकोऽस्तिभूतलात् ॥ उपरिष्टात्क्षितेरष्टौ कोटयःसत्यमीरितम् ॥ २० ॥ सत्यादुपरिवैकुण्ठो योजनानांप्रमाणतः ॥ भूर्लोकात्परिसङ्ख्यातः कोटिषोडशसम्मितः ॥ २१ ॥ यत्रास्तेश्रीपतिःसाक्षात्सर्वेषामभयप्रदः ॥ ततस्तुषोडशगुणः कैलासोऽस्तिशिवालयः ॥ २२ ॥ पार्वत्यासहितःशम्भु

स्वर्लोक इसनामसे गायाजाताहै॥१८॥ व पृथिवीसे एक करोड़ योजन ऊँचे महर्लोक व भूमिसे दो करोड़ योजन याने आठ करोड़ कोसपर जनलोक जनोंसे गनागयाहै॥१९॥ भूमिसे चारकरोड़ योजनमें तपोलोक व आठ करोड़ योजन पर सत्यलोक कहाताहै ॥२०॥ व सत्यलोकसे ऊँचे वैकुण्ठ चौंसठ करोड़ कोस प्रमाणपर गनागयाहै ॥२१॥ जहां सबके निर्भयदायक लक्ष्मीनायक प्रत्यक्ष बसे हैं उस से सोलह करोड़ योजन ऊँचे शिवका स्थान कैलासहै॥ २२ ॥ जहां पार्वती गणेश कार्त्तिकेय व नन्दीसहित

मायासमेत विश्वनाथ वे शङ्करजी टिकेहैं जोकि सबसेपरे कहेगये ॥ २३ ॥ व अपनी इच्छासे देहधारी हैं उन महादेवका यह ब्रह्माण्ड खेलहै वे विश्वेश्वर इस नामसे प्रसिद्ध कहातेहैं याने सबके स्वामीहैं और यह जगत् उन की आज्ञा करनेवालाहै ॥२४॥ वे सबके शिक्षादायकहैं उनका नायक अन्य नहीं है वे आपही जन्तुओंको सिरजते पालते और घालते हैं ॥ २५ ॥ वे सर्वज्ञ एक और अपनी इच्छा के अधीन कर्मकर्त्ता कहाते हैं उनका कर्मोंमें बर्ताने व रोकनेवाला कोई भी नहीं है ॥ २६ ॥ जो वेदोंसे कहा निर्गुण सगुण सर्वव्यापक सदा नित्य सत्य व दुविधासे हीन ब्रह्महै वह वे हैं ॥२७॥ सब महत्तत्त्वादि कारणोंसे परे जो प्रकृतिहै उससे भी परेसे परे जिस श्रेष्ठ आनन्दको

गजास्यस्कन्दनन्दिभिः॥यत्रतिष्ठतिविश्वेशः सकलःसपरःस्मृतः ॥ २३ ॥ तस्यदेवस्यखेलोऽयं स्वलीलामूर्तिधारिणः ॥ सविश्वेशइतिख्यातस्तस्याज्ञाकृदिदंजगत ॥ २४ ॥ सर्वेषांशासकश्चासौ तस्यशास्तानचापरः ॥ स्वयंसृजतिभूतानि स्वयंपातितथात्तिच ॥ २५ ॥ सर्वज्ञएकःसप्रोक्तः स्वेच्छाधीनविचेष्टितः ॥ तस्यप्रवर्तकःकोपिनहिनैवनिवर्तकः ॥ २६ ॥ अमूर्तंयत्परंब्रह्म समूर्तंश्रुतिचोदितम् ॥ सर्वव्यापिसदानित्यं सत्यंद्वैतविवर्जितम् ॥ २७ ॥ सर्वेभ्यःकारणेभ्यश्च परात्परतरंपरम् ॥ आनन्दंब्रह्मणोरूपं श्रुतयोयत्प्रचक्षते ॥ २८॥ संविदन्तेनयंवेदा विष्णुर्वेदनवैविधिः ॥ यतोवाचोनिवर्तन्तेह्यप्राप्यमनसासह ॥ २९ ॥ स्वयंवेद्यःपरंज्योतिः सर्वस्यहृदिसंस्थितः ॥ योगिगम्यस्त्वनाख्येयो यःप्रमाणैकगोचरः ॥ ३० ॥ नानारूपोप्यरूपोयः सर्वगोपिनगोचरः ॥ अनन्तोप्यन्तकवपुः सर्ववित्कर्मवर्जितः ॥ ३१ ॥ तस्येदमैश्वररूपं खण्डचन्द्रावतंसकम् ॥ तमालश्यामलगलं स्फुरद्भालविलोचनम् ॥ ३२ ॥ लसद्वामार्धनारीकं कृतशेषशुभा

वेद ब्रह्मकारूप कहते हैं ॥ २८ ॥ व जिसको वेदभी नहीं अपने विषय करसके याने अर्थसेही लखाते हैं व विष्णु और ब्रह्मा भी नहीं जानतेहैं व मन सहित वचनभी न पहुँचकर जिससे लौटआतेहैं ॥२९॥ जो आपसेही जाननेयोग्य श्रेष्ठ ज्योतिरूप व सबके उरपुरमें बसे योगियोंके जाननेयोग्य व ऐसे हैं यों कहनेसे हीन व सब प्रमाणोंके मुख्य प्रकाशक याने स्वयंप्रकाशहैं ॥ ३० ॥ व मायासे अनेक रूप भी रूपसेहीन व सबसे प्राप्तभी इन्द्रियोंके विषय नहींहैं व अन्तसे रहितभी अन्तवाले रूपसे सहित व सर्वज्ञ और जो कर्मोंसे वर्जितहैं ॥ ३१ ॥ उनका यह ईश्वरसम्बन्धी रूपहै जिसके माथमें चन्द्रखण्डमण्डन व गलेमें तमाल याने कनकोहर वृक्षकीसी श्यामता व भालमें

आंख जगमगाती है ॥ ३२ ॥ व सोहते हुये बायेंअङ्ग में आधा स्त्री रूप है व बांहमें शेषका बजुल्ला कियागया है व जटातट गङ्गाकी लहरोंके सङ्गते सदा धोयागया है ॥ ३३ ॥ व जोकि जलीकास्र की देह की विभूतिसमूह से धुरियाये अङ्गों से उज्ज्वल है व अद्भुत अंगों में सर्पोंका गहना पहने है ॥ ३४ ॥ व बड़ेबैलरूप रथ से चलता व आजगव धन्वा को टङ्कोरता व हाथीरूप दैत्य के चर्म्म का उपन्ना ओढ़े व पञ्चमुखहो मंगलमय है ॥ ३५ ॥ व महामृत्यु का भी अधिक त्रासदाता व बड़े बलवान्गणों से घिरा व शरणागत चाही जनों का रक्षक व मोक्षका कारण होकर मनोरथमार्ग से आगे गया व वरदेने में तत्परहै ॥ ३६ ॥ हे ब्राह्मण ! सबको

ङ्गदम् ॥ गङ्गातरङ्गसत्सङ्गसदाधौतजटातटम् ॥ ३३ ॥ स्मराङ्गजरजःपुञ्जपूजितावयवोज्ज्वलम् ॥ विचित्रगात्रविधृत महाव्यालविभूषणम् ॥ ३४ ॥ महोक्षस्यन्दनगमं विरुताजगवायुधम् ॥ गजाजिनोत्तरासङ्गं दशार्धवदनंशुभम् ॥ ३५ ॥ उत्त्रासितमहामृत्युमहाबलगणावृतम् ॥ शरणार्थिकृतत्राणं नतनिर्वाणकारणम् ॥ मनोरथपथातीतं वरदान परायणम् ॥ ३६ ॥ तस्यतत्तत्स्वरूपस्य रूपातीतस्यभोद्विज ॥ परावरेरुद्ररूपे सर्वंव्याप्यावतिष्ठतः ॥ ३७ ॥ निराकारोपिसाकारः शिवएवहिकारणम् ॥ मुक्तयेभुक्तयेवापि नशिवान्मोक्षदोपरः ॥ ३८ ॥ यथातेनाखिलंह्येतत्पार्वतीपतिसात्कृतम् ॥ इदंचराचरंसर्वं दृश्यादृश्यमरूपिणा ॥ ३९ ॥ तथामृडानीकान्तेन विष्णुसादखिलंजगत् ॥ विधायक्रीड्यते विप्र नित्यंस्वच्छन्दलीलया ॥ ४० ॥ यथाशिवस्तथाविष्णुर्यथाविष्णुस्तथाशिवः ॥ अन्तरंशिवविष्ण्वोश्च मनागपिनविद्यते ॥ ४१ ॥ आहूयपूर्वंब्रह्मादीन्समस्तान्देवतागणान् ॥ विद्याधरोरगादींश्च सिद्धगन्धर्वचारणान् ॥ ४२ ॥

व्यासकर टिके रूपरहित व माया से तौनतौन स्वरूप सहित परमेश्वरके निर्गुण व सगुण दो संसाररोगनाशक रूप हैं ॥ ३७ ॥ रूपरहितभी रूपसहित शिवही भुक्ति मुक्तिके कारण हैं व शिव से अन्य मोक्षदाता नहींहै ॥ ३८ ॥ जो चलता जो नहीं चलता जो दीखता व जो नहीं दीखता है इस अनेक भांतिके सब जगत् को उन रूपरहित सर्वेश्वरने पार्वती पति के अधीन किया ॥ ३९ ॥ हे विप्र ! वैसेही पार्वतीपति भी सम्पूर्ण जगत्को विष्णुके वशकर नित्य अपने अधीन लीला से खेलते हैं ॥ ४० ॥ जैसे शिव वैसे विष्णु जैसे विष्णु वैसे शिव हैं शिव और विष्णुसे अन्तर कुछभी नहीं है ॥ ४१ ॥ आगे ब्रह्मादि सब देवसमूह विद्याधर उरगादि सिद्ध

गन्धर्व॥४२॥और अपने सिंहासनके समान शुभसिंहासन को कर उसमें विष्णुको बैठाल उस मनोहर छत्रकोकर॥४३॥जोकि चीकना कोटि कमानीका व विश्वकर्माका बनाया उजला,रत्नकी डांडीवाला,मोटे मोतियों की झालरसे लटकताहै ॥४४॥व ऊपर अद्भुत कलशोंसे विराजित चारहजार कोसका लम्बा चौड़ा व सब रत्नोंसे जटित मंगलमयहै॥४५॥ व रेशमी सूतसे रचे रमणीक चामरोंसे भूषितहै और राजाओंके अभिषेक योग्य अनेक वस्तु व सब ओषधियां॥४६॥ व प्रत्यक्ष तीर्थोंसे ल्याये जल मनोहर पांच कलश स्वेतसरसौ अक्षत दूब और आपही आप समीप टिके मन्त्रोंसे ॥ ४७॥ तथा देव,ऋषि,सिद्ध व नागों कीभी मङ्गलहाथवाली सोलह सोलह कन्याओंको

निजसिंहासनसमंकृत्वासिंहासनंशुभम् ॥ उपवेश्यहरिंतत्रच्छत्रंकृत्वामनोहरम् ॥ ४३ ॥ श्लक्ष्णंकोटिशलाकंच विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ पाण्डुरंरत्नदण्डंच स्थूलमुक्तावलम्बितम् ॥ ४४ ॥ कलशेनविचित्रेण ह्युपरिष्टाद्विराजितम् ॥ सहस्रयोजनायामं सर्वरत्नमयंशुभम् ॥ ४५ ॥ पट्टसूत्रमयैरम्यैश्चामरैश्चपरिष्कृतम् ॥ राजाभिषेकयोग्यैश्च द्रव्यैःसर्वौषधादिभिः ॥ ४६ ॥ प्रत्यक्षतीर्थपाथोभिःपञ्चकुम्भैर्मनोहरैः ॥ सिद्धार्थाक्षतदूर्वाभिर्मन्त्रैःस्वयमुपस्थितैः ॥ ४७ ॥ देवानांचतथर्षीणां सिद्धानांफणिनामपि ॥ आनीयमङ्गलकराः कन्याःषोडशषोडश ॥ ४८ ॥ वीणामृदङ्गाब्जभेरीमड्डडिण्डिमझर्झरैः॥ आनकैःकांस्यतालाद्यैर्वाद्यैर्ललितगायनैः ॥ ४९ ॥ ब्रह्मघोषमहारावैरापूरितनभोङ्गणे ॥ शुभेतिथौशुभेलग्ने ताराचन्द्रबलान्विते ॥ ५० ॥ आबद्धमुकुटंरम्यं कृतकौतुकमङ्गलम् ॥ मृडानीकृतशृङ्गारं सुश्रियासुश्रियायुतम् ॥ ५१ ॥ अभिषिच्यमहेशेन स्वयंब्रह्माण्डमण्डपे ॥ दत्तंसमस्तमैश्वर्यं यन्निजंनान्यगामिच ॥ ५२ ॥

लाकर ॥४८॥ वीणा,मृदंग,शङ्ख,नगरिया,डमरू डिंडिम झर्झरा व ढोलक मंजीरा करताल आदि बाजे ललित गानोंसे ॥४९॥ व वेदपाठके बड़ेशब्दसे भरे आकाश आंगन व शुभतिथि शुभलग्न व नक्षत्र व चन्द्रमाके बलसमेत शुभवारमें ॥ ५० ॥ मुकुट बांधे सुन्दर सुमंगलवाले पार्वतीके सिंगारे अच्छी सुन्दरी लक्ष्मी समेत विष्णुको॥ ५१ ॥ ब्रह्माण्डमण्डपमें अभिषेककर आपही महेशजीने अपना वह सब ऐश्वर्य्य देदिया जोकि अन्य में नहीं जाता है॥ ५२ ॥ तदनन्तर गणोंके साथ देवोंके नाथने

शार्ङ्गधन्वाधारी की भारी स्तुति किया और लोकसृष्टिकारी ब्रह्मासे यह वचनकहा ॥ ५३ ॥ कि यह विष्णु मेरे वन्दनीय हैं इससे आप भी इन भक्तभयहारी के प्रणाम करो यों कह अनन्तर आप रुद्रजीने गरुड़ से चिह्नित ध्वजाधारी मुरारी के प्रणाम किया ॥ ५४ ॥ उसके बाद सब गणेश्वर ब्रह्मा वायुगण योगी सनकादि सिद्ध देव ऋषि ॥ ५५ ॥ व गन्धर्व समेत विद्याधर यक्ष राक्षस अप्सरासमूह गुह्यक चारण भूत शेष वासुकी तक्षकादिनाग ॥ ५६ ॥ पक्षी किन्नर और सब स्थावर जंगम जन्तुओं

ततस्तुष्टावदेवेशः प्रमथैःसहशार्ङ्गिणम् ॥ ब्रह्माणंलोककर्तारमुवाचचवचस्त्विदम् ॥ ५३ ॥ ममवन्द्यस्त्वयंविष्णुः प्रणमत्वममुंहरिम् ॥ इत्युक्त्वाथस्वयंरुद्रो ननामगरुडध्वजम् ॥ ५४ ॥ ततोगणेश्वरैःसर्वैर्ब्रह्मणाचमरुद्गणैः ॥ योगिभिः सनकाद्यैश्च सिद्धैर्देवर्षिभिस्तथा ॥ ५५ ॥ विद्याधरैःसगन्धर्वैर्यक्षरक्षोप्सरोगणैः ॥ गुह्यकैश्चारणैर्भूतैः शेषवासुकितक्षकैः ॥ ५६ ॥ पतत्रिभिःकिन्नरैश्च सर्वैःस्थावरजङ्गमैः ॥ ततोजयजयेत्युक्त्वा नमोस्त्वितिनमोस्त्विति ॥ ५७ ॥ ततोहरिर्महेशेन संसदिद्युसदांतदा ॥ एतैर्महारवैरम्यैश्चानर्चिपरमार्चिषा ॥ ५८ ॥ त्वंकर्तासर्वभूतानां पाताहर्तात्वमेवच ॥ त्वमेवजगतांपूज्यस्त्वमेवजगदीश्वरः ॥ ५९ ॥ दाताधर्मार्थकामानां शास्तादुर्नयकारिणाम् ॥ अजेयस्त्वञ्चसंग्रामेममापिहिभविष्यसि ॥ ६० ॥ इच्छाशक्तिःक्रियाशक्तिर्ज्ञानशक्तिस्तथोत्तमा ॥ शक्तित्रयमिदंविष्णो गृहाणप्रार्पितंमया ॥ ६१ ॥ त्वद्वेष्टारोहरेनूनं मयाशास्याःप्रयत्नतः ॥ त्वद्भक्तानांमयाविष्णो देयंनिर्वाणमुत्तमम् ॥ ६२ ॥ मायांचापिगृहाण

ने जयजय नमोनमः यों कह नमस्कार किया ॥ ५७ ॥ उस समय देवोंकी सभामें इन पूर्वोक्त महाशब्दों से महेशने बड़ी ज्योति से जगमगाते विष्णुको पूजा ॥ ५८ ॥ तुम सब जन्तुओंके पिता पालक घालक जगतोंके पूजनीय और जगतोंके स्वामी हो ॥ ५९ ॥ व तुम धर्म्म अर्थ व कामके दायक दुष्टोंके घायक और संग्राम में हमकरके भी जीतनेयोग्य न होगे ॥ ६० ॥ हे विष्णो ! इच्छाशक्ति क्रियाशक्ति तथा उत्तमज्ञानशक्ति मेरी दी इस त्रिशक्तिको गहो ॥ ६१ ॥ हे हरे ! हे विष्णो ! तेरे वैरी यत्न से मुझसे

दण्डनीयहोंगे और तेरे भक्तोंको उत्तममोक्ष देनेयोग्य हो ॥ ६२ ॥ देव दैत्योंसे भी न दुरानेयोग्य इस मायाको लो जिससे सम्मोहित सब जगत् न कुछ जाननेवालाहोगा ॥ ६३ ॥ तुम मेरी बाईं बांह व दहिनी यह ब्रह्मा है तोभी तुम इस ब्रह्माके मरण के बाद उपजानेवाले होगे ॥ ६४ ॥ यों विष्णुको वैकुण्ठका ऐश्वर्य्य देकर आप भक्तदुःखहारी शैलकुमारी के पति गणोंके साथ अपनी इच्छासे कैलास में खेलतेहैं ॥ ६५ ॥ तब से लगा ये लीलाकारी शार्ङ्गधन्वाधारी गदाविहारी भक्तभयहारी दानवदलनकारी सम्पूर्ण त्रिलोकको सिखाते याने उसके स्वामी हैं ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मण! यों लोकोंका सबओर से टिकना तुम्हसे कहा इससमय तेरे आगे मुक्तिका कारण कहेंगे ॥६७॥

मां दुष्प्रणोद्यांसुरासुरैः ॥ ययासम्मोहितंविश्वमकिञ्चिज्ज्ञंभविष्यति ॥ ६३ ॥ वामबाहुर्मदीयस्त्वं दक्षिणोसौपितामहः ॥ अस्यापिहिविधेःपाता जनितापिभविष्यसि ॥ ६४ ॥ वैकुण्ठैश्वर्यमासाद्य हरेरित्थंहरःस्वयम् ॥ कैलासेप्रमथैःसार्धं स्वैरंक्रीडत्युमापतिः ॥ ६५ ॥ तदाप्रभृतिदेवोसौ शार्ङ्गधन्वागदाधरः ॥ त्रैलोक्यमखिलंशास्ति दानवान्तकरोहरिः ॥ ६६ ॥ इतितेकथिताविप्र लोकानाञ्चपरिस्थितिः ॥ इदानींकथयिष्यावस्तवनिर्वाणकारणम् ॥ ६७ ॥ इदन्तुपरमाख्यानं शृणुयाद्यःसमाहितः ॥ स्वर्लोकमभिगम्याथ काश्यांनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ यज्ञोत्सवेविवाहेच मङ्गलेष्वखिलेष्वपि ॥ राज्याभिषेकसमयेदेवस्थापनकर्मणि ॥ ६९ ॥ सर्वाधिकारदानेषु नववेश्मप्रवेशने ॥ पठितव्यंप्रयत्नेन तत्कार्यपरिसिद्धये ॥ ७० ॥ अपुत्रोलभतेपुत्रमधनोधनवान्भवेत् ॥ व्याधितोमुच्यतेरोगीबद्धोमुच्येतबन्धनात् ॥ ७१ ॥ जप्यमेतत्प्रयत्नेन सततंमङ्गलार्थिना ॥ अमङ्गलानांशमनं हरनारायणप्रियम् ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

सावधानहो जो इस उत्तम आख्यानको सुने वह स्वर्गलोक को जा अनन्तर काशी में मुक्तिपावे ॥ ६८ ॥ यज्ञोंके उत्साह विवाह सम्पूर्ण मंगलोंमें भी व राज्याभिषेक याने राजगद्दी के समय देवस्थापन कर्म्म ॥ ६९ ॥ सब अधिकार दान और नयेस्थान के पैठने में उस कामकी सिद्धिके लिये यत्नसे यह आख्यान पढ़नेयोग्यहै ॥ ७० ॥ अपुत्रजन पुत्रपावे दरिद्री धनवान् होवे रोगी रोगसे छूटे बांधा बन्धन से छूटे ॥ ७१ ॥ इससे मंगल चाही मनुष्य करके अमंगलों का नाशक व शिव और विष्णुका प्यारा यह यत्नसे सदा पढ़नेयोग्य है ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेचतुर्भुजाभिषेकोनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ चौबिसके अध्यायमें शिवशर्म्माकी मुक्ति । ता हित आगे जनमकी कथा यथारथ उक्ति ॥ विष्णुजीकेगण बोले कि हे शिवशर्म्मन् ! तेरे आगे होनहारे हालको कहते हैं सुन तू इस विष्णुलोक में बहुत अच्छे भोगोंको भोगकर॥१॥ ब्रह्माके पूरे वर्षभर अप्सरासमूहोंसे रमताहुआ फिर सुतीर्थमें मरनेसे पाई पुण्यके शेषसेही ॥ २॥ नन्दिवर्धन नामक नगरमें नरेशहोगा वह अकंटक राज्य पाकर जोकि बढ़े बल (सेनादिक) व वाहनों से संयुत ॥ ३ ॥ हृष्ट पुष्ट सुन्दर सोनेके गहने पहने व दानादि कुवां ताल बावली फुलवाई मठ देवमन्दिरादि धर्मोंके नित्य करनेवारे पण्डितों से सेवित ॥ ४ ॥ व सदा अन्नआदि खेतीसे सम्पन्न फल समेत सस्यभरी भूमिसे व्याप्त

गणावूचतुः ॥ शिवशर्मन्नुदर्कन्ते कथयावोनिशामय ॥ त्वमत्रवैष्णवेलोके भुक्त्वाभोगान्सुपुष्कलान् ॥ १ ॥ ब्रह्मणोवत्सरंपूर्णं रममाणोऽप्सरोगणैः ॥ सुतीर्थमरणोपात्तपुण्यशेषेणवैपुनः ॥ २ ॥ भविष्यसिमहीपालो नगरेनन्दिवर्धने ॥ राज्यंप्राप्यासपत्नञ्च समृद्धबलवाहनम् ॥ ३ ॥ कृष्टिभिर्हृष्टपुष्टैश्च रम्यहाटकभूषणैः ॥ संजुष्टमिष्टापूर्तानां धर्माणांनित्यकर्तृभिः ॥ ४ ॥ सदासम्पन्नसस्यञ्च सूर्वरक्षेत्रसंकुलम् ॥ सुदेशंसुप्रजंसुस्थं सुतृणंबहुगोधनम् ॥ ५ ॥ देवतायतनानाञ्च राजिभिःपरिराजितम् ॥ सुयूपायत्रवैग्रामाः सुवित्तर्द्धिविराजिताः ॥ ६ ॥ सुपुष्पकृत्रिमोद्यानाः ससदाफलपादपाः ॥ सपद्मिनीककासारा यत्रराजन्तिभूमयः ॥ ७ ॥ सदम्भानिम्नगाराजिर्नयत्रजनताक्वचित् ॥ कुलान्येवकुलीनानि नचान्यायधनानिच ॥ ८ ॥ विभ्रमोयत्रनारीषु नविद्वत्सुचकर्हिचित् ॥ नद्यःकुटिलगामिन्यो नयत्रविषयेप्रजाः ॥ ९ ॥ तमोयुक्ताःक्षपायत्र बहुलेषुनमानवाः ॥ रजोयुजःस्त्रियोयत्र नधर्मबहुलानराः ॥ १० ॥ धनैरनन्धोयत्रास्ति

व जिसमें अच्छेदेश अच्छी प्रजायें अच्छे तृण बहुत गोधनहैं और जोकि सुवास ॥ ५ ॥ व देवमन्दिरपंक्तियों से शोभित व जिसमें अच्छे खम्भावाले अच्छी धनबढ़तीसे विराजित ग्रामहैं ॥ ६ ॥ व जहां ऐसी पृथिवियां विराजती हैं कि जिन में अच्छे फूलोंसे बनाई छोटी फुलवाई सदाफर वृक्ष और कमल समेत तड़ागहैं ॥७॥ जिस राज्यमें अच्छे जलवाली नदियोंकी पंक्तिहै और कपटसमेत जनसमूह कहीं नहीं हैं व कुलही कुलीनहैं अन्यायसे कमाये धन पृथिवीमें लीन नहीं हैं ॥८॥ जहां स्त्रियोंमें विभ्रमनामक हाव याने सौरत भावका प्रकाशनाहै पण्डितों में विशेष भ्रम कहीं नहींहै व जिस राज्यमें टेढ़ी चालवाली नदियांहैं प्रजायें नहीं ॥९॥ जहां अँधेरे पाखोंमें

रातैं अन्धकारसे संयुतहैं तमोगुणी मनुष्य नहीं हैं जहां रजोधर्मवाली स्त्रियां हैं बड़ेधर्मवान्लोग रजोगुणी नहीं ॥१०॥ जहां धनोंसे गर्वरहित मन है भोजन भातहीन नहीं जहां विना लोहका रथहै राजाके नौकर लोग अनीतिवाले नहीं ॥११॥ जहां कुल्हाड़ी कुदार चँवर और छत्रोंमें दण्डहै क्रोध व अपराधसे हुआ डांड़ना अनते कहीं नहीं है ॥ १२ ॥ व जुवारियों से अनते परिदेवन (रोना या प्रलाप) नहीं अर्थात् उन में ही परिदेवन (जुवां खेलना) है जहां पांसा खेलनेवालेही पाशकपाणि हैं (हाथों में पांसा लिये हैं) अन्यलोग, पाशकपाणि (हाथोंमें रस्सीधारी) नहीं॥ १३ ॥ जहां जलोंमेंही जाड्य (शीतलता) की वार्त्ता है अन्यमें जड़ताकी बात नहीं व स्त्रियोंकी देहोंका मध्य (कटि) ही दुर्बलहै और स्त्रियांही कठोरहृदय (छातीमें कड़े कुचवाली) हैं अन्य मनुष्य नहीं ॥१४॥ औषधोंमें कुष्ठ (कूट) का संयोगहै मनुष्यमें

मनोनैवचभोजनम् ॥ अनयःस्यन्दनंयत्र नचवैराजपूरुषः॥ ११ ॥ दण्डःपरशुकुद्दालबालव्यजनराजिषु ॥ आतपत्रे षुनान्यत्र क्वचित्क्रोधापराधजः ॥ १२ ॥ अन्यत्राक्षिकवृन्देभ्यः क्वचिन्नपरिदेवनम् ॥ आक्षिकाएवदृश्यन्ते यत्रपा शकपाणयः ॥ १३ ॥ जाड्यवार्ताजलेष्वेव स्त्रीमध्याएवदुर्बलाः ॥ कठोरहृदयायत्रसीमन्तिन्योनमानवाः ॥ १४ ॥ औ षधेष्वेवयत्रास्तिकुष्ठयोगोनमानवे ॥ वेधोप्यन्तःसुरत्नेषुशूलंमूर्तिकरेषुवै ॥ १५ ॥ कम्पःसात्त्विकभावोत्थोनभया त्क्वापिकस्यचित् ॥ संज्वरःकामजोयत्रदारिद्र्यंकलुषस्यच ॥ १६ ॥ दुर्लभत्वंसदाकस्यसुकृतेनचवस्तुनः ॥ इभाएवप्र मत्तावैयुद्धंवीच्योर्जलाशये ॥ १७ ॥ दानहानिर्गजेष्वेवद्रुमेष्वेवहिकण्टकाः ॥ जनेष्वेवविहाराहिनकस्यचिद्रुरःस्थ ली ॥ १८ ॥ बाणेषुगुणविश्लेषोबन्धोक्तिःपुस्तकेदृढा ॥ स्नेहत्यागःसदैवास्तियत्रपाशुपतेजने ॥ १९ ॥ दण्डवार्त्ता

कुष्ठरोग नहीं व रत्नोंके बीचमें वेध (बिल) है मनुष्यमें वेध (ताड़न) नहीं व मूर्त्ति बनानेवालोंके शूल (सूजा) है औरे के शूलरोग नहीं ॥ १५ ॥ व सात्त्विकभाव याने भक्तिसे भया कम्पहै डरसे कहीं नहीं कामसे उपजा संज्वरहै धनादिकोंकी तपनि कहीं नहीं जहां पापकी दरिद्रताहै आन चीजोंकी नहीं ॥१६॥ सदा अक (पाप) की दुर्लभता है पुण्य निमित्त वस्तुकी नहीं हाथीही मदभरे हैं लोग नहीं जलाशयोंमें लहरोंकाही लड़नाहै आनका नहीं ॥ १७ ॥ हाथियोंमेंही दानकीहानि (मदका तजना) है अनते दानकी हानि नहीं वृक्षोंमेंही कंटकहैं अन्यत्र कंटक (दुःखदाता) नहीं जनोंमेंही विहारहै किसीका वक्षःस्थल विनाहारका नहीं ॥ १८ ॥ बाणोंमें गुण

(प्रत्यञ्चा)का त्यागहै अनते गुणोंका त्याग नहीं व दृढ़ बन्धन उक्ति पुस्तकोंमेंही है अन्यत्र नहीं सदा जहां पाशुपत ज्ञानवान् जनमें स्नेहका नाश याने मायाका त्यागहै आन में स्नेहका त्यागनहीं॥१९॥ जहां संन्यासियोमें दण्डकी वार्ताहै अन्यत्र राजदण्डकी कथा नहीं धनुषोंमेंही मार्गण (बाण)हैं अन्यत्र मार्गण (मंगन) नहीं ब्रह्मचारीही भीख मांगते हैं अन्य भिक्षुक नहीं ॥ २० ॥ जहां अवधूतही मलधारी दीखते बहुधा भौंरही चञ्चलचित्तवृत्तिवाले हैं आन नहीं ॥२१॥ हे राजधर्मज्ञ ! यों गुणवान् देशमें धर्म से उस तुझका राज्य करतेही जोकि तू शूरता गुणसे शोभता ॥ २२ ॥ सौभाग्य से भी रूपवान् दक्षता व दानपनीसे संयुत होगा और देह सुन्दरतासे अच्छी शोभाको

सदायत्रकृतसंन्यासकर्मणाम् ॥ मार्गणाश्चापकेष्वेवभिक्षुकाब्रह्मचारिणः ॥ २० ॥ यत्रक्षपणकाएवदृश्यन्तेमल धारिणः ॥ प्रायोमधुव्रताएवयत्रचञ्चलवृत्तयः ॥ २१ ॥ इत्यादिगुणवद्देशेत्वयिराज्यंप्रशासति ॥ धर्मेणराजधर्मज्ञ शौण्डीर्यगुणशालिनि ॥ २२ ॥ सौभाग्यभाजिरूपाढ्येशौर्यौदार्यगुणान्विते ॥ सीमन्तिनीनांरम्याणांलावण्यार्जित सुश्रियाम् ॥ २३ ॥ राज्ञीनामयुतंभाविकुमाराणांशतत्रयम् ॥ वृद्धकालइतिख्यातउग्रःपरपुरञ्जयः ॥ २४ ॥ विजि तानेकसमरःश्रीसन्तर्पितमार्गणः ॥ अनेकगुणसम्पूर्णःपूर्णचन्द्रनिभद्युतिः ॥ २५ ॥ सन्ततावभृथक्लिन्नमूर्धजःक्षितिप र्षभः ॥ प्रजापालनसम्पन्नःकोशप्रीणितभूसरः ॥ २६ ॥ पदारविन्दंगोविन्दंहृदिध्यायन्नतन्द्रितः ॥ वासुदेवकथालाप परिक्षिप्तदिनक्षपः ॥ २७ ॥ कदाचिदुपविष्टःसन्मध्येराजसभंद्विज ॥ दूरात्कार्पटिकैर्दृष्टोवाराणस्याःसमागतैः ॥ २८ ॥ त्वत्कर्मभाविसदृशैस्तदात्वमभिनन्दितः ॥ तैःसर्वैराजशार्दूलस्वाशीर्वादैरनेकशः ॥ २९ ॥ श्रीमद्विश्वेश्वरोदेवोविश्वे

प्राप्तकिया है जिन्होंने ऐसी रमणीक रमणियां ॥ २३ ॥ रानियां दशहजार होंगी व तीनसौ पुत्रहोंगे वृद्धकाल इस नामसे कहाता दारुण प्रतापवान् शत्रुओं के गांवोंका जीतनेवाला ॥ २४ ॥ अनेकों संग्राम जीते धनसे याचकोंका तृप्तिकर्त्ता बहुते गुणोंसे भरा पूरे चन्द्रसे छबीला ॥ २५ ॥ सदा यज्ञान्तस्नान से भीगे बालोंवाला राजश्रेष्ठ प्रजाओंके पालनमें पूर्ण धरेधनसे ब्राह्मणोंका तर्पक ॥२६॥ विष्णुके पदकमलोंको ध्याता वासुदेव की कथा कहने सुननेसे दिन व रात बितानेवाला होगा ॥२७॥ हे ब्राह्मण ! कभी राजसभा के बीच बैठाहुआ काशीसे आये लालेवस्त्रवाले तपस्वियोंसे दूरसे देखाजावेगा ॥२८॥ व हे राजश्रेष्ठ ! तेरे होनेहारे कर्मके समान उन सबोंसे उस समय

अनेक आशीर्वादों से अभिनन्दित (बढ़ायागया) होगा ॥ २९ ॥ अब आशीर्वाद कहते हैं कि सब लोकोंके पूज्य काशीके नाथ विश्वनाथदेव तेरी कुबुद्धिका बराना करें ॥ ३० ॥ जो सुमिरने सेही मोक्षसम्पत्तिको देते हैं वे काशीनाथ विश्वनाथ तुझे निर्मल ज्ञानदें ॥ ३१ ॥ तैंने जिस पुण्यसे बड़ी वैरी विहीन राज्यपाया उस पुण्य के शेषसे तेरी बुद्धि श्रीविश्वनाथमें हो ॥३२॥ जिनका प्रसन्नतासे आयु पुत्र वस्त्र स्त्रियां सब चीजोंकी बढ़तियां स्वर्ग और मोक्ष ये सब सुलभ हैं वे विश्वनाथजी प्रसन्न हों ॥ ३३ ॥ जिन समर्थ विश्वनाथका नाम सुननेमात्रसेही बड़े पापोंका नाशहोता है वे श्रीविश्वनाथ तेरे हृदयमें हों ॥ ३४ ॥ तू वृद्धकाल नाम भूपाल यों आशीर्वा-

षांजगताङ्गुरुः ॥ काशीनाथस्तुतेकुर्यात्कुमतेरपवर्जनम् ॥ ३० ॥ नैःश्रेयसींचसम्पत्तिंयोदेयात्स्मरणादपि ॥ काशी नाथःसतेदिश्याज्ज्ञानंमलविवर्जितम् ॥ ३१ ॥ येनपुण्येनतेप्राप्तंराज्यंप्राज्यमकण्टकम्॥ तत्पुण्यशेषतोभूयाद्विश्व नाथेमतिस्तव ॥ ३२ ॥ यस्यप्रसादात्सुलभमायुःपुत्राम्बराङ्गनाः ॥ समृद्धयःस्वर्गमोक्षौसविश्वेशःप्रसीदतु ॥ ३३ ॥ ना मश्रवणमात्रेणयस्यविश्वेशितुर्विभोः ॥ महापातकविच्छेदःसविश्वेशोऽस्तुतेहृदि ॥ ३४ ॥ त्वंवृद्धकालोभूपालःश्रु त्वेत्याशीःपरम्पराम् ॥ स्मरिष्यसीदंवृत्तान्तंपुलकाङ्कवपुस्तदा ॥ ३५ ॥ आकारगोपनंकृत्वातेभ्योदत्त्वाधनंबहु ॥ सुमुहूर्तमनुप्राप्यसुतेराज्यंविधायच॥ ३६ ॥ अनङ्गलेखयाराज्ञ्याततःकाशींगमिष्यसि ॥ दत्त्वादानानिभूरीणिप्रीणयि त्वाऽर्थिनोजनान् ॥ ३७ ॥ स्वनाम्नातत्रसंस्थाप्यलिङ्गंनिर्वाणकारणम् ॥ प्रासादंतत्रकृत्वोच्चैस्तदग्रेकूपमुत्तमम् ॥ ३८ ॥ विधायविधिवत्तत्रकलशारोपणादिकम् ॥ मणिमाणिक्यचाम्पेयदुकूलेभाश्वगोधनम् ॥ ३९ ॥ महाध्व

दधाराको सुनकर तब पुलकितदेहहो इसहाल को सुमिरेगा ॥ ३५ ॥ व अभिप्राय छिपाकर उनको बहुत धनदे अच्छेमुहूर्त को लहकर व पुत्रको राज्यसौंप ॥ ३६ ॥ तदनन्तर अनंगलेखा रानी सहित तू काशीको जायगा बहुते दानदेकर याचकजनोंको तृप्तकर॥ ३७ ॥ तहां अपने नामसे मुक्तिका कारण लिंगथाप व उस में ऊंचा मन्दिर कर उसके आगे उत्तम कूप बनवाकर उस शिवालय में कलश चढ़ानाआदि कर फिर मणिमाणिक पीताम्बर हाथी घोड़े गौवें धन॥ ३९ ॥ व बड़ी ध्वजा

पताका छत्र चँवर शीशा और बहुती देवपूजासामग्रीको दे श्रमहीनहो॥ ४०॥ व्रत उपास नियमोंसे दुबलीदेहवाला तू तहां दुपहरमें एक तपस्वीको देखेगा॥ ४१॥ जोकि बहुतदुर्बल देह पीली जटाधारी देहवान् धर्मके समान ऊंचा मनुष्योंका मनोहर ॥ ४२ ॥ देहदण्ड का भार दृढ़ दण्डीमें धर याने लाठीटेके देवमन्दिरके भीतरसे निकल रंगमण्डप (जगमोहन) में सामने आताहुआ ॥ ४३ ॥ वह तेरेलगे बैठ क्रमसे यों पूँछेगा कि तुम क्यों यहांहो॰दूसरा सा यह कौनहै॥४४॥ यह देवस्थान किसका बनवायाहै इस लिंगका

जपताकाश्चच्छत्रचामरदर्पणम् ॥ देवोपकरणंभूरिविश्राण्यश्रमवर्जितः ॥ ४० ॥ व्रतोपवासनियमैःपरिक्षीणकले वरः ॥ मध्याह्नेनिर्जनेतत्रद्रक्ष्यस्येकंतपोधनम् ॥ ४१ ॥ अतीवजीर्णवपुषंपरिपिङ्गजटान्वितम् ॥ मूर्तिमन्तमिवप्रांशुं धर्मंजनमनोहरम् ॥ ४२ ॥ भारंशरीरयष्टेश्चदृढयष्ट्यांसमर्प्यच ॥ गर्भागाराद्विनिष्क्रम्याभ्यायान्तंरङ्गमण्डपे ॥ ४३ ॥ उपविश्यसमीपेतेप्रक्ष्यत्येवमनुक्रमात् ॥ कोसित्वंकिमिहासित्वंद्वितीयइवकस्त्वयम् ॥ ४४ ॥ प्रासादःकारितः केनजानास्येषततोवद ॥ अस्यलिङ्गस्यकिंनामप्रायोजानेनवार्धकात् ॥ ४५ ॥ पृष्टस्त्वमितितेनाथतदावृद्धतपस्विना ॥ कथयिष्यस्यहंराजावृद्धकालइतिश्रुतः ॥ ४६ ॥ दाक्षिणात्यइहप्राप्तस्त्वेतयासहकान्तया ॥ ध्यायामिलिङ्गमेतच्च प्रार्थयामिनकिञ्चन ॥ ४७ ॥ प्रासादस्यास्यजटिलस्वयङ्कारयिताशिवः ॥ विशेषतोऽस्यलिङ्गस्यनामनोवेद्मिनि श्चितम् ॥ ४८ ॥ इतिश्रुत्वानरपतेर्वाक्यंप्राहजटाधरः ॥ सत्यमुक्तंत्वयैकंहिलिङ्गनामनवेत्सियत् ॥ ४९ ॥ पश्ये यन्त्वामहंनित्यमुपविष्टंसुनिश्चलम् ॥ अतोभविष्यतितवप्रासादोयेनकारितः ॥ ५० ॥ ममाग्रेतत्समाचक्ष्वयदि

क्या नामहै बहुधा बुढ़ाईसे मैं नहीं जानताहूं जो तू जानताहो तो कह ॥ ४५ ॥ यों बूढ़े तपस्वीसे पूँछा तू अनन्तर उस समय कहेगा कि वृद्धकाल यों नामसे प्रसिद्ध मैं राजा हूं ॥ ४६ ॥ दक्षिणदेशमें उत्पन्नहो इस स्त्रीसहित यहां आयाहूं इस लिंगको ध्याताहूं कुछ मांगता नहीं हूं ॥ ४७ ॥ हे जटिल शिवजी ! आपही इस मण्डपके करानेवाले हैं विशेष से इस लिंगके निश्चितनामको नहीं जानताहूं ॥४८॥ यों राजाका वचन सुन जटाधारी बोलेगा कि जो लिंगका नाम नहीं जानताहै यह एक तैंने सत्यकहा ॥ ४९ ॥

यहां नित्य निश्चल बैठे तुझको मैं देखताहूं तेरा सुनाहोगा कि जिसका कराया मन्दिरहै ॥ ५० ॥ जो तत्त्वसे जानताहो तो मेरे आगे कह यों उसका वचनसुन फिर आप बोलोगे ॥ ५१ ॥ कि करने करानेवारे शिवहैं मैं क्या असत्य कहूं हे समर्थ तपस्विन् ! अथवा इस चिन्तनासे मुझे क्या है ॥ ५२ ॥ यों तेरे चुपटिकतेही फिर वह बूढ़ा तपस्वी बोलेगा कि मैं प्याराहूं झट मुझे पानी आनदे ॥ ५३ ॥ यो उससे प्रेरित तू कूप से पानी आन उस बूढे तापसको प्यावेगा और उसीसमय वह ॥ ५४ ॥ उस पानी के पीनेसे पूनोंके चन्द्रसा छबीला युवारूपवान् केंचुलितजे सर्पके समान होगा ॥ ५५ ॥ व उपजा आश्चर्य जिसके ऐसे आपसे वह कहा जायगा कि हे भगवन् ! यह

जानासितत्त्वतः ॥ आकर्ण्येतिवचस्तस्यपुनःप्राहभवानिति ॥ ५१ ॥ कर्ताकारयिताशम्भुःकिमतथ्यंब्रवीम्यहम् ॥ अथवाचिन्तयाकिंमेतपस्विन्ननयाविभो ॥ ५२ ॥ इतित्वयिस्थितेजोषंसपुनर्वृद्धतापसः ॥ पिपासुरस्मिपानीयमानीयाशुप्रयच्छमे ॥ ५३ ॥ इतितेनचनुन्नस्त्वंवार्यानीयचकूपतः ॥ पाययिष्यसितंवृद्धतापसंतत्क्षणाच्चसः ॥ ५४ ॥ तदम्बुपानतोभूयात्सुपार्वणशशिप्रभः ॥ तरुणोरूपसम्पन्नःकोशोन्मुक्तोरगोयथा ॥ ५५ ॥ जाताश्चर्येणभवतापुनरेवाभ्यभाषिसः ॥ कःप्रभावोहिभगवन्नेषयेनभवान्पुनः ॥ ५६ ॥ परित्यज्यात्रजरसंनवोभ्राजसिसाम्प्रतम् ॥ अस्तिचेदवकाशस्तेततोब्रूहितपोधन ॥ ५७ ॥ तपोधनउवाच ॥ वृद्धकालक्षितिपतेजानेत्वांसुमहामते ॥ इमामपिचजानेऽहंतवपत्नींपतिव्रताम् ॥ ५८ ॥ जन्मनोऽस्मादियंराजन्नासीद्विप्रस्यकन्यका ॥ तुर्वसोर्वेदवपुषःशुभाचाराशुभानना ॥ ५९ ॥ तेनदत्ताविवाहार्थंनैध्रुवायमहात्मने ॥ सचकालवशंप्राप्तोनैध्रुवोऽप्राप्तयौवनः ॥ ६० ॥ वैधव्यंपालयन्त्येषा मृताऽवन्त्यांशु

कौन प्रभावहै जिससे आप फिर ॥ ५६ ॥ यहां अबहीं बुढ़ाई छोंड़ नयेभये सोहते हो हे तपस्विन्! आपका अवकाशहो तो कहो ॥ ५७ ॥ तपोधन बोलेगा कि हे अच्छी बड़ी बुद्धिवाले वृद्धकाल भूप! मैं तुझे जानताहूं तथा इस पतिव्रता तेरी स्त्रीको भी जानताहूं ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! यह इस जन्मसे पहले वेदपाठी तुर्वसु ब्राह्मण की कन्या हुई जोकि सुमुखी सुकर्मवाली थी ॥ ५९ ॥ उसने व्याहके लिये नैध्रुवमहात्माको दियाथा वह नैध्रुव युवापन पहुँचे विनाही कालके वशहोगया ॥ ६० ॥ विधवापनको पालती

हुई यह पतिव्रता उज्जैन में गरी उस पुण्यसे पांड्यनरेश की कन्याभई ॥ ६१ ॥ हे राजन् ! तेरी ब्याही सदा पतिव्रतमें प्रीति राखती तेरे साथ यहां पहुँची इससे उत्तम मुक्तिको जावेगी ॥ ६२ ॥ हे राजन् ! अयोध्या उज्जयिनी मथुरा द्वारका काञ्ची व हरिद्वार में ॥ ६३ ॥ जे पापीभी कालसे मरणको पहुँचे हैं वे स्वर्गसे इस काशीमें आ मोक्ष पातेहैं ॥ ६४ ॥ हे नरेश ! तुझको भी जानताहूं तू पहले जन्ममें शिवशर्मा नामक मथुरिहा ब्राह्मणहुआ और हरिद्वार में मरा ॥ ६५ ॥ उस पुण्य से वैकुण्ठ में

भव्रता ॥ तेनपुण्येनसंजाता पाण्ड्यस्यनृपतेःसुता ॥ ६१ ॥ परिणीतात्वयाराजन्पतिव्रतरतासदा ॥ त्वयासहेहसंप्राप्ता मुक्तिंप्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ ६२ ॥ अयोध्यायामथावन्त्यांमथुरायामथापिवा ॥ द्वारवत्यांचकान्त्यांवा मायापुर्यामथोनृप ॥ ६३ ॥ अपिपातकिनोयेच कालेननिधनंगताः ॥ तेहिस्वर्गादिहागत्य काश्यांमोक्षमवाप्नुयुः ॥ ६४ ॥ अवैमि त्वामपिनृपद्विजोऽभूःपूर्वजन्मनि ॥ माथुरःशिवशर्माख्योमायापुर्यांभवान्मृतः ॥ ६५ ॥ तत्पुण्यात्प्राप्यवैकुण्ठं भुक्त्वाभोगान्मनोरमान् ॥ तत्पुण्यशेषात्क्षितिपो जातस्त्वंनन्दिवर्धने ॥ ६६ ॥ वृद्धकालावनीपाल तेनैवसुकृतेनच ॥ मोक्षक्षेत्रमिदंप्राप्तो मुक्तिंप्राप्स्यस्यनुत्तमाम् ॥ ६७ ॥ अन्यच्चशृणुराजेन्द्रत्वयायत्समुदीरितम् ॥ कर्ताकारयिताशम्भुः प्रासादस्येतितत्स्फुटम् ॥६८॥ सुकृतंनैवसततमाख्यातव्यंकदाचन ॥ कृतंमयेतिकथनात्पुण्यंक्षयतितत्क्षणात् ॥६९॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गोपनीयंनिधानवत् ॥ सुकृतंकीर्तनाद्व्यर्थंभवेद्भस्महुतंतथा ॥ ७० ॥ निश्चितंविश्वनाथेन प्रेरितेनत्वयाऽनघ ॥ कृतंहिकृतकृत्येन प्रासादादिहवेद्म्यहम् ॥ ७१ ॥ वृद्धकालेश्वरंनाम लिङ्गमेतन्महीपते ॥ जानी

जा मनोरम भोगोंको भोग फिर उसी पुण्यके शेषसे तू नन्दिवर्धननगर में राजा हुआ ॥ ६६ ॥ हे वृद्धकाल भूपाल ! उसी पुण्यसे इस मुक्तिक्षेत्रको प्राप्तहो उत्तम मोक्षको जायगा ॥ ६७ ॥ हे राजेन्द्र ! और सुन जो तैंने कहा कि देवमन्दिरके करने करानेवारे शिवहैं वह स्पष्ट है ॥ ६८ ॥ सदा कभी पुण्य न कहना चाहिये मैंने किया यों कहनेसे उसी क्षण पुण्य घटती है ॥ ६९ ॥ उस कारण सब यत्नसे निधि की नाईं पुण्य गुप्त राखनेयोग्यहै कहनेसे वैसे व्यर्थ होती है जैसे भस्ममें होमहै ॥ ७० ॥

हे पापहीन ! यह निश्चय कियाहुआ है कि श्रीविश्वनाथ से प्रेरित कृतार्थ तैंनेही शिवालयादि बनवाया मैं जानताहूं ॥ ७१ ॥ हे भूप ! इस वृद्धकालेश्वर नाम लिंग को अनादिसिद्ध जानो किन्तु आपही निमित्त कारण हो याने तुमको पाकर यह प्रकटाहै ॥ ७२ ॥ उसवृद्धकालेश्वर के दर्शन स्पर्शन और नमस्कार रो सब वांछित फलको प्राप्तहोगा ॥ ७३ ॥ यह कालोदकनाम कूप बुढ़ाई और रोगोंका नाशक है जिसका जल पीनेसे फिर माताके दूधका न पीनेवाला होता है ॥ ७४ ॥ व किया कुवॉ के जलमें स्नान व इस लिंगकी पूजा जिसने वह मनुष्य वर्ष दिनसे मनमानी सिद्धियों को जाताहै ॥ ७५ ॥ कालदम नाम इस कूप का जल पीने व छूनेसे कोढ़, फोड़ा

ह्यनादिसंसिद्धं निमित्तंकिन्तुवैभवान् ॥ ७२ ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य पूजनाच्छ्रवणान्नतेः ॥ वृद्धकालेशलिङ्गस्यसर्वं प्राप्नोतिवाञ्छितम् ॥ ७३ ॥ कूपःकालोदकोनाम जराव्याधिविघातकृत् ॥ यदीयजलपानेन मातुःस्तन्यमपानवान् ॥ ७४ ॥ कृतकूपोदकस्नानः कृतैतल्लिङ्गपूजनः ॥ वर्षेणसिद्धिमाप्नोति मनोभिलषितांनरः ॥ ७५ ॥ नकुष्ठंनचविस्फोटा नरद्धानविचर्चिका ॥ पीतात्स्पृष्टात्प्रतिष्ठन्ति कफःकालदमोदकात् ॥ ७६ ॥ नाग्निमान्द्यंनैवशूलं नमेहोनप्रवाहिका ॥ नमूत्रकृच्छ्रंनोपामापानीयस्यास्यसेवनात् ॥ ७७ ॥भूतज्वराश्चयेकेचिद्येकेचिद्विषमज्वराः ॥ तेक्षिप्रमुपशाम्यन्तिह्येतत्कूपोदसेवनात् ॥ ७८ ॥ तवाग्रतोममजरापलितंचयथाविधि ॥ एतत्कूपोदपानेन क्षणान्नष्टंनवोऽभवम् ॥७९॥ वृद्धकालेश्वरेलिङ्गे सेवितेनदरिद्रता ॥ नोपसर्गानवारोगा नपापंनाघजंफलम् ॥ ८० ॥ उत्तरेकृत्तिवासस्य वाराणस्यांप्रयत्नतः ॥ वृद्धकालेश्वरंलिङ्गं द्रष्टव्यंसिद्धिकामुकैः ॥ ८१ ॥ इत्युक्त्वातंमहीपालं हस्तेधृत्वातपोधनः ॥ सानङ्गले

रंधिणी, ददरी खाजका भेद, कफ ये रोग नहीं टिकसक्ते ॥ ७६ ॥ व मन्दाग्नि शूल प्रमेह प्रवाहिका (संग्रहणीभेद) मूत्रकृच्छ्र (जिसमें मूतने से कष्टहो) खाज ये रोग इस पानीके सेवनेसे नहीं रहतेहैं ॥७७॥ जे भूतज्वर और जे विषमज्वरहैं वे इस कूपका जल सेवनेसे शीघ्रनशते हैं ॥७८॥ तेरे आगे मेरी बुढ़ाई व बालोंकी उजलाई यथाविधि इस कूपका पानी पीनेसे क्षणमें नष्टहुई मैं नया भयाहूं ॥ ७९ ॥ वृद्धकालेश्वर लिंगके सेवितहोतेही दरिद्रता उपद्रव रोग पाप और पापोंका फल नहीं है ॥ ८० ॥ काशी में कृत्तिवासके उत्तर जो वृद्धकालेश्वरलिंगहै वह यत्नसे सिद्धिचाहियों को देखना योग्यहै ॥८१॥ यों कह अनंगलेखारानी समेत राजाको हाथधर तपस्वी

उस लिंगमें समा जायगा ॥ ८२ ॥ महाकाल महाकाल महाकाल यों कहनेसे सैकड़ों भांतिके पापोंसे छूटताहै इससें विचार करने योग्य नहीं है ॥ ८३ ॥ विष्णुके दर्शन से शुभ वैकुण्ठलोकमें बहुत भांति के भोगों को भोगकर यों तेरी मुक्तिहोनेवाली है ॥ ८४ ॥ यों भगवान्के उन गणों के मुखसे अपने उत्तरकालीन होनेहारे फल को सुन खड़े भये रोम जिसके उस ब्राह्मणने अनन्तर करोड़ों सूर्य्योंसे रमणीक विष्णुलोकको देखा ॥ ८५ ॥ अगस्तिजी बोले कि हे लोपामुद्रे ! वह ब्राह्मण हरिद्वार में मरनेकी पुण्यके बलसे मनोरम भोगोंको भोगकर ॥ ८६ ॥ वैकुण्ठलोकसे आकर नंदिवर्धननगरमें राजाहो भूमिलोकके सुखभोग सुन्दर पुत्रोंको उपराज ॥ ८७ ॥ उ-

खाराङ्गीकंतस्मिल्लिँङ्गेलयंययौ ॥ ८२ ॥ महाकालमहाकाल महाकालेतिकीर्तनात् ॥ शतधामुच्यतेपापैर्नात्रकार्याविचारणा ॥ ८३ ॥ इत्थंभवित्रीतेमुक्तिः कैटभारातिदर्शनात् ॥ भोगान्भुक्त्वाबहुविधान्वैकुण्ठनगरेशुभे ॥ ८४ ॥ इतिसंहृष्टतनूरुहःसविप्रोभगवत्तद्गणवक्त्रतोनिशम्य ॥ स्वमुदर्कमथार्ककोटिरम्यंहरिलोकंपरिलोकयाञ्चकार ॥ ८५ ॥ मैत्रावरुणिरुवाच ॥ लोपामुद्रेसविप्रेन्द्रोभोगान्भुक्त्वामनोरमान् ॥ मायापुर्यांकृतप्राणत्यागपुण्यबलेनच ॥ ८६ ॥ वैकुण्ठलोकादागत्य पत्तनेनन्दिवर्धने॥भौमानिभुक्त्वासौख्यानिपुत्रानुत्पाद्यसुन्दरान्॥८७॥तेषुराज्यंविनिक्षिप्य प्राप्यवाराणसींपुरीम् ॥ विश्वेश्वरंसमाराध्य निर्वाणपदमीयिवान् ॥८८॥ एतत्पुण्यतमाख्यानं विप्रस्यशिवशर्मणः ॥ श्रुत्वापापविनिर्मुक्तो ज्ञानंपरममृच्छति ॥ ८९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेशिवशर्मनिर्वाणप्रापणंनामचतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

व्यासउवाच ॥ शृणुसूतप्रवक्ष्यामि कथांकलशजन्मनः ॥ यामाकर्ण्यनरोभूयाद्विरजाज्ञानभाजनम् ॥ १ ॥

नको राज्यदेकर काशीपुरी को पहुंच श्रीविश्वनाथको भलीभांतिसे पूज मोक्षपदको गया ॥ ८८ ॥ शिवशर्म्मा ब्राह्मणके इस परमपुण्य आख्यानको सुन पापों से छूटा हुआ उत्तम ज्ञानको पाता है ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेशिवशर्मनिर्वाणप्रापणन्नामचतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥

दोहा ॥ पंचविंश अध्यायमें श्रीअगस्त्यमुनिनाथ । कार्त्तिकेय लखिकीन तब उचित बात उनसाथ ॥ व्यासजी बोले कि हे सूत ! अगस्त्यकी कथाको सुनो जिसको

सुनकर नर निर्मल मन और ज्ञानका पात्र होता है ॥१॥ क्षीरसेत व कलशसे उत्पन्न अगस्त्यने उस श्रीपर्वतकी प्रदक्षिणाकर महत्रमणीय कार्त्तिकेयका वन देखा ॥२॥ जो कि सब ऋतुओंके फूलोंसे पूर्ण रसीले फलोंके वृक्षवाला व अच्छे सेवने योग्य कन्द (गोलाकार अदरख हल्दी सूरणादि) व मूल (नीचे रहन ऊँचे मोटे मूरी आदि) उनसे भरापुरा व अच्छे बकला के वृक्षों समेतहै ॥ ३ ॥ द बाघ आदि हिंसकजंतुवोंसेहीन व नंदी सहित तलियोंसे घिरा अमल अथाह जल तालवाला सब पृथिवीका सार अ-ति उत्तम ॥४॥ व अनेक भांतिके पक्षियोंके शब्द संयुत बहुते मुनि लोगोंसे बसागया तपस्या का सङ्केत स्थान व सम्पत्तियोंका मुख्य मंदिर सा है ॥ ५॥ व अच्छी कन्दरायें

गिरिंप्रदक्षिणीकृत्य श्रीसंज्ञंकलशोद्भवः ॥ सपत्नीकोददर्शाथ रम्यंस्कन्दवनंमहत् ॥ २ ॥ सर्वर्तुकुसुमाढ्यंच रसवत्फलपादपम् ॥ सुसेव्यकन्दमूलाढ्यं सुवल्कलमहीरुहम् ॥ ३ ॥ निर्वीतश्वापदगणंससरित्पल्वलावृतम् ॥ स्वच्छगम्भीरकासारं सारंसर्वभुवःपरम् ॥ ४ ॥ नानापतत्रिसंघुष्टं नानामुनिजनोषितम् ॥ तपःसङ्केतनिलयमिवैकंसम्पदांपदम् ॥५॥ लोहितोनामतत्रास्ति गिरिःस्वर्णगिरिप्रभः ॥ सुकन्दरप्रस्रवणःस्वसानुशिखरप्रभः ॥ ६ ॥ कैलासस्यैकशकलं कर्मभूमाविहागतम् ॥ तपस्तप्तुमिवप्रोच्चैर्नानाश्चर्यसमन्वितम् ॥ ७ ॥ तत्राद्राक्षीन्मुनिश्रेष्ठोऽगस्त्यःसाक्षात्षडाननम् ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमौ सपत्नीकोमहातपाः ॥ ८ ॥ तुष्टावगिरिजासूनुं सूक्तैःश्रुतिसमुद्भवैः ॥ तथास्वकृतयास्तुत्या प्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ९ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ नमोस्तुवृन्दारकवृन्दवन्द्यपादारविन्दायसुधाकराय ॥ षडाननायामितविक्रमाय गौरीहृदानन्दसमुद्भवाय ॥ १० ॥ नमोस्तुतुभ्यंप्रणतार्तिहन्त्रेकर्त्रेसमस्तस्यमनोरथानाम् ॥ दात्रेरथानांपरतारकस्य हन्त्रे

व भरने हैं जिसमें वह अपने किनारा शृगों से शोभावान् सुमेरुसे सुन्दर लोहित नाम पर्वत तहां है ॥ ६ ॥ बड़ी तपस्या करने को इस कर्मभूमि भरतखण्ड में आकर अनेक अद्भुत समेत, कैलास के एक खण्डरो ॥ ७ ॥ षण्मुख को मुनिश्रेष्ठने वहां देखा व दण्डके समान भूमि में प्रणाम कर स्त्री सहित बड़े तपस्वी ने ॥ ८ ॥ दोनों हाथ जोडनेवाले हो वेदोक्त सूक्त तथा अपने किये स्तोत्रसे स्तुति किया ॥ ९ ॥ अगस्त्यजी बोले कि देवसमूहों से वन्दनीय पदकमल व अमृत के निधान याने परम आनन्दरूप अतुलबल और पार्वती के हृदयका आनन्द उपजा है जिनसे, उन षण्मुख आपके नमस्कारहो ॥ १० ॥ भक्तोंके संसारदुःखहारी सबके

मनोरथोंके कारी परवंचक जनके मनोरथविदारी व प्रचंड तारकदैत्यसंहारी आपके नमस्कारहो ॥११॥ मूर्ति रहित वायु आकाश व मूर्ति सहित पृथिवी जल और अग्नि इनके रूप याने हिरण्यगर्भ, सहस्रमूर्ति (विराट्रूप) तमरज सतगुणमय प्रकृतिरूप व प्रकृतिसे परे अगम पारवाले या जीवोंको पार उतारने व कार्य्यकारणरूप मयूरवाहन आप० ॥ १२ ॥ तत्त्वज्ञानियोंके गुरु दिगम्बर (दिशायेंहैं वस्त्र जिनके) आकाशवासी सुवरण वरण बांहोंमें सोने के गहने पहने व सुवर्णरूप अग्नि या रुद्रकी देह आप० ॥१३॥ तपस्यारूप व तपस्याकेधनी व तपस्याफलोंके दाता सदाकुमार याने पांच छः वर्षकी अवस्थावाले व दुष्टोंको घाले व खरके समान तुच्छ किया ऐश्वर्यको

प्रचण्डासुरतारकस्य ॥ ११ ॥ अमूर्तमूर्तायसहस्रमूर्तयेगुणायगुण्यायपरात्पराय ॥ अपारपारायपरापराय नमोस्तुतुभ्यंशिखिवाहनाय ॥ १२ ॥ नमोस्तुतेब्रह्मविदांवरायदिगम्बरायाम्बरसंस्थिताय ॥ हिरण्यवर्णायहिरण्यबाहवे नमोहिरण्यायहिरण्यरेतसे ॥ १३ ॥ तपःस्वरूपायतपोधनायतपःफलानांप्रतिपादकाय ॥ सदाकुमारायहिमारमारिणे तृणीकृतैश्वर्यविरागिणेनमः ॥ १४ ॥ नमोस्तुतुभ्यंशरजन्मनेविभोप्रभातसूर्यारुणदन्तपङ्क्तये ॥ बालायचाबालपराक्रमाय षाण्मातुरायालमनातुराय ॥ १५ ॥ मीढुष्टमायोत्तरमीढुषेनमो नमोगणानांपतयेगणाय ॥ नमोस्तुतेजन्मजरातिगाय नमोविशाखायसुशक्तिपाणये ॥ १६ ॥ सर्वस्यनाथस्यकुमारकाय क्रौञ्चारयेतारकमारकाय ॥ स्वाहेयगाङ्गेयचकार्तिकेयशैवेयतुभ्यंसततंनमोऽस्तु ॥ १७ ॥ इत्थंपरिष्टुत्यसकार्तिकेयं नमोनमस्त्वित्यभिभाषमाणः ॥ द्विस्त्रिःपरिक्रम्यपुरोविवेशास्थितोमुनीशोपविशेतिचोक्तः ॥ १८ ॥ कार्तिकेयउवाच ॥ त्वेमोस्तिकुम्भजमुने त्रिदशैकसहायकृ

जिनने उन वैरागीरूप आप० ॥ १४ ॥ हे समर्थ! जिनकी मुञ्जवन में उत्पत्ति सूर्य्यसे लाली दन्तपङ्क्ति व बालकसे दीखते व बड़े बलवान् व छः कृत्तिकामाताओंके पुत्र अत्यन्त दक्ष आप० ॥ १५ ॥ कामनासमेत लोगोंके लिये फलवर्षकोंमें श्रेष्ठ व भविष्य फलदायक गणोंके नायक गनेजाते जन्म बुढ़ाई के पारजानेहारे याने अविकार अनेक शाखाकार हाथमें शक्ति हथियारधार आप० ॥ १६ ॥ विश्वनाथके कुमार क्रौंच पर्वतविदार तारकदैत्य मारक स्वाहा (अग्निकी स्त्री) व गङ्गा और कृत्तिकाओंके पुत्रके समान श्रीपार्वतीनन्दन आप के नमस्कारहो ॥ १७ ॥ वे अगस्त्य यों कार्त्तिकेय की स्तुतिकर नमोनमः कहते हुये आगे खड़ेभये व हे मुनीश्वर! बैठो यों स्कन्दसे कहे

हुये बैठगये ॥ १८ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले, कि हे अगस्त्यमुने ! हे देवराहायक ! कुशल है यहां आये तुमको और विन्ध्याचल की उँचाई को मैं जानताहूं ॥ १९ ॥ व शिवसे पालित बड़े क्षेत्र काशीमें कुशल है जहां सरे मनुष्यों के मोक्षदायक श्रीविश्वनायक देव प्रत्यक्ष हैं ॥ २० ॥ हे मुने ! भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक व पाताल तल और ऊंचेलोक मे भी वैसा क्षेत्र कहीं नहीं देखागया है ॥ २१ ॥ हे मुने ! यहां अकेले विचरता हुआ मैं उस क्षेत्र की प्राप्ति के लिये तपस्या करताहूं परन्तु मेरे मनोरथ अभी फले नहीं हैं ॥ २२ ॥ पुण्य दान तप जप और अनेक भांतिके यज्ञोंसे वह मिलनेयोग्य नहीं है किन्तु परमेश्वर शिवजीकी दयासे लहाजाता है ॥ २३ ॥

त ॥ जानेत्वामिहसंप्राप्तं तथाविन्ध्याचलोन्नतिम् ॥ १९ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रे क्षेमन्त्र्यक्षेणरक्षिते ॥ यत्रक्षीणायुषांसाक्षाद्दिरूपाक्षोऽस्तिमोक्षदः ॥ २० ॥ भूर्भुवःस्वस्तलेवापि नपातालतलेमलम् ॥ नोर्द्ध्वलोकेमयादृष्टं तादृक्क्षेत्रंकचिन्मुने ॥ २१ ॥ अहमेकचरोप्यत्र तत्क्षेत्रप्राप्तयेमुने ॥ तप्येतपांसिनाद्यापि फलेयुर्मेमनोरथाः ॥ २२ ॥ नतत्पुण्यैर्नतद्दानैर्न तपोभिर्नतज्जपैः ॥ नलभ्यंविविधैर्यज्ञैर्लभ्यमैशादनुग्रहात् ॥ २३ ॥ ईश्वरानुग्रहादेव काशीवासःसुदुर्लभः ॥ सुलभः स्यान्मुनेनूनं नवैसुकृतकोटिभिः ॥ २४ ॥ अन्यैवकाचित्सासृष्टिर्विधातुर्याऽतिरेकिणी ॥ नतत्क्षेत्रगुणान्वक्तुमीश्वरोपीश्वरोयतः ॥ २५ ॥ अहोमतेःसुदौर्बल्यमहोभाग्यस्यदौर्विधम् ॥ अहोमोहस्यमाहात्म्यंयत्काशीहनसेव्यते ॥ २६ ॥ शरीरंजीर्यतेनित्यं संजीर्यन्तीन्द्रियाण्यपि ॥ आयुर्मृगोमृगयुनाकृतलक्ष्योहिमृत्युना ॥ २७ ॥ सापदंसम्पदंज्ञात्वा सापायंकायमुच्चकैः ॥ चपलाचपलंचायुर्मत्वाकाशींसमाश्रयेत् ॥ २८ ॥ यावन्नैत्यायुषश्चान्तस्तावत्काशीनमुच्यते ॥ का

हे मुने ! दुर्लभ काशीका वास ईश्वर की दयासे सुलभहोवे करोड़ो पुण्योंसे निश्चय नहीं है ॥ २४ ॥ जो ब्रह्माकी सृष्टिसे भिन्न है वह अन्य कोई सृष्टि है क्योंकि उस क्षेत्रके गुण कहने को जिससे ईश्वर भी समर्थ नहीं है ॥ २५ ॥ खेद है कि यह बुद्धिकी मन्दताई व भाग्यकी न अच्छाई और मोहकी बड़ाई है जोकि काशी नहीं सेई जाती है ॥ २६ ॥ दिनों दिन देह जीरण व इन्द्रियांभी जीरण होती हैं व आयुरूप मृग मृत्युरूप सिकारी का लक्ष्य किया गया है ॥ २७ ॥ इससे ऊंचे जैसे हो वैसे देहको नाशवान् व सम्पत्तिको विपत्ति सहित जानकर व आयुको बिजुली से अधिक चञ्चलमानकर काशीको सेवे ॥ २८ ॥ और जौलों जीवनका अन्त न आवे

तौलों काशीको न छोड़े क्योंकि काल करालहै वह अठारहनिमेषोंकी काष्ठा व तीस काष्ठाओं की एक कला के लवमात्र समय की संख्या करने को नहीं भूले है ॥ २९ ॥ आश्चर्य है कि बुढ़ाई पासही पठाई गई है व रोग बहुतही पीड़ते हैं तोभी अनेक व्यापार सहित देह काशीको नहीं चाहती है ॥ ३० ॥ तीर्थ नहाना जप और अन्यके उपकार वचन से धन के विना धर्म मिलता है व धर्म्मसे धन आपही होताहै ॥ ३१ ॥ धन कमानेके उपाय विना धर्मसेही धन होवे है इससे धनकी चिन्ता को तजकर एक धर्मको आधार करे ॥ ३२ ॥ क्योंकि धर्म से धन धनसे काम (अभिलाप) कामसे सब सुखका उदय है व धर्मसे स्वर्गभी सुलभ है परन्तु एक काशी दुर्लभ

लःकलालवस्यापि सङ्ख्यातुंनैवविस्मरेत् ॥ २९ ॥ जरानिकटनिक्षिप्ता बाधन्तेव्याधयोभृशम् ॥ तथापिदेहोनानेहो नाहोकाशींसमीहते ॥ ३० ॥ तीर्थस्नानेनजप्येन परोपकरणोक्तिभिः ॥ विनाऽर्थंलभ्यतेधर्मो धर्मादर्थःस्वयम्भवेत् ॥ ३१ ॥ विनैवार्थार्जनोपायं धर्मादर्थोभवेद्ध्रुवम् ॥ अतोऽर्थचिन्तामुत्सृज्य धर्ममेकंसमाश्रयेत् ॥ ३२ ॥ धर्मादर्थोऽर्थ तःकामःकामात्सर्वसुखोदयः ॥ स्वर्गोपिसुलभोधर्मात्काश्येकादुर्लभापरम् ॥ ३३ ॥ उपायत्रयमेवात्रस्थाणुर्निर्वाणका रणम् ॥ शर्वाण्यग्रेबभाणाद्धा परिनिर्णीयसर्वतः ॥ ३४ ॥ पूर्वंपाशुपतोयोगस्ततस्तीर्थंसितासितम् ॥ ततोप्येकमना यासम्मविमुक्तंविमुक्तिदम् ॥ ३५ ॥ श्रीशैलहिमशैलाद्यानानान्यायतनानिच ॥ त्रिदण्डधारणंचापि संन्यासःसर्व कर्म्मणाम् ॥ ३६ ॥ तपांसिनानारूपाणि व्रतानिनियमायमाः ॥ सिन्धूनामपिसम्भेदा अरण्यानिबहून्य पि ॥ ३७ ॥ मानसान्यपिभौमानि धारातीर्थादिकानिच ॥ ऊषराश्चापिपीठानिह्यच्छिन्नाम्नायपाठनम् ॥ ३८ ॥

है ॥ ३३ ॥ विश्वनाथने सब शास्त्रार्थ को निर्णयकर पार्वती के आगे अर्थ धर्म काम इन तीनों उपायों को भी साक्षात् मोक्षके कारण कहा है ॥ ३४ ॥ पहले विभूति धारण फिर प्रयाग उसके बाद काशीक्षेत्र विना परिश्रम मोक्षदाताहै ॥ ३५ ॥ व श्रीशैल हिमवान् आदि पर्वत व अनेकों स्थान व त्रिदण्ड लेना व सब कर्मोंका त्याग ॥ ३६ ॥ व बहुत भांतिकी तपस्यायें व्रत व शौचादि नियम व अहिंसादि यम व नदियोंके संगम व बहुते वन ॥ ३७ ॥ मनके व भूमिके दक्षिणदेश में प्रसिद्ध कुमार तीर्थादि व कनखर बदरीवन रेणुका सूकर (वराहक्षेत्र) काशी (यह काशीपुरीसे दूसरी) कालीक्षेत्र काल बटेश्वर कालंजर महाकाल ये नव ऊषर व सिद्धपीठ

सम्पूर्ण वेदपाठ ॥ ३८ ॥ मन्त्रोंका जप आगमें होम दान अनेक यज्ञ देवों की उपासनायें ॥ ३९ ॥ त्रिरात्र पञ्चरात्रादि पूजा उपासनाविधिके तन्त्र आत्मा अनात्मा का विचाररूप सांख्य अष्टाङ्गयोगादि निश्चय मुक्तिके लिये कहाहै व विष्णुकी श्रेष्ठपूजा भी मेरे जन्तुओंको मुक्ति देनेवाली कही गईहै ॥ ४० ॥ व प्रसिद्ध पुरियां ये सब इस लोकमें मोक्षके साधन हैं यह निश्चय किया हुआहै ॥ ४१ ॥ परन्तु ये जे कहेगये हैं वे काशीमें पहुँचाते है काशीमें जाकर जन्तु संसारसे छूटताहै अनते कहीं नहीं ॥ ४२ ॥ इससे ही वह पवित्रक्षेत्र आश्चर्य्यकर सब ओर ब्रह्माण्डमण्डल में विश्वनाथ का प्यारा व नित्य है ॥ ४३ ॥ और यही वह क्षेत्र कुशल पूछने का कारण है

जपश्चापिमनूनांचतथाऽग्निहवनानिच ॥ दानानिनानाक्रतवोदेवतोपासनानिच ॥ ३९ ॥ त्रिरात्रंपञ्चरात्राणिसाङ्ख्ययोगादयस्तथा ॥ विष्णोराराधनंश्रेष्ठं मुक्तयेऽभिहितंकिल ॥ ४० ॥ पुर्यश्चापिसमाख्याता मृतजन्तुविमुक्तिदाः ॥ कैवल्यसाधनानीहभवन्त्येवविनिश्चितम् ॥ ४१ ॥ एतानियानिप्रोक्तानि काशीप्रापिकराणिच ॥ प्राप्यकाशींभवेन्मुक्तो जन्तुर्नान्यत्रकुत्रचित् ॥ ४२ ॥ अतएवहितत्क्षेत्रं पवित्रमतिचित्रकृत ॥ विश्वेशितुःप्रियंनित्यं विष्वग्ब्रह्माण्डमण्डले ॥ ४३ ॥ इदमेवहितत्क्षेत्रं कुशलप्रश्नकारणम् ॥ एह्येहिदेहिमेस्पर्शं निजगात्रस्यसुव्रत ॥ ४४ ॥ अपिकाश्याःसमागच्छत्स्पर्शवत्स्पर्शइष्यते ॥ मयात्रतिष्ठतानित्यं किन्तुत्वंततआगतः ॥ ४५ ॥ त्रिरात्रमपियेकाश्यां वसन्तिनियतेन्द्रियाः ॥ तेषांपुनन्तिनियतंस्पृष्टाश्चरणरेणवः ॥ ४६ ॥ त्वन्तुतत्रकृतावासः कृतपुण्यमहोच्चयः ॥ उत्तरप्रवहास्नानजातपिङ्गलमूर्धजः ॥ ४७ ॥ तवतत्रतुयत्कुण्डमगस्तीश्वरसन्निधौ ॥ तत्रस्नात्वाचपीत्वाच कृतसर्वोदक

हे अच्छेव्रतवाले ! आवो आवो मेरे अङ्गका स्पर्शदेवो ॥ ४४ ॥ यहां टिका हुआ मैं नित्य काशीसे आतीहुई वायु कासी परसना चाहताहूं किन्तु तुमतो वहांसे आये हो ॥ ४५ ॥ इन्द्रिय रोंकेहुये जे जन तीन रात्रि काशी में बसते हैं उनके पांवोंकी धूरि जिनमें छूगई है उनको पवित्र करती है यह नियम है ॥ ४६ ॥ उत्तरवाहिनी में नहाने से हुयेहैं कुछ पीले बाल जिसके ऐसे तुम तो वहांके वासी व किये पुण्यराशी हो ॥ ४७ ॥ वहां अगस्तीश्वरके समीप जो तुम्हारा कुण्ड है उसमें नहा पानी

पीकर किया सब जलकी क्रिया जिसने ॥ ४८ ॥ वह जन्तु श्रद्धासमेत श्राद्धकी विधि से पिण्डोंसे पितरोंको नीके पूज कृतार्थ होवे और काशी का फलपावेगा ॥ ४९ ॥ यों कह अगस्तिके सब अङ्गछूकर कार्त्तिकेयजी अमृततड़ागमें नहाने के समान सुखको पहुँचे ॥ ५० ॥ हे विश्वनाथ ! आपका जयहो यों कहते भी कार्त्तिकेयजी ने आंखों को मूँद खम्भासे अचलहो क्षणभर किसी याने जो कहनेयोग्य नहीं है उस रूपको ध्याया ॥ ५१ ॥ व प्रसन्नहै मन और मुख जिनका उन स्कन्द जी के ध्यान तजतेही वचन का अवसर परख अनन्तर मुनिने पार्वतीनन्दन से पूँछा ॥ ५२ ॥ अगस्तिजी बोले, कि हे स्वामिन् ! आगे जैसे आनन्द से शिवजी ने

क्रियः ॥ ४८ ॥ पितॄन्पिण्डैःसमभ्यर्च्य श्रद्धाश्राद्धविधानतः ॥ कृतकृत्योभवेज्जन्तुर्वाराणस्याःफलंलभेत् ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वासर्वगात्राणि स्पृष्ट्वाकुम्भोद्भवस्यच ॥ स्कन्दोऽमृतसरोवारिविगाह्यसुखमासवान् ॥ ५० ॥ जयविश्वेशनेत्राणि विनिमील्यवदन्नपि ॥ ततःकिञ्चित्क्षणंदध्यौ गुहःस्थाणुसुनिश्चलः ॥ ५१ ॥ स्कन्देविसर्जितध्याने सुप्रसन्नमनोमुखे ॥ प्रतीक्ष्यवागवसरं पप्रच्छाथमुनिर्गुहम् ॥ ५२ ॥ अगस्तिरुवाच ॥ स्वामिन्यथाभगवता भगवत्यैपुराऽकथि ॥ वाराणस्यास्तुमहिमा हिमशैलसुवेमुदा ॥ ५३ ॥ त्वयायथासमाकर्णि तदुत्सङ्गनिवासिना ॥ तथाकथयषड्वक्त्र तत्क्षेत्रंमेऽतिरोचते ॥ ५४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृणुष्वमैत्रावरुणेयथाभगवताऽकथि ॥ तत्क्षेत्रस्याविमुक्तस्य ममसातुःपुरःपुरा ॥ ५५ ॥ श्रुतञ्चयत्तदुत्सङ्गे स्थितेनास्थिरचेतसा ॥ माहात्म्यंतच्छृणुमुने कथ्यमानंमयाऽनघ ॥ ५६ ॥ गुह्यानांपरमंगुह्यमविमुक्तमिहेरितम् ॥ तत्रसंनिहितासिद्धिस्तत्रानित्यंस्थितोविभुः ॥ ५७ ॥ भूर्लोकेनैवसंलग्नं तत्क्षेत्रंत्वन्तरि

पार्वतीजीसे काशीकी महिमा कहा है ॥ ५३ ॥ और हे छः मुखवाले ! उनकी गोद में बैठे आपने जैसे सुना है वैसे कहो वह क्षेत्र मुझे बहुतही रुचताहै ॥ ५४ ॥ कार्त्तिकेयजी बोले कि हे मित्रावरुण के वीर्य से उत्पन्न अगस्त्य ! सुनो जैसे पहले मेरी माके आगे भगवान् ने उस काशीक्षेत्र की महिमा कहा है ॥ ५५ ॥ व उनकी उछंगमें बैठे हुये अडोलमन मैंने जो सुनाहै उस मेरे कहेहुयेको हे पापहीन मुने ! तुम सुनो ॥ ५६ ॥ इस लोक में गोप्य से गोप्य काशीक्षेत्र कहागया है उस में

सिद्धि समीप या धरीहुई है और उस में सदाशिवजी बसे हैं ॥ ५७ ॥ आकाश में टिकाहुआ वह क्षेत्र भूलोकमें लगा नहीं याने त्रिशूल पर धराहै उसको योगरहित लोग नहीं देखते हैं योगसहित लोगही देखते हैं ॥ ५८ ॥ हे ब्राह्मण ! त्रिकाल खाताहुआभी सावधान हो जो वहां बसे वह वायु खानेवालेके समान होवे ॥५९॥ व जो काशी में निमेषमात्र भी भारीभक्तिका सेवी है उसने ब्रह्मचर्य्य समेत बड़ा तप किया है ॥ ६० ॥ व थोड़ा खाताहुआ इन्द्रियजित् जो बुद्धिमान् एकमासलों काशीमें बसे उससे सब दिव्य पाशुपतव्रत कियागया होवै है ॥ ६१ ॥ और तहां एक वर्ष तक बसता हुआ मनुष्य जोकि क्रोधजीते व इन्द्रियोंको रोंके व अन्यके धनसे

त्तगम् ॥ अयोगिनोनवीक्षन्तेपश्यन्त्येवचयोगिनः ॥५८॥ यस्तत्रनिवसेद्विप्र संयतात्मासमाहितः ॥ त्रिकालमपिभुञ्जानो वायुभक्षसमोभवेत् ॥ ५९ ॥ निमेषमात्रमपियोह्यविमुक्तेऽतिभक्तिमाक् ॥ ब्रह्मचर्यसमायुक्तं तेनतप्तंमहत्तपः ॥ ६० ॥ यस्तुमासंवसेद्धीरो लघ्वाहारोजितेन्द्रियः ॥ सर्वंतेनव्रतंचीर्णं दिव्यंपाशुपतंभवेत् ॥ ६१ ॥ संवत्सरंवसंस्तत्रजितक्रोधोजितेन्द्रियः ॥ अपरस्वविपुष्टाङ्गः परान्नपरिवर्जकः ॥ ६२ ॥ परापवादरहितः किञ्चिद्दानपरायणः ॥ समाःसहस्रमन्यत्र तेनतप्तंमहत्तपः ॥ ६३ ॥ यावज्जीवंवसेद्यस्तु क्षेत्रमाहात्म्यविन्नरः ॥ जन्ममृत्युभयंहित्वा सयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ६४ ॥ नयोगैर्यागतिर्लभ्या जन्मान्तरशतैरपि ॥ अन्यत्रहेलयासाऽत्र लभ्येशस्यप्रसादतः ॥ ६५ ॥ ब्रह्महायोऽभिगच्छेद्वै दैवाद्वाराणसींपुरीम् ॥ तस्यक्षेत्रस्यमाहात्म्याद्ब्रह्महत्यानिवर्तते ॥ ६६ ॥ आदेहपतनंयावद्योविमुक्तंनमुञ्चति ॥ नकेवलंब्रह्महत्याप्रकृतिश्चानिवर्तते ॥ ६७ ॥ अनन्यमानसोभूत्वा तत्क्षेत्रंयोनमुञ्चति ॥ समुञ्चतिजरामृत्युंगर्भं

नपुष्टदेहवाला दूसरेके अन्नको छोड़े ॥ ६२ ॥ व अन्यके दोष कहनेसे हीन व कुछ भी दानमें परायणहै उसने अनते हजार वर्षका बडातप कियाहै ॥ ६३ ॥ व क्षेत्रका माहात्म्य जानता हुआ जो जन जीवन पर्य्यन्त वहां बसता है वह जन्म मरणका डर तजकर उत्तममुक्ति को जाताहै ॥ ६४ ॥ जो मुक्ति अनते योग व सैकड़ों जन्म जन्मान्तरों से नहीं मिलती है वह यहां परमेश्वर की प्रसन्नता से अनादर से मिलनेहोग्य होवे है ॥ ६५ ॥ व जो ब्रह्मघाती भी भाग्य से काशी के सम्मुख चले तो उस क्षेत्र की महिमा से ब्रह्महत्या भी बाहर से ही लौटजाती है ॥ ६६ ॥ जो मनुष्य मरणपर्यन्त काशी को नहीं त्यागता है उसकी केवल ब्रह्महत्याही नहीं

किन्तु अविद्या माया भी लौटजाती है ॥ ६७ ॥ व जो कि अनन्य होकर उस क्षेत्र को नहीं छोड़ता है वह दुस्सह जन्म जरा मरण को त्याग देता है ॥ ६८ ॥ व जो बुद्धिमान् मनुष्य पृथ्वी में फिर जन्म न चाहे तो देव ऋषि समूहों से सेवित काशी को न त्यागे ॥ ६९ ॥ जो विश्वनाथ के पास पहुँचकर संसारभयभञ्जनहार काशीक्षेत्र को नहीं छोड़ता है वह फिर नहीं जन्मता है ॥ ७० ॥ हजारों पापों को कर यहां पिशाच होना वर है परन्तु काशी विना सैकड़ों यज्ञों से मिलाहुआ स्वर्ग श्रेष्ठ नहीं है ॥ ७१ ॥ क्योंकि जब अन्तकाल में वायु से व्यथित मनुष्यों के मर्मस्थान छेदे भेदे से जाते हैं और सुधि नहीं जाती है ॥ ७२ ॥ तब तहां प्राण

वासंसुदुःसहम् ॥ ६८ ॥ अविमुक्तंनिषेवेत देवर्षिगणसेवितम् ॥ यदीच्छेन्मानवोधीमान्नपुनर्जननंभुवि ॥ ६९ ॥ अविमुक्तंनमुञ्चेत संसारभयमोचनम् ॥ प्राप्यविश्वेश्वरंदेवं नसभूयोऽभिजायते ॥ ७० ॥ कृत्वापापसहस्राणि पिशाचत्वं वरंत्विह ॥ नतुक्रतुशतप्राप्यःस्वर्गःकाशीपुरींविना ॥ ७१ ॥ अन्तकालेमनुष्याणां भिद्यमानेषुमर्मसु ॥ वातेनातुद्यमानानां स्मृतिर्नैवोपजायते ॥ ७२ ॥ तत्रोत्क्रमणकालेतु साक्षाद्विश्वेश्वरःस्वयम् ॥ व्याचष्टेतारकंब्रह्म येनासौतन्मयोभवेत ॥ ७३ ॥ अशाश्वतमिदंज्ञात्वामानुष्यंबहुकिल्बिषम् ॥ अविमुक्तंनिषेवेत संसारभयनाशनम् ॥ ७४ ॥ विघ्नैरालोड्यमानोपि योऽविमुक्तंनमुञ्चति ॥ नैःश्रेयसींश्रियंप्राप्य दुःखान्तंसोधिगच्छति ॥ ७५ ॥ महापापौघशमनीं पुण्योपचयकारिणीम् ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदामन्ते कोनकाशींसुधीःश्रयेत् ॥ ७६ ॥ एवंज्ञात्वातुमेधावी नाविमुक्तंत्यजेन्नरः ॥ अविमुक्तप्रसादेन विमुक्तोजायतेयतः ॥ ७७ ॥ अविमुक्तस्यमाहात्म्यं षड्भिर्वक्त्रैःकथंमया ॥ वक्तुंशक्यंनशक्नोति सहस्रा

निकलने के समय साक्षात् विश्वनाथ जी आपही उस तारक मन्त्र को कहते हैं कि जिससे वह उनका रूप होजाता है ॥ ७३ ॥ और बहुत पाप हैं जिसमें उस इस मनुष्यताको अनित्य जानकर संसारभयनाशी काशीक्षेत्र को सेवे ॥ ७४ ॥ व विघ्नों से बाधा जाता भी जो काशी को नहीं त्यागता है वह मुक्तिसम्बन्धिनी सम्पत्ति को पाकर दुःख के अन्तको प्राप्त होताहै ॥ ७५ ॥ इससे कौन बुद्धिमान् महापापसमूहहारिणी पुण्यवृद्धिकारिणी और अन्तमें भुक्तिमुक्तिदायिनी काशी को न सेवे ॥ ७६ ॥ इस भांति से जानकर बुद्धिमान् मनुष्य काशी को न छोड़े जिस से उस अविमुक्तक्षेत्र की प्रसन्नता से संसारबन्धन से विमुक्त होजाता है ॥ ७७ ॥

काशी के उस उत्तम माहात्म्य को मैं छःमुखों से नहीं कहसक्ता हूं जिसके कहने को सहस्रमुख शेषभी नहीं समर्थ होतेहैं॥ ७८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेस्कन्दागस्त्यदर्शनंनामपञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । छब्बिस के अध्याय में काशी की उत्पत्ति । आनँदवन अविमुक्त अरु नाम अर्थ अति सत्ति ॥ अगस्त्य जी बोले कि हे ऐश्वर्य्यसम्पन्न कार्त्तिकेय ! जो आप प्रसन्न हो व मुझ में आपकी उत्तम प्रीति है तो जो मेरे मन में बहुत दिनसे टिका है उस को कहो ॥ १ ॥ कि यह काशीक्षेत्र कब से लगाकर पृथिवीतल

स्योपियत्परम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेस्कन्दागस्त्यदर्शनंनामपञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥

अगस्तिरुवाच ॥ प्रसन्नोसियदिस्कन्द मयिप्रीतिरनुत्तमा ॥ तत्समाचक्ष्वभगवंश्चिरंयन्मेहृदिस्थितम् ॥ १ ॥ अविमुक्तमिदंक्षेत्रं कदारभ्यभुवस्तले ॥ परांप्रथितिमापन्नं मोक्षदञ्चाभवत्कथम् ॥ २ ॥ कथमेषात्रिलोकीड्या गीयतेमणिकर्णिका ॥ तत्रासीत्किम्पुरास्वामिन्यदानाऽमरनिम्नगा ॥ ३ ॥ वाराणसीतिकाशीति रुद्रावासइतिप्रभो ॥ अवापनामधेयानि कथमेतानिसापुरी ॥ आनन्दकाननंरम्यमविमुक्तमनन्तरम् ॥ ४ ॥ महाश्मशानइतिचकथंख्यातांशिखिध्वज ॥ एतदिच्छाम्यहंश्रोतुं सन्देहंमेऽपनोदय ॥ ५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ प्रश्नभारोयमतुलस्त्वयायःसमुदाहृतः ॥ कुम्भयोनेऽमुमेवार्थमप्राक्षीदम्बिकाहरम् ॥ ६ ॥ यथाचदेवदेवेन सर्वज्ञेननिवेदितम् ॥ जगन्मातुःपुरस्ताच्च तथैवकथयामिते ॥ ७ ॥ महाप्रलयकालेच नष्टेस्थावरजङ्गमे ॥ आसीत्तमोमयंसर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥ ८ ॥ अचन्द्रमनहोरात्र

में बड़ी प्रसिद्धि को पहुँचा और कैसे मोक्षदाता हुआ है॥ २॥ हे स्वामिन् ! यह मणिकर्णिका त्रिलोकसे प्रशंसनीय गाई गईहै व पहले जब तहां गङ्गा न थीं तब क्यारहा था ॥ ३ ॥ हे प्रभो ! उस पुरी ने वाराणसी काशी और रुद्रावास इन नामों को कैसे पाया है अनन्तर अतिरम्य आनन्दवन व अविमुक्त ॥ ४ ॥ और महाश्मशान यह नाम कैसे कहागया है हे मयूरध्वज ! मैं इसके सुनने की इच्छा करताहूं आप मेरे सन्देहको दूरकरें॥ ५ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे अगस्त्य ! आपने जिरा इस अनूप प्रश्नभारको कहा इसी अर्थको पार्वतीने शिवसे पूंछा था॥ ६॥ और जैसे सर्वज्ञ महादेव ने जगत्की माताके आगे कहाहै वैसे मैं तुमसे कहताहूं॥ ७ ॥ कि महाप्रलयकाल

में स्थावर जंगमरूप जगत् के नष्ट होतेही सब आवरणरूप अज्ञानसे व्याप्त होगया था व सूर्य, ग्रह और नक्षत्रोंसे हीन ॥ ८ ॥ व चन्द्रमा, दिन व रात, अग्नि, वायु भूमि, विक्षेपात्मक अज्ञान और आकाश इन सबोंसे शून्य व रात्री की चेतनता से प्रकारानीय ॥ ९ ॥ व देखना सुनना शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध और पूर्वादि दिशाविभागों से रहित जैसे हो वैसे होगया था ॥ १० ॥ यों अन्तररहित व ज्ञानशून्य जी से छेदने योग्य आवरणरूप अज्ञान के होतेही वह सत्यरूप ब्रह्म रहगया जिसको श्रुतियां सदा एक कहती हैं ॥ ११ ॥ जो कि मनके अगोचर व किसी भांति से वचनों का विषय नहीं है व नामरूप और रङ्गसे रहित जो दुबला मोटा ॥ १२ ॥ छोटा

मनग्न्यनिलभूतलम् ॥ अप्रधानंवियच्छून्यमन्यतेजोविवर्धितम् ॥ ९ ॥ द्रष्टृत्वादिविहीनञ्च शब्दस्पर्शसमुज्झितम् ॥ व्यपेतगन्धरूपञ्च रसत्यक्तमदिङ्मुखम् ॥ १० ॥ इत्थंसत्यन्धतमसिसूचीभेद्येनिरन्तरे ॥ तत्सद्ब्रह्मेतियच्छ्रुत्या सदैकंप्रतिपाद्यते ॥ ११ ॥ अमनोगोचरोवाचां विषयंनकथंचन ॥ अनामरूपवर्णञ्च नस्थूलंनचयत्कृशम् ॥ १२ ॥ अह्रस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिवर्जितम् ॥ नयत्रोपचयःकश्चित्तथाचापचयोपिच ॥ १३ ॥ अभिधत्तेसचकितंयदस्तीतिश्रुतिःपुनः ॥ सत्यंज्ञानमनन्तञ्च यदानन्दंपरंमहः ॥ १४ ॥ अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति ॥ निर्गुणंयोगिगम्यञ्च सर्वव्याप्येककारणम् ॥ १५ ॥ निर्विकल्पंनिरारम्भं निर्मायंनिरुपद्रवम् ॥ यस्येत्थंसंविकल्प्यन्ते संज्ञाःसंज्ञोदितस्यवै ॥ १६ ॥ तस्यैकलस्यचरतो द्वितीयेच्छाभवत्किल ॥ अमूर्तेनस्वमूर्तिश्च तेनाकल्पिस्वलीलया ॥ १७ ॥ सर्वैश्वर्यगुणोपे

और बड़ा नहीं है व जो कि ह्रस्वता और गुरुतासे हीनहै जिसमें कोई घटती व बढ़ती भी नहीं है ॥ १३ ॥ और वेद भी जिसको (है) यों सशंकित कहते हैं याने किसी भांति की लक्षणा से बोधते हैं व जो कि सत्य, ज्ञानरूप, अनन्त आनन्दमय और प्रकाशरूप है ॥ १४ ॥ व प्रमाणों के बाहर, अन्य आधार से हीन, आत्माधार व जन्मादिविकाररहित निराकार निर्गुण व योगियों से प्राप्य सब में व्यापक व मुख्य कारण है ॥ १५ ॥ व अभेद अकर्मा व माया से परे और उपद्रवहीन है इस भांति से जिस संज्ञारहितकी संज्ञायें कल्पी जाती है ॥ १६ ॥ उस अकेले विचरतेहुये की इच्छाही दूसरी हुई है और रूपरहित उस परब्रह्म ने अपनी मायासे मूर्तिको कल्पित

कर लिया ॥ १७ ॥ जो कि सब ऐश्वर्य गुणों से संयुत व सर्वज्ञानमयी व शुभ व सबसे गई भई सब रूपवाली सबकी स्वामिनी सबकी कारिणी ॥ १८ ॥ व सब से एक वन्दनीय और सबकी आदिभूतहै सदा सबका भलीभांति से करना है जिसका या जिससे उस शुद्धसत्त्वात्मिका ईश्वरीमूर्ति को सब ओर से कल्पितकर ॥ १९ ॥ परमात्मानामक सब घटवासी और अविकार ब्रह्म है वह अन्तर्धान होगया याने छिपगया ॥ २० ॥ हे प्यारी पार्वति ! जो रूपरहित परब्रह्म है उस की मैंही मूर्त्ति हूं अबके व आगे के (नये पुराने) सब पण्डितों ने मुझ को ईश्वर कहा है ॥ २१ ॥ और ब्रह्म के अन्तर्धान होने के अनन्तर अपनी इच्छा से अकेले खेलतेहुये मैंने आपही अपनी देह से अलग न जानेवाली किसी उस मूर्त्ति को अपने अंग से सिरजा है ॥ २२ ॥ कि जिस तुम को प्रधान (प्रलयकाल में जिसमें यह

ता सर्वज्ञानमयीशुभा ॥ सर्वगासर्वरूपाच सर्वदृक्सर्वकारिणी ॥ १८ ॥ सर्वैकवन्द्यासर्वाद्या सर्वदासर्वसत्कृतिः ॥ परिकल्प्येतितांमूर्तिमीश्वरींशुद्धरूपिणीम् ॥ १९ ॥ अन्तर्दधेपराख्यंयद्ब्रह्मसर्वगमव्ययम् ॥ २० ॥ अमूर्तंयत्पराख्यंवै तस्यमूर्तिरहंप्रिये ॥ अर्वाचीनपराचीना ईश्वरंमांजगुर्बुधाः ॥ २१ ॥ ततस्तदेकलेनापि स्वैरंविहरतामया ॥ स्वविग्रहात्स्वयंसृष्टास्वशरीरानपायिनी ॥ २२ ॥ प्रधानंप्रकृतिंत्वाञ्च मायांगुणवतींपराम् ॥ बुद्धितत्त्वस्यजननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम् ॥ २३ ॥ युगपच्चत्वयाशक्त्या साकंकालस्वरूपिणा ॥ मयाऽद्यपुरुषेणैतत्क्षेत्रंचापिविनिर्मितम् ॥ २४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ साशक्तिःप्रकृतिःप्रोक्ता सपुमानीश्वरःपरः ॥ ताभ्याञ्चरममाणाभ्यां तस्मिन्क्षेत्रेघटोद्भव ॥ २५ ॥ परमानन्दरू

कार्य्य समूह अर्पा जाताहै) प्रकृति (महत्तत्त्वादिरूप से परिणाम को पहुँची) मायाशक्ति गुणवती ब्रह्मविद्या व बुद्धितत्त्व या उसके देव हिरण्यगर्भ की माता और विकारहीन (विकारयुत घिरेहुये बड़े जगत् की आधारभूत) कहते हैं ॥ २३ ॥ और एकहींबार तुम प्रकृति व कालपुरुष के साथ उस क्षेत्र को मैंने बनाया है अर्थात् प्रलय में जैसे कुछ करने को न समर्थ रूप से रहती भी मायादि के लिये सृष्टिसमय में जो सामर्थ्य का उपजाना है यही बनाना है वैसे यह काशीक्षेत्र भी अनादि है ॥ २४ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे अगस्त्य ! वह मायाशक्ति प्रकृति कहाती है और वह सबसे परे पुरुष ईश्वरहै वे दोनों उस क्षेत्र में रमने लगे ॥ २५ ॥ जोकि

परमआनन्दरूप हैं और वह क्षेत्र कैसा है कि जो अधिकआनन्दमय व मायासे व्याप्त एक देश में बनाया गया पांचकोस की परिमाणवाला है ॥ २६ ॥ हे मुने ! प्रलयकाल में भी प्रकृति व पुरुष ने जिससे उस क्षेत्र को नहीं तजा उससे उसको अविमुक्त कहते हैं ॥ २७ ॥ और जब भूगोल व जलकी उत्पत्ति न थी तब विहरने के लिये ईश्वर ने इस क्षेत्रको बनाया है ॥ २८ ॥ हे अगस्त्य ! क्षेत्र की इस रहस्य को कोईभी नहीं जानताहै इसलिये चमड़े के नेत्र हैं जिसके याने जो ज्ञान दृष्टि से हीन है उस नास्तिक वेदनिन्दक से कभी न कहना चाहिये ॥ २९ ॥ व श्रद्धावान् विनय समेत त्रिकालज्ञाननेत्र शान्त व शिवभक्त और मुक्तिचा-

पाभ्यां परमानन्दरूपिणि ॥ पञ्चक्रोशपरीमाणे स्वपादतलनिर्मिते ॥ २६ ॥ मुनेप्रलयकालेपि नतत्क्षेत्रंकदाचन ॥ विमुक्तंहिशिवाभ्यांयदविमुक्तंततोविदुः ॥ २७ ॥ नयदाभूमिवलयं नयदाऽपांसमुद्भवः ॥ तदाविहर्तुमीशेन क्षेत्रमेतद्विनिर्मितम् ॥ २८ ॥ इदंरहस्यंक्षेत्रस्य वेदकोपिनकुम्भज ॥ नास्तिकायनवक्तव्यं कदाचिच्चर्मचक्षुषे ॥ २९ ॥ श्रद्धालवे विनीताय त्रिकालज्ञानचक्षुषे ॥ शिवभक्तायशान्ताय वक्तव्यञ्चमुमुक्षवे ॥ ३० ॥ अविमुक्तंतदारभ्य क्षेत्रमेतदुदीर्यते ॥ पर्यङ्कभूतंशिवयोर्निरन्तरसुखास्पदम् ॥ ३१ ॥ अभावःकल्प्यतेमूढैर्यदाचशिवयोस्तयोः ॥ क्षेत्रस्यास्यतदाभावः कल्प्योनिर्वाणकारिणः ॥ ३२ ॥ अनाराध्यमहेशानमनवाप्यचकाशिकाम् ॥ योगाद्युपायविज्ञोपि नानिर्वाणमवाप्नुयात् ॥ ३३ ॥ अस्यानन्दवनंनाम पुराकारिपिनाकिना ॥ क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वादविमुक्तमनन्तरम् ॥ ३४ ॥ आनन्दकन्द

ही से कहना चाहिये ॥ ३० ॥ वह यह क्षेत्र जोकि शिव व शिवा (पुरुष प्रकृति) इन दोनोंका पलँगरूप व सदा सुखका स्थान है तबसे लगाकर अविमुक्त इस नाम से कहाता है ॥ ३१ ॥ जब मूढ़लोग अनुमानसे उन शिवा शिव का अभाव (न होना) कल्पें तब इस मुक्तिकर्ता काशीक्षेत्रका अभाव कल्पने योग्य है अर्थात् जैसे परमेश्वरी परमेश्वरका अभाव कभी नहीं है वैसेही काशी का भी अभाव कभी नहीं है ॥ ३२ ॥ किन्तु योगादि उपायों का ज्ञाता भी महेश को न पूज व काशी को न पहुँचकर बहुते विघ्नों से मोक्ष को नहीं प्राप्तहोता है ॥ ३३ ॥ और शिवने पहले आनन्द का कारण होने से इस क्षेत्र का आनन्दवन व अ-

नन्तर अविमुक्त नाम किया है ॥ ३४ ॥ व जिससे उस आनन्दवन में सर्वलिंग आनन्दों के मूलकारण ब्रह्मज्ञानों के अंगुसा याने उनके उपजाने वाले हैं इससे आनन्दवन नाम है ॥ ३५ ॥ हे अगस्त्य! हे मुने! इस भांति से अविमुक्त कहागया याने प्रसिद्ध हुवा है अनन्तर जैसे मणिकर्णिका हुई है वैसे कहता हूं॥ ३६ ॥ हे कुम्भसम्भव! आगे उस आनन्दवन में रमतेहुये प्रकृति पुरुषरूप गौरीशङ्कर के यह इच्छा हुई कि अन्य कोई भी निश्चय से सिरजने योग्य है ॥ ३७ ॥ क्योंकि जिसमें महाभार धारने के बाद हम दोनों यथेच्छाचारी होवें व काशी में मरे जन्तुओं को केवल मोक्ष देना कियाकरें ॥ ३८ ॥ और ऐसा सिरजना चाहिये

बीजानामङ्कुराणियतस्ततः ॥ ज्ञेयानिसर्वलिङ्गानि तस्मिन्नानन्दकानने ॥ ३५ ॥ अविमुक्तमितिख्यातमासीदित्थं घटोद्भव ॥ तथाचाख्याम्यथमुने यथासीन्मणिकर्णिका ॥ ३६ ॥ प्रागानन्दवनेतत्र शिवयोरममाणयोः ॥ इच्छेत्यभूत्कलशजसृज्यःकोप्यपरःकिल ॥ ३७ ॥ यस्मिन्न्यस्तेमहाभारे आवांस्वःस्वैरचारिणौ ॥ निर्वाणश्राणनंकुर्वः केवलं काशिशायिनाम् ॥ ३८ ॥ सएवसर्वंकुरुतेसएवपरिपातिच ॥ सएवसंवृणोत्यन्ते सर्वैश्वर्यनिधिःसच ॥ ३९ ॥ चेतःसमुद्रमाकुञ्च्य चिन्ताकल्लोलदोलितम् ॥ सत्त्वरत्नंतमोग्राहं रजोविद्रुमवल्लितम् ॥ ४० ॥ यस्यप्रसादात्तिष्ठावः सुखमानन्दकानने ॥ परिक्षिप्तमनोवृत्तौ क्वहिचिन्तातुरेसुखम् ॥ ४१ ॥ संप्रधार्येतिसविभुःसर्वतश्चित्स्वरूपया ॥ तयासहजगद्धात्र्याजगद्धाताऽथधूर्जटिः ॥ ४२ ॥ सव्येव्यापारयाञ्चक्रे दृशमङ्गेसुधास्रुचम् ॥ ततःपुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुन्द

कि वही सबको करे व पाले व अन्त में घाले और वही सब ऐश्वर्यों का निधान होवे ॥ ३९ ॥ व हम दोनों जने चिन्तारूप लहरों से चलायमान व सतोगुण रत्नों से पूर्ण व तमोगुण ग्राह से युक्त और रजोगुणरूप मूंगा समूहसे संवलित चित्तसमुद्र को निश्चलकर ॥ ४० ॥ जिसके प्रसादसे आनन्दवन में सुख से टिकें क्योंकि ऐसी वैसी डुलाया मनकी वृत्तियों को जिसने ऐसे चिन्तावश मनुष्य में सुख कहां है ॥ ४१ ॥ तदनन्तर ऐसा विचार धारकर सब ओर से चैतन्य ज्ञानरूपिणी उस जगदम्बा के साथ समर्थ व जगत् के पिता विश्वनाथने ॥ ४२ ॥ अमृत चुवानेवाली दृष्टि को बायें अंग में व्यापार किया याने बायें ओर को देखा

अनन्तर तीनों लोक से सुन्दर एक पुरुष प्रकटहुआ ॥ ४३ ॥ हे मुने! जो कि शान्त शुद्ध मन व सतोगुणसे पूर्ण व गम्भीरतासे समुद्रको जीते हुये व क्षमावान्है और नहीं मिली है समता जिसकी ऐसा अनूपरूप वाला हुआ ॥ ४४ ॥ और इन्द्रनील मणिसम सुन्दर शोभावान् उत्तम कमलनयन व सोने के समान चटकीले दो पीले रेशमी वस्त्र पहने ॥ ४५ ॥ व सोहते हुये प्रचण्ड बाहुदण्डयुगल से विराजित है और अधिक लसत है सुगन्धित नाभिकुण्ड का कमल जिसका ॥ ४६ ॥ वह मुख्य जिस से सब गुणों का स्थान व सब कलाओं का निधान और सब में उत्तम है इससे पुरुषोत्तम नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४७ ॥ तदनन्तर महामहिमा गहनेहैं

रः ॥ ४३ ॥ शान्तःसत्त्वगुणोद्रिक्तो गाम्भीर्यजितसागरः॥ तथाचक्षमयायुक्तो मुनेऽलब्धोपमोऽभवत् ॥ ४४ ॥ इन्द्रनीलद्युतिःश्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः ॥ सुवर्णाकृतिसुच्छायदुकूलयुगलावृतः ॥ ४५ ॥ लसत्प्रचण्डदोर्दण्डयुगलद्वयराजितः ॥ उल्लसत्परमामोदनाभीह्रदकुशेशयः ॥ ४६ ॥ एकःसर्वगुणावासस्त्वेकःसर्वकलानिधिः ॥ एकःसर्वोत्तमो यस्मात्ततोयःपुरुषोत्तमः ॥ ४७ ॥ ततोमहान्तंतंवीक्ष्यमहामहिमभूषणम् ॥ महादेवउवाचेदं महाविष्णुर्भवाच्युत ॥ ४८ ॥ तवनिःश्वसितंवेदास्तेभ्यःसर्वमवैष्यसि ॥ वेददृष्टेनमार्गेण कुरुसर्वंयथोचितम् ॥ ४९ ॥ इत्युक्त्वातंमहेशानो बुद्धितत्त्वस्वरूपिणम् ॥ शिवयासहितोरुद्रो विवेशानन्दकाननम् ॥ ५० ॥ ततःसभगवान्विष्णुर्मौलावाज्ञांनिधायच ॥ क्षणंध्यानपरोभूत्वातपस्येवमनोदधौ ॥ ५१ ॥ खनित्वातत्रचक्रेण रम्यांपुष्करिणींहरिः ॥ निजाङ्गस्वेदसन्दोहसलिलैस्तामपूरयत् ॥ ५२ ॥ समाःसहस्रंपञ्चाशत्तपउग्रञ्चचारसः ॥ चक्रपुष्करिणीतीरे तत्रस्थाणुसमाकृतिः ॥ ५३ ॥ त

जिसके उस व्यापक या श्रेष्ठको देख महादेवने यह कहा कि हे अच्युत! तुम महाविष्णुहो ॥ ४८ ॥ वेद तुम्हारे श्वास हैं उन से सब जानोगे व वेदों में देखी गली से सब यथोचित कामकरो ॥ ४९ ॥ सम्पूर्ण बुद्धितत्त्व के स्वामी हिरण्यगर्भरूप याने नाभिकमलके द्वारा बुद्धिनायक ब्रह्माके उपजाने वाले उनसे यों कहकर शक्ति समेत दुःखहारी महाऐश्वर्य्यधारी शिवजी आनन्दवन में पैठ गये ॥ ५० ॥ उसके बाद उन भगवान् विष्णु ने शिर में आज्ञाधर क्षणभर ध्यान में तत्पर हो तपस्या में ही मनको धारण किया ॥ ५१ ॥ व भक्तभयहारी महाविष्णु जी ने चक्रसे छोटी तलैया खनकर उसको अपनी देहके पसीना रूप पानी से पूर्ण कर दिया ॥ ५२ ॥

और उस चक्रपुष्करिणी के किनारे ठूंठके समान अडोल अंगवाले उन्होंने पचास हजार वर्षतक घोर तपस्या किया ॥ ५३ ॥ तब तपस्याके तेज से जगमगाते हुये व आंखमूंदे अडोल अंग को देख कर वे पार्वती समेत सबके सुखदायक नायक भगवान् शिवजी ॥ ५४ ॥ बार बार मूड़ डुलाने वाले हो उन इन्द्रियनायक विष्णुसे बोले कि यह तपस्या की अधिकाई व मनकी धिराई आश्चर्य्य है॥ ५५ ॥ और आश्चर्य्य है कि यह विना ईंधन की आग निरन्तर ज्वलती है याने तप तेजसे दिव्य देह दीपती है हे सुठिसज्जन महाविष्णो ! तुम तपस्या से पूर्ण हो उस से कुछ प्रयोजन नहीं है अब वर को अङ्गीकार करो ॥ ५६ ॥ ऐसे दो तीन बार कहे हुये इस शिवजी के

तःसभगवानीशो मृडान्यासहितोमृडः ॥ दृष्ट्वाज्वलन्तंतपसानिश्चलंमीलितेक्षणम् ॥ ५४ ॥ तमुवाचहृषीकेशंमौलिमान्दोलयन्मुहुः ॥ अहोमहत्त्वंतपसस्त्वहोधैर्यंचचेतसः ॥ ५५ ॥ अहोअनिन्धनोवह्निर्ज्वलत्येषनिरन्तरम् ॥ अलन्तप्त्वामहाविष्णो वरंवरयसत्तम ॥ ५६ ॥ मृडस्याम्रेडितमिदंप्रत्यभिज्ञायभाषितम् ॥ उन्मीलितदृगम्भोजः समुत्तस्थौचतुर्भुजः ॥ ५७ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ यदिप्रसन्नोदेवेश देवदेवमहेश्वर ॥ भवान्यासहितंत्वान्तु द्रष्टुमिच्छामिसर्वदा ॥ ५८ ॥ सर्वकर्मसुसर्वत्र त्वामेवशशिशेखर ॥ पुरश्चरन्तंपश्यामि यथातन्मेवरस्तथा ॥ ५९ ॥ त्वदीयचरणाम्भोजमकरन्दमधूत्सुकः ॥ मच्चेतोभ्रमरोभ्रान्तिं विहायास्तुसुनिश्चलः ॥ ६० ॥ श्रीशिवउवाच ॥ एवमस्तुहृषीकेश यत्त्वयोक्तंजनार्दन ॥ अन्यंवरंप्रयच्छामि तमाकर्णयसुव्रत ॥ ६१ ॥ त्वदीयस्यास्यतपसो महोपचयदर्शनात् ॥ यन्मयांदोलितोमौलिरहिश्रवणभूषणः ॥ ६२ ॥ तदांदोलनतःकर्णात्पपातमणिकर्णिका ॥ मणिभिःखचितारम्या ततोऽस्तुमणि

वचन को जानकर नयनकमल खोलेहुये चतुर्भुज भगवान् उठते भये ॥ ५७ ॥ श्री विष्णु जी बोले कि हे देवोंके देव ! हे देवनाथ ! हे विश्वनाथ ! जो आप प्रसन्नहो तो मैं भवानी समेत आप को सदैव देखा चाहताहूं ॥ ५८ ॥ हे चन्द्रभाल ! जैसे मैं रावते सब कामों में आगे विचरते हुये आप कोही देखों वैसेही मेरावरहै ॥ ५९ ॥ और मैं ही ईश्वर हूँ इस भ्रमको छोड़कर आपके चरणकमलों के रसरूप मधुका उत्कण्ठित हुआ मेरामन भौंर अच्छी प्रकार से अचल होवे ॥ ६० ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे अच्छे व्रतवाले इन्द्रियनायक जनसुखदायक ! तुमको अन्य वरदान देताहूं उसको सुनो ॥ ६१ ॥ जिससे मैंने तुम्हारी इस तपस्याकी बड़ी बढ़ती के देखने से सर्प्पों से भूषित श्र-

वण संयुक्त शिरको डुलायाहै ॥ ६२ ॥ और उसके डुलाने से मणिजटित मनोरम मणिकाकुण्डल कानसे गिरपड़ाहै उससे इस तीर्थ का मणिकर्णिका नाम होगा ॥ ६३ ॥ हे शङ्खचक्रगदाधर ! तुम्हारे चक्र के खनने से यह शुभ तीर्थ आगे चक्रपुष्करिणी तीर्थ कहागया था ॥ ६४ ॥ व जब यह मणिकुण्डल मेरे कान से गिराहै तब से लगाकर इस लोक में मणिकर्णिका नाम से प्रसिद्ध होवे ॥ ६५ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे प्यारी हिमवान् कुमारी के प्यारे ! यहां आपका मोतीमण्डित कुण्डल गिरने से यह तीर्थों में उत्तम तीर्थ मुक्ति का स्थान प्रसिद्ध होवे ॥ ६६ ॥ हे समर्थ ! जिससे वह प्रसिद्ध अकथनीय ज्योतिरूप परमेश्वर यहां प्रकाशता है इस

कर्णिका ॥ ६३ ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थं पुराख्यातमिदंशुभम् ॥ त्वयाचक्रेणखननाच्छङ्खचक्रगदाधर ॥ ६४ ॥ ममकर्णात्पपातेयं यदाचमणिकर्णिका ॥ तदाप्रभृतिलोकेत्रख्यातास्तुमणिकर्णिका ॥ ६५ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ मुक्ताकुण्डलपातेन तवाद्रितनयाप्रिय ॥ तीर्थानांपरमंतीर्थं मुक्तिक्षेत्रमिहास्तुवै ॥ ६६ ॥ काशतेत्रयतोज्योतिस्तदनाख्येयमीश्वरः ॥ अतोनामापरञ्चास्तु काशीतिप्रथितंविभो ॥ ६७ ॥ अन्यंवरंवरेदेव देयःसोप्यविचारितम् ॥ सतेपरोपकारार्थं जगद्रक्षामणेशिव ॥ ६८ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चिज्जन्तुसंज्ञितम् ॥ चतुर्षुभूतग्रामेषु काश्यांतन्मुक्तिमाप्स्यतु ॥ ६९ ॥ अस्मिंस्तीर्थवरेशम्भो मणिश्रवणभूषणे ॥ सन्ध्यांस्नानंजपंहोमं वेदाध्ययनमुत्तमम् ॥ तर्पणंपिण्डदानञ्च देवतानाञ्चपूजनम् ॥ ७० ॥ गोभूतिलहिरण्याश्वदीपान्नाम्बरभूषणम् ॥ कन्यादानंप्रयत्नेन सप्ततन्तूननेकशः ॥७१॥

से इसका अन्य नाम काशी भी प्रसिद्धहोवे ॥ ६७ ॥ हे देव ! दूजे वर को भी अङ्गीकार करता हूं वह विना विचारेही आपके देने योग्य है किन्तु हे जगत रक्षक शिरोमणि शिव ! वह वर पराये उपकारके अर्थहै ॥ ६८ ॥ कि अण्डज पिण्डज स्वेदज और उद्भिज इन चार प्रकारके देहधारी समूहो में ब्रह्मासे लगाकर गुच्छेतक जो कुछ जन्तुसंज्ञित है वह भी काशीमें मोक्षको पावे ॥ ६९ ॥ हे शम्भो ! इस मणिकर्णिका नाम तीर्थश्रेष्ठमें स्नान सन्ध्या जप होम व उत्तम वेदपाठ तर्प्पण व पितरोंको पिण्डदान व देवोंकी पूजा ॥ ७० ॥ व गौ भूमि तिल सोना घोड़े दीपक अनाज कपड़े गहने और कन्या इनका दान व यत्नसे अनेकों अग्निष्टोमादियज्ञ ॥ ७१ ॥

व व्रतोंका उद्यापन व सांड़ छोड़ना और शिवलिङ्गादिकों का थापन इनमें से कुछ भी यहां यह जानकर जो बड़ा बुद्धिमान् करता है कि क्षणमें जानेवाला जीवना बिजुलीसे चञ्चलहै ॥७२॥ संसारमें बहुत विपत्तिहै व सम्पत्ति क्षणभंगुरहै उस कर्मका फल मुख्य मुक्ति होवे जोकि कभी घटती नहींहै ॥ ७३ ॥ हे ईशान! प्रायोपवेशन याने ईश्वर प्रीत्यर्थ खाना पीना तजकर मरनेको बैठना उसको छोड़कर अन्य आत्मघातके विना जो और भी यहां श्रद्धासहित शुभकर्म है ॥ ७४ ॥ वह कैवल्यनामक मुक्ति सम्पत्ति का कारणहोवे हे विश्वनाथ ! जो जिसको कर पछताता नहीं है व किसीसे किसी समय में कहता नहीं है ॥ ७५ ॥ हे ईश! उसका वह कर्म्म आपकी

व्रतोत्सर्गंवृषोत्सर्गं लिङ्गादिस्थापनंतथा ॥ करोतियोमहाप्राज्ञो ज्ञात्वायुःक्षणगत्वरम् ॥ ७२ ॥ विपत्तिंविपुलांचापि सम्पत्तिमतिभङ्गुराम् ॥ अक्षयामुक्तिरेकास्तु विपाकस्तस्यकर्मणः ॥ ७३ ॥ अन्यच्चापिशुभंकर्म यदत्रश्रद्धयायुतम् ॥ विनात्मघातमीशान त्यक्त्वाप्रायोपवेशनम् ॥ ७४ ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोहेतुस्तदस्तुजगदीश्वर ॥ नानुशोचतिनाख्याति कृत्वाकालान्तरेपियत् ॥ ७५ ॥ तदिहाक्षयतामेतु तस्येशत्वदनुग्रहात् ॥ तवप्रसादात्तस्येश सर्वमक्षयमस्तुतत् ॥ ७६ ॥ यदस्तियद्भविष्यच्च यद्भूतञ्चसदाशिव ॥ तस्मादेतच्चसर्वस्मात्क्षेत्रमस्तुशुभोदयम् ॥ ७७ ॥ यथासदाशिवत्वत्तो नकिञ्चिदधिकंशिवम् ॥ तथानन्दवनादस्मात्किञ्चिन्मास्त्वधिकंक्वचित् ॥ ७८ ॥ विनासाङ्ख्येनयोगेन विनास्वात्मावलोकनम् ॥ विनाव्रततपोदानैः श्रेयोऽस्तुप्राणिनामिह ॥ ७९ ॥ शशकामशकाःकीटाःपतङ्गास्तुरगोरगाः ॥ पञ्चक्रोश्यांमृताःकाश्यां सन्तुनिर्वाणदीक्षिताः ॥ ८० ॥ नामापिगृह्णतांकाश्याः सदैवास्त्वेनसःक्षयः ॥ ८१ ॥ सदाकृतयुगं

दयासे अक्षयताको प्राप्तहोवे याने उस पुण्यका फल कभी न चुके हे ईश्वर! आप की प्रसन्नता से उसका वह सब नाशहीन हो ॥ ७६ ॥ हे सदाशिव ! जो है जो होगा और जो हुआहै उस सबसे अधिक यह क्षेत्र शुभउदयवाला होवे ॥ ७७ ॥ हे सदाशिव ! जैसे आपसे अधिक कल्याणरूप कुछ नहीहै वैसे आनन्दवनसे अधिक कुछ कहीं मतहोवे ॥ ७८ ॥ व प्रकृतिपुरुष का विचार, अष्टाङ्गयोग आत्मज्ञान व्रत तप और दान इन सबके विना भी यहां प्राणियों का कल्याण होवे ॥ ७९ ॥ व शशा मसा कीड़े पांखी घोड़े सर्पआदि जे जन्तु काशीमें मरेंवे मोक्षदीक्षावाले होवें याने आप उनको तारकमन्त्र का उपदेश दो ॥ ८० ॥ व काशीके नाम लेतेहुये

लोगों के पापोंका सदैव नाशहोवे ॥ ८१ ॥ व काशीमें बसते हुये सन्तोंका सतयुग उत्तरायण और महोदयकाल सदैव होवे किन्तु श्रवण नक्षत्र सूर्य्यवार व्यतीपात योग व पूस या माघकी अमावस इस योगको महोदय कहते हैं ॥ ८२ ॥ हे त्रिनेत्र! हे सदाशिव ! वेदोंसे कहे जे कोई पवित्रहैं उनसे यह क्षेत्र बहुत अधिक होवे ॥ ८३ ॥ चारों भी वेदोंको पढ़ करनेसे जो पुण्यहै वह काशीमें एकलाख गायत्रीजपसे होवे ॥ ८४ ॥ व अष्टाङ्गयोग के अभ्याससे भी जो पुण्यहोती है वह पुण्य अधिकता सहितहो श्रद्धासमेत काशीवास से होवे ॥ ८५ ॥ व कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतोंसे जो पुण्य कमाईजाती है वह काशीमें एक उपाससे होवे ॥ ८६ ॥ व अनते सौ वर्ष

चास्तु सदाचास्तूत्तरायणम् ॥ सदामहोदयश्चास्तु काश्यांनिवसतांसताम् ॥ ८२ ॥ यानिकानिपवित्राणि श्रुत्युक्तानि सदाशिव ॥ तेभ्योऽधिकतरंचास्तु क्षेत्रमेतत्रिलोचन ॥ ८३ ॥ चतुर्णामपिवेदानां पुण्यमध्ययनाच्चयत्॥ तत्पुण्यंजायतांकाश्यां गायत्रीलक्षजाप्यतः ॥ ८४ ॥ अष्टाङ्गयोगाभ्यासेन यत्पुण्यमपिजायते ॥ तत्पुण्यंसाधिकंभूयाच्छ्रद्धाकाशीनिषेवणात् ॥ ८५ ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणाद्यैश्च यच्छ्रेयःसमुपार्ज्यते ॥ तदेकेनोपवासेन भवत्वानन्दकानने ॥ ८६ ॥ अन्यत्रयत्तपस्तप्त्वा श्रेयःस्याच्छरदांशतम् ॥ तदस्तुकाश्यांवर्षेण भूमिशय्याव्रतेनहि ॥ ८७ ॥ आजन्ममौनव्रततो यदन्यत्रफलंस्मृतम् ॥ तदस्तुकाश्यांपक्षाहः सत्यवाक्परिभाषणात् ॥ ८८ ॥ अन्यत्रदत्त्वासर्वस्वंसुकृतंयत्समीरितम् ॥ सहस्रभोजनात्काश्यां तद्भूयादयुताधिकम् ॥ ८९ ॥ मुक्तिक्षेत्राणिसर्वाणि यत्संसेव्योदितंफलम् ॥ पञ्चरात्रात्तदत्रास्तु निषेव्यमणिकर्णिकाम् ॥ ९० ॥ प्रयागस्नानपुण्येन यत्पुण्यंस्याच्छिवप्रदम् ॥ काशीदर्शनमात्रेण त

तपस्याकर जो पुण्यहै वह काशीमें एकवर्ष भूमिशायन व्रतसे होवे ॥ ८७ ॥ व अनते जन्मपर्यन्त बोलबन्द करने से जो फल कहागया है वह काशीमें पन्द्रह दिन सत्य बोलने से होवे ॥ ८८ ॥ व अनते सब धन देकर जो पुण्य कहीगई है वह काशी में हजार ब्राह्मणों को भोजन करानेसे दश हजार से भी अधिकहो ॥ ८९ ॥ व सब मुक्तिदायक क्षेत्रोंकी सेवाकर जो फल कहागया है वह यहां मणिकर्णिका का सेवनकर पांच रात्रिसे होवे ॥ ९० ॥ व प्रयाग नहाने की पुण्यसे मुक्ति या कल्याणदा-

यक जो पुण्यहै वह यहां श्रद्धासहित काशी के दर्शनमात्र से होवे ॥ ९१ ॥ व अश्वमेध और राजसूययज्ञ से जो पुण्यहै उस पुण्यको काशीमें तीनरात्रि वसने से अहिंसा सत्य और ब्रह्मचर्य्यादि युत पुरुष पावे ॥ ९२ ॥ व तुलादान देनेसे जो पुण्य भलीभांतिसे मिलताहै वह श्रद्धासहित काशीके दर्शनमात्र मेंही होवे॥९३॥ यों विष्णुका वर सुनकर प्रसन्नमन होकर देवोंके देव विश्वनाथजी ने कहा कि हे मधुदैत्यविनाशन ! वैसेहीहोवे ॥ ९४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे महाबाहो विष्णो ! हे जगत् के उत्पत्ति नाशकर ! सुनो कि तुम जैसे चही वैसे वेदोंकी कही बहुतभांतिकी सृष्टिको करो ॥ ९५ ॥ व पिताकी नाईं धर्म्मसे सब जन्तुओं के रक्षकहोवो व बहुत भांतिके, धर्म-

त्पुण्यंश्रद्धयास्त्विह ॥ ९१ ॥ यत्पुण्यमश्वमेधेन यत्पुण्यंराजसूयतः ॥ काश्यांतत्पुण्यमाप्नोतु त्रिरात्रशयनाद्यमी ॥ ९२ ॥ तुलापुरुषदानेन यत्पुण्यंसम्यगाप्यते ॥ काशीदर्शनमात्रेण तत्पुण्यंश्रद्धयास्तुवै ॥ ९३ ॥ इतिविष्णोर्वरंश्रुत्वा देवदेवोजगत्पतिः ॥ उवाचचप्रसन्नात्मा तथाऽस्तुमधुसूदन ॥ ९४ ॥ श्रीमहादेवउवाच ॥ शृणुविष्णोमहाबाहो जगतःप्रभवाप्यय ॥ विधेहिसृष्टिंविविधांयथावत्त्वंश्रुतीरिताम् ॥ ९५ ॥ पितेवसर्वभूतानां धर्मतःपालकोभव ॥ विध्वंसनीयाविविधा धर्मध्वंसविधायिनः ॥ ९६ ॥ धर्मेतरपथस्थानामुपसंहृतयेहरे ॥ हेतुमात्रंभवान्यस्मात्स्वकर्मनिहताहिते ॥ ९७ ॥ यथापरिणतंसस्यं पतेत्प्रसववन्धनात् ॥ तेपरीणतपाप्मानः पतिष्यन्तितथास्वयम् ॥ ९८ ॥ येचत्वामवमन्यन्ते दर्पिताःस्वतपोबलैः ॥ तेषांचैवोपसंहृत्यै प्रभविष्याम्यहंहरे ॥ ९९ ॥ उपपातकिनोयेच महापातकिनश्चये ॥ तेपिकाशींसमासाद्य भविष्यन्तिगतैनसः ॥ १०० ॥ इदंममप्रियंक्षेत्रं पञ्चक्रोशीपरीमितम् ॥ ममाज्ञाप्रभवेदत्र नान्या

नाशक वेदविरोधी तुम्हारे मारनेयोग्य हैं ॥ ९६ ॥ हे भक्तभयहारिन् ! अधर्ममार्ग में टिकेहुये दुष्टोंके मारने में आप कारणमात्र होवो क्योंकि जिससे वे अपने कर्म्मसेही मरेहैं ॥ ९७ ॥ जैसे अन्तअवस्था को प्राप्त पाकी हुई सस्य दिनों दिन आपसेही बाढ़ वन्दहोने से गिरपड़तीहै वैसे वे धर्मविरोधी भी मरेंगे ॥ ९८ ॥ हे हरे ! अपनी तपस्या के बलसे गर्वित जे तुमको अनादरेंगे उनके मारने को मैं समर्थ हूंगा ॥ ९९ ॥ और जे छोटे व बड़े पापी हैं वे सब काशीमें जाकर शुद्धहोवैंगे ॥ १०० ॥ यह पांच कोस का लम्बा चौंड़ा क्षेत्र मेरा प्याराहै यहां मोक्षदेने और रुद्रपिशाचादिकों के भोगोंमें मेरी आज्ञा प्रभुताकरेगी व अन्य यमराजादिकों की आज्ञा

यहां न समर्थ होगी ॥ १ ॥ हे सुनयनि पार्वति ! अधिक घोरतेज से जो तेजहै उससे ऐसी वैसी फिरतेहुये व तीनों लोकोंकी आश्चर्य्यबुद्धिवाले उन विष्णुजी से मैंने फिर यह कहा ॥ २ ॥ कि हे विष्णो ! काशीवासी पापी जन्तुओंका भी दण्डदायक नायक अन्य नहीं है किन्तु उनका स्वामी मैंहीहूं याने धार्मिकों का मुक्तिदाता व पापियों को रुद्र पिशाच भोगादि पहुँचाताहूं ॥ ३ ॥ और चारसौ कोसमें टिकाहुआभी जो जन मनमें काशीको सुमिरताहै वह अनेकों पापोंसे भराहुआ भी पापोंसे नहीं पीड़ाजाता है ॥ ४ ॥ व जो दूरवासी भी पापीभी मेरे प्यारे काशीक्षेत्र को मरणसमयमें सुमिरे ॥५॥ वह पापसमूहको तजकर स्वर्गके भोगोंको पावे व स्वर्गसे पतितभी

ज्ञाप्रभवेदिह ॥ १ ॥ पुनर्विष्णुर्मयाप्रोक्तो मृडानिशुभलोचने ॥ अत्युग्रतेजसातेजो भ्रमंस्त्रैलोक्यविभ्रमः ॥ २ ॥ पापिनामपिजन्तूनामविमुक्तनिवासिनाम् ॥ नान्यःशासयिताविष्णोतेषांशास्ताऽहमेवहि ॥ ३ ॥ योजनानांशतस्थोपि योऽविमुक्तंस्मरेद्धृदि ॥ बहुपातकपूर्णोऽपिनसपापैःप्रबाध्यते ॥ ४ ॥ ममप्रियस्यक्षेत्रस्ययोऽविमुक्तस्यसंस्मरेत् ॥ प्राणप्रयाणसमयेदूरगोप्यघवानपि ॥ ५ ॥ सपापपूगमुत्सृज्यस्वर्गभोगान्समश्नुते ॥ काशीस्मरणपुण्येनस्वर्गाद्भ्रष्टोहिजायते ॥ ६ ॥ पृथिव्यामेकराड्भूत्वाभुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ प्राप्याविमुक्तंतत्पुण्यान्निर्वाणपदभाग्भवेत् ॥ ७ ॥ बहुकालमुषित्वाऽत्रनियतेन्द्रियमानसः ॥ यद्यन्यत्रविपद्येतदैवयोगाच्छुचिस्मिते ॥ ८ ॥ सोपिस्वर्गसुखंभुक्त्वाभूत्वाक्षितिपतीश्वरः ॥ पुनःकाशीमवाप्याथविन्देन्नैःश्रेयसींश्रियम् ॥ ९ ॥ विष्णोऽविमुक्तेसंवासःकर्मनिर्मूलनक्षमः ॥ द्वित्राणांहिपवित्राणांनिर्वाणायेहजायते ॥ १० ॥ विष्णुरुवाच ॥ देवेशक्षेत्रमाहात्म्यंयोनजानातितत्त्वतः ॥ नश्रद्द

होकर काशी सुमिरने की पुण्यसे फिर मनुष्ययोनि में जन्मे ॥ ६ ॥ व पृथिवी में चक्रवर्त्ती राजाहोकर अनेक भोगोंको भोगकर काशीमें पहुँच उस पुण्यसे मोक्षपद का भागी होवे ॥ ७ ॥ हे पवित्र मन्दहसनि पार्वति ! मन व इन्द्रियों को रोंकेहुआ यहां बहुतकाल बसकर जो दैवयोग से अनते मरे ॥ ८ ॥ तो वह भी स्वर्गका सुख भोगकर अनंतर राजाओंका राजाहो फिर काशीमें जाकर मुक्ति सम्पत्तिको पावे ॥९॥ हे विष्णो ! कर्मवासना उखाड़ने में समर्थ जो काशीमें बसनाहै वह यहां मरने से दो तीन पवित्रलोगों की भी सायुज्य (विश्वेश्वर चतुर्भुजादि मूर्त्तिधर परमात्मा में मिलना या विदेह कैवल्य) के लिये होताहै ॥ १० ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि हे देवेश !

जो काशीकी महिमा को स्वरूप से नहीं जानता व न श्रद्धाकरता और यहां मरता है उसकी मरने से कौन गति होती है ॥ ११ ॥ श्रीशिवजी बोले कि अन्ते अनेक बहुत बड़े पापकरजो श्रद्धाहीन होकर स्वरूपसे क्षेत्रको न जानताहुआ यहां मरताहै ॥१२॥ और हे जनार्दन! हे सुव्रत! जोकि इस क्षेत्रकी महिमाको न जानता हुआ भी यहां मरता है तो उसकी जो गति दिखाई गईहै उसको सुनो कि ॥ १३ ॥ पंचक्रोशी काशीमें पैठतेहुये उसके पापोंका परिवार बाहरही टिकताहै भीतर कभी नहीं पैठताहै ॥ १४ ॥ और डांड़ में विचरते हुये, त्रिशूल पाश हाथवाले गणों के डरसे उसकी पापपरम्परा जब बाहर रह जातीहै तब ॥१५॥ प्रवेशमात्रसे अपाप हुवा मनुष्य सब पापोंसे

धातिम्रियतेमृतेतस्येहकागतिः ॥ ११ ॥ शिवउवाच ॥ अन्यत्रकृत्वापापानिबहूनिसुमहान्तिच ॥ अश्रद्दधानोऽतत्त्वज्ञोयद्यत्रचविपद्यते ॥ १२ ॥ महिम्नन्यनभिज्ञोपिक्षेत्रस्यास्यजनार्दन ॥ तस्ययागतिरुद्दिष्टातांनिशामयसुव्रत ॥ १३ ॥ पञ्चक्रोशींप्रविशतस्तस्यपातकसन्ततिः ॥ बहिरेवप्रतिष्ठेतनान्तर्निर्विशतेक्वचित् ॥ १४ ॥ भयाद्बहिःस्थितायाञ्चतस्यपातकसन्ततौ ॥ त्रिशूलपाशपाणीनांगणानांसीमचारिणाम् ॥ १५ ॥ प्रवेशमात्रादनघःसर्वैरेनोभिरुज्झितः ॥ संस्नायमणिकर्णिक्यांपुण्यंप्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥ १६ ॥ सर्वतीर्थेषुसंस्नानाद्यत्पुण्यंसमवाप्यते ॥ तत्पुण्यमाप्यतेसम्यङ्मणिकर्ण्येकमज्जनात् ॥ १७ ॥ विधिनातत्रसंस्नायमृद्गोमयकुशादिभिः ॥ स्वशाखावारुणैर्मन्त्रैर्दूर्वापामार्गदर्भकैः ॥ १८ ॥ सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यंसर्वदानेषुयत्फलम् ॥ मणिकर्ण्यांविधिस्नातःश्रद्धयातदवाप्नुयात् ॥ १९ ॥ अश्रद्धयापियःस्नातोमणिकर्ण्यांविधानतः ॥ सोपिपुण्यमवाप्नोतिस्वर्गप्राप्तिकरंपरम् ॥ २० ॥ श्रद्धयाविधिवत्स्नात्वा

त्यक्तहोकरमणिकर्णिकामें भलीभांति से स्नान करके अतिउत्तम पुण्यको प्राप्त होता है ॥ १६ ॥ सब तीर्थों में भली भांति स्नान करने से जो पुण्य मिलती है वह पुण्य मणिकर्णिका में एकबार मज्जन करने से भली भांति से प्राप्त कीजाती है ॥ १७ ॥ मृत्तिका गोमय कुशादिक दूब अपामार्ग (लटजीरा) कुशकी पवित्री और अपनी शाखाके वारुण मंत्रो से विधिपूर्वक भली भांति से स्नान कर उन प्रसिद्ध ॥१८॥ सब तीर्थों में जो पुण्यहै और सब दानों में जो फलहै उसको मणिकर्णिका में विधि से नहाया हुवा पुरुष प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥ व जिसने अश्रद्धा से भी मणिकर्णिका में विधिपूर्वक स्नान किया वहभी स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाली परम पुण्य

को प्राप्त होताहै ॥ २० ॥ और श्रद्धा से विधिवत् स्नान कर व तिल कुश और यवों से भली भांति देवादिकों का तर्प्पण कर सब यज्ञों का फल पावै ॥ २१ ॥ व श्रद्धा समेत विधिपूर्वक नहाये हुवा व सब जलक्रिया करनेवाला पुरुष देवोंको भली भांति से पूजकर मंत्रोंको जपता हुवा सब मंत्रोंके फलको पावै ॥ २२ ॥ व जितेन्द्रिय व शिवजी मे वचन बंद करनेवाला मनुष्य मौन से स्नान कर श्रीविश्वेश्वर के दर्शन से सब व्रतों से कीहुई पुण्य को पावै ॥ २३ ॥ व स्नान देव पूज जप व मल और मूत्रका त्याग व दंतधावन और होम में बड़े यत्नसे मौन धारण करे ॥ २४ ॥ विधि समेत अच्छे उपचारों से एकबार श्रीविश्वनाथ जीको भली

कृत्वादेवादितर्पणम् ॥ तिलबर्हिर्यवैःसम्यक्सर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ २१ ॥ श्रद्दधानोविधिस्नातःकृतसर्वोदकक्रियः ॥ जपन्देवान्समभ्यर्च्यसर्वमन्त्रफलंलभेत् ॥ २२ ॥ स्नात्वामौनेनविश्वेशदर्शनान्नियतेन्द्रियः ॥ सर्वव्रतकृतंश्रेयोलभेद्वाचंयमःशिवे ॥ २३ ॥ स्नानेदेवार्चनेजप्येमलमूत्रविसर्जने ॥ मौनंकुर्यात्प्रयत्नेनदन्तधावनहोमयोः ॥ २४ ॥ विश्वेश्वरंसमभ्यर्च्यसूपचारैर्विधानतः ॥ यावज्जीवंशिवार्चायाःफलमाप्नोतिवैसकृत् ॥ २५ ॥ दत्त्वाल्पमपिदेवेशिन्यायेनोपार्जितंधनम् ॥ अविमुक्तेममक्षेत्रेनदरिद्रोभवेत्क्वचित् ॥ २६ ॥ विविधंधनमावर्ज्ययोऽविमुक्तेनयच्छति ॥ संप्राप्यनिधनंमूढोऽन्यत्रशोचतिसर्वदा ॥ २७ ॥ रम्याणियानिरत्नानिगोगजाश्वाम्बराण्यपि ॥ कृतानितानिश्रेयोर्थमविमुक्तनिवासिनाम् ॥ २८ ॥ विश्वेशप्रीणनार्थायधनंनिधनमेववा ॥ न्यायेनकाश्यांयःकुर्यात्सधन्यःसचधर्मवित् ॥ २९ ॥ योसौविश्वेश्वरोदेवःकाशीपुर्यामुमेस्थितः ॥ लिङ्गरूपधरःसाक्षान्ममश्रेयास्पदंहितत् ॥ ३० ॥ अविमुक्तंमहत्क्षेत्रंप

भांति सब ओर से पूजकर जीवन पर्य्यंत शिवपूजा का फल पाताहै यह निश्चय है ॥ २५ ॥ हे देवेशि ! न्यायसे बटोरे हुये थोड़ेभी धनको मेरे अविमुक्त क्षेत्र में देकर कहीं २ दरिद्री न होवे ॥२६॥ जोकि अन्यत्र अनेक भांतिके धनको दानकर काशी में नहीं देताहै वह मूर्ख मरणको भलीभांति से प्राप्तहोकर सदैव शोच करताहै ॥२७॥ व जेकि रमणीक रत्न गौवें हाथी घोड़े और वस्त्रभी हैं वे सब काशी वासी जनोंके सुखके अर्थ किये गयेहैं ॥ २८ ॥ इससे जो कोई विश्वनाथकी प्रसन्नताके लिये न्यायसे काशी में धनको व मरणको करे वह धन्यहै और वही धर्मज्ञ है ॥ २९ ॥ हे पार्वति ! जो यह लिंगरूपधारी विश्वेश्वर देव काशीपुरी में टिके हैं वह साक्षात् मेरे सुख

का स्थान हैं ॥३०॥ पांचकोस परिमाण वाला बड़ा भारी काशी क्षेत्र वह विश्वनाथ नामक एक ज्योतिर्लिंगही जानने योग्य है ॥ ३१ ॥ जैसे एक देशमें टिकाहुवाभी सूर्यमंडल सबों करके सर्वगत देखा जाता है वैसेही काशी में विश्वनाथजी सर्वत्र देख पड़ते हैं ॥ ३२ ॥ बहुत जन्मो में बटोरे हुये निर्विघ्नयोग से अन्यत्र जो फल मिलता है वह काशी में देह त्याग करते हुये को होताहै ॥ ३३ ॥ व अन्यत्र बहुत कालतक सब तपस्याओं को तपकर जितेन्द्रिया को जो फल मिलताहै वह काशीमें एकरात्र से होताहै ॥ ३४ ॥ क्षेत्रकी महिमा को न जानता हुवाभी व श्रद्धासे हीनभी कालसे काशी के प्रवेशमात्र से पापरहित होकर मराहुवा मोक्षको पाताहै॥ ३५ ॥

अक्रोशपरीमितम् ॥ ज्योतिर्लिङ्गंतदेकंहिज्ञेयंविश्वेश्वराभिधम् ॥ ३१ ॥ एकदेशस्थितमपियथामार्तण्डमण्डलम् ॥ दृश्यतेसर्वगंसर्वैःकाश्यांविश्वेश्वरस्तथा ॥ ३२ ॥ निष्प्रत्यूहेनयोगेननानाजन्मार्जितेनच ॥ यत्फलंलभ्यतेऽन्यत्रतत्काश्यांत्यजतस्तनुम् ॥ ३३ ॥ तप्त्वातपांसिसर्वाणिबहुकालंजितेन्द्रियैः ॥ यत्फलंलभ्यतेऽन्यत्रतत्काश्यामेकरात्रतः ॥ ३४ ॥ अक्षेत्रमहिमज्ञोपिश्रद्धाहीनोपिकालतः ॥ काशीप्रवेशादनघोऽमृतत्वंलभतेमृतः ॥ ३५ ॥ कृत्वाप्येनांसिचोग्राणिकालात्प्राप्याथकाशिकाम् ॥ त्यक्त्वातनुंप्रसादान्मेमामेवप्रतिपद्यते ॥ ३६ ॥ विनाममप्रसादंवैकःकाशींप्रतिपद्यते ॥ विनाब्रध्नंविशालाक्षिदिनकृत्कइहोच्यते ॥ ३७ ॥ अप्राप्यकाशींकोदेविनिरन्तरसुखंलभेत् ॥ ब्रह्माद्याःप्राकृतैःपाशैर्यतोबद्धानिरन्तरम् ॥३८॥ चतुर्विंशतिभिःपाशैस्त्रिगुणैःक्रिययादृढैः ॥ कण्ठेबद्धाविमुच्यन्तेकथंकाशींविनाजनाः ॥ ३९ ॥ बहूपसर्गोयोगोयंकृच्छ्रसाध्यन्तपोहियत् ॥ योगाद्भ्रष्टस्तपोभ्रष्टोगर्भक्लेशसहःपुनः ॥ ४० ॥

घोर पापों को करकेभी ,उसके बाद काल से काशी को प्राप्तहोकर व देहको छोड़करमेरे प्रसादसे मुझकोही प्राप्त होजाताहै ॥ ३६ ॥ हे विशालाक्षि ! इस लोकमें मेरी प्रसन्नता विना कौन मनुष्य काशीको जासक्ता है जैसे कि सूर्य्यविना कौन दिनकर्ता कहाताहै॥३७॥हे देवि ! काशीको न पहुँचकर कौन जन निरंतर सुखको पावे जिससे ब्रह्मादिभी मायाकी पाशो से सदैव बँधेहैं ॥ ३८ ॥ इससे धर्मार्थ कामादि क्रियाओंसे दृढ़ व त्रिगुणमयी चौबीस पाशोंसे कठों मे बँधेहुये जन काशी विना किस भांति से छूट सक्ते हैं ॥ ३९ ॥ जिससे यह योग बहुत विघ्नवाला है व तपस्याभी कष्टसे साधने योग्य है इससे योगसे भ्रष्ट और तपस्या से भ्रष्टहुवा पुरुष फिर गर्भक्लेशके

योग्यहै उससे सुबुद्धिमान् मनुष्य सामीप्य से प्रकट अतिशय अधिक श्रमसमूह वाली बुढ़ाई को न प्राप्तहोकर व जीर्ण (पुरानी) पर्णशाला के समान तुच्छ घर को छोड़कर शिवजीकी पुरीको गमन करे ॥ ४९ ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि, हे सूत! अगस्त्यजी के आगे सब पापविनाशिनी इस कथा को कहकर स्कंदजी आनंद से फिर बोले ॥ १५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते मणिकर्णिकाख्याननामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ❁ ॥

दोहा ॥ सत्ताइस अध्याय में वाराणसी निरुक्ति । जानि दशहरा स्तोत्र इत गंगामहिमा उक्ति ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि जैसे आनन्दवन (काशी) यहां वाराणसी इस नाम से प्रख्यात हुआ है वैसे ही मैं महादेवजी के कहे हुये आख्यान को कहता हूं ॥ १ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे त्रैलोक्यसुन्दर, म-

गच्छेत्पुरींधूर्जटेः ॥ ४९ ॥ व्यासउवाच ॥ अगस्त्यस्यपुरःसूतकथयित्वाकथामिमाम् ॥ सर्वपापप्रशमनींपुनःस्कन्दउवाचह ॥ १५० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेमणिकर्णिकाख्याननामषड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ वाराणसीतिप्रथितंयथाचानन्दकाननम् ॥ तथाचकथयामीहदेवदेवेनभाषितम् ॥ १ ॥ ईश्वरउवाच ॥ निशामयमहाबाहोविष्णोत्रैलोक्यसुन्दर ॥ प्राप्तंवाराणसीत्याख्यामविमुक्तंयथातथा ॥ २ ॥ निर्दग्धान्सागरान्श्रुत्वाकपिलक्रोधवह्निना ॥ अश्वमेधाश्वसंयुक्तान्पूर्वजान्स्वान्भगीरथः ॥ ३ ॥ सूर्यवंशेमहातेजाराजापरमधार्मिकः ॥ आरिराधयिषुर्गङ्गांतपसेकृतनिश्चयः ॥ ४ ॥ हिमवन्तंनगश्रेष्ठममात्यन्यस्तराज्यधूः ॥ जगामयशसांराशिरुद्दिधीर्षुःपितामहान् ॥ ५ ॥ ब्रह्मशापाग्निनिर्दग्धान्महादुर्गतिगानपि ॥ विनात्रिमार्गगांविष्णोकोजन्तूंस्त्रिदिवंनयेत् ॥ ६ ॥

हाबाहो, विष्णो! जैसे अविमुक्त (काशी) क्षेत्र वाराणसी इस नाम को प्राप्त हुआ है वैसे तुम सुनो कि ॥ २ ॥ अश्वमेध के घोड़े समेत अपने पुरिखा, सगर के साठसहस्र पुत्रों को श्रीकपिल मुनि की क्रोधाग्नि से जलाये हुये सुनकर भगीरथ ॥ ३ ॥ राजा जोकि सूर्य्यवंश में महातेजस्वी व बड़ा धर्मात्मा व गंगा को पूजना चाहता हुआ व तपस्या के लिये निश्चय कियेथा ॥ ४ ॥ वह मन्त्रियों में राज्यधुरी के धरनेवाला यशोंकी राशिरूप राजा पितामहों के उद्धारनेका चाही होताहुआ पर्वतश्रेष्ठ हिमवान् को गया ॥ ५ ॥ हे विष्णो! गंगा विना अन्य कौन, ब्रह्मशापाग्नि से निश्शेष जलेहुये व बड़ी दुर्गति को गयेहुये लोगोंको

सहनेवाला होताहै ॥ ४० ॥ और काशीमें पापकरके भी जो काशी मेंही मरे तो रुद्र पिशाचभी होकर फिर मुक्तिको पावेगा ॥४१॥ दैव (भाग्य) से काशीमें मरेहुये उन पापी प्राणियों का भी पात (गिरना) नरकमें नहीं होताहै जिससे मैंही उनका गुरु या दंड देनेवालाहूं॥ ४२ ॥ इससे देहको नाशवाली जानकर व गर्भवास की पीडा को स्मरण कर उत्कृष्ट (बड़ीभारी) राज्यकोभी छोडकर निरंतर काशी सेवने योग्यहै ॥ ४३ ॥ और जिससे तर्कणा किये विनाही सामने आकर बडे दारुण यमदूत पाशोंसे बांधकर मारेंगे उससे शीघ्रही काशीको सेवन करे या आधार करे याने उसमे बसे॥ ४४ ॥ जहां पापों से डर नहीं है व जहां यमसेभी डर नहीं है और जहां गर्भवासका

कृत्वापिकाश्यांपापानिकाश्यामेवम्रियेतचेत् ॥ भूत्वारुद्रपिशाचोपिपुनर्मुक्तिमवाप्स्यति ॥ ४१ ॥ काश्यांमृतानांजन्तूनांदैवात्पापकृतामपि ॥ नपातोनरकेतेषांतेषांशास्ताहमेवयत् ॥ ४२ ॥ कायंविज्ञायसापायंस्मृत्वागर्भस्यवेदनाम् ॥ त्यक्त्वाराज्यमपिप्राज्यंसेव्याकाशीनिरन्तरम् ॥ ४३ ॥ अतर्कितंसमभ्येत्ययमदूताःसुदारुणाः ॥ बद्ध्वापाशैर्हनिष्यन्ति क्षिप्रंकाशींततःश्रयेत् ॥ ४४ ॥ नपापेभ्योभयंयत्रनभयंयत्रवैयमात् ॥ नगर्भवासभीर्यत्रतांकाशींकोनसंश्रयेत् ॥ ४५ ॥ अद्यप्रातःपरश्वोवामरणंप्राप्यमेवच ॥ यावत्कालविलम्बोस्तितावत्काशींसमाश्रयेत् ॥ ४६ ॥ प्राप्तेतुमरणेपुंसांपुनर्जन्मपुनर्मृतिः ॥ अपुनर्भवभूमिंचतस्मात्काशींश्रयेद्बुधः ॥ ४७ ॥ पुत्रक्षेत्रकलत्राख्यांत्यक्त्वामायांहिवैष्णवीम् ॥ भवान्तरेनेकरूपाम्भवघ्नींकाशिकांश्रयेत् ॥ ४८ ॥ स्कन्दउवाच ॥ दूरंमेमरणंयुवाहमधुनाधार्य्यंनचित्तेत्वितिश्रोतव्योनिभृतंकृतान्तमहिषग्रैवेयघण्टारवः ॥ नैकस्यात्प्रकटोत्कटश्रमघटामप्राप्यहित्वाद्भुतंजीर्णांपर्णकुटींततःपटुमति

डर नहीं है उस काशीपुरी को कौन न सेवे ॥ ४५ ॥ आज व प्रातःकाल व परसों में मरण प्राप्त होना योग्यही है इससे जबतक कालका विलम्बहै तबतक काशी को भलीभांति से सेवे ॥ ४६ ॥ क्योंकि मरणके प्राप्त होतेही पुरुषों का फिर जन्म और फिर मरना होताहै उससे बुद्धिमान् मनुष्य मुक्तिकी भूमिवाली काशी को सेवे ॥ ४७ ॥ जन्मांतरो में अनेक रूपवाली, पुत्र क्षेत्र और स्त्री नामक, विष्णुमायाको भी छोडकर संसारविनाशिका काशिकापुरीको सेवे ॥ ४८ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, अबहीं मेरा मरना दूरहै व मैं युवाहूं यह चित्तमें न धरना चाहिये जिससे निश्चल या गुप्त जैसे हो वैसे यमराज के महिष (भैसा) की भूषणभूत घंटाका शब्द सुनने

स्वर्गमें पठावे ॥ ६ ॥ क्योंकि वह जलमयी मेरीही दूसरी मूर्त्ति है जोकि मंगलात्मिका, अनेक ब्रह्माण्डों का आधार व गुणोंसे परा प्रकृति ॥ ७ ॥ व शुद्धविद्यास्वरूपा व इच्छा, ज्ञान, क्रिया इन तीनों शक्तिवाली, दयारूपिणी सुखात्मक कैवल्य मोक्षस्वरूपा और शुद्धपरमात्मस्वरूपिणी है ॥ ८ ॥ जिस इस जगद्धात्री परब्रह्मस्वरूपिणीको मैं ब्रह्माण्ड की रक्षा के अर्थ अपनी लीलासे धारण करताहूं ॥ ९ ॥ त्रिलोकमें जे तीर्थ व जे पुण्यक्षेत्र हैं और सर्वत्र जे सब धर्म व दक्षिणा समेत सब यज्ञहैं ॥१०॥ व सब तपस्यायें व छः अंगोंसमेत जे चारभांतिके वेदहैं और हे विष्णो ! हम तुम और ब्रह्मा भी व जे देवसमूह ॥११॥ व सब पुरुषार्थ तथा अनेकभांतिकी

ममैवसापरामूर्तिस्तोयरूपाशिवात्मिका ॥ ब्रह्माण्डानामनेकानामाधारःप्रकृतिःपरा ॥ ७ ॥ शुद्धविद्यास्वरूपाच त्रिशक्तिःकरुणात्मिका ॥ आनन्दामृतरूपाचशुद्धधर्मस्वरूपिणी ॥ ८ ॥ यामेतांजगतांधात्रींधारयामिस्वलीलया ॥ विश्वस्यरक्षणार्थायपरब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥ ९ ॥ त्रैलोक्येयानितीर्थानिपुण्यक्षेत्राणियानिच ॥ सर्वत्रसर्वेयेधर्माःसर्वेयज्ञाःसदक्षिणाः ॥ १० ॥ तपांसिविष्णोसर्वाणिश्रुतिःसाङ्गाचतुर्विधा ॥ अहंचत्वञ्चकश्चापिदेवतानांगणाश्चये ॥ ११ ॥ पुरुषार्थाश्चसर्वेवैशक्तयोविविधाश्चयाः ॥ गङ्गायांसर्वएवैतेसूक्ष्मरूपेणसंस्थिताः ॥ १२ ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वक्रतुषुदीक्षितः ॥ चीर्णसर्वव्रतःसोपियस्तुगङ्गांनिषेवते ॥ १३ ॥ तपांसितेनतप्तानिसर्वदानप्रदःसच ॥ सप्राप्तयोगनियमोयस्तु गङ्गांनिषेवते ॥ १४ ॥ सर्ववर्णाश्रमेभ्यश्चवेदविद्भ्यश्चवैतथा ॥ शास्त्रार्थपारगेभ्यश्चगङ्गास्नायीविशिष्यते ॥ १५ ॥ मनोवाक्कायजैर्दोषैर्दुष्टोबहुविधैरपि ॥ वीक्ष्यगङ्गांभवेत्पूतः पुरुषोनात्रसंशयः॥१६॥ कृतेसर्वत्रतीर्थानित्रेतायांपुष्करम्परं

शक्तियां ये सब सूक्ष्मरूपसे गंगामें टिके हैं ॥१२॥ जो गंगाको सेवता है उसने सब तीर्थोंमें नहाया व यज्ञोंमें दीक्षा लिया और उसनेही सब व्रत किया ॥ १३ ॥ व जो गंगाको सेवताहै उसने तपस्या किया व उसने सब दान दिया और उसने योगके नियम लियाहै॥१४॥व ब्राह्मणादि सब वर्ण ब्रह्मचर्य्यादि आश्रम वैसेही वेदोंके पण्डित और सब शास्त्रोंके अर्थोंको पढ़ पारगयेभये जनोंसे भी गंगा नहानेवाला अधिक होताहै ॥१५॥ मन वचन तनसे उपजे दोषोंसे दुष्टभी पुरुष गंगाको देखकर पवित्र होवे इस

में सन्देह नहीं है ॥१६॥ सतयुगमें सबसे तीर्थरहैं त्रेतामें पुष्कर उत्तमथा द्वापरमें कुरुक्षेत्र और कलियुगमें केवल गंगाहीहै ॥१७॥ हे हरे! आगेके अनेक जन्मों के अभ्यास की वासनाके वशसे व मेरे उत्तम अनुग्रहसे गंगाके किनारे निवास होवे है ॥१८॥ सतयुगमे केवल ध्यान त्रेतामें वहव ध्यान और तपस्याभी द्वापर मे वे दोनों व यज्ञ वैसेही कलियुग में केवल गंगाही मोक्षका कारण हैं ॥ १६ ॥ इससे जो मरणसमयतक गंगाका तीर नहीं छोड़ता है वह वेदान्त को जानता हुआ योगी और सदा ब्रह्मचर्य्य व्रतीहै ॥ २० ॥ कलियुग में मलिनचित्त व पराये धन में मन लगाये व विधिसे हीन कर्म्म करनेवालों की मुक्ति गंगा विना नहीं है ॥ २१ ॥ व दरिद्रा

म् ॥ द्वापरेतुकुरुक्षेत्रंकलौगङ्गैवकेवलम् ॥ १७ ॥ पूर्वजन्मान्तराभ्यासवासनावशतोहरे ॥ गङ्गातीरेनिवासः स्यान्मदनुग्रहतःपरात् ॥ १८ ॥ ध्यानंकृतेमोक्षहेतुस्त्रेतायांतच्चवैतपः ॥ द्वापरेतद्द्वयंयज्ञाःकलौगङ्गैवकेवलम् ॥ १६ ॥ योदेहपतनाद्यावद्गङ्गातीरंनमुञ्चति ॥ सहिवेदान्तविद्योगीब्रह्मचर्यव्रतीसदा ॥ २० ॥ कलौकलुषचित्तानांपरद्रव्यरतात्मनाम् ॥ विधिहीनक्रियाणाञ्चगतिर्गङ्गांविनानहि ॥२१॥ अलक्ष्मीःकालकर्णीचदुःस्वप्नोदुर्विचिन्तितम् ॥ गङ्गागङ्गेतिजपनात्तानिनोपविशन्तिहि ॥ २२ ॥ गङ्गाहिसर्वभूतानामिहामुत्रफलप्रदा ॥ भावानुरूपतोविष्णोसदासर्वजगद्धिता ॥ २३ ॥ यज्ञदानतपोयोगजपाः सनियमायमाः ॥ गङ्गासेवासहस्रांशंनलभन्तेकलौहरे ॥ २४ ॥ किमष्टाङ्गेनयोगेनकिंतपोभिः किमध्वरैः ॥ वासएवहिगङ्गायांब्रह्मज्ञानस्यकारणम् ॥२५॥ अपिदूरस्थितस्यापिगङ्गामाहात्म्यवेदिनः ॥ अयोग्यस्यापि गोविन्दभक्त्यागङ्गाप्रसीदति ॥ २६ ॥ श्रद्धाधर्मःपरःसूक्ष्मःश्रद्धाज्ञानम्परन्तपः ॥ श्रद्धास्वर्गश्चमोक्षश्चश्रद्धयासाप्रसी

कालकर्णी राक्षसी दुष्टस्वप्न और दुर्विचार वे सब गंगागंगा जपने से समीपमें प्रवेश नहीं करते हैं ॥ २२ ॥ हे विष्णो ! सदा सब जगत् की हितकारिणी गंगाही भक्ति के अनुसार इस उस लोकमे फलदात्री हैं ॥ २३ ॥ हे हरे! यज्ञ,दान,तप,योग, जप व शौचादि नियम और अहिंसादि यम ये सब कलियुग में गंगासेवा के हजारों हिस्सों में एक अंशको भी नहीं पाते हैं ॥ २४ ॥ अष्टांगयोग,तप,जप और यज्ञों से क्या है क्योंकि गंगाके किनारे पर बसनाही ब्रह्मज्ञान का कारण है ॥ २५ ॥ हे गोविन्द ! दूरमे टिके भी गगाकी महिमा को जानते हुये अयोग्यजनकी भी भक्ति से गंगाजी प्रसन्न होती हैं ॥ २६ ॥ जिससे श्रद्धा सबसे परे सूक्ष्म धर्म व श्रद्धाज्ञान

व श्रद्धा श्रेष्ठ तप व श्रद्धा स्वर्ग और मोक्षहै इससे वह श्रद्धासे प्रसन्न होती हैं ॥ २७ ॥ अज्ञान विषय सनेह और लोभादिकों से संमूढ़ मनवाले लोगों की श्रद्धा धर्म्म व गंगामें विशेष से नहीं उपजतीहै ॥ २८ ॥ जैसे बाहर टिकाहुआजल नारियरकेभीतर भी टिकाहै वैसेही परब्रह्म जलरूप गंगा ब्रह्माण्ड के बाहर तथा भीतर भीहैं ॥२९॥ गंगाके मिलने से अधिक अन्य लाभ कहीं नहीं है उससे गंगाकी उपासना करे जिससे गंगाही परपुरुष याने परब्रह्म हैं ॥ ३० ॥ हे हरे ! जोकि समर्थ पण्डित व गुणीभी गंगास्नान से हीनहै उसका भी जन्म व्यर्थ है ॥ ३१ ॥ व जो कलियुग में गंगाको न सेवे उसका कुल विद्या यज्ञ तप दान और सब कुछ इस लोकमें वृथा

दति ॥ २७ ॥ अज्ञानरागलोभाद्यैःपुंसांसम्मूढचेतसाम् ॥ श्रद्धानजायतेधर्मेगङ्गायांचविशेषतः ॥ २८ ॥ बहिःस्थितं जलंयद्वन्नारिकेलान्तरेस्थितम् ॥ तथाब्रह्माण्डबाह्यस्थंपरब्रह्माम्बुजाह्नवी ॥ २९ ॥ गङ्गालाभात्परोलाभः क्वचिदन्यो नविद्यते ॥ तस्माद्गङ्गामुपासीतगङ्गैवपरमःपुमान् ॥ ३० ॥ शक्तस्यपण्डितस्यापिगुणिनोदानशीलिनः ॥ गङ्गास्नान विहीनस्यहरेजन्मनिरर्थकम् ॥ ३१ ॥ वृथाकुलंवृथाविद्यावृथायज्ञावृथातपः ॥ वृथादानानितस्येहकलौगङ्गांनयोभ जेत् ॥ ३२ ॥ गुणवत्पात्रपूजायांनस्याद्वैतादृशंफलम् ॥ यथागङ्गाजलस्नानपूजनेविधिनाफलम् ॥३३॥ ममतेजोग्नि गर्भेयंममवीर्यातिसंवृता ॥ दाहिकासर्वदोषाणांसर्वपापविनाशिनी ॥ ३४ ॥ स्मरणादेवगङ्गायाःपापसङ्घातपञ्जरम् ॥ शतधाभेदमायातिगिरिर्वज्रहतोयथा ॥ ३५ ॥ गङ्गांगच्छतियस्त्वेकोयस्तुभक्त्यानुमोदयेत् ॥ तयोस्तुल्यंफलंप्राहु र्भक्तिरेवात्रकारणम् ॥ ३६ ॥ गच्छंस्तिष्ठञ्जपन्ध्यायन्भुञ्जन्जाग्रत्स्वपन्वदन् ॥ यःस्मरेत्सततंगङ्गांसहिमुच्येत

है ॥ ३२ ॥ गुणवान् सुपात्र की पूजामें भी वैसा फल नहीं है जैसे विधिपूर्वक गंगाजलमें नहाने व पूजनेसे फल होताहै ॥ ३३ ॥ यह गंगा अग्निगर्भा व मेरा तेजहै व मेरे वीर्य्य से घिरीहुई सब पापविनाशिनी और सब दोष जलानेवाली है ॥ ३४ ॥ जैसे वज्रसे ताड़ाहुआ पहाड़ भिन्न होजाता है वैसेही पापसमूह का बखतर गंगा के सुमिरणसे ही सैकड़ों भांतिसे खण्डन को प्राप्त होताहै ॥ ३५ ॥ व जो एक कोई गंगाको जाताहै और जो भक्तिसे प्रसन्न होताहै उनके फलको बराबर कहते हैं

क्योंकि इसमें भक्तिही कारणहै ॥३६॥ चलता टिकता जपता ध्यावता खाता जागता सोता और बतलाता हुआ जो सदा गंगाको सुमिरे वही संसारबन्धन से छूटेगा ॥ ३७ ॥ व जो भक्तिसे पितरोंका उद्देशकर गुड़ घी व तिलोंके साथ शहद समेत खीरको गंगाजलमें डालताहै ॥३८॥ हे विष्णो ! उसके पितर सौवर्षतक तृप्त होतेहैं व सन्तुष्ट होकर बाबा परबाबादि पितर अनेकभांति के मनमाने फलोंको देतेहैं ॥ ३९ ॥ जैसे शिवलिंगकी पूजासे सब जगत् पूजित होताहै तैसे गंगास्नान से सब तीर्थोंका फल पाताहै ॥४०॥ जो नर नित्य गंगा नहाकर शिवलिंगको पूजता है वह एक जन्मसेही मोक्षको प्राप्त होता है यह निश्चयहै ॥ ४१ ॥ व नित्यहोम, यज्ञ, व्रत,

बन्धनात् ॥ ३७ ॥ पितॄनुद्दिश्ययोभक्त्यापायसंमधुसंयुतम् ॥ गुडसर्पिस्तिलैःसार्धंगङ्गाम्भसिविनिक्षिपेत् ॥ ३८ ॥ तृप्ताभवन्तिपितरस्तस्यवर्षशतंहरे ॥ यच्छन्तिविविधान्कामान्परितुष्टाःपितामहाः ॥ ३९ ॥ लिङ्गेसम्पूजितेसर्वमर्चितंस्याज्जगद्यथा ॥ गङ्गास्नानेनलभतेसर्वतीर्थफलंतथा ॥४०॥ गङ्गायांतुनरःस्नात्वायोलिङ्गंनित्यमर्चति ॥ एकेनजन्मना मुक्तिंपरांप्राप्नोतिसध्रुवम् ॥ ४१ ॥ अग्निहोत्रंचयज्ञाश्चव्रतदानतपांसिच ॥ गङ्गायांलिङ्गपूजायाःकोट्यंशेनापिनोसमाः ॥ ४२ ॥ गङ्गांगन्तुंविनिश्चित्यकृत्वाश्राद्धादिकंगृहे ॥ स्थितस्यसम्यक्सङ्कल्पात्तस्यनन्दन्तिपूर्वजाः ॥ ४३ ॥ पापानिचरुदन्त्याशुहाकयास्यामइत्यलम् ॥ लोभमोहादिभिःसार्द्धंमन्त्रयन्तिपुनःपुनः ॥ ४४ ॥ यथानगङ्गांयात्येषतथाविघ्नंप्रकुर्महे ॥ गङ्गांगतोयथाचैषनउच्छित्तिंविधास्यति ॥ ४५ ॥ गृहाद्गङ्गावगाहार्थंगच्छतस्तुपदेपदे ॥ निराशानिव्रजन्त्येवपापान्यस्यशरीरतः ॥ ४६ ॥ पूर्वजन्मकृतैःपुण्यैस्त्यक्त्वालोभादिकंहरेः ॥ व्युदस्यसर्वविघ्नौघान्गङ्गांप्राप्नो

दान, तप और जप ये सब गङ्गा किनारे लिंगपूजाके करोड हिस्से की बराबर भी नहीं हैं ॥४२॥ जो कि गङ्गास्नानके लिये जानेको निश्चयकर व घरमें श्राद्धादि करके रुक गयाहै उसके पितर उस अच्छे विचारसेही आनन्दित होतेहैं ॥४३॥ व गङ्गा नहाने जानेको विचार करतेही सब पाप बहुतही रोतेहैं कि हा ! हम कहां जायंगे और लोभमोहादिकोंके साथ बारबार मन्त्र करते हैं कि ॥ ४४ ॥ जैसे गङ्गामें गया हुआ यह हमारी उच्छिन्नता करेगा वैसेही हमभी वैसा करें कि जैसे यह गङ्गाको न जावेगा ॥ ४५ ॥ व गङ्गास्नानके अर्थ घरसे चलते हुये इस पुरुषके पाप पग पग में या क्षण क्षणमें निराशहोकर देहसे दूर भाग जाते हैं ॥ ४६ ॥ हे विष्णो !

पहले जन्मोंकी पुण्योंसे लोभमोहादिकों को छोड़कर व सब विघ्नसमूहोंको दूर करके पुण्यवान् पुरुष गङ्गाको पहुँचताहै ॥ ४७ ॥ व संगसे किसीके पीछे जाना, धन लेना, वाणिज्य और सेवा आदि किसी भांतिसे काममें आसक्त भी जिस मनुष्यने गङ्गा नहाया वह स्वर्गको जाता है ॥ ४८ ॥ जैसे विना इच्छासे भी छुईहुई आग जलाती है वैसेही अनिच्छासे भी नहाई हुई गङ्गा पापको जलादेती है ॥ ४९ ॥ जबतक गङ्गा को नहीं देखताहै तबतक संसारमें भ्रमताहै व गङ्गाकी सेवाकरके जन्तु फिर जन्म मरण के क्लेशों को नहीं देखताहै ॥ ५० ॥ और संशयसे हीनहोकर जिसने गङ्गाजलमें नहाया वह इस लोकमें मनुष्यचर्मसे बधाहुआ देवही है इसमें

तिपुण्यवान् ॥ ४७ ॥ अनुषङ्गेनमौल्येनवाणिज्येनापिसेवया ॥ कामासक्तोपिवामर्त्योगङ्गास्नातोदिवंव्रजेत् ॥ ४८ ॥ अनिच्छयापिसंस्पृष्टोदहनोहियथादहेत् ॥ अनिच्छयापिसंस्नातागङ्गापापंतथादहेत् ॥ ४९ ॥ तावद्भ्रमतिसंसारेयाव द्गङ्गांनसेवते ॥ संसेव्यगङ्गांनोजन्तुर्भवक्लेशंप्रपश्यति ॥ ५० ॥ योगङ्गाम्भसिनिस्नातोभक्त्यासंत्यक्तसंशयः ॥ मनु ष्यचर्मणानद्धःसदेवोनात्रसंशयः ॥ ५१ ॥ गङ्गास्नानार्थमुद्युक्तोमध्येमार्गंमृतोयदि ॥ गङ्गास्नानफलंसोपितदाप्नोतिन संशयः ॥ ५२ ॥ माहात्म्यंयेचगङ्गायाःशृण्वन्तिचपठन्तिच ॥ तेप्यशेषैर्महापापैर्मुच्यन्तेनात्रसंशयः ॥ ५३ ॥ दुर्बुद्धयो दुराचाराहैतुकाबहुसंशयाः ॥ पश्यन्तिमोहिताविष्णोगङ्गामन्यनदीमिव ॥ ५४ ॥ जन्मान्तरकृतैर्दानैस्तपोभिर्नियमै र्व्रतैः ॥ इहजन्मनिगङ्गायांनृणांभक्तिःप्रजायते ॥ ५५ ॥ गङ्गाभक्तिमतामर्थेमहेन्द्रादिपुरेषुच ॥ हर्म्याणिरम्यभोगा निनिर्मितानिस्वयम्भुवा ॥ ५६ ॥ सिद्धयःसिद्धिलिङ्गानिस्पर्शलिङ्गान्यनेकशः ॥ प्रासादारत्नरचिताश्चिन्तामणिगणात्र

सन्देह नहीं है ॥ ५१ ॥ व गङ्गास्नानके लिये तय्यारी कियेहुये जो बीचगली में मरगया तो वहभी गंगास्नान का फल पाता है इसमें संदेह नहीं है ॥ ५२ ॥ व जो लोग गंगाकी महिमा को पढ़ते और सुनते हैं वे भी सम्पूर्ण पापोंसे छूटते हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ५३ ॥ हे विष्णो ! दुर्बुद्धि, दुराचारी व कारणसे धर्म कर्म में संदेह कारी व मोहित और मूर्ख मनुष्य गंगा को अन्य नदियोंके समान देखते हैं ॥ ५४ ॥ आगेके अन्य जन्मों में कियेहुये दान, तप, शौचादिनियम और व्रतोंसे इस जन्म में मनुष्योंकी भक्ति गंगा में उपजती है ॥ ५५ ॥ व ब्रह्माने गंगाके भक्तों के अर्थ इन्द्रादिलोकों में रमणीक नीक भारी भोगधारी महल बनायाहै ॥ ५६ ॥ अणिमादि

आठों सिद्धियां व सिद्धिदाता था प्रत्यक्ष माहात्म्यवाले लिंग व अनेकों पारस पत्थरोंसे बनेहुये या स्पर्शनसे चारफलदायक लिंग व रत्नों से रचित मन्दिर और चिंतामणियोंके समूहभी ॥ ५७ ॥ ये सब कलिकाल पापके डरसे गंगाजलके भीतर टिके हैं इससे ही कलियुग में मनमानी सिद्धिदात्री गंगाजी भली भांतिसे सेवने योग्य हैं ॥ ५८ ॥ जैसे सूर्य्यके उदयसें अन्धकार व वज्रपातके डरसे पहाड़ व गरुड़के देखने से सर्प्प व बयार सेबिदाड़ाहुआ बादल ॥ ५९ ॥ व ब्रह्मज्ञानसे मोह और जैसे सिंहको देखकर मृगा वैसेही गंगाके देखने से सब पाप नाशको पहुंचते है ॥ ६० ॥ व जैसे दिव्य दवाई से रोग, लोभके योगसे गुण अथाहकुण्डमें नहाने से ग्रीष्म

पि ॥ ५७ ॥ गङ्गाजलान्तस्तिष्ठन्तिकलिकल्मषभीतितः ॥ अतएवहिसंसेव्याकलौगङ्गेष्टसिद्धिदा ॥ ५८ ॥ सूर्योदयेत मांसीववज्रपातभयान्नगाः ॥ तार्क्ष्येक्षणाद्यथासर्पामेघावाताहताइव ॥ ५९ ॥ तत्त्वज्ञानाद्यथामोहःसिंहंदृष्ट्वायथामृगाः ॥ तथासर्वाणिपापानियान्तिगङ्गेक्षणात्क्षयम् ॥ ६० ॥ दिव्यौषधैर्यथारोगालोभेनचयथागुणाः ॥ यथाग्रीष्मोष्मसम्पत्तिरगाधह्रदमज्जनात् ॥ ६१ ॥ तूलशैलःस्फुलिङ्गेनयथानश्यतितत्क्षणात्॥ तथादोषाःप्रणश्यन्तिगङ्गाम्भःस्पर्शनाद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ क्रोधेनचतपोयद्वत्कामेनचयथामतिः ॥ अनयेनयथालक्ष्मीर्विद्यामानेनवैयथा ॥ ६३ ॥ दम्भकौटिल्यमायाभिर्यथाधर्मोविनश्यति ॥ तथानश्यन्तिपापानिगङ्गायादर्शनेनतु ॥ ६४ ॥ मानुष्यंदुर्लभंप्राप्यविद्युत्सम्पातचञ्चलम् ॥ गङ्गांयःसेवतेसोत्रबुद्धेःपारंपरंगतः ॥ ६५ ॥ विधूतपापायेमर्त्याःपरंज्योतिःस्वरूपिणीम् ॥ सहस्रसूर्यप्रतिमांगङ्गांपश्यन्तितेभुवि ॥ ६६ ॥ साधारणाम्भसापूर्णांसाधारणनदीमिव ॥ पश्यन्तिनास्तिकागङ्गांपापोपहत

ऋतुके घामकी सम्पत्ति ॥ ६१ ॥ और जैसे आगकी चिनगी से रुईका पर्वत उसी समय नशता है वैसे गंगाजल छूने से मनके सब दोष नशते हैं यह निश्चय है ॥ ६२ ॥ व जैसे क्रोधसे तपस्या कामसे बुद्धि अनीति से लक्ष्मी गर्वसे विद्या ॥ ६३ ॥ और छल कुटिलता व मायासे धर्म विनशताहै वैसे गंगाके दर्शनसेही पाप नशते हैं ॥ ६४ ॥ इससे जो बिजली सी चञ्चल दुर्लभ मनुष्य देहको पाकर गंगाको सेवता है वह बुद्धिके परे पारको गयाहै ॥ ६५ ॥ पृथिवी मे जे मनुष्य पापोंको पछाड़े हैं वे हजार सूर्य्यों के समान जगमगाती हुई परब्रह्मस्वरूपिणी गंगाको देखते है ॥ ६६ ॥ व पापोंसे फूटी हैं आंखें जिनकी वे वेदनिन्दक नास्तिक गंगाको जलसे

भरी साधारण नदी सी देखते हैं ॥ ६७ ॥ व संसारसे छुड़ानेवाले मैंने लोगों पर दया करके गंगा की लहररूप से स्वर्ग की सीढ़ी बनाया है ॥ ६८ ॥ श्रीगंगा के किनारे सब समय शुभ व सब देश शुभ हैं और सब लोग दान देने को सुपात्र हैं ॥ ६९ ॥ जैसे यज्ञों में अश्वमेध जैसे पर्वतों में हिमवान् व जैसे व्रतों में सत्य बोलना जैसे दानों में अभय (किसी को त्रास न देना) ॥ ७० ॥ व जैसे तपस्याओं में प्राणायाम (ध्यान समेत श्वासा खींच रोंक उतारना) जैसे मन्त्रों में ॐकार व धर्मों में भी किसी जन्तुको न मारना और जैसे कामनाओं में लक्ष्मी श्रेष्ठ है ॥ ७१ ॥ व जैसे विद्याओं में वेदान्त व

लोचनाः ॥ ६७ ॥ संसारमोचकश्चाहंजनानामनुकम्पया ॥ गङ्गातरङ्गरूपेणसोपानंनिर्ममेदिवः ॥ ६८ ॥ सर्वएवशुभःकालःसर्वोदेशस्तथाशुभः ॥ सर्वोजनोदानपात्रंश्रीमतीजाह्नवीतटे ॥ ६९ ॥ यथाश्वमेधोयज्ञानांनगानांहिमवान्यथा ॥ व्रतानाञ्चयथासत्यंदानानामभयंयथा ॥ ७० ॥ प्राणायामश्चतपसांमन्त्राणांप्रणवोयथा ॥ धर्माणामप्यहिंसाचकाम्यानांश्रीर्यथावरा ॥ ७१ ॥ यथात्मविद्याविद्यानांस्त्रीणांगौरीयथोत्तमा ॥ सर्वदेवगणानाञ्चयथात्वंपुरुषोत्तम ॥ ७२ ॥ सर्वेषामेवपात्राणांशिवभक्तोयथावरः ॥ तथासर्वेषुतीर्थेषुगङ्गातीर्थंविशिष्यते ॥ ७३ ॥ हरेयश्चावयोर्भेदंनकरोतिमहामतिः ॥ शिवभक्तःसविज्ञेयोमहापाशुपतश्चसः ॥ ७४ ॥ पापपांसुमहावात्यापापद्रुमकुठारिका ॥ पापेन्धनदवाग्निश्चगङ्गेयंपुण्यवाहिनी ॥ ७५ ॥ नानारूपाश्चपितरोगाथागायन्तिसर्वदा ॥ अपिकश्चित्कुलेस्माकंगङ्गास्नायीभविष्यति ॥ ७६ ॥ देवर्षीन्परिसन्तर्प्यदीनानाथांश्चदुःखितान् ॥ श्रद्धयाविधिनास्नात्वादास्यतेसलिलाञ्जलिम् ॥ ७७ ॥ अ

जैसे स्त्रियों में पार्वती उत्तम हैं और हे विष्णो ! जैसे सब देवसमूहों में तुम ॥ ७२ ॥ व जैसे सब सुपात्रों में भी शिवभक्त श्रेष्ठ हैं वैसेही सब तीर्थों में गंगातीर्थ विशेष होता है ॥ ७३ ॥ हे हरे ! जो कि बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य हम और तुम दोनों में भेद नहीं करता है वही शिवभक्त व वही भारी भस्मधारी जानने योग्य है ॥ ७४ ॥ यह पुण्यवाहिनी गंगा छोटे पापरूप धूरिको बौंड़री व बड़े पाप वृक्षों को कुल्हाड़ी व दोनों पापरूप ईंधन को वनकी आगसी है ॥ ७५ ॥ व अनेक रूप पितर सदा यह गाथा गाते हैं कि हमारे कुलमें कभी कोई भी गंगा नहानेवाला होगा ॥ ७६ ॥ व विधिसमेत श्रद्धासे गंगा नहाकर दीन अनाथ और दुःखियोंको दान

देकर देव व ऋषियोंको तर्पणकर हमको जलतिलाञ्जली देगा ॥ ७७ ॥ और हमारे कुलमें वही होवे जो कि शिव व विष्णु में समदर्शी व भक्ति से भी उनके मन्दिरोंका कर्त्ता व उनके मन्दिरोंको झारने बहारने जलछिड़कने लीपने और पोतनेवाला होवे ॥७८॥ अभिलाषरहित व अभिलाषसहित पशु जलजन्तु आदिभी जैसा तैसा जो कोई मनुष्य गंगा में मरा वह नरक को नहीं देखताहै ॥ ७९ ॥ व गंगा किनारे टिके हुये भी जे जन अन्य तीर्थों को प्रशंसते हैं गंगाको बहुत नहीं मानते हैं वे नरकगामी होवे हैं ॥ ८० ॥ जो दुष्ट हम व तुम और गंगासे भी वैर करताहै वह अपने पितरों सहित घोर नरक को जाता है ॥ ८१ ॥ जे साठ हजारगण गंगाको सदा रखाते हैं वे भक्तिहीन

पिनःसकुलेभूयाच्छिवेविष्णौचसाम्यदृक् ॥ तदालयकरोभक्तयातस्यसंमार्जनादिकृत् ॥ ७८ ॥ अकामोवासकामो वातिर्यग्योनिगतोपिवा ॥ गङ्गायांयोमृतोमर्त्योनरकंसनपश्यति ॥ ७९ ॥ तीर्थमन्यत्प्रशंसन्तिगङ्गातीरेस्थिताश्चये ॥ गङ्गांनबहुमन्यन्तेतेस्युर्निरयगामिनः ॥ ८० ॥ मांचत्वांचैवयोद्वेष्टिगङ्गांचपुरुषाधमः ॥ स्वकीयैःपुरुषैःसार्धंसघोरंनरकंव्रजेत् ॥ ८१ ॥ षष्टिर्गणसहस्राणिगङ्गांरक्षन्तिसर्वदा ॥ अभक्तानाञ्चपापानांवासेविघ्नंप्रकुर्वते ॥ ८२ ॥ कामक्रोधमहामोहलोभादिनिशितैःशरैः ॥ घ्नन्तितेषांमनस्तत्रस्थितिंचापनयन्तिच ॥ ८३ ॥ गङ्गांसमाश्रयेद्यस्तुसमुनिःसचपण्डितः ॥ कृतकृत्यःसविज्ञेयःपुरुषार्थचतुष्टये ॥ ८४ ॥ गङ्गायाञ्चसकृत्स्नातोहयमेधफलंलभेत् ॥ तर्पयंश्चपितॄंस्तत्रतारयेन्नरकार्णवात् ॥ ८५ ॥ नैरन्तर्येणगङ्गायांमासंयःस्नातिपुण्यवान् ॥ शक्रलोकेसवसतियावच्छक्रःसपूर्वजः ॥ ८६ ॥ अब्दंयःस्नातिगङ्गायांनैरन्तर्येणपुण्यभाक् ॥ विष्णोर्लोकंसमासाद्यससुखंसंवसेन्नरः ॥८७॥ गङ्गायांस्नातियोमर्त्योयाव

पापियोंके बसनेमें विघ्न करते हैं ॥ ८२ ॥ व वहां काम क्रोध महामोह लोभादि पैने बाणोंसे उनके मनको मारते और स्थितिको हटाते हैं ॥ ८३ ॥ जो गंगाको सेवे वह मुनि है वह पंडित है व वह अर्थ धर्म्म काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थोंमें कृतार्थ जानने योग्यहै ॥८४॥ और एक बार गंगा नहाकर अश्वमेध यज्ञका फल पावे व तहां पितरों को तर्प्पण करताहुवा उनको नरकसमुद्र से तारे ॥ ८५ ॥ व जो पुण्यवान् निरंतर मासभर गंगा में नहाता है वह पितरों समेत तौलों स्वर्ग में बसता है कि जौलों हजार चौयुगी के चौदहें हिस्से कालतक इन्द्र रहते हैं ॥ ८६ ॥ व जो पुण्यसेवी नर नित्य वर्षभर गंगा नहाताहै वह विष्णुलोक मे जाकर सुख से बसता है ॥ ८७ ॥ व

जो जीवन पर्य्यंत याने जौलौं जीता है तौलौं दिनोदिन गंगा नहाता है वह मनुष्य जीवतही संसारसे छूटाहुवा जाननेयोग्यहै और मरने में तो मुक्तहीहै ॥ ८८ ॥ इससे गंगाजलमें तिथि और नक्षत्रादिकी परख न करना चाहिये क्योंकि गंगा नहाने मात्रसे बहुते जन्मोंका बटोरा पाप विनशता है॥ ८९ ॥ व जो सुखसे सेवने योग्य गंगा तीर को नहीं सेवता है वह पंडित भी मूर्ख और समर्थ भी असमर्थ है ॥ ९० ॥ व जो गंगाको नहीं सेवताहै तो अरोग आयु से भी क्याहै जगमगाती हुई शोभा या संपत्ति से क्याहै और विमल बुद्धिसे क्याहै ॥ ९१ ॥ व जो मनुष्य गंगा की मूर्त्तिका मंदिर बनवावे वह यहां भोगकर अंतमें मरकरभी गंगा समेत लोकको जावे ॥ ९२ ॥ व जे

ज्जीवंदिनेदिने ॥ जीवन्मुक्तःसविज्ञेयोदेहान्तेमुक्तएवसः ॥ ८८ ॥ तिथिनक्षत्रपूर्वादिनापेक्ष्यंजाह्नवीजले ॥ स्नानमात्रेणगङ्गायांसञ्चिताघंविनश्यति ॥ ८९ ॥ पण्डितोपिसमूर्खःस्याच्छक्तियुक्तोप्यशक्तिकः ॥ यस्तुभागीरथीतीरंसुखसेव्यंनसंश्रयेत् ॥ ९० ॥ किंवायुषाप्यरोगेणविकासिन्याथकिंश्रिया ॥ किंवाबुद्ध्याविमलयायदिगङ्गांनसेवते ॥ ९१ ॥ यःकारयेदायतनंगङ्गाप्रतिकृतेर्नरः ॥ भुक्त्वासभोगान्प्रेत्यापियातिगङ्गासलोकताम् ॥ ९२ ॥ शृण्वन्तिमहिमानंयेगङ्गायानित्यमादरात् ॥ गङ्गास्नानफलंतेषांवाचकप्रीणनाद्धनैः ॥ ९३ ॥ पितॄनुद्दिश्ययोलिङ्गंस्नपयेद्गाङ्गवारिणा ॥ तृप्ताःस्युस्तस्यपितरोमहानिरयगाअपि ॥ ९४ ॥ अष्टकृत्वोमन्त्रजप्तैर्वस्त्रपूतैःसुगन्धिभिः ॥ प्रोचुर्गाङ्गजलैःस्नानंघृतस्नानाधिकंबुधाः ॥ ९५ ॥ अष्टद्रव्यविमिश्रेणगङ्गातोयेनयःसकृत् ॥ मागधप्रस्थमात्रेणताम्रपात्रस्थितेनच ॥ ९६ ॥ भानवेऽर्घंप्रदद्याच्चस्वकीयपितृभिःसह ॥ सोतितेजोविमानेनसूर्यलोकेमहीयते ॥ ९७ ॥ आपःक्षीरंकुशाग्राणिघृतंमधु

आदर से नित्य गंगामाहात्म्य सुनते हैं उनको गंगा नहाने का फल धनों से पंडितकी प्रसन्नता से होताहै ॥ ९३ ॥ व पितरोंको उद्देशकर जो गंगाजल से शिवलिंग को नहवावे उस के बड़े नरकों में पडे भी पितर तृप्त होवें ॥ ९४ ॥ व ज्ञानी पंडितोंने आठबार मंत्र जप से मंत्रित कपड़े से छाने व सुगंध संयुत गंगाजलों से स्नान को घी से नहवाने से भी अधिक कहा है ॥ ९५ ॥ व जो एकबार भी ताम्र के भाजन में भरे आठ चीजों से मिश्रित साढ़े बारह टकाभर गंगाजल से ॥ ९६ ॥ सूर्य्य को अर्घ देवे वह अपने पितरों सहित अधिक तेज से जगमगाते विमान से सूर्य्यलोक में जाकर पूजा पावे ॥ ९७ ॥ जल दूध कुश डाभ घी शहद गौओं का दही लाले कनेर

के फूल और लाल चंदन भी ॥ ९८ ॥ यह अष्टांग अर्घ दिखाया गया है जोकि बहुतही सूर्य्य के संतोषनेवाला है हे विष्णो ! गंगाजल से अर्घ और पानी से करोड़ों गुण जाननेयोग्य है ॥ ९९ ॥ जो सुबुद्धि गंगा तट में देवस्थान बनावे उसका अपनी शक्ति अनुसार अन्य तीर्थों में देवप्रतिष्ठा करनेसे करोडो गुण अधिक फल होवे ॥ १०० ॥ पीपर बर्गद व आम्र आदि वृक्ष लगाने से व कुवां बावली ताल पौसला यज्ञ अन्न दान और ब्रह्मभोजादिकोसे जो फलहै ॥ १ ॥ वह पुण्य गंगाके दर्शनसे होवे और अन्यत्र फुलवाई आदिको से जो पुण्य है उससे अधिक गंगाजल का स्पर्शनहै ॥ २ ॥ व कन्यादानसे जो पुण्यहै और गोदान व अन्नदानसे जो पुण्य है वह पुण्य चुल्लूभर

गवांदधि ॥ रक्तानिकरवीराणिरक्तचन्दनमित्यपि ॥ ९८ ॥ अष्टाङ्गार्घोयमुद्दिष्टस्त्वतीवरवितोषणः ॥ गाङ्गैर्वार्भिःकोटि गुणोज्ञेयोविष्णोऽन्यवारितः ॥ ९९ ॥ गङ्गातीरेस्वशक्त्यायःकुर्याद्देवालयंसुधीः ॥ अन्यतीर्थप्रतिष्ठातोभवेत्कोटिगुणं फलम् ॥ १०० ॥ अश्वत्थवटचूतादिवृक्षारोपेणयत्फलम् ॥ कूपवापीतडागादिप्रपासत्रादिभिस्तथा ॥ १ ॥ अन्यत्रय द्भवेत्पुण्यन्तद्गङ्गादर्शनाद्भवेत ॥ पुष्पवाट्यादिभिश्चापिगङ्गास्पर्शंततोऽधिकम् ॥ २ ॥ कन्यादानेनयत्पुण्यंयत्पुण्यं गोऽन्नदानतः ॥ तत्पुण्यंस्याच्छतगुणंगङ्गागण्डूषपानतः ॥ ३ ॥ चान्द्रायणसहस्रेणयत्पुण्यंस्याज्जनार्दन ॥ ततो ऽधिकफलंगङ्गाऽमृतपानादवाप्नुयात ॥ ४ ॥ भक्त्यागङ्गावगाहस्यकिमन्यत्फलमुच्यते ॥ अक्षयःस्वर्गवासोपिनिर्वा णमथवाहरे ॥ ५ ॥ गङ्गायाःपादुकायुग्मंनित्यमर्चतियोनरः ॥ आयुःपुण्यंधनंपुत्रान्स्वर्गमोक्षौचविन्दति ॥ ६ ॥ नास्तिग ङ्गासमंतीर्थंकलिकल्मषनाशनम् ॥ नास्तिमुक्तिप्रदंक्षेत्रमविमुक्तसमंहरे ॥ ७ ॥ गङ्गास्नानरतंमर्त्यंदृष्ट्वैवयमकिङ्कराः ॥

गंगाजल पीने से सौगुनी होवे ॥ ३ ॥ हे विष्णो ! हजार चांद्रायण व्रतसे जो पुण्यहै उससे अधिक फल को गंगाजल पीनेसे पावे ॥ ४ ॥ हे हरे ! भक्तिसे गंगा स्नानका फल अखंड स्वर्गवासभी व मोक्ष इस से अन्य क्या कहा जावे ॥ ५ ॥ जो मनुष्य चौरी में चंदनादिकों से बनाई गंगाकी खराऊं जोडीको नित्य पूजता है वह आयु पुण्य पुत्र धन स्वर्ग और मोक्षको पाता है ॥ ६ ॥ हे विष्णो ! कलियुगके पापों का नाशक गंगाके समान अन्य तीर्थ नहीं है व काशी की बराबर मुक्तिदायक क्षेत्र कहीं

जन्मके संस्कारवशसे श्रीविश्वनाथको पूज कालसे मरणको प्राप्तहोकर तदनंतर विदेह कैवल्य मुक्तिको जाताहै ॥ १८ ॥ व जो मनुष्य भक्तिसे गंगातीरमें दोसौ चालीस हाथ भूमि देताहै उसकी पुण्यका फल सुनो ॥ १९ ॥ कि जालादिकों में सूर्य्यकी किरणों फैलनेसे जे सूक्ष्म कणका दीखतेहैं उनमें से एकको त्रसरेणु नामहै उस दानकी भूमिके त्रसरेणु संख्यक युगोंलों इन्द्र व चन्द्रलोक में सनके प्यारे अनेक भोगों को भोगकर ॥ २० ॥ धर्मपरायण सातद्वीप का राजाहो नरकमें बसे सब पितरों को स्वर्ग में पठावे हे विष्णो ! ॥ २१ ॥ स्वर्गस्थ पितरोंको संसार से मोक्ष दिलाकर व अन्तमें ज्ञान तलवारसे पंचतत्त्वमयी मायाको काटकर भी याने देहमें अभिमान तज

मप्नोतेततः ॥१८॥विवर्तनद्वयमपिभूमेर्भागीरथीतटे ॥ नरोददातियोभक्त्यातस्यपुण्यफलंशृणु॥१९॥तद्भूमित्रसरेणूनां सङ्ख्ययायुगमानया ॥ महेन्द्रचन्द्रलोकेषुभुक्त्वाभोगान्मनःप्रियान् ॥ २० ॥ सप्तद्वीपपतिर्भूत्वामहाधर्मपरायणः॥नरकस्थान्पितॄन्सर्वान्प्रापयेत्रिदिवंहरे ॥ २१ ॥ स्वर्गस्थांश्चपितॄन्सर्वान्मोचयित्वामहाद्युतिः ॥ अन्तेज्ञानासिनाछित्त्वाह्यविद्यांपाशंभौतिकीम् ॥ २२ ॥ परंवैराग्यमापन्नोयुञ्जानोयोगमुत्तमम् ॥ प्राप्याथवाविमुक्तञ्चपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ २३॥ सुवर्णमात्रमपियःसुवर्णंसंप्रयच्छति ॥ सुवर्णायसुवर्णञ्चहरेभागीरथीतटे ॥ २४ ॥ सहेमरत्नखचितेविमानेसर्वगेशुभे ॥ सर्वैश्वर्यसमायुक्तःसर्वलोकेषुपूजितः ॥ २५ ॥ ब्रह्माण्डान्तरसंस्थेषुभुञ्जन्भोगान्मनोरमान् ॥सर्वैःसंपूजितोविष्णोयावदाभूतसंप्लवम् ॥ २६ ॥ एकराट्चततोभूत्वाजम्बूद्वीपेप्रतापवान् ॥ ततोऽविमुक्तमासाद्यपदंनिर्वाणमृच्छति ॥ २७ ॥ जन्मर्क्षेतुकृतेस्नानेगङ्गायांभक्तिपूर्वकम् ॥ जन्मप्रभृतिपापौघात्सञ्चितान्मुच्यतेक्षणात् ॥ २८ ॥ वैशाखेकार्त्तिकेमाघे

बड़ा छबीला ॥ २२ ॥ व श्रेष्ठ वैराग्यको प्राप्त वह उत्तमयोग (जीव परमात्माकी एक भावना) को जोड़ताहै अथवा काशीको पहुँचकर फिर परे कैवल्य मोक्षको जाताहै ॥ २३॥ हे हरे ! जो गंगातीर में अच्छे वर्ण ब्राह्मणको असीरत्ती भी सुवर्ण(सोना)देताहै॥ २४ ॥ वह सबसे जातेहुये सुवर्ण रत्नसे रचित शुभविमान में बैठ सब ऐश्वर्य्यों समेत सब लोकोंमें पूजित होताहै॥ २५॥ हे विष्णो ! सबसे आदरित हो ब्रह्माण्ड के भीतर टिके अनेक लोकोंमें प्रलयतक मनोरम भोगोंको भोगता हुआ वह ॥ २६ ॥ तदनन्तर जम्बूद्वीप में प्रतापी चक्रवर्त्ती राजा हो तब काशी मे पहुंच मोक्षपद को जाता है ॥ २७ ॥ जन्मनक्षत्र मे भक्तिपूर्वक गंगास्नान करतेही जन्म से लगाकर

नहीं है ॥ ७ ॥ जैसे सिंहको देखकर मृगा भागते हैं वैसे गंगास्नानस्नेही मनुष्य को देखकरही यमदूत दशो दिशाओं को भागते हैं ॥ ८ ॥ जैसे चही वैसे गंगातीर-
वासी गंगासेवनशील की पूजाकर अश्वमेधयज्ञ का फल पावे ॥ ९ ॥ व भक्ति से शुभ (कल्याणकर) गंगा किनारे पर गऊ व भूमि सोना देने से नर फिर दुःख
समूहसे साने संसारमें नहीं जन्मताहै ॥ १० ॥ व वस्त्रदानसे दीर्घजीवन पोथीदान से ज्ञान अन्नदानसे धन और कन्यादानसे सुयशको प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ हे हरे ! अन्यत्र
किया जो कर्म व्रत दान जप व तपहै वह सब गंगातीरमें करोड गुणहो ॥ १२ ॥ हे विष्णो ! जो गंगा किनारे विधिसे बछडा समेत गऊ देवै वह गऊके रोमसंख्यक युगों तक

दिशोदशपलायन्तेसिंहंदृष्ट्वायथामृगाः ॥ ८ ॥ गङ्गाभजनशीलस्यगङ्गातटनिवासिनः ॥ अर्चांकृत्वायथान्यायम
श्वमेधफलंलभेत् ॥ ९ ॥ गोभूहिरण्यदानेनभक्त्यागङ्गातटेशुभे ॥ नरोनजायतेभूयःसंसारेदुःखसङ्कटे ॥ १० ॥ दीर्घा
युष्यञ्चवासोभिर्ज्ञानंपुस्तकदानतः ॥ अन्नदानेनसम्पत्तिकीर्तिंकन्याप्रदानतः ॥ ११ ॥ अन्यत्रयत्कृतंकर्मव्रतंदानंजप
स्तपः ॥ गङ्गातटेतुतत्सर्वंहरेकोटिगुणंभवेत् ॥ १२ ॥ धेनुंसवत्सांयोदद्याद्गङ्गातीरेविधानतः ॥ गोरोमसंख्यया विष्णोयुगा
न्सर्वसमृद्धिमान् ॥ १३ ॥ गोलोकेममलोकेवाकामधेनुव्रजावृतः ॥ भुञ्जानःसर्वकामांस्तुदिव्यान्नानाविधान्बहून् ॥ १४ ॥
देवानामप्यलभ्यांश्चभुक्त्वातुसहबान्धवैः ॥ पितृभिश्चसुहृद्भिश्चसर्वरत्नविभूषितः ॥ १५ ॥ जायतेसत्कुलेपश्चाद्ध
नधान्यसमाकुले ॥ रत्नकाञ्चनसम्पन्नेशीलविद्यासमन्विते ॥ १६ ॥ भुक्त्वासविपुलान्भोगान्पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ पुनर्ग
ङ्गांसमासाद्यकाश्यामुत्तरवाहिनीम् ॥ १७ ॥ विश्वेश्वरंसमाराध्यप्राग्जनुर्वासनावशात् ॥ कालाद्देहान्तमासाद्यब्रह्मस

सब सामग्रियों की बढ़तीवाला होकर ॥ १३ ॥ गोलोक व मेरे लोक में अनेक भांति के बहुत दिव्य सब मनमाने फलों को भोगताहुवा व कामधेनुसमूहसंयुत ॥ १४ ॥
व सब रत्नोंसे भूषितहो पितर व मित्र व बांधव और सम्बन्धी लोगोंके साथ देवदुर्लभ भोगोंको भोगकर ॥ १५ ॥ पीछेसे रुपया नाज समेत व रत्न सोना संपन्न व शील और
सुविद्यासे भरेपुरे अच्छेकुलमें जन्मताहै ॥ १६ ॥ तहां पुत्र पौत्र समेत वह भारीभोगोंको भोगकर फिर काशीमें उत्तरवाहिनी गंगाको भलीभांतिसे पहुँचकर ॥ १७ ॥ पूर्व

बटोर पापसमूह से क्षण में छूटता है ॥ २८ ॥ व वैशाख कार्त्तिक और माघ मास में गंगास्नान दुर्लभ है व अमावस में सौगुण तथा संक्रान्ति में हजार गुण पुण्य है ॥ २९ ॥ व चन्द्र सूर्य्यग्रहण में लाखभर व्यतीपातयोग में अनन्त व मेषकी संक्रान्ति में दशहजार व दोनों अयनों (मकर व कर्ककी संक्रांति) में लाखगुण है ॥ ३० ॥ व सोमवार में चन्द्रग्रहण सूर्यवार में सूर्य्यग्रहण हो तो वह चूड़ामणिनाम पर्व है उसमें स्नान असंख्यफलवाला होताहै ॥ ३१ ॥ हे विष्णो ! चूड़ामणि में जो स्नान दान जप और होम कियागया है वह इस गंगातीर में अनन्तपुण्यदायकहै ॥ ३२ ॥ व श्रद्धासे भक्तिसहित विधिपूर्वक गंगा नहाकर ब्रह्मघाती

गङ्गास्नानंसुदुर्लभम् ॥ दर्शेशतगुणंपुण्यंसंक्रान्तौचसहस्रकम् ॥ २९ ॥ चन्द्रसूर्यग्रहेलक्षंव्यतीपातेत्वनन्तकम् ॥ अयुतंविषुवेचैवनियुतंत्वयनद्वये ॥ ३० ॥ सोमग्रहःसोमदिनेरविवारेरवेर्ग्रहः ॥ तच्चूडामणिपर्वाख्यंतत्रस्नानमसंख्यकम् ॥ ३१ ॥ स्नानंदानंजपोहोमोयद्यच्चूडामणौकृतम् ॥ तदक्षयंसर्वमिहविष्णोभागीरथीतटे ॥ ३२ ॥ श्रद्धयाभक्तियुक्तस्तु गङ्गांस्नात्वाविधानतः ॥ ब्रह्महापिविशुध्येतकिंपुनस्त्वन्यपातकी ॥ ३३ ॥ कृमिकीटपतङ्गाद्यायेमृताजाह्नवीतटे ॥ कूलात्पतन्तियेवृक्षास्तेपियान्तिपरांगतिम् ॥ ३४ ॥ ज्येष्ठेमासिसितेपक्षेदशम्यांहस्तसंयुते ॥ गङ्गातीरेतुपुरुषोनारीवा भक्तिभावतः ॥ ३५ ॥ निशायांजागरंकुर्याद्गङ्गांदशविधैर्हरे ॥ पुष्पैःसुगन्धैर्नैवेद्यैःफलैर्दशदशोन्मितैः ॥ ३६ ॥ प्रदीपैर्दशभिर्धूपैर्दशाङ्गैर्गरुडध्वज ॥ पूजयेच्छ्रद्धयाधीमान्दशकृत्वोविधानतः ॥ ३७ ॥ साज्यांस्तिलान्क्षिपेत्तोयेगङ्गायाःप्रसृतीर्दश ॥ गुडसक्तुमयान्पिण्डान्दद्याच्चदशमन्त्रतः ॥ ३८ ॥ नमःशिवायैप्रथमंनारायण्यैपदन्ततः ॥ दशहरायै

भी शुद्धहोवे फिर अन्य पापीको क्या कहनाहै ॥३३॥ गंगा के किनारे धारा से बारह सौ हाथलों सिद्धिक्षेत्रहै उसमें जे जन्तु कीड़ा पांखीआदि मरें और जे वृक्ष दोनों कूलोंसे गिरतेहैं वे भी उत्तम मोक्षको पातेहैं ॥३४॥ व जेठ मास उजेलेपाखकी हस्तनक्षत्र समेत दशमी तिथिमें गंगाके किनारे स्त्री व पुरुष भक्तिभावसे ॥ ३५ ॥ रातमें जागरणकरें और हे हरे ! दशभाँति के दश दश सुगन्ध फूल फल नैवेद्य ॥ ३६ ॥ और हे गरुड़ध्वज ! दशदीप व दशांग धूपोंसे श्रद्धासहित बुद्धिमान् दशबार विधिसे पूजे ॥३७॥ गंगाजलमें घीसमेत तिलोंसे भर दश अंजुली डाले फिर मन्त्र पढ़ गुड़ सत्तूके दश पिंडादेवै ॥३८॥ पहले नमः शिवायै उसकेबाद नारायण्यै दशहरायै ऐसा पद व

गंगायै यही मन्त्रहै ॥ ३९ ॥ ॐआदि में और अन्तमें स्वाहा है जिसके ऐसा बीस अक्षर का मन्त्र होताहै इसी मन्त्र से पूजा दान जप होमादि सब कहागयाहै ॥ ४० ॥ व अपनी शक्तिसे सोने व चांदीकी मूर्त्ति बनाकर फिर वस्त्रसे मूंदाहै मुख जिसका उस कलशपर ॥ ४१ ॥ थाप पञ्चामृत से नहवाई हुई उस देवीको पूजे जोकि चौभुजी त्रिनेत्रा व नदी नदोंसे संसेवित ॥ ४२ ॥ व सुन्दरता अमृतस्रवने से रसीली देह डराडीवाली व पूर्णकलश उज्ज्वल कमल वरद और अभयवाले अच्छे हाथहैं जिस के ॥ ४३ ॥ उसको तब ध्यावे कि बहुत सौम्यस्वरूपा दश हजार चन्द्रचांदनी से चटकीली छबीली व चँवरोंसे ढुराईहुई व उजलेछत्रसे सोहती है ॥ ४४ ॥ व अमृ-

पदामितिगङ्गायैमन्त्रएषवै ॥ ३९ ॥ स्वाहान्तःप्रणवादिश्चभवेद्विंशाक्षरोमनुः ॥ पूजादानंजपोहोमोऽनेनैवमनुनास्मृतः ॥ ४० ॥ हेम्नारूप्येणवाशक्त्यागङ्गामूर्तिंविधायच ॥ वस्त्राच्छादितवक्त्रस्यपूर्णकुम्भस्यचोपरि ॥ ४१ ॥ प्रतिष्ठाप्यार्चयेद्देवींपञ्चामृतविशोधिताम् ॥ चतुर्भुजांत्रिनेत्राञ्चनदीनदनिषेविताम् ॥ ४२ ॥ लावण्यामृतनिष्पन्दसंशीलद्गात्रयष्टिकाम् ॥ पूर्णकुम्भसिताम्भोजवरदाभयसत्कराम् ॥ ४३ ॥ ततोध्यायेत्सुसौम्याञ्चचन्द्रायुतसमप्रभाम् ॥ चामरैर्वीज्यमानाञ्चश्वेतच्छत्रोपशोभिताम् ॥ ४४ ॥ सुधाप्लावितभूपृष्ठांदिव्यगन्धानुलेपनाम् ॥ त्रैलोक्यपूजितपदांदेवर्षिभिरभिष्टुताम् ॥ ४५ ॥ ध्यात्वासमर्च्यमन्त्रेणधूपदीपोपहारतः ॥ मांचत्वाञ्चविधिंब्रध्नंहिमवन्तंभगीरथम् ॥ ४६ ॥ प्रतिमाग्रेसमभ्यर्च्यचन्दनाक्षतनिर्मितान् ॥ दशप्रस्थतिलान्दद्याद्दशविप्रेभ्यआदरात् ॥ ४७ ॥ पलञ्चकुडवःप्रस्थआढकोद्रोणएवच ॥ धान्यमानेनबोद्धव्याःक्रमशोमीचतुर्गुणाः ॥ ४८ ॥ मत्स्यकच्छपमण्डूकमकरादिजलेचरान् ॥ हंसकारण्डव

तमय जलसे पृथिवी पीठकी भिगोनेवाली व दिव्यसुगन्ध लेपन लगाई व त्रिलोक से पूजित पदवाली और देवऋषियों से स्तुति कीगईहै ॥ ४५ ॥ यों ध्यानधर मन्त्र से धूप दीपादि पूजासामग्रियों से पूज व हम तुम ब्रह्मा सूर्य्य हिमवान् और भगीरथ राजा इन सबको ॥ ४६ ॥ जोकि मूर्त्तिके आगे चन्दन व अक्षतादिकों से बनायेगये हैं उनको भलीभांति से पूज आदर से दश ब्राह्मणों को दश प्रस्थ तिलदेवे सोलह टकाभर एक प्रस्थ होता है ॥ ४७ ॥ टका कुड़व प्रस्थ आढ़क और द्रोण भी ये धान्य तौलनेमें क्रमसे चौगुना जाननेयोग्य हैं ॥ ४८ ॥ व मछली कच्छप मेढ़क और मगर आदि जलचर व हंस करॉकुल या पनडुब्बी बगुला चकवा टिटिहरी

व सारस इन सबको ॥ ४९ ॥ शक्ति अनुसार सोना चांदी व तांबा आदि के पात्रोंकी पीठपर चन्दनादिकों से बनाकर सुगन्ध फूलोंसे पूजकर व्रतवाला मनुष्य फिर उन को गंगाजल में डालदेवे ॥ ५० ॥ इस प्रकार से विधिपूर्वक पूजन कर व वित्तशाठ्य (कृपणता) से हीनहुआ उपवासी नर उन पापोंसे छूटता है जे कि दश पाप आगे कहेजाते हैं ॥ ५१ ॥ वे ये हैं कि, विना दिये लेना व निषिद्ध हिंसा भी और परस्त्रीसंग यह तीनभांति का दैहिक पाप कहागया है ॥ ५२ ॥ व कठोर वचन व झूंठभी व सब ओर से चुगुली भी और विना प्रयोजन बकना यही चार भांतिका वाचिक पापहै ॥५३॥ व पराये धनोंमें ध्यान व मनसे बुरा विचारना व

बकचक्रटिट्टिभसारसान् ॥ ४९ ॥ यथाशक्तिस्वर्णरूप्यताम्रपृष्ठविनिर्मितान् ॥ अभ्यर्च्यगन्धकुसुमैर्गङ्गायांप्रक्षिपेद्व्रती ॥ ५० ॥ एवंकृत्वाविधानेनवित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ उपवासीवक्ष्यमाणैर्दशपापैःप्रमुच्यते ॥ ५१ ॥ अदत्तानामुपादानंहिंसाचैवाविधानतः ॥ परदारोपसेवाचकायिकंत्रिविधंस्मृतम् ॥ ५२ ॥ पारुष्यमनृतंचैवपैशुन्यंचैवसर्वशः ॥ असम्बद्धप्रलापश्चवाङ्मयंस्याच्चतुर्विधम् ॥ ५३ ॥ परद्रव्येष्वभिध्यानंमनसानिष्टचिन्तनम् ॥ वितथाभिनिवेशश्चमानसंत्रिविधंस्मृतम् ॥ ५४ ॥ एतैर्दशविधैःपापैर्दशजन्मसमुद्भवैः ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहःसत्यंसत्यंगदाधर ॥ ५५ ॥ उद्धरेन्नरकात्पूर्वान्दशघोराद्दशावरान् ॥ वक्ष्यमाणमिदंस्तोत्रंगङ्गाग्रेश्रद्धयाजपेत् ॥ ५६ ॥ ॐनमःशिवायैगङ्गायैशिवदायैनमोनमः ॥ नमस्तेविष्णुरूपिण्यैब्रह्ममूर्त्यैनमोस्तुते ॥ ५७ ॥ नमस्तेरुद्ररूपिण्यैशाङ्कर्यैतेनमोनमः ॥ सर्वदेवस्वरूपिण्यैनमोभेषजमूर्तये ॥ ५८ ॥ सर्वस्यसर्वव्याधीनांभिषक्श्रेष्ठ्यैनमोस्तुते ॥ स्थास्नुजङ्गमसंभूतविषहन्त्र्यैनमो

मिथ्या कामोंमें हठ यह तीन भांतिका मानसिक पाप कहा गयाहै ॥ ५४ ॥ दश जन्मों में हुये इन दश भांति के पापों से छूटताहै इसमें संदेह नहीं है हे गदाधर विष्णो! यह सत्यहै सत्यहै ॥५५॥ कि आगे व पाछे के दश दश जनोंको घोर नरक से निकालताहै और वही कहे जाते हुये इस स्तोत्रको श्रद्धासे गंगाके आगे पढ़े ॥ ५६ ॥ ॐ कल्याणरूपिणी भूमि में गई मुक्तिदा विष्णुरूपिणी ब्रह्मकी मूर्त्ति तुम्हारे बारबार नमस्कारहो ॥ ५७ ॥ रुद्ररूपिणी शिवसंबंधिनी सब दैवतामयी संसार रोगकी दवाई रूप तुम्हारे बारबार नमस्कारहो ॥ ५८ ॥ सबके सब रोगों के लिये श्रेष्ठ वैद्य मूर्त्ति स्थावर वृक्षादि व जंगम सर्पादि इनसे हुये विषकी नाशिनी तुम्हारे

बारबार नमस्कार हो ॥ ५९ ॥ संसारविषहरणी जीवनकरणी दैहिक दैविक भौतिक त्रिविधदुःखदलनी जीव या अंतर्यामी रूपा तुम्हारे बारबार नमस्कार हो ॥ ६० ॥ आरोग्यवंशवर्धिनी शुद्धरूपा सबकी शुद्धि करनेवाली पापमात्रकी शत्रुमूर्त्ति तुम्हारे बारबार नमस्कारहो ॥६१॥ सुखदा मोक्षदा कल्याणदा लोक परलोक के भोगों की दात्री पातालमें भोगवती नाम नदी रूपा तुम्हारे बारबार नमस्कारहो ॥ ६२ ॥ आकाशगंगा आनंददायिनी त्रिलोककी भूषणरूपा तीनो लोकोमें गली वाली तुम्हारे बारबार नमस्कारहो॥६३॥त्रिकालमें शुद्ध ब्रह्मरूपसे टिकी क्षमाकरी दक्षिणाग्नि गार्हपत्य आहवनीय नाम तीनोंआगोंमें बसी प्रकाशवाली तुम्हारे बारबार नमस्कारहो॥६४॥

स्तुते ॥ ५९ ॥ संसारविषनाशिन्यैजीवनायैनमोस्तुते ॥ तापत्रितयसंहन्त्र्यैप्राणेश्यैतेनमोनमः ॥ ६० ॥ शान्तिसन्तानकारिण्यैनमस्तेशुद्धमूर्तये ॥ सर्वसंशुद्धिकारिण्यैनमःपापारिमूर्तये ॥ ६१ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदायिन्यैभद्रदायैनमोनमः ॥ भोगोपभोगदायिन्यैभोगवत्यैनमोस्तुते ॥ ६२ ॥ मन्दाकिन्यैनमस्तेस्तुस्वर्गदायैनमोनमः ॥ नमस्त्रैलोक्यभूषायैत्रिपथायैनमोनमः ॥ ६३ ॥ नमस्त्रिशुक्लसंस्थायैक्षमावत्यैनमोनमः ॥ त्रिहुताशनसंस्थायैतेजोवत्यैनमोनमः ॥ ६४ ॥ नन्दायैलिङ्गधारिण्यैसुधाधारात्मनेनमः ॥ नमस्तेविश्वमुख्यायैरेवत्यैतेनमोनमः ॥ ६५ ॥ बृहत्यैतेनमस्तेस्तुलोकधात्र्यैनमोस्तुते ॥ नमस्तेविश्वमित्रायैनन्दिन्यैतेनमोनमः ॥ ६६ ॥ पृथ्व्यैशिवामृतायैचसुवृषायैनमोनमः ॥ परापरशताढ्यायैतारायैतेनमोनमः ॥ ६७ ॥ पाशजालनिकृन्तिन्यैअभिन्नायैनमोस्तुते॥शान्तायैचवरिष्ठायैवरदायैनमोनमः ॥ ६८ ॥ उग्रायैसुखजग्ध्यैचसञ्जीवन्यैनमोस्तुते ॥ ब्रह्मिष्ठायैब्रह्मदायैदुरितघ्न्यैनमोनमः ॥ ६९ ॥

अलकनंदा शिवलिंगोंको धारती अमृतप्रवाहरूपा जगत् श्रेष्ठा रेवतीनक्षत्रदेवी तुम्हारे बारबार नमस्कारहो॥ ६५॥ परिपूर्णा लोकपोषिणी प्राणिमात्र की हितू समृद्धिकारिणी तुम्हारे बारबार नमस्कारहो६६भूमिरूपा निर्मला सुधर्मिणी परमहंसोंके सैकड़ोंसे सेवित तारारूप तुम्हारे बारबार नमस्कारहो६७चौबीसतत्त्वजालकाटिनी भदहीना उपद्रव रहिता व सर्वश्रेष्ठा भक्तोंको वरदात्री तुम्हारे बारबार नमस्कारहो ॥ ६८॥ प्रलयकालमें उग्ररूपा सुखभोगिनी भलीभांतिसे जियानेवाली ब्राह्मणोंको मानती या ब्रह्मनिष्ठा वेददा-

यिनी या कैवल्यमोक्षदा अज्ञान या पापघातिनी तुम्हारे बारबार नमस्कारहो॥ ६९॥ भक्तपीड़ापहारनी जगत माता सब विपत्तिवैरिणी मंगलमयी तुम्हारे बारबार नमस्कारहो॥ ७०॥ हे शरणागत दीन पीड़ित पुरुषोंके पालनेमें कुशले दर्शनादिसे सबकी पीड़ाहारिणि नारायणशक्तिरूपिणि! हे देवि! तुम्हारे बारबार नमस्कारहो॥७१॥अविद्या लगासे रहिता दुर्गाशक्तिसहिता सुठिसमर्था सर्वोत्तमा हे मोक्षपददायिनि! हे गंगे! तुम्हारे बारबार नमस्कारहो॥ ७२॥ हे गंगे! मेरे आगे याने सामनेहो हे गंगे! मेरे पीछे टिको हे गंगे! मेरे दहिने बायें दोनों पंजरोंमें हो हे गंगे! तुममें मेरी स्थिरताहो॥ ७३॥ हे परमसुखस्वरूपे गंगे! तुम आदि अंतमें हो व मध्यमें जो कुछ वह सब तुमहो तुमहीं माया तुमहीं जीवा-

प्रणतार्तिप्रभञ्जिन्यैजगन्मात्रेनमोस्तुते॥ सर्वापत्प्रतिपक्षायैमङ्गलायैनमोनमः॥ ७०॥ शरणागतदीनार्तपरित्राण परायणे॥ सर्वस्यार्तिहरेदेविनारायणिनमोस्तुते॥ ७१॥ निर्लेपायैदुर्गहन्त्र्यैदक्षायैतेनमोनमः॥ परापरपरायैचग ङ्गेनिर्वाणदायिनि॥ ७२॥ गङ्गेममाग्रतोभूयागङ्गेमेतिष्ठपृष्ठतः॥ गङ्गेमेपार्श्वयोरेधिगङ्गेत्वय्यस्तुमेस्थितिः॥ ७३॥ आदौत्वमन्तेमध्येचसर्वंत्वंगाङ्गतेशिवे॥ त्वमेवमूलप्रकृतिस्त्वंपुमान्परएवहि॥ गङ्गेत्वंपरमात्माचशिवस्तुभ्यंनमः शिवे॥ ७४॥ यइदंपठतेस्तोत्रंशृणुयाच्छ्रद्धयापियः॥ दशधामुच्यतेपापैःकायवाक्चित्तसम्भवैः॥ ७५॥ रोगस्थोरो गतोमुच्येद्विपद्भ्यश्चविपद्युतः॥ मुच्यतेबन्धनाद्बद्धोभीतोभीतेःप्रमुच्यते॥ ७६॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिप्रेत्यचत्रि दिवंव्रजेत्॥ दिव्यंविमानमारुह्यदिव्यस्त्रीपरिवीजितः॥ ७७॥ गृहेपिलिखितंयस्यसदातिष्ठतिधारितम्॥ नाग्निचौ रभयंतस्यनसर्पादिभयंक्वचित्॥७८॥ज्येष्ठेमासेसितेपक्षेदशमीहस्तसंयुता॥ संहरेत्त्रिविधंपापंबुधवारेणसंयुता॥ ७९॥

त्मा ईश्वर भी हो व हे शिवशक्ते गंगे! तुम सुखरूप परमात्माहो तुम्हारे नमस्कारहै॥७४॥जो श्रद्धासे भी इस स्तोत्रको पढ़ता सुनताहै वह तन वचन मनसे हुये दश भांतिके पापों से छूटताहै॥७५॥ रोगी रोगसे व विपत्तिवाला विपत्तिसे छूटताहै बँधुवा बंधनसे छूटताहै डरा डरसे छूटताहै॥ ७६॥ व इस लोकमें सब मनोरथोंको पहुँचताहै व मरकर दिव्य विमानमें बैठ दिव्य स्त्रियोंसे चँवर ढुरवाता हुवा स्वर्गको जाताहै॥ ७७॥ यह स्तोत्र जिसके घरमें भी लिखाधरा हुवा सदा टिकताहै उसको आग व चोर का डर नहीं है और सर्पआदिका डर कहीं नहीं है॥ ७८॥ जेठ मासके उजेले पाखमें बुध दिन संयुत हस्त नक्षत्र समेत दशमी तन मन और वचनसे हुये त्रिविध पापको संहरतीहै॥ ७९॥

व उस दशमी में गंगाजलके भीतर टिका जो असमर्थ व दरिद्री भी इस स्तोत्रको दशबार पढ़े ॥८०॥ वहभी उस फलको प्राप्तहोवे जोकि यत्नसे पूर्वोक्त विधिपूर्वक गंगाको भली भांति पूजकर कहा गया है ॥ ८१ ॥ जैसे पार्वती है वैसेही गंगाहै उससे पार्वती की पूजामें जो विधि उचितहै वही गंगाकी पूजामेंभी होतीहै ॥ ८२ ॥ हे विष्णो ! जैसे हम तैसे तुम व जैसे तुम वैसेही गौरी व जैसे गौरी तैसे गंगाहै इन चारोंरूपोंमें भेद नहीं होताहै॥८३॥ व जो विष्णु शिवमें अंतर वैसेही लक्ष्मी पार्वतीमें अंतर और गंगा गौरीमें भी अंतर कहताहै वह मूढ़बुद्धिहै ॥१८४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेगङ्गामाहात्म्यवर्णनपूर्वकदशहरास्तोत्रकथनन्नामसप्तविंशोध्यायः॥२७॥

तस्यांदशम्यामेतच्चस्तोत्रंगङ्गाजलेस्थितः ॥ यःपठेद्दशकृत्वस्तुदरिद्रोवापिचाक्षमः ॥ ८० ॥ सोपितत्फलमाप्नोतिगङ्गांसंपूज्ययत्नतः ॥ पूर्वोक्तेनविधानेनयत्फलंसंप्रकीर्तितम् ॥ ८१ ॥ यथागौरीतथागङ्गातस्माद्गौर्यास्तुपूजने ॥ योविधिर्विहितःसम्यक्सोपिगङ्गाप्रपूजने ॥ ८२ ॥ यथाऽहन्त्वंतथाविष्णोयथात्वन्तुतथाह्युमा॥उमायथातथागङ्गाचतूरूपंनभिद्यते ॥ ८३ ॥ विष्णुरुद्रान्तरंचैवश्रीगौर्योरन्तरंतथा ॥ गङ्गागौर्यन्तरंचैवयोब्रूतेमूढधीस्तुसः ॥ १८४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेगङ्गामहिमवर्णनपूर्वकंदशहरास्तोत्रकथनंनामसप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥ २७ ॥ * ॥

उमोवाच ॥ किञ्चित्प्रष्टुमनानाथस्वसन्देहापनुत्तये ॥ वदखेदोयदिनतेत्रिकालज्ञानकोविद ॥ १ ॥ तथाभागीरथोराजाक्वक्वभागीरथीतदा ॥ यदाविष्णुस्तपस्तेपेचक्रपुष्करिणीतटे ॥ २ ॥ शिवउवाच ॥ सन्देहोऽत्रनकर्तव्योविशालाक्षिसदामले ॥ श्रुतौस्मृतौपुराणेषुकालत्रयमुदीर्यते ॥ ३ ॥ भूतंभाविभवच्चापिसंशयंमावृथाकृथाः ॥ इत्युक्त्वापुनराहे

दोहा । अट्ठाइस अध्याय में कहि वाही का ख्यान । श्रीगंगा माहात्म्य पुनि बहु विधि वर्णन जान ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं हे त्रिकाल हाल जाननेमें पण्डित ! हे नाथ ! मैं आपन संदेह दुराने के लिये कुछ पूंछने को मनवाली हूं जो आपका खेद न हो तो कहो ॥ १ ॥ कि तब भगीरथ राजा कहांथा व तब गंगा कहांथी जब विष्णुने चक्रपुष्करिणी (मणिकर्णिका) के किनारे तप किया ॥ २ ॥ शिवजी बोले कि हे सदा निर्मले विशालनेत्रे ! यहां संदेह न करना चाहिये क्योंकि वेद पुराण और धर्मशास्त्रों में त्रिकाल का हाल कहा जाता है ॥ ३ ॥ जो कि हुवा व होनेहारा व होता भी है इससे वृथा संदेह को मत करो यों कह शिवजीने फिर उत्तम

गंगामाहात्म्यको कहा ॥ ४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे पार्वतीनन्दन ! तब जैसे महादेवने विष्णुसे गंगाकी महिमा कहाहै वैसे आपभी फिर कहो ॥ ५ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे अगस्त्यमुने ! जैसे शिवने कहाहै वैसे यहां पापनाशक गंगामाहात्म्य सुनो ॥ ६ ॥ त्रिलोकवाहिनी गंगा किनारे जाकर एकबार जिसने पिण्डापारा उसने तिल जल देने द्वारा पितरोंको नरकसे उबाराहै ॥ ७ ॥ व मनुष्योंने पितरोंके कर्म्ममें जितने तिल लिया उतने हजार वर्षतक पितर स्वर्गवासी होतेहैं ॥ ८ ॥ जिससे सदा सबदेव व पितर गंगा में टिके हैं उससे वहां उनका आवाहन व विसर्जन नहीं है ॥ ९ ॥ जे पिताके वंशमें वैसेही नानाके वंशमें मरे व गुरु श्वशुर और भैयाचार इन सबोंके वंशों में जे अन्य बान्धव

शोगङ्गामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ पार्वतीनन्दनपुनर्द्युनद्याःपरितोवद ॥ महिमोक्तोहरौयद्वद्देवदेवेनवै तदा ॥ ५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मुनेऽत्रमैत्रावरुणेयथादेवेनभाषितम् ॥ शृणुत्रिपथगामिन्यामाहात्म्यंपातकापहम् ॥ ६ ॥ त्रिस्रोतसंसमासाद्यसकृत्पिण्डान्ददातियः ॥ उद्धृताःपितरस्तेनभवाम्भोधेस्तिलोदकैः ॥ ७ ॥ यावन्तश्चतिलामर्त्यैर्गृहीताःपितृकर्मणि ॥ तावद्वर्षसहस्राणिपितरःस्वर्गवासिनः ॥ ८ ॥ देवाःसपितरोयस्माद्गङ्गायांसर्वदास्थिताः ॥ आवाहनंविसर्गश्चतेषांतत्रततोनहि ॥ ९ ॥ पितृवंशेमृतायेचमातृवंशेतथैवच ॥ गुरुश्वशुरबन्धूनांयेचान्येबान्धवामृताः ॥ १० ॥ अजातदन्तायेकेचिद्येचगर्भेप्रपीडिताः ॥ अग्निविद्युच्चोरहताव्याघ्रदंष्ट्रिभिरेवच ॥ ११ ॥ उद्बन्धनमृतायेचपतिताआत्मघातकाः ॥ आत्मविक्रयिणश्चोरायेतथाऽयाज्ययाजकाः ॥ १२ ॥ रसविक्रयिणोयेचयेचान्येपापरोगिणः ॥ अग्निदागरदाश्चैवगोघ्नाश्चैवस्ववंशजाः ॥ १३ ॥ असिपत्रवनेयेचकुम्भीपाकेचयेगताः ॥ रौरवेप्यन्धतामिस्रेकालसूत्रेचयेग

मरेहैं ॥ १० ॥ व जे कोई विना दांतजामें व गर्भमें मरेहैं व अग्नि बिजुली और चोरके मारे व बाघ व दाढ़वालोंके मारे ॥ ११ ॥ व जे आत्मघाती पतित (ऊंचेसे गिरपड़े) व फांसी से मरे व जे अपनी देह बेंचनेवाले चोर व यज्ञके न योग्यजनके यज्ञ करानेवाले हैं ॥ १२ ॥ व जे रसबेंचा कोढ़ी व घरफुंका व जे अन्य विषदाता और गौओंके हत्यार भी अपने वंशमें उपजे हैं ॥ १३ ॥ व जे असिपत्रवन याने जिसमें तलवारके समान वृक्षोंके पत्तेहैं उस नरकमें गये हैं व जे कुम्भीपाक में भी गये हैं व जे रौरव अन्ध-

तामिस्र कालसूत्र इन नरकोमे गये हैं ॥ १४ ॥ व जे अपने कर्मोंसे हजारों अन्यजातियों में जन्म धरते मरते फिरते हैं व जे पक्षी मृगादि वनवासी जन्तु कीड़ा वृक्ष बौंड़ी हैं ॥ १५ ॥ इन सबोंकी योनिमें जन्मे व बहुते व गन्तीवाले पक्षीआदिकों में भी निकृष्टहैं व जे दारुण यमदूतोंसे यमलोकको पठायेगये हैं ॥१६॥ व जे अबान्धव व बान्धव व जे और जन्मोंके बान्धवहैं व जिनके नामभी नहीं जानेहैं और जे अपने वंशमें जन्मेहैं पुत्रहीनहैं ॥ १७ ॥ व जे विषसेभी मरे व जे सिंगड़ोंके मारेगये व उपकारको न माननेवाले व गुरुहन्ता वैसेही जे मित्रद्रोहीभी हैं ॥१८॥ व जे स्त्री बालकों के वधिक व जे विश्वासघाती असत्यवादी परपीडक व जे सदा पापमें परायणहैं ॥ १९ ॥ व जे घोड़े

ताः ॥ १४ ॥ जात्यन्तरसहस्रेषुभ्राम्यन्तेयेस्वकर्मभिः ॥ येतुपक्षिमृगादीनांकीटवृक्षादिवीरुधाम् ॥ १५ ॥ योनिङ्गता स्त्वसङ्ख्याताःसङ्ख्यातानामशोभनाः ॥ प्रापितायमलोकन्तुसुघोरैर्यमकिङ्करैः ॥ १६ ॥ येऽबान्धवाबान्धवावायेऽन्यज न्मनिबान्धवाः ॥ येपिचाज्ञातनामानोयेचापुत्राःस्वगोत्रजाः ॥ १७ ॥ विषेणचमृतावैयेयेवैशृङ्गिभिराहताः ॥ कृतघ्ना श्चगुरुघ्नाश्चयेचमित्रद्रुहस्तथा ॥ १८ ॥ स्त्रीबालघातकायेचयेचविश्वासघातकाः ॥ असत्यहिंसानिरताःसदापापरता श्चये ॥ १९ ॥ अश्वविक्रयिणोयेचपरद्रव्यहराश्चये ॥ अनाथाःकृपणादीनामानुष्यंप्राप्तुमक्षमाः ॥ २० ॥ तर्पिताजा ह्नवीतोयैर्नरेणविधिनासकृत् ॥ प्रयान्तिस्वर्गतिंतेपिस्वर्गिणोमुक्तिमाप्नुयुः ॥ २१ ॥ एतान्मन्त्रान्समुच्चार्ययःकुर्यात्पि तृतर्पणम् ॥ श्राद्धंपिण्डप्रदानञ्चसर्वविधिज्ञइहोच्यते ॥ २२ ॥ कामप्रदानितीर्थानित्रैलोक्येयानिकानिचित् ॥ तानिसर्वा णिसेवन्तेकाश्यामुत्तरवाहिनीम् ॥ २३ ॥ स्वःसिन्धुःसर्वतःपुण्याब्रह्महत्यापहारिणी ॥ काश्यांविशेषतोविष्णोयत्रचो

बेंचनेवारे व परधनहारी अनाथ कृपिण दीन और जे मनुष्यदेह पाने को असमर्थहैं ॥ २० ॥ वे भी विधिसे एकबार मनुष्य करके गंगाजलोंसे किये तर्पण से तृप्तहुये नरक से स्वर्गको जाते हैं व स्वर्गवासी पितर मुक्ति पातेहैं ॥ २१ ॥ इन पूर्वोक्त श्लोकरूप मन्त्रोंको पढ़कर जो पितरोंका तर्पण श्राद्ध और पिण्डदान करे वह यहां विधान का सुजान कहाताहै ॥ २२ ॥ त्रिलोक मे जे कोई मनोरथदायक तीर्थहैं वे सब काशीमें उत्तरवाहिनी गंगाको सेवतेहैं ॥ २३ ॥ हे विष्णो ! ब्रह्महत्याहारिणी गंगा सबसे पुण्यरूपा

है परन्तु जिस काशीमें उत्तरवाहिनीहै वहां विशेषसे कहीगई है ॥ २४ ॥ व देवऋषि और पितरसमूह निश्चय से यह गाथा गाते हैं कि क्या काशी में उत्तरवाहिनीगंगा हमारे नेत्रगोचर होगी यानी उसको हम आंखसे देखैंगे ॥२५॥ जिसके जलसे संतृप्त तीनों तापोंसे हीनहुये हम श्रीविश्वनाथकी प्रसन्नता से साक्षात् मुक्त होवें ॥ २६ ॥ हे हरे ! मुक्तिके लिये केवल गंगा ही सब से निर्णय कीगई भईहै परन्तु मेरे स्थानकी गुरुतासे काशीमें विशेष से है ॥ २७ ॥ दारुण कलियुगको जानकर गंगाकी भक्ति सुगुप्त कीगईहै इससे मुक्तिमार्ग मुख्य देनेवाली गंगाको लोग नहीं लहते हैं ॥ २८ ॥ और इस लोकमें गंगाकी सेवा विना अनेक लाख जन्मतक बहुती योनिमें घुमायाजाता

त्तरवाहिनी ॥ २४ ॥ गायन्तिगाथामेतांवैदेवर्षिपितरोगणाः ॥ अपिदृग्गोचरानःस्यात्काश्यामुत्तरवाहिनी ॥ २५ ॥ यत्रत्यामृतसंतृप्तास्तापत्रितयवर्जिताः ॥ स्यामत्वमृतमेवाद्धाविश्वनाथप्रसादतः ॥ २६ ॥ गङ्गैवकेवलामुक्त्यैनिर्णीताप रितोहरे ॥ अविमुक्तेविशेषेणममाधिष्ठानगौरवात् ॥ २७ ॥ ज्ञात्वाकलियुगंघोरंगङ्गाभक्तिःसुगोपिता ॥ नविन्दन्तिजना गङ्गांमुक्तिमार्गैकदायिकाम् ॥ २८ ॥ अनेकजन्मनियुतंभ्राम्यमाणस्तुयोनिषु ॥ निर्वृतिंप्राप्नुयात्कोत्रजाह्नवीभजनंवि ना ॥ २९ ॥ नराणामल्पबुद्धीनामेनोविक्षिप्तचेतसाम् ॥ गङ्गैवपरमंविष्णोभेषजंभवरोगिणाम् ॥ ३० ॥ खण्डस्फुटि तसंस्कारंगङ्गातीरेकरोतियः ॥ ममलोकेचिरंकालंतस्याक्षयसुखंहरे ॥ ३१ ॥ गन्तुमुद्दिश्ययोगङ्गांपरार्थेस्वार्थमेववा ॥ न गच्छतिपरंमोहात्सपतेत्पितृभिःसह ॥ ३२ ॥ सर्वाणियेषांगाङ्गैयैस्तोयैःकृत्यानिदेहिनाम् ॥ भूमिस्थाअपितेमर्त्याअम र्त्याएववैहरे ॥ ३३ ॥ चरमेपिवयोभागेस्वःसिन्धुंयोनिषेवते ॥ कृत्वाप्येनांसिबहुशःसोपियायाच्छुभांगतिम् ॥ ३४ ॥ याव

हुआ कौन मनुष्य मुक्तिको प्राप्तहोवे ॥ २९ ॥ हे विष्णो ! पापोंसे चलायागया है चित्त जिनका ऐसे थोड़ी बुद्धि के व संसाररोग (जन्ममरणादि) से पीड़ित मनुष्यो के लिये गंगाही श्रेष्ठ औषध हैं ॥ ३० ॥ हे हरे ! गंगाजी के किनारे जो प्राणी टूटे फूटे देवमन्दिरों का संस्कार करता है उसका मेरे लोक में बहुकाल पर्यन्त अक्षय सुख होताहै ॥ ३१ ॥ जो अपने व पराये अर्थ गंगा नहानेजानेको उद्देशकर परन्तु मोहसे न जावे वह पितरोंके साथ पतित होजावे ॥ ३२ ॥ हे हरे ! जिन मनुष्योंके सब कर्म्मभी गंगाजलसे होतेहैं वे मनुष्य भूमिमें टिकेभी देवही हैं ॥ ३३ ॥ व जो बहुत पापकरभी अन्तअवस्था में गंगाको सेवताहै वह भी शुभगति

को जाताहै ॥ ३४ ॥ व मनुष्यों के जितने हाड़ गंगाजलमें टिकेहैं उतने हजार वर्ष तक वे स्वर्गलोक में पूजेजाते हैं ॥ ३५ ॥ श्रीविष्णुजी बोले, कि हे देवोंकेदेव जगन्नाथ जगत्‌हितकारक स्वामिन् ! जो दुष्टचित्त दुराचारी का हाड दैवयोग से गिरे ॥ ३६ ॥ गंगा के शुद्धजल में तो उसकी उत्तमगति कैसे होवे और अपमृत्यु से मरेकाभी हाड़ जो गंगामें गिरे तो उसकी मुक्ति कैसेहै हे ईश ! वह कहो ॥ ३७ ॥ शिवजी बोले, कि हे इन्द्रियों के ज्ञान से परे विष्णो ! इस अर्थमें आगेका हुआ एक वाहीक ब्राह्मण का हाल कहताहूं तुम एकाग्रमन होकर सुनो ॥ ३८ ॥ कि आगे कलिंगदेशमें लोन बेंचनेवाला एक ब्राह्मण था जोकि स्नान सन्ध्यादि कर्मोंसे हीन

दस्थिमनुष्याणांगङ्गातोयेषुतिष्ठति ॥ तावदब्दसहस्राणिस्वर्गलोकेमहीयते ॥ ३५ ॥ विष्णुरुवाच ॥ देवदेवजगन्नाथ जगतांहितकृत्प्रभो ॥ कीकसञ्चेत्पतेद्दैवाद्दुर्वृत्तस्यदुरात्मनः ॥ ३६ ॥ जलेषुनद्यानिष्पापेकथंतस्यपरागतिः ॥ अपमृत्युविपन्नस्यतदीशविनिवेद्यताम् ॥ ३७॥ महेश्वरउवाच ॥ अत्रार्थेकथयिष्यामिपुरावृत्तमधोक्षज ॥ शृणुष्वैकमनाविष्णोवाहीकस्यद्विजन्मनः ॥३८॥पुराकलिङ्गविषयेद्विजोलवणविक्रयी॥सन्ध्यास्नानविहीनश्चवेदाक्षरविवर्जितः॥३९॥ वाहीकोनामतोयज्ञसूत्रमात्रपरिग्रहः ॥ परिग्रहश्चतस्यासीत्कौविन्दीविधवानवा ॥ ४० ॥ दुर्भिक्षपीडितेनाथवृषलीपतिनाविना ॥ प्राणाधारंतदातेनदेशाद्देशान्तरंययौ ॥ ४१ ॥मध्येऽथदण्डकारण्यंक्षुत्क्षामःसङ्गवर्जितः ॥ व्याघ्रेणघातितस्तत्रनरमांसप्रियेणसः ॥ ४२ ॥ तस्यवामपदंगृध्रोगृहीत्वोदपतत्ततः ॥ मांसाशिनाऽन्यगृध्रेणतस्ययुद्धमभूद्दिवि ॥ ४३ ॥ गृध्रयोरामिषंगृध्न्वोःपरस्परजयैषिणोः॥अवापतत्पादगुल्फंकंकचञ्चुपुटात्तदा ॥ ४४ ॥ तस्यवाहीकविप्रस्यव्या

व वेदोंके अक्षरोंसे याने गायत्र्यादि मन्त्रोंसे रहित महामलिन था ॥ ३९ ॥ व केवल जनेउमात्र पहने व वाहीकनाम से प्रसिद्ध था उसकी स्त्री जातिकी कोरिनि व विधवा व नई अवस्थावाली थी॥ ४० ॥ उस समय वह शूद्री प्राणपोषने के उपाय विना दुर्भिक्षसे पीड़ितहुई तदनन्तर उस पतिके साथ विदेशको गई ॥४१॥ अनन्तर वहां दण्डकारण्य की बीच गलीमें संगसे हीन व भूखसे दीन वह वाहीक मनुष्य मांस के प्यारकरनेवाले बाघसे मारडालागया ॥ ४२ ॥ तब उसका बायां पांव पकड़कर एक गीधउड़ा और आकाश में और मांसाहारी गीधसे उसकी लड़ाई हुई ॥ ४३ ॥ उस समय मांसके लोभी व आपसमें जीतचाही लड़तेहुये दोनों गीधोंकी चोंचसे उस

के पांवकी गांठ गिरपड़ी ॥ ४४ ॥ वह दैवयोग से बाघसे मारे उस वाहीक ब्राह्मण के पांवकी गांठ लड़ते गीधोंकी चोंचसे बीच गंगामें गिरी ॥ ४५ ॥ और जबहीं द-ण्डकवन बीच गये हुये वाहीकको बाघने माराथा उसी क्षणमें उसको यमराजके भयङ्कर दूतोंने फांसोंसे बांधाथा ॥ ४६ ॥ व कोड़ाओं से सन्ताड़ित मर्मभेदिनी आराओं से सर्वांगव्यथित व मुखसे रक्त उबकताहुआ वह यमके आगे पहुँचायागयाथा ॥ ४७ ॥ हे विष्णो ! अनन्तर चित्रगुप्त से धर्मराज ने पूँछा कि इस ब्राह्मण का पाप व पुण्य विचार कर शीघ्र कहो ॥ ४८ ॥ तदनन्तर यमसे पूँछते हुये अद्भुत बुद्धिमान् सदा सब जन्तुओं के जन्म कर्म्मोंके जाननेवाले चित्रगुप्त ने ॥ ४९ ॥ दुराचारी वाहीक

ग्रन्थ्यापादितस्यह ॥ मध्येगङ्गंदैवयोगादपतद्द्वन्द्वकारिणोः ॥ ४५ ॥ यदैवहतवान्द्वीपीतंवाहीकमरण्यगम् ॥ तस्मिन्नेव क्षणेबद्धःसपाशैःक्रूरकिङ्करैः ॥ ४६ ॥ कशाभिर्घातितोत्यन्तमाराभिःपरितोदितः ॥ वमन्रुधिरमास्येननीतस्तैःस यमाग्रतः ॥ ४७ ॥ आपृच्छिधर्मराजेनचित्रगुप्तोथमाधवे ॥ धर्माधर्मविचार्यास्यकथयाशुद्विजन्मनः ॥ ४८ ॥ वैवस्वतेनपृष्टोथचित्रगुप्तोविचित्रधीः ॥ सर्वदासर्वजन्तूनांवेदितासर्वकर्मणाम् ॥ ४९ ॥ जगादयमुनाबन्धुंवाहीकस्यद्विजन्मनः ॥ कर्मजन्मदिनारभ्यदुर्वृत्तस्यशुभेतरम् ॥ ५० ॥ चित्रगुप्तउवाच ॥ गर्भाधानादिकंकर्मप्राकृतंनास्यकेनचित् ॥ जातकर्मकृतंनास्यपित्राऽज्ञानवताहरे ॥ ५१ ॥ गर्भैनःशमनेहेतुःसमस्तायुःसुखप्रदम् ॥ एकादशेह्निनामास्यनकृतंविधिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ ख्यातःस्याद्येनविधिनासर्वत्रविधिपावनम् ॥ नाकार्षीन्निर्गमंचास्यचतुर्थेमासिमन्दधीः ॥ ५३ ॥ जनकःशुभतिथ्यादौविदेशगमनापहम् ॥ षष्ठेऽन्नप्राशनंमासिनकृतंविधिपूर्वकम् ॥ ५४ ॥ सर्वदामिष्टमश्ना

ब्राह्मणके जन्म दिनसे लगाकर अशुभकर्मको यमसे कहा ॥ ५० ॥ चित्रगुप्त बोले कि हे यम ! पहले इसका गर्भाधानादि कर्म किसीने नहीं किया और अज्ञानी इसके पिताने जातकर्म भी नहीं किया ॥ ५१ ॥ व इसका गर्भपाप नाशने में कारण और सम्पूर्ण आयु सुखदायक नामकरण कर्मभी विधिपूर्वक ग्यारहवें दिनमें नहीं किया गया है ॥ ५२ ॥ कि जिस विधिसे सबसे प्रसिद्ध होवे व चौथे मास में इसका विधिसे पवित्र घरसे निकालना नहीं किया व मन्दबुद्धि ॥ ५३ ॥ इसके पिताने शुभतिथि सुदिन सुनक्षत्र सुलग्न में जोकि चौथे मासमें बालक का घरसे बाहर निकालना विदेश गमनका नाशक होता है उसको नहीं किया व छठयें मासमें विधिपूर्वक पसनी

नहीं किया ॥ ५४ ॥ हे सूर्य्यपुत्रयम ! जिस कर्मसे बालक सदा मीठ खाताहै व अपने कुलके अनुसार एक वर्षमें इसका मुण्डन (चोटी रखानेका कर्म्म) नहीं किया है ॥ ५५ ॥ जिस कर्म से बाल सघन सचिक्कण फूल बरसनेहारे होते हैं व इसके पिताने शुभसमय में कनछेदन भी नहीं किया ॥ ५६ ॥ कि जिससे कान सोनके गहने पहने और अच्छे सुननेवाले होते हैं हे यम ! इसका जनेऊकर्म्मभी आठवां वर्ष बीतने के बाद भया जोकि व्रतबन्ध कर्म्म ब्रह्मचर्य्य धर्मकी बढ़ती के लिये व गायत्र्यादि वेदमन्त्र गहने का कारण है ॥ ५७ ॥ व पिताने इसकी मौञ्जी छोड़नेकी बातभी नहीं किया जिस कर्म्मके अनन्तर श्रेष्ठ गृहस्थी प्राप्तहोतीहै ॥

तिकर्मणायेनभास्करे ॥ नचूडाकरणंचास्यकृतमब्देयथाकुलम् ॥ ५५ ॥ कर्मणायेनकेशाःस्युःस्निग्धाःकुसुमवर्षिणः ॥ नाकारिकर्णवेधोस्यजनित्रासमयेशुभे ॥ ५६ ॥ सुवर्णग्राहिणौयेनकर्णौस्याताञ्चसुश्रुती ॥ मौञ्जीबन्धोप्यभूदस्य व्यतीतेऽब्देऽष्टमेहरे ॥ ब्रह्मचर्याभिवृद्ध्यैयोब्रह्मग्रहणहेतुकः ॥ ५७ ॥ मौञ्जीमोक्षणवार्तापिकृतानास्यजनुःकृता ॥ गार्हस्थ्यंप्राप्यतेयस्मात्कर्मणोऽनन्तरंवरम् ॥ ५८ ॥ यथाकथञ्चिदूढाऽथपत्नीत्यक्तकुलाध्वगा ॥ वृषलीपतिनातेनपरदारापहारिणा ॥ ५९ ॥ आरभ्यपञ्चमाद्वर्षात्परस्वस्यापहारकः ॥ अभूदेषदुराचारोदुरोदरपरायणः ॥ ६० ॥ रुमायांवसताऽनेनहतागौरेकवार्षिकी ॥ एकदादृढदण्डेनलिहन्तीलवणंमृता ॥ ६१ ॥ जननींपादघातेनबहुशोऽसावताडयत् ॥ कदाचिदपिनोवाक्यंपितुःकृतमनेनवै ॥ ६२ ॥ विषंभक्षितवानेषबहुशःकलहप्रियः ॥ जनोपतापशीलोसौकृतोदरविदारणः ॥ ६३ ॥ धत्तूरकरवीरादिबहुधोपविषाणिच ॥ क्रीडाकलहमात्रेणभक्षयच्चैषदुर्मतिः ॥ ६४ ॥ दग्धोसावग्निनासौरेश्वभि

५८ ॥ तदनंतर उस इस शूद्रीभर्ता परस्त्रीहर्ता ने जिस किस भांति से कुलधर्म्म रहित दुराचार सहित स्त्री को व्याहा है ॥ ५९ ॥ और यह कुकर्मी पंचयें वर्षसे लगाकर परधनहारी व जुवारी हुआहै ॥ ६० ॥ एक समय लोन उपजनेके स्थानमें बसतेहुये इसने दृढ़दंडसे लोन चाटती वर्ष दिनकी गौकी बछियाको मारा और वह मरगई ॥ ६१ ॥ व इसने माताको लातघात से बहुतही ताडाहै व पिता का कहना कभी नहीं किया ॥ ६२ ॥ इस कलहके प्यारकारने बहुतबार विष खायाहै व कियाहै पेट फाड़ना जिसने ऐसा यह परसंतापशील था ॥ ६३ ॥ और इस दुर्बुद्धिने खेलमें लडाईमात्र से धतूर व कनैर आदि अनेक भांति के उपविषों को खिलाया ॥ ६४ ॥

हे यम! यह आगसे जला कुत्तों से काटा गया व सब ओर से सिंगाड़ों करके सींगोंसे बहुत बेधा गयाहै ॥ ६५ ॥ व सज्जनों से निंदित सर्प्पों से बहुत डसाहुआ दुष्ट व काठ ईंट लुकेठे और पत्थरादिकों से सदा आपन अनिष्टकर्ता था ॥ ६६ ॥ व जिस उत्तम अंगको सदा सज्जन अनेक भांति से पूजते हैं उस शिरको इस कुबुद्धिने कईबार भी फारडाला है ॥ ६७ ॥ यहही अधम ब्राह्मण गायत्री मंत्रको भी नहीं जानताहै और इस दुर्बुद्धिने अकेले मनमानी चाहसे मछरी मांस खायाहै ॥ ६८ ॥ इसने अपने अर्थ अनेक भांति से खीर पकाया याने देव पितर अतिथियों के लिये नहीं दिया व लाह लोन मांस दूध दही घी ॥ ६९ ॥ विष लोह हथियार दासी गौ घोड़े वैसेही श्वेतबालों के

श्चक्वलीकृतः ॥ शृङ्गिभिःपरितःप्रोतोविषाणाग्रैरसौबहु ॥ ६५ ॥ दन्दशूकैर्भृशंदष्टोदुष्टःशिष्टैर्विगर्हितः ॥ काष्ठेष्टलोष्टैःपापिष्ठःकृतानिष्टःसदात्मनः ॥ ६६ ॥ आस्फालितंशिरोनेनासकृच्चापिदुरात्मना ॥ यदर्च्यतेसदासद्भिरुत्तमाङ्गमनेकधा ॥ ६७ ॥ असौहिब्राह्मणोमन्दोगायत्रीमपिवेदन ॥ कामतोमत्स्यमांसानिजग्धान्येकेनदुर्धिया ॥ ६८ ॥ आत्मार्थंपायसमसौपर्यपाक्षीदनेकधा ॥ लाक्षालवणमांसानांसपयोदधिसर्पिषाम् ॥ ६९ ॥ विषलोहायुधानाञ्चदासीगोवाजिनामपि ॥ विक्रेताऽसौसदामूढस्तथावैकेशचर्मणाम् ॥ ७० ॥ शूद्रान्नपरिपुष्टाङ्गःपर्वण्यहनिमैथुनी ॥ पराङ्मुखोदैवपित्र्यकर्मण्येषदुरात्मवान् ॥ ७१ ॥ पक्षिणोघातितानेनमृगाश्चापिपरःशतम् ॥ अकारणद्रुमच्छेदीसदानिर्दयमानसः ॥ ७२ ॥ उद्वेगजनकोनित्यंनिजबन्धुजनेष्वपि ॥ असत्यवादीसततंसदाहिंसापरायणः ॥ ७३ ॥ अदत्तदानःपिशुनःशिश्नोदरपरायणः ॥ किंबहूक्तेनरविजसाक्षात्पातकमूर्तिमान् ॥ ७४ ॥ रौरवेप्यन्धतामिस्रेकुम्भीपाकेऽतिरौरवे ॥ कालसूत्रे

चौंर और चमड़े आदिकों का भी बेंचक यह सदा मूढ़था ॥ ७० ॥ व शूद्रों के अन्नसे पुष्ट देह व पर्व और दिनमें स्त्रीप्रसंगी व देव पितरों के कर्म से विमुख व दुष्टमन वाला यह है ॥ ७१ ॥ व इसने असंख्य पशुपक्षी मृगोंको भी मारा व यह विना कारण वृक्षों का छेदक सदा निर्दय हृदय ॥ ७२ ॥ व अपने बन्धुजनों मे भी नित्य उद्वेग कर्ता सदा झूंठा निरंतर हिंसा (पशु आदि वधने) में तत्परथा ॥ ७३ ॥ व कभी न दान देनेवाला धूर्त्त लिंग और पेट पोषने में परायण था हे सूर्य्यपुत्र! बहुत कहने

स क्याहै यह प्रत्यक्ष पापकी देहवाला दीखताहै ॥ ७४ ॥ इससे रौरव अंधतामिस्र कुंभीपाक अतिरौरव कालसूत्र कृमिभोजन पूयशोणितकर्दम ॥ ७५ ॥ व घोर असिपत्रवन यंत्रपीड़ सुदंष्ट्रक अधोमुख पूतिगंध विष्ठागर्त्त अभोजन ॥ ७६ ॥ सूचीभेद्य संदंश लालाप और क्षुरधार इन सब नरकों में से एक एकमें हजार हजार चौयुगी तक यह डालाजावे ॥ ७७ ॥ यों चित्रगुप्तके मुखसे सुनकर धर्मराजने उस दुराचारीको भर्त्सनकरहर्षसे गणोंको आज्ञादिया ॥ ७८ ॥ भौंहकी संज्ञासे कहेहुये गणों ने उसको बांधके नरकस्थान को पठाया जहां रोम उठानेवाला पापियोका ऊंचे चिघड़ने का शब्द होरहाहै ॥ ७९ ॥ शिवजी बोले कि, तब बड़ी तीव्र यमयातना-

कृमिभुजिपूयशोणितकर्दमे ॥ ७५ ॥ असिपत्रवनेघोरेयन्त्रपीडेसुदंष्ट्रके ॥ अधोमुखेपूतिगन्धेविष्ठागर्त्तेष्वभोजने ॥ ७६ ॥ सूचीभेद्येऽथसंदंशेलालापेक्षुरधारके ॥ प्रत्येकंनरकेत्वेषपात्यतांकल्पसङ्ख्यया ॥ ७७ ॥ धर्मराजःसमाकर्ण्यचित्रगुप्तमुखादिति ॥ निर्भर्त्स्यतन्दुराचारंकिङ्करानादिदेशह ॥ ७८ ॥ भ्रूसञ्ज्ञयाहृतैर्नीतःसबद्धोनिरयालयम् ॥ आक्रन्दरावोयत्रोच्चैःपापिनांरोमहर्षणः ॥ ७९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ यातनास्वतितीव्रासुवाहीकेसंस्थितेतदा ॥ तत्कालपुण्यफलदेगाङ्गेयाम्भसिनिर्मले ॥ ८० ॥ पतितंतद्विगृध्रास्याद्वाहिकस्यद्विजन्मनः ॥ हरेर्विमानंतत्कालमापन्नंसुरसद्मतः ॥ ८१ ॥ घण्टावलम्बितंदिव्यंदिव्यस्त्रीशतसङ्कुलम् ॥ आरुह्यदेवयानंसदिव्यवेषधरोद्विजः ॥ ८२ ॥ वीज्यमानोऽप्सरोवृन्दैर्दिव्यगन्धानुलेपनः ॥ जगामस्वर्गभुवनंगङ्गास्थिपतनाद्धरे ॥ ८३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ वस्तुशक्तिविचारोयमद्भुतःकोपिकुम्भज ॥ द्रवरूपेणकाप्येषाशक्तिःसादाशिवीपरा ॥ ८४ ॥ करुणामृतपूर्णेनदेवदेवेनशम्भुना ॥ एषाप्रवर्ति

ओं में वाहीक ब्राह्मण के टिकतेही तत्क्षण पुण्यफलदायक निर्मल गङ्गाजल में ॥ ८० ॥ वाहीक ब्राह्मण की वही पांवकी गांठ गीधके मुखसे गिरपड़ी हे विष्णो ! उसी समय स्वर्ग से वह विमान आ पहुंचा ॥ ८१ ॥ जिसमें बांधी घंटायें लटकी व दिव्य सुरसुंदरियों समेत उस देवविमानमें चढ़कर दिव्यदेहधर वह ब्राह्मण ॥ ८२ ॥ अप्सरा समूहो से चौर चलाया जाताहुआ और अंगमें अच्छे सुगंध के अनुलेपन अतर आदि लगाया जिसने वह हे हरे ! गंगामें हाड़ गिरनेसेही स्वर्गलोकको गया ॥ ८३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले, कि हे अगस्त्य ! यह कोई वस्तु शक्तिका विचार अतिअद्भुतहै क्योंकि यह रसरूपसे सदाशिवकी कोई निरंजन चित्स्वरूपा श्रेष्ठ शक्तिहै ॥ ८४ ॥

दया रससे भरे देवदेव शंकरने त्रिलोक तारने के लियेही इस गंगाको वर्त्तमान कियाहै ॥ ८५ ॥ जैसे लोकमें पानी से पूरी अन्य अनेकों नदियां हैं वैसे यह त्रिलोक मार्गगामिनी गंगा सज्जनों से जाननीय नहीं याने उन सबसे अतिशय उत्तम जलवाली हैं ॥ ८६ ॥ हे मुने ! गंगाधर शंकरनेही दयासे उपनिषदों के अक्षरों को निचोड़कर उनके रसों से अर्थात् उपनिषदों के कहे ब्रह्मानंदों से इस गंगाको बनायाहै ॥ ८७ ॥ व शंकरने सब जंतुओं की कृपासे याने उनके आनंद के लिये योग उपनिषदों के इस साररसको खींचकर नदियों में श्रेष्ठ गंगाको कियाहै ॥ ८८ ॥ जैसे विना चंद्रमाकी रातें व जैसे विना फूलों के वृक्षहै वैसेही वे देशहैं जिनमें गंगाजी नहीं

तागङ्गाजगदुद्धरणायवै ॥ ८५ ॥ यथान्याःसरितोलोकेवारिपूर्णाःसहस्रशः॥ तथैषानानुमन्तव्यासद्भिस्त्रिपथगामिनी ॥ ८६ ॥ श्रुत्यक्षराणिनिश्चोत्यकारुण्याच्छम्भुनामुने ॥ निर्मितातद्रसैरेषागङ्गागङ्गाधरेणवै ॥ ८७ ॥ योगोपनिषदामेतं सारमाकृष्यशङ्करः ॥ कृपयासर्वजन्तूनांचकारसरितांवराम् ॥ ८८ ॥ अकलानिधयोरात्र्योविपुष्पाश्चैवपादपाः ॥ यथातथैवतेदेशायत्रनास्त्यमरापगा ॥ ८९ ॥ अनयाःसम्पदोयद्वन्मखायद्वददक्षिणाः ॥ तद्वद्देशादिशःसर्वाहीना गङ्गाम्भसाहरे ॥ ९० ॥ व्योमाङ्गणमनर्कञ्चनक्तेऽदीपंयथागृहम् ॥ अवेदाब्राह्मणायद्वद्गङ्गाहीनास्तथादिशः ॥ ९१ ॥ चान्द्रायणसहस्रन्तुयःकुर्याद्देहशोधनम् ॥ गङ्गामृतंपिबेद्यस्तुतयोर्गङ्गाम्बुपोधिकः ॥ ९२ ॥ पादेनैकेनयस्तिष्ठेत्सहस्रं शरदांशतम्॥अब्दंगङ्गाम्बुपोयस्तुतयोर्गङ्गाम्बुपोऽधिकः॥ ९३ ॥ अवाक्शिराःप्रलम्बेद्यःशतसंवत्सरान्नरः॥ भीष्मसू वालुकातल्पशयस्तस्माद्धरोहरे ॥ ९४ ॥ पापतापाभितप्तानांभूतानामिहजाह्नवी ॥ पापतापहरायद्वद्गङ्गानान्यत्तथाक

हैं ॥ ८९ ॥ हे हरे ! जैसे अनीति सहित सम्पत्तियां जैसे दक्षिणा रहित यज्ञहै वैसे गंगाजल से हीन देश और सब दिशाये हैं ॥ ९० ॥ जैसे विना सूर्य्यका आकाश आंगन व जैसे रातमें विना दीपका घर व जैसे विना वेदोंके ब्राह्मणहै वैसे गंगासेहीन सब दिशायें हैं ॥ ९१ ॥ और जो देह शोधनेहारे हजारों चान्द्रायणव्रतकरे व जो गंगाजल पीवे उन दोनोंमें गंगाजल पीताहुआ अधिकहै ॥ ९२ ॥ व जो लाखवर्ष एक पांवसे खड़ारहै व जो वर्षभर गंगाजलपीवे उनमें गंगाजल पीताहुआ अधिकहै ॥ ९३ ॥ हे विष्णो! जो मनुष्य सौवर्षतक नीचेको शिरकर लटके उससे वह अधिकहै जोकि गंगाकीबालूरूप शय्यामें सोनेवालाहै ॥ ९४ ॥ इसलोकमें पाप ताप तपे जन्तुओंके पाप पछाड़ने वाली

जैसेजाह्नवीगंगाहैं वैसा कलियुग में अन्य कोई नहीं है ॥ ९५ ॥ जैसे गरुड़ के देखनेमात्रसे सब सर्प विषहीन होतेहैं वैसे गंगाके दर्शन से पाप प्रकाशरहित हैं ॥ ९६ ॥ जो मनुष्य गंगातीरकी माटीको माथमें धारे है वह अन्धकार नाशनेके लिये सूर्य्यमण्डल कोही धारता है यों निश्चय कियागया है ॥ ९७ ॥ जोकि दुःखदायक व्यसनोंसे दबे दरिद्री और पापी हैं उन जनोंको केवल गंगाही आधार याने मुक्तिरूपिणी कहीगई है यह अन्यथा नहीहै ॥ ९८ ॥ सुनी व चही व दरसी परसी व नहाई व जलपाई हुई गंगा लोगोंके माता व पिता इन दोनोंवंशों को तारतीहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ९९ ॥ नाम लेने देखने छूने पीने और नहानेसे गंगा पुण्य पापकी बढ़ती

लो ॥ ९५ ॥ तार्क्ष्यवीक्षणमात्रेणफणिनोनिर्विषायथा ॥ निष्प्रभाणितथैनांसिभागीरथ्यवलोकनात् ॥ ९६ ॥ गङ्गातटोद्भवांमृत्स्नांयोमौलौबिभृयान्नरः ॥ बिभर्तिसोऽर्कबिम्बंवैतमोनाशायनिश्चितम् ॥ ९७ ॥ व्यसनैरभिभूतस्यधनहीनस्यपापिनः ॥ गङ्गैवकेवलंतस्यगतिरुक्तानचान्यथा ॥ ९८ ॥ श्रुताभिलषितादृष्टास्पृष्टापीताऽवगाहिता ॥ पुंसांवंशद्वयंगङ्गातारयेन्नात्रसंशयः ॥ ९९ ॥ कीर्तनाद्दर्शनात्स्पर्शाद्गङ्गापानावगाहनात् ॥ दशोत्तरगुणाज्ञेयापुण्यापुण्यधिनाशयोः ॥ १०० ॥ नसुतैर्नचवावित्तैर्नान्येनापिसुकर्मणा ॥ तत्फलंप्राप्यतेमर्त्योगङ्गामाप्ययदाप्यते ॥ १ ॥ जात्यन्धाःपङ्गवस्तेवैजीवन्तोप्यथतेमृताः ॥ समर्थाअपियेगङ्गांनस्नायुर्मोक्षगर्भिणीम् ॥ २ ॥ श्रुतिंनिशामयहरेगङ्गामाहात्म्यभाषिणीम् ॥ विनिश्चितार्थायांश्रुत्वाश्रयेद्गङ्गांनरोत्तमः ॥ ३ ॥ इरावतींमधुमतींपयस्विनीममृतरूपामूर्जस्वतीम् ॥ त्रिदिवप्रसूतांगङ्गांश्रितास्त्रिदिवंव्रजन्ति ॥ ४ ॥ ऋषिजुष्टांविष्णुपदींपुराणांसुपुण्यधारांमनसाहिलोके ॥ सर्वा

व नाशमें क्रमसे दशगुण अधिक जाननीय हैं अर्थात् गंगाका नाम लेनेसे जितनी पुण्य व जितना पापका नाश होताहै उससे दशगुण अधिक दर्शन से और उससे दशगुण स्पर्शन से यो जानना ॥१००॥ व मनुष्य न पुत्रोंसे न धनोंसे और अन्य सुकर्मों से भी उस फलको नहीं पाताहै जिसको गंगाको पहुँचकर पाताहै ॥ १ ॥ न वे देखते भी जन्मान्ध चलते भी पंगुले व वे जीतेहुये भी मरे हैं जे कि समर्थ होकर मोक्षगर्भवाली गंगामे नही नहाते है ॥ २ ॥ हे हरे! गगाकी महिमा कहतीहुई सन्देहरहित अर्थवाली वेदऋचा को सुनो जिसको सुनकर सुजान गंगाको सेवे ॥ ३ ॥ इरावती, मधुमती, पयस्विनी, अमृतरूपा, ऊर्जस्वती इन पांचों नदियोंके रूपसे वर्तती स्वर्गमे उपजी

गंगाको आधार करनेहारे सेवक सुखरूप कैवल्य मोक्षको जाते हैं ॥ ४ ॥ जे मनसे व सब भांतिसे लोकमें ऋषियोंसे सेवित पुरानी व विष्णु के पांवसे उपजी व अच्छी पुण्यधारावाली गंगाके शरणागत हैं वे वैकुण्ठ को जातेहैं ॥ ५ ॥ सदा सब गुणों से भरी जो गंगा इन लोगोंको पुत्रोंको माताकी नाईं स्वर्गको पठातीहै वह गंगा प्यारे ब्राह्मलोकको चाहतेहुये जितेन्द्रियों से सदा उपासना करनेयोग्य है ॥ ६ ॥ व देवों से सेवित इच्छा करती विश्वरूपा भूमि या वाणीवाली कार्त्तिकेय की माता सन्तों से सेवनीया अमृतमय जल से भरी ब्राह्मणों से चहीगई या सावित्रीस्वरूपा उस गंगाको अपनी शुद्धि चाहताहुआ मनुष्य सेवे ॥ ७ ॥ व एकाग्रचित्त ब्रह्मचारीमनुष्य

त्मनाजाह्नवींयेप्रपन्नास्तेब्रह्मणःसदनंसंप्रयान्ति ॥ ५ ॥ लोकानिमान्नयतियाजननीवपुत्रान्स्वर्गंसदासर्वगुणोपपन्ना ॥ स्थानमिष्टंब्राह्ममभीप्समानैर्गङ्गासदैवात्मवशैरुपास्या ॥ ६ ॥ उस्रैर्जुष्टामिषतींविश्वरूपामिरावतींजनयित्रींगुहस्य शिष्टैः ॥ सेव्याममृतांब्रह्मकान्तांगङ्गांश्रयेदात्मविशुद्धिकामः ॥ ७ ॥ गङ्गायान्तुनरःस्नात्वाब्रह्मचारीसमाहितः ॥ विधूतपापोभवतिवाजपेयञ्चविन्दति ॥ ८ ॥ अशुभैःकर्मभिर्ग्रस्तान्मज्जमानान्महार्णवे ॥ पततोनिरयेगङ्गासंश्रिता नुद्धरेत्सदा ॥ ९ ॥ ब्रह्मलोकस्तुलोकानांसर्वेषामुत्तमोयथा ॥ सरितांसरसांवापिवरिष्ठाजाह्नवीतथा ॥ १० ॥ अन्य त्रसम्यक्सङ्कल्प्यतपःकृत्वासमात्रयम् ॥ यत्फलंतद्भवेद्भक्त्यागङ्गायांघटिकाऽर्धतः ॥ ११ ॥ स्वर्गस्थस्यनसाप्रीति र्भुञ्जतःसुखमक्षयम् ॥ यास्याद्गङ्गातटेपुंसांरात्रौचन्द्रोदयेसति ॥ १२ ॥ जरारोगाभिपन्नन्तुकुणपञ्जाह्नवीजले ॥ धैर्येणतृणवत्त्यक्त्वाप्रविशेदमरावतीम् ॥ १३ ॥ वार्योघैःसततंयस्याःप्लाव्यतेशशिमण्डलम् ॥ भूयोधिकतरांशो

गंगा नहाकर पापहीनहो वाजपेययज्ञ का फल लहता है ॥ ८ ॥ गंगाजी पापकर्मों से गसे संसारसागर में डूबते व नरक में गिरतेहुये सेवकों को सदा तारतीहै ॥ ९ ॥ जैसे लोकोंमें ब्रह्मलोक श्रेष्ठहै वैसे नदी और तड़ागोंमें भी गंगा बहुतही श्रेष्ठहै ॥ १० ॥ भलीभांति से संकल्पकर अनते तीन वर्षभर तपकर जो फलहै उस फलको गंगामें भक्तिसे आधदण्ड में पावेगा ॥ ११ ॥ और अक्षयसुख भोगतेहुये स्वर्गवासी का वह आनन्द नहीं है जो रात्रिका चन्द्रमा उदय होतेही गंगाके किनारे लोगों को होवे है ॥ १२ ॥ व बुढ़ाई रोगोंसे व्याप्त देहको धीरता से गंगाजल में खरके समान तजकर स्वर्गपुरी में पैठे ॥ १३ ॥ व जो चन्द्रमण्डल जिसके जलसमूह से

सदा सींचाजाताहै वह फिर संध्याको बहुत अधिक शोभा धारताहै ॥ १४ ॥ व जिसके जलमें नहायेहुये पुरुषका पाप झट हटजाताहै और उसीक्षण बड़े कल्याण की प्राप्ति होती है ॥ १५ ॥ हे विष्णो ! जिसमें श्रद्धासे अपने वंशमें उत्पन्नहुये पुत्रपौत्रादिकों से दियेगये जलभी पितरोंकेलिये तीन वर्षतक उत्तम तृप्ति देते हैं ॥ १६ ॥ हे विष्णो ! जो भूमि में चलतेहुये मनुष्य व पातालवासी नाग और स्वर्ग में देवो को तारती है उससे वह गंगा त्रिपथगा नामसे प्रसिद्ध है ॥ १७ ॥ जोकि तीर्थों में उत्तम तीर्थ नदियोंमें उत्तम नदी व बड़ेपापी सब जन्तुओंकी भी स्वर्गदात्रीहै॥१८॥ हे विष्णो ! स्वर्गभूमि और अन्तरिक्ष नें सब और जे करोड़ों तीर्थ बसेहैं वे सम्पूर्ण

भांबिभर्तितदहःक्षये ॥ १४ ॥ आप्लुतस्यजलेयस्याःसद्योनश्यतिपातकम् ॥ महतःश्रेयसःप्राप्तिस्तत्क्षणादेवजायते ॥ १५ ॥ पितृभ्यःश्रद्धयायत्रदत्तास्त्वापःस्ववंशजैः ॥ प्रयच्छन्तिपरांतृप्तिंशरदांत्रयमच्युत ॥ १६ ॥ तारयेत्क्षितियान्मर्त्यानधस्थांश्चसरीसृपान् ॥ स्वर्गेस्वर्गसदोविष्णोगङ्गात्रिपथगाततः ॥ १७ ॥ तीर्थानामुत्तमंतीर्थंसरितामुत्तमासरित् ॥ स्वर्गदासर्वजन्तूनांमहापातकिनामपि ॥ १८ ॥ अध्युष्टाःकोटयोविष्णोसन्तितीर्थानिसर्वतः ॥ दिविभुव्यन्तरिक्षेचजाह्नव्यांतानिकृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वाज्ञात्वाचगङ्गायांयःपञ्चत्वमवाप्नुयात् ॥ अनात्मघातीस्वर्गीस्यान्नरकान्सनपश्यति ॥ २० ॥ गङ्गैवसर्वतीर्थानिगङ्गैवचतपोवनम् ॥ गङ्गैवसिद्धिक्षेत्रंहिनात्रकार्याविचारणा ॥ २१ ॥ यत्रकामफलावृक्षामहीयत्रहिरण्मयी ॥ जाह्नवीस्नायिनस्तत्रनिवसन्तिघटोद्भव ॥ २२ ॥ धेनुंभागीरथीतीरेसुशीलाञ्चपयस्विनीम् ॥ वासोरत्नैरलंकृत्याब्राह्मणायददातियः ॥ २३ ॥ यावन्तितस्यालोमानिमुनेतत्सन्ततेरपि ॥ तावद्वर्षसहस्राणि

गंगामें है ॥ १९ ॥ आत्मघातसे हीनहुआ जो जान व जानकर गंगा में मरणको पहुँचे वह स्वर्गवासी होकर नरकको न देखे ॥ २० ॥ क्योंकि गंगाही सब तीर्थ गंगाही तपोवन और गंगाही सिद्धिक्षेत्रभी है इसमें विचार न करना चाहिये ॥ २१ ॥ हे अगस्त्य ! जहां मनमाने फलदायक वृक्ष व जहां सुवर्णमयी भूमि है वहां गंगामें नहायेहुये नर बसते हैं ॥ २२ ॥ और जो वस्त्र भूषणों से भूषितकर दुधारी सुशीला गौको ब्राह्मण के लिये गंगा तीरमें देताहै ॥ २३ ॥ वह उतने हजार वर्षतक स्वर्गसुख का भोगी

होवे कि हे अगस्त्यमुने ! जितने उस गौ और उसके बछड़े व बछिया आदिकों के भी देहमें रोम होवें ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेगङ्गामहिमानामाष्टाविंशतितमोध्यायः ॥ २८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ उनतिसयें अध्यायमें गंगानाम हजार । जन जिनके जपसे लहैं न्हान सुफलश्रुतिसार॥ अगस्त्यजी बोले कि गंगा नहाने विना मनुष्य का जन्म व्यर्थ है इससे कोई आन उपाय ऐसाहै जिससे गंगास्नानका फल पावे ॥ १ ॥ क्योंकि असमर्थ पंगुले आलसके मारे मनवाले और दूर विदेशवासियों का गंगा नहाना कैसे होवे ॥२॥

सस्वर्गसुखभुग्भवेत् ॥ १२४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेगङ्गामहिमानामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ विनास्नानेनगङ्गायांनृणांजन्मनिरर्थकम् ॥ उपायान्तरमस्त्यन्यद्येनस्नानफलंलभेत्॥१॥ अशक्तानाञ्चपङ्गूनामालस्योपहतात्मनाम् ॥ दूरदेशान्तरस्थानांगङ्गास्नानंकथंभवेत्॥२॥ दानंवाऽथव्रतंवाथमन्त्रःस्तोत्रंजपोऽथवा ॥ तीर्थान्तराभिषेकोवादेवतोपासनन्तुवा ॥ ३ ॥ यद्यस्तिकिञ्चित्षड्वक्त्रगङ्गास्नानफलप्रदम् ॥ विधानान्तरमात्रेणतद्वदप्रणतायमे ॥ ४ ॥ त्वत्तोनवेदस्कन्दान्योगङ्गागर्भसमुद्भव ॥ परंस्वर्गतरङ्गिण्यामहिमानंमहामते ॥ ५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ सन्तिपुण्यजलानीहसरांसिसरितोमुने ॥ स्थानेस्थानेचतीर्थानिजितात्माध्युषितानिच ॥६॥ दृष्टप्रत्ययकारीणिमहामहिमभाञ्ज्यपि ॥ परंस्वर्गतरङ्गिण्याःकोट्यंशोपिनतत्रवै ॥७॥ अनेनैवानुमानेनबुध्यस्वकलशोद्भव॥

इससे दान व्रत मन्त्र स्तोत्र दूसरे तीर्थोंमें नहाना और देवोंकी उपासना॥ ३ ॥ इनमेंसे जो कोई गंगास्नान के समान फलदायक होवे उसको हे षण्मुख ! किसी अनुष्ठान मात्र से मुझ भक्तके लिये कहो ॥ ४ ॥ हे गंगाके गर्भसे उत्पन्न ! हे महाबुद्धे ! हे कार्त्तिकेय ! आपसे अन्य उत्तम गंगामाहात्म्य को नहीं जानता है ॥ ५ ॥ कार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने ! यद्यपि इस पृथ्वीमें पुण्यजलवाले व जितेन्द्रियोंसे सेवित तड़ाग और तीर्थ स्थान स्थान में हैं ॥ ६ ॥ जोकि प्रत्यक्ष फलदायक व बड़ी महिमा से संयुतहैं परन्तु उनमें गंगाके करोड़ों हिस्सो में से एक अंशभी फल नहीं है ॥ ७ ॥ हे अगस्त्य ! इसी अनुमान से जानो कि देवोकेदेव शङ्कर ने उत्तमअंग याने मूड़पर

गंगाको धारण कियाहै ॥ ८ ॥ अन्य तीर्थोंमें नहाने के समय लोग गंगाका नाम जपते हैं इससे गंगा विना अन्य कोई पाप छुड़ाने में समर्थ कहां है ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मण ! गंगास्नान का फल गंगामेंही मिलता है जैसे दाखके रसका स्वाद दाखमें है अनते नहीं है ॥ १० ॥ हे मुने ! यहां अत्यन्त गुप्त एक उपाय है जिससे गंगास्नानका फल होताहै ॥ ११ ॥ जोकि शिवभक्त, शान्तचित्त, विष्णुभक्त, श्रद्धावान्, आस्तिक याने वेदधर्म्म पर विश्वासी और गर्भवासी न होना चाहताहो ॥ १२ ॥ उससे कहनेयोग्य है और अन्य किसीसे किसीको कहीं नहीं कहना चाहिये क्योंकि यह परमरहस्य गोप्य व बड़े पापोंका नाशक है ॥ १३ ॥ बड़ा कल्याणकर व पुण्यरूप

दध्रेगङ्गोत्तमाङ्गेनदेवदेवेनशम्भुना ॥ ८ ॥ स्नानकालेऽन्यतीर्थेषुजप्यतेजाह्नवीजनैः ॥ विनाविष्णुपदींकान्यत्समर्थमघमोचने ॥ ९ ॥ गङ्गास्नानफलंब्रह्मन्गङ्गायामेवलभ्यते ॥ यथाद्राक्षाफलस्वादोद्राक्षायामेवनान्यतः ॥ १० ॥ अस्त्युपायइहत्वेकःस्याद्येनाविकलंफलम् ॥ स्नानस्यदेवसरितोमहागुह्यतमोमुने ॥ ११ ॥ शिवभक्तायशान्तायविष्णुभक्तिपरायच ॥ श्रद्धालवेत्वास्तिकायगर्भवासमुमुक्षवे ॥ १२ ॥ कथनीयंनचान्यस्यकस्यचित्केनचित्कचित् ॥ इदंरहस्यंपरमंमहापातकनाशनम् ॥ १३ ॥ महाश्रेयस्करंपुण्यंमनोरथकरंपरम् ॥ द्युनदीप्रीतिजनकंशिवसन्तोषसन्तति ॥ १४ ॥ नाम्नांसहस्रंगङ्गायाःस्तवराजेषुशोभनम् ॥ जप्यानांपरमंजप्यंवेदोपनिषदासमम् ॥ १५ ॥ जपनीयंप्रयत्नेनमौनिनावाचकंविना ॥ शुचिस्थानेषुशुचिनासुस्पष्टाक्षरमेवच ॥ १६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ ॐनमोगङ्गादेव्यै ॥ ॐकाररूपिण्यजरातुलाऽनन्ताऽमृतस्रवा ॥ अत्युदाराभयाऽशोकाऽलकनन्दाऽमृता१०ऽमला ॥ १७ ॥ अनाथवत्सलाऽमोघाऽपांयोनिर

व मनोरथदायक व श्रेष्ठ व गंगाकी प्रीति उपजायक व शिवसन्तोष की परम्पररूप ॥ १४ ॥ गंगाका सहस्रनाम है जोकि स्तोत्रराजों में शुभ व जप्यों में पर जप्य व वेदान्तकी बराबर है ॥ १५ ॥ वाचक विना यत्नसे मौनधारी मनुष्य को जपना चाहिये व पवित्रस्थानों में पवित्रजन मन लगाकर स्पष्ट अक्षर कहकर पढ़े ॥ १६ ॥ कार्त्तिकेयजी बोले कि ॐ नमोगङ्गादेव्यै ॥ ॐकाररूपिणी अजरा अतुला अनन्ता अमृतस्रवा अत्युदारा अभया अशोका अलकनन्दा अमृता अमला ॥ १७ ॥ अना-

थवत्सला अमोघा अपांयोनि अमृतप्रदा अव्यक्तलक्षणा अक्षोभ्या अनवच्छिन्ना अपरा अजिता ॥ १८ ॥ अनाथनाथा अभीष्टार्थसिद्धिदा अनंगवर्धिनी अणिमादिगुणा-धारा अग्रगण्या अलीकहारिणी ॥ १९ ॥ अचिंत्यशक्ति अनघा अद्भुतरूपा अघहारिणी अद्रिराजसुता अष्टांगयोगसिद्धिदा अच्युता ॥ २० ॥ अक्षुण्णशक्ति असुदा अनन्ततीर्था अमृतोदका अनन्तमहिमा अपारा अनन्तसौख्यप्रदा अन्नदा ॥ २१ ॥ अशेषदेवतामूर्त्ति अघोरा अमृतरूपिणी अविद्याजालशमनी अप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥ २२ ॥

मृतप्रदा ॥ अव्यक्तलक्षणाऽक्षोभ्याऽनवच्छिन्नाऽपराऽजिता २० ॥ १८ ॥ अनाथनाथाऽभीष्टार्थसिद्धिदाऽनङ्गवर्धिनी ॥ अणिमादिगुणाधाराग्रगण्याऽलीकहारिणी ॥ १९ ॥ अचिन्त्यशक्तिरनघाद्भुतरूपा३०ऽघहारिणी ॥ अद्रिराजसुताऽष्टाङ्गयोगसिद्धिप्रदाऽच्युता ॥ २० ॥ अक्षुण्णशक्तिरसुदाऽनन्ततीर्थामृतोदका ॥ अनन्तमहिमाऽपारा४०ऽनन्तसौख्यप्रदाऽन्नदा ॥ २१ ॥ अशेषदेवतामूर्तिरघोराऽमृतरूपिणी ॥ अविद्याजालशमनीह्यप्रतर्क्यगतिप्रदा ॥ २२ ॥ अशेषविघ्नसंहर्त्रीत्वशेषगुणगुम्फिता ॥ अज्ञानतिमिरज्योति५०रनुग्रहपरायणा ॥ २३ ॥ अभिरामाऽनवद्याङ्ग्यनन्तसाराकलङ्किनी ॥ आरोग्यदाऽऽनन्दवल्लीत्वापन्नार्तिविनाशिनी ॥ २४ ॥ आश्चर्यमूर्तिरायुष्या ६०ह्याढ्याऽऽद्याऽऽप्राऽऽर्यसेविता ॥ आप्यायिन्याप्तविद्याऽऽख्यात्वानन्दाऽऽश्वासदायिनी ॥ २५ ॥ आलस्यघ्न्या ७० पदांहन्त्रीह्यानन्दामृतवर्षिणी ॥ इरावतीष्टदात्रीष्टात्विष्टापूर्तफलप्रदा ॥ २६ ॥ इतिहासश्रुतीड्यार्थात्विहामुत्रशुभप्रदा ॥ इज्याशीलसमिज्येष्ठात्विन्द्रादिपरिवन्दिता८० ॥ २७ ॥ इलालङ्कारमालेद्धात्विन्दिराऽरम्यमन्दिरा ॥ इदिन्दिरादिसंसेव्यात्वीश्वरीश्वरव

अशेषविघ्नसंहर्त्री अशेषगुणगुंफिता अज्ञानतिमिरज्योति अनुग्रहपरायणा ॥ २३ ॥ अभिरामा अनवद्यांगी अनन्तसारा अकलंकिनी आरोग्यदा आनन्दवल्ली आपन्नार्त्तिविनाशिनी ॥ २४ ॥ आश्चर्य्यमूर्त्ति आयुष्या आढ्या आद्या आप्रा (राब ओरसे पूरनेवाली) आर्य्यसेविता आप्यायिनी आप्तविद्या आख्या आनन्दा आश्वासदायिनी ॥ २५ ॥ आलसघ्नी आपदांहन्त्री आनन्दामृतवर्षिणी इरावती इष्टदात्री इष्टा इष्टापूर्तफलप्रदा ॥ २६ ॥ इतिहासश्रुतीड्यार्था इहामुत्रशुभप्रदा इज्या

शीलसमिज्येष्ठा इन्द्रादिपरिवंदिता ॥ २७ ॥ इलालंकारमाला इद्धा इन्दिरा रम्यमन्दिरा इत् (ज्ञानस्वरूपा) इन्दिरादिसंसेव्या ईश्वरी ईश्वरवल्लभा ॥ २८ ॥ ईतिभीतिहरा ईडया ईडनीयचरित्रभृत् उत्कृष्टशक्ति उत्कृष्टा उडुपमण्डलचारिणी ॥ २९ ॥ उदिताम्बरमार्गा उस्रा उरगलोकविहारिणी उक्षा उर्वरा (महाविष्णुप्रापिका) उत्पला उत्कुम्भा उपेन्द्रचरणद्रवा ॥ ३० ॥ उदन्वत्पूर्तिहेतु उदारा उत्साहप्रवर्धिनी उद्वेगघ्नी उष्णशमनी उष्णरश्मिसुताप्रिया ॥ ३१ ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी उपरिचारिणी ऊर्जवहन्ती ऊर्जधरा ऊर्जावती ऊर्मिमालिनी ॥ ३२ ॥ ऊर्ध्वरेतःप्रिया ऊर्ध्वाध्वा ऊर्मिला ऊर्ध्वगतिप्रदा ऋषिवृन्दस्तुता

ल्लभा ॥ २८ ॥ ईतिभीतिहरेड्याचत्वीडनीयचरित्रभृत् ९० ॥ उत्कृष्टशक्तिरुत्कृष्टोडुपमण्डलचारिणी ॥ २९ ॥ उदिताम्बरमार्गोस्रोरगलोकविहारिणी ॥ उक्षोर्वरोत्पलोत्कुम्भा १०० उपेन्द्रचरणद्रवा ॥ ३० ॥ उदन्वत्पूर्तिहेतुश्चोदारोत्साहप्रवर्धिनी ॥ उद्वेगघ्न्युष्णशमनी उष्णरश्मिसुताप्रिया ॥ ३१ ॥ उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिण्युपरिचारिणी ॥ ऊर्जवह ११० न्त्यूर्जधरोर्जावतीचोर्मिमालिनी ॥ ३२ ॥ ऊर्ध्वरेतःप्रियोर्ध्वाध्वाह्यूर्मिलोर्ध्वगतिप्रदा ॥ ऋषिवृन्दस्तुतर्द्धिश्चऋणत्रयविनाशिनी १२० ॥ ३३ ॥ ऋतम्भरर्द्धिदात्रीचऋक्स्वरूपाऋजुप्रिया ॥ ऋक्षमार्गवहर्क्षार्चिर्ऋजुमार्गप्रदर्शिनी ॥ ३४ ॥ एधिताऽखिलधर्मार्थात्वेकैकामृतदायिनी १३० ॥ एधनीयस्वभावैज्यात्वेजिताशेषपातका ॥ ३५ ॥ ऐश्वर्यदैश्वर्यरूपा ह्यैतिह्यंह्यैन्दवीद्युतिः ॥ ओजस्विन्योषधीक्षेत्रमोजोदौ १४० दनदायिनी ॥ ३६ ॥ ओष्ठामृतौन्नत्यदात्रीत्वौषधम्भवरोगिणाम् ॥ औदार्यचञ्चुरौपेन्द्रीत्वौग्रीह्यौमेयरूपिणी ॥ ३७ ॥ अम्बराध्ववहाऽम्बष्ठा १५० म्बरमालाम्बुजेक्षणा ॥ अ

ऋद्धि ऋणत्रयविनाशिनी ॥ ३३ ॥ ऋतम्भरा ऋद्धिदात्री ऋक्स्वरूपा ऋजुप्रिया ऋक्षमार्गवहा ऋक्षार्चि ऋजुमार्गप्रदर्शिनी ॥ ३४ ॥ एधिताखिलधर्मार्था एका एकामृतदायिनी एधनीयस्वभावा एज्या एजिताशेषपातका ॥ ३५ ॥ ऐश्वर्य्यदा ऐश्वर्य्यरूपा ऐतिह्य ऐन्दवीद्युति ओजस्विनी ओषधीक्षेत्र ओजोदा ओदनदायिनी ॥ ३६ ॥ ओष्ठामृता औन्नत्यदात्री संसाररोगियोंका औषध औदार्य्य चञ्चु औपेन्द्री औग्री औमेयरूपिणी ॥ ३७ ॥ अम्बराध्ववहा अम्बष्ठा अम्बरमाला अम्बुजेक्षणा अम्बिका

अम्बुमहायोनि अन्धोदा अन्धकहारिणी ॥ ३८ ॥ अंशुमाला अंशुमती अङ्गीकृतषडानना अन्धतामिस्रहन्त्री अन्धु अञ्जना अञ्जनावती ॥ ३९ ॥ कल्याणकारिणी काम्या कमलोत्पलगन्धिनी कुमुद्वती कमलिनी कान्ति कल्पितदायिनी ॥ ४० ॥ कांचनाक्षी कामधेनु कीर्तिकृत् क्लेशनाशिनी क्रतुश्रेष्ठा क्रतुफला कर्मबन्धविभेदिनी ॥ ४१ ॥ कमलाक्षी क्लमहरा कृशानुतपनद्युति करुणार्द्रा कल्याणी कलिकल्मषनाशिनी ॥ ४२ ॥ कामरूपा क्रियाशक्ति कमलोत्पलमालिनी कूटस्था करुणा कान्ता कूर्मयाना

म्बिकाम्बुमहायोनिरन्धोदान्धकहारिणी ॥ ३८ ॥ अंशुमालांशुमतीत्वङ्गीकृतषडानना ॥ अन्धतामिस्रहन्त्र्य १६० न्धुरञ्जनाह्यञ्जनावती ॥ ३९ ॥ कल्याणकारिणीकाम्याकमलोत्पलगन्धिनी॥ कुमुद्वतीकमलिनीकान्तिःकल्पितदायिनी १७० ॥ ४० ॥ काञ्चनाक्षीकामधेनुःकीर्तिकृत्क्लेशनाशिनी ॥ क्रतुश्रेष्ठाक्रतुफलाकर्मबन्धविभेदिनी ॥ ४१ ॥ कमलाक्षीक्लमहराकृशानुतपनद्युतिः १८० ॥ करुणार्द्राचकल्याणीकलिकल्मषनाशिनी ॥ ४२ ॥ कामरूपाक्रियाशक्तिःकमलोत्पलमालिनी ॥ कूटस्थाकरुणाकान्ताकूर्मयाना १९० कलावती ॥ ४३ ॥ कमलाकल्पलतिकाकालीकलुषवैरिणी ॥ कमनीयजलाकम्राकपर्दिसुकपर्दगा ॥ ४४ ॥ कालकूटप्रशमनीकदम्बकुसुमप्रिया २०० ॥ कालिन्दीकेलिललिताकलकल्लोलमालिका ॥ ४५ ॥ क्रान्तलोकत्रयाकण्डूःकण्डूतनयवत्सला ॥ खड्गिनीखड्गधाराभाखगाखण्डेन्दुधारिणी २१० ॥ ४६ ॥ खेखेलगामिनीखस्थाखण्डेन्दुतिलकप्रिया ॥ खेचरीखेचरीवन्द्याख्यातिःख्यातिप्रदायिनी ॥ ४७ ॥ खण्डितप्रणताघौघाखलबुद्धिविनाशिनी ॥ खातैनःकन्दसन्दोहा २२० खड्गखट्वाङ्गखेटिनी ॥ ४८ ॥ खरसन्ता

कलावती ॥ ४३ ॥ कमला कल्पलतिका काली कलुषवैरिणी कमनीयजला कम्रा (कामुका) कपर्दिसुकपर्दगा ॥ ४४ ॥ कालकूटप्रशमनी कदम्बकुसुमप्रिया कालिन्दी केलिललिता कलकल्लोलमालिका ॥ ४५ ॥ क्रान्तलोकत्रया कण्डू कण्डूतनयवत्सला खड्गिनी खड्गधाराभा खगा खण्डेन्दुधारिणी ॥ ४६ ॥ खेखेलगामिनी खस्था खण्डेन्दुतिलकप्रिया खेचरी खेचरीवन्द्या ख्याति ख्यातिप्रदायिनी ॥ ४७ ॥ खण्डितप्रणताघौघा खलबुद्धिविनाशिनी खातैनःकन्दसन्दोहा खड्गखट्वाङ्गखेटिनी ॥ ४८ ॥ खरस-

न्तापशमनी पीयूषपाथसांखानि गंगा गन्धवती गौरी गन्धर्वनगरप्रिया॥४९॥गम्भीराङ्गी गुणमयी गतातङ्का गतिप्रिया गणनाथाम्बिका गीता गद्यपद्यपरिष्टुता ॥ ५०॥ गान्धारी गर्भशमनी गतिभ्रष्टगतिप्रदा गोमती गुह्यविद्या गौ गोप्त्री गगनगामिनी ॥५१॥ गोत्रप्रवर्धिनी गुण्या गुणातीता गुणाग्रणी गुहाम्बिका गिरिसुता गोविन्दांघ्रिसमुद्भवा ॥ ५२ ॥ गुणनीयचरित्रा गायत्री गिरिशप्रिया गूढरूपा गुणवती गुर्वी गौरववर्धिनी ॥ ५३ ॥ ग्रहपीड़ाहरा गुन्द्रा गरघ्नी गानवत्सला घर्महन्त्री घृतवती घृत-

पशमनीखनिःपीयूषपाथसाम् ॥ गङ्गागन्धवतीगौरीगन्धर्वनगरप्रिया ॥ ४९ ॥ गम्भीराङ्गीगुणमयीगतातङ्का २३० गतिप्रिया ॥ गणनाथाम्बिकागीतागद्यपद्यपरिष्टुता ॥ ५० ॥ गान्धारीगर्भशमनीगतिभ्रष्टगतिप्रदा ॥ गोमतीगुह्यविद्या गौ २४० गोप्त्रीगगनगामिनी॥ ५१ ॥ गोत्रप्रवर्धिनीगुण्यागुणातीतागुणाग्रणीः ॥ गुहाम्बिकागिरिसुतागोविन्दाङ्घ्रिसमुद्भवा ॥ ५२ ॥ गुणनीयचरित्रा २५० चगायत्रीगिरिशप्रिया ॥ गूढरूपागुणवतीगुर्वीगौरववर्धिनी ॥ ५३ ॥ ग्रहपीडाहरागुन्द्रागरघ्नीगानवत्सला २६० ॥ घर्महन्त्रीघृतवतीघृततुष्टिप्रदायिनी ॥ ५४ ॥ घण्टारवप्रियाघोराऽघौघविध्वंसकारिणी ॥ घ्राणतुष्टिकरीघोषाघनानन्दाघनप्रिया ॥ ५५ ॥ घातुका २७० घूर्णितजलाघृष्टपातकसन्ततिः ॥ घटकोटिप्रपीतापाघटिताशेषमङ्गला ॥ ५६ ॥ घृणावतीघृणनिधिर्घस्मराघूकनादिनी ॥ घुसृणापिञ्जरतनुर्घर्घरा २८० घर्घरस्वना ॥ ५७॥ चन्द्रिकाचन्द्रकान्ताम्बुश्चञ्चदापाचलद्युतिः ॥ चिन्मयीचितिरूपाचचन्द्रायुतशतानना ॥ ५८ ॥ चाम्पेयलोचनाचारु २९० श्चार्वङ्गीचारुगामिनी ॥ चार्याचारित्रनिलयाचित्रकृच्चित्ररूपिणी ॥ ५९ ॥ चम्पूश्चन्दनशुच्यम्बुश्च

तुष्टिप्रदायिनी ॥ ५४ ॥ घंटारवप्रिया घोराघौवविध्वंसकारिणी घ्राणतुष्टिकरी घोषा घनानन्दा घनप्रिया ॥ ५५ ॥ घातुका घूर्णितजला घृष्टपातकसन्तति घटकोटिप्रपीतापा घटिताशेषमङ्गला ॥ ५६ ॥ घृणावती घृणानिधि घस्मरा घूकनादिनी घुसृणापिञ्जरतनु घर्घरा घर्घरस्वना ॥ ५७ ॥ चन्द्रिका चन्द्रकान्ताम्बु चचदापा चलद्युति चिन्मयी चितिरूपा चद्रायुतशतानना ॥ ५८ ॥ चांपेयलोचना चारु चार्वङ्गी चारुगामिनी चार्य्या. चारित्रनिलया चित्रकृत् चित्ररूपिणी ॥ ५९ ॥ चंपू चंदन-

शुच्यम्बु चर्चनीया चिरस्थिरा चारुचंपकमालाढया चमिताशेषदुष्कृता ॥ ६० ॥ चिदाकाशवहा चिंत्या चञ्चच्चामरवीजिता चोरिताशेषवृजिना चरिताशेषमंडला ॥ ६१ ॥ छेदिताखिलपापौघा छद्मघ्नी छलहारिणी छन्नत्रिविष्टपतला छोटिताशेषबंधना ॥ ६२ ॥ छुरितामृतधारौघा छिन्नैनाः छंदगामिनी छत्रीकृतमरालौघा छटीकृतनिजामृता ॥ ६३ ॥ जाह्नवी ज्या जगन्माता जप्या जंघालवीचिका जया जनार्दनप्रीता जुषणीया जगद्धिता ॥ ६४ ॥ जीवन जीवनप्राणा जगज्ज्येष्ठा जगन्मयी जीवजीवातुलतिका ज-

र्चनीयाचिरस्थिरा ३०० ॥ चारुचम्पकमालाढ्याचमिताशेषदुष्कृता ॥ ६० ॥ चिदाकाशवहाचिन्त्याचञ्चच्चामरवीजिता ॥ चोरिताशेषवृजिनाचरिताशेषमण्डला ॥ ६१ ॥ छेदिताखिलपापौघाछद्मघ्नी ३१० छलहारिणी ॥ छन्नत्रिविष्टपतलाछोटिताशेषबन्धना ॥ ६२ ॥ छुरितामृतधारौघाछिन्नैनाश्छन्दगामिनी ॥ छत्रीकृतमरालौघाछटीकृतनिजामृता ॥ ६३ ॥ जाह्नवीज्या ३२० जगन्माताजप्याजङ्घालवीचिका ॥ जयाजनार्दनप्रीताजुषणीयाजगद्धिता ॥ ६४ ॥ जीवनंजीवनप्राणाजग ३३० ज्ज्येष्ठाजगन्मयी ॥ जीवजीवातुलतिकाजन्मिजन्मनिबर्हिणी ॥ ६५ ॥ जाड्यविध्वंसनकरीजगद्योनिर्जलाविला ॥ जगदानन्दजननीजलजाजलजेक्षणा ३४० ॥ ६६ ॥ जनलोचनपीयूषाजटातटविहारिणी ॥ जयन्तीजञ्जपूकघ्नीजनितज्ञानविग्रहा ॥ ६७ ॥ झल्लरीवाद्यकुशलाझलज्झालजलावृता ॥ झिण्टीशवन्द्याझाङ्कारकारिणीझर्झरावती ३५० ॥ ६८ ॥ टीकिताशेषपातालाटङ्किकैनोद्रिपाटने ॥ टङ्कारनृत्यत्कल्लोलाटीकनीयमहातटा ॥ ६९ ॥ डम्बरप्रवहाडीनराजहंसकुलाकुला ॥ डमड्डमरुहस्ताचडामरोक्तमहाण्डका ॥ ७० ॥ ढौकिताशेषनिर्वाणाढक्कानादचलज्ज

न्मिजन्मनिबर्हिणी ॥ ६५ ॥ जाड्यविध्वंसनकरी जगद्योनि जलाविला जगदानंदजननी जलजा जलजेक्षणा ॥ ६६ ॥ जनलोचनपीयूषा जटातटविहारिणी जयन्ती जञ्जपूकघ्नी जनितज्ञानविग्रहा ॥ ६७ ॥ झल्लरीवाद्यकुशला झलज्झालजलावृता झिंटीशवंद्या झांकारकारिणी झर्झरावती ॥ ६८ ॥ टीकिताशेषपाताला एनोद्रिपाटने (पापपहाड़फोड़ने में) टंकिका टंकारनृत्यत्कल्लोला टीकनीयमहातटा ॥ ६९ ॥ डंबरप्रवहा डीनराजहंसकुलाकुला डमड्डमरुहस्ता डामरोक्तमहाण्डका ॥ ७० ॥ ढौकिताशेषनिर्वाणा

ढक्कानादचलज्जला ढुंढिविघ्नेशजननी ढणड्ढुणितपातका ॥ ७१ ॥ तर्पणी तीर्थतीर्था त्रिपथा त्रिदशेश्वरी त्रिलोकगोप्त्री तोयेशी त्रैलोक्यपरिवंदिता ॥ ७२ ॥ तापत्रितय-
संहर्त्री तेजोबलविवर्धिनी त्रिलक्षाता रणी तारा तारापतिकरार्चिता ॥ ७३ ॥ त्रैलोक्यपावनी पुण्या तुष्टिदा तुष्टिरूपिणी तृष्णाछेत्री तीर्थमाता त्रिविक्रमपदोद्भवा ॥ ७४ ॥
तपोमयी तपोरूपा तपस्तोमफलप्रदा त्रैलोक्यव्यापिनी तृप्ति तृप्तिकृत् तत्त्वरूपिणी ॥ ७५ ॥ त्रैलोक्यसुंदरी तुर्य्या तुर्य्यातीतपदप्रदा त्रैलोक्यलक्ष्मी त्रिपदी तथ्या तिमि-

ला३६०॥ ढुण्ढिविघ्नेशजननीढणड्ढुणितपातका ॥ ७१ ॥ तर्पणीतीर्थतीर्थाचत्रिपथात्रिदशेश्वरी ॥ त्रिलोकगोप्त्रीतोयेशी
त्रैलोक्यपरिवन्दिता ॥ ७२ ॥ तापत्रितयसंहर्त्री ३७० तेजोबलविवर्धिनी ॥ त्रिलक्षातारणीतारातारापतिकरार्चिता ॥ ७३ ॥
त्रैलोक्यपावनीपुण्यातुष्टिदातुष्टिरूपिणी ॥ तृष्णाछेत्रीतीर्थमाता ३८० त्रिविक्रमपदोद्भवा ॥ ७४ ॥ तपोमयीतपोरूपा
तपस्तोमफलप्रदा ॥ त्रैलोक्यव्यापिनीतृप्तिस्तृप्तिकृत्तत्त्वरूपिणी ॥ ७५ ॥ त्रैलोक्यसुन्दरीतुर्या ३९० तुर्यातीतपदप्र
दा ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीस्त्रिपदीतथ्यातिमिरचन्द्रिका ॥ ७६ ॥ तेजोगर्भातपःसारात्रिपुरारिशिरोगृहा ॥ त्रयीस्वरूपिणी
तन्वी ४०० तपनाङ्गजभीतिनुत् ॥ ७७ ॥ तरिस्तरणिजामित्रन्तर्पिताशेषपूर्वजा ॥ तुलाविरहितातीव्रपापतूलतनूनपात् ॥
७८ ॥ दारिद्र्यदमनीदक्षादुष्प्रेक्षादिव्यमण्डना ४१० ॥ दीक्षावतीदुरावाप्याद्राक्षामधुरवारिभृत् ॥ ७९ ॥ दर्शितानेक
कुतुकादुष्टदुर्जयदुःखहृत् ॥ दैन्यहृद्दुरितघ्नीचदानवारिपदाब्जजा ॥ ८० ॥ दन्दशूकविषघ्नीचदारिताघौघसंततिः ४२० ॥
द्रुतादेवद्रुमच्छन्नादुर्वाराघविघातिनी ॥ ८१ ॥ दमग्राह्यादेवमातादेवलोकप्रदर्शिनी ॥ देवदेवप्रियादेवीदिक्पालपददा

रचंद्रिका ॥ ७६ ॥ तेजोगर्भा तपःसारा त्रिपुरारिशिरोगृहा त्रयीस्वरूपिणी तन्वी तपनांगजभीतिनुत् ॥ ७७ ॥ तरि तरणिजामित्र तर्पिताशेषपूर्वजा तुलाविरहिता तीव्रपाप-
तूलतनूनपात् ॥ ७८ ॥ दारिद्र्यदमनी दक्षा दुष्प्रेक्षा दिव्यमंडना दीक्षावती दुरावाप्या द्राक्षामधुरवारिभृत् ॥ ७९ ॥ दर्शितानेककुतुका दुष्टदुर्जयदुःखहृत् दैन्यहृत् दुरितघ्नी
दानवारिपदाब्जजा ॥ ८० ॥ दंदशूकविषघ्नी दारिताघौघसंतति द्रुता देवद्रुमच्छन्ना दुर्वाराघविघातिनी ॥ ८१ ॥ दमग्राह्या देवमाता देवलोकप्रदर्शिनी देवदेवप्रिया देवी

दिक्पालपददायिनी॥ ८२ ॥ दीर्घायुःकारिणी दीर्घा दोग्ध्री दूषणवर्जिता दुग्धांबुवाहिनी दोह्या दिव्या दिव्यगतिप्रदा ॥ ८३ ॥ द्युनदी दीनशरणा देहिदेहनिवारिणी द्राघीयसी दाघहंत्री दितपातकसंतति ॥ ८४ ॥ दूरदेशान्तरचरी दुर्गमा देववल्लभा दुर्वृत्तघ्नी दुर्विगाह्या दयाधारा दयावती ॥ ८५ ॥ दुरासदा दानशीला द्राविणी द्रुहिणस्तुता दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्री दुर्बुद्धिहारिणी ॥ ८६ ॥ दानसारा दयासारा द्यावाभूमिविगाहिनी दृष्टादृष्टफलप्राप्ति देवतावृंदवंदिता ॥ ८७ ॥ दीर्घव्रता दीर्घदृष्टि दीप्ततोया दुरालभा

यिनी ॥ ८२ ॥ दीर्घायुःकारिणी ४३० दीर्घादोग्ध्रीदूषणवर्जिता ॥ दुग्धाम्बुवाहिनीदोह्यादिव्यादिव्यगतिप्रदा ॥ ८३ ॥ द्युनदीदीनशरणंदेहिदेहनिवारिणी ४४० ॥ द्राघीयसीदाघहन्त्रीदितपातकसन्ततिः ॥ ८४ ॥ दूरदेशान्तरचरीदुर्गमादेव वल्लभा ॥ दुर्वृत्तघ्नीदुर्विगाह्यादयाधारादयावती ४५० ॥ ८५ ॥ दुरासदादानशीलाद्राविणीद्रुहिणस्तुता ॥ दैत्यदानवसंशुद्धिकर्त्रीदुर्बुद्धिहारिणी ॥ ८६ ॥ दानसारादयासाराद्यावाभूमिविगाहिनी ॥ दृष्टादृष्टफलप्राप्ति ४६० दैवतावृन्दवन्दिता ॥ ८७ ॥ दीर्घव्रतादीर्घदृष्टिर्दीप्ततोयादुरालभा ॥ दण्डयित्रीदण्डनीतिर्दुष्टदण्डधरार्चिता ॥ ८८ ॥ दुरोदरघ्नीदावार्चि ४७० र्द्रवद्रव्यैकशेवधिः ॥ दीनसंतापशमनीदात्रीदवथुवैरिणी ॥ ८९ ॥ दरीविदारणपरादान्तादान्तजनप्रिया ॥ दारिताद्रितटादुर्गा ४८० दुर्गारण्यप्रचारिणी ॥ ९० ॥ धर्मद्रवाधर्मधुराधेनुर्धीराधृतिर्ध्रुवा ॥ धेनुदानफलस्पर्शाधर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ९१ ॥ धर्मोर्मिवाहिनी ४९० धुर्याधात्रीधात्रीविभूषणम् ॥ धर्मिणीधर्मशीलाचधन्विकोटिकृतावना ॥ ९२ ॥ ध्यातृपापहराध्येयाधावनीधूतकल्मषा ५०० ॥ धर्मधाराधर्मसाराधनदाधनवर्धिनी ॥ ९३ ॥ धर्माधर्मगुणच्छेत्रीधत्तूरकुसुम

दंडयित्री दंडनीति दुष्टदंडधरार्चिता ॥ ८८ ॥ दुरोदरघ्नी दावार्चि द्रवद्रव्यैकशेवधि दीनसंतापशमनी दात्री दवथुवैरिणी ॥ ८९ ॥ दरीविदारणपरा दान्ता दान्तजनप्रिया दारिताद्रितटा दुर्गा दुर्गारण्यप्रचारिणी ॥ ९० ॥ धर्मद्रवा धर्मधुरा धेनु धीरा धृति ध्रुवा धेनुदानफलस्पर्शा धर्मकामार्थमोक्षदा ॥ ९१ ॥ धर्मोर्मिवाहिनी धुर्य्या धात्री धात्राविभूषणा धर्मिणी धर्मशीला धन्विकोटिकृतावना ॥ ९२ ॥ ध्यातृपापहरा ध्येया धावनी धूतकल्मषा धर्मधारा धर्मसारा धनदा धनवर्धिनी ॥ ९३ ॥ धर्माधर्मगुण-

च्छेत्री धत्तूरकुसुमप्रिया धर्मेशी धर्मशास्त्रज्ञा धनधान्यसमृद्धिकृत् ॥ ९४ ॥ धर्म्मलभ्या धर्मजला धर्मप्रसवधर्मिणी ध्यानगम्यस्वरूपा धरणी धातृपूजिता ॥ ९५ ॥ धूः धूर्जटिजटासंस्था धन्या धी धारणावती नंदा निर्वाणजननी नंदिनी नुन्नपातका ॥ ९६ ॥ निषिद्धविघ्ननिचया निजानंदप्रकाशिनी नभोंगणचरी नूति नम्या नारायणी नुता ॥ ९७ ॥ निर्मला निर्मलाख्याना तापसंपदांनाशिनी नियता नित्यसुखदा नानाश्चर्य्यमहानिधि ॥ ९८ ॥ नदी नदसरोमाता नायिका नाकदीर्घिका नष्टोद्धरण-

प्रिया ॥ धर्मेशीधर्मशास्त्रज्ञाधनधान्यसमृद्धिकृत् ॥ ९४ ॥ धर्मलभ्या ५१० धर्मजलाधर्मप्रसवधर्मिणी ॥ ध्यानगम्य स्वरूपाचधरणीधातृपूजिता ॥ ९५ ॥ धूर्धूर्जटिजटासंस्थाधन्याधीर्धारणावती ५२० ॥ नन्दानिर्वाणजननीनन्दिनीनुन्न पातका ॥ ९६ ॥ निषिद्धविघ्ननिचयानिजानन्दप्रकाशिनी ॥ नभोङ्गणचरीनूतिर्नम्यानारायणी ५३० नुता ॥ ९७ ॥ निर्म लानिर्मलाख्यानानाशिनीतापसंपदाम् ॥ नियतानित्यसुखदानानाश्चर्यमहानिधिः ॥ ९८ ॥ नदीनदसरोमातानायिका ५४० नाकदीर्घिका ॥ नष्टोद्धरणधीराचनन्दनानन्ददायिनी ॥ ९९ ॥ निर्णिक्ताशेषभुवनानिःसङ्गानिरुपद्रवा ॥ निराल म्बानिष्प्रपञ्चानिर्णाशितमहामला ५५० ॥ १०० ॥ निर्मलज्ञानजननीनिःशेषप्राणितापहृत् ॥ नित्योत्सवानित्यतृप्तान मस्कार्यानिरञ्जना ॥ १ ॥ निष्ठावतीनिरातङ्कानिर्लेपानिश्चलात्मिका ५६० ॥ निरवद्यानिरीहाचनीललोहितमूर्धगा ॥ २ ॥ नन्दिभृङ्गिगणस्तुत्यानागानन्दानगात्मजा ॥ निष्प्रत्यूहानाकनदीनिरयार्णवदीर्घनौः ५७० ॥ ३ ॥ पुण्यप्रदापुण्यगर्भा पुण्यापुण्यतरङ्गिणी ॥ पृथुःपृथुफलापूर्णाप्रणतार्तिप्रभञ्जिनी ॥ ४ ॥ प्राणदाप्राणिजननी ५८० प्राणेशीप्राणरूपिणी ॥

धीरा नंदनानंददायिनी ॥ ९९ ॥ निर्णिक्ताशेषभुवना निःसंगा निरुपद्रवा निरालम्बा निष्प्रपंचा निर्णाशितमहामला ॥ १०० ॥ निर्मलज्ञानजननी निश्शेषप्राणितापहृत् नित्योत्सवा नित्यतृप्ता नमस्कार्य्या निरंजना ॥ १ ॥ निष्ठावती निरातंका निर्लेपा निश्चलात्मिका निरवद्या निरीहा नीललोहितमूर्द्धगा ॥ २ ॥ नन्दिभृंगिगणस्तुत्या नागानंदा नगात्मजा निष्प्रत्यूहा नाकनदी निरयार्णवदीर्घनौ ॥ ३ ॥ पुण्यप्रदा पुण्यगर्भा पुण्यापुण्यतरंगिणी पृथु पृथुफलापूर्णा प्रणतार्तिप्रभंजिनी ॥ ४ ॥

का
श्र

प्राणदा प्राणिजननी प्राणेशी प्राणरूपिणी पद्मालया पराशक्ति पुरजितपरमप्रिया ॥ ५ ॥ परा परफलप्राप्ति पावनी पयस्विनी परानंदा प्रकृष्टार्था प्रतिष्ठा पालनी परा ॥ ६ ॥ पुराणपठिता प्रीता प्रणवाक्षररूपिणी पार्वती प्रेमसम्पन्ना पशुपाशविमोचनी ॥ ७ ॥ परमात्मस्वरूपा परब्रह्मप्रकाशिनी परमानंदनिष्पंदा प्रायश्चित्तस्वरूपिणी ॥ ८ ॥ पानीयरूपनिर्वाणा परित्राणपरायणा पापेन्धनदवज्वाला पापारि पापनामनुत् ॥ ९ ॥ परमैश्वर्य्यजननी प्रज्ञा प्राज्ञा परापरा प्रत्यक्ष-

पद्मालयापराशक्तिःपुरजितपरमप्रिया ॥ ५ ॥ परापरफलप्राप्तिःपावनीचपयस्विनी ॥ परानन्दा ५९० प्रकृष्टार्थाप्रतिष्ठा पालनीपरा ॥ ६ ॥ पुराणपठिताप्रीताप्रणवाक्षररूपिणी ॥ पार्वतीप्रेमसम्पन्नापशुपाशविमोचनी ६०० ॥ ७ ॥ परमात्म स्वरूपाचपरब्रह्मप्रकाशिनी ॥ परमानन्दनिष्पन्दाप्रायश्चित्तस्वरूपिणी ॥ ८ ॥ पानीयरूपनिर्वाणापरित्राणपरायणा ॥ पापेन्धनदवज्वालापापारिःपापनामनुत् ॥ ९ ॥ परमैश्वर्यजननी ६१० प्रज्ञाप्राज्ञापरापरा ॥ प्रत्यक्षलक्ष्मीःपद्माक्षीपर व्योमामृतस्रवा ॥ १० ॥ प्रसन्नरूपाप्रणिधिःपूताप्रत्यक्षदेवता ६२० ॥ पिनाकिपरमप्रीतापरमेष्ठिकमण्डलुः ॥ ११ ॥ पद्म नाभपदार्घ्येणप्रसूतापद्ममालिनी ॥ परर्धिदापुष्टिकरीपथ्यापूर्तिःप्रभावती ॥ १२ ॥ पुनाना ६३० पीतगर्भघ्नीपापपर्वतना शिनी ॥ फलिनीफलहस्ताचफुल्लाम्बुजविलोचना ॥ १३ ॥ फालितैनोमहाक्षेत्राफणिलोकविभूषणम् ॥ फेनच्छलप्रणु न्नैनाःफुल्लकैरवगन्धिनी ॥ १४ ॥ फेनिलाच्छाम्बुधाराभा ६४० फुडुच्चाटितपातका ॥ फाणितस्वादुसलिलाफाण्टपथ्य जलाविला ॥ १५ ॥ विश्वमाताचविश्वेशीविश्वाविश्वेश्वरप्रिया ॥ ब्रह्मण्याब्रह्मकृद्ब्राह्मी ६५० ब्रह्मिष्ठाविमलोदका ॥ १६ ॥

लक्ष्मी पद्माक्षी परव्योमामृतस्रवा ॥ १० ॥ प्रसन्नरूपा प्रणिधि पूता प्रत्यक्षदेवता पिनाकिपरमप्रीता परमेष्ठिकमंडलु ॥ ११ ॥ पद्मनाभपदार्घ्येणप्रसूता पद्ममालिनी परर्धिदा पुष्टिकरी पथ्या पूर्ति प्रभावती ॥ १२ ॥ पुनाना पीतगर्भघ्नी पापपर्वतनाशिनी फलिनी फलहस्ता फुल्लाम्बुजविलोचना ॥ १३ ॥ फालितैनोमहाक्षेत्रा फणिलोकविभूषण फेणच्छलप्रणुन्नैनाः फुल्लकैरवगंधिनी ॥ १४ ॥ फेनिलाच्छांबुधाराभा फुडुच्चाटितपातका फाणितस्वादुसलिला फांटपथ्यजलाविला ॥ १५ ॥ विश्वमाता विश्वेशी

विश्वा विश्वेश्वरप्रिया ब्रह्मण्या ब्रह्मकृत् ब्राह्मी ब्रह्मिष्ठा विमलोदका ॥ १६ ॥ विभावरी विरजा विक्रांतानेकविष्टपा विश्वमित्र विष्णुपदी वैष्णवी वैष्णवप्रिया ॥ १७ ॥ विरूपाक्षप्रियकरी विभूति विश्वतोमुखी विपाशा वैबुधी वेद्या वेदाक्षररसस्रवा ॥ १८ ॥ विद्या वेगवती वंद्या बृंहणी ब्रह्मवादिनी वरदा विप्रकृष्टा वरिष्ठा विशोधनी ॥ १९ ॥ विद्याधरी विशोका वयोवृन्दनिषेविता बहूदका बलवती व्योमस्था विबुधप्रिया ॥ २० ॥ वाणी वेदवती वित्ता ब्रह्मविद्यातरंगिणी ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बु ब्रह्महत्या-

विभावरीचविरजाविक्रान्तानेकविष्टपा ॥ विश्वमित्रंविष्णुपदीवैष्णवीवैष्णवप्रिया ॥ १७ ॥ विरूपाक्षप्रियकरी ६६० विभूतिर्विश्वतोमुखी ॥ विपाशावैबुधीवेद्यावेदाक्षररसस्रवा ॥ १८ ॥ विद्यावेगवतीवन्द्याबृंहणी ६७० ब्रह्मवादिनी ॥ वरदाविप्रकृष्टाचवरिष्ठाचविशोधनी ॥ १९ ॥ विद्याधरीविशोकाचवयोवृन्दनिषेविता ॥ बहूदकाबलवती ६८० व्योमस्थाविबुधप्रिया ॥ २० ॥ वाणीवेदवतीवित्ताब्रह्मविद्यातरङ्गिणी ॥ ब्रह्माण्डकोटिव्याप्ताम्बुर्ब्रह्महत्यापहारिणी ॥ २१ ॥ ब्रह्मेशविष्णुरूपाचबुद्धि ६९० र्विभववर्धिनी ॥ विलासिसुखदावैश्याव्यापिनीचवृषारणिः ॥ २२ ॥ वृषाङ्कमौलिनिलया विपन्नार्तिप्रभञ्जिनी ॥ विनीताविनताब्रध्नतनया ७०० विनयान्विता ॥ २३ ॥ विपञ्चीवाद्यकुशलावेणुश्रुतिविचक्षणा ॥ वर्चस्करीबलकरीबलोन्मूलितकल्मषा ॥ २४ ॥ विपाप्माविगतातङ्काविकल्पपरिवर्जिता ७१० ॥ वृष्टिकर्त्रीवृष्टिजला विधिर्विच्छिन्नबन्धना ॥ २५ ॥ व्रतरूपावित्तरूपाबहुविघ्नविनाशकृत् ॥ वसुधारावसुमतीविचित्राङ्गी ७२० विभावसुः ॥ २६ ॥ विजयाविश्वबीजञ्चवामदेवीवरप्रदा ॥ वृषाश्रिताविषघ्नीचविज्ञानोर्म्यंशुमालिनी ॥ २७ ॥ भव्याभोगवती ७३०

पहारिणी ॥ २१ ॥ ब्रह्मेशविष्णुरूपा बुद्धि विभववर्धिनी विलासिसुखदा वैश्या व्यापिनी वृषारणि ॥ २२ ॥ वृषांकमौलिनिलया विपन्नार्तिप्रभञ्जिनी विनीता विनता ब्रध्नतनया विनयान्विता ॥ २३ ॥ विपञ्ची वाद्यकुशला वेणुश्रुतिविचक्षणा वर्चस्करी बलकरी बलोन्मूलितकल्मषा ॥ २४ ॥ विपाप्मा विगतातङ्का विकल्पपरिवर्जिता वृष्टिकर्त्री वृष्टिजला विधिविच्छिन्नबन्धना ॥ २५ ॥ व्रतरूपा वित्तरूपा बहुविघ्नविनाशकृत् वसुधारा वसुमती विचित्राङ्गी विभावसु ॥ २६ ॥ विजया विश्वबीज वाम-

देवी वरप्रदा वृषाश्रिता विषघ्नी विज्ञानोर्म्यंशुमालिनी ॥ २७ ॥ भव्या भोगवती भद्रा भवानी भूतभाविनी भूतधात्री भयहर भक्तदारिद्र्यघातिनी ॥ २८ ॥ मुक्तिमुक्तिप्रदा भेशी भक्तस्वर्गापवर्गदा भागीरथी भानुमती भाग्य भोगवती भृति ॥ २९ ॥ भवप्रिया भवद्वेष्ट्री भूतिदा भूतिभूषणा भाललोचनभावज्ञा भूतभव्यभवत्प्रभु ॥ ३० ॥ भ्रान्तिज्ञानप्रशमनी भिन्नब्रह्माण्डमण्डपा भूरिदा भक्तिसुलभा भाग्यवद्दृष्टिगोचरी ॥ ३१ ॥ भञ्जितोपप्लवकुला भक्ष्यभोज्यसुखप्रदा भिक्षणीया भिक्षुमाता भावा भावस्वरू-

भद्राभवानीभूतभाविनी ॥ भूतधात्रीभयहराभक्तदारिद्र्यघातिनी ॥ २८ ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदाभेशीभक्तस्वर्गापवर्गदा ॥ भागीरथी ७४० भानुमतीभाग्यंभोगवतीभृतिः ॥ २९ ॥ भवप्रियाभवद्वेष्ट्रीभूतिदाभूतिभूषणा ॥ भाललोचनभावज्ञाभूतभव्यभवत्प्रभुः ७५० ॥ ३० ॥ भ्रान्तिज्ञानप्रशमनीभिन्नब्रह्माण्डमण्डपा ॥ भूरिदाभक्तिसुलभाभाग्यवद्दृष्टिगोचरी ॥ ३१ ॥ भञ्जितोपप्लवकुलाभक्ष्यभोज्यसुखप्रदा ॥ भिक्षणीयाभिक्षुमाताभावा ७६० भावस्वरूपिणी ॥ ३२ ॥ मन्दाकिनीमहानन्दामातामुक्तितरङ्गिणी ॥ महोदयामधुमतीमहापुण्यामुदाकरी ॥ ३३ ॥ मुनिस्तुता ७७० मोहहन्त्रीमहातीर्थामधुस्रवा ॥ माधवीमानिनीमान्यामनोरथपथातिगा ॥ ३४ ॥ मोक्षदामतिदामुख्या ७८० महाभाग्यजनाश्रिता ॥ महावेगवतीमेध्यामहामहिमभूषणा ॥ ३५ ॥ महाप्रभावामहतीमीनचञ्चललोचना ॥ महाकारुण्यसम्पूर्णामहर्द्धि ७९० श्चमहोत्पला ॥ ३६ ॥ मूर्तिमन्मुक्तिरमणीमणिमाणिक्यभूषणा ॥ मुक्ताकलापनेपथ्यामनोनयननन्दिनी ॥ ३७ ॥ महापातकराशिघ्नीमहादेवार्धहारिणी ॥ महोर्मिमालिनीमुक्ता ८०० महादेवीमनोन्मनी ॥ ३८ ॥ महापुण्योदयप्राप्या

पिणी ॥ ३२ ॥ मन्दाकिनी महानन्दा माता मुक्तितरङ्गिणी महोदया मधुमती महापुण्या मुदाकरी ॥ ३३ ॥ मुनिस्तुता मोहहन्त्री महातीर्था मधुस्रवा माधवी मानिनी मान्या मनोरथपथातिगा ॥ ३४ ॥ मोक्षदा मतिदा मुख्या महाभाग्यजनाश्रिता महावेगवती मेध्या महामहिमभूषणा ॥ ३५ ॥ महाप्रभावा महती मीनचञ्चललोचना महाकारुण्यसम्पूर्णा महर्द्धि महोत्पला ॥ ३६ ॥ मूर्तिमत् मुक्तिरमणी मणिमाणिक्यभूषणा मुक्ताकलापनेपथ्या मनोनयननन्दिनी ॥ ३७ ॥ महापातकराशिघ्नी महा-

देवार्धहारिणी महोर्मिमालिनी मुक्ता महादेवी मनोन्मनी ॥ ३८ ॥ महापुण्योदयप्राप्या मायातिमिरचन्द्रिका महाविद्या महामाया महामेधा महौषध ॥ ३९ ॥ माला-धरी महोपाया महोरगविभूषणा महामोहप्रशमनी महामंगलमंगला ॥ ४० ॥ मार्तण्डमण्डलचरी महालक्ष्मी महोज्झिता यशस्विनी यशोदा योग्या युक्तात्मसेविता ॥ ४१ ॥ योगसिद्धिप्रदा याज्या यज्ञेशपरिपूरिता यज्ञेशी यज्ञफलदा यजनीया यशस्करी ॥ ४२ ॥ यमिसेव्या योगयोनि योगिनी युक्तबुद्धिदा, योगज्ञानप्रदा युक्ता यमाद्य-

मायातिमिरचन्द्रिका ॥ महाविद्यामहामायामहामेधामहौषधम् ॥ ३९ ॥ मालाधरीमहोपाया ८१० महोरगविभूषणा ॥ महामोहप्रशमनीमहामङ्गलमङ्गलम् ॥ ४० ॥ मार्तण्डमण्डलचरीमहालक्ष्मीर्मदोज्झिता ॥ यशस्विनीयशोदाचयोग्यायुक्तात्मसेविता ८२० ॥ ४१ ॥ योगसिद्धिप्रदायाज्यायज्ञेशपरिपूरिता ॥ यज्ञेशीयज्ञफलदायजनीयायशस्करी ॥ ४२ ॥ यमिसेव्यायोगयोनिर्योगिनी ८३० युक्तबुद्धिदा॥योगज्ञानप्रदायुक्तायमाद्यष्टाङ्गयोगयुक् ॥ ४३ ॥ यन्त्रिताघौघसञ्चारायमलोकनिवारिणी ॥ यातायातप्रशमनीयातनानामकृन्तनी ॥ ४४ ॥ यामिनीशहिमाच्छोदायुगधर्मविवर्जिता ८४० ॥ रेवतीरतिकृद्रम्यारत्नगर्भारमारतिः ॥ ४५ ॥ रत्नाकरप्रेमपात्रंरसज्ञारसरूपिणी ॥ रत्नप्रासादगर्भा ८५० चरमणीयतरङ्गिणी ॥ ४६ ॥ रत्नार्चीरुद्ररमणीरागद्वेषविनाशिनी ॥ रमारामारम्यरूपारोगिजीवातुरूपिणी ॥ ४७ ॥ रुचिकृद्रोचनी ८६० रम्यारुचिरारोगहारिणी ॥ राजहंसारत्नवतीराजत्कल्लोलराजिका ॥ ४८ ॥ रामणीयकरेखाचरुजारीरोगरोषिणी ॥ राका ८७० रङ्कार्तिशमनीरम्यारोलम्बराविणी ॥ ४९ ॥ रागिणीरञ्जितशिवारूपलावण्यशेवधिः ॥

ष्टांगयोगयुक् ॥ ४३ ॥ यन्त्रिताघौघसंचारा यमलोकनिवारिणी यातायातप्रशमनी यातनानामकृन्तनी ॥ ४४ ॥ यामिनीशहिमाच्छोदा युगधर्मविवर्जिता रेवती रति-कृत रम्या रत्नगर्भा रमा रति ॥ ४५ ॥ रत्नाकरप्रेमपात्र रसज्ञा रसरूपिणी रत्नप्रासादगर्भा रमणीयतरंगिणी ॥ ४६ ॥ रत्नार्चि रुद्ररमणी रागद्वेषविनाशिनी रमा रामा रम्यरूपा रोगिजीवातुरूपिणी ॥ ४७ ॥ रुचिकृत् रोचनी रम्या रुचिरा रोगहारिणी राजहंसा रत्नवती राजत्कल्लोलराजिका ॥ ४८ ॥ रामणीयकरेखा रुजारि रोषरोषिणी राका रंका-

त्तिशमनी रम्या रोलम्बराविणी ॥ ४९ ॥ रागिणी रंजितशिवा रूपलावण्यशेवधि लोकप्रसू लोकवंद्या लोलत्कल्लोलमालिनी॥ ५० ॥लीलावती लोकभूमि लोकलोचनचंद्रिका लेखस्रवंती लटभा लघुवेगा लघुत्वहृत् ॥ ५१॥ लास्यत्तरंगहस्ता ललिता लयभंगिगा लोकबंधु लोकधात्री लोकोत्तरगुणोर्जिता ॥ ५२ ॥ लोकत्रयहिता लोकालक्ष्मी लक्षणलक्षिता लीलालक्षितनिर्वाणा लावण्यामृतवर्षिणी ॥ ५३ ॥ वैश्वानरी वासवेड्या वंध्यत्वपरिहारिणी वासुदेवांघ्रिरेणुघ्नी वज्रिवज्रनिवारिणी ॥ ५४ ॥

लोकप्रसूर्लोकवन्द्यालोलत्कल्लोलमालिनी ॥ ५० ॥ लीलावती ८८० लोकभूमिर्लोकलोचनचन्द्रिका ॥ लेखस्रवन्ती लटभालघुवेगालघुत्वहृत् ॥ ५१ ॥ लास्यत्तरङ्गहस्ताचललितालयभङ्गिगा ॥ लोकबन्धु ८९० र्लोकधात्रीलोकोत्तरगुणोर्जिता ॥ ५२ ॥ लोकत्रयहितालोकालक्ष्मीर्लक्षणलक्षिता ॥ लीलालक्षितनिर्वाणालावण्यामृतवर्षिणी ॥ ५३ ॥ वैश्वानरी ९०० वासवेड्यावन्ध्यत्वपरिहारिणी ॥ वासुदेवाङ्घ्रिरेणुघ्नीवज्रिवज्रनिवारिणी ॥ ५४ ॥ शुभावतीशुभफलाशान्तिः शान्तनुवल्लभा ॥ शूलिनीशैशववयाः ९१० शीतलाऽमृतवाहिनी ॥ ५५ ॥ शोभावतीशीलवतीशोषिताशेषकिल्बिषा ॥ शरण्याशिवदाशिष्टाशरजन्मप्रसूःशिवा ॥ ५६ ॥ शक्तिः ९२० शशाङ्कविमलाशमनस्वसृसम्मता ॥ शमाशमनमार्गघ्नीशितिकण्ठमहाप्रिया ॥ ५७ ॥ शुचिःशुचिकरीशेषाशेषशायिपदोद्भवा ॥ श्रीनिवासश्रुतिः ९३० श्रद्धाश्रीमतीश्रीःशुभव्रता ॥ ५८ ॥ शुद्धविद्याशुभावर्ताश्रुतानन्दाश्रुतिस्तुतिः ॥ शिवेतरघ्नीशबरी ९४० शाम्बरीरूपधारिणी॥ ५९ ॥ श्मशानशोधनीशान्ताशश्वच्छतधृतिश्रुता ॥ शालिनीशालिशोभाढ्याशिखिवाहनगर्भभृत् ॥ ६० ॥ शंस

शुभावती शुभफला शांति शांतनुवल्लभा शूलिनी शैशववयाः शीतलामृतवाहिनी ॥ ५५ ॥ शोभावती शीलवती शोषिता शेषकिल्बिषा शरण्या शिवदा शिष्टा शरजन्मप्रसू शिवा॥ ५६ ॥ शक्ति शशांकविमला शमनस्वसृसम्मता शमा शमनमार्गघ्नी शितिकंठमहाप्रिया ॥ ५७ ॥ शुचि शुचिकरी शेषा शेषशायिपदोद्भवा श्रीनिवासश्रुति श्रद्धा श्रीमती श्रीशुभव्रता ॥ ५८ ॥ शुद्धविद्या शुभावर्ता श्रुतानंदा श्रुतिस्तुति शिवेतरघ्नी शबरी शांबरीरूपधारिणी ॥ ५९॥ श्मशानशोधनी शांता शश्वत् शत-

धृतिस्तुता शालिनी शालिशोभाढ्या शिखिवाहनगर्भभृत् ॥ ६० ॥ शंसनीयचरित्रा शातिताशेषपातका षड्गुणैश्वर्य्यसम्पन्ना षडंगश्रुतिरूपिणी ॥ ६१॥ षंढताहारिसलिला ष्ट्यायन्नदनदीशता सरिद्वरा सुरसा सुप्रभा सुरदीर्घिका॥६२॥ स्वःसिंधु सर्व दुःखघ्नी सर्वव्याधि महौषध सेव्या सिद्धि सती सूक्ति स्कन्दसू सरस्वती ॥ ६३ ॥ संपत्तरंगिणी स्तुत्या स्थाणुमौलिकृतालया स्थैर्य्यदा सुभगा सौख्या स्त्रीषुसौभाग्यदायिनी ॥ ६४ ॥ स्वर्गनिःश्रेणिका सूक्ष्मा स्वधा स्वाहा सुधा जला समुद्ररूपिणी स्वर्ग्या सर्वपातकवै-

नीयचरित्राचशातिताशेषपातका ९५० ॥ षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नाषडङ्गश्रुतिरूपिणी ॥ ६१ ॥ षण्ढताहारिसलिलाष्ट्याय न्नदनदीशता ॥ सरिद्वराचसुरसासुप्रभासुरदीर्घिका ॥ ६२ ॥स्वःसिन्धुःसर्वदुःखघ्नी ९६० सर्वव्याधिमहौषधम्॥ सेव्यासि द्धिःसतीसूक्तिःस्कन्दसूश्चसरस्वती ॥६३॥ सम्पत्तरङ्गिणीस्तुत्यास्थाणुमौलिकृतालया ९७० ॥ स्थैर्यदासुभगासौख्या स्त्रीषुसौभाग्यदायिनी ॥ ६४ ॥ स्वर्गनिःश्रेणिकासूक्ष्मास्वधास्वाहासुधाजला॥ समुद्ररूपिणी ९८० स्वर्ग्यासर्वपातक वैरिणी ॥ ६५ ॥ स्मृताघहारिणीसीतासंसाराब्धितरण्डिका॥सौभाग्यसुन्दरीसन्ध्यासर्वसारसमन्विता ॥ ६६ ॥ हरप्रिया हृषीकेशी ९९० हंसरूपाहिरण्मयी ॥ हृताघसङ्घाहितकृद्धेलाहेलाघगर्वहृत् ॥ ६७॥ क्षेमदाक्षालिताघौघाक्षुद्रविद्रावि णीक्षमा १००० ॥ इतिनामसहस्रंहिगङ्गायाःकलशोद्भव ॥ कीर्तयित्वानरःसम्यग्गङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ ६८ ॥ सर्वपा पप्रशमनंसर्वविघ्नविनाशनम् ॥ सर्वस्तोत्रजपाच्छ्रेष्ठंसर्वपावनपावनम् ॥ ६९ ॥ श्रद्धयाभीष्टफलदञ्चतुर्वर्गसमृद्धिकृत् ॥ सकृज्जपादवाप्नोतिह्येकक्रतुफलंमुने ॥ ७० ॥ सर्वतीर्थेषुयःस्नातःसर्वयज्ञेषुदीक्षितः ॥ तस्ययत्फलमुद्दिष्टंत्रिकालपठ

रिणी ॥ ६५ ॥ स्मृताघहारिणी सीता संसाराब्धितरंडिका सौभाग्यसुंदरी संध्या सर्वसारसमन्विता ॥ ६६ ॥ हरप्रिया हृषीकेशी हंसरूपा हिरण्मयी हृताघसंघा हितकृत हेला हेलाघगर्वहृत् ॥ ६७ ॥ क्षेमदा क्षालिताघौघा क्षुद्रविद्राविणी क्षमा १००० हे अगस्त्य ! यों गंगासहस्रनामको भी पढ़कर मनुष्य भलीभांति गंगास्नानका फल पावे ॥ ६८ ॥ यह स्तोत्र सब पापोंका विनाशक व सब विघ्नउदासक व सब स्तोत्रोंके जपसे श्रेष्ठ सब पवित्रोंमें पवित्र ॥ ६९ ॥ व वाञ्छितफलदायक और अर्थ धर्म काम मोक्ष

नामक चतुर्वर्ग फलकी बढ़ती करनेवालाहै हे मुनिनायक! श्रद्धासमेत एकबार पढ़ने से भी एक यज्ञका फल पावे ॥ ७० ॥ और जो सब तीर्थोंमें नहाया व सब यज्ञोंमें दीक्षित हुआहो उसका जो फल कहागया है वह इसके त्रिकाल पढ़ने से होताहै॥ ७१ ॥ हे ब्राह्मण! भलीभांति कियेहुये सब व्रतोंमें जो पुण्यहै उसफलको त्रिकालपढ़ता हुआ नियमी भी पाजाता है॥ ७२ ॥ और हे मुने ! जो इसको जिस किसी जलाशयमें पढ़े उसके लिये वहां त्रिमार्गगामिनी गंगाजी समीपगा होवें यह निश्चयहै ॥ ७३ ॥ व धर्मार्थी धर्मको पाताहै धनार्थी धनपाता है व कामनाओं का चाही मनमाने फल पाता है और मोक्षार्थी मनुष्य मुक्ति पाता है ॥ ७४ ॥ व श्रद्धासे एक वर्ष

नाचतत् ॥ ७१ ॥ सर्वव्रतेषुयत्पुण्यंसम्यक्चीर्णेषुवाडव ॥ तत्फलंसमवाप्नोतित्रिसन्ध्यन्नियतःपठन् ॥ ७२ ॥ स्नानका लेपठेद्यस्तुयत्रकुत्रजलाशये ॥ तत्रसन्निहितानूनंगङ्गात्रिपथगामुने ॥ ७३ ॥ श्रेयोर्थीलभतेश्रेयोधनार्थीलभतेधनम् ॥ कामीकामानवाप्नोतिमोक्षार्थीमोक्षमाप्नुयात् ॥ ७४ ॥ वर्षंत्रिकालपठनाच्छ्रद्धयाशुचिमानसः ॥ ऋतुकालाभिगमना दपुत्रःपुत्रवान्भवेत् ॥ ७५ ॥ नाकालमरणंतस्यनाग्निचोराहिसाध्वसम् ॥ नाम्नांसहस्रंगङ्गायायोजपेच्छ्रद्धयामुने ॥७६॥ गङ्गानामसहस्रन्तुजप्त्वाग्रामान्तरंव्रजेत् ॥ कार्यसिद्धिमवाप्नोतिनिर्विघ्नोगेहमाविशेत् ॥ ७७ ॥ तिथिवारर्क्षयोगानांन दोषःप्रभवेत्तदा ॥ यदाजप्त्वाव्रजेदेतत्स्तोत्रंग्रामान्तरन्नरः ॥७८॥ आयुरारोग्यजननंसर्वोपद्रवनाशनम् ॥ सर्वसिद्धिकरं पुंसाङ्गङ्गानामसहस्रकम् ॥७९॥ जन्मान्तरसहस्रेषुयत्पापंसम्यगर्जितम् ॥ गङ्गानामसहस्रस्यजपनात्तत्क्षयंव्रजेत् ॥८०॥

तक त्रिकाल पढ़ने और ऋतुकाल याने मासिकधर्म से शुद्ध स्त्री के पास जाने से पवित्रमनवाला पुत्रहीन पुरुष भी पुत्रवान् होवे ॥ ७५ ॥ हे मुने ! जो श्रद्धासे गंगा-सहस्रनाम पढ़े उसका अकाल मरण न हो व अग्नि चौर और सर्प्पोंसे डर न हो ॥ ७६ ॥ व जो गंगासहस्रनाम पढ़कर अन्य ग्रामको जावे तो कामकी सिद्धि पावे और विघ्नरहितहो फिर घरको लौटआवे ॥ ७७ ॥ जब मनुष्य इस स्तोत्रको जपकर दूसरे ग्राम को जावे तब तिथि दिन नक्षत्र और योगका दोष न समर्थ होवे ॥ ७८ ॥ यह गंगासहस्रनाम आयु आरोग्यकारी सब उपद्रवहारी व लोगोंका सारी सिद्धिधारी है ॥ ७९ ॥ और हजारों अन्य जन्मों में भलीभांति बटोरा

हुआ जो पापहै वह गंगासहस्रनाम पढ़ने से नाशको प्राप्तहोजावे ॥ ८० ॥ हे मुने! ब्रह्मघाती, मदपीनेवाला, सोनेका चौर, गुरुकी शय्यामें बैठनेवाला, और इनका संगी व बालघाती, व माताका हंता, पिताका हंता ॥ ८१ ॥ व विश्वासघाती, विषदाता, कृतघ्न (उपकार को न मानताहुआ), मित्रघातक, आग लगाने वाला, गौओंका वधकारी, गुरुद्रव्यापहारी ॥ ८२ ॥ और महापापों से युक्तभी व उपपापोंसे संयुत भी मनुष्य श्रद्धासे गंगासहस्रनाम को जपकर पापों से छूटता है ॥ ८३ ॥ और मन तनके रोगों से पीड़ित व घोरपापताप से डूबा व ऊबाभी इस स्तोत्रके पढ़ने से सब दुःखोसे छूटता है ॥ ८४ ॥ व मन जोड़ेहुये मुक्तिपरायण हो

ब्रह्मघ्नोमद्यपःस्वर्णस्तेयीचगुरुतल्पगः ॥ तत्संयोगीभ्रूणहन्तामातृहापितृहामुने ॥ ८१ ॥ विश्वासघातीगरदःकृतघ्नो मित्रघातकः॥अग्निदोगोवधकरोगुरुद्रव्यापहारकः ॥८२॥ महापातकयुक्तोपिसंयुक्तोप्युपपातकैः॥मुच्यतेश्रद्धयाजप्त्वा गङ्गानामसहस्रकम् ॥ ८३ ॥ आधिव्याधिपरिक्षिप्तोघोरतापपरिप्लुतः ॥ मुच्यतेसर्वदुःखेभ्यःस्तवस्यास्यानुकीर्तनात् ॥ ८४ ॥ संवत्सरेणयुक्तात्मापठन्भक्तिपरायणः ॥ अभीप्सितांलभेत्सिद्धिंसर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ ८५ ॥ संशयाविष्टचित्तस्यधर्मविद्वेषिणोपिच ॥ दाम्भिकस्यापिहिंस्रस्यचेतोधर्मपरम्भवेत् ॥ ८६ ॥ वर्णाश्रमपथीनस्तुकामक्रोधविवर्जितः ॥ यत्फलंलभतेज्ञानीतदाप्नोत्यस्यकीर्तनात् ॥ ८७ ॥ गायत्र्ययुतजप्येनयत्फलंसमुपार्जितम् ॥ सकृत्पठनतःसम्यक् तदशेषमवाप्नुयात् ॥ ८८ ॥ गांदत्त्वावेदविदुषेयत्फलंलभतेकृती ॥ तत्पुण्यंसम्यगाख्यातंस्तवराजसकृज्जपात् ॥ ८९ ॥ गुरुशुश्रूषणंकुर्वन्यावज्जीवंनरोत्तमः ॥ यत्पुण्यमर्जयेत्तद्भाग्वर्षंत्रिषवणञ्जपन् ॥ ९० ॥ वेदपारायणात्पुण्यंयद

पढ़ताहुआ एक वर्षमें मनमानी सिद्धिको पावे और सब पापोंसे छूटजावे ॥ ८५ ॥ संशय पैठे चित्तवाला, धर्मविरोधी भी छलीभी और जन्तुघाती इन सबोंका मन धर्म में तत्पर होवे ॥ ८६ ॥ और वर्ण (ब्राह्मणादि) व आश्रम (ब्रह्मचर्य्यादि) इन सबोंके मार्गमें चलता व सुकर्म करताहुआ ज्ञानी जो फल पाताहै वह इसके पढने से भी होताहै ॥ ८७ ॥ व दश हजार गायत्री जपसे जो फल भलीभांति बटोरागयाहै उस सबको अच्छे प्रकार इसके एकबार पढ़नेसे पावे ॥८८॥ व वेदपाठी ब्राह्मणको गऊ देकर पुण्यात्मा पुरुष जो फल पाताहै वह पुण्य स्तवराज के एकबार पढने से भलीभांति कहीगई है ॥ ८९ ॥ व जीवनपर्यन्त गुरुकी सेवा करताहुआ मनुष्यश्रेष्ठ जिस

पुण्यको बटोरे याने कमावे उसी पुण्यका सेवी एकवर्ष त्रिकाल पढ़ताहुआ भी होवे ॥ ९० ॥ व इस लोक में वेदपरायणसे जो पुण्य सबओर पढ़ीजाती है उसको छः मासतक त्रिसंध्यामें पाठसे पाताहै ॥ ९१ ॥ व प्रतिदिन गंगासहस्रनाम पढ़नेसे शिवकी भक्तिको प्राप्त होताहै अथवा विष्णुका भक्त होवे ॥ ९२ ॥ व जो रोज रोज गंगासहस्रनामको पढ़े उसके समीप गंगादेवी सदा सहचरी होवे ॥ ९३ ॥ व गंगास्तोत्र पाठसे सर्वत्रपूज्य होताहै सब ओर जीतिवाला होताहै और सर्वत्र सुख पाताहै ॥ ९४ ॥ जो इस स्तुतिको पढ़े वह सदाचारी वह पवित्र और वही सदैव सब देवोंका पूजक जाननेयोग्यहै ॥ ९५ ॥ उसके तृप्तहोतेही गंगातृप्तहोती हैं इसमें सन्देह नहीं

त्रपरिपठ्यते ॥ तत्षण्मासेनलभतेत्रिसन्ध्यंपरिकीर्तनात् ॥ ९१ ॥ गङ्गायाःस्तवराजस्यप्रत्यहंपरिशीलनात् ॥ शिवभक्तिमवाप्नोतिविष्णुभक्तोऽथवाभवेत् ॥ ९२ ॥ यःकीर्तयेदनुदिनंगङ्गानामसहस्रकम् ॥ तत्समीपेसहचरीगङ्गादेवीसदाभवेत् ॥ ९३ ॥ सर्वत्रपूज्योभवतिसर्वत्रविजयीभवेत् ॥ सर्वत्रसुखमाप्नोतिजाह्नवीस्तोत्रपाठतः ॥ ९४ ॥ सदाचारीसविज्ञेयःसशुचिस्तुसदैवहि ॥ कृतसर्वसुरार्चःसकीर्तयेद्यइमांस्तुतिम् ॥ ९५ ॥ तस्मिंस्तृप्तेभवेत्तृप्ताजाह्नवीनात्रसंशयः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनगङ्गाभक्तंसमर्चयेत् ॥ ९६ ॥ स्तवराजमिमङ्गाङ्गंशृणुयाद्यश्चवैपठेत् ॥ श्रावयेदथतद्भक्तान्दम्भलोभविवर्जितः ॥ ९७ ॥ मुच्यतेत्रिविधैःपापैर्मनोवाक्कायसम्भवैः ॥ क्षणान्निष्पापतामेतिपितृणाञ्चप्रियोभवेत् ॥ ९८ ॥ सर्वदेवप्रियश्चापिसर्वर्षिगणसम्मतः ॥ अन्तेविमानमारुह्यदिव्यस्त्रीशतसंवृतः ॥ ९९ ॥ दिव्याभरणसम्पन्नोदिव्यभोगसमन्वितः ॥ नन्दनादिवनेस्वैरंदेववत्सप्रमोदते ॥ २०० ॥ भुज्यमानेषुविप्रेषुश्राद्धकालेविशेषतः ॥ जपन्निदंमहास्तोत्रंपितॄणांतृप्ति

है इस कारण सब यत्नसे गंगाके भक्त को पूजे ॥ ९६ ॥ अनन्तर कपट लोभलहर से हीन जो गंगाके इस स्तवराजको पढ़े सुने और उनके भक्तों को सुनावेभी ॥ ९७ ॥ वह मन वचन तनसे हुये तीन भांतिके पापोंसे छूटे व क्षण में निष्पापभाव को पहुँचे व पितरोंका प्यारा होवे ॥ ९८ ॥ व सब देवसमूहों का प्यारा सब ऋषिगणों का मानाहुआ व अन्तमें विमान पर चढ़कर दिव्यस्त्री सैकड़ों से घिराहुआ ॥ ९९ ॥ दिव्य गहने पहने व दिव्य भोगोंसे संयुक्तहो वह नन्दनादि वनोंमें वा देवोंकी नाईं अपनी इच्छासे विहरता या आनन्द पाताहै ॥ २०० ॥ जो कि विशेष से श्राद्ध समयमें ब्राह्मणों के भोजन करतेही इस स्तोत्रको पढ़तारहता है उसके पितरोंका यह स्तोत्र

तृप्तिकारक होता है ॥ १ ॥ व तहां जितने सीथ हैं व जितने जलके कण स्थित रहते हैं उतनेही वर्षोंतक पितर स्वर्ग में सुखी होते हैं॥ २ ॥ व जैसे गंगा में पिण्डदान से पितर तृप्तहोते हैं वैसेही श्राद्धमें इस स्तोत्र को पिछलीभांति सुनने से भी तृप्तहोते हैं ॥ ३ ॥ व लिखा हुआ यह स्तोत्र जिसके घरमें सब ओर से पूजा जाता है वहां पापका डर नहीं है क्योंकि वह घर सदा पवित्र है ॥ ४ ॥ हे अगस्त्य ! बहुत कहने से क्या है मेरा निश्चय किया वचन सुनो कि इसमें सन्देह करने योग्य नहीं है क्योंकि सन्देही मनुष्य में फल नहीं होता है ॥ ५ ॥ और मनुष्य लोकमें जितने स्तोत्र व अनेकानेक मन्त्र समूह हैं वे गंगाके स्तवराज के

कारकम् ॥ १ ॥ यावन्तितत्रसिक्थानियावन्तोम्बुकणाःस्थिताः ॥ तावन्त्येवहिवर्षाणिमोदन्तेस्वःपितामहाः ॥ २ ॥ यथाप्रीणन्तिपितरोगङ्गायांपिण्डदानतः ॥ तथैवतृप्नुयुःश्राद्धेस्तवस्यास्यानुसंश्रवात् ॥ ३ ॥ एतत्स्तोत्रंगृहेयस्यलिखितंपरिपूज्यते ॥ तत्रपापभयंनास्तिशुचितद्भवनंसदा ॥ ४ ॥ अगस्तेकिम्बहूक्तेनशृणुमेनिश्चितंवचः ॥ संशयोनात्रकर्तव्यःसंदेग्धरिफलन्नहि ॥ ५ ॥ यावन्तिमर्त्येस्तोत्राणिमन्त्रजालान्यनेकशः ॥ तावन्तिस्तवराजस्यगाङ्गेयस्यसमानिन ॥ ६ ॥ यावज्जन्मजपेद्यस्तुनाम्नामेतत्सहस्रकम् ॥ सकीकटेष्वपिमृतोनपुनर्गर्भमाविशेत् ॥ ७ ॥ नित्यंनियमवानेतद्योजपेत्स्तोत्रमुत्तमम् ॥ अन्यत्रापिविपन्नःसगङ्गातीरेमृतोभवेत् ॥ ८ ॥ एतत्स्तोत्रवरंरम्यंपुराप्रोक्तंपिनाकिना ॥ विष्णवेनिजभक्तायमुक्तिबीजाक्षरास्पदम् ॥ ९ ॥ गङ्गास्नानप्रतिनिधिःस्तोत्रमेतन्मयेरितम् ॥ सिस्नासुर्जाह्नवींतस्मादेतत्स्तोत्रंजपेत्सुधीः ॥ २१० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेगङ्गासहस्रनामकथनंनामैकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥

समान नहीं हैं ॥ ६ ॥ व जो जीवन पर्य्यन्त यह गंगासहस्रनाम पढ़े वह मगह में मराभी फिर गर्भ में न आवे ॥ ७ ॥ व नित्य नियमवान् जो इस उत्तम स्तोत्र को पढ़े वह अन्यत्र भी मराहुआ गंगा तीर में ही मराहुआ होवे ॥ ८ ॥ जो कि मुक्तिकारण ब्रह्म या अक्षरोंका स्थान यह रमणीक नीक स्तोत्रहै कि जिसको अपने भक्त विष्णुसे पहले शिवने कहाहै ॥ ९ ॥ वह गंगास्नान का प्रतिनिधि याने उसके समान फलवान् यह स्तोत्र मुझ करके कहागया उसकारण गंगा नहाने का चाही सुबुद्धि जन इस स्तोत्र को जपे ॥ २१० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेगङ्गासहस्रनामकथनंनामैकोनत्रिंशत्तमोध्यायः ॥ २९ ॥

दोहा। या तिसयें अध्यायमें सहित धनंजय हाल। तीनि नामके अर्थ इत वाराणसी विशाल॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे बड़े भाग्यवान् अगस्त्यजी! सुनो कि फिर वह प्रसिद्ध भगीरथ राजा श्रीमहादेवको पूजकर अपने उन पितरोंके उधारनेका चाही हुवा॥ १॥ जोकि ब्राह्मणकी शापसे सब जलगयेथे तब उस राजऋषिशिरोमणिने बड़ी तपस्यासे गंगाको भूमिमें आनाहै॥२॥ व नरेशने तीनों लोकोंकेभी बड़े हितके लिये गंगाको तहां आनाहै कि जहां मणिकर्णिका हुईथी॥ ३॥ परब्रह्मका मुख्य अच्छा स्थान लीला से मोक्षदायक जो शिवका आनंदवन है उसमें प्राप्त विष्णुकी चक्रपुष्करिणी के प्रति॥ ४॥ आगे चलते हुये दिलीप के पुत्र भगीरथ ने उस

स्कन्दउवाच॥ शृणवगस्त्यमहाभागसचराजाभगीरथः॥ आराध्यश्रीमहादेवमुद्दिधीर्षुःपितामहान्॥ १॥ब्रह्मशापविनिर्दग्धान्सर्वान्राजर्षिसत्तमः॥ महतातपसाभूमिमानिनायत्रिवर्त्मगाम्॥ २॥ त्रयाणामपिलोकानांहितायमहतेनृपः॥ समानैषीत्ततोगङ्गांयत्रासीन्मणिकर्णिका॥ ३॥ आनन्दकाननंशम्भोश्चक्रपुष्करिणीहरेः॥ परब्रह्मैकसुक्षेत्रंलीलामोक्षसमर्पकम्॥ ४॥ प्रापयामासताङ्गङ्गांदैलीपिःपुरतश्चरन्॥ निर्वाणकाशनाद्यत्रकाशीतिप्रथितापुरी॥ ५॥ अविमुक्तंमहाक्षेत्रंनमुक्तंशम्भुनाक्वचित्॥ प्रागेवहिमुनेऽनर्घ्यंजात्यंजाम्बूनदंस्वयम्॥ ६॥ पुनर्वारितरेणापिहीरेणयदिसङ्गतम्॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थंप्रागेवश्रेयसाम्पदम्॥ ७॥ ततःश्रेष्ठतरंशम्भोर्मणिश्रवणभूषणात्॥ आनन्दकाननेतस्मिन्नविमुक्तेशिवालये॥ ८॥ प्रागेवमुक्तिःसंसिद्धागङ्गासङ्गात्ततोधिका॥ यदाप्रभृतिसागङ्गामणिकर्ण्यांसमागता॥ ९॥ तदाप्रभृतितत्क्षेत्रन्दुष्प्रापन्त्रिदशैरपि॥ कृत्वाकर्माण्यनेकानिकल्याणानीतराणिवा॥ १०॥ तानिक्षणात्समु

गंगाको वहां पहुँचाया जहां कैवल्य मोक्ष प्रकाशनेसे काशी इस नाम से पुरी प्रसिद्धहै॥ ५॥ हे मुने! जिसको शिवने कहीं भी नहीं छोड़ा है वह अविमुक्त महाक्षेत्र (काशी) पहलेही आप अच्छी जातिवाले सोने के समान अमोल था॥ ६॥ फिर जो हीराकी तुल्य गंगाजलसे संगतहुवा तो क्या कहना है व चक्रपुष्करिणी तीर्थ पहलेही कल्याणों का घर था॥ ७॥ तदनंतर शिवका मणिकुंडल गिरनेसे बहुतही श्रेष्ठहुवा व उस शिवस्थान अविमुक्त क्षेत्र आनंदवन याने काशी में॥ ८॥ मुक्ति पहलेही भलीभांति सिद्धथी परन्तु गंगाके संगसे उससे अधिक हुई व जबसे लगाकर वह गंगा मणिकर्णिका में आई॥ ९॥ तबसे लगाकर वह क्षेत्र देवोंकाभी

दुर्लभहै क्योंकि पुण्य व इतर पापरूप अनेक कर्मकरभी ॥ १० ॥ उनको क्षणमें छोड़कर काशी संवासी या उसमें मरनेवाला मुक्तहोवे और वहां वेदान्त से जानने योग्य ब्रह्मकी धारणा विना ॥ ११ ॥ व आत्मा अनात्मा याने पुरुष प्रकृति का विचार और अष्टाङ्गयोग विना काशी में मराहुआ मुक्तहोवे हे अगस्त्यजी ! कर्म की जड उखाडनेवाले ज्ञान विना ॥ १२ ॥ शिवकी प्रसन्नता से काशी में मराहुआ मुक्तहोवे यत्न व अयत्न (शम दमादि साधनों के न साधने) से भी कालसे देहको तजकर ॥ १३ ॥ ओंकार या राम षडक्षर मन्त्रके उपदेश से काशी में मराहुआ मुक्त होवे व अनेक जन्मों में भलीभांति सिद्धहुये मायाके गुण संसार पाशों से बँधा

त्क्षिप्यकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ॥ तस्यांवेदान्तवेद्यस्यनिदिध्यासनतोविना ॥ ११ ॥ विनासांख्येनयोगेनकाश्यांसंस्थोऽमृतोभवेत् ॥ कर्मनिर्मूलनवताविनाज्ञानेनकुम्भज ॥ १२ ॥ शशिमौलिप्रसादेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ॥ यत्नतोऽयत्नतोवापिकालात्त्यक्त्वाकलेवरम् ॥ १३ ॥ तारकस्योपदेशेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ॥ अनेकजन्मसंसिद्धैर्बद्धोऽपिप्राक्तर्गुणैः ॥ १४ ॥ असिसम्भेदयोगेनकाशीसंस्थोऽमृतोभवेत् ॥ देहत्यागोऽत्रवैदानंदेहत्यागोऽत्रवैतपः ॥ १५ ॥ देहत्यागोऽत्रवैयोगःकाश्यांनिर्वाणसौख्यकृत् ॥ प्राप्योत्तरवहाङ्काश्यामतिदुष्कृतवानपि ॥ १६ ॥ यायात्स्वंहेलयात्यक्त्वातद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ यमेन्द्राग्निमुखादेवादृष्ट्वामुक्तिपथोन्मुखान् ॥ १७ ॥ सर्वान्सर्वेसमालोक्यरक्षाञ्चक्रुःपुरापुरः ॥ असिंमहासिरूपाञ्चपाप्यलन्मतिखण्डनीम् ॥ १८ ॥ दुष्टप्रवेशन्धुन्वानान्धुनीन्देवाविनिर्ममुः ॥ वरणाञ्चव्यधुस्तत्रक्षे

भी ॥ १४ ॥ असी नदी में संगम हुये गंगाजल के सम्बन्ध से काशी में मराहुआ मुक्तहोवे यहां देह तजनाही दान है यहां देह तजनाही तपस्या है ॥ १५ ॥ व इस काशी में देह तजनाही कैवल्य मुक्तिदायक योग है व काशी में उत्तरवाहिनी गंगाको पहुँच कर बड़ा पापी भी ॥ १६ ॥ देह तजकर लीला से विष्णु के परमपद को जावे यों जानकर यम इन्द्र अग्नि आदि देवोंने मुक्तिमार्ग के सम्मुख हुये ॥ १७ ॥ सबको देखकर सबों ने पहलेही पुरीकी रक्षा किया है व पापियों की कुमतिछेदिनी महा असि (तलवार) रूप असि नामवाली ॥ १८ ॥ दुष्टों के पैठने को भगाती हुई, धुनी (नदी) को देवों ने वहां बनाया है व क्षेत्र के विघ्न बरानेवाली वरणा

नदी को भी किया है ॥ १९ ॥ जो कि दुष्टोंकी प्रवृत्तिको पछाड़ती है व सुदीप्तिमान् देवलोग दक्षिण दिशा में असि और उत्तर ओर में वरणा को कर ॥ २० ॥ क्षेत्रकी मोक्षदान साधती हुई रक्षा से सुखको पहुँचे हैं व क्षेत्रके पश्चिम भाग में उस देहलिविनायक को ॥ २१ ॥ रक्षाके अर्थ आप शिवनेही थांभाहै व कृपालु विश्वनाथ ने आयसु दिया है जिनके पैठने के लिये उनका ॥ २२ ॥ प्रवेश वे असि आदि रक्षक देते हैं व औरोंको कभी नहीं देते हैं इस अर्थ में मैं एक पुराना इतिहास कहताहूं जो कि श्रेष्ठ, आश्चर्यकर और काशीकी भक्तिका बढ़ानेवाला है ॥ २३ ॥ कार्त्तिकेयजी बोले कि दक्षिण समुद्र के तीर सेतुबन्धन के समीप से माताकी

त्रविघ्ननिवारिणीम् ॥ १९ ॥ दुर्वृत्तप्रवृत्तेश्चनिवृत्तिकरणींसुराः ॥ दक्षिणोत्तरदिग्भागेकृत्वाऽसिंवरणांसुराः ॥ २० ॥ क्षेत्रस्यमोक्षनिक्षेपरक्षांनिर्वृतिमाप्नुयुः ॥ क्षेत्रस्यपश्चाद्दिग्भागेतन्देहलिविनायकम् ॥ २१ ॥ स्वयंव्यापारयामासर क्षार्थंशशिशेखरः ॥ अनुज्ञातप्रवेशानांविश्वेशेनकृपावता ॥२२॥ तेप्रवेशम्प्रयच्छन्तिनान्येषांहिकदाचन ॥ इत्यर्थेक थयिष्येऽहमितिहासम्पुरातनम् ॥ आश्चर्यकारिपरमङ्काशीभक्तिप्रवर्धनम् ॥ २३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ दक्षिणाब्धितटेक श्चित्सेतुबन्धसमीपतः ॥ वणिग्धनञ्जयोनाममातृभक्तिसमन्वितः ॥ २४ ॥ पुण्यमार्गार्जितधनोधनतोषितमार्गणः ॥ मार्गणस्फारितयशायशोदातनयार्चकः ॥ २५ ॥ समुन्नतोपिसम्पत्त्याविनयानतकन्धरः ॥ आकरोपिगुणानांहिगुणि ष्वाकारगोपकः ॥ २६ ॥ रूपसम्पदुदारोपिपरदारपराङ्मुखः ॥ सम्पूर्णकलोप्यासीन्निष्कलङ्कोदयःसदा ॥ २७ ॥ ससत्या नृतवृत्तिश्चप्रायःसत्यप्रियोमुने ॥ वर्णेतरोप्ययंभूल्लोकेसुवर्णकृतवर्णनः ॥ २८ ॥ सदाचरणगोप्येषसुखयानचरःकृती ॥

भक्ति समेत कोई धनञ्जय नाम बनिया हुआ ॥ २४ ॥ जो कि धर्ममार्ग से धन कमानेवाला व धन से मंगनों का सन्तोषक था व याचकों से सब ओर में पसारा गया है सुयश जिसका ऐसा वह श्रीकृष्णजी का पूजक था ॥ २५ ॥ व संपत्ति से ऊंचाभी विनयसे नमितकण्ठ व गुणों का निधानभी गुणियों में आकार छिपाने वाला था ॥ २६ ॥ व रूपकी शोभा सुन्दरता से उदारभी वह पराई स्त्रियोंसे विमुख व संपूर्ण चौंसठ कलावान् भी सदा अकलङ्कित उदित था याने संपूर्ण कलावाले चन्द्र में भी कलंक है उसमें नहीं था ॥ २७ ॥ हे मुने ! वह वाणिज्यवृत्तिवाला भी बहुधा सत्यप्रिय था और चारोंवर्णों से अन्य नीच वर्णभी था तथापि ब्राह्मणादि

अच्छे वर्णों से बखाना जाता था ॥ २८ ॥ व वह सदा पैदल चलताभी नावों में विचरता था व पुण्यवान् बुद्धिमान् व धनीभी होकर पापोंका दरिद्री हुआ ॥ २९ ॥ यों उसके बर्ततेही कुछ काल बीतनेसे कभी बुढ़ाई से पीड़ित रोगिणी माता मरण को प्राप्तहुई ॥ ३० ॥ पहले उसने बादलकी छायासे अधिक चञ्चल वर्षाकी नदी के प्रवाह के समान थोड़े दिन के यौवनपन को पहुँचकर अपने पतिको छला याने अन्य पुरुषका प्रसङ्ग कियाथा ॥ ३१ ॥ व तीन चारदिन रहनेवाली जवानी पाकर जो स्त्री पति को छले वह नरकको जावै ॥ ३२ ॥ और धर्म्म में तत्पर भी पुरुष स्त्री का शील याने अच्छी वृत्ति पतिव्रतत्व के खण्डन होने से दुःख से कमाये स्वर्ग से गिरपड़े उससे स्त्रीको अपने शील की रक्षा करनी चाहिये ॥ ३३ ॥ और वह व्यभिचारिणी कुबुद्धिवाली स्त्री आपभी विष्ठाकुण्ड नरक में तबतक पड़ती है जब

अदरिद्रोपिमेधावीसोभूत्पापदरिद्रधीः ॥ २९ ॥ तस्यैवंवर्तमानस्यकदाचित्कालपर्ययात् ॥ जननीनिधनम्प्राप्ताव्याधितातिजरातुरा ॥ ३० ॥ तयाचयौवनम्प्राप्यमेघच्छायातिचञ्चलम् ॥ प्रावृण्नदीपूरसमंस्वपतिःपरिवञ्चितः ॥ ३१ ॥ दिनत्रिचतुरस्थायियानारीप्राप्ययौवनम् ॥ भर्तारंवञ्चयेन्मोहात्साऽक्षयंनरकंव्रजेत् ॥ ३२ ॥ शीलभङ्गेननारीणांभर्ताधर्मपरोपिहि ॥ पतेद्दुःखार्जितात्स्वर्गाच्छीलंरक्ष्यन्ततःस्त्रियाः ॥ ३३ ॥ विष्ठागर्तेचनिरयेस्वयम्पतातिदुर्मतिः ॥ आभूतसंप्लवंयावत्ततःस्याद्ग्रामसूकरी ॥ ३४ ॥ स्वविष्ठापायिनीचाथवल्गुलीवृक्षलम्बिनी ॥ उलूकीवादिवान्धास्याद्वृक्षकोटरवासिनी ॥ ३५ ॥ रक्षणीयम्महायत्नादिदंसुकृतभाजनम् ॥ वपुःपरस्यदुःस्पर्शात्सुखाभासात्मकास्त्रियाः ॥ ३६ ॥ अनेनैवशरीरेणभर्तृसाद्विहितेनहि ॥ किंसतीनचतस्तम्भभानुमुद्यन्तमाज्ञया ॥ ३७ ॥ अत्रिपत्न्यनुसूयाकिम्भर्तृभ

तक प्रलय नहीं होती है व उसके बाद ग्रामसूकरी होती है ॥ ३४ ॥ फिर अनन्तर अपनी विष्ठा खानेवाली वृक्ष में लटकी गेदुरा पक्षी व दिन में अन्धी उल्लू होकर वृक्षों के छेदों में बसती है ॥ ३५ ॥ इससे जैसे जलजलाती दुपहरी में मृगतृष्णा का जल झूंठा है भ्रम से दीखता है वैसे सुख के समान सब ओर से भासने रूप जो परपुरुष का सङ्गहै उससे बड़े यत्नसे यह सुकर्मका पात्र गात्र स्त्री के बचाने योग्यहै ॥ ३६ ॥ क्योंकि पति के ही वश किये इस देहसेही क्या पतिव्रताने उगतेहुये सूर्य्य को आज्ञा से नहीं रोका है मार्कण्डेयपुराण में यह कथा है कि एक पतिव्रता अपने कोढ़ी पति को कांधे में चढ़ाये उसकी आज्ञा से वेश्या के पास लिये जाती

थी उसी समय भादों की अँधेरी रातमें झोंका लगजाने से माण्डव्य ऋषि ने शाप दिया कि सूर्य्य उगतेही यह मरेगा तब सती ने अपने पातिव्रत्यधर्मबल से सूर्य्य का उगना रोंक दिया तब सब देव विकलहो उसकी और अनसूयाजी की स्तुति करते भये उनपर प्रसन्नहो उसने सूर्य्य का उगना अंगीकार किया व कोढ़ी पति मरगया और श्रीअनसूयाजी ने जिला दिया ॥ ३७ ॥ व पतिव्रता अत्रिकी स्त्री अनसूयाने पतिकी भक्तिके प्रभाव से क्या गर्भ में त्रयी (ब्रह्मा विष्णु महेश) को नहीं धरा है याने धराहै कि ब्रह्माके अंशसे चन्द्रमा रुद्रके अंशसे दुर्वासा और विष्णुके अंशसे दत्त ये तीनों उसके पुत्रहुये हैं ॥ ३८ ॥ व इसलोकमें बड़ा सुयश तथा स्वर्गमें अक्षय वास और लक्ष्मीके साथ सखीभाव यह सब स्त्रीको पातिव्रत्य धर्मसे मिलने योग्यहै ॥ ३९ ॥ और वह धनञ्जयकी माता कुचालसे सनातन पातिव्रत्यधर्म को छोड़

क्तिप्रभावतः ॥ दधारनत्रयींगर्भेपतिव्रतपरायणा॥ ३८॥ इहकीर्त्तिश्चविपुलास्वर्गेवासस्तथाऽक्षयः॥पातिव्रत्यात्स्त्रियालभ्यंसखित्वञ्चश्रियासह॥३९॥सादुर्वृत्त्यापरित्यज्यपतिधर्मंसनातनम्॥स्वच्छन्दचारिणीभूत्वामृता निरयमुद्ययौ॥४०॥ धनञ्जयोपिचमुनेकेनचिच्छिवयोगिना॥सार्धन्तपोदयादित्थंसोऽभवद्धर्मतत्परः ॥ ४१ ॥ धनञ्जयोपिधर्मात्मामातृभक्तिपरायणः॥आदायास्थीन्यथोमातुर्गङ्गामार्गस्थितोऽभवत् ॥४२॥ पञ्चगव्येनसंस्नाप्यततःपञ्चामृतेनवै॥ यक्षकर्दमलेपेनलिप्त्वापुष्पैःप्रपूज्यच॥४३॥आवेष्ट्यनेत्रवस्त्रेणततःपट्टाम्बरेणवै ॥ ततःसुरसवस्त्रेणततोमाञ्जिष्ठवाससा ॥४४॥ नेपालकम्बलेनाथमृदाचाऽथविशुद्धया ॥ ताम्रसम्पुटकेकृत्वामातुरङ्गान्यहोवणिक् ॥ ४५ ॥ अस्पृष्टहीनजातिःसशुचिष्मा

कर व्यभिचारिणी होकर मर नरकको गई थी ॥ ४० ॥ हे मुने ! वह धनञ्जय भी किसी शिवभक्त के संग तपस्या का उदय होनेसे इस भांति धर्म्म में तत्पर हुआ ॥ ४१ ॥ अनन्तर माता का भक्त धर्मात्मा धनञ्जय भी माताके हाड़ लेकर गंगा की गलीमें प्रस्थान करनेवालाभया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर पञ्चगव्य से भलीभांति नहवाकर उसके बाद पञ्चामृत से भी नहवाकर कपूर अगर कस्तूरी व कंकोल इनका लेपन लगाकर फिर फूलों से प्रपूजनकर ॥ ४३ ॥ व नैनू कपड़ासे ढांप कर तदनन्तर पटम्बर से भी तदनन्तर सचीकन वस्त्रसे तदनन्तर मंजीठसे रँगे वस्त्र से ॥ ४४ ॥ और उसके बाद नैपालीकम्बल से ढांप कर अनन्तर शुद्ध माटी के साथ ताम्र के सम्पुट में माताके अंग (हाड़) धरकर हर्ष से वणिक् (सुनार) ॥ ४५ ॥ धनञ्जय नीचजाति को न छूता हुआ पावित्र्यवान् भूमि में सोताहुआ आनता भया परन्तु वह बीच गली में

ज्वरसे पीड़ित भी होगया॥४६॥ तब उचित मँजूरी देकर उसने कोई कहार किया और हे अगस्त्यजी ! बहुत कहने से क्या है अनन्तर उसको काशीपुरी प्राप्तहुई ॥४७॥ और वहां सामग्री रखाने के अर्थ भारदार को बैठाकर धनञ्जय कुछ भोजनादि वस्तु लेने के लिये बजार को गया ॥ ४८ ॥ उस समय अवसर पाकर उस भारवाही ने उसकी सामग्री के बीच सें ताम्रसम्पुट को लेकर धन जानकर घरको पयान किया ॥ ४९ ॥ अनन्तर वेगवान् धनञ्जय भी टिकाश्रम में आकर उसको न देखकर और ताम्र संपुट से हीन सामग्री को देखकर ॥ ५० ॥ हाय हाय ऐसा शब्द कहकर छाती पीट बहुतही रोने लगा व ऐसी वैसी उसको देखकर उसके ढूंढ़ने को चला

न्स्थण्डिलेशयः ॥ आनयञ्ज्वरितोऽप्यासीन्मध्येमार्गेधनञ्जयः ॥ ४६ ॥ भारवाहःकृतस्तेनकश्चिद्दत्त्वोचितांभृतिम् ॥ किम्बहूक्तेनघटजकाशीप्राप्ताऽथतेनवै ॥ ४७ ॥ धृत्वासंभृतिरक्षार्थंभारवाहंधनञ्जयः ॥ जगामापणमानेतुङ्किञ्चिद्वस्त्वशनादिकम् ॥ ४८ ॥ भारवाह्यन्तरंप्राप्यतस्यसंभृतिमध्यतः ॥ ताम्रसम्पुटमादायधनंज्ञात्वागृहंययौ ॥ ४९ ॥ वासस्थानमथागत्यतमदृष्ट्वाधनञ्जयः ॥ त्वरावान्संभृतिंवीक्ष्यताम्रसम्पुटवर्जिताम् ॥५०॥ हाहेत्याताड्यहृदयंचक्रन्दबहुशोभृशम् ॥ इतस्ततस्तमालोक्यगतस्तदनुसारतः ॥ ५१ ॥ अकृत्वाजाह्नवीस्नानमनवेक्ष्यजगत्पतिम् ॥ तस्यसंवसथंप्राप्तोभारवोढुर्धनञ्जयः ॥ ५२ ॥ भारवाडप्यरण्यान्यांताम्रसम्पुटमध्यतः ॥ दृष्ट्वास्थीनिविनिःश्वस्यतानित्यक्त्वागृहंययौ ॥ ५३ ॥ वणिक्तुतद्गृहंप्राप्यशुष्ककण्ठोष्ठतालुकः ॥ दृष्ट्वाऽथचैलशकलंतृणकुट्यन्तरेतदा ॥ ५४॥ आशयाकिञ्चिदाश्वस्यतत्पत्नींपरिपृष्टवान् ॥ सत्यंब्रूहिनभेतव्यंदास्याम्यन्यदपिध्रुवम् ॥ ५५ ॥ वसुक्तेगतोभर्तामातुरस्थीनिमेऽर्प

गया ॥ ५१ ॥ और गंगास्नान को न कर व विश्वनाथ को न देखकर धनञ्जय उस भारदार के घरमें जा प्राप्तभया॥ ५२ ॥ व भारवाही भी वन में ताम्रसंपुट के बीच में हाड़ देखकर उदासहो श्वास लेकर उनको तज घरको चला गया था ॥ ५३ ॥ अनन्तर सूखे कण्ठ ओठ तालू वाला सुनार भी उसके घर में पहुँचकर तब छानी के बीच में वस्त्र का टूक देखकर ॥ ५४ ॥ हाड़ पाने की आशासे कुछ विश्राम कर उसकी स्त्री से पूंछता भया कि सत्य कह मत डर मैं निश्चय से तुझे अन्यभी

धनदूंगा ॥ ५५ ॥ और तेरा पति कहा गयाहै मेरी माके हाड़दे हे भद्रे! हम लाले कपड़ेवाले तपस्वी दुःखदायक नहीं होते हैं ॥ ५६ ॥ हे भद्रे ! न जानकर लोभके वश वह हाड़ोंका सम्पुट लाया यह उसका दोष नहीं है किन्तु मेरी माताका कर्म्मही वैसा है ॥ ५७ ॥ अथवा माताका दोष नहीं है उसका पुत्र मैंही अभागीहूँ हे भिल्लिनि ! पुत्रकरके जो कर्म्म करने योग्य है उसकी प्राप्ति मुझको नहीं है ॥ ५८ ॥ मैंने उद्यम किया परन्तु थोड़ी भाग्य से न सिद्धहुआ अब मेरे सत्यवचन से भिल्ल यहां आवे मुझसे मतडरे ॥ ५९ ॥ व शीघ्रही हाड़ों को दिखावे तो अधिक धनदूंगा यों उससे कही भिल्लिनी ने अपने पतिसे कहा ॥ ६० ॥ अनन्तर लाजसे शिर झुकाये हुये वह

य ॥ वयंकार्पटिकाभद्रेभवामोनचदुःखदाः ॥ ५६ ॥ अज्ञात्वालोभवशतस्तेननीतोऽस्थिसम्पुटः ॥ तस्यैषदोषोनोभद्रेमातुर्मेकर्मतादृशम् ॥ ५७ ॥ अथवानप्रसूदोषोमन्दभाग्योऽस्मितत्सुतः ॥ सुतेनकृत्यंयत्कृत्यंतत्प्राप्तिर्नास्तिभिल्लिमे ॥ ५८ ॥ उद्यमंकृतवानस्मिनसिद्धोन्मन्दभाग्यतः ॥ आयातुसत्यवाक्यान्मेमाबिभेतुवनेचरः ॥ ५९ ॥ अस्थीनिदर्शयत्वाशुधनंदास्येऽधिकंततः ॥ इत्युक्तातेनसाभिल्लीव्याजहारनिजंपतिम् ॥ ६० ॥ लज्जानम्रशिराःसोऽथवृत्तान्तंविनिवेद्यच ॥ निनायतामरण्यानींशबरस्तंधनञ्जयम् ॥ ६१ ॥ वनेचरोऽथतत्स्थानंदैवाद्विस्मृतवान्मुने ॥ दिग्भ्रान्तिसमवाप्याथपरिबभ्रामकानने ॥ ६२ ॥ इतोरण्यात्ततोयातिततोरण्यादितोव्रजेत् ॥ वनाद्वनान्तरंभ्रान्त्वाखिन्नःसोपिवनेचरः ॥ ६३ ॥ विहायमध्येऽरण्यानितंययौचस्वपक्कणम् ॥ द्वित्राण्यहानिसंभ्रम्यसकार्पटिकसत्तमः ॥ ६४ ॥ क्षुत्क्षामःशुष्ककण्ठोष्ठोहाहेतिपरिदेवयन् ॥ पुनःकाशीपुरींप्राप्तःपरिम्लानमुखोवणिक् ॥ ६५ ॥ तन्मन्दभाग्यतांश्रुत्वालोकात्कार्पटि

भिल्ल हाल बतलाकर फिर उस धनंजय को उस वनमें लेगया ॥ ६१ ॥ हे मुने ! तदनन्तर दैवयोग से वनका वासी भिल्लभी उस स्थानको बिसरगया व दिशाभ्रांति को भलीभांति प्राप्तहोकर वनमें सब ओर घूमने लगा ॥ ६२ ॥ इस वनसे उसको उस वनसे इसको आताजाताथा ऐसेही वनवनान्तरोंमें घूमकर थकाहुआ वह भिल्ल भी ॥ ६३ ॥ वनोंको बीचमें छोंडकर उस प्रसिद्ध अपने निवासको चलागया और पांचदिन भलीभांति घूमकर वह लाले कपड़ेवाले तापसों में श्रेष्ठ ॥ ६४ ॥ व भूँख से दुबला व सूखे कण्ठ ओठवाला व हाय हाय ऐसे होताहुआ मलिन मुख होकर वणिक्भी फिर काशीपुरी को प्राप्तभया ॥ ६५ ॥ हे मुने ! लाल वस्त्रधारी वह

धनञ्जय लोगों से उसकी परपुरुषसंगतिरूप मन्दभाग्यताको सुनकर गया व प्रयागकर तदनन्तर फिर अपने देशको गयाथा ॥ ६६ ॥ हे अगस्त्यजी ! विश्वनाथ की आज्ञाविना काशी में पहुँचकर भी उसके हाड़ उसी क्षण बाहर होगये ॥ ६७ ॥ ऐसेही प्राकृत पुण्यवशसे काशी में पहुँचकर भी पापी नर क्षेत्रका फल मोक्ष नहीं पाता है क्योंकि उसीक्षण बाहर होताहै ॥ ६८ ॥ इससे विश्वनाथ की आज्ञाही इस काशी के बसने में कारण है जहां क्षेत्रकी रक्षाकरनेवाली असि और वरणानदी कींगई है ॥ ५९ ॥ व हे महामुने ! तब से लगाकर वह आनन्दवन काशी असि व वरणाको संगपाकर वाराणसी इस नामसे प्रसिद्धहुई ॥ ७० ॥ और इससे इस लोक

कोमुने ॥ कृत्वागयांप्रयागञ्चततःस्वविषयंययौ ॥ ६६ ॥ काश्यांप्रवेशंप्राप्यापितदस्थीनिघटोद्भव ॥ विनावैश्वेश्वरीमाज्ञाम्बहिर्यातानितत्क्षणात् ॥ ६७ ॥ एवंकाश्यांप्रविश्यापिपापीधर्मानुषङ्गतः ॥ नक्षेत्रफलमाप्नोतिबहिर्भवतितत्क्षणात ॥ ६८ ॥ तस्माद्विश्वेश्वराज्ञैवकाशीवासेऽत्रकारणम् ॥ असिश्चवरणायत्रक्षेत्ररक्षाकृतौकृते ॥ ६९ ॥ वाराणसीतिविख्यातातदारभ्यमहामुने ॥ असेश्चवरणायाश्चसङ्गमंप्राप्यकाशिका ॥ ७० ॥ वाराणसीहकरुणामयदिव्यमूर्तिरुत्सृज्ययत्रतुतनुंतनुभृत्सुखेन ॥ विश्वेशदृग्भहसियत्सहसाप्रविश्यरूपेणतांवितनुताम्पदवींदधाति ॥ ७१ ॥ जातोमृतोबहुषुतीर्थवरेषुरेत्वंजन्तोनजातुतवशान्तिरभून्निमज्ज्य ॥ वाराणसीनिगदतीहमृतोऽमृतत्वंप्राप्याधुनाममबलात्स्मरशासनःस्याः ॥ ७२ ॥ अन्यत्रतीर्थसलिलेपतितोद्विजन्मादेवादिभावमयतेनतथातुकाश्याम् ॥ चित्रंयदत्रपतितःपुनरुत्थितिंनप्राप्नोतिपुल्कसजनोपिकिमग्रजन्मा ॥ ७३ ॥ सैषापुरीसंसृतिरूपपारावारस्यपारम्पुरहापुरारिः ॥ यस्यांपरंपौरुषमर्थ

में काशी दयामयी दिव्यमूर्त्ति है जिससे देहधारी मात्र जिस में सुखसे देह तजकर तत्क्षण विश्वनाथ के ज्ञानप्रकाश में पैठकर भी सच्चिदानन्दरूप से कैवल्यपदवी को धारता है ॥ ७१ ॥ वह काशी यों कहतीहै कि रे जन्तो ! बहुते तीर्थश्रेष्ठोंमें नहाकर तेरी शांति कभी नहीं हुई है बारबार संसारमें जन्मा व मराहै इससे इस समय इस मुझ में मराहुआ तू सायुज्य मोक्षको पहुँचकर मेरे बलसे शिवरूप हो ॥ ७२ ॥ और अन्य तीर्थजलमें मराहुआ ब्राह्मणादि उत्तमवर्ण वैकुण्ठादि सालोक्यभावको पहुँचताहै वैसा काशीमें नहीं है किन्तु यह अद्भुत है जोकि यहां मराहुआ कसाईजन भी फिर देहसम्बन्धको नहीं प्राप्त होताहै तो ब्राह्मणादि का क्या कहनाहै ॥ ७३ ॥

वह यह काशीपुरी है कि जिसमें श्रेष्ठ, पुरुषकारसे प्राप्य, अर्थ याने कैवल्य देना चाहतेहुये वे प्रसिद्ध, देहनाशक शिवजी पुरवासी प्राणीसमूह को संसार रूप समुद्रका पार जैसे हो वैसे सिद्धि (तारक उपदेशरूप ब्रह्मविद्या) को पहुँचाते हैं ॥ ७४ ॥ व मनुष्य अन्यतीर्थों को सब ओर से नहाकर पापसंबंधी देहको तजकर स्वर्ग में देव होवे और काशीकी पर्य्यन्त भूमि में देहछोड़कर देहदशाकी प्राप्ति में भी सन्देहभागी याने मुक्त होताहै ॥ ७५ ॥ व ईश्वरकी भक्ति और अष्टांगयोग विनाही अयोगीजनों की अज्ञान उपाधिनाशिका कारिका उस तारक मन्त्रको श्रवणगोचर कराती हुई उस ब्रह्मको लखाती है कि जिससे फिर संसारमें जन्म नहीं होता है ॥ ७६ ॥ खेदहै कि जो जन किसी भी मन वचनसे परे प्यारे पदको चहकर काशीकी पर्य्यन्त भूमि में अर्थ धर्म्म काम मोक्षकी मन्दिर व वांछितदायिनी देहको तजकर

मिच्छन्सिद्धिन्नयेत्पौरपरम्परांसः ॥ ७४ ॥ तीर्थान्तराणिमनुजःपरितोऽवगाह्यहित्वातनुंकलुषितांदिविदैवतंस्यात् ॥ वारा
णसीपरिसरेतुविसृज्यदेहंसन्देहभाग्भवतिदेहदशाप्तयेपि ॥ ७५ ॥ वाराणसीसमरसीकरणाहृतेपियोगादयोगिजनतांज
नतापहन्त्री ॥ तत्तारकंश्रवणगोचरतांनयन्तीतद्ब्रह्मदर्शयतियेनपुनर्भवोन ॥ ७६ ॥ वाराणसीपरिसरेतनुमिष्टधात्रीं
धर्मार्थकामनिलयामहहाविसृज्य ॥ इष्टंपदंकिमपिहृष्टतरोभिलष्यलाभोस्तुमूलमपिनोयदवापशून्यम् ॥ ७७ ॥ आःका
शिवासिजनताननुवञ्चिताभूद्भालेविलोचनवतार्द्धनितार्धभाजा ॥ आदाययत्सुकृतभाजनमिष्टदेहं निर्वाणमात्रमपवर्ज
यतापुनर्भुः ॥ ७८ ॥ वाराणसीस्फुरदसीमगुणैकभूमिर्यत्रास्थितास्तनुभृतःशशिभृत्प्रभावात ॥ सर्वेगलेगरलिनोऽक्षियुजो
ललाटेवामार्धवामतनवोऽतनवस्ततोन्ते ॥ ७९ ॥ आनन्दकाननमिदंसुखदंपुरैवतत्रापिचक्रसरसीमणिकर्णिकाऽथ ॥ स्वः

बहुत आनंदित होताहै उसका लाभ तो दूर रहा बरन मूलरूप आपही नहीं रहताहै जिससे वह शून्यको पहुँचताहै ॥ ७७ ॥ इससे पीड़ाहै कि जिससे पुण्यपात्र प्यारी देह लेकर फिर जन्मरहित मोक्षमात्र देते हुये गौरी अर्धांगधारी भालनेत्रवाले से काशीवासी जन समूह छला गया है यह निश्चितहै ॥ ७८ ॥ व काशीपुरी करुणामयत्व मोक्षदातृत्वादि जगमगाते हुये अनंत गुणोंकी मुख्य भूमिहै जहां के वासी देहधारी मात्र सब शिवके प्रभावसे कंठमें काले माथमें आंखवाले और आधा स्त्री का रूप वाम अंगमें है जिनके ऐसे होकर उसके बाद अंत में देहसे हीन होतेहैं ॥ ७९ ॥ यह आनन्दवन पहलेही सुखदायक था फिर उसमेंही चक्रसे खनी पुष्करिणी व

मणिकर्णिका अनंतर गंगाका संगम और विश्वनाथ का मुख्य स्थानहै ऐसे सब भांति से जो यहां मुक्तिके लिये न होवे वह क्याहै याने कुछ नहीं है ॥ ८० ॥ इस संसारमें दक्षिण उत्तर डांड़रूप वरणा और असि नदीसे बहुत श्रेष्ठहुई काशिकापुरी भले भेद खेदकी नाशिकाहै जोकि निर्मल मोक्षलक्ष्मी की विश्रामभूमि व प्रलयमें भी अचला याने नाशहीन और गंगासे सोहती शोभावाली है इसको तजकर मूर्खजन अन्यत्र क्यों जाता है ऐसा स्पष्ट वितर्क कियाजाता है ॥ ८१ ॥ खेद है कि गर्भ से उपजा हुआ दुःख व यमराजके दूतोंसे कियागया बन्धन और ताड़ना क्या बिसरगया इससे मूढ़ मनुष्य शम्भुकी दयाकी प्राप्तिसे मिलने योग्य काशीको हाथमें टिकी

सिन्धुसंगतिरथोपरमास्पदञ्च विश्वेशितुः किमिहतन्नविमुक्तयेयत् ॥ ८० ॥ वाराणसीहवरणासिसरिद्वरिष्ठा सम्भेदखेदजननीद्युनदीलसच्छ्रीः ॥ विश्रामभूमिरचलामलमोक्षलक्ष्म्याहैनांविहायकिमुसीदतिमूढजन्तुः ॥ ८१ ॥ किंविस्मृतंत्वहहगर्भजमामनस्यं कार्तान्तदूतकृतबन्धनताडनञ्च ॥ शम्भोरनुग्रहपरिग्रहलभ्यकाशीं मूढोविहायकिमुयातिकरस्थमुक्तिम् ॥ ८२ ॥ तीर्थान्तराणिकलुषाणिहरन्तिसद्यःश्रेयोददत्यपिबहुत्रिदिवंनयन्ति ॥ पानावगाहनविधानतनुप्रहाणैर्वाराणसीतुकुरुतेबतमूलनाशम् ॥ ८३ ॥ काशीपुरीपरिसरेमणिकर्णिकायां त्यक्त्वातनुन्तनुभृतस्तनुमाप्नुवन्ति ॥ भालेविलोचनवतींगलनीललक्ष्मीं वामार्धबन्धुरवधूंविधुरावरोधाः ॥ ८४ ॥ ज्ञात्वाप्रभावमतुलंमणिकर्णिकायांयःपुद्गलन्त्यजतिचाशुचिपूयगन्धि ॥ स्वात्मावबोधमहसासहसामिलित्वा कल्पान्तरेष्वपिसनैवपृथक्त्वमेति ॥ ८५ ॥

मुक्तिसी छोड़कर क्यों जाता है ॥ ८२ ॥ हर्ष है कि अन्यतीर्थ जलपान नहान विधान और मरणसे शीघ्र पाप हरते हैं व बहुत कल्याण भी देते हैं जो स्वर्गको पठाते हैं और काशीपुरी मूलनाश करती है याने मुक्ति देकर देहसम्बन्धकोही नहीं राखती है॥ ८३ ॥ इससे जन्तुमात्र काशीपुरीके आसपास व मणिकर्णिकामें देह तजकर आवरण अज्ञानरहित या स्वतन्त्रता सहित होकर उस देहको पाते हैं कि जिसके साथमें आंख व कण्ठमें कालीशोभा और वामअङ्गमें सुन्दरी स्त्रीका अर्धांगहै ॥ ८४ ॥ जोकि अतुलमाहात्म्यको जानकर मणिकर्णिकामें अपवित्र दुर्गन्धयुत देहको तजताहै वह उसीक्षण स्वरूपभूत प्रकाश चैतन्यके साथ मिलकर फिर कल्पान्तरों में भी पृथग्भाव

कोही नहीं प्राप्त होताहै ॥ ८५ ॥ व रागादिदोषों से भराहुआ मन और इन्द्रियां हैं जिनकी ऐसे जे मनुष्य अतुल, अलौकिक, अत्यन्त सामर्थ्यवाली काशीपुरी को अन्य तीर्थोंके समान कल्पते हैं वे सबओर से पापीहैं उनके साथ बतलाना न चाहिये ॥ ८६ ॥ हे मूढ़ ! शिवकी प्यारी राजधानी काशीको छोड़कर दिशान्तरों में क्यों जाताहै जो ब्रह्मादिकों का दुर्लभ है उस अचल मोक्षलक्ष्मीको प्राप्त होकर भी स्वभावसेही चञ्चललक्ष्मीको क्यों चाहता है ॥ ८७ ॥ इस लोकमें विद्या धन घर हाथी घोड़े दासी दास माला चन्दन व सदासुन्दरी स्त्रियां और स्वर्गभी उद्यमीपुरुष को अगम्य नहीं है किन्तु कीट पतंगोंकी मुक्तिहै जिसमें वह काशीपुरी तो

रागादिदोषपरिपूरमनोहृषीकाः काशीपुरीमतुलदिव्यमहाप्रभावाम् ॥ येकल्पयन्त्यपरतीर्थसमांसमन्तात्तेपापिनोनसहतैःपरिभाषणीयम् ॥ ८६ ॥ वाराणसींस्मरहरप्रियराजधानीं त्यक्त्वाकुतोव्रजसिमूढदिगन्तरेषु ॥ प्राप्याप्यजाद्यसुलभांस्थिरमोक्षलक्ष्मीं लक्ष्मींस्वभावचपलांकिमुकामयेथाः ॥ ८७ ॥ विद्याधनानिसदनानिगजाश्वभृत्याः स्रक्चन्दनानिवनिताश्चनितान्तरम्याः ॥ स्वर्गोप्यगम्यइहनोद्यमभाजिपुंसिवाराणसीत्वसुलभाश्लभादिमुक्तिः ॥ ८८ ॥ धात्राधृतानितुलयातुलनामवैतुं वैकुण्ठमुख्यभुवनानि च काशिका च ॥ तान्युद्ययुर्लघुतयान्यगियंगुरुत्वात्तस्थौपुरीहपुरुषार्थचतुष्टयस्य ॥ ८९ ॥ काशीपुरीमधिवसन्हिनरोनरोपिद्यारोप्यमाणइहमान्यइवैकरुद्रः ॥ नानोपसर्गजनिसर्गजदुःखभारैःकर्मापनुद्यसविशेत्परमेशधाम्नि ॥ ९० ॥ स्थिरापायंकायञ्जननमरणक्लेशनिलयं विहायास्याङ्काश्यामहहपरिगृह्णीतनकुतः ॥ वपुस्तेजोरूपंस्थिरतरपरानन्दसदनंविमूढोऽसौजन्तुः स्फुटितमिवकांस्यंविनिमयन् ॥ ९१ ॥

दुर्लभहै ॥ ८८ ॥ क्योंकि ब्रह्माने तौलसे बराबरी जानने के लिये वैकुण्ठादिलोकों और काशीको भी तुलामें भरा तब वे सब लघुता से ऊंचेगयेहैं और यह अर्थ धर्म काम मोक्ष इन चारों पुरुषार्थोंकी पुरी गुरुतासे नीचे इस भूमिमें रहगईहै ॥ ८९ ॥ व ईश्वरसे यहां टिकायागया काशीमें बसताहुआ मनुष्य भी और अनर याने पशु पक्षीआदि जन्तुभी केवल विश्वनाथ के समान माननीय है क्योंकि वह अनेकउपद्रवों से उत्पत्तिवाले संसार के दुःखभारों से सहित कर्म्मको दूरकर परमेश्वर के तेजमें पैठता है ॥ ९० ॥ अनुताप या आश्चर्य्य व खेदहै कि फूटे कांसेका पात्र पलटतासा यह महामूढ़जन्तु अचल आपदावाले जन्म मरण क्लेशस्थान शरीर को इस

काशीमें तजकर तेजोरूप अनूप अविचल उत्तम आनन्दमन्दिर स्वरूप को क्यों न ग्रहणकरे ॥ ९१ ॥ जिस काशीमें शिवजी मरणसमय कानमें कुछ तारकमन्त्र कहते हैं जिससे फिर गर्भगुहामें नहीं पैठताहै अज्ञानीलोग इस लोकमें विनाशित अर्थवाले व दृढ़ और नियत मरना है जिनमें उन विपत्ति समूहों से क्यों शोच सहता है यह आश्चर्य्य है ॥ ९२ ॥ अत्यन्त वनवासी पवनाशी (उपासी) इन्द्रियजित्जन और स्वेच्छाचारी भी दो तीन बार अन्नादि आहारीभी काशीपुरीवासी जन इन दोनोंमेंसे काशीवासी में अधिकता है यह आश्चर्य्य है ॥ ९३ ॥ इस काशी में मरते पापी व पुण्यवानों की भी कोई विशेषगति नहींहै याने मुक्ति में कुछ विशेष नहीं है

अहोलोकःशोकंकिमिहसहतेहन्तहतधीर्विपद्वारैः सारैर्नियतनिधनैर्ध्वंसितधनैः ॥ क्षितौसत्यांकाश्यांकथयतिशिवोय त्रनिधनेश्रुतौकिञ्चिद्भूयःप्रविशतिनयेनोदरदरीम् ॥ ९२ ॥ काशिवासिनिजनेवनेचरेद्वित्रिभुज्यपिसमीरभोजने ॥ स्वैरचारिणिजितेन्द्रियेप्यहोकाशिवासिनि जनेविशिष्टता ॥ ९३ ॥ नास्तीहदुष्कृतकृतांसुकृतात्मनांवाकाचिद्विशेषगतिरन्तकृतांहिकाश्याम् ॥ बीजानिकर्मजनितानियदूषरायांनाङ्कूरयन्तिहरदृग्ज्वलितानितेषाम् ॥ ९४ ॥ शशकामशकाबकाःशुकाःकलविङ्काश्चवृकाःसजम्बुकाः ॥ तुरगोरगवानरानरागिरिजेकाशिमृताःपरामृतम् ॥ ९५ ॥ अरुद्ररुद्राक्षफणीन्द्रभूषणास्त्रिपुण्ड्रचन्द्रार्धधराधराङ्गताः ॥ निरन्तरंकाशिनिवासिनोजना गिरीन्द्रजेपारिषदामताामम ॥ ९६ ॥ यावन्तएवनिवसन्तिचजन्तवोऽत्रकाश्याञ्जलस्थलचराझषजम्बुकाद्याः ॥ तावन्तएवमदनुग्रहरुद्रदेहादेहावसानमधिगम्यमयिप्रविष्टाः ॥ ९७ ॥ येतुवर्षेषवोरुद्रादिविदेविप्रकीर्तिताः॥वातेषवोऽन्तरिक्षेये येभुव्यन्नेषवःप्रिये॥९८॥

जिससे ऊषरभूमिवत् काशीमें शिवज्ञान से भूजेहुये उनके कर्मजबीज नहीं जमते है ॥ ९४ ॥ हे पार्वति ! शशा मशा बगुला सुवा गर्गवा भेड़िया व स्यार समेत घोड़े सर्प वानर और नर ये सब काशीमें मरेहुये परब्रह्मस्वरूप होजाते हैं ॥ ९५ ॥ हे पर्वतराजकुमारि ! सुन्दर रुद्राक्षरूप सर्प्प भूषणभरे माथमें चन्द्रखण्ड के समान भस्म का त्रिपुण्ड्रधरे व कर्मभूमि में टिकेहुये काशीवासीजन सदा मेरे गण मानेजाने योग्यहैं ॥ ९६ ॥ व मछली स्यारआदि जल थल वासी जितनेही जन्तु इस काशीमें निवसते हैं उतनेही मेरी दयासे रुद्रदेहहुये वे प्राप्तहो देहान्तको पहुँचकर मुझ परमेश्वर में पैठते हैं ॥ ९७ ॥ हे देवि प्रिये ! जे वर्षबाणवाले रुद्र द्युलोक में कहेगये

हैं व जे वायुबाणवाले अन्तरिक्ष में हैं व जे अन्य बाणवाले भूमिमें हैं ॥ ९८ ॥ व जे दश दश रुद्र पूर्व दक्षिण पश्चिम और उत्तर में टिकेहैं व ऊपर बसेहैं व जे रुद्र वेद पण्डितों से पढ़ेजाते हैं ॥ ९९ ॥ व अगणित हजार जे रुद्र पृथिवीमें हैं उन सबसे अधिक काशीवासी सब जन्तु रुद्ररूपही हैं ॥ १०० ॥ हे अगस्त्य ! उस कारण अविमुक्तक्षेत्र (काशी) रुद्रोंका स्थानहै याने इसका रुद्रावास भी नाम है उससे काशीवासी चारोंवर्ण अंत्यज (धोबीआदि) और ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमवालों को भलीभांति से पूजकर ॥ १ ॥ श्रद्धासमेत ईश्वर बुद्धिकरके नर शिवपूजा के फलका भागी होवे ॥ २ ॥ हे अगस्त्यमुने ! श्मशब्द से मुर्दा कहागया और शानशब्द का अर्थ लीनहोना कहाजाता है शब्दार्थों के पण्डित ऐसा श्मशानशब्द का अर्थ कहते हैं ॥ ३ ॥ और प्रलयकाल प्राप्तहोतेही पञ्चमहाभूत (पृथिवी जल अग्नि वायु

रुद्रादशदशप्राच्यवाचीप्रत्यगुदक्स्थिताः ॥ ऊर्ध्वदिक्स्थाश्चयेरुद्राःपठ्यन्तेवेदवादिभिः ॥ ९९ ॥ असङ्ख्याताः सहस्राणि येरुद्राअधिभूतले ॥ तत्सर्वेभ्योऽधिकाःकाश्यांजन्तवोरुद्ररूपिणः ॥ १०० ॥ रुद्रावासस्ततःप्रोक्तमविमुक्तं घटोद्भव ॥ तस्मात्समर्च्यकाशिस्थान्वर्णान्वर्णेतराश्रमान् ॥ १ ॥ श्रद्धयेश्वरबुद्ध्याचरुद्रार्चाफलभाङ्नरः ॥ २ ॥ श्म शब्देनशवःप्रोक्तः शानंशयनमुच्यते ॥ निर्वचन्तिश्मशानार्थंमुनेशब्दार्थकोविदाः ॥ ३ ॥ महान्त्यपिचभूतानिप्रलये समुपस्थिते ॥ शेरतेऽत्रशवाभूत्वाश्मशानंतुततोमहत् ॥ ४ ॥ अप्सुभूरिहलयेलयंव्रजेदापऔर्वंवदनोग्रकन्दरे ॥ मातरि श्वनिमहातनूनपाद्व्योम्निसंक्षयतिवैसदागतिः ॥ ५ ॥ व्योमचापिलयमेत्यहंकृतौसापिषोडशविकारसंयुता ॥ लीयते महतिबुद्धिसंज्ञकेह्यमहान्प्रकृतिमध्यगोभवेत् ॥ ६ ॥ सात्रिगुणत्रयमयीचनिर्गुणन्तंपुमांसमवगुह्यतिष्ठति ॥ पञ्चविंशति

आकाश) अपि (अहङ्कार महत्तत्त्व प्रकृति ये सब) मुर्दा होकर काशीमें लीन होतेहैं उससे यह महाश्मशान है ॥ ४ ॥ इस काशीमें प्रलयकाल भूमि जलमें लय को प्राप्त होतीहै जल अग्निके उग्रमुख कन्दरा में अग्नि वायुमें और वायु भी आकाश में लीनहोताहै ॥ ५ ॥ व आकाश भी अहङ्कार में लय होजाताहै और सोलह विकारों (दशइन्द्रिय पांच महाभूतों) समेत वह अहङ्कार बुद्धिसंज्ञक महत्तत्त्वमें लीन होता है व महत्तत्त्व प्रकृति के मध्यगत होवे यह कष्टहै ॥ ६ ॥ और वह त्रिगुणमयी प्रकृति उस निर्गुण पुरुषको लिपटाकर टिकती है जोकि देहेन्द्रियों को जियानेवाला पचीसईतत्त्व यह जीव पुरुष देह गेहका स्वामी जो चौबिस तत्त्वमयी

प्रकृति से परेहै ॥ ७ ॥ इस भांति ब्रह्मा विष्णु और रुद्रसे हीन यह प्राकृत प्रलय कहाजाताहै अनन्तर जो कालरूप परमात्मा ईश्वर उस प्रकृतिनियन्ता पुरुष को अपना में अनायास संहार करलेते हैं ॥ ८ ॥ वेही प्रसिद्ध परमेश्वर पण्डितों से महाविष्णु ऐसा कहातेहैं उनकोही महादेव कहतेहैं वेही आदि मध्य व अन्तसे हीन शिव हैं वेही लक्ष्मीपति हैं और वेही पार्वतीपतिभी हैं ॥ ९ ॥ ब्रह्मा के दिन दिन कलिप्रलय में भी अनन्तर प्रलयकालीन बहुते हाड़ों के गहने पहनेहुये संहारकार रुद्रजी अपनी पुरीको उठाकर त्रिशूलके अग्रभाग में धारतेहैं उससेही काशी कलि और कालसे वर्जित है ॥ १० ॥ कार्त्तिकेयजी बोले कि हे ब्राह्मण अगस्त्यमुने !

तमःपरःपुमान्देहगेहपतिरेषजीवकः ॥ ७ ॥ प्राकृतःप्रलयएषउच्यतेहंसयानहरिरुद्रवर्जितः ॥ कालमूर्तिरथतञ्चपूरुषं हेलयाकलयतीश्वरःपरः ॥ ८ ॥ सवैमहाविष्णुरितीर्यतेबुधैस्तंवैमहादेवमुदाहरन्ति ॥ सोऽन्तादिमध्यैःपरिवर्जितःशिवः सश्रीपतिःसोपिहिपार्वतीपतिः ॥ ९ ॥ दैनंदिनेऽथप्रलयेत्रिशूलकोटौसमुत्क्षिप्यपुरींहरःस्वाम् ॥ बिभर्तिसंवर्तमहास्थि भूषणस्ततोहिकाशीकलिकालवर्जिता ॥ १० ॥ स्कन्दउवाच ॥ वाराणसीतिकाशीति रुद्रावासइतिद्विज ॥ महाश्म शानमित्येवं प्रोक्तमानन्दकाननम् ॥ ११ ॥ इतिदेवीपुरःप्रोक्तं देवदेवेनशम्भुना ॥ यथाविष्णोःपुराख्यातं तथैवच मयाश्रुतम् ॥ १२ ॥ तच्चत्वदग्रेकथितंरहस्यंकाशिजंमहत् ॥ जप्त्वाध्यायमिमंपुण्यं महापातकनाशनम् ॥ १३ ॥ श्रावयित्वाद्विजान्सम्यक् शिवलोकेमहीयते ॥ अतःपरंकलशजकिंशुश्रूषसितद्वद ॥ १४ ॥ काशीकथाकथ्यमानाम मापिपरितोषकृत् ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवाराणसीमहिमवर्णनंनामत्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३० ॥

वाराणसी काशी रुद्रावास और महाश्मशान इन नामों से इस भांति आनन्दवन कहागया है ॥ ११ ॥ ऐसे देवी के आगे देवदेव शंकर ने कहा जैसे पहले विष्णुसे कहागया था वैसेही मैंने सुना ॥ १२ ॥ फिर उस काशीरहस्य को तुम्हारे आगे कहा जोकि महान् पूजनीय है और महापापनाशक पुण्यरूप इस अध्यायको पढ़कर ॥ १३ ॥ व भलीभांति से ब्राह्मणों को सुनाकर शिवलोक में पूजाजाता है हे अगस्त्य ! इसके बाद क्या सुनाचाहते हो वह कहो ॥ १४ ॥ क्योंकि कहीं जातीहुई काशी की कथा मेरीभी सन्तुष्टि करनेवाली है ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकाशीमहिमवर्णनंनाम त्रिंशोध्यायः ॥ ३० ॥

दोहा ॥ यकतिसयें अध्याय में नाम निरुक्ति स्वभाव। कहि कपालमोचन कथा भैरव प्रादुर्भाव ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे सर्वज्ञ, हृदयके आनन्ददायक, तारकासुरघायक, कार्त्तिकेयजी ! काशीकी कथा सुनता हुआ मैं तृप्तिको नहीं पाताहूं याने सुननेकी चाह चित्तमें बनी है॥ १ ॥ हे नाथ! जो मेरे पै दयाहोवे व जो मैं सुननेमें योग्यहूं तो काशी में भैरवकी कथा कहो ॥ २ ॥ इस काशी मे टिके हुये भैरवनाम कौनहैं इनका क्या रूप व कौन कर्म और कौन नाम भी है ॥ ३ ॥ कैसे पूजे भैरवनायक भक्तोंको सिद्धिदायक हैं व किस समय में पूजेहुये वह शीघ्रही सिद्ध होते हैं ॥ ४ ॥ कार्त्तिकेयजी बोले कि हे महाभाग ! काशी में जैसा तुम्हारा प्रेम वर्तता

अगस्त्यउवाच ॥ सर्वज्ञहृदयानन्द स्कन्दस्कन्दितारक ॥ नतृप्तिमधिगच्छामि शृण्वन्वाराणसीकथाम् ॥ १ ॥ अनुग्रहोयदिमयियोग्योस्मिश्रवणेयदि ॥ तदाकथयमेनाथकाश्यांभैरवसंकथाम् ॥ २ ॥ कोसौभैरवनामात्र काशिपुर्यां व्यवस्थितः ॥ किंरूपमस्यकिंकर्मकानिनामानिचास्यवै ॥ ३ ॥ कथमाराधितश्चैवसिद्धिदःसाधकस्यवै ॥ आराधितः कुत्रकालेक्षिप्रंसिध्यतिभैरवः ॥ ४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ वाराणस्यांमहाभाग यथातेप्रेमवर्तते ॥ तथानकस्यचिन्मन्ये ततोवक्ष्याम्यशेषतः ॥ ५ ॥ प्रादुर्भावंभैरवस्य महापातकनाशनम् ॥ यच्छ्रुत्वाकाशिवासस्य फलंनिर्विघ्नमाप्नुयात् ॥ ६ ॥ पाणिभ्यांपरितःप्रपीड्यसुदृढंनिश्चोत्यनिश्चोत्यचब्रह्माण्डंसकलंपचेलिमरसालोच्चैःफलंमुहुः ॥ पायंपायमपाय तस्त्रिजगतीमुन्मत्तवत्तैरसैर्नृत्यंस्ताण्डवडम्बरेण विधिना पायान्महाभैरवः ॥ ७ ॥ कुम्भयोनेनवेत्त्येव महिमानंमहेशितुः ॥ चतुर्भुजोपिवैकुण्ठश्चतुर्वक्त्रोपिविश्वकृत ॥ ८ ॥ नचित्रमत्रभूदेव भवमायादुरत्यया ॥ तयासंमोहिताःसर्वे

है वैसा किसीका नहीं मानताहूं उसकारण मैं तुमसे सब कहताहूं ॥ ५ ॥ कि बड़े पापोंको नाशनेवाली भैरवनाथ की जिस उत्पत्तिको मनुष्य सुनकर निर्विघ्न काशीवास का फल पावेगा ॥ ६ ॥ पके बड़े आंबफलके समान सकल ब्रह्माण्ड को हाथोंमें करके सब ओरसे गाढ़े निचोड़ निचोड़कर वारंवार पानकर उन रसोंसे मतवालेकी नाईं नृत्याटोप प्रकारसे नाचतेहुये महाभैरवजी त्रिलोकीको अज्ञानसे बचावें ॥ ७ ॥ हे अगस्त्यजी ! चतुर्भुज विष्णुभी व चतुर्मुख ब्रह्माभी महादेवकी महिमा को जानते ही नहीं हैं ॥ ८ ॥ हे ब्राह्मण ! इसमें आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि शिवकी माया दुस्तरहै उससे विमोहित हुये सब कोई भी उन परमेश्वरको नहीं

जानते हैं ॥ ६ ॥ जो वे परमेश्वरही अपना को जनाते हैं तो जानते हैं अन्यथा अपनी इच्छासे ही ब्रह्मादिभी नहीं जानते हैं ॥ १० ॥ जोकि मन वचनसे परे हैं वे सर्वगतभी स्वात्माराम पूर्णकाम महेशजी नहीं देखते हैं व मूढ़ों करके अन्य देवों के समान माने जानेजाते हैं ॥ ११ ॥ हे ब्राह्मण ! पहले सुमेरुके शिखरपर महर्षियों ने प्रणामकर लोकनाथ ब्रह्माजी से पूंछा कि कौन एक वस्तु अखण्ड अविकार है ॥ १२ ॥ तब शिवमायासे मोहित ब्रह्माने सत्तारूप परमेश्वरको न जान कर अपनाको श्रेष्ठ कहा ॥ १३ ॥ कि मैं जगत् का कारण व विधाता और आपही आप हुवा एक ईश्वरहूं व आदि अन्तसे रहित ब्रह्म मैं हूं मुझको न पूजकर संसार

नावयन्त्यपितंपरम् ॥ ९ ॥ वेदयेद्यदिचात्मानं सएवपरमेश्वरः ॥ तदाविदन्तिब्रह्माद्याः स्वेच्छयैवनतंविदुः ॥ १० ॥ ससर्वगोपिनेक्ष्येत स्वात्मारामोमहेश्वरः ॥ देववद्बुध्यतेमूढैरतीतोयोमनोगिराम् ॥ ११ ॥ पुरापितामहंविप्रमेरुशृङ्गे महर्षयः ॥ प्रोचुःप्रणम्यलोकेशंकिमेकन्तत्त्वमव्ययम् ॥ १२ ॥ समाययामहेशस्यमोहितोलोकसम्भवः ॥ अविज्ञाय परम्भावमात्मानम्प्राहवर्षिणम् ॥ १३ ॥ जगद्योनिरहन्धातास्वयम्भूरेकईश्वरः ॥ अनादिमदहम्ब्रह्ममामनभ्यर्च्यनमुच्यते ॥ १४ ॥ प्रवर्तकोहिजगतामहमेकोनिवर्तकः ॥ नान्योयदधिकःसत्यंकश्चित्कोपिसुरोत्तमाः ॥ १५ ॥ तस्यैवम्ब्रुवतोधातुःक्रतुर्नारायणांशजः ॥ प्रोवाचप्रहसन्वाक्यंरोषताम्रविलोचनः ॥ १६ ॥ अविज्ञायपरंतत्त्वंकिमेतत्प्रतिपाद्यते ॥ अज्ञानंयोगयुक्तस्यनचैतदुचितन्तव ॥ १७ ॥ अहंकर्ताहिलोकानांयज्ञोनारायणःपरः ॥ नमामनादृत्यविधेजीवनञ्जगतामज ॥ १८ ॥ अहमेवपरञ्ज्योतिरहमेवपरागतिः ॥ मत्प्रेरितेनभवतासृष्टिरेषाविधीयते ॥ १९ ॥ एवंविप्रक्रतौ

से नहीं छूटता है ॥ १४ ॥ हे देवश्रेष्ठो ! सत्य है कि जिससे एक मैं ही संसार का प्रवर्तक व निवर्तकभी हूँ उस लिये मुझसे अधिक अन्य कोई नहींहै कोईभी नहीं है ॥ १५ ॥ ऐसे उन ब्रह्माके कहतेही क्रोधसे लाले नेत्रवाले होकर जोकि नारायण के अंशसे उत्पन्न व यज्ञोंके स्वामी हैं वे हँसते हुये वचन बोले ॥ १६ ॥ कि परे वस्तुको न जानकर यह क्या कहाजाता है और तुम योगीको यह अज्ञान उचित नहीं है ॥ १७ ॥ हे ब्रह्मन्, अज ! लोकों के कारणभी यज्ञोंके नाथ हम नारायण सबसे परे हैं हमारा अनादरकर लोगोंका जीवन नहीं है ॥ १८ ॥ मैंही परे ज्योति व मैंही परागति हूं मेरे प्रेरेहुये आपसे यह सृष्टि कीजाती है ॥ १९ ॥ इस भांति

मोहसे झगडते हुये आपसमें जीतिके चाही उन दोनों जनोंने प्रमाण जानते हुये रूपधारी चारोंवेदोंसे भी पूंछा ॥ २० ॥ ब्रह्मा व यज्ञविष्णु बोले कि हे वेदो ! तुम्हीं सबमें प्रमाणहो व बड़ी प्रतिष्ठाको प्राप्तहो इसमें सन्देह नहीं है इससे तुम किस वस्तुको जानतेहो या आश्रय करतेहो ॥ २१ ॥ वेद बोले कि हे उत्पत्ति व पालन करनेवाले, समर्थ, देवो ! जो हम माननीय हैं तो आपका सन्देहनाशक प्रमाण कहैंगे ॥ २२ ॥ ऐसा वेदोंका यह कहना सुनकर उन्होंने वेदोंके प्रति कहा कि तुम्हारा कहा हुआ हमका प्रमाण है तुम क्या वस्तु ठीकेहौ उसको नीके से कहो ॥ २३ ॥ ऋग्वेद बोले कि सब जन्तु जिसके भीतर बसे हैं व जिससे सब जगत् बर्तता है व जिसको वह

मोहात्परस्परजयैषिणौ ॥ पप्रच्छतुःप्रमाणज्ञानागमांश्चतुरोपितौ ॥ २० ॥ विधिक्रतूऊचतुः ॥ वेदाःप्रमाणंसर्वत्रप्रतिष्ठाम्परमामिताः ॥ यूयमेवनसन्देहःकिन्तत्त्वम्प्रतितिष्ठत ॥ २१ ॥ श्रुतयऊचुः ॥ यदिमान्यावयन्देवौसृष्टिस्थितिकरौविभू ॥ तदाप्रमाणंवक्ष्यामोभवत्सन्देहभेदकम् ॥ २२ ॥ श्रुत्युक्तमिदमाकर्ण्यप्रोचतुस्तौश्रुतीःप्रति ॥ युष्मदुक्तम्प्रमाणंनौकिन्तत्त्वंसम्यगुच्यताम् ॥ २३ ॥ ऋगुवाच ॥ यदन्तस्थानिभूतानियतःसर्वंप्रवर्तते ॥ यदाहुस्तत्परन्तत्त्वंसरुद्रस्त्वेकएवहि ॥ २४ ॥ यजुरुवाच ॥ योयज्ञैरखिलैरीशोयोगेनचसमिज्यते ॥ येनप्रमाणंहिवयंसएकःसर्वदृक्शिवः ॥ २५ ॥ सामोवाच ॥ येनेदम्भ्राम्यतेविश्वंयोगिभिर्योविचिन्त्यते ॥ यद्भासाभासतेविश्वंसएकस्त्र्यम्बकःपरः ॥ २६ ॥ अथर्वोवाच ॥ यम्प्रपश्यन्तिदेवेशम्भक्त्यानुग्रहिणोजनाः ॥ तमाहुरेककैवल्यंशङ्करन्दुःखतस्करम् ॥ २७ ॥ श्रुतीरितंनिशम्येत्थन्तावतीवविमोहितौ ॥ स्मित्वाहतुःक्रतुविधीमोहान्ध्येनाङ्कितौमुने ॥ २८ ॥ कथम्प्रमथनाथोसौरममाणोनिरन्त

परम तत्त्व भी कहते हैं यह रुद्र एकही हैं ॥ २४ ॥ यजुर्वेद बोले कि जो अष्टांगयोग व सम्पूर्ण यज्ञों से भलीभांति पूजे जाते हैं व जिनसे हमभी प्रमाण हैं वे सबके देखनेहारे ईश्वर शिव एकही हैं ॥ २५ ॥ सामवेद बोले कि जिनसे यह विश्व भ्रमाया जाता है व जिनको योगी जन ध्यावते हैं व जिन के प्रकाशसे जगत् भासता है वह एकशिव सब से परेहैं ॥ २६ ॥ अथर्व वेद बोले कि जिनमें दया भई है वे लोग भक्तिसे जिन महादेवको देखते हैं उन एक दुःखहारी कल्याणकारीको कैवल्य कहते हैं ॥ २७ ॥ हे मुने ! ऐसे वेदोंके कहे वचन सुनकर बहुत विमोहित व मोह अंधकार से चिह्नितहुये वे यज्ञविष्णु और ब्रह्माजी हँसकरबोले ॥ २८ ॥ कि कैसे ये गणों

के नाथ दिगंबर व शक्तिके साथ निरन्तर श्मशान में रमतेहुये व धूरिसे धूसर ॥ २९॥ कुवेष जटिल व बैल में सवार व सर्पालंकार होकर परब्रह्मत्व को प्राप्त हैं क्योंकि
कहां संगरहित परब्रह्म कहां ये यह बड़ा बीच है ॥ ३० ॥ उनका कहना सुनकर हँसता हुवा ॐकाररूप वेदों का कारण जोकि नित्य व देहरहित है वह देहसहित होकर
उन से बोला ॥ ३१ ॥ ॐकार बोला कि लीला से रूपधारी भक्तभयहारी ये रुद्र भगवान् अपना से भिन्न शक्ति के साथ कभी नहीं रमते हैं याने शक्तिभी उन से
बिलग नहीं है॥३२॥ व येही ऐश्वर्य्यसंपन्न शिवजी स्वयंप्रकाश व सनातन हैं और आनंदरूपा मंगलमयी यह उनकी शक्ति आगंतुकी नहीं है अर्थात् वैसे नित्यहै जैसे

परंब्रह्मत्वमापन्नःक्वचत रम् ॥ दिगम्बरःपितृवनेशिवयाधूलिधूसरः ॥ २९ ॥ विटङ्कवेशोजटिलोवृषगोव्यालभूषणः ॥ प्र त्सङ्गवर्जितम् ॥ ३० ॥ तदुदीरितमाकर्ण्यप्रणवात्मासनातनः ॥ अमूर्तोमूर्तिमान्भूत्वाहसमानउवाचतौ ॥ ३१ ॥ असौहिभगवा णवउवाच॥ नह्येषभगवाञ्छक्त्यास्वात्मनोव्यतिरिक्तया॥ कदाचिद्रमतेरुद्रोलीलारूपधरोहरः ॥ ३२ ॥ इत्येवमुक्तेपितदामखमूर्तेरजस्य नीशःस्वयंज्योतिःसनातनः ॥ आनन्दरूपातस्यैषाशक्तिर्नागन्तुकीशिवा ॥ ३३ ॥ पूरयन्निजयाभासा हि ॥ नाज्ञानमगमन्नाशंश्रीकण्ठस्यैवमायया ॥ ३४ ॥ प्रादुरासीत्ततोज्योतिरुभयोरन्तरेमहत् ॥ प्रजज्वालाथकोपेनब्रह्मणःपञ्चमंशिरः॥ द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ ३५ ॥ ज्योतिर्मण्डलमध्यस्थोददृशेपुरुषाकृतिः ॥ स्रष्टाक्षणेनचम ३६ ॥ आवयोरन्तरङ्कोसौबिभृयात्पुरुषाकृतिम् ॥ विधिःसम्भावयेद्यावत्तावत्सहिविलोकितः ॥ ३७ ॥ हिरण्यगर्भस्तम्प्राहजानेत्वाञ्चन्द्रशेख हान्पुरुषोनीललोहितः ॥ त्रिशूलपाणिर्भालाक्षोनागोडुपविभूषणः ॥ ३८ ॥

तदनं- तर दोनों के बीच मे बड़ा तेज प्रकटहुवा जोकि भूमि और द्युलोकके अंतर को अपने प्रकाश से पूरतासाहै ॥ ३५ ॥ उस ज्योतिमण्डल के मध्य में पुरुषका आकार
अग्नि में दहनशक्ति है ॥ ३३ ॥ इसभांति यह कहने परभी तब शिवकीही माया से मोहित हुये ब्रह्मा व यज्ञविष्णुकाभी अज्ञान नाश को न प्राप्तहुवा ॥ ३४ ॥
देखपडा अनंतर ब्रह्मा का पँचवां मूंड़ क्रोध से प्रज्वलित भया कि ॥ ३६ ॥ हमदोनोंके बीचमें यह कौन है जो कि पुरुषदेह को धारणकरे जबतक ब्रह्माजी मन में यह
विचारें तबतक वे देखेगये ॥ ३७ ॥ ब्रह्माजी करके जो कि क्षणमेंही महान् पुरुषरूप नीललोहित (कुछकाले लालेरंग अंगवाले) व त्रिशूल हाथ व माथमें नेत्रवाले हैं

व नागनायक और चन्द्रमा भूषण है जिनका ॥ ३८ ॥ उन से ब्रह्माने कहा कि मैंने तुम चन्द्रभाल को जाना कि आगे आप रुद्र मेरे माथदेश से प्रकट भयेहो ॥ ३९ ॥ व मुक्त करके पहले रोने से रुद्रनाम से भी जोड़े गयेहो हे पुत्र! मेरेही शरण को आवो मैं तेरी रक्षाकरूं ॥ ४० ॥ अनंतर उन ईश्वरने ब्रह्माकी गर्बीली वाणी को सुनकर क्रोध से भैरवाकार (भयंकररूप) पुरुषको उपजाकर ॥ ४१ ॥ कहा कि हे कालभैरव! यह ब्रह्मा तुमसे दंडनीयहै व जिससे तुम प्रत्यक्ष कालके समान सोहतेहो उस कारण आप कालराजहैं ॥४२॥ व सब जगतके भरने धरनेको समर्थहो इस लिये भरणकरणसे भैरव कहेगयेहो व तुमसे कालभी डरेगा उससे तुम कालभैरवहो ॥४३॥

रम् ॥ भालस्थलान्ममपुरारुद्रःप्रादुरभूद्भवान् ॥ ३९ ॥ रोदनाद्रुद्रनाम्नापियोजितोसिमयापुरा ॥ मामेवशरणंयाहिपुत्र रक्षांकरोमिते ॥ ४० ॥ अथेश्वरःपद्मयोनेःश्रुत्वागर्ववतीङ्गिरम् ॥ सकोपतःसमुत्पाद्यपुरुषंभैरवाकृतिम् ॥ ४१ ॥ प्राहप ङ्कजजन्मासौशास्यस्तेकालभैरव ॥ कालवद्राजसेसाक्षात्कालराजस्ततोभवान् ॥ ४२ ॥ विश्वम्भर्तुंसमर्थोऽसिभरणा द्भैरवःस्मृतः ॥ त्वत्तोभेष्यतिकालोपिततस्त्वङ्कालभैरवः ॥ ४३ ॥ आमर्दयिष्यतिभवांस्तुष्टोदुष्टात्मनोयतः ॥ आमर्द कइतिख्यातिन्ततःसर्वत्रयास्यति ॥ ४४ ॥ यतःपापानिभक्तानांभक्षयिष्यतितत्क्षणात् ॥ पापभक्षणइत्येवतवनाम भविष्यति ॥ ४५ ॥ यामेमुक्तिपुरीकाशीसर्वाभ्योपिगरीयसी ॥ आधिपत्यञ्चतस्यास्तेकालराजसदैवहि ॥ ४६ ॥ तत्र येपापकर्तारस्तेषांशास्तात्वमेवहि ॥ शुभाशुभंनतत्कर्मचित्रगुप्तोलिखिष्यति ॥ ४७ ॥ एतान्वरान्प्रगृह्याऽथतत्क्षणा त्कालभैरवः ॥ वामाङ्गुलिनखाग्रेणचकर्तचशिरोविधेः ॥ ४८ ॥ यदङ्गमपराध्नोतिकार्यन्तस्यैवशासनम् ॥ अतोयेन

व जिससे आप उद्धार करनेको प्रसन्नहोकर दुष्ट जीवोंको पीड़ोगे उससे सब ओर आमर्दक इस प्रसिद्धिको पहुँचोगे ॥ ४४ ॥ व जिससे आप भक्तों के पापोंको तत्क्षण भखोगे इससे पापभक्षण ऐसाभी तुम्हारा नाम होगा ॥४५॥ हे कालराज! जो हमारी प्यारी व मुक्तिपुरी काशी सबोंसेभीभारी है उसका स्वामित्व तुमकाही सदैव होगा॥ ४६ ॥ वहां जे पापकारी लोगहैं उनके दण्डदायक नायकभी तुमहीं होगे क्योंकि उनका सुकर्म व कुकर्म चित्रगुप्त न लिखेंगे ॥ ४७ ॥ और इन वरोंको लेकर अनंतर कालभैरवने उसी क्षण बाईं कनिष्ठा (छँगुनिया) अंगुली के नखाग्रसे ब्रह्मांका शिर काटलिया ॥ ४८ ॥ क्योंकि जो अङ्ग अपराध करताहै उसकाही दंड करने योग्य

है इससे जिसने शिवकी निन्दा किया वही पँचवां मूड़ काटागया ॥ ४९ ॥ तदनन्तर यज्ञरूपधारी विष्णुने शङ्करकी स्तुति किया व डरे हुये ब्रह्मानेभी शतरुद्रिय याने ॐ नमस्ते रुद्रमन्यवे इत्यादि मंत्रोंको जपा ॥ ५० ॥ तब प्रसन्नहो भक्तवत्सल महादेवने उन दोनोंको आश्वासनकर अपने अन्य रूप उन जटीले भैरवसे कहा ॥५१॥ कि हे नीललोहित ! यह यज्ञ (विष्णु) तथा यह ब्रह्मा आपके मानने योग्यहै व तुम ब्रह्माके कपालको भी धारो ॥ ५२ ॥ व ब्रह्महत्या दुरानेके लिये व्रतको लोकों का दिखाते व कापालव्रत में टिके हुये तुम सदैव भिक्षा करो उससमय ऐसे कहकर तेजोरूप शिवजी अन्तर्द्धानहोगये ॥ ५३ ॥ और एक स्त्रीको उत्पन्नकर जोकि ब्रह्महत्या

कृतानिन्दातच्छिन्नम्पञ्चमंशिरः ॥ ४९ ॥ यज्ञमूर्तिधरोविष्णुस्ततस्तुष्टावशङ्करम् ॥ भीतोहिरण्यगर्भोपिजजापशत रुद्रियम् ॥ ५० ॥ आश्वास्यतौमहादेवःप्रीतःप्रणतवत्सलः ॥ प्राहस्वाम्मूर्तिमपराम्भैरवन्तङ्कपर्दिनम् ॥ ५१ ॥ मान्योऽ ध्वरोसौभवतातथाशतधृतिस्त्वयम् ॥ कपालंवैधसञ्चापिनीललोहितधारय ॥ ५२ ॥ ब्रह्महत्यापनोदायव्रतंलोकायदर्श यन् ॥ चरत्वंसततम्भिक्षाङ्कापालव्रतमास्थितः ॥ इत्युक्त्वाऽन्तर्हितोदेवस्तेजोरूपस्तदाशिवः ॥ ५३ ॥ उत्पाद्यकन्याम्भे कान्तुब्रह्महत्येतिविश्रुताम् ॥ रक्ताम्बरधरांरक्तांरक्तस्रग्गन्धलेपनाम् ॥ ५४ ॥ दंष्ट्राकरालवदनांललज्जिह्वातिभीषणा म् ॥ अन्तरिक्षैकपादाग्राम्पिबन्तींरुधिरम्बहु ॥ ५५ ॥ कर्त्रीकर्परहस्ताग्रांस्फुरत्पिङ्गोग्रतारकाम् ॥ गर्जयन्तीम्महावेगा म्भैरवस्यापिभीषणाम् ॥ ५६ ॥ यावद्वाराणसीन्दिव्याम्पुरीमेषगमिष्यति ॥ तावत्त्वम्भीषणेकालमनुगच्छोग्ररूपिणि ॥ ५७ ॥ सर्वत्रतेप्रवेशोस्तित्यक्त्वावाराणसीम्पुरीम् ॥ नियोज्यतामितिशिवोप्यन्तर्धानङ्गतस्ततः ॥ ५८ ॥ तत्सान्नि

इस नामसे प्रसिद्ध व लाली देहवाली व लाले कपड़े पहने रक्त समूह रूप सुगन्ध और अनुलेपन लगाये॥५४॥दाढ़ोंसे करालमुखी, लुबलुबाती जीभसे भारी भयानक, व एकपादाग्रको आकाशमें उठाये, बहुत रक्त पीतीहुईहै ॥५५॥ व फूटे करवाकी खपरीको हाथके आगे धरेहै व पीली दारुण आंखोंकी तारावाली बडी वेगवती गर्जतीहुई भैरवकाभी भयकारिणीहै ॥ ५६ ॥ उससे शिवजीने कहा कि हे उग्ररूपिणि भयङ्करि ! जबतक यह भैरव दिव्य काशीपुरीको जावेगा तबतक तूभी कालभैरवके पीछे जा ॥ ५७ ॥ व काशीपुरीको छोड़कर अन्यत्र सर्वत्र तेरा पैठनाहै ऐसे उसको आज्ञादेकर तदनन्तर शिवभी अन्तर्धानहोगये ॥ ५८ ॥ और कालके काल वह भैरवभी उस

ब्रह्महत्या के समीपसे काले होतेभये व महादेवके वचनसे कापालिक व्रतको धारते हुये ॥ ५९ ॥ व कपालको हाथमें लियेहुये जो कि विश्वके प्रकाशक या कारणहैं वे लोकशिक्षा के अर्थ त्रिलोक में घूमें परन्तु बड़ी दारुण ब्रह्महत्याने उन देवकाभी पीछा न छोड़ा ॥ ६० ॥ तब त्रिलोकपालक त्रिलोकनियन्ता भैरवभी व्रतधारी होकर ब्रह्मलोक व वैकुण्ठमें भी व स्वर्गादिक पुरियोंमें भी ॥ ६१ ॥ व प्रति तीर्थमें घूमतेहुये ब्रह्महत्यासे नहीं छूटेहैं ॥ ६२ ॥ हे अगस्त्य ! इसही अनुमानसे ब्रह्महत्याकी नाशिका काशिकाकी महिमा और विचित्रता जानीजावे ॥ ६३ ॥ कि त्रिलोकके मध्यमें जे अनेकों तीर्थ व बहुते क्षेत्रहैं वे काशीकी सोलहवीं कलाको भी योग्य नहींहैं ॥६४॥

ध्याद्भैरवोपिकालोभूत्कालकालतः ॥ सदेवदेववाक्येनबिभ्रत्कापालिकंव्रतम् ॥ ५९ ॥ कपालपाणिर्विश्वात्माचचारभुवनत्रयम् ॥ नात्याक्षीच्चापितन्देवंब्रह्महत्यासुदारुणा ॥ ६० ॥ सत्यलोकेपिवैकुण्ठेमहेन्द्रादिपुरीष्वपि ॥ त्रिजगत्पतिरुग्रोपिव्रतीत्रिजगतीश्वरः ॥ ६१ ॥ प्रतितीर्थम्भ्रमन्नापिविमुक्तोब्रह्महत्यया ॥ ६२ ॥ अनेनैवानुमानेनमहिमात्ववगम्यताम् ॥ ब्रह्महत्यापनोदिन्याःकाश्याःकलशसम्भव ॥ ६३ ॥ सन्तितीर्थान्यनेकानिबहून्यायतनानिच ॥ अधित्रिलोकिनोकाश्याःकलामर्हन्तिषोडशीम् ॥ ६४ ॥ तावद्गर्जन्तिपापानिब्रह्महत्यादिकान्यलम् ॥ यावन्नामनशृण्वन्तिकाश्याःपापाचलाशनेः ॥ ६५ ॥ प्रमथैःसेव्यमानोऽयन्त्रिलोकींविचरन्हरः ॥ कापालिकोययौदेवोनारायणनिकेतनम् ॥ ६६ ॥ अथायान्तम्महाकालन्त्रिनेत्रंसर्पकुण्डलम् ॥ महादेवांशसंभूतंभैरवंभीषणाकृतिम् ॥ ६७ ॥ पपातदण्डवद्भूमौदृष्ट्वातंगरुडध्वजः ॥ देवाश्चमुनयश्चैवदेवनार्यःसमंततः ॥ ६८ ॥ निपेतुःप्रणिपत्यैनंप्रणतःकमलापतिः ॥ शिर

तबतक ब्रह्महत्यादि पाप अत्यन्त गर्जतेहैं जबतक पापपर्वतोंके लिये वज्ररूपिणी काशीका नाम नहीं सुनते हैं ॥ ६५ ॥ व जब गणोंसे सेवित व त्रिलोकमें विचरते हुये यह कपाली रुद्रदेव वैकुण्ठ या श्वेत द्वीपको गये ॥ ६६ ॥ तदनन्तर महाकाल,त्रिनयन व सर्पका कुण्डल पहने, महादेवके अंशसे उत्पन्न, भयंकर देह, भैरवको आते हुये ॥६७॥ देखकर उनके सम्मुख विष्णुजी भूमिमें दण्डवत् गिरे तब सब देव व देवियां व मुनिभी सब ओरसे ॥६८॥ इनके प्रणामकर पृथिवीमें गिर पड़े और हाथ जोड़कर

अञ्जली को माथ में धर व बहुत भांति के स्तोत्रों से स्तुतिकर नमस्कार करनेवाले लक्ष्मीनाथ ॥ ६९ ॥ विष्णुजीने क्षीरसागर मथनेसे उपजी हुई लक्ष्मीजी से कहा कि हे पापहीने, सुभगे, प्रिये, कमलनयनि ! देखो कि तुम धन्यहो ॥ ७० ॥ और हे सुकटि, देवि ! मैं भी धन्यहूं कि जिससे हम दो जने जगत्पति को देखते हैं व ये कालराजभैरव लोकों के पोषक व धारनेवाले समर्थ ईश्वर हैं ॥ ७१ ॥ व अनादि रक्षक शान्त (विकारहीन) सबसे परे छब्बिसवां निरूपित (परमात्मारूप) सर्वज्ञ सब योगियोंके नाथ व सब जन्तुओं के मुख्य स्वामी हैं ॥ ७२ ॥ और ये सब प्राणियों के अन्तर्यामी व सदा सबको सब वस्तु के दाता हैं व जिनको निद्राहीन

स्यञ्जलिमारोप्यस्तुत्वाबहुविधैःस्तवैः ॥ ६९ ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतांप्राहपद्मालयांहरिः ॥ प्रियेपश्याऽब्जनयनेधन्याऽसि सुभगेनघे ॥ ७० ॥ धन्योहंदेविसुश्रोणियत्पश्यावोजगत्पतिम् ॥ अयंधाताविधाताचलोकानांप्रभुरीश्वरः ॥ ७१ ॥ अनादिःशरणःशान्तःपरःषड्विंशसंमितः ॥ सर्वज्ञःसर्वयोगीशःसर्वभूतैकनायकः ॥ ७२ ॥ सर्वभूतान्तरात्मायंसर्वेषांसंवेदःसदा ॥ यंविनिद्राविनिःश्वासाःशान्ताध्यानपरायणाः ॥ ७३ ॥ धियापश्यन्तिहृदयेसोयमद्यसमीक्ष्यताम् ॥ यंविदुर्वेदतत्त्वज्ञायोगिनोयतमानसाः ॥ ७४ ॥ अरूपोरूपवान्भूत्वासोयमायातिसर्वगः ॥ अहोविचित्रंदेवस्यचेष्टितंपरमेष्ठिनः ॥ ७५ ॥ यस्याख्याम्ब्रुवतांनित्यन्नदेहः सोपिदेहधृक् ॥ यंदृष्ट्वानपुनर्जन्मलभ्यतेमानवैर्भुवि ॥ ७६ ॥ सोयमायातिभगवांस्त्र्यम्बकःशशिभूषणः ॥ पुण्डरीकदलायामेधन्येमेऽद्यविलोचने ॥ ७७ ॥ धिग्धिक्पदन्तुदेवानांपरंदृष्ट्वा

व श्वासा जीतेहुये ध्यानपरायण शान्तचित्त सन्तजन ॥ ७३ ॥ बुद्धि से हृदय में देखते हैं वे आज भलीभांति देखे जावें व जिनको मन रोंकेहुये योगी व ब्रह्मज्ञानी जन जानते हैं ॥ ७४ ॥ वे ये सर्वगत, रूपरहित भी रूपसहित होकर आते हैं आश्चर्य्य है कि परमेश्वर देव का चरित अद्भुत है ॥ ७५ ॥ कि नित्यही जिनका नाम जपतेहुये जनों का देहसम्बन्ध नहीं है व जिनको देखकर फिर भूमिमें मनुष्यों का जन्म नहीं मिलताहै याने जन्म मरणसे हीन होकर मुक्त होते हैं वेही देहधारी हुये हैं ॥ ७६ ॥ और वे ये चन्द्रभूषण भगवान् त्रिनेत्रजी आते हैं इससे कमलदलसे चौड़े मेरे नयन आज धन्य हैं ॥ ७७ ॥ और देवों के पदको धिक्कार है धिक्कार है

जिससे इसमें परमेश्वर शङ्करको देखकर वह मोक्ष नहीं मिलताहै जो कि सब दुःखों का नाशक होताहै ॥ ७८ ॥ व देवलोकमें देवत्वसे अधिक अन्य कुछ अशुभ नहीं विद्यमानहै जिससे सब देवोंके स्वामी(महादेव)को देखकर भी हमलोग मुक्तिको नहीं पातेहैं ॥७९॥ इस प्रकार कहकर भलीभांति रोमाञ्चित देह हो विष्णुजी वृषभध्वज महादेव भैरवनाथ को प्रणामकर यह बोले कि ॥ ८० ॥ हे सर्वपापहार, अविकार, समर्थ ! जगत् के पति, देवों के देव, सर्वज्ञ, लोकाधार आपसे यह क्या किया जाता है ॥ ८१ ॥ हे देवेश, त्रिनयन, विरूपाक्ष, महाबुद्धे, काममर्दन ! यह आप का खेल है और आप का व्यापार (कर्म्म) किस कारणवाला है ॥ ८२॥ हे

त्रशङ्करम् ॥ लभ्यतेयन्ननिर्वाणंसर्वदुःखान्तकृत्तुयत् ॥७८॥ देवत्वादशुभङ्किञ्चिद्देवलोकेनविद्यते ॥ दृष्ट्वापिसर्वदेवेशं यन्मुक्तिंनलभामहे ॥ ७९ ॥ एवमुक्त्वाहृषीकेशःसम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ प्रणिपत्यमहादेवमिदमाहवृषध्वजम् ॥ ८० ॥ किमिदंदेवदेवेनसर्वज्ञेनत्वयाविभो ॥ क्रियतेजगतान्धात्रासर्वपापहराऽव्यय ॥ ८१ ॥ क्रीडेयन्तवदेवेशत्रिलोचनमहामते ॥ किङ्कारणंविरूपाक्षचेष्टितन्तेस्मरार्दन॥८२॥किमर्थम्भगवञ्छम्भो भिक्षांचरसिशक्तिप ॥ संशयोमेजगन्नाथनतत्रैलोक्यराज्यद ॥ ८३ ॥ एवमुक्तस्ततःशम्भुर्विष्णुमेतदुदाहरत ॥ ब्रह्मणस्तुशिरश्छिन्नमङ्गुल्यग्रनखेनह॥ ८४ ॥ तदघप्रतिघंविष्णोचराम्येतद्व्रतंशुभम् ॥ एवमुक्तोमहेशेनपुण्डरीकविलोचनः॥८५॥स्मित्वाकिञ्चिन्नतशिराः पुनरेवंव्यजिज्ञपत्॥ यथेच्छसितथाक्रीडसर्वविष्टपनायक ॥ ८६ ॥ माययामांमहादेवनच्छादयितुमर्हसि ॥ नाभीकम

भक्तों के त्रिलोकराज्यदायक, जगत् के नायक, मायापते, ऐश्वर्य्यसम्पन्न, शम्भो ! आप किसलिये भिक्षा करते फिरते हो यह मेरे मनमें सन्देहहै ॥ ८३ ॥ तदनन्तर इसप्रकार से कहेहुये शङ्कर ने विष्णु से यह कहा कि कष्ट है मैंने अंगुली के आगेवाले नख से ब्रह्माकाही मूंड़ काटडाला ॥ ८४ ॥ हे विष्णो ! उस पाप के प्रती-घातक (विनाशक) इस शुभदायक व्रतको मैं करताहूं इसभांति महेश से कहेहुये कमलनयनजी ॥ ८५ ॥ कुछेक मुसकाकर नाथ के प्रति माथ नाये हुये फिर ऐसे विशेष विज्ञापना करते भये कि हे सकललोकनायक ! आप जैसी इच्छा करतेहो वैसीही क्रीड़ा करो ॥ ८६ ॥ और हे महादेव ! माया से मुझको घेरने के लिये

योग्य नहीं हो क्योंकि नाभीकमलकोशसे करोडों ब्रह्माओं को ॥ ८७ ॥ मैं कल्प कल्प में आपकी आज्ञा के बल से सिरजता हूं हे देव, परमेश्वर, प्रभो ! अज्ञानियों से दुस्तर इस माया को छोड़दो ॥ ८८ ॥ हे शिवापतें, महादेव ! जिनके आदिमें मैं हूं वे सबलोग आपकी माया से मोहित हैं इसलिये मैं आपके चेष्टितको परमार्थकी नाईं जानताहूं ॥ ८९ ॥ हे हर ! जब आप प्रलयकालके प्राप्त होतेही देवता समेत सब मुनि व वर्ण और आश्रमवाले लोकों या लोगोंको हरोगे ॥ ९० ॥ तब तुमका ब्रह्मवधादिक पाप कहांहै हे महादेव,शम्भो ! तुमको पराधीन होना नहींहै उसलिये आप अपनी इच्छासे क्रीड़ाकरें ॥ ९१ ॥ हे अपाप ! सन्देहसे पूंछ-

लकोशात्तुकोटिशःकमलासनान् ॥८७॥ कल्पेकल्पेसृजामीशत्वन्नियोगबलाद्विभो ॥ त्यजमायामिमान्देव दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ८८ ॥ मदादयोमहादेवमाययातवमोहिताः ॥ यथावदवगच्छामिचेष्टितन्तेशिवापते ॥ ८९ ॥ संहारकालेसम्प्राप्तेसदेवानखिलान्मुनीन् ॥ लोकान्वर्णाश्रमवतोहरिष्यसियदाहर ॥ ९० ॥ तदाक्वतेमहादेव पापंब्रह्मवधादिकम् ॥ पारतन्त्र्यंनतेशम्भो स्वैरंक्रीडेत्ततोभवान् ॥ ९१ ॥ अतीतब्रह्मणामस्थ्नांस्त्रक्कण्ठेतवभासते ॥ तदातदाक्वनुगताब्रह्महत्यातवानघ ॥९२॥ कृत्वापिसुमहत्पापंत्वांयःस्मरतिभावतः ॥ आधारंजगतामीशंतस्यपापंविलीयते ॥ ९३ ॥ यथातमोनतिष्ठेतसन्निधावंशुमालिनः ॥ तथानभवभक्तस्यपापंतस्यव्रजेत्त्क्षयम् ॥ ९४ ॥ यश्चिन्तयतिपुण्यात्मातवपादाम्बुजद्वयम् ॥ ब्रह्महत्यादिकमपिपापंतस्यव्रजेत्क्षयम् ॥ ९५ ॥ तवनामानुरक्तावाग्यस्यपुंसोजगत्पते ॥ अप्यद्रिकूटतुलितंनैनस्तमनुबाधते ॥ ९६ ॥ रजसातमसाविवर्धितंक्वनुपापंपरितापदाय

ताहूं कि, बीतेहुये ब्रह्माओंके हाड़ोंकी माला आपके कण्ठमें सोहती है तब तब तुम्हारी ब्रह्महत्या कहां गई या आगई है ॥९२॥ और बड़ाभारी पापकर भी जो नर भक्तिसे लोकोंके आधार ईश्वर आपको सुमिरताहै उसका पाप बिलाजाताहै ॥९३॥ जैसे किरणमाली सूर्य्यके समीप अन्धेरा नहीं टिकताहै वैसे शिवभक्तके समीपमें पाप नहीं रहता है क्योंकि उसका पाप नाशको पहुँचजाताहै॥९४॥जो पुण्यात्मा आपके दोनों पदकमलोंको चिन्तन करताहै उसका ब्रह्महत्यादि पाप भी नाशको प्राप्तहोजाताहै ॥९५॥ हे जगत्पते ! जिसकी वाणी आपके नाममें स्नेहवालीहै उसको पर्वतके शिखरके समान भी पाप पीछे नहीं बाधताहै॥९६॥क्योंकि कहां रजोगुण व तमोगुणसे विशेष बढ़ाया

हुवा सब ओरसे तापदाता पापहै और कहां तुम्हारा संसाररोगनाशक व जनोंका सजीवनमूरि मङ्गलमय शिवनाम है ॥९७॥ अन्धकदैत्यदलन जो आपहो उनका हे शिव शंकर चन्द्रभाल इत्यादि नाम जो कभी जिसके ओष्ठपुट (मुख) से निकला तो उसका फिर बारबार संसारमें जन्ममरण नहीं होताहै ॥९८॥ हे परमात्मन्,परमप्रकाश, अपनी इच्छासे देहधारनेहारे, ईश ! यह आपका खेल है क्योंकि ईश्वर में पराधीनता कहां है ॥ ९९ ॥ हे देवोंके स्वामिन् ! आज मैं धन्यहूं क्योंकि जिनको योगीजन भी नहीं देखते हैं उन जगत्कारण अविनाशी परमेश्वर आपको मैं देखताहूं ॥ १०० ॥ आज मुझे बड़ा लाभ व आज मुझे बड़ा कल्याण है क्योंकि

कम् ॥ क्वतेशिवनाममङ्गलं जनजीवातुजगद्रुजापहम् ॥ ९७ ॥ यदिजातुचिदन्धकद्विषस्तवनामोष्ठपुटाद्विनिःसृत म् ॥ शिवशङ्करचन्द्रशेखरेत्यसकृत्तस्यनसंसृतिःपुनः ॥ ९८ ॥ परमात्मन्परन्धामस्वेच्छाविधृतविग्रह ॥ कुतूहलंत वेशेदंकपराधीनतेश्वरे ॥ ९९ ॥ अद्यधन्योस्मिदेवेशयन्नपश्यन्तियोगिनः॥ पश्यामितंजगन्मूलम्परमेश्वरमक्षयम्॥ १०० ॥ अद्यमेपरमोलाभस्त्वद्यमेमङ्गलम्परम् ॥ त्वद्दृष्ट्यमृततृप्तस्यतृणंस्वर्गापवर्गदम् ॥ १ ॥ इत्थंवदतिगोविन्देवि मलापद्मयातया ॥ मनोरथवतीनामभिक्षापात्रेसमर्पिता ॥ २ ॥ भिक्षाटनायदेवोपि निरगात्परयामुदा ॥ दृष्ट्वाऽनुया यिनींतान्तुसमाहूयजनार्दनः ॥ ३ ॥ सम्प्रार्थयद्ब्रह्महत्यांविमुञ्चत्वंत्रिशूलिनम् ॥ ब्रह्महत्योवाच ॥ अनेनापिमिषे णाहं संसेव्यामुंवृषध्वजम् ॥ आत्मानंपावयिष्यामिक्वपुनर्भवदर्शनम् ॥ ४ ॥ सातत्याजनतत्पार्श्वंव्याहृतापिमुरारि णा ॥ तमूचेऽथहरिंशम्भुःस्मेरास्योवचनंशुभम् ॥ ५ ॥ त्वद्वाक्पीयूषपानेनतृप्तोस्मिबहुमानद ॥ वरंवृणीष्वगोविन्द

आपकी दृष्टि अमृतसे तृप्तहुआ जो मैं हूं उसका स्वर्ग व मोक्षदायकभी तृणके समान या तुच्छहै ॥१॥ इस भांति विष्णुके कहतेही उन लक्ष्मीने पात्रमें निर्मल मनोरथवती नाम भीखको दिया ॥ २ ॥ और जब महादेवभी भीख मांगने को बड़े आनन्दसे अन्यत्र निकले तब पीछे जातीहुई उसको बुलाकर विष्णुने ॥ ३ ॥ ब्रह्महत्या से भलीभांति प्रार्थना किया कि तुम त्रिशूलधारी को तजो ब्रह्महत्या बोली, कि मैं इसही बहानेसे इन रुद्रका संसेवनकर अपनाको पवित्र करूंगी क्योंकि फिर महादेव का या संसारका देखना कहां है ॥ ४ ॥जब विष्णुकी कही भी उसने उनका पीछा न छोड़ा तदनन्तर मुसकाते मुखवाले शम्भुजी उन हरिसे शुभ वचन बोले कि॥ ५॥

हे अपाप, अधिक आदरदायक, गोविन्द ! तुम्हारा वचन अमृत पीनेसे मैं तृप्तहूं इससे वरको अङ्गीकार करो मैं तुमको वरदेताहूं ॥ ६ ॥ भिक्षुकलोग वैसे अधिक संस्कार कीहुई शुद्ध भिक्षाओंसे नहीं सन्तुष्ट होते हैं जैसे आदर अमृत पीनेसे भगाहै भीखके लिये भ्रमणका क्लेश जिनका ऐसे होकर प्रसन्नहोते हैं ॥ ७ ॥ महा-विष्णुजी बोले कि यहही वर प्रशंसनीयहै जो कि देवोंके देव मनोरथ मार्ग से परे व देवसमूह के स्वामी आपको मैं देखताहूं ॥ ८ ॥ हे हर ! जो कि सन्तोंको आपके दर्शन होना है वही यह विना बादलकी अमृत वर्षा व विना परिश्रमका बडा उत्सव और विना यत्नके निधिका लाभ है ॥ ९ ॥ हे देव, शम्भो ! आपके दोनों पदकमलों

वरदोऽस्मितवानघ ॥ ६ ॥ नमाद्यन्तितथाभैक्षैर्भिक्षवोप्यतिसंस्कृतैः ॥ यथामानसुधापानैर्लुप्तभिक्षाटनज्वराः ॥ ७ ॥ महाविष्णुरुवाच ॥ एषएववरःश्लाघ्योयदहंदेवताधिपम् ॥ पश्यामित्वान्देवदेवंमनोरथपथातिगम् ॥ ८ ॥ अनभ्रेयंसुधावृष्टिरनायासोमहोत्सवः ॥ अयत्नोनिधिलाभोयद्वीक्षणंहरतेसताम् ॥ ९ ॥ अवियोगोऽस्तुमेदेवत्वदङ्घ्रियुगलेनवै ॥ एषएववरःशम्भोनान्यंकञ्चिद्वरंवृणे ॥ १० ॥ श्रीईश्वरउवाच ॥ एवम्भवतुतेऽनन्तयत्त्वयोक्तम्महामते ॥ सर्वेषामपिदेवानां वरदस्त्वम्भविष्यसि ॥ ११ ॥ अनुगृह्येतिदैत्यारिंकेन्द्रादिभुवनेचरन् ॥ भेजेविमुक्तिजननीं नाम्नावाराणसींपुरीम् ॥ १२ ॥ यत्रस्थितानांजन्तूनां कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ अपिब्रह्मादिदेवानां पदानिविपदाम्पदम् ॥ १३ ॥ वरंवाराणसीवासी जटीमुण्डीदिगम्बरः ॥ नान्यत्रच्छत्रसंछन्नवसुधामण्डलेश्वरः ॥ १४ ॥ वरंवाराणसीभिक्षानलक्षा

से मेरा निश्चयकर अवियोग (संयोग) होवे यहही वर है मैं अन्य किसी वरको नहीं स्वीकार करताहूं ॥ १० ॥ श्रीभैरवजी बोले कि हे महाबुद्धे,अनन्त ! जो तुम ने कहा वह तुमको ऐसाही होवे व तुम सब देवोंके भी वरदाता होगे ॥ ११ ॥ इस भांति विष्णु पर दयाकर ब्रह्मा व इन्द्रादिकों के लोकोंमें विचरते हुये भैरवजी मोक्ष की माता काशी नामपुरी को सेवतेभये याने गये ॥ १२ ॥ जिस काशीवासी जन्तुवोंकी सोलहवीं कलाकोभी विपत्तिके स्थान ब्रह्मादि देवोंके लोक समर्थ नहीं होते हैं ॥१३॥ इसलिये जटीला मुण्डा और नंगाभी काशीवासी श्रेष्ठहै व अन्यत्र छत्रसे छायाहुआ चक्रवर्ती राजा श्रेष्ठ नहीं है ॥१४॥ व काशीकी भीख भली है अन्यत्र

लाखों सम्पत्ति की स्वामिता नही क्योंकि लाखियाभी गर्भ में पैठे हैं परन्तु उस काशी का भिक्षाशी गर्भवासी नहीं होता है ॥ १५ ॥ जिस काशी में भिक्षुकों को दीगई आँराभरभी भीख सुमेरु से भी तौलीहुई होकर गरुई होवे है ॥ १६ ॥ और जो काशी में भूंखे कुटुम्बीको जितने वर्ष वर्ष दिनका भोजन देवे वह उतने युग स्वर्ग में पूजाजावे ॥ १७ ॥ जो काशी में जीविकाहीन को वर्ष भरेको भोजन देता है वह पुरुषश्रेष्ठ कभी भूंख व प्यासका दुःख नहीं भोगता है ॥ १८ ॥ व जो पुण्य काशीवासी लोगोंको होती है वह सम्पूर्ण फल काशीवास करानेवाले का भी होता है ॥ १९ ॥ जिसका नाम जपने से ब्रह्महत्यादि पाप पापी को तजते हैं वह

धिपताऽन्यतः ॥ लक्षाधीशोविशेद्गर्भंतद्भिक्षाशीनगर्भभाक् ॥ १५ ॥ भिक्षापियत्रभिक्षुभ्योदत्तामलकसम्मिता ॥ सुमेरुणापितुलिता वाराणस्यांगुरुर्भवेत् ॥ १६ ॥ वर्षाशनंहियोदद्यात्काश्यांसीदत्कुटुम्बिने ॥ यावन्त्यब्दानितावन्ति युगानिसदिवीज्यते ॥ १७ ॥ वाराणस्यांवर्षभोज्यं योदद्यान्निरुपायिने ॥ सकदाचित्तृट्क्षुधानोदुःखंभुङ्क्तेनरर्षभः ॥१८॥ वाराणस्यांनिवसतां यत्पुण्यमुपजायते ॥ तदेवसंवासयितुःफलंत्वविकलंभवेत् ॥ १९ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानियस्याना म्नोपिकीर्तनात् ॥ त्यजन्तिपापिनंकाशी साकेनेहोपमीयते ॥ २० ॥ क्षेत्रेप्रविष्टमात्रेऽथभैरवेभीषणाकृतौ ॥ हाहेत्यु क्त्वाब्रह्महत्यापातालतलमाविशत् ॥ २१ ॥ कपालंब्रह्मणोरुद्रःसर्वेषामेवपश्यताम् ॥ हस्तात्पतितमालोक्यननन र्तपरयामुदा ॥ २२ ॥ विधेःकपालंनामुञ्चत्करमत्यन्तदुःसहम् ॥ हरस्यभ्रमतःकापितत्काश्यांक्षणतोऽपतत् ॥ २३ ॥ शूलिनोब्रह्मणोहत्यानापैतिस्मचयाक्वचित् ॥ साकाश्यांक्षणतोनष्टाकथंकाशीनदुर्लभा ॥ २४ ॥ अतःप्रदक्षिणीका

काशी किसके समान समझी जावे ॥ २० ॥ जब भयङ्कर देह भैरवनाथजी काशीक्षेत्र में पैठे तबहीं ब्रह्महत्या हाहा कहकर पातालके नीचे चलीगई ॥ २१ ॥ व सबके देखतेही हाथसे गिरे ब्रह्मकपाल को देखकर भैरवनाथ रुद्रजी बड़े आनन्दसे नाचने लगे ॥ २२ ॥ क्योंकि जिस दुस्सह ब्रह्मकपाल ने घूमते हुये रुद्रके हाथको कहीं नहीं तजाथा वह काशी में उसी क्षण गिरपड़ा ॥ २३ ॥ व जो त्रिशूलधारीकी ब्रह्महत्या कहीं न बिलगाती थी वह जिस काशी में तत्क्षण नष्टहोगई वह काशी

कैसे दुर्लभ नहीं है ॥ २४ ॥ इसलिये इस पुरीकी पूजा और प्रदक्षिणा करना चाहिये ॥२५॥ व जबतक जीवे तबतक तीनों सन्ध्याओंमें वाराणसी व काशी इस महा-मन्त्रको जपताहुआ जन्तु संसारमें कभी नहीं जन्मताहै ॥२६॥ व महाक्षेत्र काशीको सुमिरताहुआ दूर विदेशमें टिकाभी जो प्राण तजेगा वह भी कभी न जन्मधरेगा ॥ २७ ॥ व जिसका चित्त काशी में भैरवको सदा सुमिरता है वह उस क्षेत्रका नाम सुनने से फिर संसारमें नहीं उपजता है ॥ २८ ॥ व मनरोंकेहुये जोनर नित्य काशी में बसेगा वह पाप समूह भी कर कालसे छूटे याने मुक्तहोवेगा ॥२९॥ व जो मनुष्य दैवयोगसे काशीमें जाकर मरे तो फिर कहीं श्मशान में शयन को न पावे॥ ३० ॥

र्यापूजनीयापुरीत्वियम् ॥ २५ ॥ वाराणसीतिकाशीतिमहामन्त्रमिमंजपन् ॥ यावज्जीवंत्रिसन्ध्यन्तुजन्तुर्जातुनजायते ॥ २६ ॥ अविमुक्तंमहाक्षेत्रंस्मरन्प्राणांस्तुयस्त्यजेत् ॥ दूरदेशान्तरस्थोपिसोपिजातुनजायते ॥ २७ ॥ आनन्दकाननेयस्यचित्तंसंस्मरतेसदा ॥ तत्क्षेत्रनामश्रवणान्नसभूयोऽभिजायते ॥ २८ ॥ रुद्रावासेवसेन्नित्यंनरोनियतमानसः ॥ एनसामपिसम्भारंकृत्वाकालाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ महाश्मशानमासाद्ययदिदैवाद्विपद्यते ॥ पुनःश्मशानशयनंनक्वापि लभतेपुमान् ॥ ३० ॥ कपालमोचनंकाश्यांयेस्मरिष्यन्तिमानवाः ॥ तेषांविनङ्क्ष्यतिक्षिप्रमिहान्यत्रापिपातकम् ॥ ३१ ॥ आगस्त्यतीर्थप्रवरेस्नानंकृत्वाविधानतः ॥ तर्पयित्वापितॄन्देवान्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ३२ ॥ अशाश्वतमिदंज्ञात्वावाराणस्यांवसन्तिये ॥ देहान्तेतत्परंज्ञानंतेषांदास्यतिशङ्करः ॥ ३३ ॥ इयंकाशीपुरीविप्रसाक्षाद्रुद्रतनुःपरा ॥ अनिर्वाच्यापरानन्दादुष्प्राप्येशविरोधिभिः ॥ ३४ ॥ अस्यास्तत्त्वमहंजानेशिवभक्तिपरोपिवा ॥ मुच्यन्तेजन्तवोऽत्रैव

व जे मनुष्य काशीमें कपालमोचनको सुमिरैंगे उनका यहां और अन्यत्र भी किया हुआ पाप शीघ्र नष्टहोजावेगा ॥३१॥ और तीर्थश्रेष्ठ कपालमोचनमे आकर विधिसे नहाकर व देव पितरोंको तृप्तकर ब्रह्महत्यासे छूटताहै ॥३२॥ व इस देहको अनित्य जानकर जे काशीमे बसतेहैं उनके मरणसमयमे शिवजी उस उत्तमज्ञानको देवैंगे ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण ! यह अकथनीया व शिवके अभक्तो से दुर्लभ काशीपुरी प्रत्यक्ष रुद्रकी दूसरी देहहै ॥ ३४ ॥ इसके तत्त्वको मैं जानताहूं या शिवभक्तजन जानता

है जैसे योगीलोग योगसे मुक्त होतेहैं वैसेही यहां जन्तु मरनेमात्र से मुक्त होते हैं ॥३५॥ यह काशीपुरीही मोक्षपद व यही उत्तम आनन्द और यही श्रेष्ठज्ञान है तथा यही मोक्ष चाही जनोंके सेवनेयोग्य भी है ॥ ३६ ॥ जो मूढ कुबुद्धि यहां बसकर शिवभक्तों को पीड़ता है व पुरीसे द्रोह करता है उसकी मुक्ति यहां और अन्यत्र भी नहीं होतीहै ॥ ३७ ॥ इससे भैरवजी कपालमोचनतीर्थको आगेकर भक्तोंकी पापपरम्पराको भखते हुये तहांपर टिके हैं ॥ ३८ ॥ पापभक्षण भैरवके पास जाकर सैकड़ों पापभी कर रुद्रका सेवक पापोंसे क्योंडरे ॥ ३९ ॥ व जिससे दुष्टोंके मनोरथ और पापोंको सब ओरसे मर्दते हैं इससे ये कालभैरव आमर्दक कहाते है॥ ४० ॥ व

यथायोगेनयोगिनः ॥ ३५ ॥ परम्पदमियंकाशीपरानन्दइयम्पुरी ॥ इयमेवपरंज्ञानंसेव्याऽसौमोक्षकाङ्क्षिभिः ॥३६॥ अत्रोषित्वापीशभक्तान्विरुणद्धितुयःकुधीः ॥ पुर्यैद्रुह्यतिवामूढस्तस्यान्यत्रात्रनोगतिः ॥ ३७ ॥ कपालमोचनंतीर्थंपुरस्कृत्वातुभैरवः ॥ तत्रैवतस्थौभक्तानां भक्षयन्नघसन्ततिम् ॥ ३८ ॥ पापभक्षणमासाद्यकृत्वापापशतान्यपि ॥ कुतो बिभेतिपापेभ्यःकालभैरवसेवकः ॥ ३९ ॥ आमर्दयतिपापानिदुष्टानाञ्चमनोरथान् ॥ आमर्दकइतिख्यातस्ततोऽसौ कालभैरवः ॥ ४० ॥ कलिङ्कालंकलयतिसदाकाशीनिवासिनाम्॥अतःख्यातिंपराम्प्राप्तःकालभैरवसंज्ञिताम् ॥४१॥ सदैवयस्यभक्तेभ्योयमदूताःसुदारुणाः॥परमाम्भीरुताम्प्राप्तास्ततोसौभैरवःस्मृतः ॥ ४२ ॥ मार्गशीर्षाऽसिताष्टम्यां कालभैरवसन्निधौ ॥ उपोष्यजागरन्कुर्वन्महापापैःप्रमुच्यते ॥ ४३ ॥ यत्किञ्चिदशुभंकर्मकृतंमानुषबुद्धितः ॥ तत्सर्वं विलयंयातिकालभैरवदर्शनात ॥ ४४ ॥ अनेकजन्मनियुतैर्यत्कृतंजन्तुभिस्त्वघम् ॥ तत्सर्वंविलयत्याशुकालभैरवद

सदा काशीवासीजनों की कलि व कालको टालते हैं इससे कालभैरवनामक उत्तम प्रसिद्धि को प्राप्त हुये हैं ॥ ४१ ॥ व सदा जिनके भक्तों से सुदारुण यमदूत बड़ेडर को पहुँचे हैं उस कारण ये भैरव कहाते हैं ॥ ४२ ॥ और अगहन के अँधेरे पाख की अष्टमी में कालभैरव के लगे उपास व जागरण करताहुआ मनुष्य सब पापों से छूटता है ॥ ४३ ॥ व मनुष्य बुद्धि से किया जो कुछ पाप कर्म है वह सब कालभैरव के दर्शन से नाश को जाता है ॥ ४४ ॥ व अनेक

लाख जन्मों में जन्तुओं का किया जो पाप है वह सब कालभैरव के दर्शन से शीघ्रही नाश को जाता है॥ ४५ ॥ व मनुष्य अगहन बदी अष्टमी में बड़ी सामग्री विस्तारों से बहुत भांति की पूजाकर वर्षभर के विघ्न को तजे है ॥ ४६ ॥ अष्टमी चौदसि सूर्य्यवार और मङ्गल दिन में भैरवनाथ की यात्रा कर नर कियेहुये पापोंसे छूटता है ॥ ४७ ॥ जो मूढ़ मनुष्य कालभैरव के भक्त काशीवासी जनों को सदैव विघ्नकरे वह दुर्गति को पहुँचे ॥ ४८ ॥ व जे विश्वनाथ के भक्त भी कालभैरव के भक्त नहीं हैं वे काशी में क्षण क्षण या पग पग पर विघ्न पाते हैं ॥ ४९ ॥ इस से शीघ्रतारहित मनुष्य कालोदक तीर्थ में नहा व तर्पण कर कालराज को देखकर पितरों को नरक

र्शनात् ॥ ४५ ॥ कृत्वाचविविधांपूजां महासम्भारविस्तरैः ॥नरोमार्गासिताष्टम्यांवार्षिकंविघ्नमुत्सृजेत् ॥४६॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यांरविभूमिजवासरे ॥ यात्राञ्चभैरवींकृत्वाकृतैःपापैःप्रमुच्यते ॥ ४७ ॥ कालभैरवभक्तानां सदाकाशीनिवासिनाम् ॥ विघ्नंयःकुरुतेमूढःसदुर्गतिमवाप्नुयात् ॥ ४८ ॥विश्वेश्वरेपियेभक्तानोभक्ताःकालभैरवे ॥ काश्यान्तेविघ्नसङ्घातंलभन्तेतुपदेपदे ॥ ४९ ॥ तीर्थेकालोदकेस्नात्वाकृत्वातर्पणमत्वरः ॥ विलोक्यकालराजंचनिरयादुद्धरेत्पितॄन्॥५०॥ अष्टौप्रदक्षिणीकृत्यप्रत्यहंपापभक्षणम् ॥ नरोनपापैर्लिप्येतमनोवाक्कायसम्भवैः ॥ ५१ ॥ तस्मिन्नामर्दकेपीठेजप्त्वास्वाभीष्टदेवताम् ॥ षण्मासंसिद्धिमाप्नोतिसाधकोभैरवाज्ञया ॥ ५२ ॥ वाराणस्यामुषित्वायोभैरवन्नभजेन्नरः ॥ तस्यपापानिवर्धन्तेशुक्लपक्षेयथाशशी ॥ ५३ ॥ यंयंसंचिन्तयेत्कामंपापभक्षणसेवया ॥ बलिपूजोपहारैश्चतंतंससमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ कालराजंनयःकाश्यां प्रतिभूताष्टमीकुजम् ॥भजेत्तस्यक्षयेत्पुण्यं कृष्णपक्षेयथाशशी ॥ ५५ ॥ श्रुत्वा

से उबारै ॥ ५० ॥ प्रतिदिन पापभक्षण भैरवकी आठ प्रदक्षिणाकर मनुष्य मन वचन और तन से उपजे हुये पापों से न लिपटे ॥ ५१ ॥ साधक लोग उस आमर्दक पीठ में छःमास तक अपने इष्ट देव के मन्त्र को जपकर भैरवकी आज्ञा से सिद्धिको पहुँचता है ॥ ५२ ॥ जो मनुष्य काशी में बसकर भैरवको न भजे उसके पाप उजेले पाख में चन्द्रमा की नाई बढ़ते हैं ॥ ५३ ॥ व जो जिस जिस काम को विचारे वह पापभक्षण भैरव की सेवा भेंट और पूजासामग्रियों से उस उसको पावे ॥ ५४ ॥ व जो काशी में बसकर प्रति अष्टमी चतुर्दशी और मङ्गलवारमें कालभैरव को न भजे उसकी पुण्य यों घटे जैसे काले पाखमें चन्द्रमा घट जाता है ॥ ५५ ॥ व ब्रह्महत्या को

वाले भैरव की उत्पत्तिवाले पुण्यरूप इस अध्याय को सुनकर सब पापों से छूटता है ॥ ५६ ॥ बन्दीखाना में पड़ा व बड़ी विपत्ति को प्राप्त भी मनुष्य भैरव का प्रकट होना सुनकर सङ्कट से छूटेगा ॥ १५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते भैरवप्रादुर्भावोनामैकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥

दोहा ॥ बत्तिसयें अध्याय में दण्डपाणि परसङ्ग । अरु उतपति हरिकेशकी कीन्हें कथन सुढङ्ग ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे मयूररथ ! हरिकेश की उत्पत्ति कहो यह कौन है व किसके शोभावान् पुत्र और इनकी कैसी बड़ी तपस्या है ॥ १ ॥ व कैसे महादेव के प्रियत्व को पहुँचे हैं व दण्डनायक होकर कैसे काशीवासी जनों में

ध्यायमिमम्पुण्यंब्रह्महत्यापनोदकम् ॥ भैरवोत्पत्तिसंज्ञंचसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५६ ॥ बन्धनागारसंस्थोपिप्राप्तोपिविपदम्पराम् ॥ प्रादुर्भावम्भैरवस्यश्रुत्वामुच्येतसङ्कटात् ॥ १५७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभैरवप्रादुर्भावोनामैकत्रिंशोध्यायः ॥ ३१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ बर्हियानसमाचक्ष्वहरिकेशसमुद्भवम् ॥ कोसौकस्यसुतःश्रीमान्कीदृगस्यतपोमहत् ॥ १ ॥ कथञ्चदेवदेवस्यप्रियत्वंसमुपेयिवान् ॥ काशीवासिजनीनोभूत्कथंवादण्डनायकः ॥ २ ॥ एतदिच्छाम्यहंश्रोतुम्प्रसादङ्कुरुमेविभो ॥ अन्नदत्वञ्चसम्प्राप्तःकथमेषमहामतिः ॥ ३ ॥ सम्भ्रमोविभ्रमश्चोभौकथन्तदनुगामिनौ ॥ विभ्रान्तिकारिणौक्षेत्रवैरिणांसर्वदानृणाम् ॥ ४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ सम्यगापृच्छिभवताकाशीवासिसमाहितम् ॥ कुम्भसम्भवविप्रर्षेदण्डपाणिकथानकम् ॥ ५ ॥ यदाकर्ण्यनरःप्राज्ञकाशीवासस्ययत्फलम् ॥ निष्प्रत्यूहन्तदाप्नोतिविश्वभर्त्तुरनुग्रहात् ॥ ६ ॥ रत्नभ

प्रसिद्ध हुये हैं ॥ २ ॥ हे समर्थ ! मैं यह सुनने को चाहता हूं मेरे पर प्रसादकरो और ये महाबुद्धिमान् अन्नदातापनको कैसे प्राप्तभयेहैं ॥ ३ ॥ संभ्रम व विभ्रम ये दोनों कैसे इनके पीछे चलनेवाले सेवकहुये जोकि सदा क्षेत्रके शत्रुओंके भ्रमकर्त्ताहैं ॥ ४ ॥ कार्त्तिकेयजी बोले कि हे ब्रह्मर्षे अगस्त्य ! आपने काशीवासी जनों के हितकारी दण्डपाणिके कथानकको भले पूँछाहै ॥ ५ ॥ हे ज्ञानिन् ! जिसको सुनकर काशीवासका जो फलहै उसको विश्वनाथ की दयासे मनुष्य निर्विघ्नता से पाताहै ॥ ६ ॥

आगे लाखों सुकर्म से शोभावान् व बड़ा धर्मात्मा रत्नभद्र इस नामसे प्रसिद्ध यक्ष गन्धमादन पर्वत में हुआथा ॥ ७ ॥ वह पूर्णभद्रनाम पुत्रको पाकर पूर्ण मनोरथ भया व अन्त अवस्था में पहुँचकर अनेक भोगोंको भोग ॥ ८ ॥ फिर शिवके योगसे पृथ्वी आदि पञ्चतत्त्वमयी देहको तजकर शान्तहुये सब इन्द्रियों के विषय जिसके ऐसा होकर निर्विकार शिवको पहुँचा था॥ ९ ॥ अनन्तर पिताके मरतेही बडा यशीला व पुण्य से कमाये ऐश्वर्य्यों से सांसारिक भोगोंको भोगता हुआ पूर्णभद्र ॥ १० ॥ स्वर्गके साधन विनाही सब मनोरथों को पाताभया जोकि स्वर्गका मुख्यसाधन गृहस्थी का भूषण पितरों का बडा हितकारी ॥ ११ ॥ व संसारताप से

द्रइतिख्यातःपर्वतेगन्धमादने ॥ यक्षःसुकृतलक्षश्रीःपुरापरमधार्मिकः॥ ७ ॥ पूर्णभद्रंसुतम्प्राप्यसोऽभूत्पूर्णमनोरथः॥ वयश्चरममासाद्यभुक्त्वाभोगाननेकशः ॥ ८ ॥ शाम्भवेनाथयोगेनदेहमुत्सृज्यपार्थिवम् ॥ आससादशिवंशान्तंशान्तसर्वेन्द्रियार्थकः ॥ ९ ॥ पितर्युपरतेसोऽथपूर्णभद्रोमहायशाः ॥ सुकृतोपात्तविभवभवसम्भोगभुक्तिभाक् ॥ १० ॥ सर्वान्मनोरथाँल्लेभेविनास्वर्गैकसाधनम्॥ गार्हस्थ्याश्रमनेपथ्यंपथ्यम्पैतामहंमहत् ॥ ११ ॥ संसारतापसंतप्तावयवामृतशीकरम् ॥ अपत्यंपतताम्पोतं बहुक्लेशमहार्णवे ॥ १२ ॥पूर्णभद्रोऽथसंवीक्ष्यमन्दिरंसर्वसुन्दरम् ॥ तद्बालकोमलालापविकलंत्यक्तमङ्गलम् ॥ १३ ॥ शून्यंदरिद्रहृद्वदिवजीर्णारण्यमिवाथवा ॥ पान्थवत्प्रान्तरमिवखिन्नोऽतीवानपत्यवान् ॥ १४ ॥ आहूयगृहिणींसोऽथयक्षःकनककुण्डलाम् ॥ उवाचयक्षिणींश्रेष्ठां पूर्णभद्रोघटोद्भव ॥ १५ ॥ नहर्म्यंसुखदंकान्तेदर्पणोदरसुन्दरम् ॥ मुक्तागवाक्षसुभगंचन्द्रकान्तशिलाजिरम् ॥ १६ ॥ पद्मरागेन्द्रनीलार्चिरर्चिताट्टालकंक

तपहुये अंगवालों का अमृतके कणोंके समान सुखदायक व बहुत क्लेशरूप महासमुद्र में डूबते लोगोंका नावरूप है जिसको पुत्रनाम कहते हैं ॥ १२ ॥ अनन्तर वह पूर्णभद्र सब सुन्दरतासहित भी बालकके कोमलवचनोंसे रहित उस अमङ्गल मन्दिरको देखकर ॥ १३ ॥ जोकि दरिद्रीके हृदयसे व पुराने वनसे व बटोहीके मनसे शून्यहै इससे सन्तानहीन वह अधिक खिन्नहुआ ॥ १४ ॥ हे अगस्त्य ! अनन्तर वह पूर्णभद्रयक्ष सोनेके कुण्डलवाली सुवर्णकुण्डल नामक श्रेष्ठ यक्षिणी स्त्रीको बुलाकर बोला ॥ १५॥ हे छबीली ! वह महल सुखदाता नहीं है जोकि शीशाके बीचके बराबर सुन्दर व मोतियों के झरोखाओं से सुभग चन्द्रकान्त पत्थरों से बँधी चौक

वालाहै ॥ १६ ॥ व पद्मराग और नीलमणि मणियों की दीप्तियों से अति उज्ज्वल अटारी है जिसमे व जो शब्दायमान व मूंगोंके खम्भाओं की शोभासे भरा जगमगातेहुये स्फटिकपत्थर की भीतिवाला ॥ १७ ॥ व उड़ते पताकासमूह से शोभित मणिमाणिक की मालावान् व काले अगर के महाधूप के उत्तम सुगन्ध से सुगन्धित है ॥ १८ ॥ व अमोल आसन समेत सुन्दर पलँगो से भूषित व रमणीक किवाड़े जंजीर या परिघाओंसे पूर्ण व रेशमी कपडोसे छत छाया ॥ १६ ॥ मनोरम रंगरावटी संयुत घोड़ेसमूहो से विराजित सेवकी सेवकों के सैकड़ों युक्त व क्षुद्रघण्टिकाओं के शब्दसे नादित है ॥ २० ॥ व नूपुरों के शब्दोंसे उत्कण्ठित मोरोंकी

णत् ॥ विद्रुमस्तम्भशोभाढ्यंस्फुरत्स्फटिककुड्यवत्॥१७॥प्रेङ्खत्पताकानिकरंमणिमाणिक्यमालितम् ॥ कृष्णागुरुमहाधूपबहुलामोदमोदितम् ॥ १८ ॥ अनर्घ्यासनसंयुक्तंचारुपर्यङ्कभूषितम् ॥ रम्यार्गलकपाटाढ्यंदुकूलच्छन्नमण्डपम् ॥ १९ ॥ सुरम्यरतिशालाढ्यंवाजिराजिविराजितम् ॥ दासीदासशताकीर्णंकिङ्किणीनादनादितम् ॥ २० ॥ नूपुरारावसोत्कण्ठकेकिकेकारवाकुलम् ॥ कूजत्पारावतकुलंगुरुसारीकथावरम् ॥ २१ ॥ खेलन्मरालयुगलं जीवञ्जीवककान्तिमत् ॥ माल्याहूतद्विरेफाणांमञ्जुगुञ्जारवावृतम् ॥२२॥ कर्पूरैणमदामोदसोदरानिलबीजितम् ॥ क्रीडामर्कटदंष्ट्राग्रीकृतमाणिक्यदाडिमम् ॥ २३ ॥ दाडिमीबीजसम्भ्रान्तशुकतुण्डात्तमौक्तिकम् ॥ धनधान्यसमृद्धञ्चपद्मालयमिवापरम् ॥ २४ ॥ कमलामोदगर्भंचगर्भरूपंविनाप्रिये ॥ गर्भरूपमुखम्प्रेक्ष्येकथंकनककुण्डले ॥ २५ ॥ यद्युपायोऽस्तिदद्ब्रूहिधिगपुत्रस्यजीवितम् ॥ सर्वंशून्यमिवाभातिगृहमेतदनङ्गजम् ॥ २६ ॥ धिगेतत्सौधसौन्दर्यंधिगेतद्धनस

कूक संयुत व बोलते हुये कपोत समूहवाला बड़ा व मैनाकी कथाओं से श्रेष्ठहै ॥ २१ ॥ व खेलते हैं हंसोंके जोड़ा जिसमें व जोकि चकोरों से शोभावान् मालासुगन्धोंसे बुलाये भौंर भीरकी गुञ्जार से भरा ॥२२॥ व कपूर कस्तूरी सुगन्ध के बन्धु वायु से बीजित व खेलके वानरों की मूर्त्तियों के दाढोंके आगे लागेहैं मणिमाणिक के अनार फल॥२३॥तथा अनार के बियाके भ्रमसे लियाहै शुकोंने चोंचसे मोतिया जिसमें व जोकि धनधान्य से भरापुरा और लक्ष्मीके घरके समान है ॥२४॥ वह मंदिर कमल सुगन्ध से भरेहुये पुत्रके विना शून्यहै हे सुवर्णकुण्डले प्यारी ! मैं पुत्रका मुख कैसे देखों ॥ २५ ॥ जो उपाय है उसको कहो क्योंकि पुत्रहीन के जीवनको

धिक्है व पुत्रमेहीन यह सब घर शून्यसा शोभता है॥२६॥ हे परमप्यारी ! इस महलसुन्दरताको धिक् इस धनराशि को धिक् और पुत्र विना मेरे तेरे जीनेको भी धिक्है॥२७॥ इसभांति बहुत विलपतेसे प्यारेको देखकर व भीतर श्वासभरकर उस पतिव्रता कनककुण्डलानाम यक्षिणीने कहा ॥२८॥कनककुण्डला बोली कि हे स्वामिन्!जिससे आप ज्ञानवान्हो इससे क्यों खेदकरतेहो इस लोकमें पुत्र मिलनेका उपायहै उसको विश्वास करके जानो ॥२९॥ कि, स्थावर जङ्गम जगत्में उद्यमीलोगोंका क्या दुर्लभहै व ईश्वरमें सौंपाहै बुद्धि जिन्होंने उनके आगे मनोरथ जगमगातेहैं॥३०॥ हे पते!जे प्रारब्धको कारण कहतेहैं वे यों अतिशय कुपुरुष हैं क्योंकि अपना आगेका किया कर्महीं वह

श्चयम् ॥ विनापत्यंप्रियतमेजीवितश्चधिगावयोः ॥ २७ ॥ प्रलपन्तमिवप्रोच्चैःप्रियंकनककुण्डला ॥ बभाषेऽन्तर्विनिःश्वस्ययक्षिणीसापतिव्रता ॥ २८ ॥ कनककुण्डलोवाच ॥ किमर्थंखिद्यसेकान्तज्ञानवानसियद्भवान् ॥ अत्रोपायोऽस्त्यपत्याप्त्यैविस्रब्धमवधारय ॥ २९ ॥ किमुद्यमवताम्पुंसांदुर्लभंहिचराचरे ॥ ईश्वरार्पितबुद्धीनांस्फुरन्त्यग्रेमनोरथाः ॥ ३० ॥ दैवंहेतुंवदन्त्येवंभृशङ्कापुरुषाःपते ॥ स्वयम्पुराकृतङ्कर्मदैवंतच्चनहीतरत् ॥ ३१ ॥ ततःपौरुषमालम्ब्यतत्कर्मपरिशान्तये ॥ ईश्वरंशरणंयायात्सर्वकारणकारणम् ॥ ३२॥ अपत्यंद्रविणंदाराहाराहर्म्यंहयागजाः ॥ सुखानिस्वर्गमोक्षौचनदूरेशिवभक्तितः ॥ ३३ ॥ विधातुःशाम्भवींभक्तिंप्रियसर्वेमनोरथाः ॥ सिद्धयोष्टौगृहद्वारंसेवन्तेनात्रसंशयः॥३४॥ नारायणोपिभगवानन्तरात्माजगत्पतिः ॥ चराचराणामविताजातःश्रीकण्ठसेवया ॥ ३५ ॥ ब्रह्मणःसृष्टिकर्तृत्वंदत्तंतेनैवशम्भुना ॥ इन्द्रादयोलोकपाला जाताःशम्भोरनुग्रहात् ॥ ३६ ॥ मृत्युञ्जयंसुतंलेभेशिलादोप्यनपत्यवान् ॥ श्वेत

प्रारब्ध है अन्य नहीं॥३१॥उस कारण पौरुषको आधार कर उस कर्मके नाशनेको सब कारणोंके कारण ईश्वरके शरण जावे ॥ ३२ ॥ तो पुत्र धन धनिया माला महल घोड़े हाथी सुखस्वर्ग और मोक्ष ये सब शिवभक्ति से दूर नहीं हैं ॥ ३३ ॥ हे प्यारे ! सब मनोरथ व आठो सिद्धियां शिवकी भक्ति करतेहुये के द्वारको सेवती हैं इसमें संदेह नहीं है ॥ ३४ ॥ और अन्तर्यामी जगत् के स्वामी भगवान् विष्णुभी जिन शिवकी सेवासे चलते व न चलते हुये जन्तुओं के रक्षक हुयेहै ॥ ३५ ॥ उन शङ्करने ब्रह्मा को सृष्टिकरना अधिकार दियाहै और इन्द्रादि देवभी शिवकी दयासे लोकपाल हुयेहैं ॥ ३६ ॥ व अपुत्र शिलादऋषि ने शिवकी कृपासे मरणहीन नन्दीश्वर नाम पुत्र

को पाया व कालसे फांसे हुये श्वेतकेतु, जीवनको प्राप्तभये हैं यह कथा लिङ्गपुराणमें है ॥ ३७ ॥ व उपमन्यु ऋषिने दूध समुद्रकी स्वामिता पाया व गणेश्वरके पद से बढ़ाहुआ अन्धक दैत्य भी भृङ्गीनाम गणभया है ॥ ३८ ॥ व दधीचिने शिवभक्ति से संग्राम में विष्णुको जीता है तथा दक्षने शिवका सेवनकर प्रजापतिका पद पाया है ॥ ३९ ॥ और जो मनोरथ मार्गसे परे अकथनीय कैवल्य है उसको क्षणमें प्रत्यक्ष हुये शङ्करजी नेत्रोंके विषय करते हैं याने देते हैं ॥ ४० ॥ व सब जन्तुओं के सब दायक महादेवको न पूजकर कोई भी नर इस लोकमें कहीं कुछभी नहीं पावेगा यों निश्चय किया गया है ॥ ४१ ॥ हे प्रिय ! जो सबसे श्रेष्ठ प्यारे पुत्रको चाहते हो तो

केतुरपिप्रापजीवितंकालपाशितः ॥ ३७ ॥ क्षीरार्णवाधिपतितामुपमन्युरवाप्तवान् ॥ अन्धकोप्यभवद्भृङ्गीगाणपत्यपदोर्जितः ॥ ३८ ॥ जिगायशार्ङ्गिणंसंख्येदधीचिःशम्भुसेवया ॥ प्राजापत्यपदंप्रापदक्षःसंशील्यशङ्करम् ॥ ३९ ॥ मनोरथपथातीतंयच्चवाचामगोचरम् ॥ गोचरोगोचरीकुर्यात्तत्पदंक्षणतोमृडः ॥ ४० ॥ अनाराध्यमहेशानंसर्वदंसर्वदेहिनाम् ॥ कोपिकापिकिमप्यत्रनलभेतेतिनिश्चितम् ॥ ४१ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनशङ्करंशरणंव्रज ॥ यदिच्छसिप्रियंपुत्रंप्रियसर्वजनीनकम् ॥ ४२ ॥ इतिश्रुत्वावचःपत्न्याःपूर्णभद्रःसयक्षराट् ॥ आराध्यश्रीमहादेवंगीतज्ञोगीतविद्यया ॥ ४३ ॥ दिनैःकतिपयैरेवपरिपूर्णमनोरथः ॥ पुत्रकाममवापोच्चैस्तस्यांपत्न्यांदृढव्रतः ॥४४॥ नादेश्वरंसमभ्यर्च्यकैःकैर्नापिस्वचिन्तितम् ॥ तस्मात्काश्यांप्रयत्नेनसेव्योनादेश्वरोनृभिः ॥ ४५ ॥ अन्तर्वत्न्यथकालेनतत्पत्नीसुषुवेसुतम् ॥ तस्यनामपिताचक्रेहरिकेशइतिद्विज ॥ ४६ ॥ प्रीतिदायंददौचाथभूरिपुत्राननेक्षणात् ॥ पूर्णभद्रस्तथागस्त्यहृष्टाकनककुण्ड

उस कारण सब यत्नसे शिवके शरण जावो ॥ ४२ ॥ यों स्त्रीका वचन सुनकर गानाजानता हुआ यक्षों का राजा वह पूर्णभद्र गीतविद्या से महादेव को पूजकर ॥ ४३ ॥ कुछ दिनोंमेंही दृढ़व्रत व पूर्ण मनोरथहो उस स्त्रीमें ऊँचे से पुत्रअभिलाष को प्राप्तभया ॥ ४४ ॥ क्योंकि ॐङ्कारेश्वर को पूजकर किन किन आपन वाञ्छित नहीं पायाहै उससे काशीमें मनुष्यों करके सब यत्नसे ॐङ्कारेश्वर सेवने योग्यहैं ॥ ४५ ॥ हे ब्राह्मण ! अनन्तर गर्भिणी हुई उसकी स्त्री ने समय में पुत्र उपजाया वा पिताने उसका हरिकेश यों नाम किया ॥ ४६ ॥ और हे अगस्त्य ! अनन्तर पुत्रका मुख देखनेसे पूर्णभद्र-वैसेही हर्षित कनककुण्डलाने भी प्रसन्नता देने योग्य वस्त्रभूषणादिकों

को बहुतही दिया ॥ ४७ ॥ और कामसे सुन्दर पूर्णचन्द्रमुखवाला बालकभी उजेलेपाखमें चन्द्रमाकी नाईं प्रतिक्षण बढ़ती को पहुँचाथा ॥ ४८ ॥ जब हरिकेश बालक आठवर्ष का हुआ तबसे लगाकर नित्यही एक शिवको यों माननेलगा ॥ ४९ ॥ कि धूरिखेलनेमें आसक्तभी धूरिका शिवलिङ्ग करे व हरे कोमल तृणों से कौतुक समेत पूजे ॥ ५० ॥ और वह सब मित्रोंको शिवनामसे बुलावे कि हे चन्द्रशेखर ! हे भूतेश ! हे मृत्युञ्जय ! हे मृड ! हे ईश्वर ! ॥ ५१ ॥ हे धूर्जटे ! हे खण्डपरशो ! हे मृडानीश ! हे त्रिलोचन ! हे भर्ग ! हे शम्भो ! हे पशुपते ! हे पिनाकिन् ! हे उग्र ! हे शङ्कर ! ॥५२ ॥ हे श्रीकण्ठ ! हे नीलकण्ठ ! हे ईश ! हे स्मरारे ! हे पार्वतीपते ! हे कपा-

ला॥४७॥ बालोऽपिपूर्णचन्द्राभवदनोमदनोपमः ॥ वृद्धिंप्रतिक्षणंप्रापशुक्लपक्षइवोडुराट् ॥४८॥ यदाष्टवर्षदेशीयोहरिकेशोऽभवच्छिशुः ॥ नित्यंतदाप्रभृत्येवंशिवमेकममन्यत ॥ ४९ ॥ पांसुक्रीडनसक्तोपिकुर्याल्लिङ्गंरजोमयम् ॥ शाद्वलैःकोमलतृणैःपूजयेच्चसकौतुकम् ॥ ५० ॥ आकारयतिमित्राणिशिवनाम्नाऽखिलानिसः ॥ चन्द्रशेखरभूतेशमृत्युंजयमृडेश्वर ॥ ५१ ॥ धूर्जटेखण्डपरशोमृडानीशत्रिलोचन ॥ भर्गशम्भोपशुपतेपिनाकिन्नुग्रशङ्कर ॥ ५२ ॥ श्रीकण्ठनीलकण्ठेशस्मरारेपार्वतीपते ॥ कपालिन्भालनयनशूलपाणेमहेश्वर ॥५३ ॥ अजिनाम्बरदिग्वासःस्वर्धुनीक्लिन्नमौलिज ॥ विरूपाक्षाहिनेपथ्यगृणन्नामावलीमिमाम् ॥ ५४ ॥ सवयस्कानितिमुहुःसमाहूयतिलालयन् ॥ शब्दग्रहौनगृह्णीतस्तस्यान्याख्यांहरादृते ॥ ५५ ॥ पद्भ्यांनपद्यतेचान्यदृतेभूतेश्वराजिरात् ॥ द्रष्टुंरूपान्तरंतस्यवीक्षणेनविचक्षणे ॥ ५६ ॥ रसयेत्तस्यरसनाहरनामाक्षरामृतम् ॥ शिवाङ्घ्रिकमलामोदाद्घ्राणंनैवजिघृक्षति ॥ ५७ ॥ करौतत्कौतुककरौमनोमन

लिन् ! हे भालनयन ! हे शूलपाणे ! हे महेश्वर ! ॥ ५३ ॥ हे अजिनाम्बर ! हे दिग्वासः ! हे स्वर्धुनीक्लिन्नमौलिज ! हे विरूपाक्ष ! हे सर्पभूषण ! इस नाममालाको कहता ५४ ॥ व मित्रोंको लालन करता हुआ वह यों बार बार पुकारता था व उसके कान शिवके विना अन्यके नामको न गहते थे ॥ ५५ ॥ व शिवमन्दिर का आंगन तज कर पांवों से अन्यत्र न जाता था व उसके नेत्र अन्य रूप देखने को निपुण नहीं थे ॥ ५६ ॥ व उसकी जीभ शिवनाम अक्षर अमृतका स्वादलेवे व घ्राण (नासिका इन्द्रिय) शिवपद कमल सुगन्ध से अन्यको न सूँघना चाहती थी ॥ ५७ ॥ व हाथ उन शिवकी सेवाकरें मन अन्यको न ध्यावे व वह अच्छी बुद्धिसे शिवको समर्पण

कर पानीपीवे ॥ ५८ ॥ व शिवके आगे आनेहुयेही अन्नादि भोजन कियेजावें व वह सब अवस्थाओं में सर्वत्र शिवके विना कुछ न देखे ॥ ५९ ॥ जाता, गाता, सोता, खड़ा, पौढ़ा, खाता और पीताहुआ भी वह सब ओरसे शिवको देखता था अन्यभावको न जानता था ॥ ६० ॥ रातोंमें सोताहुआ भी वह बालक हे त्रिनयन ! कहां जातेहो क्षणभर परखो यों बार बार कहता हुआ जागता था ॥ ६१ ॥ अनन्तर यों हरिकेश की प्रकट दशा देखकर उसके उस पिताने सिखाया कि घरके कर्म्म में रत होवो ॥ ६२ ॥ व हे वत्स (बच्चे) ! ये तेरे घोड़े ये घोड़ों के बछेड़े ये विचित्र वस्त्र ये पाटम्बर ॥ ६३ ॥ व बहुत भांति की जाति के आकरों से शुद्ध ये अनेकों रत्न व बहुत

तिनापरम्॥ शिवसात्कृत्यपेयानिपीयन्तेतेनसद्धिया ॥ ५८॥ भक्ष्यन्तेसर्वभक्ष्याणित्र्यक्षप्रत्यक्षगान्यपि॥ सर्वावस्थासु सर्वत्रनसपश्येच्छिवंविना ॥ ५९ ॥ गच्छन्गायन्स्वपंस्तिष्ठञ्छयानोऽदन्पिबन्नपि ॥ परितस्त्र्यक्षमैक्षिष्टनान्यंभावं चिकेतिसः ॥ ६० ॥ क्षणदासुप्रसुप्तोपिकयासीतिवदन्मुहुः ॥ क्षणंत्र्यक्षप्रतीक्षस्वबुध्यतीतिसबालकः ॥ ६१ ॥ स्पष्टांचे ष्टांविलोक्येतिहरिकेशस्यतत्पिता ॥ अशिक्षयत्सुतंसोऽथगृहकर्मरतोभव ॥ ६२ ॥ एतेतुरङ्गमावत्सतवैतेऽश्वकिशोर काः ॥ चित्राणीमानिवासांसिसुदुकूलान्यमूनिच ॥ ६३ ॥ रत्नान्याकरशुद्धानिनानाजातीन्यनेकशः ॥ कुप्यंबहुविधं चैतद्गोधनानिमहान्तिच ॥ ६४ ॥ अमत्राणिमहार्हाणिरौप्यकांस्यमयानिच ॥ पणनीयानिवस्तूनिनानादेशोद्भवान्य पि ॥ ६५ ॥ चामराणिविचित्राणिगन्धद्रव्याण्यनेकशः ॥ एतान्यन्यानिबहुशस्त्वनेकेधान्यराशयः ॥ ६६ ॥ एतत्त्व दीयंसकलंवस्तुजातंसमन्ततः॥ अर्थोपार्जनविद्याश्चसर्वाःशिक्षस्वपुत्रक ॥ ६७ ॥ चेष्टास्त्यजदरिद्राणांधूलिधूसरिणाम मूः ॥ अभ्यस्यविद्याःसकलाभोगान्निर्विश्यचोत्तमान् ॥ ६८॥ तांदशाञ्चरमांप्राप्यभक्तियोगंततश्चर ॥ असकृच्छिक्षितः

भांति के कुप्पा व ये बड़े गोधन ॥ ६४ ॥ व बड़े मोलके चांदी और कांसे के पात्र व अनेक देशोंमें उपजी बेंचने योग्य चीजें ॥ ६५ ॥ व विचित्र चँवर अनेक सुगन्ध वस्तु ये सब और बहुती अनेकों अन्नराशियां ॥ ६६ ॥ यह सम्पूर्ण वस्तुसमूह सबओरसे तेराहै और हे पुत्र! धन कमानेकी सब विद्याओंको सिखो ॥ ६७ ॥ धूरिभरे दरिद्रियों की इन चेष्टाओं को तजो व सब विद्यापढ़कर उत्तम भोगोंको भोगकर ॥ ६८ ॥ और उस अन्तदशा को पहुँचकर तदनन्तर भक्तियोग करो यों बार बार बापसे सि-

खाया बड़ेके वचन को न मानकर ॥ ६९ ॥ व कभी पिताको क्रोधदृष्टि देखकर डरभुतहुआ उदारबुद्धिवाला वह हरिकेश घरसे निकलगया ॥ ७० ॥ व दिशाभ्रम को भी प्राप्तभया तब बड़ी चिन्तना को पहुँचा कि अहो अज्ञानता से मैंने कैसे घर तजाहै ॥ ७१ ॥ हे शङ्कर! कहां जाऊँ कहां टिकनेसे मेरा कल्याण होगा पितासे निकाला हुआ मैं कुछ नहीं जानताहूं ॥ ७२ ॥ परन्तु पहले पिताकी गोदमें बैठेहुये मैंने पिताके आगे कहते हुये किसी के ऐसे वचन को स्पष्ट सुनाहै ॥ ७३ ॥ कि जे माता पिता और अपने बन्धुओंसे सब ओर त्यागे-गये हैं व जिनका कहीं भी ठिकाना नहीं है उनका काशीपुरी आधारहै ॥ ७४ ॥ जे बुढ़ाई से हारे व रोगों से पीड़ित हैं व जिनका

पित्रेत्यवमन्यगुरोर्गिरम् ॥ ६९ ॥ रुष्टदृष्टिञ्चजनकंकदाचिदवलोक्यसः ॥ निर्जगामगृहाद्भीतोहरिकेशउदारधीः ॥७०॥ ततश्चिन्तामवापोच्चैर्दिग्भ्रान्तिमपिचाप्तवान् ॥ अहोबालिशबुद्धित्वात्कुतस्त्यक्तंगृहंमया ॥ ७१ ॥ क्वयामिकस्थिते शम्भोममश्रेयोभविष्यति ॥ पित्रानिर्वासितश्चाहंनचवेद्मयथकिञ्चन ॥ ७२ ॥ इतिश्रुतंमयापूर्वंपितुरुत्सङ्गवर्तिना ॥ गद तस्तातपुरतःकस्यचिद्वचनंस्फुटम् ॥ ७३ ॥ मात्रापित्रापरित्यक्तायेत्यक्तानिजबन्धुभिः ॥ येषांकापिगतिर्नास्तिते षांवाराणसीगतिः ॥ ७४ ॥ जरयापरिभूतायेयेऽव्याधिविकलीकृताः ॥ येषांकापिगतिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः ॥ ७५ ॥ पदेपदेसमाक्रान्तायेविपद्भिरहर्निशम् ॥ येषांकापिगतिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः ॥ ७६ ॥ पापराशिभिराक्रान्तायेदा रिद्र्यपराजिताः ॥ येषांकापिगतिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः ॥७७॥ संसारभयभीतायेयेबद्धाःकर्मबन्धनैः ॥ येषांकापिग तिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः ॥ ७८ ॥ श्रुतिस्मृतिविहीनायेशौचाचारविवर्जिताः ॥ येषांकापिगतिर्नास्तितेषांवाराणसी

कहींभी ठिकाना नहीं है उनका काशीपुरी आधारहै ॥ ७५ ॥ जे रातोदिन क्षण क्षण या पग पगमें विपत्तियोंसे दबेहैं व जिनका कहींभी ठिकाना नहीं है उनका काशीपुरी आधारहै ॥ ७६ ॥ जे पापसमूह से दबे व दरिद्रतासे हारेहैं व जिनका कहींभी ठिकाना नहीं है उनका काशीपुरी आधार है ॥ ७७ ॥ जे संसारडर से डरे व कर्मबन्धनों से बँधे हैं व जिनका कहीं भी ठिकाना नहींहै उनका काशीपुरी आधारहै ॥ ७८ ॥ जे वेद स्मृतियों से रहित अशुद्धता अनाचार सहितहैं व जिनका कहींभी ठिकाना

नहीं है उनका काशीपुरी आधार है ॥ ७९ ॥ जे योगसे पतित, तपस्या व दान से हीन हैं व जिनका कहींभी ठिकाना नहीं है उनका काशीपुरी आधार है ॥ ८० ॥ व क्षण क्षण में जिनका बन्धुजनोंके बीचमें अपमान है उनका आनन्ददायक एक शिवका आनन्दवन (काशी) हीहै ॥ ८१ ॥ व विश्वनाथ ने दया किया जिनपर ऐसे वहां बसते हुये जिन सन्तोंकी रुचिभी काशीमें होवे उनको आनन्द का उदयहोता है ॥ ८२ ॥ जहां अग्निरूप विश्वनाथ जी अज्ञानको जलाते है इससे महाश्मशान वह (काशी) अगतियों की उत्तम गतिहै ॥ ८३ ॥ यों विचारकर हरिकेश काशीपुरी को गया जिस अविमुक्त क्षेत्रमें पांचभौतिक देहको तजते हुये जन्तुओं

गतिः ॥ ७९ ॥ येचयोगपरिभ्रष्टास्तपोदानविवर्जिताः ॥ येषांक्कापिगतिर्नास्तितेषांवाराणसीगतिः ॥ ८० ॥ मध्येबन्धुजनेयेषामपमानंपदेपदे ॥ तेषामानन्ददंचैकंशम्भोरानन्दकाननम् ॥ ८१ ॥ आनन्दकाननेयेषांरुचिर्वैवसतांसताम् ॥ विश्वेशानुगृहीतानान्तेषामानन्दजोदयः ॥ ८२ ॥ भर्ज्यन्तेकर्मबीजानियत्रविश्वेशवह्निना ॥ अतोमहाश्मशानंतदगतीनांपरागतिः ॥ ८३ ॥ हरिकेशोविचार्येतियातोवाराणसींपुरीम् ॥ यत्राविमुक्तेजन्तूनान्त्यजतांपार्थिवींतनुम् ॥ ८४ ॥ पुनर्नोतनुसंम्बन्धस्तनुद्वेषिप्रसादतः ॥ आनन्दवनमासाद्यसतपःशरणंगतः ॥ ८५ ॥ अथकालान्तरेशम्भुःप्रविश्यानन्दकाननम् ॥ पार्वत्यैदर्शयामासनिजमाक्रीडकाननम् ॥ ८६ ॥ अमन्दामोदमन्दारंकोविदारपरिष्कृतम् ॥ चारुचम्पकचूताढ्यंप्रोत्फुल्लनवमल्लिकम् ॥ ८७ ॥ विकसन्मालतीजालंकरवीरविराजितम् ॥ प्रस्फुटत्केतकिवनंप्रोद्यत्कुरबकोर्जितम् ॥ ८८ ॥ जृम्भद्विचकिलामोदंलसत्कङ्केलिपल्लवम् ॥ नवमल्लीपरिमलाकृष्टषट्पदनादितम् ॥ ८९ ॥ पुष्प्यपुन्ना

का ॥ ८४ ॥ शिवकी प्रसन्नता से फिर देह सम्बन्ध नहीं होताहै उस आनन्दवनमें जाकर वह हरिकेश तपके शरण गया ॥ ८५ ॥ अनन्तर कुछ कालके बाद आनन्दवनमें पैठकर शङ्करने पार्वती को अपना विहारवन दिखाया ॥ ८६ ॥ जोकि अधिक सुगन्धदार मन्दारवान्, कचनार वृक्षों से भूषित, सुन्दर चंपा और आंबोंसे पूर्ण व फूली नई बेलावालाहै ॥ ८७ ॥ व फूली मालती समूह से शोभित कनैरोंसे विराजित व फूलाहै केतकीका वन जिसमें व जो विकसी लाली कटसरैयासे बढ़ाहै ॥ ८८ ॥ व विकसित विचकिल या मैनफलके वृक्षोंसे सुगन्धित,अशोक पल्लवोंसे शोभित व नई चमेली के सुगन्धसे खींचे भौंरोंसे नादितहै ॥ ८९ ॥ व फूलनेयोग्य पुन्नाग याने

सन्दसरी के वृक्ष समूहवाली और मौनसिरी सुगन्धों से सुगन्धित है व मेदाभरे पाटलके सुगन्ध से सदा सुगन्धित हैं दिशाओं के मुख जिसमें ॥ ९० ॥ व जोकि बहुते शाखादिकों में लटके भौरोंकी भीरसे मालावाला पृथिवीतलहै जिसमें डोलती हुई चन्दन शाखाओंके आगे रमतेहुये कोकिलोंसे व्याप्तहै ॥ ९१ ॥ व काले अगर से मतवाले उत्तम जातिवाले पक्षियों से संयुत, नागकेशर की शाखाओं में टिकीहुई देवसुन्दरी पुत्तलियों से विलासयुक्त है ॥ ९२ ॥ व सुमेरु से ऊँचे रुद्राक्ष वृक्षोंकी छाया में क्रीडा करते किन्नरों से भरा व स्थान स्थान में किन्नर स्त्री जोड़ाओंका गीत और बोलते हुये शुक समेत पलाश वृक्ष हैं जहां ॥ ९३ ॥ व जहां कदम्बसमूहों

गनिकरंबकुलामोदमोदितम् ॥ मेदस्विपाटलामोदसदामोदितदिङ्मुखम् ॥ ९० ॥ बहुशोलम्बिरोलम्बमालामालितभूतलम् ॥ चलच्चन्दनशाखाग्ररममाणपिकाकुलम् ॥ ९१ ॥ गुरुणाऽगुरुणामत्तभद्रजातिविहङ्गमम् ॥ नागकेसरशाखास्थशालभञ्जिविनोदितम् ॥ ९२ ॥ मेरुतुङ्गनमेरुस्थच्छायाक्रीडितकिन्नरम् ॥ किन्नरीमिथुनोद्गीतंगानवच्छुककिंशुकम् ॥ ९३ ॥ कदम्बानांकदम्बेषुगुञ्जद्रोलम्बयुग्मकम् ॥ जितसौवर्णवर्णोच्चकर्णिकारविराजितम् ॥ ९४ ॥ लसत्सप्तच्छदामोदंखर्जूरीराजिराजितम् ॥ नारिकेलतरुच्छन्नंनारङ्गीरागरञ्जितम् ॥ ९५ ॥ फलिजम्बीरनिकरंमधूकमधुपाकुलम् ॥ शाल्मलीशीतलच्छायंपिचुमन्दमहावनम् ॥ ९६ ॥ मधुरामोददमनच्छन्नंमरुबनोदितम् ॥ लवलीलोललीलाभृन्मन्दमारुतलोलितम् ॥ ९७ ॥ भिल्लीहल्लीसकप्रीतिभिल्लीरावविराविणम् ॥ क्वचित्सरःपरिसरक्रीडत्क्रोडकदम्बकम् ॥ ९८ ॥

मे भौंरोके जोटा गूंजते हैं व जो सोने के रंगको जीते ऊंचे नैनिया फूलों से विराजितहै ॥ ९४ ॥ व छतिवन सुगन्ध से शोभित, खजूरि पंक्तिसे विराजित, नारियरके वृक्षों से व्याप्त और नारंगी के रस रंग से रंजित है ॥ ९५ ॥ व फले जँभीरीवृक्ष समूहवाला है व महुवा के वृक्षों में जे भौंर हैं उन से पूर्ण है व सेमरकी शीतल छाया व नींबीका बड़ा वन है जहां ॥ ९६ ॥ व जो रम्य सुगन्धदार दौनाके वृक्षों से छाया, मरुवाके वृक्षों से युक्त व हरफारयोरी की चंचल लीलाधारी मंद मारुतसे हलाया गया है ॥ ९७ ॥ व भिल्लियोंके नाचमें प्रीतिकर बाजा बनी झिल्लियोंके शब्दसे पूरित है व जिसमें कहीं तड़ागों की पर्य्यन्त भूमियों में शूकरोंका समूह खेलताहै ॥ ९८ ॥

व हंसिनी गलनालियों में टिके कमल तारोंमें उजले पंखके हंस आसक्तहैं व जोकि शोचरहित चकवा चकईकी बोली से मनोहरहै ॥ ९९ ॥ व जहां बगुलाके बच्चोंका विचरना व सारस सारसीमे आसक्तहैं व जोकि मत्तमयूरोंकी बोलीवाला व गरगैयाकुलसे संयुक्तहै ॥ १०० ॥ बोलते हुये कराकुल या टिभुकी पक्षियोंसे व्याप्त व जीवंजीवनामक पक्षियोंसे शोभते हैं प्राणी जिसमें व बावली के जलमें पसरते शीतल वायुसे वीजितहै ॥ १ ॥ व धीरे धीरे डोलते हुये कह्लारके फूलोंकी धूरि से पीला है व जिसमें सोहते हुये कमलके फूल मुख काले कमलनेत्र ॥ २ ॥ कनकोहरवृक्ष बाल समूह विलसते हुये अनार के बीज दन्तपंक्ति भौंर भीर भौंहैं सुत्रा नासि-

मरालीगलनालीस्थबिसासक्तसितच्छदम् ॥ विशोककोकमिथुनक्रीडाकेङ्कारसुन्दरम् ॥ ९९ ॥ बकशावकसञ्चारंलक्ष्मणासक्तसारसम् ॥ मत्तबर्हिणसंघुष्टंकपिञ्जलकुलाकुलम् ॥ १०० ॥ जीवञ्जीवलसज्जीवंकणत्कारण्डवोत्कटम् ॥ दीर्घिकावारिसञ्चारिशीतमारुतवीजितम् ॥ १ ॥ मन्दान्दोलितकह्लारपरागपरिपिङ्गलम् ॥ उल्लसत्पङ्कजमुखंनीलेन्दीवरलोचनम् ॥ २ ॥ तमालकबरीभारंविलसद्दाडिमीरदम् ॥ भ्रमरालीलसद्भ्रूकंशुकनासाविराजितम् ॥ ३ ॥ महान्धुश्रवणन्दूर्वाश्मश्रुभिःपरिशोभितम् ॥ कमलामोदनिःश्वासंबिम्बीफलरदच्छदम् ॥ ४ ॥ सुपद्मपत्रवसनङ्कर्णिकारविभूषणम् ॥ कम्रकम्बुलसत्कण्ठंशङ्करस्कन्धबन्धुरम् ॥ ५ ॥ गन्धसारसमासक्ताहीनदोर्दण्डमण्डितम् ॥ अशोकपल्लवाङ्गुष्ठकेतकीनखरोज्ज्वलम् ॥ ६ ॥ लसत्कण्ठीरवोरस्कङ्गण्डशैलपृथूदरम् ॥ जलावर्तलसन्नाभितरुजङ्घायुगान्वितम् ॥ ७ ॥ स्थलभाक्पद्मचरणंमत्तमातङ्गगामिनम् ॥ लसत्कदलिकेदारदलचीनांशुकावृतम् ॥ ८ ॥ नानाकुसुम

का ॥ ३ ॥ और महाकूप कान है जोकि दूबदाढ़ी से शोभित है व जिसके कमलसुगन्ध निःश्वास कुँदुरूके फल ओठ ॥ ४ ॥ व पुरैनिपात कपड़े कठचम्पा गहने कमनीय ककूंदनि कण्ठ अँबरी या पथरचटा भेद ऊंचे नीचे के कांध ॥ ५ ॥ व चन्दन वृक्षमें लिपटे सर्प श्रेष्ठ भुजदण्ड अशोक पल्लव अँगुठा केतकी उजले नख ॥ ६ ॥ व शोभित सिंह उर पर्वतसे पड़ा पत्थर विस्तीर्ण उदर पानी के भौंर नाभि दो वृक्ष जंघामें ॥ ७ ॥ व स्थल कमल पद मतवाले हाथीसे चाल व सोहते केला खेतोंके

पाते चीनदेशी वस्त्र हैं ॥ ८ ॥ व जोकि, अनेक फूल मालाओं से सब ओर उत्पन्न मालावाला कंटकहीन वृक्षोंसे छन्न व भैंसा श्वापद आदि जन्तुओं से युक्तहै ॥९॥ व चन्द्रकान्त पत्थरपर सोतेहुये कृष्णसार मृगसे कलंकित बिम्बीभूत चन्द्रमा है जिसमें और वृक्षों में झरे परे फूलों से जीताहै स्वर्गके नक्षत्रों को जिसने इस भांति के विहार स्थान को देवीजी को देखाते हुये महादेवजी वनमें पैठते भये ॥ १० ॥ श्रीमहादेवजी बोले, कि हे सर्वसुन्दरि देवि! जैसे तुम मुझको बहुत प्यारीहो वैसे यह आनन्दवन सदा परम प्यारा है ॥११॥ हे देवि! मेरे अनुग्रहसे इस आनन्दवन में मरेहुये जनोंकी देह मरणके अभावको प्राप्त होती है और वे फिर संसारमें उत्पन्न

मालाभिर्मालितञ्चसमन्ततः ॥ अकण्टकितरुच्छन्नम्महिषश्वापदावृतम् ॥ ९ ॥ चन्द्रकान्तशिलासुप्तकृष्णैणहरितोडुपम् ॥ तरुप्रकीर्णकुसुमजितस्वर्लोकतारकम् ॥ दर्शयन्नित्थमाक्रीडन्देव्यैदेवोविशद्वनम् ॥ १० ॥ देवदेवउवाच ॥ यथाप्रियतमादेविममत्वंसर्वसुन्दरि ॥ तथाप्रियतरञ्चैतन्मेसदानन्दकाननम् ॥ ११ ॥ अत्रानन्दवनेदेविमृतानांमदनुग्रहात् ॥ वपुस्त्वमृततांप्राप्तमपुनर्भविनस्तुते ॥ १२ ॥ भविनोयेविपद्यन्तेवाराणस्यांममाज्ञया ॥ तेषांबीजानिदग्धानिश्मशानज्वलदग्निना ॥ १३ ॥ महाश्मशानेयेप्राप्तादीर्घनिद्रांगिरीन्द्रजे ॥ नपुनर्गर्भशयनेतेस्वपन्तिकदाचन ॥ १४ ॥ ब्रह्मज्ञानेनमुच्यन्तेनान्यथाजन्तवःक्वचित् ॥ ब्रह्मज्ञानमयेक्षेत्रेप्रयागेवातनुत्यजः ॥ १५ ॥ ब्रह्मज्ञानन्तदेवाहंकाशीसंस्थितिभागिनाम् ॥ दिशामितारकंप्रान्तेमुच्यन्तेतेतुतत्क्षणात् ॥ १६ ॥ गृह्णीयुःपापकर्माणिकाशीमृताविनिन्दकाः ॥ सुकृतानिस्तुतिकृतोमुच्यन्तेतेऽत्रजन्तवः ॥ १७ ॥ ब्रह्मज्ञानंकुतोदेविकलिनोपहतात्मनाम् ॥ स्वभावचञ्चला

नहीं होतेहैं ॥ १२ ॥ व जे पुण्यात्मा मेरी आज्ञासे काशीमें मरतेहैं उनके कर्म्मबीज प्रज्वलित विश्वनाथाग्निसे जलते हैं ॥१३॥ हे पर्वतराजकुमारि! जे काशीमें दीर्घ नींद को पहुँचे याने मरेहैं वे फिर कभी गर्भशयनमें नहीं सोतेहैं ॥ १४ ॥ ब्रह्मज्ञानसे व ब्रह्मज्ञानमय प्रयागक्षेत्र में मरेहुये जन्तु संसारबन्धन से छूटते हैं अन्यथा कहीं नहीं ॥ १५ ॥ और काशीवासी लोगोंके देहान्त में मैंही उस तारक ब्रह्मज्ञानको देताहूं कि जिससे वे उसी क्षण मुक्त होतेहैं ॥१६॥ जे इस काशीमें मरते हैं वे तरते हैं जे काशीमे

मरेको निंदते हैं वे पाप लेतेहैं जे प्रशंसते हैं वे पुण्य पातेहैं ॥ १७ ॥ हे देवि ! कलियुगसे मलिनमन स्वभाव से चंचल इन्द्रियवालों को ब्रह्मज्ञान कैसे होवे इससे मैं उनको तारक मन्त्र देताहूं ॥१८॥ किन्तु ऐश्वर्य्य से मोहित, योगसे भ्रष्ट योगीजन पूजित होतेहैं परन्तु काशीमें मरकर फिर महाप्रलयमें भी नहीं गिरताहै ॥ १९॥ व लोग योगसे एक जन्ममें ब्रह्मज्ञान नहीं पातेहैं काशीमें मरे एक जन्मसेही संसारसे छूटतेहैं ॥ २० ॥ हे पार्वति ! जैसे मेरे अनुग्रह से इस काशीक्षेत्रमें जन्तु मुक्त होताहै वैसे अन्यत्र कहीं नहीं ॥ २१ ॥ और योगीजन बहुते जन्म सुयोगाभ्याससे मुक्तहोवे या न होवे व काशीमें मरामात्र एक जन्मसेही मुक्त होताहै ॥ २२ ॥ कलियुगमें योग नहीं सधता

त्राणान्तब्रह्मेहदिशाम्यहम् ॥ १८ ॥ योगिनोयोगविभ्रष्टाःपतन्त्यैश्वर्यमोहिताः ॥ काश्यांपतित्वानपुनःपतन्त्यपिमहालये ॥ १९ ॥ ब्रह्मज्ञानंनविन्दन्तियोगैरेकेनजन्मना ॥ जन्मनैकेनमुच्यन्तेकाश्यामन्तकृतोजनाः ॥ २० ॥ यथेहमुच्यतेजन्तुर्गिरिजेमदनुग्रहात् ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेनतथान्यत्रकुत्रचित् ॥ २१ ॥ बहुजन्मसमभ्यासाद्योगीमुच्येतवानवा ॥ मृतमात्रोविमुच्येतकाश्यामेकेनजन्मना ॥ २२ ॥ नासिध्यतिकलौयोगोनसिध्यतिकलौतपः ॥ न्यायार्जितधनोत्सर्गःसद्यःसिध्येत्कलौनरः ॥२३॥ नव्रतंनतपोनेज्यानजपोनसुरार्चनम् ॥ दानमेवकलौमुक्त्यैकाशीदानैरवाप्यते॥ २४ ॥ कलौविश्वेश्वरोदेवःकलौवाराणसीपुरी ॥ कलौभागीरथीगङ्गाकलौदानंविशिष्यते ॥ २५ ॥ गङ्गोत्तरवहाकाश्यांलिङ्गंविश्वेश्वरंमम ॥ उभेविमुक्तिदेपुंसांप्राप्येदानबलात्कलौ ॥ २६ ॥ पुण्यवानितरोवापिममक्षेत्रस्यसेवया ॥ मुक्तोभवतिदेवेशिनात्रकार्याविचारणा ॥ २७ ॥ अविमुक्तस्यमाहात्म्यात्पुण्यपापेनकर्मणा ॥ देविप्रभवतःपुंसामपिजन्मश

है और तपस्या नहीं सधती है किन्तु न्याय से बटोरे धनका दानी सिद्ध होताहै ॥ २३ ॥ व कलियुग में व्रत नहीं तप नहीं जप नहीं यज्ञ नहीं और देवपूजा नहीं है किन्तु केवल दानही मुक्तिके लियेहै दानोंसे वह काशी मिलती है ॥ २४ ॥ व कलियुगमें विश्वनाथदेव व कलिमें काशीपुरी व कलिमें भागीरथी गंगा और कलिमें दान विशेष होताहै ॥ २५ ॥ व कलियुग में दानके बलसे मिलने योग्य काशीमें उत्तरवाहिनी गंगा तथा विश्वनाथनामक मेरा लिंग ये दोनों मनुष्यों के मुक्तिदाता हैं ॥ २६ ॥ हे देवेशि ! पुण्यवान् व अन्य पापी भी मेरे क्षेत्रकी सेवासे मुक्त होताहै इसमें विचार करने योग्य नहींहै ॥ २७ ॥ हे देवि ! लोगोंके सैकड़ों जन्मों में कर्म्म से क-

माये भी पुण्य पाप काशीमाहात्म्य से प्रभुता नहीं करसक्ते हैं ॥ २८ ॥ हे देवि ! उस कारण बहुत भांतिके सैकड़ों उपद्रवों से बाधित भी हुये मोक्षचाही जनका काशी न छोड़नाचाहिये ॥ २९ ॥ हे देवि ! जे मनुष्य क्षेत्रसंन्यासकर यहां बसते हैं वे जीवन्मुक्तहैं मैं उनका विघ्न हरताहूं ॥ ३० ॥ योगियों के हृदय आकाश में नहीं व कैलासमें नहीं और मंदर पर्वतपरभी वैसे मेरे बसनेकी प्रीति नहींहै जैसे काशीमें मेरा स्नेहहै ॥ ३१ ॥ हे देवि ! काशीवासी जन मेरे गर्भमें सदा बसताहै इससे उसको अन्तमें संसार से छुड़ाताहूं जिससे यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ ३२ ॥ हे देवि ! तमोगुणी स्वभाव को पहुँचकर कालरूपहो मैं लीलासे स्थावर जंगम जगत्को नाशताहूं किन्तु काशीको यत्नसे

तार्जिते ॥ २८ ॥ अविमुक्तंनमोक्तव्यन्तस्माद्देविमुमुक्षुणा ॥ हन्यमानेनबहुधाह्युपसर्गशतैरपि ॥ २९ ॥ विधायक्षेत्रसंन्यासंयेवसन्तीहमानवाः ॥ जीवन्मुक्तास्तुतेदेवितेषांविघ्नंहराम्यहम् ॥ ३० ॥ नयोगिनांहृदाकाशेनकैलासेनमन्दरे ॥ तथावासरतिर्मेऽस्तियथाकाश्यांरतिर्मम ॥ ३१ ॥ काशीवासिजनोदेविममगर्भेवसेत्सदा ॥ अतस्तंमोचयाम्यन्तेप्रतिज्ञेयंयतोमम ॥ ३२ ॥ तामसींप्रकृतिंप्राप्यकालोभूत्वाचराचरम् ॥ ग्रसामिलीलयादेविकाशींरक्षामियत्नतः ॥ ३३ ॥ प्रेमपात्रद्वयंदेविनितरांनेतरन्मम ॥ त्वंवातपोधनेगौरिकाशीवानन्दभूमिका ॥ ३४ ॥ विनाकाशींनमेस्थानंविनाकाशींनमेरतिः ॥ विनाकाशींननिर्वाणंसत्यंसत्यंवदाम्यहम् ॥ ३५ ॥ ब्रह्माण्डगोलकेयद्वन्मुक्तिःकाश्यांव्यवस्थिता ॥ अष्टाङ्गयोगयुक्त्यावानतथाहेलयाऽन्यतः ॥ ३६ ॥ इतिब्रुवाणोदेवेशोहरिकेशमवैक्षत ॥ मध्येवनंतपस्यन्तमशोकतरुमूलगम् ॥ ३७ ॥ शुष्कस्नायुपिनद्धास्थिसञ्चयंनिश्चलाकृतिम् ॥ वल्मीककीटकाकोटिशोषितासृगसृग्धरम् ॥ ३८ ॥ निर्मां

बचाताहूं ॥ ३३ ॥ हे तपोधने, देवि, गौरि ! तुम व आनन्द की भूमिका काशी ये दो भाजन भारी अधिकारी हैं अन्य नहीं ॥ ३४ ॥ काशी विना मेरा स्थान नहीं काशी विना मेरी प्रीति या भक्ति नहीं और काशी विना विदेह कैवल्य नहींहै मैं सत्य सत्य कहताहूं कि ॥ ३५ ॥ ब्रह्माण्ड के बीच काशी में अनायास जैसी मुक्ति बसीहै वैसी अन्यत्र अष्टांग योग जोडने से भी नहींहै ॥ ३६ ॥ यों कहतेहुये महादेवने हरिकेशको देखा जोकि वनके बीचमें तप करताहुआ अशोक वृक्षके तरे बैठाहै ॥ ३७ ॥ व सूखी नसोंसे ढँपी हाड़की राशिवाला अचल देह व बिंबौर के करोड़ों कीड़ोने पियाहै रक्त जिनका ऐसी नाड़ीहैं जिसकी ॥ ३८ ॥ व जोकि विना मांसके हाड़समूहवाला उजले

पहाड़ से अडोल व शंख कुन्द फूल चन्द्रमा बरफ और सूती के समान सोहती शोभावान् है ॥ ३९ ॥ व अन्तःकरण में टिके हैं प्राण जिसके ऐसा वह जीवन शेष रहने से रक्षित व नीची ऊंची भीतर बाहरकी श्वास बयारसे जीवित जाना जाताहै ॥ ४० ॥ व पलक ढांपने और उघाड़ने से दोष लगानेवाले कियेगये हैं वनके जन्तु जिसकरके अर्थात् मृगादिक उसको व्याधकर मानते हैं व जो पीले तारेवाली जगमगाति ज्योति आंखोंसे दिशाओं के मुखको प्रकाशता है ॥ ४१ ॥ उम प्रसिद्ध तपस्या अग्नि की ज्वालारूप दावानल से लगा मलिन वनहै जिससे व उस सुदृष्टि अमृत वर्षासे सींचा सम्पूर्ण वृक्षोंको जिसने ॥ ४२ ॥ व जो अकाम अकथनीय किसी भक्तिको कर प्रत्यक्ष

सकीकसचयंस्फटिकोपलनिश्चलम् ॥ शङ्खकुन्देन्दुतुहिनमहाशङ्खलसच्छ्रियम् ॥ ३९ ॥ सत्त्वावलम्बितप्राणमायुः शेषेणरक्षितम् ॥ निःश्वासोच्छ्वासपवनवृत्तिसूचितजीवितम् ॥ ४० ॥ निमेषोन्मेषसञ्चारपिशुनीकृतजन्तुकम् ॥ पिङ्गतारस्फुरद्रश्मिनेत्रदीपितादिङ्मुखम् ॥ ४१ ॥ तत्तपोग्निशिखादावचुम्बितम्लानकाननम् ॥ तत्सौम्यदृक्सुधावर्षसंसिक्ताऽखिलभूरुहम् ॥ ४२ ॥ साक्षात्तपस्यन्तमिवतपोधृत्वानराकृतिम् ॥ निराकृतिंनिराकाङ्क्षंकृत्वाभक्तिञ्चकाञ्चन ॥ ४३ ॥ कुरङ्गशावैर्गणशोभ्रमद्भिःपरिवारितम् ॥ नितान्तभीषणास्यैश्चपञ्चास्यैःपरिरक्षितम् ॥ ४४ ॥ तन्तथाभूतमालोक्यदेवीदेवंव्यजिज्ञपत् ॥ वरेणच्छन्दयेशामुंनिजभक्तंतपस्विनम् ॥ ४५ ॥ त्वदेकचित्तंत्वदधीनजीवितंत्वदेककर्माणममुंत्वदाश्रयम् ॥ तीव्रैस्तपोभिःपरिशुष्कविग्रहंकुरुष्वयक्षस्यवरैरनुग्रहम् ॥ ४६ ॥ देवोवृषेन्द्रादवरुह्यदेव्याशैलादिनादत्तकरावलम्बः ॥ समाधिसंकोचितनेत्रपत्रंपस्पर्शहस्तेनदयार्द्रचेताः ॥ ४७ ॥ ततःसयक्षोविनिमील्यचक्षुषीत्र्य

पुरुष शरीरधारी तपके समान तपस्या करता है ॥ ४३ ॥ व यूथके यूथ विचरते हुये मृग बच्चोंसे घिराहुआ व अत्यन्त भयानकमुख सिंहों से सब ओर रक्षित है ॥ ४४ ॥ व वैसे हुये उसको देखकर देवीजीने महादेवजी को जनाया कि हे ईश! इस अपने भक्तका वरसे मनोरथ पूरो ॥ ४५ ॥ आपमें मन लगाये आपके अधीन जीवते व आपके कर्म करते हुये व आपके आधार व तीव्र तपस्या से दुबले इस यक्षपर वरसे दयाकरो ॥ ४६ ॥ तब देवीके साथ नंदीश्वरका हाथ पकड़ बैलसे उतरकर दयासे भीगे मन महादेवने समाधि से पलक ढांपेहुये बैठे उसको हाथसे छुवा ॥ ४७ ॥ तदनन्तर वह यक्ष आंखें खोलकर अपने आगे प्रत्यक्ष त्रिनयनको निहारकर जोकि उगतेहुये

हज़ारों सूर्य्योंके समान तेजस्वीहैं उनसे गद्गद अक्षर बोला कि ॥ ४८॥ हे ईश,शम्भो, पार्वतीपते, शंकर, त्रिशूलहस्त,चन्द्रखण्डभाल, दयालो ! जयहो याने उत्कर्ष प्रकट करो आपके परसतेहुये हाथ कमलको पाकर मैं मरणहीन देहलतावाला हुआहूं ॥ ४९॥ हे बड़ी तपस्याके निधान अगस्त्य ! तब धीरजधारी उस भक्तकीकही व दाखकी समताको पहुँचीहुई मीठी कोमल बोली सुनकर ईश्वर ने आनन्द से वरसमूह दिया ॥ ५० ॥ कि हे यक्ष ! अबहीं तुम मेरे वरसे इस मेरे प्यारे काशीक्षेत्रके दण्डनायक होवो आजसे लगाकर अचल मेरे प्यारे व दुष्टों के दण्डदायक पुण्यवानों के सहायक होवो ॥ ५१ ॥ तुम इस समय दण्डपाणि नाम होवो मेरी आज्ञा से सब

त्वंपुरोवीक्ष्यसमक्षमात्मनः ॥ उद्यत्सहस्रांशुसहस्रतेजसंजगादहर्षाकुलगद्गदाक्षरम् ॥ ४८ ॥ जयेशशम्भोगिरिजेश शङ्करत्रिशूलपाणेशशिखण्डशेखर ॥ स्पर्शत्कृपालोतवपाणिपङ्कजंप्राप्यामृतीभूततनूलतोऽभवम् ॥ ४९ ॥ श्रुत्वोदितांतस्यमहेश्वरोगिरंमृद्वीकयासाम्यमुपेयुषींमृदु ॥ भक्तस्यधीरस्यमहातपोनिधेददौवराणांनिकरन्तदामुदा ॥ ५० ॥ क्षेत्रस्ययक्षास्यममप्रियस्यभोभवाधुनादण्डधरोवरान्मम ॥ स्थिरस्त्वमद्यादिदुरात्मदण्डकःसुपालकःपुण्यकृताञ्चमत्प्रियः ॥ ५१ ॥ त्वंदण्डपाणिर्भवनामतोऽधुनासर्वान्गणाञ्छाधिममाज्ञयोत्कटान्॥ गणाविमौत्वामनुयायिनौसदानाम्नायथार्थौनृषुसंभ्रमोद्भ्रमौ ॥ ५२ ॥ त्वमन्त्यभूषांकुरुकाशिवासिनाङ्गलेसुनीलाम्भुजगेन्द्रकङ्कणाम् ॥ भालेसुनेत्राङ्करिकृत्तिवाससंवामेक्षणालक्षितवामभागाम् ॥ ५३ ॥ मौलौलसत्पिङ्गकपर्दभारिणींविभूतिसंक्षालितपुण्यविग्रहाम् ॥ अहोहिमांशोःकलयालसच्छ्रियं वृषेन्द्रलीलागतिमन्दगामिनीम् ॥ ५४ ॥ त्वमन्नदःकाशिनिवासिनांसदात्वंप्राणदोज्ञानद

उद्भटगणों को नियमित करो व मनुष्यों में सत्यार्थ नामवाले सम्भ्रम और उद्भ्रम ये दोनों गण सदा तुम्हारे अनुगामी होवेंगे व ॥ ५२ ॥ तुम काशीवासी लोगोंको अन्त समयवाला अलंकार करो कि गले में श्यामता सर्पराज कंकण माथ में नेत्र हाथी का चर्मवस्त्र स्त्रीसे लक्षित वामभाग ॥ ५३ ॥ व मस्तक में सोहतेहुये पीले जटाजूटों का भार व विभूति से पवित्र पुण्यदेह व चन्द्रमाकी कला से सोहतीहुई शोभावाली और वृषेन्द्रकी लीला गति से मन्द चलनेका शीलहै जिसका ऐसी अलंकृति को करो ॥ ५४ ॥ और तुम काशीवासी जनों के सदा अन्नदाता व तुम प्राणदाता व तुम ज्ञानदाता होवो व तुम मेरे मुखसे निकले अच्छे तारक मन्त्र के उपदेश से

मुख्य मोक्षदाताभी होकर यहां अचल वास करोगे ॥ ५५ ॥ हे तपस्या से पीले ! तुम पापियों को विघ्नसमूहों से पीड़ा देकर उद्वेग उपजाकर पुरीके बाहर निकालोगे और भक्तों को दूर से क्षणमें आनकर उत्तम मोक्ष दिलानेवाले होगे ॥ ५६ ॥ हे यक्षराज ! जब क्षेत्रश्रेष्ठ तुम्हारे अधीन कियागया तब कौन तुमको न पूजकर मुक्तिका पात्र होगा इससे हमाराभक्त पहले तुम्हारी पूजाकरे उसके बाद हमारीपूजा करे ॥ ५७ ॥ तुमहीं इस मेरी पुरीमें ग्रामवासदायक व भारी अधिकारी दण्डनायक होवो व तुम काशीनिंदक दुष्टोंको निकालो और सदा आनन्दितहो काशीपुरी को पालो ॥ ५८ ॥ हे पूर्णभद्र के पुत्र दण्डनायक त्रिनेत्र यक्ष हरिकेश पीतरंग अंगवाले काशीवासी

एकएवहि ॥ त्वंमोक्षदोमन्मुखसूपदेशस्त्वंनिश्चलांसद्वसतिंविधास्यसि ॥ ५५ ॥ त्वंविघ्नपूगैःपरिपीड्यपापिनःसंभ्रान्तिमुत्पाद्यविनेष्यसेबहिः ॥ आनीयभक्तान्क्षणतोपिदूरतोमुक्तिंपरांदापयितासिपिङ्गल ॥ ५६ ॥ त्वत्सात्कृतेक्षेत्रवरेहियक्षराट्कस्त्वामनाराध्यविमुक्तिभाजनम् ॥ सभाजनंपूर्वतएवतेचरेत्ततःसमर्चांममभक्तआचरेत् ॥ ५७ ॥ त्वंग्रामवासप्रदएवमेपुरेऽध्यक्षस्त्वमेधीहचदण्डनायकः ॥ दुष्टान्समुद्वाटयकाशिवैरिणःकाशींपुरींरक्षसदामुदान्वितः ॥ ५८ ॥ पूर्णभद्रसुतदण्डनायकत्र्यक्षयक्षहरिकेशपिङ्गल ॥ काशिवासवसतांसदान्नदज्ञानमोक्षदगणाग्रणीर्भव ॥ ५९ ॥ मद्भक्तियुक्तोपिविनात्वदीयांभक्तिंनकाशीवसतिंलभेत ॥ गणेषुदेवेषुहिमानवेषुतदग्रमान्योभवदण्डपाणे ॥ ६० ॥ ज्ञानोदतीर्थेविहितोदकक्रियोयस्त्वांसमाराधयितागणेशम् ॥ सएवलोकेकृतकृत्यतामगान्ममातुलानुग्रहतोऽत्रपुण्यवान् ॥ ६१ ॥ त्वंदक्षिणस्यांदिशिदण्डपाणेसदैवमेनेत्रसमक्षमत्र ॥ त्वंदण्डयन्प्राणभृतोदुरीहानिहास्वनॄन्स्वानभयंदिश

जनोंके अन्नदायक ज्ञानमोक्षद ! तुम सदा गणोंके स्वामी अग्रगामी होवो ॥ ५९ ॥ हे दण्डहस्त ! मेरा भक्तभी तेरी भक्ति विना काशीवास न पावे उसकारण तुम गण-देव और मनुष्यों में भी आगे पूजनीय होवो ॥ ६० ॥ जो पुण्यवान् ज्ञानोद तीर्थ में स्नान तर्पणादि कर्ता होकर तुम गणनायक को पूजेगा वही इस लोक में मेरी अ-तौल दयासे कृतार्थताको पहुंचैगा ॥ ६१ ॥ हे दण्डपाणे ! इस मेरे क्षेत्रमें दुष्टजनों को दण्ड करते और अपने भक्त मनुष्यों को अभय देतेहुये भी तुम मेरी पुरी के दक्षिण

दिशामें मेरे नेत्रों के प्रत्यक्ष यहां सदा बसो ॥ ६२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे ब्राह्मण ! शिवजी यों दण्डपाणि को वरदेकर वृषेन्द्र पर चढ़ आनन्दवनमें पैठे ॥
६३ ॥ हे अगस्त्य ! तब से लगाकर वे यक्षराज हरिकेश दण्डनायक आज्ञासे काशीपुरी को भलीभांति सिखलाते हैं ॥ ६४ ॥ उनकी असूया याने गुणों में दोषलगाने
से मैंने यहां वासकिया है जिससे काशीमें बसते हुये मुझ करके वह न मानेगये थे ॥ ६५ ॥ हे मुने ! ऐसे जितेन्द्रिय तुमने जो काशीक्षेत्रको त्यागा है तो उसमें भी
मैं साक्षात् उन दण्डपाणि कीही प्रतिकूलताकी शंका करताहूं ॥ ६६ ॥ हे ब्राह्मण ! हरिकेश जो कुछ निषिद्ध कर्म्म देखें तो काशी में वास कहां कहां व सुख कहां

न्वै ॥ ६२ ॥ स्कन्दउवाच॥ इतिदत्त्वावरान्विप्रगिरीशोदण्डपाणये ॥ वृषेन्द्रमधिरुह्याथविवेशानन्दकाननम् ॥ ६३॥
कुम्भोद्भवतदारभ्ययक्षराड्दण्डनायकः ॥ पुरींवाराणसींसम्यगनुशास्तिनिदेशतः ॥ ६४ ॥ अहमप्यत्रवसतिंचक्रेतद
नुसूयया ॥ वसन्नपिमयाकाश्यांयतःसंभावितोनसः ॥ ६५ ॥ मुनेक्षेत्रंयदत्याक्षीस्त्वमप्येवंविधोवशी ॥ शङ्केतत्राहमेवा
द्धाकामंतस्यैवविक्रियाम् ॥ ६६ ॥ मनाग्विरुद्धाचरणंयदिद्विजविलक्षयेत् ॥ हरिकेशस्तदाकाश्यांक्वस्थितिःक्वचनि
र्वृतिः ॥ ६७ ॥ दण्डपाणिमनाराध्यकःकाश्यांसुखमाप्नुयात् ॥ प्रविविक्षुरहंकाशींदूरगोपिभजामितम् ॥ ६८ ॥ रत्नभ
द्राङ्गजोद्भूतपूर्णभद्रसुतोत्तम ॥ निर्विघ्नंकुरुमेयक्षकाशीवासंशिवाप्तये ॥ ६९ ॥ धन्योयक्षःपूर्णभद्रोधन्याकाञ्चनकुण्ड
ला ॥ ययोर्जठरपीठेभूर्दण्डपाणेमहामते ॥ ७० ॥ जययक्षपतेधीरजयपिङ्गललोचना ॥ जयपिङ्गजटाभारजयदण्डम
हायुध ॥ ७१ ॥ अविमुक्तमहाक्षेत्रसूत्रधारोग्रतापस॥ दण्डनायकभीमास्यजयविश्वेश्वरप्रिय ॥ ७२ ॥ सौम्यानांसौ

है ॥ ६७ ॥ और कौनजन काशी में दण्डपाणि को न पूजकर सुखपावे इससे काशी में पैठा चाहता हुवा दूरदेशवासी भी मैं उनको भजताहूं ॥ ६८ ॥ हे रत्नभद्र के अंगसे
उत्पन्न हुये पूर्णभद्र के पुत्र उत्तम हरिकेशयक्ष ! मोक्ष मिलने के लिये विनाविघ्न मेरा काशी में बसेरा करो ॥ ६९ ॥ हे महामते दण्डपाणे ! आप जिनके पेटपीढ़ा मे
हुयेहो वह पूर्णभद्र यक्ष धन्यहै और कञ्चककुण्डला यक्षिणी भी धन्य है ॥ ७० ॥ हे यक्षपते धीर पिंगलनेत्र पीलेजटीले दण्डआयुध वाले ! आपका जयजयकारहो ॥
७१ ॥ हे काशी क्षेत्र के सूत्रधार तीव्रतापस दण्डनायक भयंकर मुख विश्वेश्वर के प्यारे ! आपका ज० ॥ ७२ ॥ हे सन्तों को सुमुख दुष्टोंको भयानक क्षेत्र में पाप

बुद्धियों के काल महाकालके परमप्यारे! आपकाज० ॥७३॥ हे प्राणदायक यक्षनायक काशीकावास अन्न और मोक्ष देनेवाले बड़े रत्नों की जगमगाती ज्योति समूह से चर्चितदेह! आपकाज० ॥ ७४ ॥ हे अभक्तोंको महा सम्भ्रम उपजायक महाउद्भ्रमदायक भक्तों की सम्भ्रान्ति और उद्भ्रान्तिके घायक! आपकाज० ॥७५॥ हे अन्तवाले अलंकार करने में चतुर ! हे ज्ञाननिधानद पार्वतीपदकमलके भौंर मोक्षज्ञान के जाननेहार! आपकाज० ॥७६॥ हे अगस्त्य काशी मिलनेका कारण जो यह पुण्य यक्षराजाष्टक है उसको मैं नित्य त्रिकाल जपता हूं ॥ ७७ ॥ श्रद्धासे यक्षराजाष्टक को पढ़ताहुवा कभी विघ्नों से नहारे और काशीवास का फलपावे ॥ ७८ ॥ दण्डपणिका प्रकट

म्यवदनभीषणानांभयानक ॥ क्षेत्रपापधियांकालमहाकालमहाप्रिय ॥ ७३ ॥ जयप्राणदयक्षेन्द्रकाशीवासान्नमोक्षद ॥ महारत्नस्फुरद्रश्मिचयचर्चितविग्रह ॥ ७४ ॥ महासम्भ्रान्तिजनकमहोद्भ्रान्तिप्रदायक ॥ अभक्तानांचभक्तानां सम्भ्रान्त्युद्भ्रान्तिनाशक॥७५॥ प्रान्तनेपथ्यचतुरजयज्ञाननिधिप्रद ॥ जयगौरीपदाब्जालेमोक्षेक्षणविचक्षण ॥ ७६ ॥ यक्षराजाष्टकंपुण्यमिदंनित्यंत्रिकालतः ॥ जपामिमैत्रावरुणेवाराणस्याप्तिकारणम् ॥ ७७ ॥ दण्डपाण्यष्टकंधीमान् जपन्विघ्नैर्नजातुचित ॥ श्रद्धयापरिभूयेतकाशीवासफलंलभेत ॥ ७८ ॥ प्रादुर्भावंदण्डपाणेःशृण्वन्स्तोत्रमिदंगृणन् ॥ विपत्तिमन्यतःप्राप्यकाशींजन्मान्तरेलभेत ॥ ७९ ॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंदण्डपाणिसमुद्भवम् ॥ पठित्वापाठयित्वापिनविघ्नैरभिभूयते ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदण्डपाणिप्रादुर्भावोनामद्वात्रिंशोध्यायः ॥ ३२ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ स्कन्दज्ञानोदतीर्थस्यमाहात्म्यंवदसाम्प्रतम् ॥ ज्ञानवापींप्रशंसन्तियतःस्वर्गौकसोप्यलम् ॥ १ ॥

होना व इस स्तोत्र को सुनता व पढ़ता हुवा अन्यत्रभी मरणको पहुंचकर दूसरे जन्ममें काशीपुरी को पावे ॥ ७९ ॥ व दण्डपाणिकी भलीभांति से उत्पत्ति वाले इस पुण्यरूप अध्याय को सुन पढ़ व पढ़ाकर भी विघ्नों से नहीं हारता है ॥ ८० ॥ इति श्रीस्कन्धपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदण्डपाणिप्रादुर्भावोनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० तेंतिसयें अध्याय में ज्ञान वापिका नाम। तीरथकी उत्पत्ति तिमि तासुमहात्म्य तमाम ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे कार्तिकेय ! इस समय ज्ञानोद तीर्थ का माहात्म्य

कहो कि जिससे स्वर्ग वासीभी ज्ञानवापीको बहुतही प्रशंसते हैं ॥ १ ॥ कार्त्तिकेयजीबोले किहे महाप्राज्ञ अगस्त्यजी ! इस समय पापनाशिनी मेरीकही ज्ञानवापी की उत्पत्ति सुनो ॥ २ ॥ हे मुने ! संसारके अनादिकालसे सिद्धहोने पै आगे सतयुगमें ऐसी वैसी अपनी इच्छासे विचरते हुये ईशान " जोकि उत्तर और पूर्व के बीच कोणके स्वामी हैं" वे कहीं से आये ॥ ३ ॥ व जब मेघ न वर्षतेथे व नदी न बहतीथीं व स्नान व पीने आदि कर्म्म में जब पानी का अभिलाष नथा ॥ ४ ॥ व जब खारी मीठे दोनों समुद्रों के जलका दर्शन न था तब पृथिवी में कहीं कहीं मनुष्यों का संचार वर्त्तमान होतेही ॥ ५ ॥ जोकि मोक्ष लक्ष्मी का क्षेत्र श्रीयुत आनन्दवन महाश्मशान याने

स्कन्दउवाच ॥ घटोद्भवमहाप्राज्ञश्शृणुपापप्रणोदिनीम् ॥ ज्ञानवाप्याःसमुत्पत्तिंकथ्यमानांमयाधुना ॥ २ ॥ अनादिसिद्धेसंसारेपुरादेवयुगेमुने ॥ प्राप्तःकुतश्चिदीशानश्चरन्स्वैरमितस्ततः॥ ३ ॥ नवर्षन्तियदाआणिनप्रावर्तन्तनिम्नगाः॥जलाभिलाषोनयदास्नानपानादिकर्मणि ॥ ४ ॥ क्षारस्वादूदयोरेवयदासीज्जलदर्शनम् ॥ पृथिव्यांनरसंचारेवर्तमानेक्वचित्कचित् ॥ ५ ॥ निर्वाणकमलाक्षेत्रंश्रीमदानन्दकाननम् ॥ महाश्मशानंसर्वेषांबीजानांपरमूषरम् ॥ ६ ॥ महाशयनसुप्तानांजन्तूनांप्रतिबोधकम् ॥ संसारसागरावर्तपतज्जन्तुतरण्डकम् ॥ ७ ॥ यातायातातिसंखिन्नजन्तुविश्राममण्डपम् ॥ अनेकजन्मगुणितकर्मसूत्रच्छिदाक्षुरम् ॥ ८ ॥ सच्चिदानन्दनिलयम्परब्रह्मरसायनम् ॥ सुखसन्तानजनकम्मोक्षसाधनसिद्धिदम् ॥ ९ ॥ प्रविश्यक्षेत्रमेतत्सईशानोजटिलस्तदा ॥ लसत्रिशूलविमलरश्मिजालसमाकुलः ॥ १० ॥ आलुलोकेमहालिङ्गंवैकुण्ठपरमेष्ठिनोः ॥ महाहमहमिकायांप्रादुरासयदादितः ॥ ११ ॥ ज्योतिर्मयीभिर्मालाभिःपरि

महाभूतों के लयका स्थान व सब बीजोंका श्रेष्ठ ऊसर अर्थात् कर्मबीज न जामनेका कारणहै ॥ ६ ॥ व अज्ञानी जंतुओं का ज्ञानदाता संसारसागर के राग द्वेषादि भौंरो मे पड़े पुरुषो का किनारा या महा नौका रूपहै ॥ ७ ॥ व जाते आते संसारमें भ्रमते बड़े खिन्न जनोंका कैवल्यघर व अनेक जन्मोंसे गुहे कर्मसूत काटने का क्षूरा है ॥ ८ ॥ व सच्चिदानन्द विश्वनाथका मंदिर परब्रह्म रसको पहुंचाता व सुखसंतान को उपजाता हुवा मुक्ति के उपायों का सिद्धिदाता है ॥ ९ ॥ उस इस क्षेत्रमें पैठकर तब सोहतेहुये त्रिशूल की निर्मल किरणियों के समूहसे व्याप्त उन जटीले ईशानने ॥ १० ॥ उस महा लिङ्गको देखा जो कि विष्णु और ब्रह्माकी बड़ी अहंकार

क्रिया में पहले प्रकटहुआ है ॥ ११ ॥ व ज्योतिकी पंक्तियों से सब ओर घिरा व निरन्तर देव ऋषि गणों के समूह ॥ १२ ॥ सिद्ध और योगीयूथों से पूजित व गन्धर्वों से गाया गया चारणोंसे प्रशंसितभयाहै ॥ १३ ॥ व अप्सराओं से नाचोंकरके बहुत भांतिसे सेव्यमान मणियों के दीप समूह से नागिनियों से आरती कियागयाहै ॥ १४ ॥ व विद्याधरी और किन्नरियों करके तीनो कालमें भूषित व देवियोंकी चौंर पंक्तिसे ऐसी वैसी वीज्यमान है ॥ १५ ॥ उस लिंगको देखकर तब इन ईशानके यह इच्छाहुई कि महालिंगको शीतल जल से भरे घड़ों से नहवाऊंगा ॥ १६ ॥ रुद्ररूपधारी ईशानने बड़े वेगसे त्रिशूल करके विश्वनाथके दक्षिण दिशाके समीप में कुण्डको

तःपरिवेष्टितम् ॥ वृन्दैर्वृन्दारकर्षीणांगणानाञ्चनिरन्तरम् ॥ १२ ॥ सिद्धानांयोगिनांस्तोमैरर्च्यमानंनिरन्तरम् ॥ गीयमानंचगन्धर्वैःस्तूयमानंचचारणैः ॥ १३ ॥ अङ्गहारैरप्सरोभिःसेव्यमानमनेकधा ॥ नीराज्यमानंसततन्नागीभिर्मणिदीपकैः ॥ १४ ॥ विद्याधरीकिन्नरीभिस्त्रिकालंकृतमण्डनम् ॥ अमरीचमरीराजिवीज्यमानमितस्ततः ॥ १५ ॥ अस्येशानस्यतल्लिङ्गंदृष्ट्वेच्छेत्यभवत्तदा ॥ स्नपयामिमहल्लिङ्गंकलशैःशीतलैर्जलैः ॥ १६ ॥ चखानचात्रिशूलेनदक्षिणाशोपकण्ठतः ॥ कुण्डंप्रचण्डवेगेनरुद्रोरुद्रवपुर्धरः ॥ १७ ॥ पृथिव्यावरणाम्भांसिनिष्क्रान्तानितदामुने ॥ भूप्रमाणाद्दशगुणैर्यैरियंवसुधावृता ॥ १८ ॥ तैर्जलैःस्नापयाञ्चक्रेत्वस्पृष्टैरन्यदेहिभिः ॥ तुषारैर्जाड्यविधुरैर्जञ्जपूकौघहारिभिः ॥ १९ ॥ सन्मनोभिरिवात्यच्छैरनच्छैर्व्योमवर्त्मवत् ॥ ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैःपावनैःशम्भुनामवत् ॥ २० ॥ पीयूषवत्स्वादुतरैःसुखस्पर्शैर्गवाङ्गवत् ॥ निष्पापधीवद्गम्भीरैस्तरलैःपापिशर्मवत् ॥ २१ ॥ विजिता

खना ॥ १७ ॥ हे मुने ! तब वे पृथिवी के आवरण जल निकले कि पचास करोड़ योजनभूमिके प्रमाण से दशगुण जिनकर के यह पृथिवी घिरी है ॥ १८ ॥ उन जलों से नहवाया जो कि अन्यजन्तुओं से न छुयेहुये शीतल ज्ञानस्वरूप पाप समूहहारी है ॥ १९ ॥ व संतों के मनों से सुठि स्वच्छ आकाश मार्ग से श्याम चांदनीकी नाई उजली कान्तिवाले शिवनामके समान पवित्र है ॥ २० ॥ व अमृत से अधिक स्वादिल व गौओं की देहकी नाई परसने से सुखद व पापहीन सुबुद्धियों से अगाध

व पापियों के सुखसे चंचल है ॥ २१ ॥ व कमल सुगन्धको जीते व पाटलि से सुगन्धदार व पहले न देखे लोगों के मन नेत्रहरनहारे हैं ॥ २२ ॥ अज्ञान तापसे बहुत तपे प्राणियों के प्राणों के मुख्य रक्षक दही दूध घी सहत और शक्करके घड़ोंसे जो स्नानहै उससे अधिक फलदाता हैं ॥ २३ ॥ व श्रद्धासे आचमन करते हुये जनों के हृदय में तीन लिंगों के कारण व अज्ञान अँधेरेको सूर्य्य के समान ज्ञान देने में बड़ेदानी हैं ॥ २४ ॥ व विश्वनाथको पार्वतीके छुयेहुये सुखसे अधिक सुखद व महा यज्ञके अंतमें स्नानसे अधिक शुद्धि करण शील हैं हे अगस्त्य ! अति आनन्दितमन उन ईशानने सहस्रधारा कलशों से हजारबार नहवाया ॥ २६ ॥ तदनन्तर प्रसन्न

ब्जमहागन्धैःपाटलामोदमोदिभिः ॥ अदृष्टपूर्वलोकानांमनोनयनहारिभिः ॥ २२ ॥ अज्ञानतापसंतप्तप्राणिप्राणैकर क्षिभिः ॥ पञ्चामृतानांकलशैःस्नपनातिफलप्रदैः ॥ २३ ॥ श्रद्धोपस्पर्शिहृदयलिङ्गत्रितयहेतुभिः ॥ अज्ञानतिमिरार्काभै र्ज्ञानदाननिदायकैः ॥२४॥ विश्वभर्तुरुमास्पर्शसुखातिसुखकारिभिः ॥ महावभृथसुस्नानमहाशुद्धिविधायिभिः ॥ २५॥ सहास्रधारैःकलशैःसईशानोघटोद्भव ॥ सहस्रकृत्वःस्नपयामाससंहृष्टमानसः ॥२६॥ ततःप्रसन्नोभगवान्विश्वात्मा विश्वलोचनः ॥ तमुवाचतदेशानंरुद्रंरुद्रवपुर्धरम् ॥ २७ ॥ तवप्रसन्नोस्मीशानकर्मणानेनसुव्रत ॥ गुरुणानन्यपूर्वेणम मातिप्रीतिकारिणा ॥ २८ ॥ ततस्त्वंजटिलेशानवरंब्रूहितपोधन ॥ अदेयंनतवास्त्यद्यमहोद्यमपरायण ॥ २९ ॥ ईशानउवाच ॥ ॥ यदिप्रसन्नोदेवेशवरयोग्योस्म्यहंयदि ॥ तदेतदतुलंतीर्थंतवनाम्नास्तुशङ्कर ॥ ३० ॥ विश्वेश्वरउवा च ॥ त्रिलोक्यांयानितीर्थानिभूर्भुवःस्वःस्थितान्यपि ॥ तेभ्योखिलेभ्यस्तीर्थेभ्यःशिवतीर्थमिदंपरम् ॥ ३१ ॥ शिवं

ऐश्वर्य्य सम्पन्न, सर्व व्यापक, सबके स्वामी, शिवजी तब उन रुद्ररूपधारी, ईशानरुद्रसे बोले ॥ २७ ॥ कि हे सुव्रत ईशान ! नहीं है तुमसे अन्य पहले जिसमें व जोकि हमारी सुप्रीतिकारी है उस इस तुम्हारे भारी कर्मपाने कुंडसे निकाले जलस्नानसे मैं प्रसन्नहूं ॥ २८ ॥ हे बड़े उद्यममें तत्पर तपोधन, जटिल ईशान ! उसकारण तुम वर मांगो आज तुमको कुछ अदेय नहीं है ॥ २९ ॥ ईशानजी बोले, किहे देवेश शंभो ! जो आपप्रसन्नहो और जो मैं वरके योग्यहूं तो तुम्हारे नामसे यह अतुल (अनूप) तीर्थ होवे ॥ ३० ॥ शिवजी बोले कि भूः भुवः स्वः नामक त्रिलोकमे जे तीर्थ टिके हैं उनसब तीर्थोंसे यह शिवतीर्थ परेहै ॥ ३१ ॥ क्योंकि शिव शब्दके अर्थ विचारी लोग

शिवको ज्ञान ऐसा कहते हैं वहीज्ञान यहां मेरी महिमाके उदयसे पघिलकर रसीलाहुवा है ॥ ३२ ॥ इससे यह ज्ञानोद नामतीर्थ त्रिलोक में प्रसिद्धहोवे है इसका जल छूने मात्रसे सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ३३ ॥ ज्ञानोदतीर्थ के छूने से अश्वमेधका और छूने व पीनेसे राजसूय और अश्वमेधका फलपावे ॥ ३४ ॥ व मनुष्य फल्गु तीर्थ में नहाकर और पितरोंका तर्प्पणकर जो फलपाताहै वह यहां श्राद्धकर्मसे होवे ॥ ३५ ॥ व जब बृहस्पति दिन पुष्यनक्षत्र बदी अष्टमी और व्यतीपात योग होवे तब यहां श्राद्ध करनेसे गयासे करोड़ गुण अधिक फलहोवे ॥३६॥ व पुष्कर (चित्रकूटदेशांतर्गत पारिपात्र पर्वके समीप) में पितरोंको तिल जलसे तर्पणकर जिसफलको

ज्ञानमितिब्रूयुःशिवशब्दार्थचिन्तकाः ॥ तच्चज्ञानन्द्रवीभूतमिहमेमहिमोदयात् ॥ ३२ ॥ अतोज्ञानोदनामैतत्तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ अस्यस्पर्शनमात्रेणसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३३ ॥ ज्ञानोदतीर्थसंस्पर्शादश्वमेधफलंलभेत् ॥ स्पर्शनाचमनाभ्याञ्चराजसूयाश्वमेधयोः ॥ ३४ ॥ फल्गुतीर्थेनरःस्नात्वासन्तर्प्यचपितामहान् ॥ यत्फलंसमवाप्नोतितदत्रश्राद्धकर्मणा ॥ ३५ ॥ गुरुपुष्यासिताष्टम्यांव्यतीपातोयदाभवेत् ॥ तदात्रश्राद्धकरणाद्गयाकोटिगुणंभवेत् ॥ ३६ ॥ यत्फलंसमवाप्नोतिपितॄन्सन्तर्प्यपुष्करे ॥ तत्फलंकोटिगुणितंज्ञानतीर्थेतिलोदकैः ॥ ३७ ॥ सन्निहत्यांकुरुक्षेत्रेतमोग्रस्तेविवस्वति॥यत्फलंपिण्डदानेनतज्ज्ञानोदेदिनेदिने ॥ ३८ ॥ पिण्डनिर्वपणंयेषांज्ञानतीर्थेसुतैःकृतम् ॥ मोदन्तेशिवलोकेतेयावदाभूतसंप्लवम् ॥ ३९ ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यामुपवासीनरोत्तमः ॥ प्रातःस्नात्वाथपीताम्भस्त्वन्तर्लिङ्गमयोभवेत् ॥ ४० ॥ एकादश्यामुपोष्यात्रप्राश्नातिचुलुकत्रयम् ॥ हृदयेतस्यजायन्तेत्रीणिलिङ्गान्यसंशयम् ॥ ४१ ॥ ईशानती

पहुंचे वह फल इस ज्ञानोदतीर्थ में करोड़ गुणहै ॥ ३७ ॥ सूर्य्यके राहु ग्रस्तहोतेही (सूर्य्य ग्रहण समय) कुरुक्षेत्रके बीच रामकुण्डमें पिण्डदानसे जो फल है वह ज्ञानोद तीर्थ में दिनो दिनहोताहै ॥ ३८ ॥ व पुत्रोंने ज्ञानोदतीर्थ में जिनको पिण्डदान किया है वे प्रलय तक शिवलोक में सुखपाते हैं ॥ ३९ ॥ अष्टमी व चौदशिमें उपासा मनुष्य श्रेष्ठप्रातःकाल नहाकर अनन्तर जल पीनेवाला होकर अन्तर्लिंग रूपहोवे ॥ ४० ॥ जो एकादशी में उपासकर इसमें तीन चुल्लू पानी पीता है उसके हृदय में

निस्सन्देह तीन लिंगहोते हैं ॥ ४१ ॥ विशेषसे सोमवारको ईशानतीर्थ (ज्ञानोद) में नहाकर देव ऋषि पितरोंको तर्प्पणकर व अपनी शक्तिसे दानदेकर ॥ ४२ ॥ व उस के बाद बड़ी सामग्री विस्तारों से श्रीलिंग (ईशानेश्वर या ज्ञानेश्वर या विश्वनाथ) को पूजकर व यहांभी अनेक धनदेकर वरतताहै वह मनुष्य कृतार्थहोवे है ॥ ४३ ॥ व ज्ञानोद तीर्थ में सन्ध्या बन्दनकर जो काललोपने से पापहै उसको दूरकर ब्राह्मण क्षणमे ज्ञानवान् होताहै ॥ ४४ ॥ यह शिवतीर्थ व यह ज्ञानतीर्थ व यह शुभतीर्थ व यह तारक नामकतीर्थ व यह मोक्षतीर्थभी कहागया है ॥ ४५ ॥ ज्ञानोदतीर्थ के सुमिरने सेही पापसमूह निश्चयकर नष्ट होवे व देखने से धर्म छूनेसे काम और पीने

र्थेयःस्नात्वाविशेषात्सोमवासरे ॥ संतर्प्यदेवर्षिपितॄन्दत्त्वादानंस्वशक्तितः ॥ ४२ ॥ ततःसमर्च्यश्रीलिङ्गंमहासंभारविस्तरैः ॥ अत्रापिदत्त्वानानार्थान्कृतकृत्योभवेन्नरः ॥ ४३ ॥ उपास्यसन्ध्यांज्ञानोदेयत्पापंकाललोपजम् ॥ क्षणेनतदपाकृत्यज्ञानवान्जायतेद्विजः ॥ ४४ ॥ शिवतीर्थमिदंप्रोक्तंज्ञानतीर्थमिदंशुभम् ॥ तारकाख्यमिदंतीर्थंमोक्षतीर्थमिदंध्रुवम् ॥ ४५ ॥ स्मरणादपिपापौघोज्ञानोदस्यक्षयेद्ध्रुवम् ॥ दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात्पानाद्धर्मादिसम्भवः ॥ ४६ ॥ डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतवेतालराक्षसाः ॥ ग्रहाःकूश्माण्डझोटिङ्गाःकालकर्णीशिशुग्रहाः ॥ ४७ ॥ ज्वरापस्मारविस्फोटद्वितीयकचतुर्थकाः ॥ सर्वेप्रशममायान्तिशिवतीर्थजलेक्षणात् ॥ ४८ ॥ ज्ञानोदतीर्थपानीयैर्लिङ्गंयःस्नापयेत्सुधीः ॥ सर्वतीर्थोदकैस्तेनध्रुवंसंस्नापितम्भवेत् ॥ ४९ ॥ ज्ञानरूपोहमेवात्रद्रवमूर्तिंविधायच ॥ जाड्यविध्वंसनंकुर्यांकुर्यांज्ञानोपदेशनम् ॥ ५० ॥ इतिदत्त्वावराञ्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंसोप्यमंस्तत्रिशूलभृत् ॥ ५१ ॥

से मोक्षका उद्भव होवेहै ॥ ४६ ॥ व डाकिनी शाकिनी भूत प्रेत वेताल राक्षस ग्रह कूष्माण्ड झोटिंग (प्रेतभेद मोटिंग नामसे गुजरातमें प्रसिद्ध) कालकर्णी (राक्षसीभेद) बालग्रह ॥ ४७ ॥ ज्वर मृगी विस्फोटक (शीतलानामसे प्रसिद्ध) अन्तरिया और चौथिया आदि सब रोग ज्ञानोदतीर्थ जलके दर्शनसे नाशको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ४८ ॥ व जो सुबुद्धिमान् ज्ञानोदतीर्थ के पानीसे लिंगको नहवावे उस करके निश्चय सब तीर्थ जलोंसे भलीभांति नहवाया गयाहोवे है ॥ ४९ ॥ व यहांरस रूपकर ज्ञान मूर्तिमेंही अज्ञानका नाश करताहूं और ज्ञानका उपदेश (प्रकाश) करताहूं ॥ ५० ॥ इसभांति वर देकर शंकरजी वहां अन्तर्द्धानहुये और उन त्रिशूलधारी ईशानने भी

युवाजनोंका मन-मृग-अन्य दूसरे वनको नहीं जाताथा ॥ ७१ ॥ व युवाजनों की आंख भौंरभीरने उसके मुख कमलको छोंड़कर सुगन्धितफुली हुई दूजीलताको भी न सेया ॥ ७२ ॥ वह सुनेत्राभी किसी का मुख न देखतीथी व अच्छे कानवालीभी किसी का वचन न सुनतीथी ॥ ७३ ॥ व शीलसे भरी सुशीला नाम वह कन्या उसके विरहसे व्याकुल सुन्दरे पुरुषों से एकान्त में याची गईभी किसी में अभिलाषको नबोधतीभई ॥ ७४ ॥ तब युवा लोगोने द्रव्यदेना कहकर उसके पितासे बहुत प्रार्थना किया परन्तु सुचालसे बढ़ीहै शोभा जिसकी उस सुशीलाको वह न देसका ॥ ७५ ॥ तब उस सुशीला कन्याने ज्ञानोदतीर्थकी सेवासे सब जगत्को बाहेर भीतरसे लिंग

तदास्यपङ्कजंहित्वायूनांनेत्रालिमालया ॥ नलतान्तरमासेवित्रप्यामोदप्रसूनयुक् ॥ ७२ ॥ सुलोचनापिसाकन्याप्रेक्षेता स्यंनकस्यचित् ॥ सुश्रवा अपिसाबालानादत्तेकस्यचिद्वचः ॥ ७३ ॥ सुशीलाशीलसम्पन्नारहस्तद्विरहातुरैः ॥ प्रार्थितापि सुरूपाढ्यैर्नाभिलाषम्बबन्धसा ॥ ७४ ॥ धनैस्तस्याजनेतापियुवभिःप्रार्थितोबहु ॥ नाशकत्तांसुशीलांसदातुंशीलोर्जि तश्रियम् ॥ ७५ ॥ ज्ञानोदतीर्थभजनात्सासुशीलाकुमारिका ॥ बहिरन्तस्तदाऽद्राक्षीत्सर्वंलिङ्गमयंजगत् ॥ ७६ ॥ क दाचिदेकदातान्तुप्रसुप्तांसदनाङ्गणे ॥ मोहितोरूपसम्पत्त्याकश्चिद्विद्याधरोऽहरत् ॥ ७७ ॥ व्योमवर्त्मनितांरात्रौयावन्म लयपर्वतम् ॥ सनिनीषतितावच्चविद्युन्मालीसमागतः ॥ ७८ ॥ राक्षसोभीषणवपुःकपालकृतकुण्डलः ॥ वसारुधि रलिप्ताङ्गःश्मश्रुलःपिङ्गलोचनः ॥ ७९ ॥ राक्षसउवाच ॥ ममदृग्गोचरंयातोविद्याधरकुमारक ॥ अद्यत्वामेतयासार्धंप्रे षयामियमालयम् ॥ ८० ॥ इतिश्रुत्वाथसावाक्यंव्याघ्राघ्रातामृगीयथा ॥ चकंपेऽतीवसंभीताकदलीदलवन्मुहुः ॥ ८१ ॥

मय देखा ॥ ७६ ॥ व एक समय कभी रूप सम्पत्तिसे मोहित कोई विद्याधर घर के आंगन से सोती हुई उसको हरलेगया ॥ ७७ ॥ व वह रातमें आकाश मार्ग के मध्य उसको जब तक मलय पर्वतमें पहुँचाया चाहता है तब तक विद्युन्माली आया ॥ ७८ ॥ जो कि राक्षस याने रात्रिचारी व भारी भयानक देह व कपालको कुण्डल किये हुवा व मेदा और रक्तसे लीपेहुये अंग वाला व दढ़ीला व पीले रंगकी आंखों वाला है ॥ ७९ ॥ वह राक्षस बोला कि हे विद्याधरके पुत्र ! तू मेरे नेत्रों के बिषयको प्राप्तहुआ है आज इसकेसाथ तुझको यमलोकको पठाताहूं ॥ ८० ॥ अनन्तर ऐसा उसका वचन सुनकर वह बाघसे सूंघी मृगीकी नाईं डरी व बारबार केलाकी

पाती सी कांपने लगी ॥ ८१ ॥ और उस राक्षसने विद्याधरको त्रिशूलसेमारा बहुत मधुर आकारवाला विद्याधरका कुमारभी ॥ ८२ ॥ जो कि उसके भयानक त्रिशूलसे छेदी छाती वाला व बड़ा बलवान्था उसने वज्रपातके समान मूठीघातसे उसकोभी मारा ॥ ८३ ॥ संग्राममें जो कि, मनुष्योंके मांस और मेदासेमत्त विद्युन्मालीराक्षस था वह मूठी पड़नेसे चूर्णभया व भूमिमें गिरपड़ा ॥ ८४ ॥ व वज्रसे पर्वतकी नाईं वह राक्षस मृत्यु, के वशमें गतहुआ और उसके त्रिशूलसे विकल किया विद्याधरभी ॥ ८५ ॥ कि जिसकी आंखैं घूमगई हैं वह गद्गद वचनको बोला कि हे प्यारी ! तू वृथा भलीभांति आनीगई है व स्वर और व्यञ्जन मिलकर छः अक्षरका जो सुशीलानामहै उसकी

निजघानत्रिशूलेनरक्षोविद्याधरंचतम् ॥ विद्याधरकुमारोपिनितरांमधुराकृतिः ॥ ८२ ॥ तद्भीषणत्रिशूलेनभिन्नोरस्को महाबलः ॥ जघानमुष्टिघातेनवज्रपातोपमेनतम् ॥ ८३ ॥ नरमांसवसामत्तंविद्युन्मालिनमाहवे ॥ चूर्णितोमुष्टिपातेन सोऽपतद्वसुधातले ॥ ८४ ॥ राक्षसोमृत्युवशगोवज्रेणेवमहीधरः ॥ विद्याधरोपितच्छूलघातेनविकलीकृतः ॥ ८५ ॥ उवाचगद्गदंवाक्यंविघूर्णितविलोचनः ॥ प्रियेमुधासमानीतासुशित्यर्धोक्तिमुच्चरन् ॥ ८६ ॥ जहौप्राणान्रणेवीरस्तां प्रियांपरितःस्मरन् ॥ ८७ ॥ अनन्यपूर्वसंस्पर्शसुखंसमनुभूयसा ॥ तमेवचपतिंमत्वाचक्रेशोकाग्निसात्तनुम् ॥ ८८ ॥ लिङ्गत्रयशरीरिण्यास्तस्याःसान्निध्यतःसहि ॥ दिव्यंवपुःसमासाद्यराक्षसस्त्रिदिवंययौ ॥ ८९ ॥ रणेपणीकृतप्राणोवि द्याधरसुतोपि सः ॥ अन्तेप्रियांस्मरप्राप जनुर्मलयकेतुतः ॥ ९० ॥ ध्यायन्तीसापि तं बालाविद्याधरकुमारकम् ॥

आधी सुश् इस उक्तिको कहताहुआ ॥ ८६ ॥ व सब ओरसे उस प्यारीको सुमिरता हुआ वह वीर संग्राममें प्राणोंको तजताभया ॥ ८७ ॥ व नहीं है अन्य पहले जिससे उस स्पर्श के सुखको भोगकर व उसी विद्याधरको पतिमानकर उस सुशीलाने देहको शोक अग्नि से भस्मकर दियायाने वह मरगई ॥ ८८ ॥ व तीन लिंगहैं देहमें जिसके उस सुशीलाको समीप होने से वह राक्षसभी दिव्य देहको धरकर स्वर्गको गया ॥ ८९ ॥ व संग्राम में पण (बाजी) कियाहै प्राणोको जिसने वह विद्याधरका पुत्रभी अन्त में प्यारीको सुमिरताहुवा मलयकेतु नामक पितासे जन्मको पाया ॥ ९० ॥ व उस विद्याधरके पुत्रको ध्यावतीहुई विरहाग्निमें मरी वह कन्याभी कर्णाट (विद्या

अपनाको कृतार्थ सामाना ॥ ५१ ॥ व ईशाननामक जटीले रुद्रने उस उत्तम जलको आचमनकर श्रेष्ठ ज्ञानपाया कि जिससे ब्रह्मानन्दको पहुंचेगा ॥ ५२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले, कि हे अगस्त्य ! अद्भुत अर्थवाला पुराना इतिहास जो कि ज्ञान वापीमें भयाहै उसको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ५३ ॥ कि आगे हरिस्वामी इस नाम से प्रसिद्ध काशी में जो ब्राह्मण हुवा उसके एक कन्या उपजीथी जो कि पृथिवी में रूपसे अनूप थी ॥ ५४ ॥ व शील सम्पत्तिसे उसके समान अन्य कन्या भूमिमें नहीं थी जो कि कला समूह में निपुण स्वरसे कोकिलाको जीते हुईथी ॥ ५५ ॥ इस लोकमें वैसी मानुषी नहीं देवी नहीं किन्नरी नहीं विद्याधरी नहीं नागकन्या नहीं

ईशानोजटिलोरुद्रस्तत्प्राश्यपरमोदकम् ॥ अवाप्तवान्परंज्ञानंयेननिर्वृतिमाप्तवान् ॥ ५२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कलशोद्भवचित्रार्थमितिहासंपुरातनम् ॥ ज्ञानवाप्यांहियद्वृत्तन्तदाख्यामिनिशामय ॥ ५३ ॥ हरिस्वामीतिविख्यातःकाश्यामासीद्द्विजःपुरा ॥ तस्यैकातनयाजातारूपेणाऽप्रतिमाभुवि ॥ ५४ ॥ नसमाशीलसम्पत्त्यातस्याःकाचनभूतले ॥ कलाकलापकुशलास्वरेणजितकोकिला ॥ ५५ ॥ ननारीतादृगस्तीहनामरीकिन्नरीनच ॥ विद्याधरीननोनागीगन्धर्वीनासुरीनच ॥ ५६ ॥ सर्वसौंदर्यनिलयासर्वलक्षणसत्खनिः ॥ अधिशेतेध्रुवन्ध्वान्तन्तन्मौलिंब्रध्नसाध्वसात् ॥५७॥ तदास्यंशरणंयातोमन्येदर्शभयाच्छशी ॥ दिवापिनत्यजेत्तान्तुत्रस्तश्चण्डमरीचितः ॥ ५८ ॥ तद्भ्रूभ्रमरराजीवगण्डपत्रलतान्तरे ॥ उदंचन्न्यञ्चदुड्डीनगतेरभ्यासभाजिनी ॥५९ ॥ तच्चारुलोचनक्षेत्रेविचरन्तौचखञ्जनौ ॥ सदैवशारदींप्रीतिंनिर्विशेतेनिजेच्छया ॥ ६० ॥सुदत्यारदनश्रेणीछदेषुविषमेषुणा ॥ विहिताकाञ्चनीरेखार्केंदाघेतावतीकला ॥ ६१ ॥

गन्धर्वी नहीं और दानवीभी कोई स्त्री नहीं है ॥ ५६ ॥ जो कि सब सुन्दरताकाघर सकल सुलक्षण की निधि थी निश्चय से उसके शिरमें अन्धकार सूर्य्य के डरसे सोताहै ॥ ५७ ॥ व अमावसके डरसे चन्द्रमा उसके मुखके शरणगया व मैं ऐसा मानताहूं कि सूर्य्य की किरणोंसे डराहुवा चन्द्रमा दिनमें भी उसको नहीं तजे है ॥ ५८ ॥ ऊंचे व नीचे उड़ चलनेकी समतावाली उसकी भौंह कपोलो में विरचित मकरीपत्र लताके बीचमें भौंर भीरसी सोहती थी ॥ ५९ ॥ व उसके नीके नेत्र क्षेत्रमें अपनी इच्छासे खेलते हुये दोखंजन सदैव शरद्ऋतुकी प्रीतिको प्राप्तहोते से हैं ॥ ६० ॥ व कामने उससुदतीके दन्तपङ्क्तिपत्रों में जैसी सोने की रेखाकिया ऐसीकला चन्द्र-

मा में कहां है ॥ ६१ ॥ व काम नरेश के घरमें जे रत्नहैं वे हैं अन्तर में जिन के व जीतलियाहै मूंगाओं की छविको जिनने ऐसे उसके शुभओठ ॥ ६२ ॥ व उसके कण्ठमें तीनरेखाओं के मिस काम शपथ करता है कि स्वर्गभूमि और पाताल तीन लोकों के बीच स्त्री में यह रेखा कहीं नहीं है ॥ ६३ ॥ व मैं मानताहूं कि उसके दोनों कुच अमोल रत्नोंसे पूर्ण व सोहती हुई काम राजाकी दो कपड़कुटी (तम्बू) हैं ॥ ६४ ॥ व नईहैं मौहैं जिसकी उसकी सातबीताकी देहके बीच न देखने योग्य योनिमें काम घरका नियम करने के लिये लखानेवाली लाठीसी ऊंची रोमपङ्क्तिको ब्रह्माने बनायाहै ॥ ६५ ॥ व उसकी नाभी कन्दरामें जाकर अंगहीन काम फिर देह

प्रायोमदनभूपालहर्म्यरत्नान्तरेशुभे ॥ जितप्रवालसुच्छायेतस्यारदनवाससी ॥ ६२ ॥ स्वर्गेमर्त्येचपातालेनैषारेखाक्वचित्स्त्रियाम् ॥ तत्कण्ठरेखात्रितयव्याजेनशपतेस्मरः ॥ ६३ ॥ शङ्केचित्तभुवोराज्ञोलसत्पटकुटीद्वयम् ॥ अनर्घ्यरत्नकोशाढ्यन्तस्यावक्षोरुहद्वयम् ॥ ६४ ॥ अनङ्गभूनियमतोऽदृश्येमध्येनतभ्रुवः ॥ रोमालीलत्तिकामूर्ध्वामिवयष्टिंविधिर्व्यधात् ॥ ६५ ॥ तस्यानाभीदरींप्राप्यकन्दर्पोऽनङ्गताङ्गतः ॥ पुनःप्राप्तुमिवाङ्गानितप्यतेपरमंतपः ॥ ६६ ॥ गुरुणैतन्नितम्बेनमहामन्मथदीक्षया ॥ भुविकेकेयुवानोनस्वाधीनाःप्रापितादृशाम् ॥ ६७ ॥ ऊरुस्तम्भेनचैतस्याःस्तम्भवत्कस्यनोमनः ॥ तस्तम्भेनमुनेर्वापिसुवृत्तेनसुवर्तनम् ॥ ६८ ॥ पादाङ्गुष्ठनखज्योतिःप्रभयाकस्यनप्रभा ॥ विवेकजनिताऽध्वंसिमुनेतस्यामृगीदृशः ॥ ६९ ॥ साप्रत्यहंज्ञानवाप्यांस्नायंस्नायंशिवालये ॥ संमार्जनादिकर्माणिकुरुतेऽनन्यमानसा ॥ ७० ॥ तत्पादप्रतिबिम्बेषुरेखाशष्पांकुरञ्चरन् ॥ नान्यद्वनान्तरंयातिकाश्यांयूनांमनोमृगः ॥ ७१ ॥

मिलनेके लिये श्रेष्ठ तपस्या तपतासा है ॥ ६६ ॥ व भारी इसके नितम्बसे जो बड़ा कामहै उसकी दीक्षासे पृथिवीमें कौन कौन युवा जन नेत्रोंके सुवश नहीं पहुंचाये गये ॥ ६७ ॥ व इसकी रम्भाखम्भासी गोली जंघासे किस मुनिकाभी सुचाली मन ठूंठसा नहीं थम्भा है ॥ ६८ ॥ हे अगस्त्यमुने ! उस मृगनयनीके नीके पद अंगुठों कीनखज्योतिकी छटाने किसकी ज्ञानसे उपजी छबिको नहीं कटाकिया है ॥ ६९ ॥ व नहीं है अन्य में मन जिसका वह प्रतिदिन ज्ञानवापी में नहा नहाकर शिवालयमें झारना बहारना आदिकर्म्म करतीथी ॥ ७० ॥ व काशीमें उसके पावों के प्रतिबिम्बों याने बालूमें बनेपदोंमें स्वस्तिक कमल यव आदिरेखारूप कोमल खरको चरताहुवा

नगर) में उत्पन्नभई ॥ ९१ ॥ तब कुछकालके बाद बापसे ब्याहदीगई उस कलावती कन्याको मलयकेतुकेपुत्र माल्यकेतुने ब्याहा जोकि कामसे शोभावान्था ॥ ९२ ॥ और पूर्वजन्मकी वासनाके योगसे शिवलिंगको पूजतीहुई उस कन्यानेभी चन्दन चूर्णको तजकर भस्मको बहुतमाना ॥ ९३ ॥ व उससहज सुन्दरीने मोती वैदूर्य्य माणिक्य और पुष्पराग मणिमे भी अधिक मोल रुद्राक्ष को भूषण माना ॥ ९४ ॥ व माल्यकेतुको पति पाकर दिव्यभोगोंकी समृद्धि को सेवतीहुई पतिव्रता कलावतीने तीन पुत्र पाया ॥ ९५ ॥ अनन्तर उत्तरदिशा में उत्पन्न किसी चितेराने एक समय माल्यकेतु राजाको विचित्र चित्रपट दिखाया ॥ ९६ ॥ व राजाने वह चित्रपटी कलावती को दिया उसके

विरहाग्नौविसृष्टासुःकर्णाटेजन्मभागभूत् ॥ ९१ ॥ सुतोमलयकेतोस्तांकालेनपरिणीतवान् ॥ माल्यकेतुरनङ्गश्रीःपित्रादत्तांकलावतीम् ॥ ९२ ॥ सापिप्राग्वासनायोगाल्लिङ्गार्चनरतासती ॥ हित्वामलयजक्षोदंविभूतिंबहुमंस्तवै ॥ ९३ ॥ मुक्तावैदूर्यमाणिक्यपुष्परागेभ्यएवसा ॥ मेनेरुद्राक्षनेपथ्यमनर्घ्यंगर्भसुन्दरी ॥ ९४ ॥ कलावतीमाल्यकेतुंपतिंप्राप्यपतिव्रता ॥ अपत्यत्रितयंलेभेदिव्यभोगसमृद्धिभाक् ॥ ९५ ॥ एकदाकश्चिदौदीच्योमाल्यकेतुंनरेश्वरम् ॥ चित्रकृच्चित्रपटिकांचित्रांदर्शितवानथ ॥ ९६ ॥ तांतुचित्रपटींराजाकलावत्यैसमार्पयत् ॥ साथचित्रपटींरम्यांसंप्रहृष्टतनूरुहा ॥ ९७ ॥ मुहुर्मुहुःप्रपश्यन्तीरहसिप्राणदेवताम् ॥ विसस्मारस्वमपिचसमाधिस्थेवयोगिनी ॥ ९८ ॥ क्षणमुन्मील्यनयनेकृत्वानेत्रातिथिंपटीम् ॥ तर्जन्यग्रमथोत्क्षिप्यस्वात्मानंसमबोधयत् ॥ ९९ ॥ संभेदोयमसेरम्यउपलोलार्कमग्रतः ॥ उपश्रीकेशवपदंवरणैषासरिद्वरा ॥ १०० ॥ स्वर्गेप्रार्थितसंस्पर्शासैषास्वर्गतरङ्गिणी ॥ उदग्वहाभिलष्य

बाद सुन्दर चित्रपटीको पाकर वह रोमाञ्चित अङ्गवाली होकर ॥ ९७ ॥ एकान्तमें बारबार प्राणदेवता विश्वनाथको देखतीहुई समाधि में टिकी योगिनीकी नाईं अपना को भी बिसरगई ॥ ९८ ॥ व क्षणमें आंखोंको खोलकर चित्रपटी को नेत्रगोचरकर अनन्तर तर्जनी अंगुलीका अग्रभाग उठाकर उसने अपने आत्माको बोध दिया ॥ ९९ ॥ कि लोलार्क के समीप में आगे यह सुन्दर असीसंगमहै व श्रीकेशवस्थानके लगे यह नदियों में बड़ी वरणाहै ॥ १०० ॥ व स्वर्ग में प्रार्थी जाताहै स्पर्श जिसका वह यह

उत्तरवाहिनी गङ्गा है कि जिसको स्वर्ग के सम्बन्धी देवलोग सदा चाहतेहैं ॥ १ ॥ व जो वेदान्तमें मन वचनसे परे मोक्षलक्ष्मी पढ़ीजाती है वह यह श्रीमतीमणिकर्णिका संतोंकी याने वहां मरे प्राणिमात्रकी मुक्तिके लिये है ॥ २ ॥ जहां मरना मंगल है व जहां जीना सफलहै व जहां स्वर्ग भी तृणुका सा होताहै वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ ३ ॥ व जहां मरनेकी इच्छा से धनसमूहको देकर व संन्यासियों के वैराग्य व अहिंसा आदि व्रतको आधार कर कन्द व मूलको खाताहुवा पुण्यवान् जन टिकता है ॥ ४ ॥ व जहां मरे जनों को मोक्षमार्ग दिखातेहुये व अपने भाल में टिके बाल चन्द्र समेत त्रिलोकी की गलीमें चली गंगाको ढूंढ़तेहुये महादेवजी हैं ॥ ५ ॥ व

न्तियांदिवोद्युसदःसदा ॥ १ ॥ अलक्ष्यामोक्षलक्ष्मीर्यावेदान्तेपरिपठ्यते ॥ विमुक्तयेसतांसैषाश्रीमतीमणिकर्णिका ॥ २ ॥ मरणंमङ्गलंयत्रसफलंयत्रजीवितम् ॥ स्वर्गस्तृणायतेयत्रसैषाश्रीमणिकर्णिका ॥ ३ ॥ यत्रसम्पत्तिसम्भारान्विश्राणयनिधनेच्छया ॥ यतिव्रतंसमालम्ब्यतिष्ठतेमूलकन्दभुक् ॥ ४ ॥ यत्रत्रिमार्गगांगङ्गांमार्गमाणोमृतान्हरः ॥ स्वमौलिबालचन्द्रेणमुक्तिमार्गंप्रदर्शयन् ॥ ५ ॥ संसारंयत्रदुर्वारंप्रतारयतिशङ्करः ॥ मृताअप्यमृतायन्तेकर्णधाराद्यतोनराः ॥ ६ ॥ संसारसारपदवीयत्रस्याददवीयसी ॥ कर्णेजपान्महेशानात्करुणावरुणालयात् ॥ ७ ॥ अनेकभवसम्भूतप्रभूतसुकृतैर्नराः ॥ कर्णेजपंभवंयत्रलभन्तेतेभवापहम् ॥ ८ ॥ स्वीकृत्यक्षेत्रसंन्यासंयद्बलेनमहाधियः ॥ तृणंकृतान्तंमन्यन्तेसेयंश्रीमणिकर्णिका ॥ ९ ॥ तृणीकृत्यनिजंदेहंयत्रराजर्षिसत्तमः ॥ हरिश्चन्द्रःसपत्नीकोऽव्यक्रीणाद्भूरियंहिसा ॥ १० ॥ अभिलष्यन्तियत्रत्यमपिवैकुण्ठवासिनः ॥ सैकतंमृदुलंतल्पंसैषाश्रीमणिकर्णिका ॥ ११ ॥

जहां वे शंकर जी दुःखसे निवारण योग्य संसार को छलते हैं याने पार उतारते हैं कि जिन गुरु से उपदेश पाकर मरे भी मनुष्य अमृत से हैं अर्थात् मुक्त होते हैं ॥ ६ ॥ व जहां मरतेहुये के दहिने कान में तारक मंत्रको कहतेहुये दयासमुद्र शिवसे संसार सार (दृढ़मार्ग) अदूर है ॥ ७ ॥ व अनेक जन्मों में हुये बहुते पुण्यसमूहों से संयुत जे मनुष्यहैं वे जहां कान में मन्त्र जपतेहुये संसारनाशक महादेवको लहते हैं ॥ ८ ॥ व बड़ी बुद्धिवाले लोग क्षेत्रसंन्यास को अंगीकार कर जिसके बलसे कालको तृणसे मानते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ ९ ॥ और राजऋषियों में श्रेष्ठ व स्त्री समेत हरिश्चन्द्र ने अपनी देहको खरकर जहां बेंचा है वह यही भूमि

है ॥ १० ॥ व वैकुंठवासी जन भी जहांके कोमल बालूमय शयनको अभिलाष करते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिकाहै ॥ ११ ॥ व बहुते जन्मों में उपजे कर्मसूत्र बन्धनको छोर कर जन जहां मुक्तहोवे हैं वह यह श्रीमणिकर्णिकाहै ॥ १२ ॥ आश्चर्य्य है कि सत्यलोक में भी जे जनहैं वे कैवल्य मिलने के लिये जिसको निरन्तर प्रार्थते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ १३ ॥ और वह यह कुलखम्भाहै कि जहां तीव्र यातना को दिखातेहुये कालभैरवजी क्षेत्रमें पापकारी कुविचारी मनुष्योंको सिखाते याने दण्डदेते हैं ॥ १४ ॥ अन्यत्र किये पाप काशी के दर्शन से नशते हैं व काशी में किये पापों की यही उग्र यातनाहै ॥ १५ ॥ और यह वही पवित्र कपालमोचन तीर्थ है जहां

अनेकजन्मजनितकर्मसूत्रनियन्त्रणम् ॥ उन्मुच्ययत्रमुक्ताःस्युःसैषाश्रीमणिकर्णिका ॥ १२ ॥ सत्यलोकेऽपियेलोकास्तेऽर्थयन्तिनिरन्तरम् ॥ यामहोदीर्घनिद्रायैसेयंश्रीमणिकर्णिका ॥ १३ ॥ अयंहिसकुलस्तम्भोयत्रश्रीकालभैरवः ॥ क्षेत्रपापकृतःशास्तिदर्शयंस्तीव्रयातनाम् ॥ १४ ॥ अन्यत्रविहितम्पापंनश्येत्काशीनिरीक्षणात् ॥ काश्यांकृतानांपापानांदारुणेयन्तुयातना ॥ १५ ॥ कपालमोचनंतीर्थमेतत्तदपिपावनम् ॥ कपालंपतितंयत्रविधेर्भैरवपाणितः ॥ १६ ॥ ऋणत्रयाद्विमुच्यन्तेयत्रस्नातानरोत्तमाः ॥ तीर्थंविशुद्धिजनकंतदेतदृणमोचनम् ॥ १७ ॥ प्रणवाख्यंपरंब्रह्मयत्रनित्यंप्रकाशते ॥ सपञ्चायतनोपेतओङ्कारेशोयमद्भुतः ॥ १८ ॥ अश्चउश्चमकारश्चनादोबिन्दुश्चपञ्चमः ॥ पञ्चात्मकंपरंब्रह्मयत्रनित्यंप्रकाशते ॥ १९ ॥ एषामत्स्योदरीरम्यायत्स्नातोमानवोत्तमः ॥ मातुर्जातूदरदरींनविशेदेषनिश्चयः ॥ २० ॥ त्रिलोचनोयंभगवान्कुर्यादेवत्रिलोचनम् ॥ निजभक्तंकृपायुक्तस्त्वपिदेशान्तरस्थितम् ॥ २१ ॥ अ

भैरवके हाथ से ब्रह्माका कपाल गिराथा ॥ १६ ॥ व जहां नहाये हुये नरश्रेष्ठ, देव ऋषि और पितर इन तीनों के ऋणसे छूटतेहैं वह यह विशुद्धिकर्ता ऋणमोचन तीर्थ है ॥ १७ ॥ व ओंकार नामक परब्रह्म जहां नित्यही प्रकाशताहै वह पांचों के आधार यह ओंकारनाथ अद्भुत हैं ॥ १८ ॥ कि जिनमें अ, उ,म्, नाद और पँचवां बिन्दु इन पांचों का रूप परब्रह्म सदा सोहता है ॥ १९ ॥ और यह रुचिर मत्स्योदरी नदी है जहां नहाया हुआ मनुष्यवर माताकी गर्भ कन्दरामें कभी न पैठे यह निश्चय है ॥ २० ॥ व ये ऐश्वर्य्यसम्पन्न कृपालु त्रिलोचन हैं जो कि दूसरे देशमें बसते हुये भी अपने भक्तों को त्रिलोचन करते हैं याने सारूप्य मुक्ति देते हैं ॥ २१ ॥ व यह

कामेश्वर देव हैं जो कि सन्तों के अभिलाष को पूरकरते हैं व जहां दुर्वासा भी अपने मनोरथ के बड़े उदय को पहुँचे हैं दुर्वासा नाम से यह जानाजाता है कि क्रोधी आदि लोगभी यहां कामनाको पाते हैं तो सन्तों को क्या कहनाहै ॥ २२ ॥ व भक्तों के मनोरथकी सिद्धिके लिये महेश जी यहां आपही लीन हुयेहैं उस कारण इन देवदेव त्रिशूलधारी का स्वर्लीनेश्वर नामहै ॥ २३ ॥ व काशी में जो भगवान् महादेव पुराणो में क्षेत्रके अभिमानी देवता पढ़े जाते हैं उनका यह अद्भुत मण्डप है ॥ २४ ॥ वह यह स्कन्देश्वर देवहैं कि जिसके श्रद्धासमेत दर्शन से मनुष्य जन्मभरके ब्रह्मचर्य्यका फल पावेहै ॥ २५ ॥ व ये सब सिद्धिदायक विनायकनाथ हैं जिनकी

सौकामेश्वरोदेवोयःकामान्पूरयेत्सताम् ॥ दुर्वासाअपियत्रापनिजकाममहोदयम् ॥ २२ ॥ स्वयंलीनोमहेशोत्रभक्तकामसमृद्धये ॥ तस्मात्स्वर्लीनसंज्ञास्यदेवदेवस्यशूलिनः ॥ २३ ॥ वाराणस्यांमहादेवोयःपुराणेषुपठ्यते ॥ क्षेत्राभिमानीभगवांस्तत्प्रासादोयमद्भुतः ॥ २४ ॥ असौस्कन्देश्वरोदेवःश्रद्धयायद्विलोकनात् ॥ आजन्मब्रह्मचर्यस्यफलमाप्नोतिमानवः ॥ २५ ॥ विनायकेश्वरश्चायंसर्वसिद्धिप्रदायकः ॥ यत्सेवयाप्रणश्यन्तिनृणांसर्वेविनायकाः ॥ २६ ॥ इयंवाराणसीदेवीसाक्षान्मूर्त्तिमयीशुभा ॥ यस्याविलोकनात्पुंसांभूयोनोगर्भसम्भवः ॥ २७ ॥ पार्वतीश्वरलिङ्गस्यमहदायतनंत्विदम् ॥ यत्रनित्यंमहेशानोगौर्यासहविमुक्तिदः ॥ २८ ॥ एषभृङ्गीश्वरःश्रीमान्महापातकनाशनः ॥ जीवन्मुक्तोऽभवद्भृङ्गीयस्यलिङ्गस्यसेवया ॥ २९ ॥ चतुर्वेदेश्वरश्चैषचतुर्वेदधरोविधिः ॥ लभेद्यद्वीक्षणाद्विप्रोवेदाध्ययनजंफलम् ॥ ३० ॥ यज्ञैःसंस्थापितञ्चैतल्लिङ्गंयज्ञेश्वराभिधम् ॥ यदर्चनाल्लभेन्मर्त्यःसर्वयागफलंमहत् ॥ ३१ ॥ पुराणेश्वरनामैतल्लि

सेवासे मनुष्यों के सब विघ्न कारण कटते हैं ॥ २६ ॥ व प्रत्यक्ष मूर्तिवाली मंगलमयी यह काशी देवी है जिसके देखनेसे लोगोंका फिर गर्भमें होना नहींहै ॥ २७ ॥ व पार्वतीश्वर नाम लिंगका यह बड़ा मन्दिर है जहां पार्वती के साथ महेशजी सदा मुक्तिदाताहैं ॥ २८ ॥ व ये महापापनाशक श्रीभृंगीश्वर हैं जिस लिंगकी सेवासे भृंगी जीवन्मुक्त हुवाहै ॥ २९ ॥ व यह चतुर्वेदेश्वर व चार वेदधर विधाता हैं जिसके दर्शनसे ब्राह्मण वेद पढ़नेका फलपावे है ॥ ३० ॥ व यह यज्ञोंका थापा यज्ञेश्वर नामक लिंगहै जिसके पूजने से मनुष्य सब यज्ञोंका महाफल पावे है ॥ ३१ ॥ व यह अठारह अंगुलका पुराणेश्वर नामक लिंगहै जिसके दर्शन से अठारह विद्याओं

का आधार होवेहै ॥ ३२ ॥ व यह स्मृतियोंका थापा धर्मशास्त्रेश्वर लिंगहै जिसके देखनेसे स्मृति पढ़ने की पुण्य होवेहै ॥ ३३ ॥ व सब अज्ञाननाशक यह सारस्वत लिंगहै व यह सर्वतीर्थेश्वर लिंग है जोकि शीघ्र अन्तःकरण की शुद्धिका दाता है ॥ ३४ ॥ व शैलेश्वर लिंगका यह बड़ा विचित्र मण्डप है जो सब रत्नसमूहों की उत्तम शोभाको धारता है ॥ ३५ ॥ व यह मनोहर सप्तसागरेश्वरनामक लिंगहै जिसके दर्शन से मनुष्य सात समुद्र नहानेका फल पावेहै ॥ ३६ ॥ व यह श्रीमान् मंत्र जपका फलदाता मंत्रेश्वर नाम लिंग है जिसको सतयुग में सात करोड़ महामंत्रोंने थापाहै ॥ ३७ ॥ व त्रिपुरेश लिंगके आगे यह बड़ा कुण्डहै जोकि पहले त्रि-

ङ्गमष्टादशाङ्गुलम् ॥ अष्टादशानांविद्यानांस्यादाधारोयदीक्षणात् ॥ ३२ ॥ धर्मशास्त्रेश्वरश्चायंस्मृतिभिश्चप्रतिष्ठितः॥ स्मृत्यध्ययनजम्पुण्यंयद्विलोकनतोभवेत् ॥ ३३ ॥ सारस्वतमिदंलिङ्गंसर्वजाड्यविनाशकृत् ॥ सर्वतीर्थेश्वरंलिङ्गमेत त्सद्योविशुद्धिदम् ॥ ३४ ॥ शैलेश्वरस्यलिङ्गस्यमण्डपोयंमहाद्भुतः ॥ सर्वेषांरत्नजातानांयोबिभर्तिपरांश्रियम् ॥ ३५॥ सप्तसागरसंज्ञंवैलिङ्गमेतन्मनोहरम् ॥ यद्दीक्षणाल्लभेन्मर्त्यःसप्ताब्धिस्नानजंफलम् ॥ ३६ ॥ असौमन्त्रेश्वरःश्रीमा न्मन्त्रजाप्यफलप्रदः ॥ सप्तकोटिमहामन्त्रैःस्थापितोयःपुरायुगे ॥ ३७ ॥ त्रिपुरेशस्यलिङ्गस्यपुरःकुण्डमिदंमहत् ॥ त्रिपुरैःखानितम्पूर्वंत्रिपुरारिप्रियम्परम् ॥ ३८ ॥ इदंबाणेश्वरंलिङ्गंसहस्रभुजपूजितम् ॥ द्विभुजस्यापिबाणस्यसहस्रभु जहेतुकम् ॥ ३९ ॥ वैरोचनेश्वरश्चैषपुरःप्रह्लादकेशवात् ॥ बलिकेशवनामासावेषनारदकेशवः ॥ ४० ॥ आदिकेशवपू र्वेणत्वयमादित्यकेशवः ॥ भीष्मकेशवनामासौदत्तात्रेयेश्वरस्त्वयम् ॥ ४१ ॥ दत्तात्रेयेश्वरात्पूर्वमेषआदिगदाधरः॥ भृगुकेशवनामासावेषवामनकेशवः ॥ ४२ ॥ नरनारायणावेतौयज्ञवाराहकेशवः ॥ विदारनारसिंहोयंगोपीगोविन्द

पुरवासियों का खनाया है महादेवका प्यारा और उत्तम है ॥ ३८ ॥ व सहस्रबाहु से पूजित यह बाणेश्वर लिंगहै जोकि दो बांहवाले बाणासुर की हजार बांहोंका कारण है ॥ ३९ ॥ व प्रह्लादकेशव से पूर्व यह वैरोचनेश्वर व यह बलिकेशव नामक व यह नारदकेशव है ॥ ४० ॥ व यह आदिकेशवके पूर्वमें आदित्यकेशव व यह भी-ष्मकेशव व यह दत्तात्रेयेश्वर ॥ ४१ ॥ व यह दत्तात्रेयेश्वर के पूर्व में आदिगदाधर व यह भृगुकेशवनामक व यह वामनकेशवहै ॥ ४२ ॥ व ये नरनारायण व यह यज्ञ

वाराहकेशव व यह विदारनारसिंह व यह गोपीगोविंद हैं ॥ ४३ ॥ व यह रत्नरचित, लक्ष्मीनृसिंह का मंडपहै जिसकी प्रसन्नतासे प्रह्लादजीने इन्द्रासन पायाहै ॥ ४४ ॥ व लोगोंको बड़ी सिद्धिदायक ये अखर्वविनायक हैं व पूर्वसमय में शेषसे थापे गये ये शेषमाधव हैं ॥ ४५ ॥ जिनके भक्त संकर्षणके मुखकी आगसे नहीं जलते हैं व शंखमाधवनामक ये शंखासुर को मारकर यहां भलीभांति से टिकेहैं ॥ ४६ ॥ व परब्रह्म रसका स्थान यह सारस्वत सोता है जहां महानदी सरस्वती व गंगाका संगम हुवाहै ॥ ४७ ॥ व जहां नहाये नर फिर पृथिवीतलमें नहीं जन्मतेहैं व साक्षात् लक्ष्मी जीके पति सब से परे ये श्रीबिंदुमाधव हैं ॥ ४८ ॥ जिनके श्रद्धासे नमस्कारकर नर

एषह ॥ ४३ ॥ एषलक्ष्मीनृसिंहस्यप्रासादोरत्नकेतनः ॥ यस्यप्रसादात्प्रह्लादःपदमैन्द्रमवाप्तवान् ॥ ४४ ॥ अखर्वसिद्धिदः पुंसामेषखर्वविनायकः ॥ शेषमाधवनामासौशेषेणस्थापितःपुरा ॥ ४५ ॥ यस्यभक्तानदह्यन्तेत्वपिसंवर्तवह्निना ॥ शङ्खमाधवनामासौशङ्खंहत्वात्रसंस्थितः ॥ ४६ ॥ इदंसारस्वतंस्रोतःपरंब्रह्मरसायनम् ॥ सरस्वत्यामहानद्यासङ्गमोयत्र गङ्गया ॥ ४७ ॥ यत्राप्लुतानराभूयःसम्भवन्तिनभूतले ॥ श्रीबिन्दुमाधवस्त्वेषसाक्षाल्लक्ष्मीपतिःपरः ॥ ४८ ॥ श्रद्धया यंनमन्मर्त्योनवसेद्गर्भवेश्मनि ॥ नदारिद्र्यमवाप्नोतिव्याधिभिर्नाभिभूयते ॥ ४९ ॥ बिन्दुमाधवभक्तोयस्तंयमोपिनम स्यति ॥ प्रणवात्मायएकोऽस्तिनादबिन्दुस्वरूपधृक् ॥ ५० ॥ अमूर्तंयत्परंब्रह्मबिन्दुमाधवएवसः ॥ एतत्पञ्चनदन्तीर्थंप ञ्चब्रह्मात्मसंज्ञकम् ॥ ५१ ॥ यत्रस्नातोनगृह्णीयाच्छरीरंपाञ्चभौतिकम् ॥ एषासामङ्गलागौरीकाश्यांपरममङ्गलम् ॥ ५२ ॥ यत्प्रसादादवाप्नोतिनरोऽत्रचपरत्रच ॥ मयूखादित्यसंज्ञोयंरश्मिमालीतमोपहः ॥ ५३ ॥ गभस्तीशोमहालिङ्गमे

गर्भघर में न बसे न दारिद्र्यको प्राप्तहोवे और न रोगसे दबे ॥ ४९ ॥ जो बिंदुमाधव का भक्तहै उसको यम भी बन्दता है व नादबिंदुस्वरूपधारी ॐकार वाच्य जो एक है ॥ ५० ॥ व जो अरूप परब्रह्म है वह बिंदुमाधवही हैं व पंच ब्रह्मात्मक यह पंचनदतीर्थ है ॥ ५१ ॥ जहां नहाया हुआ नर पांच तत्त्व की देहको न गहे व यह वह मंगला गौरीहैं काशीमें परम मंगल को ॥ ५२ ॥ जिसके प्रसाद से मनुष्य इस उस लोक मे भी पाताहै व यह अज्ञाननाशक मयूखादित्य संज्ञक सूर्य्य हैं ॥ ५३ ॥ व

यह दिव्य ज्योतिदाता गभस्तीशनामक महालिंग है मार्कण्डेयने आगे यहां बड़ा तप कियाहै ॥ ५४ ॥ व अपने नामसे श्रेष्ठ लिंगको थापकर जोकि सबसे परे और आयु का दाताहै व त्रिलोक में प्रसिद्ध यह किरणेश्वर नाम लिंगहै ॥ ५५ ॥ यह एक बार भी नमस्कार कियेहुये लोगोंको सूर्य्यलोक में पठाता है व यह पापनाशक धौतपापेश्वर लिंगहै ॥ ५६ ॥ व भक्तोंका मोक्ष कारण यह निर्वाणनृसिंह है व महामणियों से भूषित यह मणिप्रदीप नागहै ॥ ५७ ॥ जिसके पूजने से मनुष्य नागोंसे कभी न हारे व कपिलका थापा यह कपिलेश लिंगहै ॥ ५८ ॥ इसके दर्शन से वानर भी संसार से छूटे तब मनुष्योंका क्या कहना है यह बड़ा प्रियव्रतेश्वर लिंग प्रकाशता

तद्दिव्यमहःप्रदम् ॥ मृकण्डुसूनुनाप्यत्रतपस्तप्तंपुरामहत् ॥ ५४ ॥ लिङ्गंसंस्थाप्यपरमंस्वनाम्नायुःप्रदम्परम् ॥ किरणेश्वरनामैतल्लिङ्गंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ५५ ॥ सकृन्नतमिदंलोकंनयेत्किरणमालिनः ॥ धौतपापेश्वरंलिङ्गमेतत्पातकधावनम् ॥ ५६ ॥ निर्वाणनरसिंहोयंभक्तनिर्वाणकारणम् ॥ मणिप्रदीपनागोयंमहामणिविभूषणः ॥ ५७ ॥ यदर्चनान्नरोजातुननागैःपरिभूयते ॥ कपिलेशमिदंलिङ्गंकपिलेनप्रतिष्ठितम् ॥ ५८ ॥ मुच्यन्तेकपयोप्यस्यदर्शनात्किमुमानवाः ॥ प्रियव्रतेश्वरंलिङ्गमहदेतत्प्रकाशते ॥ ५९ ॥ यस्यार्चनाल्लभेज्जन्तुःप्रियत्वंसर्वजन्तुषु ॥ इदमायतनंश्रेष्ठंमाणिमाणिक्यनिर्मितम् ॥ ६० ॥ श्रीमतःकालराजस्यकलिकालार्तिहारिणः ॥ निजभक्तंजनंपातियःपापात्पापभक्षणः ॥ ६१ ॥ क्षेत्रविघ्नकरान्पापान्यातयन्यातनाशतैः ॥ इयंमन्दाकिनीरम्यातपस्तप्तुमिहागता ॥ ६२ ॥ काशीवाससुखंप्राप्यनाद्यापिदिवमीहते ॥ स्नात्वात्रसन्तर्प्यपितॄञ्छ्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ ६३ ॥ नरोननरकंपश्येदपिदुष्कृतकर्मकृत् ॥

है ॥ ५९ ॥ जिसकी पूजासे जन्तु सब जन्तुओं में प्यारा भाव पावे व मणिमाणिक से बना यह श्रेष्ठ मन्दिर ॥ ६० ॥ कलिकालपीड़ाहारी श्रीकालराजका है जो पापभक्षण अपने भक्तजनो को पापसे बचाते हैं ॥ ६१ ॥ व क्षेत्रविघ्नकारी पापियों को सैकड़ों यातनाओं से पीड़ते हैं व तपस्या करने को यहां आई यह मनोहर मंदाकिनी है ॥ ६२ ॥ काशीवासका सुख पाकर अब भी स्वर्गको नहीं जाती है यहां नहाकर पितरों को तरप व विधिसे श्राद्धकर ॥ ६३ ॥ पापी भी नर नरकको न देखे व काशी

में जो कोई हजारों लिंगहैं ॥ ६४ ॥ उनमें यह रत्नेश्वरनामक लिंगरत्न है रत्नेश्वरके प्रसाद से बहुते रत्नोंको भोगकर ॥ ६५ ॥ पुरुषार्थों में बड़े रत्नरूप मोक्षको किसने नहीं पाया व यह कृत्तिवासेश्वरके महामन्दिर की बनावट है ॥ ६६ ॥ जिसको दूरसे देखकर भी मनुष्य कृत्तिवासनामक शिवका स्थान पावे व कृत्तिवासेश्वर सब लिंगोंका शिरहै ॥ ६७ ॥ ओंकारेश चोटी जाननीयहै व त्रिलोचनेश्वर आंखें हैं व गोकर्णेश्वर और भारभूतेश्वर ये दोनों उसके कान कहेगये हैं ॥ ६८ ॥ विश्वेश्वर व अविमुक्तेश्वर ये दोनों दहिने हाथहैं धर्मेश्वर व मणिकर्णेश्वर ये दो बायें हाथहैं ॥ ६९ ॥ कालेश्वर व कपर्दीश्वर निर्मल पांवहैं ज्येष्ठेश्वर नितंब है मध्यमेश्वर नाभिहै ॥ ७० ॥ महादेव

यानिकानिचलिङ्गानिकाश्यांसन्तिसहस्रशः ॥ ६४ ॥ रत्नभूतमिदन्तेषुलिङ्गंरत्नेश्वराभिधम् ॥ रत्नेश्वरप्रसादेनभुक्त्वा रत्नान्यनेकशः ॥ ६५ ॥ पुरुपार्थमहारत्नंनिर्वाणंकोनलब्धवान् ॥ कृत्तिवासेश्वरस्यैषामहाप्रासादनिर्मितिः ॥ ६६ ॥ यांदृष्ट्वापिनरोदूरात्कृत्तिवासःपदंलभेत् ॥ सर्वेषामपिलिङ्गानांमौलित्वंकृत्तिवाससः ॥ ६७ ॥ ॐकारेशःशिखाज्ञेयालोचनानित्रिलोचनः ॥ गोकर्णभारभूतेशौतत्कर्णौपरिकीर्तितौ ॥ ६८ ॥ विश्वेश्वराविमुक्तौचद्वावेतौदक्षिणौकरौ ॥ धर्मेशमणिकर्णेशौद्वौकरौदक्षिणेतरौ ॥ ६९ ॥ कालेश्वरकपर्दीशौचरणावतिनिर्मलौ ॥ ज्येष्ठेश्वरोनितम्बश्चनाभिर्वैमध्यमेश्वरः ॥ ७० ॥ कपर्दोस्यमहादेवःशिरोभूषाश्रुतीश्वरः ॥ चन्द्रेशोहृदयन्तस्यआत्मावीरेश्वरःपरः ॥ ७१ ॥ लिङ्गन्तस्यतुकेदारःशुक्रंशुक्रेश्वरंविदुः ॥ अन्यानियानिलिङ्गानिपरःकोटिशतानिच ॥ ७२ ॥ ज्ञेयानिनखलोमानिवपुषोभूषणान्यपि ॥ यावेतौदक्षिणौहस्तौनित्यनिर्वाणदौहितौ ॥ ७३ ॥ जन्तूनामभयन्दत्त्वापतताम्मोहसागरे ॥ इयन्दुर्गाभगवतीपितृलिङ्गमिदम्परम् ॥ ७४ ॥ इयंहिचित्रघण्टेशीघण्टाकर्णह्रदस्त्वयम् ॥ इयंसाललितागौरीविशालाक्षीयम्

इसका जटाजूट है व श्रुतीश्वर शिरके गहने हैं चन्द्रेश्वर उसका हृदय है श्रेष्ठ वीरेश्वर अहंकारहै ॥ ७१ ॥ व केदार उसका लिंगहै व शुक्रेश्वर को बीज कहते हैं व सैकड़ों करोड़ों से अधिक जे अन्य अनंत लिंगहैं ॥ ७२ ॥ वे नह रोम और अंगके आभूषण भी जानने योग्यहैं व जे ये दहिने हाथ याने विश्वनाथ व अविमुक्तेश्वर हैं ॥ ४१६ ॥ ये मोहसमुद्र में पड़तेहुये मनुष्यों को अभय देकर सदैव मोक्षदाता हैं और यह भगवती दुर्गाहैं व यह उत्तम पितृलिंगहै॥७३।७४ ॥ व यह चित्रघंटेशी देवीहै यह

घंटाकर्णकुण्ड है यह ललिता देवी और यह अद्भुतरूपा विशालाक्षी है ॥ ७५ ॥ व यह आशाविनायक है यह अद्भुत धर्मकूप है जहां मनुष्य पिण्डा देकर पितरों को ब्रह्मा के लोकको पठावे है ॥ ७६ ॥ व यह सबसे परे जगत्की मुख्य माता विश्वभुजा हैं व यह त्रिलोक से वंदित वंदी देवीहै ॥ ७७ ॥ जोकि सुमिरी हुई बेडी बंधनमें टिके भी मनुष्योंको छुड़ाती है व यह त्रिलोकवन्दित दशाश्वमेध तीर्थ है ॥ ७८ ॥ जहां तीनि आहुति से भी अग्निहोत्रका फल पावे व यह सब तीर्थों में अतिउत्तम प्रयाग तीर्थहै ॥ ७९ ॥ व यह अशोक तीर्थ है यह गंगाकेशव भी व यह श्रेष्ठ मोक्षद्वार और इसको स्वर्गद्वार कहते हैं ॥ १८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदि

द्भुता ॥ ७५ ॥ आशाविनायकस्त्वेषधर्मकूपोयमद्भुतः ॥ यत्रपिण्डान्नरोदत्त्वापितॄन्ब्रह्मपदंनयेत ॥ ७६ ॥ एषाविश्वभुजादेवीविश्वैकजननीपरा ॥ असौवन्दीमहादेवीनित्यन्त्रैलोक्यवन्दिता ॥ ७७ ॥ निगडस्थानपिजनान्पाशान्मोचयतिस्मृता ॥ दशाश्वमेधिकन्तीर्थमेतत्त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ ७८ ॥ यत्राहुतित्रयेणापिअग्निहोत्रफलंलभेत् ॥ प्रयागाख्यमिदंस्रोतःसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ७९ ॥ अशोकाख्यमिदन्तीर्थंगङ्गाकेशवएषवै ॥ मोक्षद्वारमिदंश्रेष्ठंस्वर्गद्वारमिदंविदुः ॥ १८० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेज्ञानवापीवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३३ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ पुनर्ददर्शतन्वङ्गीचित्रपट्याङ्घटोद्भव ॥ स्वर्गद्वारात्पुरोभागेश्रीमतींमणिकर्णिकाम् ॥ १ ॥ संसारसर्पदष्टानांजन्तूनांयत्रशङ्करः ॥ अपसव्येनहस्तेनब्रूतेब्रह्मस्पृशञ्छ्रुतिम् ॥ २ ॥ नकापिलेनयोगेननसांख्येननचव्रतैः ॥ यागतिःप्राप्यतेपुम्भिस्तान्दद्यान्मोक्षभूरियम् ॥ ३ ॥ वैकुण्ठेविष्णुभवनेविष्णुभक्तिपरायणाः ॥ जपेयुःसततंमुक्त्यै

विरचितेज्ञानवापीवर्णनंनामत्रयस्त्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

चौंतिसयें अध्यायमें मणिकर्ण्यादि बखानि। परम प्रशंसित तीर्थ तहँ ज्ञानवापिका जानि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले, कि हे अगस्त्य ! फिर उस पतले अंगवालीने स्वर्गद्वारके आगे श्रीयुत मणिकर्णिका को देखा ॥ १ ॥ जहां संसार सांपसे डसे लोगोंके दहिने कानमें शिवजी दहिने हाथसे ब्रह्मज्ञानको कहते हैं ॥ २ ॥ व देवहूती से कपिलका कहा योग व आत्मा अनात्माका विचार इनसे मनुष्यों को जो गति नहीं मिलती है उसको यह मोक्षभूमि देतीहै ॥ ३ ॥ व विष्णुलोक वैकुण्ठ में मुक्ति के लिये

निरन्तर विष्णुभक्त जिस श्रीमणिकर्णिका को जपते हैं ॥ ४ ॥ और ब्राह्मणोत्तम जीवन पर्य्यन्त अग्निहोत्र होमकर भी मुक्तिके लिये अन्त में जिसको सेवते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ ५ ॥ व पृथिवी में विधिवत् वेदोंको पढ़कर ज्ञान या वेद यज्ञ में रत ब्राह्मण मुक्तिके लिये जिसको सेवते हैं वह यह श्रीमणिकर्णिका है ॥ ६ ॥ व धन्य राजालोग सम्पूर्ण दक्षिणावाली अनेक यज्ञोंको पूजनकर अन्तमें मुक्तिके लिये मणिकर्णिका के ऊपर भागको आधार करते हैं ॥ ७ ॥ व पतिव्रता स्त्रियां भी निरन्तर मुक्तिकेलिये पतिके पीछे जाकर याने सतीहो मणिकर्णिकाको सेवती हैं ॥ ८ ॥ व न्यायसे कमाया सम्पत्ति जिन्होंने वे वैश्य भी धनोंको सज्जनों के अधीनकर अर्थात् उनको

श्रीमतींमणिकर्णिकाम् ॥ ४ ॥ हुत्वाग्निहोत्रमपिचयावज्जीवन्द्विजोत्तमाः ॥ अन्तेश्रयन्तेमुक्त्यैयांसेयंश्रीमणिकर्णिका ॥ ५ ॥ वेदान्पठित्वाविधिवद्ब्रह्मयज्ञरताभुवि ॥ यांश्रयन्तिद्विजामुक्त्यैसेयंश्रीमणिकर्णिका ॥ ६ ॥ इष्ट्वाक्रतूनपिन्नृपाबह्वन्पर्याप्तदक्षिणान् ॥ अन्यतेश्रेयसेधन्याःप्रान्तेऽधिमणिकर्णिकम् ॥ ७ ॥ सीमन्तिन्योपिसततंपतिव्रतपरायणाः ॥ मुक्त्यैपतिमनुव्रज्यश्रयन्तिमणिकर्णिकाम् ॥ ८ ॥ वैश्याअपिचसेवन्तेन्यायोपार्जितसम्पदः ॥ धनानिसाधुसात्कृत्वाप्रान्तेश्रीमणिकर्णिकाम् ॥ ९ ॥ त्यक्त्वापुत्रकलत्रादिसच्छूद्रान्यायमार्गगाः ॥ निर्वाणप्राप्तयेचैनांभजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १० ॥ यावज्जीवञ्चरन्तोपिब्रह्मचर्यञ्जितेन्द्रियाः ॥ निःश्रेयसेश्रयन्त्येनांश्रीमतींमणिकर्णिकाम् ॥ ११ ॥ अतिथीनपिसन्तर्प्यपञ्चयज्ञरताअपि ॥ गृहस्थाश्रमिणोनेमांत्यजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १२ ॥ वानप्रस्थाश्रमयुजोज्ञात्वानिर्वाणसाधनम् ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्राममंमणिकर्णीमुपासते ॥ १३ ॥ अनन्यसाधनांमुक्तिंज्ञात्वाशास्त्रैरनेकधा ॥ मुमु

देकर अन्त में मणिकर्णिका को सेवते हैं ॥ ९ ॥ व सुचाली सज्जन शूद्र भी पुत्र व स्त्रीको तजकर मुक्ति मिलने के लिये इस मणिकर्णिकाको सेवते हैं ॥ १० ॥ व जीवन पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य करतेहुये इन्द्रियजित् लोग भी मुक्तिके लिये इस श्रीमणिकर्णिका को सेवते हैं ॥ ११ ॥ व अतिथियों को अन्नादिकों से भलीभांति तरप कर देव पितृ मनुष्य भूत और ब्रह्मयज्ञ इन पांचो मे तत्पर गृहस्थ भी जिस मणिकर्णिकाको नहीं तजते हैं ॥ १२ ॥ व वानप्रस्थ आश्रमवाले लोग मोक्षका साधन जानकर व इन्द्रिय समूह को रोंककर इस मणिकर्णिका की उपासना करते हैं ॥ १३ ॥ व नहींहै अन्य साधन जिसका याने जो स्वतः सिद्धहै ऐसी मुक्तिको अनेकभांति के शास्त्रों

से जानकर मुक्ति चाही एकदण्डी भी मणिकर्णिका को सेवते हैं ॥ १४ ॥ व मन वचन और देहको दण्ड देकर याने वचन से मौनको धर तनसे वृथा व्यापार को तज कर मनसे प्राणायाम को कर त्रिदण्डी लोग भी कैवल्यसम्बन्धिनी श्री मिलने के लिये मणिकर्णिका को सदा सेवते हैं ॥ १५ ॥ व सब कर्म्म त्यागे एकदण्डी संन्यासी अचल मनको दण्डदेकर मणिकर्णिकाको भजते हैं ॥ १६ ॥ व चोटी रखाये मुण्डा व लँगोटी लगाये और नग्न चाहे जो होवे कौन मोक्षचाही मुक्तिदा मणिकर्णिका को न सेवे ॥ १७ ॥ व जे तपस्या करने व दान देनेको न समर्थ हैं और जे योगाभ्याससे रहितहैं उनको मोक्षदात्री यहीहै ॥ १८ ॥ हे मुने ! मुक्तिके लिये वैसे हजारों उपाय नहीं

क्षुभिस्त्वेकदण्डैःसेव्यतेमणिकर्णिका ॥ १४ ॥ दण्डयित्वामनोवाचङ्कायंनित्यन्त्रिदण्डिनः ॥ नैःश्रेयसींश्रियम्प्राप्तुंश्रयन्तेमणिकर्णिकाम् ॥ १५ ॥ संन्यस्ताखिलकर्माणोदण्डयित्वाचलंमनः ॥ एकदण्डव्रतामुक्त्यैभजेयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ १६ ॥ शिखीमुण्डीजटीवापिकौपीनीवादिगम्बरः ॥ मुमुक्षुःकोनसेवेतमुक्तिदांमणिकर्णिकाम् ॥ १७ ॥ तपःकर्तुंनशक्तायेदानंवादातुमक्षमाः ॥ योगाभ्यासविहीनायेतेषामेषाविमुक्तिदा ॥ १८ ॥ सन्त्युपायाःसहस्रन्तुमुक्तयेनतथामुने॥ हेलयैषायथादद्यान्निर्वाणंमणिकर्णिका ॥ १९ ॥ अनशनव्रतभृतेत्रिकालाभ्यवहारिणे ॥ प्रान्तेदद्यात्समांमुक्तिमुभाभ्यांमणिकर्णिका ॥ २० ॥ यथोक्तमाचरेदेकोनिष्ठापाशुपतंव्रतम् ॥ निरन्तरंस्मरेदेकोहृद्येनांमणिकर्णिकाम् ॥ २१ ॥ दृष्टात्रवपुषःपातेद्वयोश्चसदृशीगतिः ॥ तस्मात्सर्वंविहायाशुसेव्यैषामणिकर्णिका ॥ २२ ॥ स्वर्गद्वारेविशेयुर्येविगाह्यमणिकर्णिकाम् ॥ तेषांविधूतपापानांकापिस्वर्गोनदूरतः ॥ २३ ॥ स्वर्गद्वाःस्वर्गभूरेषामोक्षभूर्मणिकर्णिका ॥ स्वर्गापव

हैं जैसे विना परिश्रम यह मणिकर्णिका मुक्ति देती है ॥ १९ ॥ मणिकर्णिका अन्न छोड़े व्रतधारी व त्रिकाल भोजनकारी इन दोनोंको बराबर मुक्ति देती है ॥ २० ॥ एक जन यथोक्त याने सनत्कुमारसंहिता में कहे विधिपूर्वक तात्पर्य्य समेत भस्मधारण आदि नियमको करे और एक इस मणिकर्णिका को मनमें सदा सुमिरे ॥ २१ ॥ उन दोनों की यहां देह त्याग में बराबर मुक्ति देखीगई है उस कारण सब छोंड़कर यह मणिकर्णिका सेवने योग्यहै ॥ २२ ॥ जे मणिकर्णिका में नहाकर स्वर्गद्वारमें पैठें व भागगये हैं पाप जिनके उनको स्वर्ग कहीं दूर नहीं है ॥ २३ ॥ यह मणिकर्णिका स्वर्गद्वार स्वर्गभूमि और मोक्षभूमि है इससे स्वर्ग व मोक्ष यहांही हैं ऊंचे नीचे भी

नहीं हैं ॥ २४ ॥ जे मणिकर्णिका में नहाकर बहुते दानको देकर स्वर्गद्वार में पैठेहैं वे नरकगामी नहीं हैं ॥ २५ ॥ स्वर्ग और अपवर्गका अर्थ पंडितोंने कहा है कि स्वर्ग सुख कहाता है व अपवर्ग महासुखहै ॥ २६ ॥ जो सुख मणिकर्णिकाके तीर बैठे सन्त को उपजता है वह सुख सिंहासन में बैठे इन्द्रको कहांहै ॥ २७ ॥ व समाधि में भूला है आपन देह गेह जिनका उनको जो महासुख कहा गयाहै वह श्रीमणिकर्णिका में सहजही होताहै ॥ २८ ॥ व स्वर्गद्वार के आगे गंगाके पाछे सुन्दरता व ऐश्वर्यादिकों की निधि कोई अकथनीय मुख्य महास्थली मणिकर्णिकाहै ॥ २९ ॥ व सूर्य्य की रश्मि संयोग से जितने बालूके किनका भासते हैं उतने ब्रह्मा बीतगये हैं

गांवत्रैवनोपरिष्टान्नचाप्यधः ॥ २४ ॥ दत्त्वादानान्यनेकानिविगाह्यमणिकर्णिकाम् ॥ स्वर्गद्वारम्प्रविष्टायेनतेनिरयगामिनः ॥ २५ ॥ स्वर्गापवर्गयोरर्थःकोविदैश्चनिरूपितः ॥ स्वर्गःसुखंसमुद्दिष्टमपवर्गोमहासुखम् ॥ २६ ॥ मणिकर्ण्युपविष्टस्ययत्सुखंजायतेसतः ॥ सिंहासनोपविष्टस्यतत्सुखंकशतक्रतोः ॥ २७ ॥ महासुखंयदुद्दिष्टंसमाधौविस्मृतात्मनाम् ॥ श्रीमत्यांमणिकर्ण्यान्तत्सहजेनैवजायते ॥ २८ ॥ स्वर्गद्वारात्पुरोभागेदेवनद्याश्चपश्चिमे ॥ सौभाग्यभाग्यैकनिधिःकाचिदेकामहास्थली ॥ २९ ॥ यावन्तोभास्वतःस्पर्शाद्भासन्तेसैकताःकणाः ॥ तावन्तोद्रुहिणाजग्मुर्नैत्येषामणिकर्णिका ॥ ३० ॥ सन्तितीर्थानितावन्तिपरितोमणिकर्णिकाम् ॥ यावद्भिस्तिलमात्रापिनभूमिर्विरलीकृता ॥ ३१ ॥ यदन्वयेकोपिमुक्तःसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ तद्वंश्यास्तत्प्रभावेणमान्याःस्वर्गौकसामपि ॥ ३२ ॥ तर्पिताःपितरोयेनसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ सप्तसप्ततथासप्तपूर्वजास्तेनतारिताः ॥ ३३ ॥ आमध्याद्देवसरितआहरिश्चन्द्रमण्डपात् ॥ आगङ्गाकेशवादाचस्वर्द्वारान्मणिकर्णिका ॥ ३४ ॥ एतद्रजःकणतुलान्त्रिलोक्यपिनगच्छति ॥ एतत्प्राप्त्यैप्रयतते

परन्तु यह मणिकर्णिका कहीं नहीं जातीहै ॥ ३० ॥ व मणिकर्णिकाके सब ओर उतने तीर्थहैं कि जितने से तिलभर भी भूमि अवकाशवाली नहीं है ॥ ३१ ॥ जिस कुलमें कोई मणिकर्णिका में जाकर मुक्त हुवा है उसके प्रभावसे उसके वंशवाले भी देवों के मान्य हैं ॥ ३२ ॥ जिसने मणिकर्णिका मे जाकर पितरों को तरपा उसने इक्कीस पुस्ति पितरों को ताराहै ॥ ३३ ॥ गंगाका बीच हरिश्चन्द्रका मण्डप गंगाकेशव और स्वर्गद्वारतक मणिकर्णिका है ॥ ३४ ॥ व त्रैलोक्य भी इसकी धूरिके कणकी समता

को नहीं पहुँचता है क्योंकि त्रिलोक में वर्त्तमान सब जन्मवान् इसके मिलने को यत्न करता है ॥ ३५ ॥ यों बार बार चित्रपटी को देखतीहुई कलावतीने विश्वनाथ के दक्षिण मे ज्ञानवापी को देखा ॥ ३६ ॥ कि यह दण्डनायकजी व संभ्रम और विभ्रम बड़ी भ्रांतिको देकर जिसके जलको दुष्टसे बचाते हैं ॥ ३७ ॥ व जो महादेवजी पुराण में अष्टमूर्ति पढ़े जाते हैं उनकी यह ज्ञानवापी जोकि मोक्षदाहै वह जलमयी मूर्ति है ॥ ३८ ॥ व कलावतीने ज्ञानवापीको आंखोंके विषयकर याने देखकर क्षणमें कदम्बके फूलसी रोमांचित देहको धारण किया ॥ ३९ ॥ व अंग कांप उठे माथमें बहुतही पसीना आया व उसके नेत्र आनन्द आंसुओं से मिलेभये होगये ॥ ४० ॥ व देहलता

त्रिलोकस्थोऽखिलोभवी ॥ ३५ ॥ कलावतीचित्रपटीम्पश्यन्तीत्थंमुहुर्मुहुः ॥ ज्ञानवापीन्ददर्शाथश्रीविश्वेश्वरदक्षिणे ॥ ३६ ॥ यदम्बुसततंरक्षेद्दुर्वृत्ताद्दण्डनायकः ॥ सम्भ्रमोविभ्रमश्चासौदत्त्वाभ्रान्तिङ्गरीयसीम् ॥ ३७ ॥ योष्टमूर्तिर्महादेवः पुराणेपरिपठ्यते ॥ तस्यैषाम्बुमयीमूर्तिर्ज्ञानदाज्ञानवापिका ॥ ३८ ॥ नेत्रयोरतिथीकृत्यज्ञानवापींकलावतीम् ॥ कदम्बकुसुमाकारांबभारक्षणतस्तनुम् ॥ ३९ ॥ अङ्गानिवेपथुम्प्रापुःस्विन्नाभालस्थलीभृशम् ॥ हर्षबाष्पाम्बुकलिलेजातेतस्यविलोचने ॥ ४० ॥ तस्तम्भगात्रलतिकामुखंवैवर्ण्यमापच ॥ स्वरोथगद्गदोजातोव्यभ्रंशत्तत्करात्पटी ॥ ४१ ॥ साक्षणंस्वंविसस्मारकाहंकाहंनवेत्तिच ॥ सौषुप्तायान्दशायाञ्चपरमात्मेवनिश्चला ॥ ४२ ॥ अथतत्परिचारिण्यस्त्वरमाणाइतस्ततः ॥ किंकिंकिमेतदेतत्किंपृच्छन्तिस्मपरस्परम् ॥ ४३ ॥ तदवस्थांसमालोक्यतान्ताश्चतुरचेतसः ॥ विज्ञायसात्त्विकैर्भावैरिदमूचुःपरस्परम् ॥ ४४ ॥ भवान्तरेप्रेमपात्रमेतयैक्षितुकिञ्चन ॥ चिरात्तेनचसङ्गत्यसुखमूर्च्छामिवाप

निश्चल हुई व मुखका रंग बदल गया अनन्तर स्वर गद्गद हुवा और वह चित्रपटी उसके हाथसे गिरपड़ी ॥ ४१ ॥ व वह क्षणभर अपनाको बिसरगई कि मैं कौनहूं मैं कहांहूं यों न जानती भई व सुषुप्तिकी अवस्थामें परमात्मासी निश्चलहुई ॥ ४२ ॥ अनन्तर ऐसी वैसी दौड़ीहुई वेगवती उसकी सेवकियोंने आपुसमें पूंछा कि यह क्याहै क्याहै क्याहै ॥ ४३ ॥ उन चतुर बुद्धिवाली दासियोंने उस अवस्था में टिकीहुई उसको देखकर रोमांच आदि सात्त्विक भावोंसे उस अवस्थाको जानकर आपुस में यह

कहा कि ॥ ४४ ॥ इसने अन्य जन्मके किसी प्रीतिपात्र प्यारेको देखा इससे बहुतकालमें उसका संगकर सुख मूर्च्छाको पायाहै ॥ ४५ ॥ ऐसा न होता तो एकान्तमें सुठि सुघर चित्रपटी को देखतीहुई यह अनवसरमें कैसे सब ओरसे मोह जाती ॥ ४६ ॥ यों भलीभांति से उस मोहका कारण विचारकर उन दासियोंने व्याकुलतारहित जैसे हो वैसे बड़े शांत पंखा आदि उपचारों से सेवा किया ॥ ४७ ॥ किसीने उसको केलाकी पातीके पंखासे वीजित किया व किसीने उस धन्याको कमल के पातसमूहों से भूषित किया ॥ ४८ ॥ व अन्यने इसको बहुते चंदनरसोंसे छिड़का व किसीने अशोकके पल्लवों से इसके शोकको विनाशा ॥ ४९ ॥ किसीने गुलाबपाशके जलकिनकों से

ह ॥ ४५ ॥ अथनेत्थंकथमियमकाण्डात्पर्यमूमुहत् ॥ प्रेक्षमाणारहश्चित्रपटीमतिपटीयसीम् ॥ ४६ ॥ तन्मोहस्यनिदान न्ताःसम्यगेवविचार्यच ॥ उपचेरुर्महाशान्तैरुपचारैरनाकुलम् ॥ ४७ ॥ काचित्तांवीजयाञ्चक्रेकदलीतालवृन्तकैः ॥ बिसिनीवलयैरन्याधन्यांतापर्यभूषयत् ॥ ४८ ॥ अमन्दैश्चन्दनरसैरभ्यषिञ्चदमुम्परा ॥ अशोकपल्लवैरस्याःका चिच्छोकमनीनशत् ॥ ४९ ॥ धारामण्डपधाराम्बुशीकरैस्तत्तनूलताम् ॥ इष्टार्थविरहग्लानांसिञ्चयामासकाचन ॥ ५० ॥ जलार्द्रवाससाकाचिदेतस्यास्तनुमावृणोत् ॥ कर्पूरक्षोदजालेपैरन्यास्तामन्वलेपयन् ॥ ५१ ॥ पद्मिनीदलशय्या ञ्चकाचिद्व्यरचयन्मृदुम् ॥ काचित्कुलिशनेपथ्यन्दूरीकृत्यतदङ्गतः ॥ ५२ ॥ मुक्ताकलापंरचयांचक्रेवक्षोजमण्डले ॥ काचिच्छशिमुखीतान्तुचन्द्रकान्तशिलातले ॥ ५३ ॥ स्वापयामासतन्वङ्गींस्रवच्छीताम्बुशीतले ॥ दृष्ट्वोपचार्यमाणा न्तामित्थम्बुद्धिशरीरिणी ॥ ५४ ॥ अतितापपरीताङ्गीताःसखीःप्रत्यभाषत ॥ एतस्यास्तापशान्त्यर्थंजानेहम्परमौ

प्यारी वस्तुके विरहसे कुम्हिलानी ग्लानिवाली इसकी देहलताको सींचा ॥ ५० ॥ व किसीने पानी भीगे कपड़ेसे इसकी देहको घेरा व औरी दासियोंने कपूर चूरके लेपों से उसको लीपा ॥ ५१ ॥ व किसीने कोमल कमलदलकी शय्या बनाया किसीने उसके अंगसे हीराके भूषण को दूरकर ॥ ५२ ॥ कुचमंडलों में मोती समूहको रचित किया किसी चन्द्रमुखीने उसको उस चन्द्रकांत पत्थर के तरे ॥ ५३ ॥ कि जिससे पानी चूताथा पतली देहवाली को पौढ़ाया तब यों उपचार कराई जातीहुई उसको देखकर बुद्धिशरीरिणी नाम सखी ॥ ५४ ॥ जोकि बड़ी तपनि से तपी थी उसने उन सखियों के प्रति कहा कि मैं इसकी तपनि शांत होनेके लिये उत्तम औषध को जानती

हूं ॥ ५५ ॥ इन सब उपचारोंको दूरकरो देर मतहो शीघ्र इसको तापहीन करतीहूं मेरा खेल देखो ॥ ५६ ॥ यह चित्रपटको देखकर झट विकलताको प्राप्त भईहै इसमेंही कोई इसका प्रीतिपात्र है यह निश्चय कियागया है ॥ ५७ ॥ इससे यह चित्रपट परसने से परिताप को तजेगी तदनंतर बुद्धिशरीरिणी के वचन से उसकी दासियां ॥ ५८ ॥ उसके आगे चित्रपटको धर बोलीं कि हे कलावति ! देख जिसमें तेरे आनंद करनेवाली कोई इष्टदेवता है ॥ ५९ ॥ तब वह भी इष्टदेवताके नाम और उस चित्रपटके देखने से अमृतकी सींचनिको पहुँचसी मूर्च्छाको तजकर शीघ्र उठी ॥ ६० ॥ कि जैसे वृष्टिप्रतिघाती सूर्य्यतापसे कुम्हिलानी ओपधी वर्षाके धारासंपातोंसे हरी

षधम् ॥ ५५ ॥ उपचारानिमान्सर्वान्दूरीकुरुतमाचिरम् ॥ अपतापाङ्करोम्येनांसद्यःपश्यतकौतुकम् ॥ ५६ ॥ दृष्ट्वाचित्रपटीमेषासद्योविह्वलतामगात् ॥ अत्रैवकाचिदेतस्याःप्रेमभूरस्तिनिश्चितम् ॥ ५७ ॥ अतश्चित्रपटीस्पर्शात्परितापंविहास्यति ॥ वाक्याद्बुद्धिशरीरिण्यास्ततस्तत्परिचारिकाः ॥ ५८ ॥ निधायतत्पुरःप्रोचुःपटीम्पश्यकलावति ॥ तवानन्दकरीयत्रकाचिदस्तीष्टदेवता ॥ ५९ ॥ सापीष्टदेवतानाम्नातत्पटीदर्शनेनच ॥ सुधासेकमिवप्राप्यमूर्च्छांहित्वोत्थिताद्रुतम् ॥ ६० ॥ अवग्रहपरिम्लानावर्षासारैरिवौषधीः ॥ पुनरालोकयाञ्चक्रेज्ञानदांज्ञानवापिकाम् ॥ ६१ ॥ स्पृष्ट्वाकलावतीतान्तुवापीञ्चित्रगतामपि ॥ लेभेभवान्तरज्ञानंयथासीत्पूर्वजन्मनि ॥ ६२ ॥ पुनर्विचारयाञ्चक्रेवापीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ अहोचित्रगतापीयंसंस्पृष्टाज्ञानवापिका ॥ ६३ ॥ ज्ञानंमेजनयामासभवान्तरसमुद्भवम् ॥ अथतासाम्पुरोहृष्टाकथयामाससुन्दरी ॥ ६४ ॥ निजम्प्राग्भववृत्तान्तंज्ञानवापीप्रभावजम् ॥ कलावत्युवाच ॥ एतस्माज्जन्मनःपूर्वमहं

होतीहै फिर उसने ज्ञानदा ज्ञानवापी को देखा ॥ ६१ ॥ व कलावती ने चित्रपटी में प्राप्त भी ज्ञानवापी को परसकर वैसे अन्य जन्म के ज्ञानको पाया जैसे पहले जन्म में हुवा था ॥ ६२ ॥ फिर वापीकी उत्तम महिमाको विचारा आश्चर्य्य है कि चित्रपट में खींची भी छुई हुई इस ज्ञानवापीने ॥ ६३ ॥ अन्य जन्म में हुये मेरे ज्ञानको उपजाया है अनन्तर आनन्द संयुत सुन्दरीने उन दासियों के आगे उसको कहा ॥ ६४ ॥ जोकि ज्ञानवापी के प्रभाव से उपजा हुवा अपना पूर्व जन्म में हुवा हाल था

कलावती बोली कि इस जन्मके पहले ब्राह्मण की कन्या हुई मैं ॥ ६५ ॥ विश्वनाथके समीप काशीमें ज्ञानवापी के तीर आनन्द से खेलती थी व हरिस्वामी मेरा बाप व प्रियंवदा माताथी ॥ ६६ ॥ और सुशीला ऐसा मेरा नामथा मुझको विद्याधर हरलेगया अनंतर आधी रात बीच गली में मलयाचल के समीप ॥ ६७ ॥ वह वीर राक्षस से मारागया व उसने भी राक्षस को मारा तब शापसे छूटा राक्षस दिव्य देहको प्राप्तभया ॥ ६८ ॥ व इस गंधर्वने मलयकेतु से जन्म पाया और मैं कर्णाटक नरेशकी कन्या कलावती हुईहूं ॥ ६९ ॥ व ज्ञानवापी के देखने से क्षणमे यों मेरे ज्ञान हुवाहै यों उसका वचन सुनकर वह बुद्धिशरीरिणी ॥ ७० ॥ व उसकी सब दासियां तब प्रसन्नमुखी

ब्राह्मणकन्यका ॥ ६५ ॥ उपविश्वेश्वरंकाश्यांज्ञानवाप्यांरमेमुदा ॥ जनकोमेहरिस्वामीजनयित्रीप्रियंवदा ॥ ६६ ॥ आख्याममसुशीलेतिमाञ्चविद्याधरोऽहरत् ॥ मध्येमार्गेनिशीथेथतदोपमलयाचलम् ॥ ६७ ॥ रक्षसासहतोवीरोराक्षसंसजघानह ॥ रक्षोपिमुक्तंशापात्तुदिव्यंवपुरवापह ॥ ६८ ॥ अवापजन्मगन्धर्वस्त्वसौमलयकेतुतः ॥ कर्णाटनृपतेःकन्याबभूवाहंकलावती ॥ ६९ ॥ इतिज्ञानंममोद्भूतंज्ञानवापीक्षणात्क्षणात् ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वासापिबुद्धिशरीरिणी ॥ ७० ॥ ताश्चतत्परिचारिण्यःप्रहृष्टास्यास्तदाऽभवन् ॥ प्रोचुस्ताम्प्रणिपत्याथपुण्यशीलाङ्कलावतीम् ॥ ७१ ॥ अहोकथंहिसालभ्यायत्प्रभावोयमीदृशः ॥ धिग्जन्मतेषांमर्त्येऽस्मिन्यैर्नैक्षिज्ञानवापिका ॥ ७२ ॥ कलावतिनमस्तुभ्यंकुरुनोपिसमीहितम् ॥ जनिंसफलयास्माकंनयनःप्रार्थ्यभूपतिम् ॥ ७३ ॥ अयञ्चनियमोस्माकमद्यारभ्यकलावति ॥ निवेक्ष्यामोमहाभोगान्दृष्ट्वातांज्ञानवापिकाम् ॥ ७४ ॥ अवश्यंज्ञानवापीसानाम्नाभवितुमर्हति ॥ चित्रञ्चित्रगतापीहया

हुई अनंतर उस पुण्यशीला कलावतीके प्रणामकर बोलीं कि ॥ ७१ ॥ आश्चर्य्य है कि जिसका ऐसा यह प्रभाव है वह कैसे भी मिलने योग्य होवे इस मनुष्यलोकमें उनके जन्म को धिक्कारहै जिन्होंने ज्ञानवापी को नहीं देखाहै ॥ ७२ ॥ हे कलावति ! तुम्हारे नमस्कार है तुम हमारे भी वाञ्छितको पूरकरो व हमारी उत्पत्ति को सफल कराओ व राजा से प्रार्थनाकर हमको वहांपर पहुँचावो ॥ ७३ ॥ हे कलावति ! आजसे लगाकर हमारा यह नियम है कि उस ज्ञानवापी को देखकर बड़े भोगोंको पहुँचेंगी ॥ ७४ ॥

आश्चर्य्य है कि चित्रपट में प्राप्त भी जो तुमको ज्ञान देनेवालीहुई वह अवश्यकर नामसे ज्ञानवापी होनेको योग्यहै ॥ ७५ ॥ तब वचन रमन को जानती उस कलावतीने उनका कहना अंगीकारकर व सात्त्विकभावके वश अपनी देहको छिपाकर राजाको प्यारकर विज्ञापना किया याने जनाया ॥ ७६ ॥ कलावती बोली, कि हे प्राणनाथ राजन्! मेरा आपसे अधिक प्यारा कुछ भी कहीं नहीं है आप पतिको पाकर मेरे सब मनोरथ प्राप्तहुयेहैं ॥ ७७ ॥ हे आर्य्यपुत्र! यहां मेरा एक मनोरथ प्रार्थनीय याने आपसे मांगने योग्यहै जोकि आपका भी महाहितहै वह विचारमार्ग में प्राप्त हुवाहै ॥ ७८ ॥ व वह बड़ा पूजनीय मनोरथ तुम्हारे अधीन हुई मुझको बहुतही दुर्लभ है परन्तु

तवज्ञानदायिनी ॥ ७५ ॥ ॐकृत्यतासांवाक्यंसास्वाकारम्परिगोप्यच ॥ प्रियाणिकृत्वाभूभर्तुःप्रस्तावज्ञाव्यजिज्ञपत् ॥ ७६ ॥ कलावत्युवाच ॥ जीवितेशनमेत्वत्तःकिञ्चित्प्रियतरंक्वचित् ॥ त्वामासाद्यपतिंराजन्प्राप्ताःसर्वेमनोरथाः ॥ ७७ ॥ एकोमनोरथःप्रार्थ्योममास्त्यत्रार्यपुत्रक ॥ विचारपथमापन्नस्तवापिसमहाहितः ॥ ७८ ॥ ममतुत्वदधीनायाःसुदुष्प्रापतरोमहान् ॥ तवस्वाधीनवृत्तेस्तुसिद्धप्रायोमनोरथः ॥ ७९ ॥ प्राणेशकिम्बहूक्तेनयदिप्राणैःप्रयोजनम् ॥ तदाभिलषितन्देहिप्राणायास्यन्त्यथान्यथा ॥ ८० ॥ प्राणेभ्योपिगरीयस्यास्तस्यावाक्यंनिशम्यसः ॥ उवाचवचनंराजातस्याःस्वस्यापिचप्रियम् ॥ ८१ ॥ राजोवाच ॥ नाहंप्रियेतवादेयमिहपश्यामिभामिनि ॥ प्राणाअपिममक्रीतास्त्वयाशीलकलागुणैः ॥ ८२ ॥ अविलम्बितमाचक्ष्वकृतंविद्धिकलावति ॥ भवद्विधानांसाध्वीनांमन्येऽप्राप्यंनकिञ्चन ॥ ८३ ॥ कःप्रार्थ्यःप्रार्थनीयंकिंकोवाप्रार्थयिताप्रिये ॥ नपृथग्जनवत्किञ्चिद्वर्ततेनौकलावति ॥ ८४ ॥ देशःकोशोबलन्दुर्गंय

अपने अधीन वृत्तिवाले आपका मनोरथ सिद्धप्रायहै ॥ ७९ ॥ हे प्राणेश! बहुत कहनेसे क्याहै जो मेरे प्राणोंसे प्रयोजनहो तो वाञ्छितको देवो अन्यथा अनंतर प्राण जावेंगे ॥ ८० ॥ तब उस राजाने उस प्राणो से भी अधिक प्यारीका कहना सुनकर उसके और अपने भी प्यारे वचनको कहा ॥ ८१ ॥ राजा बोला कि हे प्यारी भामिनि! मैं इस लोकमें तेरे न देने योग्यको नहीं देखताहूं क्योंकि तैंने स्वभाव, चौंसठकला व पतिव्रतत्व आदिगुण इन सबोंसे मेरे प्राणोंको भी मोल लेलियाहै ॥ ८२ ॥ हे कलावति! शीघ्रही कहो व उसको कियागया जानो क्योंकि आपसी पतिव्रताओंका अप्राप्य याने जो न मिलसके वह कुछ नहीं मानताहूं ॥ ८३ ॥ हे कलावति प्रिये! कौन मांगने

योग्य व क्या मांगना व कौन मांगनेवाला है क्योंकि हम तुम दोनोंका बर्तना बिलगहुये जनोंकी नाईं नहींहै ॥ ८४ ॥ हे भामिनि! देश कोश (धनसंचय) सैन्य कोट और अन्य भी जो कुछहै वह तेराहै मेरा नहीं है इसमें मेरा स्वामित्वमात्रहै ॥ ८५ ॥ हे जीवितेश्वरी मानिनि! वह मेरा स्वामित्व भी तुझ विना अन्यत्रहै मैं तेरे वचन से राज्यको भी खरके समानकर तजदूं ॥ ८६ ॥ ऐसा माल्यकेतु राजाका वचन सुनकर उस कलावतीने गम्भीरवाणी से सुन्दर वचनको कहा ॥ ८७ ॥ कलावती बोली कि हे नाथ! ब्रह्माने पहले बहुत भांतिकी प्रजाओं को उपजाया व उन प्रजाओं के हितके लिये चार पुरुषार्थों को बनायाहै ॥ ८८ ॥ उनसे हीन जन्म जलबुल्लाकी नाईं वृथा

दन्यदपिभामिनि ॥ तत्त्वदीयंनमेकिञ्चित्स्वाम्यमात्रमिहास्तिमे ॥ ८५ ॥ तच्चस्वाम्यंममान्यत्रत्वदृतेजीवितेश्वरि ॥ राज्यन्त्यजेयन्त्वद्वाक्यात्तृणीकृत्यापिमानिनि ॥ ८६ ॥ माल्यकेतोर्महीजानेरितिवाक्यंनिशम्यसा ॥ प्राहगम्भीरयावाचावचश्चारुकलावती ॥ ८७ ॥ कलावत्युवाच ॥ नाथप्रजासृजापूर्वंसृष्टानानाविधाःप्रजाः ॥ प्रजाहितायसंसृष्टम्पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ ८८ ॥ तद्विहीनाजनिरपिजलबुद्बुदवन्मुधा ॥ तस्मादेकोपिसंसाध्यःपरत्रेहचशर्मणे ॥ ८९ ॥ यत्रानुकूल्यन्दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्रवर्धते ॥ यदुच्यतेपुराविद्भिरितितत्तथ्यमीक्षितम् ॥ ९० ॥ मद्विधानान्तुदासीनांशतन्तेऽस्तीहमन्दिरे ॥ तथापिनितराम्प्रेमस्वामिनोमयिदृश्यते ॥ ९१ ॥ तवदास्यपिभोगाढ्याकिमुताङ्कस्थलीचरी ॥ तत्राप्यनन्यसम्पत्तिस्तत्रस्वाधीनभर्तृता ॥ ९२ ॥ विपश्चित्सञ्चयेदर्थानिष्टापूर्तायकर्मणे ॥ तपोर्थमायुर्निर्विघ्नंदारांश्चापत्य

है उससे इस और उस लोकमें भी कल्याण या सुखके लिये एकही भलीभांति से साधने योग्यहै ॥ ८९ ॥ जहां स्त्री पुरुष दोनोंमें परस्पर प्रीति होतीहै वहां त्रिवर्ग बढ़ता है यह जो आगे के पंडितोंने कहा है वह सत्य देखा गयाहै ॥ ९० ॥ यद्यपि मन्दिर में मुझसी दासियों का सैकड़ा है तौ भी स्वामी का स्नेह मुझ में बहुतही दीखता है ॥ ९१ ॥ आपकी दासी भी भोगोंसे भरी पुरी हैं फिर गोदस्थली में बैठनेवालीको क्या कहना है तहां भी जो अन्य के नहीं है वह सम्पदा व वहां पतिका अपने अधीन होना यह सब दुर्लभ है ॥ ९२ ॥ और बुद्धिमान् जन मठ देवमन्दिर कुवां तालआदि कर्मों के लिये धनको व तपस्या के अर्थ विघ्नहीन जीवनको और पुत्रकेलिये स्त्रीको

बटोरे ॥ ९३ ॥ हे प्रिय! विश्वनाथकी दयासे यहां आपके यह सबहै जो मेरा मनोरथ पूरा करने के योग्यहै तो मैं कहतीहूं सुनो ॥ ९४ ॥ कि हे नाथ! मुझको शीघ्र काशीके प्रति पठावो प्राण तो पहलेही गये हैं मैं केवल देहशेषवालीहूं ॥ ९५ ॥ यों कलावतीका स्पष्ट वचन सुनकर क्षणभर अपने अन्तःकरण में विचारकर माल्यकेतु राजाने उस प्यारी से कहा ॥ ९६ ॥ कि हे प्रिये कलावति! जो तुमका जानाही है तो तुमसे हीन अतिचंचल इस राज्यलक्ष्मीसे हमको क्याहै ॥ ९७ ॥ क्योंकि राज्यको राज्य नहीं कहते हैं परमप्यारीही राज्यलक्ष्मी है उससे हीन, सप्तांग याने स्वामी मंत्री मित्र धनराशि देश कोट सेना इन सबोंसे संयुतभी वह राज्य तृणके समान होती

लब्धये ॥ ९३ ॥ तवैतत्सर्वमस्तीहविश्वेशानुग्रहात्प्रिय ॥ पूरणीयोऽभिलाषोमेयदितद्वच्म्यहंशृणु ॥ ९४ ॥ तूर्णंप्रहिणुमांनाथविश्वनाथपुरीम्प्रति ॥ प्राणाःप्रयाताःप्रागेववपुःशेषास्मिकेवलम् ॥ ९५ ॥ माल्यकेतुःकलावत्याइत्याकर्ण्यवचःस्फुटम् ॥ क्षणंविचार्यस्वहृदिराजाप्रोवाचताम्प्रियाम् ॥ ९६ ॥ प्रियेकलावतियदितवगन्तव्यमेवहि ॥ राज्यलक्ष्म्यानयाकिम्मेचलयात्वद्विहीनया ॥ ९७ ॥ नराज्यंराज्यमित्याहूराज्यश्रीःप्रेयसीध्रुवम् ॥ सप्ताङ्गमपितद्राज्यन्तयाहीनन्तृणायते ॥ ९८ ॥ निःसपत्नंकृतंराज्यंभुक्ताभोगान्निरन्तरम् ॥ हृषीकार्थाःकृतार्थाश्चविधृताश्चाधृतिःप्रिये ॥ ९९ ॥ अपत्यान्यपिजातानिकिंकर्तव्यमिहास्तिमे ॥ अवश्यमेवगन्तव्याऽऽवाभ्यांवाराणसीपुरी ॥ १०० ॥ माल्यकेतुःप्रियामित्थमाश्वास्यकृतनिश्चयः ॥ समाहूयचदैवज्ञान्प्रकृतीःपरिपूज्यच ॥ १ ॥ पुत्रेराज्यंनिधायाथराजाकाशीम्प्रतस्थिवान् ॥ रत्नजातङ्कियदपिपुत्रादर्थम्प्रगृह्यच ॥ २ ॥ दृष्ट्वाविश्वेश्वरपुरींहृष्टरोमानरेश्वरः ॥ मेनेकृतार्थमात्मानंसंसा

है ॥ ९८ ॥ हे प्रिये! मुझसे सदा भोगोंको भोगकर अकंटक राज्य कियागया व इन्द्रियोंके विषय कृतार्थहुये सब ओरसे धीरज धरा गयाहै ॥ ९९ ॥ और लड़के भी उपजे हैं अब यहां मेरे करने योग्य क्या है अर्थात् कुछ नहीं है इससे अवश्य हम तुम दोनोंको काशीपुरी को चलना चाहिये ॥ १०० ॥ इस भांतिसे किया निश्चयको जिसने वह माल्यकेतु प्यारीको समझाकर व ज्योतिषी पंडितों को बुलाकर पुरवासियोंको पूजकर ॥ १ ॥ व पुत्रमें राज्यको थापकर अनंतर पुत्रसे कुछ भी रत्नसमूह धनको लेकर राजा

काशीको चला ॥ २ ॥ व विश्वनाथकी पुरीको देखकर रोमांचित राजाने अपनाको संसारसमुद्र के पार गया व धन्य माना ॥ ३ ॥ व पहले जन्मकी वासना के भोगसे वह कलावती रानी भी दूसरे ग्रामसे आईसी आपही पुरीकी गलियोंको जानतीथी ॥ ४ ॥ उसके बाद मणिकर्णिका में नहाकर तदनंतर बहुतसे धनको देकर व अनेक रत्न समूहोंसे विश्वनाथ को पूजकर ॥ ५ ॥ वहां भी रत्न हाथी घोड़े गौवों के समूह विचित्र रेशमी वस्त्र और पूजाके पात्रको भी देकर ॥ ६ ॥ सोने व चांदीके कलशे दीवट दर्पण चँवर ध्वज खम्भसंयुत पताका और विचित्र चन्द्रातप इन सब चीजोंको भी देकर ॥ ७ ॥ अनंतर प्रदक्षिणाकर मुक्तिमण्डप में पैठा वहां धर्मकी कथाको सुनकर वहां भी

राम्बुधिपारगम् ॥ ३ ॥ प्राग्जन्मवासनायोगात्सापिराज्ञीकलावती ॥ ग्रामान्तरादागतेवपुरीमार्गानवैत्स्वयम् ॥ ४ ॥ मणिकर्ण्यामथस्नात्वाभूरिदत्त्वाततोवसु ॥ विश्वेशमर्चयित्वाथरत्नजातैरनेकशः ॥ ५ ॥ दत्त्वातत्रापिरत्नानिगजानश्वान्गवांव्रजम् ॥ दुकूलानिविचित्राणिपूजोपकरणानिच ॥ ६ ॥ सुवर्णरूप्यकलशान्दीपान्दर्पणचामरान् ॥ ध्वजस्तम्भपताकाश्चविचित्रोल्लोचकानिच ॥ ७ ॥ अथप्रदक्षिणीकृत्यमुक्तिमण्डपमाविशत् ॥ तत्रधर्मकथांश्रुत्वादत्त्वातत्रापिसद्धनम् ॥ ८ ॥ सायन्तनीम्महापूजाम्पुनःकृत्वाक्षितीश्वरः ॥ तत्रजागरणंकृत्वातौर्यत्रिकमहोत्सवैः ॥ ९ ॥ अथप्रातःसमुत्थायकृत्वाशौचाचमक्रियाम् ॥ राज्ञ्याविनिर्दिष्टपथाज्ञानवापींनृपोययौ ॥ १० ॥ नृपःसार्धंकलावत्यातत्रसस्नौप्रहृष्टवत् ॥ अथपिण्डान्सनिर्वाप्यसन्तर्प्यश्रद्धयापितॄन् ॥ ११ ॥ तत्ररूप्यसुवर्णादिपात्रेभ्यःप्रतिपाद्यच ॥ दीनान्धकृपणानाथान्महार्हैरत्नजातकैः ॥ १२ ॥ प्रीणयित्वानरपतिःपारणांकृतवांस्ततः॥संस्कार्यरत्नसोपानैर्ज्ञानवापींकलावती ॥ १३ ॥

अच्छा धन देकर ॥ ८ ॥ फिर सन्ध्यासमय की बड़ी पूजाको कर व नाच गान और वाद्यविधान समेत महोत्सवों से वहां जागरणको कर पृथिवीका स्वामी ॥ ९ ॥ माल्यकेतु नरेश अनंतर प्रातःकाल उठकर मृत्तिका व जलसे शुद्धता और आचमन कर्म्मको कर रानीकी दिखाई गलीसे ज्ञानवापीको गया ॥ १० ॥ व प्रसन्नहुये राजाने कलावती के साथ वहां नहाया उसके बाद वह श्रद्धासे पिण्डा पारकर पितरों को तरपकर ॥ ११ ॥ व वहां सुपात्रों को सोना आदि दान देकर दीन अन्धे दरिद्री और अनाथोंको बड़े मोलके योग्य रत्नसमूहोंसे ॥ १२ ॥ तृप्तकर तदनन्तर नरनायक पारण करता भया व रत्नकी सीढ़ियों से ज्ञानवापीको संस्कार कराकर कलावती रानी ॥ १३ ॥

जोकि बड़ी तपस्विनी थी उसने स्वामी के साथ उसमें सनेहको बांधा व कभी एक दिन भोजन के अन्तर एक दिन उपास व तीन दिन व्रत ॥ १४॥ व छठें दिन भोजन भी अनंतर सात दिनके नियम व पाखभरके अन्तर उपास व मास उपवास आदि ॥ १५ ॥ व चान्द्रायण व्रत कृच्छ्र व्रत और पतिकी सेवाओं सेभी शेष आयुके कालको क्षणकी नाईं उस अपापाने बिताया ॥ १६ ॥ एक दिन ज्ञानवापीमें प्रातः नहाकर बैठे स्त्री व पुरुष उन दोनोंके हाथमें किसी जटीलेने आकर विभूति दिया ॥ १७ ॥ और प्रसन्नमुख होकर आशीर्वादों से बढ़ाकर कहा कि उठो आजही महाभूषण को करो ॥ १८ ॥ यहां क्षण में तुम दोनोंका तारक मंत्रके उपदेश से ज्ञानके

आबबन्धरतिन्तत्रसहभर्त्रातपस्विनी ॥ एकान्तरोपवासैश्चकदाचित्त्र्यहोव्रतैः ॥ १४ ॥ षडहोभोजनैश्चापिपक्षार्धनियमैरथ ॥ पक्षान्तरोपवासैश्चमासोपवसनादिभिः ॥ १५ ॥ चान्द्रायणव्रतैःकृच्छ्रैर्भर्तुःशुश्रूषणैरपि ॥ निनायक्षणवत्कालमायुःशेषस्यसानघा ॥ १६ ॥ एकदाज्ञानवाप्यान्तुप्रातःस्नात्वोपविष्टयोः ॥ आगत्यजटिलःकश्चिद्विभूतिन्दत्तवान्करे ॥ १७ ॥ उवाचचप्रसन्नास्यआशीर्भिरभिनन्द्यच ॥ उत्तिष्ठतम्प्रकुरुतंमहानेपथ्यमद्यवै ॥ १८ ॥ तारकोदयसम्प्राप्तिर्भवित्रीवांक्षणादिह ॥ यावदित्थंसमाचष्टजटिलोऽग्रेतयोर्वचः ॥ १९ ॥ तावद्विमानमापन्नंसक्कणत्किङ्किणीगणम् ॥ पश्यतांसर्वलोकानाञ्चन्द्रमौलिरथोरथात् ॥ २० ॥ उत्तीर्यतच्छ्रुतिपुटेकिमपिस्वयमादिशत् ॥ अनाख्येयंयत्परंज्योतिरुच्चक्रामचतत्क्षणात् ॥ २१ ॥ उद्योतयन्नभोवर्त्मदेवोपिस्वालयन्ययौ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तदाप्रभृतिलोकेऽत्रज्ञानवापीविशिष्यते ॥ २२ ॥ सर्वेभ्यस्तीर्थमुख्येभ्यःप्रत्यक्षज्ञानदामुने ॥ सर्वज्ञानमयीचैषासर्वलिङ्गमयीशुभा ॥ २३ ॥

उदय की प्राप्ति होनेवाली है उस जटीलेने जबतक उनके आगे ऐसा वचन कहा ॥ १९ ॥ तबतक बाजती क्षुद्रघंटिका समूह समेत विमान आया अनंतर सब लोगोंके देखतेही चन्द्रभालने रथसे ॥ २० ॥ उतरकर आपही उनके दो कानोंमें किसी ज्ञानको उपदेश दिया उसके बाद वचन और मनसे परे जो ज्योतिरूप स्वप्रकाश ब्रह्महै उसको उसी क्षण वह कलावती समेत माल्यकेतु प्राप्तभया अथवा अकथनीय ज्योतिरूप, श्रेष्ठ जो विमानहै वह ऊपरको गया ॥ २१ ॥ व आकाशमार्गको प्रकाशते हुये महादेव भी अपने स्थानको गये श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि तबसे लगाकर इस लोक में ज्ञानवापी विशेष होती है ॥ २२ ॥ हे मुने ! जोकि यह सब तीर्थों से अधिक प्रत्यक्ष

ज्ञान देनेवाली सब ज्ञानमयी शुभा ॥ २३ ॥ प्रत्यक्ष शिवकी मूर्त्ति ज्ञानकारिणी ज्ञानवापी है वह सबसे परेहै क्योंकि शीघ्र पवित्र करनेवाले भी अनेकों तीर्थ हैं ॥ २४ ॥ परन्तु ज्ञानवापीकी सोलहवीं कलाके भी योग्य नहीं होते हैं जो एकाग्रचित्त होकर ज्ञानवापी की उत्पत्ति को सुनेगा उसके ज्ञानका नाश मरण समय में भी कहीं नहीं होगा ॥ २५ ॥ यह बड़ा आख्यान पुण्यरूप बड़े पापोंका नाशक व महादेव और पार्वतीजी की प्रीतिको बढ़ानेवाला है ॥ २६ ॥ ज्ञानवापी के मंगलमय आख्यान को पढ़ व पढ़ाकर व सुनकर श्रद्धासमेत जन शिवलोक में पूजा जाताहै ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेज्ञानवापीप्रशंसनंनामच

साक्षाच्छिवमयीमूर्तिर्ज्ञानकृज्ज्ञानवापिका ॥ सन्तितीर्थान्यनेकानिसद्यःशुचिकराण्यपि ॥ २४ ॥ परन्तुज्ञानवाप्याहि कलांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ज्ञानवाप्याःसमुत्पत्तिंयःश्रोष्यतिसमाहितः ॥ नतस्यज्ञानविभ्रंशोमरणेजायतेक्वचित् ॥ २५ ॥ महाख्यानमिदम्पुण्यम्महापातकनाशनम् ॥ महादेवस्यगौर्याश्चमहाप्रीतिविवर्धनम् ॥ २६ ॥ पठित्वापाठयित्वावा श्रुत्वावाश्रद्धयान्वितः ॥ ज्ञानवाप्याःशुभाख्यानंशिवलोकेमहीयते ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेज्ञानवापीप्रशंसनंनामचतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कुम्भयोनिरुवाच ॥ अविमुक्तंमहाक्षेत्रंपरंनिर्वाणकारणम् ॥ क्षेत्राणाम्परमंक्षेत्रंमङ्गलानाञ्चमङ्गलम् ॥ १ ॥ श्मशानानाञ्चसर्वेषांश्मशानम्परमंमहत् ॥ पीठानाम्परमम्पीठमूषराणांमहोषरम् ॥ २ ॥ धर्माभिलाषिबुद्धीनांधर्मराशिकरम्पर

तुस्त्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। पैंतिसयें अध्यायमें चारवर्ण आचार । और ब्रह्मचर्य्यादि इत आश्रम चार प्रकार ॥ अगस्त्यजी बोले, कि अविमुक्त याने काशीनामक महाक्षेत्र सबसे परेहै जोकि मोक्षका कारण क्षेत्रोंमें उत्तम क्षेत्र व मंगलों में मंगलरूप है ॥ १ ॥ व सब श्मशानों में श्रेष्ठ बड़ा श्मशान याने जिसमें आकाशादि पंचभूत भी लीन होते हैं व पीठों में परे पीठ ऊषरों में महाऊषर अर्थात् जिसमें कर्म बीज नहीं जगते हैं ॥ २ ॥ और हे मयूरवाहन! धर्मज्ञोंका धर्मसमूहके करनेवाला उत्तम व अर्थचाहियों के परमार्थ

का प्रकाशक है ॥ ३ ॥ व कामियों के वाञ्छित फलको उपजाता व मोक्षचाहियों का मुक्तिदाताहै जहां जहां यह सुना जाता है वहां वहां परामृत याने कैवल्यरूप है ॥ ४ ॥ हे पार्वती हृदयके आनन्ददायक! क्षेत्रके एक देशमें बर्तती हुई ज्ञानवापी की इस उत्तम कथाको सुनकर मैं ऐसा मानताहूं ॥ ५ ॥ कि अणुप्रमाण जैसेहो वैसे अर्थात् बहुत थोड़ी भी प्रकाशिनी जो भूमि काशी के मध्यमें होवे वह मुक्तिके लिये बड़ी भारी जानने योग्य है यह कभी या कहीं मिथ्या नहीं है ॥ ६ ॥ इस सम्पूर्ण भूतल में कितने तीर्थ नहीं हैं परन्तु काशीकी धूरिमात्रके साथ तौलनेकी समता उनमें भी कहांहै ॥ ७ ॥ व इस लोकमें समुद्रको आनन्द देनेवाली कितनी नदियां नहीं ब-

म् ॥ अर्थार्थिनांशिखिरथपरमार्थप्रकाशकम् ॥ ३ ॥ कामिनांकामजननंमुमुक्षूणाञ्चमोक्षदम् ॥ श्रूयतेयत्रयत्रैतत्तत्रतत्रपरामृतम् ॥ ४ ॥ क्षेत्रैकदेशवर्तिन्याज्ञानवाप्याःकथाम्पराम् ॥ श्रुत्वेमामितिमन्येहंगौरीहृदयनन्दन ॥ ५ ॥ अणुप्रमाणमपियामध्येकाशिविकाशिनी ॥ महीमहीयसीज्ञेयासासिद्ध्यैनमुधाक्वचित् ॥ ६ ॥ कियन्तिसन्तितीर्थानिनेहक्षोणीतलेऽखिले ॥ परंकाशीरजोमात्रतुलासाम्यंक्वतेष्वपि ॥ ७ ॥ कियन्त्योनस्रवन्त्योत्ररत्नाकरमुदावहाः ॥ परंस्वर्गतरङ्गिण्याःकाश्यांकासाम्यमुद्वहेत ॥ ८ ॥ कियन्तिसन्तिनोभूम्यांमोक्षक्षेत्राणिषण्मुख ॥ परंमन्येऽविमुक्तस्यकोट्यंशोपिनतेष्वहो ॥ ९ ॥ गङ्गाविश्वेश्वरःकाशीजागर्तित्रितयंयतः ॥ तत्रनैःश्रेयसीलक्ष्मीर्लभ्यतेचित्रमत्रकिम् ॥ १० ॥ कथमेषात्रयीस्कन्दप्राप्यतेनियतंनरैः ॥ तिष्येयुगेविशेषेणनितरांचञ्चलेन्द्रियैः ॥ ११ ॥ तपस्तादृक्क्वतिष्येतिष्ये

हती हैं परन्तु काशी में गंगाकी बराबरी को कौन पहुँचेगी अर्थात् कोई नहींहै ॥ ८ ॥ हे षण्मुख! पृथिवी में कितने मोक्षदायक क्षेत्र नहीं हैं याने अनेकहैं परन्तु उनमें भी काशीकी महिमाके करोड़ हिस्सों में एक अंश कहां है मैं ऐसा मानताहूं कि आश्चर्य्य है ॥ ९ ॥ जहां गंगा व विश्वनाथ और काशी ये तीनों जागते हैं वहां मुक्ति की सम्पत्ति मिलती है इसमें क्या अद्भुत है ॥ १० ॥ हे कार्त्तिकेयजी! कलियुगमें विशेष से बहुत चंचल इन्द्रियवाले मनुष्योंको यह त्रयी याने पूर्वोक्त तीनों का संग्रह अवश्य करके कैसे प्राप्त कियाजाता है ॥ ११ ॥ क्योंकि कलियुग में वैसा तप कहां व कलियुग में वैसा योग कहां व कलियुग में व्रत और दान कहां है इससे

मोक्ष किससे होवेहै ॥ १२ ॥ हे षण्मुख, कार्त्तिकेय! तप विना जप विना योग विना और दान विना भी आपने काशीमें मोक्षको कहाहै ॥ १३ ॥ हे स्कन्द! क्या क्या करतेहुये लोगोंको काशी मिलैहै उसको कहो मैं मानताहूं कि अच्छे आचार विना मनोरथ नहीं सिद्ध होवेहैं ॥ १४ ॥ इससे आचार उत्तम धर्महै व आचार उत्तम तपहै व आचारसे आयु बढती है और आचारसेही पापका नाश होताहै ॥ १५ ॥ हे षण्मुख! उस कारण मुख्य आचारकोही कहो कि श्रीमहादेवजीने आपके आगे जैसे कहाहै वैसेही आप कहो षण्मुख इस सम्बोधन से यह जाना जाताहै कि एक मुखवाला अन्य कैसे कहसक्ता है ॥ १६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मित्र और वरुण से

योगःक्वतादृशः ॥ क्वाव्रतंक्वादानन्तिष्येमोक्षस्त्वतःकुतः ॥ १२ ॥ विनापितपसास्कन्दविनायोगेनषण्मुख ॥ विनाव्रतैर्विनादानैःकाश्यांमोक्षस्त्वयेरितः ॥ १३ ॥ किंकिमाचरतास्कन्दकाशीप्राप्येततद्वद ॥ मन्येविनासदाचारंनासिद्ध्येयुर्मनोरथाः ॥ १४ ॥ आचारःपरमोधर्मआचारःपरमंतपः ॥ आचाराद्वर्धतेह्यायुराचारात्पापसंक्षयः ॥ १५ ॥ आचारमेवप्रथमंतस्मादाचक्ष्वषण्मुख ॥ देवदेवोयथाप्राहतवाग्रेत्वन्तथावद ॥ १६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मित्रावरुणजाख्यामिसदाचारंसतांहितम् ॥ यदाचरन्नरोनित्यंसर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ १७ ॥ स्थावराःकृमयोऽब्जाश्चपक्षिणःपशवोनराः ॥ क्रमेणधार्मिकास्त्वेतएतेभ्योधार्मिकाःसुराः ॥ १८ ॥ सहस्रभागःप्रथमाद्द्वितीयोनुक्रमात्तथा ॥ सर्वएतेमहाभागायावन्मुक्तिसमाश्रयाः ॥ १९ ॥ चतुर्णामपिभूतानांप्राणिनोऽतीवचोत्तमाः ॥ प्राणिभ्योपिमुनेश्रेष्ठाःसर्वेबुद्ध्युपजीविनः ॥ २० ॥ मति

उत्पन्न याने देवपुत्र होनेसे सुनने के अधिकारिन् अगस्त्य! मैं सन्तों के हितकारी शिष्टाचार को कहताहूं जिसको नित्य करता हुवा नर सब कामोंको पावेहै ॥ १७ ॥ स्थावर (वृक्षादि) कृमि (चींटी आदि जन्तु जिनके हाड़ नहीं होतेहैं) जलसे उत्पन्न (मछली आदि) व पक्षी पशु और मनुष्य ये सब क्रमसे एक एकसे अधिक धर्मात्मा हैं जैसे स्थावरों से अधिक कृमि व कृमियों से अधिक जलजन्तु ऐसे जानना चाहिये और देवता लोग इन सबोंसे अधिक धर्मज्ञ हैं ॥ १८ ॥ व पहले से दूसरा हजार गुण अधिक है वैसे अनुक्रम से जानना उचित है व मुक्तिपर्य्यन्त बराबर है संसाररूप आधार जिनका ऐसे ये सब महान् भाग्यवान् हैं ॥ १९ ॥ हे मुने! अंडज पिंडज स्वेदज उद्भिज्ज इन चार भांति के जन्तुवों के बीचमें भी श्वासवाले अत्यन्त उत्तम हैं और प्राणियों से भी वे सब श्रेष्ठ होते हैं जोकि ज्ञानपूर्वक

उपजीवी हैं याने हित अनहित को जानते हैं ॥ २० ॥ व बुद्धिमानों से मनुष्य व उनसे ब्राह्मण व ब्राह्मणों से भी विद्यावान् श्रेष्ठहै और यह योंही है इस भांतिकी बुद्धिको किया जिन्होंने वे उन विद्यावानों से श्रेष्ठ हैं ॥ २१ ॥ व कृतबुद्धियों से भी श्रेष्ठ कर्ता है और कर्ताओं से श्रेष्ठ वे हैं जे कि ब्रह्मनिष्ठहैं हे अगस्त्य ! तीनों लोकोंमें उनसे अधिक पूज्य अन्य नहीं है ॥ २२ ॥ वेभी तप और विद्याके अविशेष याने सामान्य से आपुस में एक एकके पूजक होतेहैं जिससे ब्रह्माने ब्राह्मण को सब भूतोंका स्वामी बनाया है ॥ २३ ॥ इससे जगत् में टिकी हुई सब वस्तुको ब्राह्मण योग्य होता है अन्य कोई नहीं व सदाचारवालाही सबके योग्यहै और आचार से हीन योग्य नहीं

मद्भयोनराःश्रेष्ठास्तेभ्यःश्रेष्ठास्तुवाडवाः ॥ विप्रेभ्योपिचविद्वांसोविद्वद्भ्यःकृतबुद्धयः ॥ २१ ॥ कृतधीभ्योपिकर्तारःकर्तृभ्योब्रह्मतत्पराः ॥ नतेषामर्चनीयोऽन्यस्त्रिषुलोकेषुकुम्भज ॥ २२ ॥ अन्योन्यमर्चकास्तेवैतपोविद्याऽविशेषतः ॥ ब्राह्मणोब्रह्मणासृष्टःसर्वभूतेश्वरोयतः ॥ २३ ॥ अतोजगत्स्थितंसर्वंब्राह्मणोऽर्हतिनापरः ॥ सदाचारोहिसर्वार्होनाचाराद्विच्युतःपुनः ॥ तस्माद्विप्रेणसततंभाव्यमाचारशीलिना ॥ २४ ॥ विद्वेषरागरहिताअनुतिष्ठन्तियंमुने ॥ विद्वांसस्तंसदाचारंधर्ममूलंविदुर्बुधाः ॥ २५ ॥ लक्षणैःपरिहीनोपिसम्यगाचारतत्परः ॥ श्रद्धालुरनसूयुश्चनरोजीवेत्समाःशतम् ॥ २६ ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंस्वेषुस्वेषुचकर्मसु ॥ सदाचारंनिषेवेतधर्ममूलमतन्द्रितः ॥ २७ ॥ दुराचाररतोलोकेगर्हणीयःपुमान्भवेत् ॥ व्याधिभिश्चाभिभूयेतसदाल्पायुःसुदुःखभाक् ॥ २८ ॥ त्याज्यंकर्मपराधीनंकार्यमात्मवशंसदा ॥ दुःखीय

है उससे ब्राह्मणका सदा आचार शीलवाला होना उचित है ॥ २४ ॥ हे मुने ! वैर और प्रीति से हीन, पंडितजन जिसको करते हैं उस सदाचार को ज्ञानी लोग धर्मकी जड़ कहते हैं ॥ २५ ॥ लक्षणों से रहित भी, भली भांति अचारमें तत्पर व श्रद्धावान् व अनसूय याने पराये गुणोंमें दोषको न लगाता हुवा मनुष्य सौ वर्षतक जीवैहै ॥ २६ ॥ व इससे आलस हीन होकर अपने अपने कर्म्मों में वेद व स्मृतियों से कहे हुये धर्ममूल सदाचार को सेवे ॥ २७ ॥ दुष्ट आचार में तत्पर पुरुष लोकमें सदा निन्दनीय व बहुत दुःखित होवे और रोगों से हारे है ॥ २८ ॥ व पराये अधीन जो कर्म है वह सदा तजने योग्य है और अपने अधीन जो कर्म्म है वह करने योग्यहै

जिससे अन्यके अधीन पुरुष सदैव दुखी है व अपने वश हुवा सदैव सुखी होवे है ॥ २९ ॥ व किये जाते हुये जिस कर्म्म मे भीतरका आत्मा प्रसन्न होताहै वही कर्म्म करना चाहिये उससे उलटा कहीं नहीं ॥ ३० ॥ जिससे पहले नियम और यम धर्म के सर्वस्व कहगये हैं इससे धर्म चाही करके उनमेंही यत्न भी करने योग्यहै ॥ ३१ ॥ सत्य वचन क्षमा सीधापन ध्यान अक्रूरता या अमारकता प्राणीमात्रको पीड़ा न देना इन्द्रियों का रोंकना प्रसन्नता मधुरता और कोमलता ये दश यमहैं ॥ ३२ ॥ माटी व जलसे बाहेरका तथा भावसे भीतरका शौच, स्नान तप (कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत) दान मौन (वृथा न वतलाना) पञ्चयज्ञादि करना वेद पाठ व्रत (चातुर्मास्यादि)

तःपराधीनःसदैवात्मवशःसुखी ॥ २९ ॥ यस्मिन्कर्मण्यन्तरात्माक्रियमाणेप्रसीदति ॥ तदेवकर्मकर्तव्यंविपरीतंनच क्वचित् ॥ ३० ॥ प्रथमंधर्मसर्वस्वंप्रोक्तायन्नियमायमाः ॥ अतस्तेष्वेववैयत्नःकर्तव्योधर्ममिच्छता ॥ ३१ ॥ सत्यंक्षमा र्जवन्ध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् ॥ दमःप्रसादोमाधुर्यंमृदुतेतियमादश ॥ ३२ ॥ शौचंस्नानन्तपोदानंमौनेज्याध्यय नंव्रतम् ॥ उपोषणोपस्थदण्डौदशैतेनियमाःस्मृताः॥३३॥कामंक्रोधंमदंमोहंमात्सर्यंलोभमेवच ॥ अमून्षड्वैरिणोजि त्वासर्वत्रविजयीभवेत् ॥३४॥शनैःशनैःसञ्चिनुयाद्धर्मंवल्मीकशृङ्गवत्॥परपीडामकुर्वाणःपरलोकसहायिनम् ॥ ३५ ॥ धर्मएवसहायीस्यादमुत्रनपरिच्छदः ॥ पितृमातृसुतभ्रातृयोषिद्बन्धुजनादिकः ॥ ३६ ॥ जायतेचैकलःप्राणीप्रम्रियेत तथैकलः ॥ एकलःसुकृतम्भुङ्क्तेभुङ्क्तेदुष्कृतमेकलः ॥३७॥ देहंपञ्चत्वमापन्नन्त्यक्त्वाकाष्ठलोष्टवत् ॥ बान्धवाविमुखाया

उपास (एकादशी आदि) लिंग इन्द्रियको दण्ड देना याने पर स्त्रीसे विमुख होना ये दश नियम कहेगयेहैं ॥ ३३ ॥ व काम कोह मद मोह मत्सरता (ईर्ष्या) और लोभ भी इन छः शत्रुवों को जीतकर सब ओरमें विजयी होवे ॥ ३४ ॥ व तन मन और वचन से पर पीड़ाको न करता हुआ मनुष्य बिमौरकूट की नाईं याने जैसे बिमौरके कीट क्रमसे उसको बढ़ाते हैं वैसे परलोकसहायक धर्म्मको धीरे धीरे बटोरे ॥ ३५ ॥ क्योंकि धर्महीं उस लोकमें सहायक होवे है पिता माता पुत्र भ्राता स्त्री मित्रजनादि हाथी घोड़े और मंदिरादि सामग्री नहीं ॥ ३६ ॥ किंतु अकेला प्राणी उपजताहै तथा अकेला मरता है अकेला पुण्य को भोगताहै व अकेला पापको भोगता है ॥ ३७ ॥ देखो कि पञ्चत्व याने पांच तत्त्वों के भावको प्राप्तभई देह को काठ व लुकेठ की नाईं भूमि में तजकर बांधव लोग विमुख होजाते है और धर्म्महीं जातेहुये जनके

पीछे जावे है ॥ ३८ ॥ उस कारण पुण्यवान् या सुकर्मी लोग उस लोकमें सहायक धर्मको बटोरे व धर्मको सहायक पाकर दुस्तर दुःख या, संसार अज्ञान अन्धकार
को भलीभांति तरे ॥ ३९ ॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य उत्तम उत्तम लोगों के साथ सम्बन्ध को नित्यही करे व अधम अधम जनोंको तजकर कुलको बड़ाई के प्रति प-
हुँचावे ॥ ४० ॥ उत्तम उत्तम लोगों के पास जाता व नीचों को बराता हुवा ब्राह्मणश्रेष्ठता को प्राप्त होता है और नीचों के साथ सम्बन्धादि करने से उपजेहुये पाप से
शूद्र के भावको जाता है ॥ ४१ ॥ व न पठनशील व सदाचारहीन व आलसी और दुष्टअन्न खानेवाले ब्राह्मण को काल बांधताहै ॥ ४२ ॥ उस कारण ब्राह्मण यत्न से

न्तिधर्मोयान्तमनुव्रजेत् ॥३८॥कृतीसञ्चिनुयाद्धर्मंततोऽमुत्रसहायिनम् ॥ धर्मंसहायिनंलब्ध्वासन्तरेद्दुस्तरन्तमः॥३९॥
सम्बन्धानाचरेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैःसुधीः ॥ अधमानधमांस्त्यक्त्वाकुलमुत्कर्षतांनयेत् ॥ ४० ॥ उत्तमानुत्तमानेवगच्छ
न्हीनांश्चवर्जयन् ॥ ब्राह्मणःश्रेष्ठतामेतिप्रत्यवायेनशूद्रताम् ॥ ४१ ॥ अनध्ययनशीलञ्चसदाचारविलङ्घिनम् ॥ साल
सञ्चदुरन्नादंब्राह्मणम्बाधतेऽन्तकः ॥ ४२ ॥ ततोऽभ्यसेत्प्रयत्नेनसदाचारंसदाद्विजः ॥ तीर्थान्यप्यभिलष्यन्तिसदाचारि
समागमम् ॥ ४३ ॥ रजनीप्रान्तयामार्धंब्राह्मःसमयउच्यते ॥ स्वहितञ्चिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिंश्चोत्थायसर्वदा ॥ ४४ ॥ ग
जास्यंसंस्मरेदादौततईशंसहाम्बया ॥ श्रीरङ्गंश्रीसमेतन्तुब्रह्माणयाकमलोद्भवम् ॥ ४५ ॥ इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसि
ष्ठादीन्मुनीनपि ॥ गङ्गाद्याःसरितःसर्वाःश्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन् ॥ ४६ ॥ क्षीरोदादीन्समुद्रांश्चमानसादिसरांसिच ॥ व
नानिनन्दनादीनिधेनूःकामदुघादिकाः ॥ ४७ ॥ कल्पवृक्षादिवृक्षांश्चधातून्काञ्चनमुख्यतः ॥ दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याग

सदा अच्छे आचरण को अभ्यास करे क्योंकि तीर्थभी सदाचारी की संगति चाहते हैं ॥ ४३ ॥ और राति के पीछे पहरका आधा याने चारदण्ड समय ब्राह्ममुहूर्त
कहाता है उसमें उठाकर बुद्धिमान् मनुष्य सदैव अपने हितका उपाय विचारे ॥ ४४ ॥ पहले श्रीगणेश जी को सुमिरे तदनन्तर पार्वती के साथ शिव व लक्ष्मी समेत
श्रीरंगनाथ विष्णु सरस्वती सहित ब्रह्मा ॥ ४५ ॥ व इन्द्रादि सब देव वशिष्ठादि मुनि गङ्गादि सब नदी श्रीशैलादि सब पर्वत ॥ ४६ ॥ व क्षीरसागरादि समुद्र मानस

आदि तड़ाग नन्दनादि वन व कामधेनु आदि गौवें ॥ ४७ ॥ व कल्पवृक्ष सुवर्णादि धातु उर्वशीआदि अप्सरायें गरुड़ादि पक्षी ॥ ४८ ॥ व शेषादि नाग ऐरावतादि हाथी उच्चैःश्रवाआदि घोड़े कौस्तुभादि शुभमणि ॥ ४९ ॥ व अरुंधती आदि पतिव्रता स्त्री नैमिषारण्यादि वन और काशीआदि पुरी इन सबको भलीभांति सुमिरे ॥ ५० ॥ व विश्वेश्वरादि लिंग ऋग्वेदादि वेद भी व गायत्री आदि मन्त्र व सनकादि योगी ॥ ५१ ॥ व ओंकारादि महाबीज नारदादि वैष्णव बाणासुरादि शिवभक्त व प्रह्लादादि दृढ़व्रत वाले ॥ ५२ ॥ व दधीचि आदि बड़ेदानी हरिश्चन्द्रादि राजा और सब तीर्थों से अत्यन्त उत्तम माता के पांवों को सुमिरकर ॥ ५३ ॥ फिर पिता व

रुडादीन्पतत्रिणः ॥ ४८ ॥ नागांश्चशेषप्रमुखान्गजानैरावतादिकान् ॥ अश्वानुच्चैःश्रवोमुख्यान्कौस्तुभादीन्मणीञ्छुभान् ॥ ४९ ॥ स्मरेदरुन्धतीमुख्याःपतिव्रतवतीर्वधूः ॥ नैमिषादीन्यरण्यानिपुरीःकाशीपुरीमुखाः ॥ ५० ॥ विश्वेशादीनिलिङ्गानिवेदानृक्प्रमुखानपि ॥ गायत्रीप्रमुखान्मन्त्रान्योगिनःसनकादिकान् ॥ ५१ ॥ प्रणवादिमहाबीजंनारदादींश्चवैष्णवान् ॥ शिवभक्तांश्चबाणादीन्प्रह्लादादीन्दृढव्रतान् ॥ ५२ ॥ वदान्यांश्चदधीच्यादीन्हरिश्चन्द्रादिभूपतीन् ॥ जननीचरणौस्मृत्वासर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ॥ ५३ ॥ पितरञ्चगुरूंश्चापिहृदिध्यात्वाप्रसन्नधीः ॥ ततश्चावश्यकंकर्तुंनैर्ऋतींदिशमाश्रयेत ॥ ५४ ॥ ग्रामाद्धनुःशतञ्गच्छेन्नगराच्चचतुर्गुणम् ॥ तृणैराच्छाद्यवसुधांशिरःप्रावृत्यवाससा ॥ ५५ ॥ कर्णोपवीत्युदग्वक्त्रोदिवसेसन्ध्ययोरपि ॥ विण्मूत्रेविसृजेन्मौनीनिशायान्दक्षिणामुखः ॥ ५६ ॥ नतिष्ठन्नाप्सुनोविप्रगोवह्न्यनिलसम्मुखः ॥ नफालकृष्टेभूभागेनरथ्यासेव्यभूतले ॥ ५७ ॥ नालोकयेद्दिशोभागाञ्ज्योतिश्चक्रंनभोमलम् ॥ वा

गुरुओं को हृदय में ध्यानधर प्रसन्न चित्त होकर तदनन्तर आवश्यक कर्म करने के लिये नैर्ऋत्य दिशाको रोवे ॥ ५४ ॥ ग्रामसे चारसौ हाथ और नगर से चौगुन याने सोलहसौ हाथ बाहेर निकलजावे तब भूमिको खरसमूह मे ढांपकर वस्त्र से शिरको घेरकर ॥ ५५ ॥ व कानमें यज्ञोपवीत वाला उत्तर मुख बैठा हुआ मौनधारी मनुष्य दिन और दोनों सन्ध्याओ मे भी विष्ठा व मूत्र को तजे तथा रातमें दक्षिण मुख होवे ॥ ५६ ॥ ब्राह्मण गऊ आग और वायुके सम्मुख बैठा नहीं खड़ाहुवा नहीं जल व जोतेखेत में नहीं और गली व सेवने योग्य भूतल में विष्ठा तथा मूत्रको न तजे ॥ ५७ ॥ दिशाके भाग नक्षत्र समूह और निर्मल आकाश को न देखे बायें

हाथ से लिंगको धरकर बड़े यत्नवाला नर उठे ॥ ५८ ॥ अनन्तर मूसकी खनी शौचसे बची व निउ से हुई माटीको छोड़कर जन्तु व कङ्कर से हीन माटीकोलेवे॥ ५९ ॥ लिङ्गमें एक माटी व गुदा में बीच बीच पानीसे अन्तरवाली पांच व बायें हाथ में भी दश और दोनों हाथों में सात माटी देवे ॥ ६० ॥ व दोनों पॉवों में एक एक व दोनों हाथों में तीनमाटी देवे इसभांति गृहस्थजन दुर्गंध के नाशतक शौचको करे ॥ ६१ ॥ व ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासी इन तीनों में क्रम से इस से दूना चौगुना और अठगुना शौच होता है दिनमें उचित शौचका आधा रातमें करे ॥ ६२ ॥ रोग में आधा व उसका आधा अर्थात् चौथाई शौच चोरआदिकी

मेनपाणिनाशिश्नन्धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ॥ ५८ ॥ अथोमृदंसमादायजन्तुकर्करवर्जिताम् ॥ विहायमूषकोत्खातांशौचो च्छिष्टाञ्चनाकुलाम् ॥ ५९ ॥ गुह्येदद्यान्मृदञ्चैकाम्पायौपञ्चाम्बुसान्तराः॥दशवामकरेचापिसप्तपाण्योर्द्वयेमृदः॥६०॥ एकैकाम्पादयोर्दद्यात्तिस्रःपाण्योर्मृदस्तथा ॥ इत्थंशौचंगृहीकुर्याद्गन्धलेपक्षयावधि ॥ ६१ ॥ क्रमाद्द्वैगुण्यमेतस्माद्ब्र ह्मचर्यादिषुत्रिषु ॥ दिवाविहितशौचस्यरात्रावर्धंसमाचरेत् ॥ ६२ ॥ रुज्यर्धञ्चतदर्धञ्चपथिचौरादिबाधिते ॥ तदर्धंयो षिताञ्चापिसुस्थेन्यूनंनकारयेत् ॥ ६३ ॥ अपिसर्वनदीतोयैर्मृत्कूटैश्चापिगोमयैः ॥ आपादमाचरञ्छौचंभावदुष्टोनशु द्धिभाक् ॥ ६४ ॥ आर्द्रधात्रीफलोन्मानामृदःशौचेप्रकीर्तिताः ॥ सर्वाश्चाहुतयोप्येवग्रासाश्चान्द्रायणेपिच ॥ ६५ ॥ प्रा गास्यउदगास्योवासूपविष्टःशुचौभुवि ॥ उपस्पृशेद्विहीनायान्तुषाङ्गारास्थिभस्मभिः ॥ ६६ ॥ अनुष्णाभिरफेनाभिर

बाधावाली गली में करे और उसका आधा स्त्रियों के लिये कहा गयाहै किन्तु स्वस्थ चित्त में कम न करावे ॥ ६३ ॥ संभावना कीजाती है कि सब नदियों के पानी माटी के टीले और गोबर समूह से भी मूड से पांव पर्यंत शौचको करता हुवा दोषयुत अन्तःकरणवाला शुद्धिका भागी नहीं है ॥ ६४ ॥ शौचमें माटी व होम में सब आहुतियां और चान्द्रायण व्रतमें कौलमी तौल से ओदे औंराफल के बराबर कहेगये हैं ॥ ६५ ॥ भूसी अंगार हाड़ और राख से रहित पवित्र भूमि में पूर्वमुख व उत्तर मुख होकर नीके बैठाहुवा पानीको परसे ॥ ६६ ॥ व स्वस्थचित्त वेगवर्जित ब्राह्मण, शीतल व फेनाहीन व दृष्टि से पवित्र व हृदय के जातेहुये

जलसे ब्रह्मतीर्थ याने अंगुष्ठ मूल में धर पान करके आचमन करे ॥ ६७ ॥ व गले तक गये पानी से क्षत्रिय तथा तालूतक गये से वैश्य शुद्ध होवे व स्त्री और शूद्र मुख में पानी परसने मात्र सेही शुद्ध होते हैं ॥ ६८ ॥ मस्तक व कण्ठ में वस्त्रबांधे व चोटी छोड़े व दोनों पावँ न धोये और जलमें आचमन किये हुवा भी जन अशुद्धही माना गया है ॥ ६९ ॥ इस से शुद्ध होने के अर्थ तीनबार पानीकोपीकर तदनन्तर इन्द्रियों को जल से विशेष शुद्धकरे उसकी विधि कहते हैं कि अंगुठा के मूल भाग से दो दो बार दोनो ओठोंको परसे ॥ ७० ॥ फिर सुबुद्धिमान् पीछे से तीनि अंगुलियों करके मुखको छूवे व तर्जनी याने अंगुठाके लगेकी अंगुली

द्विर्हृद्गाभिरत्वरः ॥ ब्राह्मणोब्राह्मतीर्थेनदृष्टिपूताभिराचमेत् ॥ ६७ ॥ कण्ठगाभिर्नृपःशुद्ध्येत्तालुगाभिस्तथोरुजः ॥ स्त्रीशूद्रावास्यसंस्पर्शमात्रेणापिविशुद्ध्यतः ॥ ६८ ॥ शिरःप्रावृत्यकण्ठंवाजलेमुक्तशिखोऽपिच ॥ अक्षालितपदद्वन्द्वआचान्तोप्यशुचिर्मतः ॥ ६९ ॥ त्रिःपीत्वाम्बुविशुद्ध्यर्थन्ततःखानिविशोधयेत् ॥ अंगुष्ठमूलदेशेनद्विर्द्विरोष्ठाधरौस्पृशेत् ॥ ७० ॥ अंगुलीभिस्त्रिभिःपश्चात्पुनरास्यंस्पृशेत्सुधीः ॥ तर्जन्यंगुष्ठकोट्याचघ्राणरन्ध्रेपुनःपुनः ॥ ७१ ॥ अंगुष्ठानामिकाग्राभ्यांचक्षुःश्रोत्रेपुनःपुनः ॥ कनिष्ठांगुष्ठयोगेननाभिरन्ध्रमुपस्पृशेत् ॥ ७२ ॥ स्पृष्ट्वातलेनहृदयंसमस्ताभिःशिरःस्पृशेत् ॥ अंगुल्यग्रैस्तथास्कन्धौसाम्बुसर्वत्रसंस्पृशेत् ॥ ७३ ॥ आचान्तःपुनराचामेत्कृतेरथ्योपसर्पणे ॥ स्नात्वाभुक्त्वापयःपीत्वाप्रारम्भेशुभकर्मणाम् ॥ ७४ ॥ सुप्त्वावासःपरीधायतथादृष्ट्वाप्यमङ्गलम् ॥ प्रमादादशुचिंस्पृष्ट्वा

और अंगुठा के आगे से नाक के दोनों बिलोंको बार बार विशोधन करे ॥ ७१ ॥ व अंगुठा और अनामिका के अग्रों से आंखो और कानो को वैसेही छगुनियां व अंगुठा के योगसे तोंदी को बार बार धोवे ॥ ७२ ॥ व हाथकी गदोरी से हृदय को परसकर सब अंगुलियों से मस्तक के और अंगुलियों के आगे से कांधों को पानी समेत जैसेहो वैसे सबओर भलीभांति परसे ॥ ७३ ॥ व आचमन किये हुवा भी गली चलने से फिर अचवे क्योंकि नहाकर खाकर दूध पीकर व शुभ कर्मो के प्रारम्भ याने लगालगाने मे आचमन कियेहुवा भी फिर आचमन करे ॥ ७४ ॥ व शयन कर कपड़े पहिनकर व अमंगल को देखकर तथा अशुद्ध को छूकर दुबारा

आचमन करता हुआ पवित्र होवे है ॥ ७५ ॥ उसकेबाद मुख शोधने के लिये दतून को गहे जिससे अँचयेहुवा भी दतून को न कर अपवित्रही होता है ॥ ७६ ॥ परीवा अमावस छठ नवमी और सूर्य्यवार में दांतों व काठका संयोग सात कुलतक जलावे है ॥ ७७ ॥ इससे दतून के न मिलने व वर्जित तिथि और दिनमें मुख की शुद्धिके लिये बारह कुल्ले गहने योग्यहैं ॥७८ ॥ वा छगुनियासे मोटी व त्वचा समेत निश्छिद्र कोमल या सीधी और सादे बारह अंगुलकी लम्बी दतून होवेहै ॥ ७९ ॥ व एक एक अंगुल कम करने से क्षत्रियादि अन्य वर्णों में दंतकाठ कहागयाहै आंब अंबार और औंराकी व कंकोल और खैरसे हुई ॥ ८० ॥ व छीगुरि लटजीरा खजूर

द्विराचान्तःशुचिर्भवेत् ॥ ७५ ॥ अथोमुखविशुद्ध्यर्थंगृह्णीयाद्दन्तधावनम् ॥ आचान्तोप्यशुचिर्यस्मादकृत्वादन्तधावनम् ॥ ७६ ॥ प्रतिपद्दर्शषष्ठीषुनवम्यांरविवासरे ॥ दन्तानांकाष्ठसंयोगोदहेदासप्तमंकुलम् ॥ ७७ ॥ अलाभेदन्तकाष्ठानांनिषिद्धेवाथवासरे ॥ गण्डूषाद्वादशग्राह्यामुखस्यपरिशुद्धये ॥ ७८ ॥ कनिष्ठाग्रपरीमाणंसत्वचंनिर्व्रणंऋजुम् ॥ द्वादशांगुलमानञ्चसार्धंस्याद्दन्तधावनम् ॥ ७९ ॥ एकैकांगुलह्रासेनवर्णेष्वन्येषुकीर्तितम् ॥ आम्राम्रातकधात्रीणांकङ्कोलखदिरोद्भवम ॥ ८० ॥ शम्यपामार्गखर्जूरीशेलुश्रीपर्णिपीलुजम् ॥ राजादनञ्चनारङ्गंकषायकटुकण्टकम् ॥ ८१ ॥ चीरवृक्षोद्भवंवापिप्रशस्तंदन्तधावनम् ॥ जिह्वोल्लेखनिकांचापिकुर्याच्चापाकृतिंशुभाम् ॥ ८२ ॥ अन्नाद्यायव्यूहध्वंसोमोराजायमागमत् ॥ समेमुखम्प्रमाक्ष्र्यतेयशसाचभगेनच ॥ ८३ ॥ आयुर्बलंयशोवर्चःप्रजाःपशुवसूनिच ॥ ब्रह्मप्रज्ञाञ्चमेधाञ्चत्वन्नोदेहिवनस्पते ॥ ८४ ॥ मन्त्रावेतौसमुच्चार्ययःकुर्याद्दन्तधावनम् ॥ वनस्पतिगतःसोमस्तस्यनित्यम्प्रसी

या छुहारा लसोढ़ा कायफर चिरौंजी व पिलुवासे हुई व नारंगी बाकठ व कोमल कटीले ॥ ८१ ॥ और दुधारे वृक्षोंकी भी दतून उत्तम है उसके बाद जीभ शोधने के लिये धन्वा के आकारकी शुभ जीभीको भी बनावे ॥ ८२ ॥ हे दन्तो ! तुम अन्न खाने के लिये निर्मल या दृढ़ होवो जिससे वनस्पति के प्रति या काठरूप यह चन्द्र राजा आयाहै वह मेरे मुखको सुयश और भाग्य से शोधेगा ॥ ८३ ॥ हे वनस्पते ! तुम हमको आयु बल सुयश तेज पुत्रादि पशु धन ब्रह्मज्ञान और धारणाशक्ति

कोदो ॥ ८४ ॥ इन दोनों मन्त्रों को कहकर जो दन्तधावनको करे उससे वनस्पति में प्राप्त चन्द्रमा सदा प्रसन्नहोवैहै ॥ ८५ ॥ जिससे मनुष्य मुखके बासी होतेही अपवित्रहोवै है उसकारण शुद्धि के लिये प्रयत्नसे दतूनको करे ॥ ८६ ॥ व बारह कुल्ले करके दन्तों का धोवना अंजन सुगन्ध गहने सुवस्त्र व फूलोंकी माला और अनुलेपन ये सब उपवास में भी नहीं दूषित होते हैं ॥ ८७ ॥ तब प्रातःकाल विशेष से शुद्ध तीर्थ में स्नानकर दन्तधावनपूर्वक प्रातःसंध्या करे ॥ ८८ ॥ जिससे नासा कान आंखें मुख लिंग और गुदा इन नव छेदों से छिद्रित सदा मलिन जो यह देह रातोदिन झिरती है उससे वह प्रातः स्नान से शुद्ध होवै है ॥ ८९ ॥ इससे उत्साह सुबुद्धि

दति ॥ ८५ ॥ मुखेपर्युषितेयस्माद्भवेदशुचिभाग्नरः ॥ ततःकुर्यात्प्रयत्नेनशुद्ध्यर्थंदन्तधावनम् ॥ ८६ ॥ उपवासेपिनोदुष्येद्दन्तधावनमञ्जनम् ॥ गन्धालङ्कारसद्वस्त्रपुष्पमालानुलेपनम् ॥ ८७ ॥ प्रातःसन्ध्यान्ततःकुर्याद्दन्तधावनपूर्विकाम् ॥ प्रातःस्नानञ्चरित्वाचशुद्धेतीर्थेविशेषतः ॥ ८८ ॥ प्रातःस्नानाद्यतःशुद्ध्येत्कायोयंमलिनःसदा ॥ छिद्रितोनवभिश्छिद्रैःस्रवत्येवदिवानिशम् ॥ ८९ ॥ उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्त्तकम् ॥ मनःप्रसन्नताहेतुःप्रातःस्नानम्प्रशस्यते ॥ ९० ॥ प्रस्वेदलालाद्याक्लिन्नोनिद्राधीनोयतोनरः ॥ प्रातःस्नानात्ततोर्हःस्यान्मन्त्रस्तोत्रजपादिषु ॥ ९१ ॥ प्रातःप्रातस्तुयत्स्नानंसञ्जातेचारुणोदये ॥ प्राजापत्यसमम्प्राहुस्तन्महाघविघातकृत् ॥ ९२ ॥ प्रातःस्नानंहरेत्पापमलक्ष्मींग्लानिमेवच ॥ अशुचित्वञ्चदुःस्वप्नंतुष्टिम्पुष्टिम्प्रयच्छति ॥ ९३ ॥ नोपसर्पन्तिवैदुष्टाःप्रातःस्नायिजनंक्वचित् ॥ दृष्टादृष्टफलंयस्मात्प्रातःस्नानंसमाचरेत् ॥ ९४ ॥ प्रसङ्गतःस्नानविधिंवक्ष्यामिकलशोद्भव ॥ विधिस्नानंयतःप्राहुःस्नाना

सौभाग्य रूप सम्पत्ति और शोभाका दाता व मनकी प्रसन्नताका कारण प्रातःकालमें नहाना प्रशंसा जाताहै ॥ ९० ॥ व जिससे नींदके वश मनुष्य पसीना व लार आदि से भीगाहुवा होताहै उस कारण प्रातः स्नान से मंत्र स्तोत्र और जपादिकों में योग्य होवै है ॥ ९१ ॥ अरुणोदयके होतेही याने चारदण्ड रात रहजाने पर प्रातःकाल प्रातःकालमें जो स्नान है उसको प्राजापत्य व्रतके समान महापापनाशक कहते हैं ॥९२॥ व प्रातः स्नान पाप दरिद्र ग्लानि अशुद्धता और दुष्ट स्वप्नको हरताहै तथा संतुष्टि व पुष्टिको देताहै ॥ ९३ ॥ व दुष्ट भी कहीं प्रातःकाल नहातेहुये जनके समीप नहीं जातेहैं और जिससे देखा व देखाहुवा भी फल होताहै उस प्रातःस्नान को करे ॥ ९४ ॥

को छिड़के उन सब मन्त्रोंको क्रमसे लिखताहूं जे कि मूलमें प्रतीकमात्रसे कहेगये हैं (इमंमेवरुणश्रुधीहवामद्याचमृडय ॥ त्वामस्युराचके १ तत्त्वायामिब्रह्मणावन्दमान स्तदाशास्तेयजमानोहविर्भिः ॥ अहेडमानोवरुणेहबोध्युरुशठंसमानआयुः प्रमोषीः २ त्वन्नोअग्नेवरुणस्यविद्वान्देवस्यहेडोअवयासिसीष्ठाः ॥ यजिष्ठोवह्नितमःशोशुचानोवि श्वाद्वेषाठंसिप्रमुमुग्ध्यस्मत् ३ सत्वंनोअग्नेवमोभवोतीनेदिष्ठोअस्याउषसोव्युष्टौ ॥ अवयक्ष्वनोवरुणठंरराणोवीहिमृडीकठंसुहवोनराधि ४ उदुत्तमंवरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमठंश्लथाय ॥ अथावयमादित्यव्रतेतवानागसोअदितयेस्याम ५ ॥ २ ॥ धाम्नोधाम्नोराजंस्ततोवरुणनोमुञ्च ६ मापोमौषधीर्हिंसीः ७ यदाहुरघ्न्यावरुणेतिशपामहेततो वरुणनोमुञ्च ८ मुञ्चन्तुमाशपथ्यादथोवरुण्यादुत अथोयमस्यपड्वीशात्सर्वस्माद्देवकिल्बिषात् ९ अवभृथनिचुंपुणनिचेरुरसिनिचुंपुणः ॥ अवदेवैर्देवकृतमेनोयासिषमवमर्त्यै र्मर्त्यकृतंपुरुराव्णोदेवरिषस्पाहि १०) इन मंत्रोंको भलीभांति से जपे ॥ ३ ॥ जल देवतावाले ये मंत्र अपने अभिषेक करनेमे कहे गयेहैं उसके बाद ॐकार और भूः भुवः

सत्वंनश्चाप्युदुत्तमम् ॥ २ ॥ धाम्नोधाम्नस्तथामापोमौषधीरितिसंजपेत् ॥ यदाहुरघ्न्यामुञ्चन्तुमेतिचावभृथेतिच ॥ ३ ॥
अब्दैवताइमेमन्त्राःप्रोक्ताःस्वात्माभिषेचने ॥ प्रणवेनततोविप्रोमहाव्याहृतिभिस्ततः ॥ ४ ॥ आत्मानम्पावयेद्विद्वान्गा
यत्र्याचततःकृती ॥ आपोहिष्ठेतितिसृभिःप्रत्यृचंपावनंस्मृतम् ॥ ५ ॥ एतेपिपावनामन्त्राइदमापोहविष्मतीः ॥ देवीरा

स्वः इन तीनों महाव्याहृतियोंसे ब्राह्मण ॥ ४ ॥ जोकि पंडित व पुण्यवान् या चतुरहो वह अपनाको पवित्रकरे तदनन्तर गायत्री याने (तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गोदेवस्यधीमहि ॥ धियोयोनः प्रचोदयात्) इस मंत्र से भी और (आपोहिष्ठामयोभुवस्तानऊर्ज्जेदधातन ॥ महेरणायचक्षसे १ योवःशिवतमोरसस्तस्यभाजयतेहनः ॥ उशतीरिवमातरः २ तस्माअरङ्गमामवोयस्यक्षयायजिन्वथ ॥ आपोजनयथाचनः ३) इन तीन ऋचाओं से ऋचा ऋचाके प्रति पवित्रता कही गईहै ॥ ५ ॥ व आगे कहे जातेहुये जे ये मंत्रभी पवित्रता करनेवाले हैं उनको क्रमसे लिखताहूं (इदमापःप्रवहतावद्यंचमलंचयत् ॥ यच्चाभिदुद्रोहानृतंयच्चशेपेअभीरुणम् ॥ आपोमातस्मादेनसःपवमानश्चमुञ्चतु १ हवि ष्मतीरिमाआपोहविष्माँआविवासति ॥ हविष्मान्देवोअध्वरोहविष्माँअस्तुसूर्य्यः २ देवीरापोऽपान्नपाद्योवऊर्मिर्हविष्यः ॥ इन्द्रियावान्मदिन्तमः ३ अपोदेवामधुमतीरगृभ्णन्नू र्ज्जस्वतीराजस्वश्चितानाः ॥ याभिर्मित्रावरुणावभ्यषिञ्चन्याभिरिन्द्रमनयन्नत्यरातीः ४ द्रुपदादिवमुमुचानः स्विन्नःस्नातोमलादिव ॥ पूतंपवित्रेणेवाज्यमापःशुन्धन्तुमैनसः ५ शन्नोदेवीरभिष्टयआपोभवन्तुपीतये ॥ शंयोरभिस्रवन्तुनः ६ अपोदेवीरुपसृजमधुमतीरयक्ष्मायप्रजाभ्यः ॥ तासामास्थानादुज्जिहतामोषधयःसुपिप्पलाः ७ अपाठंरसउद्वयस

हे अगस्त्य ! प्रसंग से स्नानका विधान कहूंगा जिससे विधिपूर्वक नहानेको सामान्य स्नान से सैकड़ों गुण अधिक कहते हैं ॥ ९५ ॥ कि शुद्ध माटी कुश तिल और गोबर लेकर पवित्र देशमें धर आचमनकर स्नानको करे ॥ ९६ ॥ कुश लिये व चोटी बन्धन किये हुवा मनुष्य (उरु ॐ हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्था मन्वेतवाउ ॥ अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुताय वक्ता हृदयाविधश्चित् नमो वरुणायाभिष्ठितो वरुणस्य पाशः) इस मन्त्रकरके दक्षिणमार्ग से जलको आवर्त्तनकर पानीके भीतर भलीभांतिसे पैठे ॥ ९७ ॥ तदनन्तर जलको सम्मुखकरनेके लिये (येते शतं वरुणसहस्रं यज्ञियाः पाशा वितता महान्तः ॥ तेभिर्नोवसवितोतविष्णुर्विश्वेमुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः) इसमन्त्रको जपकर पहले (सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु) इस मन्त्रसे जलकी अंजलीकर फिर (दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं

च्छतगुणोत्तरम् ॥ ९५ ॥ विशुद्धांमृदमादायबर्हींषितिलगोमयम् ॥ शुचौदेशेपरिस्थाप्यत्वाचम्यस्नानमाचरेत् ॥ ९६ ॥ उपग्रहीबद्धशिखोजलमध्येसमाविशेत् ॥ उरुंॐहीतिमन्त्रेणतोयमावर्त्यसुस्थितः ॥ ९७ ॥ येतेशतन्ततोजप्त्वातोयस्यामन्त्रणायच ॥ सुमित्रियानोमन्त्रेणपूर्वंकृत्वाजलाञ्जलिम् ॥ क्षिपेद्द्वेष्यंसमुद्दिश्यजपन्दुर्मित्रियाइति ॥ ९८ ॥ इदंविष्णुरिमञ्जप्त्वालिम्पेदङ्गानिमृत्स्नया ॥ मृदैकयाशिरःक्षाल्यद्वाभ्यांनाभेस्तथोपरि ॥ ९९ ॥ नाभेरधस्तुतिसृभिःपादौषड्भिर्विशोधयेत् ॥ मज्जेत्प्रवाहाभिमुखआपोअस्मानिमंजपन् ॥ १०० ॥ उदिदाभ्यःशुचिरितिमन्त्रउन्मज्जनेमतः ॥ मानस्तोकइमंजप्त्वालिम्पेद्गात्राणिगोमयैः ॥ १ ॥ इमम्मेवरुणेत्यादिमन्त्रैःस्वात्माभिषेचनम् ॥ तत्त्वायामितथात्वन्नः

द्विष्मः) इस मन्त्रको जपताहुवा वैरीको उद्देशकर पानीको उछाड़े ॥ ९८ ॥ और (इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् ॥ समूढमस्यपांॐसुरे) इस मन्त्र से अंगों में माटी लगावे एक माटीसे शिरको शोधे व दोसे नाभि के ऊपर ॥ ९९ ॥ व तीन से नाभि के नीचे और छः बार माटी लगाने से दोनो पावो को शुद्धकरे तब (आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नः घृतप्वः पुनन्तु ॥ विश्वं हिरिप्रं प्रवहन्ति देवीः) इस मन्त्रको जपताहुवा प्रवाहके सम्मुखहोकर पानीमे डुबकी लगावे ॥ १०० ॥ व (उदिदाभ्यः शुचिरापूतएमि) यह मन्त्र उन्मज्जन याने ऊपर निकलने में मानागयाहै और (मानस्तोके तनये मान आयुषि मानो गोपु मानो अश्वेपु रीरिषः ॥ मानो वीरान् रुद्रभामिनोवधीर्हविष्मन्तः सदमित्वाहवामहे) इस मन्त्रको जपकर गोबरसे अंगों को लीपे ॥ १ ॥ उसके बाद इमं मे वरुण इत्यादि मन्त्रो से अपने ऊपर जल

ॐसूर्य्येसन्तॐसमाहितम् ॥ अपाॐरसस्ययोरसस्तंवोगृह्णाम्युत्तमम् ८) ॥ ६ ॥ इन आठमंत्रोंके आगे पुनन्तुमापितरःइत्यादि नव पावमानी याने पवित्रता करनेवाली ऋचायें कही गईहैं वे ये हैं कि (पुनन्तुमापितरःसोम्यासः पुनन्तुमापितामहाः पुनन्तुप्रपितामहाः पवित्रेणशतायुषा १ पुनन्तुमापितामहाः पुनन्तुप्रपितामहाः ॥ पवित्रेणशतायुषा विश्वमायुर्व्यश्नवै २ अग्नआयूॐषिपवसआसुवोर्ज्जमिषंचनः ॥ आरेबाधस्वदुच्छुनाम् ३ पुनन्तुमादेवजनाः पुनन्तुमनसाधियः ॥ पुनन्तुविश्वाभूतानिजातवेदःपुनीहिमा४ पवित्रेणपुनीहिमाशुक्रेणदेवदीव्यत ॥ अग्नेक्रत्वाक्रतूॐरनुः ५ यत्तेपवित्रमर्चिष्यग्नेविततमन्तरा ॥ ब्रह्मतेनपुनातुमा ६ पवमानः सो अद्यनःपवित्रेणविचर्षणिः ॥ यः पोतास पुनातुमा ७ उभाभ्यांदेवसवितः पवित्रेण सवेनच ॥ मांपुनीहिविश्वतः ८ वैश्वदेवीपुनतीदेव्यागायस्यामिमाबह्व्यस्तन्वो वीतपृष्ठाः ॥ तयामदन्तःसधमादेषुवयॐस्यामपत

पश्चपोदेवाद्रुपदादिवसंज्ञकाः ॥ ६ ॥ शन्नोदेवीरपोदेवीरपाॐरसमित्यपि ॥ पुनन्तुमेतिचनवपावमान्यःप्रकीर्तिताः ॥७॥ ततोऽघमर्षणंजप्त्वाद्रुपदाश्चततोजपेत् ॥ प्राणायामञ्चविधिवदथवान्तर्जलेजपेत् ॥ ८ ॥ प्रणवन्त्रिर्जपेद्वापिविष्णुं वासंस्मरेत्सुधीः ॥ स्नात्वेत्थंवस्त्रमापीड्यगृह्णीयाद्धौतवाससी ॥ ९ ॥ आचम्यचततःकुर्यात्प्रातःसन्ध्यांकुशान्विताम् ॥ योनसन्ध्यामुपासीतब्राह्मणोहिविशेषतः ॥ १० ॥ सजीवन्नेवशूद्रस्तुमृतःश्वाजायतेध्रुवम् ॥ सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसु ॥ ११ ॥ यदन्यत्कुरुतेकर्मनतस्यफलभाग्भवेत् ॥ प्रणवम्प्राग्दिशिस्मृत्वाततोदत्त्वाकुशा

योरयीणाम् ९) ॥ ७ ॥ तदनन्तर अघमर्षण मन्त्रको जप फिर द्रुपदादिवमुमुचानः इस पूर्वोक्त मंत्रको जपे अथवा जलके भीतर विधिपूर्वक प्राणायामको जपे (ऋतंचसत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ॥ ततोरात्र्यजायत ततःसमुद्रोअर्णवः ॥ समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोअजायत॥ अहोरात्राणिविदधद्विश्वस्यमिषतोवशी ॥ सूर्य्याचन्द्रमसौधातायथा पूर्वमकल्पयत् ॥ दिवंचपृथिवींचान्तरिक्षमथोस्वः ॥ इति अघमर्षणमन्त्रः ॥ ॐभूःॐभुवः ॐस्वः ॐमहः ॐजनः ॐतपः ॐसत्यं ॐतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि धियोयोनःप्रचोदयात् ॐ आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवःस्वरोम् ॥ इति प्राणायाममन्त्रः) ॥ ८ ॥ व तीन बार ॐकारको जपै व विष्णुको सुमिरे ऐसे नहाकर वस्त्रोंको निचोड़कर धोये कपड़ोंको पहने ॥ ९ ॥ तदनन्तर आचमनकर कुशों समेत प्रातःसन्ध्याको करे जो ब्राह्मणभी विशेषसे सन्ध्याको नहीं उपासताहै अर्थात् सन्ध्योपासनको नहीं करताहै ॥ १० ॥ वह जीवताही शूद्रहै और मराहुवा निश्चयकर कुत्ता होताहै व सन्ध्यासे हीन ब्राह्मण सब कर्मों में अयोग्य और अपवित्रहो ॥ ११ ॥ जिस कर्म्मको

करे उसके फलका भागी न होवे ॐकारको सुमिरकर तदनन्तर पूर्व दिशामें कुशासन देवे ॥ १२ ॥ (चतुःशक्तिर्नाभिकृतस्यसप्रथाःसनोविश्वायुः सप्रथाः । सनःसर्वायुःस प्रथाः अपद्वेषो अपह्वरोऽन्यव्रतस्यसश्चिम) इस मंत्रको पढ़कर अन्यत्र दृष्टि व मन लगानेवाला न होकर ॥ १३ ॥ चोटीको बांधे व पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठाहुवा दहिने ओर से अपने ऊपर जलको छिड़ककर प्राणायामको करे ॥ १४ ॥ भूः आदि सात व्याहृतिपूर्वक गायत्री मन्त्रको शिर याने अन्त में आपोज्योति, इसके साथ तीनबार जपे यह प्राणायाम दश ॐकारसमेत कहा जाताहै जैसे ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः इत्यादि पूरामन्त्र पहले लिखाहै ॥ १५ ॥ इन्द्रिय और मनको रोंके प्राणायाम करता हुआ

सनम् ॥ १२ ॥ चतुःस्रक्तिरिमंमन्त्रंपठित्वानान्यदृङ्मनाः ॥ १३ ॥ प्राङ्मुखोबद्धचूडोवाप्युपविष्टउदङ्मुखः ॥ प्रदक्षिणंस्वमभ्युक्ष्यप्राणायामंसमाचरेत् ॥ १४ ॥ गायत्रींशिरसासार्धंसप्तव्याहृतिपूर्विकाम् ॥ त्रिर्जपेत्सदशोङ्कारःप्राणायामोयमुच्यते ॥ १५ ॥ प्राणायामांश्चरन्विप्रोनियतेन्द्रियमानसः ॥ अहोरात्रकृतैःपापैर्मुक्तोभवतितत्क्षणात् ॥ १६ ॥ दशद्वादशसंख्यावाप्राणायामाःकृतायदि ॥ नियम्यमानसन्तेनतदातप्तंमहत्तपः ॥ १७ ॥ सव्याहृतिप्रणवकाःप्राणायामास्तुषोडश ॥ अपिभ्रूणहनंमासात्पुनन्त्यहरहःकृताः ॥ १८ ॥ यथापार्थिवधातूनांदह्यन्तेधमनान्मलाः ॥ तथेन्द्रियैःकृतादोषाज्वाल्यन्तेप्राणसंयमात् ॥ १९ ॥ एकंसम्भोज्यविधिवद्ब्राह्मणंयत्फलंलभेत् ॥ प्राणायामैर्द्वादशभिस्तत्फलंश्रद्धयाप्यते ॥ २० ॥ वेदादिवाङ्मयंसर्वंप्रणवेयत्प्रतिष्ठितम् ॥ ततःप्रणवमभ्यस्येद्वेदादिंवेदजापकः ॥ २१ ॥ प्रणवेनि

ब्राह्मण उसीक्षण रात दिनके पापोसे छूटाहोवे ॥ १६ ॥ क्योंकि जो मनको रोंककर जिसने दश या बारह प्राणायाम किया तो उसने बड़ी तपस्या तपा ॥ १७ ॥ रोजरोज किये ॐकार और भूः आदि व्याहृतिपूर्वक सोलह प्राणायाम गर्भपाती या ब्रह्मघाती कोभी पवित्र करते हैं ॥ १८ ॥ जैसे सोना चांदी आदि धातुओं के मल आगके संयोग से जलते हैं वैसे इन्द्रियों से किये दोष प्राणायामसे नाशे जाते हैं ॥ १९ ॥ एक ब्राह्मणको विधिपूर्वक भलीभांतिसे खिला पिलाकर जिस फलको पावैहै वह श्रद्धासमेत बारह प्राणायामो से मिलताहै ॥ २० ॥ जिससे वेद आदि सब शब्द समूह ॐकार में टिकाहै उस कारण वेदके जपनेवाला वेदबीज ॐकारको अभ्यास करे ॥ २१ ॥ ॐकार

व भूः आदि सात व्याहृतियां और तीन पदवाली गायत्री याने तत्सवितुः इत्यादि मन्त्र इन सबमें जो जुड़ाहै उसका कहींसे डर नहीं होताहै ॥ २२ ॥ हे अगस्त्य ! ॐकार परंब्रह्महै व प्राणायाम बड़ी तपस्याहै और गायत्रीसे परे पवित्र करनेवाला अन्य कुछ नहीं है ॥ २३ ॥ रातमें कर्म मन और वचनसे जिस पापको करे उसको प्रातःसन्ध्या करताहुआ शुद्धकरे ॥ २४ ॥ व दिनमें मन वचन और देहके कर्म्म से जिस पापको करे उसको सायंसन्ध्या करताहुआ प्राणायामसे हरे ॥ २५ ॥ प्रातःसन्ध्यामें गायत्रीको जपताहुआ सूर्य्योदय तक खड़ारहै व पाछिली याने सायंसन्ध्या करताहुआ भलीभांति से नक्षत्रों के उदय होनेतक बैठकर जपकरे ॥ २६ ॥ जो पहली याने प्रातःसन्ध्या में

त्ययुक्तस्यसप्तसुव्याहृतिष्वपि ॥ त्रिपदायान्तुगायत्र्यां न भयंजायतेक्वचित् ॥ २२ ॥ एकाक्षरंपरंब्रह्मप्राणायामःपरन्तपः ॥ गायत्र्यास्तुपरंनास्तिपावनंकलशोद्भव ॥ २३ ॥ कर्मणामनसावाचायद्रात्रौकुरुतेत्वघम् ॥ उत्तिष्ठन्पूर्वसन्ध्यायांप्राणायामैर्विशोधयेत् ॥ २४ ॥ यदह्नाकुरुतेपापंमनोवाक्कायकर्मभिः ॥ आसीनःपश्चिमांसन्ध्यांतत्प्राणायामतोहरेत् ॥ २५ ॥ पूर्वांसन्ध्यांजपंस्तिष्ठेत्सावित्रीमार्कदर्शनात् ॥ पश्चिमान्तुसमासीनःसम्यगर्क्षविभावनात् ॥ २६ ॥ पूर्वांसन्ध्यांजपंस्तिष्ठन्नैशमेनोव्यपोहति ॥ पश्चिमान्तुसमासीनोमलंहन्तिदिवाकृतम् ॥ २७ ॥ नोपतिष्ठेत्तुयःपूर्वांनोपास्तेयस्तुपश्चिमाम् ॥ सशूद्रवद्बहिष्कार्यःसर्वस्माद्द्विजकर्म्मणः ॥ २८ ॥ अपांसमीपमासाद्यनित्यकर्म्मसमाचरेत् ॥ गायत्रीमप्यधीयीतगत्वारण्यंसमाहितः ॥ २९ ॥ गृहाद्बहुगुणायस्मात्सन्ध्याबहिरुपासिता ॥ गायत्र्यभ्यासमात्रोऽपिवरंविप्रोजितेन्द्रियः ॥ ३० ॥ त्रिवेद्यपिचनोमान्यःसर्वभुक्सर्वविक्रयी ॥ सवितादेवतायस्यामुखमग्निस्त्रिपाच्चया ॥ ३१ ॥

जपताहुवा खड़ा रहै वह राति के पापको नाशता है और सायंसन्ध्या में बैठाहुआ जपताहुआ जन दिनमें किये पापको पछाड़ता है ॥ २७ ॥ जो पहली और पाछिली सन्ध्याकी उपासना नहीं करताहै वह शूद्रकी नाईं सब ब्रह्मकर्म्म से बाहर करने योग्यहै ॥ २८ ॥ इससे जलके समीप में जाकर नित्य कर्म्मको करे और एकाग्रचित्त होकर वनमें जाकर गायत्रीको भी जपे ॥ २९ ॥ जिससे बाहर किया सन्ध्यावन्दन घरसे बहुत गुण अधिक होताहै व जो जितेन्द्रिय ब्राह्मण केवल गायत्री जपताहोवे वह भी श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ और तीनों वेद पढ़े भी सब खाता व सब बेंचताहुआ ब्राह्मण माननीय नहीं है जोकि तीन पदवाली है व जिसके सूर्य्य देवता व अग्नि मुखहै ॥ ३१ ॥

और विश्वामित्र ऋषि हैं वह गायत्री सबसे अधिक होतीहै उस गायत्रीको प्रातःकालमें ऐसे ध्यावे कि लालरंग ब्रह्मा देवता ॥ ३२ ॥ हंसपर सवार आठ वर्षकी अवस्था लालरंगकी माला और अनुलेपनवाली ऋग्वेदरूप अभयदायिनी रुद्राक्षकी माला पहिने ॥ ३३ ॥ व व्यासऋषि से प्रशंसित और अनुष्टुप् छन्दसे संयुतहै ऐसे प्रातःकालकी देवता गायत्रीके ध्यानसे रात्रिके पापको नाशता है ॥ ३४ ॥ उसके बाद (सूर्य्यश्चमामन्युश्चमन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्योरक्षन्तां यद्रात्र्यापापमकार्षंमनसावाचाहस्ताभ्यांपद्भ्यामुदरेणशिश्ना अहस्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद्दुरितम्मयि इदमहममृतयोनौसूर्य्येज्योतिषिपरमात्मनिजुहोमिस्वाहा) उत्तम आचमन और आपोहिष्ठामयोभुवः इ-

विश्वामित्रोऋषिश्छन्दोगायत्रीसाविशिष्यते ॥ गायत्रीमुषसि ध्यायेद्रक्तोहितां ब्रह्मदैवताम् ॥ ३२ ॥ हंसारूढामष्टवर्षां रक्तस्रगनुलेपनाम् ॥ ऋक्स्वरूपामभयदामक्षमालावलम्बिनीम् ॥ ३३ ॥ व्यासर्षिणास्तूयमानांछन्दसानुष्टुभायुताम् ॥ एतद्ध्यानादुषर्देव्या नैशमेनो व्यपोहति ॥ ३४ ॥ सूर्यश्चेतिचमन्त्रेणस्यादाचमनमुत्तमम् ॥ आपोहिष्ठेतितिसृभिर्मार्जनन्तु ततश्चरेत् ॥ ३५ ॥ भूमौशिरसिचाकाशेआकाशेभुविमस्तके ॥ मस्तकेचतथाकाशेभूमौचनवधाक्षिपेत् ॥ ३६ ॥ भूमिशब्देनचरणावाकाशंहृदयंस्मृतम् ॥ शिरस्येवशिरःशब्दोमार्जनज्ञैरुदाहृतः ॥ ३७ ॥ वारुणादपि चाग्नेयाद्वायव्यादपिचैन्द्रतः ॥ मन्त्रस्नानादपिपरंब्राह्मंस्नानमिदम्परम् ॥ ३८ ॥ ब्राह्मस्नानेन यःस्नातःसबाह्याभ्यन्तरेशुचिः ॥ सर्वत्रचार्हतामेतिदेवपूजादिकर्मणि ॥ ३९ ॥ नक्तन्दिनंनिमज्ज्याप्सुकैवर्ताःकिमुपावनाः ॥ शतशोऽपितथा स्नातानशुद्धाभावदूषिताः ॥ ४० ॥ अन्तःकरणशुद्धायेतान्विभूतिःपवित्रयेत् ॥ किं पावनाःप्रकीर्त्यन्तेरासभाभस्मधूस

त्यादि पूर्वोक्त तीन ऋचाओं से मार्जनको करे याने अपने ऊपर जल छिड़के ॥३५॥ भूमि शिर आकाश आकाश भूमि मस्तक मस्तक आकाश तथा भूमिमें नवप्रकारसे पानी को छोड़े ॥ ३६ ॥ मार्जनकी विधिके जाननेवाले लोगोंने भूमिशब्द से पांव व आकाशसे हृदय और शिरशब्द से मस्तक को कहाहै ॥ ३७ ॥ पानी भी व विभूति व वायु से उड़ी धूरि भी व मेघ विना इन्द्र के हाथीकी सूंड़ से तजा जल और मन्त्रों का जप भी इन सब के स्नानों से भी यह उत्तम मार्जनरूप ब्राह्मस्नान श्रेष्ठ है ॥ ३८ ॥ ब्राह्मस्नान याने आपोहिष्ठामयोभुवः इत्यादि मंत्रोंसे मार्जन किया जिसने वह बाहर और भीतर में भी शुद्ध होकर देवपूजादि कर्म्म में सब से योग्यताको प्राप्त होता

राः ॥ ४१ ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुससर्वमलवर्जितः ॥ तेनक्रतुशतैरिष्टंचेतोयस्येहनिर्मलम् ॥ ४२ ॥ तदेवनिर्मलञ्चेतोय थास्यात्तन्मुनेशृणु ॥ विश्वेशश्चेत्प्रसन्नःस्यात्तदास्यान्नान्यथाक्वचित् ॥ ४३ ॥ तस्माच्चेतोविशुद्ध्यर्थंकाशीनाथंसमाश्र येत् ॥ तदाश्रयेणनियतंसंक्षीयन्तेमनोमलाः ॥ ४४ ॥ संक्षीणमानसमलो विश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ इदंशरीरमुत्सृज्यपर म्ब्रह्माधिगच्छति ॥ ४५ ॥ विश्वेशानुग्रहेहेतुःसदाचारोमतोनृणाम् ॥ श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितंतस्मात्तमनुसंश्रयेत् ॥ ४६ ॥ द्रुपदान्तुततोजप्त्वाजलमादायपाणिना ॥ कुर्याद्दृतञ्चमन्त्रेणविधिज्ञस्त्वघमर्षणम् ॥ ४७ ॥ निमज्ज्याप्सुचयोविद्वान्जपे त्रिरघमर्षणम् ॥ यथाश्वमेधावभृथस्तस्यस्यात्तत्तथाध्रुवम् ॥ ४८ ॥ जलेवापिस्थलेवापियःकुर्यादघमर्षणम् ॥ तस्या

है ॥ ३९ ॥ रातो दिन जलोंमें पड़े केवट लोग क्या पवित्र होतेहैं वैसेही सैकड़ों बार भी नहाये भी भावसे दूषित दुष्टलोग अशुद्धही रहते हैं ॥ ४० ॥ जो अन्तःकरण से शुद्धहैं उनको विभूति पवित्र करती है क्योंकि भस्मसे धूसर गर्दभ क्या पवित्रतावाले कहेजाते हैं ॥ ४१ ॥ इससे इस लोकमें जिसका मन शुद्धहै वह सब तीर्थों में न- हायाहुवा व सब मलोंसे विवर्जित है और उसने सैकड़ों यज्ञोंसे पूजा की ॥ ४२ ॥ हे मुने! वह चित्त जैसे निर्मलहोवे उस उपायको सुनो कि जो श्रीविश्वनाथजी प्रस- न्नहों तो मन शुद्धहोवे और तौरसे कहीं नहीं ॥ ४३ ॥ इससे चित्तशुद्ध होनेकेलिये काशीके नाथ श्रीविश्वनाथजी को भलीभांति सेवे उनके शरण से नियमकरके सब मनके मल नशते हैं ॥ ४४ ॥ और श्रीविश्वनाथजी के उत्तमअनुग्रह से भलीभांति नष्टहुये मनके मल जिसके वह इस देहको तजकर परब्रह्ममें जाताहै ॥ ४५ ॥ जिससे मनुष्योंका सदाचारही श्रीविश्वनाथजी की दयाका कारण मानागया है उससे वेद और धर्म्मशास्त्रों से कहेहुये उसको भलीभांति आधारकरे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर, द्रुपदादि वमुमुचानः इस पूर्वोक्त मन्त्रको जपकर विधिके जाननेवाला, ऋतंच सत्यंचाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत इस पूर्वोक्त पूरे मन्त्रसे अघमर्षणकरे याने दाहिने हाथकी गादी में जलको लेकर नासा में लगाकर व सूंघकर श्वासको चढ़ाकर मनमें पाप पुरुषकी चिंतनाकर उसको उतारी हुई श्वासाके साथ हाथके पानीमें आयाहुवा जानकर उसको अपने बाम ओरमें पटक देवे ॥ ४७ ॥ जो सुजान जन जलमें नहाकर या बुड्डी लगाकर तीनबार अघमर्षण मन्त्रको जपे उसका वह स्नान वैसाहोवे कि जैसा यज्ञके अन्त-

वाला होताहै ॥ ४८ ॥ इससे जो जन जल व थलमें अघमर्षणको करे उसके पापसमूह ऐसे नष्टहोवें कि जैसे सूर्य्यके उदय में अन्धकार नशता है ॥ ४९ ॥ तदनन्तर इमंमेवरुणश्रुधी, इस पूर्वोक्त पूरे मन्त्रको जपकर द्विज याने ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य भी आचमनको करे व कोई अन्य आचार्य्य वेदशाखा के भेदसे इच्छा करते है कि आगे कहेजाते अन्तश्चरसिभूतेषु इस मन्त्रसे आचमन करना चाहिये ॥ ५० ॥ हे परमेश्वर! तुम सब प्राणियो के भीतर बुद्धिमें विचरतेहो व सब ओर मुखवालेहो व तुम यज्ञ वषट्कार जल-ज्योति आनन्द और अविकारहो ॥ ५१ ॥ शिर याने आपोज्योतीरसोमृतं, इससे हीन और ॐकारपूर्वक तीन व्याहृतियां पहले हैं जिसके उस गाय-

घौघोविनश्येतयथासूर्योदये तमः॥ ४९ ॥ इमंमन्त्रन्ततश्चोक्त्वाकुर्यादाचमनंद्विजः ॥ आचार्याःकेचिदिच्छन्तिशाखा भेदेन चापरे ॥ ५० ॥ अन्तश्चरसिभूतेषुगुहायांविश्वतोमुखः ॥ त्वंयज्ञस्त्वंवषट्कारआपोज्योतीरसोऽमृतम् ॥ ५१ ॥ गायत्रींशिरसाहीनांमहाव्याहृतिपूर्विकाम् ॥ प्रणवाद्यांजपंस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोञ्जलित्रयम् ॥ ५२ ॥ तेनवज्रोदकेनाशुमन्देहानाम राक्षसाः ॥ सूर्यारयःप्रलीयन्तेशैलावज्रहताइव ॥ ५३ ॥ विवस्वतःसहायार्थंयोद्विजोनाञ्जलित्रयम् ॥ क्षिपेन्मन्देहनाशायसोपिमन्देहतांव्रजेत् ॥ ५४ ॥ प्रातस्तावज्जपंस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्यदर्शनम् ॥ उपविष्टोजपेत्सायमृक्षाणामाविलोकनात् ॥ ५५ ॥ काललोपोनकर्तव्यो द्विजेनस्वहितेप्सुना ॥ अर्द्धोदयास्तसमयेतस्माद्वज्रोदकंक्षिपेत् ॥ ५६ ॥ विधिनापिकृतासन्ध्याकालातीताऽफलाभवेत ॥ अयमेवहिदृष्टान्तोबन्ध्यास्त्रीमैथुनंयथा ॥ ५७ ॥ जलंवामकरेकृत्वा

त्रीको अर्थात् (ओं भूर्भुवःस्वस्तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गोदेवस्यधीमहि धियोयोनःप्रचोदयात्) इस मंत्रको जपता खड़ाहुवा पानीकी तीन अंजली बहावे ॥ ५२ ॥ सूर्य्य के शत्रु मन्देहनाम राक्षस उस उछालेहुये वज्रसमान जलसे शीघ्रही नशते हैं कि जैसे वज्रके मारे पहाड़ फूटजाते हैं ॥ ५३ ॥ इससे जो ब्राह्मणादि वर्ण मन्देहनामक राक्षसोंके नाशके लिये व सूर्य्यके सहायार्थ तीन अंजली जलको न उछाड़े वह भी मन्देहराक्षसोंके भावको प्राप्त होवेहै ॥ ५४ ॥ प्रातःकालमें सूर्य्य के देखनेतक जपताहुवा खडा रहे और सायंकालमें नक्षत्रों के देखनेतक बैठाहुवा जपे ॥ ५५ ॥ अपने हितको चाहते हुये ब्राह्मणकरके कालका लोपकरने योग्य नहीं है उससे सूर्य्य के आधे उदय और आधे अस्त समयमें वज्रसमान जलको बहावे ॥ ५६ ॥ काल बीतजानेपर विधिसे भी कीहुई सन्ध्या फलहीन होवेहै उसमें यही दृष्टान्त है कि जैसे बांझ स्त्रीके साथ

रति करना किसी पुत्रादि फलको नहीं उपजाता है ॥ ५७ ॥ व बायें हाथमें जलको धरकर ब्राह्मणोंने जो सन्ध्याक्रिया उसको शूद्री समझना चाहिये क्योंकि वह राक्षस समूहोंको आनन्द देनेवाली है॥ ५८ ॥ और (उद्वयं तमसःपरिस्वःपश्यन्तउत्तरम ॥ देवंदेवत्रासूर्य्यमगन्मज्योतिरुत्तमम १ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्तिकेतवः ॥ दृशे विश्वायसूर्य्यम् २ चित्रं देवानामुदगादनीकञ्चक्षुर्मित्रस्यवरुणस्याग्नेः ॥ आप्राद्यावापृथिवीअन्तरिक्षं सूर्य्यआत्माजगतस्तस्थुषश्च ३ तच्चक्षुर्देवहितंपुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् ॥ पश्येमशरदःशतंजीवेमशरदःशतं शृणुयामशरदःशतम् ४) ये सूर्य के उपस्थान याने उनकी ओर ऊपरको हाथ उठाकर नमस्कार करने के मन्त्र सिद्धिदायक

यासन्ध्याचरिताद्विजैः ॥ वृषलीसापरिज्ञेयारक्षोगणमुदावहा ॥ ५८ ॥ उद्वयन्तमुदुत्यञ्चचित्रन्देवेतितत्परम् ॥ तच्चक्षुरित्युपस्थानमन्त्राब्रध्नस्यसिद्धिदाः ॥ ५९ ॥ सहस्रकृत्वोगायत्र्याःशतकृत्वोऽथवापुनः ॥ दशकृत्वोथदेव्यैवकुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ॥ ६० ॥ सहस्रपरमांदेवींशतमध्यान्दशावराम्॥गायत्रींयोजपेद्विप्रो न स पापैःप्रलिप्यते ॥ ६१ ॥ विभ्राडित्यनुवाकंवा सूक्तंवापौरुषंजपेत् ॥ शिवसङ्कल्पमथवा ब्राह्मणंमण्डलन्तुवा ॥ ६२ ॥ एतानिचोपस्थानानिरविप्रीतिकराणिच ॥ रक्तचन्दनमिश्राद्भिरक्षतैःकुसुमैःकुशैः ॥ ६३ ॥ वेदोक्तैरागमोक्तैर्वामन्त्रैरर्घम्प्रदापयेत् ॥ अर्चितःसवितायेनतेनत्रैलोक्यमर्चितम् ॥ ६४ ॥ अर्चितःसवितासूतेसुतान्पशुवसूनिच ॥ व्याधीन्हरेद्ददात्यायुःपूरयेद्वाञ्छितान्य

हैं ॥ ५९ ॥ व हजारबार अथवा सौबार गायत्रीका जपकर व दशबार गायत्री देवीसेही सूर्य्यका उपस्थानकरे ॥ ६० ॥ जोकि, हजारबार जपने से उत्तम सौसे मध्यम और दशबारसे लघुहै उस गायत्री को जो ब्राह्मणादि जपे वह पापों से नहीं लिप्त होताहै याने उसमें पाप नहीं लगसक्ते हैं ॥ ६१ ॥ विभ्राड् बृहत्पिबतु इत्यादि चौदह ऋचारूप अनुवाक व सहस्रशीर्षापुरुषः इत्यादि पुरुषसूक्त व यज्जाग्रतोदूरं इत्यादि छः ऋचाका शिवसङ्कल्प अथवा यदेतन्मण्डलं इत्यादि तेईस कण्डिकारूप मण्डल ब्राह्मणको जपे ॥ ६२ ॥ ये उपस्थान सूर्य्यकी प्रीति करनेवाले हैं व लालचन्दनसे मिश्रित जल अक्षत फूल कुश इत्यादि उचित चीजोंसे॥६३॥ वेदोक्त, हंसः शुचिषत् इत्यादि और आगमोक्त, एहिसूर्य्यसहस्रांशो इत्यादि मन्त्रोंकरके अर्घ देवे जिसने सूर्य्यको पूजा उसने त्रिलोकको पूजाहै ॥ ६४ ॥ व पूजेगये सूर्य्यजी पुत्र पशु और धनोंको

उपजाते हैं व रोगोंको हरतेहैं और आयुको देतेहैं और मनोरथको पूरा करते हैं ॥ ६५ ॥ यही सूर्य्य रुद्रहैं व यही दिनकर विष्णुहैं और यही रवि ब्रह्मा हैं उससे यह सूर्य त्रयीरूप कहेजाते हैं ॥ ६६ ॥ सूर्य्य के संतुष्ट होनेसे ब्रह्मा विष्णु महेश इन्द्रादि सम्पूर्ण देव और मरीचिआदि सब ऋषि संतुष्ट होते हैं ॥ ६७ ॥ व मनुआदि मनुष्य और सोमपादि पितामह भी प्रसन्न होजाते हैं इसभांति सूर्य्यकी पूजाकोकर तदनन्तर तर्पणको प्रारंभ करे ॥ ६८ ॥ नव व सात व पांच कुशोंको जोकि भीतर अन्य अंकुरसे हीन व विना टूटे व अग्रभाग और जड़समेतहों उनको लेकर ब्राह्मण दक्षिण हाथसे ॥ ६९ ॥ व दहिने में लगे बायेंसे चण्ड प्रचण्ड धर्म विनायक विघ्नराज महागणपति इत्या-

पि ॥६५॥ अयंहिरुद्रआदित्योहरिरेषदिवाकरः ॥ रविर्हिरण्यगर्भोसौत्रयीरूपोऽयमर्यमा ॥६६॥ रवेस्तुतोषणात्तुष्टाब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ इन्द्रादयोखिलादेवामरीच्याद्यामहर्षयः ॥ ६७ ॥ मानवामनुमुख्याश्चसोमपाद्याःपितामहाः ॥ रवेरर्चांविधायेत्थंततस्तर्पणमारभेत् ॥ ६८ ॥ दर्भानगर्भानादायनवसप्तचपञ्चवा ॥ साग्रान्समूलानच्छिन्नान्द्विजो दक्षिणपाणिना ॥ ६९ ॥ अन्वारब्धेनसव्येनतर्पयेतषड्विनायकान् ॥ ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मरीच्यादींस्तथामुनीन् ॥ ७० ॥ चन्दनागुरुकस्तूरीगन्धवत्कुसुमैरपि ॥ तर्पयेच्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्वितिसमुच्चरन् ॥ ७१ ॥ सनकादीन्मनुष्यांश्चनिवीतीतर्पयेद्यवैः ॥ अंगुष्ठद्वयमध्येतुकृत्वादर्भानृजून्द्विजः ॥ ७२ ॥ कव्यवाडनलादींश्चपितॄन्दिव्यान्प्रतर्पयेत् ॥ प्राचीनावीतिकोदर्भैर्द्विगुणैस्तिलमिश्रितैः ॥७३॥ रवौशुक्रेत्रयोदश्यांसप्तम्यांनिशिसन्ध्ययोः ॥ श्रेयोर्थीब्राह्मणोजातुनकुर्यात्तिलतर्पणम् ॥ ७४ ॥ यदिकुर्यात्ततःकुर्याच्छुक्लैरेवतिलैःकृती ॥ चतुर्दशयमान्पश्चात्तर्पयेन्नामउच्चरन् ॥ ७५ ॥ ततः

दि छःविनायक, ब्रह्मादि सम्पूर्णदेव तथा मरीचिआदि मुनियोंको तृप्तकरे ॥ ७० ॥ तृप्यन्तु इरापदको कहताहुवा चन्दन अगर करतूरी सुगन्धयुत फूल और पवित्र पानीसे भी तरपे ॥ ७१ ॥ फिर ब्राह्मण निवीती होकर (कण्ठमे जनेऊ पहिन) व दोनों अंगुठोंके बीचमे कुटिलता हीन कोमल कुशोकोकर यव और जलसे तर्प्पणकरे ॥७२॥ तब दहिने कांधेमे यज्ञोपवीतवाला होकर कव्यवाट् अनलआदि दिव्य पितरोंको तिल मिश्रित दुगुने कुशोसे तरपे ॥ ७३ ॥ व सुखचाहनेवाला ब्राह्मण सूर्य्यवार शुक्रवार तेरसि सप्तमी रात और दोनों की सन्ध्याओं में तिलोंसे तर्प्पणको कभी न करे ॥ ७४ ॥ व सुकर्म्मवान् जो तिलों से तर्प्पणकरे तो उजले तिलोंसे करे व उसके बाद यमादि

नाम कहता हुआ चौदह यमों को तर्पे ॥ ७५ ॥ तदनन्तर वचन रोके हुआ आनंदसंयुक्त होकर बाईं जांघ नवाने और पितृतीर्थ से अपना गोत्र कहकर अपने पितरों को तृप्तकरे ॥ ७६ ॥ देवताये एक एक अञ्जलीको सनकादिक दोदो को पितर तीन तीनको और स्त्रियां एक एक अंजलीको चाहती हैं ॥ ७७ ॥ अंगुलियोंके आगे देवों का अंगुलीमूलमें ऋषियों का अंगुठा के मूलमें ब्रह्मा का हाथ के बीचमें प्रजापति का ॥ ७८ ॥ और अंगुठा व कनिष्ठा के बीचमें पितरों का तीर्थ कहाताहै नव ऋचाओंको पढ़ता हुआ पण्डित पितरोंका तर्पणकरे ॥ ७९ ॥ उदीरताम् १ आंगिरसः २ आयन्तुनःपितरः ३ ऊर्ज्जं वहन्ति ४ पितृभ्यःस्वधायिभ्यः ५ ॥ ८० ॥ येचेहपितरः ६

स्वगोत्रमुच्चार्यतर्प्पयेत्स्वपितॄन्मुदा ॥ सव्यजानुनिपातेनपितृतीर्थेनवाग्यतः ॥ ७६ ॥ एकैकमञ्जलिन्देवाद्वौद्वौतुसनकादिकाः ॥ पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्तिस्त्रियएकैकमञ्जलिम् ॥ ७७ ॥ अंगुल्यग्रेभवेद्दैवमार्षमंगुलिमूलगम् ॥ ब्राह्ममंगुष्ठमूलेतुपाणिमध्येप्रजापतेः ॥ ७८ ॥ मध्येंगुष्ठप्रदेशिन्योःपित्र्यन्तीर्थम्प्रचक्षते ॥ नवर्चमुच्चरन्विद्वान्विदध्यात्पितृतर्पणम् ॥ ७९ ॥ उदीरतामङ्गिरसआयन्तुनइतीष्यते ॥ ऊर्जंवहन्तीपितृभ्यःस्वधायिभ्यस्ततःपठेत् ॥ ८० ॥ येचेहपितरस्तद्वन्मधुवाताइतित्र्यृचम् ॥ नमोवःपितरश्चोक्त्वापठन्सिञ्चेज्जलम्भुवि ॥ ८१ ॥ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तंदेवर्षिपितृमानवाः ॥ तृप्यन्तुपितरःसर्वेमातृमातामहादयः ॥ ८२ ॥ अतीतकुलकोटीनांसप्तद्वीपनिवासिनाम् ॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तुतिलोदकम् ॥ ८३ ॥ येचास्माकंकुलेजाताअपुत्रागोत्रिणोमृताः ॥ सर्वेतेतृप्तिमायान्तुवस्त्रनिष्पीडनोदकैः ॥ ८४ ॥ अग्निकार्यन्ततःकृत्वावेदाभ्यासन्ततश्चरेत् ॥ श्रुत्यभ्यासःपञ्चधास्यात्स्वीकारोर्थविचारणम् ॥ ८५ ॥ अभ्यासश्चजपश्चापिशि

और मधुवाता ऋतायते, इत्यादि तीन ऋचाओंको पढ़ता हुआ भूमि में जल छोड़े ॥ ८१ ॥ व ब्रह्मासे लगाकर गुच्छे पर्य्यन्त देव ऋषि पितर मनुष्य माता और नाना आदि सब जने पितर तृप्त होवें ॥ ८२ ॥ इस लोकसे ब्रह्माके लोकतक बीती हैं कुलों की करोड़ैं जिनकी ऐसे जे सातों द्वीपों के वासी प्राणी समूहहैं उनके लिये यह तिलमिश्रित जल होवे ॥ ८३ ॥ व जे हमारे कुलमें उत्पन्न व विना पुत्रके गोत्रवाले लोग मरे हैं वे सब इस वस्त्र निचोड़ने के पानी से तृप्तिको प्राप्त होवें ॥ ८४ ॥ तदनन्तर होमकर उसके बाद वेदोंका अभ्यासकरे वह वेदों का अभ्यास पांच प्रकारसे होवे है गुरुसे पढ़ना अर्थ विचारना ॥ ८५ ॥ पाठ करना जप और विद्यार्थियोंके लिये पाठ देना

ऐसे पांच भांति से कहागयाहै फिर पाये हुये पढ़ने के पालने व न पायेहुये के पाने के लिये ॥ ८६ ॥ पाठदाता के पास जावे ऐसे अपनी गुरुताको बढ़ावे हे ब्राह्मणोत्तम ! यह ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यके भी करने योग्य प्रातःकाल का नित्यकर्म्म कहा गया ॥ ८७ ॥ अब दूसरी विधि से कहते हैं कि अथवा चार दण्ड रात रहगये प्रातः-कालमें उठकर आवश्यक विष्ठामूत्रादि के त्याग कोकर शौच और आचमन को लेकर दतून करे ॥ ८८ ॥ व सब अंगों को शोधकर प्रातःसन्ध्याको भलीभांति से करे व वेदों के अर्थ अनेक भांति के शास्त्रों के पढ़ने या पाठ करने या विचारने के लिये अधिकता से प्राप्त होवे ॥ ८९ ॥ व पवित्र हितकारी व बुद्धिमान् विद्यार्थियों

ष्येभ्यःप्रतिपादनम् ॥ लब्धस्यप्रतिपालार्थमलब्धस्यचलब्धये ॥ ८६ ॥ दातारंसमुपेयाद्वै स्वगुरुत्वञ्चवर्धयेत्॥ प्रातः कृत्यमिदम्प्रोक्तंद्विजातीनां द्विजोत्तम ॥ ८७ ॥ अथवाप्रातरुत्थायकृत्वावश्यकमेवच॥शौचाचमनमादायभक्षयेद्दन्त धावनम् ॥ ८८ ॥ विशोध्यसर्वगात्राणिप्रातःसन्ध्यांसमाचरेत् ॥ वेदार्थानधिगच्छेच्चशास्त्राणिविविधान्यपि ॥ ८९ ॥ अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधासमन्वितान् ॥ उपेयादीश्वरञ्चैवयोगक्षेमादिसिद्धये ॥ ९० ॥ ततोमध्याह्नसि द्ध्यर्थंपूर्वोक्तंस्नानमाचरेत् ॥ स्नात्वामाध्याह्निकींसन्ध्यामुपासीतविचक्षणः ॥ ९१ ॥ नवयौवनभिन्नाङ्गींशुद्धस्फटिकानि र्मलाम् ॥ त्रिष्टुप्छन्दःसमायुक्तांसावित्रींरुद्रदैवताम् ॥ ९२ ॥कश्यपर्षिसमायुक्तांयजुर्वेदस्वरूपिणीम् ॥ त्र्यक्षरांवृषभा रूढांभक्ताभयकराम्पराम् ॥ ९३ ॥ देवताम्परिपूज्याथनैत्यिकं विधिमाचरेत् ॥ पचनाग्निंसमुज्ज्वाल्यवैश्वदेवंसमाच

को पढ़ावे और योग कल्याण के लिये परमेश्वर के शरण को जावे ॥ ९० ॥ तदनन्तर मध्याह्न याने दुपहरके कर्मों की सिद्धिके अर्थ विधिपूर्वक पहले कहेहुये स्नान को करे नहाकर बुद्धिमान् मनुष्य मध्याह्नवाली संध्याकी उपासना करे ॥ ९१ ॥ वहां नये युवापनसे बिलग बिलग बने अंगों से सुन्दरी व उजले पत्थर से अमल व त्रिष्टुप् छन्द से समेत व रुद्रदेवतावाली-सावित्री देवी ॥ ९२ ॥ जोकि कश्यप ऋषि से संयुत व यजुर्वेदस्वरूपिणी ॐकारमयी व बैलमें चढ़ी भक्तों की निडर-करणी और उत्तमताधरणी वरणी गई है ॥ ९३ ॥ उस देवताको पूजकर अनन्तर नित्य करने योग्य विधानको करे उसको कहते हैं कि रसोईकी आगको उदगारकर

बलिवैश्वदेव नामक श्राद्धको भलीभांतिकरे ॥ ९४ ॥ सेंबिया दुबिया कोदौं उड़द बाटुला चना तेलमें पकाहुवा व लोन पड़ा पकाहुवा सब अन्न ॥ ९५ ॥ व अरहड़ मसुड़ी मटरी या काबिली लोबिया व भोजनसे बचाहुवा और बासी अन्न इन सबको वैश्वदेवमें बरावे ॥ ९६ ॥ व भलीभांति आचमनको कर हाथमें पैंती पहने हुवा प्राणायामको कर अनन्तर (पृष्ठोदिवि पृष्ठोग्निः) इस मंत्रसे पर्य्युत्तणको करे याने सब ओर जल छिड़के ॥ ९७ ॥ व दहिने ओर जल छिड़क पवित्रकर कुशोंको बिछाकर (एषोहदेवःप्रदिशोनुसर्वाःपूर्वोहजातःसउगर्भेअन्तः ॥ सएवजातःसजनिष्यमाणःप्रत्यङ्जनास्तिष्ठतिसर्वतोमुखः) इस मन्त्रसे अग्निको सम्मुखकरे ॥ ९८ ॥ अनन्तर घी समेत

रेत् ॥ ९४ ॥ निष्पावान्कोद्रवान्माषान्कलायांश्चणकांस्त्यजेत् ॥ तैलपकञ्चपकान्नंसर्व्वंलवणयुक्तत्यजेत् ॥ ९५ ॥ आढकीश्चमसूरांश्चवर्तुलान्वरटांस्तथा ॥ भुक्तशेषंपर्युषितंवैश्वदेवेविवर्जयेत् ॥ ९६ ॥ दर्भपाणिःसमाचम्यप्राणायामंविधायच ॥ पृष्ठोदीवीतिमन्त्रेणपर्युत्तणमथाचरेत् ॥ ९७ ॥ प्रदक्षिणञ्चपर्युक्ष्य त्रिःपरिस्तीर्यवैकुशान् ॥ एषोहदेवमन्त्रेणकुर्याद्वह्निंसुसम्मुखम् ॥ ९८ ॥ वैश्वानरंसमभ्यर्च्यसाज्यपुष्पाक्षतैरथ ॥ भूराद्याश्चाहुतीस्तिस्रःस्वाहान्ताःप्रणवादिकाः ॥ ९९ ॥ ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहेतिविप्रोदद्यात्तथाहुतिम् ॥ तथादेवकृतस्याद्याजुहुयाचषडाहुतीः ॥ २०० ॥ यमायतूष्णीमेकाञ्चतथास्विष्टकृतीद्वयम् ॥ विश्वेभ्यश्चापिदेवेभ्योभूमौदद्यात्ततोबलिम् ॥ १ ॥ सर्वेभ्यश्चापिभूतेभ्योनमोदद्यात्तदुत्तरे ॥ तद्दक्षिणेपितृभ्यश्चप्राचीनावीतिकोददेत् ॥ २ ॥ निर्णेजनोदकान्नञ्चैशान्यांवैयक्ष्मणेऽर्पयेत् ॥ ततोब्रह्मादिदेवेभ्योनमो

फूल और अक्षतों से आगको पूजकर ॐ भूःस्वाहा १ ॐभुवः स्वाहा २ ॐस्वःस्वाहा ३ ॥ ९९ ॥ ॐभूर्भुवःस्वःस्वाहा, इन मन्त्रोंसे ब्राह्मण चार आहुतियों को देवे वैसे (देवकृतस्यएनसोवयजनमसिस्वाहा ॥ मनुष्यकृतस्यैनसोवयजनमसिस्वाहा) इत्यादि मन्त्रों से छः आहुतियों को होमकरे ॥ २०० ॥ तथा चुपचाप होकर यम के लिये एक और अग्नयेस्विष्टकृतेस्वाहा, इत्यादि दो आहुतियोंको करदे तब विश्वेदेवोंके लिये बलिको देवे ॥ १ ॥ व उनके उत्तर में, सब भूतों के लिये (सर्वेभ्योभूतेभ्योनमः) इस मन्त्र से बलिको देवे और अपसव्यहो याने दहिने कांधे में यज्ञोपवीत पहिने हुवा पितरोंको देवे ॥ २ ॥ व ईशानकोणमें यक्ष्मणेनमः इस मन्त्रसे यक्ष्माको निर्णेजन

जल संयुत अन्न सौंपे तदनन्तर उसके उत्तरमें चतुर्थ्यंत नामके पाछे नमः पदको जोड़कर ब्रह्मादि देवोंको बलिदेवे ॥ ३ ॥ व कण्ठमें यज्ञोपवीतकर सनकादिकों को तथा अपसव्य होकर पितरों के लिये बलि देनाचाहिये और सोलह कौलोंसे हन्त व चारसे पुष्कल कहागया है ॥ ४ ॥ व एक कौलमात्र से गृहस्थों की पुण्य देनेवाली भिक्षा होतीहै व बटोही वृत्तिहीन विद्यार्थी और गुरुको पोषताहुवा ॥ ५ ॥ संन्यासी और ब्रह्मचारी ये छः धर्मभिक्षुक कहाते हैं व गली चलतेहुये को अतिथि वैसेही सांग वेद पढ़ेहुये को अनूचान नाम जानना चाहिये ॥ ६ ॥ ये दोनो ब्रह्मलोक चाही गृहस्थों के मान्य हैं परन्तु कूकर व चाण्डाल में भी अन्न निष्फल नहीं होताहै ॥ ७ ॥

दद्यात्तदुत्तरे ॥ ३ ॥ निवीतीसनकादिभ्यःपितृभ्यस्त्वपसव्यवान् ॥ हन्तःषोडशभिर्ग्रासैश्चतुर्भिःपुष्कलंस्मृतम् ॥ ४ ॥ ग्रासमात्राभवेद्भिक्षागृहस्थसुकृतप्रदा ॥ अध्वगःक्षीणवृत्तिश्चविद्यार्थीगुरुपोषकः ॥ ५ ॥ यतिश्चब्रह्मचारीचषडेतेधर्मभिक्षुकाः ॥ अतिथिःपथिकोज्ञेयोऽनूचानःश्रुतिपारगः ॥ ६ ॥ मान्यावेतौगृहस्थानांब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥ अपिश्वपाके शुनिवानैवान्नंनिष्फलम्भवेत् ॥ ७ ॥ अन्नार्थिनिसमायातेपात्रापात्रंनचिन्तयेत् ॥ शुनाञ्चपतितानाञ्चश्वपचाम्पापरोगिणाम् ॥ ८ ॥ काकानाञ्चकृमीणाञ्चबहिरन्नंकिरेद्भुवि ॥ ऐन्द्रवारुणवायव्याःसौम्यावैनैर्ऋताश्चये ॥ ९ ॥ प्रतिगृह्णन्त्विमंपिण्डंकाकाभूमौमयार्पितम् ॥ द्वौश्वानौश्यामशबलौवैवस्वतकुलोद्भवौ ॥ १० ॥ ताभ्यामपिण्डम्प्रदास्यामिस्यातामेतावहिंसकौ ॥ देवामनुष्याःपशवोरक्षोयक्षोरगाःखगाः ॥ ११ ॥ दैत्याःसिद्धाःपिशाचाश्चप्रेताभूताश्चदानवाः ॥ तृणानितरवश्चापिमद्दत्तान्नाभिलाषुकाः ॥ १२ ॥ कृमिकीटपतङ्गाद्याःकर्मबद्धाबुभुक्षिताः ॥ तृप्त्यर्थमन्नंहिमयादत्तन्तेषां

इससे अन्नचाहीके आतेही पात्र और कुपात्रका विचार न करे श्वान पतित श्वपच पापरोगी ॥ ८ ॥ व काग और कृमियों के लिये भूमिमें अन्नको डालदेवे तब इन मन्त्रों को पढ़े कि इन्द्र वरुण वायु चन्द्र और निर्ऋतिके भी ॥ ९ ॥ जे कागहैं वे भूमिमें मेरे डाले इस पिण्डको सामने से गहें तथा यमके कुलमेंहुये श्याम व शबल जे दो कूकर हैं ॥ १० ॥ मैं उनको पिण्ड देताहूं वे हिंसासे हीन होवें व देव मनुष्य पशु राक्षस उरग (सर्पजाति) पक्षी या आकाश मे चलनेवाले ॥ ११ ॥ व दैत्य सिद्ध पिशाच प्रेत भूत दानव तृण वृक्ष और जे मेरे दिये अन्नके चाही ॥ १२ ॥ व कर्म्मों से बँधेहुये भूंखे कृमि कीट पतंगादि जन्तुहैं उनकी तृप्तिके अर्थ मेरा दियाहुवा अन्न आनन्दके

लिये भी होवे ॥ १३ ॥ ऐसे भूतोंको बलि देकर जितनी बेरमे गऊ दुही जातीहै उतने कालतक आतेहुये अतिथि को परखकर तदनन्तर भोजनके घरमें पैठे ॥ १४ ॥ व कागोंको बलि न देकर नित्य श्राद्धको भलीभांतिसे करे नित्य श्राद्धमे अपनी शक्तिके अनुसार तीन दो व एक ॥ १५ ॥ ब्राह्मणको पितृयज्ञके अर्थ खिलावे पिलावे और जो दरिद्री होवे तो अपने भोजनके अन्नसे थोड़ा थोड़ा निकालकर सबको एक बलिदेवे जोकि नित्य श्राद्धहै वह विश्वेदेवोंसे हीन व नियमादिरहितहै ॥ १६ ॥ व दक्षिणासे वर्जितहै और यह देने व खानेवालेके व्रतों से विहीनहै ऐसे आतुरतारहित स्वस्थचित्त होकर पितरोंका यज्ञकर ॥ १७ ॥ उत्तम आसन मे बैठकर लड़कों के साथ

मुदेस्तुवै ॥ १३ ॥ इत्थम्भूतबलिन्दत्त्वाकालङ्गोदोहमात्रकम् ॥ प्रतीक्ष्यातिथिमायान्तंविशेद्भोज्यगृहन्ततः ॥ १४ ॥ अदत्त्वावायसबलिंनित्यश्राद्धंसमाचरेत् ॥ नित्यश्राद्धेस्वसामर्थ्यात्रीन्द्वावेकमथापिवा ॥ १५ ॥ भोजयेत्पितृयज्ञार्थंदद्यादुद्धृत्यदुर्बलः ॥ नित्यश्राद्धंदैवहीनंनियमादिविवर्जितम् ॥ १६ ॥ दक्षिणारहितंत्वेतद्दातृभोक्तृव्रतोज्झितम् ॥ पितृयज्ञंविधायेत्थंस्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥ १७ ॥ अदुष्टासनमध्यास्यभुञ्जीतशिशुभिःसह ॥ सुगन्धिःसुमनाःस्रग्वीशुचिवासोद्वयान्वितः ॥ १८ ॥ प्रागास्यउदगास्योवाभुञ्जीतपितृसेवितम् ॥ १९ ॥ विधायान्नमनग्नन्तदुपरिष्टादधस्तथा ॥ आपोशानविधानेनकृत्वाश्नीयात्सुधीर्द्विजः ॥ २० ॥ प्रदद्याद्भुवःपतयेभुवनपतयेतथा ॥ भूतानाम्पतयेस्वाहेत्युक्त्वाभूमौबलित्रयम् ॥ २१ ॥ सकृच्चापउपस्पृश्यप्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ॥ दद्याज्जठरकुण्डाग्नौदर्भपाणिःप्रसन्नधीः ॥ २२ ॥ दर्भपाणिस्तुयोभुङ्क्तेतस्यदोषोनविद्यते ॥ केशकीटादिसम्भूतस्तदश्नीयात्सदर्भकः ॥ २३ ॥ यावद्रुच्यन्नमश्नीयान्नब्रूया

भोजनकरे व सुगन्ध लगाये प्रसन्न मनवाला माला पहनेहुये पवित्र दो वस्त्रोंसे संयुत ॥ १८ ॥ व पूर्वमुख या उत्तरमुख बैठाहुवा मनुष्य, पितरोकी यज्ञमे बचेहुये अन्नको खावे पीवे ॥ १९ ॥ आपोशान विधानकरके उस अन्नको ऊपर व नीचेसे नंगा न कर सुबुद्धिमान् ब्राह्मण भोजनकरे ॥ २० ॥ अब आपोशान विधानके क्रमको कहते हैं कि (भुवःपतयेस्वाहा १ भुवनपतये स्वाहा २ भूतानांपतयेस्वाहा३) ऐसा कहकर तीन बलियोंको देवे ॥ २१ ॥ फिर एक बार पानीको स्पर्शकर व आचमनकर कुशकी पैंती पहने प्रसन्नबुद्धिवाला अपने उदरकुण्डकी आगमें प्राणादिकों के लिये पांच आहुतियोंको देवे ॥ २२ ॥ जो कुशकी पैंती पहने खाताहै उसको बाल और कीड़े घुन

दिकों से उत्पन्न दोष नहीं होताहै उस कारण कुशसमेत होकर भोजनकरे ॥ २३ ॥ जबतक रुचिहो तबतकलों अन्नको भोजनकरे उसका गुण व अवगुण न कहे क्यों कि जबतक गुण व अवगुण नहीं कहेगयेहैं तबतक पितर भोजन करते हैं ॥ २४ ॥ इससे जो मौनसे खाताहै वह केवल अमृतको खाताहै तदनन्तर दूध व माठाको पीछेसे पीकर ॥ २५ ॥(अमृतापिधानमसि)ऐसा कहकर एकबार पानीको पानकर इस मन्त्रको पढ़ताहुवा पीनेसे बचे जलको भूमिमें छोंडदेवे ॥ २६ ॥ विना धोये हाथके दहिने अंगुठाके मूलसे पानीको पँवारना चाहिये उसके मन्त्रको कहते हैं कि पापके घर रौरवादि नरकमें पद्म और दशकरोड़ याने बहुत वर्षों से बसते ॥ २७ ॥ व जूंठे

त्तद्गुणागुणान् ॥ भुञ्जतेपितरस्तावद्यावन्नोक्तागुणागुणाः ॥ २४ ॥ अतोमौनेनयोभुङ्क्तेसभुङ्क्तेकेवलामृतम् ॥ अनुपीय ततःक्षीरन्तक्रम्पानीयमेववा ॥ २५ ॥ अमृतापिधानमसीत्येवंप्राश्योदकंसकृत ॥ पीतशेषंक्षिपेद्भूमौतोयंमन्त्रमिमम्पठन् ॥ २६ ॥ अप्रक्षालितहस्तस्यदक्षिणांगुष्ठमूलतः ॥ रौरवेऽपुण्यनिलयेपद्मार्बुदनिवासिनाम् ॥ २७ ॥ उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ २८ ॥ पुनराचम्यमेधावीशुचिर्भूत्वाप्रयत्नतः ॥ हस्तेनोदकमादायमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ २९ ॥ अंगुष्ठमात्रःपुरुषस्त्वंगुष्ठञ्चसमाश्रितः ॥ ईशःसर्वस्यजगतःप्रभुःप्रीणातिविश्वभुक् ॥ ३० ॥ इत्यन्नंपरिसङ्कल्प्यप्रक्षाल्यचरणौकरौ ॥ ततोन्नपरिणामार्थंमन्त्रानेतानुदीरयेत् ॥ ३१ ॥ अग्निराप्याययन्धातून्पार्थिवान्पवनेरितः ॥ दत्तावकाशोनभसाजरयत्वस्तुमेसुखम् ॥ ३२ ॥ प्राणापानसमानानामुदानव्यानयोस्तथा ॥ अन्नम्पुष्टिकरञ्चास्तु ममास्त्वव्याहतंसुखम् ॥ ३३ ॥ समुद्रोवडवाग्निश्चब्रध्नोब्रध्नस्यनन्दनः ॥ मयाभ्यवहृतंयत्तदशेषंजरयन्त्विमे ॥ ३४ ॥

जलके चाही जनोंके लिये यह अक्षय्य होकर समीप में टिके ॥ २८ ॥ फिर आचमन कर यत्नसे पवित्र होकर बुद्धिमान् हाथेमें जलको लेकर इस मन्त्रको पढ़े ॥ २९ ॥ अंगुठा मे बसाहुवा अंगुठाभरेका पुरुष जोकि सब जगतका स्वामी और सर्वभोक्ताहै वह प्रभु प्रसन्न होवे ॥ ३० ॥ ऐसे अन्नको संकल्पकर हाथों व पावोंको पखारकर उसके बाद अन्न पचने के लिये इन मन्त्रोंको पढ़े ॥ ३१ ॥ कि, दिया आकाशने ठौर जिसको वह वायुसे प्रेरित अग्निदेव पृथिवीसे बने धातुओंको बढ़ाताहुवा अन्नको पचावे व मुझका सुखहो ॥ ३२ ॥ वह अन्न प्राण अपान समान उदान और व्यान वायुके पुष्ट करनेवाला होवे व मुझका अखण्ड सुखहोवे ॥ ३३ ॥ समुद्र वडवानल

दो० । छत्तिसयें अध्यायमे गुनि गृहस्थके धर्म । बुद्धि शुद्धि हित होतहैं सदाचार शुभ कर्म ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी ! सदाचारके उस विशेष को मैं फिर कहताहूं कि जिसको सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य अज्ञानअन्धकारमें नहीं पैठताहै ॥ १ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य ये तीनों वर्ण द्विज कहातेहैं क्योंकि पहले एकबार मातासे व दूसरे बार यज्ञोपवीत कर्म्मसे उपजेहैं इससे इनका द्विज नामहै ॥ २ ॥ व गर्भाधानसे लगाकर मरण पर्य्यन्त इनकी क्रिया वेदविधानवाली है उस को कहते हैं कि ऋतुकालमें याने रजस्वला स्नानसे शुद्धहुई स्त्रीमें बुद्धिमान् गर्भको धारे उस समयमें मघा व मूलनक्षत्रको तजे ॥ ३ ॥ व गर्भस्थ लडकाके फड़कनेसे

स्कन्दउवाच ॥ पुनर्विशेषंवक्ष्यामिसदाचारस्यकुम्भज ॥ यंश्रुत्वापिनरोधीमान्नाज्ञानतिमिरंविशेत् ॥ १ ॥ ब्राह्मणाः क्षत्रियावैश्यास्त्रयोवर्णाद्विजाःस्मृताः ॥ प्रथमंमातृतोजाताद्वितीयंचोपनायनात् ॥ २ ॥ एषांक्रियानिषेकादिश्मशानान्ताचवैदिकी ॥ आदधीतसुधीर्गर्भमृतौमूलंमघान्त्यजेत् ॥ ३ ॥ स्पन्दनात्प्राक्पुंसवनंसीमन्तोन्नयनन्ततः ॥ मासिषष्ठेऽष्टमेवापिजातेथोजातकर्मच ॥ ४ ॥ नामाह्न्येकादशेगेहाच्चतुर्थेमासिनिष्क्रमः ॥ मासेन्नप्राशनंषष्ठेचूडाब्देवायथाकुलम् ॥ ५ ॥ शममेनोव्रजेदेवंबैजङ्गर्भजमेवच ॥ स्त्रीणामेताःक्रियास्तूष्णींम्पाणिग्राहस्तुमन्त्रवान् ॥ ६ ॥ सप्तमेऽथाष्टमेवाब्देसावित्रींब्राह्मणोऽर्हति ॥ नृपस्त्वेकादशेवैश्योद्वादशेवायथाकुलम् ॥ ७ ॥ ब्रह्मतेजोभिवृद्ध्यर्थंविप्रोऽब्देपञ्चमेऽर्हति ॥ षष्ठेबलार्थीनृपतिर्मौञ्जींवैश्योऽष्टमेध्रियेत् ॥ ८ ॥ महाव्याहृतिपूर्वञ्चवेदमध्यापयेद्गुरुः ॥ उपनीयचतंशिष्यंशौचाचा

पहलेही पुंस्त्व बढ़ाने के लिये पुंसवन व छठयें या कि अठयेंमासमें सीमन्तकर्म (सिरवन्त) उसके अनन्तर उत्पन्न होतेही जातकर्म्म ॥ ४ ॥ व ग्यारहवें दिनमें नामकरण व चौथे मासमें घरसे निकलना व छठयें मासमें पसनी और वर्षमें मुण्डन करके चोटी रखानाचाहिये व जैसी जिसके कुलमें रीतिहोवै ॥ ५ ॥ यों बीज और गर्भसे उपजाहुवा पाप नाशको पहुँचेहै व स्त्रियोंकी ये क्रियायें चुपचाप याने वेदमन्त्रोंसे हीन होतीहैं और ब्याहका विधान मन्त्रवान् है ॥ ६ ॥ व सातवें अथवा आठवें में ब्राह्मण ग्यारहवें में क्षत्रिय और बारहवें वर्ष में वैश्य गायत्रीके योग्य होताहै ॥ ७ ॥ ब्रह्मतेजकी बढ़ती के अर्थ पांचवें में ब्राह्मण व छठे में बलका चाही क्षत्रिय और खेती आदि वाणिज्य बढ़ने के लिये आठवें वर्ष में वैश्य मौंजीको धारणकरे ॥ ८ ॥ तब गुरु उस शिष्यको समीप में आनकर याने यज्ञोपवीत कर्मका विधानकर ॐभू-

सूर्य्य और शनैश्चर ये सब जने उस सम्पूर्णको पचावें कि जो मैंने खायाहै ॥ ३४ ॥ तदनन्तर मुखकी शुद्धिकर बचे दिनको पुराण सुनने आदि सुकर्म्मोंसे बिताकर उस के बाद सन्ध्यावन्दन करनेको लगालगावे ॥ ३५ ॥ घर गोशाला नदीका किनारा इन स्थानों में कीहुई सन्ध्या क्रमसे दशगुण अधिक होवे है व संगम में सौगुण और शिवके समीपमें अनन्तफलवाली होती है ॥ ३६ ॥घरसे बाहर उपासना कीगई जिसकी ऐसी सन्ध्या दिनमें स्त्रीसंग झूंठ वचन और मद्यके गन्धसे उत्पन्न पापको नशावे है ॥ ३७ ॥ सामवेदस्वरूपिणी वसिष्ठऋषिसे संयुत व काले रंग अंगवाली श्यामवर्णके वस्त्र पहने व कुछ बूढ़ी ॥ ३८ ॥ व गरुड़पर चढ़ी व विघ्नविनाशिनी व जगतीछन्द

मुखशुद्धिन्ततःकृत्वापुराणश्रवणादिभिः ॥ अतिवाह्यदिवाशेषन्ततःसन्ध्यांसमारभेत् ॥ ३५ ॥ गृहेगोष्ठेनदीतीरेसन्ध्यादशगुणाक्रमात् ॥ सम्भेदेस्याच्छतगुणाह्यनन्ताशिवसन्निधौ ॥ ३६ ॥ उपासिताबहिःसन्ध्यादिवामैथुनपातकम् ॥ शमयेदनृतोक्ताघंमद्यगन्धजमेवच ॥ ३७ ॥ सामवेदस्वरूपाञ्चवसिष्ठर्षिसमायुताम् ॥ कृष्णाङ्गींकृष्णवसनांमनाक्स्खलितयौवनाम् ॥ ३८ ॥ सरस्वतींताक्ष्र्ययानांविघ्नघ्नींविष्णुदैवताम् ॥ जगतीच्छन्दसायुक्तांध्यायेदेकाक्षरापराम् ॥ ३९ ॥ अग्निश्चेतिचमन्त्रेणविधायाचमनंसुधीः॥ पश्चिमास्योजपेत्तावद्यावन्नक्षत्रदर्शनम् ॥ ४० ॥ अतिथिंसायमायान्तमपिवाग्भूतृणोदकैः ॥ सम्भाव्यपरिकल्प्येत्थंनिशःप्राक्प्रहरंसुधीः ॥ ४१ ॥ इत्थंदिवाकर्म्मकृत्वाश्रुतेःपठनपाठनैः ॥ एककाष्ठमयींशय्यांनातितृप्तोथसंविशेत् ॥ ४२ ॥ उद्देशतःसमाख्यातोह्येषनित्यतमोविधिः ॥ इत्थंसमाचरन्विप्रोनावसीदतिकर्हिचित् ॥ ४३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसदाचारोनामपञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५॥

से युक्त और विष्णुहैं देवता जिसके उस ॐकाररूपा श्रेष्ठ सरस्वतीको ध्यावे ॥ ३९ ॥ फिर अच्छी बुद्धिवाला (अग्निश्चमामन्युश्चमन्युपतयश्च०) इस पूरे मन्त्रसे आचमन और अन्य कर्म्मको भी पहलेकी नाईं कर जबतक नक्षत्रोंका देखना होवे तबतक गायत्रीमन्त्रको जपे ॥ ४० ॥ व सायङ्कालमे आयेहुये अतिथिको मीठे वचन भूमि कुशासन जल और अन्न आदिकोंसेभी आदरकर ऐसे रातके पहले पहरको बिताकर बुद्धिमान् बहुत सन्तृप्त न होकर पौढ़े ऐसेही दिनका नित्यकर्म्मकर वेदोंके पढ़ने व पढ़ानेसे पहले पहरको बितावे ॥ ४१।४२ ॥ यह नित्यकर्म्म का विधान उद्देशसे कहागया ऐसा करताहुवा ब्राह्मण कभी भी नहीं दुःखित होताहै ॥४३॥ इति पञ्चत्रिंशोऽध्यायः॥३५॥

भुवः स्वःपूर्वक वेद अर्थात् गायत्री मन्त्रको पढ़ावे व शौच और अच्छे आचारमें लगावे ॥ ९ ॥ वह पूर्वोक्त विधि से शौच तथा आचमनको करे तब दन्त व जीभको शोधकर मलका विशोधनकर ॥ १० ॥ फिर जलदेवतावाले मन्त्रों से नहाकर यत्नसे प्राणों को चढ़ाकर दोनों सन्ध्याओं में भी सूर्य्यका उपस्थानकर ॥ ११ ॥ तदनन्तर अग्निहोत्रकर अमुकगोत्रः अहंअभिवादये ऐसा कहताहुवा ब्राह्मणों को नमस्कार करे ॥ १२ ॥ क्योंकि ब्राह्मणों को बंदते व बूढ़ोंको सेवतेहुये जनकी बुद्धि बल सुयश और आयु दिनो दिन अधिक बढ़ती है ॥ १३ ॥ व गुरुसे बुलायाहुवा पढ़े उसके लिये प्राप्त वस्तुको देवे व कर्म मन और वचन से सदा उसका हितकरे ॥ १४ ॥ व

रेचयोजयेत् ॥ ९ ॥ पूर्वोक्तविधिनाशौचंकुर्यादाचमनन्तथा ॥ दन्ताञ्जिह्वांविशोध्याथकृत्वामलविशोधनम् ॥ १० ॥ स्नात्वाम्बुदैवतैर्मन्त्रैःप्राणानायम्ययत्नतः ॥ उपस्थानंरवेःकृत्वासन्ध्ययोरुभयोरपि ॥ ११ ॥ अग्निकार्यन्ततःकृत्वा ब्राह्मणानभिवादयेत् ॥ ब्रुवन्नमुकगोत्रोहमभिवादयइत्यपि ॥ १२ ॥ अभिवादनशीलस्यवृद्धसेवारतस्यच ॥ आयुर्यशो बलम्बुद्धिर्वर्धतेऽहरहोऽधिकम् ॥ १३ ॥ अधीतेगुरुणाहूतःप्राप्तन्तस्मैनिवेदयेत् ॥ कर्मणामनसावाचाहितन्तस्याचरेत्स दा ॥ १४ ॥ अध्याप्याधर्मतोनार्थात्साध्वाप्तज्ञानवित्तदाः ॥ शक्ताःकृतज्ञाःशुचयोऽद्रोहकाश्चानसूयकाः ॥ १५ ॥ धा रयेन्मेखलादण्डोपवीताजिनमेवच ॥ अनिन्द्येषुचरेद्भैक्ष्यंब्राह्मणेष्वात्मवृत्तये ॥ १६ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशामादि मध्यावसानतः ॥ भैक्ष्यचर्याक्रमेणस्याद्भवच्छब्दोपलक्षिता ॥ १७ ॥ वाग्यतोगुर्वनुज्ञातोभुञ्जीतान्नमकुत्सयन् ॥ ए

अच्छे आप्तज्ञानवाले धनदायक समर्थ उपकारज्ञ द्रोहरहित और गुणसहितमें दोष को न लगातेहुये लोग धर्मसे पढ़ाने के योग्यहैं न कि धनके लोभसे ॥ १५ ॥ और मेखला दण्ड यज्ञोपवीत व मृगचर्मको धरे व अनिन्दितब्राह्मणों में अपनी वृत्तिके लिये भिक्षाको करे ॥ १६ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी भैक्ष्यचर्य्या क्रमसे आदि मध्य व अन्तमें भवत् शब्दसे उपलक्षित याने युक्त होती है जैसे कि, भवति भिक्षां देहि, ब्राह्मणोंकी व भिक्षां भवति देहि, क्षत्रियोंकी और भिक्षां देहि भवति वैश्योंकी भैक्ष्य-चर्य्या को ऐसे जानना चाहिये ॥ १७ ॥ गुरुकी आज्ञालिये व बोल बन्द किये और अन्नको न निन्दताहुवा ब्रह्मचारी खावे पीवे व श्राद्ध और आपदा मे एक अन्नको

भोग लगावे और अन्यत्र एककोही न खावे याने कई अन्नों का भोजनकरे ॥ १८ ॥ जिससे बहुत भोजनकरना आरोग्य आयु स्वर्ग पुण्य और लोकसे भी विरुद्धहै उस से उसको बरावे ॥ १९ ॥ व ब्राह्मणादि त्रिवर्ण एक दिनमें कभी न दो बार भोजनकरे और अग्निहोत्रकी विधिको जानताहुवा सायङ्काल और प्रातःकालमें भोजन पावे ॥ २० ॥ व शहद मांस प्राणियोंको पीड़ना व उगतेहुये सूर्य्यका देखना अंजन व स्त्री व वासी व उच्छिष्ट अन्न और निंदा या विवाद इन सबको बरवे ॥ २१ ॥ व ब्राह्मण का सोलह क्षत्रियका बाईस और वैश्यका चौबीस वर्षतक यज्ञोपवीत कर्म्म करने के लिये उत्तम काल कहा गयाहै ॥ २२ ॥ इसके ऊपर धर्मसे हीन व पतित हुये वे

कान्नंनसमश्नीयाच्छ्राद्धेऽश्नीयात्तथापदि ॥ १८ ॥ अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यञ्चातिभोजनम् ॥ अपुण्यंलोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ १९ ॥ नद्विर्भुञ्जीतचैकस्मिन्दिवाक्वापिद्विजोत्तमः ॥ सायम्प्रातर्द्विजोऽश्नीयादग्निहोत्रविधानवित् ॥ २० ॥ मधुमांसम्प्राणिहिंसाभास्करालोकनाञ्जने ॥ स्त्रियंपर्युषितोच्छिष्टंपरिवादंविवर्जयेत् ॥ २१ ॥ औपनायनिकःकालोब्रह्मक्षत्रविशाम्परः ॥ आषोडशाद्द्वाविंशादाचतुर्विंशदब्दतः ॥ २२ ॥ इतोप्यूर्ध्वंनसंस्कार्याःपतिताधर्मवर्ज्जिताः ॥ व्रात्यस्तोमेनयज्ञेनतत्पातित्यम्परिव्रजेत् ॥ २३ ॥ सावित्रीपतितैःसार्धंसम्बन्धंनसमाचरेत् ॥ ऐणञ्चरौरवंबास्तंक्रमाच्चर्मद्विजन्मनाम् ॥ २४ ॥ वसीरन्नानुपूर्व्येणशाणक्षौमाविकानिच ॥ द्विजस्यमेखलामौञ्जीमौर्वीचभुजजन्मनः ॥ भवेत्त्रिवृत्समाश्लक्ष्णाविशस्तुशणतान्तवी ॥ २५ ॥ मुञ्जाभावेविधातव्याकुशाश्मन्तकबल्वजैः ॥ ग्रन्थिनैकेनसंयुक्तात्रिभिःपञ्चभिरेववा ॥ २६ ॥ उपवीतंक्रमेणस्यात्कार्पासशाणमाविकम् ॥ त्रिवृदूर्ध्ववृतन्तच्चभवेदायुर्विवृद्धये ॥ २७ ॥

संस्कार कराने योग्य नहीं हैं क्योंकि उनका पतितभाव व्रात्यस्तोम यज्ञसे जावैहै ॥२३॥ व गायत्री पतितोंके साथ सम्बन्धको नहीं करतीहै अथवा गायत्री से पतितोंके साथ सम्बन्धको न करे व ब्राह्मणादि त्रिवर्णोंके लिये हरिण रुरु और छाग इन तीनोंका चर्म्म क्रमसे कहागयाहै ॥ २४ ॥ व वे लोग अनुक्रमसे सन रेशम और ऊनके कपड़े पहिने व ब्राह्मणकी मेखला मूंजकी क्षत्रियकी मूरुनामक तृणकी व वैश्यकी सनकी तथा त्रिगुण बराबर और सचिक्कण स्पर्शवाली मेखला होवे ॥ २५ ॥ मूंजके अभाव में कुश अश्मन्तकतृण और बागई की मेखला बनाना चाहिये जो कि एक गांठ व तीन व पांचसे भी संयुत होती है ॥ २६ ॥ व क्रमसे कपास सन और ऊनका यज्ञोप-

वीत होवे व त्रिगुण तथा दहिनावर्त्तवाला वह आयुवृद्धि के लिये होवे है ॥ २७ ॥ ब्राह्मणका बेल व पलाशका दण्ड क्षत्रियका बरगद व खैरका और वैश्यका दण्ड पीलू व गूलरका होवे ॥ २८ ॥ तथा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यका दण्ड क्रमसे मस्तक माथ व नासाके ऊपरतक लम्बा व बकलासमेतहोवे और आगसे दूषित न होवे ॥ २९ ॥ सूर्यका उपस्थान व अग्निके प्रदक्षिणा घुमाकर दण्ड मृगचर्म और यज्ञोपवीत समेत ब्रह्मचारी यथोक्तप्रकारसे भिक्षाको करे ॥ ३० ॥ व माता मौसी बहन और फूफू आदि ये पहले भीखलेने योग्यही हैं व जोकि इसके प्रति नाहीं को न कहे उससे भी याचना योग्यहै ॥ ३१ ॥ गुरु सेवादि वेद व्रतोंको करताहुवा जबतक वेदों

बिल्वपालाशयोर्दण्डोब्राह्मणस्यनृपस्यतु ॥ न्यग्रोधबालदलयोःपील्वदुम्बरयोर्विशः ॥ २८ ॥ आमौलिंवाऽऽललाटं वाऽऽनासमूर्ध्वप्रमाणतः ॥ ब्रह्मक्षत्रविशान्दण्डस्त्वगाढ्योनाग्निदूषितः ॥ २९ ॥ प्रदक्षिणंपरीत्याग्निमुपस्थायदिवाकरम् ॥ दण्डाजिनोपवीताढ्यश्चरेद्भैक्ष्यंयथोदितम् ॥ ३० ॥ मातृमातृष्वसृस्वसृपितृस्वसृपुरःसराः ॥ प्रथमंभिक्षणीयाःस्युरेतायाचननोवदेत् ॥ ३१ ॥ यावद्वेदमधीतेचचरन्वेदव्रतानिच ॥ ब्रह्मचारीभवेत्तावदूर्ध्वंस्नातोगृहीभवेत् ॥ ३२ ॥ प्रोक्तोसावुपकुर्वाणोद्वितीयस्तत्रनैष्ठिकः ॥ तिष्ठेत्तावद्गुरुकुलेयावत्स्यादायुषःक्षयः ॥ ३३ ॥ गृहाश्रमंसमाश्रित्ययःपुनर्ब्रह्मचर्यभाक् ॥ नासौयतिर्वनस्थोवास्यात्सर्वाश्रमवर्जितः ॥ ३४ ॥ अनाश्रमीनतिष्ठेतादिनमेकमपिद्विजः ॥ आश्रमन्तुविनातिष्ठन्प्रायश्चित्तीयतोहिसः ॥ ३५ ॥ जपंहोमंव्रतंदानंस्वाध्यायंपितृतर्पणम् ॥ कुर्वाणोथाश्रमभ्रष्टोनासौत

को पढ़ता है तबतक ब्रह्मचारी होवे उसके बाद नहानेवाला होकर गृहस्थ होवे ॥ ३२ ॥ वहां यह ब्रह्मचारी उपकुर्वाण कहाताहै और वह दूसरा नैष्ठिक नामसे प्रसिद्धहै जोकि जबतक आयुका क्षय न होवे तबतक उस गुरुकुल में बसेहै ॥ ३३ ॥ और जोकि गृहाश्रमको आश्रयकर याने गृहस्थ होकर फिर ब्रह्मचारीके नियम को सेवता है वह सब आश्रमोंसे वर्जित होकर वानप्रस्थ और संन्यासी भी नहीं होसक्ताहै ॥ ३४ ॥ इससे ब्राह्मणादि त्रिवर्ण आश्रम से हीन होकर एक दिन भी न रहै जिस से आश्रम विना टिकताहुवा वह प्रायश्चित्तवाला होताहै ॥ ३५ ॥ जोकि आश्रमसे भ्रष्ट होवे वह जप होम व्रत दान वेदपाठ और पितरोंका तर्पण करताहुवा भी अन-

न्तर उन सब कर्म्मोंके फलको न पावे ॥ ३६ ॥ मेखला मृगचर्म और दण्ड ये ब्रह्मचारीके तथा वेदाभ्यास व यज्ञादि गृहस्थके व नख व रोम ये वानपस्थके चिह्नहैं ॥ ३७ ॥ और यहां संन्यासीका चिह्न त्रिदण्डादिक भी कहागयाहै इन लक्षणों से हीन होकर दिनो दिन प्रायश्चित्ती होवेहै ॥ ३८ ॥ इससे पुराने कमण्डलु दण्ड यज्ञोपवीत और चर्म्मको भी जलमें डालकर मन्त्रसमेत अन्यको लेवे ॥ ३९ ॥ व गृहस्थाश्रमकी सिद्धिके लिये क्रमसे सोलहवें वर्षमें ब्राह्मण व बाइसवें में क्षत्रिय और चौबीसवे में वैश्य भी केशान्तकर्म्मको करे ॥ ४० ॥ व ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके लिये एक वेदही तप यज्ञ व्रत और सब सुकर्म से अधिक मुक्ति सुख सम्पत्तिका कारण है ॥ ४१ ॥

त्फलमाप्नुयात् ॥ ३६ ॥ मेखलाजिनदण्डाश्चलिङ्गंस्याद्ब्रह्मचारिणः ॥ गृहिणोवेदयज्ञादिनखलोमवनस्थितेः ॥ ३७ ॥ त्रिदण्डादियतेरुक्तमुपलक्षणमत्रवै ॥ एतल्लक्षणहीनस्तुप्रायश्चित्तीदिनेदिने ॥ ३८ ॥ जीर्णंकमण्डलुन्दण्डमुपवीताजिनेअपि ॥ अप्स्वेवतानिनिक्षिप्यगृह्णीतान्यचमन्त्रवत् ॥ ३९ ॥ विदध्यात्षोडशेवर्षेकेशान्तंकर्मचक्रमात् ॥ द्वाविंशे चचतुर्विंशेगार्हस्थ्यप्रतिपत्तये ॥ ४० ॥ तपोयज्ञव्रतेभ्यश्चसर्वस्माच्छुभकर्मणः ॥ द्विजातीनांश्रुतिर्ह्येकाहेतुर्निःश्रेयसश्रियः ॥ ४१ ॥ वेदारम्भेविसर्गेचविदध्यात्प्रणवंसदा ॥ अफलोऽनोंकृतोयस्मात्पठितोपिनसिद्धये ॥ ४२ ॥ वेदस्यवदनम्प्रोक्तंगायत्रीत्रिपदापरा ॥ तिसृभिःप्रणवाद्याभिर्महाव्याहृतिभिःसह ॥ ४३ ॥ सहस्रंसाधिकङ्किञ्चित्त्रिकमेतज्जपन्यमी ॥ मासम्बहिःप्रतिदिनंमहाघादपिमुच्यते ॥ ४४ ॥ अत्यब्दमितियोभ्यस्येत्प्रतिघस्रमनन्यधीः ॥ सञ्योमसूर्तिःशु

इससे वेदों के आदि व अन्तमें सदा ॐकारका उच्चारणकरे जिससे ॐकारसे हीन पढ़ाहुवा भी वेद विफल होकर सिद्धिकेलिये नहीं होताहै ॥ ४२ ॥ ॐकारपूर्वक भूर्भुवः स्वः इन तीन महाव्याहृतियों के साथ तीन पादवाला तत्सवितुः इत्यादि जो श्रेष्ठ गायत्रीमन्त्र है वह वेदका मुख कहागयाहै ॥ ४३ ॥ घरसे बाहर एक महीना पर्यन्त प्रतिदिन मे कुछ अधिक एक हजार बार इस त्रिक याने ॐकारपूर्वक तीन व्याहृति समेत गायत्री को जपताहुवा अहिंसा सत्यादि यम नियमवाला मनुष्य महापाप से भी छूटताहै ॥ ४४ ॥ जोकि अनन्यबुद्धि होकर अर्थात् मन्त्रमही बुद्धिको लगाकर इस भांतिसे कुछ अधिक वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन जपताहै वह शुद्धान्तःकरणवाला

आकाशरूप होकर परम्ब्रह्म को पहुँचताहै ॥ ४५ ॥ व अ, उ, म् इन तीनों अक्षरोंके समष्टिरूप ॐकार व भूः, भुवः, स्वः इन तीनों व्याहृतियों और गायत्रीके तत्सवितुः, आदि तीनों चरणों को ऋग्, यजुः, सामनाम तीनों वेदोंने दुहाहै ॥ ४६ ॥ जो कि वेदों का जाननेवाला ब्राह्मण दोनों सन्ध्याओं में इस ॐकार अक्षर और भूः आदि व्याहृतिपूर्वक तत्सवितुः इस गायत्रीमन्त्र को जपता है वह वेदपाठ के पुण्य से युक्त होताहै ॥ ४७ ॥ व विधिपूर्वक कियेहुये यज्ञसमूहके फलसे दश गुण अधिक जो जपका फलहै उसको पाताहै क्योंकि जपरूप यज्ञ विधिपूर्वक यज्ञसे दश गुण कहागया है ॥ ४८ ॥ व उपांशु (जिसमें स्पष्ट जीभ नहीं डोलती) जप उस यज्ञसे सौगुना

द्धात्मापरंब्रह्माधिगच्छति ॥ ४५ ॥ त्रिवर्णमयमोङ्कारंभूर्भुवःस्वरितित्रयम् ॥ पादत्रयञ्चसावित्र्यास्त्रयोवेदाअदूदुहन् ॥ ४६ ॥ एतदक्षरमेनाञ्चजपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्॥सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रोवेदपुण्येनयुज्यते ॥ ४७ ॥ विधिक्रतोर्दशगुणंजपस्यफलमश्नुते ॥ विधिक्रतोर्दशगुणोजपक्रतुरुदीरितः ॥ ४८ ॥ उपांशुस्तच्छतगुणःसहस्रोमानसस्ततः ॥४९॥ अधीत्यवेदान्वेदौवावेदंवाशक्तितोद्विजः ॥ सुवर्णपूर्णधरणीदानस्यफलमश्नुते ॥ ५० ॥ श्रुतिमेवसदाभ्यस्येत्तपस्तद्धिद्विजोत्तमः ॥ श्रुत्यभ्यासोहिविप्रस्यपरमन्तपउच्यते ॥ ५१ ॥ हित्वाश्रुतेरध्ययनंयोन्यत्पठितुमिच्छति ॥ सदोग्ध्रीन्धेनुमुत्सृज्यग्रामक्रोडीन्दुधुक्षति ॥ ५२ ॥ उपनीयचवैशिष्यंवेदमध्यापयेद्विजः ॥ सकल्पंसरहस्यञ्चतमाचार्यंविदुर्बुधाः ॥ ५३ ॥ योध्यापयेदेकदेशंश्रुतेरङ्गान्यथापिवा ॥ वृत्त्यर्थंसउपाध्यायोविद्वद्भिःपरिगीयते ॥ ५४ ॥ यथाविधिनिषेकादि

और मनसे कियाहुवा जप उससे हजारगुना होताहै ॥ ४९ ॥ ब्राह्मण अपनी शक्तिके अनुसार एक वेद दो वेद व तीन वेदोंको पढ़कर सोनेसे भरी भूमिदान के फलको पहुँचताहै ॥ ५० ॥ इससे ब्राह्मणोत्तम तपस्या करने के लिये सदा वेदोंकोही अभ्यास करे जिससे वेदोंका अभ्यास ब्राह्मणकी उत्तम तपस्या है ॥ ५१ ॥ जो वेदका पढ़ना तजकर अन्यको पढ़नेकी इच्छा करता है वह दुधारी गऊको छोंड़कर ग्राम शूकरी को दुहना चाहताहै ॥ ५२ ॥ व जो ब्राह्मण यज्ञोपवीत कर्म्मको कर शिष्यको कल्प समेत और रहस्य समेत वेदको पढ़ावे उसको पण्डितलोग आचार्य्य कहते हैं ॥ ५३ जोकि वृत्तिके अर्थ वेदके एक भाग अथवा व्याकरणादि अंगों को पढ़ाताहै वह

विद्वानों करके उपाध्याय गाया जाताहै ॥ ५४ ॥ व जो ब्राह्मण यथाविधिपूर्वक गर्भाधानादि कर्मको कराताहै व अन्नसे बढ़ाताहै वह यहां गुरु कहाताहै ॥ ५५ ॥ व जो जिसका वर्णीहोकर आहवनीयआदि अग्नि के उपजानेवाले कर्म्म व पके सस्यादि अन्नोंके निमित्त यज्ञ या अष्टकादि और अग्निष्टोमादि यज्ञोंको करताहै वह यहां उसका ऋत्विज् कहाजाताहै ॥ ५६ ॥ उपाध्यायसे दशगुना आचार्य्य आचार्य्य से सौगुना पिता और पिताकी गुरुतासे माता हजारगुना अधिक होती है ॥ ५७ ॥ ज्ञानसे ब्राह्मणोंकी, बलसे क्षत्रियोंकी, धनधान्यसे वैश्योंकी और जन्मसे शूद्रोंकी जिठाई (बड़ाई) होती है ॥ ५८ ॥ जैसे काठका हाथी व जैसे चमड़ेका मृग है वैसेही न पढ़ताहुआ ब्राह्मणहै

यःकर्मकुरुतेद्विजः ॥ सम्भावयेत्तथान्नेनगुरुःसइहकीर्त्यते ॥ ५५ ॥ अग्न्याधेयम्पाकयज्ञानग्निष्टोमादिकान्मखान् ॥ यःकरोतिवृतोयस्यसतस्यर्त्विगिहोच्यते ॥ ५६ ॥ उपाध्यायाद्दशाचार्यआचार्यात्तुशतम्पिता ॥ सहस्रन्तुपितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते॥५७॥विप्राणांज्ञानतोज्यैष्ठ्यंबाहुजानान्तुवीर्यतः॥वैश्यानान्धान्यधनतःपज्जातानान्तुजन्मतः॥ ५८ ॥ यथादारुमयोहस्तीयथाक्चार्त्तमयोमृगः ॥ तथाविप्रोऽनधीयानस्त्रयोऽमीनामधारिणः ॥ ५९ ॥ स्वप्नेसिक्त्वाब्रह्म चारीद्विजःशुक्रमकामतः ॥ स्नात्वाऽर्कमर्चयित्वात्रिःपुनर्मामित्यृचञ्जपेत् ॥ ६० ॥ स्वधर्मनिरतानाञ्चवेदयज्ञक्रियाव ताम् ॥ ब्रह्मचारीचरेद्भैक्ष्यंवेश्मसुप्रयतोऽन्वहम् ॥ ६१ ॥ अकृत्वाभैक्ष्यचरणमसमिध्यहुताशनम् ॥ अनातुरःसप्तरात्र मवकीर्णिव्रतञ्चरेत् ॥ ६२ ॥ यथेष्टचेष्टोनभवेद्गुरोर्नयनगोचरे ॥ ननामपरिगृह्णीयात्परोक्षेप्यविशेषणम् ॥ ६३ ॥ गुरु

ये तीनों नामधारीमात्र हैं यथार्थ में नहीं हैं ॥ ५९ ॥ ब्रह्मचारी ब्राह्मणादि त्रिवर्ण स्वप्नमें कामना के विना वीर्य्यको सींचकर याने स्खलितहो नहाकर सूर्य्यकी पूजाकर, (पुनर्मामैत्विन्द्रियं) इस ऋचाको तीनबारजपे ॥ ६० ॥ व यत्नधारी जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी वेद यज्ञ क्रियावाले व अपने धर्म्म में तत्पर लोगों के घरों में दिनोदिन भिक्षा को करे ॥ ६१ ॥ जोकि किसी कारणसे आतुर न होवे वह भिक्षाचरणको न कर और अग्निको न बढ़ाकर या न पूजकर सात दिन रात पर्य्यन्त अवकीर्णिव्रत अर्थात् रेतगिरो के प्रायश्चित्तको करे ॥ ६२ ॥ गुरुके नेत्रगोचर में याने उसके आगे अपनी यथाइच्छासे मनमानी चेष्टा करनेवाला न होवे व परोक्ष में भी श्रीस्वामीआदि विशेषण

रहित गुरु का नाम न गहे अर्थात् न कहे ॥ ६३ ॥ जहां गुरुकी निन्दा व जहां अपवाद होवे वहांसे अन्यत्र जाना चाहिये अथवा कानोंको ढांपकर रहनाचाहिये ॥ ६४ ॥
गुरुके अपवादसे गर्दभ होवे है व गुरुनिन्दक कुक्कुर होवे व गुरुसे मत्सर करनेवाला छोटा कीड़ा होवे और गुरु से आगे भोजन करनेहारा कृमि होवे है ॥ ६५ ॥ और
गुण व दोषोंको जानतेहुये बीस वर्ष के शिष्यकरके-दोनों पावोंको स्पर्शकर पतिव्रता गुरु की स्त्री कभी वन्दना करनेयोग्य नहीं है अर्थात् दूरसे उसके नमस्कार करे ॥६६॥
क्योंकि स्त्रियोंका स्वभाव चंचल होताहै इसीसे पुरुषोंका दोष कहागयाहै उस कारण बुद्धिमान् लोग स्त्रियों में कहींभी विश्वास नहीं करते हैं ॥६७॥ जिससे वे सब प्रकारसे

निन्दाभवेद्यत्रपरिवादस्तुयत्रच ॥ श्रुतीपिधायवास्थेयंयातव्यंवाततोऽन्यतः ॥ ६४ ॥ खरोगुरोःपरीवादाच्छ्वाभवेद्गुरु
निन्दकः ॥ मत्सरीक्षुद्रकीटःस्यात्परिभोक्ताभवेत्कृमिः ॥ ६५ ॥ नाभिवाद्यागुरोःपत्नीस्पृष्ट्वाङ्घ्रीयुवतीसती ॥ कापिविं
शतिवर्षेणज्ञातृणागुणदोषयोः ॥ ६६ ॥ स्वभावश्चञ्चलःस्त्रीणांदोषःपुंसामतःस्मृतः ॥ प्रमदासुप्रमाद्यन्तिकचिन्नैवविप
श्चितः ॥ ६७ ॥ विद्वांसमप्यविद्वांसंयतस्ताधर्षयन्त्यलम् ॥ स्ववशंवापिकुर्वन्तिसूत्रबद्धशकुन्तवत् ॥ ६८ ॥ नमात्रान
दुहित्रावानस्वस्रैकान्तशीलता ॥ बलवन्तीन्द्रियाण्यत्रमोहयन्त्यपिकोविदान् ॥ ६९ ॥ प्रयत्नेनखनन्यद्वद्भूमेर्वार्यधिग
च्छति ॥ शुश्रूषयागुरोस्तद्वद्विद्यांशिष्योधिगच्छति॥७०॥ शयानमभ्युदयतेब्रध्नश्चेद्ब्रह्मचारिणम् ॥ प्रमादादथनिम्लो
चेज्जपन्नुपवसेद्दिनम् ॥ ७१॥ सुतस्यसम्भवेक्लेशंसहेतेपितरौचयत् ॥ शक्यावर्षशतेनापिनोकर्तुन्तस्यनिष्कृतिः॥७२॥
अतस्तयोःप्रियंकुर्याद्गुरोरपिचसर्वदा ॥ त्रिषुतेषुसुतुष्टेषुतपःसर्वंसमाप्यते ॥ ७३ ॥ तेषान्त्रयाणांशुश्रूषापरमन्तपउ

मूर्ख व पण्डितको भी सूतसे बांधे पक्षीकी नाईं क्षोभ करती हैं और अपने वश में भी करलेती हैं ॥ ६८ ॥ माताके नहीं व पुत्रीके नहीं और बहनके साथ भी एकान्तमें
टिकना नहीं चाहिये क्योंकि बड़ी बलवती इन्द्रियाँ विद्वान्को भी मोहती हैं ॥ ६९ ॥ जैसे प्रयत्नसे भूमिको खनताहुआ पुरुष पानीको प्राप्तहोता है वैसे शिष्यभी गुरुकी
सेवासे विद्याको पाताहै ॥ ७० ॥ जो सूर्य्यजी प्रमादसे सोतेहुये ब्रह्मचारी के सामने उदयहोवें अथवा अस्तहोवें तो गायत्रीको जपताहुआ एकदिन उपवासकरे ॥ ७१ ॥
पुत्रकी उत्पत्ति में जिस क्लेशको माता पिता सहते हैं उसका उद्धार हजार वर्ष में भी करने योग्य नहीं है ॥ ७२ ॥ इससे सदा उनका और गुरुका भी प्यार करे

उन तीनोंके सन्तुष्ट होतेही सब तपस्या समाप्त होती है ॥ ७३ ॥ उन तीनों की सेवाही श्रेष्ठ तपस्या कहाती है उनको उल्लङ्घनकर जिसको करे वह कभी न सिद्धहोवे ॥ ७४ ॥ उन तीनों को भलीभांति से पूजकर तीनों लोकों को जीतले व उनके सन्तोष को विशेषता से बढ़ाताहुआ वह सुजान स्वर्ग में देवों के समान विहार करे ॥ ७५ ॥ व पुण्यवान् सुकर्मी पुत्र माताकी सेवासे भूमिलोक पिताकी सेवासे भुवर्लोक और वैसेही गुरुकी सेवासे स्वर्लोक को जीतलेवे ॥ ७६ ॥ जो कि इन तीनो का सन्तुष्ट करना है यही मनुष्यों का पुरुषार्थचतुष्टय याने अर्थ धर्म काम और मोक्ष है व उससे अन्य कर्म उपधर्म कहाताहै ॥ ७७ ॥ क्रमसे एक वेद दो वेद तीन वेद और

च्यते ॥ तानतिक्रम्ययत्कुर्यात्तन्नसिद्ध्येत्कदाचन ॥ ७४ ॥ त्रीनेवामून्समाराध्यत्रीँल्लोकान्सजयेत्सुधीः ॥ देववद्दिविदीप्येततेषान्तोषंविवर्धयन् ॥ ७५ ॥ भूर्लोकञ्जननीभक्त्याभुवर्लोकन्तथापितुः ॥ गुरोःशुश्रूषणात्तद्वत्स्वर्लोकञ्चजयेत्कृती ॥ ७६ ॥ एतदेवनृणाम्प्रोक्तम्पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ यदेतेषांहिसन्तोषउपधर्मोन्यउच्यते ॥ ७७ ॥ अधीत्यवेदान्वेदौवावेदंवापिक्रमाद्द्विजः ॥ अप्रस्खलद्ब्रह्मचर्योगृहाश्रममथाश्रयेत् ॥ ७८ ॥ अविप्लुतब्रह्मचर्योविश्वेशानुग्रहाद्भवेत् ॥ अनुग्रहश्चवैश्वेशःकाशीप्राप्तिकरःपरः ॥ ७९ ॥ काशीप्राप्त्याभवेज्ज्ञानंज्ञानान्निर्वाणमृच्छति ॥ निर्वाणार्थम्प्रयत्नोहिसदाचारस्यधीमताम् ॥ ८० ॥ सदाचारोगृहेयद्वन्नतथास्त्याश्रमान्तरे ॥ विद्याजातम्पठित्वान्तेगृहस्थाश्रममाश्रयेत् ॥ ८१ ॥ गृहाश्रमात्परंनास्तियदिपत्नीवशंवदा ॥ आनुकूल्यंहिदम्पत्योस्त्रिवर्गोदयहेतवे ॥ ८२ ॥ आनुकूल्यंकलत्रंचेत्त्रिदिवेनापि

चार वेदों को पढ़कर ब्राह्मणादि वर्ण अखण्ड ब्रह्मचारी होकर अनन्तर गृहस्थाश्रमको सेवे (आधार करे) ॥ ७८ ॥ व श्रीविश्वनाथ की दयासे अखण्डित ब्रह्मचर्य्य वालाहोवे है और विश्वनाथ का उत्तम अनुग्रहही काशीकी प्राप्तिका कर्ताहै ॥ ७९ ॥ व काशीकी प्राप्तिसे ज्ञानहोवे और ज्ञानसे मोक्षको प्राप्तहोताहै (जाताहै) इससे मोक्षकेही लिये बुद्धिमानों के सदाचार का प्रयत्न उचित है ॥ ८० ॥ जैसे घरमें सदाचार होताहै वैसे अन्य आश्रममें नहीं है ऐसे जानकर विद्या समूहको पढ़कर अन्त में गृहस्थाश्रम को आधार करे ॥ ८१ ॥ जो स्त्री अधीन वचन बोलनेवाली होतो गृहाश्रम से परे अन्य आश्रम नहीं है बरन स्त्री और पुरुषकी परस्पर प्रीति अर्थादि

त्रिवर्गके लिये होतीहै ॥ ८२ ॥ जो स्त्री प्रीतिवालीहो तो स्वर्गसे भी क्याहै और जो स्त्री प्रीतिमती न हो तो नरकसेभी क्याहै ॥ ८३ ॥ गृहस्थाश्रम सुखके अर्थ होताहै और वह सुख स्त्रीमूलक है और वही स्त्री है जो कि विनीताहो और निश्चयकर अर्थादि त्रिवर्गही विनय कहाताहै ॥ ८४ ॥ और मन्दबुद्धिवाले लोग स्त्रियों की जोंकके साथ उपमा देते हैं परन्तु विचार से स्त्रियों व जोंकों मे बड़ा भारी अन्तर होताहै ॥ ८५ ॥ जैसे कि क्षुधासे तपीहुई जोंक केवल रक्तकोही ग्रहण करती है और स्त्रियां सदैव मन, धन, बल और सुखको भी गहती हैं ॥ ८६ ॥ जोकि स्त्री सब कामों में निपुण पुत्रवती पतिव्रता प्रियवाक् और अधीन वचन बोलनेवाली होकर इन गुणों से संयुत

किंततः ॥ प्रातिकूल्यंकलत्रंचेन्नरकेणापिकिंततः ॥ ८३ ॥ गृहाश्रमःसुखार्थायभार्यामूलंचतत्सुखम् ॥ साचभार्याविनीतायात्रिवर्गोविनयोध्रुवम् ॥ ८४ ॥ जलौकयोपमीयन्तेप्रमदामन्दबुद्धिभिः ॥ मृगीदृशांजलौकानांविचारान्महदन्तरम् ॥ ८५ ॥ जलौकाकेवलंरक्तमाददानातपस्विनी ॥ प्रमदासर्वदादत्तेचित्तंवित्तंबलंसुखम् ॥ ८६ ॥ दक्षाप्रजावतीसाध्वीप्रियवाक्चवशंवदा ॥ गुणैरमीभिःसंयुक्तासाश्रीःस्त्रीरूपधारिणी ॥ ८७ ॥ गुरोरनुज्ञयास्नात्वाव्रतंवेदंसमाप्यच ॥ उद्वहेततोभार्यांसवर्णांसाधुलक्षणाम् ॥ ८८ ॥ जनेतुरसगोत्रायामातुर्याप्यसपिण्डका ॥ दारकर्मणियोग्यासाद्विजानांधर्मवृद्धये ॥ ८९ ॥ स्त्रीसम्बन्धेप्यपस्मारिक्षयिश्वित्रिकुलंत्यजेत् ॥ अभिशस्तिसमायुक्तंतथाकन्याप्रसूंत्यजेत् ॥ ९० ॥ रोगहीनांभ्रातृमतींस्वस्मात्किञ्चिल्लघीयसीम् ॥ उद्वहेतद्विजोभार्यांसौम्यास्यांमृदुभाषिणीम् ॥ ९१ ॥ नपर्वतर्क्षवृक्षा

होवै वह स्त्रीरूपधारिणी लक्ष्मी है ॥ ८७ ॥ उस कारण गुरुकी आज्ञासे नहाकर ब्रह्मचर्य्यव्रत और वेदको समाप्तकर उसके बाद अच्छे लक्षणवाली समानवर्ण की स्त्रीको ब्याहे ॥ ८८ ॥ जोकि पिताके समगोत्रकी नहीं व माताके भी कुलकी न होवे वह स्त्री ब्राह्मणादिकों के धर्मकी वृद्धिके लिये ब्याह में योग्य होतीहै ॥ ८९ ॥ स्त्रीके सम्बन्धमें भी मृगी व क्षयी रोगवाले और कोढ़ीके कुलको त्यागदेवे व लोकापवादसमेत कुलको तथा कन्याओं के उपजानेवाली स्त्रीको भी त्यागदेवे "यहां कन्याओंका उपजाना ज्योतिषादि से जानना चाहिये" ॥ ९० ॥ भ्रातासहित रोगरहित व अपनासे कुछेकछोटी सुमुखी और कोमल वचन बोलनेवाली स्त्रीको ब्राह्मण ब्याहकरे॥९१॥

पर्वत, ऋक्ष, वृक्ष नामवाली को न ब्याहे नदी व सर्प नामवाली को न ब्याहे पक्षी, नाग, व दास नामवाली को न ब्याहे और सुबुद्धिमान् मनुष्य अच्छे नामवाली स्त्री को ब्याहे ॥ ९२ ॥ अधिक व न्यून अंगवालीको न ब्याहे बहुत बड़ीको न ब्याहे व दुबली को न ब्याहे बिना रोमवालीको न ब्याहे अधिक रोमवालीको न ब्याहे बहुत रूखे मोटे बालवालीको न ब्याहे ॥ ९३ ॥ और मोहसे कुलहीन कन्याको न ब्याहे क्योंकि कुलहीन कन्याके ब्याहने से सन्तति भी हीनताको प्राप्त होतीहै ॥ ९४ ॥ इससे पहले लक्षणों को परीक्षाकर तदनन्तर कन्याको ब्याहे जो कन्या सुलक्षणा और अच्छे आचारवाली होवे वह पतिकी आयुको बढ़ावे है ॥ ९५ ॥ हे अगस्त्य! यह

ह्वांननदीसर्पनामिकाम् ॥ नपक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नींसौम्याख्यामुद्वहेत्सुधीः ॥ ९२ ॥ नचातिरिक्तहीनाङ्गींनातिदीर्घांनवाकृशाम् ॥ नालोमिकांनातिलोमांनास्निग्धस्थूलमौलिजाम् ॥ ९३ ॥ मोहात्समुपयच्छेतकुलहीनांनकन्यकाम् ॥ हीनोपयमनाद्यातिसन्तानमपिहीनताम् ॥ ९४ ॥ लक्षणानिपरीक्ष्यादौततःकन्यांसमुद्वहेत् ॥ सुलक्षणासदाचारापत्युरायुर्विवर्धयेत् ॥ ९५ ॥ ब्रह्मचारिसदाचारइतितेसमुदीरितः ॥ घटोद्भवप्रसङ्गेनस्त्रीलक्षणमथब्रुवे ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेब्रह्मचारिसदाचारवर्णनंनामषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ सदागृहीसुखंभुङ्क्तेस्त्रीलक्षणवतीयदि ॥ अतःसुखसमृद्ध्यर्थमादौलक्षणमीक्षयेत् ॥ १ ॥ वपुरावर्तगन्धाश्चछायासत्त्वंस्वरोगतिः॥ वर्णश्चेत्यष्टधाप्रोक्ताबुधैर्लक्षणभूमिका॥२॥आपादतलमारभ्ययावन्मौलिरुहंक्रमात् ॥शु

ब्रह्मचारियों का सदाचार तुमसे कहागया अनन्तर मैं प्रसंग से स्त्रियों के लक्षणको कहताहूं ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते ब्रह्मचारिसदाचारवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सैतिसयें अध्याय में तियलक्षण कहि दीन । प्रथम परखि पुनि ब्याहिये पूरुष परम प्रवीन ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, जो स्त्री सुलक्षणवालीहो तो गृहस्थ सदा सुखको भोगताहै इससे सुखकी वृद्धिके अर्थ पहलेही स्त्रीके लक्षणको देखलेवे ॥ १ ॥ देह, दक्षिणावर्त्त (नाभी आदि) गन्ध, कान्ति, अन्तःकरण या परपुरुष में मनके न लगाने का कारण गुणविशेष, स्वर, गमन और रंग ऐसे आठप्रकार से लक्षणो के स्थानको पण्डितोने कहाहै ॥ २ ॥ हे मुने! पावोंसे लगाकर बालोंतक क्रमसे

शुभ और अशुभ लक्षणों को मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि पहले पांव व तलवा उसके बाद रेखा अँगुठा अंगुलियां नख पद पृष्ठ दोनों घुटुनू एड़ी मुरवा रोम गांठें ॥ ४ ॥ ऊरू (गांठों के ऊपर मोटी जांघें) कटि, नितम्ब, कूल, योनि, जघन (कटिका अग्रभाग) वस्ति (नाभीका नीचाभाग) नाभि, दोनों कोखें, पार्श्व, पेट, मध्य, त्रिबली ॥ ५ ॥ रोमपंक्ति, हृदय, वक्षस्थल, दोनों कुच, कुचों के अग्रभाग, हँसिया याने कांधों के जोड़, कांध, कांधोंका ऊपर भाग, कांख, बाहैं, पहुँचा, दोनों हाथ ॥ ६ ॥ हाथोंकी पीठ, गदोरी, रेखा, अंगुलियां, नख, पीठ, गले के पीछे कृकाटिका याने घोंटा, कण्ठ, ठोंढ़ी, दोनों हनु (कपोलों के परभाग) ॥ ७ ॥ कपोल, मुख, नीचेका

भाशुभानिवक्ष्यामिलक्षणानिमुनेशृणु ॥ ३ ॥ आदौपादतलंरेखास्ततोंगुष्ठांगुलीनखाः ॥ पृष्ठंगुल्फद्वयंपार्ष्णीजङ्घेरोमाणिजानुनी ॥ ४ ॥ ऊरूकटीनितम्बस्फिग्भगोजघनवस्तिके ॥ नाभिःकुक्षिद्वयंपार्श्वोदरमध्यबलित्रयम् ॥ ५ ॥ रोमालीहृदयंवक्षोवक्षोजद्वयचूचुकम् ॥ जत्रुस्कन्धांसकक्षादोर्मणिबन्धकरद्वयम् ॥ ६ ॥ पाणिपृष्ठम्पाणितलंरेखांगुष्ठांगुलीनखाः ॥ पृष्ठिःकृकाटिकाकण्ठेचिबुकञ्चहनुद्वयम् ॥७॥ कपोलोवक्त्रमधरोत्तरौष्ठौद्विजजिह्विकाः ॥ घण्टिकातालुहसितंनासिकाक्षुतमक्षिणी ॥ ८ ॥ पक्ष्मभ्रूकर्णभालानिमौलिसीमन्तमौलिजाः ॥ षष्टिःषडुत्तरायोषिदङ्गलक्षणसत्खनिः ॥ ९ ॥ स्त्रीणांपादतलंस्निग्धंमांसलंमृदुलंसमम् ॥ अस्वेदमुष्णमरुणंबहुभोगोचितंस्मृतम् ॥ १० ॥ रूक्षंविवर्णम्परुषंखण्डितप्रतिबिम्बकम् ॥ शूर्पाकारंविशुष्कञ्चदुःखदौर्भाग्यसूचकम् ॥ ११ ॥ चक्रस्वस्तिकशङ्खाब्जध्वजमीनातपत्रवत् ॥

ओठ, ऊपरका ओठ, दन्त, जीभ, जीभका नीचाभाग, तालु, हास्य, नासिका, छींक, आंखें, ॥ ८ ॥ पलकें, भौंहैं, कान, माथ, मस्तक, मांग, और बाल इन छासठ सुलक्षणों की खानि स्त्री की देहहो तो सदा सौभाग्यवती कहीजाती है ॥ ९ ॥ अब क्रमसे एक एक अंगों के शुभाशुभलक्षण कहते हैं कि जो स्त्रियोंके पावों के तलवा चीकन, मसीले, मृदुल व पसीनासे हीन और लालरंगवालेहों तो बहुते भोगकेयोग्य कहेगये हैं ॥ १० ॥ और रूखे, विवर्ण, कठोर, खण्डितप्रतिबिंबक (जिनका प्रतिबिंब खण्डित होवे याने धूलिमें चलने से पूरा चिह्न न बने) व सूपके आकार और विशेष सूखेसेहों तो दुःख व दुर्भाग्यको सूचनकरते हैं ॥ ११ ॥ व जिस स्त्रीके पादतल में

चक्र स्वस्तिक शंख कमल ध्वज मछली और छत्रसी रेखाहो वह रानी होती है ॥ १२ ॥ व बीचवाली अंगुली में मिली और नीचे से गई ऊर्ध्वरेखा अखण्ड भोगके लिये कहीजाती है व मूश सर्प और कागके आकारवाली रेखा दुःख और दारिद्र्य को सूचती है ॥ १३ ॥ व ऊंचा, मांससे पूर्ण और गोल अँगुठा अतौल भोगको देनेवाला होताहै व जो कुटिल छोटा और चिपिटाहो तो सुख और सौभाग्यको तोड़ता है ॥ १४ ॥ क्योंकि बहुत चौड़े अंगुष्ठ से स्त्री विधवा और बहुतलम्बे से दुर्भगा होती है व सघन सुगोल ऊंची और कोमल अंगुलियां प्रशंसनीयहैं ॥ १५ ॥ और लम्बी अंगुलियों से कुलटा व पतलियों से महादारिद्रिणी व बहुत छोटी अंगुलियों से थोड़ी आ-

यस्याःपादतलेरेखासाभवेत्क्षितिपाङ्गना ॥ १२ ॥ भवेदखण्डभोगायोर्ध्वामध्यांगुलिसङ्गता ॥ रेखाखुसर्पकाकाभा दुःखदारिद्र्यसूचिका ॥ १३ ॥ उन्नतोमांसलोंगुष्ठोवर्त्तलोतुलभोगदः ॥ वक्रोह्रस्वश्चचिपिटःसुखसौभाग्यभञ्जकः ॥ १४ ॥ विधवाविपुलेनस्याद्दीर्घांगुष्ठेनदुर्भगा ॥ मृदवोंगुलयःशस्ताघनावृत्ताःसमुन्नताः ॥ १५ ॥ दीर्घांगुलीभिःकुलटाकृशाभिरतिनिर्धना ॥ ह्रस्वायुष्याचह्रस्वाभिर्भुग्नाभिर्भुग्नवर्त्तिनी ॥ १६ ॥ चिपिटाभिर्भवेद्दासीविरलाभिर्दरिद्रिणी ॥ परस्परंसमारूढाःपादांगुल्योभवन्तिहि ॥ १७ ॥ हत्वाबहूनपिपतीन्परप्रेष्यातदाभवेत् ॥ यस्याःपथिसमायान्त्यारजोभूमेःसमुच्छलेत् ॥ १८ ॥ सापांसुलाप्रजायेतकुलत्रयविनाशिनी ॥ यस्याःकनिष्ठिकाभूमिंनगच्छन्त्याःपरिस्पृशेत् ॥ १९ ॥ सानिहत्यपतिंयोषाद्वितीयंकुरुतेपतिम् ॥ अनामिकाचमध्याचयस्याभूमिंनसंस्पृशेत ॥ २० ॥ पतिद्वयंनि

युवाली और टेढ़ी अंगुलियों से स्त्री कुटिल व्यवहार में बर्तनेहारी होती है ॥ १६ ॥ व चिपटी अंगुलियों से दासी और बिरली अंगुलियों से दरिद्रिणी होवे और जो पावों की अंगुलियां परस्पर एक एक पर चढ़ी होतीहैं ॥ १७ ॥ तो वह स्त्री बहुते पतियों को भी मारकर पराये अधीन होतीहै व गलीमें चलतीहुई जिस स्त्रीके पीछेसे भूमिकी धूलि उड़ती या ऊपरको उठती है ॥ १८ ॥ वह स्त्री तीनों अर्थात् माता पिता और पतिके कुलकी विनाशनेवाली व्यभिचारिणी होतीहै व चलती हुई जिस स्त्रीकी कनिष्ठा अंगुली पृथिवीको न परसे ॥ १९ ॥ वह स्त्री अपने पतिको मारकर दूसरे पतिको करतीहै व जिसकी अनामिका और जिसकी मध्यमा अंगुली भूमिको न छुवे वे दोनो स्त्रियां

बराने योग्य हैं ॥ २० ॥ क्योंकि पहली याने जिसकी अनामिका पृथिवी को नहीं परसती है वह दो पतियोंको और दूसरी तीन पतियों को मारती है और जो वे पूर्वोक्त अनामिका व मध्यमा अंगुलियां हीन होवें तो पतिकी हीनता करनेवाली होती हैं ॥ २१ ॥ व यह बहुत निश्चय है कि जिस स्त्रीकी प्रदेशिनी याने अँगुठाके लगेवाली अंगुली अँगुठासे मिलीहोवे वह कन्याही कुलटा होतीहै ॥ २२ ॥ व सचिक्कण समुन्नत सुगोल और लाले रंगवाले पाद नख शुभहैं और इनसे उलटा होनेसे अशुभहैं ॥२३॥ व स्त्रियों के पावोंकी पीठ जो उन्नत व पसीना और नसोंसे हीन व मांसयुक्त सचिक्कण और कोमलहो तो रानीके भावको सूचनकरती है याने वह स्त्री रानी होती है ॥२४॥ व पांवके ऊपर बीचमें नम्र होनेसे दरिद्रिणी व नसयुक्त से सदा गली चलनेवाली व रोमयुक्त से दासी और मांसहीन पदपृष्ठसे दुर्भगा होती है ॥ २५ ॥ व नसोंसे हीन

हन्त्याद्याद्वितीयाचपतित्रयम् ॥ पतिहीनत्वकारिण्यौहीनेतेद्वेइमेयदि ॥ २१ ॥ प्रदेशिनीभवेद्यस्याश्रंगुष्ठाव्यतिरेकिणी ॥ कन्यैवकुलटासास्यादेषएवविनिश्चयः ॥ २२ ॥ स्निग्धाःसमुन्नतास्ताम्रावृत्ताःपादनखाःशुभाः ॥ २३ ॥ राज्ञीत्वसूचकंस्त्रीणांपादपृष्ठंसमुन्नतम् ॥ अस्वेदमशिराढ्यञ्चमसृणंमृदुमांसलम् ॥ २४ ॥ दरिद्रामध्यनम्रेणशिरालेनसदाध्वगा ॥ रोमाढ्येनभवेद्दासीनिर्मांसेनचदुर्भगा ॥ २५ ॥ गूढौगुल्फौशिवायोक्तावशिरालौसुवर्तुलौ ॥ स्थपुटौशिथिलौदृश्यौस्यातान्दौर्भाग्यसूचकौ ॥ २६ ॥ समपार्ष्णिःशुभानारीपृथुपार्ष्णिश्चदुर्भगा ॥ कुलटोन्नतपार्ष्णिःस्याद्दीर्घपार्ष्णिश्चदुःखभाक् ॥ २७ ॥ रोमहीनेसमेस्निग्धेयज्जङ्घेक्रमवर्त्तुले ॥ साराजपत्नीभवतिविशिरेसुमनोहरे ॥ २८ ॥ एकरोमाराजपत्नीद्विरोमाचसुखावहा ॥ त्रिरोमारोमकूपेषुभवेद्वैधव्यदुःखभाक् ॥ २९ ॥ वृत्तंपिशितसंलग्नंजानुयुग्मम्प्रशस्यते ॥ नि

सुगोल और मांससे मूँदे गुल्फ याने पावों के घुट्ठुना कल्याण के लिये कहेगये हैं और जो नीचे व शिथिल व उघड़े देख पड़तेहों तो दुर्भाग्य को जनाते हैं ॥ २६ ॥ जिसकी एड़ी समानहो वह स्त्री शुभहै व मोटी एड़ीवाली दुर्भगा होतीहै व ऊंची एड़ीवाली कुलटा होतीहै और जिसकी एड़ी दीर्घहो वह स्त्री दुःख सेवनेवाली होतीहै ॥ २७ ॥ व जिसके मुरवा मनोहर समान चढ़ा उतार व रोमरहित व नसोंसेहीन और क्रमसे सुगोल होवें वह रानी होती है ॥ २८ ॥ व जिसके रोमकूपों में एक रोमहो वह भी रानी होती है व दो रोमवाली स्त्री सुखके प्राप्त करनेहारी होतीहै और तीन रोमवाली स्त्री विधवा और दुःखिनी होतीहै ॥ २९ ॥ व गोली और मांससे मूँदी दोनों

पावोंकी गांठें प्रशंसी जाती हैं व स्वैरिणी की मांसहीन और दरिद्रिणी स्त्रीकी गांठें शिथिल होतीहैं ॥ ३० ॥ करभ (मणिबन्धसे कनिष्ठा अंगुलीतक) के आकार व नसोंसे हीन सचिक्कण सघन व रोमरहित और गोली ऊरुओं से स्त्रियां रानी होती हैं ॥ ३१ ॥ व रोमभरी ऊरुओं से वैधव्य व चिपिटियों से दौर्भाग्य व जिनके बीचमें नसेंहों या बिलहों उनसे महादुःख है और कठिन चर्मवाली ऊरुओंसे दरिद्रता कही गई है ॥ ३२ ॥ चौबीरा अंगुलकी चौकोन व ऊंचे नितम्ब बिम्बसे समेत स्त्रियों की कटि प्रशस्त होती है ॥ ३३ ॥ व चिपिटी लम्बी मांसहीन व कठिन और ह्रस्व (छोटे) रोमों से संयुत कटि स्त्रीके वैधव्य व दुःखकी सूचन करनेवाली है ॥ ३४ ॥

मांसंस्वैरचारिण्यादरिद्रायाश्चविश्लथम् ॥ ३० ॥ विशिरैःकरभाकारैरूरुभिर्मसृणैर्घनैः ॥ सुवृत्तैरोमरहितैर्भवेयुर्भूपवल्लभाः ॥ ३१ ॥ वैधव्यंरोमशैरुरुदौर्भाग्यञ्चिपिटैरपि ॥ मध्यच्छिद्रैर्महादुःखंदारिद्र्यंकठिनत्वचैः ॥ ३२ ॥ चतुर्भिरंगुलैः शस्ताकटिर्विंशतिसंयुतैः ॥ समुन्नतनितम्बाढ्याचतुरस्रामृगीदृशाम् ॥ ३३ ॥ विनताचिपिटादीर्घानिर्मांसासङ्कटाकटिः ॥ ह्रस्वारोमयुतानार्यादुःखवैधव्यसूचिका ॥ ३४ ॥ नितम्बविम्बोनारीणामुन्नतोमांसलःपृथुः ॥ महाभोगायसम्प्रोक्तस्तदन्योऽशर्मणेमतः ॥ ३५ ॥ कपित्थफलवद्वृत्तौमृदुलौमांसलौघनौ ॥ स्फिचौबलिविनिर्मुक्तौरतिसौख्यविवर्धनौ ॥ ३६ ॥ शुभःकमठपृष्ठाभोगजस्कन्धोपमोभगः ॥ वामोन्नतस्तुकन्याजःपुत्रजोदक्षिणोन्नतः ॥ ३७ ॥ आखुरोमागूढमणिःसुश्लिष्टःसंहतःपृथुः ॥ तुङ्गःकमलपर्णाभःशुभोऽश्वत्थदलाकृतिः ॥ ३८ ॥ कुरङ्गखुररूपोयश्चुल्लिकोदरसन्निभः ॥

ऊंचा व मांसल और विस्तारयुक्त स्त्रियों का नितम्बबिम्ब भारी भोगों के लिये कहा गया है और उससे उलटाहुवा दुःख के लिये मानाजाता है ॥ ३५ ॥ व कैथाके फलके समान गोल कोमल व मांसयुक्त सघन व विना बलिके स्फिक् याने कूल रतिसौख्य के बढ़ानेवाले होतेहैं ॥ ३६ ॥ जोकि स्त्रियों की योनि कछुवे की पीठ की नाईं निबिड़ व हाथी के माथे के कुम्भ के समान उन्नत होवे वह शुभ है और जो वाम ओर को ऊंची होती है वह कन्या उपजानेवाली है व जो दक्षिण को उन्नत होवे वह पुत्रको उपजाती है ॥ ३७ ॥ व मूशके रो रोमों से संयुत गुप्तमध्यभागवाली अच्छी भांति से सघन व दृढ़ विस्तार युक्त उन्नत व कमल

दलके समान और पीपल पत्रके आकारवाली योनि शुभ होती है ॥ ३८ ॥ और जोकि हरिणके खुरके समान व चूल्हे के उदर के आकार व रोमों से भरी पुरी व उघड़े मुखवाली व दृश्यनासा (जिसका छिद्रयुक्त मध्यदेश देख पड़ताहो) है वह अत्यन्त निन्दित या दुर्भाग्य का कारणहै ॥ ३९ ॥ जिस स्त्री की योनि शंख के समान आवर्तवाली या तीन रेखादिकों से अङ्कित होती है वह इसमें गर्भ की इच्छा नहीं करती है और चिपिटी व फूटे घड़े की खपड़ी के आकार बनी हुई योनि दासी पद के देनेवाली है ॥ ४० ॥ वैसेही बांस व बेंतकी पाती के समान व हाथी के से ऊंचे रोमों से संयुत विकट व वक्राकार और लम्बे गलवाली योनि अशुभ होती

रोमशोविवृतास्यश्चदृश्यनासोतिदुर्भगः ॥ ३९ ॥ शङ्खावर्तोभगोयस्याःसागर्भमिहनेच्छति ॥ चिपिटःखर्पराकारः किङ्करीपददोभगः ॥ ४० ॥ वंशवेतसपत्राभोगजरोमोच्चनासिकः ॥ विकटःकुटिलाकारोलम्बगल्लस्तथाऽशुभः ॥ ४१ ॥ भगस्यभालञ्जघनंविस्तीर्णन्तुङ्गमांसलम् ॥ मृदुलंमृदुलोमाढ्यंदक्षिणावर्तमीडितम् ॥ ४२ ॥ वामावर्तञ्चनिर्मांसम्भुग्नंवैधव्यसूचकम् ॥ सङ्कटस्थपुटंरूक्षंजघनन्दुःखदंसदा ॥ ४३ ॥ वस्तिःप्रशस्ताविपुलामृद्वीस्तोकसमुन्नता ॥ रोमशाचशिरालाचरेखाङ्कानैवशोभना ॥ ४४ ॥ गम्भीरादक्षिणावर्तानाभीस्यात्सुखसम्पदे ॥ वामावर्तासमुत्तानाऽव्यक्तग्रन्थिर्नशोभना ॥ ४५ ॥ सूतेसुतान्बहून्नारीपृथुकुक्षिःसुखास्पदम् ॥ क्षितीशञ्जनयेत्पुत्रंमण्डूकाभेनकुक्षिणा ॥ ४६ ॥ उन्नतेनबलीभाजासावर्तेनापिकुक्षिणा ॥ बन्ध्याप्रव्रजितादासीक्रमाद्योषाभवेदिह ॥ ४७ ॥ समैःसमांसैर्मृदुभिर्योषिन्म

है ॥ ४१ ॥ जोकि भगका भाल याने योनि का ऊपर भाग जघन कहाता है वह विस्तारयुक्त, उन्नत, मसीला, मृदुल और दक्षिणावर्त कोमल रोमोंसे संयुत होवे वह प्रशंसितहै ॥ ४२ ॥ व वाम ओर को घूमी हुई रेखाओं या रोमों से व्याप्त, मांसहीन कुटिल जघन वैधव्यका सूचक होताहै और सिकुड़ा नीचा व रूखा हुवा वह सदैव दुःख देनेवाला है ॥ ४३ ॥ कुछेक ऊंची विस्तार युक्त व कोमल वस्ति (कटिका नीचा भाग) प्रशस्त होती है व नाड़ी रोम और रेखाओं से अङ्कित हुई वह अशुभहै ॥ ४४ ॥ गम्भीर व दक्षिणावर्त घूमी हुई नाभी सुख और सम्पत्ति के लिये होवे है व वामावर्त घूमी रोमपङ्क्तिवाली ऊंची और प्रकट मध्यभागवाली भी शुभ नहीं है ॥ ४५ ॥ विस्तीर्ण कोखवाली स्त्री बहुते पुत्रों को उत्पन्न करती है व मेढ़क के उदर के समान कोखसे सुखके स्थानरूप राजा पुत्रको उपजावे है ॥ ४६ ॥ व इस लोकमें

स्त्री क्रम से ऊंची कोखसे बांझ बलीवाली से संन्यासिनी और आवर्त सहित कोखसे दासी होवे या होती है ॥ ४७ ॥ व मांससंयुत, समान, शुभ, कोमल और मूंदे हाड़ वाले पार्श्वों से स्त्री सौभाग्य व सुखकी निधि होवे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ जिस स्त्री के पार्श्वभाग नाड़ी याने नसों से संयुत प्रकट होवें व उन्नत और रोमराजी से युक्त होवें वह पुत्रादिको से हीन व दुःशीला और दुःखकी निधि होवे ॥ ४९ ॥ व नाड़ीरहित, कोमल चर्मवाले, बहुत छोटे उदरसे स्त्री सदैव भोगवती और मिष्टान्नसेविनी होती है ॥ ५० ॥ व दरिद्रिणी स्त्रीका उदर घड़े के आकार, मृदंगके समान, कुम्हड़ाके तुल्यहै और यवके समान बनाहुवा उदर दुप्पूर होताहै ॥ ५१ ॥

ग्नास्थिभिःशुभैः ॥ पार्श्वैःसौभाग्यसुखयोर्निधानंस्यादसंशयम् ॥ ४८ ॥ यस्यादृश्यशिरेपार्श्वेउन्नतेरोमसंयुते ॥ निरपत्याचदुःशीलासाभवेद्दुःखशेवधिः ॥ ४९ ॥ उदरेणातितुच्छेनाविशिरेणमृदुत्वचा ॥ योषिद्भवतिभोगाढ्यानित्यंमिष्टान्नसेविनी ॥ ५० ॥ कुम्भाकारन्दरिद्रायाजठरञ्चमृदङ्गवत् ॥ कूष्माण्डाभंयवाभञ्चदुष्पूरञ्जायतेस्त्रियाः ॥ ५१ ॥ सुविशालोदरीनारीनिरपत्याचदुर्भगा ॥ प्रलम्बजठराहन्तिश्वशुरञ्चापिदेवरम् ॥ ५२ ॥ मध्यक्षामाचसुभगाभोगाढ्यासवलित्रया ॥ ऋज्वीतन्वीचरोमालीयस्याःसाशर्मनर्मभूः ॥ ५३ ॥ कपिलाकुटिलास्थूलाविच्छिन्नारोमराजिका ॥ चौरवैधव्यदौर्भाग्यंविदध्यादिहयोषिताम् ॥ ५४ ॥ निर्लोमहृदयंयस्याःसमंनिम्नत्ववर्जितम् ॥ ऐश्वर्यञ्चाप्यवैधव्यंप्रियप्रेमचसालभेत् ॥ ५५ ॥ विस्तीर्णहृदयायोषापुंश्चलीनिर्दयातथा ॥ उद्भिन्नरोमहृदयापतिंहन्तिविनिश्चितम् ॥ ५६ ॥ अष्टा

बहुत विस्तारयुक्त उदरवाली स्त्री अपत्यों (लड़कों) से हीन व दुर्भगा होतीहै व लम्बे उदरवाली स्त्री श्वशुर और देवरको भी मारडालती है ॥ ५२ ॥ व पतले मध्यभागवाली स्त्री सुभगा होतीहै व तोंदीके समीप त्रिवलीवाली स्त्री भोगोंसे संयुत होतीहै व जिसकी रोमपंक्ति सीधी सूक्ष्म और लम्बी होवे वह सुख व क्रीड़ाका स्थान होती है ॥ ५३ ॥ कपिलरंग, कुटिल, स्थूल और बीचमें छिन्न भिन्न हुई स्त्रियोंकी रोमपंक्ति इस लोकमें चोरी वैधव्य और दौर्भाग्यको करती है ॥ ५४ ॥ जिस स्त्रीका हृदय रोमरहित, बराबर व गहरा नहीं है वह ऐश्वर्य्य, अवैधव्य और पतिके प्रेमको भी पातीहै ॥ ५५ ॥ व विस्तारयुक्त हृदयवाली स्त्री पुंश्चली तथा निर्दया होती है और जिसके

हृदयमें रोमराजी जमी होवे वह स्त्री निश्चयकरके पतिको मारडालती है ॥ ५६ ॥ व अठारह अंगुलका चौंड़ा सघन समुन्नत वक्षःस्थल सुखके लिये होताहै और बहुत विस्तारवाला रोमों से संयुत व कुटिल उर दुःखके लिये होताहै ॥ ५७ ॥ गोलाकार व सघन व समान व मोटे व कड़े कुच प्रशस्त हैं व स्थूल अग्रवाले बीरल और सूखे हुये कुच स्त्रियों के सुखदाता नहीं हैं ॥ ५८ ॥ जिस स्त्रीको दक्षिण ओरका कुच उन्नत होताहै वह पुत्रवती और श्रेष्ठ मानी जाती है व वामोन्नत कुचवाली स्त्री सौभाग्य संयुत सुन्दरी कन्याको उत्पन्न करती है ॥ ५९ ॥ व रहँटके बीचवाली घटीके समान कुच दुष्टशीलताके सूचक होते हैं व मोटे मुखवाले अन्तरसमेत और अन्तके समीप

दशांगुलततमुरःपीवरमुन्नतम् ॥ सुखायदुःखायभवेद्रोमशंविषमंपृथु ॥५७॥ घनौवृत्तौदृढौपीनौसमौशस्तौपयोधरौ ॥ स्थूलाग्रौविरलौशुष्कौवामोरूणांनशर्मदौ ॥ ५८ ॥ दक्षिणोन्नतवक्षोजापुत्रिणीत्वग्रणीर्मता ॥ वामोन्नतकुचासूतेकन्यांसौभाग्यसुन्दरीम् ॥ ५९ ॥ अरघट्टघटीतुल्यौकुचौदौःशील्यसूचकौ ॥ पीवरास्यौसान्तरालौपृथूपान्तौनशोभनौ ॥ ६० ॥ मूलेस्थूलौक्रमकृशावग्रेतीक्ष्णौपयोधरौ ॥ सुखदौपूर्वकालेतुपश्चादत्यन्तदुःखदौ ॥ ६१ ॥ सुदृढंचूचुकयुगंशस्तंश्यामंसुवर्तुलम् ॥ अन्तर्मग्नञ्चदीर्घञ्चकृशंक्लेशायजायते ॥ ६२ ॥ पीवराभ्याञ्चजत्रुभ्यांधनधान्यनिधिर्वधूः ॥ श्लथास्थिभ्याञ्चनिम्नाभ्यांविषमाभ्यान्दरिद्रिणी ॥ ६३ ॥ अबद्धावनतौस्कन्धावदीर्घावकृशौशुभौ ॥ वक्रौस्थूलौचरोमाढ्यौप्रेष्यवैधव्यसूचकौ ॥ ६४ ॥ निगूढसन्धीस्त्रस्ताग्रौशुभावंसौसुसंहतौ ॥ वैधव्यदौसमुच्चाग्रौनिर्मांसावतिदुःख

में विस्तारयुक्त कुच शुभ नहीं हैं ॥ ६० ॥ मूलमें स्थूल व क्रमसे कृश (पतले) और अग्रभाग में तीक्ष्णतासंयुत कुच पूर्वकालमें सुखदाता होते हैं व उसके बाद अधिक दुःखदायक हैं ॥ ६१ ॥ व सुदृढ़ सुगोल और काले रंगवाले दोनों चूचुक (कुचों के अग्रभाग) शुभहैं व भीतर डूबेहुये लम्बे और कृशतायुक्त चूचुकयुगल क्लेशके लिये होताहै ॥ ६२ ॥ मोटी हासियों से स्त्री धन व धान्यकी निधिहै और पसरे हाड़वाली खाली व विषम जत्रुवों से दरिद्रिणी होतीहै ॥ ६३ ॥ व विना बँधेहुये दीर्घताहीन, मांसयुक्त स्कन्ध शुभ हैं व कुटिल स्थूल और रोमों से भरेहुये वे दास्य व वैधव्यके सूचक हैं ॥ ६४ ॥ मूंदे जोड़वाले व नयेहुये अग्रभागवाले व बहुत दृढ़ अंस

शुभ होतेहैं और उन्नताग्रवाले वैधव्यके दायक होते हैं व मांससे हीनहुये वे बहुत दुःख देनेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥ व बहुत सूक्ष्म रोमवाली ऊंची मसीली सचिक्कण कांखें शुभ होती हैं व गहरी, नसवाली और स्वेद (पसीना) से चीकनहुई वे शुभ नहीं हैं ॥ ६६ ॥ मूँदेहुये हाड़ों की गांठोंवाली, कोमल, सरल, रोमरहित और नसों से हीन स्त्रियों की बाहैं निर्दोषहैं ॥ ६७ ॥ व स्थूल रोमवाली बाहैं वैधव्यको सूचित करती हैं व छोटी बाहैं दौर्भाग्य के सूचनेवाली होती हैं और प्रकट नसवाली बाहैं स्त्रियों के क्लेश के लिये कही गई हैं ॥ ६८ ॥ कमलकी अधफूली कलीके समान आकारवाला व अंगुठा अंगुलियों और अच्छे मुखसे युक्त हाथोंका जोड़ा स्त्रियोंके बहुते भोगोंके

दौ ॥ ६५ ॥ कक्षेसुसूक्ष्मरोमेतुतुङ्गेस्निग्धेचमांसले ॥ शस्तेनशस्तेगम्भीरेशिरालेस्वेदमेदुरे ॥ ६६ ॥ स्यातांदोषौसुनिर्दोषौगूढास्थिग्रन्थिकोमलौ ॥ विशिरौचविरोमाणौसरलौहरिणीदृशाम् ॥ ६७ ॥ वैधव्यंस्थूलरोमाणौह्रस्वौदौर्भाग्यसूचकौ ॥ परिक्लेशायनारीणांपरिदृश्यशिरौभुजौ ॥ ६८ ॥ अम्भोजमुकुलाकारमंगुष्ठांगुलिसम्मुखम् ॥ हस्तद्वयंमृगाक्षीणांबहुभोगायजायते ॥ ६९ ॥ मृदुमध्योन्नतंरक्तंतलंपाण्योररन्ध्रकम् ॥ प्रशस्तंशस्तरेखाढ्यमल्परेखंशुभश्रियम् ॥ ७० ॥ विधवाबहुरेखेणविरेखेणदरिद्रिणी ॥ भिक्षुकीसुशिराढ्येननारीकरतलेनवै ॥ ७१ ॥ विरोमविशिरंशस्तंपाणिपृष्ठंसमुन्नतम् ॥ वैधव्यहेतुरोमाढ्यंनिर्मांसंस्नायुमत्त्यजेत् ॥ ७२ ॥ रक्ताव्यक्तागभीराचस्निग्धापूर्णाचवर्तुला ॥ कररेखाङ्गनायाःस्याच्छुभाभाग्यानुसारतः ॥ ७३ ॥ मत्स्येनसुभगानारीस्वस्तिकेनवसुप्रदा ॥ पद्मेनभूपतेःपत्नीजनयेद्भूपतिंसुत

लिये होताहै ॥ ६९ ॥ कोमल, मध्योन्नत, रक्तरंगसहित व छिद्ररहित अच्छी रेखावाला व थोड़ी रेखाओं से संयुत शुभ शोभावान् हाथोका तल प्रशस्त होताहै ॥ ७० ॥ बहुत रेखावाले करतलसे स्त्री विधवा होती है व रेखाहीन से दरिद्रिणी और नस भरेहुये करतल से भी भिक्षुकी होती है ॥ ७१ ॥ रोमरहित व नसहीन जो हाथों का पृष्ठहै वह शुभ होताहै व रोमों से भराहुवा वैधव्यका कारणहै व निर्मांस और नसवाले करपृष्ठको त्यागदेवे ॥ ७२ ॥ व लाली प्रकट, गहरी सचिक्कण पूरी और गोली हाथोंकी रेखा स्त्रियोंकी भाग्यके अनुसारसे शुभ होतीहै ॥ ७३ ॥ और स्त्री मीनरेखा से सुभगा होती है व स्वस्तिक से धन देनेवाली है व कमलरेखासे रानी होती है व

भूपति पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ७४ ॥ चक्रवर्ती राजाकी स्त्री के हाथमें दक्षिणावर्त्त स्वस्तिक रेखा व शंख, छत्र और कछुवे के समान रेखायें नृपके माताभावको सूचन करती हैं ॥ ७५ ॥ व तुलामानके आकार रेखायें वणिक्पत्नीत्व याने बनियाकी स्त्री होने में कारणहैं व स्त्रियोंके बायें हाथमें हाथी घोड़ा और बैलके आकार ॥ ७६ ॥ व प्रासाद (महल) और वज्रके समान रेखायें उसके पुत्रको तीर्थ करनेवाला कहती हैं अथवा दो शकट (गाड़ी) रेखाओंसे किसानकी स्त्री होतीहै ॥ ७७ ॥ यह निश्चयहै कि चँवर अंकुश और धन्वासे राजाकी स्त्री होवेहै व अंगुष्ठमूलसे निकलकर रेखा कनिष्ठा अंगुलीको जावे ॥ ७८ ॥ जो ऐसा होवे तो सुबुद्धिमान् उस स्त्रीको दूरसे त्यागदेवे क्योंकि

म् ॥ ७४ ॥ चक्रवर्तिस्त्रियाःपाणौनन्द्यावर्तःप्रदक्षिणः ॥ शङ्खातपत्रकमठान्नृपमातृत्वसूचकाः ॥ ७५ ॥ तुलामानाकृतीरेखेर्वणिक्पत्नीत्वहेतुके ॥ गजवाजिवृषाकाराःकरेवामेमृगीदृशाम् ॥ ७६ ॥ रेखाःप्रासादवज्राभाब्रूयुस्तीर्थकरंसुतम् ॥ कृषीवलस्यपत्नीस्याच्छकटेनयुगेनवा ॥ ७७ ॥ चामरांकुशकोदण्डैराजपत्नीभवेद्ध्रुवम् ॥ अंगुष्ठमूलान्निर्गत्यरेखायातिकनिष्ठिकाम् ॥ ७८ ॥ यदिसापतिहन्त्रीस्याद्दूरतस्तान्त्यजेत्सुधीः ॥ त्रिशूलासिगदाशक्तिदुन्दुभ्याकृतिरेखया ॥ नितम्बिनीकीर्तिमतीत्यागेनपृथिवीतले ॥ ७९ ॥ कङ्कजम्बूकमण्डूकवृकवृश्चिकभोगिनः ॥ रासभोष्ट्रबिडालाःस्युःकरस्थादुःखदाःस्त्रियाः ॥ ८० ॥ शुभदःसरलोंगुष्ठोवृत्तोवृत्तनखोमृदुः ॥ ८१ ॥ अंगुल्यश्चसुपर्वाणोदीर्घावृत्ताःक्रमात्कृशाः ॥ चिपिटाःस्थपुटारूक्षाःपृष्ठरोमयुजोऽशुभाः ॥ ८२ ॥ अतिह्रस्वाःकृशावक्राविरलारोगहेतुकाः ॥ दुखायांगुलयःस्त्रीणांबहुपर्वसमन्विताः ॥ ८३ ॥ अरुणाःसशिखास्तुङ्गाःकरजाःसुदृशांशुभाः ॥ निम्नाविवर्णाःशुक्त्याभाःपीतादारिद्र्य

वह पतिके मारनेवाली होवे है व त्रिशूल, तलवार, गदा, शक्ति और दुन्दुभि (नगरिया) के आकारवाली रेखासे स्त्री दानके द्वारा पृथिवीतल में कीर्तिवाली होती है ॥ ७९ ॥ व स्त्री के हाथमें टिकेहुये कंक (चील्हभेद) स्यार, मेढुक, भेड़िया, वृश्चिक,सर्प्प, गधा, ऊंट और बिलार दुःखदायक होतेहैं ॥ ८० ॥ व गोले नखवाला सरल सुगोल कोमल अंगुठा शुभहै ॥ ८१ ॥ व क्रमसे छोटी या पतली लम्बी गोली और अच्छी गांठोंवाली अंगुलियां शुभहोतीहैं व चिपिटी खाली रूखी व पीछे रोमवाली अशुभहैं ॥ ८२ ॥ व बहुत छोटी, पतली, कुटिल, बिरली अंगुलियां रोगका कारण हैं और विस्तारयुक्त पर्ववाली अंगुलियां स्त्री के दुःखके लिये होती हैं ॥ ८३ ॥ शिखासमेत, उन्नत, लाले

रंगवाले स्त्रियोंके नख शुभहोते हैं व खाली, विवर्ण, सूती के समान श्वेत और पीतरंगवाले नख दारिद्र्यके दायकहैं ॥ ८४ ॥ व बहुधा पुंश्चली स्त्री के नखोंमें उजले बिन्दु होतेहैं और पुरुषभी श्वेत पुष्पके समान नखोंसे दुःखित होते हैं ॥ ८५ ॥ व भीतर निमग्नहै बांमके आकार बीचकी हड्डी जिसमें वह मांसयुक्त पीठ शुभहै और रोमसंयुत पीठसे स्त्री निश्चय वैधव्यको पाती है ॥ ८६ ॥ कुटिल व विशेष नईहुई व नाड़ी (नस)युक्त पीठसे स्त्री दुःखितहोती है मांससमेत व ऊंची और समान सीधी घांटी श्रेष्ठहै ॥८७॥ व नससंयुत, सूखी रोमों से भरी चौंड़ी और टेढ़ी कुकाटिका (घांटी) अशुभहोती है और मांसल व गोलाकार चार अंगुलका कण्ठ प्रशस्तहोताहै ॥ ८८ ॥ तीन रेखाओंसे

दायकाः ॥ ८४ ॥ नखेषुबिन्दवःश्वेताःप्रायःस्युःस्वैरिणीस्त्रियाः ॥ पुरुषाश्रपिजायन्तेदुःखिनःपुष्पितैर्नखैः ॥ ८५ ॥ अन्तर्निमग्नवंशास्थिःपृष्ठिःस्यान्मांसलाशुभा ॥ पृष्ठेनरोमयुक्तेनवैधव्यंलभतेध्रुवम् ॥ ८६ ॥ भुग्नेनविनतेनापिसशिरेणापिदुःखिता ॥ ऋज्वीकुकाटिकाश्रेष्ठासमांसाचसमुन्नता ॥ ८७ ॥ शुष्काशिरालारोमाढ्याविशालाकुटिलाशुभा ॥ मांसलोवर्तुलःकण्ठःप्रशस्तश्चतुरंगुलः ॥ ८८ ॥ शस्ताग्रीवात्रिरेखाङ्कात्वव्यक्तास्थिःसुसंहता ॥ निर्मांसाचिपिटादीर्घास्थपुटानशुभप्रदा ॥८९॥ स्थूलग्रीवाचविधवावक्रग्रीवाचकिङ्करी ॥ वन्ध्याहिचिपिटग्रीवाह्रस्वग्रीवाचनिःसुता ॥ ९० ॥ चिबुकंद्व्यंगुलंशस्तंवृत्तंपीनंसुकोमलम् ॥ स्थूलंद्विधासंविभक्तमायतंरोमशन्त्यजेत् ॥ ९१ ॥ हनुश्चिबुकसंलग्नानिर्लोमासुघनाशुभा ॥ वक्रास्थूलाकृशाह्रस्वारोमशानशुभप्रदा ॥ ९२ ॥ शस्तौकपोलौवामाक्ष्याःपीनौवृत्तौसमुन्नतौ ॥ रोमशौपरुषौनिम्नौनिर्मांसौपरिवर्जयेत ॥ ९३ ॥ समंसमांसंसुस्निग्धंस्वामोदंवर्तुलम्मुखम् ॥जनेतृवदनच्छायन्धन्याना

युक्त, मूंदेहुये हाड़वाली व मांससे भरी सुदृढ़ ग्रीवा शुभहै व मांसहीन चिपटी लम्बी व खालीहुई ग्रीवा शुभ देनेवाली नहीं है ॥ ८९ ॥ स्थूलग्रीवावाली स्त्री विधवा कुटिलग्रीवा दासी चिपिटग्रीवा बन्ध्या और ह्रस्वग्रीवा स्त्री पुत्रोंसे हीन होती है ॥९०॥ गोल, कोमल व मोटी दो अंगुलकी दाढ़ी शुभहै व बहुत स्थूल व दो भागसे बिलग बँटीहुई रोमयुक्त व चौंडी चिबुक को त्यागदेवे ॥ ९१ ॥ और चिवुक में संलग्नहुई रोमहीन सघन हनु शुभ होती है व कुटिल मोटी पतली छोटी और रोमवाली हनु शुभप्रदा नहीं है ॥ ९२ ॥ स्त्रीके मोटे, समुन्नत व गोल कपोल प्रशस्तहैं व रोमयुक्त, कठोर गहरे और मांसहीन कपोलोंको सबओरसे बरादेवे ॥ ९३ ॥ इसलोकमें धन्य लोगोंका मुख

है व सचिक्कण, कोकनदके समान सुरंगवाला और कोमल तालु प्रशस्त होताहै ॥ ३ ॥ उजले तालुसे वैधव्य व पीले से संन्यासिनी व कालेसे पुत्रादि वियोगसे पीड़ित और रूखे से बहुत कुटुम्बवाली होवे है ॥ ४ ॥ व कण्ठ में स्थूल सुगोल व क्रमसे सूक्ष्म व लोहित रंगवाली और लम्बाई से हीन घण्टी शुभहै व स्थूल और काले रंगवाली दुःखदाहै ॥ ५ ॥ जिसमें दांत न देखपड़ें व कुछेक कपोल गोल फूल उठें और आंखें न मूंदें वह सुनयनियों का हँसना प्रशस्तहै ॥ ६ ॥ समान संचार मार्गवाली छोटे छिद्रों से युक्त नासिका शुभके प्राप्त करनेहारी होती है व आगे स्थूल बीचमें विनम्र और समुन्नत नासिका प्रशस्त नहीं है ॥ ७ ॥ संकुचित व अग्रभाग में लाले रंगवाली

भाक्॥ स्निग्धंकोकनदाभासंप्रशस्तंतालुकोमलम् ॥ ३ ॥ सितेतालुनिवैधव्यंपीतेप्रव्रजिताभवेत् ॥ कृष्णेऽपत्यवियोगार्तारूक्षेभूरिकुटुम्बिनी ॥ ४ ॥ कण्ठेस्थूलासुवृत्ताचक्रमतीक्ष्णासुलोहिता ॥ अप्रलम्बाशुभाघण्टीस्थूलाकृष्णाचदुःखदा ॥ ५ ॥ अलक्षितद्विजंकिञ्चित्किञ्चित्फुल्लकपोलकम् ॥ स्मितंप्रशस्तंसुदृशामनिमीलितलोचनम् ॥ ६ ॥ समवृत्तपुटानासालघुच्छिद्राशुभावहा ॥ स्थूलाग्रामध्यनम्राचनप्रशस्तासमुन्नता ॥ ७ ॥ आकुञ्चितारुणाग्राचवैधव्यक्लेशदायिनी ॥ परप्रेष्याचचिपिटाह्रस्वादीर्घाकलिप्रिया ॥ ८ ॥ दीर्घायुःकृत्क्षुतन्दीर्घंयुगपद्द्वित्रिपिण्डितम् ॥ ललनालोचनेशस्तेरक्तान्तेकृष्णतारके ॥ ९ ॥ गोक्षीरवर्णविशदेसुस्निग्धेकृष्णपक्ष्मणी ॥ उन्नताक्षीनदीर्घायुर्वृत्ताक्षीकुलटाभवेत् ॥ १० ॥ मेषाक्षीमहिषाक्षीचकेकराक्षीनशोभना ॥ कामगृहीलानितरांगोपिङ्गाक्षीसुदुर्वृता ॥ ११ ॥ पारावताक्षीदुः

नासिका वैधव्यदायिनी है व चिपटी हुई नासिका पराई दासी होती है याने उस स्त्री को दासी करदेतीहै व छोटी और लम्बी नासिका कलिप्रियाहै ॥ ८ ॥ एक साथही दो तीनबार क्षुत (छींकना) दीर्घायुका कर्ता है व लाले अन्तवाले और श्याम तारों से संयुत स्त्री के नेत्र शुभ होते हैं ॥ ९ ॥ व गोदुग्धके समान श्वेत और काली पलकों वाली आंखें अच्छी होतीहैं व उन्नत आंखोंवाली स्त्री दीर्घायु नहीं होती है और गोली आंखोंवाली स्त्री पुंश्चली होवेहै ॥ १० ॥ व मेषाक्षी महिषाक्षी और चिपिटाक्षी स्त्री शुभ नहीं है व गऊके समान पिंगाक्षी स्त्री बहुतही कामकी चाहिनी और अच्छे दुर्जनोंसे घिरीहुई होतीहै ॥ ११ ॥ व कपोतके समान आंखोंवाली स्त्री कुशीला होती है व लाली

मांससमेत, समान, सचिक्कण, सुगन्धसंयुत, सुगोल और माता व पिताके मुख की छायावाला होताहै ॥ ९४ ॥ पाटल फूलके समान रंगसंयुत व मध्यदेश में रेखाओं से भूषित व सुगोल स्त्रियोंका अधर राजाका प्यारा होताहै ॥ ९५ ॥ व पतला, लम्बा, स्फुटित और रूखाहुवा वह दौर्भाग्यका सूचकहै व स्थूल और कपिशवर्ण नीचेका ओठ वैधव्य और कलहके देनेवालाहै ॥ ९६ ॥ बीचमें कुछेक उन्नत, सचिक्कण व रोमरहित स्त्रीका उत्तरोष्ठ (ऊपरका ओठ) सुभोगों का दाता होताहै और उससे उलटाहुवा विरुद्ध फल करनेवालाहै ॥ ९७ ॥ और नीचे व ऊंचे बराबर, कुछेक ऊंचे, सचिक्कण दूधके समान श्वेतवर्ण बत्तिस दांत शुभ होतेहैं ॥ ९८ ॥ व पीले, कबीले,

मिहजायते ॥ ९४ ॥ पाटलोवर्तुलःस्निग्धोलेखाभूषितमध्यभूः ॥ सीमन्तिनीनामधरोधराजानिप्रियोभवेत् ॥ ९५ ॥ कृशःप्रलम्बःस्फुटितोरूक्षोदौर्भाग्यसूचकः ॥ श्यावःस्थूलोऽधरोष्ठःस्याद्वैधव्यकलहप्रदः ॥ ९६ ॥ मसृणोमतकाशिन्याश्चोत्तरोष्ठःसुभोगदः ॥ किञ्चिन्मध्योन्नतोऽरोमाविपरीतोविरुद्धकृत् ॥ ९७ ॥ गोक्षीरसन्निभाःस्निग्धाद्वात्रिंशद्दशनाःशुभाः ॥ अधस्तादुपरिष्टाच्चसमाःस्तोकसमुन्नताः ॥ ९८ ॥ पीताःश्यावाश्चदशनाःस्थूलादीर्घाद्विपङ्क्तयः ॥ शुक्त्याकाराश्चविरलादुःखदौर्भाग्यकारणम् ॥ ९९ ॥ अधस्तादधिकैर्दन्तैर्मातरंभक्षयेत्स्फुटम् ॥ पतिहीनाचविकटैःकुलटाविरलैर्भवेत् ॥ १०० ॥ जिह्वेष्टमिष्टभोक्त्रीस्याच्छोणामृद्वीतथासिता ॥ दुःखायमध्यसङ्कीर्णापुरोभागसविस्तरा ॥ १ ॥ सितयातोयमरणंश्यामयाकलहप्रिया ॥ दरिद्रिणीमांसलयालम्बयाऽभक्ष्यभक्षिणी ॥ २ ॥ विशालयारसनयाप्रमदातिप्रमाद

स्थूल, दीर्घ व दो पंक्तिवाले व सूती के आकार बिरले दन्त दुःख और दौर्भाग्य का कारणहैं ॥ ९९ ॥ यह स्पष्ट है कि, नीचेकी पंक्तिमें अधिक दांतों से कन्या माताका भक्षण करलेती है व विकट दांतों से विधवा और बिरलों से कुलटा होतीहै ॥ १०० ॥ व कुछेक लाले रंगवाली कोमल जीभ प्यारी मनमानी मिष्ट चीजों की भोगनेहारी होतीहै वैसेही आगे विस्तारयुक्त व बीचमें संकीर्ण और काली या उजली जीभ दुःखके लिये होतीहै ॥ १ ॥ उजली जीभसे जलमें डूबकर मरना होताहै व काली से स्त्री कलहको प्यार करती है व मांसल जीभसे दरिद्रिणी होती है और लम्बी से अभक्ष्य भोजन खानेवाली होतीहै ॥ २ ॥ व चौंड़ी जीभसे स्त्री बड़े प्रमादके सेवनेवाली होती

आंखोंवाली पतिको मारती है व वृक्षोंके छेदों के समान नेत्रोंवाली स्त्री दुष्टा होती है और गजनेत्रा स्त्री शोभना नहीं है ॥ १२ ॥ वाम ओरकी कानी स्त्री पुंश्चली व दक्षिण नेत्रकी कानी बन्ध्या होतीहै और मधु के समान पिंगाक्षी स्त्री धन और धान्यकी समृद्धि को भजती है ॥ १३ ॥ व सघन सचिक्कण श्याम और सूक्ष्म पलकों से स्त्री सुभाग्यकी सेविनी है व कपिलरंग बिरलों व स्थूल पलकों से स्त्री निन्दित होती है ॥ १४ ॥ व अच्छी भौंहवाली स्त्रीकी जे भौंहैं सुगोल सचिक्कण श्याम व परस्पर न जुड़ीहुई कोमल रोमवाली और धन्वाके आकार बनी हैं वे प्रशस्त हैं ॥ १५ ॥ तीक्ष्णरोमा विस्तारयुक्त बिथुड़ीहुई सरला दीर्घरोमा पीली और मिलीहुई स्त्रीकी भौंह शुभ नहीं

शीलारक्ताक्षीभर्तृघातिनी ॥ कोटरानयनादुष्टागजनेत्रानशोभना ॥ १२ ॥ पुंश्चलीवामकाणाक्षीबन्ध्यादक्षिणकाणिका ॥ मधुपिङ्गाक्षीरमणीधनधान्यसमृद्धिभाक् ॥ १३ ॥ पक्ष्मभिःसुघनैःस्निग्धैःकृष्णैःसूक्ष्मैःसुभाग्यभाक् ॥ कपिलैर्विरलैःस्थूलैर्निन्द्याभवतिभामिनी ॥ १४ ॥ भ्रुवौसुवर्तुलेतन्व्याःस्निग्धेकृष्णेअसंहते ॥ प्रशस्तेमृदुरोमाणौसुभ्रुवःकार्मुकाकृती ॥ १५ ॥ खररोमाचपृथुलाविकीर्णासरलास्त्रियाः ॥ नभ्रूःप्रशस्तामिलितादीर्घरोमाचपिङ्गला ॥ १६ ॥ लम्बौकर्णौशुभावर्तौसुखदौचशुभप्रदौ ॥ शष्कुलीरहितौनिन्द्यौशिरालौकुटिलौकृशौ ॥ १७ ॥ भालःशिराविरहितोनिर्लोमार्धेन्दुसन्निभः ॥ अनिम्नस्त्र्यंगुलोनार्याःसौभाग्यारोग्यकारणम् ॥ १८ ॥ व्यक्तस्वस्तिकरेखश्चललाटंराज्यसम्पदे ॥ प्रलम्बम्मस्तकंयस्यादेवरंहन्तिसाध्रुवम् ॥ १९ ॥ रोमशेनशिरालेनप्रांशुनारोगिणीमता ॥ २० ॥ सीमन्तःसरलःशस्तोमौलिःशस्तःसमुन्नतः ॥ गजकुम्भनिभोवृत्तःसौभाग्यैश्वर्यसूचकः ॥ २१ ॥ स्थूलमूर्धाचविधवादीर्घशीर्षाचबन्धकी ॥ वि

है ॥ १६ ॥ शुभ आवर्त्त (घेर) वाले लम्बे कान सुखद व शुभदायकहैं व शष्कुलीरहित, नससहित, कुटिल और कृश हुये कान निंदनीयहैं ॥ १७ ॥ नसोंसे हीन, रोमरहित, चन्द्रखण्डके समान समुन्नत तीन अंगुलका भाल स्त्री की सौभाग्य और आरोग्यका कारण होताहै ॥ १८ ॥ व स्पष्टस्वस्तिकरेखावाला माथ राज्यसम्पत्ति के लिये है और जिसका माथ लम्बाहै वह स्त्री निश्चय से देवरको मारती है ॥ १९ ॥ व रोमयुक्त, नससमेत और ऊंचे माथसे स्त्री रोगिणी मानीगई है ॥ २० ॥ स्त्रीका सरल सीमंत (मांग) शस्त होताहै व समुन्नत मस्तक शस्त होताहै और जोकि मस्तक हाथी के कुम्भ की नाई सुगोलहै वह सौभाग्य और ऐश्वर्य्य का सूचक होताहै ॥ २१ ॥

स्थूलमस्तकवाली स्त्री विधवा व दीर्घमस्तकवाली स्त्री पुंश्चली होती है और चौड़े मस्तक से दौर्भाग्य का भाजन होती है ॥ २२ ॥ भौंर भीर के समान श्याम, सचिक्कण, सूक्ष्म, सुकोमल, कुटिल और कुछेक आकुंचित अग्रवाले वाल बहुत शुभहैं ॥ २३ ॥ व कठोर आगे फाटेहुये बिरले पीले छोटे व रूखे बाल दुःख दारिद्र्य और बन्धन के दाता हैं ॥ २४ ॥ स्त्री की भौंहों के बीच में व माथ में मशा राज्य का सूचक होताहै व कपोलमें कुछेक लालरंगवाला मशा मिष्टान्नदाताहै ॥ २५ ॥ हृदय में तिलक व लक्षण सौभाग्य का कारण है व जिसके दहिने कुच में तिलक व लक्षण होताहै ॥ २६ ॥ वह स्त्री चार कन्याओं को उपजाती है और तीन पुत्रों

शालेनापिशिरसाभवेद्दौर्भाग्यभाजनम् ॥ २२ ॥ केशाश्चालिकुलच्छायाःसूक्ष्माःस्निग्धाःसुकोमलाः ॥ किञ्चिदाकुञ्चिताग्राश्चकुटिलाश्चातिशोभनाः ॥ २३ ॥ परुषाःस्फुटिताग्राश्चविरलाश्चशिरोरुहाः ॥ पिङ्गलालघवोरूक्षादुःखदारिद्र्यबन्धदाः ॥ २४ ॥ भ्रुवोरन्तर्ललाटेवामशकोराज्यसूचकः ॥ वामेकपोलेमशकःशोणोमिष्टान्नदःस्त्रियाः ॥ २५ ॥ तिलकंलाञ्छनंवापिहृदिसौभाग्यकारणम् ॥ यस्यादक्षिणवक्षोजेशोणेतिलकलाञ्छने॥ २६ ॥ कन्याचतुष्टयंसूतेसूतेसाचसुतत्रयम् ॥ तिलकंलाञ्छनंशोणंयस्यावामेकुचेभवेत् ॥ २७॥ एकंपुत्रंप्रसूयादौततःसाविधवाभवेत् ॥ गुह्यस्यदक्षिणेभागेतिलकंयदियोषितः ॥ २८ ॥ तदाक्षितिपतेःपत्नीसूतेवाक्षितिपंसुतम् ॥ नासाग्रेमशकःशोणोमहिष्याएवजायते ॥ २९ ॥ कृष्णःसएवभर्तृघ्नयाःपुंश्चल्याश्चप्रकीर्तितः॥नाभेरधस्तात्तिलकंमशकोलाञ्छनंशुभम्॥ ३० ॥ मशकस्तिलकंचिह्नंगुल्फदेशेदरिद्रकृत् ॥ करेकर्णेकपोलेवाकण्ठेवामेभवेद्यदि॥ ३१ ॥ एषांत्रयाणामेकंतुप्राग्गर्भेपुत्रदम्भवेत् ॥ भालगेनत्रिशूलेन

को उत्पन्न करती है तथा जिसके वाम कुचमें तिलक व लाञ्छन होवे ॥ २७ ॥ वह पहलेही एक पुत्रको उत्पन्नकर तदनन्तर विधवा होजावे व जो स्त्री की योनि के दक्षिण भाग में तिलकहो ॥ २८ ॥ तो राजा की स्त्री होती है अथवा भूपति पुत्रको उत्पन्न करती है और पटरानी कीही नासाके आगे कुछेक लाल मशा होता है ॥ २९ ॥ व वही काला हुवा मशा पुंश्चली और पति के मारनेहारी नारी के भी कहागया है नाभी से नीचे अङ्गमें तिलक व लक्षण शुभ है ॥ ३० ॥ व गुल्फदेशमे हुआ मशा तिलक और लाञ्छन दरिद्रकारी है व हाथ कपोल और कण्ठ में जो होवे ॥ ३१ ॥ इन तीनोंमें से एक तो पहले गर्भ मे पुत्रको देनेवाला होवे और ब्रह्मा के बनाये

हुये माथगत त्रिशूल से ॥ ३२ ॥ स्त्री हजारों स्त्रियों के स्वामित्वको पावे जो कि सोतीहुई स्त्री परस्पर दांत कटकटाती है ॥ ३३ ॥ वैसेही जो कुछ बक उठती है वह सुलक्षणा भी स्त्री शुभ नहीं है व हाथ में रोमों का दक्षिणावर्त धर्म के योग्यहै और वामावर्त शुभ नहीं है ॥ ३४ ॥ व नाभी कान और उरमें दक्षिणावर्त प्रशंसितहै व पीठ के बीचमें वंशाकार हाड़ के दक्षिणदेश मे दक्षिणावर्त सुखके लिये होताहै ॥ ३५ ॥ व पीठ के बीचमें नाभी के समान गोलाकार दक्षिणावर्त्त बहुती आयु और पुत्रों के बढ़ानेवालाहै व रानी की योनि के शिर पर दक्षिणावर्त्त देख पड़ता है ॥ ३६ ॥ जो वह शकट के समान हो तो बहुत पुत्रादि सुखदायकहै और गुह्यपर्य्यन्त से

निर्मितेनस्वयम्भुवा ॥ ३२ ॥ नितम्बिनीसहस्राणांस्वामित्वंयोषिदाप्नुयात् ॥ सुप्तापरस्परंयातुदन्तान्किटिकिटायते ॥ ३३ ॥ सुलक्ष्मापिनसाशस्तायाकिञ्चित्प्रलपेत्तथा ॥ पाणौप्रदक्षिणावर्त्तोधर्म्योवामोनशोभनः ॥ ३४ ॥ नाभौश्रुतावुरसिवादक्षिणावर्तईडितः ॥ सुखायदक्षिणावर्तःपृष्ठवंशस्यदक्षिणे ॥ ३५ ॥ अन्तःपृष्ठंनाभिसमोबह्वायुःपुत्रवर्धनः ॥ राजपत्न्याःप्रदृश्येतभगमौलौप्रदक्षिणः ॥ ३६ ॥ सचेच्छकटभङ्गःस्याद्बह्वपत्यसुखप्रदः ॥ कटिगोगुह्यवेधेनपत्यपत्यनिपातनः ॥ ३७ ॥ स्यातामुदरवेधेनपृष्ठावर्तौनशोभनौ ॥ एकेनहन्तिभर्तारंभवेदन्येनपुंश्चली ॥ ३८ ॥ कण्ठगोदक्षिणावर्त्तोदुःखवैधव्यहेतुकः ॥ सीमन्तेथललाटेवात्याज्योदूरात्प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ सापतिंहन्तिवर्षेणयस्यामध्येकृकाटिकम् ॥ प्रदक्षिणोवावामोवारोम्णामावर्त्तकःस्त्रियाः ॥ ४० ॥ एकोवामूर्धनिद्वौवावामेवामगतौयदि ॥ आदशाहम्पतिघ्नौतौत्याज्यौदूरात्सुबुद्धिना ॥ ४१ ॥ कट्यावर्ताचकुलटानाभ्यावर्तापतिव्रता ॥ पृष्ठावर्त्ताचभर्तृघ्नीकुलटावाथजायते ॥ ४२ ॥

कटिमें प्राप्त दक्षिणावर्त्त पति व पुत्रका नाशकहै ॥ ३७ ॥ उदरपर्य्यन्त प्राप्त वेधसे पृष्ठावर्त्त शुभ नहीं है क्योंकि एक से स्त्री अपने पतिको मारडाले व अन्य दूसरे से पुंश्चली होवे ॥ ३८ ॥ व कण्ठगत दक्षिणावर्त्त दुःख और वैधव्य का कारण है व सीमन्त (मांग) अथवा ललाटमें वह प्रयत्नसे दूर त्यागने योग्यहै ॥ ३९ ॥ और जिस स्त्री की बीच घांटी में प्रदक्षिण व रोमोंका वामावर्त्त है वह एक वर्ष में पतिको मारडालती है ॥ ४० ॥ व जो मस्तक के वामभाग में एक व दो वामावर्त्त हों तो वे दश दिनतकमें पतिके मारनेवाले हैं इससे सुबुद्धिमान् करके दूर त्यागने योग्यहैं ॥ ४१ ॥ कटिमें रोमावर्त्तवाली स्त्री कुलटा व नाभि में आवर्त्तवाली पतिव्रता व पीठमें

आवर्त्तवाली पतिविनाशिनी अथवा पुंश्चली होती है ॥ ४२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि सुलक्षणा भी जो दुष्टशीलवाली स्त्री है वह कुलक्षणवालियों में शिरोमणि है व लक्षणों से हीन हुई भी जो पतिव्रताहै वह सकल सुलक्षणों की भूमि है ॥ ४३ ॥ व घर में विश्वनाथके अनुग्रह सेही सुलक्षणा, सुशीला, स्वाधीना व पतिव्रता स्त्री मिलती है ॥ ४४ ॥ जिन्होने पूर्वजन्ममें अनेक भांति से सुवासिनियों को अलङ्कार कियाहै वेही स्वरूपवाली स्त्री होती हैं ॥ ४५ ॥ व जिन्होंने अच्छे तीर्थ में देहको क्षीण किया व तजदिया वेही स्त्रियां इस लोक में सुलक्षणा व सुन्दरताकी नदियां होती हैं ॥ ४६ ॥ व जिन्होंने जगदम्बा श्रीपार्वतीजी की भी पूजा कियाहै वे सुधर्म्म

स्कन्दउवाच ॥ सुलक्षणापिदुःशीलाकुलक्षणशिरोमणिः ॥ अलक्षणापिसासाध्वीसर्वलक्षणभूस्तुसा ॥ ४३ ॥ सुलक्षणासुचारित्रास्वाधीनापतिदेवता ॥ विश्वेशानुग्रहादेवगृहेयोषिदवाप्यते ॥ ४४ ॥ अलंकृताःस्ववासिन्योयाभिःप्राक्तनजन्मनि ॥ नानाविधैरलङ्कारैस्ताःसुरूपाभवन्तिहि ॥ ४५ ॥ सुतीर्थेषुवपुर्याभिःक्षयितंवाविहायितम् ॥ तालावण्यतरङ्गिण्योभवन्तीहसुलक्षणाः ॥ ४६ ॥ अर्चिताजगताम्मातायाभिर्मृडवधूरिव ॥ ताभवन्तिसुचारित्रायोषाःस्वाधीनभर्तृकाः ॥ ४७ ॥ स्वाधीनपतिकानाञ्चसुशीलानांमृगीदृशाम् ॥ स्वर्गापवर्गावत्रैवसुलक्षणफलंहितत् ॥ ४८ ॥ सुलक्षणैःसुचरितैरपिमन्दायुषम्पतिम् ॥ दीर्घायुषम्प्रकुर्वन्तिप्रमदाःप्रमदास्पदम् ॥ ४९ ॥ अतःसुलक्षणायोषापरिणेयाविचक्षणैः ॥ लक्षणानिपरीक्ष्यादौहित्वादुर्लक्षणान्यपि ॥ ५० ॥ लक्षणानिमयोक्तानिसुखायगृहमेधिनाम् ॥ विवाहानपिवक्ष्यामितन्निबोधघटोद्भव ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे स्त्रीलक्षणवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

कर्म्मवाली स्त्रियां स्वाधीनपतिका होती हैं ॥ ४७ ॥ स्वाधीनपतिका व सुशीला व सुनेत्रवाली सुनयनी स्त्रियों का स्वर्ग और मोक्ष यहांही है वह सुलक्षण का ही फल है ॥ ४८ ॥ जिससे अच्छे लक्षण और अच्छे चरितों से संयुत स्त्रियां थोडी आयुवाले पति को भी दीर्घायु व आनन्द का आश्रय करदेती हैं ॥ ४९ ॥ इससे पहलेही सुलक्षणों को परखकर व कुलक्षणोंको भी त्यागकर पण्डितोंको सुलक्षणा स्त्री ब्याहना चाहिये ॥ ५० ॥ हे अगस्त्यजी ! मैंने गृहस्थों के सुखके लिये लक्षणों को कहा अब विवाहों को भी कहूंगा उसको तुम सुनो ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते स्त्रीलक्षणकथनं नाम सप्तत्रिंशोध्यायः ॥ ३७ ॥

दोहा। अड़तिसयें अध्याय में आठ भाति के ब्याह। ब्रह्मयज्ञ इत्यादि इत सदाचार चितचाह॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच ये आठप्रकार के ब्याह कहेजाते हैं ॥ १ ॥ जिसमें वरको बुलाकर भूषणभूषित कन्या दीजाती है वह ब्राह्म नामक ब्याह है उसका पुत्र इक्कीस पुरुषों को पवित्र करता है ॥ २ ॥ व यज्ञ में टिके ऋत्विज् के लिये कन्यादान को दैव ब्याह कहते हैं उससे उत्पन्न हुआ पुत्र चौदह पुरुषों को तारताहै और वर से दो गौवें लेकर कन्या देने से आर्ष ब्याह होताहै उससे उपजा हुआ लड़का छः पुरुषों को उबारताहै ॥ ३ ॥ तुम दोनों साथही धर्म कर्म करो यह कहकर जिस ब्याह में

स्कन्दउवाच ॥ विवाहाब्राह्मदैवार्षाःप्राजापत्यासुरौतथा ॥ गान्धर्वोराक्षसश्चापिपैशाचोऽष्टमउच्यते ॥ १ ॥ सब्राह्मोव रमाहूययत्रकन्यास्वलंकृता ॥ दीयतेतत्सुतःपूयात्पुरुषानेकविंशतिम् ॥ २ ॥ यज्ञस्थायर्त्विजेदैवस्तज्जःपातिचतुर्दश ॥ वरादादायगोद्वन्द्वमार्षस्तज्जःपुनातिषट् ॥ ३ ॥ सहोभौचरतान्धर्ममित्युक्त्वादीयतेर्थिने ॥ यत्रकन्याप्राजापत्यस्तज्जो वंशान्पुनातिषट् ॥ ४ ॥ चत्वारएतेविप्राणांधर्म्याःपाणिग्रहाःस्मृताः ॥ आसुरःक्रयणाद्द्रव्यैर्गान्धर्वोन्योन्यमैत्रतः ॥ ५ ॥ प्रसह्यकन्याहरणाद्राक्षसोनिन्दितःसताम् ॥ छलेनकन्याहरणात्पैशाचोगर्हितोऽष्टमः ॥ ६ ॥ प्रायःक्षत्रविशोरुक्तागा न्धर्वासुरराक्षसाः ॥ अष्टमस्त्वेषपापिष्ठःपापिष्ठानाञ्चसम्भवेत् ॥ ७ ॥ सवर्णयाकरोग्राह्योधार्यःक्षत्रिययाशरः ॥ प्रतोदो वैश्ययाधार्योवासोन्तःपज्जयातथा ॥ ८ ॥ असवर्णस्त्वेषविधिःस्मृतोदृष्टश्चवेदने ॥ सवर्णाभिस्तुसर्वाभिःपाणिर्ग्राह्यस्त्व

अर्थी को कन्या दीजाती है वह प्राजापत्यहै उससे उपजा हुआ पुत्र छह वंशोंको पवित्र करता है ॥ ४ ॥ ये चार प्रकार के ब्याह ब्राह्मणों के धर्म्म कहेगये हैं और द्रव्य से मोल लेने से आसुरहै व परस्पर वर और कन्याकी प्रीति से गान्धर्व ब्याह होता है ॥ ५ ॥ व हठसे कन्याके हरने से जो राक्षस ब्याह वह सज्जनों के लिये निन्दित है और छलसे कन्या हरने से आठवां पैशाच नामक ब्याह बहुतही निन्दितहै ॥ ६ ॥ व गान्धर्व आसुर तथा राक्षस ये ब्याह बहुधा क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों केही कहे गये हैं और यह आठवां बड़ा पापी पैशाच नामक ब्याह पापी लोगों काही होताहै ॥ ७ ॥ समान वर्णवाली कन्या को वर का हाथ पकड़ना चाहिये क्षत्रियाको बाण व वैश्याको कोड़ा तथा शूद्री को वस्त्रका मध्य धारना चाहिये है ॥ ८ ॥ यह असवर्ण ब्याह की विधि शास्त्रमें देखी हुई कहीगई है और समानवर्णवाली सब कन्याओं

को वरका हाथ पकड़ना चाहिये यही विधि जानना चाहिये ॥ ९ ॥ धर्म्य ब्याहों से सौ वर्ष जीनेवाले धर्मज्ञ पुत्र उपजते हैं ओर अधर्म्य ब्याहों से अधर्मी, अभागी, अधन और अल्पायुवाले होते हैं ॥ १० ॥ ऋतुकालमें स्त्री के समीप जाना यह गृहस्थोंका उत्तम धर्म है अथवा स्त्रियोंके वरको सुमिरकर यथाभिलाषी होवे ॥ ११ ॥ दिनमें स्त्रियो के साथ समागम करना बड़ा आयु का नाशक मानागया है व श्राद्ध दिन व सब पर्वों याने अमावस पूर्णमासी चतुर्दशी अष्टमी और संक्रांति को बुद्धिमान् करके बराना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योकि उनमें मोहसे स्त्री के समीप जाता हुआ पुरुष श्रेष्ठ धर्म से पतित होजाता है ॥ १३ ॥ जो कि ऋतुकाल याने मासिकधर्म से शुद्ध स्त्री

यंविधिः ॥ ९ ॥ धर्म्यैर्विवाहैर्जायन्तेधर्म्याएवशतायुषः ॥ अधर्म्यैर्धर्मरहितामन्दभाग्यधनायुषः ॥ १० ॥ ऋतुकालाभिगमनंधर्मोयंगृहिणःपरः ॥ स्त्रीणांवरमनुस्मृत्ययथाकाम्यथवाभवेत् ॥ ११ ॥ दिवाभिगमनंपुंसामनायुष्यंपरंमतम् ॥ श्राद्धाहःसर्वपर्वाणियत्नात्त्याज्यानिधीमता ॥ १२ ॥ तत्रगच्छन्स्त्रियंमोहाद्धर्मात्प्रच्यवतेपरात् ॥ १३ ॥ ऋतुकालाभिगामीयःस्वदारनिरतश्चयः ॥ ससदाब्रह्मचारीचविज्ञेयःसगृहाश्रमी ॥ १४ ॥ ऋतुःषोडशयामिन्यश्चतस्रस्तासुगर्हिताः ॥ पुत्रास्तास्वपियायुग्माअयुग्माःकन्यकाप्रजाः ॥ १५ ॥ त्यक्त्वाचन्द्रमसंदुःस्थंमघांपौष्णांविहायच ॥ शुचिःसन्निर्विशेत्पत्नीं पुन्नामर्क्षेविशेषतः ॥ शुचिंपुत्रंप्रसूयेतपुरुषार्थप्रसाधकम् ॥ १६ ॥ आर्षेविवाहेगोद्वन्द्वंयदुक्तंतन्नशस्यते ॥ शुल्कमण्वपि कन्यायाःकन्याविक्रयपापकृत् ॥ १७ ॥ अपत्यविक्रयीकल्पंवसेद्विट्कृमिभोजने ॥ अतोनाण्वपिकन्यायाउपजीवेत्पि

के समीप जानेवाला व अपनी स्त्री का नियमी होवे उस गृहस्थको सदा ब्रह्मचारी जानना चाहिये ॥ १४ ॥ सोलह रात्रियां ऋतु कहाती हैं उनमें से पहले की चार निन्दित कही है शेष बारह रात्रियोंमें से जो समहै उनमें पुत्र उपजते हैं और विषम याने पँचई सतई नवई ग्यारहवीं तेरहवीं और पन्द्रहवीं ये कन्या प्रजावाली होती हैं ॥ १५ ॥ इससे पवित्र हुआ पुरुष चौथी छठई आठई आदि रात्रियों में राहु ग्रस्त दुष्ट चन्द्रमाको छोंडकर व मघा और रेवती नक्षत्र को बराबर विशेषसे श्रवण हस्त पुनर्वसु मूल पुष्य और मृगशिरा इन पुरुष संज्ञक नक्षत्रोमे स्त्रीको भोगकरे या पासजावे तो स्त्री पुरुषार्थ साधनेवाले पवित्र पुत्रको उत्पन्न करे ॥ १६ ॥ और आर्ष ब्याह में जो दो गौवो का लेना कहागयाहै वह प्रशसनीय नहीं है क्योकि कन्याका थोड़ा भी मोललेना कन्या बेंचने के पापको करताहै ॥ १७ ॥ जिससे लड़की बेंचनेवाला

मनुष्य विट्कृमिभोजन नरक में कल्प भर याने हजार चौयुगी तक बसताहै इस से पिता कन्या के थोड़े भी धनसे जीविका को न करे ॥ १८ ॥ इस लोकमें जो बांधव लोग मोहसे कन्या के धनसे जीवते हैं वे केवल आपही नहीं नरकगामी होते हैं बरन उनके पुरिखा भी नरक को जाते हैं ॥ १९ ॥ जहां स्त्री पति से सन्तुष्ट होती है और जहां स्त्री से पति तुष्ट होताहै वहां विष्णुसमेत महालक्ष्मीजी बसती हैं ॥ २० ॥ वाणिज्य व राजाकी सेवा तथा वेदों का न पढ़ाना कुत्सित ब्याह और क्रियाओं को लुप्त करना ये सब कुलमें पतितहोने के कारणहैं ॥ २१ ॥ अब वैवाहिक अग्निसे यज्ञादि कर्म्मोंको कहते हैं कि गृहस्थ विवाहवाली आगमें रोज रोज घरके उचितकर्म

ताधनम् ॥ १८ ॥ स्त्रीधनान्युपजीवन्तियेमोहादिहबान्धवाः ॥ नकेवलंनिरयगास्तेषामपिहिपूर्वजाः ॥ १९ ॥ पत्यातुष्यति यत्रस्त्रीतुष्येद्यत्रस्त्रियापतिः ॥ तत्रतुष्टामहालक्ष्मीर्निवसेद्दानवाऽरिणा ॥ २० ॥ वाणिज्यंनृपतेःसेवावेदानध्यापनंतथा ॥ कुविवाहःक्रियालोपःकुलेपतनहेतवः ॥ २१ कुर्याद्वैवाहिकेवह्नौगृह्यंकर्मान्वहंगृही ॥ पञ्चयज्ञक्रियांचापिपक्तिंदैनन्दिनीमपि ॥ २२ ॥ गृहस्थाश्रमिणःपञ्चसूनाकर्मदिनेदिने ॥ कण्डनीपेषणीचुल्लीह्युदकुम्भस्तुमार्जनी ॥ २३ ॥ तासांचपञ्चसूनानांनिराकरणहेतवः ॥ क्रतवःपञ्चनिर्दिष्टागृहिश्रेयोभिवर्धनाः ॥ २४ ॥ पाठनंब्रह्मयज्ञःस्यात्तर्पणञ्चपितृक्रतुः ॥ होमोदैवोबलिर्भौतोऽतिथ्यर्चान्नृक्रतुःक्रमात् ॥ २५ ॥ पितृप्रीतिम्प्रकुर्वाणःकुर्वीतश्राद्धमन्वहम् ॥ अन्नोदकपयोमूलैःफलैर्वापिगृहाश्रमी ॥ २६ ॥ गोदानेनचयत्पुण्यंपात्रायविधिपूर्वकम् ॥ सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षान्दत्त्वातत्फलमाप्नुयात् ॥ २७ ॥ तपोविद्यासमिद्धीप्तेहुतंविप्रास्यपावके ॥ तारयेद्विप्रसङ्घेभ्यःपापाब्धेरपिदुस्तरात् ॥ २८ ॥ अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद्भग्ना

व दिनोदिनका अन्न पकाना और पंचयज्ञ क्रियाको भी करे ॥ २२ ॥ जिससे कांड़ी जांत चूल्ह व पानी का पात्र और बढ़नी ये पांचों दिनोदिन गृहस्थोंके हिंसाके स्थान होते हैं ॥ २३ ॥ इससे उन पांचों हिंसा स्थानों के पापों के दूर करने के कारण व गृहस्थों के कल्याण बढ़ानेवाले पांच यज्ञ कहेगयेहैं ॥ २४ ॥ उनको क्रमसे कहते हैं कि वेदपाठ ब्रह्मयज्ञ व तर्पण पितृयज्ञ व होम देवयज्ञ व बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ और अतिथिपूजा मनुष्ययज्ञ ये पांचों क्रमसे होते हैं ॥ २५ ॥ व पितरों की प्रीति करताहुआ गृहस्थ अन्न जल दूध जड़ और फलों से भी रोजरोज श्राद्धको करे ॥ २६ ॥ और विधिपूर्वक सुपात्रके लिये गौ देनेसे जो पुण्य होतीहै उस फलको सत्कार

करकेभिक्षुके लिये भिक्षा देकर पुरुष प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ व तपस्या और विद्यारूप ईधनसे प्रज्वलित ब्राह्मण मुख अग्निमें जो कुछ होमागया वह विघ्नसमूह और दुस्तर पापसमुद्र से तारताहै ॥ २८ ॥ व विना पूजा हुवा निराश अतिथि जिसके घरसे जाताहै वह जन्मभरेकी कमाई पुण्यसे क्षणमें बाहर होताहै ॥ २९ ॥ इससे प्यारे वचन व शय्याके अर्थ भूमि और तृणादि बिछौना व अन्न और जल ये सब भी अतिथिकी प्रसन्नताके लिये देने योग्य हैं ॥ ३० ॥ और पराये पाकका खानेवाला गृहस्थ उसके पशुभावको प्राप्तहोताहै जिससे परान्नसे पुष्ट पुरुषकी पुण्यको अन्नदाता लेलेताहै ॥ ३१ ॥ सायंकालमें अस्तमित सूर्य्यके साथमें आयाहुआ अतिथि प्रयत्न से सत्कार करनेयोग्यहै क्योंकि आदरसे हीन होकर अन्यत्र जाताहुआ वह बहुते पापको देताहै ॥ ३२ ॥ इस लोकमें अतिथि भोजनसे शेष अन्नको खाताहुआ गृहस्थ

शोयस्यगच्छति ॥ आजन्मसञ्चितात्पुण्यात्क्षणात्सहिवहिर्भवेत् ॥ २९ ॥ सान्त्वपूर्वाणिवाक्यानिशय्यार्थेभूस्तृणोदके ॥ एतान्यपिप्रदेयानिसदाभ्यागततुष्टये ॥ ३० ॥ गृहस्थःपरपाकादीप्रेत्यतत्पशुतांव्रजेत् ॥ श्रेयःपरान्नपुष्टस्यगृह्णीयादन्नदोयतः॥ ३१ ॥आदित्योढोऽतिथिःसायंसत्कर्तव्यःप्रयत्नतः॥ असत्कृतोन्यतोगच्छन्दुष्कृतंभूरियच्छति॥३२॥ भुञ्जानोऽतिथिशेषान्नमिहायुर्धनभाग्भवेत् ॥ प्रणोद्यातिथिमन्नाशीकिल्बिषीचगृहाश्रमी॥ ३३ ॥ वैश्वदेवान्तसम्प्राप्तःसूर्योढोवातिथिःस्मृतः॥ नपूर्वकालआयातोनचदृष्टचरःक्वचित् ॥ ३४ ॥ बलिपात्रकरेविप्रेयद्यन्योतिथिरागतः॥ अदत्त्वातम्बलिन्तस्मैयथाशक्त्यान्नमर्पयेत् ॥ ३५॥ कुमाराश्चस्ववासिन्योगर्भिण्योऽतिरुजान्विताः॥ अतिथेरादितोप्येतेभोज्यानात्रविचारणा ॥ ३६ ॥ पितृदेवमनुष्येभ्योदत्त्वाश्नात्यमृतंगृही ॥ स्वार्थम्पचन्नघम्भुङ्क्तेकेवलंस्वोदरम्भ

अधिक आयुवाला और धनवान् होताहै व अतिथिको दूरकर अन्नभोजी मनुष्य महापापी कहाताहै ॥ ३३ ॥ जोकि वैश्वदेव के अन्तमें व अस्तमित सूर्य्यके साथ आया हो वह अतिथि कहागयाहै और उससे पहले आया नहीं व कहीं जाता देखा गया अतिथि नहींहै ॥ ३४ ॥ और जब भूतों के लिये बलिदेने को हाथमे अन्नका पात्र लेकर ब्राह्मण विद्यमान हो तब जो अन्य अतिथि आवे तो उस भूतबलिको न देकर उसके लिये यथाशक्ति कुछ अन्नको देवे ॥ ३५ ॥ लड़का लडकी बूढ़ी सुवासिनी व गर्भवती स्त्रियां और रोग समेत लोग इनको अतिथि से पहले भी खिलाना चाहिये इसमें विचार नहीं है ॥ ३६ ॥ क्योंकि देव पितर और मनुष्यो के लिये देकर गृहस्थ

अमृत खाताहै और केवल अपने अर्थ पकानेवाला व अपना उदर भरताहुआ मनुष्य पाप खाता है ॥ ३७ ॥ इससे दुपहर में वैश्वदेवविधानको गृहस्थ आपही करे और सायंकालमें स्त्रीही सिद्ध अन्नों से मंत्रहीन बलिको देदेवे ॥ ३८ ॥ यह सायंकालका वैश्वदेव गृहस्थाश्रममें प्रसिद्ध है इस भांति प्रयत्नसे मध्याह्न और सायंकालमें वैश्वदेव विधान होताहै ॥ ३९ ॥ व जे बलिवैश्वदेवसे हीनहैं और अतिथिपूजासे विमुखहैं ये सब वेदपाठी ब्राह्मण भी शूद्रही जानने योग्यहैं ॥ ४० ॥ और जे ब्राह्मणाधम वैश्वदेवको न कर याने उसके किये विना खाते हैं वे इस लोक में अन्नहीन होते हैं और उसके बाद काकयोनिको जाते हैं ॥ ४१ ॥ इससे आलस्यरहित होकर नित्य अपने

रिः ॥ ३७ ॥ माध्याह्निकंवैश्वदेवंगृहस्थःस्वयमाचरेत् ॥ पत्नीसायम्बलिन्दद्यात्सिद्धान्नैर्मन्त्रवर्जितम् ॥ ३८ ॥ एतत्सायन्तनंनामवैश्वदेवंगृहाश्रमे ॥ सायम्प्रातर्भवेदेवंवैश्वदेवंप्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ वैश्वदेवेनयेहीनाआतिथ्येनविवर्जिताः ॥ सर्वेतेवृषलाज्ञेयाःप्राप्तवेदाअपिद्विजाः ॥ ४० ॥ अकृत्वावैश्वदेवन्तुभुञ्जतेयेद्विजाधमाः ॥ इहलोकेन्नहीनाःस्युःकाकयोनिंव्रजन्त्यथ ॥ ४१ ॥ वेदोदितंस्वकङ्कर्मनित्यंकुर्यादतन्द्रितः ॥ तद्धिकुर्वन्यथाशक्तिप्राप्नुयात्सद्गतिम्पराम् ॥ ४२ ॥ षष्ठ्यष्टम्योर्वसेत्पापंतैलेमांसेसदैवहि ॥ पञ्चदश्याञ्चतुर्दश्यान्तथैवचभगेक्षुरे ॥ ४३ ॥ उदयन्तंनचेक्षेतनास्तंयन्तंनमध्यगम् ॥ नराहुणोपसृष्टञ्चनाम्बुसंस्थन्दिवाकरम् ॥ ४४ ॥ नवीक्षेतात्मनोरूपमाशुधावेन्नवर्षति ॥ नोल्लङ्घयेद्वत्सतन्त्रींननग्नोजलमाविशेत् ॥ ४५ ॥ देवतायतनंविप्रंधेनुंमधुमृदंघृतम् ॥ जातिवृद्धंवयोवृद्धंविद्यावृद्धंतपस्विनम् ॥ ४६ ॥

वेदोक्त कर्मको करे क्योंकि यथाशक्ति उसकोही करता हुआ परम उत्तम गति को जाताहै ॥ ४२ ॥ व छठि और अष्टमी तथा अमावस और चतुर्दशीको क्रमसे तेल मांस छूरा और स्त्री की योनिमेही सदैव पाप बसताहै इससे उनको बरावे ॥ ४३ ॥ उगते को नहीं अस्त प्राप्त होते को नहीं व दुपहर में मध्य आकाशमें वर्त्तमान को नहीं व राहुसे ग्रसे को नहीं और जलके भीतर प्रतिबिम्बरूपसे टिकेहुये सूर्य्यको न देखे ॥ ४४ ॥ व अपनी परछाहीं के ओर न निहारे व मेघके बरसतेही शीघ्र न दौड़े व बछड़ा बन्धन की रस्सी को न लांघे और नग्न होकर जलमें न पैठे ॥ ४५ ॥ देवमन्दिर ब्राह्मण गऊ शहद गोपीचन्दन घी व जाति से बड़ा व अवस्थासे बूढ़ा विद्यासे वृद्ध

व तपस्वी ॥ ४६ ॥ व पीपलवृक्ष व पूज्यवृक्ष गुरु व पानी से भरा घड़ा सिद्ध अन्न दही और सर्षप इन सबको चलताहुआ अपने दहिनेओर में करदेवे ॥ ४७ ॥ व रजस्वला स्त्री को न सेवे व स्त्री के साथ न खावे व एक वस्त्र पहनेहुये न खावे व उत्कट आसन मे बैठकर न खावे ॥ ४८ ॥ व भोजन करती हुई स्त्री को न देखे और तेजका चाही द्विजोत्तम देवता व पितरोंको तृप्त किये विना नवीन अन्नको कभी न भोजनकरे ॥ ४९ ॥ व दीर्घ काल तक जीवनेकी इच्छावाला मनुष्य देवोंको अरपे विना पक्वान्नको न खावे व मांसको न खावे व गोशालामें बेबौरमें नहीं और भस्ममे मूत्रको न करे ॥ ५० ॥ व जन्तुयुक्त गड्ढेमें नहीं खड़ा नहीं व चलताहुआ भी न मूते व गऊ ब्राह्मण

अश्वत्थञ्चैत्यवृक्षञ्चगुरुंजलभृतंघटम् ॥ सिद्धान्नन्दधिसिद्धार्थंगच्छन्कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥ ४७ ॥ रजस्वलांनसेवेतनाश्नीयात्सहभार्यया ॥ एकवासानभुञ्जीतनभुञ्जीतोत्कटासने ॥ ४८ ॥ नाश्नन्तींस्त्रींसमीक्षेततेजस्कामोद्विजोत्तमः ॥ असन्तर्प्यपितॄन्देवान्नाद्यादन्नन्नवंकचित् ॥ ४९ ॥ पक्वान्नञ्चापिनोमांसंदीर्घकालञ्जिजीविषुः ॥ नमूत्रङ्गोव्रजेकुर्यान्न बल्मीकेनभस्मनि ॥ ५० ॥ नगर्तेषुससत्त्वेषुनतिष्ठन्नव्रजन्नपि ॥ गोविप्रसूर्यवाय्वग्निचन्द्रर्क्षाम्बुगुरूनपि ॥ ५१ ॥ अभिपश्यन्नकुर्वीतमलमूत्रविसर्जनम् ॥ तिरस्कृत्यावनिंलोष्टकाष्ठपर्णतृणादिभिः ॥ ५२ ॥ प्रावृत्यवाससामौलिंमौनीविण्मूत्रमुत्सृजेत् ॥ यथासुखमुखोरात्रौदिनेछायान्धकारयोः ॥ ५३ ॥ भीतिषुप्राणबाधायांकुर्यान्मलविसर्जनम् ॥ मुखे नोपधमेन्नाग्निनग्नांनेक्षेतयोषितम् ॥ ५४ ॥ नांघ्रीप्रतापयेदग्नौनवस्त्वशुचिनिक्षिपेत् ॥ प्राणिहिंसांनकुर्वीतनाश्नी

सूर्य वायु अग्नि चन्द्रमा नक्षत्र जल और गुरुको भी ॥ ५१ ॥ सामने से देखता हुआ मल मूत्रका त्याग न करे व कंकड़ काठ पत्ते और तृणादिकों से भूमि को आच्छादनकर ॥ ५२ ॥ व वस्त्रसे शिर को ढांपकर मौनधारी (चुपचाप होकर) मल मूत्रको तजे व यथासुख मुख याने जैसी चहै वैसी को मुखकर बैठा हुआ मनुष्य रातमे व दिनमें छाया और अन्धकारमें ॥ ५३ ॥ व डर व प्राणबाधा में मलमूत्र का त्याग करे अर्थात् जब स्वस्थचित्त होवे तब पूर्वोक्त विचार करके त्यागे व अग्निको मुखसे न फूंके और नग्न स्त्री को न देखे ॥ ५४ ॥ अग्निमे पांवको न तपावे और अशुद्ध वस्तुको न डाले व प्राणियो का वध न करे और दोनो संध्याओ

में न खावे ॥ ५५ ॥ संध्यामें न सोवे व पश्चिम और उत्तर में शिरवाला भी न सोवे व बहुत कालजीने का चाही मनुष्य पानी में विष्ठा मूत्र और थूकको न करे ॥ ५६ ॥ बछड़ेको पिलाती गऊ या पीती हुई बछिया को न बतावे व इन्द्रधनुषको न दिखावे व शून्य स्थानमें कहीं अकेले न सोवे और सोतेको न जगावे ॥ ५७ ॥ व अकेला गली में न चले व अंजली से पानीको न पीवे व दिनमें पीना आदि और रातमें दहीको न खावे ॥ ५८ ॥ व रजस्वला स्त्री से न बोले व रातमें तृप्तिपर्य्यंत भोजनको न करे व नाच गान और बाजाओंके प्यार करनेवाला न होवे व कांसेके पात्रमें पांवोंको न पखारे ॥ ५९ ॥ व जो अज्ञानी श्राद्ध करके अन्य के श्राद्ध में खाताहै वह पापभोजी

यात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ५५ ॥ नसंविशेतसन्ध्यायांप्रत्यक्सौम्यशिराअपि ॥ विण्मूत्रष्ठीवनन्नाप्सुकुर्याद्दीर्घंजिजीविषुः ॥ ५६ ॥ नाचक्षीतधयन्तींगांनेन्द्रचापंप्रदर्शयेत् ॥ नैकःसुप्यात्क्वचिच्छून्येनशयानम्प्रबोधयेत् ॥ ५७ ॥ पन्थानन्नैकलोयायान्नवार्यञ्जलिनापिबेत् ॥ नदिवोद्धृतसारञ्चभक्षयेद्दधिनोनिशि ॥ ५८ ॥ स्त्रीधर्मिण्यानाभिवदेन्नाद्यादातृप्तिरात्रिषु ॥ तौर्यत्रिकप्रियोनस्यात्कांस्येपादौनधावयेत् ॥ ५९ ॥ श्राद्धंकृत्वापरश्राद्धेयोऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ॥ दातुःश्राद्धफलन्नास्तिभोक्ताकिल्बिषभुग्भवेत् ॥ ६० ॥ नधारयेदन्यभुक्तंवासश्चोपानहावपि ॥ नभिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्यादिदूषिते ॥ ६१ ॥ आरोहणंगवांपृष्ठेप्रेतधूमंसरित्तरम् ॥ बालातपन्दिवास्वापंत्यजेद्दीर्घंजिजीविषुः ॥ ६२ ॥ स्नात्वानमार्जयेद्गात्रंविसृजेन्नशिखांपथि ॥ हस्तौशिरोनधुनुयान्नाकर्षेदासनम्पदा ॥ ६३ ॥ नोत्पाटयेल्लोमनखंदशनेनकदाचन ॥ करजैःकरजच्छेदंतृणच्छेदंविवर्जयेत् ॥ ६४ ॥ शुभायनयदायत्यांत्यजेत्तत्कर्मयत्नतः ॥ अद्वारेणनगन्तव्यंस्व

होताहै और अन्नदाताको श्राद्धका फल नहीं है ॥ ६० ॥ व और के जूंठे कपड़े और जूतोंको भी न पहने व फूटे पात्र में न भोजनकरे और अग्निआदि से दूषित आसन में न बैठे ॥ ६१ ॥ व बहुत जीवन चाहता हुआ मनुष्य गौवों की पीठपर चढ़ना मुर्दा का धुवां नदी पैरना व प्रातःकाल के बाल सूर्य्य का घाम और दिन में सोना इन सबको त्यागे ॥ ६२ ॥ व स्नानकर पीछे से देहको न मीड़े व गली में चोटी को न छोड़े व हाथों और मस्तक को न कँपावे व आसन को पांवसे न खींचे ॥ ६३ ॥ व दांतसे रोम और नखको कभी न उखाड़े व नखों से नखों के छेदने और तृण तोड़नेको भी बरावे ॥ ६४ ॥ जो कर्म उत्तर कालमें शुभके लिये न हो अर्थात् जिसका परि-

णाम न अच्छाहो उसको यत्नसे त्यागे व अपने घर और पराये घर में भी अद्दार याने खिरकी आदिक गली रो न जाना चाहिये ॥ ६५ ॥ पांसों से न खेले व पाखण्डियोंको नहीं और रोगियोंके साथ न बैठे व नग्न होकर कभी न सोवे व हाथ मेंही न भोजन करे ॥ ६६ ॥ भीगे पांव हाथ और मुखवाला होकर भोजन करता हुआ बहुत काल तक जीवताहै व ओदे पगवाला न सोवै या न पौढ़े व जूंठा कहीं नहीं जावे ॥ ६७ ॥ व शय्या पर बैठा हुआ ब्राह्मणादि वर्ण न खावे न पीवे और न जप करे व पादुका पहने न अँचवे व खड़ा हुआ एक धारा से पानी को न पीवे ॥ ६८ ॥ व सुखका चाही सायंकालमें सब तिलमय अन्नको न खावे व मलमूत्रको न देखे और जूंठे मुख मस्तक

वेश्मपरवेश्मनोः ॥ ६५ ॥ क्रीडेन्नाक्षैःसहासीतनधर्मघ्नैर्नरोगिभिः ॥ नशयीतकचिन्नग्नःपाणौभुञ्जीतनैवच ॥ ६६ ॥ आर्द्रपादकरास्योश्नन्दीर्घकालञ्चजीवति ॥ संविशेन्नार्द्रचरणोनोच्छिष्टःक्वचिदाव्रजेत् ॥ ६७ ॥ शयनस्थोनचाश्नीयान्नपिबेन्नजपेद्द्विजः ॥ सोपानत्कश्चनाचामेन्नतिष्ठन्धारयापिबेत् ॥ ६८ ॥ सर्वंतिलमयन्नाद्यात्सायंशर्माभिलाषुकः ॥ ननिरीक्षेतविण्मूत्रेनोच्छिष्टःसंस्पृशेच्छिरः ॥ ६९ ॥ नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः ॥ पतितैःसहसंवासःपतनायैवजायते ॥ ७० ॥ श्रावयेद्वैदिकंमन्त्रंनशूद्रायकदाचन ॥ ब्राह्मण्याद्धीयतेविप्रःशूद्रोधर्माच्चहीयते ॥ ७१ ॥ धर्मोपदेशःशूद्राणांस्वश्रेयःप्रतिघातयेत् ॥ द्विजशुश्रूषणन्धर्मःशूद्राणांहिपरोमतः ॥ ७२ ॥ कण्डूयनंहिशिरसःपाणिभ्यांनशुभस्मतम् ॥ आताडनङ्कराभ्याञ्चक्रोशनङ्केशलुञ्चनम् ॥ ७३ ॥ अशास्त्रवर्तिनोभूपाल्लुब्धात्कृत्वाप्रतिग्रहम् ॥ ब्राह्मणःसान्व

को न छुवे ॥ ६९ ॥ फरहा या भूसी अङ्गार भस्म बाल और खपडो में न बैठे व पतित लोगोंके साथ भलीभांति बसना पतनकेही लिये होताहै याने उनके संगमें न बसे ॥ ७० ॥ व शूद्रको वेदका मंत्र कभी न सुनावे क्योंकि उसके सुनाने से ब्राह्मण ब्रह्मतेज से हीन होताहै और शूद्र भी धर्म से हीन होताहै ॥ ७१ ॥ इससे शूद्रोंके लिये धर्म का उपदेश अपनी पुण्यको विनाशताहै जिससे ब्राह्मणादि वर्णो की सेवाही शूद्रोंका परमधर्म माना गयाहै ॥ ७२ ॥ व दोनों हाथों से मूड खजुवाना व ताड़ना व बाल उखाड़ना और चिघड़ना शुभ नहीं मानागयाहै ॥ ७३ ॥ व राजनीतिसे हीन लोभी राजासे दानको ग्रहणकर ब्राह्मण कुटुम्ब समेत इक्कीस नरकोंको जाताहै इससे उस

का दान न लेवे ॥ ७४ ॥ अकालमें बिजली सहित मेघगर्जन व वर्षाऋतु में धूलिवर्षण व बड़ी बयारका शब्द और रात इन समयोंको अनध्याय कहते हैं ॥ ७५ ॥ उल्कापात भूडोल दिग्दाह आधीरात दोनों सन्ध्यायें शूद्रका समीप राजाका सूतक और राहुका सूतक (ग्रहणसमय) ॥ ७६ ॥ व अमावस व अष्टका याने भाद्र अगहन पूस माघ और फागुनकी कृष्णाष्टमी व चतुर्दशी में व श्राद्ध का निमन्त्रण लेकर व पूरी प्रतिपदा व हाथी और ऊंटका बीच ॥ ७७ ॥ व गर्दभ ऊंट और स्यार इनके बोलते समय व इकट्ठे रोने समय व उपाकर्म व ऋग्वेदादिकोंका उत्सर्ग व नाव गली डोंगा और जलमें ॥ ७८ ॥ व आरण्यक को पढ़कर भी व बाण और सामवेदका

योयातिनरकानेकविंशतिम् ॥ ७४ ॥ अकालविद्युत्स्तनितेवर्षर्तौपांसुवर्षणे ॥ महावातध्वनौरात्रावनध्यायाःप्रकीर्तिताः ॥ ७५ ॥ उल्कापातेचभूकम्पेदिग्दाहेमध्यरात्रिषु ॥ सन्ध्ययोर्वृषलोपान्तेराज्ञोराहोश्चसूतके ॥ ७६ ॥ दर्शाष्टकासुभूतायांश्राद्धिकम्प्रतिगृह्यच ॥ प्रतिपद्यपिपूर्णायांगजोष्ट्राभ्यांकृतान्तरे ॥ ७७ ॥ खरोष्ट्रक्रोष्टृविरुतेसमवायेरुदत्यपि ॥ उपाकर्मणिचोत्सर्गेनाविमार्गेतरौजले ॥ ७८ ॥ आरण्यकमधीत्यापिबाणसाम्नोरपिध्वनौ ॥ अनध्यायेषुचैतेषुनाधीयीतद्विजःक्वचित् ॥ ७९ ॥ कृतान्तरायोनपठेद्भेकाखुश्वाहिबभ्रुभिः ॥ भूताष्टम्योःपञ्चदश्योर्ब्रह्मचारीसदाभवेत् ॥ ८० ॥ अनायुष्यकरञ्चैवपरदारोपसर्पणम् ॥ तस्मात्तद्दूरतस्त्याज्यंवैरिणाञ्चोपसेवनम् ॥ ८१ ॥ पूर्वर्धिभिःपरित्यक्तमात्मानंनावमानयेत् ॥ सदोद्यमवतांयस्माच्छ्रियोविद्यानदुर्लभाः ॥ ८२ ॥ सत्यम्ब्रूयात्प्रियम्ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् ॥ प्रियञ्चनानृतम्ब्रूयादेषधर्मोघटोद्भव ॥ ८३ ॥ भद्रमेववदेन्नित्यंभद्रमेवविचिन्तयेत् ॥ भद्रैरेवेहसंसर्गोनाभद्रैश्चकदाचन ॥ ८४ ॥

शब्द सुन पड़ने में इत्यादि पूर्वोक्त अनध्यायोंमें ब्राह्मणादि कहीं न पढ़े ॥ ७९ ॥ व मेढुक,मूस,कूकर, सर्प और निउलासे किया गया हो विघ्न जिसका वह न पढे व चतुर्दशी अष्टमी अमावस और पूर्णमासी में सदा ब्रह्मचारी होवे ॥ ८० ॥ जिससे पर स्त्री के समीपमें जाना आयुकाहीन करनेवालाहै उससे उसको और शत्रुके समीपसे वनको दूर से त्यागना चाहिये ॥ ८१ ॥ व पहलेकी बढ़ती से हीन हुये अपने को अनादर न करावे जिससे सदा उद्यमी लोगों के लिये सब सम्पत्तियां और विद्यायें दुर्लभ नहीं हैं ॥ ८२ ॥ और सत्यको बोले प्रियको बोले व जोकि प्यार न हो उस सत्यको भी न बोले व असत्य प्रिय वचनको न बोले हे अगस्त्य ! यह धर्महै ॥ ८३ ॥ व सदैव

मंगल वचन कोही बोले व मंगलकोही विचारे व यहां कल्याणकारी मंगल मय महात्माओंकाही समीप करे और दुष्टों का संसर्ग कभी न करे याने उनके पास आने जाने को बरावे ॥ ८४ ॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य रूप धन और कुलसेहीन लोगों को मत निदरे व अपवित्र होकर चन्द्रमा व सूर्य्य और नक्षत्रों के समूह को न देखे ॥८५॥ व वचनके वेग मनके वेग और जिह्वाके वेगको बरावे अर्थात् बहुत न बोले मनको न डुलावे व नीके मीठे का स्वाद न चाहे व उत्कोच (जोकि भय दिखाकर लियाजाताहै) द्यूत (जुवा) दूतपन और आर्त के धनको दूरसे त्यागदेवे ॥ ८६ ॥ व गऊ ब्राह्मण और अग्निको जूंठे हाथसे न छुवे और जोकि आतुर न होवे वह विना

रूपवित्तकुलैर्हीनान्सुधीर्नाधिक्षिपेन्नरान् ॥ पुष्पवन्तौनचेक्षेतत्वशुचिर्ज्योतिषाङ्गणम् ॥ ८५ ॥ वाचोवेगंमनोवेगंजिह्वावेगंचवर्जयेत् ॥ उत्कोचद्यूतदौत्यार्तद्रव्यन्दूरात्परित्यजेत् ॥ ८६ ॥ गोब्राह्मणाग्नीनुच्छिष्टपाणिनानैवसंस्पृशेत् ॥ नस्पृशेदनिमित्तेनखानिस्वानित्वनातुरः ॥ ८७ ॥ गुह्यजान्यपिलोमानितत्स्पर्शादशुचिर्भवेत् ॥ पादधौतोदकंमूत्रमुच्छिष्टान्नोदकानिच ॥ ८८ ॥ निष्ठीवनञ्चश्लेष्माणंगृहाद्दूरंविनिक्षिपेत् ॥ अहर्निशंश्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात् ॥ अद्रोहवत्याबुद्ध्याचपूर्वंजन्मस्मरेद्द्विजः ॥ ८९ ॥ वृद्धान्प्रयत्नाद्वन्देतदद्यात्तेषांस्वमासनम् ॥ विनम्रधर्मनिस्तस्मादनुयायात्ततश्चतान् ॥ ९० ॥ श्रुतिभूदेवदेवानांनृपसाधुतपस्विनाम्॥पतिव्रतानांनारीणांनिन्दांकुर्यान्नकर्हिचित्॥९१॥ नमनुष्यस्तुतिंकुर्यान्नात्मानमपमानयेत्॥ अभ्युद्यतंनप्रणुदेत्परमर्माणिनोचरेत् ॥ ९२ ॥ अधर्मादेधतेपूर्वंविद्वेष्टॄनपिस

कारण अपने कान आदि छिद्रों को न छुवे ॥ ८७ ॥ जोकि गुह्य इन्द्रियके समीपमें उपजे रोमहैं उनके स्पर्श से अशुद्धहोताहै वे रोम व पाद धोवन पानी व मूत्र व जूंठा अन्न व जल ॥ ८८ ॥ और थूक व श्लेष्म इन सबको घर से दूर में बहावे व दिनों रात वेद पाठ शौच आचार सेवन और विना वैरकी बुद्धिसे ब्राह्मण पूर्वजन्मकी सुधि करताहै ॥ ८९ ॥ व जिससे नाड़ियों के नवानेवाला होकर बडे यत्नसे बूढ़े लोगोंकी वन्दनाकरे तदनन्तर उनको अपना आसन देवे उससे उनके पीछे चले ॥ ९० ॥ वेद ब्राह्मण देव राजा साधु तपस्वी और पतिव्रता स्त्रियो की निन्दाको कभी न करे ॥ ९१ ॥ व मनुष्यों की स्तुति को न करे याने देवों की स्तुतिको करे व अपना अपमान न करावे व सामने उद्यतहुयेको न प्रेखे और के मर्मभेदी वचनोंको न बोले ॥ ९२ ॥ व अधर्म से पहले बढ़ताहै और शत्रुओंको भी जीतताहै तदनन्तर सबओर से कल्याण

को प्राप्त होकर भी पीछे से कुटुम्ब समेत नष्ट होजाताहै इससे अधर्म्म को बरावे ॥ ९३ ॥ व पराये खनाये जलाशयमें पांच पिण्डमाटीको निकालकर स्नान करे क्योंकि माटीको न निकालकर उस जलाशय कर्त्ता के पाप के चतुर्थांशको भजता होताहै ॥ ९४ ॥ व सुदेश और सुकालमें सुपात्रको पासमें पाकर श्रद्धासे विधि पूर्वक जो कुछ धन दियाजाताहै वह अनंतताके लिये कल्पित होताहै अर्थात् उसका महाफल कहागयाहै ॥ ९५ ॥ भूमि दाता खण्डमण्डलेश्वर होताहै व अन्न देनेवाले लोग सुखी होते हैं व जलदाताजन सदा तृप्त रहता है और रूप्य दाता रूपवान् होता है ॥ ९६ ॥ व दीपदाता निर्मल नेत्रवाला होताहै व गोदाता सूर्य्यलोक का सेवी होता है व स्वर्ण

र्ज्जयेत् ॥ सर्वतोभद्रमाप्यापिततोनश्येच्चसान्वयः ॥ ९३ ॥ उद्धृत्यपञ्चमृत्पिण्डान्स्नायात्परजलाशये ॥ अनुद्धृत्यचतत्कर्तुरेनसःस्यात्तुरीयभाक् ॥ ९४ ॥ श्रद्धयापात्रमासाद्ययत्किञ्चिद्दीयतेवसु ॥ देशेकालेचविधिनातदानन्त्यायकल्पते ॥ ९५ ॥ भूप्रदोमण्डलाधीशःसर्वत्रसुखिनोऽन्नदाः ॥ तोयदातासदातृप्तोरूपवान्रूप्यदोभवेत् ॥ ९६ ॥ प्रदीपदोनिर्मलाक्षोगोदाताऽर्यमलोकभाक् ॥ स्वर्णदाताचदीर्घायुस्तिलदःस्यात्सुप्रजाः ॥ ९७ ॥ वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशोवस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक् ॥ हयप्रदोदिव्ययानोलक्ष्मीवान्वृषभप्रदः ॥ ९८ ॥ सुभार्यःशिबिकादातासुपर्यङ्कप्रदोपिच ॥ धान्यैःसमृद्धिमान्नित्यमभयप्रदईशिता ॥ ९९ ॥ ब्रह्मदोब्रह्मलोकेज्योब्रह्मदःसर्वदोमतः ॥ उपायेनापियोब्रह्मदापयेत्सोपितत्समः ॥ १०० ॥ श्रद्धयाप्रतिगृह्णातिश्रद्धयायःप्रयच्छति ॥ स्वर्गिणौतावुभौस्यातांपततोऽश्रद्धयात्यधः ॥ १ ॥ अनृतेनच

दाता दीर्घायु होताहै और तिलदाता सुपुत्रवाला होताहै ॥ ९७ ॥ व गृहदाता अधिक ऊंचे महलोंका स्वामी होताहै व वस्त्रदाता चन्द्रलोक का भागी है व घोड़े का दाता सुविमानवाला होताहै व बैलका दाता लक्ष्मीवान् होताहै ॥ ९८ ॥ और पीनस पालकी आदि का दाता अच्छी स्त्री वाला व पलंगका दाता धान्यों से सम्मृद्धिमान् और अभय दाता सदैव स्वामी होताहै ॥ ९९ ॥ वेददाता ब्रह्मलोकमें पूजापाताहै व वेददाताही सब देनेवाला मानागयाहै इससे जोकि उपाय से वेदपाठ दिलाताहै वह भी उसके समान होताहै ॥ १०० ॥ जोकि श्रद्धासे देताहै और जो श्रद्धासे लेताहै वे दोनो स्वर्गवासी होते हैं व अश्रद्धासे नीचे गिरते हैं ॥ १ ॥ और असत्य से यज्ञ च्युत होवे

व विस्मयसे तपस्या चूजावे व कहनेसे दान चुवे और ब्राह्मणमें दोष लगाने से आयु घटजाती है ॥ २ ॥ सुगन्ध फूल कुश शय्या साग मांस दूध दही मणि मछली घर और अन्न ये सब जो समीपमें प्राप्त होवें तो लेने योग्यहैं ॥ ३ ॥ व सहत जल फल मूल ईंधन व अभयदान ये सब सम्मुख उद्यत होवें तो निकृष्ट जातिके जनों से भी लेनाचाहिये ॥ ४ ॥ व दास नाऊ गोप कुलमित्र और आधे हलवाले ये शूद्र वर्ग में भोज्यान्नहैं अर्थात् इनके अन्न खाने योग्य हैं वैसेही आत्मनिवेदन करनेवाला भी भोज्यान्न मानागयाहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार से देवऋषि और पितरों के ऋण से आनृण्य को प्राप्त होकर पुत्रको सब ओरसे भार (कारबार) सौंपकर घर में उदासीनताको

रेद्यज्ञस्तपोविस्मयतःक्षरेत ॥ क्षरेत्कीर्तनतोदानमायुर्विप्रापवादतः ॥ २ ॥ गन्धपुष्पकुशाञ्छय्यांशाकंमांसम्पयोदधि ॥ मणिमत्स्यगृहंधान्यंग्राह्यमेतदुपस्थितम् ॥ ३ ॥ मधूदकंफलंमूलमेधांस्यभयदक्षिणा ॥ अभ्युद्यतानिग्राह्याणित्वेतान्यपिनिकृष्टतः ॥ ४ ॥ दासनापितगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः ॥ भोज्यान्नाःशूद्रवर्गेमीतथात्मविनिवेदकः ॥ ५ ॥ इत्थमानृण्यमासाद्यदेवर्षिपितृजादृणात् ॥ माध्यस्थ्यमाश्रयेद्गेहेसुतेविष्वग्विसृज्यच ॥ ६ ॥ गेहेपिज्ञानमभ्यस्येत्काशींवाथसमाश्रयेत ॥ सम्यग्ज्ञानेनवामुक्तिःकिंवाविश्वेशवेश्मनि ॥ ७ ॥ सम्यग्ज्ञानम्भवेत्पुंसांकुतएकेनजन्मना ॥ वाराणस्यान्ध्रुवामुक्तिःशरीरत्यागमात्रतः ॥ ८ ॥ अद्यश्वोवापरश्वोवाकालाद्वाथपरःशतात् ॥ सत्वरोगत्वरोदेहःकाश्याञ्चेदमृतीभवेत् ॥ ९ ॥ साचवाराणसीलभ्यासदाचारवतासदा ॥ मनसापिसदाचारमतोविद्वान्नलङ्घयेत् ॥ १० ॥ आकर्ण्येतिततोगस्त्यःपुनःप्राहषडाननम् ॥ पुनःकाशींसमाचक्ष्वसदाचारेणयाप्यते ॥ ११ ॥ कानिकानिचलिङ्गानिस्क

आश्रयकरे ॥ ६ ॥ व घर मेंही ज्ञान का अभ्यास राखे अथवा काशीको सेवे क्योंकि सम्यग्ज्ञान से याकि विश्वनाथ की पुरी में मुक्ति होती है ॥ ७ ॥ परन्तु एक जन्मसे लोगों का अच्छा ज्ञान कैसे होवेगा और काशीमें मरण मात्र से मुक्ति निश्चित होती है ॥ ८ ॥ आज व काल्ह व परसों व नरसों अथवा सैकड़ों बरसों के बाद कालमे कभी मरना अवश्य होताहै इससे जो वेग समेत देह काशी मे चलनेवाली होवे तो मुक्त होजाताहै ॥ ९ ॥ जिससे वह काशी पुरी भी सदैव अच्छे आचारवालेको मिलती है इससे सुजानजन मनसे भी सदाचार को न उल्लंघन करे ॥ १० ॥ ऐसा सुनकर तदनन्तर अगस्त्यजी षट् मुखसे फिर बोले कि जो सदाचार से मिलती है उस काशीको

फिर कहो ॥ ११ ॥ हे स्कन्दजी ! काशीमें कौन कौन लिंग ज्ञान दाताहैं उनको सब ओर पूंछतेहुये मुझसे तुम सब ओर से बतावो ॥ १२ ॥ हे षडानन ! काशी विना मेरी प्रीति कहीं नहीं है व काशी विना मेरा सनेह नहीं है और काशी विना मैं चित्रपटके पुतलाके समानहूं ॥ १३ ॥ व न सोताहूं न जागताहूं न अन्न खाताहूं न पानी पीता हूं क्योंकि केवल काशी दो अक्षररूप अमृतकोही पीताहूं ॥ १४ ॥ इस प्रकार से अगस्त्यजी के वचनको सुनकर श्रीकार्तिकेयजीने काशी माहात्म्य के कहने को प्रारम्भ किया ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेसदाचारवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

न्दज्ञानप्रदानिच ॥ वाराणस्याम्परिब्रूहितानिमेपरिपृच्छतः ॥ १२ ॥ विनाकाशींनमेप्रीतिर्विनाकाशींनमेरतिः ॥ चित्रपुत्रकवच्चास्मिविनाकाशींषडानन ॥ १३ ॥ ननिद्रामिनजागर्मिनाश्नामिनपिबाम्यपः ॥ काशीद्व्यक्षरपीयूषंपिबामिहिचकेवलम् ॥ १४ ॥ इतिश्रुत्वावचःस्कन्दोमैत्रावरुणिभाषितम् ॥ अविमुक्तस्यमाहात्म्यंवक्तुंसमुपचक्रमे ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसदाचारवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृणुवगस्त्यमहाभागकथाम्पापप्रणाशिनीम् ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोहेतुमविमुक्तसमाश्रयाम् ॥ १ ॥ परंब्रह्मयदाम्नातंनिष्प्रपञ्चंनिरात्मकम् ॥ निर्विकल्पंनिराकारमव्यक्तंस्थूलसूक्ष्मवत् ॥ २ ॥ तदेतत्क्षेत्रमापूर्यस्थितंसर्वगमप्यहो ॥ किमन्यत्रनशक्तोसौजन्तून्मोचयितुम्भवात् ॥ ३ ॥ भवोध्रुवंयदत्रैवमोचयेतंनिशामय ॥ महत्यायोगयुक्त्यावा

दोहा ॥ उनतालिस अध्यायमें वाराणसी बखान । अविमुक्तेश महात्म्य अरु दिवोदास आख्यान ॥ श्रीस्कन्दजी बोले कि, हे महाभाग, अगस्त्यजी ! मुक्ति संपत्ति कारिणी व पापहारिणी अविमुक्त क्षेत्रको भलीभांति आश्रय करनेवाली कथाको तुम सुनो ॥ १ ॥ जोकि दो भांति की देह से रहित व प्रपंचहीन व निर्भेद निराकार अव्यक्त और कार्य्य कारण रूप परब्रह्म वेदान्तमें जाना गयाहै ॥ २ ॥ वह सर्वग होकर भी इस क्षेत्रको सब ओर से पूरणकर टिकाहै यही आश्चर्य्य है क्या अन्यत्र जन्तुवों को संसारसे छुड़ावै को वह समर्थ नहीं है ॥ ३ ॥ परन्तु जिससे महादेवजी निश्चय से यहांहीं छुड़ाते हैं उस कारण को सुनो कि बड़ी योगयुक्ति व

निष्काम महादान ॥४॥ और अच्छी भारी तपस्यासेभी शिवजी अन्यत्र मुक्तिदेते हैं व बड़ी योगयुक्तिको नहीं व महान् दानोंको नहीं ॥ ५ ॥ और बहुत भारी तपस्याओं कोभी काशीमें मुक्तिके लिये शिवजी नहीं पार्थते हैं क्योंकि जो बड़ी पीड़ामे भी काशी से विलग नहीं होताहै ॥ ६ ॥ यही यहां महायोगहै और अन्ययोग उपयोगहै इससे नियमसे श्री विश्वनाथजी के लिये पत्र पुष्प फल जल ॥ ७ ॥ और अन्य जो कुछ मनकी सुवृत्ति से दियागया वह यहां महादानही है व मुक्तिमण्डपमें जो क्षणभर स्थिरता से टिका जाताहै ॥ ८ ॥ व श्रीगंगाजी के शुद्ध जलमें नहाकर यही यहां उत्तम तपस्या है और काशी में सत्कारकर भिक्षुकको जो भिक्षा सबओरसे दीजाती है इसकी

महादानैरकामिकैः ॥ ४ ॥ सुमहद्भिस्तपोभिर्वाशिवोन्यत्रविमोचयेत् ॥ योगयुक्तिनमहतींनदानानिमहान्तिच ॥५॥ नतपांस्यतिदीर्घाणिकाश्याम्मुक्त्यैशिवोर्थयेत् ॥ वियुनक्तिनयत्काश्याउपसर्गेमहत्यपि ॥ ६ ॥ अयमेवमहायोगउपयोगस्त्विहापरः ॥ नियमेनतुविश्वेशेपुष्पम्पत्रंफलंजलम् ॥ ७ ॥ यद्दत्तंसुमनोवृत्त्यामहादानन्तदत्रवै ॥ मुक्तिमण्डपिकायांचक्षणंयत्स्थिरमास्यते ॥ ८ ॥ स्नात्वागङ्गामृतेशुद्धेतपएतदिहोत्तमम् ॥ सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षायत्काश्याम्परिदीयते ॥ तुलापुरुषएतस्याःकलांनार्हतिषोडशीम् ॥ ९ ॥ हृदिसंचिन्त्यविश्वेशंक्षणंयद्विनिमील्यते ॥ देवस्यदक्षिणेभागेमहायोगोयमुत्तमः ॥ १० ॥ इदमेवतपोत्युग्रंयदिन्द्रियविलोलताम् ॥ निषिध्यस्थीयतेकाश्यांक्षुत्तापाद्यवमन्यच ॥ ११ ॥ मासिमासियदाप्येतव्रताच्चान्द्रायणात्फलम् ॥ अन्यत्रतदिहाप्येतभूतायांनक्तभोजनात् ॥ १२ ॥ मासोपवासादन्यत्रयत्फलंसमुपार्ज्यते ॥ श्रद्धयैकोपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम् ॥ १३ ॥ चातुर्मास्यव्रतात्प्रोक्तंयदन्यत्रमहाफलम् ॥

सोलहीं कलाकी समताके लिये तुला पुरुष दानभी समर्थ नहीं होसक्ताहै ॥ ९ ॥ व देवके दक्षिण भागमें बैठकर हृदयमें विश्वनाथ का ध्यानधर क्षणभर जो पलक ढांपी जातीहै यही यहां उत्तम महायोगहै ॥ १० ॥ व जोकि भूँख व प्यासको अनादरकर और इन्द्रियोंकी चञ्चलताको रोंककर काशीमें टिकाजाता है यही बड़ी घोर तपस्या है ॥ ११ ॥ और अन्यत्र चान्द्रायण व्रतसे मास मासमें जो फल मिले वह यहां चतुर्दशी मे रात्रिके भोजन से प्राप्तहोवै है ॥ १२ ॥ व अन्यत्र मासभर उपाससे जो फल भलीभांति बटोराजाता है वह काशीमें श्रद्धाकेसाथ एक उपास से निस्सन्देह होताहै ॥ १३ ॥ व अन्यत्र चातुर्मास्यव्रतसे जो महाफल कहागयाहै वह काशीमें एकादशी

के उपास से होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ व अन्यत्र छःमासतक अन्नत्यागनेसे जिस फलको पावे वह काशीमें शिवरात्रि के उपाससे निश्चयकर होवेहै ॥ १५ ॥ हे मुने ! अन्यत्र वर्षभर उपासोंको कर व्रतवाला जिस फलको पावे वह सम्पूर्ण फल काशीमें त्रिरात्रसे होवेहै ॥ १६ ॥ व अन्यत्र मास मासमें कुशका पानी पीने से जो फल होता है वह काशीमें उत्तरवाहिनी गङ्गाके एक चुल्लू जलसे मिलता है ॥ १७ ॥ इससे काशीकी अनन्त महिमा है उसके कहने को कौनसमर्थ है जहां मृत्युचाही जन्तुके द-हिने कानमें जपनेवाले शिवजी विद्यमान हैं ॥ १८ ॥ और जहां शङ्करजी मरतेहुये देहधारी के कानमें किसी अक्षरको जपते हैं जिसको सुनकर मराहुआ भी मोक्षको

एकादश्युपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम् ॥ १४ ॥ षण्मासान्नपरित्यागाद्यदन्यत्रफलंलभेत् ॥ शिवरात्र्युपवासेनत त्काश्याञ्जायतेध्रुवम् ॥ १५ ॥ वर्षंकृत्वोपवासानिलभेदन्यत्रयद्व्रती ॥ तत्फलंस्यात्त्रिरात्रेणकाश्यामविकलंमुने ॥ १६ ॥ मासिमासिकुशाग्राम्बुपानादन्यत्रयत्फलम् ॥ काश्यामुत्तरवाहिन्यामेकेनचुलुकेनतत् ॥ १७ ॥ अनन्तोमहिमाका श्याःकस्तंवर्णयितुम्प्रभुः ॥ विपत्तिमिच्छतोजन्तोर्यत्रकर्णेजपःशिवः ॥ १८ ॥ शम्भुस्तत्किञ्चिदाचष्टेम्रियमाणस्यज न्मिनः ॥ कर्णेऽक्षरंयदाकर्ण्यमृतोप्यमृततांव्रजेत् ॥ १९ ॥ स्मारंस्मारंस्मररिपोःपुरींत्वामिवशङ्करः ॥ अद्रुनोन्मन्दरं यातोबहुशस्तदवाप्तये ॥ २० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ स्वकार्यनिपुणैःस्वामिन्गीर्वाणैरतिदारुणैः ॥ त्याजितोहम्पुरीङ्काशीं हरोत्याक्षीत्कुतःप्रभुः ॥ २१ ॥ पराधीनोहमिवकिन्देवदेवःपिनाकवान् ॥ काशिकांसोऽत्यजत्कस्मान्निर्वाणमणिराशि काम् ॥ २२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मित्रावरुणसम्भूतकथयामिकथामिमाम् ॥ तत्याजचयथास्थाणुःकाशींविद्ध्युपरोध

प्राप्तहोता है ॥ १९ ॥ हे अगस्त्यजी ! मन्दराचल को गयेहुये महादेवजी भी तुम्हारी नाईं शिवपुरी काशीको सुमिर सुमिरकर उसकी प्राप्तिके लिये बहुत खिन्नभये थे याने उपतप्त हुयेथे ॥ २० ॥ अगस्त्यजी बोले कि,हे स्वामिन् ! अपने कार्य्य में कुशल बड़े दारुण देवोंने मुझसे काशीका त्यागकराया और समर्थ शिवजीने उसको किस लिये त्यागाथा ॥ २१ ॥ क्या पिनाक धन्वावान् महादेवजी मेरे समान पराधीन हैं उन्होंने मुक्तिमणि राशीकाशी को क्यों त्यागाथा उस कारणको कहो ॥ २२ ॥

स्कन्दजी बोले कि, हे मित्रावरुण से उत्पन्न अगस्त्यमुने! जैसे महादेवने ब्रह्माकी प्रार्थनासे काशीको त्यागा है वसे मैं इस कथाको कहताहूं ॥ २३ ॥ हे मुने! जैसे परोपकार के लिये तुम देवोंसे प्रार्थेगयेहो वैसे अपने भक्तोंकी रक्षामें चतुर रुद्रजी भी ब्रह्मासे प्रार्थितहुये हैं ॥ २४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुख! वह ऐश्वर्य्य सम्पन्न व कृपाके समुद्र रुद्रजी कैसे व किस लिये ब्रह्मासे प्रार्थेगये हैं उसको तुम मुझसे कहो ॥२५॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि, हे विप्र! पूर्वकालमें जब पाद्मनामक कल्पवर्तमान था तब स्वायम्भुव मनुके अन्तरमें सब भूतोंके कंपानेवाली अनावृष्टि हुईथी ॥ २६ ॥ उस साठिवरस के सूखामे सम्पूर्ण प्राणी पीड़ितहुये थे व कोई समुद्रके किनारे

तः ॥ २३ ॥ प्रार्थितस्त्वंयथालेखैःपरोपकृतयेमुने ॥ द्रुहिणेनतथारुद्रःस्वरक्षणविचक्षणः ॥ २४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ कथंसभगवान्रुद्रोद्रुहिणेनकृपाम्बुधिः ॥ प्रार्थितोभूत्किमर्थञ्चतन्मेब्रूहिषडानन ॥ २५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ पाद्मेकल्पेपुरावृत्तेमनोःस्वायम्भुवेन्तरे ॥ अनावृष्टिरभूद्विप्रसर्वभूतप्रकम्पिनी ॥ २६ ॥ तयातुषष्टिहायिन्यापीडिताःप्राणिनोऽखिलाः ॥ केचिदम्बुधितीरेषुगिरिद्रोणीषुकेचन ॥ २७ ॥ महानिम्नेषुकच्छेषुमुनिवृत्त्याजनाःस्थिताः ॥ अरण्यान्यवनिर्जाताग्रामखर्वटवर्जिता ॥ २८ ॥ क्रव्यादाएवसर्वेषुनगरेषुपुरेषुच ॥ आसन्नभ्रंलिहोवृक्षाःसर्वत्रक्षोणिमण्डले ॥ २९ ॥ चौराएवमहाचौरैरुल्लुण्ठ्यन्तइतस्ततः॥मांसवृत्त्योपजीवन्तिप्राणिनःप्राणरक्षिणः॥ ३० ॥अराजकेसमुत्पन्नेलोकेऽत्याहितशंसिनि ॥ प्रयत्नोविफलस्त्वासीत्सृष्टेःसृष्टिकृतस्तदा ॥ ३१ ॥ चिन्तामवापमहतींजगद्योनिःप्रजाक्षयात ॥ प्रजासु

कोई पर्वतोंकी कन्दराओं में ॥ २७ ॥ व कोई बडेगहरे भूमिभागोंमें और कोई जन पर्वतोंके प्रान्तोंमें मुनियों की वृत्ति याने फल और मूलादि भोजन से टिके थे उस समयमें ग्राम और खर्वटों से हीनभई भूमि वन होगईथी जिसमें चारोवर्ण वसें वह ग्रामहै व जोकि ग्राम और नगरके बीचमें या नदी व पर्वतके किनारे में हो उस बस्तीको खर्वट कहते हैं ॥ २८ ॥ व नगर और पुरों में तब सब लोग मांस भक्षी होगये व सब ओर भूमिमण्डल में मेघपर्य्यन्त ऊंचे जे वृक्षभये थे वे भी सूखे खडे थे ॥ २९ ॥ व चोर भी ऐसी वैसी महाचोरों से लूटेजाते थे और प्राणोंकी रक्षा करतेहुये प्राणीसमूह मांस वृत्तिसे जीवते थे ॥ ३० ॥ और अतिशय अनिष्टसूचक व राजा से हीनहुये लोकमें तब ब्रह्माका सृष्टिके किये प्रयत्न विफल होगया ॥ ३१ ॥ व प्रजाओं के विनाशसे ब्रह्माजी बड़ी चिन्तनाको पहुंचे कि प्रजाओंका क्षय होतेही यज्ञा-

दिक क्रियायें क्षीण होगई हैं ॥ ३२ ॥ और उनके घटतेही सब देवतालोग भी हीनहुयेहैं तदनन्तर चिन्ता करतेहुये विधाताने राजर्षि सत्तमको देखा ॥ ३३ ॥ जोकि अविमुक्तनामक महाक्षेत्रमें तपस्या करताहुवा मनुके वंशमें उत्पन्न व बड़ा वीर और अडोल इन्द्रियवाला होकर क्षत्रियों के धर्मकी नाईं उदित था ॥ ३४ ॥ और जोकि शत्रुपुरी के जीतनेवाला राजा रिपुञ्जय इस नामसे कहागया भया प्रसिद्ध था उसके पासमें जाकर अनन्तर ब्रह्माजीने गौरवपूर्वक ॥ ३५ ॥ वचनको कहा कि हे महामते रिपुञ्जय राजन् भूपाल ! तुम समुद्रपर्वत और वनसमेत पृथिवी को पालो ॥ ३६ ॥ व नागोंका राजा वासुकी स्त्रीके अर्थ तुम्हारे लिये शील सम्पन्न अनंग मोहिनी नाम

क्षीयमाणासुक्षीणायज्ञादिकाःक्रियाः ॥ ३२ ॥ तासुक्षीणासुसंक्षीणाःसर्वेयज्ञभुजोऽभवन् ॥ ततश्चिन्तयतास्रष्ट्रादृष्टो राजर्षिसत्तमः ॥ ३३ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेतपस्यन्निश्चलेन्द्रियः ॥ मनोरन्वयजोवीरःक्षात्रोधर्मइवोदितः ॥ ३४ ॥ रिपुञ्जयइतिख्यातोराजापरपुरञ्जयः ॥ अथब्रह्मातमासाद्यबहुगौरवपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ उवाचवचनंराजन्रिपुञ्जयमहामते ॥ इलां पालयभूपालससमुद्राद्रिकाननाम् ॥ ३६ ॥ नागकन्यांनागराजःपत्न्यर्थन्तेप्रदास्यति ॥ अनङ्गमोहिनींनाम्नावासुकिः शीलभूषणाम् ॥ ३७ ॥ दिवोपिदेवादास्यन्तिरत्नानिकुसुमानिच ॥ प्रजापालनसन्तुष्टामहाराजप्रतिक्षणम् ॥ ३८ ॥ दिवोदासइतिख्यातमतोनामत्वमाप्स्यसि ॥ मत्प्रभावाच्चनृपतेदिव्यंसामर्थ्यमस्तुते ॥ ३९ ॥ परमेष्ठिवचःश्रुत्वाततो सौराजसत्तमः ॥ वेधसंबहुशःस्तुत्वावाक्यंचेदमुवाचह ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ पितामहमहाप्राज्ञजनाकीर्णेमहीतले ॥ कथंनान्येचराजानोमांकथंकथ्यतेत्वया ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयिराज्यंप्रकुर्वाणेदेवोवृष्टिंविधास्यति ॥ पापनिष्ठेचवैश

नाग कन्या को देवेगा ॥ ३७ ॥ हे महाराज ! प्रतिक्षण प्रजापालन से संतुष्ट देवता लोग भी स्वर्ग से रत्न और फूलों को देवेंगे ॥ ३८ ॥ हे नरेश ! इससे तुम दिवोदास इस नामको प्राप्त होवोगे और हमारी प्रसन्नता से तुम्हारी दिव्यशक्ति (सामर्थ्य) होवेगी ॥ ३९ ॥ तदनन्तर विधाताका वचन सुनकर उस राजसत्तमने ब्रह्माजी की बहुत स्तुतिकर हर्षसे इस वाक्यकोकहा ॥ ४० ॥ राजा बोला कि, हे महाप्राज्ञ, पितामह ! जनोंसे युक्त भूमण्डलमें क्या अन्य राजा लोग नहींहैं और आपकरके मुझसे

किस लिये कहा जाताहै ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, पापनिष्ठ राजाके होतेही देव फिर नहीं बरसता है व जब तुम राज्य करोगे तब देव बरसा को करेगा ॥ ४२ ॥ राजा बोला कि, हे त्रिलोक रचने में समर्थ,महामान्य,पितामह ! यह आपका महाप्रसादहै इससे मैं आपकी आज्ञाको शिरमें लेताहूं ॥ ४३ ॥ परन्तु मैं कुछ विज्ञापना करनेको चाहीहूं जो आप उस मेरे अर्थको करो तो मैं भूमें अकण्टक राज्यको करूं ॥ ४४ ॥ब्रह्माजी बोले कि, हे महाबाहो, राजन् ! जो तुम्हारे मनमें है उसको शीघ्रही कहो और कियाहुवा मानो क्योंकि तुमको कुछ भी अदेय नहींहै ॥ ४५ ॥ राजा बोला, कि हे सर्वलोक पितामह ! जो मैं भूपालहूं तो स्वर्गवासी देवलोग स्वर्ग में टिकें भूमिमें मत

ज्ञिनदेवोवर्षतेपुनः ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ पितामहमहामान्यत्रिलोकीकरणक्षम ॥ महाप्रसादइत्याज्ञांत्वदीयांमूर्ध्न्युपाददे ॥ ४३ ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोहंतन्मदर्थंकरोषिचेत् ॥ ततःकरोम्यहंराज्यंपृथिव्यामसपत्नवत् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अविलम्बेनतद्ब्रूहिकृतंमन्यस्वपार्थिव ॥ यत्तेहृदिमहाबाहोतवादेयंनकिञ्चन ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ यद्यहंपृथिवीनाथः सर्वलोकपितामह ॥ तदादिविपदोदेवादिवितिष्ठन्तुमाभुवि ॥ ४६ ॥ देवेषुदिवितिष्ठत्सुमयितिष्ठतिभूतले ॥ असपत्नेन राज्येनप्रजासौख्यमवाप्स्यति ॥ ४७ ॥ तथेतिविश्वसृक्प्रोक्तोदिवोदासोनरेश्वरः ॥ पटहङ्घोषयाञ्चक्रेदिवन्देवाव्रजन्त्विति ॥ ४८ ॥ मागच्छन्त्विहवैनागानराःस्वस्थाभवन्त्वितः ॥ मयिप्रशासतिक्षोणींसुराःस्वस्थाभवन्त्विति ॥ ४९ ॥ एतस्मिन्नन्तरेब्रह्माविश्वेशम्प्रणिपत्यह ॥ यावद्विज्ञप्तुकामोभूत्तावदीशोब्रवीद्विधिम् ॥ ५० ॥ लोकेश्वरसमायाहिमन्दरोनामभूधरः ॥ कुशद्वीपादिहागत्यतपस्तप्येतदुष्करम् ॥ ५१ ॥ यावत्तस्मैवरन्दातुंवहुकालंतपस्यते ॥ इत्युक्तापा

आवें ॥ ४६ ॥ जब देवलोग स्वर्ग में बसेंगे और मैं भूतल में टिकोंगा तब अकंटक राज्यसे प्रजासमूह भी सौख्यको प्राप्त होवेगा ॥ ४७ ॥ और वैसे होवे ऐसे ब्रह्माके कहेहुये दिवोदास नरेशने देशमें ऐसे ढक्काको बजवाया कि देवतालोग स्वर्गकोजावें ॥४८॥ और नाग भी यहां मतआवें क्योंकि भूमिमें मेरे राज्य करतेही इस लोकमें मनुष्य स्वस्थ होवें व स्वर्गवासी देव और ऐसेही पातालवासी नाग भी स्वस्थ होवें ॥ ४९ ॥ इसी अन्तर में आनन्द से विश्वनाथके प्रणामकर ब्रह्माजी जबतक विज्ञापना करने की इच्छावाले हुये तबतक महेशजीने ब्रह्माजी से कहा कि ॥ ५० ॥ हे लोकेश्वर ! तुम भलीभांति से आवो क्योंकि मंदरनामक पर्वत कुशद्वीपसे यहां आकर बड़ी

दुष्कर तपस्याको करता है ॥ ५१ ॥ इसरो बहुत कालसे तप करतेहुये उसके लिये यथावत् वर देने योग्यहै इस भांतिसे कहकर नंदी और भृंगी आदि गणों के आगे चलनेवाले पार्वतीके नाथ ॥ ५२ ॥ बैलपर चढ़कर तहांगये जहां मंदराचल टिका था और देवोंके देव वृषध्वज महादेवजी प्रसन्न मन होकर बोले ॥ ५३ ॥ कि, हे पर्वतोत्तम! तुम उठो उठो तुम्हारा कल्याण होवे व वाञ्छित वरको मांगो तदनन्तर त्रिनेत्र देव देवको सुनकर उस ॥ ५४ ॥ पर्वतने बहुतसे प्रणामकर यह विज्ञापना किया कि, हे लीलाशरीरधर, प्रणतों के लिये मुख्य कृपानिधान शंकर ॥ ५५ ॥ हे सब वृत्तान्तों के पण्डित शरणागतरक्षक! सर्वज्ञ नामसे प्रसिद्ध भी आप मेरे मनो-

र्वतीनाथोनन्दिभृङ्गिपुरोगमः ॥ ५२ ॥ जगामवृषमारुह्यमन्दरोयत्रतिष्ठति ॥ उवाचचप्रसन्नात्मादेवदेवोवृषध्वजः ॥ ५३ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्तेवरम्ब्रूहिधरोत्तम ॥ सोथश्रुत्वामहेशानंदेवदेवंत्रिलोचनम् ॥ ५४ ॥ प्रणम्यबहुशोभूमाद्रिरेतद्व्यजिज्ञपत् ॥ लीलाविग्रहभृच्छम्भोप्रणतैककृपानिधे ॥ ५५ ॥ सर्वज्ञोपिकथंनामनवेत्थममवाञ्छितम् ॥ शरणागतसन्त्राणसर्ववृत्तान्तकोविद ॥ ५६ ॥ सर्वेषांहृदयानन्दशर्वसर्वगसर्वकृत् ॥ यदिदेयोवरोमह्यंस्वभावाद्दृषदात्मने ॥५७॥ याचकायातिशोच्यायप्रणतार्तिप्रभञ्जक ॥ ततोऽविमुक्तक्षेत्रस्यसाम्यंह्यभिलषाम्यहम् ॥ ५८ ॥ कुशद्वीपउमासार्धंनाथाद्यसपरिच्छदः ॥ मन्मौलौविहितावासःप्रयात्वेषवरोमम ॥ ५९ ॥ सर्वेषांसर्वदःशम्भुःक्षणंयावद्विचिन्तयेत् ॥ विज्ञातावसरोब्रह्मातावच्छम्भुंव्यजिज्ञपत् ॥ प्रणम्याग्रेसरोभूत्वामौलौबद्धकरद्वयः ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वेश

रथको कैसे नहीं जानतेहो ॥ ५६ ॥ हे सर्वगत सर्वकृत सबके हृदयके आनन्ददायक पार्वतीनायक! जो स्वभावसेही जड़ पत्थररूप मेरेलिये वर देने योग्यहै ॥ ५७ ॥ तो हे भक्तार्त्तिभंजन! जोकि मैं अतिशय शोचने योग्य याचकहूं वह मैं काशी की समताको चाहताहूं ॥ ५८ ॥ हे नाथ! यही मेरा वरदान लेनाहै कि पार्वती के साथ सब सामग्री समेत आप मेरे माथपर निवास करनेवाले होकर आज कुशद्वीप को चलो ॥ ५९ ॥ ऐसा सुनकर सबके सब कुछ देनेवारे शंकरजी जबतक क्षणभर विचार करनेलगे तबतक जानागयाहै अवसर जिनकरके उन ब्रह्माने विज्ञापना किया जोकि अग्रगामी होकर प्रणामकर माथमें दोनों हाथ जोड़ेहुये खड़े थे वह ॥ ६० ॥

श्रीब्रह्माजी बोले, कि हे विश्वेश्वर, जगन्नाथ विभो! प्रसन्नहुये स्वामी से मैं चार भांतिकी सृष्टिकरनेको व्यापार कराया गयाहूं ॥ ६१ ॥ इससे आपकी आज्ञासे मैंने यत्नपूर्वक जिस सृष्टिको सिरजाहै वह साठि वर्षकी अनावृष्टि से प्रजाओं से हीनहोकर उस भूमिमें नष्ट होगई है ॥ ६२ ॥ और विना राजाका यह जगत् बहुतही दुःस्थित हुवाहै उससे मनुवंश में उत्पन्न रिपुञ्जयनामक ॥ ६३ ॥ राजर्षिको प्रजापालने के लिये मैंने अभिषेक कियाहै और उस महा तपस्वी, बड़े वीर्य्यवान्ने भी समय कियाहै ॥ ६४ ॥ कि जो तुम्हारी आज्ञासे सब देवता स्वर्ग में तथा नाग भी पाताल मे टिकेंगे तो मैं राज्यको करूंगा ॥ ६५ ॥ और वैरो होगा यह वह मेरा कहाहुवा वचन प्रमाण

जगतांनाथपत्याऽव्यापारितोस्म्यहम् ॥ कृतप्रसादेनविभोसृष्टिङ्कर्तुञ्चतुर्विधाम् ॥ ६१ ॥ प्रयत्नेनमयासृष्टासासृष्टिस्त्वदनुज्ञया ॥ अवृष्टयाषष्टिहायिन्यातत्रनष्टाऽप्रजासुवि ॥ ६२ ॥ अराजकंमहच्चासीद्दुरवस्थमभूज्जगत् ॥ ततोरिपुञ्जयो नामराजर्षिर्मनुवंशजः ॥ ६३ ॥ मयाभिषिक्तोराजर्षिःप्रजाःपातुंनरेश्वरः ॥ चकारसमयंसोपिमहावीर्योमहातपाः ॥६४॥ तवाज्ञयाचेत्स्थास्यन्तिसर्वेदिविषदोदिवि ॥ नागलोकेतथानागास्ततोराज्यंकरोम्यहम् ॥ ६५ ॥ तथेतिचमयाप्रोक्तंप्रमाणीक्रियतान्तुतत् ॥ मन्दरायवरोदत्तोभवेदेवंकृपानिधे ॥ ६६ ॥ तस्यराज्ञःप्रजास्त्रातुम्भूयाच्चैषमनोरथः ॥ ममनाडीद्वयंराज्यंतस्यापिचशतक्रतोः ॥ ६७ ॥ मर्त्यानाङ्गणनाकेहनिमेषार्धनिमेषिणाम् ॥ देवोपिनिर्मलंमत्वामन्दरञ्चारुकन्दरम् ॥ ६८ ॥ विधेश्चगौरवंरक्षंस्तथोरीकृतवान्हरः ॥ जम्बूद्वीपेयथाकाशीनिर्वाणपददासदा ॥ ६९ ॥ तथाबहुतिथंकालंद्वीपोभूत्सोपिमन्दरः ॥ यियासुनाचदेवेनमन्दरश्चित्रकन्दरम् ॥ ७० ॥ निजमूर्तिमयंलिङ्गमविज्ञातंविधेरपि ॥

कियाजावे हे कृपानिधान! आपने भी मन्दराचलको वरदान दियाहै इससे ऐसेही होवे अर्थात् देव शिरोमणि आप भी इस समय काशी को छोड़कर मन्दर पर्वतपर कुशद्वीप मे निवासकरो ॥ ६६ ॥ तब प्रजापालने के लिये उस राजाका यह मनोरथ भी सिद्ध होजावेगा व मेरे दो दण्डतक उस इन्द्रकी राज्य रहेगी ॥ ६७ ॥ और इस लोकमे आधे निमेष पर्य्यंत पलक भांजनेवाले मनुष्यों की गणना कहांहै तब मन्दराचलको सुन्दर कन्दरावाला मानकर महादेव भी ॥ ६८ ॥ जोकि भक्तोंकी सबभीति को हरते हैं वह ब्रह्माकी गुरुताको राखतेहुये वैसेही अंगीकार करते भये व जैसे जम्बूद्वीप मे काशीपुरी सदा मोक्षदाहै ॥ ६९ ॥ वैसे बहुत कालतक वह मन्दराचल

और कुशद्वीप भी मुक्तिदाता होगया परन्तु विचित्र कन्दरावाले मन्दराचलमें जाना चाहतेहुये महादेवजीने ॥ ७० ॥ जोकि ब्रह्माका भी न जाना था उस अपने मूर्तिमय लिंगको काशीमें स्थापित किया क्योंकि भक्तोंको सब सिद्धि देनेके लिये ॥ ७१ ॥ व मरे जन्तुवों को मुक्ति सम्पत्ति देने के लिये व यहां टिके सब सदाचारियों और क्षेत्रकी रक्षाकरने के लिये यह लिंग थापा गयाहै ॥ ७२ ॥ व जिससे मन्दराचलको गये भी महादेवने लिंगरूप से इस क्षेत्रको नहीं त्यागा इससे यह अविमुक्त नामसे कहाजाताहै ॥ ७३ ॥ आगे यह क्षेत्र आनन्दवन नाम कहागया था परन्तु तबसे लगाकर पृथिवी में इसका अविमुक्त नाम प्रसिद्धहै ॥७४॥ इस भांतिसे क्षेत्र और लिंगका

स्थापितंसर्वसिद्धीनांस्थापकेभ्यःसमर्पितुम् ॥ ७१ ॥ विपन्नानाञ्चजन्तूनांदातुंनैःश्रेयसींश्रियम् ॥ सर्वेषामिहसंस्थानां क्षेत्रंचैवाभिरक्षितुम् ॥ ७२ ॥ मन्दराद्रिङ्गतेनापिक्षेत्रंनैततपिनाकिना ॥ विमुक्तंलिङ्गरूपेणअविमुक्तमतःस्मृतम् ॥ ७३ ॥ पुरानन्दवनंनामक्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ अविमुक्तंतदारभ्यनामास्यप्रथितम्भुवि ॥ ७४ ॥ नामाविमुक्तमभवदुभयोःक्षेत्रलिङ्गयोः ॥ एतद्द्वयंसमासाद्यनभूयोगर्भभाग्भवेत् ॥७५॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वाक्षेत्रेऽविमुक्तके ॥ विमुक्तएवभवतिसर्वस्मात्कर्मबन्धनात् ॥७६॥ अर्चन्तिविश्वेविश्वेशंविश्वेशोर्चतिविश्वकृत॥अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंभुविमुक्तिप्रदायकम् ॥ ७७ ॥ पुरानस्थापितंलिङ्गंकस्यचित्केनचित्क्वचित् ॥ किमाकृतिभवेल्लिङ्गंनैतद्वेत्त्यपिकश्चन ॥ ७८ ॥ आकारमविमुक्तस्यदृष्ट्वाब्रह्माच्युतादयः ॥ लिङ्गंसंस्थापयामासुर्वसिष्ठाद्यास्तथर्षयः ॥ ७९ ॥ आदिलिङ्गमिदम्प्रोक्तमविमुक्तेश्वर

भी अविमुक्त नाम भयाहै इससे इन दोनोंके पासमें पहुंचकर फिर गर्भसेवी न होवे ॥ ७५ ॥ जिससे अविमुक्त क्षेत्र याने काशीमें अविमुक्तेश्वरके दर्शनकर सबकर्मबन्धन से विमुक्तही होताहै ॥ ७६ ॥ व सबलोग विश्वनाथको पूजते हैं और जगत्कर्त्ता विश्वनाथजी भूमिमें मुक्तिदायक अविमुक्तेश्वरनामक लिंगको पूजते हैं ॥ ७७ ॥ किन्तु पहले किसीकरके किसीका कोई लिंग नहीं थापागया और यह भी न कोई जानता था कि वह लिंग किसआकारका होताहै ॥ ७८ ॥ परन्तु अविमुक्तेश्वरके आकारको देखकर ब्रह्मा विष्णु और वसिष्ठादि ऋषियोंने भी लिंगोंका स्थापन कियाहै ॥ ७९ ॥ इससे सबसे बड़ा यह अविमुक्तेश्वरनामक लिंग आदि लिंग कहागयाहै

उसके बाद भूमण्डलमें अन्य अनेक लिंग प्रकट हुयेहैं ॥ ८० ॥ और अविमुक्तेश्वरका नाम भी सुनकर मनुष्य क्षणभरमें जन्मके कमाये पापसे विमुक्त होवेहै इसमें वि-चारणा न करना चाहिये ॥ ८१ ॥ व दूर देशवासी भी काशीमें अविमुक्तेश्वर लिंगका स्मरणकर क्षणभर में दो जन्मके किये पापसे छूटजाताहै ॥ ८२ ॥ व अविमुक्तनामक महाक्षेत्रमें अविमुक्तेश्वरको देखकर तीन जन्मों के उत्पन्न पापको त्यागकर पुण्यमय होताहै ॥ ८३ ॥ व ज्ञानके नाशसे पांच जन्मोंमें जो पाप कियागयाहै वह अविमु-क्तेश्वरके संस्पर्श से नष्ट होवे है यह अन्यथा नहीं है ॥ ८४ ॥ व अविमुक्तेश्वर महालिंगकी पूजाकर मनुष्यकृतार्थ होवे और फिर इस संसारमें जन्मधारी कभी न हो-

म्महत् ॥ ततोलिङ्गान्तराण्यत्रजातानिक्षितिमण्डले ॥ ८० ॥ अविमुक्तेशनामापिश्रुत्वाजन्मार्जितादघात् ॥ क्षणान्मुक्तोभवेन्मर्त्योनात्रकार्याविचारणा ॥ ८१ ॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंस्मृत्वादूरगतोपिच ॥ जन्मद्वयकृतात्पापात्क्षणादेवविमुच्यते ॥ ८२ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेऽविमुक्तमवलोक्यच ॥ त्रिजन्मजनितंपापंहित्वापुण्यमयोभवेत् ॥ ८३ ॥ यत्कृतंज्ञानविभ्रंशादेनःपञ्चसुजन्मसु ॥ अविमुक्तेशसंस्पर्शात्तत्क्षयेदेवनान्यथा ॥ ८४ ॥ अर्चयित्वामहालिङ्गमविमुक्तेश्वरंनरः ॥ कृतकृत्योभवेदत्रनचस्याज्जन्मभाक्कुतः ॥ ८५ ॥ स्तुत्वानत्वार्चयित्वाचयथाशक्तियथामति ॥ अविमुक्तेविमुक्तेशंस्तूयतेनम्यतेऽर्च्यते ॥ ८६ ॥ अनादिमदिदंलिङ्गंस्वयंविश्वेश्वरार्चितम् ॥ काश्याम्प्रयत्नतःसेव्यमविमुक्तंविमुक्तये ॥ ८७ ॥ सन्तिलिङ्गान्यनेकानिपुण्येष्वायतनेषुच ॥ आयान्तितानिलिङ्गानिमाघींप्राप्यचतुर्दशीम् ॥ ८८ ॥ कृष्णायांमाघभूतायामविमुक्तेशजागरात् ॥ सदाविगतनिद्रस्ययोगिनोगतिभाग्भवेत् ॥ ८९ ॥ नानायतनलिङ्गानिच

गा ॥८५॥ व यथाशक्ति यथामति याने अपनी शक्ति और बुद्धिके अनुसार काशीमें अविमुक्तेश्वरकीस्तुतिकर व नमस्कारकर व पूजाकर लोकमें प्रशंसाजाता व प्रणमाजाता और पूजाजाताहै ॥ ८६ ॥ जोकि स्वयं विश्वनाथसे पूजित अविमुक्तेश्वरनामक यह अनादिवाला लिंग काशीमें है वह मोक्षके लिये प्रयत्न से सेवने योग्यहै ॥८७॥ व जे अनेक लिंग पुण्य स्थानों में हैं वे सब लिंग माघकी चतुर्दशीको प्राप्तहोकर इसमेंही आते हैं ॥ ८८॥ इससे यहां मनुष्य माघबदी चतुर्दशी में जागरण करने से सदा जागतेहुये योगीकी गतिका भागी होताहै ॥८९॥ क्योंकि अर्थ धर्म काम और मोक्ष नामक चतुर्वर्गदायक भी अनेक स्थानोंके लिंग माघबदी चतुर्दशी में अविमुक्तेश्वर की

उपासना करते हैं ॥ ९० ॥ और जो धीर मनुष्य अविमुक्तेश्वर लिंगकी भक्तिरूप वज्रको धरताहै तो पाप पर्वत से क्यों डरता है ॥ ९१ ॥ कहां चतुर्वर्ग फलके उदय करनेवाला अविमुक्तेश्वर महालिंग और कहां बहुत थोड़ा पापीका पाप पर्वत याने उसके आगे यह क्याहै जोकि नाम स्मरण सेही नष्ट होजाताहै ॥ ९२ ॥ जोकि अविमुक्तेश्वरनामक उत्तम लिंग काशी मे विश्वनाथ से अधिक होकर टिकाहै उसको जिन्होंने नहीं देखा वे विशेष मूढ़हैं ॥ ९३ ॥ व अविमुक्तेश्वरके दर्शनकर्त्ता को देखकर दोनों हाथ जोड़े दण्डधारी यमराजजी दूरसेही प्रणाम करते हैं ॥९४॥ और जो जिनसे अविमुक्तेश्वरको देखता है व जिनसे छूताहै उसके उन नेत्रोंका निर्माण धन्यहै और वे

तुर्वर्गप्रदान्यपि ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यामविमुक्तमुपासते ॥ ९० ॥ किंबिभेतिनरोधीरःकृतादघशिलोच्चयात् ॥ अविमुक्तेशलिङ्गस्यभक्तिवज्रधरोयदि ॥ ९१ ॥ काविमुक्तंमहालिङ्गंचतुर्वर्गफलोदयम् ॥ क्वपापिपापशैलोऽल्पोयःक्षयेन्नाम्निसंस्मृते ॥ ९२ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेविश्वेशसमधिष्ठिते ॥ यैर्नदृष्टंविमूढास्तेऽविमुक्तंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ९३ ॥ द्रष्टारमविमुक्तस्यदृष्ट्वादण्डधरोयमः ॥ दूरादेवप्रणमतिप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ९४ ॥ धन्यन्तन्नेत्रनिर्माणंकृतकृत्यौतुतौकरौ ॥ अविमुक्तेश्वरंयेनयाभ्यामैक्षिष्टयःस्पृशेत् ॥ ९५ ॥ त्रिसन्ध्यमविमुक्तेशंयोजपेन्नियतःशुचिः ॥ दूरदेशविपन्नोपिकाशीमृतफलंलभेत् ॥ ९६ ॥ अविमुक्तंमहालिङ्गंदृष्ट्वाग्रामान्तरंव्रजेत् ॥ लब्ध्वाशुकार्यसंसिद्धिंक्षेमेणप्रविशेद्गृहम् ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽविमुक्तेशाविर्भावोनामैकोनचत्वारिंशोध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ अविमुक्तेशमाहात्म्यंवर्णितन्तेग्रतोमया ॥ अथोकिमसिशुश्रूषुःकथयिष्यामितत्पुनः ॥ १ ॥ अगस्त्य

हाथ भी कृतार्थ हैं ॥ ९५ ॥ जोकि नियमवाला पवित्र मनुष्य तीनों सन्ध्याओं में अविमुक्तेश्वरको जपे वह दूर देशमें मराहुवा भी काशी में मरेका फल पावे ॥ ९६ ॥ और जो अविमुक्तेश्वर महालिंगका दर्शनकर दूसरे ग्रामकोजावे तो शीघ्रही कार्य्य की सिद्धि पाकर कुशल से आकर अपने घरमें प्रवेशकरे ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेअविमुक्तेश्वरलिंगप्रादुर्भावोनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चालिसयें अध्यायमें बुद्धि शुद्धि मिति मानि। विधि निषेध गोचर गृही धर्म निरूपण जानि ॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि मैंने तुम्हारे आगे अविमुक्तेश्वरके माहात्म्य को

कहा अब क्या सुना चाहतेहो उसको फिर कहूंगा ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले कि मेरे कान अविमुक्तेशकी महिमाको सुन सुनकर शोभन श्रवणवाले हुये तो भी मैं तृप्त नहीं होताहूँ ॥ २ ॥ हे षण्मुख ! अविमुक्तेश्वर लिंग और काशी क्षेत्र इन दोनों की प्राप्ति कैसे होतीहै उसको कहो ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे महामते अगस्त्य ! जैसे इस लोकमें मुक्तिदाता इस अविमुक्तकी प्राप्ति होवे वैसे मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ ४ ॥ हे विप्र ! पापसमूह से वाञ्छित अर्थकी सिद्धि मिलती है और वह पुण्य वेद मार्गके सेवनसे होतीहै ॥ ५ ॥ हे मुने ! सदा पापके अवसर को प्राप्त होकर जोकि कलि और काल ये दोनों प्राणियोंको नाशना चाहते हैं वे वेदमार्ग सेवी पुरुषके संस्पर्श से नष्ट

उवाच ॥ अविमुक्तेशमाहात्म्यंश्रावंश्रावंश्रुतीमम ॥ अतीवसुश्रुतेजातेतथापिनधिनोम्यहम् ॥ २ ॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गं क्षेत्रंचाप्यविमुक्तकम् ॥ एतयोस्तुकथंप्राप्तिर्भवेत्षण्मुखतद्वद ॥ ३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृणुकुम्भजवक्ष्यामियथाप्राप्तिर्भवेदिह ॥ स्वश्रेयोदातुरेतस्याविमुक्तस्यमहामते ॥ ४ ॥ समीहितार्थसंसिद्धिर्लभ्यतेपुण्यभारतः ॥ तच्चपुण्यम्भवेद्विप्रश्रुतिवर्त्मसभाजनात् ॥ ५ ॥ श्रुतिवर्त्मजुषःपुंसःसंस्पर्शान्नश्यतोमुने॥कलिकालावपिसदाछिद्रंप्राप्यजिघांसतः ॥ ६॥ वर्जितस्यविधानेनप्रोक्तस्याकरणेनवै ॥ कलिकालावपिहतोब्राह्मणंरन्ध्रदर्शनात् ॥ ७ ॥ निषिद्धाचरणन्तस्मात्कथयिष्येतवाग्रतः ॥ तद्दूरतःपरित्यज्यनरोननिरयीभवेत् ॥ ८ ॥ पलाण्डुंविड्वराहञ्चशेलुंलशुनगृञ्जने ॥ गोपीयूषन्तण्डुलीयंवर्ज्यञ्चकवकंसदा ॥९॥ व्रश्चनान्वृक्षनिर्यासान्पायसापूपशष्कुलीः ॥ अदेवपित्र्यंपललमवत्सागोपयस्त्यजेत् ॥ १० ॥ पयएकशफंहेयंतथाक्रामेलकाविकम् ॥ रात्रौनदधिभोक्तव्यंदिवाननवनीतकम् ॥ ११॥ टिट्टिभङ्कलविङ्कञ्चहंसं

होजाते हैं ॥ ६ ॥ व निषिद्ध कर्मके करने और वेदोक्तके न करनेसेही छिद्र देखनेसे कलि और काल भी ये दोनों ब्राह्मणको नाशते हैं ॥ ७ ॥ उससे आपके आगे निषिद्ध आचरणको कहताहूं जिसरो उसको दूरसे त्यागकर मनुष्य नरकवासी न होवे ॥ ८ ॥ प्याज ग्राम सूकर लसोढ़ाका फल लहसुन गाजर व दश दिनके भीतर में ब्यानी गऊका दूध व विष्ठामें उपजी चौराई और धरतीका फूल सदा सबको बराना चाहिये ॥ ९ ॥ व छेदने से उपजी वृक्षोंकी गाद व देवता और पितरो के लिये समर्पे विना खीर पुवा सुहारी व मांस और विना बछड़ेकी गऊके दूधको भी त्यागदेवे ॥ १० ॥ एक खुरके पशुका तथा ऊंटका व भेड़का दूध बराने योग्यहै व दिनमें नैनू

और रातमेंदही न खाना चाहिये ॥११॥ टिटिहिरी गरगैया हंस चकवा जल मुरगा बगुला सारस मुरगा सुवा और मांस भक्षी सब पक्षीसमूहों को भी त्याग देवे ॥ १२ ॥ व बत्तख आदि हंस विशेष खञ्जन और बुड़ी मारकर मछली खानेवाले पक्षियों को त्यागे व जिससे मत्स्यभक्षी सब मांस खानेवाला होताहै उससे मछलियों को भी सर्वथा त्यागदेवे ॥ १३॥ व देवता और पितरोंके अन्तमें विहित पढ़िना व रोहू मछलियां खाने योग्य होतीहैं व शशा साही और कच्छप ये मांस भक्षियों से खाने योग्य हैं ॥ १४ ॥ साही व चन्दन गोह व जानेहुये मृग और पक्षी भी प्रशस्तहैं परन्तु आयु चाही और स्वर्ग चाही लोगोंकरके प्रयत्न से मांसखाना त्यागने योग्यहै अर्थात

चक्रंप्लवम्बकम् ॥ त्यजेन्मांसाशिनःसर्वान्सारसंकुक्कुटंशुकम् ॥ १२ ॥ जालपादान्खञ्जरीटान्बुडित्वामत्स्यभक्तकान् ॥ मत्स्याशीसर्वमांसाशीतन्मत्स्यान्सर्वथात्यजेत् ॥ १३ ॥ हव्यकव्यनियुक्तौतुभक्ष्यौपाठीनरोहितौ ॥ मांसाशिभिस्त्वमीभक्ष्याःशशशल्लककच्छपाः ॥ १४॥ श्वाविद्गोधेप्रशस्तेचज्ञाताश्चमृगपक्षिणः॥आयुष्कामैःस्वर्गकामैस्त्याज्यंमांसम्प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ यज्ञार्थंपशुहिंसायासास्वर्ग्यानेतराक्वचित् ॥ त्यजेत्पर्युषितंसर्वमखण्डस्नेहवर्जितम् ॥१६॥ प्राणात्ययेक्रतौश्राद्धेभेषजेविप्रकाम्यया ॥ अलौल्यमित्थंपललम्भक्षयन्नैवदोषभाक् ॥ १७॥ नतादृशम्भवेत्पापंमृगयावृत्तिकाङ्क्षिणः ॥ यादृशम्भवतिप्रेत्यलौल्यान्मांसोपसेविनः ॥ १८ ॥ मखार्थम्ब्रह्मणासृष्टाःपशुद्रुममृगौषधीः ॥ निघ्नन्नहिंसकोविप्रस्तासामपिशुभागतिः ॥ १९ ॥ पितृदेवक्रतुक्तेमधुपर्कार्थमेवच ॥ तत्रहिंसाप्यहिंसास्याद्धिंसान्य

मांसभक्षी की आयु घटजाती है व स्वर्ग में उसका बास नहीं होताहै ॥ १५ ॥ और जोकि यज्ञके अर्थ पशुहिंसा है वह स्वर्ग के लिये होतीहै व अन्य हिंसा स्वर्ग देनेवाली कहीं नहीं है इससे उसको त्यागना चाहिये व सब बासी और निःशेष निरस अन्नको भी त्याग देवे ॥ १६ ॥ प्राणसंकट यज्ञ श्राद्ध और औषधमें व ब्राह्मण की इच्छा से व अलोभ होकर इस भांतिसे मांस खाताहुवा दोषसेवी नहीं होताहै ॥ १७ ॥ व इन्द्रियों की चंचलता से मांससेवीका जैसा पाप मरने के बाद होताहै वैसा शिकारकी वृत्तिके चाहीका भी नहीं होवे है ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने यज्ञों के लिये पशु वृक्ष मृग और ओषधियोंको सिरजाहै इससे यज्ञादिकों में बलि देताहुवा ब्राह्मण अहिंसकहै और उनकी भी शुभगति होतीहै ॥ १९ ॥ देव व पितरों की यज्ञके लिये और मधुपर्क के अर्थही हिंसा भी वहां अहिंसाहै व अन्यत्र हिंसा दुस्तर

होवे है ॥ २० ॥ व जो अज्ञानी अपनी देह पोषनेकेअर्थ जन्तुओंको मारताहै उस दुष्टका इस उसलोकमें भी सुख कहीं नहींहै ॥ २१ ॥ जो खाताहै जो अनुमति देताहै जो पकाता है जो मोल लेताहै जो बेचताहै जो मारताहै जो परोसता है और जो मरवाताहै ये आठप्रकारके हिंसक कहेगये हैं ॥ २२ ॥ जोकि सौ बर्षतक प्रति संबत् में अश्वमेध से पूजाकरे और जो मांस न खाता होवे उन्न दोनों में से अन्नवाला मांस त्यागी मनुष्यही विशेष होताहै ॥ २३ ॥ इससे सुख चाही करके अपने समान दूसरा भी देखने योग्यहै क्योकि जैसे अपना में वैसे अन्य में भी सुख और दुख बराबर होतेहैं ॥ २४ ॥ व सुख अथवा अन्य दुख जो कुछ अन्य में कियाजाता है वह सब

त्रसुदुस्तरा ॥ २० ॥ योजन्तूनात्मपुष्ट्यर्थंहिनस्तिज्ञानदुर्बलः ॥ दुराचारस्यतस्येहनामुत्रापिसुखंक्कचित् ॥ २१ ॥ भोक्तानुमन्तासंस्कर्ताक्रयिविक्रयिहिंसकाः ॥ उपहर्ताघातयिताहिंसकाश्चाष्टधास्मृताः ॥ २२ ॥ प्रत्यब्दमश्वमेधेनशतंवर्षाणियोयजेत् ॥ अमांसभक्षकोयश्चतयोरन्त्योविशिष्यते ॥ २३ ॥ यथैवात्मापरस्तद्वद्द्रष्टव्यःसुखमिच्छता ॥ सुखदुःखानितुल्यानियथात्मनितथापरे ॥ २४ ॥ सुखंवायदिवाचान्यंयत्किञ्चित्क्रियतेपरे ॥ तत्कृतंहिपुनःपश्चात्सर्वमात्मनिसम्भवेत् ॥ २५ ॥ नक्लेशेनविनाद्रव्यमर्थहीनेकुतःक्रियाः ॥ क्रियाहीनेकुतोधर्मोधर्महीनेकुतःसुखम् ॥ २६ ॥ सुखंहिसर्वैराकाङ्क्ष्यंतच्चधर्मसमुद्भवम् ॥ तस्माद्धर्मोत्रकर्तव्यश्चातुर्वर्ण्यैर्नयत्नतः ॥ २७ ॥ न्यायागतेनद्रव्येणकर्तव्यम्पारलौकिकम् ॥ दानञ्चविधिनादेयंकालेपात्रेचभावतः ॥ २८ ॥ विधिहीनन्तथाऽपात्रेयोददातिप्रतिग्रहम् ॥ नकेवलंहित

कियाहुवाही फिर पीछे से अपनामेही संभवित होवे है याने उसका फल भोगने पडता है ॥ २५ ॥ क्लेश विना धन नहीं होता है व धनसे हीनमें क्रियायें कैसे होवेंगी व क्रियाहीन में धर्म कैसे होवेगा और धर्महीन मे सुख कैसे होवेगा इसमे इनका उपाय करना उचित है ॥ २६ ॥ व सुखही सबों से आकांक्ष्य है याने सुखको सब कोई चाहता है परन्तु वह सुख धर्म्म से समुत्पन्न होताहै उससे इसलोक मे यत्नसे चारो वर्णोंको निज धर्म करना चाहिये ॥ २७ ॥ व न्यायपूर्वक कमाये धनसे पारलौकिक कर्म्म करने योग्य है और भक्तिसे सुकाल मे विधिसे सुपात्रको दान देना चाहिये ॥ २८ ॥ तथा जो कुपात्र को विधिहीन दान देता

है उसका केवल वहही नहीं जाताहै किन्तु शेष पुण्य भी नष्ट होतीहै ॥ २९ ॥ व्यसनार्थ व कुटुम्बार्थ और ऋणके अर्थ जो दियाजाता है वह इस लोक व परलोकमें भी अक्षय फलवाला होताहै इसमें संशय नहींहै ॥ ३० ॥ व जोकि अपने धनसे माता पितासे विहीन बालकको यज्ञोपवीत और ब्याह आदिकों से संस्कार कराता है उसको अनन्त पुण्य होतीहै ॥ ३१ ॥ व एक ब्राह्मणके प्रतिष्ठित होतेही याने प्रतिष्ठा करने से मनुष्यों को जो पुण्य मिलती है वह पुण्य अग्निहोत्रों से नहीं और अग्निष्टोमादि यज्ञों से नहींहै ॥ ३२ ॥ व जो धर्मात्मा मनुष्य अनाथ ब्राह्मणका हाथ पकड़ावे याने ब्याह करावे वह इस लोकमें सुखको पावे और अन्तमें अक्षय स्वर्गको जावे

द्यातिशेषन्तस्यचनश्यति ॥ २९ ॥ व्यसनार्थेकुटुम्बार्थेयदृणार्थेचदीयते ॥ तदक्षयंभवेदत्रपरत्रचनसंशयः ॥ ३० ॥ मातापितृविहीनंयोमौञ्जीपाणिग्रहादिभिः ॥ संस्कारयेन्निजैरर्थैस्तस्यश्रेयस्त्वनन्तकम् ॥ ३१ ॥ अग्निहोत्रैर्नतच्छ्रेयो नाग्निष्टोमादिभिर्मखैः ॥ यच्छ्रेयःप्राप्यतेमर्त्यैर्द्विजेचैकेप्रतिष्ठिते ॥ ३२ ॥ योह्यनाथस्यविप्रस्यपाणिंग्राहयतेकृती ॥ इहसौख्यमवाप्नोतिसोऽक्षयंस्वर्गमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥ पितृगेहेतुयाकन्यारजःपश्येदसंस्कृता ॥ भ्रूणहातत्पिताज्ञेयोवृषली सापिकन्यका ॥ ३४ ॥ यस्तांपरिणयेन्मोहात्सभवेद्वृषलीपतिः ॥ तेनसम्भाषणन्त्याज्यमपाङ्क्तेयेनसर्वदा ॥ ३५ ॥ विज्ञायदोषमुभयोःकन्यायाश्चवरस्यच ॥ सम्बन्धंरचयेत्पश्चादन्यथादोषभाक्पिता ॥ ३६ ॥ स्त्रियःपवित्राःसततंनैता दुष्यन्तिकेनचित् ॥ मासिमासिरजस्तासांदुष्कृतान्यपकर्षति ॥ ३७ ॥ पूर्वंस्त्रियःसुरैर्भुक्ताःसोमगन्धर्ववह्निभिः ॥ भुञ्ज तेमानुषाःपश्चान्नैतादुष्यन्तिकेनचित् ॥ ३८ ॥ स्त्रीणांशौचन्ददौसोमःपावकःसर्वमेध्यताम् ॥ कल्याणवाणीङ्गन्धर्वा

है ॥ ३३ ॥ व जोकि विना ब्याही हुई कन्या पिताके घरमें रजोधर्म को देखे या देखतीहै उसका पिता ब्रह्मघाती जानने योग्यहै और वह कन्या शूद्रीके समान होजातीहै ॥ ३४ ॥ व जो पुरुष मोहसे उसको ब्याह लेवे है वह भी शूद्रीका पति होवे है उस अपङ्क्तिवाले के साथ सम्भाषण सदैव बराना चाहिये ॥ ३५ ॥ और इससे वर व कन्याके दोषको जानकर पीछे से उनका पिता दोनों के ब्याहादि सम्बन्ध को करे अन्यथा वह दोषभागी होताहै ॥ ३६ ॥ स्त्रियां सदैव पवित्रहैं ये किसी से दुष्ट नहीं होतीहैं क्योंकि मास मासमें रजोधर्म उनके पापको खींच लेताहै ॥ ३७ ॥ व पहले स्त्रियां चन्द्रमा गन्धर्व और अग्नि इन देवोंसे भोगी जातीहैं उसके बाद मनुष्य भो-

गते हैं परन्तु ये किसीसे अशुद्ध नहीं होती हैं॥ ३८ ॥ क्योंकि चन्द्रमाने स्त्रियों को शौच दियाहै व अग्नि सबसे पवित्रता देताहै और गन्धर्व मंगल वाणी देतेहैं उससे स्त्रियां सदैव पवित्र हैं ॥ ३९ ॥ व रजोधर्म समयमें अग्नि रोमदर्शन में चन्द्रमा और कुच निकलने में गन्धर्व कन्याको भोगते हैं इससे उसके पहलेही दी जाती है ॥ ४० ॥ क्योंकि जिस कन्याके रोमावली देख पड़ती है वह लड़कोंको नाशती है व कुचवाली कन्या कुलको नाशती है और प्रकटकृत रजोवती कन्या पिताको नाशती है उससे तीनोंको सब ओरसे बरावे ॥ ४१ ॥ व उसी कारण कन्यादानका फल चाहताहुवा मनुष्य अग्निआदि देवों से न भोगीगई कन्याको दानकरै अन्यथा दाताका फल नहीं होताहै और लेनेवाला भी नीचे गिरजावे है ॥ ४२ ॥ व चन्द्रादिकों से न भोगीगई कन्याको देताहुवा दानका फल पावैहै और देवभोगी कन्याको देताहुवा

स्तेनमेध्याःसदास्त्रियः ॥ ३९ ॥ कन्याम्भुङ्क्तेरजःकालेऽग्निःशशीलोमदर्शने ॥ स्तनोद्भेदेषुगन्धर्वास्तत्प्रागेवप्रदीयते ॥ ४० ॥ दृश्यरोमात्वपत्यघ्नीकुलघ्न्युद्गतयौवना ॥ पितृघ्न्याविष्कृतरजास्ततस्ताःपरिवर्जयेत् ॥ ४१ ॥ कन्यादानफलप्रेप्सुस्तस्माद्दद्यादनग्निकाम् ॥ अन्यथानफलन्दातुःप्रतिग्राहीपतेदधः ॥४२॥ कन्यामभुक्तांसोमाद्यैर्ददद्दानफलंलभेत् ॥ देवभुक्तान्ददद्दातानस्वर्गमधिगच्छति ॥ ४३ ॥ शयनासनयानानिकुणपंस्त्रीमुखंकुशाः ॥ यज्ञपात्राणिसर्वाणिनदुष्यन्तिबुधाःक्वचित् ॥ ४४ ॥ वत्सःप्रस्रवणेमेध्यःशकुनिःफलपातने ॥ नार्योरतिप्रयोगेषुश्वामृगग्रहणेशुचिः ॥ ४५ ॥ अजाश्वयोर्मुखम्मेध्यङ्गावोमेध्यास्तुपृष्ठतः ॥ पादतोब्राह्मणामेध्याःस्त्रियोमेध्यास्तुसर्वतः ॥ ४६ ॥ बलात्कारोपभुक्तावाचोरहस्तगतापिवा ॥ नत्याज्यादयितानारीनास्यास्त्यागोविधीयते ॥ ४७ ॥ अम्लेनताम्रशुद्धिःस्याच्छुद्धिःकांस्य

दाता स्वर्ग में नहीं जाताहै ॥ ४३ ॥ व शय्या आसन वाहन खड्ग पात्र स्त्रीका मुख कुश सब यज्ञपात्र और पंडित कहीं दोषयुक्त नहीं होते हैं याने सदैव शुद्ध रहते हैं ॥ ४४ ॥ दोहनसमय गऊ पन्हवाने मे बछड़ा पवित्रहै व फल गिराने में पक्षी व रति संयोगमें स्त्रियां और मृगके पकड़ने में श्वान (कूकर) शुद्ध माना जाताहै ॥ ४५ ॥ छाग व घोडेका मुख पवित्रहै गौवें पीठसे पवित्रहैं ब्राह्मण पांवों से पवित्र हैं और स्त्रियां सब अंगों से पवित्र हैं ॥ ४६ ॥ व जोकि स्त्री बलात्कार से भोगीभई व चोरके हाथमें गई भी होवे वह प्यारी त्यागने योग्य नहींहै क्योंकि शास्त्रसे इसका त्याग नहीं विधान कियाजाता है ॥ ४७ ॥ व खटाई से तांबेकी शुद्धि भस्मसे कांसेकी शुद्धि

रजोधर्म से स्त्रीकी संशुद्धि और पवाह से नदीकी शुद्धि होतीहै ॥ ४८ ॥ जोकि स्त्री मनसे भी यहां दूसरे पुरुषको नहीं विचारती है वह पार्वतीके साथ सौख्यों को भोगती है और इसलोकमें भी सुयशसेविनी होती है ॥ ४९ ॥ बाप व बाबा व भाई व कुलवाला तथा माता इतने लोग कन्यादानके अधिकारी हैं और इनमें से पहले के नाश में क्रमसे पीछे पीछेवाला स्वभाव में टिकाहुवा जन कन्याप्रद कहाता है ॥ ५० ॥ वह कन्याको न देताहुवा मनुष्य ऋतु ऋतुमें बालघातके पातकको प्राप्त होताहै और दाताओं के न होने में कन्या आपही स्वयंवरको करलेवे ॥ ५१ ॥ हृताधिकारा याने जिसका अधिकार हरलिया गया होवे वह व मलिना व पिण्डमात्र से जीविका करने-

सोमयास स्यभस्मना ॥ संशुद्धीरजसानार्यास्तटिन्यावेगतःशुचिः ॥ ४८ ॥ मनसापिहियानेहचिन्तयेत्पुरुषान्तरम् ॥ सोमयास हसौख्यानिभुङ्क्तेचात्रापिकीर्तिभाक् ॥ ४९ ॥ पितापितामहोभ्रातासकुल्योजननीतथा ॥ कन्याप्रदःपूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परःपरः ॥ ५० ॥ अप्रयच्छन्समाप्नोतिभ्रूणहत्यामृतावृतौ ॥ स्वयन्त्वभावेदातॄणांकन्याकुर्यात्स्वयंवरम् ॥५१॥ हृताधि कारांमलिनांपिण्डमात्रोपजीविनीम् ॥ परिभूतामधःशय्यांवासयेद्व्यभिचारिणीम् ॥ ५२ ॥ व्यभिचाराहृतौशुद्धिर्गर्भे त्यागोविधीयते ॥ गर्भभर्तृवधादौतुमहत्यपिचकल्मषे ॥ ५३ ॥ शूद्रस्यभार्याशूद्रैवसाचस्वाचविशःस्मृते ॥ तेचस्वा चैवराज्ञस्तुताश्चस्वाचाग्रजन्मनः ॥ ५४ ॥ आरोप्यशूद्रांशयनेविप्रोगच्छेदधोगतिम् ॥ उत्पाद्यपुत्रंशूद्रायांब्राह्मण्यादे वहीयते ॥ ५५ ॥ दैवपित्र्यातिथेयानितत्प्रधानानियस्यतु ॥ देवाद्यास्तन्नचाश्नन्तिसचस्वर्गंनगच्छति ॥ ५६ ॥ जामयो

वाली व अनादरी और व्यभिचारिणी स्त्रीको अपनी शय्याके नीचे में बाहर बसावे ॥ ५२ ॥ मनके व्यभिचार से ऋतुकाल में शुद्धि होतीहै परन्तु गर्भ रहने में उस स्त्री का त्याग विधान कियाजाता है व गर्भ और पतिके मारनेआदि व बड़े पापमें त्याग कहागयाहै ॥ ५३ ॥ शूद्रकी स्त्री शूद्रीही होतीहै वह और अपनी ये दोनों वैश्यकी कहीगईहैं वे दोनो और अपनी ये तीनों क्षत्रियकी और वे तीनों व अपनी याने ब्राह्मणी ये चारों ब्राह्मणकी स्त्रियां होतीहैं ॥ ५४ ॥ परन्तु शूद्रीको पलँगपर पौढ़ाकर ब्राह्मण नरकको जाताहै व शूद्रीमें पुत्रको उत्पन्नकर ब्राह्मणता से हीन होजाता है ॥ ५५ ॥ जिसके घरमें होम श्राद्ध और आतिथिभोजनादि तत्प्रधान होते हैं अर्थात उन कर्मों में शूद्रीकी अगुवाकारी रहती है उस होमादिकको देवादिक नहीं भोगते हैं और वह गृहस्थ उन कर्म्मों से स्वर्गको नहीं जाताहै ॥ ५६ ॥ व ज्ञातिकी स्त्री बहन

कन्या और बहू आदि स्त्रियां अपूजित होकर जिन घरोंको शापती हैं याने अनिष्ट मनाती हैं वे घर मारणादि कृत्याओं से हते के समान निरसन्देह नष्ट होजाते हैं ॥ ५७ ॥ उससे ऐश्वर्य्यचाहियों करके कौतुक और यज्ञोपवीतादि उत्सवों में पूर्वोक्त स्त्रियां गहने कपड़े और भोजनादिकों से पूजने योग्यहैं ॥ ५८ ॥ क्योंकि जहां भूषण वस्त्र अन्नादिको से स्त्रियां प्रसन्न रहती हैं वहां देवतायें रमती हैं व सब क्रियायें सफल होती हैं ॥ ५९ ॥ जिस घरमें स्त्री पतिसे प्रसन्न रहती है व स्त्री से पति प्रसन्न रहता है उसमे क्षण क्षणपर कल्याण भलीभांति प्राप्त होवे है ॥ ६० ॥ अहुत हुत प्रहुत प्राशित और पांचवां ब्राह्महुत ये पांच यज्ञ शुभहैं ॥ ६१ ॥ अब आगे उनको

यानिगेहानिशपन्त्यप्रतिपूजिताः ॥ कृत्याभिर्निहतानीवनश्येयुस्तान्यसंशयम् ॥ ५७ ॥ तदभ्यर्च्याःसुवासिन्योभूषणाच्छादनाशनैः ॥ भूतिकामैर्नरैर्नित्यंसत्कारेषूत्सवेषुच ॥ ५८ ॥ यत्रनार्यःप्रमुदिताभूषणाच्छादनाशनैः ॥ रमन्तेदेवतास्तत्रस्युस्तत्रसफलाःक्रियाः ॥ ५९ ॥ यत्रतुष्यतिभर्त्रास्त्रीस्त्रियाभर्ताचतुष्यति ॥ तत्रवेश्मनिकल्याणंसम्पद्येतपदेपदे ॥ ६० ॥ अहुतश्चहुतश्चैवप्रहुतम्प्राशितन्तथा ॥ ब्राह्मंहुतम्पञ्चमञ्चपञ्चयज्ञाइमेशुभाः ॥ ६१ ॥ जपोहुतोहुतोहोमःप्रहुतोभौतिकोबलिः ॥ प्राशितम्पितृसंतृप्तिर्हुतम्ब्राह्मंद्विजार्चनम् ॥ ६२ ॥ पञ्चयज्ञानिमान्कुर्वन्ब्राह्मणोनावसीदति ॥ एतेषामननुष्ठानात्पञ्चसूनाश्रवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ ब्राह्मणंकुशलम्पृच्छेद्राहुजातमनामयम् ॥ वैश्यंसुखंसमागम्यशूद्रंसन्तोषमेवच ॥ ६४ ॥ जातमात्रःशिशुस्तावद्यावदष्टौसमाःस्मृताः ॥ भक्ष्याभक्ष्येषुनोदुष्येद्यावन्नैवोपनीयते ॥ ६५ ॥ भरणम्पोष्यवर्गस्यदृष्टादृष्टफलोदयम् ॥ प्रत्यवायोह्यभरणेभर्तव्यस्तत्प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥ मातापितागुरुःपत्नीत्वपत्यानि

प्रकट करते हैं कि जपको हुत होमको अहुत बलिवैश्वदेवको प्रहुत पितरों के तर्प्पणको प्राशित और ब्राह्मणपूजाकोही ब्राह्महुत कहते हैं ॥ ६२ ॥ इन पांचों यज्ञों को करताहुवा ब्राह्मण दुःखित नहीं होताहै और इनके न करने से पांच हिंसाओं को प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ व समागमकरके ब्राह्मण से कुशल क्षत्रिय से अनामय वैश्य से सुख और शूद्रसे संतोष पूछना चाहिये ॥ ६४ ॥ जबतक आठ वर्ष कहीगई हैं और जबतक यज्ञोपवीत कर्म नहीं कियाजाता है तबतक उत्पन्नमात्र लड़का भक्ष्याभक्ष्य में दोषयुत नहीं होताहै ॥ ६५ ॥ पोष्यवर्ग (कुटुम्ब) का पोषना देखे व न देखेहुये फलों के उदय करनेवालाहै व उसके न पोषने में पापहै उससे यत्नसे उसका पोषण

करना चाहिये ॥ ६६ ॥ माता पिता गुरु स्त्री लड़का दासी दास अभ्यागत और अतिथि ये नवो पोष्यवर्ग कहाते हैं ॥ ६७ ॥ जो इस लोक में बहुते जनों के साथ जीविका करता है वह पुरुष जीवता है और अनन्तर अपना उदर भरनेवाला पुरुष जीवताही मृतक जानने योग्यहै ॥ ६८ ॥ इससे ऐश्वर्य्यकी कामना से दीन अनाथ और विशेषणयुक्त लोगो को देना चाहिये क्योंकि जिन्होंने पूर्व जन्म में दान नहीं दिया वे पराई भाग्य से जीविकावाले होते हैं ॥ ६९ ॥ जो कि यथोचित वस्तुका बांटना व सदाचार या अच्छे स्वभाव से संयुक्त व दयावान् व क्षमावान् व देवता और अतिथियोंका भक्त होवे वह धर्मवान् गृहस्थ कहागया है ॥ ७० ॥ व रातके बीचमें

समाश्रिताः ॥ अभ्यागतोतिथिश्चाग्निःपोष्यवर्गाश्रमीनव ॥ ६७ ॥ सजीवतिपुमान्योत्रबहुभिश्चोपजीव्यते ॥ जीवन्मृतोथविज्ञेयःपुरुषःस्वोदरम्भरिः ॥ ६८ ॥ दीनानाथविशिष्टेभ्योदातव्यम्भूतिकाम्यया ॥ अदत्तदानाजायन्तेपरभाग्योपजीविनः ॥ ६९ ॥ विभागशीलसंयुक्तोदयावांश्चत्तमायुतः ॥ देवतातिथिभक्तस्तुगृहस्थोधार्मिकःस्मृतः ॥ ७० ॥ शर्वरीमध्ययामौयौहुतशेषञ्चयद्धविः ॥ तत्रस्वपंस्तदश्नंश्चब्राह्मणोनावसीदति ॥ ७१ ॥ नवैतानिगृहस्थस्यकार्याण्यभ्यागतेसदा ॥ सुधाव्ययानियत्सौम्यंवाक्यञ्चक्षुर्मनोमुखम् ॥ ७२ ॥ अभ्युत्थानमिहायातसस्नेहम्पूर्वभाषणम् ॥ उपासनमनुव्रज्यागृहस्थोन्नतिहेतवे ॥ ७३ ॥ तथैषद्व्ययुक्तानिकार्याण्येतानिवैनव ॥ आसनम्पादशौचञ्चयथाशक्त्याशनंक्षितिः ॥ ७४ ॥ शय्यातृणजलाभ्यङ्गदीपागार्हस्थ्यसिद्धिदाः ॥ तथानवविकर्माणित्याज्यानिगृहमेधिनाम् ॥ ७५ ॥

जे दोपहर हैं और जोकि हवि होमसे बची है उसको खाता व उनमें सोताहुवा मनुष्य दुःखित नहीं होताहै ॥ ७१ ॥ जब अभ्यागत आवे तब सदैव ये नवो गृहस्थके करने योग्यहैं जोकि अमृत के समान कल्याणरूप हैं उनको कहते हैं कि अच्छा वचन अच्छा नेत्र अच्छा मन अच्छा मुख ॥ ७२ ॥ और यहां आवो ऐसा कहकर सामनेसे खड़ा होना व प्रीतिपूर्वक बतलाना व उपासना (सेवाकरना) और पीछे चलना ये नवो गृहस्थकी बढ़ती के कारणहैं ॥ ७३ ॥ वैसेही थोड़े खर्चवाले नव ये भी करने योग्यहैं कि आसनदेना व पद पखारना व यथाशक्ति भोजन व स्थान ॥ ७४ ॥ व शय्या व तृण व जल व अभ्यंग (उबटन आदि) और दीपक ये नवो गृहस्थों

के लिये सिद्धिदाता हैं तथा ये नव विकर्म गृहस्थोंका त्यागना चाहिये ॥ ७५ ॥ क्योंकि क्रूरता परस्त्री हिंसा क्रोध असत्य कठोरवचन वैर पाखण्ड और कपट ये नवो स्वर्गमार्ग के निषेध करनेवाले व बेड़ी बन्धनके समान हैं ॥७६ ॥ व नव आवश्यक कर्म प्रतिदिन करना चाहिये वे ये हैं कि स्नान सन्ध्या जप होम वेदपाठ देवपूजा ॥ ७७ ॥ वैश्वदेव अतिथिसेवा और नववां पितरोंका तर्पण गनागया है हे मुने ! जोकि यहां गोप्यहैं उनको सुनो ॥ ७८ ॥ जन्म नक्षत्र मैथुन मंत्र गृहच्छिद्र छलजाना आयु धन अपमान और स्त्री ये सब प्रकार से प्रकाशने योग्य नहीं होते हैं ॥ ७९ ॥ व इन नवोंका प्रकाश करना चाहिये कि एकान्तका पाप व अनिन्दित व प्रयोग सम्बन्धी

पैशुन्यम्परदाराश्चद्रोहःक्रोधानृतांप्रियम् ॥ द्वेषोदम्भश्चमायाचस्वर्गमार्गार्गलानिहि ॥ ७६ ॥ नवावश्यककर्माणिका र्याणिप्रतिवासरम् ॥ स्नानंसन्ध्याजपोहोमःस्वाध्यायोदेवतार्चनम् ॥ ७७ ॥ वैश्वदेवन्तथातिथ्यंनवमंपितृतर्पणम् ॥ नवगोप्यानियान्यत्रमुनेतानिनिशामय ॥ ७८ ॥ जन्मर्क्षंमैथुनंमन्त्रोगृहच्छिद्रञ्चवञ्चनम् ॥ आयुर्धनापमानंस्त्रीनप्र काश्यानिसर्वथा ॥ ७९ ॥ नवैतानिप्रकाश्यानिरहःपापमकुत्सितम् ॥ प्रायोग्यमृणशुद्धिश्चसान्वयःक्रयविक्रयौ ॥ क न्यादानंगुणोत्कर्षोनान्यत्केनापिकुत्रचित् ॥ ८० ॥ पात्रमित्रविनीतेषुदीनानाथोपकारिषु ॥ मातापितृगुरुष्वेतन्नवकं दत्तमक्षयम् ॥ ८१ ॥ निष्फलंनवसूत्सृष्टंचाटचारणतस्करे ॥ कुवैद्येकितवेधूर्तेशठेमल्लेचवन्दिनि ॥ ८२ ॥ आपत्स्व पिनदेयानिनववस्तूनिसर्वथा ॥ अन्वयेसतिसर्वस्वंदारांश्चशरणागतान् ॥ ८३ ॥ न्यासाधीकुलवृत्तिंचनिक्षेपंस्त्रीधनं

व ऋणशुद्धि व वंशवृद्धि व क्रय व विक्रय व कन्यादान और नववां गुणोत्कर्ष कहागयाहै इनसे अन्य किसीकरके कहीं कहने योग्य नहीं है ॥ ८० ॥ सुपात्र मित्र विनययुक्त दीन अनाथ उपकारी माता पिता और गुरु इन नवो मे दियाहुवा अक्षयफलवाला होताहै ॥ ८१ ॥ व वाचाल स्तुतिपाठक चोर कुवैद्य वंचक धूर्त्त दुष्ट मल्ल और वन्दी इन नवो में दियाहुवा निष्फलहै ॥ ८२ ॥ व जो सन्ततिहो तो विपत्तिमें भी नव वस्तुवें सर्वथा न देना चाहिये उनको कहते है कि स्त्री सर्वस्व शरणा- गत ॥ ८३ ॥ न्यास (थोडे दिन धरोहर धरना) बन्धान कुलवृत्ति निक्षेप (बहुत कालतक अन्यत्र धन धरना) स्त्रीका धन और पुत्र इनको जो देताहै वह मूढात्मा

प्रायश्चित्तों से विशुद्ध होताहै ॥ ८४ ॥ इसपूर्वोक्त नवों के नवकको जानकर सुख पाताहै और अब सबको स्वर्गमार्ग देनेवाले अन्य नवकको कहताहूं ॥ ८५ कि सत्य शौच अहिंसा क्षमा दान दया दम (इन्द्रियनिग्रह) अस्तेय (चोरी न करना) और प्रत्याहार यह नवक सबके धर्मका साधन है ॥ ८६ ॥ इससे सज्जनों से मानीगई व पुण्यमयी व स्वर्गमार्गकी प्रकाशिनी इसनवतिको अभ्यासकर गृहस्थ कहीं नहीं दुःखी होताहै ॥ ८७ ॥ व जिह्वा स्त्री पुत्र भ्राता मित्र दास और पासवर्त्ती ये सातो जिसके विनीत होते हैं उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होतीहै ॥ ८८ ॥ पान (नशा पीना) दुर्जनका संसर्ग पतिसे विरह ऐसी वैसी आना जाना स्वप्न और परघरमें बसना ये छः

सुतम् ॥ योददातिसमूढात्माप्रायश्चित्तैर्विशुध्यति ॥ ८४ ॥ एतन्नवानांनवकंज्ञात्वाप्रियमवाप्नुयात् ॥ अन्यच्चनवकंवच्मिसर्वेषांस्वर्गमार्गदम्॥ ८५ ॥ सत्यंशौचमहिंसाचक्षान्तिर्दानन्दयादमः ॥ अस्तेयमिन्द्रियाकोचःसर्वेषान्धर्मसाधनम् ॥ ८६ ॥ अभ्यस्यनवतिञ्चैतांस्वर्गमार्गप्रदीपिकाम् ॥ सतामभिमताम्पुण्यांगृहस्थोनावसीदति ॥ ८७ ॥ जिह्वाभार्यासुतोभ्रातामित्रदाससमाश्रिताः ॥ यस्यैतेविनयाढ्याश्चतस्यसर्वत्रगौरवम् ॥ ८८ ॥ पानन्दुर्जनसंसर्गःपत्याचविरहोटनम् ॥ स्वप्नोन्यगृहवासश्चनारीणांदूषणानिषट् ॥ ८९ ॥ समर्घंधान्यमुद्धृत्यमहर्घंयःप्रयच्छति ॥ सहिवार्धुषिकोनामतस्यान्नंनचभक्षयेत् ॥ ९० ॥ अग्रेमाहिषिकंदृष्ट्वामध्येचवृषलीपतिम् ॥ अन्तेवार्धुषिकञ्चैवनिराशाःपितरोगताः ॥ ९१ ॥ महिषीत्युच्यतेनारीयाचस्याद्व्यभिचारिणी ॥ तान्दुष्टांकामयेद्यस्तुसवैमाहिषिकःस्मृतः ॥ ९२ ॥ स्वन्तृपंयापरित्यज्यपरवृषेवृषायते ॥ वृषलीसाहिविज्ञेयानशूद्रीवृषलीभवेत् ॥ ९३ ॥ यावदुष्णम्भवत्यन्नंयावन्मौनेनभुज्यते ॥ ता

स्त्रियोंके दूषण कहाते हैं ॥ ८९ ॥ जोकि थोड़े मोलकी धान्यको खोलकर महंगीको देताहै उसका वार्धुषिक नामहै उसके अन्नको न भोजनकरे ॥ ९० ॥ क्योंकि श्राद्धके आदि मध्य और अन्तमें क्रमसे माहिषिक व वृषलीपति व वार्धुषिकको देखकर पितर निराश होजाते हैं ॥ ९१ ॥ अब माहिषिक व वृषलीपतिका लक्षण कहतेहैं कि जो स्त्री व्यभिचारिणी होती है वह महिषी ऐसा कहाती है और उस दुष्टाको जो चाहताहै वहही माहिषिककहागयाहै ॥ ९२ ॥ व जोकि अपने पतिको त्यागकर पर पुरुषमें रतिकी इच्छा करती है उसकोही वृषलीजानना चाहिये यहां शूद्री वृषली नहींहै ॥ ९३ ॥ और जबतक अन्न उष्ण रहताहै व जबतक मौनसे भोजन कियाजाता है व जबतक

हविके गुण नहीं कहेजाते हैं तबतक पितरलोग खातेहैं ॥ ९४ ॥ जब विद्या विनय सम्पन्न श्रोत्रिय ब्राह्मण घरमें आताहै तब सब ओषधियां प्रसन्न होतीहैं कि हम परम गतिको जावैंगी ॥ ९५ ॥ व शौचव्रत और आचार से भ्रष्ट व वेदवर्जित ब्राह्मण को दियाजाताहुवा अन्न रोताहै कि मैंने क्या पाप कियाहै जिससे इसके लिये दियाजाता हूं ॥९६॥ क्योंकि जिसके कोष्ठमें गया अन्न वेदाभ्यास से पचता है वह दाताके व उसके आगे और पाछे के दश दश पुरुषों को तारता है ॥ ९७ ॥ व स्त्रियों के मूडे का मुण्डन न करना चाहिये व गौओं के पीछे न चले याने गोरक्षण वृत्तिवाली न होवे व रात्रिको गोशालामें न बसे व वेदका श्रवण न करे ॥ ९८ ॥ व सब बालों को

वदश्नन्तिपितरोयावन्नोक्ताहविर्गुणाः ॥ ९४ ॥ विद्याविनयसम्पन्नेश्रोत्रियेगृहमागते ॥ क्रीडन्त्योषधयःसर्वायास्यामः परमाङ्गतिम् ॥ ९५ ॥ भ्रष्टशौचव्रताचारेविप्रेवेदविवर्जिते ॥ रोदित्यन्नन्दीयमानङ्किमयादुष्कृतंकृतम् ॥ ९६ ॥ यस्य कोष्ठगतंचान्नंवेदाभ्यासेनजीर्यति ॥ सतारयतिदातारंदशपूर्वान्दशापरान् ॥ ९७ ॥ नस्त्रीणांवपनङ्कार्यंनचगाःसमनुव्रजेत् ॥ नचरात्रौवसेद्गोष्ठेनकुर्याद्वैदिकींश्रुतिम् ॥ ९८ ॥ सर्वान्केशान्समुद्धृत्यच्छेदयेदंगुलद्वयम् ॥ एवमेवतुनारीणां शिरसोमुण्डनम्भवेत् ॥ ९९ ॥ राजावाराजपुत्रोवाब्राह्मणोवाबहुश्रुतः ॥ अकारयित्वावपनम्प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥ १०० ॥ केशानांरक्षणार्थायद्विगुणंव्रतमादिशेत् ॥ द्विगुणादक्षिणादेयाब्राह्मणेवेदपारगे ॥ १ ॥ योगृहीत्वाविवाहाग्निं गृहस्थइतिमन्यते ॥ अन्नन्तस्यनभोक्तव्यंवृथापाकोहिसस्मृतः ॥ २ ॥ दाराग्निहोत्रदीक्षाञ्चकुरुतेयोऽग्रजेस्थिते ॥ परिवेत्तासविज्ञेयःपरिवित्तिस्तुपूर्वजः ॥ ३ ॥ परिवित्तिःपरिवेत्तायययाचपरिविद्यते ॥ सर्वेतेनरकंयान्तिदातृयाजकपञ्च

उबारकर दो दो अंगुल कतरावे ऐसेही स्त्रियों के शिरका मुण्डन होवे है ॥ ९९ ॥ और जे राजा व राजपुत्र व बहु श्रुत ब्राह्मण हैं उनके मुण्डनको न कराकर प्रायश्चित्तको विनिर्देशकरे ॥ १०० ॥ व शिरके बालों को बचानेके लिये द्विगुण व्रतको बतावे और वेदपारग ब्राह्मणको दूनी दक्षिणा देना चाहिये ॥ १ ॥ व जोकि ब्याह की अग्नि को न ग्रहणकर अपनाको गृहस्थ मानता है उसका अन्न न खाना चाहिये क्योंकि वह वृथा पाकवाला कहागया है ॥ २ ॥ और जब ज्येष्ठ भ्राता विना ब्याहेका रहगया होवे तब जोकि ब्याह और अग्निहोत्र दीक्षाको करताहै वह परिवेत्ताजानने योग्यहै व उसका ज्येष्ठ भ्राता परिवित्ति नामसे कहाजाता है ॥ ३ ॥ परि-

वित्ति व परिवेत्ता व जिस कन्याके साथ ब्याह कियाजाता है व जो कन्या दान देताहै और जो पण्डित उसके ब्याहमें होम कराता है वे सब पांचो लोग नरकको जाते हैं ॥ ४ ॥ और जो ज्येष्ठ भ्राता नपुंसक व विदेशवासी व संन्यासी व गूंगा व जड़ व कुब्जा व वामन व पतितहोवे तो छोटे भाईके ब्याहमें दोष नहींहै ॥ ५ ॥ व वेद विक्रयकर्ता धनादि प्राप्तिके लिये वेदोंके जितने अक्षरोंको नियुक्तकरे उतनीही ब्रह्महत्याओं को पावे ॥ ६ ॥ और जोकि संन्यासी होकर फिर मैथुनको सेवता है वह साठि सहस्र वर्षतक विष्ठामें कीड़ा होताहै ॥ ७ ॥ व शूद्रका अन्न शूद्रका संसर्ग शूद्रके साथ आसन और शूद्रसे कोई विद्यागम ये चारो तेजसे ज्वलतेहुये को भी

मा: ॥ ४ ॥ क्लीबेदेशान्तरस्थेचमूकेप्रव्रजितेजडे ॥ कुब्जेखर्वेचपतितेनदोषःपरिवेदने ॥ ५ ॥ वेदाक्षराणियावन्तिनियुञ्ज्यादर्थकारणे ॥ तावतीर्वैभ्रूणहत्यावेदविक्रयकृल्लभेत् ॥ ६ ॥ यस्तुप्रव्रजितोभूत्वासेवतेमैथुनम्पुनः ॥ षष्टिर्वर्षसहस्राणिविष्ठायाञ्जायतेकृमिः ॥ ७ ॥ शूद्रान्नंशूद्रसम्पर्कःशूद्रेणचसहासनम् ॥ शूद्राद्विद्यागमःकश्चिज्ज्वलन्तमपिपातयेत् ॥ ८ ॥ शूद्रादाहृत्यनिर्वापंयेपचन्त्यबुधाद्विजाः ॥ तेयान्तिनरकङ्घोरम्ब्रह्मतेजोविवर्जिताः ॥ ९ ॥ माक्षिकंफाणितंशाकंगोरसंलवणंघृतम् ॥ हस्तदत्तानिभुक्तानिदिनमेकमभोजनम् ॥ १० ॥ हस्तदत्ताश्चयेस्नेहालवणंव्यञ्जनानिच ॥ दातारंनोपतिष्ठन्तेभोक्ताभुङ्क्तेतुकिल्बिषम् ॥ ११ ॥ आयसेनैवपात्रेणयदन्नमुपदीयते ॥ भोक्तातद्विट्समंभुङ्क्तेदाताचनरकंव्रजेत् ॥ १२ ॥ अंगुल्यादन्तकाष्ठञ्चप्रत्यक्षंलवणञ्चयत् ॥ मृत्तिकाभक्षणंयच्चसमंगोमांसभक्षणैः ॥ १३ ॥ पानीयम्पाय

नीचे गिराते हैं ॥ ८ ॥ व जोकि अज्ञानी ब्राह्मण शूद्रसे लेकर चरु पुरोडाशादिको पकाते हैं वे ब्रह्मतेजसे हीनहोकर घोर नरक को जाते हैं ॥ ९ ॥ व जो हाथमें दियागया सहत व शर्करा या राब व शाक व गोरस व लवण और घृत खाया गयाहो तो एक दिनउपास करना चाहिये ॥ १० ॥ व लवण व्यंजन और जे स्नेह याने तेल घृतादिक हाथ में दियेगये हैं वे दाताको नहीं प्राप्त होते हैं व उनके भोगनेवाला पाप खाताहै ॥ ११ ॥ व जो अन्न लोहेके पात्रसे दियागयाहो उसके भोगनेवाला विष्ठा के समान खाताहै और दाता भी नरकको जाताहै ॥ १२ ॥ जोकि केवल अंगुली से दन्त शोधना व प्रत्यक्ष लवण खाना और मृत्तिका भक्षणहै वह मांस खाने

के समानहै ॥ १३ ॥ व हाथे में दियेहुये पानी पायस भिक्षा घी और लोनको न लेवे क्योंकि वह गोमांस भक्षणके बराबर होताहै ॥ १४ ॥ और जो आगे मूर्ख ब्राह्मण बैठाहो व गुणवान् दूरहो तो गुणवान्को देना चाहिये मूर्खको नहीं इसउलटा पलटामें दोष न होगा ॥ १५ ॥ जिससे प्रज्वलित अग्निको छोंड़कर भस्म मे नही होमाजाताहै इससे वेदवर्जित ब्राह्मण में ब्राह्मणातिक्रम नही है ॥ १६ ॥ जौकि पढ़तेहुये समीपवासी ब्राह्मणको व्यतिक्रमकरे याने दूरवासी मूर्खको देवे वह सात पुश्ति पर्यन्त पुरुषों को जलावे है ॥ १७ ॥ व गोरक्षकवाणिज्यकर्त्ता चटाई बनानेवाले या शिल्पी व कथिक या मूल्य से कर्म करनेवारे व प्रेष्य और वार्धुषिक याने ब्याज

सम्भैक्षंघृतंलवणमेवच ॥ हस्तदत्तंनगृह्णीयात्तुल्यंगोमांसभक्षणैः ॥ १४ ॥ अग्रतोनिवसेन्मूर्खोदूरतश्चगुणान्वितः ॥ गुणान्वितायदातव्यंनास्तिमूर्खेव्यतिक्रमः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणातिक्रमोनास्तिविप्रेवेदविवर्जिते ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्यनहि भस्मनिहूयते ॥ १६ ॥ सन्निकृष्टमधीयानंब्राह्मणंयोव्यतिक्रमेत् ॥ भोजनेचैवदानेचदहेदासप्तमंकुलम् ॥ १७ ॥ गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथाकारुकुशीलवान् ॥ प्रेष्यान्वार्धुषिकांश्चैवविप्राञ्छूद्रवदाचरेत् ॥ १८ ॥ देवद्रव्यविभागेनब्रह्मस्वहरणेनच ॥ कुलान्याशुविनश्यन्तिब्राह्मणातिक्रमेणच ॥ १९ ॥ मादेहीतिचयोब्रूयाद्गवाग्निब्राह्मणेषुच ॥ तिर्यग्योनिशतङ्गत्वाचाण्डालेष्वभिजायते ॥ २० ॥ वाचायच्चप्रतिज्ञातंकर्मणानोपपादितम् ॥ ऋणन्तद्धर्मसंयुक्तमिहलोकेपरत्र च ॥ २१ ॥ विघसाशीभवेन्नित्यंनित्यञ्चामृतभोजनः ॥ यज्ञशेषोऽमृतम्भुक्तशेषन्तुविघसंविदुः ॥ २२ ॥ सव्यादंसात्परिभ्रष्टेनाभिदेशेव्यवस्थिते ॥ वस्त्रेसएकवासास्तंदैवेपित्र्येचवर्जयेत् ॥ २३ ॥ यदेवतर्पयत्यद्भिःपितॄन्स्नात्वाद्विजोत्तमः ॥

बढ़ानेवाले इन ब्राह्मणों को शूद्रके समान आचरणकरे ॥ १८ ॥ देवद्रव्य बांटलेने व ब्राह्मणका धन हरने व ब्राह्मणके अतिक्रम से कुल शीघ्रही नष्ट होजाते है ॥ १९ ॥ व गऊ अग्नि और ब्राह्मणों मे मत देवो जो ऐसा कहता है वह सैकड़ों तिर्य्यग्योनियों में जाकर चांडालोंमे उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥ जोकि वचन से प्रतिज्ञातहुवा और कर्मसे न कियागया वह धर्मसंयुक्त इसलोक व परलोक में भी ऋण होताहै ॥ २१ ॥ और नित्यही विघस भोजनी व अमृत भोजनी होवे किन्तु यज्ञशेषको अमृत व भुक्त शेषकोही विघस कहते हैं ॥ २२ ॥ व जिसके बायें कांधसे नाभीदेशतक एक वस्त्र स्थित होवे वह एक वासा कहाता है उसको देवताओ और पितरोंके कर्म मे

बरावे ॥ २३ ॥ व स्नानकर ब्राह्मणादि त्रिवर्ण जो जलसे तर्प्पण करता है उससेही पितृयज्ञ क्रियाका फल पाताहै ॥ २४ ॥ जोकि भोजनके बाद हाथों को धोकर कुल्ला का जल पीताहै वह यज्ञ व श्राद्धादिकर्म और आप इन तीनों को विनाशता है ॥ २५ ॥ व बहुते लोगोंकरके एकमें पकाकर बांटागया अन्न व गणिकाका अन्न व ग्राम याजकका अन्न स्त्रियों के पहले गर्भमें याने सिरवन्त आदिमे दियाजाता उसको भोजनकर चान्द्रायण व्रतकोकरे ॥ २६ ॥ व जिस द्विजात्माके घरमें पक्ष अथवा मासभर में भी एक ब्राह्मण न खाता होवै उसका अन्न भोजनकर चान्द्रायण व्रतकोकरे ॥ २७ ॥ यज्ञवान् दीक्षित सन्यासी ब्रह्मचारी ऋत्विज और कर्मकारी इनका सूतक नहीं

तेनैवसर्वमाप्नोतिपितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ २४ ॥ हस्तौप्रक्षाल्यगण्डूषंयःपिबेद्भोजनोत्तरम् ॥ दैवंपित्र्यन्तथात्मानंत्रयं सउपघातयेत् ॥२५॥ गणान्नंगणिकान्नञ्चयदन्नंग्रामयाजके ॥ स्त्रीणांप्रथमगर्भेषुभुक्त्वाचान्द्रायणञ्चरेत् ॥ २६ ॥ पक्षेवा यदिवामासेयस्यगेहेत्तिनाद्विजः ॥ भुक्त्वादुरात्मनस्तस्यचरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ २७ ॥ सत्रिणान्दीक्षितानाञ्चयतीनांब्र ह्मचारिणाम् ॥ एतेषांसूतकंनास्तिऋत्विजाङ्कर्मकुर्वताम् ॥ २८ ॥ अजीर्णेऽभ्युदितेवान्तेश्मश्रुकर्मणिमैथुने ॥ दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शेस्नानमेवविधीयते ॥ २९ ॥ चैत्यवृक्षञ्चितिंयूपंशिवनिर्माल्यभोजनम् ॥ वेदविक्रयिणंस्पृष्ट्वासचैलोजल माविशेत् ॥ ३० ॥ अग्न्यगारेगवाङ्गोष्ठेदेवब्राह्मणसन्निधौ ॥ स्वाध्यायेभोजनेपानेपादुकेवैविसर्जयेत् ॥ ३१ ॥ खलक्षे त्रगतन्धान्यंकूपवापीषुयज्जलम् ॥ अग्राह्यादपितद्ग्राह्यंयच्चगोष्ठगतम्पयः ॥ ३२ ॥ यद्वेष्टितशिराभुङ्क्तेयद्भुङ्क्तेदक्षिणा

है ॥ २८ ॥ व अजीर्ण अभ्युदित वमन क्षौरकर्म मैथुन दुःस्वप्न और दुर्जनके स्पर्श में स्नानही कियाजाता है ॥ २९ ॥ व ग्राम्यलोगोंका पूज्यवृक्ष चिता यूप शिवनिर्मा- ल्यभोजी और वेद बेंचनेवालेको छूकर वस्त्रसमेतही पानी में प्रवेशकरे ॥ ३० ॥ व अग्निस्थान गोशाला देवता व ब्राह्मणका समीप व पढ़ना खाना और पीना इनमें पादुकाओं को त्याग देवे ॥ ३१ ॥ और जो धान्य खलक्षेत्र में गतहै व जो जल कूप तथा बावलीमें है व जो दूध गौओं के रहने के स्थान में प्राप्तहै वह अग्राह्य से भी लेने योग्य है ॥ ३२ ॥ व मूंड़ेमें वस्त्र बांधेहुवा जिसको खाताहै व दक्षिणमुख बैठा हुवा जिसको खाताहै व पादुका पहने मनुष्य जिस चीजको खाताहै उसकोही राक्षस

भोजन करतेहैं ॥ ३३ ॥ व यातुधान पिशाच और क्रूरकर्मा राक्षस ये मण्डलरहित अन्नकारस हरलेते हैं ॥ ३४ ॥ जिससे ब्रह्मादि सब देव व वसिष्ठादि महर्षिलोग मण्डल से उपजीविका को करते हैं उससे मण्डलको करे ॥ ३५ ॥ अब मण्डल की विधिको कहते हैं कि ब्राह्मणका चौकोठा क्षत्रियका त्रिकोन और वैश्यका जल छिड़कनाही कहागयाहै ॥ ३६ ॥ गोदमें बैठकर भोजन न करे व एकवार भोजनकर दिनमें दुबारा न भोजनकरे व हाथ कपड़ा आसन और शय्यामें न भोजनकरे व मलार्दित होकर न भोजनकरे ॥ ३७ ॥ व धर्म शास्त्ररूप रथपर चढ़े और वेद खड्गधारी ब्राह्मण क्रीड़ाके अर्थ जो कुछ कहैं वही परमधर्म कहागयाहै ॥ ३८ ॥ व धर्मका

मुखः ॥ सोपानत्कश्चयद्भुङ्क्तेतद्वैरक्षांसिभुञ्जते ॥ ३३ ॥ यातुधानाःपिशाचाश्चराक्षसाःक्रूरकर्मिणः ॥ हरन्तिरसमन्नस्य मण्डलेनविवर्जितम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्माद्याश्चसुराःसर्वेवसिष्ठाद्यामहर्षयः ॥ मण्डलञ्चोपजीवन्तिततःकुर्वीतमण्डलम् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणेचतुरस्रंस्यात्त्र्यस्रंवैबाहुजन्मनः ॥ वर्तुलञ्चविशःप्रोक्तंशूद्रस्याभ्युक्षणंस्मृतम् ॥ ३६ ॥ नोत्सङ्गेभोजनंकृत्वानोपाणौनैवकर्पटे ॥ नासनेनचशय्यायाम्भुञ्जीतनमलार्दितः ॥ ३७ ॥ धर्मशास्त्ररथारूढावेदखड्गधराद्विजाः ॥ क्रीडार्थमपियद्ब्रूयुःसधर्मःपरमःस्मृतः ॥ ३८ ॥ रात्रौधानादधियुतंधर्मकामोनभक्षयेत् ॥ अश्नतोधर्महानिःस्याद्व्याधिभिश्चोपपीड्यते ॥ ३९ ॥ फाणितङ्गोरसन्तोयंलवणम्मधुकाञ्जिकम् ॥ हस्तेनब्राह्मणोदत्त्वाकृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ४० ॥ गन्धाभरणमाल्यानियःप्रयच्छतिधर्मवित् ॥ ससुगन्धिःसदाहृष्टोयत्रयत्रोपजायते ॥ ४१ ॥ नीलीरक्तन्तुयद्वस्त्रंदूरतःपरिवर्जयेत् ॥ स्त्रीणांक्रीडार्थसंयोगेशयनीयेनदुष्यति ॥ ४२ ॥ पालनाद्विक्रयाच्चैवतद्वृत्तेरुपजीवनात् ॥ अपवित्रोभवेद्विप्र

चाही मनुष्य रातमें लावा और दहीसे मिश्रित अन्नको न भोजनकरे क्योंकि उसको खातेहुये के धर्मकी हानि होतीहै और वह भोक्ता रोगोंसे भी पीड़ित होताहै ॥ ३९ ॥ फेनी गोरस जल लोन सहत और कांजी इनको हाथसे हाथमेंदेकर ब्राह्मण कृच्छ्र चान्द्रायण व्रतकोकरे तो शुद्धहोवे ॥ ४० ॥ जोकि धर्मज्ञ पुरुष सुगन्ध भूषण और मालाओंको देताहै वह जहां जहां जन्म लेताहै वहां वहां सुगन्धवान् व सदैव आनन्दित होताहै ॥ ४१ ॥ काले रंगवाले जो वस्त्र होवें उनको बरावे परन्तु स्त्रियों के क्रीड़ार्थ संयोग और शयनीयमें दूषित नहीहै ॥ ४२ ॥ किन्तु लीलके पालने व बेंचने व उसकी वृत्तिसे जीविका करने से ब्राह्मण अपवित्र होवेहै और वह तीन कृच्छ्र

क्षय और ब्राह्मणकी कार्यसिद्धि में शपथों से पाप नहीं है ॥ ५४ ॥ अब शपथ की विधि बताई जाती है कि सत्यसे ब्राह्मणको वाहन व आयुध से क्षत्रियको गऊ बीज व सुवर्ण से वैश्यको और सब पापो से शूद्रको शपथ करावे ॥ ५५ ॥ अथवा इस शूद्रसे अग्नि पकड़ावे व जलमें डुबावे व अलग अलग पुत्र और स्त्रियों के साथ परसावे ॥ ५६ ॥ जिससे पण्डितलोग यमराजको यम नहीं कहते हैं किन्तु मनही यम कहाता है इससे जिसने मनको रोकाहै उसका यमराज क्या करेगा ॥ ५७ ॥ क्योंकि तीक्ष्ण शस्त्र व सर्प व क्रोधयुक्त शत्रु वैसा दुस्तर नहीं है जैसा अवशमन होताहै ॥ ५८ ॥ क्षमावान् लोगोंका यह एकही दोषहै दूसरा किसीप्रकारसे नहीं है जोकि इस

चशपथैर्नास्तिपातकम् ॥ ५४ ॥ सत्येनशापयेद्विप्रंक्षत्रियंवाहनायुधैः ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यंशूद्रंसर्वैस्तुपातकैः॥५५॥ अग्निंवाहारयेदेनमप्सुचैनंनिमज्जयेत् ॥ स्पर्शयेत्पुत्रदाराणांशिरांस्येनञ्चवापृथक् ॥ ५६ ॥ नयमंयममित्याहुरात्मावैयमउच्यते ॥ आत्मासंयमितोयेनतंयमःकिङ्करिष्यति ॥ ५७ ॥ ननिस्त्रिंशस्तथातीक्ष्णःफणीवादुरतिक्रमः ॥ रिपुर्वानित्यसंक्रुद्धोयथात्मादुरधिष्ठितः ॥ ५८ ॥ एकःक्षमावतान्दोषोनद्वितीयःकथञ्चन ॥ यदेनंक्षमयायुक्तमशक्तंमन्यतेजनः ॥ ५९ ॥ नशब्दशास्त्राभिरतस्यमोक्षोनचैवरम्यावसथप्रियस्य ॥ नभोजनाच्छादनतत्परस्यनलोकवित्तग्रहणेरतस्य ॥ ६० ॥ एकान्तशीलस्यसदैवतस्यसर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ॥ स्वाध्याययोगेगतमानसस्यमोक्षोध्रुवंनित्यमहिंसकस्य ॥ ६१ ॥ क्वैकान्तशीलत्वमिहास्तिपुंसःक्वचेन्द्रियप्रीतिनिवृत्तिरस्ति ॥ क्वयोगयुक्तिःक्वचदैवतेज्याकाश्यांविनैभिःसहजेनमुक्तिः ॥ ६२ ॥ विश्वेशसंशीलनमेवयोगस्तपश्चविश्वेशपुरीनिवासः ॥ व्रतानिदानंनियमायमाश्च

क्षमायुक्तको सब जन असमर्थ मानताहै ॥ ५९ ॥ जोकि शब्दशास्त्रमें प्रीतिवाला व रम्यस्थानको प्यारकरता व भोजनाच्छादनमें तत्पर व लोगोंका धनलेनेमें स्नेहवान् हे उसका मोक्ष नहीं है ॥ ६० ॥ व यह निश्चय है कि जो मनुष्य एकान्तशील व देवतासमेत व इन्द्रियप्रीतिहीन व स्वाध्याय योगमें मन लगानेवाला और सदैव हिंसा से रहितहै उसकी मुक्ति होती है ॥ ६१ ॥ इस लोकमें मनुष्यकी एकान्तशीलता व इन्द्रियोंकी प्रीतिकी निवृत्ति व योगयुक्ति व देवपूजा कहां है किन्तु काशीमें इनके विना सहजसेही मुक्ति होती है ॥ ६२ ॥ क्योंकि विश्वनाथकी सेवाही योग व काशीवासही तपस्या है और जोकि उत्तरवाहिनी गंगामें नहाना है वही व्रत दान यम और निय-

व्रतों से शुद्ध होताहै ॥ ४३ ॥ जोकि नीलवस्त्रको धारण करताहै उसके स्नान दान तप होम वेदपाठ पितृतर्पण और यज्ञादि सब सुकर्म वृथाहैं ॥ ४४ ॥ व जो ब्राह्मण लीलसे रंगे वस्त्रको अपने अंगमें धारे वह सूत्रसंख्यक नरक में निश्चय बसे ॥ ४५ ॥ किन्तु वह रातो दिन उपवासकर पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४६ ॥ व लीलसे रंगे वस्त्रसे जिस अन्नको समीप में कल्पितकरे याने परसे उसका भोक्ता विष्ठाके समान खाताहै और दाताभी नरकको जाताहै ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणका अन्न अमृत क्षत्रियका अन्न दूध वैश्यका अन्न अन्न और शूद्रका अन्न रक्त कहागयाहै ॥ ४८ ॥ क्योंकि बलिवैश्वदेव होम देवपूजा, जप, ऋग् यजुः और साम इन सबोंमे संस्कृत होताहै उस

स्त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥ ४३ ॥ स्नानन्दानन्तपोहोमःस्वाध्यायःपितृतर्पणम् ॥ वृथातस्यमहायज्ञानीलीवासोबिभर्ति यः ॥ ४४ ॥ नीलीरक्तंयदावस्त्रंविप्रःस्वाङ्गेषुधारयेत् ॥ तन्तुसन्ततिसंख्याकेनरकेसवसेद्ध्रुवम् ॥ ४५ ॥ अहोरात्रोषितो भूत्वापञ्चगव्येनशुध्यति ॥ ४६ ॥ नीलीरक्तेनवस्त्रेणयदन्नमुपकल्पयेत् ॥ भोक्ताविष्ठासमम्भुङ्क्तेदाताचनरकंव्रजेत् ॥ ४७ ॥ अमृतम्ब्राह्मणस्यान्नंक्षत्रियान्नम्पयःस्मृतम् ॥ वैश्यस्यचान्नमेवान्नंशूद्रस्यरुधिरंस्मृतम् ॥ ४८ ॥ वैश्वदेवेनहोमेनदेवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥ अमृतन्तेनविप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ ४९ ॥ व्यवहारानुरूपेणन्यायेनतुयदर्जनम् ॥ क्षत्रियस्यपयस्तेनप्रजापालनतोभवेत् ॥ ५० ॥ प्रहरानड्वाहाद्यदन्नमुत्पाद्ययच्छति ॥ सीतायज्ञविधानेनवैश्यान्नन्तेनसंस्कृतम् ॥ ५१ ॥ अज्ञानतिमिरान्धस्यमद्यपानरतस्यच ॥ रुधिरन्तेनशूद्रान्नंवेदमन्त्रविवर्जितम् ॥ ५२ ॥ नवृथाशपथंकुर्यात्स्वल्पेप्यर्थेनरोत्तमः ॥ वृथाहिशपथंकुर्वन्प्रेत्यचेहविनश्यति ॥ ५३ ॥ कामिनीषुविवाहेचगवाम्भुक्तेधनक्षये ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ

से ब्राह्मणका अन्न अमृतहै ॥ ४९ ॥ व जिससे व्यवहारके अनुरूप न्यायसे और प्रजापालनेसे कमाई करनाहै उससे क्षत्रियका अन्न दूधके समानहै ॥ ५० ॥ व जिससे वैश्य एक पहर पर्य्यन्त जोतने के लिये नहेंबैलसे उपजाकर हल पद्धतिसम्बन्धी यज्ञविधानसे संस्कृत अन्नको देताहै उससे वैश्यका अन्न अन्न कहागयाहै ॥ ५१ ॥ और जिससे शूद्र अज्ञान अन्धकार से अन्धा व मद्यपान में रत होताहै उससे वेद मन्त्रोंसे हीन उसका अन्न रक्तके समान अशुद्ध है ॥ ५२ ॥ श्रेष्ठ मनुष्य थोडे प्रयोजनमेंही शपथ न करे क्योंकि वृथाही शपथ करताहुआ मरकर परलोक में व इस लोकमें भी विनष्ट होताहै ॥ ५३ ॥ परन्तु स्त्रियोंका बीच व्याह गौओका चरना धन-

महै ॥ ६३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि इसलोक में न्याय से धन कमानेवाला व तत्त्वज्ञान में निष्ठ व अतिथियोंको प्यार करता व श्राद्धकृत् और सत्यवादी गृहस्थभी मुक्त होजाता है ॥ ६४ ॥ व दीन अन्धे कृपण और याचकों के लिये धनको देकर व गृह्य सूत्रोक्त कर्मों को कर गृहस्थ मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ६५ ॥ जोकि इसप्रकारसे आचरण करतेहुये पुरुषों पर काशीनाथ शिवजी प्रसन्नहोते हैं और काशीनाथकी प्रसन्नतासे मोक्ष करनेवाली काशी प्राप्तहोती है ॥ ६६ ॥ जिसने काशी का सेवनकिया वह सबतीर्थों में नीके नहाचुका व उसने सबयज्ञों में दीक्षालिया व उसने सब दान दिया यानै काशीवासमात्रसे इन सबका फल मिलजाता है इससे वह काशीवासी

स्नानंयुनर्यांयद्वुदग्वहायाम् ॥ ६३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोतिथिप्रियः ॥ श्राद्धकृत्सत्यवादी चगृहस्थोपीहमुच्यते ॥ ६४ ॥ दीनान्धकृपणार्थिभ्योदत्त्वान्नानिविशेषतः ॥ कृत्वागार्ह्याणिकर्माणिगृहस्थःश्रेयआप्नुयात् ॥ ६५ ॥ इत्थमाचरताम्पुंसांकाशीनाथःप्रसीदति ॥ काशीनाथप्रसादेनकाशीप्राप्तिस्तुमोक्षकृत् ॥ ६६ ॥ ससर्वतीर्थसुस्नातःससर्वक्रतुदीक्षितः ॥ सदत्तसर्वदानस्तुकाशीयेननिषेविता ॥ १६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे गृहस्थधर्माख्यानंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ उषित्वैवंगृहेविप्रोद्वितीयादाश्रमात्परम् ॥ वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयाश्रममाविशेत् ॥ १ ॥ अपत्यापत्यमालोक्यग्राम्याहारान्विसृज्यच ॥ पत्नींपुत्रेषुसन्त्यज्यपत्न्यावावनमाविशेत् ॥ २ ॥ वसानश्चर्मचीराणिसाग्निर्मु

मनुष्य धन्यहै ॥ १६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेगृहस्थधर्मकथनंनामचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । यकतालिस अध्याय मे वानप्रस्थ सुधर्म । पुनि संन्यासी धर्म कहि जानि योगयुत कर्म ॥ श्रीस्कन्दजी बोले कि ब्राह्मण इस भांतिसे घरमें बसकर व वृद्धहोकर दूसरे आश्रम से परे तीसरे आश्रम मे प्रवेशकरे अर्थात् वानप्रस्थाश्रमको प्राप्त होवे ॥ १ ॥ पुत्रके पुत्र याने पोतेको देख व ग्राम्य भोजनों को छोड़ और स्त्री को पुत्रों मे भलीभांति से त्यागकर अथवा स्त्रीके साथही वनमें पैठे ॥ २ ॥ चर्म वस्त्रों को धारताहुवा व नित्य होमाग्निसमेत व मुनियों के अन्नों से बर्त्तताहुवा व जटा

रखावे व दाढ़ीके केशों को न कटावे व नख और रोमों का धारनेवाला होकर सन्ध्या प्रातः और मध्याह्नमें भी स्नान करता होवे ॥ ३ ॥ व शाकमूल और फलों से भी पंचयज्ञों को न त्यागे व जल मूल और फल फूलादि भिक्षाओं से भिक्षुक अतिथियों को पूजे ॥ ४ ॥ व किसीसे दान न लेवे व आप भिक्षुकों को देवे व वेदपाठ में तत्पर होकर यथा विधिसे वैतानिक अग्निहोत्रको हवनकरे अब यहां यह जानना चाहिये कि आहवनीय व दक्षिणाग्निकुण्ड में गार्हपत्यकुण्डस्थ अग्नियों के विहार का वितान नामहै और उनसे हुये कर्म्मको वैतानिक कहते हैं ॥ ५ ॥ और वह वानप्रस्थ अपने लायेहुये मुनि अन्नों से अर्थात् तिनी व पसाढ़ी आदिकों से पुरोडाशों

न्यन्नवर्तनः ॥ जटीसायम्प्रगेस्नायीश्मश्रुलोमनखलोमभृत् ॥ ३ ॥ शाकमूलफलैर्वापिपञ्चयज्ञान्नहापयेत् ॥ अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेद्भिक्षुकातिथीन् ॥ ४ ॥ अनादाताचदाताचदान्तःस्वाध्यायतत्परः ॥ वैतानिकञ्चजुहुयादग्निहोत्रंयथाविधि ॥ ५ ॥ मुन्यन्नैःस्वयमानीतैःपुरोडाशांश्चनिर्वपेत् ॥ स्वयंकृतञ्चलवणञ्चादेत्स्नेहंफलोद्भवम् ॥ ६ ॥ वर्जयेच्चेलुशिग्रूचकवकम्पललम्मधु ॥ मुन्यन्नमाश्विनेमासित्यजेत्तत्पूर्वसञ्चितम् ॥ ७ ॥ ग्राम्याणिफलमूलानिफालजान्नञ्चसन्त्यजेत् ॥ दन्तोलूखलकोवास्यादश्मकुट्टोथवाभवेत् ॥ ८ ॥ सद्यःप्रक्षालकोवास्यादथवामाससञ्चयी ॥ त्रिषड्द्वादशमासान्नफलमूलादिसंग्रही ॥ ९ ॥ नक्ताश्येकान्तराशीवापष्ठकालाशनोपिवा ॥ चान्द्रायणव्रतीवास्यात्पक्षभुग्वाथमासभु

को निर्वपनकरे याने देवताओंके लिये यज्ञभाग देवे व अपने बनायेहुये लोन और फलों से उत्पन्न तेलको भी भोजनकरे ॥ ६ ॥ व लसोढ़ा साहिजन धरतीका फूल मांस और शहदको बरावे व जोकि पसाढ़ी आदि अन्न पहले संचित कियागया है उसको आश्विनमासमें त्यागदेवे ॥ ७ ॥ व ग्रामके फल मूल और फालसे जोते खेतों मे उत्पन्न अन्नको भी भलीभांति से त्यागै व कांडी के समान दन्तोंसेही अन्न का कूटनेवाला होवे अथवा पत्थर से कूटनेवाला होवे ॥ ८ ॥ या कि एक दिन के भोजनादिका संग्रही व मासभरे की-जीविका का संचयी व तीन छः और बारहमास की जीविकाके लिये अन्न फलफूल और मूलादिकोंके इकट्ठे संग्रह करनेवाला होवे ॥ ९ ॥ व रात्रिमें भोजन करनेवाला व दूसरे दिन भोजन करनेवाला व छठयें कालमें भोजन करनेवाला व पक्षमें भोजन करनेवाला व मासमे भोजन करनेवाला अथवा

चान्द्रायण व्रत करनेवाला होवे ॥ १० ॥ याकि वैखानसमत में टिकाहुआ फलमूलभोक्ता होकर तपस्या से देहको सुखावे व पितरों और देवताओं को तृप्त करे ॥ ११ ॥ अब अशक्त के प्रति कहते हैं कि वैखानस शास्त्रके विधान से याने भस्म पानादि से श्रौत अग्निको अपने आत्मा में भलीभांति से आरोपणकर व लौकिकाग्निवाले घरसे हीन होकर विचरे और प्राण यात्राके लिये तपस्वी वनवासी ब्राह्मणो से भीख मांगलावे ॥ १२ ॥ अथवा वनमें बसताहुआ ग्रामसे आठ कवल अन्न आन कर भोजनकरे इसप्रकार से वानप्रस्थ ब्राह्मण ब्रह्मलोकमें पूजा जाताहै ॥ १३ ॥ ऐसेही आयुके तीसरे हिस्से को वनमें बिताकर फिर आयुके चौथे भाग में सब संगों

क् ॥ १० ॥ वैखानसमतस्थस्तुफलमूलाशनोपिवा ॥ तपसाशोषयेद्देहंपितॄन्देवांश्चतर्पयेत् ॥ ११ ॥ अग्निमात्मनिचाधायविचरेदनिकेतनः ॥ भिक्षयेत्प्राणयात्रार्थंतापसान्वनवासिनः ॥ १२ ॥ ग्रामादानीयवाश्नीयादष्टौग्रासान्वसन्वने ॥ इत्थंवनाश्रमीविप्रोब्रह्मलोकेमहीयते ॥ १३ ॥ अतिवाह्यायुषोभागंतृतीयमितिकानने ॥ आयुषस्तुतुरीयांशेत्यक्त्वासङ्गान्परिव्रजेत् ॥ १४ ॥ ऋणत्रयमसंशोध्यत्वनुत्पाद्यसुतानपि ॥ तथायज्ञाननिष्ट्वाचमोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ १५ ॥ मनागपिनभूतानांयस्मादुत्पद्यतेभयम् ॥ सर्वभूतानितस्येहप्रयच्छन्त्यभयंसदा ॥ १६ ॥ एकएवचरेन्नित्यमनग्निरनिकेतनः ॥ सिद्ध्यर्थमसहायःस्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥ १७ ॥ जीवितम्मरणंवाथनाभिकाङ्क्षेत्कदाचित् ॥ कालमेवप्रतीक्षेतनिर्देशम्भृतकोयथा ॥ १८ ॥ सर्वत्रममताशून्यःसर्वत्रसमतायुतः ॥ वृक्षमूलनिकेतश्चमुमुक्षुरिहद्वि

को छोड़ संन्यासाश्रमको जावे ॥ १४ ॥ जोकि विना वेद पढ़े व विना पुत्र उपजाये व विना यज्ञ किये और तीन ऋणों को न संशोधनकर मोक्षका चाही होताहै वह नीचे को जाताहै ॥ १५ ॥ इसलोकमें जिससे प्राणियों को थोड़ाभी डर नहीं उपजताहै उसको सब भूत सदैव अभय देते हैं ॥ १६ ॥ इससे लौकिक और वैदिक अग्नि से रहित व घर से शून्य होकर अकेलाही विचरे व मुक्तिके लिये सहाय से हीन होवे व अन्न के अर्थ ग्रामको सेवे याने भिक्षा करनेको उसमें आवे ॥ १७ ॥ व संन्यासी कभी जीने और मरने की कांक्षा न करे किन्तु जैसे सेवक सेवासमयको परखता है वैसे अपने कर्म के आधीन मरणकाल को भी परखे ॥ १८ ॥ जोकि इस

लोकमें सर्वत्र ममतासे रहित व सबमें समता सहित व वृक्षमूलमें निवास करनेवाला है वह मुमुक्षु प्रशंसाजाताहै ॥ १९ ॥ व ध्यान शौच भिक्षा और नित्यही एकांत सेवन ये चार कर्म संन्यासी के होते हैं इनसे अन्य पांचवां नहीं सिद्ध होताहै ॥ २० ॥ व इससे संन्यासी वर्षाके चौमासामे कहीं न विचरे जिससे उस समय में बीज अंकुर और जंतुओंकी हिंसाहोती है ॥ २१ ॥ जंतुओं को बराताहुवा चले व वस्त्रसे छाना पानी पीवे व जिसमे किसी का उद्वेग न होवे उस वचनको बोले व कहीं किसी से क्रोध न करे ॥ २२ ॥ किन्तु आत्मसहायक व निष्काम व निराधार व सदैव ब्रह्मध्यान में तत्पर व इन्द्रियजित् और नख व बालोंके संस्कार से हीन होकर लोकमें

स्यते ॥ १९ ॥ ध्यानंशौचन्तथाभिक्षानित्यमेकान्तशीलता ॥ यतेश्चत्वारिकर्माणिपञ्चमंनोपपद्यते ॥ २० ॥ वार्षिकांश्चतुरोमासान्विहरेन्नयतिःक्वचित् ॥ बीजांकुराणांजन्तूनांहिंसातत्रयतोभवेत् ॥ २१ ॥ गच्छेत्परिहरञ्जन्तून्पिबेत्कंवस्त्रशोधितम् ॥ वाचंवदेदनुद्वेगांनक्रुध्येत्केनचित्क्वचित् ॥ २२ ॥ चरेदात्मसहायश्चानिरपेक्षोनिराश्रयः ॥ नित्यमध्यात्मनिरतोनीचकेशनखोवशी ॥ २३ ॥ कुसुम्भवासादण्डाढ्योभिक्षाशीख्यातिवर्जितः ॥ अलाबुदारुमृद्वेणुपात्रंशस्तंनपञ्चमम् ॥ २४ ॥ नग्राह्यन्तैजसम्पात्रंभिक्षुकेनकदाचन ॥ वराटकेसंगृहीतेतत्रतत्रादिनेदिने ॥ २५ ॥ गोसहस्रवधम्पापंश्रुतिरेषासनातनी ॥ हृदिसस्नेहभावेनचेद्वीक्षेत्स्त्रियमेकदा ॥ २६ ॥ कोटिद्वयम्ब्रह्मकल्पंकुम्भीपाकीनसंशयः ॥ एककालञ्चरेद्भैक्षंनकुर्यात्तत्रविस्तरम् ॥ २७ ॥ विधूमेसन्नमुसलेव्यङ्गारेभुक्तवज्जने ॥ वृत्तेशरावसम्पातेभिक्षांनित्यञ्चरे

विचरे ॥ २३ ॥ व कुसुंभसे रँगे वस्त्रहैं जिसके वह भिक्षाभोजनकरनेवाला दंडी ख्यातिसे वर्जितहोवे याने किसी से अपनी श्रेष्ठता न कहवावे व उसकेलिये तोंबी काष्ठ मृत्तिका और बांसका पात्र प्रशस्तहै इनचारों से अन्य पंचम पात्र नहीं है ॥ २४ ॥ क्योंकि संन्यासीको तैजसपात्र न लेनाचाहिये व तहां तहां कौड़ीमात्र धनसंग्रह करने से दिन दिनमें ॥ २५ ॥ हजारगऊ मारने का पापहोताहै यह सनातन की श्रुतिहै और जो एकबार भी हृदयमे काम सहित अभिप्रायसे स्त्री को देखे तो ॥ २६ ॥ ब्रह्मा के दोकरोड दिनतक कुंभीपाक नरक का वासीहोवे इसमे संशय नहीं है इससे प्राणधारणके अर्थ एकबार भिक्षाको विचरे उसमें भी विस्तार न करे क्योंकि अधिक भोजनके द्वारा धातुवृद्धि होने से स्त्री आदि विषय में आसक्त होताहै ॥ २७ ॥ जब रसोई का धुवां निकलजावे व मूसलसे कूटना बन्द होवे व अंगार बुझगये होवें व

लोग भोजनकरचुकें व भोजनोच्छिष्ट अन्न से भरी परई का त्यागहोगयाहो तब संन्यासी सदैव भिक्षाकरे ॥ २८ ॥ व थोड़ाखाता व एकांतबासी व इन्द्रियों के विषयो में अलोलुप और राग व द्वेषसे हीन संन्यासी मोक्षके लिये कल्पितहोता है ॥ २९ ॥ व संन्यासी जन जिस मनुष्य के आश्रम याने घरमें मुहूर्त्त मात्र (क्षण भर या दो दंड काल) तक भी विश्रामकरे उसको बहुते बलोंसे क्याहै वह कृतार्थ होताहै ॥ ३० ॥ जोकि मरण पर्य्यन्ततक गृहस्थने पाप बटोरा उस सबको ही एक रात्रिबासी संन्यासी निश्शेष जाल डालेगा ॥ ३१ ॥ व बुढ़ाई से तिरस्कार रोगसे पीड़ित असह्य देहत्याग व फिर गर्भ व दारुण गर्भक्लेशको देखकर ॥ ३२ ॥ व अनेक योनियोंमें बास

द्यतिः ॥ २८ ॥ अल्पाहारोरहःस्थायीत्विन्द्रियार्थेष्वलोलुपः ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्तोभिक्षुर्मोक्षायकल्पते ॥ २९ ॥ आश्रमेतुयतिर्यस्यमुहूर्तमपिविश्रमेत् ॥ किन्तस्यानेकतन्त्रेणकृतकृत्यःसजायते ॥ ३० ॥ सञ्चितंयद्गृहस्थेनपापमामरणान्तिकम् ॥ निर्धक्ष्यतिहितत्सर्वमेकरात्रोषितोयतिः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वाजराभिभवनमसह्यंरोगपीडितम् ॥ देहत्यागंपुनर्गर्भङ्गर्भक्लेशञ्चदारुणम् ॥ ३२ ॥ नानायोनिनिवासञ्चवियोगञ्चप्रियैःसह ॥ अप्रियैःसहसंयोगमधर्माद्दुःखसम्भवम् ॥ ३३ ॥ पुनर्निरयसंवासंनानानरकयातनाः ॥ कर्मदोषसमुद्भूतान्नृणांगतिरनेकधा ॥ ३४ ॥ देहेष्वनित्यतांदृष्ट्वानित्यतांपरमात्मनः ॥ कुर्वीतमुक्तयेयत्नंयत्रयत्राश्रमेरतः ॥ ३५ ॥ करपात्रीतिविख्याताभिक्षापात्रविवर्जिताः ॥ तेषांशतगुणम्पुण्यम्भवत्येवदिनेदिने ॥ ३६ ॥ आश्रमांश्चतुरस्त्वेवंक्रमादासेव्यपण्डितः ॥ निर्द्वन्द्वस्त्यक्तसङ्गश्चब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ३७ ॥ असंयतःकुबुद्धीनामात्माबन्धायकल्पते ॥ धीमद्भिःसंयतःसोपिपदन्दद्यादनामयम् ॥ ३८ ॥

व प्यारजनों के साथ वियोग व अप्रियों के साथ संयोग व अधर्म से दुःखकी उत्पत्ति ॥ ३३ ॥ व फिर नरकवास व बहुती नरकयातना व कर्म्म दोषोंसे उपजी मनुष्योंकी अनेक भांतिसे गति ॥ ३४ ॥ व देहों में अनित्यता और परमात्माकी नित्यताको देखकर जिसजिस आश्रममें रत होवे उस उसमें मोक्षके लिये यत्नकरे ॥ ३५ ॥ जोकि भिक्षाके पात्रसे हीनहैं वे करपात्री कहेगये हैं उनको दिन दिन में सौगुण पुण्य होती है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार क्रमसे चार आश्रमों को सेवनकर शीत उष्ण क्षुधा तृषादि द्वन्द्वों से हीन और असंग होकर ब्रह्मज्ञानी मोक्षके लिये कल्पित होता है ॥ ३७ ॥ और नहीं रोकाहुवा कुबुद्धिवाले मनुष्यों का मन बन्धनके लिये समर्थ होताहै व बु-

द्धिमानो करके रोंका गया वही सब उपद्रवोंसे शून्य कैवल्य पदको देताहै ॥ ३८ ॥ व श्रुति, स्मृति, पुराण, उपासना, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, भाष्य और जो अन्य कुछ वचन मय कहीं है वह ॥ ३९ ॥ व वेद पाठ व ब्रह्मचर्य्य व तपस्या व इन्द्रियनिग्रह व श्रद्धा व उपवास और अपने वश होना इन सब आत्मज्ञान के कारणों को जानकर ॥ ४० ॥ सब आश्रमवर्तियों करके यत्न से वह आत्माही विचारने व सुनने व मानने और देखने के योग्य है ॥ ४१ ॥ क्योंकि आत्मज्ञान से मुक्तिहोती है परन्तु वह ब्रह्मज्ञान योगविना नहीं होताहै और वह योग बहुत कालतक अभ्यासहीसे सधता है ॥ ४२ ॥ किन्तु वनवास व वनकी भलीभांति सेवासे नहीं बहुत ग्रन्थोंके

श्रुतिस्मृतिपुराणञ्चविद्योपनिषदस्तथा ॥ श्लोकाःसूत्राणिभाष्याणियच्चान्यद्वाङ्मयंक्वचित् ॥ ३९ ॥ वेदानुवचनंज्ञात्वाब्रह्मचर्यन्तपोदमः ॥ श्रद्धोपवासःस्वातन्त्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः ॥ ४० ॥ सहिसर्वैर्विजिज्ञास्यआत्मैवाश्रमवर्तिभिः ॥ श्रोतव्यस्त्वथमन्तव्योद्रष्टव्यश्चप्रयत्नतः ॥ ४१ ॥ आत्मज्ञानेनमुक्तिःस्यात्तच्चयोगादृतेनहि ॥ सचयोगश्चिरङ्कालमभ्यासादेवसिध्यति ॥ ४२ ॥ नारण्यसंश्रयाद्योगोननानाग्रन्थचिन्तनात् ॥ नदानैर्नव्रतैर्वापिनतपोभिर्नवामखैः ॥ ४३ ॥ नचपद्मासनाद्योगोनवाघ्राणाग्रवीक्षणात् ॥ नशौचेननमौनेननमन्त्राराधनैरपि ॥ ४४ ॥ अभियोगात्सदाभ्यासात्तत्रैवचविनिश्चयात् ॥ पुनःपुनरनिर्वेदात्सिध्येद्योगोनचान्यथा ॥ ४५ ॥ आत्मक्रीडस्यसततंसदात्ममिथुनस्यच ॥ आत्मन्येवसुतृप्तस्ययोगसिद्धिर्नदूरतः ॥ ४६ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेणद्वितीयंयोनपश्यति ॥ आत्मारामःसयोगीन्द्रोब्रह्मीभूतोभवे

विचारसे नहीं दानों से नहीं व व्रतों से नहीं व तपस्याओं से नहीं व यज्ञोंसेभी योग नहींहै ॥ ४३ ॥ और पद्मासन से नहीं व नासिका के अग्रभाग को देखने से नहीं शौचसे नहीं व मौनसे नहीं व मन्त्रों के आराधन से भी योग नहींहै ॥ ४४ ॥ और सम्मुखमन को जोड़ना व सदाचार या सब ओरसे ब्रह्माभ्यास व उसमें निश्चय व बारबार वितृष्णा न होनेसे योग सिद्धहोता है अन्यथा नहीं ॥ ४५ ॥ जोकि आत्मा मेंही निरन्तर क्रीड़ा करता है व आत्ममिथुन याने परमात्माके एकताभाव को प्राप्त है व आत्मामेंही सुतृप्तहै उसको योगकी सिद्धिदूर नहीं है ॥ ४६ ॥ जोकि इसलोकमें आत्माके उलटा पलटाहोने से दूसरे को नहीं देखता है वह आत्माराम योगीराज

इसी देहमें ब्रह्मरूप है ॥ ४७ ॥ क्योंकि आत्मा और मनके संयोगकोही पण्डितोंने योग ऐसा कहाहै व किसीकरके प्राण और अपान वायुका संयोगही योगऐसा कहा जाता है ॥ ४८ ॥ व अज्ञानी लोग विषयोंके साथ इन्द्रियों के संयोगकोही योग ऐसा भी कहते हैं परन्तु जिनकामन विषयोंमें लगा है उनका ज्ञान और मोक्षभी बड़ी दूरहै ॥ ४९ ॥ क्योंकि दुःखसे निवारीजाती हुई मनकी वह वृत्ति जबतक नहीं फिरती है तबतक थोडीभी योगकी वार्ता निकट वर्तिनी कैसे होसक्ती है ॥ ५० ॥ जोकि मनको वृत्तियोंसे हीनकर व क्षेत्रज्ञ परमात्मा में तद्रूपसे संयुक्तकर विमुक्त होता है वह योगयुक्त कहाजाताहै ॥ ५१ ॥ इससे बहिर्मुख याने नेत्र श्रवण आदि

दिह ॥ ४७ ॥ संयोगस्त्वात्ममनसोर्योगइत्युच्यतेबुधैः ॥ प्राणापानसमायोगोयोगइत्यपिकैश्चन ॥ ४८ ॥ विषयेन्द्रिय संयोगोयोगइत्यप्यपण्डितैः॥ विषयासक्तचित्तानांज्ञानंमोक्षश्चदूरतः ॥४९॥ दुर्निवारामनोवृत्तिर्यावत्सानानिवर्तते ॥ किं वदन्त्यपियोगस्यतावन्नेदीयसीकुतः ॥ ५० ॥ वृत्तिहीनंमनःकृत्वाक्षेत्रज्ञेपरमात्मनि ॥ एकीकृत्यविमुच्येतयोगयुक्तःस उच्यते ॥ ५१ ॥ बहिर्मुखानिसर्वाणिकृत्वाखान्यन्तराणिवै ॥ मनस्येवेन्द्रियग्रामंमनश्चात्मनियोजयेत् ॥ ५२ ॥ सर्वभाव विनिर्मुक्तंक्षेत्रज्ञंब्रह्मणिन्यसेत् ॥ एतद्ध्यानंचयोगश्चशेषोन्योग्रन्थविस्तरः ॥ ५३ ॥ यन्नास्तिसर्वलोकेषुतदस्तीतिवि रुध्यते ॥ कथ्यमानंतदन्यस्यहृदयेनावतिष्ठते ॥ ५४ ॥ स्वसंवेद्यंहितद्ब्रह्मकुमारीस्त्रीसुखंयथा ॥ अयोगीनैवतद्वेत्तिजा त्यन्धइववर्तिकाम् ॥ ५५ ॥ नित्याभ्यसनशीलस्यस्वसंवेद्यंहितद्भवेत् ॥ तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यंपरंब्रह्मसनातनम् ॥ ५६ ॥

सब इन्द्रियों और भीतरकी बुद्धि चित्त व अहङ्कारनामक इन तीनों को भी विषयों से खींचकर मनमेंकर फिर मनसमेत इन्द्रिय समूहको क्षेत्रज्ञ आत्मामें जोड़े ॥ ५२ ॥ उसके बाद साक्षित्व व द्रष्टत्वादि सब विकारशून्य शुद्ध क्षेत्रज्ञको परमानन्द स्वरूप ब्रह्म में एकीभूतकरे यही ध्यान व योगहै और शेष अन्य सब ग्रन्थों का विस्तार है ॥ ५३ ॥ " अब जो कहाजावे कि जो ऐसाध्यान व योग वर्तमानहै तो सब के चित्तमें क्योंनहीं जगमगाताहै उसपर कहतेहैं कि " जोकि ब्रह्मकी एकसा सब लोगों में नहीं प्रकाशती है वह है इसभांति से तत्त्वज्ञानियों से कथ्यमान होकर विरुद्ध होतीहै इससे वह अन्य प्राकृतके मनमें नहीं टिकतीहै ॥ ५४ ॥ जैसे स्त्रियों से कहेहुये भी पुरुष संयोग सुखको कुमारी नहीं जानती है व जैसे जन्मका अन्धा दीपदशा को नहीं जानता है वैसे उसको अयोगी नहीं जानता है इससे वह ब्रह्म

योगाभ्यास से अपनेही जानने योग्य है ॥ ५५ ॥ और वह ब्रह्म सदा अभ्यास शीलवालेका अपनासेही जानने योग्यहै अन्यकोई नहीं जानसक्ता है क्योंकि वह सनातन परब्रह्म सूक्ष्म होनेसे वचनआदिकों से निर्देश करनेको अशक्य है याने मन और वचनसे भी परेहै ॥ ५६ ॥ जैसे बयारका मारापानी व जैसे चित्त एकक्षण भी स्थिरता को नहीं प्राप्तहोता है वैसे वह ब्रह्म है उससे कुयोगी उसका विश्वास न करे ॥ ५७ ॥ इससे चित्तकी स्थिरताके लिये वायुको रोंके और वायुरोंकने के अर्थ छःअंगवाले योगको अभ्यासकरे ॥ ५८ ॥ आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारण ध्यान और समाधि ये छः योगके अंगहोते हैं ॥ ५९ ॥ " अब उनको क्रमसे कहतेहैं कि"

क्षणमप्येकमुदकंयथानस्थिरतामियात् ॥ वाताहतंयथाचित्तंतस्मात्तस्यनविश्वसेत् ॥५७॥ अतोऽनिलंनिरुन्धीतचित्तस्यस्थैर्यहेतवे ॥ मरुन्निरोधनार्थायषडङ्गंयोगमभ्यसेत् ॥ ५८ ॥ आसनंप्राणसंरोधःप्रत्याहारश्चधारणा ॥ ध्यानंसमाधिरेतानियोगाङ्गानिभवन्तिषट् ॥ ५९ ॥ आसनानिहतावन्तियावन्त्योजीवयोनयः ॥ सिद्धासनमिदंप्रोक्तंयोगिनोयोगसिद्धिदम् ॥ ६० ॥ एतदभ्यसनान्नित्यंवर्ष्मदार्ढ्यमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ दक्षिणंचरणंन्यस्यवामोरूपरियोगवित् ॥ याम्योरूपरिवामंचपद्मासनमिदंविदुः ॥ ६२ ॥ कराभ्यांधारयेत्पश्चादङ्गुष्ठौदृढबन्धवित् ॥ भवेत्पद्मासनादस्मादभ्यासाद्दृढविग्रहः ॥६३॥ अथवाह्यासनेयस्मिन्सुखमस्योपजायते ॥ स्वस्तिकादौतदध्यास्ययोगंयुञ्जीतयोगवित् ॥६४॥ नतोय

यहां जितनी जीवों की योनियां हैं उतने आसन हैं उनमें से यह सिद्धासन योगियों के लिये योग सिद्धिका दाताहै " उसका लक्षण ग्रन्थान्तर से कहाजाता है कि लिंगके ऊपर बायें पायँके घुटुनाको धर फिर उसके ऊपरमें दक्षिण गुल्फको धरनेसे सिद्धासन होजाताहै " ॥ ६० ॥ नित्यही इसके अभ्यास से देह दृढ़ताको प्राप्तहोती है ॥ ६१ ॥ और योगके जाननेवाला मनुष्य बाईं ऊरूके ऊपर दहिने पायँको धरकर दहिनी ऊरूपर वामपादको धरे इसको पद्मासन कहते हैं ॥ ६२ ॥ परन्तु ध्यान व प्राणायाम के समयमें दृढ़बन्ध को जानता हुआ योगी पीठके पीछे से दोनों हाथों को लाकर उनसे दोनो पायँके अंगुठा को पकडे अर्थात् बायेंहाथ से दहिने और दहिनेसे बायेंअँगुठाको पकडे इसपद्मासनको अभ्याससे दृढ देहवाला होजावे ॥ ६३॥ अथवा जिस आसनमें इसका सुख उपजता है उस स्वरितकादि आसनमें बैठकर

को रोके ॥ ७३ ॥ किन्तु जबतक प्राणबयार देहमें बँधीहै व जबतक चित्त निराधार याने बाह्यविषयों के आकार से शून्यहै व जबतक दृष्टि भौहोंके बीचमें है तबतक कालकाडर कहां है ॥७४॥ इससे ब्रह्माजी भी कालके डरसे सदैव प्राणायामको करते हैं और योगीजनभी भलीभांति से प्राणायाम करनेसे सिद्धिको प्राप्तभयेहैं ॥ ७५ ॥ अब प्राणायाम का भेद कहते हैं कि जितने कालमें ह्रस्व अक्षरका उच्चारण होताहै उतने की जो एकमात्रा संज्ञामानी गई है उन बारह मात्राओं का प्राणायाम लघु व उस पहिले से दुगुना मध्यम और उससे तिगुना उत्तम है ॥ ७६ ॥ जिससे यह तीन प्रकारका प्राणायाम स्वेद व कंप व विषादको उपजाता है उससे पहिले से पसीना और

यावद्बद्धोमरुद्देहेयावच्चेतोनिराश्रयम् ॥ यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्येतावत्कालभयंकुतः ॥ ७४ ॥ कालसाध्वसतोब्रह्माप्राणाया मंसदाचरेत् ॥ योगिनःसिद्धिमापन्नाःसम्यक्प्राणनियन्त्रणात् ॥ ७५ ॥ मन्दोद्वादशमात्रस्तुमात्रालघ्वक्षरामता ॥ मध्यमोद्विगुणःपूर्वादुत्तमस्त्रिगुणस्ततः ॥ ७६ ॥ स्वेदंकम्पंविषादंचजनयेत्क्रमशस्त्वसौ ॥ प्रथमेनजयेत्स्वेदंद्वितीयेन तुवेपथुम् ॥ ७७ ॥ विषादंहितृतीयेनसिद्धःप्राणोथयोगिनः ॥ भवेत्क्रमात्सन्निरुद्धःसिद्धःप्राणोथयोगिना ॥ क्रमेणसेव्य मानोसौनयतेयत्रचेच्छति ॥ ७८ ॥ हठान्निरुद्धप्राणोयंरोमकूपेषुनिःसरेत् ॥ देहंविदारयत्येषकुष्ठादिजनयत्यपि ॥ ७९ ॥ तत्प्रत्याययितव्योसौक्रमेणारण्यहस्तिवत् ॥ वन्योगजोगजारिर्वाक्रमेणमृदुतामियात् ॥ ८० ॥ करोतिशास्तृनिर्दे शंनचतंपरिलङ्घयेत् ॥ तथाप्राणोहृदिस्थोयंयोगिनाक्रमयोगतः ॥ गृहीतःसेव्यमानस्तुविश्रम्भमुपगच्छति ॥ ८१ ॥

दूसरे से देह कंपकोजीते ॥ ७७ ॥ व तीसरे से विषादको भी जीतलेवे उसके बाद योगीका प्राण सिद्धहोजाता है अनन्तर योगीसे सेव्यमान व क्रमसे निश्चलहुव वह सिद्धप्राण वहां पहुंचाताहै कि योगीजन जहांकी इच्छा करताहै ॥ ७८ ॥ और हठसे रोकागयाहुआ यह प्राण रोमके बिलोंसे निकलआता है व यह देहको विदारता है

योगवित् योगको जोड़े ॥ ६४ ॥ किन्तु अग्नि व जलके समीपमें नहीं जीर्ण वन व गौओंके स्थानमें नहीं डांश और मसाओं से व्याप्त देशमें नहीं पूज्यवृक्ष में नहीं व चतुष्पथमें नहीं ॥ ६५ ॥ व केश भस्म भूसी अँगार और हाड़ आदि से दूषित स्थान में नहीं व दुर्गन्धादि युक्तमें नहीं व जनोंसे पूर्ण स्थान में योगाभ्यास को नहीं करे ॥६६॥ जोकि सब बाधाओंसे रहित व सब इन्द्रियों के सुखसहित व मनकी प्रसन्नता उपजानेवाला और धूप सुगन्धादिकों से सुगन्ध समेत होवे उस स्थानमे योग का अभ्यास करे ॥ ६७ ॥ और बहुत भोजनसे तृप्तहुवा नहीं भूंखसे व्याकुल नहीं व मलमूत्र से पीड़ित नहीं गली चलने से खिन्न नहीं व चिन्तासे आर्तहुवा योगके

वह्निसामीप्येनजीर्णारण्यगोष्ठयोः ॥ नदंशमशकाकीर्णेनचैत्येनचचत्वरे ॥ ६५ ॥ केशभस्मतुषाङ्गारकीकसादिप्रदूषिते ॥ नाभ्यसेत्पूतिगन्धादौनस्थानेजनसंकुले ॥ ६६ ॥ सर्वबाधाविरहितेसर्वेन्द्रियसुखावहे ॥ मनःप्रसादजननेस्रग्धूपामोदमोदिते ॥ ६७ ॥ नातितृप्तःक्षुधार्तोननविण्मूत्रप्रबाधितः ॥ नाध्वखिन्नोनचिन्तार्तोयोगंयुञ्जीतयोगवित् ॥ ६८ ॥ ऊरुस्थोत्तानचरणःसव्येन्यस्योत्तरंकरम् ॥ उत्तानंकिञ्चिदुन्नम्यवक्त्रंविष्टभ्यचोरसा ॥ ६९ ॥ निमीलिताक्षःसत्त्वस्थोदन्तैर्दंतान्नसंस्पृशेत् ॥ तालुस्थाचलजिह्वश्चसंवृतास्यःसुनिश्चलः ॥ ७० ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामंनातिनीचोच्छ्रितासनः ॥ मध्यमंचोत्तमंचाथप्राणायाममुपक्रमेत् ॥ ७१ ॥ चलेऽनिलेचलंसर्वंनिश्चलेतत्रनिश्चलम् ॥ स्थाणुत्वमाप्नुयाद्योगीततोऽनिलनिरुन्धनात् ॥ ७२ ॥ यावद्देहेस्थितःप्राणोजीवितंतावदुच्यते ॥ निर्गतेतत्रमरणंततःप्राणंनिरुन्धयेत् ॥ ७३ ॥

जाननेवाला योगको न जोड़े ॥ ६८ ॥ "अब प्राणायाम का विधान कहते हैं कि" दोनों उरुवोंपर टिके हैं उताने पावँ जिसके वह वाम ऊरूमें उताने उत्तर हाथ को धरकर फिर मुखकी ठोढ़ीको उरसे लगाय कुछेक उन्नतकर ॥ ६९ ॥ फिर नेत्र बन्दकिये व सत्त्वमें टिकाहुवा व तालुमें अचल जिह्वाको लगाये व मुखमूंदे व सुनिश्चल बैठाहुवा दन्तोंसे दन्तोंको न छुवे ॥ ७० ॥ व बहुत नीचे और बहुत ऊँचे नहीं है मुख जिसका वह इन्द्रिय समूहको रोंककर लघु व मध्यम अथवा उत्तम प्राणायाम का आरम्भ करे ॥ ७१ ॥ क्योंकि जब वायु चञ्चल होताहै तब सब देह चञ्चल रहती है और उसके अचञ्चल होतेही सब निश्चल होता है उससे योगीजन वायु के रोंकने से स्थिरताको प्राप्तहोता है ॥ ७२ ॥ व जबतक प्राण देहमें टिकाहै तबतक जीवन कहाजाताहै और उसके निकलतेही मरण होताहै उसकारण प्राणवायु

विनम्रताको प्राप्तहोताहै ॥ ८१ ॥ व पूरक कुम्भक और रेचक भेदसे छत्तीस अंगुल पर्यंत जाने योग्य देशवाला वायु करके वाम व दक्षिण मार्ग से बाहरको प्रयाण करताहै और प्रयाण करनेसेही प्राण कहाताहै ॥ ८२ ॥ व जब व्याकुलतासे हीनहुआ सब नाड़ी समूह शुद्धताको प्राप्त होताहै याने भूतशुद्धि कीजातीहै तबहीं योगीजन प्राणरोकने में समर्थ होताहै ॥ ८३ ॥ और दृढ़ आसनवाला योगी यथाशक्ति चन्द्रदेवतावाली इडानाड़ी याने वामनासिका के छिद्रसे प्राणको पूरण करे अर्थात् बाहर से भीतर में भरे उसके बाद सूर्य्य देवतावाली पिंगलानाड़ी याने दक्षिण श्वासा से वायु को बाहर निकाले यह प्राणायाम कहाता है ॥ ८४ ॥ अब पूरक व रेचक प्राणायाम

षट्त्रिंशदंगुलोहंसःप्रयाणंकुरुतेबहिः ॥सव्यापसव्यमार्गेणप्रयाणात्प्राणउच्यते ॥ ८२ ॥ शुद्धिमेतियदासर्वंनाडीचक्रमनाकुलम् ॥ तदैवजायतेयोगीक्षमःप्राणनिरोधने ॥ ८३ ॥ दृढासनोयथाशक्तिप्राणंचन्द्रेणपूरयेत् ॥ रेचयेदथसूर्येणप्राणायामोयमुच्यते ॥ ८४ ॥ स्रवत्पीयूषधारौघंध्यायंश्चन्द्रसमन्वितम् ॥ प्राणायामेनयोगीन्द्रःसुखमाप्नोतितत्क्षणात् ॥ ८५ ॥ रविणाप्राणमाकृष्यपूरयेदौदरींदरीम् ॥ कुम्भयित्वाशनैःपश्चाद्योगीचन्द्रेणरेचयेत् ॥ ८६ ॥ ज्वलज्ज्वलनपुञ्जाभंशीलयन्नुष्मगुंहृदि ॥ अनेनयाम्यायामेनयोगीन्द्रःशर्मभाग्भवेत् ॥ ८७ ॥ इत्थंमासत्रयाभ्यासादुभयायामसेवनात् ॥ सिद्धनाडीगणोयोगीसिद्धप्राणोभिधीयते ॥ ८८ ॥ यथेष्टन्धारणंवायोरनलस्यप्रदीपनम् ॥ नादाभिव्यक्तिरारोग्यंभवेन्नाडीविशोधनात् ॥ ८९ ॥ प्राणोदेहगतोवायुरायामस्तन्निबन्धनम् ॥ एकश्वासमयीमात्राप्राणायामोनिरु

को कहकर कुम्भकको कहते हैं कि जोकि चन्द्रमा या चन्द्रबीज मकार या उकार या लकार से संयुक्त है उस झिरते हुये अमृतधारा समूहको ध्यावताहुआ योगीन्द्र वायुको रोंककर कुम्भकनामक प्राणायाम से तत्क्षण सुखको प्राप्त होताहै ॥ ८५ ॥ तदनन्तर योगी दक्षिणमार्ग से प्राणको खींचकर उदरकी गुहाको भरे व रोंककर फिर धीरे धीरे वाममार्ग से उतारे ॥ ८६ ॥ व हृदय में ज्वलती हुई अग्निसमूह के समान सूर्य्यको अर्थात् सूर्य्यमण्डल के मध्यगत साम्ब शिव या श्रीमन्नारायण को ध्यावताहुआ योगीराज इस प्राणायाम से ब्रह्मानन्दका सेवी होवे ॥ ८७ ॥ इसप्रकार से तीन मासतक अभ्यास कियागया है जिसमें उस दो भांतिके प्राणायामके सेवन से सिद्धहुवा है नाड़ीसमूह जिसका वह योगी सिद्ध प्राण कहाजाता है ॥ ८८ ॥ "अब नाड़ी विशोधनका फल कहते हैं कि" अपनी इच्छा से वायुका धारना व पेट

की अग्निका प्रदीप्त करना व मूलाधार चक्रमें टिकी परावाणीका सुनना और आरोग्य यह सब फल नाड़ी शुद्ध करने से होताहै ॥ ८९ ॥ जोकि वायु देहमें गतहै उसका प्राण नामहै और उसका बांधनाही आयामहै किन्तु ह्रस्व अक्षरके उच्चारण कालको मात्रा कहते हैं व एक श्वासमयी मात्राका प्राणायाम कहागया है ॥ ९० ॥ अधम प्राणायाम मे स्वेद व मध्यम में कम्प होताहै और बार बार पद्मासन बांधने से उत्तम प्राणायाम में देह भूमिको परित्यागकर अन्तरिक्षको उठती है ॥ ९१ ॥ इस से प्राणायाम से दोषोंको व प्रत्याहार से पापको जलावे और धारणा से मनकी धीरता व ध्यान से ईश्वरका दर्शन होताहै ॥ ९२ ॥ व समाधि से शुभाशुभ पुण्य पापको

च्यते ॥ ९० ॥ प्राणायामेऽधमेघर्मःकम्पोभवतिमध्यमे ॥ उत्तिष्ठेदुत्तमेदेहोबद्धपद्मासनोमुहुः ॥ ९१ ॥ प्राणायामैर्दहे द्दोषान्प्रत्याहारेणपातकम् ॥ मनोधैर्यन्धारणयाध्यानेनेश्वरदर्शनम् ॥ ९२ ॥ समाधिनालभेन्मोक्षंत्यक्त्वाधर्मंशुभा शुभम् ॥ आसनेनवपुर्दार्ढ्यंषडङ्गमितिकीर्तितम् ॥ ९३ ॥ प्राणायामद्विषट्केनप्रत्याहारउदाहृतः ॥ प्रत्याहारैर्द्वादशभि र्धारणापरिकीर्तिता ॥ ९४ ॥ भवेदीश्वरसङ्गत्यैध्यानंद्वादशधारणम् ॥ ध्यानद्वादशकेनैवसमाधिरभिधीयते ॥ ९५ ॥ समाधेःपरतोज्योतिरनन्तंस्वप्रकाशकम् ॥ तस्मिन्दृष्टेक्रियाकाण्डंयातायातंनिवर्तते ॥ ९६ ॥ पवनेव्योमसम्प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यतेमहान् ॥ घण्टादीनाम्प्रवाद्यानान्ततःसिद्धिरदूरतः ॥ ९७ ॥ प्राणायामेनयुक्तेनसर्वव्याधिक्षयोभवेत् ॥ अयुक्ताभ्यासयोगेनसर्वव्याधिसमुद्भवः ॥ ९८॥ हिक्काश्वासश्चकासश्चशिरःकर्णाक्षिवेदनाः ॥ भवन्तिविविधादोषाःपव

त्यागकर मोक्ष पाताहै व आसन से देहकी दृढ़ता होतीहै इस भांतिसे यह षडंग योग कहागया है ॥ ९३ ॥ व बारह प्राणायाम से प्रत्याहार कहागया है अर्थात् जितने कालमें प्राणायाम होताहै उसके बारह गुनामें प्रत्याहार होताहै व बारह प्रत्याहारोंसे धारणा कहीगई है ॥ ९४ ॥ और ईश्वरकी प्राप्तिके लिये बारह धारणावाला ध्यान होवेहै व बारह ध्यानों से समाधि कहीजाती है ॥ ९५ ॥ उस समाधि से परे याने समाधि से मिलने योग्य व ज्योतिरूप व स्वप्रकाश व अनन्त जो परब्रह्महै उसके दे-खने से कर्म्म और संसार में आना जाना निवृत्त होजाताहै ॥ ९६ ॥ व जब प्राण ब्रह्मरन्ध्रमें पहुंचता है तब घण्टादि बाजाओंका शब्द सुन पड़ताहै तदनन्तर योगकी सिद्धि समीपमेंही रहती है ॥ ९७ ॥ परन्तु युक्त याने यथा विधि से कियेहुये प्राणायाम से सब रोगोंका नाश होताहै और अयोग्य अभ्यास योगसे सब रोगोंकी उत्पत्ति

होतीहै ॥ ९८ ॥ क्योंकि वायुके उलटा होनेसेही हिक्का श्वास काश औरशिर व नेत्र व कान आदिकी पीड़ायें और अन्य भी अनेकभांति के दोष होते हैं ॥ ९९ ॥ इससे उचित उचित याने थोड़ी थोड़ी बयारको त्यागे व युक्त युक्तको पूरे व युक्त युक्तको रोंके इस भांतिसे योगके जाननेवाला सिद्ध होजाताहै ॥ १०० ॥ " अब प्रत्याहारादिकोंका लक्षण कहते हैं कि" जिमी किसी भांतिसे विचरती इन्द्रियोंका जो युक्तिसे याने विषयों में दोष देखने से अपने ओर आनना है वह प्रत्याहार कहाताहै ॥ १ ॥ जोकि योगी कच्छपकी नाईं प्रत्याहार के विधान से अर्थात् विषयों में दोषानुसन्धानसे अपने अंगोंको सब ओरसे खींचकर अपनेप्रति हरलाता है वह विगत पाप होता

नस्यव्यतिक्रमात् ॥ ९९ ॥ युक्तंयुक्तन्त्यजेद्वायुंयुक्तंयुक्तञ्चपूरयेत् ॥ युक्तंयुक्तञ्चबध्नीयादित्थंसिध्यतियोगवित् ॥ १०० ॥ इन्द्रियाणांहिचरतांविषयेषुयदृच्छया ॥ यत्प्रत्याहरणंयुक्त्याप्रत्याहारःसउच्यते ॥ १ ॥ प्रत्याहरतियःस्वानिकूर्मोङ्गानीवसर्वतः ॥ प्रत्याहृतिविधानेनसस्याद्विगतकल्मषः ॥ २ ॥ नाभिदेशेवसेद्भानुस्तालुदेशेचचन्द्रमाः ॥ वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रोग्रसेदूर्ध्वमुखोरविः ॥ ३ ॥ करणन्तच्चकर्तव्यंयेनसाप्राप्यतेसुधा ॥ ऊर्ध्वंनाभिरधस्तालुरूर्ध्वंभानुरधःशशी ॥ करणंविपरीताख्यमभ्यासादेवजायते ॥ ४ ॥ काकचञ्चुवदास्येनशीतलंशीतलंपिबेत् ॥ प्राणंप्राणविधानज्ञोयोगीभवतिनिर्जरः ॥ ५ ॥ रसनांतालुविवरेनिधायोर्ध्वमुखोऽमृतम् ॥ धयन्निर्जरताङ्गच्छेदाषण्मासान्नसंशयः ॥ ६ ॥ ऊर्ध्वजिह्वःस्थिरोभूत्वासोमपानंकरोतियः ॥ मासार्धेननसन्देहोमृत्युञ्जयतियोगवित् ॥ ७ ॥ सम्पीड्यरसनाग्रेणराजदन्त

है ॥ २ ॥ " अब दश मुद्राओं में से विपरीताख्याकरणी मुद्राको कहने के लिये प्रस्ताव करते हैं कि" नाभिदेशमें सूर्य्य व तालुदेश में चन्द्रमा बसता है और अधोमुख चन्द्रमा अमृत बरसता है व ऊर्ध्वमुख सूर्य्य उसके रसको ग्रसता है ॥ ३ ॥ इसलिये वह करण करने योग्य है कि जिसके करने से वह अमृत मिलता है किन्तु जब ऊपर नाभि व नीचे तालु और ऊंचे सूर्य्य व तले चन्द्रमा होजावे तब अभ्यास से विपरीताख्यकरण होताहै ॥ ४ ॥ जोकि प्राणायामके विधानको जानता हुवा योगीकागचोंचके समान मुखमे शीतल शीतल प्राणको पीवे वह बुढ़ाईसे हीन होवे ॥ ५ ॥ और छःमास पर्य्यन्त ऊर्ध्वमुख होकर व जिह्वाको तालु विवरमें धरकर उस अमृत को पीवताहुवा योगी निर्जरताको प्राप्तहोवे इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥ व जोकि योगका पण्डित ऊर्ध्वजिह्वा वाला व निश्चल होकर अमृत पानकरता है

वह पन्द्रहदिन में मृत्युको जीततहै सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और दीप्तिमान् व महान् जिह्वाके मूलभागमें टिके हुये छिद्रको जिह्वासे संपीड़िनकर व अमृतमयी देवीको ध्यानधर छःमासमें कवि होजावे ॥ ८ ॥ व अणिमादि गुणोंका उदय करनेवाला अमृत से पूर्ण देहवाले योगी का रेत दो तीनवर्ष मे ऊपर को चलाजाता है ॥ ९ ॥ व जिस योगीकी देह सदैव अमृत कलासे भरी है उसको जो तक्षकभी डसे तोभी विष नहीं व्यापताहै ॥ १० ॥ इससे आसन व प्राणायाम व प्रत्याहारसे संयुक्तहोकर अनन्तर धारणा का अभ्यास करे ॥ ११ ॥ वह यह है कि मनकी निश्चलता से हृदयमें जो पञ्चतत्त्वों का अलग अलग धारण करना है वही धारणा कही जाती

बिलंमहत् ॥ ध्यात्वासुधामयींदेवींषण्मासेनकविर्भवेत् ॥ ८ ॥ अमृतापूर्णदेहस्ययोगिनोद्वित्रिवत्सरात् ॥ ऊर्ध्वंप्रवर्ततेरेतोह्यणिमादिगुणोदयम् ॥ ९ ॥ नित्यंसोमकलापूर्णंशरीरंयस्ययोगिनः ॥ तक्षकेणापिदष्टस्यविषंतस्यनसर्पति ॥ १० ॥ आसनेनसमायुक्तःप्राणायामेनसंयुतः ॥ प्रत्याहारेणसम्पन्नोधारणामथचाभ्यसेत् ॥ ११ ॥ हृदयेपञ्चभूतानांधारणंयत्पृथक्पृथक् ॥ मनसोनिश्चलत्वेनधारणासाभिधीयते ॥ १२ ॥ हरितालनिभांभूमिंसलकारांसवेधसम् ॥ चतुष्कोणांहृदिध्यायेदेषास्यात्क्षितिधारणा ॥ १३ ॥ कण्ठेऽम्बुतत्त्वमर्धेन्दुनिभंविष्णुसमन्वितम् ॥ वकारबीजंकुन्दाभन्ध्यायन्नम्बुजयेदिति ॥ १४ ॥ तालुस्थमिन्द्रगोपाभंत्रिकोणंरेफसंयुतम् ॥ रुद्रेणाधिष्ठितंतेजोध्यात्वावह्निंजयेदिति ॥ १५ ॥ वायुतत्त्वंभ्रुवोर्मध्येवृत्तमञ्जनसन्निभम् ॥ यम्बीजमीशदैवत्यंध्यायन्वायुंजयेदिति ॥ १६ ॥ आकाशञ्चमरीचिवारिस

है ॥ १२ ॥ उनमें से यह पृथिवी की धारणा है कि हृदय में ब्रह्मा देवता समेत व लं बीजसे संयुत व चौकोन व हरिताल के समान रंगवाली भूमिको ध्यावे ॥ १३ ॥ व कण्ठमें विष्णुदेव समेत व कुन्दके फूलसे श्वेत व अर्धचन्द्र के समान और वं बीजहै जिसका उस जल तत्त्वको ध्याताहुआ इस भांतिसे जलको जीते ॥ १४ ॥ व रं बीज से संयुत, रुद्रदेवसे अधिष्ठित व त्रिकोण व बीरबहूटी के समान सुरंग व तालुमें टिकीहुई अग्नितत्त्वको ध्यानकर अग्निको जीते ॥ १५ ॥ व भौंहों के बीच में गोलाकार व अञ्जनके समान श्याम व यं बीज समेत व ईश देवतावाले वायु तत्त्वको ध्याताहुआ वायुको जीते ॥ १६ ॥ और जोकि किरण जलके याने सूर्य्य के

समान व शान्त व हं बीजसे संयुत आकाश तत्त्व ब्रह्मरंध्र मैं स्थितहै व जो सदाशिव स्वामीसे सहितहै उसमें ब्रह्मचिन्तन समेत प्राणको प्राप्तकर पांचदण्ड पर्य्यन्त काल तक धारणकरे यह मोक्ष किवाँड़ों के खोलनेमेंदक्षहुई आकाशकी धारणा कही गई है ॥ १७ ॥ व क्रमसे पञ्चतत्त्वोंकी इन पांचों धारणाओंके स्तम्भनी,प्लावनी,दहनी, भ्रामणी और शमनी ये नाम होते हैं ॥ १८ ॥ अब ध्यानका स्वरूप कहते हैं कि, ध्यै यह धातु चिन्ता अर्थमें वर्तमानहै और पदार्थ में एकाग्रता रूप जो चिन्ताहोती है यह सगुण (रूपादिसहित) व निर्गुण (रूपादिरहित) यहां दो भांतिसे ध्यान कहागया है ॥ १९ ॥ वह रूप भेदसे व मन्त्रसमेत सगुणहै और केवल याने रूप

दृशंयद्ब्रह्मरन्ध्रस्थितं यन्नाथेनसदाशिवेनसहितंशान्तंहकाराक्षरम् ॥ प्राणंतत्रविनीयपञ्चघटिकंचिन्तान्वितन्धारयेदे षामोक्षकपाटपाटनपटुःप्रोक्तानभोधारणा॥ १७॥ स्तम्भनीप्लावनीचैवदहनीभ्रामणीतथा ॥ शमनीचभवन्त्येताभूता नांपञ्चधारणाः ॥ १८॥ ध्यैचिन्तायांस्मृतोधातुश्चिन्तातत्त्वेसुनिश्चला ॥ एतद्ध्यानमिहप्रोक्तंसगुणंनिर्गुणंद्विधा ॥ १९ ॥ सगुणंवर्णभेदेननिर्गुणंकेवलम्मतम् ॥ समन्त्रंसगुणंविद्धिनिर्गुणंमन्त्रवर्जितम् ॥ २० ॥ अन्तश्चेतोबहिश्चक्षुरवस्थाप्य सुखासनम् ॥ समत्वञ्चशरीरस्यध्यानमुद्रातिसिद्धिदा ॥ २१ ॥ नाश्वमेधेनतत्पुण्यंनचैवराजसूयतः ॥ यत्पुण्यमेक ध्यानेनलभेद्योगीस्थिरासनः ॥ २२ ॥ शब्दादीनाञ्चतन्मात्रायावत्कर्णादिषुस्थिता ॥ तावदेवस्मृतंध्यानंस्यात्समाधि रतःपरम् ॥ २३ ॥ धारणापञ्चनाडीकाध्यानंस्यात्षष्टिनाडिकम् ॥ दिनद्वादशकेनस्यात्समाधिरिहभण्यते ॥ २४ ॥

रहित व मन्त्रस्मरण से हीन निर्गुण मानागया है ॥ २० ॥ व बाहेर चक्षु और भीतर चित्तको स्थापितकर सुखपूर्वक आसन से जो शरीर की समता है वह अत्यन्त सिद्धिकी देनेवाली ध्यानमुद्रा होती है ॥ २१ ॥ उस ध्यानसे अचल आसनवाला योगी जिस पुण्यको पाताहै वह पुण्य राजसूय और अश्वमेध यज्ञसे नहीं है ॥ २२ ॥ जबतक शब्द,स्पर्श,रूप, रस व गन्धादिकोंकी सूक्ष्मावस्था कान त्वचा नेत्र जिह्वा और नासिकादिकों में टिकी रहती है तबतक ध्यान कहाताहै व उसके बाद समाधि होती है ॥ २३ ॥ व इस योगमार्ग में पांचनाड़ी कालपर्य्यन्त धारणा व साठिनाड़ी का ध्यान होताहै और जोकि बारहदिनसे होती है वह समाधि कही जाती है ॥ २४ ॥

अब उसको अन्य प्रकारों से दिखाते हैं कि जैसे एकमें मिलाने से जल और सैंधव लोनकी एकता होती है वैसे आत्मा और मनकी एकताहीं यहां समाधि कहाती है ॥ २५ ॥ व जब प्राण भलीभांतिसे क्षीणहोताहै और मनभीलीन कियाजाताहै तब जो समरसत्त्व याने परमानन्दताहै वह यहां समाधि कहीजाती है ॥ २६ ॥ व जब जीवात्मा और परमात्मा की समता होती है तब जिसमें सब संकल्प नष्टहोजाते हैं वह यहां समाधि कहीजाती है ॥ २७ ॥ उसका यह फलहै कि, समाधिसे संयुत योगीन्द्र शीत उष्ण सुख दुःख अपना और अन्यको भी नहीं जानता है ॥ २८ ॥ व समाधिसे युक्त योगी कालसे नहीं चलायाजाता व कर्म से नहीं लिप्त होता व

जलसैन्धवयोःसाम्यंयथाभवतियोगतः ॥ तथात्ममनसोरैक्यंसमाधिरिहभण्यते ॥ २५ ॥ यदासंक्षीयतेप्राणोमानसञ्चप्रलीयते ॥ तदासमरसत्वंयत्ससमाधिरिहोच्यते ॥ २६ ॥ यत्समत्वंद्वयोरत्रजीवात्मपरमात्मनोः ॥ सनष्टसर्वसङ्कल्पःसमाधिरभिधीयते ॥ २७ ॥ नात्मानन्नपरंवेत्तिनशीतंनोष्ममेवच ॥ समाधियुक्तोयोगीन्द्रोनसुखंनसुखेतरत् ॥ २८ ॥ काल्यतेनैवकालेनलिप्यतेनैवकर्मणा ॥ भिद्यतेनचशस्त्रास्त्रैर्योगीयुक्तःसमाधिना ॥ २९ ॥ युक्ताहारविहारश्चयुक्तचेष्टोहिकर्मसु ॥ युक्तनिद्रावबोधश्चयोगीतत्त्वंप्रपश्यति ॥ ३० ॥ तत्त्वंविज्ञानमानन्दम्ब्रह्मब्रह्मविदोविदुः ॥ हेतुदृष्टान्तरहितंवाङ्मनोभ्यामगोचरम् ॥ ३१ ॥ तत्रयोगीनिरालम्बेनिरातङ्केनिरामये ॥ षडङ्गयोगविधिनापरेब्रह्मणिलीयते ॥ ३२ ॥ यथाघृतेघृतंक्षिप्तंघृतमेवहितद्भवेत् ॥ क्षीरेक्षीरंतथायोगीतत्रतन्मयतांव्रजेत् ॥ ३३ ॥ अनसञ्जातपानीये

शस्त्र और अस्त्रों से नहीं खण्डित कियाजाता है ॥ २९ ॥ किन्तु थोडे आहार विहारवाला व कर्मों में थोड़े व्यापारवाला व थोड़े सोने जागनेवाला योगी तत्त्वको देखता है ॥ ३० ॥ और ब्रह्मज्ञानी लोग जिस स्वप्रकाश चैतन्य व आनन्द रूप व कारण और दृष्टान्त से हीन व मन वचन से परे ब्रह्मको तत्त्वकहते हैं ॥ ३१ ॥ उस आलम्बनशून्य निर्भय निरोग निर्गुण परब्रह्म मे योगीजन समाधिकी विधिसे लीन होता है ॥ ३२ ॥ जैसे घी में छोंड़ाहुवा घी घीहीहोवे व जैसे दूध में छोडाहुवा दूध दूधहीहोवे वैसे उस ब्रह्ममें लीनहुवा योगी तन्मयताको याने ब्रह्ममय भावको प्राप्तहोवे ॥ ३३ ॥ और जोकि प्राणायामादि परिश्रमोत्पन्न पानीसे देहको

मर्दन करे व कुछेक तप्तजल व लवणको त्यागे व सदैव दूधाधारी होवे ॥ ३४ ॥ वह ब्रह्मचारी व जितक्रोध व जितलोभ व मत्सरसे हीन होकर एक वर्ष तक इस भांतिसे सदा अभ्यास करने से योगी कहाता है ॥ ३५ ॥ और जोकि महामुद्रा व आकाशमुद्रा व उड्डीयान व जलन्धर व मूलबन्धको जानता है वह योगी योगसिद्धिका सेवी होता है ॥ ३६ ॥ अब क्रमसे इनका लक्षण कहते हैं कि पूरक कुम्भक और रेचकनामक प्राणायाम से नाड़ीसमूहका शुद्ध करना व चन्द्र सूर्य्य याने इड़ा और पिंगलाका जोड़ना व भलीभांति से विकारकारी रसोंका सोखनाही महामुद्रा कहाती है ॥ ३७ ॥ अथवा बायें पायें से लिंगको पीड़ितकर व चिबुक (ठोढ़ी) को

विंदध्यादङ्गमर्दनम् ॥ त्यजेत्कदुष्णंलवणंक्षीरभोजीसदाभवेत् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मचारीजितक्रोधोजितलोभोविमत्सरः ॥ अब्दमित्थंसदाभ्यासात्सयोगीतिनिगद्यते ॥ ३५ ॥ महामुद्रांनभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम् ॥ मूलबन्धन्तुयोवेत्तिसयोगीयोगसिद्धिभाक् ॥ ३६ ॥ शोधनन्नाडीजालस्यघटनञ्चन्द्रसूर्ययोः ॥ रसानांशोषणंसम्यङ्महामुद्राभिधीयते॥३७॥ योनिंवामाङ्घ्रिणाऽऽपीड्यकृत्वावक्षस्थलेहनुम् ॥ हस्ताभ्यांप्रसृतम्पादन्धारयेद्दक्षिणंचिरम् ॥३८॥ प्राणेनकुक्षिमापूर्यचिरंसंरेचयेच्छनैः ॥ एषाप्रोक्तामहामुद्रामहाघौघविनाशिनी ॥ ३९ ॥ चन्द्राङ्गेतुसमभ्यस्यसूर्याङ्गेपुनरभ्यसेत् ॥ यावत्तुल्याभवेत्सङ्ख्याततोमुद्रांविसर्जयेत् ॥ ४० ॥ नहिपथ्यमपथ्यंवारसाःसर्वेपिनीरसाः ॥ अपिघोरंविषम्पीतम्पीयूषमिवजीर्यति ॥ ४१ ॥ क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ॥ तस्यदोषाःक्षयंयान्तिमहामुद्राञ्चयोभ्यसेत् ॥ ४२ ॥ कपाल

वक्षस्थल में कर पसारे हुये दहिने पांवको बड़ी दृढ़ता से पकड़े ॥ ३८ ॥ व उदरमें बहुतही बयार भरकर फिर उसको धीरे धीरे बाहर निकाले यह महापापसमूह के विनाशनेवाली महामुद्रा कहीजातीहै ॥ ३९ ॥ व जबतक पूरक कुम्भक और रेचककी संख्या बराबर होवे तबतक वाम नाड़ीमें अभ्यासकर फिर दक्षिण नाड़ीमें अभ्यास करे उसके बाद मुद्राको छोड़देवे ॥ ४० ॥ इस मुद्राके अभ्यास करनेवाले से खाया गया पथ्य अन्न अपथ्य नहीं होताहै व विकार के कारण सब रस नीरस होजाते हैं और पियाहुवा घोर विषभी अमृतकी नाईं पचजाता है ॥ ४१ ॥ व जो महामुद्रा का अभ्यास करताहै उसके क्षयी कुष्ठ बवासीर बायुगोला और अजीर्ण आदि रोग नाश

को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ और जब मुखमें दोनों कपालों के भीतर उलटा गईहुई जिह्वा पैठी होवे व दृष्टि भौंहों के बीचमें गई होवे तब आकाशमुद्रा याने खेचरी मुद्रा होती है ॥ ४३ ॥ जो खेचरीमुद्रा को जानता है वह बाणसमूह से नहीं पीड़ाजाता व कर्म से नहीं लिप्त होता व कालसे नहीं बाधाजाता है ॥ ४४ ॥ जिससे चित्त आकाशमें विचरता है व जिह्वा आकाशमें गईहुई होकर विचरती है उससे सिद्धोंसे सेवित यह मुद्रा खेचरी नामसे प्रसिद्धहै ॥ ४५ ॥ किन्तु जबतक विन्दु याने अन्त वाला धातु देह में टिकाहै तबतक मृत्युका डर कहां है और जबतक खेचरी मुद्रा बांधीगई है तबतक विन्दु बाहर नहीं जाताहै ॥ ४६ ॥ "अब उड्डीयानबन्धके

कुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा ॥ भ्रुवोरन्तर्गतादृष्टिर्मुद्राभवतिखेचरी ॥ ४३ ॥ नपीड्यतेशरौघेणनचलिप्येतकर्मणा ॥ बाध्यतेनसकालेनयोमुद्रांवेत्तिखेचरीम् ॥ ४४ ॥ चित्तञ्चरतिखेयस्माज्जिह्वाचरतिखेगता ॥ तेनैषाखेचरीनाममुद्रासिद्धैर्निषेविता ॥ ४५ ॥ यावद्विन्दुःस्थितोदेहेतावन्मृत्युभयंकुतः ॥ यावद्बद्धानभोमुद्रातावद्विन्दुर्नगच्छति ॥ ४६ ॥ उड्डीनंकुरुतेयस्मादहोरात्रंमहाखगः ॥ उड्डीयानन्ततःप्रोक्तंतत्रबन्धोविधीयते ॥ ४७ ॥ जठरेपश्चिमन्तानन्नाभेरूर्ध्वञ्चधारयेत् ॥ उड्डीयानोह्ययम्बन्धोमृत्योरपिभयंत्यजेत् ॥ ४८ ॥ वध्नातिहिशिराजालमधोगामिनभोजलम् ॥ एषजालन्धरोबन्धःकण्ठेदुःखौघनाशनः ॥ ४९ ॥ जालन्धरेकृतेबन्धेकण्ठसङ्कोचलक्षणे ॥ नपीयूषंपतत्यग्नौनचवायुःप्रधावति ॥ ५० ॥ पार्ष्णिभागेनसंपीड्ययोनिमाकुञ्चयेद्गुदम् ॥ अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूलबन्धोविधीयते ॥ ५१ ॥ अपा

नामका अर्थ और उसका लक्षण कहते हैं कि" जिससे प्राण रातोंदिन उड़ा करताहै उससे उड्डीयान कहागया है उसमें बन्ध कियाजाताहै ॥ ४७ ॥ कि, पश्चिम तान अर्थात् हस्ताग्रों से बीचमें धरकर पसारे हुये दोनों पावोंका मध्य जैसेहो वैसे जठर और नाभीके ऊपर धारणकरे यह उड्डीयानबन्धहै इससे मृत्युके डरकोभी त्यागदेवे ॥ ४८ ॥ और जोकि नाड़ीसमूह व नीचे चलतेहुये शरीरांतर्गत छिद्रमें प्राप्त पानीको धारता है वह यह दुःखराशिका नाशक जालन्धरबन्ध कण्ठ में होताहै ॥ ४९ ॥ व कण्ठको सिकोड़कर हृदय में लगाना लक्षण है जिसका वह जालन्धरबन्ध जब कियाजाता है तब ललाटस्थ चन्द्रमण्डल में स्थित अमृत उदरकी अग्नि में नहीं गिरता और वायुका कोप नहीं होताहै ॥५०॥ व ऐंड़ीसे लिंगका आपीड़नकर फिर अपान वायुको ऊंचे खींचकर गुदाको संकुचितकरे यह मूलबन्ध कहाजाताहै ॥ ५१॥

इस मूलबन्धके निरन्तर करने से प्राण और अपान की एकता होतेही मल मूत्रका नाश व वृद्ध भी युवा होताहै ॥ ५२॥ और प्राण व अपान के वश चञ्चल हुवा जीव वाम व दक्षिण मार्ग से अर्थात् इड़ा व पिंगला नाड़ी से ऊपर नीचे को चारों ओरसे दौड़ता है इससे स्थितिको नहीं पाताहै ॥ ५३॥ जैसे रस्सी से बँधाहुवा पक्षी चलागया भी फिर खींच लियाजाताहै वैसेही सत्त्व रज और तमगुण से बँधा हुवा जीव प्राणायाम से खींचाजाता है ॥ ५४ ॥ व प्राण अपान को खींचताहै और अपान प्राणको खींचताहै इससे योगका जाननेवाला ऊपर व नीचे टिकेहुये इन दोनों को भलीभांति से जोड़ता है ॥ ५५ ॥ जिससे हकारसे बाहर को जाताहै व सकार

नप्राणयोरैक्येक्षयोमूत्रपुरीषयोः ॥ युवाभवतिवृद्धोपिसततम्मूलबन्धनात् ॥ ५२ ॥ प्राणापानवशोजीवऊर्ध्वाधःपरिधावति ॥ वामदक्षिणमार्गेणचञ्चलोनस्थितिंलभेत् ॥ ५३ ॥ गुणबद्धोयथापक्षीगतोप्याकृष्यतेपुनः ॥ गुणैर्बद्धस्तथाजीवःप्राणायामेनकृष्यते ॥ ५४ ॥ अपानःकर्षतिप्राणम्प्राणोपानञ्चकर्षति ॥ ऊर्ध्वाधःसंस्थितावेतौसंयोजयतियोगवित् ॥ ५५ ॥ हकारेणबहिर्यातिसकारेणविशेत्पुनः ॥ हंसहंसेत्यतोमन्त्रञ्जीवोजपतिसर्वदा ॥ ५६ ॥ षट्शतानिदिवारात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ॥ एतत्संख्यान्वितंमन्त्रंजीवोजपतिसर्वदा ॥ ५७ ॥ अजपानामगायत्रीयोगिनांमोक्षदायिनी ॥ अस्याःसङ्कल्पमात्रेणनरःपापैःप्रमुच्यते ॥५८॥ अन्तरायाभवन्तीहयोगिनोयोगहानिदाः ॥ श्रूयतेदूरगावार्तादूरस्थंदृश्यतेपुरः ॥ ५९ ॥ योजनानांशतंयातुंशक्तिःस्यान्निमिषार्धतः ॥ अचिन्तितानिशास्त्राणिकण्ठपाठीभवन्तिहि ॥६०॥

से भीतर पैठताहै इससे जीवात्मा हंस हंस इस मन्त्रको सदैव जपा करताहै ॥५६॥ किन्तु रातोदिनमें इक्कीसहजार छःसौ जो संख्या होती है इस संख्यासमेत हंस मन्त्र को जीवात्मा सदा जपता है ॥ ५७ ॥ यह योगियों की सिद्धि देनेवाली अजपा नाम गायत्री है इसके सङ्कल्पमात्र से मनुष्य पापोंसे छूटजाता है ॥ ५८ ॥ और इस योग मार्गमे जोकि विघ्नरूप सिद्धियां होतीहैं वे योगी के योगकी हानि देनेवाली हैं इससे सिद्धियों को त्याग ब्रह्ममेंही मन धारना चाहिये अब आगे वे सिद्धियां कहीजाती हैं कि दूरकी वार्ता सुन पड़ती है व दूरमें टिकाहुवा आगे दिखाता है ॥ ५९ ॥ व आधे निमेष में सौ योजनतक चलनेकी शक्ति होतीहै व विना चिन्तेहुये भी शास्त्र

कण्ठपाठी होते हैं याने उनकी पाठ कण्ठ होजाती है ॥ ६० ॥ व अतिशय उग्र धारण करनेकी शक्ति होतीहै व बडा भार लघु होजाता है व क्षणमें दुबला क्षणमें स्थूल क्षणमें छोटा और क्षणमें बड़ा भी होताहै ॥ ६१ ॥ व पराई देहमें पैठजाता है व पशुओं की बोली जानता है व देहमें दिव्य सुगन्धको धारण करता है व दिव्य वचन बोलता है ॥ ६२ ॥ व दिव्य कन्याओं से प्रार्थना कियाजाता है व दिव्य देहको धर लेताहै इत्यादि विघ्न योगकी संसिद्धि के सूचन करनेवाले हैं ॥ ६३ ॥ जो इस भोग भूमिमें इन विघ्नों से योगीका मन न क्षुब्ध होवे तो आगे ब्रह्मादिकों के दुर्लभ उस ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥ हे अगस्त्यमुने ! जिसको प्राप्त होकर संसारमें फिर

धारणाशक्तिरत्युग्रामहाभारोलघुर्भवेत् ॥ क्षणंकृशःक्षणंस्थूलःक्षणमल्पःक्षणंमहान् ॥ ६१ ॥ परकायंप्रविशति तिरश्चांवेत्तिभाषितम् ॥ दिव्यगन्धन्तनौधत्तेदिव्यांवाणींप्रवक्तिच ॥ ६२ ॥ प्रार्थ्यतेदिव्यकन्याभिर्दिव्यन्धारयतेवपुः ॥ इत्यादयोऽन्तरायाःस्युर्योगसंसिद्धिसूचकाः ॥ ६३ ॥ यद्येभिरन्तरायैर्नक्षिप्यतेऽस्येहमानसम् ॥ तदग्रेतत्समाप्नोतिपदम्ब्रह्मादिदुर्लभम् ॥ ६४ ॥ यत्प्राप्यननिवर्त्तेतयत्प्राप्यनचशोचति ॥ तल्लभ्यतेषडङ्गेनयोगेनकलशोद्भव ॥ ६५ ॥ एकेनजन्मनायोगःकथमित्थम्प्रसिध्यति ॥ ऋतेचयोगसंसिद्धेःकथंमुक्तिरिहाप्यते ॥ ६६ ॥ उभेएवहिनिर्वाणवर्त्मनी किलकुम्भज ॥ किंवाकाश्यान्तनुत्यागःकिंवायोगोयमीदृशः ॥ ६७॥ चञ्चलेन्द्रियवृत्तित्वात्कलिकल्मषजृम्भणात् ॥ अल्पायुषान्तथानृणांकेहयोगमहोदयः ॥ ६८ ॥ अतएवहिजन्तूनांमहोदयपदप्रदः ॥ सदैवसदयावार्धिःकाश्यांविश्वेश्वरःस्थितः ॥ ६९ ॥ काश्यांसुखेनकैवल्यंयथालभ्येतजन्तुभिः ॥ योगयुक्तयाद्युपायैश्चनतथान्यत्रकुत्रचित् ॥ ७० ॥

नहीं आता है व जिसको प्राप्त होकर शोचता नहीं है वह षडंगयोग से मिलता है ॥ ६५ ॥ परन्तु इस भांति का योग एक जन्म से कैसे सिद्ध होसक्ता है और योगसिद्धि के विना मुक्ति कैसे प्राप्त कीजाती है ॥ ६६ ॥ हे अगस्त्य ! काशी में देहत्याग या कि यह ऐसा षडंगयोग ये दोही मुक्ति के मार्ग हैं ॥ ६७ ॥ परन्तु इन्द्रियोंकी वृत्तिकी चंचलता से व कलियुग में पापके प्रचण्ड होने से इस लोकमें थोड़ी आयुवाले मनुष्यों के योगका महोदय कहां है ॥ ६८ ॥ इससेही जन्तुओं के लिये महोदयपदके दायक दयासमुद्र वह विश्वनायक शिवजी काशीमें सदैव टिके हैं ॥ ६९ ॥ और जैसे काशीमें सब जन्तुओं को सुखसे मुक्ति मिलती है वैसे योग

युक्ति आदि उपायों से अन्यत्र कहीं नहीं मिलती है ॥ ७० ॥ क्योंकि काशीमें अपनी देहका संयोगही सम्यग्योग कहागया है और इस संसार में अन्य किसी योगसे शीघ्रही मुक्त नहीं होताहै ॥ ७१ ॥ जिससे श्रीविश्वनाथ व विशालाक्षी व गंगा व कालभैरव व श्रीढुंढिराज व दण्डपाणि यही षडंगयोग है ॥ ७२ ॥ इससे जो काशीमें इस षडंगयोगको सदैव सेवताहै वह समाधिरूप निद्राको भलीभांति से प्राप्तहोकर मोक्षपाताहै ॥ ७३ ॥ व इस काशीमें ॐकारेश्वर कृत्तिवासेश्वर केदारेश्वर त्रिविष्टपेश्वर वीरेश्वर और विश्वेश्वर यह अन्य षडंग है ॥ ७४ ॥ व पादोदक (वरणा) असीसंगम ज्ञानवापी मणिकर्णिका ब्रह्मकुण्ड और धर्मकुण्ड भी यह षडंग महायोगहै ॥ ७५ ॥

काश्यांस्वदेहसंयोगःसम्यग्योगउदाहृतः ॥ मुच्यतेनेहयोगेनक्षिप्रमन्येनकेनचित् ॥ ७१ ॥ विश्वेश्वरोविशालाक्षी द्युनदीकालभैरवः ॥ श्रीमान्ढुण्ढिर्दण्डपाणिःषडङ्गोयोगएषवै ॥ ७२ ॥ एतत्षडङ्गंयोयोगंनित्यङ्काश्यांनिषेवते ॥ सम्प्राप्ययोगनिद्रांसदीर्घाममृतमश्नुते ॥ ७३ ॥ ॐकारःकृत्तिवासाश्चकेदारश्चत्रिविष्टपः ॥ वीरेश्वरोथविश्वेशःषडङ्गोयमिहापरः ॥ ७४ ॥ पादोदकासिसम्भेदज्ञानोदमणिकर्णिकाः ॥ षडङ्गोयम्महायोगोब्रह्मधर्मह्रदावपि ॥ ७५ ॥ षडङ्गसेवनादस्माद्वाराणस्यांनरोत्तम ॥ नजातुजायतेजन्तुर्जननीजठरेपुनः ॥७६॥ गङ्गास्नानंमहामुद्रामहापातकनाशिनी ॥ एतन्मुद्राकृताभ्यासोप्यमृतत्वमवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥ काशीवीथिषुसञ्चारोमुद्राभवतिखेचरी ॥ खेचरोजायतेनूनंखेचर्यामुद्रयानया ॥ ७८ ॥ उड्डीयसर्वतोदेशाद्यानंवाराणसीम्प्रति ॥ उड्डीयानोमहाबन्धएषमुक्त्यैप्रकल्पते ॥ ७९ ॥ जलस्यधारणंमूर्ध्निविश्वेशस्नानजन्मनः ॥ एषजालन्धरोबन्धःसमस्तसुरदुर्लभः ॥ ८० ॥ वृतोविघ्नशतेनापियन्नकाशीन्त्य

हे नरोत्तम ! काशीमें इस षडंगसेवन से मनुष्य माताके उदरमें फिर कभी नहीं जन्मता है ॥ ७६ ॥ क्योंकि काशी में गंगास्नानही महापापनाशिनी महामुद्रा है इस मुद्रामें अभ्यास करनेवाला मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ७७ ॥ और काशीकी गलियों में भलीभांति से विचरना खेचरीमुद्रा होती है इस खेचरीमुद्रासे निश्चय करके ब्रह्मनिष्ठ होजाताहै ॥ ७८ ॥ व सब देशों से उड़कर जो काशीके ओर जाताहै वह यह उड्डीयाननामक महाबन्ध मुक्तिके लिये समर्थ है ॥ ७९ ॥ व जो विश्वनाथके स्नान से उत्पन्न हुये जलका माथमें धरना है यह सब देवों को दुर्लभ जालन्धरबन्ध है ॥ ८० ॥ और सैकड़ों विघ्नों से घिराहुवा भी सुबुद्धिमान् मनुष्य जो काशीको नहीं त्या-

गताहै यह दुःखकी जड़ काटनेवाला मूलबन्ध कहागया है ॥ ८१ ॥ हे मुने ! मुक्तिके लिये महादेवके कहेहुये व मुद्रासमेत व षडंगसहित दोभांतिका योग मैंने तुमसे कहा ॥ ८२ ॥ और जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीहै व जबतक रोग नहीं बाधा करताहै व जबतक मरणकालका विलम्बहै तबतक योगमें रतहोवे ॥ ८३ ॥ परन्तु दो योगों के बीचमे काशीयोग श्रेष्ठहै क्योंकि काशीयोग में अभ्यासकर उत्तम योगको अर्थात् जीवात्मा और परमात्माकी एकताको प्राप्तहोवे ॥ ८४ ॥ व मनके और तन के रोगोकी सहायिनी व मृत्युचिह्नवाली बुढ़ाई से कालको समीप में जानकर काशीनाथको भलीभांति से आश्रयकरे ॥ ८५ ॥ व काशीनाथके शरण होकर मनुष्यों को काल

जेत्सुधीः ॥ मूलबन्धःस्मृतोह्येषदुःखमूलनिकृन्तनः ॥ ८१ ॥ इतियोगःसमाख्यातोमयातेद्विविधोमुने ॥ सषडङ्गःसमुद्रश्चमुक्तयेशम्भुभाषितः ॥ ८२ ॥ यावन्नेन्द्रियवैक्लव्यंयावद्व्याधिर्नबाधते ॥ यावत्कालविलम्बोस्तितावद्योगरतोभवेत् ॥ ८३ ॥ उभयोर्योगयोर्मध्येकाशीयोगोयमुत्तमः ॥ काशीयोगंसमभ्यस्यप्राप्नुयाद्योगमुत्तमम् ॥ ८४ ॥ आधिव्याधिसहायिन्याजरयामृत्युलिङ्गया ॥ कालंनिकटतोज्ञात्वाकाशीनाथंसमाश्रयेत् ॥ ८५ ॥ काशीनाथंसमाश्रित्यकुतःकालभयंनृणाम् ॥ क्रुद्धोपिजीवहृत्कालस्तच्चकाश्यांसुमङ्गलम् ॥ ८६ ॥ आतिथ्येनेहसियथाप्रतीक्षेतातिथिंकृती ॥ काश्यांकालन्तथायान्तंभाग्यवान्सम्प्रतीक्षते ॥ ८७ ॥ कलिःकालःकृतङ्कर्मत्रिकण्टकमितीरितम् ॥ एतत्त्रयंनप्रभवेदानन्दवनवासिनाम् ॥ ८८ ॥ अन्यत्रातर्कितःकालःकलयिष्यत्यसंशयम् ॥ कालादभयमिच्छेच्चेत्ततःकाशींसमाश्रयेत् ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेयोगाख्यानंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥

का डर कहां है और जो काशीमें कुपितहुवा काल भी जीवको हरे तो भी सुमंगलहै ॥ ८६ ॥ जैसे पुण्यवान् मनुष्य अतिथि आनेकी वेलामे आतिथ्य से अतिथि को परखता है वैसेही भाग्यवान् काशीमें आतेहुये मरणकालको परखता है ॥ ८७ ॥ किन्तु कलि व काल व कियाहुवा कर्म यह त्रिकण्टक कहागयाहै और ये तीनों काशीवासी लोगोके लिये नहीं प्रभुता करते हैं याने नहीं समर्थ होते हैं ॥ ८८ ॥ और अन्यत्र अतर्कितहुवा काल निस्सन्देह प्रचलित करेगा इससे जो कालसे अभय चाहे तो काशी को भलीभांति से आश्रयकरे ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितयोगाख्याननामैकचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४१ ॥ ⊛ ॥

दो० । बयालीस अध्यायमें कालवंचनोपाय । पुनि काशीमाहात्म्य को कथन कियो इत आय ॥ अगस्त्यमुनि बोले कि, हे शंकरनन्दन! समीप में मरणकाल किस भांतिसे जानाजाताहै और वे कितने चिह्नहैं उनको पूंछतेहुये मुझसे कहो ॥१॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने! जब देहधारियों की मृत्यु निकटमें प्राप्त होतीहै तब जे मरणकाल के चिह्न होतेहैं उनको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ २ ॥ जिसके दहिने नासिका छिद्र में रातोदिन बयार बहती है उसकी अखण्ड भी आयु तीन वर्ष में घटजाती है ॥ ३ ॥ व दो तीन रात दिनतक निरन्तर जिसका दक्षिण श्वासा चलताहै उसके जीवनकी अवधि यहां एक वर्ष कहीगई है ॥ ४ ॥ व जिसके दोनों नासा

अगस्तिरुवाच ॥ कथंनिकटतःकालोज्ञायतेहरनन्दन ॥ तानिचिह्नानिकतिचिह्नहिमेपरिपृच्छतः ॥ १ ॥ कुमारउवाच ॥ वदामिकालचिह्नानिजायन्तेयानिदेहिनाम् ॥ मृत्यौनिकटमापन्नेमुनेतानिनिशामय ॥ २ ॥ याम्यनासापुटेयस्य वायुर्वातिदिवानिशम् ॥ अखण्डमेवतस्यायुःक्षयत्यब्दत्रयेणहि ॥ ३ ॥ द्व्यहोरात्रंत्र्यहोरात्रंरविर्वहतिसन्ततम् ॥ अब्दमेकञ्चतस्येहजीवनावधिरुच्यते ॥ ४ ॥ वहेन्नासापुटयुगेदशाहानिनिरन्तरम् ॥ वातश्चेत्सहसंक्रान्तिस्तयाजीवेद्दिनत्रयम् ॥ ५ ॥ नासावर्त्मद्वयंहित्वामातरिश्वामुखाद्वहेत् ॥ शंसेद्दिनद्वयादर्वाक्प्रयाणन्तस्यचाध्वनि ॥ ६ ॥ अकस्मादेवयत्कालेमृत्युःसन्निहितोभवेत् ॥ चिन्तनीयःप्रयत्नेनसकालोमृत्युभीरुणा ॥ ७ ॥ सूर्येसप्तमराशिस्थेजन्मर्क्षस्थेनिशाकरे ॥ पौष्णःसकालोद्रष्टव्योयदायाम्येरविर्वहेत ॥ ८ ॥ अकस्माद्वीक्षतेयस्तुपुरुषंकृष्णपिङ्गलम् ॥ तस्मिन्नेवक्षणेऽरूपंसजीवेद्वत्सरद्वयम् ॥ ९ ॥ यस्यबीजम्मलम्मूत्रंक्षुतम्मूत्रंमलन्तुवा ॥ इहैकदापतेद्यस्यअब्दन्तस्यायुरिष्यते ॥ १० ॥

छिद्रों में दश दिन निरन्तर ऊर्ध्वश्वास समेत बयार बहै वह उससे तीन दिनतक जीवे ॥ ५ ॥ व जिसके दोनों नासाछिद्रों को छोड़कर बयार मुखसे बहे उसके यममार्ग में प्रयाण को दो दिनके इसी ओरसे सूचितकरे ॥ ६ ॥ व जिस कालमें मृत्यु निकटवर्ती होवे वह काल यत्नसे मृत्यु से डरभुतके चिन्तने योग्यहै ॥ ७ ॥ व जब सूर्य्य सप्तम राशि में टिकेहोवें व चन्द्रमा जन्मनक्षत्र में टिके होवे और जब दक्षिणनासापुट में बयार बहे तब वह काल सूर्य्य देवतावाला देखने योग्यहै ॥ ८ ॥ और जो अकस्मात् कृष्णपिंगल पुरुषको देखे व उसही क्षणमें रूपान्तर से मुक्त देखे वह दो वर्ष तक जीवे ॥ ९ ॥ व जिसका शुक्र मल और मूत्र अथवा छींक मल और मूत्र

वह छह मास तक जीताहै ॥ ११ ॥
एक समय में गिरे उसकी आयु एक वर्षभर इष्ट है ॥ १० ॥ व जो आकाश में ऐसी वैसी पसरेहुये काले नागसमूह को देखता है वह छह मास तक जीताहै ॥ ११ ॥ और निकट मृत्युवाला
व जलसे भरा मुख और छहमास जीवनहै जिसका वह विना मेघके दिनमें सूर्य्यको पीछेकर व शीघ्रही फुफककर इन्द्रधनुको न देखे ॥ १२ ॥ और निकट मृत्युवाला
मनुष्य अरुन्धती व ध्रुव व विष्णुके तीनपद व चौथे मातृमण्डल को नहीं देखताहै ॥ १३ ॥ किन्तु अरुन्धती जिह्वाहै व ध्रुव नासाग्र कहाताहै व विष्णुपद भौंहों के
बीचमें हैं व मातृमण्डल आंखों में है ॥ १४ ॥ व जो अकस्मात् नीले पीले आदि रंगका और कडुवे व अम्ले रसका भी अन्यथा भाव जानता है अर्थात् औरेको और

इन्द्रनीलनिभंव्योम्निनागवृन्दंयईक्षते ॥ इतस्ततःप्रसृमरंषण्मासंनसजीवति ॥ ११ ॥ व्यभ्रेह्निवारिपूर्णास्यःपृष्ठीकृ
त्यदिवाकरम् ॥ फूत्कृत्याशिवन्द्रचापंनपश्येत्षण्मासजीवितः ॥ १२ ॥ अरुन्धतीन्ध्रुवञ्चैवविष्णोस्त्रीणिपदानिच ॥
आसन्नमृत्युर्नोपश्येच्चतुर्थंमातृमण्डलम् ॥ १३ ॥ अरुन्धतीभवेज्जिह्वाध्रुवोनासाग्रमुच्यते ॥ विष्णोःपदानिभ्रूमध्येने
त्रयोर्मातृमण्डलम् ॥ १४ ॥ वेत्तिनीलादिवर्णस्यकट्वम्लादिरसस्यहि ॥ अकस्मादन्यथाभावंषण्मासेनसमृत्युभाक् ॥ १५ ॥
षण्मासमृत्योर्मर्त्यस्यकण्ठोष्ठरसनारदाः ॥ शुष्यन्तिसततंतद्वद्विच्छायास्तालुपञ्चमाः ॥ १६ ॥ रेतःकरजनेत्रान्तानीलि
मानम्भजन्तिचेत् ॥ तर्हिकीनाशनगरींषष्ठेमासिव्रजेन्नरः ॥ १७ ॥ सम्प्रवृत्तेनिधुवनेमध्येन्तेक्षौतिचेन्नरः ॥ निश्चितं
पञ्चमेमासिधर्मराजातिथिर्भवेत् ॥ १८ ॥ द्रुतमारुह्यसरटस्त्रिवर्णोयस्यमस्तके ॥ प्रयातियातितस्यायुःषण्मासेनपरि
क्षयम् ॥ १९ ॥ सुस्नातस्यापियस्याशुहृदयम्परिशुष्यति ॥ चरणौचकरौवापित्रिमासन्तस्यजीवितम् ॥ २० ॥ प्रति

प्रकार से समझताहै वह छहमासमें मृत्युभागी होताहै ॥ १५ ॥ व छह मासमें मृत्युवाले मनुष्यके कण्ठ ओठ जिह्वा दंत और पंचम तालु ये सब निरन्तर सूखजाते हैं
वैसेही विना छायाके होते हैं ॥ १६ ॥ व जो रेत, नख और नेत्रों के अन्त ये तीनों श्यामताको सेवें तो मनुष्य छठयें मासमें यमपुरको जावे ॥ १७ ॥ व जो स्त्रीके साथ
सुरत वर्तमान होने के आदि मध्य और अन्तमें छींके व जमुहाई लावे तो वह मनुष्य पँचयें मासमें यमराजका अतिथि होवे ॥ १८ ॥ व तीनरंगका गिरदान जिसके
मूडेपर चढ़कर शीघ्रही चलाजाताहै उसकी आयु छह मासमे नाशको प्राप्त होतीहै ॥ १९ ॥ व अच्छी भांतिसे नहायेहुये जिस जनका हृदय सूखजाता है व हाथ और

पांव भी शीघ्र शुष्क होजाते हैं उसकी आयु तीन मासतक रहती है ॥ २० ॥ व जिसके पांवका प्रतिबिम्ब धूलि और कीचमें खण्डितपदके आकार होवे वह पांच मास तक जीताहै ॥ २१ ॥ व देहदण्डके निश्चल होते भी जिसकी छाया कांपती है उस मनुष्यको चौथेमास में यमराजके दूत बांधते हैं ॥ २२ ॥ व जो मनुष्य जल घृत और दर्पणादिकों में अपने प्रतिबिम्बका शिर नहीं देखता है वह एक मास जीताहै ॥ २३ ॥ और बुद्धि भ्रष्ट होजावे व वाणी स्पष्ट न निकले व रातमें इन्द्रधनु और दो चन्द्रमा देखे व दिनमे भी दो सूर्य्य देखे ॥ २४ ॥ व दिनमें नक्षत्रसमूह व रातमें विना नक्षत्रोंका आकाश व एकही बार चारों दिशाओंमें इन्द्रधनुका मण्डल ॥ २५ ॥

बिम्बम्भवेद्यस्यपदङ्खण्डपदाकृति ॥ पांसौवाकर्दमेवापिपञ्चमासान्सजीवति ॥ २१ ॥ छायाप्रकम्पतेयस्यदेहबन्धेपिनिश्चले ॥ कृतान्तदूताबध्नन्तिचतुर्थेमासितंनरम् ॥ २२ ॥ निजस्यप्रतिबिम्बस्यनिरीक्ष्यमुकुरादिषु ॥ उत्तमाङ्गंनयःपश्येत्समासेनविनश्यति ॥ २३ ॥ मतिर्भ्रश्येत्स्खलेद्वाणीधनुरैन्द्रंनिरीक्षते ॥ रात्रौचन्द्रद्वयञ्चापिदिवाद्वौचदिवाकरौ ॥ २४ ॥ दिवाचतारकाचक्रंरात्रौव्योमवितारकम् ॥ युगपच्चचतुर्दिक्षुशाक्रकोदण्डमण्डलम् ॥ २५ ॥ भूरुहेभूधराग्रेचगन्धर्वनगरालयम् ॥ दिवापिशाचनृत्यञ्चएतेपञ्चत्वहेतवः ॥ २६ ॥ सर्वेष्वेतेषुचिह्नेषुयद्येकमपिवीक्षते ॥ तदामासावधिंमृत्युःप्रतीक्षेतनचाधिकम् ॥ २७ ॥ करावरुद्धश्रवणःशृणोतिनयदाध्वनिम् ॥ स्थूलःकृशःकृशःस्थूलस्तदामासान्निवर्तते ॥ २८ ॥ यःपश्येदात्मनश्छायांदक्षिणाशासमाश्रिताम् ॥ दिनानिपञ्चजीवित्वापञ्चत्वमुपयातिसः ॥ २९ ॥ प्रोह्यतेभक्ष्यतेवापिपिशाचासुरवायसैः ॥ भूतैःप्रेतैःश्वभिर्गृध्रैर्गोमायुखरसूकरैः ॥ ३० ॥ रासभैःकरभैःकीशैःश्येनैरृक्ष

व वृक्ष और पर्वतों के अग्रभाग में गन्धर्व नगर याने आकाश में अकस्मात् देखताहुआ नगरके आकार आधार और दिनमें पिशाचोंका नाच ये सब जो देखपड़ें तो मृत्युके कारणहैं ॥ २६ ॥ इन सब चिह्नों मे से जो एकको भी देखताहै तो मृत्यु एक मासकी अवधि को परखती है अधिकको नहीं याने एक मासके बाद मृत्यु होती है ॥ २७ ॥ व जब हाथों से कानों को बन्द कियेहुये भी शब्दको नहीं सुनता है व थोड़े थोड़े दिनों में स्थूल दुबला और दुबला स्थूल हुआ करता है वह एक मास में संसार से निवृत्त होताहै ॥ २८ ॥ व जो दक्षिणदिशा में टिकीहुई अपनी छायाको देखता है वह पांच दिन जीकर फिर मरणको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ व जोकि पिशाच

असुर काग भूत प्रेत कूकुर गीध स्यार गर्दभ और सूकरोंकरके स्वप्न में पीठपर चढ़ाकर अन्यत्र प्राप्त कियाजाता व खायाजाता है ॥ ३० ॥ व गर्दभ ऊंट वानर बाज खच्चर और बकों से भी स्वप्नमे भक्षण कियाजाताहै वह एक वर्षके बाद जीवितको छोंड़कर यमराजको देखताहै ॥ ३१ ॥ अहो अगस्त्य ! जो मनुष्य स्वप्नसमयमें लाले रंगवाले सुगन्ध व फूल व वस्त्रों से अपने अंगको भूपित देखता है वह आठ मास जीताहै ॥ ३२ ॥ और जो स्वप्न में धूलिकी राशि व बैंबौर व खम्भाके दण्डपर चढताहै वह छठयें मासमे मरता है ॥ ३३ ॥ व जो स्वप्न में गर्दभपर चढ़े तेल लगाये मूड़ मुड़ाये और अपने पितरोंको दक्षिण दिशामें लिये जातेहुये अपनाको देखताहै ॥३४॥

तरैर्बकैः ॥ स्वप्नेसजीवितंत्यक्त्वावर्षान्तेयममीक्षते ॥ ३१ ॥ गन्धपुष्पांशुकैःशोणैःस्वान्तनुंभूषितांनरः ॥ यःपश्येत्स्व प्नसमयेसोऽष्टौमासाननित्यहो ॥ ३२ ॥ पांसुराशिञ्चवल्मीकंयूपदण्डमथापिवा ॥ योधिरोहतिवैस्वप्नेसषष्ठेमासिनश्य ति ॥ ३३ ॥ रासभारूढमात्मानंतैलाभ्यक्तञ्चमुण्डितम् ॥ नीयमानंयमाशांयःस्वप्नेपश्येत्स्वपूर्वजान् ॥ ३४ ॥ स्वमौ लौस्वतनौवापियःपश्येत्स्वप्नगोनरः ॥ तृणानिशुष्ककाष्ठानिषष्ठेमासिनतिष्ठति ॥ ३५ ॥ लोहदण्डधरंकृष्णंपुरुषंकृष्ण वाससम् ॥ स्वयंयोग्रेस्थितम्पश्येत्सत्रीन्मासान्नलङ्घयेत् ॥ ३६ ॥ कालीकुमारीयंस्वप्नेबध्नीयाद्बाहुपाशकैः ॥ समासेन समीक्षेतनगरींशमनोषिताम् ॥ ३७ ॥ नरोयोवानरारूढोयायात्प्राचीन्दिशंस्वपन् ॥ दिनैःसपञ्चभिरेवपश्येत्संयमि नीम्पुरीम् ॥ ३८ ॥ कृपणोपिवदान्यःस्याद्वदान्यःकृपणोयदि ॥ प्रकृतेर्विकृतिश्चेत्स्यात्तदापञ्चत्वमृच्छति ॥ ३९ ॥ ए

व जो स्वप्न में प्राप्त मनुष्य अपने मस्तक या कि शरीर में सूखे तृण और काठों को देखता है वह छठये मासमें नहीं ठहरता है ॥ ३५ ॥ व जो स्वप्नमें लोहेका दण्डा लिये काले वस्त्रवाले श्यामरंग अंग पुरुषको अपने आगे टिका देखे वह तीन मासोंको न लांघे याने तीन मासोंके भीतरमेंही मरजावे ॥ ३६ ॥ व स्वप्न में काले रंग की कुमारी बाहुपाशों से जिसको आलिंगन करे वह एक मासमे यमराजकी बसी पुरी को देखे ॥ ३७ ॥ व जो सोताहुआ मनुष्य वानरपर चढ़कर पूर्वदिशा को जावे वह पांच दिनमें संयमिनी नाम यमपुरीको देखे ॥ ३८ ॥ व जो कृपण मनुष्य बड़ा दानी और बड़ा दानी कृपण होजावे व जो स्वभावका त्याग होजावे तो मरणको प्राप्त

होताहै ॥ ३९ ॥ ये और अनेकों अन्य भी मरणकालके चिह्नहैं उनको जानकर मनुष्य योगका अभ्यासकरे अथवा काशीपुरी को सेवे ॥ ४० ॥ हे मुने ! मैं गर्भवासके रोकनेवाले मृत्युंजय काशीनाथ विश्वनाथके विना अन्य कालवंचनका उपाय नहीं जानताहूं ॥ ४१ ॥ किन्तु तबतक पाप गर्जते हैं व तबतक यमराज गर्जता है जब तक बहुत प्रीतिवाला मनुष्य विश्वनाथकी पुरीको नहीं जाताहै ॥ ४२ ॥ और जिसने विश्वनाथका स्थान प्राप्तकिया व उत्तरवाहिनी गंगाका जल पिया व विश्वनाथ का लिंग छुवाहै वह कौन वन्दने योग्यके भावको नहीं पहुँचताहै अर्थात् वह वन्दनीय होताहै ॥ ४३ ॥ और कुपितहुवा काल काशीवासी लोगोंका क्या करेगा क्योंकि

तानिकालचिह्नानिसन्त्यन्यानिबहून्यपि॥ज्ञात्वाभ्यसेन्नरोयोगमथवाकाशिकांश्रयेत् ॥ ४० ॥ नकालवञ्चनोपायंमुनेन्यमवयाम्यहम् ॥ विनामृत्युञ्जयङ्काशीनाथंगर्भावरोधकम् ॥ ४१ ॥ तावद्गर्जन्तिपापानितावद्गर्जेद्यमोनृपः ॥ यावद्विश्वेशशरणंनरोननिरतोव्रजेत् ॥ ४२ ॥ प्राप्तविश्वेश्वरावासःपीतोत्तरवहापयाः ॥ स्पृष्टविश्वेशसल्लिङ्गःकश्चयातिनवन्द्यताम् ॥ ४३ ॥ करिष्येत्कुपितःकालःकिङ्काशीवासिनांनृणाम् ॥ कालेशिवःस्वयङ्कर्णेयत्रमन्त्रोपदेशकः ॥ ४४ ॥ यथाप्रयातिशिशुताकौमारञ्चयथागतम् ॥ सत्वरङ्गत्वरन्तद्वद्यौवनञ्चापिवार्द्धकम् ॥ ४५ ॥ यावन्नहिजराक्रान्तिर्यावन्नेन्द्रियवैक्लवम् ॥ तावत्सर्वंफल्गुरूपंहित्वाकाशींश्रयेत्सुधीः ॥ ४६ ॥ अन्यानिकाललक्ष्माणितिष्ठन्तुकलशोद्भव ॥ जरैवप्रथमंलक्ष्मचित्रन्तत्रापिभीर्नहि ॥ ४७ ॥ पराभूतोहिजरयासर्वैश्चपरिभूयते ॥ हृततारुण्यमाणिक्योधनहीनःपुमानिव ॥ ४८ ॥ सुतावाक्यंनकुर्वन्तिपत्नीप्रेमापिमुञ्चति ॥ बान्धवानैवमन्यन्तेजरसाश्लेपितंनरम् ॥ ४९ ॥ आश्लिष्टञ्जरया

जहां स्वयं शिवजी मरणसमय होतेही दक्षिण कानमें तारकमन्त्रोपदेश करनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ और जैसे बालपन चलाजाताहै व कुमारपन भी गत होजाताहै वैसेही युवापन व वृद्धापन भी शीघ्रही चले जानेवाला है ॥ ४५ ॥ इससे जबतक बुढ़ाईका आना और इन्द्रियों की विकलता न होवे तबतक बुद्धिमान् मनुष्य सब तुच्छरूप को छोड़कर काशीपुरीको सेवे याने उसमें बसे ॥ ४६ ॥ हे अगस्त्य ! अन्य कालके चिह्न तो तबतक रहैं पहला चिह्न तो वृद्धापनही है और जो उसमें भी डर नहीं है तो यह आश्चर्य्य है ॥ ४७ ॥ क्योंकि बुढ़ाई से हाराहुवा मनुष्य सबों से हराया जाताहै व जिसकी युवावस्था हीरा हरगया है वह धनहीन पुरुषके समान होजाताहै ॥ ४८ ॥

किन्तु पुत्र उसका कहना नहीं करते हैं व स्त्री भी प्रीति छोड़ देतीहै व बांधवलोग भी बुढ़ाई से लिपटाये गये मनुष्यको नहीं मानते हैं ॥ ४९ ॥ व प्रीतिवाली कामिनी परस्त्री भी बुढाईसे आलिंगित पुरुषको देखकर व विशंकित होकर नित्यही पराङ्मुखी होती है याने उसके सम्मुख नहीं रहतीहै ॥ ५० ॥ इससे बुढ़ाई के समान रोग व बुढ़ाई के समान अन्य दुःख नहीं है क्योंकि मनुष्योंका अनादर करानेवाली बुढ़ाईही मरना है ॥ ५१ ॥ और जैसे मरणपर्यन्त काशीवास से काल जीता जाताहै वैसे तपस्या व योगकी युक्तियों से नहीं जीताजाताहै ॥ ५२ ॥ परन्तु यज्ञ व दान व व्रत व जपादि व पुण्यसमूहके विना कौन मनुष्य काशी प्राप्तहोने को व्यापार करसक्ता

दृष्ट्वापरयोषिद्विशङ्किता ॥ भवेत्पराङ्मुखीनित्यंप्रणयिन्यपिकामिनी ॥५०॥ नजरासदृशोऽव्याधिर्नदुःखञ्जरयासमम् ॥ कारयित्र्यपमानस्यजरैवमरणंनृणाम् ॥ ५१ ॥ नजीयतेतथाकालस्तपसायोगयुक्तिभिः ॥ यथाचिरेणकालेनकाशीवासाद्विजीयते ॥ ५२ ॥ विनायज्ञैर्विनादानैर्विनाव्रतजपादिभिः ॥ विनातिपुण्यसम्भारैःकःकाशीम्प्राप्तुमीहते ॥ ५३ ॥ काशीप्राप्तिरयंयोगःकाशीप्राप्तिरिदन्तपः ॥ काशीप्राप्तिरिदन्दानंकाशीप्राप्तिःशिवैकता ॥ ५४ ॥ कःकलिःकोथवाकालःकाजराकिञ्चदुष्कृतम् ॥ कारुजःकेन्तरायावाश्रितावाराणसीयदि ॥ ५५ ॥ कलिस्तानेवबाधेतकालस्तांश्चजिघांसति ॥ एनांसितांश्चबाधन्तेयेनकाशींसमाश्रिताः ॥ ५६ ॥ काशीसमाश्रितायैश्चयैश्चविश्वेश्वरोर्चितः ॥ तारकंज्ञानमासाद्यतेमुक्ताःकर्मपाशतः ॥ ५७ ॥ धनिनोनतथासौख्यम्प्राप्नुवन्तिनराःक्वचित् ॥ यथानिधनतःकाश्यांलभन्तेसुख

है ॥ ५३ ॥ और काशीकी प्राप्ति यह योगहै व काशीकी प्राप्ति यह तपस्या है व काशीकी प्राप्ति यह दानहै व काशीकी प्राप्तिही शिवकी एकता याने कैवल्य मुक्तिहै ॥५४॥ क्योंकि जो काशी सेई गई या बसीगई तो कलि व काल व बुढ़ाई व पाप व रोग व विघ्न ये सब क्याहैं याने कुछ भी नहीं हैं ॥५५॥ जिससे कलि उनकोही बाधता है व काल उनकोही मारताहै व पाप उनकोही पीडा देते हैं जोकि काशीवासी नहीं है ॥ ५६ ॥ और जिसने काशीसेवन किया व विश्वनाथको भलीभांति से पूजाहै वे तारक ज्ञानको प्राप्तहोकर-कर्मबन्धनसे मुक्त होते हैं ॥ ५७ ॥ जैसे मनुष्य काशीमें मरने से अविकार अखण्ड सुखको पाते हैं वैसे सुखको धनी लोग भी अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त

होते हैं ॥ ५८॥ इससे काशीवासी श्रेष्ठहै और स्वर्गवासी श्रेष्ठ नहींहै जिससे पहला मोक्षपाताहै व अन्य याने स्वर्गवासी सुखका अन्त पाताहै ॥ ५९ ॥ और सुन्दर कन्दरा वाले मन्दराचलमें टिकेहुये भी ऐश्वर्य्यसम्पन्न शिवजी दिवोदास राजासे बसीगई काशी विना प्रीतिको न प्राप्तहुये इसमें यह भावहै कि जो काशीपुरी परमेश्वरकेलिये भी परमानन्द उपजाती है तो मनुष्योंका क्या कहनाहै ॥६०॥इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकालवञ्चनोपायोनामद्विचत्वारिंशोध्यायः॥४२॥

दो० । तैंतालिस अध्याय में देखो सकल सुजान । दिवोदास भूपालकर परम प्रताप बखान ॥ अगस्त्यजी बोले कि तीन नेत्रवाले महादेवजीने दिवोदास राजा से

म०ययम् ॥ ५८ ॥ वरङ्काशीसमावासीनासीनोद्युसदाम्पदम् ॥ दुःखान्तंलभतेपूर्वःसुखान्तंलभतेपरः ॥ ५९ ॥ स्थितोपिभगवानीशोमन्दरञ्चारुकन्दरम् ॥ काशींविनारतिंनाऽऽपदिवोदासनृपोषिताम् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेकालवञ्चनोपायोनामद्विचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्तिरुवाच ॥ दिवोदासंनरपतिंकथन्देवस्त्रिलोचनः ॥काशींसन्त्याजयामासकथमागाच्चमन्दरात् ॥एतदाख्यानमाख्याहिश्रोतॄणाम्प्रमुदेभगो: ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मन्दरङ्गतवान्देवोब्रह्मणोवाक्यगौरवात् ॥ तपसातस्यसन्तुष्टोमन्दरस्यैवभूभृतः ॥ २ ॥ गतेविश्वेश्वरेदेवेमन्दराद्रिंसुन्दरम् ॥ गिरिशेनसमञ्जग्मुरपिसर्वेदिवौकसः ॥ ३ ॥ क्षेत्राणिवैष्णवानीहत्यक्त्वाविष्णुरपिक्षितेः ॥ प्रयातोमन्दरंयत्रदेवदेवउमाधवः ॥ ४ ॥ स्थानानिगाणपत्यानिगणेशोपिततोव्रजत् ॥ हित्वाहमपिविप्रेन्द्रगतवान्मन्दरम्प्रति ॥ ५ ॥ सूरःसौराणिसन्त्यज्यगतश्चायतनादरम् ॥ स्वंस्वंस्थानंक्षि

कैसे काशीका त्याग कराया व अपना उसमें फिर कैसे आये हे पूज्य! श्रोताओंके आनन्दके लिये आप इस आख्यानको कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजीबोले कि उस मन्दर पर्वतकी तपस्या से भी संतुष्टहुये महादेवजी ब्रह्माके वचनकी गुरुता से मन्दर को गये थे ॥ २ ॥ और जब विश्वनाथदेवजी पर्वतों मे सुन्दर कन्दर मन्दरगिरिको गये तब गिरिनाथके साथ सब देव भी चलेगये ॥ ३ ॥ किन्तु काशीमें व पृथिवीके वैष्णव क्षेत्रोंको छोंड़ विष्णुजी भी उस मन्दराचलको चलेगये कि जहां देवोंके देव पार्वतीके पति महादेवजी विद्यमान थे ॥ ४ ॥ हे विप्रेन्द्र! गणेशजी भी गाणपत्य स्थानों को छोंड़कर उस काशी से निकलगये व मैं भी मन्दरपर्वत के प्रति चलागया था ॥ ५ ॥

व सूर्य्यजी सौरक्षेत्रो को छोंडकर घरसे चलेगये व अन्य देव भी पृथिवी में अपने अपने स्थानको छोंड़कर बहुतही चलेगये ॥ ६ ॥ और पृथिवीसे देवसमूहो के जातेही प्रतापी दिवोदास राजाने निर्द्वन्द्व राज्यको किया ॥ ७ ॥ व काशीमें अचल राजधानीकर धर्मसे प्रजाओंको पालते हुये उस बड़े बुद्धिमान्ने वर्धित किया ॥ ८ ॥ और वह दुष्टोंके हृदय व नेत्रों में सूर्य्य के समान तपनेवाला हुवा व मित्रों के मनों में व अपने जनों में भी चन्द्रमा की नाई आनन्ददायक हुवा ॥ ९ ॥ व संग्राम में इन्द्र की नाई अखण्डधन्वाको टंकोरता हुवा वह भगे जाते हुये शत्रुसैन्यसमूहरूप मेघों से देखागया ॥ १० ॥ व जे दण्ड देने योग्यहैं उनको दण्ड देताहुवा और जे अदण्ड्य

तौत्यक्त्वाययुरन्येपिनिर्जराः ॥ ६ ॥ गतेषुदेवसङ्घेषुपृथिव्याःपृथिवीपतिः ॥ चकारराज्यंनिर्द्वन्द्वंदिवोदासःप्रतापवान् ॥ ७ ॥ विधायराजधानींसवाराणस्यांसुनिश्चलाम् ॥ एधाञ्चक्रेमहाबुद्धिःप्रजाधर्मेणपालयन् ॥ ८ ॥ सूर्यवत्सप्रतपितादुर्हृदांहृदिनेत्रयोः ॥ सोमवत्सुहृदामासीन्मानसेषुस्वकेष्वपि ॥ ९ ॥ अखण्डमाखण्डलवत्कोदण्डंकलयन्रणे ॥ पलायमानैरालोकिशत्रुसैन्यबलाहकैः ॥ १० ॥ सधर्मराजवज्जातोधर्माधर्मविवेचकः ॥ अदण्ड्यान्मण्डयन्राजादण्ड्यांश्चपरिदण्डयन् ॥ ११ ॥ धनञ्जयइवाधाक्षीत्परारण्यान्यनेकशः ॥ पाशीवपाशयाञ्चक्रेवैरिचक्रंविदूरगः ॥ १२ ॥ सोभूत्पुण्यजनाधीशोरिपुरात्तसवर्धनः ॥ जगत्प्राणसमानश्चजगत्प्राणनतत्परः ॥ १३ ॥ राजराजःसएवाभूत्सर्वेषान्धनदःसताम् ॥ सएवरुद्रमूर्तिश्चप्रैक्षिष्टरिपुभीरणे ॥ १४ ॥ विश्वेषांसहिदेवानांतपसारूपधृग्यतः ॥ विश्वेदेवास्ततस्तन्तुस्तुवन्तिचभजन्तिच ॥ १५ ॥ असाध्यःसहिसाध्यानांवसुभ्योवसुनाधिकः ॥ ग्रहाणांविग्रहधरोदस्र

हैं उनको भूषित करताहुवा वह राजा धर्मराजके समान पुण्य व पापको विचारकर बिलगानेवाला हुवा ॥ ११ ॥ व अग्निकी नाई बहुते वैरी वनोंको जलाताभया व दूर देशमें बसाहुवा भी वरुणकी नाई वैरीसमूहका बन्धन करनाभया ॥ १२ ॥ व कुबेरके समान वह वैरी राक्षसोंका छेदक हुवा व वायुके समान जगतके जिवाने में तत्पर हुवा ॥ १३ ॥ और कुबेरकी नाई सब सज्जनोंका धनदाता हुवा वही कुबेर होगया व वह संग्राम में शत्रुओं करके रुद्ररूप देखागया ॥ १४ ॥ जिससे वह तपस्या से सब देवों का रूप धरनेवाला था उससे विश्वेदेवा उसकी स्तुति करते हैं व भजते हैं ॥ १५ ॥ और वह साध्यदेवों से अजेय था व धनसे वसुदेवों से अधिक था

व ग्रहोंका रूपधारी होकर वह अश्विनीकुमार से अधिकरूपका सेवी था॥ १६ ॥ व गुणों से मरुद्गणों को न गिनता व तुषितदेवों को संतुष्ट करताहुवा जो सब विद्याधरों के बीचमें भी सब विद्याओंका धर्ता था ॥ १७ ॥ व जिसने अपने गानसे गन्धर्वों को गर्वसे हीनकिया उसके स्वर्गसमान दुर्ग याने कोटको यक्ष और राक्षस रखाते थे ॥ १८ ॥ व नागलोग उस हाथीके समान बलवान्का पाप न करतेथे व दानवलोग उसको मनुष्यके आकार करके सेवते थे॥ १९ ॥ व गुह्यकलोग सब ओरसे मनुष्यो में उसके गुप्तचर (हाल देनेवाले) हुये व "असुरोंने उससे यह कहा कि" हे राजन्! हम असुरलोग अपने ऐश्वर्य्य से आपकी भलीभांति से सेवा करेंगे ॥ २० ॥

तोऽजस्ररूपभाक् ॥ १६ ॥ मरुद्गणानगणयंस्तुषितांस्तोषयन्गुणैः ॥ सर्वविद्याधरोयस्तुसर्वविद्याधरेष्वपि ॥ १७ ॥ अगर्वानिवगन्धर्वान्यश्चक्रेनिजगीतिभिः ॥ ररक्षुर्यक्षरक्षांसितद्दुर्गंस्वर्गसोदरम् ॥ १८ ॥ नागानागांसिचक्रुश्चतस्यनागबलीयसः ॥ दनुजामनुजाकारंकृत्वातञ्चासिषेविरे ॥ १९ ॥ जाताग्गुह्यचरायस्यगुह्यकाःपरितोनृषु ॥ संसेविष्यामहेराजन्नसुरास्त्वांस्ववैभवैः ॥ २० ॥ वयंयतस्त्वद्विषयेसुरावासोऽपिदुर्लभः ॥ अशिक्षयत्क्षितिपतेरिहयस्यतुरङ्गमान् ॥ आशुगश्चाशुगामित्वंपावमानेपथिस्थितः ॥ २१ ॥ अगजान्यस्यतुगजान्नगवर्ष्मसुवर्ष्मणः ॥ अजस्रदानिनोदृष्ट्वाभवन्नन्येपिदानिनः ॥ २२ ॥ सदोजिरेचबोद्धारोयोद्धारश्चरणाजिरे ॥ नयस्यशास्त्रैर्विजितानशस्त्रैःकेनचित्क्वचित् ॥ २३ ॥ ननेत्रविषयेजाताविषयेयस्यभूभृतः ॥ सदानष्टपदाद्वेष्यास्तदाऽनष्टपदाःप्रजाः ॥ २४ ॥ कलावानेकएवास्तित्रिदिवेपिदिवौ

क्योंकि हम आपकी इस राज्यमें बसते हैं कि जिसमें देवताओंका बसना भी दुर्लभहै और अश्वगति शिक्षारूप शास्त्र या वायुमार्गमें टिकाहुवा भी वायुदेव जिस राजा के घोडोको शीघ्रगमन रिखाताथा ॥ २१ ॥ और जिसके पर्वतों में उत्पन्न, व पर्वतसमान देहवाले व निरन्तर मद झिरतेहुये हाथियों को देखकर अन्यलोग भी दान देने वाले होगये ॥ २२ ॥ व जिसके राभाअंगनमें विचार करनेवाले मन्त्रियोंको शास्त्रसे और संग्राम में योधाओं को शस्त्रसे किसीने कहीं नहीं हराया है ॥ २३ ॥ व जिस राजाकी राज्य में सदैव प्रजालोग नष्ट स्थानवाले और किसीसे विरोध करनेवाले होकर नेत्रगोचर न हुये याने न देखपड़े किन्तु उस समय या उस राजाके होतेही सब अनष्टस्थानवाले हुये अर्थात् सुखसे घरों मे बसते थे ॥ २४ ॥ और देवताओं के स्वर्ग में भी एकही कलावान् (चन्द्रमा) है व उस राजाकी भूमिमें सब जन चौंसठ

कलाओं के निधानहुये ॥ २५ ॥ व स्वर्गमें जो एकही कामहै वह भी अंगसे हीनहै और उस राजाकी भूमिमें सब लोगोंके सब काम भी अंगों और उपांगों से संयुक्त थे ॥ २६ ॥ व स्वर्ग मे देवोंका राजा गोत्रों (पर्वतों) के भेदन करनेवाला कहागयाहै और उस दिवोदासकी राज्य मे एक जन भी गोत्रभेदी कहीं नहीं सुनागया याने सब लोग गोत्रपालक थे ॥ २७ ॥ व स्वर्ग में चन्द्रमा पाख पाखमे क्षीण होजाताहै और उसकी राज्य में किसीने किसीको भी राजरोगी न सुना ॥ २८ ॥ व स्वर्ग में नवग्रह हैं और उस राजाके देश अनवग्रह (वर्षाके प्रतिघात से रहित) थे याने उनमें कभी न झूरा पड़ता था ॥ २९ ॥ व स्वर्गमे एकही हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) विरा-

कसाम् ॥ तस्यक्षोणिभृतःक्षोण्यांजनाःसर्वेकलालयाः ॥२५॥ एकएवहिकामोस्तिस्वर्गेसोप्यङ्गवर्जितः॥ साङ्गोपाङ्गश्चसर्वेषांसर्वेकामाहितद्भुवि ॥ २६ ॥ तस्योपवर्तनेप्येकोनश्रुतोगोत्रभित्क्वचित्॥ स्वर्गेस्वर्गसदामीशोगोत्रभित्परिकीर्तितः ॥ २७ ॥ क्षयीचतस्यविषयेकोप्याकर्णिनकेनचित् ॥ त्रिविष्टपेक्षपानाथःपक्षेपक्षेक्षयीष्यते ॥ २८ ॥ नाकेनवग्रहाःसन्तिदेशास्तस्याऽनवग्रहाः ॥ २९ ॥ हिरण्यगर्भःस्वर्लोकेप्येकएवप्रकाशते ॥ हिरण्यगर्भाःसर्वेषान्तत्पौराणामिहालयाः ॥ ३० ॥ सप्ताश्वएकःस्वर्लोकेनितरांभासतेंऽशुमान् ॥ सदंशुकाःप्रतिदिनंबह्वश्वास्तत्पुरौकसः ॥ ३१ ॥ सदप्सरायथास्वर्भूस्तत्पुर्यपिसदप्सराः ॥ एकैवपद्मावैकुण्ठेतस्यपद्माकराःशतम् ॥ ३२ ॥ अनीतयश्चतद्ग्रामानाराजपुरुषाःक्वचित् ॥ गृहेगृहेत्रधनदानाकएकोऽलकापतिः ॥ ३३ ॥दिवोदासस्यतस्यैवंकाश्यांराज्यंप्रशासतः ॥ गतंवर्षेदिन

जमानहै और उसके सब नगरनिवासियों के घर इस लोकमेंही हिरण्यगर्भ थे अर्थात् उनके भीतर सोना भराथा ॥ ३० ॥ व स्वर्ग में सात घोंडेवाला एकही अंशुमान् (सूर्य्य) बहुत प्रकाशमानहै और उस राजाके पुरवासी प्रतिदिन अनेक घोड़ेवाले व अच्छे अंशुक (वस्त्र) वाले थे ॥ ३१ ॥ व जैसे स्वर्गभूमि अच्छी अप्सरावाली है क्या वैसेही उसकी पुरी भी थी किन्तु उनसे अच्छी अप्सराओं से संयुत थी व वैकुण्ठ में एकही लक्ष्मी है और उसके सैकडों लक्ष्मीनिधान तडाग थे ॥ ३२ ॥ व उस राजाके ग्राम अनीति याने अतिवृष्टि अनावृष्टि मूषक शलभ शुक स्वचक्र और परचक्र इसछहभांतिकी ईतिभीति से हीनथे और राजपुरुषोंसे रहित कहीं नहीं थे अर्थात् सब ग्रामों मे राजाके पुरुष टिके थे व स्वर्ग में एक अलकापति (कुबेरही) धनदहै और यहां घर घरमें धनदाता थे ॥ ३३ ॥ इस भांतिसे काशी में राज्य करते

हुये दिवोदास राजाकी अस्सीहजार वर्ष एक दिनके समान बीतगई ॥ ३४ ॥ उसके बाद उसका अपकार करना चाहतेहुये व धर्ममार्ग में चलनेवाले देवोंने अपने गुरु बृहस्पति के साथ मन्त्र किया ॥ ३५ ॥ कि हे मुने ! बहुधा आपकी नाईं धर्मचारियों के लिये देवलोग विपत्तियोंकी परंपरा करतेही हैं ॥ ३६ ॥ किन्तु यद्यपि इस राजाने दुष्करयज्ञों से उन देवोंको पूजाहै तोभी वे उसके अत्यन्त मित्र नहीं हैं ॥ ३७ ॥ क्योंकि पराये उत्कर्षका न सहना यह देवताओंका स्वभावही है देखो कि बलि व बाणासुर और दधीचि आदि लोगोंने उनके साथ क्या अपराध किया था ॥ ३८ ॥ इससे यद्यपि देवलोग पद पदमें भी धर्म्म के विघ्न होतेही हैं तो भी धर्म्मज्ञलोग अपना

प्रायंशरदामयुताष्टकम् ॥ ३४ ॥ गीर्वाणाविप्रतीकारमथतस्यचिकीर्षवः ॥ गुरुणामन्त्रयाञ्चक्रुर्धर्मवर्त्मानुयायिनः ॥ ३५ ॥ भवादृशामिवमुनेप्रायशोधर्मचारिणाम् ॥ विबुधाविदधत्येवमहतीरापदान्तती: ॥ ३६ ॥ यद्यप्यसौधराधीशो ऽयाधिनोद्दुर्धराध्वरैः ॥ तानध्वरभुजोऽत्यन्तंतथापिसुहृदोनते ॥ ३७ ॥ स्वभावएवद्युसदाम्परोत्कर्षासहिष्णुता ॥ बलिबाणदधीच्याद्यैरपराद्धंकिमत्रतैः ॥ ३८ ॥ अन्तरायाभवन्त्येवधर्मस्यापिपदेपदे ॥ तथापिननिजोधर्मोधर्मधीभिर्विमुच्यते ॥ ३९ ॥ अधर्मिणःसमेधन्तेधनधान्यसमृद्धिभिः ॥ अधर्मादेवचपरंसमूलंयान्त्यधोगतिम् ॥ ४० ॥ प्रजाःपालयतस्तस्यपुत्रानिवनिजौरसान् ॥ रिपुञ्जयस्यनाल्पोपिबभूवाधर्मसंग्रहः ॥ ४१ ॥ षाड्गुण्यवेदिनस्तस्यत्रिशक्त्यूर्जितचेतसः ॥ चतुरोपायवित्तस्यनरन्ध्रंविविदुःसुराः ॥ ४२ ॥बुद्धिमन्तोपिविबुधाविप्रतीकर्तुमुद्यताः ॥ मनागपिनसंशेकु

धर्म्म नहीं छोड़ते हैं ॥ ३९ ॥ जिससे अधर्मीलोग पहले धन व धान्य समृद्धि से बढ़ते हैं परन्तु अधर्मसेही जड़समेत जैसे होवे वैसेही अधोगति को जाते हैं ॥ ४० ॥ और अपनी ब्याही स्त्री में अपने बीजसे उपजे पुत्रकी नाईं प्रजाओं को पालते हुये व शत्रुओं के जीतनेवाले उस दिवोदास राजाके थोड़ा भी अधर्मका संग्रह नहीं हुवाहै ॥ ४१ ॥ जोकि मिलाप करना वैर वाहन आसन द्वैधीभाव और संश्रय इन छः गुणों के भावको जानता है व जिसका चित्त तीन शक्तियों से याने बुद्धि बल व तेजसे बढ़ाहै व अर्थ धर्म काम और मोक्ष इन चारों के उपायो में जिसका ज्ञानहै उसके छिद्रको देवलोग नहीं जानते हैं ॥ ४२ ॥ व उस राजाके अपकार करने को

उद्यतहुये बुद्धिमान् भी देव अपकार करने के लिये थोड़ा भी न समर्थ हुये ॥ ४३ ॥ क्योंकि उसके मण्डलमें सब पुरुष एक स्त्रीके व्रतवाले हैं व स्त्रियों में व्यभिचारिणी कोई नहीं है ॥ ४४ ॥ व अपढ़ा ब्राह्मण व शूरतासे हीन क्षत्रिय नहीं हुवाहै व धनोपार्जन कर्मों में मूर्ख वैश्य नहीं हुवाहै ॥ ४५ ॥ व उस दिवोदास राजाके देशमे शूद्र लोग द्विजोंकी अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवाके प्रति अनन्यवृत्तिवाले हैं याने उनके अन्य वृत्ति नहींहै ॥ ४६ ॥ व उसकी राज्यमे ब्रह्मचारीलोग अखण्डित ब्रह्मचर्य्य व गुरुकुलके अधीन व वेदपाठ लेने मे तत्पर हैं ॥ ४७ ॥ व उसकी राज्यमें गृहस्थलोग भी अतिथि पूजा धर्मके सेवक व धर्मशास्त्रों के पण्डित और सब ओर

रपकर्तुंतदीशितुः ॥ ४३ ॥ एकपत्नीव्रताःसर्वेपुमांसस्तस्यमण्डले ॥ नारीषुकाचिन्नैवासीदपतिव्रतधर्मिणी ॥ ४४ ॥ अनधीतोनविप्रोभूदशूरोनैवबाहुजः ॥ वैश्योनभिज्ञोनैवासीदर्थोपार्जनकर्मसु ॥ ४५ ॥ अनन्यवृत्तयःशूद्राद्विजशुश्रूषणम्प्रति ॥ तस्यराष्ट्रेसमभवन्दिवोदासस्यभूपतेः ॥ ४६ ॥ अविप्लुतब्रह्मचर्य्यास्तद्राष्ट्रेब्रह्मचारिणः ॥ नित्यंगुरुकुलाधीनावेदग्रहणतत्पराः ॥ ४७ ॥ आतिथ्यधर्मप्रवणाधर्मशास्त्रविचक्षणाः ॥ नित्यंसाधुसमाचारागृहस्थास्तस्यसर्वतः ॥ ४८ ॥ तृतीयाश्रमिणोयस्मिन्वनवृत्तिकृतादराः ॥ निःस्पृहाग्रामवार्तासुवेदवर्त्मानुसारिणः ॥ ४९ ॥ सर्वसङ्गविनिर्मुक्तानिर्मुक्तानिष्परिग्रहाः ॥ वाङ्मनःकर्मदण्डाढ्यायतयोयत्रनिःस्पृहाः ॥ ५० ॥ अन्येनुलोमजन्मानःप्रतिलोमभवाअपि ॥ स्वपारम्पर्यतोदृष्टंमनाग्वर्त्मनतत्यजुः ॥ ५१ ॥ अनपत्योनतद्राष्ट्रेधनहीनोपिकोपिन ॥ अवृद्धसेवीनोकश्चिदकाण्डमृतिभाक्चन ॥ ५२ ॥ नचाटानैववाचाटावञ्चकानोनहिंसकाः ॥ नपाखण्डानवैभण्डानरण्डानचशौण्डिकाः ॥ ५३ ॥ श्रुति

से अच्छे आचारवाले हैं ॥ ४८ ॥ व जहां वानप्रस्थलोग वनवृत्तिके आदरकर्त्ता व ग्रामवार्त्ताओं मे चाहसे हीन और वेदमार्ग में चलनेवाले हैं ॥ ४९ ॥ व जहां संन्यासीलोग सब संगसे छूटे व जीवन्मुक्त व स्पृहासे रहित व कुछ न ग्रहण करनेवाले व वचन, मन और कर्मके दण्डसे संयुतहैं ॥ ५० ॥ व अन्य अनुलोमज याने अंबष्ठ और करण आदि व सूत मागध और वैदेहादि प्रतिलोमज लोगोंने भी अपनी परंपरासे देखीहुई गलीको थोडा भी नहीं त्यागकियाहै ॥ ५१ ॥ व उसकी राज्य में पुत्रहीन, धनहीन व वृद्धो का न सेवनेवाला और अकालमृत्युवाला कोई नहीं है ॥ ५२ ॥ व चंचल वाचाल वंचक वधकर्त्ता पाखण्ड भण्ड रण्ड और मद्य बेचनेवाले लोग

नहीं हैं ॥ ५३ ॥ किन्तु सर्वत्र वेदोंका शब्द व क्षण क्षणमें शास्त्रोंका वाद व शुभ आलाप और सब ओरमें आनन्द से मंगल गीत होते हैं ॥ ५४ ॥ व वीणा और वंशीका बजाना मृदंगोंका मधुर शब्द होरहाहै व सोमयज्ञ में सोमपानके विना अन्यत्र मद्यपानकी सभा नहीं सुनपड़ी है ॥ ५५ ॥ व यज्ञके प्रथम समयमें पुरोडाश याने यज्ञके योग्य व अग्नि से पकायागया मांसखण्ड होम कियाजाता है तब कोई पुरुष उसका भोग लगानेवाला होताहै और अन्यत्र मांसभक्षी जन कहीं नहींहैं व जहां जुवारी, ऋण लेनेवाले और चोर भी नहीं हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु माता व पिताके पांवोंकी पूजा व देवोंकी पूजा व उपवास व व्रत व तीर्थ व श्रेष्ठ देवताओंकी उपासना यह पुत्रोंका धर्म

घोषोहिसर्वत्रशास्त्रवादःपदेपदे ॥ सर्वत्रसुभगालापामुदामङ्गलगीतयः ॥ ५४ ॥ वीणावेणुप्रवादाश्चमृदङ्गामधुरस्वनाः ॥ सोमपानंविनान्यत्रपानगोष्ठीनकर्णगा ॥ ५५ ॥ मांसाशिनःपुरोडाशेनैवान्यत्रकदाचन ॥ नद्दुरोदरिणोयत्रनाधमर्णानतस्कराः ॥ ५६ ॥ पुत्रस्यपित्रोःपदयोःपूजनन्देवपूजनम् ॥ उपवासोव्रतन्तीर्थंदेवताराधनम्परम् ॥ ५७ ॥ नारीणां भर्तृपदयोरर्चनन्तद्वचःश्रुतिः ॥ समर्चयन्तिसततंमनुजानिजमग्रजम् ॥ ५८ ॥ सपर्ययन्तिमुदिताभृत्याःस्वामिपदाम्बुजम् ॥ हीनवर्णैरग्रवर्णोवर्यतेगुणगौरवैः ॥ ५९ ॥ वरिवस्यन्तिभूयोपित्रिकालङ्काशिदेवताः ॥ सर्वत्रसर्वेविद्वांसःसमर्च्यन्तेमनोरथैः ॥ ६० ॥ विद्वद्भिश्चतपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियाः ॥ जितेन्द्रियैर्ज्ञाननिष्ठाज्ञानिभिःशिवयोगिनः ॥ ६१ ॥ मन्त्रपूतंमहार्हञ्चविधियुक्तंसुसंस्कृतम् ॥ वाडवानांमुखाग्नौचहूयतेऽहर्निशंहविः ॥ ६२ ॥ वापीकूपतडागा

है ॥ ५७ ॥ व पतिके पांवोंकी पूजा और उसके वचनका सुनना यह स्त्रियोंका धर्म है व वहांके लोग सदैव अपने जेठे भाईको भलीभांति से पूजते हैं ॥ ५८ ॥ व सेवक लोग आनन्दित होकर स्वामीके पदकमलकी पूजा करते हैं व हीन वर्णों करके गुणों की गुरुता से श्रेष्ठवर्ण कहा जाताहै याने सब लोग ब्राह्मणो को मानते हैं ॥ ५९ ॥ व काशी के देवों को वारंवार त्रिकालमें पूजतेही हैं व सर्वत्र सब पण्डितलोग मनोरथों से पूजेजाते हैं ॥ ६० ॥ व विद्वानों से तपस्वी तपस्वियो से जितेन्द्रिय जितेन्द्रियों से ज्ञानी और ज्ञानियों से शिवजी के योगीलोग पूजेजाते हैं ॥ ६१ ॥ और मन्त्रों से पवित्र व बहुत योग्य व विधिसमेत व अच्छीभांति से संस्कार कीगई हवि

ब्राह्मणों के मुखरूप अग्नि में होमीजाती है ॥ ६२ ॥ व जहां क्षण क्षणमें शुद्ध द्रव्यसंभारों से बावली कूप और तड़ागों के कर्त्ता लोग अनेक हैं ॥ ६३ ॥ व जिसकी राज्य में लोभी पशुघातकों के विना अनिन्द्य सेवासे सम्पन्न सब जातियां हृष्ट पुष्ट देख पड़तीहैं॥ ६४ ॥ इस भांतिसे उन्मेषपूर्वक विचार करतेहुये भी देवोंने सर्वत्र पवित्रता से बरतने शील उस राजाके थोड़े छिद्रको न पाया ॥ ६५ ॥ उसके बाद मन्त्रोंके जाननेवालो में श्रेष्ठ व धर्मिष्ठ उस राजामें अपकार करनेके चाही देवों से बृहस्पति जी बोले॥ ६६ ॥ कि जैसे वह राजा सन्धि विग्रह यान आसन संश्रय और द्वैधीभावको जानता है वैसे यहां भी कोई नहींहै ॥ ६७॥ हे देवताओ! जो उस तपोबली में

नामारामाणाम्पदेपदे ॥ शुचिभिर्द्रव्यसम्भारैःकर्तारोयत्रभूरिशः ॥ ६३ ॥ यद्राष्ट्रेहृष्टपुष्टाश्चदृश्यन्तेसर्वजातयः ॥ अनिन्द्यसेवासम्पन्नाविनामृगयुसौनिकान् ॥ ६४॥ इत्थंतस्यमहीजानेःसर्वत्रशुचिवर्तिनः॥ उन्मिषन्तोप्यनिमिषामना कछिद्रंनलेभिरे ॥ ६५ ॥ अथोवाचामरगुरुर्देवानपचिकीर्षुकान् ॥ तस्मिन्राजनिधर्मिष्ठेवरिष्ठेमन्त्रवेदिषु ॥ ६६ ॥ गुरुरुवाच ॥ सन्धिविग्रहयानास्तिसंश्रयन्द्वैधभावनम् ॥ यथासराजासंवेत्तिनतथात्रापिकश्चन ॥ ६७ ॥ उपायोप्येकएवास्तिचतुर्ष्विहदिवौकसः ॥ भेदोनामसचेत्सिध्येत्तपोबलिनितत्रहि ॥ ६८ ॥ तेनयद्यपिभूभर्त्राभूमेर्देवाविवासिताः ॥तथापिभूरिशस्तत्रसन्त्यस्मत्पक्षपातिनः ॥ ६९ ॥ कालोनिमिषमात्रोपियान्विनानसुखंव्रजेत् ॥ अस्माकमपितस्यापिसन्तितेतत्रमानिताः ॥ ७०॥ अन्तर्बहिश्चरानित्यंसर्वविश्रम्भभूमयः ॥ समागतेषुतेष्वत्रसर्वंनःसेत्स्यतिप्रियम् ॥ ७१ ॥ समाकर्ण्यचतेसर्वेत्रिदशागीष्पतीरितम् ॥ निर्णीतवन्तस्तस्यार्थंतस्मादन्तर्बहिश्चरान् ॥ अभिनन्द्याथतंसर्वेप्रोचुरित्थ

वह सिद्धहोवे तो यहां साम दान दण्ड और भेद इन चारों के बीचमें से भेदनामक एकही उपायहै ॥ ६८ ॥ कि यद्यपि उस राजाने देवोंको पृथिवी से निकालकर बाहर कियाहै तो भी वहां बहुतसे हमारे पक्षपाती हैं ॥ ६९ ॥ जिन विना निमेषमात्र भी हमारा समय सुखसे नहीं बीतता है वे उस राजा से भी आदरित होकर वहां हैं ॥ ७० ॥ जोकि सदैव बाहर और भीतरमें विचरनेवाले व सब विश्वासके पात्रहैं उनके यहां आतेही हमारा सब प्यारा होगा ॥ ७१ ॥ उस समय सब देवोंने बृहस्पतिका

वचन सुनकर उसके अर्थको किन्तु बाहर भीतरके चरोंको निर्णयकिया और उन बृहस्पतिको सब ओरसे आनन्दितकर सबोंने यह कहा कि इसी भांतिसे होवे ॥७२॥ तदनन्तर इन्द्रजी आगे टिकेहुये अग्निदेवको भलीभांति से बुलाकर अधिक आदरपूर्वक मधुर वचन बोले ॥ ७३ ॥ हे अग्ने! जो तुम्हारी वहां प्रतिष्ठित मूर्तिहै उसको शीघ्रही उस राजाकी राज्य से खींचलेवो ॥ ७४ ॥ क्योंकि उस मूर्त्तिके आतेही नष्टाग्निहुये प्रजालोग देव और पितरों के योग्य अन्नादि क्रियासे हीन होकर राजामें विरक्त होवेंगे याने उसमें स्नेह न करेंगे ॥ ७५ ॥ व जब राज्यकी कामना दुहनेवाली प्रजायें विरक्त होजावेंगी तब कष्ट से उपार्जन किया गया राजशब्द गतार्थ होगा ॥ ७६ ॥

म्भवेदिति ॥ ७२ ॥ ततःशक्रःसमाहूयवीतिहोत्रम्पुरःस्थितम् ॥ ऊचेमधुरयावाचाबहुमानपुरःसरम् ॥ ७३ ॥ हव्यवाहनयामूर्तिस्तवतत्रप्रतिष्ठिता ॥ तामुपासंहरत्त्विप्रंविषयात्तस्यभूपतेः ॥ ७४ ॥ समागतायान्तन्मूर्तौसर्वानष्टाग्नयःप्रजाः ॥ हव्यकव्यक्रियाशून्याविरजिष्यन्तिराजनि ॥ ७५ ॥ प्रजासुचविरक्तासुराज्यकामदुघासुवै ॥ कृच्छ्रेणोपार्जितोऽपार्थोराजशब्दोभविष्यति ॥ ७६ ॥ प्रजानांरञ्जनाद्राजायेयंरूढिरुपार्जिता ॥ तस्यांरूढ्यांप्रणष्टायांराज्यमेवविनङ्क्ष्यति ॥७७॥ प्रजाविरहितोराजाकोशदुर्गबलादिभिः॥समृद्धोप्यचिरान्नश्येत्कूलसंस्थइवद्रुमः ॥७८॥ त्रिवर्गसाधनाहेतुःप्राक्प्रजैवमहीपतेः ॥ क्षीणवृत्त्याम्प्रजायांवैत्रिवर्गःक्षीयतेस्वयम् ॥ ७९ ॥ क्षीणेत्रिवर्गेसंक्षीणागतिर्लोकद्वयात्मिका ॥ ८० ॥ इतीन्द्रवचनाद्वह्निरह्नायक्षोणिमण्डलात् ॥ आचकर्षनिजाम्मूर्तिंयोगमायाबलान्वितः ॥ ८१ ॥ निन्येनकेवलं

जिससे प्रजाओं के रंजन करने से जो यह रूढ़ि राजाशब्द उपार्जित है उस रूढ़िके नष्ट होतेही राज्य भी नष्ट होगा ॥ ७७ ॥ और कोश व कोट व बल याने सैन्यादिकों से समृद्ध भी प्रजाओं से रहित राजा नदी किनारे टिकेहुये वृक्षकी नांई शीघ्रही नष्ट होजावेगा ॥ ७८ ॥ क्योंकि पहले प्रजाही राजाके अर्थ धर्म और काम नाम त्रिवर्गसाधनाका कारण है इससे जब प्रजा वृत्तिसे क्षीण होती है तब त्रिवर्ग भी आपही क्षीण होजाताहै ॥ ७९ ॥ और त्रिवर्ग के क्षीण होतेही दोनों लोककी गति भलीभांति से क्षीण होजाती है ॥ ८० ॥ इस भांतिके इन्द्रके वचन से योगमाया बलसे संयुत अग्निने शीघ्रही पृथिवीमण्डल से अपनी मूर्तिको खींचलिया ॥ ८१ ॥ व

प्रभुतायुक्त अग्निदेवने इन्द्र के वचन से आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्निरूप त्रित्वको व अपनी शक्तिसे संयुत उदराग्निको भी न प्राप्तकिया ॥ ८२ ॥ और अग्निके स्वर्गलोकमें प्राप्त होतेही दुपहर में माध्याह्निक कर्मके करनेवाला होकर राजा शीघ्रही भोजनशालामें प्रवेश करताभया ॥ ८३ ॥ तब वारंवार डरसे थरथरातेहुये पाक-शालाके अधिकारी लोगोंने धीरेसे भूंखसे विकल भी राजाको यह जनाया ॥ ८४ ॥ सूपकार बोले कि, हे सूर्य्य से अधिकतेजस्विन् ! हे प्रताप से अग्निके जीतनेवाले ! हे संग्रामके पण्डित ! हम लोग असमयमे भी आपसे कुछ विज्ञापना करनेके चाही हैं ॥ ८५ ॥ हे राजन् ! जो आप हमको अभयदक्षिणा दो तो हाथ जोडेहुये हम विज्ञा-

त्रेतांजाठराग्निमपिप्रभुः ॥ वज्रिणोवचसावह्निर्निजशक्तिसमन्वितम् ॥ ८२॥ वह्नौस्वर्लोकमापन्नेजातेमध्यन्दिनेनृपः॥ कृतमाध्याह्निकस्तूर्णंप्राविशद्भोज्यमण्डपम् ॥ ८३ ॥ महानसाधिकृतयोवेपमानास्ततोमुहुः ॥ क्षुधार्तमपिभूपालमिदंमन्दंव्यजिज्ञपन् ॥ ८४ ॥ सूपकाराऊचुः ॥ अत्यहस्करतेजस्कप्रतापविजितानल ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामाःस्मोप्यकाण्डेरणपण्डित ॥ ८५ ॥ यदिविश्राणयेद्राजन्भवानभयदक्षिणाम् ॥ तदाविज्ञापयिष्यामःप्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ ८६ ॥ भ्रूसञ्ज्ञयाकृतादेशाःप्रशस्तास्येनभूभुजा ॥ मृदुविज्ञापयाञ्चक्रुःपाकशालाधिकारिणः ॥ ८७ ॥ नजानीमोवयंनाथत्वत्प्रतापभयार्दितः ॥ कुसृत्याथकयाविद्वान्नष्टोवैश्वानरःपुरात् ॥ ८८ ॥ कृशानौकृशताम्प्राप्तेकथम्पाकक्रियाभवेत् ॥ तथापिसूर्यपाकेनसिद्धापक्तिर्हिकाचन ॥ ८९ ॥ प्रभोरादेशमासाद्यतामिहैवानयामहे ॥ मन्यामहेचभूजानेपक्तिरद्यतनीशुभा ॥ ९० ॥ श्रुत्वान्धसिकवाक्यंसमहासत्त्वोमहामतिः॥नृपतिश्चिन्तयामासदेवानांवैकृतंत्विदम् ॥ ९१ ॥ क्षणंसंशी

पना करेंगे ॥ ८६ ॥ तब प्रसन्नमुखवाले राजाने भौंहों की सञ्ज्ञा से किया आज्ञा जिनके लिये उन पाकशालाधिकारियों ने कोमल वचन से जनाया ॥ ८७ ॥ कि हे नाथ ! हमलोग यह नहीं जानते हैं कि आपके प्रताप के डरसे पीडितहुई अग्नि किसी कुचाली से नगर मे नष्ट होगई है ॥ ८८ ॥ और अग्निके नाशको प्राप्तहोतेही पाकक्रिया कैसे होवे तो भी सूर्य्य के पाकसे कोई रसोई सिद्ध कीगई है ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! स्वामीकी आज्ञाको प्राप्त होकर हम उसको यहा आनते है और मानते हैं कि आजका हुत्रा पकाना शुभहै ॥ ९० ॥ इसप्रकार से पाककर्त्ताओंका वचन सुनकर बड़े बलवान् व बड़े बुद्धिमान् उस राजाने चिन्तना किया कि यह देवताओंका

ही कर्म्म है ॥ ९१ ॥ व वहां क्षणभर भलीभांति से विचारतेहुये राजाने देखा कि अग्निने केवल घरको नहीं त्यागदिया बरन उदरकी गुहाको ॥ ९२ ॥ भी त्याग दियाहै और वह अग्नि इस लोकरो स्वर्गको चलीगई है परन्तु अग्निके जानेसे यहांभी हमारी क्या हानि होगी ॥ ९३ ॥ बरन विचार करने से उन देवताओं कीही हानि है क्योंकि क्या मैंने उनके बलसे इस राज्यको अंगीकार कियाहै ॥ ९४ ॥ जोकि ब्रह्माजीने बड़ी गुरुता से दियाहै इस भांतिसे विचार करतेहुये उस भूलोकेन्द्रके ॥ ९५ ॥ द्वारमें देशवासी मनुष्यों के साथ काशीपुरीके लोग भलीभांति से आये तदनन्तर द्वारपालने राजाकी आज्ञासे उनको भीतर प्रवेश कराया ॥ ९६ ॥ और उन्होने

लयंस्तत्रददर्शतपसोबलात् ॥ नकेवलञ्जहौगेहंहुतभुक्चोदरींदरीः ॥९२॥ अप्यहासीदितोलोकाज्जगामचसुरालयम् ॥ भ वत्विहहिकाहानिरस्माकंज्वलनेगते ॥ ९३ ॥ तेषामेवविचाराच्चहानिरेषासुपर्वणाम् ॥ तद्बलेनचकिंराज्यंमयेदमुररीकृ तम् ॥ ९४ ॥ पितामहेनमहतोगौरवात्प्रतिपादितम् ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यमध्यलोकशतक्रतोः ॥ ९५ ॥ पौराःसमाग ताद्वारिसहजानपदैर्नरैः ॥ द्वास्थेनचाज्ञयाराज्ञस्ततस्तेन्तःप्रवेशिताः ॥ ९६ ॥ दत्त्वोपदंयथार्हन्तेप्रणेमुःक्षोणिवज्रिण म् ॥ केचित्सम्भाषिताराज्ञादरसोदरयागिरा ॥ ९७ ॥ केचिच्चसमुदादृष्ट्याकेचिच्चकरसंज्ञया ॥ विसर्जितासनाराज्ञाबहु मानपुरःसरम् ॥९८॥ तेजिरेभेजिरेसर्वैरत्नार्चिःपरिसेविते ॥विजितामोदसन्दोहेसुरानोकहसौरभैः ॥ राज्ञःशतशलाकस्य च्छत्रस्यच्छाययाशुभे ॥ ९९ ॥ विशाम्पतिरथोवाचतन्मुखच्छाययेरितम् ॥ विज्ञायतदभिप्रायमलम्भीत्यापुरौकसः ॥ १०० ॥ विकारकारिभिर्लेखैर्यदिनीतोऽनलोभुवः ॥ एतावतैवकिंसिद्ध्येन्मयितेषाम्पराभवः ॥ १ ॥ चिकीर्षुरहमेवासं

भेंटदेकर भूमीन्द्रके प्रणाम किया उस समय राजाने किसीको आदरसोदरवचनसे बुलाया ॥ ९७ ॥ व राजाने अधिक आदरपूर्वक किसीको आनन्द समेत दृष्टिसे और किसीको हाथों की सञ्ज्ञा से आसन दिया ॥ ९८ ॥ व वे सबलोग उस आंगन में आसनोंपर बैठगये जोकि रत्नोंकी ज्योतिसे सब ओरसे सेवित व देववृक्षोंके सुगन्धो से अन्य सुगन्धसमूहको जीते व राजाके सौ शलाका (डांड़ी) वाले छत्रकी छाया से शुभहै ॥ ९९ ॥ उसके बाद उन जनों के मुखोंकी कान्ति रो सूचित कियेगये उनके अभिप्रायको जानकर राजा बोला कि हे पुरवासियो ! डरसे हीन होवो ॥ १०० ॥ और जो विकारकर्त्ता देवोंने अग्निको पृथिवी से हरकर आनलिया है तो इतने

सेही उनका किया पराभव याने हार क्या मुझमें सिद्ध होवे ॥ १ ॥ हे पुरवासियो ! मंगल है कि मैंही पहले यह कार्य्य करना चाहता रहाहूं परन्तु बहुत कालसे परखा जाताहुवा वह उनसे आज स्मरण कराया गयाहै ॥ २ ॥ और जो अग्निगई तो कल्याण हुवा अब वायुदेव भी यहांसे चलाजावे व चन्द्रमा और सूर्य्य के साथ वरुण भी शीघ्रही यहां से चलाजावे ॥ ३ ॥ क्योंकि मैंही तपोवनसे देशवासियों के आनन्दार्थ सब सस्यों की समृद्धिका दाता मेघ होऊंगा ॥ ४ ॥ व मैंही तपस्याके योग बलसे अपनाको तीन भांतिसे परिकल्पित करके अग्निरूप से पाक यज्ञका बड़ा दाहक होऊंगा ॥ ५ ॥ व जोकि बाहर और भीतर में दो भांतिसे वर्त्तमान है उस वायुकी

पौराःकार्यमिदम्पुरा ॥ परंह्युपेक्षितप्रायन्दिष्ट्यातैःस्मारितञ्चिरात् ॥ २ ॥ गतोऽनलोऽभवद्भद्रंजगत्प्राणोपियात्वितः ॥ वरुणःपुष्पवन्ताभ्यामविलम्बम्प्रयात्वितः ॥ ३ ॥ अहमेवहिपर्जन्योभविष्यामितपोबलात् ॥ मुदेजनपदानाञ्चसर्वस स्यसमृद्धिदः ॥ ४ ॥ तपोयोगबलेनाहमात्मानम्परिकल्प्यच ॥ त्रिधावह्निस्वरूपेणपक्तीष्टिव्युष्टिकृत्तमः ॥ ५ ॥ अन्त र्बहिश्चयोद्वेधानभस्वत्पदवीन्दधत् ॥ सर्वेषामेववेत्स्यामित्वन्तःकरणचेष्टितम् ॥ ६ ॥ विधायचाम्भसीम्मूर्तिंसर्वजीवैक जीवनीम् ॥ प्रजाःसञ्जीवयिष्यामिकिञ्जडैर्विषयेमम ॥ ७ ॥ यदाखेतमसापौराग्रस्येतेशशिभास्करौ ॥ तदानकिंविना ताभ्यांजीवामःक्षितिमण्डले ॥ ८ ॥ श्रियञ्चान्द्रमसीम्प्राप्यह्लादयिष्याम्यहम्प्रजाः ॥ निशाचरेणकिमिहक्षयिणाचक लङ्किना ॥ ९ ॥ अस्मत्कुलेमूलभूतोभास्करोमान्यएवनः ॥ सतिष्ठतुसुखेनात्रयातायातंकरोतुच ॥ १० ॥ सएकोजगता

पदवीको धारताहुवा मै सबकेही अन्तःकरणके कर्मको जानूंगा ॥ ६ ॥ व सब जीवो के मुख्य जियानेवाली जलमयी वरुणमूर्ति बनकर प्रजाओंको जिलाऊंगा मेरे राज्य में जड़ जलादिको से क्याहै ॥ ७ ॥ हे पुरवासियो ! जब आकाश मे चन्द्रमा और सूर्य्य राहुसे ग्रसे जातेहैं तब हमलोग उन विना क्या भूमिमण्डल में नहीं जीते हैं ॥ ८ ॥ व मैं चन्द्रमाकी शोभाको प्राप्त होकर प्रजाओं को आनन्दित करूंगा इससे यहां क्षयी व कलंकी चन्द्रमा से क्याहै ॥ ९ ॥ व हमारे कुलमें मूलभूत सूर्य्य हम लोगों के मान्यही है वह सुखसे यहांरहें और आना जाना कियाकरें ॥ १० ॥ क्योंकि वह जगत्के एक आत्मा व विशेषसे हमारे कुलके देवता हैं और वह अपकार करने

को नहीं जानते हैं यह उनका उत्तमव्रतहै ॥ ११ ॥ इसभांति से भूपतिके वचन अमृतसमूहको दोनों कानोंके द्वारा सबओरसे पीकर विकसितमुख व मानसी व्यथा से हीन अन्तःकरणवाला होकर पुरवासियोंका समूह अपने अपने घरको गया ॥ १२ ॥ और इस त्रिलोक में तपस्या से क्या असाध्यहै याने कुछ नहीं इससे वह राजा भी उस पूर्वोक्त वचनको वैसेहीकर अग्नि व सूर्य्य से अधिक तेजको धारताहुवा देवों के हृदयमें शल्य (कील) के समान उच्चता से होताभया ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्द पुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेमिट्ठिनाथत्रिवेदिविरचितेदिवोदासप्रतापवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मात्माविशेषात्कुलदेवता॥ सोपकर्तुंनवेत्त्येवतस्येदंव्रतमुत्तमम् ॥ ११ ॥ इतिनरपतिवाक्सुधारसौघंश्रुतिपुटकैःपरिपीयपौरवर्गः ॥ विकसितवदनाम्बुजोजगामनिजनिजमालयमाधिमुक्तचित्तः ॥ १२॥ क्षितिपतिरपितत्तथाविधायतपसोसाध्यमिहास्तिकिंत्रिलोक्याम् ॥ अतिवह्न्यर्कमसौदधच्चतेजोद्युसदांशल्यमिवोच्चकैर्बभूव ॥ ११३ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदिवोदासप्रतापवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच॥ अथमन्दरकन्दरोदरोल्लसदसमद्युतिरत्नमन्दिरे ॥ परितःसमधिष्ठितामरेनिजशिखरैर्वसनीकृताम्बरे॥ १ ॥ निवसञ्जगदीश्वरोहरःकृशरजनीशकलामनोहरः ॥ लभतेस्मनशर्मशङ्करःप्रसरत्काशिवियोगजज्वरः॥२॥ विरहानलशान्तयेतदासमलेपित्रिपुरारिणापियः ॥ मलयोद्भवपङ्कएषसम्प्रतिपेदेह्यधुनापिपांसुताम् ॥ ३ ॥ परितापह

दो० । चवालीस अध्याय में काशीविरही शम्भु । योगिनिगण प्रेरण कियो नृपति निकासन दम्भु ॥ अथ (बहुत काल टिकनेके बाद) जोकि मन्दराचलकी कन्दरा के भीतर जगमगाते हुये अनूप छबीले रत्नोंवाला मन्दिरहै व जिसमें सब ओरसे देवतालोग टिके हैं व वस्त्र कियागया है आकाश जिसमें याने बहुत ऊंचाहै उसमें ॥ १ ॥ बसतेहुये, जगदीश्वर भवभयहर व चन्द्रकला धरनेसे मनोहर शंकरजीने पसरेहुये काशीके वियोगजनित ज्वरसे युक्तहोकर जब सुखको न पाया ॥ २ ॥ तब महादेवजीने विरहाग्निकी शान्तिके लिये जिस चन्दन कीचको लेपनकिया यह अब भी भस्मके भावको प्राप्तभयाहै ॥ ३ ॥ व महेश्वरने सब ओरसे ताप हरनेवाले कोमल

कमलों के जिन मृणालोंको भी कंकणकिया उनको जो सर्पकहा वह सत्य होगया यह महेशकी इच्छा आश्चर्य्य है ॥ ४ ॥ और यह विचित्रहै कि देवोंने क्षीरसागरको मथकर कोमल साररूप जिस चन्द्रमाको निकाला वह काशीके विरहसे तपे महेश्वरके माथेकी उष्णतासे क्षीणदेह होकर कृश होगया याने कलामात्र शेष रहताभया ॥ ५ ॥ व जिससे उस समय काशीवियोगसे उत्पन्न तापवाले महादेवजी विस्तारयुक्त मस्तक जटाकुंजके कोणमें जिस तापहारिणी गंगाको धारते भये हैं उसको अब भी नहीं त्यागते हैं ॥ ६ ॥ परन्तु सभागत देवोने भी बलात्कार से इन्द्रियोंको वशकियेहुये भी शंकरजी को उस बड़े विरहके वशमें गयेभये न जाना क्योंकि वह अप्रकट

राणिपद्मिनीनांमृदुलान्यपिकङ्कणीकृतानि ॥ गदितानियदीश्वरेणसर्पास्तदभूत्सत्यमहोमहेश्वरेच्छा ॥ ४ ॥ यदुदुग्धनिधिंनिमथ्यदेवैर्मृदुसारःसमकर्षिपूर्णचन्द्रः ॥ सबभूवकृशोवियोगतप्तेश्वरमूर्धोष्णपरिक्षरच्छरीरः ॥ ५ ॥ यददीधरदेषजाततापःपृथुलेमौलिजटानिकुञ्जकोणे ॥ परितापहरांहरस्तदानीन्द्युनदीन्तामधुनापिनोज्जिहीते ॥ ६ ॥ महतोविरहस्यशङ्करःप्रसभन्तस्यवशीवशङ्गतः ॥ विविदेनसुरैःसदोगतैरपिसंवीतसुतापवेष्टितः ॥ ७ ॥ अतिचित्रमिदंयदात्मनाशुचिरप्येषकृपीटयोनिना ॥ स्वपुरीविरहोद्भवेनवैपरिताप्येतजगत्रयेश्वरः ॥ ८ ॥ निजभालतलङ्कलानिधेःकलयानित्यमलङ्करोतियः ॥ सतदीश्वरमप्यतापयद्विधुरेकोविपरीतएवतु ॥ ९ ॥ गरलङ्गलनालिकातलेविलसेदस्यनतेनतापितः ॥ अमृतांशुतुषारदीधितिप्रचयैरेवतुतापितोऽद्भुतम् ॥ १० ॥ विलसद्धरिचन्दनोदकच्छटयातद्विरहापनुत्तये ॥

तापसे घिरेहुये थे ॥ ७ ॥ व यह अत्यन्त अद्भुतहै जोकि तीनलोकके स्वामी शुद्ध भी यह शिवजी अपनी पुरीके विरहसे उत्पन्न व आठ मूर्तियो में अपनी मूर्ति अग्निसेही तपाये जावें ॥ ८ ॥ और यह आश्चर्य्य है कि जो महादेवजी जिस चन्द्रमाकी कलासे अपने माथको सदैव भूषित करते हैं उन ईश्वरको भी उस विपरीत हुये एक चन्द्रमाने भी तपाया ॥ ९ ॥ व जिन इन शंकरके कण्ठ मे जो विष विराजमानहै वह उससे न तपायेगये बरन चन्द्रमाकी शीतल किरणसमूहोंनेही उनको संतप्तकिया यह अद्भुत है ॥ १० ॥ व अन्य आश्चर्य्य को सुनो कि जो शिवजी पसरतेहुये सर्पफणाओ से उत्पन्न विषों से न तप्तहुये उन्होंने उस काशीपुरी के विरहके विनाश के

लिये वक्षःस्थल में लगाईगई शोभायमान हरिचन्दन के जलकी छटासे तापको अनुभवकिया ॥ ११ ॥ और यह भक्तभयहारी विश्वनाथजी माला व सर्प सूती व चांदी इत्यादि दृष्टान्तों से सिद्धहुये सकल संसार भ्रमको संहार करते हैं इससे इनके स्पष्ट मालामें भी महासर्पका सम्भवरूप जो भ्रमहै यह अद्भुत है ॥ १२ ॥ व सुमिरनेमात्र की गलीमें गये याने स्मरणके विषयहुये भी जो जन्म से हीन महेशजी तीन भांतिकी तापको बहुतही विनाश करते हैं वह काशीके विरहसे संतप्तहोकर अपनामें प्राप्त यह कुछ कहनेलगे ॥ १३ ॥ कि जो काशीसे भलीभांतिसे आईहुई बयार भी मेरे अंगोंमें लगे तो विरह से थरथराना शान्तिको प्राप्तहोवे अन्यथा हिमसमूहके संस्पर्श

हृदयाहितयाप्यद्रूयतप्रसरद्भोगिफटाभवैर्नतु ॥ ११ ॥ सकलभ्रममेषनाशयेत्स्रगहित्वाद्यपदेशजंहरः ॥ इदमद्भुतम स्ययद्भ्रमःस्फुटमाल्येपिमहाहिसम्भवः ॥ १२ ॥ स्मृतिमात्रपथङ्गतोपियस्त्रिविधन्तापमपाकरोत्यलम् ॥ सहिकाशिवि योगतापितःस्वगतङ्किञ्चिदजल्पदित्यजः ॥ १३ ॥ अपिकाशिसमागतोऽनिलोयदिगात्राणिपरिष्वजेन्मम ॥ दवथुःप रिशान्तिमेतितन्नहिमानीपरिगाहनैरपि ॥ १४ ॥ अगमिष्यदहोकथंसतापोननुदक्षाङ्गजयायणधितः ॥ ममजीवातुल ताभ्फटित्यलंह्यभविष्यन्नहिमाद्रिजायदि ॥ १५ ॥ नतथोज्झितदेहयातयाममदक्षोद्भवयामनोऽदुनोत् ॥ अविमुक्तवि योगजन्मनापरिदूयेतयथामहोष्मणा ॥ १६ ॥ अयिकाशिमुदाकदापुनस्तवलप्स्येसुखमङ्गसङ्गजम् ॥ अतिशीतलिता नियेनमेऽद्भुतगात्राणिभवन्तितत्क्षणात् ॥ १७ ॥ अयिकाशिविनाशिताघसङ्घेतवविश्लेषजआशुशुक्षणिः ॥ अमृतां शुकलामृदुद्रवैरतिचित्रंहविषेववर्धते ॥ १८ ॥ अगमन्ममदक्षजावियोगजोदवथुःप्राग्घिमवस्तुतोषधेन ॥ अधुनाखलु

से भी न शान्त होगा ॥ १४ ॥ और खेद व शंकाहै कि जो इससमय निश्चयकर समर्थ व मेरे जीवनकी ओषधि लतारूप पार्वती न होती तो दक्षपुत्री सतीसे जो संताप बढाया गयाथा वह कैसे चलाजाता ॥ १५ ॥ व जैसे काशीके विरह से उत्पन्न महाविरहाग्नि से मेरा मन संतप्तहै वैसे देह त्यागनेवाली उस दक्षकुमारी से नहीं तप्तभया ॥ १६ ॥ हे काशि ! अब कब फिर आनन्द से तेरे अंगसंग से उपजेहुये सुखको पाऊंगा जिससे उसी क्षणमें मेरे अद्भुत अंग अत्यन्त शीतल होवेंगे ॥ १७ ॥ हे पापराशिविनाशिनि, काशि ! जैसे होमकी अग्नि हविसे बढ़ती है वैसेही तेरे वियोगसे उत्पन्नहुई अग्नि चन्द्रकलाके शीतल अमृत से भी बढ़ती है यह बड़ा विचित्र

है ॥ १८ ॥ व पहले सती के विरहसे उपजाहुवा मेरा कम्प पार्वतीरूप औषध से चलागया था परन्तु मैं जो इस समय में शीघ्रही काशीको नहीं देखताहूं तो निश्चयकर शान्तिको नहीं प्राप्त होताहूं ॥ १९ ॥ उससमय बुद्धियों की माता पार्वतीने मनसे ऐसे कहतेहुये व गुप्त तापसे विकल इन शिवजी को कैसे वियोगी माना ॥ २० ॥ किन्तु इन अर्धांगी प्यारी पार्वतीने भी नहीं जाना वियोगका कारण जिनका वह भक्तजनोंकी तापके विदारनेवाले शिवजी वचनों से सेयेगये ॥ २१ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे सर्वग ! हे विलसद्योग ! आपके हाथमें सब कुछ है इससे आपका क्या विरहहै और आश्चर्य्य है कि आपकी विभूति ब्रह्मादि देवों के लिये ऐश्वर्य्य देनेवाली

नैवशान्तिमीयांयदिकाशींनविलोकयेहमाशु ॥ १९ ॥ मनसेतिगृणंस्तदाशिवःसुतरांसंभृततापवैकृतः ॥ जगदम्बिकया धियाञ्जनन्याकथमप्येषवियुक्तइत्यमानि ॥ २० ॥ प्रिययावपुषोर्धयानयाप्यपरिज्ञातवियोगकारणः ॥ वचनैरुपचर्यतेस्म सप्रणतप्राणिनिदाघदारणः ॥ २१ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ तवसर्वगसर्वमस्तिहस्तेविलसद्योगवियोगएवकस्ते ॥ तवभूतिरहोवि भूतिदात्रीसकलापत्कलिकापिभूतधात्री ॥ २२ ॥ त्वदनीक्षणतःक्षणाद्विभोप्रलयंयान्तिजगन्तिशोच्यवत् ॥ च्यवतेभव तःकृपालवादितरोपीशनयस्त्वयोङ्कृतः ॥ २३ ॥ भवतःपरितापहेतवोनभवन्तीन्दुदिवाकराग्नयः ॥ नयनानियतस्त्रिने त्रतेऽमीप्रणयिन्यस्तिलसज्जलाचमौलौ ॥ २४ ॥ भुजगाभुजगाःसदैवतेऽमीनविषंसंक्रमतेचनीलकण्ठ ॥ अहमस्मि चवामदेववामातववामंवपुरत्रचित्तयुक्ता ॥ २५ ॥ इतिसंस्तुतिसम्बीजजनन्याभिहितेहिते ॥ गिरांनिगुम्फेगिरिशोवकुम

व सब विपत्तिहारिणी व सब प्राणियों की धारिणीभी है ॥ २२ ॥ हे विभो ! हे ईश ! आपकी कृपादृष्टि न होनेसे शोच्यके समान सब जगत् क्षणमें प्रलयको प्राप्त होतेहैं व जोकि आपकी कृपाके लेशमात्र से नहीं अंगीकार कियागया है वह अन्य ब्रह्मादि भी नीचे गिरपड़ता है ॥ २३ ॥ हे त्रिनयन ! जिससे चन्द्रमा व सूर्य्य व अग्नि ये तीनों आपके नेत्रहैं व सोहत जलवाली प्यारी गंगा भी मस्तकमें है इससे ये सब आपके परितापके कारण नहीं होते हैं ॥ २४ ॥ हे नीलकण्ठ ! यहां वे प्रसिद्ध शेषादि ये सर्प भी आपके भुजदण्डमें मण्डनहैं इससे विष आपमें नहीं प्रभुता करसक्ता है और हे वामदेव ! चित्तानुसारिणी व मनोहर रूपवाली मैं आपकी वामदेहहूं ॥ २५ ॥

इस भांतिसे जब संसार के कारण मूलाज्ञान या महत्तत्त्वकी माताने वचनरत्नन से गूंथेहुये हितको कहा तब महादेवजीने भी बोलने के लिये वचनको ग्रहणकिया॥२६॥ श्रीशिवजी बोले कि, हे काशि! पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश चन्द्रमा सूर्य्य और आत्मा इन आठ मूर्तियोंवाला व जगत्कर्त्ता व सत्स्वरूप व प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति ऐतिह्य अनुपलब्धि और सम्भव इन आठ प्रमाणोंका रूप मैं भक्तभयहारी महादेव पार्वतीकरके काशीसे हराहुवा याने तुझसे संतापित जाना गयाहूं यह निश्चय है ॥ २७ ॥ तदनन्तर श्रीपार्वतीजीने संसारसे परे व मुक्ति देनेवाली व बालकाल में सखीभूतहैं उन उन वनोकी लतायें जिसमें उस काशीका प्रस्ताव किया ॥ २८ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे कामविनाशन, शिव! जोकि आकाशमें मिलित होताहै जल जिसमें उस प्रलयमें भी त्रिशूल के ऊपर धरी रहती है व जो कि

प्याददेगिरम् ॥ २६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अयिकाशीत्यष्टमूर्तिर्भवोभावाष्टकोभवत् ॥ सत्वरंशिवयाज्ञायिध्रुवङ्काश्याहृतोहरः ॥ २७ ॥ अथबालसखीभूततत्तत्काननवीरुधम् ॥ शिवाप्रस्तावयाञ्चक्रेविमुक्तांमुक्तिदाम्पुरीम् ॥ २८ ॥ पार्वत्युवाच ॥ गगनतलमिलितसलिलेप्रलयेपिभवत्रिशूलपरिविधृताम् ॥ कृतपुण्डरीकशोभांस्मरहरकाशीम्पुरींयावः ॥ २९ ॥ धराधरेन्द्रस्यधरातिसुन्दरानमान्तथास्यापिधिनोतिधूर्जटे॥ धरागतापीहनयाध्रुवन्धरापुरीधुरीणातवकाशिकायथा॥३०॥ नयत्रकाश्याङ्कलिकालजम्भयंनयत्रकाश्यांमरणात्पुनर्भवः॥ नयत्रकाश्याङ्कलुषोद्भवम्भयङ्कथंविभोसानयनातिथिर्भवेत् ॥ ३१ ॥ किमत्रनोसन्तिपुरःसहस्रशःपदेपदेसर्वसमृद्धिभूमयः ॥ परंनकाशीसदृशीदृशोःपदंकचिद्गतामेभवताश

कमलों की शोभा करनेवाली है उस काशीपुरीको मैं और हे धूर्जटे! जोकि इस लोकमें पृथिवीपर प्राप्त भी श्रेष्ठ तुम्हारी काशीपुरी निश्चय से भूमि नहीं है याने आपके त्रिशूलमें धरीहै वह जैसे मुझको संतापित करती है वैसे इस पर्वतराज मेरे पिता हिमवान्‌की भी अतिशय सुन्दर भूमि नहीं संतापित करती है ॥ २९।३० ॥ हे विभो! जिस काशी में कलिकाल से उत्पन्नहुवा डर नहीं है व जिस काशी में मरने से फिर जन्म नहीं होताहै और जिस काशीमें पापसे उपजा डर नहीं है वह आंखोंका विषय कैसे होवे ॥ ३१ ॥ हे शिव! मैं आपकी शपथ करतीहूं कि इस पृथिवी के बीच स्थान स्थानमें सब समृद्धिकी भूमि अन्य हजारो पुरियां नहीं है किन्तुहैं परन्तु काशीके समान पुरी

मेरे नेत्रो के विषय में कहीं नहीं प्राप्तभई है ॥ ३२ ॥ हे पुरशत्रो ! सब आश्चर्य्यों की स्थान सैकड़ों पुरियां क्या स्वर्ग में नहींहैं परन्तु वे पुरियां संसार से द्वेष राखनेवाले आपकी पुरीके एक देशको प्राप्तहोकर तृणके समान होजाती है ॥ ३३ ॥ इससे काशीके विरहसे उत्पन्नहुआ ज्वर केवल आपकोही नही पीड़ा करताहै किन्तु इस मन्दराचलमें जैसे आपको बाधताहै वैसे मुझको भी बाधा करताहै और उस तापकी शान्तिकेलिये वह पुरी अथवा मेरी जन्मभूमि यह एकही उपाय इसलोकमें है ॥ ३४ ॥ और हे ईश्वर ! सब संतापके विघातकी व सब ओरसेप्रशान्तिकी देनेवाली काशीपुरीको प्राप्तहोकर मैंने अपनी जन्मभूमि से उत्पन्न तापको नहीं जानाहै ॥ ३५ ॥ हे आनन्ददा-

पेशिव ॥ ३२ ॥ त्रिविष्टपेसन्तिनकिम्पुरःशतंसमस्तकौतूहलजन्मभूमयः ॥ तृणीभवन्तीहचताःपुरःपुरःपदम्पुरारेभवतो भवद्विषः ॥ ३३ ॥ नकेवलङ्काशिवियोगजोज्वरःप्रबाधतेत्वान्तुतथायथात्रमाम् ॥ उपायएषोत्रनिदाघशान्तयेपुरीतुसा वाममजन्मभूरथ ॥ ३४ ॥ मयानमेनेममजन्मभूमिकावियोगजन्मापरिदाघईशितः ॥ अवाप्यकाशींपरितःप्रशान्ति दांसमस्तसन्तापविघातहेतुकाम् ॥ ३५ ॥ नमोक्षलक्ष्म्योत्रसमक्षमीक्षितास्तनूभृताकेनचिदेवकुत्रचित् ॥ अवैम्यहंश मंदसर्वशर्मदासरूपिणीमुक्तिरसौहिकाशिका ॥ ३६ ॥ नमुक्तिरस्तीहतथासमाधिनास्थिरेन्द्रियत्वोज्झिततत्समाधि ना ॥ क्रतुक्रियाभिर्नवेदविद्ययायथाहिकाश्याम्परिहायविग्रहम् ॥ ३७ ॥ ननाकलोकेसुखमास्तिताहशंकुतस्तुपाता लतलेऽतिसुन्दरे ॥ वार्तापिमर्त्येसुखसंश्रयाकवाकाश्यांहियादृक्तनुमात्रधारिणि ॥ ३८ ॥ क्षेत्रेत्रिशूलिन्भवतोऽविमुक्तेवि

यक ! इसजगत्में किसीप्राणीने भी मोक्षकी लक्ष्मियोंको कहीं नहीं प्रत्यक्ष देखा और मैं यह जानतीहूं कि यह सबके आनन्द देनेवाली काशीही रूपधारिणी मुक्तिहै ॥ ३६ ॥ व जैसे काशी में देहको छोड़कर याने मरने से मुक्तिहै वैसे इस जगत् में चंचल इन्द्रियों की वृत्तिसे ब्रह्मसमाधानसे हीन योग व यज्ञ क्रिया व उपासनादि वेद विद्यासे भी नहीं है ॥ ३७ ॥ काशीमेंही देहधारी मात्रको जैसा सुखहै वैसा स्वर्गलोकमें नही है व अत्यन्त सुन्दरतासंयुक्त पातालतल में कहांहै और मनुष्यलोकमें भी वैसी सुखाधार वार्त्ता कहां है ॥ ३८ ॥ हे त्रिशूलिन्, शिव ! जोकि प्राणिश्रेष्ठ आपकी मुक्तिलक्ष्मी से कभी भी न हीनहुये काशीक्षेत्रमें मनको जोड़ताहै वह सदैव षडंग

योगकोही जोड़ता है ॥ ३९ ॥ हे शिव ! काशी में जाकर क्षणभर आपमें नेत्रोंको स्थिर कर मनुष्यों को जैसी योगसिद्धि सुखसे मिलती है वैसी इसलोकमें पडंगयोगसे भी नहीं है ॥ ४० ॥ व अज्ञान के विस्तारवाला याने आत्मानात्मविवेक से रहित पशुत्व भी श्रेष्ठ है परन्तु बहुतसी बुद्धियों का पात्र मनुष्यत्व नहीं श्रेष्ठ है क्योंकि जिसका उदय काशी के न देखने से निष्फलहै वह कमलपत्र में जलबिन्दु के समान चंचलहै यहां यह भावहै कि काशीवासी व काशी के दर्शनपानेवालों का जीवन सफलहै ॥ ४१ ॥ हे शिव ! काशी के दर्शन करनेवाले नेत्र कृतार्थ हैं व काशीवासी शरीर कृतार्थ है व जिससे काशी का आश्रय कियागया वह मन कृतार्थ

मुक्तिलक्ष्म्यानकदापिमुक्ते ॥ मनोपियःप्राणिवरःप्रयुङ्क्तेषडङ्गयोगंससदैवयुङ्क्ते ॥ ३९ ॥ षडङ्गयोगान्नहितादृशीन्दृभिःशरीरसिद्धिःसहसात्रलभ्यते ॥ सुखेनकाशींसमवाप्ययादृशीदृशौस्थिरीकृत्यशिवत्वयिक्षणम् ॥ ४० ॥ वरंहितिर्यक्त्वमबुद्धिवैभवंनमानवत्वम्बहुबुद्धिभाजनम् ॥ अकाशिसन्दर्शननिष्फलोदयंसमन्ततःपुष्करबुद्बुदोपमम् ॥ ४१ ॥ दृशौकृतार्थेकृतकाशिदर्शनेतनुःकृतार्थाशिवकाशिवासिनी ॥ मनःकृतार्थन्धृतकाशिसंश्रयंमुखंकृतार्थंकृतकाशिसम्मुखम् ॥ ४२ ॥ वरंहितत्काशिरजोतिपावनंरजस्तमोध्वंसिशशिप्रभोज्ज्वलम् ॥ कृतप्रणामैर्मणिकर्णिकासुवेललाटगंयद्बहुमन्यतेसुरैः ॥ ४३ ॥ नदेवलोकोनचसत्यलोकोननागलोकोमणिकर्णिकायाः ॥ तुलांव्रजेद्यत्रमहाप्रयाणकृच्छ्रुतिर्भवेत्क्षरसायनास्पदम् ॥ ४४ ॥ महामहोभूर्मणिकर्णिकास्थलीतमस्ततिर्यत्रसमेतिसंक्षयम् ॥ परःशतैर्जन्मभि

है और काशी के संमुखहुआ मुख कृतार्थ है ॥ ४२ ॥ व जोकि माथ में धारीहुई देवों से बहुत मानीजाती है और वह अत्यन्त पवित्र व चन्द्रचांदनी से चटक चमकवाली व रजोगुण और तमोगुणकी विनाशिनी काशी की धूलि श्रेष्ठही है जोकि मणिकर्णिका भूमि के लिये प्रणामकारी देवों के शिर से धारी हुई होकर बहुत ही मानीजाती है ॥ ४३ ॥ व स्वर्ग सत्यलोक और पाताल भी उस मणिकर्णिका की समताको नहीं प्राप्तहोताहै क्योंकि जहां मरतेहुये प्राणीका कान ॐकार या राम षडक्षर मन्त्रका स्थानहोताहै ॥ ४४ ॥ व जोकि सैकड़ों से अधिक याने असंख्य जन्मों से बढ़ी व सूर्य्य अग्नि और चन्द्रनाकी किरणों से नहीं नाशीगई है वह अज्ञानकी

परंपरा जहां विनाशको प्राप्त होती है वह मणिकर्णिका स्थली महातेजकी भूमि है ॥ ४५ ॥ याकि मणिकर्णिका स्थली परमेश्वर का सिंहासनहै अथवा मुक्ति लक्ष्मी की कोमलशय्या है अथवा परमानन्द के सुकंदकी (तारकमन्त्रोपदेश की) जन्मभूमि है ॥ ४६ ॥ जहां सुखसे बैठे हुये व अपने मरणमहोत्सवमें अभिलाषवाले लोगों कर- के जगमगातीहुई सूक्ष्म धूलिसे भूतकालके विमुक्त जन्तुवों की संख्याकीजाती है वह मणिकर्णिका धन्य है ॥ ४७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने ! श्रीपार्वतीजीने इस भांति से काशीपुरी का वर्णनकर फिर काशी की प्राप्तिके लिये शिवजी से विज्ञापनाकिया ॥ ४८ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे गणनायक, हे वरदायक, हे नित्यस्वा-

रेधितापियादिवाकराग्नीन्दुकरैरनिग्रहा ॥ ४५ ॥ किमुनिर्वाणपदस्यभद्रपीठंमृदुलंतल्पमथोनुमोक्षलक्ष्म्याः॥ अथवाम णिकर्णिकास्थलीपरमानन्दसुकन्दजन्मभूमिः ॥ ४६ ॥ समतीतविमुक्तजन्तुसङ्ख्याक्रियतेयत्रजनैःसुखोपविष्टैः ॥ विलसद्द्युतिसूक्ष्मशर्कराभिःस्ववपुःपातमहोत्सवाभिलाषैः ॥ ४७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अपर्णापरिवर्ण्येतिपुरींवाराणसीं मुने ॥ पुनर्विज्ञापयामासकाशीप्राप्त्यैपिनाकिनम् ॥ ४८ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ प्रमथाधिपसर्वेशनित्यस्वाधीनवर्तन ॥ य थानन्दवनंयायांतथाकुरुवरप्रद ॥ ४९ ॥ जितपीयूषमाधुर्यांकाशीस्तवनसुन्दरीम् ॥ अथाकर्ण्याहमुदितोगिरिशोगि रिजांगिरम् ॥ ५० ॥ श्रीदेवदेवउवाच ॥ अयिप्रियतमेगौरित्वद्वागमृतसीकरैः ॥ आप्यायितोस्मिनितरांकाशीप्राप्त्यै यतेधुना ॥ ५१ ॥ त्वंजानासिमहादेविममयत्तन्महद्व्रतम् ॥ अभुक्तपूर्वमन्येनवस्तूपाश्नामिनेतरत् ॥ ५२ ॥ पितामह स्यवचनाद्दिवोदासेमहीपतौ ॥ धर्मेणशासतिपुरींकउपायोविधीयताम् ॥ ५३ ॥ कथंसराजाधर्मिष्ठःप्रजापालनतत्परः ॥

धीनवर्तन, हे सर्वेश ! जैसे मैं काशीको जाऊं आप वैसेही करो ॥ ४९ ॥ उसके अनन्तर अमृत की माधुरीको जीते व काशी की स्तुति करने में सुन्दरवाणी को सुनकर शिवजीने पार्वतीजी से कहा ॥ ५० ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे परमप्यारी ! हे गौरी ! मैं तेरे वचनामृतकणों से बढ़ाया गयाहूं व इस समय में काशीकी प्राप्ति के लिये यत्न करताहूं ॥ ५१ ॥ हे महादेवि ! जो मेरा बड़ाव्रतहै उसको तुम जानती हो कि जो वस्तु पहले अन्यसे न भोगी गईहो उसको मैं भोगताहूं अन्यको नहीं याने किसीसे भोगी वस्तुको नहीं सेवताहूं ॥ ५२ ॥ और जोकि दिवोदास राजा ब्रह्माके वचन से काशीपुरी में धर्मपूर्वक राज्यकरताहै उसमें कौन उपाय कियाजावे ॥ ५३ ॥

क्योंकि पृथिवी का पति जो दिवोदास राजा प्रजाओं के पालने में तत्पर व बहुत धर्मवान् है वह काशीपुरीसे कैसे वियुक्त कियाजावे याने अलग होवे ॥ ५४ ॥ हे ईशे ! जिससे अधर्मी को विघ्न होता है और अन्य धर्मवान् को विघ्न नहीं है उससे मैं किसको पठाऊं जो उसको काशीसे वियोग करावे ॥ ५५ ॥ हे प्रेमवर्धिनि ! जो धर्ममार्गमें चलतेहुये लोगोंका विघ्न करता है बरन उसकाही विघ्नहोता है ॥ ५६ ॥ हे प्रिये ! जिससे धर्मधुरन्धर मेरे रक्षाकरने योग्यहैं इससे मैं छिद्रके विना उसराजा के निकालने को समर्थ नहीं हूं ॥ ५७ ॥ किन्तु इस जगतमें जो धर्ममार्गका धारनेवालाहै उसको बुढ़ाई नहीं दबासक्ती है व उसको मृत्यु नहीं मारती है व उसको

वियोज्यतेपुरःकाश्यादिवोदासोमहीपतिः ॥ ५४ ॥ अधर्मवर्तिनोयस्माद्विघ्नःस्यान्नेतरस्यतु ॥ तस्मात्कंप्रेषयामीशेय स्तंकाश्यावियोजयेत् ॥ ५५ ॥ धर्मवर्त्मानुसरतांयोविघ्नंसमुपाचरेत् ॥ तस्यैवजायतेविघ्नःप्रत्युतप्रेमवर्धिनि ॥ ५६ ॥ विनाच्छिद्रेणतंभूपंनोत्सादयितुमुत्सहे ॥ मयैवहियतोरक्ष्याःप्रियेधर्मधुरन्धराः ॥ ५७ ॥ नजरातमतिक्रामेन्नतंमृत्युर्जिघांसति ॥ व्याधयस्तंनबाधन्तेधर्मवर्त्मभृदत्रयः ॥ ५८ ॥ इतिसञ्चिन्तयन्देवोयोगिनीचक्रमग्रतः ॥ ददर्शातिमहाप्रौढंगाढकार्यस्यसाधनम् ॥ ५९ ॥ अथदेव्यासमालोच्यव्योमकेशोमहामुने ॥ योगिनीवृन्दमाहूयजगौवाक्यमिदंहरः ॥ ६० ॥ सत्वरंयातयोगिन्योममवाराणसींपुरीम् ॥ यत्रराजादिवोदासोराज्यंधर्मेणशास्त्यलम् ॥ ६१ ॥ स्वधर्मविच्युतःकाशींयथातूर्णंत्यजेन्नृपः ॥ तथोपचरतप्राज्ञायोगमायाबलान्विताः ॥ ६२ ॥ यथापुनर्नवीकृत्यपुरींवाराणसीमहम् ॥ इतःप्रयामियोगिन्यस्तथाक्षिप्रंविधीयताम् ॥ ६३ इतिप्रसादमासाद्यशासनंशिरसावहन् ॥ कृतप्रणामोनिर्या

रोग नहीं पीड़ादेते हैं ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे विचारते हुये महादेवजीने अपने आगेखड़ेहुये अतिशय दक्ष व दृढ़कार्य्यके सिद्धकरनेवाले योगिनीसमूहको देखा ॥ ५९ ॥ हे महामुने ! उसके अनन्तर देवीजीके साथ विचारकर भक्तभयहारी शिवजीने योगिनीवृन्दको बुलाकर यह वचन कहा ॥ ६० ॥ कि हे योगिनियो ! जहां दिवोदासराजा अधिक धर्मसे राज्यकरताहै उस मेरी काशीपुरी को तुम शीघ्रहीजावो ॥ ६१ ॥ हे योगमाया बलसमेत, पण्डिताओ ! जैसे अपने धर्मसे रहित होकर राजा शीघ्रही काशीको त्याग देवे वैसेहीकरो ॥ ६२ ॥ और हे योगिनियो ! जैसे मैं फिर काशीपुरीको नवीनकर यहां से प्रयाणकरूं वैसेही शीघ्र कियाजावे ॥ ६३ ॥ इस भांतिसे शिवके प्रसादको प्राप्तहोकर

शिरपर आज्ञा धरताहुवा व प्रणामकरनेवाला योगिनियोंका गण उस मन्दराचल से निकलकर चला ॥ ६४ ॥ किन्तु आनन्द समेत व आपुरामें बतलातीहुई वे योगिनियां आकाश में पैठकर मनसेभी अधिक वेगसे चलती भईं ॥ ६५ ॥ उस परस्पर वार्ताको कहते हैं कि इससे हमलोग आज बहुतही धन्यहैं जिससे स्वयं महादेवजीने किया प्रसाद जिनमें वह हम श्रीकाशीको पठाई गई हैं ॥ ६६ ॥ व त्रिनेत्रराजका सम्मान और काशीका दर्शन ये दोनों दुर्लभ महालाभ आज हमको शीघ्रहीहुयेहैं ॥ ६७ ॥ इस भांतिसे परस्पर बतलातेहुये वे मन्दराचलके कुञ्जसे निकले व आनन्दितमन और आकाशमें वेगमे दौड़नेवाले योगिनियों के समूहने उस काशीपुरी को नेत्रगो-

तोयोगिनीनांगणस्ततः ॥ ६४ ॥ ययुराकाशमाविश्यमनसोप्यतिरंहसा ॥ परस्परंभाषमाणायोगिन्यस्तामुदान्विताः ॥ ६५ ॥ अद्यधन्यतराःस्मोवैदेवदेवेनयत्स्वयम् ॥ कृतप्रसादाःप्रहिताःश्रीमदानन्दकाननम् ॥ ६६ ॥ अद्यसद्योमहालाभावभूतांनोतिदुर्लभौ ॥ त्रिनेत्रराजसंमानस्तथाकाशीविलोकनम् ॥ ६७ ॥ इतिमुदितमनाःसयोगिनीनांनिकुरम्बस्त्वथमन्दराद्रिकुञ्जात् ॥ नभसिलघुकृतप्रयाणवेगोनयनातिथ्यमलम्भयत्पुरींताम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे काशीवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ अथतद्योगिनीवृन्दंदूराद्दृष्टिंप्रसार्यच ॥ स्वनेत्रदैर्घ्यनिर्माणंप्रशशंसफलान्वितम् ॥ १ ॥ दिव्यप्रासादमालानांपताकाश्चलपल्लवाः ॥ सादरंदूरमार्गस्थान्पान्थानाह्वयतीरिव ॥ २ ॥ चञ्चत्प्रासादमाणिक्यैर्विजृम्भितम

चर किया ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकाशीवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पैंतालिस अध्याय मे काशीपुरी प्रवेश । योगिनियों ने कीन्ह अरु उनके नाम विशेश ॥ अब (काशीदर्शन के अनन्तर) उस योगिनीसमूहने दूरसे दृष्टिको पसारकर अपनी आंखों की दीर्घता बनाने को फल समेत प्रशंसित किया ॥ १ ॥ व जोकि उडतीहुई देवमन्दिरपंक्तियों की पताकायें दूर गली में टिके बटोही लोगों को आदर समेत बुलाती ऐसी विराजती हैं उनका भी प्रशंसन किया ॥ २ ॥ और उठीहुई किरणवाले व देवमन्दिरों में जटित मणिसमूहों से निर्मल श्वेत रंग होकर

देखे जातेहुये श्यामवर्ण आकाश की भी प्रशंसा की ॥ ३ ॥ तदनन्तर देवत्वको मायासे ढांपकर व लालेवस्त्रवाले तपस्वियों का वेष बनाकर योगिनियों का समूह विना क्रमसे काशी में पैठगया ॥ ४ ॥ "और अनेक रूपोंको धारताभया उनमेंसे कुछेक कहेजाते हैं कि" कोई योगिनी, योगिनी (अष्टांगयोगयुक्त) कापालिकी होगई व कोई तपस्विनी (चान्द्रायणादि व्रतों में तत्पर) होगई व कोई परघरके रहनेवाली और कोई मासोपवासिनी होतीभई ॥ ५ ॥ व कोई मालिनी कोई नाइनी कोई सौरिकर्मविचार के जाननेवाली और कोई वैद्यकर्म में निपुणहुई ॥ ६ ॥ व कोई मोललेने और बेंचने में चतुर वैश्यकी स्त्रीभई व कोई सर्प पकड़नेवाली कोई दासी

रीचिभिः ॥ सुनीलमपिचव्योमवीक्ष्यमाणंसुनिर्मलम् ॥ ३ ॥ देवत्वंमाययाच्छाद्यवेषंकार्पटिकोचितम् ॥ विधायका शीमविशद्योगिनीचक्रमक्रमम् ॥ ४ ॥ काचिच्चयोगिनीभूताकाचिज्जातातपस्विनी ॥ काचिद्बभूवसैरन्ध्रीकाचिन्मा सोपवासिनी ॥ ५ ॥ मालाकारवधूःकाचित्काचिन्नापितसुन्दरी ॥ सूतिकर्मविचारज्ञाऽपराभैषज्यकोविदा ॥ ६ ॥ वै श्याचकाचिदभवत्क्रयविक्रयचञ्चुरा ॥ व्यालग्राहिण्यभूत्काचिद्दासीधात्रीचकाचन ॥ ७ ॥ एकाचनृत्यकुशलात्वन्या गानविशारदा ॥ अपरावेणुवादज्ञापरावीणाधराभवत् ॥ ८ ॥ मृदङ्गवादनज्ञान्याकाचित्तालकलावती ॥ काचित्कार्मण तत्त्वज्ञाकाचिन्मौक्तिकगुम्फिका ॥ ९ ॥ गन्धभागविधिज्ञान्याकाचिद्दूतकलालया ॥ आलापोल्लासकुशलाकाचिच्चत्वर चारिणी ॥ १० ॥ वंशाधिरोहणेदक्षारज्जुमार्गेणचेतरा ॥ काचिद्वातुलचेष्टाऽभूत्पथिचीवरवेष्टना ॥ ११ ॥ अपत्यदाऽनप

और कोई धाई होगई ॥ ७ ॥ व एक कोई नाचने में निपुणहुई व अन्य कोई गानमें पण्डिताहुई व अपर कोई वेणु बजानेवालीहुई और परा कोई वीणाधरा हुई ॥ ८ ॥ व अन्य कोई मृदंगबजाना जाननेवाली कोई तालकलावाली कोई वशीकरण जाननेवाली और कोई मोती गूँधनेवाली हुई ॥ ९ ॥ व अन्य कोई सुगन्ध विभागके प्रकारके जाननेवाली कोई द्यूतकला (जुवां) का मन्दिर कोई गाने में कुशल और कोई भिक्षुकीरूप से चतुष्पथचारिणी होती भई ॥ १० ॥ व कोई बांसपर चढ़ने में कुशल कोई रस्सी बांधकर चलने में चतुर कोई वातुलव्यापारवाली और कोई गलियों के वस्त्रखण्ड धारनेवाली होगई ॥ ११ ॥ व अन्य कोई अपुत्रलोगों को पुत्रदा होकर उस

पुरी मे बसी और कोई हाथों व पांवोंकी रेखाओंके लक्षण जानती या कहती थी ॥ १२ ॥ व कोई चित्रलिखने की निपुणतासे जनों के मनोंको हरनहारा हुई व काइ वशीकरणमन्त्रज्ञा होकर उस पुर में आनन्द से विचरनेलगी ॥ १३ ॥ व कोई स्त्री और पुरुषके सम्बन्ध में वीर्य्य रोकनेवाली गुटिका की सिद्धिदा व कोई आंखो मे लगाने मात्रसे अभीष्टदेशप्राप्तिके द्वारा दर्शनादि सिद्धिरूप अञ्जनकी सिद्धिदा व अन्य कोई सुवर्णादि धातु रिद्धि कहने में निपुण और अन्य कोई पांवो मे पादुकाओं के स्पर्शमात्र से अभीष्टदेशप्राप्ति आदि पादुकासिद्धिकी देनेवालीहुई ॥ १४ ॥ व किसीने अग्निस्तम्भ व जलस्तम्भ और वचनस्तम्भकी शिक्षाकिया व अन्यने आकाश-

स्यानांपरातत्रपुरेऽवसत् ॥ काचित्कराङ्घ्रिरेखाणांलक्षणानिचिकेतिच ॥ १२ ॥ चित्रलेखननैपुण्यात्काचिज्जनमनोहरा ॥ वशीकरणमन्त्रज्ञाकाचित्तत्रचचारह ॥ १३ ॥ गुटिकासिद्धिदाकाचित्काचिदञ्जनसिद्धिदा ॥ धातुवादविदग्धान्यापादुकासिद्धिदापरा ॥ १४ ॥ अग्निस्तम्भंजलस्तम्भंवाक्स्तम्भंचाप्यशिक्षयत् ॥ खेचरीत्वंददौकाचिददृश्यत्वंपराददौ ॥ १५ ॥ काचिदाकर्षणींसिद्धिंददावुच्चाटनंपरा ॥ काचिन्निजाङ्गसौन्दर्ययुवचित्तविमोहिनी ॥ १६ ॥ चिन्तितार्थप्रदाकाचित्काचिज्ज्योतिःकलावती ॥ इत्यादिवेषभाषाभिरनुकृत्यसमन्ततः ॥ १७ ॥ प्रत्यङ्गणंप्रतिगृहंप्राविशद्योगिनीगणः ॥ इत्थमब्दंचरन्त्यस्तायोगिन्योऽहर्निशंपुरि ॥ १८ ॥ नच्छिद्रंलेभिरेक्कापिनृपविघ्नचिकीर्षवः ॥ ततःसमेत्यताःसर्वायोगिन्योबन्ध्यवाञ्छिताः ॥ तस्थुःसंमन्त्र्यतत्रैवनगतामन्दरंपुनः ॥ १९ ॥ प्रभुकार्यमनिष्पाद्यसदःसम्भावनैधितः ॥ कःपुरःश

गामित्व और अदृश्यत्व याने न देखपड़ने की विद्यादिया ॥ १५ ॥ व किसीने आकर्षणसिद्धि और अन्य किसीने उच्चाटनसिद्धि को दिया व किसीने अपने अंगों की सुन्दरता से युवकजनों के मनों को मोहिलिया ॥ १६ ॥ और कोई वाञ्छितार्थदायिनी व कोई ज्योतिषविद्यावाली होतीभई इत्यादि रूपरचन और वचनों से सब ओर अनुकरण कर ॥ १७ ॥ योगिनियो का गण प्रतिअंगण व प्रतिगृह मे प्रवेश करता भया इस भांतिसे एक वर्षतक काशीपुरी में रातोदिन विचरती हुई उन योगिनियो ने ॥ १८ ॥ छिद्रको कहीं नहीं पाया तदनन्तर व्यर्थ होगया है वाञ्छित जिनका ऐसी वे सब योगिनियां राजाके विघ्नकी चाहिनी व इकट्ठेहोकर भलीभांति से मन्त्रकर तहांही टिकती भई किन्तु फिर मन्दराचलको न गई ॥ १९ ॥ क्योंकि सभामे सभावना से याने कार्य्य करने मे दक्षतासे बढ़ायागया व जीवताहुवा कौन पुरुष प्रभुके

कार्य्य को न सिद्धकर स्वामी के आगे टिकने को समर्थ होवे ॥ २० ॥ हे मुने! उन योगिनियों ने अन्य यह विचार किया कि प्रभुके विनाभी हमलोग जीवतीहैं परन्तु काशी विना फिर न जीवेंगी ॥ २१ ॥ जिससे अच्छे सेवक में रुष्टहुवाभी प्रभु जीविकामात्रके हरनेहारा होताहै और हाथ से छूटीहुई काशी अर्थादि चारोंपुरुषार्थों को हर लेती है ॥ २२ ॥ हे महामुने! त्रिलोकमे विचरती हुई भी योगिनियां तबसे लगाकर अबतक भी काशीको छोड़ अन्यत्र नहीं टिकती हैं ॥ २३ ॥ इससे जोकि श्रीमती काशी को प्राप्तहोकर भी त्यागकरने की इच्छा करता है बरन वह अज्ञानीही धर्म काम अर्थ और मुक्तिसे त्यागाजाता है ॥ २४ ॥ व तुच्छसम्पत्ति में किया है मन

क्‌यात्स्थातुंस्वामिनोक्षतविग्रहः ॥ २० ॥ अन्यच्चचिन्तितंताभिर्योगिनीभिरिदंमुने ॥ प्रभुंविनापिजीवामोनतुकाशीं विनापुनः ॥ २१ ॥ प्रभूरुष्टोपिसद्भृत्येजीविकामात्रहारकः ॥ काशीहरेत्कराद्भ्रष्टापुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ २२ ॥ नाद्यापि काशींसन्त्यज्यतदारभ्यमहामुने ॥ योगिन्योन्यत्रतिष्ठन्तिचरन्त्योपिजगत्त्रयम् ॥ २३ ॥ प्राप्यापिश्रीमतींकाशींयस्त्य तिच्छतिदुर्मतिः ॥ सएवप्रत्युतत्यक्तोधर्मकामार्थमुक्तिभिः ॥ २४ ॥ कःकाशींप्राप्यदुर्बुद्धिरपरत्रयियासति ॥ मोक्षनिक्षे पकलशींतुच्छश्रीकृतमानसः ॥ २५ ॥ विमुखोपीश्वरोस्माकंकाशीसेवनपुण्यतः ॥ सम्मुखोभविताप्रण्यंकृतकृत्याः स्मतद्वयम् ॥ २६ ॥ दिनैःकतिपयैरेवसर्वज्ञोपिसमेष्यति ॥ विनाकाशींनरमतेयतोऽन्यत्रत्रिलोचनः ॥ २७ ॥ शम्भोः शक्तिरियंकाशीकाचित्सर्वैरगोचरा ॥ शम्भुरेवहिजानीयादेतस्याःपरमंसुखम् ॥ २८ ॥ इतिनिश्चित्यमनसिशम्भोरा नन्दकानने ॥ अतिष्ठद्योगिनीवृन्दंकयाचिन्माययावृतम् ॥ २९ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्थंसमाकर्ण्यमुनिःपुनःपप्रच्छषण्मु

जिसने वह कौन कुबुद्धिजन मोक्षधरने की कलशी रूप काशीको छोड़कर अन्यत्र जाना चाहता है ॥ २५ ॥ व विमुखहुवा भी पुण्यरूप ईश्वर जब काशीकी सेवासे हमारे सम्मुख होगा तब हम कृतकृत्य होवेंगी ॥ २६ ॥ व जिससे सर्वज्ञ शिवजी भी काशी विना अन्यत्र नहीं रमण करते हैं इससे कुछ दिनोंमेंही यहां भलीभांति से आवेंगे ॥ २७ ॥ क्योंकि सबके नेत्रोंके अगोचर हुई यह काशी शङ्करजी की कोई अनिर्वचनीया शक्ति है इससे शम्भुजीही इसके परमसुख को जानते हैं ॥ २८ ॥ इस भांतिसे मनमें निश्चयकर किसी माया से घिराहुवा योगिनियोंका समूह शम्भुजी की काशीपुरी में टिकताभया ॥ २९ ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि, इसप्रकारसे सुनकर

अगस्त्य मुनिने फिर श्रीकार्त्तिकेयजी से पूंछा कि हे ईश्वर ! उन योगिनियोंके कौन कौन नामथे उनको कहो ॥ ३० ॥ व काशीमें योगिनियों की भक्तिसे क्या फल होताहै और वे किस पर्वमें किस भांतिसे पूजने योग्यहैं वहभी कहो ॥ ३१ ॥ हे मुने ! तदनन्तर इस भांतिसे योगिनियों के आश्रित प्रश्नको सुनकर कार्त्तिकेयजी कहने लगे और मैंभी वही कहताहूं व आप एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ३२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्य ! योगिनियों के उन नामोंको कहताहूं कि जिनको सुनकर क्षणभरमें संसारी जनों के पाप क्षीण होजाते हैं ॥ ३३ ॥ गजानना व सिंहमुखी व गृध्रास्या व काकतुण्डिका व उष्ट्रग्रीवा व हयग्रीवा व वाराही व शरभानना ॥ ३४ ॥

खम् ॥ कानिकानिचनामानितासांतानिवदेश्वर ॥ ३० ॥ भजनाद्योगिनीनांचकाश्यांकिंजायतेफलम् ॥ कस्मिन्पर्वणि ताःपूज्याःकथंपूज्याश्चतद्वद ॥ ३१ ॥ श्रुत्वेतिप्रश्नमौमेयोयोगिनीसंश्रयंततः॥ प्रत्युवाचमुनेवच्मिशृणोत्ववहितोभवान् ॥ ३२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ नामधेयानिवक्ष्यामियोगिनीनांघटोद्भव ॥ आकर्ण्ययानिपापानिक्षयन्तिभविनांक्षणात् ॥ ३३ ॥ गजाननासिंहमुखीगृध्रास्याकाकतुण्डिका ॥ उष्ट्रग्रीवाहयग्रीवावाराहीशरभानना ॥ ३४ ॥ उलूकिकाशिवारावा मयूरीविकटानना ॥ अष्टवक्त्राकोटराक्षीकुब्जाविकटलोचना ॥ ३५ ॥ शुष्कोदरीललज्जिह्वाश्वदंष्ट्रावानरानना ॥ ऋक्षाक्षीकेकराक्षीचबृहत्तुण्डासुराप्रिया ॥ ३६ ॥ कपालहस्तारक्ताक्षीशुकीश्येनीकपोतिका ॥ पाशहस्तादण्डहस्ता प्रचण्डाचण्डविक्रमा ॥ ३७ ॥ शिशुघ्नीपापहन्त्रीचकालीरुधिरपायिनी ॥ वसाधयागर्भभक्षाशवहस्तान्त्रमालिनी ॥ ३८ ॥ स्थूलकेशीबृहत्कुक्षिःसर्पास्याप्रेतवाहना ॥ दन्दशूककराक्रौञ्चीमृगशीर्षावृषानना ॥ ३९ ॥ व्यात्तास्याधूमनिः

व उलूकिका व शिवारावा व मयूरी व विकटानना व अष्टवक्त्रा व कोटराक्षी व कुब्जा व विकटलोचना ॥ ३५ ॥ व शुष्कोदरी व ललज्जिह्वा व श्वदंष्ट्रा व वानरानना व ऋक्षाक्षी व केकराक्षी व बृहत्तुण्डा व सुराप्रिया ॥ ३६ ॥ व कपालहस्ता व रक्ताक्षी व शुकी व श्येनी व कपोतिका व पाशहस्ता व दण्डहस्ता व प्रचण्डा व चण्डविक्रमा ॥ ३७ ॥ व शिशुघ्नी व पापहन्त्री व काली व रुधिरपायिनी व वसाधया व गर्भभक्षा व शवहस्ता व अन्त्रमालिनी ॥ ३८ ॥ व स्थूलकेशी व बृहत्कुक्षि व सर्पास्या

व प्रेतवाहना व दन्दशूककरा व क्रौंची व मृगशीर्षा व वृषानना ॥ ३९ ॥ व व्यात्तास्या व धूमनिःश्वासा व व्योमैकचरणा व ऊर्ध्वदृक् व तापनीदृष्टि व शोषणीकोटरी व स्थूलनासिका ॥ ४० ॥ व विद्युत्प्रभा व बलाकास्या व मार्जारी व कटपूतना व अट्टाट्टहासा व कामाक्षी व मृगाक्षी और मृगलोचना ॥ ४१ ॥ इन चौंसठ नामोंको जो मनुष्य दिनोंदिन तीनो संध्याओं में जपताहै उसकी यहां सब दुष्ट बाधायें नष्ट होजाती हैं ॥ ४२ ॥ व जो इन नामोंको पढ़ता है उसको डाकिनी शाकिनी कूष्मांड और राक्षसभी पीड़ा नहीं करते हैं ॥ ४३ ॥ व ये नाम बालकों की शांति करनेवाले व गर्भोंकी शान्ति करनेवाले व संग्राम, राजकुल और विवादमें भी जीति देनेवाले

श्वासाव्योमैकचरणोर्ध्वदृक् ॥ तापनीशोषणीदृष्टिःकोटरीस्थूलनासिका ॥ ४० ॥ विद्युत्प्रभाबलाकास्यामार्जारीकट पूतना ॥ अट्टाट्टहासाकामाक्षीमृगाक्षीमृगलोचना ॥ ४१ ॥ नामानीमानियोमर्त्यश्चतुःषष्टिंदिनेदिने ॥ जपेत्रिसन्ध्यंत स्येहदुष्टबाधाप्रशाम्यति ॥ ४२ ॥ नडाकिन्योनशाकिन्योनकूष्माण्डानराक्षसाः ॥ तस्यपीडांप्रकुर्वन्तिनामानीमा नियःपठेत् ॥ ४३ ॥ शिशूनांशान्तिकारीणिगर्भशान्तिकराणिच ॥ रणेराजकुलेवापिविवादेजयदान्यपि ॥ ४४ ॥ ल भेदभीप्सितांसिद्धिंयोगिनीपीठसेवकः ॥ मन्त्रान्तराण्यपिजपंस्तत्पीठेसिद्धिभाग्भवेत् ॥ ४५ ॥ बलिपूजोपहारैश्चधूप दीपसमर्पणैः ॥ क्षिप्रंप्रसन्नायोगिन्यःप्रयच्छेयुर्मनोरथान् ॥ ४६ ॥ शरत्कालेमहापूजांतत्रकृत्वाविधानतः ॥ हवींषिहु त्वामन्त्रज्ञोमहतींसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ आरभ्याश्वयुजःशुक्लांतिथिंप्रतिपदंशुभाम् ॥ पूजयेन्नवमींयावन्नरश्चिन्तित माप्नुयात् ॥ ४८ ॥ कृष्णपक्षस्यभूतायामुपवासीनरोत्तमः ॥ तत्रजागरणंकृत्वामहतींसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ प्रणवादि

हैं ॥ ४४ ॥ इससे योगिनीपीठका सेवक मनमानी सिद्धि को पावे व उस पीठमें अन्य मन्त्रों को भी जपताहुवा जन सिद्धिसेवी होजावे ॥ ४५ ॥ व बलि पूजा उपहार धूप और दीप समर्पण से शीघ्रही प्रसन्न हुई योगिनियां मनोरथों को देवें ॥ ४६ ॥ व मन्त्रोंको जाननेवाला मनुष्य शरत्कालमें वहां विधिसे बड़ी पूजाकर और हवियों को हवनकर महासिद्धिको पावे ॥ ४७ ॥ व जो मनुष्य कुवारसुदी शुभ प्रतिपदा तिथि से लगाकर नवमीतक पूजाकरे वह वाञ्छित को प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥ व कृष्णपक्षकी

चतुर्दशी में उपास किये हुवा मनुष्यश्रेष्ठ तहां जागरणकर बडी सिद्धिको प्राप्तहोवे ॥ ४९ ॥ व भक्तिमान् मनुष्य रात्रिमें ओङ्कारादि चतुर्थ्यन्त प्रत्येक नामों से अष्टोत्तर शत हवन करे ॥ ५० ॥ और छोटे बेरके फलभर घृतसमेत गुग्गुलु से होमकर मनुष्य जिरा सिद्धिको चाहता है उस उसको प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥ व क्षेत्रके विघ्नोंकी शान्तिके अर्थ पुण्यवान् लोगों करके वहां यत्नसे यात्रा करने योग्य है ॥ ५२ ॥ और जोकि अनादरसे वार्षिकी यात्रा को न करे उस काशीवासी को योगिनियां विघ्न देती हैं ॥ ५३ ॥ व वे सब मणिकर्णिका को आगेकर काशीमें टिकी हैं और उनके नमस्कारमात्र से मनुष्य विघ्नों से नहीं बाधाजाता है याने उसको विघ्न नहीं बाधा

चतुर्थ्यन्तैर्नामभिर्भक्तिमान्नरः ॥ प्रत्येकंहवनंकृत्वाशतमष्टोत्तरंनिशि ॥ ५० ॥ ससर्पिषागुग्गुलुनालघुकोलिप्रमाणतः ॥ यांयांसिद्धिमभीप्सेततांतांप्राप्नोतिमानवः ॥ ५१ ॥ चैत्रकृष्णप्रतिपदितत्रयात्राप्रयत्नतः ॥ क्षेत्रविघ्नप्रशान्त्यर्थंकर्तव्यापुण्यकृज्जनैः ॥ ५२ ॥ यात्रांचसांवत्सरिकींयोनकुर्यादवज्ञया ॥ तस्यविघ्नंप्रयच्छन्तियोगिन्यःकाशिवासिनः ॥ ५३ ॥ अग्रेकृत्वास्थिताःसर्वास्ताःकाश्यांमणिकर्णिकाम् ॥ तन्नमस्कारमात्रेणनरोविघ्नैर्नबाध्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेचतुःषष्टियोगिन्यागमनंनामपञ्चचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ गतेथयोगिनीवृन्देदेवदेवोघटोद्भव ॥ काशीप्रवृत्तिंजिज्ञासुःप्राहिणोदंशुमालिनम् ॥ १ ॥ देवदेव उवाच ॥ सप्ताश्वत्वरितोयाहिपुरींवाराणसींशुभाम् ॥ यत्रास्तिसदिवोदासोधर्ममूर्तिर्महीपतिः ॥ २ ॥ तस्यधर्मविरोधेनयथातत्क्षेत्रमुद्वसेत् ॥ तथाकुरुष्वभोःक्षिप्रंमावमंस्थाश्चतंनृपम् ॥ ३ ॥ धर्ममार्गप्रवृत्तस्यक्रियतेयावमानना ॥ साभ

करसक्ते हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेचतुःषष्टियोगिन्यागमनंनामपञ्चचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४५ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । छयालिसयें अध्याय में बारह नाम बखानि । लोलारक महिमा महत चारि पदारथ दानि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्य ! जब योगिनियों का समूह चलागया तब काशीकी प्रवृत्तिको जानना चाहते हुये महादेवजी ने सूर्य्यदेव को पठाया ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे सातघोड़ेवाले सूर्य्य ! तुम उस मंगलमयी काशीपुरी को जावो कि जहां धर्मात्मा दिवोदास राजा विद्यमान है ॥ २ ॥ हे सूर्य्य ! उसके धर्मविरोध से जैसे वह क्षेत्र उच्छिन्न होवे वैसे शीघ्रही करो और उस नरेश

को मत अनादरो ॥ ३ ॥ क्योंकि धर्ममार्ग में वर्तमान हुये मनुष्य का जो अपमान किया जाता है वह अपनेकोही होताहै और महापापभी उपजताहै ॥ ४ ॥ हे भानो! जो तुम्हारी बुद्धिके विकाससे वह राजा धर्मसे च्युत होवे तो तुम करके अगह किरणोंसे वह पुरी उद्वास करने योग्यहै ॥ ५ ॥ जिससे वे प्रसिद्ध काम क्रोध लोभ मोह मत्सर और अहङ्कार भी उस राजामें नहीं हैं उससे उसको कालभी नहीं जीतसक्ता है ॥ ६ ॥ हे रवे! जबतक धर्ममें अचल बुद्धि है व जबतक धर्म में स्थिर मनहै तब तक विपत्तिकाल मे भी मनुष्यों में विघ्नका उदय कहां है ॥ ७ ॥ हे व्रध्न! जिससे तुम सब जन्तुओं के कर्मको जानतेहो इससेही जगत् के प्रकाशक या धर्माधर्मबो-

वेदात्मनोनूनंमहदेनश्चजायते ॥ ४ ॥ तवबुद्धिविकासेनच्यवतेचेत्सधर्मतः ॥ तदासानगरीभानोत्वयोद्वास्याऽसहैःकरैः ॥ ५ ॥ कामक्रोधौलोभमोहौमत्सराहङ्कृतीअपि ॥ तेतत्रनभवेतांयत्तत्कालोपिनतंजयेत् ॥ ६ ॥ यावद्धर्मेस्थिराबुद्धिर्याव द्धर्मेस्थिरंमनः ॥ तावद्विघ्नोदयःक्वास्तिविपद्यपिरवेन्नृषु ॥ ७ ॥ सर्वेषामिहजन्तूनांत्वंवेत्सिब्रध्नचेष्टितम् ॥ अतएवजगच्च क्षुर्व्रजत्वंकार्यसिद्धये ॥ ८ ॥ रविरादायदेवाज्ञांमूर्तिमन्यांप्रकल्प्यच ॥ नभोध्वगामहोरात्रंकाशीमभिमुखोऽभवत् ॥ ९ ॥ मनसातीवलोलोऽभूत्काशीदर्शनलालसः ॥ सहस्रचरणोप्यैच्छत्तदाखेनैकपादताम् ॥ १० ॥ हंसत्वंतस्यसूर्यस्यतदा सफलतामगात् ॥ सदानभोध्वनीनस्यकाशींप्रतियियासतः ॥ ११ ॥ अथकाशींसमासाद्यरविरन्तर्बहिश्चरन् ॥ मनागपि नतद्भूपेधर्मध्वस्तिमवैक्षत ॥ १२ ॥ विभावसुर्वसन्काश्यांनानारूपेणवत्सरम् ॥ क्वचिन्नावसरंप्रापतत्रराज्ञिसुधर्मिणि ॥ १३ ॥

धक तुम कार्य्यकी सिद्धिके लिये जावो ॥ ८ ॥ इस भांतिसे महादेवकी आज्ञा लेकर सूर्य्यदेव आकाश में चलनेवाली अन्य मूर्त्तिको कल्पितकर रातोदिन काशीके सम्मुख हुये ॥ ९ ॥ व काशीके दर्शन की लालसा है जिनके वह सहस्रचरण याने हजार किरणवाले सूर्य्य भी मनसे अत्यन्त चञ्चल हुये और आकाश में अनेक पदों की इच्छा करते भये ॥ १० ॥ तब सदा आकाशमार्गगामी व काशी के प्रति जानाचाहते हुये उन सूर्य्यका हंसत्व अर्थात् चलतेहुयेका भाव सफलताको प्राप्तहुवा ॥ ११ ॥ उसके बाद काशी में पहुँचकर बाहर व भीतर विचरते हुये सूर्य्यजीने उस राजामें थोड़भी धर्मध्वंस को न देखा ॥ १२ ॥ व वर्षभरतक काशीमें अनेक रूपसे बसतेहुये

सूर्य्यजी उस सुधर्मा राजा में अवसरको कहीं नहीं प्राप्त हुये ॥ १३ ॥ व कभी अतिथि भये दुर्लभ वस्तु की प्रार्थना करतेहुये सूर्य्यदेवने उस राजाके देश में कुछ न दुर्लभ देखा ॥ १४ ॥ और वह कभी याचक हुये व कभी बहुत दानी होगये व कभी दीनताको प्राप्तहुये व कभी गणक (ज्योतिषी) होगये ॥ १५ ॥ व कभी पाखण्डरूप क्रियाका कथन किया व कभी प्रत्यक्षज्ञानविषय ऐहिक वस्तुका स्थापन किया ॥ १६ ॥ और वह कभी जटिल कभी दिगम्बर और कभी विषविद्यामें विशारद वैद्यविशेष हुये ॥ १७ ॥ व कभी शिवोक्त पाखण्ड धर्म के पण्डित कभी वेदवादी और कभी लोगोंको भ्रमातेहुये ऐन्द्रजालिक होगये ॥ १८ ॥ व कभी दृष्टान्त कथाओं

कदाचिदतिथिर्भूतोदुर्लभंप्रार्थयन्रविः ॥ नतस्यराज्ञोविषयेदुर्लभंकिञ्चिदैक्षत ॥ १४ ॥ कदाचिद्याचकोजातोबहुदोपि कदाप्यभूत् ॥ कदाचिद्दीनतांप्राप्तःकदाचिद्गणकोप्यभूत् ॥ १५ ॥ वेदबाह्यांक्रियाञ्चापिकदाचित्प्रत्यपादयत् ॥ कदाचित्स्थापयामासदृष्टप्रत्ययमैहिकम् ॥ १६ ॥ कदाचिज्जटिलोजातःकदाचिच्चदिगम्बरः ॥ सकदाचिज्जाङ्गलिकोविषविद्याविशारदः ॥ १७ ॥ सर्वपाखण्डधर्मज्ञःकदाचिद्ब्रह्मवाद्यभूत् ॥ ऐन्द्रजालिकआसीच्चकदाचिद्भ्रामयञ्जनान् ॥ १८ ॥ नानाव्रतोपदेशैश्चकदाचित्सपतिव्रताः ॥ क्षोभयामासबहुशःसदृष्टान्तकथानकैः ॥ १९ ॥ कापालिकव्रतधरःकदाचिच्चाभवद्द्विजः ॥ कदाचिदपिविज्ञानीधातुवादीकदाचन ॥ २० ॥ क्वचिद्विप्रःक्वचिद्राजपुत्रोवैश्योन्त्यजःक्वचित् ॥ ब्रह्मचारीक्वचिदभूद्गृहीवनचरःक्वचित् ॥ २१ ॥ यतिःकदाचिदितिसरूपैरभ्रामयज्जनान् ॥ सर्वविद्यासुकुशलःसर्वज्ञश्चाभवत्क्वचित् ॥ २२ ॥ इतिनानाविधैरूपैश्चरन्काश्यांग्रहेश्वरः ॥ नकदापिजनेक्वापिच्छिद्रंप्रापकदाचन ॥ २३ ॥ ततोनिनिन्दचा

से संयुक्त अनेक व्रतों के उपदेशों से पतिव्रताओ को बहुत प्रकार से सत्तुब्ध किया ॥ १९ ॥ व कभी कपालवाले योगी, कभी पक्षी, कभी ब्रह्मज्ञानी और कभी सुवर्णादि सिद्धिवादी होतेभये ॥ २० ॥ व कहीं ब्राह्मण कहीं क्षत्रिय कहीं वैश्य कही शूद्र कहीं अन्त्यज कहीं ब्रह्मचारी कहीं गृहस्थ और कहीं वानप्रस्थ हुये ॥ २१ ॥ व कभी संन्यासी होकर अनेक रूपों से लोगो को भ्रमाते भये और सब विद्याओं मे कुशल व सर्वज्ञ भी होगये ॥ २२ ॥ इस भांतिसे अनेक विध रूपो से काशी में विचरते

हुये सूर्य्यजीने किसी जनमें किसी भांतिसे किसी छिद्रको कभी कहीं नहीं पाया ॥ २३ ॥ तदनन्तर चिन्तासे पीड़ित होकर कश्यपके पुत्र श्रीसूर्य्यजीने अपनी निन्दा किया कि जिसमें यश कहीं नहीं मिलताहै उस परप्रेष्यताको धिक्है ॥ २४ ॥ श्रीसूर्य्यजी बोले कि जो अब शीघ्रही मन्दराचलको जाताहूं तो नहीं सिद्ध किया है कार्य्यार्थ जिसने ऐसे सामान्य भृत्यके समान मुझमें महेशजी कोप करेंगे ॥ २५ ॥ और जो कोपकोभी अंगीकारकर किसी भांतिसे जाऊं तो मूढ़ दासकी नाईं उनके आगे कैसे टिकूंगा ॥ २६ ॥ अनन्तर अपमान को भी अंगीकारकर जो किसीप्रकार से जाताहूं तो जब शिवजी मुझको क्रोधसे देखें तब विष मेरे पीने योग्य होवे ॥ २७ ॥

त्मानंचिन्तार्तःकश्यपात्मजः॥धिक्परप्रेष्यतांयस्यांयशोलभ्येतनक्वचित् ॥ २४ ॥ मार्तण्डउवाच ॥ मन्दरंयदियास्य घसद्यस्तत्कुध्यतीश्वरः ॥ अनिष्पादितकार्यार्थेमयिसामान्यभृत्यवत् ॥ २५ ॥ कोपमप्युररीकृत्ययदियायांकथञ्चन ॥ कथंतिष्ठेपुरस्तस्यतर्हिवैमूढभृत्यवत् ॥ २६ ॥ अथोङ्कृत्यावहेलंवायामिचेच्चकथञ्चन ॥ क्रोधाग्निरीक्षितत्र्यक्षोमांवि षंपेयन्तदामया ॥ २७ ॥ हरकोपानलेनूनंयदियातःपतङ्गताम् ॥ पितामहोपिमान्त्रातुन्तदाशक्ष्यतिनस्फुटम् ॥ २८ ॥ स्थास्याम्यत्रैवतन्नित्यंनत्यक्ष्यामिकदाचन ॥ क्षेत्रसंन्यासविधिनावाराणस्यांकृताश्रमः ॥ २९ ॥ पुरःपुरारेःकार्यार्थम निवेद्येहतिष्ठतः ॥ यत्पापंभाविमेतस्यकाशीपापस्यनिष्कृतिः ॥ ३० ॥ अन्यान्यपिचपापानिमहान्त्यल्पानियानिच ॥ क्षयन्तितानिसर्वाणिकाशींप्रविशतांसताम् ॥ ३१ ॥ बुद्धिपूर्वंमयाचैतन्नपापंसमुपार्जितम् ॥ पुरारिणैवहिपुराऽऽशासिध र्मोहिरक्ष्यताम् ॥ ३२ ॥ धर्मोहिरक्षितोयेनदेहेसत्वरगत्वरे ॥ त्रैलोक्यंरक्षितंतेनकिंकामार्थैःसुरक्षितैः ॥ ३३ ॥ रक्षणीयो

व यह निश्चय और स्पष्ट है कि जो मैं रुद्रकी क्रोधाग्निमें गया तो ब्रह्मा भी मेरी रक्षा न करसकेंगे ॥ २८ ॥ उस कारण क्षेत्रसंन्यास की विधिसे काशी में परिश्रम करने वाला मैं सदैव यहांही टिकूंगा व इसको कभी न त्याग करूंगा ॥ २९ ॥ किन्तु शिवके आगे कार्य्यरूप अर्थको न निवेदितकर यहांपर टिकतेहुये मुझको जो पाप होगा उस पापका प्रायश्चित्त याने उद्धार काशीपुरी है ॥ ३० ॥ क्योंकि काशीमें पैठतेहुये जनों के अन्य भी जे बड़े व छोटे पाप हैं वह सब नष्ट होजाते हैं ॥ ३१ ॥ और मैंने बुद्धिपूर्वक इस पापको नहीं बटोरा बरन पहले शिवजीसेही सिखायागयाहूं कि धर्मकी ही रक्षा कीजावे ॥ ३२ ॥ व शीघ्रही गत होजानेवाली देहमें जिसने धर्मकी रक्षाकिया

उसके द्वारा त्रिलोक रक्षित होचुका इससे अच्छे प्रकार से रक्षित कामार्थों से क्या है ॥ ३३ ॥ और बहुतोंका सुखकर्त्ता भी काम जो रक्षाके योग्य होता तो शिवजीने
कैसे क्षणभर मे अनंगताको प्राप्तकियाहै ॥ ३४ ॥ व धनकी सदा रक्षा करना चाहिये यह किसीका कहा वचन यथार्थ होता तो हरिश्चन्द्रराजाने विश्वामित्र से क्यों न धन
की रक्षाकिया ॥ ३५ ॥ बरन शिबिआदि राजाओं और दधीच्यादि सब ब्राह्मणोंने देह व्यय से भी धर्मको रक्षित कियाहै ॥ ३६ ॥ इससे काशीसेवन से उत्पन्नहुवा यही
धर्महो क्रोधयुक्त रुद्रसे मेरी रक्षा करेगा इसमें संशय नहींहै ॥ ३७ ॥ व दुर्लभ काशी को प्राप्त होकर कौन सुजान फिर उसको त्याग करता है जैसे कि हाथमें टिकेहुये

अर्थश्चेत्सर्वथारक्ष्यइतिकैश्चिदुदाहृतम् ॥
यदिभवेत्कामःकामारिणाकथम् ॥ क्षणादनङ्गतांनीतोबहूनांसुखकार्यपि ॥ ३४ ॥
तत्कथंनहरिश्चन्द्रोऽरक्षत्कुशिकनन्दने ॥ ३५ ॥ धर्मस्तुरक्षितःसर्वैरपिदेहव्ययेनच ॥ शिबिप्रभृतिभूपालैर्दधीचिप्रमुखै
र्द्विजैः ॥ ३६ ॥ अयमेवहिवैधर्मःकाशीसेवनसम्भवः ॥ रुषितादपिरुद्रान्मांरक्षिष्यतिनसंशयः ॥ ३७ ॥ अवाप्यकाशीं
दुष्प्रापांकोजहातिसचेतनः ॥ रत्नंकरस्थमुत्सृज्यकःकाचंसञ्जिघृक्षति ॥ ३८ ॥ वाराणसींसमुत्सृज्ययस्त्वन्यत्रयियासति ॥
हत्वानिधानंपादेनसोर्थमिच्छतिभिक्षया ॥ ३९ ॥ पुत्रमित्रकलत्राणिक्षेत्राणिचधनानिच ॥ प्रतिजन्मेहलभ्यन्तेकाश्ये
कानैवलभ्यते ॥ ४० ॥ येनलब्धापुरीकाशीत्रैलोक्योद्धरणक्षमा ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यदुष्प्रापंतेनलब्धंमहासुखम् ॥ ४१ ॥
कुपितोपिहिमेरुद्रस्तेजोहानिंविधास्यति ॥ काश्यांचलप्स्येतत्तेजोयद्वैस्वात्मावबोधजम् ॥ ४२ ॥ इतराणीहतेजांसिभा
सन्तेतावदेवहि ॥ खद्योताभानियावन्नोजृम्भतेकाशिजंमहः ॥ ४३ ॥ इतिकाशीप्रभावज्ञोजगच्चक्षुस्तमोनुदः ॥ कृत्वाद्वाद

रत्नको छोंडकर कौन जन कांच लेना चाहता है ॥ ३८ ॥ वैसेही जोकि काशीको छोंड़ कर अन्यत्र जानेकी इच्छा करताहै ॥ वह पांवसे निधिको हनकर भिक्षासे धनकी
इच्छा धरताहै ॥ ३९ ॥ इस लोकमें पुत्र, मित्र, स्त्री, क्षेत्र और धन ये सब प्रतिजन्म मे मिलते हैं केवल काशी नहीं मिलती है ॥ ४० ॥ और जिसने त्रिलोक के उद्धार
करने में समर्थ श्रीकाशीपुरीको पाया उसको तीनों लोकों के ऐश्वर्य्योंसेभी दुर्लभ महासुख मिलचुकाहै ॥ ४१ ॥ व रुष्टहुये रुद्रजी जो मेरे तेजकी हानि करेंगे तो काशीमें
उस तेजको पाऊंगा जोकि आत्मज्ञान से उत्पन्न हुवाहै ॥ ४२ ॥ व जबतक काशी से उत्पन्न तेज नहीं उदित होताहै तबतक इस लोकमें अज्ञान अन्धकार होने से

जुगुनूके समान अन्य तेज प्रकाशमान होरहे हैं॥ ४३ ॥ इस भांति से काशीके प्रभावको जानतेहुये व जगत्के नेत्ररूप सूर्य्यजी अपनाको बारह प्रकारसे कर काशीपुरी के निवासी होगये ॥ ४४ ॥ "अब उन बारहरूपों के नाम कहते हैं कि" पहला लोलार्क दूसरा उत्तरादित्य तीसरा साम्बादित्य चौथा द्रुपदादित्य पांचवां मयूखादित्य ॥ ४५ ॥ छठा खखोल्क सातवां अरुणादित्य आठवां वृद्धादित्य नवां केशवादित्य दशवां विमलादित्य ग्यारहवां गंगादित्य ॥ ४६ ॥ और बारहवां यमादित्य संज्ञक सूर्य्य काशीपुरी में हैं हे अगस्त्य ! ये सब सदैव अधिक तामसी दुष्टोंसे क्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥ ४७ ॥ जिससे काशीके दर्शनमें उन सूर्य्यका मन लोल (चञ्चल) हुआथा

शधात्मानंकाशीपुर्य्यांव्यवस्थितः ॥ ४४ ॥ लोलार्कउत्तरार्कश्चसाम्बादित्यस्तथैवच ॥ चतुर्थोद्रुपदादित्योमयूखादित्यएवच ॥ ४५ ॥ खखोल्कश्चारुणादित्योवृद्धकेशवसञ्ज्ञकौ ॥ दशमोविमलादित्योगङ्गादित्यस्तथैवच ॥ ४६ ॥ द्वादशश्चयमादित्यःकाशिपुर्य्यांघटोद्भव ॥ तमोऽधिकेभ्योदुष्टेभ्यःक्षेत्रंरक्षन्त्यमीसदा ॥४७॥ तस्यार्कस्यमनोलोलंयदासीत्काशिदर्शने ॥ अतोलोलार्कइत्याख्याकाश्यांजाताविवस्वतः ॥ ४८ ॥ लोलार्कस्त्वसिसम्भेदेदक्षिणस्यांदिशिस्थितः ॥ योगक्षेमंसदाकुर्यात्काशीवासिजनस्यच ॥ ४९ ॥ मार्गशीर्षस्यसप्तम्यांषष्ठ्यांवारविवासरे ॥ विधायवार्षिकींयात्रांनरःपापैःप्रमुच्यते ॥ ५० ॥ कृतानियानिपापानिनरैःसंवत्सरावधि ॥ नश्यन्तितत्क्षणतस्तानिषष्ठ्यर्केलोलदर्शनात् ॥ ५१ ॥ नरःस्नात्वासिसम्भेदेसंतर्प्यपितृदेवताः ॥ श्राद्धंविधायविधिनापित्रानृण्यमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ लोलार्कसङ्गमेस्नात्वादानंहोमंसुरार्चनम् ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्मतदानन्त्यायकल्पते ॥ ५३ ॥ सूर्योपरागेलोलार्केस्नानदानादिकाः

इससे काशीमें सूर्य्यका लोलार्क यह नाम होगयाहै ॥ ४८ ॥ और असीसंगमके समीप दक्षिण दिशामें टिकेहुये लोलार्कजी सदैव काशीवासी जनका योग क्षेम करते हैं॥४९॥ व अगहनकी सप्तमी और छठसे रविवारका योग होनेमें वार्षिकी यात्राकोकर मनुष्य महापापों से छूटजाताहै ॥ ५० ॥ व मनुष्योंने वर्ष पर्य्यन्त जो पाप कियाहै वह छठ और रविवारके योगमें लोलार्क के दर्शनमात्रसे क्षणमात्रमें नष्ट होताहै ॥ ५१ ॥ व मनुष्य असीसंगममें नहाय देवपितरों का तर्पणकर और विधिपूर्वक श्राद्धकर पितरों की आनृण्यको प्राप्त होताहै याने उनके ऋण से छूटजाताहै ॥ ५२ ॥ व लोलार्कके समीप संगममें स्नानकर जोकि दान व होम और देवपूजादि कुछ कर्म्म कियाजाता

है वह आनंतयके लिये समर्थ होताहै ॥ ५३ ॥ व सूर्य्यग्रहण के समय में लोलार्क के समीप स्नान और दानादि क्रियायें कुरुक्षेत्र से दशगुना होती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ५४ ॥ व माघसुदी सप्तमी मे लोलार्क के समीप गंगा और असी नदी के संगममें नहाकर उसीक्षणमें सात जन्मोमे कियेहुये पातको से विमुक्त होताहै ॥ ५५ ॥ व जोकि पवित्रव्रत होकर प्रति रविवार में लोलार्क के दर्शन करताहै उसको इस लोकमें दुःख कभी न होगा ॥ ५६ ॥ व जोकि रविवार में लोलार्कको देखे और उनके चरणामृतका सेवक होवे उसकी देहमें ददरी व दाद व खाज आदि रोग और दुःख भी कभी न होगा ॥ ५७ ॥ व काशीमें बसकर भी जो लोलार्ककी सेवा नहीं करताहै

क्रियाः ॥ कुरुक्षेत्राद्दशगुणाभवन्तीहनसंशयः ॥ ५४ ॥ लोलार्केरथसप्तम्यांस्नात्वागङ्गासिसङ्गमे ॥ सप्तजन्मकृतैःपापै र्मुक्तोभवतितत्क्षणात् ॥ ५५ ॥ प्रत्यर्कवारंलोलार्कंयःपश्यतिशुचिव्रतः ॥ नतस्यदुःखंलोकेस्मिन्कदाचित्सम्भविष्य ति ॥ ५६ ॥ नतस्यदुःखंनोपामानदद्रुर्नविचर्चिका ॥ लोलार्कमर्केयःपश्येत्तत्पादोदकसेवकः ॥ ५७ वाराणस्यामुषित्वा पियोलोलार्कंनसेवते ॥ सेवन्तेतंनरंनूनंक्लेशाःक्षुद्व्याधिसम्भवाः ॥ ५८ ॥ सर्वेषांकाशितीर्थानांलोलार्कःप्रथमंशिरः ॥ त तोऽङ्गान्यन्यतीर्थानितज्जलप्लावितानिहि ॥ ५९ ॥ तीर्थान्तराणिसर्वाणिभूमीवलयगान्यपि ॥ असिसम्भेदतीर्थस्यक लांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ६० ॥ सर्वेषामेवतीर्थानांस्नानाद्यल्लभ्यतेफलम् ॥ तत्फलंसम्यगाप्येतनरैर्गङ्गासिसङ्गमे ॥ ६१ ॥ नार्थवादोयमुदितःस्तुतिवादोनवैमुने ॥ सत्यंयथार्थवादोयंश्रद्धेयःसद्भिरादरात ॥ ६२ ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षाद्यत्रस्वर्गत रङ्गिणी ॥ मिथ्यातत्रानुमन्यन्तेताकिंकाश्चानुसूयकाः ॥ ६३ ॥ उदाहरन्तियेमूढाःकुतर्कबलदर्पिताः ॥ काश्यांसर्वेर्थवा

उस मनुष्यको भूंख और रोगों से उपजेहुयें क्लेश निश्चय करके सेवते है ॥ ५८ ॥ क्योकि काशी के सब तीर्थोंके बीचमें लोलार्क मुख्य व मस्तकहै और उस जलसे भीगेहुये अन्य अनेकों तीर्थ उसके अंगहैं ॥ ५९ ॥ व भूमण्डलमे प्राप्त सब तीर्थांतर भी असीसंगम तीर्थकी सोलहवीं कलाको योग्य नहीं होते हैं ॥ ६० ॥ सब तीर्थ नहाने से मनुष्योको जो फल मिलताहै वह फल गंगा और असीनदी के संगममें भलीभांतिसे प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥ हे मुने ! यह अर्थवाद व स्तुतिवाद नहीं कहागयाहै किन्तु यह सत्य से यथार्थवाद है इससे आदरपूर्वक सज्जनों को श्रद्धा करना चाहिये ॥ ६२ ॥ जहां साक्षात विश्वनाथजी देव व जहां गंगाजी विराजमानहै तहां

तार्किक निन्दकलोग मिथ्या अनुमान करते हैं ॥ ६३ ॥ कुतर्कों के बलसे गर्वित जे सब मूढ़ कहते हैं या उदाहरण देते हैं कि काशीमें यह अर्थवादहै वे लोग युग युग मे विष्ठाके कीड़े होते हैं ॥ ६४ ॥ हे मुने ! त्रैलोक्यमण्डप भी काशीके किसी तीर्थकी बडी महिमाकी तुलामें नहीं चढ़ताहै याने उसकी समता नहीं करसक्ताहै यह निश्चयहै ॥ ६५ ॥ जोकि नास्तिक, वेदमतसे बाहर व शिश्नोदरपरायण और अन्त्यजहैं उनके आगे काशी न बरणीजावे ॥ ६६ ॥ लोलार्ककी किरणोंसे तपेहुये व असीनदीकी धारसे विखंडित बड़े मल या महामलिन मनवाले मनुष्य काशी के दक्षिण भागमें नहीं पैठसक्ते हैं ॥ ६७ ॥ और उत्तम जन दुःखसागर संसारमे लोलार्क के इस माहात्म्य

दोयन्तेविट्कीटायुगेयुगे ॥ ६४ ॥ कस्यचित्काशितीर्थस्यमहिम्नोमहतस्तुलाम् ॥ नाधिरोहेन्मुनेनूनमपित्रैलोक्यमण्डपः ॥ ६५ ॥ नास्तिकावेदबाह्याश्चशिश्नोदरपरायणाः ॥ अन्त्यजाताश्चयेतेषांपुरःकाशीनवर्ण्यताम् ॥ ६६ ॥ लोलार्ककरनिष्टप्ताअसिधाराविखण्डिताः ॥ काश्यांदक्षिणदिग्भागेनविशेयुर्महामलाः ॥ ६७ ॥ महिमानमिमंश्रुत्वालोलार्कस्यनरोत्तमः ॥ नदुःखीजायतेक्वापिसंसारेदुःखसागरे ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेलोलार्कवर्णनंनामषट्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ अथोत्तरस्यामाशायांकुण्डमर्काख्यमुत्तमम् ॥ तत्रनाम्नोत्तरार्केणरश्मिमालीव्यवस्थितः ॥ १ ॥ तापयन्दुःखसङ्घातंसाधूनाप्याययन्रविः ॥ उत्तरार्कोमहातेजाःकाशींरक्षतिसर्वदा ॥ २ ॥ तत्रेतिहासोयोवृत्तस्तंनिशा

को सुनकर कभी भी दुःखी नहीं होताहै ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेलोलार्कमाहात्म्यवर्णनंनामषट्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४६ ॥

दो० । सैंतालिस अध्याय में वर्णन युत विस्तार । उत्तरार्क माहात्म्यको सुनि भागत भवभार ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि अब (लोलार्ककी उत्पत्तिपूर्वक माहात्म्य कहनेके बाद उत्तरार्ककी उत्पत्ति व महिमा कही जाती है) काशीकी उत्तरदिशा में जो उत्तम अर्ककुण्ड है वहां उत्तरार्क नामसे सूर्य्यजी टिके हैं ॥ १ ॥ दुःखसमूह को तपाते व साधुओंको बढ़ातेहुये उत्तरार्क नामक महातेजवाले सूर्य्यजी सदैव काशीपुरीकी रक्षा करते हैं ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! वहां जो इतिहास वर्त्तमान होगयाहै उसको सुनो

कि आत्रेय वंशमें उत्पन्न कोई प्रियव्रतनामक ब्राह्मण ॥ ३ ॥ काशीमें हुआ जोकि अच्छा आचारवान् व सदैव अतिथिलोगों के प्यार करनेवालाथा उसकी महामनोहर, शुभव्रता नामवाली स्त्री ॥ ४ ॥ पतिकी सेवामे तत्पर व घरके कर्मों में कुशलथी उस प्रियव्रत ब्राह्मणने उसशुभव्रता स्त्री में सुलक्षणा नाम्नी एक कन्याको उत्पन्न किया॥५॥ जब बृहस्पति केन्द्रस्थान में टिके थे तब मूलनक्षत्र के पहले पाद में उपजीहुई वह कन्या माता पिताके घरमें उजेले पाख के चन्द्रमाकी नाईं बढ़नेलगी ॥ ६ ॥ जोकि सुरूपवती विनय व आचारवाली माता पिताकी प्रियकारिणी और घरके उपस्कर याने पात्रादि सामग्री शुद्धकरनेमें बहुतही निपुणहुई ॥ ७ ॥ वह पिताके घरमें जैसे जैसे

मयसुव्रत ॥ विप्रःप्रियव्रतोनामकश्चिदात्रेयवंशजः ॥ ३ ॥ आसीत्काश्यांशुभाचारःसदातिथिजनप्रियः ॥ भार्याशुभव्रतातस्यबभूवातिमनोहरा ॥ ४ ॥ भर्तृशुश्रूषणरतागृहकर्मसुपेशला ॥ तस्यांसजनयामासकन्यामेकांसुलक्षणाम् ॥ ५ ॥ मूलर्क्षप्रथमेपादेतथाकेन्द्रेबृहस्पतौ ॥ ववृधेसागृहेपित्रोःशुक्लेपक्षेयथाशशी ॥ ६ ॥ सुरूपाविनयाचारापित्रोश्चप्रियकारिणी ॥ अतीवनिपुणाजातागृहोपस्करमार्जने ॥ ७ ॥ यथायथासमैधिष्टसाकन्यापितृमन्दिरे ॥ तथातथापितुस्तस्याश्चिन्तासंववृधेतराम् ॥ ८ ॥ कस्मैदेयावराकन्यासुरम्येयंसुलक्षणा ॥ अस्याअनुगुणोलभ्यःक्वमयावरउत्तमः ॥ ९ ॥ कुलेनवयसाचापिशीलेनापिश्रुतेनच ॥ रूपेणार्थेनसंयुक्तःकस्मैदत्तासुखंलभेत् ॥ १० ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यज्वरोभूदतिदारुणः ॥ यश्चिन्ताख्योज्वरःपुंसामौषधैर्नापिशाम्यति ॥ ११ ॥ तन्मूलर्क्षविपाकेनचिन्ताख्येनज्वरेणच ॥ स विप्रःपञ्चतांप्राप्तस्त्यक्त्वासर्वंगृहादिकम् ॥ १२ ॥ पितर्युपरतेतस्याःकन्यायाःसाजनन्यपि ॥ शुभव्रतापरित्यज्यतांक

भलीभांति से बाढी वैसे वैसे उसके पिताके मनमें यह चिन्ता भी बहुतही बाढ़ी ॥ ८ ॥ कि यह श्रेष्ठ सुन्दरी सुलक्षणा कन्या किस के लिये देने योग्यहै व इसके अनुरूप उत्तम वर मुझको कहांपर लभ्य होगा ॥ ९ ॥ जोकि कुल, अवस्था, सदाचार या अच्छा स्वभाव, वेदादि पढना व रूप और धन से भी संयुतहोवे उस किसके लिये दीहुई यह कन्या सुखको पावे ॥ १० ॥ इसभांतिसे चिन्ता करतेहुये उस प्रियव्रत के अत्यन्त दारुण वह ज्वरहुआ जोकि चिन्तानामक मनुष्यों का ज्वर औषधों से नहीं शान्त होताहै ॥ ११ ॥ जब उस कन्याके मूल नक्षत्रके फलसे व चिन्तानामक ज्वरसे वह ब्राह्मण गृहादि सब वस्तुको छोंड़कर मरणको प्राप्तहोगया ॥ १२ ॥ तब पिताके मरतेही उस

कन्याकी माता शुभव्रता भी उस कन्याको छोड़कर पतिके पीछे चलीगई याने सती धर्मसे आपही अग्निमें पैठकर जलगई ॥ १३ ॥ क्योंकि स्त्रीका यह धर्महै कि जीते मरतेभी पतिके साथही पतिव्रता को सदा टिकना चाहिये ॥ १४ ॥ पुत्र, पिता, माता व बांधव आदि कोई जन नहीं रक्षा करता है केवल पति के पांवोंकी सेवाही स्त्री की रक्षा करती है ॥ १५ ॥ जब माता व पिता ये दोनों मरणको प्राप्त होगये तब दुःखसे पीड़ित सुलक्षणा भी दशाह को बिताकर औध्वंदैहिक याने द्वादशाह पिण्डादि देकर ॥ १६ ॥ दीनताको प्राप्तहुई अनाथ होकर बड़ी चिन्ताको पहुँची कि माता व पिता से हीन अकेली मैं कैसे संसारसागर के ॥ १७ ॥ दुस्तर पारको पाऊंगी जिससे

न्यांपतिमन्वगात् ॥ १३ ॥ धर्मोयंसहचारिण्याजीवताजीवतापिवा ॥ पत्यासहैवस्थातव्यंपतिव्रतयुजासदा ॥ १४ ॥ ना पत्यंपातिनोमातानपितानैवबान्धवा ॥ पत्युश्चरणशुश्रूषापायाद्वैकेवलंस्त्रियम् ॥ १५ ॥ सुलक्षणापिदुःखार्तापित्रोःपञ्च त्वमाप्तयोः ॥ औध्र्वदैहिकमापाद्यदशाहंविनिवर्त्यच ॥ १६ ॥ चिन्तामवापमहतीमनाथादैन्यमागता ॥ कथमेकाकिनी पित्रामात्राहीनाभवाम्बुधेः ॥ १७ ॥ दुस्तरंपारमाप्स्यामिस्त्रीत्वंसर्वाभिभावियत् ॥ नकस्मैचिद्दरायाहंपितृभ्यांप्रतिपा दिता ॥ १८ ॥ तददत्ताकथंस्वैरमहमन्यंवरंवृणे ॥ वृतोपिनकुलीनश्चेद्गुणवान्नचशीलवान् ॥ १९ ॥ स्वाधीनोपिनतत्ते नवृतेनापिहिकिम्भवेत् ॥ इतिसञ्चिन्तयन्तीसारूपौदार्यगुणान्विता ॥ २० ॥ युवभिर्बहुभिर्नित्यंप्रार्थितापिमुहुर्मुहुः ॥ न कस्यापिददौबालाप्रवेशंनिजमानसे ॥ २१ ॥ पित्रोरुपरतिंदृष्ट्वावात्सल्यंचतथाविधम् ॥ निनिन्दबहुधात्मानंसंसारं चनिनिन्दह ॥ २२ ॥ याभ्यामुत्पादिताचाहंयाभ्याञ्चपरिपालिता ॥ पितरौकुत्रतौयातौदेहिनोधिगनित्यताम् ॥ २३ ॥

स्त्रीभाव सबसे अनादरित है व माता और पिता ने मुझको किसी वर के लिये नहीं दिया ॥ १८ ॥ उससे विना दीहुई मैं अपनी इच्छासे कैसे अन्य वरको अंगीकार करूं व बराहुवा भी वर जो कुलीन गुणवान् शीलवान् ॥ १९ ॥ और अपने अधीन न होवे तो उस बरेहुये पति से क्या होगा इस प्रकार से बड़ी चिन्ता करतीहुई रूप व उदार गुणोंसे संयुत वह ॥ २० ॥ कन्या बारबार युवावस्थावाले बहुते जनों से नित्यही प्रार्थित होकर भी अपने मनमे किसीका प्रवेश न देतीभई ॥ २१ ॥ माता व पिता के मरण और उनकी वैसी वत्सलता को देखकर उसने अपनाको व संसारको भी बहुत भांतिसे निन्दा किया ॥ २२ ॥ कि जिन्होने मुझको उपजाया व जिन्होंने पाला

वे माता और पिता कहां गये देहधारियों की अनित्यता को धिक्है ॥ २३ ॥ आश्चर्य्य व खेदहै कि जैसे मेरे आगे माता व पिताकी देह नष्ट होगई है वैसेही मेरीभी देह विनाशवाली है ऐसा निश्चयकर मन और इन्द्रियों के जीतनेवाली उस कन्या ने ॥ २४ ॥ दृढ़ ब्रह्मचर्य्यव्रत को धारणकर अविचलमनहो हर्ष से उत्तरार्क देवके समीप में उग्र तपस्याको किया ॥ २५ ॥ वहां उसके तपस्या करतेही एक बहुत छोटी छागी प्रतिदिन आकर उसके आगे अचल होकर खड़ीहोवे ॥ २६ ॥ व सायङ्काल कुछ तृण पर्णादिक चरकर उस कुण्डका पानी पीनेवाली वह अपने स्वामी के घरको जावे ॥२७॥ तदनन्तर इस भांतिसे पांच छह वर्ष बीततेही देवीजी के साथ लीलासे विचरतेहुये

अहोदेहोप्यहोङ्गत्वंयथापित्रोःपुरोमम ॥ इतिनिश्चित्यसाबालाविजितेन्द्रियमानसा ॥ २४ ॥ ब्रह्मचर्यंदृढंकृत्वातपउग्रं चचारह ॥ उत्तरार्कस्यदेवस्यसमीपेस्थिरमानसा ॥ २५ ॥ तस्यांतपस्यमानायामेकाछागीलघीयसी ॥ तत्रप्रत्यहमागत्यतिष्ठेत्तत्पुरतोऽचला ॥ २६ ॥ तृणपर्णादिकंकिञ्चित्सायमभ्यवहृत्यसा ॥ तत्कुण्डपीतपानीयास्वस्वामिसदनंव्रजेत् ॥ २७ ॥ ततइत्थंव्यतीतासुपञ्चषासुसमासुच ॥ लीलयाविचरन्देवस्तत्रदेव्यासहागतः ॥ २८ ॥ सन्निधावुत्तरार्कस्यतपस्यन्तींसुलक्षणाम् ॥ स्थाणुवन्निश्चलांस्थाणुरद्राक्षीत्तपसाकृशाम् ॥ २९ ॥ ततोगिरिजयाशम्भुर्विज्ञप्तःकरुणात्मना ॥ वरेणानुगृहाणेमांबन्धुहीनांसुमध्यमाम् ॥ ३० ॥ शर्वाणीगिरमाकर्ण्यततःशर्वःकृपानिधिः ॥ समाधिमीलिताक्षींतामुवाचवरदोहरः ॥ ३१ ॥ सुलक्षणेप्रसन्नोस्मिवरंवरयसुव्रते ॥ चिरंखिन्नासितपसाकस्तेऽस्तीहमनोरथः ॥ ३२ ॥ सापिशम्भोर्गिरंश्रुत्वामुखपीयूषवर्षिणीम् ॥ महासन्तापशमनींलोचनेउदमीलयत् ॥ ३३ ॥ त्र्यक्षंप्रत्यक्षमावीक्ष्य

वहां आयेहुये देव ॥ २८ ॥ महादेवजीने उत्तरार्क के समीप तपस्या करती व ठूंठकी नाईं निश्चल और तपस्या से दुर्बल देहवाली सुलक्षणा को देखा ॥ २९ ॥ उसके बाद दयारूप देवीजी ने शङ्कर से विज्ञापना किया कि हे स्वामिन्! बन्धुवर्जित इस सुमध्यमाको वरसे अनुग्रह करो याने इसको वर देना चाहिये ॥ ३० ॥ तब यह पार्वतीका वचन सुनकर भक्तभयभञ्जन कृपानिधान वरदायक शिवजीने समाधि से आंखें मूँदे बैठीहुई उस सुलक्षणा से कहा ॥ ३१ ॥ कि हे सुव्रते, सुलक्षणे! हम प्रसन्न हैं वरको स्वीकार कर तू तपस्या से बहुत खिन्न है इस लोक में तेरा क्या मनोरथ है ॥ ३२ ॥ उसने भी मुखामृत के बरसनेवाली व महासन्तापनाशिनी महादेवजी की वाणी को

सुनकर नेत्रोंको उघाड़ा ॥ ३३ ॥ व अपने आगे वरदान देनेमें सम्मुख प्रत्यक्ष त्र्यक्ष (त्रिनयन) और उनके वाम ओरमें टिकीहुई श्रीदेवीजीको देखकर हाथजोड़नेवाली होकर प्रणामकिया ॥ ३४ ॥ व क्या वरदान मांगूं इस भांतिसे जबतक उस सुमध्यमाने विचारा तबतक उसने अपने आगे उस बापुरी बकरी को देखा और चिन्तना किया कि ॥ ३५ ॥ इस जीवलोकमें अपने अर्थ कौन मनुष्य नहीं जीवताहै परन्तु जो परोपकारके अर्थ जीवता है वही जीवता है ॥ ३६ ॥ जिससे मेरी तपोवृत्तिकी साक्षिणी इस छागीकरके मैं बहुतकाल से सेईगईहूं उससे इसकेही लिये जगतपति से वर लेतीहूं ॥ ३७ ॥ अपने मनमें यह विचारकर सुलक्षणाने शिवजी से कहा कि हे

वरदानोन्मुखंपुरः ॥ देवीञ्चवामभागस्थांप्रणनामकृताञ्जलिः ॥ ३४ ॥ किंवृणेयावदित्थंसाचिन्तयेच्चारुमध्यमा ॥ तावत्तयानिरैक्षिष्टवराकीवर्करीपुरः ॥ ३५ ॥ आत्मार्थंजीवलोकेस्मिन्कोनजीवतिमानवः ॥ परंपरोपकारार्थंयोजीवतिसजीवति ॥ ३६ ॥ अनयामत्तपोवृत्तिसाक्षिण्याबहुनेहसम् ॥ असेव्यहन्तदेतस्यैवरयामिजगत्पतिम् ॥ ३७ ॥ परामृश्यमनस्येतत्प्राहत्र्यक्षंसुलक्षणा ॥ कृपानिधेमहादेवयदिदेयोवरोमम ॥ ३८ ॥ अजशावीवराक्येषातर्हिप्रागनुगृह्यताम् ॥ वक्तुंपशुत्वान्नोवेत्तिकिञ्चिन्मद्भक्तिपेशला ॥ ३९ ॥ इतिवाचंनिशम्येशःपरोपकृतिशालिनीम् ॥ सुलक्षणायानितरान्तुतोषप्रणतार्तिहा ॥ ४० ॥ देवदेवस्ततःप्राहदेविपश्यगिरीन्द्रजे ॥ साधूनामीदृशीबुद्धिःपरोपकरणोर्जिता ॥ ४१ ॥ तेधन्याःसर्वलोकेषुसर्वधर्माश्रयाश्चते ॥ यतन्तेसर्वभावेनपरोपकरणायये ॥ ४२ ॥ संचयाःसर्ववस्तूनांचिरन्तिष्ठन्तिनोक्वचित् ॥ सुचिरन्तिष्ठतेचैकंपरोपकरणंप्रिये ॥ ४३ ॥ धन्यासुलक्षणाचैषायोग्याऽनुग्रहकर्मणि ॥ ब्रूहिदेविवरोदेयःकोऽस्यै

कृपानिधान, महादेवजी ! जो मुझको वर देने योग्यहै ॥ ३८ ॥ तो पहले इस बापुरी बकरीपर अनुग्रहकरो क्योंकि मेरी सेवामें दक्ष यह पशुभाव से कुछ बोलने नहीं जानती है ॥ ३९ ॥ इसभांति से सुलक्षणाकी परोपकार से सोहतीहुई वाणीको सुनकर प्रणतपीड़ाहर शंकरजी बहुतही सन्तुष्टहुये ॥ ४० ॥ तदनन्तर देवोंके देव महादेवजी बोले कि हे पार्वति, देवि ! देखो कि परोपकारमें बाढ़ीहुई साधुओंकी ऐसी बुद्धि होतीहै ॥ ४१ ॥ जे सब भावसे परोपकारके लिये यत्न करते हैं वे सब लोकों या लोगों में धन्य हैं और वे सब धर्मों के आधारहैं ॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! सब वस्तुओंकी राशियां बहुत कालतक कहीं नहीं टिकती हैं परन्तु एक परोपकार बहुत कालतक रहताहै ॥ ४३ ॥ हे प्रिये,

देवि! अनुकूल कार्य्य के लिये यह सुलक्षणा धन्यहै इससे तुम कहो कि कौन वर इसको और कौन छागीको देने योग्यहै ॥ ४४ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि, हे सब सृष्टिकर्ताओं के कारक, भक्तार्तिहारक, सर्वज्ञ! शुभ उद्यमवाली शुभाचारा यह सुलक्षणा मेरी सखी होवे ॥ ४५ ॥ जैसे जया जैसे विजया जैसे जयन्तिका जैसे शुभा, नन्दा, सुनन्दा, कौमुदी और उर्मिलाहै ॥ ४६ ॥ व जैसे चम्पकमाला, जैसे मलयवासिनी, जैसे कर्पूरलतिका व जैसे गन्धधारा, शुभहै ॥ ४७ ॥ जैसे अशोका व विशोका व मलयगन्धिनी, जैसे चन्दननिःश्वासा, जैसे मृगमदोत्तमा ॥ ४८ ॥ व जैसे कोकिलालापा, जैसे मधुरभाषिणी, जैसे गद्यपद्यनिधि, जैसे वह अनुक्तज्ञा ॥ ४९ ॥ व जैसे दृगं-

छाग्यैचकःप्रिये ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वसृष्टिकृतांकर्तःसर्वज्ञप्रणतार्तिहन् ॥ सुलक्षणाशुभाचारासखीमेस्तुशुभोद्यमा ॥ ४५ ॥ यथाजयाचविजयायथाचैवजयन्तिका ॥ शुभानन्दासुनन्दाचकौमुदीचयथोर्मिला ॥ ४६ ॥ यथाचम्पकमालाचयथामलयवासिनी ॥ कर्पूरलतिकायद्वद्गन्धधारायथाशुभा ॥ ४७ ॥ अशोकाचविशोकाचयथामलयगन्धिनी ॥ यथाचन्दननिःश्वासायथामृगमदोत्तमा ॥ ४८ ॥ यथाचकोकिलालापायथामधुरभाषिणी ॥ गद्यपद्यनिधिर्यद्वदनुक्तज्ञायथाचसा ॥ ४९ ॥ दृगञ्चलेङ्गितज्ञाचयथाकृतमनोरथा ॥ गानचित्तहरायद्वत्तथास्त्वेषासुलक्षणा ॥ ५० ॥ अतिप्रियाभवित्रीमेयद्बालब्रह्मचारिणी ॥ अनेनैवशरीरेणदिव्यावयवभूषणा ॥ ५१ ॥ दिव्याम्बरादिव्यगन्धादिव्यज्ञानसमन्विता ॥ समयामांसदैवास्तांचञ्चच्चामरधारिणी ॥ ५२ ॥ एषापिकाशिराजस्यकुमार्यस्त्विहवर्करी ॥ अत्रैवभोगान्संप्राप्यमुक्तिंप्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ ५३ ॥ अनयात्वर्ककुण्डेस्मिन्पुष्येमासिरवेर्दिने ॥ स्नातंत्वनुदितेसूर्येशीताद

चलेंगितज्ञा व कृतमनोरथा और जैसे गानचित्तहरा सखी है वैसेही यह सुलक्षणा भी होवे ॥ ५० ॥ जिससे यह बालब्रह्मचारिणी है इससे मेरी बड़ी प्यारी होवेगी व इस देहसेही अच्छे अंग और अलंकारवाली ॥ ५१ ॥ व दिव्यवस्त्रा दिव्यगन्धा दिव्यज्ञानसमन्विता और स्फुरतेहुये बालव्यजनके चलानेवाली होकर सदैव मेरे समीप में बसे ॥ ५२ ॥ और यह बकरी भी इस लोकमें काशीनरेशकी कन्या होवे इस काशी में भोगों को भलीभांति से प्राप्त होकर उत्तम मोक्षको पावेगी ॥ ५३ ॥ क्योंकि जाड़ेसे

जोकि कृष्णमार्गियों में प्रतापी थे ॥ २ ॥ उनके सूर्य्य से तेजस्वी अस्सीसमेत लाख पुत्रहुये हे अगस्त्यजी! स्वर्ग में भी उनके समान बालक नहीं हैं ॥ ३ ॥ वे सब अत्यन्त सुन्दर बड़े बलवान् शस्त्रविद्या व शास्त्रों के अतिशय जाननेवाले और अधिक सुलक्षण थे ॥ ४ ॥ उस द्वारकाके देखने के लिये ब्रह्माजी के मनसे उत्पन्नहुये पुत्र तपस्याओं के निधान व वल्कलको कोपीन किये कालेमृगचर्मका वस्त्रलिये ॥ ५ ॥ व हाथसे ब्रह्मचारीके योग्य दण्डको पकड़े तिगुनी मूंजकी मेखलावाले व वक्षःस्थलमें टिकी तुलसीकी मालासे विभूषित ॥ ६ ॥ व सोहतेहुये गोपीचन्दनके रसका लेपन लगाये व तपस्यासे सब अंगों में कृशतायुक्त और मूर्त्तिमान् अग्निकी नाईं जगमगाते

सः ॥ स्वर्गेपिताद्दशाबालाःसुशीलानहिकुम्भज ॥ ३ ॥ अतीवरूपसम्पन्नाअतीवसुमहाबलाः ॥ अतीवशस्त्रशास्त्रज्ञा अतीवशुभलक्षणाः ॥ ४ ॥ तान्द्रष्टुम्मानसःपुत्रोब्रह्मणस्तपसांनिधिः ॥ कृतवल्कलकौपीनोधृतकृष्णाजिनाम्बरः ॥ ५ ॥ गृहीतब्रह्मदण्डश्चत्रिवृन्मौञ्जीसुमेखलः ॥ उरस्थलस्थतुलसीमालयासमलंकृतः ॥ ६ ॥ गोपीचन्दननिर्यासलसदङ्गविलेपनः ॥ तपसाकृशसर्वाङ्गोमूर्तोज्वलनवज्ज्वलन् ॥ ७ ॥ आजगामाम्बरचरोनारदोद्वारकांपुरीम् ॥ विश्वकर्मविनिर्माणांजितस्वर्गपुरीश्रियम् ॥ ८ ॥ तंदृष्ट्वानारदंसर्वेविनम्रतरकन्धराः ॥ प्रबद्धमूर्धाञ्जलयःप्रणेमुर्वृष्णिनन्दनाः ॥ ९ ॥ साम्बःस्वरूपसौन्दर्यगर्वसर्वस्वमोहितः ॥ ननाममुनिन्तत्रहसंस्तद्रूपसम्पदम् ॥ १० ॥ साम्बस्यतमभिप्रायंविज्ञायसमहामुनिः ॥ विवेशसुमहारम्यंनारदःकृष्णमन्दिरम् ॥ ११ ॥ कृष्णोथदृष्ट्वाऽऽगच्छन्तम्प्रत्युद्गम्यचनारदम् ॥ मधुपर्केणसम्पूज्यस्वासनेचोपवेशयत् ॥ १२ ॥ कृत्वाकथाविचित्रार्थास्ततएकान्तवर्तिनः ॥ कृष्णस्यकर्णेऽकथयन्नारदः

हुये ॥ ७ ॥ आकाशचारी नारदजी विश्वकर्माकी बनाई व स्वर्गपुरीकी शोभाको जीतनेवाली श्रीद्वारकापुरीको आये ॥ ८ ॥ उन नारदजीको देखकर बहुत विनम्रकन्धरवाले व माथों मे हाथोंकी अंजलियां बांधेहुये सब यदुवंशियो के कुमारोंने प्रणामकिया ॥ ९ ॥ और वहां उन नारदकी रूपसंपत्तिको हँसतेहुये व अपने रूप सुन्दरताके गर्व सर्वस्वसे मोहित साम्बने मुनिके नमस्कार न किया ॥ १० ॥ व साम्बके उस अभिप्रायको जानकर वह महामुनि नारदजी महामनोरम श्रीकृष्णजी के मन्दिरमे पैठगये ॥ ११ ॥ उसके बाद आतेहुये नारदजीको देख व उनके प्रति उठ चलकर व मधुपर्क से भलीभांति पूजकर अपने आसन में बैठाया ॥ १२ ॥ तदनन्तर अद्भुत अर्थवाली

क्षोभरहित अन्तःकरणवाली इसने पूसमासके रविवारमें जब सूर्य्य नहीं उगे तब अर्ककुण्ड में नहाया है ॥ ५४ ॥ उस पुण्य से यह शुभलोचना राजपुत्री होवे हे विश्वेश्वर, प्रभो ! आपके वरदानके प्रभावसे ॥ ५५ ॥ अर्ककुण्डका वर्करीकुण्ड नाम होजावे व यहां इस छागीकी प्रतिमा मनुष्यों से पूजनीय होगी ॥ ५६ ॥ पूसमासके रविवारमे उत्तरार्कदेवकी वार्षिकीयात्रा फलचाही भक्तोको करना चाहिये ॥ ५७ ॥ इस भांतिसे पार्वती के कहेहुये इस सब वचनको सिद्धकरके उसके बाद सर्वव्यापक समर्थ और अतर्कित याने मन व वचनसे परे विश्वनाथजी अपने प्रासाद (मन्दिर) में पैठगये ॥ ५८ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाभाग, ब्राह्मण, अगस्त्यजी ! लोलार्क व

क्षुब्धचित्तया ॥ ५४ ॥ राजपुत्रीततःपुण्यादस्त्वेषाशुभलोचना ॥ वरदानप्रभावेणतवविश्वेश्वरप्रभो ॥ ५५ ॥ वर्करीकुण्डमित्याख्यात्वर्ककुण्डस्यजायताम् ॥ एतस्याःप्रतिमापूज्याभविष्यत्यत्रमानवैः ॥ ५६ ॥ उत्तरार्कस्यदेवस्यपुष्ये मासिरवेर्दिने ॥ कार्यासांवत्सरीयात्रानतैःकाशीफलेप्सुभिः ॥ ५७ ॥ मृडान्याभिहितंसर्वंकृत्वैतद्विश्वगोविभुः ॥ विश्वनाथोविवेशाथप्रासादंस्वमतर्कितः ॥ ५८ ॥ स्कन्दउवाच ॥ लोलार्कस्यचमाहात्म्यमुत्तरार्कस्यचद्विज ॥ कथितंते महाभागसाम्बादित्यंनिशामय ॥ ५९ ॥ श्रुत्वैतत्पुण्यमाख्यानंशुभंलोलोत्तरार्कयोः ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयेतनदारिद्र्येणबाध्यते ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेउत्तरार्कवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृणुष्वमैत्रावरुणेद्वारवत्यांयदूद्वहः ॥ दानवानांवधार्थायभुवोभारापनुत्तये ॥ १ ॥ आविरासीत्स्वयंकृष्णःकृष्णवर्त्मप्रतापवान् ॥ वासुदेवोजगद्धामदेवक्यांवसुदेवतः ॥ २ ॥ साशीतिलक्षंतस्यासन्कुमाराअर्कवर्च

उत्तरार्ककी महिमा तुमसे कहीगई अब साम्बादित्यको सुनो ॥ ५९ ॥ लोलार्क और उत्तरार्कके इस पुण्यरूप शुभ आख्यानको सुनकर मनुष्य रोगों से न हरायाजावे व दारिद्र्यसे न पीड़ितहोगा ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेउत्तरार्कवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४७ ॥ ◉ ॥

दो० । अड़तालिस अध्यायमें साम्बादित्य प्रकाश । महिमा बहु विस्तार से साम्ब कुष्ठका नाश ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि जिस द्वारकापुरी के बीच यदुवंशियो में श्रेष्ठ जोकि दानवों के वधके अर्थ व भूमिका भार उतारने के लिये ॥ १ ॥ स्वयं सदानन्दरूप श्रीकृष्णजीनामक जगदाधार विष्णुजी वसुदेव से देवकी देवीमें प्रकटहुये

कथाओं को कहकर नारदजी ने एकान्तवर्त्ती श्रीकृष्णजी के कानमें साम्बके कर्मको कहा ॥ १३ ॥ कि, हे यशोदानन्दवर्धन ! इस अन्तःपुर में अवश्यकर जो कुछ है वह बहुधा नहीं घटित होताहै अथवा स्त्रियोको असंभाव्य है याने सम्भावनाके योग्य नहीं होसक्ताहै ॥ १४ ॥ कि, त्रिलोकवासी युवाजनों के बीचमें साम्ब बडा स्वरूपवान् है व स्त्रियों के चित्तकी वृत्ति बहुतही चञ्चल होती है ॥ १५ ॥ किन्तु कामसे मोहित, सुन्दर आंखोंवाली स्त्रियां कुल शील पढ़ना सुनना और धनकी अपेक्षा नहीं करती हैं रूपकीही अपेक्षा करती हैं ॥ १६ ॥ अथवा आपने स्त्रियों के कर्मको नहीं जाना कि रुक्मिणी आदि आठ पट्टरानियों के विना अन्य स्त्रियां इस सांबको चाहती

साम्बचेष्टितम् ॥ १३ ॥ अवश्यङ्किञ्चिदत्राऽस्तियशोदानन्दवर्द्धन ॥ प्रायशस्तन्नघटतेऽसम्भाव्यन्नाथवास्त्रियाम् ॥ १४ ॥ यूनांत्रिभुवनस्थानांसाम्बोऽतीवसुरूपवान् ॥ स्वभावचञ्चलास्त्रीणांचेतोवृत्तिःसुचञ्चला ॥ १५ ॥ अपेक्षन्ते नमुग्धाक्ष्यःकुलंशीलंश्रुतन्धनम् ॥ रूपमेवसमीक्षन्तेविषमेषुविमोहिताः ॥ १६ ॥ अथवाविदितन्नोतेबल्लवीनांविचेष्टितम् ॥ विनाष्टौनायिकाःकृष्णकामयन्तेऽबलाह्यमुम् ॥ १७ ॥ वामभ्रुवांस्वभावाच्चनारदस्यचवाक्यतः ॥ विज्ञाताऽखिलवृत्तान्तस्तथ्यंकृष्णोप्यमन्यत ॥ १८ ॥ तावद्धैर्यञ्चलाक्षीणांतावच्चेतोविवेकिता ॥ यावन्नार्थीविविक्तस्थोविविक्तेर्थिनिनान्यथा ॥ १९ ॥ इत्थंविवेचयंश्चित्तेकृष्णःक्रोधनदीरयम् ॥ विवेकसेतुनाऽऽस्तभ्यनारदंप्राहिणोत्सुधीः ॥ २० ॥ साम्बस्यवैकृतंकिञ्चित्कचित्कृष्णोनवैक्षत ॥ गतेदेवमुनौतस्मिन्वीक्षमाणोप्यहर्निशम् ॥ २१ ॥ कियत्यपिगतेकाले पुनरप्याययौमुनिः ॥ मध्येलीलावतीनाञ्चज्ञात्वाकृष्णमवस्थितम् ॥ २२ ॥ बहिःक्रीडन्तमाहूयसाम्बमित्याहनारदः ॥

हैं ॥ १७ ॥ तब सब स्त्रियों के स्वभाव व नारद के वचन से सब वृत्तांत के जाननेवाले श्रीकृष्णजी ने भी तथ्य माना ॥ १८ ॥ कि, चञ्चलनेत्रवाली स्त्रियोंकी धीरता व चित्तकी विवेकिता तबतक होती है जबतक एकांत में टिकाहुवा अर्थी न होवे और एकांतवासी अर्थीके होतेही पूर्वोक्त अन्यथा नहीं हैं ॥ १९ ॥ इसभांति से चित्त में विचारते हुये सुबुद्धि श्रीकृष्णजी ने क्रोधरूप नदी के वेगको विचाररूप सेतुसे बांधकर नारदमुनिको पठाया ॥ २० ॥ व उन नारदके जातेही रातोदिन देखतेहुये कृष्णजीने सांबके किसी विकारको कहीं नहीं देखा ॥ २१ ॥ इस प्रकार से कुछकाल बीततेही लीलावती स्त्रियों के बीचमें टिकेहुये श्रीकृष्णजी को जानकर नारदमुनिभी फिर

आये ॥ २२ ॥ व बाहर खेलते हुये सांबको बुलाकर नारदजी ने यह कहा कि तुम शीघ्रही कृष्णके समीप में जावो व मेरा आना बतावो ॥ २३ ॥ तब सांबने क्षणभर इस प्रकार से चिंतना किया कि जाऊँ या न जाऊँ क्योंकि स्त्रीसमूहसखा है जिनका उन एकांतवासी पिताके प्रति किस भांति से जाऊँ ॥ २४ ॥ व ज्वलते हुये अंगार के समान जगमगाते तेजवाले ब्रह्मचारी इन मुनिके वचन से मैं कैसे न जाऊँ ॥ २५ ॥ एक समय प्रणाम करते हुये कुमारों के बीचमें मुझसे यह लज्जित हुये हैं याने उपहास करायेगये हैं इस समय भी इन महामुनि के वचन से जो न जाऊँ ॥ २६ ॥ तो दो अपराध देखने से अत्यन्त अहित होगा इस से पिताका क्रोध

याहिकृष्णान्तिकंतूर्णंकथयागमनंमम ॥ २३ ॥ साम्बोपियामिनोयामित्त्क्षणमित्थमचिन्तयत् ॥ कथंरहःस्थंपितरंयामिस्त्रैणसखंप्रति ॥ २४ ॥ नयामिचकथंवाक्यादस्याहंब्रह्मचारिणः ॥ ज्वलदङ्गारसंकाशस्फुरत्सर्वाङ्गतेजसः ॥ २५ ॥ प्रणमत्सुकुमारेषुव्रीडितोयम्मयैकदा ॥ इदानीमपिनोयायामस्यवाक्यान्महामुनेः ॥ २६ ॥ अत्याहितन्तदस्तीहतदागोद्वयदर्शनात् ॥ पितुःकोपोपिसुश्लाघ्योमयिनोब्राह्मणस्यतु ॥ २७ ॥ ब्रह्मकोपाग्निनिर्दग्धाःप्रोहन्तिनजातुचित् ॥ अपराग्निविनिर्दग्धारोहन्तेदावदग्धवत् ॥ २८ ॥ इतिध्यात्वाक्षणंसाम्बोऽविशदन्तःपुरम्पितुः ॥ मध्येस्त्रैणसभंकृष्णंयावज्जाम्बवतीसुतः ॥ २९ ॥ दूरात्प्रणम्यविज्ञप्तिंसचकारसशङ्कितः ॥ तावत्तमन्वगच्छच्चनारदःकार्यसिद्धये ॥ ३० ॥ ससम्भ्रमोथकृष्णोपिदृष्ट्वासाम्बञ्चनारदम् ॥ समुत्तस्थौपरिदधत्पीतकौशेयमम्बरम् ॥ ३१ ॥ उत्थितेदेवकीसूनौताः

मुझ में बहुत प्रशंसनीय है परन्तु ब्राह्मणका कोप नहीं ॥ २७ ॥ क्योंकि ब्राह्मणकी क्रोधाग्नि से जलेहुये कभी नहीं प्ररोहते (पनपते) हैं और अन्य अग्नि से जले हुये दावानल से दहे वृक्षों के समान फिर पनप आते हैं ॥ २८ ॥ इसभांति से क्षणभर विचारकर जांबवती का पुत्र सांब पिताके अन्तःपुर में पैठा व स्त्रीसमूह सभा के बीचमें जबतक कृष्णजी को ॥ २९ ॥ दूरसे प्रणामकर सशंकितहो उसने विज्ञापना किया तबतक नारदभी कार्य्यसिद्धि के लिये उसके पीछे चलेगये ॥ ३० ॥ उसके बाद रेशमीपीतांबरको धारतेहुये उद्वेग या आदर समेत श्रीकृष्णजी सांब और नारदमुनिको देखकर भलीभांति से उठखड़े होगये ॥ ३१ ॥ व देवकीपुत्रके उठतेही वे

सब गोपिकायें (इन्द्रियों के पालक देवोंकी भोग्य स्त्रियां जेकि अष्टावक्र के वरदानसे राजकन्या भई हैं वे) अपने अपने वस्त्रोंको धारतीहुई विलज्जित होकर खड़ी होगई ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णजी ने महामुनि नारदको हाथ पकड़कर महामोल के योग्य शय्या में बैठाया और सांब खेलने को चलागया ॥ ३३ ॥ तब कृष्णके साथ क्रीडा करने से ओदीयोनिवाली व आगे खड़ीहुई उन स्त्रियों के वीर्य्यपातको देखकर मुनिने हरिसे कहा ॥ ३४ ॥ कि, हे महाबुद्धे ! देखो देखो सांबको देखकर उसके रूपसे क्षोभयुक्त मनवाली ये स्त्रियां वीर्य्यच्युतिको प्राप्तभई हैं ॥ ३५ ॥ यह सुनकर कृष्णने भी सबोंको जांबवती के समान देखते हुये सांब पुत्रको बुलाकर दुष्टदैव होने से

सर्वाअपिगोपिकाः ॥ विलज्जिताःसमुत्तस्थुर्गृह्णन्त्यःस्वंस्वमम्बरम् ॥ ३२ ॥ महार्हशयनीयेतंहस्तेधृत्वामहामुनिम् ॥ समुपावेशयत्कृष्णःसाम्बश्चक्रीडितुंययौ ॥ ३३ ॥ तासांस्खलितमालोक्यतिष्ठन्तीनाम्पुरोमुनिः ॥ कृष्णलीलाद्रवीभूतवराङ्गानाङ्गगौहरिम् ॥ ३४ ॥ पश्यपश्यमहाबुद्धेदृष्ट्वाजाम्बवतीसुतम् ॥ इमाःस्खलितमापन्नास्तद्रूपक्षुब्धचेतसः ॥ ३५ ॥ कृष्णोपिसाम्बमाहूयसहसैवाशपत्सुतम् ॥ सर्वाजाम्बवतीतुल्याःपश्यन्तमपिदुर्विधेः ॥ ३६ ॥ यस्मात्त्वद्रूपमालोक्यगोपाल्यःस्खलिताइमाः ॥ तस्मात्कुष्ठीभवक्षिप्रमकाण्डागमनेनच ॥ ३७ ॥ वेपमानोमहाव्याधिभयात्साम्बोपिदारुणात ॥ कृष्णंप्रसादयामासबहुशःपापशान्तये ॥ ३८ ॥ कृष्णोप्यनेनसञ्ज्ञानन्साम्बंस्वसुतमौरसम् ॥ अब्रवीत्कुष्ठमोक्षायव्रजवैश्वेश्वरीम्पुरीम् ॥ ३९ ॥ तत्रब्रध्नंसमाराध्यप्रकृतिंस्वामवाप्स्यसि ॥ महैनसांक्षयोन्यत्र नास्तिवाराणसींविना ॥ ४० ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षाद्यत्रस्वर्गापगाचसा ॥ येषांमहैनसांदृष्टामुनिभिर्नैवनिष्कृतिः ॥

अकस्मात् शापदिया ॥ ३६ ॥ कि जिससे तेरा रूप देखकर ये दिव्य स्त्रियां स्खलितहुई हैं उससे और अनवसर में आने से तू शीघ्रही कोढ़ीहोवे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर दारुण महारोगके डरसे कांपते हुये सांबने भी पापशांत होनेके लिये श्रीकृष्णजी को बहुतही प्रसन्नता कराया ॥ ३८ ॥ व अपने औरस पुत्रको अपाप जानते हुये श्रीकृष्णजी ने भी साम्ब से कहा कि तुम कुष्ठरोग छूटनेके लिये विश्वनाथकी पुरीको जावो ॥ ३९ ॥ उस काशी में सूर्य्यदेव को भलीभांति से पूजकर अपनी प्रकृतिको पावोगे उस काशी विना अन्यत्र महापापों का नाश नहीं होता है ॥ ४० ॥ कि, जहां साक्षात् विश्वनाथ और वह गंगाजी विराजमानहैं जिन महापापोंका प्रायश्चित्त मुनियों से

तेषांविशुद्धिरस्त्येवप्राप्यवाराणसीम्पुरीम् ॥ ४१ ॥ नकेवलंहिपापेभ्योवाराणस्यांविमुच्यते ॥ प्राकृतेभ्योपिपापेभ्योमुच्यतेशङ्कराज्ञया ॥ ४२ ॥ पुरापुरारिणासृष्टमविमुक्तंविमुक्तये ॥ सर्वेषामेवजन्तूनांकृपयान्तेतनुत्यजाम् ॥ ४३ ॥ तत्रानन्दवनेशम्भोस्तवशापनिराकृतिः ॥ साम्बतत्त्वेरितंयाहिनान्यथाशापनिर्वृतिः ॥ ४४ ॥ ततःकृष्णंसमापृच्छ्यकर्मनिर्मुक्तचेष्टितः ॥ नारदःकृतकृत्यःसन्ययावाकाशवर्त्मना ॥ ४५ ॥ साम्बोवाराणसीम्प्राप्यसमाराध्यांशुमालिनम् ॥ कुण्डन्तत्पृष्ठतःकृत्वानिजाम्प्रकृतिमाप्तवान् ॥ ४६ ॥ साम्बादित्यस्तदारभ्यसर्वव्याधिहरोरविः ॥ ददातिसर्वभक्तेभ्योऽनामयाःसर्वसम्पदः ॥ ४७ ॥ साम्बकुण्डेनरःस्नात्वारविवारेऽरुणोदये ॥ साम्बादित्यञ्चसम्पूज्यव्याधिभिर्नाभिभूयते ॥ ४८ ॥ नस्त्रीवैधव्यमाप्नोतिसाम्बादित्यस्यसेवनात् ॥ बन्ध्यापुत्रम्प्रसूयेतशुद्धरूपसमन्वितम् ॥ ४९ ॥ शुक्लायांद्विजसप्तम्यांमाघमासिरवेर्दिने ॥ महापर्वसमाख्यातंरविपर्वसमंशुभम् ॥ ५० ॥ महारोगात्प्रमुच्ये

[line cut off at top of page] विशुद्धि काशीपुरी में जाकर होती है ॥ ४१ ॥ व काशीमें केवल पापसेही नहीं छूटताहै बरन शङ्करकी आज्ञा से प्रकृतिके कार्य्यरूप पापों से भी छूट जाताहै याने मोक्ष पाता है ॥ ४२ ॥ क्योंकि पूर्वकाल मे कृपाकरके शिवजी ने अन्त में देह त्यागते हुये सब जन्तुओ के भी मोक्षके लिये काशीको सिरजा है ॥ ४३ ॥ हे साम्ब ! शंकर के उस आनन्दवनमें तेरा शापोद्धार होगा अन्यथा शापसे सुख नहीं है यह सत्यता से कहागया है इस से तुम वहां जावो ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कृतार्थ हुये व कर्मों से कर्म छुड़ानेवाले नारदजी कृष्णजी से पूंछकर आकाशमार्ग से चलेगये ॥ ४५ ॥ व सांबभी काशीको प्राप्तहो सूर्य्यको भलीभांति से पूजकर व उनके पीछे कुण्ड बनवाकर अपनी प्रकृतिको प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ तब से लगाकर सबरोगहर सांबादित्य नामके सूर्य्यजी सब भक्तोंको नीरोग सब सम्पत्ति देते हैं ॥ ४७ ॥ इससे मनुष्य सूर्य्यवार में अरुणोदय समय सांबकुण्ड मे स्नानकर व साम्बादित्यको पूजकर रोगो से नहीं हराया जाताहै ॥ ४८ ॥ व साम्बादित्यकी सेवा से स्त्रीवैधव्यको नहीं प्राप्तहोती और बंध्याभी शुद्धरूप समेत सुपुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मण ! माघमास के उजेले पाखकी द्वितीया तिथि व सूर्य्य वारके संयोग

में सूर्य्यग्रहण के समान महापर्वनामक यह शुभ योग भलीभांति से कहा गया है ॥ ५० ॥ उसमें अरुणोदय समय नहाकर व सांबादित्य की अधिक पूजाकर भी अक्षय धर्मको प्राप्तहोवे ॥ ५१ ॥ सूर्य्यग्रहण के होतेही कुरुक्षेत्र के बीच संनिहती (रामकुण्ड) में जो पुण्य होती है वह पुण्य काशी में सूर्य्यवार और सप्तमी तिथिके योगमे है इसमें संशय नहीं है ॥ ५२ ॥ व चैतमासके सूर्य्यवारमें साम्बादित्यकी वार्षिकी यात्रा होती है उसमें विधान से कुण्डमें नहाकर अशोक के फूलो से भलीभांति पूजा कर ॥ ५३ ॥ साम्बादित्यको देखताहुआ मनुष्य शोकों से कभी नहीं हारता है और उसी क्षण में वर्षदिनके किये पापों से बाहर होजाताहै ॥ ५४ ॥ यहां विश्वेश्वर से

तत्रस्नात्वारुणोदये ॥ साम्बादित्यम्प्रपूज्यापिधर्मंमक्षयमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ सन्निहत्यांकुरुक्षेत्रेयत्पुण्यंराहुदर्शने ॥ तत्पुण्यंरविसप्तम्यांमाघेकाश्यान्नसंशयः ॥ ५२ ॥ मधौमासिरवेर्वारेयात्रासांवत्सरीभवेत् ॥ अशोकैस्तत्रसम्पूज्यकुण्डेस्नात्वाविधानतः ॥ ५३ ॥ साम्बादित्यन्नरोजातुनशोकैरभिभूयते ॥ संवत्सरकृतात्पापाद्बहिर्भवतितत्क्षणात् ॥ ५४ ॥ विश्वेशात्पश्चिमाशायांसाम्बेनात्रमहात्मना॥ सम्यगाराधितामूर्तिरादित्यस्यशुभप्रदा ॥ ५५ ॥ इयम्भाविष्यातन्मूर्तिरगस्तेत्वत्पुरोऽकथि ॥ तामभ्यर्च्यनमस्कृत्यकृत्वाष्टौचप्रदक्षिणाः ॥ नरोभवतिनिष्पापःकाशीवासफलंलभेत् ॥ ५६ ॥ साम्बादित्यस्यमाहात्म्यंकथितन्तेमहामते ॥ यच्छ्रुत्वापिनरोजातुयमलोकंनपश्यति ॥ ५७॥ इदानीन्द्रौपदादित्यंकथयिष्यामितेनघ ॥ तथाद्रौपदआदित्यःसंसेव्योभक्तसिद्धिदः ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसाम्बादित्यमाहात्म्यकथनन्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पश्चिमदिशा में महात्मा सांबने शुभदेनेवाली सूर्य्यकी मूर्त्तिको सम्यक् प्रकारसे पूजाहै ॥ ५५ ॥ हे अगस्ते ! यह भविष्य (आगे होनेवाली) उन सूर्य्यदेवकी मूर्त्ति तुम्हारे आगे कहीगई उसको सब ओरसे पूज व नमस्कारकर और आठ प्रदक्षिणा करके मनुष्य निष्पाप होवे व काशीवासका फल पावेगा ॥ ५६ ॥ हे महामते ! मैंने तुम्हारे आगे साम्बादित्यका माहात्म्यकहा जिसको सुनकर भी मनुष्य यमलोकको कभी नहीं देखताहै ॥ ५७ ॥ हे अनघ (अपाप) ! इस समय मैं जैसे तुमसे द्रौपदादित्यको कहूंगा वैसेही द्रौपद आदित्य भक्तों के लिये सिद्धिदाता और सब करके भलीभांति से सेवने योग्य हैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥

दो० । उंचसयें अध्याय में कथित द्रौपदादित्य । और मयूखादित्यजी देत चारि फल नित्य ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे पराशर के पुत्र, महामुनि, व्यासजी ! जब श्री-कार्त्तिकेयजी ने अगस्त्यजी से इस कथाको कहाथा तब द्रौपदी कहांथी ॥ १ ॥ श्रीव्यासदेवजी बोले कि, हे सूत ! पुराणरूप धर्मशास्त्र भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालकी कथाको कहताहै व जिससे सम्पूर्ण उसके विषयहै इससे यहां संदेह न करना चाहिये ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! तुम सुनो कि जगत् के हितकारी पञ्चमुख महादेवजी आपही पृथिवी में पांच प्रकारसे होकर प्रकट हुये ॥ ३ ॥ व जगदम्बा श्रीपार्वतीजी भी बड़ी सुन्दरी कन्या होकर यज्ञकरतेहुये द्रुपदराजा के

सूतउवाच ॥ पाराशर्यमुनेव्यासकुमारःकुम्भजन्मने ॥ यदावदत्कथामेतान्तदाक्वद्रुपदात्मजा ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ पुराणसंहितासूतब्रूतेत्रैकालिकीङ्कथाम् ॥ सन्देहोनात्रकर्तव्योयतस्तद्गोचरोखिलम् ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयमुनेपूर्वंपञ्चवक्त्रोहरःस्वयम् ॥ पृथिव्यांपञ्चधाभूत्वाप्रादुरासीज्जगद्धितः ॥ ३ ॥ उमापिचजगद्धात्रीद्रुपदस्य महीभुजः ॥ यजतोवह्निकुण्डाच्चप्रादुश्चक्रेतिसुन्दरी ॥ ४ ॥ पञ्चापिपाण्डुतनयाःसाक्षाद्रुद्रवपुर्धराः ॥ अवतेरुरिहस्वर्गाद्दुष्टसंहारकारकाः ॥ ५ ॥ नारायणोपिकृष्णत्वंप्राप्यतत्साहचर्यकृत ॥ उद्वृत्तवृत्तशमनःसद्वृत्तस्थितिकारकः ॥ ६ ॥ प्रतपन्तःपृथिव्यांतेपार्थाश्चेरुःपृथक्पृथक् ॥ उदयानुदयौतस्मिन्सम्पदांविपदामपि ॥ ७ ॥ कदाचित्तेमहावीराभ्रातृव्यप्रतिपादिताम् ॥ विपत्तिमाप्यमहतींबभूवुःकाननौकसः ॥ ८ ॥ पाञ्चाल्यपिचतत्पत्नीपतिव्यसनतापिता ॥ धर्मज्ञाप्राप्यतन्वङ्गीब्रध्नमाराधयद्भृशम् ॥ ९ ॥ आराधितोथसवितातयाद्रुपदकन्यया ॥ सदर्वींसपिधानाञ्चस्थालिकामक्षयां

अग्निकुण्ड से प्रकटहुईं ॥ ४ ॥ और साक्षात् रुद्ररूपधारी व दुष्टसंहारकारी पांचों भी पाण्डुकेपुत्र स्वर्ग से इस लोकमें उतरआये ॥ ५ ॥ व दुष्टों के वृत्तके नाशक, सदाचार के स्थापक नारायण भी कृष्णभावको प्राप्त होकर उनके सहायक हुये ॥ ६ ॥ उससमय पृथिवीमें प्रताप पसारतेहुये वे कुन्ती के पुत्र संपत्ति व विपत्तिके भी उदय और न उदयको प्राप्तभये ॥ ७ ॥ व कभी वे महावीर युधिष्ठिरादि पाण्डुपुत्र शत्रुओं से सम्पादित बडी विपत्तिको पहुँचकर वनवासी होगये ॥ ८ ॥ उनकी स्त्री भी जो कि पंजाब के राजाद्रुपदकी पुत्री व शुभांगी और धर्म्मज्ञाथी उसने पतियो के दुःख से संतापसंयुक्त होकर व काशीमें जाकर सूर्य्यदेव को बहुत पूजन किया ॥ ९ ॥ तद-

नन्तर उस द्रौपदी से पूजितहुये सूर्य्यजीने कलछुल व ऊपरकी ढकनी कटोरीसमेत अक्षया स्थाली (पाकपात्र याने बटुई) को दिया॥ १० ॥ और प्रसन्नमन, सूर्य्यदेवने सर्वत्र शुद्धमनवाली व पूजा करतीहुई द्रुपदकुमारीसे कहा॥ ११॥ कि हे महाभागे! जबतक तुम न भोजन करोगी तबतक जितने अन्नार्थी जन होवेंगे उतने इस स्थाली से तृप्तिको पहुँच जायँगे॥ १२ ॥ व तेरे भोजन करतेही भात आदि अन्नोंसे भरी, रसीले व्यंजनोंकी निधि और इच्छा भोजन देनेवाली यह स्थाली छूंछी होजावेगी॥१३॥ हे मुने ! उसने काशी में इसभांतिसे वर पाया और श्रीसूर्य्यदेवने उस द्रौपदीको अन्यभी वरदिया॥ १४ ॥ श्रीसूर्य्यजी बोले कि जो मनुष्य विश्वनाथ के दक्षिणभाग में

ददौ॥१०॥ उवाचचप्रसन्नात्माभास्करोद्रुपदात्मजाम्॥ आराधयन्तीम्भावेनसर्वत्रशुचिमानसाम्॥११॥ स्थाल्यैतया महाभागेयावन्तोऽन्नार्थिनोजनाः॥ तावन्तस्तृप्तिमाप्स्यन्तियावत्त्वंनभोक्ष्यसे॥ १२ ॥ भुक्तायान्त्वयिरिक्तैषापूर्णभक्ताभविष्यति॥ रसवद्व्यञ्जननिधिरिच्छाभक्ष्यप्रदायिनी॥ १३ ॥ इत्थंवरस्तयालब्धःकाश्यामादित्यतोमुने॥ अपरश्चवरोदत्तस्तस्यैदेवेनभास्वता॥ १४॥ रविरुवाच॥ विश्वेशाद्दक्षिणेभागेयोमान्त्वत्पुरतःस्थितम्॥ आराधयिष्यति नरःक्षुद्बाधातस्यनश्यति॥ १५॥ अन्यश्चमेवरोदत्तोविश्वेशेनपतिव्रते॥ तपसापरितुष्टेनतंनिशामयवच्मिते॥ १६॥ प्रागवेत्त्वांसमाराध्ययोमान्द्रक्ष्यतिमानवः॥ तस्यत्वंदुःखतिमिरमपानुदनिजैःकरैः॥ १७॥ अतोधर्मप्रियेनित्यंप्राप्य विश्वेश्वरद्वरम्॥ काशीस्थितानांजन्तूनांनाशयाम्यघसञ्चयम्॥ १८॥ येमामत्रभजिष्यन्तिमानवाःश्रद्धयान्विताः॥ त्वद्वरोद्यतपाणिञ्चतेषांदास्यामिचिन्तितम्॥ १९॥ भवतींमत्समीपस्थांयुधिष्ठिरपतिव्रताम्॥ विश्वेशाद्दक्षिणे

तेरे आगे टिकेहुये मुझको पूजेगा उसकी भूंखकी बाधा नष्ट होजायगी॥ १५ ॥ हे पतिव्रते! तपस्यासे सन्तुष्टहुये विश्वेश्वर ने मुझको अन्यभी वर दियाहै उसको सुन मैं तुझसे कहताहूं॥ १६॥ हे सूर्य्य! जो मनुष्य पहले तुमको भलीभांति से पूजकर हमको देखेगा उसके दुःखरूप अन्धकार को तुम अपनी किरणों से दूर करदेवो॥ १७॥ हे धर्मप्रिये! इससे मैं विश्वेश्वरसे वर पाकर अन्य देशोंसे आयेहुये काशीवासी जन्तुओं की पापराशिको नाश करताहूं॥ १८॥ जे श्रद्धासमेत मनुष्य यहां तुझको वर देने के लिये हाथ उठाये हुये मुझको भजैंगे उनके मनमाने फलको दूंगा॥ १९॥ व विश्वेश्वर के दक्षिण दण्डपाणिके समीप में मेरे निकट टिकीहुई युधिष्ठिर की

पतिव्रता स्त्री आपको ॥ २० ॥ जे पुरुष और स्त्रियांभी भक्तिसे पूजेंगी उनको प्यारेके वियोगसे उपजाहुवा डर कभी होनेवाला नहींहै ॥ २१ ॥ हे धर्मप्रिये, अपापे, द्रौपदि! रोगोंसे उपजा व भूंख और प्याससे हुवा डर काशी में तेरे दर्शन से कहींभी नहीं होगा ॥ २२ ॥ इस भांतिसे पूर्वोक्त वरोंको देकर सन्तों के सब दायक दिननायक देवने महादेवजी की पूजाकिया व द्रौपदी युधिष्ठिर के समीप चलीगई ॥ २३ ॥ जो मनुष्य द्रौपदीसे पूजितभी सूर्य्यकी इस कथाको भक्तिसे सुनेगा उसका पाप नाशको प्राप्त होगा ॥ २४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्यजी! मैंने संक्षेप से द्रौपदादित्य की महिमाको कहा इस समय तुम मयूखादित्य के माहात्म्य को सुनो ॥ २५ ॥ पूर्व

भागेदण्डपाणेःसमीपतः ॥ २० ॥ येर्चयिष्यन्तिभावेनपुरुषावास्त्रियोपिवा ॥ तेषांकदाचिन्नोभाविभयंप्रियवियोगजम्॥ २१ ॥नव्याधिजम्भयंकापिनक्षुत्तृड्दोषसम्भवम्॥ द्रौपदीक्षणतःकाश्यांतवधर्मप्रियेनघे॥२२॥ इतिदत्त्वावरान्देवआदित्यःसर्वदःसताम्॥ शम्भुमाराधयामासधर्मंद्रौपद्युपाययौ ॥ २३ ॥ आदित्यस्यकथामेतांद्रौपद्याराधितस्यवै ॥ यःश्रोष्यतिनरोभक्त्यातस्यैनःक्षयमेष्यति ॥ २४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ द्रौपदादित्यमाहात्म्यंसंक्षेपात्कथितंमया ॥ मयूखादित्यमाहात्म्यंशृणिवदानींघटोद्भव ॥ २५ ॥ पुरापञ्चनदेतीर्थेत्रिपुलोकेषुविश्रुते ॥ सहस्ररश्मिर्भगवांस्तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ २६ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गंगभस्तीश्वरसंज्ञितम् ॥ गौरीञ्चमङ्गलानाम्नींभक्तमङ्गलदांसदा ॥ २७ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तुशतेनगुणितम्मुने ॥ आराधयञ्छिवंसोमंसोमार्धकृतशेखरम् ॥ २८ ॥ स्वरूपतस्तुतपनस्त्रिलोकीतापनक्षमः ॥ ततोतितीव्रतपसाजज्वालनितरांमुने ॥ २९ ॥ मयूखैस्तत्रसवितुस्त्रैलोक्यदहनक्षमैः ॥ ततंसमस्तन्तत्कालेद्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ ३० ॥

काल में ऐश्वर्य्यसम्पन्न श्रीसूर्य्यदेवने त्रिलोक मे विदित पञ्चनद तीर्थ के समीप में सुदारुण तप किया ॥ २६ ॥ गभस्तीश्वरनामक महालिंग व सदाभक्तों को मंगल देनेवाली मगलानाम्नी गौरीदेवीको थापकर ॥ २७ ॥ हे मुने! सौसे गुणे हुये दिव्य सहस्र वर्ष याने लक्षवर्ष पर्य्यन्त चन्द्रखण्ड भालवाले पार्वती समेत शिवको पूजते हुये ॥ २८ ॥ व स्वरूपसेही तपनेवाले और त्रिलोकके तपाने में समर्थ सूर्य्यजी उस तीव्रतपसे बहुतही प्रज्वलित होगये हे मुने! ॥ २९ ॥ उससमय मे द्युलोक व भूमिका

जो अन्तर है वह सब तहां त्रैलोक्य दहने में समर्थ, सूर्य्यकिरणों से व्याप्तहुवा ॥ ३० ॥ व तीव्र, सूर्य्य तेजके होतेही पतंगत्व के समान भयसे अर्थात् जैसे अग्निमें पड़ने से पतंगों (पांखियो) का नाश होताहै वैसेही इसमें हमारा नाश होगा इस डरसे देवोंने ध्रुवलोक में आनाजाना छोड़दिया ॥ ३१ ॥ व कदम्बफूलके समान स्थितिवाले सूर्य्य के मयूख (किरणें) ही तिरछा ऊँचे और नीचे भी देखपड़ती थीं सूर्य्यजी नहीं ॥ ३२ ॥ किन्तु तेजों की राशि व तपस्याओं की राशिरूप उन सूर्य्य देवकी तपोज्वालाओं के तीव्र डर से स्थावर जंगम समेत सब जगत् कॉपनेलगा ॥ ३३ ॥ कि सूर्य्यजी वेदों में इस जगत् के आत्मा पढ़े जाते हैं वही जो ज्वाला करनेवाले हैं

वैमानिकैर्विष्णुपदेतत्यजेचगतागतम् ॥ तीव्रेपतङ्गमहसिपतङ्गत्वभयादिव ॥ ३१ ॥ मयूखाएवदृश्यन्तेतिर्यगूर्ध्वमधोपि च ॥ आदित्यस्यनचादित्योनीपपुष्पस्थितेरिव ॥ ३२ ॥ तस्यवैमहसांराशेस्तपोराशेस्तपोर्चिषाम् ॥ चकम्पेसाध्वसात्त्रीव्रात्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३३ ॥ सूर्यआत्मास्यजगतोवेदेषुपरिपठ्यते ॥ सएवचेज्ज्वालयिताकोनस्त्राताभवेदिह ॥ ३४ ॥ जगच्चक्षुरसौसूर्योजगदात्मैषभास्करः ॥ जगद्योयन्मृतप्रायंप्रातःप्रातःप्रबोधयेत् ॥ ३५ ॥ तमोन्धकूपपतितमुद्यन्नेषदिनेदिने ॥ प्रसार्यपरितःपाणीन्प्राणिजातंसमुद्धरेत् ॥ ३६ ॥ उदितेऽत्रोदिमोनित्यमस्तंयात्यस्तमाप्नुमः ॥ उदयेऽनुदयेतस्मादस्माकङ्कारणंरविः ॥ ३७ ॥ इतिव्याकुलितंविश्वम्पश्यन्विश्वेश्वरःस्वयम् ॥ विश्वत्रातावरंदातुंसञ्जग्मेतिग्मरश्मये ॥ ३८ ॥ मयूखमालिनंशम्भुरालोक्यातिसुनिश्चलम् ॥ समाधिविस्मृतात्मानंविसिस्मायतपःप्र

तो इस लोकमें कौन हमारा रक्षक होगा ॥ ३४ ॥ यह सूर्य्यजी जगत् के नेत्र हैं व यह प्रकाशकर्ता जगत् के आत्मा हैं व जोकि जगतरूप है जिससे प्रति प्रातःकाल में जगत् को जगाते हैं ॥ ३५ ॥ व उगतेहुये यह सूर्य्य दिन दिन में सब ओर से अपनी रश्मियोंको पसारकर तमोंधकारमें पतित प्राणी समूह को उबारते हैं ॥ ३६ ॥ इन सूर्य्य के उगतेही हमलोग उदित होते हैं और अस्तको जातेही अस्तको प्राप्त होते हैं उससे हमारे उदय व न उदयके कारण सूर्य्यही हैं ॥ ३७ ॥ इस भांति से व्याकुलित विश्वको देखकर विश्वके रक्षक स्वयं विश्वनाथजी सूर्य्य के लिये वरदेने को भलीभांति से गये ॥ ३८ ॥ व समाधि में अपना को बिसरे हुये सुनिश्चल सूर्य्य

को देखकर शङ्करने तपस्या के प्रति विस्मय किया ॥ ३९ ॥ और प्रसन्नमनवाले, भक्तार्तिभंजन महादेवजी ने कहा कि हे तेजों के निधान, द्युमणे ! तपस्याकरके पूर्ण- ता है अब तुम वर को कहो ॥ ४० ॥ इस प्रकार से बधिर के समान दो तीनवार कहेहुये भी सूर्य्य देवने ध्यान समाधि के द्वारा इन्द्रियों की वृत्ति रोकने से शम्भुके वचन को न ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ उन सूर्य्यको काष्ठीभूत जानकर शंकरजी ने बडी तपस्या से उपजी तपनि के निवारनेवाले अमृत के वर्षक हाथ से छूदिया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर विश्वलोचन (सूर्य्यजी) ने आंखो को उघाड़ा कि जैसे प्रातःकालमें उन सूर्य्य के उदयको प्राप्त होकर कमलों का वन विकस उठता है ॥ ४३ ॥ न जैसे

ति ॥ ३९ ॥ उवाचचप्रसन्नात्माश्रीकण्ठःप्रणतार्तिहृत् ॥ अलन्तप्त्वावरंब्रूहिद्युमणेमहसांनिधे॥४०॥ निरुद्धेन्द्रियवृत्तित्वा द्बधनोध्यानसमाधिना ॥ नजग्राहवचःशम्भोर्द्वित्रिरुक्तोप्यकर्णवत् ॥ ४१ ॥ काष्ठीभूतन्तुतंज्ञात्वाशिवःपस्पर्शपाणिना ॥ महातपः समुद्भूतसन्तापामृतवर्षिणा ॥ ४२ ॥ ततउन्मीलयांचक्रेलोचनेविश्वलोचनः ॥ तस्योदयमिवप्राप्यप्रगेपङ्क जिनीवनी ॥ ४३ ॥ परिव्यपेतसन्तापस्तपनःस्पर्शनाद्विभोः ॥ अवग्रहितसस्यश्रीरुल्लासयथाम्बुदात् ॥ ४४ ॥ मित्रोने त्रातिथीकृत्यत्र्यक्षंप्रत्यक्षमग्रतः ॥ दण्डवत्प्रणनामोच्चैस्तुष्टावचपिनाकिनम् ॥ ४५ ॥ रविरुवाच ॥ देवदेवजगतांप तेविभोभर्गभीमभवचन्द्रभूषण ॥ भूतनाथभवभीतिहारकत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ४६ ॥ चन्द्रचूडमृडधूर्जटेह रत्र्यक्षदक्षशततन्तुशातन ॥ शान्तशाश्वतशिवापतेशिवत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ४७ ॥ नीललोहितसमीहि

वृष्टिप्रतिबंधवाली सस्यकी शोभा मेघसे उल्लसित होती है वैसेही विश्वनाथ के छूने से सूर्य्यजी संतापसे हीन होगये ॥ ४४ ॥ और सूर्य्यजी ने आगे प्रत्यक्ष हुये त्रिनेत्र शिवको आंखों का अतिथिकर याने देखकर दंड के समान प्रणाम व स्तुति किया ॥ ४५ ॥ सूर्य्यजी बोले कि हे देवदेव ! हे जगतांपते ! हे विभो ! हे भर्ग ! हे भीम ! हे भव ! हे चन्द्रभूषण ! हे भूतनाथ ! हे भवभीतिहारक ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ४६ ॥ हे चन्द्रचूड ! हे मृड ! हे धूर्जटे ! हे हर ! हे त्र्यक्ष ! हे दक्षशततन्तुशातन ! हे शांत ! हे शाश्वत ! हे शिवापते ! हे शिव ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ४७ ॥ हे नीललोहित ! हे समीहि-

तार्थद ! हे द्व्येकलोचन ! हे विरूपलोचन ! हे व्योमकेश ! हे पशुपाशनाशन ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ४८ ॥ हे वामदेव ! हे शितिकण्ठ ! हे शूलभृत् ! हे चन्द्रशेखर ! हे फणीन्द्रभूषण ! हे कामकृत् ! हे पशुपते ! हे महेश्वर ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ४९ ॥ हे त्र्यम्बक ! हे त्रिपुरसूदन ! हे ईश्वर ! हे त्राणकृत् ! हे त्रिनयन ! हे त्रयीमय ! हे कालकूटदलन ! हे अंतकांतक ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ५० ॥ हे शर्वरीरहित ! हे शर्व ! हे सर्वग ! हे स्वर्गमार्गसुखद ! हे अपवर्गद ! हे अंधकासुररिपो ! हे कपर्दभृत् ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करने

तार्थदद्व्येकलोचनविरूपलोचन ॥ व्योमकेशपशुपाशनाशनत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ४८ ॥ वामदेवशितिकण्ठशूलभृच्चन्द्रशेखरफणीन्द्रभूषण ॥ कामकृत्पशुपतेमहेश्वरत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ४९ ॥ त्र्यम्बकत्रिपुरसूदनेश्वरत्राणकृत्त्रिनयनत्रयीमय ॥ कालकूटदलनान्तकान्तकत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ५० ॥ शर्वरीरहितशर्वसर्वगस्वर्गमार्गसुखदापवर्गद ॥ अन्धकासुररिपोकपर्दभृत्त्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ५१ ॥ शङ्करोग्रगिरिजापतेपतेविश्वनाथविधिविष्णुसंस्तुत ॥ वेदवेद्यविदिताऽखिलेङ्गितत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ५२ ॥ विश्वरूपपररूपवर्जितब्रह्मजिह्मरहितामृतप्रद ॥ वाङ्मनोविषयदूरदूरगत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ५३ ॥ इत्थंपरीत्यमार्तण्डोमृडन्देवंमृडानिकाम् ॥ अथतुष्टावप्रीतात्माशिववामार्धहारिणीम् ॥ ५४ ॥ रविरुवाच ॥ देवित्वदीयचरणाम्बुजरेणुगौरींभा

वालाहूं ॥ ५१ ॥ हे शंकर ! हे उग्र ! हे गिरिजापते ! हे पते ! हे विश्वनाथ ! हे विधिविष्णुसंस्तुत ! हे वेदवेद्य ! हे विदिताखिलेङ्गित ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ५२ ॥ हे विश्वरूप ! हे पर ! हे रूपवर्जित ! हे ब्रह्मस्वरूप ! हे जिह्मरहित ! हे अमृतप्रद ! हे वाङ्मनोविषयदूर ! हे दूरग ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ५३ ॥ इस भांति से सुखकारक महादेवजी की प्रदक्षिणापूर्वक स्तुतिकर तदनन्तर प्रसन्नमन होकर सूर्य्यदेवने शिववामार्धहारिणी पार्वती की स्तुति किया ॥ ५४ ॥ श्रीसूर्य्यदेवजी बोले कि हे देवि ! दण्डवत प्रणाम करने में प्रवीण जो कोई तुम्हारे पदकमलकी धूलिसे गोरे रंगवाली भालस्थली को

धारताहै उस पुरुषकी उस भालस्थली को अन्य जन्म में भी चन्द्रमा की सुन्दर लेखाभी बहुतही शोभित करती है ॥ ५५ ॥ हे श्रीयुक्तमूर्तिमन्मंगले ! हे सकलमङ्गलजन्मभूमे ! हे लक्ष्मी के लिये मंगलदायिनि ! हे सकल पातकरूप रुई राशि की अग्निरूपिणि ! हे ब्रह्मविद्या की मंगलकारिणि ! हे सकलदानवगर्वहारिणि ! हे अविद्या माया की सौभाग्यसाधिके ! तुम इस सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करो ॥ ५६ ॥ हे विश्वेश्वरि ! तुम विश्वजनकी करनेवाली हो व पालनकारिणी हो वैसेही प्रलयकाल में भी जगतकी संहारिणी हो व तुम्हारे नाम के संकीर्तनसे स्वच्छ पुण्यवाली नदी पापरूप किनारे के वृक्षोंको जड़से उखाड़ डालती है ॥ ५७ ॥ हे मातः ! हे भवानि ! हे संसार

लस्थलींवहतियःप्रणतिप्रवीणः ॥ जन्मान्तरेपिरजनीकरचारुलेखातांद्योतयत्यतितराङ्किलतस्यपुंसः ॥ ५५ ॥ श्रीमङ्गलेसकलमङ्गलजन्मभूमेश्रीमङ्गलेसकलकल्मषतूलवह्ने ॥ श्रीमङ्गलेसकलदानवदर्पहन्त्रिश्रीमङ्गलेऽखिलमिदंपरिपाहिविश्वम् ॥ ५६ ॥ विश्वेश्वरित्वमसिविश्वजनस्यकर्त्रीत्वंपालयित्र्यसितथाप्रलयेपिहन्त्री ॥ त्वन्नामकीर्तनसमुल्लसदच्छपुण्यास्रोतस्विनीहरतिपातककूलवृक्षान् ॥ ५७ ॥ मातर्भवानिभवतीभवतीव्रदुःखसंभारहारिणिशरण्यमिहास्तिनान्या ॥ धन्यास्तएवभुवनेषुतएवमान्यायेषुस्फुरेत्तवशुभःकरुणाकटाक्षः ॥ ५८ ॥ येत्वांस्मरन्तिसततंसहजप्रकाशांकाशीपुरीस्थितिमतींनतमोक्षलक्ष्मीम् ॥ तान्संस्मरेत्स्मरहरोधृतशुद्धबुद्धीन्निर्वाणरक्षणविचक्षणपात्रभूतान् ॥ ५९ ॥ मातस्तवाङ्घ्रियुगलंविमलंहृदिस्थंयस्यास्तितस्यभुवनंसकलंकरस्थम् ॥ योनामतेजपतिमङ्गलगौरिनित्यंसिद्ध्यष्टकंनपरिमुञ्चतितस्यगेहम् ॥ ६० ॥ त्वंदेविवेदजननीप्रणवस्वरूपागायत्र्यसित्वमसिवैद्विजकामधेनुः ॥ त्वंव्याहृतित्रयमि

के तीव्र दुःखसमूहों की विनाशिनि ! इस जगत् में आपही शरण्यहो अन्य कोई नहीं है इससे तुम्हारा शुभ करुणाकटाक्ष जिनमें उल्लसित होवे वेही लोग लोकों में धन्य हैं और वेही मान्य हैं ॥ ५८ ॥ जे मनुष्य स्वप्रकाशिका व काशिकापुरी की निवासिका और भक्तोंकी मुक्तिरूपिणी तुमको निरन्तर सुमिरते हैं उन शुद्ध बुद्धिवाले व कैवल्य मोक्षके धारने मे निपुण अधिकारियोंको महादेवजी भलीभांतिसे स्मरण करे है ॥ ५९ ॥ हे मातः, मंगलगौरि ! तुम्हारे निर्मल दोनोंपदकमल जिसके हृदयमें टिकेहैं उसके करतलगत सबलोकहैं व जो नित्यही तुम्हारा नाम जपताहै उसके घरको अणिमादि आठो सिद्धियां नहीं छोंड़ती हैं याने उसमें बसती हैं ॥ ६० ॥ हे देवि !

तुम ॐकारस्वरूपा वेदमाता व गायत्रीहो व तुमहीं ब्राह्मणों के लिये कामधेनु हो व तुम भूः,भुवः,स्वः,नामक तीनों व्याहृतियों का स्वरूपहो और तुम इस जगत् में सकल कर्मों की सिद्धिके लिये देवताओं व पितरोंकी तृप्तिकी कारिणी स्वाहा और स्वधाहो ॥ ६१ ॥ हे अमलरूपिणि, मातः, मंगलगौरि ! तुमहीं शिव में गौरीहो तुम ब्रह्मा में सावित्रीहो तुम विष्णुमें सुन्दरी लक्ष्मीहो तुम काशी में मोक्षलक्ष्मीहो और तुम इस जगत में मेरी रक्षाकरनेवालीहो ॥ ६२ ॥ इसभांति श्रीसूर्य्यदेवजी श्रीमंगलाष्टकनामक महास्तोत्र से शिवके आधे अंगकी शोभा करनेवाली उन देवीजीकी स्तुतिकर व देवी और महादेवके सबओरसे वारंवार प्रणामकरके गौरीशंकरके आगे चुपहोगये ॥६३॥

हाऽखिलकर्मसिद्ध्यैस्वाहास्वधासिसुमनःपितृतृप्तिहेतुः ॥ ६१ ॥ गौरीत्वमेवशशिमौलिनिवेधसित्वंसावित्र्यसित्वम सिचक्रिणिचारुलक्ष्मीः ॥ काश्यान्त्वमस्यमलरूपिणिमोक्षलक्ष्मीस्त्वंमेशरण्यमिहमङ्गलगौरिमातः ॥ ६२ ॥ स्तुत्वेति तांस्मरहरार्धशरीरशोभांश्रीमङ्गलाष्टकमहास्तवनेनभानुः ॥ देवींचदेवमसकृत्परितःप्रणम्यतूष्णींबभूवसविताशिवयोः पुरस्तात् ॥ ६३ ॥ देवदेवउवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्तेप्रसन्नोस्मिमहामते ॥ मित्रमन्नेत्रगोनित्यंप्रपश्येतच्चराचरम् ॥ ६४ ॥ ममभूर्तिर्भवान्सूर्यसर्वज्ञोभवसर्वगः ॥ सर्वेषांमहसांराशिःसर्वेषांसर्वकर्मवित् ॥ ६५ ॥ सर्वेषांसर्वदुःखानिभक्तानां त्वंनिराकुरु ॥ त्वयानाम्नांचतुःषष्ट्यायदष्टकमुदीरितम् ॥६६ ॥ अनेनमाम्परिष्टुत्यनरोमद्भक्तिमाप्स्यति ॥ अष्टकं मङ्गलागौर्यामङ्गलाष्टकसंज्ञकम् ॥ ६७ ॥ अनेनमङ्गलागौरींस्तुत्वामङ्गलमाप्स्यति ॥ चतुःषष्ट्यष्टकंस्तोत्रंमङ्गलाष्टक मेवच ॥ ६८ ॥ एतत्स्तोत्रवरंपुण्यंसर्वपातकनाशनम् ॥ दूरदेशान्तरस्थोपिजपन्नित्यंनरोत्तमः ॥ ६९ ॥ त्रिसन्ध्यम्परि

श्रीमहादेवजी बोले कि, हे महामते, मित्र (सूर्य्य) ! उठो उठो तुम्हारा कल्याण होवे मैं प्रसन्नहूं तुम नित्यही मेरे नेत्रगत हो उससे मैं स्थावर जंगमरूप जगत् को देखताहूं ॥ ६४ ॥ हे सूर्य्य ! आप हमारी मूर्ति हैं और तुम सर्वज्ञ सर्वगत व सब तेजोंकी राशि और सब के सब कर्मोंके जाननेवाले होवो ॥६५॥ व तुम सब भक्तों के सब दुःखोंको निकालकर दूर करो और तुमने चौंसठ नामों से जो अष्टक कहाहै ॥ ६६ ॥ इससे मेरी स्तुति करके मनुष्य मेरी भक्ति पावेगा और मंगलाष्टक नामक जो मंगला गौरी का अष्टकहै ॥ ६७ ॥ इससे मंगला गौरी की स्तुतिकर नर मंगलको प्राप्त होगा व चतुःषष्ट्यष्टक और मंगलाष्टक भी ॥ ६८ ॥ यह स्तोत्रों मे श्रेष्ठ पुण्यरूप व सब

पापो का नाशकहै सदैव इन दोनों को जपता हुआ दूरदेशान्तरवासी भी नरोत्तम॥ ६९ ॥ तीनों संध्याओं में विशुद्धमन होकर दुर्लभ काशीको प्राप्त होगा व मनुष्यों करके प्रतिदिन जपेहुये इस स्तोत्रयुगल से ॥ ७० ॥ रोजरोज का पाप धोयागया होताहै निश्चयसे इसमें संदेह नहीं है उस देहधारीकी देह में पापका वास कभी नहीं रहता है ॥ ७१ जोकि नित्यही त्रिकालमें इन दोनों शुभ स्तोत्रोंको पढताहै और मनुष्योंको चञ्चललक्ष्मी के देनेवाले जपेहुये बहुते स्तोत्रों से क्या है ॥ ७२ ॥ जिससे ये दोनो स्तोत्र काशी में मुक्तिसम्पत्ति को देते है उससे मोक्षचाही मनुष्यों करके सब यत्नसे ॥ ७३ ॥ अन्य अनेक स्तोत्रोंको छोंड़कर ये दोनों स्तोत्र पढ़ने योग्यहैं क्योंकि

शुद्धात्माकाशींप्राप्स्यतिदुर्लभाम् ॥ अनेनस्तोत्रयुग्मेनजप्तेनप्रत्यहंनृभिः ॥ ७० ॥ ध्रुवन्दैनन्दिनंपापंक्षालितंनात्रसंशयः ॥ नतस्यदेहिनोदेहेजातुचित्किल्बिपस्थितिः ॥ ७१ ॥त्रिकालंयोजपेन्नित्यमेतत्स्तोत्रद्वयंशुभम् ॥ किंजप्तैर्बहुभिःस्तोत्रैश्चञ्चलश्रीप्रदैर्नृणाम् ॥ ७२ ॥ एतत्स्तोत्रद्वयंदद्यात्काश्यान्नैःश्रेयसींश्रियम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमानवैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ ७३ ॥ एतत्स्तोत्रद्वयंजप्यंत्यक्त्वास्तोत्राण्यनेकशः ॥ प्रपञ्चआवयोरेवसर्वएपचराचरः ॥ ७४ ॥ तदावयोस्तवादस्मान्निष्प्रपञ्चोजनोभवेत ॥ समृद्धिमाप्यमहतींपुत्रपौत्रवतीमिह ॥ ७५ ॥ अन्तेनिर्वाणमाप्नोतिजपन्स्तोत्रमिदंनरः ॥ अन्यच्चशृणुसप्ताश्वग्रहराजदिवाकर ॥ ७६ ॥ त्वयाप्रतिष्ठितंलिङ्गङ्गभस्तीश्वरसंज्ञितम् ॥ सेवितंभक्तिभावेनसर्वसिद्धिसमर्पकम् ॥ ७७॥ त्वयागभस्तिमालाभिश्चाम्पेयाम्बुजकान्तिभिः ॥ यदर्चितंवैश्वरंलिङ्गंसर्वभावेनभास्कर॥ ७८ ॥ गभस्तीश्वरइत्याख्यान्ततोलिङ्गमवाप्स्यति ॥ अर्चयित्वागभस्तीशंस्नात्वापञ्चनदेनरः ॥ ७९ ॥ नजातुजायते

यह सब चराचर प्रपंच हमारा है अर्थात् हम दोनों से विरचागयाहै ॥ ७४ ॥ उस लिये हम दोनोंकी इस स्तुति से जन प्रपंचसे हीन होवे है व इस लोकमें पुत्र पौत्र समेत बड़ी समृद्धिको प्राप्त होकर ॥ ७५ ॥ इस स्तोत्रको जपता हुआ नर अन्तमें मुक्ति पाताहै हे सात घोड़ेवाले, ग्रहराज, दिनकर ! अन्य भी सुनो ॥ ७६ ॥ कि जो गभस्तीश्वर नामक लिंग तुमसे प्रतिष्ठित हुआ व सेयागया वह सब सिद्धियों का दायकहै ॥ ७७ ॥ हे भास्कर ! जिससे सब भाव समेत तुमने कमल के समान कांतिवाली किरणपंक्तियों से ईश्वर के लिंगको पूजाहै ॥ ७८ ॥ उससे यह लिंग गभस्तीश्वर इस नाम को प्राप्त होगा और मनुष्य पंचनद में नहा गभस्तीश्वरको पूजकर ॥ ७९ ॥

पापहीन होकर माता के उदर में कभी न जन्म धरेगा व इस मंगला गौरी को स्त्री अथवा पुरुष ॥ ८० ॥ चैतसुदी तीजमें उपासवाला होकर रेशमी पीताम्बर और अलंकारादि महोपचारो से भलीभांति पूजकर ॥ ८१ ॥ व गीत नृत्य कथादिकों से रात में जागरणकर प्रातःकालमें वस्त्रादिकों से बारह कुमारियों की पूजाकर ॥ ८२ ॥ खीर आदि अन्नों से खिलापिला व अन्य लोगों को भी दक्षिणा देकर " जातवेदसेसुनवामसोममरातीयतोनिदहातिवेदः सनः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वानावेवसिन्धुं दुरितात्यग्निः " इस ऋचा से विधिपूर्वक होमकर ॥ ८३ ॥ व अष्टोत्तरशतसंख्यक तिल और घृतकी आहुतियों से किये हुये होमके बाद प्रातःकाल में कुटुंबी ब्राह्मणको एक

मातुर्जठरेधूतकल्मषः ॥ इमाञ्चमङ्गलागौरीन्नारीवापुरुषोपिवा ॥ ८० ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायामुपोषणपरायणः ॥ महोपचारैःसंपूज्यदुकूलाभरणादिभिः ॥ ८१ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वागीतनृत्यकथादिभिः ॥ प्रातःकुमारीःसंपूज्यद्वादशाच्छादनादिभिः ॥ ८२ ॥ सम्भोज्यपरमान्नाद्यैर्दत्त्वान्येभ्योपिदक्षिणाम् ॥ होमंकृत्वाविधानेनजातवेदसइत्यृचा ॥ ८३ ॥ अष्टोत्तरशताभिश्चतिलाज्याहुतिभिःप्रगे ॥ एकङ्गोमिथुनंदत्त्वाब्राह्मणायकुटुम्बिने ॥ ८४ ॥ श्रद्धयासमलंकृत्यभूषणैर्द्विजदम्पती ॥ भोजयित्वामहार्हान्नैःप्रीयेतांमङ्गलेश्वरौ ॥ ८५ ॥ इतिमन्त्रंसमुच्चार्यप्रातःकृत्वाथपारणम् ॥ नदुर्भगत्वमाप्नोतिनदारिद्र्यंकदाचन ॥ ८६ ॥ नवैसन्तानविच्छित्तिंभोगोच्छित्तिंनजातुचित् ॥ स्त्रीवैधव्यंनचाप्नोतिननारोयोषिद्वियोगभाक् ॥ ८७ ॥ पापानिविलयंयान्तिपुण्यराशिश्चलभ्यते ॥ अपिबन्ध्याप्रसूयेतकृत्वैतन्मङ्गलाव्रतम् ॥ ८८ ॥ एतद्व्रतस्यकरणात्कुरूपत्वंनजातुचित ॥ कुमारीविन्दतेत्यन्तंगुणरूपयुतम्पतिम् ॥ ८९ ॥ कुमारोपिव्रतंकृत्वाविन्दतिस्त्रियमुत्तमा

गोमिथुन याने गऊसमेत बैलदेकर ॥ ८४ ॥ श्रद्धासे ब्राह्मण वा ब्राह्मणी को भूषणों से संभूषितकर महामोल के योग्य अन्नों से भोजन कराकर मंगलादेवी और महेश्वरजी प्रसन्न होवें ॥ ८५ ॥ इस मन्त्रको भलीभांति से पढ उसके बाद प्रातःकाल में पारणाकरके दुर्भाग्य और दारिद्र्यको कभी नहीं प्राप्तहोता है ॥ ८६ ॥ न वंशच्छेद को व भोगोच्छेद को भी कभी नहीं प्राप्त होता है व स्त्री वैधव्यको नहीं प्राप्तहोती है और पुरुष स्त्रीका वियोगी नहीं होताहै ॥ ८७ ॥ व पाप विनाशको प्राप्त होजाते हैं पुण्यों की राशि मिलती है और इस मंगलाव्रतको करके बन्ध्याभी बालक उपजाती है ॥ ८८ ॥ इस व्रत के करने से कुरूपता कभी नहीं होती है व कुमारी अत्यन्तगुणवान्

रूपवान् पतिको पाती है ॥ ८९ ॥ व कुमार भी व्रत करके उत्तम स्त्री को पाता है किंतु धन कामना देनेवाले जे अनेक व्रत हैं ॥ ९० ॥ वे मंगलाव्रतकी समता को कभी नहीं पहुँचसक्ते हैं व चैतमास की उस उजेलेपाखकी तीज तिथि में मंगलादेवीकी वार्षिकी यात्रा मनुष्यो को करना चाहिये ॥ ९१ ॥ और सब विघ्नों के विनाशने के अर्थ काशीवासी जनोको सदैव यात्रा करना चाहिये हे सूर्य्य ! अन्य कुछ कहताहूं कि यहां तपस्या करते हुये तुम्हारे ॥ ९२ ॥ मयूख (किरण) ही देखेगये हैं देह नहीं देखपड़ी हे अदितिनन्दन ! उससे मयूखादित्य यह तुम्हारा नाम होगा ॥ ९३ ॥ व तुम्हारी पूजा से मनुष्यों को कोई रोग न प्रभुता करसकेगा और सूर्य्यवार मे तुम्हारे

म् ॥ सन्तिव्रतानिबहुशोधनकामप्रदानिच ॥९०॥ नाप्नुयुर्जातुचित्तानिमङ्गलाव्रततुल्यताम् ॥ कर्तव्याचादिकीयात्रा मधौतस्यान्तिथौनरैः ॥९१॥ सर्वविघ्नप्रशान्त्यर्थंसदाकाशीनिवासिभिः ॥ अपरंद्युमणेवच्मितवचात्रतपस्यतः ॥९२॥ मयूखाएवखेदृष्टानचदृष्टङ्कलेवरम् ॥ मयूखादित्यइत्याख्याततस्तेदितिनन्दन ॥९३॥ त्वदर्चनान्नृणांकश्चिन्नव्याधिः प्रभविष्यति ॥ भविष्यतिनदारिद्र्यंरविवारेत्वदीक्षणात् ॥९४॥ इत्थंमयूखादित्यस्याशिवोदत्त्वाबहून्वरान् ॥ तत्रैवान्तर्हितोभूतोरविस्तत्रैवतास्थिवान् ॥९५॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यम्मयूखादित्यसंश्रयम् ॥ द्रौपदादित्यसहितन्नरोननिरयं व्रजेत् ॥९६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेद्रौपदादित्यमयूखादित्ययोर्वर्णनन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥४९॥
स्कन्दउवाच ॥ वाराणस्यांतथादित्यायेचान्येतान्वदान्यतः ॥ कलशोद्भवतेप्रीत्यासर्वेसर्वाघनाशनाः ॥ १ ॥ खखो

दर्शनसे दारिद्र्य न होगा ॥ ९४ ॥ इसभांतिसे मयूखादित्यको बहुत वर देकर शिवजी वहां अन्तर्धान होतेभये व सूर्य्यजी वहांही टिकगये ॥ ९५ ॥ इस द्रौपदादित्यके समेत मयूखादित्यके पुण्य आख्यान को सुनकर मनुष्य नरकको न जावेगा ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेद्रौपदादित्यमयूखादित्योत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दोहा । पचासवें अध्याय में प्रकट खखोल्कादित्य ॥ तैसे तार्क्ष्यादित्यजी पूजनीय जो नित्य ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्य ! जिससे सब सूर्य्य सब पापों

के नाशक हैं इसलिये तुम्हारी प्रीति से वैसे जे काशी में अन्य आदित्य हैं उनको मैं कहता हूं ॥ १ ॥ कि, त्रिलोचन स्थान के उत्तर भागमें सब रोगों के नाशकारी ऐश्वर्य्यधारी खखोल्कनामक आदित्य सबओर से कहे गये हैं ॥ २ ॥ जैसे उन आदित्य का खखोल्क यह नाम हुवा है उसको सुनो कि पूर्वकाल में कद्रू व विनता ये दोनों दक्षकी शुभ कन्यायें थीं ॥ ३ ॥ हे मुने ! आगे वे दोनों मरीचिपुत्र कश्यपकी स्त्रियांहुईं व एकसमय खेलती हुईं उनदोनो ने परस्पर यह कहा ॥ ४ ॥ कद्रू बोली कि, हे विनते ! जिससे आकाशमण्डल में तेरी गति अखण्डितहै इससे जो तुम विशेष से जानतीहो तो मेरे आगे कहो ॥ ५ ॥ जोकि, वह उच्चैःश्रवानामक घोड़ा सूर्य्य के रथ

ल्कोनामभगवानादित्यःपरिकीर्त्तितः ॥ त्रिविष्टपोत्तरेभागेसर्वव्याधिविघातकृत ॥ २ ॥ यथाखखोल्कइत्याख्यातस्या दित्यस्यतच्छृणु ॥ पुराकद्रूश्चविनतादक्षस्यतनयेशुभे ॥३॥ कश्यपस्यचतेपत्न्यौमारीचेःप्राक्प्रजापतेः ॥ क्रीडन्त्यावे कदान्योन्यंमुनेतेऊचतुस्त्विति ॥ ४ ॥ कद्रूरुवाच ॥ विनतेत्वंविजानासियदितद्ब्रूहिमेग्रतः ॥ अखण्डितागतिस्तेस्तियतो गगनमण्डले ॥ ५ ॥ योसावुच्चैःश्रवावाजीश्रूयतेसवितूरथे ॥ किंरूपःसोस्तिशबलोधवलोवावदाशुभे ॥ ६ ॥ पणञ्चकुरुक ल्याणितुभ्यंयोरोचतेनघे ॥ एवमेवनयात्येषकालःक्रीडनकंविना ॥ ७ ॥ विनतोवाच ॥ किंपणेनभगिन्यत्रकथयाम्ये वमेवहि ॥ त्वज्जयेकाचमेप्रीतिर्मज्जयेकिंनुतेसुखम् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वापणोनकर्तव्योमिथःस्नेहमभीप्सता ॥ ध्रुवमेकस्यवि जयेक्रोधोन्यस्येहजायते ॥ ९ ॥ कद्रूरुवाच ॥ क्रीडेयन्नात्रभगिनिकारणंकिमपिक्रुधः ॥ खेलस्यव्यवहारोयंपणेयत्कि ञ्चिदुच्यते ॥ १० ॥ विनतोवाच ॥ तथाकुरुयथाप्रीतिस्तवास्तिपवनाशिनि ॥ अथतांविनतामाह कद्रूःकुटिलमान

में सुनाजाता है वह किस रूपका है कर्बुर है याकि श्वेत है मेरे आगे शीघ्रही कहो ॥ ६ ॥ व हे कल्याणि ! हे अनघे ! जो तुमको रुचता है उस पणको करो इसभांति सेही खेलने विना यह काल नहीं बीतता है ॥ ७ ॥ विनता बोली कि, हे भगिनि ! इसमें पणसे क्या है मैं ऐसेही कहती हूं कि तेरी जीति में मुझका क्या प्रीति है और मेरी जीतिमें तुझका क्या सुख है ॥ ८ ॥ जानकर परस्पर प्रीतिचाही को पण न करना चाहिये क्योंकि यहां निश्चय से एकको जीति में अन्य के क्रोध उत्पन्न होताहै ॥ ९ ॥ कद्रू बोली कि, हे भगिनि ! यह क्रीडा है इस में कोई भी क्रोधका कारण नहीं है जो कुछ पण में कहा जाता है यह खेलका व्यवहार है ॥ १० ॥ विनता बोली

कि, हे सर्पिणि! जैसी तुम्हारी प्रीतिहो वैसेही करो तदनन्तर कुटिलमनवाली कद्रूने विनतासे कहा ॥ ११ ॥ कि जो जिससे हारे वह उसकी दासी होवे इस पणमें हमारी व तुम्हारी ये सब सखियां भी साक्षिणी हैं ॥ १२ ॥ इस भांति से आपुसमें पण करके सर्पिणी कद्रूने घोड़े को कर्बुर कहा और पक्षिणी विनताने भी श्वेत कहा ॥ १३ ॥ और अब कब आना चाहिये ऐसे उन दोनोंने आनेकी अवधि किया व उसकेबाद विश्राम करके अपने अपने घरको चलदिया ॥ १४ ॥ व विनता के जातेही कद्रूने पुत्रों को बुलाकर कहा कि हे पुत्रो! तुम मेरे वचन से शीघ्रही जावो ॥ १५ ॥ देवताओं व दैत्योंसे मथ्यमान व मन्दराचल के घातसे डरभुत हुये क्षीरसागर से उत्पन्न

सा ॥ ११ ॥ तस्यास्तुसाभवेद्दासीपराजीयेतयायया ॥ अस्मिन्पणेऽस्याःसर्वाःसख्यःसाक्षिण्यएवनौ ॥ १२ ॥ इत्यन्योन्यम्पणीकृत्यसर्पिण्यपिपतत्रिणी ॥ उवाचकर्बुरंकद्रूरश्वंश्वेतंगरुत्मती ॥ १३ ॥ कदागन्तव्यमितिचचक्रातेतेगमावधिम् ॥ जग्मतुश्चविरम्याथक्रीडनात्स्वस्वमालयम् ॥ १४ ॥ विनतायाङ्गतायान्तुकद्रूराहूयचाङ्गजान् ॥ उवाचयातवैपुत्राद्रुतंवचनतोमम ॥ १५ ॥ तुरङ्गमुच्चैःश्रवसंप्रोद्भूतंक्षीरनीरधेः ॥ सुरासुरैर्मथ्यमानान्मन्दराघातसाध्वसात् ॥ १६ ॥ कार्यकारणरूपस्यसादृश्यमधिगच्छति ॥ अतस्तंक्षीरवर्णाभङ्कलमषायतपुत्रकाः ॥ १७ ॥ तस्यबालधिमध्यास्यकृष्णकुन्तलताङ्गताः ॥ तथातदङ्गलोमानिविधत्तविपसीत्कृतैः ॥ १८ ॥ इतिश्रुत्वावचोमातुःकाद्रवेयाःपरस्परम् ॥ सम्मन्त्र्यमातरम्प्रोचुःकद्रूंकद्रूपमागताः ॥ १९ ॥ नागाऊचुः ॥ मातर्वयंत्वदाह्वानाद्विहायक्रीडनंबलात् ॥ प्राप्ताःप्रहृष्टामृष्टान्नन्दास्यत्यद्यप्रसूरिति ॥ २० ॥ मृष्टन्तिष्ठतुतद्दूरंविषादप्यधिकंकटु ॥ तत्त्वयावादियन्मन्त्रैरौषधैर्नोपशाम्यति ॥ २१ ॥

उच्चैःश्रवा घोडे के समीप जावो ॥ १६ ॥ हे पुत्रो! जिससे कार्य्य भी कारण रूप की सारूप्यको अधिकतासे प्राप्त होताहै इससे दूधके रंग अंगवाले उस घोड़े को कलमष वर्ण के समान याने श्यामतासंयुक्त कर देवो ॥ १७ ॥ वैसेही उसकी पूंछपर वासकर काले बालों के भाव के प्राप्त हुये तुम विष समेत फुफकारोंसे उसके अंगके रोमोंको काले करदो ॥ १८ ॥ इस भांतिसे माता का वचन सुनकर परस्पर संमंत्रकर कुरीतरूपको प्राप्त हुये कद्रूके पुत्रोंने माता से कहा ॥ १९ ॥ नाग बोले कि, हे मातः! आज माता शुद्ध अन्न देवेगी यह जानकर हमलोग तुम्हारे बुलाने के बलसे खेलको छोड़कर अतिशय आनंदितहो आपके निकट में प्राप्त हुये हैं ॥ २० ॥ वह मृष्ट अन्न तो

दूर रहा बरन जोकि विषसे भी अधिक कडूहै व मंत्रों और औषधों से नहीं शांत होताहै वह तुम करके कहा गया ॥ २१ ॥ तब उन विषधर मुखवाले कुटिलचाली नागोंने कहा कि हम न जायँगे यहां जो हमको होनाहै वह होवे ॥ २२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, अन्य भी जे कुटिलचालवाले व पराये दोषों के देखनेहारे व कानों से हीन और दुष्ट हृदय समेतहैं वे माता पिताको उपहास करातेहैं ॥ २३ ॥ व जे दुष्टमदवाले मनुष्य माता पिताके वचनको टालकर टिकतेहैं वे इस लोकमेही अत्यन्त अनिष्टको पाकर थोड़े काल में नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ २४ ॥ हम न जायँगे यह उन पुत्रोका वचन सुनकर क्रोधसे भरीहुई उस सर्पिणीने अपराधमे प्राप्तहुये उन सर्प्पो

वयंनयामोयद्भाव्यंतदस्माकंभवत्विह ॥ इतिप्रोक्तंविषास्यैस्तैस्तदाकुटिलगामिभिः ॥ २२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अन्येपि येकुटिलगाःपररन्ध्रनिषेविणः ॥ अकर्णाःक्रूरहृदयाःपितरौव्रीडयन्तिते ॥ २३ ॥ पित्रोर्गिरंनिराकृत्ययेतिष्ठेयुःसुदुर्मदाः ॥ अत्याहितमिहप्राप्यगच्छेयुस्तेऽचिराल्लयम् ॥ २४ ॥ तेषांवचनमाकर्ण्यनयामइतिसोरगी ॥ शशापतान्क्रुधाविष्टानागांश्चागःसमागतान् ॥ २५ ॥ तार्क्ष्यस्यभक्ष्याभवतयूयंमद्वाक्यलङ्घनात् ॥ जातमात्रांश्चसर्पिण्योभक्षयन्तुस्वबालकान् ॥ २६ ॥ इतिशापानलाद्भीतैःकैश्चित्पातालमाश्रितम् ॥ जिजीविषुभिरन्यैश्चद्वित्रैश्चक्रेप्रसूवचः ॥ २७ ॥ तेपुच्छमौच्चैःश्रवसमधिगम्यमहाधियः ॥ सुनीलचिकुराभासंचक्रुरङ्गञ्चकर्बुरम् ॥ २८ ॥ तत्क्ष्वेडानलधूमौघैःफूत्कारभरनिःसृतैः ॥ मातृवाक्कृतिजाद्धर्मान्नदग्धाभानुभानुभिः ॥ २९ ॥ विनतापृष्ठमारुह्यकद्रूःस्नेहवशात्ततः ॥ वियन्मार्गमलंकृत्यददर्शो

को शापदिया ॥ २५ ॥ कि, तुमलोग मेरा वचन टालनेसे गरुड़के भक्ष्य होवो व सर्पिणियांभी उत्पन्नमात्र अपने बालकोंको भक्षण करलेवें ॥ २६ ॥ इस शापाग्निसे डरे हुये किसी सर्प्पों ने पातालको आश्रयण किया याने वहां चलेगये और जीने की इच्छावाले अन्य दो तीन नागोंने माता का वचन किया ॥ २७ ॥ वे बडे बुद्धिमान् कद्रूके पुत्र उच्चैःश्रवाकी पूंछमें प्राप्त होकर उसके काले केशों के समान व अंगको कर्बुर रंग करदेते भये ॥ २८ ॥ उन सर्प्पोंके फुफकार समूह से निकलेहुये विषकी अग्निके धूमधारसे वह काला होगया व वे नागभी माता का वचन करने से उत्पन्नहुये धर्म्म से सूर्य्य की रश्मियों से न जले ॥ २९ ॥ तदनन्तर कद्रूने स्नेह के वशसे विनता

की पीठपर चढ़कर आकाशमार्ग को भूषितकर सूर्य्यमंडल को देखा ॥ ३० ॥ तब सूर्य्य की तीक्ष्ण किरणोंके प्रभावसे व्याकुल हुये मनवाली कद्रूने विनता से कहा कि हे विनते ! अब तू नीचेको चल ॥ ३१ ॥ क्योकि सूर्य्यकी ताती किरणोंसे मेरा शरीर बहुतही तपाया जाताहै मैं स्वभावसे अपेक्षाहीनहूं व तू सब ओर से अपेक्षा सहित है ॥ ३२ ॥ जिससे तू स्वरूपसे पतंगी (पक्षिणी) है और यह सूर्य्य पतंग हैं इससेही आकाशमें तापसे हुई बाधा तुझको नहीं है ॥ ३३ ॥ व जिससे यह सूर्य्य, आकाश सरोवर में हंसहैं और आप हंसगामिनीहो इससे यहां प्रचंडरश्मिकी प्रतापाग्नि तुझको नहीं बाधा करती है ॥ ३४ ॥ आकाश में उडती हुई पक्षिणी से सर्पिणीने फिर

ष्णांशुमण्डलम् ॥ ३० ॥ तिग्मरश्मिप्रभावेणव्याकुलीभूतमानसा ॥ कद्रूस्ततःखगींप्राहविस्रब्धंविनतेव्रज ॥ ३१ ॥ उष्णगोरुष्णगोभिर्मेताप्यतेनितरांतनुः ॥ विस्रब्धाहंस्वभावेनत्वंसापेक्षाहिसर्वतः ॥ ३२ ॥ स्वरूपेणपतङ्गीत्वम्पतङ्गोसौ सहस्रगुः ॥ अतएवनतेबाधागगनेतापसम्भवा ॥ ३३ ॥ वियत्सरसिहंसोयम्भवतीहंसगामिनी ॥ चण्डरश्मिप्रतापाग्नि स्त्वामतोनेहबाधते ॥ ३४ ॥ खगीमुड्डीयमानांखेपुनरूचेबिलेशया ॥ त्राहित्राहिभगिन्यत्रयावोन्यत्रवियत्पथः ॥ ३५ ॥ विनतेविनताम्मान्त्वंकिन्नावसिपतत्रिणी ॥ तवदासीभविष्यामित्वदुच्छिष्टनिषेविणी ॥ ३६ ॥ यावज्जीवमहंभूयांत्व त्पादोदकपायिनी ॥ खखोल्कानिपतेदेषाभृशङ्गद्गदभाषिणी ॥३७ ॥ मूर्च्छाङ्गतवतीपक्षपुटौधृत्वाबिडोरगी॥ सख्युल्का निपतेदेषावक्तव्येतिवितिसम्भ्रमात् ॥ ३८ ॥ खखोल्केतियदुक्तागीःकद्वासम्भ्रान्तचेतसा ॥ तदाखखोल्कनामार्कःस्तुतो विनतयाबहु ॥ ३९ ॥ मनागतिग्मताम्प्राप्तेखेप्रयातिविवस्वति ॥ ताभ्यान्तुरङ्गमोदर्शिकिञ्चित्किर्मीरवान्रथे ॥ ४० ॥

कहा कि हे भगिनि ! तुम यहां मुझको बचावो बचावो हम व तुम दोनोंजनी आकाशमार्ग से अन्यत्र जावें ॥ ३५ ॥ हे विनते ! पक्षिणी तू विनम्रहुई मुझको क्यों नहीं बचाती है मैं तेरी जूंठन सेवनेवाली तेरी दासी होऊंगी ॥ ३६ ॥ यह खखोल्का बहुतही निपतित होती है ऐसे गद्गदभाषिणी ॥ ३७ ॥ बिलसर्पिणी कद्रू विनताके दोनों पक्षोंको पकड़कर मूर्च्छाको प्राप्त होगई हे सखि ! यह उलका गिरती है इस कहने योग्य वचन के स्थानमें उद्वेगसे ॥ ३८ ॥ संभ्रांतमनवाली कद्रूने जब खखोल्का इस वचनको कहा तब विनताने खखोल्कनामक सूर्य्य की बहुत स्तुति किया ॥ ३९ ॥ इससे कुछेक तीक्ष्णतासे हीनताको प्राप्त हुये सूर्य्यके चलतेही उन दोनोने रथमें घोड़े

को कुछ काला रंगवाला देखा ॥ ४० ॥ और विनताने ताप से उपहत नेत्रवाली इस क्रूर सर्पिणी से कहा कि सत्यवादिनी व सब लोगों से माननीया तुमने जीत लिया ॥ ४१ ॥ हे कल्याणि, कद्रु ! जिससे चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेतरंग अंगवाला यह उच्चैःश्रवा अश्व कुछेक कालासा भासताहै ॥ ४२ ॥ हे सर्पिणि ! जीत व हार में दैव बलवान् है यह विचित्रहै देखो कि, क्रूर भी कहीं विजयी होताहै और क्रूरतारहित भी जन हारवाला होताहै ॥ ४३ ॥ इस वचनको कहती हुई विनम्रताकी आधारभूत विनता यथागमनसे कद्रूके स्थान में प्राप्त भई और उसकी दास्य (सेवा) करनेलगी ॥ ४४ ॥ तब कभी गरुड़ने कांतिहीन, मलिन, दीन और दीर्घनिःश्वास

उक्ताविनतयैवैषातापोपहतलोचना ॥ क्रूरासरीसृपीसत्यवादिन्याविश्वमान्यया ॥ ४१ ॥ कद्रुत्वयाजितम्भद्रेयतउच्चैःश्रवाहयः ॥ चन्द्ररश्मिप्रभोप्येषकल्माषइवभासते ॥ ४२ ॥ विधिर्बलीयान्भुजगिचित्रञ्जयपराजये ॥ क्रूरोपिविजयीकापित्वऽक्रूरोपिपराजयी ॥ ४३ ॥ विनताविनताधारावदन्तीतियथागतम् ॥ कद्रूनिवेशनम्प्राप्तातस्यादास्यमचीकरत् ॥ ४४ ॥ कदाचिद्विनतादर्शिसुपर्णेनाश्रुलोचना ॥ विच्छायामलिनादीनादीर्घनिःश्वासवत्यपि ॥ ४५ ॥ सुपर्णउवाच ॥ प्रातःप्रातरहोमातःक्वयासित्वंदिनेदिने ॥ सायमायासिचकुतोविच्छायादीनमानसा ॥ ४६ ॥ कुतोनिःश्वसिसिप्रोच्चैरश्रुपूर्णविलोचना ॥ यथाक्लीबसुतायोषिद्यथापतितिरस्कृता ॥ ४७ ॥ ब्रूहिमातर्झटित्यद्यकुतोदूनासिपक्षिणि ॥ मयिजीवतितेबालेकालेपिकृतसाध्वसे ॥ ४८ ॥ अश्रुनिर्माणकरणेकारणङ्किंतपस्विनि ॥ सुचरित्रासुनारीषुनामङ्गलमिहेष्यते ॥ ४९ ॥ धिक्तांश्चपुत्रान्यन्मातातेषुजीवत्सुदुःखभाक् ॥ वरंबन्ध्यैवसायस्याःसुताबन्ध्यमनोरथाः ॥ ५० ॥ इत्यूर्ज

वाली अश्रुलोचना विनताको देखा ॥ ४५ ॥ गरुड़जी बोले कि हे मातः ! तुम दिनोदिन प्रातः प्रातः कालमें कहां जातीहो व सायंकाल कहां से आती हो व तुम क्यों कांतिहीन और दीनमनवालीहो ॥ ४६ ॥ व नपुंसककी माता की नाईं और पति से अनादरी स्त्री की नाईं आंसुवों से भरीहुई आंखोंवाली होकर क्यों ऊंचे श्वास लेती हो ॥ ४७ ॥ हे मातः, पक्षिणि ! आज शीघ्रही कहो कि तुम क्यो उपताप से युक्तहो जब काल के लिये भी भयंकर तुम्हारा बालक मैं जीवताहूं तब ॥ ४८ ॥ अश्रुवों का निर्माण करने में क्या कारणहै हे तपस्विनि ! इस जगत् में पतिव्रतास्त्रियों को अमंगल नहीं प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ जिनके जीवतेही जिनकी माता दुःखसेविनी है उन

उसके पुत्रोंको धिक्कार है व जिसके पुत्र विफल मनोरथवाले हैं वह बंध्याही श्रेष्ठहै ॥ ५० ॥ इस भांति से अपने बालक गरुडका पौरुषयुक्त वचन सुनकर विनताने माता की भक्ति समेत पुत्रसे कहा ॥ ५१ ॥ कि, रे बालक, पुत्रक ! मैं क्रूरचित्ता कद्रू की दासीहूं इससे उसको और उसके पुत्रोंको भी नित्यही पीठमें बहतीहूं ॥ ५२ ॥ कभी मंदराचलको व कभी मलयाचलको जातीहूं और कभी उन प्रसिद्ध समुद्रों के मध्यवर्ती जलगर्भित द्वीपों में विचरतीहूं ॥ ५३ ॥ हे पुत्र ! जिससे मैं उनके अधीन हू इससे वे महामदवाले कद्रू के पुत्र जहां जहां मुझको लेजाते हैं तहां तहां मैं जातीहूं ॥ ५४ ॥ गरुडजी बोले कि, हे दक्षप्रजापति की पुत्रि, कश्यपकी प्यारी, पाप-

स्वलमाकर्ण्यवचःसूनोर्गरुत्मतः ॥ विनताप्राहतम्पुत्रम्मातृभक्तिसमन्वितम् ॥ ५१ ॥ अहंदास्यस्मिरेबालकद्र्वाश्चक्रूरचेतसः ॥ पृष्ठेवहामिताञ्नित्यन्तत्पुत्रानपिपुत्रक ॥ ५२ ॥ कदाचिन्मन्दरंयामिकदाचिन्मलयाचलम् ॥ कदाचिदन्तरीपेषुचरेयन्तदुदन्वताम् ॥ ५३ ॥ यत्रयत्रनयेयुस्तेकाद्रवेयाःसुदुर्मदाः ॥ व्रजेयन्तत्रतत्राहंतदधीनायतःसुत ॥ ५४ ॥ गरुडउवाच ॥ दासीत्वकारणम्मातःकिन्तेजातंसुलक्षणे ॥ दक्षप्रजापतेःपुत्रिकश्यपस्यप्रियेऽनघे ॥५५॥ विनतोवाचगरुडम्पुरावृत्तमशेषतः॥ दासीत्वकारणंयद्ददादित्याश्वविलोकनम् ॥ ५६ ॥ श्रुत्वेतिगरुडःप्राहमातरंसत्वरंव्रज ॥ पृच्छाद्यमातस्तान्दुष्टान्काद्रवेयानिदंवचः ॥ ५७ ॥ यद्दुर्लभंहिभवतांयत्रात्यन्तरुचिश्चवः ॥ मद्दासीत्वविमोक्षायतद्याचध्वंददाम्यहम् ॥ ५८ ॥ तथाकरोच्चविनतातेपिश्रुत्वातदीरितम् ॥ सर्पाःसम्मन्त्र्यतांप्रोचुर्विनतांहृष्टमानसाः ॥ ५९ ॥ मातृशापविमोक्षाययदिदास्यतिनःसुधाम् ॥ तदासमीहितन्तेस्तुनदास्यत्यथदास्यसि ॥ ६० ॥ इत्योङ्कृत्यसमापृच्छ्य

हीने, सुलक्षणे, मातः ! तुम्हारे दासीभावका क्या कारण उत्पन्न हुआहै ॥ ५५ ॥ तब विनताने गरुड से आगे का संपूर्ण वृत्तांत कहा कि जैसे सूर्य्य के घोड़े का देखना दास्यका कारण भयाहै ॥ ५६ ॥ उसको सुनकर गरुडजी मातासे बोले कि हे मातः ! तुम शीघ्रही जावो आज उन दुष्ट, काद्रवेयोंसे इस वचनको पूंछो ॥ ५७ ॥ कि जो कुछ आपलोगों को दुर्लभही है और जिसमें तुम्हारी रुचि है उसको मेरा दासीभाव छूटनेके लिये तुम मांगो मैं दूगी ॥ ५८ ॥ तब विनताने वैसेही किया व उसका वचन सुनकर प्रसन्नमन उन सर्पोंने भी भलीभांति से सम्मत कर उस विनतासे कहा ॥ ५९ ॥ कि, जो गरुड, माता के शाप छूटने के लिये हमको अमृत देगा तो तुम्हारा

मनोरथ या कर्म्म सिद्ध होगा और जो न देगा तो तुम दासीहो ॥ ६० ॥ इस वचनको अंगीकार कर व कद्रूसे पूंछकर शीघ्र गमनवाली विनताने बहुत प्रसन्नचित्त गरुड़ को देखकर कहा ॥ ६१ ॥ तदनन्तर सर्पों के काल गरुड़जी चिंतासे आतुर हुई मातासे बोले कि, हे मातः ! मुझे भोजन दो व अमृतको आना हुआ जानो ॥ ६२ ॥ यह सुनकर भलीभांति से खड़े हुये हैं रोम जिसके उस विनताने उस पुत्रसे कहा कि हे गरुड़ ! तेरा मंगल होवे तू शीघ्रही समुद्रको जा ॥ ६३ ॥ तहांभी समुद्र तीर के ऊंचे प्रदेशमें बसनेवाले जे बहुते मत्स्यघाती निषादहैं उन दुष्टात्माओंको भोजनकर ॥ ६४ ॥ क्योंकि जे दुर्बुद्धिलोग यहां पराये प्राणोंसे अपने प्राणोंको पोषते हैं वे यत्नसे मारने

कद्रूंद्रुतगतिःखगी ॥ गरुत्मन्तंसमाचष्टदृष्ट्वासंहृष्टमानसम् ॥ ६१ ॥ नागान्तकस्ततःप्राहमातरञ्चिन्तयातुराम् ॥ आनीतंविद्धिपीयूषंमातर्मेदेहिभोजनम् ॥ ६२ ॥ विनताप्राहतम्पुत्रंसम्प्रहृष्टतनूरुहा ॥ भोस्सुपर्णार्णवन्तूर्णंयाहिमङ्गलमस्तु ते ॥ ६३ ॥ सन्तितत्रापिबहुशोनिषादामत्स्यघातिनः ॥ वेलातटनिवासाश्चताम्भक्षयदुरात्मनः ॥ ६४ ॥ परप्राणैर्निजप्राणान्येपुष्णन्तीहदुर्धियः ॥ शासनीयाःप्रयत्नेनश्रेयस्तच्छासनम्परम् ॥ ६५ ॥ बहुहिंसाकृतांहिंसाभवेत्स्वर्गस्यसाधनम् ॥ विहिंसितेषुदुष्टेषुरक्ष्यन्तेभूरिशोयतः ॥ ६६ ॥ निषादेष्वपिचेद्विप्रःकश्चिद्भवतिपुत्रक ॥ सरक्षणीयोयत्नेनभक्षणीयोनकर्हिचित् ॥ ६७ ॥ गरुडउवाच ॥ मत्स्यादिनांवसन्मध्येकथंज्ञेयोद्विजोमया ॥ अभक्ष्योयस्त्वयाप्रोक्तस्तच्चिह्नंकिञ्चनात्थमे ॥ ६८ ॥ विनतोवाच ॥ यज्ञसूत्रङ्गलेयस्यसोत्तरीयंसुनिर्मलम् ॥ नित्यधौतानिवासांसिभालन्तिलकलाञ्छितम् ॥ ६९ ॥ सपवित्रौकरौयस्ययन्नीवीकुशगर्भिणी ॥ यन्मौलिःसशिखाग्रन्थिःसज्ञेयोब्राह्मणस्त्वया ॥ ७० ॥ उच्चरेद्दृग्यजुः

योग्यहैं उनको दण्ड देनाही बड़ा धर्म्म है ॥ ६५ ॥ जिससे दुष्टों के विहिंसित (मारेहुये) होतेही बहुते जन बचायेजाते हैं इससे बहुते जन्तुओंके मारनेवालों का मारना स्वर्गका साधन होताहै ॥ ६६ ॥ हे पुत्रक ! जो उन निषादों के बीचमें कोई ब्राह्मण होवे वह यत्नसे रक्षणीयहै कभी भक्षणीय नहीं है ॥ ६७ ॥ गरुड़जी बोले कि मत्स्यभक्षियों के बीचमें बसता हुआ ब्राह्मण मुझ करके कैसे जानने योग्यहै जिसको तुमने अभक्ष्य कहा उसके कुछेक चिह्नको मुझसे कहो ॥ ६८ ॥ विनता बोली कि जिसके गले में अच्छा निर्मल यज्ञोपवीत व नित्यही धोये वस्त्र और माथ भी तिलकसे चिह्नित होवे ॥ ६९ ॥ व जिसके हाथ कुशोंकी पवित्री समेतहों व जिसका परिधान वस्त्र

कुशोंसे गर्भितहो और जिसका मस्तक चोटीकी गांठसे संयुतहोवे वह तुमको ब्राह्मण जानना चाहिये ॥ ७० ॥ जोकि यहां ऋक्, यजुः और सामवेद की एक भी ऋचाको उच्चारण करे व गायत्रीमात्र मंत्रवाला भी होवे वह तुमको ब्राह्मण जानना चाहिये ॥ ७१ ॥ गरुड़जी बोले कि, हे जननि ! जो ब्राह्मण सदा निषादों के बीच मे बसे उसके जनानेवाले एकभी चिह्नको इनमें नहीं मानताहूं ॥ ७२ ॥ हे मातः ! ब्राह्मण बोध करनेवाले अन्य चिह्नको कहो कि जिससे उसको जानकर कण्ठमें गयेभये भी ब्राह्मण को मैं त्यागदेवों ॥ ७३ ॥ उस वचनको सुनकर विनता बोली कि हे पुत्र ! तेरे गलेमें गयाहुवा जो खैरकाष्ठके ज्वलतेहुये अंगार के समान जलावे उसको दूरसे त्यागदे ॥ ७४ ॥

साम्नामृचमेकामपीहयः ॥ गायत्रीमात्रमन्त्रोऽपिसविज्ञेयोद्विजस्त्वया ॥ ७१ ॥ गरुडउवाच ॥ मध्येसदानिषादानांयोव सेज्जननिद्विजः ॥ तस्यैतेष्वेकमप्येवनमन्येलक्ष्मबोधकम् ॥ ७२ ॥ लक्ष्मान्तरंसमाचक्ष्वद्विजबोधकरम्प्रसूः ॥ येनावि ज्ञायतंविप्रन्त्यजेयमपिकण्ठगम् ॥ ७३ ॥ तच्छ्रुत्वाविनताप्राहयस्तेकण्ठगतोऽङ्गज ॥ खदिराङ्गारवद्दह्यात्तमपाकुरुद्दू रतः ॥ ७४ ॥ द्विजमात्रेपियाहिंसासाहिंसाकुशलायन ॥ देशंवंशंश्रियंस्वञ्चनिर्मूलयतिकालतः ॥ ७५ ॥ निशम्यका श्यपिरितिप्रसूपादौप्रणम्यच ॥ गृहीताशीर्ययौशीघ्रंखमार्गेणखगेश्वरः ॥ ७६ ॥ दूरादालोकयाञ्चक्रेनिषादान्मत्स्य जीविनः ॥ पक्षौविधूयपक्षीन्द्रोरजसापूर्यरोदसी ॥ ७७ ॥ अन्धीकृत्यदिशोभागानब्धिरोधस्युपाविशत् ॥ व्यादायवदनं घोरम्महाकन्दरसन्निभम् ॥ ७८ ॥ कान्दिशीकानिषादास्तुविविशुस्तत्रचस्वयम् ॥ मन्वानेष्वथपन्थानन्तेषुकण्ठंवि

क्योंकि जो ब्राह्मणमात्रका मारना या पीडित करना है वह हिंसा कल्याण के लिये नहीं होती है बरन कालके क्रमसे देश वंश ऐश्वर्य्य या शोभा और धनको भी जड़ से उखाडडालती है ॥ ७५ ॥ इस वचन को सुन माता के पांवो के प्रणामकर आशीर्वाद लेनेवाले, कश्यप के पुत्र गरुड़ ने शीघ्रही आकाशमार्ग से गमन किया ॥ ७६ ॥ व मत्स्यजीवी निषादों को दूरसे देखा तदनन्तर पक्षिराजजी पक्षोंको डुलाकर द्यावाभूमियो को धूलिसे भर ॥ ७७ ॥ व दिशा के भागोंको अन्धकारयुक्तकर और कन्दरा के समान घोर मुखको पसारकर समुद्र के तीरमे बैठगये ॥ ७८ ॥ अनन्तर भयसे भागेहुये निषाद आपही उस मुखकन्दरा में पैठते भये किन्तु कण्ठको मार्ग मानते

हुये उन निषादों के पैठतेही ॥ ७९ ॥ अग्नि के समान संस्पर्शवाले ब्राह्मणने उन के गलगुच्छे को जलादिया उसके बाद गरुड़जी ने उदरकन्दरामें पहले पैठेहुये निषादों को ॥ ८० ॥ प्रवेश कराकर व कण्ठ तालु में टिकेहुये उस ब्राह्मण को स्पष्ट जानकर माताके वचन से नियन्त्रितहो डर से शीघ्रही उगल दिया ॥ ८१ ॥ उगलेहुये उस पुरुषको देखकर पक्षिराज ने भलीभांति से कहा कि कहो मेरे कण्ठ के जलानेवाले तुम जातिसे कौनहौ ॥ ८२ ॥ तब पूछेगयेहुये उसने गरुड़ के आगे कहा कि, मैं ब्राह्मणहूं जातिमात्र से उपजीविकावाला होकर इन निषादों के बीचमें बसताहूं ॥ ८३ ॥ तदनन्तर उसके दूर पठाकर वा बहुते मीनोंको खाकर प्रलयाग्नि के समान

शत्स्वपि ॥ ७९ ॥ जज्वालेङ्गलसंस्पर्शोद्विजस्तत्कण्ठकन्दलीम् ॥ प्राक्प्रविष्टानथोताक्ष्योनिषादानौदरींदरीम् ॥ ८० ॥ प्रवेश्यकण्ठतालुस्थन्तंविज्ञायद्विजंस्फुटम् ॥ भयादुदगिरत्तूर्णम्मातृवाक्यनियन्त्रितः ॥ ८१ ॥ तमुद्गीर्णन्नरन्दृष्ट्वापक्षिराट्समभाषत ॥ कस्त्वञ्जात्यासिनिगदममकण्ठविदाहकृत् ॥ ८२ ॥ सतदाहेतिविप्रोहम्पृष्टःसन्गरुडाग्रतः ॥ वसाम्येषुनिषादेषुजातिमात्रोपजीवकः ॥ ८३ ॥ तम्प्रेष्यगरुडोदूरम्भक्षयित्वाथभूरिशः ॥ नभोविक्षोभयाञ्चक्रेप्रलयानिलसन्निभः ॥ ८४ ॥ तन्दृष्ट्वातिग्मतेजस्कंज्वालाततदिगन्तरम् ॥ ज्वलद्दावानलंशैलमिवबिभ्युर्दिवौकसः ॥ ८५ ॥ तेसन्नह्यन्तयुद्धायसज्जीकृतबलायुधाः ॥ अध्यास्यवाहनान्याशुसर्वेवर्मभृतःसुराः ॥ ८६ ॥ तिर्यग्गतीरविर्नायन्नायमग्निःसधूमवान् ॥ क्षणप्रभाप्यसौनैवकोनःसम्मुखएत्यसौ ॥ ८७ ॥ नदैत्येषुप्रभेदृक्स्यान्नाकृतिर्दानवेष्वियम् ॥ महासाध्वसदःकोयमस्माकंहृत्प्रकम्पनः ॥ ८८ ॥ यावत्सम्भावयन्तीतिनीतिज्ञाअपिनिर्जराः ॥ तावद्दुधावस्वौपक्षौपक्षिराजोमहाब

गरुड़जी ने आकाश को क्षोभयुक्त किया ॥ ८४ ॥ व ज्वलतेहुये दावानलवाले पहाड़के समान तीक्ष्णतेजधारी व दिगन्तर ज्वालापसारी उन गरुड़को देखकर देवतालोग डरगये ॥ ८५ ॥ सैन्य व आयुध साजे हुये, कवचधारी वे सब देवलोग शीघ्रही वाहनों पर चढ़कर युद्धके लिये कटिबद्ध हुये ॥ ८६ ॥ कि तिरछाचलनेवाला यह सूर्य्य नहीं है व यह अग्नि भी नहीं है क्योंकि वह आग धूमवाली होती है और यह बिजुली भी नही है यह कौनहै जो हमारे संमुख आता है ॥ ८७ ॥ दैत्यों मे ऐसी छटा नहीं है व दानवों में यह आकार नहीं है महाभयदायक और हमारे हृदयका कम्पानेहारा यह कौन है ॥ ८८ ॥ इस प्रकार से नीतिके जाननेवाले देव जबतक

यह सम्भावना करनेलगे तबतक बडे बलवान् गरुड़जी ने अपने पंखों को कँपाया॥ ८९ ॥ उस समय आयुध समेत, वाहनवाले देवतालोग बवंडर से तृण व पत्तोंकी नाईं उनके पक्षोंकी बयार से नहीं जानेजाते भये कि कहां प्राप्त होगये ॥ ९० ॥ तदनन्तर उन देवोंके अदृश्य होतेही उन गरुड़जी ने बुद्धि से जानकर तहां अमृत का कोशस्थान और रक्षकलोगों को देखा ॥ ९१ ॥ व हाथों से शस्त्रास्त्र उठायेहुये उन रक्षकों को सब ओर भगाकर अमृत के ऊपर धरेहुये कर्तरीयन्त्र (कैंचीकेआकार काटडालनेवाले) को देखा ॥ ९२ ॥ जोकि मन व वायुके वेगसे भ्रमताहुवा बड़ा वेगवान् यंत्र स्पर्शकरते हुये मशाको भी करोड़ भांति से काटडालता है ॥ ९३ ॥ उस

लः ॥ ८९ ॥ निपेतुःपक्षवातेनसायुधाश्वसवाहनाः ॥ नज्ञायन्तेकसम्प्राप्तावात्ययापार्णतार्णवत् ॥ ९० ॥ अथतेषुप्रणष्टेषुबुद्ध्याविज्ञायपक्षिराट् ॥ कोशागारंसुधायाःसतत्रापश्यच्चरक्षिणः ॥ ९१ ॥ शस्त्रास्त्रोद्यतपाणींस्तान्सुरानाधूयसर्वशः ॥ ददर्शकर्तरीयन्त्रममृतोपरिसंस्थितम् ॥ ९२ ॥ मनःपवनवेगेनभ्रममाणम्महारयम् ॥ अपिस्पृशन्तम्मशकंयत्खण्डयतिकोटिशः ॥ ९३ ॥ उपोपविश्यपक्षीन्द्रस्तस्ययन्त्रस्यनिर्भयः ॥ क्षणंविचारयामासकिमत्रकरवाण्यहो ॥ ९४ ॥ स्प्रष्टुन्नलभ्यतेचैतद्वात्यानप्रभवेदिह ॥ कउपायोत्रकर्तव्योवृथाजातोममोद्यमः ॥ ९५ ॥ नवलम्प्रभवेदत्रनकिञ्चिदपिपौरुषम् ॥ अहोप्रयत्नोदेवानामेतत्पीयूषरक्षणे ॥ ९६ ॥ यदिमेशङ्करेभक्तिर्निर्द्वन्द्वातीवनिश्चला ॥ तदासदेवदेवोमांवियुनक्तुमहाधिया ॥ ९७ ॥ यद्यहम्मातृभक्तोस्मिस्वामिनःशङ्करादपि ॥ तदामेबुद्धिरत्रास्तुपीयूषहरणक्षमा ॥ ९८ ॥ आत्मार्थन्नोद्यमश्चायंहृत्स्थोवेत्तीतिविश्वगः ॥ मातुर्दास्यविमोक्षाययतेहममृतम्प्रति ॥ ९९ ॥ जरितौपितरौयस्यबालापत्यश्चयःपुमा

यंत्रके समीप में टिककर पक्षिराजने क्षणभर विचार किया कि आश्चर्य्य है यहां मैं क्या करूं ॥ ९४ ॥ यह यंत्र स्पर्श करने को नहीं मिलता है और वायुका बवंडर भी इसमें नहीं प्रभुता करसक्ता है इससे यहां क्या उपाय करना चाहिये मेरा उद्यम वृथा होगया ॥ ९५ ॥ इसमें बल व कुछ पौरुष भी नहीं प्रभुता करसक्ता है इस अमृतकी रक्षा में देवों का यह प्रयत्न आश्चर्य्यरूप है ॥ ९६ ॥ जो शिवजी में मेरी अविचल अनन्य भक्ति है तो वह देवों के देव मुझको बड़ी बुद्धिसे जोडदेवें ॥ ९७ ॥ व जो मैं स्वामी शंकरजी से भी अधिक माताका भक्तहूं तो यहां मेरी बुद्धि अमृतके हरने में समर्थ होवे ॥ ९८ ॥ और हृदयमें टिके हुये सर्वव्यापक परमेश्वर जानते

हैं कि यह उद्यम अपने लिये नहीं है किंतु मैं माताका दासीभाव छूटने के लिये अमृत के प्रति यत्न करताहूं ॥ ९९ ॥ जिसके माता व पिता ये दोनों बूढ़े होवें व जो पुरुष छोटे लड़कोंवालाहो और जिसकी स्त्री पतिव्रताहो उसका उनके पोषने के लिये अकृत्य (अनुचित कर्म) में भी दोष नहीं है ॥ १०० ॥ इसभांति विचारते हुये उन महात्मा गरुड़जी के बुद्धि होगई ॥ १ ॥ तब उन्होंने छोटीसे अधिक छोटी देह धारण कर लिया व जाले में सूर्य्य की किरण पड़ने से जो सूक्ष्म रजके किनके देखपड़ते हैं उनमें से एकके साठिवें अंशको परमाणु कहते हैं उस परमाणु के सहस्र अंशों में से एक के समान महाअद्भुतरूप को करके ॥ २ ॥ देह की लघुता से कर्त्तरीयंत्र के

न् ॥ साध्वीभार्याचतत्पुष्ट्यैदोषोऽकृत्येपितस्यन ॥ १०० ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यबुद्धिरासीन्महात्मनः ॥ १ ॥ देहञ्चकारसोत्यन्तमणीयांसमणोरपि ॥ परमाणुसहस्रांशंकृत्वारूपम्महाद्भुतम् ॥ २ ॥ प्रविश्यकर्तरीयन्त्रमधोदेहस्यलाघवात् ॥ बिभ्यतत्तद्यन्त्रतोदेहंवञ्चयन्वायुखण्डनात ॥ ३ ॥ मूलमुत्पाट्यतरसागृहीत्वाऽमृतभाजनम् ॥ निर्ययौपावनेमार्गेक्रोशत्सुस्वर्गसद्मसु ॥ ४ ॥ तथावैकुण्ठनाथन्तेगत्वाप्रोचुःसुधाभुजः ॥ निर्जित्यनीयतेचक्रिन्सुधानोजीवितम्परम् ॥ ५ ॥ इत्याकर्ण्यहरिस्तेभ्योऽभयन्दत्त्वात्वरायुतः ॥ कृत्वायुद्धञ्चसुमहद्विंशार्कघटिकाद्वयम् ॥ ६ ॥ शुम्भदेव्योर्यथासूतगरुडस्तत्रचाधिकः ॥ तदाप्रसन्नोभगवान्महायुद्धेनसर्वदः ॥ ७ ॥ गत्वागरुडमाहेदम्प्रसन्नोस्मिखगेश्वर ॥ वरंवृणीहिभद्रन्तेजितवृन्दारवृन्दक ॥ ८ ॥ हसित्वागरुडःप्राहविश्वरूपञ्जनार्दनम् ॥ अहमेवप्रसन्नोस्मित्वंप्रार्थयवरद्वयम् ॥ ९ ॥

नीचे पैठकर वायुके खंडनेवाले याने अत्यन्तचंचल उस यंत्रसे डरते व तिरछाहोकर देहको बचातेहुये ॥ ३ ॥ गरुड़जी वेगसे मूलको उखाड़कर (जिसमें अमृत धराथा उसको उखाड़कर) व अमृतका पात्र लेकर देवों के पुकारतेही वायुमार्ग मे निकल चले ॥ ४ ॥ वैसेही उन देवोंने विष्णुजी के समीप जाकर कहा कि हे चक्रधारिन्! हमको जीतकर हमारा परम जीवनभूत अमृत हराजाताहै ॥ ५ ॥ यह सुनकर उनको अभय देकर वेगवान् विष्णुजी बीस और अर्क (बारह) याने बत्तिस दूना चौंसठ दंड तक बड़ा युद्ध करके रोकते भये ॥ ६ ॥ हे सूत! जैसे शुंभदैत्य और देवीजी का युद्ध हुआ था वैसेही उन दोनों के मध्य में गरुड़ अधिक हुये तब महायुद्ध से प्रसन्नहुये, सब कुछ देनेवाले भगवान्‌ने ॥ ७ ॥ जाकर गरुड़से कहा कि हे देवसमूह के जीतनेवाले, पक्षिराज! मैं प्रसन्नहूं तुम वरदान मांगो तुम्हारा कल्याणहो ॥ ८ ॥ यह सुन

हँसकर गरुडजी विश्वरूप विष्णुजी से बोले कि मैं भी प्रसन्नहूं तुम दो वरदान मांगलो ॥ ९ ॥ तदनंतर आनन्द समेत विष्णुजीने गरुड़ से कहा कि हे महोदर! मैंने बरा बरा तुम दो वरदान देवो देवो ॥ १० ॥ इस भांतिसे विष्णुका वचन सुनकर हँसतेहुये गरुडजी बोले कि विलम्ब करने से क्याहै तुम उन दोनों वरों को बोलो मैंने दिया दिया ॥ ११ ॥ क्योंकि जुवांआदि खेलोंकी जीति के उदय में अलब्ध वस्तुका लाभ होतेही सुबुद्धिमान् जनको पात्रमें दान देना चाहिये जिसमे लाभ और विजय सदैव कहां होताहै ॥ १२ ॥ विष्णुजी बोले कि हे कश्यपपुत्र, वरदायक, पक्षिनायक! जिससे तुम बलवान्हो उससे मेरे वाहनभाव को प्राप्त होवो यह एक वर है और

ततःकैटभजित्प्राहवैनतेयम्मुदान्वितः ॥ वृतंवृतम्महोदारदेहिदेहिवरद्वयम् ॥ १० ॥ इतिविष्णूदितंश्रुत्वाप्रहसन्नाहपत्त्रिराट् ॥ किंविलम्बेनतद्ब्रूहिदत्तन्दत्तंवरद्वयम् ॥ ११ ॥ अलब्धलाभेसञ्जातेद्यूतादिविजयोदये ॥ दातव्यंसुधियापात्रेसदालाभजयौक्वा ॥ १२ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ बलवानसिपक्षीन्द्रतन्मेवाहनतांव्रज ॥ एकोवरोयंवरदद्वितीयंश्रृणुकाश्यप ॥ १३ ॥ दर्शयित्वामृतम्प्राज्ञमातृदास्यविमोक्षकम् ॥ द्विजिह्वेभ्यःकुरुतथाद्रागश्नन्तिनतेयथा ॥ १४ ॥ देयासुधासुधाभुग्भ्योद्वितीयोस्तुवरोमम ॥ तथेतिसप्रतिज्ञायनिर्ययौपत्त्रिराड्दिवः ॥ १५ ॥ समातरंविनिर्मोच्यदास्यात्काश्यपनन्दनः ॥ नागानांपुरतोधृत्वामहामृतकमण्डलुम् ॥ १६ ॥ अमृतम्पातुकामांस्तानित्याचष्टमहामतिः ॥ नागाःशुचित्वमासाद्यभोक्तव्यैषासुधाशुभा ॥ १७ ॥ नोचेदशुचिभिःस्पृष्टास्नानादिपरिवर्जितैः ॥ यास्यत्यदृश्यतामेषासुधाऽनिमिषरक्षिता ॥ १८ ॥ सामान्यमपियद्भक्ष्यंस्पृश्यतेऽशुचिभिःक्वचित् ॥ हरन्तितद्रसन्देवास्तच्चातिष्ठतिनीरसम् ॥ १९ ॥

दूसरे को भी सुनो ॥ १३ ॥ हे प्राज्ञ! सर्पों से माताकी दास्य छुडानेवाले अमृत को दिखाकर शीघ्रही वैसे करो कि जैसे वे न पानकरे ॥ १४ ॥ क्योंकि देवों को अमृत देनाचाहिये यह हमारा दूसरा वरहै वैसेही प्रतिज्ञाकर गरुडजी स्वर्ग से निकलकर चले गये ॥ १५ ॥ व महाअमृतकमंडलु को नागो के आगे धर माता को दासीभाव से छुड़ाकर वह कश्यप के नंदन ॥ १६ ॥ बडे बुद्धिमान् गरुडजी अमृत पीने के चाही उन सर्पा से बोले कि हे नागो! पवित्रता को प्राप्तहोकर यह शुभ अमृत खाने योग्यहै ॥ १७ ॥ जो ऐसा न करोगे तो स्नानादिकों से हीन अशुद्धजनो से छुवाहुआ देवों से रक्षित यह अमृत अदृश्यताको प्राप्त होजायगा ॥ १८ ॥ जो सामान्य भोजन

भी कहीं अपवित्र लोगों से छुवाजाताहै उसके रसको देवलोग हरलेते हैं वह रससे हीन होकर रहजाताहै ॥ १९ ॥ यह कहकर उन सर्पोंसे कहेहुये मातासमेत गरुड़जी कुशासनपर अमृतका पात्र धरकर निकलगये ॥ २० ॥ व नाग भी जबतक नहानेगये तबतक विष्णुजीने अमृतसे पूर्णपात्रको लेकर जीवन की नाईं देवोंको देदिया॥२१॥ और स्नानकर वहां आकर व अमृत पात्रको न देखकर यह शब्द किया कि अहो हम छलेगये किसीने अमृतको हरलिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर अमृतस्पर्श के चाही नाग लोग कुशोंको सबओरसे चाटनेलगे तब पहले अमृत तो दूर रहा उनकी जीभ भी फटकर दो भांतिकी होगई ॥ २३ ॥ ऐसेही जे अन्य लोग भी अन्यायसे मिलेहुये

इत्युक्त्वासहितोमात्रावैनतेयोविनिर्ययौ ॥ कुशासनेचतैरुक्तोधृत्वापीयूषभाजनम् ॥ २० ॥ यावत्स्नातुङ्गताःसर्पास्तावत्पीयूषभाजनम् ॥ आदायविष्णुनादत्तन्देवेभ्यइवजीवितम् ॥ २१ ॥ आगत्यभुजगाःस्नात्वानदृष्ट्वामृतभाजनम् ॥ अहोप्रतारितानीतममृतञ्चेतिचुक्रुशुः ॥ २२ ॥ ततःपर्यलिहन्दर्भान्पीयूषस्पर्शकाङ्क्षिणः ॥ आस्तान्तावत्सुधाद्दूरंजिह्वास्तेषांद्विधाभवन् ॥ २३ ॥ अन्येप्यन्यायलब्धार्थंयेबुभुक्षन्तिकेवलम् ॥ तन्नोपरिणतिङ्गच्छेद्भोक्तुंवातैर्नलभ्यते ॥ २४ ॥ न्यायाध्वस्थेनताक्ष्र्येणसुधाप्राप्तातिदुर्लभा ॥ लब्धाप्यन्यायतोनागैर्दृष्टमात्राक्षणाद्गता ॥ २५ ॥ अथदास्याद्विनिर्मुक्ताविनतोवाचखेचरम् ॥ पुत्रकाशींप्रयास्यामिदास्यपापापनुत्तये ॥ २६ ॥ तावत्पापानिजृम्भन्तेनानाजन्मार्जितान्यपि ॥ यावत्काशीनहृत्संस्थापुनर्भवविघातिनी ॥ २७ ॥ काशीस्मरणमात्रेणकिञ्चित्रंयदघंव्रजेत् ॥ गर्भवासोपिनश्येतविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ २८ ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षात्तारापतिविभूषणः ॥ तारयेत्तारकद्रोण्यादुस्तराद्भवसागरात् ॥ २९ ॥

अर्थ के भोजनकी इच्छा करते हैं उनको वह खानेको नहीं मिलताहै अथवा परिपाकको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ जैसे कि न्यायमार्ग में टिकेहुये गरुड़ने बड़ा दुर्लभ अमृत पाया और अन्याय से नागोंको मिला व देखागया भी क्षणमें नष्ट होगया ॥ २५ ॥ उसकेबाद दास्यसे छूटीहुई विनताने आकाशगामी गरुड़से कहा कि, हे पुत्र ! मैं दासीभावपाप दूर करनेके लिये काशीपुरीको जाऊंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि जबतक फिर जन्म होनेकी हरनेहारी काशी हृदय में टिकीहुई नहीं है तबतक अनेक जन्मों के बटोरेहुये पाप जमुहाते हैं ॥ २७ ॥ जो काशीके स्मरणमात्रसे पाप चलाजावे तो क्या आश्चर्य्य है बरन विश्वनाथ के उत्तम अनुग्रहसे गर्भवास भी नष्ट होते हैं ॥ २८ ॥

जिस काशीमें साक्षात् चन्द्रभूषण विश्वनाथजी तारकमन्त्र नौकाके द्वारा दुरतर संसारसागरसे तारदेते हैं ॥ २९॥ जोकि विश्वनाथकी दयासहित व सम्पूर्ण कर्म्मबन्धन से रहितहैं उनकी बुद्धि काशीके प्रति होती है अन्य लोगोंकी मति काशी के प्रति कभी नहीं होती है ॥ ३० ॥ व संपूर्ण पाप पखारनेवाले जिन लोगोंका मन काशी के प्रति होताहै वही लोकमें मनुष्यहै अन्यजन मनुष्यरूपधारी पशुहैं यह सत्यहै ॥ ३१ ॥ इस लोकमे जिनको काशीपुरी प्राप्तहुई है उन्होनेही कालको जीताहै व वेही पापहीन हैं और वेही फिर गर्भवाससे रहितहैं ॥३२॥ जोकि यह मनुष्य जन्म कल्याणों या सुखोंका पात्र व देवोंको भी दुर्लभहै उसको काशीके दर्शन विना वृथा न बितावे ॥ ३३ ॥

विश्वेशानुगृहीतानांविच्छिन्नाखिलकर्मणाम् ॥ भवेत्काशींप्रतिमतिर्नेतरेषांकदाचन ॥ ३० ॥ काशींप्रतिमनोयेषांनिःशेषपत्ताक्षालितैनसाम् ॥ तएवमानवालोकेसत्यंनृपशवोपरे ॥ ३१ ॥ तैरेवकालोविजितस्तएवहिगतैनसः ॥ अपुनर्गर्भवासास्तेप्राप्तावाराणसीहयैः॥३२॥श्रेयसाम्भाजनञ्चैतन्नृजन्मनमुधानयेत् ॥ देवानामपिदुष्प्राप्यंकाशीसन्दर्शनादृते॥३३॥ कःकलिःकोथवाकालःकिंवाकर्माण्यनेकधा ॥ परानन्दप्रदंक्षेत्रमविमुक्तंयदीक्षितम् ॥ ३४ ॥ तेगर्भवासेतिष्ठन्तिपुनस्तेगर्भवासिनः ॥ येनगर्भवनच्छेत्रींसेवन्तेवरणामसिम् ॥ ३५ ॥ निशम्येतिवचःप्राहताक्ष्योंनत्वाथमातरम् ॥ अहमप्यागमिष्यामिकाशींद्रष्टुंशिवार्चिताम् ॥ ३६ ॥ मातुराज्ञामथप्राप्यजनन्यासहपक्षिराट् ॥ क्षणाद्वाराणसींप्रापमोक्षनिक्षेपभूमिकाम् ॥ ३७ ॥ उभावपिचतेपातेतपउग्रम्महामती ॥ संस्थाप्यशाम्भवंलिङ्गम्पतत्रीन्द्रोऽचलेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ नाम्ना

जो परानन्दका दाता अविमुक्त (काशी) क्षेत्र देखागया तो कलि क्याहै काल क्याहै और अनेक भांतिके कर्म भी क्याहैं ॥ ३४ ॥ जो लोग गर्भवासवनकी काटनेवाली वरणा और असिको या वरणारूप तलवारको नहीं सेवतेहैं वे गर्भवासमें टिकतेहैं और वेही फिर गर्भवासी होते हैं ॥ ३५॥ ऐसा वचन सुनकर अनन्तर गरुड़ने नमस्कार कर मातासे कहा कि मैं भी शिवसे पूजित काशीके देखनेको आऊंगा ॥ ३६ ॥ उसके बाद माताकी आज्ञापाकर विनताके साथ पक्षिराज गरुड़जी क्षणमें मोक्ष धरनेकी भूमिवाली काशी को प्राप्तहुये ॥ ३७ ॥ वहां उन दोनों बड़ी बुद्धिवालोंने उग्र तपस्या किया और जब शिवलिङ्गका स्थापनकर अचंचल इन्द्रियवाला होकर गरुड़ने॥३८॥

और खखोल्क नाम शुभ सूर्य्यका स्थापन करके विनताने तपकिया तब थोड़ेही कालमें उनदोनोंकी बड़ी तपस्यासे ॥ ३९ ॥ काशीमें शङ्कर व सूर्य्य ये दोनों देव प्रसन्नहुये उनमेंसे शिवजी गरुड़के थापेलिङ्ग से प्रकट होगये ॥४०॥ व गरुड़के लिये अति दुर्लभ बहुतसे वरोंको देतेभये कि, हे पक्षीन्द्र ! तुम हमारे भक्तहो इससे तुम्हारे ज्ञानहो-गा ॥ ४१ ॥ और जोकि हमारी रहस्य देवोंसे भी नहीं जानीगई उसको तुम जानोगे व तुम्हारा थापाहुआ यह गरुड़ेश्वर नामक लिङ्ग ॥ ४२ ॥ देखागया व छुवाहुआ व पूजित होकर लोगों को उत्तमज्ञानदायक होगा हे पक्षीन्द्र ! और भी सुनो मैं इस समय तेरा हितकहताहूं ॥ ४३ ॥ कि, यह हमहीं वह विष्णुहैं इससे हम दोनोंमें भेद

खखोल्कमादित्यंसंस्थाप्यविनताशुभम् ॥ अचिरेणैवकालेनमहतस्तपसस्तयोः ॥ ३९ ॥ काश्यांप्रसन्नौसञ्जातौदेवौ शङ्करभास्करौ ॥ गरुडस्थापिताल्लिङ्गादाविरासीदुमापतिः ॥ ४० ॥ गरुडायवरान्प्रादात्सुबहूनतिदुर्लभान् ॥ खगेन्द्रमम भक्तोसितवज्ञानम्भविष्यति ॥ ४१ ॥ वेत्स्यासित्वंरहस्यम्मेयन्नज्ञातंसुरैरपि ॥ त्वयैतत्स्थापितंलिङ्गंगरुडेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ ४२ ॥ परमज्ञानदम्पुंसान्दृष्टंस्पृष्टंसमर्चितम् ॥ अन्यच्चशृणुपक्षीन्द्रहितन्तेवच्मिसाम्प्रतम् ॥ ४३ ॥ असावहंसवैविष्णु र्मास्तुतेभेददृक्क्वचनौ ॥ एवन्तस्यैवपक्षीन्द्रदैत्येन्द्रबलहारिणः ॥ ४४ ॥ प्राप्यसत्पत्रतांपत्रिंस्त्वमप्यर्च्योभविष्यसि ॥ इतिदत्त्वावरंशम्भुःस्वभक्तायगरुत्मते ॥ ४५ ॥ तत्रैवान्तर्हितोजातोगरुडोपिहरिंययौ ॥ हरेरथत्वंसम्प्राप्यसोपिपूज्यो ऽभवद्भुवि ॥ ४६ ॥ तपस्यन्तीमथालोक्यकदाचिद्विनतांप्रभुः ॥ शिवस्यैवपरामूर्तिःखखोल्कोनामभास्करः ॥ ४७ ॥ दत्त्वावरञ्चपापघ्नंशिवज्ञानसमन्वितम् ॥ काशीवासिजनानेकभवपापक्षयङ्करः ॥ ४८ ॥ विनतादित्यइत्याख्यःखखो

दृष्टि मतहोवे हे पक्षिराज ! इस भांति से विष्णुके ॥ ४४ ॥ अच्छे वाहनभाव को प्राप्तहोकर हे पक्षिन् ! तुमभी पूजनीय होगे इसप्रकार से अपने भक्तगरुड़ को वरदेकर श्रीशंकरजी ॥ ४५ ॥ वहांहीं अंतर्धान होगये और वह गरुड़जी भी विष्णुजी के समीप को गये व भक्तभयहारी के वाहनभाव को प्राप्तहोकर पृथिवी में पूजनीय भी होते भये ॥ ४६ ॥ इसके अनंतर कभी तपस्याकरती हुई विनता को देखकर शिवजीकीहीं दूसरीमूर्त्ति व समर्थ खखोलकनामक सूर्य्यदेवजी ॥ ४७ ॥ पापनाशक व शिव

ज्ञान समेत वरदान देकर जो कि काशीवासी लोगों के अनेकजन्मों के किये पापोंको विनाशते हैं ॥ ४८ ॥ वह विनतादित्यनामक खखोल्कजी वहां भलीभांति से टिके हैं इसभांति से काशी के विघ्नरूपअंधकारहारक खखोल्कनामक आदित्य (सूर्य्य) प्रकट हुये हैं ॥ ४९ ॥ उनके दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है काशी में पिलिपिलातीर्थ के समीप खखोल्कादित्य के दर्शन से मनुष्य क्षण में विचारे हुये मनमाने फल को पाता है और रोगसे हीनहोजाता है ॥ ५० ॥ गरुडेश्वर सहित इस

ल्कस्तत्रसंस्थितः ॥ इत्थङ्खखोल्कआदित्यःकाशीविघ्नतमोहरः ॥ ४९ ॥ तस्यदर्शनमात्रेणसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ काश्यांपैशङ्गिलेतीर्थेखखोल्कस्यविलोकनात् ॥ नरश्चिन्तितमाप्नोतिनीरोगोजायतेक्षणात् ॥ ५० ॥ नरःश्रुत्वैतदाख्यानंखखोल्कादित्यसम्भवम् ॥ गरुडेशेनसहितंसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेखखोल्कादित्यगरुडेशयोर्वर्णनन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ इतिकाशीखण्डपूर्वार्द्धंसमाप्तम् ॥ * ॥ * ॥

खखोल्कादित्य की उत्पत्ति वाले आख्यान को सुनकर मनुष्य सब पापों से प्रमुक्त होता है ॥ १५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते खखोल्कादित्यगरुडेशयोर्वर्णनंनाम पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

॥ इति पूर्वार्ध समाप्तम् ॥

प्रथमबार
लखनऊ
मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा ॥
सन् १९०६ ई० ॥

॥ इति श्रीकाशी खंड पूर्वार्ध समाप्तम ॥

श्रीगणेशाय नमः

अथ स्कन्दपुराण काशीखण्ड सटीक उत्तरार्द्ध ॥

दोहा ॥ इक्यावन अध्याय में सूर्य्य सुमहिमा नित्य । वरुण, वृद्ध, केशव, विमल, गङ्गा, यम, आदित्य ॥ सिद्धिसदन वर बुद्धि निधि एकरदन शुभदानि । गणप गरीबनेवाजके वन्दों पद उर आनि ॥ श्रीयुत अगस्तिजी बोले कि हे पार्वतीहृदयानन्द, सर्वज्ञपुत्र, प्रभो, स्वामिन् ! मैं कुछ पूछने के लिये मनवालाहूं उसको आप कहनेके लिये योग्यहैं ॥ १ ॥ कि, दक्षप्रजापतिकी पुत्री, कश्यपजी की स्त्री व गरुड़की माता वह पतिव्रता विनता क्यों दासीभावको प्राप्तहुई ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी

श्रीगणेशाय नमः ॥ अगस्तिरुवाच ॥ पार्वतीहृदयानन्दसर्वज्ञाङ्गभवप्रभो ॥ किञ्चित्प्रष्टुमनाःस्वामिंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १ ॥ दक्षप्रजापतेःपुत्रीकश्यपस्यपरिग्रहः ॥ गरुत्मतःप्रसूःसाध्वीकुतोदास्यमवापसा ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ हञ्जिकात्वंयथाप्राप्ताविनतासातपस्विनी ॥ तदप्यहंसमाख्यामिनिशामयमहामते ॥ ३ ॥ कद्रूरजीजनत्पुत्रान्शतंकश्यपतःपुरा ॥ उलूकमरुणन्तार्क्ष्यमसूतविनतात्रयम् ॥ ४ ॥ कौशिकोराज्यमाप्यापिश्रेष्ठत्वात्पक्षिणाम्मुने ॥ निर्गुणत्वाच्चतैःसर्वैःसराज्यादवरोपितः ॥ ५ ॥ क्रूराक्षोयान्दिवान्धोयंसदावक्रनखस्त्वसौ ॥ अतीवोद्वेगजनकंसर्वेषामस्यभा

बोले कि हे महामते ! जैसे वह तपस्विनी विनता दास्यको प्राप्तहुई उसको भी मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि पूर्वकाल में कद्रू ने कश्यपजी से सौ पुत्रों को उत्पन्न किया व विनता ने उलूक, अरुण और गरुड़ इन तीनों को उपजाया ॥ ४ ॥ हे मुने ! पक्षियों में ज्येष्ठ होने से राज्यको प्राप्त होकर भी वह उलूक फिर उन सबों करके राज्य से उतार दिया गया ॥ ५ ॥ कि, यह क्रूरनेत्र है व यह दिन में अन्धा रहता है व यह सदा कुटिल नखवाला है और इसकी बोलीभी सबको बहुत भय-

ङ्कर है ॥ ६ ॥ इस भांति उसके गुणसमूहोंको बहुतबार विशेषसे कहकर स्वेच्छाचारी पक्षीलोग आजभी राज्य में किसी गुणहीन कोभी नहीं अङ्गीकार करतेहैं ॥ ७ ॥ तदनन्तर जब उलूक वैसे वृत्तान्तवाला हुआ तब पुत्र के देखनेकी लालसावाली विनता ने मध्यम अण्डे को फोड़डाला ॥ ८ ॥ हे अगस्त्यजी ! जो कि अण्डा पूरे हजार वर्ष में ही फोड़ने योग्य था वह उस करके उत्सुकता से अठयें सैकड़ा में फोड़ा गया ॥ ९ ॥ तबतक उस अण्डे के भीतर बसनेहारे, बड़े तेजवाले, उस बालक के सब अङ्ग ऊरुवोंके ऊपर सिद्ध होगये थे ॥ १० ॥ और अण्डासे निकले मात्र व क्रोध से लाली मुख शोभाशाली व अधबनी देहवाले बालक ने माता को

षणम् ॥ ६ ॥ इत्थन्तस्यगुणग्रामान्विकथ्यबहुशःखगाः ॥ नाद्यापिदृश्यतेराज्येकमपिस्वैरचारिणः ॥ ७ ॥ कौशिकेथ तथावृत्तेपुत्रवीक्षणलालसा ॥ अण्डम्प्रस्फोटयामासमध्यमंविनतातदा ॥ ८ ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतुप्रस्फोट्यंयदसम्भव ॥ तदभेदितयौत्सुक्यादण्डमष्टमकेशते ॥ ९ ॥ तावत्सर्वाणिगात्राणितस्यातिमहसःशिशोः ॥ ऊर्वोरुपरिसिद्धानित दण्डान्तर्निवासिनः ॥ १० ॥ अण्डान्निर्गतमात्रेणक्रोधारुणमुखश्रिया ॥ अर्धनिष्पन्नदेहेनशिशुनाशापिताप्रसूः ॥ ११ ॥ जनयित्रित्वयादृष्ट्वाकाद्रवेयान्स्वलीलया ॥ खेलतोमातुरुत्सङ्गेयदण्डंव्याधितद्द्विधा ॥ १२ ॥ तदनिष्पन्न सर्वाङ्गःशपामित्वांविहङ्गमे ॥ तेषामेवैधिदासीत्वंसपत्न्यङ्गभुवामिह ॥ १३ ॥ वेपमानाथतच्छापादिदम्प्रोवाचपक्षिणी ॥ अनूरोब्रूहिमेशापावसानम्मातुरङ्गज ॥ १४ ॥ अनूरुरुवाच ॥ अण्डन्तृतीयंमाभिन्धिह्यनिष्पन्नम्ममैवहि ॥ अस्मिन्न ण्डेभविष्योयःसतेदास्यंहरिष्यति ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वासोरुणोगच्छदुड्डीयानन्दकाननम् ॥ यत्रविश्वेश्वरोदद्यादपिप

शाप दिया ॥ ११ ॥ कि, हे मातः ! जिससे तुमने अपनी लीलासे माताकी गोद में खेलते हुये कद्रू के कुमारों को देखकर उस अण्डे को दो भांति, विदीर्ण किया ॥ १२ ॥ उससे न सिद्ध हुये सर्वाङ्गवाला मैं तुमको शाप देताहूं कि, हे आकाशगामिनि ! तुम यहां उन सौति के पुत्रों कीही दासी होवो ॥ १३ ॥ अनन्तर उसके या, उस शाप से कांपतीहुई पक्षिणी ने यह कहा कि, हे अनूरो (ऊरुओंसे हीन) पुत्र ! तुम मुझ माताके शाप का अन्त कहो ॥ १४ ॥ अनूरु बोले कि मेरेही अंडेकी नाईं असिद्ध तीसरे अण्डेको भी मत फोड़ो क्योंकि इस अण्डे में जो भविष्य (होनेहारा) है वह तुम्हारे दासीभावको हरेगा ॥ १५ ॥ यह कहकर वह अरुण उड़कर

काशी को गया जहां विश्वेश्वरजी चलनशक्ति से हीन को भी शुभ गति देते हैं ॥ १६ ॥ हे मुने ! यह विनता के शाप का कारण पूंछतेहुये तुमसे कहागया और अब आगे प्रसंग से अरुणादित्यकी उत्पत्ति कहताहूं ॥ १७ ॥ जो कि ऊरुवों से हीन होने से अनूरु हुआ व जिससे क्रोधसे लालरंग अंग होगया था उससे अरुण नाम से प्रसिद्ध हुआ उसने काशी में तपस्या तपकर सूर्य्यदेव को पूजन किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर प्रसन्न हो वह सूर्य्यदेव भी उस अनूरु को वर देकर उसके नाम से अरुणादित्य इस नाम से प्रसिद्ध हुये ॥ १९ ॥ श्रीसूर्य्यजी बोले कि हे विनतात्मज , अनूरो ! लोकों के हित के अर्थ अन्धकार को विदारते हुये भी तुम

ङ्गोःशुभाङ्गतिम् ॥ १६ ॥ एतत्तेपृच्छतःख्यातंविनतादास्यकारणम् ॥ मुनेप्रसङ्गतोवच्मिअरुणादित्यसम्भवम् ॥ १७॥ अनूरुत्वादनूरुर्योरुणःक्रोधारुणोयतः ॥ वाराणस्यान्तपस्तप्त्वातेनाराधिदिवाकरः ॥ १८ ॥ सोपिप्रसन्नोदत्त्वाथवरां स्तस्माअनूरवे ॥ आदित्यस्तस्यनाम्नाभूदरुणादित्यइत्यपि ॥ १९ ॥ अर्कउवाच ॥ तिष्ठानूरोममरथेसदैवविनतात्मज ॥ जगताञ्चहितार्थायध्वान्तंविध्वंसयन्पुरः ॥ २० ॥ अत्रत्वत्स्थापितांमूर्तिंयेभजिष्यन्तिमानवाः ॥ वाराणस्या म्महादेवोत्तरेतेषांकुतोभयम् ॥२१॥ येर्चयिष्यन्तिसततमरुणादित्यसञ्ज्ञकम् ॥ मामत्रतेषांनोदुःखंनदारिद्र्यंनपातकम् ॥ २२ ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयन्तेनोपसर्गैश्चकैश्चन ॥ शोकाग्निनानदह्यन्तेह्यरुणादित्यसेवनात् ॥ २३ ॥ अथस्य न्दनमारोप्यनीतवानरुणंरविः ॥ अद्यापिसरथेसौरेप्रातरेवसमुद्यति ॥ २४ ॥ यःकुर्यात्प्रातरुत्थायनमस्कारंदिनेदिने ॥ अरुणायससूर्यायतस्यदुःखभयंकुतः ॥ २५ ॥ अरुणादित्यमाहात्म्यंयःश्रोष्यतिनरोत्तमः ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिद्

मेरे आगे सदैव रथमें टिको ॥ २० ॥ जे मनुष्य इस काशी में महादेव के उत्तर ओर तुम्हारी थापीहुई हमारी मूर्ति को सेवेंगे उनको डर कहां सेहै याने कहीं नहीं ॥ २१ ॥ जे यहां अरुणादित्य नामक मुझको निरन्तर पूजेंगे उनको न दुःख है न दारिद्र्य है और न पाप है ॥ २२ ॥ व वे अरुणादित्य की सेवा से न रोगों से व किसी उपद्रवों से नहीं हारतेहैं और शोकाग्निसे भी नहीं जलाये जातेहैं ॥ २३ ॥ उसके बाद श्रीसूर्य्यजी अरुणको रथ में चढ़ाकर लेगये तब से लगाकर अब भी वह सूर्य्य के रथ में प्रातःकालही भलीभांति से उगते हैं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर दिन दिनमें सूर्य्य समेत अरुण के नमस्कार करे उसको दुःख का

डर कहां है ॥ २५ ॥ और जो नरोत्तम अरुणादित्य का माहात्म्य सुनेगा उसका कुछ भी दुष्कर्म (पाप) कभी न होगा ॥ २६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्ति जी ! वृद्धादित्यका माहात्म्य सुनो उस को मैं तुम से कहताहूं जिसके सुनने मात्रसे मनुष्य दुष्टकर्म को न सेवे ॥ २७ ॥ आगे इस काशी में महातपस्वी, वृद्धहारीतने बड़ीतपस्याकी समृद्धिकेलिये सूर्य्यदेवको भलीभांति से पूजन किया ॥ २८ ॥ व विशालाक्षीदेवी के दक्षिण में शुभलक्षण व शुभदेनेवाली सूर्य्यदेवकी मूर्त्तिको संस्थापनकर दृढ़भक्ति से संयुत हुवा ॥ २९ ॥ तब संतुष्ट होकर श्रीसूर्य्यजीने उस वृद्धतपस्वी को वर दिया कि विलंब करके वृथा है तुम मागो कि कौन वर तुमको

विष्यतिकदाचन ॥ २६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ वृद्धादित्यस्यमाहात्म्यंशृणुतेकथयाम्यहम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेणनरोनोदुष्कृतम्भजेत् ॥ २७ ॥ पुरात्रवृद्धहारीतोवाराणस्याम्महातपाः ॥ महातपःसमृद्ध्यर्थंसमाराधितवान्रविम् ॥ २८ ॥ मूर्तिंसंस्थाप्यशुभदांभास्वतःशुभलक्षणाम् ॥ दक्षिणेनविशालाक्ष्याहृढभक्तिसमन्वितः ॥ २९ ॥ तुष्टस्तस्मैवरम्प्रादाद्वृद्धनोवृद्धतपस्विने ॥ अलंविलम्ब्ययाचस्वकस्तेदेयोवरोमया ॥ ३० ॥ सोथप्रसन्नाद्द्युमणेरवृणीतवरम्मुनिः ॥ यदिप्रसन्नोभगवान्युवत्वन्देहिमेपुनः ॥ ३१ ॥ तपःकरणसामर्थ्यंस्थविरस्यनमेयतः ॥ पुनस्तारुण्यमाप्तोहंचरिष्याम्युत्तमन्तपः ॥ ३२ ॥ तपएवपरोधर्मस्तपएवपरंवसु ॥ तपएवपरःकामोनिर्वाणंतपएवहि ॥ ३३ ॥ ऋतेनतपसःकापिलभ्याऐश्वर्यसम्पदः ॥ पदंध्रुवादिभिःप्रापिकेवलंतपसोबलात् ॥ ३४ ॥ ततस्तपश्चरिष्यामिलोकद्वयमहत्त्वदम् ॥ प्राप्यत्वद्वरदानेनयौवनंसर्वसम्मतम् ॥ ३५ ॥ धिग्जरांप्राणिनामत्रययासर्वोविरज्यति ॥ जरातुरेन्द्रियग्रामेस्त्रियोपिनयतःस्व

मेरे देने योग्य है ॥ ३० ॥ तदनन्तर उस मुनि ने प्रसन्न हुये सूर्य्यदेव से वरको स्वीकार किया कि ऐश्वर्य्य से संपन्न तुम जो प्रसन्नहो तो मुझको फिर युवापन दो ॥ ३१ ॥ जिससे मुझ बूढ़ेकी तप करने में सामर्थ्य नहीं है उस से फिर युवापनको प्राप्तहुवा मैं उत्तम तपस्या करूंगा ॥ ३२ ॥ क्योंकि तपस्याही श्रेष्ठ धर्म तपस्याही श्रेष्ठधन तपस्याही श्रेष्ठकाम और तपस्याही श्रेष्ठ मुक्तिभी है ॥ ३३ ॥ व तपस्या विना ऐश्वर्य्य संपत्तियां कहीं भी मिलने योग्य नहीं हैं ध्रुवादिकों ने केवल तपस्या के बलसे उत्तमस्थानको प्राप्तकिया है ॥ ३४ ॥ उस लिये तुम्हारे वरदान से सबके सम्मत, युवापनको प्राप्तहोकर मैं दोनों लोकों में महत्त्वदेनेवाली तपस्या करूंगा ॥ ३५ ॥

प्राणियों की उस बुढ़ाई को धिक्कार है जिस से इस लोक में सब कोई स्नेहहीन होजाता है व जिस से बुढ़ाई से व्याकुल इंद्रियसमूहवाले पुरुष में स्त्रियां भी अपने अधीन नहीं रहती हैं ॥ ३६ ॥ इस से मरणही श्रेष्ठहो और अधिक शोचकरनेवाली बुढ़ाई मतहो क्योंकि मरना क्षणभर दुःखवाला होता है और बुढ़ाई का दुःख क्षण क्षण में रहता है ॥ ३७ ॥ इस से जितेन्द्रिय जन दीर्घ तपस्या के लिये बहुत कालकी आयु व दान के लिये धन व पुत्र के लिये स्त्री और मोक्ष के लिये ज्ञान को चाहते हैं ॥ ३८ ॥ उससमय सूर्य्यजी ने वृद्धकी बुढ़ाई को भी दूर करके पुण्यका साधन व सुंदरता का कारण युवापन दिया ॥ ३९ ॥ इस भांति महामुनि

सात् ॥ ३६ ॥ वरंमरणमेवास्तुमाजरास्त्वतिशोच्यकृत् ॥ क्षणंदुःखकृन्मरणञ्जरादुःखंक्षणेक्षणे ॥ ३७ ॥ काङ्क्षन्तिदीर्घतपसेचिरमायुर्जितेन्द्रियाः ॥ धनन्दानायपुत्रायकलत्रम्मुक्तयेधियम् ॥ ३८ ॥ वृद्धस्यवार्धकन्त्वेनस्तत्क्षणादपहृत्य वै ॥ ददौचचारुताहेतुन्तारुण्यम्पुण्यसाधनम् ॥ ३९ ॥ एवंसवृद्धहारीतोवाराणस्यांमहामुनिः ॥ सम्प्राप्ययौवनम्ब्रध्नात्तपउग्रञ्चचारह ॥ ४० ॥ वृद्धेनाराधितोयस्माद्धारीतेनतपस्विना ॥ आदित्योवार्धकहरोवृद्धादित्यस्ततःस्मृतः ॥ ४१ ॥ वृद्धादित्यंसमाराध्यवाराणस्यांघटोद्भव ॥ जरादुर्गतिरोगघ्नम्बहवःसिद्धिमागताः ॥ ४२ ॥ वृद्धादित्यन्नमस्कृत्यवाराणस्यांरवौनरः ॥ लभेदभीप्सितांसिद्धिन्नक्वचिद्दुर्गतिंलभेत् ॥ ४३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अतः परं शृणुमुनेकेशवादित्यमुत्तमम् ॥ यथातुकेशवम्प्राप्यसविताज्ञानमाप्तवान् ॥ ४४ ॥ व्योम्निसञ्चरमाणेनसप्ताश्वेना

वृद्धहारीतने काशीमें सूर्य्यसे युवापनको भलीभांतिसे प्राप्तहोकर हर्षसे उग्र तपस्या किया ॥ ४० ॥ जिस से वृद्धताहारी दिनचारीदेवजी तपस्वी वृद्धहारीत से पूजे गये उससे वृद्धादित्य कहाते हैं ॥ ४१ ॥ हे कुंभसंभव ! बहुतलोग काशीमें जरा (बुढ़ाई) व दुर्गति व रोगके विनाशी वृद्धादित्यको भलीभांतिसे पूजनकर सिद्धिको प्राप्त हुये हैं ॥ ४२ ॥ व मनुष्य सूर्य्यवारमें काशीके बीच वृद्धादित्यके नमस्कार करके मनमानी सिद्धिको पावे और दुर्गतिको कहीं न पावे ॥४३॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! इसके उपरान्त तुम उत्तम केशवादित्यको सुनो कि जैसे केशवको प्राप्तहोकर सूर्य्यदेवनेभी ज्ञान पायाहै ॥ ४४ ॥ एकसमय आकाश में विचरते हुये सूर्य्यजी ने भक्तिसे

ईश्वरके लिङ्गकी पूजाकरते हुये आदिकेशवको देखा ॥ ४५ ॥ व कौतुककी नाईं ऊपरसे उतरकर शब्दसे हीन, अचल, स्वस्थ और अधिक आश्चर्य्य समेत सूर्य्यजी विष्णुके समीपमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥ और हरिसे कुछ पूंछनेके लिये मनवाले व अवसरको परखते हुये व हाथ जोड़नेहारे होकर पूजाको विसर्जन किये हुये विष्णुजीके प्रणाम किया ॥ ४७ ॥ और विष्णुजीने बहुत आदरपूर्वक यह कहा कि तुम्हारा अच्छा आनाहुआ व शिर नवाये हुये सूर्य्यजीको अपने समीप में बैठाया ॥ ४८ ॥ उसके बाद अवसर देखकर दैत्यशत्रु करके आज्ञा किये हुये सूर्य्यदेवने विष्णुके नमस्कार कर विज्ञापना किया ॥ ४९ ॥ श्रीसूर्य्यदेवजी बोले कि हे जगत्पते, विश्वम्भर, जगत्पू-

दिकेशवः ॥ एकदादर्शिभावेनपूजयँल्लिङ्गमैश्वरम् ॥ ४५ ॥ कौतुकादिवउत्तीर्य्यहरेरविरुपाविशत् ॥ निःशब्दोनिश्चलःस्वस्थोमहाश्चर्यसमन्वितः ॥ ४६ ॥ प्रतीक्षमाणोवसरङ्किञ्चित्प्रष्टुमनाहरिम् ॥ हरिंविसर्जितार्चञ्चप्रणनामकृताञ्जलिः ॥ ४७ ॥ स्वागतन्तेहरिःप्राहबहुमानपुरःसरम् ॥ स्वाभ्याशआसयामासभास्वन्तन्नतकन्धरम् ॥ ४८ ॥ अथावसरमालोक्यलोकचक्षुरधोक्षजम् ॥ नत्वाविज्ञापयामासकृतानुज्ञोऽसुरारिणा ॥ ४९ ॥ ॥ रविरुवाच ॥ ॥ अन्तरात्मासिजगतांविश्वम्भरजगत्पते ॥ तवापिपूज्यःकोप्यस्तिजगत्पूज्यात्रमाधव ॥ ५० ॥ त्वत्तआविर्भवेदेतत्त्वयिसर्वम्प्रलीयते ॥ त्वमेवपातासर्वस्यजगतोजगतान्निधे ॥ ५१ ॥ इत्याश्चर्यंसमालोक्यप्राप्तोस्म्यत्रतवान्तिकम् ॥ किमिदम्पूज्यतेनाथभवताभवतापहृत् ॥ ५२ ॥ इतिश्रुत्वाहृषीकेशः सहस्रांशोरुदीरितम् ॥ उच्चैर्माशंससंज्ञाश्चवारयन्करसंज्ञया ॥ ५३ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ देवदेवोमहादेवोनीलकण्ठउमापतिः ॥ एकएवहिपूज्योत्रसर्वकारणकारणम् ॥ ५४ ॥

ज्य, माधव ! तुमहीं सब लोकोंके अंतरात्माहो इससे इस लोक में क्या तुम्हाराभी पूज्य कोई है ॥ ५० ॥ हे जगतांनिधे ! यह सब जगत् तुमसे प्रकटहोता है व तुममें प्रलयको प्राप्तहोजाताहै और तुमहीं सब जगत्के रक्षकहो ॥ ५१ ॥ हे संसारतापहारक नाथ ! यहां इस आश्चर्य्यको भली भांति सर्व ओरसे देखकर मैं तुम्हारे समीपको प्राप्तभयाहूं आपकरके यह क्या पूजाजाताहै ॥५२॥ इस भांति सूर्य्यका कहना सुनकर ऊंचे स्वरसे मत बोलो ऐसे हाथकी संज्ञा से सूर्य्यको निवारतेहुये इन्द्रियों के स्वामीसे ॥ ५३ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, देवों के देव, सब प्रकृत्यादिकारणों के कारण, पार्वती के पति, नीलकण्ठ, एक महादेवजीही यहां पूजनीय हैं ॥ ५४ ॥

इस लोकमें जो थोड़ी बुद्धिवाला त्रिलोचनसे अन्य किसीको भली भांतिसे पूजताहै वह आंखों समेतभी नेत्रोंसे हीन (अन्धा) जानने योग्यहै॥ ५५॥ व जन्म मृत्यु और जराके हरनेहारे एक मृत्युंजय (शिव) पूजनीयहैं क्योंकि निश्चयसे मृत्युंजयकी पूजाकरकेश्वेत मुनि मृत्युके जीतनेहारा हुआहै॥ ५६॥ व भृङ्गीनेभी कालके कालको भली भांति सब ओरसे पूजनकर कालको जीतलियाहै व मृत्युंजयके पूजक नन्दीश्वरकोभी मृत्युने छोड़ दियाहै॥ ५७॥ व जिन्होंने लीलासेही एक बाण छोंड़नेसे त्रिपुरको जीताहै उन शिवकी पूजाकर कौन बहुत पूजनीय न होवै॥ ५८॥ हे सूर्य्य ! सबके कारण, कामके शत्रु, सारभूत त्रिलोकविजयी शङ्करका पूजन श्रेष्ठहै इससे उन विश्वनाथ

अत्रत्रिलोचनादन्यंसमर्चयतियोल्पधीः ॥ सलोचनोपिविज्ञेयोलोचनाभ्यांविवर्जितः ॥ ५५ ॥ एकोमृत्युञ्जयःपूज्योजन्ममृत्युजराहरः ॥ मृत्युञ्जयङ्किलाभ्यर्च्यश्वेतोमृत्युञ्जयोभवत् ॥ ५६ ॥ कालकालंसमाराध्यभृङ्गीकालञ्जिगायवै ॥ शैलादिमपितत्याजमृत्युर्मृत्युञ्जयार्चकम् ॥ ५७ ॥ विजिग्येत्रिपुरंयस्तुहेलयैकेषुमोक्षणात् ॥ तंसमभ्यर्च्यभूतेशङ्कोनपूज्यतमोभवेत् ॥ ५८ ॥ त्रिजगज्जयिनोहेतोस्त्र्यक्षस्याराधनम्परम् ॥ कोनाराधयतिब्रध्नसारस्यस्मरविद्विषः ॥ ५९ ॥ यस्याक्षिपक्ष्मसङ्कोचाज्जगत्सङ्कोचमेत्यदः ॥ विकस्वरंविकासाच्चकस्यपूज्यतमोनसः ॥ ६० ॥ शम्भोर्लिङ्गंसमभ्यर्च्यपुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ प्राप्नोत्यत्रपुमान्सद्योनात्रकार्याविचारणा ॥ ६१ ॥ समर्च्यशाम्भवंलिङ्गमपिजन्मशतार्जितम् ॥ पापपुञ्जञ्जहात्येवपुमानत्रक्षणाद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ किङ्किन्नसम्भवेदत्रशिवलिङ्गसमर्चनात् ॥ पुत्राःकलत्रंक्षेत्राणिस्वर्गोमोक्षोप्यसंशयम् ॥ ६३ ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यसम्पत्तिर्मयाप्राप्तासहस्रगो ॥ शिवलिङ्गार्चना

जीको को न पूजे ॥ ५९ ॥ व जिनके नेत्रकी पलकके संकोचसे यह जगत् संकोचको प्राप्तहोताहै और विकसनेसे विकसितहै वह शिवजी किसके महापूज्य नहीहैं ॥ ६० ॥ इस लोकमें मनुष्य शिवजी के लिंगको भली भांति से पूजनकर शीघ्रही चार पुरुषार्थों को प्राप्तहोता है इस में विचार न करनाचाहिये ॥ ६१ ॥ निश्चय है कि मनुष्य इस लोकमें या इस काशीमें क्षणभर शङ्करके लिङ्गकी पूजाकर सैकड़ों जन्मके बटोरेहुये समूह पापकोभी छोड़ताही है ॥ ६२ ॥ यहां शिवलिङ्गकी पूजासे पुत्र, स्त्री, क्षेत्र स्वर्ग व मोक्षभी और क्या क्या निस्सन्देह संभवित न होवे ॥ ६३ ॥ हे सहस्रांशो ! फिर फिर सत्यहै सत्यहै एक (मुख्य या केवल) शिवलिङ्ग की

पूजासे त्रिलोकके ऐश्वर्य्यकी संपत्ति मुक्तको प्राप्तहुईहै ॥ ६४ ॥ जोकि शिवलिंग पूजाजाताहै यहही उत्तम योग यहही उत्तम तपस्या और यहही उत्तमज्ञानहै॥ ६५॥ व जिनसे एक वारभी यहां पार्वतीपतिका लिङ्गपूजागया उनको दुःखसागर संसारमें दुःखका डर कहां है ॥ ६६ ॥ हे दिवाकर, रवे ! जो सबको परित्याग कर शिवलिंगके शरण गयाहै उसको बडे भी पाप नहीं बाधा करसक्ते हैं ॥६७॥ हे भास्कर ! श्रीमहेशजी जिनकी फिर उत्पत्तिका छेदन करना चाहते हैं उनकीही बुद्धि यहां लिंगार्चन में होवे है ॥ ६८ ॥ और शिवलिंग पूजासे अधिक अन्य पुण्य तीनो लोकों में नहीं है व लिंगस्नानके नीरकी सेवासे सब तीर्थोंका अभिषेक होजावेहै ॥ ६९ ॥ हे सूर्य्य ! उस

देवात्सत्यंसत्यंपुनःपुनः ॥ ६४ ॥ अयमेवपरोयोगस्त्विदमेवपरन्तपः ॥ इदमेवपरंज्ञानंस्थाणुलिङ्गंयदर्च्यते॥ ६५ ॥ यैर्लिङ्गंसकृदप्यत्रपूजितम्पार्वतीपतेः ॥ कुतोदुःखभयन्तेषांसंसारेदुःखभाजने ॥ ६६ ॥ सर्वम्परित्यज्यरवेयोलिङ्गं शरणङ्गतः ॥ नतम्पापानिबाधन्ते महान्त्यपिदिवाकर ॥ ६७ ॥ लिङ्गार्चनेमनेद्बुद्धिस्तेषामेवात्रभास्कर ॥ येषाम्पुनर्भवच्छेदञ्चिकीर्षतिमहेश्वरः ॥ ६८ ॥ नलिङ्गाराधनात्पुण्यन्त्रिषुलोकेषुचापरम् ॥ सर्वतीर्थाभिषेकःस्याल्लिङ्गस्नानाम्बुसेवनात् ॥ ६९ ॥ तस्माल्लिङ्गन्त्वमप्यर्कसमर्चयमहेशितुः ॥ सम्प्राप्तुंपरमांलक्ष्मीम्महातेजोभिजृम्भणीम् ॥ ७० ॥ इतिश्रुत्वाहरेर्वाक्यन्तदारभ्यसहस्रगुः ॥ विधायस्फाटिकंलिङ्गंमुनेद्यापिसमर्चयेत् ॥ ७१ ॥ गुरुत्वेनतदाकल्प्यविवस्वानादिकेशवम् ॥ तत्रोपतिष्ठतेद्यापिउत्तरेणादिकेशवात् ॥ ७२ ॥ अतःसकेशवादित्यःकाश्याम्भक्ततमोनुदः ॥ समर्चितःसदादेयान्मनसोवाञ्छितम्फलम् ॥ ७३ ॥ केशवादित्यमाराध्यवाराणस्यांनरोत्तमः ॥ परमंज्ञा

से तुमभी महातेजकी बढानेवाली उत्तम शोभा या संपत्तिको संप्राप्त होने के लिये महेश के लिंगको भली भांति से पूजो ॥ ७० ॥ हे मुने ! ऐसा विष्णुका वचन सुनकर तब से लगाकर अबतक भी सूर्य्यदेवजी स्फटिकका लिंग बनाकर भलीभांतिसे पूजा करते हैं ॥ ७१ ॥ उस समय श्रीसूर्य्यजी गुरुभावसे आदिकेशवको कल्पित कर आदिकेशव से उत्तर ओर उस स्थानमें अबभी समीपही टिकेहैं ॥ ७२ ॥ इससे काशीमे भक्तों का अन्धकार या अज्ञानहारक, वह केशवादित्यहैं जोकि पूजेहुये सदा

मनवाञ्छित फलको देवेहैं ॥ ७३ ॥ व काशी में केशवादित्यकी पूजा करके मनुष्यश्रेष्ठ परमज्ञान को प्राप्त होताहै कि जिसके द्वारा मोक्षभागी होवेहै ॥ ७४ ॥ व वहां पादोदक तीर्थमें सकल जलक्रिया कियेहुये जन, केशवादित्य के दर्शनकर जन्मके पापोंसे छूटजाताहै॥ ७५ ॥ हे अगस्ते ! जब अचलासप्तमीमें सूर्य्यवार मिलता है तब आदिकेशवके समीप पादोदकतीर्थमें ॥ ७६ ॥ चारदण्ड राति रहजाने के समय मौनधारी मनुष्य स्नान करके केशवादित्यकी पूजासे उसीक्षण सात जन्मों में बटोरे हुये पापोंसे छूटाहुआ होताहै ॥ ७७ ॥ मैंने जन्म से लगाकर सात जन्मों में जो जो पाप कियाहै उसको व मेरे रोग और शोचको भी माघकी सप्तमी विनाशकरे ॥७८॥

नमाप्नोतियेननिर्वाणभाग्भवेत् ॥ ७४ ॥ तत्रपादोदकेतीर्थेकृतसर्वोदकक्रियः ॥ विलोक्यकेशवादित्यं मुच्यतेजन्मपातकः ॥ ७५ ॥ अगस्तेरथसप्तम्यां रविवारोयदाप्यते ॥ तदापादोदकेतीर्थे आदिकेशवसन्निधौ ॥ ७६ ॥ स्नात्वोषसिनरोमौनी केशवादित्यपूजनात् ॥ सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुक्तोभवतितत्क्षणात् ॥ ७७ ॥ यद्यज्जन्मकृतम्पापंमया सप्तसुजन्मसु ॥ तन्मेरोगंचशोकंचमाकरीहन्तुसप्तमी ॥७८॥ एतज्जन्मकृतंपापं यच्चजन्मान्तरार्जितम् ॥ मनोवाक्कायजंयच्च ज्ञाताज्ञातेचयेपुनः ॥ ७९ ॥ इतिसप्तविधंपापंस्नानान्मेसप्तसप्तिके ॥ सप्तव्याधिसमायुक्तं हरमाकरिसप्तमि ॥ ८० ॥ एतन्मन्त्रत्रयञ्जप्त्वा स्नात्वापादोदकेनरः ॥ केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषोभवेत् ॥ ८१ ॥ केशवादित्यमाहात्म्यंशृण्वञ्छ्रद्धासमन्वितः ॥ नरोनलिप्यतेपापैःशिवभक्तिंचविन्दति ॥ ८२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अतःपरंशृणुमुने विमलादित्यमुत्तमम् ॥ हरिकेशवनेरम्ये वाराणस्यांव्यवस्थितम् ॥८३॥ उच्चदेशेऽभवत्पूर्वं विमलोनामबाहुजः ॥

जो कि पाप इस जन्म में किया गयाहै व अन्य जन्मों में बटोरा हुआहै व जो मन वचन और देहसे उत्पन्न है व जे पाप जाने और न जानेहुये हैं ॥ ७९ ॥ हे सात घोड़ेवाले सूर्य्यकी शक्तिसे समन्विते, मकरसंक्रांतिसम्बन्धिनि, सप्तमि ! सात रोगों समेत इस सात भांति के पापको तुम हरलो ॥ ८० ॥ इन तीनों मन्त्रों को जपकर पादोदक तीर्थमें स्नानकर और केशवादित्यके दर्शनकर मनुष्य क्षणभर में निष्पाप होजाते हैं ॥ ८१ ॥ व केशवादित्य का माहात्म्य सुनताहुआ श्रद्धा समेत मनुष्य पापों से नहीं लिप्त होताहै और शिवजीकी भक्तिको पाता है ॥ ८२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! तुम इसके आगे उत्तम, विमलादित्य को सुनो

जो कि काशीके बीच रमणीक, हरिकेशके वनमें विशेषसे टिके हैं ॥ ८३ ॥ आगे उच्चदेश में जो विमल नामक क्षत्रिय हुआथा वह विमल मार्गमें भी टिकाथा परन्तु प्रारब्ध कर्मके संयोग से ॥ ८४ ॥ अधिक कुष्ठरोग को प्राप्तहोकर स्त्री घर और धनको छोड़कर काशीमें भलीभांति से आगमनकर उस सुबुद्धिमान् ने सूर्य्यदेवकी पूजा किया ॥ ८५ ॥ जब वह सुगन्धसंयुत कनैर, दुपहरी, शुभपलाश, व लालरंगवाले कमल और अशोकके फूलोंसे प्रकाशकारी देवको पूजता भया ॥ ८६ ॥ तब पाटल व चम्पा के फूलों से बनायेहुये अद्भुत रचनावाले माल्य व कुंकुम अगर और कपूरसे मिश्रित रक्तचन्दन ॥ ८७ ॥ व देवमोहन धूप (अष्टांग)

सप्राक्तनात्कर्मयोगाद्विमलेपथ्यपिस्थितः ॥ ८४ ॥ कुष्ठरोगमवाप्योच्चैस्त्यक्त्वादारान्गृहंवसु ॥ वाराणसींसमासाद्य ब्रध्नमाराधयत्सुधीः ॥ ८५ ॥ करवीरैर्जपाभिश्च गन्धकैःकिंशुकैःशुभैः ॥ रक्तोत्पलैरशोकैश्च ससमानर्चभास्करम् ॥ ८६ ॥ विचित्ररचनैर्माल्यैः पाटलाचम्पकोद्भवैः ॥ कुङ्कुमागुरुकर्पूरमिश्रितैःशोणचन्दनैः ॥ ८७ ॥ देवमोहनधूपैश्च बह्वामोदतताम्बरैः॥कर्पूरवर्तिदीपैश्चनैवेद्यैर्घृतपायसैः ॥८८॥ अर्घदानैश्चविधिवत्सौरैःस्तोत्रजपैरपि ॥ एवंसमाराधयत स्तस्यार्कोवरदोभवत् ॥ ८९ ॥ उवाचचवरंब्रूहिविमलामलचेष्टित ॥ कुष्ठश्चतेप्रयात्वेषप्रार्थयान्यंवरंपुनः ॥ ९० ॥ आ कर्ण्यविमलश्चेत्थमालापंरश्मिमालिनः ॥ प्रणतोदण्डवद्भूमौ संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ ९१ ॥ शनैर्विज्ञापयाञ्चक्रे एक चक्ररथंरविम् ॥ जगच्चक्षुरमेयात्मन्महाध्वान्तविधूनन ॥ ९२ ॥ यदिप्रसन्नोभगवन् यदिदेयोवरोमम ॥ तदात्वद्भ

सुगन्धित अनेक वस्त्र, कपूर बाती के दीप व घृतसमेत खीर नैवेद्य ॥ ८८ ॥ व विधिपूर्वक अर्घदान और सूर्य्यसम्बन्धी स्तोत्रोंके जपोंसे भी इसप्रकार भलीभांति पूजतेहुये उसके लिये दिननायकदेव वरदायक हुये ॥ ८९ ॥ और बोले कि हे विमलकर्मवाले, विमल ! तुम मनमाने वरको बोलो और तुम्हारा यह कुष्ठरोग दूरचलाजावे व फिर भी अन्य वरदान मांगो ॥ ९० ॥ इसभांति सूर्य्यदेवका कहना सुनकर भूमिमें दण्डके समान प्रणाम करतेहुये व आनन्दसे खड़े रोमवाले विमल ने ॥ ९१ ॥ एक चक्र (पैहा) के रथवाले सूर्य्यदेवसे विज्ञापना किया कि हे जगत्के नेत्र, अतौल, आत्मन्, महान्धकारहार ! ॥ ९२ ॥ हे भगवन् ! जो तुम प्रसन्नहो व जो

वर मेरे देने योग्य है तो जे जन तुम्हारी भक्ति में निष्ठावाले हैं उनके वंशमें कुष्ठरोग मतहोवे ॥ ९३ ॥ हे सहस्रकिरण ! उन तुम्हारे भक्तोंके अन्यरोगभी मतहोवें व दरिद्रता मतहोवे और कोई सन्ताप मतहोवे ॥ ९४ ॥ श्रीसूर्य्यदेव बोले कि, हे महाप्राज्ञ, महामते ! यह वैसेही होवे और तुम अन्य उत्तम वरको सुनो कि काशीमें यह मूर्त्ति इसभांति तुमसे पूजित हुई है ॥ ९५ ॥ इससे मैं इसके समीपको कभी न त्याग करूंगा और यह प्रतिमा (मूर्त्ति) तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होवेगी ॥ ९६ ॥ जो कि विमलादित्य ऐसे नामवाली है वह सदा भक्तों को वर देनेवाली व सब रोगसंहारिणी और सबपापविनाशकारिणी होवेगी ॥ ९७ ॥ ऐसा वरदान देकर

क्तिनिष्ठाये कुष्ठंमास्तुतदन्वये ॥ ९३ ॥ अन्येपिरोगामासन्तु मास्तुतेषान्दरिद्रता ॥ मास्तुकश्चनसन्तापस्त्वद्भक्तानां सहस्रगो ॥ ९४ ॥ श्रीसूर्य्यउवाच ॥ तथास्त्वितिमहाप्राज्ञश्शृणुवन्यंवरमुत्तमम् ॥ त्वयेयंपूजितामूर्तिरेवंकाश्यांमहामते ॥ ९५ ॥ अस्याःसान्निध्यमत्राहं नत्यक्ष्यामिकदाचन ॥ प्रथितातवनाम्नाच प्रतिमैषाभविष्यति ॥ ९६ ॥ विमलादित्यइत्याख्या भक्तानांवरदासदा ॥ सर्वव्याधिनिहन्त्रीच सर्वपापक्षयङ्करी ॥ ९७ ॥ इतिदत्त्वावरान्सूर्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ विमलोनिर्मलतनुः सोपिस्वभवनंययौ ॥ ९८ ॥ इत्थंसविमलादित्यो वाराणस्यांशुभप्रदः ॥ तस्यदर्शनमात्रेण कुष्ठरोगःप्रणश्यति ॥ ९९ ॥ यश्चैतांविमलादित्यकथांवैशृणुयान्नरः ॥ प्राप्नोतिनिर्मलांशुद्धिंत्यज्यतेचमनोमलैः ॥ १०० ॥ स्कन्दउवाच ॥ गङ्गादित्योस्तितत्रान्यो विश्वेशाद्दक्षिणेनवै ॥ तस्यदर्शनमात्रेण नरःशुद्धिमियादिह ॥ १ ॥ यदागङ्गासमायाता भगीरथपुरस्कृता ॥ तदागङ्गांपरिष्टोतुं रविस्तत्रैवसंस्थितः ॥ २ ॥ अद्याप्यहर्नि

श्रीसूर्य्यजी अन्तर्धान होगये व निर्मल देह हुआ वह विमलभी अपने घरको गया ॥ ९८ ॥ इसभांति से वह शुभदायक विमलादित्य काशी में हैं उनके दर्शनमात्रसे कुष्ठरोग विनष्ट होजाता है ॥ ९९ ॥ और जो मनुष्य इस विमलादित्यकी कथाको भी सुनताहै वह विमल बुद्धि शुद्धिको प्राप्तहोता है व मन के मलोंसे त्यागाजाता है ॥ १०० ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि अन्य गंगादित्यभी विश्वनाथके दक्षिण ओर में वहां हैं उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य यहां शुद्धताको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ जब भगीरथ राजाको आगे कियेहुई गंगाजी भलीभांतिसे आई हैं तब गंगाकी सब ओरसे स्तुति करनेके लिये सूर्य्यजी वहांही संस्थितहुये हैं ॥ २ ॥ अब भी रातोदिन गंगा

को सम्मुखकरके प्रसन्नमनवाले भास्करजी गंगाकी सब ओरसे स्तुति करते हैं और गंगाभक्तोंके वरदाता हैं ॥ ३ ॥ इससे मनुष्योत्तम काशीमें गंगादित्य को भली भांतिसे पूजकर कभी कहीं भी दुर्गति को नहीं पाता है और रोगसेवी नहीं होता है ॥ ४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महाभाग ! अन्य यमादित्यकी उत्पत्ति को भी सुनो जिसको सुनकर भी मनुष्य यमलोकको कभी नहीं देखता है ॥ ५ ॥ हे मुने ! यमेश्वरसे पश्चिम व वीरेश्वरसे पूर्वभाग में यमादित्यको देखकर मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है ॥ ६ ॥ व मंगलवार समेत चतुर्दशी तिथि में मनुष्य यमतीर्थ में स्नानकर व यमेश्वर को देखकर शीघ्रही सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ७ ॥

शङ्गां सम्मुखीकृत्यभास्करः ॥ परिष्टौतिप्रसन्नात्मा गङ्गाभक्तवरप्रदः ॥ ३ ॥ गङ्गादित्यंसमाराध्य वाराणस्यान्नरोत्तमः ॥ नजातुदुर्गतिंक्वापि लभतेनचरोगभाक् ॥ ४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अन्यच्छृणुमहाभाग यमादित्यस्यसम्भवम् ॥ यच्छ्रुत्वापिनरोजातुयमलोकंनपश्यति ॥ ५ ॥ यमेशात्पश्चिमेभागेवीरेशात्पूर्वतोमुने ॥ यमादित्यंनरोदृष्ट्वायमलोकंनपश्यति ॥ ६ ॥ यमतीर्थेनरःस्नात्वाभूतायाम्भौमवासरे ॥ यमेश्वरंविलोक्याशु सर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ ७ ॥ यमतीर्थेयमःपूर्वं तप्त्वासुविमलन्तपः ॥ यमेशञ्चयमादित्यंप्रत्यष्ठाद्भक्तसिद्धिदम् ॥ ८ ॥ यमेनस्थापितोयस्मादादित्यस्तत्रकुम्भज ॥ अतःसहियमादित्योयामींहरतियातनाम् ॥ ९ ॥ यमेशञ्चयमादित्यंयमेनस्थापितंनमन् ॥ यमतीर्थेकृतस्नानो यमलोकंनपश्यति ॥ १० ॥ यमतीर्थेचतुर्दश्यांभरण्याम्भौमवासरे ॥ तर्पणंपिण्डदानञ्च कृत्वापित्रनृणीभवेत् ॥ ११ ॥ अभिलष्यन्तिसततं पितरोनरकौकसः ॥ भौमेभरण्याम्भूतायांयदियोगोयमुत्तमः ॥ १२ ॥ काश्यांकश्चिद्यमेतीर्थे कृत्वा

पूर्वकालमें यमराजने यमतीर्थके समीप बहुत बडी तपस्या तपकर भक्तोंकी सिद्धिके दायक यमेश्वर और यमादित्य को स्थापित किया है ॥ ८ ॥ हे अगस्त्यजी ! जिससे वहां सूर्य्यजी यमसे थापेगये है इससेही वही यमादित्य यमकी यातनाको हरलेते हैं ॥ ९ ॥ यमके थापेहुये यमेश व यमादित्यके नमस्कार करताहुआ व यमतीर्थ में स्नानकरनेवाला मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है ॥ १० ॥ व चतुर्दशी तिथि, भरणी नक्षत्र और मंगलवार इनतीनों का योग होतेही यमतीर्थ में पिण्डदान व तर्पण करके पितरों के ऋण से हीन होजावे ॥ ११ ॥ जो मंगलवार भरणी नक्षत्र और चतुर्दशी तिथि में यह उत्तम योग होताहै तो नरकनिवासी पितर

निरन्तर अभिलाषकरते हैं ॥ १२ ॥ कि जो कोई बड़ा बुद्धिमान् काशीके बीच यमतीर्थमें स्नानकर तिलसमेत तर्पणको भी करेगा वह हमारी विमुक्तिके लिये होगा ॥ १३ ॥ व इस योगके होतेही जो काशी में यमतीर्थके समीप श्राद्ध प्राप्त कीजाती है तो लोगोंके गया मे जानेसे क्या है और बहुती दक्षिणावाली श्राद्धों से क्या है ॥ १४ ॥ यमतीर्थ में श्राद्धकर व यमेश्वरकी पूजाकर व यमादित्यके दर्शनकर पितरों के ऋणसे हीन होवे है ॥ १५ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि इसभांति से मैंने पापनाशक उन बारह आदित्यों को तुमसे कहा जिनकी उत्पत्तिको भलीभांतिसे सुनकर मनुष्य नरकनिवासी न होवे ॥ १६ ॥ हे कुम्भसम्भव ! सूर्य्यभक्तों के थापेहुये अ-

स्नानंमहामतिः ॥ अपियस्तर्पणंकुर्यात्सतिलंनोविमुक्तये ॥ १३ ॥ किङ्गयागमनैःपुंसां किंश्राद्धैर्भूरिदक्षिणैः ॥ यदि काश्यांयमेतीर्थे योगेऽस्मिन्च्छ्राद्धमाप्यते ॥ १४ ॥ श्राद्धंकृत्वायमेतीर्थे पूजयित्वायमेश्वरम् ॥ यमादित्यंनमस्कृत्य पितृणामनृणोभवेत् ॥ १५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इतितेद्वादशादित्याः कथिताःपापनाशनाः ॥ यत्सम्भवंसमाकर्ण्य नरोननिरयीभवेत् ॥ १६ ॥ अन्येपिसन्तिघटजरविभक्तैरनेकशः ॥ काश्यांसंस्थापिताःसूर्या गुह्यकार्कादयः किल ॥१७॥ श्रुत्वाध्यायानिमान्पुण्यान् द्वादशादित्यसूचकान् ॥ श्रावयित्वापिनोमर्त्यो दुर्गतिंयातिकुत्रचित्॥११८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽरुणवृद्धकेशवविमलगङ्गायमादित्यवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

स्कन्दउवाच ॥ गभस्तिमालिनिगते काशींत्रैलोक्यमोहिनीम् ॥ पुनश्चिन्तामवापोच्चैर्मन्दरस्थोमुनेहरः ॥ १ ॥ नाद्याप्यायान्तियोगिन्यो नाद्याप्यायाति तिग्मगुः ॥ प्रवृत्तिरपिमेकाश्याश्चित्रमप्यन्तदुर्लभा ॥ २ ॥ किमत्रचि

न्यभी गुह्यकार्क आदि अनेक आदित्य काशीमें प्रसिद्धहैं॥१७॥और बारह सूर्य्योंको सूचन करनेवाले इन पुण्यरूप अध्यायोंको सुनकर व सुनाकर भी मनुष्य दुर्गतिको कहीं नहीं जाता है ॥ ११८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिबेदिविरचितेऽरुणवृद्धकेशवविमलगंगायमादित्यवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१ ॥

दोहा ॥ इस दुसरे अध्याय में मन्दरसे बिधि जाय। काशी में किययज्ञ दश अश्वमेध उत आय ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! जब किरणमाली सूर्य्यजी त्रिलोक मोहनी काशी को चले गये तब मंदराचलमें टिके शिवजी फिर बड़ी चिंताको प्राप्तहुये ॥ १ ॥ कि वे योगिनियां आजभी नहीं आतीहैं व सूर्य्य देव आजभी

नहीं आतेहैं इससे काशीमें मेरी प्रवृत्तिभी अत्यन्त दुर्लभहै यह आश्चर्य्य है ॥ २ ॥ परन्तु इससे इसमें क्या आश्चर्य्य है जिससे काशीपुरी मेरेभी निश्चल मनको चञ्चल करतीहै तो अन्यदेवमें क्या गणना है ॥ ३ ॥ और यह आश्चर्य्य है कि मैंने त्रिलोकविजयी कामको नेत्रसे जलाडाला है तो भी काशीका अभिलाष यहां मुझकोभी बहुतही तपाता है ॥ ४ ॥ और निश्चय से काशीका हाल हेरने के लिये मैं यहां से किसको पठाऊं जिससे वह चारमुख वालेहैं इससे ब्रह्माजीही जानने के लिये निपुण हैं ॥ ५ ॥ यह विचार कर अधिक आदरपूर्वक ब्रह्माजी को बुलाकर व वहां अपने समीप बैठाकर महादेवजी ने चतुर्मुखसे कहा ॥ ६ ॥ कि, हे कमलसंभव !

त्रेयत्काशी मदीयमपिमानसम् ॥ निश्चलंचञ्चलयतिगणनाकेतरेसुरे ॥ ३ ॥ अधाक्षिषमहंकामं त्रिजगज्जित्वरंदृशा ॥ अहोकाश्यभिलाषोत्र मामेवदुनुयात्तराम् ॥ ४ ॥ काशीप्रवृत्तिमन्वेष्टुं कंवाप्रहिणुयामितः ॥ ज्ञातुङ्कएवनिपुणो यतःसचतुराननः ॥ ५ ॥ इत्याहूयविधातारं बहुमानपुरःसरम् ॥ तत्रोपवेश्यश्रीकण्ठः प्रोवाचचतुराननम् ॥ ६ ॥ योगिन्यःप्रेषिताःपूर्वं प्रेषितोथसहस्रगुः ॥ नाद्यापितेनिवर्तन्ते काश्याःकमलसम्भव ॥ ७ ॥ सासमुत्सुकयेत्काशी लोकेशममानसम् ॥ प्राकृतस्यजनस्येव चञ्चलाक्षीवकाचन ॥ ८ ॥ मन्दरेत्ररतिर्मेन भृशंसुन्दरकन्दरे ॥ अनच्छतुच्छपानीये नक्रस्येवाल्पपल्वले ॥ ९ ॥ नाबाधिष्टतथामांस तापोहालाहलोद्भवः ॥ काशीविरहजन्मात्र यथामामतिबाधते॥१०॥शीतरश्मिःशिरस्थोपि वर्षन्पीयूषसीकरैः ॥ काशीविश्लेषजन्तापं नाहोगमयितुंप्रभुः ॥११॥

पहले योगिनियां पठाई गई उसके बाद सूर्य्यदेव पठाये गये वे अबतक भी काशी से नहीं लौटतेहैं ॥ ७ ॥ हे लोकेश! प्राकृतजनके मनके समान किसी चंचलनयनी स्त्री की नाई वह काशी मेरे मनको भी भलीभांति से उत्कण्ठित करती है ॥ ८ ॥ जैसे स्वच्छता रहित थोडेपानीवाले छोटे तड़ाग में मगरकी रति नहींहोती है वैसे ही सुन्दर कन्दर संयुत इस मन्दर पर्वतमें मेरी बड़ी प्रीति नहीं है ॥ ९ ॥ विषसे उत्पन्नहुई उस तापनें वैसे मुझको पीड़ित नहीं किया था जैसे काशीके विरहसे उपजी हुई ताप मुझको बहुत बाधा करती है ॥ १० ॥ आश्चर्य्य है कि माथमें टिकाहुआ भी अमृतके किनकोंको वर्षताहुआ चन्द्रमा काशीके विरहसे उपजीहुई

तापका चलाने को नहीं समर्थ है ॥ ११ ॥ हे धर्मज्ञोंमें धुरीधर, महामते, ब्रह्मन् ! तुम मेरा काम करो कि यहांसे शीघ्रही काशीको जावो और मेरेही हितमें यत्नकरो ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हीं काशीके त्यागका वह कारण जानतेहो कि मन्द मनुष्यभी काशीको न छोंड़े फिर जो कुछ जानता है उसको क्या कहनाहै ॥ १३ ॥ इससे अपनी माया श्रीपार्वतीके साथ मैं आजही क्या काशीको न चलाजाऊं परन्तु स्वधर्म में टिके हुये दिवोदासराजाको उल्लङ्घन करनेके लिये मैं समर्थ नहींहूं ॥ १४ ॥ हे विधातः ! जिससे तुम्हीं सब कार्य्योंको करतेहो इससे सम्पूर्ण कार्य्य इसभांति से करना चाहिये यह कहने योग्य वचन तुममें व्यर्थ है अर्थात् तुम सब जानतेहो ॥ १५ ॥

विधेविधेहिमेकार्यं मार्यधुर्यमहामते ॥ याहिकाशीमितस्तूर्णं यतस्वचममेहिते ॥ १२ ॥ ब्रह्मंस्त्वमेवतद्वेत्सि काशीत्यजनकारणम् ॥ मन्दोपिनत्यजेत्काशीं किमुयोवेत्तिकिञ्चन ॥ १३ ॥ अद्यैवकिंनगच्छेयं काशींब्रह्मन्स्वमायया ॥ दिवोदासंस्वधर्मस्थं नतूल्लंघितुमुत्सहे ॥ १४ ॥ विधेसर्वविधेयानि त्वमेवविदधासियत् ॥ इतिचेतिचवक्तव्यं त्वय्यपार्थमतोखिलम् ॥ १५ ॥ अरिष्टंगच्छपन्थास्ते शुभोदर्कोभवत्वलम् ॥ आदायाज्ञांविधिर्मूर्ध्नि ययौवाराणसींमुदा ॥ १६ ॥ सितहंसरथस्तूर्णं प्राप्यवाराणसींपुरीम् ॥ कृतकृत्यमिवात्मान ममन्यततदात्मभूः ॥ १७ ॥ हंसयानफलंमेद्य जातंकाशीसमागमे ॥ काशीप्राप्तौयतःप्रोक्ता अन्तरायाःपदेपदे ॥ १८ ॥ दृशिधातुरभूदद्यमदृशौप्राप्यसान्वयः ॥ स्पष्टंदृष्टिपथंप्राप्ता यदेषाऽऽनन्दवाटिका ॥ १९ ॥ स्वयंसिञ्चतियामद्भिः स्वाभिःस्वर्गतरङ्गिणी ॥ यत्रानन्दमया

और शुभ जैसेहो वैसे जावो व तुम्हारी गली बहुत शुभफलवाली होवे ऐसे कहेगये हुये ब्रह्माजीने माथमें विश्वनाथकी आज्ञाधरकर आनन्दसे आनन्दवनको गमन किया ॥ १६ ॥ तब शीघ्रही काशीपुरीको प्राप्तहोकर श्वेतहंसवाहनवाले ब्रह्माजीने अपनाको कृतार्थके समान माना ॥ १७ ॥ कि जिससे काशीकी प्राप्तिमें क्षण क्षण या, पग पग में विघ्न बहुतही कहेगये हैं उससे आज काशी के समागम में मेरे हंसवाहनका फल प्रकटहुआ ॥ १८ ॥ व जिससे यह आनन्दवाटिका (काशी) स्पष्ट दृष्टिमार्गको प्राप्तहुई याने देखपड़ी उससे आज मेरे दृशों (नेत्रों) को प्राप्तहोकर दृशिर्प्रेक्षणे (देखने अर्थमें बर्त्ततीहुई दृशिर्) धातु अर्थसमेतहै ॥ १९ ॥ जिस आनन्दवाटिका को

गंगाजी आपही अपने जलों से सींचरही हैं व जहां आनन्दमय वृक्ष और आनन्दमय जन हैं ॥ २० ॥ व काशी में सदैव आनन्दवालेभी फल प्रवेश करते हैं व काशी सदैव आनन्द भूमिवाली है, और शिवजी सदा आनन्दके दाताहैं ॥ २१ ॥ उससे काशी मेंही सब जन्तु आनन्दरूप उत्पन्न होते हैं व यहा पुण्यात्मा लोगोंके वेही चरण (पावँ) चलने के लिये जानते हैं ॥ २२ ॥ जे कि पद, विश्वनाथपुरी की पृथ्वी में विचरें व बहुत सुननेवाले वेही कान सुनने के लिये भलीभांति से जानते हैं ॥ २३ ॥ कि इस लोकमें श्रवणसंयुत प्राणियोंके जिनकानों से एकवारभी काशी सुनीगईहै व यहां वहही मनस्वियोंका मन ध्यान करताहै॥ २४॥ कि जिसकरके सब

वृक्षा यत्रानन्दमयाजनाः ॥ २० ॥ निर्विशन्तिसदाकाश्यां फलान्यानन्दवन्त्यपि ॥ सदैवानन्दभूःकाशी सदैवानन्द दःशिवः ॥ २१ ॥ आनन्दरूपाजायन्ते तेनकाश्यांहिजन्तवः ॥ चरणौचरितुंवित्तस्तावेवकृतिनामिह ॥ २२ ॥ चरणौ विचरेतांयौ विश्वभर्तृपुरीभुवि ॥ तावेवश्रवणौश्रोतुं संविदातेबहुश्रुतौ ॥ २३ ॥ इहश्रुतिमतांपुंसां याभ्यांकाशीश्रुतास कृत् ॥ तदेवमनुतेसर्वं मनस्विहमनस्विनाम् ॥ २४ ॥ येनानुमन्यतेचैषा काशीसर्वप्रमाणभूः ॥ बुद्धिर्बुध्यतिसासर्व मिहबुद्धिमतांसताम् ॥ ययैतद्धूर्जटेर्धाम ध्रुवंस्वविषयीकृतम् ॥ २५ ॥ वरन्तृणानिधान्यानि तानिवात्याहतान्यपि ॥ काश्यांयान्यापतन्तीह नजनाःकाश्यदर्शनाः ॥ २६ ॥ अद्यमेसफलञ्चायुः परार्धद्वयसम्मितम् ॥ यस्मिन्सतिमया प्रापि दुष्प्रापाकाशिकापुरी ॥ २७ ॥ अहोमेधर्मसम्पत्ति रहोमेभाग्यगौरवम् ॥ यदद्राक्षिषमद्याहं काशींसुचिरचिन्ति ताम् ॥ २८ ॥ अद्यमेस्वतपोवृक्षो मनोरथफलैरलम् ॥ शिवभक्त्यंबुनासिक्तः फलितोतिबृहत्तरैः ॥ २९ ॥ मयाऽद्यधा

प्रमाणोंकी भूमि यह काशीपुरी अनुमान कीजाती है व यहां बुद्धिमान् सज्जनोंकी वह बुद्धि सबको निश्चय करती है जिसने निश्चय से महादेवजीके से इस स्थानको अपने विषय कियाहै ॥ २५ ॥बौंडरसे ताड़ितहुयेभी जे तृण व धान्यआदि इस काशीमें सबओरसे गिरतेहैं वे श्रेष्ठ हैं परन्तु काशीको न देखनेवाले जन श्रेष्ठ नहीं हैं॥२६॥ व दोपरार्ध परिमित मेरी आयु आज सफलहुई जिसके होतेही मैंने दुर्लभ काशीपुरी को प्राप्तकिया है ॥ २७ ॥ इससे मेरे धर्मकी सम्पत्ति आश्चर्य्यरूपहै व भाग्यकी गुरुता भी आश्चर्य्य है जिससे मैं बहुतकालसे चिन्तनाकीगई हुई काशीपुरीको आज देखताहूं ॥ २८ ॥ व श्रीशिवजीकी भक्तिरूप पानी से सींचाहुआ मेरा अच्छा तपो-

वृक्ष आज बड़ेभारी फलोंसे बहुतही फलित है ॥ २९ ॥ और सृष्टिको विस्तार करतेहुये मैंने बहुत भांतिकी सृष्टि बनाया परन्तु स्वयं विश्वनाथकी बनाई हुई काशी औरही प्रकारकीहै ॥ ३० ॥ और ऐसे आनन्दसे काशीपुरीको देखकर प्रसन्न मनवाले ब्रह्माजी ने बूढ़े ब्राह्मणके रूपसे दिवोदासराजाको देखा ॥ ३१ ॥ उसके बाद राजासे कियेगये प्रणामवाले व पानीसे भीगे अक्षतोंको हाथमें लियेहुये ब्रह्माजी ने पृथिवीपतिके लिये स्वस्ति शब्दको कहकर उसके दियेहुये आसनको सेवनकिया ॥ ३२ ॥ व सामने उठकर खड़ाहोना और आसनादिको के द्वारा राजासे आदरितहुये उन ब्राह्मणदेवने आनेका कारण पूंछतेहुये भूपतिको विशेषसे जनाया ॥ ३३ ॥

यिबहुधा सृष्टिःसृष्टिंवितन्वता ॥ परमन्यादृशीकाशीस्वयंविश्वेशनिर्मितिः ॥ ३० ॥ इतिहृष्टमनावेधा दृष्ट्वावाराणसीं पुरीम् ॥ वृद्धब्राह्मणरूपेण राजानञ्चददर्शह ॥ ३१ ॥ जलार्द्राक्षतपाणिश्च स्वस्त्युक्त्वापृथिवीभुजे ॥ कृतप्रणामोराज्ञाथ भेजेतद्दत्तमासनम् ॥ ३२ ॥ कृतमानोनृपतिना सोभ्युत्थानासनादिभिः ॥ विप्रोऽथजिज्ञपद्भूपं पृष्टागमनकारणम् ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ भूपालबहुकालीनो स्म्यहमत्रचिरन्तनः ॥ त्वन्तुमांनैवजानासि जानेत्वांहिरिपुञ्जयम् ॥ ३४ ॥ परःशतामयादृष्टा राजानोभूरिदक्षिणाः ॥ विजितानेकसंग्रामा यायजूकाजितेन्द्रियाः ॥ ३५ ॥ विनिष्कृतारिषड्वर्गाः सुशीलाःसत्त्वसालिनः ॥ श्रुतस्यपारदृश्वानो राजनीतिविचक्षणाः ॥ ३६ ॥ दयादाक्षिण्यनिपुणाः सत्यव्रतपरायणाः ॥ क्षमयाक्षमयातुल्या गाम्भीर्यजितसागराः ॥ ३७ ॥ जितरोषरयाःशूराः सौम्यसौन्दर्यभूमयः ॥ इत्यादि

ब्राह्मण बोले कि, हेभूपाल ! इसलोकमें मैं बहुत कालकाहुआ व बड़ा पुरानाहूं और तुम मुझको नहीं जानतेहो व शत्रुवोंके जीतनेवाले तुमको भी मैं जानताहूं॥ ३४ ॥ व मैंने सैकड़ोंसे परे याने असंख्य राजाओंको देखा है जे कि बहुत दक्षिणा देनेवाले, अनेक संग्रामजीतेहुये यज्ञकर्त्ता व जितेन्द्रिय थे ॥ ३५ ॥ व शत्रुभूत मन समेत ज्ञानेन्द्रियोंके विजयी, सुशील, सत्त्वसम्पन्न, शास्त्रों के पारदेखनेहारे, व राजनीतिके पण्डितथे ॥ ३६ ॥ व दयासमेत दाक्षिण्यमें निपुण, सत्यव्रत में परायण, क्षमा से पृथिवी के समान व गम्भीरतासे समुद्रोंको जीतेहुये थे ॥ ३७ ॥ व क्रोधके वेग के विजेता, शूर, शुभसुन्दरताके स्थान, और सुयशरूपधनको सुसंचित कियेहुये

इत्यादि गुणोसे सम्पन्नथे ॥ ३८ ॥ परन्तु हे राजर्षे ! जो तुम्हारे दो तीन,पवित्र,अच्छे गुणहैं वे बहुधा उन्ही इन राजाओंमें मेरे नेत्र या ज्ञानको नहीं प्राप्तहुये ॥३९॥ जैसे तुम प्रजाओंसे अपने कुटुम्बवालेहो याने उनको पुत्रादिकोंके समानपोषण करतेहो व तुम ब्राह्मण देवतावालेहो और तुम महातपस्वियोंके सहायकहो वैसे अन्य नरेश नही हैं ॥ ४० ॥ हे दिवोदास ! तुम धन्य व माननीयहो और अच्छे गुणोंसे सज्जनोंके पूजनीयहो व तुम्होरडरसे देवलोगभी कुमार्गगामी नहीं हैं ॥ ४१ ॥ हेनृप! धनादि की चाहसे हीन हम ब्राह्मणलोगों को तुम्हारी स्तुति से क्या है तो भी हम क्याकरें तुम्हारे गुणसमूह हमलोगों को स्तुति कर्ता बनाते हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! यह

गुणसम्पन्नाःसुसञ्चितयशोधनाः ॥ ३८ ॥ परंद्वित्राःपवित्राये राजर्षेतवसद्गुणाः ॥ तेष्वेषुराजसुमम प्रायशोनदृश ङ्गताः ॥ ३९ ॥ प्रजानिजकुटुम्बस्त्वं त्वन्तुभूदेवदैवतः ॥ महातपःसहायस्त्वं यथानान्येतथान्नृपाः ॥ ४० ॥ धन्यो मान्योसिचसतां पूजनीयोसिसद्गुणैः ॥ देवाअपिदिवोदास त्वत्त्रासान्नविमार्गगाः ॥ ४१ ॥ किंनःस्तुत्यातव नृप द्विजानामस्पृहावताम् ॥ किंकुर्मस्त्वद्गुणग्रामाः स्तावकान्नःप्रकुर्वते ॥ ४२ ॥ गोष्ठीतिष्ठत्वियंतावत्प्रस्तुतंस्तौमि सांप्रतम् ॥ यष्टुकामोस्म्यहंराजंस्त्वांसहायमतोवृणे ॥ ४३ ॥ त्वयाराजन्वतीचैषाऽवनिःसर्वर्धिभाजनम् ॥ अहंचास्ति धनोराजन् न्यायोपात्तमहाधनः ॥ ४४ ॥ इयञ्चराजधानीते कर्मभूमावनुत्तमा ॥ यस्यांकृतानांकार्याणां संवर्तेपिन संक्षयः ॥ ४५ ॥ सञ्चितंयद्धनंपुम्भिर्नयसन्मार्गगामिभिः ॥ तत्काश्यांविनियुज्येत क्लेशायेतरथाभवेत् ॥ ४६ ॥ महिमा नंपरंकाश्याः कोपिवेदनभूपते ॥ ऋतेत्रिनयनाच्छम्भोः सर्वज्ञानप्रदायिनः ॥ ४७ ॥ मन्येधन्यतरोसित्वं बहुजन्मश

वार्ता तबतक रहे किन्तु अब प्रकरण के अनुसार वचन को कहता हूं कि, इस समय मैं यज्ञ करने की इच्छावाला हूं इससे तुमको सहायक स्वीकार करता हूं ॥ ४३ ॥ व हे राजन् ! सब ऋद्धियोंकी पात्र यह पृथ्वी तुमसे राजावाली है और मैं न्याय से महाधन संग्रह करनेवाला व धनवान् हूं ॥ ४४ ॥ और यह तुम्हारी राज- धानी कर्मभूमि में अधिक उत्तम है जिसमें कियेहुये कर्म्मों का विनाश कल्पान्तमें भी नहीं होता है ॥ ४५ ॥ व नीति समेत सुमार्गगामी पुरुषों ने जो धन बटोरा वह काशी मे विशेषता से कर्मों में जोडाजावे अन्यथा क्लेश के लिये होवे है ॥ ४६ ॥ हे भूपते ! सब ज्ञान के प्रदायक,त्रिनेत्र, पार्वतीनायक बिना कोई भी काशी की उ-

त्तम महिमा को नहीं जानता है ॥ ४७ ॥ इस से मैं मानता हूं कि तुम बड़े धन्यहो जिससे बहुत शत जन्मों में बटोरे सुकर्म्मों से या उनकी पुण्यों से विश्वनाथ की अन्यमूर्तिहुई काशीको पालते हो ॥ ४८ ॥ महर्षियो ने ऐसा निर्णय कियाहै कि श्रीकाशीपुरीही तीनों लोकों का सार व तीनों वेदों का सार और अर्थादि त्रिवर्ग के उपरान्त का सारभी है ॥ ४९ ॥ इससे विश्वनाथ के अनुग्रहसेही तुम करके यह पुरी पालीजाती है क्योंकि काशी में एक जन की रक्षा करने से त्रिलोकरक्षित होवे है ॥ ५० ॥ हे अपाप ! मैं तुम्हारे अन्यभी हितको कहताहूं कि जो तुमको रुचे तो सदैव सब कर्मों से एक (मुख्य या केवल) विश्वनाथजी प्रसन्न करने योग्य

तार्जितैः ॥ सुकृतैःपासियत्काशीं विश्वभर्तुःपरान्तनुम् ॥ ४८ ॥ काशीत्रिजगतीसारस्त्रिवेदीसारएववै ॥ त्रिवर्गोत्तरसारश्च निर्णीतेतिमहर्षिभिः ॥ ४९ ॥ विश्वेशानुग्रहेणैव त्वयैषापाल्यतेपुरी ॥ एकस्याप्यवनात्काश्यां त्रैलोक्यमवितम्भवेत् ॥ ५० ॥ अन्यच्चतेहितंवच्मि यदितेरोचतेऽनघ ॥ प्रीणनीयःसदैवैको विश्वेशःसर्वकर्मभिः ॥ ५१ ॥ अन्यदेवधियाराजन् विश्वेशंपश्यमाकचित् ॥ ब्रह्मविष्णिवन्द्रचन्द्रार्काः क्रीडयन्तस्यधूर्जटेः ॥ ५२ ॥ विप्रैरुदर्कमिच्छद्भिः शिक्षणीयायतोनृपाः ॥ अतस्तवहितंख्यातं किंवामेचिन्तयानया ॥ ५३ ॥ इतिजोषंस्थितंविप्रं प्रत्युवाचनृपोत्तमः ॥ सर्वंमयाहृदिधृतंयत्त्वयोक्तंद्विजोत्तम ॥ ५४ ॥ राजोवाच ॥ अहंयियक्षमाणस्य तवसाहाय्यकर्मणि ॥ दासोऽस्मियज्ञसम्भारान्नयमेकोशतोऽखिलान् ॥ ५५ ॥ यदस्तिमेखिलन्तत्र सप्ताङ्गेपिभवान्प्रभुः ॥ यजस्वैकमनाब्रह्मन् सिद्धंमन्य

हैं ॥ ५१ ॥ हे राजन् ! अन्य देवों की समान बुद्धि से विश्वनाथ जी को कभी, या कहीं मत देखो क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य्य यह सब उन शङ्करजी का खेल है ॥ ५२ ॥ जिससे उत्तर फलको चाहते हुये ब्राह्मणों करके राजालोग सिखाने योग्य हैं इससे तुम्हारा हित कहागया अथवा इस चिन्तना से मुझको क्या है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार चुपचाप टिकेहुये ब्राह्मण के प्रति नृपोत्तम बोला कि हे द्विजोत्तम ! तुमने जो कहा उस सबको मैंने हृदय में धरलिया ॥ ५४ ॥ दिवोदास राजा बोला कि, यज्ञ करने को चाहतेहुये तुम्हारी सहायता के योग्य कर्म्म में मैं दास हूं और तुम मेरे कोश (खजाना) से सम्पूर्ण, यज्ञसामग्रियों को लेजावो ॥ ५५ ॥

हे ब्रह्मन् ! जो सब कुछ मेरे "स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सैन्य" इस सप्ताङ्ग में भी है उसको भी लो और समर्थ आप, सावधान होकर यज्ञकरो व अपने वाञ्छित को सिद्धमानो ॥ ५६ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो मैं राज्य करताहूं वह अपने अर्थ कुछ भी नहीं है क्योंकि पुत्रों स्त्रियों और देहसे भी परोपकार के लिये यत्न करता हूं ॥ ५७ ॥ और यज्ञक्रियाओं से भी वसबओर के तीर्थों से भी अधिक राजाओंका मुख्य धर्म प्रजाओं का पालनाही बुद्धिमानों ने कहाहै ॥५८॥ व प्रजाओं के सन्तापसे उपजीहुई अग्नि वज्राग्नि से भी अधिक दारुणहै क्योंकि वज्रपातकी अग्नि दो तीन जनों को जलाती है और पहली याने प्रजासन्तापजा-

स्ववाञ्छितम् ॥ ५६ ॥ राज्यंकरोमियद्ब्रह्मन् स्वार्थंतन्नमनागपि ॥ पुत्रैःकलत्रैर्देहेन परोपकृतयेयते ॥ ५७ ॥ राज्ञां क्रतुक्रियाभ्योपि तीर्थेभ्योपिसमन्ततः ॥ प्रजापालनमेवैको धर्मःप्रोक्तोमनीषिभिः ॥ ५८ ॥ प्रजासन्तापजोवह्निर्वज्राग्नेरपिदारुणः ॥ द्वित्रान्दहतिवज्राग्निः पूर्वोराज्यंकुलंतनुम् ॥ ५९ ॥ यदावभृथसिस्नासुर्भवेयंद्विजसत्तम ॥ तदाविप्रपदाम्भोभिरभिषेकङ्करोम्यहम् ॥ ६० ॥ हवनंब्राह्मणमुखेयत् करोमिद्विजोत्तम ॥ मन्येक्रतुक्रियाभ्योपि तद्विशिष्टंमहामते ॥ ६१ ॥ अभिलाषेषुसर्वेषु जागर्त्येकोहृदीहमे ॥ अद्यापिमार्गणःकोपिद्रष्टव्यःस्वतनोरपि ॥ ६२ ॥ अहोअहोभिर्बहुभिःफलितोमेमनोरथः ॥ यत्त्वंमेद्यगृहेप्राप्तः किञ्चित्प्रार्थयितुंद्विज ॥ ६३ ॥ एकाग्रमानसोविप्रयज्ञान्विपुलदक्षिणान् ॥ बह्वन्यजकृतंविद्धिसाहाय्यंसर्ववस्तुषु ॥ ६४ ॥ इतिराज्ञोमहाबुद्धेर्धर्मशीलस्यभाषितम् ॥ श्रुत्वातुष्टमनाःस्रष्टा

ग्नि राज्य, कुल, व देह को भी दहदेती है ॥ ५९ ॥ हे द्विजसत्तम ! जब मैं यज्ञान्तस्नानका चाही होताहूं तब ब्राह्मणों के पदप्रक्षालन पानी से अभिषेक करता हूं ॥ ६० ॥ हे महामते,द्विजोत्तम ! मैं ब्राह्मणों के मुख में जो हवन करता हूं उसको यज्ञक्रियाओं से भी अधिक मानताहूं ॥ ६१ ॥ व यहां मेरे हृदय में सब अभिलाषों के बीच में से एक यह मनोरथ अबभी जागता है कि अपनी देह का भी याचक कोई भी देखने योग्य है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! आश्चर्य्य है कि जिससे तुम कुछ मांगने को मेरे घरमें प्राप्तहुये हो इससे मेरा मनोरथ बहुत दिनों से आज सफल हुआ है ॥ ६३ ॥ हे विप्र ! तुम एकाग्रचित्त होकर बहुत दक्षिणायुक्त अनेक यज्ञों

को पूजनकरो व सब वस्तुओं में सहायता को की हुई जानो ॥ ६४ ॥ ऐसे महाबुद्धिमान्, धर्मशील, दिवोदास राजाका वचन सुनकर संतुष्टमन, ब्रह्माजी ने यज्ञ संभार को सब ओर से बटोर लिया ॥ ६५ ॥ व दिवोदास राजर्षिकी सहायता को प्राप्तहोकर कमलजन्मजीने दश अश्वमेध नामक महायज्ञों से काशीमें पूजनकिया ॥ ६६ ॥ उससे जब से लगाकर आकाश का अंतर होमके धूमसमूहों से भरगया तबसे लगाकर यह आकाश अबभी श्यामताको नहीं छोड़ताहै ॥ ६७ ॥ व तबसे लगा कर पृथिवीतल में प्रसिद्ध, महामङ्गलदायक, दशाश्वमेधनामक तीर्थ काशी के बीच उस यज्ञवाट में होगया ॥ ६८ ॥ हे कुम्भसम्भव ! जो कि पहले रुद्रसरनामक

क्रतुसम्भारमाहरत् ॥ ६५ ॥ साहाय्यंप्राप्यराजर्षेर्दिवोदासस्यपद्मभूः ॥ इयाजदशभिःकाश्यामश्वमेधैर्महामखैः ॥ ६६ ॥ अद्यापिहोमधूमौघैर्यद्व्याप्तङ्गगनान्तरम् ॥ तदाप्रभृतिनव्योमनीलिमानञ्जहात्यदः ॥ ६७ ॥ तीर्थंदशाश्वमेधाख्यं प्रथितञ्जगतीतले ॥ तदाप्रभृतितत्रासीद्वाराणस्यांशुभप्रदम् ॥ ६८ ॥ पुरारुद्रसरोनाम तत्तीर्थंकलशोद्भव ॥ दशाश्वमेधिकंपश्चाज्जातंविधिपरिग्रहात् ॥ ६९ ॥ स्वर्धुन्यथततःप्राप्ताभगीरथसमागमात् ॥ अतीवपुण्यवज्जात मतस्तत्तीर्थमुत्तमम् ॥ ७० ॥ विधिर्दशाश्वमेधेशं लिङ्गंसंस्थाप्यतत्रवै ॥ स्थितवान्नगतोद्यापि क्वापिकाशींविहायतु ॥ ७१ ॥ राज्ञोधर्मरतेस्तस्यच्छिद्रंनावापकिञ्चन ॥ अतःपुरारेःपुरतो व्रजित्वाकिंवदेद्विधिः ॥ ७२ ॥ क्षेत्रप्रभावंविज्ञाय ध्यायन्विश्वेश्वरंशिवम् ॥ ब्रह्मेश्वरंचसंस्थाप्य विधिस्तत्रैवसंस्थितः ॥ ७३ ॥ परातनुरियंकाशी विश्वेशस्येतिनिश्चि

तीर्थ था वह पीछे से ब्रह्माका सम्बन्ध लेने से दशाश्वमेधिक प्रकटहुआ ॥ ६९ ॥ उसके बाद भगीरथराजाके समागमसे स्वर्ग नदी (गङ्गा) तहां प्राप्तहुई इससे वह उत्तम तीर्थ अत्यन्त पुण्यवान् प्रसिद्ध होताभया ॥ ७० ॥ वहांही दशाश्वमेधेश्वर लिंग को संस्थापनकर ब्रह्माजी टिकेहैं और अबभी काशी को छोड़कर कहीं नहीं गये हैं ॥ ७१ ॥ क्योंकि ब्रह्माजी ने उस धर्मस्नेही राजा के किसी छिद्रको न पाया इस से वह शिवजी के आगे जाकर क्या कहें ॥ ७२ ॥ व क्षेत्रका प्रभाव जानकर और ब्रह्मेश्वर का संस्थापनकर श्रीविश्वनाथ शिवजी को ध्यावते हुये ब्रह्माजी वहांही भलीभांति से टिकगये ॥ ७३ ॥ यह निश्चित है कि, यह काशीपुरी विश्वनाथ

की उत्तम मूर्ति है व इस पुरी की भली भांति सेवा करने से शंकर जी मुझपर न कोप करेंगे ॥ ७४ ॥ इस लोक मे अनेक जन्मजनित कर्मों के निर्मूल करने को समर्थ काशीपुरी को पहुँचकर कौन दुर्बुद्धिजन फिर त्यागने के लिये व्यापार करताहै ॥ ७५ ॥ युक्त है कि समस्तसंतापविनाशी, अविनाशी, विश्वनाथकी देह काशीके वियोग से उपजी हुई बड़ी अग्नि से भलीभांति बहुतही तपाई जाती है ॥ ७६ ॥ और जोकि सकलपापसमूहनाशिका, काशिकापुरी को प्राप्त होकर त्यागदेवे वह महासौख्यसे विमुख हुवा मनुष्यो मे पशु के समान सब ओरसे जानने योग्य है ॥ ७७ ॥ व जो शिवके अनुग्रह से काशी मिलीहो तो जो जन संसारकी दुर्गतिको

तम् ॥ अस्याःसंसेवनाच्छम्भुर्नकुप्यतिएरोमयि ॥ ७४ ॥ कःप्राप्यकाशींदुर्मेधाःपुनस्त्यक्तुमिहेहते ॥ अनेकजन्मजनितकर्मनिर्मूलनक्षमाम् ॥ ७५ ॥ विश्वसन्तापसंहर्तुः स्थानेविश्वपतेस्तनुः ॥ सन्ताप्यतेतरांकाश्या विश्लेषजमहाग्निना ॥ ७६ ॥ प्राप्यकाशीन्त्यजेद्यस्तु समस्ताघौघनाशिनीम् ॥ नृपशुःसपरिज्ञेयो महासौख्यपराङ्मुखः ॥ ७७ ॥ निर्वाणलक्ष्मींयःकाङ्क्षेत्त्यक्त्वासंसारदुर्गतिम् ॥ तेनकाशीनसन्त्याज्या यद्यासैशादनुग्रहात् ॥ ७८ ॥ यःकाशींसम्परित्यज्य गच्छेदन्यत्रदुर्मतिः ॥ तस्यहस्ततलाद्गच्छेच्चतुर्वर्गफलोदयः ॥ ७९ ॥ निवर्हणीमघौघस्यसुपुण्यपरिबृंहिणीम् ॥ कःप्राप्यकाशींदुर्मेधास्त्यजेन्मोक्षसुखप्रदाम् ॥ ८० ॥ सत्यलोकेक्वतत्सौख्यं क्वसौख्यंवैष्णवेपदे ॥ यत्सौख्यंलभ्यतेकाश्यां निमेषार्धनिषेवणात् ॥ ८१ ॥ वाराणसीगुणगणान्निर्णीयद्रुहिणस्त्विति ॥ व्यावृत्यमन्दरगिरिंनिपुनः

त्यागकर मोक्षकी संपत्ति को चहे उस को काशी न छोंडना चाहिये ॥ ७८ ॥ और जो दुर्बुद्धि मनुष्य काशी को भलीभांति से परित्याग करके अन्यत्र जावे उस के हस्ततल से अर्थ,धर्म,काम, मोक्ष नामक चतुर्वर्ग फलका उदय चलाजावे ॥ ७९ ॥ इस से कौन कुबुद्धि मनुष्य मोक्ष सुखदात्री, सुपुण्यो की धात्री (सब ओर से बढ़ानेवाली) पापसमूहनाशिका काशिका को प्राप्तहोकर त्यागदेवे ॥ ८० ॥ किन्तु आधे निमेष कालतक भी सेवा करने से काशी मे जो सौख्य मिलता है वह सौख्य सत्यलोक मे कहा है और वह सौख्य विष्णु के लोक में कहां है ॥ ८१ ॥ हे मुने ! इस भांति काशी के गुण गणों को निश्चयकर ब्रह्माजी मंदराचलको व्यावर्तनकर

यानै लौटजाना बंद करके फिर शिवजी के प्रति नहीं गये हैं ॥ ८२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्यजी ! मैं काशी में सब तीर्थशिरोमणि, दशाश्वमेध की महिमा को कहताहूं ॥ ८३ ॥ कि, सबतीर्थों में उत्तमोत्तम, दशाश्वमेधिक तीर्थ को प्राप्तहोकर जो कुछ कर्म्म कियाजाता है वह यहां अक्षय (नाशरहित) कहा गया है ॥ ८४ ॥ स्नान, दान, जप, होम, वेदादिपाठ, देवपूजा, संध्योपासन, तर्प्पण, श्राद्ध, और पितरोंकी पूजा इत्यादि सबकर्म सफल होता है ॥ ८५ ॥ व एक बारभी दशाश्वमेधिक तीर्थमें स्नान करके दशाश्वमेधेश्वर को देखकर मनुष्योत्तम सब पापों से विमुक्तहोजाता है ॥ ८६ ॥ व ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष

प्रत्यगान्मुने ॥ ८२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मित्रावरुणयोःपुत्र महिमानंब्रवीमिते ॥ काश्यान्दशाश्वमेधस्य सर्वतीर्थशिरोमणेः ॥ ८३ ॥ दशाश्वमेधिकंप्राप्य सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तदक्षयमिहेरितम् ॥ ८४ ॥ स्नानंदानंजपोहोमःस्वाध्यायोदेवतार्चनम् ॥ सन्ध्योपास्तिस्तर्पणंचश्राद्धंपितृसमर्चनम् ॥ ८५ ॥ दशाश्वमेधिकेतीर्थे सकृत्स्नात्वानरोत्तमः ॥ दृष्ट्वादशाश्वमेधेशं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ८६ ॥ ज्येष्ठेमासिसितपक्षे प्राप्यप्रतिपदन्तिथिम् ॥ दशाश्वमेधिकेस्नात्वा मुच्यतेजन्मपातकैः ॥ ८७ ॥ ज्येष्ठेशुक्लद्वितीयायां स्नात्वारुद्रसरोवरे ॥ जन्मद्वयकृतंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ ८८ ॥ एवंसर्वासुतिथिषु क्रमस्नायीनरोत्तमः ॥ आशुक्लपक्षदशमिप्रतिजन्माघमुत्सृजेत् ॥ ८९ ॥ तिथिंदशहरांप्राप्य दशजन्माघहारिणीम् ॥ दशाश्वमेधिकेस्नातो यामींपश्येन्नयातनाम् ॥ ९० ॥ लिङ्गन्दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वादशहरातिथौ ॥ दशजन्मार्जितैःपापैस्त्यज्यतेनात्रसंशयः ॥ ९१ ॥ स्नातोदशहरायांयः पूजयेल्लिङ्गमुत्त

में प्रतिपदा तिथिको प्राप्तहो दशाश्वमेधिक तीर्थ में स्नानकर जन्मभरे के पापों से छूटजाताहै ॥ ८७ ॥ व ज्येष्ठसुदी द्वितीयाके होतेही रुद्र सरोवरमें स्नानकर दोजन्मों का किया हुवा पाप उसी क्षण में नष्टहोता है ॥ ८८ ॥ ऐसे उजेले पाखकी दशमी तक सब तिथियों में क्रमसे नहानेवाला नरोत्तम प्रति जन्मों के पापों को त्यागदेवे ॥ ८९ ॥ व दशजन्मों के पापों की हरनेहारी दशहरा तिथिको प्राप्तहोकर दशाश्वमेधिक तीर्थमें नहाया हुवा मनुष्य यमकी यातना को न देखे ॥ ९० ॥ व दशहरा तिथिमें दशाश्वमेधेश्वर लिंग के दर्शनकर दशजन्मों के बटोरेहुये पापों से त्यागा जाता है इस में संशय नहीं है ॥ ९१ ॥ जोकि दशहरा में नहायाहुवा नर भक्ति से

दशाश्वमेधेश्वर उत्तम लिंगको पूजै उसको गर्भकी दशा न स्पर्शकरे ॥ ९२ ॥ व ज्येष्ठ मास के उजेले पाख में पंद्रह दिनतक रुद्रसरोवर में स्नानकर वार्षिकी यात्रा को करता हुवाभी मनुष्य विघ्नोंसे नहीं अनाहत होता है ॥ ९३ ॥ व दशाश्वमेध यज्ञोंके अंतमें स्नानोंसे भलीभांति जो फलहै वह दशहरा तिथिमें निश्चयसे दशाश्वमेध तीर्थमें स्नान करके प्राप्त किया जाताहै ॥ ९४ ॥ व गंगा के पश्चिम तीर में दशहरेश्वर के नमस्कारकर परमपुण्यात्मा पुरुष दुर्दशाको कहीं नहीं प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ और काशी में जो अंतरगेह का दक्षिण द्वार कहाता है वहां ब्रह्मेश्वरको देखकर ब्रह्मलोक में पूजाजाताहै ॥ ९६ ॥ इस भांति जबतक विश्वनाथ का आना हुवा तबतक

मम्॥भक्त्यादशाश्वमेधेशं नतद्गर्भदशास्पृशेत्॥९२॥ज्येष्ठमासिसितेपक्षे पक्षंरुद्रसरेनरः॥ कुर्वन्वैवार्षिकींयात्रांनवि घ्नैरभिभूयते॥९३॥ दशाश्वमेधावभृथैर्यत्फलंसम्यगाप्यते॥ दशाश्वमेधेतन्नूनंस्नात्वादशहरातिथौ॥९४॥ स्वर्धुन्याः पश्चिमेतीरे नत्वादशहरेश्वरम्॥ नदुर्दशामवाप्नोति पुमान्पुण्यतमःक्वचित्॥ ९५ ॥ यत्काश्यांदक्षिणद्वारमन्तर्गेहस्य कीर्त्यते॥ तत्रब्रह्मेश्वरंदृष्ट्वा ब्रह्मलोकेमहीयते॥९६॥ इतिब्राह्मणवेषेण वाराणस्यांमहाधिया॥ द्रुहिणेनस्थितंतावद्याव द्विश्वेश्वरागमः॥९७॥ दिवोदासोपिराजेन्द्रो वृद्धब्राह्मणरूपिणे॥ ब्रह्मणेकृतयज्ञाय ब्रह्मशालामकल्पयत्॥९८॥ ब्रह्मे श्वरसमीपेतु ब्रह्मशालामनोहरा॥ ब्रह्मातत्रावसद्व्योम ब्रह्मघोषैर्निनादयन्॥ ९९ ॥ इतितेकथितोब्रह्मन्माहिमातिमहत्त रः॥ दशाश्वमेधतीर्थस्य सर्वाघौघविनाशनः॥१००॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यं श्रावयित्वातथैवच॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति श्रद्धयामानवोत्तमः॥ १०१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे दशाश्वमेधवर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

बड़े बुद्धिमान्, ब्राह्मणवेष, ब्रह्माजीने काशीमें वास किया ॥ ९७ ॥ व दिवोदास राजेन्द्रनेभी वृद्धब्राह्मणवेषधारी, यज्ञकारी ब्रह्माजीके लिये वेदशाला बनवादिया ॥ ९८ ॥ जोकि ब्रह्मेश्वर के समीप में मनोहर ब्रह्मशालाहै उसमे वेदघोषोंसे आकाश को अधिक शब्दायमान करते हुये ब्रह्माजीने निवास किया ॥ ९९ ॥ हे ब्रह्मन् ! सब पापस-मूहहारी, बड़ाभारी दशाश्वमेध तीर्थका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा और वह समाप्त हुवा ॥ १०० ॥ व श्रद्धासे इस पुण्य रूप अध्यायको सुनकर वैसेही सुनाकर मनुष्यो-त्तम ब्रह्मलोक को प्राप्तहोता है ॥ १०१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते दशाश्वमेधवर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

दोहा ॥ तिरपनके अध्यायमें शंकुकर्ण गण आदि । शिवप्रेरित काशी गये तासु महात्म्य अनादि ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे ब्रह्मवित्तम ! आपने यह अपूर्व, ब्रह्माजीकी कथा कही और जब ब्रह्माजी भी वहां टिकगये तब शङ्करजीने फिर क्या किया ॥१॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाभाग, अगस्त्यजी ! तुम सुनो कि जब काशी में ब्रह्माजी भी टिकगये तब उद्वेग समेत मनवाले महादेवजीने बहुतही चिन्तना किया ॥ २ ॥ कि वशीकरणकी भूमि जैसी वह काशीपुरी है वैसी इस लोक में बहुधा निश्चयसे मेरी दृष्टि में कहीं नहीं हुई है॥ ३ ॥ व जो जो उस पुरीको जाताहै वह वह वहां टिक रहता है यह सन्देह है कि काशी में भलीभांति गई हुई

अगस्तिरुवाच ॥ अपूर्वेयंकथाख्याताब्रह्मणोब्रह्मवित्तम ॥ किंचकारपुनःशम्भुस्तत्रब्रह्मण्यपिस्थिते ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ शृणवगस्त्यमहाभागकाश्यांब्रह्मण्यपिस्थिते ॥ गिरिशश्चिन्तयामासभृशमुद्विग्नमानसः ॥ २ ॥ पुरीसायादृशीकाशी वशीकरणभूमिका ॥ नतादृशीदृशीहासीत्क्वचिन्मेप्रायशोध्रुवम् ॥ ३ ॥ योयोयातिपुरींतान्तु ससतत्रैवतिष्ठति ॥ अभूवन्ननुयोगिन्योऽयोगिन्यःकाशिसङ्गताः ॥ ४ ॥ अकिञ्चित्करतांप्राप्तः ससहस्रकरोप्ययम् ॥ विधिर्विधानदक्षोपि नमेससविधोभवत् ॥ ५ ॥ चिन्तयन्नितिदेवेशोगणानाहूयभूरिशः ॥ प्रेषयामासभोयात क्षिप्रंवाराणसीं पुरीम् ॥ ६ ॥ किंकुर्वन्तितुयोगिन्यःकिङ्करोतिसभानुमान् ॥ गत्वावित्तत्वरायुक्ता विधिश्चविदधातिकिम् ॥ ७ ॥ नामग्राहन्ततोऽप्रैषीद्बहुमानपुरःसरम् ॥ शङ्कुकर्णमहाकाल घण्टाकर्णमहोदर ॥ ८ ॥ सोमनन्दिन्नन्दिषेणकालपिङ्गलकुक्कुट ॥ कुण्डोदरमयूराक्ष बाणगोकर्णतारक ॥ ९ ॥ तिलपर्णस्थूलकर्णद्रुमिचण्डप्रभामय ॥ सुकेशविन्दतेच्छाग

योगिनियां योगसे हीन भोगिनियां होगईं ॥ ४ ॥ व वह सूर्य्यदेवभी कुछ न करसकनेवाले के भावको अत्यन्त प्राप्तहोगये और विधान में दक्षभी वह ब्रह्माजी भी मेरा कार्य्य करने में विधान समेत न हुये ॥ ५ ॥ ऐसे विचारतेहुये महादेवजीने बहुते गणोंको बुलाकर पठाया कि हे गणो ! तुम काशीपुरीको शीघ्रही चलेजावो ॥ ६ ॥ व वेगयुक्त होकर जाकर जानो कि योगिनियां क्या करती हैं व सूर्य्य क्या करता है और ब्रह्माभी क्या करता है ॥ ७ ॥ उसके बाद नामग्रहणकरके अधिक आदरपूर्वक पठाया कि हे शंकुकर्ण ! हे महाकाल ! हे घण्टाकर्ण ! हे महोदर ! ॥ ८ ॥ हे सोमनन्दिन् ! हे नन्दिषेण ! हे काल ! हे पिङ्गल ! हे कुक्कुट ! हे कुण्डोदर ! हे मयू-

राक्ष ! हे बाण ! हे गोकर्ण ! हे तारक ! ॥ ६ ॥ हे तिलपर्ण ! हे स्थूलकर्ण ! हे द्रुमिचण्ड ! हे प्रभामय ! हे सुकेश ! हे विन्दते ! हे छाग ! हे कपर्दिन् ! हे पिङ्गलाक्षक ! ॥ १० ॥ हे वीरभद्र ! हे किराताख्य ! हे चतुर्मुख ! हे निकुम्भक ! हे पञ्चाक्ष ! हे भारभूत ! हे त्र्यक्ष ! हे क्षेमक ! हे लाङ्गलिन् ! ॥ ११ ॥ हे विराध ! हे सुमुख ! हे आषाढे ! आपलोग वैसे मेरे पुत्र हैं कि जैसे ये स्कन्द व गणेश और जैसे यह नैगमेय ॥ १२ ॥ जैसे शाख व विशाख और जैसे नन्दी व भृंगी हैं परन्तु बड़े विक्रमशाली आपलोगोंके विद्यमानरहतेही ॥ १३ ॥ मैं काशीपुरी व दिवोदासराजा योगिनी,सूर्य्य और ब्रह्माकी भी प्रवृत्तिको नहीं जानताहूं उससे ये दोनों तुम जावो ॥१४॥

कपर्दिन्पिङ्गलाक्षक ॥ १० ॥ वीरभद्रकिराताख्य चतुर्मुखनिकुम्भक ॥ पञ्चाक्षभारभूताख्यत्र्यक्षक्षेमकलाङ्गलिन् ॥ ११ ॥ विराधसुमुखाषाढे भवन्तोममसूनवः ॥ यथेमौस्कन्दहेरम्बौ नैगमेयोयथात्वयम् ॥ १२ ॥ यथाशाखविशाखौ चयथेमौनन्दिभृङ्गिणौ ॥ भवत्सुविद्यमानेषु महाविक्रमशालिषु ॥ १३ ॥ काशीप्रवृत्तिंनोजाने दिवोदासनृपस्यच ॥ योगिन्यर्कविधीनांच तद्द्वौयातंभवत्स्वमू ॥ १४ ॥ शङ्कुकर्णमहाकालौ कालस्यापिप्रकम्पनौ ॥ ज्ञातुंवाराणसीवार्तामायातंचत्वरान्वितौ ॥ १५ ॥ कृतप्रतिज्ञौतौतूर्णं प्राप्यवाराणसींपुरीम् ॥ शङ्कुकर्णमहाकालौविस्मृत्यशाम्भवींगिरम् ॥१६॥ यथेन्द्रजालिकींदृष्ट्वा मायामिहविचक्षणः ॥ क्षणेनमोहमायाति काशींवीक्ष्यतथैवतौ ॥ १७ ॥ अहो मोहस्यमाहात्म्यमहोभाग्यविपर्ययः ॥ निर्वाणराशिंयत्काशीं प्राप्ययान्त्यन्यतोऽबुधाः ॥ १८ ॥ तत्यजेयैरियंकाशी महाशीर्वादभूमिका ॥ तेषांकरतलान्मुक्तिःप्राप्तापिपरितोगता ॥ १९ ॥ यत्रसर्वावभृथतःस्नानमात्रंविशिष्यते ॥

काशीकी वार्ता जानने के लिये और हे शंकुकर्ण व महाकाल ! कालके भी बहुत कंपानेवाले तुम दोनों जने शीघ्रता समेत होकर लौट आवो ॥१५॥ और जे कि शंकुकर्ण व महाकाल ये दोनों थे वे प्रतिज्ञा कियेहुये थे व शीघ्रही काशीपुरी में पहुँचकर शङ्करका वचन बिसरकर ॥ १६ ॥ व काशीको देखकर वे दोनों वैसेही होगये कि जैसे यहां इन्द्रजालिकी मायाको देखकर पण्डितजन भी क्षणमें मोहको सब ओरसे प्राप्तहोता है ॥ १७ ॥ इससे मोहका माहात्म्य आश्चर्य्यरूपहै और भाग्यका उलटा होना आश्चर्य्यरूप है जिससे काशीको प्राप्तहोकर मूर्ख मनुष्य अन्यत्र चलेजाते हैं ॥ १८ ॥ व जिन्होंने बड़े आशीर्वादोंकी भूमिका, काशिका पुरी को त्यागदिया

उनके हाथसे प्राप्तभी मुक्ति सब ओरको चलीगई ॥१९॥ जहां तप्तकिये पानी से भी स्नानमात्र सब यज्ञान्तस्नानोंसे अधिक होताहै उस काशीको कौन प्राणी परित्याग करे ॥ २० ॥ जहां शिवलिंगके शिरमें एक फूल देनेसे दशतोले सोना दानकी पुण्य है उस काशीको कौन परित्याग करे ॥ २१ ॥ जहां शिवजीके आगे एकही दण्डप्रणाम से इन्द्रके पदको तुच्छ कहते हैं उस काशीको कौन परित्याग करे ॥ २२ ॥ जहां एक द्विजमात्रको और अन्यजनको भी यथेच्छा से याने उसकी इच्छानुसार खिला पिलाकर वाजपेय यज्ञसे अधिक पुण्य है उस काशी को कौन परित्यागकरे ॥ २३ ॥ जहां ब्राह्मण को विधिपूर्वक एक भी गऊ देकर निश्चयसे दशहजार गौओं

अप्यूष्णीकृतपानीयैस्तांकाशींकःपरित्यजेत् ॥ २० ॥ यत्रैकपुष्पदानेन शिवलिङ्गस्यमूर्धनि ॥ दशसौवर्णिकंपुण्यं कस्तांकाशींपरित्यजेत् ॥ २१ ॥ यत्रदण्डप्रणामेन अप्येकेनाशिवाग्रतः ॥ तुच्छमैन्द्रपदंप्राहुस्तांकाशींकोविमुञ्चति॥ २२ ॥ यत्रैकद्विजमात्रन्तु भोजयित्वायथेच्छया ॥ वाजपेयाधिकंपुण्यं तांकाशींकोविमुञ्चति ॥२३॥ एकांगांयत्रदत्त्वा वै विधिवद्ब्राह्मणायवै ॥ लभेदयुतगोपुण्यं कस्तांकाशींत्यजेत्सुधीः ॥ २४ ॥ एकंलिङ्गंप्रतिष्ठाप्ययत्रसंस्थापितम्भवेत्॥ अपित्रैलोक्यमखिलं तांकाशींकःसमुज्झति ॥ २५ ॥ परिनिश्चित्यतावित्थंलिङ्गेसंस्थाप्यपुण्यदे॥ तत्रैवसंस्थितिंप्राप्तौ काशींनाद्यापिमुञ्चतः ॥ २६ ॥ शङ्कुकर्णेश्वरंलिङ्गंशङ्कुकर्णगणार्चितम् ॥ दृष्ट्वानजायतेजन्तुर्जातुमातुर्महोदरे ॥ २७॥ विश्वेशाद्वायुदिग्भागे शङ्कुकर्णेश्वरंनरः ॥ संपूज्यनविशेदत्रघोरेसंसारसागरे ॥ २८॥ महाकालेश्वरंलिङ्गम्महाकाल

की पुण्य पावे उस काशीको कौन सुबुद्धिमान् परित्यागकरे ॥ २४ ॥ और जहां एकलिंगकी प्रतिष्ठा कर सब त्रैलोक्य भलीभांति थापाहुआ होवे उस काशीको कौन परित्यागकरे ॥ २५ ॥ इसप्रकार सब ओरसे निश्चयकर व पुण्यदायक, लिंगों को संस्थापनकर उसमें ही निवासको प्राप्तहुये वे दोनों आजभी काशी को नहीं छोड़ते हैं ॥ २६ ॥ व शंकुकर्ण नामक गणसे पूजित शंकुकर्णेश्वरलिंगको देखकर प्राणी फिर माताके महोदरमें कभी नहीं जन्मधरता है ॥ २७ ॥ विश्वनाथ से वायव्य दिशाके समान भाग में याने नैर्ऋत्यकोण में शंकुकर्णेश्वरको भलीभांति पूजकर मनुष्य इस घोर संसारसागर में न पैठे ॥ २८ ॥ व महाकालनामक गणसे पूजित

महाकालेश्वरलिंगकी पूजा नमस्कार और स्तुतिकर कालका डर कहां है ॥ २९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि जब शंकुकर्ण व महाकाल बहुतकाल विलंबितहुये तब जानकर उसके बाद सर्वज्ञोंके नाथ, विश्वनाथजीने अन्य दोगणोंको पठाया ॥ ३० ॥ हे घण्टाकर्ण ! हे महामते, महोदर ! तुम आवो और तुम दोनों वहांके निवासी लोगोंका कर्म जाननेके लिये शीघ्रही काशीको जावो ॥ ३१ ॥ हे अगस्ते ! ऐसे पठाये हुये वे गणभी महापुरी काशीको जाकर आजभी लौटकर कही भी नहीगये किन्तु उसमें ही भलीभांति से टिके हैं ॥ ३२ ॥ उनमेंसे घण्टाकर्ण गणोत्तम काशीमें विधानके समान घण्टाकर्णेश्वरलिंगको संस्थापनकर आपभी वहां सुखितहुवा ॥

गणार्चितम् ॥ अर्चयित्वाचनत्वाच स्तुत्वा कालभयंकुतः ॥ २९ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शङ्कुकर्णेमहाकालेचिरन्तनाविलम्बिते ॥ ज्ञात्वासर्वज्ञनाथोथप्राहैषीदपरौगणौ ॥ ३० ॥ घण्टाकर्णत्वमागच्छमहोदरमहामते ॥ काशींयातंयुवान्तूर्णंज्ञातुन्तत्रत्यचेष्टितम् ॥ ३१ ॥ इत्यगस्तेगणौतौतुगत्वाकाशींमहापुरीम् ॥ व्यावृत्त्याद्यापिनोयातौक्वापितत्रैवसंस्थितौ ॥ ३२ ॥ घण्टाकर्णेश्वरंलिङ्गंघण्टाकर्णगणोत्तमः ॥ काश्यांसंस्थाप्यविधिवत्स्वयन्तत्रैवनिर्वृतः ॥ ३३ ॥ कुण्डंतत्रैवसंस्थाप्यलिङ्गस्नपनकर्मणे ॥ नाद्यापिसन्त्यजेत्काशींध्यायँल्लिङ्गन्तथैवहि ॥ ३४ ॥ महोदरोपितत्प्राच्यांशिवध्यानपरायणः ॥ महोदरेश्वरंलिङ्गन्ध्यायेदद्यापिकुम्भज ॥ ३५ ॥ महोदरेश्वरंदृष्ट्वावाराणस्यांद्विजोत्तम ॥ कदाचिदपिवैमातुःप्रविशेन्नोदरींदरीम् ॥ ३६ ॥ घण्टाकर्णह्रदेस्नात्वादृष्ट्वाव्यासेश्वरंविभुम् ॥ यत्रकुत्रविपन्नोपिवाराणस्यांमृतोभवेत् ॥ ३७ ॥ घण्टाकर्णेमहातीर्थेश्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ अपिदुर्गतिमापन्नानुद्धरेत्सप्तपूर्वजान् ॥ ३८ ॥ निमज्ज्या

३३ ॥ व लिंगस्नानकराने कर्म्म के लिये उस स्थान में ही कुण्डको भलीभांति थापकर वैसेही लिंगको ध्यावते हुये अबभी काशी को नहीं त्याग करे है ॥ ३४ ॥ हे अगस्त्यजी ! शिवके ध्यानमें परायण, महोदरभी उसके पश्चिम में महोदरेश्वरलिंगको थापकर अबभी ध्यावे है ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तम ! काशीमें महोदरेश्वरके दर्शनकर माताकी उदरकन्दरामें कभी भी न पैठे ॥ ३६ ॥ व घण्टाकर्ण के कुण्डमें स्नानकर और व्यासेश्वर प्रभुको देखकर जहां कहीं मराभी काशी मे माराहुवा होवे ॥ ३७ ॥ घण्टाकर्णकुण्ड नामक महातीर्थ में विधिसे श्राद्धकर दुर्गति को प्राप्तहुये भी सात पुरितके पितरों का उद्धारकरे ॥ ३८ ॥ जो कि आजभी उस कुण्ड में

स्नानकर क्षणभर सावधान (या ध्यानधारी) होवे वह श्रीविश्वनाथजीकी महापूजाकी घण्टाके शब्दोंको सुने ॥ ३९ ॥ और पितर लोग यह कहते हैं कि, हमारे वंश में कोई भी क्या घण्टाकर्णकुण्डके विमल जल में तिलोदक का भी देनेवाला उत्पन्न होगा ॥ ४० ॥ क्योंकि, हे कुम्भसम्भव ! घण्टाकर्णनामक बड़े कुण्डमें जिस तिलोदकदाताके वंशमें उपजेहुये लोग कि जिनके लिये उस कुण्ड में जलक्रिया (तर्प्पणादि) कीगई है वे मुनिहोकर उत्तम सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्तहुये हैं वैसे ही हमभी होवेंगे यह उन पितरोंका अभिप्रायहै ॥ ४१ ॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि घण्टाकर्ण गणके जाते ही और महोदरके भी प्रयाण करते ही बारबार शिरडुलाते

घापितत्कुण्डेक्षणंयोवहितोभवेत् ॥ विश्वेश्वरमहापूजाघण्टारावाञ्छृणोतिसः ॥ ३९ ॥ वदन्तिपितरःकाश्यांघण्टाकर्णेमलेजले॥दातातिलोदकस्यापिवंशेनःकोपिजायते॥४० ॥यद्वंश्यामुनयःकाश्यांघण्टाकर्णेमहाह्रदे॥ कृतोदकक्रियाःप्राप्ताःपरांसिद्धिंघटोद्भव ॥ ४१ ॥ स्कन्दउवाच॥ घण्टाकर्णेगणेयातेप्रयातेचमहोदरे ॥ विसिस्मायस्मरद्वेष्टामौलिमान्दोलयन्मुहुः ॥ ४२ ॥ उवाचचमनस्येवहरःस्मित्वापुनःपुनः ॥ महामोहनविद्यासिकाशित्वाम्पर्यवैम्यहम्॥४३॥ पुराविदःप्रशंसन्तित्वाम्महामोहहारिणीम् ॥ काशींत्वितिनजानन्तिमहामोहनभूरियम् ॥ ४४॥ प्रेषयिष्याम्यहंसर्वान्भवतीमोहयिष्यति ॥ इतिसम्यग्विजानामिकाशित्वास्मोहनौषधिम् ॥ ४५॥ तथापिप्रेषयिष्यामियावान्मेस्तिपरिच्छदः ॥ नोद्यमाद्विरमन्तीहज्ञानिनःसाध्यकर्मणि ॥ ४६ ॥ नोद्यमाद्विरतिःकार्याक्वापिकार्येविचक्षणैः ॥ प्रतिकूलोपि

हुये कामके शत्रु शिवजी ने विस्मय किया ॥ ४२ ॥ और मनमेंही बारबार विस्मित होकर या मुसकाकर भक्तभयहारी ने कहा कि, हे काशि ! तुम महामोहनकी विद्याहो मैं तुमको सब ओरसे जानताहूँ ॥ ४३ ॥ और पुराने पण्डित तुम काशीको महामोहकीहरनेहारी कहकर प्रशंसाकरते हैं फिर यह नहीं जानते हैं कि यह काशी महामोहनकी भूमि है॥ ४४ ॥हे काशि ! मोहनकी ओषधीरूप तुमको मैं ऐसे भलीभांति विशेषसे जानताहूं कि जिनसबोंको पठाऊंगा उनको आप मोहित करलोगी ॥ ४५ ॥ तोभी मेरा जितना परिकरहै उतनेको पठाऊंगा क्योंकि ज्ञानीलोग साधने योग्य कर्म में उद्यमसे नहीं विश्रामकरतेहैं अर्थात् उद्यमसे नहीं विरक्तहोते हैं ॥४६॥

किसी भी कार्य्य में परिडतों को वैराग्य न करना चाहिये जिससे प्रतिकूल भी दैव (भाग्य) उनके निरन्तर उद्यमसे खिन्नहोवे अर्थात् अनुकूल होजाता है॥४७॥ इसमें दृष्टान्त देखो कि, राहुसे ग्रसे गये भी, चलनेनें उद्यम कियेहुये चन्द्रमा व सूर्य्य आजभी आकाश अंगणमें गमनको नहीं त्यागतेहैं ॥ ४८ ॥ बारबार प्रतिकूल होनेसे दैव एक ओर कार्य्योंका विनाशकरताहै और एक ओर अधिक उद्यमसे कार्य्य सिद्ध होवेंगे ॥ ४९ ॥ व पूर्वजन्ममें कियाहुआ कर्महीं दैव कहाता है फिर वह अन्य नहीं है उसके दूरकरनेमें बुद्धिमानोंको आपही यत्न करना चाहिये ॥ ५० ॥ भाग्यसे भाजन में भराधराहुवा भी भोजन आपही मुखमें नहीं पैठे है और वही हाथ व

खिद्येतविधिस्तत्सततोद्यमात् ॥ ४७ ॥ शीतोष्णभानूस्वर्भानुग्रस्तावपिनभोङ्गणे ॥ गतिंनत्यजतोद्यापिप्रक्रान्तग्य कृतोद्यमौ ॥ ४८ ॥ एकत्रहन्तिकार्याणिप्रातिकूल्याद्विधिर्मुहुः ॥ एकत्रकरणीयानिसेत्स्यन्त्यत्रभृशोद्यमात् ॥ ४९ ॥ दैवंपूर्वकृतंकर्मकथ्यतेनेतरत्पुनः ॥ तन्निराकरणेयत्नःस्वयंकार्योविपश्चिता ॥ ५० ॥ भाजनोपस्थितंदैवाद्भोज्यंनास्यं स्वयंविशेत् ॥ हस्तवक्त्रोद्यमात्तच्चप्रविशेदौदरींदरीम् ॥५१॥इत्युद्यमंसमर्थ्येशोनिश्चितंदैवजित्वरम् ॥ पुनश्चप्रेषयांचक्रे गणान्पञ्चमहारथान् ॥५२॥ सोमनन्दीनन्दिषेणःकालपिङ्गलकुक्कुटाः॥ तेद्यापिनानिवर्तन्तेकाश्यांजीवामृतायथा॥५३॥ तेपिस्वनाम्नालिङ्गानिशम्भुसंतुष्टिकाम्यया ॥ प्रतिष्ठाप्यास्थिताःकाश्यांविश्वनिर्वाणजन्मनि ॥५४॥ सोमनन्दीश्वरंदृष्ट्वालिङ्गंनन्दवनेपरम्॥सोमलोकेपरानन्दंप्राप्नुयाद्भक्तिमान्नरः॥५५॥तदुत्तरेविलोक्याथनन्दिषेणेश्वरंनरः॥आनन्दसेनां

मुखके उद्यमसे उदरकी कन्दरा में प्रवेशकरे है ॥ ५१ ॥ इसभांति युक्तिसे दृढ कियेहुये व दैवके जीतने शीलवाले उद्यमको साधनकर ईश्वर ने फिरभी बड़े वेगवान् पांच गणोंको पठाया ॥ ५२ ॥ वे सोमनन्दी, नन्दिषेण, काल, पिंगल और कुक्कुट काशीमें मरेजीवोंकी नाई अबभी नहीं लौटते हैं ॥ ५३ ॥ व वे भी शंकरको संतुष्ट करनेकी कामनासे समस्त मुक्तिकी उपजाने वाली काशी में अपने नाम से लिंगोंकी प्रतिष्ठाकर टिकगये ॥ ५४ ॥ उनमेंसे नन्दवन में सोमनन्दीश्वर नामक उत्तम लिंगको देखकर भक्तिमान् मनुष्य सोमलोकमें परमानन्दको पावे ॥ ५५ ॥ और उसके उत्तरमें सोमनन्दीश्वर के दर्शनकर नर आनन्दसेना को संप्राप्त होकर

मृत्युको भी क्षणभरमें जीतलेवे ॥ ५६ ॥ व गंगाके वायव्य कोणमें कालेश्वर महालिंगको प्रणामकर कालपाशसे कभी न बँधे ॥ ५७ ॥ व कालेश्वरसे कुछेक उत्तर ओरमें पिंगलेश्वर को भलीभांति पूजकर पिंगलेश्वर के स्वरूपका ज्ञान पाताहै कि जिसके द्वारा तन्मयताको (उनके भावको) प्राप्त होजावे ॥ ५८ ॥ जे कि यहां कुक्कुट (मुर्गा) के अंडके समान आकारवाले उस कुक्कुटेश्वर लिंगकी भक्तिको विस्तार करते हैं वे गर्भवास के पासको न जावें ॥ ५९॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! जब सोमनन्दी आदि पांच गणभी काशी को प्राप्त होकर टिकगये तब शिवजीने मनमें कहा कि, ॥ ६० ॥ जो भली भाँति विचारा जाताहै तो हमारा भी

सम्प्राप्यंजयेन्मृत्युमपिक्षणात् ॥५६॥ कालेश्वरम्महालिङ्गङ्गङ्गायाःपश्चिमोत्तरे॥ प्रणम्यकालपाशेननोबध्येतकदाच न ॥ ५७ ॥ पिङ्गलेश्वरमभ्यर्च्यकालेशात्किञ्चिदुत्तरे ॥ लभतेपिङ्गलज्ञानंयेनतन्मयतांव्रजेत् ॥ ५८ ॥ कुक्कुटेश्वरलिङ्ग स्ययेत्रभक्तिंवितन्वते ॥ कुक्कुटाण्डाकृतेस्तस्यनतेगर्भमवाप्नुयुः ॥५९॥ स्कन्दउवाच ॥ सोमनन्दिप्रभृतिषुमुनेपञ्चग णेष्वपि ॥ आनन्दकाननम्प्राप्यस्थितेषुस्थाणुरब्रवीत् ॥ ६० ॥ कार्यमस्माकमेवैतद्यदिसम्यग्विमृश्यते ॥ अनेनोपा धिनाप्येतेतत्रातिष्ठन्तुमामकाः ॥ ६१ ॥ प्रथमेषुप्रविष्टेषुमायावीर्यमहत्स्वपि ॥ अहमेवप्रविष्टोस्मिवाराणस्यांनसंश यः ॥ ६० ॥ क्रमेणप्रेषयिष्यामियोस्तिमेस्वपरिच्छदः ॥ तत्रसर्वेषुयातेषुततोयास्याम्यहम्पुनः ॥ ६३ ॥ सम्प्रधार्ये तिहृदयेदेवदेवेनशूलिना ॥ प्रैषिष्टप्रमथानान्तुततोगणचतुष्टयम् ॥ ६४ ॥ कुण्डोदरोमयूराख्योबाणोगोकर्णएवच ॥ मायाबलंसमाश्रित्यकाशीम्प्रविविशुर्गणाः ॥ ६५ ॥ कृत्वोपायशतन्तैस्तुदिवोदासस्यसम्भ्रमे ॥ यदैकोपिसमर्थोनत

यही कार्य्यहै कि इस उपाधिसेही ये मेरे जन वहां पर टिकें॥६१॥ और माया व वीर्य्य से बड़ेभारी गणोंके पैठजातेही मैं भी काशी में प्रविष्टहूं इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ इसलिये जो मेरा धनरूप परिकर है उसको क्रमसे पठाऊंगा व वहां सबोंका जाना होतेही उसकेबाद फिर मैं जाऊंगा ॥ ६३ ॥ ऐसे अपने हृदयमें भली भांति विचार धारणाकर देवों के देव, त्रिशूलधारी लीलाकारीने तदनन्तर चारगणों को फिर पठाया ॥ ६४ ॥ कुंडोदर, मयूराख्य, बाण और गोकर्णभी ये चारोगण मायाके बल

को भलीभांति आधारकर काशी में प्रवेशकरगये ॥ ६५ ॥ फिर दिवोदास के उद्वेगमें सैकडों उपायकर जब एकभी न समर्थ हुआ तब उन करके वहांहीं टिकागया ॥ ६६ ॥ व अपराधों का सैकड़ा होतेही परमेश्वर किस कर्म से प्रसन्न होतेहैं यह निश्चय समेत विचार धारणकर उन्होंने उत्तम लिंगाराधन किया ॥ ६७ ॥ कि जब यहां एक भी शंकर सम्बन्धी लिंग विधि से संपूजित होताहै तब त्रिनेत्र शिवजी अपराधों के सैकड़ा को क्षमा करते हैं और मोक्ष देते हैं ॥ ६८ ॥ व जैसे एकबार भी विधि से लिंगके पूजित होतेही शंकरजी संतुष्ट होते हैं वैसे यज्ञ, दान, तप और व्रतों से नहीं संतोष पाते हैं ॥ ६९ ॥ जो कि दो आंखोंवाला भी मनुष्य लिङ्ग

दातत्रैवसंस्थितम् ॥ ६६ ॥ अपराधशतेष्वीशःकेनतुष्यतिकर्मणा ॥ सम्प्रधार्येतितेचक्रुर्लिङ्गाराधनमुत्तमम् ॥ ६७ ॥ एकस्मिञ्छाम्भवेलिङ्गेविधिनात्रसमर्चिते ॥ क्षमेत्त्र्यक्षोपराधानांशतम्मोक्षञ्चयच्छति ॥ ६८ ॥ नतुष्यतितथाशम्भुर्यज्ञदानतपोव्रतैः ॥ यथातुष्येत्सकृल्लिङ्गेविधिनाभ्यर्चितेसति ॥ ६९ ॥ लिङ्गार्चनविधानज्ञोलिङ्गार्चनरतःसदा ॥ त्र्यक्ष एवसविज्ञेयःसाक्षाद्व्द्यक्षोपिमानवः ॥ ७० ॥ नगोशतप्रदानेननस्वर्णशतदानतः ॥ तत्फलंलभ्यतेपुम्भिर्यत्सकृल्लिङ्गपूजनात् ॥ ७१ ॥ अश्वमेधादिभिर्यागैर्नतत्फलमवाप्यते ॥ यत्फलंलभ्यतेमर्त्यैर्नित्यंलिङ्गप्रपूजनात् ॥ ७२ ॥ स्नापयित्वाविधानेनयोलिङ्गस्नपनोदकम् ॥ त्रिःपिबेत्त्रिविधम्पापंतस्येहाशुप्रणश्यति ॥ ७३ ॥ लिङ्गस्नपनवार्भिर्यःकुर्यान्मूर्द्धन्यभिषेचनम् ॥ गङ्गास्नानफलन्तस्यजायतेत्रविपाप्मनः ॥ ७४ ॥ लिङ्गंसमर्चितंदृष्ट्वायःकुर्यात्प्रणतिंसकृत् ॥ सन्दे

पूजाका विधान जानताहुवा वा सदा लिङ्गकी पूजामें रतहै उसको त्रिनेत्र (शिव) ही विचारना चाहिये ॥ ७० ॥ एकबार लिंगपूजासे लोगों को जो फल मिलता है वह सैकडों गौओं के दानसे नहीं है और सैकड़ा सुवर्णो के दानसे भी नही है ॥ ७१ ॥ व नित्यही लिंगकी पूजासे मनुष्योंको जो फल मिलताहै वह फल अश्वमेधादि यज्ञों से नही पायाजाताहै ॥ ७२ ॥ जो यहां विधि से नहवाकर शिवलिंग स्नानके जलको तीनबार पीताहै उसका तीन भांति का (मन, वचन और तनसे उत्पन्न) पाप शीघ्रही विनष्ट होताहै ॥ ७३ ॥ व जो यहां लिंगस्नान कराये हुये जल से मस्तक में अभिषेक करताहै उस अपापी को गंगा नहाने का फल होताहै ॥ ७४ ॥

जो संपूजित शिवलिंग को देखकर एकबार प्रणाम करताहै उसके फिर देह रूप बड़े बन्धनमें संदेह उपजता है अर्थात् वह दुबारा देहधारी नहीं होताहै ॥ ७५॥ और जो भक्तिसे शिवलिंगको थापताहै वह सात जन्मोंके किये हुये पापों से छूटताहै व विशेष शुद्ध होकर स्वर्गसेवी होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ ऐसा विचार कर स्वामिद्रोह विनाशने के लिये गणोंने काशीमें भारी पापविदारी भी शिवलिंग प्रतिष्ठित किया ॥ ७७ ॥ ॥ लोलार्क के समीपमें कुंडोदरेश्वरलिंग को देखकर सब पापों से विनिर्मुक्त होकर शिवलोकमे पूजाजाताहै याने आदर पाताहै ॥ ७८ ॥ व कुंडोदरेश्वरलिंगसे पश्चिम असीनदी के किनारे मयूरेश्वर को सब ओरसे पूजकर

होजायतेतस्यपुनर्देहनिबन्धने ॥ ७५ ॥ लिङ्गंयःस्थापयेद्भक्त्यासप्तजन्मकृतादघात् ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहोविशुद्धःस्वर्गभाग्भवेत् ॥ ७६ ॥ विचार्येतिगणैःकाश्यांस्वामिद्रोहोपशान्तये ॥ प्रतिष्ठितानिलिङ्गानिमहापातकभिन्त्यपि ॥ ७७॥ कुण्डोदरेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वालोलार्कसन्निधौ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःशिवलोकेमहीयते ॥ ७८ ॥ कुण्डोदरेश्वराल्लिङ्गात्प्रतीच्यामसिरोधसि ॥मयूरेश्वरमभ्यर्च्यनगर्भम्प्रातिपद्यते ॥७९ ॥ मयूरेशप्रतीच्याञ्चलिङ्गम्बाणेश्वरम्महत् ॥ तस्यदर्शनमात्रेणसर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ ८० ॥ गोकर्णेशम्महालिङ्गमन्तर्गेहस्यपश्चिमे ॥ द्वारेसमर्च्यवैकाश्यांनविघ्नैरभिभूयते ॥ ८१ ॥ गोकर्णेश्वरभक्तस्यपञ्चत्वसमयेसति ॥ ज्ञानभ्रंशोनजायेतक्वचिदप्यन्तमृच्छतः ॥ ८२ ॥ स्कन्दउवाच॥ चिरयत्सुगणेष्वेषुचतुर्ष्वपिगणेश्वरः ॥ महिमानम्महत्त्वन्तुतत्काश्याःपर्यवर्णयत् ॥ ८३ ॥ वैष्णव्यामाययाविश्वम्भ्राम्यतेतावयाखिलम् ॥ ध्रुवंमूर्तिमतीसैषाकाशीविश्वैकमोहिनी ॥ ८४ ॥ अपास्यसोदरान्दारान्पुत्रंक्षेत्रंगृहंवसु ॥

फिर गर्भ के सामने नहीं जाता है ॥ ७९ ॥ व मयूरेश्वर से पश्चिम में जो बड़ा पूजनीय बाणेश्वरलिंग है उसके दर्शनमात्रके द्वारा सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ८० ॥ व काशी में अन्तर्गेहके पश्चिम द्वारपर गोकर्णेश्वरमहालिंग को पूजकरभी विघ्नोंसे नहीं पीड़ित होताहै ॥ ८१ ॥ और मरणसमय होतेही कहीं भी मृत्युको प्राप्त होते हुये, गोकर्णेश्वरके भक्तके ज्ञान का विनाश न होवे ॥ ८२ ॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि उन चारों भी गणोंके बहुत विलम्बकारी होतेही गणोंकेनाथ श्रीविश्वनाथजी ने उस काशीकी महिमा और बड़प्पनको सब ओरसे वर्णन किया ॥ ८३ ॥ कि जिस विष्णुसम्बंधिनी मायासे यहां सम्पूर्ण विश्व (जगत्) भ्रमायाजाताहै वह

निश्चयकर मूर्तिवाली यह विश्वविमोहिनी काशीहै ॥ ८४ ॥ क्योंकि भ्राता, स्त्री, पुत्र, क्षेत्र, गृह और धनको दूरत्यागकर व मरणको भी अंगीकारकर सब लोग काशी की उपासना करते हैं याने उसके समीप टिकते हैं ॥ ८५ ॥ व जिस काशीमें मरनेसे भी कुछ डर नहीं है उसमे टिकते हुये गण मुझसे क्यों डरते होंगे ॥ ८६ ॥ जहां मरना मंगल है जहां विभूति भूषण है और जहां कौपीन रेशमीवस्त्र है वह काशी कहां उपमावाली की जाती है याने उसकी समताको कोई नहीं है ॥ ८७ ॥ व जहां मुक्तिरूप रमणी प्राणान्त समय में हुये तारकमन्त्रोपदेश भूषणवाले धनी व निर्धनी व ब्राह्मण व चाण्डालको भी अंगीकार करती है ॥ ८८ ॥ जहां मरे मुक्ति

अप्यङ्गीकृत्यनिधनंसर्वेकाशीमुपासते ॥ ८५ ॥ मरणादपिनोकाश्याम्भयंयत्रमनागपि ॥ गणास्तत्रतु तिष्ठन्तः कुतोमत्तोपिबिभ्यति ॥ ८६ ॥ मरणम्मङ्गलंयत्रविभूतिर्यत्रभूषणम् ॥ कौपीनंयत्रकौशेयङ्काशीकुत्रोपमीयते ॥ ८७ ॥ निर्वाणरमणीयत्ररङ्कंवाऽरङ्कमेववा ॥ ब्राह्मणंवाश्वपाकंवावृणीतेप्रान्त्यभूषणम् ॥ ८८ ॥ मृतानांयत्रजन्तूनांनिर्वाणपदमृच्छताम् ॥ कोट्यंशेनापिनसमाअपिशक्रादयःसुराः ॥ ८९ ॥ यत्रकाश्यांमृतोजन्तुर्ब्रह्मनारायणादिभिः ॥ प्रबद्धमूर्धाञ्जलिभिर्नमस्येतातियत्नतः ॥ ९० ॥ यत्रकाश्यांशवत्वेपिजन्तुर्नाशुचितांव्रजेत् ॥ अतस्तत्कर्णसंस्पर्शङ्करोम्यहमपिस्वयम् ॥ ९१ ॥ यस्तुकाशीतिकाशीतिद्विस्त्रिर्जपतिपुण्यवान् ॥ अपिसर्वपवित्रेभ्यःसपवित्रतरोमहान् ॥ ९२ ॥ येनकाशीहृदिध्यातायेनकाशीहसेविता ॥ तेनाहंहृदिसन्ध्यातस्तेनाहंसेवितःसदा ॥ ९३ ॥ काशींयःसेवतेजन्तुर्निर्विकल्पेनचेत

पदको जातेहुये जन्तुओंके कोट्यंशके समान इन्द्रादि देवभी नहीं हैं ॥ ८९ ॥ जिस काशी में मराहुवा प्राणी माथोंमें हाथोंकी अञ्जलीजोड़हुये ब्रह्मा व विष्णु आदि देवोंकरके अधिक यत्नसे नमस्कार कियाजावे है ॥ ९० ॥ जिस काशीमें मुर्दाहोनेपर भी जन्तु अशुद्धताको नहीं प्राप्तहोता है इससे मैं आपही मरणसमय मे उसके कानका संस्पर्श करताहूं ॥ ९१ ॥ और जो पुण्यवान् काशी काशी ऐसा शब्द दो तीन बार जपता है वह सब पवित्रोंसे भी परमपवित्र व पूजनीय है ॥ ९२ ॥ इसलोकमें या हर्ष से जिसने काशीको हृदयमें ध्याया व जिसने काशीको सेया उससे मैं मनमें ध्यायागया व उससे मैं सदा सेया गयाहू ॥ ९३ ॥ जो जन्तु एकाग्रमनसे का-

शीको सेवता है उसको मैं नित्यही बड़े यत्नसे अपने हृदय में धारण करताहूं ॥९४॥ आप बसने को असमर्थभी जो जन मोलसे एक तीर्थवासी को भी काशीमें बसावे वह निश्चयसे काशीवासीके फलका सेवनेवाला है याने उसको भी काशीवासका फल होता है ॥ ९५ ॥ व मरणतक विनिश्चयवाले जे धीर लोग काशीमें बसते हैं वे जीवन्मुक्तही जानने योग्य है व वेही वन्दनीय और पूजनीय भी है ॥ ९६ ॥ इसभांति शिवजीने बहुतसे काशीके गुणोंको विचारकर प्रीतिपूर्वक अन्य गणों को भलीभांति बुलाकर प्रेरण किया ॥ ९७ ॥ कि हे अतिस्वच्छमानस, तारक ! तुम भलीभांति आवो व धर्मका आश्रय दिवोदासराजा जिस पुरीको अधिकता से

सा ॥ तमहंहृदयेनित्यंधारयामिप्रयत्नतः ॥ ९४ ॥ स्वयंवस्तुमशक्तोपिवासयेत्तीर्थवासिनम् ॥ अप्येकमपिमूल्येनस वस्तुःफलभाग्ध्रुवम् ॥ ९५ ॥ काश्यांवसन्तियेधीराआपञ्चत्वविनिश्चयाः ॥ जीवन्मुक्तास्तुतेज्ञेयावन्द्याःपूज्यास्तएव हि ॥ ९६ ॥ इत्थंविमृश्यबहुशःस्थाणुर्वाराणसीगुणान् ॥ गणानन्यान्समाहूयप्राहिणोत्प्रीतिपूर्वकम् ॥ ९७ ॥ तारकत्वं समागच्छगच्छातिस्वच्छमानस ॥ दिवोदासोवृषावासोयामधीष्टेवरांपुरीम् ॥ ९८ ॥ तिलपर्णस्थूलकर्णद्रमिचण्डप्रभा मय ॥ सुकेशविन्दतेछागकपर्दिन्पिङ्गलाक्षक ॥ ९९ ॥ वीरभद्रकिराताख्यचतुर्मुखनिकुम्भक ॥ पञ्चाक्षभारभूताख्य त्र्यक्षक्षेमकलाङ्गलिन् ॥ १०० ॥ विराधसुमुखाषाढेयान्तुसर्वेपृथक्पृथक् ॥ एतेगणामहाभागाःस्वामिभक्तादृढव्रताः ॥ १ ॥ कृत्वामायाबहुविधाबहुरूपाविचक्षणाः ॥ अनिमेषेक्षणास्तस्थुःक्षोणीशच्छिद्रकाङ्क्षिणः ॥ २ ॥ अपरिज्ञाततच्छि द्राविद्रावितयशोधनाः ॥ अाःकिमेतदहोजातंनिनिन्दुःस्वमितीहते ॥ ३ ॥ गणाऊचुः ॥ धिगस्मान्स्वामिनानित्यंकृ

शिक्षाकरताहै याने आज्ञा फिराता है उसको जावो ॥ ९८ ॥ हे तिलपर्ण,स्थूलकर्ण, द्रमिचण्ड, प्रभामय, सुकेश, विन्दते, छाग, कपर्दिन्, पिंगलाक्षक ! ॥ ९९ ॥ हे वीरभद्र, किराताख्य, चतुर्मुख, निकुम्भक, पञ्चाक्ष, भारभूताख्य, त्र्यक्ष, क्षेमक, लांगलिन् ! ॥ १०० ॥ हे विराधसुमुख, आषाढे ! आप सब जने अलग अलग जावें तब ये सब स्वामी के सेवक, दृढ़व्रत भारीभागवाले गण ॥ १ ॥ जे कि बहुत भांतिकी मायाकर अनेकरूपधारी और बड़े विचक्षण (पण्डित) थे वे दिवोदासराजा का छिद्रचाहतेहुये, निमेष रहित नेत्रवाले (सावधान) होकर काशी मे टिकते भये ॥ २ ॥ और उसके छिद्रको सब ओरसे न जानपाये व अपने सुयशरूप धनको

दुराये हुये व निद्रासे हीन होकर उन्होंने क्रोध और खेदसे अपनाको ऐसे निंदा किया कि यहां यह क्या भया ॥ ३ ॥ गण बोले कि, बारबार सदैव स्वामीसे की गई है पालना जिनकी व जिन्होंने यहां एक मनुष्यमात्रको भी नही-वशकिया उन हम सबको धिक्कार है ॥ ४ ॥ बहुतमान दान और सौहार्दकेद्वारा महापूज्य महादेवजीसे कियेहुये प्रसादवाले होकरभी उनके कार्य्य बिगारनेवाले हमलोगोंको धिक्कार है ॥ ५ ॥ व स्वामीके कार्य्य में मतवाले हुये हम लोगोंकी यहां क्या गति होगी जानते हैं कि निश्चयसे अन्धतमोमय लोकमे वसना होगा ॥ ६ ॥ खेद है कि, स्वामीका कार्य्य न करनेवाले और इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको न खण्डित किये

तसम्भावनान्मुहुः ॥ मनुष्यमात्रमप्यत्रयैरेकंनवशीकृतम् ॥ ४ ॥ बहुमानेनदानेनसौहार्देनमहीयसा ॥ कृतप्रसादांस्त्र्यक्षेणधिङ्नस्तत्कार्यवञ्चकान् ॥ ५ ॥ कागतिर्नोभवित्रीहस्वामिकृत्यप्रमादिनाम् ॥ अन्धन्तमोमयेलोकेध्रुवंवासोभविष्यति ॥ ६ ॥ अकृतस्वामिकार्याणामहोजीवितधारिणाम् ॥ अक्षतेन्द्रियवृत्तीनांदुर्गतिश्चपदेपदे ॥ ७ ॥ लब्धसम्भावनानाञ्चन्यकृतस्वामिकर्मणाम् ॥ भृत्यानाम्भूरिभाजाञ्चभङ्गुराःस्युर्मनोरथाः ॥ ८ ॥ अनिष्पादितकार्यार्थायेमुखंप्रेक्षयन्त्यहो ॥ अत्रपाःपुरोभर्तुस्तैर्भूर्भारवतीत्वियम् ॥ ९ ॥ नाद्रीणांनसमुद्राणांनद्रुमाणांमहीयसाम् ॥ भूतधात्र्यास्तथाभारोयथास्वामिद्रुहां महान् ॥ १० ॥ अहोपौराणिकीगाथास्मृतास्माभिरनिन्दिता ॥ तदर्थमवलम्ब्येहस्थास्यामःकृतनिश्चयाः ॥ ११ ॥ अनाकलितपुण्यानांपरिक्षीणधनायुषाम् ॥ सर्वोपायविहीनानाङ्गतिर्वाराणसीपुरी ॥ १२ ॥ अ

हुये जनोंकी क्षण क्षणमे दुर्गति होती है ॥ ७ ॥ और पालना पाये हुये भी स्वामीके कामको नीचे करनेवाले व बहुतोंके भजनेवाले दासोंके मनोरथ नाशशील होवे हैं ॥ ८ ॥ व कार्य्यार्थोंको न सिद्धकियेहुये जे निर्लज्ज स्वामी के आगे फिरमुख दिखाते हैं उनसे यह भूमि भारवाली है यह आश्चर्य्य है ॥ ९ ॥ जैसा स्वामिद्रोहियोंका भारीभार भूमिको होताहै वैसा पर्वतोंका नहीं व समुद्रो का नही व बहुत बडे वृक्षोंका भी नही होताहै ॥ १० ॥ आश्चर्य्य है कि, जो पुराणकी अनिन्दित गाथा हम लोगों से स्मरणकीगई उसके अर्थ को अवलम्बनकर निश्चय कियेहुये हम लोग इस काशीपुरी में टिकेंगे ॥ ११ ॥ वह गाथा यह है कि जिन्होंने पुण्य न-

कियाहो व जिनकी सम्पत्ति और आयु सब ओरसे घटगईहो व जे सब उपायों से विहीन होवें उनकी काशीपुरी गति है ॥ १२ ॥ जे पापके भारसे खिन्न व पश्चात्तापको प्राप्त हुये और सर्वत्र ऊंची नीची योनियोमें जानेवाले हैं उनकी काशीपुरी गति है ॥ १३ ॥ जे स्वामिद्रोही व कृतघ्न (उपकारके न माननेवाले) और विश्वासघाती हैं उनकी गति काशीपुरी को छोंड़कर कहींभी नहीं है ॥ १४ ॥ इसभांति गाथाके अर्थको निश्चयकर और दिवोदासराजा से न जानेहुये स्वरूपवालेहोकर काशीमें निवास किये ॥ १५ ॥ परन्तु बहुतही बुद्धिमान् भी उस राजाने अनेक भांतिके आकारोंसे याने अनेकरूपोंसे टिकेहुये देवोंको महादेवजीके प्रभावसे न जान

पुण्यभारखिन्नानांपश्चात्तापमुपेयुषाम् ॥ विष्वगूर्ध्वगतीनाञ्चगतिर्वाराणसीपुरी ॥ १३ ॥ स्वामिद्रुहःकृतघ्नाश्चयेचविश्रम्भघातकाः ॥ तेषांकापिगतिर्नास्तिमुक्त्वावाराणसींपुरीम् ॥ १४ ॥ इत्थंनिश्चित्यगाथार्थंप्रमथाश्रवतस्थिरे ॥ अविज्ञातस्वरूपाश्चदिवोदासेनभूभुजा ॥ १५ ॥ नबुबोधसभूपालोनितरांबुद्धिमानपि ॥ विबुधान्विविधाकारैः स्थितानीशप्रभावतः ॥ १६ ॥ चित्रंनचित्रगुप्तोपिवेत्तिवाराणसीस्थितान् ॥ जन्तून्कागणनान्येषांमर्त्यलोकनिवासिनाम् ॥ १७ ॥ अविच्छिन्नप्रभावाणामपरिच्छिन्नतेजसाम् ॥ कृतलिङ्गप्रतिष्ठानांनान्तंप्राप्नोतिधर्मराट् ॥ १८ ॥ इतितेप्रमथाःसर्वेघटोद्भव महामुने ॥ कृतलिङ्गार्चनाः काशींनाद्याप्युज्झन्तिशर्मदाम् ॥ १९ ॥ तारकेशंमहालिङ्गंतारकाख्योगणोत्तमः ॥ तारकज्ञानदंपुंसांमुनेऽद्यापिसमर्चयेत् ॥ २० ॥ तारकेश्वरलिङ्गस्यकृत्वाभक्तिंसुनिश्चलाम् ॥ सुखेनतारकज्ञानंलभ्यतेतैर्नरोत्तमैः ॥ २१ ॥ तिलपर्णेश्वरंलिङ्गन्तिलपर्णप्रतिष्ठितम् ॥ तिलप्रमाणमप्यत्रदृष्ट्वापापंनसम्भवेत् ॥ २२ ॥ स्थूलकर्णे

पाया ॥ १६ ॥ यह आश्चर्य्य नहींहै क्योंकि चित्रगुप्तभी काशीवासी जनोंको नहीं जानता है तो मनुष्यलोकवासी अन्यलोगोंकी क्या गणनाहै ॥ १७ ॥ व अखण्डित प्रभाववाले अखण्डित तेजवाले और शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करनेवाले जनोंके अन्तको यमराज जी नहीं जानते हैं ॥ १८ ॥ हे महामुने अगस्त्यजी ! ऐसाजानकर शिवलिंगोंकी पूजाकरते हुये वे सब गण सुखदायिनी काशीको आजभी नहीं परित्याग करते हैं ॥ १९ ॥ हे मुने ! तारकनाम गणोत्तम लोगोंको संसार से तारनेहारे ब्रह्मज्ञानके दाता तारकेश्वरमहालिंगको अबभी पूजतेहैं ॥ २० ॥ व तारकेश्वर लिंगकी बहुत निश्चल भक्तिकर उन मनुष्योत्तमोंको तारक ज्ञान सुखसे मिलताहै ॥ २१ ॥

व यहां तिलपर्णी के थापेहुये तिलपर्ण लिंग के दर्शनकर तिलभरभी पाप न संभवित होवै ॥ २२ ॥ व स्थूलकर्णेश्वरकी सब ओर से पूजाकर नरोत्तम दुर्गतिको नहीं प्राप्तहोता है और उत्तम पुण्यको प्राप्तहोता है ॥ २३ ॥ और दमिचंडेश्वर लिङ्ग वैसे उससे पश्चिमप्रभामयेश लिङ्गको पूजकर पापों से नहीं तिरस्कृत होता है याने उसको पाप नहीं दबासक्केहैं ॥ २४॥ प्रभामयेश्वर लिङ्गके दर्शनकर अन्यत्रभी मराहुआ सुबुद्धिमान् प्रकाशवान् विमानसे शिवलोकमें जावे ॥ २५ ॥ व हरिकेशवनमें सुकेशेश्वरलिङ्ग कोसामनेसे पूजनकर मनुष्य संसारमे बार बार छः कोश (त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, अस्थि, मज्जा) वाली देहको न धारणकरे ॥ २६ ॥ व भीमचंडीके समीप में

श्वरंलिङ्गम्परिपूज्यनरोत्तमः ॥ नदुर्गतिमवाप्नोतिपुण्यमाप्नोतिचोत्तमम् ॥ २३ ॥ दमिचण्डेश्वरंलिङ्गन्तथालिङ्गंप्रभामयम् ॥ आराध्यतत्प्रतीच्याञ्चनपापैरभिभूयते ॥ २४ ॥ प्रभामयेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वान्यत्रापिसंस्थितः ॥ प्रभामयेनयानेनशिवलोकेव्रजेत्सुधीः ॥ २५ ॥ सुकेशेश्वरमभ्यर्च्यहरिकेशवनेनरः ॥ षाट्कौशिकमयन्देहंधारयेन्नपुनःपुनः ॥ २६ ॥ विन्दतीशन्नरोभ्यर्च्यभीमचण्डीसमीपतः ॥ त्यक्त्वाप्रचण्डमप्येनोमोक्षंविन्दतिशाश्वतम् ॥ २७ ॥ छागलेशंमहालिङ्गंपित्रीश्वरसमीपगम् ॥ विलोक्यपशुवत्कोपिनपापंप्राकृतंस्पृशेत् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे वाराणसीवर्णनगणप्रेषणंनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ कुम्भसम्भववक्ष्यामिशृणोत्ववहितोभवान् ॥ कपर्दीशस्यलिङ्गस्यमहामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

विंदतीश्वर नामक लिंगको सब ओर से पूजकर प्रचण्डभी पापका त्यागकर नर नित्य रहनेवाली मुक्तिको पाताहै ॥ २७ ॥ और पित्रीश्वरके समीपगत छागलेश्वर महालिंगको देखकर कोईभी पशुके समान प्राकृत पापको न स्पर्शकरे ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकाशीवर्णनगणप्रेषणं नामत्रिपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० चौवनके अध्यायमें कपर्दीशमाहात्म्य ॥ पुनि पिशाचमोचनकथा कथित कीन याथात्म्य ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी ! मैंकपर्दीश्वरनामक लिंगके उत्तम

महामाहात्म्यको कहूंगा आप सावधान होकर सुनें कि ॥ १ ॥ शङ्करजीके परमप्यारे कपर्दीनामक गणेश्वरने पित्रीश्वरलिंग के उत्तरभागमें शम्भुसम्बन्धी लिंगको संस्थापनकर ॥ २ ॥ उसके आगे विमलोदक नाम कुण्ड खनाया जिसके जलके संस्पर्शसे नर निर्मल होजाताहै ॥ ३ ॥ हे कुम्भसम्भव ! पूर्वकाल त्रेतायुग में तहां जो इतिहास जैसे प्रवृत्तहोगया है वैसेही उस पातकघातक इतिहासको कहूंगा ॥ ४ ॥ कि कपर्दीश्वरको भलीभांति पूजतेहुये बाल्मीकि इस नामवाले शिवभक्तश्रेष्ठ एक मुनिने तपस्या कियाथा ॥ ५ ॥ एकसमय हेमन्तऋतु मार्गमास मध्याह्नकालमें उसही तपस्वीने उस विमलोदक तीर्थमें ॥ ६ ॥ स्नानकर पादतल से मस्तक पर्य्यंत भस्मसे स्नान किया

कपर्दीनामगणपःशम्भोरत्यन्तवल्लभः ॥ पित्रीशादुत्तरेभागेलिङ्गंसंस्थाप्यशाम्भवम् ॥ २ ॥ कुण्डञ्चखानतस्याग्रेविमलोदकसंज्ञकम् ॥ यस्यतोयस्यसंस्पर्शाद्विमलोजायतेनरः ॥ ३ ॥ इतिहासंप्रवक्ष्यामितत्रत्रेतायुगेपुरा ॥ यथावृत्तंकुम्भयोनेश्रवणात्पातकापहम् ॥ ४ ॥ एकःपाशुपतश्रेष्ठोबाल्मीकिरितिसंज्ञितः ॥ तपश्चचारसमुनिःकपर्दीशंसमर्चयन् ॥ ५ ॥ एकदासहिहेमन्तेमार्गेमासितपोधनः ॥ स्नात्वातत्रमहातीर्थेमध्याह्नेविमलोदके ॥ ६ ॥ चकारभस्मनास्नानमापादतलमस्तकम् ॥ लिङ्गस्यदक्षिणेभागेकृतमाध्याह्निकक्रियः ॥ ७ ॥ न्यस्तमस्तकपांसुश्चसन्ध्यामाध्यात्मिकींस्मरन् ॥ जपन्पञ्चाक्षरींविद्यांध्यायन्देवंकपर्दिनम् ॥ ८ ॥ कृत्वासंहारमार्गेणसप्रमाणंप्रदक्षिणम् ॥ हुडुंकृत्यहुडुंकृत्यहुडुंकृत्यत्रिरुच्चकैः ॥ ९ ॥ प्रणवंपुरतःकृत्वाषड्जादिस्वरभेदतः ॥ गीतंविधायसानन्दंसन्नृत्यंहस्तकान्वितम् ॥ १० ॥ अङ्गहारैर्मनोहारिचारीमण्डलसंयुतम् ॥ क्षणंतत्रसरस्तीरउपविष्टोमहातपाः ॥ ११ ॥ अद्राक्षीद्राक्षसंघोरमतीवविकृताकृ

और वह लिंगके दक्षिणभागमें मध्याह्नकी क्रिया कियेहुये ॥ ७ ॥ और मस्तकमें विभूतिधारण करनेवाला होकर आध्यात्मिकी (कार्य्य कारणसंघात आत्माको अधिकारकर हुई) सन्ध्या (भलीभांति ब्रह्मध्यान) को करता व पंचाक्षरमन्त्ररूप विद्याको जपता व जटीले शिवदेवको ध्यावताहुआ ॥ ८ ॥ वामावर्त्त मार्गसे प्रमाण समेत प्रदक्षिणाकर तीनबार उच्चस्वरसे हुडुकर हुडुकर हुडुकर ॥ ९ ॥ फिर ॐकारको आगेकर षड्ज, मध्यम, धैवत, निषाद, ऋषभ और गान्धार इन स्वरोंके भेद से गीतको कर आनन्द समेत नृत्यसहित हाथचलानेसे संयुक्त ॥ १० ॥ मण्डल संबद्ध और अंगविक्षेपोंसे मनोहर जैसेहो वैसे नृत्याचरणशीलहोकर क्षणभर वहां उस सरोवर के कि-

नारे पर बैठाहुआ बड़ातपस्वी॥ ११ ॥ एक राक्षसको देखता भया जोकि बहुत विकटाकार घोर, व सूखेहुये शङ्ख (ललाटप्रांत) कपोल और मुखवालाथा व नीचेपैठेहुये कुछेकपीले नेत्रोंसे संयुक्तथा॥ १२ ॥ व जिसके बालोंके अग्रभाग रूखे टूटे फूटे हुयेथे व जिसकी ग्रीवा बड़ीमोटी और लम्बीथी व जिसकी नासिका बहुतही चिपटीथी व जिसके दोनों ओठ सूखेहुयेथे व जोकि बडादँतारा ॥ १३॥ बहुत चौड़े मूडवारा और पीली दाढ़ीके बालोंसे बहुतभयङ्करथा व जिस के शिर के बाल ऊपरको उठेहुयेथे और कानोंके ऊपरभाग बड़ेलम्बेथे ॥ १४ ॥ व जिसकी बहुत लम्बी जीभ ऐसी वैसी चलती फिरतीथी व जिसकी घंटिका का ऊपरभाग बहुत विकटथा व जिसके कण्ठके अधोभाग मोटेहाड़वाले थे व जोकि दीर्घ दोनों कांधोंसे भारीभयानक थ॥१५॥ और जिसकी कांखों के बिल बहुत गहरेथे व दोनोंबाहैं छोटी और सूखीहुई

तिम्॥शुष्कशङ्खकपोलास्यंनिमग्नापिङ्गलोचनम्॥ १२ ॥रूक्षस्फुटितकेशाग्रंमहालम्बाशिरोधरम् ॥ अतीवचिपिटघ्राणंशुष्कोष्ठमतिदन्तुरम् ॥ १३ ॥ महाविशालमौलिञ्चप्रोर्ध्वीभूतशिरोरुहम् ॥ प्रलम्बकर्णपालीकंपिङ्गलश्मश्रुभीषणम् ॥ १४ ॥ प्रलम्बितललज्जिह्वमत्युत्कटकृकाटिकम् ॥ स्थूलास्थिजत्रुसंस्थानंदीर्घस्कन्धद्वयोत्कटम् ॥ १५ ॥ निमग्नकक्षाकुहरंशुष्कह्रस्वभुजद्वयम् ॥ विरलाङ्गुलिहस्ताग्रंनतपीननखावलिम् ॥ १६ ॥ विशुष्कपांसुलोत्क्रोडंपृष्ठलग्नोदरत्वचम् ॥ कटीतटेनविकटंनिर्मांसत्रिकबन्धनम् ॥ १७॥ प्रलम्बस्फिग्युगयुतंशुष्कमुष्काल्पमेहनम्॥दीर्घनिर्मांसलोरुकंस्थूलजान्वस्थिपञ्जरम् ॥ १८॥ अस्थिचर्मावशेषंचशिराजालितविग्रहम् ॥ शिरालंदीर्घजङ्घंचस्थूलगुल्फास्थिभीषणम् ॥ १६ ॥ अतिविस्तृतपादञ्चदीर्घवक्रकृशाङ्गुलिम् ॥ अस्थिचर्मावशेषेणशिराताडित

थीं व जिसके हाथों के अग्रभाग बिरली अंगुलीवालेथे व जिसकी मोटी नखपंक्ति नईहुईथीं ॥ १६॥ व जिसका क्रोड (कोरवा) विशेष सूखारूखा धूलि से धूसरथा व जिसके उदरकी त्वचा पीठमें लगीथी व जोकि कटितटसे विकटथा व जिसका तिहड्डा मांससे हीनथा ॥ १७ ॥ व जोकि लम्बे दो कूलोंसे संयुक्तथा व जिसका अण्डकोश सूखाथा और लिंग छोटा था याने वह नग्नथा व जिसकी ऊरुवें दीर्घ और निर्मांसथीं व जोकि स्थूल जानुवाला और अस्थिपंजर के समानथा ॥ १८ ॥ व जिसकी देहमें हाड़ और चर्मही अवशेषरहगयाथा व जिसका शरीर नस समूहोंसे व्याप्तथा व नसों से भरेहुये जिसके मुरवा बहुत भारी थे व जोकि मोटे घुटुनाके

हाड़ोंसे भीषणथा ॥ १९ ॥ व अत्यन्त विस्तारयुक्त पावोंवाला व लम्बी टेढ़ी पतली अंगुलियोंवाला व हाड़ और चर्म के अवशेषसे ताड़ीहुईसी देहवालाथा ॥ २० ॥ व कुत्सित, भीषणाकार, क्षुधासे क्षीण, बहुते रोमों समेत, दावानलसेदहे वृक्षके समानाकार अतिचञ्चल लोचन ॥ २१ ॥ व मूर्त्तिमान् भयानककी नाईं सब प्राणियों को भयदायक, अत्यन्त दीनमुख और हृदय कँपानेवालाथा उस प्रेतको देखकर बूढ़े तपस्वीने धैर्य्य से ऐसा पूंछा कि तू कौनहै ॥ २२ ॥ व तू क्यों यहां संप्राप्त है व किस कारण तेरी ऐसी गतिहुई है हे रक्षः ! मैं दयाबुद्धिसे पूंछताहूं तू निडरताके साथ कह ॥ २३ ॥ और शिवसहस्रनाम वाले विभूति से कवच कियेहुये तपस्वी हमलोगों

विग्रहम् ॥ २० ॥ विकटंभीषणाकारंक्षुत्क्षाममतिलोमशम् ॥ दावदग्धद्रुमाकारमतिचञ्चललोचनम् ॥ २१ ॥ मूर्तं भयानकमिवसर्वप्राणिभयप्रदम् ॥ हृदयाकम्पनंदृष्ट्वातंप्रेतंवृद्धतापसः ॥ अतिदीनाननंकस्त्वमितिधैर्येणपृष्टवान् ॥ २२ ॥ कुतस्त्वमिहसम्प्राप्तः कस्मात्तेगतिरीदृशी ॥ अनुक्रोशधियारक्षःपृच्छामिवदनिर्भयम् ॥ २३ ॥ अस्माकन्तापसानाञ्चनभयन्त्वद्विधान्मनाक् ॥ शिवनामसहस्राणांविभूतिकृतवर्मणाम् ॥ २४ ॥ तापसोदीरितमितितद्रक्षःप्रीतिपूर्वकम् ॥ निशम्यप्राञ्जलिः प्राहतंकृपालुन्तपोधनम् ॥ २५ ॥ राक्षसउवाच ॥ अनुक्रोशोस्तियदितेभगवंस्तापसोत्तम ॥ स्ववृत्तान्तन्तदावच्मिशृणुष्वावहितःक्षणम् ॥ २६ ॥ प्रतिष्ठानाभिधानोस्ति देशोगोदावरीतटे ॥ तीर्थप्रतिग्रहरुचिस्तत्रासंब्राह्मणस्त्वहम् ॥ २७ ॥ तेनकर्मविपाकेनप्राप्तोस्मिगतिमीदृशीम् ॥ मरुस्थलेमहाघोरे तरुतोयविवर्जिते ॥ २८ ॥ गतोबहुतरःकालस्तत्रमेवसतोमुने ॥ क्षुधितस्यतृषार्तस्यशीततापसहस्यच ॥ २९ ॥ वर्षत्यपिमहामेघे धारा

को तेरे समान जनसे कुछभी डर नहीं है ॥ २४ ॥ ऐसे प्रीतिपूर्वक तापसका वचनसुनकर हाथजोड़ेहुये उस राक्षसने उन दयालु तपोधनसे कहा ॥ २५ ॥ राक्षस बोला कि, हे भगवन् तापसोत्तम ! जो आपके दया है तो क्षणभर सावधानहोकर सुनो मैं अपना वृत्तान्त कहताहूं ॥ २६ ॥ कि गोदावरीनदी के किनारे प्रतिष्ठान नामक देशहै उसमें मैं तीर्थदान लेनेकी रुचिवाला ब्राह्मण हुआ ॥ २७ ॥ उस कर्मविपाक से ऐसी गति को प्राप्तहूं वृक्ष और जल से विवर्जित, महाघोर जो मरुस्थल है ॥ २८ ॥ उस में बसताहुआ भूंखा व प्यास से पीड़ित व जाड़ और घाम सहनेवाला जो मैं हूं उसका बहुतसे बहुत काल बीतगया हे मुने ! ॥ २९ ॥

वर्षाकाल में रातो दिन धारा सम्पात से महामेघोंके वर्षतेहुये भी वायु के बहतेही मेरे कुछ आच्छादन नहीं है ॥ ३० ॥ जिन्हों ने पर्व में दान नहीं दिया व जिन्हों ने तीर्थ में प्रतिग्रह किया याने दान लिया है वे इस महादुःखनिबन्धनी योनिको प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ हे मुने ! जब मरुभूमिमें बहुतकाल बीतगया तब एकसमय आयाहुआ कोई एक ब्राह्मणका पुत्र मुझ करके देखागया ॥ ३२ ॥ जो कि सूर्योदयको पीछेसे प्राप्तहोकर सन्ध्याकी विधि से विवर्जित और मलमूत्रका त्याग कर शौच व आचमनसे हीनथा ॥ ३३ ॥ उस कच्छाछोरेहुये अशुद्ध और सन्ध्याकर्मसे रहित ब्राह्मणको देखकर मैं भोग मिलनेकी इच्छासे उसकी देहमें पैठगया ॥ ३४ ॥

सारंदिवानिशम् ॥ प्रावृट्कालेऽनिलेवाति किञ्चित्प्रावरणंनमे ॥ ३० ॥ पर्वण्यदत्तदानायेकृततीर्थप्रतिग्रहाः ॥ तइमां योनिमृच्छन्तिमहादुःखनिबन्धनीम् ॥ ३१ ॥ गतेबहुतिथेकालेमरुभूमौमुनेमया ॥ दृष्टोब्राह्मणदायाद एकदाकश्चिदागतः ॥ ३२ ॥ सूर्योदयमनुप्राप्यसन्ध्याविधिविवर्जितः ॥ कृत्वामूत्रपुरीषेतुशौचाचमनवर्जितः ॥ ३३ ॥ मुक्तकच्छमशौचंचसन्ध्याकर्मविवर्जितम् ॥ तंदृष्ट्वातच्छरीरेहंसंक्रान्तोभोगलिप्सया ॥ ३४ ॥ सद्विजोमन्दभाग्यान्मेकेनचिद्वणिजासह ॥ अर्थलोभेनसम्प्राप्तःपुरींपुण्यामिमांमुने ॥ ३५ ॥ अन्तःपुरिप्रविष्टोभूत्सद्विजोमुनिसत्तम ॥ तच्छरीराद्बहिर्भूतस्त्वहंपापैःसमंक्षणात् ॥ ३६ ॥ प्रवेशोनास्तिचास्माकंप्रेतानांतपसान्निधे ॥ महतांस्पातकानांचवाराणस्यांशिवाज्ञया ॥ ३७ ॥ अद्यापितानिपापानितद्बहिर्निर्गमेच्छया ॥ बहिरेवहितिष्ठन्तिसीम्निप्रमथसाध्वसात् ॥ ३८ ॥ अद्यश्वोवापरश्वोवासबहिर्निर्गमिष्यती ॥ इत्याशयास्थिताःस्मोवैयावदद्यतपोधन ॥ ३९ ॥ नाद्यापिसबहिर्गच्छेन्नाद्याप्याशा

हे मुने ! वह ब्राह्मण मेरी मन्दभाग्यसे किसी वणिक् के साथ लोभसे इस पुरीको प्राप्तभया था ॥ ३५ ॥ हे मुनिसत्तम ! वह ब्राह्मण पुरीके भीतर प्रविष्टहुआ और पापों के साथ मैं क्षणमें उसके शरीरसे बाहर होगया ॥ ३६ ॥ व हे तपोनिधान ! श्रीशिवजी की आज्ञा से काशी में हम लोग प्रेत और बड़े पापों का भी पैठना नहीं है ॥ ३७ ॥ अबभी वे पाप उस पैठेहुये की बाहर निकलनेकी इच्छा करकेभी गणों के डरसे बाहरही डांड़ में टिके रहते हैं ॥ ३८ ॥ कि आज व काल्ह व परसों वह बाहर निकलेगा हे तपोधन ! ऐसी आशा से आज तकभी हम लोग स्थित है ॥ ३९ ॥ आजभी वह बाहर नहीं निकले है और आजभी हमारी आशा नहीं जाती

है इस लिये आशापाश से बांधेहुये हम यहां हैं ॥ ४० ॥ हे तपस्विन् ! आज के हुये आश्चर्य्यको मैं कहता हूं आप उसको सुनो इससमय मेंही अत्यन्त कल्याण होने वाला है मैं ऐसा मानताहूं ॥ ४१ ॥ और भूखेहुये हमलोग भोजन की चाहसे प्रतिदिन प्रयागतक जाते हैं परन्तु कहीं कुछ नहीं पाते हैं ॥ ४२ ॥ सर्वत्र प्रतिवन में फूलेफले वृक्ष हैं और निर्मल जलवाले जलाशयभी भूमि में पग पग पै हैं ॥ ४३ ॥ हे मुने ! अन्यभी भोजन और विचित्र बहुतेपानभी सर्वत्र सब को सुलभ हैं ॥ ४४ ॥ परन्तु दृग्गतभी नहीं हैं याने देख पड़ते भी नहीं हैं यह आश्चर्य्य है हे मुने ! आज दैवसे आतेहुये एक कार्पटिक लालेवस्त्रवाले तपस्वी को देखकर भूंख से भारी पी-

प्रयातिनः ॥ इत्यास्महेनिराधारा आशापाशनियन्त्रिताः ॥ ४० ॥ चित्रमद्यतनंवच्मितपस्विंस्तन्निशामय ॥ अतीवभाविकल्याणमितिमन्येधुनैवहि ॥ ४१ ॥ आप्रयागंप्रतिदिनंप्रयामःक्षुधितावयम् ॥ आहारकाम्ययाक्वापिपरंनोकिञ्चिदाप्नुमः ॥ ४२ ॥ सन्तिसर्वत्रफलिनःपादपाःप्रतिकाननम् ॥ जलाशयाश्चस्वच्छापाःसन्तिभूम्याम्पदेपदे ॥ ४३ ॥ अन्यान्यपिचभक्ष्याणिसर्वेषांसुलभान्यहो ॥ पानान्यपिविचित्राणिसन्तिभूयांसिसर्वतः ॥ ४४ ॥ परन्नोदृग्गतान्येवदूरेदूरे व्रजन्त्यहो ॥ दैवादद्यैकमायान्तं दृष्ट्वाकार्पटिकम्मुने ॥ ४५ ॥ तस्यान्तिकमहंप्राप्तःक्षुधयापरिपीडितः ॥ प्रसह्यभक्षयाम्येनमितिमत्वात्वरान्वितः ॥ ४६ ॥ यावत्तन्तुजिघृक्षामितावत्तद्वदनाम्बुजात् ॥ शिवनामपवित्रावाङ्निरगाद्विघ्नहारिणी ॥ ४७ ॥ शिवनामस्मरणतोमदीयमपिपातकम् ॥ मन्दीभूतंततस्तेनप्रवेशंलब्धवानहम् ॥ ४८ ॥ सीमस्थैःप्रमथैर्नाहंसद्योदृग्गोचरीकृतः ॥ शिवनामश्रुतौयेषांतान्नपश्येद्यमोपियत् ॥ ४९ ॥ अन्तर्गेहस्यसीमानं प्राप्तस्तेन

ड़ित हुवा मैं उस के समीप में प्राप्तभया ॥ ४५ ॥ कि, हठ से इस को खा डालूंगा ऐसा मानकर वेग समेतहोकर ॥ ४६ ॥ जबतक मैंने उसके पकड़नेकी इच्छा किया तब तक उसके मुख कमल से विघ्नविदारिणी व शिवजी के नाम से पवित्र वाणी निकल आई ॥ ४७ ॥ व शिवजी के नामके सुमिरने से मेराभी पाप मंदहोगया तदनंतर मैंने उसमें पैठना पाया ॥ ४८ ॥ और डांड़में टिकेहुये गणों करकेमैं शीघ्रही न देखागया नेत्रगोचर न कियागया जिस से जिन के कान में शिवजी का नाम होवे

उस को यमराजभी न देखे ॥ ४९ ॥ इससमय उस के साथ मैं अंतरघरकी सीमा में प्राप्तहूं व वह कार्पटिक बीचमें पैठगया और मैं यहां टिकाहूं ॥ ५० ॥ हे मुने कृपालो! इस समय तुमको देखकर मैं अपनाको बहुत मानताहूं और तुम इस सुदारुण योनिसे मेरा उद्धार करो ॥ ५१ ॥ इस भांति प्रेत का वचन सुनकर उन कृपालु, तपोधन ने मनसे चिन्तना किया कि अपने अर्थ उद्यमवाले मनुष्यों को धिक्कार है ॥ ५२ ॥ क्योंकि, पशु, पक्षी और मृगादिक सब प्राणी अपना पेट भरनेहारे होते हैं जो जन सदा पराये अर्थ में उद्यत है वहही संसार में धन्यहै ॥ ५३ ॥ आज मेरेही शरणको प्राप्त व पापसे पीड़ित हुये इस प्रेतका निस्सन्देह अपनी तपस्या से उद्धार क-

सहाधुना ॥ सतुकार्पटिकोमध्यं प्रविष्टोहमिहस्थितः ॥५० ॥ आत्मानंबहुमन्येहंत्वांविलोक्याधुनामुने ॥ मामुद्धरकृपालोत्वंयोनेरस्मात्सुदारुणात् ॥ ५१ ॥ इतिप्रेतवचःश्रुत्वासकृपालुस्तपोधनः ॥ मनसाचिन्तयामास धिङ्निजार्थोद्यमान्नरान् ॥ ५२ ॥ स्वोदरम्भरयःसर्वेपशुपक्षिमृगादयः ॥ सएवधन्यःसंसारेयःपरार्थोद्यतःसदा ॥ ५३ ॥ तपसाद्यनिजेनाहंप्रेतमेतमघातुरम् ॥ मामेवशरणंप्राप्तमुद्धरिष्याम्यसंशयम् ॥ ५४ ॥ विमृश्येतिसवैचित्तेपिशाचंप्राहसत्तमः ॥ विमलोदेसरस्यस्मिन्स्नाहि रेपापनुत्तये ॥ ५५ ॥ पिशाचतेपिशाचत्वंतीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ कपर्दीशेक्षणादद्यक्षणात्क्षीणंविनङ्क्ष्यति ॥ ५६ ॥ श्रुत्वेतिसमुनेर्वाक्यंप्रेतःप्राहप्रणम्यतम् ॥ प्रीतात्माप्रीतमनसंप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ५७ ॥ पानीयंपातुमपिनोलभेयंमुनिसत्तम ॥ स्नानस्यकाकथानाथरक्षेयुर्जलदेवताः ॥ ५८ ॥ पानस्याप्यत्रकावार्ताजलस्पर्शोपिदुर्लभः ॥ इतिप्रेतोक्तमाकर्ण्यसभृशम्प्रीतिमानभूत् ॥ ५९ ॥ उवाचचतपस्वीतं जगदुद्धरणक्षमः ॥ गृहाणेमांविभू

रूंगा ॥ ५४ ॥ ऐसे मन में ही विचारकर उस सन्तशिरोमणि ने पिशाचसे कहा कि रे पापिन् ! तू पाप दुराने के लिये इस विमलोदक सरोवर में स्नान कर ॥ ५५ ॥ हे पिशाच ! इस तीर्थ के प्रभाव से व कपर्दीश्वरके दर्शन से तेरा पिशाचभाव क्षीणहोकर आजही विनष्टहोजावेगा ॥ ५६ ॥ इसभांति मुनिका वचन सुनकर प्रसन्न चित्त दोनों हाथ जोड़े हुये उस प्रेतने उस प्रसन्नमन मुनिके नमस्कार कर कहा॥ ५७॥ कि, हे मुनिसत्तम, नाथ ! मैं पीनेको भी पानी नहीं पाताहूं तो नहाने की क्या वार्त्ता है क्योंकि यहां जलके देवता जलको रखाते हैं ॥ ५८ ॥ इस लिये यहां पीनेकी भी क्या वार्त्ता है बरन पानीका छूना ही दुर्लभ है ऐसा प्रेतका वचन सुनकर

वह बहुत अधिक प्रसन्न हुवा॥ ५९ ॥ और जगत् का उद्धार करने को समर्थ तपस्वी उससे बोला कि तू इस विभूतिको ले व ललाट पाट में कर याने लगाले ॥ ६० ॥ हे प्रेत ! आश्चर्य्य है कि, इस विभूतिमाहात्म्य से कोई भी कहीं भी किसीकी भी व महापापी की भी बाधा नहीं करता है ॥ ६१ ॥ व विभूतिधारणरूप पाशुपत अस्त्रसे डरे हुये यमराजके गण महापापीके भी भाल (माथ) को भस्मसे उज्ज्वल देखकर भागजातेहैं ॥ ६२ ॥ जैसे बटोही लोग जलाशयको मुर्दाके कङ्कालादिकों से अङ्कित देखकर दूरचलेजाते हैं वैसेही भस्माङ्कितभालवाले को देखकर यमके किङ्कर भागजाते हैं ॥ ६३ ॥ और सब ओर हिंसक जन्तुभी शिवमन्त्रों से विभूति के द्वारा देहकी रक्षाकिये हुये नियमी नरोत्तमके समीप नहीं जाते हैं ॥ ६४ ॥ जो जन शिवमन्त्रसे पवित्रित भस्मको भक्ति से माथ छाती और बाहोंके मूलमें

तिन्त्वंललाटफलकेकुरु ॥ ६० ॥ अस्माद्विभूतिमाहात्म्यात्प्रेतकोपिनकुत्रचित ॥ बाधाङ्करोतिकस्यापि महापातकिनोप्यहो ॥ ६१ ॥ भालंविभूतिधवलंविलोक्ययमकिङ्कराः ॥ पापिनोपिपलायन्तेभीताःपाशुपतास्त्रतः ॥ ६२ ॥ अस्थिध्वजाङ्कितंदृष्ट्वायथापान्थाजलाशयम् ॥ दूरयन्तितथाभस्मभालाङ्कंयमकिङ्कराः ॥ ६३ ॥ कृतभूतितनुत्राणंशिवमन्त्रैर्नरोत्तमम् ॥ नोपसर्पन्तिनियतमपिहिंस्राःसमंततः ॥ ६४ ॥ भक्त्याबिभर्तियोभस्मशिवमन्त्रपवित्रितम् ॥ भालेवक्षसिदोर्मूलेनतंहिंसन्तिहिंसकाः ॥ ६५ ॥ सर्वेभ्योदुष्टसत्त्वेभ्योयतोरक्षेदहर्निशम् ॥ रक्षेत्येषाततःप्रोक्ताविभूतिर्भूतिकृद्यतः ॥ ६६ ॥ भासनाद्भर्त्सनाद्भस्मपांसुःपांसुत्वदायतः ॥ पापानांक्षारणात्क्षारोबुधैरेवन्निरुच्यते ॥ ६७ ॥ गृहीत्वाधारमध्यात्सभस्मप्रेतकरेऽर्पयत् ॥ सोप्यादरात्समादायभालदेशेन्यवेशयत् ॥ ६८ ॥ विभूतिधारिणंवीक्ष्यपिशाचंजलदेवताः ॥ जलावगा

धारण करता है उसको हिंसक (घातक) लोग नहीं मारते हैं ॥ ६५ ॥ जिससे यह सब दुष्ट वनवासी जन्तुओंसे रक्षाकरतीहै उससे रक्षा इस नामसे कही गई है व जिससे ऐश्वर्य्य करनेवाली है उससे विभूति कहाती है ॥ ६६ ॥ और प्रकाश पसारने से व अज्ञानका भर्त्सन करने से इसका भस्म नामहै व जिससे यह पापभावके खण्डन करनेवाली है उससे पांसुदाहै और पापोंके झारडालनेसे क्षार है इसभांति यह विभूति पण्डितों करके अर्थ समेत नामोंसे कहीजाती है ॥ ६७ ॥ इसभांति निर्वचन (नामार्थ) कर उस मुनिने आधारसे भस्म लेकर प्रेतके हाथमें दिया और उसने भी आदरसे भलीभांति लेकर भालदेश में लगालिया ॥ ६८ ॥ व विभूति

लगाये हुये उस पिशाचको पानीके भीतर पैठने में परायण देखकर जलके देवोंने न मने किया ॥ ६९ ॥ और जबतक यह स्नानकर व जलपानकर उस सरोवरसे बाहर निकले तबतक पिशाचभाव दूर चलागया व और वह दिव्यदेहको प्राप्तभया ॥ ७० ॥ अनन्तर दिव्यमाला व वस्त्रोंको धारेहुये व दिव्यसुगन्धोंका अनुलेपन लगाये हुये वह दिव्य विमानमें भलीभांति चढ़कर पवित्र या पवन संबंधी आकाश मार्गको प्राप्तहुवा ॥ ७१ ॥ और आकाशमें जातेहुये उसने उस तपस्वी के नमस्कार किया व बहुत ऊंचे स्वरसे कहा कि हे अपाप, ऐश्वर्य्यसम्पन्न ! मै आप करके पाप से छुड़ायागयाहूं ॥ ७२ ॥ सब ओर से अत्यन्त निन्दित उस कदर्थ्ययोनित्व

हनपरंवारयाश्चक्रिरेनतम् ॥ ६९ ॥ स्नात्वापीत्वासनिर्गच्छेद्यावत्तस्माज्जलाशयात् ॥ तावत्पैशाच्यमगमद्दिव्यदेहमवापच ॥ ७० ॥ दिव्यमालाम्बरधरोदिव्यगन्धानुलेपनः ॥ दिव्ययानंसमारुह्यवर्त्मप्राप्तोथपावनम् ॥ ७१ ॥ गच्छताते नगगनेसतपस्वीनमस्कृतः ॥ प्रोच्चैःप्रोवाचभगवन्मोचितोस्मित्वयानघ ॥ ७२ ॥ तस्मात्कदर्ययोनित्वादतीवपरिनिन्दितात् ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्दिव्यंदेहमवाप्तवान् ॥ ७३ ॥ पिशाचमोचनंतीर्थमद्यारभ्यसमाख्यया ॥ अन्येषामपिपैशाच्यमिदंस्नानाद्धरिष्यति ॥ ७४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेमहापुण्येयेस्नास्यन्तीहमानवाः ॥ पिण्डांश्चनिर्वपिष्यन्ति सन्ध्यातर्पणपूर्वकम् ॥ ७५ ॥ दैवात्पैशाच्यमापन्नास्तेषांपितृपितामहाः ॥ तेपिपैशाच्यमुत्सृज्ययास्यन्तिपरमांगतिम् ॥ ७६ ॥ अद्यशुक्लचतुर्दश्यांमार्गेमासितपोनिधे ॥ अत्रस्नानादिकंकार्यंपैशाच्यपरिमोचनम् ॥ ७७ ॥ इमांसांवत्सरीं यात्रांयेकरिष्यन्तिमानवाः ॥ तीर्थप्रतिग्रहात्पापान्निःसरिष्यन्तितेनराः ॥ ७८ ॥ पिशाचमोचनेस्नात्वाकपर्दीशंस

से छूटा हुवा मै इसतीर्थ के माहात्म्य से दिव्यदेहको प्राप्तभयाहूं ॥ ७३ ॥ आज से लगाकर भलीभांति नाम से प्रसिद्ध हुवा यह पिशाचमोचनतीर्थ स्नान मात्र से अन्य लोगों के भी पिशाचभाव को हरलेगा ॥ ७४ ॥ व जो मनुष्य यहां इस महापुण्य तीर्थ में स्नानकरेंगे व संध्या तर्प्पणपूर्वक पिंडा पारेंगे उनके पिता व पितामहादि पितर ॥७५॥ जो कि दैवयोगसे पिशाचभाव को प्राप्तहोवें वे भी पैशाच्यको परित्यागकर उत्तम गति को जावेंगे ॥ ७६ ॥ हे तपोनिधे ! आज अगहन मासकी सुदी चतुर्दशी में पैशाच के परिमोचन करनेवाला स्नान आदि यहां करने योग्य है ॥ ७७ ॥ जे मनुष्य इस वार्षिकी यात्रा को करेंगे वे नर तीर्थ में दानलेने के पाप से

निकल जावेंगे ॥ ७८ ॥ पिशाचमोचन तीर्थ में स्नानकर व कपर्दीश्वर को भली भांति पूजकर और यहां अन्नदानकर नर अन्यत्रभी निडर होवेंगे ॥ ७९ ॥ व अगहन सुदी चतुर्दशी तिथि में कपर्दीश्वर के समीप पिशाचमोचन तीर्थमे स्नानकर अन्यत्रभी मरने से पिशाचभाव को न प्राप्तहोवेंगे ॥ ८० ॥ ऐसे कहकर उस तपोधनी के बारबार नमस्कार कर वह महाभाग दिव्यपुरुष दिव्यगति को प्राप्तहोगया ॥ ८१ ॥ हे घटोद्भव अगस्त्यजी ! उस बड़े आश्चर्य्यको देखकर वह तपोधनभी कपर्दीश्वर लिंगकी पूजाकर काल से कैवल्य मुक्ति को पाताभया ॥ ८२ ॥ हे महामुने ! तबसे लगाकर सब पापहारी पिशाचतीर्थ काशी में परम प्रसिद्धि को पहुँचगया ॥ ८३ ॥ व पि-

मर्च्यंच ॥ कृत्वातत्रान्नदानञ्च नरोन्यत्रापिनिर्भयाः ॥ ७९ ॥ मार्गशुक्लचतुर्दश्यांकपर्दीश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वान्यत्रापिमरणान्नपैशाच्यमवाप्नुयुः ॥ ८० ॥ इत्युक्त्वादिव्यपुरुषोभूयोभूयोनमस्यतम् ॥ तपोधनंमहाभागोदिव्यां गतिमवाप्तवान् ॥ ८१ ॥ तपोधनोपितद्दृष्ट्वामहाश्चर्यंघटोद्भव ॥ कपर्दीश्वरमाराध्यकालान्निर्वाणमाप्तवान् ॥ ८२ ॥ पिशाचमोचनंतीर्थंतदारभ्यमहामुने ॥ वाराणस्यांपराख्यातिमगमत्सर्वपापहृत् ॥ ८३ ॥ पैशाचमोचनेतीर्थेसम्भोज्यशिवयोगिनम् ॥ कोटिभोज्यफलंसम्यगेकैकपरिसंख्यया ॥ ८४ ॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंनरोनियतमानसः ॥ भूतैःप्रेतैःपिशाचैश्चकदाचिन्नाभिभूयते ॥ ८५ ॥ बालग्रहाभिभूतानांबालानांशान्तिकारकम् ॥ पठनीयंप्रयत्नेनमहाख्यानमिदंपरम् ॥ ८६ ॥ इदमाख्यानमाकर्ण्यगच्छन्देशान्तरंनरः ॥ चोरव्याघ्रपिशाचाद्यैर्नाभिभूयेतकुत्रचित् ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपिशाचमोचनमहिमकथनंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ ॥

शाचमोचन तीर्थके समीप शिवयोगीको भलीभांति खिलापिलाकर क्रमसे एक एककी परिसंख्या (गंती) से करोड़ ब्रह्मभोजका फल अच्छे प्रकारसे होताहै ॥ ८४ ॥ सावधान मनुष्य इस पुण्यरूप अध्यायको सुनकर भूत प्रेत और पिशाचोंसे कभी नहीं दबायाजाताहै ॥ ८५ ॥ व पूतनादि बालग्रहोंसे तिरस्कृत (दबेहुये) बालकोंकी शांति का करनेवाला यह उत्तम महाख्यान बड़े यत्नसे पढ़ने योग्यहै ॥ ८६ ॥ व इस आख्यानको भलीभांति सुनकर देशांतरको जाताहुवा नर चोर बाघ और पिशाचादिकोंसे कहीं न तिरस्कार पावे ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपिशाचमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५४ ॥

दो॰। पचपनके अध्याय में काशी महिमा उक्त। पिङ्गलादिगण कृत विविध लिंगाराधनयुक्त॥ हे कुम्भयोने! जे अन्यभी गण काशीमें थे उन्होंने वहां जिन लिंगोंको किया उन सबको भी तुमसे कहूंगा तुम सुनो॥ १॥ कि पिंगलाख्यगण ने कपर्दीश्वरसे उत्तर दिशामें पिंगलाख्येश्वर नामक शिवलिंगकी प्रतिष्ठा किया॥ २॥ उसके दर्शनमात्र से पापों का विनाश होजाता है व देवोंके देव त्रिशूलधारी महादेवजी के परमप्यारे॥ ३॥ वीरभद्रजी आजतकभी अचलहोकर वीरभद्रेश्वर लिंग को ध्यान करतेहैं उसके दर्शन मात्रसे वीरसिद्धि बहुतही होती है॥४॥ और अविमुक्तेश्वरसे पश्चिमदिशामें वीरभद्रेश्वरको भलीभांति पूजकर मनुष्य संग्राममें भंगको

स्कन्दउवाच॥ अन्येपिचगणास्तत्रकाश्यांलिङ्गानिचक्रिरे॥ तांश्चतेकथयिष्यामिकुम्भयोनेनिशामय॥ १॥ गणेनपिङ्गलाख्येनपिङ्गलाख्येशसंज्ञितम्॥ लिङ्गंप्रतिष्ठितंशम्भोःकपर्दीशादुदग्दिशि॥ २॥ तस्यदर्शनमात्रेण पापानांजायतेक्षयः॥ वीरभद्रोमहाप्रीतोदेवदेवस्यशूलिनः॥ ३॥ वीरभद्रेश्वरंलिङ्गंध्यायेदद्यापिनिश्चलः॥ तस्य दर्शनमात्रेणवीरसिद्धिःप्रजायते॥ ४॥ अविमुक्तेश्वरात्पश्चाद्वीरभद्रेश्वरंनरः॥ समर्च्यनरणेभङ्गंकदाचिदपिचाप्नु यात॥ ५॥ वीरभद्रःस्वयंसाक्षाद्वीरमूर्तिधरोमुने॥ संहरेद्विघ्नसंघातमविमुक्तनिवासिनाम्॥ ६॥ भद्रयाभद्रकाल्या चभार्ययाशुभयायुतम्॥ वीरभद्रंनरोभ्यर्च्यकाशीवासफलंलभेत्॥ ७॥ किरातेनकिरातेशंलिङ्गंकाश्यांप्रतिष्ठितम्॥ केदाराद्दक्षिणेभागेभक्तानामभयप्रदम्॥ ८॥ चतुर्मुखोगणःश्रीमान्वृद्धकालेशसन्निधौ॥ चतुर्मुखेश्वरंलिङ्गंध्याये दद्यापिनिश्चलः॥ ९॥ भक्ताश्चतुर्मुखेशस्यचतुराननवद्दिवि॥ पूज्यन्तेसुरसङ्घातैःसर्वभोगसमन्विताः॥ १०॥

कभी न प्राप्तहोवे॥ ५॥ हे मुने! साक्षात् श्रीवीरभद्रजी आपही काशीवासी जनोंके विघ्नसमूहका विनाशकरें॥ ६॥ और मंगलमयी शुभकारिणी भद्रकाली स्त्री से संयुत श्रीवीरभद्रजीको सामने से पूजकर नर काशीवासका फल पावे॥ ७॥ व किरातगणने केदारेश्वरके दक्षिण ओर काशीमें भक्तोंके अभयदायक किरातेश्वर लिंगकी प्रतिष्ठाकिया॥ ८॥ व अबतक भी निश्चलहुवा श्रीमान् चतुर्मुख नामक गण चतुर्मुखेश्वर लिंगको ध्यानधरता है॥ ९॥ उस चतुर्मुखेश्वरके भक्तलोग सब

भोगसे संयुत होकर स्वर्ग मे देवसमूहोंसे ब्रह्माके समान पूजे जाते हैं ॥ १० ॥ व कुबेरेश्वर के समीप में निकुम्भगणसे पूजेहुये निकुम्भेश्वर को सब ओरसे देखकर पूजाकर ग्रामको जाताहुवा मनुष्य कार्य्यकी सिद्धिको प्राप्तहोता है और शिवलोक में पूजाजाताहै ॥ ११ ॥ व काशीमें महादेवजीसे दक्षिण पञ्चाक्षेश्वर महालिंगको भली भांति पूजकर जातिस्मरणको प्राप्त होवे याने उसके पूर्वजन्मोंकी सुधिहोआवे ॥ १२ ॥ व काशी में अन्तर घरके द्वारपर भारभूतेश नामक गणेश्वर से पूजेहुये भारभूतेश्वर लिंग को ध्यानधर मनुष्य शिवलोक में निवासकरे ॥ १३ ॥ जिन्होंने काशी में भारभूतेश्वर लिंग को नहीं देखा वे विनाफलके वृक्षोंकी नाईं भूमिके भारभूत

निकुम्भेश्वरमालोक्यनिकुम्भगणपूजितम् ॥ पूजयित्वाव्रजन्ग्रामंकार्यसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ कुबेरेशसमीपेतुशिवलोकेमहीयते॥ ११ ॥ पञ्चाक्षेशंमहालिङ्गंमहादेवस्यदक्षिणे ॥ समभ्यर्च्यनरःकाश्यांजातिस्मृतिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ भारभूतेश्वरंलिङ्गंभारभूतगणार्चितम् ॥ अन्तर्गृहोत्तरद्वारिध्यात्वाशिवपुरेवसेत् ॥ १३ ॥ भारभूतेश्वरंलिङ्गंयैःकाश्यांनविलोकितम् ॥ भारभूताःपृथिव्यास्तेऽवकेशिनइवद्रुमाः ॥ १४ ॥ गणेनत्र्यक्षसंज्ञेनलिङ्गंत्र्यक्षेश्वरंपरम् ॥ त्रिलोचनपुरोभागेशील्यतेद्यापिकुम्भज ॥ १५ ॥ तस्यलिङ्गस्ययेभक्तास्तेतुदेहावसानतः ॥ त्र्यक्षाएवप्रजायन्तेनात्रकार्याविचारणा ॥ १६ ॥ क्षेमकोनामगणपःकाश्यांमूर्त्तिधरःस्वयम् ॥ विश्वेश्वरंसर्वगतंध्यायेदद्यापिनिश्चलः ॥ १७ ॥ क्षेमकंपूजयेद्यस्तुवाराणस्यांमहागणम् ॥ विघ्नास्तस्यप्रलीयन्तेक्षेमंस्याच्चपदेपदे ॥ १८ ॥ देशान्तरंगतोयस्तुतस्यागमनकाम्यया ॥ क्षेमकःपूजनीयोत्रक्षेमेणाशुसआव्रजेत् ॥ १९ ॥ लाङ्गलीश्वरमालोक्यलिङ्गंलाङ्गलिनार्चितम् ॥ विश्वेशा

हैं ॥ १४ ॥ हे अगस्त्यजी ! अबतक भी, त्रिलोचन के अग्रभाग में त्र्यक्ष नामक गणसे त्र्यक्षेश्वर उत्तम लिंग ध्यायाजाता है ॥ १५ ॥ और उस लिंगके जे भक्तहैं वे देहांत में त्रिनेत्र शिवही होजाते हैं इस में विचार न करना चाहिये ॥ १६ ॥ व काशी में मूर्तिधारी क्षेमक नाम गणेश्वर आजभी निश्चलहोकर सर्वगत सर्वव्यापक विश्वनाथजी का ध्यान करता है ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य काशीपुरी में क्षेमक नामक महागणको पूजे उस के सब विघ्न विनष्ट होजाते हैं व क्षण क्षण मे कल्याण होता है ॥ १८ ॥ व जो विदेश को गयाहो उसके आनेकी कामना से यहां क्षेमक गण पूजनीय हैं क्योंकि वह परदेशी कल्याण के साथ अपने घर को चलाआवे ॥ १९ ॥ व श्री-

विश्वनाथ जी के उत्तरभाग में लांगलीगण से पूजित लागलीश्वर को देखकर मनुष्य रोगसेवी न होवे ॥ २० ॥ एकबार श्रीलांगलीश्वरकी पूजाकर पंचलांगलदान से उत्पन्न उत्तम सम्पूर्ण सब संपत्ति करनेवाले फलको पावे ॥ २१ ॥ व विराधगणसे पूजित विराधेश्वरकी पूजाकर सब अपराधों से संयुतभी मनुष्य कहीं भी नहीं अपराध को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ और काशीवासी जनो से जो दिन दिन अपराध किया जाता है वह विराधेश्वरकी अच्छी पूजा से शीघ्रही विनाशको प्राप्त होजाता है ॥ २३ ॥ व दण्डपाणिजी से नैर्ऋत्यकोण में बडे यत्न से विराधेश्वर के नमस्कार कर सब अपराधों से छूटजाता है इस में संशय नही है ॥ २४ ॥

दुत्तरेभागेननरोरोगभाग्भवेत्॥ २० ॥ लाङ्गलीशंसकृत्पूज्यपञ्चलाङ्गलदानजम् ॥ फलंप्राप्नोत्यविकलंसर्वसम्पत्करं परम् ॥ २१ ॥ विराधेश्वरमाराध्यविराधगणपूजितम् ॥ सर्वापराधयुक्तोपिनापराध्यतिकुत्रचित् ॥ २२ ॥ दिनेदिने. पराधोयःक्रियतेकाशिवासिभिः ॥ सयातिसंक्षयंक्षिप्रंविराधेशसमर्चनात् ॥ २३ ॥ नैर्ऋतेदण्डपाणेस्तुविराधेशंप्रयत्नतः ॥ नत्वासर्वापराधेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ २४ ॥ सुमुखेशंमहालिङ्गंसुमुखाख्यगणार्चितम् ॥ पश्चिमाभिमुखंलिङ्गंदृष्ट्वापापैःप्रमुच्यते ॥ २५ ॥ स्नात्वापिलिपिलातीर्थेसुमुखेशंविलोक्यच ॥ सदैवसुमुखंपश्येद्धर्मराजंनदुर्मुखम् ॥ २६ ॥ आषाढिनार्चितंलिङ्गमाषाढीश्वरसंज्ञिकम् ॥ दृष्ट्वाषाढ्यांनरोभक्त्यासर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ २७ ॥ उदीच्यांभारभूतेशादाषाढीशंसमर्चयन्॥ आषाढ्यांपञ्चदश्यांवैनपापैःपरितप्यते ॥ २८ ॥ शुचिशुक्लचतुर्दश्यांपञ्चदश्यामथापि.

और जो कि सुमुखाख्य गण से भलीभांति पूजित सुमुखाख्येश्वरनामक पश्चिमाभिमुख महालिंग है उस लिंग को देखकर सब पापों से छूटजाता है ॥ २५ ॥ व पिलिपिलातीर्थ में स्नानकर फिर सुमुखेश्वर के दर्शन कर सदैव धर्मराज को सुमुख देखे दुर्मुख न देखे याने उस से धर्मराजजी भी प्रसन्न रहते हैं ॥ २६ ॥ व आषाढि गण से पूजित आषाढीश्वर संज्ञक लिंग को भक्ति से आषाढ की पूर्णमासी में देखकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ २७ ॥ व भारभूतेश्वर से उत्तर दिशा में आषाढीश्वर को आषाढकी पूर्णिमा में भलीभांति पूजताहुवाभी पापो से परितप्त न होवे ॥ २८ ॥ और आषाढ सुदी चतुर्दशी अथवा पूर्णमासी मे वार्षिकी यात्रा कर मनुष्य

पापों से हीन होजाता है ॥ २९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने! इस भांति जब ये गण और योगिनी सूर्य्यादि देव भी श्रीविश्वनाथ जी की प्रसन्नता के लिये अपने नाम से लिंगों को थापकर श्रीकाशीपुरी में टिकगये तब ॥ ३० ॥ काशीपुरी की प्रवृत्ति के लिये श्रीविश्वनाथजी ने फिर चिंतना किया कि आज किस हितकारी कोही पठाकर उत्तम सुख को सेवनकरूं ॥ ३१ ॥ योगिनियां सूर्य्य ब्रह्मा और शंकुकर्णादि गण समुद्र से नदियों की नाईं काशी से लौटकर न आये ॥ ३२ ॥ यह निश्चय है कि जे काशी में पैठे हैं वे मेरे उदर मे पैठगये हैं इससे प्रज्वलित अग्नि में पैठीहुई हवि के समान उनका निकलना नहीं है ॥ ३३ ॥ व लिंगपूजा में स्नेहसंयुत मन-

वा ॥ कृत्वासांवत्सरींयात्रामनेनाजायतेनरः ॥ २९ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मुनेगणेषुचैतेषुवाराणस्यांस्थितेष्विति ॥ स्वनाम्नास्थाप्यलिङ्गानिविश्वेशपरितुष्टये ॥ ३० ॥ विश्वेशश्चिन्तयांचक्रेपुनःकाशीप्रवृत्तये ॥ कंवाहितंप्रहित्याद्यनिर्वृतिंपरमाम्भजे ॥ ३१ ॥ योगिन्यस्तिग्मगुर्वेधाःशङ्कुकर्णमुखागणाः ॥ व्यावृत्यनागताःकाश्याःसिन्धुगाइवसिन्धवः ॥ ३२ ॥ ध्रुवंकाश्यांप्रविष्टायेतेप्रविष्टाममोदरे ॥ तेषांविनिर्गमोनास्तिदीप्ताग्नौहविषामिव ॥ ३३ ॥ येषांहिसंस्थितिः काश्यांलिङ्गार्चनरतात्मनाम् ॥ तएवममलिङ्गानिजङ्गमानिनसंशयः ॥ ३४ ॥ स्थावराजङ्गमाःकाश्यामचेतनसचेतनाः ॥ सर्वेममैवलिङ्गानितेभ्योद्रुह्यन्तिदुर्धियः ॥ ३५ ॥ वाचिवाराणसीयेषांश्रुतौवैश्वेश्वरीकथा ॥ तएवकाशीलिङ्गानिवराण्यर्च्यान्यहंयथा ॥ ३६ ॥ वाराणसीतिकाशीतिरुद्रावासइतिस्फुटम् ॥ मुखाद्विनिर्गतंयेषान्तेषांनप्रभवेद्यमः ॥ ३७ ॥ आनन्दकाननंप्राप्ययेनिरानन्दभूमिकाम् ॥ अन्यांहृदापिवाञ्छन्तिनिरानन्दाःसदात्रते ॥ ३८ ॥ अद्यैववास्तुमरणंबहुका

वाले जिन लोगों की भलीभांति स्थिति या मरना काशी में है वेही मेरे जंगम (चलनेवाले) लिंग हैं इस में संशय नहीं है ॥ ३४ ॥ स्थावर जंगम जड़ और सचेतन जे सब कोई काशी में हैं वे मेरे लिंग हैं उन से दुर्बुद्धि लोग द्रोह करते हैं ॥ ३५ ॥ जिनके वचन में काशीपुरी व कानमें श्रीविश्वनाथ जी की कथा है वे श्रेष्ठ काशी के लिंग मेरी नाईं पूजने योग्य हैं ॥ ३६ ॥ वाराणसी ऐसे काशी ऐसे रुद्रावास ऐसे जिनके मुखसे स्पष्ट विशेषसे निकला है उनके लिये यमराज न प्रभुता करे याने समर्थ न होवे ॥ ३७ ॥ और निकलता है आनन्द जिससे ऐसे निरानन्दभूमिवाले आनन्दवन (काशी) को प्राप्त होकर जे अन्यपुरी को मन से भी चाहते हैं वे इस लोक में या

यहां सदैव आनन्दसे हीन होते हैं ॥ ३८ ॥ व आजही अथवा बहुत कालान्तरमें मरनाहो परन्तु कलिकालके डरसे लोगोंको कभी न काशी त्यागना चाहिये ॥ ३९ ॥ होनहारे भाव अवश्यकर क्षण क्षणमें होवेंगे इसलिये वे अज्ञानीलोग लक्ष्मी जी के स्थान समेत श्रीकाशीपुरीको क्यों त्याग करते हैं ॥ ४० ॥ काशीमें क्षण क्षण या पग पग में हजारों विघ्न सहने योग्य हैं यह श्रेष्ठ है और अन्यत्र कहीं निर्विघ्न राज्य की भी न वाञ्छा करे ॥ ४१ ॥ व क्षण क्षणमें संपत्तियां कितने निमेषकाल तक भलीभांति भोग करने योग्य होती हैं याने एक निमेष भी नहीं क्योंकि लक्ष्मी जी चञ्चलतासे सदैव एकत्र नहीं रहतीहैं परन्तु काशीपुरी इस और उस लोकमेंभी

लान्तरेपिवा ॥ कलिकालभियापुंसांकाशीत्याज्यानकर्हिंचित ॥ ३९ ॥ अवश्यंभाविनोभावाभविष्यन्तिपदेपदे ॥ सलक्ष्मी निलयांकाशींत्यजन्तिकुतोधियः ॥ ४० ॥ वरंविघ्नसहस्राणिसोढव्यानिपदेपदे ॥ काश्यांनान्यत्रनिर्विघ्नंवाञ्छेद्राज्यमपिक्वचित् ॥ ४१ ॥ कियन्निमेषसम्भोग्याःसन्तिलक्ष्म्यःपदेपदे ॥ परंनिरन्तरसुखाऽमुत्राप्यत्रापिकाशिका ॥ ४२ ॥ विश्वनाथोह्यहंनाथःकाशिकामुक्तिकाशिका ॥ सुधातरङ्गास्वर्गङ्गात्रय्येषाकिन्नयच्छति ॥ ४३ ॥ पञ्चक्रोश्यापरिमितातनुरेषापुरीमम ॥ अविच्छिन्नप्रमाणर्धिर्भक्तनिर्वाणकारणम् ॥ ४४ ॥ संसारभारखिन्नानांयातायातकृतांसदा ॥ एकैवमेपुरीकाशीध्रुवंविश्रामभूमिका ॥ ४५ ॥ मण्डपःकल्पवल्लीनांमनोरथफलैरलम् ॥ फलितःकाशिकाख्योयंसंसाराध्वजुषांसदा ॥ ४६ ॥ चक्रवर्तेरियंछत्रंविचित्रंसर्वतापहृत ॥ काशीनिर्वाणराजस्यममशूलोच्चदण्डवत् ॥ ४७ ॥ निर्वाण

निरन्तर सुखरूप है ॥ ४२ ॥ मैं विश्वनाथ नाथ व मुक्तिकी प्रकाशिका काशिका और अमृतलहरवाली स्वर्गसम्बन्धिनी गंगा यह त्रयी याने तीनोंका एकत्र होना क्या नहीं देता है याने सब फल देताहै ॥ ४३ ॥ पांच कोशोंसे परिमाणवाली मेरी देह यह काशीपुरी अखण्ड समृद्धिसमेत और भक्तोंकी मुक्ति का कारणहै ॥ ४४ ॥ और यह निश्चयहै कि सदा आना जानाकरते याने जन्मधरते व मरतेहुये व संसारभारसे खिन्न मनुष्योंकी एक विश्रामभूमि यह मेरी पुरी काशीही है ॥ ४५ ॥ और संसारमार्गसेवी या उसकी प्रीतिसंयुत लोगों के लिये यह काशीनामक कल्पलताओंका मण्डप सदा मनोरथ फलोंसे बहुतही फलवालाहै ॥ ४६ ॥ व यह श्रीकाशी

में भेदके लिये प्रभुता करताहै ॥ ५६ ॥ और जिससे मेरे रूपवाले उतने वे सब वहां प्रवेश पागये हैं उससे मेरे आनेके हेतु अवश्यही यत्नकरेंगे॥ ५७ ॥ व जे वहां टिके हैं वे श्रेष्ठहैं इससे अपने पार्श्ववर्ती अन्यगणोंको भी पठाताहूं तदनन्तर मैं भी चलाजाऊंगा ॥ ५८ ॥ इसभांति विचारकर महादेवजी ने गणेशजीको बुलाकर और हे पुत्र ! तुम यहांसे काशीको जावो ऐसा कहकर पठादिया ॥ ५९ ॥ कि गणों समेत वहां टिकेहुये भी तुम संसिद्धिके लिये यत्नकरो व हमारा निर्विघ्नकरो और दिवोदासराजामें भलीभांति विघ्नकरो ॥ ६० ॥ तदनन्तर शिवजीकी आज्ञा माथ में धर स्थिति के जाननेवाले वेगवान् गणनाथजी ने टिकनेके हेतु काशीको प्रस्थान

न्तरंविना ॥ ५६ ॥ लब्धप्रवेशास्तावन्तस्तेसर्वेमत्स्वरूपिणः ॥ यतिष्यन्तियतोवश्यंमदागमनहेतवे ॥ ५७ ॥ अन्यानपिप्रेषयामिमत्पार्श्वपरिवर्तिनः ॥ येतेतत्रस्थिताःश्रेष्ठाअपिगन्तास्म्यहंततः ॥ ५८ ॥ विचार्येतिमहादेवःसमाहूयगजाननम् ॥ प्राहिणोत्कथयित्वेतिगच्छकाशीमितःसुत ॥ ५९ ॥ तत्रस्थितोपिसंसिद्ध्यैयतस्वसहितोगणैः ॥ निर्विघ्नंकुरुचास्माकंनृपेविघ्नंसमाचर ॥ ६० ॥ आधायशासनंमूर्ध्निगणाधीशोथधूर्जटेः ॥ प्रतस्थेत्वरितःकाशींस्थितिज्ञःस्थितिहेतवे ॥६१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेकाशीवर्णनगणेशप्रेषणंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५५ ॥

स्कन्दउवाच ॥ अथेशाज्ञांसमादायगजवक्त्रःप्रतस्थिवान् ॥ शम्भोःकाश्यागमोपायंचिन्तयन्मन्दराद्रितः ॥ १ ॥ प्राप्यवाराणसींतूर्णमाखुस्यन्दनगोविभुः ॥ वाडवींमूर्तिमालम्ब्यप्राविशच्छकुनैस्तुतः ॥ २ ॥ नक्षत्रपाठकोभूत्वा

किया ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते काशीवर्णनगणेशप्रेषणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । छप्पन के अध्यायमें गणपति काशी जाय। ब्राह्मण रूप अनूप धरि मायादीन दिखाय॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, तदनन्तर शंकर जी की आज्ञा भली भांति लेकर काशी में आनेका उपाय विचारते हुये गजमुख गणेश जी ने मन्दराचल से प्रस्थान किया ॥ १ ॥ और मूषकरथ से चलनेवाले समर्थ श्रीगणेशजी ने ब्राह्मणकी देह धरकर व सुमंगलसूचक शकुनों से स्तुत होकर काशी में पहुँचकर प्रवेश किया ॥ २ ॥ तब काशीपुरीवासी जनों की प्रीति को सब ओर से प्राप्त

पुरी कैवल्यराज्यचक्रवर्तीका मेरे ऊंचे त्रिशूलरूप दण्डावाला छत्र है ॥ ४७ ॥ व जे पुण्यवान् पुरुष लीलासे मुक्ति सम्पत्तिकी वाञ्छा करते हैं उन मनुष्योंको निरन्तर सुख की प्राप्तिके लिये काशी न त्यागना चाहिये ॥ ४८ ॥ जे कि अन्यत्र निरन्तर वनवासी हैं वे मेरी काशीमें शोभनस्वाद समेत मोक्षसंपत्तिसंयुत फलों को पाते हैं ॥ ४९ ॥ और जो काशीपुरी ममताहीन भी व निर्मोहहुये भी मुझको विशेषसे मोहती है वह विश्वविमोहिनी किनसे भलीभांति सुमिरने योग्य नहीं है अर्थात् सबसे सुमिरने योग्य है ॥ ५० ॥ व जिस काशी का मधुर नामभी परमानन्दका प्रकाशक है वह काशी ऐसे काशी ऐसे किन पुण्यवानोंसे नहीं जपी जाती है ॥ ५१ ॥ जे लोग

लक्ष्मींयेपुण्याःपरिवाञ्छन्तिलीलया ॥ निरन्तरसुखप्राप्त्यैकाशीत्याज्यानतैर्नृभिः ॥ ४८ ॥ ममानन्दवनेयेवैनिरन्त रवनौकसः ॥ मोक्षलक्ष्मीफलान्यत्रसुस्वादूनिलभन्तिते ॥ ४९ ॥ निर्ममञ्चापिनिर्मोहंयामामपिविमोहयेत् ॥ कैर्न संस्मरणीयासाकाशीविश्वविमोहिनी ॥ ५० ॥ नामापिमधुरंयस्याःपरानन्दप्रकाशकम् ॥ काश्याःकाशीतिकाशीति साकैःपुण्यैर्नजप्यते ॥ ५१ ॥ काशीनामसुधापानंयेकुर्वन्तिनिरन्तरम् ॥ तेषांवर्त्मभवत्येवसुधामवसुधामयम् ॥ ५२ ॥ ममतारहितस्यापिममसर्वात्मनोध्रुवम् ॥ तएवमामकालोकेयेकाशीनामजापकाः ॥ ५३ ॥ रहस्यमितिविज्ञायवाराण स्यागणेश्वरैः ॥ सब्रह्मयोगिनीब्रध्नैःस्थितंतत्रैवनान्यथा ॥ ५४ ॥ अन्यथाताश्चयोगिन्यःसरविःसपितामहः ॥ तेग णामांपरित्यज्यकथंतिष्ठेयुरन्यतः ॥ ५५ ॥ अतीवभद्रंसंजातंकाश्यान्तिष्ठत्सुतेषुहि ॥ एकोपिभेदेप्रभवेद्राज्येराज्या

काशीनामरूप अमृतको निरन्तर पान करते हैं उनकीही गली सुमन्दिर और सुभूमिमयी होती है ॥ ५२ ॥ यह निश्चयहै कि लोकमें जे लोग काशीनामके जपने वालेहैं वेही ममतारहित भी मुझ सर्वात्मा (सर्वव्यापक) के मामक याने स्वजन होते हैं अर्थात् उनको मैं अपना मानताहूं ॥ ५३ ॥ ऐसे काशीकी रहस्यको विशेषसे जानकर ब्रह्मा योगिनी और सूर्य्य समेत गणोंसे उसमेंही टिकागया है यह अन्य था नहीं है ॥ ५४ ॥ जो अन्यथा होता तो वे योगिनियां वह सूर्य्य वह ब्रह्मा और वे गण मेरा परित्यागकर अन्यत्र कैसे टिकते ॥ ५५ ॥ इससे काशीमें उनके टिकते हुयेही अत्यन्त कल्याण भलीभांति उत्पन्न हुआ व राज्यान्तर विना एकभी परराज्य

करते हुये वह प्रति घर के भीतर जानेवाले वृद्धज्योतिषी होकर नगर के बीच विचरने लगे ॥ ३ ॥ रात्रिभाग में मनुष्यों को स्वप्न दिखते हुये आपही प्रातःकाल उनके घरको जाकर बल निर्बल फलको कहते हैं ॥ ४ ॥ कि आपने आज रात्रि में जो स्वप्नविचेष्टित देखा उसकोही मैं आपके कौतुक उपजनेके लिये कहताहूं ॥ ५ ॥ कि रात के चौथे पहर में सोते हुये आपने एक बड़ाभारी कुण्ड देखा फिर उसमें डूबते उतराते हुये आप किनारे को गयेहो ॥ ६ ॥ व तुम उस जल के कीच में बहुत ही डूबे उतराने हो और इस दुःस्वप्नका फल अत्यन्त भयदायक है ॥ ७ ॥ व खेदहै कि आपसे भी जो काषाय (गेरुहारंग) वस्त्रवाला मुण्डा देखा गया है यह महात्मा

वृद्धःप्रत्यवरोधगः ॥ चचारमध्येनगरंपौराणांप्रीतिमावहन् ॥३॥ स्वयमेवनिशाभागेस्वप्नंसंदर्शयन्नृणाम् ॥ प्रातस्तेषा गृहान्गत्वातेषांवक्तिबलाबलम् ॥ ४ ॥ भवद्भिरद्यरात्रौयद्दृष्टंस्वप्नविचेष्टितम् ॥ भवत्कौतूहलोत्पत्त्यैतदेवकथयाम्य हम् ॥ ५ ॥ स्वपताभवतारात्रौतुर्येयामेमहाह्रदः ॥ अदर्शितत्रचभवान्मज्जन्मज्जंस्तटंगतः ॥ ६ ॥ तदम्बुपिच्छिले पङ्केमग्नोन्मग्नोसिभूरिशः ॥ दुःस्वप्नस्यास्यचमहान्विपाकोतिभयप्रदः ॥ ७ ॥ काषायवसनोमुण्डःप्रेक्ष्यहोभवतापि यः ॥ परितापंमहान्तेषजनयिष्यतिदारुणम् ॥ ८ ॥ रात्रौसूर्यग्रहोदृष्टोमहानिष्टकरोध्रुवम् ॥ ऐन्द्रंधनुर्द्वयंरात्रौयदलो किनतच्छुभम् ॥ ९ ॥ प्रतीच्यांरविरागत्यप्रोद्यन्तंव्योम्निशीतगुम् ॥ पातयामासभूपृष्ठेतद्राज्यभयसूचकम् ॥ १० ॥ युगपत्केतुयुगलंयुध्यमानंपरस्परम् ॥ यददर्शिनतद्भद्रंराष्ट्रभङ्गायकेवलम् ॥ ११ ॥ विशीर्यत्केशदशनंनीयमानञ्च दक्षिणे ॥ आत्मानंयत्समद्राक्षीःकुटुम्बस्यापिभीषणम् ॥ १२ ॥ प्रासादध्वजभङ्गोयस्त्वयैक्षतनिशात्यये ॥ राज्यक्षय

अतिदारुण परिताप को उपजावेगा ॥ ८ ॥ व रात्रि मे सूर्य्यग्रहण देखा गया है वह निश्चय से बड़ा अरिष्टकारक है और तुम ने रात में जो दो इन्द्र के धन्वा देखा वह शुभ नहीं हैं ॥ ९ ॥ व आपने ऐसा देखाहै कि सूर्य्यदेवने पश्चिममें आकर आकाश में उगते हुये चन्द्रमा को भूपृष्ठमें गिरा दिया है वह राज्य भयका सूचक है॥ १० ॥ व परस्पर लड़ताहुवा जो केतु युगल (दोको) एकत्र देखागया वह कल्याण नहीं है किंतु केवल राज्यभंग के लिये है ॥ ११ ॥ और टूटे फूटे बाल व दांतवा- ले अपना को जो तुमने दक्षिण दिशा में प्राप्त कियाहुवा देखा है वह कुटुम्ब का भी भयानक है ॥ १२ ॥ व तुमने रात्रि के अन्त में जो प्रासाद (देवमन्दिर या

महल) की ध्वजाका भंजन देखाहै उस को राज्यविनाशक व बड़े उत्पात के लिये निश्चित जानो ॥ १३ ॥ स्वप्न में क्षीरसागर की लहरों से नगरी डुबाई गई है इस से मैं तीनचार पाखों के द्वारा पुरवासियों की बड़ी शंका को संदेह करता हूं ॥ १४ ॥ हे महामते! स्वप्न में वानर विमान से जो तुम दक्षिण दिशा को प्राप्त कियेगये हो इस से पुरीका त्याग करदेनाही उस के वंचनका उपाय है ॥ १५ ॥ व रात्रि के अन्त में छूटेबालोंवाली विवस्त्र रोतीहुई जो एक स्त्री तुम से देखी गई है वह स्त्री सम्पत्ति के समान ऊपर को चलीगई है ॥ १६ ॥ व जो तुम करके देवमन्दिर का कलश गिरताहुवा देखागया है इस लिये कुछेक दिनों में राज्यभंग होगा ॥ १७ ॥

करंविद्धिमहोत्पातायनिश्चितम् ॥ १३॥ नगरीप्लावितास्वप्नेतरङ्गैःक्षीरनीरधेः॥ पक्षैस्त्रिचतुरैःशङ्केमहाशङ्कांपुरौकसाम् ॥ १४ ॥ स्वप्नेवानरयानेनयत्त्वमूढोसिदक्षिणाम् ॥ अतस्तद्वञ्चनोपायःपुरत्यागोमहामते ॥ १५ ॥ रुदतीयात्वयादृष्टामहिलैकानिशात्यये ॥ मुक्तकेशीविवसनासानारीश्रीरिवोद्गता॥ १६॥ देवालयस्यकलशोयत्त्वयावीक्षितःपतन्॥ दिनैःकतिपयैरेवराज्यभङ्गोभविष्यति ॥ १७ ॥ पुरीपरिवृतास्वप्नेमृगयूथैःसमन्ततः ॥ रोरूयमाणैरत्यर्थमासेनैवोद्वसीभवेत् ॥ १८ ॥ आतायियूकगृध्राद्यैःपुरीमुपरिचारिभिः ॥ सूच्यतेत्याहितंकिञ्चिद्ध्रुवमत्रनिवासिनाम् ॥ १९ ॥ स्वप्नोत्पातानितिबहून्स्वैरंसन्दर्श्यसन्नितस्ततः॥बहूनुच्चाटयांचक्रेसविघ्नेशःपुरौकसः ॥ २० ॥ केषांचित्पुरतोवादीद्ग्रहचारंप्रदर्शयन् ॥ एकराशिस्थिताःसौरिसितभौमानशोभनाः ॥२१ ॥ योयंधूमग्रहोऽयोम्निभित्त्वासप्तर्षिमण्डलम् ॥ प्रयातःपश्चिमामाशांसनाशायविशाम्पतेः ॥ २२ ॥ अतिचारगतोमन्दःपुनर्वक्राध्वसंस्थितः ॥ पापग्रहसमायुक्तोनयुक्तो

और स्वप्न में बहुतही बार बार रोते हुये कुक्कुरसमूहों से पुरी सब ओर घेरीगई है इस से एक मासमेंही उड़सी होवेगी ॥ १८ ॥ व पुरी के ऊपर उड़ते हुये चील्ह बक या घूघू और गृध्रादिकों से यहां के वासियों का कुछ अहित निश्चय से सूचित किया जाता है ॥ १९ ॥ इस भांति ऐसी वैसी बहुते स्वप्न के उत्पातों को कहते कहते हुये उन विघ्नेश (गणेश) जीने काशीपुरीवासी जनोंको उच्चाटन करदिया ॥ २० ॥ और ग्रहोंका चलना दिखातेहुये उन्होंने किसी लोगोंके आगे कहा कि एकराशिमें टिके शनि शुक्र और मंगल शुभ नहीं हैं ॥२१॥ व जो यह केतु सप्तर्षिमंडलका भेदनकर पश्चिम दिशाको गयाहै वह प्रजापालकके विनाशके लियेहै ॥ २२ ॥ व अति-

चार (राशिको उल्लंघनकर चलना) से चलाहुवा फिर वक्रमार्गमें संस्थित और पापग्रहों (राहु, केतु, मंगल) से समेत यह शनैश्चर यहां उचित नहीं इच्छा कियाजाता है ॥ २३ ॥ जो कि दिन बीते पर याने सायंकालमें जो यह भूमिकंप भलीभांति प्राप्त हुवा है वह पुरवासी मेरे भी हृदयके कंपको उत्पन्न करताहै ॥ २४ ॥ उत्तर व दक्षिण दिशामें वज्रपातके साथ बहुतही धाई हुई जो यह उल्का आकाशमे विलीन भी होगईहै वह शुभ नहीं है ॥ २५ ॥ जो कि चतुष्पथ में महामूलवाला यह पूज्य वृक्ष बड़े वायुवेग से उखाड़ा गया वह महान् उत्पात को कहता है ॥ २६ ॥ व सूर्य्योदयको पीछे से प्राप्त होकर पूर्वदिशा में सूखे वृक्ष के ऊपर यह उत्कट भयदायक काग

यमिहेष्यते ॥ २३ ॥ व्यतीतेवासरेयोयंभूकम्पःसमपद्यत ॥ कम्पंजनयतेऽतीवहृदोमेपिपुरौकसः ॥ २४ ॥ उदीच्यांदक्षिणाशायांयेयमुल्काप्रधाविता ॥ विलीनाचवियत्येवसनिर्घातंनसाशुभा ॥ २५ ॥ उन्मूलितोमहामूलोमहानिलरयेणयः ॥ चत्वरेचैत्यवृक्षोयंमहोत्पातंप्रशंसति ॥ २६ ॥ सूर्योदयमनुप्राप्यप्राच्यांशुष्कतरूपरि ॥ करटोरारटीत्येषकटूत्कटभयप्रदः ॥ २७॥ मध्येविपणियत्तूर्णंकौचिच्चारण्यचारिणौ ॥ मृगौमृगयतांयातौपौराणांपुरतोऽहितौ ॥ २८ ॥ रसालशालमुकुलंवीक्ष्यतेयच्छरद्यदः ॥ महाकालभयंमन्येप्यकालेपिपुरौकसाम् ॥ २९ ॥ साध्वसंजनयित्वेतिकेचिदुच्चाटिताःपुरः ॥ तेनविघ्नकृतापौराःकपटद्विजरूपिणा ॥३०॥ अथमध्येवरोधंसप्रविश्यनिजमायया ॥ दृष्टार्थमेवकथयन्स्त्रीणांविस्रम्भभूरभूत्॥३१॥तवपुत्रशतंजज्ञेसप्तोनंशुभलक्षणे॥ तेष्वेकस्तुरगारूढोबाह्याल्यांपतितोमृतः॥३२॥

कटुबानी से बारबार बोल रहाहै ॥ २७ ॥ व जिससे खोजते हुये जनों के होतेही याने उनका अनादर कर बीच बजार में वनचारी कोई दो मृग आगे से चले गये हैं उससे पुरवासियों के अनिष्टकारी हैं ॥ २८ ॥ जो कि शरद् ऋतु में यह आम्र और सर्जकी फूलती हुई कली देखी जातीहै इससे अकालमें भी पुरवासियों को महाकालका भय मानता हूँ ॥ २९ ॥ ऐसे डर या उद्वेग उपजाकर उन कपट ब्राह्मणरूपी विघ्नकर्ता गणेशजी ने किसी पुरवासियों को पुरीसे उच्चाटन करादिया॥३०॥ अनंतर अपनी माया से अंतःपुर (रनिवास) के मध्य में प्रवेश कर देखे अर्थ कोही कहते हुये वह स्त्रियों के विश्वासपात्र हुये ॥ ३१ ॥ हे शुभलक्षणे ! सातकम

सौ पुत्र उपजे हैं उनमें से घोडेपर चढ़ा व बाहरकी पंक्तिमें गिराहुवा एक मरगया है ॥ ३२ ॥ व यह गर्भवती स्त्री शोभन कन्या को उत्पन्न करेगी और यहही पहले दुर्भगाथी अब सुभगा हुई है ॥ ३३ ॥ व वहही यहाँ रानियों के बीच राजाकी परमप्यारी है राजा ने इसको अपने उरसे मुक्तालंकार याने हार दिया है ॥ ३४ ॥ और यहां यह तर्कणा कीजाती है कि पाँच सातही दिन हुये हैं तब प्रसन्नता समेत राजासे इसके लिये दो ग्राम देनेको कहेगये हैं ॥ ३५ ॥ इस भांति देखेहुये अर्थोंके कहने से वह ब्राह्मण रानियों के मान्य हुये और वे राजा के परोक्षमें भी बहुत गुणोंका वर्णन करती हैं (थीं) ॥ ३६ ॥ आश्चर्य्य है कि जैसा यह ब्राह्मण है जो कि सब

अन्तर्वत्नीत्वियंकन्यांजनयिष्यतिशोभनाम् ॥ एषाहिदुर्भगापूर्वंसांप्रतंसुभगाऽभवत् ॥ ३३ ॥ असौहिराज्ञोराज्ञीनामत्यन्तमिहवल्लभा ॥ मुक्तालंकृतिरेतस्यैराज्ञादत्तानिजोरसः ॥ ३४ ॥ पञ्चसप्तदिनान्येवजातानीतीहतर्क्यते ॥ अस्यैराज्ञाप्रसादेनग्रामौदातुमुदीरितौ ॥ ३५ ॥ इतिदृष्टार्थकथनैराज्ञीमान्योभवद्द्विजः ॥ वर्णयन्तिचताराज्ञःपरोक्षेपिगुणान्बहून् ॥ ३६ ॥ अहोयादृगसौविप्रःसर्वत्रातिविचक्षणः ॥ सुशीलश्चसुरूपश्चसत्यवाङ्मितभाषणः ॥ ३७ ॥ अलोलुपउदारश्चसदाचारोजितेन्द्रियः ॥ अपिस्वल्पेनसंतुष्टःप्रतिग्रहपराङ्मुखः ॥ ३८ ॥ जितक्रोधः प्रसन्नास्यस्त्वनसूयुरवञ्चकः ॥ कृतज्ञः प्रीतिसुमुखःपरिवादपराङ्मुखः ॥ ३९ ॥ पुण्योपदेष्टापुण्यात्मासर्वव्रतपरायणः ॥ शुचिःशुचिचरित्रश्चश्रुतिस्मृतिविशारदः ॥ ४० ॥ धीरःपुण्येतिहासज्ञःसर्वदृक्सर्वसम्मतः ॥ कलाकलापकुशलोज्योतिःशास्त्रविदुत्तमः ॥ ४१ ॥ क्षमीकुलीनोऽकृपणोभोक्तानिर्मलमानसः ॥ इत्यादिगुणसम्पन्नःकोपिक्वापिनदृग्गतः ॥ ४२ ॥

शास्त्रों में पण्डित, सुशील व सुरूप सत्यवादी और थोडा बोलनेवाला ॥ ३७ ॥ व अलोलुप, उदार, सदाचार, जितेन्द्रिय, स्वल्प वस्तुसे भी सन्तुष्ट, दानलेने से विमुख ॥ ३८ ॥ व क्रोधको जीतेहुवा, प्रसन्नमुख, किसीके दोषों को न प्रकटनेवाला, अवञ्चक, उपकार को जानताहुवा, प्रीति के सुमुख, अपवाद कहने से विमुख ॥ ३९ ॥ व पुण्य का उपदेशकर्ता, पुण्यात्मा, सब व्रतोंमें परायण, सदाशुद्ध, पवित्रचरित्र और वेद व धर्मशास्त्रों में बडा विद्वान् ॥ ४० ॥ व धीर, पुण्य इतिहासों के जाननेवाला, सब देखनेहारा या सर्वज्ञ, सबके संमतवाला व कलासमूहों मे याने चौंसठ कलाओं में कुशल (दक्ष), ज्योतिषियो मे उत्तम ॥ ४१ ॥

क्षमावान्, कुलीन, कृपणता से हीन, धर्म समेत भोगवान् और निर्मलमानस, इत्यादि गुणों से संपन्न कोई कहीं भी नेत्रगत नहीं हुवा याने नहीं देखपडा॥ ४२ ॥ इस भांति क्षण क्षण में उसके गुणसमूह का वर्णन करती हुई वे अंतःपुरमें विचरनेवाली स्त्रियां कालको बिताती भई या विनोदको प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ एक समय अवसर पाकर लीलावती नामसे प्रसिद्ध दिवोदास राजाकी रानीने महाराजसे उन ब्राह्मणको जनाया॥४४॥ कि हे राजन्! वयससे वृद्ध, गुणोंसे वृद्ध, बहुत विचक्षण और मूर्तिधारी अन्य या उत्तम वेदसमुद्रके समान जो एक ब्राह्मणहै वह देखने योग्यहै॥४५॥ और राजासे आज्ञा कीहुई रानीने बड़ी सुजान सखीको पठाकर रूपधारी ब्रह्मतेज की नाई उस ब्राह्मण को आनकर प्राप्त किया ॥ ४६ ॥ तब दूरसे आतेहुये उस ब्राह्मण को देखकर राजा भी अपने मन में ऐसा कहता हुवा आनन्द को प्राप्तभया कि

इत्थंतास्तद्गुणग्रामंवर्णयन्त्यः पदे पदे ॥ कालंविनोदयन्तिस्म अन्तःपुरचराः स्त्रियः ॥ ४३ ॥ एकदावसरंप्राप्य दिवोदासस्यभूभुजः ॥ राज्ञीलीलावतीनाम राज्ञेतंविन्यवेदयत् ॥ ४४ ॥ राजन्वृद्धोगुणैर्वृद्धो ब्राह्मणःसुविचक्षणः ॥ एकोस्तिसतुद्रष्टव्योमूर्तोब्रह्मनिधिःपरः ॥ ४५ ॥ राज्ञीराज्ञाकृतानुज्ञासखींप्रेष्यविचक्षणाम् ॥ आनिनायचतंविप्रंब्राह्मंतेजइवाङ्गवत् ॥ ४६ ॥ राजापिदूरादायान्तंतंविलोक्यमहीसुरम् ॥ यत्राकृतिर्गुणास्तत्रजहर्षेतिवदन्हृदि ॥ ४७ ॥ पदैर्द्वित्रैर्नृपतिनाकृताभ्युत्थानसत्कृतिः ॥ चतुर्निगमजाभिःसतमाशीर्भिरनन्दयत् ॥ ४८ ॥ कृतप्रणामोराज्ञाससादरंदत्तमासनम् ॥ भेजेथकुशलंपृष्टःसराज्ञातेनभूपतिः ॥ ४९ ॥ परस्परंकुशलिनौकुशलौचकथागमे ॥ प्रश्नोत्तराभ्यांसंतुष्टौद्विजवर्यक्ष्माभृतौ ॥ ५० ॥ कथावसानेराज्ञाथगेहंविससृजेद्विजः ॥ लब्धमानमहापूजःसस्वमाश्रम

जहां अच्छा आकार (रूप) है वहां गुण रहते हैं ॥ ४७ ॥ और दो तीन (पांच) पग चलकर नरेश से कियागया सामने उठने समेत सत्कार जिसका ऐसे उस ब्राह्मणने चार वेदों से हुये आशीर्वादों से उस राजा को आनंदित किया ॥ ४८ ॥ व राजा से किये हुये प्रणामवाला वह आदर समेत, दियेहुये आसन को सेवता भया अनंतर राजासे वह कुशल पूंछागया और इससे वह राजा कुशल पूंछागया ॥४९॥ व परस्पर कुशलवाले कथाशास्त्र या कथा के आने में निपुण ब्राह्मणवर्य्य और भूपति प्रश्न व उत्तर से दोनों संतुष्ट होगये ॥ ५० ॥ तदनन्तर कथा के अन्तमें ब्राह्मण घर को विदा किया गया और आदर व अधिक पूजा पाये हुये वह अपने आश्रममें

आकर पैठता भया ॥ ५१ ॥ जब ब्राह्मण अपने आश्रम को चलागया तब दिवोदास नरेशने लीलावती रानी के अग्रभाग में उस ब्राह्मण को बहुतही वर्णन किया ॥ ५२ ॥ हे महादेवि, महाप्राज्ञे, गुणप्रिये, लीलावति ! जैसे तुमने प्रशंसा किया वैसे यह ब्राह्मणहै बरन उससे भी अधिक गुणी है ॥५३॥ भूतकालका सब हाल जानता है और वर्त्तमानको ज्ञान करलेताहै परन्तु प्रातःकाल बुलाकर कुछ भविष्यके भी प्रति यह पूंछने योग्यहै ॥५४॥ व बड़े ऐश्वर्य्य के संभारों समेत अनेक भांति के भारी भोगों से रात बीत जातेही प्रातःकाल उस नरेशने ब्राह्मणको बुलवाया ॥५५॥ व भक्तिसमेत रेशमी आदि वस्त्र देनेसे उस ब्राह्मणको सत्कारकर फिर राजाने एकान्तमें बुलाकर

माविशत् ॥ ५१ ॥ गतेऽथस्वाश्रमंविप्रेदिवोदासोनरेश्वरः ॥ लीलावत्याःपुरोविप्रंवर्णयामासभूरिशः ॥ ५२ ॥ महादेवि महाप्राज्ञेलीलावतिगुणप्रिये ॥ यथाशंसितथाविप्रस्ततोपिगुणवत्तरः ॥ ५३ ॥ अतीतंवेत्तिसकलंवर्त्तमानमवैतिच ॥ प्रष्टव्यःप्रातराहूयभविष्यंकिञ्चिदेषवै ॥५४॥ महाविभवसम्भारैर्महाभोगैरनेकधा॥व्युष्टायांसन्नृपोरात्र्यांप्रातराहूतवान् द्विजम् ॥ ५५ ॥ सत्कृत्यतंद्विजंभक्त्यादुकूलादिप्रदानतः ॥ एकान्तेतंद्विजंराजापप्रच्छनिजहृत्स्थितम् ॥ ५६ ॥ राजोवाच ॥ द्विजवर्योभवानेकःप्रतिभातीतिनिश्चितम् ॥ यथातत्त्ववतीतेधीर्नतथान्यस्यमेमतिः ॥ ५७ ॥ दृष्ट्वात्वान्तुमहाप्राज्ञंशान्तंदान्तंतपोनिधिम् ॥ किञ्चित्प्रष्टुमनाविप्रतदाख्याहियथार्थवत् ॥ ५८ ॥ शासितेयंमयापृथ्वीनतथान्यैस्तुपार्थिवैः ॥ यावद्भूतिमयाभुक्तादिव्याभोगाअनेकधा ॥ ५९ ॥ निजौरसेभ्योप्यधिकंरात्रिंदिवमतन्द्रितम् ॥ विनि

अपने हृदय में टिकेहुये प्रश्नको उस विप्रसे पूछा ॥५६॥ राजा बोला कि, हे द्विजवर्य्य ! ऐसा निश्चितहै कि आप एक (मुख्य या केवल) जान पड़तेहो मेरी यह मतिहै कि जैसी तत्त्ववाली तुम्हारी बुद्धिहै वैसे अन्यकी नहीं है ॥ ५७ ॥ हे विप्र ! तुमको बड़ाबुद्धिमान् शांत (भीतरकी इन्द्रियोंको जीते) दांत (बाहर की इन्द्रियोंको जीते) और तपस्याका निधान जानकर मैं कुछ पूंछने के लिये मनवालाहूं उस को तुम यथार्थके समान सब ओर से कहो ॥ ५८ ॥ कि जैसे मुझ से यह पृथिवी शासितहुई है वैसे अन्य राजाओं से नहीं और मैंने ऐश्वर्य्य पर्य्यंत अनेक भांति दिव्य भोगों को भोग किया है ॥ ५९ ॥ व रातो दिन आलस्यहीन और अपने औरस (स्वधर्मपत्नी

में उत्पन्न) पुत्रों से भी अधिक जैसेहो वैसे यह प्रजा हठ से दुष्टों को जीतकर सब ओर से पाली गई है ॥ ६० ॥ और मैं ब्राह्मणों के पांवोंकी पूजा से अधिक अन्य कुछ या कोई पुण्य नहीं जानताहूं किंतु सब ओर से कहनेके न योग्य, कहेहुये इस अपने सुकृत से यहां मुझको क्या है ॥ ६१ ॥ हे आर्य्य (सदाचारनिष्ठ) सत्तम ! इससमय मेरा मन सब कर्मों से विरक्त सा हुवाहै इस से तुम शुभ उत्तर फल को विचारकर कहो ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण बोले कि जो कि राजाओंका बहुत थोड़ाभी कार्य्य यहां होवे वह एकांत में पूछे हुये सुबुद्धिमान् मनुष्यको सदैव कहना चाहिये ॥ ६३ ॥ और बडे अपमान से डरभुत, न पूँछेहुये मंत्री करके भी यहां राजाके आगे थोड़ा

जित्यहठाद्दुष्टान्प्रजेयंपरिपालिता ॥ ६० ॥ द्विजपादार्चनात्किञ्चित्सुकृतंवेद्मिनापरम् ॥ अनेनापरिकथ्येनकथितेनेह किंमम ॥ ६१ ॥ निर्विस्ममिवमेचेतःसांप्रतंसर्वकर्मसु ॥ विचार्यार्यशुभोदर्कमतआख्याहिसत्तम ॥ ६२ ॥ द्विजउवाच ॥ अपिस्वल्पतरंकृत्यंयद्भवेद्भूभुजामिह ॥ एकान्तेतत्तुपृष्टेनवक्तव्यंसुधियासदा ॥ ६३ ॥ अमात्येनाप्यपृष्टेननवक्तव्यं नृपाग्रतः ॥ महापमानभीतेनस्तोकमप्यत्रकिञ्चन ॥ ६४ ॥ पृष्टश्चेत्कथयामीहमातत्रकुरुसंशयम् ॥ तत्कृतेतवगन्ता वैमनोनिर्वेदकारणम् ॥ ६५ ॥ शृणुराजन्महाबुद्धेनायथार्थंब्रवीम्यहम् ॥ विक्रान्तोस्यतिशूरोसिभाग्यवानसिस र्वदा ॥ ६६ ॥ पुण्येनयशसाबुद्ध्यासम्पन्नोस्तिभवान्यथा ॥ मन्येतथामरावत्यांत्रिदशेशोपिनैवहि ॥ ६७ ॥ सु धियात्वांगुरुंमन्येप्रसादेनसुधाकरम् ॥ तेजसास्तिभवानर्कःप्रतापेनाशुशुक्षणिः ॥ ६८ ॥ प्रभञ्जनोबलेनासिश्रीदोसि श्रीसमर्पणैः ॥ शासनेनभवान्रुद्रोनिर्ऋतिस्त्वंरणाङ्गणे ॥ ६९ ॥ दुष्टपाशयितापाशीयमोनियमनेसताम् ॥ इन्दनात्त्वंमहे

भी कुछ कहने योग्य नहीं है ॥ ६४ ॥ जो मैं पूछागयाहूँ तो कहताहूँ उसमें संशय मतकरो व उसके किये हुयेही तुम्हारा मन निश्चयकर निर्वेद कारण को प्राप्त हो जावेगा ॥ ६५ ॥ हे महाबुद्धे, राजन् ! मैं अयथार्थ (असत्य) नहीं कहताहूँ तुम विक्रमवालेहो अत्यन्त शूरहो और सदैव भाग्यवान्हो ॥ ६६ ॥ मैं मानताहूँ कि जैसे आप पुण्य सुयश और बुद्धिसे संपन्नहैं वैसे अमरावती पुरीमें इन्द्रभी नहीं है ॥ ६७ ॥ व मैं तुम को सुबुद्धिसे बृहस्पति और प्रसन्नता से चन्द्रमा मानताहूँ आप तेजसे सूर्य्य व प्रतापसे अग्नि के समानहो ॥ ६८ ॥ व तुम निजबल से वायुहो धनदेनेसे कुबेर हो व आप शिक्षा करने से रुद्र हैं और संग्राम आंगनमें निर्ऋति हैं ॥ ६९ ॥

व तुम दुष्टों के फँसानेवाले वरुणहो असज्जनों के लिये दण्डादि नियम करनेमें यमहो बड़े ऐश्वर्य्य से इन्द्रहो और तुम क्षमासे पृथिवीहो ॥ ७० ॥ व आप मर्यादा से समुद्रहो महत्त्व से हिमवान्हो राज्यनीति से शुक्रहो और राज्यसे मनुके समान हो ॥ ७१ ॥ व मेघकी नाईं संतापहारीहो गंगाके नामकी नाईं पवित्रकारी हो और सब जंतुओंके भी काशी सम्बन्धी धन व गतिके देनेवाले हो ॥ ७२ ॥ व संहार (विनाश करना) रूपसे रुद्रहो पालने से विष्णुहो व ब्रह्मा के समान विधानकर्ता हो और तुम्हारे मुख कमलमें सरस्वती बसती है ॥ ७३ ॥ व तुम्हारे हस्तकमलमें लक्ष्मीहै तुम्हारे क्रोध में विषहै तुम्हारा वचनही अमृत है और तुम्हारी बाहैं अश्विनीकुमार

न्द्रोसित्क्षमयात्वमसिक्ष्मा ॥ ७० ॥ मर्यादयाभवानब्धिर्महत्त्वेहिमवानसि ॥ भार्गवोराजनीत्यासिराज्येनमनुनास मः ॥७१॥ सन्तापहर्ताम्बुदवत्पवित्रोगाङ्गनामवत् ॥ सर्वेषामेवजन्तूनांकाशीवसुगतिप्रदः ॥ ७२ ॥ रुद्रःसंहाररूपेणपा लनेनचतुर्भुजः ॥ विधिवत्त्वंविधातासिभारतीतेमुखाम्बुजे ॥७३ ॥ त्वत्पाणिपद्मेकमलात्वत्क्रोधेस्तिहलाहलः ॥ अमृतं तववागेवत्वद्भुजावश्विनीसुतौ ॥ ७४ ॥ तत्किंयत्त्वयिभूजानौसर्वदेवमयोह्यसि ॥ तस्मात्तवशुभोदर्कोमयाज्ञातोस्तित त्त्वतः ॥ ७५ ॥ आरभ्याद्यदिनाद्भूपब्राह्मणोऽष्टादशेहनि ॥ उदीच्यःकश्चिदागत्यध्रुवंत्वामुपदेक्ष्यति ॥ ७६ ॥ तस्यवा क्यंत्वयाराजन्कर्तव्यमविचारितम् ॥ ततस्तेहृत्स्थितंसर्वंसेत्स्यत्येवमहामते ॥७७॥ इत्युक्त्वापृच्छ्यराजानंलब्धानुज्ञो द्विजोत्तमः ॥ विवेशस्वाश्रमंतुष्टोनृपोप्याश्चर्यवानभूत् ॥ ७८ ॥ इत्थंविघ्नजितासर्वापुरीस्वात्मवशीकृता ॥ सपौरासा

हैं ॥ ७४ ॥ व जिससे तुम सर्वदेवमयहीहो उस से बहुत कहने से क्याहै जो कुछ सारवस्तु है वह सब तुम पृथिवीपति में है उस लिये तुम्हारा शुभ कर्मों का उत्तर फल स्वरूप से मेरा जाना है ॥ ७५ ॥ हे भूप ! जिस दिनसे लगाकर अठारहवें दिनमें आकर कोई उत्तर दिशाका ब्राह्मण निश्चय से तुमको उपदेश करेगा ॥ ७६ ॥ हे महामते, राजन् ! तब से लगाकर विना विचारे उसका वचन तुम्हारे करने योग्य है तदनंतर तुम्हारे हृदय में जो कुछ टिका है वहभी सिद्धहोगा ॥ ७७ ॥ ऐसे कहकर राजा से पूँछकर आज्ञापाये हुये सन्तुष्ट ब्राह्मणोत्तम अपने आश्रम में प्रवेश किया और राजाभी आश्चर्य्यवान् होगया ॥ ७८ ॥ इस भांति विघ्नविजयी

श्रीगणेशजी ने अपनी मायासे पुरवासी समेत रानी समेत और राजा समेत सब काशीपुरीको अपने स्वरूप के वश करलिया ॥ ७६ ॥ तदनंतर वह गणेशजी अपनाको कृतकृत्य के समान मानकर व अपना को बहुत प्रकारसे कर काशीमें स्थितिको प्राप्तहुये ॥ ८० ॥ हे कुंभसंभव ! जब पहले वहां दिवोदास राजा नहीं हुवा तब के अपने स्थानको गणेशजी ने भूषित किया ॥ ८१ ॥ और जब विष्णुजीके द्वारा दिवोदास राजा उच्चाटित हुवा व विश्वकर्माने नगरीको फिर नवीन करदिया तब ॥ ८२ ॥ मंदराचल से सुन्दरी काशीपुरी को आकर क्रीडाकारी महादेवजी ने पहले गणेशजीकी स्तुति किया ॥ ८३ ॥ अगस्त्यजी बोले कि, ऐश्वर्य्यसंपन्न, देवोंके देवसे विघ्नविजयी विनायक (गणेशजी) कैसे स्तुति कियेगये और वह अपना को बहुत भांति कैसे करते भये ॥ ८४ ॥ हे षडानन ! वहही गणेशजी किस किस नाम से काशीपुरी में बसे हैं ऐसे सब संक्षेपसे कहो ॥ ८५ ॥ इसभांति अगस्त्यजीका वचन सुन कर छः मुखवाले श्रीकार्त्तिकेयजी ने मंगलमयी गणराजकी कथाको यथावत् वर्णन किया ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते गणेशमायाप्रपञ्चोनामषट्पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५६ ॥ ❀ ॥

वरोधाचसनृपानिजमायया ॥ ७९ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंततोमत्वासविघ्नजित् ॥ विधायबहुधात्मानंकाश्यांस्थितिमवापच ॥ ८० ॥ यदासनदिवोदासःप्रागासीत्कुम्भसम्भव ॥ तदातनंनिजंस्थानमलंचक्रेगणाधिपः ॥ ८१ ॥ दिवोदासेनृपतौविष्णुनोच्चाटितेसति ॥ पुनर्नवीकृतायाञ्चनगर्यांविश्वकर्मणा ॥ ८२ ॥ स्वयमागत्यदेवेनमन्दरात्सुन्दरींपुरीम् ॥ वाराणसींप्रथमतस्तुष्टुवेगणनायकम् ॥ ८३ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ कथंस्तुतोभगवतादेवदेवेनविघ्नजित् ॥ कथञ्चबहुधात्मानंसचकारविनायकः ॥ ८४ ॥ केनकेनसवैनाम्नाकाशिपुर्य्यांव्यवस्थितः ॥ इतिसर्वंसमासेनकथयस्वषडानन ॥ ८५ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यकुम्भयोनेःषडाननः ॥ यथावत्कथयामासगणराजकथांशुभाम् ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेगणेशमायाप्रपञ्चोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ विश्वेशोविश्वयासार्धंमयाचमुनिसत्तम ॥ महाशाखविशाखाभ्यांनन्दिभृङ्गिपुरोगमः ॥ १ ॥

दो० । सत्तावन के अध्याय में गणपस्तुति शिवकीन । ढुंढिविनायक आदिका इत माहात्म्य प्रवीन ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, हे मुनिसत्तम ! श्रीपार्वती जी व मैं

व शाख और विशाखके साथ नन्दी व भृंगी आदि गणों के आगे चलनेवाले श्रीविश्वनाथ जी ॥ १ ॥ जो कि नैगमेय से सहित, रुद्रों से सब ओर घिरे देवर्षियों से समायुक्त सनकादिकों से सब ओर या सामने से स्तुति किये गये ॥ २ ॥ और सकल लोकपालों व दिक्पालों से अभिनंदित, मूर्त्तिमान् तीर्थों का जल पाये हुये व गंधर्वों से गाये मंगलवाले ॥ ३ ॥ और नृत्य समेत हस्त पल्लवों के द्वारा अप्सराओं से पूजित और आकाश में सब ओर अनाहत बाजों से अनुमोदित ॥ ४ ॥ व ऋषियों के वेद शब्द से दिशाओं के मुखको बधिर किये हुये व चारण समूहों से प्रशंसित व सब ओर विमानों से घेरेगये ॥ ५ ॥ व इंद्राणी की मूठि से गिरेहुये लावों से

नैगमेयेनसहितोरुद्रैःसर्वत्रसंवृतः ॥ देवर्षिभिःसमायुक्तःसनकाद्यैरभिष्टुतः ॥ २ ॥ समस्तायतनाधीशैर्दिक्पालैरभिनन्दितः ॥ तीर्थैर्दर्शिततीर्थश्चगन्धर्वैर्गीतमङ्गलः ॥ ३ ॥ कृतपूजोप्सरोभिश्चनृत्यहस्तकपल्लवैः ॥ वियत्यनाहतैर्वाद्यैः समन्तादनुमोदितः ॥ ४ ॥ ऋषीणांब्रह्मनिर्घोषैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ कृतस्तुतिश्चारणौघैर्विमानैरभितोवृतः ॥ ५ ॥ त्रिविष्टपवधूमुष्टिभ्रष्टैर्लाजैरितस्ततः ॥ अभिवृष्टोमहादेवःसम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ६ ॥ दत्तमाल्योपहारश्चबहुविद्याधरीगणैः ॥ यक्षगुह्यकसिद्धैश्चखेचरैरभिनन्दितः ॥ ७ ॥ कृतप्रवेशशकुनोमृगैःशकुनिभिःपुरः ॥ किन्नरीभिःप्रहृष्टास्यैःकिन्नरैरुपवर्णितः ॥ ८ ॥ विष्णुनाचमहालक्ष्म्याब्रह्मणाविश्वकर्मणा ॥ नन्दिनाथगणेशेनआविष्कृतमहोत्सवः ॥ ९ ॥ नागाङ्गनाभिःपरितःकृतनीराजनाविधिः ॥ प्रविवेशमहादेवःपुरींवाराणसींशुभाम् ॥ १० ॥ पश्यतांसर्वदेवानाम्

ऐसी वैसी सब ओर या संमुख बरसाये हुये बड़े क्रीड़ाकारी या प्रकाशमान व भलीभांति आनंदित उठे रोमवाले ॥ ६ ॥ व बहुत विद्याधरी समूहों से दियेहुये माल्यों-पहारों को लिये व यक्ष गुह्यक सिद्ध और खेचरों से अभिनन्दित ॥ ७ ॥ व आगे शकुनी मृगोंसे कियेहुये शकुनवाले व किन्नरी और सानंद मन्द मुसकान समेत मुखवाले किन्नरों से उपवर्णित ॥ ८ ॥ व विष्णु महालक्ष्मी जगत्कर्त्ता ब्रह्मा और गणनाथ नंदीश्वर से प्रकट किये गये महोत्सववाले ॥ ९ ॥ और नागस्त्रियों से की गई है सब ओर नीराजनकी अवधि (पूजाके अंतवाली आरती) जिनकी वे श्रीमहादेव जी मंगलमयी काशीपुरीमें प्रवेश करतेभये ॥ १० ॥ व सब देवों के देखतेही वृषेन्द्र

स्कार किये हुये ! तुम जयकरो हे संहारकर्त्तः, स्तुति के योग्य ! तुम जयकरो हे अच्छे कर्म्मोंके सिद्धिदायक ! तुम जयकरो ॥ २१ ॥ हे सिद्धों से वंदनीयपदकमलवा-ले, सिद्धिकारक, सब सिद्धियों के मुख्य स्थान, मुक्तिसमृद्धिसूचक ! तुम जयकरो॥ २२ ॥ हे सम्पूर्ण गुणों के निर्माण करनेहारे, गुणोंसे परे, गुणाग्रणी, परिपूर्णच-रित्रार्थ, गणों से वर्णित ! तुम जयकरो ॥ २३ ॥ हे सब बलों के अधीश्वर इन्द्रके बलदायक, बकपंक्ति के समान श्वेत दंताग्रवाले, बालक, अबालपराक्रम ! तुम जयकरो ॥ २४ ॥हे अनंतमहिमा के आधार, पर्वतविदारण, दंत के अग्रभाग से ग्रथित दिग्गजवाले, सर्पालंकार ! तुम जयकरो ॥ २५ ॥ हे दयामय, दिव्यमूर्त्ते ! जे

सिद्धिद ॥ २१ ॥ सिद्धवन्द्यपदाम्भोजजयसिद्धिविधायक ॥ सर्वसिद्ध्येकनिलयमहासिद्ध्यृद्धिसूचक ॥ २२ ॥ अशेषगुणनिर्माणगुणातीतगुणाग्रणीः ॥ परिपूर्णचरित्रार्थजयत्वंगुणवर्णित ॥ २३ ॥ जयसर्वबलाधीशबलारातिबलप्रद ॥ बलाकोज्ज्वलदन्ताग्रबालाबालपराक्रम ॥ २४ ॥ अनन्तमहिमाधारधराधरविदारण ॥ दन्ताग्रप्रोतदिङ्नागजयनागविभूषण ॥ २५ ॥ येत्वांनमन्तिकरुणामयदिव्यमूर्तेसर्वैनसामपिभुवोभुविमुक्तिभाजः ॥ तेषांसदैवहरसीहमहोपसर्गान्स्वर्गापवर्गमपिसंप्रददासितेभ्यः ॥ २६ ॥ येविघ्नराजभवताकरुणाकटाक्षैःसंप्रेक्षिताःक्षितितलेक्षणमात्रमत्र ॥ तेषांक्षयन्तिसकलान्यपिकिल्बिषाणि लक्ष्मीः कटाक्षयतितान्पुरुषोत्तमान्हि ॥ २७ ॥ येत्वांस्तुवन्तिनतविघ्नविघातदक्षदाक्षायणीहृदयपङ्कजतिग्मरश्मे ॥ श्रूयन्तएवतइहप्रथितानचित्रंचित्रंतदत्रगणपायदहोतएव ॥ २८ ॥ येशीलयन्तिसततंभवतोङ्घ्रियुग्मंतेपुत्रपौत्रधनधान्यसमृद्धिभाजः ॥ संशीलिताङ्घ्रिकमलाबहुभृत्यवर्गैर्भूपालभोग्यकमलांविमलांलभन्ते ॥ २९ ॥

सब पापों के आश्रयहुये भी जन तुम्हारे नमस्कार करते हैं वे मुक्तिसेवी होते हैं व तुम यहां उन के बड़े उपद्रवों को हरलेतेहो व उन को स्वर्ग और मुक्तिभी देतेहो ॥ २६ ॥ हे विघ्नराज ! जे इस भूतल में क्षणमात्र आप से करुणाकटाक्षों के द्वारा देखेगये हैं उनके सब पाप भी नष्ट होजाते हैं और उन पुरुषोत्तमोंकोही लक्ष्मीजी करुणाकटाक्ष से देखती हैं ॥ २७ ॥ हे भक्तविघ्नविघातदक्ष, दक्षपुत्री हृदय कमल के सूर्य्य ! जे तुम्हारी स्तुति करते हैं वे यहां प्रसिद्ध सुनेजाते हैं यह अद्भुत नहीं है जो वेही लोग यहां गणों के स्वामी होते हैं वह विचित्र है ॥ २८ ॥ जे आपके दोनों पदारविंदों को निरन्तर ध्यान धरते हैं वे धन धान्यपुत्र और पौत्रोंकी समृद्धि के

से उतरकर गणेशजी को अंग में लिपटाकर वृषध्वज जी ने ऊंचे स्वर से कहा॥ ११ ॥ कि जो शुभ काशीपुरी मुझको अत्यन्त दुष्प्राप्य (दुर्लभ) थी उसको जो मैं प्राप्तहुवाहूं वह इस बालक कीही प्रसन्नता है ॥ १२ ॥ और जोकि त्रिलोकतल में पिताकाभी दुष्प्रसाध्यथा वह पुत्रसे सुसाध्य होवे यह यहां मुझमें ही दृष्टांतभावहै॥ १३ ॥ जैसे मुझको काशी की प्राप्तिहोवे वैसेही इस गजमुखने अपनी बुद्धि की विभुता से यहां कुछ किया है ॥ १४ ॥ व जो मुझ करके बहुत काल से चिंतितरहे उस को जिसने अपने पौरुष से हस्त प्राप्त करदिया इस बालक से मैं पुत्रवानहूं ॥ १५ ॥ ऐसे कहकर इन्द्रादि देवों से स्तुत त्रिपुरहारी लीलाकारी परम प्रसन्न परमे-

वरुह्यवृषेन्द्रतः ॥ परिष्वज्यगणाधीशंप्रोवाचवृषभध्वजः ॥ ११ ॥ यदहंप्राप्तवानस्मिपुरींवाराणसींशुभाम् ॥ मयाप्यतीवदुष्प्राप्यांसप्रसादोस्यवैशिशोः ॥ १२ ॥ यद्दुष्प्रसाध्यंहिपितुरपित्रिजगतीतले॥तत्सूनुनासुसाध्यंस्यादत्रदृष्टान्ततामयि॥ १३ ॥ अनेनगजवक्त्रेणस्वबुद्धिविभवैरिह॥काशीप्राप्तिर्यथामेस्यात्तथाकिञ्चिदनुष्ठितम् ॥ १४॥ पुत्रवानहमेवास्मियच्चमे चिरचिन्तितम् ॥ स्वपौरुषेणकृतवानभिलाषंकरस्थितम् ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वात्रिपुरीहर्त्तापुरुहूतादिभिःस्तुतः॥ परितुष्टावसंहृष्टःस्पष्टगीर्भिर्गजाननम् ॥ १६ ॥ श्रीकण्ठउवाच ॥ जय विघ्नकृतामाद्यभक्तनिर्विघ्नकारक॥ अविघ्नविघ्नशमनमहाविघ्नैकविघ्नकृत् ॥ १७ ॥ जयसर्वगणाधीशजयसर्वगणाग्रणीः ॥ गणप्रणतपादाब्जगणनातीतसद्गुण ॥ १८ ॥ जयसर्वगसर्वेशसर्वबुद्ध्येकशेवधे ॥ सर्वमायाप्रपञ्चज्ञसर्वकर्माग्रपूजित ॥ १९ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यजयत्वंसर्वमङ्गल ॥ अमङ्गलोपशमनमहामङ्गलहेतुक ॥ २० ॥ जयसृष्टिकृतांवन्द्यजयस्थितिकृतानत ॥ जयसंहृतिकृत्स्तुत्यजयसत्कर्म

श्वरजी ने स्पष्ट वाणी से गणेशजी की स्तुति किया ॥ १६ ॥ शिवजी बोले कि, हे विघ्नकर्त्ताओं के कारण ! भक्तों के निर्विघ्नकारक, विघ्नहीन, विघ्नविनाशन, महाविघ्नों के मुख्य विघ्न करनेवाले ! तुम जय करो ॥ १७ ॥ हे सर्वगणाधीश, सर्वगणाग्रणी ! तुमजयकरो हे गणों से प्रणाम कियेहुये पदकमलवाले , गणनातीतसद्गुण ! तुम जयकरो ॥ १८ ॥ हे सर्वगत, सर्वेश, सब बुद्धियों के मुख्य निधान, सब मायाप्रपञ्च के जाननेवाले, सब कर्मों मे अग्रपूजित ! तुम जयकरो ॥ १९ ॥ हे सब मंगलों के मंगल स्वरूप सब मंगलवाले, अमंगलनाशक , महामंगलकारण ! तुम जयकरो ॥ २० ॥ हे सृष्टिकर्त्ताओं के वंदनीय ! तुम जयकरो हे पालनकर्त्ता विष्णु से नम-

सेवी होते हैं व बहुत भृत्यवर्गों से सेवित पदकमलवाले होकर विमल व राजाओं से भोगने योग्य सम्पत्ति को पाते हैं ॥ २९ ॥ हे परमकारण, निजकारण परब्रह्म के कहनेवाले वचनों के अविषय, दिव्यमूर्त्ते ! तुम कारणों के कारणहो व वेदों के पंडितों से तुम एक निरन्तर जानने योग्यहो और जो कुछ खोजने योग्य है वह तुम हो ॥ ३० ॥ हे मन से भी अगम्य, चराचरसूत्रधार ! वेद आपको यथातथ्यसे नहीं जानते हैं व ब्रह्मादिदेव भी नहीं जानते हैं एक तुम संसार को संहार करते हो व पालतेहो और बनाते हो इस से तुम्हारी स्तुति करने का व्यवहार कौन है याने कोई भी नहीं है ॥ ३१ ॥ और हे सिद्धिदायक ! मैं तुम्हारे क्रोध दर्शन रूप बाणों से मारे

त्वंकारणंपरमकारणकारणानां वेद्योसिवेदविदुषांसततंत्वमेकः॥त्वंमार्गणीयमसिकिञ्चनमूलवाचांवाचामगोचरचराचरदिव्यमूर्ते ॥ ३० ॥ वेदा विदन्ति न यथार्थतया भवन्तं ब्रह्मादयोपिनचराचरसूत्रधार ॥ त्वंहंसिपासिविदधासिसमस्तमेकःकस्तेस्तुतिव्यतिकरोमनसाप्यगम्य॥ ३१ ॥ त्वद्दुष्टदृष्टिविशिखैर्निहतान्निहन्मिदैत्यान्पुरान्धकजलन्धरमुख्यकांश्च ॥ कस्यास्तिशक्तिरिहयस्त्वदृतेपितुच्छंवाञ्छेद्विधातुमिहसिद्धिदकार्यजातम् ॥३२॥ अन्वेषणेढुण्ढिरयंप्रथितोस्तिधातुःसर्वार्थढुण्ढिततयातवढुण्ढिनाम ॥ काशीप्रवेशमपिकोलभतेत्रदेहीतोषंविनातवविनायकढुण्ढिराज॥ ३३॥ढुण्ढेप्रणम्यपुरतस्तवपादपद्मं योमांनमस्यतिपुमानिहकाशिवासी ॥ तत्कर्णमूलमधिगम्यपुरादिशामितत्किञ्चिदत्रनपुनर्भवतास्तियेन ॥ ३४ ॥ स्नात्वानरःप्रथमतोमणिकर्णिकायामुद्धूलिताङ्घ्रियुगलस्तुसचैलमाशु ॥ देवर्षिमानवपितॄन्

हुये त्रिपुर अंधक और जलन्धर मुख्य दैत्यों को मारताहूं व यहां किसकी शक्ति है जो तुम विना छोटे भी यहां कार्य्यसमूह को विधान करनेके लिये वाञ्छाकरे ॥३२॥ हे ढुंढिराज, विनायक ! यह ढुढि धातु खोजने अर्थ में प्रसिद्ध है इस लिये सर्वार्थ ढूंढ़ने से तुम्हारा ढुंढिनाम है और इस लोक में कौन देहधारी तुम्हारे संतोष विना काशी प्रवेश को भी पावे ॥ ३३ ॥ हे ढुंढ ! जो काशीवासी पुरुष यहां पहले तुम्हारे पदकमल के प्रणामकर मेरे नमस्कार करता है उसे के कान के समीप प्राप्तहोकर मैं उस किसी ब्रह्मज्ञान को देताहूं कि जिस से इस जगत् में उपजना नहीं होता है ॥ ३४ ॥ धूरि से धूसरित दोनों पांवों वाला पुरुष पहले वस्त्र समेत शीघ्रही मणिक-

र्णिका में स्नानकर देवऋषि मनुष्य और पितरों का तर्पणकर फिर ज्ञानोदतीर्थको सामने से पाकर तदनंतर तुम्हारी सेवा करे ॥ ३५ ॥ हे ढुंढे! सुगंधसमेत लड्डूसमूह श्रेष्ठ धूप दीप माल्य और सुगंध समूह समेत अनुलेपनों से काशीपुरीके फल देने में दत्तहुये तुम को भलीभांति तृप्तकर अनन्तर मेरी स्तुतिकर कौन यहां नहीं सिद्ध होता है याने सब कोई सिद्ध होजाता है ॥ ३६ ॥ हे ढुंढे! तदनन्तर क्रम से रहित भी होकर आपके करुणाकटाक्षोंसे अन्य तीर्थों को भी यहां भली भांति साधन करता व दूर किये अपने हितघाती उत्पात समूहोंवाला होताहुआ इस काशीपुरीमें अविकलतासे फलको पाताहै ॥ ३७ ॥ और जो प्रातःकाल काशीमें प्रतिदिन तुम ढुंढि विनायकके

पितर्पयित्वाज्ञानोदतीर्थमभिलभ्यभजेत्ततस्त्वाम् ॥ ३५ ॥ सामोदमोदकभरैर्वरधूपदीपैर्माल्यैः सुगन्धबहुलैरनुलेपनैश्च ॥ संप्रीणयकाशिनगरीफलदानदत्तंप्रोक्त्वाथमाङ्क्इहसिध्यतिनैवढुण्ढे ॥ ३६ ॥ तीर्थान्तराणिचततःक्रमवर्जितोपि संसाधयन्निहभवत्करुणाकटाक्षैः ॥ दूरीकृतस्वहितघात्युपसर्गवर्गोढुण्ढेलभेदविकलंफलमत्रकाश्याम् ॥ ३७ ॥ यःप्रत्यहंनमतिढुण्ढिविनायकंत्वाङ्काश्यांप्रगेप्रतिहताखिलविघ्नसङ्घः ॥ नोतस्यजातुजगतीतलवर्तिवस्तुदुष्प्रापमत्रचपरत्रचकिञ्चनापि ॥ ३८ ॥ योनामतेजपतिढुण्ढिविनायकस्यतंवैजपन्त्यनुदिनंहृदिसिद्धयोष्टौ ॥ भोगान्विभुज्यविविधान्विबुधोपभोग्यान्निर्वाणयाकमलयाव्रियतेसचान्ते॥३९॥दूरेस्थितोप्यहरहस्तवपादपीठंयःसंस्मरेत्सकलसिद्धिदढुण्ढिराज ॥ काशीस्थितेरविकलंसफलंलभेतनैवान्यथानवितथाममवाक्कदाचित् ॥ ४० ॥ जानेविघ्नानसंख्यातान्विनिहन्तुमनेकधा॥क्षेत्रस्यास्यमहाभागनानारूपैरिहस्थितः॥४१॥यानियानिचरूपाणियत्रयत्रचतेनघ ॥ तानितत्रप्रवक्ष्यामि

नमस्कार करताहै वह विघ्नसमूहका विनाशक होताहै व उसको पृथिवीतलमें वर्त्तमान कोईभी वस्तु इस और उस लोकमें भी कभी दुर्लभ नहींहै ॥ ३८ ॥ जोकि तुम ढुंढि विनायकका नाम जपताहै उसकोही प्रतिदिन हृदयमें आठोंसिद्धियां सुमिरतीहैं और वह देवोंके भोगने योग्य अनेक भांतिके भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्षलक्ष्मी से अंगीकार कियाजाताहै ॥ ३९ ॥ हे सकलसिद्धिद, ढुंढिराज! दूर देशमें टिकाहुवा भी जो दिनों दिन तुम्हारे पद पीठको सुमिरे वह काशीवासका सम्पूर्ण फलपावे यह मेरा वचन कभी अन्यथा नहीं व असत्य नहीं है ॥ ४० ॥ हे महाभाग! मैं जानताहूं कि तुम इस क्षेत्र के असंख्य विघ्नोंको बहुत भांतिसे विनाशनेके लिये अनेक रूपोंसे यहां

टिकेहो॥ ४१॥ और हे अपाप! जहां जहां तुम्हारे जोजो रूप हैं वहां वहां उन उनको कहूंगा क्योंकि ये देवलोग सुनलेवें ॥ ४२ ॥ कि पहले तो तुम मेरे कुछेक दूर दक्षिणदिशा में ढुंढिराजहो क्योंकि सब अर्थों को सब ओर से ढूंढ़कर सब भक्तों को देतेहो ॥ ४३ ॥ हे गणेश! यहां मंगल दिनवाली चौथिको भली भांति प्राप्तहोकर जिन लोगोंने गंध माल्य व सुगंध समेत मोदक(लड्डू)समूहोंसे तुम्हारी अनेक भांति की पूजा किया उनको मैं गण बनाताहूं ॥ ४४ ॥ हे ढुंढे, गजमुख! जे धनी बुद्धिवाले प्राणी यहां प्रति चौथि में तुम को पूजेंगे वेही पुण्यवान् हैं और वे सब विपत्तियों के शिरपर वामपद को धर भलीभांति गजमुख के भाव को पाते हैं ॥ ४५ ॥ हे ढुंढे!

शृण्वन्त्वेतेदिवौकसः ॥ ४२॥ प्रथमंढुण्ढिराजोसिममदक्षिणतोमनाक् ॥ आढुण्ढ्यसर्वभक्तेभ्यःसर्वार्थान्संप्रयच्छसि॥ ४३ ॥ अङ्गारवासरवतीमिहयैश्चतुर्थींसंप्राप्यमोदकभरैःपरिमोदवद्भिः ॥ पूजाव्यधायिविविधातवगन्धमाल्यैस्तान त्रपुत्रविदधामिगणान्गणेश ॥ ४४॥ येत्वामिहप्रतिचतुर्थिसमर्चयन्तिढुण्ढेविगाढमतयःकृतिनस्तएव ॥ सर्वापदांशिर सिवामपदंनिधायसम्यग्गजाननगजाननतांलभन्ते॥ ४५ ॥माघशुक्लचतुर्थ्यांतुनक्तव्रतपरायणाः ॥ येत्वांढुण्ढेर्चयिष्य न्तितेऽर्च्याःस्युरसुरद्रुहाम् ॥४६ ॥ विधायवार्षिकींयात्राञ्चतुर्थींप्राप्यतापसीम् ॥ शुक्लांशुक्लतिलैर्बद्धाप्राश्नीयाल्लड्डुका न्व्रती ॥ ४७ ॥ कार्यायात्राप्रयत्नेनक्षेत्रसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ तस्यांचतुर्थ्यांत्वत्प्रीत्यैढुण्ढेसर्वोपसर्गहृत् ॥ ४८॥ तांयात्रां नात्रयःकुर्यान्नैवेद्यन्तिललड्डुकैः ॥ उपसर्गसहस्रैस्तुसहन्तव्योममाज्ञया ॥४९॥ होमन्तिलाज्यद्रव्येणयःकरिष्यतिभ क्तितः॥तस्याञ्चतुर्थ्यांमन्त्रज्ञस्तस्यमन्त्रःप्रसेत्स्यति॥५०॥वैदिकोऽवैदिकोवापियोमन्त्रस्तेगजानन ॥ जप्तस्त्वत्सन्नि

नक्तव्रत (रात्रि में भोजन का नियम) में परायण जे जन माघसुदी चौथि में तुम को पूजेंगे वे देवों के पूज्य होवेंगे ॥ ४६ ॥ इस से व्रतवाला मनुष्य माघकी शुक्ल चतुर्थी को प्राप्तहोकर व वार्षिकी यात्रा को कर श्वेत तिलों से लड्डू बांधकर भोजनकरे ॥ ४७ ॥ हे सर्वविघ्नविनाशक, ढुंढे! तुम्हारी प्रीति के लिये चौथि में क्षेत्र सिद्धि को चाहते हुये लोगों का यत्नसे यात्रा करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और जो कि यहां उस यात्रा व लड्डुवों से नैवेद्य को नहीं करे है वह मेरी आज्ञा से हजारों विघ्नों के द्वारा हंतव्य है ॥ ४९ ॥ भक्तिसमेत जो मंत्रज्ञ उस चौथि मे लावा आदि द्रव्यों से होम करेगा उसका मंत्र बहुत सिद्धहोगा ॥ ५० ॥ हे गजानन, ढुंढे! तुम्हारे स-

मीप में जपाहुवा वैदिक व तांत्रिकभी तुम्हारा मंत्र वाञ्छित सिद्धिको देवेगा ॥ ५१ ॥ श्रीशिवजी बोले कि, यह निश्चय किया गया है कि जे अच्छीबुद्धिवाले लोग मेरी की हुई इस स्तुति को पढ़ेंगे उन को विघ्नसमूह कभी न पीडा देवेंगे॥ ५२ ॥ व पुण्यरूप ढुंढिराजकी इस स्तुति को जो पढ़ेगा उसकी समीपता को सब सिद्धियां निरन्तर भजेंगी॥५३॥ और बहुत सावधान मनुष्य इस स्तुतिको पढ़कर उन मनके पापों से भी कभी तिरस्कृत न होवे ॥ ५४ ॥ व ढुंढिराज की स्तुतिको जपताहुवा मनुष्य पुत्र स्त्री क्षेत्र श्रेष्ठ घोडे श्रेष्ठ घर धन और धान्य को प्राप्तहोवे ॥ ५५ ॥ सर्वसंपत्कर नामक यह मेरा कहा हुवा स्तोत्र मुक्तिचाही मनुष्यो से यत्नपूर्वक सदैव

धौढुण्ढेसिद्धिंदास्यतिवाञ्छिताम् ॥ ५१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इमांस्तुतिंममकृतिंयःपठिष्यतिसन्मतिः ॥ नजातुतन्तु विघ्नौघाःपीडयिष्यन्तिनिश्चितम् ॥ ५२ ॥ ढौण्ढींस्तुतिमिमांपुण्यांयःपठेद्ढुण्ढिसन्निधौ ॥ सान्निध्यन्तस्यसततंभजेयुःसर्वसिद्धयः ॥ ५३ ॥ इमांस्तुतिन्नरोजप्त्वापरंनियतमानसः ॥ मानसैरपिपापैस्तैर्नाभिभूयेतकर्हिचित् ॥ ५४ ॥ पुत्रान्कलत्रंक्षेत्राणिवराश्वान्वरमन्दिरम् ॥ प्राप्नुयाच्चधनंधान्यंढुण्ढिस्तोत्रंजपन्नरः ॥ ५५ ॥ सर्वसम्पत्करंनामस्तोत्रमेतन्मयेरितम् ॥ प्रजप्तव्यंप्रयत्नेनमुक्तिकामेनसर्वदा ॥ ५६ ॥ जप्त्वास्तोत्रमिदंपुण्यंकापिकार्येगमिष्यतः ॥ पुंसः पुरःसमेष्यन्तिनियतंसर्वसिद्धयः ॥ ५७ ॥ अन्यच्चकथयाम्यत्रशृण्वन्त्वेतेदिवौकसः ॥ ढुण्ढिनाक्षेत्ररक्षार्थंयत्रयत्रस्थितिःकृता ॥ ५८ ॥ काश्यांगङ्गासिसम्भेदेनामतोर्कविनायकः ॥ दृष्टोर्कवासरेपुम्भिःसर्वतापप्रशान्तये ॥ ५९ ॥ दुर्गोनामगणाध्यक्षःसर्वदुर्गतिनाशनः ॥ क्षेत्रस्यदक्षिणेभागेपूजनीयःप्रयत्नतः ॥ ६० ॥ भीमचण्डीसमीपेतुभीमच

जपने योग्य है ॥ ५६ ॥ व इस स्तोत्र को पढ़कर कहीं भी किसी कार्य्य के लिये जानेहारे पुरुष के आगे सब सिद्धियां नियम से भली भांति आजाती हैं ॥ ५७ ॥ और यहां ये देव लोग सुनें कि क्षेत्र की रक्षा के अर्थ ढुंढिराजने जहां जहां निवास किया है उस अन्य स्थान को भी मैं कहताहूं ॥ ५८ ॥ कि काशी में गंगा असी के संगम के समीप में अर्कविनायक नाम से प्रसिद्ध हैं सूर्य्यवार में लोगों से देखेहुये वह सब पापों के विनाश के लिये होते हैं ॥ ५९ ॥ व सब दुर्गति के नाशनेवाले

दुर्ग नामक गणाध्यक्ष क्षेत्र के दक्षिणभाग में यत्न से पूजनीय हैं ॥ ६० ॥ व भीमचण्डी के समीप में क्षेत्र के दक्षिण और पश्चिम के कोण मे टिके व देखे हुये भीम चंड विनायक बड़ेडर को हरलेते हैं॥ ६१ ॥ और क्षेत्रके पश्चिमभागमें जो देहलिविनायकहैं वह भक्तोंके सब विघ्नों को निवारण करते हैं इस में संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ व क्षेत्र के वायव्यकोण में उद्दण्ड नामक गजमुखजी भक्तों के बहुते विकट विघ्नोंको भी सदा दण्डदेते हैं ॥ ६३ ॥ व काशीकी उत्तर दिशा में पाशपाणि नामक विनायक जी भक्ति से काशीवासी जनों के बडे विघ्नों को सदैव फांसलेते हैं ॥ ६४ ॥ व गंगा और वरणा नदी के संगम में जो रमणीक खर्वविनायक हैं वह सज्जन भक्तों

ण्डविनायकः ॥ क्षेत्रनैर्ऋतदेशस्थोदृष्टोहन्तिमहाभयम् ॥ ६१ ॥ क्षेत्रस्यपश्चिमेभागेसदेहलिविनायकः ॥ सर्वान्निवारयेद्विघ्नान्भक्तानांनात्रसंशयः ॥ ६२ ॥ क्षेत्रवायव्यदिग्भागेउद्दण्डाख्योगजाननः ॥ उद्दण्डानपिविघ्नौघान्भक्तानां दण्डयेत्सदा ॥ ६३ ॥ काश्याःसदोत्तराशायां पाशपाणिर्विनायकः॥ विनायकान्पाशयन्तिभक्त्याकाशीनिवासिनाम् ॥ ६४ ॥ गङ्गावरणयोःसङ्गेरम्यःखर्वविनायकः ॥ अखर्वानपिविघ्नौघान्भक्तानांखर्वयेत्सताम् ॥ ६५ ॥ प्राच्यान्तु क्षेत्ररक्षार्थंसिद्धःसिद्धिविनायकः ॥ पश्चिमेयमतीर्थस्यसाधकक्षिप्रसिद्धिदः ॥ ६६ ॥ बाह्यावरणगाश्चैतेकाश्यामष्टौ विनायकाः॥उच्चाटयन्त्यभक्तांश्चभक्तानांसर्वसिद्धिदाः ॥६७॥ द्वितीयावरणेचैवयेरक्षन्तिविनायकाः॥ अविमुक्तमिदंक्षेत्रंतानहंकथयाम्यतः ॥ ६८॥ स्वर्धुन्याःपश्चिमेकूलेउत्तरेर्कविनायकात् ॥ लम्बोदरोगणाध्यक्षःक्षालयेद्विघ्नकर्दमम्॥ ६९ ॥ तत्पश्चिमेकूटदन्तउदग्दुर्गविनायकात् ॥ दुर्गोपसर्गसंहर्तारक्षेत्क्षेत्रमिदंसदा ॥ ७० ॥ भीमचण्डगणाध्यक्षा

के भारी भी विघ्नों को काटकर थोड़ा करडालते हैं॥६५॥ व काशी क्षेत्रकी रक्षा के अर्थ पूर्व दिशा में यमतीर्थ के समीप भक्तों के शीघ्रही सिद्धिदायक सिद्धिविनायक जी सिद्ध हैं ॥ ६६ ॥ और काशी में बाहरवाले आवरण में प्राप्त ये आठ विनायक अभक्तों का उच्चाटन करते हैं व भक्तों के सिद्धिदाता हैं ॥६७ ॥ और ऐसेही दूसरे आवरण में टिके हुये जे विनायक इस अविमुक्त क्षेत्रकी रक्षा करते हैं उनको मैं यहां कहताहूं ॥ ६८ ॥ कि अर्कविनायक से उत्तर ओर गंगा के पश्चिम किनारे लंबोदर नामक गणेशजी विघ्नरूप पंकको प्रक्षालन करते हैं ॥ ६९ ॥ उससे पश्चिम व दुर्गविनायक से उत्तर ओर में दुर्ग उपसर्गसंहारी कूटदंत विनायक इस क्षेत्र की

सदैव रक्षाकरते हैं ॥ ७० ॥ व भीमचंड गणेश से कुछेक दूर ईशान दिशा में प्राप्त क्षेत्र के रक्षक शालकटंकट नामक गणाध्यक्ष पूजनीय हैं ॥ ७१ ॥ व देहलिविनायक से पूर्व दिशा में कूरमांड नामक विनायक सब महाउत्पातों की शांतिके लिये भक्तों से पूजने योग्य हैं ॥ ७२ ॥ व उद्दंड नामक गणेश से आग्नेय कोण में टिके हुये बडे प्रसिद्ध मुंडविनायक जी भलीभांति पूज्य हैं ॥ ७३ ॥ जिससे उनकी देह पाताल में है और मूड़ काशी में टिका है इस से वह देव काशी में मुंडविनायक नाम से गाये जाते हैं ॥ ७४ ॥ व पाशपाणि गणेश से दक्षिण में विकटद्विज (विकटदंत) गणनायक को पूजकर गणपति के पदको पावे ॥ ७५ ॥ व खर्व नामक

त्किञ्चिदीशानदिग्गतः ॥ क्षेत्ररक्षोगणाध्यक्षःपूज्यःशालकटङ्कटः ॥ ७१ ॥ प्राच्यांदेहलिविघ्नेशात्कूश्माण्डाख्यो विनायकः ॥ पूजनीयःसदाभक्तैर्महोत्पातप्रशान्तये ॥७२॥ उद्दण्डाख्याद्गणपतेराशुशुक्षणिदिक्स्थितः ॥ महाप्रसिद्धः सम्पूज्योभक्तैर्मुण्डविनायकः ॥ ७३ ॥ पातालेतस्यदेहोऽस्तिमुण्डंकाश्यांव्यवस्थितम् ॥ अतःसङ्गीयतेकाश्यांदेवो मुण्डविनायकः ॥ ७४ ॥ पाशपाणेर्गणेशानाद्दक्षिणेविकटद्विजम् ॥ पूजयित्वागणपतिङ्गाणपत्यपदंलभेत् ॥ ७५ ॥ खर्वाख्यान्नैर्ऋतेभागेराजपुत्रोविनायकः ॥ भ्रष्टराज्यञ्चराजानंराजानंकुरुतेऽर्चितः ॥ ७६ ॥ गङ्गायाःपश्चिमेकूलेप्रणवाख्योगणाधिपः ॥ अवाच्यांराजपुत्राच्चप्रणतःप्रणयेद्दिवम् ॥ ७७ ॥ द्वितीयावरणेकाश्यामष्टावेतेविनायकाः ॥ उत्सादयेयुर्विघ्नौघान्काशीस्थितिनिवासिनाम् ॥ ७८ ॥ क्षेत्रेतृतीयावरणेक्षेत्ररक्षाकृतःसदा ॥ येविघ्नराजाःसन्तीहते वक्तव्यामयाधुना ॥ ७९ ॥ उदग्वहायाःस्वर्धुन्यारम्येरोधसिविघ्नराट् ॥ लम्बोदराद्वुदीच्यान्तुवक्रतुण्डोघसङ्घ

विनायक से नैर्ऋत्य भाग में पूजेहुये राजपुत्रविनायक राज्यभ्रष्ट (छूटी राज्यवाले) राजा को राजा करदेते हैं ॥ ७६ ॥ व गंगा के पश्चिम किनारे व राजपुत्र से दक्षिण में नमस्कार किये गये हुये प्रणव नामक गणेश जी लोगोंको स्वर्ग में पठाते हैं ॥ ७७ ॥ काशी के मध्य द्वितीयावरण मे टिके हुये ये आठ विनायक काशीवासी जनों के विघ्नसमूहों को उखाड़ कर चलादेते हैं ॥ ७८ ॥ इस क्षेत्र के तीसरे आवरण में जे सदैव क्षेत्र के रक्षक विघ्नराज (गणेश) हैं वे इस समय मेरे कहने

योग्य हैं ॥ ७९ ॥ व उत्तर वाहिनी गंगा के मनोरमतीरमें लंबोदरसे उत्तर ओर पापसमूह घायक वक्रतुंड नामक विनायक हैं ॥ ८० ॥ औरकूट दंत गणेश से उत्तर दिशा में टिकेहुये एकदंतजी विघ्नों के समीप से काशीकी सदैव रक्षाकरें ॥ ८१ ॥ व शालकटंकट से ईशानकोण में टिकेहुये वानर सिंह और हाथी के समान मुखवाले त्रि-मुख नामक विनायक जी काशीके भयहर्ता हैं ॥ ८२ ॥ व कूश्माण्ड से पूर्व भागमेंसिंह समते श्रेष्ठरथवाले पंचास्य नाम विघ्नराज काशीपुरीको पालते हैं ॥ ८३ ॥ व मुण्ड विनायक से आग्नेय कोण मे हेरम्ब नामक गणेश जी सदा पूजनीय हैं और वह माताकी नाई सब काशी वासी जनों के वांञ्छितों को पूर करते हैं ॥ ८४ ॥ व

हृत॥८०॥कूटदन्ताद्गणपतेरुदीच्यामेकदन्तकः॥सदोपसर्गसंसर्गात्पायादानन्दकाननम्॥८१॥काशीभयहरोनित्यमै श्यांशालकटङ्कटात् ॥ त्रिमुखोनामविघ्नेशःकपिसिंहद्विपाननः ॥ ८२ ॥ कूश्माण्डात्पूर्वदिग्भागेपञ्चास्योनामविघ्न राट् ॥ पञ्चास्यस्यन्दनवरःपातिवाराणसींपुरीम् ॥ ८३ ॥ हेरम्बाख्यःसदाग्नेय्यांपूज्योमुण्डविनायकात्॥अम्बावत्पूर येत्कामान्सर्वेषाङ्काशिवासिनाम् ॥ ८४ ॥ अवाच्यामर्चयेद्धीमान्सिद्ध्यैविकटदन्ततः ॥ विघ्नराजङ्गणपतिंसर्वविघ्नवि नाशनम् ॥ ८५ ॥ विनायकाद्राजपुत्रात्किञ्चिद्रक्षोदिशिस्थितः ॥ वरदाख्योगणाध्यक्षःपूज्योभक्तवरप्रदः ॥ ८६ ॥ याम्यांप्रणवविघ्नेशाद्गणेशोमोदकप्रियः ॥ पूज्यःपिशङ्गिलातीर्थेदेवनद्यास्तटेशुभे ॥ ८७ ॥ चतुर्थावरणेकाश्यांभक्त विघ्नविनाशकाः ॥ द्रष्टव्याहृष्टचेतोभिःस्पष्टमष्टौविनायकाः ॥ ८८ ॥ वक्रतुण्डादुदग्दिक्स्थःस्वःसिन्धोरोधसिस्थि तः ॥ विनायकोस्त्यभयदःसर्वेषांभयनाशनः ॥ ८९ ॥ कौबेर्यामेकदशनात्सिंहतुण्डोविनायकः ॥ उपसर्गगजान्हन्ति

बुद्धिमान् मनुष्य सिद्धिके लिये विकट दंत से दक्षिण दिशा में टिकेहुये सब विघ्नों के विनाशक विघ्न राज नामक गणेशजी की पूजाकरे ॥ ८५ ॥ व राज पुत्र वि-नायक से कुछ नैर्ऋत्य में टिकेहुये भक्तवर दायक वरद नाम विनायक पूजनीय हैं ॥ ८६ ॥ व प्रणव विनायक से दक्षिण ओर गंगा के शुभ किनारे पर पिशंगिला ती र्थ में मोदक प्रिय गणेश जी पूज्य हैं इस श्लोक में उत्तरबाहिनी गगा के अभिप्राय से दक्षिण दिशा कही गई है वस्तुतः पश्चिम दिशा जानना चाहिये ॥ ८७ ॥ और काशी के चौथे आवरण में भक्तों केविघ्न विनाशक आठ विनायक प्रसन्न मन वालेजनों से स्पष्ट देखने योग्य हैं ॥ ८८ ॥ वे ये हैं कि, वक्रतुंड से उत्तर ओर गंगा कि

नारे टिके हुये अभयद नामक विनायक सब के भयनाशक हैं ॥ ८९ ॥ व एकदंत से उत्तर में सिंहतुण्डनामक गणेश जी काशीवासी जनो के विघ्नरूप हाथियों को हन डालते हैं ॥ ९० ॥ व त्रितुण्ड से ईशान कोण में टिके हुये कूणिताक्ष नामक गणेश दुष्टों की कुदृष्टि से निरन्तर काशी की रक्षा करे हैं ॥ ९१ ॥ व पंचास्य से पूर्वमें टिके हुये क्षिप्रप्रसादन नामक गणेश्वरपुरी की रक्षा करते हैं और क्षिप्रप्रसादन गणेश की पूजा से सिद्धियां शीघ्रही सिद्ध होती हैं ॥ ९२ ॥ व हेरंबसे आग्नेय कोण में टिके हुये चिंतामणि विनायक साक्षात् भक्त चिंतामणि और चिंतित अर्थों के दायक हैं ॥ ९३ ॥ व विघ्नराज से दक्षिण दिशा में दंतहस्त नामक गणेश जी

वाराणसिनिवासिनाम् ॥ ९० ॥ कूणिताक्षोगणाध्यक्षस्त्रितुण्डादीशदिक्स्थितः ॥ महाश्मशानंसततंपायाद्दुष्टकुदृष्टितः ॥ ९१ ॥ प्राच्यांपञ्चास्यतःपायात्पुरींक्षिप्रप्रसादनः ॥ क्षिप्रप्रसादनार्चातःक्षिप्रंसिध्यन्तिसिद्धयः ॥ ९२ ॥ हेरम्बाद्वह्निदिग्भागेचिन्तामणिविनायकः ॥ भक्तचिन्तामणिःसाक्षाच्चिन्तितार्थसमर्पकः ॥ ९३ ॥ विघ्नराजादवाच्यान्तुदन्तहस्तोगणेश्वरः ॥ लिखेद्विघ्नसहस्राणिनृणांवाराणसीद्रुहाम् ॥ ९४ ॥ वरदाद्यातुधान्यांचयातुधानगणावृतः ॥ देवःपिचिंडिलोनामपुरींरक्षेदहर्निशम् ॥ ९५ ॥ दृष्टःपिलिपिलातीर्थेदक्षिणेमोदकप्रियात् ॥ उद्दण्डमुण्डोहेरम्बो भक्तेभ्यःकिंनयच्छति ॥ ९६ ॥ प्रावारेपञ्चमेकाश्यांद्विचतुष्कविनायकाः ॥ कुर्वन्तिरक्षांक्षेत्रस्ययेतानत्रब्रवीम्यहम् ॥ ९७ ॥ तीरेस्वर्गतरङ्गिण्याउत्तरेचाभयप्रदात् ॥ स्थूलदन्तोगणेशानःस्थूलाःसिद्धीर्दिशेत्सताम् ॥ ९८ ॥ सिंहतुण्डादुदग्भागेकलिप्रियविनायकः ॥ कलहंकारयेन्नित्यमन्योन्यंतीर्थकद्रुहाम् ॥ ९९ ॥ कूणिताक्षात्तथैशान्याञ्चतुर्दन्तोविनायकः ॥ तस्यदर्शनमात्रे

काशीद्रोही मनुष्यों के हजारों विघ्नों को लिखैं हैं ॥ ९४ ॥ और वरदगणेश से नैर्ऋत्यकोण में राक्षस गणों से घिरेहुये पिचिंडिनामक देवपुरीको रातो दिन रखातेहैं ॥ ९५ ॥ व मोदक प्रियगणेशसे दक्षिण ओर पिलपिला तीर्थमें देखेहुये उद्दंड मुंडनामक विनायक भक्तों के लिये क्या नहीं देतेहैं याने सब मनमाने फल देतेहैं ॥ ९६ ॥ औरकाशीके पंचम आवरण में टिकेहुये जे आठ गणेश क्षेत्र की रक्षा करतेहैं उनको मैं यहां कहताहूं ॥ ९७ ॥ कि अभयप्रदसे उत्तर गंगा किनारे स्थूलदंत गणेश संतों को स्थूल सिद्धियां देते हैं ॥ ९८ ॥ व सिंहतुंड (श्रेष्ठतुंड) से उत्तर भागमें टिकेहुये कलिप्रियनामक गणेशजी तीर्थसेवी प्राणियों के हिंसकों को नित्यही परस्पर

लड़ाईकरा देते हैं ॥ ९९ ॥ वैसेही कूणिताक्षसे ईशानदिशामें चतुर्दंत विनायक हैं उनके दर्शन मात्र से विघ्नसमूह आपही नष्टहोजावे ॥१०० ॥ व क्षिप्रप्रसादन से पूर्व में द्वितुंड नामक गणेश जी आगे और पाछे से भी समान संपत्ति को भरते हैं॥ १ ॥ उनके दर्शन मात्रसे लोगोंकी सर्वतो मुखी लक्ष्मी होती है और मेरी संतान संपत्ति में जो ज्येष्ठ नामक गणेश ज्येष्ठ (श्रेष्ठ) हैं ॥ २ ॥ वह श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिये जेठ सुदी चतुर्दशी तिथि में पूजनेयोग्य हैं व चिंतामणि विनायक से अग्नि दिशाके भागमें टिके हैं ॥ ३ ॥ और दंतहस्त से दक्षिण दिशामें गजविनायक जी पूजनीय हैं भक्ति पूर्वक उनकी पूजासे हाथी पर्य्यंत संपत्ति प्राप्ति होती है ॥

णविघ्नसङ्घःक्षयेत्स्वयम् ॥ १०० ॥ क्षिप्रप्रसादनादैन्द्र्यांद्वितुण्डोगणनायकः ॥ अग्रतःपृष्ठतश्चापिबिभर्तिसदृशींश्रियम् ॥ १ ॥तस्यसंदर्शनात्पुंसांभवेच्छ्रीःसर्वतोमुखी ॥ ज्येष्ठोनामगणाध्यक्षोज्येष्ठोमेपुत्रसम्पदि ॥ २ ॥ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सम्पूज्योज्येष्ठताप्तये ॥ स्थितोवह्निदिशोभागेचिन्तामणिविनायकात् ॥ ३ ॥ दन्तहस्ताद्यमाशायांपूज्योगजविनायकः ॥ तस्यसम्पूजनाद्भक्त्यागजान्ताश्रीरवाप्यते॥ ४ ॥ पिचिण्डिलाद्गणपतेर्याम्यांकालविनायकः ॥ भयंनकालकलितं तस्यसंसेवनान्नृणाम् ॥ ५ ॥उद्दण्डमुण्डाद्गणपात्कीनाशदिशिसंस्थितम् ॥ नागेशङ्गणपंदृष्ट्वानागलोकेमहीयते ॥६॥ अथषष्ठावरणगाःप्रोच्यन्तेविघ्ननायकाः ॥ तेषांनामश्रवादेवपुंसांसिद्धिःप्रजायते ॥ ७ ॥ मणिकर्णोगणपतिःप्राच्यांविघ्नविघातकृत् ॥ आशाविनायकोवह्न्यांभक्ताशांपूरयन्स्थितः ॥८॥याम्यांसृष्टिगणेशश्चसृष्टिसंहारसूचकः ॥ नैर्ऋत्यां यक्षविघ्नेशःसर्वविघ्नहरःपरः ॥ ९ ॥ प्रतीच्यांगजकर्णश्चसर्वेषांक्षेमकारकः ॥ चित्रघण्टोगणपतिर्वायव्यांपालयेत्पुरी

४ ॥ व पिचिंडिल गणेश से दक्षिण में कालविनायक हैं उनकी भली भांति सेवा करनेसे मनुष्यों को काल से रचित भयान होवे ॥ ५ ॥ व उद्दंडमुंड नामक गणेश से ईशान दिशा में टिकेहुये नागेश गणेश जी के दर्शन कर नागलोक में पूजाजाता याने आदर पाताहै ॥ ६ ॥ इसके बाद छठयें आवरण में प्राप्त गणेशकहे जातेहैं उनके नाम सुननेसेही मनुष्यों की सिद्धि होती है ॥ ७ ॥ पूर्व में विघ्न विनाश कर्ता मणिकर्ण नामक गणेश हैं व भक्तों की आशा पूरकरते हुये आशा विनायक आग्नेय कोण में टिके हैं ॥ ८ ॥ और सृष्टि व संहार (प्रलय) के सूचन करने वाले सृष्टि गणेश दक्षिण में हैं व सब विघ्नोंके हरनेवाले और उत्तम यक्ष

विघ्नेश नैर्ऋत्य में हैं ॥ ९ ॥ व सब के कल्याणकर्त्ता गजकर्ण नामक गणेश पश्चिम में है वे वायव्यमें चित्र घंट गणेश पुरीको पालते हैं ॥ १० ॥ व उत्तर में टिके हुये स्थूलजंघ गणेश शांतजनों के रोग को विनाश करे है और ईशान दिशामें टिके हुये वह मंगलविनायक शिव की पुरी की रक्षाकरें ॥ ११ ॥ व यम जीर्थ से उत्तर में मित्र विनायक पूजनेयोग्य हैं और जे विनायक (गणेश) सतयें आवरण में है उनको मैं कहूंगा या कहताहूं ॥ १२ ॥ कि मोदआदि पांच विघ्नेश हैं व छठयें ज्ञान विनायक सप्तम महाद्वार के आगे विचरनेवाले द्वार विघ्नेश हैं ॥ १३ ॥ अष्टम अविमुक्त विनायकजी मेरे अविमुक्त (काशी) क्षेत्र में बिनम्रचित्त

म् ॥ १० ॥ स्थूलजङ्घउदीच्यांचशमयेच्छमिनामघम् ॥ ऐश्यामैशींपुरींपायात्समङ्गलविनायकः ॥ ११ ॥ यमतीर्थादुदीच्यांचपूज्योमित्रविनायकः ॥ सप्तमावरणेयेचतांश्चवक्ष्येविनायकान्॥१२॥मोदाद्याःपञ्चविघ्नेशाःषष्ठोज्ञानविनायकः ॥ सप्तमोद्वारविघ्नेशोमहाद्वारपुरश्चरः ॥ १३ ॥ अष्टमःसर्वकष्टौघानविमुक्तविनायकः ॥ अविमुक्तेममक्षेत्रेहरेत्प्रणतचेतसाम् ॥ १४ ॥ षट्पञ्चाशद्गजमुखानेतान्यःसंस्मरिष्यति ॥ दूरदेशान्तरस्थोपिसस्मृतोज्ञानमाप्नुयात् ॥ १५ ॥ ढुण्ढिस्तुतिंमहापुण्यांषट्पञ्चाशद्गजाननाम् ॥ यःपठिष्यतिपुण्यात्मातस्यसिद्धिःपदेपदे ॥ १६ ॥ इमेगणेश्वराःसर्वेस्मर्तव्यायत्रकुत्रचित् ॥ महाविपत्समुद्रान्तःपतन्तंपान्तिमानवम् ॥ १७ ॥ इतिस्तुतिंमहापुण्यांश्रुत्वाचैतान्विनायकान् ॥ जातुविघ्नैर्नबाध्येतपापेभ्योपिप्रहीयते ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवोपिमहोत्सवितमानसः ॥ कृताभिषेकोब्रह्माद्यैस्तेभ्योदत्त्वाभिवाञ्छितम् ॥ १९ ॥ संप्रसाद्ययथायोगंसर्वान्नुचितचञ्चुरः ॥ अविशद्राजसदनंविश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ २० ॥

वाले लोगों के कष्ट समूहों को हरलेते हैं ॥ १४ ॥ जो कि एक सिंह मुख और छप्पन गजमुख याने इन सत्तावन गणेशोंको भलीभांति सुमिरेगा वह दूरदेशांतर में टिका हुवा मराहुवा ज्ञान को प्राप्त होवेगा ॥ १५ ॥ छप्पन गजमुख वाली व महा पुण्य रूप ढुंढिराज की स्तुति को जो पढ़ेगा उसकी क्षण क्षण में सिद्धिहोवेगी ॥ १६ ॥ ये सब गणेश्वर जहां कहीं याने सर्वत्र सुमिरने योग्य हैं और ये बडीविपत्ति सागर में गिरते हुये मनुष्य की रक्षा करते हैं ॥ १७ ॥ इसभांति महापुण्य रूप स्तुति और इन विनायकों को सुनकर विघ्नों से की भी न बाधित होवे व पापों से भी छूटजाता है ॥ १८ ॥ ऐसे कह कह कर अधिक उत्सव समेत मनवाले

देवों के देव ब्रह्मादि देवों से अभिषेक किये हुये व उनको वाञ्छित देकर ॥ १६ ॥ यथायोग्य व्यवहार में दक्ष होकर फिर विश्वकर्मा से बनाये राजमन्दिर में प्रवेश करते भये ॥ २० ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, इस प्रकार देवों के देव भगवान् श्रीमहादेव जी से विघ्नजित् (गणेशजी) स्तुतिकिये गये और उन विनायक जी ने ऐसे बहुत भांति अपना को किया ॥ २१ ॥ हे कुम्भज ! उन ढुंढिराज के ये नाम हैं कि जिनको जपकर नर निजमनमाने फल पावे ॥ २२ ॥ और वह उन ढुंढिराज गणेश जी के अन्य भी असंख्य सहस्रों भेद भक्ति समेत भक्तों से भली भांति पूजित हैं ॥ २३ ॥ भगीरथ गणेश, हरिश्चन्द्रविनायक, कपर्दनामक ग-

स्कन्दउवाच ॥ एवंस्तुतोभगवतादेवदेवेनविघ्नजित् ॥ इत्थञ्चबहुधात्मानंसचकारविनायकः ॥ २१ ॥ एतानितस्यनामानिढुण्ढिराजस्यकुम्भज ॥ जपित्वायानिमनुजोलप्स्यतेनिजवाञ्छितम् ॥ २२ ॥ अन्येपितत्रवैभेदास्तस्यढुण्ढेर्गणेशितुः ॥ भक्तैःसमर्चिताभक्त्याह्यसंख्याताःसहस्रशः ॥२३॥ भगीरथगणाध्यक्षोहरिश्चन्द्रविनायकः ॥ कपर्दाख्योगणपतिस्तथाबिन्दुविनायकः ॥ २४ ॥ इत्याद्यास्तत्रविघ्नेशाःप्रतिभक्तप्रतिष्ठिताः ॥ तेषामप्यर्चनात्पुंसाञ्जायन्तेसर्वसम्पदः ॥ २५ ॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यन्नरःश्रद्धासमन्वितः ॥ सर्वविघ्नान्समुत्सृज्यलभतेवाञ्छितम्पदम् ॥ १२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेढुण्ढिविनायकप्रादुर्भावोनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ किञ्चकारहरःस्कन्दमन्दराद्रिगतस्तदा ॥ विलम्बमालंबयतितस्मिन्नपिगजानने ॥ १ ॥ स्कन्द

णेश तथा बिन्दुविनायक ॥ २४ ॥ इत्यादि गणेश वहां प्रति भक्त जनों से थापे गये हैं उनके भी पूजन से मनुष्यों की सब संपत्तियां उत्पन्न होती हैं ॥ २५ ॥ और श्रद्धा समेत मनुष्य इस पुण्य रूप अध्यायको सुनकर सब विघ्नों को भली भांति दूर त्यागकर वाञ्छित स्थान को पाता है ॥ १२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते ढुण्ढिविनायकप्रादुर्भावो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

अट्ठावन अध्याय में विष्णु बौद्धवपु कीन। काशीवाशी मोहिकै दिवोदास सुखदीन ॥ अगस्त्य जी बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी ! उन गणेशजी के भी विलम्ब का

आलंबन करतेही मंदराचल में प्राप्त महादेवजी ने क्या कियाथा ॥ १ ॥श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्यजी ! अब काशिका के एक विषय करने वाली व सब पाप समूह नाशिका व मुझसे कही जातीहुई बड़ी पुण्यरूपा कथा को सुनो ॥ २ ॥कि जब गजेन्द्र मुख गणेशजी उस काशी क्षेत्र श्रेष्ठ में विलंब सेवी होगये तब शिवजी ने शीघ्रही विष्णुजी को देखा ॥ ३ ॥ व तदनंतर बहुत आदरपूर्वक बहुत भांति से ऐसे कहा कि जैसे पहले के पठाये गये जनों ने किया है वैसेही तुमभी मत करना ॥ ४ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे शंकर ! जैसे बुद्धिका बल और अबल है वैसे याने अपनी बुद्धिके बलानुसार प्राणियों को उद्यम करना चाहिये परंतु तु-

उवाच ॥ शृण्वगस्त्यकथाम्पुण्याङ्कथ्यमानांमयाधुना ॥ वाराणस्येकविषयामशेषाघौघनाशिनीम् ॥ २ ॥ करीन्द्रवदनेतत्रक्षेत्रवर्येऽविमुक्तके ॥ विलम्बभाजित्र्यक्षेणप्रैक्षिक्षिप्रमधोक्षजः ॥ ३ ॥ प्रोक्तोथबहुशश्चेतिबहुमानपुरःसरम् ॥ तथात्वमपिमाकार्षीर्यथाप्राक्प्रस्थितैःकृतम् ॥ ४ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ उद्यमःप्राणिभिःकार्योयथाबुद्धिबलाबलम् ॥ परंफलन्तिकर्माणित्वदधीनानिशङ्कर ॥ ५ ॥ अचेतनानिकर्माणिस्वतन्त्राःप्राणिनोपिन ॥ त्वञ्चतत्कर्मणांसाक्षीत्वञ्प्राणिप्रवर्तकः ॥ ६ ॥ किन्तुत्वत्पादभक्तानांतादृशीजायतेमतिः ॥ ययात्वमेवकथयेःसाध्वनेनत्वनुष्ठितम् ॥ ७ ॥ यत्किञ्चिदिहवैकर्मस्तोकम्वाऽस्तोकमेववा ॥ तत्सिद्ध्यत्येवगिरिशत्वत्पादस्मृत्यनुष्ठितम् ॥ ८ ॥ सुसिद्धमपिवैकार्यं सुबुद्ध्यापिस्वनुष्ठितम् ॥ अत्वत्पदस्मृतिकृतंविनश्यत्येवतत्क्षणात् ॥ ९ ॥ शम्भुनाप्रेषितेनाद्यसूद्यमःक्रियतेमया ॥

म्हारे अधीन हुये वे कर्म्म फलवान् होते हैं ॥ ५ ॥ क्योंकि वे कर्म जड हैं व प्राणीभी स्वतंत्र (अपने अधीन) नहीं हैं किंतु तुमहीं कर्मों के साक्षी हो और तुमहीं प्राणियों के प्रेरक या कर्मों में वर्त्तानेवाले हो ॥ ६ ॥ किंतु तुम्हारे पद कमल केभक्तों की वैसी बुद्धि उपजती है जिस से तुमहीं कहते हो कि इसने अच्छा कर्म किया ॥ ७ ॥ व हे गिरिश ! यह निश्चय है कि इस लोक में जो कुछ थोड़ा व बडाभी कर्म्म है वह तुम्हारे चरणारविंद के स्मरण से किया हुवाही सिद्ध होता है ॥ ८ ॥ और जो कि तुम्हारे पांवों के स्मरण विना कियागया है वह सुसिद्धभी, सुबुद्धिसे भलीभांति किया हुवा भीकार्य्य निश्चय से उसही क्षण मे नष्ट होजाता है ॥ ९ ॥

और कल्याण करि आपसे प्रेरित हुये मुझ से अच्छा उद्यम किया जाता है व तुम्हरी भक्तिसंपत्तिवाले हमलोगों का उद्यम सिद्ध प्रायही है ॥ १० ॥ हे शिव ! जो कि कार्य्य अपनी बुद्धिबल और पौरुष से अत्यंत असाध्य होवे वहभी तुम्हारे ध्यान समेत स्मरण से सुसिद्ध होजावे ॥ ११ ॥ हे विभो ! जे लोग आप सुखदायक की प्रदक्षिणा कर कहीं को जाते हैं उनके कार्य्य आप के डरसे आगे हुये होतेहैं ॥ १२ ॥ हे महादेव जी ! बहुतही निश्चय किये हुये इस कार्य्य को हुवा जानों परंतु काशी पुरी में प्रवेश करने के योग्य शुभ लग्न का उदय विचारना चाहिये ॥ १३ ॥ अथवा काशी की भली भांति प्राप्ति में शुभ व अशुभ विचारने योग्य नहीं

त्वद्भक्तिसम्पत्तिमतांसम्पन्नप्रायएवनः ॥ १० ॥ अतीवयदसाध्यंस्यात्स्वबुद्धिबलपौरुषैः ॥ तत्कार्यंहिसुसिद्धंस्यात्त्वदनुध्यानतःशिव ॥ ११ ॥ यान्तिप्रदक्षिणीकृत्यययेभवन्तंभवंविभो ॥ भवन्तितेषाङ्कार्याणिपुरोभूतानितेभयात् ॥ १२ ॥ जातंविद्धिमहादेवकार्यमेतत्सुनिश्चितम् ॥ काशीप्रावेशिकश्चिन्त्यःशुभलग्नोदयःपरम् ॥ १३ ॥ अथवाकाशिसम्प्राप्तौनचिन्त्यंहिशुभाशुभम् ॥ तदैवहिशुभःकालोयदैवाप्येतकाशिका ॥ १४ ॥ शम्भुम्प्रदक्षिणीकृत्यप्रणम्यचपुनःपुनः ॥ प्रतस्थेऽथसलक्ष्मीकोमन्दराद्गरुडध्वजः ॥ १५ ॥ दृशोरतिथितान्नीत्वाविष्णुर्वाराणसीन्ततः ॥ पुण्डरीकाक्ष इत्याख्यांसफलीकृतवान्मुदा ॥ १६ ॥ गङ्गावरणयोर्विष्णुःसम्भेदेस्वच्छमानसः ॥ प्रक्षाल्यपाणिचरणंसचैलःस्नातवानथ ॥ १७ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थंपादोदकमितीरितम् ॥ पादौयदादौशुभदौक्षालितौपीतवाससा ॥ १८ ॥ तत्रपादोदकेतीर्थेयेस्नास्यन्तीहमानवाः ॥ तेषांविनश्यतिक्षिप्रंपापंसप्तभवार्जितम् ॥ १९ ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वादत्त्वाचैवतिलोदक

है क्योंकि जबहीं काशी पुरी प्राप्त होवे तबहीं शुभकाल है ॥ १४ ॥ तदनंतर शंकर जीके प्रदक्षिणाकर और बार बार प्रणामकर श्री लक्ष्मी जी समेत श्री गरुड़ध्वज (विष्णु) जीने मंदराचल से प्रस्थान किया ॥ १५ ॥ उसके बाद विष्णुजीने काशीपुरी को नेत्रों के अतिथि भावकोप्राप्तकर याने देखकर आनंदसे पुंडरीकाक्ष ऐसेनाम को सफल किया ॥ १६ ॥ अनंतर वस्त्रसमेत अमलअंतःकरण वाले विष्णु जी गंगा व वरणा नदी के संगम में हाथ पांव धोकर नहाते भये ॥ १७ ॥ जब पहले पीतांबर धारी विष्णु जीने शुभदायक पावों को पखारा तब से लगाकर वहतीर्थ पादोदकइस भांति कहागया है ॥ १८ ॥ उस पादोदकतीर्थ में यहां जे मनुष्य स्नान करेंगे उनके सा-

न जन्मा का बटोरा हुआ पाप शीघ्रही विनष्ट होजावेगा ॥१९॥ और मनुष्य वहां श्राद्धकर व तिलोदक भी देकर सात सात तथा फिरसात याने इक्कीस पुश्तिके अपने पितरों को तारेगा ॥ २० ॥ यह निश्चय है कि गयामें पितरोंको जैसी तृप्तिमिलतीहै वैसीही काशी के बीच पादोदकतीर्थ में भी मिलती है ॥ २१ ॥व जिसने पादोदक तीर्थमें स्नान किया व पादोदक का जल पिया और देवादिकों के लिये पादोदकतीर्थ का पानी दियाहो उस मनुष्य को नरक न स्पर्शकरे याने न छूसके ॥ २२ ॥ व ऐसा निश्चय किया हुवा है कि, श्री विष्णुजी के पादोदकतीर्थ में पादप्रक्षालनका जल पानकर फिर माताका दूध कभी न पीवे याने जन्म न होवे ॥ २३॥ व पा-

म् ॥ सप्तसप्ततथासप्तस्ववंश्यांस्तारयिष्यति ॥ २० ॥ गयायांयादृशीतृप्तिर्लभ्यतेप्रपितामहैः ॥ तीर्थेपादोदकेकाश्यां तादृशीलभ्यतेध्रुवम् ॥ २१ ॥ कृतपादोदकस्नानंपीतपादोदकोदकम् ॥ दत्तपादोदपानीयंनरंनानिरयःस्पृशेत् ॥ २२ ॥ विष्णुपादोदकेतीर्थेप्राश्यपादोदकंसकृत् ॥ जातुचिज्जननीस्तन्यन्नपिबेदितिनिश्चितम् ॥ २३ ॥ सचक्रशालग्राम स्यशङ्खेनस्नापितस्यच ॥ अद्भिःपादोदकस्याम्बुपिबन्नमृततांव्रजेत् ॥ २४ ॥ विष्णुपादोदकेतीर्थेविष्णुपादोदकंपिबे त् ॥ यदितत्सुधयाकिंनुबहुकालीनयातया ॥ २५ ॥ काश्यांपादोदकेतीर्थेयैःकृतानोदकक्रियाः ॥ जन्मैवविफलन्तेषां जलबुद्बुदसश्रियाम् ॥ २६ ॥ कृतनित्यक्रियोविष्णुःसलक्ष्मीकःसकाश्यपिः ॥ उपसंहृत्यताम्मूर्तिंत्रैलोक्यव्यापिनी न्तथा ॥ २७ ॥ विधायदार्षदींमूर्तिंस्वहस्तेनादिकेशवः ॥स्वयंसम्पूजयामाससर्वसिद्धिसमृद्धिदाम् ॥ २८ ॥ आदिके शवनाम्नींतांश्रीमूर्तिंपारमेश्वरीम् ॥ सम्पूज्यमर्त्योवैकुण्ठंमन्यतेस्वगृहाङ्गणम् ॥ २९ ॥ श्वेतद्वीपइतिख्यातंतत्स्थानं

दोदकतीर्थ के पानी से शंख के द्वारा स्नान कराये हुये चक्र समेत शालग्राम का चरणामृत पीताहुवा मनुष्य मुक्तिको प्राप्तहोवे ॥ २४ ॥ व जो विष्णु पादोदकतीर्थमें विष्णुका चरणामृत पीवे तो उस प्रसिद्ध बहुत कालके अमृतसे क्याहै ॥ २५ ॥ काशी के बीच पादोदकतीर्थ में जिन्होंने जलक्रियाको नहीं किया उन जल बुल्लाके स-मान शोभा वालों का जन्म विफल है ॥ २६ ॥ और त्रैलोक्यव्यापिनी उस मूर्तिको उप संहार कर लक्ष्मीसमेत व गरुडसंयुत नित्यक्रिया किये हुये विष्णुजी ॥ २७ ॥ जो कि आदि केशव हैं उन्होंने आपही अपने हाथसे (सब समृद्धि देने वाली) पत्थर की मूर्ति बनाकर भलीभांति पूजा किया ॥ २८ ॥ उस आदि केशव

नाम वाली परमेश्वर की श्री मूर्तिको भलीभांति पूजकर मनुष्य वैकुंठ को अपने घरका आँगन मानता है ॥ २९ ॥ और काशीकी सीमामें वह स्थान श्वेतद्वीप इस नाम से कहागया या प्रसिद्ध है उस मूर्ति के सेवक मनुष्य श्वेतद्वीपमेंहीं बसते हैं ॥ ३० ॥ व केशव के आगे वहां क्षीरसागरनामक अन्यभी तीर्थ हैं उसमें जलक्रिया कियेहुये मनुष्य क्षीरसमुद्र के किनारे बसे ॥ ३१ ॥ व वहां श्राद्धकर और यथोक्त याने सोने के सींग रूपे के खुर आदि अलंकारवाली पयस्विनी (दुधारी) गऊ को दानकर नर अपने पितरोंको क्षीरसागर में बसावे ॥ ३२ ॥ व उस में भक्ति से एक गऊ देने वाला पुण्यात्मा वंशके एक अधिक एक सौ पितरों को खीररूपकीच

काशिसीमनि ॥ श्वेतद्वीपेवसन्त्येवनरास्तन्मूर्तिसेवकाः ॥ ३० ॥ क्षीराब्धिसंज्ञन्तत्रान्यत्तीर्थंकेशवतोग्रतः ॥ कृतोदकक्रियस्तत्रवसेत्क्षीराब्धिरोधसि ॥ ३१ ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वागांदत्त्वाचपयस्विनीम् ॥ यथोक्तसर्वाभरणांक्षीरोदेवासयेत्पितॄन् ॥ ३२ ॥ एकोत्तरशतंवंश्याह्नयेत्पायसकर्दमम् ॥ क्षीरोदरोधःपुण्यात्माभक्त्यातत्रैकधेनुदः ॥ ३३ ॥ बह्वीश्च नैचिकीर्दत्त्वाश्रद्धयात्रसदक्षिणाः ॥ शय्योत्तरांश्चप्रत्येकंपितॄंस्तत्रसुवासयेत् ॥ ३४ ॥ क्षीरोदाद्दक्षिणेतत्रशङ्खतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रापिसन्तर्प्यपितॄन्विष्णुलोकेमहीयते॥ ३५॥तद्याम्याञ्चक्रतीर्थंचपितॄणामपिदुर्लभम् ॥ तत्रापिविहितश्राद्धोमुच्यतेपैतृकादृणात् ॥ ३६ ॥ तत्सन्निधौगदातीर्थंविश्वगाधिनिबर्हणम् ॥ तारणञ्चपितॄणांवैकारणंचैनसांक्षये ॥ ३७ ॥ पद्मतीर्थंतदग्रेतुतत्रस्नात्वानरोत्तमः ॥ पितॄन्सन्तर्प्यविधिनापद्मयानैर्वहीयते ॥ ३८ ॥ तत्रैवचमहाल

वाले क्षीरसागर के तीरको प्राप्तकरे ॥ ३३ ॥ व इस में श्रद्धा से दक्षिणासमेत बहुती उत्तम गौवें देकर शय्याभोगों के साधन उत्तर फल वाले प्रत्येक पितरोंको उस क्षीरसमुद्र के तीर में बास करावे ॥ ३४ ॥ और वहां क्षीरोदकतीर्थ से दक्षिण में अत्यंत उत्तम, शंखतीर्थ है उसमेंभी पितरों का भली भांति तर्पण कर नर विष्णुलोक में आदर पाता है ॥ ३५ ॥ उसके दक्षिण चक्रतीर्थ है जो कि पितरोंको बहुतहीदुर्लभ है उसमेंभी श्राद्ध किये हुआ मनुष्य पितरों के ऋण से छुटजाता है ॥ ३६ ॥ उस चक्रतीर्थ के समीप में सनरोगहारण, पितरों का तारण और पापों के विनाशमें कारण गदातीर्थ है ॥ ३७ ॥ और उसके आगे पद्मतीर्थ है उस में स्नान कर व

विधि से पितरों को तर्पण कर उत्तम नर लक्ष्मीसे कभी नहीं हीन होताहै ॥ ३८ ॥ व उस स्थानमेंही त्रिलोक में प्रसिद्ध महालक्ष्मीजी का तीर्थहै जहां तीनलोकोंकी हर्ष देनेवाली श्री महालक्ष्मी जीने आपही स्नान किया है ॥ ३९ ॥ उस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य (ब्राह्मणों को) रत्न सोना और रेशमी वस्त्र देकर लक्ष्मी से नही त्यागाजाता है ॥ ४० ॥ और जहां जहां उत्पन्नहोवे वहां वहां समृद्धिमान् होवे व तीर्थकी गुरुतासे उस के पितरभी सपत्ति या शोभा समेत होवें ॥४१॥ वहांहीं त्रैलोक्य से वंदित जो महालक्ष्मीजीकी मूर्ति है उसको भक्ति से प्रणाम कर नर रोगी कहीं नहीं होता है ॥ ४२ ॥ और भादो सुदी अष्टमीकी रातमें जा-

क्ष्म्यास्तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ स्वयंयत्रमहालक्ष्मीःस्नातात्रैलोक्यहर्षदा ॥ ३९ ॥ तत्रतीर्थेकृतस्नानोदत्त्वारत्नानिकाञ्चनम् ॥ पट्टाम्बराणिविप्रेभ्योनलक्ष्म्यापरिहीयते ॥ ४० ॥ यत्रयत्रहिजायेततत्रतत्रसमृद्धिमान् ॥ पितरोपिहिसश्रीकास्तस्यस्युस्तीर्थगौरवात् ॥४१॥ तत्रास्तिहिमहालक्ष्म्यामूर्तिस्त्रैलोक्यवन्दिता ॥ ताम्प्रणम्यनरोभक्त्यानरोगीजायतेक्वचित्॥४२॥नभस्यबहुलाष्टम्यांकृत्वाजागरणंनिशि॥समर्च्यचमहालक्ष्मींव्रतीव्रतफलंलभेत्॥४३॥तार्क्ष्यतीर्थंहितत्रास्तितार्क्ष्यकेशवसन्निधौ॥तत्रस्नात्वानरोभक्त्यासंसाराहिंनपश्यति॥४४॥तदग्रेनारदंतीर्थंमहापातकनाशनम्॥ब्रह्मविद्योपदेशञ्चप्राप्तवान्यत्रनारदः॥४५॥तत्रस्नातोनरःसम्यग्ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥केशवात्तेनतत्रोक्तःकाश्यान्नारदकेशवः॥४६॥अर्चयित्वानरोभक्त्यादेवन्नारदकेशवम्॥जनन्याजठरंपीठमध्यास्तेनकदाचन॥४७॥प्रह्लादतीर्थंतस्याग्रेयत्रप्रह्लादकेशवः॥तत्रश्राद्धादिकंकृत्वाविष्णुलोकेमहीयते॥४८॥आम्बरीषमहातीर्थमघघ्नंतस्यसन्निधौ॥तत्रोदकींक्रियांकुर्वन्नि

गरण कर व महालक्ष्मी जीकी पूजाकर व्रतवान् मनुष्य व्रतका फलपावे ॥ ४३ ॥ व वहांहीं तार्क्ष्यकेशवके समीप में तार्क्ष्यतीर्थ है उसमें भक्ति से स्नानकर नर संसार रूप सर्प को नहीं देखता है ॥ ४४ ॥ और उस के आगे महा पातक घातक नारदतीर्थ है जहां नारदजीने ब्रह्मविद्याका उपदेश पाया है ॥ ४५ ॥ उसमें नहाया हुवा मनुष्य भलीभाति केशव से ब्रह्मविद्याको प्राप्तहोवे उससे वहां काशी में नारदकेशव कहेगये हैं ॥ ४६ ॥ भक्तिसमेत मनुष्य नारदकेशवकी पूजाकर माताके उदर पीढ़े में कभी नहीं बसता है ॥ ४७ ॥ और उस के आगे प्रह्लादतीर्थ है जहां प्रह्लाद केशव जी हैं उस तीर्थ में श्राद्धादि कर विष्णुलोकमें पूजा पाता है ॥ ४८ ॥ उसके

समीप में पातक घातक, आंबरीष महातीर्थ है उसमें जल संबन्धिनी क्रियाको करताहुवा मनुष्य निष्पापताको पाता है याने पापों से हीन होजाताहै ॥ ४९ ॥ और आदि केशव से पूर्व में आदित्य केशव जी पूजनीयहैं व उन के दर्शन मात्र सेही उपपातकों से छूटजाता है ॥ ५० ॥ वहां दत्तात्रेयेश्वरतीर्थ व आदि गदाधर हैं वहांहीं पितरों का भली भांति तर्प्पण कर ज्ञान योगको प्राप्तहोवे ॥ ५१ ॥ व भृगु केशव से पूर्व और उत्तम भार्गवतीर्थ है उस में नहाया मनुष्य शुक्र के समान सुबुद्धि वाला पण्डित होवे ॥ ५२ ॥ और वहां वामन केशव से पूर्व में वामनतीर्थहै उसमें स्नानकर व उन वामन विष्णु जीकी पूजाकर वामन जीके समीप में बसे ॥ ५३ ॥ व नर

ष्कालुष्यंलभेन्नरः ॥४९॥ आदित्यकेशवःपूज्यआदिकेशवपूर्वतः ॥ तस्यसंदर्शनादेवमुच्यतेचोपपातकैः ॥ ५० ॥ दत्तात्रेयेश्वरंतीर्थंतत्रैवादिगदाधरः ॥ पितॄन्सन्तर्प्यतत्रैवज्ञानयोगमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ भृगुकेशवपूर्वेणतीर्थंवैभार्गवंपरम् ॥ तत्रस्नातोनरःप्राज्ञोभवेद्भार्गववत्सुधीः ॥ ५२ ॥ तत्रवामनतीर्थञ्चप्राच्यांवामनकेशवात् ॥ पूजयित्वाचतंविष्णुंवसेद्वामनसन्निधौ ॥५३॥ नरनारायणंतीर्थंनरनारायणात्पुरः ॥ तत्रतीर्थेकृतस्नानोनरोनारायणोभवेत् ॥५४॥ यज्ञवाराहतीर्थञ्च तदग्रेपापनाशनम् ॥ प्रतिमज्जनतस्तत्रराजसूयक्रतोःफलम् ॥ ५५ ॥ विदारनारसिंहाख्यन्तत्रतीर्थंसुनिर्मलम् ॥ स्नातोविदारयेत्तत्रपापंजन्मशतार्जितम् ॥ ५६ ॥ गोपिगोविन्दतीर्थञ्चगोपिगोविन्दपूर्वतः ॥ स्नात्वातत्रसमभ्यर्च्यविष्णुंविष्णुप्रियोभवेत् ॥ ५७ ॥ तीर्थंलक्ष्मीनृसिंहाख्यङ्गोपिगोविन्ददक्षिणे ॥ नलक्ष्म्यात्यज्यतेक्कापितत्तीर्थपरिमज्जनात ॥ ५८ ॥ तदग्रेशेषतीर्थंचशेषमाधवसन्निधौ ॥ तर्पितानांपितॄणांचयत्रतृप्तिर्नशिष्यते ॥ ५९ ॥ शङ्खमाधवतीर्थं

नारायणके आगे नर नारायणतीर्थ है उस तीर्थमें स्नान किया हुवा मनुष्य नारायण होजावे याने उनके समान रूपधारी होकर वैकुंठादि लोकों में बास पावे ॥ ५४ ॥ और उसके आगे यज्ञ वाराहतीर्थ है जो कि पापोंका नाश करनेवाला है उस में प्रति मज्जन से याने डुबुकी डुबुकी से राजसूययज्ञ का फल है ॥ ५५ ॥ वहां विदारनारसिंह नामक बहुत विमलतीर्थ है उसमें नहाया हुवा नर सैकड़ों जन्मों के बटोरे हुये पापोंको विदारडाले ॥ ५६ ॥ और गोपीगोविंदसे पूर्व में गोपीगोविंदतीर्थ है उस में स्नानकर फिर विष्णुजी की पूजाकर नर विष्णुजी का प्यारा होवे ॥ ५७ ॥ व गोपीगोविंद से दक्षिण में लक्ष्मी नृसिंहनामकतीर्थ है उस तीर्थ में स्नान कर

ने से लक्ष्मी से कहीं भी नहीं त्यागाजाता है ॥ ५८॥ और उसके आगे शेषमाधव के समीप में शेषतीर्थ है जहां तर्पित हुये पितरों की तृप्ति अवशेष नहीं रहजाती याने वे पितर बहुतही तृप्त होजाते हैं ॥ ५९ ॥ व उससे दक्षिण ओर अच्छा निर्मल शङ्ख माधवतीर्थ है उसमें स्नानादि करनेवाला पापीभी निर्मल होजावे ॥ ६० ॥ और उस के आगे परमपवित्र हयग्रीवतीर्थ है उस में स्नानकर फिर हयग्रीव केशव की पूजाकर ॥ ६१ ॥ व वहां हयग्रीव के समीपमें पिंडापार कर पितरों समेत वह मनुष्य हयग्रीवकी संपत्ति या शोभाको प्राप्त होकर संसार से छूटजावे ॥ ६२ ॥ श्री कार्तिकेयजी बोले कि, मैंने प्रसङ्ग से इन कुछेक तीर्थोंको तुमसे कहा जिससे तिलमध्य

चतद्वाच्यांसुनिर्मलम् ॥ कृतोदकोनरस्तत्रभवेत्पापोपिनिर्मलः ॥ ६० ॥ तदग्रेचहयग्रीवंतीर्थंपरमपावनम् ॥ तत्र स्नात्वाहयग्रीवंकेशवंपरिपूज्यच ॥ ६१ ॥ पिण्डंचतत्रनिर्वाप्यहयग्रीवस्यसन्निधौ ॥ हायग्रीवींश्रियम्प्राप्यसमुच्येत सपूर्वजः ॥ ६२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ प्रसङ्गतोमयैतानितीर्थानिकथितानिते॥भूमौतिलान्तरायांयत्तत्रतीर्थान्यनेकशः॥ ६३ ॥ उद्दिष्टानान्तुतीर्थानामेतेषाङ्कलशोद्भव ॥ नाममात्रमपिश्रुत्वानिष्पापोजायतेनरः ॥ ६४ ॥ इदानींप्रस्तुतंविप्र शृणुवक्ष्यामितेग्रतः ॥ वैकुण्ठनाथोयच्चक्रेशङ्खचक्रगदाधरः ॥ ६५ ॥ तस्यांमूर्तौसमावेश्यकैशव्यामथकेशवः ॥ शम्भोःकार्येकृतमनाअंशांशांशेननिर्गतः ॥ ६६ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ अंशांशांशेननिश्चक्रेकुतोभोचक्रपाणिना ॥ क्वनिर्गतंचहरिणाप्राप्यकाशींषडानन ॥ ६७ ॥ स्कन्दउवाच॥ सामस्त्येनयदर्थंनानिर्गतंविष्णुनामुने ॥ ब्रुवेतत्कारण

प्रमाण भूमिमें वहां लिंगों समेत अनेकतीर्थ हैं ॥ ६३ ॥ हे कलशसे उत्पन्न अगस्त्यजी ! उद्देश किये हुये इन तीर्थोंका नाममात्रभी सुनकर और उनमें स्नानकर नर निष्पाप (पापहीन) होजाता है ॥ ६४ ॥ हे विप्र ! इस समय मैं प्रकरण के अनुकूल अर्थको कहताहूँ तुम सुनो कि शङ्ख चक्र गदाधारी वैकुंठ विहारीने जो किया है ॥ ६५ ॥ तदनंतर उस केशव की मूर्ति में व्यापिनी देहको भली भांति प्रवेश कराकर शङ्कर के कार्य्य में मन कियेहुये केशवजी अंशांश अंशसे निकले ॥ ६६ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे षण्मुख ! हाथमें चक्रधारी भक्तभयहारी भगवान् अंशके अंशांश से कैसे निकले और काशीपुरीको प्राप्त होकर निकलकर कहांगये ॥ ६७ ॥ श्री

कार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने! जिसलिये समस्त भावसे विष्णु करके नहीं निकलागया उसके ऐसे कारणको कहताहूं तुम क्षणमात्र सुनो॥ ६८ ॥ कि पुण्यसमूहों से काशीपुरी को प्राप्तहोकर बड़ेलाभों से प्रेरित हुवाभी पण्डित जन सब भाव से न त्याग करे ॥ ६९ ॥ हे कलशज (अगस्त्य)! इससे मुरारिजी ने काशीमें वहां अपनी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा किया और थोड़े अंशसे निकलागया ॥७०॥ व काशी से कुछेक उत्तर ओर जाकर चक्रधारी विष्णुजी ने अपने टिकने के लिये उस स्थान को कल्पित किया जोकि धर्मक्षेत्र इस भांति कहागया है याने धर्मेश नामसे लोकमें प्रसिद्धहै ॥ ७१ ॥ तदनंतर लक्ष्मीनाथ जीने आपही बुद्धसंबंधी रूपको आश्रय किया याने बौद्धरूप

मितिक्षणमात्रंनिशामय ॥ ६८ ॥ सम्प्राप्यपुण्यसम्भारैःप्राज्ञोवाराणसींपुरीम् ॥ नत्यजेत्सर्वभावेनमहालाभैरपीरितः ॥ ६९ ॥ अतःप्रतिकृतिःस्वीयातत्रकाश्यांमुरारिणा ॥ प्रतितस्थेकलशजस्तोकांशेनचनिर्गतम् ॥ ७० ॥ किञ्चित्काश्याउदीच्याञ्चगत्वादेवेनचक्रिणा ॥ स्वस्थित्यैकल्पितंस्थानंधर्मक्षेत्रमितीरितम् ॥ ७१ ॥ ततस्तुसौगतंरूपंशिश्रायश्रीपतिःस्वयम् ॥ अतीवसुन्दरतरंत्रैलोक्यस्यापिमोहनम् ॥ ७२ ॥ श्रीःपरिव्राजिकाजातानितरांसुभगाकृतिः ॥ यामालोक्यजगत्सर्वंचित्रन्यस्तमिवास्थितम् ॥ ७३ ॥ विश्वयोनिञ्जगद्धात्रींन्यस्तहस्ताग्रपुस्तकाम् ॥ गरुत्मानपितच्छिष्योजातोलोकोत्तराकृतिः ॥ ७४ ॥ अत्यद्भुतमहाप्राज्ञोनिःस्पृहःसर्ववस्तुषु ॥ गुरुशुश्रूषणपरोन्यस्तहस्ताग्रपुस्तकः ॥ ७५ ॥ अपृच्छत्परमंधर्मंसंसारविनिमोचकम् ॥ आचार्यवर्यंसौम्यास्यंप्रसन्नात्मानमुत्तमम् ॥ ७६ ॥ धर्मार्थशास्त्रकु

धरलिया जोकि सुन्दर से अधिक सुन्दर था और त्रिलोक के भी मोह करनेवाला था ॥ ७२ ॥ और अधिक सुन्दर आकारवाली लक्ष्मीजी परिव्राजिका (बौद्धकी स्त्री) होगई जिनको देखकर सब जगत् चित्रपट में न्यास कियागया सा रहगया ॥ ७३ ॥ जोकि विश्वकी कारण जगत् की धारने या पोषनेहारी और हाथके अग्रभाग में पुस्तकवाली थीं और गरुड़जी भी उन बौद्ध भगवान् के शिष्य होगये जोकि सबलोगों से अधिक सुन्दर आकारवान् ॥ ७४ ॥ व अद्भुत महाप्राज्ञ, सब वस्तुवों में वाञ्छाहीन, गुरुकी सेवा में तत्पर और हस्ताग्र में पुस्तकवाले थे ॥ ७५ ॥ उन गरुड़जी ने संसार से छुड़ानेहारे परमधर्म को ऐसे आचार्य्य श्रेष्ठ से पूंछा जोकि सुंदर

मुख प्रसन्नमनवाले थे ॥ ७६ ॥ व धर्मार्थ शास्त्रों में निपुण ज्ञान (शास्त्र से उत्पन्न) विज्ञान (अनुभव) से शोभनशील, अच्छे स्वरवाले, व सुन्दरे पदों का स्पष्ट होना जैसेहो वैसे बहुत स्नेह समेत कोमल वचनवाले थे ॥ ७७ ॥ व स्तंभन (रोकदेना) उच्चाटन, आकर्षण (खींच लेना) और वशीकरण आदि कर्म्म में पंडित और व्याख्या के समय सुनने के लिये आकृष्ट (बुलाये हुये) पक्षियों के अङ्ग में रोमांच करनेहारे थे ॥ ७८ ॥ और उन के गीतरूप अमृत को पिये हुये मृगसमूहों से उपासित व महासुगंधभार से आक्रांत वात (वायु) की चंचलता हरनेवारे ॥ ७९ ॥ और गिरते हुये फूलोंके मिष वाले वृक्षों से पूजित कियेगये थे उन पुण्यात्मा पुण्यकीर्ति बौद्धजी ने उस से कहा ॥ ८० ॥ जो कि वह विनयकीर्ति नामक शिष्य महाविनयरूप भूषणवाला था ॥ ८१ ॥ पुण्यकीर्ति बोले कि, हे महामते,

शलंज्ञानविज्ञानशालिनम् ॥ सुस्वरंसुपदव्यक्तिसुस्निग्धमृदुभाषिणम् ॥ ७७ ॥ स्तम्भनोच्चाटनाकृष्टिवशीकर्मादि कोविदम् ॥ व्याख्यानसमयाकृष्टपक्षिरोमाञ्चकारिणम् ॥ ७८ ॥ पीततद्गीतपीयूषमृगपूगैरुपासितम् ॥ महामोदभराक्रान्तवातचाञ्चल्यहारिणम् ॥ ७९ ॥ वृक्षैरपिपतत्पुष्पच्छलैःकृतसमर्चनम् ॥ ततःप्रोवाचपुण्यात्मापुण्यकीर्तिः ससौगतः ॥ ८० ॥ शिष्यंविनयकीर्तिंतंमहाविनयभूषणम् ॥ ८१ ॥ पुण्यकीर्तिरुवाच ॥ त्वयाविनयकीर्तेयोधर्मःपृष्टः सनातनः ॥ वक्ष्याम्यहमशेषेणशृणुष्वत्वंमहामते ॥ ८२ ॥ अनादिसिद्धःसंसारःकर्तृकर्मविवर्जितः ॥ स्वयंप्रादुर्भवेदेष स्वयमेवविलीयते ॥ ८३ ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तंयावद्देहनिबन्धनम् ॥ आत्मैवैकेश्वरस्तत्रनद्वितीयस्तदीशिता ॥ ८४ ॥ यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राद्यास्तथाख्यादेहिनामिमाः ॥ आख्यायथास्मदादीनांपुण्यकीर्त्यादिरुच्यते ॥ ८५ ॥ देहोय

विनयकीर्ते ! तुमने जो सनातन धर्म पूंछा उसको मैं सम्पूर्ण भावसे कहताहूँ तुम सुनो ॥ ८२ ॥ कि कर्ता और कर्म से रहित यह संसार अनादि कालसे सिद्धहै और यह आपही प्रकट होता है व आपही बिलाजाता है ॥ ८३ ॥ ब्रह्मा से लगाकर गुल्म पर्य्यंत जितना देहनिबन्धन है वह जगत् है उस मे आपही एक स्वतन्त्र ईश्वर है उस जगत का नियामक ईश्वर अन्य कोई नहीं है अथवा उस स्वतंत्र आत्मा का ईश्वर अन्य नहीं है ॥ ८४ ॥ जिस से जैसे देहधारी हम लोगों का पुण्यकीर्त्ति आदिक नाम कहाजाता है याने कल्पित किया जाता है उस से वैसेही ब्रह्मा विष्णु और रुद्रादि ये सब नाम कहे गये हैं याने नियम्य

नियामक भाव कल्पित है वास्तव नहीं है ॥ ८५ ॥ व जैसे अस्मदादिकों की देह अपने काल से नष्ट होजाती है वैसेही ब्रह्मादि और मशापर्य्यतकी देह अपने काल से बिलाजाती है ॥ ८६ ॥ और जिस से भोजन मैथुन निद्रा और भय सर्वत्र समान वर्तमान है इस लिये इस देह में विचार करने से कुछ कहीं अधिक नहीं है ॥ ८७ ॥ सबही देहधारी अपने भोजन की परिमिति को प्राप्तहोकर समानही तृप्ति को प्राप्त होताहै अधिक और इतर याने न्यून तृप्ति को नहीं प्राप्त होताहै अर्थात् जैसे थोड़ा खानेवाला थोड़े भोजन से तृप्त होता है वैसेही बहुत खानेवाला बहुते भोजन से तृप्त होता है परंतु तृप्ति में भेद नहीं है ॥ ८८ ॥ व जैसे हम लोग

थास्मदादीनांस्वकालेनविलीयते ॥ ब्रह्मादिमशकान्तानांस्वकालाल्लीयतेतथा ॥ ८६ ॥ विचार्यमाणेदेहेस्मिन्नकिञ्चिदधिकंक्वचित् ॥ आहारोमैथुनंनिद्राभयंसर्वत्रयत्समम् ॥ ८७ ॥ निजाहारपरीमाणंप्राप्यसर्वोपिदेहभृत् ॥ सदृशीमेवसंतृप्तिंप्राप्नुयान्नाधिकेतराम् ॥ ८८ ॥ यथावितृषिताःस्यामपीत्वापेयंमुदावयम् ॥ तृषितास्तुतथान्येपि नविशेषोल्पकोधिकः ॥ ८९ ॥ सन्तुनार्यःसहस्राणिरूपलावण्यभूमयः ॥ परन्निधुवनेकालेह्येकैवेहोपयुज्यते ॥ ९० ॥ अश्वाःपरःशताःसन्तुसन्त्वनेकेप्यनेकपाः ॥ अधिरोहेतथाप्येकोनद्वितीयस्तथात्मनः ॥ ९१ ॥ पर्यङ्कशायिनांस्वापेसुखंयदुपपद्यते ॥ तदेवसौख्यंनिद्रायामिहभूशायिनामपि ॥ ९२ ॥ यथैवमरणाद्भीतिरस्मदादिवपुष्मताम् ॥ ब्रह्मादिकीटकान्तानान्तथामरणतोभयम् ॥ ९३ ॥ सर्वेतनुभृतस्तुल्यायादिबुद्ध्याविचार्यते ॥ इदन्निश्चित्यकेनापिनोहिंस्यः

पानी पीकर आनंद से प्यासहीन होते हैं वैसे अन्य प्यासे भी प्यासहीन होते हैं इस में थोड़ा व बहुत विशेष नहींहै ॥ ८९ ॥ और रूपलावण्य की भूमि याने पात्र हजारों स्त्रियां होवें परंतु यहां मैथुनसमय में एकही भोगी जाती है ॥ ९० ॥ सैकड़ों से अधिक घोड़े होवें व अनेक हाथी होवें तोभी चढ़ने में एकही होता है दूसरा नहीं वैसेही आत्मा को साधन की अधिकता व न्यूनता से अधिक और न्यून तृप्ति नहीं होती है ॥ ९१ ॥ व पलँग पर सोते हुये लोगों के सोने में जो सुख उत्पन्न होता है वहही सुख भूमि में सोते हुये जनों की निद्रा में भी होता है ॥ ९२ ॥ जैसे हम आदि सब देहियों को मरने से डर है वैसेही ब्रह्मादि और कीट पर्य्यंत जंतुवों

को भी मरने से डर है ॥ ९३ ॥ जो बुद्धि से विचारा जाता है तो सब देहधारी तुल्यहैं यह निश्चयकर कहीं कोई भी किसीसे हिंस्य (पीडा देने योग्य) नहीं है ॥ ९४ ॥ भूतल में जीवदयाके बराबर अन्य धर्म कही भी नही है उस लिये सब यत्न से मनुष्यों को जीवों में दया करनी चाहिये ॥ ९५ ॥ क्योंकि एक जीव के रक्षित होतेही त्रैलोक्य रक्षित होवे है वैसेही जब एक जीव का घात किया जाता है तब त्रिलोक घातित होजाता है उस लिये सबकी रक्षाकरे घात न करावे ॥ ९६ ॥ इस लोकमें अहिंसा परमधर्म है इसभांति पूर्वकाल के आचार्य्यों से कहागया है उस से नरकसे डरभुत नरों को हिंसा न करनी चाहिये ॥ ९७ ॥ स्थावर जंगम रूप जगत्में हिंसा के समान पाप नहीं है व हिंसक (वध आदि से पीडादायक) नरकको जावे और अहिंसक जन स्वर्गको जावे है ॥ ९८ ॥ जोकि अनेक दानहैं उन थोडे फल

कोपिकुत्रचित् ॥ ९४ ॥ धर्मोजीवदयातुल्योनक्वापिजगतीतले ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्याजीवदयानृभिः ॥ ९५ ॥ एकस्मिन्रक्षितेजीवेत्रैलोक्यंरक्षितंभवेत ॥ घातितेघातितंतद्वत्तस्माद्रक्षेन्नघातयेत् ॥ ९६ ॥ अहिंसापरमोधर्मइहोक्तःपूर्वसूरिभिः॥तस्मान्नहिंसाकर्तव्यानरैर्नरकभीरुभिः ॥ ९७ ॥ नहिंसासदृशम्पापंत्रैलोक्येसचराचरे ॥ हिंसकोनरकङ्गच्छेत्स्वर्गङ्गच्छेदहिंसकः ॥ ९८ ॥ सन्तिदानान्यनेकानिकिन्तैस्तुच्छफलप्रदैः ॥ अभीतिदानसदृशंपरमेकमपीह न ॥ ९९ ॥ इहचत्वारिदानानिप्रोक्तानिपरमर्षिभिः ॥ विचार्यनानाशास्त्राणिशर्मणेत्रपरत्रच ॥ १०० ॥ भीतेभ्यश्चाभयंदेयंव्याधितेभ्यस्तथौषधम् ॥ देयाविद्यार्थिनांविद्यादेयमन्नंक्षुधातुरे ॥ १ ॥ अविचिन्त्यप्रभावंहिमणिमन्त्रौषधीबलम्॥ तदभ्यस्यम्प्रयत्नेननानार्थोपार्जनायवै ॥ २ ॥ अर्थानुपार्ज्यबहुशोद्वादशायतनानिवै ॥ परितःपरिपूज्यानिकि

देनेवालों से क्याहै क्योंकि इस लोक में अभीतिदान (किसी को भय न देना) के समान उत्तम अन्य एकभी दान नहीं है ॥ ९९ ॥ और इस व उस लोकमें सुख के लिये महर्षियों ने अनेक शास्त्रों को विचार कर यहां चार दान कहा है ॥ १०० ॥ वे ये हैं कि डरे हुये लोगों को अभय देना चाहिये वैसेही रोगियोंको औषध देना चाहिये व विद्यार्थियों को विद्या देना चाहिये और क्षुधासे पीड़ित जनको अन्न देना चाहिये ॥ १ ॥ जिससे मणि मंत्र और ओषधियोंका बल अविचित्य प्रभाव वाला है याने जिसका प्रभाव विशेष से चिंतना करने योग्य नहीं है उस कारण अनेक भांति धनों के संपादनार्थ (बटोरने के लिये) अभ्यास करना चाहिये ॥ २ ॥

उस अभ्यास से बहुत प्रकारके धन कमाकर बारह आयतनही सब ओर से पूजनेयोग्य हैं यहां अन्य पूजितों से क्या है ॥ ३ ॥ द्वादश आयतनोंको कहते है कि पांच कर्मेन्द्रिय (हाथ,पांव,वाक्,गुदा,लिंग) पांच ज्ञानेन्द्रिय(श्रोत्र,त्वक्,घ्राण,नेत्र,जिह्वा) मन और बुद्धि यह शुभ द्वादशायतन यहां कहागया है ॥ ४ ॥ और प्राणियों का स्वर्ग व नरक यहांही है अन्यत्र कहीं नहीं है क्योंकि सुखही स्वर्ग कहागयाहै और दुःखही नरकहै ॥ ५ ॥ सुखोंका भोग होतेही जो देहका त्याग होनाहै यहही उत्तम मोक्ष है और अन्य मोक्ष कहीं नहीं है ॥ ६ ॥ और जब वासना समेत पांचक्लेशोंका भली भांति उच्छेद (विनाश) होताहै तब घेरनेहारी संवृति माया की निवृत्ति रूप मोक्ष तत्त्वचिन्तक लोगों से विशेष जानने योग्य है ॥ ७ ॥ यह प्रामाणिकी श्रुति वेदवादियों करके कही जाती है कि अहिंसा परम धर्म है इससे सब प्राणियों की

मन्यैरिहपूजितैः ॥ ३ ॥ पञ्चकर्मेन्द्रियाण्येवपञ्चबुद्धीन्द्रियाणिच ॥ मनोबुद्धिरिहप्रोक्तंद्वादशायतनंशुभम् ॥ ४ ॥ इहैव स्वर्गनरकौप्राणिनान्नान्यतःक्वचित् ॥ सुखंस्वर्गःसमाख्यातोदुःखंनरकएवहि ॥ ५ ॥ सुखेषुभुज्यमानेषुयत्स्याद्देहविस र्जनम् ॥ अयमेवपरोमोक्षोनमोक्षोऽन्यःक्वचित्पुनः ॥ ६ ॥ वासनासहितक्लेशसमुच्छेदेसतिध्रुवम् ॥ विज्ञानोपरमोमो क्षोविज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ॥ ७ ॥ प्रामाणिकीश्रुतिरियम्प्रोच्यतेवेदवादिभिः ॥ नहिंस्यात्सर्वभूतानिनान्याहिंसाप्रवर्तिका ॥ ८ ॥ अग्नीषोमीयमितियाश्रामिकासाऽसतामिह ॥ नसाप्रमाणंज्ञातॄणाम्पश्वालम्भनकारिका ॥ ९ ॥ वृक्षांश्छित्त्वा पशून्हत्वाकृत्वारुधिरकर्दमम् ॥ दग्ध्वावह्नौतिलाज्यादिचित्रंस्वर्गोऽभिलष्यते ॥ १० ॥ इत्येवंधर्मजिज्ञासाम्पुण्यकी र्तौप्रकुर्वति ॥ पारम्पर्येणतच्छ्रुत्वापौरायात्राम्प्रचक्रिरे ॥ ११ ॥ परिव्राजिकयाप्येवंसमाकृष्टाःपुराङ्गनाः ॥ तयाविज्ञानकौमु

हिंसा न करे याने उनको पीड़ा मत देवै और हिंसा में बर्तानेवाली अन्य श्रुति नहीं है ॥ ८ ॥ अग्नीषोमीयं पशुमालभेत वायव्यं श्वेतमालभेत इत्यादि जो श्रुति हिंसा में बर्तानेवाली देख पड़ती है वह यहां असत् लोगों को भ्रमानेवाली है और देवता के उद्देश से पशुका हनना पश्वालंभन कहाता है उसकी कारिका याने करानेवाली जो श्रुति है वह ज्ञाता (जानदार) जनों का प्रमाण नहीं है ॥ ९ ॥ यह आश्चर्य्य है कि,वृक्षों को काटकर पशुवों को मारकर रुधिर का कर्दम (कीच) कर और आग में तिल व घृतादि वस्तुको जलाकर स्वर्ग का अभिलाष किया जाता है ॥ १० ॥ इस भांति पुण्यकीर्ति के धर्म विचार करतेही परंपरा के

क्रम से उसको सुनकर पुरवासी लोगो ने यात्रा किया याने उन बौद्धरूपधारी भगवान् के निकट में प्राप्तभये ॥ ११ ॥ ऐसेही सब विद्याओं में चतुर वशीकरणादि ज्ञानकी प्रकाशनेवाली उन बौद्धस्त्रीरूपधारिणी लक्ष्मीजी ने पुरवासियों की स्त्रियों को खींच लिया ॥ १२ ॥ तदनंतर उन्होंने उन स्त्रियों के आगे देहसौख्यों के मुख्य साधन व देखेहुये अर्थों की प्रतीति करनेवाले बौद्धधर्मों को कहा ॥ १३ ॥ विज्ञानकौमुदी नामवाली बौद्धस्त्रीरूपिणी लक्ष्मीजी बोलीं कि, आनंदही ब्रह्मका रूप है इस भांति जो वेदसे कहा जाताहै वह वैसेही यहां जानने योग्य है अनेक भांति के भावकी कल्पना मिथ्या है याने सुखका जन्म नाश अधिकता और स्वल्पहोना उपाधि भेदसे होताहै परमार्थ से नहीं है ॥ १४ ॥ और "वह सौख्य इसही देहमें संपादन करने योग्य है यह बौद्धोंका मत है उसको कहती हैं कि" जबतक यह देह

द्यासर्वविद्याविदग्धया ॥ १२ ॥ ततस्तासाम्पुरस्तात्साबौद्धधर्मानवीवदत् ॥ दृष्टार्थप्रत्ययकरान्देहसौख्यैकसाधनान् ॥ १३ ॥ विज्ञानकौमुद्युवाच ॥ आनन्दंब्रह्मणोरूपंश्रुत्येवंयन्निगद्यते ॥ तत्तथैवेहमन्तव्यंमिथ्यानानात्वकल्पना ॥ १४ ॥ यावत्स्वस्थमिदंवर्ष्मयावन्नेन्द्रियविक्लवः ॥ यावज्जराचदूरेस्तितावत्सौख्यंप्रसाधयेत् ॥ १५ ॥ अस्वास्थ्येन्द्रियवैकल्येवार्धकेतुकुतःसुखम् ॥ शरीरमपिदातव्यमर्थिभ्योतःसुखेप्सुभिः ॥ १६ ॥ याचमानमनोवृत्तिप्रीणनेयस्यनोजनिः ॥ तेनभूर्भारवत्येपासमुद्रागद्रुमैर्नहि ॥ १७ ॥ सत्वरोगत्वरोदेहःसञ्चयाःसपरिक्षयाः ॥ इतिविज्ञायविज्ञातादेहसौख्यंप्रसाधयेत् ॥ १८ ॥ श्ववायसकृमीणाञ्चप्रान्तेभोज्यमिदंवपुः ॥ भस्मान्तन्तच्छरीरञ्चवेदेसत्यंप्रपद्यते ॥ १९ ॥

स्वस्थ है व जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीं है और जबतक बुढाई दूरहै तबतक सौख्य की साधनाकरे ॥ १५ ॥ क्योंकि अस्वस्थता इन्द्रियों की विकलता और वृद्धता में सुख कैसे होगा इससे याचकोंके लिये सुखचाही जनों करके देहभी देदेने योग्य है ॥ १६ ॥ याचक जनकी मनवृत्ति के तृप्त करने में जिसका जन्म नहीं है उससे यह भूमिभारवाली है व समुद्र पर्वत और वृक्षों से भारवती नहीं है ॥ १७ ॥ देह शीघ्रही जानेशील है व सञ्चय याने धनादि का बटोरना परिक्षय (सब ओर से नाश) समेत है ऐसा जानकर विशेष जाननेवाला जन देह मे सौख्य की साधना करे ॥ १८ ॥ अन्त में यह देह कूकुर काग और कृमियो का भोज्य होजाती

है वह शरीर भस्मांत है याने अन्त में देहकी भस्म होती है यह वेद में सत्य जानाजाताहै ॥ १९ ॥ व लोकों में यह जातिका विकल्प व्यर्थ कल्पाजाता है मनुष्य भाव के सामान्य होतेही को अधम है और को उत्तम है ॥ २० ॥ वृद्ध पुरुषोंसे ऐसा कहाजाता है कि यह ब्रह्मादि सृष्टि है याने इस के आदिमें ब्रह्मा उत्पन्न हुयेहैं उन सिरजनेहार के दो पुत्र हैं जो कि दक्ष और मरीचि नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ २१ ॥ और मरीचि के पुत्र कश्यपजी करके सुनयनी तेरह दक्षकी कन्यायें धर्ममार्ग से ब्याहीगईं यह प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ थोड़ी बुद्धि और थोड़े पराक्रमवाले अबके हुये मनुष्यों करकेभी इस समय वृथा विचार किया जाता है कि यह गम्य है और यह अगम्य है याने गम्य अगम्यकी कल्पना वृथा है ॥ २३ ॥ व मुख बाहु ऊरु और पद इन से उपजे हुये चारों वर्ण कहेगये हैं यह यहां पूर्वकाल के लोगों से कल्पना कीगईहैं विचार

मुधाजातिविकल्पोयंलोकेषुपरिकल्प्यते ॥ मानुष्येसतिसामान्येकोधमःकोथचोत्तमः ॥२०॥ ब्रह्मादिसृष्टिरेषेतिप्रोच्यतेवृद्धपूरुषैः॥तस्यस्रष्टुःसुतौदक्षमरीचीचेतिविश्रुतौ॥२१॥मारीचिनाकश्यपेनदक्षकन्याःसुलोचनाः ॥ धर्मेणकिलमार्गेणपरिणीतास्त्रयोदश ॥ २२ ॥ अपीदानीन्तनैर्मर्त्यैरल्पबुद्धिपराक्रमैः ॥ अयङ्गम्यस्त्वगम्योयंविचारःक्रियतेमुधा ॥ २३ ॥ मुखबाहूरुपज्जातश्चातुर्वर्ण्यमिहोदितम् ॥ कल्पनेयंकृतापूर्वैर्नघटेतविचारतः ॥ २४ ॥ एकस्याश्चतनौजाताएकस्माद्यदिवाकचित् ॥ चत्वारस्तनयास्तत्किंभिन्नवर्णत्वमाप्नुयुः ॥२५॥ वर्णावर्णविवेकोयन्तस्मान्नप्रतिभासते ॥ अतोभेदोनमन्तव्योमानुष्येकेनचित्क्वचित् ॥ २६ ॥ विज्ञानकौमुदीवाणीमित्याकर्ण्यपुराङ्गनाः ॥ भर्तृशुश्रूषणवर्तींविजहुर्मतिमुत्तमाम् ॥ २७ ॥ अभ्यस्याकर्षणींविद्यांवशीकृतिमतीमपि ॥ पुरुषाःसफलीचक्रुःपरदारेषुमोहि

से नहीं घटत है ॥ २४ ॥ क्योंकि जो एक देहमें व एक जन से चार पुत्र उपजेहोवें तो भिन्नवर्णत्व को क्यों प्राप्तहोवें याने एकही पुरुष के पुत्र चार वर्ण कैसे हो सके हैं ॥ २५ ॥ उस लिये यह वर्ण और अवर्णका विवेक प्रतीति से नहींप्रकाशताहै इससे मनुष्य जाति में किसीके साथ कहीं भेद न मानना चाहिये ॥ २६ ॥ इस भांति विज्ञानकौमुदी का वचन सुनकर पुरवासिनी स्त्रियों ने पतिसेवावाली उत्तम बुद्धिको छोड़ दिया ॥ २७ ॥ और परस्त्रियोंमें मोहित पुरुषोने आकर्षणी व वशीकरणवाली विद्याका अभ्यासकर उसको सफल किया याने पुरुष लोग आकर्षणी विद्या पढ़कर परस्त्रियों को खींचकर अपने समीप बुलाने लगे और वशी-

करणी विद्या से परस्त्रियों को वश करने लगे ॥ २८ ॥ अन्तःपुर में विचरनेवाली रानी आदि स्त्रियां तथा राजाके पुत्र,पुरवासी और पुरीकी स्त्रियां ये सब उन दोनों से मोहेगये ॥ २९ ॥ और उन परिव्राजिकाने वन्ध्या स्त्रियोंके वन्ध्यात्वको भी हरलिया याने उनको मन्त्र यन्त्रों के द्वारा पुत्रवती करदिया और उन उन कर्मों के उपायों से अभागिनी स्त्रियों को ॥ ३० ॥ उन विज्ञानकौमुदी ने सुभाग्य से सम्पन्न किया व किसी को अञ्जन दिया और किसी स्त्रीको तिलक में औषध दिया ॥ ३१ ॥ और वैसेही बहुती स्त्रियों को वशीकरण मन्त्रों से अपदीक्षित करलिया याने बौद्धधर्म की दीक्षा दिया तब कोई स्त्रियां मन्त्रों को जपें और अन्य स्त्रियां यन्त्रोंको

ता: ॥२८॥ अन्तःपुरचरानार्यस्तथाराजकुमारकाः ॥ पौराःपुराङ्गनाश्चापिसर्वेताभ्यांविमोहिताः ॥२९॥ वन्ध्यानाञ्चापि वन्ध्यात्वंसापरिव्राजिकाहरत् ॥ तैस्तैश्चकार्मणोपायैरसौभाग्यवतीःस्त्रियः ॥३०॥ सौभाग्यभाग्यसम्पन्नाव्यधाद्विज्ञानकौमुदी ॥ कस्यैचिदञ्जनंदत्तंकस्यैचित्तिलकौषधम् ॥ ३१ ॥ वशीकरणमन्त्रैश्चतथाबह्व्योपदीक्षिताः ॥ मन्त्राञ्जपेयुःकाश्चिचयन्त्राण्यन्यालिखन्तिच ॥ ३२ ॥ काश्चिज्जुह्वतिकुण्डाग्नौनानाद्रव्याणिनिश्चलाः ॥ एवंसर्वेषुपौरेषुनिजधर्मेपुसर्वथा ॥ पराङ्मुखेषुजातेषुप्रोल्ललासवृषेतरः ॥ ३३ ॥ सिद्धयोकृष्टपच्याद्यानष्टाएनःप्रवेशनात् ॥ आसीत्कुण्ठितसामर्थ्योनृपोपिसमनाङ्मनाक् ॥ ३४ ॥ दूरस्थितोपिविघ्नेशोनृपन्निर्विण्णमानसम् ॥ चकारराज्यकरणेढुण्ढिराजोरिपुञ्जयम् ॥३५॥ अजीगणद्दिवोदासोप्यष्टादशदिनावधिम् ॥ कदागन्तासवैविप्रोयोमांसमुपदेक्ष्यति ॥३६॥ इत्थमष्टादशेप्राप्तेदिवसेदिवसेश्वरे ॥ प्राप्तेमध्यन्नभोभागंद्वारम्प्राप्तोद्विजोत्तमः ॥ ३७ ॥ सएवपुण्यकीर्त्याख्योधर्मक्षेत्रादधोक्ष

लिखें ॥ ३२ ॥ और कोई स्त्रियां निश्चलहोकर कुंडोंकी अग्नि में अनेक भांतिकी द्रव्योंको होम करनेलगीं ऐसेही जब सब पुरवासी अपने धर्मों में विमुख होगये तब अधर्म बहुतही बढ़गया ॥ ३३ ॥ और पापके प्रवेश से अकृष्टपच्यादि (जोते विनाही अन्नादिकों का उपजना) सिद्धियां नष्टहोगईं व वह राजाभी क्रमसे कुछ कुछ कुंठित सामर्थ्यवाला होगया ॥ ३४ ॥ और दूरमें टिके हुयेभी गणेशजीने शत्रुविजयी उस राजाको राज्य करनेमें विरक्तचित्त करदिया ॥ ३५ ॥ व दिवोदास राजा अठारह दिनकी अवधिकोभी गननेलगा कि जो मुझको भली भांति उपदेश देगा वहही ब्राह्मण कब आवेगा ॥ ३६ ॥ ऐसेही जब अठारहवां दिन प्राप्तहुवा व सूर्य

देव आकाश के बीच भागमें प्राप्तहोगये याने मध्याह्न समयभया तब वह ब्राह्मणोत्तम राजाके द्वार में प्राप्तहुये ॥ ३७ ॥ वहही पुण्यकीर्ति नामक विष्णुजी ब्राह्मण के वेषको भली भांति आलंबन कर धर्मक्षेत्र से राजा के समीपको आये ॥ ३८ ॥ बहुधा जयजीव ऐसे कहते हुये दो तीन पवित्र शिष्यों से संयुत मूर्तिमान् अग्नि के समान वह ब्राह्मण आगये ॥ ३९ ॥ भली भांति आते हुये उनको दूरसे देखकर उत्कंठित नरेश ने अपने मन में मान लिया कि मेरे उपदेश में यह गुरु योग्य हैं ॥ ४० ॥ और उनके संमुख चलकर बारबार प्रणामकर आशीर्वाद लिये हुये राजाने ब्राह्मण को अंतःपुर (रनिवास) में प्राप्तकिया ॥ ४१ ॥ व जनोंके स्वामीने शास्त्रोक्त प्रकारवाले मधुपर्क (दही, शहद, घृत को एकत्र मिलाना) से भली भांति पूजाकर व गली के श्रम को विगत किये हुये स्वस्थचित्त प्रसन्नमुखकमलवाले

जः ॥ द्विजवेषंसमालम्ब्यसमायातोनृपान्तिकम् ॥३८॥ द्वित्रैःपवित्रैर्बहुधाजयजीवेतिवादिभिः ॥ समेतःसइतोविप्रोमूर्तिमानिवपावकः॥३९॥ विलोक्यतंसमायान्तंदूरादुत्कण्ठितोनृपः ॥ मेनेभवेद्गुरुरयंयुक्तोमदुपदेशने ॥ ४० ॥ अभिगम्यचतंराजाप्रणम्यचपुनःपुनः ॥ गृहीतस्वस्तिवचनोनिनायान्तःपुरंद्विजम् ॥ ४१ ॥ मधुपर्केणविधिनातंसम्पूज्यजनाधिपः ॥ व्यपेताध्वश्रमंस्वस्थम्प्रोल्लसन्मुखपङ्कजम् ॥ ४२ ॥ निवेद्यखाद्यवस्तूनिकृतकृत्यक्रियाविधिम् ॥ परितृप्तंसुखासीनंपप्रच्छब्राह्मणंनृपः ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ खिन्नोस्मिविप्रवर्याहंराज्यभारंसमुद्वहन् ॥ खेदोनास्त्येवहिपरंवैराग्यमिवजायते ॥ ४४ ॥ किङ्करोमिकगच्छामिकथंमेनिर्वृतिर्भवेत् ॥ पक्षद्वय्येवयातेतिममचिन्तयतोद्विज ॥ ४५ ॥ असीमसुखसन्तानंभुक्तंराज्यंमयाद्विज ॥ परिक्षीणविपक्षञ्चत्र्यक्षैश्वर्यमिवस्फुटम् ॥ ४६ ॥ स्वसामर्थ्यादहञ्ज्ञातः

उनको ॥ ४२ ॥ भोजन के योग्य वस्तु निवेदितकर फिर सब ओरसे तृप्त व सुखसे बैठेहुये और कियागया है करने योग्य अनुष्ठान का विधान जिनके लिये उनसे नृपाल ने पूंछा ॥ ४३ ॥ राजा बोला कि, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! राज्यभारको भली भांति उच्चता से बहताहुवा मैं खिन्नहूँ याने पीड़ितहूं परंतु खेदभी नहीं है किंतु वैराग्य सा उत्पन्न होता है ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मण ! मैं क्या करूं कहां जाऊं कैसे मुझको सुखहोवे ऐसे विचारते हुये मुझको दो पक्ष याने एक मास होगया ॥ ४५ ॥ हे द्विज ! सुख सन्तान की सीमासे रहित याने बहुत सुख सहित व शत्रुओंसे हीन शिवके ऐश्वर्य्यके समान स्पष्ट राज्यको मैंने भोग किया ॥ ४६ ॥ व अपनी शक्तिसे मैं इन्द्र या मेघ

व अग्नि और वायुरूप होगया व मैंने अपने औरस (धर्मपत्नीमें स्ववीर्यसे उत्पन्न) पुत्रोंकी नाईं प्रजाओंको भलीभांति पाला ॥ ४७ ॥ और दिनोंदिन द्रव्यसे ब्राह्मणों को तृप्तकिया परंतु राज्यशिक्षा करते हुये मैंने एकही अपराध किया ॥ ४८ ॥ कि अपनी तपस्याके बलके गर्वसे देवों को तृणके समान करदिया वहभी अपने अर्थ नहीं किंतु प्रजाओं के उपकारके लियेही ऐसा किया गयाहै यह मैं आपसे शपथ करताहूं ॥ ४९ ॥ और इस समय मेरे भाग के उदय से आये हुये तुम मेरे गुरु होवे ऐसे मैं काल के डरसे रहित राज्यको करताहूं ॥ ५० ॥ कि मेरी राज्यमें अकालकालका विचरना कहीं नहीं है व मेरी राज्यमें बुढ़ाई व्याधि और दरिद्रसेभी डर

पर्जन्याग्न्यनिलात्मकः ॥ प्रजाश्चपालिताःसम्यक्पुत्राइवनिजौरसाः ॥ ४७ ॥ तर्पिताश्चापिभूदेवावसुभिश्चादिनेदिने ॥ एकमेवापराद्धंचमयाराज्यंप्रशासता ॥ ४८ ॥ देवास्तृणीकृताःसर्वेस्वतपोबलदर्पतः ॥ तच्चप्रजोपकारार्थंनस्वार्थंभवता शपे ॥४९॥ अधुनागुरुरेधित्वंममभाग्योदयागतः ॥ राज्यन्तुप्रकरोम्येवंन्यक्कृतान्तकसाध्वसम् ॥५०॥ अकालकाल कलनंममराज्येनकुत्रचित् ॥ जराव्याधिदरिद्रेभ्योममराज्येपिनोभयम् ॥ ५१ ॥ कोपिधर्मेतरांवृत्तिन्नश्रयेन्मयिशा सति ॥ धर्मोदयाजनाःसर्वेसर्वेसन्तिसुखोदयाः ॥ ५२ ॥ सद्विद्याव्यसनाःसर्वेसर्वेसन्मार्गचञ्चुराः ॥ अथवायदिकल्पा न्तंतिष्ठेदायुस्ततोपिकिम् ॥ ५३ ॥ सर्वंभोग्यास्तथाभान्तियथाचर्वितचर्वणम् ॥ किंपिष्टपेषणेनात्रराज्येनद्विजपुङ्गव ॥ ५४ ॥ किमप्युपदिशप्राज्ञगर्भवासोपशान्तये ॥ अथवात्वांप्रपन्नस्यममकिञ्चिन्तनैरिमैः ॥ ५५ ॥ यदेवकथयस्यद्यत त्करिष्याम्यसंशयम् ॥ त्वद्विलोकनमात्रेणसर्वएवमनोरथाः ॥ ५६ ॥ अन्येषामपिजायन्तेजातप्रायाममैवतु ॥ जा

नहीं है ॥ ५१ ॥ व मेरे शिक्षा करतेही कोई भी अधर्मकी वृत्तिको नहीं सेवताहै बरन सब जन धर्म के उदयवाले हैं व सब लोग सुख के उदयवाले हैं ॥ ५२ ॥ व सब जन अच्छी विद्या के व्यसनी हैं व सब लोग सुमार्गगामी हैं अथवा जो कल्पांत तक आयुरहै तो उससे भी क्याहै ॥ ५३ ॥ हे द्विजपुंगव ! जैसे चबेहुये को चबाना वैसेही सब भोगने योग्य पदार्थ शोभते हैं इसलिये पीसे के पीसने रूप राज्यसे क्याहै ॥ ५४ ॥ हे प्राज्ञ! गर्भवासके विनाशके लिये तुम कोई उपदेश करो अथवा तुम्हारे शरणागत हुये मुझको इन चिंतनों (विचारों) से क्याहै ॥ ५५ ॥ आज तुम जो कहो उसको मैं निस्संदेह करूंगा आपके दर्शनमात्र से सबही मनो-

रथ ॥ ५६ ॥ सबोंके भी होजाते हैं और मेरेभी मनोरथ हुयेही हैं मैं जानताहूं कि देवों के विरोध से कौन कौन जन प्रलयको नहीं प्राप्तभये याने सब विनष्ट होगये हैं ॥ ५७ ॥ पूर्वकाल में अपनी प्रजाओं को पालते हुये भी धर्ममें अनुव्रत व शूर और शिवभक्ति में परायणभी वे प्रसिद्ध त्रिपुर याने तीनोंपुरोके वासी जे दैत्य थे उनको ॥ ५८ ॥ भूमिमय रथकर हिमाचलको धन्वाकर व वासुकी नागको प्रत्यंचा (रोदा)कर व वेदोंको घोड़े कर ॥५९॥ व ब्रह्माको सारथीकर विष्णु को बाणकर चंद्रमा व सूर्य्य को रथके चाक कर ओंकार रूप कोडाकर ॥ ६० ॥ नक्षत्र और ग्रहमयकीले कर आकाश रूप वरूथ (रथका गुम्मज) कर सुमेरु गिरि को ध्वजा का दंडा और उन्नत कल्पवृक्ष को ध्यजाकर ॥ ६१ ॥ सर्प्पों को यंत्र याने जोड़ने की रस्सी व छंद व्याकरणादि वेदांगों को रक्षक व कालाग्नि रुद्रको भाला और

नेदेवविरोधेनकेकेनप्रलयङ्गताः ॥ ५७ ॥ अवन्तोपिप्रजाःस्वीयानिजधर्ममनुव्रताः ॥ पुरातेत्रिपुराःशूराःशिवभक्तिपरा अपि॥५८॥धरामयंरथंकृत्वाधनुःकृत्वाहिमाचलम्॥वेदांश्चवाजिनःकृत्वागुणंकृत्वाचवासुकिम् ॥ ५९ ॥ विरिञ्चिंसारथिं कृत्वाकृत्वाविष्णुञ्चपत्रिणम् ॥ रथचक्रेपुष्पवन्तौप्रतोदंप्रणवात्मकम् ॥ ६० ॥ताराग्रहमयान्कीलान्वरूथङ्गगनात्मकम् ॥ ध्वजदण्डंसुमेरुञ्चप्रांशुकल्पतरुन्ध्वजम् ॥६१॥योक्त्राणिचक्षुःश्रवसश्छन्दांस्यङ्गानिरक्षकान् ॥ भल्लङ्कालाग्निरुद्राख्यंपुङ्खीकृत्यप्रभञ्जनम् ॥ ६२ ॥ हरेणैकेषुपातेनलीलयाभस्मसात्कृताः॥ बलिर्यज्ञकृतांश्रेष्ठःकृत्वाकपटखर्वताम् ॥ ६३ ॥ पातालङ्गमितःपूर्वंहरिणाविक्रमैस्त्रिभिः ॥ वृत्तवानपिवैवृत्रःसुत्राम्णाविनिसूदितः ॥६४॥ दधीचिरपिविप्रेन्द्रो देवैरस्थिकृतेहतः ॥ पूर्ववैरमनुस्मृत्यजयार्थंयुध्यतोहरेः ॥ कुशास्त्रैर्विजितस्याजौतेनैवचदधीचिना ॥ ६५ ॥ शिवभक्त

वायुको पुंख कर ॥ ६२ ॥ महादेव जीने लीला से एक बाणपात के द्वारा भस्मके अधीन कर दिया और यज्ञकर्त्ताओंमें श्रेष्ठ राजाबलि वामनरूप बनकर ॥६३॥ विष्णुने पाताल को पठा दिया व पूर्वकाल में सदाचारवाला भी वृत्रासुर इंद्र से मारागया ॥ ६४ ॥ और जीति के अर्थ संग्राम में युद्ध करते हुये जो विष्णु उनहीं दधीचि से कुशास्त्रके द्वारा जीते गये थे, उनका पूर्व वैर स्मरण कर देवों से हाड़ों के लिये दधीचि ब्राह्मणेन्द्र भी हनेगये इस में यह कथा है कि जब दक्षने यज्ञ में शिव जी का निमंत्रण नहीं दिया तब यज्ञशाला से निकल कर चलते हुये शिवभक्त दधीचि जीने क्रोध किया और युद्ध करते हुये विष्णु को भी जीति लिया तो अन्य देवों

को क्या कहना है ॥ ६५ ॥ और पूर्वकाल में कृष्ण जीनें रण में जिस शिवभक्त बाणासुर की हजार बाहें काटलिया उस अच्छे बर्तनेवाले ने क्या अपराध किया था ॥ ६६ ॥ उस लिये यद्यपि सुमार्ग में चलनेवाले मुझ को देवों से कुछ भी भय नहीं है तौ भी देवों के साथ विरोध कल्याण के लिये नहीं होता है ॥ ६७ ॥ क्योंकि इंद्रादि देव लोग यज्ञो से देवभावको प्राप्तभये हैं और यज्ञ दान व तपस्याओं के द्वारा देवोंसेभी मेरी अधिकताहै ॥ ६८ ॥ परंतु अधिकता व न्यूनताहो उससे इस समय मुझको क्याहै किंतु तुम्हारे दर्शनसे सुख देनेवाला इंद्रियो का विषयो से निवृत्त होना विश्राम प्राप्तहोगया है ॥ ६९ ॥ हे तात, उपायज्ञ ! इस समय तुम

स्यबाणस्यदोःसहस्रंपुराहरिः ॥ चिच्छेदसंख्येकिन्तेनापराद्धंसाधुवर्तिना ॥ ६६ ॥ तस्माद्विरोधोभद्रायनभवेद्दैवतैःसह ॥ देवेभ्योमद्भयंनास्तिसत्पथीनस्यवैमनाक् ॥ ६७ ॥ यज्ञैर्देवत्वमापन्नागीर्वाणावासवादयः ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्चतेभ्योप्याधिक्यमस्तिमे ॥ ६८ ॥ अस्तुन्यूनत्वमाधिक्यंकिमनेनाधुनामम ॥ इन्द्रियोपरमःप्राप्तःसुखदस्तवदर्शनात् ॥ ६९ ॥ इदानीन्दिशमेतातकर्मनिर्मूलनक्षमम् ॥ उपायन्त्वमुपायज्ञयेननिर्वृतिमाप्नुयाम् ॥ ७० ॥ स्कन्दउवाच ॥ गणेशावेशवशतोराज्ञेतियदुदीरितम् ॥ तदाकर्ण्यहृषीकेशःप्राहब्राह्मणवेषभृत् ॥ ७१ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ साधुसाधुमहाप्राज्ञनृपचूडामणेनघ ॥ मयायदुपदेष्टव्यन्तत्त्वयैवनिरूपितम् ॥ ७२ ॥ त्वमादावेवनिर्वृत्तःपरम्मेमानदोह्यसि ॥ क्षालितेन्द्रियपङ्कश्चसुतपःस्वच्छवारिभिः ॥ ७३ ॥ यदुक्तंभवताभूपतत्सर्वंतथ्यमेवहि ॥ तवशक्तिञ्चजानामिविरक्तिंचमहामते ॥ ७४ ॥ नभवत्सदृशोराजाभुविभूतोभविष्यति ॥ राज्यम्भोक्तुंत्वयाज्ञायियुक्तंयत्तुमुमुक्षसि ॥ ७५ ॥ विरोधेपि

कर्मों के निर्मूल करने में समर्थ उस उपायको बतावो कि जिससे मैं सुखको प्राप्त होजाऊं ॥ ७० ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, श्रीगणेशजी के प्रवेश के वशसे राजा ने जो ऐसा कहा उसको सुनकर ब्राह्मणवेषधारी विष्णुजी बोले ॥ ७१ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे महापंडित, अपाप, राजशिरोमणे ! अच्छा हुवा अच्छा हुवा कि जो मुझको उपदेश करना चाहिये उसको तुम्हींने कहदिया ॥ ७२ ॥ और अच्छी तपस्यारूप स्वच्छ जल से इंद्रियों के मलको धोयेहुये तुम पहलेही विरक्त थे परंतु इस समय मेरे मान देनेवाले हो ॥ ७३ ॥ हे भूप,महामते ! आपने जो कहा वह सब वैसेही सत्यहै और मैं तुम्हारी शक्ति व वैराग्य को जानताहूं ॥ ७४ ॥ आपके

समान राजा भूमि में न हुवाहै न होगा व राज्यको भोग करने के लिये तुमने जानलिया और जो तुम मुक्तिकी इच्छावाले होतेहो वह उचित है ॥ ७५ ॥ व विरोध में भी तुमने कहीं देवोंका अपकार नहीं किया और तुम्हारे राष्ट्र (राज्य) में अधर्म का प्रवेशभी नहीं हुवा है ॥ ७६ ॥ हे स्वधर्मज्ञ ! आपसे धर्ममें प्रवृत्तकी गईहुई प्रजावों ने जो धर्मकिया उससे स्वर्गवासी देवभी तृप्तहैं ॥ ७७ ॥ परंतु जो आपने काशी से बिश्वनाथ जी को दूर किया वह एकही तुम्हारा दोष मेरे हृदय में निश्चयसे प्रतीत होताहै ॥ ७८ ॥ हे भूपतिसत्तम ! मैं इसको तुम्हारा बड़ा अपराध जानताहूं उस पापकी शांतिके लिये बड़ेभारी उपायको कहताहूं ॥ ७९ ॥ कि देह-

हिदेवानांत्वयानापकृतंकचित् ॥ धर्मेतरप्रवेशश्चतवराष्ट्रेपिनोभवत् ॥ ७६ ॥ प्रवर्तिताभिर्भवताप्रजाभिर्यदनुष्ठितम् ॥ धर्मेधर्मस्वधर्मज्ञतेनतृप्तादिवौकसः ॥ ७७ ॥ एकएवहितेदोषोहृदिमेप्रतिभासते ॥ काश्याविश्वेश्वरोदूरंयत्कृतोभवता किल ॥ ७८ ॥ महान्तमपराधन्तेजानेभूजानिसत्तम ॥ इमन्तत्पापशान्त्यैचवच्म्युपायम्महत्तरम् ॥ ७९ ॥ संख्यास्ति यावतीदेहेदेहिनोरोमसम्भवा ॥ तावन्तोप्यपराधावैयान्तिलिङ्गप्रतिष्ठया ॥ ८० ॥ एकंप्रतिष्ठितंयेनलिङ्गमत्रेश भक्तितः ॥ तेनात्मनासमंविश्वंजगदेतत्प्रतिष्ठितम् ॥ ८१ ॥ रत्नाकरेरत्नसंख्यासंख्याविद्भिरपीष्यते ॥ लिङ्गप्रतिष्ठापुण्य स्यनतुसंख्येतिलिख्यते ॥ ८२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकुरुलिङ्गप्रतिष्ठितिम् ॥ तयालिङ्गप्रतिष्ठित्याकृतकृत्योभविष्य सि ॥ ८३ ॥ इत्युक्त्वाब्राह्मणोदध्यौक्षणन्निश्चलमानसः ॥ उवाचचप्रहृष्टास्योराजानंपाणिनास्पृशन् ॥ ८४ ॥ श्रीवि

धारियोंकी देहमें रोमों से हुई जितनी संख्याहै याने देहमें जितने रोमहैं उतनेभी अपराध शिवलिंगकी प्रतिष्ठासे चलेजाते हैं यह निश्चयहै ॥ ८० ॥ व जिसने शिव-भक्तिसे यहां एक लिंगकी प्रतिष्ठा किया उससे आत्मा समेत यह समस्त जगत् प्रतिष्ठित हुवा ॥ ८१ ॥ समुद्रमें रत्नोंकी संख्या भी गणितके पंडितों से इच्छाकी जाती है परंतु लिंगप्रतिष्ठा पुण्यकी संख्या इतनी है यह नहीं लिखा जाता है ॥ ८२ ॥ उस लिये तुम सब यत्नसे लिंगको प्रतिष्ठित करो उस लिंगप्रतिष्ठासे कृतार्थ होजावोगे ॥ ८३ ॥ ऐसे कहकर निश्चलमनवाले ब्राह्मणवेष बनाये हुये विष्णुजीने क्षणभर ध्यान किया फिर हाथ से राजा का स्पर्श करते हुये व सानंद मंद मुसकान

मुखवाले वे बोले ॥ ८४ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे पंडितसत्तम, भूपाल ! मैं ज्ञानदृष्टि से अन्य कुछभी देखताहूं उसको भी सावधान होकर तुम सुनो ॥ ८५ ॥ कि, तुम धन्यहो कृतकृत्यहो याने जो करना चाहिये वह कियागया है व तुम महात्माओं में भी मान्यहो और इस लोकमें शुभफलचाही जनसे प्रातःकाल तुम्हारा नाम जपने योग्यहै ॥ ८६ ॥ हे दिवोदास ! हमलोगभी तुम्हारे समीप से बड़े धन्य हैं और मनुष्यलोकमें जे तुम्हारा नाम कहते हैं वेभी बहुत धन्यहैं ॥ ८७ ॥ ऐसे कहकर फिर हृदयमें भी बहुतही हर्ष समेत और आनंद से खड़ेहुये रोमवाले होकर बारबार मूड डुलाते हुये वह ब्राह्मण मुसका मुसकाकर कहने लगे ॥ ८८ ॥

ष्णुरुवाच ॥ अन्यच्चकिञ्चित्पश्यामिभूपालज्ञानचक्षुषा ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वातदपिप्राज्ञसत्तम ॥ ८५ ॥ धन्योसिकृतकृत्योसिमान्योसिमहतामपि ॥ जप्यञ्चतवनामेहप्रातःशुभफलेप्सुना ॥ ८६ ॥ दिवोदासत्वदभ्याशादपिधन्यतरावयम् ॥ तेपिधन्यतरामर्त्त्येयेत्वदाख्याम्प्रचक्षते ॥ ८७॥स्मायंस्मायञ्जगौविप्रोमौलिमान्दोलयन्मुहुः॥हृद्येवबहुशोहृष्टःसम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ८८ ॥ अहोभाग्योदयश्चास्यअहोनैर्मल्यमस्यवै ॥ यदेनमनिशंध्यायेद्धयेयोविश्वेश्वरोऽखिलैः ॥ ८९ ॥ अहोउदर्कएतस्यनकैश्चित्प्रतिपद्यते ॥ अस्माकमपियद्दूरमदवीयस्तदस्ययत् ॥ ९० ॥ हृद्यालोच्येतिविप्रोथवर्णयित्वाक्षितीश्वरम् ॥ आविश्चकारतत्सर्वंयत्समाधावलोकयत् ॥ ९१ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ राजंस्तवाद्यफलितोमनोरथमहाद्रुमः ॥ अनेनैवशरीरेणत्वङ्गन्तासिपरम्पदम् ॥ ९२ ॥ यथाविश्वेश्वरोनित्यन्त्वामेवहृदिशीलयेत ॥ तथा

इसकी भाग्यका उदय आश्चर्य्यरूप है और इसकी निर्मलताभी आश्चर्य्यरूप है जिससे सबके ध्यावने योग्य श्रीविश्वनाथजी इसको रातोदिन ध्यान करते हैं ॥ ८९ ॥ और जिससे जोकि हम लोगोंको दूरहै वह इसके समीपमें है व जो किसीसे नहीं प्राप्त कियाजाता है वह इसका उत्तरफल है इससे आश्चर्य्य है ॥ ९० ॥ इस भांति हृदयमें देखकर अनंतर उन ब्राह्मण ने जो समाधिमें देखा उस सबको राजाका वर्णनकर प्रकट करदिया ॥ ९१ ॥ ब्राह्मण बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारा मनोरथ रूप बड़ाभारी वृक्ष आज फलित हुवा व तुम इसही देह से परमपदको जावोगे ॥ ९२ ॥ जैसे श्रीविश्वनाथजी नित्यही तुमको हृदयमें ध्यावते हैं वैसे उनके पांवोंमें

आंखों को लगाये हुये जे हम आदि ब्राह्मणहैं उनको भी नहीं ध्यावते हैं ॥ ६३ ॥ किंतु आजसे सातयें दिनमेंही प्रतिष्ठा कियेहुये तुमको लेजाने के लिये शंकरका दिव्य विमान आकर प्राप्तहोगा ॥ ६४ ॥ हे राजन्! तुम जानते हो कि यह तुम्हारे किस सुकर्म का फलहै मैं तो ऐसा जानताहूं कि यह काशीपुरी की भलीभांति सेवासे हुवाहै ॥ ६५ ॥ हे राजसत्तम! जोकि इस काशी में टिकेहुये एक जनकी भी रक्षा करे उसकेभी देहांतमें ऐसाही फलहै ॥ ६६ ॥ इस भांति सुनकर प्रसन्न हुये प्रतापी उस दिवोदास राजर्षिने शिष्य समेत ब्राह्मण के लिये वाञ्छित वस्तु दिया ॥ ६७ ॥ तदनंतर संतृप्त किये हुये उन ब्राह्मण के बारबार प्रणाम, कर अधिक आनंद समेत

स्मदादीनपिनाद्विजांस्तत्पादलोचनान् ॥ ९३ ॥ कृतलिङ्गप्रतिष्ठन्त्वांसप्तमेह्यद्यवासरात् ॥ दिव्यंविमानमागत्यनेतुमेष्यति शाम्भवम् ॥ ९४ ॥ राजंस्त्वंवेत्सिकस्यायंविपाकःसुकृतस्यते ॥ वाराणस्याःपुरःसम्यक्सेवनादित्यवैम्यहम् ॥ ९५ ॥ एकमप्यत्रयःपायाद्वाराणस्यांस्थितञ्जनम् ॥ तस्याप्येवंविपाकोस्तिदेहान्तेराजसत्तम ॥ ९६ ॥ इतिश्रुत्वासराजर्षि र्दिवोदासःप्रतापवान् ॥ ब्राह्मणायसशिष्यायप्रादात्प्रीतोभिवाञ्छितम् ॥ ९७ ॥ अथसम्प्रीणितंविप्रंप्रणम्यचमुहुर्मुहुः ॥ प्रोवाचराजासंहृष्टस्तारितोस्मिभवार्णवात् ॥ ९८ ॥ ब्राह्मणोपिप्रहृष्टात्मापरिपूर्णमनोरथः ॥ समापृच्छ्यमहीनाथं स्वेष्टंदेशञ्जगामह ॥ ९९ ॥ विलोक्यकाशींपरितोमायाद्विजवपुर्हरिः ॥ भूयोभूयोविचार्यापिकिमत्रातीवपावनम् ॥ २०० ॥ स्थानंयत्राहमध्यास्यनिजभक्तानशेषतः ॥ नेष्यामिपरंधामविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ १ ॥ सम्प्रधार्यैतिभ गवान्दृष्ट्वापाञ्चनदंह्रदम् ॥ तत्रकृत्वाविधिस्नानन्ततस्तत्रैवसंस्थितः ॥ २ ॥ प्रतीक्षमाणोलक्ष्मीशोसङ्गत्यत्तसमा

राजाने कहा कि मैं संसारसागर से पार उतार दिया गयाहूँ ॥ ६८ ॥ और आनंदितमन परिपूर्णमनोरथवाले ब्राह्मणवेषधारी विष्णुजी भी राजा से पूछकर अपने प्यारे देशको चले गये ॥ ६९ ॥ व मायासे ब्राह्मणरूप विष्णुजी सब ओर से काशीपुरीको देखकर व बारबार विचारकरभी कि यहां अत्यंत पवित्र कौन ॥ २०० ॥ स्थानहै जिसमें निवासकर मैं अपने संपूर्ण भक्तोंको विश्वनाथके उत्तम अनुग्रहसे परम धामको प्राप्त करूंगा याने पठाऊंगा ॥ १ ॥ ऐसे मनमें विचार धारणकर व पांचनद कुण्डको देख कर उसमें विधिपूर्वक स्नानकर तदनंतर भगवान् वहांही भलीभांति टिकगये ॥ २ ॥ और शीघ्रही शिवजी के समागमको परखते हुये लक्ष्मीजी के नाथ विष्णुजी राजा

का वृत्तांत जाननेवाले गरुड़को पठाते भये ॥ ३ ॥ और ब्राह्मणेन्द्र को प्रशंसतेहुये दिवोदास राजेन्द्रने भी मंत्रियों समेत मंडलेश्वर व सब प्रजाओंको बुलाकर ॥ ४ ॥ कोश अश्व और हाथीआदिकों की रक्षाके लिये नियोजित सब अध्यक्षभी व पांच सौ पुत्र व समरंजय नामक ज्येष्ठ पुत्र ॥ ५ ॥ व पुरोहित व प्रतीहार (चोपदार) व ऋत्विज् (यज्ञ करने को बरेहुये पंडित) व ज्योतिषी ब्राह्मण व सामंत राजपुत्र व सूपकार (रसोईदार) व वैद्य ॥ ६ ॥ व अनेक कार्य्यों के लिये आयेहुये बहुते विदेशी व सबस्त्रियों समेत पटरानी और बूढ़ीगौओं के पालनेवाले बालक ॥ ७ ॥ इन सबों के आगे हाथजोड़नेवाला होकर सबों से वैसे कहा कि जैसे उन ब्राह्मण ने

गमम् ॥ तार्क्ष्यञ्चप्रस्थापयाञ्चक्रेराजवृत्तान्तवेदिनम् ॥ ३ ॥ दिवोदासोपिराजेन्द्रोविप्रेन्द्रंपरिवर्णयन् ॥ आहूयप्रकृतीः सर्वाःसामात्यान्मण्डलेश्वरान् ॥ ४ ॥ अध्यक्षानपिसर्वांश्चकोशाश्वेभादिदेशितान् ॥ पुत्रान्पञ्चशतंप्राग्र्यंसुतञ्चसमरञ्जयम् ॥ ५ ॥ पुरोहितंप्रतीहारमृत्विजोगणकान्द्विजान् ॥ सामन्तान्राजपुत्रांश्चसूपकारांश्चिकित्सकान् ॥ ६ ॥ वैदेशिकानपिबहून्नानाकार्यसमागतान् ॥ सान्तःपुराञ्चमहिषींवृद्धगोपालबालकान् ॥ ७ ॥ सर्वान्प्रोवाचहृष्टात्माप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ यथासब्राह्मणःप्राहदिनसप्तावधिस्थितिम् ॥ ८ ॥ आश्चर्यन्तेषुशृण्वत्सुविषण्णवदनेषुच ॥ स्वयंराजगृहंनीत्वाकुमारंसमरञ्जयम् ॥ ९ ॥ अभिषिच्यमहाबुद्धिःपौराञ्जानपदानपि ॥ प्रसादीकृत्यपुण्यात्मापुनःकाशीमगान्नृपः ॥ १० ॥ आगत्यकाशींमेधावीसभूपालोरिपुञ्जयः ॥ प्रासादंकारयामासस्वर्धुन्याःपश्चिमेतटे ॥ ११ ॥ रिपून्प्रमथ्यसमरेयावतीश्रीरुपार्जिता ॥ तावत्यासहिभूपालःशिवालयमचीक्लृपत् ॥ १२ ॥ भूपाललक्ष्मीरखिलायत्तत्रविनियोजि

सात दिन की अवधिकी स्थितिको कहाथा ॥ ८ ॥ और आश्चर्य्य सुनते हुये उनके मलिनमुख होतेही आपही समरंजय नामक कुमार को राजमंदिर में प्राप्तकर ॥ ९ ॥ व उसको अभिषेक कर पुरवासी व देशवासी जनोंको भी प्रसन्न कर बड़ा बुद्धिमान् पुण्यात्मा राजा फिर काशी को गया याने बौद्धवेष विष्णु के वचन से काशी को छोड़कर उसके पूर्वभाग में गोमती के किनारे परिवार समेत राजा चला गयाथा और वहां पुत्रका अभिषेक कर काशी को फिर आया ॥ १० ॥ और काशी में आकर बुद्धिमान् शत्रुंजय उस भूपने गंगा के पश्चिमतीर में देवमंदिर कराया याने बनवाया ॥ ११ ॥ किंतु उसही राजाने सग्राममें शत्रुवो को जीतकर जितनी संपत्ति बटोरा

याने इकट्ठे कियाथा उतनी से शिवालय बनवादिया ॥ १२ ॥ जिससे वहां संपूर्ण राजाकी लक्ष्मी जोड़दीगई या गाड़दीगई थी उससे वह शुभभूमि भूपालश्री इस भांति कहीगई है याने भूपालश्री नाम से प्रसिद्ध भई है ॥ १३ ॥ और वहां दिवोदासेश्वर नामक लिंगकी प्रतिष्ठाकर उस शत्रुंजय नरेश ने अपना को कृतकृत्यसा मान लिया ॥ १४ ॥ तदनंतर एक दिन राजाने उस लिंगको विधिपूर्वक भली भांति पूज कर व नमस्कार कर जबतक तुष्टिदायक शिवजी की स्तुति किया ॥ १५ ॥ तबतक दिव्य विमान आकाश आंगन से शीघ्रही भूमिमें उतर आया जोकि हाथों में शूल व खट्वांग लियेहुये पार्षदों से सब ओर युक्त है ॥ १६ ॥ और जोकि पार्षद सूर्य्य व अग्नि से भी अधिक तेजस्वी भाल नेत्र जटाजूटधारी शुद्धस्फटिक के समान श्वेत रंगों अंगों से आकाश आंगन को दीपित करतेथे ॥ १७ ॥ व जिनकी देहैं भूषण

ता ॥ भूपालश्रीरितिख्यातातत:साभूरभूच्छुभा ॥ १३ ॥ दिवोदासेश्वरंलिङ्गंप्रतिष्ठाप्यरिपुञ्जयः ॥ कृतकृत्यमिवात्मानममन्यतनरेश्वरः ॥१४॥ अथैकस्मिन्दिनेराजाताल्लिङ्गंविधिपूर्वकम् ॥ समभ्यर्च्यनमस्कृत्ययावत्तुष्टावतुष्टिदम् ॥१५॥ तावन्नभोङ्गणादाशुदिव्यंयानमवातरत् ॥ पार्षदैःपरितःकीर्णंशूलखट्वाङ्गपाणिभिः ॥ १६ ॥ अत्यादित्याग्नितेजोभिर्भालनेत्रैःकपर्दिभिः ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशैरङ्गैर्दीप्तनभोङ्गणैः ॥ १७ ॥ विभूषाहिफणारत्नज्योतिःपूजितविग्रहैः ॥ नित्यप्रकाशसन्त्रस्ततमःश्रितशिरोधरैः ॥ १८ ॥ चामरव्यग्रहस्ताग्ररुद्रकन्याशतावृतम् ॥ अथपारिषदैराजादिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ १९ ॥ दिव्यैर्दुकूलनेपथ्यैरलञ्चक्रेमुदान्वितैः ॥ त्रिनेत्रीकृतसद्भालंश्यामीकृतशिरोधरम् ॥ २० ॥ सुगौरीकृतसर्वाङ्गंकपर्दीकृतमौलिजम् ॥ चतुर्भुजीकृततनुंभूषणीकृतपन्नगम् ॥ २१ ॥ चन्द्रार्धीकृतमूर्धानन्निन्युस्तंपार्षदादिव

रूप सर्पोंकी फणाओं के रत्नों से पूजितथीं व नित्य प्रकाशसे संत्रस्त हुवा अंधकार जिनके कंठमें आश्रितथा याने नीलकंठथे ॥ १८ ॥ और जोकि विमान चँवर चलाने से डोलते हुये हस्ताग्रवाली सैकड़ों रुद्रकन्याओं से घिराहुवा था उसके बाद पार्षदोंने राजाको दिव्य माला अनुलेपन ॥ १९ ॥ व दिव्य रेशमीवस्त्र और भूषणों से आनंद समेत होकर अलंकृत किया व जिसका अच्छा माथ तीन नेत्रवाला किया गया व कंठकाला किया गया ॥ २० ॥ व जिसके सब अंग अति उज्ज्वल कियेगये व बाल जटाजूट किये गये व जिसका शरीर चतुर्भुज किया गया व सर्प भूषण कियागया ॥ २१ ॥ व जिसका मस्तक चन्द्रार्धवाला किया गया उसको पार्षदों ने शिव

जीके कैलासमें प्राप्त करदिया ॥ २२ ॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ भूपालश्री इस नामसे सुनागया है उस में श्राद्धादि कर व अपनी शक्ति अनुसार दान देकर ॥ २३ ॥ दिवोदासेश्वर के दर्शन कर व भक्तिसे पूजाकर और राजाका आख्यान सुनकर मनुष्य फिर गर्भ में न प्रवेशकरे याने जन्म मरणसे हीन होजावे ॥ २४ ॥ व दिवोदास राजा के इस पवित्र आख्यान को पढ व पढ़ाकरभी नर सब पापो से छूट जाता है ॥ २५ ॥ जोकि दिवोदास का शुभ आख्यान सुनकर संग्राम में पैठे उसको शत्रुवों से किया हुवा डर कहीं कभी नहीं होता है ॥ २६ ॥ व सब पापोंकी काटनेवाली महापुण्यरूप यह दिवोदास राजा की कथा सब विघ्नोंके विनाशके लिये बड़े यत्न से

म् ॥ २२ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थंभूपालश्रीरितिश्रुतम् ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वादानंदत्त्वास्वशक्तितः ॥ २३ ॥ दिवोदासेश्वरं दृष्ट्वासमभ्यर्च्यचभक्तितः ॥ राज्ञश्चाख्यायिकांश्रुत्वाननरोगर्भमाविशेत् ॥ २४ ॥ आख्यानमेतन्नृपतेर्दिवोदासस्य पावनम् ॥ पठित्वापाठयित्वापिनरःपापैःप्रमुच्यते ॥ २५ ॥ दिवोदासशुभाख्यानंश्रुत्वायःसमरंविशेत् ॥ नजातुजायतेतस्यभयंवैरिकृतंक्वचित् ॥ २६ ॥ दिवोदासकथापुण्यामहोत्पातनिकृन्तनी ॥ पठनीयाप्रयत्नेनसर्वविघ्नोपशान्तये ॥ २७ ॥ नावृष्टिर्जायतेतत्रनाकालमरणाद्भयम् ॥ दैवोदासीकथायत्रसर्वपातकनाशिनी ॥ २८ ॥ अस्याख्यानस्यपठनाद्विष्णोरिवमनोरथाः ॥ सम्पूर्णताङ्गमिष्यन्तिशम्भोश्चिन्तितकारिणः ॥ २२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदिवोदासनिर्वाणप्राप्तिर्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पढ़ने योग्य है ॥ २७ ॥ जहां सब पापनाशिनी दिवोदास की कथा कही व सुनी जाती है वहां अवृष्टि (पानी का न बरसना झूरा) नहीं होती है और अकाल मरने से डर नहीं होता है ॥ २८ ॥ और शिवजी का चिंतित कार्य्य करनेवाले विष्णुजी के मनोरथों की नाईं सबलोगों के मनोरथ इस आख्यान के पढ़ने से संपूर्णताको प्राप्तहोवेंगे याने सब मनोरथ सिद्ध होजायँगे ॥ २२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते दिवोदासमुक्तिप्राप्तिर्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । उनसठयें अध्याय में पांच नदी उत्पत्ति । तथा पंचनद तीर्थ की महिमा की निष्पत्ति ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे पार्वती से चुम्बित बालोंवाले ! सर्वज्ञहृदयानन्द, तारकान्तक, सर्वज्ञाननिधान षण्मुख, संसारपारदातार, कल्याणकार ॥ १ ॥ कुमार, सर्वज्ञ शिवजी के पुत्र, महात्मा व सब प्रकार से काम के जीतने वारे तुम्हारे नमस्कार है ! ॥ २ ॥ प्रसिद्ध है कि जिन आप कुमारने भी काम से किये हुये शिवजी को अर्धनारीश्वर रूप देखकर काम को जीतलिया उन तुम्हारे लिये नमस्कार हो ॥ ३ ॥ हे स्कन्द ! जो आपने कहा कि माया से ब्राह्मण वेष बनेहुये विष्णुजीने काशी में परमपवित्र पञ्चनद तीर्थ के समीप निवास कि-

अगस्त्यउवाच ॥ सर्वज्ञहृदयानन्दगौरीचुम्बितमूर्धज ॥ तारकान्तकषड्वक्त्रतारिणेभद्रकारिणे ॥ १ ॥ सर्वज्ञाननिधे तुभ्यन्नमःसर्वज्ञसूनवे ॥ सर्वथाजितमारायकुमारायमहात्मने ॥ २ ॥ कामारिमर्धनारीशंवीक्ष्यकामकृतङ्किल ॥ योजिगायकुमारोपिमारन्तस्मैनमोस्तुते ॥ ३ ॥ यदुक्तंभवतास्कन्दमायाद्विजवपुर्हरिः ॥ काश्यांपञ्चनदन्तीर्थमध्यासातीवपावनम् ॥ ४ ॥ भूर्भुवःस्वःप्रदेशेषुकाशीपरमपावनम् ॥ तत्रापिहरिणाज्ञायितीर्थंपञ्चनदम्परम् ॥ ५ ॥ कुतःपञ्चनदन्नामतस्यतीर्थस्यषण्मुख ॥ कुतश्चसर्वतीर्थेभ्यस्तदासीत्पावनम्परम् ॥ ६ ॥ कथञ्चभगवान्विष्णुरन्तरात्माजगत्पतिः ॥ सर्वेषाञ्जगताम्पाताकर्ताहर्ताचलीलया ॥ ७ ॥ अरूपोरूपमापन्नोह्यव्यक्तोव्यक्ततांगतः ॥ निराकारोपिसाकारोनिष्प्रपञ्चःप्रपञ्चभाक् ॥ ८ ॥ अजन्मानेकजन्माचत्वनामास्फुटनामभृत ॥ निरालम्बोऽखिलालम्बोनिर्गुणोपि

या वह सुनागया ॥ ४ ॥ परन्तु भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक इन सब प्रदेशों में काशीपुरी परमपावन है उसमें भी विष्णुजी ने पञ्चनद तीर्थ को बहुत उत्तम जाना ॥ ५ ॥ हे षण्मुख ! उस तीर्थ का पञ्चनद नाम क्यों हुआ और वह क्यों सब तीर्थों से परमपावन हुआ है ॥ ६ ॥ और क्यों भगवान् विष्णुजी जो कि अन्तरात्मा (सर्वव्यापक) जगत् के पति व लीला से सब जगतों के पालक, घालक और उपजानेवाले हैं ॥ ७ ॥ व जो कि रूपरहित भी रूप को प्राप्त व अप्रकट भी प्रकटताको प्राप्त व आकाररहित भी आकारसहित व प्रपञ्च से हीन भी प्रपञ्चसेवी ॥ ८ ॥ व अजन्मा भी अनेक जन्मकारी व अनामा भी स्पष्टनाम-

धारी व निराधार भी सबके आधार व निर्गुण भी गुणों के स्थान हैं ॥ ९ ॥ व इन्द्रियों से हीन भी इन्द्रियों के नायक और पांवों से हीन होकर भी सर्वत्र जाने वाले हैं वह सर्वव्यापी, जनार्दन (जनोंसे याचे जातेहुये) विष्णु जी अपने रूपको उपसंहारकर याने अन्तर्धानकर ॥ १० ॥ उत्तम पञ्चनद तीर्थमें सर्वात्मभाव से टिके है हे षरामुख ! आपने जैसे शिवजी से सुना है वैसे इसको कहो ॥ ११ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि मैं महेश जीके नमस्कार कर सब पापसमूहहारिणी सब कल्याणकारिणी इस कथा को कहता हूं ॥ १२ ॥ कि जैसे पञ्चनद तीर्थ काशी में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है व जिसका नाम लेने सेही हजारों भांति का पाप चला

गुणास्पदम् ॥ ९ ॥ अहृषीकोहृषीकेशोप्यनङ्घ्रिरपिसर्वगः ॥ उपसंहृत्यरूपंस्वंसर्वव्यापीजनार्दनः ॥ १० ॥ स्थितःसर्वा त्मभावेनतीर्थेपञ्चनदेपरे ॥ एतदाख्याहिषड्वक्त्रपञ्चवक्त्राद्यथाश्रुतम् ॥ ११ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कथयामिकथामेतान्न मस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ सर्वाघौघप्रशमनींसर्वश्रेयोविधायिनीम् ॥ १२ ॥ यथापञ्चनदंतीर्थंकाश्याम्प्रथितिमागतम् ॥ यन्नामग्रहणादेवपापंयातिसहस्रधा ॥ १३ ॥ प्रयागोपिचतीर्थेशोयत्रसाक्षात्स्वयंस्थितः ॥ पापिनाम्पापसङ्घातंप्रसह्य निजतेजसा ॥ १४ ॥ हरन्तिसर्वतीर्थानिप्रयागस्यबलेनहि ॥ तानिसर्वाणितीर्थानिमाघेमकरगेरवौ ॥ १५ ॥ प्रत्यब्दान्नि र्मलानिस्युस्तीर्थराजसमागमात् ॥ प्रयागश्चापितीर्थेन्द्रःसर्वतीर्थार्पितम्मलम् ॥ १६ ॥ महाघिनांमहाघञ्चहरेत्पाञ्चन दाद्बलात् ॥ यंमञ्चयतिपापौघमावर्षन्तीर्थनायकः ॥ तमेकमज्जनाद्र्जंत्यजेत्पञ्चनदेध्रुवम् ॥ १७ ॥ यथापञ्चनदोत्प

जाता है ॥ १३ ॥ व जिसमें तीर्थराज प्रयाग भी साक्षात् आपही टिका है और पापियों के पापसमूह को हठ से अपने तेज के द्वारा ॥ १४ ॥ प्रयाग के बल सेही जे सब तीर्थ हर लेते हैं वे सब तीर्थ जब माघ में सूर्य्य मकरराशि में प्राप्त होते हैं तब ॥ १५ ॥ प्रतिवर्ष तीर्थराज के समागम से मलहीन होजाते हैं और तीर्थों का राजा प्रयागभी सब तीर्थां से दिये हुये मल को ॥ १६ ॥ व महापापियों के बड़े पापको भी पञ्चनद तीर्थ के बल से हरै है किन्तु तीर्थनायक प्रयाग वर्ष पर्य्यन्त जिस पापसमूह को बटोरता है उसको एक मज्जन से पञ्चनद में त्याग करदेताहै यह निश्चय है ॥ १७ ॥ हे महाभाग, मित्रावरुणनन्दन ! जैसे उस पञ्चनद

की उत्पत्ति है वैसे मै कहता हूं तुम सुनो ॥ १८ ॥ पूर्वकाल में मूर्त्तिधारी अन्य वेदकी नाई बड़ा तपस्वी भृगुवंश में उत्पन्न वेदशिरा नाम मुनि हुआ ॥ १९ ॥ व तपस्या करते हुये उस मुनिके आगे अप्सराओं में श्रेष्ठ व सुन्दरता और अङ्गोंकी साजसे सोहती हुई शुचि इस नामवाली अप्सरा नेत्रगोचर होगई याने देखपड़ी ॥ २० ॥ उसके देखनेमात्र से मुनि का मन सब ओर से क्षोभवाला होगया और वह मुनि शीघ्रही स्खलित हुआ याने उसका रेत गिरपड़ा अनन्तर वह वराप्सरा डरगई ॥ २१ ॥ और उस मुनिके शाप देने के डरसे बहुतही थरथरातेहुये अङ्गोंवाली उस शुचि अप्सराने दूरसेही उस मुनि के नमस्कारकर कहा ॥ २२ ॥ कि, हे बड़ी

त्तिस्तथाचकथयाम्यहम् ॥ निशामयमहाभागमित्रावरुणनन्दन ॥ १८ ॥ पुरावेदशिरानाममुनिरासीन्महातपाः ॥ भृगुवंशसमुत्पन्नोमूर्तोवेदइवापरः ॥ १९ ॥ तपस्यतस्तस्यमुनेःपुरोदृग्गोचरङ्गता ॥ शुचिरप्सरसांश्रेष्ठारूपलावण्यशालिनी ॥ २० ॥ तस्यादर्शनमात्रेणपरिक्षुब्धम्मुनेर्मनः ॥ चस्कन्दसम्मुनिस्तूर्णंसाथभीतावराप्सरा ॥ २१ ॥ दूरादेवनमस्कृत्यतमृषिंसाभ्यभाषत ॥ अतीववेपमानाङ्गीशुचिस्तच्छापभीतितः ॥ २२ ॥ नापराधनोम्यहङ्किञ्चिन्महोग्रतपसान्निधे ॥ क्षन्तव्यंमेक्षमाधारक्षमारूपास्तपस्विनः ॥ २३ ॥ मुनीनाम्मानसम्प्रायोयत्पद्मादपितन्मृदु ॥ स्त्रियःकठोरहृदयाःस्वरूपेणैवसत्तम ॥ २४ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्याःशुचेरप्सरसोमुनिः ॥ विवेकसेतुनास्तम्भीन्महारोषनदीरयम् ॥ २५ ॥ उवाचचप्रसन्नात्माशुचेशुचिरसिध्रुवम् ॥ नमेऽल्पोपिहिदोषोत्रनतेदोषोस्तिसुन्दरि ॥ २६ ॥ वह्निस्वरूपाललनानवनीतसमःपुमान् ॥ अनभिज्ञावदन्तीतिविचारान्महदन्तरम् ॥ २७ ॥ स्निह्येदुद्धृतसारोपिवह्नेःसंस्पर्शमाप्यवै ॥ चित्रं

तपस्याओं के निधान, क्षमा के आधार ! मैं कुछ अपराध नहीं करतीहूं क्षमा करना चाहिये क्योंकि तपस्वीलोग क्षमारूप होते हैं ॥ २३ ॥ हे सत्तम ! जो मुनियों का मन है वह बहुधा कमलसे भी अधिक कोमल होता है और स्त्रियां स्वरूप सेही कठोरहृदयवाली हैं ॥ २४ ॥ इस भांति उस शुचि अप्सराका वचन सुनकर मुनिने बड़े क्रोधरूप नदीके वेगको विचाररूप सेतु (बंधी) से रोंक लिया ॥ २५ ॥ और प्रसन्नमन होकर कहा कि हे शुचे, सुन्दरि ! तुम निश्चयसे पवित्रहो याने अपराधहीन हो व यहां मेरा थोड़ाभी दोष नहीं है ॥ २६ ॥ स्त्री अग्निरूप और पुरुष नेनूके समान होता है ऐसा अनभिज्ञ (अजान) लोग कहते हैं परंतु विचार करने से बड़ा अन्तर

है ॥ २७ ॥ व आश्चर्य्य है कि घृतभी अग्नि के संयोग को प्राप्त होकरही पघिलता है और पुरुष दूरसे स्त्री का नाम लेनेसेही स्नेहसमेत होजाता है ॥ २८ ॥ हे पवि-त्रमनवृत्तिवाली, शुचे ! इसमें तुमको डरना न चाहिये क्योंकि मेरे मनका क्षोभ करनेको न विचार कर समीप में टिकी हुई तेरेसे मैं स्खलितहुवाहूं ॥२९॥ और अकाम रेतश्करने में वैसे मुनिकी तपस्या की हानि नहीं है कि जैसे क्षणभर में अंधा करनेवाले क्रोधवेगरूप शत्रुसे हानि होती है ॥ ३० ॥ व जोकि तपस्या बड़े कष्ट से संचीगई है वह कोपसे वैसे नाशको प्राप्त होजाती है कि जैसे मेघघटाको प्राप्त होकर चन्द्रमा व सूर्य्य का प्रकाश हीन होजाताहै ॥ ३१ ॥ अनर्थकर्ता क्रोधसे पुरुषार्थों का

स्त्र्याख्यासमादानात्पुमान्स्निह्यतिदूरतः ॥ २८ ॥ अतःशुचेनभेतव्यन्त्वयाशुचिमनोगते ॥ अतर्कितोपस्थितया त्वयाचस्खलितम्मया ॥ २९ ॥ स्खलनान्नतथाहानिरकामात्तपसोमुनेः ॥ यथाक्षणान्धीकरणाद्धानिःकोपरयादरेः ॥ ३० ॥ कोपात्ततःक्षयंयातिसञ्चितंयत्सुकृच्छ्रतः ॥ यथाभ्रपटलम्प्राप्यप्रकाशःपुष्पवन्तयोः ॥ ३१ ॥ अनर्थकारिणः क्रोधात्कार्थानाम्परिजृम्भणम् ॥ क्वाखलजनोत्सेधात्साधूनाम्परिवर्धनम् ॥ ३२ ॥ अमर्षेकर्षतिमनोमनोभूसम्भवःकुतः ॥ विधुन्तुदेतुदत्युच्चैर्विधुंकुत्रास्तिकौमुदी ॥ ३३ ॥ ज्वलतोरोषदावाग्नेःक्वाशान्तितरोःस्थितिः ॥ दृष्टाकेनापिकिंकापिसिंहात्कलभसुस्थता ॥ ३४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनप्रदीपःप्रतिघातुकः ॥ चतुर्वर्गस्यदेहस्यपरिहेयोविपश्चिता ॥ ३५ ॥ इदानींशृणुकल्याणिकर्तव्यंयत्त्वयाशुचे ॥ अमोघबीजाहिवयन्तद्बीजमुररीकुरु ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नर

सब ओर से स्फुरना कहां है व दुष्ट जनकी बढ़ती से साधुओं का बहुत बढ़ना कहां है ॥ ३२ ॥ व जब क्रोध मनको खींचता है तब स्त्र्यादिविषयक काम कहां है व चंद्रमा को अधिक पीड़ते हुये राहुके होतेहीं चांदनी कहां है ॥ ३३ ॥ व ज्वलते हुये क्रोध दावानल से शांतिवृक्ष का टिकना कहां है और सिंहसे हाथी के बच्चाकी सुस्थता क्या कहीं किसी से देखीगई है ॥ ३४ ॥ जिससे प्रतिकूल हुवा जन सब यत्न से प्रतिनाशक होता है उस लिये धर्मादि चतुर्वर्ग साधनेवाली देहका सबधी क्रोध पण्डितों से परित्याग करने योग्य है ॥ ३५ ॥ हे कल्याणि, शुचे ! इस समय जो करना चाहिये उस को तुम सुनो कि जिससे हमलोग अखंडित बीजवाले हैं

यानेहमारा बीज सफल होता है उससे तुम बीजको अङ्गीकार करो याने अपने उदर में धरो ॥ ३६ ॥ तेरे देखने से गिराहुवा यह वीर्य्य जब तुमरो रक्षित होगा तब तुम्हारे बड़ी पवित्र एक रत्नरूप कन्या उत्पन्न होवेगी ॥ ३७ ॥ इस भांति उस मुनि से कहीहुई फिर उपजीसी उस अप्सरा ने महाप्रसाद है ऐसा कहकर मुनि के वीर्य्यको निगल लिया ॥ ३८ ॥ उसके बाद अप्सरा ने कालसे समय आनेपर रूपसंपत्तियों का निधान व आंखोंका आनंददायक एक कन्यारत्न उपजाया ॥ ३९ ॥ और उसही वेदशिरा के आश्रम में उस कन्या को धरकर अप्सराओं में श्रेष्ठ वह शुचि यथारुचि चली गई ॥ ४० ॥ व स्नेहसमेत वेदशिरा ने उस मृगनयनी

त्तितेवीर्येपरिस्कन्नेत्वदीक्षणात ॥ त्वयातवभवित्रेकङ्कन्यारत्नंमहाशुचि ॥ ३७ ॥ इत्युक्तातेनमुनिनापुनर्जातेवसाप्सरा ॥ महाप्रसादइत्युक्त्वामुनेःशुक्रमजीगिलत् ॥ ३८ ॥ अथकालेनदिव्यश्रीकन्यारत्नमजीजनत् ॥ अतीवनयनानन्दिनिधानंरूपसम्पदाम् ॥ ३९ ॥ तस्यैववेदशिरसआश्रमेतान्निधायसा ॥ शुचिरप्सरसांश्रेष्ठाजगामचयथेप्सितम् ॥ ४० ॥ ताञ्चवेदशिराःकन्यांस्नेहेनसमवर्धयत ॥ क्षीरेणस्वाश्रमस्थायाहरिण्याहरिणीक्षणाम् ॥ ४१ ॥ मुनिर्नामददौतस्यैधूतपापेतिचार्थवत् ॥ यन्नामोच्चारणेनापिकम्पतेपातकावली ॥ ४२ ॥ सर्वलक्षणशोभाढ्यांसर्वावयवसुन्दरीम् ॥ मुनिस्तत्याजनोत्सङ्गात्क्षणमात्रमपिक्वचित् ॥ ४३ ॥ दिनेदिनेवर्धमानान्ताम्पश्यन्मुमुदेभृशम् ॥ क्षीरनीरधिवद्रम्यान्निशिचान्द्रमसींकलाम् ॥ ४४ ॥ अथाष्टवार्षिकींदृष्ट्वाताङ्कन्यांसमुनीश्वरः ॥ कस्मैदेयेतिसञ्चिन्त्यतामेवसमपृच्छत ॥ ४५ ॥ वेदशिराउवाच ॥ अयिपुत्रिमहाभागेधूतपापेशुभेक्षणे ॥ कस्मैदद्यांवरायत्वान्त्वमेवाख्याहितंवरम् ॥ ४६ ॥

कन्याको अपने आश्रम में टिकीहुई मृगी के दूधसे भलीभांति वर्धित किया ॥ ४१ ॥ और मुनिने उसको धूतपापा ऐसा अर्थवाला नाम दिया कि जिस नामके कहनेसेही पापोंकी पंक्ति कांपती है उसको धूतपापा कहतेहैं ॥ ४२ ॥ जोकि सकल सुलक्षण व शोभा से संपन्न और सर्वांगसुन्दरी थी उसको मुनिने क्षणमात्र भी कहीं गोद से नहीं त्यागकिया ॥ ४३ ॥ व रात्रि में चन्द्रमाकी रमणीक कलाको देखकर समुद्रकी नाईं दिनोदिन बढती हुई उसको देखता हुवा वह मुनि बहुतही आनंदित होता था ॥ ४४ ॥ तदनंतर आठवर्ष की उस कन्या को देखकर और यह किसके लिये देने योग्य है ऐसे भलीभांति चिन्तनाकर उस मुनीश्वर ने उससेही पूछा ॥ ४५ ॥

वेदशिरा बोले कि, हे महाभागे, शुभनेत्रे, धूतपापे, पुत्रि ! मैं तुमको किस वर के लिये दूँ उस वरको तुमहीं कहो ॥ ४६ ॥ तब अधिक स्नेह से भीगे चित्तवाले पिताका ऐसा वचन सुनकर नीचे मुखनवानेवाली वह धूतपापा बोली ॥ ४७ ॥ धूतपापा बोली कि, हे पितः ! जो मैं सुन्दर वरके लिये तुमसे देने योग्यहूँ तो मै जिसको तुमसे कहतीहूँ उस के लिये मुझको तुम दो ॥ ४८ ॥ हे तात ! जो तुमको रुचता है सावधान होकर आप सुनें कि जो सबों से अधिक पवित्र व सबो से नमस्कृत है याने सबलोग जिसके नमस्कार करते है ॥ ४९ ॥ व सबलोग जिसको चाहते हैं व जिससे सब सुखोंका उदय होवे व जो कभी न नष्टहोवे व जो सदैव पीछे

अतिस्नेहार्द्रचित्तस्यजनेतुश्चेतिभाषितम् ॥ निशम्यधूतपापासाप्रोवाचविनतानना ॥ ४७॥ धूतपापोवाच ॥ जनेतर्यद्यहन्देयासुन्दरायवरायते॥ तदातस्मैप्रयच्छत्वंयमहङ्कथयामिते ॥४८॥ तुभ्यञ्चरोचतेतातश्शृणोत्ववहितोभवान् ॥ सर्वेभ्योतिपवित्रोयोयःसर्वेषांनमस्कृतः ॥४९॥ सर्वेयमभिलष्यन्तियस्मात्सर्वसुखोदयः ॥ कदाचिद्योननश्येतयःसदैवानुवर्तते॥५०॥इहामुत्रापियोरक्षेन्महापदुदयाद्ध्रुवम्॥सर्वेमनोरथायस्मात्परिपूर्णाभवन्तिहि॥५१॥ दिनेदिनेचसौभाग्यंवर्धतेयस्यसन्निधौ॥ नैरन्तर्येणयत्सेवांकुर्वतोनभयंक्वचित्॥५२॥यन्नामग्रहणादेवकेपिबाधान्नकुर्वते॥ यदाधारेणतिष्ठन्तिभुवनानिचतुर्दश ॥ ५३ ॥ एवमाद्यागुणायस्यवरस्यवरचेष्टितम् ॥ तस्मैप्रयच्छमान्तातममतेपीहशर्मणे ॥ ५४ ॥ एतच्छ्रुत्वापितातस्याभृशम्मुदमवापह॥धन्योस्मिधन्यामेपूर्वेयेषामेषाश्रुतान्वये ॥ ५५ ॥ ध्रुवाहिधूतपापासौयस्याईदृगिव

वर्त्तमान होता है ॥ ५० ॥ और जो इस व उस लोकमें भी बडी विपत्तिके उदयसे भी रक्षाकरे व जिससे सब मनोरथ परिपूर्णही होजाते हैं ॥ ५१ ॥ व जिसके समीप में दिनोदिन सौभाग्य बढ़ती है व जिसकी सदैव सेवा करते हुये मनुष्य को कहीं डर नहीं है ॥ ५२ ॥ व जिसका नाम लेनेसेही कोई लोगभी पीडा नहीं करते है व जिसके आधार से चौदहो लोक टिके है ॥ ५३ ॥ हे तात ! जिस वरके इत्यादि गुण और श्रेष्ठ कर्म्महै उसके लिये इस लोकमें मेरे और तुम्हारेभी सुखके लिये मुझको दीजिये ॥ ५४ ॥ इस वचन को सुनकर उसका पिता बहुतही आनंद को प्राप्तहुवा कि मैं धन्यहूँ व जिनके वंश मे यह कन्या है वे मेरे पहले पितरभी धन्य है ॥ ५५ ॥

व जिसकी इस प्रकार की बुद्धि है वह यह कन्या ध्रुवाही (अविचल) धूतपापा है याने पाप इससे दूर भागगये हैं निश्चय है कि इस लोक में ऐसे गुणगणोंसे बहुत श्रेष्ठ या गरू कौन होवे है ॥ ५६ ॥ अथवा पुण्यसमूह के उदय विना वह कैसे मिलने योग्य है इस भांति क्षणभर मनको सावधान कर उस मुनिश्रेष्ठने ॥ ५७ ॥ ऐसे गुणोदयवाले उस वरको ज्ञानदृष्टि से भलीभांति देखकर याने विचार कर अनंतर उस धन्या कन्या से कहा कि हे शुभचाहिनि वत्से ! सुनो ॥ ५८ ॥ पिता बोला कि, हे विचक्षणे ! तुमने वरके जे ये गुण कहा इन गुणोंका आधार वरहै ऐसा निश्चय किया गयाहै ॥ ५९ ॥ परंतु बहुतही शुभग आकारवाला वह सुखसे मिलने

धामतिः ॥ ईदृग्विधैर्गुणगणैर्गरिम्णाकोत्रवैभवेत् ॥ ५६ ॥ अथवासकथंलभ्योविनापुण्यभरोदयम् ॥ इतिक्षणंसमाधायमनःसमुनिपुङ्गवः ॥ ५७ ॥ ज्ञानेनतंसमालोच्यवरमीदृग्गुणोदयम् ॥ धन्याङ्कन्यांबभाषेथशृणुवत्सेशुभैषिणि ॥ ५८ ॥ पितोवाच ॥ वरस्ययेत्वयाप्रोक्ताशुणाएतेविचक्षणे ॥ एषांगुणानामाधारोवरोस्तीतिविनिश्चितम् ॥ ५९ ॥ परंस्सुखलभ्योननितरांशुभगाकृतिः ॥ तपःपणेनसक्रय्यःसुतीर्थविपणौक्वचित् ॥ ६० ॥ नार्थभारैःससुलभोनकौलीन्येनकन्यके ॥ नवेदशास्त्राभ्यसनैर्नचैश्वर्यबलेनवै ॥ ६१ ॥ नसौन्दर्येणवपुषानबुद्ध्यानपराक्रमैः ॥ एकयैवमनःशुद्ध्याकरणानाञ्जयेनच ॥ ६२ ॥ महातपःसहायेनदमदानदयायुजा ॥ लभ्यतेसमहाप्राज्ञोनान्यथासदृशःपतिः ॥ ६३ ॥ इतिश्रुत्वाथसाकन्यापितरंप्रणिपत्यच ॥ अनुज्ञाम्प्रार्थयामासतपसेकृतनिश्चया ॥ ६४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कृतानुज्ञाजनेत्रासा

योग्य नहीं है किंतु वह कहीं अच्छे तीर्थरूप हाटमें तपस्यारूप मोलसे खरीदने योग्य है ॥ ६० ॥ हे कन्यके ! वह धनसमूहों व कुलीनतासे सुलभ नहीं है और वेदों व शास्त्रों के अभ्यास से नहीं ऐश्वर्य्यबलसे भी नहीं ॥ ६१ ॥ सुन्दरतासंयुक्त देहसे नहीं बुद्धिसे नहीं और पराक्रमों से भी नहीं सुलभ है परंतु एक मनकी शुद्धि सेही और जोकि इन्द्रियों का जीतना ॥ ६२ ॥ बड़ी तपस्या सहायकवाला व दम (बाहरकी इन्द्रियोंका रोंकना) दान और दयासे युक्तहै उससे वह बड़ाबुद्धिमान् समान स्वामी मिलता है अन्यथा नहीं मिलता है ॥ ६३ ॥ ऐसे सुनकर तदनंतर पिता के प्रणाम कर तपस्या के लिये निश्चय किये हुई उस कन्या ने प्रार्थना

किया ॥ ६४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, जिसके लिये पिताने आज्ञा किया था वह कन्या परमपवित्र क्षेत्र में उत्तम तपको तपती भई जो कि तप तपस्वियों से असाध्य है याने उनसे भी नहीं होसक्ता है ॥ ६५ ॥ कहां वह कोमलांगी कन्या व कहां कठोर देहसे संसाध्य वह वैसा तप याने बहुत अन्तर है परंतु सज्जनों के चित्तकी धारणा आश्चर्य्यरूप है ॥ ६६ ॥ धारा से गिरती हुई बूंदीवाली व बड़ी बयारवाली संपूर्ण वर्षाओ में उसने अवकाशसमेत शिलाओं में बहुती रातें बिताया ॥ ६७ ॥ और गर्जने का घोरशब्द सुनकर व बिजुलीका चमकना देखकर अखंड गिरते हुये जल के कणों से भीगीहुई वह कुछभी न कांपती

क्षेत्रेपरमपावने ॥ तपस्तताापपरमंयदसाध्यंतपस्विभिः ॥ ६५ ॥ क्वसाबालातिमृद्वङ्गीक्वचतत्तादृशन्तपः ॥ कठोरव र्ष्मसंसाध्यमहोसच्चेतसोधृतिः ॥ ६६ ॥ धारासारासुवर्षासुमहावातवतीष्वलम् ॥ शिलासुमावकाशासुसाबह्वीरनय न्निशाः ॥ ६७ ॥ श्रुत्वागर्जरवंघोरंदृष्ट्वाविद्युच्चमत्कृतीः ॥ आसारशीकरैःक्लिन्नानचकम्पेमनाक्वसा ॥६८॥ तडित्स्फु रन्तीत्वसकृत्तमिस्रासुतपोवने ॥ यातायातंकरोतीवद्रष्टुन्तत्तपसःस्थितिम् ॥ ६९ ॥ तपर्तुरेवसाक्षाच्चकुमारीकैतवा त्किल ॥ पञ्चाग्नीन्परिधायात्रतपस्यतितपोवने ॥ ७० ॥ जलाभिलाषिणीबालानमनागपिसापिबत् ॥ कुशाग्रतोय पृषतंपञ्चाग्निपरितापिता ॥७१॥ रोमाञ्चकञ्चुकवतीवेपमानतनुच्छदा ॥ पर्यक्षिपत्क्षपाःक्षामातपसाहैमनीश्च सा ॥७२॥ निशीथिनीषुशिशिरेश्रयन्तीसारसंरसम् ॥ मेनेसासारसैःकेयमुद्यताद्येतिपद्मिनी ॥ ७३ ॥ मनस्विनामपिमनोराग

भई ॥ ६८ ॥ रातों में बार बार चमकती हुई बिजुली उसकी तपस्या की स्थिति देखने के लिये तपोवन में आनाजानाकरती सी थी ॥ ६९ ॥ व साक्षात् ग्रीष्मऋतु कुमारी के मिष से प्रसिद्ध पञ्चाग्नियों को सब ओर धारण कर तपोवन में तपस्या करता है ॥ ७० ॥ व पञ्चाग्नि से परितापित हुई पानी पीने को अभिलाषवाली उस कन्या ने थोड़े भी कुशाग्र के जलबिन्दु को न पिया ॥ ७१ ॥ और रोमाञ्च कञ्चुकवाली व थरथराती हुई त्वचावाली व तपस्या से दुबली देहवाली उस बाली ने हेमन्त ऋतुकी रातों को व्यतीत किया ॥ ७२ ॥ और शिशिर ऋतुकी रात्रियोंमें सारभूत सम्यक्प्रकारके धर्मविषय रस को सेवती हुई वह सारसों से मानी गई कि

आज यह कौन पद्मिनी भलीभांति उद्यत भई है ॥ ७३ ॥ वसन्तऋतु में मनस्वियों तपस्वियों का भी मन अनुरागता को सिरजताहै याने अनुरागवाला होजाता है और उसके ओष्ठ पल्लवों से निकलाहुआ राग आम्रके पल्लवों से हरागया इससे यह सूचित हुआ कि बाहर भीतर भी वैराग्य होने से वह अन्य तपस्वियों से श्रेष्ठथी व उसकी तपस्या भी बहुत अधिक थी ॥ ७४ ॥ व वन में बसती हुई उस बालाने वसन्त ऋतु में कोकिलाओं का काकलीरव याने पिकों की मधुरध्वनि सुनकर अचल मनको तपस्या मेंही किया याने वसन्त में कैली की बोली सुनकर भी उसका मन चलायमान न हुआ ॥ ७५ ॥ और वह बन्धूक (दुपहरी के फूल) में ओठोंकी शोभा और कलहंसों में विलासरूप गमन को धरोहरसी धरकर शरदृऋतु में तपस्या में रत (स्नेहवाली) हुई ॥ ७६ ॥ व विषयभोगों के त्यागनेवाली वह धूत-

तांसृजतेमधौ ॥ तदोष्ठपल्लवाद्रागोजहेमाकन्दपल्लवैः ॥ ७४ ॥ वसन्तेनिवसन्तीसावनेबालाचलंमनः ॥ चक्रेतपस्यपिश्रुत्वाकोकिलाकाकलीरवम् ॥ ७५ ॥ बन्धुजीवेऽधररुचिंकलहंसेकलागतीः ॥ निक्षेपमिवसान्निप्यवाशरद्यासीत्तपोरता ॥ ७६ ॥ अपास्तभोगसंपर्काभोगिनांवृत्तिमाश्रिता ॥ क्षुदुद्बोधनिरोधायधूतपापातपस्विनी ॥ ७७ ॥ शाणेनमणिवल्लीदाक्कृशाप्यायादनर्घताम् ॥ तथापितपसाक्षामादिदीपेतत्तनुस्तराम् ॥ ७८ ॥ निरीक्ष्यतांतपस्यन्तींविधिःसंशुद्धमानसाम् ॥ उपेत्योवाचसुप्रज्ञेप्रसन्नोस्मिवरंवृणु ॥ ७९ ॥ साचतुर्वक्त्रमालोक्यहंसयानोपरिस्थितम् ॥ प्रणम्यप्राञ्जलिःप्रीताप्रोवाचाथप्रजापतिम् ॥ ८० ॥ धूतपापोवाच ॥ पितामहवरोमह्यंयदिदेयोवरप्रद ॥ सर्वेभ्यःपावनेभ्योपिकुरुमाम

पापा तपस्विनी क्षुधा (भूख) जागनेको दूर करनेके लिये सर्पोंकी वृत्तिको सेवतीभई याने बयार भखकर रहगई ॥७७॥ और शानसे घिसी क्षीणहुई भी मणि जैसे अत्यन्त प्रकाशता को आती है (प्राप्त होती है) वैसेही तपस्या से कृश उसकी देहने बहुत ही दीप्ति किया ॥ ७८ ॥ ऐसे भलीभांति शुद्धमनवाली व तपस्या करती हुई उस को देखकर व समीप में आकर ब्रह्माजी ने कहा कि हे सुप्रज्ञे ! मैं प्रसन्न हूं तुम वरको अङ्गीकार करो ॥ ७९ ॥ तदनन्तर हंस वाहनपर टिकेहुये चारमुखवाले ब्रह्माजी को सब ओर से देखकर व उनके प्रणामकर हाथ जोड़ व प्रसन्नमन हुई वह प्रजापति से बोली ॥ ८० ॥ धूतपापा बोली कि हे वरप्रद, पितामह ! जो मेरे लिये वर देने

योग्य है तो सब पवित्रकर्ताओं से भी अधिक मुझको पवित्रकारिणी करो ॥८१॥ ऐसा उसका प्यारा या वाञ्छित सुनकर अनन्तर बहुतही सन्तुष्टमनवाले सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी उस विमलवाहिनी निर्मल हुई के प्रति बोले ॥८२॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे धूतपापे! इस लोक में सर्वत्र जे पवित्र हैं उनसे अधिक अतुलपवित्र तुम मेरे वर से होजावो ॥ ८३ ॥ हे कन्यके! भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्ग में उत्तरोत्तर याने एक से अधिक एक इस क्रम से पवित्र जे साढ़े तीन करोड तीर्थ हैं ॥ ८४ ॥ वे सब तीर्थ तुम्हारी देह में प्रति रोम में बसें और यह निश्चय है कि मेरे वचन से तुम सबसे अधिक पावना होवो ॥ ८५ ॥ ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये उसके

तिपावनीम् ॥ ८१ ॥ स्रष्टातदिष्टमाकर्ण्यनितरांतुष्टमानसः ॥ प्रत्युवाचाथतांबालांविमलांविमलौषिणीम् ॥ ८२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ धूतपापेपवित्राणियानिसन्त्यत्रसर्वतः ॥ तेभ्यःपवित्रमतुलंत्वमेधिवरतोमम ॥ ८३ ॥ तिस्रःकोट्योऽर्धकोटीचसन्तितीर्थानिकन्यके ॥ दिविभुव्यन्तरिक्षेचपावनान्युत्तरोत्तरम् ॥ ८४ ॥ तानिसर्वाणितीर्थानित्वत्तनौप्रतिलोम वै ॥ वसन्तुममवाक्येनभवसर्वातिपावनी ॥ ८५ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेवेधाःसापिनिर्धूतकल्मषा ॥ धूतपापोटजंप्राप्ताथोवेदशिरसःपितुः ॥ ८६ ॥ कदाचित्तांसमालोक्यखेलन्तीमुटजाजिरे ॥ धर्मस्तत्तपसाकृष्टःप्रार्थयामासकन्यकाम् ॥ ८७ ॥ धर्मउवाच ॥ पृथुश्रोणिविशालाक्षिक्षामोदरिशुभानने ॥ क्रीतःस्वरूपसम्पत्त्यात्वयाहंदेहिमेरहः ॥ ८८ ॥ नितराम्बाधतेकामस्त्वत्कृतेमांसुलोचने॥ अज्ञातनाम्नासातेनप्रार्थितेत्यसकृद्दृढः ॥ ८९ ॥ उवाचसापितादातातंप्रार्थयसुदुर्मते ॥

बाद पापों को कँपाती हुई वह धूतपापा भी वेदशिरानामक पिता की पर्णशाला जोकि लक्ष्मीनृसिंहके निकटमें थी उसको प्राप्तहुई ॥ ८६ ॥ व कभी पर्णशाला के आंगन में खेलती हुई उस कन्या को देखकर उसकी तपस्या से खींचेहुये आकर धर्म ने प्रार्थना किया ॥ ८७ ॥ धर्म बोले कि, पृथुश्रोणि, विशालाक्षि, कृशोदरि, शुभानने! तुमने अपनी सुन्दरतासम्पत्ति से मुझको मोललिया इससे मुझको एकान्त दो ॥ ८८ ॥ हे सुलोचने! तेरे लिये मुझको काम बहुतही पीडताहै इस भांति वह अज्ञातनामवाले पुरुष से बार बार प्रार्थना कीगई क्यों कि उस धर्म का आग्रह था ॥ ८९ ॥ तब उसने भी कहा कि हे सुदुर्मते! मेरे देनेवाला पिता है उससे तू

प्रार्थना कर जिससे यह सनातनी श्रुति है कि कन्या पिता से देने योग्य होती है ॥ ९० ॥ ऐसा वचन सुनकर होनेहार अर्थ की गुरुतासे अधीरहुये धर्म ने धैर्य्य से सोहती हुई उस कन्या से फिर आग्रह किया याने हठ से बारबार अपना अभिप्राय कहा ॥ ९१ ॥ धर्म बोले कि, हे सुभगे, सुन्दरि ! मैं तेरे पिता से न प्रार्थना करूंगा तू गान्धर्व व्याह से मेरा वाञ्छित पूरकर ॥ ९२ ॥ इसभांति आग्रह समेत वचनको सुनकर वह पिता का कन्या फल दिया चाहतीहुई कुमारिका उस ब्राह्मणसे फिर बोली ॥ ९३ ॥ कि अरे जड़मते ! तू मत बोल यहां से चलाजा ऐसे कन्यासे कहा हुआ कामसे आतुर वह न टिका याने अपना कहना न बन्द किया ॥ ९४ ॥ तद-

पितृप्रदेयायत्कन्याश्रुतिरेषासनातनी ॥ ९० ॥ निशम्येतिवचोधर्मोभाविनोर्थस्यगौरवात् ॥ पुनर्निर्बन्धयांचक्रेऽपधृतिर्धृतिशालिनीम् ॥ ९१ ॥ धर्मउवाच ॥ नप्रार्थयेहंसुभगेपितरंतवसुन्दरि ॥ गान्धर्वेणविवाहेनकुरुमेत्वंसमीहितम् ॥ ९२ ॥ इतिनिर्बन्धवद्वाक्यंसानिशम्यकुमारिका ॥ पितुःकन्याफलंदित्सुःपुनराहेतितंद्विजम् ॥ ९३ ॥ अरेजडमतेमात्वंपुनर्ब्रूहीतियाहितः ॥ इत्युक्तोपिकुमार्यासनातिष्ठन्मदनातुरः ॥ ९४ ॥ ततःशशापतंबालाप्रबलात्तपसोबलात् ॥ जडोसिनितरांयस्माज्जलाधारोनदोभव ॥ ९५ ॥ इतिशप्तस्तयासोथतांशशापक्रुधान्वितः ॥ कठोरहृदयेत्वन्तुशिलाभवसुदुर्मते ॥ ९६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्यन्योन्यस्यशापेनमुनेधर्मोनदोऽभवत् ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेख्यातोधर्मनदोमहान् ॥ ९७ ॥ साप्याहपितरंत्रस्तास्वशिलात्वस्यकारणम् ॥ ध्यानेनधर्मंविज्ञायमुनिःकन्यामथाब्रवीत् ॥ ९८ ॥ माभैःपुत्रिकरिष्यामितवसर्वंशुभोदयम् ॥ तच्छापोनान्यथाभूयाच्चन्द्रकान्तशिलाभव ॥ ९९ ॥ चन्द्रोदयमनुप्राप्यद्रवी

नन्तर तपस्या के बल से बहुत प्रबल हुई उस कन्या ने उसको शाप दिया कि जिससे तू बहुतही जड़ है उसलिये तुम जलका आधार नद होवो ॥९५॥ उस कन्यासे ऐसे शापेहुये व क्रोध समेत धर्म ने शाप दिया कि हे सुदुर्मते, कठोरहृदये ! तुम भी शिला होजावो ॥ ९६ ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, हे मुने ! ऐसे परस्पर के शाप से अविमुक्त (काशी) महाक्षेत्र में बड़ाभारी धर्मनद नामसे प्रसिद्ध धर्मनदरूपहोगया ॥ ९७ ॥ और त्रस्तहुई उसने भी शिला होने का कारण पितासे कहा और ध्यान से धर्म को जानकर तदनन्तर वह मुनि कन्या से बोला ॥ ९८ ॥ हे पुत्रि ! तू मत डर मैं तेरा सब शुभोदय करूंगा कि उसका शाप भी अन्यथा

न होवे इससे तुम चन्द्रकान्त पत्थर होजावो ॥ ९९ ॥ हे साध्वि, सुते ! जो कि चन्द्रमा के उदय को प्राप्त होकर पघिले हुये शरीरवाली होकर तदनन्तर धूतपापा ऐसे नाम से प्रसिद्ध तुम नदी होवो ॥ १०० ॥ हे कन्ये ! जिन गुणों की तुमने प्रार्थना किया उन गुणों से परिपूर्ण अंगवाला वह सुशोभन धर्मनद तेरा भर्ता (पति) होवेगा ॥ १ ॥ हे सद्बुद्धे ! अन्य भी सुनो कि मेरीभी तपस्याके बलसे प्राकृत (पहलारूप) जल ये दोनों रूप आप दोनोंके होवेंगे ॥ २ ॥ हे परन्तप ! चन्द्रकांत शिलाहुई उस धूतपापा कन्या को आश्वासनकर बुद्धिमान् पिताने अनुग्रह किया ॥ ३ ॥ हे मुने ! तबसे लगाकर महापातकनाशन धर्म जलरूप से काशीमें धर्मनद

भूततनुस्ततः ॥ धुनीभवसुतेसाध्विधूतपापेतिविश्रुता ॥ १०० ॥ सचधर्मनदःकन्येतवभर्तासुशोभनः ॥ तैर्गुणैःपरिपूर्णाङ्गोयेगुणाःप्रार्थितास्त्वया ॥ १ ॥ अन्यच्चशृणुसद्बुद्धेममापितपसोबलात् ॥ द्वैरूप्यंभवतोर्भाविप्राकृतंचद्रवञ्चवै ॥ २ ॥ इत्याश्वास्यपिताकन्यांधूतपापांपरन्तप ॥ चन्द्रकान्तशिलाभूतामनुजग्राहबुद्धिमान् ॥ ३ ॥ तदारभ्यमुनेकाश्यांख्यातोधर्मनदोह्रदः ॥ धर्मोद्रवस्वरूपेणमहापातकनाशनः ॥ ४ ॥ धुनीचधूतपापासासर्वतीर्थमयीशुभा ॥ हरेन्महाघसंघातान्कूलजानिवपादपान् ॥ ५ ॥ तत्रधर्मनदेतीर्थेधूतपापासमन्विते ॥ यदानस्वर्धुनीतत्रतदाब्रध्नस्तपोऽध्यधात् ॥ ६ ॥ गभस्तिमालीभगवान्गभस्तीश्वरसन्निधौ ॥ शीलयन्मङ्गलांगौरींतपउग्रंचचारह ॥ ७ ॥ नाम्नामयूखादित्यस्यतीर्थेतत्रतपस्यतः ॥ किरणेभ्यःप्रववृतेमहास्वेदोतिखेदतः ॥ ८ ॥ किरणेभ्यःप्रवृत्तायामहास्वेदस्यसन्ततिः ॥ ततःसाकिरणानामजातापुण्यातरङ्गिणी ॥ ९ ॥ महापापान्धतमसंकिरणाख्यातरङ्गिणी ॥ ध्वंसयेत्स्नानमा

कुण्ड कहागया याने प्रसिद्ध भया ॥ ४ ॥ और सब तीर्थमयी मङ्गलमयी नदीरूप हुई वह धूतपापा तीरमें उपजेहुये वृक्षोंकी नाई बड़े पापसमूहों को हरलेती है ॥ ५ ॥ वहां जब गङ्गा न थीं तब उस धूतपापा समेत धर्मनदतीर्थ में सूर्यदेव ने तपस्या कियाथा ॥ ६ ॥ गभस्तीश्वर के समीप में मङ्गलागौरी को ध्यानते हुये ऐश्वर्यसम्पन्न किरणमाली (सूर्य) जीने हर्षसे उग्र तपस्या किया ॥ ७ ॥ और उस तीर्थमें तपस्या करते हुये मयूखादित्यनामक सूर्यके अत्यन्त खेदसे किरणों से बहुत स्वेद (पसीना) वर्तमान होगया ॥ ८ ॥ व जोकि बडे स्वेदका विस्तार किरणों से प्रवृत्त हुआ उससे वह किरणानाम पुण्यनदी होगई ॥ ९ ॥ धूतपापा से मिलीहुई किरणा

नाम प्रसिद्धनदी, स्नानमात्र से महापापरूप अन्धतम को विध्वंस करदेती है ॥ १० ॥ पहले तो अपना को राव तीर्थरूप करनेवाली जिस धूतपापा ने पापों को भगादिया उससे मिलाहुआ धर्मनद पुण्यरूप रहा ॥ ११ ॥ तदनन्तर भी जिसका नाम सुमिरने सेही महामोह अन्धता (असामर्थ्य) को प्राप्त होवे है वह सूर्य्य से बढाईहुई किरणाभी आकर मिलगई ॥ १२ ॥ इस भांति काशीमें स्रवती (झिरती) हुई पापोंकी विनाशिनी किरणा और धूतपापा ये दोनों नदियां शुभजलवाले उस शुभधर्मनद में टिकगई ॥ १३ ॥ तदनन्तर उस प्रसिद्ध भगीरथराजाके साथ भागीरथीगङ्गा प्राप्तहोगई और यमुना व सरस्वती भी भागीरथी गङ्गाके साथ भली-

त्रेणमिलिताधूतपापया ॥ १० ॥ आदौधर्मनदःपुण्योमिश्रितोधूतपापया॥ ययाधूतानिपापानिसर्वतीर्थीकृतात्मना॥ ११ ॥ ततोपिमिलितागत्यकिरणारविणैधिता ॥ यन्नामस्मरणादेवमहामोहोन्धतांव्रजेत् ॥ १२ ॥ किरणाधूतपापे चतस्मिन्धर्मनदेशुभे ॥ स्रवन्त्यौपापसंहर्त्र्यौवाराणस्यांशुभद्रवे ॥ १३ ॥ ततोभागीरथीप्राप्तातेनदेलीपिनासह ॥ भागीरथीसमायातायमुनाचसरस्वती ॥ १४ ॥ किरणाधूतपापाचपुण्यतोयासरस्वती ॥ गङ्गाचयमुनाचैवपञ्चनद्यो त्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥ अतःपञ्चनदंनामतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तत्राप्लुतोनगृह्णीयाद्देहंनापाञ्चभौतिकम् ॥ १६ ॥ अस्मिन्पञ्चनदीनाञ्चसम्भेदेघौघभेदिनि ॥ स्नानमात्रात्प्रयात्येवभित्त्वाब्रह्माण्डमण्डपम् ॥ १७ ॥ तीर्थानिसन्तिभूयांसिकाश्यामत्रपदेपदे ॥ नपञ्चनदतीर्थस्यकोट्यंशेनसमान्यपि॥ १८ ॥ प्रयागेमाघमासेतुसम्यक्स्नातस्ययत्फल

भांति आगई ॥ १४ ॥ ऐसे यहां किरणा व धूतपापा व पुण्यजलवाली सरस्वती व गङ्गा और यमुना ये पांच नदियां कहीगई हैं ॥ १५ ॥ इससे पञ्चनद नाम तीर्थ तीनोंलोकों में विशेषता से सुनागया याने प्रसिद्धभयाहै उसमें नहायाहुआ मनुष्य पांच भूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) मयी देहको न धारणकरेगा याने मुक्त होजावेगा ॥ १६ ॥ व पाप विदारनेवाले इस पांच नदियों के संगममें स्नानमात्र से ब्रह्माण्डमण्डप को भेदनकर ऊपरकोही चलाजाता है ॥ १७ ॥ इस काशीमें पग पग पर बहुतसेभारी तीर्थ हैं परन्तु पञ्चनदतीर्थ के कोट्यंश के समान भी नहीं हैं याने पञ्चनदतीर्थ सबोंसे बड़ाहै ॥ १८ ॥ और प्रयाग में माघमास

भंर भलीभांति नहाये हुये प्राणीका जो फल है वह फल काशी में एक दिन पञ्चनद के स्नान से निश्चयकर होताहै॥ १९॥ और पञ्चनदतीर्थ में स्नानकर व उसमें पितरों का तर्प्पण कर व बिन्दुमाधवजी की पूजाकर नर फिर जन्मसेवी न होवेगा ॥ २०॥ व पुण्यरूप पञ्चनदतीर्थ में पितरोंके लिये जितनी संख्यावाले तिल दियेगये उतने वर्ष की तृप्ति होवे है॥ २१॥ व जिन्होंने श्रद्धासे पञ्चनद नामक शुभतीर्थ में श्राद्धको किया उनके पितर जे कि अनेकों योनियोंमें गयेहों वेभी मुक्त होजाते हैं॥ २२॥ और श्राद्धके विधानसे पञ्चनद की महिमा को देखकर यमलोक में पितृगणों से यह गाथा सब ओर गाईजाती है॥ २३॥ कि हमारा भी वंशवाला कोई इस काशीमें पञ्चनदतीर्थ को

म् ॥ तत्फलंस्याद्दिनैकेनकाश्यांपञ्चनदेध्रुवम् ॥ १९॥ स्नात्वापञ्चनदेतीर्थेकृत्वाचपितृतर्पणम् ॥ बिन्दुमाधवमभ्य र्च्यनभूयोजन्मभाग्भवेत् ॥ २० ॥ यावत्सङ्ख्यास्तिलादत्ताःपितृभ्योजलतर्पणे ॥ पुण्येपञ्चनदेतीर्थेतृप्तिःस्यात्ताव दाब्दिकी ॥ २१ ॥ श्रद्धयायैःकृतंश्राद्धंतीर्थेपञ्चनदेशुभे ॥ तेषांपितामहामुक्तानानायोनिगताअपि ॥ २२ ॥ यमलोके पितृगणैर्गाथेयंपरिगीयते ॥ महिमानंपाञ्चनदंदृष्ट्वाश्राद्धविधानतः ॥ २३ ॥ अस्माकमपिवंश्योत्रकश्चिच्छ्राद्धंकरि ष्यति ॥ काश्यांपञ्चनदंप्राप्ययेनमुच्यामहेवयम् ॥ २४ ॥ इयंगाथाप्रतिदिनंश्राद्धदेवस्यसन्निधौ ॥ पितृभिःपरिगीये तकाश्यांपञ्चनदंप्रति ॥ २५ ॥ तत्रपञ्चनदेतीर्थेयत्किञ्चिद्दीयतेवसु ॥ कल्पक्षयेपिनभवेत्तस्यपुण्यस्यसंक्षयः ॥ २६ ॥ वन्ध्यापिवर्षपर्यन्तंस्नात्वापञ्चनदेह्रदे ॥ समर्च्यमङ्गलांगौरींपुत्रंजनयतिध्रुवम् ॥ २७ ॥ जलैःपाञ्चनदैःपुण्यै र्वाससापरिशोधितैः ॥ महाफलमवाप्नोतिस्नपयित्वेष्टदेवताम् ॥ २८ ॥ पञ्चामृतानांकलशैरष्टोत्तरशतोन्मितैः ॥ तु

प्राप्त होकर श्राद्धकरेगा कि जिससे हम सबलोग मुक्त होजावैंगे ॥ २४ ॥ व यमराजजी के समीप प्रतिदिन काशीमें पञ्चनदतीर्थ के प्रति यह गाथा पितरों से सब ओर गाईजाती है ॥ २५ ॥ और उस पञ्चनदतीर्थ में जो कुछ धन दियाजाता है उस पुण्यका नाश कल्पान्त में भी नहीं होगा ॥ २६ ॥ व वन्ध्यास्त्री भी वर्ष पर्यन्त पञ्चनदकुण्ड में स्नानकर व मंगलागौरी की भलीभांति पूजाकर निश्चय से पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ २७॥ व वस्त्रसे छानेहुये पञ्चनद के पुण्य रूप पानीसे अपने इष्टदेव को स्नान कराकर बडे फलको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ क्योंकि पञ्चामृतोंके आठ अधिक सौसंख्यक कलशों से तौलाहुआ पञ्चनद के जलका एक

बिन्दु अधिकताको प्राप्तहुआहै ॥ २९ ॥ इस लोकमें विधानसे बनायेहुये पञ्चकूर्च याने पञ्चगव्यके पीनेसे जो शुद्धि कहीगईहै वह शुद्धि श्रद्धासे पञ्चनदके जलका एक बिन्दु पीकर होजाती है ॥३०॥ और राजसूय व अश्वमेधयज्ञके अन्तवाले स्नानसे जो फल होवे उससे सौगुणा फल पञ्चनद के जलद्वारा स्नानसे होवेगा ॥३१॥ किन्तु राजसूय और अश्वमेध ब्रह्माजी की दो घड़ीतक स्वर्गके साधनेवाले होवेंगे और पञ्चनदतीर्थमें नहाना मुक्तिके लिये होताहै ॥ ३२ ॥ व स्वर्गराज्यका अभिषेक भी वैसा सन्तों के सम्मत नहीं है याने उनसे भलीभांति नहीं मानागयाहै जैसा कि अधिक सुख देनेवाला पञ्चनदतीर्थका अभिषेक होताहै ॥ ३३ ॥ और काशीपुरी

लितोधिकतांयातोबिन्दुःपाञ्चनदाम्भसः ॥ २९ ॥ पञ्चकूर्चेनपीतेनयात्रशुद्धिरुदाहृता ॥ साशुद्धिःश्रद्धयाप्राश्यबिन्दुंपाञ्चनदाम्भसः ॥ ३० ॥ भवेदवभृथस्नानाद्राजसूयाश्वमेधयोः ॥ यत्फलंतच्छतगुणंस्नानात्पाञ्चनदाम्भसा ॥ ३१ ॥ राजसूयाश्वमेधौचभवेतांस्वर्गसाधनम् ॥ आब्रह्मघटिकाद्वन्द्वंमुक्त्यैपाञ्चनदाप्लुतिः ॥३२॥ स्वर्गराज्याभिषेकोपिनतथासम्मतःसताम् ॥ अभिषेकःपाञ्चनदोयथानल्पसुखप्रदः ॥ ३३ ॥ वरंवाराणसींप्राप्यभृत्यःपञ्चनदोक्षिणाम् ॥ नान्यत्रसेवकीभूतभूपकोटिर्नरेश्वरः ॥ ३४ ॥ यैर्नपञ्चनदेस्नातंकार्त्तिकेपापहारिणि ॥ तेऽद्यापिगर्भेतिष्ठन्तिपुनस्तेगर्भवासिनः ॥ ३५ ॥ कृतेधर्मनदंनामत्रेतायांधूतपापकम् ॥द्वापरेबिन्दुतीर्थञ्चकलौपञ्चनदंस्मृतम् ॥३६॥ शतंसमास्तपस्तप्त्वाकृतेयत्प्राप्यतेफलम् ॥ तत्कार्त्तिकेपञ्चनदेसकृत्स्नानेनलभ्यते ॥ ३७ ॥ इष्टापूर्तेषुधर्मेषुयावज्जन्मकृतेषु

को प्राप्त होकर पञ्चनदतीर्थ के जलसे अभिषेक करनेवाले लोगोंका भृत्य (सेवक) श्रेष्ठ है परन्तु अन्यत्र करोड़ों राजा जिसके सेवक हुयेहैं वह चक्रवर्त्ती नरेश भी श्रेष्ठ नहीं है ॥३४॥ व जिन्होंने कार्त्तिकमासमें पापहारी पंचनदतीर्थ में नहीं नहाया वे लोग आजभी गर्भमें टिकेहैं और वे फिरभी गर्भवासी होवेंगे ॥ ३५ ॥ सत्ययुग में इसका धर्मनद नामथा व त्रेतामे धूतपापक व द्वापर में बिन्दुतीर्थ और कलियुगमें पंचनद कहागया है ॥ ३६ ॥ सत्ययुग में सौवर्षतक तपस्या कर जो फल प्राप्त होताहै वह कार्त्तिकमास में पंचनदके जलमें एकबार स्नानसे मिलताहै ॥ ३७ ॥ और जन्मपर्यन्त अन्यत्र इष्ट (अन्तर्वेदीमें दियेहुये दान) व पूर्त (वापी कूप त-

ड़ागादिकों का बनाना) धर्मोंके कियेहुये होतेही जो फलहोवे वह कार्त्तिकमें धर्मनदके स्नानसे होवेगा ॥ ३८ ॥ व धूतपाप (पंचनद) के समान तीर्थ भूतल में कहीं नहीं है जिसके एक स्नानसे तीन जन्मोंका बटोराहुआ पाप नष्ट होजावे है ॥ ३९ ॥ व बिन्दुतीर्थ (पंचनद) में रत्तीभर सोना देकर मनुष्य कहीं दरिद्री नहीं होताहै और स्वर्णसे कभी नहीं वियुक्तहोताहै ॥ ४० ॥ गऊ, भूमि, तिल, सोना, घोडे, वस्त्र, अन्न, माला और भूषण आदि जो कुछहै उसको इस बिन्दुतीर्थमें दानकर अक्षय फलको पावेगा ॥ ४१ ॥ व पुण्यरूप पंचनदतीर्थ के समीप प्रज्वलित अग्निमें विधानसे एकभी आहुति देकर करोड होम का फलपावेगा ॥४२॥ जोकि धर्मादि चतुर्वर्गका

यत ॥ अन्यत्रस्यात्फलंतत्स्यादूर्जेधर्मनदाप्लुवात् ॥ ३८ ॥ नधूतपापसदृशंतीर्थंक्वापिमहीतले ॥ यदेकस्नानतोनश्येद घंजन्मत्रयार्जितम् ॥ ३९ ॥ बिन्दुतीर्थेनरोदत्त्वाकाञ्चनंकृष्णलोन्मितम् ॥ नदरिद्रोभवेत्क्वापिनस्वर्णेनवियुज्यते ॥ ४० ॥ गोभूतिलहिरण्याश्ववासोन्नस्रग्विभूषणम् ॥ यत्किञ्चिद्बिन्दुतीर्थेत्रदत्त्वाक्षयमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ एकाम प्याहुतिंदत्त्वासमिद्धेग्नौविधानतः ॥ पुण्येधर्मनदेतीर्थेकोटिहोमफलंलभेत् ॥ ४२ ॥ नपञ्चनदतीर्थस्यमहिमानमन न्तकम् ॥ कोपिवर्णयितुंशक्तश्चतुर्वर्गशुभौकसः ॥ ४३ ॥ श्रुत्वाख्यानमिदंपुण्यंश्रावयित्वापिभक्तितः ॥ सर्वपापविशु द्धात्माविष्णुलोकेमहीयते ॥ १४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपञ्चनदाविर्भावोनामैकोनषष्टितमोध्यायः ॥५९॥

स्कन्दउवाच ॥ उक्तापञ्चनदोत्पत्तिर्मित्रावरुणनन्दन ॥ इदानींकथयिष्यामिमाधवाविष्कृतिंपराम् ॥ १ ॥ यांश्रुत्वा

शुभस्थानहै उस पंचनदतीर्थकी अनन्त महिमा कहनेको कोई या ब्रह्मासी समर्थ नही है ॥ ४३ ॥ इस पुण्यदायक आख्यानको भक्तिसे सुन व सुनाकर भी सब पापों से विशुद्ध मनवाला होकर विष्णुजी के लोकमें पूजाजाता याने आदर पाताहै ॥ १४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितपञ्चनदती र्थोत्पत्तिमाहात्म्यकथनंनामैकोनषष्टितमोध्यायः ॥ ५९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ साठिसंख्य अध्याय में अग्निबिंदु आख्यान । प्रकट बिंदुमाधव भये जासु महात्म्य महान ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मित्रावरुणनन्दन ! मैंने पंचन

तीर्थकी उत्पत्तिको कहा अब श्रीबिंदुमाधवजीका परम प्रकटकरना कहूंगा ॥ १ ॥ कि जिसको श्रद्धासे सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य क्षणभरमें सब पापोंसे छूटजाताहै व संपत्ति से वियुक्त नहीं होता और धर्मसे संयुक्त होजाताहै ॥ २ ॥ श्रीचंद्रभाल महादेवजी से पूछकर गरुड़रूप रथ से चलनेवाले श्रीविष्णुजी मंदर पर्वत से काशीपुरी को आकर ॥ ३ ॥ व अपनी माया से भूप दिवोदास को भलीभांति उच्चाटनकर व केशव नामक स्वरूप से पादोदक तीर्थ में टिककर ॥ ४ ॥ काशी में उत्तम महिमा को विचारकर और बहुतही विचारकर व पंचनद तीर्थको देखकर परम आनंदको प्राप्तहुये ॥५॥ व प्रसन्नमन होकर कमलनयनजी बोले कि अन्यसे गिननेके न योग्य भी

श्रद्धयाधीमान्पापेभ्योमुच्यतेक्षणात् ॥ नचश्रियावियुज्येतसंयुज्येतवृषेणच ॥ २ ॥ आगत्यमन्दरादद्रेरुपेन्द्रश्चन्द्रशेखरम् ॥ आपृच्छ्यताक्ष्यर्रथगःक्षणाद्वाराणसींपुरीम् ॥ ३ ॥ दिवोदासंमहीपालंसमुच्चाट्यस्वमायया ॥ स्थित्वापादोदकेतीर्थेकेशवाख्यस्वरूपतः ॥ ४ ॥ महिमानंपरंकाश्यांविचार्यसुविचार्यच ॥ दृष्ट्वापञ्चनदंतीर्थंपरांमुदमवापह ॥ ५ ॥ उवाचचप्रसन्नात्मापुण्डरीकविलोचनः ॥ अगण्याअपिवैकुण्ठगुणाविगणितामया ॥ ६ ॥ क्षीरनीरधौसन्तितावन्तो निर्मलागुणाः ॥ यावन्तोविजयन्तेऽत्रकाश्यांपञ्चनदेह्रदे ॥ ७ ॥ श्वेतद्वीपेपिसामग्रीकगुणानाङ्गरीयसी ॥ ईदृशीयादृशीकाश्यांधूतपापेऽस्तिपावनी ॥ ८ ॥ मुदेकौमोदकीस्पर्शास्तथानममजायते ॥ धूतपापाम्बुसंपर्कोयथास्मतिसर्वथा ॥ ९ ॥ नक्षीरनीरधिजयासुखंमेश्लिष्टगात्रया ॥ तथाभवेद्यथात्रस्यात्स्पष्टयाधूतपापया ॥ १० ॥ इत्थंपञ्चनदेतीर्थेक्षीरनीरधिजाधवः ॥ संप्रेष्यताक्ष्यर्मग्रेत्यत्राग्रेवृत्तान्तंविनिवेदितुम् ॥ ११ ॥ आनन्दकाननस्यान्दिवोदासक्ष्मापतेः ॥ संव

वैकुंठके गुण मुझसे विशेषकर गिनेगये ॥६॥ और उतने अमल गुण क्षीरसागरमें कहांहैं कि जितने काशीके बीच इस पंचनद कुण्डमें उत्कर्षको प्राप्त होते हैं ॥७॥ व ऐसी बहुतश्रेष्ठ परमपावनी गुणों की सामग्री श्वेतद्वीप में भी कहां है कि जैसी काशी के बीच धूतपाप (पंचनद) तीर्थ मे है ॥ ८ ॥ व जैसे पंचनद के जल का संसर्ग मेरे आनंदके लिये सर्वथा होताहै वैसे कौमोदकी नामवाली गदाका स्पर्श भी सब भांतिसे आनंदके लिये नहीं होताहै ॥ ९ ॥ व अंगमें लिपटाईहुई लक्ष्मी से वैसे मुझको सुख नहीं है कि जैसे यहां स्पर्श कीहुई धूतपापा नदीसे होता है ॥ १० ॥ इस प्रकार पंचनद तीर्थमे लक्ष्मीनाथजी गरुड़को महादेवजीके आगे वह वृत्तांत ब-

तानेके लिये पठाकर ॥ ११ ॥ जो कि दिवोदास राजाकाथा व काशीमें हुवाथा और पंचनदतीर्थसे उपजे पुण्यरूप गुणसमूहको कहते हुये ॥ १२ ॥ व बहुत आनंदित सुख से बैठे हुये सुंदरदृष्टिवाले व वेदों से सुनेगये विष्णु जी तपस्यासेवित एक दुर्बल देहवाले तपोधन को देखते भये ॥ १३ ॥ और उस ऋषिने उन कमलनेत्रवाले अच्युत जी के संमुख आकर जो कि समीप में बैठी हुई लक्ष्मी से संयुत व वनमाला से विराजित है ॥ १४ ॥ व शंख पद्म गदा और चक्र से चमकते हुये चार हाथवाले व जिनका उर कौस्तुभ मणिसे भूषित या प्रकाशित है व जिनका पीला रेशमी वस्त्र है ॥ १५ ॥ व जो कि अच्छे श्याम सरोज के समान शोभायमान व सचिक्कण मधुर आकारवाले व जिन के नाभिदेश में कमल सोहता है व जो सुंदर पाटल के फूलसे लाल ओठवाले हैं ॥ १६ ॥ व जिनके दाडिम (अनार) बीजसे

णयन्गुणग्रामंपुण्यंपाञ्चनदोद्भवम् ॥ १२ ॥ सुखोपविष्टःसंहृष्टःसुदृष्टिर्विष्टरश्रवाः ॥ दृष्टवांस्तपसाजुष्टमपुष्टाङ्गंतपोधनम् ॥ १३ ॥ सऋषिस्तंसमभ्येत्यपुण्डरीकाक्षमच्युतम्॥उपोपविष्टकमलंवनमालाविराजितम् ॥ १४ ॥ शङ्खपद्मगदाचक्रचञ्चत्करचतुष्टयम् ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्कंपीतकौशेयवाससम्॥१५॥सुनीलेन्दीवररुचिंसुस्निग्धमधुराकृतिम् ॥ नाभीहृदलसत्पद्मंसुपाटलरदच्छदम् ॥ १६ ॥ दाडिमीबीजदशनंकिरीटद्योतिताम्बरम् ॥ देवेन्द्रवन्दितपदंसनकादिपरिष्टुतम् ॥ १७ ॥ दिव्यर्षिभिर्नारदाद्यैःपरिगीतमहोदयम्॥प्रह्लादाद्यैर्भागवतैःपरिनन्दितमानसम् ॥ १८ ॥ धृतशार्ङ्गधनुर्दण्डं दण्डिताखिलदानवम् ॥ मधुकैटभहन्तारंकंसविध्वंससूचकम् ॥ १९ ॥ कैवल्यंयत्परंब्रह्म निराकारमगोचरम् ॥ तत्पुम्मूर्त्यापरिणतंभक्तानांभक्तिहेतुतः ॥ २० ॥ वेदाविदुर्यदाकारन्नैवोपनिषदोदितम् ॥ ब्रह्माद्यानचगीर्वाणा

दंत हैं व जिन्होंने आकाशको मुकुट की मणियों से दीपित किया है व जिनके पद देवेन्द्रोंसे वंदितहैं व जो कि सनकादिकोंसे प्रशंसितहैं ॥ १७ ॥ व जिनका बड़ा भारी उदय नारदादि दिव्य ऋषियों ने गाया है व प्रह्लादादि वैष्णव भक्तों से जिनका मन सब ओर बढ़ायाहुवा या आनंदित है ॥ १८ ॥ व जो कि शार्ङ्ग नामक धन्वा के दंडको धारण किये हुये व संपूर्ण दानवों के दंडदायक व मधु और कैटभके घायक व कंसके विध्वंस को सूचनाकरते हैं ॥ १९ ॥ व जो कि इंद्रियोंके अविषय, आकारहीन कैवल्य परब्रह्म है वह भक्तोंकी भक्ति के कारण पुरुषरूप से परिणाम को प्राप्त हुये वही है ॥ २० ॥ और उपनिषदों से कहे हुये जिन के आकार को कर्मो-

पासना विषयक वेद व ब्रह्मादि देवलोग भी नहीं जानते हैं उनको आंखोंका अतिथि किया याने देखाथा और उसने ॥ २१ ॥ आनंदसंयुत भूमिमें माथधरनेवाला होकर उन इंद्रियनाथके प्रणाम किया व महातपस्वी वह अग्निबिन्दुनामक ऋषि ॥ २२ ॥ हाथोंकी बांधी हुई अंजली को मस्तक में लगायेहुवा बड़ीभक्तिसे विस्तारयुक्त शिला में बैठेहुये, बलियज्ञविध्वंसनकारी अविकारी विष्णुजीकी स्तुतिकरनेलगा ॥ २३ ॥ व मार्कण्डेयादि मुनियों से सेवित उस पंचनदतीर्थके समीपमें सन्तुष्ट मनवाले उस अग्निबिन्दु ने गोविन्द की स्तुतिको किया ॥ २४ ॥ अग्निबिन्दु बोले कि, हे ॐकार के अर्थ, कमलनयन ! जोकि आप हजारों शिरवाले हजारों आंखोंवाले हजारों पावोंवाले और पुर देहोंमें सोनेवालेहो उन बाहर व भीतर शुद्धतादायक आपके लिये नमस्कारहो ॥ २५ ॥ हे इन्द्रादिदेववन्दित, विष्णो !

अक्षेनेत्रातिथिंसतम् ॥ २१ ॥ प्रणनाममुदायुक्तःक्षितिविन्यस्तमस्तकः ॥ सऋषिस्तंहृषीकेशमग्निबिन्दुर्महातपाः ॥ २२ ॥ तुष्टावपरयाभक्त्यामौलिबद्धकराञ्जलिः ॥ अध्यस्तविस्तीर्णशिलं बलिध्वंसिनमच्युतम् ॥ २३ ॥ तत्रपञ्चनदाभ्याशेमार्कण्डेयादिसेविते ॥ गोविन्दमग्निबिन्दुःसस्तुतवांस्तुष्टमानसः ॥ २४ ॥ अग्निबिन्दुरुवाच ॥ ॐनमःपुण्डरीकाक्षबाह्यान्तःशौचदायिने ॥ सहस्रशीर्षापुरुषःसहस्राक्षःसहस्रपात् ॥ २५ ॥ नमामितेपदद्वन्द्वंसर्वद्वन्द्वनिवारकम् ॥ निर्द्वन्द्वयाधियाविष्णोजिष्ण्वादिसुरवन्दित ॥ २६ ॥ यंस्तोतुन्नाधिगच्छन्तिवाचोवाचस्पतेरपि ॥ तमीष्टेकइहस्तोतुंभक्तिरत्रबलीयसी ॥ २७ ॥ अपियोभगवानीशोमनःप्राचामगोचरः ॥ समाहृशैरल्पधीभिःकथंस्तुत्योवचःपरः ॥ २८ ॥ यंवाचोनविशन्तीशंमनतीहमनोनयम् ॥ मनोगिरामतीतंतंकःस्तोतुंशक्तिमान्भवेत् ॥ २९ ॥ यस्यनिःश्वसितंवेदाः

सब द्वन्द्वके याने आध्यात्मिकादि तीन तापोंके निवारण करनेवारे तुम्हारे दोनोंपावोंको दुविधाहीन अकुण्ठितबुद्धि से मैं नमस्कार करताहूं ॥ २६ ॥ कि बृहस्पति या ब्रह्माके भी वचन जिनकी स्तुति करने के लिये अधिकार को नहीं प्राप्त होतेहैं उनकी स्तुति करने के लिये इसलोकमें कौन समर्थ होताहै परन्तु यहां भक्तिही बहुत बलवती है याने आप भक्तिसे प्रसन्न होतेहैं ॥ २७ ॥ सम्भावना कीजाती है कि जो भगवान् ईश्वर मनसे परे ब्रह्मादिकों के अगोचर हैं याने उनकी भी इन्द्रियों के भीतर नहीं आतेहैं वह वचन से परे परमेश्वर मेरे समान थोड़ी बुद्धिवाले लोगोंसे किसभांति स्तुति करने योग्यहैं ॥ २८ ॥ व जिन ईश्वर में वाणियां नहीं प्रवेश करती

है और जिनको मन नहीं जानता है उन मन व वाणी से परे परमेश्वर की स्तुति करने को इसलोक में कौन शक्तिमान् होवेगा ॥ २९ ॥ अंग और पदक्रमसमेत वेद जिनका निःश्वसितहैं उन देवकी बड़ीभारी महिमा किनसे जानीजाती है याने उनकी महिमा अनन्त है ॥ ३० ॥ हृदयरूप आकाश में ध्यावते हुयेभी अकुण्ठित मन बुद्धिवाले सनकादिक यथार्थतासे नहीं पाते हैं ॥ ३१ ॥ व बालपन से लगाकर ब्रह्मचारी नारदादि मुनिश्रेष्ठोंसे गायेजातेहुये चरित्रवाले भी जो भलीभांति अधिकतासे नहीं जानेजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे चराचर, चराचर भिन्न ! जोकि तुम सूक्ष्मरूप, जन्महीन, अविकार एक आद्य व ब्रह्मादिकोंकी इन्द्रियोंसे बाहर व जीतने के न योग्य अनन्त सामर्थ्यवान् नित्य नीरोग निराकार और अचिन्त्यमूर्त्तिहो उन तुमको कौन जन जानताहै ॥३३॥ हे मुरारे, मुकुन्द, मधुसूदन, माधव ! इसभांति जपाहुआ तुम्हारा

सषडङ्गपदक्रमाः ॥ तस्यदेवस्यमहिमामहान्कैरवगम्यते ॥ ३० ॥ अतन्द्रितमनोबुद्धीन्द्रियायंमनकादयः ॥ ध्यायन्तोपि हृदाकाशेनविन्दन्तियथार्थतः ॥ ३१ ॥ नारदाद्यैर्मुनिवरैराबालब्रह्मचारिभिः ॥ गीयमानचरित्रोपिनसम्यग्योधिगम्यते ॥ ३२ ॥ तंसूक्ष्मरूपमजमव्ययमेकमाद्यंब्रह्माद्यगोचरमजेयमनन्तशक्तिम् ॥ नित्यन्निरामयममूर्तमचिन्त्यमूर्तिकस्त्वांचराचरचराचरभिन्नवेत्ति ॥ ३३ ॥ एकैकमेवतवनामहरेन्मुरारेजन्मार्जिताघमघिनांचमहापदाढ्यम् ॥ दद्यात्फलंच महितंमहतोमखस्यजप्तम्मुकुन्दमधुसूदनमाधवेति ॥ ३४ ॥ नारायणेतिनरकार्णवतारणेतिदामोदरेतिमधुहेतिचतुर्भुजेति ॥ विश्वम्भरेतिविरजेतिजनार्दनेति कास्तीहजन्मजपतांककृतान्तभीतिः ॥ ३५ ॥ येत्वांत्रिविक्रमसदाहृदिशीलयन्ति कादम्बिनीरुचिररोचिषमम्बुजाक्षम् ॥ सौदामनीविलसितांशुकवीतमूर्तेतेपिस्पृशन्तितवकान्तिमचिन्त्यरूपाम् ॥ ३६ ॥

एक एकही नाम पापियोंके बहुत जन्मोंसे बटोरेहुये बडी विपत्तिसमेत पापको हरलेवे और भारी या श्रेष्ठ ब्रह्मयज्ञादि का पूजित फलदेवे ॥ ३४ ॥ हे नारायण ! ऐसा व हे नरकार्णवतारण ! ऐसा व हे दामोदर ! ऐसा व हे मधुहन् ! ऐसा व हे चतुर्भुज ! ऐसा व हे विश्वम्भर ! ऐसा व हे विरज ! ऐसा व हे जनार्दन ! ऐसा जपते हुये जनोंका यहां जन्म कहां है और यमराज का डर कहां है ॥ ३५ ॥ हे बिजली विलसित की नाई पीताम्बर से घिरीहुई मूर्त्तिवाले, त्रिविक्रम ! जे लोग मेघमाला के समान सुन्दर शोभायमान व कमलदल से चौड़ी आंखोंवाले तुमको हृदय में सदा ध्यावते हैं वे भी तुम्हारी अचिन्त्यरूप स्वप्रकाश शोभाका स्पर्श करते है ॥३६॥

वाले श्रीविष्णुजीने ऐसा कहा कि, वैसाही होवेगा ॥ ५० ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे मुनिश्रेष्ठ, अग्निबिन्दो ! काशी की भक्तिवाले मनुष्योंके लिये मुक्तिमार्गको भलीभांति उपदेश करताहुवा मैं यहां निश्चय से टिकूंगा ॥ ५१ ॥ हे मुने ! मैं प्रसन्न हूं तुम फिर वर को बोलो मैं तुमको वर देताहूं कि तुम मेरे बडे भारीभक्त हो और मुझ में तुम्हारी दृढ़भक्ति होवे ॥ ५२ ॥ हे तपोनिधे ! मैं पहलेही यहां टिकनेका चाहीथा तदनंतर तुमने भलीभांति प्रार्थना किया इस से मैं यहां सदैव टिकूंगा ॥ ५३ ॥ प्राकृत बुद्धि मनुष्य जो ज्ञानवान् है याने यह जानता है कि काशी न छोड़ना चाहिये तो काशी को प्राप्तहोकर फिर कौन त्याग देवे क्योंकि अमोल उत्तम

श्रेष्ठस्यास्याम्यहमिहध्रुवम् ॥ काशीभक्तिमताम्पुंसांमुक्तिमार्गंसमादिशन् ॥ ५१ ॥ मुनेपुनःप्रसन्नोस्मिवरम्ब्रूहिददामिते ॥ अतीवममभक्तोसिभक्तिस्तेस्तुदृढामयि ॥ ५२ ॥ आदावेवहितिष्ठासुरहमत्रतपोनिधे ॥ ततस्त्वयासमभ्यर्थितःस्थास्याम्यत्रसदैवहि ॥ ५३ ॥ प्राप्यकाशींसुदुर्मेधाःकस्त्यजेज्ज्ञानवान्यदि ॥ अनर्घ्यम्प्राप्यमाणिक्यंहित्वाकाचङ्कईहते ॥ ५४ ॥ अल्पीयसाश्रमेणेहवपुषोऽव्ययमानतः ॥ अवश्यङ्गत्वरस्याशुयथामुक्तिस्तथाक्कहि ॥ ५५ ॥ विनिमय्यजराजीर्णंदेहंपार्थिवमत्रवै ॥ प्राज्ञाःकिमुनगृह्णीयुरमृतन्नैर्जरंवपुः ॥ ५६ ॥ नतपोभिर्नवादानैर्नयज्ञैर्बहुदक्षिणैः ॥ अन्यत्रलभ्यतेमोक्षोयथाकाश्यांतनुव्ययात् ॥ ५७ ॥ अपियोगंहियुञ्जानायोगिनोयतमानसाः ॥ नैकेनजन्मनामुक्ताःकाश्यांमुक्तावपुर्व्ययात् ॥ ५८ ॥ इदमेवमहादानमिदमेवमहत्तपः ॥ इदमेवव्रतंश्रेष्ठंयत्काश्यांम्रियतेतनुः ॥ ५९ ॥ सएवविद्वाञ्जग

मणिको पाकर कांचके लिये कौन जन व्यापार करता है ॥ ५४ ॥ व यहां बहुत थोड़े परिश्रम से चलेजानेवाली क्षणभंगुर देह के नाशमात्रसेही जैसे शीघ्रही मुक्ति होती है वैसे कहां है ॥ ५५ ॥ इसलिये बुढ़ाईसे जीर्ण हुये पृथिवी के विकाररूप शरीर को यहां बदलकर पण्डितलोग जराआदि विकारों से हीन कैवल्य देहको क्यों न ग्रहणकरलेवें ॥ ५६ ॥ व जैसे काशी में देहत्यागियों की मुक्ति होती है वैसे अन्य तपस्याओं से नहीं दानों से नहीं और बहुत दक्षिणायुक्त यज्ञों से भी नहीं मिलती है ॥ ५७ ॥ व योगकोही जोड़ते हुये व मनकोरोंकेहुये योगीभी एक जन्मसे मुक्त नहीं होते हैं परंतु काशी में मरनेसे मुक्तहोजाते हैं ॥ ५८ ॥ जो कि काशी में

देह मरती है यहही बड़ादान है यहही बड़ी तपस्या है और यहही श्रेष्ठ व्रत है ॥ ५९ ॥ और जो काशी को पाकर न छोड़े वहही जगत् में पण्डितहै वहही बडा इन्द्रियजित् है और वहही धन्य पुण्यवान् है ॥ ६० ॥ हे मुने ! जबतक काशी यहां है तबतक मैं इस में टिकूंगा किंतु श्रीशिवजी के त्रिशूल में भलीभांति टिकीहुई इस काशी का नाश प्रलय में भी नहीं होता है ॥ ६१ ॥ ऐसा विष्णुजी का वचन सुनकर आनंद से देह में उठे हुये रोमोंवाला अग्निबिंदु महामुनि फिर बोला कि अन्यवरको भी अंगीकार करताहूं ॥ ६२ ॥ कि हे लक्ष्मीपते ! इस शुभ पंचनदतीर्थ में मेरेनाम से टिकेहुये तुम भक्त और अभक्तों को भी सदैव मुक्ति दो ॥ ६३ ॥

तिसएवविजितेन्द्रियः ॥ सएवपुण्यवान्धन्यो लब्ध्वाकाशींनयस्त्यजेत् ॥६०॥ तावत्स्थास्याम्यहंचात्रयावत्काशीमुनेत्विह ॥ प्रलयेपिननाशोस्याःशिवशूलाग्रसुस्थितेः ॥६१॥इत्याकर्ण्यगिरंविष्णोरग्निबिन्दुर्म्महामुनिः ॥ प्रहृष्टरोमाप्रोवाचपुनरन्यंवरंवृणे ॥ ६२ ॥ मापतेममनाम्नात्रतीर्थेपञ्चनदेशुभे ॥ अभक्तेभ्योपिभक्तेभ्यःस्थितोमुक्तिंसदादिश ॥ ६३ ॥ येत्रपञ्चनदेस्नात्वागत्वादेशान्तरेष्वपि ॥ नराःपञ्चत्वमापन्नामुक्तिंतेभ्योपिवैदिश ॥ ६४ ॥ येतुपञ्चनदेस्नात्वात्वाम्भजिष्यन्तिमानवाः ॥ चलाचलापिद्विरूपामात्याक्षीच्छ्रीश्चतान्नरान् ॥ ६५ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ एवमस्त्वग्निबिन्दोत्रभवतायद्वृतम्मुने ॥ त्वन्नाम्नोऽर्धेनमेनाम मयासहभविष्यति ॥ ६६ ॥ बिन्दुमाधवइत्याख्या ममत्रैलोक्यविश्रुता ॥ काश्याम्भविष्यतिमुनेमहापापौघघातिनी ॥ ६७॥ येमामत्रनराःपुण्याःपुण्येपञ्चनदेह्रदे ॥ सदासपर्ययिष्यन्तितेषांसंसारभीःकुतः ॥ ६८ ॥ वसुस्वरूपिणीलक्ष्मीर्लक्ष्मीर्निर्वाणसंज्ञिका ॥ तत्पार्श्वगासदायेषांहृदिपञ्चनदेह्यह

जे नर इस पंचनदमें स्नानकर देशांतरोंमें भी जाकर मरण को प्राप्त होवें उनके लिये भी निश्चय से मुक्ति दो ॥ ६४ ॥ व जे मनुष्य पंचनद में नहाकर तुमको भजें उन मनुष्योंको चला (धनादिरूपा) अचला (मोक्षसंपत्ति) दोरूपवाली लक्ष्मी मत त्याग करे ॥ ६५ ॥ श्रीविष्णुजीबोले कि, हे अग्निबिंदो, मुने ! आपने जो वर यहां स्वीकार किया वह ऐसेहीहो किंतु तुम्हारे आधे नामके सहित मा(लक्ष्मी) के साथ मेरा नाम होगा ॥ ६६ ॥ हे मुने ! महापापसमूहनाशक व त्रिलोक में विश्रुत (प्रसिद्ध) बिन्दुमाधव ऐसा मेरा नाम काशीमें होगा ॥६७॥ जे पुण्यात्मा मनुष्य इस पुण्यरूप पंचनदकुंडके समीप सदा पूजेंगे उनको संसारका डर कहां है ॥ ६८ ॥

धनस्वरूपिणी लक्ष्मी व मुक्तिसंज्ञिका लक्ष्मी उनके समीप गत है कि जिनके हृदयमें सदा पंचनदमें टिकाहुवा मैं वर्त्तमान हूं ॥ ६९ ॥ व जिन्हों ने पंचनदमें प्राप्त होकर धनों से ब्राह्मणों को न तृप्तकिया उन शीघ्र विपत्ति पानेवालों का वह धन रोताहै ॥ ७० ॥ वेही लोग इस लोकमें धन्य हैं और वेही कृतकृत्य हैं याने करनेयोग्य कर्मोंको करचुके हैं कि जिन्होंने मेरे सामीप्यको प्राप्त होकर धनोंको मेरे अधीन करदियाहै ॥ ७१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ,अग्निबिन्दो ! सब पातकघातक यह बिन्दुतीर्थनामक तीर्थ तुम्हारे नामसे प्रसिद्धहोगा ॥ ७२ ॥ और जोकि कार्त्तिकमें ब्रह्मचर्य्य व्रतमें परायण होकर जब सूर्य्य न उगेहों तबहीं स्नान करेगा उसको भानुनन्दन

म् ॥ ६९ ॥ यैर्नपञ्चनदम्प्राप्यवसुभिःप्रीणिताद्विजाः ॥ आशुलभ्यविपत्तीनांतेषांतद्वसुरोदिति ॥ ७० ॥ तएवधन्यालोकेस्मिन्कृतकृत्यास्तएवहि ॥ प्राप्ययैर्ममसांनिध्यंवसवोममसात्कृताः ॥ ७१ ॥ बिन्दुतीर्थमिदंनामतवनाम्नाभविष्यति ॥ अग्निबिन्दोमुनिश्रेष्ठसर्वपातकनाशनम् ॥ ७२ ॥ कार्त्तिकेबिन्दुतीर्थेयोब्रह्मचर्यपरायणः ॥ स्नास्यत्यनुदितेभानौभानुजात्तस्यभीःकुतः ॥ ७३ ॥ अपिपापसहस्राणिकृत्वामोहेनमानवः ॥ ऊर्जेधर्मनदेस्नातोनिष्पापोजायतेक्षणात् ॥ ७४ ॥ यावत्स्वस्थोस्तिदेहोयंयावन्नेन्द्रियविक्लवः ॥ तावद्व्रतानिकुर्वीतयतोदेहफलंव्रतम् ॥ ७५ ॥ एकभक्तेननक्तेनतथैवायाचितेनच ॥ उपवासेनदेहोयंसंशोध्योशुचिभाजनम् ॥ ७६ ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिकर्तव्यानिप्रयत्नतः ॥ अशुचिःशुचितामेतिकायोयद्व्रतधारणात् ॥ ७७ ॥ व्रतैःसंशोधितेदेहेधर्मोवसतिनिश्चलः ॥ अर्थकामौसनिर्वाणौत

यमराजसे डर कहां है ॥ ७३ ॥ व मोहसे हज़ारों पापभी कर कार्त्तिक में धर्मनद में नहाया हुवा मनुष्य क्षणभर में पापहीन होजाता है ॥ ७४ ॥ क्योंकि व्रतकरना देह का फल है इसलिये जबतक यह देह स्वस्थ है और जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीं है तबतक व्रतों को करे ॥ ७५ ॥ अपवित्र मल मूत्रादिकों का पात्र यह देह एकबार भोजन व रात्रिमें भोजन व अयाचितभोजन वैसेही उपवास से भी भलीभांति शुद्ध करना योग्य है ॥ ७६ ॥ और जिन व्रतों के धारण करने से अपवित्र देह पवित्रता को प्राप्त होती है वे कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत बड़ेयत्नसे करनेयोग्य हैं ॥७७॥ क्योंकि व्रतोंसे देहको संशोधित होनेपर धर्म निश्चल होकर ब-

सता है और जहां धर्मकी स्थिति होतीहै वहां मोक्ष समेत अर्थ व काम भी टिकते हैं ॥७८॥ इसलिये धर्मादि चतुर्वर्ग फलोंके अभिलाषी मनुष्योंको धर्मकी समीपता करने वाले व्रत निरन्तर करने चाहिये ॥ ७९ ॥ व जो मनुष्य सदा व्रत करने को न समर्थ हो तौ चौमासा को प्राप्तहोकर बड़े यत्नों से व्रतकरे ॥ ८० ॥ कि भूमि में शयन ब्रह्मचर्य्य (अष्टाङ्ग मैथुनत्याग) कुछ भोजन का बराना, एकबार या एक अन्नादि भोजन का नियम, व अपनी शक्तिसे नित्यदान ॥ ८१ ॥ व पुराणों का सुनना फिर उनका अर्थ करना, अखण्ड दीपजलाना, व इष्टदेवता में महापूजा इत्यादि सब करना चाहिये ॥ ८२ ॥ और धर्मकी विशेष वृद्धिके लिये बुद्धिमान् मनुष्य

त्रयत्रवृषस्थितिः ॥ ७८ ॥ तस्माद्व्रतानिसततञ्चरितव्यानिमानवैः ॥ धर्मसान्निध्यकर्तॄणिचतुर्वर्गफलेप्सुभिः ॥ ७९ ॥ सदाकर्तुन्नशक्नोतिव्रतानियदिमानवः ॥ चातुर्मास्यमनुप्राप्यतदाकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ८० ॥ भूशय्याब्रह्मचर्यञ्चकिञ्चिद्भक्ष्यनिषेधनम् ॥ एकभक्तादिनियमोनित्यदानंस्वशक्तितः ॥ ८१ ॥ पुराणश्रवणंचैवतदर्थाचरणम्पुनः ॥ अखण्ड दीपबोधश्चमहापूजेष्टदैवते ॥ ८२ ॥ प्रभूताङ्कुरबीजाढ्येदेशेचापिगतागतम् ॥ यत्नेनवर्जयेद्धीमान्महाधर्मविवृद्धये ॥ ८३ ॥ असम्भाष्यानसम्भाष्याश्चातुर्मास्यव्रतस्थितैः ॥ मौनञ्चापिसदाकार्यंतथ्यंवक्तव्यमेववा ॥ ८४ ॥ निष्पावांश्च मसूरांश्चकोद्रवान्वर्जयेद्व्रती ॥ सदाशुचिभिरास्थेयंस्प्रष्टव्योनाव्रतीजनः ॥ ८५ ॥ दन्तकेशाम्बरादीनिनित्यंशोध्यानियत्नतः ॥ अनिष्टचिन्तानोकार्याव्रतिनाहृद्यपिकचित् ॥ ८६ ॥ द्वादशस्वपिमासेषुव्रतिनोयत्फलंभवेत् ॥ चातुर्मा

बहुत अंकुर व बीजों से युक्त देश में आने जाने को यत्न से बरादेवे ॥ ८३ ॥ और चातुर्मास्य व्रत में टिकेहुये मनुष्यों को असम्भाष्य याने पतित चाण्डालादि लोगों से नहींबोलना चाहिये व सदैव मौन करनाचाहिये अथवा सत्य यथार्थ थोड़ा वचन बोलना चाहिये ॥ ८४ ॥ और व्रत करनेवाला मनुष्य दुबिया मसूर व कोदौं आदि अन्नों को बरावे याने इनका भोजन न करे व सदैव पवित्र होकर या पवित्र शुद्धलोगों केसाथ टिकना चाहिये व व्रतहीन जनको नहीं छूना चाहिये ॥ ८५ ॥ व दन्त बाल और वस्त्रादिकोंको यत्न से सदा शुद्ध करना चाहिये और व्रतधारीको मनमें कभी या कहीं अनिष्टकी चिन्ता नहीं करना चाहिये ॥ ८६ ॥ व बारह मासों में भी व्रती

को जो फल होवे वह अखण्डित फल चातुर्मास्य व्रतधारी लोगोंको होवे है॥८७॥ और जो चार मासोंमें भी व्रतकी सामर्थ्य न हो तो वर्ष भर व्रत करनेका फल चाहतेहुये मनुष्यको कार्त्तिकमें व्रतवाला होना चाहिये॥८८॥ व जिन सूकरके समान मन या देहवाले व मूढ़बुद्धिवाले जिनमनुष्योंका यहां कार्त्तिक मास व्रतसे हीन हुआ बीतगया उनको पुण्यका लेशमात्र नहीं होवे है॥८९॥इससे जब कार्त्तिकमास भलीभांति प्राप्तहो तब परमपुण्यवान् पुरुष शक्तिसे याने अपनी सामर्थ्यके अनुसार कृच्छ्र व अतिकृच्छ्र अथवा प्राजापत्य इनव्रतोंको करे इनके लक्षण पहले कहेगयेहैं ॥ ९० ॥ व कार्त्तिकमास के भलीभांति प्राप्त होतेही व्रतवाला जन एकांतर (एकदिनके बाद भोजनादि

स्यंव्रतभृतान्तत्फलंस्यादखण्डितम् ॥ ८७ ॥ चतुर्ष्वपिचमासेषुनसामर्थ्यंव्रतेयदि ॥ तदोर्जेव्रतिनाभाव्यमप्यब्दफलमिच्छता ॥ ८८ ॥ अव्रतःकार्त्तिकोयेषाङ्गतोमूढधियामिह ॥ तेषाम्पुण्यस्यलेशोपिनभवेत्सूकरात्मनाम् ॥ ८९ ॥ कृच्छ्रंवाचातिकृच्छ्रंवाप्राजापत्यमथापिवा ॥ सम्प्राप्तेकार्त्तिकेमासिकुर्याच्छक्त्यातिपुण्यवान् ॥ ९० ॥ एकान्तरंव्रतंकुर्यात्त्रिरात्रव्रतमेववा ॥ पञ्चरात्रंसप्तरात्रंसम्प्राप्तेकार्त्तिकेव्रती ॥ ९१ ॥ पक्षव्रतंवाकुर्वीतमासोपोषणमेववा ॥ नोर्जोवन्ध्योविधातव्योव्रतिनाकेनचित्क्वचित् ॥ ९२ ॥ शाकाहारंपयोहारंफलाहारमथापिवा ॥ चरेद्यवान्नाहारंवासम्प्राप्तेकार्त्तिकेव्रती ॥ ९३ ॥ नित्यन्नैमित्तिकंस्नानंकुर्यादूर्जेव्रतीनरः ॥ ब्रह्मचर्यञ्चरेदूर्जेमहाव्रतफलार्थवान् ॥ ९४ ॥ बाहुलंब्रह्मचर्येणयःक्षिपेच्छुचिमानसः ॥ समस्तंहायनन्तेनब्रह्मचर्यंकृतम्भवेत् ॥ ९५ ॥ यस्तुकार्त्तिकिकम्मासमुपवासैःसमापये

नियम) व्रत व त्रिरात्रव्रत व पंचरात्रव्रत और सप्तरात्रव्रतको करे ॥ ९१ ॥ व पक्षभर व्रत करे अथवा मासभर उपास या व्रतकरे किंतु किसी व्रतीसे कहीं कार्त्तिक मास वंध्य (व्रतसे हीन) करनेयोग्य नहींहै याने सबको इसमें व्रत करना चाहिये॥९२॥ जब कार्त्तिक मास भलीभांति प्राप्तहोवे तब व्रतवान् मनुष्य सागका भोजन व दूधका भोजन व फलका भोजन अथवा यव अन्नकाभी भोजन करे ॥ ९३ ॥ और व्रतवान् मनुष्य कार्त्तिक में नित्य व नैमित्तिक स्नानको करे व महाव्रतके फलका अभिलाषी पुरुष कार्त्तिकमास में ब्रह्मचर्य्य व्रतको धारणकरे ॥ ९४ ॥ जोकि शुद्धमनवाला मनुष्य ब्रह्मचर्य्य से कार्त्तिकमास को बितावे उससे सम्पूर्ण वर्षभर ब्रह्मचर्य्य किया

हुवा होजावै ॥ ९५ ॥ और जोकि कार्त्तिकमास को उपासों करके समाप्त करे उससे वर्षभर भलीभांति उपास कियाहुवा होजावै याने वह व्रतवान् वर्षभर के उपास का फलपावे ॥ ९६ ॥ व जिसने शाक भोजन और दूधपान से कार्त्तिक मासको बिताया उसने उस भोजन से सम्पूर्ण वर्षभर बिताया ॥ ९७ ॥ और कार्त्तिक में पत्रावली पर धरकर भोजन करनेवाला होवे व कांसके पात्रको यत्नसे त्यागदेना चाहिये क्योंकि जो व्रती कांसके पात्रमें भोजन करनेवाला होवे वह उस व्रतका फल न पावे ॥ ९८ ॥ कांसके नियममें याने जो कांसके पात्रमें भोजन न करने को नियम हो तो घीसे भराहुवा कांसे का पात्र दानकरे व कार्त्तिक में बहुत क्षुद्र गति देनेवाले शहद को भोजन न करे ॥ ९९ ॥ व शहदके त्यागमें घी और खंड समेत खीरका दानदेवे और उबटन आदि व भोजनमें भी कार्त्तिक मासभर तेलको विशेषतासे बरावे ॥१००॥

त् ॥ अप्यब्दमपितेनेहभवेत्सम्यगुपोषितम् ॥ ९६ ॥ शाकाहारपयोहारैरूर्जोयैरतिवाहितः ॥ अखण्डिताशरत्तेनत दाहारेणयापिता ॥ ९७ ॥ पत्रभोजीभवेदूर्जेकांस्यन्त्याज्यंप्रयत्नतः ॥ योव्रतीकांस्यभोजीस्यान्नतद्व्रतफलंलभेत् ॥ ९८ ॥ कांस्यस्यनियमेदद्यात्कांस्यंसर्पिःप्रपूरितम् ॥ ऊर्जेनभक्षयेत्क्षौद्रमतिक्षुद्रगतिप्रदम् ॥ ९९ ॥ मधुत्यागेघृतंद द्यात्पायसञ्चसशर्करम् ॥ अभ्यङ्गेऽभ्यवहारेचतैलमूर्जेविवर्जयेत् ॥ १०० ॥ भूयात्सनारकीदेहीतत्राभ्यङ्गाद्यतोनघ ॥ तैलत्यागेतिलान्दद्याद्द्रोणमात्रान्सकाञ्चनान् ॥ १ ॥ कार्त्तिकेमत्स्यभोजीयःसतैर्मीयोनिमृच्छति॥बाहुलेमांसभोजीयः सकृमिःपूयशोणिते ॥ २ ॥ मांसाशिनोपियेभूपास्त्यजेयुस्तेपिकार्त्तिके ॥ मत्स्यमांसानिसन्त्यज्यकार्त्तिकेव्रततत्प रः॥३॥ मत्स्यमांसादनाद्दोषाद्बहिर्भवतिनिश्चितम्॥ नियमेमत्स्यमांसानान्दद्यात्कार्त्तिकिकेव्रती॥ कूश्माण्डानिसमा

हे अपाप ! जिससे उस कार्त्तिक मासमें तेल लगाने व खाने से वह देहधारी नरकनिवासी होवे है इस लिये उसको बराना चाहिये और जब तैलका त्याग हो तब सुवर्ण समेत द्रोणमात्र याने दोसौ छप्पन टकेभर तौलकर तिलदान करे ॥ १ ॥ जो कार्त्तिक में मछली खानेवालाहै वह मत्स्ययोनि को जाताहै याने मरकर मछली होताहै व जो कार्त्तिक में मांसभोजी होताहै वह पीब और रक्तमें कृमिहोकर नरकनिवास पाता है ॥ २ ॥ जे कि राजालोग मांसभक्षी हैं वेभी कार्त्तिकमास मे मांसको तज देवे और अन्य जनभी मत्स्य व मांसोंको भलीभांति त्यागकर व्रतमें परायण होवे ॥ ३ ॥ क्योंकि मत्स्य व मांस के भक्षण रूप दोषसे व्रतसे बाहर होजाताहै यह

निश्चितहै और कार्त्तिक मासभर मत्स्य व मांस न खानेरूप नियममें व्रतवाला मनुष्य दश तोला सोना समेत व माष(उड़द)सहितभी कुम्हड़ाके फलोंका दान करे ॥४॥ व जो कार्त्तिकमें मौनभोजी याने बोलबंदकरके भोजनकरताहै वह मौनधारी सोना सहित और तिल समेत सुंदरी घंटाका प्रदानकरे ॥५॥ व जिस व्रतधारी सज्जनने कार्त्तिक में लोन त्यागा उसने सब रसोंका त्याग करदिया और उस लोनका छोड़नेवाला व्रती एक गोदानकरे ॥६॥ व कार्त्तिक मे भूमिमें शय्या करता हुवा भूमिको भलीभांति न स्पर्श करे वह भूमिशायी व्रती तोशक सहित व तकिया समेत पलँग दानकरे ॥ ७ ॥ जो कार्त्तिकमें घीकी बातीवाला अखंड दीपको देताहै वह मोहरूप अंधतमको प्राप्त

षाणिदशस्वर्णयुतान्यपि ॥ ४ ॥ कार्त्तिकेमौनभोजीयःसोऽश्नात्यमृतमेवहि ॥ सुघण्टांसतिलाम्मौनीसहिरण्याम्प्रदापयेत्॥५॥कार्त्तिकेलवणंत्यक्तंयेनव्रतभृतासता ॥ त्यक्ताःसर्वेरसास्तेनतत्त्यागीगाम्प्रदापयेत् ॥६॥ भूशय्याङ्कार्त्तिकेकुर्वन्नभुवंसंस्पृशेद्व्रती ॥ पर्यङ्कम्भूशयोदद्यात्सतूलंसोपधानकम् ॥ ७ ॥ दीपंयःकार्त्तिकेदद्यादखण्डंघृतवर्तिकम् ॥ मोहान्धतमसम्प्राप्यसनगच्छतिदुर्गतिम् ॥ ८ ॥ यःकुर्यात्कार्त्तिकेमासेरजन्यान्दीपकौमुदीम् ॥ तामिस्रंचान्धतामिस्रंनसपश्येत्कदाचन ॥ ९ ॥ पापान्धकारसंक्रुद्धःकार्त्तिकेदीपदानतः ॥ क्रोधान्धकारितमुखम्भास्करिंसनवीक्षते ॥ १० ॥ सउद्योतमयम्पश्येत्त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ प्रबोधयेन्ममाग्रेयोदीपंसोज्ज्वलवर्तिकम् ॥ ११ ॥ पञ्चामृतानाङ्कलशैरूर्जेमांस्नापयेन्नरः ॥ क्षीराब्धितटमासाद्यवसेत्कल्पंसपुण्यवान् ॥ १२ ॥ प्रतिक्षपंकार्त्तिकिकेकुर्वञ्ज्योत्स्नाम्प्रदीपजाम् ॥

होकर दुर्गतिको नहीं पाताहै ॥८॥ जो कार्त्तिकमासमें रात्रिके समय दीपों से उजेला करैगा वह तामिस्र और अंधतामिस्र नरक को कभी न देखेगा ॥९॥ व जो पापरूप अंधकारके लिये भलीभांति कोपयुक्त है वह कार्त्तिक में दीपदान से क्रोधभरे अंधकार समेत मुखवाले यमराजको नहीं देखताहै ॥ १० ॥ व जो मेरे आगे उजली बाती समेत दीप को जगाता याने जलाताहै वह स्थावर जंगम समेत त्रैलोक्यको उद्योतमय देखताहै याने उसको सर्वत्र ब्रह्मका प्रकाश देखपड़ताहै ॥ ११ ॥ व जो मनुष्य कार्त्तिकमें पंचामृतों (दूध,दही,घी शक्कर,शहद) के कलशोंसे मुझको स्नान करावेगा वह पुण्यवान् क्षीरसागरके तीरपर प्राप्तहोकर कल्पभर वास पावेगा ॥ १२ ॥ व

कार्त्तिकमास में प्रतिरात्रि मेरे आगे दीपों से उपजी उजेली को करताहुवा भक्तिमान् मनुष्य गर्भ के अंधकार में न पैठे ॥ १३ ॥ जो कार्त्तिकमें मेरे आगे घृतकी बाती वाले दीपको जगाताहै वह महामृत्युका डर होतेही बुद्धिके विनाशको नहीं प्राप्त होताहै॥१४॥ व कार्त्तिकमासमें बिंदुतीर्थ पै स्नान कियेहुये व भक्तिमें तत्पर होकर जिन जनोंसे मेरी यात्रा कीगई उनकी मुक्ति दूर नहीं है ॥ १५॥ और हे दनुजेन्द्रनिषूदन, दामोदर ! तुम कार्त्तिकमास में विधानके समान नहाये हुये मुझ व्रतवाले का अर्घ्य ग्रहण करो ॥ १६ ॥ हे कृष्ण ! राधा सहित आप पापशोषनेहारे कार्त्तिक मासके नैमित्तिक स्नानमें मेरे दिये अर्घ्यको ग्रहण करो ॥ १७ ॥ इन मंत्रोंको पढ़-

ममाग्रेभक्तिसंयुक्तोगर्भध्वान्तन्नसंविशेत् ॥ १३ ॥ आज्यवर्तिकमूर्जेयोदीपम्मेग्रेप्रबोधयेत् ॥ बुद्धिभ्रंशन्नचाप्नोतिमहामृत्युभयेसति ॥ १४ ॥ कार्त्तिकेमासिमेयात्रायैःकृताभक्तितत्परैः ॥ बिन्दुतीर्थेकृतस्नानैस्तेषांमुक्तिर्नदूरतः ॥ १५ ॥ व्रतिनःकार्त्तिकेमासिस्नातस्यविधिवन्मम ॥ दामोदरगृहाणार्घ्यन्दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ १६ ॥ स्नानेनैमित्तिके कृष्णकार्त्तिकेपापशोषणे ॥ गृहाणार्घ्यंमयादत्तंराधयासहितोभवान् ॥ १७ ॥ इमौमन्त्रौसमुच्चार्य योर्घ्यंमह्यं प्रयच्छति ॥ सुवर्णरत्नपुष्पाम्बुयुजा शङ्खेनपुण्यवान् ॥ १८ ॥ सुवर्णपूर्णपृथिवीसङ्कल्पोदकपूर्वकम् ॥ तेनदत्ताभवेत्सम्यक्सुपात्रायसुपर्वणि ॥ १९ ॥ एकादशींसमासाद्यप्रबोधकरणींमम ॥ बिन्दुतीर्थेकृतस्नानोरात्रौजागरणान्वितः॥ २० ॥ दीपान्प्रबोध्यबहुशोममालंकृत्यशक्तितः ॥ तौर्यत्रिकविनोदेनपुराणश्रवणादिभिः ॥ २१ ॥ महामहोत्सवंकृत्वा

कर जो पुण्यवान् सोना रत्न फूल और जलयुक्त शंखसे मुझको अर्घ्य देताहै॥१८॥ उससे सुपर्वमें सुपात्रके लिये संकल्प जलपूर्वक सुवर्ण से पूर्ण पृथ्वी भलीभांति दीगई होजाती है याने वह सोनेसे भरी सकल भूमिदान का फल पाताहै ॥ १९ ॥ व मेरी प्रबोधकरणी याने जिसमें मैं जागताहूं उस कार्त्तिकसुदी एकादशी को प्राप्त होकर बिंदुतीर्थ में स्नान कियेहुवा व रात्रिमें जागरण समेत होकर ॥ २० ॥ बहुतसे दीपोंको जगाकर याने जलाकर व शक्तिसे मेरा अलंकार कर याने अनेक भूषणों से मुझको भूषितकर तौर्य्यत्रिक विनोद (नाचना, गाना, बजाना) और पुराण के सुनने आदिकों से ॥ २१ ॥ जबतक तिथि पूरीहोवे तबतक महामहोत्सवको

कर फिर वहां मेरी प्रीति के लिये द्वादशी में बहुतसा अन्नदानकर मनुष्य ॥ २२ ॥ जोकि बड़े पापोंसे संयुत होवे वहभी स्त्री के उदर में प्रवेश न करे याने गर्भ में न पैठे और जो यहां बिंदुमाधवनामक मुझको भलीभांति पूजताहै ॥ २३ ॥ वहही बिंदुतीर्थ में स्नान कियेहुवा मुक्तिको पाताहै हे मुने ! आदिमाधव नामक मैं सत्ययुग में पूजनीयहूं ॥ २४ ॥ व त्रेतामें सब सिद्धिदायक अनंतमाधव नामक मैं जानने योग्यहूं व श्रीदमाधवसंज्ञक मैं द्वापर में मोक्ष करताहूं ॥ २५ ॥ और कलियुग में कलिमलविनाशी मैं बिंदुमाधव जानने योग्यहूं याने मेरा बिंदुमाधव नाम है परंतु कलियुग में पापों से सम्पन्न मनुष्य मुझको नहीं पाते हैं ॥ २६ ॥ और मेरी भक्ति

यावत्पूर्णातिथिर्भवेत् ॥ तत्रान्नदानंबहुशःकृत्वामत्प्रीतयेनरः ॥ २२ ॥ महापातकयुक्तोपिनविशेत्प्रमदोदरम् ॥ बिन्दुमाधवनामानंयोमामत्रसमर्चयेत् ॥ २३ ॥ बिन्दुतीर्थकृतस्नानोनिर्वाणंसहिविन्दति ॥ आदिमाधवनामाहं पूज्यः सत्ययुगेमुने ॥ २४ ॥ अनन्तमाधवोज्ञेयस्त्रेतायांसर्वसिद्धिदः ॥ श्रीदमाधवसंज्ञोहंद्वापरेपरमार्थकृत् ॥ २५ ॥ कलौकलिमलध्वंसीज्ञेयोहंबिन्दुमाधवः ॥ कलौकल्मषसम्पन्नानमांविन्दन्तिमानवाः ॥ २६ ॥ ममैवमाययामूढाभेदवादपरायणाः ॥ ममभक्तिम्प्रकुर्वाणायेविश्वेशंद्विषन्तिवै ॥२७॥ विद्विषोममतेज्ञेयाःपिशाचपदगामिनः ॥ पैशाचींयोनिमाप्यापिकालभैरवशासनात् ॥ २८ ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणिउषित्वादुःखसागरे ॥ विश्वेशानुग्रहादेवततोमोक्षमवाप्नुयुः ॥२९॥ तस्माद्द्वेषोनकर्तव्योविश्वेशेपरमात्मनि ॥ विश्वेशद्वेषिणांपुंसां प्रायश्चित्तंयतोनहि ॥ ३० ॥मनसापिहिविश्वेशंविद्विषन्तीहयेऽधमाः ॥अध्यासतेन्धतामिस्रंमृतास्तेन्यत्रसंततम् ॥ ३१ ॥ शिवनिन्दापरायेचयेपाशुपतनिन्दकाः ॥ वि

करते हुये जे मेरी मायासे मोहित व भेदवादमें परायण होकर निश्चयसे विश्वनाथजीका विद्वेष करते हैं ॥ २७ ॥ वे पिशाचपद में जानेवाले मेरे वैरी जानने योग्यहैं व कालभैरवके शासनसे पिशाचकी योनिको भी प्राप्तहोकर ॥ २८ ॥ तीस हज़ार वर्षतक दुःखसागर में बसकर तदनंतर श्रीविश्वेश्वर की दयासेही मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ उससे परमात्मा श्रीविश्वनाथजी में विद्वेष नहीं करना चाहिये क्योंकि विश्वनाथजी के विद्वेषी पुरुषोंका प्रायश्चित्त नहींहै याने अन्य पापोका उद्धार कहागयाहै परंतु शिव व शिवभक्तोंके विद्वेषीलोगोंका उद्धार नहीं है ॥ ३० ॥ व जे अधम जन मनसेभी यहां श्रीविश्वनाथजीसे विद्वेष करते हैं वे अन्यत्र मरकर निरं-

तर अंधतामिस्र नामक नरकमें बसते हैं ॥ ३१ ॥ व जे शिवजीकी निंदामें परायण हैं व शिवजी के भक्तों के निंदकहैं वे अशुद्ध नरकमें गिरतेहुये लोग मेरे वैरी जानने योग्यहै ॥३२॥ और जे विश्वेश्वरकी निंदा करनेवाले हैं वे क्रमसेही अट्ठाइस करोड़ नरकोंमें कल्प कल्प याने हज़ार हज़ार चौयुगीतक निवासकरेंगे ॥३३॥ हे मुने ! श्रीविश्वनायक की दयाको प्राप्तहोकर मैं भी मुक्तिदायक हूं उस कारण मेरे भक्तोंसे विशेष कर विश्वेश्वर जी निरंतर सेवनेयोग्यहैं ॥ ३४ ॥ हे मुने ! इस काशीको पाशुपतस्थली जानना चाहिये याने यह शिवभक्तोंका स्थलहै उसलिये काशीमें मुक्तिचाही मनुष्यों को शिवजी की सेवा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥ और कार्त्तिकमासमें गणों

द्विषोममतेज्ञेयाःपतन्तोनरकेऽशुचौ ॥ ३२ ॥ अष्टाविंशतिकोटीषुनरकेषुक्रमेणहि ॥ कल्पंकल्पंवसेयुस्तेयेविश्वेश्वर निन्दकाः ॥ ३३ ॥ विश्वेशानुग्रहंप्राप्यमुनेहमपिमुक्तिदः ॥ मद्भक्तैस्तद्विशेषेणसेव्योविश्वेश्वरोऽनिशम् ॥ ३४ ॥ इयं वाराणसीज्ञेयामुनेपाशुपतस्थली ॥ तस्मात्पशुपतिःसेव्यःकाश्यांनिःश्रेयसार्थिभिः ॥ ३५ ॥ अत्रपञ्चनदेतीर्थेस्नाति विश्वेश्वरःस्वयम् ॥ ऊर्जेसदैवसगणःसस्कन्दःसपरिच्छदः ॥ ३६ ॥ ब्रह्मासवेदःसमखोब्रह्माण्याद्याश्चमातरः ॥ सप्ताब्ध यःससरितःस्नान्त्यूर्जेधूतपापके ॥३७॥ सचेतनाहियावन्तस्त्रैलोक्येदेहधारिणः ॥ तावन्तःस्नातुमायान्ति कार्त्तिकेधूत पापके ॥ ३८ ॥ यैर्नपञ्चनदेस्नातं प्राप्यकार्त्तिकिकंशुभम् ॥ जलबुद्बुदवत्तेषांवृथाजन्मशरीरिणाम् ॥ ३९ ॥ आनन्द काननंपुण्यंपुण्यंपाञ्चनदन्ततः ॥ ततोपिममसान्निध्यमग्निबिन्दोमहामुने ॥ ४० ॥ अनेनैवानुमानेनविद्धिपञ्चनद

समेत, कार्त्तिकेय समेत व उपयोगी वस्तुवों समेत श्रीविश्वनाथजी आपही इस पंचनद तीर्थमें सदैव नहाते हैं ॥३६॥ यज्ञों समेत व वेदों समेत ब्रह्माजी व ब्रह्माणी आदि मातृकायें और सब नदियों समेत सातो समुद्रभी कार्त्तिकभर इस धूतपापक पंचनद तीर्थमें नहाते हैं ॥३७॥ व तीनों लोकोंमें जितने सचेतन देहधारी हैं उतने सब धूतपापक तीर्थ में नहाने के लिये कार्त्तिक में यहां आते हैं ॥ ३८ ॥ व शुभ कार्त्तिक मास को प्राप्तहोकर जिन्होंने पंचनदमें नहीं नहाया उन देहधारियों का जन्म जल के बुल्लाकी नाईं वृथाहै ॥ ३९ ॥ हे अग्निबिंदो, महामुने ! पहले तो आनंदवन (काशी) पुण्यरूप है फिर पंचनद तीर्थ उससे अधिक है और मेरा समीप होना उससेभी

हे श्रीवत्सचिह्न, हरे, अच्युत, कैटभशत्रो, गोविन्द, गरुड़वाहन, केशव, चक्रहस्त, लक्ष्मीपते, दानवविदारण, शार्ङ्गपाणे ! तुम्हारी भक्ति (अनुराग) के से वी पुरुषमें डर कहीं नहीं है ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! दूरकिया कस्तूरी के सुगन्ध को जिसने वैसे सुगन्धवाले तुलसी के फूलोंसे जिन करके तुम पूजेगयेहो उन वि-मलस्वभाववाले जनोंको स्वर्गमें सब देवगण मन्दारके फूलोंकी मालाओंसे बहुतही पूजते हैं ॥ ३८ ॥ हे कमलनेत्र ! जिनकी वाणीमें वाञ्छितफलदायक तुम्हारा नाम है व जिनके कानोंमें तुम्हारी कथाके मधुरअक्षर हैं और जिनकी चित्तभित्ति में आपका रूप लिखित है उनको निराकार (ब्रह्म) रूपकी स्थिति दुष्प्रापा या दुर्लभा

श्रीवत्सलाञ्छनहरेऽच्युतकैटभारेगोविन्दताक्ष्र्यरथकेशवचक्रपाणे ॥ लक्ष्मीपतेदनुजसूदनशार्ङ्गपाणे त्वद्भक्तिभाजिन भयंकचिदस्तिपुंसि ॥ ३७ ॥ यैरर्चितोसिभगवंस्तुलसीप्रसूनैर्दूरीकृतैणमदसौरभदिव्यगन्धैः ॥ तानर्चयन्ति दिविदेवगणाःसमस्ता मन्दारदामभिरलंविमलस्वभावान् ॥ ३८ ॥ यद्वाचिनामतवकामदमब्जनेत्रयच्छ्रोत्रयोस्तव कथामधुराक्षराणि ॥ यच्चित्तभित्तिलिखितंभवतोस्तिरूपंनीरूपभूपपदवीनहितैर्दुरापा ॥ ३९ ॥ येत्वांभजन्तिसततं भुविशेषशायिंस्ताल्लक्ष्मीपतेपितृपतीन्द्रकुबेरमुख्याः ॥ वृन्दारकादिविसदैवसभाजयन्तिस्वर्गापवर्गसुखसन्ततिदान दक्ष ॥ ४० ॥ येत्वांस्तुवन्तिसततंदिवितान्स्तुवन्तिसिद्धाप्सरोमरगणालसदब्जपाणे ॥ विश्राणयत्यखिलसिद्धिदकोवि नात्वांनिर्वाणचारुकमलांकमलायताक्ष ॥ ४१ ॥ त्वंहंसिपासिसृजसिक्षणतःस्वलीलालीलावपुर्धरविरिञ्चिनताङ्घ्रियुग्म ॥ विश्वन्त्वमेवपरविश्वपतिस्त्वमेवविश्वस्यबीजमसितत्प्रणतोस्मिनित्यम् ॥ ४२ ॥ स्तोतात्वमेवदनुजेन्द्ररिपोस्तुति

नहीं है ॥३९॥ हे स्वर्गमुक्तिसुखसन्ततिदानदक्ष, शेषशायिन्, लक्ष्मीपते ! जे भूलोकमें तुमको निरन्तर भजतेहैं उनको स्वर्गमें यम इन्द्र और कुबेरादि देव सदैव पूजते हैं ॥ ४० ॥ हे सोहतेहुये कमलहाथवाले, कमलायताक्ष, सकलसिद्धिदायक ! जे जन निरन्तर तुम्हारी स्तुति करते हैं उनकी स्वर्गमें सिद्ध अप्सरा और देवसमूह स्तुति करते हैं और तुम्हारे विना मुक्तिकी सुन्दरी सम्पत्तिको कौन देताहै याने कोई नहीं देसक्ता है ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मासे वन्दितयुगलपदवाले, व अपनी लीलासे लीला-रूपधारिन्, परमेश्वर ! तुम जगत्को क्षणमें रचतेहो व पालतेहो और बालतेहो व तुमहीं जगत्हो व तुमहीं जगत् के पतिहो और तुमहीं जगत् के कारणहो उस

लिये मैं नित्यही तुम्हारे नमस्कारकरनेवालाहूं ॥ ४२ ॥ हे संसारशत्रो, दानवेन्द्रवैरिन्, विष्णो ! तुमहीं स्तुतिकर्त्ताहो व तुमहीं स्तुतिहो व तुमहीं स्तुतिकेयोग्य हो और इस ब्रह्माण्डमें सब कुछ एक आपही हैं व तुमसे भिन्न कुछ भी मैं नहीं जानताहूं इससे तुम संसारसे उपजी हुई मेरी तृष्णाको सदैव काटो ॥ ४३ ॥ इसभांति इन्द्रियोंके स्वामी (विष्णुजी) की स्तुतिकर बड़ातपस्वी अग्निबिन्दु ऋषि मौनहो टिकरहा तदनन्तर वरदायक विष्णुजी मुनिसे बोले ॥४४॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे बड़ी तपस्याओं के निधान, महापण्डित, अग्निबिन्दो ! मैं बहुत प्रसन्नहूं और तुमको कुछ अदेय नहींहै याने सब कुछ देनेयोग्यहै इससे तुम वरको अंगीकारकरो॥४५॥

स्त्वंस्तुत्यस्त्वमेवसकलंहिभवानिहैकः॥त्वत्तोनकिञ्चिदपिभिन्नमवैमिविष्णोतृष्णांसदाकृणुहिमेभवजाम्भवारे॥४३॥ इतिस्तुत्वाहृषीकेशमग्निबिन्दुर्महातपाः ॥ तस्थौतूर्ष्णींततोविष्णुरुवाचवरदोमुनिम् ॥ ४४ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ अ ग्निबिन्दोमहाप्राज्ञमहतांतपसांनिधे ॥ वरंवरयसुप्रीतस्तवादेयंनकिञ्चन ॥ ४५ ॥ अग्निबिन्दुरुवाच ॥ यदिप्रीतोसि भगवन्वैकुण्ठेशजगत्पते ॥ कमलाकान्ततद्देहियदिहप्रार्थयाम्यहम् ॥ ४६ ॥ कृतानुज्ञोथहरिणाभ्रूभङ्गेनसतापसः ॥ कृतप्रणामोहृष्टात्मावरयामासकेशवम् ॥ ४७ ॥भगवन्सर्वगोपीहतिष्ठपञ्चनदेह्रदे ॥ हितायसर्वजन्तूनांमुमुक्षूणांविशे षतः ॥ ४८ ॥ लक्ष्मीशेनवरोमह्यमेषदेयोऽविचारतः ॥ नान्यंवरंसमीहेहंभक्तिञ्चत्वत्पदाम्बुजे ॥ ४९ ॥ इतिश्रुत्वावरंत स्याग्निबिन्दोर्म्मधुसूदनः ॥ प्रीतःपरोपकारार्थंतथेत्याहाब्धिजापतिः ॥ ५० ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ अग्निबिन्दोमुनि

अग्निबिन्दु बोले कि, हे भगवन्, वैकुण्ठेश, जगत्पते, लक्ष्मीनाथ ! जो तुम प्रसन्नहो तो मैं जो यहां मांगताहूं उसको मुझे दीजिये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर भौंह भंगसे कीगई आज्ञा जिसके लिये उस प्रणाम कियेहुये, प्रसन्नमनवाले तपस्वीने विष्णुजीसे वरदानको स्वीकार किया ॥ ४७ ॥ कि हे भगवन् ! सब जतुओं व विशेषता से मुक्ति चाहियो के हित के लिये सर्वगत भी आप इस पंचनदकुंडमें तुम टिको ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मीश ! विना विचारेही मेरे लिये यह श्रेष्ठवर देने योग्य है और मैं अन्यवरको नहीं चाहताहूं परंतु तुम्हारे चरणारविंद में भक्तिको चाहताहूं ॥ ४९ ॥ इसभांति पराये उपकार के अर्थ उस अग्निबिन्दु का वर सुनकर प्रसन्नहुये, मधुदैत्य के मारने

अधिक है ॥ ४० ॥ हे महाप्राज्ञ ! इस अनुमान सेही पंचनद तीर्थकी महिमाको सब तीर्थों से उत्तमोत्तम जानो ॥ ४१ ॥ कि जिस महिमाको सुनकरभी बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य महापापों से छूटजाता है इस भांति श्रीविष्णुजीके मुखसे सुनकर उस अग्निबिंदु नामक महामुनि ने ॥ ४२ ॥ जोकि कभी नहीं च्युत होतेहैं उन श्रीबिंदुमाधवजीके प्रणाम कर फिर पूंछा ॥ ४३ ॥ अग्निबिंदु बोले कि, हे भगवन्, जनार्दन, बिंदुमाधवजी ! मैं सुनने की इच्छाकरताहूँ कि काशी में तुम्हारे कितने भांति के रूप हैं उनको तुम कहो ॥ ४४ ॥ हे अच्युत ! यहां भविष्यभी कौनहैं उनको मुझसे कहो कि जिनको भलीभांति पूजकर तुम्हारे भक्त कृतकृत्यताको प्राप्त

स्यवै ॥ महिमानंमहाप्राज्ञसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ४१ ॥ श्रुत्वापियंमहाप्राज्ञोमहापापैःप्रमुच्यते ॥ विष्णोर्मुखादितिश्रुत्वासोग्निबिन्दुर्महामुनिः ॥ ४२ ॥ पुनःप्रणम्यपप्रच्छबिन्दुमाधवमच्युतम् ॥ ४३ ॥ अग्निबिन्दुरुवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिबिन्दुमाधवतद्वद ॥ कतिधातवरूपाणिकाश्यांसन्तिजनार्दन ॥ ४४ ॥ भविष्याण्यपिकानीहतानिमेकथयाच्युत ॥ यानिसम्पूज्यतेभक्ताःप्राप्स्यन्तिकृतकृत्यताम् ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेबिन्दुमाधवाविर्भावोनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ षडास्यमाधवाख्यानं श्रुतंमेपापनाशनम् ॥ महिमापिश्रुतःश्रेयान्सम्यक्पञ्चनदस्यवै ॥ १ ॥ यदग्निबिन्दुनापृच्छिमाधवोदैत्यसूदनः ॥ तस्योत्तरंसमाख्याहियथाख्यातंमधुद्विषा ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृणवगस्त्यमहर्षेत्वंकथ्यमानंमयाधुना ॥ माधवेनयथाचख्यिमुनयेचाग्निबिन्दवे ॥ ३ ॥ बिन्दुमाधवउवाच ॥ आदौपादोदकेती

होवेंगे ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते श्रीबिन्दुमाधवाविर्भावो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । यकसठयें अध्याय में वैष्णव तीर्थ अनेक । केशवादि चौबीस कहि मूर्त्ति सुचिह्न विवेक ॥ अगस्त्य जी बोले कि हे षण्मुख ! मैंने पापविनाशी श्रीबिंदुमाधवजी का आख्यान सुना और पंचनद तीर्थ की श्रेष्ठ महिमा भी मुझ से भलीभांति सुनी गई है ॥ १ ॥ अग्निबिंदुने दैत्यदलन श्रीबिंदुमाधवजी से जो पूंछा व मधुदैत्य के वैरी विष्णुजी ने जैसे उसका उत्तर कहा उस को तुम भलीभांति कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महर्षे, अगस्त्य जी ! जैसे बिंदुमाधव जी ने अग्नि-

बिंदु मुनिसे कहा वैसेही इस समय मुझसे कहे जातेहुये उस उत्तरको सुनो ॥ ३ ॥ श्रीबिंदुमाधवजी बोले कि, हे महाप्राज्ञ, अग्निबिन्दो ! पहले तो पादोदक तीर्थमें भक्तोंको मुक्तिदायक आदिकेशव नामक मुझको जानो ॥ ४ ॥ व मुक्तिक्षेत्र काशीमें जे आदिकेशव की पूजा करते हैं वे सब दुःखोंसे हीन होकर मोक्षको ही सेवते हैं ॥ ५ ॥ वह आदिकेशव जी दर्शन से मनुष्यों के पापहारी संगमेश्वर नामक महालिंगकी प्रतिष्ठाकर सदैव भुक्ति व मुक्तिको देते हैं ॥ ६ ॥ व पादोदक तीर्थसे दक्षिणमें जो बड़ा भारी परम पूजनीय श्वेतद्वीप तीर्थ है वहां ज्ञानकेशवनामक मैं मनुष्यों का ज्ञानदाता हूं ॥ ७ ॥ उन ज्ञानकेशव के समीप श्वेतद्वीप तीर्थ में स्नानकर ज्ञान-

थैविद्धिमामादिकेशवम् ॥ अग्निबिन्दोमहाप्राज्ञभक्तानांमुक्तिदायकम् ॥ ४ ॥ अविमुक्तेऽमृतक्षेत्रेयेर्चयन्त्यादिकेशवम् ॥ तेऽमृतत्वंभजन्त्येवसर्वदुःखविवर्जिताः ॥ ५ ॥ सङ्गमेशंमहालिङ्गंप्रतिष्ठाप्यादिकेशवः ॥ दर्शनादघहंनृणांभुक्तिमुक्तिंदिशेत्सदा ॥ ६ ॥ याम्यांपादोदकाच्छ्वेतद्वीपतीर्थंमहत्तरम् ॥ तत्राहंज्ञानदोनृणांज्ञानकेशवसंज्ञकः ॥ ७ ॥ श्वेतद्वीपेनरःस्नात्वाज्ञानकेशवसन्निधौ ॥ नज्ञानाद्भ्रश्यतेक्वापिज्ञानकेशवपूजनात् ॥ ८ ॥ ताक्ष्र्यकेशवनामाहंताक्ष्र्यतीर्थेनरोत्तमैः ॥ पूजनीयःसदाभक्त्याताक्ष्र्यवत्तेप्रियामम ॥ ९ ॥ तत्रैवनारदेतीर्थेस्म्यहंनारदकेशवः ॥ ब्रह्मविद्योपदेष्टाचतत्तीर्थाप्लुतवर्ष्मणाम् ॥ १० ॥ प्रह्लादतीर्थेतत्रैवनाम्नाप्रह्लादकेशवः ॥ भक्तैःसमर्चनीयोहंमहाभक्तिसमृद्धये ॥ ११ ॥ तीर्थेऽम्बरीषेतत्राहन्नाम्नैवादित्यकेशवः ॥ पातकध्वान्तनिचयंध्वंसयामीक्षणादपि ॥ १२ ॥ दत्तात्रेयेश्वराद्याम्यामहमा

केशवकी पूजा करनेसे मनुष्य कहीं भी ज्ञानसे नहीं भ्रष्ट होताहै ॥८॥ व तार्क्ष्यतीर्थमें तार्क्ष्यकेशवनामक मैं नरोत्तमोंसे सदैव भक्तिसे पूजनीय हूं और वे पूजकलोग गरुड़ की नाईं मेरे प्यारे होते हैं ॥ ९ ॥ व वहांही नारदतीर्थ में नारदकेशवनामक मैं उस तीर्थ में डुबाई हुई देहोंवाले लोगों को ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेवालाहूं ॥ १० ॥ और वहांही प्रह्लादतीर्थ में प्रह्लादकेशव नाम से प्रसिद्ध मैं बड़ी भक्तिकी समृद्धिके लिये भक्तों से भलीभांति पूजनीय हूं ॥ ११ ॥ व वहां अंबरीष तीर्थ में आदित्य-केशव नामक मैं क्षणमेंही पापरूप अन्धकार समूह का विध्वंस करदेताहूं ॥ १२ ॥ और दत्तात्रेयेश्वर से दक्षिण में टिकाहुवा आदिगदाधर नामक मैं भक्तों के संसार

रूप रोग की राशिको हरलेताहूं ॥ १३ ॥ व वहांही भार्गवतीर्थ में भृगुकेशव नामक मैं काशीवासी जनों को मनोरथों से पोषण करताहूं ॥ १४ ॥ व मनवाञ्छित फलदायक वामन नामक मङ्गलकारक महातीर्थ में नामसे वामनकेशव कहाताहुवा मैं शुभकी इच्छा करतेहुये जनोंसे पूजनीयहूं ॥ १५ ॥ व नरनारायण तीर्थ में नरनारायणरूप मुझको भलीभांति पूजकर भक्तलोग निश्चयसे नरनारायणात्मक होजाते हैं ॥१६॥ व यज्ञवराहनामक तीर्थमें यज्ञवाराहसंज्ञक मैं सब यज्ञोंके फल चाहतेहुये मनुष्योंसे भलीभांति पूजने योग्य हूं ॥ १७ ॥ और काशीवासी लोगों के विघ्नों का विदारनेवाला विदारनारसिंह नामक मैं तीर्थोपद्रवों की शांति के लिये उन विदारनारसिंह के नामवाले तीर्थ में भलीभांति सेवने योग्य हूं ॥ १८ ॥ व गोपीगोविंदतीर्थमें गोपीगोविंद संज्ञक मुझको भक्तिसे भलीभांति पूजकर मनुष्य मायाको नहीं छूता है ॥१९॥ हे मुने ! उन लक्ष्मीनृसिहके नामवाले पावनतीर्थमें मैं लक्ष्मीनृसिंह हूं व भक्तियुत लोगोंके लिये सदैव मुक्तिसम्पत्तिको देताहूं ॥२०॥ व पापहारी शेष तीर्थमें शेषमाधवनामक मैं भक्तोंके चिंतनकियेहुये सम्पूर्ण विशेष वाञ्छितोंकोदेताहूं॥२१॥व शङ्खमाधव तीर्थमें नहाकर शङ्खमाधवनामक मुझको शङ्खके जलसे स्नानकराकर प्राणी

दिगदाधरः ॥ हरामितत्रभक्तानांसंसारगदसञ्चयम् ॥१३॥ तत्रैवभार्गवेतीर्थेभृगुकेशवनामतः ॥ काशीनिवासिनःपुंसो बिभर्मिचमनोरथैः ॥ १४ ॥ वामनाख्येमहातीर्थेमनःप्रार्थितदेशुभे ॥ पूज्योहंशुभमिच्छद्भिर्नाम्नावामनकेशवः ॥ १५ ॥ नरनारायणेतीर्थेनरनारायणात्मकम् ॥ भक्ताःसमर्च्यमांस्युर्वैनरनारायणात्मकाः ॥ १६ ॥ तीर्थेयज्ञवराहाख्येयज्ञवाराहसंज्ञकः ॥ नरैःसमर्चनीयोहंसर्वयज्ञफलेप्सुभिः ॥ १७ ॥ विदारनरसिंहोहंकाशीविघ्नविदारणः ॥ तन्नाम्नितीर्थेसंसेव्यस्तीर्थोपद्रवशान्तये ॥ १८ ॥ गोपीगोविन्दतीर्थेतुगोपीगोविन्दसंज्ञकम् ॥ समर्च्यमान्नरोभक्त्याममभायान्नसंस्पृशेत् ॥ १९ ॥ मुनेलक्ष्मीनृसिंहोस्मितीर्थेतन्नाम्निपावने ॥ दिशामिभक्तियुक्तेभ्यःसदानैःश्रेयसींश्रियम् ॥ २० ॥ शेषमाधवनामाहंशेषतीर्थेऽघहारिणि ॥ विश्राणयाम्यशेषांश्चविशेषान्भक्तचिन्तितान् ॥ २१ ॥ शङ्खमाधवतीर्थेचस्नात्वामांशङ्खमाधवम् ॥ शङ्खोदकेनसंस्नाप्यभवेच्छङ्खनिधेःपतिः ॥ २२ ॥ हयग्रीवेमहातीर्थेमांहयग्रीवकेशवम् ॥ प्रण

शङ्ख नामक निधिका स्वामी होताहै ॥२२॥ व हयग्रीव महातीर्थमें हयग्रीवकेशवनामक मुझको प्रणामकर विष्णुजीके उस प्रसिद्ध परमपदको निश्चयकर मनुष्य प्राप्तहोवे है ॥ २३ ॥ व वृद्धकालेश्वर के पश्चिम में भक्तियोग के द्वारा भक्तों से सेवित हुवा भीष्मकेशव नामक मैं भारी भयानक विघ्नों को हरलेताहूं ॥ २४ ॥ व लोलार्क से उत्तर भाग मे भक्तोंका मुक्तिसूचक निर्वाणकेशवनामक मैं मनकी चञ्चलता को हरताहूं ॥ २५ ॥ व काशी में त्रिलोकसुन्दरी वन्दी देवी से दक्षिण ओर त्रिभुवन-केशवनामक मुझ को जो भलीभांति पूजेगा वह फिर गर्भसेवी न होवेगा ॥ २६ ॥ व ज्ञानवापी के पूर्व ओर में मुझ को ज्ञानमाधव जानो वहां भक्ति से मेरी पूजाकर

स्यप्राप्नुयान्नूनन्तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ २३ ॥ भीष्मकेशवनामाहंवृद्धकालेशपश्चिमे ॥ उपसर्गान्हरेभीष्मान्सेवितोभक्तियुक्तितः ॥ २४ ॥ निर्वाणकेशवश्चाहम्भक्तानिर्वाणसूचकः॥लोलार्कादुत्तरेभागेलौल्यन्त्वञ्चेतसोहरे॥२५॥वन्द्यास्त्रिलोकसुन्दर्यायाम्यांयोमांसमर्चयेत् ॥ काश्यांख्यातंत्रिभुवनकेशवंनसगर्भभाक् ॥ २६ ॥ ज्ञानवाप्याःपुरोभागेविद्धिमांज्ञानमाधवम् ॥ तत्रमाम्भक्तितोभ्यर्च्यज्ञानंप्राप्नोतिशाश्वतम् ॥ २७ ॥ श्वेतमाधवसंज्ञोहंविशालाक्ष्याःसमीपतः ॥ श्वेतद्वीपेश्वररूपंकुर्याम्भक्त्यासमर्चितः ॥ २८ ॥ उदग्दशाश्वमेधान्माम्प्रयागाख्यञ्चमाधवम्॥ प्रयागतीर्थेसुस्नातोदृष्ट्वापापैःप्रमुच्यते ॥ २९ ॥ प्रयागगमनेपुंसांयत्फलंतपसिश्रुतम् ॥ तत्फलंस्याद्दशगुणमत्रस्नात्वाममाग्रतः ॥ ३०॥ गङ्गायमुनयोःसङ्गेयत्पुण्यंस्नानकारिणाम् ॥ काश्याम्मत्सन्निधावत्रतत्पुण्यंस्याद्दशोत्तरम् ॥ ३१ ॥ दानानिराहुग्रस्तेर्केददतांयत्फलम्भवेत् ॥ कुरुक्षेत्रेहितत्काश्यामत्रैवस्याद्दशाधिकम् ॥ ३२ ॥ गङ्गोत्तरवहायत्रयमुनापूर्ववाहि

सदैव रहनेवाले अखण्ड ज्ञान को प्राप्तहोता है ॥ २७ ॥ व विशालाक्षी देवी के समीप में भक्ति से भलीभांति पूजाहुवा श्वेतमाधव संज्ञक मैं श्वेतद्वीपेश्वर रूप को करदेताहू ॥ २८ ॥ व दशाश्वमेध से उत्तर प्रयागतीर्थ में नहाया हुवा मनुष्य प्रयागमाधव नामक मुझ को देखकर सब पापों से छूटजाता है ॥ २९ ॥ माघमास में प्रयाग तीर्थ के जाने में पुरुषोंके लिये जो फल सुनागयाहै वह फल यहां मेरे आगे स्नानकर दशगुना होवे है ॥ ३० ॥ व गंगा और यमुना के सङ्गम में स्नानकर्त्ताओं को जो पुण्यहै वह काशीमें मेरे समीप यहां दशगुना अधिक होवे ॥ ३१ ॥ व राहुसे ग्रसे हुये सूर्य्यके होतेही याने सूर्य्यग्रहण समय कुरुक्षेत्रमें दान देते हुये जनों को

जो फलहोवे वहही काशी में यहांही दशगुना अधिक होवे ॥ ३२ ॥ व जहां गंगा उत्तरवाहिनी है व यमुना पूर्ववाहिनी है उन के संगमको प्राप्तहोकर नर ब्रह्महत्या से छूटजाताहै ॥ ३३ ॥ और महाफल चाहतेहुये जनको वहां मूड़ मुड़ाना चाहिये व भक्तिसे पिंडा पारना चाहिये व सब दान देना चाहिये ॥ ३४ ॥ प्रजापति (ब्रह्मा) के क्षेत्र (प्रयाग) में जे सब गुण भलीभांति कहेगये हैं वेही अविमुक्त नामक (काशी) महाक्षेत्रमें असंख्य होजाते हैं ॥ ३५ ॥ क्योंकि वहां वाञ्छितफलदायक प्रयागेश्वर नामक (शूलटंकेश्वर) महालिंग टिकाहै उसका समीप होनेसे वह तीर्थ कामना देनेवाला कहागया है ॥ ३६ ॥ जिन्होंने अरुणोदय को प्राप्तहोकर मकरके सूर्य्यमें प्राप्त

नी ॥ तत्सम्भेदन्नरःप्राप्यमुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ३३ ॥ वपनन्तत्रकर्तव्यंपिण्डदानञ्चभावतः ॥ देयानितत्रदानानिमहाफलमभीप्सुना ॥ ३४ ॥ गुणाःप्रजापतिक्षेत्रेयेसर्वेसमुदीरिताः ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेऽसंख्याताश्चभवन्तिहि ॥ ३५ ॥ प्रयागेशंमहालिङ्गंतत्रतिष्ठतिकामदम् ॥ तत्सान्निध्याच्चतत्तीर्थंकामदम्परिकीर्तितम् ॥ ३६ ॥ काश्यांमाघःप्रयागेयैर्नस्नातोमकरार्कगः ॥ अरुणोदयमासाद्यतेषांनिःश्रेयसङ्कुतः ॥ ३७ ॥ काश्युद्भवेप्रयागेयेतपसिस्नान्तिसंयताः ॥ दशाश्वमेधजनितंफलंतेषाम्भवेद्ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ प्रयागमाधवम्भक्त्याप्रयागेशञ्चकामदम् ॥ प्रयागेतपसिस्नात्वायेर्चयन्त्यन्वहंसदा ॥ ३९ ॥ धनधान्यसुतर्द्धीस्तेलब्ध्वाभोगान्मनोरमान् ॥ भुक्त्वेहपरमानन्दंपरम्मोक्षमवाप्नुयुः ॥ ४० ॥ माघेसर्वाणितीर्थानिप्रयागमधियान्तिहि ॥ प्राच्युदीचीप्रतीचीतोदक्षिणाधस्तथोर्ध्वतः ॥ ४१ ॥ काशीस्थितानितीर्था

माघमासभर काशीसम्बंधी प्रयाग तीर्थ में नहीं नहाया उनकी मुक्ति कहांसे होगी ॥ ३७ ॥ और इन्द्रियों व मनको रोंके हुये जे लोग माघमासभर काशीमें उपजेहुये प्रयागतीर्थ में नहाते हैं उनको दश अश्वमेध यज्ञों से उपजाहुवा फल निश्चयकर होता है ॥ ३८ ॥ और जे माघ में काशी के प्रयाग में स्नानकर भक्ति से प्रतिदिन प्रयागमाधव व मनमाने फलदायक प्रयागेश्वर को सदैव पूजते हैं ॥ ३९ ॥ वे धन धान्य पुत्र व समृद्धिको पाकर व इस लोक में मनोरम भोगों को और उत्तम आनन्द को भोगकर अंत में श्रेष्ठ मुक्तिको पाते हैं ॥ ४० ॥ व माघमास में सब तीर्थ पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण नीचे तथा ऊंचे से प्रयाग में ही आते हैं ॥ ४१ ॥

हे मुने ! काशी में टिकेहुये तीर्थ कहीं नहीं जाते हैं और जो जाते हैं तो अधिक उत्तम तीन तीर्थों में जाते हैं ॥ ४२ ॥ महापापसमूहघायक व महापुण्यविधायक जो पंच-नदतीर्थ मेरे समीप पै है उसमें कार्त्तिकभर प्रातः प्रातः याने प्रतिदिन प्रातःकाल सब तीर्थ आते हैं ॥ ४३ ॥ व पापों के वैरी माघमास को प्राप्तहोकर सब तीर्थ प्रयागेश्वर के समीप और मेरे निकट प्रयाग तीर्थमें प्रातःकाल स्नान करते हैं ॥ ४४ ॥ व मध्याह्न को प्राप्तहोकर सब तीर्थ नित्यहीं मुक्तिदायिका मणिकर्णिका नहानेको जाते हैं॥ ४५ ॥ हे मुने ! काशी में जैसे अपने अपने समय पै तीन तीर्थ विशेषता से श्रेष्ठ हैं वैसे यह उत्तम रहस्य तुम से कहा ॥ ४६ ॥ और अन्यरहस्य को भी कहूंगा जो कि

निमुनेयान्तिनकुत्रचित् ॥ यदियान्तितदायान्तितीर्थत्रयमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥ आयान्त्यूर्जेपञ्चनदेप्रातःप्रातर्ममान्ति कम् ॥ महाघौघप्रशमनेमहाश्रेयोविधायिनि ॥ ४३ ॥ प्राप्यमाघमघारिञ्चप्रयागेशसमीपतः ॥ प्रातःप्रयागेसंस्ना न्तिसर्वतीर्थानिमामनु ॥ ४४ ॥ समासाद्यचमध्याह्नमभियान्तिचनित्यशः ॥ संस्नातुंसर्वतीर्थानिमुक्तिदांमणिकर्णि काम् ॥ ४५ ॥ काश्यांरहस्यम्परममेतत्तेकथितम्मुने ॥ यथातीर्थत्रयीश्रेष्ठास्वस्वकालेविशेषतः ॥ ४६ ॥ अन्यद्रहस्यं वक्ष्यामिनवाच्यंयत्रकुत्रचित् ॥ अभक्तेषुसदागोप्यंनगोप्यंभक्तिमज्जने ॥ ४७ ॥ काश्यांसर्वाणितीर्थानिएकैकादुत्तरो त्तरम् ॥ महैनांसिप्रहन्त्येवप्रसह्यनिजतेजसा ॥ ४८ ॥ एतदेवरहस्यन्तेवाराणस्याउदीर्यते ॥ उत्क्षिप्यैकाङ्गुलिंतथ्यं श्रेष्ठकामणिकर्णिका ॥ ४९ ॥ गर्जन्तिसर्वतीर्थानिस्वस्वधिष्ण्यगतान्यहो ॥ केवलम्बलमासाद्यसुमहन्माणिकर्णिकम् ॥ ५० ॥ पापानिपापिनांहत्वामहान्त्यपिबहून्यपि ॥ काशीतीर्थानिमध्याह्नेप्रायश्चित्तचिकीर्षया ॥ ५१ ॥ पर्वस्वपर्वस्व

जहां कहीं कहने योग्य नहीं है व भक्तिरहित जनों के बीच में सदैव गोपनीय है और भक्तिसहित जनमें गोपनीय नहीं है याने भक्त से न छिपाना चाहिये ॥ ४७ ॥ कि काशी में सब तीर्थ एकएक से उत्तर उत्तर जैसेहो वैसेही अपने तेज के द्वारा हठसेही बडेपापों को विनष्ट करदेते हैं ॥ ४८ ॥ एक अंगुली उठाकर यहही काशी का तथ्य रहस्य तुम से कहाजाता है कि एक मणिकर्णिका सब से श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ आश्चर्य्य है कि केवल मणिकर्णिकाके बड़े बलको प्राप्तहोकर अपने अपने स्थान में गयेहुये सब तीर्थ गर्जते है ॥ ५० ॥ व पापियों के बहुते भी बड़े भी पापोंको हनकर काशीके सब तीर्थ प्रायश्चित्त करने की इच्छा से मध्याह्न समय ॥ ५१ ॥ पर्वो व विना

पर्वों में भी नित्यनियमी होकर मणिकर्णिका में स्नानकर निश्चय से निर्मल होजाते हैं ॥ ५२ ॥ व श्रीपार्वती जी के साथ श्रीविश्वनाथजी मध्याह्नको प्राप्तहोकर सदैव मणिकर्णिका मे प्रतिदिन भलीभांति स्नान करते हैं ॥ ५३ ॥ हे मुने! लक्ष्मीजीके साथ वैकुंठ से आकर मैं भी नित्यही मध्याह्न समय में अधिक आनंद से मणि-कर्णिका में नहाताहूं ॥ ५४ ॥ और जिसलिये कभी एक बार मेरा नाम जपते हुये लोगों के पापों को मैं हरलेताहूं उस लिये मणिकर्णिका के बल से मैं हरि इस नाम को प्राप्तहुवाहूं ॥ ५५ ॥ और सत्यलोक से हंस पै सवार ब्रह्माजी प्रतिदिन मध्याह्न समय की क्रिया करने के लिये मणिकर्णिका को भलीभांति आते हैं ॥ ५६ ॥

पिवानित्यंनियमवन्त्यहो ॥ निर्मलानिभवन्त्येवविगाह्यमणिकर्णिकाम् ॥ ५२ ॥ विश्वेशोविश्वयासार्धंसदोपमणिकर्णिकम् ॥ मध्यंदिनंसमासाद्यसंस्नातिप्रतिवासरम् ॥ ५३ ॥ वैकुण्ठादप्यहंनित्यंमध्याह्नेमणिकर्णिकाम् ॥ विगाहेपद्मयासार्धंमुदापरमयामुने ॥ ५४ ॥ सकृन्ममाख्यांगृणतांनिर्हरन्यदघान्यहम् ॥ हरिनामसमापन्नस्तद्बलान्मणिकर्णिकात् ॥ ५५ ॥ सत्यलोकात्प्रतिदिनंहंसयानःपितामहः ॥ माध्याह्निकविधानाय समायान्मणिकर्णिकाम् ॥ ५६ ॥ इन्द्राद्यालोकपालाश्चमरीच्याद्यामहर्षयः ॥ माध्याह्निकींक्रियांकर्तुंसमीयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ ५७ ॥ शेषवासुकिमुख्याश्चनागावैनागलोकतः ॥ समायान्तीहमध्याह्नेसंस्नातुंमणिकर्णिकाम् ॥ ५८ ॥ चराचरेषुसर्वेषुयावन्तश्चसचेतनाः ॥ तावन्तःस्नान्तिमध्याह्नेमणिकर्णीजलेमले ॥ ५९ ॥ केमणिकर्णिकेयानांगुणानांसुगरीयसाम् ॥ शक्तावर्णयितुंविप्राऽसङ्ख्येयानांमदादिभिः ॥ ६० ॥ चीर्णान्युग्राण्यरण्येषुतैस्तपांसितपोधनैः ॥ यैरियंहिसमासादिमुक्तिभूर्मणिकर्णिका ॥ ६१ ॥ विश्राणितमहादानास्तएवनरपुङ्गवाः ॥ चरमेवयसिप्राप्तायैरेषामणिकर्णिका ॥ ६२ ॥ चीर्णसर्वव्रतास्तेतुयथोक्तविधिना

व इन्द्रादि लोकपाल और मरीचि आदिक महर्षि मध्याह्नकी क्रिया करने के लिये मणिकर्णिका को आते हैं ॥ ५७ ॥ शेष व वासुकी आदि नाग भी नागलोक से मणिकर्णिका नहानेको मध्याह्न समय में यहां आते हैं ॥ ५८ ॥ व सब स्थावर जङ्गमों में जितने सचेतन हैं उतने मध्याह्न समय विमल मणिकर्णिका के जल में नहाते हैं ॥ ५९ ॥ हे विप्र! हम आदि लोगों से असंख्येय याने गन्ती करनेके न योग्य मणिकर्णिका के बड़े भारी बहुतसे गुणों का वर्णन करने को कौन समर्थ हैं ॥ ६० ॥ व

मुक्ति की भूमिका इस मणिकर्णिका को जिन तपोधनोंने पाया है उन्होंने वनोंमें बड़ी उग्र तपस्या किया है ॥ ६१ ॥ व वेही मनुष्योत्तम महादान दे चुके हैं कि जिन्हों ने अन्त अवस्था में इस मणिकर्णिका को प्राप्त किया ॥ ६२ ॥ और यह निश्चय है कि, वे लोग यथोक्त विधान से सब व्रतों को किये हुयेहैं कि जिन्होंने कोमल मणिकर्णिका स्थली को स्वतल्प किया याने बहुत दुर्लभ भी मणिकर्णिका जिन को मिलगई है ॥ ६३ ॥ व वेही इस लोक में धन्य है और सब यज्ञों में दीक्षित हैं कि जिन्होंने पुण्य से कमाई हुई लक्ष्मी को दानकर मणिकर्णिका को देखा ॥ ६४ ॥ उन मनुष्यों ने इष्टापूर्त आदि अनेक भांति के धर्मोंको किया व जिन्होंने वृद्धावस्था को पाकर मणिकर्णिका को प्राप्त किया ॥ ६५ ॥ और रेशमी या पीतांबर वस्त्र समेत रत्न व सुवर्ण और घोड़े भी बुद्धिमान् जन से यत्नपूर्वक मणिकर्णिका के समीप में सदैव

ध्रुवम् ॥ यैःस्वतल्पीकृतामाणिकर्णिकेयीस्थलीमृदुः ॥ ६३ ॥ तएवधन्यामर्त्येस्मिन्सर्वक्रतुषुदीक्षिताः ॥ त्यक्त्वापुण्या जितांलक्ष्मीमैक्षियैर्मणिकर्णिका ॥ ६४ ॥ कृतानानाविधाधर्माइष्टापूर्तास्तुतैर्नृभिः ॥ वार्धकंसमनुप्राप्यप्रापियैर्मणि कर्णिका ॥ ६५ ॥ रत्नानिसदुकूलानिकाञ्चनंगजवाजिनः ॥ देयाःप्राज्ञेनयत्नेनसदोपमणिकर्णिकम् ॥ ६६ ॥ पुण्येनोपा र्जितंद्रव्यमत्यल्पमपियैर्नरैः ॥ दत्तंतदक्षयंनित्यंमुनेधिमणिकर्णिकम् ॥ ६७ ॥ कुर्याद्यथोक्तमप्येकंप्राणायामंनरोत्त मः ॥ यस्तेनविहितोनूनंषडङ्गोयोगउत्तमः ॥ ६८ ॥ जप्त्वैकामपिगायत्रींसंप्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ लभेदयुतगायत्री जपनस्यफलंस्फुटम् ॥ ६९ ॥ एकामप्याहुतिंप्राज्ञोदत्त्वोपमणिकर्णिकम् ॥ यावज्जीवाग्निहोत्रस्यलभेदविकलंफलम् ॥ ७० ॥ इतिश्रुत्वाहरेर्वाक्यमग्निबिन्दुर्महातपाः ॥ प्रणिपत्यमहाभक्त्यापुनःपप्रच्छमाधवम् ॥ ७१ ॥ अग्निबिन्दुरुवाच ॥

देने योग्य हैं ॥ ६६ ॥ हे मुने ! जिन मनुष्योंने पुण्य से बटोराहुवा बहुत थोडाभी धन मणिकर्णिका में दिया उन को वह नित्यही अक्षयफलवाला होता है ॥ ६७ ॥ व जो मनुष्योत्तम मणिकर्णिका के समीप में एक भी प्राणायाम को करे उस ने निश्चय कर उत्तम षडङ्गयोगको किया ॥ ६८ ॥ और मणिकर्णिकाको भलीभांति प्राप्त होकर जो एकबार भी गायत्री जपता है वह दश हज़ार गायत्री जपने का फल पाताहै यह प्रसिद्ध है ॥ ६९ ॥ व बुद्धिमान् लोग मणिकर्णिका के समीप में एकभी आहुति देकर जन्मपर्यन्त के अग्निहोत्रका सकल फलपावे ॥ ७० ॥ इसभांति विष्णु का वचन सुनकर महातपस्वी अग्निबिन्दुमुनिने भारीभक्तिसे प्रणामकर फिर बिन्दु-

माधवजी से पूँछा॥ ७१॥ अग्निबिन्दु बोले कि, हे पुण्डरीकाक्ष, विष्णो ! यह पुण्यरूपा मणिकर्णिका कितनी परिमाणवाली है उसको मुझसे कहो क्योंकि तुमसे अन्य कोई तत्त्वका जाननेवाला नहीं है ॥ ७२ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि,गङ्गाकेशव तक व हरिश्चन्द्रके मण्डपतक व स्वर्गद्वारसे गङ्गाके बीचतक मणिकर्णिकाहै॥७३॥ यह स्थूलमणिकर्णिकाका परिमाण है और सूक्ष्मको भी तुमसे कहता हूं कि हरिश्चन्द्रतीर्थके आगे हरिश्चन्द्रविनायकहैं ॥ ७४ ॥ व यहां मणिकर्णिकाकुण्डके उत्तरमें सीमाविनायकहैं और उन सीमाविनायकको मनुष्योत्तम भक्तिसे पूजकर ॥ ७५ ॥ व उपचारों समेत मोदकों (लड्डुवों) से पूजकर मणिकर्णिकाको प्राप्तहोवे और जे लोग

विष्णोकियत्परीमाणापुण्यैषामणिकर्णिका ॥ ब्रूहिमेपुण्डरीकाक्षनत्वत्तस्तत्त्ववित्परः ॥ ७२ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ आ गङ्गाकेशवादाचहरिश्चन्द्रस्यमण्डपात् ॥ आमध्याद्देवसरितःस्वर्द्वारान्मणिकर्णिका ॥ ७३ ॥ स्थूलमेतत्परीमाणंसू क्ष्मंचप्रवदामिते ॥ हरिश्चन्द्रस्यतीर्थाग्रेहरिश्चन्द्रविनायकः ॥ ७४ ॥ सीमाविनायकश्चात्रमणिकर्णीह्रदोत्तरे ॥ सी माविनायकंभक्त्यापूजयित्वानरोत्तमः ॥७५॥ मोदकैःसोपचारैश्चप्राप्नुयान्मणिकर्णिकाम् ॥ हरिश्चन्द्रेमहातीर्थेतर्प येयुःपितामहान् ॥७६ ॥ शतंसमाःसुतृप्ताःस्युःप्रयच्छन्तिचवाञ्छितम् ॥ हरिश्चन्द्रेमहातीर्थेस्नात्वाश्रद्धान्वितोनरः ॥ ७७ ॥ हरिश्चन्द्रेश्वरंनत्वानसत्यात्परिहीयते ॥ ततःपर्वततीर्थञ्चपर्वतेश्वरसंनिधौ ॥७८॥ अधिष्ठानंमहामेरोर्महापा तकनाशनम् ॥ तत्रस्नात्वार्चयित्वेशंकिञ्चिद्दत्त्वास्वशक्तितः ॥ ७९ ॥ अध्यास्यमेरुशिखरंदिव्यान्भोगान्समश्नु ते ॥ कम्बलाश्वतरंतीर्थंपर्वतेश्वरदक्षिणे ॥ ८० ॥ कम्बलाश्वतरेशंचतत्तीर्थात्पश्चिमेशुभम् ॥ तस्मिंस्तीर्थेकृतस्नान

हरिश्चन्द्र नामक महातीर्थमें पितरों का तर्पण करतेहैं ॥ ७६ ॥ उनके पितर सौवर्ष तक बहुतही तृप्तहोते हैं व वाञ्छितफलको देतेहैं व हरिश्चन्द्रमहातीर्थ में स्नानकर श्रद्धासमेत मनुष्य ॥ ७७ ॥ हरिश्चन्द्रेश्वर के नमस्कार कर सत्यसे हीन नहीं होता है उसके आगे पर्वतेश्वर के समीप में पर्वततीर्थ है ॥ ७८ ॥ जोकि महामेरु पर्वत का आधार होकर बडेपापोंका नाशक है उसमें स्नानकर व पर्वतेश्वरजीकी पूजाकर व अपनी शक्तिसे कुछ दानकर ॥ ७९ ॥ सुमेरुगिरि के शिखरपर बसकर दिव्यभोगों को भोगता है व पर्वतेश्वर से दक्षिण में कम्बलाश्वतरतीर्थ है ॥ ८० ॥ उस तीर्थ में स्नान कियेहुआ जो जन उस तीर्थसे पश्चिम मे कल्याणरूप कम्बलाश्वतरेश्वर

उस लिङ्ग की भलीभांति पूजाकरेगा ॥८१॥ उसके कुलमें उपजेहुये भी लोग गीतज्ञ और सम्पत्ति व शोभासे संयुतहोवें व वहां कम्बलाश्वतरतीर्थमें योनिचक्रको निवारण करनेवाली सूक्ष्मचक्रपुष्करिणी है ॥ ८२ ॥ जिसमें नहाया हुआ मनुष्य विकट संसारचक्र में नहीं पैठता है वह चक्रपुष्करिणीतीर्थ मेरा उत्तम आधार या स्थानहै ॥ ८३ ॥ मैंने वहां परार्धसंख्यक याने ब्रह्माकी पचास वर्षोंतक बड़ा तप तपा है और वहां परमात्मा विश्वेश्वरजी मेरी प्रत्यक्षता को प्राप्तहुये हैं ॥ ८४ ॥ व वहां मैंने अविनाशी अखण्ड व बड़ेभारी ऐश्वर्य्यको पाया और वह चक्रपुष्करिणीभी मणिकर्णिकानामसे कहीगई याने प्रसिद्ध भई है ॥८५॥ और वहां जलरूपको छोड़कर स्त्री

स्तल्लिङ्गंयःसमर्चयेत् ॥ ८१ ॥ अपितस्यकुलेजातागीतज्ञाःस्युःश्रियान्विताः ॥ चक्रपुष्करिणीतत्रयोनिचक्रनिवारिणी ॥ ८२ ॥ संसारचक्रेगहनेयत्रस्नातोविशेन्नना ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थंममाधिष्ठानमुत्तमम् ॥ ८३ ॥ समाःपरार्धसङ्ख्यातास्तत्रतप्तंमहातपः ॥ तत्रप्रत्यक्षतांयातोममविश्वेश्वरःपरः ॥ ८४ ॥ तत्रलब्धंमयैश्वर्यमविनाशिमहत्तरम् ॥ चक्रपुष्करिणीचैवख्याताभून्मणिकर्णिका ॥ ८५ ॥ द्रवरूपंपरित्यज्यललनारूपधारिणी ॥ प्रत्यक्षरूपिणीतत्रमयैदृष्टामणिकर्णिका ॥ ८६ ॥ तस्यारूपंप्रवक्ष्यामिभक्तानांशुभदंपरम् ॥ यद्रूपध्यानतःपुम्भिराषण्मासंत्रिसन्ध्यतः ॥ ८७ ॥ प्रत्यक्षरूपिणीदेवीदृश्यतेमणिकर्णिका ॥ चतुर्भुजाविशालाक्षीस्फुरद्भालविलोचना ॥ ८८ ॥ पश्चिमाभिमुखीनित्यंप्रबद्धकरसम्पुटा ॥ इन्दीवरवतींमालांदधतीदक्षिणेकरे ॥ ८९ ॥ वरोद्यतेकरेसव्येमातुलुङ्गफलंशुभम् ॥ कुमारीरूपिणीनित्यंनित्यंद्वादशवार्षिकी ॥ ९० ॥ शुद्धस्फटिककान्तिश्चसुनीलस्निग्धमूर्द्धजा ॥ जितप्रवालमाणिक्यरमणीयरदच्छदा ॥ ९१ ॥

रूपधारिणी प्रत्यक्षरूपवाली चक्रपुष्करिणी मुझ से देखीगई है ॥ ८६ ॥ इससे भक्तोंके शुभ देनेवाले उसके उत्तमरूप को कहूंगा कि छः मासपर्य्यन्त तीनों सन्ध्याओं में ॥ ८७ ॥ जिस रूपका ध्यान करने से मनुष्यों को प्रत्यक्षरूपवाली मणिकर्णिका देवी जोकि चतुर्भुजा विशालनेत्रा और माथमें जगमगाती आंखवाली है वह देख पडती है ॥ ८८ ॥ व पश्चिम दिशाके सन्मुखमुखवाली व नित्यही दोनों हाथ जोड़ेहुई व दक्षिणहाथ में श्यामकमलकी माला लियेहुई ॥ ८९ ॥ व वरदेनेको उद्यतहुये वामहाथ में शुभदायक बिजौरानिम्बूका फल धारतीहुई व नित्यही कन्यारूपिणी व नित्यही बारह वर्षकी अवस्थावाली है ॥ ९० ॥ व शुद्धस्फटिकके समान

कान्तिमती व बहुत श्याम सचिक्कणबालोंवाली व मूँगा और माणिक्य को जीते हुये रमणीय ओठोंवाली है ॥ ६१ ॥ व नवीन केतकी के फूलोंसे सोहते व बांधेहुये बालसमूह हैं जिसमें ऐसा जिसका मस्तक है व जिसके सब अङ्गोंमें मोतियों के भूषण हैं व जोकि चन्द्रमा से चमकते हुये वस्त्रसे घिरी है ॥ ६२ ॥ व जोकि शोभा समेत,कमलमयी मालाको हृदयमें धारती हुई बर्तती है वह इस रूपसे मुक्तिचाही लोगोंको निरन्तर ध्यानकरनेयोग्यहै ॥ ६३ ॥ व जोकि श्रीमती मणिकर्णिका मुक्तिसम्पत्तिका मन्दिर है उसके भक्त कल्पद्रुम नामक मन्त्रको मैं कहूंगा कि जिस मन्त्र के जपनेसे मनुष्यों ,की सिद्धियोंका अष्टक भी सिद्ध होजाताहै याने जिसके जपने से आठों सिद्धियां सिद्ध होजाती हैं ॥ ६४ ॥ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ इनको पहले कहे फिर बिन्दुसमेत मं, इसके आगे मणिपद फिर कर्णिके पद के आगे नमः समेत व

प्रत्यग्रकेतकीपुष्पलसद्धम्मिल्लमस्तका॥सर्वाङ्गमुक्ताभरणा चन्द्रकान्त्यंशुकावृता॥९२॥ पुण्डरीकमयींमालांसश्रीकांबिभ्रतीहृदि ॥ ध्यातव्यानेनरूपेणमुमुक्षुभिरहर्निशम्॥९३॥निर्वाणलक्ष्मीभवनंश्रीमतीमणिकर्णिका॥मन्त्रंतस्याश्चवक्ष्यामिभक्तकल्पद्रुमाभिधम्॥यस्यावर्तनतःसिद्ध्येदपिसिद्ध्यष्टकंनृणाम्॥९४॥ वाग्भवमायालक्ष्मीमदनप्रणवान्वदेत्पूर्वम् ॥ भान्त्यंबिन्दूपेतंमणिपदमथकर्णिकेसहृत्प्रणवपुटः॥९५॥मन्त्रःसुरद्रुमसमःसमस्तसुखसन्ततिप्रदोजप्यः॥ तिथिभिःपरिमितवर्णःपरमपदन्दिशातिनिशितधियाम् ॥ ९६ ॥ तारस्तारतृतीयोबिन्द्वन्तोमणिपदन्ततःकर्णिके ॥ प्रणवात्मिपदङ्केनमइतिमनुसङ्ख्यवर्णमनुः ॥ ९७ ॥ अयंमन्त्रोऽनिशंजप्यःपुम्भिर्मुक्तिमभीप्सुभिः॥ होमोदशांशकःकार्यःश्रद्धाबद्धादरैर्नृभिः ॥ ९८ ॥ परिप्लुतैःपुण्डरीकैर्गव्येनहविषास्फुटैः ॥ सशर्करेणमेधावीसक्षौद्रेणसदाशुचिः ॥ ९९ ॥ त्रि

ॐकारसे सम्पुटित याने (ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं मं मणिकर्णिके नमः ॐ) यह मन्त्रहै॥ ९५ ॥ जोकि मन्त्र कल्पवृक्षके समान सब सुख व संततिका देनेवाला व जपनेयोग्य होकर पन्द्रह संख्यक अक्षरवालाहै वह सूक्ष्मबुद्धियोंको परमपद देताहै॥९६॥ तथा ॐ और बिन्दुसमेत ॐकारका तीसरा अक्षर (मं) फिर मणिपद उसके आगे कर्णिके उसके वाद प्रणवात्मिके नमः इस भांति याने (ॐमं मणिकर्णिके प्रणवात्मिके नमः) यह चौदह संख्यक अक्षरवाला दूसरा मन्त्रहै॥ ९७॥ मुक्तिचाही पुरुषों को यह मन्त्र निरन्तर जपना चाहिये व श्रद्धासे आदर बांधेहुये नरोंको दशांश होम करना चाहिये ॥ ९८ ॥ और सदा पवित्रहुआ बुद्धिमान् मनुष्य फूलेहुये व घृतसे भिगोये

कमल के फूलोंके साथ खण्डसमेत व शहद सहित खीरसे होमकरे ॥ ९९ ॥ तीनलाखसंख्यक मन्त्र जपसे देशान्तरों में भी मराहुआ इस मन्त्रके प्रभाव से अवश्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ १०० ॥ व पहले कहेहुये रूपसे सम्पन्न, सुवर्णमयी मूर्त्ति नवीनरत्नोंसे संयुत करनेयोग्य और भलीभांति पूजनेयोग्य है ॥१॥ जे पुरुष केवल मुक्तिके चाही हैं उनको सदैव घरमें मूर्त्तिकी पूजा करनाचाहिये अथवा भलीभांति पूजाकर बड़े यत्नसे मणिकर्णिकामें छोड़ देना चाहिये ॥२॥ व संसारसे डरभुत दूर देशनिवासी भी जे पुरुष यहां याने काशीके बीच मणिकर्णिकामें श्रद्धासे आदर बांधे हैं उनको यह उपाय भलीभांति करना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि मणिकर्णिकामें स्नान

लक्षमन्त्रजप्येनमृतोदेशान्तरेष्वपि ॥ अवश्यंमुक्तिमाप्नोतिमन्त्रस्यास्यप्रभावतः ॥ १०० ॥ सौवर्णीप्रतिमाकार्यान वरत्नसमन्विता ॥ पूर्वोक्तरूपसम्पन्नासम्पूज्यासाप्रयत्नतः ॥ १ ॥ सम्पूज्यावासदागेहेनरैर्मोक्षैककाङ्क्षिभिः ॥ मणिक र्ण्यामथाक्षेप्यासमभ्यर्च्यप्रयत्नतः ॥ २ ॥ संसारभीरुभिःपुम्भिःश्रद्धाबद्धादरैरिह ॥ उपायःसमनुष्ठेयोह्यपिदूरनिवासि भिः ॥३॥ मणिकर्ण्यांकृतस्नानोमणिकर्णीशवीक्षणात ॥ जननीजठरावासेवसतिन्नलभेन्नरः ॥ ४ ॥ मणिकर्णीश्वरं लिङ्गंपुरासंस्थापितम्मया ॥ प्राग्द्वारेन्तर्गृहस्यात्रसमर्च्योमोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ ५ ॥ ततःपाशुपतंतीर्थमवाच्यांमणिकर्णि तः ॥ कृतोदकक्रियस्तत्रपश्येत्पशुपतीश्वरम् ॥ ६ ॥ यत्रपाशुपतोयोगउपदिष्टःपिनाकिना ॥ ममापिविधिमुख्यानां सुराणाम्पशुपाशहृत् ॥ ७ ॥ अतःपशुपतिर्यत्रलिङ्गरूपधरःस्वयम् ॥ पशुपाशविमोक्षायनित्यंकाश्यांप्रकाशते ॥ ८ ॥ तत्रचैत्रचतुर्दश्यांशुक्लायांशुचिमानसैः ॥ कार्यायात्राप्रयत्नेनरात्रौजागरणंतथा ॥ ९ ॥ पूजयित्वापशुपतिमुपोष

कियेहुआ जन मणिकर्णिकेश्वरके दर्शनसे माताके उदरमें वासको नहीं पाताहै याने वह मुक्त होजाता है ॥ ४ ॥ मैंने पूर्वकालमे अन्तर्गेह के पूर्वद्वारपर मणिकर्णीश्वर लिंगकी भलीभांति प्रतिष्ठा कियाहै वह मणिकर्णीश्वर मोक्ष चाहियोंसे यहां भलीभांति पूजनेयोग्यहै ॥५॥ उस मणिकर्णीसे दक्षिण दिशामें पाशुपततीर्थहै उसमें स्नानादि नित्यक्रिया कियेहुआ नर पशुपतीश्वरका दर्शनकरे ॥६॥ जहां ब्रह्मादि देव और मेरेलिये भी पिनाकधारी शिवजीने संसारी जीवोंका पाशहारी पाशुपतयोग उपदेश कियाहै ॥७॥ इसलिये शिवजी आपही पशुरूप जीवोंकी माया छुडानेके लिये लिङ्गरूपधारी होकर जहां काशीमें नित्यही प्रकाश करते है ॥८॥ और वहां चैतसुदी चतुर्दशी

को तरकर अपने पितरों को भी तारदेवे ॥ १९ ॥ उसके समीप में जो स्कन्दतीर्थ है उसमें स्नानकर और षण्मुखजी का दर्शनकर मनुष्योत्तम छः कोशकी याने त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, अस्थि और मज्जा इन छः कोशोंवाली देहको त्यागदेवे ॥ २० ॥ व तारकेश्वर से पूर्वमें षण्मुखदेव के दर्शनकर कौमाररूप को प्राप्तहोताहुआ श्री कार्त्तिकेयजीके लोकमें बसे ॥ २१ ॥ उससे परे पुण्यरूप ढुण्ढितीर्थ है उसमें स्नानादि जलक्रिया करनेवाला मनुष्य ढुण्ढिराज गणेशजी की स्तुतिकर विघ्नों से नहीं हरायाजाताहै याने विघ्न उसको नीचे नहीं करसक्ते हैं ॥ २२ ॥ व ढुण्ढितीर्थके दक्षिणमें जो अनूपभवानीतीर्थ है उसमें स्नानकर और विधानसे भवानी की पूजा

तत्राप्लुत्यनरोत्तमः ॥ दृष्ट्वाषडाननंचैवजह्यात्षाट्कौशिकींतनुम् ॥ २० ॥ तारकेश्वरपूर्वेणदृष्ट्वादेवंषडाननम् ॥ वसे त्षडाननेलोकेकौमारंवपुरुद्वहन् ॥२१॥ ढुण्ढितीर्थंततःपुण्यंनरस्तत्रकृतोदकः ॥ ढुण्ढिंगणपतिंस्तुत्वानविघ्नैरभिभूयते॥ २२ ॥ भवानीतीर्थमतुलंढुण्ढितीर्थस्यदक्षिणे ॥ तत्रस्नात्वाविधानेनभवानींपरिपूज्यच ॥ २३ ॥ दुकूलैरत्ननेपथ्यैर्नैवेद्यै र्बहुविस्तरैः ॥ पुष्पैर्धूपैःप्रदीपैश्चभवानीशौप्रपूज्यच ॥ २४॥समस्तमर्चितंतेनत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ भवानीशङ्करौका श्यामर्चितौश्रद्धयातुयैः ॥ २५ ॥ चैत्राष्टम्यांमहायात्राम्भवान्याःकारयेत्सुधीः ॥ अष्टाधिकाःप्रकर्तव्याःशतकृत्वःप्र दक्षिणाः ॥ २६ ॥ प्रदक्षिणीकृतातेनसप्तद्वीपवतीमही ॥ सशैलाससमुद्राचसाश्रमाचसकानना ॥ २७ ॥ अष्टौप्रदक्षि णादेयाःप्रत्यहंभक्तितत्परैः ॥ नमनीयौप्रयत्नेनभवानीशङ्करौसदा ॥ २८ ॥ भक्तानांकामदानित्यं भवानीवाससाम्प्र

कर ॥२३॥ फिर रेशमीवस्त्र रत्नजटित भूषण व बहुत विस्तारयुक्त नैवेद्य फूल धूप और दीपों से भवानी व ईश (शिव) दोनोंजनोंकी पूजाकर वाञ्छितफल पाताहै ॥२४॥ और जिसने श्रद्धा(आस्तिक्यबुद्धि)से काशीमें भवानीसमेत शङ्करकी पूजा किया उससे समस्त स्थावर जङ्गमसमेत त्रैलोक्य पूजित होजाताहै ॥२५॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य चैतकी अष्टमी में भवानी की महायात्राको करावे तब आठ अधिक सौबार प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥ २६ ॥ जिसने देवीजी की प्रदक्षिणा किया उसने पर्वत समेत, समुद्र समेत, आश्रम समेत और वनसमेत सातद्वीपवाली पृथिवी की प्रदक्षिणा की ॥ २७ ॥ और प्रतिदिन भक्ति में तत्पर पुरुषों को आठ प्रदक्षिणा देना चाहिये व

में शुद्धमनवाले लोगोंको बड़े यत्नसे यात्रा तथा रात्रिमें जागरण करना चाहिये ॥ ९ ॥ क्योंकि पशुपतिकी पूजाकर उपवासमें परायण व अमावसमें पारण करनेवाले नर मोहादि फांसोंसे नहीं बँधते हैं ॥ १० ॥ उस पाशुपततीर्थ के आगे रुद्रावास तीर्थ है उसमें स्नानकर मनुष्योंको रुद्रावासेश्वर शिवकी पूजा करनी चाहिये ॥११॥ व मणिकर्णीश्वर से दक्षिण में रुद्रावासेश्वर की पूजाकर मनुष्य रुद्रावासलोक में बसे इसमें संशय नहींहै ॥१२॥ उससे दक्षिणमें समस्त तीर्थोंसे संयुत विश्वतीर्थ है उसमें भक्तिसे स्नानकर नर श्रीविश्वनाथजीका दर्शनकरे ॥१३॥ तदनन्तर अत्यन्त भक्तिसे विश्वागौरीकी पूजाकर सब जगत्का पूजनीय होताहै उसके बाद विश्वनाथ-

णपरायणाः ॥ पशुपाशैर्नबध्यन्तेदर्शेविहितपारणाः ॥ १० ॥ रुद्रावासस्ततस्तीर्थंतीर्थात्पाशुपतात्पुरः ॥ तत्रस्नात्वान रैरर्च्योरुद्रावासेश्वरोहरः ॥ ११ ॥ मणिकर्णीश्वराद्याम्यांरुद्रावासेश्वरन्नरः ॥ समाराध्यवसेल्लोकेरुद्रावासेनसंश यः ॥ १२ ॥ विश्वतीर्थंततोयाम्यांविश्वैस्तीर्थैरधिष्ठितम् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्याविश्वनाथंविलोकयेत ॥ १३ ॥ विश्वाङ्गौरीञ्चतदनुपूजयित्वातिभक्तितः ॥ विश्वस्यपूज्योभवतिततोविश्वमयोभवेत् ॥ १४ ॥ मुक्तितीर्थंचतद नुतत्रापिकृतमज्जनः ॥ मोक्षेश्वरंततोभ्यर्च्यमोक्षमाप्नोत्यसंशयम् ॥ १५ ॥ अविमुक्तेश्वरात्पश्चान्मोक्षेशंवीक्ष्य मानवः ॥ नपुनर्मानवेलोकेयातायातङ्करोत्यहो ॥ १६ ॥ अविमुक्तेश्वरंतीर्थंमुक्तितीर्थान्मनाक्परे ॥ तत्राप्लुत्याविमुक्ते शमर्चयित्वाविमुच्यते ॥ १७ ॥ तत्परेतारकंतीर्थंयत्रविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ आचष्टेतारकंब्रह्ममृतकर्णेमृतात्मकम् ॥ १८ ॥ सुस्नातस्तारकेतीर्थेतारकेश्वरदर्शनात् ॥ संसारसागरंतीर्त्वातारयेत्स्वपितॄनपि ॥ १९ ॥ तत्राभ्याशेस्कन्दतीर्थं

मय होजाताहै याने उनमें लीन होताहै॥१४॥उसके पीछे मुक्तितीर्थहै उसमें भी मज्जनकिये हुआ जन तदनन्तर मोक्षेश्वर की पूजाकर निस्सन्देह मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥१५॥ अविमुक्तेश्वर से पीछे मोक्षेश्वर का दर्शनकर मनुष्य फिर मनुष्यों के लोकमें आना जाना नहीं करताहै याने मुक्त होजाताहै यह अद्भुतहै ॥ १६ ॥ और मुक्तितीर्थसे कुछेक दूर पर अविमुक्तेश्वरतीर्थ है उसमें स्नानकर व अविमुक्तेश्वर की पूजाकर ससारसे विशेषकर छूटजाताहै ॥१७॥ उसके आगे तारकतीर्थ है जहां श्रीविश्वनाथजी आपही मोक्षरूप रामतारक या ॐकारमन्त्र को मरेहुये के कानमें कहते हैं ॥ १८ ॥ उस तारकतीर्थमें भलीभांति नहायाहुआ जन तारकेश्वरके दर्शन से संसारसागर

बड़े यत्नसे सदैव भवानी शङ्करके नमस्कार करना चाहिये ॥ २८॥ क्योंकि भक्तोंको वाञ्छितफलदेनेवाली भवानी नित्यही दक्षदेनेवालीहै इसलिये काशीमें तीर्थवासी लोगोंसे भवानी भलीभांति पूजनीयहै ॥२९॥ व जिससे भवानीजी काशीवासी जनोंके योगका कल्याण करती हैं उससे काशीवासी लोगोंको निरन्तर भवानीकी भलीभांति सेवा करना चाहिये ॥३०॥ और मोक्षचाही भिक्षुसे काशीमें सदैव भिक्षा भिक्षणीय याने मागनेयोग्यहै क्योंकि विश्वनाथजीकी कुटुम्बिनी (घरकी स्वामिनी) भिक्षादेनेवाली हैं ॥३१॥ इस काशीपुरीमें श्रीविश्वनाथजी गृहस्थहैं और उनकी कुटुम्बवाली स्त्री भवानीजी सब काशीवासी लोगोंके लिये मोक्ष शिक्षाको देतीहैं ॥३२॥ व का-

दा ॥ अतोभवानीसम्पूज्याकाश्यांतीर्थनिवासिभिः ॥ २९ ॥ योगक्षेमंसदाकुर्याद्भवानीकाशिवासिनाम् ॥ तस्माद्भवानींसंसेव्यासततंकाशिवासिभिः ॥ ३० ॥ भिक्षणीयासदाभिक्षाभिक्षुणामोक्षकाङ्क्षिणा ॥ यतोभिक्षाप्रदाकाश्यांविश्वेशस्यकुटुम्बिनी ॥ ३१ ॥ गृहमेध्यत्रविश्वेशोभवानीतत्कुटुम्बिनी ॥ सर्वेभ्यःकाशिसंस्थेभ्योमोक्षशिक्षांप्रयच्छति ॥ ३२ ॥ दुष्प्रापमपियत्किञ्चित्काशीक्षेत्रनिवासिनाम् ॥ तत्सुप्राप्यंकरोत्येवभवानीपूजितान्नृभिः ॥ ३३ ॥ कुर्याज्जागरणंरात्रौमहाष्टम्यांव्रतीनरः ॥ प्रातर्भवानीमभ्यर्च्यप्राप्नुयाद्वाञ्छितंफलम् ॥ ३४ ॥ शुक्रेशात्पश्चिमाशायांभवानींयोऽभिवीक्षते ॥ सर्वेमनोरथास्तस्यसिद्ध्यन्तीहनसंशयः ॥ ३५ ॥ काश्यांसदैववस्तव्यंस्नातव्योत्तरवाहिनी ॥ भवानीशङ्करौसेव्यौप्राप्तव्येभुक्तिमुक्तिके ॥ ३६ ॥ मातर्भवानितवपादरजोभवानिमातर्भवानितवदासतरोभवानि ॥

शीक्षेत्रवासीजनों को जो कुछ वस्तु दुर्लभ भी है उसको मनुष्यों से पूजीहुई भवानी सुलभही करदेती हैं ॥ ३३ ॥ और महाष्टमी (चैतसुदी अष्टमी) में व्रत करनेवाला मनुष्य रात्रिमें जागरणकरे फिर प्रातःकाल भवानीकी चारोंओर पूजाकर वाञ्छित फलको प्राप्तहोवे ॥३४॥ जोकि शुक्रेश्वरसे पश्चिम दिशामें भवानीको सबओर या सामनेसे देखताहै उसके सब मनोरथ यहां सिद्धहोते हैं संशय नहीं है ॥ ३५ ॥ इस लिये काशीमें सदैव बसना चाहिये व उत्तरवाहिनी गंगामें स्नान करना चाहिये व भवानी समेत शङ्करकी सेवा करना चाहिये और भुक्ति व मुक्तिको प्राप्त करना चाहिये ॥३६॥ हे मातः भवानि ! मैं तुम्हारे पांवोंकी धूरिहोऊं हे मातः भवानि ! मैं तुम्हारा बड़ा

सेवकहोऊँ हे मातः भवानि ! जैसे इस संसार में मैं न होऊँ वैसे तुम्हारे भजनेवाला होऊँ और ब्रह्माजीके प्रतिदिनमें फिर न होऊँ ॥ ३७ ॥ यह मन्त्र टिकते व चलते व सोते व जागतेहुये भी काशीवासी को सुखप्राप्तिके लिये सदा जपना चाहिये ॥ ३८ ॥ और वहांही भवानीतीर्थ के समीप में ईशानतीर्थ है उसमें नहायाहुआ जो ईशानजीको पूजे वह जन्मसेवी न होवे याने संसारसे छूटजावे ॥ ३९ ॥ व वहांही ज्ञानियों मनुष्यों का सदा ज्ञानदाता ज्ञानतीर्थ है उस तीर्थमें स्नान कियेहुआ जन ज्ञानेश्वर शिवजीका दर्शनकर फिर गर्भमें नहीं आताहै ॥ ४० ॥ ज्ञानवापी के समीपमें टिकेहुये ज्ञानेश्वर जिनसे भलीभांति पूजेगये उन मृत्युको भी पातेहुये लोगोंका

मातर्भवानिनभवानियथाभवेस्मिंस्त्वद्भाग्भवान्यनुदिनंनपुनर्भवानि ॥ ३७ ॥ तिष्ठतागच्छतावापिस्वपताजाग्रतापि वा ॥ अयंमन्त्रःसदाजप्यःसुखाप्त्यैकाशिवासिना ॥ ३८ ॥ ईशानतीर्थंतत्रैवभवानीतीर्थसन्निधौ ॥ तत्रस्नातोयईशान मर्चयेन्नसजन्मभाक् ॥ ३९ ॥ ज्ञानतीर्थञ्चतत्रैवज्ञानदंसर्वदानृणाम् ॥ कृताभिषेकस्तत्तीर्थेदृष्ट्वाज्ञानेश्वरंशिवम् ॥ ४० ॥ ज्ञानवापीसमीपस्थोज्ञानेशोयैःसमर्चितः ॥ ज्ञानभ्रंशोनतेषांस्यादपिपञ्चत्वमृच्छताम् ॥ ४१ ॥ शैलादितीर्थं तत्रैवपरमर्द्धिप्रकाशकम् ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वादत्त्वादानंस्वशक्तितः ॥ ४२ ॥ शैलादीश्वरमालोक्यज्ञानवाप्याउद ग्दिशि ॥ लभेद्गणत्वपदवींनात्रकार्याविचारणा ॥ ४३ ॥ नन्दितीर्थादवाच्यान्तुविष्णुतीर्थंपरंमम ॥ तत्रपिण्डान्वि निर्वाप्यपितॄणामनृणोभवेत् ॥ ४४ ॥ विष्णुतीर्थेकृतस्नानोयोमांविष्णुंविलोकयेत् ॥ विश्वेशाद्दक्षिणेपार्श्वे विष्णु लोकंसगच्छति ॥ ४५ ॥ यःप्रत्येकादशीम्प्राप्यशयनीम्बोधिनींतथा ॥ कुर्याज्जागरणंरात्रौममर्मूर्तिसमीपतः ॥ ४६ ॥

ज्ञान नाश नहीं होताहै ॥४१॥ व वहांही परम ऋद्धिका प्रकाशक नन्दीश्वरतीर्थ है उसमें श्राद्धादिकर व अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर ॥ ४२ ॥ व ज्ञानवापी से उत्तर दिशामें शैलादीश्वर का दर्शनकर गणभावकी पदवी पावे इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४३ ॥ व नन्दितीर्थ से दक्षिण में हमारा उत्तम विष्णुतीर्थ है उस में पिण्डा पारकर पितरोंसे उरिण होजावे ॥ ४४ ॥ उस विष्णुतीर्थ में स्नान किये हुआ जो विश्वनाथ से दक्षिणमार्ग में मुझ विष्णुको देखता है वह विष्णुलोक को जाताहै ॥ ४५ ॥ व जोकि प्रति एकादशी व शयनी (आषाढ़सुदी एकादशी) तथा बोधिनी (कार्त्तिकसुदी एकादशी) एकादशी को प्राप्त होकर मेरी मूर्त्तिके समीप

रातमें जागरण करे ॥ ४६ ॥ व प्रातःकाल भक्तिसे मुझको भलीभांति पूजकर ब्राह्मणोंको भी खिला पिलाकर गौवें सोना और भूमिदान कर फिर भूमिसेवी न होवे याने फिर भूलोक में देहधारण न करे ॥ ४७ ॥ व वित्तशाठ्यसे हीनहुआ बुद्धिमान् वहां व्रतोत्सर्गकर मेरी आज्ञासे भलीभांति व्रत के फलको प्राप्त होताहै ॥४८॥ व मेरे तीर्थसे दक्षिण में पितामह ब्रह्माका शुभतीर्थ है उसमें श्राद्धके विधान से पितामहों का तर्प्पणकर ॥ ४९ ॥ ब्रह्मनाल के ऊपर टिकेहुये पितामहेश्वर लिंगको भक्तिसे पूजकर नर ब्रह्मलोकको प्राप्तहोवे ॥ ५० ॥ व ब्रह्मस्रोतः याने ब्रह्मतीर्थ के समीप में कियाहुआ शुभ और अशुभ कर्म्म बड़ी अक्षयताको प्राप्त होताहै उससे

प्रातःसमर्च्यमाम्भक्त्याभोजयित्वाद्विजानपि ॥ दत्त्वागाःकाञ्चनम्भूमिंनभूयोभूमिभाग्भवेत् ॥ ४७ ॥ कृत्वातत्रव्रतोत्सर्गंवित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ सम्यग्व्रतफलन्धीमान्प्राप्नोत्येवममाज्ञया ॥ ४८ ॥ ममतीर्थादवाच्यान्तुतीर्थम्पैतामहं शुभम् ॥ तत्रश्राद्धविधानेनतर्पयित्वापितामहान् ॥ ४९ ॥ पितामहेश्वरंलिङ्गंब्रह्मनालोपरिस्थितम् ॥ पूजयित्वानरो भक्त्याब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ ५० ॥ ब्रह्मस्रोतःसमीपेतुकृतङ्कर्मशुभाशुभम् ॥ परामक्षयतामेतिशुभमेवततश्चरेत् ॥ ५१ ॥ अत्यल्पमपियत्कर्मकृतमत्रशुभाशुभम् ॥ प्रलयेपिनतस्यास्तिप्रलयोमुनिसत्तम ॥ ५२ ॥ नाभितीर्थमिदम्प्रोक्तं नाभिभूतंयतःक्षितेः ॥ अपिब्रह्माण्डगोलस्यनाभिरेषाशुभोदया ॥ ५३ ॥ सामाणिकर्णिकेयीयं नाभिर्गाम्भीर्यभूमिका ॥ ब्रह्माण्डगोलकंसर्वंयस्यामेतिलयोदयम् ॥५४॥ब्रह्मनालम्परन्तीर्थंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ तत्सङ्गमेनरःस्नात्वाकोटिजन्ममलंहरेत॥५५॥ब्रह्मनालेपतन्त्येषामपिकीकसमात्रकम्॥ब्रह्माण्डमण्डपान्तस्तेनविशन्तिकदाचन ॥५६॥

शुभही कर्म्मकरे ॥ ५१ ॥ हे मुनिसत्तम ! बहुत थोडाभी शुभ व अशुभ जो कर्म यहां कियागया उसका प्रलयमें भी नहीं नाश होताहै ॥५२॥ जिससे यह भूमिकी नाभि है उससे नाभितीर्थ कहागया है और यह शुभ उदयवाली ब्रह्माण्डगोल की भी नाभि है ॥ ५३ ॥ वही यह गाम्भीर्य्य की भूमिका मणिकर्णिका की भी नाभि है जिसमें सब ब्रह्माण्डगोलक लय (नाश) और उदयको प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥ और तीनोंलोकों में विशेष सुनाहुआ याने प्रसिद्ध जो ब्रह्मनालतीर्थ बहुत उत्तम है उसके सङ्गममें स्नानकर मनुष्य करोड़ों जन्मके पापोंको हरलेवे ॥५५॥ व जिनके हाड़मात्रभी ब्रह्मनालमें गिरते हैं वे ब्रह्माण्डमण्डपके भीतर कभी नहीं पैठते हैं॥५६॥

उस ब्रह्मनालसे दक्षिणमें भागीरथ नामक तीर्थ है उसमें भलीभाति स्नान कर मनुष्य ब्रह्महत्यारूप पापसे छूटजाता है ॥ ५७ ॥ व स्वर्गद्वार के समीपमें भागीरथीश्वर नामक लिंगके दर्शन से ब्रह्महत्याका पुरश्चरण कहाजाता है ॥ ५८ ॥ व जिसके पहले के पितामह अशुभगति को प्राप्तहुये हों उनको भागीरथीतीर्थ में बड़े यत्नसे तर्प्पण करना चाहिये ॥ ५९ ॥ व उस भागीरथतीर्थ में विधिसे श्राद्धकर और ब्राह्मणोंको खिला पिलाकर पितरों को ब्रह्मलोक में पठादेवे ॥ ६० ॥ उसके दक्षिणमें खुरकर्त्तरिनामक महातीर्थ है क्योंकि गोलोकसे आईहुई गौओंने खुरोंके अग्रभागोंसे ॥ ६१ ॥ भूमिके भागको शिथिल किया या ढांपिलिया उस लिये वह खुरकर्त्तरि

ततोभागीरथेस्तीर्थंब्रह्मनालाच्चदक्षिणे ॥ तत्रस्नात्वानरःसम्यङ्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ५७ ॥ भागीरथीश्वरंलिङ्गं स्वर्गद्वारस्यसन्निधौ ॥ दर्शनाद्ब्रह्महत्यायाःपुरश्चरणमुच्यते ॥ ५८ ॥ अशुभाङ्गतिमापन्नायस्यपूर्वेपितामहाः ॥ तेन भागीरथीतीर्थेतर्पणीयाःप्रयत्नतः ॥ ५९ ॥ तत्रभागीरथेतीर्थेश्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वातुब्रह्मलोकेन येत्पितॄन् ॥ ६० ॥ तद्दक्षिणेमहातीर्थंखुरकर्तरिसंज्ञितम् ॥ गोलोकादागताभिश्चगोभिर्यत्खुरकोटिभिः ॥ ६१ ॥ स्थपुटीकृतभूभागंततस्तत्खुरकर्तरि ॥ तस्मिंस्तीर्थेकृतस्नानःकृतपिण्डोदकक्रियः ॥ ६२ ॥ खुरकर्तरीशंलिङ्गंदृष्ट्वागोलोकमाप्नुयात् ॥ गोधनैर्नविमुच्येततल्लिङ्गस्यसमर्चनात् ॥ ६३ ॥ दक्षिणेखुरकर्तर्यामार्कण्डंतीर्थमुत्तमम् ॥ कृतश्राद्धविधानश्चतस्मिंस्तीर्थेघहारिणि ॥ ६४ ॥ मार्कण्डेयेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वायुर्दीर्घमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मतेजोभिवृद्धिञ्चकीर्तिञ्चपरमाम्भुवि ॥ ६५ ॥ वसिष्ठतीर्थम्परमं महापातकनाशनम् ॥ तर्पयित्वापितॄंस्तत्रवसिष्ठेशंविलोक्यच ॥ ६६ ॥ नरोनलिप्यते

कहाता है उस तीर्थमें स्नान कियेहुआ व पिण्डोदकक्रिया कियेहुआ प्राणी ॥ ६२ ॥ खुरकर्त्तरीश्वर लिंगके दर्शनकर गोलोकको प्राप्तहोवे और उस लिंगकी भली भांति पूजा करने से गोधनों से न छोड़ाजावे याने उसके घरमें गौवें रहें ॥ ६३ ॥ और खुरकर्त्तरि से दक्षिण में उत्तम मार्कण्डतीर्थ है उस पापहारीतीर्थ में श्राद्धकी विधि करनेवाला ॥ ६४ ॥ मार्कण्डेयेश्वर के दर्शनकर दीर्घ आयु व ब्रह्मतेज की सब ओरसे वृद्धि और पृथ्वी में उत्तमकीर्त्ति को प्राप्तहोवे ॥ ६५ ॥ व वहां जो महा-

पापनाशक बहुत उत्तम वसिष्ठतीर्थ है उसमें पितरों का तर्प्पणकर और वसिष्ठेश्वरका दर्शनकर ॥ ६६ ॥ मनुष्य तीन जन्मोंके कमाये या बटोरेहुये पापोंसे लिप्त नहीं होताहै और ब्रह्मतेज से संयुत होकर वसिष्ठलोक में बसताहै ॥ ६७ ॥ उस वसिष्ठ तीर्थके समीप में वहां स्त्रियोंकी सौभाग्य बढ़ानेवाला जो अरुन्धतीतीर्थ है उस तीर्थ में पतिव्रता स्त्रियोंको विशेषतासे स्नान करना चाहिये ॥ ६८ ॥ व उस तीर्थमें स्नान करनेसे पुंश्चलीभाव से उपजाहुवा याने परपुरुषके संगसे उत्पन्न हुवा दोष अरुन्धतीके प्रभावसे क्षणभरमें विनाशको प्राप्त होजावे ॥ ६९ ॥ और मार्कण्डेयेश्वरसे पूर्व में वसिष्ठेश्वरकी पूजासे मनुष्य पापहीन होजाता है व बड़ी पुण्यको पाता

पापैर्जन्मत्रयसमर्जितैः ॥ वसिष्ठलोकेवसतिब्रह्मतेजःसमन्वितः ॥६७॥ तत्रैवारुन्धतीतीर्थंस्त्रीणांसौभाग्यवर्धनम् ॥ पतिव्रताभिस्तत्तीर्थंगाहनीयंविशेषतः ॥ ६८ ॥ पौंश्चल्यजनितोदोषस्तत्तीर्थपरिमज्जनात् ॥ क्षणाद्विनाशमागच्छेदरुन्धत्याःप्रभावतः ॥ ६९ ॥ मार्कण्डेयेश्वरात्प्राच्यांवसिष्ठेश्वरपूजनात् ॥ निष्पापोजायतेमर्त्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥ ७० ॥ मूर्तीवसिष्ठारुन्धत्योस्तत्रपूज्येप्रयत्नतः ॥ नस्त्रीवैधव्यमाप्नोतिनपुमांस्त्रीवियोगिताम् ॥ ७१ ॥ वसिष्ठतीर्थंतोयाम्यांनर्मदातीर्थमुत्तमम् ॥ विधायश्राद्धंमेधावीनर्मदेशंविलोक्यच ॥ ७२ ॥ तत्रदत्त्वामहादानंपद्मयानविमुच्यते ॥ ततस्त्रिसन्ध्यंवैतीर्थंत्रिसन्ध्येश्वरपूर्वतः॥७३॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वाकृत्वासन्ध्यांविधानतः॥सन्ध्याकालविलोपोत्थपातकैर्नाभिभूयते ॥ ७४ ॥ त्रिसन्ध्येश्वरमालोक्यकृतसन्ध्यस्त्रिकालतः ॥ त्रिवेदावर्तजम्पुण्यंप्राप्नुयाच्छ्रद्धया

है ॥ ७० ॥ वहां वसिष्ठ व अरुन्धतीकी मूर्त्तियां बड़े यत्नसे पूजने योग्यहैं क्योंकि उनकी पूजासे स्त्री वैधव्यको नहीं प्राप्त होतीहै और पुरुष स्त्रीके विरहको नहीं प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ व वसिष्ठतीर्थ से दक्षिणमें उत्तम नर्मदातीर्थ है वहां बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्धकर व नर्मदेश्वरका दर्शनकर ॥ ७२ ॥ और उसमें बड़े दानदेकर लक्ष्मीसे नहीं छोड़ा जाताहै याने उसके पास सदा धन बनारहताहै उसके आगे त्रिसंध्येश्वरसे पूर्वमें निश्चयकर त्रिसंध्यतीर्थ है ॥७३॥ उस तीर्थमें स्नानकर व विधिसे संध्योपासनकर संध्याके काल विलोपनेसे उठेहुये पापोंसे नहीं तिरस्कृत होता है ॥ ७४ ॥ व त्रिकाल संध्योपासन कियेहुवा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य श्रद्धा से त्रिसंध्येश्वर

का दर्शन करतीन वेदोंकी आवृत्ति करनेकी पुण्यको प्राप्तहोवे ॥ ७५ ॥ उसके बाद योगिनीतीर्थ है उसमें स्नान किये हुवा मनुष्य योगिनीपीठको देखकर योगकी सि-द्धिको प्राप्तहोवे ॥ ७६ ॥ और वहां बडेपातकसमूहों का विघातक अगस्त्य तीर्थ है उसमें बहुतयत्न से स्नानकर व अगस्तीश्वर प्रभुके दर्शनकर ॥ ७७ ॥ तदनंतर अ-गस्तिकुंड में पितामहोंका तर्प्पणकर फिर अगस्ति समेत लोपामुद्राके प्रणामकर ॥ ७८ ॥ सब पापोंसे छूटाहुआ व सब क्लेशोंसे हीन होकर वह मनुष्योत्तम पितरों के साथ शिवजी के लोकको चलाजावे ॥ ७९ ॥ और अगस्त्यतीर्थ से दक्षिण में परम पावन व सब पापनशावन गङ्गाकेशव नामक तीर्थ है ॥ ८० ॥ हे मुने ! वहां उस

द्विजः ॥ ७५ ॥ ततोऽनुयोगिनीतीर्थंनरस्तत्रकृताप्लवः ॥ दृष्ट्वातुयोगिनीपीठंयोगसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥ अगस्ति तीर्थंतत्रास्तिमहाघौघविघातकृत् ॥ तत्रस्नात्वाप्रयत्नेनदृष्ट्वागस्तीश्वरंविभुम् ॥ ७७ ॥ अगस्तिकुण्डेचततःसन्त र्प्यचपितामहान् ॥ अगस्तिनासमेतांश्चलोपामुद्रांप्रणम्यच ॥ ७८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःसर्वक्लेशविवर्जितः ॥ गच्छे त्सपूर्वजैःसार्धंशिवलोकंनरोत्तमः ॥ ७९ ॥ दक्षिणेऽगस्त्यतीर्थाच्चतीर्थमस्त्यतिपावनम् ॥ गङ्गाकेशवसंज्ञञ्चसर्वपात कनाशनम् ॥ ८० ॥ तत्रमेशुभदांमूर्तिंमुनेतत्तीर्थसञ्ज्ञिकाम् ॥ सम्पूज्यश्रद्धयाधीमान्ममलोकेमहीयते ॥ ८१ ॥ तत्रपिण्डान्विनिर्वाप्यदत्त्वादानंस्वशक्तितः ॥ शतसांवत्सरीन्तृप्तिंपितॄणांसमर्पयेत् ॥ ८२ ॥ मणिकर्णीपरी माणमेतत्तेकीर्तितंमहत् ॥ सीमाविनायकाद्याम्यांसर्वविघ्नविघातनात् ॥ ८३ ॥ वैरोचनेश्वरात्प्राच्यामहंवैकुण्ठमा धवः ॥ तत्रमांभक्तितोभ्यर्च्यवैकुण्ठार्चामवाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ वीरमाधवसंज्ञोहंवीरेशात्पश्चिमेमुने ॥ तत्रव्रतीसम

तीर्थकी संज्ञावाली शुभदायिनी मेरी मूर्त्तिको याने गंगाकेशव नामक मुझको श्रद्धासे भलीभांति पूजकर बुद्धिमान् मनुष्य मेरे लोकमें आदर पाता है ॥ ८१ ॥ और वहां पिण्डा पारकर व अपनी शक्तिके अनुसार दानदेकर वह बुद्धिमान् पितरोंको सौ वर्षकी तृप्तिदेवे ॥ ८२ ॥ सब विघ्नविघायक सीमाविनायक से दक्षिणसे यह मणि-कर्णिकाका बडा या पूजनीय परिमाण मैंने तुमसे कहा ॥ ८३ ॥ और वैरोचनेश्वरसे पूर्वमें मैं वैकुण्ठमाधव नामसे वर्तमानहूं यहां भक्तिसे मेरी पूजाकर वैकुण्ठकी पूजाको

प्राप्तहोवे ॥ ८४ ॥ हे मुने ! वीरेश्वरसे पश्चिम में वीरमाधवनामक मैं हूं वहां भलीभांति पूजाकर व्रत करनेवाला जन यमराजसे पीड़ा न पावे ॥ ८५ ॥ व कालभैरव के समीप में कालमाधव नाम मैं हूं मेरे भक्तको कलि और काल नहीं चलासक्ता यह निश्चित है ॥ ८६ ॥ व अगहन सुदी एकादशी उपासाहुआ नर वहां जागरण कर यमको कहीं न देखेगा ॥ ८७ ॥ व पुलस्तीश्वर से दक्षिण में मैं निर्वाणनृसिंह हूं उस मूर्त्तिके नमस्कार करने से भी भक्तजन मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥ ८८ ॥ हे मुने ! ॐकारेश्वर से पूर्वमें महाबलनृसिंह नामक मैं हूं उस मूर्त्तिका पूजनेवाला बड़े बली यमदूतों को कभी न देखे ॥ ८९ ॥ व चण्डभैरव से पूर्वमें प्रचण्ड नर-

भ्यर्च्यनयामींयातनांलभेत् ॥ ८५ ॥ कालमाधवनामाहंकालभैरवसन्निधौ ॥ कलिःकालोनकलयेन्मद्भक्तमितिनिश्चितम् ॥ ८६ ॥ मार्गशीर्षस्यशुक्लायामेकादश्यामुपोषितः ॥ तत्रजागरणंकृत्वायमन्नालोकयेत्क्वचित् ॥ ८७ ॥ निर्वाणनरसिंहोहंपुलस्तीश्वरदक्षिणे ॥ भक्तोनिर्वाणमाप्नोतितन्मूर्तिनमनादपि ॥ ८८ ॥ महाबलनृसिंहोहमोङ्कारात्पूर्वतोमुने ॥ दूतान्महाबलान्याम्यान्नपश्येत्तुतदर्चकः ॥ ८९ ॥ प्रचण्डनरसिंहोहञ्चण्डभैरवपूर्वतः ॥ प्रचण्डमप्यघंकृत्वानिष्पाप्मास्यात्तदर्चनात् ॥ ९० ॥ अहंगिरिनृसिंहोस्मितद्देहलिविनायकात्॥प्राच्याम्प्रबलपापौघगजानाम्प्रविदारणः ॥ ९१ ॥ महाभयहरश्चाहंनरसिंहोमहामुने ॥ पितामहेश्वरात्पश्चाद्भक्तसाध्वससाध्वसः ॥ ९२ ॥ अत्युग्रनरसिंहोहंकलशेश्वरपश्चिमे ॥ अत्युग्रमपिपापौघंहरामिश्रद्धयार्चितः ॥ ९३ ॥ ज्वालामालीनृसिंहोऽहंज्वालामुख्याःसमीपतः ॥ संज्वालयामिपापौघतृणानिपरिपूजितः ॥ ९४ ॥ कोलाहलनृसिंहोस्मिदैत्यदानवमर्दनः ॥ ममनामसमुच्चारा

सिंह नामक मैं हूं उनके पूजने से प्रचण्ड भी पापको कर पापसे हीन होजावे ॥ ९० ॥ और उस देहलिविनायक से पूर्वमें गिरिनृसिंह नामक मैं बड़े बली पापसमूहरूप हाथियों के विदारनेवालाहूं ॥ ९१ ॥ हे महामुने ! पितामहेश्वर से पश्चिम मे महाभयहारी नरसिंह नामक मैं भक्तोंके डरको डररूपहूं ॥ ९२ ॥ व कलशेश्वर से पश्चिम में अत्युग्र नरसिंह नामक मैं श्रद्धा से पूजाहुआ अत्यन्त उग्र पापियों के पापसमूह को हरलेताहूं ॥ ९३ ॥ व ज्वालामुखी देवीके समीप में ज्वालामाली नृसिंह नामक मैं सब ओरसे पूजित होकर पापसमूह तृणोंको भलीभांति भस्म करदेताहूं ॥ ९४ ॥ और दैत्य व दानवों के मर्दन करनेवाला

कोलाहलनृसिंहनामक मैं हूं मेरा नाम भलीभांति कहनेसे पापोंका कोलाहल होताहै याने वे सब बहुत शब्दकर भागजाते हैं ॥ ९५ ॥ व जहां काशीकी रक्षामें दक्षबुद्धिवाले कङ्कालभैरवहैं वहां भक्तिसे मेरी पूजाकर विघ्नोंसे नहीं रोंकाजाताहै ॥ ९६ ॥ व नीलकण्ठेश्वरके पीछे विटंकनरसिंहनामक मैं हूं वहां श्रद्धासे मेरी पूजा कर नर निडर होजाता है ॥ ९७ ॥ व अनन्तेश्वर के समीप में पूजाहुआ अनन्तवामननामक मैं भक्तोंके अनन्त पापोंको भी हरलेता हूं ॥ ९८ ॥ व दधिवामनना-मक मैं भक्तोंको दही भात देनेवालाहूं व जिसका नाम सुमिरनेसेही मनुष्य दरिद्री न होवे ॥९९॥ व त्रिलोचनसे उत्तर काशीमें त्रिविक्रमनामक जो मैं हूं वह मैं पूजित

दघकोलाहलोयतः ॥ ९५ ॥ कङ्कालभैरवोयत्रकाशीरक्षणदक्षधीः ॥ तत्रमाम्भक्तितोभ्यर्च्यनोपसर्गैर्निरुध्यते ॥ ९६ ॥ विटङ्कनरसिंहोस्मिनीलकण्ठेश्वरादनु ॥ तत्रमांश्रद्धयापूज्यनरोभवतिनिर्भयः ॥ ९७ ॥ अनन्तवामनश्चाहमनन्तेश्वरसन्निधौ ॥ अनन्तान्यपिभक्तस्यकलुषाणिहरेऽर्चितः ॥ ९८ ॥ दधिवामनसंज्ञोहंभक्तानान्दधिभक्तदः ॥ यन्नामस्मरणादेवनदरिद्रोनरोभवेत् ॥ ९९ ॥ त्रिविक्रमोस्म्यहंकाश्यामुदीच्याञ्चत्रिलोचनात् ॥ ददामिपूजितोलक्ष्मींहरामिवृजिनान्यपि ॥ २०० ॥ बलिवामननामाहंबलिनापरिपूजितः ॥ बलिभद्रेश्वरात्प्राच्याम्भक्तानाम्बलवर्धनः ॥ १ ॥ दक्षिणेभवतीर्थाच्चताम्रद्वीपादिहागतः ॥ नाम्नाताम्रवराहोस्मिभक्तानांचिन्तितार्थदः ॥ २ ॥ मुनेधरणिवाराहःप्रयागेश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वावाराहतीर्थेत्र दृष्ट्वामांक्रिटिरूपिणम् ॥ ३॥ सम्पूज्यबहुभावेन नविशेद्योनिसङ्कटम् ॥ तत्राल्पमपिदत्त्वान्नन्धरादानफलंलभेत् ॥ ४॥ महाकलुषगम्भीरसागरेनिपतञ्जनः ॥ ममभक्त्युडुपंप्राप्यप्रलयेपिनमज्जति ॥ ५॥

होकर धनको देताहूं और पापोंको भी हरलेताहूं ॥२००॥ व बलिभद्रेश्वर से पूर्वमें बलिसे परिपूजित हुआ बलिवामननामक मैं भक्तोंका बल बढ़ानेवालाहूं ॥ १ ॥ व भवतीर्थ से दक्षिणमें ताम्रद्वीप से यहां आयाहुआ ताम्रवराह नामसे प्रसिद्ध मैं भक्तोंका वाञ्छितदाता हूं ॥ २ ॥ हे मुने ! प्रयागेश्वर के समीप में मैं धरणिवाराहनाम से प्रसिद्धहूं इस वराहतीर्थ में स्नानकर व वराहरूपधारी मुझको देखकर ॥ ३ ॥ और बहुत भक्तिसे भलीभांति पूजकर योनिसङ्कट में न पैठे व वहां थोडाभी अन्नदान कर भूमिदानका फलपावे ॥ ४ ॥ व महापापरूप गहरे समुद्र में गिराहुआ जन मेरी भक्तिरूपनौका को प्राप्त होकर प्रलयमें भी नहीं डूबता है ॥ ५ ॥

और किटीश्वर (वाराहेश्वर) के समीपमें मैं कोकावराहहूं वहां मुझको पूजताहुआ मनुष्य वाञ्छितफलको पाताहै ॥ ६ ॥ पांचसौ नारायण व एकसौ जलशायी व तीस कच्छपरूप वबीस मत्स्यरूप ॥७॥ व आठसमेत सौ गोपाल व हजार बुद्ध व तीस परशुराम और एक अधिक सौ रामचन्द्रके स्वरूपहै॥८॥हे मुने ! मुक्तिमण्डपके मध्यमें विष्णुरूप मैं एकहूं और प्रसाद कियेहुये श्रीविश्वनाथजीसे आपही आश्रितहूं ॥ ९ ॥ और नारायणस्वरूपसे उपलक्षित चक्र व गदाको उठायेहुये छःलाख गण सब ओरसे क्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥१०॥ इस भांति सुनकर बहुत आनन्दसे उठेहुये रोमोंवाले उस बुद्धिमान् अग्निबिन्दुने फिर पूंछा कि हे प्रभो ! अब तुम मूर्त्तियोंके भेद कहो ॥११॥

अहङ्कोकावराहोस्मिकिटीश्वरसमीपतः ॥ तत्रमाम्पूजयन्मर्त्यौलभतेचिन्तितम्फलम् ॥ ६ ॥ नारायणाःशतम्पञ्चश तञ्चजलशायिनः ॥ त्रिंशत्कमठरूपाणिमत्स्यरूपाणिविंशतिः ॥ ७ ॥ गोपालाश्चशतंसाष्टंबुद्धाःसन्तिसहस्रशः ॥ त्रिंशत्परशुरामाश्चरामाएकोत्तरंशतम् ॥ ८ ॥ विष्णुरूपोस्म्यहञ्चैकोमुक्तिमण्डपमध्यतः ॥ मुनेकृतप्रसादेनविश्वे शेनश्रितःस्वयम् ॥ ९ ॥ नारायणस्वरूपेणगणाश्चक्रगदोद्यताः ॥ कुर्वन्तिरक्षांक्षेत्रस्यपरितोनियुतानिषट् ॥ १० ॥ सोग्निबिन्दुरितिश्रुत्वासम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ पुनःपप्रच्छमेधावीमूर्तिभेदान्वदप्रभो ॥ ११ ॥ हितायनिजभक्तानां ममसन्देहशान्तये ॥ कतितेमूर्तयोनन्त कथंज्ञेयास्तथावद ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्याग्निबिन्दोस्तपसान्नि धेः॥ उवाचभगवान्विष्णुर्मूर्तिभेदाननुक्रमात् ॥ १३ ॥ याञ्छ्रुत्वापिहिनोमर्त्यौयमगोचरतांव्रजेत् ॥ केशवादींश्चतुर्विंश द्भेदानाहप्रजापतिः ॥ १४ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ अग्निबिन्दोमहाप्राज्ञश्शृणुतेकथयाम्यहम् ॥ आद्यदक्षिणहस्ताच्चविद्धि

हे अनन्त ! तुम्हारी कितनी मूर्त्तियां हैं व वे किस प्रकारसे जाननेयोग्य हैं उनको अपने भक्तोंके हित व मेरा सन्देह शान्त करने के लिये तुम वैसेही कहो ॥ १२ ॥ ऐसे तपस्याओं के निधान उस अग्निबिन्दु का वचन सुनकर भगवान् विष्णुजी अनुक्रम से मूर्त्तियों के भेदोंको कहनेलगे ॥ १३ ॥ जिनको सुनकर भी मनुष्य यमराजकी गोचरताको नहीं प्राप्तहोवे उन केशवादि चौबिस भेदोंको प्रजापतिने कहा॥१४॥श्रीविष्णुजी बोले कि, हे महाप्राज्ञ, अग्निबिन्दो, मुने ! सुनो मैं तुमसे कहताहूं

और पहले दहने हाथसे लगाकर दक्षिणामार्ग से जानो ॥ १५ ॥ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे केशवकीमूर्त्ति जानो जोकि पूजीहुई होकर निस्सन्देह मनुष्यों के वाञ्छितार्थको करे ॥ १६ ॥ व शङ्ख, पद्म, गदा और चक्रसे मधुहा पहिंचानने योग्यहैं उस मूर्त्तिकी सब ओर सेवासे वैरी नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ १७ ॥ व शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा आयुधवाले सङ्कर्षण यहां भलीभांति पूजनीयहैं उनकी मूर्त्ति पूजने से प्राणी फिर जन्मवाला कभी न होवे ॥ १८ ॥ व शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मसे उपलक्षित दामोदर पूजेजाते हैं वह धन पुत्र गोधन और अन्नको भी देतेहैं ॥ १९ ॥ व घरमें भी थापेहुये शङ्ख, चक्र, पद्म और गदासे उपलक्षित वामनजी जन को धनवान् करें ॥ २० ॥

सृष्टिक्रमान्मुने ॥ १५ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मैर्मूर्तिंजानीहिकैशवीम् ॥ पूजितायान्नृणांकुर्याच्चिन्तितार्थमसंशयम्॥ १६॥ मधुहापरिचेतव्यःशङ्खपद्मगदारिभिः ॥ वैरिणोनाशमायान्तितन्मूर्तिपरिसेवनात् ॥ १७ ॥ सङ्कर्षणःसमर्च्योत्रशङ्खाब्जारिगदायुधः ॥ तन्मूर्तिपूजनाज्जातु जन्तुर्नस्यात्पुनर्भवी ॥ १८ ॥ शङ्खकौमोदकीचक्रपद्मैर्दामोदरोर्च्यते ॥ ददातिवित्तम्पुत्रांश्चगोधनन्धान्यमेवहि ॥ १९ ॥ वामनःशङ्खचक्राब्जगदाभिरुपलक्षितः ॥ लक्ष्मीवन्तंजनङ्कुर्याद्गृहेपिपरिधारितः ॥ २० ॥ पाञ्चजन्यङ्गदांपद्मंचित्रमूर्तिसुदर्शनम्॥प्रद्युम्नःपूज्यतेमर्त्यैर्बहुद्युम्नम्प्रयच्छति ॥ २१ ॥ ऊर्ध्ववामकरात्सृष्ट्याविष्णवाद्यंषट्कमुच्यते॥ यस्यस्मरणमात्रेणविलीयन्तेघराशयः ॥ २२ ॥ शङ्खारिभ्याङ्गदाब्जाभ्यां पूज्योविष्णुःश्रियेनरैः ॥ शङ्खपद्मगदाचक्रैर्माधवःपरमर्द्धिदः ॥२३॥ ध्येयोऽनिरुद्धःसंसिद्ध्यैशङ्खाब्जारिगदोद्यतः ॥ शङ्खेनगदयाचक्राम्बुजाभ्याम्पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥ अधोक्षजोजनिहरःशङ्खार्यब्जगदोमुने ॥ शङ्खकौमोदकीपद्मचक्रैर्ध्येयोज

व शङ्ख, गदा, पद्म और विचित्र सुदर्शनचक्र को धारतेहुये प्रद्युम्नजी मनुष्यों से पूजेजाते हैं वह हैं व बहुत अन्न या प्रकाशको देतेहैं ॥ २१ ॥ अब ऊपर के वाम हाथ से लगाकर दक्षिणामार्ग से विष्णुआदि छः रूप कहेजाते हैं जिनके स्मरणमात्रसे पापोंकी राशियां बिलायजाती हैं ॥ २२ ॥ शङ्ख, चक्र व गदा और पद्मसे उपलक्षित विष्णुजी ऐश्वर्य्यके लिये मनुष्यों से भलीभांति पूजनेयोग्य हैं व शङ्ख, पद्म, गदा और चक्रसे संयुत माधवजी परम समृद्धिदायक है ॥ २३ ॥ व शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा को उठाये हुये अनिरुद्ध भलीभांति सिद्धिके लिये ध्यान करनेयोग्य हैं व शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मसे पुरुषोत्तम होतेहैं ॥ २४ ॥ हे मुने ! शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा

वाले अधोक्षजजी संसारमें जन्मके हरनेवाले हैं व शङ्ख, गदा, पद्म और चक्रसे युक्त जनार्दनजी ध्यान करनेयोग्यहैं ॥ २५ ॥ और नीचेके वामहाथसे लगाकर दक्षिण मार्गसे छः गोविन्दादि मूर्त्तियां हैं उनमें से गोविन्दजी शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मको सदैव धारण करते हैं ॥ २६ ॥ व शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र से युक्त त्रिविक्रमजी लक्ष्मीके लिये पूजनीय हैं तथा शङ्ख, पद्म व चक्रको धारतेहुये गदावाले श्रीधरजी सम्पत्तिके लिये होतेहैं ॥ २७ ॥ व शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मसे हृषीकेश मानेगये हैं व शङ्ख, चक्र, पद्म और गदासे नृसिंह विचारेजाते हैं ॥ २८ ॥ व जोकि नित्यही शङ्खधारी व गदा, पद्म और चक्रवान् हैं वह अच्युत भगवान् हैं और नीचेके दक्षिण

नार्दनः ॥ २५॥ अधोवामकरात्सृष्ट्याषड्गोविन्दादिमूर्तयः ॥ शङ्खंचक्रङ्गदांपद्मंगोविन्दोबिभृयात्सदा ॥ २६ ॥ शङ्खपद्म गदाचक्रैरर्च्योलक्ष्म्यैत्रिविक्रमः ॥ शङ्खाब्जचक्रंबिभ्राणोगदावाञ्छ्रीधरःश्रिये ॥ २७॥ हृषीकेशश्चशङ्खेनगदाचक्रा म्बुजैर्मतः ॥ नृसिंहःशङ्खचक्राभ्यां पद्मेनगदयोह्यते॥२८॥अच्युतःशङ्खभृन्नित्यं गदापद्मरथाङ्गवान् ॥ दक्षिणाधःक रादूह्यावासुदेवादयश्चषट् ॥ २९ ॥ वासुदेवश्चशङ्खारिगदाजलजभृत्सदा॥शङ्खाम्बुजगदाचक्रीध्येयोनारायणोनृभिः ॥ ३० ॥ शङ्खीपद्मीपद्मनाभोज्ञेयश्चक्रीगदीमुने ॥ उपेन्द्रःशङ्खवान्नित्यंगदारिकमलायुधः ॥ ३१ ॥ हरिर्हरेदघंशङ्खीचक्री पद्मीगदीनृणाम् ॥ शङ्खेनगदयापद्मचक्राभ्यांकृष्णउच्यते ॥ ३२ ॥ एतेभेदामयाख्याताःस्वमूर्तीनाम्महामुने ॥ या न्विज्ञायध्रुवंमर्त्योभुक्तिंमुक्तिंचविन्दति ॥ ३३ ॥ एवंवदतिगोविन्देमुनयेचाग्निबिन्दवे ॥ पक्षीन्द्रःपक्षविक्षिप्तविपक्षो

हाथके क्रमसे वासुदेवादि छः रूप वितर्क करनेयोग्यहैं ॥ २९ ॥ उनमें से सदैव शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मधारी वासुदेव हैं व शङ्ख, पद्म, गदा और चक्रवाले नारायणजी मनुष्योंसे ध्यावने योग्य हैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! शङ्ख, पद्म, चक्र और गदावाले पद्मनाभ जाननेयोग्यहैं व नित्यही शङ्ख, गदा, चक्र और कमल व आयुधवाले उपेन्द्र हैं॥३१॥ व शंख, चक्र,पद्म और गदावाले हरिजी मनुष्योंका पाप हर लेतेहैं व शंख, गदा, पद्म और चक्र से कृष्ण कहेजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे महामुने ! मैंने अपनी मूर्त्तियों के ये भेद कहे जिनको विशेष से जानकर मनुष्य निश्चय से भुक्ति और मुक्तिको पाता है ॥ ३३ ॥ इसभांति अग्निबिन्दु मुनिसे गोविन्द के बतलातेही पक्षोंसे वैरियों को

बहातेहुये गरुडजी नेत्रमार्ग मे प्राप्त हुये याने देखपडे ॥३४॥ और शीघ्रही प्रणामकर आनन्द से त्रिनेत्र महादेवजी का आना बताते भये तदनन्तर विष्णुजी ने आदर या आनन्द से ऐसा कहा कि ईश (महादेव) जी कहां हैं ॥ ३५ ॥ गरुड़जी बोले कि जिसकी ध्वजामें बडे बैलकी मूर्त्तिहै व जिसकी ध्वजाके रत्नोंकी ज्योति इस द्यावा-पृथ्वी को पूर्ण करती है वह यह शिवजी का रथ प्रत्यक्ष कियाजावे याने देखाजावै ॥ ३६ ॥ तब विष्णुजी लोगोंकी आंखोके बननेको सफल करनेमें समर्थ व करोड़ों सूर्य्य प्रकाश के समान दिशाओं के मुखको प्रकाशित करतेहुई ॥ ३७ ॥ शिवजीके वृषमूर्त्तिवाले ध्वजासमेत रथको देखकर कि जिसके लिये देवोंके विमानसमूहों

ऽक्षिपथङ्गतः ॥ ३४ ॥ प्राहचप्रणिपत्याशुत्र्यक्षस्यागमनम्मुदा ॥ सम्भ्रमेणहृषीकेशःकेशइत्यवदत्ततः ॥ ३५ ॥ गरुडउवाच ॥ प्रत्यक्षःक्रियतामेषमहावृषभकेतनः ॥ यस्यध्वजस्यरत्नार्चिःपूरयेद्रोदसीमिमाम् ॥ ३६ ॥ लोकलोचननिर्माणसफलीकरणक्षमम् ॥ कोटिमार्तण्डविद्योतप्रद्योतितदिगाननम् ॥ ३७ ॥ निरीक्ष्यपुण्डरीकाक्षस्त्र्यक्षस्यवृषभध्वजम् ॥ विमानिनांविमानौघैःपरीतगगनाङ्गणम् ॥ ३८ ॥ महावाद्यनिनादौघैःप्रतिस्वानितकन्दरम् ॥ विद्याधरीपरिक्षिप्तपुष्पाञ्जलिसुगन्धितम् ॥ ३९ ॥ प्रणम्यदूरादपिचसम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ अभ्युत्थातुंमनश्चक्रेशङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४० ॥ अग्निबिन्दुमथप्राहमुक्तिदस्तुमुदान्निधिः ॥ इदंसुदर्शनंचक्रंस्पृशासव्येनपाणिना ॥ ४१ ॥ अग्निबिन्दुरितिप्रोक्तःस्पृशेद्यावत्सुदर्शनम् ॥ तावत्सुदर्शनोजातःपरमानुग्रहाद्धरेः ॥ ४२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ ज्योतीरूपोथसमुनिः

से आकाशरूप आंगन व्याप्त है ॥ ३८ ॥ व जिसने बड़े बाजोंके शब्दसमूहों से कन्दराओं को प्रतिशब्दित कियाहै व जोकि विद्याधारियोंसे सबओर छोड़ीहुई फूलों की अञ्जलियों से सुगन्धित है ॥ ३९ ॥ उसके दूरसेही प्रणामकर कि जिनके सम्भ्रमसे भलीभांति बहुतही हृष्ट (आनन्दित) रोम थे वह शखचक्रगदाधर (विष्णु) जी संमुख उठनेको मन करते भये ॥ ४० ॥ तदनन्तर आनन्दों के निधान मुक्तिदायक भगवान्जी अग्निबिन्दुमुनि से बोले कि, तुम दक्षिणहाथ से इस सुदर्शनचक्रको छूलेवो॥४१॥ऐसे कहेहुये अग्निबिन्दुमुनि जबतक सुदर्शनको छुवें तबतक भक्तभयहारी विष्णुजीकी परम(उत्तम) दयासे अच्छे ज्ञानवान् होगये॥४२॥स्कन्दजी बोले कि,

हे कलशज (अगस्त्यजी) ! अनन्तर ज्योतिरूपहुये वह मुनि बिन्दुमाधवजीकी सेवासे ज्योतियोंकी मूर्त्ति कौस्तुभमणिमें एकीभूत होगये याने उसमें मिलगये ॥४३॥ हे कलशोद्भव ! यह निश्चित है कि जिन लोगोंने श्रीबिन्दुमाधवजी के पदकमलोंमें अपने मनको भौंरा कियाहै वे अग्निबिन्दुमुनि की उपमाको याने समताको प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ इसलिये काशीमें सदैव बसना चाहिये व श्रीबिन्दुमाधवजी के दर्शन करना चाहिये व यह आख्यान सुनना चाहिये और जगतोंकी गतिको जीतना चाहिये ॥४५॥ मनोज्ञ, पञ्चनदकी उत्पत्ति व मनोज्ञ, श्रीबिन्दुमाधवजीकी भलीभांतिकी कथा और मनोज्ञ, काशीका वास पुण्यवान् जनोंको सम्भवित होवे है ॥ ४६ ॥

कौस्तुभेज्योतिषान्तनौ ॥ एकीभूतःकलशजबिन्दुमाधवसेवनात् ॥ ४३ ॥ बिन्दुमाधवपादाब्जभ्रमरीकृतमानसाः ॥ अग्निबिन्दूपमांयान्तिकलशोद्भवनिश्चितम् ॥ ४४ ॥ काश्यांसदैववस्तव्यंद्रष्टव्योबिन्दुमाधवः ॥ श्रोतव्यमिदमाख्यानंजेतव्याजगताङ्गतिः ॥ ४५ ॥ पुण्यापञ्चनदोत्पत्तिःपुण्यामाधवसङ्कथा ॥ पुण्योवाराणसीवासःसम्भवेत्पुण्यजन्मनाम् ॥ ४६ ॥ अग्निबिन्दोःस्तुतिंयोत्रमाधवाग्रेपठिष्यति ॥ समृद्धसर्वकामःसमोक्षलक्ष्मीपतिर्भवेत् ॥ ४७ ॥ श्राद्धकालेसदाजप्यमिदमाख्यानमुत्तमम् ॥ द्विजानाम्भुञ्जमानानाम्पुरस्तात्परतृप्तये ॥ ४८ ॥ जप्तव्यमिदमाख्यानंपर्वकालेविशेषतः ॥ पुण्येपञ्चनदाभ्याशेपुण्यलक्ष्मीविवृद्धये ॥ ४९ ॥ पठितव्यःप्रयत्नेनबिन्दुमाधवसम्भवः ॥ श्रोतव्यःपरयाभक्त्याभुक्तिमुक्तिसमृद्धये ॥ ५० ॥ सम्प्राप्तेवासरेविष्णोरात्रौजागरणान्वितः ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यंवै

जो यहां श्रीबिन्दुमाधवजीके आगे अग्निबिन्दु की स्तुति पढ़ेगा वह सब कामनाओंसे समृद्ध (भलीभांति बढ़ाहुआ) होकर मोक्षसम्पत्तिका स्वामी या विष्णुजीमें लीन होकर विष्णुरूप होजावेगा ॥ ४७ ॥ श्राद्धसमयमें भोजन करतेहुये ब्राह्मणोंके आगे बड़ी तृप्तिके लिये यह उत्तम आख्यान सदा जपनेयोग्यहै ॥ ४८ ॥ व मनोज्ञ पञ्चनदके समीप पुण्यसम्पत्तिकी बहुत वृद्धिके लिये पर्वकाल में यह आख्यान विशेषतासे पढ़नेयोग्य है ॥ ४९ ॥ व भुक्ति और मुक्तिकी समृद्धिके लिये श्रीबिन्दुमाधवजीका भलीभांति होना बहुतयत्न से पढ़ना चाहिये तथा सुनना चाहिये ॥ ५० ॥ और एकादशी समेत द्वादशी तिथिके प्राप्तहोतेही रात्रिमें जागरण से संयुत सुकृतीजन

इस मनोज्ञ अध्यायको सुनकर वैकुण्ठमें वासपावे ॥ २५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते श्रीबिन्दुमाधवाविर्भावोमाधवाग्निबिन्दुसंवादोवैष्णवतीर्थमाहात्म्यंनामैकषष्टितमोध्यायः ॥ ६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ बासठयें अध्याय में प्रकट भये वृषकेतु । ब्रह्मा विष्णु गणेशगण काशी देखन हेतु ॥ श्रीअगस्त्यजी बोले कि, हे स्कन्द (श्रीकार्त्तिकेयजी) ! आपके मुख से कहीहुई कथाको सुनकर मैं तृप्त नहीं होताहूं आपने अत्यन्त आश्चर्य्य करनेवाला श्रीबिन्दुमाधवजी का आख्यान कहा ॥ १ ॥ इस समय मैं देवोंके देव श्रीमहा-

कुण्ठेवसतिंलभेत् ॥ २५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेबिन्दुमाधवाविर्भावोमाधवाग्निबिन्दुसंवादोवैष्णवतीर्थमाहात्म्यन्नामैकषष्टितमोध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ श्रुत्वास्कन्दनतृप्तोस्मितववक्रेरिताङ्कथाम् ॥ अत्याश्चर्यकरम्प्रोक्तमाख्यानम्बैन्दुमाधवम् ॥ १ ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामिदेवदेवसमागमम् ॥ ताक्ष्यात्र्यक्षःसमाकर्ण्यदिवोदासस्यचेष्टितम् ॥ २ ॥ विष्णुमायाप्रपञ्चंच किमाहगरुडध्वजम् ॥ केकेचशम्भुनासार्धंसमीयुर्मन्दराद्रिरेः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणेशःकथंदृष्टस्त्रपाकुलितचक्षुषा ॥ किमाह देवोब्रह्माणं किमुक्तम्भास्वतापिच ॥ ४ ॥ योगिनीभिःकिमाख्यायिगणाह्रीणाःकिमब्रुवन् ॥ एतदाख्याहिमेस्कन्दमहत्कौतूहलंमयि ॥ ५ ॥ इमंप्रश्नंनिशम्यैशिर्मुनेःकलशजन्मनः ॥ प्रत्युवाचनमस्कृत्यशिवौप्रणतसिद्धिदौ ॥ ६ ॥

देवजी का समागम सुननेकी इच्छा करताहूं कि त्रिनेत्रवाले महादेवजी ने गरुड़से दिवोदास का कर्म्म भलीभांति सुनकर ॥ २ ॥ और विष्णुजी का मायाप्रपञ्च सुनकर गरुडध्वज (विष्णु) जीसे क्या कहा व शंकरजीके साथ कौन कौन जन मन्दरपर्वतसे भलीभांति आये ॥ ३ ॥ व लाजसे व्याकुल नेत्रवाले ब्रह्माजीने ईशको किस प्रकारसे देखा व महादेवजी ने ब्रह्मासे क्या कहा और सूर्य्यदेवने भी महादेवजी से क्या कहा ॥ ४ ॥ व योगिनियों ने क्या कहा और लज्जितहुये गणोंने क्या कहा था हे कार्त्तिकेयजी ! इसको मुझसे कहो क्योंकि मुझमें बड़ा कुतूहल है ॥ ५ ॥ अगस्त्यमुनि के इस प्रश्नको सुनकर भक्तोंकी सिद्धिके दायक गौरीशङ्कर के प्रणाम

कर परमेश्वरके पुत्र श्रीकार्त्तिकेयजी उनके प्रति कहनेलगे ॥ ६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! सब पापनाशिनी व संपूर्ण विघ्नविनाशिनी और परम पुण्य की बढ़ानेवाली इस कथाको तुम सुनो ॥ ७ ॥ तदनन्तर दैत्यों के वैरी उन विष्णुदेवजीने शंकरजी का भलीभांति आना सुनकर आनंदसे उन गरुड़को पारितोषिक (इनाम) दिया ॥ ८ ॥ जोकि काशी के समीप शम्भुके प्यारे आने को कहतेहुये टिके थे और उसके बाद ब्रह्माको आगेकर भक्तभयहारीजी उठकर चले ॥ ९ ॥ जोकि सूर्य्य समेत और गणों से सब ओर घिरे हैं व जिनके पीछे योगिनियो ने गमन कियाहै वह गणेशजी के निकट टिकगये ॥ १० ॥ तदनन्तर देवोंके देव वृषध्वज महादेवजीको देखकर

स्कन्दउवाच ॥ मुनेश्शृणुकथामेतांसर्वपातकनाशिनीम् ॥ अशेषविघ्नशमनीम्महाश्रेयोभिवर्धिनीम् ॥ ७ ॥ अथ देवोऽसुररिपुःश्रुत्वाशम्भुसमागमम् ॥ द्विजराजायसमुदासमदात्पारितोषिकम् ॥ ८ ॥ आयानंशंसतेशम्भोरुपवाराणसिप्रियम् ॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वाततश्चाभ्युद्ययौहरिः ॥ ९ ॥ विवस्वतासमेतश्चतैर्गणैःपरितोवृतः ॥ योगिनीभिरनूद्यातोगणेशमुपसंस्थितः ॥ १० ॥ अथनेत्रातिथीकृत्यदेवदेवंवृषध्वजम् ॥ मङ्क्षुतार्क्ष्यादवारुह्यप्रणनामश्रियःपतिः ॥ ११ ॥ पितामहोपिस्थविरोभृशन्नम्रशिरोधरः ॥ प्रणतेनमृडेनैवप्रणमन्विनिवारितः ॥ १२ ॥ स्वस्त्यभ्युदितपाणिश्चरुद्रसूक्तैरमन्त्रयत ॥ अक्षतान्यथसार्द्राणिदर्शयन्सफलान्यजः ॥ १३ ॥ मौलिम्पादाब्जयोःकृत्वागणेशःसत्वरोनतः ॥ मूर्धन्युपाजिघ्रयाञ्चक्रेहरोहर्षाद्गजाननम् ॥ १४ ॥ अभ्युपावेशयच्चापिपरिष्वज्यनिजासने ॥ सोमनन्दिप्रभृतयःप्रणेमुर्दण्डवद्गणाः ॥ १५ ॥ योगिन्योपिप्रणम्येशञ्चक्रुर्मङ्गलगायनम् ॥ तरणिःप्रणनामाथप्रमथाधिपतिंहरम् ॥ १६ ॥ खण्डेन्दुशेखरश्चाथ

शीघ्रही गरुड़ से उतरकर लक्ष्मीजीके पति विष्णुजीने प्रणाम किया ॥ ११ ॥ व नमस्कार करतेहुये बहुतही विनम्र कंठवाले बड़े बूढ़े ब्रह्माजीभी प्रणाम करतेहुये शिवजी सेही निवारित कियेगये ॥ १२ ॥ उसके बाद फलों समेत जल से भिगोयेहुये अक्षतों को दिखातेहुये व स्वस्तिवाचन के लिये संमुख हाथ उठानेवाले ब्रह्माजीने रुद्र सूक्तों से मन्त्रित किया ॥ १३ ॥ और वेगवान् गणनाथने चरणारविंदोंमें माथको कर (धर) नमस्कार किया व शिवजीने आनन्दसे गणेशजीको शिर मे समीप से सूंघ लिया ॥ १४ ॥ और सब ओर से लिपटाकर अपने आसनमें भी सामने बैठाया व सोम नंदी आदि गणोंने शिवजीके दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १५ ॥ व योगिनियां भी

परमेश्वर के प्रणामकर मंगल गानको करती भई अनन्तर सूर्य्यदेव ने गणों के स्वामी भवभयहारी शंकरजी के प्रणाम किया ॥ १६ ॥ उसके बाद चन्द्रखण्डमाथ वाले विश्वनाथजी ने अपने सिंहासन के समीप वामभागमें विष्णुजीको आदरपूर्वक भलीभांति बैठाया ॥ १७ ॥ व सामने से दियेहुये आसनवाले ब्रह्माजी को दक्षिण भाग मे बैठाया और चारों ओर देखकर शिवजी ने प्रणाम करतेहुये सब गणों की संमान किया ॥ १८ ॥ व योगिनियां भी मूड़ डुलाने मात्रसे प्रसन्नताको प्राप्त कीगईं और बैठो ऐसी हाथों की संज्ञासे सूर्य्य भी संतोषेगये ॥ १९ ॥ तदनन्तर दोनों हाथोंका संपुट बांधेहुये ब्रह्माजी ने प्रसन्न मुख कमलवाले शंकरजी के प्रति सब ओर से

उपसिंहासनंहरिम् ॥ समुपावेशयद्वामपार्श्वेमानपुरःसरम् ॥ १७ ॥ ब्रह्माणन्दक्षिणेभागेपरिविश्राणितासनम् ॥ दृष्ट्वासम्भावितःसर्वैशर्वेणप्रणतागणाः ॥ १८ ॥ मौलिचालनमात्रेणयोगिन्योपिप्रसादिताः ॥ सन्तोषितोरविश्चापिविशेतिकरसंज्ञया ॥ १९ ॥ अथशम्भुंशतधृतिःप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ परिविज्ञापयाञ्चक्रेप्रसन्नवदनाम्बुजम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्देवदेवेशक्षन्तव्यंगिरिजापते ॥ वाराणसींसमासाद्ययदहन्नागतःपुनः ॥ २१ ॥ प्रसङ्गतोपिकःकाशींप्राप्यचन्द्रविभूषण ॥ किञ्चिद्विधातुंशक्तोपित्यज्येत्स्थविरतान्दधत् ॥ २२ ॥ स्वरूपतोब्राह्मणत्वादपाकर्तुंन्नशक्यते ॥ अथशक्तोप्यपाकर्तुंकःपुण्येसञ्चिकीर्षति ॥ २३ ॥ विभोरपिसमाज्ञेयन्धर्मवर्त्मानुसारिणि ॥ नकिञ्चिदपकर्तव्यञ्ज्ञानताकेनचित्क्वचित् ॥ २४ ॥ कस्तादृशिमहीजानौपुण्यवर्त्मन्यतन्द्रिते ॥ काशीपालेदिवोदासेमनागपिविरुद्धधीः ॥ २५ ॥ निशम्येतिवच

विज्ञापना किया (विशेषतासे जनाया) ॥ २० ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे देवदेवेश, भगवन्, पार्वतीपते ! जिससे मैं काशी को प्राप्त होकर फिर नहीं आयाहूं उससे क्षमा करना चाहिये ॥ २१ ॥ हे चन्द्रविभूषण ! बुढ़ाई को धारता हुआ कुछ करने को समर्थ भी कौन जन प्रसंगसे भी काशी को प्राप्त होकर फिर त्याग देवे ॥ २२ ॥ और स्वभाव से व ब्राह्मण होने से अपकार करने को नहीं योग्य होताहै अथवा अपकार करने को समर्थ भी कौन जन पुण्यात्मा पुरुषमें भलीभांति करने के लिये इच्छा करता है ॥ २३ ॥ क्योंकि स्वामी का भी भलीभांति अधिकतासे जानना चाहिये या परमेश्वर की भी यह अच्छी आज्ञा है कि जानतेहुये किसी को कहीं कुछ नहीं अपकार करना चाहिये ॥ २४ ॥ और पुण्यमार्ग में आलस्यसे हीन पृथिवी के पति काशीके पालक वैसे दिवोदासमें कौन कुछेकभी विरुद्ध बुद्धिवाला होवे ॥ २५ ॥ ऐसे वचन

को सुनकर हँसतेहुये बहुत विशुद्धबुद्धिवाले सन्तुष्ट शिवजीने ब्रह्माजी के प्रति अधिकता से कहा कि हे ब्रह्मन् ! मैं सब को जानताहूं ॥ २६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, पहले तुम ब्राह्मण का तबतक या उतना ब्राह्मणत्व (ब्राह्मणभाव) ही अदोषहै और उसके बाद भी तुमने अश्वमेध यज्ञों के दशकको याने दश अश्वमेध यज्ञोंको कियाहै ॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन् ! जिससे आपने मेरे लिंगको थाप दियाहै उससे भी परम (उत्तम) हितको कियाहै क्योंकि हजारों अपराधोंको कर भी ॥ २८ ॥ जिससे मेरा एक भी लिंग जहां कहीं थापा गयाहै उस सब अपराधोंवाले के पापों का लेश नहीं है ॥ २९ ॥ और हजार अपराधके होते हुये भी जो ब्राह्मण का अपराधकरे उसका

स्तुष्टःश्रीकण्ठोतिविशुद्धधीः ॥ हसन्प्रोवाचधातारम्ब्रह्मन्सर्वमवैम्यहम् ॥ २६ ॥ देवदेवउवाच ॥ आदौतावददोषंहिब्रह्मत्वम्ब्राह्मणस्यते ॥ वाजिमेधाध्वराणाञ्चततोपिदशकंकृतम् ॥ २७ ॥ ततोपिविहितम्ब्रह्मन्भवतापरमंहितम् ॥ अपराधसहस्राणियल्लिङ्गंस्थापितम्मम ॥ २८ ॥ येनैकमपिमेलिङ्गंस्थापितंयत्रकुत्रचित् ॥ तस्यापराधलेशोपिनास्तिसर्वापराधिनः ॥ २९ ॥ अपराधसहस्रेपिब्राह्मणंयोपराध्नुयात् ॥ दिनैःकतिपयैरेवतस्यैश्वर्यंविनश्यति ॥ ३० ॥ इतिब्रुवतिदेवेशेप्यन्तरुच्छ्वसितङ्गणैः ॥ समातृभिःसमन्ताच्चविलोक्यास्यम्परस्परम् ॥ ३१ ॥ अर्कोप्यवसरंज्ञात्वानत्वाशम्भुंव्यजिज्ञपत् ॥ प्रसन्नास्यमुमाकान्तन्दृष्ट्वादृष्टचराचरः ॥ ३२ ॥ अर्कउवाच ॥ नाथकाशीमितोगत्वायथाशक्तिकृतोपधिः ॥ अकिञ्चित्करताम्प्राप्तःसहस्रकरवानपि ॥ ३३ ॥ स्वधर्मपालकेतस्मिन्दिवोदासेधरापतौ ॥ निश्चितागमनंज्ञात्वादेवस्या

ऐश्वर्य्य कितेक थोड़े दिनोंसेही विनष्ट होजाताहै ॥ ३० ॥ व देवों के स्वामी शिवजी के ऐसा कहतेही मातृकाओं (योगिनियों) समेत गणोंने भी आपुसमें देखकर सब ओर से भीतर ऊंचे श्वास को लिया अर्थात् शिवलिंगों के थापनेवाले होने से अपराधोंके डर को त्याग दिया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर स्थावर जंगम जगत् के देखनेवाले सूर्य्य देवने भी समय को जानकर व पार्वती के पति शंकरजीको प्रसन्न मुख देखकर व नमस्कारकर विज्ञापना किया ॥ ३२ ॥ श्रीसूर्य्यदेवजीबोले कि हे नाथ ! यहांसे याने आपके समीपसे काशीको जाकर यथाशक्ति छलरूप उपायको कियेहुये हजार हाथों (किरणों) वालाभी मैं न कुछ करनेवाले के भावको प्राप्त होगया ॥ ३३ ॥ और

अपने धर्मके रक्षक पृथिवी के पति उस दिवोदास के होतेही मैं क्रीड़ाकारी आपके निश्चित आनेको जानकर यहां टिकाहूं ॥ ३४ ॥ हे देवेश ! उत्तम तुम्हारे आने को परखताहुआ मैं अपनाको बहुतभांति से विभागकर तुम्हारी पूजामे तत्परहूं ॥ ३५ ॥ और कुछेक भक्तिके लवरूप जलो से सींचागया व ध्यानसे फूलाहुआ मेरा मनोरथ वृक्ष आज श्रीमान्के दर्शनसे फलितहुआ ॥ ३६ ॥ इस भांति सूर्य्य के वचनको सुनकर सूर्य्यनेत्रवाले देवदेवेश महेशजी अधिकतासे बोले कि, हे भास्कर ! तुम निश्चय से नहीं अपराध करतेहो ॥ ३७ ॥ जिसलिये उस राजाके राज्यशिक्षा करतेही जिस पुरीमें देवोंका प्रवेश (पैठना) नहीं था इसमें तुम विशेषताके साथ भीतर टिकेहो

हमिहस्थितः ॥ ३४ ॥ प्रतीक्षमाणोदेवेशत्वदागमनमुत्तमम् ॥ विभज्यबहुधात्मानन्त्वदाराधनतत्परः ॥ ३५ ॥ मनोरथद्रुमश्चाद्यफलितःश्रीमदीक्षणात् ॥ किञ्चिद्भक्तिलवाम्भोभिःसिक्तोध्यानेनपुष्पितः ॥ ३६ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यरवेर्वैरविलोचनः ॥ प्रोवाचदेवदेवेशोनापराध्यसिभास्कर ॥ ३७॥ ममैवकार्यंविहितन्त्वंयदत्रऽयवस्थितः ॥ यस्यांसुरप्रवेशोन तस्मिन्राजनिशासति ॥ ३८ ॥ इतिसूरंसमाश्वास्यदेवदेवःकृपानिधिः ॥ गणानाश्वासयामासव्रीडानम्रशिरोधरान् ॥ ३९ ॥ योगिन्योपिसुदृष्ट्याथशम्भुनासम्प्रसादिताः ॥ त्रपाभरसमाक्रान्तकन्धराइवसङ्गताः ॥ ४० ॥ ततोऽयापारयाञ्चक्रेत्र्यक्षोनेत्राणिचक्रिणि ॥ हरिर्नकिञ्चिदप्यूचेसर्वज्ञाग्रेमहामनाः ॥ ४१ ॥ ईशोपिश्रुतवृत्तान्तस्ताक्ष्याद्गणपशार्ङ्गिणोः ॥ मनसैवप्रसन्नोभून्नकिञ्चित्पर्यभाषत ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तागोलोकात्पञ्चधेनवः ॥ सुनन्दासुमनाश्चापिसुशीलासु

इसलिये मेराही कार्य्य कियागयाहै ॥ ३८ ॥ ऐसा सूर्य्यका अच्छा आश्वासनकर दयाके निधान देवोंकेदेव महादेवजी ने लाजसे नयेहुये गलवाले गणोंको आश्वासन किया ॥ ३९ ॥ उसकेबाद लज्जाके भारसे बहुत दबी (नई) हुई ग्रीवावालीसी संगम हुई योगिनियां भी शंकरजी करके अच्छीदृष्टिसे भलीभांति प्रसन्न कीगई ॥ ४० ॥ तदनंतर त्रिनेत्र (शिव) जीने चक्रधारी (विष्णु) जी में नेत्रोंको व्यापार कराया याने उनको देखा और बड़े मनवाले भक्तभयहारी भगवान् ने सर्वज्ञ शंकरजी के आगे कुछ भी नहीं कहा ॥ ४१ ॥ परन्तु गरुड़ से गणेश व विष्णुजी का वृत्तान्त सुनेहुये परमेश्वर भी मनसेही प्रसन्नहुये और सबओरसे कुछ न कहतेभये ॥ ४२ ॥

इसी अन्तरमें पांचगौवें गोलोकसे आकर प्राप्त होगईं सुनन्दा व सुमनाभी व सुशीला तथा सुरभि ॥ ४३ ॥ और सब पापसमूहों को विनाशनेवाली पंचईं कपिला भी थी उन गौवोंके आयन महादेवजीकी वात्सल्यदृष्टिसे चूनेलगे ॥ ४४ ॥ व जबतक कुण्ड हुआ तबतक उनके दुग्धाशय स्तनरूप मेघोंने अखण्ड दूधपूरोंके द्वारा धारा-संपात से बरसा ॥ ४५ ॥ और पार्षदोंने उसकुण्डको दूसरे क्षीरसागरके समान देखा व श्रीमहादेवजी के भलीभांति आधार होनेसे वह उत्तम तीर्थ होगया ॥ ४६ ॥ श्री महादेवजी ने उसका कपिलाकुण्ड ऐसा नाम किया तदनन्तर क्रीड़ाकारी शिवजीकी आज्ञासे सबदेवोंने उसमें नहाया ॥ ४७ ॥ अनंतर उस तीर्थ से दिव्य पितर प्रकट हो

रभिस्तथा ॥ ४३ ॥ पञ्चमीकपिलाचापिसर्वाघौघविघट्टिनी ॥ वात्सल्यदृष्ट्याभर्गस्यतासामूधांसिसुस्नुवुः ॥ ४४ ॥ ववर्षुःपयसाम्पूरैस्तदूधांसिपयोधराः ॥ धारासारैरविच्छिन्नैस्तावद्यावद्ध्रदोऽभवत् ॥ ४५ ॥ पयःपयोधिरिवसद्वितीयःप्रैक्षिपार्षदैः ॥ देवेशसमधिष्ठानात्तत्तीर्थमभवत्परम् ॥ ४६ ॥ कपिलाह्रदइत्याख्याञ्चक्रेतस्यमहेश्वरः ॥ ततोदेवाज्ञयासर्वेस्नातास्तत्रदिवौकसः ॥ ४७ ॥ आविरासुस्ततस्तीर्थादथदिव्यपितामहाः ॥ तान्दृष्ट्वातेसुराःसर्वेतर्पयाञ्चक्रिरेमुदा ॥ ४८ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषदआज्यपाःसोमपास्तथा ॥ इत्याद्यादिव्यपितरस्तृप्ताःशम्भुंव्यजिज्ञपन् ॥ ४९ ॥ देवदेवजगन्नाथभक्तानामभयप्रद ॥ अस्मिंस्तीर्थेत्वदभ्याशाज्जातानस्तृप्तिरक्षया ॥ ५० ॥ तस्माच्छम्भोवरन्देहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ इतिदिव्यपितॄणांसश्रुत्वावाक्यंवृषध्वजः ॥ ५१ ॥ शृण्वतांसर्वदेवानामिदंवचनमब्रवीत ॥ सर्वःसर्वपितॄणांवैपरतृप्तिकरम्परम् ॥ ५२ ॥ श्रीदेवदेवउवाच ॥ शृणुविष्णोमहाबाहोशृणुत्वञ्चपितामह ॥ एतस्मिन्कापिलेतीर्थेकापिलेयपयोभृते ॥ ५३ ॥

गये उनको देखकर उन सब देवोंने आनन्दसे तर्प्पण किया ॥ ४८ ॥ व अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपा और वैसेही सोमपा इत्यादि दिव्य पितरोंने शंकरजीसे विज्ञापना किया ॥ ४९ ॥ कि हे देवोंकेदेव, जगत् के नायक, भक्तोंके अभयदायक ! तुम्हारे समीपसे इस तीर्थमें हमारी अक्षय तृप्ति हुई ॥ ५० ॥ हे शम्भो ! उसलिये आप प्रसन्नमन से हमको वरदानदो इसभांति दिव्य पितरोंका वचन सुनकर वृषकी मूर्त्तिसे चिह्नित ध्वजावाले उन ॥ ५१ ॥ शिवजीने सब देवोंके सुनतेही सब पितरोंका भी बहुत तृप्तिकारी यह उत्तम वचन कहा ॥ ५२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे महाबाहो ! हे विष्णो! हे ब्रह्मन् ! तुम सुनो कि कपिलागौवोंके दूध से भरेहुये इस कापिलेय तीर्थमें ॥ ५३ ॥

जे श्रद्धासमेत श्राद्धदानसे पिण्डापारेंगे उनके पितरोंकी भलीभांति बहुत तृप्ति मेरी आज्ञासे होवेगी ॥ ५४ ॥ व बड़ी तृप्ति करनेवाले उत्तम अन्य विशेषको भी कहताहूं कि अमावस और सोमवारके समायोगमें यहां दियाहुआ श्राद्ध अविनाशी फलवालाहै याने इस तीर्थ में दियेहुये श्राद्ध तर्प्पणादिकोंका फल अक्षयहै ॥ ५५ ॥ व प्रलयकाल के भलीभांति प्राप्तहोतेही समुद्र और सब जलभी क्षीण होजातेहैं परन्तु यहां सोमवारी अमावसमें पितरों के लिये कियागया श्राद्ध तर्प्पणादि सुकर्म कभी नहीं क्षीण होता है ॥ ५६ ॥ जो अमावस और सोमवारके संयोगमें पितरोंको इस कपिलधारा तीर्थमें श्राद्ध मिले या मिलताहै तो गया व पुष्करसे क्याहै ॥ ५७ ॥ हे गदाधर (विष्णो)!

येपिण्डान्निर्वपिष्यन्तिश्रद्धयाश्राद्धदानतः ॥ तेषाम्पितॄणांसन्तृप्तिर्भविष्यतिममाज्ञया ॥ ५४ ॥ अन्यंविशेषंवक्ष्यामिमहातृप्तिकरम्परम् ॥ कुहूसोमसमायोगेदत्तंश्राद्धमिहाक्षयम् ॥ ५५ ॥ संवर्तकालेसम्प्राप्तेजलराशिर्जलान्यपि ॥ क्षीयन्तेनक्षयत्यत्रश्राद्धंसोमकुहूकृतम् ॥ ५६ ॥ अमासोमसमायोगेश्राद्धंयद्यत्रलभ्यते ॥ तीर्थेकापिलधारेस्मिन् गययापुष्करेणकिम् ॥ ५७ ॥ गदाधरभवान्यत्रयत्रत्वञ्चपितामह ॥ वृषध्वजोस्म्यहंयत्रफल्गुस्तत्रनसंशयः ॥ ५८ ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानियानितीर्थानिसर्वतः ॥ तान्यत्रनिवसिष्यन्तिदर्शेसोमदिनान्विते ॥ ५९ ॥ कुरुक्षेत्रेनैमिषेच गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ग्रहणेश्राद्धतोयत्स्यात्तत्तीर्थेवार्षभध्वजे ॥ ६० ॥ अस्यतीर्थस्यनामानियानिदिव्यपितामहाः ॥ तान्यहङ्कथयिष्यामिभवतान्तृप्तिदान्यलम् ॥ ६१ ॥ मधुस्रवेतिप्रथममेषापुष्करिणीस्मृता ॥ कृतकृत्याततोज्ञेयाततोऽसौक्षीरनीरधिः ॥ ६२ ॥ वृषभध्वजतीर्थञ्चतीर्थम्पैतामहन्ततः ॥ ततोगदाधराख्यञ्चपितृतीर्थन्ततःपरम् ॥ ६३ ॥

जहां आपहैं व हे ब्रह्मन् ! जहां तुमहो और जहां वृषध्वज मैंहूं वहां फल्गुनदी है इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥ व स्वर्ग अंतरिक्ष और भूमिके जे तीर्थ हैं वे सब सोमवार समेत अमावस मे यहां बसेंगे ॥ ५९ ॥ कुरुक्षेत्र नैमिषारण्य गंगासागरसंगम और ग्रहणसमय में श्राद्धसे जो फलहै वह वृषध्वज के तीर्थ में होवे है ॥ ६० ॥ हे दिव्य पितरो ! इस तीर्थ के जे नाम आपके बहुतही तृप्तिदायकहैं उनको मैं कहूंगा ॥ ६१ ॥ पहले यह पुष्करिणी मधुस्रवा ऐसा कहीगई है तदनन्तर कृतकृत्या जाननेयोग्य है उसके बाद यह क्षीरनीरधि इस नामसे प्रसिद्धहै ॥ ६२ ॥ तदनन्तर वृषभध्वजतीर्थ व पैतामहतीर्थ फिर गदाधरनामक तीर्थ है उसके उपरांत पितृतीर्थ है ॥ ६३ ॥

उसके बाद कपिलधाराहै फिर यह सुधाखानिहै तदनन्तर यह शुभ तीर्थ शिवगयानाम जाननेयोग्यहै ॥ ६४ ॥ हे पितरो! इस तीर्थ के ये दश नाम श्राद्ध और तर्पणोंके विना भी आप लोगोंकी तृप्तिकरनेवाले हैं ॥ ६५ ॥ इसलिये पितरों की तृप्तिके चाही जे लोग सूर्य्य व चन्द्रमाके संगममें याने अमावस तिथिमें यहां ब्राह्मणोंको खिलावें पिलावेंगे उनके श्राद्ध तर्पणादि पितृकर्म अनन्त फलवाले होवेंगे ॥ ६६ ॥ व जे पितरोंकी संतृप्तिके लिये श्राद्धमें यहां शुभ कपिला गऊको देवेंगे उनके पितरों का गण (समूह) क्षीरसागरके तीरमें बसेगा ॥ ६७॥ व जिन्होंने इस वृषभध्वजके तीर्थ में वृषोत्सर्ग किया उसने अश्वमेधयज्ञमें होमनेयोग्य पवित्र वस्तुसे पितरोंको तृप्तकिया ॥६८॥ हे पितरो!

ततःकापिलधारंवैसुधाखनिरियम्पुनः॥ततःशिवगयाख्यञ्चज्ञेयन्तीर्थमिदंशुभम्॥६४॥एतानिदशनामानितीर्थस्यास्य पितामहाः॥ भवतान्तृप्तिकारीणिविनापिश्राद्धतर्पणैः॥६५॥सूर्येन्दुसङ्गमेयेत्रपितॄणांतृप्तिकामुकाः ॥ ब्राह्मणान्भोजयिष्यन्तितेषांश्राद्धमनन्तकम् ॥ ६६ ॥ श्राद्धेपितॄणांसन्तृप्त्यैदास्यन्तिकपिलांशुभाम् ॥ येन्नतेषांपितृगणोवसेत्क्षीरोदरोधसि ॥ ६७॥ वृषोत्सर्गःकृतोयैस्तुतीर्थेस्मिन्वार्षभध्वजे ॥ अश्वमेधपुरोडाशैःपितरस्तेनतर्पिताः ॥ ६८ ॥ गयातोष्टगुणम्पुण्यमस्मिंस्तीर्थेपितामहाः ॥ अमायांसोमयुक्तायांश्राद्धैःकापिलधारिके ॥ ६९ ॥ येषाङ्गर्भेऽभवत्स्रावोयेऽदन्तजननामृताः॥ तेषांतृप्तिर्भवेन्नूनन्तीर्थेकापिलधारिके॥ ७० ॥ अदत्तमौञ्जीदानायेयेचादारपरिग्रहाः ॥ तेभ्योनिर्वापितंपिण्डमिहह्यक्षयतांव्रजेत् ॥ ७१ ॥ अग्निदाहमृतायेवैनाग्निदाहश्चयेषुवै ॥ तेसर्वेतृप्तिमायान्तितीर्थेकापिलधारिके ॥ ७२ ॥ और्ध्वदैहिकहीनायेषोडशश्राद्धवर्जिताः ॥ तेतृप्तिमधिगच्छन्तिघृतकुल्यान्निवापतः ॥ ७३ ॥ अपुत्राश्चमृतायेवै

सोमवार समेत अमावस तिथिमें इस कापिलधारिक तीर्थ के समीप श्राद्धों से गयासे आठगुना अधिक पुण्यहै ॥ ६९ ॥ और जिनका गर्भ में स्राव होगया है तथा जे विना दांतजमे मरगये हैं उनकी तृप्ति निश्चयकरके कापिलधारिक तीर्थ में होती है ॥७०॥ और जिनको मौंजीदान नहीं दियागया याने यज्ञोपवीत कर्म नहीं भया व जिन्होंने स्त्री का ग्रहण नहीं किया याने विना ब्याहे मरगये हैं उनके लिये भी यहां दियाहुवा पिंडा अक्षयभावको प्राप्तहोवे ॥ ७१ ॥ व जे अग्निदाहसे मरे हैं और जिनका अग्निदाह भी नहीं भया वे सब इस कापिलधारिक तीर्थ में तृप्तिको सबओरसे प्राप्त होते हैं ॥ ७२ ॥ जे और्ध्वदैहिक (मरने के बाद करने योग्य दाह दशगात्रादिकर्म) से हीन हैं

व जे षोड़शी आदि सोलह श्राद्धों से वर्जित हैं वेभी इस घृतकुल्या तीर्थमें पिंडदानसे तृप्तिको अधिकतासे प्राप्त होजाते हैं ॥ ७३ ॥ जे विना पुत्रके मरगये हैं व जिनका तिलजलांजलि देनेवाला कोई नहीं है वेभी इस मधुस्रवस तीर्थ में तर्पितहोकर बड़ी उत्तम तृप्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ७४ ॥ और जे चोर बिजुली व जलमें डूबना आदि अपमृत्युमे मरेहैं उनकेलिये भी यहां कियाहुवा श्राद्ध तर्पणादिकर्म अच्छीगति देनेवाला होता है ॥ ७५ ॥ व इस लोक में जिन कुकर्मियों का आत्मघात से मरना हुवाहै वेभी यहां शिवगयामें कियेहुये पिंडो से तृप्तिको पाते हैं ॥ ७६ ॥ जे पिताके गोत्रमें मरे हैं व जे माताके पक्ष में (नाना आदि) मरे हैं उनके लिये भी यहां किया हुवा पिंडदान

येषांनास्त्युदकप्रदः ॥ तेपितृप्तिंपरांयान्तिमधुस्रवसितर्पिताः ॥ ७४ ॥ अपमृत्युमृतायेवैचोरविद्युज्जलादिभिः ॥ तेषामिहकृतंश्राद्धञ्जायतेसुगतिप्रदम् ॥ ७५ ॥ आत्मघातेननिधनंयेषामिहविकर्मणाम् ॥ तेपितृप्तिंलभन्तेत्रपिण्डैःशिवगयाकृतैः ॥ ७६ ॥ पितृगोत्रेमृतायेवैमातृपक्षेचयेमृताः ॥ तेषामत्रकृतःपिण्डोभवेदक्षयतृप्तिदः ॥ ७७ ॥ पत्नीवर्गेमृतायेवैमित्रवर्गेचयेमृताः ॥ तेसर्वेतृप्तिमायान्तितर्पितावार्षभध्वजे ॥७८॥ ब्रह्मक्षत्रविशांवंशेशूद्रवंशेऽन्त्यजेषुच ॥ येषांनामगृहीत्वात्रदीयतेतेसमुद्धृताः ॥ ७९ ॥ तिर्यग्योनिमृतायेवैयेपिशाचत्वमागताः ॥ तेप्यूर्ध्वगतिमायान्तितृप्ताःकापिलधारिके ॥८०॥ येतुमानुषलोकेस्मिन्पितरोमर्त्ययोनयः॥तेदिव्ययोनयःस्युर्वैमधुस्रवसितर्पिताः ॥ ८१ ॥ येदिव्यलोकेपितरःपुण्यैर्देवत्वमागताः ॥ तेब्रह्मलोकंगच्छन्तितृप्तास्तीर्थेवृषध्वजे ॥८२॥ कृतेक्षीरमयन्तीर्थंत्रेतायांमधुमत्पुनः॥

अक्षय तृप्तिका दाता होवे है ॥ ७७ ॥ व जे स्त्री के वर्ग में मरेहैं और जे मित्रवर्ग में भी मरे हैं वे सब इस वार्षभध्वजतीर्थ में तर्पित होकर तृप्तिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ७८ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्योंके वंशमें व शूद्रोंके वंश में और अंत्यजों मे भी जिनका नाम लेकर यहां पिंडा पानी दियाजाताहै वे भलीभांति उद्धारेजाते हैं ॥ ७९ ॥ जे तिर्य्यग्योनि याने पशु आदि योनियो में मरे हैं व जे पिशाच भावको भी प्राप्तहैं वेभी कापिलधारिक तीर्थ में तृप्तहोकर ऊंची गतिको जाते हैं ॥ ८० ॥ और जे पितर इस मनुष्यलोक में मनुष्ययोनिवाले हैं वे भी इस मधुस्रवसतीर्थ में तर्पितहोकर दिव्ययोनि होजावें ॥ ८१ ॥ व जे पितर पुण्योंसे देवलोकमें देवभावको प्राप्तहैं और वृषध्वज तीर्थमें तृप्तहुये

हैं याने इस तीर्थ में जिनका तर्पण कियागयाहै वे ब्रह्मलोकमें चलेजाते हैं ॥ ८२ ॥ यह तीर्थ सतयुगमें दूधमय फिर त्रेतामें शहदसमेत व द्वापरमें घृतसे पूर्ण और कलि-युग में जलमय होवे है ॥ ८३ ॥ सीमाके बाहरमें भी प्राप्त यह शुभ श्रेष्ठ तीर्थ मेरा समीप होनेसे काशीके बीचमें मनुष्यों से जाननेयोग्य है ॥ ८४ ॥ हे पितरो ! जिससे काशी में टिकेहुये जनों से बैलकी मूर्ति से चिह्नित मेरी ध्वजा देखीगई है इसलिये वृषध्वज नाम से मैं यहां टिकूंगा ॥ ८५ ॥ और हे पितरो ! ब्रह्मासे सहित व विष्णु समेत मैं सूर्य्य और गणोंके साथ तुम्हारी तुष्टिके लिये यहां रहूंगा ॥ ८६ ॥ इसभांति जबतक शिवजी पितरोंको वरदेते हैं तबतक भलीभांति आकर व परमेश्वरके प्रणाम

द्वापरेसर्पिषापूर्णंकलौजलमयंभवेत् ॥ ८३ ॥ सीमाबहिर्गतमपिज्ञेयन्तीर्थमिदंशुभम् ॥ मध्येवाराणसिश्रेष्ठम्ममसान्निध्यतोनरैः ॥ ८४ ॥ काशीस्थितैर्यतोदर्शिध्वजोमेवृषलाञ्छनः ॥ वृषध्वजेननाम्नातःस्थास्याम्यत्रपितामहाः ॥ ८५ ॥ पितामहेनसहितोगदाधरसमन्वितः ॥ रविणापार्षदैःसार्धन्तुष्टयेवःपितामहः ॥ ८६ ॥ इतियावद्वरंदत्तेपितृभ्योवृषभध्वजः ॥ तावन्नन्दीसमागत्यप्रणम्येशंव्यजिज्ञपत् ॥ ८७ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ विहितःस्यन्दनःसज्जस्ततोस्तुविजयोदयः ॥ अष्टौकण्ठीरवायत्रयत्रोक्षणामष्टकंशुभम् ॥ ८८ ॥ यत्रेभाःपरिभान्त्यष्टौयत्राष्टौजविनोहयाः ॥ मनःसंयमनंयत्रकशापाणिव्यवस्थितम् ॥ ८९ ॥ गङ्गायमुनयोरीषेचक्रेपवनदेवता ॥ सायंप्रातर्मयेचक्रेछत्रंद्योमण्डलंशुचि ॥ ९० ॥ तारावलीमयाःकीलाअहेयाउपनायकाः ॥ श्रुतयोमार्गदर्शिन्यःस्मृतयोरथगुप्तयः ॥ ९१ ॥ दक्षिणाधूर्दढायत्रम

कर नन्दीश्वरने विज्ञापना किया ॥ ८७ ॥ नन्दीश्वर बोले कि उचित रथ साजागयाहै उससे विजयका उदयहोवे जिस रथमें आठ सिंहहैं (प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी) व जिसमें आठ शुभ बैलहैं (त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा, अस्थि, शुक्र) ॥ ८८ ॥ व जिसमें आठ हाथी सबओरसे सोहते हैं (दिग्गज याने ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम, सुप्रतीक) व जिसमें आठ वेगवान् घोडे हैं (चित्त, अहंकार, बुद्धि और पांच ज्ञानेन्द्रिय याने श्रवण, चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक्) व जिसमें वृत्तिरूप कोड़ाको हाथमें लिये हुआ मन सारथि बैठाहै ॥ ८९ ॥ व गंगा और यमुना रथकी दंडी (फरी) हैं व प्रतिचक्रमें पवन देवता है व जिसमें संध्या और प्रातःकालमय चक्र (पैहा) हैं व पवित्र द्योमंडल छत्र है ॥ ९० ॥ व ताराओं की पंक्तिमय कीले हैं व सर्प बंधनकी रस्सी हैं व वेद

मार्ग दिखानेवाले हैं व स्मृतियां रथके वरूथहैं ॥ ९१ ॥ व जिसमें दक्षिणा दृढ धूरी है व जिसमें यज्ञ सबओरसे रक्षकहैं व जिसमें ॐकार आसन है व गायत्री पादपीठ
की भूमि है ॥ ९२ ॥ व जिसमें व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प, शिक्षा और छन्दोलक्षण इन अंगोंसमेत भूः भुवः स्वः व्याहृतियां शुभ सीढ़ीकी गलीहैं व जिसमें च-
न्द्रमा और सूर्य्य निरन्तर द्वारके रक्षकहैं ॥ ९३ ॥ व अग्नि मकराकार तुण्डहै व चांदनीमयी रथकी भूमिहै व महामेरु ध्वजाका दण्डहै व सूर्य्यकी प्रभा पताकाहै ॥ ९४ ॥
और जिसमें वाग्देवता (श्रीसरस्वती) आपही चमकते या चलतेहुये चामरकी धारण करनेवाली हैं श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, इसभांति नंदीश्वरसे विज्ञापना कियेहुये,

सूर्या
खायत्राभिरक्षकाः ॥ आसनंप्रणवोयत्रगायत्रीपादपीठभूः ॥९२ ॥ साङ्गाव्याहृतयोयत्रशुभाःसोपानवीथिकाः ॥ सूर्या
चन्द्रमसौयत्रसततन्द्वाररक्षकौ ॥ ९३ ॥ अग्निर्मकरतुण्डश्चरथभूःकौमुदीमयी ॥ ध्वजदण्डोमहामेरुःपताकाहस्कर
प्रभा ॥ ९४ ॥ स्वयंवाग्देवतायत्रचञ्चच्चामरधारिणी ॥ स्कन्दउवाच ॥ शैलादिनेतिविज्ञप्तोदेवदेवउमापतिः ॥ ९५ ॥
कृतनीराजनविधिरष्टभिर्देवमातृभिः ॥ पिनाकपाणिरुत्तस्थौदत्तहस्तोथशार्ङ्गिणा ॥ ९६ ॥ निनादोदिव्यवाद्यानांरो
दसीपर्य्यपूरयत् ॥ गीतमङ्गलगीर्भिश्चचारणैरनुवर्धितः ॥ ९७ ॥ तेनदिव्यनिनादेनबधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥ आहूताइव
आजग्मुर्विष्वग्भुवनवासिनः ॥ ९८ ॥ देवाःकोट्यस्त्रयस्त्रिंशद्गणाःकोट्ययुतद्वयम् ॥ नवकोट्यस्तुचामुण्डाभैरव्यःकोटि
सम्मिताः ॥ ९९ ॥ षडाननाःकुमाराश्चमयूरवरवाहनाः॥ ममानुगाःसमायाताःकोटयोष्टौमहाबलाः ॥ १०० ॥ आययुः

देवदेव, पार्वतीपति महादेवजी ॥ ९५ ॥ कि जिनकी नीराजनविधि (आरती) को आठ मातृकाओंने (ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री,वाराही,नारसिंही, कौमारी, माहेन्द्री, चामुण्डा,
चण्डिका अथवा जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, सिद्धा, रक्ता, अलंबुपा) किया है अनन्तर विष्णुने जिनको हाथ दियाहै वह पिनाक हाथवाले विश्वनाथजी उठते
भये ॥ ९६ ॥ तब गीत व मंगल वचनो के द्वारा चारणों से पीछे बढ़ायाहुवा दिव्य बाजोंका जो शब्दहै उसने द्यावाभूमि के अन्तरको सब ओरसे पूरा करादिया ॥ ९७ ॥
और उस दिव्य शब्द से दिशाओं के मुखोंको बधिर कियेहुये सब ओर लोको के वासी बुलायेहुये के समान आनकर प्राप्तभये ॥ ९८ ॥ तेंतीस करोड़ देव, बीसहजार
करोड़ गण, नवकरोड चामुण्डा और करोडसख्यक भैरवी ॥ ९९ ॥ व मयूरवरवाहनवाले पण्मुख कुमार और बडे बलवान् आठकरोड मेरे अनुगामी सेवक ये सब भली

भांति आये ॥ १०० ॥ व चमकतेहुये फररा हाथवाले, बड़े वेगवान् तुँदारे, विघ्नविनाशी सातकरोड़ गजमुख (गणेश) जी आये ॥ १ ॥ व छियासीहजार ब्रह्मवादी मुनि और उतनेही अन्य गृहस्थ भी मुनि वहां भली भांति आये ॥ २ ॥ व पातालतलके बसनेवाले तीनकरोड़ नाग व दोकरोड़ दानव और दो दो करोड़ शिवभक्त दैत्य ॥ ३ ॥ और आठ करोड़ गन्धर्व व पचासलाख यक्ष व राक्षस व दोलाखसमेत दशहजार विद्याधर ॥ ४ ॥ तथा साठिसहस्र शुभ, दिव्य, अप्सरायें व आठलाख गौ-ओंकी मातायें व साठिहजार अच्छे पक्षोंवाले, या गरुड़के वंशमे उपजेहुये पक्षी ॥ ५ ॥ और अनेक भांतिके रत्न भेंट देनेवाले सातसमुद्र भी भलीभांति प्राप्तहुये व तिरपन

कोटयःसप्तस्फुरत्परशुपाणयः ॥ पिचण्डिलामहावेगाविघ्नविघ्नागजाननाः ॥ १ ॥ षडशीतिसहस्राणिमुनयोब्रह्मवादिनः ॥ तावन्तोपिसमाजग्मुस्तत्रान्येगृहमेधिनः ॥ २ ॥ नागानाङ्कोटयस्तिस्रःपातालतलवासिनाम् ॥ दानवानाञ्चदैत्यानांद्वेद्वेकोटीशिवात्मनाम् ॥ ३ ॥ गन्धर्वानियुतान्यष्टौकोट्यर्धंयक्षरक्षसाम् ॥ विद्याधराणामयुतंनियुतद्वयसंयुतम् ॥ ४ ॥ तथाषष्टिसहस्राणिदिव्याश्चाप्सरसःशुभाः ॥ गोमातरोऽष्टौलक्षाणिसुपर्णान्ययुतानिषट् ॥ ५ ॥ सागराःसप्तसम्प्राप्तानानारत्नोपदप्रदाः ॥ सरिताञ्चसहस्राणित्रीणिपञ्चायुतानिच ॥ ६ ॥ गिरयोऽष्टौसहस्राणिवनस्पतिशतत्रयम् ॥ आजग्मुर्दिग्गजाश्चाष्टौयत्रदेवःपिनाकधृक् ॥ ७ ॥ एतैःसमेतःसन्तुष्टःपरिष्टुतइतस्ततः ॥ श्रीकण्ठोरथमारुह्यकाशींप्राविशदुत्तमाम् ॥ ८ ॥ सगिरीन्द्रसुतस्त्र्यक्षोमुदांधाममुधाङ्कनिः ॥ काशींप्रैक्षिष्टसंहृष्टस्त्रिविष्टपसमुत्कटाम् ॥ ९ ॥ स्कन्द उवाच ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यङ्कोटिजन्माघनाशनम् ॥ पठित्वापाठयित्वाचशिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १० ॥ श्राद्धका

हजार नदियां ॥ ६ ॥ व आठहजार पर्वत व तीनसौ वनस्पति (जिनमें फूल विना फल लगते हैं) और आठ दिशाओं के हाथी ये सब जहां पिनाकधारी क्रीड़ाकारी शिवजी रहैं वहां आतेभये ॥ ७ ॥ इन सबों से समेत व ऐसी वैसी प्रशंसितहुये संतुष्ट शिवजीने रथपर चढ़कर उत्तम काशीपुरी में प्रवेश किया ॥ ८ ॥ और परमार्थों के स्थान आनन्दों के निधान श्रीपार्वतीसमेत सन्तुष्टहुये त्रिनेत्र शिवजीने स्वर्ग से भी बड़ीविचित्र श्रीकाशीपुरीको देखा ॥९॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, करोड़ो जन्मों के पाप पछाड़नेवाले पुण्यरूप अनूप इस आख्यानको सुनकर और पढ़कर व पढ़ाकर शिवजीकी सायुज्यमुक्ति को प्राप्तहोवे ॥ १० ॥ और श्राद्ध समयमें बड़ेयत्नके साथ विशेष

पढ़ना चाहिये क्योंकि वह श्राद्ध पितरों की तृप्ति करनेवाला उत्तम और अक्षय (अविनाशी) होजाता है ॥ ११ ॥ व शिवजी के समीप में प्रतिदिन एक वर्ष समयतक वृषभध्वज के माहात्म्यको पढ़कर पुत्रसे हीन भी जन पुत्रवान् होवेहै ॥ १२ ॥ जोकि काशी मे विश्वेश्वरजीका भलीभांति प्रवेश कहागया यह परमानन्दकन्दका अच्छा निश्चितबीजहै ॥१३॥ और जोकि इस आख्यानको आनन्दसे पढ़कर नये घरमें प्रवेशकरे वह सब सौख्योंका स्थानही होवे इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ यह उत्तम आख्यान त्रिलोकका आनंद उपजानेवालाहै इसके सुननेमात्रसेही विश्वनाथजी भलीभांति प्रसन्न होते हैं ॥ १५ ॥ जिसलिये इसमेंही महादेवजीका श्रेष्ठ अलभ्य लाभहुवाहै उसलिये

लेविशेषेणपठनीयम्प्रयत्नतः ॥ अक्षयन्तद्भवेच्छ्राद्धंपितृतुष्टिकरम्परम् ॥ ११ ॥ वृषभध्वजमाहात्म्यंपठित्वाशिवसन्निधौ ॥ प्रत्यहंवर्षमात्रन्तुह्यपुत्रःपुत्रवान्भवेत ॥ १२ ॥ विश्वेशितुःसम्प्रवेशोयःकाश्यांसमुदाहृतः ॥ परमानन्दकन्दस्य बीजमेतत्सुनिश्चितम् ॥ १३ ॥ पठित्वैतन्मुदाख्यानम्प्रविशेद्योनवंगृहम् ॥ ससर्वसौख्यनिलयोभवेदेवनसंशयः ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यानन्दजनकमेतदाख्यानमुत्तमम् ॥ अस्यश्रवणमात्रेणविश्वेशःसंप्रसीदति ॥ १५ ॥ अलभ्यलाभोदेवस्यजातोत्रहियतःपरः ॥ ततःकाशीप्रवेशाख्यञ्जप्यमाख्यानमुत्तमम् ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवृषभध्वजप्रादुर्भावोनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ दृष्ट्वाकाशींदृगानन्दान्तारकारेपुरारिणा ॥ किमकारिसमाचक्ष्वप्राप्ताम्बहुमनोरथैः ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ पतिव्रतापतेऽगस्त्यशृणुवक्ष्याम्यशेषतः ॥ मृगाङ्कलक्ष्मणोत्कण्ठङ्काशीनेत्रातिथीकृता ॥ २ ॥ अथसर्वज्ञना

काशीप्रवेशनामक उत्तमआख्यान जपने योग्यहै॥११६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डेभाषाचन्द्रेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेवृषभध्वजप्रादुर्भावोनामद्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

दो० । तिरसठयें अध्यायमें महिमायुत ज्येष्ठेश । जैगीषव्यमुनीन्द्रपर करुणा कीन महेश ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे तारकासुर के वैरिन् ! आंखो को आनंद देने वाली व बहुते मनोरथों से प्राप्तहुई काशीपुरी को देखकर त्रिपुरविनाशी अविनाशी शिवजीने क्या किया उसको तुम भलीभांति सब ओरसे कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, हे पतिव्रतापते, अगस्त्यजी ! तुम सुनो मैं सकल वृत्तांत को कहूंगा कि चंद्रलाञ्छनवाले शिवजीने उत्कंठासमेत जब काशीको आंखोकी अतिथि किया

याने उसको देखा ॥ २ ॥ तदनंतर सर्वज्ञों के नाथ व भक्तवत्सलतासंयुत मनवाले महेशजीने कंदरा के भीतर टिकेहुये, मुनिश्रेष्ठ जैगीषव्यजी को देखा ॥ ३ ॥ और जिस कालको लगाकर वृषेन्द्रवाहनगामी रुद्रजी पार्वतीजी के साथ मंदराचल को विशेषसे निकलगये थे ॥ ४ ॥ हे कुंभसंभव ! उस दिनको आगेकर बड़े बुद्धिमान् परमपुण्यवान् जैगीषव्यजीने दृढ़ नियम को ग्रहण किया ॥ ५ ॥ कि जब मैं त्रिनेत्र शिवजी के चरणारविंद को फिर देखूंगा तबहीं पानी का बूँद भी पान करूंगा ऐसा आश्चर्य्य है ॥ ६ ॥ हे मुने ! किसी धारणा के योगसे अथवा शिवजीकी दयासे न खाते व न पीते हुयेभी योगीन्द्र जैगीषव्य वहां टिकेहुये थे ॥ ७ ॥ उनको शंकरजी ही

थेनभक्तवत्सलचेतसा ॥ जैगीषव्योमुनिश्रेष्ठोगुहान्तस्थोनिरीक्षितः ॥ ३ ॥ यमनेहसमारभ्यमन्दराद्रिंविनिर्ययौ ॥ अद्रीन्द्रसुतयासार्धंरुद्रेणोक्षेन्द्रगामिना ॥ ४ ॥ तंवासरम्पुरस्कृत्यजग्राहनियमंदृढम् ॥ जैगीषव्योमहामेधाःकुम्भयोनेमहाकृती ॥ ५ ॥ विषमेक्षणपादाब्जंसमीक्षिष्येयदापुनः ॥ तदाम्बुविप्रुषमपिभक्षयिष्यामिचेत्यहो ॥ ६ ॥ कुतश्चिद्धारणायोगादथवाशम्भ्वनुग्रहात् ॥ अनश्नन्नपिबन्योगीजैगीषव्यःस्थितोमुने ॥ ७ ॥ तंशम्भुरेवजानातिनान्योजानातिकश्चन ॥ अतएवततःप्राप्तःप्रथमम्प्रमथाधिपः ॥ ८ ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यांसोमवारानुराधयोः ॥ तत्पर्वणिमहायात्राकर्तव्यातत्रमानवैः ॥ ९ ॥ ज्येष्ठस्थानन्ततःकाश्यांतदाभूदपिपुण्यदम् ॥ तत्रलिङ्गंसमभवत्स्वयंज्येष्ठेश्वराभिधम् ॥ १० ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसांपापञ्जन्मशतार्जितम् ॥ तमोर्कोदयमाप्येवतत्क्षणादेवनश्यति ॥ ११ ॥ ज्येष्ठवाप्यान्नरःस्नात्वातर्पयित्वापितामहान् ॥ ज्येष्ठेश्वरंसमालोक्यनभूयोजायतेभुवि ॥ १२ ॥ आविरासीत्स्वयन्तत्रज्येष्ठेश्वरसमी

जानते थे और अन्य कोई भी नहीं जानताथा इससेही गणों के नाथ विश्वनाथजी पहले वहां प्राप्तहुये ॥ ८ ॥ और जेठसुदी चतुर्दशी सोमवार और अनुराधा नक्षत्रमें जो उनकी पर्व है उसमें वहां मनुष्यों को महायात्रा करनाचाहिये ॥ ९ ॥ उसलिये तब काशीमें पुण्यदायक ज्येष्ठस्थान भी होगया और वहां ज्येष्ठेश्वर नामक लिंग आपहीं आप भलीभांति होताभया ॥ १० ॥ उस लिंग के दर्शनसेही मनुष्यों के सैकड़ों जन्मों का बटोरा हुवा पाप सूर्य्योदय को प्राप्त होकर अंधकार की नाईं उसी क्षणमें ही नष्ट होजाता है ॥ ११ ॥ व ज्येष्ठवापी में स्नानकर व पितरों का तर्प्पणकर और ज्येष्ठेश्वर को भलीभांति देखकर नर फिर पृथिवीमें नहीं उत्पन्न होताहै ॥ १२ ॥ और वहां

ज्येष्ठेश्वर के समीप मे सब ओर से सबको या सब सिद्धि देनेवाली श्रेष्ठा ज्येष्ठा गौरी आपही प्रकट होगई हैं ॥ १३ ॥ इससे सब संपत्ति की समृद्धि के लिये ज्येष्ठमास की सुदी अष्टमी में वहां महोत्सव करनाचाहिये और रात्रिमें जागरण करनाचाहिये ॥ १४ ॥ व ज्येष्ठवापी में स्नान कियेहुई अभाग्यसेविनी भी स्त्री ज्येष्ठा गौरी के नमस्कारकर सौभाग्यका पात्र होजावे ॥ १५ ॥ और जिससे शंभुजीने आपही उस स्थानमें निवास किया उसलिये निवासेश्वर ऐसा कहागयाहुवा अन्य उत्तमलिंग वहां होगया ॥ १६ ॥ उस निवासेश्वर लिंगकी सेवासे सब संपत्तियां नित्यही घरमें बसती हैं फिर नित्यपद के प्रति निवास करती हैं याने मोक्षसंपत्तियां भी प्राप्त होजाती हैं ॥ १७ ॥ व ज्येष्ठस्थान

पतः ॥ सर्वसिद्धिप्रदागौरीज्येष्ठाश्रेष्ठासमन्ततः ॥ १३ ॥ ज्येष्ठेमासिसिताष्टम्यांतत्रकार्योमहोत्सवः ॥ रात्रौजागरणंकार्यंसर्वसम्पत्समृद्धये ॥ १४ ॥ ज्येष्ठाङ्गौरींनमस्कृत्यज्येष्ठवापीपरिप्लुता ॥ सौभाग्यभाजनम्भूयाद्योषासौभाग्यभागपि ॥ १५ ॥ निवासंकृतवाञ्छम्भुस्तस्मिन्स्थानेयतःस्वयम् ॥ निवासेशइतिख्यातंलिङ्गंतत्रपरन्ततः ॥ १६ ॥ निवासेश्वरलिङ्गस्यसेवनात्सर्वसम्पदः ॥ निवसन्तिगृहेनित्यन्नित्यंप्रतिपदम्पुनः ॥ १७ ॥ कृत्वाश्राद्धंविधानेनज्येष्ठस्थानेनरोत्तमः ॥ ज्येष्ठांतृप्तिंददात्येवपितृभ्योमधुसर्पिषा ॥ १८ ॥ ज्येष्ठतीर्थेनरःकाश्यांदत्त्वादानानिशक्तितः ॥ ज्येष्ठान्स्वर्गानवाप्नोतिनरोमोक्षञ्चगच्छति ॥ १९ ॥ ज्येष्ठेश्वरोर्च्यःप्रथमङ्काश्यांश्रेयोर्थिभिर्नरैः ॥ ज्येष्ठागौरीततोभ्यर्च्यासर्वज्येष्ठमभीप्सुभिः ॥ २० ॥ अथनन्दिनमाहूयधूर्जटिःसकृपानिधिः ॥ शृण्वतांसर्वदेवानामिदंवचनमब्रवीत ॥ २१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शैलादेप्रविशाशुत्वंगुहास्त्यत्रमनोहरा ॥ तदन्तरेस्तिमेभक्तोजैगीषव्यस्तपोधनः ॥ २२ ॥ महानियमवा

में शहद और घृतसे विधिपूर्वक श्राद्धकोकर नरोत्तम पितरोंको ज्येष्ठ (श्रेष्ठ) तृप्तिदेताहै यह निश्चय है ॥ १८ ॥ और काशीमें ज्येष्ठतीर्थ के समीप अपनी शक्ति के अनुसार दानको देकर मनुष्य श्रेष्ठ स्वर्गों को प्राप्तहोता है फिर नेता (स्वामी) होकर मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ १९ ॥ काशी में कल्याणचाही मनुष्यों को पहले ज्येष्ठेश्वर की पूजा करनाचाहिये तदनंतर सब श्रेष्ठ फल चाहियोंको ज्येष्ठागौरी की पूजा करनाचाहिये ॥ २० ॥ अनंतर नंदीश्वर को बुलाकर उन कृपानिधान शिवजीने सब देवों के सुनतेही इसवचन को कहा ॥ २१ ॥ श्रीमहेश्वरजी बोले कि हे शिलादके पुत्र, नंदिन् ! जो यहां मनोहर कन्दराहै उसमें तुम शीघ्रही पैठजावो क्योंकि उसके भीतर तपस्या का धनी

जैगीषव्य नामक मेरा भक्तहै ॥ २२ ॥ हे नंदिन्! जोकि बड़ा नियमी है व जिसकी देह में चर्म हाड़ और नसें शेष रहगई हैं व जिसके मेरे दर्शनके लिये दृढ़व्रत है उस मेरे भक्तको तुम यहां आनलावो ॥ २३ ॥ जबसे लगाकर मैं काशीसे सब सुन्दर कन्दरवाले मन्दर पर्वतको चलागया हूं तब से लगाकर भोजन को त्यागेहुवा यह महानियमवान् है ॥ २४ ॥ तुम अमृतके समान पोषनेहारे इस लीलाकमलको लो और बहुत वृद्धि करनेवाले इस कमलसे शीघ्रही उसके अंगोंको छुवो ॥ २५ ॥ तदनन्तर नन्दीश्वरजी ने समर्थ शिवजीका वह लीलाकमल लेकर व देवोंकेदेव महादेवजी के प्रणामकर उस गहरी गुफामें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ अनन्तर तपस्यारूप

न्नन्दिस्त्वगस्थिस्नायुशेषितः ॥ तमिहानयमद्भक्तम्मद्दर्शनदृढव्रतम् ॥ २३ ॥ यदाप्रभृत्यगाङ्काश्यामन्दरंसर्वसुन्दरम् ॥ महानियमवानेषतदारभ्योज्झिताशनः ॥ २४ ॥ गृहाणलीलाकमलमिदम्पीयूषपोषणम् ॥ अनेनतस्यगात्राणिस्पृश सद्यःसुबृंहिणा ॥ २५ ॥ ततोनन्दीसमादायतल्लीलाकमलंविभोः ॥ प्रणम्यदेवदेवेशमाविशद्गह्वरांगुहाम् ॥ २६ ॥ नन्दी दृष्ट्वाथतन्तत्रधारणादृढमानसम् ॥ तपोग्निपरिशुष्काङ्गंकमलेनसमस्पृशत् ॥ २७ ॥ तपान्तेवृष्टिसंयोगाच्छालूरइव कोटरे ॥ उल्ललाससयोगीन्द्रःस्पर्शमात्रात्तदब्जजात् ॥ २८ ॥ अथनन्दीसमादायसत्वरम्मुनिपुङ्गवम् ॥ देवदेवस्य पादाग्रेनमस्कृत्यन्यपातयत् ॥ २९ ॥ जैगीषव्योथसम्भ्रान्तःपुरतोवीक्ष्यशङ्करम् ॥ वामाङ्गसन्निविष्टाद्रितनयम्प्रणनाम ॥ ३० ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमौपरिलुठ्यसमन्ततः ॥ तुष्टावपरयाभक्तयासमुनिश्चन्द्रशेखरम् ॥ ३१ ॥ जैगीषव्यउवाच ॥

अग्नि से सब ओर सूखे अंगोंवाले व धारणा से दृढ़ मनवाले उस महामुनिको वहां देखकर नन्दीश्वरजी ने कमल से भलीभांति छूलिया ॥ २७ ॥ उस कमल से हुये स्पर्शमात्र से वह योगीन्द्र जैगीषव्यजी गुफाके भीतर बहुतही शोभित होगये कि जैसे वर्षाऋतु में वृष्टिके संयोग से मेंढकका उल्लास होता है ॥ २८ ॥ तदनन्तर नन्दीश्वरजी ने शीघ्रही मुनीश्वरको भलीभांति लेकर नमस्कारकर देवोंकेदेव श्रीमहादेवजीके चरणारविन्दोंके आगे छोड़दिया ॥ २९ ॥ उसके बाद सम्भ्रम (उद्वेग या आदर) समेत हुये जैगीषव्यजीने वामांग में बैठीहुई पार्वतीसंयुत शङ्करजीको आगे देखकर आनन्दसे प्रणाम किया ॥ ३० ॥ और दण्डके समान प्रणामकर व भूमिमें सब ओर

छोड़कर गद्गद मुनि भारी भक्तिसे चन्द्रभालकी स्तुति करनेलगे ॥ ३१ ॥ श्रीजैगीषव्यजी बोले कि सुखस्वरूप शान्त सर्वज्ञ मंगलमूर्ति व जगत्को आनन्द बरसाने के लिये मेघके समान और परमानन्द के कारण जो आप हैं उनके लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ रूपरहित रूपसहित व अनेक रूपधारी विरूपनेत्रवाले व भाग्यस्वरूप व ब्रह्मा और विष्णु से स्तुति कियेगये हुये आपके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ स्थावररूप तुम्हारे लिये नमस्कार है जंगमरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है सर्वस्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है और परमात्मारूप तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥ तीनोंलोकों से चाहेहुये व कामकी देह जलानेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है व सबसे विशेषरूपवाले तु-

नमःशिवायशान्तायसर्वज्ञायशुभात्मने ॥ जगदानन्दकन्दायपरमानन्दहेतवे ॥ ३२ ॥ अरूपायसरूपायनानारूपधरायच ॥ विरूपाक्षायविधयेविधिविष्णुस्तुतायच ॥ ३३ ॥ स्थावरायनमस्तुभ्यञ्जङ्गमायनमोस्तुते ॥ सर्वात्मनेनमस्तुभ्यन्नमस्तेपरमात्मने ॥ ३४ ॥ नमस्त्रैलोक्यकाम्यायकामाङ्गदहनायच ॥ नमोशेषविशेषायनमःशेषाङ्गदायते ॥ ३५ ॥ श्रीकण्ठायनमस्तुभ्यंविषकण्ठायतेनमः ॥ वैकुण्ठवन्द्यपादायनमोऽकुण्ठितशक्तये ॥ ३६ ॥ नमःशक्त्यर्धदेहायविदेहायसुदेहिने ॥ सकृत्प्रणाममात्रेणदेहिदेहनिवारिणे ॥ ३७ ॥ कालायकालकालायकालकूटविषादिने ॥ व्यालयज्ञोपवीतायव्यालभूषणधारिणे ॥ ३८ ॥ नमस्तेखण्डपरशोनमःखण्डेन्दुधारिणे ॥ खण्डिताशेषदुःखायखड्गखेटकधारिणे ॥ ३९ ॥ गीर्वाणगीतनाथायगङ्गाकल्लोलमालिने ॥ गौरीशायगिरीशायगिरिशायगुहारणे ॥ ४० ॥ चन्द्रार्धशुद्धभू

म्हारे लिये नमस्कार है और शेषनागको बजुल्लाबनाये हुये तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ शोभासमेत या श्यामकण्ठवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है विषकण्ठवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है विष्णुसे वन्दनीय चरणारविन्दवाले और अकुण्ठितशक्तिवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥ देहसे हीन व सुदेहवान् व एकबार प्रणाममात्र से संसारी देहधारी लोगोंकी देहके निवारण करनेवाले और शक्ति (श्रीपार्वतीजी) हैं आधीदेह जिनकी उन आपके लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ जगत के काल (चलानेवाले) व कालके काल याने कालसे परे व कालकूट विषके खानेवाले व सर्पोंका यज्ञोपवीत पहनेहुये और सर्पोंके गहने धारनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे खण्डपरशो ! चन्द्रखण्डधारी तुम्हारेलिये नमस्कार है व सम्पूर्ण दुःखहारी और ढाल तलवारधारी आपके लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे गुहारणे (कार्त्तिकेयकी उत्पत्तिके का-

रण)! देवोंसे गायेहुये नाथ व गंगालहरों की पंक्तिवाले व गौरी (पार्वती) के नायक, वाणीकी गतिदायक व कैलासपर्वत में सोनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४० ॥ हे चर्मवसन ! चन्द्रार्धशुद्धभूषणवाले व चन्द्रमा सूर्य्य और अग्निरूपनेत्रवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है व दिशावस्त्रवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ जगत् के ईश्वर, पुराणपुरुषोत्तम, व जरा (बुढ़ाई) और जन्मादि हरनेहारे तुम्हारे लिये नमस्कार है व पापादि अनेक तापविनाशी जीवरूप अविनाशी तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ एक हाथ में डमरूलिये व दूसरे हाथमें धन्वा लिये हुये तुम्हारे लिये नमस्कारहै त्रिनेत्र तुम्हारे लिये नमस्कारहै और जगत्के प्रकाशक तुम्हारे लिये नमस्कार

षायचन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे ॥ नमस्तेचर्मवसननमोदिग्वसनायते ॥ ४१ ॥ जगदीशायजीर्णायजराजन्महरायते ॥ जीवायतेनमस्तुभ्यञ्जञ्जपूकादिहारिणे ॥ ४२ ॥ नमोडमरुहस्तायधनुर्हस्तायतेनमः ॥ त्रिनेत्रायनमस्तुभ्यञ्जगन्नेत्रायतेनमः ॥ ४३ ॥ त्रिशूलव्यग्रहस्तायनमस्त्रिपथगाधर ॥ त्रिविष्टपाधिनाथायत्रिवेदीपठितायच ॥ ४४ ॥ त्रयीमयायतुष्टाय भक्ततुष्टिप्रदायच ॥ दीक्षितायनमस्तुभ्यंदेवदेवायतेनमः ॥ ४५ ॥ दारिताशेषपापायनमस्तेदीर्घदर्शिने ॥ दूरायदुरवाप्यायदोषनिर्दलनायच ॥ ४६ ॥ दोषाकरकलाधारत्यक्तदोषागमायच ॥ नमोधूर्जटयेतुभ्यन्धत्तूरकुसुमप्रिय ॥ ४७ ॥ नमोधीरायधर्मायधर्मपालायतेनमः ॥ नीलग्रीवनमस्तुभ्यन्नमस्तेनीललोहित ॥ ४८ ॥ नाममात्रस्मृतिकृतान्त्रैलोक्यैश्वर्यपूरक ॥ नमःप्रमथनाथायपिनाकोद्यतपाणये ॥ ४९ ॥ पशुपाशविमोक्तायपशूनाम्पतयेनमः ॥ नामोच्चारणमात्रेण

है ॥ ४३ ॥ हे गंगाधर ! स्वर्गके स्वामी, तीनोंवेदों में पठित व त्रिशूलसे चञ्चल हाथवाले आपकेलिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ वेदत्रयीरूप, सन्तुष्ट व भक्तों के सन्तोषदायक तुम्हारे लिये नमस्कारहै व दिव्यज्ञान के देनेवाली दीक्षासमेत और देवोंके देव तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण पापविदारी दोषदलनकारी इन्द्रियों से दूरचारी दिव्यदीर्घज्ञानधारी और दुःख से मिलनेयोग्य तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे धत्तूरकुसुमप्रिय, चन्द्रकलाधर ! निर्दोषशास्त्रवाले या दोषोंके आनेको त्यागेहुये व जटाभारधारी तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ४७ ॥ हे नीललोहित, नीलकण्ठ ! बुद्धिदायक तुम्हारे लिये नमस्कारहै धर्मरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है और धर्मपालक तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे नाममात्र स्मरण करते हुये लोगों के त्रैलोक्य ऐश्वर्यपूरक ! गणोंकेनाथ व पिनाक नाम धन्वासे उद्यत हाथवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ४९ ॥

पशुरूप संसारीजीवोंकी चौबीस तत्त्वमयी फांसी छोरनेवाले व जीवोंके स्वामी और नाममात्र जपनेसे महापापहारी आपके लिये नमस्कारहै ॥ ५० ॥ परसे परे याने प्रकृतिके प्रवर्तक व संसारपारकार या प्रलयके अवधिभूत व कारण कार्य्य से परे अनन्त चरित्र और सुपवित्र कथावाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ५१ ॥ मनोहर क्रीडाकारी स्त्रीको अर्धांगधारी वृषसवारी से विहारी भक्तभयहारी पापभंजनकारी और दुष्टोंके लिये भारी भयानक बानकवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ५२ ॥ हे तेजों के स्वामिन्, महेश, महादेव ! जगत्प्रकाशक, भवनाशक के लिये नमस्कारहै व आकाशादि पञ्चतत्त्वों या सब प्राणियोंके पति तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ५३ ॥ पार्वतीपतिके लिये नमस्कारहै

महापातकहारिणे ॥ ५० ॥ परात्परायपारायपरापरपरायच ॥ नमोऽपारचरित्रायसुपवित्रकथायच ॥ ५१ ॥ वामदेवाय वामार्धधारिणेवृषगामिने ॥ नमोभर्गायभीमायनतभीतिहरायच ॥ ५२ ॥ भवायभवनाशायभूतानाम्पतयेनमः ॥ महादेवनमस्तुभ्यम्महेशमहसाम्पते ॥ ५३ ॥ नमोमृडानीपतयेनमोमृत्युञ्जयायते ॥ यज्ञारयेनमस्तुभ्यंयक्षराजप्रियायच ॥ ५४ ॥ यायजूकाययज्ञाययज्ञानाम्फलदायिने ॥ रुद्रायरुद्रपतयेकद्रुद्रायरमायच ॥ ५५ ॥ शूलिनेशाश्वतेशाय श्मशानावनिचारिणे ॥ शिवाप्रियायसर्वायसर्वज्ञायनमोस्तुते ॥ ५६ ॥ हरायक्षान्तिरूपायक्षेत्रज्ञायक्षमाकर ॥ क्षमायक्षितिहर्त्रेचक्षीरगौरायतेनमः ॥ ५७ ॥ अन्धकारेनमस्तुभ्यमाद्यन्तरहितायच ॥ इडाधारायईशायउपेन्द्रेन्द्रस्तुतायच ॥ ५८ ॥ उमाकान्तायउग्रायनमस्तेऊर्ध्वरेतसे ॥ एकरूपायचैकायमहदैश्वर्यरूपिणे ॥ ५९ ॥ अनन्तकारिणेतुभ्य

मृत्यु के जीतनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै व कुबेरके प्यारे और दक्षयज्ञ के वैरी तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ५४ ॥ बड़ेयज्ञकर्त्ता, यज्ञरूप, यज्ञों के फलदायक, रुद्रों के नायक; रोगोंकेघायक व कुत्सित रोदनके भगानेहारे और लोगों के रमानेवारे आपके लिये नमस्कार है ॥ ५५ ॥ त्रिशूलधारी, नित्य ऐश्वर्य्यकारी, श्मशानभूमिचारी, जगत्संहारी, सर्वज्ञ और प्यारीपार्वतीवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ५६ ॥ हे क्षमाकर ! भक्तभवभयहर शांतिरूप क्षेत्रज्ञस्वरूप समर्थ भूमिप्रातिकारी और दूधके समान श्वेतरंग अंगवाले तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥ ५७ ॥ हे अंधकासुरके वैरिन् ! आदि व अंतसे रहित अविकार, भूमिके आधार सदा ऐश्वर्य्य आगार व उपेन्द्र और इन्द्रसे प्रशंसित तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ५८ ॥ उमाके कांत, अशांत, ऊर्ध्वरेता, एकरूप अनूप मुख्य और अधिक ऐश्वर्य्य रूपवान् आपके लिये नमस्कारहै ॥ ५९ ॥ अनंतकर्त्ता अंबिकाके भर्त्ता

आपके लिये नमस्कारहै व तुम ॐकार और वषट्कारहौ व तुमहीं भूर्भुवःस्वः नामक त्रिलोकहो ॥ ६० ॥ हे पार्वतीपते ! इस ब्रह्माण्डमे जो दृश्य और अदृश्य है वह सब तुमहींहो मैं स्तुतिकरने को नहीं जानताहूं बरन स्तुतिकर्त्ता भी तुमहींहो ॥ ६१ ॥ हे महेश्वर, महादेव ! नाम व नामवाला याने शब्द और अर्थ व वचनभी तुमहींहो मैं तुम्हारे प्रणाम करनेवालाहूं अन्यको नहीं जानताहूं और अन्यकी स्तुति नहीं करता हूं ॥ ६२ ॥ हे गौरीश, शिव ! मैं अन्यके नमस्कार नहीं करताहूं व अन्यका नाम नहीं लेताहूं किंतु अन्यका नामलेनेमें गूंगाहूं और अन्यकी कथा सुननेमें बहराहूं ॥ ६३ ॥ अन्यके सामने चलने में पंगुलाहूं व अन्यको सब ओरसे देखनेमें अंधाहूं आपही

मम्बिकापतयेनमः ॥ त्वमोङ्कारोवषट्कारोभूर्भुवःस्वस्त्वमेवहि ॥ ६० ॥ दृश्यादृश्यंयदत्रास्तितत्सर्वंत्वमुमाधव ॥ स्तुतिङ्कर्तुंनजानामिस्तुतिकर्तात्वमेवहि ॥ ६१ ॥ वाच्यस्त्वंवाचकस्त्वंहिवाक्चत्वंप्रणतोस्मिते ॥ नान्यंवद्मिमहादेवनान्यंस्तौमिमहेश्वर ॥ ६२ ॥ नान्यंनमामिगौरीशनान्याख्यामाददेशिव ॥ मूकोन्यनामग्रहणेबधिरोन्यकथाश्रुतौ ॥ ६३ ॥ पंगुरन्याभिगमनेऽस्म्यन्धोऽन्यपरिवीक्षणे ॥ एकएवभवानीशएकःकर्तात्वमेवहि ॥ ६४ ॥ पाताहर्तात्वमेवैकोनानात्वंमूढकल्पना ॥ अतस्त्वमेवशरणंभूयोभूयःपुनःपुनः ॥ ६५ ॥ संसारसागरेमग्नंमामुद्धरमहेश्वर ॥ इतिस्तुत्वामहेशानंजैगीषव्योमहामुनिः ॥ ६६ ॥ वाचंयमोभवत्स्थाणोःपुरतःस्थाणुसन्निभः ॥ इतिस्तुतिंसमाकर्ण्यमुनेश्चन्द्रविभूषणः ॥ उवाचचप्रसन्नात्मावरंब्रूहीतितंमुनिम् ॥ ६७॥ जैगीषव्यउवाच ॥ यदिप्रसन्नोदेवेशततस्तवपदाम्बुजात् ॥ माभवानिभवानीशदूरंदूरपदप्रद ॥ ६८ ॥ अपरश्चवरोनाथदेयोयमविचारतः ॥ यन्मयास्थापितंलिङ्गंतत्रसान्निध्यम

एक ईश्वर हैं व तुमहीं एक कर्त्ता हौ ॥ ६४ ॥ तुमहीं एक रक्षक व हर्त्ताहो क्योंकि अनेक भांतिका होना मूढ़ोंकी कल्पना है इससे तुमहीं बार बार फिर फिर आधार या रक्षाकरनेवालेहो ॥ ६५ ॥ हे महेश्वर ! तुम संसारसागरमें डूबेहुये मुझको उबारलो इसभांति महेशजीकी स्तुतिकर जैगीषव्य महामुनि ॥ ६६ ॥ शिवजीके आगे ठूंठके समान वचन बंद करनेवाले होगये और ऐसी मुनिकी स्तुतिको सुनकर चन्द्रविभूषण महादेवजीने प्रसन्नमन होकर उन मुनि से ऐसा कहा कि तुम वरको बोलो ॥ ६७ ॥ श्रीजैगीषव्यजी बोले कि, हे दूरपदप्रद, भवानीश, देवेश ! जो तुम प्रसन्न हो तो मैं तुम्हारे चरणारविंद से दूर मत होऊं ॥ ६८ ॥ हे नाथ ! अन्य भी यह वर विना विचार

ही देने योग्यहै कि जो मेरा थापा हुआ लिंगहै उसमें तुम्हारी समीपता होवे ॥ ६९ ॥ श्रीमहेशजी बोले कि हे महाभाग, अपाप, जैगीषव्य ! आपने जो कहा वह सब तुम्हारा प्यारा मनोरथ सिद्ध होवे और मैं तुमको अन्य वर देताहूं ॥ ७० ॥ कि मैंने मुक्ति का साधक योगशास्त्र तुमको दिया व आप सब योगियों के बीच में योगके आचार्य्य भी होवें ॥ ७१ ॥ हे तपोधन ! तुम मेरी प्रसन्नता से योगविद्या के रहस्य को यथावत् भलीभांति जानोगे कि जिससे कैवल्य मुक्तिको प्राप्त होवोगे ॥ ७२ ॥ जैसे नंदीश्वर जैसे भृंगीश्वर और जैसे सोमनंदी हैं वैसे तुम भी मेरे भक्त व जरा मरणसे हीन होजावोगे ॥ ७३ ॥ इस लोकमें बहुत व्रतहैं व अनेक भांति के नियम हैं

स्तुते ॥ ६९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ जैगीषव्यमहाभागयदुक्तंभवतानघ ॥ तदस्तुसर्वंतेभीष्टंवरमन्यंददामिच ॥ ७० ॥ योगशास्त्रंमयादत्तंतवनिर्वाणसाधकम् ॥ सर्वेषांयोगिनांमध्येयोगाचार्योऽस्तुवैभवान् ॥ ७१ ॥ रहस्यंयोगविद्यायायथावत्त्वंतपोधन ॥ संवेत्स्यसेप्रसादान्मेयेननिर्वाणमाप्स्यसि ॥ ७२ ॥ यथानन्दीयथाभृङ्गीसोमनन्दीयथातथा ॥ त्वंभविष्यसिभक्तोमेजरामरणवर्जितः ॥ ७३ ॥ सन्तिव्रतानिभूयांसिनियमाःसन्त्यनेकधा ॥ तपांसिनानासन्त्यत्रसन्तिदानान्यनेकशः ॥ ७४ ॥ श्रेयसांसाधनान्यत्रपापघ्नान्यपिसर्वथा ॥ परंहिपरमश्चैषनियमोयस्त्वयाकृतः ॥ ७५ ॥ परोहिनियमश्चैषमांविलोक्ययदश्यते ॥ मामनालोक्ययद्भुक्तंतद्भुक्तंकेवलंत्वघम् ॥ ७६ ॥ असमर्च्यचयोभुङ्क्तेपत्रपुष्पफलैरपि ॥ रेतोभक्षीभवेन्मूढःसजन्मान्येकविंशतिम् ॥ ७७ ॥ महतोनियमस्यास्यभवतानुष्ठितस्यवै ॥ नार्हन्तिषोडशींमात्रामप्यन्येनियमायमाः ॥ ७८ ॥ अतोमच्चरणाभ्याशेत्वंनिवत्स्यसिसर्वथा ॥ अतोनैःश्रेयसींलक्ष्मींतत्रैवप्राप्स्यसि

व अनेक तपहैं व अनेक दानहैं ॥ ७४ ॥ और यहां सब प्रकारसे पाप विनाशनेवाले व सुखों के साधनभी हैं परन्तु जो तुम्हारा कियाहुआ नियमहै यह सबसे परे है ॥ ७५ ॥ क्योंकि जो मेरा दर्शनकर भोजन किया जाताहै यह नियमही बहुत उत्तम है और मुझको न देखकर जो खाया गया वह केवल पाप खाया गया याने नित्यही मेरी मूर्तियों के दर्शन करने के बाद भोजन करना चाहिये ॥ ७६ ॥ जोकि पत्र फूल और फलों से भी मुझको नहीं पूजकर खाता पीताहै वह मूढ़ इक्कीस जन्मतक रेतोभक्षी होवे है ॥ ७७ ॥ यह निश्चयहै कि अन्य शौचादि नियम व अहिंसादि यम आपके कियेहुये इस बड़ेभारी नियमकी सोलहवीं मात्राके भी नहीं योग्य होते हैं ॥ ७८ ॥ इस

से तुम मेरे पांवों के समीपमें सदैव बसोगे और इससेही वहांही निश्चय से मोक्षसंबंधिनी सम्पत्तिको प्राप्त होजावोगे ॥ ७९ ॥ व जैगीषव्येश्वर नामक लिंग काशी में बहुतही दुर्लभहै व तीनवर्षतक जिसकी भलीभांति सेवाकर योगको पावे इसमें संशय नहीं है ॥ ८० ॥ व जैगीषव्यकी गुहामें प्राप्तहोकर योगाभ्यासमें तत्पर मनुष्य मेरी दयासे छह मास में वाञ्छितसिद्धिको पावे ॥ ८१ ॥ यह तुम्हारा थापाहुवा लिङ्ग बहुत यत्नपूर्वक भक्तोंसे पूजनीय है व उत्तम सिद्धि चाहियों से यह मनोहर गुफा देखने योग्य है ॥ ८२ ॥ यहां ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रमें जो तुम्हारा थापाहुवा सब सिद्धिदायक लिङ्गहै वह देखा व छुवा और भलीभांति पूजाहुवा पापसमूहों को नशावे है ॥ ८३ ॥ इस

ध्रुवम् ॥ ७९ ॥ जैगीषव्येश्वरंनामलिङ्गंकाश्यांसुदुर्लभम् ॥ त्रीणिवर्षाणिसंसेव्यलभेद्योगंनसंशयः ॥ ८० ॥ जैगीषव्यगुहां प्राप्ययोगाभ्यसनतत्परः ॥ षण्मासेनलभेत्सिद्धिंवाञ्छितांमदनुग्रहात् ॥ ८१ ॥ तवलिङ्गमिदंभक्तैःपूजनीयंप्रयत्नतः ॥ विलोक्याचगुहारम्यापरांसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ ८२ ॥ अत्रज्येष्ठेश्वरक्षेत्रेत्वल्लिङ्गंसर्वसिद्धिदम् ॥ नाशयेदघसङ्घानिदृष्टंस्पृष्टंसमर्चितम् ॥ ८३ ॥ अस्मिञ्ज्येष्ठेश्वरक्षेत्रेसम्भोज्यशिवयोगिनः ॥ कोटिभोज्यफलंसम्यगेकैकपरिसंख्यया ॥ ८४ ॥ जैगीषव्येश्वरंलिङ्गंगोपनीयंप्रयत्नतः ॥ कलौकलुषबुद्धीनांपुरतश्चविशेषतः ॥ ८५ ॥ करिष्याम्यत्रसान्निध्यमस्मिँल्लिङ्गेतपोधन ॥ योगसिद्धिप्रदानायसाधकेभ्यःसदैवहि ॥ ८६ ॥ ददेशृणुमहाभागजैगीषव्यापरंवरम् ॥ त्वयेदंयत्कृतंस्तोत्रंयोगसिद्धिकरंपरम् ॥ ८७ ॥ महापापौघशमनंमहापुण्यप्रवर्धनम् ॥ महाभीतिप्रशमनंमहाभक्तिविवर्धनम् ॥ ८८ ॥ एतत्स्तोत्रजपात्पुंसामसाध्यंनैवकिञ्चन ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनजपनीयंसुसाधकैः ॥ ८९ ॥ इतिदत्त्वावरंत

ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रमें शिवयोगियों को भलीभांति खिलापिलाकर एक एककी संख्यासे करोड़ ब्रह्मभोजका फल अच्छेप्रकारसे होता है ॥ ८४ ॥ और कलियुग में पापबुद्धिवाले लोगोंके आगे जैगीषव्येश्वर लिंग विशेषताके साथ यत्नसे गोपनीय है ॥ ८५ ॥ हे तपोधन ! मैं साधक जनोंको योगसिद्धि देने के लिये यहां इस लिंगमें सदैवही सामीप्यको करूंगा ॥ ८६ ॥ हे जैगीषव्य ! मैं अन्य वरको देताहूं तुम सुनो कि तुम्हारा कियाहुवा यह स्तोत्र जोकि योगका सिद्धिकर्त्ता और बहुत उत्तमहै ॥ ८७ ॥ व महापापसमूहों का नाशक, महापुण्यो का बहुत बढ़ानेवाला व भारी भयभञ्जन और भक्तिका बड़ा वृद्धिकर्त्ताहै ॥ ८८ ॥ इस स्तोत्रके जपने से मनुष्योंको कुछ असाध्य नहीं

है उस कारण अच्छे साधक लोगों से बहुत यत्नपूर्वक जपने योग्य है ॥ ८९ ॥ इस भांति उन जैगीषव्यको वर देकर मुसकान समेत आंखोंवाले कामके वैरी महादेवजी ने वहां बटुरेहुये क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंको देखा ॥ ९० ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि बुद्धिमान् मनुष्य बहुत यत्नसे इस अनूप आख्यान को सुनकर पापोंमे हीन होता है और उपद्रवों से नहीं पीड़ाजाताहै ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेज्येष्ठेशाख्यानंजैगीषव्यवरप्रदानंचनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

दो० । चौंसठयें अध्याय में ब्राह्मण वृन्द निहारि । काशिरहस्य बखानकरि वर दीन्ह्यो त्रिपुरारि ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे षण्मुख! ब्राह्मणों को देखकर शङ्करजी ने

स्मेरस्मरारिःस्मेरलोचनः ॥ ददर्शब्राह्मणांस्तत्रसमेतान्क्षेत्रवासिनः ॥ ९० ॥ स्कन्दउवाच ॥ निशम्याख्यानमतुलमे तत्प्राज्ञःप्रयत्नतः ॥ निष्पापोजायतेमर्त्योनोपसर्गैःप्रबाध्यते ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेज्येष्ठेशाख्या नंनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ दृष्ट्वाभूदेवताःशम्भुःकिमाचक्षेषडानन ॥ कानिकानिचलिङ्गानितत्रतान्यपिचक्ष्वमे ॥ १ ॥ ज्ये ष्ठस्थानेमहापुण्येदेवदेवस्यवल्लभे ॥ आश्चर्यंकिमभूत्तत्रतदाचक्ष्वषडानन ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृण्वगस्त्ययथापृ च्छिभवतातद्ब्रवीम्यहम् ॥ मन्दराद्रिंयदादेवोगतवान्ब्रह्मगौरवात् ॥ ३ ॥ तदानिराश्रयाविप्राःक्षेत्रसंन्यासिनोनघाः ॥ उपाकृताश्चाविरतंमहाक्षेत्रप्रतिग्रहात् ॥ ४ ॥ खातंखातंचदण्डाग्रैर्भूमिंकन्दादिवृत्तयः ॥ चक्रुःपुष्करिणींरम्यांदण्डखा ताभिधांमुने ॥ ५ ॥ तत्तीर्थंपरितःस्थाप्यमहालिङ्गान्यनेकशः ॥ महेशाराधनपरास्तपश्चक्रुःप्रयत्नतः ॥ ६ ॥ विभूतिधारिणो

क्या कहाथा और वहां कौन कौन लिंग है उनको भी तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे षडानन! महादेवजी के प्यारे महामनोज्ञ उस ज्येष्ठस्थान मे क्या आश्चर्य हुवा उसको तुम कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी! आपने जैसे पूंछा उसको मैं कहताहूं तुम सुनो कि जब ब्रह्माजीकी गुरुतासे महादेवजी मन्दराचलको चलेगये थे ॥ ३ ॥ तब निराश्रय (निराधार) हुये क्षेत्रसंन्यासी पापहीन ब्राह्मण बडे क्षेत्रके दानसे निरन्तर निवृत्त होगये ॥ ४ ॥ और हे मुने! कन्दमूल फूलफलादि वृत्तिवाले होकर उन्होंने दण्डों के अग्रभागो से भूमिको खनखनकर दण्डखात नामक रम्य पुष्करिणी को बनालिया ॥ ५ ॥ व उस तीर्थके सब ओर मे बहुतसे बडे लिंगोंको थाप

कर और महेश्वरकी पूजामें तत्पर होकर बहुत यत्नसे तपस्याको किया ॥ ६ ॥ और वे नित्यही विभूतिधारी नित्यही रुद्राक्षधारी नित्यही लिंगकी पूजा में स्नेहकारी और शतरुद्रिय के जपनेवाले हुये ॥ ७ ॥ हे मुने ! तपस्या से दुबले हुयेभी वे देवोंकेदेव श्रीमहादेवजीका फिर आना सुनकर अतिशय आनन्दसे सचिक्कण सुन्दर होगये ॥ ८ ॥ व बहुत तपस्या को करतेहुये पांचहजार ब्राह्मण महादेवजी के दर्शन के लिये दण्डखात नामक महातीर्थ से आये ॥ ९ ॥ व शिवजी की मुख्यसेवा में तत्पर पाशुपत व्रतवाले दशसहस्रसंख्यक ब्राह्मण मन्दाकिनी नामक तीर्थ से बटुरआये ॥ १० ॥ व तीनसौ अधिक दशहजार द्विज हंसतीर्थ से आकर प्राप्तहुये व ग्यारहसौ अधिक

नित्यंनित्यंरुद्राक्षधारिणः ॥ लिङ्गपूजारतानित्यंशतरुद्रियजापिनः ॥ ७ ॥ तेश्रुत्वादेवदेवस्यपुनरागमनंमुने ॥ तपःकृशा अतितरामासुरानन्दमेदुराः ॥ ८ ॥ द्विजाःपञ्चसहस्राणिचरन्तोविपुलंतपः ॥ दण्डखातान्महातीर्थादाजग्मुर्देवदर्शने ॥ ९ ॥ तीर्थान्मन्दाकिनीनाम्नोद्विजाःपाशुपतव्रताः ॥ शिवैकाराधनपराःसमेताअयुतोन्मिताः ॥ १० ॥ हंसतीर्थात्परिप्राप्ताअयुतंत्रिशतोत्तरम् ॥ शतन्दुर्वाससस्तीर्थादेकादशशताधिकम् ॥ ११ ॥ मत्स्योदर्याःपरापेतुःसहस्राणिषडेवहि ॥ कपालमोचनात्सप्तशतान्यभ्यागताद्विजाः ॥ १२ ॥ ऋणमोचनतस्तीर्थात्सहस्रंद्विशताधिकम् ॥ वैतरण्याअपिमुनेद्विजानामयुतार्धकम् ॥ १३ ॥ ततःपृथूदकात्कुण्डात्पृथुनापरिखानितात् ॥ अयासिषुर्द्विजानाञ्चशतान्येवत्रयोदश ॥ १४ ॥ तथैवाप्सरसःकुण्डान्मेनकाख्याच्छतद्वयम् ॥ उर्वशीकुण्डतःप्राप्तःसहस्रंद्विशताधिकम् ॥ १५ ॥ तथैरावतकुण्डाच्चब्राह्मणास्त्रिशतानिच ॥ गन्धर्वाप्सरसःसप्तशतानिद्विशतानिच ॥ १६ ॥ वृषेशतीर्थादाजग्मुर्नवतिःसशतत्रया ॥ यक्षिणी

एकसौ याने बारहसौ ब्राह्मण दुर्वासातीर्थ से आये ॥ ११ ॥ ऐसेही छहहजार मत्स्योदरीसे आये व सातसौ ब्राह्मण कपालमोचन से सामने आये ॥ १२ ॥ हे मुने ! दोसौ अधिक हजार याने बारहसौ ऋणमोचन तीर्थ से और पांचहजार ब्राह्मण वैतरणी से भी आये ॥ १३ ॥ तदनन्तर पृथुके खनाये हुये पृथूदक कुण्डसेभी तेरहसौ ब्राह्मण आये ॥ १४ ॥ वैसेही मेनका नामक अप्सरा के कुण्ड से दोसौ व उर्वशी के कुण्ड से दोसौ अधिक एक हजार ब्राह्मण प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ तथैव ऐरावत कुण्ड से तीनसौ व गन्धर्वाप्सरा कुण्डसे सातसौ और दोसौ याने नवसौ ब्राह्मण आये ॥ १६ ॥ व तीनसौ समेत नब्बे ब्राह्मण वृषेशतीर्थ से आये और तीनसौ अधिक एकहजार यक्षिणी

कुण्डसे प्राप्तहुये ॥ १७ ॥ परन्तु लक्ष्मीतीर्थ से सोलहसौ व ऐसेही पिशाचमोचनतीर्थ से सातहजार द्विजोत्तम आये ॥ १८ ॥ पितृकुण्ड से सवासौ व ध्रुवतीर्थ से छहसौ और मानस नामक सरोवर से तीनसौ समेत दोसौ याने पांचसौ ब्राह्मण आये ॥ १९ ॥ व वासुकिकुण्ड से दशहजार वैसेही ज्ञानकीकुण्डसे आठसौ ब्राह्मण देखनेकेलिये ॥ २० ॥ उत्तम आनन्द के दायक काशीनायक के समीप में प्राप्तहुये और वैसेही गौतमकुण्डसे नवसौ ब्राह्मण आये ॥ २१ ॥ व पार्वती के पति महादेवजी के देखने के लिये दुर्गतिसंहर्ता तीर्थसे ग्यारहसौ ब्राह्मण प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ हे अगस्त्यजी ! असीसंगमसे लगाकर संगमेश्वरतक गंगा किनारे टिकेहुये ब्राह्मण वहां सब ओरसे प्राप्तहुये ॥ २३ ॥

कुण्डतःप्राप्तःसहस्रन्त्रिशतोत्तरम् ॥ १७ ॥ लक्ष्मीतीर्थात्परंजग्मुःषोडशैवशतानिच ॥ पिशाचमोचनात्सप्तसहस्राणिद्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥ पितृकुण्डाच्छतंसाग्रन्ध्रुवतीर्थाच्छतानिषट् ॥ मानसाख्याच्चसरसोद्विशतीसशतत्रया ॥ १९ ॥ ब्राह्मणावासुकिह्रदात्सहस्राणिदशैवतु ॥ तथैवाष्टशतन्द्रष्टुंजानकीकुण्डतोद्विजाः ॥ २० ॥ काशीनाथमनुप्राप्तःपरमानन्ददायिनम् ॥ तथागौतमकुण्डाच्चशतानिनवचागताः ॥ २१ ॥ तीर्थाद्दुर्गतिसंहर्तुर्ब्राह्मणाःप्रतिपेदिरे ॥ एकादशशतान्येवद्रष्टुन्देवमुमापतिम् ॥२२॥ असीसम्भेदमारभ्यगङ्गातीरस्थिताद्विजाः ॥ आसङ्गमेश्वरात्तत्रपरिप्राप्ताघटोद्भव ॥ २३ ॥ अष्टादशसहस्राणितथापञ्चशतान्यपि ॥ ब्राह्मणाःपञ्चपञ्चाशद्गङ्गातीरात्समागताः॥२४॥सार्द्रदूर्वाक्षतकरैःसपुष्पफलपाणिभिः ॥ सुगन्धमाल्यहस्तैश्चब्राह्मणैर्जयवादिभिः ॥ २५ ॥ स्तुतोमङ्गलसूक्तैश्चप्रणतश्चपुनःपुनः ॥ तेभ्योदत्ताभयःशम्भुःपप्रच्छकुशलम्मुदा ॥२६॥ ततस्तेब्राह्मणाःप्रोचुःप्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ क्षेत्रेनिवसतांनाथसदानःकुशलोदयः ॥२७॥

वैसेही अठारहहजार पांचसौ पचपनभी ब्राह्मण गंगाके तीरसे भलीभांतिआये॥ २४ ॥ और ओदीदूब समेत अक्षत हाथवाले व फूल समेत फल हाथवाले व सुगन्धसंयुत माला हाथवाले व जयजय बोलतेहुये ब्राह्मणोने ॥ २५ ॥ मंगलसूक्तो से शिवजीकी स्तुति किया और बारबार प्रणामकिया व उनके लिये अभयको दियेहुये शङ्करजीने आनन्दसे कुशलको पूंछा ॥ २६ ॥ तदनन्तर दोनोहाथो का सम्पुट बांधेहुये उन ब्राह्मणोने कहा कि हे नाथ ! क्षेत्रमें बसतेहुये हमलोगोंके कुशलका उदय सदैवहै॥ २७ ॥

और हम लोगोंने साक्षात् तुमको विशेष से नेत्रगोचर किया कि जिस स्वरूप को श्रुतियांभी परमार्थ से नहीं जानती हैं ॥ २८ ॥ जोकि तुम्हारे क्षेत्रसे विमुख हैं उनका सदैव अमंगल है और चौदहो लोकभी उनसे नित्यही विमुख हैं यह निश्चय है ॥ २९ ॥ हे सर्प्पांगद (सर्पोंके बजुल्लावाले)! जिनके हृदय में काशी सदैव बसती है उनके लिये संसार सर्प्प का विष कहीं नहीं प्रभुता करसक्ता है ॥ ३० ॥ व काशी ऐसा दो अक्षररूप मन्त्र गर्भरक्षा की मणिहै वह जिसके कण्ठमें सदैव टिके उसका अमंगल क्या या कहां से होवे ॥ ३१ ॥ व जो काशी ऐसे दो अक्षररूप अमृतको नित्यही पीता है वह बहुत बुढ़ाईवाली याने छःविकार समेत दशाको छोंड़कर मोक्षा-

विशेषतःकृतोऽस्माभिःसाक्षान्नयनगोचरः ॥ त्वंयत्स्वरूपंश्रुतयोनविदुःपरमार्थतः ॥ २८ ॥ सदैवाकुशलन्तेषांये त्वत्क्षेत्रपराङ्मुखाः ॥ चतुर्दशापिवैलोकास्तेषांनित्यम्पराङ्मुखाः ॥ २९ ॥ येषांहृदिसदैवास्तेकाशीत्वाशीविषाङ्गद ॥ संसाराशीविषविषन्नतेषांप्रभवेत्क्वचित् ॥ ३० ॥ गर्भरक्षामणिर्मन्त्रःकाशीवर्णद्वयात्मकः ॥ यस्यकण्ठेसदातिष्ठेत्तस्याकुशलताकुतः ॥ ३१ ॥ सुधांपिबतियोनित्यंकाशीवर्णद्वयात्मिकाम् ॥ सनैर्जरींदशांहित्वासुधैवपरिजायते ॥ ३२ ॥ श्रुतंकर्णामृतंयेनकाशीत्यक्षरयुग्मकम् ॥ नसमाकर्णयत्येवसपुनर्गर्भजाङ्कथाम् ॥ ३३ ॥ काशीरजोपियन्मूर्ध्निपतेदप्यनिलाहतम् ॥ चन्द्रशेखरतन्मूर्धाभवेच्चन्द्रकलाङ्कितः ॥ ३४ ॥ प्रसङ्गतोपियन्नेत्रपथमानन्दकाननम् ॥ यातन्तेत्रनजायन्तेनेक्षेरन्पितृकाननम् ॥ ३५ ॥ गच्छतातिष्ठतावापिस्वपताजाग्रताथवा ॥ काशीत्येषमहामन्त्रोयेनजप्तःसनिर्भयः ॥ ३६ ॥ येनबीजाक्षरयुगङ्काशीतिहृदिधारितम् ॥ अबीजानिभवन्त्येवकर्मबीजानितस्यवै ॥ ३७ ॥ काशीकाशीतिकाशीतिजप

वस्थाही होजाता है ॥ ३२ ॥ व जिसने कानोंके अमृतके समान काशी ऐसे दो अक्षरों को सुना वह फिर गर्भवासकी कथाको नहीं सुनताहै ॥ ३३ ॥ हे चन्द्रभाल! बयार से बहाई हुईभी काशीकी धूरि जिसके मस्तक में परे उसका शिर चन्द्रमाकी कला से चिह्नित होजावे ॥ ३४ ॥ व प्रसंगसे भी आनन्दवन जिनके नेत्रमार्ग में प्राप्तहुवा हो याने जिन्होंने काशीपुरी को देखा है वे फिर इस लोकमें नहीं उपजते हैं और पितृकानन याने यमराजका वन नहीं देखै हैं ॥ ३५ ॥ चलते व टिकते व सोते अथवा जागते हुयेभी जिसने काशी ऐसा यह महामन्त्र जपा वह निडर है ॥ ३६ ॥ व जिसने काशी ऐसे दो बीज अक्षरों को हृदय में धारण किया उसके कर्मबीज निर्बीजही

होजाते हैं यह निश्चय है ॥ ३७ ॥ व अन्यत्र भी रहते हुये काशी काशी ऐसा काशी ऐसा जपते हुये जिस जनका मरण या भलीभांति टिकना हुवा उस सन्तके आगे मुक्ति प्रकाशती है ॥ ३८ ॥ हे शिव ! यह काशी मंगलकीमूर्ति है व आप मंगलकी मूर्ति हैं और गंगाजी मंगलकी मूर्ति हैं अन्यत्र कहीं मंगलत्रय नहीं है ॥ ३९ ॥ इसभांति क्षेत्रकी भक्तिसे बढ़ाहुवा ब्राह्मणों का वचन सुनकर हिमवान् कुमारीके कान्त भक्तभयहारी शिवजी बहुतही सन्तुष्ट हुये ॥ ४० ॥ और प्रसन्नमन होकर बोले कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठो ! तुम धन्यहो कि मेरे इस परमपावन क्षेत्रमें जिनकी ऐसी भक्ति है ॥ ४१ ॥ मैं जानताहूं कि तुमलोग इस क्षेत्रकी सेवासे शुद्ध सत्त्वमय व रजोगुण से हीन व

तोयस्यसंस्थितिः ॥ अन्यत्रापिसतस्तस्यपुरोमुक्तिःप्रकाशते ॥ ३८ ॥ क्षेममूर्त्तिरियङ्काशीक्षेममूर्त्तिर्भवान्भव ॥ क्षेममूर्त्तिस्त्रिपथगानान्यत्क्षेमत्रयंक्वचित् ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणानामितिवचः क्षेत्रभक्तिविबृंहितम् ॥ निशम्यगिरिजाकान्तस्तुतोषनितरांहरः ॥ ४० ॥ प्रोवाचचप्रसन्नात्माधन्यायूयंद्विजर्षभाः ॥ येषामिहेदृशीभक्तिर्ममक्षेत्रेतिपावने ॥ ४१ ॥ जाने सत्त्वमयाजाताः क्षेत्रस्यास्यनिषेवणात् ॥ नीरजस्कावितमसःसंसारार्णवपारगाः ॥ ४२ ॥ वाराणस्यास्तुयेभक्तास्तेभक्ता ममनिश्चितम् ॥ जीवन्मुक्ताहितेनूनंमोक्षलक्ष्म्याकटाक्षिताः ॥ ४३ ॥ यैश्चकाशीस्थितोजन्तुरल्पकोपिविरोधितः ॥ तैर्वैविश्वम्भरासर्वामयासहविरोधिता ॥ ४४ ॥ वाराणस्याःस्तुतिमपियोनिशम्यानुमोदते ॥ अपिब्रह्माण्डमखिलंध्रुवन्तेनानुमोदितम् ॥ ४५ ॥ निवसन्तिहियेमर्त्याअस्मिन्नानन्दकानने ॥ ममान्तःकरणेतेवैनिवसेयुरकल्मषाः ॥ ४६ ॥ निव

तमोगुण से हीन और संसारसागरके पारगामी होगयेहो ॥ ४२ ॥ और यह निश्चित है कि जे काशीके भक्त हैं वे मेरे भक्त हैं व निश्चय से जीवन्मुक्त हैं और मोक्षसम्पत्तिके कटाक्षवाले हैं याने उनमें मुक्तिसम्पत्ति का कटाक्ष होता है ॥ ४३ ॥ व यह निश्चय है कि जिनसे काशी में टिकाहुवा बहुत छोटाभी जन्तु विरोधयुक्त कियागया उनसे मुझसमेत सब वसुधा विरोधी गई है ॥ ४४ ॥ व जो काशीकी स्तुतिको भी सुनकर प्रसन्न होता है उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको भी अनुमोदित किया याने उससे सब कोई प्रसन्न होता है यह निश्चय है ॥ ४५ ॥ व जे पापहीन मनुष्य इस आनन्दवन में बसते हैं वेही मेरे अन्तःकरण में निवास करते हैं ॥ ४६ ॥ व जे मेरे क्षेत्रमें

बसते हैं और मेरी भक्तिको करते हैं व जे मेरे चिह्नों (विभूति त्रिपुण्ड्र रुद्राक्षादि) को धारतेहैं उनकोही मैं उपदेश देताहूं ॥४७॥ और जे मेरे क्षेत्रमें बसतेहैं मेरी भक्ति को नहीं करते हैं व मेरे चिह्नों के धारण करनेवाले नहीं हैं उनको मैं उपदेश नहीं देताहूं ॥ ४८ ॥ व मुक्तिकी पुरी काशी जिनके चित्तमें प्रकाश करती है वे मोक्षसम्बन्धिनी सम्पत्ति में घिरेहुये होकर मेरे आगे या सम्मुख शोभा पाते हैं ॥ ४९ ॥ और यह मोक्षलक्ष्मी काशीपुरी जिन स्वर्गसम्पत्तिचाहियों को नहीं रुचती है वे संसार सागर में परे हैं या पतित (सङ्करजातीय) हैं इस में संशय नहीं है ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो ! चार पुरुषार्थ याने धर्मादि चतुर्वर्ग काशी चाहियों के सामने दासके समान

सन्तिममक्षेत्रेममभक्तिंप्रकुर्वते ॥ ममलिङ्गधरायेतुतानेवोपदिशाम्यहम् ॥ ४७ ॥ निवसन्तिममक्षेत्रेममभक्तिंनकुर्वते ॥ ममलिङ्गधरायेनोनतानुपदिशाम्यहम् ॥ ४८ ॥ काशीनिर्वाणनगरीयेषांचित्तेप्रकाशते ॥ तेमत्पुरःप्रकाशन्तेनैःश्रेयस्याश्रियावृताः ॥ ४९ ॥ मोक्षलक्ष्मीरियंकाशीनयेभ्यःपरिरोचते ॥ स्वर्लक्ष्मींकाङ्क्षमाणेभ्यःपतितास्तेनसंशयः ॥५० ॥ काशींसंकाङ्क्षमाणानांपुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ पुरःकिङ्करवत्तिष्ठेन्ममानुग्रहतोद्विजाः ॥ ५१ ॥ आनन्दकाननेह्यत्रज्वलद्दावानलोस्म्यहम् ॥ कर्मबीजानिजन्तूनांज्वालयेनप्ररोहये ॥५२ ॥ वस्तव्यंसततंकाश्यांयष्टव्योहंप्रयत्नतः ॥ जेतव्यौकलिकालौचरन्तव्यामुक्तिरङ्गना ॥५३ ॥ प्राप्यापिकाशींदुर्बुद्धिर्योनमांपरिसेवते ॥ तस्यहस्तगताप्याशुकैवल्यश्रीःप्रणश्यति ॥ ५४ ॥ धन्यामद्भक्तिलक्ष्माणोब्राह्मणाःकाशिवासिनः ॥ यूयंयच्चेतसोवृत्तेर्नदूरेहंनकाशिका ॥ ५५ ॥ दातव्योवोवरःकोत्रव्रियतांमेयथारुचि ॥ प्रेयांसोमेयतोयूयंक्षेत्रसंन्यासकारिणः ॥ ५६ ॥ इतिपीत्वामहेशानमुखक्षीराब्धिजां

मेरी दयासे टिकै है ॥ ५१ ॥ इस आनन्दवन में मैं ज्वलते हुये दावानल के समानहूं किन्तु जन्तुओं के कर्मबीजों को जलाताहूं फिर नहीं जमाताहूं ॥ ५२ ॥ इससे काशीमें निरन्तर बसनाचाहिये व अधिक यत्नसे मुझे पूजना चाहिये व कलि और कालको जीतना चाहिये व मुक्ति स्त्रीके साथ रमना चाहिये ॥ ५३ ॥ जो दुर्बुद्धि काशी को प्राप्त होकर भी मुझको नहीं सब ओरसे सेवता है उसकी हस्तगत भी मुक्तिलक्ष्मी शीघ्रही विनष्ट होजाती है ॥ ५४ ॥ हे काशीवासी, ब्राह्मणो ! मेरी भक्ति और त्रिपुण्ड्रादि चिह्नवाले तुमलोग धन्यहो जिससे तुम्हारी चित्तवृत्ति से मैं दूरमें नहीं हूं व काशीपुरी भी दूरमें नहीं है ॥ ५५ ॥ इससे तुमलोगों को कौन वर यहां देनेयोग्य है

वह यथारुचि मुझसे स्वीकार कियाजावे जिससे क्षेत्रसंन्यास करनेवाले तुम मेरे परमप्यारेहो ॥ ५६ ॥ इस भांति महेश के मुखरूप क्षीरसागर से उपजे हुये वचन अमृतको पानकर बहुत तृप्तहुये सब ब्राह्मणों ने अत्यन्त उत्तम वरको अंगीकार किया ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे पार्वतीपते, महेश, सर्वज्ञ! हमारा यह वरहै कि, संसारतापहारिणी काशी आपसे कभी त्यागने योग्य नहीं है ॥ ५८ ॥ व यहां काशीमें ब्राह्मणोंके वचनसे मोक्षका विघ्नरूप किसीका शाप कभी भी न प्रभुताकरे ॥ ५९ ॥ और आपके दोनों पदकमलोंमें हमारी निर्द्वन्द्व भक्ति होवे व देहपात याने मरनेतक निरन्तर हमारा काशीवास होवे ॥ ६० ॥ हे ईश, अंधकध्वंसिन्! अन्य वरसे क्याहै

सुधाम् ॥ परितृप्ताद्विजाःसर्वेवव्रुर्वरमनुत्तमम् ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ उमापतेमहेशानसर्वज्ञवरएषनः ॥ काशीकदापि नत्याज्याभवताभवतापहृत् ॥ ५८ ॥ वचनाद्ब्राह्मणानान्तुशापोमाप्रभवत्विह ॥ कदाचिदपिकेषाञ्चित्काश्यांमोक्षान्तरायकः ॥ ५९ ॥ तवपादाम्बुजद्वन्द्वेनिर्द्वन्द्वाभक्तिरस्तुनः ॥ आकलेवरपातञ्चकाशीवासोस्तुनोनिशम् ॥ ६० ॥ किमन्येनवरेणेशदेयएषवरोहिनः ॥ अवधेह्यन्धकध्वंसिन्वरमन्यंवृणीमहे ॥ ६१ ॥ तवप्रतिनिधीकृत्यास्माभिस्त्वद्भक्तिभावितैः ॥ प्रतिष्ठितेषुलिङ्गेषुसान्निध्यंभवतोऽस्त्विह ॥ ६२ ॥ श्रुत्वेतितेषांवाक्यानितथास्त्वितिपिनाकिना ॥ प्रोचेऽन्योपिवरोदत्तो ज्ञानंवश्चभविष्यति ॥ ६३ ॥ पुनःप्रोवाचदेवेशोनिशामयतभोद्विजाः ॥ हितंवःकथयाम्यत्रतदनुष्ठीयतांध्रुवम् ॥ ६४ ॥ सेव्योत्तरवहानित्यंलिङ्गमर्च्यंप्रयत्नतः ॥ दमोदानंदयानित्यंकर्तव्यंमुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ ६५ ॥ इदमेवरहस्यंचकथितंक्षे

यहही वर हमको देने योग्यहै व हमलोग अन्य भी वरको अंगीकार करते हैं उसको तुम जानो ॥ ६१ ॥ कि तुम्हारी भक्तिसे भावनावाले हमलोगोंने यहां तुम्हारा प्रतिनिधिकर जिन लिंगोंकी प्रतिष्ठा कियाहै उनमें आपकी समीपता होवे ॥ ६२ ॥ ऐसे उनके वचनोंको सुनकर पिनाकधन्वाधारी शिवजीने कहा कि वैसेहीहो और अन्य भी वरदिया कि तुम्हारे ज्ञान होवेगा ॥ ६३ ॥ व देवेश महेशजीने फिर कहा कि हे ब्राह्मणो! तुम सुनो मैं तुम्हारा हित कहताहूं वह यहां निश्चय से कियाजावे ॥ ६४ ॥ कि मुक्तिचाहियों से उत्तरवाहिनी गंगा नित्यही सेवने योग्यहैं व बहुत यत्नसे लिंग पूजनेयोग्यहै व दान दया और दम (बाहरकी इन्द्रियों को विषयों से रोंकना) करने

योग्यहै ॥ ६५ ॥ यहही रहस्य क्षेत्रवासियों के लिये कहागया है कि पराये हितवाली बुद्धि करना चाहिये और उद्वेग करनेवाला वचन नहीं बोलना चाहिये ॥ ६६ ॥ वे जिससे यहां उत्पन्नहुवा पुण्य पापरूप कर्म्म अक्षयहै इससे यहां जीतिचाहीको मनसे भी पाप न करना चाहिये ॥ ६७ ॥ अन्यत्र जो पाप कियागया वह काशी में विनशताहै और काशी में कियाहुवा पाप अन्तर्गेहमें विनष्ट होताहै ॥ ६८ ॥ व अन्तर्गेहमें कियाहुवा पाप पैशाच्य नरकके प्राप्त करनेवाला होताहै याने वह पाप उन पापियोंको रुद्रपिशाच बनाताहै और पिशाच नरक प्राप्ति याने अन्तर्गेहमें पाप करनेवालापुरुष जो काशी से बाहर चलाजाता है ॥ ६९ ॥ तो काशी में किया हुवा पापकर्म

त्रवासिनाम् ॥ मतिःपरहिताकार्यावाच्यंनोद्वेगकृद्वचः ॥ ६६ ॥ मनसापिनकर्तव्यमेनोत्रविजिगीषुणा ॥ अत्रत्यमक्षयं यस्मात्सुकृतंसुकृतेतरम् ॥ ६७ ॥ अन्यत्रयत्कृतंपापंतत्काश्यांपरिणश्यति ॥ वाराणस्यांकृतंपापमन्तर्गेहेप्रणश्यति ॥ ६८ ॥ अन्तर्गेहेकृतंपापंपैशाच्यनरकावहम् ॥ पिशाचनरकप्राप्तिर्गच्छत्येवबहिर्यदि ॥ ६९ ॥ नकल्पकोटिभिःकाश्यां कृतंकर्मप्रमृज्यते ॥ किन्तुरुद्रपिशाचत्वंजायतेऽत्रायुतत्रयम् ॥ ७० ॥ वाराणस्यांस्थितोयोवैपातकेषुरतःसदा ॥ योनिं प्राप्यापिपैशाचींवर्षाणामयुतत्रयम् ॥ ७१ ॥ पुनरत्रैवनिवसञ्ज्ञानंप्राप्स्यत्यनुत्तमम् ॥ तेनज्ञानेनसंप्रान्तेमोक्षमा प्स्यत्यनुत्तमम् ॥ ७२ ॥ दुष्कृतानिविधायेहबहिःपञ्चत्वमागताः ॥ तेषांगतिंप्रवक्ष्यामिशृणुतद्विजसत्तमाः ॥ ७३ ॥ यामाख्यामेगणाःसन्तिघोराविकृतमूर्तयः ॥ मूषायान्तेधमन्त्यादौक्षेत्रदुष्कृतकारिणः ॥ ७४ ॥ नयन्त्यनूपप्रायाञ्चत

करोड़ों कल्पों में नहीं शुद्ध होताहै किन्तु यहां तीसहजार वर्षतक रुद्रपिशाचता होती है ॥ ७० ॥ और यह निश्चयहै कि काशीमें टिकाहुवा जो सदैव पापों में रतहै वह तीसहजार वर्ष पिशाचों की योनिको प्राप्त होवेगा ॥ ७१ ॥ फिर यहांही बसताहुवा बहुत उत्तम ज्ञानको प्राप्तहोकर तदनन्तर उस ज्ञानसे भोगके अन्तमें अधिक उत्तम मोक्षको पावेगा ॥ ७२ ॥ हे द्विजसत्तमो! जे यहां पापोंकोकर बाहर मरणको प्राप्तहुये उनकी गतिको मैं कहूंगा तुमलोग सुनो ॥ ७३ ॥ कि जे यामनामक बड़े घोर विकटरूप मेरे गणहैं वे पहले तो क्षेत्र में पाप करनेवालों को मूषायंत्र में डालकर अग्नि में तपाते हैं (वैद्यक में तरे व ऊपर दो सरवाधरने व कपरौटीकर बन्द

करनेको मूषायंत्र कहते हैं) ॥ ७४ ॥ तदनन्तर वे उनको बहुत जलवाली व दुःखसे जानेवाली पूर्वदिशाको लेजाते हैं व वर्षाकालमें उन पापियों को महाजलमें गिराते हैं ॥ ७५ ॥ और वे पापीलोग पंखसमेत जोंक व जलसेहुये दंदशूक व दुःखसे निवारने योग्य मशों से रातोदिन डसेजाते हैं ॥ ७६ ॥ तदनन्तर वे हेमन्तऋतु में याम गणोंकरके पालाके पहार में प्राप्त कियेजाते हैं व भोजन वस्त्रों से हीनहुये वे रातोदिन क्लेशयुक्त कियेजाते हैं ॥ ७७ ॥ उसके बाद वे ग्रीष्मऋतुमें जल और वृक्षोंसे वर्जित मरुदेशमें तीव्र सूर्य्य किरणो से तपाये जाते हैं व बहुतही प्यासे होते हैं ॥ ७८ ॥ इस भांति उग्रगणों से सब ओर यातनाओं के द्वारा असंख्य समयतक क्लेशितहुये वे तद-

तःप्राचींदुरासदाम् ॥ वर्षाकालेदुराचारान्पातयन्तिमहाजले ॥ ७५ ॥ जलौकाभिःसपक्षाभिर्दन्दशूकैर्जलोद्भवैः ॥ दुर्निवारैश्चमशकैर्दश्यन्तेतेदिवानिशम् ॥ ७६ ॥ ततोयामैर्हिमर्तौतेनीयन्तेऽद्रौहिमालये ॥ अशनावरणैर्हीनाःक्लिश्यन्तेतेदिवानिशम् ॥ ७७ ॥ मरुस्थलेततोग्रीष्मेवारिवृक्षविवर्जिते ॥ दिवाकरकरैस्तीव्रैस्ताप्यन्तेतेपिपासिताः ॥ ७८ ॥ क्लेशितास्तेगणैरुग्रैर्यातनाभिःसमन्ततः॥ इत्थङ्कालमसंख्यातमानीयन्तेततस्त्विह ॥७९॥ निवेदयन्तितेयामाःकालराजान्तिकेततः ॥ कालराजोपितान्दृष्ट्वाकर्मसंस्मार्यदुष्कृतम् ॥ ८० ॥ विवस्त्रान्क्षुत्तृषार्तांश्चलग्नपृष्ठोदरत्वचः ॥ अन्यैरुद्रपिशाचैश्चसहसंयोजयत्यपि ॥ ८१ ॥ ततोरुद्रपिशाचास्तेभैरवानुचराःसदा ॥ सहन्तेक्लममत्यर्थंक्षुत्तृष्णोग्रत्वसम्भवम् ॥ ८२ ॥ आहाररुधिरोन्मिश्रंतेलभन्तेकदाचन ॥ एवंत्र्ययुतसंख्याकंकालंतत्रातिदुःखिताः ॥ ८३ ॥ श्मशानस्तम्भमभितोनीयन्तेकण्ठपाशिताः ॥ पिपासिताअपिनतेऽम्बुस्पर्शमपिचाप्नुयुः ॥ ८४ ॥ अथसंक्षीणपापास्तेकालभैरवदु

नन्तर फिर यहां लायेजाते हैं ॥ ७९ ॥ अनन्तर वे यामनाम गण उनको कालराजके निकट में निवेदित करते हैं व कालराज भी उनको देखकर पाप व दुष्टकर्मकी सुध कराकर ॥ ८० ॥ जे कि विवस्त्र व भूंख और प्यास से व्याकुलहैं व जिनके उदरका चर्म सिकुड़कर पीठमें लगाहै उनको अन्य रुद्रपिशाचो के साथ भी संयोग कराते हैं ॥ ८१ ॥ तदनन्तर वे रुद्रपिशाच सदैव भैरवके अनुचर होकर भूंख व प्यासकी उग्रतासे उपजेहुये कष्टको बहुतही सहते हैं ॥ ८२ ॥ इसभांति तीनहजार वर्ष संख्यक कालतक वहां बहुत दुःखितहुये वे कभी कभी रक्तसे मिश्रित भोजनको पाते हैं ॥ ८३ ॥ व कण्ठ मे फांसेहुये वे श्मशान खम्भके सब ओरसे फिराये जाते हैं और बहुत

प्यासे हुये भी वे पानी छूनेको नहीं पातेहैं उसके बाद कालभैरवके दर्शनसे भलीभांति क्षीणहुये पापोंवाले वे यहांही देहधारी होकर फिर मेरी आज्ञासे मुक्तहोतेहैं ॥ ८५॥ उस कारण यहां वचन मन और कर्म से भी पापकी कामना न करे क्योंकि बड़ा लाभ चाहतेहुये जनोंको शुद्ध गलीमें सदा टिकना चाहिये ॥ ८६ ॥ और काशीमें जहीं कहीं मराहुवा कोई भी पापी नरकको नहीं जाताहै किन्तु मेरी दयाको प्राप्त होकर उत्तम मोक्षकोही प्राप्तहोताहै ॥ ८७ ॥ जोकि अच्छे व्रतवाला मेराभक्त यहां भोजन त्यागका नियम करताहै उसका करोड़ों सौ कल्पों में भी संसार में फिर लौटना नहीं होताहै याने वह मुक्त होजाताहै ॥ ८८॥ इसलिये बहुत पातकवाले इस मनुष्य भावको अनित्य

र्शनात् ॥ इहैवदेहिनोभूत्वामुच्यन्तेतेममाज्ञया ॥ ८५ ॥ तस्मान्नकामयेतात्रवाङ्मनःकर्मणाप्यघम् ॥ शुचौपथिसदा स्थेयंमहालाभमभीप्सुभिः ॥ ८६ ॥ नाविमुक्तेमृतःकश्चिन्नरकंयातिकिल्बिषी ॥ ममानुग्रहमासाद्यगच्छत्येवपराङ्गतिम् ॥ ८७ ॥ अनाशनंयःकुरुतेमद्भक्तइहसुव्रतः ॥ नतस्यपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि ॥ ८८ ॥ अशाश्वतमिदंज्ञात्वामानुष्यंबहुकिल्बिषम् ॥ अविमुक्तंसदासेव्यंसंसारभयमोचकम् ॥ ८९ ॥ नान्यत्पश्यामिजन्तूनांमुक्त्वावाराणसींपुरीम् ॥ सर्वपापप्रशमनींप्रायश्चित्तंकलौयुगे ॥ ९० ॥ जन्मान्तरसहस्रेषुयत्पापंसमुपार्जितम् ॥ अविमुक्तंप्रविष्टस्य तत्सर्वंव्रजतिक्षयम् ॥ ९१ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषुयुञ्जन्योगीयदाप्नुयात् ॥ तदिहैवपरोमोक्षोमरणादधिगम्यते ॥ ९२ ॥ तिर्यग्योनिगताःसत्त्वायेविमुक्तकृतालयाः ॥ कालेननिधनंप्राप्तास्तेपियान्तिपराङ्गतिम् ॥ ९३ ॥ अविमुक्तंनसेवन्तेयेमू

जानकर संसार डर की छुड़ानेवाली काशीपुरी सदैव सेवने योग्यहै ॥ ८९ ॥ व कलियुगमें सब पापनाशिका काशिकापुरीको छोड़कर जन्तुओंका अन्य प्रायश्चित्त नहीं देखताहूं ॥ ९० ॥ हज़ारों जन्मों में जो पाप इकट्ठा किया गयाहै वह समस्त पाप काशीमें प्रविष्टहुये जनका विनष्ट होजाताहै ॥९१॥ जोकि हजारों जन्मान्तरों में भली भांति कमायागयाहै वह काशी में पैठते हुये का सबपाप नाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ९० ॥ और हजारोंजन्मान्तरों में योगको जोड़ताहुवा योगी जिसको प्राप्तहोवे वहही उत्तम मोक्ष यहां मरनेमात्रसेही मिलताहै ॥९२ ॥ तिर्य्यग्योनि में प्राप्त भी जे पशुआदि प्राणी काशीमें स्थान कियेहैं वे भी कालसे मरणको प्राप्तहोकर उत्तम गतिको जाते हैं ॥९३॥

व जे अज्ञानसे घिरेहुये मूढ़ काशीको नहीं सेवते हैं वे विष्ठा रेत और मूत्रके कुण्डोंके बीचमें बार बार बसतेहैं ॥ ९४ ॥ और जो सुबुद्धिमान् मनुष्य काशीको प्राप्तहोकर लिंग की प्रतिष्ठाकरे उसका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी कभी फिर जन्म नहीं होता है ॥ ९५ ॥ यह निश्चयहै कि ग्रह नक्षत्र और ताराओंका भी गिरजाना कालसे होजाताहै परन्तु काशीमें मरेहुये जनोंका पतन नहींहै ॥ ९६ ॥ जोकि मनुष्य ब्रह्महत्याकोकर पीछेसे संयमसमेत मनवाला होकर काशीमें प्राणोंको छोड़ताहै वह संसारसे भी मुक्त होजाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ९७ ॥ हे ब्राह्मणो ! जेकि मेरी भक्तिमें सावधान पतिव्रता स्त्रियां काशी में मरीहैं वे उत्तम मोक्षको प्राप्त होतीहैं ॥ ९८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! यहां मैं आपही

ढास्तमसावृताः ॥ विण्मूत्ररेतसांमध्येतेवसन्तिपुनःपुनः ॥ ९४ ॥ अविमुक्तंसमासाद्ययोलिङ्गंस्थापयेत्सुधीः ॥ कल्पकोटिशतैर्वापिनास्तितस्यपुनर्भवः ॥ ९५ ॥ ग्रहनक्षत्रताराणांकालेनपतनंध्रुवम् ॥ अविमुक्तेमृतानान्तुपतनन्नैवविद्यते ॥ ९६ ॥ ब्रह्महत्यान्नरःकृत्वापश्चात्संयतमानसः ॥ प्राणांस्त्यजतियःकाश्यांसमुक्तोनात्रसंशयः ॥ ९७ ॥ स्त्रियःपतिव्रतायाश्चममभक्तिसमाहिताः ॥ अविमुक्तेमृताविप्रायान्तिताःपरमाङ्गतिम् ॥ ९८ ॥ अत्रोत्क्रमणकालेहंस्वयमेवद्विजोत्तमाः ॥ दिशामितारकंब्रह्मदेहीस्याद्येनतन्मयः ॥ ९९ ॥ मन्मनाममभक्तश्चमयिसर्वार्पितक्रियः ॥ यथामोक्षमिहाप्नोतिनतथान्यत्रकुत्रचित् ॥ १०० ॥ मरणंनिश्चितंज्ञात्वागतिंचासुखरूपिणीम् ॥ चलमागन्तुकंसर्वंततःकाशींसमाश्रयेत् ॥ १ ॥ काशींसमाश्रितायैस्तुमनोवाक्कायकर्मभिः ॥ तानत्रनिर्मलधियोनिर्वाणश्रीःसमाश्रयेत् ॥ २ ॥ काशीस्थितैकमपियःप्रीणयेन्न्यायजैर्धनैः ॥ तेनत्रैलोक्यमखिलंप्रीणितन्तुमयासह ॥ ३ ॥ यःप्रीणयतिपुण्यात्मानिर्वाणनगरीनर

मरण समयमें तारकब्रह्म (ॐकार या राम मंत्र) का उपदेश करताहूं जिससे वह देहधारी तन्मय याने उस ब्रह्ममय होजाताहै ॥ ९९ ॥ मुझमें मन लगाये व मुझमें सब कर्मोंको समर्पे हुवा मेराभक्त जैसे यहां मोक्षको प्राप्तहोताहै वैसे अन्यत्र कहीं भी नहीं है ॥ १०० ॥ उससे मरणको निश्चित व स्वर्गादिगतिको दुःखरूपिणी और जगत्में हाथी घोड़ा स्त्री पुत्र माला चन्दन आदि सब आगन्तुक (आनेवाले) फलको चञ्चल जानकर काशीपुरीका भलीभांति आश्रयकरे (सेवे) ॥ १ ॥ क्योंकि जिनने मन वचन तन और कर्मों से काशीकी सेवा किया उन विमल बुद्धियोंको यहां मोक्षलक्ष्मी भलीभांति सबओरसे सेवतीहै ॥ २ ॥ और जोकि न्यायमार्गसे उपजेहुये धनों से एकभी काशीवासी

को तृप्त करताहै उससे मुझसमेत सम्पूर्ण त्रैलोक्य तृप्त होजाताहै ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो पुण्यात्मा काशीवासी मनुष्यको तृप्तकरता है उसको मैं चार पुरुषार्थों से स्थिति (बसने)के लिये नित्यही तृप्तकरताहूं ॥ ४ ॥ देखोकि काशीको धर्मसे पालताहुवा राजर्षि दिवोदासभी सदेह मेरेलोकको प्राप्तहुवा जिससे फिर संसारमें आना नहीं है ॥ ५ ॥ योगज्ञान तथा मुक्ति यहां एकही जन्म में होती है इससे काशीको प्राप्तहोकर अन्य तपोवनको मत जावे ॥ ६ ॥ बरन् मोक्षको बहुत दुर्लभ और संसारको भारी भयानक जानकर यहां पत्थर से दोनों पांवोंको तोड़ फोड़कर मृत्युकाल को परखे ॥ ७ ॥ और जब कुबुद्धिजन काशीका परित्यागकर कहीं जावेंगे तब भूत लोग आपुस में ताड़ी

म् ॥ पुमर्थेनस्थितेर्नित्यंब्राह्मणाःप्रीणयामितम् ॥ ४ ॥ दिवोदासोपिराजर्षिःकाशींधर्मेणपालयन् ॥ सदेहोमत्पदंप्राप्तो यतोनपुनरागतिः ॥ ५ ॥ अत्रयोगस्तथाज्ञानंमुक्तिरेकेनजन्मना ॥ अतोविमुक्तमासाद्यनान्यद्गच्छेत्तपोवनम् ॥ ६ ॥ मोक्षंसुदुर्लभंज्ञात्वासंसारंचातिभीषणम् ॥ अश्मनाचरणौहत्वाकालमत्रप्रतीक्षयेत् ॥ ७ ॥ अविमुक्तंपरित्यज्ययदा यास्यन्तिदुर्धियः ॥ हसिष्यन्तितदाभूतान्यन्योन्यकरताडनैः ॥ ८ ॥ प्राप्यवाराणसींपुण्यांसिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ परिनिष्क्रान्तुमन्यत्रकस्यजन्तोर्मतिर्भवेत् ॥ ९ ॥ महादानेनचान्यत्रयत्फलंलभ्यतेनरैः ॥ अविमुक्तेतुकाकिण्यान्द त्तायान्तदवाप्यते ॥ १० ॥ एकंसमर्चयेल्लिङ्गंतपस्तप्येतचापरः ॥ तयोर्मध्येतुसश्रेष्ठोयोलिङ्गंपूजयेदिह ॥ ११ ॥ तीर्था न्तरेगवाङ्कोटिंविधिवद्यःप्रयच्छति ॥ एकाहंयोवसेत्काश्याङ्काशीवासीतयोर्वरः ॥ १२ ॥ अन्यत्रब्राह्मणानान्तुकोटिंस म्भोज्ययत्फलम् ॥ वाराणस्यान्तुचैकेनभोजितेनतदाप्यते ॥ १३ ॥ सन्निहत्यांकुरुक्षेत्रेराहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ तुलापुरु

बजाने से हसेंगे ॥ ८ ॥ इसलिये महामनोज्ञ या पुण्यरूप अधिक उत्तम सिद्धिक्षेत्र काशीपुरीको प्राप्तहोकर अन्यत्र निकलजाने के लिये किस प्राणीकी मति (बुद्धि) होवे ॥ ९ ॥ और अन्यत्र बड़े दान देनेसे मनुष्योंको जो फल मिलताहै वह काशी में एक या बीस कौड़ीमात्र देतेही प्राप्त कियाजाताहै ॥ १० ॥ व एकजन यहां एक शिवलिंगकी पूजाकरे और अन्य कोई तपस्याको तपे परन्तु उन दोनों में से जो लिंगको पूजे वहही श्रेष्ठहै ॥ ११ ॥ जोकि अन्य तीर्थों में करोड़ों गौओंको विधानके समान देवे व जो काशी में एक दिन बसे उन दोनों में से काशीवासी श्रेष्ठहै ॥ १२ ॥ व अन्यत्र करोड़ों ब्राह्मणों को भलीभांति खिला पिलाकर जो फलहै वह काशी में भोजन

करायेहुये एकसेही प्राप्त कियाजाताहै ॥ १३ ॥ व राहुसे ग्रसेहुये सूर्य्यके होतेही याने सूर्य्य ग्रहण समय कुरुक्षेत्रमें रामकुण्डके समीप तुला पुरुष दानके समान काशीकी भिक्षा होवेहै ॥ १४ ॥ क्योंकि लिंगरूपधारी मेरा अनन्त उत्तम तेज पाताल पर्य्यन्त व सत्यलोकादिकों को लांघकर यहांपर टिकाहै ॥ १५ ॥ जोकि पृथिवीके अन्तमें भी मेरे अविमुक्त लिंगको सुमिरतेहैं वे बडे पापों से छूटजाते हैं ऐसा निश्चय कियाहुवा है ॥ १६ ॥ व इसक्षेत्रमें मैं जिससे देखा छुवा और पूजागयाहूं वह तारकज्ञान को भलीभांति प्राप्तहोकर फिर संसारमे नहीं उत्पन्न होताहै ॥ १७ ॥ और जो यहां मेरी भलीभांति पूजाकर अन्यत्र कहीं मरताहै वह जन्मान्तरमें भी मुझको प्राप्तहोकर मुक्त

षदानेनकाशीभिक्षासमाभवेत् ॥ १४ ॥ ममेहपरमंज्योतिरापातालाद्व्यवस्थितम् ॥ अतीत्यसमलोकादीननन्तंलिङ्गरूपधृक् ॥ १५ ॥ पृथिव्यन्तेपियेलिङ्गमविमुक्तंस्मरन्तिमे ॥ कलुषैस्तेविमुच्यन्तेमहद्भिरितिनिश्चितम् ॥ १६ ॥ अस्मिन्क्षेत्रेतुयेनाहंदृष्टःस्पृष्टःसमर्चितः ॥ संप्राप्यतारकंज्ञानन्नसभूयोभिजायते ॥ १७ ॥ योमामिहसमभ्यर्च्यम्रियतेन्यत्रकुत्रचित् ॥ जन्मान्तरेपिमाम्प्राप्यसविमुक्तोभविष्यति ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वाक्षेत्रमाहात्म्यन्द्विजानामग्रतोहरः ॥ पश्यतामेवतेषान्तुतत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥ १९ ॥ तेपिसाक्षाद्विरूपाक्षंप्रत्यक्षीकृत्यवाडवाः ॥ प्रहृष्टमनसोऽत्यन्तंप्रययुःस्वंस्वमाश्रयम् ॥ २० ॥ शम्भोर्वाक्यंविनिश्चित्यसर्वज्ञस्यकृपानिधेः ॥ त्यक्त्वाकार्यान्तरंविप्रालिङ्गान्येवसमार्चिषुः ॥ २१ ॥ स्कन्द उवाच ॥ पठित्वापाठयित्वाचरहस्याख्यानमुत्तमम् ॥ श्रद्धालुःपातकैर्मुक्तःशिवलोकेमहीयते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेक्षेत्ररहस्यकथनन्नामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

होवेगा ॥ १८ ॥ इसभांति ब्राह्मणोंके आगे क्षेत्रका माहात्म्य कहकर संसाररोगहर महादेवजी उनही सबोंके देखतेही वहां अन्तर्धानहुये ॥ १९ ॥ और वे ब्राह्मण भी साक्षात् शिवजीको प्रत्यक्षकर याने देखकर अत्यन्त आनन्दित मन होकर अपने अपने आश्रमको गये॥२०॥ व वे विप्र, कृपानिधान सर्वज्ञ शंकरजी के वचनको विशेष से निश्चयकर और अन्य कार्य्योंको छोड़कर लिंगोंकोही भलीभांति पूजतेभये ॥ २१ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, इस उत्तम रहस्यरूप आख्यानको पढ़कर और पढ़ाकर सब पापों से छूटाहुवा श्रद्धावान् नर शिवलोकमें पूजाजाता है याने आदर पाताहै ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥

दो० ॥ पैंसठयें अध्याय में पराशरेश्वरआदि । लिंगों की महिमा महत जिरासे मिलैं अनादि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भज ! ज्येष्ठेश्वरके सब ओर में जे मुनियों के पांचहजार लिंगहैं वे बहुतही सिद्धिदायक हैं ॥ १ ॥ ज्येष्ठेश्वर से उत्तर में बड़ा पूजनीय पराशरेश्वर लिंगहै उसके दर्शनमात्र से विमलज्ञान मिलता है ॥ २ ॥ व वहांहीं सिद्धि देनेवाला माण्डव्येश्वरनामक लिंगहै उसके दर्शनसे मनुष्य दुर्बुद्धि को कभी न प्राप्त होवेहै ॥ ३ ॥ व वहांही सदा शुभ देनेवाला शंकरेशनामक लिंगहै और वहां भक्तो के सब सिद्धिदाता भृगुनारायणहैं ॥ ४ ॥ व वहां बहुत सिद्धिदायक जावालीश्वरनामक लिंगहै उसके भलीभांति दर्शन से प्राणी दुर्गतिको कभी नहीं

स्कन्दउवाच ॥ ज्येष्ठेश्वरस्यपरितोयानिलिङ्गानिकुम्भज ॥ तानिपञ्चसहस्राणिमुनीनांसिद्धिदान्यलम् ॥ १ ॥ पराशरेश्वरंलिङ्गंज्येष्ठेशादुत्तरेमहत् ॥ तस्यदर्शनमात्रेणनिर्मलंज्ञानमाप्यते ॥ २ ॥ तत्रैवसिद्धिदंलिङ्गंमाण्डव्येश्वरसंज्ञितम् ॥ नतस्यदर्शनाज्जातुदुर्बुद्धिंप्राप्नुयान्नरः ॥ ३ ॥ लिङ्गञ्चशङ्करेशाख्यंतत्रैवशुभदंसदा ॥ भृगुनारायणस्तत्रभक्तानांसर्वसिद्धिदः ॥ ४ ॥ जावालीश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गंतत्रातिसिद्धिदम् ॥ तस्यसन्दर्शनाज्जातुनजन्तुर्दुर्गतिंव्रजेत् ॥ ५ ॥ सुमन्तुमुनिनाश्रेष्ठस्तत्रादित्यःप्रतिष्ठितः॥ तस्यसंदर्शनादेवकुष्ठव्याधिःप्रशाम्यति ॥ ६ ॥ भैरवीभीषणानामतत्रभीषणरूपिणी ॥ क्षेत्रस्यभीषणंसर्वंनाशयेद्भावतोर्चिता ॥ ७ ॥ तत्रोपजङ्घनेर्लिङ्गङ्कर्मबन्धविमोक्षणम् ॥ नृभिःसंसेवितम्भक्त्याषण्मासात्सिद्धिदम्परम् ॥ ८ ॥ भारद्वाजेश्वरंलिङ्गंलिङ्गंमाद्रीश्वरंवरम् ॥ एकत्रसंस्थितेद्वेतुद्रष्टव्येसुकृतात्मना ॥ ९ ॥ अरुणिस्थापितंलिङ्गंतत्रैवकलशोद्भव ॥ तस्यलिङ्गस्यसेवातःसर्वामृद्धिमवाप्नुयात् ॥ १० ॥ लिङ्गंवाजसने

जावेहै ॥ ५ ॥ व वहां सुमन्तुमुनि से थापेहुये आदित्य (सूर्य्य) हैं उनके दर्शनसेही कुष्ठरोग प्रशान्त होजाता है ॥ ६ ॥ व वहां भयानकरूपिणी भीषणानाम भैरवीजी भक्तिसे पूजित होकर क्षेत्रके सब भीषणको नष्ट करदेतीहै ॥ ७ ॥ और वहां कर्मबन्धन से छुड़ानेवाला जो उपजंघनिका उत्तम लिंगहै वह भक्तिसमेत मनुष्यों से भलीभांति सेवितहुवा छःमासमें सिद्धिदाता होजाताहै ॥ ८ ॥ और भारद्वाजेश्वर लिंग व श्रेष्ठ माद्रीश्वर लिंग ये दोनों एकत्र टिकेहुये लिंग पुण्यात्मा पुरुष से देखने योग्य हैं ॥ ९ ॥ हे कलशोद्भव ! वहांहीं अरुणि से थापाहुवा लिंगहै उस लिंगकी सेवासे सब ऋद्धिको प्राप्त होवे है ॥ १० ॥ व वहां बहुत मनोहर वाजसनेयनामक लिंगहै

उसके संदर्शनसेही लोगोंको वाजपेय यज्ञका फल होवे है ॥ ११ ॥ व कण्वेश्वर शुभ लिंग व कात्यायनेश्वर लिंग व वामदेवेश्वरलिंग और औतथ्येश्वर भी ॥ १२ ॥ व हारीतेश्वरनामकलिंग व गालवेश्वर व कुम्भिका थापाहुवालिंग तथा महापुण्य कौसुमेश्वर ॥ १३ ॥ व अग्निवर्णेश्वर व नैध्रुवेश्वर व वत्सेश्वर व पर्णादेश्वर महालिंग ॥ १४ ॥ व सक्तुप्रस्थेश्वरलिंग वैसेही कणादेश्वर और अन्य भी माण्डूकायनि का थापाहुवा महालिंग वहांहै ॥ १५ ॥ व बाभ्रवेयेश्वरलिंग तथा शिलावृत्तीश्वर व च्यवनेश्वरलिंग व शालंकायनकेश्वर ॥ १६ ॥ व कलिंदमेश्वरलिंग व अक्रोधनेश्वरलिंग व कपोतवृत्तीश्वरलिंग व कंकेश्वर व कुन्तलेश्वर ॥ १७ ॥ व कण्ठेश्वर व कहोलेश्वर व तुम्बुरु से पू-

याख्यन्तत्रास्त्यतिमनोहरम् ॥ तस्यसन्दर्शनात्पुंसांवाजपेयफलम्भवेत् ॥ ११ ॥ कण्वेश्वरंशुभंलिङ्गंलिङ्गङ्कात्यायनेश्वरम् ॥ वामदेवेश्वरंलिङ्गमौतथ्येश्वरमेवच ॥ १२ ॥ हारीतेश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गंवैगालवेश्वरम् ॥ कुम्भेर्लिङ्गंमहापुण्यन्तथावैकौसुमेश्वरम् ॥ १३ ॥ अग्निवर्णेश्वरञ्चैवनैध्रुवेश्वरमेवच ॥ वत्सेश्वरम्महालिङ्गंपर्णादेश्वरमेवच ॥ १४ ॥ सक्तुप्रस्थेश्वरंलिङ्गङ्कणादेशन्तथैवच ॥ अन्यत्तत्रमहालिङ्गंमाण्डूकायनिरूपितम् ॥ १५ ॥ बाभ्रवेयेश्वरंलिङ्गंशिलावृत्तीश्वरंतथा ॥ च्यवनेश्वरलिङ्गञ्चशालङ्कायनकेश्वर ॥१६॥ कलिन्दमेश्वरंलिङ्गंलिङ्गमक्रोधनेश्वरम् ॥ लिङ्गङ्कपोतवृत्तीशङ्कङ्केशंकुन्तलेश्वरम् ॥ १७ ॥ कठेश्वरङ्कहोलेशंलिङ्गंतुम्बुरुपूजितम् ॥ मतङ्गेशम्मरुत्तेशम्मगधेयेश्वरंतथा ॥ १८॥ जातूकर्णेश्वरंलिङ्गंजम्बुकेश्वरमेवच ॥ जारुधीशञ्जलेशञ्चजालमेशञ्जालकेश्वरम् ॥ १९ ॥ एवमादीनिलिङ्गानिअयुताधानिकुम्भज ॥ एतेषांशुभलिङ्गानांज्येष्ठस्थानेतिपावने ॥ २० ॥ स्मरणाद्दर्शनात्स्पर्शादर्चनान्नमनात्स्तुतेः ॥ नजातुजायतेजन्तोःकलुषस्यसमुद्भवः ॥ २१ ॥ स्कन्दउवाच ॥ एकदातत्रयद्वृत्तंज्येष्ठस्थानेमहामुने ॥ तदहन्तेप्रवक्ष्यामि

जितलिंग व मतंगेश व मरुत्तेश तथा मगधेयेश्वर ॥ १८ ॥ व जातूकर्णेश्वरलिंग व जम्बुकेश्वर व जारुधीश्वर व जलेश्वर व जालमेश्वर और जालकेश्वर ॥ १९ ॥ हे कुम्भज ! इत्यादि पांचहजारलिंग परमपावन ज्येष्ठ स्थानमें हैं इन शुभ लिंगों के ॥ २० ॥ सुमिरने देखने छूने पूजने नमस्कार करने और स्तुति से प्राणी के पापकी उत्पत्ति कभी नहीं होतीहै ॥ २१ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महामुने ! एक समय उस ज्येष्ठ स्थान में जो पाप नाशनेवाला हालहुवा उसको मैं तुमसे कहूंगा तुम

सुनो २२ ॥ कि उस ज्येष्ठ स्थानमें अपनी इच्छा से विहरतेहुये महेशजीकी शक्ति पार्वतीजी कौतुकसे गेंदका खेल खेलतीथीं ॥ २३ ॥ जोकि ऊंचे व नीचे जातेहुये अंगों की लघुताको सब ओरसे पसारतीहुई निःश्वासके सुगन्ध से आनन्दितहुये भौंरों से आकुलित आंखोंवाली थीं ॥ २४ ॥ व जिन्हने नीचे गिरतीहुई बारोंकी पाटी से छूटी अच्छी फूलोंकी मालाओं से भूमिको ढांप (छाय) दियाहै व जो पसीजेहुये कपोलों से विरचित पत्रपंक्तिके द्वारा चूतेहुये जलके बिन्दुओं से देदीप्यमान हैं ॥ २५ ॥ व चलायमान चोली वस्त्रके छिद्रों में निकलीहुई अंगोंकी प्रभाओं से घिरीहै व ऊंचेको जातेहुये गेंदका जो नीचे गिरना है उससे लाले हाथ कमलवाली हैं ॥ २६ ॥ व

शृणुष्वाघविनाशनम् ॥ २२॥ स्वैरंविहरतस्तत्रज्येष्ठस्थानेमहेशितुः ॥ कौतुकेनैवचिक्रीडशिवाकन्दुकलीलया ॥२३॥ उदञ्चन्यञ्चदङ्गानांलाघवंपरितन्वती ॥ निःश्वासामोदमुदितभ्रमराकुलितेक्षणा ॥ २४ ॥ भ्रश्यद्धम्मिल्लसन्माल्यस्थपुटीकृतभूमिका ॥ स्विद्यत्कपोलपत्रालीस्रवदम्बुकणोज्ज्वला ॥ २५ ॥ स्फुटच्चोलांशुकपथनिर्यदङ्गप्रभावृता ॥ उल्लसत्कन्दुकास्फालातिशोणितकराम्बुजा ॥ २६ ॥ कन्दुकानुगसद्दृष्टिनर्तितभ्रूलताञ्चला ॥ मृडानीकिलखेलन्तीददृशेजगदम्बिका ॥ २७ ॥ अन्तरिक्षचराभ्याञ्चदितिजाभ्यांमनोहरा ॥ कटाक्षिताभ्यामिववैसमुपस्थितमृत्युना ॥ २८ ॥ विदलोत्पलसंज्ञाभ्यांदृप्ताभ्यांवरतोविधेः ॥ तृणीकृतत्रिजगतीपुरुषाभ्यांस्वदोर्बलात् ॥२९॥ देवींपरिजिहीर्षूतौविषमेषुप्रपीडितौ ॥ दिवोवतेरतुःक्षिप्रंमायांस्वीकृत्यशाम्बरीम् ॥३०॥ धृत्वापारषदींमूर्त्तिमायातावम्बिकान्तिकम् ॥ तावत्यन्तंसुदु

जिन्हने गेंदके पीछे जातीहुई अच्छी दृष्टिसे भौंह लताके प्रांत (कोर) को नचाया है वह खेलतीहुई सुखदायिनी जगदम्बिकाजी दैत्यों से प्रसिद्ध देखीगई ॥ २७ ॥ जोकि पार्वतीजी मनोहर मूर्त्तिवाली हैं और वे दैत्य अन्तरिक्ष में विचरनेवाले व समीप में भलीभांति प्राप्तहुई मृत्यु से कटाक्षित (देखेहुये) के समान हैं ॥ २८ ॥ व विदल और उत्पल नामवाले हैं व ब्रह्माजीके वरसे गर्वित हैं व अपनी बाहों के बलसे त्रिलोकके पुरुषों को तृणके समान कियेहुये हैं ॥ २९ ॥ और काम से पीड़ित हो कर देवीजी को हरना चाहते हुये वे शाबरी माया को अंगीकारकर द्युलोक से शीघ्रही उतरे ॥ ३० ॥ व पार्षदका रूपधर अंबिकाजीके समीप में आये परन्तु अत्यन्तदुरा-

चारी बहुत चंचल चित्तवाले वे ॥ ३१ ॥ आंखोंसे हुई चंचलतासे सर्वज्ञ शिवजीसे जानेगये तदनंतर दुर्गवैरी विनाशिनी दुर्गाजी महादेवजीके कटाक्षसे देखीगईं ॥३२॥ और उसके बाद आंखों की संज्ञाको विशेषसे जानकर (समझकर) सर्वज्ञ शिवजी की अर्धांगीने उसही गेंदसे उनको एक साथही मारडाला ॥ ३३ ॥ व महादेवीजी के गेंदसे मारेहुये बड़े बलवान् वे दुष्टदैत्य सब ओर घूम घूमकर गिरपड़े ॥ ३४ ॥ तालके टमुसे से बयार के डुलाये पकेहुये फलों की नाईं व वज्रसे मारे महापर्वत के कँगूरोंकी नाईं ॥३५॥ अकार्य्य करने में उद्यतहुये उन दोनों दैत्यों को नीचे गिराकर तदनन्तर वह गेंद लिंगरूप से परिणामको प्राप्तभया याने लिंगाकार होगया ॥३६॥

वृत्तावतिचञ्चलमानसौ ॥ ३१ ॥ सर्वज्ञेनपरिज्ञातौचाञ्चल्याल्लोचनोद्भवात् ॥ कटाक्षिताथदेवेनदुर्गादुर्गारिघातिनी ॥ ३२ ॥ विज्ञायनेत्रसंज्ञान्तुसर्वज्ञार्धशरीरिणी ॥ तेनैवकन्दुकेनाथयुगपन्निजघानतौ ॥ ३३ ॥ महाबलौमहादेव्याकन्दुकेनसमाहतौ ॥ परिभ्रम्यपरिभ्रम्यतौदुष्टौविनिपेततुः ॥ ३४ ॥ वृन्तादिवफलेपक्वेतालादनिललोलिते ॥ दम्भोलिनापरिहतेशृङ्गे इवमहागिरेः ॥ ३५ ॥ तौनिपात्यमहादैत्यावकार्यकरणोद्यतौ ॥ ततःपरिणतिंयातोलिङ्गरूपेणकन्दुकः ॥ ३६ ॥ कन्दुकेश्वर संज्ञञ्चतल्लिङ्गमभवत्तदा ॥ ज्येष्ठेश्वरसमीपेतुसर्वदुष्टनिवारणम् ॥ ३७ ॥ कन्दुकेशसमुत्पत्तिंयःश्रोष्यतिमुदान्वितः ॥ पूजयिष्यतियोभक्तस्तस्यदुःखभयंकुतः ॥ ३८ ॥ कन्दुकेश्वरभक्तानांमानवानान्निरेनसाम् ॥ योगक्षेमंसदाकुर्याद्भवानी भयनाशिनी ॥ ३९ ॥ मृडानीतस्यलिङ्गस्यपूजांकुर्यात्सदैवहि ॥ तत्रैवदेव्याःसान्निध्यंपार्वत्याभक्तसिद्धिदम् ॥ ४० ॥ कन्दुकेशम्महालिङ्गङ्काश्यांयैर्नसमर्चितम् ॥ कथन्तेषांभवानीशौस्यातांसर्वेप्सितप्रदौ ॥ ४१ ॥ द्रष्टव्यञ्चप्रयत्नेनतल्लि

तब ज्येष्ठेश्वर के समीप में सबदुष्टों का निवारक वह कंदुकेश्वर संज्ञक लिंगहुवा ॥ ३७ ॥ जो कि आनन्द समेत कंदुकेश्वर की समुत्पत्तिको सुनेगा व जो भक्त पूजेगा उसको दुःखकाडर कहां है ॥ ३८ ॥ क्योंकि भयभञ्जनी भवानीजी कंदुकेश्वर के भक्त व पापहीन मनुष्योंका योग क्षेम सदा करतीहैं ॥ ३९ ॥ और श्रीपार्वतीजी सदैव उस लिंगकी पूजा करती हैं और वहांही श्रीपार्वती देवीकी भक्तोंकी सिद्धि देनेवाली समीपता है ॥ ४० ॥ किन्तु काशी में कंदुकेश्वर लिंग जिनसे भलीभांति नहीं पूजागया उनको सब वांछितदायक भवानी और महादेवजी कैसे होवें ॥ ४१ ॥ उससे सब विघ्न समूह विनाशक उत्तम वह कंदुकेश्वर लिंग बहुत यत्नसे देखने

योग्य है ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य्योदय को प्राप्तहोकर अंधकार विनष्ट होजाताहै वैसेही कंदुकेश्वरका नामभी सुनकर पापसमूह शीघ्रही नाशको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ श्री कार्त्तिकेयजी बोले कि हे महाभाग, विप्र! अधिक आश्चर्य्यकारी जो वृत्तान्त ज्येष्ठेश्वर के समीप में निश्चय से हुवा उसको तुम भलीभांति सुनो ॥ ४४ ॥ कि देवता ऋषि और पितरों की तृप्तिकेदायक दण्डखात नामक महातीर्थ के समीप में ब्राह्मणों के निष्काम उत्तम तपस्या तपतेही ॥ ४५ ॥ जो कि प्रह्लादका मामा दुंदुभि निर्ह्राद नामक दुष्ट दैत्यथा उसने ऐसा उपाय विचारा कि देवलोग कैसे बहुत जीतने योग्य होजावें ॥ ४६ ॥ और ये देवलोग किस बलवाले व किस भोजनवाले व किस आधार

ङ्कन्दुकेश्वरम् ॥ सर्वोपसर्गसङ्घातविघातकरणंपरम् ॥ ४२ ॥ कन्दुकेश्वरनामापिश्रुत्वाद्वृजिनसन्ततिः ॥ द्विप्रंक्षयमवाप्नोतितमःप्राप्योष्णगुंयथा ॥ ४३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ संशृणुष्वमहाभागज्येष्ठेश्वरसमीपतः ॥ यद्वृत्तान्तमभूद्विप्रपरमाश्चर्यकृद्ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ दण्डखातेमहातीर्थेदेवर्षिपितृतृप्तिदे ॥ तप्यमानेषुविप्रेषुनिष्कामंपरमन्तपः ॥ ४५ ॥ दैत्योदुन्दुभिनिर्ह्रादोदुष्टःप्रह्लादमातुलः ॥ देवाःकथंसुजेयाःस्युरित्युपायमचिन्तयत् ॥ ४६ ॥ किंबलाश्चकिमाहाराःकिमाधाराहिदेवताः ॥ विचार्यबहुशोदैत्यस्तत्त्वंविज्ञायनिश्चितम् ॥ ४७ ॥ अवश्यमग्रजन्मानोहेतवोत्रविचारतः ॥ ब्राह्मणान्हन्तुमसकृत्कृतवानुद्यमन्ततः ॥ ४८ ॥ यतःक्रतुभुजोदेवाःक्रतवोवेदसम्भवाः ॥ तेवेदाब्राह्मणाधीनास्ततोदेवबलंद्विजाः ॥ ४९ ॥ निश्चितंब्राह्मणाधाराःसर्ववेदाःसवासवाः ॥ गीर्वाणाब्राह्मणबलानात्रकार्याविचारणा ॥ ५० ॥ ब्राह्मणायदिनष्टाःस्युर्वेदानष्टास्ततःस्वयम् ॥ आम्नायेषुप्रणष्टेषुविनष्टाःशततन्तवः ॥ ५१ ॥ यज्ञेषुनाशङ्गच्छत्सुहृताहारास्ततःसुराः ॥ निर्बलाः

वाले हैं इसभांति बहुत विचारकर निश्चित तत्त्व (स्वरूप) विशेषसे जानकर दैत्यने ॥ ४७ ॥ निश्चय किया कि विचार से इसमें ब्राह्मणही अवश्यकर कारण हैं उससे उसने बारबार ब्राह्मणों के मारने को उद्यम किया ॥ ४८ ॥ जिससे देवलोग यज्ञमें भोजनकरनेवाले हैं व यज्ञ वेदसे उत्पन्न है और वे वेद ब्राह्मणों के अधीन हैं उस कारण ब्राह्मणही देवोंका बल हैं ॥ ४९ ॥ यह निश्चत है कि सब वेद ब्राह्मणों के आधारवाले हैं व इन्द्र समेत देव ब्राह्मणरूप बलवाले हैं इसमें विचारणा करने योग्य नहीं है ॥ ५० ॥ किन्तु जो ब्राह्मण नष्ट होवें तो वेदभी आपही नष्ट होजावें व जब वेद नष्टहोवें तब यज्ञ विनष्ट होजावें ॥ ५१ ॥ और यज्ञोंके नाशको प्राप्तहोतेही तब

हरगये हुये भोजनवाले निर्बल देवलोग सुखसे जीतनेयोग्य होजावेंगे अनन्तर देवोंके हारतेही ॥ ५२ ॥ मैंही माननीय व तीनोंलोकों का स्वामी होऊंगा और देवोंकी अक्षय सब संपत्तियों को सब ओरसे हरलाऊंगा ॥ ५३ ॥ व हनेगये हैं शत्रु जिसमें उस राज्यमें सुखों कोही भोगकरूंगा हेमुने ! ऐसा निश्चयकर उस दुर्बुद्धिने फिर चिंतना किया ॥ ५४ ॥ कि वेदपढ़ने से सम्पन्न व तपस्या के बलसे समेत व ब्रह्मतेज से बहुत बढ़ेहुये श्रेष्ठ या बहुतसे ब्राह्मण कहां हैं ॥ ५५ ॥ और बहुते श्रेष्ठ ब्राह्मणों का स्थान काशी होवे इससे उनको पहले समीप में संहारकर (मारकर) तदनन्तर तीर्थांतर को जाऊंगा ॥ ५६ ॥ जहां जहां तीर्थों में व जहां जहां आश्रमों में सब

सुखजेयाःस्युर्जितेषुत्रिदशेष्वथ ॥ ५२ ॥ अहमेवभविष्यामिमान्यस्त्रिजगतीपतिः ॥ आहरिष्यामिदेवानामक्षयाःसर्वसम्पदः ॥ ५३ ॥ निर्वेक्ष्यामिसुखान्येवराज्येनिहतकण्टके ॥ इतिनिश्चित्यदुर्बुद्धिःपुनश्चिन्तितवान्मुने ॥५४ ॥ द्विजाःकसन्तिभूयांसोब्रह्मतेजोतिबृंहिताः ॥ श्रुत्यध्ययनसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ ५५ ॥ भूयसांब्राह्मणानांतुस्थानंवाराणसीभवेत् ॥ तानादावुपसंहृत्ययामितीर्थान्तरन्ततः ॥ ५६ ॥ यत्रयत्रहितीर्थेषुयत्रयत्राश्रमेषुच ॥ सन्तिसर्वेऽग्रजन्मानस्तेमयाद्याःसमन्ततः ॥ ५७ ॥ इतिदुन्दुभिनिर्ह्रादोमतिंकृत्वाकुलोचिताम् ॥ प्राप्यापिकाशींदुर्वृत्तोमायावीन्यवधीद्द्विजान् ॥५८॥ समित्कुशान्समादातुंयत्रयान्तिद्विजोत्तमाः ॥ अरण्येतत्रतान्सर्वान्सभक्षयतिदुर्मतिः ॥ ५९ ॥ यथाकोपिनवेत्त्येवतथाच्छन्नोऽभवत्पुनः ॥ वनेवनेचरोभूत्वायादोरूपीजलाशये ॥६०॥ अदृश्यरूपीमायावीदेवानामप्यगोचरः ॥ दिवाध्यानपरस्तिष्ठेन्मुनिवन्मुनिमध्यगः ॥६१॥ प्रवेशमुटजानाञ्चनिर्गमञ्चविलोकयन् ॥ यामिन्यांव्याघ्ररू

ब्राह्मण हैं वे सब ओरसे मुझसे खाडालने योग्यहैं ॥ ५७ ॥ इसभांति अपने कुलकी उचित बुद्धिकोकर मायावी दुष्ट दुंदुभि निर्ह्राद दैत्यने काशीको प्राप्तहोकर भी ब्राह्मणोंका बधकिया ॥ ५८ ॥ जे ब्राह्मणोत्तम इंधन व कुशलेने को जहां वनमें जातेथे उन सबको वहां वह दुष्ट खालेताथा ॥ ५९ ॥ और जैसे कोई नहीं जानता है (था) वैसे फिर छिपाहुवा होताथा और वनमें वनचर व जल में घरियार मगर आदि रूप धर होकर ॥ ६० ॥ अदृश्य रूपी मायावी दैत्य देवों के भी अगोचरथा याने उसको देवलोग भी नहीं देखपातेथे किन्तु वह दिनमें मुनियों कीनाईं ध्यान में परायण होकर मुनियों के मध्यगत टिकारहे ॥ ६१ ॥ व कुटियोंसे अपना पैठना और निकलना

अत्यंत आर्त शब्द करनेलगा एकाएक उसनाद से थरथरातेहुये मन या अंगवाले ॥ ७२ ॥ तपोधन ब्राह्मणलोग रात्रिमें शब्द के अनुसार से भलीभांति आगये व वहां सिंहको कांखमें कियेहुये परमेश्वरको अच्छे प्रकार सामनेसे देखकर ॥ ७३ ॥ प्रणामकरतेहुये सबों ने जय जय अक्षरों से दुष्टों के मारनेवाले शिवजी की स्तुति की कि जगत् के पालक ! आप इस दारुण मृत्यु से हमारे सब ओरसे रक्षकहो ॥ ७४ ॥ हे जगद्गुरो, ईश ! आप दयाकोकरो और इसही रूपसे व्याघ्रेश ऐसे नाम से यहांहीं टिको ॥ ७५ ॥ हे महादेव ! सदैव ज्येष्ठ स्थानकी रक्षाकरो व तीर्थवासी हमलोगों को अन्य उपसर्गों (उपद्रवों) से भी बचावो ॥ ७६ ॥ ऐसा उनका वचन सुनकर

तपोधनाःसमाजग्मुर्निशिशब्दानुसारतः ॥ तत्रेश्वरंसमालोक्यकक्षीकृतमृगेश्वरम् ॥ ७३ ॥ तुष्टुवुःप्रणताःसर्वेशर्वञ्जय जयाक्षरैः ॥ परित्राताजगत्रातःप्रत्यूहाद्दारुणादितः ॥ ७४ ॥ अनुग्रहंकुरुष्वेशतिष्ठात्रैवजगद्गुरो ॥ अनेनैवहिरूपेणव्या घ्रेशइतिनामतः ॥ ७५ ॥ कुरुरक्षांमहादेवज्येष्ठस्थानस्यसर्वदा ॥ अन्येभ्योप्युपसर्गेभ्योरक्षनस्तीर्थवासिनः ॥ ७६ ॥ इति श्रुत्वावचस्तेषांदेवश्चन्द्रविभूषणः ॥ तथेत्युक्त्वापुनःप्राहशृणुध्वंद्विजपुङ्गवाः ॥ ७७ ॥ योमामनेनरूपेणद्रक्ष्यतिश्रद्धयात्र वै ॥ तस्योपसर्गसङ्घातङ्घातयिष्याम्यसंशयम् ॥ ७८ ॥ एतल्लिङ्गंसमभ्यर्च्ययोयातिपथिमानवः ॥ चौरव्याघ्रादिसम्भू तम्भयन्तस्यकुतोभवेत् ॥ ७९ ॥ मच्चरित्रमिदंश्रुत्वास्मृत्वालिङ्गमिदंहृदि ॥ संग्रामेप्रविशन्मर्त्योजयमाप्नोतिनान्य था ॥ ८० ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गेलयंययौ ॥ सविस्मयास्ततोविप्राःप्रातर्यातायथागतम् ॥ ८१ ॥ स्कन्दउवा

चन्द्रभूषण महादेवजीने वैसेहीहो इसप्रकार से कहकर फिर कहा कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठो ! तुमलोग सुनो ॥ ७७ ॥ कि जो श्रद्धाके साथ मुझको यहां इसही रूपसे देखेगा उसके उपद्रव समूहको मैं निस्संदेह बिनाशकरूंगा ॥ ७८ ॥ व जो मनुष्य इसलिंग की पूजाकर गली में जाताहै उसको चौर और बाघआदिकों से हुवा डरकैसेहोवे ॥ ७९ ॥ और मेरे इसचरित्रको सुनकर व हृदय में इसलिंगको स्मरणकर संग्राम में पैठताहुवा मनुष्य जीतिको प्राप्तहोता है यह अन्यथा नहीं है ॥ ८० ॥ इसभांति कहकर देवोंके देवेश महेश जी उस लिंगमें लयको प्राप्तहोगये तदनन्तर प्रातःकाल विस्मय समेत सब ब्राह्मणलोग यथागत याने जैसे आयेथे वैसे वहांको जातेभये ॥ ८१ ॥

देखताहुवा वह रात्रिमें बाघरूप से बहुत ब्राह्मणों को खाडाले ॥ ६२ ॥ व चुपचाप उठालेजावे और मांस खाकर हाड़ों को भी न त्यागकरे ऐसे उसदुष्टसे बहुत ब्राह्मण मारेगये ॥ ६३ ॥ और एकसमय शिवरात्रि में अपनी पर्णशाला में बैठाहुवा एकभक्त महादेवजी की पूजाकोकर ध्यान में स्थितभया ॥ ६४ ॥ उस समय बलसे गर्वित दुंदुभि निर्ह्राद दैत्येन्द्रने बाघका रूपधर उसभक्त के पकड़ लेने के लिये बुद्धि धारण किया ॥ ६५ ॥ परन्तु वह ध्यान में प्राप्त व शिवजी के दर्शन में दृढ़चित्त व अस्त्ररूप मन्त्रन्यास कियेहुये उस ब्राह्मणको दबानेको या समीप में जानेको न समर्थ हुवा ॥ ६६ ॥ तदनन्तर भक्तभयहारी कल्याणकारी सब घटविहारी महादेवजीने

पेणब्राह्मणान्भक्षयेद्बहून् ॥ ६२ ॥ निःशब्दमेवनयतिनत्यजेदपिकीकसम् ॥ इत्थन्निपातिताविप्रास्तेनदुष्टेनभूरिशः ॥ ६३ ॥ एकदाशिवरात्रौतुभक्तस्त्वेकोनिजोटजे ॥ सपर्यांदेवदेवस्यकृत्वाध्यानास्थितोभवत् ॥ ६४ ॥ सचदुन्दुभिनिर्ह्रादो दैत्येन्द्रोबलदर्पितः ॥ व्याघ्ररूपंसमास्थायतमादातुम्मतिंदधे ॥ ६५ ॥ तम्भक्तन्ध्यानमापन्नन्दृढचित्तंशिवेक्षणे ॥ कृतास्त्रमन्त्रविन्यासंसंक्रान्तुमशकन्नसः ॥ ६६ ॥ अथसर्वगतःशम्भुर्ज्ञात्वातस्याशयंहरः ॥ दैत्यस्यदुष्टरूपस्यवधाय विदधेधियम् ॥ ६७ ॥ यावदादित्सतिव्याघ्रस्तावदाविरभूद्धरः ॥ जगद्रक्षामणिस्त्र्यक्षोभक्तरक्षणदक्षधीः ॥ ६८ ॥ रुद्र मायान्तमालोक्यतद्भक्तार्चितलिङ्गतः ॥ दैत्यस्तेनैवरूपेणववृधेभूधरोपमः ॥ ६९ ॥ सावज्ञमथसर्वज्ञंयावत्पश्यतिदान वः ॥ तावदायान्तमादायकक्षायन्त्रेन्यपीडयत् ॥ ७० ॥ पञ्चास्यस्त्वथपञ्चास्यम्मुष्ट्यामूर्धन्यताडयत् ॥ सचतेनैव रूपेणकक्षानिष्पेषणेनच ॥ ७१ ॥ अत्यार्तमरटद्व्याघ्रोरोदसीपरिपूरयन् ॥ तेननादेनसहसासम्प्रवेपितमानसाः ॥ ७२ ॥

उस दुष्टरूप दैत्यका अभिप्राय जानकर उसको मारने के लिये बुद्धिको किया ॥ ६७ ॥ जबतक बाघ भक्तको पकड़लेना चाहताहै तबतक भक्तके रक्षण में दक्षबुद्धिवाले व जगत्की रक्षाकरने को महामणि के समान त्रिनेत्र शिवजी प्रकटहोगये ॥ ६८ ॥ और उस भक्तके पूजेहुये लिंगसे आतेहुये रुद्रको देखकर वह दैत्य उसही रूप से पर्वत के समान बढ़गया ॥ ६९ ॥ अनन्तर जबतक दैत्यने सर्वज्ञको अनादर समेतदेखा तबतक दौड़े (झपटे) आतेहुये को, पकड़कर परमेश्वरने कक्षायंत्र में पीस डाला ॥ ७० ॥ व पंचमुख शिवजीने सिंहरूप दैत्यको मस्तकमें मूठीसे मारा और कांखमें पीसने से वह उसही रूपसे ॥ ७१ ॥ द्यावा भूमिके अन्तर को भरताहुवा बाघ

श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुंभोत्थ (अगस्त्यजी) ! तबसे लगाकर ज्येष्ठेश से उत्तरभाग में देखा व छुवाहुवा व्याघ्रेश्वरनामक लिंग भयके नाशनेवाला है ॥ ८२ ॥ व जे व्याघ्रेश्वरके भक्तहैं उनसे जयजीव ऐसा कहतेहुये बड़ेक्रूर यमके दूतभी डरते हैं ॥ ८३ ॥ और यहां पराशरेश्वर आदि लिंगोंकी भलीभांति उत्पत्ति को सुनकर मनुष्य महापापरूप पंकों से नहीं लिप्त होवे है ॥ ८४ ॥ व कंदुकेश्वरकी भलीभांति उत्पत्ति तथा व्याघ्रेश्वर का प्रकटहोना सुनकर मनुष्य उपसर्गों से कभी नहीं पीड़ा जाताहै ॥ ८५ ॥ और भक्तों की रक्षाके अर्थ हुवा जो उटजेश्वरलिङ्ग व्याघ्रेश्वर से पश्चिम में टिकाहै उसको भलीभांति पूजकर निडर होजावे है ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्द

च ॥ तदाप्रभृतिकुम्भोत्थलिङ्गंव्याघ्रेश्वराभिधम् ॥ ज्येष्ठेशादुत्तरेभागेदृष्टंस्पृष्टंभयापहम् ॥ ८२ ॥ व्याघ्रेश्वरस्ययेभक्तास्तेभ्योबिभ्यतिकिङ्कराः ॥ यामाअपिमहाक्रूराजयजीवेतिवादिनः ॥ ८३ ॥ पराशरेश्वरादीनांलिङ्गानामिहसम्भवम् ॥ श्रुत्वानरोनलिप्येतमहापातककर्दमैः ॥ ८४ ॥ कन्दुकेशसमुत्पत्तिंव्याघ्रेशाविर्भवन्तथा ॥ समाकर्ण्यनरोजातुनोपसर्गैःप्रदूयते ॥ ८५ ॥ उटजेश्वरलिङ्गन्तुव्याघ्रेशात्पश्चिमेस्थितम् ॥ भक्तरक्षार्थमुद्भूतंस्यात्समभ्यर्च्यनिर्भयः ॥ ८६ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपराशरेश्वरादिकन्दुकेशव्याघ्रेश्वरादिलिङ्गसम्भवोनामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

स्कन्दउवाच ॥ ज्येष्ठेश्वरस्यपरितोलिङ्गान्यन्यानियानितु ॥ तानितेकथयिष्यामिशृणुवातापितापन ॥ १ ॥ ज्येष्ठेशाद्दक्षिणेभागेलिङ्गमप्सरसांशुभम् ॥ तत्रैवाप्सरसःकूपःसौभाग्योदकसंज्ञकः ॥ २ ॥ तत्कूपजलसुस्नातोविलोक्याप्सरसेश्वरम् ॥ नदौर्भाग्यमवाप्नोतिनारीवापुरुषोथवा ॥ ३ ॥ तत्रैवकुक्कुटेशाख्यंलिङ्गंवापीसमीपगम् ॥ तस्यपूजनतःपुं

पुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपराशरेश्वरादिकन्दुकेश्वरव्याघ्रेश्वरादिलिङ्गसमुत्पत्तिनामपञ्चषष्टितमोध्यायः ॥ ६५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । छासठयें अध्यायमें हिमगिरि काशी गौन। शैलेश्वर इत्यादि बहु लिङ्ग कथा है तौन ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे वातापी राक्षसके तपानेवाले अगस्त्यजी! ज्येष्ठेश्वरके सब ओर में जे अन्य लिङ्गहैं उनको मैं तुमसे कहूंगा तुम सुनो ॥ १ ॥ कि ज्येष्ठेश से दक्षिणभाग में अप्सरों का शुभ लिंगहै और यहांही सौभाग्योदक नामक अप्सराका कूप है ॥ २ ॥ उस कूपके जलसे भलीभांति नहाया हुवा पुरुष अथवा स्त्री भी अप्सरसेश्वर के दर्शन कर दौर्भाग्यको नहीं प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ और वहांही

बावली के समीपगत कुक्कुटेश्वर नामक लिंग है उसकी पूजा से मनुष्यों का कुटुम्ब सब ओर से बढ़ताहै ॥ ४ ॥ व ज्येष्ठवापी के तीरमें पितामहेश्वर नामक शुभ लिंगहै वहां श्राद्धको कर नर पितरों को आनन्ददेवे ॥ ५ ॥ व पितामहेश्वर से नैर्ऋत्यकोणमें पितरों का सब ओरसे तृप्तिदायक गदाधरेश्वर लिंग बड़े यत्नसे पूजने योग्यहै ॥ ६ ॥ हे मुने ! ज्येष्ठेश्वर से उत्तर ओर में वासुकीश्वर लिंग सब ओरसे पूजनीयहै ॥ ७ ॥ और वहां वासुकिकुण्ड में स्नानदानादिक क्रियायें वासुकीश्वरके प्रभाव से मनुष्योंके सर्पों से डरके हरनेवाली हैं ॥ ८ ॥ जो कि नागपञ्चमी तिथिके प्राप्त होतेही वासुकिसंज्ञित कुण्ड में नहाताहै उसके अंगमें सर्पों से हुवा विषका संसर्ग नहीं होवे है ॥ ९ ॥

सांकुटुम्बंपरिवर्धते ॥ ४ ॥ पितामहेश्वरंलिङ्गंज्येष्ठवापीतटेशुभम् ॥ तत्रश्राद्धन्नरःकृत्वापितृणांमुदमर्पयेत् ॥ ५ ॥ पितामहेशान्नैर्ऋत्यांपूजनीयम्प्रयत्नतः ॥ गदाधरेश्वरंलिङ्गंपितृणांपरितृप्तिदम् ॥ ६ ॥ दिशिपुण्यजनाख्यायांलिङ्गाज्ज्येष्ठेश्वरान्मुने ॥ वासुकीश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गमर्च्यंसमन्ततः ॥ ७ ॥ तत्रवासुकिकुण्डेचस्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ सर्पभीतिहराःपुंसांवासुकीशप्रभावतः ॥ ८ ॥ यःस्नातोनागपञ्चम्यांकुण्डेवासुकिसंज्ञिते ॥ नतस्यविषसंसर्गोभवेत्सर्पसमुद्भवः ॥ ९ ॥ कर्तव्यानागपञ्चम्यांयात्रावर्षासुतत्रवै ॥ नागाःप्रसन्नाजायन्तेकुलेतस्यापिसर्वदा ॥ १० ॥ तत्कुण्डात्पश्चिमेभागेलिङ्गंवैतक्षकेश्वरम् ॥ पूजनीयंप्रयत्नेनभक्तानांसर्वसिद्धिदम् ॥ ११ ॥ मुनेतस्योत्तरेभागेकुण्डन्तक्षकसंज्ञितम् ॥ कृतोदकक्रियस्तत्रनसर्पैरभिभूयते ॥ १२ ॥ तत्कुण्डादुत्तरेभागेक्षेत्रक्षेमकरःसदा ॥ भक्तानांसाध्वसध्वंसीकपालीनामभैरवः ॥ १३ ॥ भैरवस्यमहाक्षेत्रंतद्वैसाधकसिद्धिदम् ॥ तत्रसंसाधिताविद्याषण्मासात्सिद्धिमाप्नुयुः ॥ १४ ॥ तत्रचण्डी

इससे वर्षामें वहां नागपञ्चमी में यात्रा करना चाहिये उसके कुलमें सदैव नागलोग प्रसन्न होजाते हैं यह निश्चय है ॥ १० ॥ उस कुण्डसे पश्चिम भागमें भक्तों का सब सिद्धिदायक तक्षकेश्वर लिंग बहुत यत्नके साथ निश्चय से पूजने योग्यहै ॥ ११ ॥ हे मुने ! उससे उत्तर भागमें तक्षकसंज्ञित कुण्डहै उसमें स्नानादि जलक्रिया किये हुवा मनुष्य सर्प्पों से नहीं तिरस्कृत होताहै ॥ १२ ॥ उस कुण्ड से उत्तर भागमें भक्तों के भय भंजनेवारे व सदा क्षेत्र के कल्याणकर्त्ता कपालीनामक भैरवहैं ॥ १३ ॥ वहही भैरवजी का महाक्षेत्र साधकों की सिद्धियोंका दाताहै उसमें भलीभांति साधी हुई विद्यायें छह मासमें सिद्धिको प्राप्त होजावे हैं ॥ १४ ॥ और वहां अपने अभीष्टकी

सिद्धिके लिये भक्तों के विघ्नों की विनाशिनी महामुण्डाचण्डीजी भेंट व पूजाकी सामग्री आदिकों से सदा पूजनीय हैं ॥ १५ ॥ और जो मनुष्योत्तम महाअष्टमी में उनकी यात्रा को करे है वह यशस्वी व पुत्र और पौत्रों से सम्पन्न व धनी भी होता है ॥ १६ ॥ व महामुण्डा से पश्चिम दिशा में चतुःसागरवापिकाहै उसमें नहाया हुवा जन चारों भी समुद्रों में नहाया हुवा होजावे है ॥ १७ ॥ वह चतुःसागरसंज्ञित स्थान बहुतही प्रसिद्ध है वहां समुद्रों के थापे हुये चार लिंगहैं ॥ १८ ॥ उस बावली से चारों दिशाओं में पूजेहुये वे पापको जलादेते हैं उसके उत्तर में वृषभेश्वर नामक महालिंग है ॥ १९ ॥ वह अपनी भक्तिसे महादेवजी के बैल करकेही थापा गयाहै

महामुण्डाभक्तविघ्नोपशान्तिदा ॥ बलिपूजोपहाराद्यैःपूज्यास्वाभीष्टसिद्धये ॥ १५ ॥ तस्यायात्रान्तुयःकुर्यान्महाष्टम्यां नरोत्तमः ॥ यशस्वीपुत्रपौत्राढ्योलक्ष्मीवांश्चापिजायते ॥ १६ ॥ महामुण्डाप्रतीच्यान्तुचतुःसागरवापिका ॥ तस्यां स्नातोभवेत्स्नातःसागरेषुचतुर्ष्वपि ॥ १७ ॥ महाप्रसिद्धन्तत्स्थानञ्चतुःसागरसंज्ञितम् । चत्वारितत्रलिङ्गानिसागरैःस्थापितानिच ॥ १८ ॥ तस्यावाप्याश्चतुर्दिक्षुपूजितानिदहन्त्यघम् ॥ तदुत्तरेमहालिङ्गंवृषभेश्वरसंज्ञितम् ॥ १९ ॥ हरस्यवृषभेणैवस्थापितन्तत्स्वभक्तितः ॥ तस्यदर्शनतःपुंसांषण्मासान्मुक्तिरुद्भवेत् ॥ २० ॥ वृषेश्वरादुदीच्यान्तुगन्धर्वेश्वरसंज्ञितम्॥ गन्धर्वकुण्डन्तत्प्राच्यांतत्रस्नात्वानरोत्तमः ॥ २१ ॥ गन्धर्वेश्वरमभ्यर्च्यदत्त्वादानानिशक्तितः ॥ सन्तर्प्यपितृदेवांश्चगन्धर्वैःसहमोदते ॥ २२ ॥ कर्कोटनामानागोस्तिगन्धर्वेश्वरपूर्वतः॥ तत्रकर्कोटवापीचलिङ्गंकर्कोटकेश्वरम्॥ २३ ॥ तस्यांवाप्यान्नरःस्नात्वाकर्कोटेशंसमर्च्यच ॥ कर्कोटनागमाराध्यनागलोकेमहीयते ॥ २४ ॥ कर्कोटनागोयैर्द्द

उसके दर्शनमात्र से छहमास में मनुष्यों की मुक्ति उत्पन्न होवे है याने वे लोग जीवन्मुक्त होजाते हैं ॥ २० ॥ व वृषेश्वर से उत्तर में गंधर्वेश्वर नामक लिंग है और उससे पूर्व में गन्धर्वकुण्ड है उसमें स्नानकर मनुष्योत्तम ॥ २१ ॥ गन्धर्वेश्वर की पूजाकर व अपनी शक्ति के अनुसार दानोंको देकर व देव और पितरोंको भलीभांति तर्पणकर गन्धर्वों के साथ आनन्द पाता है ॥ २२ ॥ उस गन्धर्वेश्वर से पूर्व में कर्कोटक नामक नाग है व वहां कर्कोटवापी और कर्कोटकेश्वर लिंग है ॥ २३ ॥ उस बावली में स्नानकर व कर्कोटकेश्वर की पूजाकर व कर्कोटकनाग को सब ओर से पूज कर नर नागलोक में आदर पाता है ॥ २४ ॥ उस बावली में स्नानादि जलक्रिया

कियेहुये जिन लोगों से कर्कोटकनाग देखागया उनकी देहमें स्थावर व जंगम विष नहीं चढ़ता है ॥ २५ ॥ व कर्कोटकेश्वर से पश्चिम में धुन्धुमारीश्वर नामक लिंग है उस लिंगकी पूजा से मनुष्यों को शत्रुओं से उपजाहुवा डर नहीं होवे है ॥ २६ ॥ और उससे उत्तरमें पुरूरवेश्वर लिंग टिका है वह धर्मादि चतुर्वर्गफलों का दाता व बड़े यत्नसे देखने योग्य है ॥ २७ ॥ और उसके आगे सुप्रतीक दिग्गज से पूजित व यश और बलके बढ़ानेवाला सुप्रतीकेश्वर नामक लिंग है ॥ २८ ॥ व उसके आगे सुप्रतीक नामक बड़ाभारी सरोवर सोहता है उसमें स्नानकर व उस लिंग के दर्शनकर दिक्पालकी पदवीको पावे है ॥ २९ ॥ वहां विजयभैरवी नामसे प्रसिद्ध एक महागौरी

ष्टस्तद्वाप्यांविहितोदकैः ॥ क्रमतेनविषन्तेषान्देहेस्थावरजङ्गमम् ॥ २५ ॥ कर्कोटेशात्प्रतीच्यान्तुधुन्धुमारीश्वराभिधम् ॥ तल्लिङ्गाभ्यर्चनात्पुंसान्नभवेद्वैरिजम्भयम् ॥ २६ ॥ पुरूरवेश्वरंलिङ्गन्तदुदीच्यांव्यवस्थितम् ॥ द्रष्टव्यन्तत्प्रयत्नेनचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ २७ ॥ दिग्गजेनार्चितंलिङ्गंसुप्रतीकेनतत्पुरः ॥ सुप्रतीकेश्वरन्नाम्नायशोबलविवर्धनम् ॥ २८ ॥ सरश्चसुप्रतीकाख्यन्तत्पुरोभासतेमहत् ॥ तत्रस्नात्वाचतल्लिङ्गंदृष्ट्वादिक्पतितांलभेत् ॥ २९ ॥ तत्रास्त्येकामहागौरीनाम्नाविजयभैरवी ॥ रक्षार्थमुत्तरद्वारिस्थितापूज्येष्टसिद्धये ॥ ३० ॥ वरणायास्तटेरम्येगणौहुण्डनमुण्डनौ ॥ क्षेत्ररक्षांविधत्तस्तौविघ्नस्तम्भनकारकौ ॥ ३१ ॥ तौद्रष्टव्यौप्रयत्नेनक्षेत्रानिर्विघ्नहेतवे ॥ हुण्डनेशम्मुण्डनेशन्तत्रदृष्ट्वासुखीभवेत् ॥ ३२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इल्वलारेकथामेकांशृणुष्वावहितोभव ॥ वरणायास्तटेरम्येयद्वृत्तंपूर्वमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ एकदाद्रीन्द्रमालोक्यमेनासंहृष्टमानसम् ॥ उमांसंस्मृत्यनिःश्वस्यप्रोवाचेतिपतिव्रता ॥ ३४ ॥ मेनोवाच ॥ आर्यपुत्रनजानामिप्रद्

हैं जो कि रक्षाकेलिये पुरीके द्वार में टिकी हैं वह इष्टकार्य्य सिद्धि के लिये पूजने योग्य हैं ॥ ३० ॥ और वरणानदीके रमणीक तटपर विघ्नों के रोंक करनेवाले हुण्डन व मुण्डन नामक वे दोनों गण क्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥ ३१ ॥ और क्षेत्र में निर्विघ्न के कारण वे बहुत यत्नसे देखने योग्य हैं व वहां हुंडनेश्वर और मुंडनेश्वर के दर्शनकर सुखी होवे ॥ ३२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे इल्वलदैत्यके वैरिन्, अगस्त्यजी ! तुम सावधान होवो व वरणानदी के रम्य किनारे में आगे जो उत्तम वृत्तान्त हुवाहै उस एक कथा को सुनो ॥ ३३ ॥ कि एक समय पर्वतराज हिमवान् को देखकर व पार्वती को स्मरणकर निःश्वास लेकर पतिव्रता मेनाने ऐसा कहा ॥ ३४ ॥ श्रीमेनाजी

बोलीं कि हे आर्य्यपुत्र, पर्वतेश्वर ! मैं उस गौरीके विवाह समय के उपरान्त किसी भी प्रवृत्ति को नहीं जानतीहूं ॥ ३५ ॥ कि इस समय बैलसवारी से गमनकारी विभूति व सर्प्पभूषणधारी श्मशानविहारी वह क्रीडाकारी देव कहां हैं ॥ ३६ ॥ हे प्रिय ! ब्राह्मी आदि जे आठमातृकायें देखी गई हैं व सुखरूपिणी हैं मैं ऐसा मानती हूं और अन्य कन्यकायें कष्टका कारण हैं ॥ ३७ ॥ हे विभो ! एकरूप अद्वितीय उन त्रिशूलधारी के अन्य कोई नहीं है इरासे उनकी उपरान्त प्रवृत्ति याने हाल जानने के लिये उद्यम कियाजावे ॥ ३८ ॥ इसभांति उस प्यारी के वचन से उसके लड़कों के प्यार करनेवाले पर्वतराज हिमवान्जी गौरी के स्नेह से गद्गदवचन रचनयुक्त होकर

त्तिमपिकांचन ॥ विवाहसमयादूर्ध्वंतस्यागौर्यागिरीश्वर ॥ ३५ ॥ सवृषेन्द्रगतिर्देवोभस्मोरगविभूषणः ॥ महापितृवनावासोदिग्वासाःक्वास्तिसंप्रति ॥ ३६ ॥ अष्टौयामातरोदृष्टाब्राह्मीप्रभृतयःप्रिय ॥ स्वस्वरूपास्तामन्येऽहंबालिकाःकष्टहेतवः ॥ ३७ ॥ तस्यैकस्यनकोप्यन्योस्त्यद्वितीयस्यशूलिनः ॥ तदुदन्तप्रवृत्त्यैचक्रियतामुद्यमोविभो ॥ ३८ ॥ तस्याः प्रियायावाक्येनतदपत्यप्रियोगिरिः ॥ उवाचवचनंसास्रमुमावात्सल्यसन्नगीः ॥ ३९ ॥ गिरिराजउवाच ॥ अहमेवगमिष्यामितस्यामेनेगवेषणे ॥ नितरांबाधतेप्रेमतददृष्ट्यग्निदूषितम् ॥ ४० ॥ यदाप्रभृतिसागौरीनिर्गताममसद्मतः ॥ मन्येमेनेतदारभ्यपद्मसद्माविनिर्ययौ ॥ ४१ ॥ तदालापामृतधयौनमेशब्दग्रहौप्रिये ॥ प्राणेश्वरितदारभ्यस्यातांशब्दान्तरग्रहौ ॥ ४२ ॥ जैवातृकीयतोह्नःस्याद्दूरीभूतादृशोर्मम ॥ अहोजैवातृकीज्योत्स्नाततोह्नोतिदुनोतिमाम् ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वादायरत्नानिवासांसिविविधानिच ॥ धराधरेन्द्रोनिर्यातःशुभलग्नबलोदये ॥ ४४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ कानिकानिचर

आंसुओं समेत बोले ॥ ३९ ॥ पर्वतराज बोले कि, हे मेने ! उस प्यारी पार्वती कुमारी के खोजने के लिये मैंही जाऊंगा क्योंकि उसके न देखने रूप अग्नि से संतापित मुझको प्रेम बाधाकरता है ॥ ४० ॥ हे मेने ! मैं ऐसा मानताहूं कि जबसे लगाकर वह गौरी मेरे घरसे निकलगई है तबसे लगाकर लक्ष्मी निकलगई है ॥ ४१ ॥ हे प्राणेश्वरि, प्रिये ! तबसे लगाकर उसके मधुर वचनरूप अमृत के पीनेवाले मेरे कान अन्य शब्द के ग्रहणकर्त्ता नहीं होते हैं ॥ ४२ ॥ खेदहै कि चांदनी के समान गौरी गौरी जिसदिन से मेरे नेत्रों से दूरहोगई है उस दिनसे चन्द्रमा की चांदनी मुझको उपताप देती है ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर बहुत भांति के रत्नों व वस्त्रों को लेकर पर्वत-

राजजी शुभलग्नका बल उदय होतेही निकलकर चलतेभये ॥ ४४ ॥ श्रीअगस्त्यजी बोले कि हे षण्मुख! कौन कौन व कितने रत्नथे जिनको लेकर उन हिमवान् ने प्रस्थान कियाथा उनको पूंछतेहुये मुझसे तुम कहो ॥ ४५ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि सौटकाकी एक तुला होती है और मोतियों की दोकरोड़ संख्यक तुलायेंथीं तथा जल में उतरानेवाले हीरों की सौतुलायेंथीं ॥ ४६ ॥ व अच्छे तेजवाले जगमगाते हुये छहकोन के हीरोंकी नवलाख अधिक सौतुलायेंथीं व विमलज्योतिवाली लाली मणियों की दोलाख तुलायेंथीं ॥ ४७ ॥ हे मुने! पद्मरागोंकी पांचकरोड़ तुलाओं व पुष्परागों की नव संख्यासे गुणीहुई लाख तुलाओं को (नौलाख) जानो ॥ ४८ ॥ हे मुने!

रत्नानिकियन्त्यपिचषण्मुख ॥ यान्यादायप्रतस्थेसतानिमेब्रूहिपृच्छतः ॥ ४५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तुलामुक्ताफलानान्तु कोटिद्वयपरीमिताः ॥ तथावारितराणाञ्चहीरकाणान्तुलाशतम् ॥ ४६ ॥ नवलक्षाधिकंविप्रषडस्राणांसुतेजसाम् ॥ लक्ष द्वयंविद्रुमाणान्तुलाविमलवर्चसाम् ॥ ४७ ॥ कोटयःपद्मरागाणांपञ्चवैहितुलामुने ॥ पुष्परागतुलालक्षंगुणितन्नवसंख्य या ॥ ४८ ॥ तथागोमेदरत्नानान्तुलालक्षमितामुने ॥ इन्द्रनीलमणीनाञ्चतुलाःकोट्यर्धसंमिताः ॥ ४९ ॥ गरुडोद्गाररत्ना नान्तुलाःप्रयुतसंमिताः ॥ शुद्धविद्रुमरत्नानान्तुलाश्चनवकोटयः ॥ ५० ॥ अष्टाङ्गाभरणानाञ्चसंख्याकर्तुंनशक्यते ॥ वा ससाञ्चविचित्राणाङ्कोमलानान्तथामुने ॥ ५१ ॥ चामराणिचभूयांसिद्रव्याण्यामोदवन्तिच ॥ सुवर्णदासदास्यादीन्य संख्यातानिवैमुने ॥ ५२ ॥ सर्वाण्यपिसमादायप्रतस्थेभूधरेश्वरः ॥ आगत्यवरणातीरन्दूरात्काशीमलोकयत् ॥ ५३ ॥ अनेकरत्ननिचयैःखचिताऽखिलभूमिकाम् ॥ नानाप्रासादमाणिक्यज्योतिस्ततताम्बराम् ॥ ५४ ॥ सौधाग्रविविधस्वर्ण

तथा गोमेद याने पीतरंग के रत्नो की लाख परिमित तुलायें और इन्द्रनीलमणियों की पचासलाख संख्यक तुलायेंथीं ॥ ४९ ॥ व हरीमणियों की लक्षसंमित तुलायें और निर्मल मूंगा रत्नोंकी नवकरोड़ तुलायेंथीं ॥ ५० ॥ हे मुने! आठ अंगों याने मस्तक माथ नासिका कान कण्ठ हाथ कटि और पांवों के गहनेरूप रत्नों तथा कोमलवस्त्रों की संख्या करने योग्य नहीं होसक्ती है ॥ ५१ ॥ हे मुने! बहुते चँवर सुगन्ध समेत द्रव्य सुवर्ण दासी और दासादि असंख्य थे ॥ ५२ ॥ इन सबको भलीभांति लेकर पर्वतेश्वरने प्रस्थान किया व वरणानदी के किनारे आकर दूरसे काशी को देखा ॥ ५३ ॥ जोकि अनेक रत्नसमूहों से जटित सम्पूर्ण भूमिसे भासतीहै व अनेक महलों

की मणियों की ज्योतिसे विस्तारयुक्त आकाश को व्याप्त करनेवाली है ॥ ५४ ॥ व महलों के कंगूरों में बहुत प्रकार के साजेहुये सोने के कलशों से दिशाओं के मुखों को उज्ज्वलकरती है व वैजयंती पताकाओं के समूहों से स्वर्गस्थली के समान शोभायमानहै ॥ ५५ ॥ व आठों महासिद्धियों की भी अद्भुत क्रीडामन्दिर सी है व सब फ-लों की रक्षावाले याने फलों से समृद्ध वनोंसे कल्पवृक्षों के वनों की जीतनेवाली है ॥ ५६ ॥ ऐसी काशी की समृद्धि को देखकर वह पर्वतेन्द्र हिमवान्जी विलज्जित होग ये और मनमेंही इस वचनको बोलतेभये ॥ ५७ ॥ कि महल या देवमन्दिर व ग्रामके भीतरकी गलियां व प्राकार (रक़बा) व घर व बाहरके फाटक विचित्र किवांड़े और

कलशोज्ज्वलदिङ्मुखाम् ॥ जयन्तीवैजयन्तीनांनिकरैस्त्रिदिवस्थलीम् ॥ ५५ ॥ महासिद्ध्यष्टकस्यापिक्रीडाभवनमद्भुतम् ॥ जितकल्पद्रुमवनांवनैःसर्वफलावनैः ॥ ५६ ॥ इतिकाशीसमृद्धिंसविलोक्याभूद्विलज्जितः ॥ उवाचचमनस्येवभूधरेन्द्रइदंवचः ॥ ५७ ॥ प्रासादेषुप्रतोलीषुप्राकारेषुगृहेषुच ॥ गोपुरेषुविचित्रेषुकपाटेषुतटेष्वपि ॥ ५८ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानामुच्छलच्चारुरोचिषाम् ॥ ज्योतिर्जालैर्जटिलितंयथेदमवलोक्यते ॥ ५९ ॥ द्यावाभूम्योरन्तरालन्तथेतिसमवैम्यहम् ॥ ईदृक्सम्पत्तिसंभारःकुबेरस्यापिनोगृहे ॥ ६० ॥ अपिवैकुण्ठभुवनेनेतरस्येहकाकथा ॥ इतियावद्गिरीन्द्रोसौसंभावयतिचेतसि ॥ ६१ ॥ तावत्कार्पटिकःकश्चित्तल्लोचनपथङ्गतः ॥ आहूयबहुमानन्तमपृच्छच्चाचलेश्वरः ॥ ६२ ॥ हिमवानुवाच ॥हंहोकार्पटिकश्रेष्ठअध्यास्स्वैतदिहासनम् ॥ स्वपुरोदन्तमाख्याहिकिमपूर्वमिहाऽध्वग ॥६३॥कोत्रसंप्रत्यधिष्ठाता

ऊंचेदेश अथवा नदियों के किनारे भी इत्यादि सबोंमें ॥ ५८ ॥ जगमगातीहुई सुन्दर ज्योतिवाले मणिमाणिक्य रत्नोंके ज्योतिजालों से जटित जैसे यह देखपड़ता है ५९ ॥ जोकि द्यावा भूमिका भीतर है वैसेही मैं ऐसा समझताहूं कि इसके समान सम्पत्ति का संभार (समूह) कुबेरके भी घर में नहीं है ॥ ६० ॥ और सम्भावना कीजाती है कि वैकुण्ठलोक में भी नहीं है तो अन्यकी क्या कथाहै इसभांति जबतक पर्वतेन्द्रने मनमें सम्भावना किया ॥ ६१ ॥ तबतक कोई लालेवस्त्रवाला शूद्र उनकी आंखोंकी गली में प्राप्तहुवा उसको बुलाकर पर्वतेश्वरने बहुतआदर पूर्वकपूंछा ॥ ६२ ॥ श्रीहिमवान्जी बोले कि, हे पथिक, कार्पटिक श्रेष्ठ ! तुम यहां इसआसनमें बैठो व अपने पुर

का वृत्तान्त कहो कि यहां क्या अपूर्व है ॥ ६३ ॥ इस समय यहां कौन अधिष्ठाता है व उस स्वामीका क्या कर्म्महै जो तुम जानतेहो तो मेरे आगे यहां उस सबको कहो ॥ ६४ ॥ हेमुने ! उन पर्वतराजका वचन सुनकर उस कार्पटिकने भी भलीभांति कहने के लिये प्रारम्भकिया ॥ ६५ ॥ कार्प्पटिक बोला कि, हे मानदायक, राजेन्द्र ! जिसके प्रति मैं तुमसे पूंछागयाहूं उस सम्पूर्ण को कहताहूं तुम सुनो कि पांचही छः दिन बीते हैं ॥ ६६ ॥ कि दिवोदास राजा स्वर्ग को गया है और पार्वती के पति विश्वनाथजी सुन्दर मन्दर पर्वतसे भलीभांति यहां आये हैं ॥ ६७ ॥ हेविभो ! जो जगत् के अधिष्ठाता हैं वह यहां स्वामी है वह सबके नायक सब कुछदायक सर्वगत

किमधिष्ठातृचेष्टितम् ॥ यदिजानासितत्सर्वमिहाचक्ष्वममाग्रतः ॥६४॥ सोपिकार्पटिकस्तस्यगिरिराजस्यभाषितम् ॥ समाकर्ण्यसमाचष्टुंमुनेसमुपचक्रमे ॥ ६५ ॥ कार्पटिकउवाच ॥ आचक्षेशृणुराजेन्द्रयत्पृष्टोस्मित्वयाखिलम् ॥ अहानिपञ्चषाण्येवव्यतिक्रान्तानिमानद ॥ ६६ ॥ समायातेजगन्नाथेपर्वतेन्द्रसुतापतौ ॥ सुन्दरान्मन्दराद्द्रेर्दिवोदासेगतेदिवि ॥ ६७ ॥ योवैजगदधिष्ठातासोधिष्ठातात्रसर्वगः ॥ सर्वदृक्सर्वदःशर्वःकथंनज्ञायतेविभो ॥ ६८ ॥ मन्येदृषत्स्वरूपोसिदृषदोपिकठोरधीः ॥ यतोविश्वेश्वरंकाश्यांनवेत्सिगिरिजापतिम् ॥ ६९ ॥ स्वभावकठिनात्मापिसवरंहिमवान्गिरिः ॥ प्राणाधिकसुतादानाद्योधिनोद्विश्वनायकम् ॥ ७० ॥ बिभ्रत्सहजकाठिन्यञ्जातोगौरीगुरुर्गुरुः ॥ शम्भुंप्रपूज्यसुतयास्रजाविश्वगुरोरपि ॥ ७१ ॥ चेष्टितन्तस्यकोवेदवेदवेद्यस्यचेशितुः ॥ मनागितिचजानेहंतच्चेष्टितमिदंजगत् ॥ ७२ ॥ अधिष्ठातामया

शिवजी तुमसे क्यों नहीं जाने जाते हैं ॥ ६८ ॥ इससे मैं ऐसा मानताहूं कि तुम पत्थर रूपहो बरन् पत्थर से भी अधिक कठोर बुद्धिवाले हो जिससे काशीमें पार्वती के पति श्री विश्वनाथजी को नहीं जानतेहो ॥ ६९ ॥ किंतु स्वभावसे कठिन आत्मा (देह या मन) वाला वह हिमवान् पर्वत श्रेष्ठ है जिसने प्राणों से अधिक प्यारी कुमारी देने से विश्वनाथजी को सन्तुष्ट किया है ॥ ७० ॥ और वह सहज कठिनता को धारता हुवा पार्वतीका पिता हिमवान् गिरि ब्रह्माजी के शिरमें धारने योग्य माला के साथ पुत्रीसे शंकरजी की पूजाकर सबसे श्रेष्ठ होगया ॥ ७१ ॥ उन वेदों से जानने योग्य परमेश्वर शिवजीका कर्म कौन जानताहै मैं ऐसा कुछ जानताहूं कि यह जगत

उनका व्यापारहै ॥ ७२ ॥ मैंने अधिष्ठाता और अधिष्ठाता का कर्म कहा और तुमने जो अपूर्व पूंछा उसको कहताहूं तुम सुनो ॥ ७३ ॥ इस समय पर्वत राजकुमारी सहायवाले वह शिवजी काशीको प्राप्त होकर शुभ ज्येष्ठेश्वर स्थानमें टिके हैं ॥ ७४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, जबजब वह पथिक पार्वती के कोमल नाम के अक्षर अमृततको प्रकट करता था तबतब पर्वतेन्द्र हिमवान् आनन्दित होते थे ॥ ७५ ॥ हे कुंभ संभव ! जिसने इस पृथिवी तलमें उमा (पार्वती) का नाम अमृत पिया वह फिर कभी माताका दूध नहीं पीताहै याने मुक्त होजाताहै ॥ ७६ ॥ हे द्विज ! जोकि उमा ऐसे दो अक्षर मन्त्रको निरन्तर जपे उस पापकर्ता की भी चित्रगुप्त सुध न

ख्यातस्तथाधिष्ठातृचेष्टितम् ॥ अपूर्वंयत्त्वयापृष्टन्तदाख्यामिचतच्छृणु ॥ ७३ ॥ शुभेज्येष्ठेश्वरस्थानेसांप्रतंसउमापतिः ॥ काशींप्राप्यमुदातिष्ठेद्गिरिराजाङ्गजासखः ॥ ७४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ यदायदासगिरिजामृदुनामाक्षरामृतम् ॥ आविष्करोतिपथिकोऽद्रीन्द्रोहृष्येत्तदातदा ॥ ७५ ॥ उमानामामृतम्पीतंयेनेहजगतीतले ॥ नजातुजननीस्तन्यंसपिबेत्कुम्भसम्भव ॥ ७६ ॥ उमेतिद्व्यक्षरंमन्त्रंयोऽहर्निशमनुस्मरेत् ॥ नस्मरेच्चित्रगुप्तस्तंकृतपापमपिद्विज ॥७७॥ पुनःशुश्राव हिमवान्हृष्टःकार्पटिकोदितम् ॥ कार्पटिकउवाच ॥ राजन्विश्वेश्वरार्थेयःप्रासादोविश्वकर्मणा ॥ ७८ ॥ निर्मीयतेसुनिर्माणोजन्मिनिर्वाणदायिनः ॥ तदपूर्वंनकर्णाभ्यामप्याकर्णितवानहम् ॥ ७९ ॥ यत्रातिमित्रतेजोभिःशलाकाभिःसमन्ततः ॥ मणिमाणिक्यरत्नानांप्रासादेभित्तयःकृताः ॥ ८० ॥ यत्रसन्तिशतंस्तम्भाभास्वन्तोद्वादशोत्तराः ॥ एकैकम्भुवनन्धर्तुमष्टाष्टाविति कल्पिताः ॥८१॥ चतुर्दशसुयाशोभाविष्टपेषुसमन्ततः ॥ तस्मिन्विमानेसास्तीहशतकोटिगुणोत्तरा॥८२॥

करे ॥ ७७ ॥ फिर हिमिवान्ने आनंदित होकर कार्प्पटिकका कहा हुआ वचन सुना कार्पटिक बोला कि हे राजन् ! श्रीविश्वेश्वर के अर्थ जो प्रासाद (महल) विश्वकर्म्मा से ॥ ७८ ॥ बनाया जाताहै वह अच्छी बनावटवाला व देहधारियों को मुक्ति देनेवाले शिवजीका प्यारा और अपूर्व है उससे अपूर्व को मैंने कान से नहीं सुना है ॥ ७९ ॥ जिस प्रासाद में सूर्य्य के तेजसे अधिक जगमगाती हुई शलाकाओं से सब ओर मणिमाणिक्य और अनेक रत्नोंकी भीती बनाई गई है ॥ ८० ॥ व जिसमें बारह अधिक एक सौ जगमगातेहुये खम्भाहैं क्योंकि चौदह लोकों में से एक एक लोक धारने को आठ आठ कल्पित किये गये हैं ॥ ८१ ॥ व जो चौदहो लोकों में

सब ओर शोभाहै वह उस विमान में सैकड़ों करोड़ गुणा अधिकहै ॥ ८२ ॥ व जे चंद्रकांत माणियोंके खम्भोंकी आधार शिलायें हैं वे उनकी ज्योति धारनेवाली व चित्र रत्न मई खंभों से दबी हैं ॥ ८३ ॥ व जिसमें पद्मराग, इन्द्र नील आदि मणियों की सुन्दरी पुतलियां रत्नों के दीपों से रातोदिन नीराजन करती हैं ॥ ८४ ॥ व चमकते स्फटिकों से बने सचीकन कमलाकार शिलातलमें सब ओर से विचित्र अनेक रत्नोंके रूप ॥ ८५ ॥ जे कि लाले, पीले, मजीठके रंगवाले नीले व कबुले वर्णों से विशेषताके साथ जड़ेगये हैं वे चित्रकर्ता के धरे हुये चित्रों के समान जिसमें सोहते हैं ॥ ८६ ॥ व अविमुक्त नाम अपने क्षेत्रके बीच जिस मंदिर में दृष्टि की बांधनेवाली माणिक्य

चन्द्रकान्तमणीनाञ्चस्तम्भाधारशिलाश्रयाः ॥ चित्ररत्नमयैःस्तम्भैःस्तम्भितास्तत्प्रभाभराः ॥ ८३ ॥ पद्मरागेन्द्रनीला नांशालीनाःशालभञ्जिकाः॥नीराजयन्त्यहोरात्रंयत्ररत्नप्रदीपकैः ॥८४॥ स्फुरत्स्फटिकनिर्माणश्लक्ष्णपद्मशिलातले॥ अनेकरत्नरूपाणिविचित्राणिसमन्ततः ॥ ८५ ॥ आरक्तपीतमञ्जिष्ठनीलकिर्मीरवर्णकैः ॥ विन्यस्तानिविभासन्तेचित्रे चित्रकृतायतः ॥ ८६ ॥ दृक्पिच्छिलाविलोक्यन्तेमाणिक्यस्तम्भराजयः ॥ यतोऽविमुक्तेस्वक्षेत्रेमोक्षलक्ष्म्यंकुराइव ॥ ८७ ॥ रत्नाकरेभ्यःसर्वेभ्योगणारत्नोच्चयान्बहून् ॥ राशींश्चक्रुःसमानीययत्राद्रिशिखरोपमान् ॥ ८८ ॥ यत्रपातालतल तोनागानाङ्कोशवेश्मतः ॥ गणैर्मणिगणाःसर्वेसमाहृत्यगिरीकृताः ॥८९॥ शिवभक्तःस्वयंयत्रपौलस्त्यःस्वद्रिकूटतः ॥ कोटिहाटककूटानिआनयामासराक्षसैः ॥ ९० ॥ प्रासादनिर्मितिंश्रुत्वाभक्ताद्वीपान्तरस्थिताः ॥ माणिक्यानिसमाज ह्रुर्यथासंख्यान्यहोनृप ॥ ९१ ॥ चिन्तामणिःस्वयंयत्रकर्मणेविश्वकर्मणे ॥ विश्राणयेदहोरात्रंविचित्रांश्चिन्तितान्मणी

खम्भों की पङ्क्तियां मोक्ष लक्ष्मियों के अंकुरों की नाईं देखी जाती हैं ॥ ८७ ॥ व जहां गणोंने सब समुद्रों से या रत्नों की खानियों से बहुते रत्न समूहों को लाकर पर्वत शिखरों के समान राशि कर दियाहै ॥ ८८ ॥ व जहां गणोंने पाताल तलकेवासी नागों के कोशस्थान से भलीभांति हरकर मणिसमूहोंका पर्वत कियाहै ॥ ८९ ॥ व जहां शिवजी के भक्त कुबेरने आपही अपने राक्षसों के द्वारा अच्छे पर्वतों के शिखरों से करोड़ों सोनेकी राशियों को मंगाया है ॥ ९० ॥ हेराजन्! अन्यद्वीपों के वासी भक्त लोग काशी में मंडपका बनाना सुनकर यथावत् असंख्य माणिक्य ले आयेहैं ॥ ९१ ॥ व जहां चिंतामणि आपही कर्म के लिये विश्वकर्माको दिनोरात विचित्र विचारीहुई

मणियों को देती है ॥ ९२ ॥ और जहां कल्पवृक्ष व भक्तिसमेत जन नित्यही बहुती अनेक रंगकी पताकाओं को बनाते हैं ॥ ९३ ॥ व जहां दही दूध ऊखरस घृत और सहत के समुद्र पञ्चामृतों के कलशोंसे दिनोदिन निरंतर नहवातेहैं ॥ ९४ ॥ व जहां कामधेनु आपही भक्ति से अपने दूधरूप सहत की धारासे लिंगरूपी विश्वनाथजी को नित्यही स्नान कराती है ॥ ९५ ॥ व मलयाचल जिन विश्वनाथजी को चंदन के रसों से सेवता है और कपूर उपजानेवाली केला भक्ति समेत कपूर समूहों से सेवाकरती है ॥ ९६ ॥ हे कठोर चित्त ! जिस शंकर के स्थान में प्रतिदिन इत्यादि अपूर्व हैं उन उमाकांत को तुम कैसे नहीं जानतेहो ॥ ९७ ॥ हे कुंभसम्भव ! इसभांति उन

न् ॥ ९२ ॥ नानावर्णपताकाश्चयत्रकल्पमहीरुहः ॥ अनल्पाःकल्पयन्त्येवनित्यम्भक्तिसमन्विताः ॥ ९३ ॥ अब्धयोयत्र सततंदधिक्षीरेक्षुसर्पिषाम् ॥ पञ्चामृतानाङ्कलशैःस्नपयन्तिदिनेदिने ॥ ९४ ॥ यत्रकामदुघानित्यंस्नपयेन्मधुधारया ॥ स्वदुग्धयास्वयम्भक्त्याविश्वेशंलिङ्गरूपिणम् ॥ ९५ ॥ गन्धसाररसैर्यञ्चसेवतेमलयाचलः ॥ कर्पूररम्भाकर्पूरपूरैर्भक्त्यानिषेवते ॥ ९६ ॥ इत्याद्यपूर्वयत्रास्तिप्रत्यहंशङ्करालये॥कथन्तन्त्वमुमाकान्तंनवेत्सिकठिनाशय॥९७॥ इतितस्य समृद्धिन्तांदृष्ट्वाजामातुरद्रिराट् ॥ त्रपयापरिभूतोभून्नितरांकुम्भसम्भव ॥ ९८ ॥ तस्मैकार्पटिकायाथसदत्त्वापारितोषिकम् ॥ पुनश्चिन्तापरोजातोऽद्रिराट्कार्पटिकेगते ॥ ९९ ॥ उवाचेतिमनस्येवविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ अहोभद्रमिदंजातंयत्त्वयाश्राविशर्मभाक् ॥ १०० ॥ यावत्सम्पत्तिसंभारःश्रूयतेदृश्यतेत्रवै ॥ जामातुरत्रसदनेलीलात्रिजगतीपतेः ॥ १ ॥ ततःप्राभृतकस्तुच्छोनितरांप्रतिभातिमे ॥ कन्यार्थंयोमयानीतोजामातुःपरितोषकृत् ॥ २ ॥ अहंमन्येतथैवासौय

यामाता (दमाद) की उस समृद्धि को देखकर पर्वतराज हिमवान्जी लाजसे परिभूत होगये ॥ ९८ ॥ तदनन्तर वह पर्वतराज कार्पटिक के लिये पारितोषिक याने जो प्रसन्नता से दियाजाता है उसको देकर व उस कार्पटिक के जातेही फिर चिंता में परायण हुये ॥ ९९ ॥ और विस्मय से फूली हुई आंखोंवाले वह मनमें कहने लगे कि अहो यह महामंगल हुवा जो कि तुमने शिव को सुखसेवी सुना है ॥ १०० ॥ इस लोक में जितना सम्पत्तिका समूह सुनाजाता है वह लीलासे रचित त्रिलोक के स्वामी मेरे जमाई के इस घरमें निश्चय से देखा जाता है ॥ १ ॥ उससे मैंने कन्या के अर्थ यामाता को परितोष करनेवाला जो उपस्कर (भेंट) आना है वह मुझको बहुतही

तुच्छ (थोड़ा) जान पडता है ॥ २ ॥ मैं मानतारहूं कि जैसे मैंने पहले देखा वैसेही वह होवेंगे कि बूढ़े बैलमात्र के धनी व सब कर्मों से विमुख हैं ॥ ३ ॥ न इनको कोई जाने न इनका कोई कभी वंश (गोत्र) है व जिनका नामभी नहीं है और किस देशके हैं ऐसा नहीं जाने जाते हैं ॥ ४ ॥ व किस वृत्तिवाले व किस आचारवाले हैं किंतु नाममात्र से ईश्वर हैं और जिनके ऐश्वर्य्य के सूचनेवाली कोई चीज नहीं दिखाती है ॥ ५ ॥ परन्तु यह आश्चर्य्य है कि, वही यह गरीबों को भी मुक्ति सम्पत्ति देते हैं और सम्मुख या प्रसन्न हुये वह सब कर्मों को फल समेत करते हैं ॥ ६ ॥ जो कि वेदोंसेही जानने योग्य हैं व सम्पूर्ण जगत् जिनका सन्तान याने विस्तार किया

थादर्शिमयापुरा ॥ वृद्धोक्षमात्रसम्पत्तिःसर्वकर्मपराङ्मुखः ॥ ३ ॥ नैनङ्कोपिविजानीयान्नान्वयोऽस्यकदाचन ॥ नामापिय स्यनैकश्चकिंदेशीयश्चनोह्यते ॥४॥ किंवृत्तश्चकिमाचारोनाममात्रेणचेश्वरः ॥ ऐश्वर्यसूचकंवस्तुयस्यकिञ्चिन्नलक्ष्यते ॥ ५ ॥ सोसौनिर्वाणसम्पत्तिरङ्कायापिददात्यहो ॥ सुमुखःसर्वकर्माणिफलवन्तिकरोतिसः ॥ ६ ॥ वेदवेद्योहिसर्वज्ञोयत्स न्तानोऽखिलंजगत् ॥ यंनकोपिहिवेदादौवेदवेद्यःसएववै ॥ ७ ॥ योनभिज्ञःसदाज्ञातःससर्वज्ञोयमेवहि ॥ यस्यैकमपिनो नामपुंसाज्ञेयंनकेनचित् ॥ ८ ॥ सर्वेषांसर्वनामानियस्यनामानिनिश्चितम् ॥ सोसौहिसर्वदेशीयःसर्वेभ्यःसर्वसिद्धिदः ॥ ९ ॥ यस्यदेशोनविदितोयस्तुवृत्तिपराङ्मुखः ॥ आचारहीनमिवयंपुराऽपश्यङ्कठोरधीः ॥ १० ॥ श्रुतिस्मृतीयतःसर्वमा चारंवित्तएवहि ॥ नाममात्रेणनियतंयमज्ञासिषमीश्वरम् ॥ ११ ॥ साक्षादीश्वरएवैषसोन्येष्वैश्वर्यसूचकः ॥ अपिसर्वगु

हुवा है व जिनको पहले कोई या ब्रह्माभी नहीं जानते हैं वहही यह वेदों से जाननीय हैं ॥ ७ ॥ व जो कि सदा अजान जाने जातेथे वहही यह सर्वज्ञ हैं व जिनका एक नामभी किसी पुरुष से जानने योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ व यह निश्चित है कि सब जनों के सब नाम जिनकेही नाम हैं वहही यह सब देशों में रहनेवाले व सबों के लिये सब सिद्धिदायक हैं ॥ ९ ॥ जिनका देश नहीं जानागया है व जो कि वृत्तियों से विमुख हैं और कठोरबुद्धिवाला मैं जिनको पहले आचार हीन के समान देखता रहा हूँ ॥ १० ॥ किंतु श्रुतियां व स्मृतियां जिनसेही सब आचार को जानती हैं व मैं जिनको नियम समेत नाममात्रसे ईश्वर जानताथा ॥ ११ ॥ वहही यह साक्षात् ईश्वर व अन्य

जनों में ऐश्वर्य्य के सूचक व सबगुणों के आधार व तीनों गुणों से परे और कार्य्य कारण रूप हैं ॥ १२ ॥ व यहां अर्वाचीन याने अबके हुयेसे भी यह परसेपर पुराचीन हैं मैं तो केवल पर्वतों काही नाथहूं और उमा के पति विश्वभरे के नाथहैं ॥ १३ ॥ मैं थोड़ी संपत्तिवालाहूं और यह श्रीविश्वनाथजी अतुलधनवान्हैं व मेरा लाया उपस्कर बहुतही कमहै उससे इससमय इनका दर्शन ॥ १४ ॥ न करूंगा अनन्तर लौटकर कभी दर्शन करूंगा इसभांति सायंकाल अपने मनमें भलीभांति धारणकर उन पर्वतेश्वरने ॥ १५ ॥ पर्वतसम्बन्धी बड़े बलवान् सब अनुचरोंको बुलाकर यह वचन आज्ञा दिया कि अधिकबलवान् तुम सब जने ॥ १६ ॥ मेरा एक आयसु करो कि जब

णाधारोगुणातीतःपरापरः ॥ १२ ॥ अर्वाचीनइहाप्येषपराचीनःपरात्परः ॥ भूधराणामहंनाथोविश्वनाथउमापतिः ॥ १३ ॥ अहंप्रमितसम्पत्तिरप्रमेयधनोह्यसौ ॥ तुच्छप्राभृतकस्तस्मान्नेदानीमस्यदर्शनम् ॥ १४ ॥ करिष्येथकरिष्यामिव्यावृत्त्यागत्यकर्हिचित् ॥ संप्रधार्येतिमनसिसायंसचगिरीश्वरः ॥ १५ ॥ आहूयसर्वाननुगान्पार्वतीयान्महाबलान् ॥ आदिष्टवानिदंवाक्यंसर्वेयूयंबलाधिकाः ॥ १६ ॥ कुर्वन्त्वेकंममादेशंयावन्नोद्यतिभानुमान् ॥ तावच्छिवालयश्चैकंविदधत्वत्रसत्वरम् ॥ १७ ॥ यस्मिन्कृतेकृतार्थःस्यामिहलोकेपरत्रच ॥ समागत्येहकाश्यांयःकुर्यादेकंशिवालयम् ॥ १८ ॥ तेनत्रैलोक्यमखिलंसालयंकृतमेवहि ॥ तेनदत्तानिदानानिमहान्तिविधिपूर्वकम् ॥ १९ ॥ सुपर्वणिसुपात्रायसुतीर्थेश्रद्धयाधिकम् ॥ येनस्ववित्तमानेनधर्मोपार्जितवित्ततः ॥ २० ॥ कृतंशम्भोर्महासद्मनतंपद्मात्यजेत्कचित् ॥ तपांसितेनतप्तानिशीर्णपर्णाशनान्यपि ॥ २१ ॥ वाराणसींसमासाद्ययेनाकारिशिवालयः ॥ अशेषाःसुविशेषाढ्याइष्टास्तेनमहाम

तक सूर्य्य न उगें तबतक यहां एक शिवालयको बहुत शीघ्रही बनादो ॥ १७ ॥ जिसके कियेहुयेही मैं इस व उस लोकमें भी कृतार्थ होऊं क्योंकि जो कोई इस काशी में भलीभांति आकर एक शिवालयको बनवाताहै ॥ १८ ॥ उससे सम्पूर्ण त्रिलोकभी स्थान समेत कियाहुआही होताहै व उसने विधिपूर्वक बड़े दानोंको दिया ॥ १९ ॥ व सूर्य्यग्रहण समय सुतीर्थ में सुपात्र के लिये श्रद्धासे अधिक दानोंको किया व जिसने धर्म्म से कमायेहुये धनसे अपने ऐश्वर्य्यके अनुसार ॥ २० ॥ शङ्करजी का स्थान किया उसको लक्ष्मी कहीं नहीं त्यागती है व उससे गिरेपड़े सूखे पत्ते भोजनवाली तपस्यायें भी तपीगई हैं ॥ २१ ॥ कि जिसने काशी में भलीभांति प्राप्तहोकर

शिवालयको बनवायाहै व उसने बहुत विशेषतासमेत सम्पूर्ण यज्ञोंका पूजनकिया ॥२२॥ कि जिसने आनन्दवनमें महादेवजीका मन्दिर बनवाया इसभांति उन हिमवान् का आयसु सुनकर तदनन्तर अनुगामी सेवकोंने ॥ २३ ॥ जबतक रात न बीती तबतक श्रेष्ठ शिवालयको बनाकर तैयार करदिया व पर्व्वतराजने शैलेश्वर नाम लिङ्गकी प्रतिष्ठाकिया जोकि लिङ्ग चन्द्रकांतमणिकाथा व जगमगातीहुई ज्योतिसे मण्डपको उजला करताथा ॥ २४ ॥ और पर्वतराजने उस मन्दिर में सब पर्वतों से भी अपनी अधिक उन्नतिको कहतीहुई अच्छे अक्षरपंक्तिवाली प्रशस्तिको लिखाया ॥ २५ ॥ तदनन्तर अरुणोदय होतेही पंचनद कुण्डमें स्नानकर कालराजके नमस्कारकर व

खाः ॥२२॥ आनन्दकाननेयेनदेवदेवालयःकृतः ॥ इतितस्यसमादेशंसमाकर्ण्यानुगास्ततः ॥ २३ ॥ चक्रुर्देवालयंश्रेष्ठं यावद्व्युष्टानयामिनी ॥ तावच्छैलेश्वरंलिङ्गंशैलेशेनप्रतिष्ठितम् ॥ चन्द्रकान्तमणेश्चञ्चत्कान्तिश्वेतितमण्डपम् ॥ २४ ॥ अलेखयत्प्रशस्तिञ्चप्रशस्ताक्षरमालिनीम् ॥ व्याचक्षाणांनिजांसर्वगोत्रेभ्योप्यधिकोन्नतिम् ॥ २५ ॥ ततोऽरुणोदये जातेस्नात्वापञ्चनदेह्रदे ॥ शैलराजःकालराजंनमस्कृत्यसमर्च्यच ॥ २६ ॥ तत्रराशिंसमुत्सृज्यपरितस्त्वरितोययौ ॥ पार्वतीयैरनुगतःसर्वैरपिनिजालयम् ॥ २७ ॥ ततःप्रातःसमालोक्यगणौहुण्डनमुण्डनौ ॥हृष्टौदेवालयंरम्यंवरणाया स्तटेशुभे ॥ २८ ॥ अदृष्टपूर्वंदेवायनिवेदयितुमागतौ ॥ तौतुदृष्ट्वामहादेवमुमादर्शितदर्पणम् ॥ २९ ॥ प्रणम्यदण्डवद् भूमौकृताञ्जलिपुटौगणौ ॥ कृताभ्यनुज्ञौभ्रूक्षेपाद्विज्ञप्तिमथचक्रतुः ॥ ३० ॥ देवदेवनजानीवःकेनचिद्दृढभक्तिना ॥ अ

भलीभांति पूजाकर पर्वतराजजी ॥ २६ ॥ वहां सब ओरसे रत्नों की राशिको छोंडकर सब पर्वतपुत्रों से भी अनुगत व वेगवान् होकर अपने घर को चले गये ॥ २७ ॥ उसके बाद प्रातःकाल वरणानदी के मंगलमय किनारेपर रमणीक शिवालय को देख कर हुंडन मुंडन दोनों गण आनंदित हुये ॥ २८ ॥ व जो कि पहले नहीं देखागया था उसको महादेवजी से बताने के लिये आये हुये वे दोनों पार्वतीजी से दर्प्पण दिखाये हुये शिवजी के ॥ २९ ॥ भूमिमें दण्डवत् प्रणामकर फिर भौंह चलाने की संज्ञा से महादेवजी से कीहुई आज्ञावाले हाथ जोड़े हुये गण विज्ञापना करते भये ॥ ३० ॥ कि हे देवों के देव! हम नहीं जानते हैं कि किस भारीभक्तने वरणा के तीर में

महामनोहर मन्दिर को बनवाया है ॥ ३१ ॥ हे विभो ! संध्यासमय तक हमने नहीं देखा अभी प्रातःकाल वह देवालय देखागयाहै ऐसा गणोंका कहना सुनकर पार्वती को देखकर शंकरजी ने कहा ॥ ३२ ॥ कि हे पर्वतेन्द्रपुत्रि ! उस देवालय के देखने को हम तुम दोनों जने चलेंगे जो कि सब वृत्तांत के जाननेवाले व सर्वज्ञहैं वह अजान के समान हुये ॥ ३३ ॥ और हे मुने ! ऐसा कहकर पार्वती समेत व गणों से संयुत व देवमन्दिर के देखने को समुत्सुक महेशजी महारथ पर चढ़कर अपने स्थान से निकल चलते भये ॥ ३४ ॥ उसके बाद शिवजी ने वरणा के किनारेपर रात्रिमात्र में बनायेहुये अत्यन्त रम्य रचनावाले देवमन्दिर को देखा ॥ ३५ ॥ अनन्तर

तीवरम्यःप्रासादोनिर्मितोवरणातटे ॥ ३१ ॥ आसायंनैक्षिचावाभ्यांदृष्टोद्यैवप्रगेविभो॥ गणोदितमितीशानोनिशम्याह गिरीन्द्रजाम् ॥ ३२ ॥ विज्ञातसर्ववृत्तान्तःसर्वज्ञोप्यनभिज्ञवत् ॥ अचलेन्द्राङ्गजेयावस्तत्प्रासादविलोकने ॥ ३३ ॥ इत्यु क्त्वेशःसगिरिजोनिरगात्सगणोमुने ॥ महास्यन्दनमारुह्यप्रासादन्द्रष्टुमुत्सुकः ॥ ३४ ॥ अथालुलोकेगिरिशःप्रासादंव रणातटे ॥ अतीवरम्यरचनंयामिनीमात्रनिर्मितम् ॥ ३५॥ स्यन्दनादवरुह्याथगर्भागारमवीविशत् ॥ ददर्शचमहालि ङ्गंचन्द्रकान्तशिलामयम् ॥ ३६ ॥ देदीप्यमानंमहसामोक्षलक्ष्म्यंकुराकृति॥ दृष्टिप्रसादजननंपुनर्जननशातनम्॥३७॥ केनेदंस्थापितंलिङ्गंयावज्जिज्ञासतीश्वरः ॥ तावद्ददर्शपुरतःप्रशस्तिंकर्तृसूचिकाम् ॥ ३८ ॥ वाचयित्वैवचमनाङ्मनस्ये वमनोजहृत् ॥ उवाचदेवींदिष्ट्येतिप्रेक्षस्वात्मपितुःकृतिम् ॥ ३९ ॥ उमाश्रुत्वेतिसंहृष्टाकदम्बकुसुमश्रियम् ॥ आनन्दां

रथसे उतरकर गर्भागार याने मण्डप के मध्य में प्रवेश किया और चन्द्रकांतमणिमय महालिंग को देखा ॥ ३६ ॥ जो कि ज्योति से जगमगाता हुवा मोक्षलक्ष्मी के अंकुर के आकार व दृष्टि की प्रसन्नता उपजानेवाला और फिर जन्म होने का नाशक है ॥ ३७ ॥ यह लिंग किससे थापागया है इस भांति ईश्वरने जबतक जानने की इच्छा किया तबतक मन्दिर के आगे कर्ताकी सूचन करनेवाली प्रशस्तिको देखा ॥ ३८ ॥ और मनमेंही बांचकर कामहारी क्रीडाकारीने देवीजीसे ऐसा कहा कि मंगल हुवा तुम अपने पिताका करना देखलो ॥ ३९ ॥ ऐसा सुनकर कदम्ब के फूलकी शोभा व आनन्द के अंकुरों की लक्ष्मी के समान रोमावली को अंगमें धारती हुई हर्ष

समेत पार्वती ॥ ४० ॥ देवीने पांवोंके प्रणामकर महादेवजी से विज्ञापना किया कि हे नाथ! इस लिंगश्रेष्ठ में तुमको दिनोरात निरन्तर टिकना चाहिये ॥ ४१ ॥ व शैलेश्वर नामक महेश्वर रूप इस लिंग के जे भक्तहैं उनको तुम इस लोक व परलोक में भी बड़ीभारी ऋद्धि को देवोगे ॥ ४२ ॥ वैसेहीहो ऐसा कहकर महादेवजी ने उन पार्वतीजी से फिर कहा कि वरणानदी में स्नान किये हुये जिन जनों से शैलेश्वर लिंग भलीभांति पूजित होवेगा ॥ ४३ ॥ व आनन्द से पितरोंका तर्प्पणकर और अपनी शक्ति के अनुसार दानको देकर उनलोगोंका फिर इस संसार मार्ग में लौटना नहीं होवेगा ॥ ४४ ॥ हे शुभे! मैं शैलेश्वर महालिंग मे नित्यही टिकूंगा व इस लिंग के

कुरलक्ष्मीवदङ्गेषुपरिबिभ्रती ॥ ४० ॥ ततोऽभ्यजिज्ञपद्देवन्देवीपादौप्रणम्यच ॥ अस्मिँल्लिङ्गवरेनाथत्वयास्थेयमहर्निशम् ॥ ४१ ॥ अस्यलिङ्गस्ययेभक्ताःशैलेशस्यमहेशितुः ॥ तेभ्यस्त्वंमहतीमृद्धिन्दास्यसीहपरत्रच ॥ ४२ ॥ तथेतिदेवउक्तातांपार्वतींपुनरब्रवीत ॥ वरणायांकृतस्नानैःशैलेशोयैःसमर्चितः ॥४३॥ पितॄन्सन्तर्प्यचमुदादत्त्वादानानिशक्तितः॥ नतेषांपुनरावृत्तिरत्रसंसारवर्त्मनि ॥ ४४ ॥ शैलेश्वरेमहालिङ्गेनित्यंस्थास्याम्यहंशुभे ॥ प्रदास्यामिपरांमुक्तिमेतल्लिङ्गार्चकेजने ॥ ४५ ॥ शैलेश्वरंयेद्रक्ष्यन्तिवरणायाःसुरोधसि ॥ तेषांकाश्यांनिवसतान्दुःखंनाभिभविष्यति ॥ ४६ ॥ उमयापिवरोदत्तस्तत्रलिङ्गेघटोद्भव ॥ शैलेश्वरस्ययेभक्तास्तेमेपुत्रानसंशयः ॥४७॥ स्कन्दउवाच ॥ इतिशैलेश्वरंलिङ्गंकथितन्तेमहामुने ॥ इदानीङ्कथयिष्यामिरत्नेश्वरसमुद्भवम् ॥४८॥ श्रुत्वाशैलेशमाहात्म्यंश्रद्धयापरयानरः ॥ पापकञ्चुकमुत्सृज्यशिवलोकमवाप्नुयात ॥४९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेशैलेशादिलिङ्गनिर्णयोनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

पूजक जनको उत्तम मुक्ति दूंगा ॥ ४५ ॥ व जे वरणा के किनारे पर शैलेश्वर को देखेंगे उन काशीवासी जनोंको दुःख न होवेगा ॥ ४६ ॥ हे अगस्त्यजी! उस लिंग में पार्वतीजी से भी वर दियागया कि जे शैलेश्वर के भक्त होवें वे मेरे पुत्रहैं इसमें संशय नहीं हैं ॥ ४७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महामुने! मैंने इसभांति शैलेश्वर लिंग को तुमसे कहा अब रत्नेश्वर की उत्पत्ति को कहूंगा ॥ ४८ ॥ श्रेष्ठ श्रद्धा समेत मनुष्य शैलेश्वरका माहात्म्य सुनकर पाप केंचुल को छोड़कर शिवलोक को प्राप्त होवे है ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेशैलेशादिलिङ्गनिर्णयोनामषट्षष्टितमोध्यायः ॥ ६६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो॰ । सरसठवें अध्याय में रत्नेश्वर माहात्म्य । मंगलमय वर्णन बहुरि उनकी जनि याथात्म्य ॥ श्रीअगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुख ! जो महालिंग काशीमें रत्नभूत कहा जाता है उस रत्नेश्वरकी भलीभांति उत्पत्ति कहो ॥ १ ॥ हे गौरीहृदयनन्दन ! इस लिंग की क्या महिमा है व यह किससे थापागयाहै इसको तुम विस्तार से कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! जैसे उस लिंगका प्रकट होना भूमि में भया है वैसेही मैं रत्नेश्वरका माहात्म्य तुमसे कहूंगा ॥ ३ ॥ हे मुने ! सुना हुवा जिस लिंग का नामभी तीन जन्मों के बटोरे हुये पापको नशावे है उसका प्रकट होना कहताहूं ॥ ४ ॥ आश्चर्य्य है कि पर्वतराज हिमवान्ने कालभैरव के उत्तर ओर में जिन रत्नो

अगस्त्यउवाच ॥ रत्नेश्वरसमुत्पत्तिङ्कथयस्वषडानन ॥ रत्नभूतंमहालिङ्गंयत्काश्यांपरिवर्ण्यते ॥ १ ॥ कोस्यलिङ्गस्यमहिमाकेनैतच्चप्रतिष्ठितम् ॥ एवंविस्तरतोब्रूहिगौरीहृदयनन्दन ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ रत्नेश्वरस्यमाहात्म्यंकथयिष्यामितेमुने ॥ यथाचतस्यलिङ्गस्यप्रादुर्भावोऽभवद्भुवि ॥३॥ श्रुतंनामापिलिङ्गस्ययस्यजन्मत्रयार्जितम् ॥ वृजिनन्नाशयेत्तस्यप्रादुर्भावंब्रुवेमुने ॥ ४ ॥ शैलराजेनरत्नानियानिपुञ्जीकृतान्यहो ॥ उत्तरेकालराजस्यतानितस्यगिरेर्वृषात् ॥५॥ सर्वरत्नमयंलिङ्गंजातन्तत्सुकृतात्मनः ॥ शक्रचापसमच्छायंसर्वरत्नद्युतिप्रभम् ॥ ६ ॥ तल्लिङ्गदर्शनादेवज्ञानरत्नमवाप्यते ॥ शैलेश्वरंसमालोक्यशिवौतत्रसमागतौ ॥ ७॥ यत्ररत्नमयंलिङ्गमाविर्भूतंस्वयंमुने ॥ तस्यस्फुरत्प्रभाजालैस्ततमम्बरमण्डलम् ॥ ८ ॥ तत्रदृष्ट्वाशुभंलिङ्गंसर्वरत्नसमुद्भवम् ॥ भवान्यदृष्टपूर्वाहिपरिपप्रच्छशङ्करम् ॥ ९ ॥ देवदेवजगन्नाथसर्वभक्ताभयप्रद ॥ कुतस्त्यमेतल्लिङ्गंहिसप्तपातालमूलवत् ॥ १० ॥ ज्वालाजटिलिताकाशंप्रभाभासितदिङ्मुखम् ॥

की राशि को रचदियाथा वे उन पर्वतेश के धर्म्म से ॥ ५ ॥ पुण्यात्माका वह सब रत्नमय लिंग होगया जो कि इन्द्रधनु के समान शोभावाला व सब रत्नों की ज्योति से जगमगाता था ॥ ६ ॥ उस लिंग के दर्शन सेही ज्ञानरत्न प्राप्त होता है और शैलेश्वर को देखकर पार्वती समेत शिवजी वहां भलीभांति आगये ॥ ७ ॥ कि हे मुने ! जहां रत्नमय लिंग प्रकट हुवा है उसकी जगमगाती हुई ज्योति समूह से आकाशमण्डल व्याप्त है ॥ ८ ॥ व वहां सबरत्नों से उपजे हुये शुभलिंग को देखकर पहले न देखने वाली भवानीने शंकर से पूंछा ॥ ९ ॥ कि हे भक्तों के अभयदायक, जगतों के नायक, देवों के देव ! सातो पाताल तक मूलवाला यह लिंग कहां से भया है ॥ १० ॥ हे

संसारबन्धनविनाशक ! जो कि ज्वालाओं से आकाशको व्याप्त किये हुये व अपनी दीप्ति से दिशाओं के मुखको प्रकाशता है इसका क्या नाम व क्या स्वरूप और क्या प्रभाव है ॥ ११ ॥ हे नाथ ! जिसके दर्शनसेही मेरा मन अत्यन्त आनंदित है व इसमेंही रमताहै इसलिये आप इसको प्रसन्नता से बतावो ॥ १२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे अपर्णे! याने तपस्यामें पर्णोंकी त्यागनेवाली, पार्वति ! सब तेजों के निधान इस लिंगका उत्तम स्वरूप जो तुमने पूंछा उसको मैं भलीभांति कहताहूं तुम सुनो ॥ १३ ॥ हे भामिनि ! तुमको उद्देशकर तुम्हारे पिता पर्वतराज हिमवान्ने यहां महारत्नोंका समूह आना है ॥ १४ ॥ और उस हिमपर्वत से यहां सुकृत से बटोरे हुयेही उन रत्नों

किमाख्यङ्किंस्वरूपञ्चकिंप्रभावम्भवान्तक ॥ ११ ॥ यस्यसंवीक्षणादेवमनोमेतीवहृष्टवत् ॥ इहैवरमतेनाथकथयैतत्प्रसादतः ॥ १२ ॥ देवदेवउवाच ॥ शृणवपर्णेसमाख्यामियत्त्वयापृच्छिपार्वति ॥ स्वरूपमेतल्लिङ्गस्यसर्वतेजोनिधेःपरम् ॥ १३ ॥ तवपित्राहिमवतागिरिराजेनभामिनि ॥ त्वामुद्दिश्यमहारत्नसंभारोत्राप्यनायिहि ॥१४॥ अत्रतानिचरत्नानिराशीकृत्यहिमाद्रिणा॥सुकृतोपार्जितान्येवययौस्वसदनंपुनः ॥१५॥ तवार्थेवाममार्थेवाश्रद्धयायत्समर्प्यते ॥ काश्यान्तस्यपरीपाकोभवेदीदृग्विधोऽनघे ॥ १६ ॥ लिङ्गंरत्नेश्वराख्यंवैमत्स्वरूपंहिकेवलम् ॥ अस्यप्रभावोहिमहान्वाराणस्यामुमेध्रुवम् ॥ १७ ॥ सर्वेषामिहलिङ्गानांरत्नभूतमिदंपरम् ॥ अतोरत्नेश्वरंनामपरंनिर्वाणरत्नदम् ॥ १८ ॥ अनेनैवसुवर्णेनपित्राराशीकृतेनच ॥ प्रासादमस्यलिङ्गस्यविधापयमहेश्वरि ॥ १९ ॥ लिङ्गप्रासादकरणात्खण्डस्फुटितसंस्कृतेः ॥ लिङ्गस्थापनजंपुण्यंहेलयैवेहलभ्यते ॥ २० ॥ तथेतिभगवत्योक्त्वागणाःप्रासादनिर्मितौ ॥ सोमनन्दिप्रभृतयोऽसंख्या

को राशिकर फिर अपने घरको जायागया है ॥ १५ ॥ हे पापहीने, पार्वति ! तुम्हारे अर्थ व हमारे अर्थ जो कुछ काशी में श्रद्धा से सौंपाजाता है उसका फल ऐसाही होता है ॥ १६ ॥ हे उमे ! यह निश्चय है कि जो रत्नेश्वरनामक लिंग केवल मेरा स्वरूप है इससे इसका प्रभाव काशी में बहुतभारी होवे ॥ १७ ॥ और यह यहां सबलिंगों का रत्नभूत व उत्तम या सबसे परे है इससे रत्नेश्वरनामक उत्तम लिंग मुक्तिरत्नका दायक है ॥ १८ ॥ हे महेश्वरि ! तुम अपने पितासे राशि किये हुये इसही सोनेसे इस लिंग का मन्दिर बनवादो ॥ १९ ॥ क्योंकि यहां लिंगोंका शिवालय बनाने व फूटेटूटे मन्दिरोंका संस्कार करने से लिंगस्थापन की पुण्य अनादर के साथ मिलजाती है ॥२० ॥

हे मुने ! वैसेहीहो ऐसा कहकर भगवतीने देवमंदिर बनाने के लिये सोमनन्दी आदि असंख्य गणोंको व्यापार में जोड़दिया ॥ २१ ॥ और उन गणोंने पहरभरमेंही बहुते कौतुकोंसे चित्रित, सुमेरुके शिखरके समान सुवर्णमय मन्दिरका निर्माणकिया ॥ २२ ॥ उस समय प्रासादका बनना देखकर प्रसन्नमुखी देवीजीने गणोंको बहुतही सन्मान व पारितोषिक दिया ॥ २३ ॥ हे महामुने ! देवीजीने प्रणामपूर्वक महादेवजी से इस लिंग की महिमाको फिर पूंछा ॥ २४ ॥ और श्रीमहादेवजी बोले कि, हे देवि ! यह शुभदायक लिंग अनादिकालसे सिद्धहै परन्तु इस समय तुम्हारे पिताकी पुण्यकी गुरुतासे प्रकटहुवा है ॥२५॥ जोकि इस क्षेत्र के बीच गोप्यों में परम गोप्य अब मनो-

व्यापारितामुने ॥ २१ ॥ गणैश्चकाञ्चनमयोनानाकौतुकचित्रितः ॥ निर्ममेयाममात्रेणप्रासादोमेरुशृङ्गवत् ॥ २२ ॥ देवीप्रहृष्टवदनादृष्ट्वाप्रासादनिर्मितिम् ॥ गणेभ्योऽयतरद्भूरिसंमानंपारितोषिकम् ॥ २३ ॥ पुनश्चदेवीपप्रच्छप्रणिपातपुरःसरम् ॥ महिमानंमहादेवंलिङ्गस्यास्यमहामुने ॥ २४ ॥ देवदेवउवाच ॥ लिङ्गन्त्वनादिसंसिद्धमेतद्देविशुभप्रदम् ॥ आविर्भूतमिदानीन्त्वत्पितुःपुण्यगौरवात् ॥ २५ ॥ गुह्यानांपरमंगुह्यंक्षेत्रेऽस्मिंश्चिन्तितप्रदम् ॥ कलौकलुषबुद्धीनाङ्गोपनीयंप्रयत्नतः ॥ २६ ॥ यथारत्नंगृहेगुप्तंनकैश्चिज्ज्ञायतेपरैः ॥ अविमुक्तेतथालिङ्गंरत्नभूतंगृहेमम ॥ २७ ॥ यानिब्रह्माण्डमध्येत्रसन्तिलिङ्गानिपार्वति ॥ तैरर्चितानिसर्वाणिरत्नेशोयैःसमर्चितः ॥ २८ ॥ प्रमादेनापियैर्गौरिलिङ्गंरत्नेशमर्चितम् ॥ तेभवन्त्येवनियतंसप्तद्वीपेश्वरान्नृपाः ॥ २९ ॥ त्रैलोक्येयानिवस्तूनिरत्नभूतानितानितु ॥ रत्नेश्वरंसमभ्यर्च्यसकृत्प्राप्नोतिमानवः ॥ ३० ॥ पूजयिष्यन्तियेलिङ्गंरत्नेशंकामवर्जिताः ॥ तेसर्वेमद्गणाभूत्वाप्रान्तेद्रक्ष्यन्तिमामिह ॥ ३१ ॥ रु

रथदायक और कलियुगमें पापबुद्धियों में बहुते यत्नसे छिपानेयोग्यहै ॥ २६ ॥ जैसे घरमें रक्षितहुवा रत्न अन्यलोगोंसे नहीं जानाजाताहै वैसेही काशीरूप मेरे घरमें रत्नेश्वरलिंग रत्नभूत है ॥ २७ ॥ हे पार्वति ! जिन्होंने रत्नेश्वरकी पूजाकिया उन्होंने इस ब्रह्माण्डके मध्यमें जे लिंगहैं उनकी भलीभांति पूजाकरदिया याने इसके पूजनेसे सब लिंग पूजजाते हैं ॥ २८ ॥ हे गौरि ! यह नियमहै कि जिन्होंने प्रमाद से भी रत्नेश्वरकी पूजाकिया वे सातद्वीपोंके नायक नरेश होते हैं ॥ २९ ॥ व मनुष्य एक बारभी रत्नेश्वरकी पूजाकर त्रिलोकमें जो रत्नभूत वस्तुहैं उनको पाताहै ॥ ३० ॥ और जे कामनासे हीन होकर यहां रत्नेश्वर लिंगको पूजेंगे वे सब मरनेकेबाद मेरे गण होकर मुझ

को देखेंगे ॥ ३१ ॥ हे देवि! करोड़रुद्रसूक्तों के जपने से जो फल कहागयाहै वह फल रत्नेश्वरकी भलीभांति पूजासे मिलताहै ॥ ३२ ॥ और लिंगके अनादिकालसे सिद्ध होने में जो वृत्तांत है उस सब पापविनाशक अद्भुत इतिहासको तुमसे कहताहूं ॥३३॥ कि पूर्वकालमें यहां नाट्यकरने में पण्डिता कोई नर्त्तकी (नाचनेवाली) थी उस कलावती ने एकसमय फागुन मासकी शिवरात्रिमें ॥ ३४ ॥ जागरणको प्राप्तहोकर नृत्यकिया व मनोज्ञगीत को गाया और उस वाद्यों की जाननेहारी ने आपही अनेकों बाजोंको बजाया ॥ ३५॥ अनन्तर उस तौर्य्यत्रिक (नाचना, गाना, बजाना) से भी रत्नेश्वर महालिंगको प्रसन्नकर वह नटी अपने चहेहुये या प्यारेदेशको आनन्दसे

द्राणाङ्कोटिजप्येनयत्फलंपरिकीर्तितम् ॥ तत्फलंलभ्यतेदेविरत्नेशस्यसमर्चनात् ॥ ३२ ॥ लिङ्गेचानादिसंसिद्धेयद्वृत्तंत द्ब्रवीमिते ॥ इतिहासंमहाश्चर्यंसर्वपापनिकृन्तनम् ॥ ३३ ॥ पुरेहनर्तकीकाचिदासीन्नाट्यार्थकोविदा ॥ सैकदाफाल्गुनेमासिशिवरात्र्यांकलावती ॥ ३४ ॥ ननर्तजागरंप्राप्यजगौगीतंचपेशलम् ॥ स्वयंचवादयामासनानावाद्यानिवाद्यवित् ॥ ३५ ॥ तेनतौर्यत्रिकेणापिप्रीणयित्वाथसानटी ॥ रत्नेश्वरंमहालिङ्गंदेशमिष्टञ्जगामह ॥ ३६ ॥ कालधर्मवशंयातातत्रसावरनर्तकी ॥ सुतागन्धर्वराजस्यवसुभूतेर्बभूवह ॥ ३७ ॥ सङ्गीतस्यसवाद्यस्यतस्यलास्यस्यपुण्यतः॥ तत्रेशाग्रेकृतस्येहजागरेशिवरात्रिजे ॥ ३८ ॥ रम्यारत्नावलीनामरूपलावण्यशालिनी ॥ कलाकलापकुशलामधुरालापवादिनी ॥ ३९ ॥ पितुरानन्दकृन्नित्यंवसुभूतेर्घटोद्भव ॥ सर्वगान्धर्वकुशलागुणरत्नमहाखनिः ॥ ४० ॥ मुनेसखीत्रयन्तस्याश्चारुचातुर्यभाजनम् ॥ शशिलेखानङ्गलेखाचित्रलेखेतिनामतः ॥ ४१ ॥ तिसृभिस्ताभिरेकत्रवाग्देवीपरिशीलिता ॥ ताभ्यः

चलीगई ॥ ३६ ॥ और वहां कालधर्म के वशमें प्राप्तहुई याने मरीहुई वह नर्त्तकी वसुभूतिनामक गंधर्वराजकी कन्या होतीभई ॥ ३७ ॥ व यहां शिवरात्रिमें महादेवजीके आगे उस जन्ममें किये हुये उस बाजेसमेत संगीत और नाचकी पुण्यसे ॥३८॥ वह रूप व लावण्यसे सोहनेवाली रम्य व चौंसठ कलासमूहमें कुशल और मधुर आलाप बोलनेवाली व रत्नावली नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३९ ॥ हे घटसम्भव, अगस्त्यजी! वह नित्यही वसुभूति नामक पिताकी आनन्दकारिणी व सब संगीतविद्या में दक्ष और गुण रत्नोंकी बड़ी खानि याने आकर सीथी ॥ ४० ॥ हे मुने! शशिलेखा अनंगलेखा और चित्रलेखा ऐसे नामोंवाली चतुरताका पात्र उसकी तीन सखियांथीं ॥ ४१ ॥

उन तीनों के साथ रत्नावलीने एक स्थान में सरस्वती की सेवा किया और प्रसन्नहुई सरस्वतीजीने उन चारों को सब कलायें दिया ॥ ४२ ॥ हे गौरि! उस रत्नावलीने अन्य जन्मकी वासना को प्राप्तहोकर रत्नेश्वर लिंगका शुभ नियम ग्रहण किया ॥ ४३ ॥ कि काशी में रत्नभूत रत्नेश्वर लिंगके दर्शनको नित्यही प्राप्तहोकर मुखसे वचन बोलोंगी ॥ ४४ ॥ ऐसे वह गंधर्व की पुत्री नियमवती हुई व उन सखियों के साथ नित्यही लिंग को देखती थी ॥ ४५ ॥ एक समय उस कन्याने मेरे इस रत्नेश्वर नामक उत्तम लिंग की आराधनाकर गीतों की माला से भलीभांति पूजाकिया ॥ ४६ ॥ हे उमे! उस समय वे तीनों सखियां प्रदक्षिणा करने को चलीगईं और उसके गीतसे

सर्वाःकलाःप्रादात्परिप्रीतासरस्वती ॥ ४२ ॥ प्राप्यरत्नावलीगौरिसाजन्मान्तरवासनाम् ॥ रत्नेश्वरस्यलिङ्गस्यजग्राहनियमंशुभम् ॥ ४३ ॥ रत्नभूतस्यलिङ्गस्यकाश्यांरत्नेश्वरस्यवै ॥ नित्यंसंदर्शनंप्राप्यवक्ष्याम्यपिवचोमुखे ॥४४॥ इत्थंनियमवत्यासीत्सागन्धर्वसुतोत्तमा ॥ ताभिःसखीभिःसहितानित्यंलिङ्गंचपश्यति ॥ ४५ ॥ एकदाराध्यरत्नेशंममैतल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ समानर्चसाबालारम्ययागीतमालया ॥ ४६ ॥ सख्यःप्रदक्षिणीकर्तुंलिङ्गंतिस्रोऽप्युमेगताः ॥ तस्यागीतेनतुष्टोहंलिङ्गस्थोवरदोभवम् ॥ ४७ ॥ यस्त्वयारंस्यतेरात्रावद्यगन्धर्वकन्यके ॥ तवनामसमानाख्यःसतेभर्ताभविष्यति ॥ ४८ ॥ इतिलिङ्गाम्बुधेर्जाताम्परिपीयवचःसुधाम् ॥ बभूवानन्दसन्दोहमन्थरातीवह्रीमती ॥४९॥ गताथव्योममार्गेणसखीभिःस्वपितुर्गृहम् ॥ कथयन्तीनिजोदन्तन्तमालीनाम्पुरोमुदा ॥५०॥ ताभिर्दिष्ट्येतिदिष्ट्येतिसखीभिःपरिनन्दिता ॥ अद्यतेवाञ्छितम्भाविरत्नेशस्यसमर्चनात् ॥५१॥ यद्यायातिसतेरात्रावद्यकौमारहारकः ॥ चोरोबाहुलतापाशैःपाशितव्यो

संतुष्टहोकर लिंगमें टिकाहुवा मैं वरदायक भया ॥ ४७ ॥ कि हे गंधर्वकन्यके! तेरे नामके समान नामवाला जो कोई आज रात में तेरे साथ रमण करेगा वह तेरा पति होवेगा ॥ ४८ ॥ इसभांति लिंगसमुद्र से उपजेहुये वचन अमृतको पानकर आनन्दसमूहसे व्याप्त या स्तब्धहुई वह अतीवलज्जित होगई ॥ ४९ ॥ अनन्तर सखियों के आगे उस वृत्तान्त को आनन्द से कहती हुई व सखियों के साथ आकाशमार्ग से अपने पिताके घरको जातीभई ॥ ५० ॥ और मंगलहुवा मंगलहुवा ऐसे उन सखियों से बढ़ाई गई कि रत्नेश्वर की पूजासे आज तुम्हारा वाञ्छित होवेगा ॥ ५१ ॥ जो आज रात में तुम्हारे कुमारपनेका हरनेहारा चोर आवे तो बहुत यत्नकरके बाहुलता पाशसे

फांसने योग्य है ॥ ५२ ॥ व रत्नेश्वर की आज्ञा से आयाहुवा प्यारकर्त्ता तुम्हारा प्रियतम जो कि पुण्यका मुख्यपात्र है वह जैसे प्रातःकाल हमलोगों से नेत्रों का विषय कियाजावे वैसा करना चाहिये ॥ ५३ ॥ आश्चर्य्य है कि जब आनन्दित हुई हमलोग प्रदक्षिणा करने चलीगई तब आपने पुण्यकी गुरुता से रत्नेश्वरलिंग को प्रत्यक्ष कर लिया है ॥ ५४ ॥ मनुष्योंका भाग्योदय अद्भुत है और पुण्य की उच्चता आश्चर्य्यरूप है जिससे एकत्र टिकेहुये भी बहुते जनों मेंसे एक कीही सिद्धि होती है ॥ ५५ ॥ व दैवकी श्रेष्ठता कहनेवाले सत्य कहतेहैं वह असत्य नहींहै कि उद्यम नहीं और अन्य बलभी नहीं फलता है किंतु एक दैवही सर्वत्र फलित होता है ॥ ५६ ॥ जैसे कि

तियत्नतः ॥ ५२ ॥ गोचरीक्रियतेस्माभिर्यथासत्सुकृतैकभूः ॥ प्रातरेवतवप्रेयान्रत्नेशादिष्टइष्टकृत् ॥ ५३ ॥ यातास्वस्मासुहृष्टासुभवतीपुण्यगौरवात् ॥ अहोरत्नेश्वरंलिङ्गंप्रत्यक्षीकृतवत्यसि ॥ ५४ ॥ अहोभाग्योदयोनॄणामहोपुण्यसमुच्छ्रयः ॥ एकस्यैवभवेत्सिद्धिर्यदेकत्रापितिष्ठताम् ॥ ५५ ॥ सत्यंवदन्तिनासत्यंदैवप्राधान्यवादिनः ॥ दैवमेवफलेदेकंनोद्यमोनापरम्बलम् ॥ ५६ ॥ भवत्याअपिचास्माकमेकएवहिचोद्यमः ॥ परंदैवंफलत्येकंयथातवननःपुरः ॥ ५७ ॥ लोकानांव्यवहारोयमालिप्रोक्तःप्रसङ्गतः ॥ परंमनोरथावाप्तिस्तवयासैवनःस्फुटम् ॥ ५८ ॥ इतिसंव्याहरन्तीनामनन्तोध्वाऽतितुच्छवत् ॥ क्षणात्तासांव्यतिक्रान्तःप्राप्ताश्चस्वंस्वमालयम् ॥ ५९ ॥ अथप्रातःसमुत्थायपुनरेकत्रसङ्गताः ॥ साचमौनवतीताभिःपरिभुक्तेवलक्षिता ॥ ६० ॥ तूष्णींप्राप्याथकाशींसास्नात्वामन्दाकिनीजले ॥ सखीभिःसहितापश्यल्लिङ्गंरत्नेश्वरंमम ॥ ६१ ॥ निर्वर्त्यनियमंसाथलज्जामुकुलितेक्षणा ॥ निर्बन्धेनवयस्याभिःपरिपृष्टाजगादह ॥ ६२ ॥ रत्नावल्युवा

आपका और हमाराभी एकही उद्यमथा परन्तु तुम्हारा दैव फला और हमारे आगे नहीं फला है ॥ ५७ ॥ हे सखि ! प्रसंग से यह लोकोंका व्यवहार कहागया परन्तु जो तुम्हारे मनोरथकी प्राप्ति है वहही हमारी है यह स्पष्ट है ॥ ५८ ॥ ऐसे बतलाती हुई उन सबोंका अनन्त मार्ग बहुत थोड़े के समान क्षणमें चलने से चुकाया गया और वे अपने अपने घरको गईं ॥५९॥ अनन्तर प्रातःकाल भलीभांति उठकर फिर एकत्र संगम हुई और वह मौनधारिणी रत्नमाला उन सखियों से भोगी हुई सी लखी गई ॥ ६० ॥ अनन्तर चुपचाप काशी को प्राप्त होकर व सखियों से सहित उसने गंगाजल में स्नानकर मेरे रत्नेश्वर लिंग को देखा ॥ ६१ ॥ तदनन्तर नियम को निबाहकर हठ से

सखियों करके पूंछी हुई व लज्जा से कुछेक विकसित आंखोंवाली वह आनन्द से बोली ॥ ६२ ॥ रत्नावली बोली कि, जब रत्नेश्वर की यात्रा से आपलोग अपने घरोंको चली गईं उसके बाद रत्नेश्वर के वचन अमृत कोही सुमिरती हुई ॥ ६३ ॥ व विशेषता रामेत अंगों के संस्कारवाली मैं शयनमन्दिर में पैठगई और निद्राका दरिद्र है आंखोंमें जिसके ऐसी उसके देखने की लालसावाली मैं ॥ ६४ ॥ होनहार अर्थ की गुरुता के बलसे स्वप्नदशा को प्राप्त होतीभई तदनन्तर अपना के बिसरने में मेरे दो कारणहुये ॥ ६५ ॥ एक तो आलस्य और दूसरा उसके अंगका भलीभांति स्पर्शहोना ये दोनों मेरे ज्ञानके हरनेवाले होगये किंतु मैं आलस्य के परवश होगई तदनन्तर उस

च ॥ अथरत्नेशयात्रायाःप्रयातासुस्वमन्दिरम् ॥ भवतीषुस्मरन्त्येवतद्रत्नेशवचोऽमृतम् ॥ ६३ ॥ सविशेषाङ्गसंस्कारा ऽविशंसंवेशमन्दिरम् ॥ निद्रादरिद्रनयनातद्विलोकनलालसा ॥ ६४ ॥ बलात्स्वप्नदशांप्राप्ताभाविनोर्थस्यगौरवात् ॥ आत्मविस्मरणेहेतूततोमेद्वौबभूवतुः ॥६५॥ तन्द्रीतदङ्गसंस्पर्शौममबोधापहारकौ ॥ तन्द्र्यापरवशाचासन्ततस्तत्स्पर्श नेनच ॥ ६६ ॥ नजानेत्वथकिंवृत्तंकाहंकाहंसचाथकः ॥ तन्निर्जिगमिषुंसख्योयावद्धर्तुंप्रसारितः ॥ ६७ ॥ दोःकङ्कणेनरि पुणाकणितन्तावदुत्कटम् ॥ महतासिञ्जितेनाहन्तेनाल्पम्परिबोधिता ॥६८॥ सुखसन्तानपीयूषह्रदेपरिनिमज्ज्यवै ॥ क्ष णेनतद्वियोगाग्निकीलासुपतिताबलात् ॥ ६९ ॥ किंकुलीयःसनोवेद्मिकिंदेशीयःकिमाख्यकः ॥ दुनोतिनितरांसख्यस्त द्विश्लेषानलोमहान् ॥ ७० ॥ अनल्पोत्कलितंचेतःपुनस्तत्सङ्गमाशया॥प्राणानांमेयियासूनामेकमेवमहौषधम् ॥७१॥

के अंगके स्पर्श से ॥ ६६ ॥ मैंने नहीं जाना कि क्या हालहुआ और मैं कहांहूं व कौनहूं और वह कौन है हे सखियो ! निकलजाने चाहते हुये उसके धरने को जबतक मैंने हाथ पसारा ॥ ६७ ॥ तबतक वैरी बाहुका कंकण बहुतही बाज उठा व उस बड़ेशब्दसे मैं कुछ जगादी गई ॥ ६८ ॥ और सुख विस्ताररूप अमृतकुण्ड में निमग्न होकर भी मैं बलसे क्षणभर में उसकी विरहाग्निकी ज्वालाओं में गिरपड़ी ॥ ६९ ॥ हे सखियो ! मैंने नहीं जाना कि वह किस कुलमें उपजाहुवा व किस देशकाहै व किस नामवाला है बरन उसकी बड़ीभारी विरहाग्नि मुझको बहुतही उपताप देती है ॥ ७० ॥ और फिर उसके संगकी आशा से बहुतही उत्कंठित हुवा चित्तही जाने चाहतेहुये

मेरे प्राणोंका एक औषध होगया ॥ ७१ ॥ हे सखियो ! रातमें भोगे हुये उसकाही फिर देखना और उसको फिर मेरा दर्शन आपलोगों के अधीन है ॥ ७२ ॥ हे सखियो ! सनेही सुन्दर सखीजन में कौन कपट वचन बतलाती है याने कोई नहीं इससे मैं निष्कपट कहतीहूं कि उसके दर्शनसेही प्राण ठहरेंगे अन्यथा निकलजावेंगे ॥ ७३ ॥ इस समय मुझको बहुतही बाधाकरनेको मरणावस्था प्रवृत्त होवे है इसभांति उस उपतापित हुईका वचन सुनकर वे सखियां ॥ ७४ ॥ कंपित हृदयवाली होकर व परस्पर देखकर कहनेलगीं ॥ ७५ ॥ सखियां बोलीं कि हे कल्याणि ! जिसका ग्राम नहीं नाम नहीं और वंशभी नहीं हमसे जानाजाता है वह कैसे मिलसक्ताहै और उसके लिये

वयस्यानिशिभुक्तस्यतस्यैवपुनरीक्षणम् ॥ भवतीनामधीनञ्चतत्पुनर्दर्शनंमम ॥ ७२ ॥ काऽलीकमालयोवक्तिस्निग्धमुग्धेसखीजने ॥ तद्दर्शनेनस्थास्यन्ति प्राणायास्यन्तिचान्यथा ॥ ७३ ॥ दशम्यवस्थासन्नह्येद्बाधितुंमाधुनाभृशम् ॥ इतितस्यागिरःश्रुत्वाद्गूनायानितराञ्चताः ॥ ७४ ॥ प्रवेपमानहृदयाःप्रोचुर्वीक्ष्यपरस्परम् ॥ ७५ ॥ सख्यऊचुः ॥ यस्यग्रामोननोनामनान्वयोनापिबुध्यते ॥ सकथंप्राप्यतेभद्रेकउपायोविधीयताम् ॥ ७६ ॥ इतिरत्नावलीश्रुत्वाससन्देहाञ्चतद्गिरम् ॥ वयस्यास्तदवाप्तौमेयूयंकुण्ठिमुमूर्च्छह ॥ ७७ ॥ इत्यर्धोक्तेनसाबालायूयंकुण्ठितशक्तयः ॥ यद्वक्तव्यन्त्विवतितयायूयंकुण्ठीतिभाषितम् ॥ ७८ ॥ ततस्तास्त्वरिताःसख्यःपरितापोपहारकान् ॥ बहुशःशीतलोपायान्व्यधुर्मोहप्रशान्तये ॥ ७९ ॥ व्यपैतिनयदामूर्च्छातत्तच्छीतोपचारतः ॥ तस्यास्तदैकयानीतंरत्नेशस्नपनोदकम् ॥ ८० ॥ तदुत्क्षणात्क्षणादेवतन्मूर्च्छाविरराम ह ॥ सुप्तोत्थितेवसावादीन्मुहुःशिवशिवेतिच ॥ ८१ ॥ स्कन्दउवाच ॥ श्रद्धावतांस्वभक्तानामुपसर्गे

क्या उपाय कियाजावे ॥ ७६ ॥ इसभांति रत्नावली उनका संदेहसमेत वचन सुनकर व हे सखियो ! मुझको उसकी प्राप्तिमें तुम कुंठि ऐसा कहकर मूर्च्छितहोगई ॥ ७७ ॥ ऐसे अधकहे वचन से वह बाला रहगई कि तुम कुंठित शक्तिहो जो ऐसा कहना चाहिये वह उससे तुम कुंठि ऐसाही कहागया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर वेगवती उन सखियोंने मूर्च्छा नाशने के लिये परितापहारी अनेक शीतल उपायोंको किया ॥ ७९ ॥ व जब उन उन अनेक शीतल उपचारों से उसकी मूर्च्छा नहीं विगतहुई तब एक सखीसे रत्नेश्वरके स्नानका जल लायागया ॥ ८० ॥ उसके छिड़कने से क्षणमेंही उसकी मूर्च्छाका अंत होगया और सोतीहुई उठीसी वह बारबार शिव शिव ऐसा कहनेलगी ॥ ८१ ॥

श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि श्रद्धावान् को अपने भक्तों की बड़ी पीड़ा या रोगों में भी शिवजी के चरणोदक के विना अन्य उपाय नहीं है ॥ ८२ ॥ जे बाहर और भीतर भी देहगत रोग दुःसाध्य हैं वे श्रद्धा समेत शिवजी के चरणोदकके स्पर्शसे नष्ट होजाते हैं अन्यथा नहीं ॥ ८३ ॥ जिसने भगवान् का चरणोदक सेया उस बाहर व भीतरसे पवित्र हुये जनके समीप में दुर्गति नहीं जाती है याने वह सदैव सुगति को प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥ तथा श्रीचरणोदक दैहिकताप व दैविक ताप और भौतिकताप को हर लेताहै ॥ ८५ ॥ हे मुने ! तदनन्तर विगत तापहुई उचितज्ञा गन्धर्वकुमारीने स्नेह समेत धीरबुद्धिवाली उन सखियोंसे ऐसाकहा ॥ ८६ ॥ रत्नावलीबोली कि, हे शशिलेखे !

महत्यपि ॥ नोपायान्तरमस्त्येवविनेशचरणोदकम् ॥ ८२ ॥ येऽप्याधयोपिदुःसाध्याबहिरन्तःशरीरगाः ॥ श्रद्धयेशोदकस्पर्शात्तेनश्यन्त्येवनान्यथा ॥ ८३ ॥ सेवितंयेनसततम्भगवच्चरणोदकम् ॥ तम्बाह्याभ्यन्तरशुचिंनोपसर्पतिदुर्गतिः॥ ८४ ॥ आधिभौतिकतापञ्चतापञ्चाप्याधिदैविकम् ॥ आध्यात्मिकन्तथातापंहरेच्छ्रीचरणोदकम् ॥ ८५ ॥ व्यपेतसंज्वरा चाथगन्धर्वतनयामुने ॥ उचितज्ञेतिहोवाचताःसखीःस्निग्धधीरधीः ॥ ८६ ॥ रत्नावल्युवाच ॥ शशिलेखेनङ्गलेखेचित्रलेखेमदीहिते ॥ यूयंकुण्ठितसामर्थ्याःकुतोवस्ताःकलाःक्व ॥ ८७॥ मत्प्रियप्राप्तयेसम्यगुपायोऽस्तिमयेक्षितः ॥ रत्नेश्वरानुग्रहतोऽनुतिष्ठतहितंहिताः ॥ ८८ ॥ शशिलेखेऽभिलषितप्राप्त्यैलेखांस्त्वमालिख ॥ संलिखानङ्गलेखेत्वंयूनःसर्वावनीचरान् ॥ ८९ ॥ चित्रज्ञेचित्रलेखेत्वंपातालतलशायिनः ॥ किञ्चिदाविर्भवच्चारुतारुण्यालंकृतान्लिख ॥ ९० ॥ अथाकर्ण्येतिताःसख्यास्तच्चातुर्यंप्रवर्ण्यच ॥ लिलिखुःक्रमशःसख्योयूनोयौवनशेवधीन् ॥ ९१ ॥ निर्यत्कौमारलक्ष्मीकान्पुं

हे अनंगलेखे ! हे चित्रलेखे ! तुम मेरे वाञ्छित में क्यों कुंठित शक्तिहो अथवा तुम्हारी वे कलायें कहां हैं ॥ ८७ ॥ हे हितकारिणियो ! मैंने मेरेप्यारे की प्राप्ति के लिये बहुत अच्छा उपाय देखा उस हितको तुमलोग रत्नेश्वरकी दयासे करो ॥ ८८ ॥ हे शशिलेखे ! तुम अभिलषित प्यारेकी प्राप्तिके लिये देवोंके चित्रलिखो हे अनंगलेखे ! तुम सब पृथिवीचारी युवावस्थावाले जनोंको लिखो ॥ ८९ ॥ हे चित्रज्ञे,चित्रलेखे ! तुम कुछेक प्रकटहुई सुन्दर तरुणाई से भूषित, पातालतलवासी नागादिकोंको लिखो ॥ ९० ॥ अनन्तर ऐसा सुनकर उस सखी की चतुरताकी प्रशंसाकर उन सखियोंने तरुणाई के निधान युवक जनों को क्रमसे लिखा ॥ ९१ ॥ और प्रातःसंध्याके समान उस

गन्धर्वकुमारीने निश्शेष से चलीगई है कुमारपन की सम्पत्ति जिनकी ऐसे पुरुषता शोभा से भूषितहुये उन राजादिको देखा ॥ ९२ ॥ व उस सुनयनीने सब देवसमूहों को देखा परन्तु उन स्वर्गवासियोंमें नेत्रोंकी चञ्चलताको न छोंड़ा ॥ ९३ ॥ तदनंतर स्नेहसे परिपूर्ण हुई वह मध्यलोक याने मनुष्यलोक में टिकेहुये मुनियों व राजों के कुमारोंको देखकर भी किसी में प्रीतिको न प्राप्तहुई ॥ ९४ ॥ उसके बाद कानों के निकटतक आंखोंवाली रत्नावली कुमारीने सुतल के तरुणों मेंभी नेत्रों को व्यापार कराया याने उनको देखा ॥ ९५ ॥ परन्तु कामके बाणों से तपाई हुई उस गन्धर्वीने दैत्य दानव कुमारोंको देखकर किसी में स्नेहको नहीं बांधा ॥ ९६ ॥ और चन्द्रमा

वत्त्वश्रीसमावृतान् ॥ प्रातःसन्ध्येवगन्धर्वीन्नृपाद्यांस्तानवैक्षत ॥ ९२ ॥ सर्वान्सुरनिकायान्साऽव्यलोकतशुभेक्षणा ॥ नचाञ्चल्यञ्जहावक्ष्णोस्तेषुस्वर्लोकवासिषु ॥ ९३ ॥ ततोमध्यमलोकस्थान्मुनिराजकुमारकान् ॥ विलोक्यापिनसाप्रीतिं काप्यापप्रेमनिर्भरा ॥ ९४ ॥ अथरत्नावलीबालाकर्णाभ्यर्णविलोचना ॥ दृशौव्यापारयामासबलिसद्मयुवस्वपि ॥ ९५ ॥ दितिजान्दनुजान्वीक्ष्यसागन्धर्वीकुमारकान् ॥ रतिम्बबन्धनक्वापितापितामान्मथैःशरैः ॥ ९६ ॥ सुधाकरकरस्पृष्टा प्यतिदूनाङ्गयष्टिका ॥ पश्यन्तीनागयूनःसाकिञ्चिदुच्छ्वसिताऽभवत् ॥ ९७ ॥ भोगिनस्तान्विलोक्यापिचित्रञ्चित्रगता नथ ॥ मनाक्संभुक्तभोगेवक्षणमासीत्कुमारिका ॥ ९८ ॥ यूनःप्रत्येकमद्राक्षीदशेषाञ्छेषवंशजान् ॥ तक्षकान्वयगां स्तद्वदथवासुकिगोत्रजान् ॥ ९९ ॥ पुलीकानन्तकर्कोटभद्रसन्तानगानपि ॥ दृष्ट्वानागकुमारांस्ताञ्छङ्खचूडमथैक्षत ॥ १०० ॥ शङ्खचूडेक्षणादेवपरांलज्जाम्बभारसा ॥ उद्भिन्नपुलकाप्यासीदङ्गप्रत्यङ्गसन्धिषु ॥ १ ॥ तत्रपाभरतोऽज्ञायित

की किरणों से छुई हुईभी बहुत व्यथित देहदण्डीवाली वह नागलोक के युवक जनों को देखती हुई कुछ उच्छ्वसित होगई ॥९७॥ यह आश्चर्य्य है कि अनन्तर चित्र पटमें प्राप्त उन नागोंको देखकरभी वह कुमारी क्षणभर कुछेक संभुक्तभोगा के समान होतीभई ॥ ९८ ॥ व प्रत्येक सम्पूर्ण तरुणों को देखने लगी उन मेंसे शेषके वंश में उपजे हुये वैसेही तक्षक के वंशमें गत ॥ ९९ ॥ व पुलीक, अनन्त, कर्कोट और भद्र के वंशमें प्राप्तहुये भी नागकुमारों को देखकर अनन्तर उसने शंखचूड को देखा ॥ १०० ॥ और शंखचूड़ के देखने सेही वह बड़ी लाजको धारती भई व अंग प्रत्यंगकी संधियों में रोमांचित होगई ॥ १ ॥ और उस चतुर चित्रलेखाने क्षणभर मे उसके

लाजभार सेही उसके कुमारपन हरनेहारे वरको जानलिया ॥ २ ॥ अनन्तर परिहास में मुख्य कुशल चित्रलेखाने चित्रपटीपर विचित्र वस्त्रका अंचल छोंड़कर शीघ्रही ढांपलिया ॥ ३ ॥ व लाजसे मौनधारिणी प्रस्फुरित ओठवाली रत्नावलीने चित्रलेखा को कुटिल दृष्टि से देखा ॥ ४ ॥ अनन्तर उस अनंगलेखा से कटाक्षकर देखी हुई शशिलेखा ने चित्रलेखा के डाले हुये वस्त्र के अग्रभाग को उघाड़ दिया ॥ ५ ॥ उसके बाद वसुभूतिकी कुमारी उस शुभ रत्नावली ने शङ्खचूड़के वंशमें उस रत्नचूड़ को देखलिया ॥ ६ ॥ उसके देखने के अवसर या उत्सवसे दृष्टि आनन्दके आंसुओं से घिरगई और कपोलभित्तिभी पसीना के कणों से व्याप्त होगई ॥ ७ ॥ व रोमाञ्च

त्कौमारहरोवरः ॥ तयावैदग्ध्यवरयात्तणतश्चित्रलेखया ॥ २ ॥ अथचित्रपटींचित्रलेखाचित्रपटाञ्चलम् ॥ परिक्षिप्यावृणोत्तूर्णम्परिहासैकपेशला ॥ ३ ॥ रत्नावलीचित्रलेखांह्रियामौनावलम्बिनी ॥ दृशाकुटिलयाद्राक्षीत्प्रस्फुरद्दशनाम्बरा ॥ ४ ॥ कटाक्षितानङ्गलेखातयाथशशिलेखया ॥ चित्रलेखापरिक्षिप्तपटाञ्चलमपाकरोत् ॥ ५ ॥ वसुभूतिसुता साथकन्यारत्नावलीशुभा ॥ शङ्खचूडान्ववायेतंरत्नचूडमवैक्षत ॥ ६ ॥ तदीक्षणक्षणाद्दृष्टिरानन्दाश्रुभिरावृता ॥ कपोलभित्तिरभवत्स्वेदोदकणिकाञ्चिता ॥ ७ ॥ चकम्पेगात्रलतिकाधृतरोमाञ्चकञ्चुका ॥ चित्रन्यस्तेवतस्तम्भक्षणम्मुकुलितानना ॥ ८ ॥ ततःसाचित्रलेखातामेत्याश्वासयदातुराम् ॥ मौत्सुक्यंव्रजगन्धर्विसिद्धस्तेद्यमनोरथः ॥ ९ ॥ एतस्यावगतंसर्वंदेशनामान्वयादिकम् ॥ माविषीदालिसुलभस्त्वेषरत्नेश्वरार्पितः ॥ १० ॥ अहोसदृग्वरावाप्त्यारत्नेशेनासि तोषिता ॥ उत्तिष्ठयामःसदनंरत्नेशःसर्वदोहिनः ॥ ११ ॥ अथदैववशाद्यान्त्यस्तादृष्टागगनाध्वगाः ॥ सुबाहुनादानवेन

कञ्चुकवाली देहलतिका थरथराने लगी और वह कुछेक विकसितमुखी होकर चित्र में थापीसी रुकरही ॥ ८ ॥ तदनन्तर उस चित्रलेखा ने उस आतुरीके समीप जाकर आश्वासन किया कि हे गन्धर्वि ! उत्कण्ठता को मत प्राप्त होवो आज तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगया है ॥ ९ ॥ क्योंकि हे सखि ! इसका देश, नाम व वंशादि सब जाना गयाहै इस से तुम मत विषाद करो यह रत्नेश्वरसे दिया हुवा वर बहुत सुलभहै ॥ १० ॥ अहो आलि ! हे सखि ! तुम समान वरकी प्राप्ति के द्वारा रत्नेश्वर से सन्तोषी गईहो अब उठो हम सब घरको चलती हैं और रत्नेश्वरजी हमारे लिये सब वस्तु के दाताहैं यह निश्चयहै ॥ ११ ॥ अनन्तर आकाशमार्ग में प्राप्त जाती हुई वे

दैवके वश पातालबिलवासी सुबाहुनामक दानवसे देखीगईं ॥ १२ ॥ और बीच गली में हरिणियों को विकटदाढ़ों समेत मुखवाले सिंहकी नाईं वह दानव उनचारों कोभी पकड़कर घरको निकल गया ॥ १३ ॥ दाढ़ों से विकट मुख व रक्तसे लाले नेत्रवाले उस दानवको देखकर वे गन्धर्वियां उपजेहुये कम्पका पात्रहोकर ॥ १४ ॥ हा मातः ! हा पितः ! हमारी रक्षाकरो हा विधातः ! उसको मत करो जो कि यह बहुतही निठुर हम अनाथोंमें करनेको प्रारम्भ किया गयाहै ॥ १५ ॥ हा दैव ! हम मन्द-भागिनियों ने क्या किया कि जिनसे पापकी वार्त्ताभी कहीं मनमें नहीं कही गई है ॥ १६ ॥ बालपनेका खेल छोड़कर व रत्नेश्वरकी पूजाको छोड़कर माता व पिता के

पातालतलवासिना ॥ १२ ॥ गृहीत्वाताश्चतस्रोपिनिरगाद्दानवोगृहम् ॥ हरिर्विकटदंष्ट्रास्यःप्रान्तरेहरिणीरिव ॥ १३ ॥ तास्तंविलोक्यगन्धर्व्योदंष्ट्राविकटिताननम् ॥ रुधिरारुणनेत्रञ्चजातावेपथुभूमयः ॥ १४ ॥ हामातर्हापितस्त्राहिहाविधे माविधेहितत् ॥ यदेतत्कर्तुमारब्धमनाथास्वतिनिष्ठुरम् ॥ १५ ॥ हादैवमन्दभाग्याभिःकिमस्माभिरनुष्ठितम् ॥ सुकृते तरवार्तापिनोचित्तेव्याहृताक्वचित् ॥ १६ ॥ शिशुक्रीडनकंहित्वाहित्वारत्नेश्वरार्चनम् ॥ पित्रोःस्वाधीनसच्चेष्टाइष्टंविद्मो नकिञ्चन ॥ १७ ॥ अधोभुवनगादीनाहीनानाथेनकोत्रनः ॥ त्रातित्राणार्थिनीर्बालाःशम्भोरत्नेशसर्वग ॥ १८ ॥ इत्थङ्ग न्धर्वतनयाविलपन्तीःकृपातुरम् ॥ शुश्रावनागराजोसौरत्नचूडोमहामनाः ॥ १९ ॥ कोसौमत्स्वामिनोनामरत्नेशस्यम हेशितुः ॥ लिङ्गराजस्यगृह्णातिकर्मबन्धनभेदिनः ॥ २० ॥ पुनरप्यार्तरावंसश्रुत्वाबालामुखेरितम् ॥ रत्नेशरक्षरक्षेतिगृ हीतास्त्रोविनिर्ययौ ॥ २१ ॥ तंवसासवपानेनमहामांसनिषेवणात् ॥ अत्यन्तोन्मत्तदुश्चेष्टंरत्नचूडोनिरैक्षत ॥ २२ ॥ अ

अधीन हमारा अच्छा व्यापार था और हम अपना मनमना कुछ नहीं जानती हैं ॥ १७ ॥ हे सर्वगत, रत्नेश्वर, शङ्कर ! नीचे लोकको जाती हुई दीन व नाथ से हीन व रक्षाकी चाहिनी व कुमारी हम लोगोंकी यहां कौन रक्षाकरे ॥ १८ ॥ ऐसे विलाप करती हुई गन्धर्वकुमारियों का शब्द कृपा से आतुर जैसे हो वैसे महामनस्वी उस रत्नचूड़नामक नागराजने सुना ॥ १९ ॥ और विचारा कि, लिंगों के राजा, कर्मबन्धन के बिदारनेवारे रत्नेश्वर महेश्वर मेरे स्वामी का नाम यह कौन लेता है ॥ २० ॥ फिर भी हे रत्नेश ! रक्षाकरो रक्षाकरो ऐसे कन्याओं के मुखसे कहेहुये आर्त्तशब्दको सुनकर अस्त्र लिये हुये वह निकलकर चला ॥ २१ ॥ और रत्नचूडने वसा व मद्य

पान और मांसकी सेवासे अत्यन्त उन्मत्त दुराचारी उस दानव को देखा ॥ २२ ॥ व आक्षेप किया याने उसका अनादर कर कहा कि रे शिष्टकन्यापहारक, दुष्ट ! रे अधम ! आज मेरी दृष्टि के गोचरमें प्राप्तहोकर तू कहां जावैगा ॥ २३ ॥ हे दुष्टबुद्धे ! आर्त्तोंकी रक्षाकरने में उद्यत बुद्धिवाले मेरे ताड़ित प्राणवाला तू यमपुरके प्रति पयानकर ॥ २४ ॥ और जिन्होंने रत्नेश्वर का नाम लिया उन डरश्रुत चित्तोंको मरणविपत्ति में भी तेरे सरीखे दुष्टोंसे डर नहीं होताहै यह स्पष्टहै ॥ २५ ॥ व जे मनुष्य रत्नेश्वरके महानामसे रक्षा किये गये हैं उनका जन्म जरा रोग कलि और कालका डर कहां है ॥ २६ ॥ ऐसा कहकर बाघसे धरी मृगियोंके समान उसके मुखमें आंखों

ध्याक्षिपच्चरेदुष्टशिष्टकन्यापहारक ॥ मद्दृष्टिगोचरंयातःक्यास्यस्यद्यरेऽधम ॥ २३ ॥ ममबाणहतप्राणःप्रयाणंकुरु दुर्मते ॥ आर्तत्राणोद्यतमतेर्वैवस्वतपुरम्प्रति ॥ २४ ॥ रत्नेश्वरस्ययैर्नामप्रलयापद्यपिस्फुटम् ॥ गृहीतन्नभवाद्दग्भ्यस्तेषु भीतिर्भयात्मसु ॥ २५ ॥ रत्नेश्वरमहानामकृतत्राणास्तुयेनराः ॥ तेषांजन्मजराव्याधिकलिकालभयंकुतः ॥ २६ ॥ इत्युक्तातामयत्रस्तास्तन्मुखप्रहितेक्षणाः ॥ व्याघ्रघ्रातइवमृगीर्माभैषिष्टेत्युवाचसः ॥ २७ ॥ इत्याश्वास्याथगन्धर्वीःसवै भुजगराजजः ॥ आकर्णपूर्णमाकृष्यकोदण्डम्प्राहिणोच्छरम् ॥ २८ ॥ सोपिक्रुद्धोदनुजराट्पदास्पृष्टभुजङ्गवत् ॥ आविद्धयकालदण्डाभम्परिघंव्यसृजन्महत् ॥ २९ ॥ हृदिरत्नेश्वरंलिङ्गंयस्यसम्यग्विजृम्भते ॥ अलातदण्डवत्तस्मिन्कालदण्डोपिजायते ॥ ३० ॥ अन्तरेवसचिच्छेदपरिघंस्वमहेषुभिः ॥ दुर्वृत्तस्ययथेहायुर्विच्छिद्येतान्तरैवहि ॥ ३१ ॥ ततोस्य

को लगाये हुई जो कि दानव के डरसे त्रासको प्राप्तहैं उनसे उस रत्नचूड़ने इस भांति कहा कि तुम लोग मत डरो ॥ २७ ॥ ऐसे गन्धर्वियों का आश्वासनकर अनन्तर उस नागराजकुमार ने कानोंतक पूरे धन्वाको खींचकर बाण को प्रेरण किया याने छोड़ दिया ॥ २८ ॥ और पावँ से छुये हुये सर्पके समान क्रोधवान् उस दानवराजने भी कालदण्ड के सदृश बड़े भारी परिघ (मूशल या बेड़ना) को बहाया ॥ २९ ॥ परन्तु जिसके हृदयमें रत्नेश्वर लिंग भलीभांति जगमगाताहै उसमें कालदण्डभी लुकुवाई खेलने कासा दण्डा होजाताहै ॥ ३० ॥ किन्तु उस रत्नचूड़ने अपने बड़े बाणों से परिघको बीचमें काटदिया कि जैसे दुराचारी दुष्टोंकी आयु बीचमेंही

कटजाती है ॥ ३१ ॥ तदनन्तर रत्नचूड़ ने कालाग्निके समान जगमगाते हुये बाणको छोंड़ा और उसका बाण उस दैत्य के हृदय में पैठकर व भलीभांति खोजकर ॥ ३२ ॥ इस सुबाहुदानवके प्राणोंको निकालकर फिर अपना शीघ्रही तर्कसमें आगया इसमें उत्प्रेक्षा कीजाती है कि, उस दैत्यकी हृदयस्थ दुरात्मता को तत्त्व से जानकर नागकुमारका बाण दिशारूप स्त्री के आगे कहनेकेलिये उसकी देहसे निकलकर चलासा गया है ॥ ३३। ३४ ॥ जो कि अन्यायसे कमाई या बटोरीहुई सम्पत्तियोंसे सुख भोगना चाहताहै उसके प्राणों समेत वे द्रव्यें चलीजाती हैं तो सुख कहां होगा ॥ ३५ ॥ इस भांति उस दानव को मारकर अनन्तर बड़ा बलवान् नागराज उन क-

बाणञ्चिक्षेपकालानलसमप्रभम् ॥ सबाणस्तस्यहृदयंप्रविश्यप्रगवेष्यच ॥ ३२ ॥ प्राणानस्यविनिर्यात्यस्वयंतूणमगा त्पुनः ॥ हृदिस्थन्तस्यदौरात्म्यंसर्वंविज्ञायतत्त्वतः ॥ ३३ ॥ दिगङ्गनापुरःख्यातुमिवनागाशुगोगतः ॥ ३४ ॥ अन्यायो पार्जितैर्द्रव्यैर्यःसुखम्भोक्तुमिच्छति ॥ तानिद्रव्याणियान्त्येवसप्राणानिकुतःसुखम् ॥ ३५ ॥ इतितंदानवंहत्वानागराजो महाबली ॥ प्रत्युवाचाथताःकन्याःकायूयंकस्यचात्मजाः ॥ ३६ ॥ दुरात्मनाकुतोनेनसङ्गतादनुजन्मना ॥ क्वारत्नेश्वरं लिङ्गंभवतीभिर्विलोकितम् ॥ ३७ ॥ यस्यनामाक्षरोच्चाराद्व्यपेतपरमापदः ॥ यूयमाशुतदाख्यातयेनजानामितत्त्वतः ॥ ३८ ॥ इतिश्रुत्वागिरस्तस्यनितरांप्रेमनिर्भराः ॥ परस्परंमुखंवीक्ष्यकोसौस्याद्दृष्टपूर्ववत् ॥ ३९ ॥ अकारणसखाकोसौ प्रान्तरेसमुपस्थितः ॥ निजप्राणान्पणीकृत्ययेनत्राताःस्मबालिकाः ॥ ४० ॥ अस्यसन्दर्शनादेवस्वभावचपलान्यपि ॥ मन्थराणीन्द्रियाणिस्युःपरिपीयसुधामिव ॥ ४१ ॥ यातुमन्यत्रनोनेत्रेप्रोत्सहेतेयथातथा ॥ अन्यद्वस्त्वन्तरंप्रेक्ष्यरम

न्याओंके प्रति बोला कि, तुम लोग कौनहो और किसकी पुत्रीहो ॥ ३६ ॥ व इस दुरात्मा दानव से कैसे संगतहुई हो व आपसे रत्नेश्वर लिंग कहां देखागयाहै ॥ ३७ ॥ जिसके नाम के अक्षर कहने से बड़ी भारी विपत्ति विगत होजाती है उसको बतावो जिससे मैं तत्त्वसे जानता हूं ॥ ३८ ॥ ऐसा उसका वचन सुनकर परस्पर मुख देखकर बहुतही प्रेम से निर्भर हुईं कि पहले देखा सा यह कौन है ॥ ३९ ॥ व विनाकारण का यह कौन सखा बीच गली में भलीभांति समीप में प्राप्त हुवाहै जिसने अ-पने प्राणोंको पण करके कन्याओं की रक्षा किया यह विस्मय है ॥ ४० ॥ व स्वभावसे चपल भी इन्द्रियां इसके दर्शन सेही अमृतसा पानकर स्तब्ध होगई हैं ॥ ४१ ॥

व आंखैं अन्य अधिक रमणीय वस्तु को देखकर भी यथातथ्य से अन्यत्र जाने को नहीं उत्साह करती हैं ॥ ४२ ॥ व हमारे कान इसकेही वचन अमृतकी मधुरता को अधिकता से प्राप्त होकर आकाश का अन्यशब्द गहने की अपेक्षा नहीं करते हैं ॥ ४३ ॥ व हमारी अच्छी मनमणिके चुरानेवाले इस तरुण को देखकर चञ्चल भी हमारे पांव पंगुभावको प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ इसभांति आपुस में कहती हुई वे कन्यायें उस सुकुमारांग को चित्रपट में प्राप्त देखकर भी न जानती भईं ॥ ४५ ॥ क्योंकि भारी भयानक देह दानव के बड़े डरसे अंधीसी हुई आंखोंवाली मृगनयनियों ने उसको न पहचान पाया ॥ ४६ ॥ और उन्होंने अपना जीवन बचानेवाले उस युवक से कहा कि

णीयतरन्त्वपि ॥ ४२ ॥ वचःपीयूषमाधुर्यैनितरांप्राप्यनःश्रुती ॥ शब्दान्तरग्रहापेक्षांनकुर्वातेस्वजन्मनः ॥ ४३ ॥ आशु तःपंगुतामेतौपादौनश्चञ्चलावपि ॥ अमुंयुवानमालोक्यचोरंनःसन्मनोमणेः ॥ ४४ ॥ इतिब्रुवन्त्यस्ताबालाःपरस्परम नुल्बणम् ॥ दृष्ट्वापिचित्रमध्यस्थंविविदुस्तन्नबालिकाः ॥ ४५ ॥ अतीवभीषणाकारदनुजस्यातिसाध्वसात् ॥ अन्धी भूतेक्षणास्तंनाज्ञासिषुर्हरिणीक्षणाः ॥ ४६ ॥ ऊचुश्चतंयुवानन्तानिजजीवितरक्षिणम् ॥ यदङ्गभवतापृष्टंस्नेहनिर्भरचे तसा ॥ ४७ ॥ तदाचक्ष्महेसर्वमवधेहिक्षणंमनः ॥ इयङ्गन्धर्वराजस्यवसुभूतेस्तनूद्भवा ॥ ४८ ॥ कन्यारत्नावलीनामगु णरत्नमहाखनिः ॥ वयंवयस्याएतस्याश्छायेवानुगताःसदा ॥ ४९ ॥ आरभ्यबाल्यमप्येषालिङ्गंरत्नेश्वराभिधम् ॥ या तिपित्राप्यनुज्ञाताकाश्यामर्चयितुंसदा ॥ ५० ॥ वरोपिदत्तस्तेनास्यैप्रसन्नेनाथशम्भुना ॥ हरिष्यतीतियःस्वप्नेकौमार न्तेकुमारिके ॥ ५१ ॥ तवनामसमानाख्यःसतेभर्ताभविष्यति ॥ युवानंस्वप्नभोक्तारंप्राप्याप्येषासुदुःखिता ॥ ५२ ॥

हे अंग (मित्र)! स्नेह से परिपूर्ण मनवाले आपने जो पूंछा ॥४७॥ उस सबको हम कहती हैं तुम क्षणभर मनको एकाग्र करो यह वसुभूतनामक गन्धर्वराजकीपुत्री ॥४८॥ जोकि गुण रूप रत्नोंकी बड़ी खानिकी समान यह रत्नावली नाम कन्याहै इसकी हम सखी हैं और छायाकी नाईं सदा पीछे चलनेवाली हैं ॥ ४९ ॥ व बालपन से लगाकर पिताकी आज्ञा पायेहुई यह काशी में रत्नेश्वर नामक लिंगकी पूजा करनेको सदैव जाती है ॥ ५० ॥ अनन्तर प्रसन्न हुये शंकर से इसको ऐसा वर भी दियागया है कि हे कुमारिके! स्वप्न में जो तेरे कुमारपनको हरेगा ॥ ५१ ॥ कि जिसका तेरे नाम के समान नाम है वह तेरा पति होगा। उसही रात स्वप्न में भोगनेहारे युवकको प्राप्त होकर

भी यह बहुत दुःखितहुई ॥ ५२ ॥ फिर उस प्यारे के विरहसे उठी अग्नि से बहुतही तपाई गई तब हमलोगों ने कलाकी कुशलता से उसको भी चित्रमें दिखाया ॥ ५३ ॥ कि जिसके ग्रामका नाम नहीं और वंशभी नहीं जानाजाता था उस चित्रलिखित को देखकर यह फिर जिलाई गई है ॥ ५४ ॥ तदनन्तर रत्नेश्वर के नमस्कार कर अपने घर जाने को उत्सुक हुई उसके बाद इसके साथ आकाशमार्ग की बीच गली में जाती हुई ॥ ५५ ॥ हमलोगों को धरकर अतर्कित आजानेवाला दानव पाताल मे पैठगया अनन्तर उस दनुजाधम को आपही जानते हैं ॥ ५६ ॥ हे कृपानिधे, मित्र ! ऐसा अपना वृत्तांत हमने कहा और आप हमारे आगे प्रसाद करो कि कौन हो ॥ ५७ ॥ जब

पुनस्तद्विरहोत्थेनवह्निनातीवतापिता ॥ कलाकौशल्यतोऽस्माभिःसोपिचित्रेप्रदर्शितः ॥ ५३ ॥ यस्यनग्रामनामापिना न्वयोप्यवबुध्यते ॥ तंदृष्ट्वाचित्रलिखितमप्येषाजीवितापुनः ॥ ५४ ॥ ततोरत्नेश्वरंनत्वास्वगृहायोत्सुकाभवत् ॥ यान्ती स्ततोऽनयासार्धंप्रान्तरेगगनाध्वनि ॥ ५५ ॥ अतर्किताग्मश्चास्मान्धृत्वापातालमाविशत् ॥ अनन्तरम्भवानेवतंवे त्तिदनुजाधमम् ॥ ५६ ॥ अङ्गइत्येववृत्तान्तोनिजोऽस्माभिरुदीरितः ॥ प्रसादंकुरुचास्माकंपुरःकोसिकृपानिधे ॥ ५७ ॥ यदाप्रभृतिचास्माभिःसदृष्टोदुष्टदानवः ॥ तदाप्रभृतिनोनेत्रेविद्युतेवहतप्रभे ॥ ५८ ॥ कान्दिशीकाभयत्रातर्नविद्मःकि ञ्चिदेवहि ॥ क्ववयंकावयंकस्त्वंकिंजातंकिंभविष्यति ॥ ५९ ॥ निशम्येतिसपुण्यात्मानागराजकुमारकः ॥ आश्वास्यता भयत्रस्ताःप्रोवाचेदञ्चपुण्यधीः ॥ ६० ॥ मयासहसमायातरत्नेशंदर्शयामिवः ॥ इत्याहूयसतानिन्येक्रीडावापींसुखोद काम् ॥ ६१ ॥ विचित्रमणिसोपानांहंसकोककृतारवाम् ॥ कवीनांवासितव्याजात्स्वागतंकुर्वतीमिव ॥ ६२ ॥ तत्रतेनाभ्य

से लगाकर हमने उस दुष्ट दानव को देखा तबसे लगाकर हमारी आंखें बिजुली से हतदीप्तिवालीसी हैं ॥ ५८ ॥ हे भयसे रक्षक ! डरसे चलितहुई हम कुछ भी नहीं जानती हैं कि हम कहां हैं व हम कौन हैं व तुम कौन हो व क्या होगया है और क्या होगा ॥ ५९ ॥ ऐसा सुनकर पुण्यात्मा व पुण्यबुद्धिवाले उस नागराजकुमारने डरसे त्रसित हुई उन कुमारियों से इस वचनको कहा ॥ ६० ॥ कि तुम मेरे साथ भलीभांति चली आवो तुमको रत्नेश्वरके दर्शन करादूंगा इस भांति उनको बुलाकर वह सुख जलवाली क्रीड़ा बावलीको लेगया ॥ ६१ ॥ जोकि क्रीडावापी विचित्र मणिमयी सीढ़ियों से बँधी व हंसों और चकोरों के कियेहुये शब्दसे संयुत व जलपक्षियों के शब्दों

के मिप स्वागत करतीसी है ॥ ६२ ॥ उस क्रीड़ावापी में उससे आज्ञादीहुई वे जलाशयमें पैठकर तदनन्तर वस्त्र फूल और भूपण समेत फिर स्नान करतीभई ॥ ६३ ॥ और बाहर निकलकर देखतीहुई गंधर्वियां ठहरसीगई व कालराजके समीपमें रत्नेश्वरका मंदिर देखकर ॥ ६४ ॥ तब विस्मितहुईसी गंधर्वियोंने आपुस में कहा कि यह स्वप्नहै कि सत्यहै व रत्नेश्वरका खेलहै ॥ ६५ ॥ व हमीं भ्रमी हैं कि हम गंधर्वी नहीं हैं यह ऐन्द्रजालिकखेल के समान क्याहै हम नहीं जानती हैं ॥ ६६ ॥ किन्तु यहां यह स्पष्ट होताहै कि यह उत्तरवाहिनी गंगाहैं व यह शंखचूड़की बावली है और यह शंखचूड़का स्थान है ॥ ६७ ॥ यह पंचनदतीर्थ है व यह वागीश्वर का मंदिर है

नुज्ञाताःक्रीडावाप्यांनिमज्ज्यताः ॥ सचैलपुष्पाभरणाःप्रोन्ममज्जुस्ततःपुनः ॥ ६३ ॥ बहिर्निर्गत्यगन्धर्व्यःपश्यन्त्यः स्थगिताइव ॥ रत्नेशालयमालोक्यकालराजसमीपतः ॥ ६४ ॥ परस्परन्ततःप्रोचुर्गन्धर्व्योविस्मिताइव ॥ स्वप्नोयंकिंनुवा सत्यंखेलोरत्नेश्वरस्यवा ॥ ६५ ॥ वयमेवहिवाभ्रान्तागन्धर्व्योनवयंकिमु ॥ किमेतन्नैवजानीमऐन्द्रजालिकखेलवत ॥ ६६ ॥ एषोत्तरवहागङ्गास्फुटमेवमवेदिह ॥ शङ्खचूडस्यवाप्येषाशङ्खचूडालयस्त्वसौ ॥ ६७ ॥ एतत्पञ्चनदन्तीर्थमेषवा गीश्वरालयः ॥ यस्यसन्दर्शनादेववाग्विभूतिर्विजृम्भते ॥ ६८ ॥ शङ्खचूडेश्वरश्चैषशङ्खचूडप्रतिष्ठितः ॥ यस्यसन्दर्श नात्पुंसांनभयङ्कालसर्पजम् ॥ ६९ ॥ एषामन्दाकिनीनामदीर्घिकापुण्यतोयभूः ॥ यस्यांकृतोदकामर्त्यामर्त्यलोकेवि शन्तिन ॥ ७० ॥ असावाशापुरीदेवीयास्तुतात्रिपुरारिणा ॥ त्रिपुरंजेतुकामेनमन्दाकिन्यास्तटेशुभे ॥ ७१ ॥ याद्यापिपू जितामर्त्यैराशाम्पूरयतेर्थिनाम् ॥ मन्दाकिन्याःप्रतीच्यान्तुएषसिद्ध्यष्टकेश्वरः ॥ ७२ ॥ भवेद्यस्यसपर्यातोगृहेसिद्ध्यष्ट

जिसके भलीभांति दर्शन करने से वाणी की विभूति स्फुरित होती है ॥ ६८ ॥ और शंखचूडसे थापाहुवा यह शंखचूडेश्वर नामक लिंगहै जिसके दर्शनसे कालेसर्प्पों से उपजा हुवा डर नहीं है ॥ ६९ ॥ व यह मंदाकिनी नाम नदी है जो कि पुण्य पानी का पात्रहै और जिसमें स्नानादि कियेहुये मनुष्य फिर मनुष्यलोक में नहीं पैठते हैं ॥ ७० ॥ व मंदाकिनी (गंगा) के शुभ किनारे में यह आशापुरी देवी हैं जोकि त्रिपुरकी जीतिचाही महादेवजीसे स्तुति कीगई हैं ॥ ७१ ॥ व जोकि मनुष्यों से पूजी हुई आजभी अर्थियों की आशाको पूरी करती हैं व गंगा से पश्चिम यह सिद्ध्यष्टकेश्वरहैं ॥ ७२ ॥ जिसकी पूजासे घर में आठ सिद्धियां प्रकट होती हैं और वहांही

विमलजलवाला सिद्ध्यष्टक नाम कुण्डहै ॥ ७३ ॥ जिसमें स्नानकर श्राद्धकियेहुवा निर्मलनर स्वर्गको जाताहै व वे मूर्त्तिमती आठोसिद्धियां हैं जोकि काशी में सब सिद्धि देनेवाली हैं ॥ ७४ ॥ व यह सब सिद्धियों के दायक महाराज विनायक हैं जिनके प्रणामकरतेहुये मनुष्योंके सब विनायक याने बड़े बड़े विघ्न विनष्ट होजाते हैं ॥ ७५ ॥ व सोने से विमल यह रत्नेश्वरका ऊंचा मंदिर है जिसमें रत्नोंकी ध्वजायें और पताकायें हैं व जिसके दर्शनसे सिद्धि होवे है ॥ ७६ ॥ व क्षेत्रके मध्यभागमें यह मध्यमेश्वर प्रसिद्धहैं जिनके दर्शनसे मध्यलोक और पाताल लोकके बीचमें नहीं बसे याने ऊंचे स्वर्गादिलोकों में बसताहै ॥ ७७ ॥ व मध्यमेश्वर की पूजाकर मनुष्य जो भूलोकमें

कंस्फुटम् ॥ कुण्डंसिद्ध्यष्टकाख्यञ्चतत्रैवविरजोदकम् ॥ ७३ ॥ यत्रस्नात्वाकृतश्राद्धोविरजस्कोदिवंव्रजेत् ॥ मूर्त्यस्ताःसिद्धयश्चाष्टौयाःकाश्यांसर्वसिद्धिदाः ॥ ७४ ॥ सर्वसिद्धिप्रदश्चासौमहाराजविनायकः ॥ विनायकाःप्रणश्यान्तियस्मैप्रणमतांनृणाम् ॥ ७५ ॥ असौसिद्धेश्वरस्योच्चैःप्रासादःकाञ्चनोज्ज्वलः ॥ रत्नध्वजपताकाश्चसिद्धिःस्याद्यद्विलोकनात् ॥ ७६ ॥ क्षेत्रस्यमध्यमेभागेमध्यमेश्वरएषवै ॥ मध्याधोलोकयोर्मध्येनवसेद्यस्यवीक्षणात् ॥ ७७ ॥ मध्यमेशंसमभ्यर्च्यनरोमध्यमविष्टपे ॥ आसमुद्रक्षितीन्द्रःस्यात्ततोमोक्षञ्चविन्दति ॥ ७८ ॥ ऐरावतेश्वरंलिङ्गंतत्प्राच्यामिष्टसिद्धिकृत् ॥ दृश्यतेयत्पताकायांरम्यऐरावतोगजः ॥ ७९ ॥ वृद्धकालेश्वरस्यैषप्रासादोरत्ननिर्मितः ॥ प्रतिदर्शंवसेद्यत्ररात्रौचन्द्रःसतारकः ॥ ८० ॥ यस्यसन्दर्शनान्नृणांनकालःप्रभवेद्भवे ॥ नकलिःप्रभवेत्सत्यंनचकल्मषराशयः ॥ ८१ ॥ इतियावत्कथाञ्चक्रुःसंभ्रान्ताइवबालिकाः ॥ तावद्वसुविभूतिःसगन्धर्वस्त्वरयाययौ ॥ ८२ ॥ नारदाच्छ्रुतवृत्तान्तः

जन्मधरे तो समुद्रतक भूमिका राजा होवे और उसके बाद मोक्षको पावे ॥ ७८ ॥ व उस मध्यमेश्वरलिंगसे पूर्वमें इष्टसिद्धिकर्त्ता ऐरावतेश्वर लिंगहै जिसकी पताकामें रम्य ऐरावत हाथी दिखाई देता है ॥ ७९ ॥ व रत्नों से रचाहुवा यह वृद्धकालेश्वर का मंडपहै जिसमें प्रतिअमावस ताराओं समेत चन्द्रमा बसता है ॥ ८० ॥ व जिसके भली भांति दर्शन करने से मनुष्यों के जन्ममें काल नहीं प्रभुता करता व कलि नहीं प्रभुता करताहै और यह सत्यहै कि पापसमूह भी नहीं समर्थ होते हैं ॥ ८१ ॥ इसभांति जबतक संभ्रमवतीसी कन्याओंने कथा किया तब तक वह वसुभूति गंधर्व बड़े वेगसे आगया ॥ ८२ ॥ क्योंकि उसने नारदसे सुबाहु दानव का वृत्तांत सुना था व जैसे

सखियों समेत परम प्यारी रत्नावली कुमारी हरी गई है ॥ ८३ ॥ व जैसे रत्नेश्वर से सूने आकाशमार्ग में कन्यायें भलीभांति आती रहैं व जैसे वह दैत्य पातालको लेगया व जैसे फिर युद्ध भया ॥ ८४ ॥ व जैसे रत्नेश्वरके भक्त बड़ेधन्वावाले रत्नचूड़ने बाण से उस सुबाहु दानवको मारा ॥ ८५ ॥ व जैसे वृत्तातपूछे हुवा रत्नचूड़ बावलीकी गलीसे काशी में लेआया व जोकि शंखचूडकी बावली पातालमें प्रवर्त्तनेवाली थी उसको ॥ ८६ ॥ प्राप्तहोकर जैसे निकलीहुई कन्यायें काशीको देखकर भी बहुतही संभ्रमको प्राप्तहोगईं व देखतीहुई भी भलीभांति उत्सुक भई हैं ॥ ८७ ॥ तदनंतर त्राससे कुम्हिलानी मुखशोभावाली व सखियों समेत फिर उपजीहुई सी उस पुत्रीको

सुबाहुदनुजन्मनः ॥ रत्नावलीसुताप्रीतासखीकायथाहृता ॥ ८३ ॥ रत्नेश्वरात्समायान्तिशून्येगगनवर्त्मनि ॥ यथा नयच्चपातालंयथायुद्धमभूत्पुनः ॥ ८४ ॥ यथारत्नेशभक्तेनरत्नचूडेनघातितः ॥ ससुबाहुर्दनुजत्नुर्महेष्वासेनचेषुणा ॥ ८५ ॥ यथाचपृष्टवृत्तान्तोवापीमार्गेणचानयत् ॥ शङ्खचूडस्यवापींतांपातालेषुप्रवर्तिनीम् ॥ ८६ ॥ यथाचप्राप्यनिर्याताःकाशींदृष्ट्वापिबालिकाः ॥ भृशंसंभ्रान्तिमापन्नाःपश्यन्त्योपिसमुत्सुकाः ॥ ८७ ॥ दृष्ट्वागन्धर्वराजस्ताम्पुनर्जातामिवात्मजाम् ॥ सवयस्यामनम्लानमुखपङ्कजसुश्रियम् ॥ ८८ ॥ परिष्वज्यसमाघ्रायललाटफलकंमुहुः ॥ अङ्कमारोप्यपप्रच्छसर्ववृत्तान्तमादरात् ॥ ८९ ॥ अथसाकथयामासदनुजापहृतेःकथाम् ॥ रत्नेश्वरवरावाप्तिंस्वप्नावस्थांविहाय च ॥ ९० ॥ रत्नावलीमनोवृत्तिंविज्ञायाथमुखेङ्गितैः ॥ शशिलेखासमाचष्टस्पष्टवर्णैःसविस्तरम् ॥ ९१ ॥ तुतोषनितरांसोथगन्धर्वाधिपतिःकृती ॥ प्रभावंवर्णयामासमुदारत्नेश्वरस्यच ॥ ९२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयमुनिश्रेष्ठविन्ध्यवृद्धि

देखकर गंधर्वराजने ॥ ८८ ॥ लिपटाकर बार बार माथफलकको सूंघकर व गोदमें चढ़ाकर आदरसे सब वृत्तांतको पूंछा ॥ ८९ ॥ अनन्तर उस कुमारीने रत्नेश्वरसे वरकी प्राप्ति और स्वप्नावस्थाको छोंड़कर दानवके हरलेजाने की कथाको कहा ॥ ९० ॥ तदनन्तर मुखकी संज्ञाओं से रत्नावली के मनकी वृत्तिको जानकर शशिलेखाने विस्तार समेत स्पष्ट अक्षरों से भलीभांति कहदिया ॥ ९१ ॥ उसके बाद वह पुण्यात्मा गंधर्वराज बहुतही तुष्टहुवा व आनंदसे रत्नेश्वरके प्रभावकी प्रशंसा करनेलगा ॥ ९२ ॥

श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे विंध्याचलकी बढ़ती के छेदनेवाले, मुनिश्रेष्ठ ! तुम सुनो कि, प्रतिदिन संयमवाला रत्नचूड भी बावली की गली के द्वारा ॥ ९३ ॥ नागलोकसे भलीभांति आकर मंदाकिनी गंगाके जलमें नहाकर व आठ अंजली रत्नों से रत्नेश्वरकी भलीभांति पूजाकर ॥ ९४ ॥ आनंदित के समान सोने के आठ कमलोंको समर्प्पण करता है (था) एकसमय स्वप्नकालमें लिंगरूपधारी रत्नेश्वरने ॥ ९५ ॥ दृढव्रतकारी अपने भक्त रत्नचूड़ से यह कहा कि आप दानवसे हरी हुई जिस कन्याको छुड़ावोगे ॥ ९६ ॥ उस दानवको संग्राममें जीतकर तदनन्तर वह कन्या तुम्हारी प्यारी नारी होवेगी ऐसे वरको सुमिरताहुवा महामनस्वी नागराज रत्न-

विवर्धन ॥ प्रत्यहंरत्नचूडोपिवापीमार्गेणसंयमी ॥९३॥ नागलोकात्समागत्यस्नात्वामन्दाकिनीजले ॥ रत्नेश्वरंसमभ्य र्च्यरत्नाञ्जल्यष्टकेनवै ॥ ९४ ॥ सुवर्णपङ्कजान्यष्टौसमर्पयतिहृष्टवत् ॥ एकदास्वप्नसमयेरत्नेशोलिङ्गरूपधृक् ॥ ९५ ॥ रत्नचूडमुवाचेदंनिजभक्तंदृढव्रतम् ॥ दानवेनहृतांकन्यांमोचयिष्यतियाम्भवान् ॥ ९६ ॥ तन्दानवंरणेजित्वासातेप त्नीभविष्यति ॥ इतिस्मरन्वरंसोथनागराजोमहामनाः ॥ ९७ ॥ तांकन्यांदानवंहत्वाविमोच्यनिजवीर्यतः ॥ वापीमा र्गेणपातालादानिनायपुनर्महीम् ॥ ९८ ॥ स्वयंचसाधयाञ्चक्रेप्रत्यहंनियमंसुधीः ॥ लिङ्गंसमर्चयित्वाथकृत्वाचापिप्रद क्षिणम् ॥ ९९ ॥ यावद्वहिःसमागच्छेद्रम्याद्रत्नेशमण्डपात् ॥ तावद्गन्धर्वराजायताभिःसवसुभूतये ॥ २०० ॥ सोयंसो यंयुवाधन्यस्तर्जन्यग्रेणदर्शितः ॥ गन्धर्वराजस्तंदृष्ट्वानागराजकुमारकम् ॥ १ ॥ अतीवस्मेरनयनःसंप्रहृष्टतनूरुहः ॥ मनस्येनञ्चसंवर्ण्यतद्रूपंसवयोन्वयम् ॥ २ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मिरत्नेशेनवरार्पणात् ॥ कन्याधन्यतराचेयमनु

चूड़ ॥ ९७ ॥ अपने वीर्य्य से दानवको मारकर व उस कन्याको छुड़ाकर वापीमार्ग के द्वारा पाताल से फिर भूमिमें लाया ॥ ९८ ॥ और वह सुबुद्धिमान् आपही अपने नियमोंको प्रतिदिन साधता था अनन्तर लिंगकी भलीभांति पूजाकर और प्रदक्षिणाभीकर ॥ ९९ ॥ जबतक रत्नेश्वर के मंडपसे बाहर भलीभांति आवै तबतक वह उन कन्याओं से वसुभूतिको ॥ २०० ॥ तर्जनी याने अंगुठाके लगेवाली अंगुली के अग्रभागसे दिखायागया कि वही यह धन्य युवाहै वही यहहै तब उस नागराजकुमारको देखकर गंधर्वराज ॥ १ ॥ अत्यन्त प्रसन्ननयन व रोमांचित होकर मनमें इसका वर्णनकर और वयस व वंश समेत उसके रूप (सुन्दरता) की प्रशंसाकर ॥ २ ॥

कि मैं धन्यहूं व रत्नेश्वरसे दया किया गयाहूं व रत्नेश्वरके वरसे यह कन्या भी बड़ी धन्याहै जिसका पति अनुरूप है ॥ ३ ॥ इसभांति हृदय में भलीभांति धारणकर व इस सुन्दर को बुलाकर व उसका नाम और गोत्र पूंछकर व बलाबलको गनकर ॥ ४ ॥ रत्नेश्वरके आगे उसके लिये आनन्दसे उस कन्याको देताभया और गंधर्वलोकमें लेजाकर कियेहुये कौतुकमंगलवाले वरको ॥ ५ ॥ मधुपर्क से भलीभांति पूजाकर तदनन्तर ब्याहकी विधिसे उसने कन्या का हाथ पकड़ा दिया व अनेकों रत्नदिया ॥ ६ ॥ हे कुंभज ! शशिलेखा अनंगलेखा और चित्रलेखा भी अपने पितासे विज्ञापनाकर उस पतिको वरलिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर चारों भी शुभ गंधर्बकुमारियों को ब्याहकर

रूपोस्तियत्पतिः ॥ ३ ॥ संप्रधार्येतिहृद्येनंसमाकार्यचसुन्दरम् ॥ पृष्ट्वातन्नामगोत्रञ्चगणयित्वाबलाबलम् ॥ ४ ॥ रत्नेश्वरस्यपुरतस्तस्मैकन्यांददौमुदा ॥ नीत्वागन्धर्वलोकञ्चकृतकौतुकमङ्गलम् ॥ ५ ॥ मधुपर्केणसंपूज्यपाणिमग्राहयत्ततः ॥ वैवाहिकेनविधिनाददौरत्नान्यनेकशः ॥ ६ ॥ शशिलेखानङ्गलेखाचित्रलेखापिकुम्भज ॥ विज्ञाप्यस्वजनेतारंवरयामासतम्पतिम् ॥ ७ ॥ उपयम्यचतस्रोपिसगन्धर्वसुताःशुभाः ॥ रत्नचूडोजगामाथताभिःस्वपितृमन्दिरम् ॥ ८ ॥ यथाचतसृभिःसार्धंश्रुतिभिःप्रणवःशिवम् ॥ स्वपित्रोश्चरणौनत्वानवोढाभिःसनागराट् ॥ ९ ॥ विनिवेदितवृत्तान्तोरत्नेशानुग्रहस्यच ॥ उवासताभिःससुखंपितृभ्यामभिनन्दितः ॥ १० ॥ ईश्वरउवाच ॥ रत्नेश्वरस्यलिङ्गस्यममस्थावररूपिणः ॥ सर्वेषांसर्वदस्यास्यप्रभावोगिरिजेऽतुलः ॥ ११ ॥ अस्मिँल्लिङ्गेपरांसिद्धिंप्राप्ताःसिद्धाःसहस्रशः ॥ गुप्तमासीदिदंलिङ्गमद्ययावत्सुमध्यमे ॥ १२ ॥ तवपित्राहिमवतामममभक्तेनसर्वथा ॥ पुण्यार्जितैर्महारत्नैररत्नेशःप्रकटीकृतः ॥ १३ ॥

रत्नचूड़ उनके साथ अपने पिताके घर को चलागया ॥ ८ ॥ कि जैसे चार श्रुतियों के साथ ॐकार विश्वनाथजी को प्राप्त होताहै वैसे वह नागराज उन नवोढ़ाओं के साथ माता व पिताके चरणारविन्दों के नमस्कारकर ॥ ९ ॥ और रत्नेश्वरकी दयाका वृत्तान्त निवेदित करनेवाला होकर माता व पिता से अभिनन्दित वह उन चारों के साथ सुख से बसा ॥ १० ॥ श्रीपरमेश्वरजी बोले कि, हे पार्वति ! जो कि मेरा स्थावर रूप सबको सब फलदायक रत्नेश्वरलिङ्ग है इसका अतुल प्रभावहै ॥ ११ ॥ हे सुमध्यमे ! इस लिंग में हजारों सिद्ध उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुये हैं व आजतक यह लिंग गुप्त रहाहै ॥ १२ ॥ अब सब प्रकारसे हमारे भक्त तुम्हारे पिता हिमवान्ने पुण्य से

बटोरे बड़े रत्नों से रत्नेशको प्रकट कियाहै ॥ १३ ॥ हे पर्वतराजकुमारि ! इस लिंग में मेरी प्रीति बहुत अधिक है व काशी में यह लिंग बड़े यत्न से पूजने योग्य है ॥ १४ ॥ हे उमे, प्रिये ! रत्नेश्वरकी दयासे स्त्रीरत्न व पुत्ररत्नादि व स्वर्ग व मोक्ष भी इत्यादि अनेक रत्न मिलतेहैं ॥ १५ ॥ व जो कि यहां रत्नेश्वर के नमस्कारकर अन्य देशों में भी जाकर मरगया है वह सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी स्वर्ग से इस मनुष्यलोक में नहीं आता है ॥ १६ ॥ हे देवि ! रत्नेश्वर के समीप कृष्णपक्षकी चतुर्दशी में उपासकर रातमें जागने से मेरी समीपताको प्राप्त होवे ॥ १७ ॥ हे प्रिये ! तुमने अन्य जन्म में मेरी भक्ति से इस लिंग से पूर्व यहां दाक्षायणीश्वर लिंगकी प्रतिष्ठा किया

अस्मिँल्लिङ्गेममप्रीतिर्नितरामद्रिराजजे ॥ वाराणस्यामिदंलिङ्गंपूजनीयंप्रयत्नतः ॥ १४ ॥ नानारत्नानिलभ्यन्तेरत्नेशानुग्रहादुमे ॥ स्त्रीरत्नपुत्ररत्नादिस्वर्गमोक्षावपिप्रिये ॥ १५ ॥ योऽत्ररत्नेश्वरंनत्वामृतोदेशान्तरेष्वपि ॥ नसस्वर्गादिहागच्छेत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ १६ ॥ असितायाश्चतुर्दश्यामुपोष्यनिशिजागरात् ॥ रत्नेशसन्निधौदेविममसान्निध्यमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ अस्यलिङ्गस्यपूर्वेणत्वयाजन्मान्तरेप्रिये ॥ दाक्षायणीश्वरंलिङ्गंमद्भक्त्यात्रप्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥ तस्यसंदर्शनादेवननरोयातिदुर्गतिम् ॥ अम्बिकानामगौरीत्वंतत्राहंचाम्बिकेश्वरः ॥ १९ ॥ मूर्तःषडाननस्तत्रतवपुत्रःसुमध्यमे ॥ एतत्रयंनरोदृष्ट्वानगर्भंप्रविशेदुमे ॥ २० ॥ रत्नेश्वरस्यमाहात्म्यंमयातेसमुदीरितम् ॥ गोपनीयंप्रयत्नेनकलिकल्मषचेतसाम् ॥ २१ ॥ इदंरत्नेश्वराख्यानंयःपठिष्यतिसर्वदा ॥ सपुत्रपौत्रपशुभिर्नवियुज्येतकर्हिचित् ॥ २२ ॥ श्रुत्वारत्नेश्वरोत्पत्तिंसेतिहासांनरोत्तमः ॥ अनूढोलभतेसत्यंकन्यारत्नंकुलोचितम् ॥ २३ ॥ कन्यापीमंसमाकर्ण्येतिहासंमनोरम

है ॥ १८ ॥ उसके भलीभांति दर्शनसेही मनुष्य दुर्गति को नहीं जाताहै जहां तुम अम्बिका नाम गौरीहो वहां मैं अम्बिकेश्वरहूं ॥ १९ ॥ हे सुमध्यमे, उमे ! वहां मूर्त्तिमान् तुम्हारा पुत्र षण्मुखहै इन तीनों का दर्शनकर मनुष्य फिर गर्भ में न पैठे ॥ २० ॥ मैंने तुमसे रत्नेश्वरका माहात्म्य भलीभांति कहा जो कि कलियुग में पापचित्तवालों के मध्यमें बहुत यत्नसे गोपनीयहै ॥ २१ ॥ इस रत्नेश्वराख्यान को जो सदा पढ़ेगा वह पुत्र पौत्र और पशुओं से कभी वियोगी न होगा याने उसको ये सब सदैव मिलेंगे ॥ २२ ॥ व विना ब्याहा नरोत्तम इतिहास समेत रत्नेश्वरकी समुत्पत्ति को सुनकर सत्यही कुलोचित कन्यारत्नको पाताहै ॥ २३ ॥ व कन्याभी श्रद्धासे इस मनो-

उँचाईहै और इस मायावीकी देहकी उतनीही चौड़ाई है यहां दोनों हाथ पसारने से चौड़ाई जानना चाहिये ॥ ८ ॥ व जिसकी आंखों में पिलाई व तरलताई धाई है इस से जो आजभी बिजुली से नहीं त्यागा जाताहै वह यह वेग समेत आता है ॥ ९ ॥ यह निश्चयहै कि वह यह दुःसह दानव जिस जिस दिशाके सामने जाताहै वह वह दिशा इसके डरसे समसी होजाती है ॥ १० ॥ व इसने ब्रह्मासे ऐसा वर पायाहै कि मैं काम से निश्शेष जीते हुये स्त्रीजन और पुरुषों से भी अवध्य होजाऊं और इसने त्रिलोक को तृणके समान करदियाहै ॥ ११ ॥ तदनन्तर त्रिशूल अस्त्रधारी ने आते हुये उस दैत्यश्रेष्ठ को अन्यसे अवध्य जानकर उसको त्रिशूल से मारा ॥ १२ ॥ और

स्तनोर्मायाविनोस्यहि ॥ ८ ॥ यन्नेत्रयोःपिङ्गलिमातथातरलिमापुनः ॥ विद्युतानोज्झ्यतेऽद्यापिसोयमायातिसत्वरः ॥ ९ ॥ यांयान्दिशंसमभ्येतिसोयंदुःसहदानवः ॥ सासासमीभवेदस्यसाध्वसादिवदिग्ध्रुवम् ॥ १० ॥ ब्रह्मलब्धवरश्चायंतृणीकृतजगत्रयः ॥ अवध्योहंभवामीतिस्त्रीपुंसैःकामनिर्जितैः ॥ ११ ॥ ततस्त्रिशूलहेतिस्तमायान्तंदैत्यपुङ्गवम् ॥ विज्ञायावध्यमन्येनशूलेनाभिजघानतम् ॥ १२ ॥ प्रोतस्तेनत्रिशूलेनसचदैत्योगजासुरः ॥ छत्रीकृतमिवात्मानंमन्यमानोजगौहरम् ॥ १३ ॥ गजासुरउवाच ॥ त्रिशूलपाणेदेवेशजानेत्वांस्मरहारिणम् ॥ तवहस्तेममवधःश्रेयानेवपुरान्तक ॥ १४ ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामिअवधेहिममेरितम् ॥ सत्यंब्रवीमिनासत्यंमृत्युञ्जयविचारय ॥ १५ ॥ त्वमेकोजगतांवन्द्योविश्वस्योपरिसंस्थितः ॥ अहंत्वदुपरिष्टाच्चस्थितोस्मीतिजितंमया ॥ १६ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मित्वत्रिशूलाग्रसंस्थितः ॥

उस त्रिशूल से बिधा हुवा वह गजासुर दैत्य अपनाको छत्रसा किया मानता हुवा भक्तभयहारी महादेवजी से बोला ॥ १३ ॥ गजासुर बोला कि हे त्रिशूलहस्त, त्रिपुरान्तक, देवेश ! मैं संसारहार तुमको जानताहूं इससे तुम्हारे हाथसे मेरा मरना श्रेष्ठहै ॥ १४ ॥ हे मृत्युंजय ! मैं कुछ विज्ञापना करना चाहताहूं तुम मेरा कहा वचन सुनो मैं सत्य कहताहूं असत्य नहीं कहताहूं तुम विचार कर देखलो ॥ १५ ॥ कि जगत् से वन्दनीय एक तुम विश्व के ऊपर भलीभांति टिके हो परन्तु मैं इस समय तुम्हारे ऊपर टिकाहूं इस भांति मुझसेही जीता गयाहै याने आपकी हार होगई है ॥ १६ ॥ तुम्हारे त्रिशूल के आगे टिकाहुवा मैं धन्यहूं और आपसे दया किया

रम इतिहास को सुनकर अच्छे पतिको प्राप्तहोकर पतिव्रता होवेगी ॥ २४ ॥ स्त्री व पुरुषभी इस इतिहास को सुनकर प्यारेकी विरहाग्नि से कभी नहीं परितप्त होता है ॥ २२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेरत्नेशप्रशंसापूर्वकरत्नावलीतिहासवर्णनन्नामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ❀ ॥

दो० । अरसठयें अध्याय शिव गजासुरहि वर दीन । ताकी त्वचको पट पहिरि कृत्तिवास वपु कीन ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे विप्रेन्द्र ! महापापहारी, अधिक आश्चर्य्यकारी वहां हुये अन्य इतिहास को भी तुम सुनो ॥ १ ॥ इस प्रकार महेश के रत्नेशकी कथा करतेही रक्षाकरो रक्षाकरो ऐसा बड़ा कोलाहल सब ओर से हुवा ॥ २ ॥

म् ॥ श्रद्धयासत्पतिंप्राप्यभविष्यतिपतिव्रता ॥ २४ ॥ इतिहासमिमंश्रुत्वानारीवापुरुषोपिवा ॥ नजातिवष्टवियोगाग्नितापेनपरितप्यते ॥ २२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेरत्नेश्वरप्रशंसनन्नामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

स्कन्दउवाच ॥ अन्यच्चशृणुविप्रेन्द्रवृत्तान्तंतत्रसम्भवम् ॥ महाश्चर्यप्रजननंमहापातकहारिच ॥ १ ॥ इत्थङ्कथांप्रकुर्वाणेरत्नेशस्यमहेश्वरे ॥ कोलाहलोमहानासीत्रातत्रातेतिसर्वतः ॥ २ ॥ महिषासुरपुत्रोसौसमायातिगजासुरः ॥ प्रमथन्प्रमथान्सर्वान्निजवीर्यमदोद्धतः ॥ ३ ॥ यत्रयत्रधरायांसचरणंप्रमिणोतिहि ॥ अचलोच्चलयाञ्चक्रेतत्रतत्रास्यभारतः ॥ ४ ॥ ऊरुवेगेनतरवःपतन्तिशिखरैःसह ॥ यस्यदोर्दण्डघातेनचूर्णाःस्युश्चशिलोच्चयाः ॥ ५ ॥ यस्यमौलिजसङ्घर्षाद्घनाव्योमत्यजन्त्यपि ॥ नीलिमानंनचाद्यापिजह्युस्तत्केशसङ्गजम् ॥ ६ ॥ यस्यनिःश्वाससंभारैरुत्तरङ्गामहाब्धयः ॥ नद्योप्यमन्दकल्लोलाभवन्तितिमिभिःसह ॥ ७ ॥ योजनानांसहस्राणिनवयस्यसमुच्छ्रयः ॥ तावानेवहिविस्तार

व सब गणों को मथता हुवा अपने वीर्य्य के मदसे उन्नत यह महिषासुर का पुत्र गजासुर भलीभांति आताहै ॥ ३ ॥ वह जहां जहां भूमि में पग धरताहै वहां वहां इस के भारसे अचलाभी पृथिवी डगमग डगमग डोलती है ॥ ४ ॥ व जिसकी ऊरुओं के वेग से वृक्ष गिरते हैं व बाहुदण्डके घातसे शिखरों के साथ पर्वत चूर्ण होजाते हैं ॥ ५ ॥ व जिसके बाल घिसनेसे बादर भी आकाश को त्याग देते हैं और उसके बालों के संगसे उपजीहुई श्यामताको आजभी नहीं तजते हैं ॥ ६ ॥ व जिसके निःश्वास समूह से समुद्र ऊंची लहरोंवाले हैं व नदियां भी मछलियों आदि जलचरों के साथ बहुत भारी लहरोंवाली होती हैं ॥ ७ ॥ व छत्तिसहजार कोसकी जिसके अंगकी

गयाहूं किन्तु काल से सबका मरनाहै परन्तु ऐसी मृत्यु कल्याण के लिये होती है ॥ १७ ॥ हे घटोद्भव ! ऐसा उसका वचन सुनकर बिहँसते हुये कृपानिधान देवों के देव शङ्करजीने गजासुर से कहा ॥ १८ ॥ श्रीपरमेश्वर बोले कि हे बड़े पौरुषके पात्र, सुबुद्धे, गजासुर, दैत्य ! मैं प्रसन्नहूं तुम अपने अनुकूल वरको कहो ॥ १९ ॥ ऐसा सुनकर वह दैत्येन्द्र महेशजी के प्रति कहनेलगा, गजासुर बोला कि, हे दिगम्बर ! तुम जो प्रसन्नहो तो नित्यही मेरा चर्म्म पहरो ॥ २० ॥ हे विरूपाक्ष ! जोकि यह मेरा चर्म्म तुम्हारे त्रिशूलरूप अग्नि से पवित्र किया गयाहै व अपने बराबर है व सुखस्पर्शवाला है व संग्रामांगण में पण याने ग्लहभाव से दियागया है ॥ २१ ॥ और यह

कालेनसर्वैर्मर्तव्यंश्रेयसेमृत्युरीदृशः ॥ १७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादेवदेवःकृपानिधिः ॥ प्रोवाचप्रहसञ्छम्भुर्घटोद्भवगजासुरम् ॥ १८ ॥ ईश्वरउवाच ॥ गजासुरप्रसन्नोस्मिमहापौरुषशेवधे ॥ स्वानुकूलंवरंब्रूहिददामिसुमतेऽसुर ॥ १९ ॥ इत्याकर्ण्यसदैत्येन्द्रःप्रत्युवाचमहेश्वरम् ॥ गजासुरउवाच ॥ यदिप्रसन्नोदिग्वासस्तदानित्यंवसानमे ॥ २० ॥ इमां कृत्तिंविरूपाक्षत्वत्रिशूलाग्निपाविताम् ॥ स्वप्रमाणांसुखस्पर्शांरणाङ्गणपणीकृताम् ॥ २१ ॥ इष्टगन्धिःसदैवास्तु सदैवास्त्वतिकोमला ॥ सदैवनिर्मलाचास्तुसदैवास्त्वतिमण्डनम् ॥ २२ ॥ महातपोऽनलज्वालांप्राप्यापिसुचिरंविभो ॥ नदग्धाकृत्तिरेषामेपुण्यगन्धनिधिस्ततः ॥ २३ ॥ यदिपुण्यवतीनैषाममकृत्तिर्दिगम्बर ॥ तदात्वदङ्गसङ्गोस्याः कथंजातोरणाङ्गणे ॥ २४ ॥ अन्यञ्चमेवरन्देहियदितुष्टोसिशङ्कर ॥ नामास्तुकृत्तिवासास्तेप्रारभ्याद्यतनन्दिनम् ॥ २५ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वातथेत्युक्त्वाचशङ्करः ॥ पुनःप्रोवाचतन्दैत्यंभक्तिनिर्मलमानसम् ॥ २६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुपुण्य

सदैव वाञ्छित सुगन्धवाला होवे व सदैव बहुत कोमल होवे व सदैव निर्मल होवे व सदैव अतिशय भूषण होवे ॥ २२ ॥ हे विभो ! जिससे यह मेरा चर्म्म महातप रूप अग्निज्वालाको प्राप्तहोकर नहीं जलाहै उससे पुण्य और सुगन्धका निधानहै ॥ २३ ॥ हे दिगम्बर ! जो यह मेरा चर्म्म पुण्यवान् न होता तो संग्रामांगण में इसका तुम्हारे अंगोंका संग कैसे हुवाहै ॥ २४ ॥ हे शङ्कर ! जो प्रसन्नहो तो अन्य वर दो कि आज का दिन लगाकर तुम्हारा कृत्तिवास नाम होवे ॥ २५ ॥ ऐसा उसका वचन सुनकर व वैसेहीहो इसभांति कहकर शङ्करजी निर्मल अन्तःकरणवाले उस दैत्यसे फिर बोले ॥ २६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे काशीनामक महाक्षेत्र में देहछोड़नेवाले, बड़ीपुण्य

के निधान, दैत्य! तुम अन्यभी बहुत दुर्लभ वरको सुनो ॥ २७ ॥ कि इस मुक्तिसाधन क्षेत्रमें यह तुम्हारा शरीर सबका मुक्तिदायक मेरा लिंग होजावे ॥ २८ ॥ जोकि यह कृत्तिवासेश्वर नामक व महापापनाशक व सब लिंगों के बीच शिरोभूत और श्रेष्ठहो ॥ २९ ॥ व काशीमें जितने बड़े पूजनीय लिंग हैं उनके मध्यमें यह उत्तम लिंग शिरके समान उत्तमहो ॥ ३० ॥ और इसमें पार्वती गणेशादि सहित मैं मनुष्यों के हितके लिये टिकूंगा व इस लिंगके देखे पूजे और स्तुति कियेहुये से मनुष्य कृतकृत्य होजावे व फिर संसार में न पैठे याने न आवे ॥ ३१ ॥ जे रुद्र, पाशुपत, सिद्ध, ऋषि, तत्त्वचिन्तक, शान्त, दांत, जितक्रोध, शीतोष्णादिद्वन्द्वसे हीन, निष्परि-

निधेदैत्यवरमन्यंसुदुर्लभम् ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेरणत्यक्तकलेवर ॥ २७॥ इदंपुण्यशरीरन्तेक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिसाधने ॥ ममलिङ्गंभवत्वत्रसर्वेषांमुक्तिदायकम् ॥ २८ ॥ कृत्तिवासेश्वरंनाममहापातकनाशनम् ॥ सर्वेषामेवलिङ्गानांशिरोभूतमिदंवरम् ॥ २९ ॥ यावन्तिसन्तिलिङ्गानिवाराणस्यांमहान्त्यपि ॥ उत्तमंतावतामेतद्धुत्तमाङ्गवदुत्तमम् ॥ ३० ॥ मानवानांहितायात्रस्थास्येहंसपरिग्रहः ॥ दृष्टेनानेनलिङ्गेनपूजितेनस्तुतेनच ॥ कृतकृत्योभवेन्मर्त्यःसंसारंनविशेत्पुनः ॥ ३१ ॥ रुद्राःपाशुपताःसिद्धाऋषयस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ शान्तादान्ताजितक्रोधानिर्द्वन्द्वानिष्परिग्रहाः ॥ ३२ ॥ अविमुक्तेस्थितायेतुममभक्तामुमुक्षवः ॥ मानापमानयोस्तुल्याःसमलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ३३ ॥ कृत्तिवासेश्वरेलिङ्गेस्थास्येहन्तदनुग्रहे ॥ दशकोटिसहस्राणितीर्थानिप्रतिवासरम् ॥ ३४ ॥ त्रिकालमागमिष्यन्तिकृत्तिवासेनसंशयः ॥ कलिद्वापरसंभूतानराःकल्मषबुद्धयः ॥ ३५ ॥ सदाचारविनिर्मुक्ताःसत्यशौचपराङ्मुखाः ॥ माययादम्भलोभाभ्यांमोहाहंकृतिसंयुताः ॥ ३६॥

ग्रह (देहका निर्वाह छोड़कर अन्य वस्तु न ग्रहण करनेवाले) ॥ ३२ ॥ व जे मेरे भक्त, मुक्तिचाही, मान और अपमान को बराबर मानतेहुये व जे ढेला और सोने को समान समझनेवाले काशी मे टिके हैं ॥ ३३ ॥ उनकी दयाकेलिये मैं कृत्तिवासेश्वर लिंगमें टिकूंगा व दशकरोड़ हज़ार तीर्थ प्रतिदिन ॥ ३४ ॥ त्रिकाल कृत्तिवासेश्वर को आवेंगे इस में संशय नहीं है व कलियुग और द्वापर में उपजेहुये पापबुद्धिवाले मनुष्य ॥ ३५ ॥ जोकि सदाचार को छोड़ेहुये व सत्य शौचादि से विमुख व पाखण्ड

छल लोभ मोह और अहङ्कारसे संयुत ॥ ३६ ॥ शूद्रान्न के सेवी, लोलुप बहुतही लालसावाले सन्ध्यास्नान जप और पूजासे मन व बुद्धिको बहुतही दूरकियेहुये ब्राह्मणादि हैं ॥ ३७ ॥ वे सब कृत्तिवासेश्वर को प्राप्तहोकर सबपापोंसे हीनहो सुखसे वैसे मोक्षको प्राप्तहोवेंगे कि जैसे पुण्यवान् सुकर्मी लोग मुक्त होते हैं ॥ ३८ ॥ इस कारण काशी में कृत्तिवासेश्वर लिंग मनुष्योंसे सेवनेयोग्य है क्योंकि अन्यत्र हजारों जन्मान्तरों में भी मोक्ष बहुतदुर्लभहै ॥ ३९ ॥ और कृत्तिवासेश्वर लिंगमें एकही जन्मसे मिलने योग्य होताहै व पूर्वजन्मों का पाप तप जप और दानादिकों से धीरे धीरे नशताहै परन्तु कृत्तिवासेश्वर के दर्शन से शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥ व जे मनुष्य कृ-

शूद्रान्नसेविनोविप्राजिह्वालाअतिलालसाः ॥ सन्ध्यास्नानजपेज्यासुदूरीकृतमनोधियः ॥ ३७ ॥ कृत्तिवासेश्वरंप्राप्य सर्वपापविवर्जिताः ॥ सुखेनमोक्षमेष्यन्तियथासुकृतिनस्तथा ॥ ३८ ॥ कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंसेव्यङ्काश्यान्ततोनरैः ॥ जन्मान्तरसहस्रेषुमोक्षोन्यत्रसुदुर्लभः ॥ ३९ ॥ कृत्तिवासेश्वरेलिङ्गेलभ्यस्त्वेकेनजन्मना ॥ पूर्वजन्मकृतंपापंतपोदानादिभिःशनैः ॥ नश्येत्सद्योविनश्येतकृत्तिवासेश्वरेक्षणात् ॥ ४० ॥ कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंयेर्चयिष्यन्तिमानवाः ॥ प्रविष्टास्तेशरीरेमेतेषांनास्तिपुनर्भवः ॥ ४१ ॥ अविमुक्तेऽत्रवस्तव्यंजप्तव्यंशतरुद्रियम् ॥ कृत्तिवासेश्वरोदेवोद्रष्टव्यश्चपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ सप्तकोटिमहारुद्रैःसुजप्तैर्यत्फलम्भवेत् ॥ तत्फलंलभ्यतेकाश्यांपूजनात्कृत्तिवाससः ॥ ४३ ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यामुपोष्यनिशिजागृयात् ॥ कृत्तिवासेशमभ्यर्च्ययःसयायात्पराङ्गतिम् ॥ ४४ ॥ शुक्लायांपञ्चदश्यांयश्चैत्र्याङ्कर्तामहोत्सवम् ॥ कृत्तिवासेश्वरेलिङ्गेनसगर्भंप्रवेक्ष्यते ॥ ४५ ॥ कथयित्वेतिदेवेशस्तत्कृत्तिम्परिगृह्यच ॥ गजासुरस्यमहतीं

त्तिवासेश्वर लिंगको पूजेंगे वे मेरे शरीर में पैठे हुये होवेंगे और फिर उनका जन्म न होवेगा ॥ ४१ ॥ इस काशी में बसना चाहिये व शतरुद्रिय सूक्त जपना चाहिये व कृत्तिवासेश्वर देवके बारबार दर्शन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ व सात करोड़ महारुद्रोंके भलीभांति जपनेसे जो फल होवे वह फल काशी में कृत्तिवास की पूजासे मिलताहै ॥ ४३ ॥ व जोकि माघबदी चतुर्दशी को उपासकर कृत्तिवासेश्वरकी भलीभांति पूजाकर रातमें जागे वह उत्तम मोक्षको प्राप्तहोवे ॥ ४४ ॥ व जो चैतसुदी पूर्णिमा में कृत्तिवासेश्वर लिंगके समीप महोत्सव करेगा वह गर्भमें न पैठेगा ॥ ४५ ॥ इसभांति कहकर व उस गजासुर का बड़ाचर्म्म लेकर दिगम्बर देवने देहमें ओढ़

लिया ॥ ४६ ॥ हे कुम्भज ! जिसदिन दिगम्बर कृत्तिवासत्त्व को प्राप्तभये उसदिन महामहोत्सव हुवा ॥ ४७ ॥ और जहां भूतलमें त्रिशूल गाडकर उसके ऊपर विधाहुवा दैत्य छत्रसा कियागया वहां उस त्रिशूल के उखाड़लेने से बडाभारी कुण्ड होगया ॥ ४८ ॥ उस कुण्डमें स्नानकर व कृत्तिवासेश्वर के दर्शनकर और पितरों का तर्पण कर मनुष्य कृतकृत्य होवे और बहुतोंका नायकहोवे ॥ ४९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्ते ! उस तीर्थका जो वृत्तान्तहै उसको तुम सुनो कि उसतीर्थ के प्रभाव से कौवाभी हंसभाव को प्राप्तहोगये ॥ ५० ॥ पूर्वकाल में एक समय चैतकी पूर्णमासी में कृत्तिवासेश्वर की महायात्राहुई थी वहां पूजोपहार से हुवा अन्नराशि कियागया

प्राप्तेणोद्धरिदम्बरः ॥ ४६ ॥ महामहोत्सवोजातस्तस्मिन्नहनिकुम्भज ॥ कृत्तिवासत्वमापेदेयस्मिन्देवोदिगम्बरः ॥ ४७ ॥ यत्रच्छत्रीकृतोदैत्यःशूलमारोप्यभूतले ॥ तच्छूलोत्पाटनाज्जातंतत्रकुण्डंमहत्तरम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्कुण्डेनरःस्नात्वाकृत्वाचपितृतर्पणम् ॥ कृत्तिवासेश्वरंदृष्ट्वाकृतकृत्योनरोभवेत् ॥ ४९ ॥ स्कन्द उवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थेतुयद्वृत्तन्तदगस्तेनिशामय ॥ काकाहंसत्वमापन्नास्तत्तीर्थस्यप्रभावतः ॥ ५० ॥ एकदाकृत्तिवासेतुचैत्र्यांयात्राऽभवत्पुरा ॥ अन्नंराशीकृतंतत्रह्युपहारसमुद्भवम् ॥ ५१ ॥ बहुदेवलकैर्विप्रतंदृष्ट्वापक्षिणोमिलन् ॥ परस्परंतदन्नार्थंयुध्यन्तोऽन्योमवर्त्मनि ॥ ५२ ॥ बलिपुष्टैरपुष्टाङ्गारटन्तःकरटाःकटु ॥ बलिभिश्चातिपुष्टाङ्गैरबलाश्चञ्चुभिर्हताः ॥ ५३ ॥ तेहन्यमानान्यपतंस्तस्मिन्कुण्डेनभोङ्गणात् ॥ आयुःशेषेणसन्त्राताहंसीभूतास्तुवायसाः ॥ ५४ ॥ आश्चर्यवन्तस्तत्रत्यायात्रायांमिलिताजनाः ॥ ऊचुरंगुलिनिर्देशैरहोपश्यतपश्यत ॥ ५५ ॥ अस्मासुवीक्षमाणेषुकाकाःकुण्डेत्रयेपतन् ॥ धार्तराष्ट्रास्तु

था ॥ ५१ ॥ हे विप्र ! बहुते देवपूजक पण्डों ने जो अन्नराशि बटोराथा उसको देखकर उस अन्नके अर्थ आकाश मार्ग में परस्पर लड़ते हुये पक्षी बटुरकर एकत्र संमिलित हुये ॥ ५२ ॥ और बहुत पुष्ट अंगवाले बलवान् कागोंने कटुशब्द करतेहुये निबल कागो को चोंचों से मारा ॥ ५३ ॥ व उनसे मारेहुये वे आकाश आंगन से उसकुण्डमें गिरपड़े परन्तु आयुशेषसे बचायेहुये वे काग हंसहोगये ॥ ५४ ॥ तब वहांके यात्रा में मिलित याने इकट्ठेहुये जन आश्चर्यवान् होकर अँगुलियों का निर्देशकर याने उन कागों कीओर अँगुली उठाकर कहनेलगे कि अहो लोगो ! यह आश्चर्य है देखोदेखो ॥ ५५ ॥ कि हमारे देखतेही जे काग इसकुण्डमे गिरे वे इसतीर्थके प्रभावसे श्यामरंग

चोंच और पांवोंवाले हंसहोगये ॥ ५६ ॥ हे अगस्त्य! तबसे लगाकर कृत्तिवासेश्वर के समीप वह कुण्ड हंसतीर्थ नामसे भूलोक में कहागया याने प्रसिद्धभया ॥ ५७ ॥ महामलिन कर्मोंसे बहुतही मलिन मनवाले मनुष्यादि जन हंसतीर्थ में स्नानादि जलक्रिया करनेवाले होकर क्षणभरमें निर्मलताको प्राप्तहोतेहैं ॥ ५८ ॥ इससे काशी में सदैव बसना चाहिये हंसतीर्थ में नहाना चाहिये कृत्तिवासेश्वर के दर्शन करना चाहिये और परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होना चाहिये ॥ ५९ ॥ हे मुने ! काशी में पगपग पर अनेक लिंगहैं परन्तु कृत्तिवासेश्वर लिंग सब लिंगों का शिर कहागया है ॥ ६० ॥ इस लिये काशी में कृत्तिवासेश्वर की भलीभांति पूजाकर सब लिंगोंकी

तेजातास्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ५६ ॥ हंसतीर्थन्तदारभ्यकृत्तिवाससमीपतः ॥ नाम्नाख्यातमभूल्लोकेतत्कुण्डंकलशोद्भव ॥ ५७ ॥ अतीवमलिनात्मानोमहामलिनकर्मभिः ॥ क्षणान्निर्मलतांयान्तिहंसतीर्थकृतोदकाः ॥ ५८ ॥ काश्यां सदैववस्तव्यंस्नातव्यंहंसतीर्थके ॥ द्रष्टव्यःकृत्तिवासेशःप्राप्तव्यंपरमंपदम् ॥ ५९ ॥ काश्यांलिङ्गान्यनेकानिमुनेसन्ति पदेपदे ॥ कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंसर्वलिङ्गशिरःस्मृतम् ॥ ६० ॥ कृत्तिवासंसमाराध्यभक्तियुक्तेनचेतसा ॥ सर्वलिङ्गाराधनजं फलंकाश्यामवाप्यते ॥ ६१ ॥ जपोदानंतपोहोमस्तर्पणन्देवतार्चनम् ॥ समीपेकृत्तिवासस्यकृतंसर्वमनन्तकम् ॥ ६२ ॥ तीर्थन्त्वनादिसंसिद्धमेतत्कलशसम्भव ॥ पुनर्देवस्यसान्निध्यादाविरासीन्महेशितुः ॥ ६३ ॥ एतानिसिद्धलिङ्गानिछन्नानिस्युर्युगेयुगे ॥ अवाप्यशम्भुसान्निध्यंपुनराविर्भवन्तिहि ॥ ६४ ॥ हंसतीर्थस्यपरितोलिङ्गानामयुतंमुने ॥ प्रतिष्ठितं मुनिवरैरत्रास्तिद्विशतोत्तरम् ॥ ६५ ॥ एकैकंसिद्धिदंनृणामविमुक्तनिवासिनाम् ॥ लिङ्गंकात्यायनेशादिच्यवनेशान्त

पूजासे हुवाफल मिलता है ॥ ६१ ॥ जप तप दान होम तर्पण देवपूजा आदि अन्य सुकर्म भी कृत्तिवासेश्वरके समीप में कियाहुवा अनन्त फलवाला होता है ॥ ६२ ॥ हे कलशसभव ! अनादिकाल से संसिद्ध वह तीर्थ महेश देवकी समीपतासे फिर प्रकट होगया ॥ ६३ और ये युग युगमें छिपेहुये सिद्धलिंग शंभुकी समीपता पाकर फिर प्रकटहोजातेहैं ॥ ६४ ॥ हे मुने ! यहां हंस तीर्थ के सब ओरमे मुनिवरों से प्रतिष्ठित दोसौ ऊपर दशहजार लिंगहैं ॥ ६५ ॥ और कात्यायनेश्वरादि व च्यवनेश्वर अंतवाले

सबलिंगों में से एकएक भी लिंगकाशीवासी मनुष्यों को सब सिद्धिदायकहै ॥ ६६ ॥ कृत्तिवासेश्वरसे पश्चिममें लोमश ऋषिका थापा जो लोमशेश्वर महा लिंगहै उसके दर्शनकर कालसे डर कहाहै ॥ ६७ ॥ व कृत्तिवाससे उत्तरमें बडापूजनीय मालतीश्वर लिंगहै उस लिंग की पूजाकर हाथियों का पति राजाहोवै ॥ ६८ ॥ व उससे ईशानकोणमें टिका हुवा अन्तकेश्वर लिंगहै उसके देखने से महापापी भी निष्पाप होजाता है ॥ ६९ ॥ व उसके पासमें बहुत उत्तम ज्ञानदायक जनकेश्वर महालिंग है उस लिंग की पूजासे ब्रह्मज्ञान मिलता है ॥ ७० ॥ उससे उत्तरमें बड़ी मूर्त्तिवाले असित भैरव है उसके दर्शन से मनुष्यों को यमराजका दर्शन न होवे ॥ ७१ ॥ और

मेवहि ॥ ६६ ॥ लोमशेशंमहालिङ्गंलोमशेनप्रतिष्ठितम् ॥ कृत्तिवासःप्रतीच्यान्तुतद्दृष्ट्वाक्कान्तकाद्भयम्॥६७॥ मालतीशंशुभंलिङ्गंकृत्तिवासोत्तरेमहत् ॥ सपर्ययित्वातल्लिङ्गंराजागजपतिर्भवेत् ॥ ६८ ॥ अन्तकेश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गंतद्रुद्रदिक्स्थितम् ॥ अतिपापोपिनिष्पापोजायतेतद्विलोकनात् ॥ ६९ ॥ जनकेशंमहालिङ्गंतत्पार्श्वेज्ञानदंपरम् ॥ तल्लिङ्गवरिवस्यातोब्रह्मज्ञानमवाप्यते ॥ ७० ॥ तदुत्तरेमहामूर्तिरसिताङ्गोस्तिभैरवः ॥ तस्यदर्शनतःपुंसांनभवेद्यमदर्शनम् ॥ ७१ ॥ शुष्कोदरीचतत्रास्तिदेवीविकटलोचना ॥ कृत्तिवासादुदीच्यान्तुकाशीप्रत्यूहभक्षिणी ॥ ७२ ॥ अग्निजिह्वोस्तिवेतालस्तस्यादेव्यास्तुनैर्ऋते ॥ ददातिवाञ्छितांसिद्धिंसोर्चितोभौमवासरे ॥ ७३ ॥ वेतालकुण्डंतत्रास्तिसर्वव्याधिविघातकृत् ॥ तत्कुण्डोदकसंस्पर्शाद्व्रणविस्फोटरुग्व्रजेत् ॥ ७४ ॥ वेतालकुण्डेसुस्नातावेतालंप्रणिपत्यच ॥ लभेतवाञ्छितांसिद्धिन्दुर्लभांसर्वदेहिभिः ॥ ७५ ॥ गणोस्तितत्रद्विभुजश्चतुष्पात्पञ्चशीर्षकः ॥ तस्यसंवीक्षणादेवपापंयातिसहस्रधा ॥ ७६ ॥

वहां कृत्तिवासेश्वर से उत्तरमें काशिका की विघ्न विनाशिका विकटलोचना शुष्कोदरी देवी है ॥ ७२ ॥ व उसदेवी से नैर्ऋत्यमें अग्निजिह्व वेताल है मंगलबारमें पूजा हुआ वह वांछित सिद्धि को देता है ॥ ७३ ॥ और वहां सबरोग बिनाशक वेताल कुण्ड है उस कुण्डका जल छूने से व्रण व बिस्फोटक रोग चलाजावे ॥ ७४ ॥ व वेताल कुण्ड में भलीभांति नहाया हुआ जन वेताल के प्रणाम कर सब देहियों से दुर्लभ वांछित सिद्धिको पावे ॥ ७५ ॥ व वहां दो भुजा पांच मूंड़ और चारपांवोंवाला

गए है उसके दर्शन सेही हजारभांतिसे पाप भागजाताहै ॥ ७६ ॥ हे मुने ! उसगणसे उत्तरमें भीषण रुद्रहैं जिसके चारवे दश्रृंग तीनकाल पांव व प्रायणीय और उदयनीय दो मूंड़ और सात छंद हाथ हैं ॥७७॥हे कुम्भज अगस्त्य जी ! वह वृषाकार धर्मरूप मन्त्रोक्त यज्ञरूप परमेश्वर तीन प्रकारसे बँधेहुये होकर याने ऋग्वेदसे प्रशंसित यजुर्वेद से पूजितव सामवेदसे स्तुत अर्थात् मन्त्र ब्राह्मण और कल्पसे बँधेहुये होकर बहुत शब्दकरतेहैं और जो काशीके विघ्नकर्ता हैं व जे काशी में पापबुद्धिवाले हैं ॥ ७८ ॥ उनको छेदन करने को मैं कुठारधारी हूं व जे काशी के विघ्नहर्ता और काशी में धर्मकर्ता सुबुद्धिवाले हैं ॥ ७९ ॥ उनके वंशका परिपोष करनेवाला मैं हाथ में

तदुत्तरेमुनेरुद्रश्चतुःशृङ्गोस्तिभीषणः ॥ त्रिपादस्तुद्विशीर्षाचहस्ताःस्युःसप्तएवहि ॥ ७७ ॥ रोरूयतेवृषाकारस्त्रिधाबद्धः सकुम्भज ॥ काशीविघ्नकरायेचयेकाश्याम्पापबुद्धयः ॥ ७८ ॥ तेषाञ्चसंछिदाङ्कर्तुमहंधृतकुठारकः ॥ येकाश्यांविघ्नहर्तारोयेकाश्यांधर्मबुद्धयः ॥ ७९ ॥ सुधाघटकरश्चाहन्तद्वंशपरिषेककृत् ॥ तंदृष्ट्वावृषरुद्रंवैपूजयित्वातुभक्तितः ॥ ८० ॥ महामहोपचारैश्चनविघ्नैरभिभूयते ॥ मणिप्रदीपोनागोऽस्तितस्माद्रुद्रादुदग्दिशि ॥ ८१ ॥ मणिकुण्डंतदग्रेतुविषव्याधिहरंपरम् ॥ तस्मिन्कुण्डेकृतस्नानस्तंनागंपरिवीक्ष्यच ॥ ८२ ॥ मणिमाणिक्यसम्पूर्णगजाश्वरथसंकुलम् ॥ स्त्रीरत्नपुत्ररत्नैश्चसमृद्धंराज्यमाप्नुयात् ॥ ८३ ॥ कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंकाश्यांयैर्नविलोकितम् ॥ तेमर्त्यलोकेभारायभुवोभूतानसंशयः ॥ ८४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कृत्तिवासःसमुत्पत्तिंयेश्रोष्यन्तीहमानवाः ॥ तल्लिङ्गदर्शनाच्छ्रेयोलप्स्यन्ते

अमृत से पूर्ण कलश लियेहुये वर्तमान हूं उस वृषरुद्र रूपके दर्शनकर व भक्ति से पूजाकर ॥ ८० ॥ और बड़े बड़े उपचारों से पूजाकर विघ्नों से तिरस्कृत नहीं होताहै ॥ ८१ ॥ उसके आगे विषरोग हरनेवाला उत्तम मणि कुण्ड है उस कुण्ड में स्नान किये हुआ जन उस नाग के दर्शन कर ॥ ८२ ॥ मणिमाणिक्य, सम्पूर्ण हाथी घोड़े और रथों से संयुत व स्त्री रत्न और पुत्र रत्नों से समृद्ध राज्य को प्राप्त होवे ॥ ८३ ॥ जिनसे काशी में कृत्तिवासेश्वर लिंग न देखागया वे मनुष्य लोकमें भूमि के भारा भये हैं इस में संशय नहीं है ॥ ८४ ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि जे मनुष्य यहां कृत्तिवासेश्वर की समुत्पत्ति को सुनेंगे वे उस लिंगके दर्शन से कल्याण पावेंगे इसमें संशय

नहीं है ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकृत्तिवासेश्वरसमुद्भवेनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ उनहत्तर अध्यायमें गर्भवासहर्तार । अरसठ क्षेत्रोंका कथित यहां समागमसार ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, हे तपोराशे अगस्त्य जी ! काशी में सेयेहुये जे लिंग भावनायुक्त मनवाले मनुष्यों की मुक्ति के लिये होवें उनको तुम सुनो ॥ १ ॥ श्रीमहादेव जी ने लीला से जहां गजासुरके चर्मका पहिरन किया वह सब सिद्धिदायक स्थान रुद्रवास ऐसा कहागया है ॥ २ ॥ वहां श्रीपार्वती जी के साथ अपनी इच्छासे शिव जीके टिकतेही नन्दीश्वरने आकर प्रणाम पूर्वक विज्ञापना किया ॥ ३ ॥ कि

नात्रसंशयः ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेकृत्तिवासःसमुद्भवोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृण्वगस्त्यतपोराशेकाश्यांलिङ्गानियानिवै ॥ सेवितानिनृणांमुक्त्यैभवेयुर्भावितात्मनाम् ॥ १ ॥ कृत्तिप्रावरणंयत्रकृतन्देवेनलीलया ॥ रुद्रावासइतिख्यातंतत्स्थानंसर्वसिद्धिदम् ॥ २ ॥ स्थितेतत्रोमयासार्धंस्वेच्छया कृत्तिवाससि ॥ आगत्यनन्दीविज्ञप्तिञ्चक्रेप्रणतिपूर्वकम् ॥ ३ ॥ देवदेवेशविश्वेशप्रासादाःसुमनोहराः ॥ सर्वरत्नमयारम्याःसाष्टाषष्टिरभूदिह ॥ ४ ॥ भूर्भुवःस्वस्तलेयानिशुभान्यायतनानिहि ॥ मुक्तिदान्यर्पितानीहमयानीतानिसर्वतः ॥ ५ ॥ यतोयच्चसमानीतंयत्रयच्चकृतास्पदम् ॥ कथयिष्याम्यहंनाथक्षणन्तदवधार्यताम् ॥ ६ ॥ स्थाणुर्नाममहालिङ्गंदेवदेवस्य मोक्षदम् ॥ कुरुक्षेत्रादिहोद्भूतंकलाशेषोस्तितत्रवै ॥ ७ ॥ तदग्रेसन्निहत्याख्यामहापुष्करिणीशुभा ॥ लोलार्कपश्चिमेभागेकुरुक्षेत्रस्थलीतुसा ॥ ८ ॥ तत्रस्नातंहुतंजप्तंतप्तंदत्तंशुभार्थिभिः ॥ कुरुक्षेत्राद्भवेत्सत्यंकोटिकोटिगुणाधिकम् ॥ ९ ॥

हे देवदेवेश ! विश्वेश ! यहां सब रत्नमय सुमनोहर रमणीक अरसठ प्रासाद (देवमंदिर) बनकर तैयारहुये हैं ॥ ४ ॥ भूमिलोक भुवर्लोक और स्वर्गतल में मुक्तिदायक जे शुभ स्थान हैं उनको मैं सबसे यहां लायाहूं ॥ ५ ॥ हे नाथ ! जहां से जो लायागयाहै व जहां जे स्थापन किये हैं उनको मैं कहूंगा आप क्षणभर सुनलो ॥ ६ ॥ कि मोक्षदायक देव देव का स्थाणु नाम महालिंग कुरुक्षेत्रसे यह उत्पन्न हुआ है वहां कलामात्र शेष है ॥ ७ ॥ उसके आगे सन्निहती नाम शुभ महापुष्करिणी है वह लोलार्क से पश्चिम भागमे कुरुक्षेत्रस्थली है ॥ ८ ॥ वहां शुभ चाहियोंसे नहाया होमा जपा तपा और दिया हुआ कुरुक्षेत्र से करोड़गुना अधिक होवे यह सत्य है ॥ ९ ॥

हे विभो ! ब्रह्मावर्त नामक कूप समेत देवदेवजी वहां कलामात्र को थापकर यहां काशी में प्रकट हुये हैं ॥ १० ॥ ढुंढिराज से उत्तरभाग में साधकजन का सिद्धि दाता देवदेव नामक लिंग है उसके आगे उत्तम कूप है ॥ ११ ॥ ब्रह्मावर्त ऐसे कहागया है जोकि मनुष्यों की पुनरावृत्ति याने संसार में फिर लौटआनेको हरनेवाला है उस कूप के जलसे स्नान किये हुआ देवदेव की भलीभांति पूजाकर ॥ १२ ॥ जो जन वर्तता है उसका पुण्य नैमिषारण्य से कोटिगुना कहागया है व यहां गोकर्णस्थान से आपही प्रकट हुआ है जोकि बड़ा पूजनीय ॥ १३ ॥ लिंग महाबलनामक सांबादित्य के समीप में है जिसके दर्शन व स्पर्शन से क्षणभर में बड़ा बलवान् पाप ॥ १४ ॥

नैमिषाद्देवदेवोत्रब्रह्मावर्तेनसंयुतः ॥ तत्रांशमात्रंसंस्थाप्यकाश्यामाविरभूद्विभो ॥ १० ॥ ढुण्ढिराजोत्तरेभागेसिद्धिदं साधकस्यवै ॥ लिङ्गंवैदेवदेवाख्यंतदग्रेकूपउत्तमः ॥ ११ ॥ ब्रह्मावर्तइतिख्यातःपुनरावृत्तिहन्नृणाम् ॥ तत्कूपाद्भिःकृत स्नानोदेवदेवंसमर्च्यच ॥ १२ ॥ तत्पुण्यंनैमिषारण्यात्कोटिकोटिगुणंस्मृतम् ॥ गोकर्णायतनादत्रस्वयमाविरभून्म हत् ॥ १३ ॥ लिङ्गंमहाबलंनामसाम्बादित्यसमीपतः ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्यस्यक्षणादेनोमहाबलम् ॥ १४ ॥ वाताहत स्तूलराशिरिवविद्रातिदूरतः ॥ कपालमोचनपुरोदृष्ट्वालिङ्गंमहाबलम् ॥ १५ ॥ महाबलमवाप्नोतिनिर्वाणनगरंव्रजेत् ॥ ऋणमोचनतःप्राच्यांप्रभासात्क्षेत्रसत्तमात् ॥ १६ ॥ शशिभूषणसञ्ज्ञन्तुलिङ्गमत्रप्रतिष्ठितम् ॥ तल्लिङ्गसेवनान्मर्त्यःश शिभूषणतांव्रजेत् ॥ १७ ॥ प्रभासक्षेत्रयात्रायाःपुण्यंप्राप्नोतिकोटिकृत् ॥ उज्जयिन्यामहाकालःस्वयमत्रागतोविभुः ॥ १८ ॥ यन्नामस्मरणादेवनभयंकलिकालतः ॥ प्रणवाख्यान्महालिङ्गात्प्राच्यांकल्मषनाशनम् ॥ १९ ॥ महाकालाभि

वायु की मारी रूईकी राशि की नाईं दूर भागजाता है उस महाबल लिंगको कपालमोचन के आगे देखकर ॥ १५ ॥ बड़े बलको पावे और कैवल्यस्थान को जावे व ऋणमोचन से पूर्व में क्षेत्रसत्तम प्रभास से ॥ १६ ॥ शशिभूषणसंज्ञक लिंग यहां प्रतिष्ठित हुआ है उस लिंगकी सेवा से मनुष्य चन्द्रभूषण के भावको प्राप्त होवे ॥ १७ ॥ और प्रभासक्षेत्रकी यात्रा से कोटिगुना अधिक पुण्य को प्राप्त होता है व महाकाल प्रभु आपही उज्जयिनी से यहां आगये हैं ॥ १८ ॥ जिनका नाम सुमिरतेही

कलिकाल से डर नहीं है प्रणवनामक याने ॐकारेश्वर महालिंग से पूर्व में पापविनाशी ॥ १९ ॥ काशी में महाकालनामक लिंग दर्शन से मुक्तिदाता और परे है व अयोगन्धेश्वरलिंग तीर्थसत्तम पुष्कर से ॥ २० ॥ यहां पुष्कर सहित प्रकट हुआ है जो कि बड़ाभारी व पूजनीय है उस अयोगन्धेश्वर को मत्स्योदरी के उत्तर ओर में देखकर ॥ २१ ॥ व अयोगन्ध कुण्ड में स्नानकर पितरों को संसार से तारदेवे व महानादेश्वर लिंग अट्टहासक्षेत्र से यहाँ आया है ॥ २२ ॥ त्रिलोचन से उत्तर में देखा हुआ वह मोक्ष के लिये मानागया है व जोमहोत्कटेश्वरलिंग मरुत्कोट से यहां आया है वह कामेश्वर से उत्तरभाग में देखा हुआ सब सिद्धियों का दाता

धंलिङ्गंदर्शनान्मोक्षदम्परम् ॥ अयोगन्धेश्वरंलिङ्गंपुष्करात्तीर्थसत्तमात् ॥ २० ॥ आविरासीदिहमहत्पुष्करेणसहैवतु ॥ मत्स्योदर्युत्तरेभागेदृष्ट्वाऽयोगन्धमीश्वरम् ॥ २१ ॥ स्नात्वाऽयोगन्धकुण्डेतुभवात्तारयतेपितॄन् ॥ महानादेश्वरंलिङ्गमट्टहासादिहागतम् ॥ २२ ॥ त्रिलोचनादुदीच्यान्तुतद्दृष्टंमुक्तयेमतम् ॥ महोत्कटेश्वरंलिङ्गंमरुत्कोटादिहागतम् ॥ कामेश्वरोत्तरेभागेदृष्टंविमलसिद्धिदम् ॥ २३ ॥ विश्वस्थानादिहायातंलिङ्गंवैविमलेश्वरम् ॥ स्वर्लीनात्पश्चिमेभागेदृष्टं विमलसिद्धिदम् ॥ २४ ॥ महाव्रतंमहालिङ्गंमहेन्द्रादिहसंस्थितम् ॥ स्कन्देश्वरसमीपेतुमहाव्रतफलप्रदम् ॥ २५ ॥ वृन्दारकर्षिवृन्दानांस्तुवतांप्रथमेयुगे ॥ उत्पन्नंयन्महालिङ्गंभूमिंभित्त्वासुदुर्भिदाम् ॥ २६ ॥ महादेवेतितैरुक्तंयन्मनोरथपूरणात् ॥ वाराणस्यांमहादेवस्तदारभ्याभवच्चयत् ॥२७॥ मुक्तिक्षेत्रंकृतंयेनमहालिङ्गेनकाशिका ॥ अविमुक्तेमहादेवं योद्रक्ष्यत्यत्रमानवः ॥ २८ ॥ शम्भुलोकेगमस्तस्ययत्रतत्रमृतस्यहि ॥ अविमुक्तेप्रयत्नेनतत्संसेव्यंमुमुक्षुभिः ॥ २९ ॥

है ॥ २३ ॥ व विमलेश्वरलिंगभी विश्वस्थान से यहां आया है स्वर्लीनेश्वर से पश्चिमभागमें देखा हुआ वह विमल सिद्धिदायक है ॥ २४ ॥ व महाव्रत नामक महालिंग महेन्द्राचल से आकर यहांपर टिका है जोकि स्कन्देश्वर के समीपमें बड़ेव्रतों का फल देनेवाला है ॥ २५ ॥ व जोकि सतयुग में स्तुति करतेहुये देवर्षिसमूहों के बीचमें बड़ी कड़ी भी भूमिको फोड़कर महालिंग उपजा है ॥ २६ ॥ व जोकि मनोरथ पूर्ण करने से उन करके महादेव ऐसा कहागया है और तब से लगाकर काशी में जो महादेव होगया है ॥ २७ ॥ व जिस महालिंग से काशी मुक्तिका क्षेत्र कीगई है इस अविमुक्तक्षेत्रमें जो मनुष्य महादेव को देखेगा ॥ २८ ॥ उस जहांतहां मरेका

भी शिवलोक में जाना होवेगा इससे काशी में मुक्ति चाहनेवाले से बहुत यत्नपूर्वक वह लिंग सेवने योग्यहै ॥ २९ ॥ जिस लिंगस्वरूप महादेव ने कल्पान्तरमेंभी काशी को सब प्रकारसे कभी नहीं त्याग किया ॥ ३० ॥ उसका यह मण्डप सब रत्नरचित मङ्गलमय और अतुल (अनूप) वही क्षेत्र रक्षकरूप महादेवनामक लिंग हिरण्यगर्भ तीर्थसे पश्चिम में है ॥३१॥ और महादेव ऐसी संज्ञावाली, सब लिंगस्वरूपिणी, अभिलाष देनेवाली वह देवता काशी में अधिष्ठात्री है ॥३२॥ यहां जिसने लिंगरूपधारी महादेवको देखा उससे त्रिलोककेलिंग देखेगये इसमें संशय नहीं है ॥३३॥ व काशीमें एकबारभी महादेवकी पूजाकर मनुष्य प्रलयपर्यंततक आनन्दसे शिवलोक

कल्पान्तरेपिनत्यक्तंकदाप्यानन्दकाननम् ॥ येनलिङ्गस्वरूपेणमहादेवेनसर्वथा ॥ ३० ॥ तत्प्रासादोयमतुलःसर्वरत्नमयःशुभः ॥ हिरण्यगर्भतीर्थाच्चप्रतीच्यांक्षेत्ररक्षकम् ॥ ३१ ॥ वाराणस्यामधिष्ठात्रीदेवतासाभिलाषदा ॥ महादेवेतिसञ्ज्ञावैसर्वलिङ्गस्वरूपिणी ॥ ३२ ॥ वाराणस्यांमहादेवोदृष्टोयैर्लिङ्गरूपधृक् ॥ तेनत्रैलोक्यलिङ्गानिदृष्टानीह न संशयः ॥ ३३ ॥ वाराणस्यांमहादेवंसमभ्यर्च्यसकृन्नरः ॥ आभूतसम्प्लवंयावच्छिवलोकेवसेन्मुदा ॥ ३४ ॥ पवित्रपर्वणिसदाश्रावणेमासियत्नतः ॥ लिङ्गेपवित्रमारोप्यमहादेवे न गर्भभाक् ॥ ३५ ॥ पितामहेश्वरंलिङ्गंगयातीर्थादिहागतम् ॥ फल्गुप्रभृतिभिस्तीर्थैःसार्धकोट्यष्टसंमितैः ॥ ३६ ॥ धर्मेणयत्रवैतप्तंयुगानामयुतंशतम् ॥ साक्षीकृत्यमहालिङ्गंश्रीमद्धर्मेश्वराभिधम् ॥ ३७ ॥ पितामहेश्वरंलिङ्गंतत्राभ्यर्च्यनरोमुदा ॥ त्रिःसप्तकुलसंयुक्तोमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ३८ ॥ प्रयागात्तीर्थराजाच्चशूलटङ्कोमहेश्वरः ॥ तीर्थराजेनसहितःस्थितआगत्यवैस्वयम् ॥ ३९ ॥ निर्वाणमण्डपाद्रम्यादवाच्यामतिनि

में बसे ॥ ३४ ॥ व श्रावणमास की चतुर्दशीपर्व में महादेवलिंगपर सदा पवित्रा (सूत्र) आरोपण कर गर्भसेवी न होवे ॥ ३५ ॥ व पिता महेश्वरलिंग गयातीर्थ से यहां आया है जोकि साढ़ेआठ करोड़ संमित फल्गु आदि तीर्थों के साथ वर्त्तमान है ॥ ३६ ॥ प्रसिद्ध है कि जहां धर्म धर्मेश्वरनामक महालिंग को साक्षीकर दशलाख युगतक तपस्या तपा है ॥ ३७ ॥ वहां पितामहेश्वरलिंग की आनन्द से भलीभांति पूजाकर इक्कीस पुश्त समेत मनुष्य मुक्त होजाता है इस में संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ व प्रयागतीर्थ समेत शूलटङ्केश्वरनामक महेश्वर प्रयागतीर्थ से आकर आपही यहां टिके हैं ॥ ३९ ॥ रमणीक निर्वाण मण्डप से दक्षिणदिशा में सोने से उज्ज्वल अत्य-

न्त अमल जिसका मन्दिर सुमेरु से स्पर्द्धा करता है ॥ ४० ॥ जहां पहले युगांतर में देवने हीवर दिया है कि काशी में पापविनाशी महेश्वर प्रथम पूजनीय हैं ॥ ४१ ॥ और जो यहां प्रयाग में स्नान कियेहुआ जन विधि पूर्वक बहुत सामग्री विस्तार से महेश्वरकी भलीभांति पूजाकर नमस्कार करे ॥ ४२ ॥ वह शूलटङ्केश्वर के दर्शन से प्रयागस्नान के पुण्य से करोड़गुना अधिक पुण्य पावे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ व महातेज की बडी वृद्धिका दायक महातेज ऐसा कहागया लिंग, शंकुकर्ण महाक्षेत्र से यहां प्रकट भया है ॥ ४४ ॥ अपनी ज्योति से आकाश के छावनेवाला अतिशय अमल, महातेज का निधान उसका स्थान माणिक्यों से ही बनाया गया

मलः ॥ प्रासादोमेरुणायस्यस्पर्धतेकाञ्चनोज्ज्वलः ॥ ४० ॥ देवेनैववरोदत्तोयत्रपूर्वेयुगान्तरे ॥ पूज्योमहेश्वरःकाश्यांप्रथमंकलुषापहः ॥ ४१ ॥ यःप्रयागइहस्नातोनमस्यतिमहेश्वरम् ॥ समभ्यर्च्यविधानेनमहासम्भारविस्तरैः ॥ ४२ ॥ प्रयागस्नानजातपुण्याच्छूलटङ्कविलोकनात् ॥ सप्राप्नुयान्नसन्देहःपुण्यंकोटिगुणोत्तरम् ॥ ४३ ॥ शंकुकर्णान्महाक्षेत्रान्महातेजइतीरितम् ॥ लिङ्गमाविरभूदत्रमहातेजोविवृद्धिदम् ॥ ४४ ॥ महातेजोनिधिस्तस्यप्रासादोतीवनिर्मलः ॥ ज्वालाजटिलिताकाशोमाणिक्यैरेवनिर्मितः ॥ ४५ ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्स्पर्शात्स्तवनाच्चसमर्चनात् ॥ प्राप्यतेतत्परन्धामयत्रगत्वानशोचते ॥ ४६ ॥ विनायकेश्वरात्पूर्वेमहातेजसमर्चनात् ॥ तेजोमयेनयानेनयातिमाहेश्वरम्पदम् ॥ ४७ ॥ रुद्रकोटिसमाख्यातात्तीर्थात्परमपावनात् ॥ महायोगीश्वरंलिङ्गमाविश्चक्रेस्वयम्परम् ॥ ४८ ॥ पार्वतीश्वरलिङ्गस्यसमीपे सर्वसिद्धिकृत् ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसांकोटिलिङ्गफलंभवेत् ॥ ४९ ॥ तत्प्रासादस्यपरितोरुद्राणांकोटिसम्मिताः ॥ प्रासादा

है ॥ ४५ ॥ उसलिंगके देखने छूने स्तुतिकरने और भलीभांति पूजने से वह परमधाम मिलता है जहां जाकर नर फिर नहीं शोचता है ॥ ४६ ॥ विनायकेश्वर से पूर्व में महातेज के पूजन से तेजोमय विमानपर बैठकर महेश्वरके स्थान को जाता है ॥ ४७ ॥ व रुद्रकोटिनामक, परमपावन, तीर्थ से महायोगीश्वर श्रेष्ठलिंग आपही प्रकट-हुआ है ॥ ४८ ॥ जोकि सब सिद्धि करनेवाला पार्वतीश्वरलिंगके समीप में है उस लिंग के दर्शन से मनुष्यों को करोड़लिंग का फलहोवे ॥ ४९ ॥ उसकेया उस शिवा-

लय के सब ओर में रम्य रचनावाले करोड़ों सम्मित, रुद्रों के मन्दिर रुद्र मूर्त्तियोंसे रचेगये हैं ॥ ५० ॥ इसलिये वेदवादी पण्डितो से काशी में वह रुद्रस्थली पढ़ी जाती है उस रुद्रस्थली में जे कृमिकीट और पतंग मरे हैं ॥ ५१ ॥ व पशु पक्षी मृग मनुष्य और म्लेच्छभी अनन्तर दीक्षित हुये हैं उन रुद्रहुये जनोंका फिर लौटकर आना इस जगत्‌में नहीं है ॥ ५२ ॥ रुद्रस्थली में पैठेहुये का जो हजारो जन्मो में बटोरा पाप है वह सब नाश को प्राप्त होजाता है ॥ ५३ ॥ व रुद्रस्थलीमें प्राणछोड़-ता हुआ कामनारहित व कामना सहित व पशुपक्षी आदि भी उत्तम कैवल्य को प्राप्त होवे ॥५४ ॥ और एकाम्बर क्षेत्र (भुवनेश्वर जोकि जगन्नाथजी के समीप है)

रम्यसंस्थानानिर्मितारुद्रमूर्तिभिः ॥ ५० ॥ काश्यांरुद्रस्थलीसातुपठ्यतेवेदवादिभिः ॥ रुद्रस्थल्यांमृतायेवैकृमिकीट पतङ्काः ॥ ५१ ॥ पशुपक्षिमृगामर्त्याम्लेच्छावाप्यथदीक्षिताः ॥ तेषान्तुरुद्रीभूतानांपुनरावृत्तिरत्र न ॥५२॥ जन्मा न्तरसहस्रेषुयत्पापंसमुपार्जितम् ॥ रुद्रस्थलीम्प्रविष्टस्यतत्सर्वंव्रजतिक्षयम् ॥ ५३ ॥ अकामोवासकामोवातिर्यग्योनि गतोपिवा ॥ रुद्रस्थल्यांत्यजन्प्राणान्परंनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ स्वयमेकाम्बरात्क्षेत्रात्कृत्तिवासाइहागतः ॥ कृत्तिवा ससिलिङ्गेत्रस्वयमेवव्यवस्थितः ॥ ५५ ॥ अस्मिन्स्थानेस्वभक्तानांसाम्बःसर्षिगणोविभुः ॥ स्वयंचोपादिशेद्ब्रह्मश्रुतौश्रुति भिरीडितम् ॥ ५६ ॥ क्षेत्रेत्रसिद्धिदेप्राप्तश्चण्डीशोमरुजाङ्गलात् ॥ प्रचण्डपापसङ्घातंखण्डयेच्छतधेक्षणात् ॥ ५७ ॥ पाशपाणिगणाध्यक्षसमीपेयःप्रपश्यति ॥ चण्डीश्वरंमहालिङ्गंसयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ५८ ॥ कालंजरान्नीलकण्ठस्ति ष्ठेदत्रस्वयंविभुः ॥ गणेशाद्दन्तकूटाख्यात्समीपेभवनाशनः ॥५९॥ नीलकण्ठेश्वरंलिङ्गंकाश्यांयैःपरिपूजितम् ॥ नील

से कृत्तिवास आपही यहां आये हैं व यहां कृत्तिवासेश्वरलिंगमें आपही टिके हैं ॥ ५५ ॥ इस स्थान में अम्बा (पार्वती) समेत व ऋषि समूह सहित समर्थ शिवजी आपही वेदों से प्रशंसित तारक ब्रह्मको अपने भक्तों के कानमें उपदेश करते हैं ॥ ५६ ॥ व मरुजांगल क्षेत्रसे आकर चण्डीश्वर इस सिद्धिदायक क्षेत्र में प्राप्तहुये जोकि दर्शन से प्रचण्ड पापसमूह का खण्डन करदेवें ॥ ५७ ॥ जो कोई पाशपाणि गणेशजी के समीप में चण्डीश्वर महालिंगको देखै है वह परमगतिको जावै है ॥ ५८ ॥ व संसारनाशक नीलकण्ठ प्रभु आपही कालञ्जर से आकर यहां दन्तकूटनामक गणेश के समीप टिके हैं ॥ ५९ ॥ वह नीलकण्ठेश्वरलिंग काशी में

जिस से परिपूजित हुआ वेही नीलकण्ठ और वेही चन्द्रभूषण होवें हैं ॥ ६० ॥ व मनुष्योंका सदा विजयदायक यह विजयसञ्ज्ञितलिंग काश्मीर से आकर यहां शालकटंकट से पूर्व में प्राप्तहुवा है ॥ ६१ ॥ विजयेश्वरकी भलीभांति पूजा करने से संग्राम, राजकुल द्यूत (जुवां) व विवादमें मनुष्योंकी जीत होती है ॥ ६२ ॥ और त्रिदंडापुरी से आकर आपही यहांपर प्राप्तहुये ऊर्ध्वरेता प्रभु कूष्मांडक गणेशको आगेकर विशेषता से टिकेहैं ॥ ६३ ॥ उस ऊर्ध्वरेताके दर्शनसे ऊंचीगतिको प्राप्तहोता है और जे ऊर्ध्वरेताके भक्तहैं उनकी नीचीगति नहीं है ॥ ६४ ॥ व श्रीकण्ठसञ्ज्ञकलिंग मण्डलेश्वर क्षेत्रसे आकर मण्डनामक गणेशसे उत्तरदिशामें टिकाहै ॥ ६५ ॥

कण्ठास्तएवस्युस्तएवशशिभूषणाः ॥ ६० ॥ काश्मीरादिहसम्प्राप्तंलिङ्गंविजयसञ्ज्ञितम् ॥ सदाविजयदम्पुसाम्प्राच्यां शालकटङ्कटात् ॥ ६१ ॥ रणेराजकुलेद्यूतेविवादेसर्वदेवहि ॥ विजयोजायतेपुंसांविजयेशसमर्चनात् ॥ ६२ ॥ ऊर्ध्वरेता स्त्रिदण्डायाःसम्प्राप्तोत्रस्वयंविभुः ॥ कूश्माण्डकङ्गणाध्यत्तंपुरस्कृत्यव्यवस्थितः ॥ ६३ ॥ ऊर्ध्वाङ्गतिमवाप्नोतिवीत्त णादूर्ध्वरेतसः ॥ ऊर्ध्वरेतसियेभक्तानहितेषामधोगतिः ॥ ६४ ॥ मण्डलेश्वरतःक्षेत्राल्लिङ्गंश्रीकण्ठसञ्ज्ञितम् ॥ विनाय कान्मण्डसञ्ज्ञादुत्तरस्यांव्यवस्थितम् ॥ ६५ ॥ श्रीकण्ठस्यचयेभक्ताःश्रीकण्ठाएवतेनराः ॥ नेहश्रियावियुज्यन्ते न पर त्रकदाचन ॥ ६६ ॥ छागलाण्डान्महातीर्थात्कपर्दीश्वरसञ्ज्ञितः ॥ पिशाचमोचनेतीर्थेस्वयमाविरभूद्विभुः ॥ ६७ ॥ क पर्दीशंसमभ्यर्च्य न नरोनिरयंव्रजेत् ॥ न पिशाचत्वमाप्नोतिकृत्वात्राप्यघमुत्तमम् ॥ ६८ ॥ आम्रातकेश्वरात्क्षेत्राल्लिङ्गं सूक्ष्मेशसञ्ज्ञितम् ॥ स्वयमभ्यागतञ्चात्रक्षेत्रेवैश्रेयसाम्पदे ॥ ६९ ॥ विकटद्विजसञ्ज्ञस्यगणेशस्यसमीपतः ॥ दृष्ट्वासू

जे मनुष्य श्रीकण्ठके भक्तहैं वे श्रीकण्ठही हैं और वे इसलोकमें लक्ष्मी से हीन नहीं होतेहैं व परलोकमें भी मुक्ति सम्पत्तिसे हीन नहीं होतेहैं ॥ ६६ ॥ व कपर्दीश्वरना- मक प्रभु छागलांड महातीर्थ से आकर आपही कपालमोचनतीर्थ में प्रकट होगये हैं ॥ ६७ ॥ कपर्दीश्वरकी पूजाकर नर नरकको न जावे और यहां महापाप भी कर पिशाचत्वको न प्राप्तहोवे ॥ ६८ ॥ व सूक्ष्मेश्वरसञ्ज्ञितलिंग आपही आम्रातकेश्वर-क्षेत्रसे इस सुखस्थानक्षेत्र मे आयाहै ॥ ६९ ॥ विकटदन्तनामक गणेशके समीप में

सूक्ष्मेश्वरलिंगके दर्शनकर सूक्ष्मगतिको प्राप्तहोवे ॥ ७० ॥ देवोंकाईश जयन्तनामक जो लिंग मधुकेश्वरक्षेत्रसे यहां संप्राप्तहुआहै वह लम्बोदर गणेशसे पूर्वमें टिकाहै ॥ ७१ ॥ शुभ गंगाजलमें स्नानकर व जयन्तेश्वरके दर्शनकर मनमानी सिद्धिको पावै और सर्वत्र विजयी होजावे ॥ ७२ ॥ और श्रीशैलसे आकर त्रिपुरान्तक देवेश यहां प्रकटहुये हैं किन्तु श्रीशैलका शिखर देखकर जो फल कहागयाहै ॥ ७३ ॥ वह फल विना परिश्रम त्रिपुरांतकके दर्शनकर मिलताहै श्रीविश्वनाथके पश्चिमभागमें त्रिपुरांतकेश्वरको ॥ ७४ ॥ भारी भक्तिसे पूजकर मनुष्य फिर गर्भमें न पैठे व कुक्कुटेश्वर भगवान् सौम्यस्थान से यहां आयेहैं ॥ ७५ ॥ और वह वक्रतुंड गणेश के समीप

क्ष्मेश्वरंलिङ्गंगतिंसूक्ष्मामवाप्नुयात् ॥ ७० ॥ सम्प्राप्तमिहदेवेशंजयन्तंमधुकेश्वरात् ॥ लम्बोदराद्गणपतेःपुरस्तात्तदवस्थितम् ॥ ७१ ॥ जयन्तेश्वरमालोक्यस्नात्वागङ्गाजलेशुभे ॥ प्राप्नुयाद्वाञ्छितांसिद्धिंसर्वत्रविजयीभवेत् ॥ ७२ ॥ प्रादुश्चकारदेवेशःश्रीशैलात्त्रिपुरान्तकः ॥ श्रीशैलशिखरंदृष्ट्वायत्फलंसमुदीरितम् ॥ ७३ ॥ त्रिपुरान्तकमालोक्यतत्फलंहेलयाप्यते ॥ विश्वेशात्पश्चिमेभागेत्रिपुरान्तकमीश्वरम् ॥ ७४ ॥ सम्पूज्यपरयाभक्त्याननरोगर्भमाविशेत् ॥ सौम्यस्थानादिहायातोभगवान्कुक्कुटेश्वरः ॥ ७५ ॥ वक्रतुण्डगणाध्यक्षसमीपेसोपतिष्ठते ॥ तद्दर्शनादर्चनाच्चकरस्थाःसर्वसिद्धयः ॥ ७६ ॥ जालेश्वरात्त्रिशूलीचस्वयमीशःसमागतः ॥ कूटदन्ताद्गणपतेःपुरस्तात्सर्वसिद्धिदः ॥ ७७ ॥ रामेश्वरान्महाक्षेत्राज्जटीदेवःसमागतः ॥ एकदन्तोत्तरेभागेसोर्चितःसर्वकामदः ॥ ७८ ॥ त्रिसन्ध्यात्क्षेत्रतोदेवस्त्र्यम्बकास्तिसमागतः ॥ त्रिमुखात्पूर्वदिग्भागे पूजितस्त्र्यम्बकत्वकृत ॥ ७९ ॥ हरेश्वरोहरिश्चन्द्रात्क्षेत्रादत्रसमागतः ॥ हरि

में टिकेहैं उनके दर्शन व पूजासे सब सिद्धियां हाथमें टिकीहैं ॥ ७६ ॥ व सब सिद्धिदायक त्रिशूली नामक ईश्वर आपही जालेश्वर क्षेत्रसे यहां कूटदंतगणेश के आगे आयेहैं ॥ ७७ ॥ व सेतुबंधरामेश्वर से जो जटीदेव भलीभांति आयेहैं वह एकदंत विनायक से उत्तर ओरमें पूजित होकर सब कामदायक हैं ॥ ७८ ॥ व त्रिसंध्यक्षेत्र से त्र्यम्बकदेव आयेहैं जोकि त्रिमुखसे पूर्वदिशाके भागमें पूजेहुये त्रिनेत्र का भाव करनेवाले हैं याने भक्त कोभी त्रिनेत्र करदेतेहैं ॥ ७९ ॥ व हरिश्चंद्र क्षेत्रसे यहां

आयेहुये हरेश्वर हरिश्चंद्रेश्वरके आगे पूजित होकर सदैव जयदायक हैं ॥ ८० ॥ व मध्यमकेश्वर स्थानसे यहां शर्वभगवान् आयेहैं और चतुर्वेदेश्वर नामक लिंगको आके धरकर टिकेहुये ॥ ८१ ॥ सर्व सिद्धिकारी सर्व लिंगको काशीमें पूजकर मनुष्यजंतुपदवीको कभी कहीं नहीं प्राप्तहोवे ॥ ८२ ॥ और जहां सब लिंगोंका फलदायक यज्ञेश्वर लिंगहैं उस स्थलेश्वर क्षेत्रसे आकर उत्तम महालिंग यहां प्रकटहुआ है ॥ ८३ ॥ बडीश्रद्धा समेत जन महालिंग की भलीभांति पूजाकर इसलोक और परलोक में भी महासंपात्ति को प्राप्तहोताहै ॥ ८४ ॥ और सहस्राक्ष नामक लिंग सुवर्णनामक क्षेत्रसे यहां आयाहै जिसके दर्शनसे मनुष्योंके ज्ञाननेत्र होजाताहै ॥ ८५ ॥ शैलेश्वर

श्चन्द्रेश्वरपुरःपूजितोजयदःसदा ॥ ८० ॥ इहशर्वःसमायातःस्थानान्मध्यमकेश्वरात् ॥ चतुर्वेदेश्वरंलिङ्गंपुरोधायव्य वस्थितम् ॥ ८१ ॥ शर्वलिङ्गंसमभ्यर्च्य काश्यांपरमसिद्धिकृत् ॥ नजातुजन्तुपदवींप्राप्नुयात्कापिमानवः ॥ ८२ ॥ स्थ लेश्वरान्महालिङ्गं प्रादुर्भूतंपरंत्विह ॥ यत्रयज्ञेश्वरंलिङ्गंसर्वलिङ्गफलप्रदम् ॥ ८३ ॥ महालिङ्गंसमभ्यर्च्यमहाश्रद्धास मन्वितः ॥ महतींश्रियमाप्नोतिलोकेत्रचपरत्रच ॥ ८४ ॥ इहलिङ्गंसहस्राक्षंसुवर्णाख्यात्समागतम् ॥ यस्यसंदर्शनात्पुं सांज्ञानचक्षुःप्रजायते ॥ ८५ ॥ शैलेश्वरादवाच्यांतु सहस्राक्षेश्वरंविभुम् ॥ दृष्ट्वाजन्मसहस्राणां शतानांपातकंत्यजे त् ॥ ८६ ॥ हर्षिताद्धर्षितंचात्रप्रादुरासीत्तमोहरम् ॥ लिङ्गंहर्षप्रदंपुंसांदर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ८७ ॥ मन्त्रेश्वरसमीपेतु प्रासादोहर्षितेशितुः॥ तद्विलोकनतःपुंसांनित्यंहर्षपरम्परा ॥ ८८ ॥ इहस्वयंसमायातो रुद्रोरुद्रमहालयात् ॥ यस्यदर्श नतोयान्ति रुद्रलोकेनराःस्फुटम् ॥ ८९ ॥ यैस्तुरुद्रेश्वरंलिङ्गं काश्यामत्रसमर्चितम् ॥ तेरुद्ररूपिणोमर्त्याविज्ञेयानात्र

से दक्षिणमें सहस्राक्षेश्वर प्रभुके दर्शनकर सैकड़ों हजार जन्मोंके पापको त्यजदेवे ॥ ८६ ॥ व अज्ञानहारी हर्षित नामक लिंग हर्षितक्षेत्र से यहां प्रकटहुआ है जोकि दर्शन और स्पर्शनसेभी लोगोंका आनंददाता है ॥ ८७ ॥ मंत्रेश्वरके समीपमें हर्षितेश्वरका मंदिरहै उसके देखनेसे मनुष्यों को नित्यही आनंद की परंपरा होती है ॥ ८८ ॥ व रुद्रजी आपही रुद्रमहालय क्षेत्रसे यहां आगये हैं जिनके दर्शनसे मनुष्य रुद्रलोकको जातेहैं यह स्पष्टहै ॥ ८९ ॥ जिनसे यहां काशीमें रुद्रेश्वरलिंग पूजाग-

या वे मनुष्य रुद्ररूपी जाननेयोग्य हैं इसमें संशयनहीं है ॥ ९० ॥ त्रिपुरेश्वरके समीपमे रुद्रेश्वर प्रभुके दर्शनकर वे जीते व मरेहुये भी रुद्रोंके समान जानने योग्यहैं ॥ ९१ ॥ व वृषेशनामक महादेवजी वृषभध्वज क्षेत्रसे यहां बाणेश्वर लिंगके समीप में आयेहैं जोकि सदैव धर्मकेदायक हैं ॥ ९२ ॥ व केदारक्षेत्रसे यहां आयाहुआ वह ईशानेश्वर संज्ञित लिंग प्रह्लादकेशव से पश्चिम में देखने योग्य है ॥ ९३ ॥ उत्तरवाहिनी गंगा जलमें स्नानकर व ईशानेश्वरकी भलीभांति पूजाकर ईशानके समान प्रकाशमान होकर ईशानके लोकमें बसे ॥ ९४ ॥ व भैरवक्षेत्रसे भैरवीमूर्त्ति यहांआईहै जोकि मनोहर है वह देखने योग्य है वह संहारभैरव बहुत यत्नसे देखने योग्य

संशयः ॥ ९० ॥ त्रिपुरेशसमीपेतु दृष्ट्वारुद्रेश्वरंविभुम् ॥ रुद्रास्तइवविज्ञेया जीवन्तोपिमृताअपि ॥ ९१ ॥ आगादिह महादेवो वृषेशोवृषभध्वजात् ॥ बाणेश्वरस्यलिङ्गस्यसमीपेवृषदःसदा ॥ ९२ ॥ इहागतन्तुकेदारादीशानेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ तद्द्रष्टव्यंप्रतीच्यांच लिङ्गंप्रह्लादकेशवात् ॥ ९३ ॥ ईशानेशंसमभ्यर्च्य स्नात्वोत्तरवहाम्भसि ॥ वसेदीशाननगरेईशान सदृशप्रभः ॥ ९४ ॥ भैरवाद्भैरवीमूर्तिरत्रायातामनोहरा ॥ संहारभैरवोनामद्रष्टव्यःसप्रयत्नतः ॥ ९५ ॥ पूजनात्सर्वसिद्ध्यैसप्राच्यांखर्वविनायकात् ॥ संहारभैरवःकाश्यांसंहरेदघसन्ततिम् ॥ ९६ ॥ उग्रःकनखलात्तीर्थादागादिहासिद्धिदः ॥ तद्विलोकनतोनृणामुग्रंपापंप्रणश्यति ॥ ९७ ॥ उग्रंलिङ्गंसदासेव्यंप्राच्यामर्कविनायकात् ॥ अत्युग्राअपिनश्येयुरुपसर्गास्तदर्चनात् ॥ ९८ ॥ वस्त्रापथान्महाक्षेत्राद्भवोनामस्वयंविभुः ॥ भीमचण्डीसमीपेतु प्रादुरासीदिहप्रभो ॥ ९९ ॥ भवेश्वरंसमभ्यर्च्य भवेनाविर्भवेन्नरः ॥ प्रभुर्भवतिसर्वेषांराज्ञामाज्ञाकृतामिह ॥ १०० ॥ देवदारुवनाद्दण्डीदण्डयन्पातका

हैं ॥ ९५ ॥ और वह संहारभैरव पूजासे सब सिद्धि के लिये खर्वविनायकसे पूर्व में टिके हैं व सब पापसंतानको हरते हैं ॥ ९६ ॥ व सिद्धिदायक उग्रजी कनखल तीर्थ से यहां प्रकटहुये हैं उनके देखनेसे मनुष्योंका दारुण पाप विनष्ट होजाताहै ॥ ९७ ॥ अर्कविनायक से पूर्वमे उग्रलिंग सदासेवने योग्यहै उसकी पूजासे अत्यन्त उग्रभी रोगादि विघ्न विनष्ट होजातेहैं ॥ ९८ ॥ हे प्रभो ! भवनामक प्रभु आपही वस्त्रापथ महाक्षेत्रसे आकर यहां भीमचंडी के समीप मे प्रकटहुये हैं ॥ ९९ ॥ उस भवेश्वर लिंगकी पूजाकर नर फिर संसार में न प्रकटहोवे और जो इसलोक में जन्मधरता है तो सब आज्ञाकर्त्ता राजाओं का स्वामी होता है ॥ १०० ॥ व पाप पंक्तियों को

दंड देतेहुये लिंगरूप समर्थ दंडीदेव देवदारुवनसे आनंद वनमें आकर टिके हैं ॥ १ ॥ वह दंडीश्वर देहलिविनायक से पूर्वमें पूजनीयहैं उनकी पूजासे मनुष्योंका फिर जन्म नहीं देखाजाताहै ॥ २ ॥ व भद्रकर्णकुंड समेत साक्षात् शिव भद्रकर्ण कुंडसे यहां आयेहैं जोकि पूजितहोकर कल्याणदायक है ॥ ३ ॥ और उद्दंडनामक गणनायक से पूर्वमें उनका उत्तम तीर्थहै भद्रकर्ण कुंडमें स्नानकर व शिवनामक लिंगकी पूजाकर ॥ ४ ॥ सर्वत्र कल्याणको प्राप्तहोता है व भद्रकर्णेश्वरकी पूजासे सब भूतोंका कल्याण सुनताहै और आंखोंसे देखता है ॥ ५ ॥ हरिश्चंद्रसे आकर शंकर तुम्हारे आगे विराजतेहैं जिनकी पूजासे जनोंकी उत्पत्ति माताके गर्भमें नहीं

वलीः ॥ वाराणस्यांसमागत्यस्थितोलिङ्गाकृतिर्विभुः ॥ १ ॥ प्राच्यांदण्डीश्वरःपूज्यःसदेहलिविनायकात् ॥ तस्यार्चनेन मर्त्यानांनपुनर्भवईक्ष्यते ॥ २ ॥ भद्रकर्णह्रदादत्रभद्रकर्णह्रदान्वितः ॥ शिवःसाक्षादिहायातःसर्वेषांशिवदोर्चितः ॥ ३ ॥ उद्दण्डाख्याद्गणपतेःप्राच्यांतत्तीर्थमुत्तमम् ॥ भद्रकर्णह्रदेस्नात्वाभ्यर्च्यलिङ्गंशिवाह्वयम् ॥ ४ ॥ सर्वत्रशिवमाप्नोतिभद्रकर्णेशपूजनात् ॥ शृणुयात्सर्वभूतानांभद्रंपश्यतिचाक्षिभिः ॥ ५ ॥ शङ्करश्चहरिश्चन्द्रात्त्वत्पुरःप्रतिभासते ॥ तत्पूजनाज्जनानां न जननीजठरेजनिः ॥ ६ ॥ यमलिङ्गान्महातीर्थात्काललिङ्गमिहस्थितम् ॥ कलशेशइतिख्यातंचन्द्रेशात्पश्चिमे नच ॥ ७ ॥ यमतीर्थेनरःस्नात्वामित्रावरुणदक्षिणे ॥ काललिङ्गंसमालोक्य कलिकालभयंकुतः ॥ ८ ॥ तत्रभौमचतुर्दश्यां यस्तुयात्रांकरिष्यति ॥ अपिपातकयुक्तःसयमयात्रांनयास्यति ॥ ९ ॥ नैपालाच्चमहाक्षेत्रादायात्पशुपतिस्त्विह ॥ यत्रपाशुपतोयोगउपदिष्टःपिनाकिना ॥ १० ॥ भवतादेवदेवेन ब्रह्मादिभ्योविमुक्तये ॥ तस्यसंदर्शनादेव पशु

होतीहै ॥ ६ ॥ व यम लिंगनामक महातीर्थ से आकर काललिंग यहां टिका है जो कि चंद्रेश्वर से पश्चिम में कलशेश्वर ऐसा कहा हुआ प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ मित्रावरुणके दक्षिणयमतीर्थ में स्नानकर मनुष्यको कलिकालका डर कहांहै ॥ ८ ॥ जोकि पाप युक्तभी मनुष्य वहां मंगलवार व चतुर्दशी तिथिमें यात्रा करेगा वह यमयात्राको न जावेगा ॥ ९ ॥ व नैपालनामक महाक्षेत्रसे पशुपति यहां आयेहैं जहां पाशुपत योगको पिनाक धनुषधारी ने उपदेश कियाहै ॥ १० ॥ किंतु देवदेव आपने विमुक्ति के

लिये ब्रह्मादिकों से कहाहै उनके दर्शन से पशुरूप जीवों की पसरी जे चौवीसतत्त्वहैं उनसे हीन होजाताहै ॥ ११ ॥ व कपालीशजी करवीरक तीर्थ से यहां आयेहैं वह कपालमोचन तीर्थमें बहुतयत्नसे देखने योग्यहै ॥ १२ ॥ उनकेदर्शनमात्रसे ब्रह्महत्या बिलाजातीहै व देविकापुरीसे आकर उमापति यहां टिकेहैं जोकि पशुपति से पूर्वमें देखेहुये होकर बहुत कालके बटोरे पापको हरलेतेहैं ॥ १३ ॥ व दीप्तेश्वर नामकलिंगमहेश्वर क्षेत्रसे यहां आकर ॥ १४ ॥ उमापति के समीप में टिकाहै जोकि काशीके मध्यगत दीप्तेशलिङ्ग भुक्ति मुक्तिदायक है व इसलोक और परलोक में दीप्ति के लिये वर्तमानहै ॥ १५ ॥ व महापाशुपत व्रतवाले शिष्योंसे घिरेहुये नकुलीश्वर आचार्य्य

पाशैर्वियुज्यते ॥ ११ ॥ करवीरकतीर्थाच्चकपालीशइहागतः ॥ कपालमोचनेतीर्थेद्रष्टव्यःसप्रयत्नतः ॥ १२ ॥ तद्वि लोकनमात्रेण ब्रह्महत्याविलीयते ॥ उमापतिर्देविकायाइहागत्यव्यवस्थितः ॥ १३ ॥ दृष्टःपशुपतिःप्राच्यांहरेत्पापं चिरार्जितम् ॥ लिङ्गंमहेश्वरक्षेत्रादिहदीप्तेशसञ्ज्ञितम् ॥ १४ ॥ उपोमापतितिष्ठेतदीप्त्यैचेहपरत्रच ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गंदीप्तेशंकाशिमध्यगम् ॥ १५ ॥ कायारोहणतःक्षेत्रादाचार्योनकुलीश्वरः॥शिष्यैःपरिवृतस्तिष्ठेन्महापाशुपतव्र तैः ॥ १६ ॥ दक्षिणेहिमहादेवाद्दृष्टोज्ञानंप्रयच्छति ॥ अज्ञानंनाशयेत्क्षिप्रंगर्भसंसृतिहेतुकम् ॥ १७॥ गङ्गासागरतश्चा यादमरेशइतीरितम् ॥ लिङ्गंयद्दर्शनादेवनामरत्वंहिदुर्लभम् ॥ १८ ॥ सप्तगोदावरीतीर्थाद्देवोभीमेश्वरःप्रभुः ॥ प्रका शतेलिङ्गरूपीभुक्त्यैमुक्त्यैनृणामिह ॥ १९ ॥ नकुलीशात्पुरोभागेदृष्ट्वाभीमेश्वरंप्रभुम् ॥ महाभीमानिपापानिप्रण श्यन्तिहितत्क्षणात् ॥ २० ॥ भूतेश्वराद्भस्मगात्रंप्रादुरासीदिहस्वयम्॥ भीमेशाद्दक्षिणेभागेतदभ्यर्च्यंप्रयत्नतः ॥२१॥

कायारोहणसे आकरयहांटिकेहैं ॥ १६ ॥ जोकि महादेवसे दक्षिणमें देखेहुये शीघ्रही ज्ञानदेतेहैं और गर्भवास संसारके कारण अज्ञानको नाशतेहैं ॥ १७ ॥ व अमरेश ऐसा कहाहुआ लिङ्ग गङ्गासागरसे आयाहै जिसके दर्शन सेही अमरहोना भी दुर्लभनहींहै ॥१८॥ व भीमेश्वरदेव प्रभु सप्त गोदावरीतीर्थसे यहां आकर लिङ्गरूपी होकर मनुष्यों की भुक्ति व मुक्ति के लिये प्रकाशते हैं ॥ १९ ॥ नकुलीश्वर से पूर्वभाग में भीमेश्वर प्रभुके दर्शनकर भारीभयानक पाप भी उसी क्षण विनष्ट होजाते हैं ॥ २० ॥ व

भस्मगात्र लिंग आपही भूतेश्वर क्षेत्र से आकर यहां प्रकट हुआ है उसको भीमेश्वर से दक्षिण भाग में भलीभांति प्रयत्न से पूजकर ॥ २१ ॥ व भस्मगात्र के दर्शन से वह फल होताहै जोकि सौ वर्षतक अच्छेप्रकार अभ्यास कियेहुये पाशुपतयोग से प्राप्त कियाजाता है ॥ २२ ॥ व भक्तभयहारी लिङ्गाकारधारी स्वयंभू ऐसे नामसे प्रसिद्ध हुये देव नकुलीश्वर से आकर काशीमें आपसेही प्रकट होगयेहैं ॥ २३ ॥ महालक्ष्मीश्वर के आगे सिद्धिकुंडमें स्नानकर व स्वयंभुलिङ्गकी भलीभांति पूजाकर मनुष्य फिर जन्मसेवी न होवे ॥ २४ ॥ व प्रयागतीर्थ के समीप में मूंगा के समान प्रकाशमान महान् यह धरणीवराहनामक देवका मंदिर है ॥ २५ ॥ गणों

सम्यक्पाशुपताद्योगादभ्यस्ताच्चसमाःशतम् ॥ यत्प्राप्यतेफलंतत्स्याद्भस्मगात्रविलोकनात् ॥ २२ ॥ नकुलीश्वरतोदेवःस्वयम्भूरितिविश्रुतः ॥ आत्मनाप्रकटीभूतःकाश्यांलिङ्गाकृतिर्हरः ॥ २३ ॥ स्वयम्भुलिङ्गंसम्पूज्यस्नात्वासिद्धिह्रदेनरः ॥ महालक्ष्मीश्वरपुरोनभूयोजन्मभाग्भवेत् ॥ २४॥ प्रयागतीर्थनिकषाप्रासादोविद्रुमप्रभः ॥ वाराहस्यमहानेषधरणीनाम्नएवहि ॥ २५ ॥ विन्ध्यपर्वततःप्राप्तोदेवंश्रुत्वासमागतम् ॥ सगणंसर्षिदेवंचमन्दराद्रत्नकन्दरात् ॥ २६ ॥ काश्यांधरणिवाराहोद्रष्टव्यःसप्रयत्नतः ॥ आपत्समुद्रसंमग्नमुद्धरेच्छरणागतम् ॥ २७ ॥ कर्णिकाराद्गणाध्यक्षःकर्णिकारप्रसूनरुक् ॥ समर्च्योयंगदाहस्तउपसर्गसहस्रहृत ॥ २८ ॥ तस्माद्धरणिवाराहात्प्रतीच्यांदिशिसंस्थितम् ॥ पूजयित्वागणाध्यक्षंगाणपत्यपदंलभेत्॥२९॥हेमकूटाद्विरूपाक्षंलिङ्गमत्राविरासह ॥ महेश्वरादवाच्यांचदृष्टंसंसारतारकम्॥३०॥

समेत व ऋषियों और देवो समेत महादेवजीको रत्नकन्दर मन्दर पर्वत से आये हुयेसुनकर वह धरणीवराहदेव विन्ध्याचल से यहां प्राप्त हुये हैं ॥ २६ ॥ वह धरणीवराह बहुत यत्नसे काशीमें देखने योग्य हैं जोकि विपत्तिसागर में डूबे हुये शरणागत का उद्धार करते हैं ॥ २७ ॥ व कर्णिकार क्षेत्र से आयेहुये कर्णिकार (नैनिया) के फूलकीसी छविवाले हाथमे गदाधारी व हजारों विघ्नहारी यह गणाध्यक्ष भलीभांति पूजनीय हैं ॥ २८ ॥ उन धरणीवराहसे पश्चिम दिशि मे टिके हुये गणाध्यक्ष की पूजाकर गणपति का पद पावे ॥ २९ ॥ व विरूपाक्षनामकलिंग हेमकूट पर्वत से आकर यहा प्रकटहुआ है जोकि महेश्वर से दक्षिण में देखाहुआ

संसार से उबार करता है ॥ ३० ॥ व हरद्वार से आया हुआ हिम (बरफ) के समान प्रकाशमान सिद्धिदायक हिमस्थेशलिङ्ग यहां ब्रह्मनाल से पश्चिम में देखने योग्य है ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! कैलास से गणेश आये और अन्य बड़े बलवान् सातकरोड़ संख्यक गण भी कैलास पर्वत से भलीभांति आये हैं॥३२॥व उन्होंने यहा द्वारोंसमेत व यन्त्रों समेत सातों स्वर्गोंके समान किले बनाये हैं ॥ ३३ ॥ जो कोट कि करोड़ोंकरोड़ों सुभटोंके रहने योग्य हैं व सब ऋद्धियों से सहित भी हैं व सोना रूपा तांबा कांस पीतल और सीसा से बने हैं ॥ ३४ ॥ व चुम्बक पत्थरों से दीप्यमान हैं व दृढ़ हैं व आकाश व मेघों को चूमरहे हैं याने बहुत ऊंचे हैं तदनन्तर उन्होंने

गङ्गाद्वाराद्धिमस्थेशंलिङ्गंहिमसमप्रभम् ॥ ब्रह्मनालात्प्रतीच्यांचद्रष्टव्यमिहसिद्धिदम् ॥ ३१ ॥ गणाधिपश्चकैला साद्गणाअन्येमहाबलाः ॥ कैलासाद्रेःसमायाताःसप्तकोटिमिताःप्रभो ॥ ३२ ॥ दुर्गाणितैःकृतानीहसप्तस्वर्गसमा निच ॥ सद्वाराणिसयन्त्राणिकपाटविकटानिच ॥ ३३ ॥ कोटिकोटिभटाढ्यानिसर्वर्द्धिसहितान्यपि ॥ सुवर्णरूप्यता म्रैश्चकांस्यरीतिकसीसकैः ॥ ३४ ॥ अयस्कान्तेनकान्तानिदृढान्यभ्रंलिहान्यपि ॥ ततःशैलंमहादुर्गंतैःकाशीपरितः कृतम् ॥ ३५ ॥ परिखापिकृतानिम्नामत्स्योदर्याजलाविला ॥ मत्स्योदरीद्विधाजाताबहिरन्तश्चरापुनः ॥ ३६ ॥ तच्चतीर्थं महत्ख्यातंमिलितंगाङ्गवारिभिः॥यदासंहारमार्गेणगङ्गाम्भःप्रसरेदिह ॥ ३७ ॥ तदामत्स्योदरीतीर्थंलभ्यतेपुण्यगौरवा त् ॥ सूर्याचन्द्रमसोःपर्वतदाकोटिगुणंशतम् ॥ ३८ ॥ सर्वपर्वाणितत्रैव सर्वतीर्थानितत्रवै ॥ तत्रैवसर्वलिङ्गानिगङ्गामत्स्यो दरीयतः ॥ ३९ ॥ मत्स्योदर्याहियेस्नातायत्रकुत्रापिमानवाः ॥ कृतपिण्डप्रदानास्तेनमातुरुदरेशयाः ॥ ४० ॥ अ

काशी के सब ओर शैल के समान महा दुर्ग (बड़ाकोट) किया है ॥ ३५ ॥ और उन्होंने मत्स्योदरी के जलसे ढाबर गहरी खांई भी कियाहै फिर बाहर और भीतर बिचरनेवाली मत्स्योदरी दोभांति होगई है ॥ ३६ ॥ यह गंगाके जल से मिलाहुआ बड़ा तीर्थ कहागया याने प्रसिद्ध है जब उलटेमार्ग से याने दक्षिण प्र-वाहसे इस मत्स्योदरी में गंगा का जल पसरता है ॥ ३७ ॥ तब पुण्यकी गुरुता से मत्स्योदरी तीर्थ मिलताहै तब सूर्य्य व चन्द्रग्रहणपर्व सौ करोड़ गुणहै ॥ ३८ ॥ जब गंगाके सहित मत्स्योदरी होती है तब वहां हीं सब पर्व हैं व वहांहीं सब तीर्थ भी हैं और वहांहीं सब लिंगहैं ॥ ३९ ॥ व जहां कहीं भी मत्स्योदरी में स्नान किये

हुये जे मनुष्य पितरों को पिण्डदान करनेवाले हैं वे फिर माताके उदरमें सोनेहारे नहीं होतेहैं ॥ ४० ॥ और जब गंगाकाजल सब ओर पसराहुआ दीखता है तब यह अविमुक्तक्षेत्र मत्स्याकारताको प्राप्तहोताहै॥४१॥जे मनुष्य मत्स्योदरीमें स्नानकियेहुयेहैं वे नरोत्तमहैं और वे बहुतपापोंको करकेभी यमराजकी पुरीको नहीं देखते हैं ॥४२॥ बहुत से तीर्थों में स्नानकरके क्या है व दुष्कर तपस्या करके क्या है क्योंकि जो मत्स्योदरी नहाई गई तो गर्भका डर कहां है ॥ ४३ ॥ जहां जहांहीं मनुष्य देव और ऋषियों के किये हुये भी लिंगहैं वहां प्राप्तहोकर मत्स्योदरी में भलीभांति स्नान कियेहुआ मनुष्य मोक्षका पात्र होता है ॥ ४४ ॥ भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक में प्राप्त

विमुक्तमिदंक्षेत्रंमत्स्याकारत्वमाप्नुयात् ॥ परितःस्वर्धुनीवारिसंसारिपरिवीक्ष्यते ॥ ४१ ॥ मत्स्योदर्यांकृतस्नानायेनरास्तेनरोत्तमाः॥कृत्वापिबहुपापानिनेक्षन्तेभास्करेःपुरीम् ॥४२॥ किंस्नात्वाबहुतीर्थेषुकिंतप्त्वादुष्करंतपः॥ यदिमत्स्योदरीस्नाताकुतोगर्भभयंततः ॥ ४३ ॥ यत्रयत्रहिलिङ्गानिनृदेवर्षिकृतान्यपि ॥ तत्रमत्स्योदरींप्राप्यसुस्नातोमोक्षभाजनम् ॥४४॥ सन्तितीर्थान्यनेकानिभूर्भुवःस्वर्गतान्यपि ॥ नसमानिपरंतानिकोट्यंशेनापिनिश्चितम् ॥ ४५ ॥ इत्थंतीर्थंकृतंतेनविभोकैलासवासिना ॥ गणाधिपेनसुमहत्सुमहोदारकर्मणा ॥ ४६ ॥ भूर्भुवःसञ्ज्ञकंलिङ्गंपर्वताद्गन्धमादनात् ॥ स्वयमाविरभूदत्रतस्मात्प्राच्यांगणाधिपात् ॥४७॥ विलोक्यभूर्भुवंलिङ्गंभूर्भुवःस्वर्महःपरे ॥ निवसन्तिजनाःपुण्याःसुचिरंदिव्यभोगिनः ॥ ४८ ॥ हाटकेशंमहालिङ्गंभोगवत्यासमायुतम् ॥ सप्तपातालतलतइहायातंस्वयंविभो ॥ ४९ ॥ शेषवासुकिमुख्यैश्चतत्प्रासादोमहानिह ॥ मणिमाणिक्यरत्नौघैर्निरमायिप्रयत्नतः ॥ ५० ॥ तल्लिङ्गंहाटकमयंरत्नमा

भी अनेकों तीर्थ हैं परन्तु वे मत्स्योदरी के कोट्यंश के भी समान नहीं हैं यह निश्चय कियागया है ॥ ४५ ॥ हे विभो! बहुत बड़े उदार कर्मवाले उन कैलासवासी गणेश्वर ने इसभांति बहुतभारी तीर्थकिया ॥ ४६ ॥ व उनगणाधिप से पूर्व में गन्धमादन पर्वत से आकर भूर्भुवः संज्ञक लिंग आपही यहां प्रकट हुआहै ॥ ४७ ॥ पुण्यवान् जन भूर्भुवः संज्ञक लिंगको देखकर दिव्यभोग वाले होकर भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक और महर्लोक के ऊपर बहुत कालतक बसते हैं ॥ ४८ ॥ हे विभो! पाताल गंगा समेत हाटकेश्वर महालिंग आपही सात पाताल तलसे यहां आया है ॥ ४९ ॥ व शेष और वासुकी आदि नागोंने यहां बड़े यत्न से मणिमाणिक्य और रत्न समूहों

से उसका बड़ाभारी देवमन्दिर बनाया है ॥ ५० ॥ रत्नोंकी मालाओं से पूजित व सुवर्णमय वहलिंग ईशानेश्वर से पूर्व में बड़े यत्नसे पूजने योग्य है ॥ ५१ ॥ क्योंकि मनुष्य भक्तिसे उस लिंगको सबओर या सामने से पूजकर सबसमृद्धिवालाहो असंख्य भोगों को भोगकर अन्त में मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ और तारालोक आकाश से जो ज्योतिरूप लिंग यहां आया है वह तारकेश्वर लिंग ज्ञानवापी से पूर्वभाग में है ॥ ५३ ॥ ज्ञानवापी में स्नानकर और तारकेश्वर के दर्शनकर व उसलिंग की भलीभांति पूजासे मनुष्य तारक ज्ञानको प्राप्तहोवे ॥ ५४ ॥ व सन्ध्यादि नियम किये हुआ मौनव्रतधारी बुद्धिमान् मनुष्य पितरों का सबओर से तर्पणकर जबतक लिंग

लाभिरर्चितम्॥ईशानेश्वरतःप्राच्यांपूजनीयंप्रयत्नतः॥५१॥भक्तितोऽभ्यर्च्यतल्लिङ्गंनरःसर्वसमृद्धिमान् ॥ भुक्त्वाभोगानसंख्यातानन्तेनिर्वाणमृच्छति॥ ५२ ॥ आकाशात्तारकाल्लिङ्गंज्योतीरूपमिहागतम् ॥ ज्ञानवाप्याःपुरोभागेतल्लिङ्गंतारकेश्वरम् ॥ ५३ ॥ तारकंज्ञानमाप्येततल्लिङ्गस्यसमर्चनात् ॥ ज्ञानवाप्यांनरःस्नात्वातारकेशंविलोक्यच ॥ ५४ ॥ कृतसन्ध्यादिनियमःपरितर्प्यपितामहान् ॥ धृतमौनव्रतोधीमान्यावल्लिङ्गविलोकनम् ॥ ५५ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यःपुण्यंप्राप्नोतिशाश्वतम्॥प्रान्तेचतारकंज्ञानंयस्माज्ज्ञानाद्विमुच्यते ॥ ५६ ॥ किराताच्चकिरातेशइहचाविर्बभूवह ॥ किरातरूपोभगवान्यत्रदेवोऽभवत्पुरा ॥५७॥ तत्किरातेश्वरंलिङ्गंभारभूतेश्वरादनु॥ नमस्कृत्यनरोजातुनमातुरुदरेशयः॥५८॥ लङ्कापुर्याःसमागच्छन्मरुकेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ लिङ्गंयदर्चनात्पुंसांनभयंरक्षसाम्भवेत् ॥ ५९ ॥ नैर्ऋत्यांदिशितल्लिङ्गंनैर्ऋतेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ पौलस्त्यराघवात्पश्चात्पूजितंसर्वदुष्टहृत् ॥ ६० ॥ पुण्यंजलप्रियंलिङ्गंजललिङ्गस्थलादपि ॥ आ

का दर्शन करता है ॥ ५५ ॥ तबतक सब पापों से छूटजाता है व सदैव रहनेवाले अखण्ड पुण्यको प्राप्त होता है और अन्त में उस तारकज्ञान को प्राप्तहोता है कि जिस ज्ञान से मुक्त होता है ॥ ५६ ॥ व पूर्वकाल में जहां भगवान् महादेव जी किरातरूप हुये हैं उस किरात तीर्थ से आकर किरातेश्वर नामक लिंग यहां हर्ष से प्रकट हुआ है ॥ ५७ ॥ भारभूतेश्वर से पीछे उस किरातेश्वर लिंग के नमस्कार कर **मनुष्य** माताके गर्भ में सोनेवाला कभी नहीं होता है ॥ ५८ ॥ व जिस लिंगकी पूजासे लोगों को राक्षसों का डर न होवे वह मरुकेश्वर नामक लिंग लङ्कापुरी से यहां भलीभांति आया है ॥ ५९ ॥ और सब दुष्टोंका हर्ता वह नैर्ऋतेश्वर संज्ञक लिंग बिभीषण के

थापेहुये रामचन्द्रसे पीछे नैर्ऋत्यदिशामें पूजितहै ॥ ६० ॥ व स्थललिंगसे भी आयाहुआ जो जल प्रियलिंग मनोज्ञहै वह लिंग गंगाजलके बीचमें टिकाहै ॥ ६१ ॥ व सब धातुमय, सब रत्नमय, शुभ, श्रेष्ठ और अतिअद्भुत उस लिंगका मण्डप गंगाके मध्यमें देखपड़ताहै ॥ ६२ ॥ और आज भी वह लिंग मन्दिर पुण्यसमूहकी गुरुतासे किसीको देखपड़ताहै व कोटीश्वरतीर्थ से भी आयाहुआ जो श्रेष्ठलिंगहै ॥ ६३ ॥ उस लिंगके देखने से कोटिलिंगों के दर्शनका पुण्य होताहै और श्रेष्ठ सिद्धियों का बडा दाता वह श्रेष्ठलिंग ज्येष्ठेश्वरसे पीछे विराजमानहै ॥ ६४ ॥ व बड़वानलके मुखसे उत्पन्नहुआ अनलेश्वरनामकलिंग यहां नलेश्वरके अग्रभागमें पूजित और सब सिद्धियों

यातंतच्चगङ्गायाजलमध्येऽव्यवस्थितम् ॥ ६१ ॥ तत्प्रासादोऽद्भुततरोमध्येगङ्गंनिरीक्ष्यते ॥ सर्वधातुमयःश्रेष्ठःसर्वरत्नमयः शुभः ॥ ६२ ॥ अद्यापिदृश्यतेकैश्चित्पुण्यसम्भारगौरवात् ॥ श्रेष्ठंलिङ्गमिहायातंतीर्थात्कोटीश्वरादपि ॥ ६३ ॥ कोटिलि ङ्गेक्षणेपुण्यंतल्लिङ्गस्यनिरीक्षणात् ॥ श्रेष्ठंज्येष्ठेश्वरात्पश्चाच्छ्रेष्ठसिद्धिप्रदायकम् ॥ ६४ ॥ वडवास्यात्समुद्भूतंलिङ्गम त्रानलेश्वरम् ॥ नलेश्वरपुरोभागेपूजितंसर्वसिद्धिदम् ॥ ६५ ॥ आगत्यविरजस्तीर्थाद्देवदेवस्त्रिलोचनः ॥ लिङ्गेत्वनादिसंसि द्धेह्यवतस्थेत्रिविष्टपे ॥ ६६ ॥ पुण्येपिलिपिलातीर्थेसर्वेषान्तारकप्रदे ॥ आविश्चक्रेस्वयन्देवॐकारोमरकण्टकात् ॥ ६७ ॥ तदाद्यन्तारकक्षेत्रंयदागङ्गानचागता ॥ यदैवाविरभूत्काशीत्रैलोक्योद्धरणायवै ॥ ६८ ॥ तदाकृतिमहल्लिङ्गंस्वयमाविर भूत्ततः ॥ महिमानंनतस्यान्यःपरिवेत्तिविभोर्ऋते ॥ ६९ ॥ एतान्यायतनानीशआनिनायमहान्तिच ॥ शेषयित्वांश मात्रञ्चतस्मिन्क्षेत्रेनिजेनिजे ॥ ७० ॥ इहायातानिपुण्यानिसर्वभावेननान्यथा ॥ प्रासादाःसर्वतश्चैषांरम्याश्चभ्रंलि

का दायकहै ॥ ६५ ॥ व देवोंके देव त्रिलोचन महादेवजी विरजतीर्थ से आकर अनादि संसिद्ध त्रिविष्टपलिंगमेंही टिकेहैं ॥ ६६ ॥ और ॐकारनामक देवने आपही अमरकण्टकसे आकर सबके ज्ञानदायक मनोज्ञ, पिलपिला तीर्थमें आविर्भाव कियाहै ॥ ६७ ॥ किन्तु जब गंगा न आई थी और त्रिलोक तारने के लिये जबहीं काशी भी प्रकट हुईहै तबहीं वह आद्य लिंग प्रकटहुआहै जोकि ॐकारका स्थानहै ॥ ६८ ॥ और तब जो उसॐकारके आकारवाला महालिंग आपही प्रकटहुआहै उसकी महिमाको समर्थ शिवजी विना सब ओरसे अन्य कोई नहीं जानताहै ॥ ६९ ॥ हे ईश ! उस अपने अपने क्षेत्रमें अंशमात्रको शेष कराकर इन बड़े पूजनीय स्थानोंको मैं लायाहूं ॥ ७० ॥

हे विभो ! ये पुण्यस्थान सब भावसे यहां आये हैं अन्यथा नहीं और सब ओर रमणीक व आकाशके आस्वादन करनेवाले याने अधिक ऊंचे इनके देवालय बने हैं ॥ ७१ ॥ जोकि बहुत धातुओं से रचित विचित्र और सब रत्नोंसे अत्यन्त उज्ज्वलहैं जिनके कलशमात्रके दर्शनसे मुक्ति मिलतीहै ॥ ७२ ॥ और हे देवसत्तम ! संभावनाहै कि इन लिंगोंका नाममात्रभी सुनकर हजारो जन्मोकी उठीहुई पापोंकी राशियाँक्षीण होजाती हैं ॥ ७३ ॥ हे ईश्वर ! इस समय यहां क्या आज्ञाहै जोकि मेरे करने योग्यहै वह भी प्रसन्न कीजावे और सिद्धहोकर माननीयहै ॥ ७४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे कुम्भज ! इसप्रकार नंदीश्वरका वचन सुनकर देवदेवोंके स्वामी शिवजी

हाविभो ॥ ७१ ॥ बहुधातुमयाश्चित्राःसर्वरत्नसमुज्ज्वलाः ॥ येषांकलशमात्रस्यदर्शनान्मुक्तिराप्यते ॥ ७२ ॥ श्रुत्वापि नामचैतेषांलिङ्गानांसुरसत्तम ॥ अपिजन्मसहस्रोत्थाःक्षीयन्तेपापराशयः ॥ ७३ ॥ इदानींकोनिदेशोत्रमयानुष्ठेयईशितः ॥ प्रसादीक्रियतांसोपिसिद्धोमन्तव्यएवहि ॥ ७४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ श्रुत्वेतिनन्दिनोवाक्यंदेवदेवेश्वरोहरः ॥ श्रद्धाप्रसाद्यशैलादिमिदम्प्रोवाचकुम्भज ॥ ७५ ॥ श्रीदेवदेवउवाच ॥ साधूक्तन्त्वयानन्दिन्सदानन्दविधायक ॥ विधेहिमे निदेशञ्चचण्डीव्यापारयाधुना ॥ ७६ ॥ नवकोट्यस्तुचामुण्डायायत्रनिवसन्तिहि ॥ स्वदेवताभिःसहिताभूतवेतालभैरवैः ॥ ७७ ॥ ताःपुरीरक्षणार्थायसवाहनबलायुधाः ॥ प्रतिदुर्गन्दुर्गरूपाःपरितःपरिवासय ॥ ७८ ॥ स्कन्दउवाच ॥ नन्दिनंसंनिदेश्येतिमृडान्यासहितोमृडः ॥ ययौत्रैविष्टपंक्षेत्रंमुक्तिबीजप्ररोहणम् ॥ ७९ ॥ शिलादतनयोप्यैशींमूर्द्धन्याज्ञां

श्रद्धासे प्रसादके योग्य शिलादपुत्र नंदीसे यह बोले ॥ ७५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे सदा आनन्दकारिन्, नन्दिन् ! तुमने बहुत अच्छाकिया और इससमय मेरा आयसु करो कि चण्डिकाओंको व्यापार कराओ याने पठाओ ॥ ७६ ॥ भूत वेताल भैरव और अपने देवताओंसमेत जे नवकरोड़ चामुंडा देवियां जहां निवासकरती हैं ॥ ७७ ॥ जोकि वाहन बल और आयुधसहित व उग्ररूपाहैं उनको पुरीकी रक्षाके अर्थ प्रतिदुर्गोंमें सब ओरसे बसावो ॥ ७८ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि पार्वतीसमेत शिवजी इस प्रकार नंदीश्वरको भलीभांति आज्ञादेकर मोक्षबीजके जमानेवाले त्रैविष्टपक्षेत्रको चलेगये ॥ ७९ ॥ और शिलादकेपुत्र नंदीश्वरने भी परमेश्वरकी आज्ञाको शिरधर

सब ओरसे दुर्गाओंको बुलाकर प्रतिकोटों में निवासकराया ॥ ८० ॥ पुण्यस्थानगर्भवाले इस अध्यायको श्रद्धासे सुनकर मनुष्य क्रमसे स्वर्ग और मोक्षको प्राप्तहोवें ॥ ८१ ॥ व बड़े देवस्थानोंका आश्रय करनेहारी इस अडसठ संख्याको भी सुनकर मनुष्य माताकी उदर सम्बन्धिनी कन्दरामें कभी न पैठे याने फिर गर्भमें न बसे ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेअष्टषष्ट्यायतनसमागमोनामैकोनसप्ततितमोध्यायः ॥ ६९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० सत्तरिके अध्यायमें चण्डी थापन उक्त। वेतालादिसमेत अरु सब परिवार सुयुक्त ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे पार्वतीके पुत्र श्रीकार्त्तिकेयजी! विश्वके आनन्ददा-

विधायच ॥ आहूयसर्वतोदुर्गाःप्रतिदुर्गेन्यवेशयत ॥ ८० ॥ निशम्याध्यायमेतञ्चपुण्यायतनगर्भिणम् ॥ नरःस्वर्गापवर्गौचप्राप्नुयाच्छ्रद्धयाक्रमात् ॥ ८१ ॥ श्रुत्वाष्टषष्टिमेतांवैमहायतनसंश्रयाम् ॥ नजातुप्रविशेन्मर्त्योजनन्याजाठरीन्दरीम् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेअष्टषष्ट्यायतनसमागमोनामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ कात्यायनेयकथयनन्दिनाविश्वनन्दिना ॥ यथाऽव्यापारितादेव्योदेवदेवनिदेशतः ॥ १ ॥ अविमुक्तस्यरक्षार्थंयत्रयादेवताःस्थिताः ॥ प्रसादंकुरुमेदेवताःसमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ २ ॥ इत्यगस्त्युदितंश्रुत्वामहादेवतनूद्भवः ॥ कथयामासयायत्रस्थिताऽऽनन्दवनेमुदा ॥ ३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ वाराणस्यांविशालाक्षीक्षेत्रस्यपरमेष्टदा ॥ विशालतीर्थंगङ्गायांकृत्वापृष्ठेऽव्यवस्थिता ॥ ४ ॥ स्नात्वाविशालतीर्थैवैविशालाक्षीम्प्रणम्यच ॥ विशालांलभतेलक्ष्मीम्पर

यक नन्दीश्वरने जैसे श्रीमहादेवजीकी आज्ञासे देवियोंको व्यापार कराया वैसेही आप कहो ॥ १ ॥ हे देव ! मुझपर प्रसन्नता करो कि काशीकी रक्षाकेलिये जहां जे देवता टिकी हैं उनको तत्त्वसे भलीभांति वर्णनकरो ॥ २ ॥ इस प्रकार अगस्त्यमुनिका वचन सुनकर महादेवजीके अंगसे उपजेहुये कार्त्तिकेयजी ने उन देवताओंको वहांपर कहा जोकि आनन्दवनमें जहां आनन्दसे टिकीहैं ॥ ३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि क्षेत्रकी अधिक उत्तम इष्ट देनेवाली विशालाक्षी देवी काशीके बीच गंगामें विशालतीर्थ को कर पीछे से उसके भीतरटिकी हैं ॥ ४ ॥ उससे मनुष्य विशालतीर्थ में स्नानकर व श्रीविशालाक्षी देवी को प्रणामकर इस और उस लोकमें भी

सुख देनेवाली विशाल सम्पत्तिको पावे ॥ ५ ॥ व भादोंबदी तीजमें श्रीविशालाक्षी देवीके समीप रात्रिमें जागरणकर उपवासमें परायण मनुष्योंको॥६॥ प्रातःकाल यथाशक्ति माला वस्त्र और अलंकारों से भूषित चौदह कुमारियोंका बड़े यत्नसे भोजन कराना चाहिये ॥ ७ ॥ हे कुम्भज ! उसके बाद पारणकर पुत्र और सेवकसमेत साधकोंको भली भांति काशीवासका फल मिले ॥ ८ ॥ और उस तिथिमें उपसर्गोंके नाशके अर्थ व मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये क्षेत्रवासियोंको महायात्रा करना चाहिये ॥ ९ ॥ व काशीमें बड़े यत्नपूर्वक धूप, दीप, शुभ माल्य और मनोहर नैवेद्यों से विशालाक्षीदेवी पूजने योग्यहैं ॥१०॥ और मणिमुक्ता आदि भूषण, विचित्र वितान,शुभ चामर और सुगन्धों

त्रेहचशर्मदाम् ॥ ५ ॥ भाद्रकृष्णतृतीयायामुपोषणपरैर्नृभिः ॥ कृत्वाजागरणंरात्रौविशालाक्षीसमीपतः ॥ ६ ॥ प्रात र्भोज्याःप्रयत्नेनचतुर्दशकुमारिकाः॥अलंकृतायथाशक्त्यास्रगम्बरविभूषणैः ॥ ७ ॥ विधायपारणम्पश्चात्पुत्रभृत्यस मन्वितैः ॥ सम्यग्वाराणसीवासफलंलभ्येतकुम्भज ॥ ८ ॥ तस्यान्तिथौमहायात्राकार्याक्षेत्रनिवासिभिः ॥ उपसर्गप्र शान्त्यर्थंनिर्वाणकमलाप्तये ॥ ९ ॥ वाराणस्यांविशालाक्षीपूजनीयाप्रयत्नतः ॥ धूपैर्दीपैःशुभैर्माल्यैरुपहारैर्मनोहरैः ॥ १० ॥ मणिमुक्ताद्यलङ्कारैर्विचित्रोल्लोचचामरैः ॥ शुभैरनुपभुक्तैश्चदुकूलैर्गन्धवासितैः ॥ ११ ॥ मोक्षलक्ष्मीसमृद्ध्यर्थंय त्रकुत्रनिवासिभिः ॥ अप्यल्पमपियद्दत्तंविशालाक्ष्यैनरोत्तमैः ॥ १२ ॥ तदानन्त्यायजायेतमुनेलोकद्वयेपिहि ॥ विशा लाक्षीमहापीठेदत्तंजप्तंहुतंस्तुतम् ॥ १३ ॥ मोक्षस्तस्यपरीपाकोनात्रकार्याविचारणा ॥ विशालाक्षीसमर्चातोरूपसम्प त्तियुक्पतिः ॥ १४ ॥ प्राप्यतेत्रकुमारीभिर्गुणशीलाद्यलंकृतः ॥ गुर्विणीभिःसुतनयोबन्ध्याभिर्गर्भसम्भवः ॥ १५ ॥ अ

से वासित नवीन वस्त्रोंसे भी पूजने योग्यहैं ॥ ११ ॥ व जहाँ कहीं के निवासी नरोत्तमों ने भी मोक्षलक्ष्मी समृद्धिके अर्थ विशालाक्षी देवीकेलिये जो थोड़ा भी दिया ॥ १२ ॥ वह दोनों लोकोंमें भी आनन्त्यके लियेहोजावे है हे मुने ! जिससे विशालाक्षीके महास्थान में जो कुछ दान जप होम और स्तवन कियागया ॥ १३ ॥ उसका फल मोक्ष है इस में विचार न करना चाहिये और श्रीविशालाक्षी देवी के भलीभांति पूजने से सुन्दरता सम्पत्ति संयुत पति ॥ १४ ॥ जो कि गुण और सुशील या सदा-

चारोंसे भूषित है वह यहां कुमारियों से प्राप्त किया जाता है व गर्भिणीस्त्रियों को सुपुत्र बन्ध्याओं को गर्भका सम्भव॥ १५ ॥ और दुर्भगाओं को बडी सौभाग्य मिल-तीहै व विधवाओंका फिर जन्मांतरमें वैधव्य कहीं नहीं होताहै ॥ १६ ॥ स्त्री व मुक्तिचाहनेवाले पुरुषोंसे भी काशीमें सुनी देखी और पूजीहुई विशालाक्षी देवी अभि-लाष के देनेवाली है ॥ १७ ॥ व उससे अन्य जो ललितातीर्थ गंगाकेशव के समीपहै उसमें क्षेत्रकी रक्षा करनेवाली उत्तम ललिता देवी है ॥ १८ ॥ और वह सब सम्पत्तिकी समृद्धिके लिये पूजने योग्यहै व ललिताके पूजकोंको विघ्न कभीनहीं होताहै ॥ १९ ॥ व स्त्री और पुरुषभी आश्विन बदी द्वितीया में ललिता देवीको सब

सौभाग्यवतीभिश्चसौभाग्यंमहदाप्यते॥ विधवाभिर्नवैधव्यंपुनर्जन्मान्तरेक्वचित् ॥ १६ ॥ सीमन्तिनीभिःपुम्भिर्वापरं निर्वाणमिच्छुभिः ॥ श्रुतादृष्टार्चिताकाश्यांविशालाक्ष्यभिलाषदा॥ १७॥ ततोन्यल्ललितातीर्थंगङ्गाकेशवसंन्निधौ ॥ तत्रास्तिललितादेवीक्षेत्ररक्षाकरीपरा ॥ १८ ॥ साचपूज्याप्रयत्नेनसर्वसम्पत्समृद्धये ॥ ललितापूजकानाञ्चजातुविघ्नोन जायते ॥ १९ ॥ इषेकृष्णद्वितीयायांललिताम्परिपूज्यवै ॥ नारीवापुरुषोवापिलभतेवाञ्छितम्पदम् ॥ २० ॥ स्नात्वाच ललितातीर्थेललिताम्प्रणिपत्यवै ॥ लभेत्सर्वत्रलालित्यंयद्यातद्याऽनुलप्यच ॥ २१ ॥ मुनेविश्वभुजागौरीविशालाक्षी पुरःस्थिता॥ संहरन्तीमहाविघ्नंक्षेत्रभक्तिजुषांसदा॥ २२ ॥ शारदंनवरात्रञ्चकार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ देव्याविश्वभुजा यावैसर्वकामसमृद्धये ॥ २३ ॥ योनविश्वभुजांदेवींवाराणस्यांनमेन्नरः॥ कुतोमहोपसर्गेभ्यस्तस्यशान्तिर्दुरात्मनः॥ २४ ॥ यैस्तुविश्वभुजादेवीवाराणस्यांस्तुतार्चिता॥ नहि तान्विघ्नसङ्घातोबाधतेसुकृतात्मनः॥ २५ ॥ अन्यास्तिकास्यां

और से पूजकर निश्चय से वाञ्छित पदपाता है॥ २० ॥ और ललितातीर्थ में स्नान करव जोकुछ हो वह स्तुतिकर व ललिताके प्रणाम भी कर सर्वत्र सौभाग्य को पावे ॥ २१ ॥ हे मुने ! क्षेत्र भक्तिसेवी लोगों को बड़े विघ्नको सदा विदारती हुई विश्वभुजादेवी विशालाक्षी के आगे टिकी है ॥ २२ ॥ और शरदऋतु के नवरात्रमें विश्वभुजादेवीकी भी यात्रा सब कामोंकी समृद्धिके लिये बड़े यत्नसे करने योग्य है ॥२३॥ क्योंकि जो मनुष्य काशीमें विश्वभुजा देवीके प्रणाम न करे उस दुरात्मा की बड़े उपसर्गों से शान्ति कैसे होवे ॥ २४ ॥ और जिन्होंने काशी में विश्वभुजा देवी की स्तुति व पूजा किया उन पुण्यात्माओंको विघ्नसमूह नहीं बाधता है ॥२५॥

व काशी में ऋतुवाराह के समीप जो अन्य वाराही देवी है उसको भक्तिसे प्रणामकर मनुष्य विपत्तिसमुद्र में नहीं डूबता है ॥ २६ ॥ और काशी की रक्षाके अर्थ उठाये हुये त्रिशूल से वैरियोंके तर्जनेवाली व विपत्तिकी विनाशिनी शिवदूती भी वहांही देखने योग्य है ॥ २७ ॥ तथा गजराज रथपर टिकीहुई व सदासम्पत्ति कारिणी व वज्रहस्ता ऐंद्रीदेवी इन्द्रेश्वरसे दक्षिणभागमें पूजित है ॥ २८ ॥ व मयूरवाहनवाली कौमारीदेवी महाफल समृद्धिके लिये स्कन्देश्वरके समीप में बड़े यत्नसे देखने योग्य है ॥ २९ ॥ व महाधर्म की समृद्धि देनेहारी वृषभ सवारी वारी माहेश्वरी देवी महेश्वर से दक्षिण में मनुष्यों से पूजनीय है ॥ ३० ॥ और चमकते हुये

वाराहीक्रतुवाराहसन्निधौ ॥ ताम्प्रणम्यनरोभक्त्याविपदब्धौ न मज्जति ॥ २६ ॥ शिवदूतीतुतत्रैवद्रष्टव्याऽऽपद्विनाशिनी ॥ आनन्दवनरक्षार्थमुद्यच्छूलारितर्जनी ॥ २७ ॥ वज्रहस्तातथाचैन्द्रीगजराजरथास्थिता ॥ इन्द्रेशाद्दक्षिणेभागेऽर्चितासम्पत्करीसदा ॥ २८ ॥ स्कन्देश्वरसमीपेतुकौमारीबर्हियानगा ॥ प्रेक्षणीयाप्रयत्नेनमहाफलसमृद्धये ॥ २९ ॥ महेश्वराद्दक्षिणतोदेवीमाहेश्वरीनरैः ॥ वृषयानवतीपूज्यामहावृषसमृद्धिदा ॥ ३० ॥ निर्वाणनरसिंहस्यसमीपेमोक्षकांक्षिभिः ॥ नारसिंहीसमर्च्याचसमुद्यच्चक्ररम्यदोः ॥ ३१ ॥ हंसयानवतीब्राह्मीब्रह्मेशात्पश्चिमेस्थिता ॥ गलत्कमण्डलुजलचुलुकाताडिताहिता ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविद्याप्रबोधार्थंकाश्याम्पूज्यादिनेदिने ॥ ब्राह्मणैर्यतिभिर्नित्यंनिजतत्त्वावबोधिभिः ॥ ३३ ॥ शार्ङ्गचापविनिर्मुक्तमहेषुभिरितस्ततः ॥ उत्सादयन्तीम्प्रत्यूहान्काश्यांनारायणींश्रयेत् ॥ ३४ ॥ प्रतीच्याङ्गोपिगोविन्दाद्भ्राम्यच्चक्रोच्चतर्जनीम् ॥ नारायणींयःप्रणमेत्तस्यकाश्यांमहोदयः ॥ ३५ ॥ ततोगौरींविरूपाक्षीं

चक्रसे रमणीक बाहुवाली नारसिंही देवी मोक्षचाहियोंसे निर्वाण नरसिंह के समीप पूजने योग्यहै ॥ ३१ ॥ व झिरतेहुये कमण्डलुजल के चुलुकसे शत्रुसंहारिणी हंस वाहनवाली ब्राह्मीदेवी ब्रह्मेश्वर से पश्चिम में टिकी है ॥ ३२ ॥ जोकिकाशी में ब्रह्म विद्याके बड़े बोधके अर्थ ब्रह्मज्ञानी संन्यासी ब्राह्मणोंसे दिनोदिन नित्यही पूजनीय है ॥ ३३ ॥ शार्ङ्गधन्वा से छूटेहुये बड़े वाणों से ऐसी वैसी विघ्नोंको उखाडती हुई नारायणी को काशी में सेवन करे ॥ ३४ ॥ जो काशी में गोपि गोविन्दसे पश्चिममें भ्रमाये हुये चक्रसे ऊंची तर्जनी वाली नारायणी के प्रणाम करे उसका महोदयहोवे ॥ ३५ ॥ उसके अनन्तर देवयानीसे उत्तरदिशामे विरूपाक्षी

देवीकी पूजाकर भक्तिसंयुत मनुष्य वांछित लक्ष्मीको पाताहै ॥ ३६ ॥ और उत्पातों से उपजेहुये दोषको तर्जतीहुई शैलेश्वर के समीपमें प्राप्त शैलेश्वरी देवी भलीभांति पूजने योग्यहै ॥ ३७ ॥ व मनुष्यों के विचित्र फलदायक चित्रकूपमें नर स्नानकर और चित्रगुप्तेश्वरके दर्शनकर व चित्रघंटाकी बड़ी पूजाकर ॥ ३८ ॥ अथवा जो नर बहुत पापों से संयुत भी व धर्ममार्ग को त्यागेहुये भी चित्रघंटाका पूजक है वह चित्रगुप्तके लिखने योग्य न होवे ॥ ३९ ॥ और जो स्त्री व पुरुषभी काशीमें चित्रघंटाको न पूजे उसको क्षण क्षणमें हजारों विघ्नसेवते हैं ॥ ४० ॥ चैत्रसुदी तीजमें बड़े यत्नसे यात्रा करना चाहिये तथा रात्रिमें जागरण और महा

देवयान्याउदग्दिशि ॥ पूजयित्वानरोभक्त्यावाञ्छितांलभतेश्रियम् ॥ ३६ ॥ शैलेश्वरीसमभ्यर्च्याशैलेश्वरसमीपगा ॥ तर्जयन्तीचतर्जन्यासंसर्गमुपसर्गजम् ॥ ३७ ॥ चित्रकूपेनरःस्नात्वाविचित्रफलदेनृणाम्॥चित्रगुप्तेश्वरंवीक्ष्यचित्रघण्टाम्प्रपूज्यच ॥ ३८ ॥ बहुपातकयुक्तोपित्यक्तधर्मपथोपिवा ॥ नचित्रगुप्तलेख्यःस्याच्चित्रघण्टार्चकोनरः ॥ ३९ ॥ योषिद्वापुरुषोवापिचित्रघण्टांनयोर्चयेत् ॥ काश्यांविघ्नसहस्राणितंसेवन्तेपदेपदे ॥ ४० ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायांकार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ महामहोत्सवःकार्योनिशिजागरणन्तथा ॥ ४१ ॥ महापूजोपकरणैश्चित्रघण्टांसमर्च्यच ॥ शृणोतिनान्तकस्येहघण्टांमहिषकण्ठगाम् ॥ ४२ ॥ चित्राङ्गदेश्वरप्राच्यांचित्रग्रीवाम्प्रणम्यच ॥ नजातुजन्तुर्वीक्षेतविचित्रांयमयातनाम् ॥ ४३ ॥ भद्रकालींनरोदृष्ट्वानाभद्रम्पश्यतिकचित ॥ भद्रनागस्यपुरतोभद्रवाप्यांकृतोदकः ॥ ४४ ॥ हरसिद्धिंप्रयत्नेनपूजयित्वानरोत्तमः ॥ महासिद्धिमवाप्नोतिप्राच्यांसिद्धिविनायकात् ॥ ४५ ॥ विधिंसम्पूज्यविधिवद्विविधैरुपहा

महोत्सव करना चाहिये ॥ ४१ ॥ और महापूजाकी सामग्रियों से यहां चित्रघंटाकी भलीभांति पूजाकर यमराजके महिषकी कंठगामिनी घंटाका शब्द नहीं सुनताहै ॥ ४२ ॥ व चित्रांगदेश्वर के पूर्वमें चित्रग्रीवाको प्रणामकर मनुष्यादि जंतु विचित्र यमयातनाको न देखे ॥ ४३ ॥ भद्रनाग के आगे भद्रवापी में जल क्रिया कियेहुआ मनुष्य भद्रकाली को देखकर अमंगलको कहीं नहीं देखताहै ॥ ४४ ॥ और सिद्धि विनायक से पूर्वमें बड़े यत्नसे हरसिद्धिकी पूजाकर नरोत्तम महासिद्धि को प्राप्तहोता

है विधिपूर्वक अनेक भांतिके उपहारोंसे विधीश्वरके समीपमें प्राप्त विधिकी भलीभांति पूजाकर बहुतप्रकार की सिद्धि को पाताहै ॥ ४५ । ४६ ॥ व प्रयागतीर्थ में अच्छे प्रकार नहायेहुआ मनुष्य निगडभंजनी देवीका पूजनकर लोहकी जंजीरोंसे कभी नहीं संपीड़ित होताहै ॥ ४७ ॥ बंदीछुड़ाने की कामना से मंगलवारमें एकबार भोजनकर यहां भक्ति से निगडभंजनी देवी सदा पूजनीय है ॥ ४८ ॥ क्योंकि पूजी हुई वह बंदीदेवी संसार बंधनके विच्छेद कोभी देतीहै और उसके संपूजनसे शृंखला (जंजीर) आदिकोंकी क्या गणना है ॥ ४९ ॥ व श्रद्धासे बंदीके पदसेवी पुरुषोंका जो प्याराजन दूरवासीभी है वहभी शीघ्रही भलीभांति समीपमें आवेगा इसमें

रकैः ॥ विविधांलभतेसिद्धिंविधीश्वरसमीपगाम् ॥ ४६ ॥ प्रयागतीर्थेसुस्नातोजनोनिगडभञ्जनीम् ॥ समाजयित्वानो जातुनिगडैःपरिबाध्यते ॥ ४७ ॥ भौमवारेसदापूज्यादेवीनिगडभञ्जनी ॥ कृत्वैकभुक्तंभक्त्यात्रबन्दीमोक्षणकाम्यया ॥ ४८ ॥ संसारबन्धविच्छित्तिमपियच्छतिसार्चिता ॥ गणनाशृङ्खलादीनांकाचतस्याःसमर्चनात् ॥ ४९ ॥ दूरस्थोपिहि योबन्धुःसोपिक्षिप्रंसमेष्यति ॥ बन्दीपदजुषांपुंसांश्रद्धयानात्रसंशयः ॥ ५० ॥ किञ्चिन्नियममालम्ब्ययदिसापरिषेविता ॥ कामान्पूरयतिक्षिप्रंकाशीसन्देहहारिणी ॥ ५१ ॥ घनटङ्ककरादेवीभक्तबन्धनभेदिनी ॥ कङ्कन्नपूरयेत्कामंतीर्थराजसमीपगा ॥ ५२ ॥ देवीपशुपतेःपश्चादमृतेश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वाचैवामृतेकूपेनमनीयाप्रयत्नतः ॥ ५३ ॥ पूजयित्वानरोभक्त्या देवताममृतेश्वरीम् ॥ अमृतत्वंभजेदेवतत्पादाम्बुजसेवनात् ॥ ५४ ॥ धारयन्तींमहामायाममृतस्यकमण्डलुम् ॥ दक्षिणेऽभयदांवामेध्यात्वाकोनाऽमृतत्त्वभाक् ॥ ५५ ॥ सिद्धलक्ष्मीजगद्धात्रीप्रतीच्याममृतेश्वरात् ॥ प्रपिता

संशय नहीं है ॥ ५० ॥ काशीमें मरने से मुक्तिहै या नहीं है इत्यादि संदेह के हरनेहारी वह देवी जो कुछेक नियमका आलम्बनकर सब ओरसे पूजीगई या सेवित हुई तो शीघ्रही कामोंको पूर्णकरतीहै ॥ ५१ ॥ प्रयागके निकटमें प्राप्त व मुद्गर और टांकी हाथवाली भक्तबंधनविदारिणी बंदीदेवी किस किस कामको न पूर्णकरे ॥ ५२ ॥ और अमृतेश्वरसे पीछे अमृत कूपमें स्नानकर बड़े यत्नसे अमृतेश्वरी देवी नमस्कार करने के योग्यहै ॥ ५३ ॥ क्योंकि भक्तिसे अमृतेश्वरी देवताको पूजकर मनुष्य उसके चरणारविंदोंकी सेवासे मोक्षको भी सेवैहै ॥ ५४ ॥ दक्षिण हाथमें अमृतसेभरा कमंडलु और बायेंमें अभय देनेवाली मुद्राको धारतीहुई महामायाका ध्यानकर कौ-

न जन मोक्षसेवी नहीं होता है ॥ ५५ ॥ अमृतेश्वरसे पश्चिम प्रपितामह लिंगके आगे जगत्की धात्री सिद्धि लक्ष्मी पूजित होकर सिद्धि देनेवाली है ॥ ५६ ॥ और कमलाकार बनेहुये लक्ष्मी विलासनामक सिद्ध लक्ष्मीके मंदिर को देखकर कौनजन लक्ष्मीको न पावे ॥ ५७ ॥ उसके बाद प्रपितामह लिंग से पश्चिम नल कूबर लिंगके अग्रभाग में जगत्की माता कुब्जा पूजनीयहै ॥ ५८ ॥ और जिससे पूजी हुई कुब्जादेवी सम्पूर्ण उत्पातोंको हरलेतीहै उससे काशीमें बड़े यत्नसे शुभार्थियों करके कुब्जा पूजने योग्य है ॥ ५९ ॥ व नलकूबर लिंगसे पश्चिममें कुब्जाम्बरेश्वर लिंगहै वहां अभीष्ट देनेवाली त्रिलोक सुंदरी गौरी पूजनीयहै ॥ ६० ॥ क्योंकि त्रि-

महलिङ्गस्यपुरतःसिद्धिदार्चिता ॥५६॥ प्रासादंसिद्धलक्ष्म्याश्च विलोक्यकमलाकृतिम् ॥ लक्ष्मीविलाससञ्ज्ञंचकोनलक्ष्मींसमाप्नुयात् ॥ ५७ ॥ ततःकुब्जाजगन्मातानलकूबरलिङ्गतः ॥ पूजनीयापुरोभागेप्रपितामहपश्चिमे ॥ ५८ ॥ उपसर्गानशेषांश्चकुब्जाहरतिपूजिता ॥ तस्मात्कुब्जाप्रयत्नेनपूज्याकाश्यांशुभार्थिभिः ॥५९॥ कुब्जाम्बरेश्वरंलिङ्गंनलकूबरपश्चिमे ॥ त्रिलोकसुन्दरीगौरीतत्राचर्याभीष्टदायिनी ॥ ६० ॥ त्रिलोकसुन्दरीसिद्धिंदद्यात्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥ वैधव्यंनाप्यतेक्वापितस्यादेव्याःसमर्चनात् ॥ ६१ ॥ दीप्तानाममहाशक्तिःसाम्बादित्यसमीपगा ॥ देदीप्यमानलक्ष्मीकाजायन्तेतत्समर्चनात् ॥ ६२ ॥ श्रीकण्ठमन्निधौदेवीमहालक्ष्मीर्जगज्जनिः ॥ स्नात्वाश्रीकुण्डतीर्थेतुसमर्च्याजगदम्बिका ॥ ६३ ॥ पितॄन्सन्तर्प्यविधिवत्तीर्थेश्रीकुण्डसञ्ज्ञिते ॥ दत्त्वादानानिविधिवन्नलक्ष्म्यापरिमुच्यते ॥ ६४ ॥ लक्ष्मीक्षेत्रंमहापीठंसाधकस्यैवसिद्धिदम् ॥ साधकस्तत्रमन्त्रांश्चनरःसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥ सन्तिपीठान्यनेकानिकाश्यांसि

लोकसुंदरी देवी त्रैलोक्य में सुंदरी सिद्धिको देतीहै और उस देवीकेभलीभांति पूजनसे विधवापन कहीं नही मिलताहै ॥ ६१ ॥ व साम्बादित्य के समीपगत जो दीप्तानाम महाशक्ति है उसकी भलीभांति पूजासे जन जगमगाती ज्योतिवाले होजाते हैं ॥६२॥ व श्रीकंठके समीप श्रीकुंडतीर्थ में स्नानकर जगत्की उपजानेवाली जगदंबा महा लक्ष्मी देवी भलीभांति पूजने योग्यहै ॥ ६३ ॥ व श्रीकुंड तीर्थमें पितरोंका विधिवत् भलीभांति तर्पणकर और विधिके समान दानदेकर लक्ष्मीसे नहीं छूटताहै ॥ ६४ ॥ जोकि लक्ष्मीक्षेत्र महापीठ साधनेवालेका महासिद्धिदायक है वहां साधक मनुष्य मंत्रों और सिद्धि को पावे याने प्राप्तहोवे ॥ ६५ ॥व काशीमें सिद्धिकर्त्ता अनेक क्षेत्र

हैं परंतु महालक्ष्मी पीठके समान लक्ष्मी करनेवाला अन्य नहीं है ॥ ६६ ॥ यहां विधिवत् भलीभांति पूजीहुई लक्ष्मीजी महालक्ष्मीकी अष्टमीको प्राप्तहोकर वहां यात्राकरनेवाले मनुष्योंके घरको नहीं छोड़ती हैं याने उनके घरमें सदैव संपत्ति बनी रहतीहै ॥ ६७ ॥ और महालक्ष्मीसे उत्तरमें कुठार धारनेहारी हयकंठी देवी काशीके विघ्नरूप बड़े वृक्षोंको प्रतिदिन छेदनकरती है ॥ ६८ ॥ व महालक्ष्मीसे दक्षिणमें टिकीहुई पाशहस्ता कौर्मीशक्ति इसक्षेत्रके विघ्नसमूहको प्रतिक्षण बांधलेती है ॥६९॥ और मनुष्योंसे पूजी व प्रशंसीहुई वह क्षेत्रकी सिद्धिको बहुतही देतीहै और वायव्य कोणमें क्षेत्रकी रक्षाकरनेवाली व शक्तियोंमें श्रेष्ठ शिखीचंडीहै ॥ ७० ॥ जोकि विघ्नस-

द्धिकराण्यपि ॥ महालक्ष्मीपीठसमंनान्यल्लक्ष्मीकरंपरम् ॥ ६६ ॥ महालक्ष्म्यष्टमींप्राप्यतत्रयात्राकृतांनृणाम् ॥ सम्पूजितेहविधिवत्पद्मासद्मनमुञ्चति ॥ ६७ ॥ उत्तरेतुमहालक्ष्म्याहयकण्ठीकुठारधृक् ॥ काशीविघ्नमहावृक्षांश्छिनत्ति प्रतिवासरम् ॥ ६८ ॥ कौर्मीशक्तिर्महालक्ष्मीर्दक्षिणेपाशपाणिका॥बध्नातिविघ्नसंघातंक्षेत्रस्यास्यप्रतिक्षणम्॥६९॥ सापूजितास्तुतामर्त्यैःक्षेत्रसिद्धिंप्रयच्छति॥ वायव्यांचशिखीचण्डी क्षेत्ररक्षाकरीपरा ॥ ७० ॥ खादन्तीविघ्नसंघातं शिखीशब्दंकरोतिच ॥ तस्याःसंदर्शनात्पुंसांनश्यन्तिव्याधयोखिलाः ॥ ७१ ॥ भीमचण्ड्युत्तरद्वारंसदारक्षेदतन्द्रिता ॥ भीमेश्वरस्यपुरतःपाशमुद्गरधारिणीम् ॥ ७२ ॥ भीमचण्डींनरोदृष्ट्वा भीमकुण्डेकृतोदकः ॥ भीमाकृतीन्नवैपश्येद्याम्यान्दूतान्क्वचित्कृती ॥ ७३ ॥ छागवक्त्रेश्वरीदेवीदक्षिणेवृषभध्वजात् ॥ अहर्निशम्भक्षयतिविघ्नौघतरुपल्लवान् ॥ ७४ ॥ तस्यादेव्याःप्रसादेनकाशीवासःप्रलभ्यते ॥ अतश्छागेश्वरींदेवीं महाष्टम्यांप्रपूजयेत् ॥ ७५ ॥ तालजङ्घे

मूहको खातीहुई मयूरका सा शब्दकरती है उसका भलीभांति दर्शन करनेसे मनुष्योंके सम्पूर्ण रोगनष्ट होजातेहैं ॥ ७१ ॥ व आलस्यसे रहित भीमचंडीदेवी सदा उत्तर द्वारकी रक्षाकरे है भीमेश्वरके आगे पाशमुद्गरधारिणी ॥ ७२ ॥ भीमचंडीको देखकर भीमकुंडमें स्नानादि जलक्रिया कियेहुआ पुण्यात्मा नर यमराजके भयंकर देहवाले दूतोंको कहीं भी नहीं देखे॥७३॥ व वृषभध्वजसे दक्षिणमें छागवक्त्रेश्वरीदेवी दिनोरात् विघ्नसमूह वृक्षोंके पल्लवोंको खा डालती है ॥ ७४ ॥ जिससे उस देवीकी प्रसन्नतासे

काशी का वास बहुत मिलता है इस लिये आश्विनसुदी अष्टमी में छागेश्वरी देवीकी बडी पूजाकरे ॥ ७५ ॥ व ताडके वृक्षका हथियार किये हुई तालजंघेश्वरी देवी काशी के मध्यगत विघ्नसमूहों को उखाड़कर बाहर बहादेती है ॥ ७६ ॥ संगमेश्वर लिङ्गके दक्षिणमें विकटमुखी तालजंघेश्वरी के नमस्कारकर विघ्नोंसे तिरस्कृत नहीं होताहै ॥ ७७ ॥ व उद्दालकेश्वर लिङ्ग से दक्षिण में उद्दालक नामक तीर्थ में यमदंष्ट्रानाम्नी देवी विघ्नों के समूहको चबाती है ॥ ७८ ॥ व पापों का समूह करकेभी जिन्होंने उद्दालक नाभक तीर्थ में यमदंष्ट्राको प्रणाम किया वे यहां यमराज से नहीं डरते हैं ॥ ७९ ॥ और दारुकेश्वरके समीप दारुकेश्वर तीर्थमें पातालसे तालु

श्वरीदेवी तालवृक्षकृतायुधा॥ उत्सादयतिविघ्नौघानानन्दवनमध्यगान्॥ ७६ ॥ सङ्गमेश्वरलिङ्गस्यदक्षिणेविकटानना म् ॥ तालजङ्घेश्वरींनत्वानविघ्नैरभिभूयते ॥७७॥ उद्दालकेश्वराल्लिङ्गात्तीर्थउद्दालकाभिधे ॥ याम्यांचयमदंष्ट्राख्याच र्वयेद्विघ्नसंहतिम् ॥७८॥ प्रणतायमदंष्ट्रायैस्तीर्थेचोद्दालकाभिधे ॥ कृत्वापिपापसंघातंनयमाद्बिभ्यतीहते ॥ ७९ ॥ दा रुकेश्वरतीर्थेतुदारुकेशसमीपतः ॥ पातालतालुवदनामाकाशोष्ठींधराधराम् ॥८०॥ कपालकर्त्रीहस्तांचब्रह्माण्डकवल प्रियाम्॥शुष्कोदरींस्नायुबद्धांचर्ममुण्डेतिविश्रुताम् ॥८१॥ क्षेत्रस्यपूर्वदिग्भागंरक्षन्तींविघ्नसंघतः॥लसत्सहस्रदोर्दण्डां ज्वलत्केकरवीक्षणाम् ॥ ८२ ॥ पारावारप्रसृमरहस्तन्यस्तारिमोदकाम् ॥ द्वीपिकृत्तिपरीधानांकटुकाट्टाट्टहासिनीम् ॥ ८३ ॥ मृणालनालवत्तीव्रंचर्वन्तीमस्थिपापिनः ॥ शूलाग्रप्रोतदुर्वृत्तक्षेत्रद्रोहिकलेवराम् ॥ ८४ ॥ कपालमालाभरणां

मुखवाली, आकाशतक ऊंचे ओठवाली, पृथिवीसे नीचे ओठवाली ॥ ८० ॥ व कपाल और छूरी को हाथमें लिये हुई, ब्रह्मांडको कवलकरने को प्यार करनेहारी व सूखे उदरवारी और बसासे बँधी हुई जोकि चर्ममुंडा इस नाम से प्रसिद्ध है ॥८१॥ व क्षेत्रके पूर्वदिशाके भागको विघ्न समूहसे रक्षाकरती हुई सोहतेहुये हजार भुज- दंडवाली व जलतीसी तिरछी आंखों वाली है ॥ ८२ ॥ व समुद्रतक पसरनेहारे हाथोंमें शत्रुओ के मस्तकरूप मोदकोको लिये हुई, गजचर्म वस्त्रधारिणी, कटुक अ- ट्टाट्टहासकारिणी है ॥ ८३ ॥ व कमलदंडीके नालके समान श्वेत तीव्र शत्रुओंकीहड्डीको चबातीहुई व शूलके अग्रभाग से छेदे हुये दुराचारी क्षेत्र द्रोहकारी दुष्टोंकी देह-

वाली ॥ ८४ ॥ व कपालकी मालाओं से भूषित और बड़ी भयंकर रूपिणी है उस चर्ममुण्डाके नमस्कारकर मनुष्य क्षेत्रके विघ्नोंसे नहीं पीडित होताहै ॥८५ ॥ जैसी ही यह चर्ममुण्डा है वैसीही महारुण्डा भी है किंतु इतनाही इसका भेद है कि यह महारुण्डा मुण्डोंसेहीन रुण्डोंकी मालाओंके भूषणवालीहै ॥ ८६ ॥ व हाथ पसार ने से परस्पर करतालियों से हँसती हुई बड़ी बलवती ये दोनों देवियां क्षेत्र रक्षाको बहुतही करतीहैं ॥ ८७ ॥ भक्तोंकी विघ्नहारिणी, प्रचण्डमुखी, महारुण्डादेवी लोलार्क से उत्तर हयग्रीवेश्वर तीर्थ में सदा टिकती है ॥ ८८ ॥ जोकि चर्ममुण्डा और महामुण्डा ये दोनों देवतायें कहीगई हैं उनके बीचमें मुण्डरूपिणी, चामुण्डादेवी टिकी

महाभीषणरूपिणीम् ॥ चर्ममुण्डांनरोनत्वाक्षेत्रविघ्नैर्नबाध्यते ॥ ८५ ॥ यथैवचर्ममुण्डैषामहारुण्डापितादृशी ॥ एतावानेवभेदोस्यारुण्डस्रग्भूषणात्वियम् ॥ ८६ ॥ क्षेत्ररक्षांप्रकुरुतउभेदेव्यौमहाबले ॥ हसन्त्यौकरतालीभिरन्योन्यं दोःप्रसारणात् ॥ ८७ ॥ हयग्रीवेश्वरेतीर्थे लोलार्कादुत्तरेसदा ॥ महारुण्डाप्रचण्डास्या तिष्ठतेभक्तविघ्नहृत् ॥ ८८ ॥ चर्ममुण्डामहारुण्डा कथितेयेतुदेवते ॥ तयोरन्तरतस्तिष्ठेच्चामुण्डामुण्डरूपिणी ॥ ८९ ॥ एतास्तिस्रःप्रयत्नेनपूज्याः क्षेत्रनिवासिभिः ॥ धनधान्यप्रदाश्चैताः पुत्रपौत्रप्रदाइमाः ॥९० ॥ उपसर्गान्निघ्नन्तिदद्युर्नैःश्रेयसींश्रियम् ॥ स्मृतादृष्टा नताःस्पृष्टाःपूजिताःश्रद्धयानरैः ॥ ९१ ॥ महारुण्डाप्रतीच्यांच देवीस्वप्नेश्वरीशुभा ॥ भविष्यंकथयेत्स्वप्ने भक्तस्याग्रेशुभाशुभम् ॥ ९२ ॥ तत्रस्वप्नेश्वरंलिङ्गं देवींस्वप्नेश्वरींतथा ॥ स्नात्वासिसङ्गमेपुण्ये यस्मिन्कस्मिंस्तिथावपि ॥ ९३ ॥ उपोषणपरोधीमान्नारीवापुरुषोपिवा ॥ सम्पूज्यस्थण्डिलशयःस्वप्नेभाविविलोकयेत् ॥ ९४ ॥ अद्यापिप्रत्ययस्तत्रकार्य

है ॥ ८९ ॥ ये तीनों देवियां क्षेत्र निवासियोसे बहुत यत्न पूर्वक पूजने योग्यहैं क्योंकि ये धन धान्य प्रदायिनी हैं और ये पुत्र व पौत्रके देनेवाली हैं ॥ ९० ॥ व श्रद्धा समेत मनुष्यों से सुमिरी और देखी प्रणामकी हुई तथा स्पर्शकर पूजी हुई ये देवियां उत्पातोंको नाशतीहैं व मोक्ष संबंधिनी संपत्तिको देतीं हैं ॥ ९१ ॥ और महारुंडा से पश्चिम दिशामें टिकीहुई मंगलमयी स्वप्नेश्वरीदेवी भक्तके आगे भविष्य शुभ और अशुभ फलको कहैहै ॥ ९२ ॥ वहां जिसी किसी तिथिमें भी मनोज्ञ या पुण्यदायक असिसंगम में स्नानकर स्वप्नेश्वरलिङ्ग तथा स्वप्नेश्वरीदेवीको ॥ ९३ ॥ भलीभांति पूजकर उपवासमें तत्पर बुद्धिमान् व भूमिके चौतरेमें सोनेवाला पुरुष या

स्त्री स्वप्नमें होनीको विशेषतासेदेखे ॥ ६४ ॥ आजभी वहां विशेषजाननेवाले जन से यह विनिश्चय करने योग्यहै कि स्वप्नेश्वरी देवी रात्रिके समय स्वप्नमें भूत भविष्य और वर्त्तमान सब कुछ कहैहै ॥ ६५ ॥ अष्टमी, चतुर्दशी और नवमी की रात व दिनमें काशीके बीच वह स्वप्नेश्वरी ज्ञानार्थी मनुष्यो से बहुत यत्न पूर्वक भलीभांति पूजने योग्यहै ॥ ६६ ॥ और जोकि दुर्गादेवी स्वप्नेश्वरी से पश्चिममें टिकी है वह क्षेत्रके दक्षिण भागकी सदैव सब ओरसे रक्षाकरतीहै ॥ ६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदेवताधिष्ठानंनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

एषविजानता ॥ भूतंभाविभवत्सर्वं वदेत्स्वप्नेश्वरीनिशि ॥ ९५ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां नवम्यांनिशिवादिवा ॥ प्रयत्नतःसमर्च्यासाकाश्यांज्ञानार्थिभिर्नरैः ॥ ९६ ॥ स्वप्नेश्वर्याश्चवारुण्यांदुर्गादेवीव्यवस्थिता ॥ क्षेत्रस्यदक्षिणंभागं सा सदैवाभिरक्षति ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदेवताधिष्ठानंनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ *

अगस्त्यउवाच ॥ कथंदुर्गेतिवैनामदेव्याजातमुमासुत॥कथंचकाश्यांसासेव्यासमाचक्ष्वेतिमामिह ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कथयामिमहाबुद्धे यथाकलशसम्भव ॥ दुर्गानामाभवद्देव्या यथासेव्याचसाधकैः ॥ २ ॥ दुर्गोनाममहादैत्योरुरुदैत्याङ्गजोभवत् ॥ सचतप्त्वातपस्तीव्रं पुम्भ्योजेयत्वमाप्तवान् ॥ ३ ॥ ततस्तेनाखिलालोका भूर्भुवःस्वर्मुखाअपि ॥ स्ववसात्कृताविनिर्जित्यरणेस्वभुजसारतः ॥ ४ ॥ स्वयमिन्द्रःस्वयंवायुःस्वयंचन्द्रःस्वयंयमः॥स्वयमग्निःस्वयंपाशी

दो० । इकहत्तर अध्याय में दुर्गानामनिरुक्ति । दुर्गअसुर बलकी बहुत वैसेहै इतउक्ति ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे श्रीपार्वतीजीके पुत्र ! देवीजीका दुर्गा ऐसा नाम निश्चयकर कैसेहुआ और वह काशीमें किसप्रकार भलीभांति सेवने योग्यहै यहां आप मुझसे इसको वर्णनकरो ॥१॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महाबुद्धे, अगस्त्यजी ! जैसे देवीका दुर्गानामहुआ और जैसे वह साधक जनोंसे सेवाकरने योग्यहै वैसेही मैं कहताहूं।२॥कि रुरुदैत्यकापुत्र दुर्गनामक महादैत्यहुआ जोकि तीव्रतपस्याकर पुरुषों से न जीतनेयोग्य भावको प्राप्तभया ॥३॥ तब उसने अपने बाहुबलसे भूर्भुवःस्वर्गादि सम्पूर्णलोकोंको भी संग्राममें विशेपतासे निश्शेष जीतकर अपने अधीनकरलिया ॥४॥

व वह बलवान् आपही इंद्र वायु आपही चंद्रमा आपही यम आपही अग्नि आपही वरुण और आपही कुबेर होगया ॥ ५ ॥ उसने ईशान, रुद्र, सूर्य्य और वसुओंके अधिकारों या लोकोंको लेलिया व उसके डरसे बड़े तपस्वियों ने तपस्याओंको बहुतही छोड़दिया ॥ ६ ॥ व उसके डरसे पीड़ित ब्राह्मणों ने वेदोंका अध्ययन (पठन) न किया व अत्यन्त दुःसह उसके सुभटोंने यज्ञस्थानोंको निश्शेष विध्वंसकरदिया ॥७॥ व पाखंडमार्गका आश्रय कियेहुये उन दुष्टोंसे बहुतसी पतिव्रतास्त्रियां विध्वस्तहुईं याने पातिव्रत्य धर्मसे हीनकी गई व हठसे परधनोंको बलात्कार से हरकर दुर्गम्य ॥ ८ ॥ दुराचारी और क्रूरकर्मकारी दासोंवाले वे भोजनकरतेथे व

धनदोभूत्स्वयंबली ॥ ५ ॥ स्वयमीशानरुद्रार्कवसूनांपदमाददे ॥ तत्साध्वसाद्विमुक्तानितपांस्यतितपस्विभिः ॥ ६ ॥ न वेदाध्ययनंचक्रुर्ब्राह्मणास्तद्भयार्दिताः ॥ यज्ञवाटाविनिर्ध्वस्तास्तद्भटैरतिदुःसहैः ॥ ७ ॥ विध्वस्ताबहुशःसाध्व्यस्तैरमार्गकृतास्पदैः ॥ प्रसभञ्चपरस्वानिअपहृत्यदुरासदाः ॥८॥ अभोक्षिषुर्दुराचाराःक्रूरकर्मपरिग्रहाः ॥ नद्योविमार्गगाआसञ्ज्वलन्ति न तथाग्नयः ॥ ९ ॥ ज्योतींषि न प्रदीप्यन्तितद्भयाकुलितान्यहो ॥ दिग्वधूवसनान्यासन्विच्छायानिसमंततः ॥ १० ॥ धर्मक्रियाविलुप्ताश्चप्रवृत्ताःसुकृतेतराः ॥ तएवंजलदीभूयववृषुर्निजलीलया ॥ ११ ॥ सस्यानितद्भयात्सूतेत्वनुप्तापिवसुन्धरा ॥ सदैवफलिनोजातास्तरवोप्यवकेशिनः ॥ १२ ॥ बन्दीकृताःसुरर्षीणांपत्न्यस्तेनातिदर्पिणा ॥ दिवौकसःकृतास्तेनसमस्ताःकाननौकसः ॥ १३ ॥ मर्त्याअमर्त्यान्स्वगृहंप्राप्तानपिभयार्दिताः ॥ अपिभ्रूक्षेपमात्रेण

नदियां विमार्गगामिनी (मार्ग छोड़कर अन्यत्र बहनेवाली) होगईं तथा अग्नियां नहीं प्रज्वलित होतीहैं ॥ ९ ॥ आश्चर्यहै कि उनसुभटोंके या उस दुर्गदैत्यके डरसे व्याकुल नक्षत्र नहीं प्रकाशतेहैं व दिशारूप स्त्रियोंके वस्त्र सबओरसे शोभाहीन होगये ॥१०॥ व धर्मक्रियायें विलुप्तहुईं और अधर्मी अधमलोग बहुतही वर्तमानहुये व वेही सुभट अपनी मायासे मेघहोकर बरसतेथे ॥ ११ ॥ और विनाबोईहुई भी भूमि उस दैत्यके डरसे सस्योंको उत्पन्नकरती है व विनाफलकेभी वृक्ष सदैव फलवाले होगये ॥१२॥ व उस अत्यन्त अहंकारीने देव और ऋषियोंकी स्त्रियोंको बंदकिया याने घरमें डाललिया व उसने सब स्वर्गवासी देवोंको वनवासी बनादिया ॥१३॥ और

उसके डरसे पीड़ित मनुष्य अपने घरमें आयेहुये भी विपत्तिसेवी देवोंको संभाषणमात्रसेभी नहीं पूजतेहैं ॥ १४ ॥ श्री कार्त्तिकेयजी बोले कि महत्त्वके लिये कुली-
नता नहीं और सदाचार भी नहीं प्रकल्पित होताहै किंतु एक अपना स्थान या ऐश्वर्य्यही श्रेष्ठहै याने महत्त्वका कारणहै और पदसे भ्रष्टहोना लघुताका हेतुहै॥१५॥
इससे विपत्ति मेंभी वे लोग धन्यहैं जोकि दीनता से प्रेरितहुये भी मलिन मनवालेजनोंके आंगनको कहीं नहीं लहतेहैं याने उसमें नहीं जातेहैं ॥ १६ ॥क्योंकि लोक
में लघुतासे रहित मरनाभी श्रेष्ठहै और लघुता सहित अमरहोनाभी कल्याण का कारण नहीं है ॥ १७ ॥ जिनका चित्तसमुद्र विपत्तिमें भी गंभीरताको सब ओरसे

नार्चयन्तिविपज्जुषः ॥ १४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ नकौलीन्यंनसद्वृत्तंमहत्त्वायप्रकल्पते ॥ एकमेवपदंश्रेयःपदभ्रंशोहि
लाघवम् ॥ १५ ॥ विपद्यपिहितेधन्यानयेदैन्यप्रणोदिताः ॥धनैर्मलिनचित्तानामालभन्तेङ्गणंक्वचित् ॥ १६ ॥ पञ्चत्व
मेवहिवरंलोकेलाघववर्ज्जितम् ॥ नामरत्वमपिश्रेयोलाघवेनसमन्वितम् ॥ १७॥ तएवलोकेजीवन्तिपुण्यभाजस्तएव
वै ॥ विपद्यपिनगाम्भीर्य्यंयच्चेतोऽब्धिःपरित्यजेत् ॥ १८ ॥ कदाचित्सम्पदुदयःकदाचिद्विपदुद्गमः ॥ दैवाद्द्वयमपिप्राप्यधी
रोधैर्य्यं न हापयेत् ॥ १९ ॥ उदयानुदयौप्राज्ञैर्दृष्टव्यौपुष्पवन्तयोः ॥ सदैकरूपताऽत्याज्याहर्षाहर्षौततोऽध्रुवौ ॥ २० ॥
यस्त्वापदंसमासाद्यदैन्यग्रस्तोविपद्यते ॥ तस्यलोकद्वयंनष्टंतस्माद्दैन्यंविवर्जयेत् ॥ २१ ॥ आपद्यपिहियेधीरा इहलो
केपरत्रच ॥ नतान्पुनःस्पृशेदापत्तद्धैर्येणावधीरिता ॥ २२ ॥ भ्रष्टराज्याश्चविबुधामहेशंशरणंगताः ॥ सर्वज्ञेनततोदेवीप्रे

नहीं त्यागताहै वेही लोग लोकमें जीवतेहैं व वेही पुण्यसेवीहैं ॥ १८ ॥ कभी संपत्तिका उदय और कभी विपत्तिका उदयहोता है भाग्यसे दोनों कोभी प्राप्तहोकर
धीरजन धीरताको न त्यागकरे ॥ १९ ॥ उसमें यह दृष्टान्तहै कि चंद्रमा व सूर्य्यका उदय और न उदयहोना याने अस्तभी बुद्धिमानों को देखनाचाहिये ऐसेही वि-
पत्ति व संपत्ति में सदैव एकरूपता त्यागने योग्य नहींहै याने एक रसरहना उचितहैइसलिये हर्ष और शोक निष्फलहैं ॥२० ॥ व विपत्तिको प्राप्त होकर दीनतासे ग्र-
स्तहुआ जो जन मरजाता है उसके दोनों लोक नष्ट है उससे दैन्यको बहुतही बरावे ॥ २१ ॥ किंतु जो लोग विपत्ति मेंभी धैर्य्यवान् हैं उनको इसलोक और परलोक

मेंभी उनकी धीरतासे दूरकीगईहुई विपत्ति फिर नहीं स्पर्शकरेहै ॥ २२ ॥ " अब प्रासंगिकको कहते हैं कि ,, जब राज्यरहित देवतालोग महेशजीके शरणगये तब सर्वज्ञ शिवजीने दुर्गदैत्यके दलनेके लिये देवीजीको प्रेरिताकिया ॥ २३ ॥ और महेश्वरकी आज्ञाको भलीभांति प्राप्तहोकर अधिक आनंदित के समान भवानीजी ने देवसमूह को अभयदेकर संग्रामके लिये उपक्रम (आरंभ) किया ॥ २४ ॥ व कांतिसे त्रिलोकमें सुंदरी रुद्राणी कालरात्रिको भलीभांति बुलाकर उसदेवद्रोही दैत्य के प्रति कहने या उसको बुलाने के लिये पठाया ॥ २५ ॥ तब उस दुष्टकर्मा दैत्यके पास भलीभांति प्राप्तहोकर कालरात्रि देवी बोली कि, दैत्याधिपते ! तुम त्रैलोक्य

रिताऽसुरमर्दने ॥ २३ ॥ माहेश्वरींसमासाद्य भवान्याज्ञांप्रहृष्टवत् ॥ अमर्त्यायाऽभयंदत्त्वासमरायोपचक्रमे ॥ २४ ॥ कालरात्रींसमाहूयकान्त्यात्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥ प्रेषयामासरुद्राणीं तमाह्वातुंसुरद्रुहम् ॥ २५ ॥ कालरात्रीसमासाद्यतंदैत्यंदुष्टचेष्टितम् ॥ उवाचदैत्याधिपतेत्यजत्रैलोक्यसम्पदम् ॥२६॥ त्रिलोकींलभतामिन्द्रस्त्वन्तुयाहिरसातलम् ॥ प्रवर्तन्तांक्रियाःसर्वावेदोक्तावेदवादिनाम्॥२७॥ अथचेद्बलेशोऽस्तितदायाहिसमाजये ॥ अथवाजीविताकाङ्क्षीतदिन्द्रंशरणंव्रज ॥ २८ ॥ इतिवक्तुंमहादेव्यामहामङ्गलरूपया ॥ त्वदन्तिकंप्रेषिताहंमृत्युस्तेतदुपेक्षया ॥ २९ ॥ अतोयदुचितंकर्तुंतद्विधेहिमहासुर ॥ परंहितंचेच्छृणुयाज्जीवग्राहन्ततोव्रज ॥ ३० ॥ इत्याकर्ण्यवचोदेव्यामहाकाल्याःसदैत्यराट् ॥ प्रजज्वालतदाक्रोधाद्गृह्यतांगृह्यतामियम् ॥ ३१ ॥ त्रैलोक्यमोहिनीह्येषाप्राप्तामद्भाग्यगौरवैः ॥ त्रैलोक्यराज्यसम्पत्ति

की संपत्तिको त्यागदो ॥ २६ ॥ इंद्रजी त्रिलोकीको पावें और तुम रसातलको चलेजावो व वेदवादी ब्राह्मणादि वर्णोंकी सब वेदोक्त धर्म क्रियायें बहुतभांति वर्तमानहोवें ॥ २७ ॥ और यह प्रश्नहै कि जो गर्वका लेश हो तो तुम भलीभांति युद्धके लियेआवो अथवा जीनेके चाही होतो इंद्रके शरणको जावो ॥ २८ ॥ ऐसा कहनेको महा मंगलरूपिणी महादेवी से तेरेसमीप मैं पठाई गईहूं उन परमेश्वरी के वचन की उपेक्षासे तेरा मरणहोगा ॥ २९ ॥ हे महादैत्य ! इससे जो करनेको उचित है उस को करो और जो परमहितको सुनो तो तुम जीवतेही परमेश्वरी के शरणको जावो ॥३०॥ इसभांति महाकाली देवीका वचन सुनकर वह दैत्यराज उससमय क्रोधसे प्रज्व-

लित हुआ और बोला कि यह पकड़ीजावे पकड़ीजावे ॥ ३१ ॥ जिससे यह त्रैलोक्यमोहिनी मेरी भाग्यकी गुरुतासे प्राप्तहुईहै और त्रिलोकराज्य संपत्तिलताका यह बड़ाभारी फलहै ॥ ३२ ॥ व इसकेही लिये मैंने देवर्षिनरेशोंको बंदकिया परंतु मेरे शुभके उदयसे विना परिश्रमही यह मेरे घरमें प्राप्तहुईहै ॥ ३३ ॥ क्योंकि इसलोक में जो जिसके योग्यहै वह भाग्यके गौरवमे वनमें व घरमेंभी अवश्यकर उसके समीप टिकताहै याने उसको मिलताहै ॥ ३४ ॥ हे अंतः पुरचरो (रनिवासके रक्षको) इसको बड़े उत्तम अंतःपुर (रनिवास) में प्राप्तकरो व इस अच्छे गहनेवाली से मेरा राष्ट्र भूषितहुआ ॥ ३५ ॥ और आश्चर्य्य है कि आज मुझ महामतिवाले का महान उदय उपजाहै किंतु केवल एक मेराही नहीं वरन सब दैत्यवंशका भी महोदयहुआ है ॥ ३६ ॥ इससे आज पितर व बांधवजन सुखसे आनंदित होवें

वल्ल्याःफलमिदंमहत् ॥ ३२ ॥ एतदर्थंहिदेवर्षिनृपावन्दीकृतामया ॥ अनायासेनमेप्राप्तागृह्यमेषाशुभोदयात् ॥ ३३ ॥ अवश्यंयस्ययोग्यंयत्तत्तस्येहोपतिष्ठते ॥ अरण्येवागृहेवापियतोभागस्यगौरवात् ॥ ३४ ॥ अन्तःपुरचराएतांनयन्त्वन्तःपुरंमहत् ॥ अनयासदलंकृत्याममराष्ट्रमलंकृतम् ॥३५ ॥ अहोमहोदयश्चाद्यजातोममहामतेः ॥ केवलंनममैकस्यसर्वदैत्यान्वयस्य च ॥ ३६ ॥ नृत्यन्तुपितरश्चाद्यमोदन्तांवान्धवाःसुखम् ॥ मृत्युःकालोऽन्तकोदेवाःप्राप्नुवन्त्वद्यमेभयम् ॥ ३७ ॥ इतियावत्समायातास्तांनेतुंसौविदल्लकाः ॥ तावत्तयाकालरात्र्याप्रत्युक्तोदैत्यपुङ्गवः ॥ ३८ ॥ कालरात्र्युवाच ॥ दैत्यराजमहाप्राज्ञनैतद्युक्तंभवादृशाम् ॥ वयंदूत्यःपरवशा राजनीतिंविदुत्तम ॥ ३९ ॥ अल्पोपिदूतसम्बाधांनविदध्यात्कदाचन ॥ किंपुनर्येभवादृक्षामहान्तोवलिनोऽधिपाः ॥ ४० ॥ दूतीषुकोनुरागोयं महारा

और नाचें व मृत्यु काल अंतक और देवलोग आज मेरे डर को प्राप्तहोवें ॥ ३७ ॥ इसभांति दैत्येन्द्र के कहतेही जबतक उस देवीके लेजाने को कवचधारी रनिवासके रक्षाकारी भलीभांति आये तबतक उस कालरात्रि से दैत्यनायक प्रत्युक्तहुआ याने उसने उसके प्रति कहा ॥ ३८ ॥ श्रीकालरात्रि देवी बोली कि, हे राजनीति विदोंमेंउत्तम, महाप्राज्ञ, दैत्यराज ! आपके समान जनोंका यह उचित नहीं है क्योंकि हम लोग दूतियां सदैव परवश है ॥ ३९ ॥ इससे क्षुद्रजनभी कभी दूतकी पीड़ाको नही करे है फिर जे आपके समान महान् बलवान् महाराजहैं उनकोक्या कहना है ॥ ४० ॥ हे महाराज ! यहां छोटी दूतियो मे यह क्या अनुराग है

क्योंकि हमलोग उसके आनेसे विना परिश्रमही चली आवेंगी ॥ ४१ ॥ हे दैत्यप ! इससे मेरी उस स्वामिनीको संग्राममें जीतकर मुझसी हजारों स्त्रियोंको यथेच्छासे संभोगकरो ॥ ४२ ॥ व उसके दर्शनसे आजही आपका महासौख्य होनेवालाहै और आजही पितरोंके साथ तुम्हारे बांधवोंको भी सुखहोवेगा ॥ ४३ ॥ व जोकि बहुत दिनोंसे विचारेगये हैं वे सब तुम्हारे काम आज भलीभांति प्राप्तहोवेंगे क्योंकि वह अबला (स्त्री) बहुत सुंदरी है और उसका रक्षक कोई नहीं है ॥४४॥ और वह सर्व रूपमयी भी है आपही उसके देखने योग्यहो किंतु जहां वह जगत की खानि है वहां मैंहीं उसको दिखाऊंगी ॥ ४५ ॥ और एकके धरीहुई होतेही तुम्हारा क्या काम होगा

जालिपकास्विह ॥ अनायासेन च वयमायास्यामस्तदागमात् ॥ ४१ ॥ विजित्यसमरेतान्तुस्वामिनींममदैत्यप ॥ मादृशीनांसहस्राणिपरिभुङ्क्ष्वयथेच्छया ॥ ४२ ॥ अद्यैवतेमहासौख्यंभावितस्याविलोकनात् ॥ बान्धवानांसुखंतेद्यभविता सहपूर्वजैः ॥ ४३ ॥ सम्पत्स्यन्तेऽद्यतेकामाःसर्वेयेचिरचिन्तिताः ॥ अबलासा च मुग्धा च तस्यास्त्राता न कश्चन ॥ ४४ ॥ सर्वरूपमयी चैव तां भवान्द्रष्टुमर्हति ॥ अहं हि दर्शयिष्यामियत्रसाऽस्तिजगत्खनिः ॥ ४५ ॥ धृतायामपिचैकस्यांक स्तेकामोभविष्यति ॥ अहन्तेसन्निधिंनैवत्यक्ष्याम्यद्यदिनावधि ॥ ४६ ॥ ततोनिवारयैतान्मामादित्सून्सौविदल्लका न् ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्याःसकामक्रोधमोहितः ॥ ४७ ॥ तामेनबह्वमंस्तैकांदूतींमृत्योरिवासुरः ॥ शुद्धान्तरक्षिणश्चैतां शुद्धान्तंप्रापयन्त्वरम् ॥ ४८ ॥ इतितेनसमादिष्टाःसर्वेवर्षवरामुने ॥ तान्धर्तुमुद्यमञ्चक्रुर्बलेनबलवत्तराः ॥ ४९ ॥ सातान्भस्मीचकाराशुहुङ्कारजनिताग्निना ॥ ततोदैत्यपतिःक्रुद्धोदृष्ट्वातान्भस्मसात्कृतान् ॥ ५० ॥ क्षणेनैवतयादू

क्योंकि आजके दिनतक मैं तुम्हारा समीप न त्यागूंगी ॥ ४६ ॥ उसलिये मुझको पकडना चाहते हुये इन कवचधारियोंको निवारणकरो इस प्रकार उसकालरात्रि का वचन सुनकर काम और क्रोध से मोहित हुये उस ॥ ४७ ॥ असुर ने मृत्युके समान उस एक दूतीकोही बहुतकर माना और रनिवासकेरक्षक लोग इसको शीघ्रही अन्तःपुरमें पहुंचावे ॥ ४८ ॥ हे मुने ! ऐसे उसदैत्येंद्र से भलीभांति आयसु पाये हुये. सैन्यसे बड़े बलवान, व वृषण कटाये हुये सब रक्षकों ने उसके धरने को उद्यमकिया ॥ ४९ ॥ और उसने हुंकार से उपजी हुई आगसे उनको शीघ्रही भस्म करदिया तदनन्तर कुपित दैत्यराज ने उन सब रक्षकों को भस्म समूह किये हुये देखकर ॥ ५० ॥

क्षणभर में उस दूती के साथ युद्ध करने के लिये नेत्रकी संज्ञा से तीस हजार संख्यक दैत्यों को व्यापार कराया याने पठाया व दुर्धर, दुर्मुख, खर ॥ ५१ ॥ सीरपाणि, पाशपाणि, सुरेंद्रदमनु, हनु, यज्ञारि, खड्गलोमा, उग्रास्य, और देवकंपन से कहा ॥ ५२ ॥ कि हे दानवो ! बिछुरे केशपाशवाली व नीचे चुयेहुये वस्त्र और भूषणवाली इस दुष्टाको पाशों से बांधकर शीघ्रही लेआओ ॥ ५३ ॥ अनन्तर इसप्रकार दैत्याधिप, दुर्गकी आज्ञा से पसरीतलवार और मुद्गरधारी दुर्धरादि असुर उस के पकड़ने को उद्यमकियेहुये ॥ ५४ ॥ जोकि पर्वतेन्द्र के समान भारी देहधारी व शस्त्र और अस्त्रों से उद्यत हाथोंवाले थे वे उस देवी के निश्वास वायु से ताड़ित होकर दिशाओं

त्यादैत्यांस्त्र्ययुतसम्मितान्॥ दृशाव्यापारयामासदुर्धरन्दुर्मुखङ्खरम् ॥ ५१ ॥ सीरपाणिम्पाशपाणिंसुरेन्द्रदमनंहनुम् ॥ यज्ञारिङ्खड्गलोमानमुग्रास्यन्देवकम्पनम् ॥ ५२ ॥ बद्ध्वापाशैरिमान्दुष्टामानयन्त्वाशुदानवाः ॥ विध्वस्तकेशवेशाञ्चविस्रस्ताम्बरभूषणाम् ॥ ५३ ॥ इतिदैत्याधिपादेशाद्दुर्धरप्रमुखास्ततः ॥ पाशासिमुद्गरधरास्तामादातुंकृतोद्यमाः ॥ ५४ ॥ गिरीन्द्रगुरुवर्ष्माणःशस्त्रास्त्रोद्यतपाणयः ॥ दिगन्तन्तेपरिप्राप्तास्तदुच्छ्वासानिलाहताः ॥ ५५ ॥ तेषूड्डीनेषुदैत्येषुशतकोटिमितेषु च ॥ निर्जगामततःसातुकालरात्रिर्नभोध्वगा ॥ ५६ ॥ ततस्तान्तुविनिर्यान्तीमनुजग्मुर्महासुराः ॥ कोटिकोटिसहस्राणिपूरयित्वातुरोदसी ॥ ५७ ॥ दुर्गोनाममहादैत्यःशतकोटिरथावृतः ॥ गजानामर्बुदशतद्वयेनपरिवारितः ॥ ५८॥ कोट्यर्बुदेनसहितोहयानांवातरंहसाम् ॥ पदातिभिरसंख्यातैःपच्चूर्णितशिलोच्चयैः ॥ ५९ ॥ उदायुधैर्महाभीमैःकृतत्रिजगतीभयैः ॥ समेतःसमहादैत्योदुर्गःक्रुद्धोविनिर्ययौ ॥ ६० ॥ अथदृष्ट्वामहादेवींविन्ध्याचलकृतालयाम् ॥

के अन्त को सब ओर से प्राप्तहुये ॥ ५५ ॥ और जब सौकरोड़ संख्यक वे दैत्यउड़गये तब आकाशमार्गगामिनी वह कालरात्रि भी उस स्थानसे निकलकर चली ॥ ५६ ॥ और तदनन्तर करोड़ों करोड़ सहस्र महादैत्य द्यावा भूमियों के अन्तर को भरकर विशेपता से निकलीजाती हुई उसके पीछे चलेगये ॥ ५७ ॥ व दुर्गनामक महादैत्य जोकि सौकरोड़ रथों से सब ओर घिराहुआ व हाथियों के दो खर्व से परिवारित ॥ ५८ ॥ व करोड़ अर्बुदसंख्यक वायुवेगी घोड़ों से सहित व असंख्य पदाति (पैदर) जोकि पावों से पर्वतोंको चूर्ण करनेवाले ॥ ५९ ॥ व आयुध उठाये, महाभयंकर, और त्रिलोकी के भयकर्ता थे उनके समेत व महादैत्यों के साथ वर्त्तमान

और दुर्गम था वह क्रुद्धहोकर विशेषता समेत निकलकर चलागया ॥ ६० ॥ तदनन्तर विन्ध्याचल में स्थान कियेहुई महादेवी को देखकर कि जिनके समीपमें आकर कालरात्रि ने उसका अपराध निवेदित कियाहै ॥ ६१ ॥ व जोकि हजारों बड़ीबाहोंसे युक्त व महातेजों से सबओर बढ़ीहुई व उन उन अनेक घोरआयुधवाली और संग्राम कौतुक मे आदर समेत हैं ॥ ६२ ॥ व उल्लसत चन्द्रमा की हजारोरश्मियों स विशोधित शुभमुखी, व सुन्दरता समुद्र से निकलते और चमकते चन्द्रमा से मुख्य चंद्रिकावाली हैं ॥ ६३ ॥ व जिनकी देह महामाणिक्यसमूह की दीप्ति से व्याप्त है व जोकि त्रैलोक्यरम्यनगरीको सुप्रकाश करने के लिये प्रदीपिका हैं ॥ ६४ ॥ व महादेवजी

आगत्यकालरात्र्याचनिवेदिततदागसम् ॥ ६१ ॥ महाभुजसहस्राढ्यांमहातेजोभिर्बृंहिताम् ॥ तत्तद्घोरप्रहरणांरणकौतुकसादराम् ॥ ६२ ॥ प्रोद्यच्चन्द्रसहस्रांशुनिर्माजितशुभाननाम् ॥ लावण्यवार्धिनिर्गच्छच्चञ्चच्चन्द्रैकचन्द्रिकाम् ॥ ६३ ॥ महामाणिक्यनिचयरोचिःखचितविग्रहाम् ॥ त्रैलोक्यरम्यनगरीसुप्रकाशप्रदीपिकाम् ॥ ६४ ॥ हरनेत्राग्निनिर्दग्धकामजीवातुवीरुधम् ॥ लसत्सौन्दर्यसम्भारजगन्मोहमहौषधिम् ॥ ६५ ॥ विषमेषुशरैर्भिन्नहृदयोदैत्यपुङ्गवः ॥ आदिष्टवान्महासैन्यनायकानुग्रशासनः ॥ ६६ ॥ अयिजम्भमहाजम्भकुजम्भाविकटानन ॥ लम्बोदरमहाकायमहादंष्ट्रमहाहनो ॥ ६७ ॥ पिङ्गाक्षमहिषग्रीवमहोग्रात्युग्रविग्रह ॥ क्रूराक्षक्रोधनाक्रन्दसंक्रन्दनमहाभय ॥ ६८ ॥ जितान्तकमहाबाहोमहावक्त्रमहीधर ॥ दुन्दुभेदुन्दुभिरवमहादुन्दुभिनासिक ॥ ६९ ॥ उग्रास्यदीर्घदशनमेघकेशाट्टकानन ॥ सिंहास्य

के नेत्रकी आग से निश्शेष जलेहुये कामके जिवाने को सजीवनमूरिलताके समान व सोहती हुई सुन्दरता के समूहसे जगत् के मोहको महौषधिरूप हैं ॥ ६५ ॥ उस समय कामके बाणों से भिन्नहृदय व उग्रआज्ञावाले उस दैत्यनायकने महासैन्योंके स्वामियोंको आयसु दिया ॥ ६६ ॥ कि हे जम्भ! हे महाजम्भ ! हे कुजम्भ! हे विकटानन ! हे लम्बोदर! हे महाकाय ! हे महादंष्ट्र ! हे महाहनो ! ॥ ६७ ॥ हे पिंगाक्ष ! हे महिषग्रीव ! हे महोग्र ! हे अत्युग्रविग्रह ! हे क्रूराक्ष ! हे क्रोधन ! हे आक्रन्द ! हे संक्रंदन ! हे महाभय ! ॥ ६८ ॥ हे जितांतक ! हे महाबाहो ! हे महावक्त्र ! हे महीधर ! हे दुन्दुभे ! हे दुन्दुभिरव ! हे महादुन्दुभिनासिक ! ॥ ६९ ॥ हे उग्रास्य !

हे ! दीर्घदशन ! हे मेघकेश ! हे वृकानन ! हे सिंहास्य ! हे सूकरमुख ! हे शिवाराव ! हे महोत्कट !॥ ७० ॥ हे शुकतुण्ड ! हे प्रचण्डास्य ! हे भीमाक्ष ! हे क्षुद्रमानस ! हे उलूकनेत्र ! हे कङ्कास्य ! हे काकतुण्ड ! हे करालवाक् ! ॥७१॥ हे दीर्घग्रीव ! हे महाजंघ ! हे कमेलकशिरोधर ! हे रक्तबिन्दो ! हे जपानेत्र ! हे विद्युज्जिह्व ! हे अग्नितापन ! ॥ ७२ ॥ हे धूम्राक्ष ! हे धूमनिःश्वास ! हे चण्ड ! हे चण्डांशुतापन ! और हे महाभीषणादि दैत्यो ! आपलोग मेरी आज्ञा को आदर से सुनो ॥ ७३ ॥ कि इन आपलोगों और अन्यों मेसे भी जो कोई धैर्य्य (साम) बुद्धि (दान) बल (दंड) व छल (भेद) से भी इस विन्ध्यवासिनी को पकड़कर मेरेपास प्राप्त करेगा ॥ ७४ ॥ उसको मैं आजही

सूकरमुखशिवारावमहोत्कट ॥७०॥ शुकतुण्डप्रचण्डास्यभीमाक्षक्षुद्रमानस ॥ उलूकनेत्रकङ्कास्यकाकतुण्डकराल वाक् ॥ ७१ ॥ दीर्घग्रीवमहाजङ्घकमेलकशिरोधर ॥ रक्तबिन्दोजपानेत्रविद्युज्जिह्वाग्नितापन ॥ ७२ ॥ धूम्राक्षधूमनिःश्वासचण्डचण्डांशुतापन ॥ महाभीषणमुख्याश्चशृण्वन्त्वाज्ञांममादरात् ॥ ७३ ॥ भवत्स्वेतेषुचान्येषुएतांविन्ध्यवासिनीम् ॥ धृत्यानेष्यतिबुद्ध्यावाबलेनापिछलेनवा ॥ ७४ ॥ तस्याहमिन्द्रपदवीमद्यदास्याम्यसंशयम् ॥ दृष्ट्वैतांसुन्दरीमद्य मनोमेव्याकुलम्भवेत् ॥ ७५ ॥ यान्तुक्षिप्रंनयावन्मेपञ्चेषुशरपीडितम् ॥ मनोविह्वलतांगच्छेदेतत्प्राप्तेरभावतः ॥ ७६ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यदुर्गस्यदनुजेशितुः ॥ प्रोचुःसर्वेतदादैत्याःप्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ ७७ ॥ अवधेहिमहाराजकिमेतत्कर्मदुष्करम् ॥ अनाथायास्तथैकस्याअबलायाविशेषतः ॥७८॥ अस्याआनयनेकोयंमहायत्नविधिःप्रभो ॥ कोऽस्मान्प्रलयकालाग्निमहाज्वालावलीसमान् ॥ ७९ ॥ सहेतत्रिषुलोकेषुत्वत्प्रसादात्कृतोद्यमान् ॥ यद्यादेशोभवेदद्य

इन्द्रपदवी दूंगा इसमें सन्देह नहीं है आज इस सुन्दरी को देखकर मेरामन व्याकुल होवे है ॥ ७५ ॥ इसलिये काम के बाणो से पीडित हुआ मेरामन इसकी प्राप्ति न होने से जबतक व्याकुलताको न प्राप्त होजावे तबतक आपलोग शीघ्रही जावें ॥ ७६ ॥ तब इसभांति उसदानवेश्वर दुर्गका वचन सुनकर दोनो हाथ जोड़ेहुये सब दैत्यो ने उच्चस्वर से कहा ॥ ७७ ॥ कि हे महाराज ! तुम सुनो यह कर्म क्या दुष्कर है याने बहुतही सुगम है क्योंकि जोकि अनाथ तथा अकेली और विशेष से अबला स्त्री याने बलसे हीन है ॥ ७८ ॥ इस के आनलाने मे यह कौन बड़े यत्नका विधान है हे प्रभो ! कौन जन हमलोगों को जोकि प्रलयकालकी अग्नि की ज्वालामाला के

समान हैं ॥ ७६ ॥ और आपकी प्रसन्नता से उद्यम करनेवाले हैं उनको तीनों लोकों के बीचमें सहस के जो आज आज्ञाहो तो इन्द्र मरुद्गणों से संयुत उसको रनिवास समेत भलीभांति आनकर आपके पावों के आगे डाल दें क्योंकि भूर्भुवः स्वः नामक यह सब लोक तुम्हारी आज्ञाका वशवर्त्ती है ॥ ८१ ॥ व महः जनः तपः और सत्य लोकभी तुम्हारे अधिकार वाले हैं हे महादैत्य! वहां भी आपके आयसु से हमलोगों को कुछ असाध्य नहीं है ॥ ८२ ॥ व जोकि रम्य रत्न हैं उनको आनन्द से भलीभांति पठाते हुये वैकुण्ठनाथ भी नित्यही तुम्हारी आज्ञाके परिपालक हैं ॥ ८३ ॥ व हमलोगों सेही भलीभांति त्यागे हुये वह कैलास के स्वामी भी अधिक निर्ब-

तदेन्द्रंसमरुद्गणम् ॥ ८० ॥ सान्तःपुरंसमानीयक्षिप्रमस्त्वत्पदाग्रतः ॥ भूर्भुवःस्वरिदंसर्वन्त्वदाज्ञावशवर्तितम् ॥ ८१ ॥ महर्जनस्तपःसत्यलोकास्त्वदधिकारिणः ॥ तत्राप्यसाध्यंनास्माकंत्वन्निदेशान्महासुर ॥ ८२ ॥ वैकुण्ठनायकोनित्यं त्वदाज्ञापरिपालकः ॥ यानिरम्याणिरत्नानितानिसम्प्रेषयन्मुदा ॥ ८३ ॥ अस्माभिरेवसन्त्यक्तःकैलासाधिपतिःसवै ॥ विषाशीचातिनिःस्वत्वाद्भस्मकृत्त्यहिभूषणः ॥ ८४ ॥ अर्धाङ्गेनास्मद्भयतोयोषिदेकानिगूहिता ॥ तस्यग्रामेपिसकले द्वितीयोनचतुष्पदः ॥ ८५ ॥ एकोजरद्गवःसोपिनान्यस्मात्परिजीवति ॥ श्मशानवासिनःसर्वेसर्वेकौपीनवाससः ॥ ८६ ॥ सर्वेविभूतिधवलाःसर्वेप्येककपर्दिनः ॥ समस्तेनगरेतस्यवसन्त्येवंविधागणाः ॥ ८७ ॥ तेषाङ्गणानांकिंकुर्मोदरिद्राणां वयंविभो ॥ समुद्रारत्नसम्भारंप्रत्यहम्प्रेषयन्तिच ॥ ८८ ॥ नागावराकाश्चास्माकंसायंसायंस्वयम्प्रभो ॥ प्रदीपयन्तिस ततंफणारत्नप्रदीपकान् ॥ ८९ ॥ कल्पद्रुमःकामगवीचिन्तामणिगणाबहु ॥ तवप्रसादादस्माकमपितिष्ठन्तिवेश्मसु ॥ ९० ॥

लतासे विषभोजी व भस्म, गजचर्म और सर्प्पभूषणवाले होगये हैं ॥ ८४ ॥ व हमारे डरसे उन्होंने (अपने) आधे अंगसे एक स्त्री छिपाई है उनके सम्पूर्ण ग्राम में भी दूसरा चतुष्पद (चौपाया) नहीं है ॥ ८५ ॥ एक बहुत बूढ़ा बैलहै वह भी अन्य से सब ओर नहीं जीवताहै और जे कि सब श्मशानधारी व सब कौपीन वस्त्रधारी ॥ ८६ ॥ व सब विभूति से उज्ज्वल व सभी जटीले इसप्रकार के गण उनके समस्त नगरमें हैं ॥ ८७ ॥ उन दरिद्री गणोंका हम क्या करैं क्योंकि हे विभो! समुद्रही प्रति दिन रत्नोंकी राशियां पठाते हैं ॥ ८८ ॥ व हे प्रभो! बापुरे नाग आपही हमारे यहां प्रति सायंकाल में सदा फणारत्नरूपी दीपकों को प्रज्वलित करते हैं ॥ ८९ ॥ व

कल्पवृक्ष, कामधेनु, और बहुतसे चिन्तामणियों के समूह तुम्हारे प्रसाद से हमारे भी घरोंमें टिकते हैं ॥ ९० ॥ व अहो स्वामिन्! पंखाके भावको प्राप्त हुआ पवन तुम को बहुत यत्न से सेवे है व वरुणदेव प्रतिदिन कलशोंमें निर्मल जलको पूरण करता है ॥ ९१ ॥ व अग्निदेव वस्त्रोंको धोवे है व चन्द्रमा आपही छत्र धरनेवालाहै और सूर्य्य देव क्रीड़ा वापियों में उपजे कमलोंको नित्यही फुलावे है ॥ ९२ ॥ इससे मनुष्य देव और उरगों मेंसे भी कौन जन तुम्हारे प्रसादको नहीं देखे है किन्तु सब देव दैत्य और पक्षी तुम्हारे समीप जीते हैं याने आपसेही सबकी जीविकाहै ॥ ९३ ॥ हे राजन्! तुम हमलोगों के पौरुष को देखो कि बलसे इस पूर्वोक्त स्त्री को लिये आते हैं ऐसा

वायुर्व्यंजनतांयातस्त्वांसेवेतप्रयत्नतः ॥ स्वच्छान्यम्बूनिवरुणःप्रत्यहम्पूरयत्यहो ॥ ९१ ॥ वासांसिक्षालयेदग्निश्चन्द्रश्छत्रधरःस्वयम् ॥ सूर्यःप्रकाशयेन्नित्यंक्रीडावाप्यम्बुजानिच ॥९२॥ कस्त्वत्प्रसादंनेक्षेतमर्त्यामर्त्योरगेषुच ॥ सर्वेत्वामुपजीवन्तिसुराऽसुरखगादयः ॥ ९३ ॥ पश्यनःपौरुषंराजन्नानयामोबलादिमाम् ॥ इत्युक्त्वायुगपत्सर्वेक्षुब्धास्तोयधयोयथा ॥९४॥ संवर्तकालमासाद्यप्लावितुञ्जगतीमिमाम् ॥ रणतूर्यनिनादश्चसमुत्तस्थौसमन्ततः ॥ ९५ ॥ रोमाञ्चितायच्छ्रवणात्कातराअप्यकातराः ॥ ततोदेवाभयत्रस्ताश्चकम्पेचवसुन्धरा ॥ ९६ ॥ क्षुब्धाअम्बुधयःसर्वेपेतुर्नक्षत्रमालिकाः ॥ रोदसीमण्डलंव्याप्तंतेनतूर्यरवेणवै ॥ ९७ ॥ ततोभगवतीदेवीस्वशरीरसमुद्भवाः ॥ शक्तीरुत्पादयामासशतशोऽथसहस्रशः ॥ ९८ ॥ ताभिःशक्तिभिरेतेषांबलिनान्दितिजन्मनाम् ॥ प्रत्येकम्परितोरुद्धउद्वेलःसैन्यसागरः॥९९ ॥

कहकर वे सब एक साथही संचलित हुये कि जैसे सब समुद्र ॥ ९४ ॥ प्रलयकाल को प्राप्तहोकर इस पृथिवी को डुबाने के लिये उमड़कर चलते हैं और उस समय संग्रामकी तुरहियों का शब्द सब ओरसे भलीभांति उठाथा ॥ ९५ ॥ जिसके सुनने से कादर और शूरभी रोमांचित होगये तदनन्तर देवलोग भयसे त्रस्तहुये और भूमि कांपनेलगी ॥ ९६ ॥ व सब समुद्र संचालितहुये और नक्षत्रोंकी पंक्तियां पतितहोगईं और उस तुरहियों के शब्दसे भमि व द्युलोकके मध्यका मण्डलभी भरगया ॥ ९७ ॥ तदनन्तर ऐश्वर्य्यवती देवीजीने अपने अङ्गसे उपजी हुई सैकड़ों और हजारों शक्तियों को उत्पन्न किया ॥ ९८ ॥ उन शक्तियों ने बलवान् इन दैत्यों के लंघित मर्यादा

वाले उमड़े सैन्यसागर को प्रत्येक सब ओर से रोंकलिया ॥ ९९ ॥ और महादैत्यों ने संग्राम में जिनउग्रशस्त्र और अस्त्रोंका प्रक्षेपकिया उनको उन शक्तियों ने शीघ्रही तृणके समानकर त्यागदिया ॥ १०० ॥ उसके अनन्तर बड़े क्रोधसे भरेहुये जंभ आदिक वे देवोंके शत्रु दैत्यलोग तलवार चक्र भुशुंडी (सब ओर लोह के कांटों के क्रमसे उन्नत या बंदूख) गदा मुद्गर तोमर (गुर्ज) ॥ १ ॥ व भिंडिपाल (गुफनाकार) परिघ (हाथभरके दंडे या बड़ेना) कुंत (बरछी) शल्य (शर्वली) शक्ति (लोहकंटकों से व्याप्तचार हाथकी लंबीहोती है अथवा शतघ्नीका भेद या तोप) व अर्धचंद्राकार छूराकी धारसे तीक्ष्ण और विपउपजानेवाले बाण ॥ २ ॥ व

शस्त्रास्त्राणिमहादैत्यैर्यान्युत्सृष्टानिसङ्गरे ॥ ताभिःशक्तिभिरुग्राणितृणीकृत्योज्झितान्यरम् ॥ १०० ॥ ततोतिको पपूर्णास्तेजम्भमुख्याःसुरारयः ॥ असिचक्रभुशुण्डीभिर्गदामुद्गरतोमरैः ॥ १ ॥ भिण्डिपालैश्चपरिघैःकुन्तैःशल्यैश्च शक्तिभिः ॥ अर्धचन्द्रैःक्षुरप्रैश्चनाराचैश्चशिलीमुखैः ॥२॥ महाभल्लैःपरशुभिर्भिदुरैर्मर्मभेदिभिः॥ वृक्षोपलमहावर्षैर्वव्रु षुर्जलदाइव ॥ ३ ॥ अथसाविन्ध्यनिलयामहामायामहेश्वरी ॥ आदायोद्दण्डकोदण्डंवायव्यास्त्रेणहेलया ॥४॥ दैत्या स्त्रशस्त्रजालानिपरिचिक्षेपदूरतः ॥ ततोमहासुरोदुर्गोवीक्ष्यसैन्यंनिरायुधम् ॥ ५ ॥ ज्वलन्तींशक्तिमादायतांदेवींप्रतिसो ऽक्षिपत् ॥ तान्तुशक्तिंसमायान्तींमहावेगवतींरणे ॥ ६॥ निजचापविनिर्मुक्तैर्बाणैश्चूर्णीचकारसा॥ भग्नांशक्तिंसमालो क्यततोदुर्गोमहासुरः ॥ ७ ॥ चक्रंचप्रेषयामास दैत्यचक्रातिहर्षदम् ॥ तच्चदेव्याशरशतैरन्तरैवाणुवत्कृतम् ॥ ८ ॥ ततः

बड़भाला परशा, भेदनशील व मर्मभेदी अन्य अनेक अस्त्र और वृक्ष तथा पत्थरों की महावर्षासे मेघोंकी नाईं बरसने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर विंध्यवासिनी महामाया महेश्वराने बडाभारी धन्वालेकर वायव्य अस्त्रके द्वारा अनादरसे ॥ ४ ॥ दैत्योंके शस्त्रास्त्रसमूहों को बहुत दूर सबओर को चलाया उसके बाद आयुधों से हीन अपनी सेनाको देखकर जो कि दुर्गनामक महादैत्यथा ॥ ५ ॥ उसने ज्योति से जग मगातीहुई शक्तिको लेकर उन देवीजी के प्रति प्रेरितकिया और संग्राममें बड़ी वेगवती व भलीभांति आतीहुई उस शक्तिको ॥ ६ ॥ उन देवीजीने अपने धन्वा से छूटेहुये बाणों से चूर्ण के समान करडाला तदनन्तर शक्तिको टूटी हुई देखकर महा असुर दुर्गने ॥ ७ ॥ फिर दैत्यसमूहको अत्यन्त आनन्द देनेवाले चक्रको चलाया और वह भी देवीजी के सैकड़ों बाणोंसे बीचमेंही काटकर अणुके समान कियागया ॥८॥

तदनन्तर देवपीड़क दैत्यने इंद्रधनुकी नाई शार्ङ्गधन्वा को भलीभांति लेकर बाणसे उन देवीजीको हृदय में ताड़ित किया ॥ ९ ॥ और हे मुने ! उन देवीजी करके बड़े वेगवान् अपने बाणोंसे निवारित भी वह बाण वेगसे उन देवीजी के सामने चलागया ॥ १० ॥ तब देवीजीने धन्वाके दंडवाले शीघ्रगामी बाणसे अपर कालदंडके समान उस बाणको ताडितकर निवारणकिया ॥ ११ ॥ और उस बाणके विमुखताको प्राप्तहोतेही क्रोधयुक्त उस दुर्गमासुरने प्रलयाग्निसे जगमगातेहुये शूलको भलीभाति लेकर ॥ १२ ॥ बडे वेगसे उन देवीजी के संमुख बहाया जोकि दैत्यों के पालनेवालाथा और चडिका ने अपने शूलसे सामने आतेहुये उस

शार्ङ्गसमादायधनुःशक्रधनुर्यथा ॥ हृदिविव्याधबाणेनतांदेवीममरार्दनः ॥ ९ ॥ सचबाणस्तयादेव्यानिजबाणैर्महाजवैः ॥ निवारितोपिवेगेन तांदेवीमभ्यगान्मुने ॥ १० ॥ ततःकोदण्डदण्डेनआशुगेनतमाशुगम् ॥ हत्वानिवारयामासकालदण्डमिवापरम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्विमुखतांयातेमार्गणेदुर्गमासुरः ॥ क्रुद्धःशूलंसमादाय संवर्तानलसुप्रभम् ॥ १२ ॥ महावेगेनचिक्षेपतांदेवीमभिदैत्यपः ॥ परापतच्चतच्छूलंनिजशूलेनचण्डिका ॥ १३ ॥ अन्तरैवप्रचिच्छेद सहदैत्यजयाशया ॥ तस्मिन्नपिमहाशूले देवीशूलावहेलिते ॥ १४ ॥ गदामादायदैत्येन्द्रःसहसाभिपपातह ॥ आजघानचतांदेवींभुजमूलेमहाबलः ॥ १५ ॥ सापिदेवीभुजंप्राप्य गिरींद्रशिखराकृतिः ॥ गदाशुपरिपुस्फोटशतधाचसहस्रधा ॥ १६ ॥ ताडितोदेव्यासदैत्येन्द्रोवामपादतलेनहि ॥ आताडितःपपातोर्व्यांहृदिगाढंप्रपीडितः ॥ १७ ॥ तत्क्षणादेवदैत्येन्द्रःपतित्वापुनरुत्थितः ॥ बभूवसहसादृश्योदीपोवातहतोयथा ॥ १८ ॥ तावज्जगज्जनन्याताः प्रेरितानिजशक्तयः ॥ विचे

शूलको ॥ १३ ॥ दैत्योंकी जयाशाके साथ बीचमेंही काटडाला और जब वह महा शूलभी देवीके शूलसे अवज्ञात (छिन्नभिन्न) हुआ तब ॥ १४ ॥ गदा लेकर बड़ा बलवान् दैत्येन्द्र शीघ्रतासे उन देवीजीके सामने आया और बाहुमूलमें मारताभया ॥१५॥ पर्वतेन्द्रके शृंगके समान आकारवाली वह गदाभी देवीजीकी बांहको प्राप्त होकर सैकड़ों औ सहस्रों प्रकारसे शीघ्र टूटगई ॥ १६ ॥ तब देवीजीके बाये पाउँके तलसेही हृदयमें संताड़ित व गाढ़े प्रपीड़ितहुआ वह दैत्येन्द्र भूमिमें गिरपड़ा ॥१७॥ और गिरकर उसी क्षणमें फिर उठाहुआ दैत्येश्वर वायुसे बुताये दियाकीनाई अकस्मात् अदृश्य होगया॥१८॥तबतक जगदम्बासे प्रेरित वे अपनी शक्तियां दैत्य सैन्योंमें

प्रलयकेरूमय मृत्यु सैन्यके समान विचरनेलगीं॥११९॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदुर्गपराक्रमवर्णनंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

दो० । बाहत्तर अध्यायमें शक्तिनाम कहिदीन । दुर्गा विजय बखान अरु कवच सुवर्णन कीन ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे पार्वतीहृदयानंद, सर्वज्ञनंदन, स्कन्द ! वे कौन कौन शक्तियाँ हैं व उनके नामभी मुझसे कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि हे कुंभसंभवमुने ! श्रीपार्वतीजीके अंगोसे उपजीहुई उन परमशक्तियोंके नामों को मैं कहूंगा तुम तत्त्वसे सुनो ॥ २ ॥ त्रैलोक्यविजया, तारा, क्षमा, त्रैलोक्यसुंदरी, त्रिपुरा, त्रिजगन्माता, भीमा, त्रिपुरभैरवी ॥ ३ ॥ कामाख्या, कमलाक्षी, धृति, त्रिपुर-

रुर्दैत्यसैन्येषुसंवर्तेमृत्युसैन्यवत्॥११९॥इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदुर्गपराक्रमोनामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

अगस्त्यउवाच ॥ पार्वतीहृदयानन्दस्कन्दसर्वज्ञनन्दन ॥ काःकास्तुशक्तयस्तावैतासांनामानिमेवद ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तासांपरमशक्तीनामुमावयवसम्भुवाम् ॥ आख्याम्याख्यांशृणुमुनेकुम्भसम्भवतत्त्वतः ॥ २॥ त्रैलोक्यविजयातारात्क्षमात्रैलोक्यसुन्दरी ॥ त्रिपुरात्रिजगन्माताभीमात्रिपुरभैरवी ॥ ३ ॥ कामाख्याकमलाक्षीचधृतिस्त्रिपुरतापनी ॥ जयाजयन्तीविजयाजलेशीचापराजिता ॥ ४ ॥ शङ्खिनीगजवक्त्राचमहिषघ्नीरणप्रिया ॥ शुभानन्दाकोटराक्षी विद्युज्जिह्वाशिवारवा ॥ ५ ॥ त्रिनेत्राचत्रिवक्त्राचत्रिपदासर्वमङ्गला ॥हुङ्कारहेतिस्तालेशीसर्पास्यासर्वसुन्दरी ॥ ६ ॥ सिद्धिर्बुद्धिःस्वधास्वाहामहानिद्राशराशना ॥ पाशपाणिःखरमुखीवज्रताराषडानना ॥ ७॥ मयूरवदनाकाकीशुकीभासी गरुत्मती ॥ पद्मावतीपद्मकेशीपद्मास्यापद्मवासिनी ॥ ८ ॥अक्षरात्र्यक्षरातन्तुःप्रणवेशीस्वरात्मिका ॥ त्रिवर्गागर्वरहि

तापनी, जया, जयंती, विजया, जलेशी, अपराजिता ॥ ४ ॥ शंखिनी, गजवक्त्रा, महिषघ्नी, रणप्रिया, शुभा, नंदा, कोटराक्षी, विद्युज्जिह्वा, शिवारवा ॥ ५ ॥ त्रिनेत्रा, त्रिवक्त्रा, त्रिपदा, सर्वमंगला, हुंकारहेति, तालेशी, सर्पास्या, सर्वसुंदरी ॥ ६ ॥सिद्धि,बुद्धि, स्वधा, स्वाहा,महानिद्रा व शराशना तथा पाशपाणि, खरमुखी, वज्रतारा और षडानना॥७॥मयूरवदना,काकी,शुकी,भासी,गरुत्मती,पद्मावती,पद्मकेशी, पद्मास्या एवं पद्मवासिनी ॥८॥ अक्षरा, त्र्यक्षरा, तंतु, प्रणवेशी, स्वरात्मिका, त्रिवर्गा, गर्वरहिता,

अजपा और जपहारिणी॥९॥ जपसिद्धि,तपःसिद्धि, योगसिद्धि,परा,अमृता, मैत्रीकृत,मित्रनेत्रा,रक्षोघ्नी व दैत्यतापनी॥१०॥स्तम्भनी,मोहनी, माया,बहुमाया, बलोत्कटा उच्चाटनी, महोल्कास्या, दनुजेन्द्रक्षयंकरी॥११॥और क्षेमंकरी, सिद्धिकरी, छिन्नमस्ता,शुभानना,शाकम्भरी, मोक्षलक्ष्मी और त्रिवर्गफलदायिनी॥१२॥ वार्त्ताली, जंभली, क्लिन्ना,अश्वारूढ़ा,सुरेश्वरी, और ज्वालामुखी आदि जे बड़ी बलवती नवकरोड़संख्यक शक्तियां हैं ॥ १३ ॥ उन्होंने अपनी लीलासे प्रलयाग्निकी शिखाओंसे जगतों की नाईं बलवान् दैत्योंकी सेनाको नष्टकरदिया ॥ १४ ॥ तबतक बली दैत्येश्वर उस दुर्गने मेघोंके मध्यसे बहुतही बौंड़रों से वेगवाली जल पत्थरोंकी वर्षा

ताअजपाजपहारिणी ॥ ९ ॥ जपसिद्धिस्तपःसिद्धिर्योगसिद्धिःपरामृता ॥ मैत्रीकृन्मित्रनेत्राच रक्षोघ्नीदैत्यतापनी ॥ १० ॥ स्तम्भनीमोहनीमायाबहुमायाबलोत्कटा ॥ उच्चाटनीमहोल्कास्या दनुजेन्द्रक्षयङ्करी ॥ ११ ॥ क्षेमंकरीसिद्धिकरीछिन्नमस्ताशुभानना ॥ शाकम्भरीमोक्षलक्ष्मीस्त्रिवर्गफलदायिनी ॥ १२ ॥ वार्तालीजम्भलीक्लिन्नाअश्वारूढासुरेश्वरी ॥ ज्वालामुखीप्रमृतयोनवकोट्योमहाबलाः ॥ १३ ॥ बलानिबलिनांताभिर्दानवानांस्वलीलया ॥ संक्षिप्तानिजगन्तीवप्रलयानलहेतिभिः ॥१४॥ तावत्सदुर्गोदैत्येन्द्रःपयोदान्तरतोबली ॥ चकारकरकावृष्टिंवात्यावेगवतींबहु ॥१५॥ ततोभगवतीदेवी शोषणास्त्रप्रयोगतः ॥ वृष्टिंनिवारयामासवर्षोपलमयींक्षणात् ॥ १६ ॥ योषिन्मनोरथवतीषण्ढंप्राप्य यथाऽफला ॥ सादैत्यकरकावृष्टिर्देवींप्राप्यतथाभवत् ॥१७॥ अथदैतेयराजेन बाहुमङ्कर्षकोपतः ॥ उत्पाट्यशैलशिखरं परिक्षिप्तंनभोङ्गणात् ॥ १८ ॥ अद्रेःशृङ्गंसुविस्तीर्ण मापतत्परिवीक्ष्यसा ॥ शतकोटिप्रहारेण कोटिशःशकलंव्यधा

किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर ऐश्वर्य्यवती देवीजीने शोषण अस्त्रके प्रयोगसे याने उसके चलानेसे पानीपत्थरकी वृष्टिको क्षणभरमें निवारण करदिया ॥ १६ ॥ जैसे मनोरथवती स्त्री नपुंसकको प्राप्तहोकर फलसे हीनहोतीहै वैसेही वह जलपत्थरोंकी वर्षा देवीजीको प्राप्तहोकर विफलहुई ॥ १७ ॥ उसकेबाद दैत्यराजने बाहु संताड़न पूर्वक क्रोधसे पर्वतके शृंगको उखाड़कर आकाशके आंगनसे नीचेमें बहाया ॥१८॥ और उस आतेहुये बहुत विस्तारयुक्त उस पर्वत शिखरको सब ओरसे देखकर उन

देवीजी ने वज्रके प्रहार से खंडित करडाला ॥ १९ ॥ व संग्राम में शीघ्रही हाथी होकर और कुंडलों से विराजित मुंडको बारबार डुलाकर वह दैत्य उन देवीजी के सम्मुख दौड़ा ॥ २० ॥ वेगसे आतेहुये पर्वत के समान आकारवाले उस हाथी को देखकर भगवती ने पाशसे बांधकर तलवारसे शुंडादंड के दोखंड करडाले ॥ २१ ॥ तदनन्तर देवीजी से काटीगई सूंडवाले उसहाथी ने अत्यन्त चिघड़कर और कुछभी न करसकेहुये के भावको प्राप्तहोकर भैंसाकी देह धरलिया ॥ २२ ॥ व उस बलवान् ने खुरों के घातसे सब पृथ्वी को कंपनसमेत करदिया और उसने अपने शृंगों से उखाड़कर बहुतसे पर्वतों को फेंक दिया ॥ २३ ॥ व निःश्वासकी वायुसे

त ॥ १९ ॥ आन्दोल्यमौलिमसकृत्कुण्डलाभ्यांविराजितम् ॥ गजीभूयाशुदुद्राव तान्देवींसमरेऽसुरः ॥ २० ॥ शैलाकारंतमायान्तं दृष्ट्वाभगवतीगजम् ॥ बद्ध्वापाशेनजवतः खड्गेनकरमच्छिनत ॥ २१ ॥ ततोत्यन्तंसचीत्कृत्य देव्याकृत्तकरःकरी ॥ अकिंचित्करतांप्राप्य माहिषंवपुराददे ॥ २२ ॥ अचलांसचलांसर्वांसचक्रेखुरघाततः ॥ शिलोच्चयांश्चबहुशः शृङ्गाभ्यांसोत्क्षिपद्बली ॥ २३ ॥ निश्वासवातनिहताः पेतुरुर्व्यांमहाद्रुमाः ॥ उद्वेलिताःसमभवन्सप्तापिजलराशयः ॥ २४ ॥ महामहिषरूपेण तेनत्रैलोक्यमण्डपः ॥ आन्दोलितोतिबलिना युगान्तेवात्ययायथा ॥ २५ ॥ ब्रह्माण्डमप्यकाण्डेन तद्भयेनसमाकुलम् ॥ दृष्ट्वाभगवतीक्रुद्धा त्रिशूलेनजघानतम् ॥ २६ ॥ त्रिशूलघातविभ्रान्तः पतित्वापुनरुत्थितः ॥ तंत्यक्त्वामाहिषंवेषमऽभूद्बाहुसहस्रभृत् ॥ २७ ॥ सदुर्गोनितरांदुर्गो विबभौसमराजिरे ॥ आयुधानांसहस्राणि बिभ्रत्कालान्तकोपमः ॥ २८ ॥ अथतूर्णंसदैत्येन्द्रस्तान्देवींरणकोविदाम् ॥ महाबलःप्रगृह्याशु नीतवान्गगनाङ्गण

निहतहुये बड़े बड़े वृक्ष भूमि में गिरपड़े और सातो समुद्रभी तटोंपरउमड़नेवाले होगये ॥ २४ ॥ व बड़े बलवान् उस महामहिषरूपने प्रलयकाल में वायु समूह के समान त्रिलोकमंडपको डगमग डगमग डुलाया ॥ २५ ॥ और अनवसर उसके डरसे ब्रह्मांडको व्याकुल देखकर भगवतीने त्रिशूलसे उसको मारा ॥ २६ ॥ तब त्रिशूलके घातसे घूमाहुआ भूमि में गिरकर फिर उठा और उस माहिषरूपको त्यागकर भारी हजारभुजधारी होगया ॥ २७ ॥ और हजारों आयुधों को धारताहुआ कालांतक के समान अत्यन्तदुर्गम वह दुर्गदैत्य संग्रामआंगन में विशेषता से सोहताभया ॥ २८ ॥ अनन्तर उस बड़े बली दैत्येन्द्र ने चपलतासे संग्रामपंडिता उन

देवीजीको पकड़कर शीघ्रही आकाश आंगनको प्राप्तकिया ॥ २९ ॥ उसके बाद उसवेगवान् असुरने ऊंचे आकाशआंगनसे जगदम्बिकाको दूरछोड़कर क्षणभरमें बाण समूहोंसे घेरदिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर उसके बाणोंके मध्यगत अन्तरिक्षमें प्राप्तहुईदेवीजी महामेघोंकी पंक्तिमें टिकीहुई विद्युतमालाकीनाई सुशोभितहुई ॥ ३१ ॥ और उन देवीजी ने अपने बाणसमूहों से उस शरपञ्जर को अतिशयसंचलित कर याने हटाकर अनन्तर बड़े बाणसे उस दैत्य जनेश्वर का ताडन किया ॥ ३२ ॥ व उन देवीजी करके उस बड़े बाणसे हृदय में विद्ध और विशेषता से सब ओर घूमती हुई आंखोंवाला वह बहुत विह्वल होकर पृथिवी में प्राप्तहुवा ॥ ३३ ॥ जो कि महारक्त-

म् ॥२९॥ ततोनभोङ्गणाद्दूरात्क्षिप्त्वासजगदम्बिकाम् ॥ क्षणात्कलम्बजालेनच्छादयामासवेगवान् ॥३०॥ अथान्तरिक्षगादेवी तस्यमार्गणमध्यगा ॥ विद्युन्मालेवविबभौ महाभ्रपटलीधृता ॥ ३१ ॥ तंविधूयशरव्रातं निजेषुनिकरैरलम् ॥ महेषुणाथविव्याध सातन्दैत्यजनेश्वरम् ॥ ३२ ॥ हृदिविद्धस्तयादेव्या सचतेनमहेषुणा ॥ व्याघूर्णमाननयनःक्षितिमापातिविह्वलः ॥ ३३॥ महारुधिरधाराभिः स्रवन्तींचप्रवर्तयन् ॥ तस्मिन्निपतितेदुर्गे महादुर्गपराक्रमे ॥ ३४ ॥ देवदुन्दुभियोनेदुःप्रहृष्टानिजगन्तिच ॥ सूर्याचन्द्रमसौसाग्नीतेजोनिजमवापतुः ॥ ३५ ॥ पुष्पवृष्टिंप्रकुर्वन्तः प्राप्तादेवामहर्षिभिः ॥ तुष्टुवुश्चमहादेवीं महास्तुतिभिरादरात् ॥ ३६ ॥ देवाऊचुः ॥ नमोदेविजगद्धात्रि जगत्रयमहारणे ॥ महेश्वरमहाशक्ते दैत्यद्रुमकुठारिके ॥ ३७ ॥ त्रैलोक्यव्यापिनिशिवेशङ्खचक्रगदाधरि ॥ स्वशार्ङ्गव्यग्रहस्ताग्रे नमो

धाराओं से नदी को प्रवर्त्तित करता हुवा टिकाथा उस बड़ेदुर्गपराक्रमवाले दुर्गके नीचे गिरतेही ॥ ३४ ॥ देवों के नगारे बाजनेलगे और जगत् अतिशय आनंदितहुये व अग्नि समेत सूर्य्य और चन्द्रमाने अपने तेज कोपाया ॥ ३५ ॥ और फूलोंकी वर्षाकरतेहुये देवतालोग महर्षियो के साथ प्राप्तहोकर बडी स्तुतियों से आदरपूर्वक महादेवीजी की स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥ देव बोले कि हे जगत् की पोषिणि (विष्णु की शक्ति) त्रिलोक के जन्मकी महास्थानरूपे ! (सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माकी शक्ति) महेश्वरमहाशक्ते ! (संहारकारिणि) दैत्य वृक्षों के काटने को कुठार रूपे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे त्रैलोक्यव्यापिनि ! कल्याण रूपिणि ! शङ्ख चक्र गदा

रूपाहो व तुमही सर्वमन्त्रमयीहो और ब्रह्मादि जन तुमसेही समुत्पन्न हैं ॥ ४७ ॥ हे अर्थ धर्मादि चतुर्वर्ग फलोंकी उदयकारिणि ! सब जगत की निधान रूपिणि ! तुमही अर्थादि चारपुरुषार्थरूपाहो व यह सब विश्व (जगत्) तुमसे उत्पन्न होताहै और यह सब तुममेंही टिकाहै ॥ ४८ ॥ जो कि स्थूल व सूक्ष्म रूप दृश्य (पृथिव्यादि) और अदृश्य (आकाशादि) है उसमे तुम शक्तिरूपसे बर्त्ततीहो इससेतुम्हारे विना कुछ भी कहीं नहीं है ॥ ४९ ॥ हे निरन्तरप्रणतपालिनि ! मातः ! हे देवि ! जोकि स्वभावसेही ज्ञानसिद्ध ब्रह्मादिदेवों में दैत्यसैन्यों को अर्प्पणकरनेवाला याने पुरुषों से अजेय, बड़ाभारी दैत्येन्द्रदुर्ग है उसको विशेषता से बधकर आज

का ॥ सर्वमन्त्रमयीत्वंवै ब्रह्माद्यास्त्वत्समुद्भवाः ॥ ४७ ॥ चतुर्वर्गात्मिकात्वंवै चतुर्वर्गफलोदये ॥ त्वत्तःसर्वमिदंविश्वंत्वयिसर्वंजगन्निधे ॥ ४८ ॥ यद्दृश्यंयददृश्यंचस्थूलसूक्ष्मस्वरूपतः ॥ तत्रत्वंशक्तिरूपेण किंचिन्नत्वदृतेक्कचित् ॥ ४९ ॥ मातस्त्वयाद्यविनिहत्यमहासुरेन्द्रं दुर्गन्निसर्गविबुधार्पितदैत्यसैन्यम् ॥ त्राताःस्मदेविसततंनमतांशरण्ये त्वत्तोऽपरःक इहयंशरणंव्रजामः ॥ ५० ॥ लोकेतएवधनधान्यसमृद्धिभाजस्तेपुत्रपौत्रसुकलत्रसुमित्रवन्तः ॥ तेषांयशःप्रसरचन्द्रकरावदातं विश्वंभवेद्भवसियेषुसुदृक्त्वमीशे ॥ ५१ ॥ त्वद्भक्तिचेतसिजनेनविपत्तिलेशः क्लेशःक्वानुभवतीनतिकृत्सुपुंसु॥ त्वन्नामसंस्मृतिजुषांसकलायुषांक भूयःपुनर्जनिरिहत्रिपुरारिपत्नि ॥ ५२ ॥ चित्रंयदत्रसमरेसहिदुर्गदैत्यस्त्वदृष्टिपात

तुमसे हमलोग रक्षितहुये यह प्रसिद्ध है और अन्य कौन तुमसे अधिक है जिसकीशरणको जावें याने आपसे अधिक कोई नहीं है इससे हम सब आपके शरणागतहैं ॥ ५० ॥ हे ईश्वरि ! जिन लोगों में तुम शोभनदृष्टिवाली होतीहो वेही लोग लोकमें धनधान्य समृद्धिसेवी हैं व वेही पुत्रपौत्र सुन्दरी स्त्री और सुमित्रवाले हैं और यह समस्त जगत् उनकेही सुयशचन्द्रमाकी चारोओर पसरतीहुई किरणों से उज्ज्वल होवे है ॥ ५१ ॥ हे त्रिपुरारिपत्नी ! तुम्हारी भक्तिसेयुक्त चित्तवाले जनमें विपत्तियोंका लेश नहीं हैं व आपके नमस्कारकर्त्ता पुरुषों मे क्लेश कहां है और तुम्हारे नामोंकी परमपद्धतिके सेवी सम्पूर्ण आयुवाले लोगों की वारंवार फिर उत्पत्ति इस संसारमें कहांहै याने नहीं है यह निश्चितहै ॥ ५२ ॥ और यह विचित्रहै जोकि इस संग्राम में वह दुर्गदैत्यभी अमृतनिधान के समान तुम्हारे दृष्टिपातको अधिकतासे पाकर मृत्यु

धारिणि ! और अपने शार्ङ्गधन्वा से व्यग्रहस्ताग्रवाली, विष्णुस्वरूपिणि ! ॥ ३८ ॥ व हे अनादि सिद्ध प्राचीन जनोंके वचनों की जन्म भूमे ! या उनके अगोचरे (परे) सर्वसृष्टिकारिणि ! हंसवाहिनि ब्रह्मरूपिणि ! तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥ ३९ ॥ व तुम इन्द्रकी तुम कुबेरकी तुम वायुकी तुम वरुणकी तुम यमकी तुम निर्ऋति की तुम ईशानकी और तुम अग्नि की शक्ति हो ॥ ४० ॥ और हे परमेश्वरि ! तुमही चन्द्रमा की चन्द्रिकाहो व तुमही सूर्य्य की प्रभाशक्ति हो व तुमही सब देवमयी शक्ति और अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाली हो ॥ ४१ ॥ व तुम गौरीहो तुम सावित्रीहो तुम गायत्रीहो तुम सरस्वतीहो तुम प्रकृतिहो तुम मति याने महत्तत्त्वहो और तुम अहंकार

विष्णुस्वरूपिणि ॥ ३८ ॥ हंसयानेनमस्तुभ्यंसर्वसृष्टिविधायिनि ॥ प्राचांवाचांजन्मभूमे चतुराननरूपिणि ॥ ३९ ॥ त्वमैन्द्रीत्वंचकौबेरी वायवीत्वंत्वमम्बुपा ॥ त्वंयामीनैर्ऋतीत्वंच त्वमैशीत्वंचपावकी ॥ ४० ॥ शशाङ्ककौमुदीत्वं चसौरीशक्तिस्त्वमेवच ॥ सर्वदेवमयीशक्तिस्त्वमेवपरमेश्वरी ॥ ४१ ॥ त्वंगौरीत्वंचसावित्रीत्वंगायत्रीसरस्वती ॥ प्रकृतिस्त्वंमतिस्त्वंच त्वमहंकृतिरूपिणी ॥ ४२ ॥ चेतःस्वरूपिणीत्वंवैत्वंसर्वेन्द्रियरूपिणी ॥ पञ्चतन्मात्ररूपात्वंमहाभूतात्मिकेम्बिके ॥ ४३ ॥ शब्दादिरूपिणीत्वंवै करणानुग्रहात्वसु ॥ ब्रह्माण्डकर्त्रीत्वं देविब्रह्माण्डान्तस्त्वमेवहि ॥ ४४ ॥ त्वंपरासिमहादेवि त्वंचदेविपरापरा ॥ परापराणांपरमा परमात्मस्वरूपिणी ॥ ४५ ॥ सर्वरूपात्वमीशानि त्वमरूपासिसर्वगे ॥ त्वंचिच्छक्तिर्महामाये त्वंस्वाहात्वंस्वधामृते ॥ ४६ ॥ वषड्वौषट्स्वरूपासि त्वमेवप्रणवात्मि

रूपिणीहो ॥ ४२ ॥ हे अम्बिके ! तुमही अंतःकरणस्वरूपिणीहो तुमही सब इंद्रियरूपिणीहो तुमही पंचतन्मात्र याने अपंचीकृत सूक्ष्मपंचतत्त्व रूपाहो और तुमही आकाशादि स्थूल पंचमहाभूत स्वरूपाहो ॥ ४३ ॥ हे देवि ! तुमही शब्दादि याने शब्द स्पर्श रूप रस और गन्धरूपिणीहो तुमही इंद्रियों की अधिष्ठात्री देवता रूपाहो तुमही ब्रह्मांड की करनेवालीहो और तुमही ब्रह्मांडका अन्त या ब्रह्मांडरूपिणीहो ॥४४ ॥ हे क्रीडाकारिणि ! महादेवि ! तुम परा (ईश्वरी) हो व तुम पर (महत्तत्त्वादि) और अपर (उनके कार्य्य) तद्रूपिणीहो व तुमहीपर अपरोंसे परे परमात्मस्वरूपिणीहो ॥ ४५ ॥ हे सर्वगे ! महामाये ! अमृते ! ईशानि ! तुम सब रूपवालीहो व तुम अरूपा (निराकार) हो व तुम चेतनशक्ति (ज्ञानैकस्वरूपा) हो व तुम स्वाहा हो और तुम स्वधाहो ॥ ४६ ॥ व तुमही वषट् और वौषट्स्वरूपाहो तुमही ओंकार

की अधीनताको प्राप्तहुआ हे भवानि ! हम लोगोसे जानागया कि तुम्हारी दृष्टिके पथ में पराहुआ दुष्टभी दुर्गतिको नहीं प्राप्तहोता है याने मुक्त होजाताहै ॥ ५३ ॥ व इस लोकमें तुम्हारे अग्निसमान शस्त्रो में पांखीभावको प्राप्तहुयेभी दैत्यलोग सूर्य्यमण्डल को भेदनकर स्वर्गको जाते हैं जिससे संतजन दुष्टोंमें भी विरुद्धबुद्धिवाले नहीं होवे हैं और साधुओं मे स्नेहियों के समान अपनी गलीको उपदेश करते हैं ॥ ५४ ॥ हे मृडानि! नमस्कार करतेहुये हम लोगोंकी पूर्वमें सदैव सब ओरसे तुम रक्षाकरो व हे भवानि ! तुम प्रतिक्षण विपत्तिसे रक्षाकरो व हे त्रिपुरतापनपालि ! तुम पश्चिमदिशा में रक्षाकरो और हे महेशि ! तुम उत्तरमें अपने भक्तजनोंकी रक्षाकरो ॥ ५५ ॥ हे ब्र-

मधिगम्यसुधानिधानम् ॥ मृत्योर्वशत्वमगमद्विदितंभवानिदुष्टोपितेदृशिगतःकुगतिन्नयाति॥५३ ॥ त्वच्छस्त्रवह्निशलभत्वमिताअपीहदैत्याःपतङ्गरुचिमाप्यदिवंव्रजन्ति॥सन्तःखलेष्वपिनदुष्टधियोयतःस्युःसाधुष्विवप्रणयिनःस्वपथन्दिशन्ति ॥ ५४ ॥ प्राच्यांमृडानिपरिपाहिसदानतान्नोयाम्यामवप्रतिपदंविपदोभवानि ॥ प्रत्यग्दिशित्रिपुरतापनपालिरक्षत्वंपाह्युदीचिनिजभक्तजनान्महेशि ॥ ५५ ॥ ब्रह्माणिरक्षसततंनतमौलिदेशंत्वंवैष्णविप्रतिकुलम्परिपालयाधः ॥ रुद्राग्निनैर्ऋतिमदागतिदिक्षुपान्तुमृत्युञ्जयात्रिनयनात्रिपुरात्रिशक्तयः ॥५६॥ पातुत्रिशूलममलेतवमौलिजान्नोभालस्थलंशशिकलाभृदुमाभ्रुवौच॥ नेत्रेत्रिलोचनवधूर्गिरिजाचनासामोष्ठञ्जयाचविजयात्वधरप्रदेशम् ॥ ५७॥ श्रोत्रद्वयंश्रुतिरवादशनावलिंश्रीश्चण्डीकपोलयुगलंरसनाञ्चवाणी ॥ पायात्सदैवचिबुकञ्जयमङ्गलानःकात्यायनीवदनमण्डलमेवस

ह्माणि ! तुम निरन्तर प्रणतजनोंके मस्तकदेशकी रक्षाकरो हे वैष्णवि ! तुम प्रतिभक्त कुलकी नीचेसे सब ओर रक्षाकरो व मृत्युंजया, त्रिनयना त्रिपुरा और त्रिशक्ति (सृष्टि स्थिति और प्रलयमें तीन शक्तिवाली) ये चारो देवियां क्रमसे ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायुकी दिशाओं में रक्षाकरें ॥ ५६ ॥ हे अमले ! तुम्हारा त्रिशूल हमारे मुण्डो में उपजेहुये बालोंकी रक्षाकरें व चन्द्रकलाधारिणी भालस्थलकी, उमा भौहोंकी, त्रिलोचन वधू नेत्रोंकी, गिरिजा नासिकाकी, जया ओठकी और विजया अधर याने नीचेके ओठप्रदेशकी रक्षाकरे ॥ ५७ ॥ व श्रुति हमारे दोनों कानोंकी, श्री दंत पंक्तिकी, चण्डी दोनों कपोलोंकी वाणी रसना (जिह्वा) की जयमंगला चिबुककी,

और कात्यायनी सब मुखमण्डलकी भी सदैव रक्षाकरे ॥ ५८ ॥ व यहां नित्य नमस्कार करतेहुये हमारे कंठप्रदेशकी नीलकण्ठी, व कृकाटिका याने ग्रीवा और शिरके जोडसे पीछे पृष्ठवंशके ऊपरभागकी वाराहीशक्ति, व स्कन्धदेशकी कौर्मी व भुजदण्ड की ऐन्द्री व हस्तफलककी पद्मा सदैव रक्षाकरे ॥ ५९ ॥ व कमलजा हमारे हाथोंकी अँगुलियोंकी, विरजा नखोंकी, सूर्यमंडलगा अन्धकारविनाशिनी कांखों के बीचकी, स्थलचरी वक्षःस्थलकी धरित्री हृदयकी और रात्रिंचरघ्नी दोनों कोखोंकी रक्षाकरे ॥ ६० ॥ उसके बाद जगदीश्वरी हमारी उदरकन्दराकी आकाशगामिनी नाभिकी और अजापृष्ठदेशकी सदैव रक्षाकरे व विकटादेवी कटिकी परमा हमारे कूलोंकी कार्त्तिकेय

वम् ॥ ५८ ॥ कण्ठप्रदेशमवतादिहनीलकण्ठीभूदारशक्तिरनिशञ्चकृकाटिकायाम् ॥ कौर्म्यंसदेशमनिशम्भुजदण्ड मैन्द्रीपद्माचपाणिफलकंनतिकारिणां नः ॥ ५९ ॥ हस्ताङ्गुलीःकमलजाविरजानखांश्चकक्षान्तरन्तरणिमण्डलगात मोघ्नी ॥ वक्षःस्थलंस्थलचरीहृदयन्धरित्रीकुक्षिद्वयन्त्ववतुनःक्षणदाचरघ्नी ॥ ६० ॥ अव्यात्सदोदरदरीञ्जगदीश्वरी नोनाभिनभोगतिरजात्वथपृष्ठदेशम् ॥ पायात्कटिञ्चविकटापरमास्फिचौनोगुह्यंगुहारणिरपानमपायहन्त्री ॥ ६१ ॥ ऊरुद्वयञ्चविपुलाललिताचजानूजङ्घेजवाऽवतुकठोरतरात्रगुल्फौ ॥ पादौरसातलचरांगुलिदेशमुग्राचान्द्रीनखान्पदतल न्तलवासिनीच ॥ ६२ ॥ गृहंरक्षतुनोलक्ष्मीःक्षेत्रंक्षेमकरीसदा ॥ पातुपुत्रान्प्रियकरीपायादायुःसनातनी ॥ ६३ ॥ यशः पातुमहादेवीधर्मम्पातुधनुर्धरी ॥ कुलदेवीकुलम्पातुसद्गतिंसद्गतिप्रदा ॥ ६४ ॥ रणेराजकुलेद्यूतेसंग्रामेशत्रुसङ्कटे ॥ गृहे वनेजलादौचशर्वाणीसर्वतोऽवतु ॥ ६५ ॥ इतिस्तुत्वाजगद्धात्रीम्प्रणेमुश्चपुनःपुनः ॥ सर्वेसवासवादेवाःसर्षिगन्धर्वचार

कीमाता गुह्य (लिंग) की और अपायहंत्री गुदाकी रक्षाकरे ॥ ६१ ॥ व विपुला ऊरुद्वयकी ललिता दोनों जानुवोंकी जवा जंघोंकी व यहां कठोरतरा गुल्फोंकी रसातलचरी पावोंकी उग्रा अंगुलिदेशकी चांद्री नखोंकी और तलवासिनी पदतलोंकी रक्षा करे ॥ ६२ ॥ व लक्ष्मी हमारे घरकी रक्षाकरे व क्षेमकरी क्षेत्रकी सदैव रक्षाकरे व प्रियकरी पुत्रोंकी रक्षाकरे और सनातनी आयुकी रक्षाकरे ॥ ६३ ॥ व महादेवी सुयशकी रक्षाकरे धनुर्धरी धर्मकी रक्षाकरे कुलदेवी कुलकी रक्षाकरे और सद्गतिप्रदा सुगतिकी रक्षाकरे ॥ ६४ ॥ व संग्राम राजकुल द्यूत (जुवा) युद्ध शत्रुओ से संकट घर वन और जलादि मे सर्वत्र शर्वाणीजी रक्षाकरे ॥ ६५ ॥ इस भांति जगदम्बाकी स्तुतिकर

ऋषि गन्धर्व और चारणोंसेसंयुत व इन्द्रसमेत सब देवोंने बारबार प्रणामकिया ॥६६॥ तदनन्तर सन्तुष्टहुई जगन्माताने उन देवसत्तमोंसे कहा कि सब देवता पहलेकीनाई यथावत् अपने अधिकारोंकी शासनाकरें ॥ ६७ ॥ और हे सुरोत्तमो ! अन्वयवाली इस स्तुतिसे बहुतही सन्तुष्टहुई मैं अन्यवरको दूंगी तुम लोग उसको सुनो ॥ ६८ ॥ दुर्गाजी बोलीं कि भक्तिसे पवित्र जो मनुष्य इस स्तुति से मेरी स्तुति करेगा उसकी विपत्ति और रोगादिकोंको मैं क्षण क्षणमें नष्टकरूंगी ॥ ६९ ॥ व जो मनुष्य इस स्तोत्र के कवच को सबओर से धारेगा उस वज्र पञ्जरगामी कोभी कहीं डर नहीं है ॥ ७० ॥ संग्राममें अत्यन्त दुर्गम दुर्ग दैत्यके मारनेसे आजसे लगाकर मेरानाम दुर्गा इसभांति

णाः ॥ ६६ ॥ ततस्तुष्टाजगन्मातातानाहसुरसत्तमान् ॥ स्वाधिकारान्सुराःसर्वेशासतुप्राग्यथायथा ॥ ६७ ॥ तुष्टाहमनयास्तुत्यानितरान्तुयथार्थया ॥ वरमन्यम्प्रदास्यामितच्छृणुध्वंसुरोत्तमाः ॥ ६८ ॥ दुर्गोवाच ॥ यःस्तोष्यतितुमांभक्त्यानरःस्तुत्यानयाशुचिः ॥ तस्याहंनाशयिष्यामिविपदश्चपदेपदे ॥ ६९ ॥ एतत्स्तोत्रस्यकवचंपरिधास्यतियोनरः ॥ तस्यक्वचिद्भयंनास्तिवज्रपञ्जरगस्यहि ॥ ७० ॥ अद्यप्रभृतिमेनामदुर्गेतिख्यातिमेष्यति ॥ दुर्गदैत्यस्यसमरेपातनादतिदुर्गमात् ॥ ७१ ॥ येमांदुर्गांशरणगानतेषान्दुर्गतिःक्वचित् ॥ दुर्गास्तुतिरियंपुण्यावज्रपञ्जरसञ्ज्ञिका ॥ ७२ ॥ अनयाकवचंकृत्वामाबिभेतुयमादपि ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्चशाकिनीडाकिनीगणाः ॥७३॥ झोंटिङ्गाराक्षसाःक्रूराविषसर्पाग्निदस्यवः ॥ वेतालाश्चापिकङ्कालग्रहाबालग्रहाअपि ॥ ७४ ॥ वातपित्तादिजनितास्तथाचविषमज्वराः ॥ दूरादेवपलायन्तेश्रुत्वास्तुतिमिमांशुभाम् ॥७५॥ वज्रपञ्जरनामैतत्स्तोत्रन्दुर्गाप्रशंसनम् ॥ एतत्स्तोत्रकृतत्राणेवज्रादपिभयंनहि॥७६॥

की प्रसिद्धि को प्राप्तहोवेगा ॥ ७१ ॥ व जे मुझदुर्गा के शरणागतहैं उनकी दुर्गति कहीं नहीं है औ वज्रपंजरनामवाली यह दुर्गाकीस्तुति महामनोज्ञ या पुण्यबढ़ानेवाली है ॥ ७२ ॥ इससे कवचकर यमराज से भी मतडरे व भूत प्रेत पिशाच शाकिनी और डाकिनीगण ॥ ७३ ॥ व झोंटिंग राक्षस क्रूरजन्तु विष सर्प अग्नि चोर वेताल (भूतभेद) कंकाल ग्रह (पिशाच भेद) और बालग्रहभी (जो कि पूतनादि नामोंसे प्रसिद्धहैं) ॥ ७४ ॥ व वात पित्तादिकों से उपजेहुये रोग तथा विषमज्वर इस मंगलमयी स्तुतिको सुनकर दूरही से भागजाते हैं ॥ ७५ ॥ दुर्गाजी का प्रशंसन यह स्तोत्र वज्र पंजर नामक है व इस स्तोत्रसे रक्षा करनेपर वज्रसेभी डरनहीं है ॥ ७६ ॥

और जो कि आठबार जपेहुये इससे अभिमन्त्रित कर पानी पीवे उसके उदरगत पीड़ाकी कहींभी सम्भावना नहीं होवेगी ॥७७॥ व इसके अभिमन्त्रणसे गर्भपीड़ाभी कभी न होवेगी और इस स्तोत्र से अभिमन्त्रित पानी के पीने से बालकों की परमशान्ति होवेगी ॥ ७८ ॥ व जहां जहां इस स्तोत्रका समीप होवेगा वहां सर्वत्र मुझसमेत ये सर्वत्र मेरी शक्तियां ॥ ७९ ॥ मेरी आज्ञासे मेरे भक्तोंकी सब भावसे रक्षा करेंगी इस प्रकार देवों को वर देकर देवीजी उस समय अन्तर्धानहुईं ॥ ८० ॥ और वे सबदेव भी आनन्दसे अपने अपने स्वर्गको चलेगये श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महामुने! इसभांति उन देवीजीका दुर्गा नाम हुआ और जैसे वह काशी में सेवने योग्यहैं उसको

अष्टजप्तेनचानेनयोभिमन्त्र्यजलंपिबेत ॥ तस्योदरगतापीडाक्कापिनोसम्भविष्यति ॥७७॥ गर्भपीडातुनोजातुभविष्यत्यभिमन्त्रणात् ॥ बालानाम्परमाशान्तिरेतत्स्तोत्राम्बुपानतः ॥ ७८ ॥ यत्रसान्निध्यमेतस्यस्तवस्येहभविष्यति ॥ एतास्तुशक्तयःसर्वाःसर्वत्रसहितामया ॥ ७९ ॥ रक्षाम्परिकरिष्यन्तिमद्भक्तानांममाज्ञया ॥ इतिदत्त्वावरान्देवीदेवेभ्योन्तर्हितातदा ॥ ८० ॥ तेपिस्वर्गौकसःसर्वेस्वंस्वंस्वर्गंययुर्मुदा ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्थन्दुर्गाभवन्नामतस्यादेव्यामहामुने ॥ काश्यांसेव्यायथासाचतच्छृणुष्ववदामिते ॥ ८१ ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्याम्भौमवारेविशेषतः ॥ सम्पूज्यासततङ्काश्यान्दुर्गादुर्गतिनाशिनी ॥ ८२ ॥ नवरात्रंप्रयत्नेनप्रत्यहंसासमर्चिता ॥ नाशयिष्यतिविघ्नौघान्सुमतिञ्चप्रदास्यति ॥ ८३ ॥ महापूजोपहारैश्चमहाबलिनिवेदनैः ॥ दास्यत्यभीष्टदासिद्धिंदुर्गाकाश्यांनसंशयः ॥ ८४ ॥ प्रतिसंवत्सरन्तस्याःकार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ शारदंनवरात्रञ्चसकुटुम्बैःशुभार्थिभिः ॥ ८५ ॥ योनसांवत्सरींयात्रान्दुर्गायाःकुरुतेकुधीः ॥

सुनो मैं तुमसे कहताहूं ॥ ८१ ॥ अष्टमी चतुर्दशी और विशेषकर मंगलकेदिन व निरन्तर दुर्गतिनाशिनी दुर्गाजी काशीमें भलीभांति पूजनेयोग्यहैं ॥८२॥ व आश्विनशुक्ल नवरात्रमे प्रतिदिन बहुतयत्नसे पूजीहुई वह विघ्नसमूहोंको नशावेंगी और अच्छा ज्ञानदेवेंगी ॥८३॥ व बड़ीपूजा सामग्रियों और यहां पकान्न नैवेद्योंसे पूजीहुई अभीष्टदात्री दुर्गाजी काशी में सिद्धिको देवेंगी इसमें संशय नहीं है ॥ ८४ ॥ इसलिये प्रतिवर्ष शरदऋतुके नवरात्र पर्यन्त बड़े यत्न से कुटुम्बसमेत शुभार्थियों को उनकी यात्राकरना

चाहिये ॥ ८५ ॥ और जो दुर्बुद्धिजन काशी में दुर्गादेवीकी वार्षिकी यात्राको नहीं करताहै उसको क्षण क्षणमें हजारों विघ्न होते हैं ॥ ८६ ॥ दुर्गाकुण्डमें स्नानकर और दुर्गार्त्तिहारिणी दुर्गाजीकी विधिवत् भलीभांति पूजाकर नर नवजन्मों के पापको संत्यागकरे ॥ ८७ ॥ और वह दुर्गाजी जिन शक्तियों के साथ सब ओर काशीकी रक्षा करती हैं वे कालरात्रि आदिशक्तियां बहुत यत्नसमेत मनुष्यों से भलीभांति पूजनीय हैं ॥ ८८ ॥ तथा अन्य भी जे नव शक्तियां हजारों उत्पातों से इस क्षेत्रकी रक्षा करती हैं वेही क्रमसे दिशाओंकी देवतायें हैं ॥ ८९ ॥ शतनेत्रा, सहस्रास्या तथा अन्या अयुतभुजा व अश्वारूढ़ा, गजास्या, त्वरिता, शववाहिनी ॥ ९० ॥ व विश्वा और

काश्यांविघ्नसहस्राणितस्यस्युश्चपदेपदे ॥ ८६ ॥ दुर्गाकुण्डेनरःस्नात्वासर्वदुर्गार्तिहारिणीम् ॥ दुर्गांसम्पूज्यविधिवन्नव जन्माघमुत्सृजेत् ॥ ८७ ॥ सादुर्गाशक्तिभिःसार्धंकाशींरक्षतिसर्वतः ॥ ताःप्रयत्नेनसम्पूज्याःकालरात्रिमुखानरैः ॥ ८८ ॥ रक्षन्तिक्षेत्रमेतद्वैतथान्यानवशक्तयः ॥ उपसर्गसहस्रेभ्यस्तावैदिग्देवताःक्रमात् ॥ ८९ ॥ शतनेत्रासहस्रास्या तथायुतभुजापरा ॥ अश्वारूढागजास्याचत्वरिताशववाहिनी ॥ ९० ॥ विश्वासौभाग्यगौरीचसृष्टाःप्राच्यादिमध्य तः ॥ एतायत्नेनसम्पूज्याःक्षेत्ररक्षणदेवताः ॥ ९१ ॥ तथैवभैरवाश्चाष्टौदिक्ष्वष्टासुप्रतिष्ठिताः ॥ रक्षन्तिसततंकाशीं निर्वाणश्रीनिकेतनम् ॥ ९२ ॥ रुरुश्चंडोसिताङ्गश्चकपालीक्रोधनस्तथा ॥ उन्मत्तभैरवस्तद्वत्क्रमात्संहारभीषणौ ॥ ९३ ॥ चतुःषष्टिस्तुवेतालामहाभीषणमूर्तयः ॥ रुण्डमुण्डस्रजःसर्वेकर्त्रीखर्परपाणयः ॥ ९४ ॥ श्ववाहनारक्तमुखामहादंष्ट्राम हाभुजाः ॥ नग्नाविमुक्तकेशाश्चप्रमत्तारुधिरासवैः ॥ ९५ ॥ नानारूपधराःसर्वेनानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ तदाकारैश्चतद्भृ

सौभाग्यगौरी ये देवीजी से नियुक्त कीगईं हुई क्षेत्ररक्षण देवतायें पूर्वादि दिशाओं और मध्यमें यत्नसे भलीभांति पूजने योग्यहैं ॥ ९१ ॥ और वैसेही आठों दिशाओं में थापेहुये आठो भैरव मोक्ष लक्ष्मी के स्थानरूप काशीक्षेत्रकी निरन्तर रक्षा करते हैं ॥ ९२ ॥ रुरु, चण्ड असितांग व कपाली तथा क्रोधन वैसेही उन्मत्तभैरव व संहार भैरव और भीषण ये क्रमसे पूर्वादि दिशाओंमें टिकेहैं ॥ ९३ ॥ व चौंसठवेताल जेकि सब महाभयंकररूप व रुण्डमुण्ड मालावाले व छूरी या कैंची और खपरीको हाथोंमें लियेहैं ॥ ९४ ॥ व श्वानोंको वाहन कियेहुये लालमुखवाले महादंष्ट्र महाभुज नग्न व बालोंको छोरेहुये और रुधिररूप आसव याने मदकारक पानों से प्रमत्तहैं ॥ ९५ ॥

त्यैःकोटिशःपरिवारिताः ॥ ९६ ॥ विद्युज्जिह्वोललज्जिह्वःक्रूरास्यःक्रूरलोचनः ॥ उग्रोविकटदंष्ट्रश्चवक्रास्योवक्रनासिकः ॥ ९७ ॥ जम्भकोजृम्भणमुखोज्वालानेत्रोवृकोदरः ॥ गर्तनेत्रोमहानेत्रस्तुच्छनेत्रोन्त्रमण्डनः ॥ ९८ ॥ ज्वलत्केशःकम्बुशिराःखर्व्वग्रीवोमहाहनुः ॥ महानासोलम्बकर्णःकर्णप्रावरणोनसः ॥ ९९ ॥ इत्यादयोमुनेक्षेत्रंदुर्वृत्तरुधिरप्रियाः ॥ त्रासयन्तोदुराचारान्रक्षन्तिपरितःसदा ॥ १०० ॥ त्रैलोक्यविजयाद्याश्चज्वालामुख्यन्तगाश्चयाः ॥ शक्तयोऽत्रमयाख्यातामुनेकलशसम्भव ॥ १ ॥ ताःकाशींपरिरक्षन्तिचतुर्दिक्षूद्यतायुधाः ॥ ताःसमर्च्याःप्रयत्नेनमहाविघ्नप्रशान्तये ॥ २ ॥ भैरवारुरुमुख्याश्चमहाभयनिवारकाः ॥ संपूज्याःसर्वदाकाश्यांसर्वसंपत्तिहेतवः ॥ ३ ॥ विद्युज्जिह्वप्रभृतयोवेतालाउग्ररूपिणः ॥ अत्युग्रानपिविघ्नौघान्हरिष्यन्त्यर्चिताइह ॥ ४ ॥ तथाभूतावलीचात्रनानाभीषणरूपिणी ॥ उदायुधाऽवतिपुरींशतकोटिमितामुने ॥ ५ ॥ निर्वाणलक्ष्मीक्षेत्रस्यपालयित्रीपदेपदे ॥ एतावैदेवताःपूज्याःकाश्यांनिर्वाणकांक्षिभिः ॥ ६ ॥ श्रुत्वाध्या

व जेकि करोड़ों याने अपरिमित सब अनेक रूपधारी और अनेकप्रकारके शस्त्रास्त्र हाथवाले व उनके आकारके समान शरीरधारी उनके भृत्यों (सेवकों) से सब ओर घिरेहैं ॥ ९६ ॥ "उनमें से कुछेक बेतालों के नाम कहेजाते हैं" कि विद्युज्जिह्व, ललज्जिह्व, क्रूरमुख, क्रूरलोचन, उग्र, विकटदंष्ट्र, वक्रमुख, वक्रनासिक ॥ ९७ ॥ जम्भक, जृम्भणमुख, ज्वालानेत्र, वृकोदर, गर्त्तनेत्र, महानेत्र, तुच्छनेत्र, अन्त्रमण्डन ॥ ९८ ॥ ज्वलत्केश, कम्बुशिर, खर्वग्रीव, महाहनु, महानास, लम्बकर्ण, कर्णप्रावरण और अनस ॥ ९९ ॥ हे मुने ! इत्यादि जे वेताल दुष्टोंके रक्तको प्यार करनेवालेहैं वे दुराचारियोंको त्रास देतेहुये सदैव सब ओरसे क्षेत्रकी रक्षाकरते हैं ॥ १०० ॥ व हे अगस्त्य मुने ! त्रैलोक्य विजयाआदि और ज्वालामुखी पर्यन्तवाली जिन शक्तियों को मैंने यहां कहाहै ॥ १ ॥ वे उद्यत आयुधोंवाली शक्तियां चारों दिशाओं में काशीकी सब ओरसे रक्षाकरती हैं और बड़े विघ्नोंके विनाश के लिये वे भलीभांति पूजने योग्यहैं ॥ २ ॥ और महाभयके निवारण कर्ता व सब सम्पत्तियो के कारण रुरुआदि भैरव काशीमें सदा संपूजनीयहै ॥ ३ ॥ व यहां पूजेहुये, उग्ररूपधारी, विद्युज्जिह्वादि वेताल अत्यन्त उग्र भी विघ्नसमूहोंको हरेंगे ॥ ४ ॥ और हे मुने ! वैसेही यहां आयुधों को उठायेहुई बहुत प्रकारके भयंकर रूपोंवाली शतकोटि परिमित भूतोंकी पंक्ति पुरीकी रक्षाकरती हैं ॥ ५ ॥ व क्षण क्षणमें मोक्षलक्ष्मी क्षेत्रकी पालिकाहै इसलिये काशीमें

मुक्ति चाहियोंसे ये प्रसिद्ध देवतायें पूजनीयहैं ॥ ६ ॥ बहुतप्रकारकी शक्तियोंसमेत महामनोज्ञ व दुर्गविजयनामक इस पुण्यअध्यायको सुनकर मनुष्य शीघ्रसंकटकोतरे- गा ॥७॥ व जोकि ये भैरव कहेगयेहैं और जे वेताल कहेगये हैं उनके नामोंको सुनकर नर विघ्नोंसे बाधित नहीं होताहै ॥८॥ और अदृश्यहुये वे भूतभी श्रोताजनके साथ इसआख्यानके पाठककी बहुतयत्नसे रक्षाकरते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये महाविघ्न निवारनेवाला यह आख्यान बहुत यत्नसे काशी भक्ति परायण पुरुषोंको सुनना चाहिये ॥१०॥ व जिसके घरमेंभी पूजाहुआ यह टिकेगा उसकी हजारों विपत्तियों को देवतायें नशावेगी ॥ ११ ॥ और काशीमें जिसकी निश्चय से प्रीतिहै उससे बडा आदरकर वज्र

यमिमंपुण्यंनरोदुर्गजयाभिधम् ॥ नानाशक्तिसमायुक्तंदुर्गमाशुतरिष्यति ॥७॥ यएतेभैरवाःप्रोक्तायेवेतालाउदाहृताः॥ तेषांनामानिचाकर्ण्यनरोविघ्नैर्नदूयते ॥ ८॥ अदृष्टाअपितेभूताएतदाख्यानपाठकम् ॥ रक्षिष्यन्तिप्रयत्नेनसहश्रोतृजनेनच ॥९॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकाशीभक्तिपरैर्नरैः ॥ श्रोतव्यमिदमाख्यानंमहाविघ्ननिवारणम् ॥१०॥ गृहेपियस्यलिखितमेतत्स्थास्यतिपूजितम् ॥तस्यापदांसहस्राणिनाशयिष्यन्तिदेवताः॥११॥ काश्यांयस्यास्तिवैप्रेमतेनकृत्वाऽऽदरंगुरुम्॥ श्रोतव्यमिदमाख्यानंवज्रपञ्जरसन्निभम् ॥ ११२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ त्रिलोचनंसमासाद्यदेवदेवःषडानन ॥ जगदम्बिकयायुक्तःकिंचकाराशुतद्वद ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मुनेकलशजाख्यामियत्पृष्टन्तान्निशामय ॥ विरजःसञ्ज्ञकंपीठंयत्प्रोक्तंसर्वसिद्धिदम् ॥२॥ तत्पीठदर्शनादेवविरजाजायतेनरः ॥ यत्रास्तितन्महालिङ्गंवाराणस्यांत्रिलोचनम् ॥३॥ तीर्थंपिलिपिलाख्यन्तद्द्युनद्यम्भासिविश्रुतम्॥सर्वतीर्थमयंती

पंजरके समान यह आख्यान सुनने योग्य है ॥ ११२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदुर्गाविजयोनामद्विसप्ततितमोध्यायः॥ ७२ ॥

दो० । तिरहत्तर अध्यायमें ॐकारेश महात्म्य । चौदहलिंगोंको कथन महिमा युक्त यथात्म्य ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे षण्मुख ! त्रिलोचनलिंगके समीपमें प्राप्तहो- कर जगदम्बासमेत महादेवजीने क्याकिया उसको शीघ्रही कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे कुम्भसम्भव मुने ! जो पूंछागया उसको मैं कहताहूं तुम सुनो जो कि सब सिद्धिदायक विरजनामक पीठ कहाहुआहै ॥ २ ॥ उस पीठके दर्शनसेही मनुष्य निर्मल होजाताहै व जहां काशी में वह त्रिलोचननामक महालिंग है ॥ ३ ॥

वह पिलपिलानामक तीर्थ गंगाजलमें प्रसिद्धहै और वह तीर्थ काशीमें सर्व तीर्थमय गायाजाताहै ॥ ४ ॥ हे मुने! जोकि नदी पर्वत और वनोंसमेत देव ऋषि मनुज व उरग त्रिलोकके मध्यमें हैं वे जबसे उसमें हैं ॥ ५ ॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ और वह त्रिलोचन लिंग भी त्रिविष्टप इस नामसे कहागयाहै इस कारणसे बडाभारी या बहुत पूजनीयहै ॥ ६ ॥ हे मुने! पिनाकधन्वाधारी महादेवजीने जगदम्बाके आगेजैसे त्रिविष्टप लिंगकी महिमा कहाहै वैसेही उसको मैं कहताहूं ॥ ७ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे देवोंकेदेव, जगतों के नायक, सर्वफलदायक, सर्वगत, सबके देखनेवाले, सबके जनक, शर्व! मैं कुछ पूंछतीहूं उसको कहो ॥ ८ ॥ कि कर्मबीज रोग हरनेको महौ-

र्थंतत्काश्यांपरिगीयते ॥ ४ ॥ विष्टपत्रितयान्तर्येदेवर्षिमनुजोरगाः ॥ससरित्पर्वतारण्याःसन्तितेतत्रयन्मुने ॥ ५ ॥ तदा रभ्यचतत्तीर्थंतच्चलिङ्गंत्रिलोचनम् ॥ त्रिविष्टपमितिख्यातमतोहेतोर्महत्तरम् ॥ ६ ॥ त्रिविष्टपस्यलिङ्गस्यमहिमोक्तःपि नाकिना ॥ जगज्जनन्याःपुरतोयथावच्मितथामुने ॥ ७ ॥ देव्युवाच ॥ देवदेवजगन्नाथशर्वसर्वदसर्वग ॥ सर्वदृक्सर्व जनककिञ्चित्पृच्छामितद्वद ॥ ८ ॥ इदन्तवप्रियंक्षेत्रंकर्मबीजमहौषधम् ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोगेहम्ममापिप्रीतिदम्मह त् ॥ ९ ॥ यत्क्षेत्ररजसोप्यग्रेत्रिलोक्यपितृणायते ॥ तस्याखिलस्यमहिमाविष्वक्केनावगम्यते ॥ १० ॥ यानीहसन्ति लिङ्गानितानिसर्वाण्यसंशयम् ॥ निर्वाणकारणान्येवस्वयम्भून्यपितान्यपि ॥ ११ ॥ यद्यप्येवन्तथापीशविशेषंवक्तुम र्हसि ॥ काश्यामनादिसिद्धानिकानिलिङ्गानिशंकर ॥ १२ ॥ यत्रदेवःसदातिष्ठेत्संवर्तेऽपिसवल्लभः ॥ यैरियंप्रथितिंप्राप्ताका

षधिरूप मुक्ति सम्बन्धिनी सम्पत्तिका स्थान महान् यह तुम्हारा प्यारा क्षेत्र मुझको भी प्रीतिदायकहै ॥ ९ ॥ जिस क्षेत्रकी धूलिके आगे त्रिलोक भी तृणके समान आच-रताहै उस सम्पूर्णका सर्वव्यापी माहात्म्य क्या किसीसे या ब्रह्मासे जानाजाता है ॥ १० ॥ व जे सब लिंग इसमें हैं वे निस्सन्देह मोक्षके कारणही हैं और वे भी स्वयम्भू लिंगोंके समानही हैं या आपही आप उपजे हैं ॥ ११ ॥ हे परमेश्वर, शंकर! यद्यपि ऐसेही है तो भी आप विशेष कहने के योग्यहो कि कौन लिंग काशीमे अनादि-कालसे सिद्धहैं ॥ १२ ॥ जहां प्रलय समय भी शक्तिसमेत महादेवजी टिकेहैं व जिन लिंगों से यह काशी मुक्तिपुरी इस प्रसिद्धिको प्राप्तहै व यहां जिनलिंगों के स्मरणसे

पापों का विनाश होवे है और दर्शन व स्पर्शनसे स्वर्ग और मोक्ष होवेहैं ॥ १४ ॥ हे विभो ! जन्मके बीच एकबार भी जिनके भलीभांति पूजने सेही काशी में सब लिंग निश्चित पूजित होजावें ॥ १५ ॥ हे कारुण्यामृतसागर, शंभो ! मेरे ऊपर अनुग्रहकर मुझसे इसको कहो क्योंकि मैं आप के चरणारविंदों में प्रणतहूं ॥ १६ ॥ हे विंध्यवृद्धिविघातक, सत्तम, अगस्त्यजी ! इसभांति उन देवीजी के सुवचन को सुनकर महेशजी ने महालिङ्गों को कहा ॥ १७ ॥ कि काशी में जिनके नामों के सुनने सेही पापों की राशियां क्षीण होजाती हैं और मोक्ष का कारण पुण्यसमूह प्राप्त कियाजाता है याने मिलता है ॥ १८ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे देवि !

शीमुक्तिपुरीतिच ॥ १३ ॥ येषांस्मरणतोप्यत्रभवेत्पापस्यसंक्षयः ॥ दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्चस्यातांस्वर्गापवर्गकौ ॥१४॥ येषांसमर्चनादेवमध्येजन्मसकृद्विभो ॥ लिङ्गानिपूजितानिस्युःकाश्यांसर्वाणिनिश्चितम् ॥ १५ ॥ विधायमय्यनुक्रोशं कारुण्यामृतसागर॥ एतदाचक्ष्वमेशम्भोपादयोःप्रणतास्म्यहम् ॥ १६ ॥ इत्याकर्ण्यमहेशानस्तस्यादेव्याःसुभाषितम्॥ कथयामासविन्ध्यारेमहालिङ्गानिसत्तम ॥ १७ ॥ यन्नामाकर्णनादेवक्षीयन्तेपापराशयः ॥ प्राप्यतेपुण्यसम्भारःकाश्यांनिर्वाणकारणम् ॥ १८ ॥ देवदेवउवाच ॥ शृणुदेविपरंगुह्यंक्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिकारणम् ॥ इदंविदन्तिनैवापिब्रह्मनारायणादयः ॥ १९ ॥ असंख्यातानिलिङ्गानिपार्वत्यानन्दकानने ॥ स्थूलान्यपिचसूक्ष्माणिनानारत्नमयानिच ॥२०॥ नानाधातुमयानीशेदार्षदान्यप्यनेकशः ॥ स्वयम्भून्यप्यनेकानिदेवर्षिस्थापितान्यहो ॥ २१ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वयक्षरक्षोर्चितान्यपि ॥ असुरोरगमर्त्यैश्चदानवैरप्सरोगणैः ॥२२ ॥ दिग्गजैर्गिरिभिस्तीर्थैर्ऋक्षवानरकिन्नरैः ॥ पतत्रिप्रमु

इस क्षेत्र में परमगुप्त व मोक्षका कारण सुनो इसको ब्रह्मा और विष्णुआदि देव भी नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ हे पार्वति ! आनन्दवन (काशी) में स्थूल व सूक्ष्म भी अनेक रत्नों से रचित असंख्य लिङ्ग हैं ॥ २० ॥ हे ईश्वरि ! बहुत प्रकारके धातुमय व काष्ठोंसे विरचित भी अनेक लिङ्ग हैं व आपही आपहुये अनेक लिङ्ग हैं व देव और ऋषियों से थापेहुये भी हैं ॥२१॥ व सिद्ध चारण गन्धर्व यक्ष और राक्षसोंसे पूजित भी लिंगहैं व दैत्य नाग मनुष्य दानव और अप्सरा गणोंसे भी पूजितहैं॥२२॥

हे देवि ! दिग्गज पर्वत तीर्थ ऋक्ष वानर किन्नर और पक्षी आदिकों ने अपने अपने नामों से अंकित ॥ २३ ॥ जिन लिंगों को यहां प्रतिष्ठित कियाहै वेभी मुक्ति के कारणहैं हे प्रिये ! जेकि अदृश्य व दृश्य भी और म्लेच्छादिकोंसे दुष्ट अवस्थावाले भी हैं ॥२४॥ व हे सुन्दरि ! जेकि बहुत काल बीतने से टूटफूट गये हैं वे भी पूजने योग्य हैं और मैंने एक समय यहां सौ परार्ध संख्यक लिंगों को गनाहै याने ब्रह्माके पचास वर्षोंको परार्ध कहते हैं और सौपरार्ध में जितने दिन होते हैं उतने लिंग हैं ॥ २५ ॥ हे ईशे ! जोकि साठि करोड़ संख्यक सिद्धलिंग गंगाके जलमें भी टिकते हैं वे भी कलियुग में अदृश्यभाव को प्राप्त होगयेहैं याने न देखपड़ेंगे ॥ २६ ॥

खैर्देविस्वस्वनामाङ्कितानिवै ॥ २३ ॥ प्रतिष्ठितानियानीहमुक्तिहेतूनितान्यपि ॥ अदृश्यान्यपिदृश्यानिदुरवस्थान्यपि प्रिये ॥ २४॥ भग्नान्यपिचकालेनतानिपूज्यानिसुन्दरि ॥ परार्धशतसंख्यानिगणितान्येकदामया ॥ २५ ॥ गङ्गाम्भस्यपितिष्ठन्तिषष्टिकोटिमितानिहि ॥ सिद्धलिङ्गानितानीशेतिष्येऽदृश्यत्वमाययुः ॥ २६ ॥ गणनादिवसादर्वाङ्ममभक्तजनैःप्रिये ॥ प्रतिष्ठितानियानीहतेषांसंख्यानविद्यते ॥२७॥ त्वयातुयानिपृष्टानियैरिदंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ तानिलिङ्गानिवक्ष्यामिमुक्तिहेतूनिसुन्दरि ॥ २८ ॥ कलावतीवगोप्यानिभविष्यन्तिगिरीन्द्रजे ॥ परन्तेषांप्रभावोयःस्वंस्वंस्थानंनहास्यति ॥ २९ ॥ कलिकल्मषपुष्टायेयेदुष्टानास्तिकाःशठाः ॥ एतेषांसिद्धलिङ्गानांज्ञास्यन्त्याख्यामपीहन ॥ ३० ॥ नामश्रवणतोपीहयल्लिङ्गानांशुभानने ॥ वृजिनानिक्षयंयान्तिवर्धन्तेपुण्यराशयः ॥ ३१ ॥ ॐकारःप्रथमंलिङ्गंद्वितीयश्चत्रिलोचनम् ॥

हे प्रिये ! जिसदिन मैंने गना है उसदिन से उपरांत काल मे मेरे भक्तजनों से जे लिंग यहां प्रतिष्ठित हुये हैं उनकी संख्या नहीं है या नहीं जानी जाती है ॥ २७ ॥ हे सुन्दरि ! तुमने मुक्ति के कारणभूत जिन लिङ्गों को पूंछाहै व जिनसे यह क्षेत्र उत्तमहै उनको मैं कहूंगा ॥ २८ ॥ हे पर्वतराजकुमारि ! वे लिंग कलियुगमें अत्यंत गोप्य होवेंगे परन्तु उनका जो प्रभाव है वह अपने अपने स्थान को न छोंड़ेगा ॥ २९ ॥ जोकि कलियुग में पापसे पुष्ट (व्याप्त या स्थूल) दुष्ट और जे शठ नास्तिक होवेंगे वे इन सिद्धलिंगों के नाम को भी न जानेंगे ॥ ३० ॥ हे शुभमुखि ! यहां लिंगों के नाम सुननेसे भी पाप विनाशको प्राप्त होजाते हैं और पुण्योंकी राशियां

है ॥ ६१ ॥ हे मुने ! ये चौदह बड़े पूजनीय स्थान प्रसिद्धहैं इनकी भी सेवा से मनुष्य मोक्षको प्राप्त होवे है ॥ ६२ ॥ चैतबदी पड़िवा से लगाकर चतुर्दशीतक बड़े सज्जनों करके बहुत यत्न से ये लिंग पूजने योग्य हैं ॥ ६३ ॥ और क्षेत्रकी संसिद्धि देनेवाली इनलिंगों की वार्षिकी यात्रा मुमुक्षु (मुक्ति चाहतेहुये) लोगोंको अच्छे महोत्सवपूर्वक भलीभांति करनाचाहिये ॥ ६४ ॥ हे मुने ! इन चौदह लिंगों को यत्न से देखकर जन्तु फिर दुःखसागर संसारमें नहीं उपजताहै याने मुक्त होजाताहै ॥ ६५ ॥ हे प्रिये ! यहही निश्चयकर क्षेत्रका परमतत्त्व है व संसार रोग से ग्रसेहुये लोगों के लिये यही बड़ीभारी औषध है ॥ ६६ ॥ व हे प्यारी ! यह लिंगों की

तुर्दशैतानिमहान्त्यायतनानिवै ॥ एतेषामपिसेवातोनरोमोक्षमवाप्नुयात् ॥ ६२ ॥ चैत्रकृष्णप्रतिपदंसमारभ्यप्रयत्नतः ॥ आचतुर्दशिपूज्यानिलिङ्गान्येतानिसत्तमैः ॥ ६३ ॥ एतेषांवार्षिकीयात्रासुमहोत्सवपूर्वकम् ॥ कार्यामुमुक्षुभिःसम्यक् क्षेत्रसंसिद्धिदायिनी ॥ ६४ ॥ मुनेचतुर्दशैतानिमहालिङ्गानियत्नतः ॥ दृष्ट्वानजायतेजन्तुःसंसारेदुःखसागरे ॥ ६५ ॥ क्षेत्रस्यपरमन्तत्त्वमेतदेवप्रियेध्रुवम् ॥ संसाररोगग्रस्तानामिदमेवमहौषधम् ॥ ६६ ॥ क्षेत्रस्योपनिषच्चैषामुक्तिबीजमिदंपरम् ॥ कर्मकाननदावाग्निरेषालिङ्गावलिःप्रिये ॥ ६७ ॥ एकैकस्यास्यलिङ्गस्यमहिमाद्यन्तवर्जितः ॥ मयैवज्ञायतेदेविसम्यङ्नान्येनकेनचित् ॥ ६८ ॥ इतिश्रुत्वामुनेप्राहदेवीहृष्टतनूरुहा ॥ प्रणम्यदेवमीशानंसर्वज्ञंसर्वदंशिवम् ॥ ६९ ॥ देव्युवाच ॥ रहस्यंपरमंकाश्यांयदेतत्समुदीरितम् ॥ तच्छ्रुत्वोत्सुकतांप्राप्तंमनोमेतीववल्लभ ॥ ७० ॥ यदुक्तंलिङ्गमेकैकंमहासारतरंपरम् ॥ काश्यांपरमनिर्वाणकारणंकारणेश्वर ॥ ७१ ॥ प्रत्येकंमहिमानंमेब्रूह्येषांभुवनेश्वर ॥ चतुर्दशा

पंक्ति क्षेत्रकी रहस्य है व यही मुक्तिका श्रेष्ठ बीजहै और यही कर्मवन जलानेको अग्नि है ॥ ६७ ॥ हे देवि ! इस एक एक लिंगकी महिमा आदि और अन्तसे हीन है मुझसेही अच्छेप्रकार जानीजाती है अन्य किसीसे नहीं जानीजाती है ॥ ६८ ॥ हे मुने ! ऐसा सुनकर व क्रीड़ाकारी, ऐश्वर्य्यधारी, सर्वज्ञ, सर्वदायक, शिव जीके प्रणामकर हर्षयुक्त रोमोंवाली देवीजी ने कहा ॥ ६९ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि,हे प्यारे ! आपने काशीमें जो यह परमरहस्य कहा उसको सुनकर मेरा मन अतिशय उत्सुकता को प्राप्त है ॥ ७० ॥ व हे कारणेश्वर ! आपने जो कहा कि एकही एकलिंग महासारतर और अतिउत्तमहै व काशीमें परमकैवल्य मोक्षका कारणहै ॥ ७१ ॥

दुःखो का हरनेवाला है यह इस क्षेत्रकी परमउत्तम रहस्य है ॥ ५१ ॥ हे पर्वतेन्द्रपुत्रि ! चौदहों भी ये लिंग मेरी समीपता करनेहारे हैं यही काशी का सारभूत हृदय के समान है ॥ ५२ ॥ जेकि सबकेही मुक्तिदायक ये लिंग हैं और चौदहो लोकों मेंसे क्रमसे एकएक के शिवसार को लेकर मैंनेही भारी भक्तोंकी कृपा वश से इनको कियाहै ॥ ५३ ॥ हे प्रिये ! इस क्षेत्र में निश्चय से मुक्ति होती है ऐसी जो प्रसिद्धिहै उसमें ये मेरे चौदह लिंग कारणहैं ॥ ५४ ॥ हे कांते ! जिन भक्तोंने आनंद-वन (काशी) में इनलिंगों का ध्यान किया वेही व्रतवाले हैं और वेही तपस्वीहैं ॥ ५५ ॥ व जिन्होंने काशी में दूरसे भी इनलिंगों को देखा वेही अच्छे योगाभ्यासी हैं

णिहि ॥ अविमुक्तस्यहृदयमेतदेवगिरीन्द्रजे ॥५२॥ इमानियानिलिङ्गानिसर्वेषांमुक्तिदानिहि ॥ एकैकभुवनस्येहसारमादायसर्वतः॥मयैतानिकृतान्येवमहाभक्तिकृपावशात्॥५३॥अस्मिन्क्षेत्रेध्रुवंमुक्तिरितियाप्रथितिःप्रिये॥कारणंतत्रलिङ्गानिममैतानिचतुर्दश ॥ ५४ ॥ तएवव्रतिनःकान्तेतएवचतपस्विनः ॥ ध्यातान्येतानियैर्भक्तैर्लिङ्गान्यानन्दकानने ॥ ५५ ॥ तएवाभ्यस्तसद्योगादत्तदानास्तएवहि ॥ काश्यामिमानिलिङ्गानियैर्दृष्टान्यपिदूरतः ॥ ५६ ॥इष्टापूर्ताश्चयेधर्माःप्रणीतामुनिसत्तमैः ॥ तेसर्वेतेनविहितायावज्जीवन्निरेनसा ॥ ५७ ॥ येनाविमुक्तमासाद्यमहालिङ्गानिपार्वति ॥ सकृदभ्यर्चितानीहसमुक्तोनात्रसंशयः ॥ ५८ ॥ स्कन्दउवाच ॥अन्यान्यपिचविन्ध्यारेदेव्यैप्रोक्तानिशम्भुना ॥ स्वभक्तानांहितार्थायतान्यथाकर्णयाग्रज ॥ ५९ ॥ शैलेशःसङ्गमेशश्चस्वर्लीनोमध्यमेश्वरः ॥ हिरण्यगर्भईशानोगोप्रेक्षोवृषभध्वजः ॥६०॥ उपशान्तशिवोज्येष्ठोनिवासेश्वरएवच॥शुक्रेशोव्याघ्रलिङ्गञ्चजम्बुकेशञ्चतुर्दशम् ॥ ६१ ॥ मुनेच

और वेही दान दियेहुये भी हैं ॥ ५६ ॥ व इष्टापूर्त आदि जिन धर्मोंको मुनिसत्तमोंने कहाहै उनसबको उस जन्मपर्य्यन्त निष्पापीने किया ॥ ५७ ॥ व जिसने काशीको प्राप्त होकर यहां एकबार भी इनलिंगों की पूजा किया वह जीवन्मुक्तहै हे पार्वति ! इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे विंध्यशत्रो, प्रथमोत्पन्न (ब्राह्मण) ! शङ्करजीने अपने भक्तों के हितार्थ जिन अन्य लिंगों को भी देवीजीसे कहा है उनको भी अनन्तर श्रवणकरो ॥ ५९ ॥ शैलेश्वर, संगमेश्वर, स्वर्लीनेश्वर, मध्यमेश्वर, हिरण्यगर्भेश्वर, ईशानेश्वर, गोप्रेक्षेश्वर, वृषभध्वज ॥६०॥ व उपशान्तशिव, ज्येष्ठेश्वर, निवासेश्वर, शुक्रेश्वर, व्याघ्रलिंग और चौदहवां जम्बुकेश्वर भी

बढ़ती है॥३१॥पहला लिंग ॐकार दूसरा त्रिलोचन व तीसरा महादेव चौथा कृत्तिवासहै ॥३२॥ हे प्रिये ! पांचवां लिंग रत्नेश छठवां चन्द्रेश्वरनामक सातवां केदार और आठवां लिंग धर्मेश्वरहै ॥ ३३ ॥ व नवां वीरेश्वर और दशयें को कामेश्वर कहते हैं व ग्यारहवाँ लिंग विश्वकर्मेश्वर जोकि शुभ और श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ बारहवां मणिकर्णीश तेरहवां अविमुक्त और चौदहवां विश्वनाथ नामक मेरा महालिंग है ॥ ३५ ॥ हे प्यारी, सुन्दरि ! ये चौदह लिंग मुक्तिके कारणहैं और यहां इनका यह संमेलन मुक्ति क्षेत्र कहागया है ॥ ३६ ॥ इस क्षेत्रकी भलीभांति अधिष्ठात्री (स्वामिनी) ये श्रेष्ठ देवतायें संपूजित होकर मनुष्यों को मुक्तिकी सम्पत्ति देती हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रिये,

तृतीयश्चमहादेवःकृत्तिवासाश्चतुर्थकम् ॥३२॥ रत्नेशःपञ्चमंलिङ्गंषष्ठञ्चन्द्रेश्वराभिधम् ॥ केदारःसप्तमंलिङ्गंधर्मेशश्चाष्टमंप्रिये ॥ ३३ ॥ वीरेश्वरञ्चनवमंकामेशन्दशमंविदुः ॥ विश्वकर्मेश्वरंलिङ्गंशुभमेकादशम्परम्॥३४॥ द्वादशम्मणिकर्णीशमविमुक्तंत्रयोदशम् ॥ चतुर्दशम्महालिङ्गम्ममविश्वेश्वराभिधम् ॥ ३५ ॥ प्रियेचतुर्दशैतानिश्रियोहेतूनिसुन्दरि ॥ एतेषांसमवायोयम्मुक्तिक्षेत्रमिहेरितम् ॥ ३६ ॥ देवताःसमधिष्ठात्र्यःक्षेत्रस्यास्यपराइमाः ॥ आराधिताःप्रयच्छन्तिनृभ्यो : श्रेयसींश्रियम् ॥३७॥ आनन्दकाननेमुक्त्यैप्रोक्तान्येतानिसुन्दरि ॥ प्रियेचतुर्दशेज्यानिमहालिङ्गानिदेहिनाम् ॥ ३८ ॥ प्रतिमासंसमारभ्यतिथिंप्रतिपदंशुभाम् ॥ एतेषांलिङ्गमुख्यानांकार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ अनाराध्यमहादेवमेषुलिङ्गेषुकुम्भज ॥ कःकाश्यांमोक्षमाप्नोतिसत्यंसत्यंपुनःपुनः ॥ ४० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकाशीफलमभीप्सुभिः ॥ पूज्यान्येतानिलिङ्गानिभक्त्यापरमयामुने ॥ ४१ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ एतान्येवकिमन्यानिमहालिङ्गानिषण्मुख ॥

सुन्दरि ! काशी में देहधारियों की मुक्ति के लिये कहेहुये ये चौदहो महालिंग पूजनीय हैं ॥ ३८ ॥ और प्रतिमास मङ्गलमयी प्रतिपदा तिथि को आरम्भकर याने उसे लगाकर बड़े यत्न से इन मुख्य लिंगोंकी यात्रा करना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे अगस्त्यजी ! काशी में इनलिंगों के मध्य महादेवजी को न पूजकर कौन जन मुक्ति को प्राप्त होताहै यह बारबार सत्यहै सत्यहै ॥४०॥ हे मुने ! उस लिये काशीफलाभिलाषियों करके सब प्रयत्नपूर्वक परमभक्ति से ये लिंग पूजनीयहैं ॥ ४१ ॥ अगस्त्य जी

बोले कि हे षरामुख ! येही महालिंग यहां मुक्तिके कारण हैं कि अन्य भी हैं और जो हैं तो आप उनको भी कहो ॥ ४२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे सुव्रत ! यहां अन्य भी महालिंग हैं और प्रसिद्ध भी वेही कलियुग के प्रभाव से गुप्त होवेंगे ॥ ४३ ॥ किन्तु ईश्वर मे सदैव जिसकी भक्तिहै व जो काशीके तत्त्वका बड़ा पंडितहै वही इनलिंगों को जानेगा और अन्य कोई न जानेगा ॥ ४४ ॥ जिनके नाम लेनेसेही कलियुग के पापोंका भलीभांति क्षय होजाताहै वे ये हैं कि अमृतेश, तारकेश, ज्ञानेश्वर, करुणेश्वर॥४५॥व मोक्षद्वारेश्वर तथा स्वर्गद्वारेश्वर, ब्रह्मेश्वर व लांगलेश्वर वैसेही वृद्धकालेश्वर ॥ ४६ ॥ व वृषेश्वर, चण्डीश्वर, नन्दिकेश्वर और चौदहवांलिंग

निर्वाणकारणानीहयदिसन्तितदावद ॥ ४२ ॥ स्कन्दउवाच॥ अन्यान्यपिचसन्तीहमहालिङ्गानिसुव्रत ॥ कलिप्रभावाद्गुप्तानिभविष्यन्त्येवतानिवै ॥ ४३ ॥ यस्येश्वरेसदाभक्तिर्यःकाशीतत्त्ववित्तमः ॥ सएवैतानिलिङ्गानिवेत्स्यत्यन्योनकश्चन ॥ ४४ ॥ येषांनामग्रहेणापिकलिकल्मषसंक्षयः ॥ अमृतेशस्तारकेशोज्ञानेशःकरुणेश्वरः ॥ ४५ ॥ मोक्षद्वारेश्वरश्चैवस्वर्गद्वारेश्वरस्तथा ॥ ब्रह्मेशोलाङ्गलश्चैववृद्धकालेश्वरस्तथा ॥ ४६ ॥ वृषेशश्चैवचण्डीशोनन्दिकेशोमहेश्वरः ॥ ज्योतीरूपेश्वरंलिङ्गंख्यातमत्रचतुर्दशम् ॥ ४७ ॥ काश्याञ्चतुर्दशैतानिमहालिङ्गानिसुन्दरि ॥ इमानिमुक्तिहेतूनिलिङ्गान्यानन्दकानने ॥ ४८ ॥ कलिकल्मषबुद्धीनान्नाख्येयानिकदाचन ॥ एतान्याराधयेद्यस्तुलिङ्गानीहचतुर्दश ॥ ४९ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिःसंसाराध्वनिकर्हिचित् ॥ काशीकोशोयमतुलोनप्रकाश्योयतस्ततः ॥ ५० ॥ एतल्लिङ्गाभिधादेविमहापद्यपिदुःखहृत् ॥ रहस्यंपरमञ्चैतत्क्षेत्रस्यास्यवरानने ॥ ५१ ॥ चतुर्दशापिलिङ्गानिमत्सान्निध्यकरा

ज्योतीरूपेश्वर नामसे यहां कहागयाहै याने प्रसिद्धहै ॥ ४७ ॥ हे सुन्दरि ! काशीमें यह चौदह महालिंगहैं व ये लिंग आनन्दवन में मुक्ति के कारणहैं ॥ ४८ ॥ व कलियुग के पाप बुद्धिवाले मनुष्यों के मध्य में कभी कहने योग्य नहीं हैं और यहां जो इन चौदह लिंगोंकी पूजाकरे ॥ ४९ ॥ उसकी फिर आवृत्ति संसारमार्गमें कभी न होवे याने वह फिर लौटकर जन्म न धरे यह अतुल, कोश जहां तहां प्रकाशने योग्य नहीं है ॥ ५० ॥ हे वरानने, देवि ! इनलिंगों का नाम बड़ी विपत्ति मे भी

इसलिये हे भुवनेश्वर ! सुनने से पापहारी इन चौदहो लिंगों की प्रत्येक महिमाको मुझसे कहो ॥ ७२ ॥ और महामनोहर उस अमरकंटक क्षेत्रसे ॐकारेश्वर लिंगका भलीभांति यहां आना कैसे हुआ ॥ ७३ ॥ हे भक्तभयहारिन् ! यह ॐकार किस स्वरूपवाले हैं व इनकी क्या महिमाहै व पुरातन कालमें किसने इनकी पूजा कियाहै और पूजेहुये ॐकार ने क्या फल दियाहै ॥ ७४ ॥ तब सुखकारिणी पार्वतीजीके अमृत समान इस वचनको श्रवणगोचर (सुन) कर महादेवजीने ॐकार की बड़ी अद्भुत कथाको कहा ॥ ७५ ॥ श्रीयुत देवों के देव शिवजी बोले कि हे पार्वति ! जैसे ॐकार लिंगका प्रकटहोना यहां हुआहै उस कथा को मैं तुम्हारे आगे

नांलिङ्गानांश्रवणादघहारिणाम् ॥ ७२ ॥ ॐकारेशस्यलिङ्गस्यकथमत्रसमागमः ॥ अतिपुण्यतमात्तस्मात्क्षेत्रादमरकण्टकात् ॥ ७३ ॥ किमात्मकोऽयमोङ्कारोमहिमास्यचकोहर ॥ केनाराधिपुराचैषददावाराधितश्चकिम् ॥ ७४ ॥ मृडानीवाक्सुधामेतांविधायश्रुतिगोचराम् ॥ कथामकथयद्देवॐकारस्यमहाद्भुताम् ॥ ७५ ॥ देवदेवउवाच ॥ कथामाकर्णयापर्णेवर्णयामितवाग्रतः ॥ यथोंकारस्यलिङ्गस्यप्रादुर्भावइहाभवत् ॥ ७६ ॥ पुरानन्दवनेचात्रब्रह्मणाविश्वयोनिना ॥ तपस्तप्तंमहादेविसमाधिन्दधतापरम् ॥ ७७ ॥ पूर्णेयुगसहस्रेऽथभित्त्वापातालसप्तकम् ॥ उदतिष्ठत्पुरोज्योतिर्विद्योतितहरिन्मुखम् ॥ ७८ ॥ यदन्तराविरभवन्निर्व्याजेनसमाधिना ॥ तदेवपरमंधामबहिराविरभूद्विधेः ॥ ७९ ॥ योभूच्चटचटाशब्दःस्फुटतोभूमिभागतः ॥ तच्छब्दाद्व्यसृजद्वेधाःसमाधिंक्रमतोवशी ॥ ८० ॥ स्रष्टाविसृष्टतद्ध्यानोयावदुन्मील्यलोचने ॥ पुरःपश्येद्ददर्शाग्रेतावदक्षरमादिमम् ॥ ८१ ॥ अकारंसत्त्वसम्पन्नमृक्छन्दंत्रंसृष्टिपालकम् ॥ ना

कहताहूं तुम सुनो ॥ ७६ ॥ हे महादेवि ! पूर्वकाल में श्रेष्ठ समाधि को धारते हुये जगत्सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी से इस आनन्दवन में तपस्या तपीगई ॥ ७७ ॥ अनन्तर जब हजार युग पूरेहुये तब सातो पातालों को भेदनकर दिशाओं के मुखोंको दीपित कियेहुई ज्योति आगे उठीथी ॥ ७८ ॥ जोकि परम तेज निष्कपट समाधि से ब्रह्माजी के अन्तःकरणमें प्रकट हुआथा वही बाहर भी प्रकट होगया ॥ ७९ ॥ और फूटतेहुये भूमिभाग से जो चटचटा शब्दहुआ उस शब्दसे इन्द्रियजित् ब्रह्माजीने क्रम से समाधि को छोंड़दिया ॥ ८० ॥ व उस निर्गुण ब्रह्मके ध्यान को त्यागे हुये विधाताजीने आंखें खोलकर जबतक सामने दृष्टि किया तबतक अपने आगे आदिम याने

पहले हुये ॐकार अक्षर को देखा ॥ ८१ ॥ उसमेंही सतोगुण से सम्पन्न, सृष्टिका पालक नारायणात्मक व साक्षात् अज्ञान के पारमें प्रतिष्ठित और ऋग्वेदका स्थान याने कारण अकार ॥ ८२ ॥ अनन्तर उसके आगे रजोगुण से व्याप्त, व सब जगत् का सिरजनेहारा अपने याने ब्रह्माके शरीर के समान प्रतिबिंबित और यजुर्वेद की उत्पत्तिका कारण उकार ॥ ८३ ॥ और उसके आगे शब्दसे रहित अन्धकार के संकेत स्थान के समान व तमोगुण रूप मकारको अनन्तर उन ब्रह्माजीने विशेषतासे देखा ॥ ८४ ॥ जोकि सामवेद की उत्पत्तिका स्थान व प्रलय में कारण व साक्षात् रुद्रस्वरूपी है तदनन्तर उसके आगे ध्यानी विधाताजीने उसको नेत्रों के अतिथि

रायणात्मकंसाक्षात्तमःपारेप्रतिष्ठितम् ॥ ८२ ॥ उकारमथतस्याग्रेरजोरूपंयजुर्जनिम् ॥ विधातारंसमस्तस्यस्वाकार मिवबिम्बितम् ॥ ८३ ॥ नीरवध्वान्तसङ्केतसदनाभन्तदग्रतः ॥ मकारंसददर्शाथतमोरूपंविशेषतः ॥ ८४ ॥ साम्नोयो निलयेहेतुंसाक्षाद्रुद्रस्वरूपिणम् ॥ अथतत्पुरतोध्याताव्यधात्स्वनयनातिथिम् ॥ ८५ ॥ विश्वरूपमयाकारंसगुणंवा पिनिर्गुणम् ॥ अनाख्यनादसदनम्परमानन्दविग्रहम् ॥८६॥ शब्दब्रह्मेतियत्ख्यातंसर्ववाङ्मयकारणम् ॥ अथोपरिष्टान्ना दस्यबिन्दुरूपम्परात्परम् ॥८७॥ कारणङ्कारणानाञ्चजगद्योनिञ्चतम्परम् ॥ विधिर्विलोकयाञ्चक्रेतपसागोचरीकृतम् ॥ ८८ ॥ अवनादोमितिख्यातंसर्वस्यास्यप्रभावतः ॥ भक्तमुन्नयतेयस्मात्तदोमितियईरितः ॥ ८९ ॥ अरूपोपिसरूपा ढ्यःसधात्रानेत्रगीकृतः ॥तारयेद्यद्भवाम्भोधेःस्वजपासक्तमानसम् ॥ ततस्तारइतिख्यातोयस्तंब्रह्माव्यलोकयत् ॥९० ॥

गोचर किया ॥ ८५ ॥ जोकि प्रपञ्चस्वरूपाकार, सगुण व निर्गुणभी व परा वाणी आश्रय याने कारण व परमानन्द स्वरूप है ॥ ८६ ॥ जोकि शब्दब्रह्म (वेद) इसभांति कहा गयाहै याने प्रसिद्धहै और सब वचन समूहोंका कारणहै अनन्तर उस नादके ऊपर, परोंसेपर बिंदुरूप ॥ ८७ ॥ जोकि प्रधानादि कारणोंका कारण व जगतों की उत्पत्तिका स्थान व उत्तम और तपस्या से नेत्रगोचर कियागया है उसको ब्रह्माजीने देखा ॥ ८८ ॥ "अब इसभांति अंगो के निरूपण से अंगी ॐकार को निरूपणकर उसके नामका निर्वचन (अर्थ) करतेहैं" जोकि अपने प्रभाव से इस सब जगतका अवन (रक्षण) करनेसे ॐ ऐसा कहा गयाहै और जिससे भक्तों को उन्नयति याने ऊर्ध्वगति को पहुंचाता है इससे जो ॐ इस प्रकारसे कहा गयाहै ॥ ८९ ॥ व जोकि रूपरहित भी सरूप सहित है उसको विधाताने नेत्रों के विषय कि-

या और जिस कारण अपने जपमें आसक्त चित्तवाले भक्तजन को संसार सागर से तारता है याने उसके पार करता है उसलिये जो तार इसनाम से कहा गयाहै उस को ब्रह्माजीने देखा ॥ ९० ॥ व जिस कारण उत्तम कैवल्य मुक्ति की कामनावाले सबलोगों से प्रणूयते याने बहुतही स्तुतियुक्त कियाजाता है व जिससे सबों से भी अधिकहै उस कारण से जो प्रणव कहागया है ॥ ९१ ॥ और जोकि अपने सेवक पुरुषको परमपदको प्रणयेत् याने पठावे है इससे प्रणव नामवाले उस शान्तस्वरूपको विधाताने प्रत्यक्ष किया ॥ ९२ ॥ व जोकि वेदत्रयीमय या ब्रह्मा विष्णु और रुद्रमय है व तुरीय याने असंग निर्विकार परमात्मा है व विश्व तैजस प्राज्ञ और तुरीय इस भांति विश्वादिकों की अपेक्षा से तुरीयता के कल्पित होने से तुरीयातीत है व माया से अखिलात्मक है व जोकि नाद और बिंदु स्वरूप है उसको हंसगामीने

प्रणूयतेयतःसर्वैःपरनिर्वाणकामुकैः ॥ सर्वेभ्योभ्यधिकस्तस्मात्प्रणवोयःप्रकीर्तितः ॥ ९१ ॥ स्वसेवितारम्पुरुषंप्रण येद्यःपरम्पदम् ॥ अतस्तम्प्रणवंशान्तंप्रत्यक्षीकृतवान्विधिः ॥ ९२ ॥ त्रयीमयस्तुरीयोयस्तुर्यातीतोखिलात्मकः ॥ नादबिन्दुस्वरूपोयःसप्रैक्षिद्विजगामिना ॥ ९३ ॥ प्रावर्तन्तयतोवेदाःसाङ्गाःसर्वस्ययोनयः ॥ सवेदादिःपद्मभुवापुर स्तादवलोकितः ॥ ९४ ॥ वृषभोयस्त्रिधाबद्धोरोरवीतिमहोमयः ॥ सनेत्रविषयीचक्रेपरमःपरमेष्ठिना ॥ ९५ ॥ शृङ्गाश्च त्वारियस्यासन्हस्तासःसप्तएवच ॥ द्वेशीर्षेचत्रयःपादाःसदेवोविधिनैक्षत ॥ ९६ ॥ यदन्तर्लीनमखिलंभूतम्भाविभवत्पु नः ॥ तद्बीजम्बीजरहितंद्रुहिणेनविलोकितम् ॥ ९७ ॥ लीनंमृग्यतयत्रैतदाब्रह्मस्तम्बभाजनम् ॥ अतःसभाज्यतेसद्भिर्य

देखा ॥ ९३ ॥ व शिक्षादि अंगोंसमेत सबके कारण या प्रमाण वेद जिससे प्रवर्तमान होतेहैं या हुयेहैं वह वेदोंका आदि ॐकार कमलसम्भूत ब्रह्माजी से सामने देखा गया॥९४॥ व जोकि वृषभ याने यज्ञरूप परमेश्वर तीनभांति से (मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प) सम्बद्ध होकर बारबार शब्द करताहै याने सवन के क्रमसे ऋग् यजुः और साम से शब्द युक्त होताहै व तेजोमय है व सबसे श्रेष्ठहै उसको उत्तम स्थान में टिकनेवाले ब्रह्माजीने नेत्रों के विषय किया ॥ ९५ ॥ व चारोंवेद जिसके शृंग हैं व सातों छन्द हाथहैं व प्रायणीय और उदयनीय दो शिर हैं व तीनों सवन (समय) पावँ हैं उस देवको विधाताजी ने देखा ॥ ९६ ॥ व भूत, भविष्य और वर्त्तमान यह सब जिसके बीचमें लीनहैं व फिर जो उस सबका बीज (कारण) है और अपना बीजसे रहित है उसको ब्रह्माजीने देखा ॥ ९७ ॥ व ब्रह्मासे लगाकर स्तंबतक का

पात्र यह सब जिसमें लीनहुआ देखाजावे है इससे जो लिंग नामकहोकर सन्तजनों से पूजाजाताहै वह देखागया ॥ ९८ ॥ व जिसमें पांच अर्थ याने है, भासताहै, प्यारा है, रूप और नाम ये भासित होते हैं व जोकि पांचो वेदमय है यहां ऋग् आदि चार और इतिहास पुराण रूप पंचम वेद गिना जाताहै व जोकि अकार आदिमे है जिनके उन उकार, मकार, अर्धमात्रा बिंदु और नाद इन पांचोंका स्वरूपहै उसकोही ब्रह्माजीने देखा ॥ ९९ ॥ तदनन्तर प्रपञ्च से हीन, अकारादि पंचाक्षर रूप, लिंग रूपी, ईश्वर शंकरजी को देखकर विधाताने स्तुति किया ॥ १०० ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हे सदाशिव ! ॐकार रूप के लिये नमस्कार है व अक्षर रूपधारी के लिये

लिङ्गन्तद्विलोकितम् ॥ ९८॥ पञ्चार्थायत्रभासन्तेपञ्चब्रह्ममयंहियत् ॥ आदिपञ्चस्वरूपंयन्निरैक्षिब्रह्मणाहितत् ॥९९॥ तमालोक्यततोवेधालिङ्गरूपिणमीश्वरम् ॥ पञ्चाक्षरम्प्रपञ्चाच्चभिन्नन्तुष्टावशङ्करम् ॥ १०० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमॐकार रूपायनमोऽक्षरवपुर्धृते ॥ नमोऽकारादिवर्णानांप्रभवायसदाशिव ॥ १ ॥ अकारस्त्वमुकारस्त्वंमकारस्त्वमनाकृते ॥ ऋग्यजुःसामरूपायरूपातीतायतेनमः ॥ २ ॥ नमोनादात्मनेतुभ्यंनमोबिन्दुकलात्मने ॥ अलिङ्गलिङ्गरूपायसर्वरूप स्वरूपिणे ॥ ३ ॥ नमस्तेधामनिधयेनिधनादिविवर्जित ॥ नमोभवायरुद्रायशर्वायचनमोस्तुते ॥ ४ ॥ नमउग्रायभीमा यपशूनाम्पतयेनमः॥ नमस्तारस्वरूपायसम्भवायनमोस्तुते ॥ ५ ॥ अमायायनमस्तुभ्यंनमःशिवतरायते ॥ कपर्दिने

नमस्कार है और अकारादि अक्षरों के कारण के लिये नमस्कारहै ॥ १ ॥ हे आकाररहित ! तुम अकारहो व तुम उकारहो व तुम मकारहो याने ॐकार रूपहो व ऋग् यजुः और सामका रूपहौ और जोकि रूपसे अतीतहौ उन तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ २ ॥ व नादात्मक (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी नामक) तुम्हारेलिये नमस्कारहो व बिन्दुकलारूप के लिये नमस्कारहो व अलिङ्ग (अदृश्य) लिङ्ग (दृश्य) रूपवाले और सब रूपों के स्वरूप के लिये नमस्कारहो ॥ ३ ॥ हे आदि अन्तसे वर्जित ! तेज या सत्त्वके निधान तुम्हारे लिये नमस्कारहो व भव, रुद्र और शर्व नामक तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ४ ॥ उग्ररूप व भयङ्कर रूप और जीवों के पति के लिये नमस्कारहो व संसारपारकारक ॐकार स्वरूप के लिये नमस्कारहो व सब जगत् भलीभांति होताहै जिनसे उन तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ५ ॥ व मायासे ही-

न शुद्ध स्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कारहो व परम मङ्गल रूप तुम्हारे लिये नमस्कार हो व जटाजूटधारी तुम्हारे लिये नमस्कारहो और हे नीलकण्ठ ! तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ ६ ॥ हे गिरिश ! फलसेक्ताओं में श्रेष्ठ और यज्ञ रूपसे शिपि (पशुसमूह) में टिकेहुये, या शि (जल) के (पि) पीने, या पालनेसे शिपि जो सूर्य्यकी किरणैं हैं उनमे टिकनेवाले विश्वनाथ तुम्हारे लिये नमस्कारहो व दीर्घ, ह्रस्व, स्थूल और वृद्धरूपी के लिये नमस्कारहो ॥ ७ ॥ कार्त्तिकेय के पिता व कुमार अङ्गवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहो व श्वेत,श्याम,पीत, और कुछेक लाले शरीरवाले के लिये नमस्कारहो ॥ ८ ॥ व धूम्रवर्ण (कृष्णलोहित रूप) कपिलवर्ण, और कर्बुर रंग अंग तेजवाले के लिये नमस्कारहो व श्वेतरक्तमिश्रितवर्ण, और हरेतेजवालेकेलिये नमस्कारहो ॥ ९ ॥ अनेक रंग रूपवाले या ब्राह्मणादिवर्ण स्वरूप व वर्णों के पतिकेलिये नमस्कारहो

नमस्तुभ्यंशितिकण्ठनमोस्तुते ॥६॥ मीढुष्टमायगिरिशशिपिविष्टायतेनमः ॥ नमोऽह्रस्वायखर्वायबृहतेवृद्धरूपिणे ॥ ७ ॥ कुमारगुरवेतुभ्यंकुमारवपुषेनमः ॥ नमःश्वेतायकृष्णायपीतायारुणमूर्तये ॥ ८ ॥ धूम्रवर्णायपिङ्गायनमःकिर्मीरवर्चसे ॥ नमःपाटलवर्णायनमोहरिततेजसे ॥ ९ ॥ नानावर्णस्वरूपायवर्णानाम्पतयेनमः ॥ नमस्तेस्वररूपायनमोव्यञ्जनरूपिणे ॥ १० ॥ उदात्तायानुदात्तायस्वरितायनमोनमः ॥ ह्रस्वदीर्घप्लुतेशायसविसर्गायतेनमः ॥ ११ ॥ अनुस्वारस्वरूपायनमस्तेसानुनासिक ॥ नमोनिरनुनासायदन्त्यतालव्यरूपिणे ॥ १२ ॥ ओष्ठ्योरस्यस्वरूपायनमऊष्मस्वरूपिणे ॥ अन्तस्थायनमस्तुभ्यंपञ्चमायपिनाकिने ॥ १३ ॥ निषादायनमस्तुभ्यंनिषादपतयेनमः ॥ वीणावेणुमृ

व अकारादि स्वर रूप और ककारादि हकार पर्य्यंत व्यंजनरूपी तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ १० ॥ व उदात्त (ऊंचेस्वरसे उपलभ्यमान) अनुदात्त (पूर्वोक्तसे विपरीत) व स्वरित (दोनोंकासमाहार) के लिये नमस्कारहोनमस्कारहो व ह्रस्व दीर्घ और प्लुत (त्रिमात्र) के नियंता व विसर्गो समेत बर्ततेहुये वर्ण स्वरूप तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ ११ ॥ हे सानुनासिक (ञ, म, ङ, ण, न इन अक्षरों के साथ वर्तमान कारण स्वरूप) अनुस्वार स्वरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो व निरनुनासिकवर्णस्वरूप व दंत्य (लृ, त, थ, द, ध, न, ल, स) और तालव्य (इ, च,छ,ज,झ,ञ, य, श) रूपवाले के लिये नमस्कारहो ॥ १२ ॥ व ओष्ठों में हुये (उवर्ण, प,फ,ब,भ,म) और उरसे हुये उन उन अक्षर स्वरूप के लिये नमस्कारहो व ऊष्म (श,ष,स,ह) स्वरूपीकेलिये नमस्कारहो व अंतःस्थ (य,र,ल,व) स्वरूप व पर,

पुरुष, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इस गणना से पंचम और पिनाक धन्वाधारे हुये तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ १३ ॥ निषाद स्वरूप तुम्हारेलिये नमस्कारहो व निषादजनों के स्वामी या श्रीरामचन्द्रजी के मित्र शृंगवेर पुरवासी निषादराज गुह स्वरूपकेलिये नमस्कारहो व वीणा वेणु और मृदंगादि वाद्य स्वरूप तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥१४॥ व अत्यंत उच्चध्वनिरूप, गंभीर शब्दरूप, व पापियों के लिये भयकर और पुण्यवानों के लिये सौम्यरूप या अघोर मंत्र रूपके लिये नमस्कारहो व उनचास संख्यक तानस्वरूपके लिये नमस्कारहो और इक्कीस मूर्च्छनाओं के पतिकेलिये नमस्कारहो ॥ १५ ॥ व स्थावर और जंगम अथवा संगीतशास्त्रमें प्रसिद्ध स्थायी और संचारी के भेदसे भावस्वरूपीकेलिये नमस्कारहो व तालों के प्यारकरनेवाले, तालस्वरूप व लास्य और तांडव नामक नृत्यके कारणकेलिये नमस्कारहो ॥१६॥ हे भक्तिसे तौर्य्यत्रिक

दङ्गादिवाद्यरूपायतेनमः ॥१४॥ नमस्तारायमन्द्रायघोरायाघोरमूर्तये ॥ नमस्तानस्वरूपायमूर्च्छनापतयेनमः ॥१५॥ स्थायिसंचारिभेदेननमोभावस्वरूपिणे ॥ तालप्रियायतालाय लास्यताण्डवजन्मने ॥ १६ ॥ तौर्यत्रिकस्वरूपायतौर्यत्रिकमहाप्रिय ॥ तौर्यत्रिककृताम्भक्त्यानिर्वाणश्रीप्रदायक ॥ १७ ॥ स्थूलसूक्ष्मस्वरूपायदृश्यादृश्यस्वरूपिणे ॥ अर्वाचीनायचनमःपराचीनायतेनमः ॥ १८ ॥ वाक्प्रपञ्चस्वरूपायवाक्प्रपञ्चपरायच ॥ एकायानेकभेदायसदसत्पतयेनमः ॥ १९ ॥ शब्दब्रह्मनमस्तुभ्यंपरब्रह्मनमोस्तुते ॥ नमोवेदान्तवेद्यायवेदानाम्पतयेनमः ॥ २० ॥ नमोवेदस्वरूपायवेदगोचरमूर्तये ॥ पार्वतीशनमस्तुभ्यंजगदीशनमोस्तुते ॥ २१ ॥ नमस्तेदेवदेवेशदेवदिव्यपदप्रद ॥ शङ्करायनम

याने नृत्यगीत और वाद्य करनेवालों के मुक्तिसम्पत्तिदायक, तौर्य्यत्रिकमहाप्रिय! तौर्य्यत्रिक स्वरूप के लिये नमस्कार हो ॥ १७ ॥ स्थूल सूक्ष्म स्वरूप (कार्य्य कारण स्वरूप) व दृश्य (पृथिवी, जल, तेज) अदृश्य (वायु, आकाश) स्वरूप व अर्वाचीन याने इस समय में हुये के लिये नमस्कार हो और पुराचीन (पूर्वकाल में हुये) तुम्हारे लिये नमस्कार हो ॥ १८ ॥ व शब्द विस्तार स्वरूप, और वाणी के प्रपंच से परे याने उसके कारण व परमार्थ से एकरूप मायासे अनेकभेदवाले व कार्य्य और कारण के पतिके लिये नमस्कार हो ॥ १९ ॥ हे शब्दब्रह्म वेदस्वरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे परब्रह्म ! तुम्हारेलिये नमस्कारहो व वेदान्तों से जानने योग्यके लिये नमस्कारहो और वेदोके नियन्ताके लिये नमस्कारहो ॥ २० ॥ व वेदस्वरूपके लिये नमस्कारहो और वेद (स्वप्रकाश चैतन्य) के विषय रूपवाले के लिये नमस्कारहो

हे पार्वतीश ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और हे जगदीश ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ २१ ॥ हे देव, दिव्यपदप्रद, कल्याणकर्त्ता, देवदेवेश, तुम्हारे लिये नमस्कारहो व हे महेश्वर ! तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ २२ ॥ हे जगत् के आनन्ददायक ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे चन्द्रभाल ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे मृत्युंजय ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और तीननेत्रवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ २३ ॥ हे अन्धकदैत्यदलन ! पिनाकधन्वा हाथवाले के लिये नमस्कारहो व त्रिशूलआयुधधारी के लिये नमस्कारहो और त्रिपुरविनाशी के लिये नमस्कारहो ॥ २४ ॥ हे कामगर्वगंजन ! जालन्धरके शत्रु व कालके चलानेवाले व कालरूप और कालकूटनामक विषपीने वालेके लिये नमस्कारहो ॥२५॥ हे अभक्तोंके एक विषाददायक, भक्तोंके दुःखनाशक ! ज्ञानरूप और साधनरूप तुम्हारे लिये नमस्कारहो व स-

स्तुभ्यंनमस्तुभ्यंमहेश्वर ॥ २२ ॥ नमस्तेजगदानन्दनमस्तेशशिशेखर ॥ मृत्युञ्जयनमस्तुभ्यंनमस्तेत्र्यम्बकाय च ॥ २३ ॥ नमःपिनाकहस्तायत्रिशूलायुधधारिणे ॥ नमस्त्रिपुरहन्त्रेचनमोन्धकनिषूदन ॥ २४ ॥ कन्दर्पदर्पदलननमोजालन्धरारये ॥ कालायकालकालायकालकूटविषादिने ॥ २५ ॥ विषादहन्त्रेभक्तानामभक्तैकविषादद ॥ ज्ञानायज्ञानरूपायसर्वज्ञायनमोऽस्तुते ॥ २६ ॥ योगसिद्धिप्रदोसित्वंयोगिनांयोगसत्तम ॥ तपसांफलदोसित्वंतपस्विभ्यस्तपोधन ॥ २७ ॥ त्वमेवमन्त्ररूपोसिमन्त्राणांफलदोभवान् ॥ महादानफलन्त्वंवैमहादानप्रदोभवान् ॥ २८ ॥ महायज्ञस्त्वमेवेशमहायज्ञफलप्रद ॥ त्वंसर्वःसर्वगस्त्वंवैसर्वदःसर्वदृग्भवान् २९ ॥ सर्वभुक्सर्वकर्तात्वंसर्वसंहारकारक ॥ योगिनांहृदयाकाशकृतालयनमोस्तुते ॥ ३० ॥ त्वमेवविष्णुरूपेणशङ्खचक्रगदाधर ॥ त्रिलोकीन्त्रायसेत्रातःसत्त्वमूर्तेनमोस्तुते ॥ ३१ ॥

र्वज्ञके लिये नमस्कारहो ॥ २६ ॥ हे योगसत्तम ! आप योगियों को योगसिद्धिदायकहैं व हे तपोधन ! आप तपस्वियों को तपस्या की सिद्धिके दाताहैं ॥ २७ ॥ व आपही मन्त्ररूपहैं और आपही मंत्रों के फलदाताहैं व आपही महादानों के फलहैं और आपही महादानों के बड़े दानीहैं ॥ २८ ॥ हे महायज्ञफलप्रद ईश ! तुमहीं महायज्ञहो व तुम सर्वरूपहो व तुमहीं सर्वगतहो और तुम्हीं सब फलदायकहो ॥२९॥ हे सब जगत् के प्रलयकारक ! तुमहीं सबके कर्त्ता और सबरस भोगने वालेहो हे योगियोंके हृदयरूप आकाश में वासकारिन् ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ३० ॥ हे शङ्खचक्रगदाधर ! तुमहीं विष्णुरूप से त्रिलोककी रक्षा करतेहो व हे सत्त्वमूर्त्ते,

रक्षक ! तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ ३१ ॥ हे विधानके जाननेवाले, निर्मल कैवल्यपद दायक ! तुमहीं विधाताहोकर व रजोगुणमयी मूर्त्तिको भलीभांति आलम्बनकर इस जगत्को विशेषकरके रचते हो ॥ ३२ ॥ हे सर्पधारिन् ! तुमहीं बड़े उग्र महारुद्रहो व हे महाश्मशानचारिन् ! तुम्हीं महाभीमहो ॥ ३३ ॥ व तुम्हीं तामसी देह को आश्रयकर यमके भी यमहो व तुमहीं अन्त में कालाग्नि रुद्र (सङ्कर्षण के मुखसे उपजीहुई अग्नि) होकर प्रलय के प्रवर्तकहो ॥ ३४ ॥ हे जन्मरहित ! तुमहीं आंखों की पलक खोलनेसे पुरुष और प्रकृति केद्वारा महत्तत्त्वादि सम्पूर्ण जगत्को फिर प्रकट करतेहो ॥ ३५ ॥ तुम्हारा पलकोंका खोलना मूँदना जगत्के जन्म और विनाशका मुख्य कारणहै व कपालों की माला(धारणकरना आदि तौ)अपनी इच्छासे विचरतेहुये आपका खेलहै ॥ ३६ ॥ हे धूर्जटे (जटाभारवाले) ! जोकि यह मनु-

त्वमेवविदधास्येतद्विधिर्भूत्वाविधानवित् ॥ रजोरूपंसमालम्ब्यनीरजस्कपदप्रद ॥३२॥ त्वमेवहिमहारुद्रस्त्वम्महोग्रो भुजङ्गभृत् ॥ त्वमेवहिमहाभीमोमहापितृवनेचर॥३३॥तामसीन्तनुमाश्रित्यत्वंकृतान्तकृतान्तकः॥कालाग्निरुद्रोभूत्वा न्तेत्वंसंवर्तप्रवर्तकः ॥३४॥ त्वंपुम्प्रकृतिरूपाभ्यांमहदाद्यखिलञ्जगत्॥ अक्षिपक्ष्मसमुत्क्षेपात्पुनराविःकरोष्यज ॥३५॥ उन्मेषविनिमेषौते सर्गासर्गैककारणम् ॥ कपालमालाखेलोयं भवतःस्वैरचारिणः ॥३६॥ त्वत्कण्ठेनृकरोटीयं धूर्जटेयाविभासते ॥ सर्वेषामन्तदग्धानां सास्फुटंबीजमालिका ॥ ३७ ॥ त्वत्तःसर्वमिदंशम्भो त्वयिसर्वंचराचरम् ॥ कस्त्वांस्तोतुंविजानाति पुरावाचामगोचरम्॥३८॥ स्तोतात्वंहिस्तुतिस्त्वंहि नित्यंस्तुत्यस्त्वमेवच ॥वेद्म्यहंनमःशिवाये तिनान्यद्वेद्म्यहंवकिञ्चन ॥३९॥ त्वमेवहिशरण्यंमे त्वमेवहिगतिःपरा॥ त्वामेवप्रणमामीश नमस्तुभ्यंनमोनमः ॥४०॥

ष्यों के मुंडों की हड्डी तुम्हारे कण्ठ में विराजती है वह प्रलय में दहेहुये सबों के बीजरूप अज्ञान की मालिका है यह स्पष्ट है ॥ ३७ ॥ हे शम्भो ! यह सब स्थावर जंगम जगत् तुमसे है व यह सब तुममें है और पुरानी वाणी याने वेदों के अगोचरहुये तुमको स्तुति करने के लिये कौनजन जानताहै ॥ ३८ ॥ तुमहीं स्तुति कर्त्ता हो व तुमहीं स्तुतिहो और तुमहीं नित्य स्तुति के योग्यहो मैं तो, ॐनमः शिवाय (ॐकाररूप शिवके लिये नमस्कार है) ऐसा जानताहूं और अन्य कुछ भी नहीं जानताहूं ॥ ३९ ॥ तुमहीं मेरे आधार या रक्षकहो व तुमहीं परमगतिहो हे ईश ! मैं तुमकोही प्रणमताहूं और तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ४० ॥

इस प्रकार बारबार कहकर ब्रह्माजीने ॐकार नामक, महालिंगरूपी महेशजी के सम्मुख भूमि में दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ महादेवजी बोले कि, हे पर्वतराजकुमारि ! तदनन्तर परम ऐश्वर्य्य सम्पत्तिकी कारणभूत व अतिशय उत्तम और अद्भुत ब्रह्मस्तुतिको सुनकर हम सन्तुष्टहुये ॥ ४२ ॥ उसके अनन्तर मूर्त्तिरहित भी हमने लिंगसे शङ्करकी मूर्त्ति में सबओर से टिककर याने उसको धारणकर चारमुखवाले ब्रह्माजीके प्रति ऐसा कहा कि मैं प्रसन्नहूं तुम वर मांगो ॥ ४३ ॥ अनन्तर भलीभांति उठकर व मुझको प्रत्यक्ष देखकर और फिर जयजय ऐसा कहकर अञ्जली कियेहुये ब्रह्माजीने प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ उसके पश्चात् आनन्द

इत्युदीर्यासकृद्वेधाः प्रणनाममहेश्वरम् ॥ प्रणवाख्यंमहालिङ्गरूपिणंदण्डवत्क्षितौ ॥ ४१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ततोगिरीन्द्रतनये श्रुत्वाब्रह्मस्तुतिम्पराम् ॥ परमैश्वर्यसम्पत्तिहेतुंतुष्टोहमद्भुताम् ॥ ४२ ॥ अमूर्तोऽहन्ततोलिंगान्मूर्तिमास्थायशाङ्करीम् ॥ प्रसन्नोस्मिवरंब्रूहीत्युवाच चतुराननम् ॥ ४३ ॥ चतुर्वक्त्रःसमुत्थाय प्रत्यक्षंवीक्ष्यमामथ ॥ पुनर्जयजयेत्युक्त्वा प्रणनामकृतांजलिः ॥ ४४ ॥ आनन्दबाष्पसलिलनेत्रोहृष्टतनूरुहः ॥ गद्गदेनस्वरेणाथ प्रोवाचजलजासनः ॥४५॥ ब्रह्मोवाच॥ यदिप्रसन्नोदेवेश यदिदेयोवरोमम॥ तदेतस्मिन्महालिङ्गेसान्निध्यंतेऽस्तुशङ्कर॥४६॥अयमेववरोदेयो नान्यंवरमहंवृणे ॥ ओंकारेश्वरनामैतदस्तुभक्तैकमुक्तिदम् ॥ ४७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ विध्युक्तमितिविप्रर्षे समाकर्ण्यतदेशिता ॥ उवाचवचनंचैतत्तथास्तुचतुराननम् ॥४८॥ वरानन्यानपिविभुःप्रसन्नस्तत्क्षणाद्ददौ॥ विधयेदी

से उपजे आंसुओं के पानी से पूरित आंखोंवाले, हृष्टरोमा कमलासन (ब्रह्मा) जीने गद्गदस्वर से कहा ॥ ४५ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे देवेश, शङ्कर ! जो आप प्रसन्नहैं व जो मुझको वर देने योग्य हैं तो इस महालिंग में तुम्हारी समीपता होवे ॥ ४६ ॥ यही वर देनेयोग्य है मैं अन्य वरको नहीं स्वीकार करताहूं और यह ॐकारेश्वर नाम भक्तों को मुख्य मुक्तिका दाताहोवे ॥ ४७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे विप्रर्षे ! इस प्रकार ब्रह्माजी का कहाहुआ सुनकर उस समय ईश्वरने चतुर्मुख से इस वचन को कहा कि वैसेही होवे ॥ ४८ ॥ और उस स्तुति से सन्तोषित, समर्थ शङ्करजी ने प्रसन्न होकर उसीक्षण बड़े तपस्वी विधाता के लिये अन्य

भी वरोंको दिया ॥ ४९ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे देवश्रेष्ठ, तपःश्रेष्ठ ! तुम मेरी दयासे सब वेदों के निधान होओ और तुम्हारी सृष्टि करनेमें शक्तिहोवे ॥ ५० ॥ तुम सबके पितामह (बाबा) हो और आप सबके माननीय पात्रहो व तुम्हारी तपस्याका फल देने के अर्थ जो यह लिंग उठा है ॥ ५१ ॥ और हे विधे ! जोकि सबसेपरे ॐकाररूप व वेदमय है इसकी पूजा से मनुष्यों को ब्रह्मपद दूरनहीं है ॥ ५२ ॥ यह लिंग अकारनामक है व यह श्रेष्ठ लिग उकारनामक है व यह मकार नामकहै व नादनामक और बिन्दुसंज्ञक है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार पञ्चायतन याने अकारादिपांचोंका या उनसे वाच्यअर्थ ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदा शिवका आश्रयभूत

घंतपसेतयास्तुत्यातितोषितः ॥ ४९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ सुरश्रेष्ठतपःश्रेष्ठ सर्वाम्नायनिधिर्भव ॥ सृष्टेःकरणसामर्थ्यं तवास्तुमदनुग्रहात् ॥ ५० ॥ पितामहस्त्वंसर्वेषां सर्वेषांमान्यभूर्भवान् ॥ त्वत्तपःफलदानार्थं यदेतल्लिङ्गमुत्थितम् ॥ ५१ ॥ परमोङ्काररूपंच शब्दब्रह्ममयंविधे ॥ अस्याराधनतःपुंसां नदूरंब्रह्मणःपदम् ॥ ५२ ॥ अकाराख्यमिदंलिङ्गमुकाराख्यमिदंपरम् ॥ मकाराह्वयमेतच्च नादाख्यंबिन्दुसंज्ञकम् ॥ ५३ ॥ पञ्चायतनमीशानमित्थमेतदुदीरितम् ॥ मोक्षायसर्वजन्तूनामस्मिन्नानन्दकानने ॥ ५४ ॥ स्नात्वामत्स्योदरीतीर्थे विलोक्योङ्कारमीश्वरम् ॥ नजातुजायतेजन्तुर्जननीजठरेक्वचित् ॥ ५५ ॥ एतन्नादेश्वरंलिङ्गमेतल्लिङ्गंसुदुर्लभम् ॥ रम्येमत्स्योदरीतीरे दृष्टंस्पृष्टंविमुक्तिदम् ॥ ५६ ॥ यदेतत्कापिलंज्योतिरेतल्लिङ्गे विलोक्यते ॥ अतस्तुकपिलेशाख्यमेतल्लिङ्गंसुदुर्लभम् ॥ ५७ ॥ मत्स्योदरीयदा गङ्गाकपिलेश्वरसन्निधौ ॥ तदातत्रनरःस्नात्वा ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ५८ ॥ वरणोत्सिक्तपानीये द्युनदीतोयमिश्रिते ॥

यह ईशान (लिंग) इस काशी में सब जन्तुओं की मुक्तिके लिये कहागया है ॥ ५४ ॥ मत्स्योदरी तीर्थ में स्नानकर व ॐकार ईश्वर को देखकर जन्तु माताके उदर में कभी कहीं नहीं जन्मता है ॥ ५५ ॥ यह लिंग नादेश्वर है यह लिंग बहुतही दुर्लभ है व मनोज्ञ मत्स्योदरी के किनारे देखा और छुवाहुआ यह उत्तम मोक्षका दाता है ॥ ५६ ॥ और जिससे इस लिंग में यह कपिलरूप विष्णु का तेज विशेषता से देखाजाता है इससे कपिलेश नामक यह लिंग सुदुर्लभ है ॥ ५७ ॥ जब मत्स्योदरी गङ्गा कपिलेश्वर के समीप में है तब उसमें स्नान कर नर ब्रह्महत्या को विनाशता है याने दूर करदेता है ॥ ५८ ॥ व गंगाजल से मिश्रित, वरणा के समु-

स्थित पानीमें स्नानकर और नादेश्वरको देखकर मनुष्य क्यों फिर शोच करताहै ॥ ५९ ॥ जिससे अष्टमी और चतुर्दशी में साठकरोड़हजार तीर्थ समुद्रों के साथ मत्स्योदरी के मध्य में प्रवेश करते हैं ॥ ६० ॥ व जब गंगा ॐकारेश्वर के समीप मेंआवेंगी तब देव ऋषि और पितरोंका प्यारा बहुत पुण्यकाल होवेगा ॥ ६१ ॥ उसमें ॐकारेश्वर के समीप मत्स्योदरी में स्नान जप दान होम और देवपूजा अक्षय होवै है ॥ ६२ ॥ व ॐकारेश्वर के दर्शन सेही अश्वमेधयज्ञ का फल होवैहै उसलिये बड़े यत्न से काशी में ॐकार ईश्वर देखने योग्य हैं ॥ ६३ ॥ जिसने नादेश्वर को न देखा उसका अर्थादि चतुर्वर्ग फलों का साधन, दुर्लभ मनुष्य का जन्म जलके

स्नात्वानादेश्वरंदृष्ट्वा नरःकिमनुशोचति ॥ ५९ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां तीर्थानिसहसागरैः ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि मत्स्योदर्यांविशन्तिहि ॥ ६० ॥ प्रणवेशसमीपेतु यदागङ्गासमेष्यति ॥ तदापुण्यतमःकालोदेवर्षिपितृवल्लभः ॥६१॥ तत्रस्नानंजपोदानं हवनंदेवतार्चनम् ॥ मत्स्योदर्यामक्षयंस्यादोङ्कारेश्वरसन्निधौ ॥ ६२ ॥ ओङ्कारदर्शनादेव वाजिमेधफलंलभेत् ॥ तस्मात्काश्यांप्रयत्नेन दृश्यओङ्कारईश्वरः ॥ ६३ ॥ दुर्लभंमानवंजन्म चतुर्वर्गैकसाधनम् ॥ जलबुद्बुदवत्तस्यान्नादेशोयेननेक्षितः ॥ ६४ ॥ निरीक्ष्यकपिलेशानंस्नात्वामत्स्योदरीजले ॥ कृत्वापिण्डप्रदानानि पितॄणामनृणोभवेत् ॥ ६५ ॥ कृत्वापिमोहात्पापानि भूरीण्येवमहान्त्यपि ॥ काश्यामोङ्कारमालोक्य कुतस्त्रस्यतिवैयमात ॥ ६६ ॥ ओंकारयात्राभिमुखं नरंवीक्ष्यपितामहाः ॥ परिनृत्यन्तिमुदिताः स्वसन्तानसमुद्भवम् ॥ ६७ ॥ यस्ययस्यचवैनामस्मृत्वास्मृत्वानमस्यति ॥ तन्तमुन्नयतेप्राज्ञःपितरंब्रह्मणःपदम् ॥ ६८ ॥ रुद्राणांनियुतंजप्त्वा यत्फलंस

बुल्ला के समान है ॥ ६४ ॥ इससे मत्स्योदरी के जल में स्नानकर व कपिलेश्वरको देखकर और पितरों को पिण्डदान कर उऋण होजावे ॥ ६५ ॥ व बड़े भारी भी बहुते पापों को करके भी काशी में ॐकारके सबओर से दर्शनकर निश्चयकर यमसे क्यों डरता है ॥ ६६ ॥ व अपने वंशमें उपजेहुये मनुष्यको ॐकार यात्राके सम्मुख देखकर आनन्दितहुये पितर सबओर से नाचते हैं ॥ ६७ ॥ क्योंकि बुद्धिमान् जन जिसके जिसके नाम को सुमिर सुमिर२कर ॐकार के नमस्कार करताहै उस उस

पितर को ब्रह्मलोक के ऊंचे पठाता है ॥ ६८ ॥ व एकलाख रुद्रोंकों भलीभांति जपकर जो फल मिलता है उस फलको भक्तिसमेत ॐकार के दर्शन से निश्चय कर पाता है ॥ ६९ ॥ व जिसने काशी में सब कामदायक ॐकार को न देखा उस देहधारी जन्तु का जन्म केवल भूमिकेभार केही लिये हुआ है ॥ ७० ॥ किन्तु एक ॐकार को सब भावों से देखकर समस्तभूमण्डल में सकल लिंग समूह देखेहुये होजावें इसमें संशय नहीं है ॥ ७१ ॥ अनन्तर ॐकारेश्वर के प्रणामकर यदि अन्यत्र मरताहै वह स्वर्गलोकको प्राप्त होकर उसके बाद काशीमें मुक्तिको पावे है ॥ ७२ ॥ हे ब्रह्मन् ! ऐसा विनिश्चित है कि मैं इस लिंग में सदा टिकूंगा और इस लिंग के

म्यगाप्यते ॥ तत्फलंलभतेनूनं भक्त्योङ्कारविलोकनात् ॥ ६९ ॥ केवलंभूमिभाराय जन्मिनोजन्मतस्यवै ॥ येनानन्दवनेदृष्टो नोङ्कारःसर्वकामदः ॥ ७० ॥ एकमोङ्कारमालोक्य समस्तेक्षोणिमण्डले ॥ लिङ्गजातानिसर्वाणि दृष्टानिस्युर्नसंशयः ॥ ७१ ॥ प्रणवेशंप्रणम्याथ यद्यन्यत्रविपद्यते ॥ स्वर्गलोकमवाप्याथ काश्यांमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ अस्मिँल्लिङ्गेसदाब्रह्मन्स्थास्यामीतिविनिश्चितम् ॥ दास्यामिचसदामोक्षमेतल्लिङ्गार्चकायवै ॥ ७३ ॥ ओङ्कारंसकृदप्यत्र नरोनत्वाप्रयत्नतः ॥ कृतकृत्योभवेन्नूनं परमान्मदनुग्रहात् ॥ ७४ ॥ ओङ्कारपश्चिमेभागे तारतीर्थमनुत्तमम् ॥ कृतोदकक्रियस्तत्र नरस्तरतिदुर्गतिम् ॥ ७५ ॥ ओङ्कारेशस्ययेभक्ता ज्ञेयास्ते नैव मानवाः ॥ मनुष्यचर्मणानद्धास्तेरुद्रामोक्षगामिनः ॥ ७६ ॥ अस्यलिङ्गस्यमहिमा नान्यैरत्रावगम्यते ॥ त्वत्पुण्योदयतोयस्मादिधेत्राविरभूदिदम् ॥ ७७ ॥ एतल्लिङ्गप्रभावाच्च सर्वज्ञास्यसितत्त्वतः ॥ विधेविधेहितस्मात्त्वं सर्वमेतच्चराचरम् ॥ ७८ ॥ इतिदत्त्वावरंतस्मै ब्रह्मणेप

पूजक को सदैव मुक्ति दूंगा ॥ ७३ ॥ इस लिये यहां एकबार भी बडे यत्न से ॐकार को नमस्कार कर मनुष्य मेरे उत्तम अनुग्रह से निश्चयकर कृतार्थ होवे ॥ ७४ ॥ और ॐकार के पश्चिम भागमें जोकि अतिउत्तम तारतीर्थ है उसमें स्नानादि जल क्रिया कियेहुआ नर दुर्गतिको तरता है ॥ ७५ ॥ व जे ॐकारेश्वर के भक्तहैं उनको मनुष्य नहीं जानना चाहिये किन्तु मनुष्यके चर्म से मढ़ेहुये वे मोक्षगामी रुद्रहैं ॥ ७६ ॥ हे ब्रह्मन् ! यहां इस लिंगकी महिमा अन्यजनों से नहीं जानीजाती है जिस कारण तुम्हारे पुण्य के उदय से यह इस स्थान में प्रकटहुआ है ॥ ७७ ॥ उसलिये तुम इस लिंग के प्रभाव से सबकुछ तत्त्व से जानोगे और हे विधातः ! तुम इस

सब चराचर जगत् को बनावो ॥ ७८ ॥ इसभांति कमल से उपजेहुये उन ब्रह्माजीको वर देकर शङ्करजी उसी महालिंग में लीन होगये ॥ ७९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे घटज ! अपनेही विरचे ब्रह्मप्रतिपादक स्तोत्र सेही स्तुति करतेहुये ब्रह्माजी आज भी उस लिंग कोही सेवते हैं ॥ ८० ॥ और ब्रह्मस्तव को जपताहुआ मनुष्य सब पापों से बहुतही छूट जाता है व महापुण्यों से पूर्ण होताहै और अच्छे उत्तम ज्ञानको प्राप्त होताहै ॥ ८१ ॥ व एक वर्ष तक त्रिकाल में इस ब्रह्मस्तोत्रको जपकर अन्तकालमें वह ज्ञान होवे है कि जिसके द्वारा संसार बन्धनसे विमुक्तहोजाताहै ॥ १८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते

द्मसम्भुवे ॥ तस्मिन्नेवमहालिङ्गे शम्भुर्लीनोबभूवह ॥७९॥स्कन्दउवाच ॥ ब्रह्मापिभजतेद्यापि तल्लिङ्गंकलशोद्भव ॥ स्तुवन्ब्रह्मस्तवेनैव स्वात्मनाविहितेनहि ॥ ८० ॥ ब्रह्मस्तवंजपन्मर्त्यः सर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ पूर्यतेचमहापुण्यैर्ज्ञानंप्राप्नोतिसत्तमम् ॥ ८१ ॥ ब्रह्मस्तवमिमंजप्त्वा त्रिकालंपरिवत्सरम् ॥ अन्तकालेभवेज्ज्ञानं येनबन्धात्प्रमुच्यते॥१८२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेओङ्कारमहिमवर्णनन्नामत्रिसप्ततितमोध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृणुवातापिसंहर्तः काश्यांपातकतङ्किनी ॥ पद्मकल्पेतुयावृत्ता दमनस्यद्विजन्मनः ॥ १ ॥ भारद्वाजस्यतनयो दमनोनामनामतः ॥ कृतमौञ्जीविधिःसोथ विद्याजातंप्रगृह्यच ॥२॥ संसारंदुःखबहुलं जीवितंचापिचञ्चलम् ॥ विज्ञायदमनोविद्वान्निर्जगामगृहान्निजात ॥ ३ ॥ कांचिद्दिशंसमालम्ब्य निर्वेदंपरमंगतः ॥ प्रत्याश्रमंप्रतिनगंप्र

ॐकारमाहिमवर्णनंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा। चौहत्तर अध्याय में फिर समेत विस्तार। ॐकारेश्वरका अहै इत माहात्म्य अपार ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे वातापी राक्षस के विनाशक अगस्त्यजी ! काशिका में पापनाशिका दमननामक ब्राह्मणकी जो कथा पद्मकल्प में वर्तमान होगई है उसको तुम सुनो ॥ १ ॥ कि भारद्वाजका पुत्र नाम से दमननामक हुआ और मौंजी की विधि करनेवाला होकर अनन्तर विद्यासमूह को बहुतही ग्रहणकर वह ॥ २ ॥ विद्वान् दमन संसारको बहुत दुःखवाला और जीवित को भी चंचल विचार

कर अपने घर से निकलगया ॥ ३ ॥ व किसी दिशा को भलीभांति आलम्बन कर परमवैराग्यको प्राप्तभया और प्रतिआश्रम, प्रतिपर्वत, प्रतिसमुद्र, प्रतिवन ॥ ४ ॥ व प्रतितीर्थ और प्रतिनदियों में उस तपस्वी ने भ्रमण किया व इस लोकमें पृथिवीके चारोंओर जितने देवस्थान टिकते हैं ॥ ५ ॥ उन में इन्द्रिय और मनको भलीभांति रोंकेहुये उसने अधिकता से वास किया परन्तु उसने कहीं भी मनकी स्थिरता को न पाया ॥ ६ ॥ व मनोरथ के उपदेश करनेवाला कोई कभी कहीं न देखपड़ा और उस दमननामक तपस्वीने दैवयोग से कभी ॥ ७ ॥ नर्मदा नदी के किनारे अमरकण्टक तीर्थ को देखा व उसमेंही ॐकारके भी मनोज्ञ महास्थानको ॥८॥

त्यब्धिप्रतिकाननम् ॥ ४ ॥ प्रतितीर्थंप्रतिनदि सबभ्रामतपोयुतः ॥ यावन्त्यायतनानीह तिष्ठन्तिपरितोभुवम् ॥ ५ ॥ अध्युवाससतावन्ति संयतेन्द्रियमानसः ॥ परंनमनसःस्थैर्यंक्वापिप्रापिचतेनवै ॥ ६ ॥ मनोरथोपदेष्टाच कुत्रचित्कापिनेक्षितः ॥ कदाचिद्दैवयोगात्सदमनोनामतापसः ॥ ७ ॥ रेवातटेनिरैक्षिष्ट तीर्थंचामरकण्टकम् ॥ महदायतनंपुण्यमोङ्कारस्यापितत्रवै ॥ ८ ॥ दृष्ट्वाहृष्टमनाआसीच्चेतःस्थैर्यमवापह ॥ अथपाशुपतांस्तत्र सनिरीक्ष्यतपोधनान् ॥ ९ ॥ विभूतिभूषिततनून्कृतलिङ्गसमर्चनान् ॥ विहितप्राणयात्रांश्चकृतागमविचारणान् ॥ १० ॥ स्वस्थोपविष्टान्स्वगुरोरग्रतोऽचलमानसान् ॥ प्रणम्योपाविशत्तत्र तदाचार्यस्यसन्निधौ ॥ ११ ॥ प्रबद्धहस्तयुगलः प्रणमत्तरकन्धरः ॥ अथपाशुपताचार्यो गर्गोनाममहामुनिः ॥ १२ ॥ वार्धकेनसमाक्रान्तस्तपसाकृशविग्रहः ॥ शम्भोराराधनेनिष्ठः श्रेष्ठःसर्वतप

देखकर वह प्रसन्नमनवाला होगया व हर्ष से चित्तकी स्थिरता को प्राप्तहुआ अनन्तर वहां तपस्याके धनी उन पाशुपतों (शिवभक्तों) को देखकर ॥ ९ ॥ जोकि विभूति से भूषित देहवाले व लिंगों की भलीभांति पूजा कियेहुये व प्राणधारण के लिये भिक्षा करनेवाले व शास्त्रों के विचारकर्त्ता ॥ १० ॥ व अपने गुरु के आगे स्वस्थ बैठेहुये और अचल चित्त थे उनके प्रणामकर वहां उनके आचार्य्य के समीप में बैठगया ॥ ११ ॥ जोकि दोनों हाथ जोडेहुआ व बहुतही प्रणामकरते हुये कण्ठवाला था तदनन्तर पाशुपतों के आचार्य्य गर्गनामक महामुनि ॥ १२ ॥ जोकि वृद्धता से समाक्रान्त व तपस्यासे कृश (दुबली) देहवाले व शङ्करजीकी पूजा

में निष्ठ और सब तपस्वियों में श्रेष्ठ थे ॥ १३ ॥ उन्हों ने दमन से ऐसा पूंछा कि हे सत्तम ! तुम कौनहो व कहांसे यहां आये हो और युवा भी तुम क्यों वैराग्य युक्त हो उसको कहो ॥ १४ ॥ इसभांति बहुत नीतिपूर्वक या स्नेह समेत वचन को सुनकर वह दमनजी बोले कि हे पूज्य, सर्वज्ञ,पूजनप्रिय, पाशुपताचार्य्य ! ॥ १५ ॥ मैं यथार्थ अपने चित्तके कर्म को तुमसे कहताहूं कि वेद और शास्त्रों में परिश्रम कियेहुआ ब्राह्मण का पुत्र मैं ॥ १६ ॥ संसार की असारताको जानकर वानप्रस्थ आश्रम को आश्रितहुआहूं और इसही देहसे महासिद्धि को चाहतेहुये मैंने ॥ १७ ॥ बहुतेतीर्थों में नहाया व करोड़ों मन्त्रों को जपा व अनेक देवोंको सेया और बहुतेही होम

स्विषु ॥ १३ ॥ पप्रच्छदमनंचेति कस्त्वंकस्मादिहागतः ॥ तरुणोपिविरक्तोसि कुतस्तद्वदसत्तम ॥ १४ ॥ इतिप्रणयपूर्वंस निशम्यदमनोऽब्रवीत् ॥ भगोःपाशुपताचार्य सर्वज्ञाराधनप्रिय ॥ १५ ॥ कथयामियथार्थन्ते निजचेतोविचेष्टितम् ॥ अहंब्राह्मणदायादो वेदशास्त्रकृतश्रमः ॥ १६ ॥ संसारासारतांज्ञात्वा वानप्रस्थमशिश्रियम् ॥ अनेनैवशरीरेणमहासिद्धिमभीप्सता ॥ १७ ॥ स्नातंबहुषुतीर्थेषु मन्त्राजप्तास्तुकोटिशः ॥ देवताःसेविताबह्व्यो हवनंचकृतंबहु ॥ १८ ॥ शुश्रूषिताश्चगुरवो बहवोबहुनेहसम् ॥ महाश्मशानेषुनिशाभूयस्योप्यतिवाहिताः ॥ १९ ॥ शिखराणिगिरीन्द्राणां समयाचाध्युषितान्यहो ॥ दिव्यौषधिसहस्राणि मयासंसाधितान्यपि ॥ २० ॥ रसायनानिबहुशः सेवितानिमयापुनः ॥ महासाहसमालम्ब्य सिद्धाध्युषितकन्दराः ॥ २१ ॥ मयाप्रविष्टाबहुशः कृतान्तवदनोपमाः ॥ तपश्चापिमहत्तप्तं बहुभिर्नियमैर्यमैः॥ २२ ॥परंकिञ्चित्कचिन्नैक्षि सिद्ध्यङ्कुरमपिप्रभो ॥ इदानींत्वामनुप्राप्य.महींपर्यटतामया ॥ २३ ॥ मन

किया ॥ १८ ॥ व बहुत कालतक अनेक गुरुवों की सेवा किया व महाश्मशानोंमें बहुती रातों को बिताया ॥ १९ ॥ और आश्चर्य्य है कि मैंने पर्वतेन्द्रों के शृंगोंपर वास किया व मैंने हजारों दिव्य ओषधियों को भी भलीभांति साधनकिया ॥ २० ॥ फिर मैंने बहुते रसायनों को सेवन किया व बड़े साहसको आलम्बन कर सिद्धोंसे बसीगई हुई काल के मुख के समान अनेक कन्दरायें मुझ से पैठीगई व बहुते नियम (शौचादि) और यमों (अहिंसादि) से तप भी तपागया ॥ २१ । २२ ॥ परन्तु हे प्रभो ! पृथिवी पर्य्यटन करतेहुये मैंने कुछेक भी सिद्धिका अंकुर (कारण) कहीं नहीं देखा और इस समय तुमको पीछे से प्राप्त होकर ॥ २३ ॥ सम्प्राप्तसिद्धि-

वाले मुझकरके मनकी स्थिरता अवश्यकर पाईगई सी है किन्तु तुम्हारे मुखकमलसे जो वचन निकलेगा ॥ २४ ॥ उससेही मेरी भारी सिद्धि होनेहारीहै अन्यथा नहीं उसलिये तुम अच्छे उपदेश को कहो कि किसभांति मेरी सिद्धिहोवे ॥ २५ ॥ जो कि इसही पार्थिव देहसे बहुत विस्तारयुक्त है तब दमनका ऐसा वचन सुनकर गर्गाचार्य्य ने ॥ २६ ॥ वहां मुक्ति चाहतेहुये स्थिरचित्तवाले पाशुपतव्रतधारी सब शिष्यों के सुनतेही प्रत्यक्ष देखेहुये बड़ेभारी उत्तम आश्चर्य्य को कहा ॥ २७ ॥ श्रीगर्गाचार्य्यजी बोले कि जो तुम इसही देहसे इस लोकमें सिद्धिके चाही हो तो सावधान होकर सुनो मैं तुमसे कहताहूं ॥ २८ ॥ कि अविमुक्त नामक (काशी) महा-

सःस्थैर्यमापन्नमिवसम्प्राप्तसिद्धिना ॥ अवश्यंत्वन्मुखाम्भोजाद्यद्वचोनिःसरिष्यति ॥ २४ ॥ तेनैवमहतीसिद्धिर्भवित्रीममनान्यथा ॥ तद्ब्रूहिसूपदेशंच कथंसिद्धिर्भवेन्मम ॥ २५ ॥ अनेनैवशरीरेण पार्थिवेनप्रथीयसी ॥ दमनस्यनिशम्येतिगर्गाचार्योवचस्तदा ॥ २६ ॥ प्रत्यक्षदृष्टंप्रोवाचमहदाश्चर्यमुत्तमम् ॥ सर्वेषांशृण्वतांतत्र शिष्याणांस्थिरचेतसाम् ॥ मुमुक्षूणांधृतवतां महापाशुपतंव्रतम् ॥ २७ ॥ गर्गउवाच ॥ अनेनैवेहदेहेन यदित्वंसिद्धिकामुकः ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वा तदातेकथयाम्यहम् ॥ २८ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेसर्वसिद्धिप्रदेसताम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यरत्नानांपरमाकरे ॥ २९ ॥ समाश्रितानांजन्तूनां सर्वेषांसर्वकर्मणाम् ॥ शलभानांप्रदीपाभे तमस्तोममहाद्विषि ॥ ३० ॥ कर्मभूरुहदावाग्नौ संसाराब्ध्यौर्वशोचिषि ॥ निर्वाणलक्ष्मीक्षीराब्धौसुखसङ्केतसद्मनि ॥ ३१ ॥ दीर्घनिद्राप्रसुप्तानां परमोद्बोधदायिनि ॥ यातायातश्रमापन्नप्राणिमार्गमहीरुहि ॥ ३२ ॥ अनेकजन्मजनितमहापापाद्रिवज्रिणि ॥ नामोच्चारकृतां

क्षेत्र जोकि सन्तों को सब सिद्धिदायक व धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका उत्तम आकर (खानि) ॥ २९ ॥ व भलीभांति आश्रितहुये सब जन्तुओंके शलभ (पांखी) रूप सब कर्मों के जलाने को बडे दीपक के समान प्रकाशमान व अन्धकार या माया के समूह का महाशत्रु ॥ ३० ॥ व कर्मवृक्षोंके लिये दावानल व संसारसमुद्र के शोषने को बडवानल की रोचिपरूप व मोक्षलक्ष्मी को क्षीरसागर व सुखों का संकेतस्थान ॥ ३१ ॥ व आत्मा के अज्ञान में सोयेहुये जनों का उत्तम बोधदाता व आनेजाने याने जन्मने और मरने से परिश्रमयुक्त प्राणियों के लिये गली के वृक्षके समान सुखदायक ॥ ३२ ॥ व अनेक जन्मजनित महापापपर्वत काटने को वज्र-

मिलने योग्यहै ॥ ४२ ॥ व अविमुक्त क्षेत्रमें देहत्याग करते (मरते) हुये कृमि कीट और पतंगों की जो विभूति देखीजाती है वह ब्रह्माण्डमण्डल में कहां है ॥ ४३ ॥ जब काल के क्रमसे या सब ओर बीतने से कभी काशीपुरी प्राप्तहुई हो तब वह उपाय करना चाहिये कि जिससे फिर बाहर निकलना न होवे ॥ ४४ ॥ जिसके पूर्व में मणिकर्णीश्वर व दक्षिण में ब्रह्मेश्वर वैसेही पश्चिममें गोकर्णेश्वर तथा उत्तरमें भारभूतेश्वर लिङ्ग टिका है ॥ ४५ ॥ ऐसा यह उत्तमक्षेत्र (अन्तर्गृह) काशी में बड़े फलवाला है इससे मणिकर्णिका कुण्ड में स्नानकर व विश्वनाथ स्वामी के दर्शन कर ॥ ४६ ॥ और क्षेत्र की प्रदक्षिणा कर राजसूय यज्ञ का फल पावे व वहां

विभूतिर्दृश्यतेयासा क्वास्तिब्रह्माण्डमण्डले ॥ ४३ ॥ वाराणसीयदाप्राप्ता कदाचित्कालपर्ययात् ॥ सउपायोविधात व्यो येननोनिष्क्रमोबहिः ॥ ४४ ॥ पूर्वतोमणिकर्णीशो ब्रह्मेशोदक्षिणेस्थितः ॥ पश्चिमेचैवगोकर्णो भारभूतस्तथोत्त रे ॥ ४५ ॥ इत्येतदुत्तमंक्षेत्रमविमुक्तेमहाफलम् ॥ मणिकर्णीह्रदेस्नात्वा दृष्ट्वाविश्वेश्वरंविभुम् ॥ ४६ ॥ क्षेत्रंप्रदक्षि णीकृत्यराजसूयफलंलभेत् ॥ तत्रश्राद्धप्रदातुश्च मुच्यन्तेप्रपितामहाः ॥ ४७ ॥ अविमुक्तसमंक्षेत्रमपिब्रह्माण्डगोल के ॥ नविद्यतेकचित्सत्यं सत्यंसाधकसिद्धिदम् ॥ ४८ ॥ रक्षन्तिसततंक्षेत्रं यत्रपाशासिपाणयः ॥ महापारिषदाउग्राः क्रूरेभ्योऽक्रूरबुद्धयः ॥ ४९ ॥ प्राग्द्वारमट्टहासश्च गणाकोटिपरीवृतः ॥ रक्षेदहर्निशंक्षेत्रं दुर्वृत्तेभ्योविभीषणः ॥ ५० ॥ त थैवभूतधात्रीशः क्षेत्रदक्षिणरक्षकः ॥ गोकर्णःपश्चिमद्वारंपातिकोटिगणावृतः ॥ ५१ ॥ उदग्द्वारंतथारक्षेद् घण्टाक र्णोमहागणः ॥ ऐशंकोणंछागवक्त्रो भीषणोवह्निदिग्दलम् ॥ ५२ ॥ रक्षःकाष्ठांशंकुकर्णो द्रमिचण्डोमरुद्दिशम् ॥ इत्थं

श्राद्धप्रदाता (कर्ता) के पितर मुक्त होजाते हैं ॥ ४७ ॥ व अविमुक्त के समान साधकों का सिद्धिदाता क्षेत्र भी ब्रह्माण्डमण्डल में कहीं नहीं है यह सत्य है सत्य है ॥ ४८ ॥ जहां पाश और तलवार हाथवाले,उग्ररूप, सौम्य बुद्धिमान् महापार्षद क्रूरोंसे निरन्तर क्षेत्र की रक्षा करते हैं ॥ ४९ ॥ किन्तु दुराचारियों के लिये भयंकर व करोड़ों गणों से सबओर घिरेहुये अट्टहास जी क्षेत्रके पूर्वद्वार की दिनोंरात रक्षा करे हैं ॥ ५० ॥ वैसेही भूतधात्रीशजी क्षेत्रके दक्षिण द्वारके रक्षकहैं व करोडों गणों से सब ओर घिरेहुये गोकर्णजी पश्चिम द्वार की रक्षा करते हैं ॥५१॥ तथा महागण घण्टाकर्णजी उत्तरद्वारकी रक्षाकरे हैं व छागमुख जी ईशानकोणकी व भीषणजी

धारी महेन्द्र व नाम का उच्चारण करतेहुये मनुष्यों का महाकल्याणकर्त्ता ॥ ३३ ॥ व विश्वेश्वरजी का परमधाम (श्रेष्ठ मन्दिर) व स्वर्ग और मोक्षकी सीमा व गङ्गा जीकी चचल लहरों से नित्यही धोयेहुये भूतलवाला ॥ ३४ ॥ और दुःखसमूहों का हर्त्ता है इसप्रकारके महाक्षेत्र में मेरे प्रत्यक्ष जो हालहुआ उसको हे महामते ! मैं तुमसे कहताहूं ॥ ३५ ॥ कि जहां कालका डर नहीं है व जहां पाप का डर नहीं है उसक्षेत्रकी महिमाको भलीभांति कहनेके लिये कौन समर्थ है ॥ ३६ ॥ व इस जगत् में जन्तुओं के पापों के विनाशी जे बड़े तीर्थ हैं वे सब शुद्धि के अर्थ नित्यही काशीको आतेहैं ॥ ३७ ॥ और सर्वभक्षी व सब बेंचनेवाला भी जो मनुष्य काशी में बसे

पुंसां महाश्रेयोविधायिनि ॥ ३३ ॥ विश्वेशितुःपरेधाम्नि सीम्निस्वर्गापवर्गयोः ॥ स्वर्धुनीलोलकल्लोलनित्यक्षालितभूतले ॥ ३४ ॥ एवंविधेमहाक्षेत्रे सर्वदुःखौघहारिणि ॥ प्रत्यक्षंममयद्वृत्तं तद्ब्रवीमिमहामते ॥ ३५ ॥ यत्रकालभयं नास्ति यत्रनास्त्येनसोभयम् ॥ तत्क्षेत्रमहिमानंकः सम्यग्वर्णयितुंक्षमः ॥ ३६ ॥ तीर्थानियानिलोकेस्मिञ्जन्तूनामघहान्यहो ॥ तानिसर्वाणिशुद्ध्यर्थं काशीमायान्तिनित्यशः ॥ ३७ ॥ अपिकाश्यांवसेद्यस्तु सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ सयांगतिंलभेन्मर्त्यो यज्ञैर्दानैर्नसान्यतः ॥ ३८ ॥ रागबीजसमुद्भूतःसंसारविटपोमहान् ॥ दीर्घस्वापकुठारेणच्छिन्नः काश्यांनवर्धते ॥ ३९ ॥ सर्वेषामूषराणान्तु काशीपरमऊषरः ॥ वप्तुर्बीजमिदंतस्मिन्नुप्तंनैवप्ररोहति ॥ ४० ॥ स्मरिष्यन्तीहयेकाशीमवश्यन्तेपिसाधवः ॥ तेप्यघौघविनिर्मुक्ता यास्यन्तिगतिमुत्तमाम् ॥ ४१ ॥ विभूतिःसर्वलोकानां सत्यादीनांसुभंगुरा ॥ अभंगुराविमुक्तस्य सातुलभ्याशिवाज्ञया ॥ ४२ ॥ कृमिकीटपतङ्गानामविमुक्तेतनुत्यजाम् ॥

वह जिस मुक्तिको पावे वह अन्यत्र यज्ञ और दानों से नहीं होतीहै ॥ ३८ ॥ व रागबीज से समुत्पन्न, संसाररूप बड़ाभारी वृक्ष काशी में मरनेरूप कुठार से काटाहुआ फिर नहीं बढ़ताहै ॥ ३९ ॥ और सब ऊषरोंके मध्यमें काशी क्षेत्र उत्तम ऊषरहै क्योंकि उसमें बोनेवाले से बोयाहुआ यह बीज याने कर्म्मकर्त्ताओं का कियाहुआ कर्म फिर नहीं जमता है ॥ ४० ॥ जे कोई इस लोकमें काशी को सुमिरेंगे वेही अवश्य कर साधु होवेंगे व वेही पापसमूहों से विनिर्मुक्त होकर उत्तम गति (मुक्ति) को प्राप्त होवेंगे ॥ ४१ ॥ व सत्यादि सब लोकोंकी विभूति (सम्पत्ति, या ऐश्वर्य्य, या मुक्ति) विनशनेवाली है और काशी की विभूति अभंगुरहै व वह शिवकी आज्ञासे

उसका क्षेत्रसे अन्यत्र मरणहुआ "यद्यपि बाणलिंग और आपही आप उपजेहुये लिंगादिकोंका नैवेद्य खानेसे कोटि गुना पुण्यहै तोभी भेकीने लोभसे खाया इसलिये कुछेक पापहुआ और भक्तिसे खाना उचितही है यह जानना चाहिये" ॥ ६३ ॥ कि श्रेष्ठ विषभी पीने योग्य है परन्तु शिवद्रव्य याने बाणलिंगादि व्यतिरिक्त लिंगों के निर्माल्यको न भोजन करे क्योंकि विष तो अकेले भोक्ताको ही मारता है और शिवधन पुत्र और पौत्रोंको भी मारता है॥ ६४ ॥ व शिवद्रव्य से परिपुष्ट देहवाले लोग साधुओंसे छूने योग्य नहीं हैं तदनन्तर वे उस कर्मफलसे रौरव नरकनिवासी होते हैं ॥ ६५ ॥ और ऐसी वैसी उछलती हुई उसी भेकीको देखकर चोंचसे पकड़ कर कोई काग क्षेत्र से बाहर निकलगया ॥ ६६ ॥ व उस कागने उस भेकीको क्षेत्रके बाहर छोड़दिया उसके बाद कालसे मरीहुई वह भेकी उसही बहुत अच्छे क्षेत्र

रणंजातंतस्यास्तदेनसः ॥ ६३ ॥ वरंविषमपिप्राश्यं शिवस्वन्नैवभक्षयेत् ॥ विषमेकाकिनंहन्ति शिवस्वंपुत्रपौत्रकम्॥ ६४ ॥ शिवस्वपरिपुष्टाङ्गाः स्पर्शनीयानसाधुभिः ॥ तेनकर्मविपाकेनततस्तेरौरवौकसः ॥ ६५ ॥ कश्चित्काकःसभालोक्यमण्डूकींताभितस्ततः॥ पोप्लूयमानामादायचञ्च्वाक्षेत्राद्बहिर्गतः ॥ ६६ ॥ वर्षाभ्वीतेनसात्यक्ता काकेनक्षेत्रबाह्यतः ॥ अथसाकालतोभेकी तत्रैवक्षेत्रसत्तमे ॥ ६७ ॥ प्रदक्षिणीकरणतोलिङ्गस्यस्पर्शनादपि ॥ पुण्यापुण्यवतीजाता कन्यापुष्पवटोर्गृहे ॥ ६८॥ शुभावयवसंस्थाना शुभलक्षणलक्षिता॥ परंगृध्रमुखीजाता निर्माल्याक्षतभक्षणात्॥६९॥ सम्यग्गीतरहस्यज्ञा नितरांमधुरस्वरा ॥ सप्तस्वरास्त्रयोग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः ॥ ७० ॥ तानाएकोनपञ्चाश

में ॥६७॥ लिंगकी प्रदक्षिणाकरने और छूनेसेभी पुण्यवती मनोज्ञरूपवाली होकर पुष्पवटुके घर में कन्या उपजी ॥ ६८ ॥ जोकि शुभ अंगोंकी संस्थितिवाली और शुभलक्षणों से लक्षित थी परन्तु निर्माल्य अक्षत खानेसे गृध्रमुखी हुई ॥ ६९ ॥ व भलीभांति गीतरहस्यको जानेहुई अतिशय मधुरस्वरवाली थी व सात स्वर (षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद) व तीनग्राम (षड्जग्राम,मध्यमग्राम, गान्धारग्राम) और इक्कीसमूर्च्छनायें (षड्जग्राममें उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धषड्जा, मत्सरिता, अश्वक्रान्ता, अभिरुद्गता व मध्यमग्राम में सौवीरी, हारिणा, अश्वा, कालोपतता, शुद्धमध्यमा, गीः, पौरवी और गान्धार ग्राममें नन्दा, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा, आलापा) ॥ ७० ॥ व अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, वाजपेय, षोडशी, पुण्डरीक, अश्वमेध और राजसूयादि

अग्निदिशाके दलकी ॥ ५२ ॥ व शंकुकर्णजी नैर्ऋत्यदिशाकी और द्रुमिचण्ड जी वायुदिशा की रक्षा करते हैं इसभांति अत्यन्त प्रकाशवान् ये गण सदैव क्षेत्र की रक्षा करते हैं ॥ ५३ ॥ व कालनेत्र, रणभद्र, कौलेय और कालकम्पन ये गंगापार में टिकेहुये गण पूर्वसे रक्षा करते हैं ॥ ५४ ॥ वैसेही वीरभद्र, नभ, कर्दमालिप्तवि-ग्रह स्थूलकर्ण और महाबाहु ये असिनदी के पार में विशेषता से अवस्थित हैं ॥ ५५ ॥ व देहलीदेशमें टिकेहुये विशालाक्ष, महाभीम, कुण्डोदर और महोदर ये पश्चिमद्वारकी रक्षाकरते हैं ॥ ५६ ॥ व नन्दिसेन, पञ्चाल, करण्टक, आनन्दगोपक और बभ्रु ये वरणानदी के तट में रक्षा करते हैं ॥ ५७ ॥ उस महापुण्य क्षेत्र में

क्षेत्रंसदापान्ति गणाएतेऽतिभास्वराः ॥ ५३ ॥ कालाक्षोरणभद्रस्तु कौलेयःकालकम्पनः ॥ एतेपूर्वेणरक्षन्तिगङ्गापारे स्थितागणाः ॥ ५४ ॥ वीरभद्रोनभश्चैव कर्दमालिप्तविग्रहः ॥ स्थूलकर्णोमहाबाहुरसिपारेऽव्यवस्थिताः ॥ ५५ ॥ विशालाक्षोमहाभीमः कुण्डोदरमहोदरौ ॥ रक्षन्तिपश्चिमद्वारंदेहलीदेशसंस्थिताः ॥ ५६ ॥ नन्दिसेनश्चपञ्चालःखरपादः करण्टकः ॥ आनन्दोगोपकोबभ्रूरक्षन्तिवरणातटे ॥ ५७ ॥ तस्मिन्क्षेत्रेमहापुण्ये लिङ्गमोङ्कारसंज्ञकम् ॥ तत्रसिद्धिपरां प्राप्ता देहेनानेनसाधकाः ॥ ५८ ॥ कपिलश्चैवसावर्णिःश्रीकण्ठःपिङ्गलोंऽशुमान् ॥ एतेपाशुपताःसिद्धास्तल्लिङ्गाराधनेन हि ॥ ५९ ॥ एकदातस्यलिङ्गस्य कृत्वापञ्चापिपूजनम् ॥ नृत्यन्तःसहुडुत्कारं तस्मिँल्लिङ्गेलयंययुः ॥ ६० ॥ अन्यच्चते प्रवक्ष्यामि तत्रयद्वृत्तमद्भुतम् ॥ निशामयमहाबुद्धे दमनद्विजसत्तम ॥ ६१ ॥ एकाभेकीमुनेतत्र चरन्तीलिङ्गसन्निधौ ॥ प्रदक्षिणंसदाकुर्यान्निर्माल्याक्षतभक्षिणी ॥ ६२ ॥ सातत्रमृत्युंनप्राप शिवनिर्माल्यभक्षणात् ॥ क्षेत्रादन्यत्रम

ॐङ्कार नामक लिंगहै वहां साधक लोग इसही देह से श्रेष्ठ सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ ५८ ॥ व कपिल, सावर्णि, श्रीकण्ठ, पिङ्गल और अंशुमान् भी ये पाशुपत (शिवभक्त) उस लिंगकी पूजासेही सिद्ध हुये हैं ॥ ५९ ॥ एकसमय उस लिंगका पूजन कर हुडुत्कार समेत नाचते हुये पांचोजनभी उस लिंग में लयको प्राप्त होगये ॥ ६० ॥ हे महाबुद्धे, द्विजसत्तम, दमन ! वहां अन्यभी जो अद्भुत हालहुआहै उसकोमैं तुमसे कहताहूं और तुम सुनो ॥ ६१ ॥ हे मुने ! वहां लिंगके समीपमें विचरती हुई, निर्माल्य अक्षतों के खानेवाली एक दादुरी (मिंझकुरि) सदा प्रदक्षिणाकरे ॥ ६२ ॥ व शिवनिर्माल्य खाने से वह वहां मृत्युको न प्राप्तहुई किन्तु उस पाप से

उंचास तान व ध्रुव, साम्य और सन्निपातादि एकसौ एक ताल व छह राग (श्री, वसन्त, पंचम, भैरव, मेघ, जट्टलरायण) और उनकी पांच पाच स्त्रियां (रागिनियां) ॥ ७१ ॥ इस भांति छत्तिस रागरागिनियां रागियों (कामियों) को आनन्द प्राप्तकरनेवाली हैं तथा देश और कालके विशेषभेदसे अन्यभी पैंसठ रागिनियां हैं ॥ ७२ ॥ अथवा जितनेही तालहोवें उतने ही याने एकसौ एक राग व रागिनियां हैं इस भांति गान्धर्व वेद या संगीतरहस्य से प्रतिदिन शुभव्रतवाली वह ॥ ७३ ॥ मधुरालापा माधवीनाम्नी कन्या सदैव ॐङ्कारनाथकी भलीभांति पूजाकरे और वह पुष्पवटु की पुत्री अतिउत्तम तरुणाई को प्राप्तहोकर भी ॥ ७४ ॥ पहले जन्मकी

तालाएकोत्तरंशतम् ॥ रागाःषडेवतेषांतुपञ्चपञ्चापिचाङ्गनाः ॥ ७१ ॥ षट्त्रिंशद्रागरागिण्य इतिरागिमुदावहाः ॥ देशकालविभेदेन पञ्चषष्टिस्तथापराः ॥ ७२ ॥ यावन्तएवतालाःस्यू रागास्तावन्तएवहि ॥ इति गीतोपनिषदा प्रत्यहं साशुभव्रता ॥ ७३ ॥ माधवीमधुरालापा सदोङ्कारंसमर्चयेत् ॥ प्राप्याप्यनर्घ्यतारुण्यं सातुपुष्पवटोःसुता ॥ ७४ ॥ प्राग्जन्मवासनायोगादोङ्कारंबहुमंस्तवै ॥ स्वभावचञ्चलंचेतस्तस्यास्तल्लिङ्गसेवनात् ॥ ७५ ॥ दमनस्थैर्यमगमद्योगे नेवमहात्मनः ॥ नदिवाबाधयाञ्चक्रे क्षुत्तृण्निद्राक्षपासुताम् ॥ ७६ ॥ अतन्द्रितमनाआसीत्सातल्लिङ्गनिरीक्षणे ॥ अक्षणोर्निमेषायावन्तस्तस्याआसन्दिवानिशम् ॥ ७७ ॥ तावत्कालस्तयासाध्व्या महान्विघ्नोऽनुमीयते ॥ निमेषान्तरितःकालो योयोऽयथोंगतोमम ॥ लिङ्गानवेक्षणात्तत्रप्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ ७८ ॥ इतिसंचिन्तयन्त्येव सेवांतस्या

वासनाके योगसे ॐङ्कार कोही बहुत मानती थी व स्वभावसे ही चञ्चल उसका चित्त उस लिंगकी सेवासे ॥ ७५ ॥ स्थिरताको प्राप्तहुवा कि जैसे महात्माजन का मन योगसे अचल होता है हे दमन ! भूंख, प्यास और निद्राने उस कन्याको दिन व रातों में भी न पीडित किया ॥ ७६ ॥ वह उस लिंगके देखने में आलस्यरहित चित्तवालीहुई किन्तु रातोदिन उसके जितने निमेष (पलकभांजना) हुये ॥७७॥ उतना काल उस साध्वीसे बड़ा विघ्न अनुमानकिया जाताहै (था) कि निमेषोसे अन्तरित जो जो मेरा समय लिंगके न देखने से बीतगया उसमें प्रायश्चित्त कैसे होवे ॥ ७८ ॥ इसप्रकार भलीभांति चिन्तना करती हुई वह ॐङ्कारकी सेवाको न

त्यागतीथी और जलकी चाहनावाली वह लिंगके नामरूप अमृतको पीवे ॥७९॥ व कानोंतक गये याने बड़े विशालभी उसके नेत्र सन्तोंके हृदय आकाशमें टिकेहुये ॐकारलिङ्गको छोड़कर अन्यके दर्शनके चाही न थे ॥ ८० ॥ व उसके कान अन्य शब्द के ग्रहण में तत्पर न थे व उस लिंगके लिये माला बनानेवाले हाथ अत्यन्त निपुणहुये ॥ ८१ ॥ व मोक्षलक्ष्मीसे अधिष्ठित, ॐकार की आगनभूमिको छोड कर उसके पावँभी सुखकी वाञ्छासे अन्यत्र नहीं विचरते है ॥ ८२ ॥ व ॐकारेश्वर नाम जो कि सेवकों को ऊपर पठानेवाला, सार (प्रलयमें भी स्थिर) सबसे अधिक, परमात्माका प्रकाशक, शब्दब्रह्मवेदत्रयीरूप, नाद और बिन्दुकलाओंका आश्रय ॥८३॥

जनोंकृतेः ॥ जलाभिलाषिणीसातु लिङ्गनामामृतंपिबेत् ॥ ७९ ॥ नान्यद्दिदृक्षिणीतस्या अक्षिणीश्रुतिगेअपि ॥ विहायलिङ्गमोङ्कारं हृद्विहायःस्थितंसताम् ॥ ८० ॥ तस्याःशब्दग्रहौनान्यशब्दग्रहणतत्परौ ॥ अतीवनिपुणौजातौ तत्सन्माल्यकरौकरौ ॥ ८१ ॥ नान्यत्रचरणौतस्याश्चरतःसुखवाञ्छया ॥ त्यक्त्वोङ्काराजिरक्षोणीं क्षुण्णांनिर्वाणपद्मया ॥ ८२ ॥ ओङ्कारंप्रणवंसारं परंब्रह्मप्रकाशकम् ॥ शब्दब्रह्मत्रयीरूपं नादबिन्दुकलालयम् ॥ ८३ ॥ सदक्षरंचादिरूपं विश्वरूपंपरावरम् ॥ वरंवरेण्यंवरदं शाश्वतंशान्तमीश्वरम् ॥ ८४ ॥ सर्वलोकैकजनकं सर्वलोकैकरक्षकम् ॥ सर्वलोकैकसंहर्तृ सर्वलोकैकवन्दितम् ॥ ८५ ॥ आद्यन्तरहितंनित्यं शिवंशङ्करमव्ययम् ॥ एकंगुणत्रयातीतं भक्तस्वान्तकृतास्पदम् ॥ ८६ ॥ निरुपाधिन्निराकारं निर्विकारंनिरञ्जनम् ॥ निर्मलंनिरहङ्कारं निष्प्रपञ्चंनिजोदयम् ॥ ८७ ॥ स्वात्मारामममनन्तंच सर्वगंसर्वदर्शिनम् ॥ सर्वदंसर्वभोक्तारंसर्वंसर्वसुखास्पदम् ॥ ८८ ॥ वागिन्द्रियंतदीयंच प्रोचरत्तदह

सत्य, अक्षर (कूटस्थ), आदिरूप, सर्वप्रपंचरूप, कार्य्यकारणात्मक, सर्वश्रेष्ठ, अंगीकार के योग्य, वरदायक, शाश्वत, शान्त, ईश्वर (सबका नियन्ता) ॥ ८४ ॥ व सबलोकों का मुख्य जनक, सब लोकोंका मुख्य रक्षक, सबलोकोंका मुख्य प्रलयकर्त्ता, सब लोकों से एक वन्दित ॥ ८५ ॥ व आद्यन्तरहित, नित्य, कल्याणरूप, सुखकारक, अविनाशी, एक, तीनों गुणोंसे पर, भक्तों के अन्तःकरण में स्थानकर्त्ता ॥ ८६ ॥ व कार्य्य उपाधि से रहित, निराकार निर्विकार, कारणोपाधिसे हीन, निर्मल (रागादिशून्य), निरहङ्कार, प्रपंचसे विहीन, सहज उदयवाला ॥ ८७ ॥ व स्वात्माराम, अनन्त, सर्वगत, सर्वदर्शी, सब कुछ देनेवाला, सबका भोक्ता, सर्व

(श्रीरुद्ररूप) और सब सुखोंका मन्दिरहै ॥ ८८ ॥ उसको दिनोरात बहुतही जपती हुई उसकी वाक्इन्द्रिय अन्य किसीके नामान्तर को कभी कहीं नहीं ग्रहणकरती है ॥ ८९ ॥ व दिनोरात इस नामके अक्षरोंके रसको स्वादलेती हुई उसकी रसना (जिह्वा) अन्य रसान्तरको नहीं जानती है ॥ ९० ॥ और वह माधवी वहां शिवालयके सबओर सम्मार्जन व चित्रसमूह तथा पूजाके पात्रोंका सदा शोधनकरे याने करतीथी ॥ ९१ ॥ व ॐङ्कारेश्वरकी पूजामें रत जे प्रसिद्ध पाशुपत वहां हैं उनको भारी भक्तिपूर्वक पिता की बुद्धि से नित्यही सेवे ॥ ९२ ॥ और एकसमय वैशाख सुदी चतुर्दशीके दिन उपास से युक्त वह माधवी रात्रिमें जागरण कर ॥ ९३ ॥ व

रसनानैव जानाति तस्याअन्यद्रसान्तरम् ॥ ९० ॥ सम्मार्जनंरङ्गमालाः प्रासादंपरितःसदा ॥ विदध्यान्माधवीतत्र तथार्चापात्रशोधनम् ॥ ९१ ॥ तत्रपाशुपतायेवै प्रणवेशार्चनेरताः ॥ तांश्चशुश्रूषयेन्नित्यंपितृबुद्ध्यातिभक्तितः ॥९२॥ वैशाखस्य चतुर्दश्यामेकदासातुमाधवी ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दिवोपवसनान्विता ॥९३॥ यात्रामिलितभक्तेषु प्रातर्यातेषुसर्वतः॥ सम्मार्जनादिकंकृत्वा लिङ्गमभ्यर्च्यहर्षतः ॥ ९४ ॥ गायन्तीमधुरंगीतं नृत्यन्तीनिजलीलया॥ध्यायन्तीलिङ्गमोङ्कारं तत्रलिङ्गेलयंययौ ॥ ९५ ॥ अनेनैवशरीरेण पार्थिवेनमहामतिः ॥ अस्मदाचार्य्यमुख्यानां पश्यतांचतपस्विनाम्॥ ९६ ॥ प्रादुर्बभूवयल्लिङ्गाज्ज्योतिर्जटिलिताम्बरम् ॥ तत्रज्योतिषिसाबाला ज्योतिर्मय्यपिसाप्यभूत् ॥ ९७ ॥ राधशुक्लचतुर्दश्यामद्यापिक्षेत्रवासिनः ॥ तत्रयात्रांप्रकुर्वन्तिमहोत्सवपुरःसराः ॥ ९८ ॥ तत्रजागरणंकृत्वा चतुर्दश्यामु

निशम् ॥ नामान्तरंनगृह्णाति क्वचिदन्यस्यकस्यचित ॥ ८९ ॥ एतन्नामाक्षररसं रसयन्तीदिवानिशम् ॥

सम्मिलित भक्तोंके सबओर जातेही प्रातःकाल मन्दिरके सम्मार्जनादिकको कर व आनन्दसी लिङ्गका सम्पूजन कर ॥ ९४ ॥ अपनी लीला से मधुरगीत को गाती व नाचती और ॐकार लिङ्ग को ध्यावती हुई उस लिंग में लयको प्राप्तहोगई ॥ ९५ ॥ जो कि पृथ्वी के विकार से बने हुये इसही शरीर से बड़ी बुद्धिवाली थी और हमारे गुरु आदिक तपस्वियों को देखतेही ॥ ९६ ॥ आकाशमें व्यापनेवाली जो ज्योतिर्लिंग से प्रकट हुई उस ज्योति में वह कन्या भी ज्योतिमयी होगई ॥ ९७ ॥ आजभी महोत्सवपूर्वक क्षेत्रवासी लोग वैशाखसुदी चतुर्दशी में वहां यात्राको करतेहैं ॥ ९८ ॥ व चतुर्दशीमें उपासे हुये जन वहां जागरण को कर देवयात्रार्थ

जहां कहीं भी मृतक होकर निश्चय से उत्तम ज्ञानको प्राप्तहोते हैं ॥ ९९ ॥ व ब्रह्माण्डमण्डल के उदर के मध्यमें सबओर जे तीर्थहैं वे वैशाखसुदी चतुर्दशी में ॐकारेश्वर के दर्शन के लिये आते हैं ॥ १०० ॥ और लिंगके आगे अतिशय उत्तम श्रीमुखीनाम्नी गुहाहै वह पाताल का द्वारहै व उसमें सिद्धलोगही बसतेहैं ॥ १॥ जोकि अच्छे व्रतवाले लोग उस गुहामें पांच रात्रितक टिकें वे नागकन्याओं को देखते हैं और वे कन्यायें शुभ व अशुभ फलको कहै हैं ॥ २ ॥ वहां उस कन्दरा से उत्तरभाग में रसोदक नामक कूप है छह मासतक उसका पानी पीकर ब्रह्मरसायनको पानकरे ॥ ३ ॥ और वहां नादेश्वर लिंगको देखकर सब नादोका उत्पत्ति

पोषिताः ॥ प्राप्नुवन्तिपरंज्ञानं यत्रकुत्रापिवैमृताः ॥ ९९ ॥ ब्रह्माण्डोदरमध्येतु यानितीर्थानिसर्वतः ॥ तानिवैशाखभू तायामायान्त्योंकृतिदर्शने ॥ १०० ॥ लिङ्गाग्रेश्रीमुखीनाम्नी गुहास्तिपरमोत्तमा ॥ पातालस्यचतद्द्वारं तत्रसिद्धाव सन्तिहि ॥ १ ॥ तिष्ठेयुःपञ्चरात्रंये गुहायांतत्रसुव्रताः ॥ तेनागकन्याःपश्यन्ति ब्रूयुस्ताश्चशुभाशुभम् ॥ २ ॥ कन्दरोत्त रदिग्भागे तत्रकूपोरसोदकः ॥ आषण्मासंचतत्पीत्वापिबेद्ब्रह्मरसायनम् ॥ ३ ॥ तत्रनादेश्वरंलिङ्गं दृष्ट्वानादनिदान भूः ॥ सर्वनादात्मकंविश्वं तच्छ्रवोगोचरीभवेत् ॥ ४ ॥ तत्रमत्स्योदरींस्नात्वा स्वर्धुनींवरुणाप्लुताम् ॥ कृतकृत्योभवे ज्जन्तुर्नैवशोचतिकुत्रचित ॥ ५ ॥ असंख्याताागताःसिद्धिमोङ्कारेश्वरसेवकाः ॥ पार्थिवेनैवदेहेन दिव्यभूतेनतत्क्षणा त् ॥ ६ ॥ अविमुक्तंपरंक्षेत्रं ब्रह्माण्डादपिसर्वतः ॥ ततोपिपरओङ्कार उक्तोमत्स्योदरीतटे ॥ ७ ॥ प्रणवेशोऽङ्गयैःका श्यां ननतोनापिचार्चितः ॥ किमर्थन्तेसमुत्पन्ना मातृतारुण्यहारिणः ॥ ८ ॥ यदाप्रभृतिविश्वेशो मन्दरादागतोऽभव

स्थान सर्वनादात्मक और विश्वमय वह लिंग उसके श्रवणगोचर होवे है ॥ ४ ॥ व वहां वरणा से भीगीहुई मत्स्योदरी गंगाको स्नानकर जन्तु कृतार्थ होजावे है और कहीं भी नहीं शोचता है ॥ ५ ॥ व असंख्य ॐकारेश्वर के सेवक उसीक्षण दिव्यहुई, पृथिव्यादि तत्त्वमयी देहसेही सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ ६ ॥ क्योंकि अवि-मुक्तक्षेत्र सब ब्रह्माण्डसे भी परे है और मत्योदरी के किनारे ॐकारेश्वर लिंग उस अविमुक्तसे भी श्रेष्ठ कहागयाहै ॥ ७ ॥ हे प्यारे मित्र ! जिन्होंने काशीमे ॐकारेश्वर के नमस्कार न किया व जिन से वह पूजित भी न हुये वे माताकी तरुणता (युवापन) के हरनेहारे लोग किस लिये भलीभांति उपजे हैं ॥ ८ ॥ हे सत्तम ! जब से

लगाकर श्रीविश्वनाथजी मन्दराचल से उस आनन्दवन (काशी) में आये हैं तब से लगाकर समुद्रों समेत, पर्वतों सहित, नदियों संयुत, तीर्थों से समन्वित और द्वीपों के साथ बर्तते हुये सब देवस्थानभी उसी समय शीघ्रही प्राप्तहुये हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! इससमय मैं मेरे भागसे तुम करके सुध करायागयाहूं इस लिये मैं भी आऊंगा और हम सबलोग धीरे धीरे काशी को जाते हैं ॥ ११ ॥ जिसलिये महापाशुपतव्रतवाले व मुक्तिको चाहते हुये जे येभी सब मेरे शिष्यहैं वेभी काशी के जाने की इच्छावाले हैं ॥ १२ ॥ और बुढ़ाई को भी प्राप्तहोकर जिन्होंसे काशी नहीं सेई गई है उनके दुर्लभ मानुष शरीरके नष्ट होतेही महासुख कहांसे

त् ॥ तस्मिन्नानन्दगहने तदाप्रभृतिसत्तम ॥ ९ ॥ सर्वाण्यायतनान्याशु साब्धीनिसगिरीण्यपि ॥ सनदीनिसतीर्थानि सद्वीपानियुस्ततः ॥ १० ॥ इदानींममभाग्येन स्मारितोहंत्वयामुने ॥ अहमप्यागमिष्यामि यामःकाशींशनैःशनैः॥ ११ ॥ एतेपिममशिष्याये महापाशुपतव्रताः ॥ काशींयियासवस्तेपि यतःसर्वेमुमुक्षवः ॥ १२ ॥ अपिवार्धकमासाद्य यैःकाशीनैवशीलिता ॥ मानुषेदुर्लभेनष्टेकुतस्तेषांमहासुखम् ॥ १३ ॥ यावन्नेन्द्रियवैकल्यं यावन्नैवायुषःक्षयः ॥ तावत्सेव्यंप्रयत्नेनशम्भोरानन्दकाननम् ॥ १४ ॥ यत्रानन्दवनंशम्भोः शिश्रियुःश्रीनिकेतनम् ॥ अचलाश्रीर्न मुञ्चेत्तान्महासौख्यैकशेवधीन् ॥ १५ ॥ इत्याख्यायकथांरम्यां गर्गःपाशुपतोत्तमः ॥ भारद्वाजेनसहितः प्रापवाराणसींपुरीम् ॥ १६ ॥ दमनोपिहिधर्मात्मा गर्गाचार्येणसंयुतः ॥ आराध्यश्रीमदोङ्कारं तस्मिँल्लिङ्गेलयङ्गतः ॥ १७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इल्वलारेपरंस्थानमोङ्कारमविमुक्तके ॥ तत्रसिद्धिंपराञ्जग्मुः साधकाबहुशोमुने ॥ १८ ॥

होगा ॥ १३ ॥ इससे जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीं है व जबतक आयुका क्षय नहीं है तबतक शंकर का आनन्दवन बड़े यत्नसे सेवने योग्य है ॥ १४ ॥ और जो कि शम्भुका आनन्दवन सम्पत्ति का स्थान है उसको जिन्होंने सेवन किया उन महासौख्य के मुख्य निधानों को अचललक्ष्मी नहीं छोड़ै है ॥ १५ ॥ इस प्रकार रम्य कथाको सबओर से कहकर पशुपति (शिव) के भक्तों में उत्तम गर्ग जी भारद्वाजके पुत्रसे संयुत होकर काशीपुरी को प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ और गर्गाचार्य्य से समेत, धर्मात्मा दमनभी श्रीयुत ॐकारेश्वर की पूजाकर उसही लिंगमें लयको प्राप्तहोगया ॥ १७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे इल्वल असुर्के वैरिन्,

अगस्त्यमुने ! काशी में ॐकार अत्यंत उत्तम स्थानहै उसमें बहुतसे साधकलोग श्रेष्ठ सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १८ ॥ कलियुगमें पापचित्तवाले और विशेष से नास्तिकों के आगे ॐकारेश्वरका माहात्म्य इस प्रकार से नहीं कहनाचाहिये ॥ १९ ॥ जे अज्ञानी महादेवजीको निंदते हैं व जे क्षेत्रको निंदते हैं और जे पुराणकी निंदा करते हैं वे कहीं संभाषणके योग्य नहीं हैं याने उनसे बतलाना न चाहिये ॥२० ॥ ॐकारेश्वर के समान लिंग भूतलमें कहीं नहीं है इसभांति निश्चय कियेहुयेको महादेवजी ने श्रीपार्वतीजी के लिये संकथन कियाहै ॥ २१ ॥ उसमें मन लायेहुवा मनुष्य इस अध्यायको सुनकर सब पापों से विमुक्तहोकर शिवलोकको पावे या जावे

कलौकलुषचित्तानांपुरोनाख्येयमेवहि ॥ प्रणवेश्वरमाहात्म्यंनास्तिकानांविशेषतः ॥ १९ ॥ येनिन्दन्तिमहादेवंक्षेत्रं निन्दन्तियेऽधियः ॥ पुराणंयेचनिन्दन्तितेसम्भाष्यानुकुत्रचित् ॥ २० ॥ ॐङ्कारसदृशंलिङ्गंनक्वचिज्जगतीतले ॥ इति गौर्यैसमाख्यातंदेवदेवेननिश्चितम् ॥ २१ ॥ इममध्यायमाकर्ण्यनरस्तद्गतमानसः ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यःशिवलोकमवाप्नुयात् ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेॐङ्कारमाहात्म्यंनामचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ श्रुत्वोङ्कारकथामेतांमहापातकनाशिनीम् ॥ नतृप्तोस्मिविशाखाथब्रूहित्रैविष्टपींकथाम् ॥ १ ॥ कथञ्चकथितादेव्यैदेवदेवेनषण्मुख ॥ आविर्भूतिर्महाबुद्धेपुण्यात्रैलोचनीपरा ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयमुनेवच्मिकथांश्रमनिवारिणीम् ॥ यथादेवेनकथितांत्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥ ३ ॥ विरजाख्यंहितत्पीठंतत्रलिङ्गंत्रिविष्टपम् ॥

है ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेॐङ्कारमाहात्म्यंनामचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पचहत्तर अध्याय में कथित सहित चितचाव ॥ श्री त्रैलोचन लिङ्गको मंगल आविर्भाव ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे श्रीकार्त्तिकेयजी ! महापापनाशिनी इस ॐकारेश्वर की कथाको सुनकर मैं तृप्त नहींहूं अनन्तर आप त्रिलोचन तीर्थकी कथाको कहो ॥ १ ॥ और हे महाबुद्धे, षण्मुख ! श्रीमहादेवजी करके श्रीदेवीजी के लिये मनोज्ञ व उत्तम त्रिलोचनतीर्थ का प्रकट होना कैसे कहागया है ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! मैं महादेवजी से कही व त्रिलोचन से समुत्पन्न हुई श्रमहारिणी कथाको यथावत् कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि जिससे वह पीठ विरजनामक है और उसमें त्रिविष्टप (त्रिलोचन) लिंगहै इससे उस पीठके दर्शनसेही मनुष्य

विमल होजाताहै ॥ ४ ॥ व हे कुम्भसम्भव अगस्त्यजी ! वहां तीन नदियां संगत (संमिलित) हुईहैं किन्तु त्रिलोचन से दक्षिण मेंही पापहारिणी तीन नदियांहैं ॥ ५ ॥ साक्षात् लिंगस्नान कराने के कारण स्रोतोमूर्त्तिधारिणी सरस्वती अनन्तर यमुना और अत्यन्तसुखदायिनी नर्मदा ॥ ६ ॥ वे कलश हाथवाली तीनोंभी नदियां तीनों संध्याओं में पूजनीय परमतेजस्वी लिंगको नहवाती हैं ॥ ७ ॥ और उन्होंने अपने नामसे सब ओर लिंगोंकी स्थापना भी कियाहै उनके भलीभांति दर्शन करने से मनुष्योंको उन नदियों के स्नानका फल होवे है ॥ ८ ॥ त्रिलोचनसे दक्षिण ओर देखा और छुवा हुवा सरस्वतीश्वर लिंग सारस्वत लोकको देवेहै ॥ ९ ॥ व पापीभी मनुष्यों करके

तत्पीठदर्शनादेवविरजाजायतेनरः ॥ ४ ॥ तिस्रस्तुसङ्गतास्तत्रस्रोतस्विन्योघटोद्भव ॥ तिस्रःकल्मषहारिण्योदक्षिणेहित्रिलोचनात् ॥ ५ ॥ स्रोतोमूर्तिधराःसाक्षाल्लिङ्गस्नपनहेतवे ॥ सरस्वत्यथकालिन्दीनर्मदाचातिशर्मदा ॥ ६ ॥ तिस्रोपिहित्रिसन्ध्यन्ताःसरितःकुम्भपाणयः ॥ स्नपयन्तिमहाधामलिङ्गंत्रैविष्टपम्महत् ॥ ७ ॥ लिङ्गानिपरितस्ताभिःस्वनाम्नास्थापितान्यपि ॥ तेषांसन्दर्शनात्पुंसांतासांस्नानफलंभवेत् ॥ ८ ॥ सरस्वतीश्वरंलिङ्गंदक्षिणेनत्रिविष्टपात् ॥ सारस्वतंपदंदद्याद्दृष्टंस्पृष्टञ्चजाड्यहृत् ॥ ९ ॥ यमुनेशम्प्रतीच्याञ्चनरैर्भक्त्यासमर्चितम् ॥ अपिकिल्बिषवद्भिश्चयमलोकनिवारणम् ॥ १० ॥ दृष्टंत्रिलोचनात्प्राच्यांनर्मदेशंसुशर्मदम् ॥ तल्लिङ्गार्चनतोनृणाङ्गर्भवासोनिषिध्यते ॥ ११ ॥ स्नात्वापिलिपिलातीर्थेत्रिविष्टपसमीपतः ॥ दृष्ट्वात्रिलोचनंलिङ्गंकिंभूयःपरिशोचति ॥ १२ ॥ त्रिविष्टपस्यलिङ्गस्यस्मरणादपिमानवः ॥ त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्रकार्याविचारणा ॥ १३ ॥ त्रिविष्टपस्यद्रष्टारःस्रष्टारःस्युर्नसंशयः ॥ कृतकृत्या

भक्तिसे भलीभांति पूजाहुवा यमलोक के निवारण करनेवाला यमुनेश्वरलिंग पश्चिम में है ॥ १० ॥ और अच्छासुखदाता नर्मदेश्वर लिंग त्रिलोचन से पूर्वमें देखागयाहै उस लिंगकी पूजा से मनुष्योंका गर्भवास रोंकाजाता है ॥ ११ ॥ व त्रिविष्टप के समीप पिलिपिलातीर्थ में स्नानकर और त्रिलोचन लिंग को देखकर फिर क्यों सब ओरसे शोच करताहै ॥ १२ ॥ क्योंकि मनुष्य त्रिलोचन लिंग के स्मरणसेही त्रिलोक या स्वर्गका स्वामी होवे इसमें विचारणा न करना चाहिये ॥ १३ ॥ व त्रिविष्टप

(त्रिलोचन) लिंगके देखनेवाले लोग ब्रह्मा याने सृष्टि करने को समर्थ होवेहैं इसमें संशय नहीं है व वेही इस लोकमें कृतार्थ हैं और वेही बड़ेबुद्धिमान् हैं ॥ १४ ॥ जिन शुद्ध बुद्धिवालोंने काशीमें त्रिलोचन लिंगके प्रणाम किया व जिन्होंने त्रिलोचनका नामभी सुना ॥१५॥ वे सातजन्मोंमें बटोरे हुये पापोंसे पवित्र होतेहैं इसमें सन्देह नहींहै और पृथिवी में जो लिंगहैं उनके देखेहुये होतेही जो फलहै ॥ १६ ॥ वह काशी मे त्रिलोचन के देखतेही होवेहै व मैं तो उससे अधिकभी मानताहूं क्योंकि काशी में त्रिलोचन लिंग के देखेहुयेही सब त्रिलोक देखाहुवा होताहै ॥ १७ ॥ और क्षणमे विगतपापवाला वह द्रष्टा फिर गर्भसेवी नहीं होवे है व उसने सब तीर्थों में स्नान

स्तएवात्रतएवात्रमहाधियः ॥१४॥ आनन्दकाननेलिङ्गंप्रणतंयैस्त्रिविष्टपम् ॥ त्रिलोचनस्यनामापियैः श्रुतंशुद्धबुद्धिभिः ॥ १५ ॥ सप्तजन्मार्जितात्पापात्तेपूतानात्रसंशयः ॥ पृथिव्यांयानिलिङ्गानितेषुदृष्टेषुयत्फलम् ॥ १६ ॥ तत्स्यात्त्रिविष्टपेदृष्टेकाश्यांमन्येततोधिकम् ॥ काश्यांत्रिविष्टपेदृष्टेदृष्टंसर्वंत्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ क्षणान्निर्धूतपापोसौनपुनर्गर्भभाग्भवेत् ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वावभृथवान्सच ॥ १८ ॥ योवैपिलिपिलातीर्थेस्नात्वोत्तरवहाम्भसि ॥ सरित्त्रयंमहापुण्यंयत्रसाक्षाद्वसेत्सदा ॥१९॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वागयायांकिंकरिष्यति ॥ स्नात्वापिलिपिलातीर्थेकृत्वावैपिण्डपातनम् ॥२०॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिङ्गंकोटितीर्थफलंलभेत् ॥ यदन्यत्रार्जितंपापंतत्काशीदर्शनाद्व्रजेत् ॥ २१ ॥ काश्यांतुयत्कृतंपापंतत्पैशाचपदप्रदम् ॥ प्रमादात्पातकंकृत्वाशम्भोरानन्दकानने ॥२२॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिङ्गंतत्पापमपिहास्यति ॥ सर्वस्मिन्नपिभू

किया और वह सब यज्ञांत स्नानवाला है ॥ १८ ॥ और जिस उत्तरवाही जलवाले पिलिपिलातीर्थ में महामनोज्ञ या परमपुण्यदात्री तीनों नदियां साक्षात् सदैव बसे हैं उसमे जोई स्नानकर ॥ १९ ॥ व वहां श्राद्धादिकको कर बर्तता है वह गया में क्या करेगा प्रसिद्ध है कि पिलिपिलातीर्थ में स्नानकर और पिंडोंका पातनकर ॥ २० ॥ व त्रिलोचन लिंगको देखकर करोड़ो तीर्थोंके फलको पावे है और जो पाप अन्यत्र कमाया गया है वह काशीके दर्शन से चलाजावे है ॥ २१ ॥ और काशीमें कियाहुवा जो पापहै वह पिशाच के पदका दायक है किन्तु शिवकी काशीमें प्रमाद से पाप को कर ॥ २२ ॥ और त्रिलोचन लिंग के दर्शन कर उस पाप कोभी त्याग

देवेगा क्योंकि सबही पृथिवीपृष्ठमें आनन्दवन श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ उसमें भी सब तीर्थ व उनसे भी ॐकारेश्वर की भूमि श्रेष्ठ है व मुक्तिमार्गप्रकाशक ॐकार नामक अच्छे लिंग सेभी ॥ २४ ॥ कल्याणरूप त्रिलोचन लिंग अत्यन्त बहुत श्रेष्ठहै ॥ २५ ॥ जैसे तेजस्वियों में सूर्य्य और जैसे देखने योग्य नक्षत्रादिकों में चन्द्रमा है वैसेही सब लिंगों में त्रिलोचन लिंग उत्तम है ॥ २६ ॥ और परमानन्द की मुख्य निधि कैवल्यमुक्तिलक्ष्मीका जो मार्ग है वह त्रिलोचनके पूजकोंके दूर रहनेवाला नहीं है ॥ २७ ॥ एक बारभी त्रिलोचन की पूजासे जो कल्याण भलीभांति बटोरा जाताहै वह जन्म पर्यन्त अन्य लिंगोंको पूजकर नहीं मिलताहै ॥ २८ ॥ व जे बड़ी बुद्धि

पृष्ठेश्रेष्ठमानन्दकाननम् ॥ २३ ॥ तत्रापिसर्वतीर्थानिततोप्योङ्कारभूमिका ॥ ॐङ्कारादपिसल्लिङ्गान्मोक्षवर्त्मप्रकाशकात ॥ २४ ॥ अतिश्रेष्ठतरंलिङ्गंश्रेयोरूपंत्रिलोचनम् ॥ २५ ॥ तेजस्विषुयथाभानुर्दृश्येषुचयथाशशी ॥ तथालिङ्गेषुसर्वेषु परंलिङ्गंत्रिलोचनम् ॥ २६ ॥ त्रिलोचनार्चकानांसापदवीनदवीयसी ॥ परंनिर्वाणपद्मायामहासौख्यैकशेवधेः ॥ २७ ॥ सकृत्त्रिलोचनार्चातोयच्छ्रेयःसमुपार्ज्यते ॥ नतदाजन्मसम्पूज्यलिङ्गान्यन्यानिलभ्यते ॥ २८ ॥ काश्यांत्रिलोचनंलिङ्गं येर्चयन्तिमहाधियः ॥ तेर्च्यास्त्रिभुवनौकोभिर्ममप्रीतिमभीप्सुभिः ॥ २९ ॥ कृत्वापिसर्वसंन्यासंकृत्वापाशुपतव्रतम् ॥ नियमेभ्यःस्खलित्वापिकुतोबिभ्यतिमानवाः ॥ ३० ॥ विद्यमानेमहालिङ्गेमहापापौघहारिणि ॥ त्रिविष्टपेपुण्यराशौमोक्षनिक्षेपसद्मनि ॥ ३१ ॥ समभ्यर्च्यमहालिङ्गंसकृदेवत्रिलोचनम् ॥ मुच्यतेकलुषैःसर्वैरपिजन्मशतार्जितैः ॥ ३२ ॥ ब्रह्महापिसुरापोवास्तेयीवागुरुतल्पगः ॥ तत्संयोग्यपिवावर्षमहापापीप्रकीर्तितः ॥ ३३ ॥ परदाररतश्चापिपरहिंसारतोपिवा ॥

वाले लोग काशी में त्रिलोचन लिंग की पूजा करते हैं वे मेरी प्रीति चाही त्रिलोकवासियों से पूजनीय हैं ॥ २९ ॥ व सर्व संन्यासको कर भी पाशुपत व्रतको कर सब नियमों से च्युत होकर भी मनुष्य क्यों डरते हैं ॥ ३० ॥ जब पुण्योंका समूहरूप व मोक्षके धरनेका मन्दिर व महापापसमूहोंका हरता त्रिलोचन महालिंग विद्यमान है तब ॥ ३१ ॥ एक बार भी त्रिलोचन महालिंगको भलीभांति पूजकर सैकड़ों जन्मो में बटोरेहुये सबों भी पापों से छूटजाताहै ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणका मारनेवाला भी व मद्य पीनेवाला व सुवर्णादिकों को चोरानेवाला व गुरुकी शय्यामें बैठनेवाला व उनका संयोग करनेवाला भी वर्षतक महापापी कहागयाहै ॥ ३३ ॥ और परस्त्री में रत भी

व परहिंसामें रत व पराये अपवाद करने का शीलवाला भी तथा विश्वासघातक ॥ ३४ ॥ व कृतघ्न भी व गर्भघाती भी व शूद्रीका संभोगी व माता पिता और गुरुके त्यागनेवाला व अग्निदाता व विषदाता ॥ ३५ ॥ व गोहन्ता व स्त्रीहन्ता भी व कन्या को दूषित करनेवाला भी व जन्तुओं को मारनेवाला व परदोषसूचक और अपने धर्म से विमुख ॥ ३६ ॥ व निन्दक व नास्तिक भी व असत्यसाक्षी बुलानेवाला या झूंठ साक्ष्य बोलनेवाला व अभक्ष्यभोजीभी तथा न बेंचने योग्य चीजों का बेंचनेवाला ॥ ३७ ॥ इत्यादि पापशील भी एक शिवनिन्दकको छोड़कर त्रिलोचन लिंगके नमस्कारकर पापसे उद्धारको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ और जोकि मूढ़ श्रीशिवजीकी निंदा

परापवादशीलोपितथाविस्रम्भघातकः ॥ ३४ ॥ कृतघ्नोपिभ्रूणहापिवृषलीपतिरेववा ॥ मातापितृगुरुत्यागीवह्निदोगर दोपिवा ॥ ३५ ॥ गोघ्नःस्त्रीघ्नोपिशूद्रघ्नःकन्यादूषयितापिच ॥ क्रूरोवापिशुनोवापिनिजधर्मपराङ्मुखः ॥ ३६ ॥ निन्दकोना स्तिकोवापिकूटसाक्ष्यप्रवादकः ॥ अभक्ष्यभक्षकोवापितथाऽविक्रेयविक्रयी ॥ ३७ ॥ इत्यादिपापशीलोपिमुक्त्वैकंशि वनिन्दकम् ॥ पापान्निष्कृतिमाप्नोतिनत्वालिङ्गंत्रिलोचनम् ॥ ३८ ॥ शिवनिन्दारतोमूढःशिवशास्त्रविनिन्दकः ॥ त स्यनोनिष्कृतिर्दृष्टाकापिशास्त्रेपिकेनचित् ॥ ३९ ॥ आत्मघातीसविज्ञेयःसदात्रैलोक्यघातकः ॥ शिवनिन्दांविधत्तेयः सोनाभाष्योऽधमाधमः ॥ ४० ॥ शिवनिन्दारतायेचशिवभक्तजनेष्वपि ॥ तेयान्तिनरकेघोरेयावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४१ ॥ शैवाःपूज्याःप्रयत्नेनकाश्यांमोक्षमभीप्सुभिः ॥ तेष्वर्चितेष्वपिशिवःप्रीतोभवत्यसंशयः ॥ ४२ ॥ सर्वेषामिहपा पानांप्रायश्चित्तचिकीर्षया ॥ निःशङ्कैरेववक्तव्यंप्रमाणज्ञैरिदंवचः ॥ ४३ ॥ पुरश्चरणकामश्चेद्भीतोसियदिपापतः ॥

में रत व शिवसम्बन्धी शास्त्रोंका विनिंदकहै उसका प्रायश्चित्त किसीसे भी किसी शास्त्रमे भी नही देखागया ॥ ३९ ॥ जो श्रीशिवजी की निन्दा करताहै वह आत्मघाती जानने योग्यहै व सदैव त्रिलोकका घातकहै व अधमों से अधमहै और वह सम्भाषण करनेकेयोग्य नहीं है ॥ ४० ॥ जेकि श्रीशिवजीकी निन्दामें रतहैं और श्रीशिवजी के भक्तजनोंकी भी निन्दा में रत हैं वे तबतक घोर नरको को जाते हैं कि जबतक चन्द्रमा व सूर्य्य जी हैं ॥ ४१ ॥ इसलिये काशी में मुक्तिचाही जनो से शिवभक्त पूजनीय हैं क्योंकि बड़े यत्न से उनके पूजित होतेही शिवजी प्रसन्न होते हैं संशय नहीं है ॥ ४२ ॥ सबपापो के प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा से प्रमाणों के जाननेवाले

निश्शंक जनों को यह वचन कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ कि जो तुम प्रायश्चित्तकी कामनावालेहो व जो पापों से डरेहुयेहो और जो शास्त्रों के प्रमाण से हमारे वचनको सत्य मानते हो ॥ ४४ ॥ तो मन में निश्चयकर व सबको परित्यागकर काशीको जावो कि जहां विश्वनाथ शिवजी हैं ॥ ४५ ॥ व जिस क्षेत्रमें पैठेहुये निश्चित आत्मावाले मनुष्यों का पापसमूह नहीं बाधताहै और परम धर्म्म प्राप्त किया जावे है ॥ ४६ ॥ यहां आजभी पिलिपिला नामक महातीर्थ जोकि तीन सोतावाला अतिनिर्मल व मनोज्ञ व तीन नदियों से सबओर सेवित है ॥ ४७ ॥ और त्रिलोचन के नेत्रविक्षेप याने उनकी दयादृष्टि से सबओर प्रेरित कियेगये हैं महापाप जिससे उसमें अपने गृह्यसूत्र के

मन्यसेयदिनःसत्यंवाक्यंशास्त्रप्रमाणतः ॥४४॥ ततःसर्वंपरित्यज्यकृत्वामनसिनिश्चयम् ॥ आनन्दकाननंयाहियत्रविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ ४५ ॥ यत्रक्षेत्रप्रविष्टानांनराणांनिश्चितात्मनाम् ॥ नबाधतेऽघनिचयःप्राप्यतेचपरोवृषः ॥ ४६ ॥ तत्राद्यापिमहातीर्थेत्रिस्रोतस्यतिनिर्मले ॥ पुण्येपिलिपिलानाम्नित्रिसरित्परिसेविते ॥ ४७ ॥ त्रिलोचनाक्षिविक्षेपपरिक्षिप्तमहैनसि ॥स्नात्वागृह्योक्तविधिनातर्पणीयान्प्रतर्प्यच॥४८॥दत्त्वादेयंयथाशक्तिवित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिङ्गंसमभ्यर्च्यातिभक्तितः ॥ ४९ ॥ गन्धाद्यैर्विविधैर्माल्यैःपञ्चामृतपुरःसरैः ॥ धूपैर्दीपैःसनैवेद्यैर्वासोभिर्बहुभूषणैः ॥ ५० ॥ पूजोपकरणैर्द्रव्यैर्घण्टादर्पणचामरैः ॥ चित्रध्वजपताकाभिर्नृत्यवाद्यसुगायनैः ॥ ५१ ॥ जपैःप्रदक्षिणाभिश्चनमस्कारैर्मुदायुतैः ॥ परिचारकसन्तोषैःकृत्वेतिपरिपूजनम् ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणान्वाचयेत्पश्चान्निष्पापोहमितिब्रुवन् ॥ एवंकुर्वन्नरःप्राज्ञोनिरेनाजायतेक्षणात् ॥ ५३ ॥ ततःपञ्चनदेस्नात्वामणिकर्णीह्रदेततः ॥ ततोविश्वेशमभ्यर्च्य

विधान से स्नानकर व तर्प्पण के योग्य देवादिकों को बहुतही तृप्तकर ॥४८॥ व वित्तशाठ्यसे हीनहोकर यथाशक्ति देनेयोग्य वस्तुको देकर व त्रिलोचन लिंगको देखकर और अत्यन्त भक्तिसे भलीभांति पूजकर ॥ ४९ ॥ व पञ्चामृतपूर्वक, सुगन्धादि बहुतभांतिके फूल या मालायें व धूपदीप व नैवेद्योंसमेत वस्त्र और बहुतसे भूषण ॥५०॥ व पूजासामग्री द्रव्य घण्टा दर्पण चँवर विचित्र ध्वजा पताका नृत्य बाजा अच्छे गीत ॥ ५१ ॥ व जप प्रदक्षिणा व आनन्दसंयुक्त नमस्कार और सेवकोंके संतोषोसे इसप्रकार सबओर पूजनकर ॥ ५२ ॥ मैं निष्पापहूं ऐसा कहताहुआ तत्पश्चात् ब्राह्मणोंसेभी कहवावे इसभांति करताहुआ बुद्धिमान् मनुष्य क्षणमें पापों से हीन होजाताहै ॥ ५३ ॥

तदनन्तर पञ्चनद में स्नानकर उसकेबाद मणिकर्णिकाकुण्ड में नहाकर तब श्रीविश्वेश्वरजीकी पूजाकर बड़े सुकृत (पुण्य) को प्राप्तहोता है ॥ ५४ ॥ महापापों से विशुद्ध करनेवाला यह प्रायश्चित्त कहा गया जोकि काशीमाहात्म्यनिन्दक व नास्तिक के समीप में कहने योग्य नहीं है ॥ ५५ ॥ हे घटोद्भव अगस्त्य मुने! द्रव्य के लोभ से इस शुभ प्रायश्चित्तको देताहुआ दाता नरक को प्राप्तहोता है यह सत्य है सत्य है ॥ ५६ ॥ और पृथिवी की प्रदक्षिणाकर जो फल भलीभांति प्राप्त कियाजाता है वह प्रदोष समय काशी में त्रिलोचन मे सातबार प्रदक्षिणा करने से होता है ॥ ५७ ॥ व काशी में अनन्त सर्प्पकांचीवाले त्रिविष्टप लिङ्गको देखकर अन्यत्र मरण होतेही

प्राप्नोतिसुकृतंमहत् ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्तमिदंप्रोक्तंमहापापविशोधनम् ॥ नास्तिकेनप्रवक्तव्यंकाशीमाहात्म्यनिन्दके ॥ ५५ ॥ ददच्चद्रव्यलोभेनप्रायश्चित्तमिदंशुभम् ॥ दातानरकमाप्नोतिसत्यंसत्यंघटोद्भव ॥ ५६ ॥ क्ष्मांप्रदक्षिणीकृत्यय त्फलंसम्यगाप्यते ॥ प्रदोषेतत्फलंकाश्यांसप्तकृत्वस्त्रिलोचने ॥ ५७ ॥ भुजङ्गमेखलंलिङ्गंकाश्यांदृष्ट्वात्रिविष्टपम् ॥ जन्मान्तरेपिमुक्तःस्यादन्यत्रमरणेसति ॥ ५८ ॥ अन्यत्रसर्वलिङ्गेषुपुण्यकालोविशिष्यते ॥ त्रिविष्टपेपुण्यकालःसदा रात्रिंदिवंनृणाम् ॥ ५९ ॥ लिङ्गान्योङ्कारमुख्यानिसर्वपापप्रकृन्तयलम् ॥ परंत्रैलोचनीशक्तिःकाचिदन्यैवपार्वति ॥ ६० ॥ यतःसर्वेषुलिङ्गेषुलिङ्गमेतदनुत्तमम् ॥ तत्कारणंशृणवपर्णेकर्णेकुरुवदाम्यहम् ॥ ६१ ॥ पुरामेयोगयुक्तस्यलिङ्गमेतद्भु वस्तलात् ॥ उद्भिद्यसप्तपातालंनिरगात्पुरतोमहत् ॥ ६२ ॥ अस्मिँल्लिङ्गेपुरागौरिसुगुप्तंतिष्ठतामया ॥ तुभ्यन्नेत्रत्रयंदत्तं

जन्मान्तर में भी मुक्त होवे है ॥ ५८ ॥ व अन्यत्र सबलिंगों में पुण्यकाल विशेषणयुक्त होताहै याने किसी किसी समय में मानाजाता है और त्रिलोचन में रातोदिन सदैव मनुष्योंका पुण्यकाल है ॥ ५९ ॥ हे पार्वति! सब पापों के काटनेवाले ॐकारादि लिङ्ग समर्थहैं परन्तु त्रिलोचनकी कोई अन्यही शक्तिहै ॥ ६० ॥ हे तपस्या में सूखे हुये पत्तोंकी भी त्यागनेहारिणि! जिससे यह लिंग सब लिंगों में अधिक उत्तम है उस कारण को सुनो मैं कहताहूं तुम कानमें करो ॥ ६१ ॥ पूर्वकाल में योगयुक्त जो मैं हूं उसके आगे यह बड़ा पूजनीय लिंग सात पातालों को फोड़कर भूतल से निकल आयाहै ॥ ६२ ॥ हे गौरि! पहले समय इस लिंगमें बहुतही गुप्त टिकेहुये

मैंने तुमको तीन नेत्र दिया तुम वैसेही उत्तम को देखेहो ॥ ६३ ॥ हे देवेशि ! तबसे लगाकर त्रिलोक के बीचमें टिकेहुये जनों करके यह त्रिलोचनलिंग ज्ञानदृष्टि का दाता गाया जाताहै ॥ ६४ ॥ जे कि त्रिलोचन के भक्तहैं वे सब त्रिनेत्र हैं व वे मेरे पार्षद हैं और वेही जीवन्मुक्तहैं ॥ ६५ ॥ हे महेशानि ! मुझसेही सब ओर रक्षित हुई त्रिलोचन लिंग की महिमा को कोईभी अच्छेप्रकारसे नहीं जानता है ॥ ६६ ॥ वैशाखसुदी तीज के दिन पिलिपिलाकुण्ड में स्नानकर उपास में परायण व भक्तिसे रात्रिमें जागरण युक्त जन ॥ ६७ ॥ त्रिलोचन की पूजाकर फिर प्रातःकाल उस मेंही नहाकरभी फिर लिंगकी भलीभांति पूजाकर व धर्मको उद्देशकर देने योग्य घटों

निरैक्षिष्ठास्तथोत्तमम् ॥ ६३॥ तदाप्रभृतिदेवेशिलिङ्गमेतत्रिलोचनम्॥विष्टपत्रितयान्तस्थैर्गीयतेज्ञानदृष्टिदम्॥६४॥ त्रिलोचनस्ययेभक्तास्तेपिसर्वेत्रिलोचनाः॥ममपारिषदास्तेतुजीवन्मुक्तास्तएवहि ॥ ६५ ॥ त्रिलोचनस्यलिङ्गस्यमहिमानन्नकश्चन ॥ सम्यग्वेत्तिमहेशानिमयैवपरिगोपितम्॥६६ ॥ शुक्लराधतृतीयायांस्नात्वापैलिपिलेह्रदे॥ उपोषणपराभक्त्यारात्रौजागरणान्विताः ॥ ६७॥ त्रिलोचनंपूजयित्वाप्रातःस्नात्वापितत्रवै॥ पुनर्लिङ्गंसमभ्यर्च्यदत्त्वाधर्मघटानपि ॥ ६८ ॥ सान्नान्सदक्षिणान्देविपितॄनुद्दिश्यहर्षिताः ॥ विधायपारणंपश्चाच्छिवभक्तजनैःसह ॥ ६९ ॥ विसृज्यपार्थिवंदेहंतेनपुण्येननोदिताः ॥ भवन्तिदेविनियतंगणाममपुरोगमाः ॥ ७० ॥ तावद्भ्रमन्तिसंसारेदेवामर्त्यामहोरगाः ॥ गौरियावन्नपश्यन्तिकाश्यांलिङ्गंत्रिलोचनम् ॥ ७१ ॥ सकृत्रिविष्टपंदृष्ट्वास्नात्वापैलिपिलेह्रदे ॥ नजातुमातुःस्तनपोजायतेजन्तुरत्रहि ॥७२॥ प्रतिमासंसदाष्टम्यांचतुर्दश्यांचभामिनि॥ आयान्तिसर्वतीर्थानिद्रष्टुंदेवंत्रिविष्टपम् ॥७३॥

कोभी देकर ॥ ६८ ॥ और हे देवि ! पितरों को उद्देशकर अन्नसमेत व दक्षिणासहित घटों को देकर व आनन्दित होकर पीछेसे शिवभक्त जनों के साथ पारणको कर ॥ ६९ ॥ व हे देवि ! पृथिव्यादि तत्त्वमयी देहको त्यागकर उस पुण्यसे प्रेरितहुये वे नियमसे मेरे आगे चलनेवाले गण होतेहैं ॥ ७० ॥ हे गौरि ! देव मनुष्य और महासर्प्प याने त्रिलोकवासी लोग जबतक काशी में त्रिलोचन लिंगको नहीं देखतेहैं तबतक संसारमें भ्रमते हैं ॥ ७१ ॥ और यहांही पिलिपिलाकुण्ड में स्नानकर व एकबारभी त्रिलोचन को देखकर कोई भी जन्तु फिर माताके स्तनों का पीनेवाला कभी नहीं होताहै ॥ ७२ ॥ हे भामिनि ! सब तीर्थभी प्रतिमास अष्टमी और चतुर्दशी में त्रिलोचन

देव को देखनेकेलिये सदैव आते हैं ॥ ७३ ॥ व त्रिविष्टप (त्रिलोचन) से दक्षिण ओर पिलिपिला के जल में स्नानकर और वहां एक सन्ध्या की उपासना कर राजसूय यज्ञका फल पावैहै ॥ ७४ ॥ व वहांहीं पापोंका विनाशक, पादोदक नामक जो कूपहै उसके जलको आचमनकर याने पीकर मनुष्य फिर मरनेवाला नहीं होताहै ॥ ७५ ॥ और उस लिंगके समीप में जे बहुतसे लिंगहैं वे यहां दर्शन व स्पर्शन से भी मोक्षदायक हैं ॥ ७६ ॥ व वहां गंगातीर में प्रतिष्ठितहुवा शन्तनुका लिंगहै उसको देखकर संसारसे तपाया मनुष्य शांतिको प्राप्तहोताहै ॥ ७७ ॥ हे अगस्त्य मुने ! उससे दक्षिण में भीष्मेश्वर संज्ञक महालिंगहै उसके देखनेसे कलि व काल और काम नहीं बाधा

त्रिविष्टपाद्दक्षिणतःस्नातःपैलिपिलेऽम्भसि ॥ तत्रसन्ध्यामुपास्यैकांराजसूयफलंलभेत् ॥ ७४ ॥ पादोदकाख्यस्तत्रैव कूपःपापविनाशकः ॥ प्राश्यतस्योदकंमर्त्योनमर्त्योजायतेपुनः ॥ ७५ ॥ तस्यलिङ्गस्यपार्श्वेतुसन्तिलिङ्गान्यनेकशः ॥ कैवल्यदानितान्यत्रदर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ७६ ॥ तत्रशान्तनवंलिङ्गंगङ्गातीरेप्रतिष्ठितम् ॥ तद्दृष्ट्वाशान्तिमाप्नोतिनरःसंसारतापितः ॥ ७७ ॥ तद्दक्षिणेमहालिङ्गंमुनेभीष्मेशसञ्ज्ञितम् ॥ कलिःकालश्चकामश्चबाधतेनतदीक्षणात् ॥ ७८ ॥ तत्प्रतीच्याम्महालिङ्गन्द्रोणेशइतिकीर्तितम् ॥ यल्लिङ्गपूजनाद्द्रोणोज्योतीरूपम्पुनर्दधौ ॥ ७९ ॥ अश्वत्थामेश्वरंलिङ्गंतदग्रेचातिपुण्यदम् ॥ यदर्चनवशाद्द्रौणिर्नबिभेत्यपिकालतः ॥ ८० ॥ द्रोणेशाद्वायुदिग्भागेबालखिल्येश्वरम्परम् ॥ तल्लिङ्गंश्रद्धयादृष्ट्वासर्वक्रतुफलंलभेत् ॥ ८१ ॥ तद्वामेलिङ्गमालोक्यवाल्मीकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ तस्यसन्दर्शनादेवविशोकोजायतेनरः ॥ ८२ ॥ अन्यच्चात्रैवयद्वृत्तंतद्ब्रवीमिघटोद्भव ॥ त्रिविष्टपस्यमाहात्म्यंदेव्यैदेवेनभाषित

करताहै ॥ ७८ ॥ व उससे पश्चिम में वही महालिंग द्रोणेश इसप्रकारसे कहागया है कि जिस लिंगकी पूजा से द्रोणने ज्योतिरूपको फिर धारण कियाहै ॥ ७९ ॥ उसके आगे अत्यन्त पुण्यदायक अश्वत्थामेश्वर लिंगहै जिसकी पूजा के वशसे द्रोणाचार्य्य के पुत्र अश्वत्थामा कालसेभी नहीं डरतेहैं ॥ ८० ॥ व द्रोणेश्वरसे वायु दिशाके भागमें बहुत उत्तम बालखिल्येश्वर लिंगहै उसको श्रद्धासे देखकर सब यज्ञोंका फल पावैहै ॥ ८१ ॥ उसके वामओरमें वाल्मीकेश्वर संज्ञक लिंगको सामनेसे देखकर नर उसके दर्शनसेही शोकहीन होजाता है ॥ ८२ ॥ हे घटोद्भव अगस्त्य मुने ! महादेवजी ने देवीजी के लिये त्रिविष्टपका माहात्म्य कहाहै और यहांही अन्यभी जो वृत्तांत हुवाहै

उसको मैं तुम से कहताहूं ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते त्रिलोचनाविर्भावो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

दो० । छीयन्तरअध्यायमें पारावतइतिहास । उस से यहा त्रिनेत्रका परमप्रभाव प्रकास ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मित्र व वरुणके वीर्य्य से उपजेहुये अगस्त्यजी ! पूर्वकाल रथन्तर कल्पमें इस विरजसंज्ञक पीठके बीच जो इतिहास हुआ है उसको तुम सुनो ॥ १ ॥ त्रिलोचन देवका मंदिर जो कि मणि और माणिक्यों से बनाहुआ अनेकभांतिकी परिपाटियों से भीतों में छिद्रों (झरोखों) से संयुत व सुमेरुके समान विस्तारयुक्त है ॥ २ ॥ व जोकि स्थिति के अन्तसमय कभी प्रलय में स्वर्गलोकके

म् ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेत्रिलोचनाविर्भावोनामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृणुष्वमैत्रावरुणेपुराकल्पेरथन्तरे ॥ इतिहासइहासीद्यःपीठेविरजसञ्ज्ञिते ॥ १ ॥ त्रिलोचनस्यप्रासादेमणिमाणिक्यनिर्मिते ॥ नानाभङ्गिगवाक्षाढ्येरत्नसानाविवायते ॥ २ ॥ कदाचिदपिकल्पान्तेद्योलोकेभ्रंशतिक्षये ॥ प्रोत्तम्भनस्तम्भइवदत्तोविश्वकृतास्वयम् ॥ ३ ॥ मरुत्तरङ्गिताग्राभिःपताकाभिरितस्ततः ॥ सन्निवारयतीवेत्थमघौघान्निशतोमुने ॥ ४ ॥ देदीप्यमानसौवर्णकलशेनविराजिते ॥ पार्वणेनशशाङ्केनखेदादिवसमाश्रिते ॥ ५ ॥ तत्रपारावतद्वन्द्वंवसेत्स्वैरंकृतालयम् ॥ प्रातःसायञ्चमध्याह्नेकुर्वन्नित्यम्प्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥ उड्डीयमानम्परितःपक्षवातैरितस्ततः ॥ रजःप्रासादसंलग्नंदूरीकुर्वद्दिनेदिने ॥ ७ ॥ त्रिलोचनेतिसततंनामभक्तैरुदाहृतम् ॥ त्रिविष्टपेतिचतथातयोःकर्णातिथीभवे

पतित होतेही आपही ब्रह्माजी करके ऊपर रोंकने का खम्भासा दियागया है ॥ ३ ॥ और हे मुने ! जोकि ऐसीवैसी वायुसे चञ्चलअग्रोंवाली पताकाओं से इस प्रकार क्षेत्रमें पैठते हुये के पापसमूहों को भलीभांति निवारण करतासा है ॥ ४ ॥ व जोकि ज्योति से जगमगाते हुये सोना के कलश से विराजित है इस में उत्प्रेक्षा कीजाती है कि पूर्णमासी के चन्द्रमा करके खेदसे भलीभांति आश्रित (संसेवित) सा है ॥ ५ ॥ उसमें घर करनेवाला कपोतों का जोड़ा नित्य प्रातःमध्याह्न और सायंकाल में प्रदक्षिणा करताहुआ अपनी इच्छासे बसताथा ॥ ६ ॥ व सबओर उड़ताहुआ वह ऐसीवैसी शिवालय में संलग्नहुई धूरिको पक्षोंकी वायुसे दिनोदिन दूर करताहुआ रहता था ॥ ७ ॥

और भक्तों से कहागया त्रिलोचन ऐसा तथा त्रिविष्टप ऐसा नाम उनदोनों के कानोंका अतिथि (विषय) होवे है (होताथा) ॥ ८ ॥ व शम्भुकी प्रीति करनेवाले चार प्रकारके बाजे उनकी कानकन्दराको प्राप्त होकर प्रतिशब्द को बहुतही पसारते हैं ॥ ९ ॥ व तीनों सन्ध्याओं में नित्यही उन पक्षियोंकी आंखों के भीतर पैठतीहुई मंगल आरतियों की ज्योति भक्तों की चेष्टा को अधिकता से दिखावे है ॥ १० ॥ व प्राणयात्रा (भोजन) को छोड़कर भी कौतुक को देखतेहुये वे स्थिरमनवाले पक्षी उड़कर वाञ्छित देशको कभी नहीं जाते हैं ॥ ११ ॥ और हे मुने ! वहां भक्तजनों से व्याप्त शिवालय के सबओर चावलआदि को चुनतेहुये वे प्रदक्षिणाको करते हैं ॥ १२ ॥

त ॥ ८ ॥ चतुर्विधानिवाद्यानिशम्भुप्रीतिकराण्यलम् ॥ तयोःकर्णगुहाम्प्राप्यप्रतिशब्दम्प्रतन्वते ॥ ९ ॥ मङ्गलारार्तिकज्योतिस्त्रिसन्ध्यम्पक्षिणोस्तयोः ॥ नेत्रान्तर्निविशन्नित्यंभक्तचेष्टाम्प्रदर्शयेत् ॥ १० ॥ प्राणयात्रांविहायापिकदाचित्स्थिरमानसौ ॥ नोड्डीयवाञ्छितंयातःपश्यन्तौकौतुकंखगौ ॥ ११ ॥ तत्रभक्तजनाकीर्णप्रासादम्परितोमुने ॥ तण्डुलादिचरन्तौतौकुर्वातेचप्रदक्षिणम् ॥ १२ ॥ देवदक्षिणदिग्भागेचतुःस्रोतस्विनीजलम् ॥ तृषार्तौधयतोविप्रस्नातौजातुचिदण्डजौ ॥ १३ ॥ तयोरित्थंविचरतोस्त्रिलोचनसमीपतः ॥ अगाद्बहुतिथःकालोद्विजयोःसाधुचेष्टयोः ॥ १४ ॥ अथदेवालयस्कन्धेगवाक्षान्तर्गतौचतौ ॥ श्येनेनकेनचिद्दृष्टौक्रूरदृष्ट्यासुखस्थितौ॥ १५ ॥ तच्चपारावतद्वन्द्वंश्येनःपरिजिघृक्षुकः ॥ अवतीर्याम्बराशुप्रविष्टोन्यशिवालये ॥ १६ ॥ ततोविलोकयामासतदागमविनिर्गमौ ॥ केनमार्गेणविशतोदुर्गमेतौपतत्रिणौ ॥ १७॥ केनाध्वनाचनिर्यातःक्वकालेकुरुतश्चकिम् ॥ कथंयुगपदेतौमेग्राह्यौस्वैरम्भविष्य

हे ब्राह्मण ! कभी प्यास से व्याकुल व नहाये हुये वे पक्षी महादेव जी से दक्षिण भाग में गंगा, सरस्वती, यमुना और नर्मदा इन चारो नदियों के जलको पीते हैं ॥ १३ ॥ इसप्रकार त्रिलोचन के समीप में विचरते हुये व अच्छे व्यापारवाले उन पक्षियों का बहुतसा समय बीतगया ॥ १४ ॥ अनन्तर शिवालयके शृंगके नीचे भागमें झरोखा के अन्तर्गत सुख से टिकेहुये वे किसी बाज करके क्रूरदृष्टि से देखे गये ॥ १५ ॥ और उस कपोतोंके जोड़ाको सबओर से पकडना चाहताहुआ बाज शीघ्रही आकाश से उतरकर अन्य शिवालय में पैठगया ॥ १६ ॥ तदनन्तर उन पक्षियों के आने और जाने को देखनेलगा कि वे पक्षी दुर्गमस्थान में किस गलीसे पैठते हैं ॥ १७ ॥ व

किस मार्ग से निकलते हैं और किस समय में क्या करते हैं व किस प्रकार एक साथही ये दोनों अपनी इच्छा से मेरे ग्राह्य होवेंगे ॥ १८ ॥ जिसरो दुर्ग के बीच में पैठेहुये ये मेरे वश्य नहीं हैं इसभांति विचारता हुआ एक दृष्टिवाला बाज क्षणभर टिकरहा ॥ १९ ॥ कि आश्चर्य है इसही कारण बुद्धिमान् लोग दुर्ग (कोट) के बलको कहते हैं याने प्रशंसा करते हैं कि जिसलिये दुर्बल भी शत्रु एकाएक चलाने के लिये योग्य नहीं होता है ॥ २० ॥ जोकि राजा के कर्म्म की सिद्धि एक दुर्ग से होवे है वह हज़ारों हाथी और लाखों घोड़ों से भी नहीं है ॥ २१ ॥ जो मर्म के जाननेवाले से न प्रकाश किया गया हुआ दुर्ग अपने अधीन होवे तो दुर्ग मे टिका

तः ॥ १८ ॥ मध्येदुर्गम्प्रविष्टौचममवश्याविमौनयत् ॥ एकदृष्टिःक्षणन्तस्थौश्येनइत्थंविचिन्तयन् ॥ १९ ॥ अहोदुर्गबलम्प्राज्ञाःशंसन्त्येवेतिहेतुतः ॥ दुर्बलोप्याकलयितुंसहसारिर्नशक्यते ॥ २० ॥ करिणान्तुसहस्रेणवराश्वानांनलक्षतः ॥ तत्कर्मसिद्धिर्नृपतेर्दुर्गेणैकेनयद्भवेत् ॥ २१ ॥ दुर्गस्थोनाभिभूयेतविपक्षःकेनचित्कचित् ॥स्वतन्त्रंयदिदुर्गंस्यादमर्मज्ञप्रकाशितम् ॥ २२॥ इतिदुर्गबलंशंसञ्श्येनोरोषारुणेक्षणः ॥ असाध्वसौकलरवौवीक्ष्ययातोनभोङ्गणम् ॥ २३ ॥ अथपारावतीदक्षाविपक्षम्प्रेक्ष्यपक्षिणम् ॥ महाबलन्दुर्गबलाप्राहपारावतम्पतिम् ॥ २४ ॥ कलरव्युवाच ॥ प्रियपारावतप्राज्ञसर्वकामिसुखारव ॥ तवदृग्विषयम्प्राप्तःश्येनोयम्प्रबलोरिपुः ॥ २५ ॥ सावज्ञंवाक्यमाकर्ण्यपारावत्याःसतत्पतिः ॥ पारावतीमुवाचेदंकाचिन्तेतितवप्रिये ॥ २६ ॥ पारावतउवाच ॥ कतिनामनसन्तीहसुभगेव्योमचारिणः ॥ कति

हुआ शत्रु किसी से कहीं नहीं तिरस्कृत होवे है ॥ २२ ॥ इसप्रकार दुर्ग के बल की प्रशंसा करता हुआ क्रोध से लाले नेत्रोंवाला बाज कपोतों को निडर देखकर आकाश आंगन को चलागया ॥ २३ ॥ तदनन्तर दुर्गबलवाली दक्ष (कुशल) कपोतीने वैरी पक्षीको देखकर बड़े बलवान् अपने पति कपोतसे कहा ॥ २४ ॥ कपोती बोली कि, हे सबकामियों के सुखद शब्दवाले, प्राज्ञ, प्यारे, कपोत ! यह बड़ा बलवान् वैरी बाज तुम्हारे नेत्रों के विषय को प्राप्तहुआ है याने इसको तुमने देखा है ॥ २५ ॥ इस प्रकार कपोती का अनादर समेत वचन सुनकर वह उसका पति कपोतीसे इस वचनको बोला कि हे प्रिये ! तुमको क्या चिन्ता है ॥ २६ ॥ कपोती बोली कि

हे सुभगे ! यहां कितने खग (पक्षी) प्रसिद्ध नहीं हैं व कितने आकाशचारी इन देवमन्दिरों में नहीं बैठते हैं॥ २७ ॥ और हे प्रिये ! इस प्रकार यहां सुखसे टिकेहुये हम दोनो को कितने नहीं देखते हैं उनसे जो डरनाहो तो हे प्यारी ! हमको क्यों सुखहोगा ॥ २८ ॥ हे शुभे ! तुम इस चिन्ताको त्यागो और मेरेसाथ रमणकरो क्योंकि मेरे मनमें इस बापुरे बाजकी गणना भी नहीं है ॥ २९ ॥ इसभांति कपोत के वचन को सुनकर तदनन्तर पति के पावों में आंखों को अर्प्पेहुई कपोती मौनको आलम्बन कर याने चुपहोकर भलीभांति टिकी ॥ ३० ॥ क्योंकि हितके मार्गको उपदेशकर भी प्यारे के प्रिय करने की इच्छा से प्रीति जैसेहो वैसे पतिव्रता को भली

देवालयेष्वेषुखगानोपविशन्तिहि ॥ २७॥ कतिचैवनपश्यन्तिनौसुखस्थाविहप्रिये ॥ तेभ्योयदिहिभेतव्यंकुतोनौतत्सुखम्प्रिये ॥ २८ ॥ रमस्वत्वम्मयासार्धंत्यजचिन्तामिमांशुभे ॥ अस्यश्येनवराकस्यगणनापिनमेहृदि ॥ २९ ॥ इत्थं पारावतवचःश्रुत्वापारावतीततः ॥ मौनमालम्ब्यसन्तस्थेपत्युःपादार्पितेक्षणा ॥ ३० ॥ हितवर्त्मोपदिश्यापिप्रियप्रियचिकीर्षया ॥ साध्व्याजोषंसमास्थेयंकार्यंपत्युर्वचःसदा ॥ ३१ ॥ अन्येद्युरप्यथायातःश्येनोपश्यत्सदम्पती ॥ अपरिच्छिन्नयादृष्टयायथामृत्युर्गतायुषम् ॥ ३२ ॥ अथमण्डलगत्यासप्रासादम्परितोभ्रमन् ॥ निरीक्ष्यतद्गतायातौयातोगगनमार्गतः ॥ ३३ ॥ गतेऽथनभसिश्येनेपुनःपारावताङ्गना ॥ प्रोवाचप्रेयसीनाथदृष्टोदुष्टस्त्वयाऽहितः ॥ ३४ ॥ तस्यावाक्यंसमाकर्ण्यपुनःकलरवोब्रवीत् ॥ किङ्करिष्यत्यसौमुग्धेममव्योमविहारिणः ॥ ३५ ॥ दुर्गञ्चस्वर्गतुल्यंमेयत्रना

भांति सामने टिकना चाहिये और सदैव पतिका वचन करना चाहिये॥ ३१ ॥ उसके बाद अन्य दिनमेंभी आये हुये उस बाजने सब ओर अखण्डित दृष्टिसे उन स्त्री पुरुषों को देखा कि जैसे गतजीवित जनको मृत्यु देखै है ॥ ३२ ॥ अनन्तर मण्डलाकार गमन से शिवालय के सब ओर भ्रमण करता हुवा वह बाज उनके आने और जानेको देखकर आकाशमार्ग से चलागया ॥ ३३ ॥ उसके बाद आकाश में बाजके जातेही परमप्यारी कपोतकी स्त्रीने कपोत से फिर कहा कि हे नाथ ! तुमने दुष्ट वैरीको देखाहै ॥ ३४ ॥ उसके वचन को भलीभांति सुनकर फिर कपोत बोला कि हे सुन्दरि ! यह बाज मुझ आकाशविहारीका क्या करेगा ॥ ३५ ॥ क्योंकि जिस

में शत्रुसे डर नहीं है वह स्वर्ग के समान मेरा दुर्ग है और मैं आकाश आंगन में जिन चालों को जानताहूं उनको यह नहीं जानता है ॥ ३६ ॥ बहुत चलना उड़ना भलीभांति चलना रुककर चलना लौटकर पीछे को चलना गिरह लगाकर चलना ऊपर से उतरकर चलना और मण्डलाकार घूमना ये आठ गतियां कहीगई हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रिये, कपोति ! आकाश के बीच यहां इन गतियों में जैसी मेरी कुशलता है वैसी कहीं भी किसी भी पक्षी की नहीं है ॥ ३८ ॥ हे प्रिये ! तुम सुखसे टिको मेरे जीवतेही तुमको क्या चिन्ताहै ऐसा उसका वचन सुनकर वह पतिव्रता मूक (गूंगा) के समान रहगई ॥ ३९ ॥ अन्य दिन भी वहां कुछेक अन्तर को प्राप्त होकर अत्यंत

स्त्यरितोभयम् ॥ अयंनतागतीर्वेत्तियावेदाहंनभोङ्गणे ॥ ३६ ॥ प्रडीनोड्डीनसण्डीनकाण्डव्याडकपाटिकाः ॥ स्रंसनी मण्डलवतीगतयोष्टावुदाहृताः ॥ ३७॥ यथैतास्विहकौशल्यंमयिपारावतिप्रिये ॥ गतिषुक्वापिकस्यापिपक्षिणोनतथा म्बरे॥३८॥ सुखेनतिष्ठकाचिन्तामयिजीवतितेप्रिये ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वासास्थितामूकवत्सती ॥ ३९ ॥ अपरेद्युरपिश्येन स्तत्रभाराशिलातले ॥ कियदन्तरमासाद्योपविष्टोऽतिप्रहृष्टवत् ॥ ४० ॥ आयामन्तत्रसंस्थित्वातत्कुलायंविलोक्य च ॥ पुनर्विनिर्गतःश्येनःसापिभीताब्रवीत्पुनः ॥ ४१ ॥ प्रियस्थानमिदन्त्याज्यंदुष्टदृष्टिविदूषितम् ॥ असौक्रूरोतिनिक टमुपविष्टोऽतिहृष्टवत् ॥ ४२ ॥ सावज्ञंसपुनःप्राहकिङ्करिष्यत्यसौप्रिये ॥ मृगाक्षीणांस्वभावोयंप्रायशोभीरुवृत्तयः ॥ ४३ ॥ इतरेद्युरपिप्राप्तःसचश्येनोमहाबलः ॥ तयोरभिमुखन्तत्रस्थितोयामद्वयावधि ॥ ४४ ॥ पुनर्विलोक्यतद्वर्त्मशी

आनन्दित के समान बाज बड़े पत्थर पर बैठगया ॥ ४० ॥ और एक पहर तक वहां भलीभांति टिककर व उनके थलकुरको देखकर वह बाज फिर निकलगया और डरीहुई उस कपोतीने फिर कहा ॥ ४१ ॥ कि हे प्यारे ! दुष्ट की दृष्टि से बहुत दूषित यह स्थान त्यागने योग्यहै क्योंकि अतिशय आनन्दित के समान यह क्रूर (हिंसक) बहुतही समीपमें बैठा है ॥ ४२ ॥ ऐसा सुनकर वह कपोत अनादर समेत वचनको फिर बोला कि हे प्रिये ! यह क्या करेगा बहुधा मृगनयनियों का यह स्वभावही है कि वे स्त्रियां डरभुत वृत्तिवाली होती हैं ॥ ४३ ॥ और अन्यदिनमें भी वहां प्राप्त हुआ वह बड़ा बलवान् बाज दोपहर तक उनके सम्मुख स्थित हुआ ॥ ४४ ॥ व उन

की गलीको विशेषतासे देखकर फिर यथागत याने जैसे आया वैसेही चलागया अनन्तर उस पक्षी के जातेही उस खगी (कपोती) ने कहा ॥ ४५ ॥ कि हे प्यारे नाथ ! जिससे यहां मृत्यु निकटहै उससे हम तुम दोनो अन्य स्थानको चले जाते हैं फिर इस दुष्ट के विनष्ट होतेही सुखसे होवें ॥ ४६ ॥ हे प्रिय ! जिस पक्ष समेत की सर्वत्र सिद्धि देनेवाली गति है वह बुद्धिमान् अपने देशके स्नेह से क्यों नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥ जोकि उत्पात समेत अपने देशको छोड़कर अन्यत्र नहीं चलाजाता है वह पंगुला नदीतटमें टिकेहुये वृक्षकी नाईं नाश को प्राप्तहोताहै ॥ ४८ ॥ इसभांति प्यारीके कहे वचनको सुनकर होनी दशा से पीड़ित वह अवज्ञासमेत वाक्यको फिर बोला

घ्रंयातोयथागतम् ॥ गतेथशकुनौतस्मिन्साबभाषेविहङ्गमी ॥ ४५ ॥ नाथस्थानान्तरंयावोमृत्युर्नौनिकटोत्रयत् ॥ पुनर्दुष्टेप्रणष्टेस्मिन्नावांस्यावःसुखम्प्रिय ॥ ४६ ॥ प्रिययस्यसपक्षस्यगतिःसर्वत्रसिद्धिदा ॥ सकिंस्वदेशरागेणनाशम्प्राप्नोतिबुद्धिमान् ॥ ४७ ॥ सोपसर्गंनिजन्देशंत्यक्त्वायोन्यत्रनव्रजेत् ॥ सपंगुर्नाशमाप्नोतिकूलस्थितइवद्रुमः ॥ ४८ ॥ प्रियोदितंनिशम्येतिसभवित्रीदशार्दितः ॥ सरीढंपुनरप्याहप्रियेमाभैःखगात्ततः ॥ ४९ ॥ अथापरस्मिन्नहनिसश्येनः प्रातरेवहि ॥ तद्द्वारदेशमासाद्यसायंयावत्स्थितोबली ॥ ५० ॥ अस्ताचलस्यशिखरंयातेभानौगतेखगे ॥ कुलायाद्बाह्यमागत्योवाचपारावतीपतिम् ॥ ५१ ॥ नाथनिर्गमनस्यायंकालःकालोऽतिदूरतः ॥ यावत्तावद्विनिर्याहित्यक्त्वामामपि सन्मते ॥ ५२ ॥ त्वयिजीवतिदुष्प्राप्यंनकिञ्चिज्जगतीतले ॥ पुनर्दाराःपुनर्मित्रंपुनर्वसुपुनर्गृहम् ॥ ५३ ॥ यद्यात्मारक्षितःपुंसादारैरपिधनैरपि ॥ तदासर्वंहरिश्चन्द्रभूपेनेवेहलभ्यते ॥ ५४ ॥ अयमात्माप्रियोबन्धुरयमात्मामहद्धनम् ॥

कि हे प्रिये ! तुम उस पक्षी से मत डरो ॥ ४९ ॥ अनन्तर अन्यदिन में वह बलवान् श्येन (बाज) उस कपोत के द्वारदेशको प्राप्त होकर प्रातःकालसेही संध्यापर्यंत टिका रहा ॥ ५० ॥ और जब सूर्य्यनारायण अस्ताचलके शिखर को चले गये तब उस पक्षी के गयेहुये होतेही थलकुर के द्वार में आकर कपोतीने अपने पति कपोत से कहा ॥ ५१ ॥ कि हे सुबुद्धे, नाथ ! यह निकलने का समय है क्योंकि जबतक मृत्युरूप पक्षी दूर है तबतक मुझको भी त्यागकर तुम निकलजावो ॥ ५२ ॥ क्योंकि तुम्हारे जीवतेही भूतलमें कुछ दुर्लभ नहींहै फिर स्त्रियां फिर मित्र फिर धन और फिर घर यह सब होजावेगा ॥ ५३ ॥ जो पुरुषने स्त्रियों से भी और धनो से भी आत्माकी

रक्षा किया तो इस लोकमे हरिश्चन्द्र राजाकीनाईं सब कुछ मिलजाताहै ॥ ५४॥ यह आत्मा (देह)ही प्यारा बन्धुहै व यह आत्माही बड़ा धनहै और यह आत्माही धर्म अर्थ काम और मोक्षकाभी उत्तम अर्जन करनेवालाहै ॥५५॥ जबतक आत्मामेही कल्याणहै तबतक त्रिलोकमें कुशलहै परन्तु अच्छे बुद्धिमान्से वह क्षेमभी यशके साथ चहाजाता है ॥ ५६ ॥ किन्तु सुयश से हीन जो कल्याण है उस कल्याण से मरना श्रेष्ठ है और वह सुयश नीतिमार्ग के प्रवर्त्तन में पुरुषों से पायाजाता है ॥ ५७ ॥ हे नाथ! इस लिये नीति के मार्ग को सुनकर तुम इस स्थान से चलेजावो और जो न जावोगे तो प्रातःकाल मेरे वचन को भलीभांति स्मरणकरोगे ॥ ५८ ॥ इसप्रकार

धर्मार्थकाममोक्षाणामयमात्मार्जकःपरः ॥ ५५ ॥ यावदात्मनिक्षेमंतावत्क्षेमंजगत्त्रये ॥ सोपिक्षेमःसुमतिनायशसा सहवाञ्छ्यते ॥ ५६ ॥ यशोहीनन्तुयत्क्षेमंतत्क्षेमान्निधनंवरम् ॥ तद्यशःप्राप्यतेपुम्भिर्नीतिमार्गप्रवर्तने ॥ ५७॥ अतो नीतिपथंश्रुत्वानाथस्थानादितोव्रज ॥ नगमिष्यसिचेत्प्रातस्ततोमेसंस्मरिष्यसि ॥ ५८ ॥ इत्युक्तोपिसवैपत्न्यापाराव त्यासुमेधया ॥ ननिर्ययौप्रतिस्थानाद्भवित्र्याप्रतिवारितः ॥ ५९ ॥ अथोषसिसमागत्यश्येनेनबलिनातदा ॥ तन्निर्गमा ध्वासंरुद्धःकिञ्चिद्भक्ष्यषतामुने ॥ ६० ॥ दिनानिकतिचित्तत्रस्थित्वाश्येनोमहामतिः ॥ पारावतमुवाचेदन्धिक्त्वांपौरु षवर्जितम् ॥ ६१ ॥ किंवायुध्यस्वदुर्बुद्धेकिंवानिर्याहिमेगिरा ॥ क्षुधाक्षीणोमृतःपश्चान्निरयंयास्यसिध्रुवम् ॥ ६२ ॥ द्वौभ वन्तावहश्चैकश्चलौजयपराजयौ॥ स्थानार्थंयुध्यतःसत्त्वात्स्वर्गोवादुर्गमेववा ॥ ६३ ॥ पुरुषार्थंसमालम्ब्ययेयतन्तेमहा

अच्छी बुद्धिवाली अपनी स्त्री कपोती से कहा हुआ भी वह भाविनी महामायासे प्रतिवारित होकर सामनेवाले स्थान से न निकला ॥ ५९ ॥ हे मुने ! अनन्तर उस समय उषःकाल याने चार पांच दण्ड रात रहगये समय में भलीभांति आकर कुछ भोजनवाले उस बलवान् बाज ने उस कपोत के निकलने की गलीको बहुतही रोंक लिया ॥ ६० ॥ और वहां कुछदिनोंतक टिककर बड़े बुद्धिमान् बाजने कपोत से कहा कि पौरुषसे हीन जो तू है उसको धिक्कार है ॥ ६१ ॥ हे दुर्बुद्धे ! तुम कितो युद्धकरो या कि मेरे वचन से निकलजावो क्योंकि भूंखसे क्षीणहोकर पीछे मरेहुये तुम निश्चय से नरक को जावोगे ॥ ६२ ॥ आप दो जने हैं और मैं एकहूं और जीत व हार चञ्चल हैं इससे स्थान के अर्थ सतोगुणसे युद्ध करतेहुये का याकि स्वर्ग याकि दुर्ग मिलताहै ॥ ६३ ॥ जेकि बड़ी बुद्धिवाले लोग पुरुषार्थ को आश्रय कर यत्न करते हैं

उनके सत्त्वगुण से प्रेरित विधिही सहायता को करे है ॥ ६४ ॥ इसभांति बाजसे कहा व स्त्रीसेभी उत्साह करायाहुआ वह कपोत पक्षी अपने दुर्ग के द्वारको आश्रित होकर याने वहां टिककर उस बाजसे युद्ध करनेलगा ॥ ६५ ॥ अनन्तर बलवान् बाजने उस भूंखे और प्यासेको दृढ़ पांवसे पकड़लिया और चोंचसे उस पक्षिणीकोभी शीघ्रही धरलिया ॥ ६६ ॥ और उन दोनोंको लेकर व अन्य पक्षियोंसे हीन भोजनकरने के योग्य स्थानको विचारताहुआ वह बाज शीघ्रही आकाशमें उड़गया ॥ ६७ ॥ अनन्तर वहां सुबुद्धिवाली स्त्री से कपोत कहागया कि हे नाथ ! तुमने यह स्त्री है ऐसी बुद्धिसे मेरे वचनको अनादर किया ॥ ६८ ॥ इससे इस अवस्थाको प्राप्तहो मैं क्या

धियः ॥ विधिरेवहिसाहाय्यंकुर्यात्तत्सत्त्वचोदितः ॥ ६४ ॥ इत्थंसश्येनसंप्रोक्तःपत्न्याप्युत्साहितःखगः ॥ अयुध्यत्तेन श्येनेनस्वदुर्गद्वारमाश्रितः ॥ ६५ ॥ क्षुधितस्तृषितःसोथश्येनेनबलिनाधृतः ॥ चरणेनदृढेनाशुचञ्च्वासापिधृताखगी ॥ ६६ ॥ तावादायोड्डयाञ्चक्रेश्येनोव्योमनिसत्वरम् ॥ चिन्तयन्भक्षणस्थानमन्यपक्षिविवर्जितम् ॥ ६७ ॥ अथपत्न्या कलरवःप्रोक्तस्तत्रसुमेधया ॥ वचोवमानितंनाथत्वयामेस्त्रीतिबुद्धितः ॥ ६८ ॥ अतोऽवस्थामिमाम्प्राप्तःकिंकुर्यामबला यतः ॥ अधुनापिवचश्चैकङ्करोषियदिमेप्रिय ॥ ६९ ॥ तदाहितन्तेवक्ष्यामिकुरुचैवाविचारितम् ॥ ममैकवाक्यकरणा त्स्त्रीजितोनभविष्यसि ॥ ७० ॥ यावदास्यगतास्म्यस्ययावत्स्वस्थोनभूमिगः ॥ तावदात्मविमुक्त्यैत्वमरेःपादंदृढन्द श ॥ ७१ ॥ इतिपत्नीवचःश्रुत्वातथासकृतवान्खगः ॥ सपीडितोदृढंपादेश्येनश्चीत्कृतवान्बहु ॥ ७२ ॥ तेनचीत्करणेना थमुक्तासामुखसम्पुटात् ॥ पादांगुलिश्लथत्वेनसोपिपारावतोऽपतत् ॥ ७३ ॥ विपद्यपिचनप्राज्ञैःसन्त्याज्यःक्वचिदुद्य

करूं जिससे अबलाहूं व हे प्यारे ! अबभी जो मेरे एक वचनको करोगे ॥ ६९ ॥ तो मैं तुम्हारे हितको कहूंगी कि तुम उसको विनाविचारे ही करो किन्तु मेरे एक वचन के करने से तुम स्त्रीजित न होवोगे ॥ ७० ॥ जबतक मैं इसके मुखमें गतहूं और जबतक भूमिमें प्राप्तहोकर यह स्वस्थ नहीं है तबतक तुम अपने छूटने के लिये इसके पांवको दृढ़तासे डसो ॥ ७१ ॥ इसप्रकार स्त्रीका वचन सुनकर उसपक्षीने वैसेहीकिया और चंगुलमें दृढ़पीड़ितहुये उस बाजने बहुतही चीं चीं शब्दकिया ॥ ७२ ॥ उस चीत्कार करने से वह कपोती उसके मुखसम्पुट से छूटगई अनन्तर पांवोंकी अंगुलियों के शिथिल होजानेसे वह कपोतभी गिरपड़ा ॥ ७३ ॥ और इसलिये विपत्ति

मेंभी बुद्धिमानों को उद्यम कहीं न त्यागना चाहिये क्योंकि कहां उसका चंचुपुट और कहां उसके पावँका पीड़ना ॥ ७४ ॥ और कहां वैसे हुये शत्रुसे उन दोनों का छूटजाना यह अद्भुतहै जिससे उद्यमवाले दुर्बलमेंभी भाग्य फलको देवैहै ॥ ७५ ॥ उस लिये उद्यम भाग्यानुसार से सदैव फलता है और इस कारण बुद्धिमान् लोग विपत्तिमें भी उद्यमकी प्रशंसा करते हैं ॥ ७६ ॥ अनन्तर वे दोनों कालके योग से सरयू के किनारे मुक्तिपुरी अयोध्या में मरगये और उनमें से एक विद्याधर हुआ ॥ ७७ ॥ वह अयोध्यापुरी कि जहां मरेहुये जन्तुओंको काशी की प्राप्ति निश्चयसे होवे है उसमें मन्दारदामका पुत्र नामसे परिमलालय ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ ७८ ॥ जोकि

मः ॥ क्वचचञ्चुपुटस्तस्यक्वचतत्पादपीडनम् ॥ ७४ ॥ क्वचद्वयोस्तथाभूतादरेर्मोक्षणमद्भुतम् ॥ दुर्बलेप्युद्यमवतिफलं भाग्यंयतोऽर्पयेत् ॥ ७५ ॥ तस्माद्भाग्यानुसारेणफलत्येवसदोद्यमः ॥ प्रशंसन्त्युद्यमञ्चातोविपद्यपिमनीषिणः ॥ ७६ ॥ अथतौकालयोगेनविपन्नौसरयूतटे ॥ मुक्तिपुर्यामयोध्यायामेकोविद्याधरोऽभवत् ॥ ७७ ॥ मृतानांयत्रजन्तूनांकाशीप्राप्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ मन्दारदामतनयोनाम्नापरिमलालयः ॥ ७८ ॥ अनेकविद्यानिलयःकलाकौशलभाजनम् ॥ कौमारंवयआसाद्यशिवभक्तिपरोभवत् ॥ ७९ ॥ नियमञ्चातिजग्राहविजितेन्द्रियमानसः ॥ एकपत्नीव्रतंनित्यञ्चरिष्यामीतिनिश्चितम् ॥ ८० ॥ परयोषित्समासक्तिरायुःकीर्तिम्बलंसुखम् ॥ हरेत्स्वर्गगतिञ्चापितस्मात्तांवर्जयेत्सुधीः ॥ ८१ ॥ अपरञ्चापिनियमंसशुचिष्मान्समाददे ॥ गतजन्मान्तराभ्यासात्त्रिलोचनसमाश्रयात् ॥ ८२ ॥ समस्तपुण्यनिलयंसमस्तार्थप्रकाशकम् ॥ समस्तकामजनकंपरानन्दैककारणम् ॥ ८३ ॥ यावच्छरीरमरुजंयावन्नेन्द्रियविप्लवः ॥ तावत्त्रिलोच

अनेक विद्याओं का स्थान व कलाओंकी कुशलता का पात्रथा वह कुमार अवस्था को प्राप्तहोकर शिवजी की भक्तिमें तत्परहुआ ॥ ७९ ॥ और इन्द्रिय व मनको जीते हुये उसने नियमको ग्रहण किया कि मैं एकस्त्रीव्रतको नित्यही करूंगा ऐसा निश्चित है ॥ ८० ॥ क्योंकि परस्त्री में भलीभांति आसक्तहोना आयु कीर्त्ति बल सुख और स्वर्गगमन को भी हरै है उस लिये सुबुद्धिमान् मनुष्य उसको बरावै है ॥ ८१ ॥ और उस शुद्धांतःकरणवालेने बीतेहुये जन्मान्तरके अभ्यास व त्रिलोचन के समाश्रित होने से अन्यभी नियमको भलीभांति लिया कि ॥ ८२ ॥ सब पुण्योंका स्थान व सब अर्थोंका प्रकाशक व सब अभिलाषों का उपजानेवाला और उत्तम आनंद

का एक कारण ॥ ८३ ॥ शरीर जबतक नीरोग है व जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीं है तबतक काशी में त्रिलोचनको न पूजकर याने उनको पूजे बिना अणु- मात्र अर्थात् थोड़ी भी किसी चीजको न खाऊंगा ॥ ८४ ॥ इस प्रकार बड़े यत्नवाला मंदारदामका पुत्र वह परिमलालय काशीमें त्रिलोचन को देखने के लिये नित्यही भलीभांति आवैहै याने आताथा ॥ ८५ ॥ और वह कपोतीभी पाताललोक के बीच नागोंके राजा रत्नदीप के घरमें रत्नावली ऐसे नाम से उत्पन्नहुई ॥ ८६ ॥ व वह रत्नदीप नागकी कन्या सब नागकन्याओं के मध्यमें रूप शील कला और गुणोंसे एकही रत्नभूत हुई ॥ ८७ ॥ व उसकी दो सखियां हुई उनमें से एक नाम

नक्काश्यामनर्च्याश्नामिनाएवपि ॥ ८४ ॥ इत्थंमान्दारदामिःसनित्यंपरिमलालयः ॥ काश्यांत्रिविष्टपन्द्रष्टुं समाग च्छेत्प्रयत्नवान् ॥ ८५ ॥ पारावत्यपिसाजाता रत्नदीपस्यमन्दिरे ॥ नागराजस्यपाताले नाम्नारत्नावलीतिच॥ ८६ ॥ सम स्तनागकन्यानां रूपशीलकलागुणैः ॥ एकैवरत्नभूतासीद्रत्नदीपोरगात्मजा ॥ ८७ ॥ तस्याःसखीद्वयंचासीदेकाना म्नाप्रभावती ॥ कलावतीतथान्याच नित्यंतदनुगेउभे ॥ ८८ ॥ स्वदेहादनपायिन्यौ छायाकान्तीयथातथा ॥ तेद्वेस ख्यावभूतांहि रत्नावल्याघटोद्भव ॥ ८९ ॥ सातुबाल्येऽव्यतिक्रान्ते किञ्चिदुद्भिन्नयौवना ॥ शिवभक्तंस्वपितरं दृष्ट्वा नियममग्रहीत्॥ ९० ॥ पितस्त्रिलोचनंकाश्यामर्चयित्वादिनेदिने ॥ आभ्यांसखीभ्यांसहिता मौनंत्यक्ष्यामिनान्यथा ॥ ९१ ॥ एवंनागकुमारीसा सखीद्वयसमन्विता ॥ त्रिलोचनंसमभ्यर्च्य गृहानहरहोव्रजेत् ॥ ९२ ॥ दिनेदिनेसाप्रत्यग्रैः कु

से प्रभावती और वैसेही अन्य कलावती है ये दोनों नित्यही उसकी अनुगामिनी थीं ॥ ८८ ॥ हे अगस्त्यजी ! जैसे छाया (परछाहीं) और छवि अपनी देहसे बिलग जानेवाली नहीं हैं वैसेही रत्नावलीकी वे दोनों सखियांहुई याने सदैव उसके संग में रहती थीं ॥ ८९ ॥ और बालापन के बीतजातेही कुछेक अंकुरित यौवनवाली उस कन्याने अपने पिताको शिवभक्त देखकर नियम को ग्रहण किया ॥ ९० ॥ कि हे पितः ! इन सखियों समेत मैं दिनोदिन काशीमें त्रिलोचन को भलीभांति पूज कर मौनव्रत त्यागूंगी अन्यथा नहीं ॥ ९१ ॥ इस प्रकार दो सखियों समेत वह नागकुमारी दिनोदिन त्रिलोचनको भलीभांति पूजकर घरोंको जावैहै ॥ ९२ ॥ और

वह दिनदिनमें वाञ्छित या प्यारे सुगन्धवारे फूलेहुये फूलोंसे अच्छी विचित्र मालाओंको गूंधकर समर्थ शिवजीको पूजै है ॥ ९३ ॥ व तीनों नागकुमारियां भी गांधारराग से मनोहरगीत को गातीहैं और तीनोंही रासमण्डल के भेदसे नृत्य को करती हैं ॥ ९४ ॥ व लय और तालोंमें परम प्रवीन व आनन्द से संयुत वे तीनों भी परमेश्वर के समीप में वीणा, वेणु और मृदंगको बजाती हैं ॥ ९५ ॥ इसभांति तीनों नागकन्यायें विचित्र सुगन्ध संयुत माला संमार्जन और चन्दनादि विलेपनों से शिवजीको पूजती है ॥ ९६ ॥ एक समय वैशाखमास की तीजमें उपासी हुई वे नृत्य गीत और कथादिको से रात्रिमें जागरण को कर ॥ ९७ ॥ प्रातःकाल चौथिको

सुमैरिष्टगन्धिभिः ॥ सुविचित्राणिमाल्यानि परिगुम्फ्यार्चयेद्विभुम् ॥ ९३ ॥ तिस्रोपिगीतंगायन्ति ललद्गान्धारसुन्दरम् ॥ रासमण्डलभेदेन लास्यंतिस्रोपिकुर्वते ॥ ९४ ॥ वीणावेणुमृदङ्गांश्च लयतालविचक्षणाः ॥ वादयन्तिमुदायुक्तास्तिस्रोपीश्वरसन्निधौ ॥ ९५ ॥ इत्थमाराधयन्तीशं तिस्रोनागकुमारिकाः ॥ विचित्रगन्धमालाभिः सम्मार्जनविलेपनैः ॥ ९६ ॥ एकदामाधवेमासि तृतीयायामुपोषिताः ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा नृत्यगीतकथादिभिः ॥ ९७ ॥ प्रातश्चतुर्थीस्नात्वाथ तीर्थेपैलिपिलेशुभे ॥ त्रिलोचनंसमभ्यर्च्याथप्रसुप्तारङ्गमण्डपे ॥ ९८ ॥ सुप्तासुतासुबालासुत्रिनेत्रःशशिभूषणः ॥ शुद्धकर्पूरगौराङ्गो जटामुकुटमण्डलः ॥ ९९ ॥ तमालनीलसुग्रीवःस्फुरत्फणिविभूषणः ॥ वामार्धविलसच्छक्तिर्नागयज्ञोपवीतवान् ॥ १०० ॥ तस्मादेवविनिष्क्रम्यलिङ्गात्पन्नगमेखलात् ॥ उवाचचततोबाला विभुरुत्तिष्ठतेतिसः ॥ १ ॥ उत्थायताविनिर्माज्र्य लोचनेश्रुतिसङ्गते ॥ अङ्गमोटनवत्यश्च जृम्भाभिःक्वणिताननाः ॥ २ ॥ यावत्पश्य

मंगलमय पिलिपिलातीर्थ में स्नानकर अनन्तर त्रिलोचन को भलीभांति पूजकर उसके बाद रंगमन्दिर में बहुतही सोयगई ॥ ९८ ॥ और उन कन्याओं के सोईहुई होतेही त्रिलोचनजी जोकि चन्द्रभूषण व शुद्ध कपूरके समान गौराङ्ग व जटाओंसे रचित मुकुट मण्डलवाले ॥ ९९ ॥ व तमालसे सुनीलकण्ठ व स्फुरतेहुये सर्पोंसे भूषित व बायें आधे भागमें सोहतीहुई शक्तिवाले व नागयज्ञोपवीतवाले ॥१००॥ वे विभुजी उसी पन्नगमेखललिङ्गसे निकलकर ऐसा बोले कि हे कन्याओ ! तुम सब उठो तदनन्तर ॥ १ ॥ जमुहाईसे शब्दितमुखी व अङ्ग चलानेवाली वे उठकर और कानोंमें मिलीहुई आंखोंको विशुद्धकर ॥ २ ॥ व आदरसे व्याप्त अन्तःकरणवाली होकर

जबतक आगे देखती हैं तबतक उन्होंने असम्भवित आनेवाले त्रिलोचन महादेवजीको देखा ॥ ३ ॥ अनन्तर लक्षणों से ईश्वरको जानकर प्रसन्नमुखी व संनिरुद्ध गलेवाली उन कुमारियों ने वन्दना किया और अतिगद्गदस्वर से स्तुति किया ॥ ४ ॥ कि हे शम्भो ! जयकरो हे ईशान ! जयकरो हे सर्वग, सर्वदायक ! तुम जय करो हे त्रिपुरविनाशिन् ! जयकरो हे अन्धकनिपूदन ! जयकरो ॥ ५ ॥ हे जालन्धरसंहारिन् ! जयकरो हे कामगर्वहारिन् ! जयकरो हे त्रैलोक्यजनक ! जयकरो हे त्रैलोक्यवर्धन ! तुम जयकरो ॥ ६ ॥ हे त्रैलोक्यमंदिर ! जयकरो हे त्रैलोक्यवन्दित ! जयकरो हे भक्तजनों के अधीन ! जयकरो हे प्रमथ (गण) नायक ! तुम

न्तिपुरतः संभ्रमापन्नमानसाः ॥ अतर्किंतागमस्तावत्ताभिर्दृष्टस्त्रिलोचनः ॥ ३ ॥ ववन्दुरथताबाला ज्ञात्वालक्ष्मभिरीश्वरम् ॥ तुष्टुवुश्चप्रहृष्टास्याः सन्नकण्ठ्योतिगद्गदम् ॥ ४॥ जयशम्भोजयेशान जयसर्वगसर्वद ॥ जयत्रिपुरसंहर्तर्जयान्धकनिषूदन ॥ ५ ॥ जयजालन्धरहर जयकन्दर्पदर्पहृत ॥ जयत्रैलोक्यजनक जयत्रैलोक्यवर्धन ॥ ६ ॥ जयत्रैलोक्यनिलयजयत्रैलोक्यवन्दित ॥ जयभक्तजनाधीन जयप्रमथनायक ॥ ७॥ जयत्रिपथगापाथःप्रक्षालितजटातट ॥ जयचन्द्रकलाज्योतिर्विद्योतितजगत्त्रय ॥ ८ ॥ जयसर्पफणारत्नप्रभाभासितविग्रह ॥ जयाद्रिराजतनयातपःक्रीतार्धदेहक ॥ ६ ॥ जयश्मशाननिलय जयवाराणसीप्रिय ॥ जयानन्दवनाध्यासिप्राणिनिर्वाणदायक ॥ १० ॥ जयविश्वपतेशर्व शर्वरीपरिवर्जित ॥ जनन्रृत्यप्रियेशोग्र जयगीतविशारद ॥ ११ ॥ जयप्रणवसद्वास जयधाममहानिधे ॥ जयशूलिन्वि

जयकरो ॥७॥ हे गंगाजलसे प्रक्षालित जटातट ! जयकरो हे चन्द्रकलाकी ज्योतिसे त्रिलोकप्रकाशक ! तुम जयकरो ॥ ८ ॥ हे सर्पफणाओंके रत्नोंकी प्रभाओंसे दीपित देह ! जयकरो हे पर्वतराजकुमारी (पार्वती) की तपस्या से मोल लियेगये हुये आधे अंगवाले ! तुम जयकरो ॥ ६ ॥ हे श्मशानवासिन् ! जयकरो हे काशीप्रिय ! जयकरो हे काशीवासी प्राणियो के मुक्तिदायक ! तुम जयकरो ॥ १० ॥ हे रात्रिसे वर्जित, प्रलयकारिन्, विश्वनाथ ! जयकरो हे नृत्यप्रिय, उग्ररूप, ईश्वर ! जयकरो हे गीतोंके परमपण्डित तुम जयकरो ॥११॥ हे ॐकाररूप, सन्तोंके आश्रय ! जय करो हे तेजोंके महानिधान ! जयकरो हे विरूपनेत्रत्रिशूलधारिन् ! जयकरो हे

प्रणत जनोंके सर्वदायक ! तुम जयकरो ॥ १२ ॥ हे नाथ ! सब विधियों के जाननेवालेभी ब्रह्माजी तुम्हारी स्तुति करने के लिये पण्डित नहीं है व बृहस्पति के भी वचन तुम्हारी स्तुतिमें सबओरसे कुण्ठितहैं ॥ १३ ॥ हे सर्वज्ञ, स्वामिन् ! वेद यहां तुमको यथार्थ से नहीं जानते हैं व अनन्त और आदिसे रहित तुमको मनभी विचारके विषय नहीं करता है ॥ १४ ॥ हे त्रिलोचन ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो और हे त्रिविष्टप ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥१५॥ ऐसा कहकर कुमारियों ने भूमिमें दण्डवत् प्रणाम किया अनन्तर उन कन्याओं को उठाकर चन्द्रभूषण

रूपाक्ष जयप्रणतसर्वद ॥ १२ ॥ विधिःसर्वविधिज्ञोपि नत्वांस्तोतुंविचक्षणः ॥ वाचोवाचस्पतेर्नाथत्वत्स्तुतौपरिकुण्ठिताः ॥ १३ ॥ विदन्तिवेदाःसर्वज्ञ नत्वांनाथयथार्थतः ॥ मनतीहमनोनत्वामनन्तंचादिवर्जितम् ॥ १४ ॥ नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यंनमोनमः ॥ त्रिलोचननमस्तुभ्यं त्रिविष्टपनमोस्तुते ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वादण्डवद्भूमौप्रणिपेतुःकुमारिकाः ॥ अथोत्थाप्यकुमारीस्ताः प्रोवाचशशिभूषणः ॥१६॥सुतोमन्दारदाम्नश्च नाम्नापरिमलालयः॥ पतिर्विद्याधरवरो भवतीनांभविष्यति ॥ १७ ॥ चिरंविद्याधरेलोके भोगान्भुक्त्वासमन्ततः ॥ ततोनिर्वेदमापन्नाः काशीसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ १८ ॥ यूयंतिस्रोपिमेभक्ताः सचविद्याधरोयुवा ॥ चत्वारोप्येतएवात्र प्रान्तेमोक्षमवाप्स्यथ ॥ १९ ॥ जन्मान्तरेपिमेसेवा भवतीभिश्चतेनच॥ विहितातेनवोजन्म निर्मलंभक्तिभावितम् ॥ २० ॥ एतच्चभवतीस्तोत्रं यःपठिष्यतिमेपुरः ॥ तस्यकामंप्रदास्यामि भवतीनामिवस्फुटम्॥२१॥त्यजेत्त्वपाकृतंपापंशुचिःप्रातःपठन्नरः॥ दिवाकृतमलंहन्ति

महादेवजीने कहा॥ १६ ॥ कि मन्दारदामका पुत्र व विद्याधरोंमें श्रेष्ठ परिमलालय नामक आप सबों का पतिहोवेगा ॥ १७ ॥ व विद्याधर लोकमें बहुत कालतक सब ओरसे भोगोंको भोगकर तदनन्तर वैराग्य को प्राप्तहुई तुमलोग काशीकी सिद्धि को पावोगी ॥ १८ ॥ व मेरी भक्ता तुम तीनोंभी और वह युवाविद्याधर यही चारो भी तुम लोग यहां मरणमें मुक्तिको प्राप्त होवोगी ॥१९॥ जन्मान्तरमें भी आप लोग और उसनेभी मेरी सेवा किया उस लिये भक्तिसे युक्त तुम्हारा जन्म निर्मलहै ॥ २० ॥ और जो मेरे आगे आप के इस स्तोत्र को पढ़ेगा उसको मैं आपलोगों की नाईं स्फुट कामको दूंगा ॥ २१ ॥ व प्रातःकाल इसको पढ़ताहुआ पवित्र मनुष्य

रात्रिमें कियेहुये पापको त्याग देवेहै और स्पष्टहै कि सन्ध्यासमय में पढ़ने से दिन में कियेहुये मलको नष्ट करता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार देवोंके स्वामी (शिव) के कहतेही दोनों हाथ जोड़ेहुईं आनन्दितमनवाली उन कन्याओं ने प्रणामकर परमेश्वर से कहा ॥ २३ ॥ नागकुमारियां बोलीं कि, हे नाथ, करुणाकर, शङ्कर ! हम पूंछती है उसको आप कहो कि हम चारोंने अन्य जन्म में किस प्रकार से आपकी सेवा किया है ॥ २४ ॥ हे कृपानिधान, जगत्कारण, शिवजी ! तुम उस पुण्यात्मा के भी व हमारेभी पूर्वजन्म के वृत्तान्त को कहो और कृपाको करो ॥ २५ ॥ इसभांति विनय से बालिकाओं के वचन को सुनकर ईश्वर ने उनके और उसकेसी

सायंपठनतःस्फुटम् ॥ २२ ॥ इत्युक्तवतिदेवेशे ताःकन्याहृष्टमानसाः ॥ प्रणम्यप्रोचुरीशानं प्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ २३ ॥ नागकन्याऊचुः ॥ पृच्छामोब्रूहिनोनाथ करुणाकरशङ्कर ॥ जन्मान्तरेकथंसेवाचतुर्भिर्भवतःकृता ॥ २४ ॥ भवप्राग्भव वृत्तान्तं तस्यापिसुकृतात्मनः ॥ अस्माकमपिचाख्याहिकृपांकुरुकृपानिधे ॥ २५ ॥ इति श्रुत्वाप्रणयतोबालोदीरितमीशिता ॥ प्रोवाचतासांतस्यापि भवान्तरविचेष्टितम् ॥ २६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुध्वंनागतनयास्तिस्रोपिहिसमाहिताः ॥ प्राग्भवंभवतीनांच तस्यापिकथयाम्यहम् ॥ २७ ॥ एषारत्नावलीपूर्वमासीत्पारावतीखगी ॥ सचविद्याधरवरः पतिरस्याःखगोभवत् ॥ २८ ॥ प्रासादेत्रममैताभ्यामुषितंसुचिरंसुखम् ॥ रजःप्रासादसंलग्नं नुन्नंपक्षानिलैःपुनः ॥ २९ ॥ उपरिष्टादधस्ताच्च कृताबह्व्यःप्रदक्षिणाः ॥ व्योम्नासंचरमाणाभ्यां सञ्चरद्भ्यांममाजिरे ॥ ३० ॥ स्नातंचतुर्नदेतीर्थे पीतंतत्राम्बुचासकृत् ॥ आभ्यांकलरवाभ्यांच कृतःकलरवोमुदे ॥ ३१ ॥ एताभ्यांस्थिरचेतोभ्यां मुदिताभ्यामतीवहि ॥ दृष्टा

अन्य जन्मके कर्मको कहा ॥२६॥ शिवजी बोले कि. हे नागकुमारियो ! सावधान हुई तीनोंभी तुम सुनो मैं आपके और उसके भी पूर्वजन्मको कहताहूं ॥ २७ ॥ कि यह रत्नावली आगे कपोती पक्षिणी हुईथी और वह विद्याधर वर इसका पति पक्षी हुआथा ॥२८॥ इन दोनोंने मेरे इस मन्दिरमे बहुत कालतक सुखसे वास किया फिर शिवालय में संलग्नहुई धूरिको पक्षोंकी बयार से दूर किया ॥२९॥ व आकाशमें उडते और मेरे आंगन मे विचरते या चुनते हुये इन दोनो ने ऊपर और नीचे से भी बहुती प्रदक्षिणाओंको किया ॥ ३० ॥ व चतुर्नद (पिलिपिला) तीर्थमें स्नानकिया और उसमे बारबार पानी पिया व इन कपोतोंने मेरे आनन्दके लिये मधुर शब्दको

किया ॥ ३१॥ व अचल चित्तवाले अत्यन्त आनन्दित इन्होंने यहां मेरे भक्तों से कियेहुये कौतुकोंको भी देखा ॥३२॥ और इन्होंने बहुतसी मेरी मंगल आरतियोंको देखा व दोनों कानोंसे मेरे नामोंके अक्षर अमृतको पिया ॥ ३३ ॥ और तिर्य्यग्योनि के प्रभावसे ये मेरे समीपमे न मरे परन्तु निश्चय से काशीकी प्राप्ति करनेवाली अयोध्या पुरी में इनसे मरागया ॥ ३४ ॥ और अयोध्या में मरने से यह रत्नदीप नागकी कन्याहुई व इसका पति वह कपोत विद्याधरका पुत्र हुआहै ॥ ३५ ॥ और यह प्रभावती नागी इस जन्ममें नागराज पद्मीकी पुत्रीहुईहै इसके पूर्वजन्मको तुम सबोंसे कहताहूं ॥ ३६॥ व यह कलावती सर्प्पोंके इन्द्र त्रिशिख की कन्याहै इसकेभी वृत्तान्तको

निकौतुकान्यत्र ममभक्तैःकृतानिवै ॥ ३२ ॥ अमूभ्यांबहुशोदृष्टाममङ्गलदीपिकाः ॥ पीतंश्रुतिपुटाभ्यांच ममनामाक्षरामृतम् ॥ ३३ ॥ तिर्यग्योनिप्रभावेण नमृतौममसन्निधौ ॥ मृतंपुर्यामयोध्यायां काशीप्राप्तिकृतिध्रुवम् ॥ ३४ ॥ अयोध्यानिधनादेषा रत्नदीपसुताभवत् ॥ पतिःपारावतोऽस्याः स जातोविद्याधराङ्गजः ॥ ३५ ॥ एषाप्रभावतीनागीनागराजस्यपद्मिनः ॥ इहजन्मनिकन्यासीत्पूर्वंजन्मब्रवीमिवः ॥ ३६ ॥ त्रिशिखस्योरगेन्द्रस्य सुताचेयंकलावती ॥ एतस्याअपिवृत्तान्तं निशामयतवच्म्यहम् ॥ ३७ ॥ भवान्तरेतृतीयेऽतः कन्येचारायणस्यह ॥ आस्तांमहर्षेःशीलाढ्ये प्रेमवत्यौपरस्परम् ॥ ३८ ॥ पित्राचारायणेनापिताभ्यांसम्प्रेरितेनते ॥ आमुष्यायणपुत्राय दत्तेनारायणायहि ॥ ३९ ॥ अप्राप्तयौवनःसोथ समिदाहरणायवै ॥ गतोविधिवशाद्दष्टो दन्दशूकेनकानने ॥ ४० ॥ भवानीगौतमीनाम्न्यौतेतुचारायणाङ्गजे ॥ वैधव्यदुःखमापन्ने दैन्यग्रस्तेबभूवतुः ॥ ४१ ॥ अतएवप्रयत्नेन परिणेताविवर्जयेत् ॥ देवता

सुनो मैं कहताहूं ॥ ३७॥ कि इस वर्तमानसे तीसरे जन्मान्तरमें ये चारायण महर्षिकी कन्यायेंहुई जोकि शील (सद्वृत्ति) से सम्पन्न और परस्पर प्रीतिवालीथीं ॥ ३८॥ उनसे संप्रेरितहुये उनके पिता चारायणसेभी वे आमुष्यायणके पुत्र नारायणकेही लिये दीगईं ॥ ३९ ॥ अनन्तर ईंधन आननेकेलिये वनमें गयेहुये अप्राप्त यौवनवाले उसको विधिवशसे सर्पनेही काटखाया ॥४०॥ और वैधव्य दुःखसे व्याप्तहुई भवानी व गौतमी नाम्नी वे चारायणकी कन्यायें दीनतासे ग्रस्तहोगईं ॥४१॥ इसमेंही अच्छी

बुद्धिवाला व्याहकर्त्ता व्याहमें देवता और नदी नामवाली कन्याको बड़े यत्नसे सबओर वरावे ॥ ४२ ॥ उसके बाद वे दोनों दैवयोगसे किसी ऋषिके बडेविचित्रआश्रममें विना दियेहुये केला फलोंको मोहसे लेलिया तब ॥ ४३ ॥ मासभर उपवासादि व्रतोंको कर ब्राह्मणकी पुत्रियां कालसे मरणको प्राप्तहोकर वानरीहुईं ॥४४॥ फल चुराने के विपाक (फल)से उनका वानरीभाव हुआ और शील रक्षणरूप धर्मसे उन्होंने काशीमें जन्मको पाया ॥४५॥ व सर्पसे डसागयाभी पिताकी सेवारूपवाला वह नारायण ब्राह्मण काशी मे कपोतहुआ ॥ ४६ ॥ इसप्रकार यह जन्मान्तरमें भी इनका पति हुआथा और इससमयभी आप तीनोंका पति होनेवालाहै ॥ ४७ ॥ इस शिवालयके पार्श्व (पास)

सरिदाह्वानां कन्यांपाणिग्रहेसुधीः ॥ ४२ ॥ अथर्पेःकस्यचिद्दैवादाश्रमेपरमाद्भुते ॥ रम्भाफलान्यदत्तानि मोहाज्ज गृहतुस्तदा ॥ ४३ ॥ कृत्वामासोपवासादिव्रतानिब्राह्मणाङ्गजे ॥ अवाप्यनिधनंकालाच्छाखामृग्यौबभूवतुः ॥ ४४ ॥ फलचौर्यविपाकेनवानरीत्वन्तयोरभूत् ॥ शीलरक्षणधर्मेणकाश्यांजनिमवापतुः ॥ ४५ ॥ सचनारायणोविप्रःपितृशुश्रूष णव्रतः ॥ दष्टोपिदन्दशूकेनकाश्याम्पारावतोभवत् ॥ ४६ ॥ एवम्भवान्तरेचासीदेतयोःपतिरेषकः ॥ तिसृणाम्भवतीनाञ्च भावीभर्ताधुनापिहि ॥ ४७ ॥ प्रासादस्यास्यपार्श्वेतुन्यग्रोधस्तुमहानभूत् ॥ तस्मिञ्शाखिनिशाखाढ्येशाखामृग्यौबभू वतुः ॥ ४८ ॥ चतुःस्रोतस्विनीतीर्थेक्रीडयाचममज्जतुः ॥ पपतुश्चापिपानीयंतस्मिंस्तीर्थेतृषातुरे ॥ ४९ ॥ जातिस्वभा वचापल्यात्क्रीडन्त्यौचप्रदक्षिणम् ॥ चक्रतुर्बहुकृत्वश्चलिङ्गंददृशतुर्बहु ॥ ५० ॥ विचरन्त्याविितिस्वैरंतत्रन्यग्रोधसन्नि धौ ॥ केनचिद्योगिवेषेणपाशेनचनियन्त्रिते ॥ ५१ ॥ भिक्षार्थंशिक्षितेतेनतदुत्प्लुत्यादिनर्तनम् ॥ अथतेकापिमर्कट्यौ

में जो बडा भारी वट वृक्ष हुआथा और शाखाओं से व्याप्त (संयुत) उस वृक्षमें वे वानरीहुईथीं ॥ ४८ ॥ व खेल से पिलिपिलातीर्थ में नहाती थीं और प्यास से आतुर होकर उस तीर्थ में पानी पीतीथीं ॥ ४९ ॥ व जाति के स्वभावकी चञ्चलता से क्रीडा करती हुई उन्होंने बहुत बार प्रदक्षिणा किया और लिंगको बहुत दर्शन किया ॥ ५० ॥ इसप्रकार वहां वट वृक्षके समीप में अपनी इच्छासे विचरती हुई वे किसी योगी वेषवाले करके पाशसे बांधीगई और उससेही भिक्षा के अर्थ उरा प्रसिद्ध कूदने

आदि नर्त्तन के प्रति सिखाई जाती भईं ॥ ५१ ॥ उसके बाद वे वानरियां कहीं भी कालधर्म के वशमें प्राप्तहुईं याने मरगईं ॥ ५२ ॥ इस भांति काशीवास से उत्पन्न पुण्यसे व त्रिलोचनदेवकी प्रदक्षिणादि रूपिणी अनुसेवा से नागकुमारी उपजी हैं ॥ ५३ ॥ इस समय उस विद्याधर कुमारको पति पाकर व स्वर्ग केसे भोगोंको भोगकर तुम सब काशी मे सुख या मोक्षको प्राप्त होवोगी ॥ ५४ ॥ जो कि शुभ के प्राप्त करनेवाला थोड़ाभी कर्म काशी मे किया गया उसका फल मेरी दया से मोक्ष होता है यह निश्चित और प्रसिद्ध है ॥ ५५ ॥ काशीपुरी सब त्रिलोक से भी श्रेष्ठहै उससे भी ॐकार लिङ्ग श्रेष्ठहै और उससे भी यहां त्रिलोचन लिङ्ग श्रेष्ठहै ॥ ५६ ॥ इस

कालधर्मवशङ्गते ॥ ५२ ॥ काशीवासजपुण्येनत्रैलोचन्यानुसेवया ॥ प्रादक्षिण्यादिरूपिण्याजातेनागसुतेइति ॥ ५३ ॥ अधुनातम्पतिम्प्राप्यविद्याधरकुमारकम् ॥ निर्विश्यस्वर्गभोगांश्चकाश्यांनिर्वृतिमेष्यथ ॥ ५४ ॥ यदल्पमपिवैकाश्यांकृतंकर्मशुभावहम् ॥ तस्यमोक्षःपरीपाकोनिश्चितंमदनुग्रहात् ॥ ५५ ॥ त्रिलोक्याअपिसर्वस्याःश्रेष्ठावाराणसीपुरी ॥ ततोपिलिङ्गमोङ्कारंततोप्यत्रत्रिलोचनम् ॥ ५६ ॥ तिष्ठमानोत्रलिङ्गेहंभक्तमुक्तिंदिशाम्यहम् ॥ ततःसर्वप्रयत्नेनकाश्यांपूज्यस्त्रिलोचनः ॥ ५७ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशःप्रासादान्तरमाविशत् ॥ अवाच्यरूपमासाद्यस्थूलन्त्रिभुवनादपि ॥ ५८ ॥ ताश्चस्वंस्वम्पदम्प्राप्यतद्वृत्तान्तमशेषतः ॥ स्वमातृपुरतश्चोक्त्वाकृतकृत्याइवाभवन् ॥ ५९ ॥ एकदामाधवेमासिमहायात्रासमागता ॥ विद्याधरास्तथानागामिलिताःसपरिच्छदाः ॥ ६० ॥ विरजस्केमहाक्षेत्रेत्रिलोचनसमीपतः ॥ देवस्यवरदानाच्चपृष्ट्वान्योन्यंकुलावलीम् ॥ ६१ ॥ विद्याधरायतानागैःकन्यास्तिस्रोपिकल्पिताः ॥ मन्दारदा

लिङ्ग में टिका हुआ मैं भक्तों को मुक्ति देताहूं उस कारण काशी में सब प्रयत्न से त्रिलोचन पूजनीयहैं ॥ ५७ ॥ ऐसा कहकर देवदेवो के ईश महादेवजी त्रिलोक से भी स्थूल याने व्यापक अकथनीयरूप को प्राप्त होकर शिवालय के भीतर पैठगये ॥ ५८ ॥ और वे कन्यायें अपने अपने घरको जाकर व अपनी माताओं के आगे उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को कहकर कृतकृत्यसी हुईं ॥ ५९ ॥ एक समय वैशाखमासमें महायात्रा भलीभांति आई उसमें सेवकादिकों समेत विद्याधर तथा नागभी मिलित हुये ॥ ६० ॥ व त्रिलोचन के समीप विरजस्क नामक महाक्षेत्र में श्रीमहादेवजी के वरदान से परस्पर कुलकी परम्परा को पूंछकर ॥ ६१ ॥ नागोंने विद्याधर के लिये

उन तीनों कन्याओं को भी कल्पित किया और तीन बहुओं को पाकर मन्दारदामा सन्तुष्टहुआ ॥ ६२ ॥ और रत्नदीप नागेन्द्र व सर्प्पेश्वर पद्मी व नागों का इन्द्र त्रि-शिखभी ये तीनों आनन्दितहुये ॥ ६३ ॥ और शुभ, परिमलालय नामक जामाता (दामाद) को प्राप्तहोकर आनन्दसे अन्योन्य प्रसन्न नेत्रवाले वे स्वजन ॥ ६४ ॥ विवाहोत्सव को कर त्रिलोचनकी अत्यन्त गुरुता को वर्णन करतेहुये अपने अपने घरको गये ॥ ६५ ॥ और वह श्रीमान् विद्याधर नागियों के साथ बहुते सुखको भोग कर अनन्तर काशीको प्राप्त होकर व त्रिलोचन की भलीभांति सेवाकर ॥ ६६ ॥ अच्छे मधुरगीत को गाता हुआ नागकन्याओं सहित पुण्यात्मा अपनाको अतिशय

मासन्तुष्टःप्राप्यतचस्नुषात्रयम् ॥ ६२ ॥ रत्नदीपश्चनागेन्द्रःपद्मीचभुजगेश्वरः ॥ त्रिशिखोपिफणीन्द्रश्चहृष्टाएतेत्रयो पिच ॥ ६३ ॥ जामातरंसमासाद्यशुभम्परिमलालयम् ॥ अन्योन्यंस्वजनास्तेतुमुदाविकसितेक्षणाः ॥ ६४ ॥ विवाहोत्स वमाकल्प्यस्वंस्वम्भुवनमाविशन् ॥ त्रिलोचनस्यलिङ्गस्यवर्णयन्तोतिगौरवम् ॥ ६५ ॥ सचविद्याधरःश्रीमान्नागीभिर्वि पुलंसुखम् ॥ भुक्त्वावाराणसीम्प्राप्यसंसेव्याथत्रिलोचनम् ॥ ६६ ॥ गायन्गीतंसुमधुरंनागीभिःसहितःकृती ॥ आत्मा नञ्चातिसंस्मृत्यमध्येलिङ्गंलयङ्गतः ॥ ६७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ त्रिलोचनस्यमहिमाकलौदेवेनगोपितः ॥ अतोल्पसत्त्वा मनुजानतल्लिङ्गमुपासते ॥ ६८ ॥ त्रिलोचनकथामेतांश्रुत्वापापान्वितोप्यहो ॥ विपाप्माजायतेमर्त्योलभतेचपराङ्ग तिम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेत्रिलोचनप्रभावोनामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ * ॥

पार्वत्युवाच ॥ नमस्तेदेवदेवेशप्रणमत्करुणानिधे ॥ वदकेदारमाहात्म्यंभक्तानामनुकम्पया ॥ १ ॥ तस्मिँल्लिङ्गेमहा

संस्मरण कर लिङ्गके बीचमें लयको प्राप्त होगया ॥ ६७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, कलियुग में त्रिलोचनकी महिमा महादेवजी से गुप्त कीगई है इससे थोड़े सत्त्ववाले मनुष्य उस लिंगकी उपासना नहीं करते हैं ॥ ६८ ॥ आश्चर्य्य है कि पाप समेतभी मनुष्य इस त्रिलोचनकी कथाको सुनकर पापों से हीन होजाता है और उत्तम मोक्ष को भी पाताहै ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेत्रिलोचनप्रभावोनामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सतहत्तर अध्यायमें इत आख्यान सुयुक्त । केदारेश्वरलिंग का शुभमहात्म्य बहु उक्त ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे प्रणामकरतेहुये जनो के करुणानिधान,

देवदेवों के स्वामिन्! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और आप भक्तोंकी दयासे केदार के माहात्म्यको कहो ॥ १ ॥ हे देवों के देव! काशी के बीच उस लिंगमें आपकी अतिशय उत्तम बहुत बड़ी प्रीतिहै और बड़े बुद्धिमान् लोग उस लिंग के भक्त हैं ॥ २ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे अपर्णे (पार्वति)! मैं केदारेश्वरकी भलीभांति कथाको कहूंगा तुम सुनो कि महापापी भी जिसको सुनकर ही क्षणभर में पापों से हीन होजाताहै ॥ ३ ॥ व केदारेश्वर के प्रति जानेके चाही निश्चित मनवाले मनुष्यका जन्म से लगाकर सञ्चित किया हुआ पाप उसही क्षणमें नष्ट होताहै ॥ ४ ॥ और निश्चितहै कि केदार के सामने मनुष्यके घरसे निकलतेही दो जन्मों का बटोरा पाप देहसे

प्रीतिस्तवकाश्यामनुत्तमा ॥ तद्भक्ताश्चजनानित्यंदेवदेवमहाधियः ॥ २ ॥ देवदेवउवाच ॥ शृणुत्वमपर्णेभिधास्यामिकेदारेश्वरसङ्कथाम् ॥ समाकर्ण्यापियाम्पापोप्यपापोजायतेक्षणात् ॥ ३ ॥ केदारंयातुकामस्यपुंसोनिश्चितचेतसः ॥ आजन्मसञ्चितम्पापंतत्क्षणादेवनश्यति ॥ ४ ॥ गृहाद्विनिर्गतेपुंसिकेदारमभिनिश्चितम् ॥ जन्मद्वयार्जितम्पापंशरीरादपिनिर्व्रजेत् ॥ ५ ॥ मध्येमार्गम्प्रपन्नस्यत्रिजन्मजनितन्त्वघम् ॥ देहगेहाद्विनिःसृत्यनिराशंयातिनिःश्वसत् ॥ ६ ॥ सायङ्केदारकेदारकेदारेतित्रिरुच्चरन् ॥ गृहेपिनिवसन्नूनंयात्राफलमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाकेदारशिखरंपीत्वातत्रत्यमम्बु च ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ हरपापह्रदेस्नात्वाकेदारेशम्प्रपूज्यच ॥ कोटिजन्मार्जितैनोभिर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९ ॥ सकृत्प्रणम्यकेदारंहरपापकृतोदकः ॥ स्थाप्यलिङ्गंहृदम्भोजेप्रान्तेमोक्षङ्गमिष्यति ॥ १० ॥

भी निकल जावे है ॥ ५ ॥ व गली के बीचमें प्राप्तहुयेका तीन जन्मोंमें उपजाहुआ पाप निःश्वास लेताहुआ देह और गेहसे निकलकर निराश होकर भागजाताहै ॥ ६ ॥ सायङ्काल मे हे केदार! हे केदार!! हे केदार!!! इसप्रकार तीनबार कहता हुआ घर में भी बसता हुआ मनुष्य निश्चय से यात्राके फल को पावे ॥ ७ ॥ और केदारेश्वर के शिवालय के शिखर को देखकर व वहांके पानी को पीकर सात जन्मों में किये पापों से छूटताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥ व हरपापकुण्ड में स्नानकर और केदारेश्वरको बहुत पूजकर करोड़ जन्मोंके बटोरे पापों से छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ वह हरपापकुण्ड में स्नानादि जलक्रिया करनेवाला एकबार भी

केदारेश्वर के प्रणामकर और हृदयकमल में लिंगको थापकर मरणान्त में मुक्तिको प्राप्त होवेगा ॥ १० ॥ जो कि श्रद्धासे हरपापकुण्डमें श्राद्ध को करेगा वह सातपुरुषों को उद्धार कर मेरेलोकको जावेगा ॥ ११ ॥ हे पार्वति ! पूर्वकाल रथन्तर कल्पमें जो यहां हुआहै उसको तुम्हारे आगे मैं कहताहूं और कान दियेहुई तुम सुनो ॥ १२ ॥ कि एक ब्राह्मण का पुत्र उज्जयिनी से यहां आया जो कि पितासे कियेहुये उपनयन (यज्ञोपवीत) कर्म्मवाला व ब्रह्मचर्य्य व्रतमें स्थितथा ॥ १३ ॥ वह जटामुकुटो से भूषित उन पाशुपत (शैव) ब्राह्मणों से व्याप्तहुई पशुपति की स्थली काशीपुरी को सब ओर से देखकर ॥ १४ ॥ जे कि लिंगोंकी पूजा कियेहुये व विभूति से भूषित

हरपापह्रदेश्राद्धंश्रद्धयायःकरिष्यति ॥ उद्धृत्यसप्तपुरुषान्समेलोकङ्गमिष्यति ॥ ११ ॥ पुराराथन्तरेकल्पेयदभूदत्रत च्छृणु ॥ अपर्णेदत्तकर्णात्वंवर्णयामितवाग्रतः ॥ १२ ॥ एकोब्राह्मणदायादउज्जयिन्याइहागतः ॥ कृतोपनयनःपित्राब्र ह्मचर्यव्रतेस्थितः ॥ १३ ॥ स्थलीम्पाशुपतीङ्काशींसविलोक्यसमन्ततः ॥ द्विजैःपाशुपतैःकीर्णांजटामुकुटभूषितैः ॥ १४ ॥ कृतलिङ्गसमर्चैश्चभूतिभूषितवर्ष्मभिः ॥ भिक्षाहृतान्नसन्तुष्टैःपुष्टैर्गङ्गामृतोदकैः ॥ १५ ॥ बभूवानन्दितमनाव्रतञ्जग्रा हचोत्तमम् ॥ हिरण्यगर्भादाचार्यान्महत्पाशुपताभिधम् ॥ १६ ॥ सचशिष्योवशिष्ठोभूत्सर्वपाशुपतोत्तमः ॥ स्नात्वाह देहरपापेनित्यम्प्रातःसमुत्थितः ॥ १७ ॥ विभूत्याहरहःस्नातित्रिकालंलिङ्गमर्चयन् ॥ नान्तरंसविजानातिशिवलिङ्गगु रौतथा ॥ १८ ॥ सद्वादशाब्ददेशीयोवशिष्ठोगुरुणासह ॥ ययौकेदारयात्रार्थंगिरिङ्गौरीगुरोर्गुरुम् ॥ १९ ॥ यत्रगत्वान

देहवाले व भिक्षासे लायेहुये अन्नसे सन्तुष्ट व गंगा के अमृत समान जलसे सन्तुष्टथे ॥ १५ ॥ उनको देखकर आनन्दितमन हुआ और हिरण्यगर्भनामक आचार्य्य से बड़े पूजनीय पाशुपतनामक उत्तम व्रतको ग्रहण करता भया ॥ १६ ॥ और वह वशिष्ठनामक शिष्य सब पाशुपतों मे श्रेष्ठहुआ क्योंकि प्रातःकालमें भलीभांति उठा हुआ वह नित्यही हरपापकुण्ड मे स्नानकर ॥ १७ ॥ त्रिकालमे लिंग को पूजताहुआ दिन दिनमें विभूति से नहाता है (था) वह शिवलिंग तथा गुरुमें अन्तरको नहीं जानता है (था) ॥ १८ ॥ वह बारह वर्ष की अवस्थावाला वशिष्ठ गुरुके साथ केदारयात्रा के अर्थ पार्वती पिता के श्रेष्ठ पर्वतमें गया ॥ १९ ॥ कि जहां जाकर लिंग

रूप जलको पानकर लिंगरूपताको प्राप्तहुये संसारीजन कहीं कुछेकभी नहीं शोचते हैं ॥ २० ॥ वहां असिधारनामक पर्वत को प्राप्तहोकर तपस्वी वशिष्ठका हिरण्य-गर्भनामक गुरु उस समय पंचत्व (मरण) को प्राप्त होगया ॥ २१ ॥ और तपस्वियों के देखतेही सब कामनादायक विमान में उसको चढ़ाकर शिवजीके पार्षद आ-नन्द से कैलास को लेगये ॥ २२ ॥ आश्चर्य्य है कि जो अकातर (कादर न हुआ) केदारको उद्देशकर घरसे आधीगलीमें भी प्राणोंको त्यागे वह बहुत कालतक कैलास में बसे ॥ २३ ॥ तब या उस आश्चर्य को भलीभांति सामने देखकर उस तपोधन वशिष्ठने लिंगों के मध्यमें बहुत निश्चय कियेहुये केदारकोही बहुतमाना ॥ २४ ॥

शोचन्तिकिञ्चित्संसारिणःक्वचित् ॥ प्राश्योदकंलिङ्गरूपंलिङ्गरूपत्वमागताः ॥ २० ॥ असिधारङ्गिरिम्प्राप्यवशिष्ठस्य तपस्विनः ॥ गुरुर्हिरण्यगर्भाख्यःपञ्चत्वमगमत्तदा ॥ २१ ॥ पश्यतान्तापसानाञ्चविमानेसार्वकामिके ॥ आरोप्यत म्पारिषदाःकैलासमनयन्मुदा ॥ २२ ॥ यस्तुकेदारमुद्दिश्यगेहादर्धपथेप्यहो ॥ अकातरस्त्यजेत्प्राणान्कैलासेसचिरंव सेत् ॥ २३ ॥ तदाश्चर्यंसमालोक्यसवशिष्ठस्तपोधनः ॥ केदारमेवलिङ्गेषुबह्वमंस्तसुनिश्चितम् ॥ २४ ॥ अथकृत्वासकै दारींयात्रांवाराणसीमगात् ॥ अग्रहीन्नियमञ्चापियथार्थञ्चाकरोत्पुनः ॥ २५ ॥ प्रतिचैत्रंसदाचैत्र्यांयावज्जीवमहन्ध्रुव म् ॥ विलोकयिष्येकेदारंवसन्वाराणसीम्पुरीम् ॥ २६ ॥ तेनयात्राःकृताःसम्यक्षष्टिरेकाधिकामुदा ॥ आनन्दकानने नित्यंवसताब्रह्मचारिणा ॥ २७ ॥ पुनर्यात्रांसवैचक्रेमधौनिकटवर्तिनि ॥ परमोत्साहसन्तुष्टःपलिताकलितोप्यलम् ॥ २८ ॥ तपोधनैस्तन्निधनंशङ्कमानैर्निवारितः ॥ कारुण्यपूर्णहृदयैरन्यैरपिचसङ्गिभिः ॥ २९ ॥ ततोपिनतदुत्साहभङ्गो

अनन्तर उसने केदारकी यात्रा को कर काशी को गमन किया व नियम को लिया और फिर उसको यथार्थ किया ॥ २५ ॥ कि काशीपुरी में बसताहुआ मैं जीवनपर्य्यंत सदैव प्रतिचैत्रमास की पूर्णिमा में केदारनाथ को निश्चय से देखूंगा ॥ २६ ॥ और काशी में नित्यही बसते हुये उस ब्रह्मचारी ने आनन्द से एक अधिक साठि यात्राओं को भलीभांति किया ॥ २७ ॥ उसके बाद बहुत बुढ़ाई से व्याप्तभी परम उत्साह से संतुष्ट हुये उसने चैत्र मासके निकटवर्ती होतेही फिर यात्रा को किया ॥ २८ ॥ परन्तु उसके मरने की शंका करते हुये तपोधन जन और दया से भरे हृदयवाले अन्य संगियों से भी वह निवारित हुआ ॥ २९ ॥ तो भी उस दृढ़ चित्तवाले के

उत्साह का भङ्ग न हुआ कि बीच गली में मरेहुये गुरुजीकी नाईं मेरी भी मुक्तिहोवेगी॥ ३० ॥ हे चरिडके ! इसप्रकार शूद्रोंसे अन्य याने ब्राह्मणादिकोंके अन्नसे परिपुष्ट,
पवित्र, तपस्वी वशिष्ठ के निश्चित चित्तवाला होतेही मैं सन्तुष्ट हुआ ॥ ३१ ॥ और मैंने स्वप्न में उस उत्तम तपस्वी वशिष्ठ से भलीभांति कहा कि हे दृढ़व्रत ! मैं प्र-
सन्नहूं तुम यहां मुझ को केदार जानो ॥ ३२ ॥ और विना विचारेहुये प्यारे वरको मुझ से मांगो इस भांति मेरे कहते हुये भी वह ऐसा बोला कि स्वप्न मिथ्या है ॥
३३ ॥ तदनन्तर भी वह मुझ से कहागया कि अशुद्धतावालों का स्वप्न मिथ्या होता है और अपने नाम के समान वर्त्तनशील आप सरीखे जनों का स्वप्न सत्य

भूद्दृढचेतसः ॥ मध्येमार्गेमृतस्यापिगुरोरिवगतिर्मम ॥ ३० ॥ इतिनिश्चितचेतस्केवशिष्ठेतापसेशुचौ ॥ अशूद्रान्नप
रिपुष्टेतुष्टोहञ्चरिडकेऽभवम् ॥ ३१ ॥ स्वप्नेमयाससम्प्रोक्तोवशिष्ठस्तापसोत्तमः ॥ दृढव्रतप्रसन्नोस्मिकेदारंविद्धिमामि
ह ॥ ३२ ॥ अभीष्टञ्चवरंमत्तःप्रार्थयस्वाविचारितम् ॥ इत्युक्तवत्यपिमयिस्वप्नोमिथ्येतिसोब्रवीत् ॥ ३३ ॥ ततोपिसम
याप्रोक्तःस्वप्नोमिथ्याऽशुचिष्मताम् ॥ भवादृशाममिथ्यैवस्वाख्यासदृशवर्तिनाम् ॥ ३४ ॥ वरम्ब्रूहिप्रसन्नोस्मिस्वप्न
शङ्कान्त्यजद्विज ॥ तवसत्त्ववतःकिञ्चिन्मयादेयंनकिञ्चन ॥ ३५ ॥ इत्युक्तंमेसमाकर्ण्यवरयामाससमामिति ॥ शिष्यो
हिरण्यगर्भस्य तपस्विजनसत्तमः ॥ ३६ ॥ यदिप्रसन्नोदेवेश तदामेसानुगाइमे ॥ सर्वेशूलिन्ननुग्राह्याएषएववरोमम॥
३७ ॥ देवितस्येदमाकर्ण्य परोपकृतिशालिनः ॥ वचनंनितरांप्रीतस्तथेतितमुवाचह ॥ ३८ ॥ पुनःपरोपकरणात्तत्तपो

ही है ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण ! मैं प्रसन्न हूं तुम स्वप्न की शंका को त्यागो और वरको बोलो (मांगो) क्योंकि सत्त्व (धैर्य्य या सतोगुण) वाले तुमको मुझसे कुछ
देनेयोग्य नहीं है किन्तु न याने सबकुछ देनेयोग्य है ॥ ३५ ॥ इसप्रकार मेरेकहे वचन को सुनकर तपस्वी जनों में सत्तम, हिरण्यगर्भ के शिष्य ने मुझ से ऐसे
वर को स्वीकार किया कि ॥ ३६ ॥ हे त्रिशूलधारिन्, देवेश ! जो तुम प्रसन्न हो तो सेवकों समेत मेरे सम्बन्धी ये सब लोग दयाके योग्य हैं यहही मेरा वरहै ॥ ३७ ॥ हे
देवि ! उस परोपकारशाली के इस वचन को सुनकर बहुतही प्रसन्न हुये मैंने हर्ष से उस के प्रति ऐसा कहा कि वैसाही होवे ॥ ३८ ॥ फिर पराये उपकार से उसकी

तपस्या दुगुनी कीगई उस पुण्य से मैंने उससे फिर कहा कि तुम वरको अंगीकार करो ॥ ३९ ॥ हे देवि ! बड़े बुद्धिमान्,दृढ़ पाशुपतव्रतवाले उस वशिष्ठने हिमाचल से इस काशीमें टिकने को मुझसे प्रार्थना किया "यहां यह जानाजाता है कि हरपापतीर्थ और केदारेश्वरलिंग काशी में पहलेही था परन्तु वशिष्ठ की प्रार्थनासे यहां ईश्वरांश अधिक होगया है" ॥ ४० ॥ तदनन्तर उसकी तपस्या से खींचाहुआ मैं कलामात्र से वहां हिमपर्वत में हूं और यहां तबसे सब भावकरके भलीभांति टिका हूं ॥ ४१ ॥ उस समय प्रातःकाल होतेही और सबके देखतेही देव और ऋषियोंसे प्रशंसित, होताहुआ मैं हिमाचलसे प्रस्थित होकर याने चलकर यहां प्राप्तहुआ ॥ ४२ ॥

द्विगुणीकृतम् ॥ तेनपुण्येनसमया पुनःप्रोक्तोवरंवृणु ॥ ३९ ॥ सवशिष्ठोमहाप्राज्ञो दृढपाशुपतव्रतः ॥ देविमेप्रार्थयामा सहिमशैलादिहस्थितिम् ॥ ४० ॥ ततस्तत्तपसाकृष्टः कलामात्रेणतत्रहि ॥ हिमशैलेततश्चात्र सर्वभावेनसंस्थितः ॥ ४१ ॥ ततःप्रभातेसंजाते सर्वेषांपश्यतामहम् ॥ हिमाद्रेःप्रस्थितःप्राप्तः स्तूयमानःसुरर्षिभिः ॥ ४२ ॥ वशिष्ठंपुरतःकृ त्वा सर्वसार्थसमायुतम् ॥ हरपापह्रदेतीर्थे स्थितोहंतदनुग्रहात् ॥ ४३ ॥ मत्परिग्रहतःसर्वे हरपापेकृतोदकाः ॥ आरा ध्यमामनेनैव वपुषासिद्धिमागताः ॥ ४४ ॥ तदाप्रभृतिलिङ्गेस्मिन् स्थितःसाधकसिद्धये ॥ अविमुक्तेपरेक्षेत्रे कलिकाले विशेषतः ॥ ४५ ॥ तुषाराद्रिंसमारुह्य केदारंवीक्ष्ययत्फलम् ॥ तत्फलंसप्तगुणितं काश्यांकेदारदर्शने ॥ ४६ ॥ गौरी कुण्डंयथातत्र हंसतीर्थंचनिर्मलम् ॥ यथामधुस्रवागङ्गाकाश्यांतदखिलंतथा ॥ ४७ ॥ इदंतीर्थंहरपापं सप्तजन्मा

और सब संगियों समेत वशिष्ठ को आगेकर मैं उसके अनुग्रह से हरपापकुण्डतीर्थ के समीप में स्थित हूं ॥ ४३ ॥ और मेरे परिग्रह से हरपापकुण्ड में स्नानादि जलक्रिया को कियेहुये लोग मुझको पूजकर इसही देह से सिद्धि (मुक्ति)को प्राप्त हुये हैं ॥ ४४ ॥ तबसे लगाकर कलिकाल में विशेष से साधकों की सिद्धिके लिये मैं उत्तम अविमुक्त क्षेत्रके बीच इस लिंगमें टिकाहूं ॥ ४५ ॥ इससे हिमाचल में भलीभांति चढ़कर केदारेश्वर के दर्शनकर जो फल है वह फल काशी के केदारेश्वर के दर्शन में सातगुनाहै ॥ ४६ ॥ जैसे वहां गौरीकुंड और निर्मल हंसतीर्थ है व जैसे मधुस्रवा गंगाहै वैसे काशीमें सबहै ॥ ४७ ॥ यह

हरपापतीर्थ सातजन्मों के पापोंका नाशक है और पीछे से गंगामें मिलित हुआ यह करोड़ों जन्मोंके पापोंका हंताहै ॥ ४८ ॥ और पूर्वसमयमें लडते हुये दो द्रोणकाग आ-
काश से इसमें गिरे व वहां टिकेहुये जनोंके देखतेही हंसहोकर निकलगये ॥ ४९ ॥ हे गौरि ! पहले तुमने महाकुण्ड में स्नानमात्र को कियाहै उससे सब तीर्थोत्तमो-
त्तम गौरीतीर्थ कहागया या प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥ और यहां महामोहान्धकारहारिणी व अनेक जन्मजनित जड़ता की विनाशकारिणी अमृतस्रवा गंगा है ॥ ५१ ॥
व आगे यहां मानससर से याने उसके अधिष्ठाता ब्राह्मण से बड़ी तपस्या तपीगई है इस लिये यह हरपापतीर्थ जनोंमें मानस ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्तहुआ है॥५२॥

घनाशनम् ॥ गङ्गायांमिलितंपश्चाज्जन्मकोटिकृताघहम् ॥ ४८ ॥ अत्रपूर्वन्तुकाकोलौ युध्यन्तौखान्निपेततुः ॥ पश्य
तांतत्रसंस्थानां हंसौभूत्वाविनिर्गतौ ॥ ४९ ॥ गौरित्वयाकृतंपूर्वं स्नानमात्रंमहाह्रदे ॥ गौरीतीर्थंततःख्यातं सर्वतीर्थो
त्तमोत्तमम् ॥ ५० ॥ अत्रामृतस्रवागङ्गा महामोहान्धकारहृत् ॥ अनेकजन्मजनितजाड्यध्वंसविधायिनी ॥ ५१ ॥
सरसामानसेनात्र पूर्वंतप्तंमहातपः ॥ अतस्तुमानसंतीर्थंजनेख्यातिमिदंगतम् ॥ ५२ ॥ अत्रपूर्वंजनःस्नानमात्रेणैव
प्रमुच्यते ॥ पश्चात्प्रसादितश्चाहं त्रिदशैर्मुक्तिदुर्दशैः ॥ ५३ ॥ सर्वेमुक्तिङ्गमिष्यन्ति यदिदेवेहमानवाः ॥ केदारकुण्डेसु
स्नातास्तदोच्छित्तिर्भविष्यति ॥ ५४ ॥ सर्वेषामेववर्णानामाश्रमाणांचधर्मिणाम् ॥ तस्मात्तनुविसर्गेत्र मोक्षंदास्यति
नान्यथा ॥ ५५ ॥ ततस्तदुपरोधेन तथेतिचमयोदितम् ॥ तदारभ्यमहादेवि स्नानात्केदारकुण्डतः ॥ ५६ ॥ समर्च
नाच्चभक्त्यावै ममनामजपादपि ॥ नैःश्रेयसींश्रियंदद्यामन्यत्रापितनुत्यजाम् ॥ ५७ ॥ केदारतीर्थेयःस्नात्वा पिण्डान्दा

पूर्वसमय में जन यहां स्नानमात्र से विमुक्त होताथा उसके बाद मुक्तिकी दुर्दशावाले या मनुष्यों के प्राप्य कैवल्यको न देखसकेहुये देवोंसे मैं प्रसादित हुआ याने
उन्होंने मुझको प्रसन्नकर प्रार्थना किया ॥ ५३ ॥ कि हे देव ! जो इस केदारकुण्डमें भलीभांति नहायेहुये सब मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होजावेंगे तो संसारका उच्छेद
होवेगा ॥ ५४ ॥ उस लिये यहां सब वर्ण आश्रम और धर्मियोंके देहत्याग में मुक्तिको देवो अन्यथा नहीं ॥ ५५ ॥ हे महादेवि ! तदनन्तर उनके रोकने से वैसाहीहो
ऐसा मैंने कहा तबसे लगाकर केदारकुण्ड में नहाने से ॥ ५६ ॥ व भक्तिसे मेरी पूजा करने से भी और मेरे नामोंके जपनेसे भी मैं अन्यत्र भी देह त्यागते हुये

जनों को मुक्तिसम्बन्धिनी सम्पत्ति देताहूं या देऊंगा ॥ ५७ ॥ और जोकि वेग से रहित याने सावधानता सहित मनुष्य केदारतीर्थमें स्नानकर पिंडोको देवेगा उसके एक अधिक एकसौ वंशके जन संसारसागर को उतरेहुये हैं ॥ ५८ ॥ जब मंगलवारमें अमावस तिथि होवे तब केदारकुण्डको प्राप्तहोकर जो मनुष्य श्राद्धका दाता है उसको गयामें श्राद्धसे क्या है ॥ ५९ ॥ और केदारको जानेकी कामनावाले को मनुष्यों से यह बुद्धि देनेयोग्य है कि काशी में केदारेश्वर को स्पर्श करतेहुये तुम कृतार्थ होवोगे ॥ ६० ॥ व चैतबदी चतुर्दशी में उपास को कर प्रातःकाल तीन गण्डूष (कुल्ला) पानी पीताहुआ हृदयके लिंगमें टिकता है ॥ ६१ ॥ जैसे वहां

स्यतिच त्वरः ॥ एकोत्तरशतंवंश्यास्तस्यतीर्णाभवाम्बुधिम् ॥ ५८ ॥ भौमवारेयदादर्शस्तदायःश्राद्धदोनरः ॥ केदारकुण्डमासाद्य गयाश्राद्धेनकिन्ततः ॥ ५९ ॥ केदारंगन्तुकामस्य बुद्धिर्देयानरैरियम् ॥ काश्यांस्पृशंस्त्वंकेदारं कृतकृत्योभविष्यसि ॥ ६० ॥ चैत्रकृष्णचतुर्दश्यामुपवासंविधायच ॥ त्रिगण्डूषान्पिबन्प्रातर्हृल्लिङ्गमधितिष्ठति ॥ ६१ ॥ केदारोदकपानेन यथातत्रफलंभवेत् ॥ तथात्रजायतेपुंसांस्त्रीणांचापिनसंशयः ॥ ६२ ॥ केदारभक्तंसम्पूज्य वासोन्नद्रविणादिभिः ॥ आजन्मजनितंपापं त्यक्त्वायातिममालयम् ॥ ६३ ॥ आषण्मासंत्रिकालंयः केदारेशंनमस्यति ॥ तन्नमस्यन्तिसततं लोकपालायमादयः ॥ ६४ ॥ कलौकेदारमाहात्म्यं योपिकोपिनवेत्स्यति ॥ योवेत्स्यतिसपुण्यात्मा सर्ववेत्स्यतिसध्रुवम् ॥ ६५ ॥ केदारेशंसकृद्दृष्ट्वा देविमेऽनुचरोभवेत ॥ तस्मात्काश्यांप्रयत्नेन केदारेशंविलोकयेत् ॥ ६६ ॥ चित्राङ्गदेश्वरंलिङ्गं केदाराद्दुत्तरेशुभम् ॥ तस्यार्चनान्नरोनित्यं स्वर्गभोगानुपाश्नुते ॥ ६७ ॥ केदाराद्दक्षिणे

केदारकुण्ड का जल पीने से पुरुष और स्त्रियोंको भी फल होवेहै वैसेही यहां होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ व वस्त्र अन्न और धनादिकों से केदारके भक्त को पूजकर जन्म से लगाकर हुये पापोंको त्यागकर मेरे लोकको जाताहै ॥ ६३ ॥ जो कि छह मासतक त्रिकाल में केदारेश्वर के नमस्कार करता है उसके यमादि लोकपाल निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥ ६४ ॥ कलियुग में जोई कोई जन केदारके माहात्म्य को न जानेगा और जो जानेगा वह पुण्यात्मा है और वह निश्चयकर सब कुछ जानेगा ॥ ६५ ॥ हे देवि ! एकबारभी केदारेश्वर को देखकर मेरा गण होवे है उस लिये बड़े यत्नसे काशीमें केदारेश्वरको देखे ॥ ६६ ॥ और केदारेश्वर से उत्तर

में जो मंगलमय चित्रांगदेश्वर लिंगहै उसके नित्यही पूजने से मनुष्य स्वर्ग के भोगोंको भोगताहै ॥ ६७ ॥ व केदारके दक्षिणभागमें नीलकण्ठ के दर्शनसे संसार सर्पसे डसेहुये उस जनको दुःखरूप विषसे डर नहीं होताहै ॥ ६८ ॥ और उससे वायव्यमें जो अम्बरीषेश लिंगहै उसके देखनेसे मनुष्य दुःखसंयुत संसार में गर्भ वासको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ६९ ॥ व उसके समीप में इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंगको भलीभांति पूजकर वह तेजोमय विमान से स्वर्ग की भूमिमें आनन्दित होताहै ॥ ७० ॥ व उससे दक्षिणमे कालंजरेश्वरलिंगको देखकर मनुष्य बुढ़ाई और कालको जीतकर मेरे लोकमें बहुत कालतक बसे ॥ ७१ ॥ व चित्रांगदेश्वरसे उत्तरमें क्षेमेश्वरलिंग

भागे नीलकण्ठविलोकनात् ॥ संसारोरगदष्टस्य तस्यनास्तिविषाद्भयम् ॥ ६८ ॥ तद्वायव्येम्बरीषेशो नरस्तदवलोकनात् ॥ गर्भवासंनचाप्नोति संसारेदुःखसंकुले ॥ ६९ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरंलिङ्गं तत्समीपेसमर्च्यच ॥ तेजोमयेनयानेन सस्वर्गभुविमोदते ॥ ७० ॥ तद्दक्षिणेनरोदृष्ट्वा लिङ्गंकालञ्जरेश्वरम् ॥ जरांकालंविनिर्जित्य ममलोकेवसेच्चिरम् ॥ ७१ ॥ दृष्ट्वाक्षेमेश्वरंलिङ्गमुदक्चित्राङ्गदेश्वरात् ॥ सर्वत्रक्षेममाप्नोति लोकेऽत्रचपरत्रच ॥ ७२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ देवदेवेन विन्ध्यारे केदारमहिमामहान् ॥ इत्याख्यायिपुराम्बायै, मयातेपिनिरूपितः ॥ ७३ ॥ केदारेश्वरलिङ्गस्य श्रुत्वोत्पत्तिं कृतीनरः ॥ शिवलोकमवाप्नोति निष्पापोजायतेक्षणात् ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेकेदारमहिमाख्यानन्नामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

को देखकर इस लोक और परलोकमें भी सर्वत्र कल्याण को पाताहै ॥ ७२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे विन्ध्याचलके वैरिन् अगस्त्यजी ! पूर्व समयमें इसभांति महादेवजी ने अम्बाके लिये केदारेश्वरका महान् माहात्म्य कहा और उसको मैंने तुमसे निरूपण किया॥ ७३ ॥ पुण्यवान् मनुष्य केदारेश्वर लिंगकी उत्पत्तिको सुनकर शिवलोक को पाताहै और क्षणभरमें पापोंसे हीन होजाता है ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकेदारमहिमाख्यानंनामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

अठहत्तर अध्याय में धर्मराज तप लीन। श्रीधर्मेश्वर की यहां महिमा वर्णन कीन॥ श्रीपार्वती जी बोलीं कि, हे शम्भो! काशीमें जो लिंग पुण्य के बढ़ानेवालाहै व जिसके नाम के स्मरणसेही महापापों का विनाश होताहै॥ १॥ व जो साधकोंसे नित्यही सेवने योग्य है व जिसमें अतिशय उत्तम प्रीति होती है व जहां दिया, हवन किया, जपा और ध्यायाहुआ अक्षय होताहै॥ २॥ व जिसको भलीभांति सुमिरने सेही व जिस लिंग के दर्शन से व जिस लिंगके प्रणाम से व जिसके संस्पर्शन से भी॥ ३॥ और पञ्चामृतादिकों से स्नान कराने पूर्वक जिसकी पूजा से कल्याण की परंपरा होवे है हे ईशान! उस लिंग को कहो॥ ४॥ श्रीकार्त्तिकेयजी

पार्वत्युवाच॥ आनन्दकाननेशम्भो यल्लिङ्गंपुण्यवर्धनम्॥ यन्नामस्मरणादेव महापातकसंक्षयः॥ १॥ यत्सेव्यं साधकैर्नित्यं यत्रप्रीतिरनुत्तमा॥ यत्रदत्तंहुतंजप्तं ध्यातंभवतिचाक्षयम्॥ २॥ यस्यसंस्मरणादेव यल्लिङ्गस्यविलोकनात्॥ यल्लिङ्गप्रणतेश्चापि यस्यसंस्पर्शनादपि॥ ३॥ पञ्चामृतादिस्नपनपूर्वाद्यस्यार्चनादपि॥ तल्लिङ्गंकथयेशान भवेच्छ्रेयःपरम्परा॥ ४॥ स्कन्दउवाच॥ इति देवीसमुदितं समाकर्ण्यघटोद्भव॥ सर्वज्ञेनयदाख्यातं तदाख्यास्यामितेशृणु॥ ५॥ देवदेवउवाच॥ उमेभवत्यायत्पृष्टं भवबन्धविमोक्षकृत्॥ ततोऽहंकथयिष्यामि लिङ्गंस्थिरमनाभव॥ ६॥ आनन्दकाननेचात्र रहस्यंपरमंमम॥ नमयाकस्यचित्ख्यातं नप्रष्टुंवेत्तिकश्चन॥ ७॥ सन्तिलिङ्गान्यनेकानि ममानन्दवनेप्रिये॥ परंत्वयायथापृष्टं यथावत्तद्ब्रवीमिते॥ ८॥ यत्रमुक्तिस्वरूपात्वं स्वयंतिष्ठसिविश्वगे॥ यत्रतेनन्दनश्चास्ति क्षेत्रविघ्नविघातकृत्॥ ९॥ ममापियेनत्रिपुरसमरेजयकाङ्क्षिणः॥ जयाशापूरितास्तुत्या बहुमोद

बोले कि हे घटोद्भव! इसप्रकार देवीजी के भलीभांति कहेहुये वचन को सुनकर सर्वज्ञ शिवजी ने जो कहा उसको मैं तुमसे कहूंगा और तुम सुनो॥ ५॥ श्रीमहादेवजी बोले कि पार्वति! जिससे आपने संसारबन्धन से विमोक्ष करनेवाले लिंगको पूछा उसलिये मैं कहूंगा तुम सावधान होवो॥ ६॥ इस आनन्दवन में मेरा परमरहस्यहै जिसको मैंने किसीसे नहीं कहा और कोई पूंछनेको भी नहीं जानताहै॥ ७॥ हे प्रिये! काशी में मेरे अनेक लिंग हैं परन्तु तुमने जैसा पूंछाहै उसको मैं तुमसे यथावत् कहताहूं॥ ८॥ हे विश्वव्यापिनि! जहां (जिस लिंग के समीप में) मुक्तिस्वरूपा विश्वभुजानाम्नी तुम आपही टिकी हो व जहां क्षेत्र के विघ्नों को

विनाशकर्त्ता तुम्हारा पुत्र आशाविनायक है ॥ ९ ॥ जिसने बहुती स्तुति व मोदकों (लड्डुवों) के दानसे त्रिपुरके संग्राम में मेरी भी जीतिकी आशा को पूर किया ॥ १० ॥ और जहां पापों का हर्त्ता पितरों की प्रीतिका वर्धनकर्त्ता तीर्थ है जिसमें स्नान करने से इन्द्रजी वृत्रासुर के मारने के पापसे छूटगये हैं ॥ ११ ॥ व जहां परमसमाधि से बहुत दुष्कर तपस्या को तपकर धर्म्मराज ने भी धर्म का अधिकार या आधार पाया है ॥ १२ ॥ व जहां पक्षियों ने भी संसार से छुड़ानेहारे ज्ञान को पाया है और जहां अनेक मूलवाला वृक्ष रम्य व सुवर्णमय होगया है ॥ १३ ॥ व लोकों का उद्वेगकर्त्ता भी दुर्दमनामक राजा जिस लिंग के दर्शन से क्षणभर में

कदानतः ॥ १० ॥ यत्रास्तितीर्थमघहृत्पितृप्रीतिविवर्धनम् ॥ यत्स्नानाद्वृत्रहावृत्रवधपापाद्विमुक्तवान् ॥ ११ ॥ धर्माधिकरणंयत्र धर्मराजोप्यवाप्तवान् ॥ सुदुष्करंतपस्तप्त्वापरमेणसमाधिना ॥ १२ ॥ पक्षिणोपिहियत्राापुर्ज्ञानंसंसारमोचनम् ॥ रम्योहिरण्मयोयत्र बभूवबहुपाद्द्रुमः ॥ १३ ॥यल्लिङ्गदर्शनादेवदुर्दमोनामपार्थिवः ॥ उद्वेजकोपिलोकानां क्षणाद्धर्ममतिस्त्वभूत् ॥ १४ ॥ तस्यलिङ्गस्यमाहात्म्यमाविर्भावंचसुन्दरि ॥ निशामयाभिधास्यामि महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ धर्मपीठंतदुद्दिष्टमत्रानन्दवनेमम ॥ तत्पीठदर्शनादेव नरःपापैःप्रमुच्यते ॥ १६ ॥ पुराविवस्वतः पुत्रोयमःपरमसंयमी ॥ तपस्ततापविपुलं विशालाक्षितवाग्रतः ॥ १७॥ शिशिरेजलमध्यस्थो वर्षास्वभ्रावकाशकः ॥ तपतौपञ्चवह्निस्थः कदाचिदिदितिनप्तवान् ॥ १८ ॥ पादाग्रांगुष्ठभूस्पर्शी बहुकालंसतस्थिवान् ॥ एकपादस्थितःसोपि कदाचिद्वह्ननेहसम् ॥ १९ ॥ समीराभ्यवहर्तासीद्बहुदिष्टंसदिष्टवान् ॥ पयोसतुपिपासुःसन्कुशाग्रजलविप्रुषः ॥ २० ॥

धर्मबुद्धि हुआहै ॥ १४ ॥ हे सुन्दरि ! उस लिंगका प्रकट होना और माहात्म्य जो कि बडे पापोंका नाशक है उसको मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ १५ ॥ मेरे इस आनन्दवनमें वह धर्मपीठ नामसे कहागया है उस पीठ के दर्शनसेही मनुष्य पापोंसे विमुक्त होताहै ॥ १६ ॥ हे विशालाक्षि ! पूर्वसमय में उत्तमसंयमवाले सूर्य्यपुत्र यमराजने तुम्हारे आगे बहुते तपको तपाहै ॥ १७ ॥ कभी शिशिरऋतु याने शीतकालमें जलके मध्यमें टिके व वर्षामें मेघावरणवाले और ग्रीष्ममें अग्निके बीचमें टिके हुये उसने इस प्रकार तपस्या किया है ॥ १८ ॥ व पावँके अँगुठा के अग्रभाग से भूमिके स्पर्शवाला वह बहुत कालतक खड़ाहुआ और कभी वही बहुत काल तक

एकही पाँव से टिकाथा ॥ १९ ॥ व वह भाग्यवान् बहुत कालतक वायुभोजी हुआ और पानी पीनेका चाही होताहुआ वह कुशों के अग्रभागों के जल के कणों को पीताथा ॥ २० ॥ इसभांति तपस्या को करने व परमसमाधि से मुझको चौगुना देखा चाहते हुये उसने देवोंकी चौयुगीको बिताया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस अनल चित्तवाले की तपस्यासे संतुष्टहुआ मैं उस महात्मा यमको वरदेने के लिये गया ॥ २२ ॥ जोकि सुवर्णशाख नामक वटवृक्ष तपस्या से उपजी ताप परंपराको दूरकरताथा व अच्छी छायावाला था व बहुते पक्षियों का भलीभांति आश्रय (आधार) था ॥ २३ ॥ व जोकि ताप हरनेवाला मन्द मन्द वायु से चञ्चल, कोमल पत्ररूप

दिव्यांचतुर्युगीमित्थ सनिनायतपश्चरन् ॥ चतुर्गुणंदिदृक्षुर्मांपरमेणसमाधिना ॥ २१ ॥ ततोहंतस्यतपसा सन्तुष्टःस्थितचेतसः ॥ ययौतस्मैवरान्दातुं शमनायमहात्मने ॥ २२ ॥ वटःकाञ्चनशाखाख्यो यस्तपस्तापसन्ततिम् ॥ दूरीचकारसुच्छायो बहुद्विजसमाश्रयः ॥ २३ ॥ मन्दमन्दमरुल्लोलपल्लवैःकरपल्लवैः ॥ योध्वगानध्वसन्तप्तानाह्वयेदिवतापहृत् ॥ २४ ॥ स्वानुरागैःसुरभिभिः स्वादुभिश्चपचेलिमैः ॥ प्रीणयेदर्थिसार्थंयो वृत्तैर्निजफलैरलम् ॥ २५ ॥ तदधस्तात्परंवीक्ष्य तमहंतपनाङ्गजम् ॥ स्थाणुनिश्चलवर्ष्माणं नासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥ २६ ॥ तपस्तेजोभिरुद्यद्भिःपरितःपरिधीकृतम् ॥ भानुमन्तमिवाकाशे सुनीलस्वेनतेजसा ॥ २७ ॥ स्वाख्ययाङ्कितंमहालिङ्गं प्रतिष्ठाप्यातिभक्तितः ॥ स्वच्छसूर्योपलमयं तेजःपुञ्जैरिवार्चितम् ॥ २८ ॥ साक्षीकृत्यैवतल्लिङ्गं तप्यमानंमहत्तपः ॥ अत्पश्चोचंधर्मराजंवरं

हस्तपल्लवों से मार्गमें संतप्तहुये बटोहियों को बुलातासा है ॥ २४ ॥ व जोकि अपने अनुराग (स्नेह या अरुणरंग) व सुगन्ध, स्वादसमेत पकेहुये गोलाकार अपने फलोंसे अर्थी जनसमूहको बहुतही तृप्त करताहै ॥ २५ ॥ उस वृक्षके नीचे मैं तपस्वियों में श्रेष्ठ उस सूर्य्यपुत्र को देखकर जोकि स्थाणु (ठूंठ) से निश्चल देहवाला व नासिका के आगे नेत्रोंकी दृष्टिको थापेहुआ ॥ २६ ॥ व अच्छेश्याम आकाश में अपने तेजसे घिरे सूर्य्यकी नाईं उगतेहुये तपस्या के तेजोंसे सब ओर मण्डलाकार से वेष्टित है॥२७॥ व स्वच्छ सूर्य्यकांतमणिमय और तेजसमूहों करके पूजित से अपने नामांकित (धर्मेश्वर) महालिंग को अत्यन्तभक्तिसे थापकर॥२८॥

और उसही लिंग को साखी कर महातप को तप्यमान याने बड़ी तपस्या को करता है उसके प्रति मैं ऐसा बोला कि हे सूर्य्यके पुत्र ! तुम वर को कहो (मांगो) ॥ २९ ॥ हे महाभाग, शुभव्रत ! मैं प्रसन्नहूं तपस्याको बन्दकरो ऐसा सुनकर यमराजने हर्षसे मेरे प्रणाम किया ॥ ३० ॥ और निष्कपट समाधि को त्यागकर प्रसन्न इन्द्रिय व इन्द्रियेश्वर (मन) वाले उस सूर्य्यनन्दन (धर्मराज) ने स्तुतिको भी किया ॥३१॥ धर्मराज बोले कि, हे कारणोंके कारण ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो व कारण से वर्जित के लिये नमस्कारहो नमस्कारहो हे कार्य्यों से विहीनरूपवाले ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो और कार्य्यमय याने प्रपंचके आधारके लिये नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ३२ ॥ रूपरहित रूपवाले व मायासे समस्तरूपी व परमसूक्ष्मरूप व कार्य्य कारणरूप व अपारपार (परिपूर्ण) व शत्रुरूप या श्रेष्ठ

ब्रूहीतिभास्करे ॥ २९ ॥ अलंतप्त्वामहाभाग प्रसन्नोस्मिशुभव्रत ॥ निशम्यशमनश्चेति दृष्ट्वामांप्रणनामह ॥ ३० ॥ चकारस्तवनंचापि परिहृष्टेन्द्रियेश्वरः ॥ निर्व्याजंससमाधिंच विसृज्यब्रध्ननन्दनः ॥ ३१ ॥ धर्मउवाच ॥ नमोनमः कारणकारणानां नमोनमःकारणवर्जिताय ॥ नमोनमःकार्यमयायतुभ्यं नमोनमःकार्यविभिन्नरूप ॥ ३२ ॥ अरूप रूपायसमस्तरूपिणे पराणुरूपायपरापराय ॥ अपारपारायपराब्धिपारप्रदायतुभ्यंशशिमौलयेनमः ॥ ३३ ॥ अनीश्वरस्त्वंजगदीश्वरस्त्वं गुणात्मकस्त्वंगुणवर्जितस्त्वम् ॥ कालात्परस्त्वंप्रकृतेःपरस्त्वं कालायकालात्प्रकृतेनमस्ते ॥ ३४ ॥ त्वमेवनिर्वाणपदप्रदोसि त्वमेवनिर्वाणमनन्तशक्ते ॥ त्वमात्मरूपःपरमात्मरूपस्त्वमन्तरात्मासिचराचरस्य ॥ ३५ ॥ त्वत्तोजगत्त्वंजगदेवसाक्षाज्जगत्त्वदीयंजगदेकबन्धो ॥ हर्तावितात्वंप्रथमोविधाता विधातृविष्ण्वीशनमोन

संसार के पारदातार व चन्द्रभालवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ३३ ॥ हे प्रकृते (कारणरूप) ! तुम ईश्वर से हीनहो याने सबके अधीश्वर हो व तुम जगत्के ईश्वरहो व तुम गुणस्वरूप या गुणोंमें व्यापकहो व तुम गुणोंसे वर्जित हो व तुम कालसे परेहो व तुम प्रकृति से परेहो व तुम कालके भक्तकहो और कालरूप तुम्हारे लिये नमस्कारहो॥३४॥हे अनन्तशक्ते! तुमहीं कैवल्यपदके दायकहो व तुमहीं कैवल्यरूपहो व तुमहीं जीवरूपहो व तुमहीं परमात्मारूपहो और तुमहीं स्थावर व जंगमरूप जगत के अन्तरात्मा (अन्तर्यामी) हो ॥ ३५ ॥ हे जगत् के एकबन्धो, ब्रह्मा विष्णु रुद्रस्वरूप ! जगत् तुमसे होताहै व तुमहीं साक्षात् जगतहो व जगत् तुम्हाराहै व तुम जगत् के

श्रेष्ठ कर्त्ता रक्षक और हर्त्ताहो और तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ३६ ॥ हे सांब, शिव ! तुमहीं वेदमार्गगामियों में सुखरूपहो व तुमहीं वेदविरुद्धमार्गगामियोंमें दुर्दर्श (दुःखदाता) हो व तुम भक्तोंके कल्याणकर्त्ताहो और तुम अभक्तिरैवियों को उग्ररूपहो ॥ ३७ ॥ तुमहीं शत्रुओं को त्रिशूलधारीहो व तुमहीं विनम्र चित्त और वचनवाले जनोको कल्याणरूपहो व तुमहीं एक अपने चरणारविंदों के शरणागतहुये लोगोंको श्रीकण्ठ हो और तुमहीं दुरात्माओंको विषसे उग्रकण्ठवाले हो ॥ ३८ ॥ हे शांत,शम्भो, शङ्कर ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे चन्द्रकलाभूषण ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे पिनाकहस्त ! सर्पभूषणधारी और अन्धकासुर शत्रुके

मस्ते ॥ ३६ ॥ मृडस्त्वमेवश्रुतिवर्त्मगेषु त्वमेवभीमोऽश्रुतिवर्त्मगेषु ॥ त्वंशङ्करःसोमसुभक्तिभाजामुग्रोसिरुद्रत्वमभक्तिभाजाम् ॥ ३७ ॥ त्वमेवशूलीद्विषतांत्वमेव विनम्रचेतोवचसांशिवोसि ॥ श्रीकण्ठएकःस्वपदश्रितानां दुरात्मनांहालहलोग्रकण्ठः ॥ ३८ ॥ नमोस्तुतेशङ्करशान्तशम्भो नमोस्तुतेचन्द्रकलावतंस ॥ नमोस्तुतुभ्यंफणिभूषणाय पिनाकपाणेऽन्धकवैरिणेनमः ॥ ३९ ॥ सएवधन्यस्तवभक्तिभाग्यस्तवार्चकोयःसुकृतीसएव ॥ तवस्तुतिंयःकुरुतेसदैव सस्तूयतेद्रुश्च्यवनादिदेवैः ॥ ४० ॥ कस्त्वामिहस्तोतुमनन्तशक्केशक्नोतिमादृग्लघुबुद्धिवैभवः॥प्राचांनराचामिहगोचरोयः स्तुतिस्त्वयीयंनतिरेवयावत् ॥ ४१ ॥स्कन्दउवाच॥उदीर्यसूर्यस्यसुतोतिभक्त्या नमःशिवायेतिसमुच्चरन्सः ॥ इलामिलन्मौलिरतीवहृष्टःसहस्रकृत्वःप्रणनामशम्भुम् ॥ ४२ ॥ ततःशिवस्तन्तपसातिखिन्नं निवार्यताभ्यःप्रणतिभ्यईश्वरः ॥ वरान्ददौसप्ततुरङ्गसूनवे त्वंधर्म्मराजोभवनामतोपि ॥ ४३ ॥ त्वमेवधर्माधिकृतौसमस्तशरीरिणांस्था

लिये नमस्कारहो ॥ ३९ ॥ जो तुम्हारी भक्तिका सेवीहै वहही धन्यहै व जो तुम्हारा पूजक है वहही पुण्यवान् है व जो सदैव तुम्हारी स्तुति को करता है वह इन्द्रादि देवोंसे प्रशंसित होताहै ॥ ४० ॥ हे अनन्तशक्ते ! यहां मेरे सरीखे थोड़ी बुद्धि विभुतावाला कौन तुम्हारी स्तुतिकेलिये समर्थहोताहै जोकि प्राचीनजनोंके वचनगोचर नहींहो इन तुम में साकल्यसे यह स्तुति नमस्कारही है ॥ ४१ ॥श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि इस प्रकार उच्चारणकर अत्यन्त भक्तिसे "नमःशिवाय" ऐसा भलीभांति कहते हुये व पृथिवी में मिले मस्तकवाले व अतिशय आनन्दित उस सूर्य्यसुत (यमराज) ने हजारबार शंकरजी के प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर परमेश्वर शिव

जीने तपस्या से बहुतही खिन्नहुये उनको उन स्तुतियों से निवारणकर सात घोड़ेवाले सूर्यके पुत्रको वर दिया कि तुम नामसेभी धर्मराज होवो ॥ ४३ ॥ व स्थावर जंगम सब देहधारियों के अधिकार में मुझसे नियुक्त (जोडे या आज्ञप्त) हुये और इस दिन के आदिमें याने इस दिनसे लगाकर करनेयोग्य धर्मादि विचारवाले तुम मेरी आज्ञासे सबकी शिक्षाकरो॥४४॥ व तुम दक्षिणदिशाकेअधीश्वर होवो व तुम सब जन्तुसमूहके कर्मोके साक्षीहोवो और तुम्हारी दिखाई गलीवाले उत्तम व अधम लोग इस मनुष्यलोकसे अपने कर्म्मोंकीयोग्य गतिको जावें ॥४५॥ हे धर्म ! हमारी भक्तिके सेवी तुमसे यहां जो लिंग पूजागया उसके दर्शन, स्पर्शन और पूजनेसे पुरुषो

वरजङ्गमानाम् ॥ मयानियुक्तोद्यदिनादिकृत्यः प्रशाधिसर्वान्ममशासनेन ॥ ४४ ॥ त्वंदक्षिणायाश्चदिशोधिनाथस्त्वं कर्मसाक्षीभवसर्वजन्तोः ॥ त्वद्दर्शिताध्वानइतोत्रजन्तुस्वकर्मयोग्यांगतिमुत्तमाधमाः ॥ ४५ ॥ त्वयायदेतन्ममभक्तिभाजालिङ्गंसमाराधितमत्रधर्म ॥ तद्दर्शनात्स्पर्शनतोऽर्चनाच्च सिद्धिर्भविष्यत्यचिरेणपुंसाम् ॥४६॥ धर्मेश्वरंयःसकृदेवमर्त्यो विलोकयिष्यत्यवदातबुद्धिः ॥ स्नात्वापुरस्तेऽत्रचधर्मतीर्थे नतस्यदूरेपुरुषार्थसिद्धिः ॥ ४७ ॥ कृत्वाप्यघानामिहयःसहस्रं धर्मेश्वरंपश्यतिदैवयोगात् ॥ सहेतनोजातुसनारकींव्यथां कथांतदीयांदिविकुर्वतेमराः ॥ ४८ ॥ योधर्मपीठंप्रतिलभ्यकाश्यां स्वश्रेयसेनोयततेऽत्रमर्त्यः ॥ कथंसधर्मत्वमिवातितेजाः करिष्यतिस्वंकृतकृत्यमेव ॥ ४९ ॥ त्वयायथाप्ताइहधर्मराज मनोरथास्तेगुरुभिस्तपोभिः ॥ तथैवधर्मेश्वरभक्तिभाजां कामाःफलिष्यन्तिनसंशयोत्र ॥ ५० ॥ कृत्वाप्यघान्येवमहान्त्यपीह धर्मेश्वरार्चांसकृदेवकुर्वन् ॥ कुतोबिभेतिप्रियबन्धुरेव तवत्वदीयार्चितलिङ्गभक्तः ॥ ५१ ॥

की शीघ्रही सिद्धिहोवेगी ॥ ४६ ॥ और जोकि अमल अन्तःकरणवाला नर तुम्हारे आगे इस धर्मतीर्थ मे स्नानकर एकबारभी धर्मेश्वर को पूजेगा उसके पुरुषार्थोंकी सिद्धि दूरमें नहीं है ॥ ४७ ॥ व इस लोकमें हजारो पापोंकोभी कर जो जन दैवयोगसे धर्मेश्वर को देखेगा वह नरककी व्यथाको कभी नहीं सहै है और स्वर्ग में देवलोगभी उसकी कथाको करते है ॥४८॥ हे धर्म ! जोकि यहां काशीमें धर्मपीठको सामने से पाकर अपने कल्याण के लिये नही यत्न करताहै वह तुम्हारी नाई अतिशय तेजस्वी होकर अपना को किस प्रकारसेही कृतार्थ करेगा ॥ ४९ ॥ हे धर्मराज ! जैसे तुमने बड़ी तपस्याओं से उन मनोरथो को यहां पायाहै वैसेही धर्मेश्वर की

भक्तिके सेवियों के सब काम फलेंगे इसमें संशय नहीं है ॥ ५० ॥ और यहा या इस लोक में बड़ेभी पापोंकोही करभी एकबारभी धर्मेश्वर की पूजाको करताहुआ तुम्हारे थापे व पूजेहुये लिंगका भक्तजन तुम्हारा प्यारा बन्धु होकर क्यों डरता है या किससे डरता है ॥ ५१ ॥ हे धर्म ! जोकि पत्र पुष्प जल और दूबसे धर्मेश्वर को भलीभांति पूजेगा उसको अति आनन्दितहुये अमृतभोजी देवलोग मन्दारके फूलोंकी मालाओं से पूजेंगे ॥५२॥ और धर्मेश्वरके पूजन की रचना के करनेहारे व बन्धु भावसे तुम्हारे मनके हरनेहारे उनको कभी डर न होगा जोकि पापकर्त्ता लोग तुमसे डरते हैं ॥ ५३ ॥ हे धर्म ! गंगामें स्नान किये हुये और तुम्हारे सम्बन्धी लिंग

पत्रेणपुष्पेणजलेनदूर्वयायोधर्मधर्मेश्वरमर्चयिष्यति॥समर्चयिष्यन्त्यमृतान्धसस्तंमन्दारमालाभिरतिप्रहृष्टाः॥५२॥ त्वत्तोविभेष्यन्तिकृतैनसोयेभयन्नतेषांभविताकदाचित॥धर्मेश्वरार्चारचनांकरिष्यतांहरिष्यतांबन्धुतयामनस्ते॥५३॥ यदत्रदास्यन्तिहिधर्मपीठे नराद्युनद्यांकृतमज्जनाश्च ॥ तदक्षयंभावियुगान्तरेपि कृतप्रणामास्तवधर्मलिङ्गे ॥ ५४ ॥ ये कार्त्तिकेमासिसिताष्टमीतिथौ यात्राङ्करिष्यन्तिनराउपोषिताः ॥ रात्रौचवैजागरणंमहोत्सवैर्धर्मेश्वरेतेनपुनर्भवाभुवि ॥ ५५ ॥ स्तुतिंचयेवैत्वदुदीरितामिमान्नराःपठिष्यन्तितवाग्रतःक्वचित् ॥ निरेनसस्तेममलोकगामिनः प्राप्स्यन्तितेवैभव तःसखित्वम् ॥५६॥ पुनर्वरंब्रूहियथेप्सितंददे तेजोनिधेर्नन्दनधर्मराज ॥ अदेयमत्रास्तिनकिञ्चिदेवते विधेहिवाग्गुद्यम मात्रमेव ॥ ५७॥ प्रसन्नमूर्तिंसविलोक्यशङ्करंकारुण्यपूर्णस्वमनोरथाभिदम् ॥ आनन्दसन्दोहसरोनिमग्नो वक्तुंक्षण

में प्रणाम करनेवाले मनुष्य इस धर्मपीठ में जो कुछभी देवेंगे वह युगान्तर और कल्पान्तर में अक्षय होगा ॥ ५४ ॥ व जोकि उपास कियेहुये मनुष्य कार्त्तिकसुदी अष्टमी तिथि में यात्राको करेंगे व धर्मेश्वर में रात्रि के समय महोत्सवों से जागरणकोभी करेंगे वे भूमिमें फिर उत्पत्तिवाले न होवेंगे ॥ ५५ ॥ और जोकि मनुष्य तुम्हारी कही इस स्तुतिको तुम्हारे आगे कभी पढ़ेंगे वे निष्पाप और मेरे लोकके जानेवालेहोकर आपके सखाभावको प्राप्तहोवेंगे ॥ ५६ ॥ हे तेजोनिधान, सूर्य्यकेनन्दन, धर्मराज ! तुम जैसे फिर कहो वैसे वाञ्छित वरको मैं देताहूं क्योंकि यहां तुमको कुछभी अदेय नहीं है इससे तुम वचन के उद्यममात्रकोही करो ॥ ५७ ॥ इसभांति

अपने मनोरथोंके सबओर से दायक व दयासे पूर्ण प्रसन्नमूर्त्ति शङ्करजीको देखकर आनन्द समूह सरोवरमें डूबेहुये वह धर्मराजजी क्षणभर कुछभी कहनेको न समर्थ हुये ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेधर्मेशमहिमाख्याननामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो०। उन्नासी अध्यायमें सकल सुमंगल खानि । श्रीधर्मेश्वरकी सुखद महिमा बहुरि बखानि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि अमृतके सागर, सुखदायक शिवजी ने आनन्दसे उदित आंसुओ के जलसे रुकेहुये कण्ठवाले उन धर्मराज को विशेषतासे देखकर अमृत चुवानेहारे हाथों से स्पर्श किया ॥ १ ॥ अनन्तर बड़े तपस्वी धर्मराज

न्नैवशशाककिञ्चित् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे धर्मेशमहिमाख्यानन्नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

स्कन्दउवाच ॥ आनन्दबाष्पसलिलरुद्धकण्ठंविलोक्यतम् ॥ मृडःपस्पर्शपाणिभ्यां सौधाभ्यान्तुसुधाम्बुधिः ॥१॥ अथतत्स्पर्शसौख्येन धर्मराजोमहातपाः ॥ पुनरंकुरयामास तपोग्निज्वलितान्तनुम् ॥ २ ॥ ततःप्रोवाचसब्राध्निर्देवं देवमुमापतिम्॥प्रसन्नवदनंशान्तंशान्तपारिषदावृतम् ॥३॥ प्रसन्नोसियदीशानसर्वज्ञकरुणानिधे॥ किमन्येनवरेणात्र यत्त्वंसाक्षात्कृतोमया ॥ ४ ॥ यन्नवेदाविदुःसम्यङ्नचतौवेदपूरुषौ ॥ ततोपिवरयोग्योस्मितन्नाथप्रार्थयाम्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीकण्ठाण्डजडिम्भानाममीषांमधुरब्रुवाम्॥मत्तपश्चिरसाक्षीणांमत्पुरःप्राप्तजन्मनाम् ॥६॥ पितृभ्यांपरिहीनानामि तिहासकथाविदाम् ॥ त्यक्ताहारविहाराणांकीराणांवरदोभव ॥ ७ ॥ एतत्प्रसूतिसमयेआमयेनप्रपीडिता ॥ शुकीपञ्च

ने उन शिवजी के स्पर्श के सौख्यसे तपस्याकी अग्नि से ज्वलित देहको फिर अंकुरित किया ॥ २ ॥ तदनन्तर सूर्य्यजीके पुत्र उन धर्मराजजीने देवों के देव, पार्वतीजी के पति, प्रसन्नमुख, शान्तरूप और शान्तपार्षदों से सब ओर घिरेहुये महादेवजी से उच्चस्वर से कहा ॥ ३ ॥ कि हे सर्वज्ञ, दयानिधान, ईशान ! जो तुम प्रसन्नहो तो अन्य वरसे क्याहै जिससे तुम मुझकरके प्रत्यक्ष कियेगयेहो ॥ ४ ॥ हे नाथ ! जिनको वेद भलीभांति नहीं जानते हैं और वे वेदपुरुष याने ब्रह्मा व विष्णुजी भी नहीं जानते हैं उन आप के साक्षात्कार से भी जो मैं वरके योग्यहूं तो प्रार्थना करताहूं (मांगताहूं) ॥ ५ ॥ कि हे श्रीकण्ठ ! जे कि ये पक्षियों के बालक मधुर शब्दको बोलते हुये व मेरी तपस्या के बहुतकाल से साखी व मेरे आगे जन्मको प्राप्तहुये हैं ॥ ६ ॥ व माता और पितासे हीन व इतिहास कथाओं के पण्डित व आहार (भोजन) और

विहार को त्यागे हैं उन शुकों के वरदाता होवो ॥ ७ ॥ इनकी उत्पत्ति के समय में रोग से पीड़ित शुकी मरणको प्राप्तहुई और शुक को बाजने खाडाला है ॥ ८ ॥ और हे अनाथों के नाथ ! जे कि आयुःशेषस्वरूपी आप से रक्षित व अनाथ और सदैव मेरा मुख देखनेवाले हैं उनको वर देवो ॥ ९ ॥ हे मुने ! इसप्रकार परोपकार से निर्मल, धर्मके वचन को सुनकर शङ्करजीने विनयसे नये मुखवाले उन पक्षियोंको बुलाकर ॥ १० ॥ और धर्म में परम प्रसन्न होकर शुकके बच्चों से इस वचन को कहा कि हे पक्षियो ! धर्मराज के सङ्गी साधु तुम लोग बोलो ॥ ११ ॥ कि धर्मेश्वर के सेवक या धर्मेश्वर के सब ओर विचरनेहारे व साधुओं के समीप या संगसे भली

त्वमापन्नाशुकःश्येनेनभक्षितः ॥ ८ ॥ रक्षितानामनाथानांसदामन्मुखदर्शिनाम् ॥ अनाथनाथभवताह्यायुःशेषस्वरूपिणा ॥ ९ ॥ इतिधर्मवचःश्रुत्वापरोपकृतिनिर्म्मलम् ॥ तानाहूयमुनेशम्भुर्विनयावनताननान् ॥ १० ॥ उवाचधर्मेतिप्रीतःशुकशावानिदंवचः ॥ अयिपत्ररथाब्रूतसाधवोधर्म्मसङ्गताः ॥ ११ ॥ कोवरोभवतान्देयोधर्मेशपरिचारिणाम् ॥ साधुसंसर्गसंक्षीणजन्मान्तरमहैनसाम् ॥ १२ ॥ इतिश्रुत्वामहेशस्यवचनन्तेपतत्रिणः ॥ प्रोचुःप्रणम्यदेवेशंनमस्तेभवनाशन ॥ १३ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ अनाथनाथसर्वज्ञकोवरोनःसमीहितः ॥ इतोपित्र्यक्षयत्साक्षात्तिर्यक्त्वेपिसमीक्षिताः ॥ १४ ॥ लाभाःसन्तूद्यमवतांगिरीशेहपरःशताः ॥ परम्परोयंलाभोत्रयत्त्वंदृग्गोचरीभवेः ॥ १५ ॥ यदेतद्दृश्यतेनाथतत्सर्वंक्षणभंगुरम् ॥ अभंगुरोभवानेकस्त्वत्सपर्याप्यभंगुरा ॥ १६ ॥ विचित्रजन्मकोटीनांस्मृतिर्नोत्रपरिस्फुरे

भांति क्षीणहुये जन्मान्तरों के महापापवाले आपलोगों को कौन वर देने योग्यहै ॥ १२ ॥ इसप्रकार महेशजी के वचनको सुनकर उन पक्षियों ने कहा कि हे जन्म या संसार के नाशक ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ १३ ॥ पक्षी बोले कि, हे अनाथों के नाथ, सर्वज्ञ, त्रिनेत्र ! जिसमे पक्षीभावमें भी हमलोग साक्षात् आप से भलीभांति देखेगये हैं इससेभी अधिक कौन वर हमारा प्यारा वाञ्छितहै ॥ १४ ॥ हे गिरीश ! इस लोकमें उद्यमी लोगोंको सैकड़ों से अधिक अनेक लाभहोवें परन्तु जिससे तुम नेत्रगोचर होतेहो यह यहां श्रेष्ठ लाभहै ॥ १५ ॥ हे स्वामिन् ! जो यह सब देखाजाताहै वह क्षणमे भंग होनेवालाहै एक आप अविनाशीहो और तुम्हारी पूजा अभंगुर

है याने उसका फल अनन्तहै ॥ १६ ॥ इन तपस्वी के रचित लिंग पूजनके देखने से करोड़ों विचित्र जन्मोंकी सुध हमको सब ओरसे स्फुरित होवे है ॥ १७ ॥ हे ईश्वर ! हमने बहुत कालतक देवयोनि को भी प्राप्त किया है और उसने अपनी लीला से हजारों दिव्य स्त्रियों को भोगाहै ॥ १८ ॥ व दैत्यों की दानवोंकी नागोंकी निशाचरों की किन्नरोंकी विद्याधरोंकी और गन्धर्वोंकी भी योनि हम से अर्जितहुई है ॥ १९ ॥ व मनुष्यभाव में बहुतसा राज्य प्राप्तहुआ है व जलमें जलचरत्व और स्थलमे स्थलचारियों का भाव हुआहै ॥ २० ॥ व हम वनमें वनस्थानवाले व ग्रामों में ग्रामवासी व दाता याचक रक्षक और जन्तुओं के घातक भी हुये हैं ॥ २१ ॥ व हम सुखीहुये

त् ॥ एतत्तपस्विरचितलिङ्गपूजाविलोकनात् ॥ १७ ॥ देवयोनिरपिप्राप्ताचिरमस्माभिरीशितः ॥ दिव्याङ्गनाःसहस्राणितत्रभुक्ताःस्वलीलया ॥ १८ ॥ आसुरीदानवीनागीनैर्ऋतीचापिकैन्नरी ॥ विद्याधरीचगान्धर्वीयोनिरस्माभिरर्जिता ॥ १९ ॥ नरत्वेभूपतित्वञ्चपरिप्राप्तमनेकशः ॥ जलेजलचरत्वञ्चस्थलेचस्थलचारिता ॥ २० ॥ वनेवनौकसोजाताग्रामेषुग्रामवासिनः ॥ दातारोयाचितारश्चरक्षितारश्चघातुकाः ॥ २१ ॥ सुखिनोपिवयञ्जाताढुःखिनोवयमास्मच ॥ जेतारश्चवयञ्जाताःपराजेतारएवच ॥ २२ ॥ अधीतिनोपिमूर्खाश्चस्वामिनःसेवकाअपि ॥ चतुर्षुभूतग्रामेषुउत्तमाधममध्यमाः ॥ २३ ॥ अभूमभूरिशःशम्भोनक्वापिस्थैर्यमागताः ॥ इतोयोनेस्ततोयोनौततोयोनेस्ततोन्यतः ॥ २४ ॥ पिनाकिन्कापिनप्रापिसुखलेशोमनागपि ॥ इदानींपुण्यसम्भारैर्धर्मेश्वरविलोकनात् ॥ २५ ॥ तापनेःसुतपोवह्निज्वालाप्रज्वलितैनसः ॥ संवीक्ष्यत्र्यक्षसाक्षात्त्वांकृतकृत्याबभूविम ॥ २६ ॥ तथापिचेद्वरोदेयस्तिर्यक्षस्मासुधूर्जटे ॥ कृपणेष्वपिशोच्येषु

और हम दुःखी भी हुये व हम जीतनेवाले हुये और हारनेवालेभी हुये ॥ २२ ॥ व पण्डित व मूर्खभी व स्वामी और सेवक भी हुये व चार भांति के भूत समूहों में याने जरायुज अंडज स्वेदज और उद्भिज्जों में भी उत्तम मध्यम और अधम ॥ २३ ॥ बहुतसे हुये परन्तु हे शंभो ! कहीं स्थिरताको नहीं प्राप्तभये क्योंकि इस योनि से उस योनि में तदनन्तर उस योनिसे अन्यमें गये ॥ २४ ॥ हे पिनाकधन्वावाले, शिव ! थोड़ाभी सुखका लेश कहींभी नहीं प्राप्तहुआ इस समय पुण्यसमूहों करके धर्मेश्वरके दर्शन से ॥ २५ ॥ श्रीसूर्य्यपुत्र यमराजजी की तपस्या अग्निकी ज्वाला से बहुतही जलाये पापोंवाले हमलोग हे त्रिनेत्र ! साक्षात् तुमको देखकर कृतकृत्य होगये ॥ २६ ॥ हे

कि जहां साक्षात् श्रीविश्वेश्वरहैं वहां क्षण क्षण या पग पगमें मुक्ति है ॥ ३६ ॥ और तीर्थसंन्यासकारी बहुत पुराने अन्य लोमशादि मुनिभी कहते हैं कि काशिकापुरी मोक्षकी प्रकाशिकाहै ॥ ३७ ॥ व हमभी ऐसा जानते हैं कि जहां शिवजीके आनन्दवनमें गंगाहै उसमेंही मुक्तिहै यह निश्चितहै ॥ ३८ ॥ जोकि स्वर्ग व मनुष्य लोक और पाताल में भूत भविष्य और वर्त्तमान है उस सबको धर्मेश्वर के उत्तम अनुग्रह से हमलोग जानते हैं ॥ ३९ ॥ हे शम्भो ! इससे हम ब्रह्माजी के कहे व विष्णुजी के कहे व मुनियों के कहे व आपके कहेहुये सम्पूर्ण वचन को जानते हैं ॥ ४० ॥ यह सब ब्रह्माण्डगोलक धर्मपीठ की सेवा से हाथ में अमल

रःसाक्षान्मुक्तिस्तत्रपदेपदे ॥ ३६ ॥ वदन्त्यन्येपिमुनयस्तीर्थसंन्यासकारिणः ॥ चिरन्तनाल्लोमशाद्याःकाशिकामुक्तिकाशिका ॥ ३७ ॥ वयमप्येवंजानीमोयत्रस्वर्गतरङ्गिणी ॥ आनन्दकाननेशम्भोर्मोक्षस्तत्रैवनिश्चितम् ॥ ३८ ॥ भूतंभाविभविष्यंयत्स्वर्गेमर्त्येरसातले ॥ तत्सर्वमेवजानीमोधर्म्मेशानुग्रहात्परात् ॥ ३९ ॥ अतोहिरण्यगर्भोक्तंहरिप्रोक्तंमुनीरितम् ॥ भवतोक्तंचनिखिलंशम्भोजानीमहेवयम् ॥ ४० ॥ करामलकवत्सर्वमेतद्ब्रह्माण्डगोलकम् ॥ अस्मद्वाग्गोचरेऽस्त्येवधर्मपीठनिषेवणात् ॥ ४१ ॥ धर्मराजस्यतपसातिर्यञ्चोपिवयंविभो ॥ जाताःस्मनिर्विकल्पंहिसर्वज्ञानस्यभाजनम् ॥ ४२ ॥ मधुरम्मृदुलंसत्यंस्वप्रमाणंसुसंस्कृतम् ॥ हितम्मितंसदृष्टान्तंश्रुत्वापत्त्रिसुभाषितम् ॥ ४३ ॥ देवोतिविस्मयापन्नोऽवर्णयत्पीठगौरवम् ॥ त्रैलोक्यनगरेचात्रकाशीराजगृहम्मम ॥ ४४ ॥ तत्रापिभोगभवनमनर्घ्यमणिनिर्मितम् ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यःप्रासादोमेतिशर्मभूः ॥ ४५ ॥ पतत्रिणोपिमुच्यन्तेयंकुर्वाणाःप्रदक्षिणम् ॥ स्वेच्छ

जलके समान या आँवलों के फलके समान हमारे वचनगोचरमेंही है ॥ ४१ ॥ हे विभो ! तिर्यग्योनिगत पक्षी भी हम धर्मराज की तपस्या से विकल्पहीन और सब ज्ञानके पात्र होगये हैं ॥ ४२ ॥ व मधुर मृदुल सत्य व अपने अनुभव के गोचर व अच्छे संस्कारयुक्त हितकारी थोड़े अक्षरोंवाला और दृष्टान्त समेत जो पक्षियों का अच्छा वचन है उसको सुनकर ॥ ४३ ॥ अत्यन्त विस्मय को प्राप्तहुये महादेवजीने धर्मपीठ की गुरुता को वर्णन किया कि इस त्रिलोक नगर में काशी मेरा राजमन्दिर है ॥ ४४ ॥ उसमें भी अमोल उत्तम मणियों से बनाहुआ अत्यन्त सुखका स्थान मोक्षलक्ष्मीविलास नामक मेरा मन्दिर भोगों का घर है ॥ ४५ ॥ अपनी इच्छा से

सर्वज्ञ, जटाजूटभारवाले, शिव ! तोभी जो दीन शोचनीय और तिर्य्यग्योनिवाले पक्षी हम लोगों में वर देने योग्य है तो उस ज्ञानको देवो ॥ २७ ॥ कि, मेरे समान लोगों से दुर्भेद्य मायामय पाशों से बँधेहुये हम लोग जिस ज्ञानके द्वारा इस संसारबन्धनसे मुक्त होजावे हैं ॥ २८ ॥ हे शङ्कर ! हम इन्द्र के स्थानको नहीं व चन्द्रमाके स्थान को नहीं और अन्यलोक को भी नहीं चाहते हैं किन्तु काशीमें फिर जन्महीन केवल मृत्युकी वाञ्छा करते हैं ॥ २९ ॥ हे सर्वज्ञ ! आपका समीप होने से हम सब कुछ जानते हैं जैसे चन्दन के संसर्गसे सब वृक्ष सुगन्धवान् होजाते हैं ॥ ३० ॥ जो कि काल होतेही तुम्हारे आनन्दवन में देहका त्यागना है यहही संसार के विच्छेद का

ज्ञानंसर्वज्ञदेहितत् ॥ २७ ॥ येनज्ञानेनमुक्ताःस्मोऽमुष्मात्संसारबन्धनात् ॥ यन्त्रिताःप्राकृतैःपाशैरदुर्भेद्यैश्चमादृशैः ॥ २८॥ ऐन्द्रंपदंनवाञ्छामोनचान्द्रन्नान्यदेवहि॥ वाञ्छामःकेवलंमृत्युंकाश्यांशम्भोऽपुनर्भवम् ॥ २९ ॥ त्वत्सान्निध्याद्वि जानीमःसर्वज्ञसकलंवयम् ॥ यथाचन्दनसंसर्गात्सर्वेसुरभयोद्रुमाः ॥ ३० ॥ एतदेवपरंज्ञानंसंसारोच्छित्तिकारणम् ॥ वपुर्विसर्जनंकालेयत्तवानन्दकानने ॥ ३१ ॥ निर्मथ्यविष्वग्वाग्जालंसारभूतमिदंपरम् ॥ ब्रह्मणोदीरितंपूर्वंकाश्यांमुक्ति स्तनुत्यजाम् ॥ ३२ ॥ यद्वाच्यंबहुभिर्ग्रन्थैस्तदष्टाभिरिहाक्षरैः ॥ हरिणोक्तंरविपुरःकैवल्यंकाशिसंस्थितौ ॥ ३३ ॥ याज्ञ वल्क्योमुनिवरःप्रोक्तवान्मुनिसंसदि॥रवेरधीत्यनिगमान्काश्यामन्तेपरम्पदम् ॥ ३४ ॥ स्वामिनापिजगद्धात्रीपुरतोम न्दराचले ॥ इदमेवपुराप्रोक्तंकाशीनिर्वाणजन्मभूः ॥ ३५ ॥ कृष्णद्वैपायनोप्येवंशम्भोवक्ष्यतिनान्यथा ॥ यत्रविश्वेश्व

कारण उत्तम ज्ञानहै ॥ ३१ ॥ पूर्वसमय में सब ओरसे वचन समूह को निश्शेष मथकर ब्रह्माजीने यह श्रेष्ठ सारभूत कहाहै कि काशी में देह त्यागतेहुये जनोंकी मुक्ति होती है ॥ ३२ ॥ जो बहुते ग्रन्थों से कहने योग्यहै वह यहां आठ अक्षरों से वाच्यहै और सूर्य्यके आगे विष्णुजीने कहाहै कि, काशी मृत्युमें मुक्तिहै ॥ ३३ ॥ व श्रीसूर्य्यदेव से वेदों को पढ़कर याज्ञवल्क्य मुनिवरने मुनियोंकी सभामें कहाहै कि काशी में अन्त (मरना) होतेही परमपदहै ॥ ३४ ॥ और आगे मन्दराचल पर श्रीजगदम्बाजीके सामने स्वामीजीने भी इसी वचनको कहाहै कि काशी कैवल्य मुक्तिकी भूमि है ॥ ३५ ॥ हे शंभो ! विष्णु के अवतार व्यासजी भी ऐसा कहेंगे अन्यथा नहीं

आकाशमें विचरते हुये पक्षी भी व आकाशचारी देवभी जिसकी प्रदक्षिणा करतेहुये मुक्त होजाते हैं ॥ ४६ ॥ व मोक्षलक्ष्मीविलासनामक देवमन्दिर के दर्शनसे ब्रह्महत्या भी देहसे दूर चलीजाती है अन्यथा नहीं ॥ ४७ ॥ और जिन्हों ने मोक्षलक्ष्मीविलासमन्दिर के कलश को देखा उनको निधियों के कलश क्षणक्षण मे नहीं छोड़ते हैं ॥ ४८ ॥ व जिन्हों ने मेरे मन्दिर के मस्तक पर प्राप्तहुई पताकाको दूरसे भी नेत्रगोचर किया वे नित्यही मेरे अतिथि हैं ॥ ४९ ॥ कोई यह उत्तम आनन्दनानक कन्दका अंकुर उस शिवालयके मिषसे भूमिको फोड़कर आपही निकलकर उत्पन्न हुआहै ॥ ५० ॥ यह आश्चर्य्यहै कि जहां नित्यही चित्रोंमें गतभी ब्रह्मादि और स्थावर

यांविचरन्तःखेखेचरा अपिदेवताः ॥ ४६ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्यविलोकनात् ॥ शरीराद्दूरतोयातिब्रह्महत्यापिनान्यथा ॥ ४७ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासस्यकलशोयैर्निरीक्षितः ॥ निधानकलशास्तांस्तुनमुञ्चन्तिपदेपदे ॥ ४८ ॥ दूरतोपिपताकापिममप्रासादमूर्धगा ॥ नेत्रातिथीकृतायैस्तुनित्यन्तेऽतिथयोमम ॥ ४९ ॥ भूमिंभित्त्वास्वयंजातस्तत्प्रासादमिषेणहि ॥ आनन्दाख्यस्यकन्दस्यकोप्येषपरमोंकुरः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादिस्थावरान्तानियत्ररूपाण्यनेकशः ॥ मामेवोपासतेनित्यंचित्रेंचित्रगतान्यपि ॥ ५१ ॥ ससौधोमेखिलेलोकेस्थानम्परमनिर्वृतेः ॥ रतिशालासमेरम्यासमेविश्वासभूमिका ॥ ५२ ॥ ममसर्वगतस्यापिप्रासादोयम्परास्पदम् ॥ परम्ब्रह्मयदाम्नातम्परमोपनिषद्गिरा ॥ अमूर्त्तंतदहम्मूर्तोभूयांभक्तकृपावशात् ॥ ५३ ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोधामतद्याम्यांमण्डपोस्तिमे ॥ तत्राहंसततन्तिष्ठेत्तत्सदोमण्डपम्मम ॥ ५४ ॥ निमेषार्धप्रमाणञ्चकालंतिष्ठतिनिश्चलः ॥ तत्रयस्तेनवैयोगःसमभ्यस्तःसमाःशतम् ॥ ५५ ॥

पर्य्यंत अनेकरूप मेरीही उपासना करते हैं ॥५१॥ वह मेरा राजमहल सम्पूर्ण लोकमें परमानन्दका स्थानहै व वह मेरी रम्य रतिशालाहै और वह मेरे विश्वासकी भूमिका है ॥५२॥ व सर्वगत याने सर्वव्यापकभी जो मैं हूं उनका यह मन्दिर उत्तम स्थानहै और श्रेष्ठ उपनिषदों के वचन से जो मूर्त्तिरहित परब्रह्म विचारा या कहागया है वह मैं भक्तोंकी कृपाके वशसे मूर्त्तिसहित हुआहूं ॥५३॥ उस प्रासाद से दक्षिणदिशा में मुक्तिसम्बन्धिनी सम्पत्तिका स्थान जो मेरा मण्डप है उसमें मैं निरन्तर टिकाहूं और वह मेरा सभामन्दिर है ॥ ५४ ॥ जो कोई निश्छलहोकर उसमें आधेनिमेष प्रमाण कालतक टिकता है उसने निश्चय से सैकड़ोंवर्षतक योगका भलीभांति अभ्यासकिया

है॥५५॥ व पृथिवीतलमें वह स्थान निर्वाणमण्डपनामक है उसमें एक ऋचा को भलीभांति जपताहुआ जन सब वेदके फलको पावे है ॥ ५६ ॥ व जो मुक्तिमण्डप में एकभी प्राणायाम को करता है उस करके अन्यत्र दशहजार वर्षतक अष्टांगयोग अच्छेप्रकार से अभ्यास कियागया है ॥ ५७ ॥ व जो मुक्तिमण्डप में एक षडक्षर (ॐनमःशिवाय) मन्त्र को जपे उसको वह फलहोवे है जोकि जपेहुये करोड़ रुद्राध्यायों से होताहै ॥ ५८ ॥ और जोकि गंगामें नहाया हुआ पवित्र जन मुक्तिमण्डप में शतरुद्रिय को जपे वह ब्राह्मणवेषधारी रुद्रही जानने योग्य है ॥ ५९ ॥ व मेरे दक्षिण मण्डप में एकबारभी ब्रह्मयज्ञ (तत्त्वज्ञानोपदेश या वेदपाठ) को कर ब्रह्मलोकको प्राप्तहोकर

निर्वाणमण्डपन्नामतत्स्थानञ्जगतीतले ॥ तत्रचैकंजपन्नेकांलभेत्सर्वश्रुतेः फलम् ॥ ५६ ॥ प्राणायामन्तुयःकुर्यादप्येकम्मुक्तिमण्डपे ॥ तेनाष्टाङ्गःसमभ्यस्तोयोगोऽन्यत्रायुतंसमः ॥ ५७ ॥ निर्वाणमण्डपेयस्तुजपेदेकंषडक्षरम् ॥ कोटिरुद्रेणजप्तेनयत्फलंतस्यतद्भवेत् ॥ ५८ ॥ शुचिर्गङ्गाम्भसिस्नातोयोजपेच्छतरुद्रियम् ॥ निर्वाणमण्डपेज्ञेयःसरुद्रोद्विजवेषभृत् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मयज्ञंसकृत्कृत्वाममदक्षिणमण्डपे ॥ ब्रह्मलोकमवाप्याथपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ ६० ॥ धर्मशास्त्रंपुराणानिसेतिहासानितत्रयः ॥ पठेन्निरभिलाषुःसन्सवसेन्ममवेश्मनि ॥ ६१ ॥ तिष्ठेदिन्द्रियचापल्यंयोनिवार्य क्षणंकृती ॥ निर्वाणमण्डपेन्यत्रतेनतप्तम्महत्तपः ॥ ६२ ॥ वायुभक्षणतोन्यत्रयत्पुण्यंशरदांशतम् ॥ तत्पुण्यंघटिकार्धेनमौनन्दक्षिणमण्डपे ॥ ६३ ॥ मितंकृष्णलकेनापियोदद्यान्मुक्तिमण्डपे ॥ स्वर्णसौवर्णयानेनसतुसञ्चरतेदिवि ॥ ६४ ॥ तत्रैकंजागरंकुर्याद्यस्मिन्कस्मिन्दिनेपियः ॥ उपोषितोर्चयेल्लिङ्गंससर्वव्रतपुण्यभाक् ॥ ६५ ॥ तत्रदत्त्वामहादा

अनन्तर परब्रह्ममे जाताहै ॥ ६० ॥ और जो कि निष्काम होताहुआ वहां धर्मशास्त्र व इतिहासों समेत पुराणोंको पढ़े वह मेरे लोकमें बसे ॥ ६१ ॥ व जो पुण्यवान् इन्द्रियोंकी चञ्चलताको रोंककर मुक्तिमण्डप में क्षणभरभी टिके उससे अन्यत्र बडी तपस्या तपीगई है ॥ ६२ ॥ व अन्यत्र सौवर्ष तक वायुभोजनसे जो पुण्य है वह पुण्य मुक्तिमण्डप में आधी घड़ी मौनकर होवे है ॥ ६३ ॥ और जो मुक्तिमण्डप में रत्ती से भी परिमित सुवर्ण को देवे है वह सुवर्णके विमान से स्वर्ग में विचरताहै ॥ ६४ ॥ व जिसी किसी दिनमें भी जो उपासाहुआ वहां एक जागरणको करे और लिंगको पूजे वह सब व्रतोंका पुण्यसेवीहोवे है ॥ ६५ ॥ वहां महादान को देकर व वहां महाव्रतको

कर व वहां सम्पूर्ण वेदको पढ़कर नर स्वर्गसे नहीं गिरताहै ॥ ६६ ॥ और जिसके प्राण मेरे मुक्तिमण्डपमें प्रयाणको करते हैं याने चलते है वह मुझमें पैठाहुआ तबतक यहां टिके कि जबतक मैं निश्चयसे हूं ॥६७॥ और पार्वतीके साथ मैं उस ज्ञानवापी में सदैव जलक्रीड़ाको करताहूं कि जिसके पानी पीनेमात्रसे निर्मल ज्ञान होताहै ॥६८॥ इस राजमन्दिर में जडता हरनेवाला व जलसे पूरित वह बड़ा जलक्रीड़ा का स्थान मेरी प्रीति करनेवाला है ॥ ६९ ॥ व उस मोक्षलक्ष्मीविलासनामक शिवालयके अग्र भागमे याने भैरवप्रदेशके समीप पश्चिमदिशा में मेरा शृंगारमण्डपहै वहही शोभाहीनों के लिये शोभा या सम्पत्ति के सौंपनेवाला श्रीपीठ जानने योग्यहै ॥ ७० ॥ उस

नन्तत्रकृत्वामहाव्रतम् ॥ तत्राधीत्याखिलंवेदंच्यवतेननरोदिवः ॥६६॥ प्रयाणंकुर्वतेयस्यप्राणामेमुक्तिमण्डपे ॥ समा मनुप्रविष्टोत्रतिष्ठेद्यावदहंखलु ॥ ६७ ॥ जलक्रीडांसदाकुर्यांज्ञानवाप्यांसहोमया ॥ यदम्बुपानमात्रेणज्ञानंजायेतनिर्मलम् ॥ ६८ ॥ तज्जलक्रीडनस्थानंममप्रीतिकरम्महत् ॥ अमुष्मिन्राजसदनेजाड्यहृज्जलपूरितम् ॥ ६९ ॥ तत्प्रासादपुरोभागेममशृङ्गारमण्डपः ॥ श्रीपीठन्तद्धिविज्ञेयंनिःश्रीकश्रीसमर्पणम् ॥ ७० ॥ मदर्थन्तत्रयोदद्याद्दुकूलानिशुचीन्यहो ॥ माल्यानिसुविचित्राणियक्षकर्दमवन्तिच ॥ ७१ ॥ नानानेपथ्यवस्तूनिपूजोपकरणान्यपि ॥ सश्रियालंकृतस्तिष्ठेद्यत्रकुत्रापिसत्तमः ॥ ७२ ॥ निर्वाणलक्ष्मीर्वृणुतेतन्निर्वाणपदाप्तये ॥ यत्रकुत्रापिनिधनंप्राप्नुयादपिसद्ध्रुवम् ॥ ७३ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्योत्तरेमम ॥ ऐश्वर्यमण्डपंरम्यन्तत्रैश्वर्यन्ददाम्यहम् ॥ ७४ ॥ मत्प्रासादैन्द्रदिग्भागेज्ञानमण्डपमस्तियत् ॥ ज्ञानंदिशामिसततंतत्रमान्ध्यायतांसताम् ॥ ७५ ॥ भवानिराजसदनेमम

में जो कि मेरे अर्थ अद्भुत पवित्र रेशमी या पीलेवस्त्र और यक्षकर्दम समेत सुविचित्र मालाओंको देवे ॥ ७१ ॥ व अनेक भांति के भूषणोकी चीजें और पूजाकी सामग्रियों को भी देवे है वह सत्तम जहां कहीं भी लक्ष्मी से भूषित होकर टिकै है ॥ ७२ ॥ और जहां कहीं भी वह मरणको प्राप्त होवे है तब मोक्षलक्ष्मी कैवल्यपद की प्राप्ति के लिये उसको निश्चय से घेरती है ॥ ७३ ॥ व मोक्षलक्ष्मीविलासनामक प्रासादसे उत्तर ओरमें मेरा रम्य ऐश्वर्य्यमण्डप है उसमें टिकाहुआ मैं ऐश्वर्य्यको देताहूं ॥ ७४ ॥ और मेरे महल से इन्द्रदिशाके भागमें जो ज्ञानमण्डप है उसमें मुझको ध्यावतेहुये सन्तो को मैं निरन्तर ज्ञान देताहूं ॥ ७५ ॥ हे भवानि ! राजमन्दिर में मेरी

पाकशालाहै उसमें जो पुण्य उपहारभावसे समर्पितहै उसको आनन्द से सदैव बहुतही ग्रहण करताहूं ॥ ७६ ॥ और विशालाक्षी के बडे महलमें मेरे विश्रामकी भूमिहै वहां मैं संसारसे खिन्नहुये लोगोंको विश्राम देताहूं ॥ ७७ ॥ व मेरा चक्रपुष्करिणी नाम तीर्थ कि जिसमें दुपहरके समय नियमसे स्नान कियाजाताहै वहां स्नानकरनेवाले पुरुषों को मैं उस निर्मलकारी ज्ञानकोदेताहूं कि ॥ ७८ ॥ जिसको परमतत्त्व कहते हैं व जिसको सत्तम ब्रह्म कहते हैं और जिसको स्वसंवेद्य कहते हैं उसको वहां मैं अन्तमें देताहूं ॥ ७९ ॥ व जिसको तारक ज्ञान कहते हैं व जिसको अतिनिर्मल कहते हैं और जिसको आत्माराम कहते है उसको वहां मैं अन्त मे देताहूं ॥ ८० ॥

स्तिहिमहानसम् ॥ यत्तत्रोपहृतम्पुण्यंनिर्विशामिमुदैवतत ॥ ७६ ॥ विशालाक्ष्यामहासौधेममविश्रामभूमिका ॥ तत्रसंसृतिखिन्नानांविश्रामंश्राणयाम्यहम् ॥ ७७ ॥ नियमस्नानतीर्थञ्चचक्रपुष्करिणीमम ॥ तत्रस्नानवतांपुंसांतन्नैर्मल्यन्दिशाम्यहम् ॥ ७८ ॥ यदाहुःपरमन्तत्त्वंयदाहुर्ब्रह्मसत्तमम् ॥ स्वसंवेद्यंयदाहुश्चतत्तत्रान्तेदिशाम्यहम् ॥ ७९ ॥ यदाहुस्तारकंज्ञानंयदाहुरतिनिर्मलम् ॥ स्वात्मारामंयदाहुश्चतत्तत्रान्तेदिशाम्यहम् ॥ ८० ॥ जगन्मङ्गलभूर्यात्रपरमा मणिकर्णिका ॥ विपाशयामितत्राहंकर्मभिःपाशितान्पशून् ॥ ८१ ॥ निर्वाणश्राणनेयत्रपात्रापात्रंनचिन्तये ॥ आनन्दकाननेतन्मेदानस्थानंदिवानिशम् ॥ ८२ ॥ भवाम्बुधौमहागाधेप्राणिनःपरिमज्जतः ॥ भूत्वैवकर्णधारोन्तेयत्रसन्तारयाम्यहम् ॥ ८३ ॥ सौभाग्यभाग्यभूर्यावैविख्यातामणिकर्णिका ॥ ददामितस्यांसर्वस्वमग्रजायान्त्यजायवा ॥ ८४ ॥ महासमाधिसम्पन्नैर्वेदान्तार्थनिषेविभिः ॥ दुष्प्रापोन्यत्रयोमोक्षःशोच्यैरपिसलभ्यते ॥ ८५ ॥ दीक्षितोवादिवाकी

जो कि यहां जगत् के मंगलोंकी भूमि उत्तम मणिकर्णिका है उसमें मैं कर्मों से बाधेहुये पशुओं (जीवों) को छोरताहूं ॥ ८१ ॥ जिस मुक्तिदायक आनन्दवनमें टिका हुआ मैं मुक्ति देने में पात्र और अपात्रकी चिन्तना नहीं करताहूं वह मेरा दिनोरात दानदेनेका स्थान हैं ॥ ८२ ॥ व जहां अन्तमे कर्णधार (केवट) होकर मैं बडे अथाह संसारसागरमें डूबते प्राणियोंको भलीभाति से तारताहूं ॥ ८३ ॥ और जो कि मणिकर्णिका निश्चयसे सौभाग्यभूमि कहीगई या प्रसिद्ध है उसमें ब्राह्मण और अन्त्यज को भी सर्वस्व देताहूं ॥ ८४ ॥ व बड़े योग से सम्पन्न और वेदान्तके अर्थों के सेवनेवाले लोगोंसे जो मुक्ति दुष्प्राप्य है वह शोच्यजनों से भी पाईजाती है ॥ ८५ ॥ दीक्षित

(यज्ञकर्त्ता) व चाण्डाल व पण्डित व मूर्खभी मणिकर्णिका को प्राप्तहोकर मेरी मोक्षदीक्षा में बराबरहै ॥ ८६ ॥ और जिस कैवल्यके देने में मैं अन्यत्र कृपणहूं उस बहुत काल से संचित सर्वस्वको मणिकर्णिका में प्राप्त होकर जन्तुमात्र के लिये देताहूं ॥ ८७ ॥ जो अत्यन्त दुर्घट तीनोंका संयोग दैवयोगसे यहां प्राप्तहै तो विना विचारेही बहुतकाल से सञ्चित सर्वस्व देनेयोग्यहै ॥ ८८ ॥ देह अनन्तर सम्पत्ति तदनन्तर वह मणिकर्णिका यह तीनोका संयोग इन्द्रादि देवों से भी अप्राप्यहै ॥ ८९ ॥ इसप्रकार बारबार विचारकर मैं मणिकर्णिका के समीपमें सदैव जन्तुमात्रों को मोक्षलक्ष्मी देताहूं ॥ ९० ॥ काशी मे वह बड़ीभारी मेरी मुक्तिदानकी भूमिहै उस पृथिवी की धूरिकी

र्तिः पण्डितोवाप्यपण्डितः ॥ तुल्योमेमोक्षदीक्षायांसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ ८६ ॥ यत्त्यागेन्यत्रकृपणस्तत्प्राप्य मणिकर्णिकाम् ॥ ददामिजन्तुमात्रायसर्वस्वञ्चिरसञ्चितम् ॥ ८७ ॥ यदिदैवादिहप्राप्तस्त्रिसंयोगोऽतिदुर्घटः ॥ अविचारन्तदादेयंसर्वस्वञ्चिरसञ्चितम् ॥ ८८ ॥ शरीरमथसम्पत्तिरथसामणिकर्णिका ॥ त्रिसंयोगोयमप्राप्योदेवैरिन्द्रादिकैरपि ॥ ८९ ॥ पुनःपुनर्विचार्य्येतिजन्तुमात्रेभ्यएवच ॥ निर्वाणलक्ष्मींयच्छामिसदोपमणिकर्णिकम् ॥ ९० ॥ मुक्तिदानमहीसामेवाराणस्यांमहीयसी ॥ तन्महीरजसासाम्यंत्रिलोक्यपिनचोद्वहेत् ॥ ९१ ॥ परंलिङ्गार्चनस्थानमविमुक्तेश्वरेश्वरम् ॥ तत्रपूजांसकृत्कृत्वाकृतकृत्योनरोभवेत् ॥ ९२ ॥ सायम्पाशुपतींसन्ध्यांकुर्यांपशुपतीश्वरे ॥ विभूतिधारणात्तत्रपशुपाशैर्नबध्यते ॥ ९३ ॥ प्रातःसन्ध्यांकरोम्येवसदोङ्कारनिकेतने ॥ तत्रैकापिकृतासन्ध्यासर्वपातककृन्तनी ॥ ९४ ॥ वसामिकृत्तिवासेहंसदाप्रतिचतुर्दशि ॥ अत्रजागरणंकृत्वाचतुर्दश्यांनगर्भभाक् ॥ ९५ ॥ रत्नेश्वरोर्चितोदद्यान्म

समताको त्रिलोकी भी नहीं प्राप्त होती है ॥ ९१ ॥ और अविमुक्तेश्वरेश्वर लिंग पूजनका स्थान उत्तमहै उसमें एक बारभी पूजाको कर मनुष्य कृतकृत्य होवे है ॥ ९२ ॥ व सायङ्काल पशुपतीश्वरमें मैं पाशुपती सन्ध्याको करताहूं वहां विभूति के धारण करनेसे अज्ञानपाशों से नहीं बँधताहै ॥ ९३ ॥ ऐसेही ॐकार मन्दिरमें मैं सदैव प्रातःसन्ध्या को करताहूं वहां एक बारभी कीहुई सन्ध्या सब पापों के काटनेवाली होती है ॥ ९४ ॥ व प्रति चतुर्दशी को मैं कृत्तिबासमें बसताहूं इससे वहा चतुर्दशी में जाग-

रणको कर गर्भसेवी नहीं होताहै ॥ ९५ ॥ व भक्तिसे पूजाहुआ रत्नेश्वरलिंग महारत्नोंको देताहै इसलिये उस लिंगको रत्नों से पूजकर नर स्त्रीरत्नादिको पावेहै ॥ ९६ ॥ व त्रिलोकके भीतर टिकाहुआ याने सर्वव्यापक भी मैं भक्तों के मनोरथोंकी समृद्धि के लिये त्रिलोचन लिंग मे निरन्तर टिकताहूं ॥ ९७ ॥ और वहां विरजस्कनामक महापीठहै उसमें भलीभांति सेवाकर चतुर्नद तीर्थ में स्नानादि जलक्रिया करनेवाला मनुष्य पाप या रजोगुण से हीन होजाताहै ॥ ९८ ॥ व महादेव में मेरे साधकों का सिद्धिदायक महापीठहै उस पीठके दर्शनसेही महापापों से विमुक्त होताहै ॥ ९९ ॥ और पितरो का प्रीतिदाता वृषभध्वजनामक जो पीठहै वहां पितरों के तर्प्पणको

हारत्नानिभक्तितः ॥ रत्नैःसमर्च्यतल्लिङ्गंस्त्रीरत्नादिलभेन्नरः ॥ ९६ ॥ विष्टपत्रितयान्तस्थोप्यहंलिङ्गेत्रिविष्टपे ॥ तिष्ठामि सततम्भक्तमनोरथसमृद्धये ॥ ९७ ॥ विरजस्कंमहापीठंतत्रसंसेव्यमानवः ॥ विरजाजायतेनूनंचतुर्नदकृतोदकः ॥९८॥ महादेवेमहापीठंममसाधकसिद्धिदम् ॥ तत्पीठदर्शनादेवमहापापैःप्रमुच्यते ॥ ९९ ॥ पितृप्रीतिप्रदम्पीठंवृषभध्वजसञ्ज्ञकम् ॥ पितृतर्पणकृत्तत्रपितॄंस्तारयतिक्षणात् ॥ १०० ॥ आदिकेशवपीठेहमादिकेशवरूपधृक् ॥ श्वेतद्वीपं नयेभक्तान्वैष्णवानतिवल्लभान् ॥ १ ॥ तत्रैवमङ्गलापीठेसर्वमङ्गलदायिनि ॥ उपपञ्चनदेतीर्थेभक्तान्सन्तारयाम्यहम् ॥ २ ॥ बिन्दुमाधवरूपेणयत्राहंवैष्णवाञ्जनान् ॥ नयेपञ्चनदस्नातांस्तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ ३ ॥ पञ्चमुद्रेमहापीठेये वीरेश्वरसेवकाः॥तेषांपरमनिर्वाणंकालेनाल्पेनजायते॥४॥तत्रसिद्धेश्वरीपीठेचन्द्रेश्वरसमीपतः ॥ तत्रसन्निधिकर्तॄणां सिद्धिःषण्मासतोभवेत् ॥ ५ ॥ काश्याञ्चयोगिनीपीठेयोगसिद्धिविधायिनि ॥ सिद्धीरुच्चाटनाद्याश्चकैर्नलब्धाःसुसाध

करताहुआ मनु ष्यक्षण भरमें पितरों को तारताहै ॥ १०० ॥ व आदिकेशवपीठमें आदिकेशवरूपधारी मैं अत्यन्त प्यारे वैष्णव भक्तों को श्वेतद्वीपमें पठाताहूं ॥ १ ॥ और वहांही पञ्चनदतीर्थ के समीप सब मंगलदायक मंगलापीठ मे मैं भक्तों को भलीभांति तारताहूं ॥ २ ॥ जहा बिन्दुमाधवरूप से मैं पञ्चनद में नहायेहुये वैष्णवजनों को विष्णु के उस परमपदको पठाताहूं ॥ ३ ॥ और पञ्चमुद्र नामक महापीठ मे जो वीरेश्वर के सेवकहैं उनको कैवल्य मुक्ति थोडेकाल से होतीहै ॥ ४ ॥ वहां चन्द्रेश्वर के समीप उस चन्द्रेश्वरी पीठमे समीप कर्त्ताओंकी सिद्धि छह मासमें होती है ॥ ५ ॥ व काशी में योगसिद्धिकर्त्ती योगिनीपीठमें किन अच्छे साधकोंसे उच्चाटनादि सिद्धियां

नहीं पाईगई हैं ॥ ६ ॥ इस काशीमें पग पग पर अनेक पीठहैं परन्तु धर्मेशपीठकी कोई श्रेष्ठ शक्तिहै ॥ ७ ॥ जहां त्रात त्रात ऐसा बोलतेहुये ये शुकोंके बच्चेभी मेरे अच्छे उपदेशसे निर्मल ज्ञानके पात्रहोगये हैं ॥ ८ ॥ हे सूर्य्यपुत्र, धर्मराज ! जो कि तुम्हारा तपोवन यह उत्तम धर्मपीठ है उसको आजके दिनतक मैं कभी नहीं त्यागताहूं ॥ ९ ॥ हे सूर्य्य के सुत ! मेरे अनुग्रहसे इन शुकोंको देखो कि दिव्य विमानपर चढ़कर मेरे बड़े या पूजनीय पुर (लोक) को जावेंगे ॥ १० ॥ और तुम्हारे संग या समीपसे अत्यन्त निर्मलहुये ये वहां बहुतकाल तक भोगोंको भोगकर फिर मेरे कहे ज्ञानको प्राप्तहोकर यहां मुक्तिको पावेंगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार देवों के स्वामी शिवजी के कहेहुये होतेही कैलास के शृङ्गकी समतावाला दिव्य कन्याओं से भूषित दिव्य विमान आकर प्राप्तहुआ ॥ १२ ॥ और दिव्यरूपधारी वे अमल पक्षी धर्मराज से पूंछकर व विमान पर चढ़कर उस विमान से कैलासके सामने भलीभांति चलेगये ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेधर्मेशाख्यानंनामैकोनाशी-तितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

कैः ॥ ६ ॥ अनेकानीहपीठानिसन्तिकाश्याम्पदेपदे ॥ परन्धर्मेशपीठस्यकाचिच्छक्तिरनुत्तमा ॥ ७ ॥ यत्रामीबालकीरा श्चनिर्मलज्ञानभाजनम् ॥ आसुःसदुपदेशान्मेत्रातत्रातेतिभाषिणः ॥ ८ ॥ एतद्धर्मेश्वरंपीठन्त्यजाम्यद्यदिनावधि ॥ नकदाचित्तरणिजत्वत्तपोवनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ ममानुग्रहतःकीरानेतान्पश्यरवेःसुत ॥ दिव्यंविमानमारुह्यगन्तारोमत्पु रम्महत् ॥ १० ॥ तत्रभुक्त्वाचिरम्भोगाञ्ज्ञानम्प्राप्यमयेरितम् ॥ इहमुक्तिमवाप्स्यन्तित्वत्संसर्गातिनिर्मलाः ॥ ११ ॥ इत्युक्तवतिदेवेशेकैलासशिखरोपमम् ॥ दिव्यंविमानमापन्नंरुद्रकन्यापरिष्कृतम् ॥ १२ ॥ आरुह्यतेनयानेनदिव्यरूप धराःखगाः ॥ कैलासमभिसञ्जग्मुर्धर्ममापृच्छ्यतेऽमलाः ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेधर्मेशाख्यानंनामै कोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ कुम्भोद्भूततदाश्चर्यं विलोक्यजगदम्बिका ॥ उवाचशम्भुंप्रणता प्रणतार्तिहरंपरम् ॥ १ ॥ अ

दो० । अस्सी के अध्याय में श्रीधर्मेशसुबीज । विश्वभुजाशागणपका व्रतसुमनोरथतीज ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भसम्भव, अगस्त्यजी ! उस आश्चर्य

को देखकर प्रणाम करनेवाली जगदम्बाजी ने भक्तार्त्तिहारी श्रेष्ठशंकरजी से कहा ॥ १ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे महादेव, महेश्वर ! इस पीठका यह माहात्म्य है कि जिससे तिर्य्यग्योनिवाले पक्षियों का संसारमोचन ज्ञान हुआ ॥ २ ॥ इससे हे धूर्जटे ! प्रभाव को जानकर मैं धर्मेश्वरके समीप से आज दिनसे लगाकर टिकूंगी ॥ ३ ॥ व जे कि स्त्री व पुरुष भी इस लिंगमें भक्त हैं उनकी अभीष्टसिद्धिको मैं सदैव साधूंगी ॥ ४ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे देवि ! यहां सन्तों के मनोरथकारी इस धर्मपीठको सबओर से ग्रहण करनेवाली तुमने बहुत अच्छा कियाहै ॥ ५ ॥ और जे मनुष्य यहां विश्वभुजा नामवाली तुमको पूजेंगे वेही समस्त भोगों के

म्बिकोवाच ॥ अस्यपीठस्यमाहात्म्यं महादेवमहेश्वर ॥ तिरश्चामपियज्जातं ज्ञानंसंसारमोचनम् ॥ २ ॥ अतःप्रभावं विज्ञाय धर्मपीठस्यधूर्जटे ॥ धर्मेश्वरसमीपेहं स्थास्याम्यद्यदिनावधि ॥ ३ ॥ अत्रलिङ्गेतुयेभक्ताः स्त्रियोवापुरुषास्तुवा ॥ तेषामभीष्टांसंसिद्धिं साधयिष्याम्यहंसदा ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ साधुकृतंत्वयादेवि कृतवत्यापरिग्रहम् ॥ अस्येहधर्मपीठस्य मनोरथकृतःसताम् ॥ ५ ॥ तएवविश्वभोक्तारोविश्वमान्यास्तएवहि ॥ येत्वांविश्वभुजामत्र पूजयिष्यन्तिमानवाः ॥ ६ ॥ विश्वेविश्वभुजेविश्वस्थित्युत्पत्तिलयप्रदे ॥ नरास्त्वदर्चकाश्चात्र भविष्यन्त्यमलात्मकाः ॥ ७ ॥ मनोरथतृतीयायां यस्तेभक्तिंविधास्यति ॥ तन्मनोरथसंसिद्धिर्भवित्रीमदनुग्रहात् ॥ ८ ॥ नारीवापुरुषोवाथत्वद्व्रताचरणात्प्रिये ॥ मनोरथानिहप्राप्य ज्ञानमन्तेचलप्स्यते ॥ ९ ॥ देव्युवाच ॥ मनोरथतृतीयायां व्रतंकीदृक्कथाकथम् ॥ किंफलं कैःकृतन्नाथ कथयैतत्कृपांकुरु ॥ १० ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेवियथापृष्टं भवत्याभवतारिणि ॥ मनोरथव्रतंचैतद्भु

भोक्ता हैं व वेही सबसे मान्य होवेंगे ॥ ६ ॥ हे जगत् की रक्षा उत्पत्ति और प्रलयकी प्रदायिनि, सर्वस्वरूपे, विश्वभुजे ! यहां तुम्हारे पूजक मनुष्य निर्मल मनवाले होवेंगे ॥ ७ ॥ जो मनोरथतृतीया (चैतसुदी तीज) में तुम्हारी भक्तिको करेगा उस के मनोरथों की संसिद्धि मेरे अनुग्रह से होनेहारी है ॥ ८ ॥ और हे प्रिये ! स्त्री व पुरुषभी तुम्हारा व्रतकरने से इस लोकमें मनोरथों को पाकर अनन्तर अन्तमें ज्ञान कोभी पावेगा ॥ ९ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि, हे नाथ ! मनोरथ,तृतीयामें कैसा व्रत है व किस प्रकारकी कथा है व क्या फलहै और किन्होंने किया है इसको कहो व कृपाको करो ॥ १० ॥ परमेश्वरजी बोले कि हे संसारतारिणि, देवि ! आपने जैसे

पूछा है वैसेही गुह्यसेभी बहुत गुह्य और उत्तम इस मनोरथ व्रतको सुनो ॥ ११ ॥ पूर्वसमय में पुलोमतनया (इन्द्राणी) ने कुछ मनोरथ मिलनेके लिये बहुत उत्तम तपस्या को तपा(किया) परन्तु तपस्या का फल न प्राप्तहुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर आनन्द व उत्तमभक्ति से संयुत उस मधुरकण्ठी ने रहस्यसमेत व कोकिलस्वर के समान गीतसेही मेरी पूजा किया ॥ १३ ॥ व कोमल, मधुर,सुतालसमेत, शोभनरंगकर्त्ता धातु या तान व मात्रा और कलावाले उसके या उस गानसे संतुष्टहुये ॥ १४॥ मैंने कहा कि हे पुलोमजे ! इस अच्छेगीत और इस लिंगपूजासे मैं प्रसन्नहू तुम वरको बोलो ॥ १५ ॥ पुलोमजा बोली कि, हे महादेवी के महाप्यारे, देवेश,

ह्याद्गुह्यतरम्परम् ॥ ११ ॥ पुलोमतनयापूर्वं ततापपरमंतपः ॥ किञ्चिन्मनोरथंप्राप्तुं नचापतपसःफलम् ॥ १२ ॥ अपूपुजत्ततोमांसा भक्त्यापरमयामुदा ॥ गीतेनसरहस्येनकलकण्ठीकलेनहि ॥ १३ ॥ तद्गानेनातिसन्तुष्टो मृदुनामधुरेणच ॥ सुतालेनसुरङ्गेण धातुमात्राकलावता ॥ १४ ॥ प्रोवाचत्वंवरंब्रूहि प्रसन्नोस्मिपुलोमजे ॥ अनेनचसुगीतेन त्वनयालिङ्गपूजया ॥ १५ ॥ पुलोमजोवाच ॥ यदिप्रसन्नोदेवेश तदायोममनोरथः ॥ तंपूरयमहादेव महादेवीमहाप्रिय॥ १६ ॥ सर्वदेवेषुयोमान्यः सर्वदेवेषुसुन्दरः ॥ यायजूकेषुसर्वेषु यःश्रेष्ठःसोस्तुमेपतिः ॥ १७ ॥ यथाभिलषितंरूपं यथाभिलषितंसुखम् ॥ यथाभिलषितंचायुः प्रसन्नोदेहिमेभव ॥ १८ ॥ यदायदाचपत्यामे सङ्गःस्याद्हृत्सुखेच्छया ॥ तदातदाचतन्देहं त्यक्त्वान्यन्देहमाप्नुयाम् ॥ १९ ॥ सदाचलिङ्गपूजायां ममभक्तिरनुत्तमा ॥ भवभूयाद्भवहर जरामरणहारिणी ॥ २० ॥ भर्तुर्व्ययेपिवैधव्यं क्षणमात्रमपीहन ॥ ममभाविमहादेव पातिव्रत्यंचयातुमा ॥ २१ ॥ स्कन्दउवाच ॥

महादेवजी ! जो आप प्रसन्नहो तो मेरा जो मनोरथहै उसको पूराकरो ॥ १६ ॥ कि जो सब देवोंमें मान्य है व सब देवोंमें सुन्दर है और जो सब यायजूकों याने अनेक यज्ञकर्त्ताओंमें श्रेष्ठहै वह मेरा पतिहोवे ॥ १७ ॥ और हे भव (जगत्कारण) ! प्रसन्नहुये तुम मेरे लिये यथाभिलषितरूप व यथाभिलषित सुख और यथाभिलषित आयुको देवो ॥ १८ ॥ व जब जब हृदय के सुखकी इच्छासे पतिके साथ मेरा संग होवे तब तब मैं उस देहको त्यागकर अन्य देहको प्राप्तहोऊं ॥ १९ ॥ और हे संसारहारक, उत्पत्तिकारक, महेशजी ! जरामरणहारिणी व अत्यन्त उत्तम मेरी भक्ति लिंगपूजामें सदैव होवे ॥ २० ॥ हे महादेव ! यहां पतिके नाशमें भी मेरा वैधव्य क्षण-

मात्रभी न होवे और पातिव्रत्य मतजावे ॥ २१ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, उस पुलोमपुत्री के इस मनोरथ को भलीभांति सुनकर व क्षणभर मुसकाकर विस्मय समेत त्रिपुरनाशक महेशजी ने उच्चस्वर से कहा ॥ २२ ॥ श्रीशिवजी बोले कि, हे जितेन्द्रिये, पुलोमकन्ये ! तुम करके जो यह मनोरथ कियागया उसको व्रतचर्या याने व्रत करने से पावोगी इस लिये उस व्रतको करो ॥ २३ ॥ मनोरथतृतीया के करने से मनोरथ होवेगा उसकी प्राप्तिके लिये मैं व्रतको कहूंगा और तुम जैसे कहे हुये उसको करो ॥ २४ ॥ और हे बाले ! महासौभाग्य के देनेवाले कियेहुये उस व्रतसे तुम्हारा ऐसा मनोरथ अवश्यकर सिद्ध होवेगा ॥ २५ ॥ पुलोमकी कन्या

इमंमनोरथंतस्याः पौलोम्याःपुरसूदनः ॥ समाकर्ण्यक्षणंस्मित्वा प्राहेशोविस्मयान्वितः ॥ २२ ॥ ईश्वरउवाच ॥ पुलोमकन्येयश्चैषत्वयाकारिमनोरथः ॥ लप्स्यसेव्रतचर्यातस्तत्कुरुष्वजितेन्द्रिये ॥ २३ ॥ मनोरथतृतीयायाश्चरणेन भविष्यति ॥ तत्प्राप्तयेव्रतंवक्ष्ये तद्विधेहियथोदितम् ॥ २४ ॥ तेनव्रतेनचीर्णेनमहासौभाग्यदेनतु ॥ अवश्यंभविताबाले तवचैवंमनोरथः ॥ २५ ॥ पुलोमकन्योवाच ॥ कारुण्यवारिधेशम्भो प्रणतप्राणिसर्वद ॥ किमात्मिकाथकाशक्तिः कापूज्यातत्रदेवता ॥ २६ ॥ कदाचतद्विधातव्यमितिकर्तव्यताचका ॥ इत्याकर्ण्यशिवोवाक्यं तान्तुप्राणिजगादह ॥ २७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ मनोरथतृतीयायां व्रतंपौलोमितच्छुभम् ॥ पूज्याविश्वभुजागौरी भुजविंशतिशालिनी ॥ २८ ॥ वरदोऽभयहस्तश्च साक्षसूत्रःसमोदकः ॥ देव्याःपुरस्ताद्व्रतिना पूज्यआशाविनायकः ॥ २९ ॥ चैत्रशुक्लद्वितीयायां कृत्वावैदन्तधावनम् ॥ सायन्तनींचनिर्वर्त्य नातितृप्त्याभुजिक्रियाम् ॥ ३० ॥ नियमंचेतिगृह्णीयाज्जितक्रोधोजिते

बोली कि, हे प्रणतप्राणियों के सबदायक, दयासागर, शंकर ! किस रूपवाली व कौन शक्ति और कौन देवता उस व्रत में पूजनेयोग्य है ॥ २६ ॥ और कब वह व्रत करना चाहिये और इसकी क्या कर्तव्यता है ऐसा सुनकर शिवजीने हर्ष से वाक्यको उसके सामने उच्चस्वर से कहा ॥ २७ ॥ महेश्वरजी बोले कि, हे पुलोमकुमारि ! मनोरथतृतीया (चैतसुदी तीज) में वह शुभव्रत होता है और बीस बाहुओं से सोहती हुई विश्वभुजा गौरी पूजनीय देवता है ॥ २८ ॥ और अभय को हाथमें लियेहुये व अक्ष सूत्र समेत व मोदक सहित व वरदायक आशाविनायक गणेशजी देवीके आगे व्रतवाले से पूजनीय हैं ॥ २९ ॥ व चैतसुदी द्वितीया

में बहुत तृप्त न होने से सायंकाल की भोजन क्रियाको बन्दकर फिर निश्चय से दन्तधावन (दतून) को कर ॥ ३० ॥ क्रोधको जीतेहुआ व इन्द्रियजित् व जोकि वस्तु छूनेयोग्य नहीं है उसके संस्पर्शको भलीभांति त्यागेहुआ व पवित्र और उस व्रतादि मे गतमानसवाला जन ऐसे नियम को ग्रहण करे ॥ ३१ ॥ कि हे अपापे, मातः,विश्वभुजे, देवि ! मैं प्रातःकाल व्रतको करूंगा तुम मेरे मनोरथ की सिद्धिके लिये उसमें सामीप्यको करो ॥ ३२ ॥ इस प्रकार नियमको ग्रहणकर शुभ को सुमिरताहुआ बुद्धिमान् रात्रिमें सोवे और प्रातःकालमें उठकर आवश्यक विधानको कर ॥ ३३ ॥ व शौच और आचमन को कर फिर अशोकवृक्षका दन्तकाष्ठ (दतून) जोकि सब शोचका नाशक व शुभ है उसको भलीभांति ग्रहणकरे ॥ ३४ ॥ और विधिके पण्डितों में श्रेष्ठ वह व्रती नित्यकी स्नानादि विधिको सिद्धकर

न्द्रियः ॥ संत्यक्तास्पृश्यसंस्पर्शः शुचिस्तद्गतमानसः ॥ ३१ ॥ प्रातर्व्रतंचरिष्यामि मातर्विश्वभुजेनघे ॥ विधेहितत्र सान्निध्यं मन्मनोरथसिद्धये ॥ ३२ ॥ नियमंचेतिसंगृह्यस्वपेद्रात्रौशुभंस्मरन् ॥ प्रातरुत्थायमेधावी विधायावश्यकंविधिम् ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनंकृत्वा दन्तकाष्ठंसमाददे ॥ अशोकवृक्षस्यशुभं सर्वशोकनिशातनम् ॥ ३४ ॥ नित्यंतनंचनिष्पाद्य विधिंविधिविदांवरः ॥ स्नात्वाशुद्धाम्बरःसायं गौरीपूजांसमाचरेत् ॥ ३५ ॥ आदौविनायकंपूज्य घृतपूरान्निवेद्यच ॥ ततोर्चयेद्विश्वभुजामशोककुसुमैःशुभैः ॥ ३६ ॥ अशोकवर्तिनैवेद्यैर्धूपैश्चागुरुसम्भवैः ॥ कुंकुमेनानुलिप्यादावेकभक्तंततश्चरेत् ॥ ३७ ॥ अशोकवर्तिसहितैर्घृतपूरैर्मनोहरैः ॥ एवंचैत्रतृतीयायां व्यतीतायांपुलोमजे ॥ ३८ ॥ राधादिफाल्गुनान्तासु तृतीयासुव्रतंचरेत् ॥ क्रमेणदन्तकाष्ठानि कथयामितवानघे ॥ ३९ ॥ अनुलेपनवस्तूनि

तदनन्तर सायंकाल में स्नानकर व शुद्धवस्त्रवाला होकर गौरीदेवी की पूजा को भलीभांति करे ॥ ३५ ॥ पहले गणेशजी को पूजकर व घृतपूर (घीवड़) नामक पक्वान्नों को निवेदितकर तदनन्तर शुभ अशोकफूलों से श्रीविश्वभुजा देवीको पूजे ॥ ३६ ॥ व पहले कुंकुमसे अनुलेपनकर अशोकबाती समेत नैवेद्य व अगरसे उपजे हुये धूपोंसे पूजकर उसके बाद उस एकभक्त याने एकबार भोजन को करे ॥३७॥ जोकि अशोकबाती समेत मनोहर घृतपूरों से होताहै हे पुलोमपुत्रि ! इसभांति चैतसुदी तीजके बीततेही ॥३८ ॥ वैशाखआदि फागुनपर्य्यंत तृतीयाओं में अच्छे व्रतको करे हे अपापे ! उन मासों में क्रमसे दन्तकाष्ठों को मैं तुमसे कहूंगा ॥ ३९ ॥ और हे शुभ-

व्रते ! अनुलेपनवस्तु वैसेही फूल व गणेशजी और देवीजी के भी नैवेद्य ॥ ४० ॥ व एक भक्त के अन्नादिकों को फल की प्राप्ति के लिये तुम सुनो कि जामुन, लटजीरा, खैर, चमेली, आम्र, कदम्ब ॥ ४१ ॥ व पाकरि, गूलरि, खजूर व बिजौरा और दाडिम (अनार) समेत ये दतूनके वृक्ष व्रतवाले के लिये भलीभांति कहे गये है ॥ ४२॥ व सेंदुर, अगर, कस्तूरी, चन्दन, लालचन्दन, गोरोचन, देवदारु, पद्माख औरदोनों हरदी (हरदी व दारुहरदी) ॥ ४३ ॥ हे बाले ! यक्षकर्दम से समुत्पन्नहुआ अनुलेपन प्रीति से होता है व सबों के न मिलने में भी यक्षकर्दम प्रशस्तहै ॥४४॥कस्तूरी के दोभाग व कुंकुम (रक्तकेशर) के दो भाग व चन्दन के तीनभाग और

कुसुमानितथैवच ॥ नैवेद्यानिगजास्यस्य देव्याश्चापिशुभव्रते ॥ ४० ॥ अन्नानिचैकभक्तस्य शृणुतानिफलाप्तये ॥ जम्बवपामार्गखदिरजातीचूतकदम्बकम् ॥ ४१ ॥ प्लक्षोदुम्बरखर्जूरीबीजपूरीसदाडिमी ॥ दन्तकाष्ठद्रुमाएते व्रतिनःसमुदाहृताः ॥ ४२ ॥ सिन्दूरागुरुकस्तूरीचन्दनंरक्तचन्दनम् ॥ गोरोचनादेवदारुपद्माक्षंचनिशाद्वयम् ॥ ४३ ॥ प्रीत्यानुलेपनंबालेयक्षकर्दमसम्भवम् ॥ सर्वेषामप्यलाभेच प्रशस्तोयक्षकर्दमः ॥ ४४ ॥ कस्तूरिकायाद्वौभागौ द्वौभागौकुंकुमस्यच ॥ चन्दनस्यत्रयोभागाः शशिनस्त्वेकएवहि ॥ ४५ ॥ यक्षकर्दमइत्येष समस्तसुरवल्लभः ॥ अनुलिप्याथ कुसुमैरर्चयेदुक्तिमितान्यपि ॥ ४६ ॥ पाटलामल्लिकापद्मकेतकीकरवीरकैः ॥ उत्पलैराजचम्पैश्च नन्द्यावर्तैश्चजातिभिः ॥ ४७ ॥ कुमारीभिःकर्णिकारैरलाभेतच्छदैःसह ॥ सुगन्धिभिःप्रसूनौघैः सर्वालाभेपिपूजयेत् ॥ ४८ ॥ करम्भो दधिभक्तंच सचूतरसमण्डकाः ॥ फेणिकावटकाश्चैव पायसंचसशर्करम् ॥ ४९ ॥ समुद्गंसघृतंभक्तं कार्त्तिकेविनिवेदये

कपूरका एकही भाग ॥ ४५ ॥ इसप्रकार यह यक्षकर्दम सब देवोंका प्याराहै पूर्वोक्त अनुलेपन कर अनन्तर फूलों से पूजे उनको भी कहता हूं ॥ ४६ ॥ पाटल, बेला, कमल, केतकी, कनैर, श्यामकमल या श्वेतअनार, राजचम्पा, तगर व चमेली ॥४७॥ और कुमारिका व नैनियां व उक्त फूलों के न मिलने में उनके पत्रों के साथ और सबके अभाव में भी अन्य सुगन्धि संयुक्त फूलसमूहों से पूजे ॥ ४८ ॥ व करंभ (दधिमिश्रितसत्तू), दहीभात व आम्र के रस से संयुत मण्डक, फेनी, बरा और खण्ड समेत खीर को वैशाख से आश्विनतक क्रमसे निवेदित करे ॥ ४९ ॥ कातिक में मूंग समेत व घी सहित भात को निवेदित करे व अगहन में इँडरी पूस मे

लड्डू माघ में शुभ लपसी ॥ ५० ॥ और फागुन में शर्करा से भीतर भरीहुई व घृतसे परिसाधित (पकाई) पूरियां विघ्नविनाशी गणेशजी के साथ देवीजीके लिये आनन्द से निवेदित करने योग्यहैं ॥ ५१ ॥ जिस अन्न को निवेदित करे याने नैवेद्य लगावे वहही एकभक्त में भी कहागया है अन्य को निवेदित कर और अन्यको खाताहुआ विमूढ़ नीचे गिरता है या गिरे ॥ ५२ ॥ इसप्रकार प्रतिमास वर्षभर तीजमें पूजाकर व्रतके भलीभांति पूर होनेके लिये स्थण्डिल (वेदी) में अग्निकी पूजा होती है ॥ ५३ ॥ और व्रतवाला मनुष्य "जातवेदसे सुनवामसोमं" इस पूरे मन्त्रकरके तिल घृत और यवादि द्रव्य से विधिपूर्वक अष्टोत्तरशत होम को करावे ॥ ५४ ॥

त ॥ इण्डेरिकाश्चलड्डूका माघेलप्सिकाशुभा ॥ ५० ॥ मुष्टिकाःशर्करागर्भाः सर्पिषापरिसाधिताः ॥ निवेद्याःफाल्गुने देव्यै सार्धंविघ्नजितामुदा ॥ ५१ ॥ निवेदयेद्यदन्नंहि एकभक्तेपितत्स्मृतम् ॥ अन्यन्निवेद्यसम्मूढो भुञ्जानोऽन्यत्पतेद्धः ॥ ५२ ॥ प्रतिमासंतृतीयायामेवमाराध्यवत्सरम् ॥ व्रतसंपूर्तयेकुर्यात्स्थण्डिलेऽग्निसमर्चनम् ॥ ५३ ॥ जातवेदसमन्त्रेण तिलाज्यद्रविणेनच ॥ शतमष्टाधिकंहोमं कारयेद्विधिनाव्रती ॥ ५४ ॥ सदैवनक्तेपूजोक्ता सदानक्तेतुभोजनम् ॥ नक्तएवहिहोमोऽयं नक्तएवक्षमापनम् ॥ ५५ ॥ गृहाणपूजांमेभक्त्या मातर्विघ्नजितासह ॥ नमोस्तुतेविश्वभुजे पूरयाशुमनोरथम् ॥ ५६ ॥ नमोविघ्नकृतेतुभ्यं नमआशाविनायक ॥ त्वंविश्वभुजयासार्धं ममदेहिमनोरथम् ॥ ५७ ॥ एतौमन्त्रौसमुच्चार्य पूज्यौगौरीविनायकौ ॥ व्रतक्षमापनेदेयः पर्यङ्कस्तूलिकान्वितः ॥ ५८ ॥ उपधान्यासमायुक्तो दीपीदर्पणसंयुतः ॥ आचार्यंचसपत्नीकं पर्यङ्कउपवेश्यच ॥ ५९ ॥ व्रतीसमर्चयेद्वस्त्रैः करकर्णविभूषणैः ॥ सुगन्धचन्दनै

रात्रिमें सदैव यह पूजा कहीगई है व रात्रिमेंही यह होम और रात्रिमेंही क्षमापन होताहै ॥ ५५ ॥ हे मातः ! गणेशजी के साथ तुम भक्तिसे कीहुई मेरी पूजाको ग्रहण करो हे विश्वभुजे ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुम मनोरथको शीघ्रही पूरकरो ॥ ५६ ॥ हे आशाविनायक ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो व विघ्नकर्त्ता के लिये नमस्कारहो तुम विश्वभुजादेवीके साथ मेरे मनोरथको देवो ॥ ५७ ॥ इन दोनों मन्त्रोंको भलीभांति उच्चारणकर गौरी और विनायकजी पूजनेयोग्यहैं व व्रतके क्षमापन में तूलिका (तोशक) समेत पलंग देना चाहिये ॥ ५८ ॥ जोकि तकिया से संयुत व दीपी (दीपधारिका पुतली या दीवट) और शीशा से सहित है उस पलंगमें स्त्रीसमेत

आचार्य्यको बैठाकर ॥ ५९ ॥ आनन्दयुक्त व्रतीजन वस्त्र व हाथ और कानों के गहने व सुगन्ध चन्दन माल्य और दक्षिणाओंसे भलीभांति पूजे ॥ ६० ॥ और व्रतके सबओर से पूरहोने के लिये पयस्विनी (दूधवाली) गऊ व उपभोगकी चीजें छत्र उपानत् (जूता) तथा कमण्डलु को देवे ॥ ६१ ॥ यह मनोरथतृतीया का व्रत मुझ से कियागया है और इसमें जो न्यून व अधिक हुआ है यह आपके वचन से सम्पूर्ण होवे ॥ ६२ ॥ इसभांति आचार्य्यसे अच्छेप्रकार सामनेसे पूंछकर वैसेहीहोवे ऐसे उससे भी कहाहुवा व्रती ग्रामके डांड़के अन्ततक उस आचार्य्यके पीछे जाकर और शक्ति से याने अपने ऐश्वर्य के अनुसार अन्य लोगोको भी देकर ॥ ६३ ॥ फिर बहुत

माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितः ॥ ६० ॥ दद्यात्पयस्विनींगांचव्रतस्यपरिपूर्तये ॥ तथोपभोगवस्तूनिच्छत्रोपानत्कमण्डलुम् ॥ ६१ ॥ मनोरथतृतीयाया व्रतमेतन्मयाकृतम् ॥ न्यूनातिरिक्तंसम्पूर्णमेतदस्तुभवद्गिरा ॥ ६२ ॥ इत्याचार्यंसमापृच्छ्य तथेत्युक्तश्चतेनवै ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य दत्त्वान्येभ्योपिशक्तितः ॥ ६३ ॥ नक्तंसमाचरेत्पोष्यैः सार्धंसुप्रीतमानसः ॥ प्रातश्चतुर्थ्यांसम्भोज्य चतुरश्चकुमारकान् ॥ ६४ ॥ अभ्यर्च्यगन्धमाल्याद्यैर्द्वादशापिकुमारिकाः ॥ एवंसम्पूर्णतांयाति व्रतमेतत्सुनिर्मलम् ॥ ६५ ॥ कार्यंमनोरथावाप्त्यै सर्वैरेतद्व्रतंशुभम् ॥ पत्नींमनोरमांकुल्यांमनोवृत्त्यनुसारिणीम् ॥ ६६ ॥ तारिणींदुःखसंसारसागरस्यपतिव्रताम् ॥ कुर्वन्नेतद्व्रतंवर्षं कुमारःप्राप्नुयात्स्फुटम् ॥ ६७ ॥ कुमारीपतिमाप्नोति स्वाढ्यंसर्वगुणाधिकम् ॥ सुवासिनीलभेत्पुत्रान्पत्युःसौख्यमखण्डितम् ॥ ६८ ॥ दुर्भगासुभगास्या

प्रसन्नमनवाला होकर पोष्यवर्गोंके साथ रात्रिके भोजन को भलीभांति से करे और प्रातःकाल चौथिमें चार कुमारोंको भोजन कराकर ॥ ६४ ॥ और सुगन्ध मालादिकों से बारह कुमारिकाओं को भी सामने या सबओर से पूजकर इसप्रकार यह सुनिर्मल व्रत सम्पूर्णता को प्राप्तहोता है ॥ ६५ ॥ व मनोरथ मिलने के लिये यह व्रत सब को करना चाहिये और जोकि स्त्री मनोरमा व कुलमें उपजीहुई व मनकी वृत्तिके पीछे चलनेवाली ॥ ६६ ॥ व दुःखरूप संसारसागर की तारिणी और पतिव्रता होवे उसको वर्षपर्यन्त इस व्रतको करताहुआ कुमार प्रसिद्धता से प्राप्त होवे याने पावे ॥ ६७ ॥ व कुमारी भी सबगुणोंसे अधिक धनाढ्य पतिको पातीहै व सुवासिनी स्त्री पतिके

अखंडित सौख्य और पुत्रोंको पावे ॥ ६८ ॥ दुर्भगा स्त्री सुभगाहोवे व दरिद्रिणी धनाढ्या होवे और विधवाभी फिर वैधव्य को कहीं नहीं प्राप्तहोती है ॥ ६९ ॥ व गर्भवती स्त्री बहुत अधिक आयुवाले शुभपुत्र को पाती है व ब्राह्मण सब सौभाग्य देनेवाली विद्याको पाता है ॥ ७० ॥ राज्य से भ्रष्टहुआ जन राज्यको पावे है व वैश्य लाभको पाता है और शूद्रभी इस व्रतकी सेवा से मनमाने मनोरथ को पाता है ॥ ७१ ॥ व धर्मका चाही धर्म को प्राप्तहोता है धनार्थी धनको पावे है व कामी कामनाओं को प्राप्तहोता है और मोक्षार्थी मोक्षको पाताहै ॥ ७२ ॥ व जिस का जो जो मनोरथ है वह व्रती उस उसको मनोरथतृतीया का व्रत करने से नि-

च धनाढ्यास्याद्दरिद्रिणी ॥ विधवापिनवैधव्यं पुनराप्नोतिकुत्रचित् ॥ ६९ ॥ गुर्विणीचशुभंपुत्रं लभतेसुचिरायुषम् ॥ ब्राह्मणोलभतेविद्यां सर्वसौभाग्यदायिनीम् ॥ ७० ॥ राज्यभ्रष्टोलभेद्राज्यं वैश्योलाभंचविन्दति ॥ चिन्तितंलभते शूद्रो व्रतस्यास्यनिषेवणात् ॥ ७१ ॥ धर्मार्थीधर्ममाप्नोतिधनार्थीधनमाप्नुयात् ॥ कामीकामानवाप्नोतिमोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ योयोमनोरथोयस्य सततंविन्दतेध्रुवम् ॥ मनोरथतृतीयाया व्रतस्यचरणाद्व्रती ॥ ७३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्थंनिशम्यशिवतः शिवासन्तुष्टमानसा ॥ पुनःपप्रच्छविश्वेशं प्रबद्धकरसम्पुटा ॥ ७४ ॥ अन्यत्रयेव्रतंचैतत्करिष्यन्तिसदाशिव ॥ तेकथंपूजयिष्यन्ति माञ्चआशाविनायकम् ॥ ७५ ॥ शिवउवाच ॥ साधुपृष्टंत्वयादेवि सर्वसन्देहभेदिनि ॥ वाराणस्यांसमर्च्यात्वं विश्वेप्रत्यक्षरूपिणी ॥ ७६ ॥ आशाविघ्नजितासार्धं सर्वाशापूर्तिकारिणा ॥ हारिणानन्तविघ्नानां ममक्षेत्रशुभार्थिना ॥ ७७ ॥ क्षिप्रमागमयित्वाच नत्वादूरंगतानपि ॥ कृतकृत्या

रन्तर निश्चय से पाताहै ॥ ७३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि इस प्रकार शिवजी से सुनकर दोनों हाथ जोड़ेहुई सन्तुष्ट अन्तःकरणवाली शिवा (श्रीपार्वती) जीने विश्वनाथजी से फिर पूंछा ॥ ७४ ॥ कि हे सदाशिव ! जे जन इस व्रतको अन्यत्र करेंगे वे आशाविनायक और मुझको किस प्रकार से पूजेंगे ॥ ७५ ॥ श्री शिवजी बोले कि, हे सर्वसंदेहविदारिणि, देवि ! तुमने अच्छा पूंछाहै हे विश्वभुजे ! काशी में प्रत्यक्षरूपिणी तुम भलीभांति पूजनेयोग्यहो ॥ ७६ ॥ अनन्त विघ्नोंके हर्त्ता सब आशाओं के पूर्णकर्त्ता व मेरे क्षेत्रका कल्याण चाहनेवाले आशाविनायक के साथ तुम पूजनीयहो ॥ ७७ ॥ और दूरदेशवासी भी जनोको नमस्कारकर शीघ्रही

आनकर अनन्तर चिन्तित अच्छे मनोरथों से कृतार्थकर व्रत करना चाहिये ॥७८॥ हे विश्वभुजे ! अन्यत्र व्रतवाले लोगों को तुम्हारी और आशाविनायक विघ्नहारी की भी पांच रत्तीसे ऊपर सोनेकी मूर्त्ति बनवाना चाहिये ॥ ७९ ॥ और व्रतवाला जन व्रतके अन्तमें दोनों मूर्त्तियों को आचार्य्य के लिये देदेवे इस प्रकार एकबार भी इस व्रतके करतेही व्रतकर्ता कृतार्थ होवेहै ॥ ८० ॥ हे देवि ! तदनन्तर इस उत्तमव्रत को सुनकर व कर पुलोमजा ने जैसे हृदय में वाञ्छित था वैसे मनोरथ को पाया ॥ ८१ ॥ व अरुन्धती ने वसिष्ठ को और अनसूया ने अत्रिको भी पाया व सुनीति ने उत्तानपाद नामक पतिसे पुत्रोत्तम ध्रुवको प्राप्त किया॥ ८२ ॥ और इस

न्विधायाथ चिन्तितैःसुमनोरथैः ॥७८॥ अन्यत्रव्रतिभिर्विश्वे काञ्चनीप्रतिमातव ॥ पञ्चकृष्णलकादूर्ध्वं कार्याविघ्नहृतोऽपिच ॥ ७९ ॥ आचार्यायव्रतीदद्याद्व्रतान्तेप्रतिमाद्वयम् ॥ सकृत्कृतेव्रतेचास्मिन्कृतकृत्योव्रतीभवेत् ॥ ८० ॥ ततःपुलोमजादेवि श्रुत्वैतद्व्रतमुत्तमम् ॥ कृत्वामनोरथंप्राप यथाभिवाञ्छितंहृदि ॥ ८१ ॥ अरुन्धत्यावसिष्ठोऽपि लब्धोऽत्रिरनसूयया ॥ सुनीत्योत्तानपादाच्च ध्रुवःप्राप्तोऽङ्गजोत्तमः ॥८२ ॥ सुनीतेर्दुर्भगत्वंच पुनरस्माद्व्रताद्गतम् ॥ चतुर्भुजःपतिःप्राप्तःक्षीरनीरधिजन्मना॥८३॥ किंबहूक्तेनसुश्रोणि कृतंयेनव्रतंत्विदम् ॥ व्रतानितेनसर्वाणि कृतानिव्रतिनाध्रुवम् ॥ ८४॥ श्रुत्वाधीमान्कथाम्पुण्यां पुनस्तद्गतमानसः॥शुभबुद्धिमवाप्नोतिपापैरपिविमुच्यते ॥८५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डेधर्मेश्वराख्याने विश्वभुजाशाविनायकप्रशंसनेमनोरथतृतीयाव्रताख्यानन्नामाशीतितमोध्यायः॥८०॥

व्रत से सुनीतिका दुर्भगत्व फिर चलागया व क्षीरसागर से उपजी हुई लक्ष्मीको चतुर्भुज (विष्णुजी) पति प्राप्तहुआ ॥ ८३॥ हे सुश्रोणि (सुकटि) ! बहुत कहने से क्याहै जिसने इस व्रतको किया उस व्रतीसे निश्चय कर सब व्रत कियेगये है॥ ८४ ॥ व उसमें मन लगायेहुआ बुद्धिमान् मनुष्य इस मनोज्ञ कथाको सुनकर शुभ ज्ञानको पाताहै और पापोंसे भी विमुक्त होजाताहै ॥ ८५ ॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेधर्मेश्वराख्यानेविश्वभुजाशाविनायकप्रशंसनेमनोरथतृतीयाव्रताख्याननंनाम।शीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । इक्यासी अध्याय में दुर्दमका आख्यान । श्रीधर्मेशाख्यान का ऐसे इत व्याख्यान ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे स्कन्द (श्रीकार्त्तिकेयजी)! क्रीड़ाकारी शङ्कर जीने देवीजी के लिये धर्मतीर्थ का कैसा माहात्म्य कहाहै उसको आप कहो और मेरे ऊपर कृपाकरो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे विंध्याचल की उन्नति के हरनेहारे, महाप्राज्ञ ! जैसे महादेवजीने धर्मतीर्थ के अच्छे उद्भवको कहाहै वैसेही मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ २ ॥ कि इन्द्रजी वृत्रासुर को मारकर ब्रह्महत्याको प्राप्तहुये अनन्तर पश्चात्ताप युक्तहोकर पुरोहितसे प्रायश्चित्तको पूंछते भये ॥ ३ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि, हे देवराज ! जो तुम इस सुदुस्त्यज ब्रह्महत्या को बिलग पठाने के

अगस्त्यउवाच ॥ धर्मतीर्थस्यमाहात्म्यं कीदृग्देवेनशम्भुना ॥ स्कन्ददेव्यैसमाख्यातं तदाख्याहिकृपांकुरु ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ विन्ध्योन्नतिहृदाख्यामि धर्मतीर्थसमुद्भवम् ॥ आकर्णयमहाप्राज्ञ यथादेवेनभाषितम् ॥ २ ॥ वृत्रंनिहत्यवृत्रारिर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥ अनुतप्तोथपप्रच्छप्रायश्चित्तंपुरोहितम् ॥ ३ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यदित्वन्देवराजेमां ब्रह्महत्यांसुदुस्त्यजाम् ॥ अपानुनुत्सुस्तद्याहि काशींविश्वेशपालिताम् ॥ ४ ॥ नान्यत्किञ्चित्क्वचिद्दृष्टं ब्रह्महत्यामहौषधम् ॥ राजधानींपरित्यज्य शक्रविश्वेशितुःपराम् ॥ ५ ॥ भैरवस्यापिहस्ताग्रादपतद्वेधसंशिरः ॥ यत्रानन्दवने तत्रवृत्रशत्रोव्रजद्रुतम् ॥ ६ ॥ सीमानमपिसम्प्राप्य शक्रानन्दवनस्यहि ॥ ब्रह्महत्यापलायेत वेपमानानिराश्रया ॥ ७ ॥ अन्येषामपिपापानां महापापजुषामपि ॥ नाशयित्रीपराकाशी विश्वेशसमधिष्ठिता ॥ ८ ॥ महापातकतोमुक्तिः काश्यामेवशतक्रतो ॥ महासंसारतोमुक्तिःकाश्यामेवनचान्यतः ॥ ९ ॥ निर्वाणनगरीकाशी काशीसर्वाघसङ्घहृत् ॥

याने दूर करने की इच्छावाले हो तो श्रीविश्वेश्वर से पालित काशीपुरी को जावो ॥ ४ ॥ हे इन्द्रजी ! विश्वनाथ की उत्तम राजधानी को छोंड़कर ब्रह्महत्या का महौषध अन्य कोई कहीं नहीं देखागया है ॥ ५ ॥ हे वृत्रशत्रो ! जिस आनन्दवनमें भैरवजी के भी हाथसे ब्रह्माका शिर गिरपड़ाहै उसमें तुम शीघ्रही जावो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! काशी के डांड़को भी प्राप्तहोकर कांपती हुई निराधार ब्रह्महत्या निश्चयसे भागजावे है ॥ ७ ॥ और विश्वनाथसे भलीभांति अधिकतासमेत बसीगईहुई काशिकापुरी महापापसेवियों केभी अन्यभी पापोंकी श्रेष्ठ नाशिका है ॥ ८ ॥ हे सौ यज्ञवाले इन्द्र ! काशीमेंही महापापोंसे छूटना होता है व काशी मेंही बड़े संसारसे मुक्ति

होतीहै अन्यत्र नहीं ॥ ६ ॥ क्यौंकि काशी मुक्तिपुरीहै व काशी सब पापसमूहहारिणीहै व काशीश्रीविश्वेश्वरजीकी प्यारीहै और स्वर्गपुरी भी काशीके समान नहींहै ॥ १० ॥ जिराका ब्रह्महत्यासे डरहै व जिसका संसारसे डरहै उस करके मुक्तिकी प्रकाशिका काशिकापुरी कभीभी त्यागनेयोग्य नहीं है ॥ ११ ॥ व जहां देह छोड़नेमे शिवजीकी दृष्टि से दाहको प्राप्तहुये जन्तुओं के कर्मबीजों का प्ररोह (उत्पत्ति) फिर कभी भी नहीं है ॥ १२ ॥ हे वृत्रासुर के वैरिन् ! उस काशीको प्राप्तहोकर तुम वृत्रहत्या दुराने के लिये जगत् के मुक्तिदायक विश्वनायकको भलीभांति पूजनकरो ॥ १३ ॥ ऐसा बृहस्पति का वचन सुनकर वह हजार आंखोंवाले इन्द्रजी बहुत शीघ्रही पापनाशि नी

विश्वेशितुःप्रियाकाशी द्यौःकाशीसदृशीनहि ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याभयंयस्य यस्यसंसारतोभयम् ॥ जातुचित्तेननत्याज्या काशिकामुक्तिकाशिका ॥ ११ ॥ जन्तूनांकर्मबीजानांयत्रदेहविसर्जने ॥ नजातुचित्प्ररोहोस्ति हरदृष्ट्याप्तशुष्मणाम् ॥ १२ ॥ ताङ्काशींप्राप्यवृत्रारे वृत्रहत्यापनुत्तये ॥ समाराधयविश्वेशं विश्वमुक्तिप्रदायकम् ॥ १३ ॥ बृहस्पतेरितिवचोनिशम्यससहस्रदृक् ॥ आयाद्द्रुततरंकाशीं महापातकघातुकाम् ॥ १४ ॥ स्नात्वोत्तरवहायांच धर्मेशंपरितःस्थितः ॥ आराधयन्महादेवं ब्रह्महत्यापनुत्तये ॥ १५ ॥ महारुद्रजपासक्तःसुत्रामाथत्रिलोचनम् ॥ ददर्शलिङ्गमध्यस्थंस्वभासादीपिताम्बरम् ॥ १६ ॥ पुनस्तुष्टाववेदोक्तै रुद्रसूक्तैरनेकधा ॥ विनिष्क्रम्यततोलिङ्गादाविर्भूयभवोऽवदत् ॥ १७ ॥ शचीपतेप्रसन्नोस्मि वरंवरयसुव्रत ॥ किन्देयंद्रुतमाख्याहिधर्मपीठकृतास्पद ॥ १८ ॥ श्रुत्वेतिदेवदेवस्य सप्रेमवचनं

काशिकापुरी को आये ॥ १४ ॥ और ब्रह्महत्या को दूर करने के लिये उत्तरवाहिनी गंगामें स्नानकर धर्मेश्वरके समीप में टिके व महादेवजी को पूजतेहुये ॥ १५ ॥ व महारुद्रके जपमें आसक्त इन्द्रजीने अनन्तर अपने प्रकाशसे आकाशको दीपित करतेहुये व लिङ्गके बीचमे टिकेहुये त्रिलोचनको देखा ॥ १६ ॥ फिर वेदोक्त रुद्रसूक्तों से अनेक भांति स्तुति किया तदनन्तर लिङ्गसे निकलकर और प्रकट होकर शिवजीने कहा ॥ १७ ॥ कि हे धर्मपीठ में स्थान कियेहुये, अच्छे व्रतवाले, शचीपते ! तुम वरको अंगीकार करो और क्या देनेयोग्य है उसको शीघ्रही कहो ॥ १८ ॥ इसभांति देवोंके देव श्रीमहादेवजी के प्रीतिसमेत वचन को सुनकर वृत्रासुर के विना-

शक इन्द्रजीने उनसे ऐसा कहा कि हे सर्वज्ञ ! तुमको क्या अविदित है याने आप सब कुछ जानतेहो ॥१९॥ तदनन्तर धर्मपीठकी सेवासे उन इन्द्रकेलिये कृपासे प्रेरित हुये महेशजी वहां तीर्थको बनाकर फिर ऐसा बोले कि हे इन्द्र ! तुम इसमें स्नानकरो ॥ २० ॥ और इन्द्रजी उसमें स्नानमात्रसेही क्षणभर में दिव्य सुगन्धवाले होगये व पहले उपजीहुई सौयज्ञवाली सुन्दरी दीप्तिको प्राप्तहुये ॥ २१ ॥ अनन्तर उस आश्चर्यको देखकर आनन्दसंयुत नारदादि मुनियोंने पापहारी धर्मतीर्थ में सब ओरसे नहाया ॥ २२ ॥ व दिव्य पितरोंको तर्प्पण किया व श्रद्धा से श्राद्धोंको किया और उस तीर्थके जलसे भरे कलशों से धर्मेश्वरको स्नान कराया ॥२३॥ तबसे लगाकर वह

हरिः ॥ सर्वज्ञकिन्तेऽविदितं तमुवाचेतिवृत्रहा ॥ १९ ॥ ततस्तत्कृपयानुन्नो धर्मपीठनिषेवणात् ॥ निष्पाद्यतीर्थंतत्रेशो ऽत्रस्नाहीन्द्रेतिचाब्रवीत् ॥ २० ॥ तत्रेन्द्रःस्नानमात्रेण दिव्यगन्धोऽभवत्क्षणात् ॥ अवापचरुचिञ्चारुं प्राक्तनींशात याज्ञिकीम् ॥ २१ ॥ तदाश्चर्यमथोदृष्ट्वामुनयोनारदादयः ॥ परिसस्नुर्मुदायुक्ता धर्मतीर्थेऽघहारिणि ॥२२॥ अतर्पयन्पि तॄन्दिव्यान्व्यधुःश्राद्धानिश्रद्धया ॥ धर्मेशंस्नापयामासुस्तत्तीर्थाम्बुभृतैर्घटैः ॥ २३ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं धर्मान्धुरिति विश्रुतम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापानामक्लेशंक्षालनंपरम् ॥ २४ ॥ यत्फलंतीर्थराजस्य स्नानेनपरिकीर्त्यते ॥ सहस्रगुणितंत त्स्याद्धर्मान्धुस्नानमात्रतः ॥ २५ ॥ गङ्गाद्वारेकुरुक्षेत्रेगङ्गासागरसङ्गमे ॥ यत्फलंलभतेमर्त्यो धर्मतीर्थेतदाप्नुयात् ॥ २६ ॥ नर्मदायांसरस्वत्यां गौतम्यांसिंहगेगुरौ ॥ स्नात्वायत्फलमाप्येत धर्मकूपेतदाप्नुयात् ॥ २७ ॥ मानसेपुष्करेचै व द्वारिकेसागरेतथा ॥ तीर्थेस्नात्वाफलंयत्स्यात्तत्स्याद्धर्मजलाशये॥ २८॥कार्त्तिक्यांसूकरक्षेत्रे चैत्र्याङ्गौरीमहाह्रदे ॥

तीर्थ धर्मांधु याने धर्मकूप ऐसे नाम से प्रसिद्ध है और विना क्लेशकेही ब्रह्महत्यादि पापों के पखारनेवाला व श्रेष्ठ है ॥२४॥ जो फल समुद्र या प्रयागके स्नानसे सबओर कहाजाता है वह धर्मांधु में स्नानमात्र से हजार गुना होता है ॥२५॥ व हरद्वार, कुरुक्षेत्र और गंगासागरसंगम में मनुष्य जिस फलको पाताहै उसको धर्मतीर्थ में पावे है॥ २६॥ व जब बृहस्पति सिंहराशि मे गतहोवें तब नर्मदा सरस्वती और गोदावरी नदी में स्नानकर जो फल प्राप्त होवे उसको धर्मकूपमें पावे है ॥ २७ ॥ व मानससर पुष्कर तथा द्वारका सम्बन्धी समुद्रतीर्थ मे स्नानकर जो फल होवे वह धर्मकूप में होवेहै ॥ २८ ॥ व कार्त्तिककी पूर्णिमामें सूकरक्षेत्र (सौरभनामसे प्रसिद्ध) और चैत्रकी पूर्णिमा

में गौरीमहाह्रद (केदारनाथ में गौरीकुण्ड) व द्वादशीके दिन शङ्खोद्धार मे जो फल होताहै वह फल इसमें स्नान से होवेहै ॥ २९ ॥ और गङ्गा व धर्मतीर्थ इन दो तीर्थों मे नहानेकी इच्छाकरतेहुये मनुष्योंको पिण्डदान की आशासे पितरलोग परखते हैं ॥ ३० ॥ व पितामह (ब्रह्मा) के समीप में अथवा धर्मेश्वरके आगे व फल्गु और धर्मकूप में पितरलोग आनन्दित होते हैं ॥ ३१ ॥ धर्मकूप में स्नानकर व पितामहो को सब ओर से तर्पण कर मनुष्य फिर गयामे जाकर पितरोंका आनन्ददायक अधिक क्या करेगा ॥३२॥ जैसे गयामे पिण्डदान से पितरलोग तृप्तहोवे हैं वैसेही धर्मतीर्थ मे होवे हैं इसमें न्यून (कम) नही है और अधिकभी नहीं है ॥३३॥ जिन पुत्रोने धर्म्मतीर्थ

शङ्खोद्धारेहरिदिने यत्फलंतत्फलंत्विह॥ २९॥ तीर्थद्वयेप्रतीक्षन्ते सिस्नासून्पितरोनरान् ॥ गङ्गायान्धर्मकूपेचपिण्डनिर्वपणाशया ॥३०॥ पितामहसमीपेवा धर्मेशस्याग्रतोथवा॥फल्गौचधर्मकूपेच माद्यन्तिप्रपितामहाः ॥ ३१ ॥ धर्मकूपे नरःस्नात्वा परितर्प्यपितामहान् ॥ गयांगत्वाकिमधिकं कर्तापितृमुदावहम् ॥ ३२ ॥ यथागयायांतृप्ताःस्युःपिण्डदाने पितामहाः ॥ धर्मतीर्थेतथैवस्युर्नन्यूनंनैवचाधिकम् ॥३३॥ तेधन्याःपितृभक्तास्ते प्रीणितास्तैःपितामहाः ॥ पैत्रादृणाद्धर्मतीर्थे निष्कृतिर्यैःकृतासुतैः ॥ ३४ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावेणनिष्पापोभूत्क्षणेनच ॥ प्रणम्यदेवदेवेशमिन्द्रोऽगादमरावतीम् ॥ ३५ ॥ अपारोमहिमातस्यधर्मतीर्थस्यकुम्भज ॥ तत्कूपेस्वन्निरीक्ष्यापिश्राद्धदानफलंलभेत् ॥ ३६ ॥ तत्रापिकाकिणीमात्रं यच्छेत्पितृमुदेनरः ॥ अक्षयम्फलमाप्नोतिधर्म्मपीठप्रभावतः ॥ ३७ ॥ तत्रयोभोजयेद्विप्रान्यतिनोथतपस्विनः ॥ सिक्थेसिक्थेलभेत्सोथवाजपेयफलंस्फुटम् ॥ ३८ ॥ प्राप्यामरावतींशक्रस्ततोदिविषदांपुरः ॥ धर्मपीठस्यमाहात्म्यंमह

में पिण्डदानकर पितरों के ऋण से उरिण होना किया वे धन्य हैं व वे पितरों के भक्तहैं और उन्होने पितामहों को तृप्तकियाहै ॥ ३४ ॥ और इन्द्रजी उस तीर्थके प्रभाव से क्षणभरमे पापोंसे हीनहुये व देवदेवोंके स्वामी शिवजी के प्रणामकर अमरावतीपुरीको चलेगये ॥ ३५ ॥ हे कुम्भज, अगस्त्यजी ! उस धर्मतीर्थकी महिमा अपारहै कि उस कूपमें अपने प्रतिबिम्ब को देखकर भी श्राद्धदानका फल पावे है ॥ ३६ ॥ व जो मनुष्य पितरों के आनन्दकेलिये वहां कौडीमात्रकोभी देवेहै वह धर्मपीठके प्रभावसे अक्षय फलको प्राप्तहोताहै ॥ ३७ ॥ और जोकि वहां संन्यासी अथवा तपस्वी ब्राह्मणों को भोजन करावे है वह सीथ सीथ मे अनन्त वाजपेय यज्ञका प्रसिद्ध फलपावे है॥ ३८ ॥

तदनन्तर अमरावतीपुरी को प्राप्तहोकर इन्द्रजीने देवों के आगे काशी में धर्मपीठके बड़े माहात्म्य को वर्णन किया ॥ ३९ ॥ व फिरभी शङ्करजी के इस आनन्द-वनमें आकर मुनि और देवों के साथ इन्द्रजीने लिंगको स्थापन करदिया ॥ ४० ॥ जोकि तारकेश्वरसे पश्चिम ओरमें इन्द्रेश्वर ऐसा कहागया है उस लिंगके भलीभांति दर्शन से पुरुषोंको इन्द्रका लोक दूर नहीं है ॥ ४१ ॥ और उससे दक्षिणमें इन्द्राणी ने आपही शचीश्वर नामक लिंगको प्रतिष्ठित कियाहै उस शचीश्वर लिंगकी पूजा से स्त्रियोंका अतुल सौभाग्य होवैहै ॥ ४२ ॥ व उसके समीप में बहुत सौख्य समृद्धिदायक रंभेश्वर हैं और इन्द्रेश्वर के निकटमें अपर लोकपालेश्वर हैं ॥ ४३ ॥ उनकी

त्काश्यामवर्णयत् ॥ ३९ ॥ आगत्यपुनरप्यत्रशम्भोरानन्दकानने॥मुनिवृन्दारकैःसार्धंलिङ्गमस्थापयद्धरिः ॥ ४० ॥ तारकेशात्पश्चिमतइन्द्रेश्वरमितीरितम्॥तस्यसन्दर्शनात्पुंसामैन्द्रलोकोनदूरतः॥ ४१ ॥ तद्दक्षिणेशचीशश्चस्वयंशच्याप्रतिष्ठितः ॥ शचीशार्चनतःस्त्रीणांसौभाग्यमतुलंभवेत् ॥ ४२ ॥ तत्समीपेस्तिरम्भेशोबहुसौख्यसमृद्धिदः॥इन्द्रेश्वरस्यपरितोलोकपालेश्वरोपरः ॥ ४३ ॥ तदर्चनात्प्रसीदन्तिलोकपालाःसमृद्धिदाः ॥ धर्मेशात्पश्चिमाशायांधरणीशःप्रकीर्तितः ॥ तद्दर्शनेनधैर्यंस्याद्राज्येराजकुलादिषु ॥ ४४ ॥ धर्मेशाद्दक्षिणेपूज्यंतत्त्वेशाख्यम्परन्नरैः ॥ तत्त्वज्ञानम्प्रवर्ततेतल्लिङ्गस्यसमर्चनात् ॥ ४५ ॥ धर्मेशात्पूर्वदिग्भागेवैराग्येशंसमर्चयेत्॥ निवृत्तिश्चेतसस्तस्यलिङ्गस्यस्पर्शनादपि ॥ ४६ ॥ ज्ञानेश्वरंतथैशान्यांज्ञानदंसर्वदेहिनाम् ॥ ऐश्वर्येशमुदीच्यांचलिङ्गाद्धर्मेश्वराच्छुभात् ॥ ४७ ॥ तद्दर्शनाद्भवेन्नृणामैश्वर्यंमनसेप्सितम् ॥ पञ्चवक्त्रस्यरूपाणिलिङ्गान्येतानिकुम्भज ॥ ४८ ॥ एतान्यवश्यंसंसेव्यनरःप्रा

पूजासे समृद्धिदाता लोकपाल प्रसन्नहोते हैं व धर्मेश्वरसे पश्चिम दिशामें धरणीश्वर कहेगये हैं उनके दर्शन से राज्य और राजकुलादिकों में धैर्य्यहोवे है ॥ ४४ ॥ व धर्मेश्वर से दक्षिण में तत्त्वेश्वर नामक श्रेष्ठलिंग मनुष्यों से पूजनीयहै उस लिंगकी पूजासे तत्त्वज्ञान वर्तमान होवैहै ॥ ४५ ॥ व धर्मेश्वरसे पूर्वदिशा भागमें वैराग्येश्वर को भलीभांति पूजे उस लिंगके छूनेसेही चित्तवृत्ति की निवृत्ति होती है ॥ ४६ ॥ वैसेही धर्मेश्वर नामक मंगलमय लिंगसे ईशान कोणमें सब देहधारियों के ज्ञानदाता ज्ञानेश्वर और उत्तरमें ऐश्वर्य्येश्वर लिंगको पूजे ॥ ४७ ॥ उस लिंगके दर्शनसे मनुष्योंका मन वाञ्छित ऐश्वर्य्य होता है हे अगस्त्यजी ! ये लिंग पञ्चमुखवाले शिव

जी के रूप हैं ॥ ४८ ॥ इनको भलीभांति सेवनकर नर निरन्तर रहनेवाले फलको अवश्यकर प्राप्तहोता है हे मुने ! वहांही जो अन्य वृत्तान्त हुआ है उसको मैं कहता हूं तुम सुनो ॥ ४९ ॥ जिसको सुनकर भी मनुष्य घोरसंसारसागर में नहीं डूबताहै और जोकि बड़ाभारी विन्ध्याचलका कच्छा कदम्बशिखर नामक इस लोकमें प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥ वहां दमका पुत्र दुर्दम नाम राजाहुआ व पिताके मरतेही राज्यको प्राप्त होकर विशेष से इन्द्रियों को न जीतेहुआ ॥ ५१ ॥ व कामसे मोहित वह पुरवासियों की स्त्रियोंको बलसे हरलेताथा व असाधु लोग उसके प्यारे थे और साधुजन अप्रियताको प्राप्तहुये ॥ ५२ ॥ और वह दण्डदेनेको न योग्य जनोंको दण्डदेता था व दण्ड

प्नोतिशाश्वतम् ॥ अन्यत्तत्रैवयद्वृत्तंतदाख्यामिमुनेशृणु ॥ ४९ ॥ यच्छ्रुत्वापिनरोघोरेसंसाराब्धौनमज्जति ॥ कदम्बशिखरोनामविन्ध्यपादोमहानिह ॥ ५० ॥ दमस्यपुत्रस्तत्रासीद्दुर्दमोनामपार्थिवः ॥ पितर्युपरतेराज्यंसम्प्राप्याविजितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥ हरेत्पुरन्ध्रीःप्रसभम्पौराणांकाममोहितः ॥ असाधवःप्रियास्तस्यसाधवोऽप्रियतांययुः ॥ ५२ ॥ अदण्ड्यान्दण्डयांचक्रेदण्ड्येष्वासीत्पराङ्मुखः ॥ सदैवमृगयाशीलःसोऽभून्मृगयुसङ्गतः ॥ ५३ ॥ विवासिताःस्वविषयात्तेनसन्मतिदायिनः ॥ धर्माधिकारिणःशूद्राब्राह्मणाःकरदीकृताः ॥ ५४ ॥ परदारेषुसन्तुष्टःस्वदारेषुपराङ्मुखः ॥ आनर्चजातुचिन्नैवदेवौदुःखान्तकारिणौ ॥ ५५ ॥ हारिणौसर्वपापानांसर्ववाञ्छितदायिनौ ॥ सर्वेषांजगतीसारौश्रीकण्ठश्रीपतीपती ॥ ५६ ॥ स्वप्रजास्वेकउदितोधूमकेतुरिवापरः ॥ दुर्दमोनामभूपालःक्षयायाकाण्डएवहि ॥ ५७ ॥ सकदाचिन्मृग

के योग्य लोगों में विमुख हुआ याने उनको दण्ड न देताथा व मृगयु याने शिकारियोंके संगसे सदैव मृगयाशील होगया ॥ ५३ ॥ और उसने अच्छी बुद्धि देनेवालोंको अपने राज्यसे निकाल दिया व ब्राह्मणोंको कर देनेवाले किया व शूद्रोंको धर्माधिकारी बनाया ॥५४॥ और वह परस्त्रियों में सन्तुष्ट व अपनी स्त्रियों में विमुख था व उन दोनों देवों को कभी भी नहीं पूजताथा जोकि दुःखो के अन्तकर्त्ता हैं ॥ ५५ ॥ व सब पापों के हर्ता, सबके सब वाञ्छित फलों के दाता, भूमिआदि लोकोंके सार, सबके स्वामी और श्रीकण्ठ (शिव) व श्रीपति (विष्णु) नामों से प्रसिद्ध हैं ॥ ५६ ॥ और जोकि दुर्दमनाम भूप अनवसर मेंही क्षय के लिये अपनी प्रजाओं मे अन्य मुख्य

मृत्युके समान उदित था ॥ ५७ ॥ व पाप बढ़ानेवाले व्यसनों में आतुर था वह घोड़ेवाला राजा कभी शिकारियों के साथ मृग के पीछे क्रमसे धावता हुआ दैवयोग से वनोंमें पैठा ॥ ५८ ॥ जोकि धन्वाधारी घोड़े मे चढ़ाहुआ और अकेलाथा वह पृथिवी का पति दुर्दम आनन्दवन (काशी) में प्रवेश करताभया ॥ ५९ ॥ और वह गर्वत्र फलोंसेरहित व अच्छीछाया सहित व बहुत विस्तारवाले वृक्षोंको देखकर अनन्तर गतश्रमके समान हुआ ॥ ६० ॥ व वृक्षोंकरके सुपल्लव पंखोंकेद्वारा सुगन्धसमेत,सुशी-तल,सुमन्द,सुवायु से राजा संवीजित हुआ याने वृक्षोंने उसके ऊपर पल्लवरूप पङ्खोंको डुलाया ॥ ६१ ॥ व उस वनके देखने से केवल शिकारसे उपजाहुआही उसका

युभिःपापर्धिव्यसनातुरः ॥ सार्धंविशेशाश्वयानिघ्नाघ्नपृष्ठानुगोहयी ॥ ५८ ॥ एकाकीदैवयोगेनदुर्दमःसोऽवनीपतिः ॥ धन्वीतुरङ्गमारूढोऽविशदानन्दकाननम् ॥ ५९ ॥ सविलोक्याथसर्वत्रपादपानवकेशिनः ॥ सुच्छायांश्चसुविस्तारा न्गतश्रमइवाभवत् ॥ ६० ॥ सुगन्धेनसुशीतेनसुमन्देनसुवायुना ॥ क्षणंसंवीजितोराजापल्लवव्यजनैःकुजैः ॥६१॥ केवलम्मृगयाजातस्तत्खेदोनव्यपाव्रजत् ॥ आजन्मजनितःखेदोनिरगात्तद्वनेक्षणात् ॥६२॥ मध्येवनेसचापश्यत्प्रासादंचुम्बिताम्बरम् ॥ महारत्नशलाकानांरम्यमेकमिवाकरम् ॥ ६३ ॥ अथावरुह्यतुरगात्सभूपालोतिविस्मितः ॥ धर्मेशमण्डपम्प्राप्यस्वात्मानंप्रशशंसह ॥ ६४ ॥ धन्योस्म्यहम्प्रसन्नोस्मिधन्येमेद्यविलोचने ॥ धन्यमद्यतनञ्चाहर्यदपश्यमिमांभुवम् ॥६५॥ पुनर्निनिन्दचात्मानन्धर्मपीठप्रभावतः ॥ धिङ्मांदुर्जनसंसर्गैस्त्यक्तसज्जनसङ्गमम् ॥ ६६ ॥ जन्तूद्वेगक

खेद नहीं दूर भागगया बरन जन्मभरे का हुआ खेद निकल जाताभया ॥ ६२ ॥ और उसने वनके बीचमें महारत्नों से रचित शलाकाओं के आकार की नाईं रम्य व आकाशको चूंबतेहुये याने अधिक ऊंचे एक शिवालयको देखा ॥६३॥ उसकेबाद घोड़ेसे उतरकर बहुतविस्मित उस राजाने धर्मेश्वरके मण्डपको प्राप्तहोकर हर्षसे अपने आत्माकी प्रशंसा किया ॥ ६४ ॥ कि आज मैं धन्यहूं व प्रसन्नहूं व मेरी आंखें धन्यहैं और जिसमें मैंने इस भूमिको देखा वह आजका दिन धन्य है ॥ ६५ ॥ ऐसा कह कर फिर धर्मपीठ के प्रभावसे अपनी निन्दाकिया कि अच्छेजनों के संगको त्यागेहुये व दुष्टजनों के संगी मुझको धिक्कार है ॥ ६६ ॥ जोकि जन्तुओं का उद्वेगकर्त्ता व

मूढ़ व प्रजाओंकी पीड़ामें पण्डित व परस्त्री और परधनके अपहारसे सुख माननेवाले को धिक्कार है ॥ ६७ ॥ व आजतक मुझ थोड़ी बुद्धिवाले का जन्म वृथा बीत गयाहै जिससे मैंने कहीं भी ऐसे धर्मस्थानों को नहीं देखाहै ॥६८॥ इसप्रकार अपना को बहुत निन्दाकर व धर्मेश्वरस्वामी के नमस्कारकर और घोड़ेपर चढ़कर दुर्दम राजा अपने देश या राज्यको चलागया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर क्रमसे आयेहुये पुराने मन्त्रियों को भलीभांति बुलाकर व नवीनों को सब ओरसे निकालकर और पुरवासियों को भी अच्छेप्रकार से सामने बुलाताभया ॥ ७० ॥ व ब्राह्मणों को नमस्कारकर और उन के लिये वृत्तियों को देकर व पुत्रमें राज्यको सौंपकर व प्रजाओं को धर्म में

रम्मूढम्प्रजापीडनपण्डितम् ॥ परदारपरद्रव्यापहृत्यासुखमानिनम् ॥ ६७ ॥ अद्ययावन्ममगतंवृथाजन्माल्पमेधसः ॥ धर्मस्थानानीदृशानियद्दृष्टानिनकुत्रचित् ॥ ६८ ॥ एवंबहुविनिन्द्यस्वंनत्वाधर्मेश्वरंविभुम् ॥ आरुह्याश्वंययौ राजादुर्दमोविषयंस्वकम् ॥ ६९ ॥ ततोमात्यान्समाहूयक्रमायातांश्चिरन्तनान् ॥ नवीनान्परिनिर्नास्यपौरांश्चापि समाह्वयत् ॥ ७० ॥ ब्राह्मणांश्चनमस्कृत्यतेभ्योवृत्तीःप्रदायच ॥ पुत्रेराज्यंसमारोप्यप्रजाधर्मेनिवेश्यच ॥ ७१ ॥ परिदण्ड्यचदण्डार्हान्साधूंश्चपरितोष्यच ॥ दारानपिपरित्यज्यविषयेषुपराङ्मुखः ॥ ७२ ॥ समागच्छदथैकाकीकाशीं श्रेयोविकासिनीम् ॥ धर्मेश्वरंसमाराध्यकालान्निर्वाणमाप्तवान् ॥ ७३ ॥ धर्मेशदर्शनान्नित्यंतथाभूतःसदुर्दमः ॥ बभूव दमिनांश्रेष्ठःप्रान्तेमोक्षञ्चलब्धवान् ॥ ७४ ॥ इत्थंधर्मेशमाहात्म्यंमयास्वल्पंनिरूपितम् ॥ धर्मपीठस्यमाहात्म्यंसम्यक्कोवेदकुम्भज ॥ ७५ ॥ इदन्धर्मेश्वराख्यानंयःश्रोष्यतिनरोत्तमः ॥ आजन्मसञ्चितात्पापात्समुक्तोभवतिक्षणा

पैठाकर ॥ ७१ ॥ व दण्डके योग्य लोगोंको सब ओरसे दण्डदेकर व साधुजनों को सन्तुष्टकर व स्त्रियोंको भी परित्यागकर शब्दादि विषयों में विमुख हुआ ॥७२॥ और अकेला वह उसकेबाद कल्याणकी विकासिका काशिकापुरी को भलीभांति आया और धर्मेश्वरको अच्छेप्रकारसे पूजकर कालसे कैवल्य मोक्षको प्राप्तहुआ ॥७३॥ नित्य-ी तथाभूत याने पापकर्म्मोंमें परायण भी वह दुर्दमराजा धर्मेश्वर के दर्शन से जितेन्द्रियों में श्रेष्ठ होगया और देहान्त में मोक्षको पाताभया ॥ ७४ ॥ हे कुम्भज ! इस भांति मैंने थोड़ा धर्मेशका माहात्म्य कहा क्योंकि धर्मपीठ के माहात्म्यको कौन जन अच्छेप्रकारसे जानता है ॥ ७५ ॥ जो कि नरोत्तम इस धर्मेश्वराख्यान को सुनेगा वह क्षण

व सबकर्मों में दक्ष व विद्यासमुद्र के पारका द्रष्टा व गुणवान् व गुणीजनों का प्यारकर्ता था ॥ ६ ॥ व कियेहुये उपकार का ज्ञाता, मधुरआलापवाला, पापकर्मों से विमुख, सत्यवादी, शौचकास्थान, स्वल्पवाक्, विजितेन्द्रिय था ॥ ७ ॥ व संग्राम आंगन में कालके समान व सभांगण में परमपण्डित व स्त्रियोंकी कामक्रीड़ा का विद्वान् व युवाभी वृद्धजनों को प्यारा था ॥ ८ ॥ व धर्मधन से कोष (खजाना) के बढ़ानेवाला बलवान् वाहनवान् सुभग सुरूप सुबुद्धिमान् अच्छीप्रजाओं का आधार या सेव्य था ॥ ९ ॥ व स्थिरता और धीरता से व्याप्त व देशकाल के जानने में परम प्रवीण व मानने योग्य जनोंका अधिक आदरदायक और सब दूषणोंसे हीन था ॥ १० ॥ वह

पकर्मपराङ्मुखः ॥ सत्यवाक्शौचनिलयःस्वल्पवाग्विजितेन्द्रियः ॥ ७ ॥ रणाङ्गणेकृतान्ताभःसंख्यावांश्चसदोजिरे ॥ कामिनीकामकेलिज्ञोयुवापिस्थविरप्रियः ॥ ८ ॥ धर्मार्थैधितकोशश्चसमृद्धबलवाहनः ॥ सुभगश्चसुरूपश्चसुमेधाःसुप्रजाश्रयः ॥ ९ ॥ स्थैर्यधैर्यसमापन्नोदेशकालविचक्षणः ॥ मान्यमानप्रदोनित्यंसर्वदूषणवर्जितः ॥ १० ॥ वासुदेवांघ्रियुगलेचेतोवृत्तिंनिधायसः ॥ चकारराज्यंनिर्द्वन्द्वंविष्वगीतिविवर्जितम् ॥ ११ ॥ अलङ्घ्यशासनःश्रीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ॥ अभुनक्प्रचुरान्भोगान्समन्ताद्विष्णुसात्कृतान् ॥ १२ ॥ हरेरायतनान्युच्चैःप्रतिसौधम्पदेपदे ॥ तस्यराज्येसमभवन्महाभाग्यनिधेःशिवे ॥ १३ ॥ गोविन्दगोपगोपालगोपीजनमनोहर ॥ गदापाणेगुणातीतगुणाढ्यगरुडध्वज ॥ १४ ॥ केशिहृत्कैटभारातेकंसारेकमलापते ॥ कृष्णकेशवकञ्जाक्षकीनाशभयनाशन ॥ १५ ॥ पुरुषोत्तमपापारेपुण्ड

विष्णुजीके दोनों चरणारविन्दोंमें चित्तकी वृत्तिको धरकर सबओर ईतियों (अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ, शुक, अपने राज्यकी सेना और अन्यदेशके राजाकी सेना) से वर्जित निर्द्वन्द्व राज्यको करता था ॥ ११ ॥ और जोकि अखण्डनीय आज्ञावाला शोभावान् या लक्ष्मीवान् व विष्णुजी की भक्तिमें परायण था उसने सबओर से विष्णुके अधीन कियेहुये बहुते भोगोंको भोगकिया ॥ १२ ॥ हे पार्वति ! उस भाग्यनिधानके राज्यमें विष्णुजीके मन्दिरोंके प्रति स्थान स्थानमें ऊंचा देवालय भलीभांति से हुआ ॥ १३ ॥ व हे गोविन्द, गोपगोपाल, गोपीजनमनोहर ! गदापाणे, गुणातीत, गुणाढ्य, गरुडध्वज ॥ १४ ॥ केशिहृत, कैटभशत्रो, कंसारे, कमलापते, कृष्ण, केशव,

भरमें जन्मसे लगाकर सञ्चित पापों से मुक्त होताहै (होवेगा) ॥ ७६ ॥ और बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्धसमय में विशेषसे पितरोंकी तृप्तिका कारण अधिक उत्तम, धर्मेश्वर का आख्यान ब्राह्मणों को सुनावे ॥ ७७ ॥ और दूर देशमें टिकाहुआ भी सुबुद्धिमान् इस धर्मेशाख्यान को सुनकर सब पापोंसे विनिर्मुक्त होकर अन्त में शिवजीके स्थानको जावेगा ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेधर्मेश्वराख्यानंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ⊛ ॥

दो० । बैयासी अध्याय में श्रीवीरेश प्रसंग । और अभीष्टदतीजका शुभव्रतकथनसुढंग ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे महेशान ! वीरेश्वरकी बड़ी भारी महिमा सुनी

त् ॥ ७६ ॥ श्राद्धकालेविशेषेणधर्मेशाख्यानमुत्तमम् ॥ श्रावयेद्ब्राह्मणान्धीमान्पितॄणांतृप्तिकारणम् ॥ ७७ ॥ धर्माख्यानमिदंश्रृण्वन्नपिदूरस्थितःसुधीः ॥ सर्वपापैर्विनिर्मुक्तोगन्तान्तेशिवमन्दिरम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेधर्मेश्वराख्यानन्नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पार्वत्युवाच ॥ वीरेशस्यमहेशानश्रूयतेमहिमामहान् ॥ परांसिद्धिंपरापेतुस्तत्रसिद्धाःपरःशताः ॥ १ ॥ कथमाविर्भवस्तस्यकाश्यांलिङ्गवरस्यतु ॥ आशुसिद्धिप्रदस्येहतन्मेब्रूहिजगत्पते ॥ २ ॥ महेश्वरउवाच ॥ निशामयमहादेविवीरेशाविर्भवम्परम् ॥ यंश्रुत्वापिनरःपुण्यम्प्राप्नोतिविपुलंशिवे ॥ ३ ॥ आसीदमित्रजिन्नामराजापरपुरञ्जयः ॥ धार्मिकःसत्त्वसंपन्नःप्रजारञ्जनतत्परः ॥ ४ ॥ यशोधनोवदान्यश्चसुधीर्ब्राह्मणदैवतः ॥ सदैवावभृथस्नानपरिक्लिन्नशिरोरुहः ॥ ५ ॥ विनीतोनीतिसम्पन्नःकुशलःसर्वकर्मसु ॥ विद्याब्धिपारदृश्वाचगुणवान्गुणिवत्सलः ॥ ६ ॥ कृतज्ञोमधुरालापःपा

जाती है कि वहां सैकडो से अधिक सिद्ध उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १ ॥ और हे जगत्पते ! काशी में शीघ्रही सिद्धिदायक उस लिंगनायक का कैसे प्रकट होना है उसको यहां मुझसे कहो ॥ २ ॥ महेशजी बोले कि हे कल्याणरूपिणि, महादेवि ! जिसको सुनकर भी मनुष्य बहुत पुण्यको प्राप्तहोता है वह उत्तम वीरेश्वर का प्रकट होना सुनो ॥३॥ कि आगे एक अमित्रजित् नाम राजाहुआ जोकि शत्रुओंके ग्रामोंका जीतनेवाला धर्मात्मा सतोगुण या धैर्य्य या बलसे सम्पन्न व प्रजाओके रञ्जनमें तत्पर था ॥ ४ ॥ व सुयश से धनी बड़ादानी सुबुद्धिमान् ब्रह्मण्यदेव व सदैव यज्ञान्तस्नानोंसे बहुत भीगेहुये बालोंवाला था ॥ ५ ॥ और विनय समेत व राजनीति से सम्पन्न

कंजाक्ष, कालभयनाशन, ॥ १५ ॥ पुरुषोत्तम,पापारे, पुण्डरीकविलोचन, पीतकौशेयवसन, पद्मनाभ, परात्पर, ॥ १६ ॥ जनार्दन, जगन्नाथ, गङ्गाजलजन्मभूमे, जन्तुजन्महरण, जयशीलजनों के पातकघातक, ॥ १७ ॥ श्रीवत्सवक्षः, श्रीकान्त, श्रीकर, श्रेयसांनिधे, श्रीरंग, शार्ङ्गधन्वन्, शौरे, शीतांशुलोचन, ॥ १८ ॥ दैत्यारे,दानवाराते, दामोदर, दुरन्तक, देवकीहृदयानन्द, सर्पेश्वरशयन, ॥ १९ ॥ विष्णो, वैकुण्ठनिलय, बाणासुरवैरिन्, विष्टरश्रवः, विष्वक्सेन, विराधारे, वनमालिन्, वनप्रिय, ॥ २० ॥ त्रिविक्रम, त्रिलोकीश, चक्रपाणे, चतुर्भुज इत्यादि नाम प्रति मन्दिरों में ॥ २१ ॥ जेकि मधुदैत्यके वैरी विष्णुजीके हैं वे रम्यहैं व स्त्री वृद्ध बालक और गोपालक जनों के

रीकविलोचन ॥ पीतकौशेयवसनपद्मनाभपरात्पर ॥ १६ ॥ जनार्दनजगन्नाथजाह्नवीजलजन्मभूः ॥ जन्मिनांजन्महरणाजञ्जपूकाघनाशन ॥ १७ ॥ श्रीवत्सवक्षःश्रीकान्तश्रीकरश्रेयसान्निधे ॥ श्रीरङ्गशार्ङ्गकोदण्डशौरेशीतांशुलोचन ॥ १८ ॥ दैत्यारेदानवारातेदामोदरदुरन्तक ॥ देवकीहृदयानन्ददन्दशूकेश्वरेशय ॥ १९ ॥ विष्णोवैकुण्ठनिलयबाणारे विष्टरश्रवः ॥ विष्वक्सेनविराधारेवनमालिन्वनप्रिय ॥ २० ॥ त्रिविक्रमत्रिलोकीशचक्रपाणेचतुर्भुज ॥ इत्यादीनिपवित्राणिनामानिप्रतिमन्दिरम् ॥ २१ ॥ स्त्रीवृद्धबालगोपालवदनोदीरितानितु ॥ श्रूयन्तेयत्रकुत्रापिरम्याणिमधुविद्विषः ॥ २२ ॥ सुरसाकाननान्येवविलोक्यन्तेगृहेगृहे ॥ चरित्राणिविचित्राणिपवित्राण्यब्धिजापतेः ॥ २३ ॥ सौधभित्तिषुदृश्यन्तेचित्रकृन्निर्मितानितु ॥ ऋतेहरिकथायास्तुनान्यावार्तानिशम्यते ॥ २४ ॥ हरिणानैवविध्यन्तेहरिनामांशधारिणः ॥ तस्यराज्ञोभयाद्व्याधैररण्यसुखचारिणः ॥ २५ ॥ नमत्स्यानैवकमठानवराहाश्चकेनचित् ॥ हन्यन्ते

मुखोंसे कहेगये हैं वे जहां कहीं भी सुनपड़ते हैं ॥ २२ ॥ घर घर में तुलसी के वनही देखेजाते हैं व लक्ष्मीनाथ के पवित्र विचित्र चरित्रभी ॥ २३ ॥ व महलोंकी भीतियों में चित्रकारों से बनायेहुये दिखाते हैं और भक्तभयहारी भगवान् की कथाके विना अन्य वार्त्ता नहीं सुनीजाती है ॥ २४ ॥ व उस राजाके डरसे व्याधों करके वनमें सुखसे चरतेहुये हरिनाम के अंश (भाग) के धारी हरिणभी नहीं मारेजाते हैं ॥ २५ ॥ व किसी मछलीमांसखानेवाले करकेभी उसके डरसे मत्स्य नहीं कच्छप नहीं

और वराहभी नहीं कहीं हनेजाते हैं ॥ २६ ॥ व उस अमित्रजित् राजाके देशमें उताने सोवनेवाले बालक भी एकादशी समेत द्वादशी को भलीभांति पाकर स्तनपान को कहीं नहीं करते हैं ॥ २७ ॥ व पशुभी तृणभोजन को सबओर से त्यागकर एकादशीमें उपवासपरायण हुये हैं और अन्य मनुष्योंकी क्या कथा है ॥ २८ ॥ उस राजा के पृथिवीकी शासना करतेही जब हरिवासर सम्प्राप्त होवैहै तब सब पुरवासियों से महामहोत्सव पसाराजाता है ॥ २९ ॥ जोकि प्राणोंसेभी और धनोंसेभी विष्णुभक्ति से रहित है वहही पृथिवी मे उस अमित्रजित् राजासे दण्डनीय हुआ है ॥ ३० ॥ और उसके देशमें विष्णुमम्बन्धिनी दीक्षाको भलीभांति प्राप्त होकर शङ्खचक्रचिह्नधारी

कापितद्वीत्यामत्स्यमांसाशिनापिवै ॥ २६ ॥ अप्युत्तानशयास्तस्यराष्ट्रेमित्रजितःक्वचित् ॥ स्तनपानन्नकुर्वन्तिसम्प्राप्यहरिवासरम् ॥ २७ ॥ पशवोपितृणाहारम्परित्यज्यहरेर्दिने ॥ उपोषणपराजाताअन्येषांकाकथान्नृणाम् ॥ २८ ॥ महामहोत्सवःसर्वैःपुरौकोभिर्वितन्यते ॥ तस्मिन्प्रशासतिभुवंसम्प्राप्तेहरिवासरे ॥ २९ ॥ सएवदण्ड्योऽभूत्तस्यराज्ञोमित्रजितःक्षितौ ॥ योविष्णुभक्तिरहितःप्राणैरपिधनैरपि ॥ ३० ॥ अन्त्यजाअपितद्राष्ट्रेशङ्खचक्राङ्कधारिणः ॥ सम्प्राप्यवैष्णवींदीक्षांदीक्षिताइवसम्बभुः ॥ ३१ ॥ शुभानियानिकर्माणिक्रियन्तेऽनुदिनंजनैः ॥ वासुदेवेसमर्प्यन्तेतानितैरफलेप्सुभिः ॥ ३२ ॥ विनामुकुन्दङ्गोविन्दम्परमानन्दमच्युतम् ॥ नान्योजप्येतमन्येतनभज्येतजनैःक्वचित् ॥ ३३ ॥ कृष्णएवपरोदेवःकृष्णएवपरागतिः ॥ कृष्णएवपरोबन्धुस्तस्यासीदवनीपतेः ॥ ३४ ॥ एवन्तस्मिन्महीपालेराज्यंसम्यक्प्रशासति ॥ एकदानारदःश्रीमांस्तन्दिदृक्षुःसमाययौ ॥ ३५ ॥ राज्ञासमर्चितःसोथमधुपर्कविधानतः ॥ नार

अन्त्यज भी यज्ञोंमें दीक्षित जनोंकी नाईं विराजते थे ॥ ३१ ॥ व फलचाहनारहित जनोंसे जे शुभकर्म दिनपीछे याने रोज रोज किये जाते हैं वे उनकरके वासुदेव मे समर्पित होते हैं ॥ ३२ ॥ व मुकुन्द परमानन्द गोविन्द अच्युत विना अन्य कोई कहींभी जनोंसे न जपाजावे न मानाजावे और न भजाजावे ॥ ३३ ॥ किन्तु उस राजा के कृष्णही परमदेव व कृष्णही परमगति व कृष्णही परमबन्धु हुये हैं ॥ ३४ ॥ इसप्रकार उस भूपति के भलीभांति राज्यकी शासना करतेही एक समय उसको देखा चाहते

हुये श्रीमान् नारदमुनि आये ॥ ३५ ॥ अनन्तर उस राजाकरके मधुपर्कादि विधानसे सम्पूजित नारदजीने उस अमित्रजित् नरेशको वर्णन किया ॥३६॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे प्रजाओं के पालक, राजन्! सबभूतोंमें गोविन्दको सबओरसे देखतेहुये तुम धन्यहो व कृतार्थहो और देवोंके भी मान्यहो ॥ ३७ ॥ जोकि विष्णुजी वेदपुरुष व यज्ञपुरुष हैं व जो भक्तभवभयहारी हैं व जो इस जगत्के अन्तर्यामी व कर्ता व हर्ता व रक्षक और समर्थ हैं ॥ ३८ ॥ हे भूपालसत्तम! उनमय सब जगतको देखतेहुये तुम्हारे शुभदायक दर्शनको पाकर मैं परम पवित्रता को प्राप्तहुआ हूं ॥३९॥ इस क्षणभंगुर संसार में सम्पूर्णफलदायक, लक्ष्मीनायक के चरणारविन्दों में भक्तिका होनाही

दोवर्णयामासतममित्रजितंनृपम् ॥ ३६ ॥ नारदउवाच ॥ धन्योसिकृतकृत्योसिमान्योप्यसिदिवौकसाम् ॥ सर्वभूतेषुगोविन्दम्परिपश्यन्विशांपते ॥ ३७ ॥ योवेदपुरुषोविष्णुर्योयज्ञपुरुषोहरिः ॥ योन्तरात्मास्यजगतःकर्ताहर्तावितावि भुः ॥ ३८ ॥ तन्मयम्पश्यतोविश्वंतवभूपालसत्तम ॥ दर्शनम्प्राप्यशुभदंशुचित्वमगमम्परम् ॥ ३९ ॥ एकएवहिसारोत्रसंसारेक्षणभंगुरे॥ कमलाकान्तपादाब्जभक्तिभावोऽखिलप्रदः ॥ ४० ॥ परित्यज्यहियःसर्वंविष्णुमेकंसदाभजेत् ॥ सुमेधसम्भजन्तेतंपदार्थाःसर्वएवहि ॥ ४१ ॥ हृषीकेशेहृषीकाणियस्यस्थैर्यंगतान्यहो ॥ सएवस्थैर्यमाप्नोतिब्रह्माण्डेऽतीवचञ्चले ॥ ४२ ॥ यौवनन्धनमायुष्यंपद्मिनीजलबिन्दुवत् ॥ अतीवचपलंज्ञात्वाऽच्युतमेकंसमाश्रयेत् ॥ ४३ ॥ वाचिचेतसिसर्वत्रयस्यदेवोजनार्दनः ॥ सएवसर्वदावन्द्योनररूपीजनार्दनः ॥ ४४ ॥ निर्व्याजप्रणिधानेनशीलयित्वाश्रि

एक सारभूत है ॥ ४० ॥ जोकि सबकोही परित्यागकर एक विष्णुजीको भजै है उस सुबुद्धिमान्को सबही पदार्थ भलीभांति सेवते हैं ॥ ४१ ॥ हे राजन्! जिसकी इन्द्रियां इन्द्रियोंके स्वामी (विष्णु) में स्थिरता को प्राप्तहैं वहही अत्यन्त चञ्चल ब्रह्माण्डमें स्थिरता को प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥ व युवापन,धन और आयुष्य को पुरइनिपत्रपर परे हुये पानीके समान अतीव चञ्चल जानकर एक अच्युत भगवान्को भलीभांति सबओरसे सेवे ॥ ४३ ॥ जिसकी वाणी, चित्त तथा सर्वत्र देहादिकोंमें जनार्दन देव विद्यमान रहते हैं वह सदैव वन्दनीय होकर नररूपी जनार्दन कहाता है ॥ ४४ ॥ कपटरहित पूजन या ध्यान से लक्ष्मीकान्त को पूजनकर या ध्यानधर कौन प्राणी

इस भूतल में पुरुषोत्तमता को नहीं प्राप्त हुआहै ॥४५॥ हे भूपते ! तुम्हारी इस विष्णुभक्ति से सन्तुष्ट इन्द्रिय व मानसवाला मैं उपकार करनेको न करूं उसको सुनिये॥ ४६ ॥ और विद्याधरकी पुत्री मलयगन्धिनी नाम कन्या पिताके विहार स्थान में खेलती हुई कङ्कालकेतु करके हरीगई है ॥ ४७ ॥ और प्रसिद्ध है कि आने आने वाली तीजमें बड़े बलवान् दानव कपालकेतुके पुत्रसे उसका पाणिग्रहण (व्याह) होवेगा ॥ ४८ ॥ इस समय वह पाताल के बीच चम्पकावती नगरी में है और आंसुओं समेत आंखोंवाली उसकरके हाटकेश्वर शिवजीके स्थानसे भलीभांति आताहुआ मैं ॥ ४९ ॥ देखागयाहूं व प्रणामकर जैसे विज्ञापना कियागयाहूं उसको वा वैसेही

यःपतिम् ॥ पुरुषोत्तमतांकोनप्राप्तवानिहभूतले ॥४५॥ अनयाविष्णुभक्त्यातेसन्तुष्टेन्द्रियमानसः ॥ उपकर्तुमनाब्रूयां तन्निशामयभूपते ॥ ४६ ॥ बालाविद्याधरसुतानाम्नामलयगन्धिनी ॥ क्रीडन्तीपितुराक्रीडेहृताकङ्कालकेतुना ॥ ४७॥ कपालकेतुपुत्रेणदानवेनबलीयसा ॥ आगामिन्यांतृतीयायांतस्याःपाणिग्रहःकिल ॥ ४८ ॥ पातालेचम्पकावत्यान्नगर्यांसास्तिसाम्प्रतम् ॥ हाटकेशात्समागच्छंस्तयाहंसाश्रुनेत्रया ॥ ४९ ॥ दृष्टःप्रणम्यविज्ञप्तोयथातच्चनिशामय ॥ ब्रह्मचारिमुनिश्रेष्ठगन्धमादनशैलतः ॥ ५० ॥ बालक्रीडनकासक्तांमोहयित्वानिनायसः ॥ कङ्कालकेतुर्दुर्वृत्तोदुर्जयोन्यास्त्रघाततः ॥ ५१ ॥ स्वस्यत्रिशूलघातेनम्रियतेनान्यथारणे ॥ जगत्पर्याकुलीकृत्यनिद्रात्यत्रविनिर्भयः ॥ ५२ ॥ यदिकोपिकृतज्ञोमांहत्वेमन्दुष्टदानवम् ॥ मद्दत्तेनत्रिशूलेननयेद्भद्रंभवेन्नरः ॥ ५३ ॥ यदत्रोपचिकीर्षुस्त्वंरक्षमांदुष्टदानवात् ॥ ममापिहिवरोदत्तोभगवत्यामहामुने ॥ ५४ ॥ विष्णुभक्तोयुवाधीमान्पुत्रित्वांपरिणेष्यति ॥ आतृतीयातिथिय

तुम सुनो हे ब्रह्मचारिन्,मुनिश्रेष्ठ ! गन्धमादन पर्वतसे ॥ ५० ॥ बालखेल में आसक्त हुई मुझको मोहकर जो हरलाया है वह कङ्कालकेतु दुराचारी व अन्य अस्त्रोंके घात से दुर्जयहै ॥ ५१ ॥ वह संग्राम में अपने त्रिशूल के घातसे मरेगा अन्यथा नहीं और जगत्को सबओर से व्याकुल कर यहां बहुत निर्भय होकर सोताहै ॥ ५२ ॥ जो कोई कृतज्ञ मनुष्य मेरे दियेहुये त्रिशूल से इस दुष्ट दानवको मारकर मुझको लेजावे तो मंगल होवे ॥ ५३ ॥ हे मुने ! जो तुम इस अर्थमें उपकार करने के चाहतेहो तो दुष्ट दानव से मुझको बचावो जिससे भगवती ने मुझको भी वरदिया है ॥ ५४ ॥ कि हे पुत्रि ! विष्णुका भक्त, युवा, बुद्धिमान्, मनुष्य तीज तिथितक तुझको वरेगा

यह उनका वाक्य जैसे सत्यता को प्राप्तहोवे ॥ ५५ ॥ वैसेही तुम निमित्तमात्र होवो व यत्न को भलीभांति से करौ हे राजन् ! ऐसे उसके वचनसे मैं विष्णुभक्तिपरायण व युवा और बुद्धिमान् भी उस तुमको पीछे से प्राप्तहुवा हूं ॥ ५६ ॥ हे महाबाहो ! उस कारण तुम कार्य्य की सिद्धि के लिये जावो और उस दुष्टदानव को मारकर मङ्गलमयी मलयगन्धिनी को शीघ्रही ले आवो ॥ ५७ ॥ हे नरेश्वर ! वह विद्याधरी भी तुम को देखकर जीवेगी और पार्वती जी के वचन से विना यत्न ही उस दुष्ट को मरावेगी ॥ ५८ ॥ ऐसा नारद मुनिका वचन सुनकर वह राजा अमित्रजित् विद्याधर पुत्री के प्रति बहुतरोमाञ्चित हुवा ॥ ५९ ॥ और उस

यथातद्वाक्यन्तथ्यतांव्रजेत् ॥ ५५ ॥ तथानिमित्तमात्रंत्वंभवयत्नंसमाचर ॥ इतितद्वचनाद्राजन्विष्णुभक्तिपरायणम् ॥ युवानञ्चापिधीमन्तन्त्वामनुप्राप्तवानहम् ॥ ५६ ॥ तद्गच्छकार्यसिद्ध्यैत्वंहत्वातन्दुष्टदानवम् ॥ आनयाशुमहाबाहोशुभांमलयगन्धिनीम् ॥ ५७ ॥ सातुविद्याधरीजीवेद्विलोक्यत्वान्नरेश्वर॥पार्वतीवचनाद्दुष्टंघातयिष्यत्ययत्नतः॥५८॥ इतिनारदवाक्यंसन्निशम्यामित्रजिन्नृपः ॥ अनल्पोत्कलिकोजातोविद्याधरसुतांप्रति ॥ ५९ ॥ उपायञ्चापिपप्रच्छगन्तुंतांचम्पकावतीम् ॥ नारदेनपुनःप्रोक्तःसराजागिरिराजजे ॥ ६० ॥ तूर्णमर्णवमासाद्यपूर्णिमादिवसेन्नृप ॥ भवान्द्रक्ष्यतिपोतस्थःकल्पवृक्षंरथस्थितम् ॥ ६१ ॥ तत्रदिव्याङ्गनाकाचिद्दिव्यपर्यङ्कसंस्थिता ॥ वीणामादायगायन्तीगाथांगास्यतिसुस्वरम् ॥ ६२ ॥ यत्कर्मविहितंयेनशुभंवाथशुभेतरम् ॥ सएवभुङ्क्तेतत्तथ्यंविधिसूत्रनियन्त्रितः ॥ ६३ ॥ गाथामिमांसासङ्गीयसरथासमहीरुहा ॥ सपर्यङ्कात्क्षणादेवमध्येसिन्धुंप्रवेक्ष्यति ॥ ६४ ॥ भवानप्यविशङ्कश्चततःपोता

चंपकावती पुरी को जाने के लिये उपायको पूंछनेलगा हे पर्वतराजकुमारि ! नारदजी करके वह राजा फिर कहागया ॥ ६० ॥ कि हे नृप ! शीघ्रही समुद्रको प्राप्त होकर नावपर टिकेहुये आप पूर्णिमा के दिन रथमें स्थित कल्पवृक्ष को देखोगे ॥ ६१ ॥ वहां वीणा को लेकर गातीहुई पलंगपर टिकी कोई दिव्य स्त्री अच्छे स्वरसे इस गाथा को गावेगी ॥ ६२ ॥ कि जिससे जो शुभ अथवा अशुभ कर्म कियागयाहै वहही विधिसूत्र से बँधाहुआ उसको भोगता है यह सत्य है ॥ ६३ ॥ इस गाथाको भलीभांति गाकर रथसमेत व कल्पवृक्षसमेत व पलंग समेत वह क्षणभरमेंही समुद्रके बीचमें पैठजावेगी ॥ ६४ ॥ और यज्ञवाराहभगवान् को सबओर से

प्रशंसते या सुमिरतेहुये आपभी निश्शंक होकर शीघ्रही उस नावसे समुद्र में उसके पीछे चलेजावो ॥ ६५ ॥ हे राजन् ! तदनन्तर तुम पाताल में इस कन्या से सहित महामनोहर चंपकावती नगरी को देखोगे ॥ ६६ ॥ हे देवि ! इसप्रकार कहकर वह ब्रह्माजी के पुत्र नारदमुनि अन्तर्द्धान हुये और राजा भी समुद्र को प्राप्तहोकर यथोक्त याने जैसे नारदजीने कहा था वैसेही सबओर से देखकर ॥ ६७ ॥ समुद्र के भीतर पैठगया और उस नगरी में प्राप्तहुआ अनन्तर वह विद्याधरी बाला आंखोंकी अतिथि कीगई है ॥ ६८ ॥ और उस राजाने उसको देखा कि यह अकेली या मुख्य त्रिलोककी सुन्दरताकी शोभा सीहै व मेरे नेत्रोंके उत्सव के लिये क्या यह

न्महार्णवे ॥ तामनुव्रजतुत्त्विप्रंयज्ञवाराहमास्तुवन् ॥ ६५ ॥ततोद्रक्ष्यसिपातालेनगरींचम्पकावतीम् ॥ महामनोहरांराजन्सहितांबालयानया ॥६६॥ इत्युक्त्वान्तर्हितोदेविसचतुर्मुखनन्दनः ॥ राजाप्यर्णवमासाद्ययथोक्तंपरिलक्ष्यच ॥६७॥ विवेशान्तःसमुद्रञ्चनगरीमाससादताम् ॥ साथविद्याधरीबालानेत्रप्राघुणकीकृता ॥ ६८ ॥ तेनराज्ञात्रिजगतीसौन्दर्यश्रीरिवैकिका ॥ पातालदेवतेयंवाममनेत्रोत्सवायकिम् ॥ ६९ ॥ निरणायिमधुद्वेष्ट्रास्रष्टुःसृष्टिविलक्षणा ॥ कुहूराहुभयादेषाकान्तिश्चान्द्रमसीकिमु ॥ ७० ॥ योषिद्रूपंसमाश्रित्यतिष्ठतेऽत्राकुतोऽभया ॥ इत्थंक्षणंतांनिर्वर्ण्यसराजागात्तदन्तिकम् ॥ ७१ ॥ साविलोक्याथतंबालानितराम्मधुराकृतिम् ॥ विशालोरस्थलतलंप्रलम्बतुलसीस्रजम् ॥ ७२ ॥ शङ्खचक्राङ्कसुभगभुजद्वयविराजितम् ॥ हरिनामाक्षरसुधासुधौतरदनावलिम् ॥७३॥ भवानीभक्तिबीजोत्थंभूरुहम्पुरुषा

पातालकी देवताहै ॥ ६९ ॥ कि मधुदैत्य के वैरी विष्णुजी करके ब्रह्माजी की सृष्टि से विलक्षण आनी या बनाई गई है कि अमावस और राहु के डरसे यह चन्द्रमाकी कांति ॥ ७० ॥ स्त्रीरूप को आश्रयकर सबकहीं से निडरहुई टिकी है इसप्रकार क्षणभर उसको वर्णनकर वह राजा उसके समीप में गया ॥ ७१ ॥ अनन्तर वह कन्या उसको देखकर जो कि बहुत मधुर आकारवाला व विशालउरस्थलतलवाला व लंबी तुलसी की मालावाला ॥ ७२ ॥ व शङ्ख और चक्र के चिह्न से सुभग दो बाहोंसे विराजित है व हरि नाम के अक्षर अमृत से जिसकी दन्तपंक्ति अच्छे प्रकार से धोईगई है ॥ ७३ ॥ और जोकि देवीजी की भक्तिबीज से उठाहुआ याने

उपजा व मनोरथ फलोंसे पूर्ण पुरुषाकार वृत्त है उसको देखकर रोमांचित होगई ॥ ७४ ॥ व झूला के पलंग को त्यागकर लाजके भार से नम्र ग्रीवावाली कन्या देह कंप को सबओरसे रोंककर पृथिवीपति से बोली ॥ ७५ ॥ कि हे मधुर आकारवाले ! तुम कौनहो जोकि मुझ मन्दभाग्यवाली के चित्तकी वृत्तिको रुकातेहुये यहां काल के घरमें प्राप्तहुये हो ॥ ७६ ॥ हे सुभग ! जबतक बहुत कठोर आकारवाला दानव बारबार त्रिलोकको अत्यन्त व्याकुल कर फिर नहीं आताहै ॥ ७७ ॥ जोकि कंकाल-केतु दुराचारी और पराये हथियारों से अवध्य है तबतक तुम गुप्तहोकर अत्यन्त गहरे शस्त्रधरने के घरमें भलीभांति आकर टिको ॥ ७८ ॥ श्रीपार्वती जीके वरदान

कृतिम् ॥ मनोरथफलैःपूर्णमासीद्धृष्टतनूरुहा ॥ ७४ ॥ दोलापर्यङ्कमुत्सृज्यह्रीभरानम्रकन्धरा ॥ वेपथुञ्चपरिष्टभ्यबाला प्रोवाचभूपतिम् ॥ ७५ ॥ कस्त्वमत्रकृतान्तस्यभवनम्मधुराकृते ॥ प्राप्तोमेमन्दभाग्यायाश्चेतोवृत्तिंनिरुन्धयन् ॥ ७६ ॥ यावन्नायातिसुभगसकठोरतराकृतिः ॥ अतिपर्याकुलीकृत्यत्रिलोकीन्दानवोमुहुः ॥७७॥ कङ्कालकेतुर्दुर्वृत्तस्त्ववध्यः परहेतिभिः ॥ तावद्गुप्तंसमातिष्ठशस्त्रागारेतिगह्वरे ॥७८॥नमेकन्याव्रतंभङ्क्तुंससमर्थउमावरात् ॥ आगामिन्यांतृतीयायां परश्वःपाणिपीडनम् ॥ ७९ ॥ संचिकीर्षतिदुष्टात्मागतायुर्ममशापतः ॥ मातर्द्भीतिंकुरुयुवस्तत्कार्यंभविताचिरम् ॥ ८० ॥ विद्याधर्येतिचोक्तः सशस्त्रागारेनिगूढवत् ॥ स्थितोवीरोमहाबाहुर्दानवागमनेक्षणः ॥ ८१ ॥ अथसायंसमायातो दानवोभीषणाकृतिः ॥ त्रिशूलंकलयन्पाणौ मृत्योरपिभयावहम् ॥ ८२ ॥ आगत्यदानवोरौद्रः प्रलयाम्बुदनिःस्वनः ॥ विद्याधरींजगादेति मदाघूर्णितलोचनः ॥ ८३ ॥ गृहाणेमानिरत्नानि दिव्यानिवरवर्णिनि ॥ कन्यात्वंचपर

से वह मेरे कन्याव्रतको भङ्ग करने के लिये समर्थ नहीं है किन्तु परसों आनेवाली तीज में ब्याहको ॥ ७९ ॥ भलीभांति करने की इच्छा करता है हे युवक ! जो कि दुष्टात्मा मेरे शाप से गतआयुवाला है उसका डर मतकरो वह कार्य्य शीघ्रही होवेगा ॥ ८० ॥ इसभांति विद्याधरी से कहाहुआ वह गुप्तसा शस्त्रागार में टिका जो कि वीर व बडी बाहुओंवाला व दानवके आनेमें आंखोंको या दृष्टिको लगायेथा ॥८१॥ अनन्तर मृत्युके भी भयदायक त्रिशूलको हाथमें डुलाताहुआ भयङ्कररूप वह दानव सायङ्कालमें भलीभांति आया ॥८२॥ व मदसे सबओर घूमीहुई आंखोंवाला व प्रलयकालके मेघोंके समान शब्दवाला रौद्ररूप दानव आकर विद्याधरीसे ऐसा बोला ॥८३॥

कि हे वरवर्णिनि ! इन दिव्य रत्नों को ग्रहणकरो और परसों में ब्याह से तुम्हारा कन्याभाव विगत होवेगा ॥ ८४ ॥ हे सुन्दरि ! दैत्यपुत्री व देवी और दानवी दासियों का मनोहर दशहजार प्रातःकाल में तुझे दूंगा ॥ ८५ ॥ व गन्धर्वी, मानुषी और किन्नरियों का सैकड़ा सैकड़ा व विद्याधरी नागी और यक्षिणियों के छहसैकडा ॥ ८६ ॥ और हे विमलचित्ते ! राक्षसियोंके आठ सैकडा और अप्सराओंका श्रेष्ठ सैकडा ये तेरी सेवकी होवेंगी ॥ ८७ ॥ व यहां दिक्पालोंके घरों में भी जितना सम्पत्तियोंका समूहहै उतने की तुम मेरी अधीनताको प्राप्तहोकर स्वामिनी होवोगी ॥ ८८ ॥ और मेरे परिग्रहणसे तुम मेरे साथ दिव्य भोगोंको भोग करोगी व

श्वस्तेपाणिग्राहाद्यैष्यति ॥ ८४ ॥ दासीनामयुतंप्रातर्दास्यामितवसुन्दरि ॥ आसुरीणांसुरीणांच दानवीनांमनोहरम् ॥ ८५ ॥ गन्धर्वीणांनरीणांच किन्नरीणांशतंशतम् ॥ विद्याधरीणांनागीनां यक्षिणीनांशतानिषट् ॥ ८६ ॥ राक्षसीनां शतान्यष्टौ शतमप्सरसांवरम् ॥ एतास्तेपरिचारिण्यो भविष्यन्त्यमलाशये ॥ ८७ ॥ यावत्सम्पत्तिसम्भारो दिक्पाला नांगृहेषुवै ॥ मत्परिग्रहतांप्राप्य तावतस्त्वमिहेश्वरी ॥ ८८ ॥ दिव्यान्भोगान्मयासार्धं भोक्ष्यसेमत्परिग्रहात् ॥ कदापर श्वोभवितायस्मिन्वैवाहिकोविधिः ॥ ८९ ॥ त्वदङ्गसङ्गसंस्पर्शसुखसन्दोहमेदुरः ॥ परांनिर्वृतिमाप्स्यामि परश्वोनिक टंयदि ॥ ९० ॥ मनोरथाश्चिरंयावद्येमेहृदिसमेधिताः ॥ तान्कृतार्थीकरिष्यामि परश्वस्तवसङ्गमात् ॥ ९१ ॥ जित्वादेवा न्रणेसर्वानिन्द्रादीन्मृगलोचने ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यसम्पत्तेस्त्वांकरिष्यामिचेश्वरीम् ॥ ९२ ॥ आधायाङ्केत्रिशूलंस्वे सुष्वा पेतिप्रलप्यसः ॥ नरमांसवसास्वादप्रमत्तोवीतसाध्वसः ॥ ९३ ॥ वरंस्मरन्तीसागौर्या विद्याधरकुमारिका ॥ विज्ञायतं

जिसमें विवाहकी विधि होवेगी वह परसों कब है ॥ ८९ ॥ जो परसों निकट है तो तुम्हारे अङ्ग सङ्गके संस्पर्श से उपजेहुये सुखसमूह से व्याप्तहुआ मैं परमआनन्द को पाऊंगा ॥ ९० ॥ व जे मनोरथ बहुत कालतक मेरे हृदय में भलीभांति बढ़ेहैं उनको परसों तुम्हारे सङ्गमसे कृतार्थ करूंगा ॥ ९१ ॥ और हे मृगनयनि ! संग्राम में सब इन्द्रादि देवों को जीतकर तुमको त्रिलोक के ऐश्वर्य्य व सम्पत्तिकी स्वामिनी करूंगा ॥ ९२ ॥ ऐसा प्रलापकर व अपने अंकमें त्रिशूल को धर मनुष्यो के मास व मेदके खानेसे उन्मत्त और निडरहुआ वह सोयगया ॥ ९३ ॥ तब उसको अत्यन्त निडर व बहुत मतवाला व अधिक सोताहुआ जानकर पार्वती जी के वर

को सुमिरती हुई उस विद्याधरकुमारी ने ॥ ९४ ॥ मनुष्यों में श्रेष्ठ व सर्वाङ्गसुन्दर व विष्णुकी भक्ति से रक्षा कियेगये हुये उस वरको बुलाकर और हे प्राणनाथ ! ऐसा कहकर ॥ ९५ ॥ उस दैत्यके अङ्क से त्रिशूलको लेकर कहा कि इसको ग्रहण करो और इस दुष्ट दानव को शीघ्रही मारो इसभांति कन्या से त्रिशूल को लेकर बाल सूर्य्यके समान दीप्तिवाला ॥ ९६ ॥ वह हर्षयुक्त हुआ और उससमय बड़ी बाहुओंवाला अमित्रजित् नरेश कन्या को अभय देताहुआ ऊंचे स्वरसे गर्जा ॥९७॥ व जगत् की रक्षाके लिये मणिके समान भक्तभयहारी सुदर्शनचक्रधारी को चित्त में भलीभांति सुमिरते हुये उस निर्भयराजा ने बायें लात घात से उस दानव को

प्रमत्तंच सुसुप्तंचातिनिर्भयम् ॥ ९४ ॥ आहूयतंनरवरं वरंसर्वाङ्गसुन्दरम् ॥ विष्णुभक्तिकृतत्राणं प्राणनाथेतिजल्प्य च ॥ ९५ ॥ शूलंतदङ्कादादाय गृहाणेमंजहिद्रुतम् ॥ इतित्रिशूलंबालातो बालार्कसदृशद्युतिः ॥ ९६ ॥ समादायमहाबाहुः सतदामित्रजिन्नृपः ॥ जहर्षचजगादोच्चैर्बालायाश्चाभयंदिशन् ॥ ९७ ॥ वामपादप्रहारेण तमाताड्यसनिर्भयः ॥ संस्मरंश्चक्रिणंचित्ते जगद्रक्षामणिंहरिम् ॥ ९८ ॥ जगादोत्तिष्ठरेदुष्ट कन्याधर्षणलालस ॥ युध्यस्वात्रमयासार्धं नसुप्तंहन्म्यहंरिपुम् ॥ ९९ ॥ इति संश्रुत्यसम्भ्रान्त उत्थायसदनोःसुतः ॥ त्रिशूलंदेहिमेकान्ते प्रोवाचेतिमुहुर्मुहुः ॥१००॥ कोयंमृत्युगृहंप्राप्तः कस्यरुष्टोऽद्यचान्तकः ॥ कआयुषाद्यसन्त्यक्तोयः प्राप्तोममगोचरम् ॥ १ ॥ ममप्रचण्डदोर्द्दण्डकण्डूकण्डूयनक्षमः ॥ नाल्पोनरोयंभविता किंत्रिशूलेनसुन्दरि ॥ २ ॥ माभैर्मेकौतुकम्पश्य भक्ष्योऽयंममसाम्प्रतम् ॥ कालेनमत्तोभीतेन स्वयमेवोपढौकितः ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वामुष्टिघातेन तेनोच्चैर्दनुसूनुना ॥ हृदयेनिहतोराजा शि

सामने से ताड़नकर ॥ ९८ ॥ कहा कि हे कन्याधर्षणलालस, दुष्ट ! तू उठ व यहां मेरे साथ युद्धकर क्योंकि मैं सोतेहुये शत्रुको नहीं मारताहूं ॥ ९९ ॥ व ऐसा सुनकर सम्भ्रमसमेत हुआ वह दनुका पुत्र इसभांति बारबार बोला कि हे सुन्दरि ! तुम मुझको त्रिशूलदो ॥ १०० ॥ कौन यह मृत्युके घरमे प्राप्तहै व आज किससे काल रुष्ट है व आज कौन आयु से हीनहै जोकि मेरे नेत्रगोचर में प्राप्तहुआहै ॥ १ ॥ हे सुन्दरि ! त्रिशूल से क्या है क्योंकि यह अल्पमनुष्य, मेरे प्रचण्ड भुजदण्ड की खजुली खजुवानेको समर्थ न होगा ॥ २ ॥ और तुम मतडरो मेरा कौतुकदेखो कि इससमय यह मेरा भक्ष्यहै व मुझसे डरेहुये काल करके भेंटभावसे पठायागया

है ॥ ३ ॥ इसप्रकार उच्चस्वर से कहकर उस दानव ने मुष्टिघात से शिलासे अधिक कठोर हृदय में राजाको शीघ्रही ताड़ित किया ॥ ४ ॥ परन्तु चक्रधारी विष्णुजी से रक्षणकिये हुये उस कठोर उरवाले ने थोड़ी से थोड़ी भी पीड़ा को न जाना बरन उस दानवका हाथही दूखनेलगा ॥५॥ अनन्तर क्रोधवान् राजाकरके मुखमे चपेटासे माराहुआ आघूर्णित मस्तकवाला वह पृथिवीमे पतितहोकर फिर उठकर खड़ाहोगया ॥ ६ ॥ और धैर्य्यको धारणकर बड़े बलवान् दानवने वचन को कहा दानव बोला कि, मैंने जानलिया तुम मनुष्य नहींहो किन्तु मनुष्यरूप से विष्णुहो ॥ ७ ॥ व दानवों के काल तुम अवसर को प्राप्तहोकर मेरे मारने के लिये आयेहो ॥ ८ ॥ हे

लातिकठिनेद्रुतम् ॥ ४ ॥ सचक्रिणाकृतत्राणः पीडामल्पीयसीमपि ॥ नोवेदकठिनोरस्कस्तत्करंप्रत्युतानुदत् ॥ ५ ॥ अथकोपवताराज्ञा हतोवक्त्रेचपेटया ॥ आघूर्णितशिराभूमौपतित्वापुनरुत्थितः ॥ ६ ॥ उवाचचवचोधैर्यमवष्टभ्यमहाबली ॥ दानवउवाच ॥ ज्ञातंनत्वंमनुष्योसिनृरूपेणचतुर्भुजः ॥ ७ ॥ आयातश्छिद्रमासाद्य हन्तुंमान्दानवान्तकः ॥ ८ ॥ एवंविधोहिमधुभिद्यदित्वंबलवानसि ॥ विहायैतन्महच्छूलंयुध्यस्वस्वायुधैर्मया ॥ ९ ॥ त्वयाकपटरूपेणबलिनः कैटभादयः ॥ नबलेनहताःसंख्ये हताएवच्छलेनहि ॥१०॥बलिंपातालमनयस्त्वंनृवामनतान्दधत् ॥ नृमृगत्वेनभवताहिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ११ ॥ त्वयाजटिलरूपेण लङ्केशोविनिपातितः ॥गोपालवेषमासाद्य कंसाद्याघातितास्त्वया॥ १२॥स्त्रीरूपेणाहरस्त्वन्तु विप्रलाप्यासुरान्सुधाम् ॥ यादोरूपेणभवता शङ्खाद्यानिहताबहु ॥ १३॥मायावीनामग्रगण्य

मधुदैत्य के जीतनेवाले ! जो तुम बलवान्हो तो एक बातकरो कि इस बडेभारीत्रिशूल को छोडकर अपने आयुधों से मेरे साथ युद्धकरो ॥ ९ ॥ व कपटरूपधारी तुमने संग्राम में कैटभादि बलवान् दैत्यको बलसेही नही मारा किन्तु छलसेही मारा है ॥ १० ॥ और मनुष्यके समान वामनरूपको धारतेहुये तुमने बलिको पाताल मे पठायाहै व आपने नृसिंहभाव से हिरण्यकशिपु को हनाहै ॥ ११ ॥ व तुमने जटाधारी रामरूप से रावण को मारा है और तुमने गोपवेष को प्राप्तहोकर कंसादिको को मरायाहै ॥ १२ ॥ व तुमने स्त्रीरूपसे दैत्यों को विशेषता से प्रलाप कराकर याने उनमे परस्पर बातोंसे झगड़ा कराकर अमृतको हरलियाहै और आपने

मत्स्यरूप से शङ्खासुरादि बहुते दैत्यों को माराहै ॥ १३ ॥ हे मायावियोंमें अग्रगण्य, सर्वमर्मज्ञसाधक ! जो तुम त्रिशूल को त्यागोगे तो मैं तुमसे नहीं डरताहूं ॥ १४ ॥ अथवा कादरों के योग्य इन दीनता समेत वचनों से क्या है क्योंकि तुम त्रिशूल को न त्यागोगे और मैं संग्राम में तुमको न-जीतूंगा ॥ १५ और आज या प्रातःकाल देहधारीमात्र को अवश्यही मरना योग्यहै इससे बल व छलसे भी तुम्हारे हाथसे मृत्यु बहुत श्रेष्ठहै ॥ १६ ॥ यह अच्छे आचारवाली विद्याधरी कन्या मुझ से दूषित नहीं हुई व साक्षात् लक्ष्मीही मानने योग्य है और मैंने तुम्हारे अर्थ इसकी रक्षा कियाहै ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर बहुत निठुर जैसेहो वैसे दनुके पुत्रने पर्वत से

सर्वमर्मज्ञसाधक॥ नत्वत्तोहंबिभेम्यद्य यदिशूलंविहास्यसि॥१४॥ अथवादैन्यवचनैः किमेभिःकातरोचितैः॥नत्यक्ष्यसि त्रिशूलंत्वं नत्वांजेष्याम्यहंरणे॥ १५ ॥ अवश्यमेवमर्तव्यमद्यप्रातःशरीरिणा ॥ त्वत्करेणवरंमृत्युर्बलेनापिच्छलेन वा ॥ १६ ॥ इयंविद्याधरीकन्यानमयादूषितासती ॥ साक्षाच्छ्रीरेवमन्तव्या तवार्थेरक्षितामया॥ १७ ॥ इत्युक्त्वावा मदोर्दण्डप्रहारेणातिनिष्ठुरम् ॥ निजघानदनोःसूनुस्तंशिलोच्चयकम्पिना ॥ १८ ॥ नृपोवक्षःप्रहारन्तं विषह्यरणमूर्द्ध नि ॥ लक्षीचकारतद्वक्षस्त्रिशूलंतोलयन्करे ॥ १९ ॥ निजघानमहाबाहुः सचप्राणाञ्जहौक्षणात् ॥ इत्थंकङ्कालकेतुं स निहत्यसुरकम्पनम् ॥ २० ॥ विद्याधरींप्रपश्यन्तीं प्राहहृष्टतनूरुहाम् ॥ नारदस्यमुनेर्वाक्यात्तवसुश्रोणिवाञ्छितम् ॥ २१ ॥ कृतंमयाकृतज्ञेकिंकरवाण्यधुनावद ॥ श्रुत्वेतितस्यसावाक्यं प्राहगम्भीरचेतसः॥ २२॥ मलयगन्धिन्युवाच ॥

चलतेहुये वामभुजदण्डप्रहार से उस राजाको ताड़न किया ॥ १८ ॥ और संग्रामशिर में उस उरताड़न को विशेषता से सहकर हाथ में त्रिशूलको तौलतेहुये नरेश ने उस दानव के वक्षस्थल को लक्ष्य (निशाना) बनाया ॥ १९ ॥ व उस महाबाहुने उस त्रिशूलसे उसको मारा और उस दानव ने क्षणमें प्राणों को छोड़दिया इस प्रकार देवोंके कँपानेवाले कङ्कालकेतु को मारकर वह ॥ २० ॥ बहुतही देखती हुई हर्ष से उठे रोमोंवाली विद्याधरी से बोला कि हे सुश्रोणि ! नारदमुनि के वचन से तेरे वाञ्छितको ॥ २१ ॥ मैंने किया और हे कियेहुये उपकारके जाननेवारी प्यारी ! इस समय मैं क्याकरूं उसको तुम कहो, इसभांति उस गम्भीर चित्तवाले के वचन

को सुनकर उसने कहा ॥ २२ ॥ मलयगन्धिनी बोली कि, हे सजीवनमूरि के समान, उदारबुद्धिवाले, वीर ! प्रश्न है कि आप अपने प्राणों से विकानीहुई अदूषित, कुलकन्या मुझसे क्या पूंछतेहो ॥ २३ ॥ ऐसे कन्याके कहतेही अतर्कित आनेवाले स्वेच्छाचारी नारदमुनिजी देवलोक से आकर फिर प्राप्तहुये ॥ २४ ॥ तदनन्तर उन मुनिसत्तम को देखकर प्रणामकियेहुये व मुनिके दिये आशीर्वादवाले वे दोनों संतुष्ट होगये ॥ २५ ॥ और नारदमुनि करके ब्याह की विधिसे अभिषेक युक्तहोकर मंगल कियेहुये वे नारदजी की बताई गली से चलेगये ॥ २६ ॥ और उस मलयगन्धिनी से संयुक्त वह अमित्रजित् नरेश, पुरवासी जनों से किये हुये मंगल-

अथोदारमतेवीर निजप्राणैःपणीकृताम् ॥ किंमाम्पृच्छसिजीवातो कुलकन्यामदूषिताम् ॥ २३ ॥ इतिब्रुवत्यांकन्यायांपुनःस्वैरचरोमुनिः ॥ अतर्किता्गमःप्राप्तो नारदोदेवलोकतः ॥ २४ ॥ ततस्तुतुषतुस्तौतु दृष्ट्वातम्मुनिसत्तमम् ॥ कृतप्रणामौमुनिना परिविश्राणिताशिषौ ॥ २५ ॥ पाणिग्रहेणविधिनाभिषिक्तौनारदेनतु ॥ जग्मतुर्नारदादिष्टवर्त्मनाकृतमङ्गलौ॥२६॥ तयामलयगन्धिन्या युतःसोमित्रजिन्नृपः॥पुरींवाराणसींप्राप्यपौरैर्विहितमङ्गलाम्॥२७॥यद्वीक्षणादपिनरोनारकींनैवजातुचित् ॥ गतिमाप्नोतिमेधावीताम्पुरीमविशन्नृपः ॥२८॥ यस्यांपुर्यांप्रवेशंनलभन्तेवासवादयः॥ कैवल्यजनयित्र्यांहितांपुरीमविशन्नृपः ॥ २९ ॥ अपिस्मृत्वापुरींयांवैकाशींत्रैलोक्यकाङ्क्षिताम् ॥ ननरोलिप्यतेपापैस्तांविवेशसभूपतिः ॥ ३० ॥ यस्यांपुर्यांप्रविष्टोनामहद्भिरपिपातकैः ॥ नाभिभूयेततांकाशींप्राविशत्सविशांपतिः ॥ ३१ ॥ सापिविद्याधरीकाशीसमृद्धिंवीक्ष्यदूरतः ॥ निनिन्दस्वर्गलोकञ्चपातालनगरीमपि ॥ ३२ ॥ प्राप्यामित्रजितंकान्तं

वाली काशीपुरी को प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ जिसके देखने से भी मनुष्य नरककी गतिको कभी भी नहीं प्राप्त होता है उस पुरी में बुद्धिमान् नृपने प्रवेश किया ॥ २८ ॥ व कैवल्य मोक्षकी उपजानेवाली जिस पुरी में इन्द्रादिक देव भी प्रवेश को नहीं पाते हैं उस में नृपने प्रवेश किया ॥ २९ ॥ व त्रिलोक से चाही हुई जिसही काशीपुरीको सुमिरकर भी मनुष्य पापोंसे नहीं लिप्त होता है उस में उस भूप ने प्रवेश किया ॥ ३० ॥ व जिस पुरीमें पैठाहुआ मनुष्य, बड़े भी पापों से नहीं दबता है उस काशी में उस प्रजापाल ने प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ और वह विद्याधरीभी दूर से काशी की समृद्धि को देखकर स्वर्गलोक व पातालनगरी को भी

निन्दती भई ॥ ३२ ॥ आश्चर्य है कि परमानन्द की खानि काशीपुरीको देखकर भी वह स्त्री जैसे आनन्दितहुई वैसे अमित्रजित्को पति पाकर भी नहीं प्रसन्न हुई ॥ ३३ ॥ और अपना कों कृतार्थ सी मानती हुई वह मनस्विनी उस पति से व काशी से भी परमानन्द को प्राप्तहुई ॥ ३४ ॥ और वह अमित्रजित् भी मलयगंधिनी स्त्री को पाकर धर्मप्रधान (धर्मपीठ) को भलीभांति से सेवनकर उत्तम वाञ्छित सुखको प्राप्तहुवा ॥ ३५ ॥ एक समय पतिकी भक्तिवाली पुत्रार्थिनी उस रानीने विष्णु भक्तिमें परायण उस पतिसे एकान्तमें विज्ञापना किया ॥ ३६ ॥ रानी बोली कि, हे भूप ! जो स्वामीकी आज्ञाहोवे तौ पुत्रकी कामनावाली मैं वाञ्छितदायक अभीष्ट-

तथाहृष्टानसावधूः ॥ यथादृष्ट्वाप्यहोकाशींपरमानन्दकेतनम् ॥ ३३ ॥ साकृतार्थमिवात्मानंमन्यमानामनस्विनी ॥ तेनपत्याचकाश्याचपरांनिर्वृतिमाययौ ॥ ३४ ॥ सोप्यमित्रजिदासाद्यपत्नींमलयगन्धिनीम् ॥ धर्मप्रधानंसंसेव्यकामं प्रापोत्तमंसुखम् ॥ ३५ ॥ सैकदातंपतिंराज्ञीविष्णुभक्तिपरायणम् ॥ रहोविज्ञापयाञ्चक्रेपतिभक्तासुतार्थिनी ॥ ३६ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ भूपाभीष्टतृतीयायाश्चरिष्यामिमहाव्रतम् ॥ यद्यनुज्ञाभवेद्भर्तुःपुत्रकामार्थितप्रदम् ॥ ३७ ॥ राजोवाच ॥ देव्यभीष्टतृतीयायांव्रतंकीदृग्भवेद्वद ॥ कादेवतातत्रपूज्याविधानञ्चापिकिंफलम् ॥ ३८ ॥ नारीपत्यननुज्ञाताया व्रतादिसमाचरेत् ॥ जीवन्तीदुःखिनीसास्यान्मृतानिरयमृच्छति ॥ ३९ ॥ इतिराज्ञोदिताराज्ञीप्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ इतिकर्तव्यतान्तस्यव्रतस्यसरहस्यकाम् ॥ १४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवीरेश्वराविर्भावेमित्रजित्पराक्रमोनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तृतीया का व्रत करूंगी ॥ ३७ ॥ राजा बोला कि हे देवि ! अभीष्टतृतीया में कैसा व्रत होवे है उसको तुम कहो कि उसमे कौनसी देवता पूजनेयोग्य है व उसका क्या विधान है और क्या फलहै ॥ ३८ ॥ पतिसे पूंछने के बाद आज्ञाको न पायेहुई जो स्त्री व्रतादि को भलीभांति करे वह जीवतीही दुःखिनी होवैहै और मरी हुई नरकको जातीहै ॥ ३९ ॥ इस प्रकार राजासे कहीहुई रानीने उस व्रतकी रहस्य समेत कर्त्तव्यताको इसभांति कहने के लिये उपक्रम किया याने लगालगाया ॥ १४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेवीरेश्वराविर्भावेऽमित्रजित्पराक्रमोनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ❀ ॥

दो० । तीन असी अध्याय में व्रतविधि वर्णन जानि । श्रीवीरेश्वर को बहुरि आविर्भाव बखानि ॥ रानी बोली कि, हे पृथ्वीनाथ ! मैं इस व्रतके विधान व फल और इष्टदेवताको यथातथ्य से कहती हूं तुम अवधान करो याने जानो या सुनो ॥ १ ॥ पूर्वसमयमें शोभा समेत या लक्ष्मी के समान मुखवाली, पुत्रार्थिनी कुबेरकी स्त्री ऋद्धिके आगे ब्रह्माजी के पुत्र नारदमुनि ने इस व्रतको कहाहै ॥ २ ॥ और उस देवीने किया अनन्तर नलकूबरनाम पुत्रहुआ व अन्यभी बहुती स्त्रियोंने इस व्रतसे पुत्रोंको प्राप्त किया है ॥ ३ ॥ उन्नत मुखवाले स्तनको पीतेहुये बालक से सहित व सब विधानों को जानतीहुई गौरी (पार्वती) जी इस व्रत में विधिसेही

राज्युवाच ॥ अवधेहिधरानाथकथयामियथातथम् ॥ व्रतस्यास्यविधानञ्चफलञ्चाभीष्टदेवताम् ॥ १ ॥ पुरापुरःश्रीदपत्न्याःश्रीमुख्याब्रह्मसूनुना ॥ नारदेनसुतार्थिन्याव्रतमेतदुदीरितम् ॥ २ ॥ चीर्णञ्चाथतयादेव्यापुत्रोऽभून्नलकूबरः ॥ अन्याभिरपिबह्वीभिःपुत्राःप्राप्ताव्रतादितः ॥ ३ ॥ विधिनाप्यत्रसम्पूज्यागौरीसर्वविधानवित् ॥ स्तनन्धयेनसहिताधयतास्तनमुन्मुखम् ॥ ४ ॥ मार्गशीर्षतृतीयायांशुक्लायांकलशोपरि ॥ ताम्रपात्रन्निधायैकंतण्डुलैःपरिपूरितम् ॥५॥ अविच्छिन्नंनवीनञ्चरजनीरागरञ्जितम् ॥ वासःपात्रोपरिन्यस्यसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंपरम् ॥ ६ ॥ तस्योपरिशुभंपद्मंविरश्मिविकासितम् ॥ तत्कर्णिकायाउपरिचतुःस्वर्णविनिर्मितम् ॥ ७ ॥ विधिंसम्पूजयेद्भक्त्यारत्नपट्टाम्बरादिभिः ॥ पुष्पैर्नानाविधैरम्यैःफलैर्नारङ्गमुख्यकैः ॥ ८ ॥ सुगन्धैश्चन्दनाद्यैश्चकर्पूरमृगनाभिभिः ॥ परमान्नादिनैवेद्यैःपक्वान्नैर्बहुभङ्गिभिः ॥ ९ ॥ धूपैरगुरुमुख्यैश्चरम्येकुसुममण्डपे ॥ रात्रौजागरणंकार्यंविनिद्रैःपरमोत्सवैः ॥ १० ॥ हस्तमात्रमितेकु

पूजनेयोग्य हैं ॥ ४ ॥ अगहन सुदी तीजमें कलश के ऊपर चावलों से भरेहुये एक ताम्रपात्रको थापकर ॥५॥ जोकि छिद्रहीन व नवीनहो और हरदीके रंगसे रंजितहुये महीन से अधिक महीन वर वस्त्रको पात्रपर धरकर ॥ ६ ॥ उसके ऊपर सूर्य्यकी किरणो से फुलाये हुये शुभ कमल को धरे और उसकी कर्णिका के ऊपर चार सुवर्ण याने साढ़ेतीन तोले या चारतोले सोने से बनाई हुई॥७॥ब्रह्माणीजीकी मूर्त्तिको रत्नजटित रेशमी वस्त्रादि व अनेक प्रकार के रम्यफूल और नारंगीआदि फलो करके भक्तिसे भलीभाति पूजे ॥ ८ ॥ व चन्दनादि सुगन्ध कपूर कस्तूरी व बहुत भेदके पक्वान्न और खीरआदि नैवेद्योंसे ॥ ९ ॥ व अगर आदि धूपोंसे पूजाकर मनोहर और

फूलों से व्याप्त मण्डप में निद्रारहित अधिक उत्तम उत्सववाले लोगों को रात्रिमें जागरण करना चाहिये ॥ १० ॥ और मन्त्रोंको जानताहुआ ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्य, हस्तप्रमाण कुण्ड में "जातवेदसे सुनवाम सोमं" इस पूरेमन्त्रसे घृत और शहदसे बोरकर हवनकरे ॥ ११ ॥ किन्तु आपसेही फूलेहुये हजार कमलों को होम कर फिर जोकि कपिलागऊ नईब्यानी सुशीला दूधवाली ॥ १२ ॥ व भूषणोंसमेत और अच्छे लक्षणों से सहितहो उसको आचार्य्य के लिये देने व नवीन वस्त्रों से विभूषित स्त्री और पुरुष दोनों भक्तिसे उपासकर ॥ १३ ॥ प्रातःकालही चौथिमें स्नानकर फिर वस्त्र, भूषण, माला और दक्षिणाओं से आचार्य्य को भलीभांति पूज कर आदर से आनन्दसंयुत होवें ॥ १४ ॥ और इस आगे कहेजाते हुये मन्त्रको भलीभांति उच्चारण करताहुआ व्रतकर्त्ताका जोड़ा सकल सामग्री समेत उस मूर्त्ति

ण्डेजातवेदसइत्यृचा ॥ घृतेनमधुनाप्लुत्यजुहुयान्मन्त्रविद्द्विजः ॥ ११ ॥ सहस्रंकमलानाञ्चस्मेराणांस्वयमेवहि ॥ नवप्रसूतांकपिलांसुशीलाञ्चपयस्विनीम् ॥ १२ ॥ दद्यादाचार्यवर्यायसालङ्कारांसलक्षणाम् ॥ उपोष्यदम्पतीभक्त्यानवाम्बरविभूषितौ ॥ १३ ॥ प्रातःस्नात्वाचतुर्थ्याञ्चसम्पूज्याचार्यमादृतः ॥ वस्त्रैराभरणैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितौ ॥ १४ ॥ सोपस्कराञ्चताम्मूर्तिमाचार्यायनिवेदयेत् ॥ समुच्चरन्निमंमन्त्रंव्रतकृन्मिथुनंमुदा ॥ १५ ॥ नमोविश्वविधानज्ञेविधेविविधकारिणि ॥ सुतंवंशकरंदेहितुष्टास्मान्नतात्छुभात् ॥ १६ ॥ सहस्रंभोजयित्वाथद्विजानांभक्तिपूर्वकम् ॥ भुक्तशेषेणचान्नेनकुर्याद्वैपारणंततः ॥ १७ ॥ इत्थमेतद्व्रतंराजंश्चिकीर्षामित्वयासह ॥ कुरुचैतत्प्रियंमह्यमभीष्टफललब्धये ॥ १८ ॥ इतिभूपालवर्येणश्रुत्वासंहृष्टचेतसा ॥ मुनेव्रतंसमाचीर्णंसान्तर्वत्नीबभूवह ॥ १९ ॥ तयाथप्रार्थितागौरीगर्भिण्याभक्ति

को आचार्य्य के लिये आनन्द से निवेदित करे याने दैदेवे ॥ १५ ॥ हे विश्वविधानज्ञे, विविधकारिणि, ब्रह्माणि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और इस शुभव्रतसे संतुष्ट हुई तुम वंशकर्त्ता पुत्रको देवो ॥ १६ ॥ उसके बाद ब्राह्मणों के हजारा को भक्तिपूर्वक भोजन कराकर तदनन्तर भुक्तशेष (ब्रह्मभोजमें बचेहुये) अन्नसेही पारणाको करे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! इसभांति तुम्हारे साथ मैं इस व्रतको करना चाहतीहूं और आप अभीष्ट फल मिलने के लिये मेरे इस प्रियको करो ॥ १८ ॥ हे मुने ! ऐसा सुन कर बहुत प्रसन्नमन महाराज ने स्त्रीके साथ व्रतको भलीभांति किया और वह आनन्दसे गर्भवती हुई ॥ १९ ॥ अनन्तर उस गर्भवती रानीने भक्तिमे संतोषित गौरी

देवी से प्रार्थना किया कि हे महामाये ! विष्णुके अंशसे उपजे पुत्रको मुझे दो ॥ २० ॥ जोकि उत्पन्न हुआ मात्र स्वर्ग को चलाजावे और फिर यहांही लौटआवे व सदाशिवमें अत्यन्तभक्त और सब भूतल मे प्रसिद्ध ॥ २१ ॥ व दूधपीने विनाही क्षणभरमें सोलह वर्ष के आकारवाला होजावे हे गौरि ! जैसे ऐसाहुआ मेरा पुत्र होवे तुम वैसेही करो ॥ २२ ॥ और भक्तिसे सन्तुष्ट श्रीपार्वतीजी करके भी वैसाहो ऐसा कहीहुई उस रानीने भी कालसे मूलनक्षत्र में पुत्रको उपजाया ॥ २३ ॥ तदनन्तर हितकारी मन्त्रियों ने सौरि में टिकीहुई उस रानीसे विज्ञापना किया कि हे देवि ! जो तुम राजाकी चाहिनी हो,तो दुष्टनक्षत्र में उत्पन्नहुये इस पुत्रको त्यागदेवो ॥२४॥

तोषिता ॥ पुत्रंदेहिमहामायेसाक्षाद्विष्णवंशसम्भवम् ॥ २० ॥ जातमात्रोव्रजेत्स्वर्गंपुनरायातिचात्रवै ॥ भक्तःसदाशिवेऽत्यर्थंप्रसिद्धःसर्वभूतले ॥ २१ ॥ विनैवस्तन्यपानेनषोडशाब्दाकृतिःक्षणात् ॥ एवंभूतःसुतोगौरियथास्यात्तथाकुरु ॥ २२ ॥ मृडान्यापितथेत्युक्ताराज्ञीभक्त्यातितुष्टया ॥ अथ कालेनतनयंमूलर्क्षेसाप्यजीजनत् ॥ २३ ॥ हितैरमात्यैरथसा विज्ञप्तारिष्टसंस्थिता ॥ देविराजार्थिनीचेत्त्वंत्यजदुष्टर्क्षजंसुतम् ॥ २४ ॥ सामन्त्रिवाक्यमाकर्ण्यकेवलंपतिदेवता ॥ अत्याक्षीत्तंतथाप्राप्तंतनयंनयकोविदा ॥ २५ ॥ धात्रेयिकांसमाकार्यप्राहेदंसान्तृपाङ्गना ॥ पञ्चमुद्रेमहापीठेविकटानाम मातृका ॥ २६ ॥ तदग्रेस्थापयित्वामुम्बालंधात्रेयिकेवद ॥ गौर्यादत्तःशिशुरसौतवाग्रेविनिवेदितः ॥ २७ ॥ राज्यापत्युःप्रियैषिण्यामन्त्रिविज्ञप्तिनुन्नया ॥ सापिराज्ञ्युदितंश्रुत्वाशिशुंलास्यशशिप्रभम् ॥ २८ ॥ विकटायाःपुरःस्थाप्यगृहंधा

ऐसा मन्त्रियोंका वचन सुनकर नीतिमें परिडताव केवलपतिको देवता माननेवाली उसने वैसे प्राप्तहुये उस पुत्रको त्याग दिया ॥ २५ ॥ किन्तु धाईको बुलवाकर उस रानीने इस वचनको कहा कि पञ्चमुद्र नामक महापीठ मे विकटा नाम मातृकाहै ॥ २६ ॥ हे धात्रेयिके ! उसके आगे इस बालकको थापकर कहो कि श्रीगौरीदेवी से दियागया हुआ यह पुत्र आपके आगे विशेपता से निवेदित है ॥ २७ ॥ क्योकि मन्त्रियों की विज्ञापना से प्रेरितहुई पतिके प्यारकी इच्छावाली रानीने पठाया है इसभांति रानीके कहेहुये को सुनकर कमनीय चन्द्रमा के समान प्रकाशवान् उस बालक को वह ॥ २८ ॥ धाई विकटादेवी के आगे धरकर फिर घरको चलीआई

अनन्तर उस विकटा देवीने योगिनियोंको भलीभांति सबओर से बुलाकर ॥२९॥ कहा कि इस बालकको मातृकागण के आगे शीघ्रही लेजावो व उनकी आज्ञाको करो और इसको बहुत यत्नसे पालो ॥ ३० ॥ और विकटाके वाक्यसे आकाशगामिनी उन योगिनियोंने क्षणभरमें आकाशमार्गसे उस बालक को वहां प्राप्त किया कि जहां ब्राह्मी आदि मातृकायें थीं ॥ ३१ ॥ व योगिनियों के वृन्द (समूह) ने प्रणामकर और मातृकाओंके आगे सूर्य्य से तेजस्वी बालकको धरकर विकटाके बोलेहुये वचनको कहा ॥३२॥ व ब्रह्माणी,वैष्णवी,रौद्री,वाराही,नारसिंही,कौमारी,माहेन्द्री,चामुंडा और चंडिकाभी ॥ ३३ ॥ इन नव मातृकाओंने विकटासे पठाये उस सुन्दर बालकको देखकर तदनन्तर एकही साथ बच्चे से पूंछा कि कौन तुम्हारा पिताहै और कौन माताहै ॥ ३४ ॥ इसभांति मातृकाओं से पूंछाहुआ वह जब कुछ न बोला तब मातृकागणने उस योगिनी समूहसे कहा ॥३५॥ कि हे योगिनियो ! बड़े लक्षणोंसे चिह्नित यह राजाके योग्यहै इसलिये फिर वहांही शीघ्रही लेजाने योग्यहै ॥ ३६ ॥ कि जहां वाञ्छित फल देनेवाली पंचमुद्रानाम वह महादेवी टिकी हैं जिनकी भलीभांति सेवासे मोक्षलक्ष्मी मनुष्यों के समीपमें है ॥ ३७ ॥ व मंगलों के जन्मवाली काशी में सर्वत्र स्थान स्थानमें मुक्तिहै तो भी सब सिद्धिकर्त्ता वह पीठ विशेषता समेतही है ॥ ३८ ॥ उस पीठकी सेवा और विश्वनाथके उत्तम अनुग्रहसे सोलह वर्ष के समान आकारवाले इस बालककी श्रेष्ठ

त्रेयिकागता ॥ अथसाविकटादेवीसमाहूयचयोगिनीः॥ २९॥ उवाचनयतद्विप्रंशिशुंमातृगणाग्रतः॥ तासामाज्ञांचकुरुतरक्षतामुंप्रयत्नतः ॥ ३० ॥ योगिन्योविकटावाक्यात्खेचर्यस्ताःक्षणेनतम्॥ निन्युर्गगनमार्गेणब्राह्मयाद्यायत्रमातरः॥ ३१ ॥ प्रणम्ययोगिनीवृन्दंतंशिशुंसूर्यवर्चसम् ॥ पुरोनिधायमातॄणांप्रोवाचविकटोदितम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्माणीवैष्णवीरौद्रीवाराहीनारसिंहिका ॥ कौमारीचापिमाहेन्द्रीचामुण्डाचैवचण्डिका ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वातंबालकंरम्यंविकटाप्रेषितंततः॥ पप्रच्छुर्युगपड्डिम्भंकस्तेतातःप्रसूश्चका ॥ ३४ ॥ मातृभिश्चेतिपृष्टःसयदाकिञ्चिन्नवक्तिच ॥ तदातद्योगिनीचक्रंप्राहमातृगणस्त्विति ॥ ३५ ॥ राजयोग्योभवत्येषमहालक्षणलाञ्छितः॥ पुनस्तत्रैवनेतव्योयोगिन्यस्त्वविलम्बितम्॥ ३६ ॥ पञ्चमुद्रामहादेवीतिष्ठतेयत्रकाम्यदा ॥ यस्याःसंसेवनान्नृणांनिर्वाणश्रीरदूरतः॥ ३७॥ सर्वत्रशुभजन्मिन्यांकाश्यांमुक्तिःपदेपदे ॥ तथापिसविशेषंहितत्पीठंसर्वसिद्धिकृत् ॥ ३८ ॥तत्पीठसेवनादस्यषोडशाब्दाकृतेःशिशोः ॥ सिद्धिर्भवित्री

सिद्धि होवेगी ॥३९॥ एस मातृकागणके आशीर्वादों से युक्त उसको मातृकाओंके वचनसे योगिनियोंने क्षणभरमें पंचमुद्राके नामसे चिह्नित पीठमें फिर प्राप्तकिया ॥ ४० ॥ और स्वर्गलोकसे यहां आयाहुआ वह उस महापीठको भलीभांति प्राप्तहोकर आनन्दवन में बड़ीभारी दिव्य तपस्याको तपनेलगा॥ ४१ ॥ व अचल इन्द्रिय और मनवाले उस राजकुमारकी अतीव तीव्र तपस्यासे श्रीपार्वतीजीके पति प्रसन्नहुये ॥ ४२ ॥ और उसके आगे शिवजी लिंगरूपसे प्रकट होगये व बोले कि हे राजकुमार ! मैं प्रसन्नहूं तुम वरको कहो ॥ ४३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, बड़ी दयासे सात पातालको फोड़कर आगे टिकेहुये सब ज्योतिमय सब वेदमय लिंगको देखकर॥ ४४ ॥ और दण्डके

परमाविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ ३९ ॥ एवंमातृगणाशीर्भिर्योगिनीभिःक्षणेनहि ॥ प्रापितोमातृवाक्येनपञ्चमुद्राङ्कितं पुनः ॥ ४० ॥ संप्राप्यतन्महापीठंस्वर्गलोकादिहागतः ॥ आनन्दकाननेदिव्यंततापविपुलंतपः ॥ ४१ ॥ तपसातिवतीव्रेणनिश्चलेन्द्रियचेतसः ॥ तस्यराजकुमारस्यप्रसन्नोभूदुमाधवः ॥ ४२ ॥ आविर्बभूवपुरतोलिङ्गरूपेणशङ्करः ॥ प्रोवाच चप्रसन्नोस्मिवरंब्रूहिनृपाङ्गज ॥ ४३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ सर्वज्योतिर्मयंलिङ्गंपुरतोवीक्ष्यवाङ्मयम् ॥ सप्तपातालमुद्भिद्य स्थितंबृहदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमौपरितुष्टावधूर्जटिम् ॥ सूक्तैर्जन्मान्तराभ्यस्तैःसुहृष्टोरुद्रदैवतैः ॥ ४५ ॥ ततःप्रसन्नोभगवान्देवदेवोमहेश्वरः ॥ सन्तुष्टस्तपसातस्यप्रोवाचवृषभध्वजः ॥ ४६ ॥ देवदेवउवाच ॥ वरंवरयसंतप्तत पसाक्लेशितंवपुः ॥ त्वयेदंबालवपुषावशीकृतंमनोमम ॥४७॥ शिवोक्तंचसमाकर्ण्यवरदानंपुनःपुनः ॥ वरंचप्रार्थयांचक्रेप रिहृष्टतनूरुहः ॥ ४८ ॥ कुमारउवाच ॥ देवदेवमहादेवयदिदेयोवरोमम ॥ तदत्रभवतास्थेयंभवतापहृतासदा ॥ ४९ ॥

समान पृथिवीमें प्रणामकर परम प्रसन्न होकर उसने अन्य जन्मों में अभ्यास कियेहुये व रुद्रदेवतावाले सूक्तोंसे जटाभारधारी शिवजीकी स्तुतिकिया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उसके तपसे संतुष्ट, देवोंकेदेव, ऐश्वर्य्यसम्पन्न, प्रसन्न, वृषभध्वज, महेशजीने कहा ॥ ४६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, भलीभांति तपस्या तपनेवाले बालरूप तुमने इस देहको क्लेशितकिया और मेरे मनको वश करलिया इससे तुम वरको स्वीकारकरो॥ ४७ ॥ और बार बार शिवजीके कहेहुये वरदानको सुनकर फिर सब ओर आनन्दसे ... वरको प्रार्थनाकिया ॥ ४८ ॥ राजकुमार बोला कि, हे देवोंकेदेव, महादेवजी ! जो मुझको वरदेने योग्यहै तो संसारतापहारी आपको यहां सदा

टिकना चाहिये ॥ ४९ ॥ हे स्वामिन्, शम्भो ! इस लिंगमें टिकेहुये आप मुद्रादिकों से चिह्न करने विना और मंत्रके विना भी भक्तोंके मनोरथको पूर्णकरो ॥ ५० ॥ व दर्शन स्पर्शन और नमस्कारसे यहां उत्तम सिद्धिको देवो व मन वचन और देहके कर्मोंसे जे इस लिंगके भक्तहैं ॥ ५१ ॥ उनमें सदैव दया करना चाहिये यहही मेरा वरहै इसभांति उसके वरको सुनकर लिंगरूप समर्थ शिवजी बोले ॥ ५२ ॥ कि हे वीर! वैष्णवके पुत्र तुमने जो कहा वह ऐसेही होवे और विष्णुके भक्त राजा अमित्रजित् पितासे आप ॥ ५३ ॥ विष्णुका अंशही उत्पन्न हुयेहो हे मेरी भक्तिमें तत्पर, पुत्र, वीर! तुम्हारे नामसे यह लिंग वीरेश्वरनामक होवेगा ॥ ५४ ॥ और काशीमें भक्तों के

अस्मिँल्लिङ्गेस्थितःशम्भोकुरुभक्तसमीहितम् ॥ विनामुद्रादिकरणंमन्त्रेणापिविनाविभो ॥ ५० ॥ दिशसिद्धिंपराम त्रदर्शनात्स्पर्शनान्नतेः ॥ अस्यलिङ्गस्ययेभक्तामनोवाक्कायकर्मभिः ॥ ५१ ॥ सदैवानुग्रहस्तेषुकर्तव्योवरएषमे ॥ इतितद्वरमाकर्ण्यलिङ्गरूपोवदत्प्रभुः ॥ ५२ ॥ एवमस्तुयदुक्तंतेवीरवैष्णवसूनुना ॥ जनेतुर्विष्णुभक्ताच्चराज्ञोऽमित्र जितोभवान् ॥ ५३ ॥ विष्ण्वंशएवमुत्पन्नोममभक्तिपराङ्गज ॥ वीरवीरेश्वरंनामलिङ्गमेतत्त्वदाख्यया ॥ ५४ ॥ काश्यांदास्यत्यभीष्टानिभक्तानांचिन्तितान्यहो ॥ अस्मिँल्लिङ्गेसदावीरस्थास्याम्यद्यदिनावधि ॥ ५५ ॥ दास्यामिच परांसिद्धिमाश्रितेभ्योनसंशयः ॥ परंनमहिमानंमेकलौकश्चिच्चवेत्स्यति ॥ ५६ ॥ यस्तुवेत्स्यतिभाग्येनसपरांसिद्धि माप्स्यति ॥ अत्रजप्तंहुतंदत्तंस्तुतमर्चितमेववा ॥ ५७ ॥ जीर्णोद्धारादिकरणमक्षय्यफलहेतुकम् ॥ त्वंतुराज्यंपरंप्राप्य सर्वभूपालदुर्लभम् ॥ ५८ ॥ भुक्त्वाभोगांश्चविपुलानन्तेसिद्धिमवाप्स्यसि॥पुरीवाराणसीरम्यासर्वस्मिञ्जगतीतले ॥ ५९ ॥

विचारे वाञ्छितोंको देवेगा अहो वीर ! मैं आजके दिनसे लगाकर इस लिंगमें सदा टिकूंगा ॥ ५५ ॥ और सेवकोंको परम सिद्धि दूंगा इसमें संशय नहींहै परन्तु कलियुगमें कोई मेरी महिमाको न जानेगा ॥ ५६ ॥ और जोकि भाग्य से जानेगा वह श्रेष्ठ सिद्धिको पावेगा यहां जपा होमा दिया स्तुतिकिया व पूजितहुआ भी ॥ ५७ ॥ और जीर्णोद्धार करना याने टूटे फूटे मन्दिरादिकोंको बनाना अविनाशी फलका कारणहै और तुम सब राजाओंके दुर्लभ श्रेष्ठ राज्यको प्राप्तहोकर ॥ ५८ ॥ व बहुते भारी भोगो

को भोगकर अन्तमें सिद्धि (मुक्ति) को पावोगे व सब पृथिवीतल में काशीपुरी सुन्दर है ॥ ५९ ॥ उस में भी असि और गंगा इन दो नदियों का संगम पुण्य (मनोहर) है और हयग्रीव तीर्थ उससे भी अधिक पुण्यदायकहै ॥ ६० ॥ जहां हयग्रीव व विष्णुजी भक्तोंके चिन्तित फलों को सौंप देते हैं उस हयग्रीवतीर्थ से गजतीर्थ विशेषता समेत होताहै याने अधिक है ॥ ६१ ॥ जहां स्नानमात्रसे ही हाथी दानके फलको पावे है व उस गजतीर्थ से अधिक पुण्यदाता कोकावराहतीर्थ है ॥ ६२ ॥ वहां कोकावराह के सामने या सबओर से पूजकर जन फिर जन्मसेवी नहीं होता है और कोकावराह से दिलीपेश्वर के समीप में ॥ ६३ ॥ बहुत श्रेष्ठ व

पुण्यस्तत्रासिसम्भेदःसरितोरसिगङ्गयोः ॥ ततोऽपिचहयग्रीवंतीर्थञ्चैवातिपुण्यदम् ॥ ६० ॥ यत्रविष्णुर्हयग्रीवोभक्त चिन्तितमर्पयेत् ॥ हयग्रीवाच्चवैतीर्थाद्गजतीर्थंविशिष्यते ॥ ६१ ॥ यत्रवैस्नानमात्रेणगजदानफलंलभेत् ॥ कोकावराह तीर्थञ्चपुण्यदंगजतीर्थतः ॥ ६२ ॥ कोकावराहमभ्यर्च्यतत्रनोजन्मभाग्जनः ॥ अपिकोकावराहाच्चदिलीपेश्वरसन्नि धौ ॥ ६३ ॥ दिलीपतीर्थंसुश्रेष्ठंसद्यःपापहरंपरम् ॥ ततःसगरतीर्थञ्चसगरेशसमीपतः ॥ ६४ ॥ यत्रमज्जन्नरोमज्जेन्नभू योदुःखसागरे॥सप्तसागरतीर्थञ्चशुभंसगरतीर्थतः ॥ ६५ ॥ सप्ताब्धिस्नानजंपुण्यंयत्रस्नात्वानरोलभेत ॥ महोदधीति विख्यातंतीर्थंसप्ताब्धितीर्थतः ॥ ६६ ॥ सकृद्यत्राप्लुतोधीमान्दहेदघमहोदधिम् ॥ चौरतीर्थंततःपुण्यंकपिलेश्वरसन्नि धौ ॥ ६७ ॥ पापंसुवर्णचौर्यादियत्रस्नात्वाक्षयंव्रजेत् ॥ हंसतीर्थन्ततोपीड्यंकेदारेश्वरसन्निधौ ॥ ६८ ॥ हंसस्वरूपी यत्राहंनयामिब्रह्मदेहिनः ॥ ६९ ॥ ततस्त्रिभुवनाख्यस्यकेशवस्यातिपुण्यदम् ॥ तीर्थंयत्राप्लुतामर्त्यामर्त्यलोकंवि

शीघ्रही पापहरनेवाला दिलीपतीर्थ है व उससे पर सगरेश्वर के समीप में सगरतीर्थ है ॥ ६४ ॥ जहां स्नान करताहुआ नर फिर दुःखसागर में नहीं डूबे है और सगर तीर्थ से शुभ सप्तसागरतीर्थ है ॥ ६५ ॥ जहां स्नानकर मनुष्य सातसमुद्रों के स्नानसे उत्पन्न पुण्यको पावे है व सप्तसागरतीर्थ से पर महोदधि ऐसा तीर्थ विख्यात है ॥ ६६ ॥ जिसमें एकबार भी नहाया हुआ मनुष्य पापसमुद्र को जलावे है और कपिलेश्वरके समीप में चौरतीर्थ उस महोदधिसे भी अधिक पुण्यहै ॥६७॥ जहां स्नानकर सुवर्ण चोरीआदि पाप नाशको प्राप्तहोवे है व उससे भी श्रेष्ठ हंसतीर्थ केदारेश्वर के समीप में है ॥ ६८ ॥ जहां हंसस्वरूपी मैं देहधारियों को परब्रह्ममें पठाताहूं ॥ ६९ ॥

व त्रिभुवननामक केशवका तीर्थ उससे अधिक पुण्यदायक है जिसमें भीगेहुये मनुष्य मर्त्यलोक में नहीं पैठते हैं ॥ ७० ॥ और उससेभी अधिक गोव्याघ्रेश्वरतीर्थ है जहा स्वाभाविक वैरको त्यागकर गऊ और व्याघ्र ये दोनों सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ ७१ ॥ हे वीर ! उससे भी श्रेष्ठ मांधातासञ्ज्ञक तीर्थ है जहां उस भूपने चक्रवर्त्ती पदको पायाहै ॥ ७२ ॥ उमसे भी अधिक पुण्यदाता मुचुकुन्दतीर्थ है जहां नहाया हुआ नर शत्रुओं से कभी नहीं नीचे कियाजाता है ॥ ७३ ॥ उससे भी अधिक कल्याणों के साधनेवाला श्रेष्ठ पृथुतीर्थ है जहां पृथ्वीश्वर नामक लिंगको देख कर मनुष्य भूप होवे है ॥ ७४ ॥ उससे अत्यन्त सिद्धिदाता परशुराम तीर्थ है जहां

शन्तिन ॥ ७० ॥ गोव्याघ्रेश्वरतीर्थंचततोप्यधिकमेवहि ॥ स्वभाववैरमुत्सृज्ययत्रोभौसिद्धिमापतुः ॥ ७१ ॥ ततोपिहि वरंवीरतीर्थंमान्धातृसञ्ज्ञितम् ॥ चक्रवर्तिपदंयत्रप्राप्तंतेनमहीभुजा ॥७२॥ ततोपिमुचुकुन्दाख्यंतीर्थंचातीवपुण्यदम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुरिपुभिर्नाभिभूयते ॥ ७३ ॥ पृथुतीर्थंततोप्युच्चैःश्रेयसांसाधनंपरम् ॥ पृथ्वीश्वरंयत्रदृष्ट्वानरःपृथ्वीपतिर्भवेत ॥ ७४॥ ततःपरशुरामस्यतीर्थंचातीवसिद्धिदम् ॥ यत्रक्षत्रवधात्पापाज्जामदग्न्योविमुक्तवान् ॥ ७५॥ अद्यापिक्षत्रवधजंपापंतत्रप्रणश्यति ॥ एकेनस्नानमात्रेणज्ञानाज्ञानकृतेनच ॥ ७६ ॥ ततोपिश्रेयसांकर्तृतीर्थंकृष्णाग्रजस्यहि ॥ यत्रसूतवधात्पापाद्बलदेवोविमुक्तवान् ॥ ७७ ॥ दिवोदासस्यवैतीर्थंतत्रराज्ञोऽतिमेधसः ॥ तत्रस्नातोनरोजातुनज्ञानाच्च्यवतेऽन्ततः ॥ ७८ ॥ ततोपिहिमहातीर्थंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ यत्रभागीरथीसाक्षान्मूर्तिरूपेणतिष्ठति ॥ ७९ ॥ स्नात्वाभागीरथीतीर्थेकृत्वाश्राद्धंविधानवित् ॥ दत्त्वादानंचपात्रेभ्योनभूयोगर्भभाग्भवेत् ॥ ८० ॥ हरपापंचभोवीरतीर्थं

जमदग्नि के पुत्र (परशुराम) क्षत्रियों के वधके पापसे छूटगये हैं ॥ ७५ ॥ आज भी क्षत्रवधसे उपजाहुआ पाप उसमें ज्ञान व अज्ञानसे भी कियेहुये एक स्नानमात्र से विनष्ट होजाता है ॥ ७६ ॥ उससे भी अधिक कल्याणकर्ता बलदेवतीर्थ है जहां बलदेवजी सूतके मारनेरूप पापसे छूटे हैं ॥ ७७ ॥ वहां अधिक बुद्धिवाले राजादिवोदास का तीर्थहै उसमें नहाया हुआ नर अन्तकाल में कभी ज्ञानसे नहीं भ्रष्ट होता है ॥ ७८ ॥ उससे पर, पापोंका नाशक महातीर्थ है जहां साक्षात् भागीरथी गंगा मूर्त्तिरूपसे टिकी हैं ॥ ७९॥ विधान का जाननेवाला मनुष्य भागीरथी तीर्थ में स्नानकर व श्राद्धको कर व सुपात्रोंको दान देकर फिर गर्भसेवी नहीं होवे है ॥ ८० ॥ हे

वीर ! भागीरथी के किनारे हरपापतीर्थ (केदारकुण्ड) है उसमें स्नानकर महापापों के कुलभी नाशको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ८१ ॥ और हे वीर ! जो मनुष्य वहां निष्पापेश्वर लिंगको देखता है वह उस लिंगके दर्शन से क्षणभर में पापहीन होताहै ॥ ८२ ॥ व दशाश्वमेध तीर्थ उससे भी बहुत श्रेष्ठ मानागयाहै जहां स्नानकर दश अश्वमेध यज्ञोंके फलको पावे है ॥ ८३ ॥ हे वीर ! वन्दी तीर्थको उससे भी मंगलदायक कहते हैं जहां नहाया हुआ मनुष्य संसारबन्धनसे भी छूटजावे है ॥ ८४ ॥ पूर्वकाल में हिरण्याक्ष दैत्यसे बन्दकिये व लोहेकी ज़ंजीरों से बांधेहुये बहुतेदेवों ने जगदम्बाकी स्तुति किया ॥ ८५ ॥ तदनन्तर ज़ंजीरों से छूटेहुये देवोंसे जब जगन्माता वन्दितहुई हैं

भागीरथीतटे ॥ तत्रस्नात्वाक्षयंयान्तिमहापापकुलान्यपि ॥ ८१ ॥ योनिष्पापेश्वरंलिङ्गंतत्रपश्यतिमानवः ॥ निष्पापोजायतेवीरसतल्लिङ्गेक्षणात्क्षणात् ॥ ८२ ॥ दशाश्वमेधतीर्थंचततोपिप्रवरंमतम् ॥ दशानामश्वमेधानांयत्रस्नात्वाफलंलभेत् ॥ ८३ ॥ ततोपिशुभदंवीरवन्दीतीर्थंप्रचक्षते ॥ यत्रस्नातोनरोमुच्येदपिसंसारबन्धनात् ॥ ८४ ॥ हिरण्याक्षेणदैत्येनबहुशोदेवताःपुरा ॥ वन्दीकृतानिगडितास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥ ८५ ॥ ततोविशृङ्खलीभूतैर्वन्दितायज्जगज्जनिः ॥ तदाप्रभृतिवन्दीतिगीयतेद्यापिमानवैः ॥ ८६ ॥ वन्दीतीर्थन्तुतत्रैवमहानिगडखण्डनम् ॥ यत्रस्नातोविमुच्येतसर्वस्मात्कर्मपाशतः ॥ ८७ ॥ वन्दीतीर्थंमहाश्रेष्ठंकाशिपुर्यांविशाम्पते ॥ तत्रस्नातोनरोयायाद्विमुक्तिंदेव्यनुग्रहात् ॥ ८८ ॥ ततोपिहिश्रेष्ठतरंप्रयागमितिविश्रुतम् ॥ प्रयागमाधवोयत्रसर्वयागफलप्रदः ॥ ८९ ॥ क्षोणीवराहतीर्थंचततोपिशुभदंपरम् ॥ तत्रस्नातोनरोजातुतिर्यग्योनिंनगच्छति ॥ ९० ॥ ततःकालेश्वरंतीर्थंवीरश्रेष्ठतरंपरम् ॥ कलिकालोन

तबसे लगाकर आजतक भी मनुष्यो से वन्दी ऐसा गाई जाती हैं ॥८६॥ और वहांही बड़ी बेड़ियों के तोडनेवाला वंदी तीर्थहै जिसमें नहायाहुआ सब कर्मपाशोंसे विमुक्त होवे है ॥ ८७ ॥ हे प्रजाओं के पालक ! काशीपुरी मे वन्दी तीर्थ बडाश्रेष्ठ है वहां नहाया हुआ नर देवीकी दयासे विमुक्ति को प्राप्त होवे है ॥ ८८ ॥ उससे भी बहुत श्रेष्ठ तीर्थ प्रयाग ऐसा प्रसिद्धहै जहां सब यज्ञोंके फलदाता प्रयागमाधवजी वर्तमान हैं ॥ ८९ ॥ व उससे भी उत्तम, शुभदायक क्षोणीवराह तीर्थ है उसमें नहायाहुआ

मनुष्य तिर्य्यग्योनि को कभी नहीं जाताहै ॥ ९० ॥ हे वीर ! उससे परे श्रेष्ठतर कालेश्वर तीर्थ है जिसमें नहायेहुये नरोत्तमको कलि और काल नहीं बाधते हैं ॥ ९१ ॥ और वहांही उससे भी बहुत अधिक मंगलमय अशोकतीर्थ है जिसमें नहायाहुआ मनुष्य शोकसागर में कभी नहीं गिरैहै ॥ ९२ ॥ हे राजकुमार ! शुक्रतीर्थ उससे भी अत्यन्त निर्मलतरहै जहां नहायाहुआ नरोत्तम फिर शुक्र (वीर्य्य) के द्वारा नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ९३ ॥ हे राजन् ! भवानी तीर्थ उससे भी पुण्यदायक व उत्तम है जिसमें स्नानकर और गौरीशंकरके दर्शनकर फिर नहीं होवैहै ॥ ९४ ॥ व सोमेश्वर के आगे प्रभासतीर्थ उससे भी अधिक मनुष्यों का शुभदाता प्रसिद्धहै वहां नहाया

बाधेतेयत्रस्नातंनरोत्तमम् ॥ ९१ ॥ अशोकतीर्थंतत्रैवततोप्यतितरांशुभम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुनापतेच्छोकसागरे ॥ ९२ ॥ ततोतिनिर्मलतरंशुक्रतीर्थंनृपाङ्गज ॥ शुक्रद्वारानजायेतयत्रस्नातोनरोत्तमः ॥ ९३ ॥ ततोऽपिपुण्यदंराजन्भवानीतीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रस्नात्वाभवानीशौदृष्ट्वानैवपुनर्भवेत् ॥ ९४ ॥ प्रभासतीर्थंविख्यातंततोपिशुभदंनृणाम् ॥ सोमेश्वरस्यपुरतस्तत्रस्नातोनगर्भभाक् ॥ ९५ ॥ ततोगरुडतीर्थंचसंसारविषनाशनम् ॥ गरुडेशंसमभ्यर्च्यतत्रस्नात्वानशोचति ॥ ९६ ॥ ब्रह्मतीर्थंततःपुण्यंवीरब्रह्मेश्वरात्पुरः ॥ ब्रह्मविद्यामवाप्नोतितत्रस्नानेनमानवः ॥ ९७ ॥ ततोवृद्धार्कतीर्थंचविधितीर्थंततःपरम् ॥ तत्राप्लुतोनरोयातिरविलोकंसुनिर्मलम् ॥ ९८ ॥ ततोनृसिंहतीर्थंचमहाभयनिवारणम् ॥ कालादपिकुतस्तत्रस्नात्वापरिबिभेतिच ॥ ९९ ॥ ततोपिपुण्यदंनृणांतीर्थंचित्ररथेश्वरम् ॥ यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचचित्रगुप्तं

हुआ गर्भसेवी नहीं होताहै ॥ ९५ ॥ व संसारविषका नाशक गरुड़तीर्थ उससे श्रेष्ठहै उसमें स्नानकर और गरुड़ेश्वरको भलीभांति सामने से पूजकर नर फिर नहीं शोचता है ॥ ९६ ॥ हे वीर ! ब्रह्मेश्वरके आगे ब्रह्मतीर्थ उससे भी अधिक पुण्यहै उसमें नहाने से मनुष्य ब्रह्मविद्या (ब्रह्मज्ञान) को पाताहै ॥ ९७ ॥ व वृद्धार्क तीर्थ उससे भी श्रेष्ठ है और विधितीर्थ उससे भी उत्तमहै उसमें नहायाहुआ मनुष्य अच्छे निर्मल सूर्य्यलोकको जाताहै ॥ ९८ ॥ और महाभयका निवारण कारण नृसिंह तीर्थ उससे श्रेष्ठहै उसमें स्नानकर कालसे भी क्यो सब ओरसे डरताहै ॥ ९९ ॥ व मनुष्योंका पुण्यदाता चित्ररथेश्वर तीर्थ उससे भी अधिकहै जहां स्नानकर और दानको देकर चित्रगुप्तको

और व्रतवाले मनुष्योंकरके वीरेश्वरमें जो व्रतका उद्यापनादि कियागया वह करोड़ गुण संख्यक होताहीहै इसमें संशय नहींहै ॥२१॥ व जिसने वीरेश्वरके आगे आठ बार नमस्कारकिया उसको आठकरोड़ नमस्कारोंका फलहै इसमें सन्देह नहींहै ॥२२॥ हे वीर ! यह वीरेश्वरलिंग मेरे वरदानसे सब सम्पत्तियोंका स्थान होगा इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥ और मेरी आज्ञासे जीवतेही पुरुषोंका ज्ञान उपजेगा उससे यह लिंग शुभार्थियों से सेवने योग्यहै ॥ २४ ॥ इस वचनको सुनकर सब ओरसे पूरे मनोरथ वाला अमित्रजितका पुत्र वीर देवोंके देव महादेवजीके प्रणामकर फिर बोला ॥२५॥ कि हे प्रभो, देवेश ! आपने कृपाकरके जैसे मेरे आगे इन जिन तीर्थोंको कहा ऐसेही

तोत्सर्गादिवीरेशेयत्कृतंव्रतिभिर्नृभिः ॥ तत्कोटिगुणसंख्याकंभवत्येवनसंशयः ॥ २१ ॥ कृताअष्टौनमस्कारायेनवीरेश्वराग्रतः ॥ अष्टकोटिनमस्कारफलन्तस्यनसंशयः ॥ २२ ॥ सर्वासांसम्पदांस्थानमिदंलिङ्गंभविष्यति ॥ वीरेश्वरंनसन्देहोवीरमेवरदानतः ॥ २३ ॥ ज्ञानमुत्पत्स्यतेपुंसांतारकाख्यंममाज्ञया ॥ जीवतामेवतत्सेव्यमेतल्लिङ्गंशुभार्थिभिः ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुत्वापुनःप्राहवीरोमित्रजितःसुतः ॥ प्रणम्यदेवदेवेशंपरिपूर्णमनोरथः ॥ २५ ॥ तीर्थान्येतानिदेवेशयान्युक्तानिममाग्रतः ॥ कृपयापुनरप्येवतदन्यानिवदप्रभो ॥ २६ ॥ आदिकेशवमारभ्यतत्तीर्थाच्चभगीरथात् ॥ येषांश्रवणमात्रेणनिष्पापोजायतेनरः ॥ २७ ॥ इतिश्रुत्वामहेशानोमहीपतनयोदितम् ॥ पुनस्तीर्थानिगङ्गायांवक्तुंसमुपचक्रमे ॥ १२८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवीरेश्वराविर्भावोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयत्त्वोणिसुरयथास्थाणुरचीकरत् ॥ गङ्गावरणयोःपुण्यात्संभेदात्तीर्थभूमिकाम् ॥ १ ॥ सङ्ग

उनसे अन्य भी तीर्थोंको कहो ॥ २६ ॥ व आदिकेशवको आरम्भमें कर उस भगीरथतीर्थतक जिनके सुननेमात्रसे मनुष्य पापोंसे हीन होजाताहै ॥ २७ ॥ ऐसे राजकुमार के कहे वचनको सुनकर महेशजीने फिर गंगामें तीर्थोंके कहनेको भलीभांति उपक्रम किया याने लगा लगाया ॥ १२८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेवीरेश्वराविर्भावोनामत्र्यशीतितमोध्यायः ॥ ८३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० ॥ चौरासी अध्याय में सकल सुमंगलसार । आदिकेशवादिक यहां विविध तीर्थ विस्तार ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे ब्राह्मण ! जैसे शिवजी ने गंगा व वरणा

के संगमसे तीर्थभूमिका को कियाहै वैसेही उसको तुम सुनो ॥ १ ॥ उस संगममें अच्छे प्रकार अधिकार से नहायाहुआ मनुष्य संगमेश्वरको भलीभांति पूजकर फिर माता के गर्भ के संगको कभी नहीं प्राप्त होवे है ॥ २ ॥ और मन्दराचल से आयेहुये क्रीड़ाकारी शार्ङ्गधन्वाधारी विष्णुजी ने पहले जिससे जहां पावोंको पखारा है उस से वहां पादोदक तीर्थ है ॥ ३ ॥ जोकि विष्णुपादोदक तीर्थ में जलके कार्य्यको करता है उसने फिर संसारकी गतिको बिताया याने वह फिर संसार में नहीं आता है ॥ ४ ॥ व काशी में पादोदक तीर्थ के जलमें स्नान कियेहुवा व केशव भगवान् का पूजन कियेहुवा मनुष्योत्तम संसार वासके बितानेवालाहुवाहै ॥ ५ ॥ व ब्राह्मणो ने

मेतत्रनिष्णातःसङ्गमेशंसमर्च्यच ॥ नरोनजातुजननीगर्भसङ्गमवाप्नुयात् ॥२॥ तत्रपादोदकंतीर्थंयत्रदेवेनशार्ङ्गिणा ॥ आदौपादौप्रक्षालितौतुमन्दराच्चागतेनयत् ॥ ३ ॥ विष्णुपादोदकेतीर्थेवारिकार्यंकरोतियः ॥ व्यतीतातेननियतंभूयः सांसारिकीगतिः ॥ ४ ॥ कृतपादोदकस्नानःकृतकेशवपूजनः ॥ वीतसंसारवसतिःकाश्यामासीन्नरोत्तमः ॥ ५ ॥ काश्यांसाभूमिरुद्दिष्टाश्वेतद्वीपइतिद्विजैः ॥ तत्रपुण्यार्जनंकृत्वाश्वेतद्वीपाधिपोभवेत् ॥ ६ ॥ ततःपादोदकात्तीर्थात्तीर्थं क्षीराब्धिसञ्ज्ञकम् ॥ तत्रार्जितमहापुण्योवसेत्क्षीराब्धिरोधसि ॥ ७ ॥ क्षीरोदाद्दक्षिणेभागेतीर्थंशङ्खाख्यमुत्तमम् ॥ तत्रस्नातोभवेन्नूनंनाशङ्खादिनिधेःपतिः ॥ ८ ॥ अर्वाक्चशङ्खतीर्थाद्वैचक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ संसारचक्रेनपतेत्तत्तीर्थजल मज्जनात् ॥ ९ ॥ गदातीर्थन्तदग्रेतुसंसारगदनाशनम् ॥ तत्रश्राद्धादिकरणात्पश्येद्देवङ्गदाधरम् ॥ १० ॥ पद्माङ्कृतपद्म तीर्थञ्चतदग्रेपितृतृप्तिकृत् ॥ तत्रस्नानादिकरणात्प्राप्नुयादघसंक्षयम् ॥ ११ ॥ ततस्तीर्थंमहालक्ष्म्यामहापुण्यफलप्र

काशी में उस भूमिको श्वेतद्वीप ऐसे नामसे कहाहै उसमें पुण्यको बटोरकर श्वेतद्वीपका महाराज होवे है ॥ ६ ॥ उस पादोदक तीर्थ से आगे क्षीरसागरसंज्ञक तीर्थ है वहां महापुण्यको इकट्ठेकियेहुवा मनुष्य क्षीरसागर के तीरमें बसै है ॥ ७ ॥ और क्षीराब्धि से दक्षिणभागमें शंखनामक उत्तम तीर्थ है उसमे नहायाहुवा नर निश्चयकर शंखादि निधियों का पति होवे है ॥ ८ ॥ और शंखतीर्थ से इस ओरमें अधिक उत्तम चक्रतीर्थ है उस तीर्थ के जलमें मज्जन से संसारचक्र (भौंर) में न परे ॥ ९ ॥ व उसके आगे संसाररोग के नाशनेवाला गदातीर्थ है वहां श्राद्धादि करने से गदाधर (विष्णु) देवको देखे ॥१०॥ और उसके आगे पितरोंका तृप्तिकर्त्ता लक्ष्मीधर्ता पद्म

तीर्थ है उसमें स्नानादि करने से पापों के विनाशको प्राप्तहोवे है ॥ ११ ॥ उसकेबाद महापुण्यफलदायक महालक्ष्मीजी का तीर्थ है वहां महालक्ष्मी को सामने से पूज कर मोक्षसंपत्तिको पावे है ॥ १२ ॥ तदनन्तर संसार विषका नाशक गारुड तीर्थ है उसमें स्नानादि जलक्रियाको कियेहुवा जन वैकुंठ में वासको पावेहै ॥ १३ ॥ व उसके आगे ब्रह्मविद्या (ज्ञान) का मुख्य कारण नारद तीर्थ है उसमें स्नानसे नारदकेशवको देखकर संसारसे मुक्त होवे है ॥ १४ ॥ उससे दक्षिणमें महाभक्तिफलदायक प्रह्लादतीर्थ है उसमें स्नानमात्रसेही विष्णुका परमप्यारा होवे है ॥ १५ ॥ उसके आगे महापातकघातक अंबरीषतीर्थ है उसमें शुभकर्म करनेवाले नर फिर गर्भ में

दम् ॥ तत्राभ्यर्च्यमहालक्ष्मींनिर्वाणकमलांलभेत् ॥ १२ ॥ ततोगारुत्मतन्तीर्थंसंसारगरनाशनम् ॥ कृतोदकक्रियस्त त्रवैकुण्ठेवसतिंलभेत् ॥ १३ ॥ ततोनारदतीर्थञ्चब्रह्मविद्यैककारणम् ॥ तत्रस्नानेनमुक्तःस्याद्दृष्ट्वानारदकेशवम् ॥ १४ ॥ प्रह्लादतीर्थन्तद्याम्येमहाभक्तिफलप्रदम् ॥ तत्रवैस्नानमात्रेणविष्णोःप्रियतरोभवेत् ॥ १५ ॥ अम्बरीषन्ततस्ती र्थंमहापातकनाशनम् ॥ तत्रवैशुभकर्माणोजनानोगर्भभाजनम् ॥ १६ ॥ आदित्यकेशवंनामतदग्रेतीर्थमुत्तमम् ॥ कृता भिषेकस्तत्रापिलभेत्स्वर्गाभिषेचनम् ॥ १७ ॥ दत्तात्रेयस्यतत्रास्तितीर्थन्त्रैलोक्यपावनम् ॥ योगसिद्धिंलभेत्तत्रस्नान मात्रेणभावतः ॥ १८ ॥ तदग्रेभार्गवन्तीर्थंमहाज्ञानसमर्पकम् ॥ तत्रस्नानविधानेनभवेद्भार्गवलोकभाक् ॥ १९ ॥ ततो वामनतीर्थञ्चविष्णुसान्निध्यहेतुकम् ॥ तत्रश्राद्धविधानेनमुच्यतेपितृजादृणात् ॥ २० ॥ नरनारायणाख्यंहिततस्तीर्थं शुभप्रदम् ॥ तत्तीर्थमज्जनात्पुंसांगर्भवासःसुदुर्लभः ॥ २१ ॥ यज्ञवाराहतीर्थञ्चततोदक्षिणतःशुभम् ॥ यत्रस्नातस्यवै

आने के पात्र नहीं हैं ॥ १६ ॥ उसके आगे आदित्यकेशव नामक उत्तम तीर्थ है वहां भी अभिषेक कियेहुवा स्वर्ग में अभिषेकको पावे है ॥ १७ ॥ और वहां त्रिलोक का पवित्रकर्त्ता दत्तात्रेय का तीर्थ है उसमें भक्तिकरके स्नानमात्र से योगकी सिद्धि को पावे है ॥ १८ ॥ उसके आगे महाज्ञानदाता भार्गवतीर्थ है उसमें स्नानविधान से शुक्रलोक का भागी होवे है ॥ १९ ॥ उसके बाद विष्णुजी के सामीप्य का कारण वामन तीर्थ है वहां श्राद्ध करने से पितरों के ऋणसे छूटजाताहै ॥ २० ॥ और उस के आगेही कल्याणदाता नरनारायण तीर्थ है उस तीर्थ में मज्जन करने से गर्भवास बहुतही दुर्लभहै ॥ २१ ॥ व उससे दक्षिणमें मंगलमय, यज्ञवाराहतीर्थ है जहां नहाये

हुये पुरुषको राजसूय यज्ञका फल निश्चयकर होताहै ॥ २२ ॥ और वहां परम पवित्र विदारनारसिंहनामक तीर्थ है जिसमें एक बार स्नान से सौ जन्मों का बटोरा पाप नष्टहोवे है ॥ २३ ॥ व उसकेआगे विष्णुसंबन्धी लोकका दाता गोपीगोविन्दतीर्थ है जहां नहायाहुवा सुजान मनुष्य गर्भपीड़ाको नहीं पावैहै ॥ २४ ॥ और गोपीगोविन्द से दक्षिण में लक्ष्मीनृसिंहतीर्थ है जहांका मनुष्योत्तम मुक्तिलक्ष्मी से भी वराजाता है ॥ २५ ॥ उससे दक्षिणदिशा में बहुत उत्तम शेषतीर्थ है जिसमें डुबकी लगाने से महापापों का शेष भी नहीं टिकै है ॥ २६ ॥ और उससे दक्षिणदिशा में उत्तम शंखमाधव तीर्थहै उस तीर्थकी सेवासे मनुष्योंको बड़ाभारी पापका डर कहां

पुंसांराजसूयफलन्ध्रुवम् ॥ २२ ॥ विदारनारसिंहाख्यंतीर्थन्तत्रास्तिपावनम् ॥ यत्रैकस्नानतोनश्येदघञ्जन्मशतार्जितम् ॥ २३ ॥ गोपीगोविन्दतीर्थञ्चततोवैष्णवलोकदम् ॥ यस्मिन्स्नातोनरोविद्वान्नविन्द्याद्गर्भवेदनम् ॥ २४ ॥ लक्ष्मीनृसिंहतीर्थञ्चगोपीगोविन्ददक्षिणे ॥ निर्वाणलक्ष्म्यायत्रत्योव्रियतेतुनरोत्तमः ॥ २५ ॥ तद्दक्षिणायांकाष्ठायांशेषतीर्थमनुत्तमम् ॥ महापापौघशेषोपिनतिष्ठेद्यन्निमज्जनात् ॥ २६ ॥ शङ्खमाधवतीर्थञ्चतद्याम्यान्दिशिचोत्तमम् ॥ तत्तीर्थसेवनान्नृणांकुतःपापभयम्महत् ॥ २७ ॥ ततोपिपावनतरन्तीर्थंतत्क्षणसिद्धिदम् ॥ नीलग्रीवाख्यमतुलंतत्स्नायीसर्वदाशुचिः ॥ २८ ॥ तत्रोद्दालकतीर्थञ्चसर्वाघौघविनाशनम् ॥ ददातिमहतीमृद्धिंस्नानमात्रेणतन्नृणाम् ॥ २९ ॥ ततःसांख्याख्यतीर्थञ्चसांख्येश्वरसमीपतः ॥ तत्तीर्थसेवनात्पुंसांसांख्ययोगःप्रसीदति ॥ ३० ॥ स्वर्लोकाद्यत्रसंलीनःस्वयन्देवउमापतिः ॥ अतःस्वर्लीनतीर्थञ्चस्वर्लीनेश्वरसन्निधौ ॥ ३१ ॥ तत्रस्नानेनदानेनश्रद्धयाद्विजभोजनैः ॥ जपहोमार्चनैः

से है याने कहींसे नहीं है ॥ २७ ॥ और उससे भी परमपावन व तत्क्षण सिद्धिदायक व अतुल (अनूप) नीलग्रीव नामक तीर्थ है उसमें नहानेवाला सदा पवित्रहै ॥ २८ ॥ और वहा सब पापसमूहविनाशक जो उद्दालक तीर्थ है वह स्नानमात्र से मनुष्योंकी बड़ी ऋद्धि (वृद्धि) को देताहै ॥ २९ ॥ और उसके आगे सांख्येश्वरके समीपमें जो सांख्यनामक तीर्थहै उस तीर्थकी सेवासे पुरुषोंका सांख्ययोग प्रसन्न होता है ॥ ३० ॥ व पार्वतीके पति महादेवजी आपही जहां स्वर्गलोकसे भलीभांति लीन

हुयेहैं इससे वहां स्वर्लीनेश्वरके समीपमें स्वर्लीन तीर्थहै ॥ ३१ ॥ उसमें स्नान, दान, श्रद्धासे ब्रह्मभोज, जप, होम और पूजासे भी लोगोंको सब अविनाशीही फलहै ॥ ३२ ॥ व उसके समीपमें अत्यन्त पवित्र महिषासुर तीर्थ है जहांपर तपस्याकर उस दैत्येन्द्रने सब देवों को जीताहै ॥ ३३ ॥ उस तीर्थका सेवक आज भी शत्रुओं से नहीं और बड़े पापों से भी नहीं नीचे कियाजाताहै याने नहीं हारताहै व प्रार्थित (मनमाने मांगेहुये) फलको पावे है ॥ ३४ ॥ व उसके समीपमें उस बाणासुरको हजारबाहुओं का दाता बाणतीर्थ है उसमें नहायाहुआ नर शंकरकी अचलभक्तिको प्राप्तहोवेहै ॥ ३५ ॥ उसके आगे गोप्रतारेश्वरनामक उत्तम तीर्थ है जहां नहायाहुआ पुत्रहीन भी

पुंसामक्षयंसर्वमेवहि ॥ ३२ ॥ महिषासुरतीर्थञ्चतत्समीपेतिपावनम् ॥ यत्रतप्त्वासदैत्येन्द्रोविजिग्येसकलान्सुरान् ॥ ३३ ॥ तत्तीर्थसेवकोद्यापिनारिभिःपरिभूयते ॥ नपातकैर्महद्भिश्चप्रार्थितञ्चफलंलभेत् ॥ ३४ ॥ बाणतीर्थञ्चतस्याराद्दत्तसहस्रभुजप्रदम् ॥ तत्रस्नातोनरोभक्तिंप्राप्नुयाच्छाम्भवींस्थिराम् ॥ ३५ ॥ गोप्रतारेश्वरंनामतदग्रेतीर्थमुत्तमम् ॥ अपुत्रोपितरेद्यत्रस्नातोवैतरणींसुखम् ॥ ३६ ॥ तीर्थंहिरण्यगर्भाख्यंतद्याम्येसर्वपापहृत् ॥ तत्रस्नातोहिरण्येनमुच्यते नकदाचन ॥ ३७ ॥ ततःप्रणवतीर्थञ्चसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ जीवन्मुक्तोभवेत्तत्रस्नानमात्रेणमानवः ॥ ३८ ॥ ततःपिशङ्गिलातीर्थंदर्शनादपिपापहृत् ॥ मुनेममाधिष्ठानंवैतदगस्तेऽतिसिद्धिदम् ॥ ३९ ॥ स्नात्वापिशङ्गिलातीर्थेदत्त्वादानञ्चकिञ्चन ॥ किंशोचतिकृतात्पापादन्यत्रापिमृतोयदि ॥ ४० ॥ योवैपिशङ्गिलातीर्थेस्नात्वामामर्चयिष्यति ॥ भविष्य

मनुष्य सुखसे वैतरणीको तरजावे है ॥ ३६ ॥ व उससे दक्षिणमें सब पापोंका हर्त्ता हिरण्यगर्भ नामक तीर्थहै वहां नहायाहुआ नर सुवर्ण से कभी नहीं छोंडाजाता है ॥ ३७ ॥ और उसके बाद सब तीर्थोंसे उत्तमोत्तम प्रणव (ॐकार) तीर्थ है वहां नहायाहुआ मनुष्य स्नानमात्रसे जीवन्मुक्त होवेहै ॥ ३८ ॥ हे अगस्त्य, मुने ! उसके बाद दर्शनसे भी पापहारी व अत्यन्त सिद्धिदायक जो पिशंगिला तीर्थ है यह मेरा अधिष्ठानही (आधार या अधिकता समेत स्थान) है ॥ ३९ ॥ पिशंगिला तीर्थमें स्नानकर व कुछ दानको देकर जो अन्यत्र भी मराहै तो कियेहुये पापसे क्या शोचता है याने नहीं ॥ ४० ॥ और जोकि पिशंगिला तीर्थ में नहाकर निश्चयसे मुझको पूजेगा वह

सूर्य्य के समान प्रकाशवान् व मेरा मित्र होगा ॥ ४१ ॥ उसके आगे त्रिलोचनकी दृष्टिसे निर्मल कियेहुये जलवाला व मनके मलोंका विनाशक पिलिपिलानामक तीर्थ प्रसिद्धहै ॥ ४२ ॥ वहां श्राद्धादि करने व दीन और अनाथों के बहुत तर्पने से मनुष्य अतीव निश्चल, बड़ी भारी सम्पत्ति या शोभाको प्राप्तहोता है ॥ ४३ ॥ उसके बाद महापापोंका सब ओरसे शुद्ध करनेवाला नागेश्वर तीर्थहै उस तीर्थमें मज्जनसेही सब पापोंका विनाश होवेहै ॥ ४४ ॥ उससे दक्षिणमें महामनोहर अधिक उत्तम कर्णादित्य नामक तीर्थहै जहां नहायाहुआ मनुष्य सूर्य्यकी सम्पत्ति या शोभाको सब ओरसे प्राप्त करैहै ॥ ४५ ॥ व उसके आगे बड़े पापोका नाशदाता चार पुरुषार्थोंका कर्त्ता और

तिसमेमित्रंमित्रतेजःसमप्रभम् ॥ ४१ ॥ ततस्त्रैविष्टपीदृष्टिनिर्मलीकृतपुष्कलम् ॥ तीर्थंपिलिपिलाख्यंवैमनोमलविनाशनम् ॥ ४२ ॥ तत्रश्राद्धादिकरणाद्दीनानाथप्रतर्पणात् ॥ महतींश्रियमाप्नोतिमानवोतीवनिश्चलाम् ॥ ४३ ॥ ततोनागेश्वरन्तीर्थंमहाघपरिशोधनम् ॥ तत्तीर्थमज्जनादेवभवेत्सर्वाघसंक्षयः ॥ ४४ ॥ तद्दक्षिणेमहापुण्यंकर्णादित्याख्यमुत्तमम् ॥ तीर्थंयत्राप्लुतोमर्त्योभास्करींश्रियमावहेत् ॥ ४५ ॥ ततोभैरवतीर्थञ्चमहाघौघक्षयप्रदम् ॥ चतुरर्थोदयकरं सर्वविघ्ननिवारणम् ॥ ४६ ॥ भौमाष्टम्यान्तत्रनरःस्नात्वासन्तर्पयेत्पितॄन् ॥ दृष्ट्वाचभैरवङ्कालंकलिङ्कालञ्चसञ्जयेत् ॥ ४७ ॥ तीर्थंखर्वनृसिंहाख्यंतीर्थाद्भैरवतःपुरः ॥ तत्रस्नातस्यवैपुंसःकुतोघजनितम्भयम् ॥ ४८ ॥ मृकण्डस्यमुनेस्तीर्थं तद्याम्यामतिनिर्मलम् ॥ तत्रस्नानेनमर्त्यानांनापायमरणंक्वचित् ॥ ४९ ॥ ततःपञ्चनदाख्यंवैसर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ तीर्थंयत्रनरःस्नात्वानसंसारीपुनर्भवेत ॥ ५० ॥ ब्रह्माण्डोदरवर्तीनियानितीर्थानिसर्वतः ॥ ऊर्जेयत्रसमायान्तिस्वाघौघ

सब विघ्नोंका हर्त्ता भैरव तीर्थहै ॥ ४६ ॥ मंगलवार समेत सप्तमी में वहां स्नानकर नर पितरोंको भलीभांति तर्पणकरे और कालभैरवको देखकर कलि व कालको अच्छे प्रकार से जीतलेवे ॥ ४७ ॥ व भैरवतीर्थ से आगे खर्वनृसिंहनामक तीर्थहै उसमें नहायेहुये भी पुरुषको पापों से उपजाहुआ डर कहांसे है ॥ ४८ ॥ उससे दक्षिणमें बहुत विमल मृकण्डमुनिका तीर्थहै वहां नहाने से मनुष्योंका अकाल मरना कहीं नहीं है ॥ ४९ ॥ और उससे परे सब तीर्थोंसे सुसेवित पंचनदनामक तीर्थहै जिसमें स्नानकर

मनुष्य निश्चयसे फिर संसारी नहीं होवेहै ॥ ५० ॥ व जोकि सब तीर्थ ब्रह्मांडके भीतर वर्तमानहैं वे अपने पापसमूह दुगने के लिये जिसमें भलीभांति आते हैं ॥ ५१॥ और सब तीर्थ श्रेष्ठ अपनी निर्मलताके हेतु जहां दशमी आदि तीन दिनतक टिकतेहैं ॥५२॥ काशीके बीच स्थान स्थानमें बहुते सब तीर्थहैं परन्तु पंचनदको महिमाको किसीने कहीं नहीं पाया ॥ ५३ ॥ प्रसिद्धहै कि जिन लोगोंने वहा कातिकके एक भी दिनको जप होम पूजा और दानमे सफल किया वेही कृतार्थ हैं ॥ ५४ ॥ और एकही साथ तौलेहुये भी सब तीर्थ पंचनदीकी तुल्यताको भी नहीं अधिकता से प्राप्तहुयेहैं ॥ ५५॥ बुद्धिमान् मनुष्य पंचनदतीर्थ में स्नानकर व श्रीबिन्दुमाधवजी के दर्शनकर फिर

परिनुत्तये ॥ ५१ ॥ सर्वदायत्रसर्वाणिदशम्यादिदिनत्रयम् ॥ तिष्ठन्तितीर्थवर्याणिनिजनैर्मल्यहेतवे ॥ ५२ ॥ भूरिशः सर्वतीर्थानिमध्येकाशिपदेपदे ॥ परम्पाञ्चनदःकैश्चिन्महिमानापिकुत्रचित् ॥ ५३ ॥ अप्येकङ्कार्त्तिकस्याहस्तत्रवैसफलीकृतम् ॥ जपहोमार्चनादानैःकृतकृत्यास्तएवहि ॥ ५४ ॥ सर्वाण्यपिचतीर्थानियुगपत्तुलितान्यपि ॥ नाधिजग्मुःपञ्चनद्याःकलायाअपितुल्यताम् ॥ ५५ ॥ स्नात्वापाञ्चनदेतीर्थेदृष्ट्वावैविन्दुमाधवम् ॥ नजातुजायतेधीमाञ्जननीजठराजिरे ॥ ५६ ॥ ततोज्ञानह्रदन्तीर्थंजडानामपिजाड्यहृत् ॥ तत्रस्नातोनरोजातुज्ञानभ्रंशंनचाप्नुयात् ॥ ५७ ॥ तत्र ज्ञानह्रदेस्नात्वादृष्ट्वाज्ञानेश्वरंनरः ॥ ज्ञानन्तदधिगच्छेद्वैयेननोवाध्यतेपुनः ॥ ५८ ॥ ततोऽस्तिमङ्गलन्तीर्थंसर्वामङ्गलनाशनम् ॥ तत्रावगाहनंकृत्वाभवेन्मङ्गलभाजनम् ॥ ५९ ॥ अमङ्गलानिनश्येयुर्भवेयुर्मङ्गलानिच ॥ स्नातुर्वैमङ्गलेतीर्थे नमस्कर्तुश्चमङ्गलम् ॥ ६० ॥ मयूखमालिनस्तीर्थंतदग्रेमलनाशनम् ॥ तत्राप्लुतोगभस्तीशंविलोक्यविमलोभवे

माताके उदर आंगन में कभी नहीं जन्मता है ॥ ५६ ॥ उसके बाद जड़ों की भी जडता का हर्ता ज्ञानकुण्डतीर्थ है उसमें नहायाहुआ मनुष्य ज्ञानभ्रंशको कभी नहीं प्राप्त होवे है याने उसकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती है ॥ ५७ ॥ उस ज्ञानकुण्ड में स्नानकर व ज्ञानेश्वरको देखकर नर उस ज्ञानको अधिकतामे पावेहै कि जिससे फिर संसार मे नहीं पीडित होताहै ॥ ५८ ॥ उसके आगे सब अमंगलोंका नाशक मंगलतीर्थहै उसमें अवगाहन (प्रवेश या स्नान) को कर कल्याणोंका पात्र होवे है ॥ ५९ ॥ व मंगल तीर्थमें नहानेवाले के अमंगल नशते हैं और मंगल होते हैं व नमस्कारकर्त्ताका भी कल्याण होवे है ॥ ६० ॥ उसके आगे मलोंका नाशक मयूखमाली (सूर्य्य) का तीर्थ

है वहां नहायाहुआ मनुष्य गभस्तीश्वरके दर्शनकर निर्मल होवेहै ॥ ६१ ॥ और वहांही मखेश्वरके समीपमें मखतीर्थहै उसमें नहायाहुआ नरोत्तम यज्ञों से उपजेहुये पुण्य फलको प्राप्तहोताहै ॥ ६२ ॥ व उसके पार्श्व (पास) में परम ज्ञानका कारण बिन्दुतीर्थ है उसमें श्राद्धादिकको कर उत्तम पुण्यको पावेहै ॥ ६३ ॥ और उससे दक्षिणदिशामें टिकाहुआ पिप्पलादमुनिका तीर्थहै वहां शनैश्चरके दिनमें स्नानकर व पिप्पलेश्वर को देखकर भी ॥ ६४ ॥ और "अश्वत्थेवोनिषदनंपर्णेवोवसतिःकृता। गोभाजइत्किलासथ यत्सनवथपूरुषम्" इत्यादि मन्त्रसे वहां पीपलकी सेवाकर शनिपीड़ाको नहीं पाताहै और दुष्टस्वप्नको भी नशाता है ॥ ६५ ॥ उसके आगे परमपावन, ताम्रवराह

त् ॥ ६१ ॥ मखतीर्थन्तुतत्रैवमखेश्वरसमीपतः ॥ मखजम्पुण्यमाप्नोतितत्रस्नातोनरोत्तमः ॥ ६२ ॥ तत्पार्श्वेबिन्दुतीर्थञ्चपरमज्ञानकारणम् ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वालभेत्सुकृतमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ पिप्पलादस्यचमुनेस्तीर्थंतद्याम्यदिक्स्थितम् ॥ स्नात्वाशनेर्दिनेतत्रदृष्ट्वावैपिप्पलेश्वरम् ॥ ६४ ॥ पिप्पलन्तत्रसेवित्वाअश्वत्थइतिमन्त्रतः ॥ शनिपीडांनलभतेदुःस्वप्नञ्चापिनाशयेत् ॥ ६५ ॥ ततस्ताम्रवराहाख्यंतीर्थञ्चैवातिपावनम् ॥ यत्रस्नानेनदानेननमज्जेदघसागरे ॥ ६६ ॥ तदग्रेकालगङ्गाचकलिकल्मषनाशिनी ॥ तस्यांस्नात्वानरोधीमांस्तत्क्षणान्निरघोभवेत् ॥ ६७ ॥ इन्द्रद्युम्नंमहातीर्थमिन्द्रद्युम्नेश्वराग्रतः ॥ तोयकृत्यन्तत्रकृत्वालोकमैन्द्रमवाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ ततस्तुरामतीर्थञ्चवीररामेश्वराग्रतः ॥ तत्तीर्थस्नानमात्रेणवैष्णवंलोकमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥ ततऐक्ष्वाकवन्तीर्थंसर्वाघौघविनाशनम् ॥ तत्रस्नानेनपूतात्माजायतेमनुजोत्तमः ॥ ७० ॥ मरुत्ततीर्थन्तत्प्रान्तेमरुत्तेश्वरसन्निधौ ॥ तत्रस्नात्वातमर्च्येशंमहदैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ मैत्रा

नामक भी तीर्थहै जहां स्नान व दानसे पापसागर में नहीं डूबै है ॥ ६६ ॥ और उसके आगे कलिपातकनाशिनी कालगंगाहै उसमें नहायाहुआ बुद्धिमान् मनुष्य उसी क्षणमें निष्पाप होवे है ॥ ६७ ॥ व इन्द्रद्युम्नेश्वरके आगे इन्द्रद्युम्ननामक महातीर्थहै उसमें जलके कार्य्यको कर इन्द्रके लोकको पावे या जावेहै ॥ ६८ ॥ और हे वीर ! उसके बाद रामेश्वरके आगे रामतीर्थहै उस तीर्थमें स्नानमात्रसेही विष्णुके लोकको प्राप्तहोवे है ॥ ६९ ॥ व उसके आगे सब पापसमूहका विनाशक इक्ष्वाकुका तीर्थहै उसमें नहाने से मनुष्योत्तम पवित्र अन्तःकरणवाला होजाता है ॥ ७० ॥ उसके आगे मरुत्तेश्वरके समीपमें मरुत्ततीर्थहै वहां स्नानकर और उन मरुत्तेश्वर शिवको पूजकर बड़े ऐश्वर्य

को पावे है ॥ ७१ ॥ व उसके बाद पापों का नाशनेवाला मैत्रावरुणी (अगस्त्य) तीर्थ है वहां पिण्डों के प्रदानसे पितरोंका प्यारा होताहै ॥ ७२ ॥ उसके बाद अग्नीश्वरके आगे मलो से हीन व बड़ा अग्नितीर्थ है उस तीर्थमें सब ओरसे मज्जन करने से अग्निलोकको प्राप्त होताहै ॥ ७३ ॥ और वहांही अंगारेश्वरके समीपमें अंगारतीर्थ है वहां अंगारचौथिमे स्नानकर निष्पाप भावको प्राप्तहोवेहै ॥ ७४ ॥ और उसके आगे कलशेश्वरके समीपमेंही कलशतीर्थ है उसमें स्नानकर व उस लिंगकी पूजाकर कलि कालसे नहीं डरताहै ॥ ७५ ॥ व वहांही चन्द्रेश्वरके समीपमें चन्द्रतीर्थ है उस में स्नान कर और चन्द्रेश्वर को पूजकर चन्द्रमाके लोकको प्राप्त होवे है ॥ ७६ ॥

वरुणतीर्थञ्चततःपातकनाशनम् ॥ तत्रपिण्डप्रदानेनपितॄणाम्भवतिप्रियः ॥ ७२ ॥ ततोग्नितीर्थंविमलमग्नीशपुरतोमहत् ॥ अग्निलोकमवाप्नोतितत्तीर्थपरिमज्जनात् ॥ ७३ ॥ अङ्गारतीर्थन्तत्रैवअङ्गारेश्वरसन्निधौ ॥ तत्राङ्गारचतुर्थ्यांतुस्नात्वानिष्पापतामियात् ॥ ७४ ॥ ततोवैकलतीर्थञ्चकलशेश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वातल्लिङ्गमभ्यर्च्यकलिकालान्नबिभ्यति ॥ ७५ ॥ चन्द्रतीर्थंचतत्रैवचन्द्रेश्वरसमीपतः ॥ तत्रस्नात्वार्च्यचन्द्रेशंचन्द्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥ तदग्रेवीरतीर्थञ्चवीरेश्वरसमीपतः ॥ यदुक्तम्प्राक्तवपुरस्तीर्थानामुत्तमम्परम् ॥ ७७ ॥ विघ्नेशतीर्थंचततःसर्वविघ्नविघातकृत् ॥ जातुचित्तत्रसंस्नातोनाविघ्नैरभिभूयते ॥ ७८ ॥ हरिश्चन्द्रस्यराजर्षेस्ततस्तीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुनसत्याच्च्यवतेक्वचित् ॥ ७९ ॥ हरिश्चन्द्रस्यतीर्थेतुयच्छ्रेयःसमुपार्जितम् ॥ तदक्षयफलंवीरइहलोकेपरत्रच ॥ ८० ॥ ततःपर्वततीर्थञ्चपर्वतेशसमीपतः ॥ सर्वपर्वफलन्तस्यस्नात्वापर्वण्यपर्वणि ॥ ८१ ॥ कम्बलाश्वतरन्तीर्थन्तत्रसर्ववि

और उसके आगे वीरेश्वरके समीप में वीरतीर्थ है जोकि तुम्हारे आगे तीर्थों मे परमउत्तम कहागयाहै ॥ ७७ ॥ और उसके बाद सब विघ्नोंका विघातकर्ता विघ्नेशतीर्थ है उसमें भलीभांति नहायाहुआ मनुष्य कभी भी विघ्नों से नहीं हारता है ॥ ७८ ॥ उससे अधिक उत्तम राजऋषि हरिश्चन्द्रका तीर्थ है जिसमें नहायाहुआ नर सत्य से कहीं नहीं पतित होताहै ॥ ७९ ॥ और हे वीर ! हरिश्चन्द्रके तीर्थ मे जो कल्याणरूप सुकर्मादि उपार्जितहुआ वह यहां और परलोकमे भी अक्षयफलवालाहै ॥ ८० ॥ व उसके आगे पर्वतेश्वरके समीपमे पर्वत तीर्थ है उसके पर्व या अपर्व में भी स्नानकर सब तीर्थोंका फल होताहै ॥ ८१ ॥ और वहां सब विघ्नोंका विघातक कम्बला-

श्वतर तीर्थ है उसमें नहायाहुआ मनुष्य गीतविद्यामें बड़ा पण्डित होवे है ॥ ८२ ॥ व उसके आगे सब विद्याओंका सिद्धकर्ता सारस्वत तीर्थ है वहां देव ऋषि और मनुष्यों के साथ पितरलोग टिकै हैं ॥ ८३ ॥ और वहांही सब शक्तिसमेत वह उमातीर्थहै जोकि स्नानमात्रसेही उमा (पार्वती)के लोककी प्राप्तिके लिये निश्चित होवेहै ॥८४॥ हे वीर ! उससे बहुत श्रेष्ठ व त्रिलोकमें प्रसिद्ध व त्रिलोकके उद्धार करने को समर्थ वह तीर्थ है कि जिसका मणिकर्णिका नामहै ॥ ८५ ॥ और आदिमें विष्णु से किया हुआ वह चक्रपुष्करिणी तीर्थ है उसका नाम सुननेसेही सब पापों से बहुतही छूटजाता है ॥ ८६ ॥ व स्वर्गवासी भी तीनों संध्याओं में मणिकर्णिका को जपते हैं जिसको

षापहम् ॥ तत्रस्नातोभवेन्मर्त्योगीतविद्याविशारदः ॥ ८२ ॥ ततःसारस्वतन्तीर्थंसर्वविद्योपपादकम् ॥ तिष्ठेयुःपितरस्तत्रसहदेवर्षिमानवैः ॥ ८३ ॥ उमातीर्थन्तुतत्रैवसर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ औमेयलोकप्राप्त्यैस्यात्स्नानमात्रेणनिश्चितम् ॥ ८४ ॥ ततस्त्रिलोकीविख्यातंत्रिलोक्युद्धरणक्षमम् ॥ तीर्थंश्रेष्ठतरंवीरयदाख्यामणिकर्णिका ॥ ८५ ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थंतदादौविष्णुनाकृतम् ॥ तदाख्याकर्णनादेवसर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ ८६ ॥ स्वर्गौकसस्त्रिसन्ध्यंवैजपन्तिमणिकर्णिकाम् ॥ यन्नामग्रहणम्पुंसांश्रेयसेपरमायहि ॥ ८७ ॥ यैःश्रुतायैःस्मृतावीरयैर्दृष्टामणिकर्णिका ॥ तएवकृतिनोलोकेकृतकृत्यास्तएवहि ॥ ८८ ॥ त्रिलोकेयेजपन्तीहमानवामणिकर्णिकाम् ॥ जपामितानहंवीरत्रिकालंपुण्यकर्मणः ॥ ८९ ॥ इष्टन्तेनमहायज्ञैःसहस्रशतदक्षिणैः ॥ पञ्चाक्षरीमहाविद्यायेनोक्तामणिकर्णिका ॥ ९० ॥ महादानानिदत्तानितेनवैपुण्यकर्मणा ॥ येनाहमर्चितोवीरसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ ९१ ॥ मणिकर्ण्यम्बुभिर्येनतर्पिताःप्रपितामहाः ॥ तेनश्राद्धा

जिसका नाम लेना पुरुषों के परम कल्याण के लिये है ॥ ८७ ॥ हे वीर ! जिन्होंने मणिकर्णिका को सुना व जिन्होंने सुमिरा व जिन्होंने देखा वेही लोकमें पुण्यवान्हैं और वेही कृतार्थ हैं ॥८८॥ हे वीर ! त्रिलोकमें जे मनुष्य यहां मणिकर्णिकाको जपते हैं उन पुण्यकर्मियोंको मैं त्रिकालमें जपताहूं ॥ ८९ ॥ और जिसने पांच अक्षरोंवाली मणिकर्णिका इस महाविद्याको कहा उसने हजारों व सैकड़ों दक्षिणा समेत महायज्ञोंसे पूजा किया ॥ ९० ॥ व उस पुण्यकर्माने महादानोंको दिया कि जिस करके मणि-

कर्णिका को संप्राप्त होकर मैं पूजितहूं ॥ ९१ ॥ और जिसने मणिकर्णिका के जलोंसे पितरों का तर्पण किया उसने गयामें शहद समेत खीरसे श्राद्धोंको दिया ॥ ९२ ॥ व जिस शुद्धबुद्धिवाले ने मणिकर्णिका का जल भलीभांति पिया उसका फिर लौटने लक्षणवाले उन सोमपानोंसे क्या है अर्थात् सोमयज्ञकर्त्ता भी फिर जन्मते हैं और मणिकर्णिका का जल पीनेवाला संसार से मुक्त होजाताहै ॥ ९३ ॥ और जिन्हों से मणिकर्णिका नहाई गई है वे बहुते महापर्वों के होतेही सब तीर्थों में तथा सब यज्ञांत स्नानों से नहायेहुये हैं ॥ ९४ ॥ व उन करके यज्ञों से ब्रह्मा और विष्णुआदि सब देव पूजितहैं कि जिन्होंने सुवर्ण फूलों से मणिकर्णिकाकी पूजा कियाहै ॥९५ ॥

निदत्तानिगयायांमधुपायसैः ॥ ९२ ॥ मणिकर्णीजलंयेनसम्पीतंशुद्धबुद्धिना ॥ किन्तस्यसोमपानैस्तैःपुनरावृत्तिलक्षणैः ॥ ९३ ॥ तेस्नाताःसर्वतीर्थेषुमहापर्वसुभूरिशः ॥ तथाचसर्वावभृथैर्यैःस्नातामणिकर्णिका ॥ ९४ ॥ तैःसुराःपूजिताःसर्वेब्रह्मविष्णुमुखामखैः ॥ यैःस्वर्णकुसुमैरत्नैरर्चितामणिकर्णिका ॥ ९५ ॥ अहन्तेनोमयासार्द्धंदीक्षांसम्प्राप्यशाम्भवीम् ॥ अर्चितःप्रत्यहंयेनपूजितामणिकर्णिका ॥ ९६ ॥ तपांसितेनतप्तानिशीर्णपर्णादिनाचिरम् ॥ सेविताश्रद्धयायेनश्रीमतीमणिकर्णिका ॥ ९७ ॥ दत्त्वादानानिभूरीणिमखानिष्ट्वातुभूरिशः ॥ चिरन्तप्त्वाप्यरण्येषुस्वर्गैश्वर्यान्महीम्पुनः ॥ ९८ ॥ विपुलेत्रमहीपृष्ठेपञ्चक्रोश्यांमनोहरा ॥ संश्रितामणिकर्णीयैस्तेयाताश्चानिवर्तकाः ॥ ९९ ॥ दानानाञ्चव्रतानाञ्चक्रतूनान्तपसामपि ॥ इदमेवफलंमन्येयदाप्यामणिकर्णिका ॥ १०० ॥ मोक्षलक्ष्मीरियंसाक्षाच्छ्रीमतीमणिकर्णि

और शिवसम्बन्धी मंत्रोंकी दीक्षाको भलीभांति प्राप्त होकर उससे पार्वती सहित मैं पूजितहूं कि जिससे प्रतिदिन मणिकर्णिका पूजी हुई है ॥ ९६ ॥ और उस करके सूखे पत्ते आदिकों से बहुत काल तक तपस्या तपीगई है कि जिससे श्रीमती मणिकर्णिका श्रद्धासे सेवितहै ॥ ९७ ॥ व बहुते दानों को देकर व बहुत से यज्ञोंको पूजन कर और वनोंमें बहुत काल तक तपस्याकर स्वर्ग के ऐश्वर्य्य से पृथिवी को फिर आताहै ॥ ९८ ॥ और जिन्होंने बड़े विस्तार युक्त इस भूपृष्ठ में वर्तमान काशी में मनोहर मणिकर्णिका को भलीभांति सेवन किया है वे अनिवर्तक होकर गये हैं याने वे फिर नहीं लौटते हैं ॥ ९९ ॥ और दान व व्रत व यज्ञ व तपस्याओं का भी यहही फल

मानताहूं कि जिससे मणिकर्णिका मिलने योग्य होती है ॥ १०० ॥ और यह मणिकर्णिका साक्षात् मोक्षलक्ष्मीही है बहुधा इसकी महिमा को मैंभी स्पष्ट नहीं जानता हूं ॥ १ ॥ व मणिकर्णिका से दक्षिणमें पशुपतिका श्रेष्ठतीर्थ है और उससे आगे रुद्रवासनामक तीर्थहै व इससे पर विश्वतीर्थहै ॥ २ ॥ इससे सुन्दर मुक्तितीर्थहै उसके बाद उत्तम अविमुक्ततीर्थ, तारकतीर्थ व स्कन्दतीर्थ है और उसके आगे ढुंढि (गणेश) का तीर्थ है ॥ ३ ॥ तदनन्तर भवानीतीर्थ है उसकेबाद ईशानतीर्थ है अनन्तर उत्तम ज्ञानतीर्थ, नन्दितीर्थ, विष्णुतीर्थ और उसके आगे पितामह (ब्रह्मा) का तीर्थ है ॥ ४ ॥ और यहही नाभितीर्थ है व इससे पर ब्रह्मनाल है इसके बाद भागीरथ

का ॥ प्रायोस्यामहिमानंवेनवेद्म्यहमपिस्फुटम् ॥ १ ॥ अवाच्यांमणिकर्ण्याश्चतीर्थम्पाशुपतम्परम् ॥ तीर्थन्तुरुद्रवासाख्यंविश्वतीर्थमतःपरम् ॥ २ ॥मुक्तितीर्थन्ततोरम्यमविमुक्तमथोत्तमम् ॥ तीर्थंचतारकंस्कान्दंढुण्ढेस्तीर्थन्ततोपि च ॥ ३ ॥ भवानेयमथैशानंज्ञानतीर्थमथोत्तमम् ॥ नन्दितीर्थंविष्णुतीर्थंतीर्थंपैतामहन्ततः ॥ ४ ॥ नाभितीर्थमिदञ्चैव ब्रह्मनालमतःपरम् ॥ ततोभागीरथन्तीर्थंयत्तवाग्रेपुराकथि ॥ ५ ॥ तीर्थान्युत्तरवाहिन्यांस्वर्धुन्याङ्काशिसन्निधौ ॥ सन्त्यनेकानिपुण्यानिमयोक्तान्यल्पशःपुनः ॥ ६ ॥ तत्रापिनितरांश्रेष्ठापञ्चतीर्थीनृपाङ्गज ॥ यस्यांस्नात्वानरोभूयो गर्भवासंनसंस्मरेत् ॥ ७ ॥ प्रथमञ्चासिसम्भेदंतीर्थानांप्रवरम्परम् ॥ ततोदशाश्वमेधाख्यंसर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ ८ ॥ ततःपादोदकंतीर्थमादिकेशवसन्निधौ ॥ ततःपञ्चनदम्पुण्यंस्नानमात्रादघौघहृत् ॥ ९ ॥ एतेषामपितीर्थानांचतुर्णामपिसत्तम ॥ पञ्चमंमणिकर्ण्याख्यंमनोवयवशुद्धिदम् ॥ १० ॥ अहंस्नाम्यत्रसततमुमयासहपर्वसु ॥ ब्रह्मणाविष्णुना

तीर्थ है जोकि तुम्हारे आगे पहलेही कहागया है ॥ ५ ॥ काशीके समीप उत्तरवाहिनी गङ्गामें अनेक पुण्यतीर्थ हैं फिर थोड़ेसे मुझकरके कहेगये हैं ॥ ६ ॥ हे राजकुमार! उनमें भी पञ्चतीर्थी (पांचतीर्थ) बहुतही श्रेष्ठहै जिसमें स्नानकर नर फिर गर्भवास को नहीं सुमिरै है ॥ ७ ॥ उनमें से पहला व सबतीर्थों में बहुत श्रेष्ठ असीसंगम है व उससे पर सबतीर्थों से सुसेवित दशाश्वमेध नामक तीर्थ है ॥ ८ ॥ तदनन्तर आदिकेशव के समीप मे पादोदकतीर्थ है उसके बाद स्नानमात्र से पापसमूहहारी पुण्यकारी पंचनदतीर्थ है ॥ ९ ॥ हे सत्तम ! इन चारोंभी तीर्थों के मध्यमें मन व अङ्गों की शुद्धिका दाता पांचवां मणिकर्णिका नामक तीर्थहै ॥ १० ॥पार्वती के साथ

ब्रह्मा व विष्णुके साथ और इन्द्रादि देव ऋषियों के साथ मैं पर्वोंमें यहां निरन्तर नहाताहूं ॥ ११ ॥ इससेही नागलोक (पाताल) मे वासकिये हुये व स्वर्गमें स्थान वाले लोगों से यहां यह गाथा निरन्तर गाई जाती है ॥ १२ ॥ कि सत्य है सत्य है फिर सत्यहै व यह वचन सत्यपूर्वक है कि मणिकर्णिका के समान तीर्थ ब्रह्माण्ड गोलमें नहीं है ॥ १३ ॥ पांचतीर्थों में स्नानकर नर फिर आकाशादि पञ्चभूतमयी देह को कभीभी नहीं ग्रहण करता है अथवा काशीमें पंचमुख शिव स्वरूप होजाता है ॥ १४ ॥ इसभांति वीरको वर देकर शंकरजी अन्तर्धान होगये और वह वीरभी वीरेश्वर को बहुत पूजकर मनोरथ को प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे

सार्धंसहेन्द्रादिसुरर्षिभिः ॥ ११ ॥ अतएवात्रगीयेतगाथेयंश्रुतिसम्मता ॥ नागलोककृतावासैःस्वर्गौकोभिश्चसन्ततम् ॥ १२ ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यपूर्वमिदंवचः ॥ मणिकर्णीसमन्तीर्थंनास्तिब्रह्माण्डगोलके ॥ १३ ॥ पञ्चतीर्थ्यांनरःस्नात्वानदेहम्पाञ्चभौतिकम् ॥ गृह्णातिजातुचित्काश्यांपञ्चास्योवाथजायते ॥ १४ ॥ इतिदत्त्वावरान्देवोवीरस्यान्तर्दधेहरः ॥ सचवीरोपिवीरेशंप्राच्यंप्राप्तःसमीहितम् ॥ १५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तीर्थाध्यायमिमंपुण्यमगस्तेयोनिशामयेत ॥ तस्याघंसंक्षयंयायादपिजन्मशतार्जितम् ॥ १६ ॥ इतिवीरेश्वराख्यानंतीर्थाख्यानप्रसङ्गतः ॥ कथितन्तेपुरागस्त्यकामेशङ्कथयाम्यतः ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवीरेश्वराख्यानंनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

स्कन्दउवाच ॥ जगज्जनन्याःपार्वत्याःपुरोगस्तेपुरारिणा ॥ यथाख्यायिकथापुण्यातथातेकथयाम्यहम् ॥ १ ॥

अगस्ते ! जोकि इस मनोहर तीर्थाध्याय को सुने उसका सैकड़ों जन्मोंमें भी बटोराहुवा पाप विनाश को प्राप्त होवेहै ॥ १६ ॥ हे अगस्ते ! इस प्रकार मैंने तीर्थाख्यान के प्रसंग से तुम्हारे आगे वीरेश्वराख्यान को कहा और इसके बाद मैं कामेश्वर को कहताहूं ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते वीरेश्वराख्याननामचतुरशीतितमोध्यायः ॥ ८४ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । पच्चासी अध्यायमें दुर्वासा वरदान । कामेश्वर की जानिये इत उत्पत्ति सुजान ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्यजी ! त्रिपुरके शत्रु शिवजी ने जैसे

जगदम्बा के आगे पुण्य कथा को कहा है वैसेही मैं तुमसे कहताहूं ॥ १ ॥ कि पूर्व समय में समुद्र पर्वत और वनों समेत व नदियों समेत व सागरों समेत व ग्राम पुर और शहरों समेत इस सब पृथिवी को ॥ २ ॥ सब ओर से भ्रमणकर बड़े असहनशील या क्रोधी व बड़े तेजस्वी व बड़े तपस्वी दुर्वासाऋषि शंकरजी के आनन्द-वनमें भलीभांति सब ओर से प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ और बहुते महलों से मण्डित, बहुते कुण्डों व तड़ागों से संयुत, शम्भुके सम्पूर्ण विहारस्थान को देखकर संतोष को प्राप्त होगये ॥ ४ ॥ व स्थान स्थान में कालके बड़े डरको जीते हुये मुनियों की पर्णशालाओं को देखकर विस्मित हुये ॥ ५ ॥ व अच्छी लताओं से आलिंगित (लिपटे)

पुरामहीमिमांसर्वांससमुद्राद्रिकाननाम् ॥ ससरित्कांसार्णवांचसग्रामपुरपत्तनाम् ॥ २ ॥ परिभ्रम्यमहातेजामहामर्षो महातपाः ॥ दुर्वासाःसम्परिप्राप्तःशम्भोरानन्दकाननम् ॥ ३ ॥ विलोक्याक्रीडमखिलंबहुप्रासादमण्डितम् ॥ बहुकुण्डतडागञ्चशम्भोस्तोषमुपागमत् ॥ ४ ॥ पदेपदेमुनीनाञ्चजितकालमहाभियाम् ॥ दृष्ट्वोटजानिरम्याणिदुर्वासाविस्मितोभवत् ॥ ५ ॥ सर्वर्तुकुसुमान्वृत्तान्सुच्छायस्निग्धपल्लवान् ॥ सफलान्सुलताश्लिष्टान्दृष्ट्वाप्रीतिमगान्मुनिः ॥ ६ ॥ दुर्वासाश्चातिहृष्टोभूद्दृष्ट्वापाशुपतोत्तमान् ॥ भूतिभूषितसर्वाङ्गाञ्जटाजटितमौलिकान् ॥ ७ ॥ कौपीनमात्रवसनान्स्मरारिध्यानतत्परान् ॥ कक्षीकृतमहालाबून्हुडुत्कारजिताम्बुदान् ॥ ८ ॥ करण्डदण्डपानीयपात्रमात्रपरिग्रहान् ॥ कचित्त्रिदण्डिनोदृष्ट्वानिःसङ्गान्निष्परिग्रहान् ॥ ९ ॥ कालादपिनिरातङ्कान्विश्वेशशरणङ्गतान् ॥ कचिद्वेदरहस्य

हुये व सब ऋतुओं में फूलोंवाले व अच्छी छाया समेत सचिक्कण पल्लवोंवाले व फलों से सहित वृक्षों को देखकर मुनिजी प्रीति को प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ व दुर्वासाजी उन पाशुपतोत्तमों याने शिवभक्तों को देखकर अत्यन्त आनन्दित हुये कि जिनके सब अंग भस्मसे भूषित हैं व बाल, जटाओं से जटित हैं ॥ ७ ॥ और जे कि कौपीनमात्र वस्त्रवाले हैं व काम के शत्रु शिवजी के ध्यानमें तत्पर हैं व विभूति धरने के पात्रों को कांखोंमें किये हुये हैं व हुडुत्कार शब्दों से मेघों को जीते हैं ॥ ८ ॥ और कहीं करण्ड (देवोंकी पेटी) व दण्ड पानी पीने के पात्रमात्र को सब ओरसे ग्रहण करनेवाले व असंग व संगत्यागी त्रिदण्डियों को देखकर ॥ ९ ॥ व कहीं कालसेभी निडर

विश्वेश्वर के शरणागत व वेद रहस्यों के जाननेवाले व बालपने से लगाकर ब्रह्मचारी ॥ १० ॥ व नित्यही गंगा नहाने से कुछेक पीले बालोंवाले ब्राह्मणोंको काशीमें देखकर दुर्वासाजी बहुतही आनन्दितहुये ॥ ११ ॥ और काशीके पशुओं में जो सन्तोषहै व मृगों में जो दीप्तिहै व पक्षियों में भी जो आनन्दहै वह अन्यत्र कहीं स्पष्ट नहीं है ॥ १२ ॥ यह अच्छे कल्याणका विशेषस्थान त्रिलोक या स्वर्ग व देवों में भी कहांहै जहां के पशुपक्षियों में भी यह पुरी परमानन्दके बढ़ानेवाली है ॥ १३ ॥ व आनन्द वनमें विचरतेहुये सदा आनन्दवाले ये पशु भी श्रेष्ठहैं फिर नन्दनवनके सेवी देव नहीं ॥ १४ ॥ और मंगलमय उत्तर फलवाला काशीपुरीवासी म्लेच्छ भी श्रेष्ठहै और

ज्ञानाबाल्यब्रह्मचारिणः ॥ १० ॥ नित्यम्भागीरथीस्नानपरिपिङ्गलमूर्धजान् ॥ विलोक्यकाश्यान्दुर्वासाब्राह्मणान्मुमुदेतराम् ॥ ११ ॥ पशुष्वपिचयातुष्टिर्मृगेष्वपिचयाद्युतिः ॥ तिर्यक्ष्वपिचयाहृष्टिःकाश्यांनान्यत्रसास्फुटम् ॥ १२ ॥ इदंसुश्रेयसोऽव्युष्टिःक्वामरेषुत्रिविष्टपे ॥ यत्रतेष्वपितिर्यक्षुपरमानन्दवर्धिनी ॥ १३ ॥ वरमेतेपिपशवआनन्दवनचारिणः ॥ सदानन्दाःपुनर्देवाननन्दनवनाश्रिताः ॥ १४ ॥ वरङ्काशीपुरीवासीम्लेच्छोपिहिशुभायतिः ॥ नान्यत्रत्योदीक्षितोपिसहिमुक्तेरभाजनम् ॥ १५ ॥ वैश्वेश्वरीपुरीचैषायथामेचित्तहारिणी ॥ सर्वापिनतथाक्षोणीनस्वर्गोनैवनागभूः ॥ १६ ॥ स्थैर्यम्बबन्धनक्वापिभ्रमतोमेमनोगतिः ॥ सर्वस्मिन्नपिभूभागेयथास्थैर्यमगादिह ॥ १७ ॥ रम्यापुरीभवेदेषाब्रह्माण्डादखिलादपि ॥ परिष्टुत्येतिदुर्वासाश्चेतोवृत्तिमवापह ॥ १८ ॥ तप्यमानोपिहितपःसुचिरंसमहातपाः ॥ यदानापफलङ्किञ्चित्चुकोपचतदाभृशम् ॥ १९ ॥ धिक्चमान्तापसन्दुष्टंधिक्चमेदुश्चरंतपः ॥ धिक्चक्षेत्रमिदंशम्भोःसर्वेषाञ्चप्रतारकम् ॥ २० ॥

अन्यत्र उपजाहुआ यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मण वर नहींहै क्योंकि वह मुक्तिका पात्र नहीं है ॥ १५ ॥ व जैसे यह विश्वेश्वरकी पुरी मेरा मन हरनेवालीहै, वैसे सब भी भूमि नहीं व स्वर्ग नही व पाताल भी नहीं है ॥ १६ ॥ सब भी भूमिभागमें भ्रमतेहुये मेरे मनकी गति जैसे यहां स्थिरताको प्राप्त होगईहै वैसे कहीं भी अचलताको नहीं बांधती भईहै ॥ १७ ॥ और यह पुरी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से भी मनोहर होवेहै ऐसे सब ओरसे स्तुतिकर दुर्वासाजी चित्तकी वृत्तिको हर्षसे प्राप्तहुये ॥ १८ ॥ व बहुत अधिक कालतक तपस्याको तपतेहुये भी उन बड़े तपस्वीने जब कुछेक भी फलको न पाया तब बहुतही क्रोधकिया ॥ १९ ॥ कि दुष्ट तपस्वी मुझको धिक्है व मेरे दुष्कर तपको

धिक्है और सबके छलनेहारे इस शिवक्षेत्रको भी धिक्है ॥ २० ॥ इससे जैसे यहां किसीकी भी मुक्ति न होवे वैसेही करूं इस भांति शाप देनेको जब उद्यत या उद्योग वालेहुये तब शिवजी भलीभांति हँसेथे ॥ २१ ॥ व वहां एक लिंग हुआथा जोकि प्रहसितेश्वर कहागयाहै उस लिंगके दर्शन से पुरुषोंका क्षण क्षण या स्थान स्थान में आनन्द होवे है ॥ २२ ॥ और विस्मयसे संयुत महेश्वरजी ने मनमेंही ऐसा कहा कि ऐसे तपस्वियों के लिये बार बार नमस्कारहो ॥ २३ ॥ कि ब्राह्मण जहांही तपस्या करते हैं व जहांही आश्रमको कियेहुये हैं व जहांही पाई प्रतिष्ठावाले हैं वहांही असहनशील हैं ॥ २४ ॥ और तपस्वी लोग जो कुछेक चिन्तितमात्र को

यथानमुक्तिरत्रस्यात्कस्यापिकरवैतथा ॥ इतिशप्तुंयदोद्युक्तःसञ्जहासतदाशिवः ॥ २१ ॥ तत्रलिङ्गमभूदेकंख्यातंप्रहसितेश्वरम् ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसामानन्दःस्यात्पदेपदे ॥ २२ ॥ उवाचविस्मयाविष्टोमनस्येवमहेशिता ॥ ईदृशेभ्यस्तपस्विभ्योनमोस्त्वितिपुनःपुनः ॥ २३ ॥ यत्रैवहितपस्यन्तियत्रैवविहिताश्रमाः ॥ लब्धप्रतिष्ठायत्रैवतत्रैवामर्षिणोद्विजाः ॥ २४ ॥ मनाक्चिन्तितमात्रन्तुचेल्लभन्तेनतापसाः ॥ क्रुधातदैवजीयन्तेहारिण्यातपसांश्रियः ॥ २५ ॥ तथापितापसामान्याःस्वश्रेयोवृद्धिकांक्षिभिः ॥ अक्रोधनाःक्रोधनावाकाचिन्ताहितपस्विनाम् ॥ २६ ॥ इतियावन्महेशानोमनस्येवविचिन्तयेत् ॥ तावत्तत्क्रोधजोवह्निर्व्यानशेव्योममण्डलम् ॥ २७ ॥ तत्क्रोधानलधूमौघैर्व्यापितंयन्नभोङ्गणम् ॥ तद्दधातिनभोद्यापिनीलिमानंमहत्तरम् ॥ २८ ॥ ततोगणाःपरिक्षुब्धाःप्रलयार्णवनीरवत् ॥ आःकिमेतत्किमेतद्वैभाषमाणाःपरस्परम् ॥ २९ ॥ गर्जन्तस्तर्जयन्तश्चप्रोद्यतायुधपाणयः ॥ प्रमथाःपरितस्थुस्तेपरितोधामशाम्भव

नहीं पातेहैं तो तपस्याओंकी सम्पत्तिके हरनेहारे भी क्रोधसे जीतेजाते हैं ॥ २५ ॥ तो भी क्रोध करनेवाले या न क्रोध करनेवाले तपस्वीलोग अपने कल्याणकी वृद्धि चाही मनुष्यों से मानने योग्यहीहैं जिससे तपस्वियोंका क्या चिन्ताहै ॥ २६ ॥ इस प्रकार महेशजी जबतक मनमेंही विचारें तबतक दुर्वासाजीके क्रोधसे उपजीहुई अग्नि आकाशमण्डलमें व्यापगई ॥ २७ ॥ और जिससे आकाश आंगन उस क्रोधाग्निके धूमसमूहों से व्यापितहुआ उससे आज भी वह आकाश बहुत भारी श्यामता को धारण करताहै ॥ २८ ॥ तदनन्तर आः यह क्याहै यह क्याहै इसही वाक्य को परस्पर कहतेहुये प्रलयसमुद्रके पानीकी नाईं सब ओरसे मंचलित होगये ॥ २९ ॥

और गर्जते व तर्जतेहुये अधिक उद्यत आयुधसमेत हाथोंवाले वे गण शम्भुके स्थान याने आनन्दवन (काशी) के सब ओरमें घेरकर टिके ॥ ३० ॥ कि हमारे क्रुद्ध होते ही यम कौनहै अथवा काल कौनहै व मृत्यु कौनहै तथा प्रलयाग्नि कौनहै व ब्रह्मा कौनहै व इन्द्रादि देव कौनहैं और विष्णु भी कौनहै॥ ३१ ॥ हमलोग अग्निको पानी की नाईं पीतेहैं व सम्पूर्ण पर्वतोंको चूर्ण करते हैं व सातोसमुद्रों को भी शीघ्रही जलसे हीन स्थल करते हैं ॥ ३२ ॥ व पातालको ऊपर पठाते हैं अथवा स्वर्गको नीचे धारते हैं व आकाशको भी एकही ग्रास (कवल) करते हैं या करेंगे ॥३३॥ अथवा क्षणभरमेंही ब्रह्माण्ड भांडको फोरे डालते हैं व काल और मृत्युको परस्पर तालके समान दूरमें

म् ॥ ३० ॥ कोयमःकोथवाकालःकोमृत्युःकस्तथान्तकः ॥ कोवाविधाताकेलेखाःक्रुद्धेष्वस्मासुकःपरः ॥ ३१ ॥ अग्निं पिबामोजलवच्चूर्णीकुर्मोखिलान्गिरीन् ॥ सप्तापिचार्णवांस्तूर्णंकरवाममरुस्थलीम् ॥ ३२ ॥ पातालञ्चानयामोर्ध्वमधोदध्मोथवादिवम् ॥ एकमेवहिवाग्रासंगगनंकरवामहे ॥ ३३ ॥ ब्रह्माण्डभाण्डमथवास्फोटयामःक्षणेनहि॥ आस्फालयामोवान्योन्यंकालंमृत्युञ्चतालवत् ॥ ३४ ॥ ग्रसामोवाथभुवनंमुक्त्वावाराणसीम्पुरीम् ॥ यत्रमुक्ताभवन्त्येवमृतमात्रेणजन्तवः ॥ ३५ ॥ कुतोऽयन्धूमसम्भारोज्वालावल्यःकुतस्त्वमूः ॥ कोवामृत्युञ्जयंरुद्रंनोविद्यान्मदमोहितः ॥ ३६ ॥ इतिपारिषदाःशम्भोर्महाभयभयप्रदाः ॥ जल्पन्तःकल्पयामासुःप्राकारंगगनस्पृशम् ॥ ३७॥ शकलीकृत्यबहुशःशिलावत्प्रलयानलम् ॥ नन्दीचनन्दिषेणश्चसोमनन्दीमहोदरः ॥ ३८ ॥ महाहनुर्महाग्रीवोमहाकालोजितान्तकः ॥ मृत्युप्रकम्पनोभीमोघण्टाकर्णोमहाबलः ॥ ३९ ॥ क्षोभणोद्रावणोजृम्भीपञ्चास्यःपञ्चलोचनः ॥ द्विशिरास्त्रिशिराःसोमः

प्रक्षेपकरेंगे ॥ ३४ ॥ अथवा जिसमें मरेमात्रसे जन्तु मुक्त होते हैं उसही काशीको छोड़कर जगत्को ग्रसते हैं ॥ ३५ ॥ यह धूमसमूह कहांसे या क्यों हुआहै और ये ज्वाला की पंक्तियां किससे हुईहैं व मदसे मोहित कौन जन मृत्युंजय रुद्रको नहीं जानैहै ॥ ३६ ॥ इसभांति बकतेहुये महाभयके भी बडे भयदायक शिवगणोंने आकाशके छूनेवाले याने बड़े ऊंचे प्राकार(घेर) को कल्पित किया ॥ ३७ ॥ व दुर्वासाके क्रोधसे उपजीहुई प्रलयाग्निको शिलाकी नाईं बहुतसे खण्डकर नन्दी, नन्दिषेण, सोमनन्दी व महोदर ॥ ३८ ॥ व महाहनु,हयग्रीव, महाकाल, जितान्तक, मृत्युप्रकम्पन, भीम,घंटाकर्ण, महाबल ॥ ३९ ॥ व क्षोभण, द्रावण, जृम्भी, पंचास्य, पंचलोचन, द्विशिरा, त्रिशिरा,

सोम, पंचहस्त, दशमुख ॥ ४० ॥ व चण्ड, भृंगिरिटि, तण्डी, प्रचण्ड, ताण्डवप्रिय, पिचिण्डिल, स्थूलशिरा, स्थूलकेश, गभस्तिमान् ॥ ४१ ॥ व क्षेमक, क्षेमधन्वा, वीरभद्र, रणप्रिय, चण्डपाणि, शूलपाणि, पाशपाणि, कृशोदर ॥ ४२ ॥ व दीर्घग्रीव, पिंगाक्ष, पिंगल, पिंगमूर्धज, बहुनेत्र, लम्बकर्ण, खर्व, पर्वतविग्रह ॥ ४३ ॥ व गोकर्ण, गजकर्ण, कोकिलनामक, गजानन (गणेश) व मैंमी (कार्त्तिकेय) व विकटास्य, अट्टहासक ॥ ४४ ॥ व सीरपाणि, शिवाराव, वैणिक, वेणुवादन, दुराधर्ष, दुस्सह, गर्जन और रिपुतर्जन ॥ ४५ ॥ इत्यादि सैकड़ों करोड़ दुरासद गणेश्वरोंने काशी में वायुकी भी गतिको निवारण करदिया ॥ ४६ ॥ और उन वीरों के क्षोभयुक्त होतेही त्रिलोक कांप-

पञ्चहस्तोदशाननः ॥ ४० ॥ चण्डोभृङ्गिरिटिस्तण्डीप्रचण्डस्ताण्डवप्रियः ॥ पिचिण्डिलःस्थूलशिराःस्थूलकेशोगभस्तिमान् ॥४१॥ क्षेमकःक्षेमधन्वाचवीरभद्रोरणप्रियः॥ चण्डपाणिःशूलपाणिःपाशपाणिःकृशोदरः ॥ ४२ ॥ दीर्घग्रीवोथपिङ्गाक्षःपिङ्गलःपिङ्गमूर्धजः ॥ बहुनेत्रोलम्बकर्णःखर्वःपर्वतविग्रहः ॥ ४३ ॥ गोकर्णोगजकर्णश्चकोकिलाख्योगजाननः ॥ अहंवैनैगमेयश्चविकटास्योट्टहासकः ॥ ४४ ॥ सीरपाणिःशिवारावोवैणिकोवेणुवादनः ॥ दुराधर्षोदुःसहश्चगर्जनोरिपुतर्जनः ॥ ४५ ॥ इत्यादयोगणेशानाःशतकोटिदुरासदाः ॥ काश्यांनिवारयामासुरपिप्राभञ्जनींगतिम् ॥ ४६ ॥ क्षुब्धेषुतेषुवीरेषुचकम्पेभुवनत्रयम् ॥ दुर्वाससश्चकोपाग्निज्वालाभिर्व्याकुलीकृतम् ॥ ४७॥ तदाविविशतुःकाश्यांसूर्याचन्द्रमसावपि ॥ नगणैरकृतानुज्ञौतत्तेजःशमितप्रभौ ॥ ४८ ॥ निवार्यप्रमथानीकमतिक्षुब्धस्तुमाधवः ॥ मदंशएनहिमुनिरानसूयेयएषवै ॥ ४९ ॥ अथोद्दुर्वाससोलिङ्गादाविरासीत्कृपानिधिः ॥ महातेजोमयःशम्भुर्मुनिशापात्पुरीमव

नेलगा जोकि दुर्वासाके क्रोधसे उपजीहुई अग्निकी ज्वालाओं से व्याकुल कियागया था ॥ ४७ ॥ उस समय उनके तेजसे नष्ट प्रकाशवाले व गणोंसे न कियेहुये आयसुवाले चन्द्रमा और सूर्य्य भी काशीमें नहीं पैठते थे किन्तु आज्ञावाले होकर पैठते थे ॥ ४८ ॥ और अनसूयाका पुत्र यह मुनि भी मेरा अंशहीहै ऐसे कहकर अत्यन्त क्षोभयुक्त, गणोंकी सेनाको निवारणकर पार्वतीजीके पति ॥ ४९ ॥ जोकि कृपाके निधान व बड़े तेजस्वी व कल्याणकर्त्ता हैं वह मुनिके शापसे पुरीकी रक्षा करतेहुये उसके

बाद दुर्वासाके लिंगसे प्रकटहुये ॥ ५० ॥ कि मुँनिका शाप काशीमें मुक्तिके रोकनेवाला मत होवे ऐसी दयासे महादेवजी उन दुर्वासाजीकी प्रत्यक्षताको प्राप्तहोगये ॥ ५१ ॥ और बोले कि हे महाक्रोधन, तापस ! मैं प्रसन्नहूं इससे विशेष शंकासे हीनहुये तुम वरको अंगीकारकरो और मुझकरके कौनवर तुमको देने योग्यहै ॥ ५२ ॥ हे अगस्त्यजी ! तदनन्तर शापके लिये उद्यत हाथवाले मुनि इसभांति विशेषतासे लज्जित होगये कि क्रोधसे अन्धे व दुष्ट बुद्धिवाले मैंने बहुतही अपराधकिया ॥ ५३ ॥ और बहुतसे ऐसा बोले कि त्रिलोककी अभय देनेहारी काशीको शापने के लिये उद्यत चित्तवाले व क्रोधके वशमे गयेहुये मुझको धिक्है ॥ ५४ ॥ और दुःखसागर में डूबे

न् ॥ ५० ॥ माभूच्छापोमुनेःकाश्यांनिर्वाणप्रतिबन्धकः ॥ इत्यनुक्रोशतोदेवस्तस्यप्रत्यक्षताङ्गतः ॥ ५१ ॥ उवाचचप्रसन्नोस्मिमहाक्रोधनतापस ॥ वरयस्ववरःकस्तेमयादेयोविशङ्कितः ॥ ५२ ॥ ततोविलज्जितोगस्त्यशापोद्यतकरोमुनिः ॥ अपराद्धम्बहुमयाक्रोधान्धेनेतिदुर्धिया ॥ ५३ ॥ उवाचचेतिबहुशोधिङ्मांक्रोधवशङ्गतम् ॥ त्रैलोक्याभयदाङ्काशींशप्तुमुद्यतचेतसम् ॥ ५४ ॥ दुःखार्णवनिमग्नानांयातायातेतिखेदिनाम् ॥ कर्मपाशितकण्ठानांकाश्येकामुक्तिसाधनम् ॥ ५५ ॥ सर्वेषांजन्तुजातानांजनन्येकैवकाशिका ॥ महामृतस्तन्यदात्रीनेत्रीचपरमम्पदम् ॥ ५६ ॥ जनन्यासहनोकाशीत्वभेदुपामितिंकचित ॥ धारयेज्जननीगर्भेकाशीगर्भाद्विमोचयेत् ॥ ५७ ॥ एवम्भूतान्तुयःकाशीमन्योपिहिशपिष्यति ॥ तस्यैवशापोभवितानतुकाश्याःकथञ्चन ॥ ५८ ॥ इतिदुर्वाससोवाक्यंश्रुत्वादेवस्त्रिलोचनः ॥ अतीवतुषितोजातःकाशीस्तवनलब्धमुत् ॥ ५९ ॥ यःकाशींस्तौतिमेधावीयःकाशींहृदिधारयेत ॥ तेनतप्तंतपस्तीव्रंतेनेष्टंक्रतु

व आने जाने में याने जन्मधरने व मरने में अत्यन्त खेदवान् व कर्मों से पाशित (फांसे) कण्ठवाले जनोंकी मुक्तिका साधन एक काशीही है ॥ ५५ ॥ और परमपदको पहुँचानेवाली व महामृत (मोक्ष) रूप दूध देनेवाली काशीही सब जन्तुसमूहों की मुख्य माताहै ॥ ५६ ॥ परन्तु काशीपुरी माताके साथ उपमाको कहीं नहीं पावैहै क्यों कि माता गर्भ में धारै है और काशी गर्भसे छोरैहै इससे यह अतिशय श्रेष्ठहै ॥ ५७ ॥ और जोकि अन्य भी ऐसीहुई काशीको शाप देवैगा उसकाही शाप होवैगा और काशीको किसीभांति से न होवैगा ॥ ५८ ॥ ऐसा दुर्वासाका वचन सुनकर काशी की स्तुति से आनन्दको पायेहुये त्रिनेत्रदेव बहुतही सन्तुष्टहुये ॥ ५९ ॥ जो बुद्धिमान्

काशीकी स्तुति करताहै व जो काशीको हृदयमें धरताहै उसने तीव्र तपस्या तपाहै और उसने कोटियज्ञों से पूजाकियाहै ॥ ६० ॥ काशी ऐसे दो अक्षर जिस सुबुद्धिमान् की जीभके आगे बर्तते हैं उसका गर्भवास कहीं नहीं होवे है॥ ६१ ॥ व जोकि काशी इस दो अक्षररूप मन्त्रको प्रातःकालमें जपताहै वह दोनों लोकोंको जीतकर लोकातीत पदको जावैहै ॥ ६२ ॥ हे अनसूयाके पुत्र, दुर्वासः! इससमय काशीकी स्तुतिकी पुण्य से जैसा तुम्हारा ज्ञानहै वैसा आगे तपस्यासे नहीं समुत्पन्न हुआथा॥ ६३ ॥ हे मुने ! काशीकी स्तुतिकी लालसावाला जन जैसा मेरा बहुत प्याराहै वैसा दीक्षासमेत पूजक मेरा प्यारा नहींहै यह सत्यहै ॥ ६४ ॥ व काशीकी भलीभांति

कोटिभिः ॥ ६० ॥ जिह्वाग्रेवर्ततेयस्यकाशीत्यक्षरयुग्मकम् ॥ नतस्यगर्भवासःस्यात्कचिदेवसुमेधसः ॥ ६१ ॥ योमन्त्रंजपतिप्रातःकाशीवर्णद्वयात्मकम् ॥ सतुलोकद्वयंजित्वालोकातीतंव्रजेत्पदम् ॥ ६२ ॥ आनसूयेयतेज्ञानंकाशीस्तवनपुण्यतः ॥ यथेदानींसमुत्पन्नंतथानतपसःपुरा ॥ ६३ ॥ मुनेनमेप्रियस्तद्वद्दीक्षितोममपूजकः ॥ यादृक्प्रियतरःसत्यंकाशीस्तवनलालसः ॥ ६४॥ तादृक्तुष्टिर्नमेदानैस्तादृक्तुष्टिर्नमेमखैः ॥ नतुष्टिस्तपसातादृग्यादृशीकाशिसंस्तवैः ॥ ६५ ॥ आनन्दकाननंयेनस्तुतमेतत्सुचेतसा ॥ तेनाहंसंस्तुतःसम्यक्सर्वैःसूक्तैःश्रुतीरितैः ॥ ६६ ॥ तवकामाःसमृद्धाःस्युरानसूयेयतापस ॥ ज्ञानन्तेपरमंभाविमहामोहविनाशनम् ॥ ६७ ॥ अपरञ्चवरम्ब्रूहिकिन्दातव्यन्तवानघ ॥ त्वादृशाएवमुनयःश्लाघनीयायतःसताम् ॥ ६८ ॥ यस्यास्त्येवहिसामर्थ्यन्तपसःक्रुध्यतीहसः ॥ कुपितोप्यसमर्थस्तुकिङ्कर्ताक्षीणवृत्तिवत् ॥ ६९ ॥ इतिश्रुत्वापरिष्टुत्यदुर्वासाःकृत्तिवाससम् ॥ वरञ्चप्रार्थयामासपरिहृष्टतनूरुहः ॥ ७० ॥ दुर्वासा

स्तुतियों से जैसे मेरी सन्तुष्टि होतीहै वैसी तुष्टि दानोंसे नहींहै व वैसी तुष्टि तपसे नहीं है और वैसी मेरी तुष्टि यज्ञों से भी नहींहै ॥ ६५ ॥ व जिस अच्छे चित्तवालेने इस आनन्दवनकी स्तुतिकिया उसने वेदोक्त सब सूक्तों से भलीभांति मेरी बहुत स्तुतिकिया॥ ६६ ॥ हे तापस, अनसूयाके पुत्र ! तुम्हारे मनोरथ समृद्ध होवें और महामोहका विनाशक तुम्हारा ज्ञान होनेवालाहै ॥ ६७ ॥ और हे अपाप ! अन्यवरको कहो कि तुम को क्या देने योग्यहै जिससे तुम्हारे समान मुनिलोग सन्तों से प्रशंसनीयहैं ॥ ६८ ॥ व जिसकेही तपसे सामर्थ्य है वहही क्रोध करताहै और रुष्टहुआ भी असमर्थ क्षीणवृत्ति (दरिद्री) की नाईं क्या करेगा ॥ ६९ ॥ ऐसा सुनकर हर्ष युक्त रोमोंवाले

दुर्वासाजीने शिवजीकी सब ओरसे स्तुतिकर वरको मांगा ॥ ७० ॥ दुर्वासाजी बोले कि, हे देवोंकेदेव, जगन्नाथ, करुणाकर, शंकर, महापराधविध्वंसिन्, अन्धकासुरशत्रो, कामान्तक, ॥ ७१ ॥ मृत्युंजय, उग्र, भूतेश, पार्वतीश, त्रिनेत्र, नाथ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो व जो मुझको वर देने योग्य है ॥ ७२ ॥ तो हे धूर्जटे! यह कामदनामक लिंग यहां टिके और यह मेरा छोटा तड़ाग यहां कामकुण्डनामक प्रसिद्ध होवे ॥ ७३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे महातेजस्विन्, परमकोपन, मुने! ऐसाहीहो कि जो दुर्वासेश्वर सञ्ज्ञकलिंग तुमसे स्थापितहुआहै ॥ ७४ ॥ वहही मनुष्यो के कामोका पूर्णकर्त्ता यहां कामेश्वर ऐसा होजावे व शनैश्चर दिनसंयुत त्रयोदशी तिथिमें प्रदोषसमय जो

उवाच ॥ देवदेवजगन्नाथकरुणाकरशङ्कर ॥ महापराधविध्वंसिन्नन्धकारेस्मरान्तक ॥ ७१ ॥ मृत्युञ्जयोग्रभूतेशमृडानीशत्रिलोचन ॥ यदिप्रसन्नोमेनाथयदिदेयोवरोमम ॥ ७२ ॥ तदिदङ्कामदंनामलिङ्गमस्त्विहधूर्जटे ॥ इदञ्चपल्वलंमेत्रकामकुण्डाख्यमस्तुवै ॥ ७३ ॥ देवदेवउवाच ॥ एवमस्तुमहातेजोमुनेपरमकोपन ॥ यत्त्वयास्थापितंलिङ्गंदुर्वासेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ ७४ ॥ तदेवकामकृन्नृणांकामेश्वरमिहास्त्विति ॥ यःप्रदोषेत्रयोदश्यांशनिवासरसंयुजि ॥ ७५ ॥ संस्नास्यतिनरोधीमान्कामकुण्डेत्वदास्पदे ॥ त्वत्स्थापितञ्चकामेशंलिङ्गन्द्रक्ष्यतिमानवः ॥ ७६ ॥ सर्वैकामकृताद्दोषाद्यामींनाप्स्यतियातनाम् ॥ बहवोपिहिपाप्मानोबहुभिर्जन्मभिःकृताः ॥ ७७ ॥ कामतीर्थाम्बुसंस्नानाद्यास्यन्तिविलयंक्षणात् ॥ कामाःसमृद्धिमाप्स्यन्तिकामेश्वरनिषेवणात् ॥ ७८ ॥ इतिदत्त्वावरान्शम्भुस्तल्लिङ्गेलयमाययौ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तल्लिङ्गाराधनात्कामाःप्राप्तादुर्वाससाभृशम् ॥ ७९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकाश्यांकामेश्वरःसदा ॥ पूजनीयःप्रयत्नेनमहा

कि ॥ ७५ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य कामकुण्डमे भलीभांति स्नान करेगा व जो मनुष्य तुम्हारे स्थानमें तुमकरके थापेहुये कामेश्वरलिंगको देखेगा ॥ ७६ ॥ वह भी कामसे कियेहुये दोषोसे यमकी यातनाको न पावेगा और बहुते जन्मों से कियेहुये बहुतेही पापभी ॥ ७७ ॥ कामतीर्थ के जलमे भलीभांति नहाने सेक्षणभर में विनाशको प्राप्तहोजावेंगे व सब काम कामेश्वर की सेवासे समृद्धिको प्राप्तहोवेंगे ॥ ७८ ॥ ऐसा वरदेकर शङ्करजी उस लिंग में लयको प्राप्तहुये, श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि दुर्वासाजीने उस लिंगकी पूजासे कामोको बहुतही प्राप्तकिया है ॥ ७९ ॥ उसलिये बडे यत्नसे सुलभहुई काशीमे बड़े कामो के अभिलाषी लोगों करके बड़ेयत्नसे कामेश्वर सदा

ढंनश्लथञ्चप्रयत्नतः ॥ विनैववाससाचारुवाल्कलञ्चसदोज्ज्वलम् ॥ ७ ॥ गुरुपुत्रेणचाज्ञप्तोममार्थम्पादुकेकुरु ॥ यदा रूढस्यमेपादौनपङ्कःसंस्पृशेत्कचित् ॥ ८ ॥ चर्मादिबन्धनिर्मुक्तेधावतोमेसुखप्रदे ॥ याभ्याञ्चसञ्चरेवारिस्थलभूमावि वद्रुतम् ॥ ९ ॥ गुरुकन्यापितम्प्राहत्वाष्ट्रमेश्रवणोचिते ॥ भूषणेस्वेनहस्तेनकुरुकाञ्चननिर्मिते ॥ १० ॥ कुमारीक्रीडनी यानिकौतुकानिचदेहिमे ॥ दन्तिदन्तमयान्येवस्वहस्तरचितानिच ॥ ११ ॥ गृहोपकरणन्द्रव्यंमुसलोलूखलादिकम् ॥ तथाघटयमेधाविन्यथात्रुट्यतिनकचित् ॥ १२ ॥ अक्षालितान्यपियथानित्यंपीठानिसत्तम ॥ उज्ज्वलानिभवन्त्येव स्थालिकाश्चतथाकुरु ॥ १३ ॥ सूपकर्मण्यपिचमांप्रशाधित्वष्टृनन्दन ॥ यथांगुल्योनदह्यन्तेपाकःस्याच्चयथाशुभः ॥ १४ ॥ एकस्तम्भमयङ्गेहमेकदारुविनिर्मितम् ॥ तथाकुरुवरन्त्वाष्ट्रयत्रेच्छातत्रधारये ॥ १५ ॥ येसहाध्यायिनोप्यस्यव

पुत्र ! तुम चोलीको बनावो ॥ ६ ॥ जोकि मेरे अंगके योग्यहो न कसी हो न ढीली हो व वस्त्रके विनाही बड़े यत्नसे वल्कलों से बनीहो व सुन्दरहो व सदा उज्ज्वल हो ॥ ७ ॥ और वह विश्वकर्मा गुरुके पुत्रसे आज्ञप्तहुये कि तुम मेरे अर्थ पादुकाओं (खड़ाऊं) को करो कि जिनमे चढ़ेहुये मेरे पावोंको कीचकहीं न छुवे ॥ ८ ॥ व जे कि चर्मादि बन्धनसे निर्मुक्त (हीन) व धावतेहुये मुझको सुख देनेवाली होवें और मैं जिनसे जलमें भी स्थलभूमिकी नाईं शीघ्रही भलीभांति चलाकरूं ॥ ९ ॥ और गुरुकी कन्याने उससे कहा कि हे त्वष्टाके पुत्र ! तुम अपने हाथसे मेरे कानों के योग्य व सोनेसे निर्मित भूषणोंको करो ॥ १० ॥ और अपने हाथोंसे बनायेहुये व हाथी दांतसे रचित व कौतुक उपजानेवाले कुमारीके खिलौनोंको भी मुझे दो ॥ ११ ॥ और हे बुद्धिमन् ! मूशल व कांड़ी आदि घरके उपकरण द्रव्यको वैसे बनावो कि जैसे कहीं नहीं टूटें फूटें ॥ १२ ॥ व हे सत्तम ! विना धोयेहुयेही पीढ़ा और थालियां जैसे नित्यही उजली होतीहैं वैसेही करो ॥ १३ ॥ और हे त्वष्टृनन्दन ! तुम दालि आदि रसोई कर्ममें भी मुझको बहुतही सिखावो कि जैसे हाथ नहीं जलैं व जैसे शुभ पाक होवे ॥ १४ ॥ और हे त्वाष्ट्र ! एक खम्भमय व एक काठसे बनाहुआ वैसा श्रेष्ठ घर बनावो कि जहां इच्छाहोवे वहां उसको धारणकरूं ॥ १५ ॥ व जे इस विश्वकर्माके साथ पढ़नेवाले अवस्थासे भी श्रेष्ठहैं वे सब भी उसके कियेही

पूजने योग्य है ॥ ८० ॥ और महापापों की शान्तिके लिये कामकुण्ड में स्नानकिये हुये लोगोंको भी कामेश्वर की पूजा करना चाहिये व जो पुण्यवान् इस कामेश्वर के आख्यान को पढ़ेगा और जो बुद्धिमान् सुनेगा वे दोनों निष्पाप होवेंगे ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदुर्वाससोवरप्रदानंनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ❀ ॥

दो० । छीयासी अध्यायमें विश्वकर्म तपमानि । विश्वकर्म ईश्वर सुखद उनका उद्भव जानि ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे देव देव ! जोकि विश्वकर्मेश्वर लिंग काशी में श्रेष्ठ प्रसिद्धहै उस लिंगकी भलीभांति उत्पत्तिको कहो ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! मैं पापनाशिनी कथाको बहुतही कहूंगा तुम विश्वकर्मेश्वरलिंगके मनोहर प्रकट होनेको सुनो ॥ २ ॥ कि पूर्वकालमें त्वष्टा प्रजापतिका पुत्र व सब कर्मोंमें कुशल व ब्रह्माकी दूसरी देहसा विश्वकर्माहुआ ॥ ३ ॥ वह कियेहुये यज्ञोपवीत कर्मवाला बालक अनन्तर गुरुकुलमें बसताहुआ व भिक्षान्न भोजी होकर गुरुवोंकी सेवा करताभया ॥ ४ ॥ एक समय वर्षाकालके भलीभांति आतेही उसके गुरुने कहा कि जैसे वर्षा नहीं बाधा करै वैसेही तुम मेरे अर्थ पर्णशालाबनाओ ॥ ५ ॥ जोकि कभी न टूटे व पुरानेभावको न प्राप्तहोवे और वह गुरु की स्त्री से कहागया कि हे त्वष्टाके

कामाभिलाषुकैः ॥ ८० ॥ कामकुण्डकृतस्नानैर्महापातकशान्तये ॥ इदङ्कामेश्वराख्यानंयःपठिष्यतिपुण्यवान् ॥ यःश्रोष्यतिचमेधावीतौनिष्पापौभविष्यतः ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदुर्वाससोवरप्रदानंनामपञ्चाशीतितमोध्यायः ॥ ८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पार्वत्युवाच ॥ विश्वकर्मेश्वरंलिङ्गंयत्काश्याम्प्रथितम्परम् ॥ तस्यालिङ्गस्यकथयदेवदेवसमुद्भवम् ॥ १ ॥ देवदेव उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामिकथाम्पातकनाशिनीम् ॥ विश्वकर्मेशलिङ्गस्यप्रादुर्भावंमनोहरम् ॥ २ ॥ विश्वकर्माभवत्पूर्वंब्रह्मणस्त्वपरातनुः ॥ त्वष्टुःप्रजापतेःपुत्रोनिपुणःसर्वकर्मसु ॥ ३ ॥ कृतोपनयनःसोथबालोगुरुकुलेवसन् ॥ चकारगुरुशुश्रूषांभिक्षान्नकृतभोजनः ॥ ४ ॥ एकदातद्गुरुःप्राहप्रावृट्कालेसमागते ॥ कुरूटजंमदर्थन्त्वंयथाप्रावृण्नबाधते ॥ ५ ॥ यत्कदाचिन्नभज्येतनपुरातनतांव्रजेत् ॥ गुरुपत्न्यात्वभिहितोरेत्वाष्ट्रकुरुकञ्चुकम् ॥ ६ ॥ ममाङ्गयोग्यंनोगा

सब कर्मकी वांछा करते हैं ॥ १६ ॥ हे पर्वतराजकुमारि ! वैसेहो इसभांति सबके आगे प्रतिज्ञाकर फिर बड़ी चिन्ता और डरसे पीडितहुआ वह वनके बीचमें पैठा ॥ १७ ॥ क्योंकि वह कुछ करने के लिये नहीं जानताहै और उसने सबके सामने प्रसिद्ध प्रतिज्ञा कियाथा कि मैं सब करूंगा ऐसा निश्चितहै ॥ १८ ॥ और क्या करूं कहां जाऊं कौनजन वनमें टिकेहुये मेरी बुद्धिकी भी सहायताको देवे और किसरक्षकको प्राप्तहोऊं ॥ १९ ॥ जो मनुष्य गुरु गुरुवानी और गुरुपुत्रके वचनको अंगीकारकर न सिद्ध करे वह मूढ़ नरकवासी होवे ॥ २० ॥ और गुरुकी सेवाही ब्रह्मचारियोंका मुख्यधर्म है इससे उनके वचनको न सिद्धकर मेरा उद्धार किसप्रकार होवेहै ॥ २१ ॥ व गुरु-

योज्येष्ठाश्चतेपिहि ॥ सर्वेसर्वसमीहन्तेकर्मतत्कृतमेवहि ॥ १६ ॥ तथेतिसप्रतिज्ञायसर्वेषाम्पुरतोद्विजे ॥ मध्येवनम्प्राविशच्चमहाचिन्ताभयार्दितः ॥१७॥ किञ्चित्कर्तुंनजानातिप्रतिज्ञातञ्चतेनवै ॥ सर्वेषाम्पुरतःसर्वंकरिष्यामीतिनिश्चितम् ॥ १८ ॥ किङ्करोमिक्वगच्छामिकोमेसाहाय्यमर्पयेत् ॥ बुद्धेरपिवनस्थस्यशरणङ्कंव्रजामिच ॥ १९ ॥ अङ्गीकृत्यगुरोर्वाक्यंगुरुपत्न्यागुरोःशिशोः ॥ योननिष्पादयेन्मूढःसभवेन्निरयीनरः ॥ २० ॥ गुरुशुश्रूषणन्धर्मएकोहिब्रह्मचारिणाम् ॥ अनिष्पाद्यतुतद्वाक्यंकथम्मेनिष्कृतिर्भवेत् ॥ २१ ॥ गुरूणांवाक्यकरणात्सर्वएवमनोरथाः ॥ सिद्ध्यन्तीतरथानैवतस्मात्कार्यंहितद्वचः ॥ २२ ॥ कथन्तद्वचसःसिद्धिंप्राप्स्याम्यत्रवनेस्थितः ॥ कश्चमेत्रसहायीस्याद्धिषणादुर्बलस्यवै ॥ २३ ॥ आस्तांगुरुकथादूरंयोऽन्यस्यापिलघोरपि ॥ ओमित्युक्त्वानकुरुतेकार्यंसोथव्रजत्यधः ॥ २४ ॥ कथमेतानिकर्माणिकरिष्येऽज्ञोऽसहायवान् ॥ अङ्गीकृतानितद्भीत्यानमस्तेभवितव्यते ॥ २५ ॥ यावदित्थंचिन्तयतिसत्वाष्ट्रोवनमध्यगः ॥ ता

ओंका वाक्य करने से सबही मनोरथ सिद्ध होतेहैं अन्यभांति से नहीं उससे उनका वचन करनाही चाहिये ॥ २२ ॥ और इस वनमे टिकाहुआ मैं उनके वचन की सिद्धिको कैसे प्राप्त होऊंगा व बुद्धिसे दुर्बल जो मैंहूं उसका यहां कौन सहायक भी होवे है ॥ २३ ॥ व गुरुवोंकी कथा तो दूररहै किन्तु अन्य छोटेके भी कार्य्यको अंगीकारकर जो नहीं करताहै वह अनन्तर नीचे (नरक) को जाताहै ॥ २४ ॥ और न सहायकवाला अज्ञानी मैं उनके डरसे अंगीकार किये हुये उन कर्मोंको कैसे करूंगा हे भवितव्यते ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ २५ ॥ इसभांति वनके मध्यगत वह त्वष्टाका पुत्र जबतक चिन्तना करताहै तबतक उसने उस समयमेंही संप्राप्तहुये

एक तपस्वी को देखा ॥ २६ ॥ अनन्तर उसने वनमें देखे तपस्वी को नमस्कारकर उससे कहा कि आप कौनहैं जो मेरे मनको बहुतही सुखित करतेहो यह आश्चर्य्य है ॥ २७ ॥ कि चिन्ता सन्ताप से तपाया हुआ भी मेरा शरीर हिमसमूह में पैठने की नाईं तुम्हारे दर्शन से क्षणमें शीतल होता है ॥ २८ ॥ क्या तुम तापसरूप धारी होकर प्राप्तहुआ मेरापुरातन कर्महो अथवा आप करुणासागर शिव प्रकटहुये हो ॥ २९ ॥ आप जोहो सोहो आपकेलिये नमस्कार है आप मुझ को उपदेश से युक्त कीजिये गुरुके कहे व गुरुकी स्त्रीके कहे तथा गुरुपुत्रके भी कहेहुये ॥ ३० ॥ अद्भुत कर्मको करने के लिये मैं कैसे समर्थ होऊं उसमें उपदेश करो और निर्जन वन में बन्धुभाव को प्राप्तहुये तुम मेरी बुद्धिकी सहायता करो ॥ ३१ ॥ इसभांति वनमें उस ब्रह्मचारी से कहेहुये उन तपस्वीने यथोक्त वचन का उपदेश दिया ॥ ३२ ॥ जोकि आप्तयाने यथार्थवक्ता के भाव से भलीभांति पूछाहुआ दुर्बुद्धि को देता है वह प्रलयतक घोर नरकको जाता है ॥ ३३ ॥ तपस्वी बोले कि हे ब्रह्मचारिन्! मैं कहताहूं तुम सुनो कि यह क्या बहुत अद्भुत है क्योंकि ब्रह्माजी भी श्रीविश्वनाथ की दयासे सृष्टि करने में पण्डित हुये हैं ॥ ३४ ॥ हे त्वाष्ट्र! जो तुम काशी में सर्वज्ञ विश्वेश्वर को पूजोगे तो तुम्हारा विश्वकर्म्मा ऐसा नाम सत्यहोगा ॥ ३५ ॥ व श्रीकाशीपुरी में विश्वनाथजी की दयासे कोई अभिलाषा दुर्लभ नहीं हैं

वत्तदैवसम्प्राप्तस्तेनैकोऽदर्शितापसः ॥ २६ ॥ अथनत्वासतम्प्राहवनेदृष्टन्तपस्विनम् ॥ कोभवान्मानसंमेयोनितरांसुखयत्यहो ॥ २७ ॥ त्वद्दर्शनेनमेगात्रंचिन्तासन्तापतापितम् ॥ हिमानीगाहनेनेवशीतलम्भवतिक्षणम् ॥ २८ ॥ किन्त्वंमेप्राक्तनङ्कर्मप्राप्तन्तापसरूपधृक् ॥ अथवाकरुणावार्धिराविर्भूतःशिवोभवान् ॥ २९ ॥ योसिसोसिनमस्तुभ्यमुपदेशेनयुङ्क्ष्वमाम् ॥ गुरूक्तंगुरुपत्न्युक्तंगुर्वपत्योक्तमेवच ॥ ३० ॥ कथङ्कर्तुमहंशक्तःकर्मतत्रादिशाद्भुतम् ॥ कुरुमेबुद्धिसाहाय्यंनिर्जनेबन्धुताङ्गतः ॥ ३१ ॥ इत्युक्तस्तेनसवनेतापसोब्रह्मचारिणा ॥ कारुण्यपूर्णहृदयोयथोक्तमुपदिष्टवान् ॥ ३२ ॥ यत्राप्तत्वेनसम्पृष्टोदुर्बुद्धिंसम्प्रयच्छति ॥ सयातिनरकङ्घोरंयावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३३ ॥ तापसउवाच ॥ ब्रह्मचारिन्शृणुब्रूयांकिमद्भुततरन्त्विदम् ॥ विश्वेशानुग्रहाद्ब्रह्माप्यभवत्सृष्टिकोविदः ॥ ३४ ॥ यदित्वन्त्वाष्ट्रसर्वज्ञंकाश्यामाराधयिष्यसि ॥ ततस्तेविश्वकर्मेतिनामसत्यम्भविष्यति ॥ ३५ ॥ विश्वेशानुग्रहात्काश्यामभिलाषानदुर्लभाः ॥ सुलभोदुर्लभोप्यत्रय

और इस जगत में दुर्लभभी मोक्ष जहां देहत्यागियों को सुलभ है ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी ने सृष्टिकरने की शक्ति व विष्णुजी ने सृष्टि रक्षाकी प्रवीणताको श्रीविश्वनाथजी के उत्तम अनुग्रह से पाया है ॥ ३७ ॥ हे बालक! जो तुम अपने मनोरथों की इच्छाकरो तो मुक्तिसञ्ज्ञक सम्पत्तिसे भलीभांति अधिकता से टिकेहुये श्रीविश्वनाथ जीके स्थानको जावो ॥ ३८ ॥ व प्रसिद्ध है कि उपमन्युमुनिसे दूधमात्र याचित, सबमनोरथदायक उन विश्वनायक शङ्करजी ने उनको सब क्षीरसमुद्रही देदिया ॥ ३९ ॥ व आनन्द वनमें शिवजी से किसको क्या क्या नहीं मिलता है जहां बासकरते हुये पुरुषोंको स्थान स्थान या क्षण क्षणमें धर्मोंकी राशिहै ॥ ४० ॥ व जहां गङ्गाजल के

त्रमोक्षस्तनुत्यजाम् ॥ ३६ ॥ सृष्टेःकरणसामर्थ्यंसृष्टिरक्षाप्रवीणता ॥ विधिनाविष्णुनाप्रापिविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ ३७ ॥ याहिवैश्वेश्वरंसद्मपद्मयासमधिष्ठितम् ॥ निर्वाणसञ्ज्ञयाबालयदीच्छेःस्वान्मनोरथान् ॥ ३८ ॥ सहिसर्वप्रदः शम्भुर्याचितश्चोपमन्युना ॥ पयोमात्रन्ददौतस्मैसर्वंक्षीराब्धिमेवच ॥ ३९ ॥ आनन्दकाननेशम्भोःकिङ्किङ्केननलभ्यते ॥ यत्रवासकृताम्पुंसांधर्मराशिःपदेपदे ॥ ४० ॥ स्वर्धुनीस्पर्शमात्रेणमहापातकसन्ततिः ॥ यत्रसंक्षयतिक्षिप्रंताङ्काशीङ्कोनसंश्रयेत् ॥ ४१ ॥ नताहृग्धर्मसम्भारोलभ्यतेक्रतुकोटिभिः ॥ याहृग्वाराणसीवीथीसञ्चारेणपदेपदे ॥ ४२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यत्रास्तिमनोरथः ॥ तदावाराणसींयाहियाहित्रैलोक्यपावनीम् ॥ ४३ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिस्तदैवस्याद्ध्रुवंनृणाम् ॥ यदैवसर्वदःसर्वःकाश्यांविश्वेश्वरःश्रितः ॥ ४४ ॥ सतापसोक्तमाकर्ण्यत्वाष्ट्रइत्थंसुहृष्टवान् ॥ काशीसम्प्राप्त्युपायंचतमेवसमपृच्छत ॥ ४५ ॥ त्वाष्ट्रउवाच ॥ तदानन्दवनंशम्भोःकास्तितापससत्तम ॥ यत्रनोदु

स्पर्शमात्र से महा महापापों की परम्परा शीघ्रही विनष्ट होती है उस काशीको कौन नहीं सेवे है ॥ ४१ ॥ व जैसा धर्मसमूह काशीकी गलियों में विचरने से पग पगमें मिलता है वैसाकरोड़ों यज्ञों से नहीं मिलै है ॥ ४२ ॥ व जो इसलोकमें धर्म अर्थ काम और मोक्षका मनोरथहै तो तुम त्रैलोक्य पावनी काशी पुरीको जावो जावो ॥ ४३ ॥ जबहीं काशी में सबदायक शिवजी सेवित हुये हैं तबहीं मनुष्यों के सब कामोंकी सिद्धि निश्चयसे होवै है ॥ ४४ ॥ इसप्रकार तपस्वीके कहेहुये वचनको सुनकर फिर बहुत आनन्दित उस त्वष्टाके पुत्रने काशी की सम्प्राप्ति के उपायको भलीभांति पूंछा ॥ ४५ ॥ विश्वकर्मा बोले कि हे तापस सत्तम! वह शङ्करजी का आनन्दवन

कहां है जहां त्रिलोकमें स्थितहुआ कुछभी साधकों का दुर्लभ नहीं है ॥ ४६ ॥ हे मुने ! जहां आनन्द लक्ष्मी है यह आनन्दवन स्वर्ग में है व मनुष्य लोकमें है व पातालमें है व कहाँ है ॥ ४७ ॥ व जहाँ सबके कर्णधरनेवाले गुरु या पारकर्त्ता विश्वेश्वर देव उस तारक ज्ञानको विशेषता से सब ओर से कहते हैं कि जिससे वे उनके स्वरूप भावको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ४८ ॥ व जहां आनन्दवन में विचरनेवाले को नियमसे मुक्ति सम्पत्तिभी सुलभहै और अन्य छोटे मनोरथ क्याहैं ॥ ४९ ॥ उसशम्भु पुरीको मुझे कौन पठावे व मैं कैसे जाऊं वैसेही तुम कहो ऐसे उसके श्रद्धा समेत वचन को सुनकर वह तपस्वी ॥ ५० ॥ उच्चस्वर से बोले कि तुम चलेआवो वहां

र्लभंकिञ्चित्साधकानान्त्रयीस्थितम् ॥ ४६ ॥ स्वर्गेवामर्त्यलोकेवाबलिसद्मनिवामुने ॥ क्वतदानन्दगहनंयत्रानन्दपयोब्धिजा ॥ ४७ ॥ यत्रविश्वेश्वरोदेवोविश्वेषांकर्णधारकः ॥ व्याचष्टेतारकंज्ञानंयेनतन्मयतांययुः ॥ ४८ ॥ सुलभायत्र नियतमानन्दवनचारिणः ॥ अपिनैःश्रेयसीलक्ष्मीःकिमन्येल्पमनोरथाः ॥ ४९ ॥ कस्तांमांप्रापयेच्छम्भोःकथंयामि तथावद ॥ सतपस्वीतितद्वाक्यमाकर्ण्यश्रद्धयान्वितम् ॥ ५० ॥ प्राहागच्छनयामित्वांधियासुरहमप्यहो ॥ दुर्लभम्प्राप्यमानुष्यंयदिकाशीनसेविता ॥ ५१ ॥ पुनःक्वनृत्वंश्रेयोभूःक्वकाशीकर्मबन्धहृत् ॥ वृथागतेहिमानुष्येकाशीप्राप्तिविवर्जनात् ॥ ५२ ॥ आयुष्यञ्चभविष्यञ्चसर्वमेववृथागतम् ॥ अतोहंसफलीकर्तुंमानुष्यञ्चातिचञ्चलम् ॥ ५३ ॥ यास्यामिकाशीमायाहिमायांहित्वात्वमप्यहो ॥ इतितेनसहत्वाष्ट्रोमुनिनातिकृपालुना ॥ ५४ ॥ पुरींवैश्वेश्वरीम्प्राप्तोमनः

जानेकी इच्छावाला मैंभी तुमको पहुँचाताहूं आश्चर्य्य या खेदहै कि दुर्लभ मनुष्य भावको प्राप्तहोकर जो काशी नहीं सेवित हुई ॥ ५१ ॥ तो फिर मनुष्यता कहां है और कल्याण की भूमि कर्म बन्धनहारिणी काशी कहांहै यानेबडा बीचहै व काशीकी प्राप्तिके विवर्जनसे ॥ ५२ ॥ मनुष्यताके वृथा बीतजातेही आयुष्य यानेसुलक्षण रूप हाथ व पावोंकी रेखादि और भविष्यत् फलका सूचक स्वयोग ग्रह तारादि सबही वृथागया व इससे मैं अत्यन्त चञ्चल मनुष्यभावको सफल करने के लिये ॥ ५३ ॥ काशीको जाऊंगा और अहो ब्रह्मचारिन् ! तुमभी मायाको छोड़कर आवो इसभांति अत्यन्त दयालु उन मुनिके साथ वह त्वष्टाके पुत्र ॥ ५४ ॥ श्रीविश्वनाथजी की पुरी

को गये और मनकी स्वस्थता को प्राप्तहुये तदनन्तर उस काशीको पहुँचाकर वह तपस्वी अतर्कित (असम्भवित) जैसे हो वैसे कहींगी ॥ ५५ ॥ चलेगये और हे अगस्त्यजी ! उस विश्वकर्माने ऐसामाना कि अवश्यकर वही विश्वेश्वरजी हैं जोकि सबके चिन्तित फलोंके बड़े दाता हैं ॥ ५६ ॥ व दूरस्थ भी सुमार्ग में स्थिरचित्त वृत्तिवालो के समीप गत हैं व त्रिनेत्र जी जिसमें निश्चय से प्रसन्न दृष्टिवाले हैं उस दूरवासी को भी आपही अपनी गलीका उपदेश करते हुये बहुतही निकटवासी करते हैं ॥ ५७ ॥ कहां उसवन में चिन्ता से व्याकुलित मनवाला मैं बालक और कहां वे तपस्वी जोकि अच्छा उपदेश कर मुझको यहांले आये हैं ॥ ५८ ॥ यहउन

स्वास्थ्यमवापच ॥ ततःप्रापय्यताङ्काशींतापसःक्वाप्यतर्कितम् ॥ ५५ ॥ जगामकुम्भसम्भूतसत्वाष्ट्रोपीत्यमन्यत ॥ अवश्यंसहिविश्वेशःसर्वेषांचिन्तितप्रदः ॥ ५६ ॥ सत्पथस्थिरवृत्तीनांदूरस्थोपिसमीपगः ॥ यस्मिन्प्रसन्नदृक्त्र्यक्षस्त न्दविष्ठमपिध्रुवम् ॥ सुनेदिष्ठङ्करोत्येवस्वयंवर्त्मोपदेशयन् ॥ ५७ ॥ क्वाहन्तत्रवनेबालश्चिन्ताकुलितमानसः ॥ क्वतापसः सयोमांवैसूपदिश्येहचानयत् ॥ ५८ ॥ खेलोयमस्यत्र्यक्षस्ययस्यभक्तस्यकुत्रचित् ॥ नदुर्लभतरङ्किञ्चिदहोकाहं क्वकाशिका ॥ ५९ ॥ नाराधितोमयाशम्भुःप्राक्तनेजन्मनिक्वचित् ॥ शरीरित्वानुमानेनज्ञातमेतदसंशयम् ॥ ६० ॥ अस्मिञ्जन्मनिबालत्वान्नचैवाराधितःस्फुटम् ॥ प्रत्यक्षमेवमेवैतत्कुतोनुग्रहधीर्मयि ॥ ६१ ॥ आज्ञातंगुरुभक्तिर्मेहे तुःशम्भुप्रसादने ॥ ययेहानुगृहीतोस्मिविश्वेशेनकृपालुना ॥ ६२ ॥ अथवाकारणापेक्षस्त्र्यक्षास्त्वितरदेववत् ॥ रङ्क

त्रिनेत्र शिवजी का खेलहै जिनके भक्तको कुछभी कहीं भी बहुत दुर्लभ नहीं है देखो कि कहां मैं और कहां काशी यह आश्चर्य्य है ॥ ५९ ॥ मुझसे पुरातन जन्म में कभी शम्भुजी नहीं पूजित हुये यह देहधारी होनेके अनुमान से निस्सन्देह जाना गयाहै ॥ ६० ॥ और वैसेही इस जन्मसें भी बालभाव से मैंने स्पष्टही पूजा नहीं किया यह प्रत्यक्षही है इस भांति शङ्करजी की अनुग्रह बुद्धि मुझमें क्यों हुई है ॥ ६१ ॥ स्मरण हुआ या सबओर से जाना कि मेरी गुरुभक्ति शम्भुकी प्रसन्नता में कारण है जिसके द्वारा मैं कृपालु विश्वनाथजी से अनुगृहीत हूं ॥ ६२ ॥ अथवा त्रिनेत्र शिवजी अन्यदेवों की नाईं क्या कारणकी अपेक्षावाले हैं जोकि निर्धन या दीन जनपर

भी अनुग्रह करते हैं उनकी कृपा केवल कारण है ॥ ६३ ॥ जो मुझमें शिवजी की दया नहीं है तो तपस्वी की सङ्गति कैसे हुई है और शङ्करजी आपही उन तपस्वीके या उम रूपसे निश्चयकर मुझको यहां लाये हैं ॥ ६४ ॥ व दाननहीं यज्ञ नहीं तप नहीं और व्रतभी शम्भुकी प्रसन्नता के कारण नहीं हैं किन्तु उनकी कृपाही कारण है ॥ ६५ ॥ और जब जन सन्तों से सेवित वेदोक्तमार्ग को न छोड़े तब वह विश्वेश्वर जी उत्तम दयाको भी करें ॥ ६६ ॥ इस भांति शङ्करजी की दयाका समर्थन कर शुद्धता समेत व स्वस्थमनवाले उस त्वाष्ट्रने महेशजी के लिङ्गको भलीभांति थापकर पूजा किया ॥ ६७ ॥ व कन्दमूल और फलोंको खाताहुआ वह ऋतुमें उपजे

मप्यनुगृह्णातिकेवलङ्कारणंकृपा ॥ ६३ ॥ यदिनोमय्यनुक्रोशःकथन्तापससङ्गतिः ॥ तद्रूपेणस्वयंशम्भुरानिनायेह मान्ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ नदानानिनवैयज्ञानतपांसिव्रतानिच ॥ शम्भोःप्रसादहेतूनिकारणन्तत्कृपैवहि ॥ ६५ ॥ दयामपितदाकुर्यादसौविश्वेश्वरःपराम् ॥ यदाश्रुत्युक्तमध्वानंसद्भिःक्षुण्णंनसन्त्यजेत् ॥ ६६ ॥ अनुक्रोशंसमर्थ्येतिसत्वाष्ट्रःशाम्भवंशुचिः ॥ संस्थाप्यलिङ्गमीशस्याराधयत्स्वस्थमानसः ॥ ६७ ॥ आनीयपुष्पसम्भारमार्तवंकाननाद्बहु ॥ स्नात्वाभ्यर्चयतीशानंकन्दमूलफलाशनः ॥ ६८ ॥ इत्थन्त्वष्टृतनूजस्यलिङ्गाराधनचेतसः ॥ त्रिहायनात्प्रसन्नोभूत्तस्येशःकरुणानिधिः ॥ ६९ ॥ तस्मादेवहिलिङ्गाच्चप्रादुर्भूयभवोऽब्रवीत् ॥ वरंवरयरेत्वाष्ट्रदृढभक्त्यानयातव ॥ ७० ॥ प्रसन्नोस्मिभृशम्बालगुर्वर्थकृतचेतसः ॥ गुरुणागुरुपत्न्याचगुर्वपत्यद्वयेनच ॥ ७१ ॥ यथार्थितन्तथाकर्तुंतेसामर्थ्यम्भविष्यति ॥७२॥ अन्यान्वरांश्चतेदद्यान्त्वाष्ट्रतुष्टस्त्वदर्चया॥ ताञ्शृणुष्वमहाभागलिङ्गस्यास्याद्भुतश्रियः॥७३॥ त्वंसुवर्णादि

हुये बहुतसे फूल समूहको वनसे लाकर फिर स्नानकर ईश्वरको सामने या सबओर से पूजता है ॥ ६८ ॥ ऐसे तीनदिन लिङ्गपूजा में मनलगाये हुये उस त्वष्टा के पुत्रसे करुणा निधान महेशानजी प्रसन्नहुये ॥ ६९ ॥ और ऐसे उसही लिङ्गसे प्रकट होकर जगत्कर्त्ता महादेवजी बोले कि रे त्वाष्ट्र ! तू वरको स्वीकारकर मैं तेरी इसदृढ भक्तिसे ॥ ७० ॥ गुरुके अर्थ में चित्तवाले से बहुतही प्रसन्नहूं और हे बालक ! गुरु व गुरुकी स्त्री व गुरुके दोनों लड़कों ने ॥ ७१ ॥ जैसे प्रार्थना किया (मांगा) है वैसे करने के लिये तेरी शक्ति होवेगी ॥ ७२ ॥ और हे महाभाग त्वाष्ट्र ! अद्भुत शोभावाले इस लिङ्गकी तेरी पूजासे तुष्टहुआ मैं तुझे अन्य वरोंको देताहूं उनको

सुनो ॥ ७३ ॥ कि तुम सुवर्णादि धातु व काठ व पत्थरभी व मणि व रत्न व फूलभी व वस्त्र ॥ ७४ ॥ कपूरादि सुगन्धवस्तु भी व जलभी व कन्दमूल और फल व द्रव्यभी व त्वचा ॥ ७५ ॥ और सब वस्तु समूहों के कर्मको करने के लिये बहुतही जानोगे व जहां जिस जिसकी रुचि घर और देवस्थानादिको में जैसे होवेगी ॥ ७६ ॥ यहां उस उसकी तुष्टिके लिये तुम उसी भांति करनेको बहुतही जानोगे व सब भूषणोंकी रचना सब रसोईके संस्कार ॥ ७७ ॥ अनन्तर सब शिल्पि कार्य्य व नृत्यगीत वाद्य विधान और सबको भी करने के लिये तुम दूसरे ब्रह्माकी नाईं जानोगे ॥ ७८ ॥ व अनेक भांतिके यन्त्र (बाजाओं के भेद) व अनेक प्रकार आयुधों के विधान व

धातूनांदारूणांदृषदामपि ॥ मणीनामपिरत्नानांपुष्पाणामपिवाससाम् ॥ ७४ ॥ कर्पूरादिसुगन्धीनांद्रव्याणामप्यपाम पि ॥ कन्दमूलफलानाञ्चद्रव्याणामपिचत्वचाम् ॥ ७५ ॥ सर्वेषांवस्तुजातानांकर्तुंकर्मप्रवेत्स्यसि ॥ यस्ययस्यरुचिर्य त्रसद्मदेवालयादिषु ॥ ७६ ॥ तस्यतस्येहतुष्ट्यैत्वंतथाकर्तुंप्रवेत्स्यसि ॥ सर्वनेपथ्यरचनाःसर्वाःसूपस्यसंस्कृतीः ॥ ७७ ॥ सर्वाणिशिल्पिकार्याणितौर्यत्रिकमथापिच ॥ सर्वंज्ञास्यसिकर्तुंत्वंद्वितीयइवपद्मभूः ॥ ७८ ॥ नानाविधानियन्त्राणिना नायुधविधानकम् ॥ जलाशयानांरचनाःसुदुर्गरचनास्तथा ॥ ७९ ॥ तादृक्कर्तुंपुरावेत्सियादृङ्नान्योऽधियास्यति ॥ कला जातंहिसर्वन्त्वमवयास्यसिमेवरात् ॥ ८० ॥ सर्वेन्द्रजालिकीविद्यात्वदधीनाभविष्यति ॥ सर्वकर्मसुकौशल्यंसर्वबुद्धि वरिष्ठताम् ॥ ८१ ॥ सर्वेषाञ्चमनोवृत्तिंत्वंज्ञास्यसिवरान्मम ॥ किम्बहूक्तेनयत्स्वर्गेयत्पातालेयदत्रच ॥ ८२ ॥ अतिलो कोत्तरंकर्मतत्सर्वंवेत्स्यसिस्वयम् ॥ ८३ ॥ विश्वेषांविश्वकर्माणिविश्वेषुभुवनेषुच ॥ यतोज्ञास्यसितन्नामविश्वकर्मेति

जलाशयों (कूप तड़ाग बावली आदि) की रचना वैसेही अच्छे कोटकी रचनाको ॥ ७९ ॥ करने के लिये तुम आगेही वैसा जानोगे कि जैसा अन्य नहीं जानेगा व तुम सभी कलासमूह को मेरे वरसे जानोगे ॥ ८० ॥ व सब इन्द्रजाल की विद्या तुम्हारे आधीन होवेगी व सबकर्मों में कुशलता सब बुद्धियों की बहुत श्रेष्ठता ॥ ८१ ॥ और सबोंके मनकी वृत्तिको तुम मेरे वरसे जानोगे व बहुत कहने से क्या है जो स्वर्गमें है जो पातालमें है और जो इस भूलोकमें है ॥ ८२ ॥ व जो त्रिलोकसे अतीत याने अलौकिक कर्म है उस सबको तुम आपही जानोगे ॥ ८३ ॥ और हे निष्पाप! जिससे तुम सबलोकों में सबोंके सब कर्मोंको जानोगे उससे विश्वकर्मा ऐसा तुम्हारा

नाम है ॥ ८४ ॥ अहो बालक ! अन्य कौनवर तुमको देने योग्य है उसको मांगो क्योंकि लिङ्गपूजा में प्रीतिवाले तुमको मुझसे कुछभी अदेय नहीं है ॥ ८५ ॥ व जो सुबुद्धिमान् अन्यत्रभी लिङ्गको भलीभांति पूजता है उसकाभी वाञ्छित फल देने योग्य है फिर जो विशेषता समेत काशी सम्बन्धी लिङ्गको पूजे उसका क्या कहना है ॥ ८६ ॥ जिसने काशी में भलीभाति लिंगकी पूजा किया व जिसने काशीमें लिंगकी प्रतिष्ठा किया व जिसने काशीमे लिंगकी स्तुति किया वह मेरे रूपके लिये दर्पण है याने उसमें मेरा रूप प्रकटहोता है ॥ ८७ ॥ हे सुव्रत, त्वाष्ट्र ! जिससे काशीमें मुझ त्रिनेत्रके लिंगकी पूजासे तुम स्वच्छ शीशाहो उस लिये वरको स्वीकार

तेऽनघ ॥ ८४ ॥ अपरःकोवरोदेयस्तवतम्प्रार्थयाश्वहो ॥ तवादेयंनमेकिञ्चिल्लिङ्गार्चनरतस्यहि ॥ ८५ ॥ अन्यत्रापिहि योलिङ्गंसमर्चयतिसन्मतिः ॥ तस्यापिवाञ्छितन्देयंकिम्पुनर्योविकाशिकम् ॥ ८६ ॥ येनकाश्यांसमभ्यर्चियेनकाश्यां प्रतिष्ठितम् ॥ येनकाश्यांस्तुतंलिङ्गंसमेरूपायदर्पणः ॥ ८७ ॥ तत्त्वंस्वच्छोसिमुकुरोममनेत्रत्रयस्यहि ॥ काश्यांलिङ्गा र्चनात्त्वाष्ट्रवरंवरयसुव्रत ॥ ८८ ॥ काश्यांयोराजधान्यांमेहित्वामामन्यमर्चयेत् ॥ सवराकोल्पधीर्मुष्टोऽल्पतुष्टिर्मुक्ति वर्जितः ॥ ८९ ॥ तदानन्दवनेह्यत्रसमर्च्योहंमुमुक्षुभिः ॥ द्रुहिणोपेन्द्रचन्द्रेन्द्रैरिहान्योनसमर्च्यते ॥ ९० ॥ यथानन्द वनम्प्राप्यत्वंमामर्चितवानसि ॥ तथान्येपुण्यकर्माणोमामभ्यर्च्यैवमासिताः ॥ ९१ ॥ अनुग्राह्योऽसिनितरान्ततोव रयदुर्लभम् ॥ श्राणितन्तद्वैहित्वंवदमाचिरयस्वभो ॥ ९२ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ इदंयत्स्थापितंलिङ्गंमयाज्ञेनापिशङ्क

करो ॥ ८८ ॥ जोकि मेरी राजधानी काशी में मुझसे अभेद दर्शनके होते भी मुझको छोंड़कर अन्यको पूजे है वह बापुरा थोड़ी बुद्धिवाला व थोड़ी तुष्टिवाला व चोरा हुआ व मोक्षसे वर्जित है ॥ ८९ ॥ उसरोही इस आनन्दवन में मैं मुक्तिचाहियों से भलीभांति पूजनीय हूं क्योंकि ब्रह्मा विष्णु चन्द्र और इन्द्रादि देवों से भी यहां अन्य कोई नहीं पूजाजाता है ॥ ९० ॥ जैसे आनन्दवन को प्राप्तहोकर तुम मुझको पूजे हो वैसेही अन्य पुण्यकर्मवाले लोग मुझको पूजकरही मुझको प्राप्तहुये हैं ॥ ९१ ॥ हे बालक ! तुम बहुतही दयाके योग्यहो उस लिये दुर्लभवरको अंगीकार करो व उसको दिया हुआ जानो बोलो बिलम्ब मतकरो ॥ ९२ ॥ विश्वकर्मा बोले कि

हे शङ्कर ! मुझ अज्ञानी से जो यह लिंग थापा गया है उस लिंग को पूजकर अन्य लोगभी अच्छे ज्ञान के पात्र होवें ॥ ९३ ॥ हे नाथ, भव (जगत् के कारण) ! अन्यके भी लिये प्रार्थना करने योग्यहो और उसको देवोगे कि आप कब मुझसे अपने मन्दिर के बनवानेहारे होवोगे ॥ ९४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि तुमने जो कहा वह ऐसेही हो कि तुम्हारे थापेहुये लिंगके सम्पूजक जन निश्चय से अच्छी बुद्धिके भाजन होवें और मुक्तिके लिये दीक्षित होवें ॥ ९५ ॥ और हे तात ! जब ब्रह्माके वरसे दिवोदासराजा होवेगा तब तुम मेरे वचन से मेरे मन्दिर को बनावोगे ॥ ९६ ॥ व गणेशकी मायासे राज्यसे सर्वत्र विरक्त चित्तवाले उस राजासे फिर

र ॥ तल्लिङ्गमन्येप्याराध्यसन्तुसद्बुद्धिभाजनाः ॥ ९३ ॥ अन्यच्चनाथप्रार्थ्योसितच्चविश्राणयिष्यसि ॥ भवान्मयावि निर्मापयितास्वम्प्रासादङ्कदाभव ॥ ९४ ॥ देवदेवउवाच ॥ एवमस्तुयदुक्तन्तेतवलिङ्गसमर्चकाः ॥ सद्बुद्धिभाजनावै स्युःस्युश्चनिर्वाणदीक्षिताः ॥ ९५ ॥ यदाचराजाभवितादिवोदासोविधेर्वरात् ॥ तदामेवचनात्तातप्रासादम्मेविधास्य ति ॥ ९६ ॥ नवीकृत्यपुनःकाशींनिर्विष्टातेनभूभुजा ॥ गणेशमाययाराज्यात्परिनिर्विण्णचेतसा ॥ ९७ ॥ विष्णोःसदु पदेशाच्चामामेवशरणङ्गतः ॥ निर्वाणलक्ष्मीःप्राप्तेहहित्वाराज्यश्रियञ्चलाम् ॥ ९८ ॥ विश्वकर्मन्व्रजगुरोःशासनायय तस्वच ॥ गुरुभक्तिकृतोयस्मान्मद्भक्तानात्रसंशयः ॥ ९९ ॥ येगुरुञ्चावमन्यन्तेतेऽवमान्यामयाप्यहो ॥ तस्माद्गुरू पदिष्टंहिकुरुशिष्यसमीहितम् ॥ १०० ॥ ततआगत्यमेपार्श्वेयावन्निर्वाणमेष्यसि ॥ तावत्स्थास्यसिशुद्धात्मादेवानांहि तमाचरन् ॥ १ ॥ तवात्रलिङ्गेसततंस्थास्याम्यहमभीष्टदः ॥ अस्यलिङ्गस्यभक्तानांनिर्वाणश्रीरदूरतः ॥ २ ॥ अङ्गारेशाद्दु

नवीन होकर काशी पुरी बसाई जावेगी ॥ ९७ ॥ और विष्णुजी के अच्छे उपदेश से चञ्चल राज्य लक्ष्मी को छोंड़कर मेरे शरणागत होवेगा व उसको यहां मोक्षल-क्ष्मी प्राप्तहोवेगी ॥ ९८ ॥ हे विश्वकर्मन् ! अबतुम जावो और गुरुके आयसुके लिये यत्नकरो जिससे गुरुकी भक्तिकर्त्ता लोग मेरे भक्तहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९९ ॥ खेदहै कि जे गुरुका अपमान करते हैं वे मुझसे भी अनादर करने के योग्य हैं उससे तुम गुरुके उपदेशे याने कहेहुये शिष्यों के योग्य वाञ्छित या व्यापार को करो ॥ १०० ॥ तदनन्तर मेरे पास आकर जबतक मोक्षको प्राप्त होवोगे तबतक देवों के हितको करते हुये शुद्धात्मा तुम टिकोगे ॥ १ ॥ व भक्तों का अभीष्ट

० पु०
४६७

दाता मैं तुम्हारे इस लिंगमें निरन्तर टिकूंगा और इस लिंगके भक्तोंको मुक्तिलक्ष्मी निकटमेंही है ॥ २ ॥ अंगारेश्वरसे उत्तरमें जे तुम्हारे लिंगके पूजक हैं उनके मनोरथोंकी प्राप्ति क्षण क्षण या स्थान स्थान में होवेगी ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर महादेवजी अन्तर्धान हुये और वह त्वष्टाका पुत्र भी गुरुके घरको आया व गुरुका बहुत वाञ्छित कर फिर अपने घरों की ओर चलागया ॥ ४ ॥ व घर में भी अपने कर्म से माता और पिताको सन्तुष्टकर व उनकी कही आज्ञा को भलीभांति सबओर से धारणकर फिर काशीपुरीको आये ॥ ५ ॥ और सब देवोंका प्यार करतेहुये व अपने थापे लिंगकी पूजामें आसक्त बुद्धिमान् त्वष्टाके पुत्र विश्वकर्माजी आजभी काशीको

दीच्यांयेत्वल्लिङ्गस्यसमर्चकाः ॥ तेषांमनोरथावाप्तिर्भविष्यतिपदेपदे ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्त्वाष्ट्रोपिगुरुमाप्तवान् ॥ गुरोःसमीहितंभूरिविधायसगृहान्ययौ ॥ ४ ॥ गृहेपिमातापितरौसन्तोष्यनिजकर्मणा ॥ तदुक्ताज्ञांसमाधायपुनः काशींसमाययौ ॥ ५ ॥ स्वलिङ्गाराधनासक्तोनाद्यापित्वष्टृनन्दनः ॥ काशीन्त्यजतिमेधावीसर्वदैवप्रियङ्करन् ॥ ६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ पृष्टानियानिलिङ्गानित्वयादेविगिरीन्द्रजे ॥ काशीमुक्तौसमर्थानितान्युक्तानिमयातव ॥ ७ ॥ लिङ्गमोङ्कारसञ्ज्ञञ्चतथादेवंत्रिविष्टपम् ॥ महादेवःकृत्तिवासारत्नेशश्चन्द्रसंज्ञकः ॥ ८ ॥ केदारश्चापिधर्मेशस्तथावीरेश्वराभिधः ॥ कामेशविश्वकर्मेशौमणिकर्णीश्वरस्तथा ॥ ९ ॥ ममाच्र्यमविमुक्ताख्यंततोदेविममाख्यकम् ॥ विश्वनाथेतिविश्वस्मिन्प्रथितंविश्वसौख्यदम् ॥ १० ॥ अविमुक्तंसमासाद्ययेनविश्वेश्वरोर्चितः ॥ नतस्यास्तिपुनर्जन्मकल्पकोटि

नहीं त्यागते हैं ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पर्वतेन्द्र कुमारि देवि! काशीमें मुक्ति देनेको समर्थ जिन लिंगों को तुमने पूछा उनको मैंने तुमसे कहा ॥ ७ ॥ ॐकार सञ्ज्ञक लिंग व त्रिलोचन देव व महादेवेश्वर व कृत्तिवासेश्वर व रत्नेश्वर व चन्द्र सञ्ज्ञक (चन्द्रेश्वर) ॥ ८ ॥ व केदारेश्वर भी व धर्मेश्वर तथा वीरेश्वर नामक व कामेश्वर व विश्वकर्मेश्वर वैसेही मणिकर्णिकेश्वर ॥ ९ ॥ और हे देवि! अविमुक्त नामक मेरा लिंग पूजनीय है तदनन्तर सब जगत्को सुखदायक व मेरे नामवाला लिंग लोकमें विश्वनाथ ऐसा प्रसिद्ध है ॥ १० ॥ और अविमुक्त याने काशी क्षेत्रमें प्राप्तहोकर जिराने विश्वेश्वर की पूजा किया उसका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें

भी फिर जन्म नहींहै ॥११॥ और मनको भलीभांति रोंकेहुये यतियों याने संन्यासियों का आठमास विचरना होवे है व वर्षाके चौमासा में एकत्र बसना है और एक वर्षतक एकस्थानमें आवास कहीं नहीं इच्छाकिया जाताहै ॥ १२ ॥ परन्तु अविमुक्त क्षेत्रमें पैठेहुये संन्यासियोंका भी विचरना नहीं युक्तहोता है क्योंकि यहां संशय से हीन मोक्षभी है उस लिये काशी कभी त्यागने योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ व जिससे यहां मेरे आश्रय या सेवनसे तपस्या व योग और मुक्तिभी है इस से आनन्दवन (काशी) छोंडकर अन्य तपोवन को न जावे ॥ १४ ॥ और सब जन्तुओं की कृपा से मैंने इस क्षेत्रको किया है इस लिये सिद्धियों की आकांक्षावाले लोग इसमें अवश्य

शतेष्वपि ॥ ११ ॥ अष्टौमासान्विहारःस्याद्यतीनांसंयतात्मनाम् ॥ एकत्रचतुरोमासानब्दंनावासइष्यते ॥ १२ ॥ अविमुक्तेप्रविष्टानांविहारोनैवयुज्यते ॥ मोक्षोप्यसंशयश्चात्रतस्मात्त्याज्यानकाशिका ॥ १३ ॥ आनन्दकाननंहित्वा नान्यद्गच्छेत्तपोवनम् ॥ तपोयोगश्चमोक्षश्चयतोत्रैवमदाश्रयात् ॥ १४ ॥ कृपयासर्वजन्तूनांक्षेत्रमेतन्मयाकृतम् ॥ अवश्यमेवसिद्ध्यन्तिक्षेत्रेस्मिन्सिद्धिकांक्षिणः ॥ १५ ॥ अतीतंवर्तमानंचज्ञानतोऽज्ञानतःकृतम् ॥ यदेनस्तत्क्षयंयायादानन्दवनवीक्षणात् ॥ १६ ॥ अत्युग्रैश्चतपोभिर्यन्महादानैर्महाव्रतैः ॥ नियमैश्चयमैःसम्यक्स्वयोगेनमहामखैः ॥ १७ ॥ वेदान्तशास्त्राभ्यसनैःसर्वोपनिषदाश्रयात् ॥ एभिर्वैयदवाप्येतेतत्काश्यांहेलयाप्यते ॥ १८ ॥ कर्मसूत्रेणबद्धावैभ्राम्यन्तेतावदेवहि ॥ यावद्वैश्वेश्वरेधाम्निममनैवतनुत्यजः ॥ १९ ॥ काश्यांस्वलीलयादेवितिर्यग्योनिजुषामपि ॥ ददामिचान्तेतत्स्थानंयत्रयान्तिनयाज्ञिकाः ॥ २० ॥ भूतग्रामोऽखिलोप्यत्रमुक्तिक्षेत्रेकृतालयः ॥ कालेननिधनंयातोयात्येवप

ही सिद्ध होते हैं ॥ १५ ॥ जोकि ज्ञान व अज्ञान से कियाहुआ पाप होगया व वर्तमानहै वह आनन्दवन के दर्शनसे विनाशको प्राप्तहोजावे है ॥ १६ ॥ और अतिउग्र तपस्या, महादान, महायज्ञ, नियम, यम और अच्छे अध्यात्म योगसे जो होता है ॥१७॥ और सब उपनिषदों की सेवा व वेदान्त शास्त्रका अभ्यास इन सबोंसे जो प्राप्तहोवे है वह काशी में सहजही मिलता है ॥ १८ ॥ व कर्म सूत्रसे बांधेहुये लोग तबतकही भ्रमाये जाते हैं कि जबतक मेरे विश्वनाथ सम्बन्धी स्थानमें याने काशीपुरी में देहत्यागी नहीं हैं ॥ १९ ॥ और हे देवि ! मैं काशी में तिर्य्यग्योनि सेवी पशु पक्षियों कोभी अन्त में उस स्थान को देताहूं कि जहां यज्ञकर्त्ता भी नहीं जाते हैं ॥ २० ॥

व इस मुक्तिक्षेत्र में घर करनेवाला सम्पूर्ण जन्तुसमूह कालसे मरणको प्राप्तहुआ उत्तम गति (मोक्ष) कोही प्राप्तहोजाता है ॥ २१ ॥ व विषयो में आसक्त चित्तवाला भी और धर्मकी प्रीतिका त्यागी भी कालसे यहां देहको त्यागताहुआ फिर संसार में नहीं पैठे है ॥ २२ ॥ हे देवि ! माघमास के उषःकालमें प्रयागके स्नान से जो फल है वह फल काशी में क्षणक्षणपर कोटि गुनाहै ॥ २३ ॥ इस क्षेत्रकी कोई भी महिमा वचन के अगोचर है परन्तु मैंने तुम्हारी प्रीतिकी कामनासे उद्देश मात्र कहा है ॥ २४ ॥ पूर्वोक्त चौदह लिंगों के आख्यानों को सुनकर सत्तमनर चौदह लोकों में अधिक उत्तम पूजाको पावेगा ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धे

रमाङ्गतिम् ॥ २१ ॥ विषयासक्तचित्तोपित्यक्तधर्मरतिस्त्वपि ॥ कालेनोज्झितदेहोऽत्रनसंसारंपुनर्विशेत् ॥ २२ ॥ प्रयागेयत्फलंदेविमाघेचोषसिमज्जनात ॥ तत्फलंकोटिगुणितंवाराणस्यांक्षणेक्षणे ॥ २३ ॥ अस्यक्षेत्रस्यमहिमाकोपिवाचामगोचरः ॥ उद्देशमात्रमाख्यातिमयातेप्रीतिकाम्यया ॥ २४ ॥ चतुर्दशानांलिङ्गानांश्रुत्वाख्यानानिसत्तमः ॥ चतुर्दशसुलोकेषुपूजाम्प्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेविश्वकर्मेशप्रादुर्भावोनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ सर्वज्ञसूनोषड्वक्त्रसर्वार्थकुशलप्रभो ॥ प्रादुर्भावंनिशम्यैषांलिङ्गानांमुक्तिदायिनाम् ॥ १ ॥ नितराम्परितृप्तोस्मिसुधाम्पीत्वेवनिर्जरः ॥ ॐकारप्रमुखैर्लिङ्गैरिदमानन्दकाननम् ॥ २ ॥ आनन्दमेवजनयेदपिपापजुषामिह ॥ परानन्दमहंप्राप्तः श्रुत्वैतल्लिङ्गकीर्तनम् ॥ ३ ॥ जीवन्मुक्तइवास्मिक्षेत्रतत्त्वश्रुतेरहम् ॥ स्कन्दक्षेश्वरादीनिलिङ्गा

सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेविश्वकर्मेशप्रादुर्भावोनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । सत्तासी अध्याय में श्रीदक्षेश प्रसंग । दक्षयज्ञ वर्णन बहुरि विरचननानारंग ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे सर्वज्ञके पुत्र, सर्वार्थ कुशल, स्वामिन्, षण्मुख ! इन मुक्तिदाता लिंगोंका प्रकट होना सुनकर ॥ १ ॥ मैं अमृतको पीकर देवोंकी नाईं बहुतही परितृप्तहूं और यह आनन्दवन ॐकारेश्वरादि लिगो के द्वारा ॥ २ ॥ पाप सेवियों के भी आनन्दको यहां उपजावे है व इस लिंगके कीर्त्तनको सुनकर मैं परम आनन्द को प्राप्तहूं ॥ ३ ॥ व क्षेत्रका तत्त्व सुनने मे जीवन्मुक्त के समानही हुआहूं

और हे कार्त्तिकेयजी ! जोकि दक्षेश्वरादि आठ व ॐकारेश्वरादि या शैलेश्वरादि चौदह लिंग यहां पहले कहेगये हैं उन सबोंके प्रभावको तुम भलीभांति कहो ॥ ४ ॥ और यह अद्भुत है कि जिन दक्षने देवोंकी सभाके बीचमें समर्थ शिवजी की निन्दा किया था उन्हों ने ईश्वर के लिंगकी प्रतिष्ठा कियाहै ॥ ५ ॥ हे सूत ! इसप्रकार अगस्त्यजी के कहेहुये वचनको सुनकर मयूर वाहन ने दक्षेश्वर की समुत्पत्तिको कहा ॥ ६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने ! मैं पापनाशिनी कथाको कहताहूं तुम सुनो कि पुरश्चरण याने पापोद्धार के चाही दक्षजी काशीपुरी को भलीभांति आये थे ॥ ७ ॥ जोकि छागमुखवारे, कुरूपमुख व दधीचिसे धिक्कारे व प्रायश्चित्त करने के

नीहचतुर्दश ॥ यान्युक्तानिसमाचक्ष्वतत्प्रभावमशेषतः ॥ ४ ॥ योदक्षोगर्हयामासमध्येदेवसभंविभुम् ॥ सकथंलिङ्गमीशस्यप्रत्यस्थापयदद्भुतम् ॥ ५ ॥ इतिश्रुत्वाशिखिरथःकुम्भयोनेरुदीरितम् ॥ सूतसंकथयामासदक्षेश्वरसमुद्भवम् ॥ ६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयमुनेवच्मिकथांकल्मषहारिणीम् ॥ पुरश्चरणकामोसौदक्षःकाशींसमाययौ ॥ ७ ॥ छागवक्रोविरूपास्योदधीचिपरिधिक्कृतः ॥ प्रायश्चित्तविधानार्थंसूपदिष्टःस्वयंभुवा ॥ ८ ॥ एकदादेवदेवस्यसेवार्थंशशिमौलिनः ॥ कैलासमगमद्विष्णुःपद्मयोनिपुरस्कृतः ॥ ९ ॥ इन्द्रादयोलोकपालाविश्वेदेवामरुद्गणाः ॥ आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याविद्याधरोरगाः ॥ १० ॥ ऋषयोऽप्सरसोयक्षागन्धर्वाःसिद्धचारणाः ॥ तैर्नतोदेवदेवेशःपरिहृष्टतनूरुहैः ॥ ११ ॥ स्तुतश्चनानास्तुतिभिश्शम्भुनाकृतादराः ॥ विविशुश्चासनश्रेण्यान्तन्मुखासक्तदृष्टयः ॥ १२ ॥ अथतेषूपविष्टेषुशम्भुनावि

अर्थ ब्रह्माजी से बहुतही उपदेशे गये थे ॥ ८ ॥ एक समय ब्रह्माजी को आगे किये हुये विष्णुजी देवोंकेदेव चन्द्रभालकी सेवाके अर्थ कैलास को भलीभांति गये ॥९॥ व इन्द्रादि लोकपाल, विश्वेदेव, मरुद्गण, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विद्याधर, उरग ॥१०॥ ऋषि, अप्सरायें, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और चारण जोकि सब ओर से आनन्दित उठे रोमोंवाले हैं उन से देवों के देव श्रीमहादेवजी प्रणाम किये गये ॥ ११ ॥ और अनेकप्रकारकी स्तुतियोंसे प्रशंसित हुये और शङ्कर से भी किये आदरवाले व उनके मुखमें दृष्टि लगायेहुये वे सबदेव आसनों की पंक्तिमें बैठे थे ॥ १२ ॥ अनन्तर जब वे सब बैठगये तब शंकरजी करके हाथ छूने से मानवाले विष्णुजी बड़े

आदर से पूंछे जातेभये ॥ १३ ॥ कि हे दैत्यवंशदहनेकोदावानल, श्रीवत्सलांछन, हरे ! क्या त्रिलोकको पालने के लिये तुह्मारी शक्ति अकुंठित है ॥ १४ ॥ व क्या संग्राम आंगन में दुष्ट दैत्य और दानवो को सिखातेहो व क्रुद्धभी ब्राह्मणोंको मेरी नाईं मानतेहो ॥ १५ ॥ और क्या भूतल में गौवें बाधासे हीन हैं व अच्छीशोभावाली स्त्रियां भी पतिव्रतमें परायणहैं ॥ १६ ॥ व बहुत दक्षिणायुक्त, विधिपूर्वक यज्ञ भूमिमें प्रवर्तमान हैं और क्या तपस्वियों का तप निरंतर सब ओरसे पीड़ाहीन है ॥ १७ ॥ हे केशव ! क्या ब्राह्मणलोग अंगोंसमेत वेदोंको निर्विघ्न पढ़ते व भूपाल (क्षत्रिय) तुह्मारीनाईं प्रजाओंको पालते हैं ॥ १८ ॥ और अधिक आनन्दित इंद्रिय व अन्तःक-

ष्टरश्रवाः ॥ कृतहस्तपरिस्पर्शमानःपृष्टोमहादरम् ॥ १३ ॥ श्रीवत्सलाञ्छनहरेदैत्यवंशदवानल ॥ कच्चित्पालयितुंश क्तिस्त्रिलोकीमस्त्यकुण्ठिता ॥ १४ ॥ दितिजान्दनुजान्दुष्टान्कच्चिच्छास्सिरणाङ्गणे ॥ अपिक्रुद्धान्महीदेवान्मामिवप्रति मन्यसे ॥ १५ ॥ बाधयारहितागावःकच्चित्सन्तिमहीतले ॥ स्त्रियःसन्तिहिसुश्रीकाःपतिव्रतपरायणाः ॥ १६ ॥ विधियज्ञाःप्रव र्तन्तेपृथिव्यांबहुदक्षिणाः ॥ निराबाधन्तपःकच्चिदस्तिशश्वत्तपस्विनाम् ॥ १७ ॥ निष्प्रत्यूहंपठन्त्येवसाङ्गान्वेदान्द्विजो त्तमाः ॥ महीपालाःप्रजाःकच्चित्पान्तित्वामिवकेशव ॥ १८ ॥ स्वेषुस्वेषुचधर्मेषुकच्चिद्वर्णाश्रमास्तथा ॥ निष्ठावन्तोहिति ष्ठन्तिप्रहृष्टेन्द्रियमानसाः ॥ १९ ॥ धूर्जटिःपरिपृच्छ्येतिहृष्टंवैकुण्ठनायकम् ॥ ब्रह्माणञ्चापिपप्रच्छब्राह्मन्तेजःसमेध ते ॥ २० ॥ सत्यमस्खलितंकच्चिदस्तित्रैलोक्यमण्डपे ॥ तीर्थावरोधोनकापिकेनचित्क्रियतेविधे ॥ २१ ॥ इन्द्रादयःसुराः कच्चित्स्वेषुस्वेषुपुरेष्वहो ॥ राज्यंप्रशासतिस्वस्थाःकृष्णदोर्दण्डपालिताः ॥ २२ ॥ प्रत्येकम्परिपृच्छ्येशःसर्वानित्थं

रणवाले भक्तिमान् वर्ण तथा आश्रम क्या अपने अपनेधर्मों में टिकते हैं ॥ १९ ॥ इसभांति महादेवजीने हर्षयुक्त वैकुंठनायक को पूंछकर फिर ब्रह्माजीको भी पूछा कि क्या वेदपाठका या ब्राह्मण सम्बन्धी तेजभलीभांति बढ़ताहै ॥ २० ॥ हे विधातः ! क्या त्रैलोक्य मंडपमें अखंडित या अच्युत सत्यहै व किसी से कहीं भी तीर्थोंका रोंकतो नहीं कियाजाताहै ॥ २१ ॥ और विष्णुके भुजदंडों से पालित, स्वस्थ, इन्द्रादिदेव क्या अपने अपने पुरों (लोकों) में राज्यकी रक्षाकरते हैं ॥ २२ ॥ ऐसे प्रत्येक

आदर कियेहुये सबको सब ओरसे पूछकर व आने के कार्य्यको पूछकर और उनके मनोरथोंको पूर्णकर महेशजीने ॥२३॥ उनसबोंको बिदाकिया व अनन्तर क्रीड़ाकारी महादेवजी चूनासे पोते उजले महल में पैठगये तदनन्तर अपने घरो में हर्षयुक्त देवोंके चलेजातेही ॥ २४ ॥ तब सतीके पिता दक्षजी बीचगली में चिन्तासमेत हुये क्योंकि उन्हों ने अन्य देवोंके समान मानको पायाथा और अधिक आदरको नहीं पाया ॥ २५ ॥ इस लिये मन्दराचल के मथने से समुद्रकी नाईं अत्यन्त सञ्चलित चित्त व बड़े क्रोधसे अन्धदृष्टि होगये और मनमें इस वचन को कहने लगे ॥ २६ ॥ कि मेरी सती कन्या को पाकर शिव अतीव गर्वित होगये हैं बहुधा यह किसी के

कृतादरान् ॥ पृष्ट्वागमनकार्यञ्चतेषांकृत्वामनोरथान् ॥ २३ ॥ विससर्जाथतान्सर्वान्देवःसौधंसमाविशत् ॥ गतेष्वथ चदेवेषुस्वस्वधिष्ण्येषुहृष्टवत् ॥ २४ ॥ मध्येमार्गेसचिन्तोभूद्दक्षःसत्याःपितातदा ॥ अन्यदेवसमानं स मानंप्रापनचाधिकम् ॥ २५ ॥ अतीवक्षुब्धचित्तोभून्मन्दराघाततोऽब्धिवत् ॥ उवाचचमनस्येतन्महाक्रोधरयान्धदृक् ॥ २६ ॥ अतीवगर्वितोजातः सतींमेप्राप्यकन्यकाम् ॥ कस्याचिन्नाप्यसौप्रायोनकोस्यापिकचित्पुनः ॥ २७ ॥ किंवंश्यस्त्वेषकिङ्गोत्रःकिंदेशीयःकिमात्मकः ॥ किंवृत्तिःकिंसमाचारोविषादीवृषवाहनः ॥ २८ ॥ नप्रायशस्तपस्व्येषक्वतपःक्वास्त्रधारणम् ॥ नगृहस्थेषुगण्योसौश्मशाननिलयोयतः ॥२९॥ असौनब्रह्मचारीस्यात्कृतपाणिग्रहस्थितिः ॥ वानप्रस्थ्यंकुतश्चास्मिन्नैश्वर्यमदमोहिते ॥ ३० ॥ नब्राह्मणोभवत्येषयतोवेदोनवेत्त्यमुम् ॥ शस्त्रास्त्रधारणात्प्रायःक्षत्रियःस्यान्नसोप्यय

भी नहीं हैं और उनका भी कहीं कोई नहीं है ॥ २७ ॥ व यह विषभोजी वृषवाहन किस वंशके किस गोत्रके और किस देशकेहैं व इनका क्या स्वरूप क्या वृत्ति और क्या समाचार है याने इनके यह कुछभी नहीं है ॥ २८ ॥ व प्रायः यह तपस्वी भी नहीं हैं क्योंकि कहां तपस्या और कहां अस्त्रोंका धारण करना बड़ाबीच है व जिस से यह श्मशानवासी हैं उससे गृहस्थों में गनने योग्य नहीं हैं ॥ २९ ॥ व कियेहुये ब्याहसे स्थितिवाले यह ब्रह्मचारी नहीं होवे हैं और ऐश्वर्य्य के मदसे मोहित हुये इनमें वानप्रस्थ भाव कैसे होसक्ता है ॥ ३० ॥ व जिस से इनको वेदनहीं जानते हैं उससे यह ब्राह्मण नहीं हैं व बहुधा शस्त्रास्त्र धारने से क्षत्रिय होवे है यह वहभी

नहीं हैं ॥ ३१ ॥ क्योंकि क्षतसे भलीभांति रक्षाकरने से क्षत्र (क्षत्रियजाति) है वह प्रलयके प्यार करनेवाले इनमें कहां हैं व यह वैश्यभी नहीं हैं जिससे सदा निर्धन व्यापारवाले हैं ॥३२॥ व यह नाग यज्ञोपवीतवान् हैं इससे प्रायः शूद्रभी नही होवै हैं इसप्रकार वर्ण और आश्रमों से विगत हुये या उनसे परे यह कौन हैं जोकि भली भांति नहीं कहेजाते हैं याने कहने में नहीं आते हैं ॥३३॥ क्योंकि सब कोई प्रकृति से जाना जावे है और यह स्थाणु याने अचल ठूँठके समान शिव प्रकृति (माया) से हीन हैं जिससे यह आधी स्त्री देहवाले हैं इससे बहुधा पुरुष नहीं हैं ॥ ३४ ॥ व जिससे यह दढ़ीलेमुखवाले हैं इससे स्त्रीभी नहीं होवेहैं व जिससे इनका लिंगपूजा

म् ॥ ३१ ॥ क्षतात्सन्त्राणनात्क्षत्रन्तत्कास्मिन्प्रलयप्रिये ॥ वैश्योपिनभवेदेषसदानिर्धनचेष्टनः ॥ ३२ ॥ शूद्रोपिनभवे त्प्रायोनागयज्ञोपवीतवान् ॥ एवंवर्णाश्रमातीतःकोसौसम्यङ्क्कीर्त्यते ॥ ३३ ॥ सर्वःप्रकृत्याज्ञायेतस्थाणुःप्रकृतिवर्जि तः ॥ प्रायशःपुरुषोनासावर्धनारीवपुर्यतः ॥ ३४ ॥ योषापिनभवेदेषयतोसौश्मश्रुलाननः ॥ नपुंसकोपिनभवेल्लिङ्गम स्ययतोर्च्यते ॥ ३५ ॥ बालोपिनभवत्येषयतोऽयंबहुवार्षिकः ॥ अनादिवृद्धोलोकेषुगीयतेचोग्रएषयत् ॥ ३६ ॥ अतो युवत्वंसंभाव्यंनात्रनूनञ्चिरन्तने ॥ वृद्धोऽपिनभवत्येषजरामरणवर्जितः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मादीन्संहरेत्प्रान्तेतथापिचनपा तकी ॥ पुण्यलेशोपिनास्त्यस्मिन्ब्रह्ममौलिच्छिदिक्रुधा ॥ ३८ ॥ अस्थिनेपथ्यवतिचकशुचित्वंविवाससि ॥ किंबहूक्ते ननोकिञ्चिज्ज्ञायतेऽस्यविचेष्टितम् ॥ ३९ ॥ अहोधाष्टर्यमहद्दृष्टञ्जटिलस्याद्यचाद्भुतम् ॥ यदासनान्नोत्थितोसौदृ

जाता है उससे नपुंसक भी नहीं होवेहैं ॥ ३५ ॥ व जिससे यह बहुत वर्षोंके हैं इससे बालक भी नहीं होसकते हैं और जिस से यह उग्रलोकों में अनादि वृद्ध गायेजाते हैं ॥३६॥अतः बहुत कालके हुये इनमें निश्चयसे युवापन भी सम्भावना करने योग्य नहीं है व यह वृद्धभी नहीं होतेहैं क्योंकि जरा (बुढ़ाई) और मरणसे रहितहैं ॥३७॥ व जगत् के अन्त में (प्रलयसमय) ब्रह्मादिको का संहार करै हैं तोभी पापी नहीं हैं और क्रोध से ब्रह्माका मूँडकाटनेवाले इनमें पुण्यका लेशभी नहीं है याने पापी व पुण्यवान्से भी विलक्षण हैं ॥ ३८ ॥ और हाड़ों के गहने पहिने व वस्त्रोंसे विहीन में पवित्रता कहां है और बहुत कहने से क्या है इनका कुछभी चरित्र या कर्म नहीं

जाना जाता है ॥ ३९ ॥ आश्चर्य्य है कि आज मैंने जटीलेकी बड़ीभारी अद्भुत ढिठाईको देखा जिससे गुरुके समान माननीय मुझ श्वशुरको देखकर वह नहीं उठे हैं ॥ ४० ॥ किन्तु वे लोग एवं भूतही याने ऐसेही होते हैं जोकि माता व पितासे विहीन, निर्गुण, अकुलीन, कर्मभ्रष्ट निरंकुश ॥ ४१ ॥ व अपने वशचलनेवाले, अनाथ और सर्वत्र अहङ्काराभिमानी हैं व बहुधा अकिञ्चन (जिनके कुछभी नहीं है) हैं तोभी अपना को ईश्वर मानने हारे हैं ॥ ४२ ॥ और बहुधा जामाताओं (दामादों) का यह स्वभाव है प्रायः कुछ ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर गर्वका पात्र होताही है इसमें संशय नहीं है ॥ ४३ ॥ परन्तु रोहिणी की प्रीतिसे निर्भर व कृत्तिकादिकों में स्नेह

ष्ट्वामांश्वशुरंगुरुम् ॥ ४० ॥ एवंभूताभवन्त्येवमातापितृविवर्जिताः ॥ निर्गुणाअकुलीनाश्चकर्मभ्रष्टानिरंकुशाः ॥४१॥ स्वच्छन्दचारिणोऽनाथाःसर्वत्रस्वाभिमानिनः ॥ अकिञ्चनाअपिप्रायस्तथापीश्वरमानिनः ॥ ४२ ॥ जामातॄणांस्वभावोयंप्रायशोगर्वभाजनम् ॥ किञ्चिदैश्वर्यमासाद्यभवत्येवनसंशयः ॥ ४३ ॥ द्विजराजःसगर्विष्ठोरोहिणीप्रेमनिर्भरः ॥ कृत्तिकादिषुचास्नेहीमयाशप्तःक्षयीकृतः ॥ ४४ ॥ अस्याहङ्गर्वसर्वस्वंहरिष्याम्येवशूलिनः ॥ यथावमानितश्चाहमनेनास्यगृहङ्गतः ॥ ४५ ॥ तथास्याहङ्करिष्यामिमानहानिञ्चसर्वतः ॥ सम्प्रधार्येतिबहुशःसतुदक्षःप्रजापतिः ॥ ४६ ॥ प्राप्यस्वभवनन्देवानाजुहावसवासवान् ॥ अहंयियक्षुर्यूयंमेयज्ञसाहाय्यकारिणः ॥ ४७ ॥ भवन्तुयज्ञसम्भारानानयन्तुत्वरान्विताः ॥ श्वेतद्वीपमथोगत्वाचक्रेचक्रिणमच्युतम् ॥४८॥ महाक्रतूपद्रष्टारंयज्ञपूरुषमेवच ॥ तस्यर्त्विजोभवन्सर्वेऋष

रहित व बहुतगर्व सहित वह नक्षत्रनाथ चन्द्रमाभी मुझसे शाप दिया हुआ क्षयी कियागया है ॥ ४४ ॥ ऐसेही मैं इन त्रिशूलधारी के भी गर्व सर्वस्वको हरूंगा और जैसे इनके घरमें गयाहुआ मैं अपमानितहूं ॥ ४५ ॥ वैसेही मैं सर्वत्र इनके आदर की हानि करूंगा ऐसे मनमें भलीभांति बहुत धारणकर याने निश्चयकर प्रजाओं के पति उन दक्षजीने ॥ ४६ ॥ अपने घर जाकर इन्द्र समेत देवोंको बुलाया कि मैं यज्ञ करनेकी इच्छावाला हूं और आपलोग मेरे यज्ञ सहायताकारी होवें ॥ ४७ ॥ व वेगवान् होकर यज्ञ सामग्रियों को लेआवें उसकेबाद उन दक्षजी ने श्वेतद्वीप में जाकर चक्रधारी अच्युत भगवान् को महायज्ञ का उपद्रष्टा बनाया व जोकि

यज्ञपुरुष भी कहाता है और सब ब्रह्मवादी ऋषि उनके ऋत्विज हुये ॥ ४८ । ४६ ॥ व तदनन्तर उन दक्षका महायज्ञ अधिकता से वर्त्तमान हुआ और उस दक्ष महायज्ञ में उन देवसमूहोंको देखकर ॥ ५० ॥ जोकि महादेवजी से रहित हैं तब ब्रह्माजी किसी मिषको कर घरको चले गये तदनन्तर दधीचि नामक ऋषि उनसब त्रैलोक्यवासियों को भलीभांति विशेषता से देखकर ॥ ५१ ॥ जोकि दक्षके यज्ञमें अच्छेप्रकार से आये हैं व सती और ईश्वरजी से विहीनहैं व वस्त्र और भूषण पूर्वक सत्कार समूहों को पाये हैं ॥ ५२ ॥ उनके और दक्षकेही शुभ उत्तर फलको चाहते हुये निश्चय से ऐसे कहने लगे दधीचिजी बोले कि हे कर्मोंमें कुशल प्रजाओं के

योब्रह्मवादिनः ॥४९॥ प्रावर्तततस्तस्यदक्षस्यचमहाध्वरः ॥ दृष्ट्वादेवनिकायांश्चतस्मिन्दक्षमहाध्वरे ॥ ५० ॥ अनीश्वरांस्ततोवेधाव्याजंकृत्वागृहंययौ ॥ दधीचिरथसंवीक्ष्यसर्वांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥ ५१ ॥ दक्षयज्ञेसमायातान्सतीश्वरविवर्जितान् ॥ प्राप्तसंमानसम्भारान्वासोलंकृतिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ दक्षस्यहिशुभोदर्कमिच्छन्प्रोवाचचेतिवै ॥ दधीचिरुवाच ॥ दक्षप्रजापतेदक्षसाक्षाद्धातृस्वरूपधृक् ॥ ५३ ॥ नचास्तितवसामर्थ्यंकापिकस्यापिनिश्चितम् ॥ यादृशः क्रतुसम्भारस्तवचेहसमीक्ष्यते ॥ ५४ ॥ नतादृक्क्वेदसिप्रायःकापिज्ञातोमहामते ॥ क्रतुस्तुनैवकर्तव्योनास्तिक्रतुसमो रिपुः ॥ ५५ ॥ कर्तव्यश्चेत्तदाकार्यःस्याच्चेत्सम्पत्तिरीदृशी ॥ साक्षादग्निःस्वयंकुण्डेसाक्षादिन्द्रादिदेवताः ॥ ५६ ॥ साक्षाच्चसर्वेमन्त्रावैसाक्षाद्यज्ञपुमानसौ ॥ आचार्यपदवीमेषदेवाचार्यःस्वयञ्चरेत् ॥ साक्षाद्ब्रह्मास्वयञ्चैषभृगुर्वैकर्मका

पालक साक्षात् ब्रह्मस्वरूप धारिन् दक्ष ! ॥ ५३ ॥ तुम्हारी कहीं भी किसी की भी निश्चित शक्ति नहीं है व जैसा तुम्हारा यज्ञ सम्भार यहां भलीभांति देखा जाता है ॥ ५४ ॥ वैसा निकट में प्राप्तहुआ कहीं भी नहीं जानागया है और हे महामते ! यज्ञ करना योग्य नहीं है क्योंकि यज्ञके समान शत्रु नहीं है याने अन्नोंसे हीन यज्ञ देशको या राज्यको व मन्त्र से हीन ऋत्विज को और दक्षिणाओं से हीन हुआ यजमानको जलावैहै ॥ ५५ ॥ यद्यपि जो कर्तव्य होवे तो ऐसी सम्पत्तिहोवे तभी करना चाहिये कि कुण्डमें आपही प्रत्यक्ष अग्नि व प्रत्यक्ष इन्द्रादि देव ॥ ५६ ॥ व साक्षात् सब मन्त्रभी व साक्षात् यह यज्ञपुरुष विष्णुजी है व यह देवाचार्य्य (बृहस्पति)

आचार्य्य पदवीको आपही प्राप्तहोवे हैं व कर्मकाण्ड के पण्डित यह भृगुभी साक्षात् ब्रह्मा हैं ॥ ५७ ॥ व यह पूषा यह भग यह सरस्वतीदेवी और ये सब दिक्पाल आपही यज्ञकी रक्षाकरनेवाले हैं ॥ ५८ ॥ व तुमभी दीप्तिवाली शतरूपा (प्रसूति) के साथ शुभ दीक्षाको प्राप्तहो व तुम्हारे जामाता यह धर्मजी दशास्त्रियोंके साथ ॥ ५९ ॥ आपही धर्मकार्य्य को बड़ेयत्न से करै हैं व तुम्हारे जामाताओं मे उत्तम यह ओषधियो के नाथ (चन्द्रमा) ॥ ६० ॥ सत्ताइस स्त्रियोंके साथ तुम्हारे कार्य्यकर्त्ता हैं व सब ओषधियों को पूरते हैं जोकि नक्षत्रों के राजा, बड़े बुद्धिमान् ॥ ६१ ॥ व राजसूय यज्ञमें दीक्षित होकर त्रिलोक दक्षिणाको दियेहुये हैं और प्रजापतियों में सत्तम

एडवित् ॥ ५७ ॥ अयम्पूषाभगस्त्वेषइयन्देवीसरस्वती ॥ एतेचसर्वेदिक्पालायज्ञरक्षाकृतःस्वयम् ॥ ५८ ॥ त्वञ्चदीक्षांशुभाम्प्राप्तोदेव्याचशतरूपया ॥ जामातात्वेषतेधर्मःपत्नीभिर्दशभिःसह ॥ ५९ ॥ स्वयमेवहिकुर्वीतधर्मकार्यम्प्रयत्नतः ॥ ओषधीनामयंनाथस्तवजामातृषूत्तमः ॥ ६० ॥ सप्तविंशतिभिःसार्धंपत्नीभिस्तवकार्यकृत् ॥ ओषधीःपूरयेत्सर्वाद्विजराजोमहासुधीः ॥ ६१ ॥ दीक्षितोराजसूयस्यदत्तत्रैलोक्यदक्षिणः ॥ मारीचःकश्यपश्चासौप्रजापतिषुसत्तमः ॥ त्रयोदशमिताभिश्चभार्याभिस्तवकार्यकृत् ॥ ६२ ॥ हविःकामदुघासूतेकल्पवृक्षःसमित्कुशान् ॥ दारुपात्राणिसर्वाणिशकटंमण्डपादिकम् ॥ ६३ ॥ विश्वकर्माप्यलङ्कारान्कुरुतेभ्यागतर्त्विजाम् ॥ वसूनिचाऽपिवासांसिवसवोष्टौददत्यपि ॥ ६४ ॥ स्वयंलक्ष्मीरलंकुर्याद्यावैचात्रसुवासिनीः ॥ ६५ ॥ सर्वंसुखायमेदक्षवीक्षमाणस्यसर्वतः ॥ एकन्दुःखाकरोत्येवयत्त्वंविस्मृतवानसि ॥ ६६ ॥ जीवहीनोयथादेहोभूषितोपिनशोभते ॥ तथेश्वरंविनायज्ञःश्मशानमिवलक्ष्य

मरीचिके पुत्र यह कश्यपजी तेरह संख्यक स्त्रियोंके साथ तुम्हारे कार्य्य करनेवाले हैं ॥ ६२ ॥ व कामधेनु हविको उपजाती है व कल्पवृक्ष ईधन, कुश, सब दारुपात्र, शकट (गाड़ी व बहल) और मण्डपादिकों को उपजाता है ॥ ६३ ॥ व विश्वकर्मा भी अभ्यागत (पाहुन) और ऋत्विजों के भूषणों को करते हैं और आठौवसु भी धनों व वस्त्रोंको भी देते हैं ॥ ६४ ॥ व जोकि आपही लक्ष्मी हैं वही यहां कुलस्त्रियों को भूषित करती हैं ॥ ६५ ॥ हे दक्षजी ! सबओर विशेषता से देखते हुये मेरे सुखके लिये सब हैं परन्तु एक यह दुःखको भी दुःखी करता है या अत्यन्तही दुःखकी खानि है कि जिससे तुम शिवजी को बिसारेहुये हो ॥ ६६ ॥ जैसे जीवसेहीन

हुआ भूषितभी शरीर नहीं सोहता है वैसेही महेशजी के विना यज्ञ श्मशान सा दीखता है ॥ ६७ ॥ इसभांति दधीचिजी के वचन को सुनकर प्रजाओं के पतिदक्षजी हविसे अग्निकी नाईं कोपसे बहुतही जलउठे ॥ ६८ ॥ जोकि यह दधीचिजी करके पहले स्तुति से अत्यन्त संहृष्टहृष्ट हुये फिर वही मुखसे कोपाग्निको भी उबक्ते हुये देखपड़े ॥ ६९ ॥ और अनन्तर क्रोधमे उन ब्राह्मण को मारने चाहते से, प्रजापति, काम्पितदेहदण्डीवाले दक्षजीने उनवेदाभ्यासी दधीचिजी के प्रति कहा ॥ ७० ॥ दक्षजी बोले कि हे दधीचे ! तुम ब्राह्मणहो इससे यहां मैं तुम्हारा क्याकरूं व खेदहै कि मैं दीक्षाको प्राप्तहूं उससे करनेके लिये कुछभी नहीं आताहै ॥ ७१ ॥ आपको

ते ॥ ६७ ॥ इत्थन्दधीचिवचनंश्रुत्वादक्षःप्रजापतिः ॥ भृशंजज्वालकोपेनहविषाकृष्णवर्त्मवत् ॥ ६८ ॥ पूर्वस्तुत्याति संहृष्टोहृष्टोयोसौदधीचिना ॥ सएवचापिकोपाग्निमुद्वमन्वीक्षितोमुखात् ॥ ६९ ॥ प्रत्युवाचाथतंविप्रंवेपमानाङ्गयष्टिकः ॥ दक्षःप्रजापतीरोपाज्जिघांसुरिवतंद्विजम् ॥ ७० ॥ दक्षउवाच ॥ ब्राह्मणोसिदधीचेत्वंकिङ्करोमितवात्रवै ॥ दीक्षा महमहोप्राप्तःकर्तुंनायातिकिञ्चन ॥ ७१ ॥ भवान्केनसमाहूतोयदत्रागान्महाजडः ॥ आगतोपिहिकेनत्वंपृष्टइत्थम्ब्रवीषियत् ॥ ७२ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्योयत्रश्रीमानयंहरिः ॥ स्वयंवैयज्ञपुरुषःसमखःकिंश्मशानवत् ॥ ७३ ॥ यत्रवज्रधरःशक्रःशतयज्ञैकदीक्षितः ॥ त्रयस्त्रिंशतिकोटीनाममराणाम्पतिःस्वयम् ॥ ७४ ॥ तन्त्वञ्चोपमिमीषेमुंश्मशानेनमहामखम् ॥ धर्मराट्चस्वयंयत्रधर्माधर्मैककोविदः ॥ ७५ ॥ श्रीदोस्तियत्रश्रीदातासाक्षाद्यत्राशुशुक्षणिः ॥ तंयज्ञमुपमासित्वममङ्गलभुवातया ॥ ७६ ॥ देवाचार्यःस्वयंयत्रक्रतोराचार्यताङ्गतः ॥ अभिमानवशात्तन्त्वमाख्यासिपितृका

किसने बुलाया है जो बड़ेजड़ तुम यहां आयेहो और आयेहुये भी किससे पूंछेगये हो जिससे ऐसा कहते हो ॥ ७२ ॥ जहां सर्वमंगल मांगल्य, श्रीमान् ये आपही यज्ञपुरुष हरि (विष्णुजी) हैं वह यज्ञ क्या श्मशानके समान है ॥ ७३ ॥ व जिम में तेंतीस करोड देवों के स्वामी व एकसौ यज्ञों में मुख्य दीक्षित वज्रधारी इन्द्रजी आपही वर्त्तमान हैं ॥ ७४ ॥ व जहा धर्माधर्मके मुख्य पण्डित धर्मराज जी आपही हैं उस महायज्ञ की तुम श्मशान से उपमाकरते हो ॥ ७५ ॥ व जहां कुबेर धनदाता है व जहां प्रत्यक्ष अग्नि हैं उस यज्ञकी तुम उस अमङ्गल भूमिसे उपमा करते हो ॥ ७६ ॥ व जहां देवाचार्य्य आपही यज्ञकी आचार्य्यताको प्राप्तहैं उसको तुम अभिमान

के वशसे पितृवन (श्मशान) कहते हो ॥ ७७ ॥ और जिसमें ये वसिष्ठादि ऋषि ऋत्विजभाव को भजते (सेवते) हैं उस यज्ञको तुम अमंगल भूमिके समानकहते हो ॥ ७८ ॥ ऐसा सुनकर ज्ञानियों मे श्रेष्ठ दधीचिमुनिने कहा कि यद्यपि सर्वमंगलों की मंगल क्रियावाले हरि यज्ञ पुरुषहोवे हैं ॥ ७९ ॥ तोभी वेदों में विष्णु शम्भुकी शक्ति पढ़ेजातेहैं व आद्य सृष्टिकर्त्ता शिवजीका वामांग विष्णुहैं और दक्षिणांग ब्रह्मा हैं ॥ ८० ॥ व जोकि सौ अश्वमेध यज्ञों के दीक्षित, वज्रआयुधवाले इन्द्र है वह दुर्वासा से क्षणभर में निःश्रीकता (दरिद्रता) को प्राप्तकिये गये हैं ॥ ८१ ॥ फिर महेशजी को पूजकर एक (मुख्य) अमरावती को प्राप्तहुये हैं और यहां तुमने जिन

ननम् ॥ ७७ ॥ यत्रार्त्विज्यम्भजन्तेऽमीवसिष्ठप्रमुखर्षयः ॥ तमध्वरंसमाचक्षेमङ्गलेतरभूमिवत् ॥ ७८ ॥ निशम्येति मुनिःप्राहदधीचिर्ज्ञानिनांवरः ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्योभवेद्यज्ञपुमान्हरिः ॥ ७९ ॥ तथापिशाम्भवीशक्तिर्वेदेविष्णुःप्रपठ्यते ॥ वामाङ्गस्रष्टुराद्यस्यहरिस्तदितरद्विधिः ॥ ८० ॥ दीक्षितोयोश्वमेधानांशतस्यकुलिशायुधः ॥ दुर्वाससाक्षणेनापि नीतोनिःश्रीकतांहिसः ॥ ८१ ॥ पुनराराध्यभूतेशंप्रापैकाममरावतीम् ॥ यस्त्वयाधर्मराजोत्रकथितःक्रतुरक्षकः ॥ ८२ ॥ बलन्तस्याखिलैर्ज्ञातंश्वेतम्पाशयतःपुरा ॥ धनदस्त्र्यम्बकसखस्तच्चक्षुश्चाशुशुक्षणिः ॥ ८३ ॥ पार्ष्णिग्राहोभवद्रुद्रोदेवाचार्यस्यवैतदा ॥ यदातारामधार्षीत्सद्विजराजोऽतिसुन्दरीम् ॥ ८४ ॥ तंविदन्तिवसिष्ठाद्यास्तवार्त्विज्यम्भजन्तिये ॥ एकोरुद्रोनद्वितीयःसंविदानाअपीतिहि ॥ ८५ ॥ प्रावर्तन्तर्षयोन्येपिगौरवात्तवतेक्रतौ ॥ यदिमेब्राह्मणस्यैकंशृणोषिवचनंहितम् ॥ ८६ ॥ तदाक्रतुफलाधीशंविश्वेशन्त्वंसमाह्वय ॥ विनातेनक्रतुरसौकृतोप्यकृतएवहि ॥ ८७ ॥ सतितरम्मि

धर्मराज को यज्ञरक्षक कहा ॥ ८२ ॥ श्वेतमुनिको बांधतेहुये उनके बलको आगे सबोंने जाना है याने शिवजी के भक्त श्वेतमुनि ने यमराज से प्रेरित मृत्युको जीतलिया है और कुबेरजी त्रिनेत्रके मित्र हैं व अग्निदेव उनका नेत्रहै ॥ ८३ ॥ व जब उस चन्द्रमा ने अतिसुन्दरी बृहस्पतिकी स्त्री ताराको हराथा तब रुद्रजी देवाचार्य्यके भी पार्ष्णिग्राह याने पीछे से रक्षकहुये हैं ॥ ८४ ॥ व जेकि वसिष्ठादि ऋषि तुम्हारे ऋत्विजभाव को भजते हैं वे उन शिवजीको जानते हैं कि एक रुद्रहैं दूसरा कोई नहीं है ऐसा जानतेहुये भी ॥ ८५ ॥ अन्यभी ऋषि तुम्हारी गुरुता से तुम्हारे यज्ञमें प्रवर्तमान हैं और जो मुझ ब्राह्मण का एकहित वचन सुनो ॥ ८६ ॥ तो तुम यज्ञफलों के

अधीश जगदीशको भलीभांति बुलावो उनविना कियाभी यह यज्ञ बिनकियाहुआही है ॥ ८७ ॥ व सबके कर्मोंके मुख्यसाक्षी उन महादेवजी के होतेही तुम्हारे और इन सबोंकेभी मनोरथ फलैंगे ॥ ८८ ॥ जैसे जड़बीज आपही नहीं फलते हैं वैसेही जड़ सब कर्म ईश्वर विना नहीं फलतेहैं ॥ ८९ ॥ जैसे अर्थसे हीनवाणी जैसे धर्मसेहीन देह और जैसे पतिसेहीन स्त्री है वैसेही शिवजीसे हीन क्रियाहै ॥ ९० ॥ जैसे गंगाहीन देश व जैसे पुत्रहीन घर और जैसे दानसेहीन सम्पत्ति है वैसेही शिवजीसे हीन क्रिया है ॥ ९१ ॥ व जैसे मन्त्रीसे हीन राज्य जैसे वेदोंसे हीन ब्राह्मणादि त्रिवर्ण और जैसे स्त्रीसेहीन सौख्य है वैसेही शिवजीसे हीन क्रियाहै ॥ ९२ ॥ व जैसे कुशों

न्महादेवेविश्वकर्मैकसाक्षिणि ॥ तवापिचैषांसर्वेषांफलिष्यन्तिमनोरथाः ॥ ८८ ॥ यथाजडानिबीजानिनफलन्तिस्वयन्तथा ॥ जडानिसर्वकर्माणिनफलन्तीश्वरंविना ॥ ८९ ॥ अर्थहीनायथावाणीधर्महीनायथातनुः ॥ पतिहीनायथानारीशिवहीनातथाक्रिया ॥ ९० ॥ गङ्गाहीनायथादेशाःपुत्रहीनायथागृहाः ॥ दानहीनायथासम्पच्छिवहीनातथाक्रिया ॥ ९१ ॥ मन्त्रिहीनंयथाराज्यंश्रुतिहीनायथाद्विजाः ॥ योषाहीनंयथासौख्यंशिवहीनातथाक्रिया ॥ ९२ ॥ दर्भहीनायथासन्ध्यातिलहीनञ्चतर्पणम् ॥ हविर्हीनोयथाहोमःशिवहीनातथाक्रिया ॥ ९३ ॥ इत्थन्दधीचिनाख्यातंजग्राहवचनंनतत् ॥ दक्षोदक्षोपितत्रैवशम्भोर्मायाविमोहितः ॥ ९४ ॥ प्रोवाचचभृशंक्रुद्धःकाचिन्तातवमेक्रतोः ॥ क्रतुमुख्यानिसर्वाणियानिकर्माणिसर्वतः ॥ ९५ ॥ तानिसिद्ध्यन्तिनियतंयथार्थकरणादिह ॥ अयथार्थविधानेनसिद्ध्येत्कर्मापिनेशितुः ॥ ९६ ॥ स्वकर्मसिद्धयेचाथसर्वएवहिचेश्वरः ॥ ईश्वरःकर्मणांसाक्षीयत्त्वयापीतिभाषितम् ॥ ९७ ॥ तत्तथास्तुपरंसाक्षी

सेहीन सन्ध्या जैसे तिलोंसे हीन तर्पण और जैसे हविष्यान्नसे हीन होमहै वैसेही शिवजीसे हीन क्रियाहै ॥ ९३ ॥ वहांही ऐसे दधीचिजी से कहेहुये उस वचनको चतुर भी शिवमाया से विमोहित दक्षने न ग्रहण किया ॥ ९४ ॥ और बहुतही क्रुद्ध होकर कहा कि हमारे यज्ञकी तुम्हें क्या चिन्ताहै जेकि यज्ञादि सबकर्म सर्वत्र हैं ॥ ९५ ॥ वे यथार्थ करने से यहा नियम समेत सिद्ध होते हैं और अयथार्थ विधि से ईश्वर का भी कर्म नहीं सिद्ध होवे है ॥ ९६ ॥ और अपने कर्मकी सिद्धि के लिये

सबही कोई ईश्वर है व ईश्वर कर्मोंका साक्षी है ऐसा जो तुमने कहा ॥ ९७ ॥ वह वैसेहो परन्तु साक्षी कहींभी अर्थको नहीं देवे है ॥ ९८ ॥ और आपने जो कहा कि सब कर्म जडहैं ईश्वर विना नहीं फलते हैं उसमें भी मैं सुखसे दृष्टान्त करताहूं ॥ ९९ ॥ कि जड़भी बीज अपने समयको भलीभांति प्राप्तहोकर कालसे अंकुरतेहैं व बढ़ते हैं व फूलते व फलते हैं ॥ १०० ॥ अहोमुने ! वैसेही कर्मभी ईशके विना कालसे आपही फलता है उसलिये या उस महामंगलमूर्ति ईश्वरसे यहां क्याहै ॥ १ ॥ श्रीदधीचिजी बोले कि यथार्थ करने से कभी कार्य्य सिद्धभी होता है और ईश्वर की प्रतिकूलता से सिद्धभी शीघ्रही नष्टहोता है ॥ २ ॥ व अविधान से याने विधिके

नार्थन्दद्याच्चकुत्रचित् ॥ ९८ ॥ जडानिसर्वकर्माणिनफलन्तीश्वरंविना ॥ यदुक्तंभवतातत्राप्यहोदृष्टान्तयाम्यहम् ॥ ९९ ॥ जडान्यपिचबीजानिकालंसम्प्राप्यचात्मनः ॥ अंकूरयन्तिकालाच्चपुष्प्यन्तिचफलन्तिच ॥ १०० ॥ विनापीशन्तथा कर्मस्वयङ्कालात्फलत्यहो ॥ किमीश्वरेणतेनात्रमहामङ्गलमूर्तिना ॥ १ ॥ दधीचिरुवाच ॥ यथार्थकरणात्सिद्धमपिकार्यङ्कदाचन ॥ ईश्वरप्रातिकूल्याच्चसिद्धमेवाशुनश्यति ॥ २ ॥ ईश्वरेच्छाबलात्कर्मकृतमप्यविधानतः ॥ संसिद्ध्येत्तदधीनाश्चकथंसर्वइहेश्वराः ॥ ३ ॥ सामान्यसाक्षिवन्नेशःसर्वेषांसर्वकर्मणाम् ॥ साक्षीभवेदसन्दिग्धःफलस्यप्रतिभूरपि ॥ ४ ॥ भूजलादिस्वरूपेणबीजमाविश्यसर्वकृत् ॥ स्वयङ्कालस्वरूपेणविदध्यादंकुरोदयम् ॥ ५ ॥ यत्त्वयोक्तंविनापीशंकालेकर्मफलेत्स्वयम् ॥ सएवकालोभगवान्सर्वकर्तामहेशिता ॥ ६ ॥ अन्यच्चभवताप्रोक्तंतदेकन्तथ्यमेवतत् ॥ किमीश्वरेणतेनात्रमहामङ्गलमूर्तिना ॥ ७ ॥ येमहान्तोभवन्त्येवयेचमङ्गलमूर्तयः ॥ ईश्वराख्याच्चयेष्वस्तिकिन्तैरत्र

विना कियाहुवा भी कर्म ईश्वरकी इच्छा के बलसे भलीभांति सिद्धहोवे है और उन परमेश्वरके अधीन सबकोई यहां आपही ईश्वरकैसेहैं ॥ ३ ॥ व सबों के सबकर्मों के सामान्य साक्षी की नाईं परमेश्वर नहीं हैं किन्तु संदेह रहित साक्षी और फलकेदाता भी हैं ॥ ४ ॥ व सबके कर्त्ता परमेश्वर पृथिवी और पानी आदि रूपसे बीजमें पैठकर आपही कालस्वरूप से अंकुर का उदय करैहै ॥ ५ ॥ और जो तुमने कहा कि ईश्वर के विना काल में कर्म आपहीफलै है वहहीकाल भगवान् सर्वकर्त्ता महेशजी हैं ॥ ६ ॥ और अन्यभी जो एक वह आपने कहा कि उसमंगल मूर्त्ति ईश्वरसे यहां क्याहै वह तथ्य (सत्य) ही है ॥ ७ ॥ क्योंकि जेमहात्माही हैं व जे मंगलमूर्त्ति हैं

और जिनमें ईश्वर नामहै उनसे यहां तुम्हारे समीपमें क्याहै ॥८॥ इसभांति दधीचि ब्राह्मणके उत्तरसे उत्तर प्रति उत्तर करतेही गर्वकी अतिशय सुसंपत्ति या सुशोभासे दक्षने अत्यंत क्रोधकिया ॥ ९ ॥ व सबओर सामनेसे देखकर समीपमें टिकेहुये जनोंको ऐसीआज्ञाकिया कि इस ब्राह्मणाधमको शीघ्रही सबओरसे दूरकरदेवो॥१०॥ कि जिसका मन इस यज्ञश्रेष्ठसे अवरिष्ठमें याने बहुतही अश्रेष्ठमें गयाहै ऐसा सुनकर विहँसतेसे दधीचि जीने कहा ॥ ११ ॥ कि हे मूढ़ ! तुम मुझको क्या दूरकरातेहो व इनसबों के साथ आपभी निश्चयकर सब मंगलों से दूरीभूत (दूरहुये) हो ॥ १२ ॥ हे प्रजापते ! त्रिलोकके सब ओरसे सिखानेवाले या परिपालक महेशजीके क्रोधसे उपजा हुवादंड

तवान्तिके ॥ ८ ॥ उत्तरादुत्तरञ्चेतिप्रत्युत्तरयतिद्विजे ॥ दधीचौचुक्रुधेऽत्यन्तन्दक्षोगर्वातिसुश्रिया ॥ ९ ॥ आदिदेशसमीपस्थानालोक्यपरितस्त्विति ॥ ब्राह्मणापसदञ्चामुम्परिदूरयताशुवै ॥ १० ॥ अमुष्मादध्वरश्रेष्ठादवरिष्ठमनोगतम् ॥ इत्थन्दधीचिराकर्ण्यप्रोवाचप्रहसन्निव ॥ ११ ॥ किंमान्दूरयसेमूढदूरीभूतोभवानपि ॥ सर्वेभ्योमङ्गलेभ्यश्चसर्वैरेभिः समन्ध्रुवम् ॥ १२ ॥ अकाण्डेक्रोधजोदण्डस्तवमूर्धिनपतिष्यति ॥ महेशितुस्त्रिजगतीपरिशास्तुःप्रजापते ॥१३॥ इत्युक्त्वानिर्जगामाशुयज्ञवाटात्ततोद्विजः ॥ तस्मिन्निर्यातिनिर्यातोदुर्वासाश्च्यवनोभवान् ॥ १४ ॥ उत्तङ्कउपमन्युश्चऋचीकोद्दालकावपि ॥ माण्डव्योवामदेवश्चगालवोगर्गगौतमौ ॥ १५ ॥ शिवतत्त्वविदोन्येपिदक्षयज्ञाद्विनिर्ययुः ॥ गतेदधीचौसानन्दंप्रावर्ततमहामखः ॥ १६ ॥ येस्थिताब्राह्मणास्तत्रतेभ्योद्विगुणदक्षिणाम् ॥ प्रादात्प्रजापतिर्दक्षस्त्वन्येभ्योप्यधिकंवसु ॥ १७॥ सर्वेजामातरस्तेनतोषिताभूरिशोधनैः ॥ कन्याश्चालंकृतास्सर्वामहाविभवविस्तरैः ॥ १८ ॥ ऋषि

अनवसरमें तुह्मारे मूँड़ेपर पड़ेगा ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर वह ब्राह्मण दधीचिजी उस यज्ञवाटसे निकलगये व उनके निकलजातेही दुर्वासा, च्यवन, और आप (अगस्त्य) भी निकलजातेभये ॥ १४ ॥ व उत्तंक, उपमन्यु, ऋचीक व उद्दालकभी व मांडव्य, वामदेव, गालव गर्ग, व गौतम ॥ १५ ॥ और अन्यभी शिवतत्त्वके जाननेवाले ऋषि लोग दक्ष के यज्ञसे विशेषता समेत निकलकर चलेगये और दधीचिके जातेही आनंदसमेत महायज्ञ प्रवृत्तहुवा ॥ १६ ॥ जे ब्राह्मण वहां टिकेहुयेथे उनको प्रजापति दक्षने दूनी दक्षिणा दिया और अन्योंको भी अधिक धनदिया ॥ १७ ॥ व उन्होंने बहुतधनों से सबजामाताओं को संतुष्टकिया फिर बड़े ऐश्वर्य्य के विस्तारों से सब

कन्याओं को भूषितकिया ॥ १८ ॥ व उन्होंने बहुतसी ऋषियों की स्त्री भी देवोंकी स्त्री भी तथा सब पुरवासियोंकी स्त्रियों को पूजाका पात्र किया ॥ १९ ॥ और उन दक्षजी ने आनंदित मनवाले ब्राह्मणोंके ऊंचे या ओंकार समेत वेदघोषसे आकाशको शब्दगुणवाला स्पष्टकराया ॥ २० ॥ व उन दीक्षितहुये दक्षकेहवन करतेही मंदाग्निभी अग्निहुई और दिशारूप स्त्रियां हविके सुगंध से सब ओरसे तृप्तहोगईं ॥ २१ ॥ व स्वाहाकार और वषट्कारों से देव तुंदारेहुये व उन्होंने स्थानस्थानमें अच्छे अन्नो के पर्वत रचाया ॥ २२ ॥ व उन्होंने घृतकी नदी शहदकी नदी दूधोंके बड़ेतडाग और गीले गुडके भी हजारों कुंडों को किया ॥ २३ ॥ व रेशमी या पीतांबरों की राशियां

पत्न्योपिबहुशोदेवपत्न्योप्यनेकशः ॥ तथापुराङ्गनाःसर्वास्तेनमानभुवःकृताः ॥ १९ ॥ ब्रह्मघोषेणतारेणव्योमशब्दगुणंस्फुटम् ॥ कारितन्तेनदक्षेणविप्राणांहृष्टचेतसाम् ॥ २० ॥ अग्निर्मन्दाग्निरभवत्तस्मिन्जुह्वतिदीक्षिते ॥ हविःपरिमलेनैवपरितृप्तादिगङ्गनाः ॥ २१ ॥ स्वाहाकारैर्वषट्कारैःसुराजातापिचण्डिलाः ॥ रचितागिरयस्तेनसदन्नानास्पदेपदे ॥ २२ ॥ घृतकुल्याःकृतास्तेनमधुकुल्याःसहस्रशः ॥ महासरांसिपयसांद्रप्सस्यापिमहाह्रदाः ॥ २३ ॥ राशयश्चदुकूलानांरत्नानांशिखराणिच ॥ यज्ञवाटस्यवसुधास्वर्णरूप्यमयीकृता ॥ २४ ॥ नलभ्यन्तेकृतौतस्यमार्गिताअपिमार्गणाः ॥ हृष्टाःपुष्टाःसमभवन्नपितत्परिचारकाः ॥ २५ ॥ ध्वनिर्मङ्गलगीतानांव्यानशेगगनाङ्गणम् ॥ जहृषेचाप्सरोवृन्दैर्गन्धर्वैर्मुमुदेतराम् ॥ २६ ॥ विद्याधरैर्ननन्देचवसुधावबृधेभृशम् ॥ महाविभवसम्भारेतस्मिन्दाक्षेमहाकृतौ ॥ इत्थम्प्रवृत्तेऽथमुनिःकैलासंनारदोययौ ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कं०पु०का०दक्षयज्ञप्रादुर्भावोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

और रत्नों के शिखर व यज्ञवाटकी भूमिको सुवर्णमयी करादिया ॥ २४ ॥ उनके यज्ञमें ढूढ़ेंहुये भी याचक नहीं मिलते हैं व उनके सेवक भी हृष्टपुष्टहोगये ॥ २५ ॥ व मंगलगीतों की ध्वनि आकाशआंगन में व्यापगई व अप्सरासमूहों ने हर्ष पाया और गंधर्वों से भी अधिक आनंदितहुवा गया ॥ २६ ॥ व विद्याधर प्रसन्नहुये व वसुधा बहुतही बढ़ी इसभांति बड़े विभवसमूह समेत उसदक्ष संबंधी महायज्ञ के प्रवृत्तहोतेही अनन्तर नारदमुनि कैलासकोगये ॥ १२७ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदक्षयज्ञप्रादुर्भावोनामसप्ताशीतितमोध्यायः ८७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अट्ठासी अध्याय में न लखि शंभुकाभाग । योग अग्निसे ही वहां सती देह का त्याग ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुखजी! शिवलोकको प्राप्तहोकर ब्रह्माजी के पुत्र नारदमुनि ने क्या किया उस कौतुकशालिनी कथाको आप कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भज! महात्मा नारदजी ने शिवके स्थान कैलास में शीघ्रही जाकर वहां जो किया उसको मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ २ ॥ कि श्रीनारदमुनि उस शिवस्थान को प्राप्तहोकर व पार्वती और महादेवजी को देखकर व प्रणामकर अनन्तर शिवजी से किये आदरवाले होकर ॥ ३ ॥ उनका खेल देखते हुये उनके उद्देश कियेहुये याने दियेगये आसनको रेवते भये और जब पांसोंसे खेलते हुये वे

अगस्त्यउवाच ॥ शिवलोकंसमासाद्यमुनिनाब्रह्मसूनुना ॥ किञ्चक्रेब्रूहिषड्वक्त्रकथांकौतुकशालिनीम् ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ शृणुकुम्भजवक्ष्यामिनारदेनमहात्मना ॥ यत्कृतन्तत्रगत्वाशुकैलासंशङ्करालयम् ॥ २ ॥ मुनिर्गगनमार्गेणप्राप्यतद्धामशाम्भवम् ॥ दृष्ट्वाशिवौप्रणम्याथशिवेनविहितादरः ॥ ३ ॥ तदुद्दिष्टासनंभेजेपश्यंस्तत्क्रीडनंपरम् ॥ क्रीडन्तौतौतुचाक्षाभ्यांयदानचविरेमतुः ॥ ४ ॥ तदौत्सुक्येनसमुनिःप्रेर्यमाणउवाचह ॥ नारदउवाच ॥ देवदेवतवक्रीडाखिलंब्रह्माण्डगोलकम् ॥ मासाद्वादशयेनाथतेसारिफलकेगृहाः ॥ ५ ॥ कृष्णाःकृष्णेतरायावैतिथयस्ताश्चसारिकाः ॥ द्विपञ्चदशमासेयास्त्वक्षयुग्मन्तथायने ॥ ६ ॥ सृष्टिप्रलयसंज्ञौद्वौग्लहौजयपराजयौ ॥ देवीजयेभवेत्सृष्टिरसृष्टिर्धूर्जटेर्जये ॥ ७ ॥ भवतोःखेलसमयोयःसास्थितिरुदाहृता ॥ इत्थंक्रीडैवसकलमेतद्ब्रह्माण्डमीशयोः ॥ ८ ॥ नदेवीजेष्यतिपतिंनेशःशक्तिंविजेष्यति ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोस्मितन्मातरवधार्यताम् ॥ ९ ॥ देवःसर्वज्ञनाथोपिनाकिञ्चिदवबुध्यति॥

दोनोंजने विश्रान्त न हुये ॥ ४ ॥ तब उत्सुकता से प्रेरे जातेहुये उन मुनिने हर्षसे कहा, नारदमुनि बोले कि, हे देवदेव! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डगोलक तुम्हाराखेलहै व जेकि बारहमास हैं वे सारिफलकके निमित्त घर हैं ॥ ५ ॥ व मासमें जे काली व जेकि उजली भी तीस तिथियां हैं वे सारिकायें है याने बल हैं तथा दोनों (उत्तरायण व दक्षिणायन) अयन दो पांसे हैं ॥ ६ ॥ व सृष्टि और प्रलय दोनों जीतिहारवाले ग्लह (पण) हैं किन्तु देवीजीकी जीतिमें सृष्टिहै और शिवजीकी जीतिमें प्रलयहै ॥७॥ व जोकि आपका खेल समय है वह स्थिति कहीगई है ऐसे यह सकलब्रह्माण्ड गौरीशङ्कर का खेल है ॥ ८ ॥ और देवीजी पतिको न जीतेंगी व न शिवजी शक्तिको

जीतैंगे हे मातः ! मैं कुछ विज्ञापना करने के लिये कामनावालाहूं वह सुनाजावे ॥ ९ ॥ कि सर्वज्ञों के नाथभी महादेवजी कुछ नहीं जानते हैं जिसलिये यह मान और अपमान से दूर मे टिके हैं ॥ १० ॥ व यद्यपि यह लीलासे देहधारी और गुणवान् हैं तौभी विचार से निर्गुण हैं इससे सृष्ट्यादि कर्मोंको करतेहुये भी कर्मोंसे नहीं लिप्त होते हैं ॥ ११ ॥ व सबके मध्यस्थभी ये महेशान उदासीनता को अवलम्बन करते हैं क्योंकि सर्वत्र मित्र व शत्रुमें समदर्शी हैं ॥ १२ ॥ और इन देवकी शक्ति तुम सबोंकी मान्यभूमि व परा (श्रेष्ठ) हो व तुमने दक्षकोभी अपत्यनिमित्तक याने पुत्री होने से मान दियाहै ॥ १३ ॥ परन्तु तुम सब जगतोंकी भी मुख्य माता हो व

मानापमानयोर्यस्मादसौदूरेऽव्यवस्थितः ॥ १० ॥ लीलात्मागुणवानेषविचारादतिनिर्गुणः ॥ कुर्वन्नपिहिकर्माणिबाध्य तेनैवकर्मभिः ॥ ११ ॥ मध्यस्थोपिहिसर्वस्यमाध्यस्थ्यमवलम्बते ॥ सर्वत्रायंमहेशानोमित्रामित्रसमानदृक् ॥ १२ ॥ त्वंश क्तिरस्यदेवस्यसर्वेषांमान्यभूःपरा ॥ दत्तस्यापित्वयामानोदत्तोपत्यनिमित्तकः ॥ १३ ॥ परंत्वंसर्वजगतांजनयित्र्येकि काध्रुवम् ॥ त्वत्तआविर्भवन्त्येवधातृकेशववासवाः ॥ १४ ॥ त्वमात्मानंनजानासित्र्यक्षमायाविमोहिता ॥ अतएवहि मेचित्तन्दुनोत्यतितरांसति ॥ १५ ॥ अन्याअपिहियाःसत्यःपातिव्रत्यपरायणाः ॥ ताभर्तृचरणौहित्वाकिञ्चिदन्यन्नम न्वते ॥ १६ ॥ अथवास्तामियंवार्ताप्रस्तुतंप्रब्रवीम्यहम् ॥ अद्यनीलगिरेस्तस्माद्धरिद्वारसमीपतः ॥ १७ ॥ अपूर्वमिव संवीक्ष्यपरिप्राप्तस्तवान्तिकम् ॥ अत्याश्चर्यविषादाभ्यांकिञ्चिद्वक्तुमिहोत्सुकः ॥ १८ ॥ आश्चर्यहेतुरेवायंयत्पुज्ञातन्त्र यीतले ॥ तद्दृष्टंसकलत्रश्चदक्षस्याध्वरमण्डपे ॥ १९ ॥ सालङ्कारंसमानञ्चसानन्दमुखपङ्कजम् ॥ विस्मृताखिलकार्य

ब्रह्मा विष्णु और इन्द्र तुमसेही प्रकट होते हैं ॥ १४ ॥ हे सती ! त्रिनेत्र शिवजीकी माया आपसेही विमोहित हुई तुम अपनाको नहीं जानतीहो इससेही मेरा चित्तबहुत व्यथित होताहै ॥ १५ ॥ जिससे अन्य भी जे पातिव्रत धर्म में परायण पतिव्रतायें हैं वे स्वामीके चरणारविन्दो को छोड़कर अन्य कुछ नहीं मानतीहैं ॥ १६ ॥ अथवा यह वार्त्ता बन्दरहै अब मैं प्रकरण के अनुसार को कहताहूं कि आज हरद्वार के समीप उस नीलगिरिसे ॥ १७ ॥ अपूर्वकी नाईं भलीभांति विशेषता से देखकर तुम्हारे समीप को सब ओरसे प्राप्तहूं और अत्यन्त आश्चर्य व विषाद से यहां कुछ कहने को उत्सुक हूं ॥ १८ ॥ व वहही आश्चर्य का कारण है कि त्रिलोक में स्त्रीसमेत जो

स्कं॰पु॰ ४८५

पुरुष समूह है वह दक्षके यज्ञमण्डप में देखागया है ॥ १९ ॥ जोकि भूषणोंसमेत, आदरसमेत, आनन्दसमेतमुखारविन्दवाला अन्य सम्पूर्ण कार्य्योंको बिसारेहुआ और दक्षके यज्ञका प्रवर्त्तकहै ॥ २० ॥ व विषादमें यह कारणहै कि जिससे यहजगत् उपजा है व जिसमें अधिकतासे वर्त्तमानहै व जहां निश्चयसे लयको प्राप्तहोवेगा ॥ २१॥ वहही संसारतापहारक आप दोनोंजनों का जोड़ा वहां नहीं देख पड़ा जोकि आपका अदर्शन (न देखना) है वह बहुधा विषादका उपजानेवाला है ॥ २२ ॥ वहही आपका दर्शन वहां नहीं हुआ किंतु जो अन्यही भलीभांति भया वह कहने योग्य नहींहै और वह दक्षही उसके वक्ताहैं ॥ २३ ॥ तदनंतर उन वचनोंको सुनकर

ञ्चदक्षयज्ञप्रवर्तकम् ॥ २० ॥ विषादेकारणञ्चैतद्यतोजातमिदंजगत् ॥ यस्मिन्प्रवर्ततेयत्रलयमेष्यतिचध्रुवम् ॥ २१ ॥ तदेवतत्रनोदृष्टंभवद्वन्द्वम्भवापहम् ॥ प्रायोविषादजनकंभवतोर्यददर्शनम् ॥ २२ ॥ तदेवनाभवत्तत्रसमभूदन्यदेव हि ॥ तच्चवक्तुंनशक्येततद्वक्तादक्षएवसः ॥ २३ ॥ तानिवाक्यानिचाकर्ण्यद्रुहिणेनययेततः ॥ महर्षिणादधीचेनाधिकृतो नितरांहिसः ॥ २४ ॥ शप्तश्चवीक्षमाणानांदेवर्षीणांप्रजापतिः ॥ मयाचकर्णौपिहितौश्रुत्वातद्गर्हणागिरः ॥ २५ ॥ दधीचिनासमंकेचिद्दुर्वासःप्रमुखाद्विजाः ॥ भवनिन्दांसमाकर्ण्यकियन्तोपिविनिर्ययुः ॥ २६ ॥ प्रावर्ततमहायागोहृष्टपुष्टमहाजनः ॥ तथाद्रष्टुंनशक्तोमिततआगतवानिह ॥ २७ ॥ भगिन्योपिचयादेवितवतत्रसभर्तृकाः ॥ तासाङ्गौरवमालोक्य नकिञ्चिद्वक्तुमुत्सहे ॥ २८ ॥ इतिदेवीसमाकर्ण्यसतीदक्षकुमारिका ॥ करादक्षौसमुत्सृज्यदध्यौकिञ्चित्क्षणंहृदि ॥ २९ ॥

ब्रह्माजी चलेगये और महर्षिदधीचि से धिक्कृत हुये वह ॥ २४ ॥ प्रजापति देवऋषियोंके देखतेही शापितहुये व उनके आपकी निंदा वचनों को सुनकर मैंने कानोंको ढांपलिया ॥ २५ ॥ और ईश्वरकी निन्दाको सुनकर दधीचिके साथ दुर्वासा आदि कोई ब्राह्मण कितने भी विशेपतासमेत निकलकर चलेगये ॥ २६ ॥ व हृष्टपुष्ट जनोंवाला महायज्ञ अधिकतासे वर्त्तमान होरहाहै वैसा देखने को मैं योग्य नहींहूं उससे यहां आयाहूं ॥ २७ ॥ और हे देवि ! स्वामियों समेत जे तुम्हारी बहनै वहां हैं उनकी गुरुता को देखकर मैं कुछ कहनेको उत्साही नहीं होताहूं ॥ २८ ॥ ऐसा सुनकर क्रीडाचारी दक्षकुमारी सतीजीने हाथसे पांसों को फेंककर क्षणभर हृदय में कुछ

ध्यान किया ॥ २९ ॥ फिर कहा कि ऐसाहो परन्तु शिवही मेरे रक्षकहैं इस भांति मन में विचारसमेत निश्चय धारणकर तदनन्तर दक्षकी पुत्री सतीजी ॥ ३० ॥ शीघ्रही भलीभांति उठीं व शङ्करजी के प्रणाम करती भईं और शिरमें अंजली को धर देवीजीने महादेवजी से विज्ञापन किया ॥ ३१ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे अन्धकध्वंसिन्, त्रिपुरान्तक, त्रिनेत्र, सदाशिव ! तुम विजय करो व तुम्हारे चरणारविन्द मेरे रक्षक या स्थान या आधार हैं व आप मुझको आयसु देवो ॥ ३२ ॥ मैं प्रार्थना करतीहूं कि मैं पिता के समीप को जाऊंगी आप मुझको मत रोको ऐसा कहकर अन्धकके वैरी शिवजी के चरणारविन्दों में मस्तक को धरदिया ॥ ३३ ॥ अनन्तर शङ्कर

उवाचचभवत्वेवंशरणम्भवएवमे ॥ सम्प्रधार्यैतिमनसिसतीदाक्षायणीततः ॥ ३० ॥ द्रुतमेवसमुत्तस्थौप्रणनाम चशङ्करम् ॥ मौलावञ्जलिमाधायदेवीदेवंव्यजिज्ञपत् ॥ ३१ ॥ देव्युवाच ॥ विजयस्वान्धकध्वंसिंस्त्र्यम्बकत्रिपुरान्तक ॥ चरणौशरणन्तेमेदेह्यनुज्ञांसदाशिव ॥ ३२ ॥ मानिषेधीःप्रार्थयामियास्यामिपितुरन्तिकम् ॥ उक्त्वेतिमौलिमदधादन्धकारिपदाम्बुजे ॥ ३३ ॥ अथोक्ताशम्भुनादेवीमृडान्युत्तिष्ठभामिनि ॥ किमपूर्णन्तवास्त्यत्रवदसौभाग्यसुन्दरि ॥ ३४ ॥ लक्ष्म्याअपिचसौभाग्यंब्रह्माण्यैकान्तिरुत्तमा ॥ शच्यैनित्यनवीनत्वंभवत्यादत्तमीश्वरि ॥ ३५ ॥ त्वयाचशक्तिमानस्मिन्महदैश्वर्यरक्षणे ॥ त्वाञ्चशक्तिंसमासाद्यस्वलीलारूपधारिणीम् ॥ ३६ ॥ एतत्सृजामिपाम्यद्मित्वल्लीलाप्रेरितोङ्गने ॥ कुतोमांहातुमिच्छेस्त्वंममवामार्धधारिणि ॥ ३७ ॥ शिवाशिवोदितञ्चेतिश्रुत्वाप्याहमहेश्वरम् ॥ जीवितेशविहायत्वांनक्वापिपरियाम्यहम् ॥ ३८ ॥ मनोमेचरणद्वन्द्वेतवस्थास्यतिनिश्चलम् ॥ क्रतुन्द्रष्टुंपितुर्यामिनैत्विय

जीने देवीजीसे कहा कि हे सौभाग्य सुन्दरि, भामिनि, मृडानि ! उठो यहां तुमको क्या न्यूनहै ॥ ३४ ॥ हे ईश्वरि ! तुमने लक्ष्मीको सौभाग्य व सरस्वतीको उत्तम कान्ति और इन्द्राणी को भी नित्य नवीनता दियाहै ॥ ३५ ॥ व मैं बड़े ऐश्वर्यकी रक्षा में तुमसेही शक्तिमान्हूं फिर अपनी लीलासे रूप धारिणी तुम शक्तिको भलीभांति प्राप्तहोकर ॥ ३६ ॥ तुम्हारी लीलासे प्रेरित हुआ इस जगतको सिरजताहूं व पालताहूं व प्रलय करताहूं हे मेरे वामार्धकी धारिणि, अंगने ! तुम क्यों मुझको त्यागने को इच्छा करतीहो ॥ ३७ ॥ ऐसा शिवजीका कहा वचन सुनकर भी शिवा (सती) जीने महेशजीसे कहा कि हे जीवितेश ! मैं तुमको त्यागकर कहीं भी नहीं जाऊंगी ॥ ३८ ॥

मेरा निश्चल मन तुम्हारे दोनों चरणारविन्दों में टिकेगा किन्तु मैं पिता का यज्ञ देखने के लिये जाताहूं क्योंकि मैंने कहीं भी यज्ञको नहीं देखा ॥ ३९ ॥ तब देवीजी के वाक्यको सुनकर शङ्करजीने ऐसा कहा कि जो तुमने यज्ञ को नहीं देखा तो मैं यज्ञको करताहूं या सब ओरसे लाताहूं ॥ ४० ॥ अथवा मेरी शक्ति धारिणी तुम अन्य यज्ञ क्रियाको सिरजो कि अन्य यज्ञपुरुषहो व अन्य लोकपाल होवें ॥ ४१ ॥ और तुम ऋत्विजों के कर्म में अन्य ऋषियों को शीघ्रही करो इस प्रकार शम्भु के कहेहुये वचन को सुनकर देवीजीने फिर कहा ॥ ४२ ॥ कि हे नाथ ! पिताका यज्ञ मुझसे यहां निश्चय देखने योग्यहै इससे मुझको आज्ञादो मैं जाऊंगी

ज्ञोमयाकचित् ॥ ३९ ॥ शम्भुःकात्यायनीवाक्यमितिश्रुत्वातदाब्रवीत ॥ क्रतुस्त्वयानेच्छितश्चेदाहरामिततःक्रतुम् ॥ ४० ॥ मच्छक्तिधारिणीत्वंवासृजेवान्यांक्रतुक्रियाम् ॥ अन्योयज्ञपुमानस्तुसन्त्वन्येलोकपालकाः ॥ ४१ ॥ अन्यानाशुविधेहित्वमृषीनार्त्विज्यकर्मणि ॥ पुनर्जगाददेवीतिश्रुत्वाशम्भोरुदीरितम् ॥ ४२ ॥ पितुर्यज्ञोत्सवोनाथद्रष्टव्योऽत्रमयाध्रुवम् ॥ देह्यनुज्ञाङ्गमिष्यामिमामेकार्षीर्वचोन्यथा ॥ ४३ ॥ कःप्रतीपयितुंशक्तश्चेतोवाजलमेववा ॥ निम्नायाभ्युद्यतंनाथमाद्यमाम्प्रतिषेधय ॥ ४४ ॥ निशम्येतिपुनःप्राहसर्वज्ञोभूतनायकः ॥ मायाहिदेविमांहित्वागताचनमिलिष्यसि ॥ ४५ ॥ अद्यप्राचींयियासुन्त्वावारयेत्पंगुवासरः ॥ नक्षत्रञ्चतथाज्येष्ठातिथिश्चनवमीप्रिये ॥ ४६ ॥ अद्यसप्तदशोयोगोवियोगोद्यतनोऽशुभः ॥ धनिष्ठार्धसमुत्पन्नेतवताराद्यपञ्चमी ॥ ४७ ॥ मागादेविगताद्यत्वंनहिद्रक्ष्यसिमांपुनः ॥ पुनर्देवीबभाषेसा

व मेरे वचनको आप अन्यथा मतकरो ॥ ४३ ॥ व हे नाथ ! नीचे के सम्मुख जाने को उद्यत जल व चित्तको उलटाने के लिये कौन समर्थ है उससे आज मुझको मत रोंको ॥ ४४ ॥ ऐसा सुनकर सर्वज्ञ शिवजीने फिर कहा कि हे देवि ! तुम मुझको छोड़कर मत जावो और गईहुई फिर न मिलोगी ॥ ४५ ॥ क्योंकि हे प्रिये ! आज पूर्वदिशा को जाना चाहती हुई तुमको शनैश्चर दिन तथा ज्येष्ठा नक्षत्र और नवमीतिथि निवारण करै है ॥ ४६ ॥ व आज सत्रहवां (व्यतीपात) योगहै व आजका वियोग अशुभहै और हे धनिष्ठार्धसमुत्पन्ने ! आजतुम्हारी पचईं ताराहै ॥ ४७ ॥ हे देवि ! आज मतजावो व गईहुई तुम फिर मुझको नहीं देखोगी तब फिर उन देवीजी

ने कहा कि जो मैं नामसे सतीहूं ॥ ४८ ॥ तो अन्य देहसे भी तुम्हारी दासताको करूंगी तदनन्तर शिवजी फिर बोले कि निवारण करने को कौन समर्थ है क्योंकि सब ओर से सञ्चलित चित्तकी वृत्तिवाली स्त्री व पुरुषको भी कौन लौटा सक्ताहै हे देवि ! फिर मेरा दर्शन नहींहै मैं सत्य कहताहूं ॥ ४९।५० ॥ परन्तु हे कान्ते, देवि ! मानधन के चाहियो को बुलाये विना माता पिताके घरों में भी न जाना चाहिये ॥ ५१ ॥ जैसे समुद्रमें गई नदी फिर नहीं लौटती है वैसेही आज जानेवाली जो तुमहो उन का आना कभी नहीं इच्छित होताहै ॥ ५२ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि जो मैं तुम्हारे दोनों चरणारविन्दों में अवश्यकर अनुराग (स्नेह) वालीहूं तो जन्मान्तर में भी

यदिनाम्नाप्यहंसती ॥ ४८ ॥ तदातन्वन्तरेणापिकरिष्येतवदासताम् ॥ ततोभवःपुनःप्राहकोवावारयितुंप्रभुः ॥ ४९ ॥ परिक्षुब्धमनोवृत्तिंस्त्रियंवापुरुषन्तुवा ॥ पुनर्नदर्शनन्देविमयासत्यम्ब्रवीम्यहम् ॥ ५० ॥ परंनदेविगन्तव्यंमहामान धनेच्छुभिः ॥ अनाहूततयाकान्तेमातापितृगृहानपि ॥ ५१ ॥ यथासिन्धुगतासिन्धुर्नपुनःपरिवर्तते ॥ तथाद्यगन्त्र्यानो जातुतवागमनमिष्यते ॥ ५२ ॥ देव्युवाच ॥ अवश्यंयद्यहंरक्तातवपादाम्बुजद्वये ॥ तथात्वमेवमेनाथोभविष्यसिभवा न्तरे ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वानिर्ययौदेवीकोपान्धीकृतलोचना ॥ यियासुभिश्चकार्यार्थंयत्कर्तव्यंनतत्कृतम् ॥ ५४ ॥ ननना ममहादेवंनचचक्रेप्रदक्षिणम् ॥ अतएवहिसादेवीनगतापुनरागता ॥ ५५ ॥ अप्रणम्यमहेशानमकृत्वापिप्रदक्षिणम् ॥ अद्यापिननिवर्तन्तेगताःप्राग्वासराइव ॥ ५६ ॥ तयाचरणचारिण्याराज्ञ्यात्रिभुवनेशितुः ॥ अपितत्पावनंवर्त्ममेनेतिक ठिनम्बहु ॥ ५७ ॥ देवोपितांसतींयान्तींदृष्ट्वाचरणचारिणीम् ॥ अतीवविव्यथेचित्तेगणांश्चाथसमाह्वयत् ॥ ५८ ॥

तुमहीं मेरे नाथ होवोगे ॥ ५३ ॥ ऐसा कहकर कोपसे अन्धी किई आंखों वाली देवीजी निकलकर चलदी और जाना चाहतेहुये जनोंको जो कार्य्यार्थ यात्रा निमित्त करना चाहिये उसको भी न किया ॥ ५४ ॥ कि महादेवजी के नमस्कार नहीं किया और प्रदक्षिणा नहीं किया इससेही गईहुई देवीजी फिर नहीं आईं ॥ ५५ ॥ और आजभी महेशजी के प्रणाम न कर व प्रदक्षिणा को भी न कर गयेहुये लोग पहले बीते दिनोंकी नाईं नहीं लौटते हैं ॥ ५६ ॥ उस समय पावों से चलती हुई उन त्रि-लोकेशकी रानीने उस पावन मार्गको भी बहुतही अत्यन्त कठिन माना अथवा बहुतही अत्यन्त कठिन भी उस मार्गको पावन माना ॥ ५७ ॥ और महादेवजी भी

पावों से जातीहुई क्रीडा कारिणी सती को देखकर मनमें अतिशय व्यथित हुये अनन्तर गणोंको भलीभांति बुलाते भये ॥ ५८ ॥ कि हे गणो ! विमान को लेजावो जो कि मन और पवन चक्रवाला व दशहजार सिंहो से संयुत व सुमेरु ध्वजा से ऊंचाहै ॥ ५९ ॥ व जिसमें महावायु पताकाहै व जो कि महत्तत्त्वरूप अक्ष (जो कि बीचमें दीर्घाकार काष्ठ होताहै) से लक्षित है व जिसमें नर्मदा और गंगा ईषा दण्डता को प्राप्त हैं याने फरी हैं ॥ ६० ॥ व जिसमें सूर्य्य और चन्द्रमा भी छत्र हुये हैं व जिसमें उत्तमा वाराही शक्ति मकराकार तुण्डहै ॥ ६१ ॥ व जिसमे गायत्री भी आपही धुरी है व तक्षकादि नाग रस्सी हैं व ॐकार सारथी है और ॐकारकी

गणाविमानंनयतमनःपवनचक्रिणम् ॥ पञ्चास्यायुतसंयुक्तंरत्नसानुध्वजोच्छ्रितम् ॥ ५९ ॥ महावातपताकञ्चमहाबुद्ध्यक्षलक्षितम् ॥ नर्मदालकनन्दाचयत्रेषादण्डताङ्गते ॥ ६० ॥ छत्रीभूतौचयत्रस्तःसूर्याचन्द्रमसावपि ॥ यस्मिन्मकरतुण्डञ्चवाराहीशक्तिरुत्तमा ॥ ६१ ॥ धूःस्वयञ्चापिगायत्रीरज्जवस्तक्षकादयः ॥ सारथिःप्रणवोयत्रकेङ्कारःप्रणवध्वनिः ॥ ६२ ॥ अङ्गानिरक्षकायत्रवरूथश्छन्दसाङ्गणः ॥ इत्याज्ञप्तागणास्तूर्णंरथंनिन्युर्हराज्ञया ॥ ६३ ॥ देव्यासनाथंतंकृत्वा विमानम्पार्षदादिवि ॥ अनुजग्मुर्महादेवींदिव्यान्तेजोविजृम्भिणीम् ॥ ६४ ॥ सात्त्वणन्त्र्यक्षरमणीवीक्ष्यदक्षसभाङ्गणम् ॥ नभोऽङ्गणाद्विमानस्थाततोवेगादवातरत् ॥ ६५ ॥ अविशद्यज्ञवाटञ्चचकितंरक्षिवीक्षिता ॥ कृतमङ्गलनेपथ्यां प्रसून्दृष्ट्वाकिरीटिनीम् ॥ ६६ ॥ सभर्तृकाश्चभगिनीर्नवालंकृतिशालिनीः ॥ साश्चर्याश्चसगर्वाश्चसानन्दाश्चससाध्व

ध्वनि शब्द है ॥ ६२ ॥ व वेदों के अंग शिक्षा कल्पादि जिसमें रक्षकहैं और छन्दों का समूह वरूथ (रथगुप्ति) है उस रथको इस भांति आयसु पाये हुये गणों ने शिवजीकी आज्ञा से शीघ्रही प्राप्त किया ॥ ६३ ॥ व दिवलोक में उस विमानको देवीजी से सनाथकर पार्षद लोगों ने सूर्य्यादि तेजोंको नीचे करतीहुई दिव्य रूपिणी महादेवी के पीछे गमन किया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर विमान में टिकीहुई वह त्रिनेत्रजी की रमणी सतीजी क्षणभर दक्षके सभांगणको देखकर आकाश आंगन से उतर आईं ॥ ६५ ॥ व रक्षकों से चकित २ देखी हुई यज्ञभूमि में पैठीं और मंगल के भूषणकिये हुई मुकुटवाली माता को देखकर ॥ ६६ ॥ नवीन भूषणों से सोहतीहुई पतियों

समेत उन भगिनियों (बहनो) को देखकर जे कि आश्चर्य्य समेत व गर्वसहित व आनन्द संयुत व संभ्रमरामेत हैं ॥ ६७ ॥ और क्षणभर ऐसे देखतीहुई हैं कि विना विचारी व विना बुलाई यह शिवकी प्यारी विमान से कैसे परि प्राप्तहोगई है ॥ ६८ ॥ उनसे न संभापण करभी सतीजी दक्षके समीपमें गईं व पिता और मातासे पूंछी जातीभई कि तुम्हारे आने मे कल्याण हुआ है ॥ ६९ ॥ सतीजी बोली कि हे पितः! जो मेरे आने से मंगल होता तो जैसे ये मेरी बहनें भलीभांति बुलाई गईं हैं वैसे मैं क्यों नहीं बुलाईगई ॥७०॥ दक्षजी बोले कि हे अनन्ये, सर्वमंगले, महाधन्ये, कन्ये! यह तुम्हारा कुछ दोप नहीं है मेराही दोष है ॥ ७१ ॥ जिससे मूर्ख बुद्धिवाले मैंने

सा: ॥ ६७ ॥ अचिन्तितात्वनाहूताविमानाद्धरवल्लभा ॥ कथमेषापरिप्राप्तात्क्षणमित्थम्प्रपश्यतीः ॥ ६८ ॥ असम्भाष्यापिताःसर्वागतादक्षान्तिकंसती ॥ पित्रापृष्टातुमात्रापिभद्रञ्जातन्त्वदागमे ॥ ६९ ॥ सत्युवाच ॥ यदिभद्रञ्जनेतर्मेसमागमनतोभवेत् ॥ कथंनाहंसमाहूतायथैतामेसहोदराः ॥ ७० ॥ दक्षउवाच ॥ अयिकन्येमहाधन्येह्यनन्येसर्वमङ्गले ॥ अयन्तेनमनाक्दोषोदोषएवममैवहि ॥ ७१ ॥ तादृग्विधाययत्पत्येमयादत्ताज्ञबुद्धिना ॥ यदहन्तंसमाज्ञास्यमीश्वरोसौनिरीश्वरः ॥ ७२ ॥ तदाकथमदास्यन्त्वांतस्मैमायास्वरूपिणे ॥ अहंशिवाख्ययातुष्टोनजानेशिवरूपिणम् ॥७३॥ पितामहेनबहुधावर्णितोसौममाग्रतः ॥ शङ्करोयमयंशम्भुरसौपशुपतिःशिवः ॥ ७४ ॥ श्रीकण्ठोसौमहेशोऽसौसर्वज्ञोसौवृषध्वजः ॥ अस्मैकन्याम्प्रयच्छत्वंमहादेवायधन्विने ॥ ७५ ॥ वाक्याच्छतधृतेस्तस्मात्तस्मैदत्तामयानघे ॥ नजानेतंविरूपाक्षमुक्षगंविषभक्षणम् ॥ ७६ ॥ पितृकाननसंवासंशूलिनञ्चकपालिनम् ॥ द्विजिह्वसङ्गसुभगंजलाधारङ्कपर्दिन

तुमको वैसे पति के लिये दिया जो मैं उनको जानता कि यह ईश्वर निरीश्वर हैं ॥ ७२ ॥ तो उन मायास्वरूपी के लिये तुमको क्यों देता व शिव नाम से सन्तुष्ट हुये मैंने अमंगलरूपी नहीं जाना ॥ ७३ ॥ क्योंकि मेरे आगे वह ब्रह्मा से बहुत भांति वर्णितहुये कि यह शिव सुख कर्त्ता हैं व यह कल्याण कर्त्ताहैं व यह जीवों के स्वामी हैं ॥ ७४ ॥ व यह श्रीकण्ठ हैं व यह महेशहैं और यह वृपध्वज (धर्मकी ध्वजावाले) हैं इन धन्वाधारी महादेवजी के लिये तुम कन्याको दो ॥ ७५ ॥ हे अपापे! ब्रह्मा के उस वचन से मैंने उनको दिया और मैं उनको ऐसा नहीं जानता था कि यह विरूपनेत्र , वृषवाहन और विषभक्षी हैं ॥ ७६ ॥ व श्मशान संवासी, त्रिशूली,

कपालधारी व सर्पों के संग से सुभग व जलके आधार व जटीले हैं ॥ ७७ ॥ व कलंकी चन्द्रमा को माथेमें किये हुये, धूरिकी धूमरतासे लिप्त व कहीं कौपीन वस्त्रवाले और कहीं वातूलके समान नग्न हैं ॥ ७८ ॥ व कहीं चर्मवस्त्रधारी व कहीं भिक्षा को प्यारी करनेवाले व विरूपहुये अनुचरो (गणों) से संयुत,अचल,उग्र, व तमोगुणी हैं ॥ ७९ ॥ रुद्र व रौद्र रस सम्बन्धी परिवारवारे व महाकालरूपधारे व मनुष्यों के हाड़ों को परिकर (खट्वा आदि) कियेहुये व जाति और गोत्रसे हीनहैं ॥ ८० ॥ हे समस्त नीति शोभिनि, पुत्रि ! बहुत कहने से क्या है उनकी माया से वञ्चित हुआ जानता भी कोई उनको भलीभांति नहीं जानताहै ॥ ८१ ॥ कहां वह मैले कपड़े

म् ॥ ७७ ॥ कलङ्किकृतमौलिश्च धूलिधूसरचर्चितम् ॥ क्वचित्कौपीनवसनंनग्नंवातूलवत्कचित् ॥ ७८ ॥ क्वचिच्चर्मवसनं क्वचिद्भिक्षाटनप्रियम् ॥ विटङ्कभूतानुचरंस्थाणुमुग्रन्तमोगुणम् ॥ ७९ ॥ रुद्रंरौद्रपरीवारंमहाकालवपुर्धरम् ॥ नृकरोटीपरिकरंजातिगोत्रविवर्जितम् ॥ ८० ॥ नसम्यग्वेत्तितङ्कश्चिज्जानानोपिप्रतारितः ॥ किम्वहूक्तेनतनयेसमस्तनयशालिनि ॥ ८१ ॥ कपांसुलपटच्छन्नोमहाशङ्खविभूपणः ॥ प्रवद्धसर्पकेयूरःप्रलम्बितजटासटः ॥ ८२ ॥ डमड्डमरुकव्यग्रहस्ताग्रःखण्डचन्द्रभृत् ॥ ताण्डवाडम्बररुचिःसर्वामङ्गलचेष्टितः ॥ ८३ ॥ मृडानिसहरःकाऽयमध्वरोमङ्गलालयः ॥ अतएवसमाहूतानेहत्वंसर्वमङ्गले ॥ ८४ ॥ दुकूलान्यनुकूलानिरत्नालंकृतयःशुभाः ॥ प्रागेवधारितास्तेत्रपश्यागत्यगृहाणच ॥ ८५ ॥ इहमङ्गलवेशेषुदेवेन्द्रेपुसशूलधृक् ॥ कथमर्होभवेचेतिमङ्गलेविपमेक्षणः ॥ ८६ ॥ इत्याकर्ण्यस

पहने, शंखों के गहनेवाले व सर्पों का मुकुट बांधे और बहुत लम्बे जटा जूटधारी हैं ॥ ८२ ॥ जो कि डमडम डमडम डमरू से व्यग्र हस्ताग्रवाले व चन्द्र खण्डधारी व नृत्याटोप में रुचिकारी और सब अमंगल कर्मवाले हैं ॥ ८३ ॥ हे मृडानि (सुखकारिणि)! कहां वह हर और कहां यह मंगलों का स्थान यज्ञ है याने बडा बीचहै हे सर्वमंगले ! या इस सब मंगलमय यज्ञमें मैंने तुमको नहीं बुलाया ॥ ८४ ॥ किन्तु अनुकूल, दुकूल (रेशमी या पीताम्बर) व शुभ, रत्नभूषण तुम्हारे लिये यहां पहलेही धरायेगये हैं आकर उनको देखो और ग्रहण करो ॥ ८५ ॥ व इस मंगलकर्म में मंगल वेष इन्द्रादि देवों के बीच वह तीन आंखोंवाले त्रिशूलधारी कैसे यो-

ग्य होवे हैं ॥ ८६ ॥ इस प्रकार पिता के कहेहुये वचनको सुनकर अत्यन्त पीड़ित अन्तःकरणवाली पतिव्रता सतीजी ने उस समय कहने को भलीभांति उपक्रम (आरम्भ) किया ॥ ८७ ॥ श्रीसतीजी बोलीं कि हे प्रभो ! तुम्हारे कहतेही दोपदों को सुनकर मैंने कुछ नहीं सुना और उस पदद्वयी को तुम से कहतीहूं ॥ ८८ ॥ कि माया से वञ्चित, जानता हुआभी उनको भलीभांति नहीं जानताहै यह तुमने अच्छा कहा है क्योंकि उन सदाशिव को कौन जन जानता है ॥ ८९ ॥ और उन से सम्बन्ध करके असम्बद्ध प्रलापको सेवतेहुये तुम तो पहले वञ्चित हुये इस समयभी वञ्चित हुयेहो ॥ ९० ॥ व तुमने शङ्करको जैसा कहा वैसा जो मानते थे तो जिनको

तीसाध्वीजनेतुरुदितन्तदा ॥ अत्यन्तदूनहृदयावक्तुंसमुपचक्रमे ॥ ८७ ॥ सत्युवाच ॥ नाकर्णितंमयाकिञ्चित्त्वयिप्रब्रुवतिप्रभो ॥ पदद्वयींसमाकर्ण्यताञ्चतेकथयाम्यहम् ॥ ८८ ॥ नसम्यग्वेत्तितंकश्चिज्जानानोपिप्रतारितः ॥ एतत्सम्यक्त्वयाख्यायिकस्तंवेत्तिसदाशिवम् ॥ ८९ ॥ त्वन्तुप्रतारितःपूर्वमधुनापिप्रतारितः ॥ कृत्वातेनचसम्बन्धमसम्बद्धप्रलापभाक् ॥ ९० ॥ यादृशंवर्णितंशम्भुन्तादृशंयद्यमन्यथाः ॥ कुतोमामददास्तस्मैयञ्चकश्चनवेदन ॥ ९१ ॥ अथवातेनसम्बन्धेनहेतुर्भवतोमतिः ॥ तत्रहेतुरभूत्तातममपुण्यैकगौरवम् ॥ ९२ ॥ अथोक्त्वैवंबहुतरन्त्वञ्जनेतास्यवर्ष्मणः ॥ श्रुतानेनचदेहेनपत्युःपरिविगर्हणा ॥ ९३ ॥ पुरश्चरणमेवैतद्यदस्यैवविसर्जनम् ॥ सुश्लाघ्यजन्मयातावत्प्राणितव्यंसुयोषिता ॥ यावज्जीवितनाथस्याश्रवणीयाविगर्हणा ॥ ९४ ॥ इत्युक्त्वाक्रोधदीप्ताग्नौमहादेवस्वरूपिणि ॥ जुहावदेहस

कोई नहीं जानता है उनके लिये मुझको क्यों दिया ॥ ९१ ॥ अथवा उनके साथ सम्बन्ध में आपकी बुद्धि कारण नहीं है किन्तु हे तात ! मेरे पुण्यका मुख्य गौरव कारण है ॥ ९२ ॥ अनन्तर ऐसा बहुत अधिक कहकर कि तुम इस देहको उपजानेवाले हो व इस देहसे पतिकी सब ओर से निन्दा सुनीगई है ॥ ९३ ॥ इस से जो कि इस देहकाही छोड़नाहै वही पुरश्चरण (पापोद्धार) है क्योंकि अच्छे प्रशंसनीय जन्मवाली अच्छी स्त्री को तब तक जीना चाहिये कि जबतक प्राणनाथकी निन्दा सुनने योग्य न होवे ॥ ९४ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने महादेवजी का स्वरूप जो क्रोधसे प्रज्वलित अग्नि है उसमें प्राणायामकी विधि से देह ईंधन को हवन कर

दिया ॥ ९५ ॥ तदनन्तर इन्द्रादि सब देव विवर्णता को प्राप्तहुये व जैसे पहले घीकी आहुतियों से अग्नि जलती थी वैसे नहीं ज्वलितहुई ॥ ९६ ॥ व उस क्षणमेंही मन्त्र कुण्ठित सामर्थ्य होगये आश्चर्य्य या खेदहै कि यह क्या बड़ा अनिष्ट समुपस्थित हुआहै ॥९७॥ इसप्रकार चारों ओर जाना चाहते हुये कोई ब्राह्मणवर परस्पर बतलाने लगे ॥ ९८ ॥ व पर्वत कँपाने को समर्थ बड़ी कठोर बयार बही उसने यज्ञ मण्डपकी भूमिको क्षणमें तृणादिकों से छादित किया व असमय में बिजुलीका गिरना और भूमिका बड़ा कम्पन हुआ ॥ ९९ ॥ व दिनमेंही उल्का गिरीं और पिशाचों ने नृत्यको सब ओरसे धारण किया और आकाश में गीध मण्डलाकार निरन्तर

मिथम्प्राणरोधविधानतः॥ ९५ ॥ ततोविवर्णतांप्राप्ताःसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ नाग्निर्जज्वालचतथायथाज्याहुतिभिःपुरा॥ ९६ ॥ मन्त्राःकुण्ठितसामर्थ्यास्तत्क्षणादेवचाभवन् ॥ अहोमहानिष्टतरंकिमेतत्समुपस्थितम् ॥ ९७ ॥ केचिदूचुर्द्विजवरामिथःपरियियासवः ॥ महाभञ्भानिलःप्राप्तःपर्वतान्दोलनक्षमः ॥ ९८ ॥ मखमण्डपभूस्तेनक्षणातःस्थपुटीकृता ॥ अकाण्डन्तडिदापातोजातोभूद्भूप्रकम्पनः ॥ ९९ ॥ दिवश्चोल्काःप्रपतिताःपिशाचानृत्यमादधुः ॥ आतापिगृध्रैरुपरिगगनेमण्डलायितम् ॥ १०० ॥ रवेरधस्तादशिवंशिवास्तत्राप्यरारिषुः ॥ मेघारुधिरविप्रुङ्भिस्तत्रवृष्टिंव्यधुःपराम् ॥ १ ॥ निर्घातनिःस्वनोभूमेरुत्थितोहृत्प्रकम्पनः ॥ दिव्यायुधानिचमिथोयुध्यन्तिस्मातिभीषणम् ॥ २ ॥ हवनीयंमहाद्रव्यन्दूषितंक्रोष्टुभिःश्वभिः ॥ चकोराःकरटास्तत्रविचेरुर्यज्ञमण्डपे ॥ ३ ॥ श्मशानवाटवज्जातोयज्ञवाटःसवैक्षणात ॥ यद्यत्रावस्थितंसर्वन्तत्तत्रैवपरितिष्ठितम् ॥ ४ ॥ चित्रन्यस्तमिवासीच्चवस्तुजातमशोभिच ॥ स्थगिताइवसंवृत्तास्तत्रचक्रधरा

मड़राने लगे ॥ १०० ॥ व वहांहीं सूर्य्य के नीचे याने सूर्य्योदय के बाद शृगालियों (स्यारियों) ने अमङ्गल शब्द किया व मेघों ने रक्त के बूँदों से बड़ी बरसा कर दी ॥ १ ॥ व हृदय कम्पानेवाला वज्रपातका शब्द भूमिसे उठा और अत्यन्त भयानक जैसेहो वैसे दिव्य आयुध आपुसमें लड़नेलगे ॥ २ ॥ व होमके योग्य महा द्रव्य स्यार और श्वानों से दूषित भया व चकोर और काग उस यज्ञमण्डपमें विचरते फिरते थे ॥ ३ ॥ वह यज्ञवाट क्षणमें श्मशान भूमिसा होगया कि जो जहां धरा या टिकाथा वह सब वहांहीं सबओर से स्थितरहा ॥ ४ ॥ व शोभा रहित वस्तुओं का समूह चित्रमें धरासा होगया और वहां चक्रधारी विष्णुआदि देव शङ्कित की नाईं

भलीभांति वर्तमान हुये ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो! मुखकी मलीनताको प्राप्तहोकर परिच्छद याने परिवार व दासी दासादि या सब सामग्रियों समेत दक्षने फिरभी जिसकिसी प्रकारसे यज्ञको प्रवर्त्तित किया ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेसतीदेहविसर्जनंनामाष्टाशीतितमोध्यायः ॥ ८८ ॥ ❀ ॥

दो० नौवासी अध्याय में दक्ष यज्ञ विध्वंस । समुत्पत्ति दक्षेशकी वर्णित सहित प्रशंस ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी! देवीजीके आगे भलीभांति समीप में आये हुये वह नारदमुनि फिर उनके सम्पूर्ण वृत्तान्तको शिवजीसे जनानेके लिये गये ॥ १ ॥ व उन नारदजीने नन्दीश्वरके साथ तर्जनी अँगुली के विन्यास पूर्वक

दयः ॥ ५ ॥ दक्षोपिवदनम्लानिमवाप्यसपरिच्छदः ॥ पुनर्यथाकथञ्चिच्चयज्ञंप्रावर्तयन्द्विजाः ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसतीदेहविसर्जनंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ पुनःसनारदोऽगस्त्यदेव्याःप्राक्समुपागतः ॥ तद्वृत्तान्तमशेषञ्चहरायावेदितुंययौ ॥ १ ॥ दृष्ट्वासनारदःशम्भुंनन्दिनासहसङ्कथाम् ॥ काञ्चित्तर्जनिविन्यासपूर्वंकुर्वन्तमानमत् ॥ २ ॥ उपाविशच्चशैलादिविसृष्टासनमुत्तमम् ॥ वैलक्ष्यंनाटयन्किञ्चित्क्षणंजोषन्समास्थितः ॥ ३ ॥ आकारेणैवसर्वज्ञस्तद्वृत्तान्तंविवेदह ॥ अवादीच्चमुनिंशम्भुःकुतोमौनावलम्बनम् ॥ ४ ॥ शरीरिणांस्थितिरियमुत्पत्तिप्रलयात्मिका ॥ दिव्यान्यपिशरीराणिकालाद्यान्त्येवमेवहि ॥ ५ ॥ दृश्यंविनश्वरंसर्वंविशेषाद्यदनीश्वरम् ॥ ततोऽत्रचित्रंकिंब्रह्मन्कङ्कालःकालयेन्नवै ॥ ६ ॥ अभाविनोहिभा

किसी कथाको करते हुये शङ्करजी को देखकर प्रणाम किया ॥ २ ॥ और वह शिलादके पुत्र नन्दीश्वर से दिये हुये उत्तम आसन पै समीप ही बैठे व पहले आने से कुछेक विलक्षणताको घटातेहुये क्षणभर चुप रहगये ॥ ३ ॥ व सर्वज्ञ शम्भुजीने आकारसेही उनके या उस सब वृत्तान्तको स्पष्ट जानलिया और मुनिसे कहा कि मौनका अवलम्बन क्योंहै ॥ ४ ॥ यह देहधारियोंकी स्थिति उत्पत्ति और प्रलयरूपिणी है ऐसेही दिव्य शरीरभी कालसे जातेही हैं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मण! जोकि विशेष से ईश्वर नहीं है याने परवशहै वह सब दृश्य (देखने योग्य जगत) नश्वर है इसलिये इसमें क्या आश्चर्य्य है क्या काल नहीं नाशकरे है ॥ ६ ॥ जोकि न होनेवाला भावहै उसका

होना कहीं भी नहीं सम्भवे है याने जो नहीं है उसका होना नहीं होताहै और जो पदार्थ सतही है उसका न होना भी नहीं है उससे ज्ञानीजन नहीं मोहते हैं ॥ ७ ॥ इस भांति शंकरजीके कहेहुये वचनको सुनकर उन मुनिपुंगवने कहा कि देवने जो यह कहा वह सत्यही है ॥ ८ ॥ जोकि अवश्यही होने योग्यथा वह हुआ इसमें संशय नहीं है परन्तु चित्तको मथनेवाली एक चिन्ता मुझको अत्यन्त बाधा करती है ॥ ९ ॥ कि तत्त्वसे तुम्हारा न कुछ घटे न बढ़े क्योंकि अविनाशी और पूर्ण होनेसे हानि व वृद्धि तुममें कैसे होसक्तीहै याने नहीं है ॥ १० ॥ और खेद या आश्चर्य्यहै कि बापुरा संसार कहां होवेगा जिससे आज दिनसे आरम्भ कर कोई भी तुमको न पूजेगे ॥ ११ ॥

वस्यभावःक्वापिनसंभवेत् ॥ भाविनोपिहिनाभावस्ततोमुह्यन्तिनोबुधाः ॥ ७ ॥ शम्भूदीरितमाकर्ण्यसइत्थंमुनिपुङ्गवः ॥ प्रोक्तवान्सत्यमेवैतद्यद्देवेनप्रभाषितम् ॥ ८ ॥ अवश्यमेवयद्भाव्यन्तद्भूतंनात्रसंशयः ॥ परंमाम्बाधतेत्यन्तञ्चिन्तैका चित्तमाथिनी ॥ ९ ॥ नापचीयेततेकिञ्चिन्नोपचीयेततत्त्वतः ॥ अव्ययत्वाच्चपूर्णत्वाद्धानिवृद्धीकुतस्त्वयि ॥ १० ॥ अहो वराकःसंसारःक्वभविष्यत्यनीश्वरः ॥ आरभ्याद्यदिनंनत्वामर्चयिष्यन्तिकेपियत् ॥ ११ ॥ यतःप्रजापतिर्दक्षोनत्वामाहूतवान्क्रतौ ॥ तेनाद्यरीढितंदृष्ट्वादेवर्षिमनुजाअपि ॥ १२ ॥ तवरीढाङ्करिष्यन्तिकिमैश्वर्येणरीढिनाम् ॥ प्राप्तावहेडना लोकेजितकालभयाअपि ॥ अथैश्वर्येणसम्पन्नाःप्रतिष्ठाभाजनंकिमु ॥ १३ ॥ महीयसायुषातेषांवसुभिर्भूरिभिश्चकिम् ॥ येऽभिमानधनानेहलब्धरीढाःपदेपदे ॥ १४ ॥ अचेतनाश्चसावज्ञाजीवन्तोपिनकीर्तये ॥ अभिमानधनाधन्यावरंयोषित्सुसासती ॥ १५ ॥ यात्वद्विनिन्दाश्रवणात्तृणीचक्रेस्वजीवितम् ॥ इत्याकर्ण्यमहाकालःसम्यग्ज्ञात्वासतीव्ययम् ॥ १६ ॥

व जिससे प्रजापतिदक्षजीने यज्ञमें तुमको न बुलाया उससे आज अवज्ञात (अनादरित) देखकर देवऋषि और मनुष्य भी ॥ १२ ॥ तुम्हारी अवज्ञाकरेंगे तो अनादरवालोंका ऐश्वर्य्य से क्याहै क्योंकि जे लोग कालके डरको जीते है अनन्तर ऐश्वर्य्य से सम्पन्न भी हैं परन्तु लोकमें अवज्ञाको प्राप्तहैं वे क्या प्रतिष्ठाके पात्र होते हैं याने नहीं ॥ १३ ॥ व जेकि अभिमान धनवाले जन यहां क्षण क्षणमें अवज्ञा को नहीं पायेहुये हैं उनको बहुत भारी आयु और बहुतसे धनोंसे भी क्याहै ॥ १४ ॥ व अनादरसमेत जीतेहुये भी जड़ जन्तु कीर्तिके लिये नहीं हैं इससे अभिमान धनवाली सतीजी स्त्रियोंमें धन्याहैं यह श्रेष्ठहै ॥ १५ ॥ कि जिन्होंने तुम्हारी विनिन्दाके सुनने

से अपने जीवितको तृणके समान करदिया ऐसे अच्छेप्रकार सती के नाशको जानकर महाकाल (शिव) जी बोले कि ॥ १६ ॥ हे मुने ! सतीदेवीने अपने जीवितको तृणकिया यह सत्यहै उस समय वहां महाकालके डरसे मुनिके चुपचाप टिकतेहीं ॥ १७ ॥ बहुत क्रोधाग्नि से जलेहुये रुद्रजी अत्यन्त रुद्ररूप होगये तदनन्तर उनके क्रोधरो उपजीहुई अग्निसे महाज्योतिवाला एकजन प्रकटहुआ ॥ १८ ॥ जोकि प्रत्यक्ष व प्रतिमाकार याने पर्वतों से निकलीहुई पुत्तलिकाओं के समान आकारवान् काल मृत्यु प्रकम्पनहै और बड़ी बन्दूखको धारतेहुये उन्होंने परमेश्वरके प्रणामकर कहा ॥ १९ ॥ हे पितः ! मुझको आज्ञादो कि मैं आपकी क्या उत्तम दासताकरूं व आपकी

सत्यंमुनेसतीदेवीतृणीचक्रेस्वजीवितम् ॥ जोषंस्थितेमुनौतत्रतन्महाकालसाध्वसात् ॥ १७ ॥ रुद्रश्चातीवरुद्रोभूद्बहुकोपाग्निदीपितः ॥ ततस्तत्कोपजाद्वह्नेराविरासीन्महाद्युतिः ॥ १८ ॥ प्रत्यक्षःप्रतिमाकारःकालमृत्युप्रकम्पनः ॥ उवाचचप्रणम्येशंभुशुण्डीम्महतीन्दधत् ॥ १९ ॥ आज्ञान्देहिपितःकिन्तेकरवैदास्यमुत्तमम् ॥ ब्रह्माण्डमेककवलंकरवाणित्वदाज्ञया ॥ २० ॥ पिबामिचार्णवान्सप्ताप्येकेनचुलुकेनवै ॥ रसातलंवापातालंपातालंवारसातलम् ॥ २१ ॥ त्वदाज्ञयानयामीशविनिमय्यस्वहेलया ॥ सलोकपालमिन्द्रंवाधृत्वाकेशैरिहानये ॥ २२ ॥ अपिवैकुण्ठनाथश्चेत्तत्साहाय्यङ्करिष्यति ॥ तदातंकुण्ठनास्त्रञ्चकरिष्यामित्वदाज्ञया ॥ २३ ॥ दनुजादितिजाःकेवैवराकारणदुर्बलाः ॥ तेषुचोत्कटताङ्कोपिधत्तेतम्प्राणिहन्म्यहम् ॥ २४ ॥ कालम्बध्नामिवासंख्येमृत्योर्वामृत्युमर्थये ॥ स्थावरेषुचरेष्वत्रमयिक्रुद्धेरणा

आज्ञासे ब्रह्माण्डको एक कौलकरूं ॥ २० ॥ व एकही चुल्लूसे सातो समुद्रोंको निश्चयसे पीसक्ताहूं व भूतलको पातालमें व पातालको भूतलमें ॥ २१ ॥ बदलकर आपकी आज्ञासे पहुंचाताहूं व हे ईश ! अपनी लीलासे लोकपालोंसमेत इन्द्रको बालोंसे पकड़कर यहां लिये आताहूं ॥ २२ ॥ और जो वैकुण्ठकेनाथ भी उनकी सहायता को करेंगे तो आपकी आज्ञासे उनको कुण्ठित अस्त्रवाला करूंगा ॥ २३ ॥ व संग्राममें दुर्बल दानव और बापुरे दैत्य भी कौनहैं फिर उनमें से जो कोई उत्कटता को धारताहै (धारेगा) उसको मैं विनाश करूंगा ॥ २४ ॥ व संग्राममें कालको बांधूं व मृत्युके मृत्युको बुलाऊं व इस रणरूपी आंगन में मेरे क्रुद्धहुयेही यहां स्थावर

और जंगमों के बीच ॥ २५ ॥ कोई भी स्थिरताको न प्राप्तहोवेगा व हे महेशानजी! आपके बलसे मेरे पदतलके घातसे यह पृथिवीतल जोकि निश्चयसे ॥ २६ ॥ रसातल समेतहै वह वायुसे केलाके पत्रकी नाईं कांपताहै और मैं अपने भुजदण्डोंके ताड़नसे इन कुल पर्वतोंको चूर्ण करताहूं ॥ २७ ॥ और बहुत कहने से क्याहै तुम्हारे चरणारविन्दों के बलसे मुझको कुछ असाध्य नहींहै इससे आज्ञादो और चिन्तित कार्य्यको आज कियाहुआ जानो ॥ २८ ॥ इसभांति उनकी प्रतिज्ञाको सुनकर परमेश्वरने कार्य्यको किया माना फिर अत्यन्त आनन्दसे कार्य्य कियेहुयेकी नाईं उनके प्रतिकहा ॥ २९ ॥ कि रेभद्र! जिससे तुम यहां मेरे सब गणों में बड़े वीरहो इससे

ङ्गणे ॥ २५ ॥ त्वद्बलेनमहेशाननकोपिस्थैर्यमेष्यति ॥ ममपादतलाघातादेतद्धि क्षोणिमण्डलम् ॥ २६ ॥ कदलीदलवद्वाताद्वेपतेसरसातलम् ॥ चूर्णीकरोमिदोर्दण्डघाताच्चैतान्कुलाचलान् ॥ २७ ॥ किम्बहूक्तेनदेह्याज्ञांममासाध्यंनकिञ्चन ॥ त्वत्पादबलमासाद्यकृतंविद्ध्यद्यचिन्तितम् ॥ २८ ॥ इतिप्रतिज्ञान्तस्येशःश्रुत्वाकृतममन्यत ॥ कृतकृत्यमिवात्यन्तंतंमुदाप्रत्युवाचच ॥ २९ ॥ महावीरोसिरेभद्रममसर्वगणेष्विह ॥ वीरभद्राख्ययात्वंहिप्रथितिम्परमांव्रज ॥ ३० ॥ कुरुमेसत्वरङ्कार्यंदक्षयज्ञंक्षयंनय ॥ येत्वान्तत्रावमन्यन्तेतत्साहाय्यविधायिनः ॥ ३१ ॥ तेत्वयाप्यवमन्तव्याव्रजपुत्रशुभोदय ॥ इत्याज्ञांमूर्ध्निचाधायसततःपारमेश्वरीम् ॥ ३२ ॥ हरम्प्रदक्षिणीकृत्यजग्मिवानतिरंहसा ॥ ततस्तदनुगाञ्छम्भुःस्वनिःश्वाससमुद्भतान् ॥ ३३ ॥ शतकोटिमितानुग्रान्गणानन्यानवासृजत् ॥ तेगणावीरभद्रन्तंयान्तङ्केचित्पुरोगताः ॥ ३४ ॥ केचित्तदनुगाजाताःकेचित्तत्पार्श्वगाययुः ॥ अम्बरन्तैःसमाक्रान्तंतेजोविजितभास्करैः ॥ ३५ ॥ शृ

वीरभद्र नामसे परम प्रसिद्धिको प्राप्तहोवो ॥ ३० ॥ व मेरे कार्य्यको शीघ्रही करो कि दक्षके यज्ञको विनाशको पहुंचावो और वहां जे जे उसके सहायकर्ता तुम्हारा अपमानकरें ॥ ३१ ॥ वे तुमसे भी अपमानके योग्यहैं हे शुभोदय, पुत्र! तुम जावो ऐसी परमेश्वरकी आज्ञाको शिरमें धरकर तदनन्तर वह ॥ ३२ ॥ महादेवजीकी प्रदक्षिणाकर अत्यन्त वेगसे चले उसके बाद शंकरजीने उनके पीछे चलनेवाले जेकि अपने निःश्वासों से भलीभांति उत्पन्न हुये हैं ॥ ३३ ॥ व शतकोटिसंख्यकहैं व उग्ररूपहैं ऐसे और गणोंको उत्पन्नकिया वे कोई गण जातेहुये उनवीरभद्रके आगेगये ॥ ३४ ॥ व कोई उनके पीछे चलनेवाले हुये व कोई उनके पार्श्वगत होकर चले और

तेजसे सूर्य्यको जीतेहुये उन गणों से आकाश व्याप्तहुआ ॥ ३५ ॥ किसीने पर्वतों के शिखराग्रों को उखाड़ा व किसीने मस्तक से मूलतक याने ऊपरसे नीचेतक पहाड़ों को डुलाया ॥ ३६ ॥ व कोईगण बड़े वृक्षोंको उखाड़कर यज्ञांगणमें प्राप्तहुये व वहांपर किसीसे यज्ञशालाके खम्भा उखाड़ेगये व किसीने कुण्डों को पूरा करादिया ॥ ३७ ॥ व क्रोधसे उद्धत किसी गणोंने मण्डपका विध्वंसकिया व किसी त्रिशूलधारियोंने वेदियोंको निश्चयसे खोदडाला व अन्य गणोंने हवियोंको खालिया व परोंने दही और दूधको पिया ॥ ३८ ॥ व किसीने पर्वतों के समान अन्नोंकी राशियोंको बिगाड़कर नीचे बिथड़ादिया व कोई खीर खानेवाले व कोई दूध पीनेवाले हुये ॥ ३९ ॥ व कोई

ङ्गाग्राणिगिरीणाञ्चकैश्चिदुत्पाटितानिवै ॥ आचूडमूलाःकैश्चिच्चविधूतावैशिलोच्चयाः ॥ ३६ ॥ उत्पाट्यमहतोवृक्षान्केचित्प्राप्तामखाङ्गणम् ॥ कैश्चिदुत्पाटितायूपाःकेचित्कुण्डान्यपूपुरन् ॥ ३७ ॥ मण्डपन्ध्वंसयामासुःकेचित्क्रोधोद्धुरा गणाः ॥ अचीखनन्वैवेदीश्चकेचिद्वैशूलपाणयः ॥ अभक्षयन्हवींष्यन्येपृषदाज्यंपपुःपरे ॥ ३८ ॥ दध्वंसुरन्नराशींश्चकेचित्पर्वतसन्निभान् ॥ केचिद्वैपायसाहाराःकेचिद्वैक्षीरपायिनः ॥ ३९ ॥ केचित्पक्वान्नपुष्टाङ्गायज्ञपात्राण्यचूर्णयन् ॥ आमोटयन्स्रुचान्दण्डान्केचिद्दोर्दण्डशालिनः ॥ ४० ॥ व्यभञ्जञ्छकटान्केचित्पशून्केचिदजीगिलन् ॥ अग्निंनिर्वापयामासुःकेचिदत्यग्नितेजसः ॥ ४१ ॥ स्वयम्परिदधुश्चान्येदुकूलानिमुदायुताः ॥ जगृहुःकेचनपुरारत्नानांपर्वतंकृतम् ॥ ४२ ॥ एकेनचभगोदेवःपश्यंश्चक्रेविलोचनः ॥ पूष्णोदन्तावलीमन्यःपातयामासकोपितः ॥४३॥ यज्ञःपलायितोदृष्टःकेनचिन्मृगरूपधृक् ॥ शिरोविरहितश्चक्रेतेनचक्रेणदूरतः ॥४४॥ एकःसरस्वतींयान्तींदृष्ट्वानिर्नासिकांव्यधात् ॥ अदिते

पक्वान्नों से पुष्ट अंगवालोंने यज्ञपात्रों को चूर्णकिया व कोई भुजदण्डशालियोंने स्रुचों (यज्ञपात्र विशेषों) के दण्डोंको तोड़डाला ॥ ४० ॥ व किसीने शकटों (लढ़ियों) को विशेषतासे भंजनकिया व किसीने पशुओंको निगललिया व अग्निके समान तेजवाले किसीने अग्नियोंको बुझादिया ॥ ४१ ॥ व आनन्दसमेत अन्यों ने आपही रेशमीवस्त्रों या पीताम्बरोंको सब ओरसे धारणकिया व किसीने आगे रत्नोंके कियेहुये पर्वतको ग्रहण करालिया ॥४२॥ व एकने देखतहुये भगदेवको विना आंखोंका किया व कोपितहुये अन्य गणने पूषादेवके दन्तोंकी पंक्तिको गिरादिया ॥ ४३ ॥ और जिस किसीने मृगरूपधारी व भगेजातेहुये यज्ञको देखा उसने दूरसेही चक्रसे मस्तकहीन

किया ॥ ४४ ॥ व एकने जातीहुई सरस्वतीको नासिकासे रहितकिया व अन्य क्रोधीने अदितिके दोनों ओठो को काटलिया ॥ ४५ ॥ तथा अपरगणने अर्य्यमादेवकी दोनों बाहुओंको उखाड़डाला और किसीने हठसे अग्निकी जीभको उखाडलिया ॥ ४६ ॥ व अन्य प्रतापवान् पार्षदने वायुके अण्डकोशको काटा व किसीने यमको बांधकर ऐसा पूंछा कि क्या धर्महै ॥ ४७ ॥ जिसमें पहले महेशजी नहीं सब ओरसे पूजेजाते हैं व अन्यने नैर्ऋतदेवको भलीभांति पकड़कर व बारबार बालोंमें खींचकर ॥ ४८ ॥ व तुमने परमेश्वरसे हीन हविको खाया ऐसा कहकर लात घात किया व अपरने कुबेरको पावों में धरकर बलसे कँपाया याने भ्रमाया ॥ ४९ ॥ व खाईहुई बहुतसी यज्ञाहुतियों को

रोष्ठपुटकौछिन्नावन्येनकोपिना ॥ ४५ ॥ अर्यम्णोबाहुयुगलंतथोत्पाटितवान्परः ॥ अग्नेरुत्पाटयामासकश्चिज्जिह्वाम्प्रसह्य च ॥ ४६ ॥ चिच्छेदवायोर्वृषणम्पार्षदोन्यःप्रतापवान् ॥ पाशयित्वायमङ्कश्चित्कोधर्मइतिपृष्टवान् ॥ ४७ ॥ यत्रधर्मेमहेशोनप्रथमम्परिपूज्यते ॥ नैर्ऋतंसंगृहीत्वान्यःकेशेष्वातोल्यचासकृत् ॥ ४८ ॥ अनीश्वरंहविर्भुक्तंत्वयेत्याताडयत्पदा ॥ कुबेरमपरोधृत्वापादयोरधुनोद्बलात् ॥ ४९ ॥ वामयामासबहुशोभक्षिताह्यध्वराहुतीः ॥ एकादशाऽपियेरुद्रा लोकपालैकपङ्क्तयः ॥ ५० ॥ रुद्राख्याधारणवशात्प्रमथैस्तेऽवहेलिताः ॥ वरुणोदरमापीड्यप्रमथोन्योबलेनहि ॥ ५१ ॥ बहिरुद्गिरयामासयद्दत्तञ्चेशवर्जितम् ॥ मायूरीन्तनुमासाद्यसहस्राक्षोमहामतिः ॥ ५२ ॥ उड्डीयगिरिमाश्रित्यछन्नःकौतुकमैक्षत ॥ ब्राह्मणान्प्रमथानत्वायातयातेतिचाब्रुवन् ॥ ५३ ॥ प्रमथाःकालयामासुरन्यानपिचयाचकान् ॥ इत्थम्प्रमथितेयागेप्रमथैःप्रथमागतैः ॥ वीरभद्रःस्वतःप्राप्तःप्रमथानीकिनीवृतः ॥ ५४ ॥ यज्ञवाटंश्मशानाभंदृष्ट्वातैःप्रमथैः

वमन कराया व लोकपालोंकी एक पंक्तिवाले ग्यारहरुद्र जेकि ॥ ५० ॥ रुद्रनामके धारनेवाले हैं वे भी गणोंसे अवज्ञाको प्राप्तहुये व अन्य पार्षदने बलसेही वरुणदेवके उदरको सब ओरसे पीड़ितकर ॥ ५१ ॥ उसको बाहर उगिलालिया जोकि ईश्वरसे वर्जित भाग उनको दियागया था और बडे बुद्धिमान् इन्द्र मयूरकी देहको प्राप्तहोकर ॥ ५२ ॥ व उड़कर और पर्वतको आश्रय (आधार) कर याने उसपर बैठकर छिपे व कौतुकको देखनेलगे व गणोंने ब्राह्मणो के नमस्कारकर ऐसा कहा कि तुम लोग जावो जावो ॥ ५३ ॥ और पार्षदोंने अन्य याचकोंको भी चलादिया इसप्रकार पहले आयेहुये शिवगणोंसे यज्ञके बहुत मथित होतेही गणोंकी सेनासे घिरेहुये वीर-

भद्रजी आपही प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ व पहलेही उन पार्षदों से अत्यन्त शोचनीयदशाको पहुँचायेहुये व श्मशानके समान यज्ञवाटको देखकर तदनन्तर वीरभद्रजीने कहा ॥ ५५ ॥ कि हे गणो ! देखो कि ईश्वर स्नेहसे हीन दुराचारी दुष्टों से प्रारम्भ कियेहुये कर्मोंकी यह अवस्थाहै इसलिये महेश्वरमें द्वेष कैसे होवे है ॥ ५६ ॥ व धर्म कार्य्य में प्रवृत्तहुये भी जे जन सब कर्मोंके मुख्य साक्षी महादेवजीको द्वेष करते हैं वे ऐसी दशाको प्राप्तहोवेंगे ॥ ५७ ॥ हे गणो ! वह दुराचारी दक्ष कहांहै व यज्ञमें भोजन करने वाले देव कहांहैं सबको धरकर लावो तुमलोग बहुत शीघ्रही जावो ॥ ५८ ॥ इसभांति वीरभद्रजीकी आज्ञाको पाकर वे गण जबतक शीघ्रही जातेहैं तबतक आगे क्रुद्ध

पुरा ॥ अतिशोच्यान्दशांनीतंवीरभद्रस्ततोजगौ ॥ ५५ ॥ गणाःपश्यतदुर्वृत्तैःप्रारब्धानाञ्चकर्मणाम् ॥ अनीश्वरैरव स्थेयंकुतोद्वेषोमहेश्वरे ॥ ५६ ॥ येद्विषन्तिमहादेवंसर्वकर्मैकसाक्षिणम् ॥ धर्मकार्येप्रवृत्तास्तुतेप्राप्स्यन्तीदृशीन्दशा म् ॥ ५७ ॥ क्वसदक्षोदुराचारःक्वचयज्ञभुजःसुराः ॥ धृत्वासर्वानानयतयातद्रुततरङ्गणाः ॥ ५८ ॥ इत्याज्ञांवीरभद्रस्यप्रा प्यतेप्रमथाद्रुतम् ॥ यावद्यान्त्यग्रतस्तावद्दृष्टःक्रुद्धोगदाधरः ॥ ५९ ॥ तेनतेप्रमथाःसर्वेमहाबलपराक्रमाः ॥ शुष्कपर्ण तृणावस्थांप्रापितावात्ययेवहि ॥ ६० ॥ अथनष्टेषुसर्वेषुप्रमथेषुहरेर्भयात् ॥ चुकोपवीरभद्रःसप्रलयानलसन्निभः ॥६१॥ ददर्शशार्ङ्गिणञ्चाग्रेस्वगणैश्चपरिष्टुतम् ॥ चतुर्भुजैरसंख्यातैर्जितदैत्यमहाबलैः ॥ ६२ ॥ चक्रिभिर्गदिभिर्जुष्टंखड्गिभि श्चापिशार्ङ्गिभिः ॥ वीरभद्रस्ततःप्राहदृष्ट्वातन्दैत्यसूदनम् ॥ ६३ ॥ त्वन्तुयज्ञपुमानत्रमहायज्ञप्रवर्तकः ॥ रक्षितानिज वीर्येणदक्षस्यत्र्यक्षवैरिणः ॥६४॥ किंवादक्षंसमानीयदेहियुध्यस्ववामया॥ नदास्यसिचचेद्दक्षंततस्त्वंरक्षयत्नतः ॥६५॥

हुये गदाधर (विष्णु) जी देखपड़े ॥ ५९ ॥ और उन्होंनेही बड़े बल पराक्रमवाले उन गणोको बवंडरकी नाईं सूखे पत्ते और तृणकी अवस्थाको प्राप्तकिया ॥ ६० ॥ अनन्तर विष्णुके डरसे जब सब गण अदृश्य होगये तब प्रलयाग्नि के समान उन वीरभद्रने कोप किया ॥ ६१ ॥ और चतुर्भुज व असंख्य व दैत्योंको जीतेहुये बड़े बलवान् अपने गणोंसे सब ओर प्रशंसितहुये शार्ङ्गधन्वाधारीको आगे देखा ॥ ६२ ॥ व चक्रवाले गदावाले तरवारवाले और शार्ङ्गवाले भी पार्षदों से सेवित उन मधुसूदन को देखकर तदनन्तर वीरभद्रजीने कहा ॥ ६३ ॥ कि यहां तुमहीं यज्ञपुरुष व महायज्ञके करानेवाले व अपने वीर्य्य से शिववैरी दक्षके रक्षकहो ॥ ६४ ॥ इससे तुम कि

तो दक्षको भलीभांति आनकर दो व मुझसे लड़ो और दत्तको न देवोगे तो यत्नसे उसकी रक्षाकरो ॥ ६५ ॥ जिससे तुम बहुधा शिवभक्तों मे अग्रणी कहेजातेहो व आपने आगे एकसे कम कमलोंका हजारा होतेही नेत्रकमलको दियाहै ॥ ६६ ॥ उसलिये सन्तुष्टहुये शंकरजीने तुमको सुदर्शनचक्र दिया है जिसकी सहायताको प्राप्तहोकर तुमने संग्राममें दैत्यराजोंको जीतलियाहै ॥ ६७ ॥ और ऐसे वीरभद्रके बढ़ेहुये वचनको सुनकर उनके बलको जानना चाहतेहुये विष्णुजी हर्षसे वीरभद्रके प्रति बोले ॥ ६८ ॥ कि अहो वीरभद्र ! शम्भुके पुत्र स्थानीय या पुत्रसे कुछेक न्यून तुम गणोंमें बहुत श्रेष्ठहो व राजा (दीप्तिमान्) के आयसुको पाकर अत्यन्त बलवान्हो व उससे

प्रायशःशम्भुभक्तेषुयतस्त्वम्प्रोच्यसेऽग्रणीः ॥ एकोनेऽब्जसहस्रेप्राग्ददौनेत्राम्बुजम्भवान् ॥ ६६ ॥ तुष्टेनशम्भुनादत्तं तुभ्यञ्चक्रंसुदर्शनम् ॥ यत्साहाय्यमवाप्याजौत्वञ्जयेर्दनुजाधिपान् ॥ ६७ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यवीरभद्रस्यचोर्जि तम् ॥ जिज्ञासुस्तद्बलंविष्णुर्वीरभद्रमुवाचह ॥ ६८ ॥ त्वंशम्भोःसुतदेशीयोगणानाम्प्रवरोस्यहो ॥ राजादेशमनुप्रा प्यततोप्यतिबलोमहान् ॥ ६९ ॥ योसिसोस्यहमप्यत्रदक्षरक्षणदक्षधीः ॥ पश्यामितेसामर्थ्यंकथन्दक्षंहरिष्यसि ॥ ७० ॥ इत्युक्तोवीरभद्रःसतेनवैशार्ङ्गधन्वना ॥ प्रमथान्दृष्टिभङ्ग्यैवप्रेरयामाससङ्गरे ॥ ७१ ॥ अथतैःप्रमथैर्विष्णोरनुगा गदितारणे ॥ आददानास्तृणंवक्त्रेणापिताःपाशवीन्दशाम् ॥ ७२ ॥ ततस्तार्क्ष्यरथःक्रुद्धस्त्वेकैकंरणमूर्धनि ॥ सहस्रेण सहस्रेणबाणानांहृद्यताडयत् ॥ ७३ ॥ तेभिन्नवक्षसःसर्वेगणारुधिरवर्षिणः ॥ वासन्तींकैंशुकींशोभांपरिप्रापूरणाजि रे ॥ ७४ ॥ क्षरन्तइवमातङ्गाःस्रवन्तइवपर्वताः ॥ मदेनधातुरागेणमिश्रैःशुशुभिरेगणाः ॥ ७५ ॥ ततःप्रहस्यगणपोऽब्रवी

महान्हो ॥ ६९ ॥ व तुम जोहो सोहो मै भी यहां दक्षके रक्षणमें दक्षबुद्धिवालाहूं और तुम्हारी समर्थताको देखताहूं कि दक्षको कैसे हरलेजावोगे ॥ ७० ॥ ऐसे उन शार्ङ्गधन्वाधारी विष्णुसे कहेहुये उन वीरभद्रजीने भी कटाक्षसेही संग्राममें गणोंको प्रेरणकिया ॥ ७१ ॥ अनन्तर उन गणोंके कहे व मुखसे तृणको लेतेहुये विष्णुजीके पार्षद रणमें पशुओंकी दशाको पहुँचायेगये ॥ ७२ ॥ तदनन्तर संग्रामशिरमें क्रुद्धहुये गरुडवाहन विष्णुजीने हजार हजार बाणोंसे एक एकको हृदयमें ताडित किया ॥ ७३ ॥ और बिदरे उरवाले व रक्तको बरसतेहुये वे सब गण रणरूपी आंगनमें वसन्त ऋतुवाली किंशुक (पलाश) की शोभाको सब ओरसे प्राप्तहुये ॥ ७४ ॥ और चूचुवाते

हुये मदवाले हाथियोंकी नाईं व झिरतेहुये पर्वतोंकी नाईं वे गण मद व धातुराग व मिश्रित रक्तद्रवों से शोभितभये ॥ ७५ ॥ तदनन्तर गणोंकेनायक वीरभद्रजीने हँस कर वैकुण्ठनायक से कहा कि हे शार्ङ्गधन्वन्! मैं तुमको जानताहूं कि तुम संग्राम आंगनमें पण्डितहो ॥ ७६ ॥ परन्तु तुम दैत्येन्द्र व दानवेन्द्रों से युद्ध करतेहो पार्षदों से नहीं ऐसा कहकर वीरभद्रने हाथमें भुशुण्डी अस्त्रको लिया ॥ ७७ ॥ अनन्तर विष्णुजीने दैत्येन्द्र पर्वतोंको चूर्ण करनेवाली गदाको शीघ्रही ग्रहणकिया तदनन्तर वीरभद्रजीने भुशुण्डी से उन गदाधरको मारा ॥ ७८ ॥ और उनके अंग संगको प्राप्तहोकर वह भुशुण्डी सैकड़ों प्रकारसे विदीर्णहुई व कौमोदकी गदाके प्रहार से जोकि

वैकुण्ठनायकम् ॥ हेशार्ङ्गधन्वञ्जानेत्वान्त्वंरणाङ्गणपण्डितः ॥ ७६ ॥ परंयुध्यसिदैत्येन्द्रैर्दानवेन्द्रैर्नपार्षदैः ॥ इत्युक्त्वा वीरभद्रेणभुशुण्डीकलिताकरे ॥ ७७ ॥ गदिनाऽथगदातूर्णंदैत्येन्द्रगिरिरेणुकृत् ॥ ततःप्रहतवान्वीरोभुशुण्ड्यातङ्गदा धरम् ॥ ७८ ॥ तदङ्गसङ्गमासाद्यविदद्रेशतधातया ॥ कौमोदकीप्रहारेणवीरभद्रम्प्रतापिनम् ॥ ७९ ॥ जघानवासुदेवोपि तरसाऽज्ञातवेदनम् ॥ ततःखट्वाङ्गमादायगदाहस्तङ्गदाधरम् ॥ ८० ॥ आताड्यसव्यदोर्दण्डेगदाम्भूमावपातयत् ॥ कुपितोयंमधुद्वेषीचक्रेणाताडयच्चतम् ॥ ८१ ॥ सचचक्रंसमागच्छद्दृष्ट्वासस्मारशङ्करम् ॥ शङ्करस्मरणाच्चक्रंमनागव क्रत्वमाप्यच ॥ कण्ठमासाद्यवीरस्यसम्यग्जातंसुदर्शनम् ॥ ८२ ॥ तेनचक्रेणशुशुभेनितरांसगणेश्वरः ॥ वीरलक्ष्म्या वृतइवसमरेविजयस्रजा ॥ ८३ ॥ ततःसुदर्शनन्दृष्ट्वातत्कण्ठाभरणंहरिः ॥ मनाक्सचकितंस्मितन्नाततोजग्राहनन्दक

वीरभद्र प्रतापी हैं ॥ ७९ ॥ व पीड़ाके न जाननेवाले हैं उनको वासुदेव भगवान्ने भी वेगसे मारा तदनन्तर खट्वांगको लेकर गदा हाथवाले विष्णुजीको ॥ ८० ॥ बायें भुजदण्डमें सब ओरसे ताड़नकर वीरभद्रजी ने गदाको भूमिमें गिराया और कुपितहुये इन मधुवैरी (विष्णु) ने चक्रसे उनको संताड़नकिया ॥ ८१ ॥ व भलीभांति सामने आतेहुये चक्रको देखकर उन वीरभद्रजीने शंकरको स्मरणकिया व शम्भुके स्मरण करनेसेही वह सुदर्शनचक्र कुछेक थोड़ीसी वक्रतासे व्याप्त होकर व वीरभद्रके कण्ठको प्राप्तहोकर अच्छा होगया ॥ ८२ ॥ और समरमें वीर लक्ष्मी की विजयमालासे घिरे से वह गणेश्वर वीरभद्र उस चक्रसे बहुतही विराजितहुये ॥ ८३ ॥ उससमय

उनके कंठ के भूषणहुये सुदर्शनको देखकर व थोड़ा चकित चकित मुसकाकर तदनन्तर उन हरिने नन्दक नामक खड्गको ग्रहण किया ॥ ८४ ॥ व उन वीरभद्रजीने स्वर्ग मे सिद्धोंके देखतेही विष्णुजीके नंदक समेत बहुत उद्यत (उठे)हुये हाथको हुंकारसे रोंकदिया ॥ ८५ ॥ और उज्ज्वल शूलको लेकर वेगसे सामने दौड़े व जबतक हरि को मारनाचाहतेहै तबतक आकाशवाणी से ॥८६॥ वह गणराज निवारितहुये कि ऐसा साहस मतकरो तदनन्तर उनको त्यागकर गणोत्तम वीरभद्रजी ने शीघ्रही ॥८७॥ दक्षके समीप में प्राप्तहोकर व उच्चस्वर से गर्जकर कहा कि ईश्वरके निन्दक तुमको धिक् है कि जिसकी ऐसी संपत्तिहै व देव जिसके सहायकहैं वह दक्षता

म् ॥ ८४ ॥ सनन्दकङ्करन्तस्यप्रोद्यतम्मधुविद्विषः ॥ पश्यतान्दिविसिद्धानांस्तम्भयामासहुंकृता ॥ ८५ ॥ अभ्यधावच्चवेगेनगृहीत्वाशूलमुज्ज्वलम् ॥ यावज्जिघांसतिहरिंतावदाकाशवाचया ॥ ८६ ॥ वारितोगणराजःसमाकार्षीःसाहसंत्विति ॥ ततस्तमपहायाशुवीरभद्रोगणोत्तमः ॥ ८७ ॥ प्राप्यदक्षंविनद्योच्चैर्धिक्त्वामीश्वरनिन्दकम् ॥यस्येदृगस्तिसम्पत्तिर्यत्रदेवाःसहायिनः ॥ सकथंसेश्वरंकर्मनकुर्याद्दक्षतान्दधत् ॥ ८८ ॥ येनास्येनापवित्रेणभवतानिन्दितःशिवः ॥ चूर्णयामितदास्यन्तेचपेटाभिःसमन्ततः ॥ ८९॥ इत्युक्त्वातस्यदक्षस्यहरपारुष्यभाषिणः ॥ चिच्छेदवदनंवीरश्चपेटशतघातनैः ॥ ९० ॥ ततस्त्वदितिमुख्यानांमिलितानांमहोत्सवे ॥ त्रोटयामासकर्णादीन्यङ्गप्रत्यङ्गकानिच ॥ ९१ ॥ वेणीदण्डाश्चकासाञ्चित्तेनच्छिन्नामहारुषा ॥ कासाञ्चिचकराश्छिन्नाःकासाञ्चित्कर्तिताःस्तनाः ॥ ९२ ॥ नासापुटांस्तथान्यासांपाटयामासपार्षदः ॥ चिच्छेदचांगुलीश्चापितथान्यासांशिवप्रियः ॥ ९३ ॥ येयेनिनिन्दुर्देवेशंयेयेचशुश्रुवुस्त

(चतुरता) को धारताहुआ ईश्वर समेत कर्म्मको क्यों न करे ॥ ८८ ॥ आप करके जिस मुखसे शिवजी निन्दितहुये उस तुम्हारे मुखको मैं सबओर चपेटों से चूर्ण करताहूं ॥ ८९ ॥ ऐसा कहकर वीरभद्रजीने शिवनिन्दक दक्षके मुखको सैकड़ों चपेटों के घातों से छेदनकिया ॥ ९० ॥ तदनन्तर महोत्सव में मिलितहुई अदिति आदि स्त्रियो के कर्णादिकों को और अंग के भूषणोंको तोडडाला ॥ ९१ ॥ व उन बड़े क्रोधीने किसी स्त्रियो के वेणीदंडों को छिन्न भिन्न किया व किसी के हाथोंको काटा व किसी के कुचोको कतरलिया ॥ ९२ ॥ तथा शिवके प्यारे पार्षद ने अन्यों के नासापुटोंको उखाड़लिया वैसेही अन्यों की अंगुलियोंको भी छेदनकिया ॥ ९३ ॥ उस

समय जिन जिनने देवोंकेस्वामी शिवजी की निन्दाकिया व जिन जिनने सुनाथा उनकी जीभोंको काटलिया और कोपसे कानोंको दोभांति खण्डन किया ॥ ९४ ॥ व जिन्हों ने देवेश को छोंड़कर महाहविको लिया वे कोई गले में दृढ़बांध कर नीचे को मुखकिये खम्भा में लटकाये गये ॥ ९५ ॥ और उन वीरभद्रजी ने द्विजराज (चन्द्र) धर्म, भृगु और मारीच याने कश्यपादिकों को अत्यन्त अपमान का पात्र कराया ॥ ९६ ॥ जिससे ये दक्ष दुर्बुद्धि के जामाता (दामाद) हैं और उन दक्षने महेश्वरको छोंड़कर इनको शिवसे अधिक देखा है ॥ ९७ ॥ वे कुण्ड वे स्तम्भ (खम्भा) वे यज्ञयूप वह मण्डप वे वेदियां वे पात्र और वे अनेकप्रकारके हव्य ॥ ९८ ॥

दा ॥ तेषांजिह्वाःश्रुतीःकोपादच्छिनच्चाकरोद्द्विधा ॥ ९४ ॥ केचिदुल्लम्बितायूपेपाशयित्वादृढङ्गले ॥ अधोमुखायैर्देवेशं विहायात्तम्महाहविः ॥९५॥ द्विजराजश्चधर्मश्चभृगुमारीचमुख्यकाः ॥ अत्यन्तमपमानस्य भाजनन्तेनकारिताः ॥९६॥ एतेजामातरस्तस्ययतोदक्षस्यदुर्धियः ॥ हित्वामहेश्वरममून्सोपश्यदधिकाञ्छिवात् ॥९७॥ तानिकुण्डानितेयूपास्तेस्तम्भास्सचमण्डपः ॥ तावेद्यस्तानिपात्राणितानिहव्यान्यनेकधा ॥९८॥ तेचवैयज्ञसम्भारास्तेतेयज्ञप्रवर्तकाः ॥ तेरक्षपालास्तेमन्त्राविनेशुर्हेलयाऽखिलाः ॥ ९९ ॥ स्तोकेनैवहिकालेनयथर्धिःपरवञ्चनात ॥ अर्जितानश्यतिक्षिप्रंदक्षसम्पद्गताऽशिवा ॥ १०० ॥ नीतेमहाक्रतौतेनसगणेनेदृशीन्दशाम् ॥ विधिर्विधिविलोपाच्चहरंविज्ञाप्यचानयत् ॥ १॥ तत्रयत्रमखःसोभूदीदृक्षःशिववर्जितः ॥ आयातेथमहादेवेवीरभद्रोतिलज्जितः ॥ २ ॥ नत्वानकिञ्चिदवदद्देवःसर्वमवैत्स्वयम् ॥ प्रसाद्यदेवदेवेशंसुरज्येष्ठोऽब्रवीत्पुनः ॥ ३ ॥ अपराध्यप्ययंदक्षःसम्प्रसाद्यःकृपानिधे ॥ यथापूर्वंपुनरमून्सर्वान्कारयश

व वे यज्ञसामग्रियां वे यज्ञके करानेवाले वे रक्षपाल और वे सम्पूर्ण मन्त्र वीरभद्र या शिवके अनादर से विनष्टहुये ॥ ९९ ॥ जैसे पराये वञ्चन (छल से) इकट्ठीकी हुई ऋद्धि थोड़ेहीकाल में नाश होजाती है वैसेही विना शिवकी दक्षसम्पत्ति शीघ्रहीं गतहुई ॥ १०० ॥ और जब गणसमेत उन वीरभद्रजी ने महायज्ञको ऐसी दशाको प्राप्तकिया तब ब्रह्माजी विधिके विलोप होने से भक्तभयहारी महादेवजीसे विज्ञापना कर वहां ले आये ॥ १ ॥ तदनन्तर जहां शिवसेहीन ऐसा यज्ञ हुआथा वहां महादेवजी के आतेही विलज्जित हुये वीरभद्रजी ने ॥ २ ॥ नमस्कार कर कुछभी न कहा परन्तु क्रीड़ाकारी शिवजीने आपही सब जानलिया फिर देवदेवोंकेस्वामीको प्रसन्न

कर ब्रह्माजी बोले ॥ ३ ॥ कि हे कृपानिधान, शङ्कर! आपका अपराधी भी यह दक्षभलीभांति प्रसाद (प्रसन्नता) के योग्यहै और इन सबजनो को यथापूर्व याने पहले की नाईं फिर करो ॥ ४ ॥ हे शम्भो! जैसे वैदिक विधान फिर प्रवर्त्तित होवे वैसेही आज्ञादीजावै क्योंकि ईश्वरसमेत कर्म सिद्धहोता है ॥ ५ ॥ हे परमेश्वर! ईश्वरसेहीन सब क्रियाओंमें ऐसेही हजारों विघ्नसमूह होतेही हैं ॥ ६ ॥ व विचार से यह बापुरा दक्ष तुम्हारा बड़ाभारी भक्तहै जोकि अनीश्वर कर्मको करता हुआ उत्तम दृष्टान्तताको प्राप्तभया है ॥ ७ ॥ व अन्यभी जो कोई महेशजी को छोड़कर कर्मको करेगा उसके उस कर्मकी संसिद्धि दक्षके यज्ञकीसी होवेगी ॥ ८ ॥ इसलिये इस दक्षके ऐसे कर्मको

ङ्कर ॥ ४ ॥ यथाविधिःप्रवर्तेतवैदिकःपुनरेवहि ॥ तथाज्ञादीयतांशम्भोकर्मसिद्ध्यतिसेश्वरम् ॥ ५ ॥ अनीश्वरासुसर्वासु क्रियासुपरमेश्वर ॥ एवमेवभवन्त्येवविघ्नजाताःसहस्रशः ॥ ६ ॥ विचारतोवराकोयंदक्षोभक्ततरस्तव ॥ कुर्वन्योऽनीश्वरंकर्मपरदृष्टान्तताङ्गतः ॥ ७ ॥ अन्योपियोमहेशानंहित्वाकर्मकरिष्यति ॥ तस्यतत्कर्मसंसिद्धिर्दक्षस्येवभविष्यति ॥ ८ ॥ अतोनकश्चित्किञ्चिच्चक्कचित्कर्मविनाशिवम् ॥ विधास्यतिनिशम्यास्यदक्षस्येदृक्षचेष्टितम् ॥ ९ ॥ विधीरितमितिश्रुत्वास्मित्वादेवोमहेश्वरः ॥ वीरमाज्ञापयामासयथापूर्वम्प्रकल्पय ॥ १० ॥ वीरभद्रोपितत्सर्वंशर्वाज्ञाम्प्रतिपद्यच ॥ विनादक्षस्यवदनंयथापूर्वमकल्पयत् ॥ ११ ॥ ईश्वरंयेविनिन्दन्तितेमूकाःपशवोध्रुवम् ॥ ततोमेषमुखंदक्षंवीरभद्रोगणोऽव्यधात् ॥ १२ ॥ देवोब्रह्माणमापृच्छ्यधर्माद्गार्हस्थ्यतश्च्युतः ॥ सपार्षदोहिमप्रस्थञ्जगामतपसेततः ॥ १३ ॥ अनाश्रमवतापुंसायतःकालोमनागपि ॥ मुधाकलयितव्योनतस्माच्छ्रेयःसदाश्रमः ॥ १४ ॥ अतःससर्वतपसांफलदातामहेश्व

देख वा सुनकर कोई भी शिव विना कुछकर्म्म को कहीं नहीं करेगा ॥ ९ ॥ ऐसा ब्रह्माका वचन सुनकर व मुसक्याकर क्रीड़ाकारी महेश्वर ने वीरभद्रको आज्ञादिया कि पहलेकी नाईं सम्पादित करो ॥ १० ॥ और शिवजी की आज्ञाको प्राप्तहोकर वीरभद्र ने भी दक्षके मुखविना उस सबको पहलेकी नाईं कल्पित किया ॥ ११ ॥ क्योंकि जे ईश्वरकी विशेषता से निन्दा करते हैं वे निश्चयकर गूँगे पशुहोते हैं इस लिये वीरभद्रगण ने दक्षको भेड़के मुखवाला किया ॥ १२ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी से पूछकर गृहस्थाश्रम सम्बन्धी धर्म्मसे च्युत महादेवजी गणोंसमेत तपस्या के लिये हिमालय वानप्रस्थ को चलेगये ॥ १३ ॥ जिससे विना आश्रमवाले पुरुषकरके थोड़ाभी

काल वृथा बिताने योग्य नहीं है इससे आश्रम सदा कल्याण रूपहै ॥ १४ ॥ इससे सब तपस्याओं के फलदाता, गणोंसमेत महेशजीने तपस्या को किया और ब्रह्माजी ने दक्षको शिक्षादिया ॥ १५ ॥ कि जो शिव निन्दासे समुत्पन्न, सुदुस्त्यज, पापपंक (कीच) के प्रक्षालन की आकांक्षाहै तो तुम काशीपुरीको जावो ॥ १६ ॥ व महापाप समूहहारिणी पुण्यकारिणी काशीको प्राप्तहोकर तुम लिंगकी प्रतिष्ठाकरो इससे वह शङ्करजी सन्तुष्टहोतेहैं १७ ॥ व महेशजी के तुष्टहोतेही यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् सन्तुष्टहै और काशीपुरी विना अन्यत्र तुम्हारा पाप जानेवाला नहींहै ॥ १८ ॥ बुद्धिमानोंने ब्रह्महत्यादि पापोंका प्रायश्चित्त कहाहै और शिवनिन्दा का उद्धार नहीं कहा

रः ॥ तपश्चचारसगणोब्रह्मादक्षन्त्वऽशिक्षयत् ॥ १५ ॥ हरनिन्दासमुद्भूतपापपङ्कंसुदुस्त्यजम् ॥ यदिक्षालयितुङ्काङ्क्षा तदावाराणसींव्रज ॥ १६ ॥ प्राप्यवाराणसींपुण्यांमहापापौघहारिणीम् ॥ कुरुलिङ्गप्रतिष्ठान्त्वन्तेनशम्भुःसतुष्यति ॥ १७ ॥ तुष्टेमहेश्वरेतुष्टंजगदेतच्चराचरम् ॥ नान्यत्रपापन्तेगन्तृविनावाराणसींपुरीम् ॥ १८ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानाम्प्रायश्चित्तंमनीषिभिः ॥ प्रोक्तंनहरनिन्दायास्तत्रकाश्येवकेवलम् ॥ १९ ॥ काश्यांलिङ्गप्रतिष्ठायैःकृताऽत्रसुकृतात्मभिः ॥ सर्वेधर्माःकृतास्तैस्तुतएवपुरुषार्थिनः ॥ २० ॥ इत्याकर्ण्यविधेर्वाक्यंदक्षःप्राप्याथसत्वरम् ॥ अविमुक्तंमहाक्षेत्रन्ततापपरमन्तपः ॥ २१ ॥ संस्थाप्यलिङ्गंविधिवल्लिङ्गाराधनतत्परः ॥ नवेत्तिलिङ्गादपरंसकिञ्चिज्जगतीतले ॥ २२ ॥ दिवानिशंमहेशानम्परिष्टौतिसमर्चति ॥ नमतिध्यायतीक्षतेदक्षोदक्षप्रजापतिः ॥ २३ ॥ एकचित्तस्यदक्षस्यध्यायतोलिङ्गमैश्वरम् ॥ समासहस्रमगमन्मितंद्वादशसंख्यया ॥ २४ ॥ मेनांयावत्सतीप्राप्यहिमाचलपतिव्रताम् ॥ उमारूपातित

उसमें केवल काशीही है ॥ १९ ॥ इस लोकमें जिनपुण्यात्मा जनोंने काशीमें लिंगकी प्रतिष्ठा किया उनसे सब धर्म्म कियेगये और वेही चारो पुरुषार्थोंवाले हैं ॥ २० ॥ ऐसा ब्रह्माजी का वचनसुनकर अनन्तर दक्षजी शीघ्रही अविमुक्त (काशी) क्षेत्रको प्राप्तहोकर परम तपस्याको तपा याने किया ॥ २१ ॥ और विधिवत् लिंगको भलीभांति थापकर लिंगकी पूजामें तत्पर वह दक्षजी भूतलमें लिंगसे अन्यको नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ चतुरप्रजापति दक्षजी दिनोरातमें महेशजीको सबओरसे प्रशंसते व भलीभांति पूजते व प्रणामकरते व ध्यावते और देखते हैं ॥ २३ ॥ इसभांति परमेश्वर के लिंगको ध्यावते हुये एकचित्त, दक्षको बारहहजार बर्ष बीतगये ॥ २४ ॥ जबतक हिमाचल

की पतिव्रतास्त्री मेनाको मातृभाव से प्राप्तहोकर उमारूपा सतीजी अत्यन्त तपस्या से पिनाकधारी शिवजी पतिको प्राप्तहुई ॥ २५ ॥ तबतक तपस्या मे निश्चल उन दक्षजीने लिंगकी पूजाकिया तदनन्तर पतिके साथ काशीको भलीभांति प्राप्तहोकर पर्वतेन्द्रकुमारी ॥ २६ ॥ देवीजी ने शिवलिंग पूजा में रत व अचल हृदयहुये उन दक्षको देखकर भक्तार्त्तिहारी शिवजी से विज्ञापन किया कि हे विभो! यह तपस्या से क्षीणहोगयेहैं ॥ २७॥ हे कृपासागर! इन प्रजापतिको वरसे प्रसन्नता को प्राप्तकरो इसप्रकार पार्वतीसे कहेहुये महेशजी उनदक्षसे बोले ॥२८॥ कि हे महाभाग! तुम वरकोमांगो मैं मनसे वाञ्छितको दूंगा ऐसा ईश्वरका वचन सुनकर व भवभय हरनेवारे

पसापतिंप्रापपिनाकिनम् ॥ २५ ॥ तावत्सदक्षस्तपसिनिश्चलोलिङ्गमार्चयत् ॥ ततःकाशींसमासाद्यसहभर्त्रागिरीन्द्रजा ॥ २६ ॥ दृष्ट्वातंनिश्चलहृदंशिवलिङ्गार्चनेरतम् ॥ हरंव्यजिज्ञपद्देवीक्षीणोयन्तपसाविभो ॥ २७ ॥ प्रसादयकृपासिन्धोवरेणैनम्प्रजापतिम् ॥ इत्युक्तोऽपर्णयाशम्भुःप्राहतन्दक्षमीशिता ॥ २८ ॥ वरंब्रूहिमहाभागदास्यामिमनसेप्सितम् ॥ इतीशोदितमाकर्ण्यप्रणम्यबहुशोहरम् ॥ २९ ॥ स्तुत्वानानाविधैःस्तोत्रैःप्रसन्नंवीक्ष्यशङ्करम् ॥ प्रोवाचदेवदेवेशंयदिदेयोवरोमम ॥ ३० ॥ तत्त्वदीयपदद्वन्द्वेनिर्द्वन्द्वाभक्तिरस्तुमे ॥ इदंचतेमहालिङ्गंयन्मयाऽत्रप्रतिष्ठितम् ॥ अस्मिँल्लिङ्गेत्वयानाथस्थातव्यंसर्वदैवहि ॥ ३१ ॥ मयापराद्धंयद्देवतत्क्षन्तव्यंकृपानिधे ॥ एतएववराःसन्तुकिमन्यैरुत्तमैर्वरैः ॥ ३२ ॥ इतिश्रुत्वामहादेवःप्रसन्नोतितराम्भवः ॥ प्रोवाचचयदुक्तन्तेतत्तथास्तुनचान्यथा ॥ ३३ ॥ अन्यच्चतेवरंदद्यान्तच्छृणुष्वप्रजापते ॥ यत्त्वयास्थापितंलिङ्गमेतद्दक्षेश्वराभिधम् ॥ ३४ ॥ अस्यसंसेवनात्पुंसामपराधसहस्रकम् ॥

महादेवजीके बहुतसे प्रणामकर ॥ २९ ॥ व अनेकभांतिके स्तोत्रों से स्तुतिकर और शंकरजीको प्रसन्न देखकर दक्षजीने देवदेवेश्वर से कहा कि जो मुझको वर देने योग्यहै ॥ ३० ॥ तो तुम्हारे दोनों चरणारविन्दों में मेरी निर्द्वन्द्वा (द्विविधाहीन) भक्तिहोवे और यह जो तुम्हारा लिंग यहां मुझसे प्रतिष्ठितहै इस लिंगमें हे नाथ! तुमको सदैव टिकना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे कृपानिधे देव! मैंने जो अपराधकिया वह क्षमा करने योग्यहै येही वर होवें अन्यश्रेष्ठ वरोंसे क्याहै ॥ ३२ ॥ ऐसा सुनकर जगत्कर्ता महादेवजी बहुतही प्रसन्नहुये और बोले कि जो तुमने कहा वह वैसाहीहो अन्यथा न हो ॥ ३३ ॥ हे प्रजापते! मैं तुमको फिर अन्य भी वरदेताहूं उसको तुम सुनो कि

यह जो दक्षेश्वरनामकलिंग तुमसे थापागया है ॥ ३४ ॥ इसकी भलीभांति सेवासे मैं पुरुषों के हजारों अपराधों को क्षमाकरूंगा इसमें सन्देह नहीं है इसलिये यह जनों से पूजने योग्यहै ॥ ३५ ॥ और तुम इस लिंग पूजासे सबके मान्य होवोगे तदनन्तर दोपराधों के अन्त में याने महाप्रलय समयमें मोक्षको पावोगे ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर देवदेवेश्वरजी उस लिंगमें लयको प्राप्तहुये और सब ओरसे प्राप्त मनोरथवाले दक्षजी भी घरको गये ॥ ३७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी ! इसभांति दक्षेश्वर की समुत्पत्ति अच्छेप्रकार से कहीगई जिसको सुनकर प्राणी सैकड़ों अपराधों से भी छूटजाताहै ॥ ३८ ॥ और दक्षेश्वरके समुद्भववाले इस मनोहर आख्यानको सुन

क्षमिष्येहंनसन्देहस्तस्मात्पूज्यमिदञ्जनैः ॥ ३५ ॥ त्वन्तुलिङ्गार्चनादस्मात्सर्वमान्योभविष्यसि ॥ परार्धद्वितयप्रान्ते ततोमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गेलयंययौ ॥ दक्षोपिगतवान्गेहंपरिप्राप्तमनोरथः ॥ ३७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्यगस्त्यसमाख्यातोदक्षेश्वरसमुद्भवः ॥ यंश्रुत्वामुच्यतेजन्तुरपराधशतैरपि ॥ ३८ ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यंदक्षेश्वरसमुद्भवम् ॥ नरोनलिप्यतेपापैरपराधालयोपिहि ॥ १३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदक्षेश्वरप्रादुर्भावोनामनवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ पार्वतीहृदयानन्दपार्वतीशसमुद्भवम् ॥ कथयेहयदुद्दिष्टंभवताप्रागघापहम् ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृण्वगस्तेयदामेनाहिमाचलपतिव्रता ॥ गिरीन्द्रजांसुतामाहपुत्रितेस्यमहेशितुः ॥ २ ॥ किंस्थानंवसतिर्वाकाकोबन्धु

कर अपराधोंका घर याने पापी भी मनुष्य पापोंसे नहीं लिप्त होताहै ॥ १३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदक्षेश्वरप्रादुर्भावोनाम नवाशीतितमोध्यायः ॥ ८९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नब्बे के अध्यायमें पार्वतीशमाहात्म्य । जिसकी सेवासे सुलभ सकल सुफलयाथात्म्य ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे पार्वतीहृदयानन्द ! आपसे यहां जो पहले उद्देश कियाहुआ याने नाममात्रसे कहागयाहै उस पापहारी पार्वतीश्वरलिंगकी समुत्पत्तिको कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्ते ! तुम सुनो कि जब हिमाचलकी पतिव्रता स्त्री मेनाजीने पर्वतेन्द्रसे उपजीहुई कन्यासे कहा कि हे पुत्रि ! तुम्हारा और इन महेशजीका ॥ २ ॥ कौन देशहै व कौन घरहै व कौन बन्धुहै तुम कुछ जानती

हो बहुधा इन जामाताका और कहीं भी कोई घर नहीं है ॥ ३ ॥ इसभांति माता के वचन को सुनकर लज्जितहुई पर्वतेन्द्रकुमारी ने अवसर को प्राप्तहोकर शंकर जीके नमस्कारकर विज्ञापनकिया ॥ ४ ॥ कि हे कान्त, नाथ! आज विशेषसे निश्चितहुआ सासुका घर मुझसे जाने योग्यहै इससे आप मुझे अपने घरको लेचलो यहां न बसना चाहिये ॥ ५ ॥ ऐसा पार्वतीका वचन सुनकर अभिप्रायके जाननेवाले महादेवजी हिमवान् पर्वतको छोड़कर अपने आनन्दवन (काशी) को प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ और आनन्द के कारण आनन्दवनको प्राप्तहोकर पिताके स्थानको बिसरकर देवीजी आनन्दरूपिणी हुईं ॥ ७ ॥ अनन्तर एक समय गौरीजी ने शिवजी से विज्ञापन

वेत्सिकिञ्चन ॥ प्रायोगृहंनजामातुरस्यकोपिचकुत्रचित् ॥ ३ ॥ निशम्येतिवचोमातुरतिह्रीणागिरीन्द्रजा ॥ आसाद्यावसरंशम्भुंनत्वागौरीऽव्यजिज्ञपत् ॥ ४ ॥ मयाश्वश्रूगृहंकान्तगम्यमद्यविनिश्चितम् ॥ नाथात्रनैववस्तव्यंनयमांस्वंनिकेतनम् ॥ ५ ॥ गिरीन्द्रजागिरंश्रुत्वागिरीशइतितत्त्ववित् ॥ हित्वाहिमगिरिम्प्राप्तोनिजमानन्दकाननम् ॥ ६ ॥ प्राप्यानन्दवनन्देवीपरमानन्दकारणम् ॥ विस्मृत्यपितृसंवासंजाताचानन्दरूपिणी ॥ ७ ॥ अथविज्ञापयाञ्चक्रेगौरीगिरिशमेकदा ॥ अच्छिन्नानन्दसन्दोहःकुतःक्षेत्रेऽत्रतद्वद ॥ ८ ॥ इतिगौरीरितंश्रुत्वाप्रत्युवाचपिनाकधृक् ॥ पञ्चक्रोशपरीमाणेक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिसद्मनि ॥ ९ ॥ तिलान्तरंनदेव्यस्तिविनालिङ्गंहिकुत्रचित् ॥ एकैकमभितोलिङ्गंक्रोशंक्रोशञ्चयावनिः ॥ १० ॥ अन्यत्रापिहिसादेविभवेदानन्दकारणम् ॥ अत्रानन्दवनेदेविपरमानन्दजन्मनि ॥ ११ ॥ परमानन्दरूपाणिसन्तिलिङ्गान्यनेकशः ॥ चतुर्दशसुलोकेषुकृतिनोयेवसन्तिहि ॥ १२ ॥ तैःस्वनाम्नेहलिङ्गानिकृत्वाऽपिकृत[illegible]त्य

किया कि इस क्षेत्रमें अखण्ड आनन्दका समूह क्योंहै उसको कहो ॥ ८ ॥ इसप्रकार पार्वतीके वचनको सुनकर पिनाकधारीने उनके प्रति कहा कि पांचकोश परिमाण-वाले व मुक्तिके मन्दिररूप इस क्षेत्रमें ॥ ९ ॥ लिंगके विनाही तिलान्तरभर भी भूमि कहीं नहींहै और हे क्रीड़ाकारिणि! एक एक लिंगके सब ओर कोश कोशतक जो भूमि है ॥ १० ॥ वह अन्यत्र भी आनन्दका कारणही होवैहै और हे प्रकाशवति, देवि! जहां परमानन्दका जन्महै उस इस आनन्दवनमें ॥ ११ ॥ बहुतसे परमानन्द रूप लिंगहैं क्योंकि जे पुण्यवान् चौदहो लोकों में बसते हैं ॥ १२ ॥ उन्होंने यहां अपने नामों से लिंगोंकोकर कृतार्थताको प्राप्तकियाहै हे महादेवि! जिससे यहां मेरा लिंग

भलीभांति स्थापितहुआ ॥ १३ ॥ उसके कल्याणकी संख्याको विशेष जाननेवाले शेषजी भी नहीं जानते हैं ॥ १४ ॥ हे पार्वति ! इससे यह क्षेत्र आवरणरहित आनन्दका परम कारणहै व बहुते लिंगोंसे श्रेष्ठहै ॥ १५ ॥ ऐसा सुनकर व महेश्वरके चरणारविन्दोंको प्रणामकर महादेवीजीने फिर कहा कि हे महादेवजी ! लिंगकी भलीभांति स्थापनाके लिये मुझे आज्ञादो ॥ १६ ॥ क्योंकि पतिव्रता स्त्री पतिकी आज्ञाको प्राप्तहोकर जिस पुण्यको संग्रह करती है उस पुण्यकी हानि प्रलयमें भी कभी नहींहै ॥ १७ ॥ इसभांति देवेशजीकी प्रसन्नता कराकर व महेशजीकी आज्ञाको पाकर गौरीजी से महादेवेश्वरके समीपमें लिंग संस्थापितहुआ ॥ १८ ॥ उस लिंगके दर्शन से पुरुषोंका

ता ॥ अत्रयेनमहादेविलिङ्गंसंस्थापितम्मम ॥ १३ ॥ वेत्तितच्छ्रेयसःसंख्यांशेषोपिनविशेषवित् ॥ १४ ॥ परिच्छेदव्यती तस्यानन्दस्यपरकारणम् ॥ अतस्त्विदम्परंक्षेत्रंलिङ्गैर्भूयोभिरद्रिजे ॥ १५ ॥ निशम्येतिमहादेवीपुनःपादौप्रणम्यच ॥ देह्यनुज्ञांमहादेवलिङ्गसंस्थापनायमे ॥ १६ ॥ पत्युराज्ञांसमासाद्ययच्छेच्छ्रेयःपतिव्रता ॥ नतस्याःश्रेयसोहानिःसंवर्तेपि कदाचन ॥ १७ ॥ इतिप्रसाद्यदेवेशमाज्ञाम्प्राप्यमहेशितुः ॥ लिङ्गंसंस्थापितङ्गौर्यामहादेवसमीपतः ॥ १८ ॥ तल्लिङ्गदर्श नात्पुंसांब्रह्महत्यादिपातकम् ॥ विलीयेतनसन्देहोदेहबन्धोपिनोपुनः ॥ १९ ॥ तत्रलिङ्गेवरोदत्तोदेवदेवेनयःपुनः ॥ निशामयमुनेतन्तुभक्तानांहितकाम्यया ॥ २० ॥ लिङ्गंयःपार्वतीशाख्यंकाश्यांसम्पूजयिष्यति ॥ तद्देहावसितिम्प्राप्यकाशीलिङ्गंभविष्यति ॥ २१ ॥ काशिलिङ्गत्वमासाद्यमामेवानुप्रवेक्ष्यति ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायांपार्वतीशसमर्चनात् ॥ २२ ॥ इहसौभाग्यमाप्नोतिपरत्रचशुभाङ्गतिम् ॥ पार्वतीश्वरमाराध्ययोषिद्वापुरुषोपिवा ॥ २३ ॥ नगर्भमाविशेद्भूयोभवेत्सौभा

ब्रह्महत्यादि पाप बिलाजावे है और फिर देहबन्धन भी नहीं होवेहै ॥ १९ ॥ हे मुने ! फिर देवोंके देव महादेवजीने भक्तोंके हितकी कामना से जो वरदिया उसको तुम सुनो ॥ २० ॥ कि जो कोई काशीमें पार्वतीश्वरनामक लिंगको भलीभांति पूजेगा वह उस देहके अन्तको प्राप्तहोकर काशीका लिंग होवेगा ॥ २१ ॥ और काशीके लिंग भावको प्राप्तहोकर मुझमेंही पीछेसे प्रवेशकरेगा याने पैठेगा व चैतसुदी तीजमें पार्वतीश्वरकी पूजासे ॥ २२ ॥ इस लोकमे सौभाग्यको और परलोकमें मंगलमयी मुक्तिको

पाताहै व स्त्री अथवा पुरुष भी पार्वतीश्वरको पूजकर ॥ २३ ॥ फिर गर्भमें नहीं पैठे है और सौभाग्यका भाजन (पात्र) होवेहै व पार्वतीश्वरलिंगके नामको भी सब ओर से लेतेहुये जनके ॥ २४ ॥ हजारों जन्मोंका भी पाप उसही क्षणमें नष्ट होताहै व जो मनुष्योत्तम पार्वतीश्वरके माहात्म्यको सुनेगा वह बड़ा बुद्धिमान् इस लोकके और उस लोकके कामोंको पावेगा ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपार्वतीश्वरवर्णनंनामनवतितमोध्यायः ॥ ९० ॥ ❀ ॥

दो० । यकनब्बे अध्यायको महामनोहर मान । गंगेश्वर माहात्म्यको तामें कियो बखान ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अपाप, मुने ! मैंने तुमसे पार्वतीशकी महिमा कहा इस समय गंगेश्वरकी समुत्पत्तिको सुनो ॥ १ ॥ कि जिसको जहीं कहीं भी सुनकर गंगास्नानके फलको पावेहै जब गंगाजी चक्रपुष्करिणी तीर्थको भलीभांति आई ॥ २ ॥ तब उन दिलीपकुमार भगीरथके साथ इस आनन्दवनमें शिवके सबओर ग्रहण करने से अतुल क्षेत्रप्रभावको जानकर ॥ ३ ॥ व काशीमें शिवलिंगप्रतिष्ठा का लोकोंसे अधिक फल सुमिरकर गंगाने श्रीविश्वनाथजी से पूर्वमें शुभ लिंगकी स्थापना किया ॥ ४ ॥ काशीमें गंगेश्वरलिंगका दर्शन बहुत दुर्लभहै और जेठसुदी दशहरा दशमी तिथिमें जो गंगेश्वरको भलीभांति पूजे ॥ ५ ॥ उसके हजारों जन्मका पाप क्षणभरमें विनष्ट होताहै व कलियुगमें गंगेश्वरलिंग गुप्तप्राय होवेगा ॥ ६ ॥ उसका

ग्यभाजनम् ॥ पार्वतीशस्यलिङ्गस्यनामापिपरिगृह्णतः ॥ २४ ॥ अपिजन्मसहस्रस्यपापंक्षयतितत्क्षणात् ॥ पार्वतीशस्यमाहात्म्यंयःश्रोष्यतिनरोत्तमः ॥ ऐहिकामुष्मिकान्कामान्सप्राप्स्यतिमहामतिः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपार्वतीशवर्णनंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ पार्वतीशस्यमहिमाकथितस्तेमयानघ ॥ मुनेनिशामयेदानींगङ्गेश्वरसमुद्भवम् ॥ १ ॥ यंश्रुत्वायत्रकुत्रापिगङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थंयदागङ्गासमागता ॥ २ ॥ तेनदैलीपिनासार्धमस्मिन्नानन्दकानने ॥ क्षेत्रप्रभावमतुलंज्ञात्वाशम्भुपरिग्रहात् ॥ ३ ॥ स्मृत्वालिङ्गप्रतिष्ठायाःकाश्यांलोकोत्तरंफलम् ॥ गङ्गयास्थापितंलिङ्गंविश्वेशात्पूर्वतःशुभम् ॥ ४ ॥ गङ्गेश्वरस्यलिङ्गस्यकाश्यांदृष्टिःसुदुर्लभा ॥ तिथौदशहरायाञ्चयोगङ्गेशंसमर्चयेत् ॥ ५ ॥ तस्यजन्मसहस्रस्यपापंसंक्षीयतेक्षणात् ॥ कलौगङ्गेश्वरंलिङ्गंगुप्तप्रायंभविष्यति ॥ ६ ॥ तस्यसंदर्शनंपुंसां

भलीभांति दर्शन मनुष्यों के पुण्यके लिये होताहै व जिसने काशीमें सुदुर्लभ गंगेश्वर लिंगको देखा ॥ ७ ॥ उससे प्रत्यक्षरूपिणी गंगा देखीगई इसमें संशय नहींहै व सब पापहारिणी गंगा कलियुग में सुदुर्लभ ॥ ८ ॥ होवेगी सन्देह नहींहै और हे मित्रावरुणनन्दन, अगस्त्यजी ! कलियुगके संप्राप्त होतेही काशीमें उससे याने पूर्वोक्त से भी अधिक सुदुर्लभ होवेंगी ॥ ९ ॥ व काशीमें गंगेश्वरनामकालिंग उससे भी सुदुर्लभ है कि जिसका भलीभांति दर्शन पुरुषोंके पाप विनाशके लिये निश्चयसे होवे है॥१०॥ व गंगेश्वरके माहात्म्यको सुनकर मनुष्य नरकवासी न होवे व पुण्यसमूहको पावे और चिन्तित फलको अधिकतासे प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशी

जायतेपुण्यहेतवे ॥ दृष्टंगङ्गेश्वरंलिङ्गंयेनकाश्यांसुदुर्लभम् ७ ॥ प्रत्यक्षरूपिणीगङ्गातेनदृष्टानसंशयः ॥ कलौसुदुर्लभा गङ्गासर्वकल्मषहारिणी ॥ ८ ॥ भविष्यतिनसन्देहोमित्रावरुणनन्दन ॥ ततोपितिष्येसंप्राप्तेकाश्यत्यन्तंसुदुर्लभा ॥ ९ ॥ ततोपिदुर्लभंकाश्यांलिङ्गंगङ्गेश्वराभिधम् ॥ यस्यसंदर्शनंपुंसांभवेत्पापक्षयायवै ॥ १० ॥ श्रुत्वागङ्गेशमाहात्म्यंननरो निरयीभवेत् ॥ लभेच्चपुण्यसंभारंचिन्तितंचाधिगच्छति ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेगङ्गेश्वरमहिमाख्या नंनामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यंकथयामिमुनेतव ॥ यस्यस्मरणमात्रेणमहापातकसंक्षयः ॥ १ ॥ अस्यवाराह कल्पस्यप्रवेशेमुनिपुङ्गवैः ॥ आपृच्छिकासरिच्छ्रेष्ठावदतांत्वंमृकण्डज ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुध्वंमुनयःस र्वेसन्तिनद्यःपरंशतम् ॥ सर्वाअप्यघहारिण्यःसर्वाअपिवृषप्रदाः ॥ ३ ॥ सर्वाभ्योपिनदीभ्यश्चश्रेष्ठाःसर्वाःसमुद्रगाः ॥

खण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेगङ्गेशमहिमाख्यानंनामैकनवतितमोध्यायः॥ ९१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । बानब्बे अध्यायको पापविनाशक जानि । नर्मदेश माहात्म्य इत वर्णितहै शुभदानि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने ! मैं नर्मदेश्वरके माहात्म्यको तुमसे कहताहूं जिसके स्मरणमात्रसे महापापोंका संक्षय होताहै ॥ १ ॥ इस वाराह कल्पका प्रवेश होतेही मुनिश्रेष्ठोंने सब ओरसे पूछा कि हे मृकण्डके पुत्र ! कौन नदी श्रेष्ठहै उसको तुम कहो ॥ २ ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि हे मुनियो ! तुम सब जने सुनो कि सैकड़ों से अधिक नदियां हैं और वे सब भी पापहारिणी व सब भी पुण्यदान-

कारिणी हैं ॥ ३ ॥ व सब नदियों में भी समुद्रको गईहुई सब श्रेष्ठहैं और नदियों में उत्तम नदियां उनसे भी महाश्रेष्ठहैं ॥ ४ ॥ हे मुनिपुंगवो ! गंगा व यमुना अनन्तर नर्मदा और सरस्वती यह चतुष्टय नदियों में पुण्यदायक या सुन्दर है ॥ ५ ॥ क्योंकि गंगा निश्चयमे ऋग्वेदकी मूर्त्ति होवे है व यमुना यजुर्वेदहै व नर्मदा सामवेदकी मूर्त्तिहोवे है अनन्तर सरस्वती अथर्ववेद है ॥ ६ ॥ और गंगा सब नदियों के जन्मका स्थान या कारणहै व समुद्रको पूरनेवाली है व कोई भी श्रेष्ठ नदी यहां गंगाकी समताको नहीं पावे है ॥ ७ ॥ किन्तु पूर्वसमयमें नर्मदाने बहुत कालतक तपस्याको तपकर वरदेनेको सम्मुखहुये ब्रह्माजीसे ऐसी प्रार्थनाकिया कि हे सत्तम, ॥ ८ ॥

ततोपिहिमहाश्रेष्ठाःसरित्सुसरिदुत्तमाः ॥ ४ ॥ गङ्गाचयमुनाचाथनर्मदाचसरस्वती ॥ चतुष्टयमिदंपुण्यंधुनीषुमुनिपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ ऋग्वेदमूर्तिर्गङ्गास्याद्यमुनाचयजुर्ध्रुवम् ॥ नर्मदासाममूर्तिस्तुस्यादथर्वासरस्वती ॥ ६ ॥ गङ्गासर्वसरिद्योनिःसमुद्रस्यापिपूरणी ॥ गङ्गायानलभेत्साम्यंकाचिदत्रसरिद्वरा ॥ ७ ॥ किन्तुपूर्वंतपस्तप्त्वारेवयाबहुनेहसम् ॥ वरदानोन्मुखोधाताप्रार्थितश्चेतिसत्तम ॥ ८ ॥ गङ्गासाम्यंविधेदेहिप्रसन्नोसियदिप्रभो ॥ ब्रह्मणाथततःप्रोक्तानर्मदास्मितपूर्वकम् ॥ ९ ॥ यदित्र्यक्षसमत्वंतुलभ्यतेऽन्येनकेनचित् ॥ तदागङ्गासमत्वंचलभ्यतेसरिताऽन्यया ॥ १० ॥ पुरुषोत्तमतुल्यःस्यात्पुरुषोन्योयदिकचित् ॥ स्रोतस्विनीतदासाम्यंलभतेगङ्गयापरा ॥ ११ ॥ यदिगौरीसमानारीक्वचिदन्याभवेदिह ॥ अन्याधुनीहस्वर्धुन्यास्तदासाम्यमुपैष्यति ॥ १२ ॥ यदिकाशीपुरीतुल्याभवेदन्याक्वचित्पुरी ॥ तदास्वर्गतरङ्गिण्याःसाम्यमन्यानदीलभेत् ॥ १३ ॥ निशम्येतिविधेर्वाक्यंनर्मदासरिदुत्तमा ॥ धातुर्वरंपरित्यज्यप्राप्तावाराणसींपुरीम् ॥ १४ ॥

प्रभो, विधातः ! जो तुम प्रसन्नहो तो गंगाकी समताको देवो अनन्तर उस समय ब्रह्माजीने मुसकानपूर्वक नर्मदासे कहा ॥ ९ ॥ कि जो अन्य किसीको महादेवकी समता मिलतीहै तो अन्य नदीसे गंगाकी बराबरी पाईजाती है ॥ १० ॥ व जो कहीं अन्य पुरुष विष्णुके समान होवे तो अन्य नदी गंगाकी समताको पातीहै ॥ ११ ॥ व जो इस लोकमे कहीं अन्य स्त्री गौरीके तुल्य होवे तो अन्य नदी यहां गंगाकी समताको समीपतासे प्राप्तहोवेगी ॥ १२ ॥ व जो अन्यपुरी काशीके बराबर कहीं होवे तो अन्य नदी स्वर्गनदी गंगाकी समताको पावे ॥ १३ ॥ ऐसा ब्रह्माजीका वचनसुनकर नदियों मे उत्तम नर्मदा विधाताके वरको परित्यागकर काशीपुरीको प्राप्तहुई ॥ १४ ॥

क्योंकि सबभी पुण्यों के लिये काशीमें लिंगप्रतिष्ठासे अन्य कल्याणकारिणी क्रिया किसीसे भी नहीं समुद्दिष्ट हुई याने नाममात्रसेभी नहीं कहीगई है ॥ १५ ॥ अनन्तर उस पुण्यनदी नर्मदा ने त्रिलोचन के समीप पिलिपिलातीर्थ में विधिपूर्वक लिंगप्रतिष्ठाको किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर शुभ अन्तःकरणवाली उस नदीके लिये शङ्करजी प्रसन्नहुये कि हे अपापे, शुभगे, नर्मदे ! जो तुमको रुचताहै उस वरको स्वीकारकर ॥ १७ ॥ ऐसा सुनकर नदीश्रेष्ठा नर्मदाने महेश्वरसे कहा कि हे देवेश, शिव ! यहां बहुत तुच्छ वर से क्या है ॥ १८ ॥ हे महेश्वर ! तुम्हारे दोनों चरणारविन्दों में मेरी दुबिधासे हीन भक्तिहोवे इस भांति नर्मदाके अतिउत्तम वचनको सुनकर शङ्करजी

सर्वेभ्योऽपिहिपुण्येभ्यःकाश्यांलिङ्गप्रतिष्ठितेः ॥ अपरानसमुद्दिष्टाकैश्चिच्छ्रेयस्करीक्रिया ॥ १५ ॥ अथसानर्मदापुण्याविधिपूर्वंप्रतिष्ठितिम् ॥ व्यधात्पिलिपिलातीर्थेत्रिविष्टपसमीपतः ॥ १६ ॥ ततःशम्भुःप्रसन्नोभूत्तस्यैनद्यैशुभात्मने ॥ वरंवृणीष्वसुभगेयत्तुभ्यंरोचतेऽनघे ॥ १७ ॥ सरिद्वरानिशम्येतिरेवाप्राहमहेश्वरम् ॥ किंवरेणेहदेवेशभृशंतुच्छेनधूर्जटे ॥ १८ ॥ निर्द्वन्द्वात्वत्पदद्वन्द्वेभक्तिरस्तुमहेश्वर ॥ श्रुत्वेतिनितरांतुष्टोरेवागिरमनुत्तमाम् ॥ १९ ॥ प्रोवाचचसरिच्छ्रेष्ठेत्वयोक्तंयत्तथास्तुतत् ॥ गृहाणपुण्यनिलयेवितरामिवरान्तरम् ॥ २० ॥ यावन्त्योदृषदःसन्तितवरोधसिनर्मदे ॥ तावन्त्योलिङ्गरूपिण्योभविष्यन्तिवरान्मम ॥ २१ ॥ अन्यंचतेवरंदद्यान्तमप्याकर्णयोत्तमम् ॥ दुष्प्रापंयच्चतपसांराशिभिःपरमार्थतः ॥ २२ ॥ सद्यःपापहरागङ्गासप्ताहेनकलिन्दजा ॥ त्र्यहात्सरस्वतीरेवेत्वंतुदर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥ अपरञ्चवरंदद्यांनर्मदेदर्शनाघहे ॥ भवत्यास्थापितंलिङ्गंनर्मदेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ २४ ॥ यत्तल्लिङ्गंमहापुण्यंमुक्तिंदास्यति

अधिक सन्तुष्ट हुये ॥ १९ ॥ और बोले कि हे नदीश्रेष्ठे ! तुमने जो कहा वह वैसेही होवे व हे पुण्यनिलये ! मैं अन्य वर को देताहूं तुम ग्रहणकरो ॥ २० ॥ कि हे नर्मदे ! तुम्हारे तीरमें जितने पत्थर हैं उतने मेरे वरसे लिङ्गरूपी होवेंगे ॥ २१ ॥ और मैं तुमको अन्यभी वरदेताहूं जोकि उत्तम व परमार्थ से तपस्याओं की राशियों करके दुर्लभ है उसको भी सुनो ॥ २२ ॥ कि हे नर्मदे ! गंगा शीघ्रही व यमुना सात दिनसे व सरस्वती तीनदिन से और तुम दर्शनमात्रसेही पाप हरनेवाली हो ॥ २३ ॥ हे दर्शन से पापविनाशिनि, नर्मदे ! फिर अपर वरको देताहूं कि तुम्हारा थापाहुआ नर्मदेश्वरनामक लिंग ॥ २४ ॥ जोहै वह लिंग महापुण्यदायक या महामनोहर होवेगा

व निरन्तर रहनेवाली मुक्तिको देवेगा और इस लिंग के जे भक्त (सेवक) हैं उन को देखकर सूर्य्य के नन्दन यमराजजी ॥ २५ ॥ बड़ेकल्याणकी सबओरसे वृद्धिके लिये यत्नसे प्रणामकरैंगे हे देवि ! काशीके बीच स्थान स्थानमे अनेक लिंगहैं ॥ २६ ॥ परन्तु नर्मदेश्वर की कोई अकथनीय भी महिमा अद्भुत है ऐसा कहकर देवदेवेश्वर उस लिंगमें लयको प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ और अद्भुत पवित्रताको पाकर नर्मदा भी आनन्दित हुई व देखने मात्रसे पापहारिणी वह अपने देशको सबओर से प्राप्त भई ॥ २८ ॥ इस प्रकार मार्कण्डेय मुनिके वचनको सुनकर वे मुनीश्वर भी प्रहृष्टचित्त हुये तदनन्तर उन्होंने अपने अपने हितको किया ॥ २९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले

शाश्वतीम् ॥ अस्यलिङ्गस्ययेभक्तास्तान्दृष्ट्वासूर्यनन्दनः ॥ २५ ॥ प्रणमिष्यतियत्नेनमहाश्रेयोभिवृद्धये ॥ सन्तिलिङ्गान्यनेकानिकाश्यांदेविपदेपदे ॥ २६ ॥ परंहिनर्मदेशस्यमहिमाकोपिचाद्भुतः ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गेलयंययौ ॥ २७ ॥ नर्मदापिप्रहृष्टासीत्पावित्र्यंप्राप्यचाद्भुतम् ॥ स्वदेशंचपरिप्राप्तादृष्टमात्राघहारिणी ॥ २८ ॥ वाक्यंमृकण्डजमुनेस्तेपिश्रुत्वामुनीश्वराः ॥ प्रहृष्टचेतसोजाताश्चक्रुःस्वंस्वंततोहितम् ॥ २९ ॥ स्कन्दउवाच ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यंश्रुत्वाभक्तियुतोनरः ॥ पापकञ्चुकमुत्सृज्यप्राप्स्यतिज्ञानमुत्तमम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेनर्मदेश्वराख्यानंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यंश्रुतंकल्मषनाशनम् ॥ इदानींकथयस्कन्दसतीश्वरसमुद्भवम् ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मित्रावरुणसम्भूतकथयामिकथांशृणु ॥ यथासतीश्वरंलिङ्गंकाश्यामाविर्बभूवह ॥ २ ॥ पुरातताप सुमहत्त

कि भक्तियुतमनुष्य नर्मदेश्वर के माहात्म्य को सुनकर पापकेचुल को छोंड़कर उत्तम ज्ञानको पावेगा ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेनर्मदेश्वराख्यानंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । त्रयनब्बे अध्याय यह परम सुपुण्यनिधान । शुभउत्पत्ति सतीशकी सुनतहि मोदमहान ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी मैंने महापापनाशक, नर्मदेश्वर का माहात्म्य सुना इस समय तुम सतीश्वरकी समुत्पत्तिको कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मित्रावरुणसम्भूत ! जैसे सतीश्वरलिंग काशीमें हर्षसे प्रकटहुआ

है उस कथाको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ २ ॥ हे मुने ! पूर्वकाल में ब्रह्माजीने अच्छी भारी तपस्याको तपाथा उस तपस्या से सन्तुष्ट देवनायक वरदायक हुये ॥ ३ ॥ और ब्राह्मणोंको बहुतही प्यारकरनेवाले सर्वज्ञनाथ शिवजीने ब्रह्मासे कहाभी कि हे लोककृत ! तुम वरको अङ्गीकार करो ॥ ४॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे देवेश ! जो प्रसन्न हुये तुम मुझको वाञ्छित वर देवोगे तो मेरे पुत्रहोवो और देवीजी दक्षकी कन्या होवें ॥ ५ ॥ इसभांति ब्रह्माके वरको सुनकर सबदायक महादेवजी मुसक्याकर व देवीजी के मुखको देखकर चारमुखवाले ब्रह्माजी से बोले ॥ ६ ॥ हे पितामह, ब्रह्मन् ! तुम्हारा वाञ्छित होवे व तुमको क्या अदेय है ऐसा कहकर चन्द्रधारी शिवजी ब्रह्माजी के

सर्वज्ञनाथोलोकाप:शतधृतिर्मुने ॥ तपसातेनदेवेशःसन्तुष्टोवरदोभवत् ॥ ३ ॥ उवाचचापिब्रह्माणंनितरांब्राह्मणप्रियः ॥ त्मावरंवरयलोककृत ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदिप्रसन्नोदेवेशवरंदास्यसिवाञ्छितम् ॥ तदात्वंमेभवसुतोदेवीदक्षसुताऽस्तु च ॥ ५ ॥ इतिश्रुत्वामहादेवःसर्वदोब्रह्मणोवरम् ॥ स्मित्वादेवीमुखंवीक्ष्यप्रोवाचचतुराननम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मंस्त्वद्वाञ्छितंभूयात्किमदेयंपितामह ॥ इत्युक्त्वाब्रह्मणोभालादाविरासीच्छशाङ्कभृत् ॥ ७ ॥ रुदन्सउत्तानशयोब्रह्मणोमुखमैक्षत ॥ ततोब्रह्मापितंबालंरुदन्तंप्रविलोक्यच ॥ ८ ॥ किंमांजनकमाप्यापित्वंरोदिषिमुहुर्मुहुः ॥ श्रुत्वेतिपृथुकःप्राहयथोक्तंपरमेष्ठिना ॥ ९ ॥ नाम्नेरोदिमिमेस्रष्टर्नामदेहिपितामह ॥ रोदनाद्रुद्रइत्याख्यांसमायाडिम्भकोलभत ॥ १० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ अर्भकत्वंगतोगीशःकिंरुरोदषडानन ॥ यदिवेत्सितदाचक्ष्वमहत्कौतूहलंहिमे ॥ ११ ॥ स्कन्दउवाच ॥ सर्वज्ञस्यकुमारत्वात्किञ्चित्किञ्चिदवैम्यहम् ॥ रोदनेकारणंवच्मिशृणुकुम्भसमुद्भव ॥ १२ ॥ मनसीतिविचारोभूद्देवस्यपरमात्मनः ॥ बुद्धि

माथसे प्रकट हुये ॥ ७ ॥ और रोतेहुये उन बालकरूपने ब्रह्माजीके मुखको देखा व तदनन्तर ब्रह्माजीने भी रोतेहुये उन बालक को अधिकता से देखकर कहा ॥ ८ ॥ कि तुम मुझ पिताको प्राप्तहोकर भी बारबार क्यों रोतेहो इसभांति ब्रह्माजी ने जैसे कहा उसको सुनकर बालकरूप शङ्करजी बोले ॥ ९ ॥ कि हे सृष्टिकर्त्तः, पितामह ! मैं नामके लिये रोताहूं तुम मुझको नाम दो ऐसे रोने से उन मायाबालक ने रुद्र इस नामको पाया ॥ १० ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुख ! बालभावको प्राप्तभी महेशजी क्यों रोये जो तुम जानतेहो तो कहो मुझको महाकौतुक है ॥ ११ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भसमुद्भव ! मैं सर्वज्ञ का पुत्रहोने से रोने में कुछ कुछ कारण

को जानताहूं और उसको कहताहूं ॥ १२ ॥ कि इन ब्रह्माजी की बुद्धिका वैभव देखने के लिये परमात्मा क्रीड़ाकारी देवके मनमें ऐसा विचारहुआ आश्चर्य्य है ॥ १३॥ जोकि सत्यलोक के अधीश व चारमुखवाले और विधानकर्त्ता हैं ऐसे आनन्दसे महेशजीसे बाष्पपूर याने आंसुओंका समूह या प्रवाह भलीभांति उत्पन्नहुआ ॥ १४॥ अगस्त्यजी बोले कि, शङ्करजी ने ब्रह्माजी की किस बुद्धिविभुताको मनमें देखा जिससे बालभाव में भी महेशजी के आंसूसमूह हुआ ॥ १५ ॥ हे सर्वज्ञ, शिवके आनन्दवर्धन, प्राज्ञ ! इसको मुझसे कहो ऐसे अगस्त्यजी से कहे हुये वचन को सुनकर तारकासुर के वैरी कार्त्तिकेयजी हर्ष से बोले ॥ १६ ॥ कि हे कुम्भज, मुने !

वैभवमस्याहोवीक्षितुंपरमेष्ठिनः ॥ १३ ॥ सत्यलोकाधिनाथस्यचतुरास्यस्यवेधसः ॥ इत्यानन्दात्समुद्भूतोबाष्पपूरो महेशितुः ॥ १४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ किंबुद्धिवैभवंधातुःशम्भुनामनसीक्षितम् ॥ येनानन्दाश्रुसम्भारोबाल्येप्यभवदी शितुः ॥ १५ ॥ एतत्कथयमेप्राज्ञसर्वज्ञानन्दवर्धन ॥ श्रुत्वागस्त्युदितंवाक्यंतारकारिरुवाचह ॥ १६ ॥ देवेनमनसिध्या तमितिकुम्भजनेमुने ॥ विनापत्यंजनेतारंकउद्धर्तुमिहप्रभुः ॥ १७ ॥ एकोमनोरथश्चायंद्वितीयोयंसुनिश्चितम् ॥ अपत्य त्वंगतेचास्मिन्स्मर्तुरुत्पत्तिहारिणि ॥ १८ ॥ क्षणंक्षणंसमालोक्यमङ्गस्पर्शेक्षणंक्षणम् ॥ एकशय्यासनाहारंलप्स्येऽने नक्षणेक्षणे ॥ १९ ॥ योयंनगोचरःक्वापिवाणीमनसयोरपि ॥ समेपत्यत्वमासाद्यकिंनदास्यतिचिन्तितम् ॥ २० ॥ योऽमुंस कृत्पृशेज्जन्तुर्योमुंपश्येत्सकृन्मुदा ॥ नसभूयोभिजायेतभवेच्चानन्दमेदुरः ॥ २१ ॥ गृहक्रीडनकंमेसौयदिभूयात्कथ

महादेवजीने मनमें ऐसा विचार किया कि इसलोकमें पुत्र विना पिताके उबारने को कौन समर्थ है ॥ १७ ॥ एक यह मनोरथ और दूसरा यह है कि सुमिरते हुये जनोंकी उत्पत्तिके हर्ता इन शिवजी के पुत्रता को प्राप्तहोतेही ॥ १८ ॥ क्षण क्षण में अच्छा दर्शन व क्षण में अंग स्पर्श और क्षणक्षणमें इनके साथ एक शय्या में आसन व भोजन को पाऊंगा ॥ १९ ॥ जो यह वचन और मन के भी कहीं विषय नहीं हैं वह मेरे पुत्रभावको प्राप्तहोकर किस चिन्तित फलको न देवेंगे याने सबको देवेंगे ॥ २० ॥ और जो जन्तु इनको एकबार देखे व जो इनको आनन्द से एकबार छुवे वह फिर न उपजे और आनन्दसे व्याप्त होवे ॥ २१ ॥ व जो यह

किसी भांति मेरे घरका खेलहौवैं तो मैं निरसन्देह श्रेष्ठ सौख्यका निधान होऊं ॥ २२॥ इसभांति ब्रह्माजीके मनोरथ को निश्चय से जानकर उन सर्वज्ञने आनन्दके आंसुओं से भूषित तीन आंखों को धारण किया ॥ २३ ॥ ऐसा कार्त्तिकेय का वचन सुनकर अगस्तिजी सबओरसे अतिशय आनन्दित हुये व उनके पावों को नमस्कार करते भये और उच्चस्वरसे बोले कि हे सर्वज्ञनन्दन ! तुम जयकरो॥ २४ ॥ तुमने ब्रह्माका मनजाना व शङ्करकेभी मनोगतको जाना व भलीभांति चित्तकोजाना ज्ञानरूप तुम्हारे लिये नमस्कार हो ॥ २५ ॥ श्रोताके आनन्दके देखने से स्कन्दजीभी बहुतही सन्तुष्ट हुये कि हे अगस्त्यजी ! तुम धन्यहो धन्यहो व तत्त्व से सुननेके लिये जानते

श्चन ॥ तदापरस्यसौख्यस्यनिधानंस्यामसंशयम् ॥ २२ ॥ विधेःसमीहितंचेतिनूनंज्ञात्वाससर्ववित् ॥ आनन्दबाष्पकलितत्र्यक्षुस्त्रयमदीधरत् ॥ २३ ॥ श्रुत्वेत्यगस्तिःस्कन्दस्यभाषितंपर्यमूमुदत् ॥ ननामचाङ्घ्रीप्रोवाचजयसर्वज्ञनन्दन॥२४॥ विधेरपिमनोज्ञातंशम्भोरपिमनोगतम् ॥ सम्यक्चित्तंत्वयाज्ञातंनमस्तुभ्यंचिदात्मने ॥ २५ ॥ स्कन्दोपिनितरांतुष्टःश्रोतुरानन्ददर्शनात् ॥ धन्योस्यगस्त्यधन्योसिश्रोतुंजानासितत्त्वतः ॥ २६ ॥ नमेश्रमोवृथाजातोब्रुवतस्तेपुरःकथाम् ॥ इत्यगस्तिंसमाभाष्यपुनःप्राहषडाननः ॥ २७ ॥ देवेरुद्रत्वमापन्नेदेवीदक्षसुताभवत् ॥ सापितप्त्वातपस्तीव्रंसतीकाश्यांवरार्थिनी ॥ २८ ॥ ददर्शलिङ्गरूपेणप्रादुर्भूतंहरंपुरः ॥ अलंतप्त्वामहादेविप्रोक्तवन्तमितिस्फुटम् ॥ २९ ॥ इदंसतीश्वरंलिङ्गंतवनाम्नाभविष्यति ॥ यथामनोरथस्तेऽत्रफलितोदक्षकन्यके ॥ ३० ॥ तथैतल्लिङ्गमाराध्यान्यस्यापिहिफलिष्यति ॥ कुमारीप्राप्स्यतिपतिम्मनसोपिसमुच्छ्रितम् ॥ ३१ ॥ एतल्लिङ्गंसमाराध्यकुमारोपिवराङ्गनाम् ॥ यस्ययस्य

हो॥ २६ ॥तुम्हारे आगे कथाको कहतेहुये मेरा श्रम वृथा नहीं हुआ इसप्रकार अगस्तिजी को भलीभांति सामने से कहकर षण्मुखजी फिर बोले॥ २७॥ कि जब महादेवजी रुद्रभावको प्राप्तहुये तब देवीजी दक्षकी कन्याहुईं और वरको चाहतीहुईं उन सतीजीने भी काशी में तीव्रतपको तपकर ॥ २८ ॥ लिङ्गरूपसे प्रकटहुये व स्पष्ट ऐसा कहते हुये शिवजीको आगे देखा कि हे महादेवि ! तपकरके क्याहै ॥ २९ ॥ यह सतीश्वर लिङ्ग तुम्हारे नाम से होवेगा हे दक्षकन्यके ! जैसे तुम्हारा मनोरथ यहां फलित हुआ है ॥ ३० ॥ वैसेही इस लिंगकी पूजाकर अन्यकाभी मनोरथ फलेगा व कुमारी मनसे भी उत्तम पतिको पावैगी ॥ ३१ ॥ व कुमारभी इस लिङ्गको भलीभांति पूजकर श्रेष्ठ

कन्याको पावेगा व जिस जिस काही जो कामहै उस उस काही वह निश्चय से ॥ ३२ ॥ सतीश्वर के सम्पूजन से सिद्धहोवेगा। इसमें सन्देह नहीं है और सतीश्वरको भली भांति पूजकर जो जो जन जिस जिस फलको चाहता है ॥ ३३ ॥ उस उसका वह वह मनोरथ शीघ्रही होवेगा इससे आठवें दिन मे तुम्हारा पिता प्रजापति दक्ष ॥ ३४ ॥ तुम कन्याको मुझे देवेगा तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ ऐसा कहकर देवदेवेश्वर उस लिङ्गमेही अन्तर्धान हुये ॥ ३५ ॥ और वह दक्षकुमारी सतीजी भी आनन्द से अपने घरकोगई व उनके पितानेभी आठवें दिनमे उनको रुद्रजीके लियेदिया ॥ ३६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने! ऐसे काशीमें सतीश्वर लिंग प्रकटहुआ और वह

ह्रियःकामस्तस्यतस्यहिसध्रुवम् ॥ ३२ ॥ भविष्यतिनसंदेहःसतीश्वरसमर्चनात् ॥ सतीश्वरंसमभ्यर्च्ययोयोयंयंसमी हते ॥ ३३ ॥ तस्यतस्यससंसिद्धिंप्रभविष्यतिमनोरथः ॥ इतोष्टमेचदिवसेत्वज्जनेताप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ मह्यन्दास्यतिक न्यांत्वांसफलस्तेमनोरथः ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥ ३५ ॥ सापिस्वभवनंयातासतीदाक्षायणीमुदा ॥ पितापितस्मैप्रादात्तांरुद्रायदिवसेष्टमे ॥ ३६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्थंसतीश्वरंलिङ्गंकाश्यांप्रादुरभून्मुने ॥ स्मरणाद पिलिङ्गञ्चदद्यात्सत्त्वगुणंपरम् ॥ ३७ ॥ रत्नेशात्पूर्वतोभागेदृष्ट्वालिङ्गंसतीश्वरम् ॥ मुच्यतेपातकैःसद्यःक्रमाज्ज्ञानञ्च विन्दति ॥ ३८ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसतीश्वरप्रादुर्भावोनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ अन्यान्यपिचलिङ्गानिकथयामिमहामुने ॥ अमृतेशमुखादीनियन्नामाप्यमृतप्रदम् ॥ १ ॥ पुरास नारुनामासीन्मुनिरत्रगृहाश्रमी ॥ ब्रह्मयज्ञरतोनित्यंनित्यञ्चातिथिदैवतः ॥ २ ॥ लिङ्गपूजारतोनित्यंनित्यंतीर्थाप्रति

लिंग सुमिरनेसेही श्रेष्ठ सतोगुण को देवे है ॥ ३७ ॥ रत्नेश्वर से पूर्वभाग में सतीश्वर लिंगको देखकर सब पापोंसे शीघ्रही छूटजाता है और क्रमसे ज्ञानको पाताहै ॥ ३८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेसतीश्वरप्रादुर्भावोनामत्रिनवतितमोध्यायः ॥ ९३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चारनबे अध्यायमें अमृतेश्वर करुणेश । ज्योतीरूपेश्वर तथा वर्णित कथा सुवेश ॥ हे महामुने! जिनका नामभी मोक्षदाता है उन अमृतेश्वर मुख्यादि अन्य भी लिंगोंको मैं कहताहूं ॥ १ ॥ कि पूर्वसमय इस काशीमे सनारु नामक मुनिहुआ जोकि गृहाश्रमी (गृहस्थ) व नित्यही ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) मे रत व नित्यही अतिथि

देववाला ॥ २ ॥ व नित्यही लिंगपूजामें रत और नित्यही तीर्थमें न दान लेनेवाला था उस सनारु ऋषिका पुत्र उपजङ्घनि हुआ ॥ ३ ॥ वह कभी वनको गया और वहां उसको सर्पने डसा अनन्तर उसके समान अवस्थावाले मित्रोंसे वह अपने आश्रम को लायागया ॥ ४ ॥ और सनारु ने भलीभांति ऊर्ध्वश्वास लेकर उस उपजङ्घनि को स्वर्गद्वारके समीप श्मशानभूमिभागमें प्राप्तकिया ॥ ५ ॥ वहां सुगुप्तके समान बिल्वफलके आकार एक लिंग हुआथा उस स्थान मे उस मुर्दाको धरकर जबतक सुबुद्धिमान् सनारुने चिन्तना किया ॥ ६ ॥ कि इसभांति सर्पसे डसेहुये का संस्कार निश्चय से किस प्रकार होता है तबतक जीवताहुआ वह उपजङ्घनि सोये हुयेकी नाईं

ग्रही ॥ तस्यर्षेरभवत्पुत्रःसनारोरुपजङ्घनिः ॥ ३ ॥ सकदाचिद्गतोरण्यंतत्रदष्टःपृदाकुना ॥ अथतत्सवयोभिश्चसत्रा नीतःस्वमाश्रमम् ॥ ४ ॥ सनारुणासमुच्छ्वस्यनीतःसउपजङ्घनिः ॥ महाश्मशानभूभागंस्वर्गद्वारसमीपतः ॥ ५ ॥ तत्रासीच्छ्रीफलाकारंलिङ्गमेकंसुगुप्तवत् ॥ निधायतत्रतंयावच्छवंसञ्चिन्तयेत्सुधीः ॥ ६ ॥ सर्पदष्टस्यसंस्कारःकथंभवति चेतिवै ॥ तावत्सजीवन्नुत्तस्थौसुप्तवच्चोपजङ्घनिः ॥ ७ ॥ अथतंवीक्ष्यसमुनिःसनारुरुपजङ्घनिम् ॥ पुनःप्राणितसंपन्नंविस्मयंप्राप्तवान्परम् ॥ ८ ॥ प्राणितव्येत्रकोहेतुर्मच्छिशोरुपजङ्घनेः ॥ क्षेत्राद्बहिरहिर्यंहिदष्टानैषीत्परासुताम् ॥ ९ ॥ इतियावत्ससंधत्तेधियंतज्जीवितैकिकाम् ॥ तावत्पिपीलिकात्वेकामृतंकापिपिपीलिकम् ॥ १० ॥ आनिनायचतत्रैवसोप्यनन्निर्गतस्ततः ॥ अथविज्ञायसमुनिस्तत्त्वंजीवितसूचितम् ॥ ११ ॥ मृदुहस्ततलेनैवयावत्स्वनतिवैमुनिः ॥ ताव

उठबैठा ॥ ७ ॥ अनन्तर फिर जीवितसम्पन्न उस उपजङ्घनि को देखकर वह सनारुमुनि परमविस्मय को प्राप्तहुआ ॥ ८ ॥ कि मेरे बालक उपजङ्घनिके प्राणितव्य याने जीने में यहां क्या कारण है कि जिसको क्षेत्रके बाहर सर्पने काटा वह गतप्राणता (मरेकेभाव) को नहीं प्राप्तहोता है ॥ ९ ॥ इसभांति वह सनारुमुनि उस पुत्रके जीवितमुख्यवाली बुद्धिको जबतक भलीभांति धारता है तबतक एक चींटी कहीं भी मरेहुये एक चींटेको ॥ १० ॥ वहांही लेआई और वहभी जीवता हुआ वहासे निकला अनन्तर वह मुनि जीवित सूचित याने दोनों के जीवन से अनुमित तत्त्व (पदार्थ) को विशेषतासे जानकर ॥ ११ ॥ जबतक मौनधारी होकर कोमल हस्ततल

से खोदने लगे तबतक उन्होंने बिल्वफल के बराबरही लिंग को भलीभांति देखा ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन सनारुमुनिसे वहां वह लिंगसे पूजित हुआ और बहुतकालीन (पुराने) लिंगका अन्वय समेत नामभी कियागया ॥ १३ ॥ कि आनन्दवन में यह अमृतेश्वर नामक लिंग है इस लिंगके संस्पर्श से निश्चयकर अमरताको पावे ॥ १४ ॥ और जीवतपुत्रवाले वहही मुनि अमृतेश्वर को भलीभांति पूजकर अपने घरको अच्छे प्रकार पीछे से प्राप्तहुये व जनोंसे आश्चर्य्य की नाईं देखेगये ॥ १५ ॥ हे मुनी-श्वर ! तबसे लगाकर वह सिद्धिदाता अमृतेश्वर लिंग काशीमें है व कलियुगमें फिर गुप्त होवे है ॥ १६ ॥ व मरेहुये जन अमृतेश्वरके संस्पर्शसे उसी क्षणमें फिर जीवते

च्छीफलमात्रंहिलिङ्गंतेनसमीक्षितम् ॥ १२ ॥ सनारुणाथतल्लिङ्गंतेनतत्रसमर्चितम् ॥ चिरकालीनलिङ्गस्यकृतंनामापिसान्वयम् ॥ १३ ॥ अमृतेश्वरनामेदंलिङ्गमानन्दकानने॥ एतल्लिङ्गस्यसंस्पर्शादमृतत्वंलभेद्ध्रुवम्॥ १४ ॥ अमृतेशंसमभ्यर्च्यजीवत्पुत्रःसवैमुनिः ॥ स्वास्पदंसमनुप्राप्तोदृष्टश्चाश्चर्यवज्जनैः ॥ १५ ॥ तदाप्रभृतितल्लिङ्गममृतेशंमुनीश्वर ॥ काश्यांसिद्धिप्रदंनॄणांकलौगुप्तंभवेत्पुनः ॥ १६ ॥ अमृतेश्वरसंस्पर्शान्मृताजीवन्तितत्क्षणात्॥ अमृतत्वम्भजन्तेऽत्रजीवन्तःस्पर्शमात्रतः ॥ १७ ॥ अमृतेशसमंलिङ्गंनास्तिकापिमहीतले॥तल्लिङ्गंशम्भुनातिष्येकृतंगुप्तंप्रयत्नतः ॥ १८ ॥ अमृतेश्वरनामापियेकाश्यांपरिगृह्णते ॥ नतेषामुपसर्गोत्थम्भयंक्वापिभविष्यति ॥ १९ ॥ मुनेन्यच्चमहालिङ्गंकरुणेश्वरसंज्ञितम् ॥ मोक्षद्वारसमीपेतुमोक्षद्वारेश्वराग्रतः ॥ २० ॥ दर्शनात्तस्यलिङ्गस्यमहाकारुणिकस्यवै ॥ नक्षेत्रान्निर्गमोजातुबहिर्भवतिकस्यचित् ॥ २१ ॥ स्नातव्यंमणिकर्ण्यांञ्चद्रष्टव्यःकरुणेश्वरः ॥ क्षेत्रोपसर्गजाभीतिर्हातव्या

हैं और जीवते हुये यहां स्पर्शमात्र से मुक्तिभावको सेवते हैं ॥ १७ ॥ क्योंकि अमृतेश्वर के समान लिंग भूतलमें कहीं भी नहीं है इससे शङ्करजी ने कलियुग में उस लिंगको यत्नसे गुप्तकिया है ॥ १८ ॥ व जे काशीमें अमृतेश्वर के नामको भी सब ओरसे ग्रहण करते हैं उनको उपद्रवों से उठा हुआ डर कहीं भी नहीं होवेगा ॥ १९ ॥ हे मुने ! जोकि करुणेश्वर नामक अन्य महालिंग मोक्षद्वारेश्वर के आगे मोक्षद्वार के समीपमें है ॥ २० ॥ उस महादयालु लिंगके दर्शनसेही किसीका क्षेत्रसे बाहर निकलजाना कभी नहीं होता है ॥ २१ ॥ इसलिये मणिकर्णिका में नहाना चाहिये व करुणेश्वरका दर्शन करना चाहिये और क्षेत्रोपद्रवों से उपजे डरको परम

आनन्द से त्यागना चाहिये ॥ २२ ॥ व सोमवार को प्राप्तहोकर एकभक्तव्रतको करे व व्रतवाले जनों करके करुणा (ककरखिरुणी) के फूलोंसे करुणेश्वर पूजनेयोग्य हैं ॥ २३ ॥ उस व्रतसे सन्तुष्ट करुणेश्वर उसको कभी क्षेत्रसे बाहर नहीं करे हैं उससे यह व्रत करना चाहिये ॥२४॥ और उस करुणा वृक्षके पत्रों व उसके फूलोंसे भी करुणेश्वर पूजने योग्य हैं व ज्ञानसे वर्जित जो जन उस लिंग को भलीभांति नहीं जानता है ॥ २५ ॥ उसको देवेश प्रसन्न होवें ऐसा कहकर करुणा वृक्षकी पूजा करना चाहिये व जोकि द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) ऐसे एक वर्षतक सोमवार व्रतको करे ॥ २६ ॥ उसके वाञ्छित फलको प्रसन्नहुये करुणेश्वर यहां देवेंगे और इस काशीमें मनुष्यों

परयामुदा ॥ २२ ॥ सोमवासरमासाद्यएकभक्तव्रतञ्चरेत् ॥ यष्टव्यःकरुणापुष्पैर्व्रतिनाकरुणेश्वरः ॥ २३ ॥ तेनव्रतेनसं तुष्टःकरुणेशःकदाचन ॥ नतंक्षेत्राद्बहिष्कुर्यात्तस्मात्कार्यंव्रतंत्विदम् ॥ २४ ॥ तत्पत्रैस्तत्फलैर्वापिसंपूज्यःकरुणेश्वरः ॥ योनजानातितल्लिङ्गंसम्यग्ज्ञानविवर्जितः ॥ २५ ॥ तेनार्च्यःकरुणावृक्षोदेवेशःप्रीयतामिति ॥ योवर्षंसोमवारस्यव्रतं कुर्यादितिद्विजः ॥ २६ ॥ प्रसन्नःकरुणेशोत्रतस्यदास्यतिवाञ्छितम् ॥ द्रष्टव्यःकरुणेशोत्रकाश्यांयत्नेनमानवैः ॥ २७ ॥ इतितेकरुणेशस्यमहिमोक्तोमहत्तरः ॥ यंश्रुत्वानोपसर्गोत्थम्भयंकाश्याम्भविष्यति ॥ २८ ॥ मोक्षद्वारेश्वरञ्चैवस्वर्ग द्वारेश्वरंतथा ॥ उभौकाश्यांनरोदृष्ट्वास्वर्गम्मोक्षञ्चविन्दति ॥ २९ ॥ ज्योतीरूपेश्वरंलिङ्गंकाश्यामन्यत्प्रकाशते ॥ त स्यसंपूजनाद्भक्ताज्योतीरूपाभवन्तिहि ॥ ३० ॥ चक्रपुष्करिणीतीरेज्योतीरूपेश्वरम्परम् ॥ समभ्यर्च्याप्नुयान्मर्त्यो ज्योतीरूपंनसंशयः ॥ ३१ ॥ यदाभागीरथीगङ्गातत्रप्राप्तासरिद्वरा ॥ तदारभ्यार्चयेन्नित्यन्तल्लिङ्गंस्वर्धुनीमुदा ॥ ३२ ॥

को यत्नसे करुणेश्वरका दर्शन करना चाहिये ॥ २७ ॥ इसभांति मैंने करुणेश्वरकी बड़ी भारी महिमाको तुमसे कहा जिसको सुनकर उपद्रवों से उठाहुआ डर काशीमे न होगा ॥ २८ ॥ ऐसेही मोक्षद्वारेश्वर तथा स्वर्गद्वारेश्वर इन दोनोंको काशीमें देखकर मनुष्य मोक्ष और स्वर्गको पाताहै ॥ २९ ॥ व जोकि ज्योतीरूपेश्वर नामक अन्य लिंग काशी मे प्रकाशताहै उसके संपूजनेसेही भक्तजन ज्योतिरूप होते हैं ॥ ३० ॥ व चक्रपुष्करिणी के तीर में ज्योतीरूपेश्वरको भलीभाति पूजकर मनुष्य ज्योति रूपको प्राप्त होवे है इसमें संशय नहीं है ॥ ३१ ॥ और नदियोंमें श्रेष्ठ, स्वर्ग की नदी भागीरथी गंगा जब से वहां प्राप्त हुईहैं तबसे लगाकर उस लिंगको नित्यही आन-

न्दसे पूजती हैं ॥ ३२ ॥ व पूर्वकालमे यहां विष्णुजी के तपस्या करतेही वहां तेजस्वी लिंग आपही प्रकट हुआहै उरासे यह क्षेत्र शुभहै ॥ ३३ ॥ और जब दूरवासी भी जो जन यहां चक्रपुष्करिणी के तीरमें ज्योतीरूपेश्वरको ध्यावे तब उसकी सिद्धि अदूर (समीप) मे है ॥ ३४ ॥ और हे सत्तम ! इन चौदहों लिंगों में भी आठ लिंग बडे वीर्य्यवान् व कर्मबीजों को जलाने के लिये दावाग्निके समान है ॥ ३५ ॥ और जेकि ॐकारेश्वरादि चौदह लिंग कहेगये हैं तथा जे दक्षेश्वरादि आठ महालिंगहै ॥ ३६ ॥ फिर वैसेही जे शैलेश्वरादि चौदह लिंगहैं ये छत्तीसलिंग क्षेत्रकी संसिद्धिके लियेहैं ॥ ३७ ॥ व इन लिंगों मे छत्तीस तत्त्वरूप व इस क्षेत्रमें नित्यही वसतेहुये वह सदा-

पुराविष्णोतपत्यत्रतल्लिङ्गंस्वयमेवहि ॥ तत्राविरासीत्तेजस्वितेनक्षेत्रमिदंशुभम् ॥ ३३ ॥ चक्रपुष्करिणीतीरेज्योतीरूपेश्वरन्तदा ॥ दूरस्थोपीहयोध्यायेत्तस्यासिद्धिरदूतः ॥ ३४ ॥ एतेष्वपिचलिङ्गेषुचतुर्दशसुसत्तम ॥ लिङ्गाष्टकंमहावीर्यंकर्मबीजदवानलम् ॥३५॥ ॐकारादीनिलिङ्गानियान्युक्तानिचतुर्दश ॥ तथादक्षेश्वरादीनिलिङ्गान्यष्टौमहान्तिच ॥३६॥ शैलेशादीनिलिङ्गानितथायानिचतुर्दश ॥ पुनःषट्त्रिंशदेतानिक्षेत्रसंसिद्धिहेतवे ॥ ३७ ॥ षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपोसौलिङ्गेष्वेषुसदाशिवः ॥ अस्मिन्क्षेत्रेवसन्नित्यंतारकंज्ञानमादिशेत् ॥ ३८ ॥ क्षेत्रस्यतत्त्वमेतद्धिषट्त्रिंशल्लिङ्गरूप्यहो ॥ एतेषाम्भजनात्पुंसांनभवेद्दुर्गतिःक्वचित् ॥ ३९ ॥ मुनेरहस्यभूतानिलिङ्गान्येतानिनिश्चितम् ॥ एतल्लिङ्गप्रभावाच्चमुक्तिरत्रसुनिश्चिता ॥ ४० ॥ मोक्षक्षेत्रमिदङ्काशीलिङ्गैरेतैर्महामते ॥ एतान्यन्यानिसिद्धानिसम्भवन्तियुगेयुगे ॥ ४१ ॥ आनन्दकाननंशम्भोःक्षेत्रमेतदनादिमत् ॥ अत्रसंस्थितिमापन्नामुक्ताएवनसंशयः ॥ ४२ ॥ योगसिद्धिरिहास्त्येवतपःसिद्धि

शिवजी तारक ज्ञानको उपदेश करते हैं ॥ ३८ ॥ यहही छत्तीस लिंगरूपी, क्षेत्रका अद्भुत स्वरूपहै व इन लिंगोंकी सेवासे मनुष्योंकी दुर्गति कहीं भी नहीं होवेहै ॥३९॥ हे मुने ! ये लिंग रहस्यभूत है यह निश्चितहै और यहां इन लिंगो के प्रभावसे मुक्ति सुनिश्चितहै ॥ ४० ॥ हे महामते ! इन लिंगोसे काशी यह मोक्षक्षेत्र है व ये और अन्य भी लिंग युग-युगमे सिद्ध होतेहैं ॥ ४१ ॥ शिवजीका क्षेत्र यह आनन्दवन अनादिवालाहै यहां मरणको या भलीभांति निवासको प्राप्तहुये जन मुक्तही हैं इसमें सशय

नहीं है ॥ ४२ ॥ व यहांही योगकी सिद्धिहै यहांही तपस्याकी सिद्धिहै व यहांही व्रतोंकी सिद्धि मन्त्रोंकी सिद्धि और तीर्थोंकी सिद्धि है यह बहुत निश्चितहै ॥ ४३ ॥ व जो कि बडा भारी अणिमादिसिद्धाष्टक कहागया है उसकी जन्मभूमि यह शम्भुकी आनन्दवाटिकाही है ॥ ४४ ॥ व यह आनन्दवन मोक्षलक्ष्मीका स्थानहै इसलिये पुण्यों से इसको प्राप्तहोकर संसारसे डरभुत जनको त्यागना न चाहिये ॥ ४५ ॥ जो यहां काशी मिली है तो यहही बड़ा लाभहै यहही उत्तम तप है और यहही महत् पुण्य है ॥ ४६ ॥ व जन्मवालेकी मृत्यु जहां कहीं भी अवश्यही होती है उसके बाद कर्मानुसारिणी शुभ व अशुभगति मिलने योग्यहै ॥ ४७ ॥ इससे नियत मृत्युको और

रिहैवहि ॥ व्रतसिद्धिर्मन्त्रसिद्धिस्तीर्थसिद्धिःसुनिश्चितम् ॥ ४३ ॥ सिद्ध्यष्टकन्तुयत्प्रोक्तमणिमादिमहत्तरम् ॥ तज्जन्म भूमिरेषैवशम्भोरानन्दवाटिका ॥ ४४ ॥ निर्वाणलक्ष्म्याःसदनमेतदानन्दकाननम् ॥ एतत्प्राप्यनमोक्तव्यंपुण्यैःसंसा रभीरुणा ॥ ४५ ॥ अयमेवमहालाभइदमेवपरन्तपः ॥ एतदेवमहत्पुण्यंलब्धावाराणसीहयत् ॥ ४६ ॥ अवश्यंजन्मि नोमृत्युर्यत्रकुत्रभविष्यति ॥ कर्मानुसारिणीलभ्यागतिःपश्चाच्छुभाशुभा ॥ ४७ ॥ मृत्युंविज्ञायनियतंगतिङ्कर्मानुसा रिणीम् ॥ अवश्यङ्काशिकासेव्यासर्वकर्मनिवारिणी ॥ ४८ ॥ मानुष्यम्प्राप्ययेमूढानिमेषमितजीवितम् ॥ नसेवन्तेपुरी ङ्काशीन्तेमुष्टामन्दबुद्धयः ॥ ४९ ॥ दुर्लभञ्जन्ममानुष्यंदुर्लभाकाशिकापुरी ॥ उभयोःसङ्गमासाद्यमुक्ताएवनसंशयः ॥ ५० ॥ क्वचताद्दक्तपांसीहक्वताद्दग्योगउत्तमः ॥ याद्दग्भिःप्राप्यतेमुक्तिःकाश्यांमोक्षोत्तमोत्तमः ॥ ५१ ॥ सत्यंसत्यंपु नःसत्यंसत्यपूर्वम्पुनःपुनः ॥ नकाशीसद्दशीमुक्त्यैभूमिरन्यामहीतले ॥ ५२ ॥ विश्वेशोमुक्तिदोनित्यंमुक्त्यैचोत्तरवा

कर्मानुसारिणी गतिको जानकर सब कर्मनिवारिणी काशी अवश्यही सेवने योग्यहै ॥ ४८ ॥ और निमेष परिमित जीवितवाले मनुष्यभावको पाकर जे अविवेकी जन काशीपुरी को नहीं सेवते हैं वे मन्दबुद्धि मनुष्य दैवसे वञ्चित हैं ॥ ४९ ॥ व मनुष्यका जन्म दुर्लभ है और काशीपुरी दुर्लभहै इन दोनों के संगको प्राप्त होकर मुक्तही हैं इस मे संशय नहीं है ॥ ५० ॥ इस लोकमें वैसी तपस्याये कहां हैं व वैसा उत्तम योग कहां है कि जैसों से मुक्ति मिलती है और काशीमें मोक्षोत्तमोत्तम सायुज्य मोक्ष होताहै ॥ ५१ ॥ यह सत्यहै सत्यहै फिर सत्यहै और फिर फिर सत्यपूर्वक सत्यहै कि मुक्तिके लिये काशी के समान अन्य भूमि भूतलमें नहीं है ॥ ५२ ॥ जहां नित्यही

मुक्तिदाता विश्वनाथजी हैं व मुक्तिके लिये उत्तरवाहिनी गंगाहैं उस आनन्दवनमें मुक्ति है अन्यत्र कहीं भी मुक्ति नहीं है ॥ ५३ ॥ क्योंकि एक विश्वेश्वरही मुक्तिदाता है अन्य कोई नहीं है वहही काशी में प्राप्तकर मुक्ति को देते हैं अन्यत्र नहीं ॥ ५४ ॥ किन्तु सायुज्य मुक्ति यहांही है अनन्तर सामीप्यादि मुक्ति अन्यत्र भी होती है परन्तु वहभी निश्चयसे सुलभ नहीं है और काशी मे अवज्ञासे मोक्षहै ॥ ५५ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाभाग, अगस्त्यजी ! मैं भविष्य (होनहार) को कहता हूं कि विष्णु का अंश द्वैपायन व्यासजी जिस वचनको कहेंगे और निश्चय करने के लिये मनवाले होकर पीछे से जो करेंगे उसको तुम सुनो ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्द-

हिनी ॥ आनन्दकाननेमुक्तिर्मुक्तिर्नान्यत्रकुत्रचित् ॥ ५३ ॥ एकएवहिविश्वेशोमुक्तिदोनान्यएवहि ॥ सएवकाशींप्राप्यमुक्तिंयच्छतिनान्यतः ॥ ५४ ॥ सायुज्यमुक्तिरत्रैवसान्निध्यादिरथान्यतः ॥ सुलभासापिनोनूनंकाश्यांमोक्षोस्तिहेलया ॥ ५५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृणवगस्त्यमहाभागभविष्यंकथयाम्यहम् ॥ कृष्णद्वैपायनोव्यासोऽकथयद्यन्महद्वचः ॥ निश्चिकेतुमनाःपश्चाद्यत्करिष्यतितच्छृणु ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽमृतेशादिलिङ्गप्रादुर्भावोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ शृणुसूतमहाबुद्धेयथास्कन्देनभाषितम् ॥ भविष्यंममतस्याग्रेकुम्भयोनेर्महामतेः ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ निशामयमहाभागत्वंमैत्रावरुणेमुने ॥ पाराशर्योमुनिवरोयथामोहमुपैष्यति ॥ २ ॥ व्यस्यवेदान्महाबुद्धिर्नाना

पुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेऽमृतेश्वरादिलिङ्गप्रादुर्भावोनामचतुर्नवतितमोध्यायः ॥ ९४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पांचनबे अध्यायमे व्यास भुजासंस्तंभु । शिवस्तोत्र इत व्यासकृत अरु व्यासेश्वर शंभु ॥ श्रीव्यासजी बोले कि हे महाबुद्धे, सूत ! जैसे श्रीकार्त्तिकेयजीने बडे बुद्धिमान् उन अगस्त्यजी के आगे मेरे भविष्य वृत्तान्तको कहा वैसे तुम सुनो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मित्र व वरुणसे उत्पन्न, महाभाग, मुने ! जैसे मुनिश्रेष्ठ पाराशर्य्य (पराशरके पुत्र) वेदव्यासजी मोहको समीप से प्राप्त होवेंगे वैसेही तुम सुनो ॥ २ ॥ कि अनेक शाखाओं के भेदो से वेदोको बिलग बिलग विस्तारकर

श्रीर सूतादि शिष्यों को अठारह पुराणें पढ़ाकर बड़े बुद्धिमान् व्यासजी ॥ ३ ॥ कि जिन्होंने महाभारत नामक पुराणको प्रकटकिया जो कि सब लोगों के मनका हरने-वाला व वेद स्मृति श्रीर पुराणोका रहस्य है ॥ ४ ॥ व सब पापविनाशक व सब शान्तिकारक और सब से श्रेष्ठ है व जिसके सुनने से ब्रह्महत्या विनष्ट होती है ॥ ५ ॥ वह श्रीमान् मुनि पृथिवीतल में सब ओर घूमते हुये एक समय नैमिषारण्य को भलीभांति प्राप्तहुये जहां मुनीश्वरहैं ॥ ६ ॥ जे कि अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषि तपो-धन व माथमे त्रिपुण्ड्र लगाये व सोहतीहुई रुद्राक्ष मालावाले ॥ ७ ॥ व विभूतिको धारे व भक्तिसे रुद्रसूक्त जपको प्यार करनेवारे व लिंगकी पूजामें आसक्त व शिव

शाखाप्रभेदतः ॥ अष्टादशपुराणानिसूतादीन्परिपाठ्यच ॥ ३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणानांरहस्यंयस्त्वचीकरत् ॥ महाभारतसञ्ज्ञञ्चसर्वलोकमनोहरम् ॥ ४ ॥ सर्वपापप्रशमनंसर्वशान्तिकरम्परम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेणब्रह्महत्याविनश्यति ॥ ५ ॥ एकदासमुनिःश्रीमान्पर्यटन्पृथिवीतले ॥ सम्प्राप्तोनैमिषारण्यंयत्रसन्तिमुनीश्वराः ॥ ६ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि शौनकाद्यास्तपोधनाः ॥ त्रिपुण्ड्रकृतमहाभालालसद्रुद्राक्षमालिनः ॥ ७ ॥ विभूतिधारिणोभक्त्यारुद्रसूक्तजपप्रियान् ॥ लिङ्गाराधनसंसक्ताञ्शिवनामकृतादरान् ॥ ८ ॥ एकएवहिविश्वेशोमुक्तिदोनान्यएवहि ॥ इतिब्रुवाणान्सततंपरिनिश्चितमानसान् ॥ ९ ॥ विलोक्यसमुनिर्व्यासस्तान्सर्वान्गिरिशात्मनः ॥ उत्क्षिप्यतर्जनीमुच्चैःप्रोवाचेदंवचःपुनः ॥ १० ॥ परिनिर्मथ्यवाग्जालंसुनिश्चित्यासकृद्बहु ॥ इदमेकंपरिज्ञातंसेव्यःसर्वेश्वरोहरिः ॥ ११ ॥ वेदेरामायणेचैवपुराणेषुच भारते ॥ आदिमध्यावसानेषुहरिरेकोऽत्रनापरः ॥ १२ ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंत्रिसत्यंनमृषापुनः ॥ नवेदादपरंशास्त्रंनदे

नामके आदरकर्त्ता ॥ ८ ॥ व एक विश्वेश्वरही मुक्तिदाताहैं अन्य नहीं है यह निश्चयहै ऐसा कहतेहुये और निरन्तर सब ओरसे निश्चित मनवाले हैं ॥ ९ ॥ व शिवजी में चित्त लगाये हैं उन सबोंको देखकर उन श्रीवेदव्यासमुनिने तर्जनी अंगुली को उठाकर इस वचनको बार बार उच्चस्वर से कहा ॥ १० ॥ कि वचनसमूहको सब ओरसे मथकर व बार बार बहुतही अच्छा निश्चय कर यह एक अधिकतासे जानागया है कि सबके ईश्वर विष्णुजी सेवने योग्यहैं ॥ ११ ॥ वेद व रामायण व पुराण और भारत मे भी आदि मध्य और अन्तमें सर्वत्र हरिही एकहैं यहां अन्य नहींहै ॥ १२ ॥ व सत्यहै सत्यहै फिर सत्यहै फिर तीनबार सत्य मृषा (असत्य) नहींहै कि वेदसे

अधिक अपर शास्त्र नहीं है और विष्णुसे परे (श्रेष्ठ) देव नहीं है ॥ १३ ॥ क्योंकि लक्ष्मी के पतिही सब फलों के दाताहैं व लक्ष्मीके पतिही मोक्षके भी दाताहैं उससे एक लक्ष्मीपतिही ध्याने योग्यहैं अन्य कोई नहीं है ॥ १४ ॥ इस लोकमें भोगका और अन्यत्र परलोक में मोक्षका दाता जनार्दन से अन्य कोई नही है उसलिये सुख चाहियों से चतुर्भुज भगवान् नित्यही सेवनीय हैं ॥ १५ ॥ जे थोडी बुद्धिवाले लोग विष्णुजी को छोड़कर अन्य देवको सेवते हैं वे गम्भीर संसार चक्रमें बार बार पैठते हैं ॥ १६ ॥ व एक हृषीकेश याने इन्द्रियों के स्वामी विष्णुजीही सबोके ईश्वर और परसे परहैं उनको निरन्तर सेवताहुआ जन तीनों लोकोका सेव्य होवेहै ॥ १७ ॥ य

वोच्युततःपरः ॥ १३ ॥ लक्ष्मीशःसर्वदोनान्योलक्ष्मीशोप्यपवर्गदः ॥ एकएवहिलक्ष्मीशस्ततोध्येयोनचापरः॥१४॥ भुक्तेर्मुक्तेरिहान्यत्रनान्योदाताजनार्दनात् ॥ तस्माच्चतुर्भुजोनित्यंसेवनीयःसुखेप्सुभिः ॥ १५ ॥ विहायकेशवादन्यं येभजन्तेल्पमेधसः ॥ संसारचक्रेगहनेतेविशन्तिपुनःपुनः ॥ १६ ॥ एकएवहिसर्वेशोहृषीकेशःपरात्परः ॥ तंसेवमानः सततंसेव्यस्त्रिजगतांभवेत् ॥ १७ ॥ एकोधर्मप्रदोविष्णुस्त्वेकोबह्वर्थदोहरिः ॥ एकःकामप्रदश्चक्रीत्वेकोमोक्षप्रदोच्युतः ॥ १८ ॥ शार्ङ्गिणंयेपरित्यज्यदेवमन्यमुपासते ॥ तेसद्भिश्चबहिष्कार्यावेदहीनायथाद्विजाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यं व्यासस्यनैमिषारण्यवासिनः ॥ प्रवेपमानहृदयाःपरिप्रोचुरिदंवचः ॥ २० ॥ ऋषयऊचुः ॥ पाराशर्यमुनेमान्यस्त्वमस्माकंमहामते ॥ यतोवेदास्त्वयाव्यस्ताःपुराणान्यपिवेत्सियत् ॥ २१ ॥ यतश्चकर्तात्वमसिमहतोभारतस्यवै ॥

एक विष्णुही धर्म के दाता है एक हरिही बहुते अर्थों के दाताहैं एक चक्रधारीही कामों के दाता हैं और एक अच्युतही मोक्षके दाता हैं ॥ १८ ॥ व जे कोई जन शार्ङ्गधन्वाधारी को परित्याग कर अन्य देवकी उपासना करते हैं वे वेदहीन ब्राह्मणो की नाई सज्जनो से बाहर करने योग्य हैं ॥ १९ ॥ ऐसे व्यासजी के वाक्य को सुनकर बहुतही कांपतेहुये हृदयवाले नैमिषवनवासियोने सब ओर उच्चस्वर से कहा ॥ २० ॥ ऋषि बोले कि, हे महामते, व्यास, मुने! तुम हमारे मान्यहो जिससे तुमने वेदोंको विस्तार या विभाग कियाहै व जिससे तुम पुराणोंको भी जानतेहो ॥ २१ ॥ व जिससे तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके निर्णयकारक महाभारतके भी कर्त्ताहो

यह निश्चयहै ॥ २२ ॥ हे सत्यवती के पुत्र ! यहां तुमसे अन्य कौन तत्त्वज्ञहै और आपने तर्जनी अंगुलीको उठाकर व निश्चयकर जो प्रतिज्ञाकिया ॥ २३ ॥ उसमें यहां बालकलोग सब ओरसे श्रद्धा नहीं करते हैं व तुम्हारे प्रतिज्ञात वचनकी तब श्रद्धा होवे ॥२४॥ जब आनन्दवनमें शंकरके वचनको सामने से जानतेहो याने जानोगे ॥ २५ ॥ हे व्यासजी ! तुम काशीको जाओ जहां आपही विश्वनाथजी हैं वहां युगोंका धर्म नहीं है याने युगके धर्मसे तुम ऐसा कहतेहो काशीमें जानेसे न कहोगे और जहां भूमि संलग्न नहींहै अर्थात् वह काशी शिवजीके त्रिशूलपर टिकीहै ॥ २६ ॥ ऐसा सुनकर मनमें कुछेक कुपितकी नाईं श्रीव्यासमुनि दशहजार संख्यक अपने शिष्यों के

धर्मार्थकाममोक्षाणांविनिश्चयकृतोध्रुवम् ॥ २२ ॥ तत्त्वज्ञःकोपरश्चात्रत्वत्तःसत्यवतीसुत ॥ भवतायत्प्रतिज्ञातंनिश्चित्योत्क्षिप्यतर्जनीम् ॥ २३ ॥ अस्मिन्माणवकास्तत्रपरिश्रद्दधतेनहि ॥ प्रतिज्ञातस्यवचसस्तवश्रद्धाभवेत्तदा ॥ २४ ॥ यदाऽऽनन्दवनेशम्भोःप्रतिजानासिवैवचः ॥ २५ ॥ गच्छवाराणसींव्यासयत्रविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ नतत्रयुगधर्मोऽस्तिनचलग्नावसुन्धरा ॥ २६ ॥ इतिश्रुत्वामुनिर्व्यासःकिञ्चित्कुपितवद्धृदि ॥ जगामतूर्णंसहितःस्वशिष्यैरयुतोन्मितैः ॥ २७ ॥ प्राप्यवाराणसींव्यासःस्नात्वापञ्चनदेह्रदे ॥ श्रीमन्माधवमभ्यर्च्यययौपादोदकन्ततः ॥ २८ ॥ तत्रस्नानादिकंकृत्वादृष्ट्वाचैवादिकेशवम् ॥ पञ्चरात्रन्ततःकृत्वावैष्णवैरभिनन्दितः ॥ २९ ॥ अग्रतःपृष्ठतःशङ्खैर्वाद्यमानैःप्रमोदितः ॥ जयविष्णोहृषीकेशगोविन्दमधुसूदन ॥ ३० ॥ अच्युतानन्तवैकुण्ठमाधवोपेन्द्रकेशव ॥ त्रिविक्रमगदापाणेशार्ङ्गपाणेजनार्दन ॥ ३१ ॥ श्रीवत्सवक्षःश्रीकान्तपीताम्बरमुरान्तक ॥ कैटभारेबलिध्वंसिन्कंसारेकेशिसूदन ॥ ३२ ॥ नारा

साथचले ॥ २७ ॥ तदनन्तर श्रीव्यासजी काशीपुरीको प्राप्तहोकर पंचनदकुण्डमें स्नानकर व श्रीयुत बिन्दुमाधवजीको सामनेसे पूजकर पादोदक तीर्थकोगये ॥२८॥ वहां स्नानादिककोकर व आदिकेशवको भी देखकर तदनन्तर पंचरात्रकोकर याने पांच दिनतक विष्णु सम्बन्धी तीर्थोंकी सेवाकर अथवा पंचरात्रके विधानसे माधव केशवादिकोंकी पूजाकर वैष्णवजनों से सब ओर वर्धित या प्रशंसितहुए ॥ २९ ॥ व आगे और पीछे बजाये जातेहुए शंखोंसे आनन्दित कियेगये और हे विष्णो ! तुम जयकरो व हे हृषीकेश, गोविन्द, मधुसूदन, ॥ ३० ॥ अच्युत, अनन्त, वैकुण्ठ, माधव, उपेन्द्र, केशव, त्रिविक्रम, गदापाणे, शार्ङ्गपाणे, जनार्दन ॥ ३१ ॥ श्रीवत्सवक्षः, श्रीकान्त, पीता-

स्वर, मुरान्तक, कैटभारे, बलिध्वंसिन्, कंसारे, केशिसूदन ॥ ३२ ॥ नारायण, असुररिपो, कृष्ण, शौरे, चतुर्भुज, देवकीहृदयानन्द, यशोदानन्दवर्धन ॥ ३३ ॥ पुण्डरीकाक्ष, दैत्यारे, दामोदर, बलप्रिय, बलारातिस्तुत, हरे, वासुदेव, वसुप्रद ॥ ३४ ॥ विष्वक्चमू (विष्वक्सेन) तार्क्ष्यरथ, वनमालिन्, नरोत्तम, अधोक्षज, क्षमाधार, पद्मनाभ, जलेशय ॥ ३५ ॥ नृसिंह, यज्ञ, वाराह, गोप, गोपालवल्लभ, गोपीपते, गुणातीत, गरुड़ध्वज, गोत्रभृत् ॥ ३६ ॥ और हे चाणूरमथन ! तुम जयकरो हे त्रैलोक्यरक्षण ! जयकरो हे अनाद्य ! जयकरो हे आनन्द ! जयकरो हे नीलोत्पलद्युते ! तुम जयकरो ॥ ३७ ॥ और हे कौस्तुभोद्भूषितोरस्क, पूतनाधातुशोषण, जगद्रत्नामणे, नरकहारक ! तुम रक्षा-

यणासुररिपोकृष्णशौरेचतुर्भुज ॥ देवकीहृदयानन्दयशोदानन्दवर्धन ॥ ३३ ॥ पुण्डरीकाक्षदैत्यारेदामोदरबलप्रिय ॥ बलारातिस्तुतहरेवासुदेववसुप्रद ॥ ३४ ॥ विष्वक्चमूस्तार्क्ष्यरथवनमालिन्नरोत्तम॥ अधोक्षजक्षमाधारपद्मनाभजलेशय ॥३५॥ नृसिंहयज्ञवाराहगोपगोपालवल्लभ ॥ गोपीपतेगुणातीतगरुडध्वजगोत्रभृत्॥ ३६ ॥जयचाणूरमथनजय त्रैलोक्यरक्षण ॥ जयानाद्यजयानन्दजयनीलोत्पलद्युते ॥ ३७॥ कौस्तुभोद्भूषितोरस्कपूतनाधातुशोषण ॥ रक्षरक्षजगद्रत्नामणेनरकहारक ॥ ३८ ॥ सहस्रशीर्षपुरुषपुरुहूतसुखप्रद ॥ यद्भूतंयच्चभाव्यंवैतत्रैकःपुरुषोभवान् ॥ ३९ ॥ इत्यादि नाममालाभिःसंस्तुवन्वनमालिनम् ॥स्वच्छन्दलीलयागायन्नृत्यंश्चपरयामुदा॥ ४० ॥ व्यासोविश्वेशभवनंसमायातः सहृष्टवत्॥ ज्ञानवापीपुरोभागेमहाभागवतैःसह॥ ४१॥ विराजमानसत्कण्ठस्तुलसीवरदामभिः॥स्वयंतालधरोजातः स्वयंजातःसुनर्तकः॥ ४२ ॥वेणुवादनतत्त्वज्ञःस्वयंश्रुतिधरोभवत् ॥ नृत्यंपरिसमाप्येत्थंव्यासःसत्यवतीसुतः ॥ ४३ ॥

करो रक्षाकरो ॥ ३८॥ व हे सहस्रशीर्ष, पुरुष पुरुहूत, सुखप्रद, या इन्द्र सुखदायक ! जो होगया व होताहै और होनेवालाहै उसमें आपही एक निश्चित पुरुषहो ॥ ३९ ॥ इत्यादि नाम मालाओंसे बनमालाधारी विष्णुजीकी भलीभांति स्तुति करते व अपने अधीन लीलासे गावते और अतिशय उत्तम आनन्द से नाचतेहुए॥ ४०॥ वह व्यासजी बहुत आनन्दितकी नाईं श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें भलीभाति आये जोकि ज्ञान वापीके अग्रभागमें भारी भगवद्भक्तों के साथ ॥ ४१ ॥ तुलसीकी श्रेष्ठ मालाओं से विराजतेहुये अच्छे कण्ठवाले हैं वह आपही तालधारीहुये व आपही अच्छे नर्तकहुये ॥ ४२ ॥ और बेणु बजानेका स्वरूप जानतेहुये सत्यवती के पुत्र श्रीव्यासजी

आपही श्रुतिधर होगये इसभांति नृत्यको सब ओरसे समाप्तकर ॥ ४३ ॥ फिर शिष्यों के मध्यगत होकर दक्षिणभुजाको ऊपरकर उनहीं श्लोकोंको ऊंचेस्वरसे गातेसे फिर पढ़नेलगे ॥ ४४ ॥ कि वचनसमूहको सब ओरसे मथकर व बार बार बहुत अच्छा निश्चयकर यह एक परिज्ञात हुआहै कि सबोंके ईश्वर हरि (विष्णुजी) सेवने योग्य हैं ॥ ४५ ॥ दहिनी बांहको उठाकर वह श्रीव्यासजी इत्यादि अपनी प्रतिज्ञाके बहुत बोध करनेवाले श्लोकसमूहको जबतक पढ़ते हैं ॥ ४६ ॥ तबतक नन्दीश्वरने अपनी लीलासे उनकी या उस बांहको स्तम्भन करदिया और हे सन्मुने अगस्त्यजी ! उन व्यासमुनिकी वाणीका भी स्तम्भन होगया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर गुप्त जैसेहो वैसे भली-

पुनरूर्ध्वंभुजंकृत्वादक्षिणंशिष्यमध्यगः ॥ पुनःपपाठतानेवश्लोकान्गायन्निवोच्चकैः ॥ ४४ ॥ परिनिर्मथ्यवाग्जालंसुनिश्चित्यासकृद्बहु ॥ इदमेकंपरिज्ञातंसेव्यःसर्वेश्वरोहरिः ॥ ४५ ॥ इत्यादिश्लोकसङ्घातंस्वप्रतिज्ञाप्रबोधकम् ॥ यावत्पठतिसव्यासःसव्यमुत्क्षिप्यवैभुजम् ॥ ४६ ॥ तस्तम्भतावत्तद्बाहुंसशैलादिःस्वलीलया ॥ वाक्स्तम्भश्चापितस्यासीन्मुनेर्व्यासस्यसन्मुने ॥ ४७ ॥ ततोगुप्तंसमागम्यविष्णुर्व्यासमभाषत ॥ अपराद्धंमहच्चात्रभवताव्यासनिश्चितम् ॥ ४८ ॥ तवैतदपराधेनभीतिर्मेपिमहत्तरा ॥ एकएवहिविश्वेशोद्वितीयोनास्तिकश्चन ॥ ४९ ॥ तत्प्रसादादहञ्चक्रीलक्ष्मीशस्तत्प्रभावतः ॥ त्रैलोक्यरक्षासामर्थ्यंदत्तन्तेनैवशम्भुना ॥ ५० ॥ तद्भक्त्यापरमैश्वर्यंमयालब्धंवरात्ततः ॥ इदानींस्तुहितंशम्भुंयदिमेशुभमिच्छसि ॥ ५१ ॥ अन्यदापिनवैकार्याभवताशेमुषीदृशी ॥ पाराशर्यइतिश्रुत्वासञ्ज्ञयाव्याजहारह ॥ ५२ ॥ भुजस्तम्भःकृतस्तेननन्दिनादृष्टिमात्रतः ॥ वाक्स्तम्भस्तद्भयाज्जातःस्पृशमेकण्ठकन्दलीम् ॥ ५३ ॥

भांति आकर विष्णुजीने श्रीव्यासजी से कहा कि हे व्यास ! आपने यहां निश्चित बड़ा अपराधकिया ॥ ४८ ॥ और तुम्हारे इस अपराधसे मुझको भी बहुत भारी डरहै क्योंकि एक विश्वनाथही मुख्यहैं दूसरा कोई नहींहै ॥ ४९ ॥ मैं उनके प्रसाद से चक्रवालाहूं व उनके प्रभावसे लक्ष्मीका पतिहूं और उन शंकरजीनेही मुझको त्रिलोक रक्षाकी शक्ति दियाहै ॥ ५० ॥ व मैंने उनकी भक्तिसे उन श्रेष्ठसे परम अधिक ऐश्वर्य्यको पायाहै इस समय जो तुम मेरे मंगलको चाहतेहो तो उन शम्भुकी स्तुतिकरो ॥ ५१ ॥ और अन्य कालमें भी आपको ऐसी बुद्धिही न करना चाहिये ऐसा सुनकर पराशरके पुत्र श्रीव्यासजीने सञ्ज्ञासे कहा ॥ ५२ ॥ कि उन नन्दीश्वरने दृष्टिमात्रसे मेरी बाहु

का स्तम्भन कियाहै व उनके डरसे वचनका भी रुकना होगयाहै इससे आप मेरे कण्ठमूलको छुवो ॥ ५३ ॥ कि जैसे मैं संसारनाशक पार्वतीपतिकी स्तुति करनेको समर्थ होताहूं तब विष्णुजी उनके कण्ठको भलीभांति स्पर्शकर हर्षसे गुप्तही चलेगये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उसप्रकार से स्तम्भित (रोंकीहुई) भुज लतावाले उदारबुद्धि सत्यवती के पुत्र श्रीव्यासजीने महेशजीकी सब ओरसे स्तुति करनेको प्रारम्भकिया ॥ ५५ ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि दुःखके भगानेवाले रुद्र शिवजी एकहैं दूसरा नहींहै जिससे वह ब्रह्म एकही है यहां अनेकप्रकारका कुछ नहींहै और जो कुछ भी किसी काल मे व किसी देशमें भी है उसको अन्य कोई भी कि जिसकी शक्तिहै वह मेरे आगे विशे-

यथास्तोतुम्भवानीशंप्रभवामिभवान्तकम् ॥ संस्पृश्यविष्णुस्तत्कण्ठंगुप्तमेवजगामह ॥ ५४ ॥ ततःसत्यवतीसूनुस्तथास्तम्भितदोर्लतः ॥ प्रारब्धवान्महेशानंपरिष्टोतुमुदारधीः ॥ ५५ ॥ व्यासउवाच ॥ एकोरुद्रोनद्वितीयोयतस्तद्ब्रह्मैवैकंनेहनानास्तिकिञ्चित् ॥ यद्यप्यन्यःकोपिवाकुत्रचिद्वाव्याचष्टान्तद्यस्यशक्तिर्मदग्रे ॥ ५६ ॥ यःक्षीराब्धेर्मन्दराघातजातोज्वालामालीकालकूटोतिभीमः ॥ तंसोढुंवाकोपरोऽभून्महेशाद्यत्कीलाभिःकृष्णतामापविष्णुः ॥ ५७ ॥ यद्बाणोभूच्छ्रीपतिर्यस्ययन्तालोकेशोयत्स्यन्दनम्भूःसमस्ता ॥ वाहावेदायस्ययेनेषुपाताद्दग्धाग्रामास्त्रैपुरास्तत्समःकः ॥५८॥ यंकन्दर्पोवीक्षमाणःसमानंदेवैरन्यैर्भस्मजातःस्वयंहि ॥ पौष्पैर्बाणैःसर्वविश्वैकजेताकोवास्तुत्यःकामजेतुस्ततोन्यः ॥ ५९ ॥ यंवैवेदोवेदनोनैवविष्णुर्नोवावेधानोमनोनैववाणी ॥ तंदेवेशंमादृशःकोल्पमेधा याथात्म्याद्वैवेत्त्यहोविश्वनाथ

षतासे आकर कहे ॥ ५६ ॥ जोकि क्षीरसागरमें मन्दराचलके मथने से उपजा हुआ ज्वाला मालावाला व अत्यन्त भयानक विषहै कि जिसकी झारों से विष्णुजी श्यामता को प्राप्त होगये उसको सहने के लिये महेशजी से अपर (दूसरा) कौनहै ॥ ५७ ॥ लक्ष्मी के पति विष्णुजी जिनका बाण हुयेहैं व ब्रह्माजी जिनके सारथी हैं व सब भूमि जिनका रथहै व वेद जिनके घोडेहैं और जिन्होंने बाणपातसे त्रिपुर सम्बन्धी ग्रामों को जलायाहै उन शिवजीके समान कौनहै ॥ ५८ ॥ व फूलों के बाणों से सब लोकों का एक जीतनेवाला काम जिनको अन्य देवों के समान देखताहुआ आपही भस्म होगया उन काम जेता शंकरजी से अन्य कौन स्तुतिके योग्यहै ॥ ५९ ॥ जिन विश्व-

नाथजीको वेद नहीं विष्णु भी नहीं व ब्रह्मा नहीं मन नहीं व वाणी भी नहीं जानतीहै उन देवेशको मेरे समान थोड़ी बुद्धिवाला कौनजन यथा स्वरूपता से निश्चय कर जानताहै यह आश्चर्य्य है ॥ ६० ॥ जिसमें सब जगत्है व जो सबमें हैं व जो सबहैं व जो जगत्के कर्त्ता प्रसिद्ध हैं व जो रक्षक हैं व जो विनाशक है व जिनका आदि नहींहै व जो एक होकर सबके आदिहैं व जिनका अन्त नहीं है और जो अन्त कर्त्ताहैं उनके प्रति मैं नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ६१ ॥ जिनका एक नाम अश्वमेध यज्ञके तुल्य है जिनके एक प्रणामसे इन्द्रकी लक्ष्मी थोड़ी है जिनकी स्तुति से सत्यलोक मिलता है और जिनकी पूजासे मुक्ति सम्पत्ति समीप गतहै उन शम्भुके समान

म् ॥ ६० ॥ यस्मिन्सर्वंयस्तुसर्वत्रसर्वोयोवैकर्तायोऽवितायोऽपहर्ता ॥ नोयस्यादिर्यःसमस्तादिरेकोनोयस्यान्तोयोन्तकृत्तंनतोस्मि ॥ ६१ ॥ यस्यैकाख्यावाजिमेधेनतुल्यायस्यानत्याचैकयाल्पेन्द्रलक्ष्मीः ॥ यस्यस्तुत्यालभ्यतेसत्यलोकोयस्यार्चातोमोक्षलक्ष्मीरदूरा ॥ ६२ ॥ नान्यन्देवंवेद्म्यहंश्रीमहेशान्नान्यंदेवंस्तौमिशम्भोर्ऋतेऽहम् ॥ नान्यन्देवंवानमामित्रिनेत्रात्सत्यंसत्यंसत्यमेतन्मृषान ॥ ६३ ॥ इत्थंयावत्स्तौतिशम्भुंमहर्षिस्तावन्नन्दीशम्भवादृक्प्रसादात् ॥ तद्दोःस्तम्भन्त्यक्तवांश्चावभाषेस्मायंस्मायंब्राह्मणेभ्योनमोवः ॥ ६४ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ इदंस्तवम्महापुण्यंव्यासतेपरिकीर्तितम् ॥ यःपठिष्यतिमेधावीतस्यतुष्यतिशङ्करः ॥ ६५ ॥ व्यासाष्टकमिदम्प्रातःपठितव्यंप्रयत्नतः ॥ दुःस्वप्नपापशमनंशिवसान्निध्यकारकम् ॥ ६६ ॥ मातृहापितृहावापिगोघ्नोबालघ्नएववा ॥सुरापीस्वर्णहृद्वापिनिष्पापोस्याःस्तुते

कौनहै ॥ ६२ मैं महेशजी से अन्य देवको नहीं जानताहूं व मैं शंकरजीके बिना अन्यदेवको नहीं प्रशंसताहू व मैं त्रिनेत्र से अन्य देवके नहीं नमस्कार करताहूं यह सत्यहै सत्य है सत्य है मृषा (झूंठ) नहीं है ॥ ६३ ॥ इसप्रकार जबतक महर्षि वेदव्यासजी शंकरजीकी स्तुति करते हैं तबतक नन्दीश्वरने शिवजीकी दृष्टिकी प्रसन्नता से उनकी बांहके स्तम्भको त्यागदिया और कुछेक हँस हँसकर कहा कि तुम ब्राह्मणों के लिये नमस्कारहो ॥ ६४ ॥ श्रीनन्दीश्वरजी बोले कि, हे श्रीव्यासजी ! तुम्हारे कहेहुये इस महामनोहर, या, परम पुण्यदायक स्तोत्रको जो बुद्धिमान् पढ़ेगा उससे शिवजी सन्तुष्ट होवेंगे ॥ ६५ ॥ दुष्ट स्वप्न और पापोंका नाशक व शिव सामीप्यकारक यह व्यासाष्टक प्रातःकाल प्रयत्नसे पढ़ने योग्यहै ॥ ६६ ॥ माताके मारनेवाला व पिताके मारनेवाला भी व गोघाती व बालघाती भी व मद्य पीनेवाला और सुवर्णका चोर भी

इस स्तुतिके जपसे पापों से हीन होवेहै ॥ ६७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, तबसे लगाकर व्यासजी शंकरजीकी भक्तिमें परायणहुये व घण्टा कर्णकुण्डके आगे व्यासे श्वरलिंगका स्थापनकर ॥ ६८ ॥ नित्यही विभूति भूषण नित्यही रुद्राक्ष भूषण नित्यही रुद्रसूक्तों के पढ़ने में तत्पर और नित्यही शिवलिंगों के पूजक होगये ॥ ६९ ॥ व मुक्तिपददायक क्षेत्रके स्वरूपको विशेषता से जानकर वह व्यासजी क्षेत्रसंन्यास को कर आज भी काशीको नहीं छोड़े हैं ॥ ७० ॥ व घण्टाकर्णकुण्ड में स्नानकर व व्यासेश्वरको देखकर जहीं कहीं मरा भी मनुष्य काशीमें मराहुआ होवे है ॥ ७१ ॥ और मनुष्य काशीमें व्यासेश्वर लिंगको पूजकर ज्ञानसे नहीं भ्रष्ट होताहै व पापों से

जपात् ॥ ६७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ पाराशर्यस्तदारभ्यशम्भुभक्तिपरोभवत् ॥ लिङ्गंव्यासेश्वरंस्थाप्यघण्टाकर्णह्रदाग्रतः ॥ ६८ ॥ विभूतिभूषणोनित्यंनित्यंरुद्राक्षभूषणः ॥ रुद्रसूक्तपरोनित्यंनित्यंलिङ्गार्चकोभवत् ॥ ६९ ॥ सकृत्वाक्षेत्रसंन्यासंत्यजेन्नाद्यापिकाशिकाम् ॥ तत्त्वंक्षेत्रस्यविज्ञायनिर्वाणपददायिनः ॥ ७० ॥ घण्टाकर्णह्रदेस्नात्वादृष्ट्वाव्यासेश्वरंनरः ॥ यत्रकुत्रमृतोवापिवाराणस्यांमृतोभवेत् ॥ ७१ ॥ काश्यांव्यासेश्वरंलिङ्गंपूजयित्वानरोत्तमः ॥ नज्ञानाद्भ्रश्यतेक्वापिपातकैर्नाभिभूयते ॥ ७२ ॥ व्यासेश्वरस्ययेभक्तानतेषांकलिकालतः ॥ नपापतोभयंक्वापि नचक्षेत्रोपसर्गतः ॥ ७३ ॥ व्यासेश्वरःप्रयत्नेनद्रष्टव्यःकाशिवासिभिः ॥ घण्टाकर्णकृतस्नानैःक्षेत्रपातकभीरुभिः ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेव्यासभुजस्तम्भोनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ कृष्णद्वैपायनःस्कन्दशम्भुभक्तिपरोयदि ॥ यदिक्षेत्ररहस्यज्ञःक्षेत्रसंन्यासकृद्यदि ॥ १ ॥ तथा

पीडित नहीं होताहै ॥ ७२ ॥ जेकि व्यामेश्वरके भक्तहैं उनको कलिकाल से नहीं पापसे नहीं और क्षेत्रके उपद्रवों से कहीं भी नहीं डरहै ॥ ७३ ॥ क्षेत्रके पापो से डरभुत व घण्टाकर्णकुण्ड मे स्नान कियेहुये काशीवासी जनों से बहुत यत्नके साथ व्यासेश्वर देखने योग्य हैं ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेव्यासबाहुस्तम्भोनामपञ्चनवतितमोध्यायः ॥ ९५ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । छानब्बे अध्यायमें व्यास शापकी मुक्ति । कृच्छ्रादिक लक्षण कथित व्यास निकासनयुक्ति ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी ! कृष्णद्वैपायन याने वेद

व्यासजी जो शम्भुकी भक्तिमें तत्पर व जो क्षेत्र रहस्यके पण्डित व जो क्षेत्र संन्यासकर्त्ता ॥१॥ तथा जो प्रभावको देखेहुये और वैसेही ज्ञानियों में श्रेष्ठहैं तो बड़ी उत्तम काशीपुरी को क्यों प्रसिद्ध शाप देवेंगे ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! तुमने यह सत्यही पूंछाहै और तुम्हारे पूंछतेही मैं उन व्यासजी के भविष्य चरित्र को कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि जब से लगाकर श्रीनन्दीश्वरजी ने उन मुनि की बांहका स्तम्भन करादिया तब से लगाकर अतिशय आदरसमेत वह महेशजी की भलीभांति स्तुतिकरते हैं ॥ ४ ॥ कि काशी में अनेकों तीर्थ हैं व काशी में अनेकसे लिंगहैं तोभी मणिकर्णिका में नहाना चाहिये और श्रीविश्वनाथजी सेवने योग्यहैं ॥ ५ ॥

दृष्टप्रभावश्चेत्तथाचेज्ज्ञानिनांवरः ॥ पुरींवाराणसींश्रेष्ठांकथंकिलशापिष्यति ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ सत्यमेतत्त्वयापृष्टंच्छि कथयामिमुनेश्रृणु ॥ तस्यव्यासस्यचरितंभविष्यन्त्वयिपृच्छति ॥ ३ ॥ यदारभ्यमुनेस्तस्यनन्दीस्तम्भितवान्भुजम् ॥ तदारभ्यमहेशानंसंस्तौतिपरमादृतः ॥ ४ ॥ काश्यान्तीर्थान्यनेकानिकाश्यांलिङ्गान्यनेकशः ॥ तथापिसेव्योविश्वे शःस्नातव्यामणिकर्णिका ॥ ५ ॥ लिङ्गेष्वेकोहिविश्वेशस्तीर्थेषुमणिकर्णिका ॥ इतिसंव्याहरन्व्यासस्तद्द्वयम्बहुमन्य ते ॥ ६ ॥ त्यक्त्वासबहुवाग्जालंप्रातःस्नात्वादिनेदिने ॥ निर्वाणमण्डपेवक्तिमहिमानंमहेशितुः ॥ ७ ॥ शिष्याणाम्पुरतो नित्यंक्षेत्रस्यमहिमामहान् ॥ व्याख्यायतेमुदातेनव्यासेनपरमर्षिणा ॥ ८ ॥ अत्रयत्क्रियतेक्षेत्रेशुभंवाऽशुभमेववा ॥ संवर्तेपिनतस्यान्तस्तस्माच्छ्रेयःसमाचरेत् ॥ ९ ॥ क्षेत्रसिद्धिंसमीहन्तेयेचात्रकृतिनोजनाः ॥ यावज्जीवंनतैस्त्याज्या

लिंगों में से एक विश्वनाथही मुख्यहैं व तीर्थों में मणिकर्णिका मुख्यहै ऐसा भलीभांति कहतेहुये व्यासजी उन दोनोंको बहुत मानतेहैं ॥ ६ ॥ और वह दिनदिनमें प्रातःकाल स्नानकर बहुते वचन समूहको त्यागकर मुक्ति मण्डपमें महेशकी महिमाको कहते हैं ॥ ७ ॥ व उन महर्षि व्यासजीसे शिष्यो के आगे नित्यही क्षेत्रकी बड़ी भारी महिमा आनन्दसे व्याख्यान की जाती है ॥ ८ ॥ कि इस क्षेत्रमें जो शुभ व अशुभ भी कर्म याने पुण्य और पाप कियाजाताहै उसका प्रलयमें भी नहीं अन्तहै उस कारण पुण्य कर्मकोही भलीभांति सब ओरसे करे ॥ ९ ॥ जे पुण्यवान् जन यहां क्षेत्रकी सिद्धिको चाहते हैं उन सुबुद्धिमानोंको जीवन पर्य्यन्त मणिकर्णिका न त्यागना चा-

हिये ॥ १० ॥ व प्रतिदिन चक्रपुष्करिणी तीर्थ में नहाना चाहिये व फूल फल पत्र और जलसे सदैव विश्वनाथकी पूजाकरना चाहिये ॥ ११ ॥ कुछेक थोड़ाभी अपने वर्ण व आश्रमका धर्म त्यागने योग्य नहीं है और प्रतिदिन बारबार श्रद्धासे क्षेत्रकीमहिमा सुनने योग्यहै ॥ १२ ॥ व यहां विघ्नोंको सब ओरसे निवारने चाहतेहुये जन करके यथाशक्ति सुगुप्तसे दानदेने योग्य हैं और अन्न भी देनेयोग्यहैं ॥ १३ ॥ व यहांसुबुद्धिमान् को सदा परोपकार करना चाहिये और पर्वोंमें विशेषसे स्नान व दानादि क्रियायें करना चाहिये ॥ १४ ॥ व बड़े उत्सवपूर्वक विशेष पूजा करना चाहिये तथा अधिक यात्रा करना चाहिये व क्षेत्रदेवताओं की भलीभांति पूजा करना चा-

सुधीभिर्मणिकर्णिका ॥ १० ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थेस्नातव्यंप्रतिवासरम् ॥ पुष्पैःपत्रैःफलैस्तोयैरर्च्योविश्वेश्वरःसदा ॥ ११ ॥ स्ववर्णाश्रमधर्मश्चत्यक्तव्योनमनागपि ॥ प्रत्यहंक्षेत्रमहिमाश्रोतव्यःश्रद्धयासकृत् ॥ १२ ॥ यथाशक्तिचदेयानि दानान्यत्रसुगुप्तवत् ॥ अन्नान्यपिचदेयानिविघ्नान्परिजिहीर्षुणा ॥ १३ ॥ परोपकरणञ्चात्रकर्तव्यंसुधियासदा ॥ पर्वस्व पिविशेषेणस्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ १४ ॥ विशेषपूजाकर्तव्यासुमहोत्सवपूर्वकम् ॥ कार्यास्तथाधिकायात्राःसमर्च्याः क्षेत्रदेवताः ॥ १५ ॥ अत्रमर्मनवक्तव्यंसुधियाकस्यचित्कचित् ॥ परदारपरद्रव्यपरापकरणन्त्यजेत् ॥ १६ ॥ परापवा दोनोवाच्यःपरेर्ष्यांनचकारयेत् ॥ असत्यंनैववक्तव्यम्प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ १७ ॥ अत्रत्यजन्तुरक्षार्थमसत्यमपिभा षयेत् ॥ येनकेनप्रकारेणशुभेनाप्यशुभेनवा ॥ १८ ॥ अत्रत्यःप्राणिमात्रोपिरक्षणीयःप्रयत्नतः ॥ एकस्मिन्रक्षितेजन्ता वत्रकाश्यांप्रयत्नतः ॥ त्रैलोक्यरक्षणात्पुण्यंयत्स्यात्तत्स्यान्नसंशयः ॥ १९ ॥ येवसन्तिसदाकाश्यांक्षेत्रसंन्यासकारि

हिये ॥ १५ ॥ व यहां सुबुद्धिमान्को किसीका मर्म वचन कहीं नहीं कहना चाहिये व परस्त्री परधन और पराये अपकारको त्यागकरे ॥ १६ ॥ व पराया अपवाद वतलाने योग्य नहीं है और पराई ईर्ष्या याने अन्यकी उन्नति के न सहने को न करे या करावे व कण्ठगत प्राणों से भी असत्य बोलने योग्य नहीं है ॥ १७ ॥ व शुभ अथवा अ- शुभ भी जिसी किसी प्रकार से यहां के जन्तुओंकी रक्षाके लिये असत्यभी बोले या बुलावे ॥ १८ ॥ और यहां उपजाहुआ प्राणीमात्र बड़े यत्न से रक्षाकरने योग्य है क्योंकि इस काशी में प्रयत्नसे एक जन्तुके रक्षित होतेही वह पुण्य होवे है जो कि त्रिलोककी रक्षासे होवेहै इसमें संशय नहीं है ॥ १९ ॥ जे क्षेत्र संन्यासकारी लोग

काशी में सदा बसते हैं वे रुद्र मानने योग्यहैं और जीवन्मुक्तहैं संशय नहींहै ॥ २० ॥ वे पूजने योग्यहैं वे नमस्कार करने योग्यहैं और वे बड़े यत्नसे सन्तुष्ट करने योग्य हैं क्योंकि उनके परितुष्ट होतेही विश्वेश्वरजी आपही निश्चयसे सन्तुष्ट होवे हैं ॥ २१ ॥ व जे मनुष्य काशीमें बसते हैं उनके योगका कल्याण विश्वेश्वरके आनन्दके लिये दूरस्थ भी सज्जनों से करने योग्यहै ॥ २२ ॥ व यहांके निवासियों को इन्द्रियों का पसरना या बिचरना निवारना चाहिये और यहां मनकी चंचलता भी बड़े यत्नसे बराना चाहिये ॥ २३ ॥ व मरणकीही सब ओरसे आकांक्षा न करे फिर मोक्ष भी नहीं चाहने योग्यहै और सुबुद्धिमान्को देह सुखानेका उपाय नहीं करना चाहिये ॥२४॥

णः ॥ तएवरुद्रामन्तव्याजीवन्मुक्तानसंशयः ॥ २० ॥ तेपूज्यास्तेनमस्कार्यास्तेसन्तोष्याःप्रयत्नतः ॥ तेषुवैपरितुष्टेषु तुष्येद्विश्वेश्वरःस्वयम् ॥ २१ ॥ काश्यांवसन्तियेमर्त्यादूरस्थैरपिसन्नरैः ॥ योगक्षेमोविधातव्यस्तेषांविश्वेशितुर्मुदे ॥ २२ ॥ प्रसरस्त्विन्द्रियाणाञ्चनिवार्योत्रनिवासिभिः ॥ मनसोपिहिचाञ्चल्यमिहवार्यम्प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ मरणंनाभिकांक्षेद्धिकांक्ष्योमोक्षोपिनोपुनः ॥ शरीरशोषणोपायःकर्तव्यःसुधियानहि ॥ २४ ॥ शरीरसौष्ठवंकांक्ष्यंव्रतस्नानादिसिद्धये ॥ आयुर्बह्वत्रवैचिन्त्यंमहाफलसमृद्धये ॥ २५ ॥ आत्मरक्षात्रकर्तव्यामहाश्रेयोभिवृद्धये ॥ अत्रात्मत्यजनोपायंमनसापिनचिन्तयेत् ॥ २६ ॥ एकस्मिन्नपियच्चाह्निकाश्यांश्रेयोभिलभ्यते ॥ नतुवर्षशतेनापितदन्यत्राप्यतेक्वचित् ॥ २७ ॥ अन्यत्रयोगाभ्यसनाद्यावज्जन्मयदर्ज्यते ॥ वाराणस्यान्तदेकेनप्राणायामेनलभ्यते ॥ २८ ॥ सर्वतीर्थावगाहाच्चयाव

व्रत व स्नानादिकोंकी सिद्धिके लिये देहकी पटुताकी आकांक्षा करना चाहिये और बड़े फलोंकी समृद्धि के लिये यहां बहुत आयुकी चिन्तना करनाही चाहिये ॥ २५ ॥ व महापुण्यकी सब ओरसे वृद्धिके लिये यहां देहकी रक्षा करना चाहिये व यहां देहत्यागके उपायको मनसे भी न बिचारे याने अनशनादि व्रतोंसे देहत्यागकोकरे आत्मघातसे नहीं ॥ २६ ॥ व एक दिनमें भी जो कल्याण या पुण्य काशीमे मिलताहै वह अन्यत्र कहीं सैकड़ों बर्षोंसे भी नहीं मिलताहै ॥ २७ ॥ जोकि अन्यत्र जन्म पर्य्यन्त योगाभ्याससे बटोराजाताहै वह काशीमें एक प्राणायाम से पायाजाता है ॥ २८ ॥ व जन्म पर्य्यन्त सब तीर्थों में नहाने से जो धर्म कमाया जाताहै वह काशीमें मणिकर्णिका

के एक मज्जन से मिलने योग्यहै ॥ २९ ॥ और जन्म पर्य्यन्त सब लिंगोंकी पूजासे जो फल बटोराजाताहै वह श्रद्धासे एक बार विश्वनाथजीको सामने से पूजकर मिलताहै ॥ ३० ॥ व हजारों जन्मों से जो पुण्य अर्जित है उस पुण्यके बदलने से श्रीविश्वेश्वरका दर्शन होवेहै ॥ ३१ ॥ व अच्छेप्रकार से दियेहुये करोड़ गौओं के महा दानसे जो फलहै वह विश्वेश्वरके दर्शन से भलीभांति प्राप्त होवे है ॥ ३२ ॥ व महर्षियोंने सोलह महा दानों से जो पुण्य कहाहै वह पुण्य विश्वेश्वर में फूल चढ़ाने से होवेहै ॥ ३३ ॥ व जो फल सम्पूर्ण अश्वमेधादि यज्ञों से प्राप्त कियाजाता है वह विश्वेश्वरमें पंचामृतके नहवाने से मिलताहै ॥ ३४ ॥ व भलीभांति पूजेहुए हजारों वाज-

ज्जन्मयदर्ज्यते ॥ तदानन्दवनेप्राप्यंमणिकर्ण्यैकमज्जनात् ॥ २९ ॥ सर्वलिङ्गार्चनात्पुण्यंयावज्जन्मयदर्ज्यते ॥ सकृद्विश्वेशमभ्यर्च्यश्रद्धयातदवाप्यते ॥ ३० ॥ यज्जन्मनांसहस्रेणनिर्मलम्पुण्यमर्जितम् ॥ तत्पुण्यपरिवर्तेनभवेद्विश्वेशदर्शनम् ॥ ३१ ॥ गवांकोटिप्रदानेनसम्यग्दत्तेनयत्फलम् ॥ तत्फलंसम्यगाप्येतविश्वेश्वरविलोकनात् ॥ ३२ ॥ यत्षोडशमहादानैःपुण्यम्प्रोक्तम्महर्षिभिः ॥ तत्पुण्यञ्जायतेपुंसांविश्वेशेपुष्पदानतः ॥ ३३ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्यत्फलम्प्राप्यतेखिलैः ॥ पञ्चामृतानांस्नपनाद्विश्वेशेतदवाप्यते ॥ ३४ ॥ वाजपेयसहस्रेणसम्यगिष्टेनयत्फलम् ॥ सकृन्महार्हैर्नैवेद्यैर्विश्वेशेतच्छताधिकम् ॥ ३५ ॥ ध्वजातपत्रञ्चमरंविश्वेशेयःसमर्पयेत् ॥ एकच्छत्रंसवैराज्यंप्राप्नुयाद्वसुधातले ॥ ३६ ॥ महापूजोपकरणंयोर्पयेद्विश्वभर्तरि ॥ नतंसम्पत्तिसम्भाराविमुञ्चन्तीहकुत्रचित ॥ ३७ ॥ सर्वर्तुकुसुमाढ्याञ्चयःकुर्यात्पुष्पवाटिकाम् ॥ तदङ्गणेकल्पवृक्षाश्छायांकुर्वन्तिशीतलाम् ॥ ३८ ॥ यःक्षीरस्नपनार्थंवैविश्वेशेधेनु

पेय यज्ञों से जो फलहै उससे सैकड़ों गुना अधिक फल एक बार विश्वनाथजी में महामोलके योग्य उत्तम नैवेद्यों से होताहै ॥ ३५ ॥ जोकि श्रीविश्वनाथजी में ध्वजा छत्र और चमरको समर्पितकरे वह भूतलमें एक छत्र राज्यको निश्चयसे पावे ॥ ३६ ॥ व जोकि श्रीविश्वनाथजी में महापूजाके उपकरण याने पूजाकी सामग्री पात्रादिकों को देवे उसको इसलोकमें व कहीं भी सम्पत्तियों के समूह नहीं छोड़ते हैं ॥ ३७ ॥ व जो श्रीविश्वनाथजीके लिये सब ऋतुवों में फूलों से युक्त फुलवाईको करे उसके

घरमें कल्पवृक्ष शीतलछायाको करते हैं ॥ ३८ ॥ व जो दूधसे नहवाने के अर्थ विश्वेश्वरजी में गऊको समर्पे उसके पितर क्षीरसागरके तीरमें निवास करेहैं ॥ ३९ ॥ व जो श्रीविश्वनाथजीके राजमन्दिरमें चूनाकारी और चित्रोंको भी करावे उसका घर कैलासमें चित्रितहोवे ॥ ४० ॥ व जोकि इस काशीमें एक एक गन्तीके क्रमसे ब्राह्मण व संन्यासी भी वैसेही शिव योगियों को निश्चय से भोजन करावे ॥ ४१ ॥ उसका करोड़ ब्रह्मभोजका फल श्रद्धासे होताहै इसमें संशय नहींहै व यहां तपस्या बहुत करना चाहिये और यहां दानको अधिकतासे देवे या दिलावे ॥ ४२ ॥ व यहां स्नान, होम और जपादिकों से श्रीविश्वनाथजी सन्तुष्ट करने योग्यहैं व अन्यत्र मनुष्यों करके

मर्पयेत् ॥ क्षीरार्णवतटेतस्यनिवसेयुःपितामहाः ॥ ३९ ॥ विश्वेशराजसदनेयःसुधाश्चित्रमेववा ॥ कारयेत्तस्यभवनं कैलासेचित्रितम्भवेत् ॥ ४० ॥ ब्राह्मणान्यतिनोवापितथैवशिवयोगिनः ॥ भोजयेद्योत्रवैकाश्यामेकैकगणनाक्रमात् ॥ ४१ ॥ कोटिभोज्यफलन्तस्यश्रद्धयानात्रसंशयः ॥ तपस्तत्रप्रकर्तव्यंदानमत्रप्रदापयेत् ॥ ४२ ॥ विश्वेशस्तोषणीयोत्रस्नानहोमजपादिभिः ॥ अन्यत्रकोटिजप्येनयत्फलम्प्राप्यतेनरैः ॥ अष्टोत्तरशतञ्जप्त्वातदत्रसमवाप्यते ॥४३॥ कोटिहोमेनयत्प्रोक्तंफलमन्यत्रसूरिभिः ॥ अष्टोत्तराहुतिशतात्तदत्रानन्दकानने ॥ ४४ ॥ योजपेद्रुद्रसूक्तानिकाश्यांविश्वेशसन्निधौ ॥ पारायणेनवेदानांसर्वेषांफलमाप्यते ॥ ४५ ॥ तस्यपुण्यंनजानामिचिन्तितेचाक्षरेपरे ॥ काश्यांनित्यंप्रवस्तव्यंसेव्योत्तरवहासदा ॥ ४६ ॥ आपद्यपिहिघोरायांकाशीत्याज्यानकुत्रचित् ॥ यतःसर्वापदांहर्तात्राताविश्वपतिः

कोटि जपसे जो फल पायाजाताहै वह यहां अष्टोत्तर शत जपकर भलीभांति मिलताहै ॥ ४३ ॥ व अन्यत्र पण्डितोंने कोटिहोम से जो फल कहाहै वह इस आनन्दवन में आठ अधिक सौ आहुतियों से होताहै ॥ ४४ ॥ व जो कोई श्रीविश्वनाथजी के समीपमें रुद्रसूक्तोंको जपे याने पाठकरे उसको सब वेदों के पारायण से फल मिलता है ॥ ४५ ॥ और सबसे परे नित्य महादेवजी या श्रेष्ठ अक्षर ॐकारकी चिन्तना करतेही उसके पुण्य फलको मैं नहीं जानताहूं याने उसका अकथनीय अनन्त फलहै व काशीमें नित्यही बहुत बसना चाहिये और उत्तर बाहिनी गंगा सदा सेवने योग्य हैं ॥ ४६ ॥ व घोर विपत्तिमें भी काशी कभी या कहीं नहीं त्यागना चाहिये जिससे

सब विपत्तियों के हर्त्ता व रक्षाकर्त्ता समर्थ विश्वनाथजी वहांही विराजमान हैं ॥ ४७ ॥ और जिस कारण काशीमें किया हुआ कर्म महत्त्वके लिये प्रकल्पित होताहै उस लिये स्नान दान और जपादिकों से दिन को अबन्ध्य याने सफलकरे ॥ ४८ ॥ व कृच्छ्र चान्द्रायणादिक व्रत बड़े यत्नसे करना चाहिये उसप्रकारमे यहां इन्द्रियों के विकार कभी नहीं बाधा करते हैं ॥ ४९ ॥ और जो यहां देहधारियोंकी इन्द्रियां विकारको करें तो इस काशीमें बसनेकी संसिद्धि विघ्नों से नहीं मिलती है ॥ ५० ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी ! श्रीवेदव्यासजी इन्द्रियोंकी विशुद्धिके लिये जिन कृच्छ्र व चान्द्रायणादि व्रतोंको कहेंगे उनके स्वरूपको आप सामने से कहो ॥ ५१ ॥

प्रभुः ॥ ४७ ॥ अबन्ध्यन्दिवसंकुर्यात्स्नानदानजपादिभिः ॥ यतःकाश्यांकृतंकर्ममहत्त्वायप्रकल्पते ॥ ४८ ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिकर्त्तव्यानिप्रयत्नतः ॥ तथेन्द्रियविकाराश्चनबाधन्तेत्रकर्हिचित् ॥ ४९ ॥ यदीन्द्रियाणिकुर्वन्तिविक्रियामिहदेहिनाम् ॥ तदात्रवाससंसिद्धिर्विघ्नैर्भ्योनैवलभ्यते ॥ ५० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिव्यासोवक्ष्यतियानिवै ॥ तेषांस्वरूपमाख्याहिस्कन्देन्द्रियविशुद्धये ॥ ५१ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कथयामिमहाबुद्धेकृच्छ्रादीनितवाग्रतः ॥ यानिकृत्वात्रमनुजोदेहशुद्धिंलभेत्पराम् ॥ ५२ ॥ एकभक्तेननक्तेनतथैवायाचितेनच ॥ उपवासेनचैकेनपादकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ॥ ५३ ॥ वटोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकम् ॥ प्रत्येकंप्रत्यहम्पीतंपर्णकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ॥ ५४ ॥ पिण्याकघृततक्राम्बुसक्तूनाम्प्रतिवासरम् ॥ एकैकमुपवासश्चकृच्छ्रःसौम्यःप्रकीर्तितः ॥ ५५ ॥ हविषाप्रातरश्नीतहविषासायमेवच ॥ हविषायाचितंत्रींस्तुसोपवासस्त्र्यहंवसेत् ॥ ५६ ॥ एकैकंग्रासमश्नीयादहानित्रीणिपूर्ववत् ॥ त्र्यहञ्चोप

श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाबुद्धे ! मैं तुम्हारे आगे कृच्छ्रादि व्रतोंको कहताहूं जिनकोकर मनुष्य यहां श्रेष्ठ देहशुद्धिको पावेहैं ॥ ५२ ॥ रात्रिसे एकबार भोजन से वैसेही अयाचितसे और एक उपाससे पादकृच्छ्र कहागयाहै ॥ ५३ ॥ व जब बरगद गूलर कमल बिल्वपत्र और कुशका जल प्रत्येक याने एक एक क्रमसे प्रतिदिन मे पियाहुआहै तब पर्णकृच्छ्र कहागयाहै ॥ ५४ ॥ व प्रतिदिन क्रमसे पीना घी माठा जल और सत्तू इनमे से एक एक भोजन व एक उपवास यह कृच्छ्र सौम्य व्रत कहाना है ॥ ५५ ॥ व तीन दिन प्रातःकालमें हविको (जाउर) भोजनकरे और वैसेही तीन दिन सायंकालमे हविको भोजनकरे और तीनदिन अयाचित हविष्यको भोजनकरे

और तीनदिन उपवास समेत होकर बसे ॥ ५६ ॥ व अतिकृच्छ्र व्रतको करताहुआ द्विज पहलेकी नाईं प्रातःकालादिकोंमें तीन तीन दिन एक एक कवलको भलीभांति भोजनकरे और अन्तके तीन दिनोंमें उपासकरे ॥ ५७ ॥ व इक्कीस दिन दूध पीने से कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रतहै व बारह दिन उपास करने से पराकव्रत कहागयाहै ॥ ५८ ॥ और प्राजापत्य व्रतको करताहुआ द्विज तीन दिन प्रातःकाल व तीन दिन सायंकाल में भोजनकरे और तीन दिन अयाचितको भोजनकरे व अन्तके तीन दिनोंमें उपास करे ॥ ५९ ॥ व एक दिन गोमूत्र गोबर दूध दही घी और कुशका पानी इनको मिलाकर पीवे व एक दिन उपासकरे यह दो दिनमें कृच्छ्रसान्तपन व्रत कहागयाहै॥६०॥

वसेदन्त्यमतिकृच्छ्रञ्चरन्द्विजः ॥ ५७ ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रम्पयसादिवसानेकविंशतिः ॥ द्वादशाहोपवासेनपराकःपरिकीर्त्तितः ॥ ५८ ॥ त्र्यहम्प्रातस्त्र्यहंसायंत्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ त्र्यहञ्चोपवसेदन्त्यंप्राजापत्यञ्चरन्द्विजः ॥ ५९ ॥ गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रःसान्तपनःस्मृतः ॥ ६० ॥ पृथक्सान्तपनद्रव्यैःषडहःसोपवासकः ॥ सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयंमहासान्तपनःस्मृतः ॥ ६१ ॥ तप्तकृच्छ्रञ्चरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलान् ॥ एतांस्त्र्यहम्पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायीसमाहितः ॥ ६२ ॥ त्र्यहमुष्णाःपिबेदापस्त्र्यहमुष्णम्पयःपिबेत् ॥ त्र्यहमुष्णंघृतम्प्राश्यवायुभक्षोदिनत्रयम् ॥६३॥ पलमेकम्पयःपीत्वासर्पिषश्चपलद्वयम् ॥ पलमेकन्तुतोयस्यतप्तकृच्छ्रउदाहृतः॥६४॥ गोमूत्रेणसमायुक्तंयावकंयःप्रयोजयेत् ॥ कृच्छ्रमेकाह्निकम्प्रोक्तंशरीरस्यविशोधनम् ॥६५॥ हस्तावुत्तानतःकृत्वादिव

व अलग अलग सांतपनके गोमूत्रादि द्रव्यों से जे छह दिनहैं वे उपवाससमेत होवें याने क्रमसे एक एकदिन गोमूत्र गोबरका रस गोदुग्ध गोदधि गोघृत और कुशका जल पीवे और सातयें दिनमें उपासकरे यह सात दिनसे कृच्छ्रमहासान्तपन व्रत कहाताहै ॥ ६१ ॥ व तप्तजलदूध और घी व वायु इनको तीन तीन दिन पीवे इस बारह दिनके तप्तकृच्छ्र व्रतको करताहुआ एकबार नहानेवाला ब्राह्मण सावधान होवे ॥ ६२॥ तीनदिन तप्तजलको पीवे तीनदिन तप्तदुग्धको पीवे व तीनदिन तप्तघृतको पीकर फिर तीनदिन वायुभक्ष होवे ॥ ६३ ॥ एकटका पानी पीवे एकटका दूध पीवे और दोटकाभर घृतको पीवे यह तप्तकृच्छ्रमें विधान कहागयाहै ॥ ६४ ॥ व जोकि गोमूत्रसमेत यवान्नको भोजनकरे उसके शरीरके शोधनेवाला यह एक दिनका कृच्छ्र व्रत कहागयाहै ॥ ६५ ॥ व हाथोंको उतानकर दिनमें वायुभोजी होकर रात्रिमें जलके बीच

टिकाहुआ प्रातःकालके प्राप्तकरनेवाला होवे यह व्रत प्राजापत्यके समानहै ॥ ६६ ॥ व तीन समय में नहाताहुआ कृष्णपक्ष में क्रमसे एक एक कवलको घटावे और शु-
क्लपक्षमें बढ़ावे यह चान्द्रायणव्रत कहाताहै ॥ ६७ ॥ अथवा उजेले पाखमें एक एककवलको क्रमसे बढ़ावे व काले पाखमें घटावे और अमावस में कुछभी न खावे यह
चांद्रायणकी विधिहै ॥६८॥ व सावधान ब्राह्मण चार पिंडों (कवलों) को प्रातःकालमें खावे और चार पिंडोंको सूर्य्य के अस्तमितहोतेही याने सायंकालमें खावे यह शिशु-
चांद्रायण याने ब्रह्मचारिचांद्रायण कहाताहै ॥ ६९ ॥ व मनके रोकनेवाला जन मध्यदिनके टिकतेही याने दुपहरमें हविष्यके आठ आठ पिण्डोंको रोज खावे यह संन्यासि-

सम्मारुताशनः ॥ रात्रौजलेस्थितोऽव्युष्टःप्राजापत्येनतत्समम् ॥ ६६ ॥ एकैकंह्रासयेद्ग्रासंकृष्णेशुक्लेचवर्धयेत् ॥ उप
स्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणंस्मृतम् ॥ ६७ ॥ एकैकंवर्धयेद्ग्रासंशुक्लेकृष्णेचह्रासयेत ॥ भुञ्जीतदर्शेनोकिञ्चिदेषचा
न्द्रायणोविधिः ॥ ६८ ॥ चतुरःप्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रःसमाहितः ॥ चतुरोस्तमितेसूर्येशिशुचान्द्रायणंस्मृतम् ॥६९॥
अष्टावष्टौसमश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिनेस्थिते ॥ नियतात्माहविष्यस्ययतिचान्द्रायणंस्मृतम् ॥ ७० ॥ यथाकथञ्चि
त्पिण्डानांतिस्रोशीतीःसमाहितः ॥ मासेनाश्नन्हविष्यस्यचन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥ ७१ ॥ अद्भिर्गात्राणिशुध्यन्तिम
नःसत्येनशुध्यति ॥ विद्यातपोभ्याम्भूतात्माबुद्धिर्ज्ञानेनशुध्यति ॥ ७२ ॥ तच्चज्ञानम्भवेत्पुंसांसम्यक्काशीनिषेवणात् ॥
काशीनिषेवणेनस्याद्विश्वेशकरुणोदयः ॥ ७३ ॥ ततोमहोदयावाप्तिःकर्मनिर्मूलनक्षमा ॥ अतःकाश्याम्प्रयत्नेनस्ना
नन्दानन्तपोजपः ॥ ७४ ॥ व्रतंपुराणश्रवणंस्मृत्युक्ताध्वनिषेवणम् ॥ प्रतिक्षणंप्रतिदिनंविश्वेशपदचिन्तनम् ॥ ७५ ॥

चांद्रायण कहा गयाहै ॥७०॥ जिस किसी भांति एक मासमें हविष्यान्नके पिंडोंकी तीन अशीति याने दोसौचालीस कवलोंको खाताहुआ एकाग्रचित्तवाला जन चंद्रमाकी स-
लोकताको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥ देहके अंग पानीसे शुद्ध होते हैं व मन सत्यसे शुद्धहोताहै व विद्या और तपस्या से अहंकार शुद्धहोताहै व बुद्धि ज्ञानसे शुद्धहोती है ॥
७२ ॥ और वह मनुष्योंका ज्ञान भलीभांति काशी सेवनसे होवेहै व काशीकी सेवासे श्रीविश्वनाथजी की दया का उदय होवेहै ॥ ७३ ॥ और उससे कर्मों की जड़ उखा-
ड़ने को समर्थ महोदयकी प्राप्ति होती है इसलिये काशी में बड़े यत्न से स्नान दान तप जप ॥ ७४ ॥ व व्रत व पुराणों का सुनना व स्मृतियो से कही गलीको सेवना व

प्रतिदिन प्रतिक्षण श्रीविश्वनाथजी के चरणारविन्दों का चिन्तन ॥ ७५ ॥ व त्रिकाल लिंगपूजा व लिंगकी प्रतिष्ठा भी व साधुओं के साथ सम्भाषण और शिव शिव ऐसा जपना ॥ ७६ ॥ व अतिथिका सत्कार भी व तीर्थनिवासियों से मित्रता व आस्तिक्यबुद्धि व विनय व मान और अपमानमें समान ज्ञान ॥ ७७ ॥ व अकामिता (किसी वस्तुकी न चाहना) व उद्धतपनाका न होना व वैराग्य व अहिंसा व अप्रतिग्रह वृत्ति (विना दानकी वृत्ति) और दयारूपिणी बुद्धि ॥ ७८ ॥ व अदम्भिता अमत्सरता और विना मांगे धनका आगम व अलोभित्व व अनालस्य व अपरुषता और अदीनता ॥ ७९ ॥ इत्यादि अच्छी प्रवृत्ति क्षेत्रवासीको करना चाहिये इसभांति वह व्यासजी

लिङ्गार्चनान्त्रकालञ्चलिङ्गस्यापिप्रतिष्ठितिः ॥ साधुभिःसहसंलापोजल्पःशिवशिवेतिच ॥ ७६ ॥ अतिथेश्चापिसत्कारोमैत्रीतीर्थनिवासिभिः ॥ आस्तिक्यबुद्धिर्विनयोमानामानसमानधीः ॥ ७७ ॥ अकामितात्वनौद्धत्यमरागित्वमहिंसनम् ॥ अप्रतिग्रहवृत्तिश्चमतिश्चानुग्रहात्मिका ॥ ७८ ॥ अदम्भितात्वमात्सर्यमप्रार्थितधनागमः ॥ अलोभित्वमनालस्यमपारुष्यमदीनता ॥ ७९ ॥ इत्यादिसत्प्रवृत्तिश्चकर्तव्याक्षेत्रवासिना ॥ प्रत्यहंचेतिशिष्येभ्यःसधर्ममुपदेक्ष्यति ॥ ८० ॥ नित्यंत्रिषवणस्नायीनित्यंभिक्षाकृताशनः ॥ लिङ्गपूजार्चकोनित्यमित्थंव्यासोवसेत्पुरा ॥ ८१ ॥ एकदातस्यजिज्ञासांकर्तुंदेवींहरोवदत ॥ अद्यभिक्षाटनंप्राप्तेव्यासेपरमधार्मिके ॥ ८२ ॥ अपिसर्वगतेक्वापिभिक्षांमायच्छसुन्दरि ॥ तथेत्युक्त्वाभवानीसाभवंभवनिवारणम् ॥ ८३ ॥ नमस्कृत्यप्रतिगृहंतस्यभिक्षांन्यषेधयत ॥ समुनिःसहितःशिष्यैर्भि

शिष्यों के लिये प्रतिदिन धर्मको उपदेश करेंगे ॥ ८० ॥ व नित्यही त्रिकाल स्नानकर्ता नित्यही भिक्षाको भोजन कियेहुये और नित्यही लिंगके रुद्रियपाठ से पूजक ऐसे व्यासजी पहले बसेहैं याने बसेंगे ॥ ८१ ॥ एक समय उनकी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) को करने के लिये महादेवजीने देवीजी से कहा कि आज परमधार्मिक व्यासमुनिके भिक्षाटनको प्राप्त होतेही ॥ ८२ ॥ और सर्वत्र गयेहुये भी होतेही हे सुन्दरि ! तुम कहीं भी भिक्षाको मतदो तब वैसेही होवे ऐसा कहकर पार्वतीजीने संसार के निवारणवाले महादेवजीके ॥ ८३ ॥ नमस्कारकर प्रतिघरमे उनकी भिक्षाको वर्जित करादिया और शिष्यों से सहित वह मुनि भिक्षाको न पाकर पीड़ित या संतप्त से

होगये ॥ ८४ ॥ व वेलाका अतिक्रम (बीतना) देखकर उस पुरीमें फिर भ्रमतेभये और घर घरमें अन्य सब भिक्षुकोंको भिक्षा सब ओरसे मिली ॥ ८५ ॥ परन्तु शिष्यों समेत उन मुनिने उस दिनमें कहीं भी भिक्षाको न पाया अनन्तर विद्यार्थियों के साथ सायंकालके सन्ध्यावन्दनादि कर्मको कर ॥ ८६ ॥ व उपासमें परायण होकर दिनों रात वैसेहीहुये उसके बाद अन्य दिनमे मध्याह्नके विधानको कर व्यासमुनि ॥ ८७ ॥ भिक्षाटन करनेको पुरीके सब ओरमें गये और शिष्योंसमेत वह प्रतिमन्दिरों में सर्वत्र बार बार सब ओरसे भ्रमतेभये ॥ ८८ ॥ किन्तु जैसे भाग्यसे हीन जन धनको नहीं पाताहै वैसेही सब ओर घूमतेहुये परिश्रमसमेत याने थकेहुये व्यासजीने कहीं भी

क्षामप्राप्यदूनवत् ॥ ८४ ॥ वेलातिक्रममालोक्यपुनर्बभ्रामतांपुरीम् ॥ गृहेगृहेपरिप्राप्ताभिक्षान्यैःसर्वभिक्षुकैः ॥ ८५ ॥ तदह्निनालभद्भिक्षांसशिष्यःसमुनिःक्वचित् ॥ अथसायंतनंकर्मकृत्वाछात्रैःसमन्वितः ॥ ८६ ॥ उपोषणपरोभूत्वातथैवा सीदहर्निशम् ॥ अथान्येद्युर्मुनिर्व्यासःकृत्वामाध्याह्निकंविधिम् ॥ ८७ ॥ ययौभिक्षाटनंकर्तुंसशिष्यःपरितःपुरीम् ॥ सर्वत्रसपरिभ्रान्तःप्रतिसौधंमुहुर्मुहुः ॥ ८८ ॥ नक्वापिलब्धवान्भिक्षाम्भाग्यहीनोधनंयथा ॥ अथचिन्तितवान्व्यासःप रिश्रान्तःपरिभ्रमन् ॥ ८९ ॥ कोहेतुर्यन्नलभ्येतभिक्षायत्नेनरक्षिता ॥ अन्तेवासिनआहूयव्यासःपप्रच्छचाखिलान् ॥ ९० ॥ भवद्भिरपिनोभिक्षापरिप्राप्तेतिगम्यते ॥ किमत्रपुरिसंवृत्तंद्वित्रायातममाज्ञया ॥ ९१ ॥ द्वितीयेह्न्यपियद्भिक्षान लभ्येतातियत्नतः ॥ अनिष्टंकिञ्चिदत्रासीन्महागुरुनिपातजम् ॥ ९२ ॥ अन्नक्षयोवासर्वस्यांनगर्यामभवत्क्षणात् ॥ राज दण्डोथयुगपज्जातःसर्वपुरौकसाम् ॥ ९३ ॥ अथवावारिताभिक्षाकेनाप्यस्मासुचेर्ष्यया ॥ पुरौकसोभवन्दुःस्थास्तूपस

भिक्षाको न पाया अनन्तर चिन्तनाकिया ॥ ८९ ॥ कि क्या कारण है जिससे आज यत्नसे रक्षितहुई भिक्षा नहीं मिलैहै ऐसा विचारकर फिर व्यासजी ने सब शिष्यों को बुलाकर पूंछा ॥ ९० ॥ कि ऐसा जान पड़ताहै कि आप लोगोंको भी भिक्षा सब ओरसे नही प्राप्तहुई है इस पुरी में क्या भलीभांति वृत्तान्तहै तुम दो तीन जने मेरी आज्ञा से जावो और उस कारणको जान आवो ॥ ९१ ॥ कि जिससे दूसरे दिनमें भी बडे यत्नसे भिक्षा नहीं मिलैहै क्या महागुरु निपातसे उत्पन्न कोई अनिष्ट यहां हुआहै ॥ ९२ ॥ व क्षणभर से सब नगरीमें अन्नका क्षय होगयाहै अथवा एक साथही सब पुरवासियोका राजदण्ड हुआहै ॥ ९३ ॥ अथवा किसीने हम लोगों में ईर्षा से भिक्षाको

बन्द करादियाहै व किसी भी उपद्रव से पुरवासी पीड़ितहुये हैं ॥ ९४ ॥ क्या कारणहै इस सम्पूर्ण को जानकर शीघ्रही लौटआवो तदनन्तर पवित्र याने पूजने योग्य पावोंवाले गुरुकी आज्ञाको पाकर दो तीनजनोंने जाकर उन पुरवासियोकी समृद्धि (बढ़ती) को देखकर व लौटआकर भलीभांति सामने से कहा ॥ ९५ ॥ शिष्य बोले कि हे पूजनीय चरणारविन्दोंवाले गुरुजी! आप सुनें कि यहां कोई उपद्रव नहीं है व इस सब नगरी में अन्नका क्षय कहीं भी नहींहै ॥ ९६ ॥ क्योंकि जहां साक्षात् विश्वनाथजी हैं व जहां देवनदी गंगा आपही हैं व जहां आपके समान मुनि हैं वहां उपद्रवों से उपजा हुआ डर कहांहै ॥ ९७ ॥ इस शिवपुरीमें जो गृहस्थोंकी समृद्धिहै वह

गैणकेनचित् ॥ ९४ ॥ किमेतदखिलंज्ञात्वासमागच्छतसत्वरम् ॥ द्वित्राःपवित्रचरणात्प्राप्यानुज्ञांगुरोरथ ॥ समाचख्युः समागम्यदृष्ट्वर्धिन्तत्पुरौकसाम् ॥ ९५ ॥ शिष्याऊचुः ॥ शृणवन्त्वाराध्यचरणानोपसर्गोत्रकश्चन ॥ नान्नत्तयोवा सर्वस्यांनगर्यामिहकुत्रचित् ॥ ९६ ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षाद्यत्राऽमरधुनीस्वयम् ॥ त्वादृशायत्रमुनयःक्वभीस्तत्रोपसर्गजा ॥ ९७ ॥ समृद्धिर्यागृहस्थानामिहविश्वेशितुःपुरि ॥ नसर्धिरस्तिवैकुण्ठेत्वल्पास्ताअलकादयः ॥ ९८ ॥ रत्नाकरेषुरत्नानिनतावन्तिमहामुने ॥ यावन्तिसन्तिविश्वेशनिर्माल्योपभुजांगृहे ॥ ९९ ॥ गृहेगृहेत्रधान्यानांराशयोयादृशाः पुनः ॥ नतादृशःकल्पवृक्षदत्ताऐन्द्रेपुरेकचित् ॥ १०० ॥ यत्रसाक्षाद्विशालाक्षीसुविस्तारफलप्रदा ॥ नतत्रपुरिसर्वस्यांनरोवैनिर्धनःक्वचित् ॥ १ ॥ निर्वाणलक्ष्म्याःसदनेत्वस्मिन्नानन्दकानने ॥ मोक्षोपियत्रसुलभः किमन्यत्तत्रदुर्लभम् ॥ २ ॥ सीमन्तिन्यःस्त्रियःसर्वाःपतिव्रतपरायणाः ॥ सर्वाभवानीरूपिण्योविश्वेशार्पितसत्क्रियाः ॥ ३ ॥ यावन्तःपुरु

ऋद्धि वैकुण्ठमें भी नहींहै और वे अलका (कुबेरकी पुरी) आदि पुरी तो अल्पही हैं ॥ ९८ ॥ हे महामुने! जितने रत्न श्रीविश्वनाथजीके निर्माल्यके उपभोगी जनों के घरमें हैं उतने समुद्रमें नहींहैं ॥ ९९ ॥ और यहां घर घरमें जैसी अन्नोंकी राशिया हैं वैसी कल्पवृक्ष से दीहुई भी इन्द्रके लोकमें भी कहीं नहींहैं ॥ १०० ॥ व जहां अच्छे विस्तारयुक्त याने बड़े भारी फलोंकी देनेवाली साक्षात् विशालाक्षी देवीजी हैं उस सब पुरीमें निश्चयसे निर्धन मनुष्य कहीं नहींहै ॥ १ ॥ व मोक्षलक्ष्मी के मन्दिर जिस इस आनन्दवनमें मुक्ति भी सुलभहै उसमें अन्य क्या दुर्लभहै ॥ २ ॥ व यहां सब स्त्रियां मांग सँवारे हुईहैं व पतिव्रतमें परायणहैं व सब भवानीरूपिणी हैं व श्रीविश्व-

नाथजी में सुकर्मोंकी समर्पनवाली हैं ॥ ३ ॥ और काशीमें जितने पुरुषहैं उतने सबही गणाधिपहैं व सबही कुमार (कार्त्तिकेय) के समानहैं व सबही ॐकारमें दृष्टिवाले हैं ॥ ४ ॥ जेकि त्रिपुण्ड्र से याने भस्मकी तिरछी तीन रेखाओं से अंकित माथवाले हैं वे सब चन्द्रभाल शिवस्वरूपहैं और जेकि यहां हजारों उपद्रवों से पीड़ित होतेहुये भी ॥ ५ ॥ काशीको सदैव नहीं त्यागते हैं वे सब सर्वज्ञही हैं और घर घरमें भी जे ब्रह्मचारी विद्यार्थी हैं वे ब्रह्मके या वेदके वादके विवादवाले हैं ॥ ६ ॥ व गंगाके स्नान से पापोंको भगाये हुयेहैं व चतुरतासमेत मुखवाले या ब्रह्माजीके समानहैं और यहां क्षेत्रसंन्यासकर्त्ता जन मोक्षलक्ष्मीके पतिहैं ॥ ७ ॥ व सबही हृषीकेश (इन्द्रियों के

पाःकाश्यांसर्वएवगणाधिपाः ॥ सर्वएवकुमारावैसर्वेतारकदृष्टयः ॥ ४ ॥ त्रिपुण्ड्राङ्कितभालायेतेसर्वेचन्द्रमौलयः॥ उपसर्गसहस्रैश्चपीड्यमानाअपीहये ॥ ५ ॥ नत्यजन्तिसदाकाशींसर्वज्ञाएवतेखिलाः ॥ गृहेगृहेपिवटवोब्रह्मवादविवादिनः ॥ ६ ॥ स्वर्धुनीधूतकलुषाःसन्तीहचतुराननाः ॥ निर्वाणलक्ष्मीपतयःक्षेत्रसंन्यासकारिणः ॥ ७ ॥ सर्वएवहृषीकेशाः सर्वेवैपुरुषोत्तमाः ॥ अच्युताएवविज्ञेयाएतत्क्षेत्रपरिग्रहाः ॥ ८ ॥ स्त्रियोवापुरुषावापिसर्वएवनसंशयः ॥ सर्वएवत्रिनयनाःसर्वएवचतुर्भुजाः ॥ ९ ॥ श्रीकण्ठाःसर्वएवात्रसर्वेमृत्युञ्जयाध्रुवम् ॥ मोक्षश्रीश्रितवर्ष्माणस्त्वर्धनारीश्वरायतः॥ १० ॥ धर्मराशिःपरश्चात्रमहान्तोऽत्रार्थराशयः ॥ सर्वेकामाःफलन्त्यत्रकैवल्यञ्चात्रनिर्मलम् ॥ ११ ॥ नगर्भवाससंसर्गःकाशीसंस्थितिकारिणाम् ॥ नकलिश्चात्रबाधेतकालोनैवप्रबाधते ॥ १२ ॥ एनांसिनात्रबाधन्तेविश्वेशशरणार्थिनः ॥ यत्र

स्वामी) हैं व सबही पुरुषोत्तमहैं और इस क्षेत्रको सब ओरसे ग्रहण करनेवाले (क्षेत्रसंन्यासी) अच्युत (विष्णु) के समान विशेषता से जानने योग्यहैं अथवा कभी च्युत नहीं होतेहैं अखण्ड मोक्ष सुखको भोगते हैं ॥ ८ ॥ व स्त्रियां अथवा पुरुष भी शिवही हैं इसमें संशय नहींहै सबही त्रिनेत्रहैं सबही चतुर्भुजहैं ॥ ९ ॥ व सबही श्रीकण्ठहैं सबही मृत्युंजयहैं और जिससे अर्धनारीश्वर हैं उसलिये मोक्षलक्ष्मी से आश्रित देहवाले हैं ॥ १० ॥ व यहां श्रेष्ठ धर्मराशिहै यहां बड़ी अर्थोंकी राशियां है यहां सब काम फलते हैं और यहां निर्मल कैवल्य मोक्षहै ॥ ११ ॥ काशी में भलीभांति वास या मरण करनेवाले लोगोंको गर्भवासका संसर्ग नहींहै याने वे फिर गर्भमें नहीं आतेहैं व यहां कलि नहीं बाधा करताहै और काल भी नहीं बहुत बाधा करता है ॥ १२ ॥ व यहां श्रीविश्वेश्वरके शरणचाही जनोंको पाप नहीं पीड़ा देसक्ते हैं जहां

शिष्य बोले कि, काशी विद्याओंका स्थानहै व काशी लक्ष्मीका श्रेष्ठ घरहै व काशी यह मुक्तिक्षेत्र है और काशी वेदत्रयीमयी है ॥ २३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्यजी ! उस समय ऐसा सुनकर क्रोधसे अन्धी कीहुई आंखोंवाले व भूंख अग्निसे ज्वलतीहुई देहवाले व्यासजी काशीको शाप देवेंगे ॥ २४ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, त्रैपौरुषी याने तीन पुरितितक रहनेवाली विद्या मतहोवे व तीन पुरितितक रहनेवाला धन मतहोवे और तीन पुरितितक मुक्ति मतहोवे इसभांति व्यासजीने काशीको शाप दिया ॥ २५ ॥ क्योंकि यहां विद्याओंका भी बड़ा गर्वहै व यहां धनका बड़ा गर्वहै और यहांके वासी मुक्तिके गर्वसे भिक्षाको नहीं देतेहैं ॥ २६ ॥ ऐसी बुद्धिको कर तब

यी ॥ २३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ निशम्येतितदाव्यासःक्रोधान्धीकृतलोचनः ॥ क्षुत्कृशानुज्वलन्मूर्तिःकाशींशप्स्यतिकुम्भज ॥ २४ ॥ व्यासउवाच ॥ माभूत्रैपूरुषीविद्यामाभूत्रैपूरुषन्धनम् ॥ माभूत्रैपूरुषीमुक्तिःकाशींव्यासःशपन्निति ॥ २५ ॥ गर्वःपरोत्रविद्यानांधनगर्वोत्रवैमहान् ॥ मुक्तिगर्वेणनोभिक्षांप्रयच्छन्त्यत्रवासिनः ॥ २६ ॥ इतिकृत्वामतिंव्यासःकाश्यांशापमदात्तदा ॥ दत्त्वापिशापंसमुनिर्भिक्षितुंक्रोधवान्ययौ ॥ २७ ॥ प्रतिगेहन्त्वरायुक्तःप्रविशन्व्योमदत्तदृक् ॥ बभ्रामनगरींसर्वांक्कापिभैक्षंनलब्धवान् ॥ २८ ॥ अंशुमालिनमावीक्ष्यमनाग्लोहितमण्डलम् ॥ भिक्षापात्रम्परिक्षिप्यनिर्ययावाश्रमम्प्रति ॥ २९ ॥ अथगच्छन्महादेव्यागृहद्वारिनिषण्णया ॥ प्राकृतस्त्रीस्वरूपिण्याभिक्षायैप्रार्थितोतिथिः ॥ ३० ॥ गृहिण्युवाच ॥ भगवन्भिक्षुकास्तावदद्यदृष्टानकुत्रचित् ॥ असत्कृत्यातिथिंनाथोनमेभोक्ष्यतिकर्हिचित ॥ ३१ ॥

व्यासजीने काशीमें शापको दिया और शापको देकर भी क्रोधवान् वह मुनि भिक्षाके लिये चलेगये ॥ २७ ॥ जोकि प्रतिघरमें पैठतेहुये, वेगसेयुक्त और आकाशमें दृष्टिको दिये हुयेहैं उन्होंने सब नगरीको घूमा व कहीं भी भिक्षाको न पाया ॥ २८ ॥ व कुछेक लाले मण्डलवाले सूर्यको देखकर अर्थात् जब बहुत थोड़ा दिन रहगया तब भिक्षा के पात्रको फेंककर अपने आश्रमके प्रति निकलकर चले ॥ २९ ॥ अनन्तर प्राकृत स्त्रीके स्वरूपको धारण कियेहुई घरके द्वारमें ठाढ़ी महादेवीजीने जातेहुये अतिथि को भिक्षाके लिये प्रार्थनायुक्त किया ॥ ३० ॥ गृहस्थकी स्त्रीरूपिणी देवीजी बोलीं कि, हे भगवन् ! तबतक या आपके दर्शनके पहले आज कहीं भी कोई भिक्षुक नहीं देखे

नाद, बिन्दु और कलास्वरूप साक्षात् विश्वनाथजी हैं ॥ १३ ॥ जिससे वहां ध्वनिरूपी मन्त्रस्वरूप ॐकारहै इससे यहां रूपधारी वेदहैं यह निश्चितहै ॥ १४ ॥ व यहां नदीरूपा सरस्वतीजी हैं इससे शास्त्रोंका स्थान है और यह सब आनन्दवन धर्मशास्त्रोंके कियेहुये घरोंवालाहै याने इसमें धर्मशास्त्र भी बसेहैं ॥ १५ ॥ व जितने देव स्वर्ग में हैं उतने यहां हैं यह असत्य नहींहै व सर्पलोग रात्रि रात्रिमें सदैव श्रीविश्वनाथजी को नीराजन (आरती) करते हैं ॥ १६ ॥ किन्तु रसातलसे काशीमें प्राप्तहोकर अपने फणोंकी मणिरूप दीपिकाओं से प्रकाशते हैं व कामधेनुओं के समूहोंसमेत सबही समुद्र यहांहैं ॥ १७ ॥ व पंचामृतोंकी धाराओं से श्रीविश्वनाथजीको नहवातेही हैं व

विश्वेश्वरःसाक्षान्नादबिन्दुकलात्मकः ॥ १३ ॥ ध्वनिरूपीहितत्रास्तिप्रणवोमन्त्रविग्रहः ॥ अतोविग्रहवन्तोत्रसन्तिवेदाविनिश्चितम् ॥ १४ ॥ सरस्वतीसरिद्रूपाह्यतःशास्त्रनिकेतनम् ॥ आनन्दकाननंसर्वंधर्मशास्त्रकृतालयम् ॥ १५ ॥ यावन्तोदिविवैदेवास्तावन्तोत्रमृषानहि ॥ नीराजयन्तिविश्वेशंरात्रौरात्रौसदाऽहयः ॥ १६ ॥ स्वफणामणिदीपैश्चप्राप्यकाशींरसातलात् ॥ समुद्राःसर्वएवात्रकामधेनुव्रजान्विताः ॥ १७ ॥ पञ्चपीयूषधाराभिर्विश्वेशंस्नपयन्तिहि ॥ मन्दारःपारिजातश्चसन्तानोहरिचन्दनः ॥ १८ ॥ कल्पद्रुमश्चपञ्चैतेतरुभिःसहसर्वदा ॥ १९ ॥ सर्वेसुरनिकायाश्चसर्वएवमहर्षयः ॥ योगिनःसर्वएवात्रकाशीनाथमुपासते ॥ २० ॥ विद्यानांसदनङ्काशीकाशीलक्ष्म्याःपरालयः ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदङ्काशीकाशीसर्वात्रयीमयी ॥ २१ ॥ इतिश्रुत्वामुनिवरःपाराशर्योमहातपाः ॥ एवम्बभाषेताञ्छिष्यान्पुनःश्लोकम्पठन्त्वमुम् ॥ २२ ॥ शिष्याऊचुः ॥ विद्यानांचाश्रयःकाशीकाशीलक्ष्म्याःपरालयः ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदङ्काशीकाशीसर्वात्रयीम

मन्दार पारिजात सन्तान हरिचन्दन ॥ १८ ॥ और कल्पवृक्ष ये पांचों अन्य वृक्षों के साथ यहां सदा बसते हैं ॥ १९ ॥ व सब देवसमूह सबही महर्षि और सब योगी भी यहां काशीके नाथ श्रीविश्वनाथजीकी उपासना करते हैं या उनके समीपमें टिके हैं ॥ २० ॥ व काशीपुरी विद्याओं का स्थान है व काशी लक्ष्मीका श्रेष्ठ घरहै व काशी यह मुक्तिक्षेत्र है और सब काशी वेदत्रयीमयी है ॥ २१ ॥ ऐसा सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ, महातपस्वी व्यासजीने इसभांति कहा कि आपलोग इस श्लोकको फिर पढ़ें ॥ २२ ॥

गये और मेरे नाथ (पति) अतिथिको न सत्कारकर याने अतिथिका सत्कार करने विना कभी नहीं भोजन करेंगे ॥ ३१ ॥ व मेरे घरके स्वामी बलिवैश्वदेवादिक कर्म को कर अतिथिकी गलीको परखैहैं उसलिये तुम अतिथि होवो ॥ ३२ ॥ क्योंकि अतिथिके विना जो अकेला गृहस्थ अन्नको सेवताहै याने खाता पीताहै वह अपने पितरों के सहित केवल पापको खाताहै ॥ ३३ ॥ उससे तुम शीघ्रही आवो व अतिथिकी पूजासे गृहस्थताको सफल करने के लिये इच्छा करतेहुये मेरे पतिके मनोरथको करो ॥ ३४ ॥ ऐसा सुनकर विगतकोप व विस्मययुक्त हुये व्यासजीने कहा श्रीव्यासजी बोले कि, हे कल्याणि ! तुम कौनहो व कहांसे प्राप्तहुईहो पहले कहीं भी नहीं देखी

वैश्वदेवादिकङ्कर्मकृत्वागृहपतिर्मम ॥ प्रतीक्षतेतिथिपथंतस्मात्त्वमतिथिर्भव ॥ ३२ ॥ विनातिथिंगृहस्थोयस्त्वन्नमेको निषेवते ॥ निषेवतेघंसपरंसहितःस्वपितामहैः ॥ ३३ ॥ तस्मात्त्वरितमायाहिकुरुमेपत्युरीहितम् ॥ गार्हस्थ्यंसफलंकर्तु मिच्छतोतिथिपूजनात् ॥ ३४ ॥ इतिश्रुत्वागतामर्षोव्यासस्तामाहविस्मितः ॥ व्यासउवाच ॥ भद्रेकात्वंकुतःप्राप्तापूर्वं दृष्टानकुत्रचित् ॥ ३५ ॥ मन्येधर्ममयीमूर्तिःकापित्वंशुचिमानसा ॥ त्वद्दर्शनात्परांप्रीतिंसंप्राप्तानीन्द्रियाणिमे ॥ ३६ ॥ त्वंसुधेवभवेत्प्रायःसर्वावयवसुन्दरि ॥ मन्दराघातसंत्रासात्त्यक्तक्षीरार्णवस्थितिः ॥ ३७ ॥ कलासुधाकरस्याथकुहूराहु भयार्दिता ॥ सीमन्तिनीस्वरूपेणतिष्ठेःकाश्यामनिर्भया ॥ ३८ ॥ अथवाकमलासित्वंविहायकमलालयम् ॥ निशिसं कोचिनंकाश्यांविकाशिन्यांवसेःसदा ॥ ३९ ॥ किंवानुकरुणामूर्तिरिहकाशिनिवासिनाम् ॥ सर्वदुःखौघहरिणीपरा नन्दप्रदायिनी ॥ ४० ॥ वाराणस्याःकिमथवाऽधिष्ठात्रीदेवतात्वमु ॥ किंवानिर्वाणलक्ष्मीस्त्वंयाकाश्यांपरिगीय

गईहो ॥ ३५ ॥ मैं मानताहूं कि पवित्रमनवाली तुम कोई धर्ममयी मूर्त्तिहो व तुम्हारे दर्शन से मेरी इन्द्रियां परम उत्तम प्रीतिको प्राप्तहैं ॥ ३६ ॥ हे सर्वांगसुन्दरि ! बहुधा तुम मन्दराचलके आघात (संताडन) के संत्राम से क्षीरसागरकी स्थितिको त्यागेहुई अमृतकी अधिष्ठात्री देवताहीहो ॥ ३७ ॥ अथवा तुम अमावस और राहुके डरसे अर्दितहुई चन्द्रमाकी कलाहो जोकि निश्चित भयसे हीनहुई स्त्रीस्वरूप से काशीमें टिकीहो ॥ ३८ ॥ अथवा तुम लक्ष्मीहो रात्रिमें सिकुड़नेवाले कमल स्थानको छोड़कर सदाविकाशिका काशिका में बसीहो ॥ ३९ ॥ याकि तुम यहां काशीवासी जनों के सब दुःखसमूहकी हरणी उत्तम आनन्दकी अधिकदानकरणी दयाकी मूर्त्तिहो ॥४०॥

अथवा वितर्क है कि तुम क्या काशीकी अधिष्ठात्री देवताहो किंवा तुम मुक्तिसम्पत्तिहो जोकि काशीमें सब ओरसे गाईजातीहो ॥ ४१ ॥ व चाण्डाल और यज्ञ करने शील ब्राह्मणको बड़े अन्त याने मरने में समान भूषण करतीहुईहो अथवा मेरा भागधेय (भाग्य) इस स्त्रीस्वरूप से परिणाम (अन्त अवस्था) को प्राप्तहै ॥ ४२ ॥ अथवा जो संसारनाशिनी भवानीजी क्षेत्रमें भक्तिसे भवसागर उतरने के लिये भक्तोंको विद्यारूप नौका देनेवाली सब ओर से गाई जाती हैं वह निश्चय से तुमहीं हो ॥ ४३ ॥ सबप्रकारसे तुम मानुषी नही आसुरी नही किन्नरी नहीं विद्याधरी नहीं नागी नहीं गन्धर्वी नहीं और यक्षिणी नही हो ॥ ४४ ॥ मेरा मोह हरनेहारी तुम कोई इष्टदेवता

ते॥४१। श्वपाकंयायजूकंवाप्रान्तेऽलंकुर्वतीसमम्॥मद्भाग्यंवापरिणतमेतद्योषित्स्वरूपतः॥४२॥ अथवासाभवेन्नूनंया क्षेत्रेपरिगीयते॥भक्तपोतप्रदाभक्त्याभवानीभवनाशिनी॥४३॥ सर्वथैवननारीत्वंनासुरी नैवकिन्नरी॥विद्याधरीननोना गीनोगन्धर्वीनयक्षिणी॥४४॥त्वमिष्टदेवतैवासिकाचिन्मेमोहहारिणी॥ केयंचिन्ताथवामेत्रकाचित्त्वंभवसुन्दरि॥४५॥ परवानस्म्यहंजातस्तवदर्शनतोधुना ॥ अवश्यमेवकर्तास्मितवादेश्यंतदादिश ॥ ४६ ॥ एकंतपोव्ययंहित्वाकारयि ष्यसियत्पुनः ॥ तदेवाहंकरिष्यामिविधेयःशुभलोचने ॥ ४७ ॥ नवचस्त्वादृशीनांहिमहत्त्वंहापयेत्सताम् ॥ परंत्वंका सिसुभगेसत्यंब्रूहिममाग्रतः ॥ ४८ ॥ अथवातवदेहेस्मिन्कासत्यंनिर्मलेक्षणे ॥ इतिपृष्टाहमुनिनासाविश्वायुर्घटोद्भव ॥ ४९ ॥ अत्रत्यस्यैवहिमुनेगृहिणीगृहमेधिनः ॥ नित्यंवीक्ष्येचरन्तंत्वांभिक्षांशिष्यगणैर्वृतम् ॥ ५० ॥ त्वमेवमांनोजानीषे

हीहो अथवा हे सुन्दरि ! तुम कोई भी हो यहां मुझको यह क्या चिन्तनाहै ॥ ४५ ॥ इस समय मैं तुम्हारे दर्शन से परवश हुआहूं इससे अवश्यही तुम्हारे आयसु को कर्त्ताहूं उसको आज्ञाकरो ॥ ४६ ॥ हे शुभलोचने ! एक तपस्याके विनाशको छोंडकर तुम जो करावोगी उसको फिर तुम्हारे अधीनहुआ मैं करूंगा ॥ ४७ ॥ हे सुभगे ! तुम सरीखी स्त्रियोंकाही वचन सन्तों के महत्त्वको नहीं छुडाताहै परन्तु तुम कौनहौ मेरे आगे सत्यही कहो ॥ ४८ ॥ हे निर्मलनेत्रे ! अथवा तुम्हारी इस देहमें असत्य कहांहै हे अगस्त्यजी ! इसप्रकार मुनिसे पूंछीहुई उन समस्त जगत्की जीवनभूत देवीजीने कहा ॥ ४९ ॥ हे मुने ! यहांके हुयेही गृहस्थकी गृहिणी मैं शिष्यगणो से

युक्त भिक्षाको विचरते या करतेहुये तुमको नित्यही देखतीहूं ॥ ५० ॥ तुमहीं मुझको नहीं जानतेहो और मैं तुमको जानतीहीहूं हे तपस्विन्! बहुत कहने से क्याहै जबतक सूर्य्यदेव अस्तको नहीं जावेहैं ॥ ५१ ॥ तबतक तुम मेरे प्राणनाथके अतिथिभावको सफलकरो उस वचनको सुनकर विनय से विनम्रकन्धरवाले उन मुनिने कहा ॥ ५२ ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि, हे शुभे! कोई मेरा नियमहै जो वह सिद्धि को प्राप्तहोवे तो मैं एक भिक्षाको करूंगा फिर अन्यथा नहीं ॥ ५३ ॥ इसभांति तपस्विनीके कहे वचनको सुनकर तदनन्तर उन्होंने कहा कि हे सुबुद्धे, मुने! तुम निःशंकतासे बतावो कि तुम्हारा क्या नियमहै ॥ ५४ ॥ जिससे मेरे स्वामीके प्रसाद से यहां

जानेत्वामहमेवहि ॥ तपस्विन्किंबहूक्तेनयावन्नास्तंव्रजेद्रविः ॥५१॥ प्राणनाथस्यमेतावदातिथ्यंसफलीकुरु ॥ तच्छ्रुत्वा समुनिःप्राहविनयानतकन्धरः ॥ ५२ ॥ व्यासउवाच ॥ अस्तिमेनियमःकश्चित्ससिद्धिंचेद्व्रजेच्छुभे ॥ एकभिक्षांतदाहंतु करिष्येनान्यथापुनः ॥ ५३ ॥ तपस्व्युदीरितंश्रुत्वासाप्रोवाचवचस्ततः ॥ अविशङ्कंवदमुनेकस्तेस्तिनियमःसुधीः ॥५४॥ ममभर्तुःप्रसादेनकिञ्चिन्न्यूनंयतोऽत्रन ॥ इतिश्रुत्वाप्रहृष्टात्मासतामाहतपोधनः ॥ ५५ ॥ अयुतंममशिष्यायेतैःसपक्तिमहंवृणे ॥ अस्तंयावन्नयात्यर्कस्तावद्भोक्ष्येन्यथानहि ॥ ५६ ॥ निशम्येतिप्रहृष्टास्यासाप्रोवाचमुनिन्ततः ॥ किंविलम्बेनतद्याहिसर्वाञ्छिष्यान्समाह्वय ॥ ५७ ॥ पुनःप्राहसतांसाध्वित्वेतावत्सिद्धिरस्तिते ॥ येनतृप्तिङ्गमिष्यन्तिमच्छिष्याःसर्वएवते ॥ ५८ ॥ स्मित्वाथसाब्रवीत्तन्तुमुनेभर्तुरनुग्रहात् ॥ सिद्धमेवसदैवास्तेसर्वन्तावन्ममालये ॥ ५९ ॥ याव

कुछ कम नहींहै ऐसा सुनकर प्रसन्नचित्त हुये वह तपोधन उनसे बोले ॥ ५५ ॥ कि जे मेरे दशहजार शिष्यहैं उनके साथ मैं पाकको अंगीकार करताहूं व जबतक सूर्य अस्ताचलको नहीं जातेहैं तबतक मैं भोजन करूंगा अन्यथा नहीं ॥ ५६ ॥ ऐसा सुनकर तदनन्तर प्रसन्नमुखवाली उन देवीजी ने मुनिसे कहा कि तो विलम्बसे क्या है तुम जावो व सब शिष्योंको भलीभांति बुलावो ॥ ५७ ॥ फिर वह व्यासजी उनसे बोले कि हे पतिव्रते! तुम्हारी इतनी सिद्धिहै कि जिससे वे मेरे सबही शिष्य तृप्तिको प्राप्तहोवेंगे ॥ ५८ ॥ अनन्तर मुसकाकर उन देवीजीने उन मुनिसे फिर कहा कि हे मुने! मेरे घरमें पतिकी दयासे उतना सब सदैव सिद्धही रहताहै ॥ ५९ ॥ कि जितने

से सब भी अर्थी (चाही) जन सब प्रकारसे तृप्तिको प्राप्त होते हैं हम स्वामीको सन्देह करानेवाली वैसी स्त्रियां नहीं हैं ॥ ६० ॥ जब अर्थीजन घरमें आया तबही कार्य सिद्धहै सब दिशायें परिपूर्ण हैं व सब मनोरथ परिपूर्ण हैं ॥ ६१ ॥ और पतिके पावों के प्रसाद से सब घर परिपूर्ण है तुमजावो व जितने अन्नार्थी जन होवें उनके साथ शीघ्रही भलीभांति लौटआवो ॥ ६२ ॥ क्योंकि बहुकालीन (बड़े पुराने) मेरे स्वामी बहुत बेरको नहीं सहते हैं जोकि मेरे परमप्यारे अतिथियों को प्रिय करनेवाले है उनकी अतिथिताकी समृद्धिके लिये ॥ ६३ ॥ जबतक सूर्य्यदेव अस्तमित नहीं हैं या अस्तको गये नहीं हैं तबतक तुम शीघ्रही जाकर भलीभांति

तार्थिजनस्तृप्तिमेतिसर्वोपिसर्वशः ॥ वयंनतादृश्यमहिलाभर्तृसन्देहकारिकाः ॥ ६० ॥ आयातोर्थीयदागेहेसिद्धङ्कार्यन्तदैवहि ॥ परिपूर्णादिशःसर्वाःपरिपूर्णामनोरथाः ॥ ६१ ॥ परिपूर्णंगृहंसर्वंपत्युःपादप्रसादतः ॥ याहितूर्णंसमायाहियावदन्नार्थिभिःसह ॥ ६२ ॥ पतिर्मेबहुकालीनःकालंनसहतेचिरम् ॥ प्रियातिथिःप्रियतमस्तदातिथ्यसमृद्धये ॥ ६३ ॥ आशुगत्वासमागच्छयावन्नास्तमितोरविः ॥ इतिप्रहृष्टस्त्वरितःशिष्यानाहूयसर्वतः ॥ ६४ ॥ आगत्यताम्पुनःप्राहदृष्ट्वातन्मार्गलोचनाम् ॥ मातःसर्वेसमायातास्त्वरितन्देहिभोजनम् ॥ ६५ ॥ अस्ताचलंहिसमयासमियादेषभास्करः॥ इत्युक्त्वामन्दिरस्यान्तर्विविशुस्तेतपोधनाः ॥६६॥ तन्मण्डपमणिज्योतिस्तत्याहितदिनश्रियः ॥ यावद्गच्छन्तितत्सौधमध्यमाशुतपस्विनः ॥ ६७ ॥ पादौप्रक्षाल्यतावत्तेकैश्चित्कैश्चित्समर्च्यच ॥ कतिचित्परिविष्टान्नाभोक्तुमेवोपवेशि

आवो ऐसा सुनकर अधिक आनन्दित व वेगवान् व्यासजी सब ओरसे शिष्यों को बुलाकर ॥ ६४ ॥ व आकर उनके आनेकी गलीमें दृष्टिवाली उनसे फिर बोले कि हे मातः ! सब जन भलीभांति आयेहैं तुम शीघ्रही भोजनको देवो ॥ ६५ ॥ क्योंकि यह सूर्य्यजी समीपमेंही अस्ताचलको अच्छेप्रकार से जावेहैं ऐसा कहकर वे तपस्याओके धनी घरके भीतर पैठगये ॥ ६६ ॥ व उस मण्डप में मण्डित मणियोंकी ज्योतिके समूह से समर्पित दिनकी शोभावाले तपस्वीलोग जबतक उस महलके मध्यमें शीघ्रही जातेहैं ॥ ६७ ॥ तबतक किसीसे पावोंको पखारकर व किसीसे भलीभांति पूजाकर और किसी जनों से परोसे अन्नवालेहुये वे भोजन करनेकोही समीप में बैठाये

गये ॥ ६८ ॥ व उनके या उन दिव्य पाकोंके समूहों या सामग्रियोंको देखकर उनमें दृष्टि लगायेहुये वे क्षणभर में घ्राण इन्द्रियके हितकारी सुगन्धोंकी पंक्तियों से परम उत्तम तृप्तिको समीपसे प्राप्तहुये ॥ ६९ ॥ उन अन्नोंके सेवन से अत्यन्त तृप्तिको भलीभांति सब ओरसे प्राप्त व आचमन कियेहुये वे चन्दन माला और वस्त्रोंसे सम्भूषितभये ॥ ७० ॥ अनन्तर सन्ध्याकी विधिकोकर व उन गृहस्थके आगे बहुत समीपमें बैठकर और बड़े आशीर्वादों से सामने या सब ओरसे बढ़ाकर जबतक चलने को पांव उठानेलगे ॥ ७१ ॥ तबतक बूढ़े गृहस्थके वेषसे बनेहुये महादेवजी से कटाक्षसे प्रेरितहुई उन गृहणी देवीजीने पूंछा कि तीर्थ में बसतेहुये जनोंका कौनसा

ताः ॥ ६८ ॥ तद्दिव्यपाकसम्भारान्दृष्ट्वातद्दृष्टयःक्षणात् ॥ परान्तृप्तिमुपागच्छन्घ्राणन्यामोदराजिभिः ॥ ६९ ॥ अतितृप्तिंसमापन्नास्तेतदन्ननिषेवणात् ॥ आचान्ताश्चन्दनैःस्रग्भिरम्बरैःपरिभूषिताः ॥७० ॥ अथसान्ध्यंविधिंकृत्वा प्रोपविश्यतदग्रतः ॥ अभिनन्द्यमहाशीर्भिर्यावद्गन्तुम्प्रचक्रमुः ॥ ७१ ॥ तावद्वृद्धगृहस्थेनगृहिणीसाकटाक्षिता ॥ पप्रच्छ तीर्थेवसतांकोधर्मोमुख्यएवहि ॥ ७२ ॥ तथातदनुसारेणतीर्थेवर्तामहेवयम् ॥ सर्वधर्मविदांश्रेष्ठःश्रुत्वातद्गृहिणीवचः ॥ ७३ ॥ तदादरसुधाक्लिन्नमहान्नस्वादतर्पितः ॥ प्रत्युवाचमुनिर्व्यासःस्मित्वातांसर्ववित्तमाम् ॥ ७४ ॥ व्यासउवाच ॥ स्वच्छान्तःकरणेमातर्महामिष्टान्नमानदे ॥ सएषधर्मोनान्योस्तियत्त्वयापरिचर्यते ॥ ७५ ॥ त्वमेवधर्मंजानासिपति शुश्रूषणेरता ॥ यदिपृच्छसिमांसत्यंतदाकिञ्चनवच्मिते ॥ ७६ ॥ वक्तव्यमेवपृष्टेनमनागपिविजानता ॥ सएवधर्मःसु भगेनान्योधर्मोस्तिकश्चन ॥ ७७ ॥ येनैषतोषमायातितवभर्ताचिरन्तनः ॥ गृहिण्युवाच ॥ अयन्धर्मोभवेन्नूनंक्रियते

धर्म मुख्य है ॥ ७२ ॥ उसप्रकार उसके सारसे हमलोग तीर्थमें वर्त्तमानहोवें ऐसे उन स्त्रीके वचनको सुनकर सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ॥ ७३ ॥ व्यासमुनि जोकि उनके आदर अमृत से भीगे महाअन्नके स्वाद से तर्पितहैं उन्होंने कुछेक हँसकर उन सर्वज्ञ शिरोमणिके प्रतिकहा ॥ ७४ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे स्वच्छान्तःकरणे, महामिष्टान्नमानदे, मातः! जो तुमसे सब ओर कियाजाताहै या सेवित होताहै वहही यह धर्महै अन्य नहीं है ॥ ७५ ॥ पतिकी सेवामें प्रीतिवाली तुमहीं धर्मको जानतीहो परन्तु जो मुझसे सत्यको पूंछतीहो तो मैं कुछेकको कहताहूं ॥ ७६ ॥ क्योंकि पूंछेगये थोड़ा भी जानतेहुयेको कहना चाहिये हे सुभगे! वहही धर्महै अन्य कोई नहीं है ॥ ७७ ॥ कि

जिससे यह तुम्हारे बहुत कालके हुये पति सन्तोषको सब ओरसे प्राप्त होतेहैं, गृहणी बोलीं कि, यह निश्चयसे धर्म होवेहै और अपनी शक्तिके अनुसार कियाजाताहै ॥७८॥ मैं साधारण धर्मोंको भलीभांति पूंछतीहूं उनको तुम मुझसे कहो, श्रीव्यासजी बोले कि, किसी का उद्वेग करनेवाले से हीन वचन व पराई बढ़ती को सहना ॥ ७९ ॥ व विचारकर करना और नित्यही अपने घरके उदयका चिन्तन यह साधारण धर्महै, गृहस्थ बोले कि, हे विद्वन्! इन धर्मोंमें से तुममें कौनहै उसको यहां कहो ॥ ८० ॥ तब कुछेक रुके से व्यासजी ठहरगये और कुछ भी न कहतेभये तदनन्तर गृहस्थने उन्हीं तपोधनसे फिर कहा ॥ ८१ ॥ कि जिनको तुमने प्रतिपादनकिया जो येही

चस्वशक्तितः ॥ ७८ ॥ साधारणानिधर्माणिसम्पृच्छेतानिमेवद ॥ व्यासउवाच ॥ अनुद्वेगकरंवाक्यंपरोत्कर्षसहिष्णुता ॥ ७९ ॥ विचार्यकारितानित्यंस्वधिष्ण्योदयचिन्तनम् ॥ गृहस्थउवाच ॥ एषुधर्मेषुभोविद्वंस्त्वयिकोस्तीहतद्वद ॥ ८० ॥ ततःस्थगितवद्व्यासस्तस्थौकिञ्चिन्नचोक्तवान् ॥ ततःपुनर्गृहस्थेनसहिप्रोक्तस्तपोधनः ॥ ८१ ॥ यद्येतएववैधर्मास्त्वयायेप्रतिपादिताः ॥ तद्दान्ततातवैवैत्त्विदानंशापस्यचोत्तमम् ॥ ८२ ॥ त्वय्येवहिदयासम्यग्धैर्यंत्वय्येवचोत्तमम् ॥ त्वयिसम्भावनास्त्येवकामक्रोधविनिग्रहे ॥ ८३ ॥ त्वमेवसम्यग्जानीषेवक्तुञ्चोद्वेगवर्जितम् ॥ त्वय्येवसम्यग्दृश्येतपरोत्कर्षसहिष्णुता ॥ ८४ ॥ विचार्यकारितायाश्चत्वमेवानिलयोमहान् ॥ स्वस्यधिष्ण्यस्यचभवांश्चिन्तयेदुदयन्ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ ममैकम्ब्रूहिभोविद्वञ्छापंदद्याच्चयःक्रुधा ॥ अलभन्स्वार्थसंसिद्धिमभाग्यात्तस्यकस्यसः ॥ ८६ ॥ व्यासउवाच ॥ यःस्वा

निश्चय से धर्महै तो शापका उत्तम देना उन धर्मोंमें तुम्हारी दांतता याने इन्द्रियों का दमन करना देखागया ॥ ८२ ॥ तुममेंहीं भलीभांति दयाहै व तुममेंहीं उत्तम धैर्य्य है और तुममेंहीं काम व क्रोधके बांधने में सम्भावनाहै ॥ ८३ ॥ व तुम्हीं उद्वेगसे हीनवचनको बोलने के लिये अच्छा जानतेहो व तुममेंहीं अन्यके उत्कर्ष का सहना देखपड़े है ॥ ८४ ॥ व तुम्हीं विचारकर करने के महान् मन्दिरहो और आप अपने घरके उदयको निश्चयसे चिन्तन करैहैं ॥ ८५ हे विद्वन्! तुम एकको मुझसे कहो कि, अपने अभाग से स्वार्थकी सिद्धिको न पाताहुआ जो क्रोधसे फिर शापको देवे उसका वह शाप किसको होवे ॥ ८६ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, अभाग्यसे स्वार्थ

की सिद्धिको न पाताहुआ जो क्रोधसे शापदेताहै उस अविवेकी शापदाताकाही उलटा वह शाप होवेहै ॥ ८७ ॥ गृहस्थ बोले कि, अहो विप्र! जब भ्रमतेहुये आपने भी भिक्षाको न पाया तब यहां बापुरे क्षेत्रवासियोंने क्या अपराध कियाहै ॥ ८८ ॥ हे तपस्विन! तुम मेरे वाक्यको सुनो कि, जो कोई इसमेरी राजधानी में ऋद्धिको देखने के लिये नहीं समर्थहोता है याने उसको नहीं देखसक्ता है वहही शापयुक्त है ॥ ८९ ॥ हे क्रोधन, मुने! आजसे लगाकर शापसे वर्जित इस मेरे क्षेत्रमें तुम न बसो यहां बसने में तुम्हारी योग्यता नहीं है ॥ ९० ॥ तुम अबहीं निकलो इस क्षेत्रसे बाहर होवो व मोक्षका मुख्यसाधन मेराक्षेत्र तुम सरीखों के योग्य नहीं है ॥ ९१ ॥

र्थसिद्धिमलभन्नभाग्याच्छपतिक्रुधा ॥ सशापःप्रत्युतभवेच्छप्तुरेवाविवेकिनः ॥ ८७ ॥ गृहस्थउवाच ॥ भवताभ्रमता विप्रनाप्ताभिक्षायदाप्यहो ॥ तदापराद्धङ्किमिहवराकैःक्षेत्रवासिभिः ॥ ८८ ॥ तपस्विञ्छृणुमेवाक्यंराजधान्यांममेह यः ॥ ऋद्धिन्द्रष्टुंनशक्नोतिपरिशप्तःसएवहि ॥ ८९ ॥ अद्यप्रभृतिनक्षेत्रेमदीयेशापवर्जिते ॥ आवसक्रोधनमुनेनवासे योग्यतात्रते ॥ ९० ॥ इदानीमेवनिर्गच्छबहिःक्षेत्रादितोभव ॥ त्वद्विधानांनयोग्यंमेक्षेत्रंमोक्षैकसाधनम् ॥ ९१ ॥ अत्रा ल्पमपियद्दौष्ट्यंकृतंमत्क्षेत्रवासिनाम् ॥ तद्दौष्ट्यस्यपरीपाकोरुद्रपैशाच्यमेवहि ॥ ९२ ॥ तच्छ्रुत्वावेपमानःसपरिशु ष्कौष्ठतालुकः ॥ जगामशरणङ्गौरींलुठंस्तच्चरणाग्रतः ॥ ९३ ॥ उवाचचवचोमातस्त्राहित्राहिभृशंरुदन् ॥ अनाथस्त्व त्सनाथोहंबालिशस्तवबालकः ॥ ९४ ॥ शरणागतञ्चसन्त्राहित्वमांशरणागतम् ॥ बहूनामागसाङ्गेहमस्माकन्दुष्ट मानसम् ॥ ९५ ॥ शम्भुशापोऽन्यथाकर्तुंभवत्यापिनशक्यते ॥ अहञ्चशरणायातस्तदेकंक्रियतांशिवे ॥ ९६ ॥ प्रत्यष्ट

और यहां क्षेत्रवासियों की करी जो थोड़ीभी दुष्टता है उस दुष्टताका फल रुद्र पिशाच होनाही है ॥ ९२ ॥ उस वचन को सुनकर थरथराते हुये व सब ओरसे सूखे ओठों और तालूवाले वे पार्वतीजी के शरण (स्थान) को गये व उनके पावों के आगे लोटते हुये ॥ ९३ ॥ फिर वचन को बोले कि हे मातः! तुम रक्षाकरो रक्षाकरो बहुतरोता हुआ अज्ञानी अनाथ तुम्हारा बालक मैं तुमसे सनाथहूं ॥ ९४ ॥ तुम शरणागत को भलीभांति बचावो और मुझ शरणागत की रक्षाकरो हमारादुष्टमन बहुते पापोंका घर है ॥ ९५ ॥ हे शिवे! आपसे भी शम्भुका शाप अन्यथा करनेको नहीं योग्य होता है और मैं शरणागत हूं इससे यह एक किया जावे ॥ ९६ ॥ कि, हे पा-

वैति ! तुम प्रति अष्टमी व प्रतिचतुर्दशी में सदा क्षेत्र प्रवेशका आयसु देवो महेशजी तुम्हारे वचनके उल्लङ्घक नहीं हैं ॥ ९७ ॥ इसभांति उन मुनिसे कहीहुई दयाकी देह देवीजी ने महेश्वरका मुख देखकर उनकी आज्ञासे ऐसा कहा कि वैसाही होवे ॥ ९८ ॥ तदनन्तर क्षेत्रक कल्याणकर्त्ता वे गौरीशङ्कर अन्तर्द्धानहुये और अपनाको अपराधके वश कहतेहुये व्यासजी भी क्षेत्रसे निकलगये ॥ ९९ ॥ व दृष्टिके समीप गत क्षेत्रको दिनोरात देखतेहुये वह प्रति अष्टमी और प्रति चतुर्दशी में सदैव क्षेत्रके बीचमें पैठे हैं ॥ २०० ॥ व लोलार्क से आग्नेयकोण मे गङ्गाके पूर्वकिनारेपर टिके हुयेही वह आजभी काशी के महलोंकी मालाको देखै हैं ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले

मिसदाक्षेत्रेप्रतिभूतञ्चपार्वति ॥ दिशप्रवेशनादेशंनेशस्त्वद्वाक्यलङ्घकः ॥ ९७ ॥ इत्युक्तातेनमुनिनाभवानीकरुणाजनिः ॥ मुखम्महेशितुर्वीक्ष्यतथेत्याहतदाज्ञया ॥ ९८ ॥ अथान्तर्हितवन्तौतौशिवौक्षेत्रशिवङ्करौ ॥व्यासोपिनिर्ययौक्षेत्रात्स्वापराधवशंवदन् ॥ ९९ ॥ अहोरात्रंसपश्यन्वैक्षेत्रन्दृष्टेरदूरगम् ॥ प्राप्याष्टमीञ्चभूताञ्चमध्येक्षेत्रंसदाविशेत् ॥ २०० ॥ लोलार्कादग्निदिग्भागेस्वर्धुनीपूर्वरोधसि ॥ स्थितोह्यद्यापिपश्येत्सकाशीप्रासादराजिकाम् ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्थंकुम्भजसव्यासःक्षेत्रेशापंप्रदास्यति ॥ क्षेत्रशापप्रदानाच्चबहिर्यास्यतितत्क्षणात् ॥ २ ॥ अतएवाविमुक्तस्यक्षेत्रस्यशुभशंसिनः ॥ भविष्यतिशुभंनित्यमन्यथात्वन्यथैवहि ॥ ३ ॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंव्यासशापविमोक्षणम् ॥ महादुर्गोपसर्गेभ्योभयंतस्यनकुत्रचित् ॥ २०४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेव्यासशापविमोक्षणंनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कि, हे अगस्त्यजी ! इस प्रकार वह व्यासजी क्षेत्रमें शापको अधिकतासे देवेंगे और क्षेत्रके शापप्रदानसे उसही क्षणमें बाहर जावेंगे ॥ २ ॥ इससेही क्षेत्रके शुभ शंसीजनका नित्यही शुभहोवेगा और अन्यथा याने अशुभवक्ता का अन्यथा (अशुभ) ही होवेगा ॥ ३ ॥ व्यासशाप विमोक्षण नामक इसमनोहर अध्यायको सुनकर उसका बड़े उग्रउपद्रवोंसे भी कहीं भी डर नहीं है ॥२०४॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेव्यासशापविमोक्षणंनामषण्णवतितमोऽध्यायः॥९६॥

दो० । सातनवे अध्यायमें क्षेत्र सुतीर्थ बखान । जिनके सुनतहि देखतहि महा पापकाहान ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे शिवनन्दन ! श्रीव्यासजी के इस भविष्यको सुनकर मैं आश्चर्य्य का पात्रहुआ इस समय आप तीर्थोंको कहो ॥ १ ॥ हे षण्मुख ! आनन्दवन में जे जहां हैं उन लिंग स्वरूपों को मेरे आगे भलीभांति कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भसेउत्पन्न अगस्त्यजी ! यहही प्रश्न देवीजी के लिये महादेवजी से जैसा कहा गया है वैसेको मैं निश्चयसे कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि, हे प्रभो, महेश्वर ! जे जे तीर्थ इस काशीमें जहां जहां हैं उन उनको वहां वहांहीं मुझसे कहो ॥ ४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे विशालाक्षि, देवि !

अगस्त्यउवाच ॥ एतद्भविष्यंश्रुत्वाहंव्यासस्यशिवनन्दन ॥ आश्चर्यभाजनंजातस्तीर्थानिकथयाधुना ॥ १ ॥ आनन्दकाननेयानियत्रसन्तिषडानन ॥ तानिलिङ्गस्वरूपाणिसमाचक्ष्वममाग्रतः ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अयमेवहिवैप्रश्नोदेव्यैदेवेनभोस्तदा ॥ यादृशःकथितोवाच्मितादृशंशृणुकुम्भज ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ यानियानीहितीर्थानियत्रयत्रमहेश्वर ॥ तानितानीहमेकाश्यांतत्रतत्रवदप्रभो ॥ ४ ॥ देवदेवउवाच ॥ शृणुदेविविशालाक्षितीर्थंलिङ्गमुदाहृतम् ॥ जलाशयेपितीर्थाख्याजातामूर्तिपरिग्रहात् ॥ ५ ॥ मूर्तयोब्रह्मविष्ण्वर्कशिवविघ्नेश्वरादिकाः ॥ लिङ्गंशैवमितिख्यातंयत्रैतत्तीर्थमेवतत् ॥ ६ ॥ वाराणस्यांमहादेवःप्रथमंतीर्थमुच्यते ॥ तदुत्तरेमहाकूपःसारस्वतपदप्रदः ॥ ७ ॥ क्षेत्रपूर्वोत्तरेभागेतद्दृष्टंपशुपाशहृत् ॥ तत्पश्चाद्विग्रहवतीपूज्यावाराणसीनरैः ॥ ८ ॥ सापूजिताप्रयत्नेनसुखवास्तिप्रदासदा ॥ महादेवस्यपूर्वेणगोप्रेक्षंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्सम्यग्गोदानजनितंफलम् ॥ गोलोकात्प्रेषितागावःपूर्वंय

लिङ्गही तीर्थ कहा गया है मूर्त्तियों के परिग्रह (सब ओर ग्रहण) से जलाशय में भी तीर्थ नाम हुआ है ॥ ५ ॥ ब्रह्मा विष्णु सूर्य्य शिव गणेशादि मूर्त्तियां हैं और शिवसम्बन्धी मूर्त्तिरूप लिंग ऐसा सब ओरसे कहागया है जहां यहहै वहही उत्तम तीर्थ है ॥ ६ ॥ काशी में महादेवजी पहलातीर्थ कहेजाते हैं उनसे उत्तर में सरस्वती स्थानके देनेवाला सारस्वत महाकूपहै ॥ ७ ॥ व क्षेत्रके पूर्वोत्तर भाग में देखा हुआ वह पशुपाशहर्ता है याने जीवोंके चौबीस तत्त्वरूप पाशों को दूरकर्त्ता है व उसके पीछे मूर्त्तिमती काशीपुरी मनुष्यों से पूजनीय है ॥ ८ ॥ और बड़ेयत्न से सदैव पूजीहुई वह सुख समेत सुवास देनेवाली है व महादेवसे पूर्वमें गोप्रेक्षेश्वर नामक उत्तम

लिंगहै ॥ ९ ॥ उसके दर्शन से गोदानसे जनितफल भलीभांति होवे है और जिससे पूर्व समय में शम्भुजी ने आपही गोलोकसे गौवोंको पठायाहै ॥ १० ॥ व वे काशी को भलीभांति आई हैं व उन्होने जिस लिंगको देखा है उससे वह गोप्रेक्षेश्वर कहाता है व गोप्रेक्षेश्वर से दक्षिणभाग में दधीचेश्वर नामक लिंग है ॥ ११ ॥ उसके दर्शनसे मनुष्यों को यज्ञसे समुत्पन्न हुआ फल होवे है और उससे पूर्वमें मधुकैटभ से पूजित अत्रीश्वर ॥ १२ ॥ लिंगको बड़े यत्नसे देखकर विष्णु के लोकको जाताहै व गोप्रेक्षेश्वरसे पूर्व दिशाके भागमें विज्वर नामक लिंग प्रसिद्धतासे कहागयाहै ॥ १३ ॥ उसके सम्पूजन से मनुष्य क्षणभर में ज्वरसेहीन होजाता है व उसके पूर्व में

च्छम्भुनास्वयम् ॥ १० ॥ वाराणसींसमायातागोप्रेक्षंतत्ततःस्मृतम् ॥ गोप्रेक्षाद्दक्षिणेभागेदधीचीश्वरसञ्ज्ञितम्॥११॥ तद्दर्शनाद्भवेत्पुंसांफलंयज्ञसमुद्भवम् ॥ अत्रीश्वरंतुतत्प्राच्यांमधुकैटभपूजितम् ॥ १२॥ लिङ्गंदृष्ट्वाप्रयत्नेनवैष्णवंपद मृच्छति ॥ गोप्रेक्षात्पूर्वदिग्भागेलिङ्गंवैविज्वरंस्मृतम् ॥ १३ ॥ तस्यसम्पूजनान्मर्त्योविज्वरोजायतेक्षणात् ॥ प्राच्यां वेदेश्वरस्तस्यचतुर्वेदफलप्रदः ॥ १४ ॥ वेदेश्वरादुदीच्यान्तुक्षेत्रज्ञश्चादिकेशवः ॥ दृष्टन्त्रिभुवनंसर्वन्तस्यसन्दर्शना द्ध्रुवम् ॥ १५ ॥ सङ्गमेश्वरमालोक्यतत्प्राच्याञ्जायतेनघः ॥ चतुर्मुखेनविधिनातत्पूर्वेणचतुर्मुखम् ॥ १६ ॥ प्रयागसंज्ञ कंलिङ्गमर्चितम्ब्रह्मलोकदम् ॥ तत्रशान्तिकरीगौरीपूजिताशान्तिकृद्भवेत ॥ १७ ॥ वरणायास्तटेपूर्वेपूज्यंकुन्तीश्वरं नृभिः ॥ तत्पूजनात्प्रजायन्तेपुत्रानिजकुलोज्ज्वलाः ॥ १८ ॥ कुन्तीश्वरादुत्तरतस्तीर्थंवैकापिलोह्रदः ॥ तत्रवैस्नानमा

चारो वेदोंके फलों के दाता वेदेश्वर लिंग हैं ॥ १४ ॥ व वेदेश्वर से उत्तर में क्षेत्रज्ञ (ईश्वर) आदिकेशव हैं उनके भलीभांति दर्शन से सब त्रिलोक निश्चय से देखा हुआ होता है ॥ १५ ॥ व उससे पूर्वमें सङ्गमेश्वर के सब ओर या सामने से देखकर पापों से हीन होजाता है उसके पूर्व मे चारमुखवाले ब्रह्माजी ने चतुर्मुख लिंगकी स्थापना किया है ॥ १६ ॥ व प्रयागसंज्ञक लिङ्ग पूजित होकर ब्रह्मलोक का दाता है वहां पूजीहुई शान्तिकरी गौरी शांति करनेवाली होवे है ॥ १७ ॥ व वरणा के पूर्व किनारे मे कुन्तीश्वर लिङ्ग मनुष्यों से पूजनीय है उसकी पूजा से अपने कुल में उज्ज्वल, पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ व कुन्तीश्वर से उत्तर में कपिलका कुण्ड तीर्थ प्र-

सिद्ध है वहां भी स्नानमात्र से और वृषभध्वज शिवकी पूजा से ॥ १९ ॥ राजसूय यज्ञका सकलफल होवै है और करोडों संख्यक जे कोई पितर रौरवादि नरकों में हैं ॥ २० ॥ वे वहां पुत्रों से श्राद्ध के किये हुये होतेही पितृलोक को पयान करते हैं हे मुने ! गोप्रेक्ष से उत्तर में आनुसूयेश्वर लिंग है ॥ २१ ॥ उसके दर्शन से स्त्रियों को पातिव्रत्यका स्पष्ट फलहोवे है व उस लिङ्ग से पूर्वदिशा के भाग में सिद्धिविनायक पूज्नीय हैं ॥ २२ ॥ व जो जिससिद्धि की वाञ्छा करे है वह उसको उनके नमस्कार से प्राप्तहोता है और उनगणेश से पश्चिम मे हिरण्यकशिपुका लिङ्ग है ॥ २३ ॥ व वहां सोना और घोडों की समृद्धि करनेवाला हिरण्यकूप है ॥ २४ ॥ उससे पश्चिम

त्रेणवृषभध्वजपूजनात् ॥ १९ ॥ राजसूयस्ययज्ञस्यफलन्त्वविकलम्भवेत् ॥ रौरवादिषुयेकेचित्पितरःकोटिसम्मिताः ॥ २० ॥ तत्रश्राद्धेकृतेपुत्रैःपितृलोकंप्रयान्तिते ॥ आनुसूयेश्वरंलिङ्गङ्गोप्रेक्षादुत्तरेमुने ॥ २१ ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्स्त्रीणाम्पातिव्रत्यफलंस्फुटम् ॥ तल्लिङ्गपूर्वदिग्भागेपूज्यःसिद्धिविनायकः ॥ २२ ॥ यांसिद्धिंयःसमीहेतसतामाप्नोतितन्नतेः ॥ हिरण्यकशिपोर्लिङ्गङ्गणेशात्पश्चिमेततः ॥ २३ ॥ हिरण्यकूपस्तत्रास्तिहिरण्याश्वसमृद्धिकृत ॥ २४ ॥ मुण्डासुरेश्वरंलिङ्गन्तत्प्रतीच्याञ्चसिद्धिदम् ॥ अभीष्टदन्तुनैर्ऋत्याङ्गोप्रेक्षाद्वृषभेश्वरम् ॥ २५ ॥ मुनेस्कन्देश्वरंलिङ्गंमहादेवस्यपश्चिमे ॥ तल्लिङ्गपूजनान्नृणाम्भवेन्ममसलोकता ॥ २६ ॥ तत्पार्श्वतोहिशाखेशोविशाखेशश्चतत्रवै ॥ नैगमेयेश्वरस्तत्रयेन्येनन्द्यादयोगणाः ॥ २७ ॥ तेषामपिहिलिङ्गानितत्रसन्तिसहस्रशः ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्पुंसान्तत्तद्गणसलोकता ॥ २८ ॥ नन्दीश्वरात्प्रतीच्याञ्चशिलादेशःकुधीहरः ॥ महाबलप्रदस्तत्रहिरण्याक्षेश्वरःशुभः ॥ २९ ॥ तद्दक्षिणेसुखाख्यंलिङ्गं

में सिद्धिदायक मुण्डासुरेश्वर लिङ्गहै व गोप्रेक्षसे नैर्ऋत्य कोण में अभीष्टदाता वृषभेश्वर लिंग है ॥ २५ ॥ हे मुने ! महादेवेश्वर के पश्चिम में स्कन्देश्वर लिंग है उसलिंग की पूजा से पुरुषों की मेरे समान लोकता होती है ॥ २६ ॥ और वहांही उसके पार्श्व (पास) में शाखेश व विशाखेश प्रसिद्ध हैं व वहां नैगमेयेश्वर नामक लिंग है और जेकि अन्य नन्दीश्वरादिगण हैं ॥ २७ ॥ उनके भी वहांही हजारों लिंग हैं उनके दर्शन से मनुष्यों को उस उस गण के समान लोकका भाव होवे है ॥ २८ ॥ व नन्दीश्वर से पश्चिम में कुबुद्धिका हर्त्ता शिलादेश्वर लिंग है और वहांही बड़े बलका प्रदाता मंगलमय हिरण्याक्षेश्वर लिंग है ॥ २९ ॥ उससे दक्षिण में सर्वसुखप्रद

अट्टहास नामक लिंग है उसके उत्तर में प्रसन्नवदनेश्वर नामक शुभलिंगहै ॥ ३० ॥ उसके शुभदर्शन से भक्त प्रसन्नमुखवाला होकर टिकै है उससे उत्तर में मनुष्यों को निर्मलता का दाता प्रसन्नोद नामक कुण्ड है ॥ ३१ ॥ व अट्टहास के पश्चिम में मित्र और वरुण के नामवाले याने मित्रेश्वर व वरुणेश्वर ये दो लिंग हैं जे कि उन दोनो देवो की सलोकता के दायक व पूजनीय व महा पापों के हर्त्ता हैं ॥ ३२ ॥ और अट्टहास के नैर्ऋत्य कोण में वृद्ध वासिष्ठ संज्ञक लिंग है उसकी पूजा से मनुष्यों के बड़ाज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥ व वसिष्ठेश्वर के समीप में टिकेहुये विष्णुलोकके दाता कृष्णेश्वर हैं उनसे दाक्षिण में ब्रह्मतेज के विशेषतासे बढ़ानेवाले याज्ञवल्क्येश्वर

सर्वसुखप्रदम् ॥ प्रसन्नवदनेशाख्यंलिङ्गन्तस्योत्तरेशुभम् ॥ ३० ॥ प्रसन्नवदनस्तिष्ठेद्भक्तस्तद्दर्शनाच्छुभात् ॥ तदुत्तरेप्रसन्नोदंकुण्डन्नैर्मल्यदंनृणाम् ॥ ३१ ॥ प्रतीच्यामट्टहासस्यमित्रावरुणनामनी ॥ लिङ्गेतल्लोकदेपूज्येमहापातकहारिणी ॥ ३२ ॥ नैर्ऋत्यामट्टहासस्यवृद्धवासिष्ठसंज्ञकम् ॥ लिङ्गन्तत्पूजनात्पुंसांज्ञानमुत्पद्यतेमहत् ॥ ३३ ॥ वसिष्ठेशसमीपस्थःकृष्णेशोविष्णुलोकदः ॥ तद्याम्यांयाज्ञवल्क्येशोब्रह्मतेजोविवर्धनः ॥ ३४ ॥ प्रह्लादेश्वरमभ्यर्च्यतत्पश्चाद्भक्तिवर्धनम् ॥ स्वयंलीनःशिवोयत्रभक्तानुग्रहकाम्यया ॥ ३५ ॥ अतःस्वलीनन्तत्पूर्वेलिङ्गंपूज्यम्प्रयत्नतः ॥ सदैवज्ञाननिष्ठानाम्परमानन्दमिच्छताम् ॥ यागतिर्विहितातेषांस्वलीनेसातनुत्यजाम् ॥ ३६ ॥ वैरोचनेश्वरंलिङ्गंस्वलीनात्पुरतःस्थितम् ॥ तदुत्तरेबलीशञ्चमहाबलविवर्धनम् ॥ ३७ ॥ तत्रैवलिङ्गंबाणेशम्पूजितंसर्वकामदम् ॥ चन्द्रेश्वरस्यपूर्वेणलिङ्गंविद्येश्वराभिधम् ॥ ३८ ॥ सर्वाविद्याःप्रसन्नाःस्युस्तस्यलिङ्गस्यसेवनात् ॥ तद्दक्षिणेतुवीरेशोमहासिद्धिविधायकः ॥ ३९ ॥

हैं ॥ ३४ ॥ उनसे पश्चिम में प्रह्लादेश्वर को सामनेसे पूजकर भक्तिका बढ़ना होताहै और शिवजी आपही भक्तोंपर दया करने की इच्छा से जहां लीन हुये हैं ॥ ३५ ॥ इस से वह स्वलीनेश्वर नामक लिंग उस प्रह्लादेश्वर से पूर्व में बड़े यत्न से पूजने योग्य हैं व परमानन्दकी इच्छा करते हुये सदैव ज्ञान में निष्ठावाले उनलोगों की जो गति (मुक्ति) विहित है वह स्वलीनके समीप मे देह त्यागियो की होती है ॥ ३६ ॥ वस्वलीनेश्वर के आगे वैरोचनेश्वर लिंग टिका है और उससे उत्तर में बड़े बलका विवर्धक बलीश्वर है ॥ ३७ ॥ व वहाहीं बाणेश्वर लिंगहै जो कि पूजित होकर सब कामोंका दाता है और चन्द्रेश्वरसे पूर्व में विद्येश्वर नामक लिंग है ॥ ३८ ॥ उसलिंग

की सेवा से सब विद्यायें प्रसन्न होवे हैं उसके दक्षिण में महासिद्धि कर्त्ता वीरेश्वर हैं ॥ ३९ ॥ वहांही सबदुःख समूहों की छुड़ानेवाली विकटा देवी हैं वह पञ्चमुद्र नामक महापीठ सब सिद्धिदायक जानने योग्य है ॥ ४० ॥ वहां जपेहुये महामन्त्र शीघ्रहीसिद्ध होते हैं अन्यथा नहीं उस पीठ के वायव्य कोणमें सगरेश्वर पूजनीय हैं ॥ ४१ ॥ उस लिंगकी पूजा से अश्वमेध यज्ञ का सम्पूर्ण फल होवे है व उससे ईशानकोणमें तिर्य्यग् योनि के निवारण कर्त्ता बालीश्वर हैं ॥ ४२ ॥ व उसके उत्तरमें महापाप समूहों के विनाशक सुग्रीवेश्वर जी वर्त्तमान हैं वहांही ब्रह्मचर्य्य के फलप्रदायक हनूमदीश्वरहैं ॥ ४३ ॥ व वहां बड़ीबुद्धि के दाता जाम्बवदीश्वर पूजनीयहैं और गंगा के पश्चिम

तत्रैवविकटादेवीसर्वदुःखौघमोचनी ॥ पञ्चमुद्रम्महापीठन्तज्ज्ञेयंसर्वसिद्धिदम् ॥ ४० ॥ तत्रजप्तामहामन्त्राःक्षिप्रंसिद्ध्यन्तिनान्यथा ॥ तत्पीठेवायुकोणेतुसम्पूज्यःसगरेश्वरः ॥४१॥ तदर्चनादश्वमेधफलन्त्वविकलम्भवेत् ॥ तदीशानेचबालीशस्तिर्यग्योनिनिवारकः ॥४२॥ महापापौघविध्वंसीसुग्रीवेशस्तदुत्तरे ॥ हनूमदीश्वरस्तत्रब्रह्मचर्यफलप्रदः ॥ ४३ ॥ महाबुद्धिप्रदस्तत्रपूज्योजाम्बवतीश्वरः ॥ आश्विनेयेश्वरौपूज्यौगङ्गायाःपश्चिमेतटे ॥ ४४ ॥ तदुत्तरेभद्रह्रदोगवांक्षीरेणपूरितः ॥ कपिलानांसहस्रेणसम्यग्दत्तेनयत्फलम् ॥ ४५ ॥ तत्फलंलभतेमर्त्यःस्नातोभद्रह्रदेध्रुवम् ॥ पूर्वाभाद्रपदायुक्तापौर्णमासीयदाभवेत् ॥ ४६ ॥ तदापुण्यतमःकालोवाजिमेधफलप्रदः ॥ ह्रदपश्चिमतीरेतुभद्रेश्वरविलोकनात् ॥ ४७ ॥ गोलोकम्प्राप्नुयात्तस्मात्पुण्यान्नैवात्रसंशयः ॥ भद्रेश्वराद्यातुधान्यामुपशान्तशिवोमुने ॥ ४८ ॥ तस्यलिङ्गस्यसंस्पर्शात्परांशान्तिसमृच्छति ॥ उपशान्तशिवंलिङ्गंदृष्ट्वाजन्मशतार्जितम् ॥ ४९ ॥ त्यजेदश्रेयसोरा

किनारे में अश्विनी कुमारों के थापे आश्विनेयेश्वर नामक दो लिंग पूजने योग्य हैं ॥ ४४ ॥ उनसे उत्तर में गौओं के दूधसे पूरित भद्रकुण्ड है और भलीभांति दिये हुये कपिला गौओं के हजारों से जो फल है ॥ ४५ ॥ उस फलको भद्रह्रद में नहाया हुआ मनुष्य निश्चय से पाता है जब पूर्वभाद्रपद नक्षत्र से युक्त पूर्णमासी होवे ॥ ४६ ॥ तब अश्वमेध के फल का दायक बहुतही अधिक पुण्यकाल है व भद्रह्रद के पश्चिम किनारे में भद्रेश्वर के दर्शन से ॥ ४७ ॥ जो पुण्य है उस पुण्य से गोलोक को प्राप्त होवे है इसमें संशय नहीं है हे मुने ! भद्रेश्वर से नैर्ऋत्य कोणमें उपशांत शिव हैं ॥ ४८ ॥ उस लिंगके भलीभांति छूने से श्रेष्ठ शांतिको संप्राप्त होताहै उपशांत शिव

नामक लिंग को देखकर सकड़ों जन्मों की बटोरी ॥ ४९ ॥ अमंगल या पापकी राशिको त्यागदेते हैं और पुण्यकी राशिको पाता है और उसके उत्तर में योनिचक्र के निवारण कर्त्ता चक्रेश्वर हैं ॥ ५० ॥ उनके उत्तर में महापुण्यों का विवर्धक चक्रहृद (कुण्ड) है उस चक्रकुण्ड में स्नानकर और चक्रेश्वर को सब ओर से पूजकर मनुष्य ॥ ५१ ॥ भक्तियुक्त चित्त से शिवलोक को पाता है ॥ उसके नैर्ऋत्य कोण में शूलेश्वर बडे यत्न से देखने योग्य हैं ॥ ५२ ॥ हे वरवर्णिनि पार्वति ! पूर्वकाल में मैंने स्नान के अथ वहां त्रिशूलको धरदिया उस स्थान में शूलेश्वर के आगे बड़ाभारी कुण्ड समुत्पन्न हुआ है ॥ ५३ ॥ उस कुण्ड में स्नान को कर व समर्थ शूलेश्वर को देखकर

शिंश्रेयोराशिञ्चविन्दति ॥ तदुत्तरेचचक्रेशोयोनिचक्रनिवारकः ॥ ५० ॥ तदुत्तरेचक्रहृदोमहापुण्यविवर्धनः ॥ स्नात्वाचक्रहृदेमर्त्यश्चक्रेशम्परिपूज्यच ॥ ५१ ॥ शिवलोकमवाप्नोतिभावितेनान्तरात्मना ॥ तन्नैर्ऋतेचशूलेशोद्रष्टव्यश्चप्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ शूलन्तत्रपुरान्यस्तंस्नानार्थंवरवर्णिनि ॥ हृदस्तत्रसमुत्पन्नःशूलेशस्याग्रतोमहान् ॥ ५३ ॥ स्नानंकृत्वाहृदेतत्रदृष्ट्वाशूलेश्वरंविभुम् ॥ रुद्रलोकंनरायान्तित्यक्त्वासंसारगह्वरम् ॥ ५४ ॥ तत्पूर्वतोनारदेनतपस्तप्तंमहत्तरम् ॥ लिङ्गञ्चस्थापितंश्रेष्ठंकुण्डञ्चापिशुभंकृतम् ॥ ५५ ॥ तत्रकुण्डेनरःस्नात्वादृष्ट्वावैनारदेश्वरम् ॥ संसाराब्धिम्महाघोरंसन्तरेन्नात्रसंशयः ॥ ५६ ॥ नारदेश्वरपूर्वेणदृष्ट्वावभ्रातकेश्वरम् ॥ निर्मलाङ्गतिमाप्नोतिपापौघञ्चविमुञ्चति ॥ ५७ ॥ तदग्रेताम्रकुण्डञ्चतत्रस्नातोनगर्भभाक् ॥ विघ्नहर्तागणाध्यक्षस्तद्वायव्येसुविघ्नहृत ॥ ५८ ॥ तत्रविघ्नहरंकुण्डन्तत्र

मनुष्य संसार रूप गुफा या वन या कुञ्ज को छोंड़कर रुद्र लोकको जाते हैं ॥ ५४ ॥ उसके पूर्व में नारद मुनि ने बडीभारी तपस्या को तपा है व श्रेष्ठ लिंगको थापा है और शुभकुण्ड को भी किया है ॥ ५५ ॥ उस कुण्ड में स्नानकर व नारदेश्वर को देखकर मनुष्य निश्चय से बडे घोर संसार सागर को भलीभांति उतरजावे इसमें संशय नहीं है ॥ ५६ ॥ व नारदेश्वर के पूर्व में अवभ्रातकेश्वर को देखकर निर्मलगति को प्राप्त होता है और पापों के समूह को विशेषता से छोडदेता है ॥ ५७ ॥ उसके आगे ताम्रकुण्ड है उस मे नहाया हुआ गर्भसेवी नहीं है व उसके वायव्य कोण में अच्छेविघ्नों के हरनेवाले विघ्नहर्त्ता गणेश हैं ॥ ५८ ॥ और वहां विघ्नहर कुण्ड है उस में

नहाया हुआ मनुष्य विघ्नसेवी नहीं होता है व उससे उत्तर दिशामें उत्तम अनारकेश्वर लिंग है ॥ ५९ ॥ और अनारक नामक कुण्ड भी प्रसिद्ध है उसमें नहाया हुआ नर नरक निवासी नहीं होता है उसके उत्तर मे वरणा नदी के मनोहर किनारे पर वरणेश्वर विराजमान हैं ॥ ६० ॥ और हे महामुने ! वहां सिद्ध हुये पाशुपत (शिवभक्त) अक्षयपाद मुनि इसही देह से निरन्तर रहनेवाली अखण्ड सिद्धि को सब ओर से प्राप्त होगये हैं ॥ ६१ ॥ व उससे पश्चिम में श्रेष्ठमुक्ति और कामों के दाता शैलेश्वर हैं व उन से दक्षिण मे सदैव रहनेवाली सिद्धि का दायक कोटीश्वर लिंग है ॥ ६२ ॥ कोटितीर्थ कुण्ड में स्नानकर फिर कोटीश्वर को सब ओर से पूजकर मनुष्य करोड़

स्नातोनविघ्नभाक् ॥ अनारकेश्वरंलिङ्गन्तदुदग्दिशिचोत्तमम् ॥ ५९ ॥ कुण्डञ्चानारकाख्यंवैतत्रस्नातोननारकी ॥ वरणायास्तटेरम्येवरणेशस्तदुत्तरे ॥ ६० ॥ तत्रपाशुपतःसिद्धस्त्वक्षपादोमहामुने ॥ अनेनैवशरीरेणशाश्वतींसिद्धिमागतः ॥ ६१ ॥ तत्पश्चिमेचशैलेशःपरंनिर्वाणकामदः ॥ कोटीश्वरन्तुतद्याम्यांलिङ्गंशाश्वतसिद्धिदम् ॥ ६२ ॥ कोटितीर्थेह्रदेस्नात्वाकोटीशम्परिपूज्यच ॥ गवाङ्कोटिप्रदानस्यफलमाप्नोतिमानवः ॥ ६३ ॥ महाश्मशानस्तम्भोस्तिकोटीशाद्वह्निदिक्स्थितः ॥ तस्मिन्स्तम्भेमहारुद्रस्तिष्ठतेचोमयासह ॥ ६४ ॥ तंस्तम्भंसमलंकृत्यनरस्तत्पदमाप्नुयात् ॥ तत्रैवतीर्थंपरमंकपालेशसमीपतः ॥ ६५ ॥ कपालमोचनंनामतत्रस्नातोऽश्वमेधभाक् ॥ ऋणमोचनतीर्थन्तुतदुदग्दिशिशोभनम् ॥ ६६ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वामुक्तोभवतिचर्णतः ॥ तत्रैवाङ्गारकन्तीर्थंकुण्डञ्चाङ्गारनिर्मलम् ॥ ६७ ॥ स्नात्वा

गौओं के बड़े दानका फल पाता है ॥ ६३ ॥ व कोटीश्वर से अग्निकी दिशा में टिकाहुआ महाश्मशान स्तम्भहै जो कि कुलस्तम्भ इसनाम से प्रसिद्ध है उस स्तम्भ (खम्भ) में पार्वतीजी के साथ महारुद्रजी टिकते हैं ॥ ६४ ॥ उस खम्भ को भलीभांति भूपितकर मनुष्य उन महारुद्र के स्थान को या पदको पावे है वहांही कपालेश्वर के समीप में अधिक उत्तम तीर्थ ॥ ६५ ॥ कपाल मोचन नाम से प्रसिद्ध है उसमें नहाया हुआ अश्वमेध यज्ञ के फलका सेवीहै और उससे उत्तर दिशामें शोभन ऋणमोचन तीर्थ है ॥ ६६ ॥ उस तीर्थ में नहाकर नर सब ऋणों से मुक्त होता है और वहांही अंगार के समान निर्मल अंगारक तीर्थ नामक कुण्ड है ॥ ६७ ॥ उस अंगारक

तीर्थ में स्नानकर फिर गर्भमेवी न होवे और जो मनुष्य मंगल दिन से युक्त चौथितिथि में वहां नहाता है वह रोगों से तिरस्कृत नहीं होवेहै व कभी दुःखी नहीं होता है ॥ ६८ ॥ फिर उससे उत्तर में ज्ञानदाता विश्वकर्मेश्वर लिंग है व उसके दक्षिण में मंगलमय महामुण्डेश्वर लिंग है ॥ ६९ ॥ और शुभोदक नामक कूप भी है उसमें निश्चिन्त नहाना चाहिये व वहां अत्यन्त अच्छीमुण्डमयीमाला मुझमे फेंकीगई है ॥ ७० ॥ उसमे पापहारिणी महामुण्डा देवी समुत्पन्नहुई हैं और वहां खट्वांगधरागयाहै उसस खट्वांगेश्वर लिंग हुआ है ॥ ७१ ॥ उस खट्वांगेश्वर के दर्शन से मनुष्य पापों से हीन होजाता है और उससे दक्षिण में भुवनेश्वर लिंग व भुवनेश्वर कुण्ड

ङ्गारकतीर्थेतुभवेद्भूयोनगर्भभाक् ॥ अङ्गारवारयुक्तायाञ्चतुर्थ्यांस्नातियोनरः ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयेतनचदुःखीकदाचन ॥ ६८ ॥ विश्वकर्मेश्वरंलिङ्गंज्ञानदञ्चतदुत्तरे ॥ महामुण्डेश्वरंलिङ्गन्तस्यदक्षिणतःशुभम् ॥ ६९ ॥ कूपःशुभोदनामापिस्नातव्यन्तत्रनिश्चितम् ॥ तत्रमुण्डमयीमालामयाक्षिप्तातिशोभना ॥ ७० ॥ महामुण्डाततोदेवीसमुत्पन्नाघहारिणी ॥ खट्वाङ्गञ्चधृतन्तत्रखट्वाङ्गेशस्ततोभवत् ॥ ७१ ॥ निष्पापोजायतेमर्त्यःखट्वाङ्गेशविलोकनात् ॥ भुवनेशस्ततोयाम्यांकुण्डञ्चभुवनेश्वरम् ॥ ७२ ॥ तत्रकुण्डेनरःस्नातोभुवनेशोभवेन्नरः ॥ तद्याम्यांविमलेशश्चकुण्डञ्चविमलोदकम् ॥ ७३ ॥ तत्रस्नात्वाविलोक्येशंविमलोजायतेनरः ॥ तत्रपाशुपतःसिद्धस्त्र्यम्बकोनामनामतः ॥ ७४ ॥ अनेनैवशरीरेणरुद्रलोकमवाप्तवान् ॥ भृगोरायतनन्तस्यपश्चिमेतीवपुण्यदम् ॥ ७५ ॥ विधिपूर्वन्तदभ्यर्च्यप्राप्नुयाच्छिवमन्दिरम् ॥ शुभेश्वरश्चतद्याम्यांमहाशुभफलप्रदः ॥ ७६ ॥ तत्रसिद्धःपाशुपतःकपिलर्षिर्महातपाः ॥ तत्रास्तिहिगुहार

है ॥ ७२ ॥ उस कुण्डमें नहाया हुआ नर भुवनेश्वर होवे है उसके दक्षिणमें विमलेश्वर और विमलोदक कुण्डहै ॥ ७३ ॥ उसमें स्नानकर व विमलेश्वर को देखकर मनुष्य विमल होता है वहा नाम मे त्र्यम्बक नामक पाशुपत सिद्धहुये है ॥ ७४ ॥ इसही देहसे रुद्रलोकों को गये हैं और उसके पश्चिम में अतीव पुण्यका दाता भृगुका मन्दिर है ॥ ७५ ॥ उसको विधि पूर्वक सामने से पूजकर शिवजी के स्थान को प्राप्त होवे व उससे दक्षिण मे बड़े शुभफल के दाता शुभेश्वर हैं ॥ ७६ ॥ वहां पशुपति के भक्त

महातपस्वी कपिलऋषि सिद्ध हुये हैं व उस स्थान मेंही कपिलेश्वर के समीप में रम्य गुफा है ॥ ७७ ॥ उस गुफा में जोई प्रवेश करे वह माता के गर्भ में कभी नहीं पैठे व वहां अश्वमेध यज्ञ के फलका बड़ा दायक यज्ञोद कूप है ॥ ७८ ॥ यहही वह अकारादि अक्षरमयात्मक ॐकार है और मत्स्योदरी के उत्तर किनारे में नादेश्वर मैंहीहूं ॥ ७९ ॥ नादेश्वर परब्रह्म हैं नादेश्वर परमगति हैं नादेश्वर परमस्थानहैं और नादेश्वर दुःख व संसार के छुड़ानेवाले हैं ॥ ८० ॥ व कभी उन देव के दर्शन के लिये गंगा वहां जाती हैं वहही मत्स्योदरी कहीगई हैं और पुण्यों से उसमें स्नान मिलता है ॥ ८१ ॥ हे महादेवि! जब मत्स्योदरी गंगा पश्चिम में कपिलेश्वर के समीप

म्याकपिलेश्वरसन्निधौ ॥७७॥ तांगुहाम्प्रविशेद्योवैनसगर्भेविशेत्कचित् ॥ तत्रयज्ञोदकूपोस्तिवाजिमेधफलप्रदः ॥७८॥ ॐकारएषएवासावादिवर्णमयात्मकः ॥ मत्स्योदर्युत्तरेकूलेनादेशस्त्वहमेवच ॥७९॥ नादेशःपरमम्ब्रह्मनादेशःपरमागतिः ॥ नादेशःपरमंस्थानन्दुःखसंसारमोचनम् ॥ ८० ॥ कदाचित्तस्यदेवस्यदर्शनेयातिजाह्नवी ॥ मत्स्योदरीसाकथिता स्नानम्पुण्यैरवाप्यते ॥ ८१ ॥ मत्स्योदरीयदागङ्गापश्चिमेकपिलेश्वरम् ॥ समायातिमहादेवितदायोगःसुदुर्लभः ॥ ८२ ॥ उद्दालकेश्वरंलिङ्गमुदीच्याङ्कपिलेश्वरात् ॥ तद्दर्शनेनसंसिद्धिःपरासर्वैरवाप्यते ॥ ८३ ॥ तदुत्तरेबाष्कुलीशंलिङ्गंसर्वार्थसिद्धिदम् ॥ बाष्कुलीशाद्दक्षिणतोलिङ्गंवैकौस्तुभेश्वरम् ॥ ८४ ॥ तस्यार्चनेनरत्नौघैर्नवियुज्येतकर्हिचित् ॥ शंकुकर्णेश्वरंलिङ्गंकौस्तुभेश्वरदक्षिणे ॥ ८५ ॥ संसेव्यपरमंज्ञानंलभेद्यापिसाधकः ॥ अघोरेशोगुहाद्वारिकूपस्तस्योत्तरे शुभः ॥ ८६ ॥ अघोरोदइतिख्यातोवाजिमेधफलप्रदः ॥ गर्गेशोदमनेशश्चतत्रलिङ्गद्वयंशुभम् ॥ ८७ ॥ अनेनैवेहदेहेन

भलीभांति आती है तब योग बहुत दुर्लभ है ॥ ८२ ॥ व कपिलेश्वर से उत्तर में उद्दालकेश्वर लिंग है उसके दर्शन से सब को श्रेष्ठ संसिद्धि मिलती है ॥ ८३ ॥ उसके उत्तर में सर्वार्थसिद्धिदाता बाष्कुलीश्वर लिंग है और बाष्कुलीश्वर से दक्षिणमें कौस्तुभेश्वर लिंग प्रसिद्ध है ॥ ८४ ॥ उसकी पूजा से रत्नों के समूहों से कभी न हीन होवे व कौस्तुभेश्वर के दक्षिण में शंकुकर्णेश्वर लिंग है ॥ ८५ ॥ उसकी भलीभांति सेवाकर साधक नर परम ज्ञान को पावे है और गुफाके द्वारमें अघोरेश्वर हैं उन के उत्तर में शुभकूप है ॥ ८६ ॥ जोकि अघोरोद ऐसे नामसे कहागया है या प्रसिद्धहै व अश्वमेध के फलका प्रदायक है व वहां गर्गेश्वर और दमनेश्वर ये दो शुभ लिंग

हैं ॥ ८७ ॥ जहां वे गर्ग और दमन दोनोंजने इसही देह से यहां सिद्धि को प्राप्तहुयेहैं उनके थापे लिंगों के सम्पूजन से वांछित सिद्धि होवे है ॥ ८८ ॥ उसके दक्षिण में महाकुण्ड है जोकि रुद्रावास ऐसा कहागया है वहां रुद्रेश्वर को सामने से पूजकर करोड रुद्रसूक्त के जपका फल पावे है ॥ ८९ ॥ हे पार्वती ! जब आर्द्रा नक्षत्र से संयुक्त चतुर्दशी तिथि होवे तब उस कुण्ड में बडे फलवाला पुण्यतम काल है ॥ ९० ॥ रुद्रकुण्ड में स्नानकर व समर्थ रुद्रेश्वर को देखकर जहां कहीं भी माराहुआ मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होवे ॥ ९१ ॥ व रुद्रेश्वर से नैर्ऋत्य भाग में वहां महालय लिंगहै उसके आगे पितरों का महास्थान पितृकूप है ॥ ९२ ॥ वहां श्राद्ध को कर जो मनुष्य

यत्रतौसिद्धिमापतुः॥ तल्लिङ्गयोःसमर्चातःसिद्धिर्भवतिवाञ्छिता ॥ ८८ ॥ तद्दक्षिणेमहाकुण्डंरुद्रावासइतिस्मृतम् ॥ तत्र रुद्रेशमभ्यर्च्यकोटिरुद्रफलंलभेत् ॥ ८९ ॥ चतुर्दशीयदापर्णेरुद्रनक्षत्रसंयुता ॥ तदापुण्यतमःकालस्तस्मिन्कुण्डेमहाफलः ॥ ९० ॥ रुद्रकुण्डेनरःस्नात्वादृष्ट्वारुद्रेश्वरंविभुम् ॥यत्रतत्रमृतोवापिरुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ९१ ॥ रुद्रस्यनैर्ऋतेभागेलिङ्गंतत्रमहालयम् ॥ तदग्रेपितृकूपोस्तिपितॄणामालयःपरः ॥ ९२ ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वापिण्डान्कूपेपरिक्षिपेत् ॥ एकविंशकुलोपेतःश्राद्धकृद्रुद्रलोकभाक् ॥ ९३ ॥ तत्रवैतरणीनामदीर्घिकापश्चिमानना ॥ तस्यांस्नातोनरोदेविनिरकंनैवगच्छति ॥ ९४ ॥ बृहस्पतीश्वरंलिङ्गंरुद्रकुण्डाचपश्चिमे ॥ गुरुपुष्यसमायोगेदृष्ट्वादिव्यांलभेद्गिरम् ॥ ९५ ॥ रुद्रावासाद्दक्षिणतःकामेशंलिङ्गमुत्तमम् ॥ तद्दक्षिणेमहाकुण्डंस्नानाच्चिन्तितकामदम् ॥ ९६ ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यांतत्रयात्राचकामदा ॥ नलकूबरलिङ्गञ्चप्राच्यांकामेश्वराच्छुभम् ॥ ९७ ॥ तदग्रेपावनःकूपोधनधान्यसमृद्धिदः ॥ नलकूब

पिण्डो को कूप में सब ओर से डालदेवे वह श्राद्धकर्त्ता इक्कीस पुरित के पितरों समेत होकर रुद्रलोक का सेवी होवे ॥ ९३ ॥ हे देवि ! वहां पश्चिममुखी वैतरणी नाम दीर्घिका (बावली या नदी) है उस में नहाया हुआ नर नरक को नहीं जाता है ॥ ९४ ॥ और रुद्रकुण्ड से पश्चिम मे बृहस्पतीश्वर लिंग है उसको बृहस्पतिवार व पुष्य नक्षत्र के समायोग में देखकर दिव्यवाणी को पावे ॥ ९५ ॥ व रुद्रावास से दक्षिण में उत्तम कामेश्वर लिंग है उसके दक्षिण में स्नान से चिन्तित कामोंका दायक महाकुण्ड है ॥ ९६ ॥ वहां चैतसुदी त्रयोदशीमें यात्रा सब कामनाओं की देनेवाली है और कामेश्वर से पूर्व में शुभ नलकूबरेश्वर लिंग है ॥ ९७ ॥ उसके आगे धन व धान्य की समृद्धि

का दाता पवित्र कूप है व नलकूबर से पूर्व में सूर्य्येश्वर और चन्द्रेश्वर ये दो लिंगहैं ॥ ९८ ॥ व भलीभांति पूजे हुये वे अज्ञान अन्धकार समूह को हरते हैं उनसे दक्षिण में अध्वकेश्वर हैं जोकि देखे होकर मोह के विनाशक हैं ॥ ९९ ॥ व वहां बड़ी सिद्धियों का दाता सिद्धीश्वर लिंग है और वहांही मण्डलेश्वर पद के प्रदायक याने भूमण्डल का नरनायक करनेवाले मण्डलेश्वर हैं ॥ १०० ॥ व कामकुण्ड के पूर्व में समृद्धिदाता च्यवनेश्वर हैं और वहांही राजसूय यज्ञ फलके प्रदायक सनकेश्वर हैं ॥ १ ॥ व उससे पीछे योगका सिद्धिकर्त्ता सनत्कुमारेश्वर लिंग है उसके उत्तर में बड़े ज्ञानका समर्थक सनन्दनेश्वर हैं ॥ २ ॥ व उनसे दक्षिण में आहुतीश्वर हैं

रपूर्वेणसूर्याचन्द्रमसेश्वरौ ॥ ९८ ॥ अज्ञानध्वान्तपटलींहरतस्तौसमर्चितौ ॥ तद्दक्षिणेध्वकेशश्चदृष्टोमोहविनाशनः ॥ ९९ ॥ तत्रसिद्धीश्वरंलिङ्गंमहासिद्धिसमर्पकम् ॥ तत्रैवमण्डलेशश्चमण्डलेशपदप्रदः ॥ १०० ॥ कामकुण्डस्यपूर्वेणच्यवनेशःसमृद्धिदः ॥ तत्रैवसनकेशश्चराजसूयफलप्रदः ॥ १ ॥ सनत्कुमारलिङ्गञ्चतत्पश्चाद्योगसिद्धिकृत् ॥ तदुत्तरेसनन्देशोमहाज्ञानसमर्थकः ॥ २ ॥ तद्याम्यामाहुतीशश्चदृष्टोहोमफलप्रदः ॥ तद्याम्याम्पुण्यजनकंलिङ्गंपञ्चशिखेश्वरम् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयह्रदस्तस्यपश्चिमेपुण्यवर्धनः ॥ तस्मिन्ह्रदेनरः स्नात्वाकिम्भूयःपरिशोचति ॥ ४ ॥ तत्रस्नानञ्चदानञ्च भवेदक्षयपुण्यदम् ॥ तदुत्तरेचकुण्डेशःसर्वसिद्धैर्नमस्कृतः ॥ ५ ॥ दीक्षाम्पाशुपतींलब्ध्वाद्वादशाब्देनयत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेविप्रमर्त्यःकुण्डेशदर्शनात् ॥ ६ ॥ मार्कण्डेयह्रदात्पूर्वेशाण्डिल्येशःसुपुण्यदः ॥ तत्पश्चिमेचचण्डेशश्चण्डांशुग्रहणाघहृत ॥ ७ ॥ दक्षिणेचकपालेशात्कुण्डंश्रीकण्ठसंज्ञितम् ॥ तत्रकुण्डेनरःस्नात्वादातास्याच्छ्रीप्रभाव

जोकि देखे हुये, होमफल प्रदायकहैं उनके दक्षिणमें पुण्यों के उपजानेवाला पंचशिखेश्वर लिंगहै ॥ ३ ॥ उसके पश्चिममें पुण्योंका वर्धक मार्कण्डेयकुण्ड है उस कुण्ड में स्नानकर नर फिर क्या सब ओरसे शोचताहै याने नहीं शोचताहै ॥ ४ ॥ और वहां स्नान व दान पुण्यों का दाता होवे है उससे उत्तर में सब सिद्धोंसे नमस्कृत कुण्डेश्वर है ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मण, अगस्त्यजी ! पशुपतिकी दीक्षाको पाकर मनुष्य बारहवर्ष में जिस फलको पाता है उस फलको कुण्डेश्वर के दर्शन से पाता है ॥ ६ ॥ और मार्कण्डेयकुण्ड से पूर्व में सुपुण्यके दायक शांडिल्येश्वर हैं उनके पश्चिममें सूर्य्यग्रहण के समान पापहर्ता चण्डेश्वर है ॥ ७ ॥ और कपालेश्वर से दक्षिण में

कल्पोंसे भी नहींहै किन्तु उस पानीको पीकर मनुष्य जन्म बन्धन से उठेहुये डरसे छूटजाताहै ॥ २६ ॥ व हे कलशसम्भव अगस्त्यजी ! उस कूपके समीपमें शिवकी भक्ति से युक्त मनवाले लोगोंको जो दान दियागया उसका नाश कल्पान्तमें भी नहीं है ॥ २७ ॥ और जेकि मनुष्य वहां टूटे फूटेका संस्कार करते हैं वे रुद्रलोकको प्राप्तहोकर सदा सुखी हुये आनन्दित होते हैं ॥ २८ ॥ व कालेश्वर से दक्षिणभाग में अपमृत्यु के हर्त्ता मृत्य्वीश्वर महादेवहैं और उस कालोद कूपसे उत्तर दिशामें दक्षेश्वरनामक लिंगहै ॥ २९ ॥ उसके सम्पूजन से अपराधों का हजारा नष्ट होजावे है ॥ ३० ॥ व दक्षेश्वर से पूर्वमें बड़ा भारी महाकालेश्वर लिंगहै और महाकालकुण्डहै जो मनुष्य

पेतुयद्दत्तन्दानंशिवरतात्मनाम् ॥ संवर्तेपिनतस्यास्तिनाशःकलशसम्भव ॥ २७ ॥ खण्डस्फुटितसंस्कारन्तत्रकुर्वन्तियेनराः ॥ तेरुद्रलोकमासाद्यमोदन्तेसुखिनःसदा ॥ २८ ॥ कालेशाद्दक्षिणेभागेमृत्य्वीशस्त्वपमृत्युहृत् ॥ लिङ्गंदक्षेश्वराख्यञ्चततःकूपादुदग्दिशि ॥ २९ ॥ अपराधसहस्रन्तुनश्येत्तस्यसमर्चनात् ॥ ३० ॥ महाकालेशलिङ्गञ्चदक्षेशात्पूर्वतोमहत् ॥ महाकुण्डेनरःस्नात्वामहाकालन्तुयोर्चयेत् ॥ ३१ ॥ अर्चितन्तेनवैतत्रजगदेतच्चराचरम् ॥ अन्तकेश्वरमालोक्यतद्याम्यांनान्तकस्यभीः ॥ ३२ ॥ हस्तिपालेश्वरंलिङ्गंतस्यदक्षिणतोमुने ॥ तस्यपूजनतोयातिपुण्यंवैहस्तिदानजम् ॥ ३३ ॥ तत्रैरावतकुण्डञ्चलिङ्गमैरावतेश्वरम् ॥ तल्लिङ्गमर्चयन्मर्त्योधनधान्यसमृद्धिभाक् ॥ ३४ ॥ तद्दक्षिणेश्रेयसेचलिङ्गंस्यान्मालतीश्वरम् ॥ हस्तीश्वराद्दुत्तरेतुजयन्तेशोजयप्रदः ॥ ३५ ॥ वन्दीश्वरोमहाकालकुण्डादुत्तरतः

महाकालकुण्डमें स्नानकर महाकालेश्वरको पूजे ॥ ३१ ॥ उससे वहां यह स्थावर जंगमरूप जगत् निश्चय से पूजितहै और उसके दक्षिणमे अन्तकेश्वरको सब ओर से देखकर कालका डर नहींहै ॥ ३२ ॥ हे मुने ! उसके दक्षिणमें हस्तिपालेश्वर लिंगहै उसकी पूजासे हाथी दानसे उत्पन्न पुण्यको निश्चय से प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ वहां ऐरावतकुण्ड और ऐरावतेश्वर लिंगहै उसमें नहाया व उस लिंगको पूजताहुआ मनुष्य धन और धान्यकी समृद्धिका सेवी होताहै ॥ ३४ ॥ व उसके दक्षिणमें कल्याण या पुण्यके लिये मालतीश्वर लिंग होवे है और हस्तीश्वरसे उत्तरमें जयदायक जयन्तेश्वरहैं ॥ ३५ ॥ व महाकालकुण्डसे उत्तरमें शुभ, वन्दीश्वरहैं और वहां काशीमें महापापों

का हर्त्ता वन्दिकुण्ड विख्यात है यानै प्रसिद्ध है या विशेषतासे कहागयाहै ॥ ३६ ॥ उसमें स्नान दान और श्राद्ध करने से अविनाशी फलको व्याप्त होताहै व ऐसेही धन्वन्तरीश्वर लिंग और उनके नामवाला धन्वन्तरिकुण्ड है ॥ ३७ ॥ उस लिंगका अन्य नामहै व कुण्डका नाम भी अन्यही है किन्तु लिंगका नाम तुंगेश्वरहै और कुण्ड वैद्येश्वर नामक है ॥ ३८ ॥ जेकि बड़ी बुद्धि याने स्वस्थताकी देनेवाली अमृतमयी महौषधियांहैं वे उस कुण्डमें छोड़ीगई हैं उस कारण उस कुण्डके स्नान से और उस लिंगके संदर्शन से बडे दारुण पापों के साथ सब रोग नशते हैं ॥ ३९ ॥ उसके उत्तर मे सब रोगों के विनाशक हलीशेश्वर हैं और तुंगनाम याने तुंगेश्वर से दक्षिण में

शुभः ॥ वन्दिकुण्डञ्चविख्यातंवाराणस्यांमहाघहृत ॥ ३६ ॥ तत्रस्नानेनदानेनश्राद्धेनाक्षयमश्नुते ॥ धन्वन्तरीश्वरं लिङ्गंकुण्डन्तन्नामचैवहि ॥ ३७ ॥ तस्यलिङ्गस्यनामान्यत्कुण्डनामान्यदेवहि ॥ तुङ्गेश्वरंलिङ्गनामकुण्डंवैद्येश्वराभिधम् ॥ ३८ ॥ सुधामय्योमहौषध्यःक्षिप्तास्तत्रमहाधियः ॥ तत्कुण्डस्नानतस्तस्मात्तल्लिङ्गपरिवीक्षणात् ॥ नश्यन्तिव्याधयःसर्वेसहपापैःसुदारुणैः ॥ ३९ ॥ तदुत्तरेहलीशेशःसर्वव्याधिनिषूदनः ॥ शिवेश्वरःशिवकरस्तुङ्गनाम्नश्चदक्षिणे ॥ ४० ॥ जमदग्नीश्वरंलिङ्गंशिवेशाद्दक्षिणेशुभम् ॥ तत्पश्चिमेभैरवेशःकूपस्तस्योत्तरेशुभः ॥ ४१ ॥ तदुदस्पर्शमात्रेणसर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ तत्कूपपश्चिमेभागेसुकेशोयोगसिद्धिदः ॥ ४२ ॥ तन्नैर्ऋत्याञ्चव्यासेशःकूपश्चविमलोदकः ॥ व्यासकूपेनरःस्नात्वातर्पयित्वासुरान्पितॄन् ॥ ४३ ॥ अक्षयंलभतेलोकंयत्रकुत्राभिकांक्षितम् ॥ व्यासतीर्थात्पश्चिमतोघण्टाकर्णोह्रदोमहान् ॥ ४४ ॥ घण्टाकर्णह्रदेस्नात्वाव्यासेशपरिदर्शनात् ॥ यत्रतत्रमृतोवापिवाराणस्यांमृतोभ

कल्याणकर्त्ता शिवेश्वर हैं ॥ ४० ॥ व शिवेश्वर से दक्षिण में मंगलमय, जमदग्नीश्वर लिंगहै उससे पश्चिम में भैरवेश्वर है उनसे उत्तर मे शुभ कूप है ॥ ४१ ॥ उसके जलके छूनेमात्रसे सब यज्ञोंके फलको पावैहै उस कूपसे दक्षिणभागमें योग सिद्धिके दाता शुकेश्वर हैं ॥ ४२ ॥ उनसे नैर्ऋत्य कोणमे व्यासेश्वर हैं और विमल जलवाला कूपहै उस व्यास कूपमें स्नानकर देव व पितरोंको तर्पणकर नर ॥ ४३ ॥ अक्षयलोक और जहीं कहीं भी अभिवाञ्छित फलको पाताहै व व्यास तीर्थ से पश्चिम मे बड़ा पूजनीय घण्टाकर्ण कुण्डहै ॥ ४४ ॥ उस घण्टाकर्णकुण्ड में स्नानकर व व्यासेश्वरके सब ओर दर्शनसे जहां तहां मराभी काशी में मराहुआ होवैहै ॥ ४५ ॥ और

घण्टाकर्ण कुण्डके समीपमें पञ्चचूडा अप्सराका सरोवर है पञ्चचूडा के तडाग के जलमें स्नानकर व उन ईश्वरदेव को याने पञ्चचूडेश्वर को देखकर ॥ ४६ ॥ मनुष्य स्वर्गलोक को जाता है और पञ्चचूडा का प्यारा होवे है उससे दक्षिण में सब जडता का विनाशक गौरीकूप है ॥ ४७ ॥ और पञ्चचूडेश्वर से उत्तरभाग में अशोक संज्ञक तीर्थ है उससे उत्तर में महापापोंकी हरणी महातीर्थ मन्दाकिनी हैं ॥ ४८ ॥ अहोमुने ! वह स्वर्गलोक में भी मनोहर है तो फिर मनुष्यलोक में क्या कहना है उससे उत्तर मध्यमेश्वर क्षेत्रके मध्यमें सोते हैं ॥ ४९ ॥ वहां चैत्रमासकी अशोकाष्टमी में जागरणकर मनुष्य शोकको कभी नहीं पाता है और सदा आनन्दमय होवे

वेत् ॥ ४५ ॥ घण्टाकर्णसमीपेतुपञ्चचूडाप्सरःसरः ॥ पञ्चचूडाजलेस्नात्वादृष्ट्वादेवंतमीश्वरम् ॥ ४६ ॥ स्वर्गलोकंनरोयातिपञ्चचूडाप्रियोभवेत् ॥ गौरीकूपस्ततोवाच्यांसर्वजाड्यविनाशनः ॥ ४७ ॥ पञ्चचूडोत्तरेभागेतीर्थञ्चाशोकसंज्ञितम् ॥ मन्दाकिनीमहातीर्थन्तदुदीच्यांमहाघहृत् ॥ ४८ ॥ स्वर्गलोकेपिसापुण्याकिंपुनर्मानवेमुने ॥ तदुत्तरेमध्यमेशोमध्येक्षेत्रंस्वपित्यहो ॥ ४९ ॥ तत्रजागरणंकृत्वाऽशोकाष्टम्यांमधौनरः ॥ नजातुशोकंलभतेसदानन्दमयोभवेत् ॥ ५० ॥ मुक्तिक्षेत्रप्रमाणञ्चक्रोशंक्रोशञ्चसर्वतः ॥ आरभ्यलिङ्गादस्माच्चपुण्यदान्मध्यमेश्वरात् ॥ ५१ ॥ एतदेवसदाप्राहुःसर्वेवैप्रपितामहाः ॥ कश्चिदस्मत्कुलेजातोमन्दाकिन्याजलाप्लुतः ॥ ५२ ॥ भोजयेत्प्रयतोविप्रान्यतीन्पाशुपतानपि ॥ मन्दाकिन्यांनरःस्नात्वादृष्ट्वावैमध्यमेश्वरम् ॥ ५३ ॥ एकविंशत्कुलोपेतोरुद्रलोकेवसेच्चिरम् ॥ मध्यमेशादवाच्याञ्चविश्वेदेवेश्वरःशुभः ॥ ५४ ॥ तदर्चनादर्चिताःस्युर्विश्वेदेवास्त्रयोदश ॥ तत्पूर्वेवीरभद्रेशोमहावीरपदप्रदः ॥ ५५ ॥ भद्रदा

है ॥ ५० ॥ व पुण्यदायक इस मध्यमेश्वर लिंगसे लगाकर सबओर कोश कोश भर तक मुक्ति क्षेत्रहै ॥ ५१ ॥ सब पितर इसही वचनको निश्चयकर अधिकतासे कहते हैं कि गङ्गाके जलमें नहायाहुआ हमारे कुलमें उत्पन्न कोईजन ॥ ५२ ॥ बहुतयत्नवान् होकर ब्राह्मण संन्यासी और पाशुपतोंको भी भोजनकरावे और मन्दाकिनीमें स्नान कर व मध्यमेश्वर को देखकर भी मनुष्य ॥ ५३ ॥ इक्कीस पुश्तके पितरोंसे समेत होकर रुद्रलोकमें बहुतकालतक बसे और मध्यमेश्वर से दक्षिण में शुभ, विश्वेदेवेश्वर हैं ॥ ५४ ॥ उनकी पूजासे तेरह विश्वेदेव पूजित होवे हैं उस लिंग से पूर्व में वीरपद (स्थान) के प्रदायक, वीरभद्रेश्वर हैं ॥ ५५ ॥ और उनके दक्षिण में

मंगलदायिनी मङ्गलमयी भद्रकालीजी हैं व वहां अत्यन्त शुभप्रदायक भद्रकालनाम कुण्डहै ॥ ५६ ॥ उससे पूर्वमें ज्ञानदाता उत्तम आपस्तम्बेश्वर लिंगहै उससे उत्तर में पुण्यकूपहै उसके पीछे शौनक कुण्डहै ॥ ५७ ॥ और कुण्डसे पश्चिममें सुबुद्धिका बड़ा दाता शौनकेश्वर लिंगहै उस कुण्डमें निश्चय से स्नानकर व शौनकेश्वरको देख कर मनुष्य ॥ ५८ ॥ उस ज्ञानको भलीभांति पावे कि जिससे वह मृत्युको तरजाता है उससे दक्षिण में तिर्यग्योनि के निवारक, जम्बुकेश्वर हैं ॥ ५९ ॥ उनसे उत्तरमें गानविद्या के बड़े बोधदायक मतंगेश्वर हैं और मतगेश्वर के वायव्यकोणमें सबओर अनेकों लिंगहैं ॥ ६० ॥ जेकि यहां मुनियो से स्थापित हैं और सब सिद्धियों के

भद्रकालीचतस्यदक्षिणतःशुभा ॥ भद्रकालह्रदोनामतत्रातीवशुभप्रदः ॥ ५६ ॥ आपस्तम्बेश्वरंलिङ्गन्तत्प्राच्यांज्ञानद म्परम् ॥ तदुत्तरेपुण्यकूपस्तत्पश्चाच्छौनकोह्रदः ॥ ५७ ॥ ह्रदपश्चिमतोलिङ्गंशौनकेशंसुधीप्रदम् ॥ ह्रदेतत्रनरःस्ना त्वादृष्ट्वावैशौनकेश्वरम् ॥ ५८ ॥ ज्ञानन्तत्संलभेद्दिव्यंयेनमृत्युन्तरत्यसौ ॥ तद्दक्षिणेजम्बुकेशस्तिर्यग्योनिनिवारकः ॥ ५९ ॥ तदुत्तरेमतङ्गेशोगानविद्याप्रबोधकः ॥ मतङ्गेशस्यवायव्येनानालिङ्गानिसर्वतः ॥ ६० ॥ मुनिभिःस्थापितानी हसर्वसिद्धिप्रदानिच ॥ ब्रह्मरातेश्वरंलिङ्गंमतङ्गेशाच्चदक्षिणे ॥ ६१ ॥ तल्लिङ्गदर्शनादायुर्नान्तराच्छिद्यतेक्वचित् ॥ तत्राज्य पेश्वरंलिङ्गंपितृलिङ्गान्यनेकशः ॥ तल्लिङ्गसेवयासर्वेतुष्यन्तिप्रपितामहाः ॥ ६२ ॥ तद्दक्षिणेसिद्धकूपःसिद्धाःसन्तिस हस्रशः ॥ वायुरूपास्तुयेसिद्धायेसिद्धाभानुरश्मिगाः ॥ ६३ ॥ तैःस्थापितन्तुयल्लिङ्गन्तत्सिद्धेश्वरमीरितम् ॥ तस्यसन्दर्श नादेवसर्वाःस्युःसिद्धयोऽमलाः ॥ ६४ ॥ तत्पश्चिमेसिद्धवापीपीतास्नाताचसिद्धिदा ॥ प्राच्यांचसिद्धकूपाद्वैलिङ्गंव्याघ्रे

प्रदायक हैं व मतंगेश्वरसे दक्षिणमें ब्रह्मरातेश्वर लिंगहै ॥ ६१ ॥ उस लिंगकेदर्शन से आयु बीचमें कभी नहीं छिन्नहोतीहै व वहां आज्यपेश्वर लिंगहै और अनेकशः पितरों के लिंग हैं उन लिंगोंकी सेवासे सब पितर सन्तुष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥ उस आज्यपेश्वर से दक्षिणमें सिद्धकूप है व हजारों सिद्धहैं जेकि सिद्ध वायुरूप हैं व जे सूर्य्यकी किरणों में प्राप्तहैं ॥ ६३ ॥ उनसे जो लिंग स्थापित है वह सिद्धेश्वर कहा गया है उसके सन्दर्शनसे ही सब निर्मल सिद्धियां होवेहैं ॥ ६४ ॥ उससे पश्चिम में

सिद्धवापी है जोकि पिई और नहाईगई हुई होकर सिद्धियोंकी देनेवाली है व सिद्ध कूपसे पूर्वमें व्याघ्रेश्वर नामक लिंग प्रसिद्ध है ॥ ६५ ॥ उस लिंगके दर्शन से मनुष्योंका व्याघ्र और चोरों से उपजाहुआ डर नहीं है व उससे दक्षिण ज्येष्ठ स्थान मे अत्यन्त सिद्धिदाता ज्येष्ठेश्वर लिंग है ॥ ६६ ॥ उससे दक्षिण में आनन्दोंका मन्दिर प्रहसितेश्वर लिंग है उससे उत्तर मे काशीवास के फलका प्रदायक निवासेश्वर लिंग है ॥ ६७ ॥ व वहां समुद्र स्नानकीसी पुण्यका दाता चतुःसमुद्रकूप है और वहां ज्येष्ठादेवी हैं जोकि प्रणमी हुई श्रेष्ठ पदकी प्रदायिनी हैं ॥ ६८ ॥ व व्याघ्रेश्वर लिंगसे दक्षिणमें चण्डीश्वरनामक लिंग है उससे उत्तर मे पितरों के आनन्द का

श्वराभिधम् ॥ ६५ ॥ तल्लिङ्गदर्शनान्नृणांनभयंव्याघ्रचोरजम् ॥ ज्येष्ठेश्वरंचतद्याम्यांज्येष्ठस्थानेतिसिद्धिदम् ॥ ६६ ॥ तद्दक्षिणेमुदांधामलिङ्गंप्रहसितेश्वरम् ॥ तदुत्तरेनिवासेशःकाशीवासफलप्रदः ॥६७ ॥ चतुःसमुद्रकूपोऽस्तितत्राब्धिस्नानपुण्यदः ॥ ज्येष्ठादेवीतुतत्रास्तिनताज्येष्ठपदप्रदा ॥ ६८ ॥ अवाच्यांव्याघ्रलिङ्गाच्चलिङ्गंचण्डीश्वराभिधम् ॥ तदुत्तरे दण्डखातंसरःपितृमुदावहम् ॥ ६९ ॥ ग्रहणानन्तरेस्नानंदण्डखातेतिपुण्यदम् ॥ जैगीषव्यगुहातत्रतत्रलिङ्गंतदाह्वयम् ॥ ७० ॥ त्रिरात्रोपोषितस्तत्रज्ञानंलभ्येतनिर्मलम् ॥ महापुण्यप्रदंलिङ्गंतत्पश्चाद्देवलेश्वरम् ॥ ७१ ॥ शतकालस्तत्समीपेशतंकालानुमापतिः ॥ तल्लिङ्गाविर्भवेकाश्यांकालयामासकुम्भज ॥ ७२ ॥ तल्लिङ्गदर्शनादायुःशतवर्षाण्यखण्डितम् ॥ शातातपेशस्तद्याम्यांमहाजपफलप्रदः ॥ ७३ ॥ तत्पश्चिमेहेतुकेशोहेतुभूतोमहाफले ॥ तद्दक्षिणेऽक्षपादेशो

प्राप्तकरनेवाला दण्डखातनामक तडाग है ॥ ६९ ॥ उस दण्डखात में ग्रहण के अनन्तर नहाना अतिशय पुण्यका दायक है वहां जैगीषव्य की गुहा (गुफा) है व उस स्थान में उन जैगीषव्य के नामवाला जैगीषव्येश्वर लिंगहै ॥ ७० ॥ वहां तीन रात्रितक समीप में बसा या उपास कियेहुआ मनुष्य निर्मलज्ञान को पावे है उसके पीछे या पश्चिममें महापुण्य का दाता देवलेश्वर लिंग है ॥ ७१ ॥ उसके समीप में शतकाल नामक शिवहैं हे कुम्भज ! उस लिंगका प्रकट होना होतेही पार्वतीके पतिने काशी में सैकडों कलोंको चलाया याने भगाया है ॥ ७२ ॥ उस लिंगके दर्शन से सौवर्षतक अखण्डित आयुहोती है उसके दक्षिण में महाजप फलोंके प्रदायक

शातातपेश्वर हैं ॥ ७३ ॥ उनसे पश्चिम ओर बड़े फलके कारण हुये हेतुकेश्वर हैं उनके दक्षिण में बड़े ज्ञानके प्रवर्त्तक अक्षपादेश्वर हैं ॥ ७४ ॥ और उनके आगे कणादेश्वर हैं वहां पुण्योदक कूप है जो कोई काणाद कूपमें स्नानकर कणादेश्वर को भलीभांति पूजे ॥ ७५ ॥ वह कभी धनसे नहीं और धान्य से नही त्यागाजाता है उसके दक्षिण में सज्जनों के ऐश्वर्य्यकर्त्ता भूतीश्वर देखने योग्यहैं ॥ ७६ ॥ उनसे पश्चिम में पापोंका विनाशक आषाढीश्वरनामक लिंग है उससे पूर्वमें सबकामोंकी समृद्धिके कर्त्ता दुर्वासेश्वर हैं ॥ ७७ ॥ उनसे दक्षिण में पापसमूह या उसके भारके अपहर्ता भारभूतेश्वर हैं और व्यासेश्वर के पूर्वमें शङ्खेश्वर व लिखितेश्वर

महाज्ञानप्रवर्तकः ॥ ७४ ॥ तदग्रेचकणादेशस्तत्रपुण्योदकःप्रहिः ॥ स्नात्वाकाणादकूपेयःकणादेशंसमर्चयेत् ॥ ७५ ॥ नधनेननधान्येनत्यज्यतेसकदाचन ॥ तस्यदक्षिणतोदृश्योभूतीशोभूतिकृत्सताम् ॥ ७६ ॥ तत्पश्चिमेऽघसंहर्तृआषाढीश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ दुर्वासेशश्चतत्पूर्वेसर्वकामसमृद्धिकृत् ॥ ७७ ॥ तद्याम्यांभारभूतेशःपापभारापहारकः ॥ व्यासेश्वरस्यपूर्वेणद्वौशङ्खलिखितेश्वरौ ॥ तौदृश्यौयत्नतःकाश्यांमहाज्ञानप्रवर्तकौ ॥ ७८ ॥ यत्समाप्याऽप्यतेपुण्यंनिष्ठापाशुपतव्रतम् ॥ तदाप्यतेऽत्रविश्वेशसकृद्वीक्षणतःक्षणात् ॥ ७९ ॥ तदीशानेवधूतेशोयोगज्ञानप्रवर्तकः ॥ तीर्थंचैवावधूतेशंसर्वकल्मषनाशकृत् ॥ ८० ॥ अवधूतेश्वरात्पूर्वेलिङ्गंपशुपतीश्वरम् ॥ तल्लिङ्गसेवयापुंसांपशुपाशविमोक्षणम् ॥ ८१ ॥ तद्दक्षिणेगोभिलेशोमहाभिलषितप्रदः ॥ जीमूतवाहनेशश्चतत्पश्चाल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ ८२ ॥ विद्याधरपदप्राप्तिस्त

ये दो लिंग हैं और बड़ेज्ञान के प्रवर्त्तक वे काशी में यत्नसे देखने योग्यहैं ॥ ७८ ॥ जोकि पुण्य नियम पूर्वक पाशुपत व्रतको समाप्तकर प्राप्त कीजातीहै वह यहां विश्वेश याने शंखेश्वर व लिखितेश्वर के एकबार दर्शनसे क्षणमें मिलती है ॥ ७९ ॥ उनसे ईशान कोणमें योग और ज्ञानके प्रवर्त्तक अवधूतेश्वरहैं व सबपापोंका नाशकर्त्ता अवधूतेशतीर्थ है ॥ ८० ॥ अवधूतेश्वर से पूर्व में पशुपतीश्वर लिंगहै उस लिंगकी सेवासे पुरुषोंका अज्ञानकृत बन्धनों से छूटना होताहै ॥ ८१ ॥ उससे दक्षिणमें बड़े अभिलषित फलों के बहुत देनेवाले गोभिलेश्वरहैं व उनके पीछे उत्तम जीमूतवाहनेश्वर लिंग है ॥ ८२ ॥ उस लिंगकी सब ओर सेवासे विद्याधरों के पद

ल्लिङ्गपरिसेवनात् ॥ मयूखार्कःपञ्चनदेगभस्तीशश्चतत्रवै ॥८३॥ दधिकल्पह्रदोनामतदुदीच्यांमहाप्रहिः ॥ दुर्लभंतत्प्र
हिस्नानंदुर्लभंचतदीक्षणम् ॥ ८४ ॥ गभस्तीशोत्तरेभागेदधिकल्पेश्वरोहरः ॥ नरस्तमाशुसंवीक्ष्यकल्पंत्र्यक्षपुरेवसे
त् ॥ ८५ ॥ गभस्तीशाद्दक्षिणेतुमङ्गलांमङ्गलालयाम् ॥ उद्दिश्यमङ्गलाङ्गौरींभोजयेद्द्विजदम्पती ॥ ८६ ॥ अलंकृत्य
यथाशक्तितत्पुण्यान्तोनकर्हिचित् ॥ क्षितिप्रदक्षिणफलामङ्गलैकाप्रदक्षिणा ॥ ८७ ॥ वदनप्रेक्षणादेवीमुखप्रेक्षेश्वरोत्त
रे ॥ मङ्गलायाःसमीपेतुसर्वसिद्धिकरीशिवा ॥ ८८ ॥ लिङ्गेत्वष्ट्रीशवृत्तेशौमुखप्रेक्षोत्तरेशुभे ॥ सहेमभूमिदानस्यफलं
दर्शनतस्तयोः ॥ ८९ ॥ तदुत्तरेचर्चिकायादेव्याःसंदर्शनंशुभम् ॥ रेवतेश्वरलिङ्गंचचर्चिकाग्रेणशान्तिकृत् ॥ ९० ॥ म
हाशुभायतस्याग्रेलिङ्गंपञ्चनदेश्वरम् ॥ मङ्गलोदोमहाकूपोमङ्गलापश्चिमेशुभः ॥ ९१ ॥ उपमन्योर्महालिङ्गंमङ्गलाप
श्चिमेशुभम् ॥ व्याघ्रपादेश्वरंलिङ्गंतत्पश्चाद्व्याघ्रभीतिहृत् ॥९२॥ नैर्ऋत्यांचगभस्तीशाच्छशाङ्केशोघसङ्घहृत ॥ तत्प

(स्थान) की प्राप्तिहोती है और पञ्चनद में मयूखादित्य हैं व वहांही गभस्तीश्वर हैं ॥ ८३ ॥ उन से उत्तर में दधिकल्प कुण्ड नामक बड़ा कूप है उस कूपमें स्नान दुर्लभ है और उन गभस्तीश्वर का दर्शन दुर्लभ है ॥ ८४ ॥ गभस्तीश्वर से उत्तर भागमें भवभयहारी दधिकल्पेश्वर हैं उनको शीघ्रही भलीभांति विशेषता से देखकर नर एक कल्पभर त्रिनेत्र (शिव) के लोकमें बसै है ॥ ८५ ॥ और गभस्तीश्वरसे दक्षिणमें मङ्गलों के मन्दिर सी मंगलमयी मंगला गौरीको उद्देशकर स्त्री पुरुष ब्राह्मणों को खिलावे पिलावे ॥ ८६ ॥ व यथाशक्ति उनको भूषितकर उस पुण्यका अन्त कभी नहीं है व मंगलाकी एक प्रदक्षिणा पृथिवी प्रदक्षिणाके फलोंवाली है ॥ ८७ ॥ और मंगला के समीपमेंही मुखप्रेक्षेश्वर से उत्तर मे सर्वसिद्धिकरी कल्याणरूपिणी वदनप्रेक्षणा देवी हैं ॥ ८८ ॥ उन वदन प्रेक्षणादेवीजी से उत्तरमें त्वष्ट्रीश्वर और वृत्तेश्वर ये दो शुभ लिंग हैं उनके दर्शन से सुवर्ण समेत पृथिवी दानका फल है ॥ ८९ ॥ व उनसे उत्तर में चर्चिका देवीका शुभ सन्दर्शन है और चर्चिका के आगे शान्ति कर्त्ता रेवतेश्वर लिंगहै ॥ ९० ॥ उसके आगे महामंगलके लिये पञ्चनदेश्वरलिंगहै और मंगला गौरी के पश्चिम मे मंगलमय मंगलोदक नामक महाकूपहै ॥ ९१ ॥ व मंगला से पश्चिम मे शुभ, उपमन्युका महालिंग है उसके पीछे व्याघ्रो से डरका हरनेवाला व्याघ्रपादेश्वर लिंगहै ॥ ९२ ॥ और गभस्तीश्वर से नैर्ऋत्यमें पापों के

फाल्गुनेश्वर हैं और उनसे दक्षिण में शुभकर्त्ता व श्रेष्ठ महापाशुपतेश्वर हैं ॥ १३ ॥ उनसे पश्चिम में समुद्रेश हैं उनसे उत्तरमें ईशानेश हैं व उनसे पूर्वमें लांगलीश हैं जोकि सब सिद्धियों के सौंपनेवाले हैं ॥ १४ ॥ उनके पूजकजन राग (प्रीति) और द्वेष (वैर) से विनिर्मुक्त होकर सिद्धिको प्राप्तहोते हैं व वे मनुष्यनहीं हैं और उनकी मुक्ति मुझसे कही गई है ॥ १५ ॥ मधुपिंग व श्वेतकेतु ये दो तपस्वी इसही देहसे लांगलीश्वर के समीप में उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १६ ॥ और वहांही नकुलीश्वर हैं व वहां कपिलेश्वर प्रसिद्ध हैं व मेरे व्रतके सेवक वे दोनों परमरहस्यहैं ॥ १७ ॥ हे प्रिये ! उनके समीप में प्रीतिकेश हैं उनमें मेरी प्रीतिहै वहां एकउपास

त्तरे ॥ तत्पूर्वेलाङ्गलीशश्चसर्वसिद्धिसमर्पकः ॥ १४ ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्ताःसिद्धिंयान्तिचपूजकाः ॥ तेषांमोक्षोमयाख्या तोनतुतेदेविमानवाः ॥ १५ ॥ मधुपिङ्गश्वेतकेतूलाङ्गलीशेतपस्विनौ ॥ अनेनैवशरीरेणजग्मतुःसिद्धिमुत्तमाम् ॥ १६ ॥ तत्रैवनकुलीशश्चकपिलेशश्चतत्रवै ॥ रहस्यम्परमञ्चोभौममव्रतनिषेविणौ ॥ १७ ॥ तत्सन्निधौप्रीतिकेशस्तत्रप्रीति र्ममप्रिये ॥ तत्रोपवासादेकस्मात्फलमब्दशताधिकम् ॥ १८ ॥ एकंजागरणंकृत्वाप्रीतिकेशउपोषितः ॥ गणत्वपदवीतस्य निश्चिताममपर्वणि ॥ १९ ॥ देवस्यदक्षिणेभागेतत्रवापीशुभोदका ॥ तदम्बुप्राशनंनॄणामपुनर्भवहेतवे ॥ २० ॥ तज्जला त्पश्चिमेभागेदण्डपाणिःसदावति ॥ तत्प्राच्यवाच्युत्तरस्यांतारःकालःशिलादजः ॥ २१ ॥ लिङ्गत्रयंहृदब्जेयच्छ्रद्धया पीतमपयत् ॥ यैस्तत्रतज्जलंपीतंकृतार्थास्तेनरोत्तमाः ॥ २२ ॥ अविमुक्तसमीपेच्योमोक्षेशोमोक्षबुद्धिदः ॥ करुणेशोदया

से सौवर्ष से अधिकफल है ॥ १८ ॥ मेरी पर्व याने शिवरात्रि में उपासाहुआ प्रीतिकेश्वर के समीप में एक जागरणकोकर टिकता है उसकी गणत्वपदवी निश्चित है ॥ १९ ॥ और वहां देवके दक्षिण भागमें शुभ जलवाली वापीहै उसके पानीका पीना मनुष्यों की फिर न उत्पत्ति (मुक्ति) का कारण होताहै ॥ २० ॥ उस जलाशयसे पश्चिम भागमें दण्डपाणि (हरिकेश) जी सदारक्षा करते हैं उनसे पूर्वमें तारेश्वर दक्षिण में कालेश्वर और उत्तर में नन्दिकेश्वर हैं ॥ २१ ॥ जोकि जल श्रद्धासे पिया हुआ हृदयकमलमें तीनलिंगोंको अर्पितकरेहै वह वहां जिनसे पियागया वे नरोत्तम कृतार्थहैं ॥ २२ ॥ और अविमुक्त के समीपमें मोक्षबुद्धिके दाता मोक्षेश्वर भलीभांति

पूजनीय हैं उनसे उत्तरमें दयाके घर जो करुणेश्वर हैं उनको सम्पूजन करे ॥ २३ ॥ व उनमे पूर्वमें स्वर्णाक्षेश हैं और उनसे उत्तर में ज्ञानदाता है वहां बहुत सौभाग्य सम्पत्तिके लिये सौभाग्यगौरी भलीभांति पूजने योग्य हैं ॥ २४ ॥ व विश्वेश्वरसे दक्षिणभाग में क्षेत्रके कल्याणकर्त्ता निकुम्भेश बड़े यत्नसे पूजनीय हैं उनके पीछे विघ्ननायक (गणेश) जी ॥ २५ ॥ जोकि सब विघ्नों के खण्डनकर्त्ता हैं वह चौथिमें विशेपसे सन्मुख पूजने योग्य हैं और निकुम्भेश से आग्नेय कोणमें सुसिद्धिदायक विरूपाक्ष पूजनीय हैं ॥ २६ ॥ उनसे दक्षिण में पुत्र और पौत्रोंके बडे बढ़ानेवाले शुक्रेश हैं उनसे उत्तरमें देवयानीश्वर नामक महालिंगहै ॥ २७ ॥ व शुक्रेश के आगे

धामतदुदीच्यांसमर्चयेत ॥ २३ ॥ स्वर्णाक्षेशस्तुतत्प्राच्यांज्ञानदस्तस्यचोत्तरे ॥ सौभाग्यगौरीसम्पूज्याबहुसौभाग्य सम्पदे ॥ २४ ॥ विश्वेशाद्दक्षिणेभागेनिकुम्भेशःप्रयत्नतः ॥ क्षेत्रक्षेमकरःपूज्यस्तत्पश्चाद्विघ्ननायकः ॥ २५ ॥ सर्वविघ्न च्छिदभ्यर्च्यश्चतुर्थ्यान्तुविशेषतः ॥ विरूपाक्षोनिकुम्भेशाद्वह्नौपूज्यःसुसिद्धिदः ॥ २६ ॥ तद्दक्षिणेचशुक्रेशःपुत्रपौत्रप्रव र्धनः ॥ तदुदीच्यांमहालिङ्गंदेवयानीश्वराभिधम् ॥ २७ ॥ शुक्रेशादग्रतःपूज्यःकचेशइतिसञ्ज्ञितः ॥ शुक्रकूपमुपस्पृ श्यहयमेधफलंलभेत् ॥ २८ ॥ भवानीशौनमस्यौचशुक्रेशात्पश्चिमेशुभौ ॥ भक्तिपोतप्रदौतौतुनिजभक्तस्यसर्वदा ॥ २९ ॥ अलर्केशःसमभ्यर्च्यःशुक्रेशात्पूर्वदिक्स्थितः ॥ मदालसेश्वरस्तत्रतत्पूर्वेसर्वविघ्नहृत् ॥ ३० ॥ गणेश्वरेश्वरंलिङ्गं सर्वसिद्धिकरंपरम् ॥ हत्वालङ्केश्वरंविप्ररघुनाथप्रतिष्ठितम् ॥ ३१ ॥ तल्लिङ्गस्पर्शनादाशुब्रह्महापिविशुध्यति ॥ महापुण्य

कचेश ऐसी संज्ञावाला लिंग पूजनीय है और शुक्रकूप में स्नानकर अश्वमेध यज्ञका फल पावे है ॥ २८ ॥ व शुक्रेश्वर से पश्चिम में मङ्गलमय भवानी और ईश नमस्कार के योग्य हैं और वे संसारपार के लिये अपने भक्तको सदैव भक्तिनौका के प्रदायक हैं ॥ २९ ॥ व शुक्रेशसे पूर्वदिशा में टिकेहुये अलर्केश्वर भलीभांति सामने से पूजने योग्य हैं और वहांही मदालसेश्वरहैं उनसे पूर्वमें सब विघ्नोंका हर्ता ॥ ३० ॥ गणेश्वरेश्वर लिंग है जोकि सब सिद्धियों का कर्त्ता व श्रेष्ठहै, हे ब्राह्मण ! जोकि लिंग लङ्केश्वर रावणको मारकर रघुनाथ (श्रीरामचन्द्र) जीसे प्रतिष्ठित है ॥ ३१ ॥ उस लिंगके स्पर्शनसे ब्रह्मघातीभी शीघ्रही विशुद्ध होताहै और वहां महापुण्यप्र-

समूह के हर्त्ता शशाङ्केश्वरहैं उनसे पश्चिममें दिव्यगतिदायक चित्ररथका लिंगहै ॥ ९३ ॥ व रेवतेश्वर से पश्चिम में महापापहारी जैमिनीश्वरहैं हे ऋषि सत्तम ! वहां ऋषियों के अनेकों लिंगहैं ॥ ९४ ॥ और जैमिनेश से वायव्य मे रावणेश्वर लिंग प्रसिद्ध है उसके दर्शन से मनुष्यों को राक्षसों का बड़ा डर नहीं है ॥ ९५ ॥ उस से दक्षिण में वराहेश्वरहैं और उनसे दक्षिणमें माण्डव्येश्वर हैं उनसे दक्षिणमें प्रचण्डेश्वरहैं उनसे दक्षिणमें योगेश्वरहैं ॥ ९६ ॥ और उनसे दक्षिणमें धातेश्वर हैं व उनके आगे सोमेश्वर हैं उनसे नैर्ऋत्यकोणमें सज्जनों को बड़े सुवर्णके दाता कनकेश्वरहैं ॥ ९७ ॥ उनसे उत्तर में सन्तों के आनन्द के लिये पाण्डवों के पांच लिंग हैं

श्चिमेचैत्ररथंलिङ्गंदिव्यगतिप्रदम् ॥ ९३ ॥ रेवतेशात्पश्चिमतोजैमिनीशोमहाघहृत् ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानिऋषीणामृषिसत्तम ॥ ९४ ॥ जैमिनेशाच्चवायव्येलिङ्गंवैरावणेश्वरम् ॥ नतद्दर्शनतःपुंसांराक्षसानांमहाभयम् ॥ ९५ ॥ तद्दक्षिणेवराहेशोमाण्डव्येशस्ततोयमे ॥ तद्दक्षिणेप्रचण्डेशोयोगेशोदक्षिणेततः ॥ ९६ ॥ तद्दक्षिणेचधातेशःसोमेशश्चतदग्रतः ॥ तन्नैर्ऋत्यांकनकेशोमहाकनकदःसताम् ॥ ९७ ॥ तदुत्तरेपाण्डवानांपञ्चलिङ्गानिसन्मुदे ॥ संवर्तेशस्तदग्रेचश्वेतेशस्तस्यपश्चिमे ॥ ९८ ॥ ततपश्चात्कलशेशश्चलिङ्गंकालाभयप्रदम् ॥ कालेनपाशितेश्वेतेमुनेकुम्भात्समुत्थितम् ॥९९॥ चित्रगुप्तेश्वरंलिङ्गंतदुदीच्यामघापहम् ॥ चित्रगुप्तेश्वरात्पश्चाद्योदृढेशोमहाफलः ॥ २०० ॥ कलशेशादवाच्यांचग्रहेशोलिङ्गमुत्तमम् ॥ ग्रहबाधांशमयतितल्लिङ्गपरिलोकनम् ॥ १ ॥ चित्रगुप्तेश्वरात्पश्चाद्यदृच्छेशोमहाफलः ॥ उतथ्यवामदेवेशौलिङ्गंयाम्यांग्रहेश्वरात ॥ २ ॥ कम्बलाश्वतरेशोचतस्यदक्षिणतःशुभे ॥ तत्रैवनिर्मलंलिङ्गंनलकूबरपूजि

और उनके आगे संवर्त्तेश्वर हैं उनसे पश्चिम में श्वेतेश्वर हैं ॥ ९८ ॥ व उनसे पीछे कालसे अभयदायक कलशेश्वर लिंग है हे अगस्त्यमुने ! जोकि लिंग श्वेतमुनिके कालसेपाशित (बांधेहुये) होतेही कलशसे भलीभांति उठकर टिका है ॥ ९९ ॥ उससे उत्तर में पापोंका विनाशक चित्रगुप्तेश्वर लिंग है व चित्रगुप्तेश्वर से पीछे जो दृढेश्वर लिंग है वह बड़े फलोंका दाताहै ॥ २०० ॥ और कलशेश्वर से दक्षिण में उत्तमग्रहेश्वर लिंगहै उस लिंगका सबओरसे दर्शन ग्रहोंकी पीडाको नशाताहै ॥ १ ॥ व चित्रगुप्तेश्वर से पीछे जो ऋच्छेश्वर लिंग है वह महा फलवाला है और ग्रहेश्वर से दक्षिण में उतथ्येश्वर व वामदेवेश्वर लिंगहै ॥ २ ॥ उसके दक्षिण में मंगलमय

कम्बलाश्वतरेश्वर यानेकम्बलेश्वर व अश्वतरेश्वर दो लिंगहैं और वहांही निर्मल, नलकूबर से पूजित नलकूबरेश्वर लिंग है ॥ ३ ॥ उससे दक्षिण में मणिकर्णीश्वर व उससे उत्तर में पलितेश्वर लिंग है और वहांही जराहर याने बुढ़ाई का हरनेवाला लिंग है उससे पीछे पापनाशन लिंग है ॥ ४ ॥ उससे पश्चिम में निर्जरेश्वर हैं उनसे नैर्ऋत्यकोण में पितामह हैं और वहां पितामह (ब्रह्मा) का सोता है उस में श्राद्धमहाफलवान् है ॥ ५ ॥ और उससे दक्षिण में वरुणेश्वर हैं व उनसे दक्षिण में बाणेश्वर हैं और पितामह की स्रोतिका में सिद्धिकर्त्ता कूष्माण्डेश्वर हैं ॥ ६ ॥ उन से पूर्वमें राक्षसेश्वर हैं व उनसे दक्षिण में गंगेश्वर हैं उनसे उत्तर में अनेकसे

तम् ॥ ३ ॥ तद्याम्यांमणिकर्णीशंतदुदक्पलितेश्वरम् ॥ जराहरंचतत्रैवतत्पश्चात्पापनाशनम् ॥ ४ ॥ तत्पश्चिमेनिर्जरेशस्तन्नैर्ऋत्यांपितामहः ॥ पितामहस्रोतिकाचतत्रश्राद्धंमहाफलम् ॥ ५ ॥ तद्याम्यांवरुणेशश्चबाणेशस्तस्यदक्षिणे ॥ पितामहस्रोतिकायांकूष्माण्डेशस्तुसिद्धिकृत् ॥ ६ ॥ तत्पूर्वतोराक्षसेशोगङ्गेशस्तस्यदक्षिणे ॥ तदुत्तरेनिम्नगेशाःसन्तिलिङ्गान्यनेकशः ॥ ७ ॥ वैवस्वतेश्वरस्तत्रयमलोकनिवारकः ॥ तत्पश्चाददितीशश्चचक्रेशस्तस्यचाग्रतः ॥ ८ ॥ तदग्रेकालकेशाख्योदृष्टप्रत्ययकृत्परः ॥ छायासंदृश्यतेतत्रनिष्पापस्तदवेक्षणात् ॥ ९ ॥ तदग्रेतारकेशश्चतदग्रेस्वर्णभारदः ॥ तदुत्तरेमरुत्तेशःशक्रेशश्चतदग्रतः ॥ १० ॥ तद्दक्षिणेचरम्भेशस्तत्रैवचशचीश्वरः ॥ तदुत्तरेलोकपेशास्तत्रलिङ्गान्यनेकशः ॥ ११ ॥ नागगन्धर्वयक्षाणांकिन्नराप्सरसामपि ॥ देवर्षिगणवृन्दानांनानासिद्धिकराण्यपि ॥ १२ ॥ शक्रेशाद्दक्षिणेभागेफाल्गुनेशोमहाघहृत् ॥ महापाशुपतेशश्चतद्याम्यांशुभकृत्परः ॥ १३ ॥ तत्पश्चिमेसमुद्रेशईशानेशस्तदु

नदीश्वर लिंग हैं ॥ ७ ॥ और वहां यमलोकके निवारण कारण वैवस्वतेश्वरहैं उनसे पीछे अदितीश्वरहैं उनके आगे चक्रेश्वरहैं ॥ ८ ॥ उनके आगे देखेहुये प्रतीतिकारी व श्रेष्ठ कालकेश नामक लिंग है वहां छाया भलीभांति देखीजाती है उसके देखने से निष्पाप होताहै ॥ ९ ॥ उसके आगे तारकेश्वर हैं और उनसे आगे स्वर्णभारद हैं उनसे उत्तर में मरुत्तेश हैं व उनके आगे शक्रेश हैं ॥ १० ॥ व उनसे दक्षिण में रम्भेश हैं और वहांही शचीश्वर हैं उनसे उत्तर में वहां लोकपालेश्वर अनेकों लिंग हैं ॥ ११ ॥ व नाग गन्धर्व यक्ष किन्नर अप्सराओंकेभी व देव ऋषि और गणसमूहों के बहुतसे सिद्धिकर्त्ता भी लिंगहैं ॥ १२ ॥ व शक्रेशसे दक्षिण भागमें महापापहारी

दायक अन्य त्रिपुरान्तक लिंग पूजनीय है ॥ ३२ ॥ उससे पश्चिममें शुभ दत्तात्रेयेश्वर लिंगहै उसके दक्षिणमें हरिकेशेश्वरहैं उससे परे (आगे) गोकर्णेश्वरहैं ॥ ३३ ॥ उनके आगे पातकघातक तड़ाग है व उसके पीछे ध्रुवेश्वरहैं और उनके आगे पितरोंकी प्रीतिका करनेवाला व उत्तम ध्रुवकुण्डहै ॥ ३४ ॥ उससे उत्तर में पिशाचता पदके हर्त्ता पिशाचेश्वर हैं उनसे दक्षिण में पित्रीश्वर हैं उनके आगे पितृकुण्ड है ॥ ३५ ॥ वहां श्राद्धकर्त्ता मनुष्यों के पितर सन्तुष्ट होवे हैं और ध्रुवेश्वर के आगे जो तारेश्वर हैं वहही वैद्यनाथ हैं ॥ ३६ ॥ उनसे नैर्ऋत्य कोण मे वंशवृद्धिकर्त्ता व श्रेष्ठ मनुका लिंगहै व वैद्यनाथके अग्रगत प्रियव्रतेश्वर लिंगहै ॥ ३७ ॥ उससे दक्षिण

प्रदंचान्यत्तत्राच्र्यंत्रिपुरान्तकम् ॥ ३२ ॥ दत्तात्रेयेश्वरंलिङ्गंतस्यपश्चिमतःशुभम् ॥ तद्याम्यांहरिकेशेशोगोकर्णेशस्त तःपरम् ॥ ३३ ॥ सरस्तदग्रेपापघ्नंतत्पश्चाद्ध्रुवेश्वरः ॥ तदग्रेध्रुवकुण्डञ्चपितृप्रीतिकरंपरम् ॥ ३४ ॥ तदुत्तरेपिशाचेशः पैशाच्यपदहारकः ॥ पित्रीशस्तद्यमदिशिपितृकुण्डंतदग्रतः ॥ ३५ ॥ तत्रश्राद्धकृतांपुंसान्तुष्येयुःप्रपितामहाः ॥ अग्रे ध्रुवेशात्तारेशोवैद्यनाथःसएवहि ॥ ३६ ॥ तन्नैर्ऋत्यांमनोर्लिङ्गंवंशवृद्धिकरंपरम् ॥ प्रियव्रतेश्वरंलिङ्गंवैद्यनाथपुरोगतम् ॥ ३७ ॥ तद्याम्यांमुचुकुन्देशस्तत्पार्श्वेगौतमेश्वरः ॥ तत्पश्चिमेनभद्रेशस्तद्याम्यामृष्यशृङ्गिणः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मेशस्तत्पु रस्ताच्चपर्जन्येशस्तदीशगः ॥ तत्प्राच्यांनहुषेशश्चविशालाक्षीचतत्पुरः ॥ ३९ ॥ विशालाक्षीश्वरंलिङ्गंतत्रैवक्षेत्रवस्तिद म् ॥ जरासन्धेश्वरंलिङ्गंतद्याम्यांज्वरनाशनम् ॥ ४० ॥ तत्पुरस्ताद्धिरण्याक्षलिङ्गंपूज्यंहिरण्यदम् ॥ तत्पश्चिमेगया धीशस्तत्प्रतीच्यांभगीरथः ॥ ४१ ॥ तदग्रेचदिलीपेशोब्रह्मेशात्पश्चिमेमुने ॥ तत्रलिङ्गंसकुण्डञ्चस्नातुरिष्टफलप्रद

में मुचुकुन्देश्वर हैं उनके पार्श्व (पास) में गौतमेश्वर हैं उनके पश्चिम में भद्रेश्वर हैं उनसे दक्षिणमें ऋष्यशृङ्गी के ईश्वर हैं ॥ ३८ ॥ और उनके आगे ब्रह्मेश्वर हैं उनसे ईशान कोणमें प्राप्त पर्जन्येश्वरहैं व उनसे पूर्वमें नहुषेश्वरहैं और उनके आगे विशालाक्षी देवीजीहैं ॥ ३९ ॥ व वहांही क्षेत्रवासदाता विशालाक्षीश्वर लिंगहै उस से दक्षिण में ज्वरका नाशक जरासन्धेश्वर लिंग है ॥ ४० ॥ उसके आगे सुवर्णका दायक हिरण्याक्षका लिंग पूजनीय है उससे पश्चिम में गयाधीश हैं उनसे पश्चिम में भगीरथेश्वर हैं ॥ ४१ ॥ उनके आगे व ब्रह्मेश्वर से पश्चिम में दिलीपेश्वर हैं और हे मुने ! वहां वह लिंग कुण्डसमेत है व स्नानकर्त्ताओं के वाञ्छित फलोंका प्रदायक

है ॥ ४२ ॥ और वहां विश्वावसु का लिंग है उसके पूर्व मे मुण्डेश्वरहैं उनसे दक्षिण में विधीश्वर हैं और उनसे दक्षिण में वाजिमेधेश्वर (अश्वमेधेश्वर) हैं ॥ ४३ ॥ दशाश्वमेधिक तीर्थ में स्नानकर व उस उत्तम लिंगको देखकर मनुष्य दश अश्वमेधयज्ञों के फलको पाताहै ॥ ४४ ॥ और उससे उत्तरमें स्नानकर्त्ता के फिर उत्पन्न होने के डरका हर्त्ता मातृतीर्थ है उसमें जो स्त्री व पुरुष व नपुंसक भी स्नानकरे ॥ ४५ ॥ वह मातृकाओं की प्रसन्नतासे मनमाने फलोंको प्राप्तहोताहै और तुम्हारे याने अगस्तिके कुण्डसे दक्षिणमे श्रेष्ठ, पुष्पदन्तेश्वरहैं ॥ ४६ ॥ उनसे अग्निकी दिशा (आग्नेय कोण) में अनेकसे, देव ऋषि और गणों के लिंगहैं व पुष्पदन्तेश्वर से

म् ॥ ४२ ॥ तत्रविश्वावसोर्लिङ्गंमुण्डेशस्तत्रपूर्वतः ॥ तद्दक्षिणेविधीशश्चतद्याम्यांवाजिमेधकः ॥ ४३ ॥ दशाश्वमेधिके स्नात्वादृष्ट्वातल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ दशानामश्वमेधानांफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ४४ ॥ तदुत्तरेमातृतीर्थंस्नातुर्जन्मभयापहत् ॥ तत्रस्नानंतुयःकुर्यान्नारीवापुरुषोपिवा ॥ ४५ ॥ ईप्सितंफलमाप्नोतिमातॄणाञ्चप्रसादतः ॥ दक्षिणेतवकुण्डाच्चपुष्पदन्तेश्वरःपरः ॥ ४६ ॥ तदग्निदिशिदेवर्षिगणलिङ्गान्यनेकशः ॥ पुष्पदन्ताद्दक्षिणतःसिद्धीशःपरसिद्धिदः ॥ ४७ ॥ पञ्चोपचारपूजातःस्वप्नेसिद्धिंपरांदिशेत् ॥ राज्यप्राप्तिर्भवेत्पुंसांहरिश्चन्द्रेशसेवया ॥ ४८ ॥ तत्पश्चिमेनैर्ऋतेशोङ्गिरसेशस्ततोयमे ॥ तद्दक्षिणेचक्षेमेशश्चित्राङ्गेशस्ततोयमे ॥ ४९ ॥ तद्दक्षिणेचकेदारोरुद्रानुचरताप्रदः ॥ चन्द्रसूर्यान्वयैर्भूपैःकेदाराद्दक्षिणापथे ॥ ५० ॥ प्रतिष्ठितानिलिङ्गानिशतशोथसहस्रशः ॥ लोलार्काद्दक्षिणाशायांसर्वाशापूरकोर्चितः ॥ ५१ ॥

दक्षिण मे श्रेष्ठ सिद्धिदाता सिद्धीश्वरहैं ॥ ४७ ॥ जो कि पञ्चोपचार पूजन से स्वप्न में उत्तम सिद्धिको कहदेवे हैं और हरिश्चन्द्रेश्वरकी सेवासे पुरुषों को राज्यकी प्राप्ति होवे है ॥ ४८ ॥ उनसे पश्चिममें नैर्ऋतेश्वर हैं उनसे दक्षिणमें अंगिरसेश्वरहैं उनसे दक्षिणमें क्षेमेश्वरहैं और उन से दक्षिणमें चित्राङ्गेश्वर हैं ॥ ४९ ॥ व उनसे दक्षिणमें रुद्रकी अनुचरता (पीछे चलना, दास्य, गणता) के बड़े दाता केदारेश्वर हैं और केदारसे दक्षिण दिशामें चन्द्रमा व सूर्य्य के वंशमें उत्पन्न हुये भूपों (राजाओं) से ॥ ५० ॥ सैकड़ों अथवा हजारों लिंग प्रतिष्ठित हैं और लोलार्क से दक्षिण दिशा में पूजेहुये सर्व आशा के पूर्णकर्त्ता विनायकजी हैं ॥ ५१ ॥

उनसे पश्चिममें बड़े फलोंवाला करन्धमेश्वर लिंगहै उससे पश्चिममें महादुर्गा प्रभञ्जनीमहादुर्गाहैं ॥ ५२ ॥ और उनमे दक्षिणमें शुष्केश्वर लिंग असीनदी से पूजितहै उससे पश्चिम मे जनकेश्वर हैं उनसे उत्तरमे शंकुकर्ण हैं ॥ ५३ ॥ उनसे पूर्वमें सब सिद्धिदायक महासिद्धीश्वर लिंगहै उसके समीप में सिद्धकुण्डमें स्नानकर व बड़े पूजनीय सिद्धेश्वर लिंगको देखकर मनुष्य ॥ ५४ ॥ सबही सिद्धियों के पारको जाता है व मानको प्राप्त हुआ होताहै और शंकुकर्णेश्वरसे वायव्यकोणमें वाडव्यनामक लिंग है ॥ ५५ ॥ उसके आगे विभाण्डेश्वरहैं उनसे उत्तरमें कहोलेश्वरहैं और वहा द्वारेश्वर लिंग है व मङ्गलमयी द्वारेश्वरी देवीजी हैं ॥ ५६ ॥ उनकी पूजासे काशी वासदेनेवाली

करंधमेश्वरंलिङ्गंतत्प्रतीच्यांमहाफलम् ॥ तत्पश्चिमेमहादुर्गामहादुर्गप्रभञ्जनी ॥ ५२ ॥ शुष्केश्वरञ्चतद्याम्यांशुष्कया सरितार्चितम् ॥ जनकेशस्तत्प्रतीच्यांशंकुकर्णस्तदुत्तरे ॥ ५३ ॥ महासिद्धीश्वरंलिङ्गंतत्प्राच्यांसर्वसिद्धिदम् ॥ सिद्धकुण्डेनरःस्नात्वादृष्ट्वासिद्धेश्वरंमहत् ॥ ५४ ॥ सर्वासामेवसिद्धीनांपारङ्गच्छतिमानवः ॥ शंकुकर्णेशवायव्येलिङ्गंवाडव्य सञ्ज्ञितम् ॥ ५५ ॥ तदग्रेचविभाण्डेशःकहोलेशस्तदुत्तरे ॥ तत्रद्वारेश्वरंलिङ्गंदेवीद्वारेश्वरीशुभा ॥ ५६ ॥ तत्पूजनाद्भवेत्सिद्धिरानन्दारण्यवस्तिदा ॥ रक्षकाश्चगणास्तत्रनानारूपायुधामुने ॥ ५७ ॥ तत्रैवहरिदीशश्चालिङ्गंकात्यायनंततः ॥ तत्पार्श्वेजाङ्गलेशश्चतत्पश्चान्मुकुटेश्वरः ॥ ५८ ॥ तत्रैवकुण्डंविमलंसर्वयात्राफलप्रदम् ॥ स्नात्वामुकुटकुण्डेचदृष्ट्वावैमुकुटेश्वरम् ॥ ५९ ॥ यात्रयासर्वलिङ्गानांयत्फलंतदवाप्यते ॥ तपसश्चापियोगस्यसिद्धिदासाऽवनीपरा ॥ ६० ॥ मुनेशतंसहस्राणितत्रलिङ्गानिसिद्धये ॥ एकादिगुत्तरादेविवाराणस्यांप्रियामम ॥ ६१ ॥ तत्रापिपञ्चायतनेरतिर्मेनितरांप्रिये ॥ उ

सिद्धिहोवे है और हे मुने ! वहां बहुतभांति के रूप व आयुधोंवाले रक्षक हैं ॥ ५७ ॥ व वहांही हरिदीश लिंगहै उसके आगे कात्यायन लिंगहै उसके पार्श्व में जांगलेश्वर हैं और उनसे पीछे मुकुटेश्वर हैं ॥ ५८ ॥ वहांही सब यात्राओं के फलोंका बड़ादेनेवाला विमलकुण्ड है उस मुकुटकुण्ड में स्नान कर फिर निश्चय से मुकुटेश्वर को देख२र ॥ ५९ ॥ वह फल मिलता है जोकि सब लिंगोंकी यात्रासे होता है और वह उत्तम भूमि तपस्या व योगकी भी सिद्धिदात्री है ॥ ६० ॥ हे मुने ! वहां सिद्धिके लिये सैकड़ों हजारों लिंग हैं हे देवि पार्वति ! काशीमें उत्तरदिशा हमारी मुख्य प्यारी है ॥ ६१ ॥ हे प्रिये ! उसमें भी पञ्चायतन याने ॐकार में मेरी बहुतही प्रीति है

क्योंकि उत्पत्ति पालन और प्रलयकाल में भी मैं वहां सदैव टिकाहूं ॥ ६२ ॥ जो कोई ऐसा जानता है वह पापोंसे नहीं लिपटता है हे प्रिये ! यह सत्यहै सत्यहै ।फिर सत्य है तीनबार सत्य अन्य नहीं है ॥ ६३ ॥ जो मेरे स्थान की इच्छाकरे तो वहांही शीघ्रही जाना चाहिये, हे मुने अगस्त्यजी ! मैंने उद्देशमात्र याने नामोंके कथन मात्रसे लिंगोंको कहा ॥ ६४ ॥ और कोई लिंग भक्तिसे दो तीनबार स्थापित हैं वे पुनरुक्त नहीं हैं व सर्वत्र श्रद्धासे पूजनीय हैं ॥ ६५ ॥ जे ये लिंग जे कुण्ड जे कूप और जे वापी हैं वे सब मनष्यों से श्रद्धेय हैं याने आस्तिक्य बुद्धिसे सेवने योग्यहैं ॥ ६६ ॥ यहां इनके दर्शन व स्नान से अधिक अधिक फल है व यहांके लिंग कूप

त्पत्तिस्थितिकालेपितत्राहंसर्वदास्थितः ॥ ६२ ॥ एवंयस्तुविजानातिनसपापैःप्रलिप्यते ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंत्रिसत्यं नान्यतःप्रिये ॥ ६३ ॥ शीघ्रंतत्रैवगन्तव्यंयदिच्छेन्मामकंपदम् ॥ उद्देशमात्रंलिङ्गानिकथितानिमयामुने ॥ ६४ ॥ द्वि त्रिःकृत्वःस्थापितानिभक्त्यालिङ्गानिकानिचित् ॥ नतानिपुनरुक्तानिश्रद्धयार्च्यानिसर्वतः ॥ ६५ ॥ एतानियानिलिङ्गा नियानिकुण्डानियेऽन्धवः ॥ यावाप्यस्तानिसर्वाणिश्रद्धेयानिमनीषिभिः ॥ ६६ ॥ एतेषांदर्शनात्स्नानात्फलमत्रोत्तरो त्तरम् ॥ अत्रत्यानाञ्चलिङ्गानांकूपानांसरसामपि ॥ ६७ ॥ वापीनाञ्चापिमूर्त्तीनांकःसंख्यातुंप्रभुर्भवेत् ॥ आनन्दकान नस्थानितृणान्यपिपरंवरम् ॥ ६८ ॥ दिवौकसोपिनान्यत्रयत्पुनर्जन्मभाजनम् ॥ सर्वलिङ्गमयीकाशीसर्वतीर्थैकजन्म भूः ॥ ६९ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्दात्रीदृष्टादेहान्तसेविता ॥ ममप्रियतमादेवित्वमेवतपसोबलात् ॥ ७० ॥ स्वभावतस्त्वियं काशीसुखविश्रामभूर्मम ॥ येकाश्यानामगृह्णन्तियेनुमोदन्तएवहि ॥ ७१ ॥ तेमेशाखविशाखाभाःस्कन्दनन्दिगजास्य

सरोवर भी ॥ ६७ ॥ व वापी और मूर्त्तियोंकी भी संख्या (गणना) करने के लिये कौन समर्थहोवेहै क्योंकि आनन्दवन (काशी) में टिकेहुये तृणभी परमश्रेष्ठहैं ॥ ६८ ॥ और इससे अन्यत्र स्वर्गवासी देवभी श्रेष्ठ नहीं हैं जिससे वे फिर जन्म होनेके पात्रहैं व सब तीर्थोंकी मुख्य जन्मभूमि, सब लिंगमयी काशीपुरी ॥ ६९ ॥ देखी व देहा-न्ततक सेईहुई होकर स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) की देनेवाली है याने उसके दर्शन से स्वर्ग और मरणपर्य्यन्त सेवन से मुक्तिहोती है, हे देवि ! तुमभी तपस्याके बल से हमारी परमप्यारी हो ॥ ७० ॥ और यह काशी स्वभावसेही मेरे सुख व विश्रामकी भूमिहै जे काशीका नामलेते हैं ऐसेही जे सुनकर पीछे से प्रसन्न या आनन्दित

होतेहैं ॥ ७१ ॥ वे मेरे शाख व विशाखके समान व कार्त्तिकेय नन्दीश्वर और गजमुख (गणेश) के तुल्य हैं,हे देवि ! वेही मेरे भक्तहैं व वेही मेरे सेवकहैं ॥ ७२॥ और वेही यहां मुमुक्षु हैं जेकि काशीवासी हैं व उन्होंने बड़ी तपस्या तपा व उन्होंने बड़े व्रतको किया है ॥ ७३ ॥ व उन्होंने महादान को दिया जेकि काशीवासी हैं और वे सब तीर्थों में नहाये हुये हैं व वे निश्चय से सब हिंसारहित यज्ञों में दीक्षित हैं ॥ ७४ ॥ व वे सब धर्मोंको कियेहुये हैं जेकि काशीवासी हैं व देव दैत्य नाग और नर वे सब भूमिके भारके लिये हैं ॥ ७५ ॥ जेकि अन्त अवस्था में भी काशीवासी नहीं हैं व काशीमें अन्त्यज (महाशूद्र) भी श्रेष्ठ है अन्यत्र वेद पारग ब्राह्मण नहीं क्योंकि काशीवासी

वत् ॥ तएवभक्तामेदेवितएवममसेवकाः ॥ ७२ ॥ मुमुक्षवस्तएवात्रयेचानन्दवनौकसः ॥ तपस्तप्तंमहत्तैस्तुकृतंतैस्तुमहाव्रतम् ॥ ७३ ॥ तैश्चदत्तंमहादानंयेचानन्दवनौकसः ॥ तेस्नातसर्वतीर्थावैतेखिलाध्वरदीक्षिताः ॥ ७४ ॥ तेचीर्णसर्वधर्माहियेचानन्दवनौकसः ॥ सुरासुरोरगनराभूमिभारायतेऽखिलाः ॥ ७५ ॥ वयस्यपीहचरमेयेनानन्दवनौकसः ॥ अन्त्यजोपिवरःकाश्यांनान्यत्रश्रुतिपारगः ॥ संसारपारगःपूर्वस्त्वन्त्यश्चान्त्यजतोप्यधः ॥ ७६ ॥ सएवनूनंसर्वज्ञःसएवह्यधिकेक्षणः ॥ यःपार्थिवींतनुंहित्वाकाश्यांधत्तेसुधामयीम् ॥ ७७ ॥ श्रुत्वाध्यायमिदंपुण्यंसर्वतीर्थरहस्यवत् ॥ काशीदर्शनजंपुण्यंप्राप्नोतिनियतन्नरः ॥ ७८ ॥ यःपठेदिममध्यायंप्रातःप्रातर्दिनेदिने ॥ दृष्टानितेनसर्वाणितीर्थान्येतानिनान्यथा ॥ ७९ ॥ सर्वलिङ्गमयाध्यायंयोऽमुंनित्यंजपेत्सुधीः ॥ नतंयमोनतंदूतानैनमंहोपिबाधते ॥ ८० ॥ [ब्रह्मयज्ञफलंत

अन्त्यज संसारके पारको प्राप्तहै याने मुक्त है और अन्यत्र बसनेवाला पूर्व याने सब वर्णों में श्रेष्ठ या पहले हुआ ब्राह्मण उस अन्त्यजसे नीचाहै ॥ ७६ ॥ जोकि पृथिवी आदि पञ्चतत्त्वमयी देहको काशीमें त्यागकर अमृतमयी तनुको धारण करता है वहही सर्वज्ञ है और वहही निश्चय से अधिक दृष्टिवाला है ॥ ७७ ॥ सब तीर्थरहस्य वाले इस मनोहर अध्याय को नियम से सुनकर मनुष्य काशी के दर्शन से उत्पन्नहुई पुण्यको प्राप्तहोता है ॥ ७८ ॥ व जोकि दिनोंदिन प्रातःकाल में इस अध्याय को पढ़े उससे ये सब तीर्थ देखेहुये हैं यह अन्यथा नहीं है ॥ ७९ ॥ जो सुबुद्धिमान् सब लिंगमय इस अध्याय को जपे उस इसको यम नहीं दूतनहीं और पापभी नहीं बाधा

करसक्ता है ॥ ८० ॥ जो तद्गतचित्त और पवित्र होकर इस अध्याय को जपे उस पुण्यात्मा को ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) का फल होताहै ॥ ८१ ॥ व जो इस अध्याय को सब ओरसे जपे (पढ़े) वह सब कुण्डों में नहायाहुआ है और वह सब तीर्थों के जलका पीनेवाला है व वह यहां सब लिंगोंका पूजकहै ॥ ८२ ॥ अत्यन्त छोटेफल दायक अन्य स्तोत्रों से क्या है मेरी प्रीतिवाले जनोंको यह महाफलवान् अध्याय पढ़ना चाहिये ॥ ८३ ॥ और महादानोंके दियेहुये होतेही जो फल यहां प्रसिद्धता से मिलता है वह एकबार पढ़ेहुये इस अध्याय से भलीभांति प्राप्त कियाजाता है ॥ ८४ ॥ सब तीर्थों में स्नानकर व अनेकसे लिंगोको देखकर मनुष्यों से जो फल पाया

स्यजायतेसुकृतात्मनः ॥ योजपेदमुमध्यायंशुचिस्तद्गतमानसः ॥८१ ॥ सस्नातःसर्वकुण्डेषुसर्वेष्वाप्यम्बुपःसच॥ सर्वलिङ्गार्चकःसोत्रयोऽमुमध्यायमाजपेत् ॥ ८२ ॥ किमन्यैर्बहुभिःस्तोत्रैरतिस्तोकफलप्रदैः ॥ मत्प्रेमवद्भिरध्यायोजप्तव्यो यंमहाफलः ॥ ८३ ॥ महादानेषुदत्तेषुयत्फलंप्राप्यतेऽत्रवै ॥ सकृज्जपान्महाध्यायादमुष्मात्तत्समाप्यते ॥ ८४ ॥ स्नात्वासर्वाणितीर्थानिदृष्ट्वालिङ्गान्यनेकशः ॥ यत्फलंलभ्यतेमर्त्यैस्तदेतज्जपनाद्ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ इदमेवतपोत्युग्रमयमेवजपोमहान् ॥ काशीलिङ्गावलीनामाध्यायोजप्येतयन्मुने ॥ ८६ ॥ ममद्रुहेनास्तिकायवेदनिन्दारतायच ॥ नदातव्योनदातव्योनदातव्योजपस्त्वयम् ॥ ८७ ॥ अध्यायस्यास्यजपनात्पापंब्रह्मवधोद्भवम् ॥ अगम्यागमनञ्चापितथाभक्ष्यस्यभक्षणम् ॥ ८८ ॥ गुरुदाराभिचारोत्थंहेमस्तेयसमुद्भवम् ॥ मातापितृवधाज्जातंगोभ्रूणहननोद्भवम् ॥ ८९ ॥ महापापानिपापानिज्ञाताज्ञातानिभूरिशः ॥ उपपापानिपापानिमनोवाक्कायजान्यपि ॥ ९० ॥ विलयंयान्त्यशेषाणिनिः

जाताहै वह इसके पढ़ने से निश्चित है ॥ ८५ ॥ हे मुने ! जोकि काशी के लिंगोंकी नाममालावाला अध्याय जपाजावे यहही अत्यन्त उग्रतप है और यहही बड़ाभारी जपहै ॥ ८६ ॥ मेरे द्रोही व नास्तिक और वेदोंकी निन्दामें रतहुये मनुष्यको यह अध्याय न देना चाहिये न देना चाहिये न देना चाहिये ॥ ८७ ॥ इस अध्याय के जपने से ब्राह्मण के वधसे उपजाहुआ पाप व अगम्य स्त्रीका गमनभी (अयोग्यस्त्री का सम्भोग) तथा अभक्ष्य का भक्षण ॥ ८८ ॥ व गुरुस्त्री के भोगसे उठाहुआ व सुवर्णकी चोरी से समुत्पन्न व माता और पिताके मारने से उपजा व गऊ और बालक या गर्भ या श्रेष्ठ ब्राह्मण के हनने से उत्पन्न हुआ पाप॥ ८९ ॥ व जाने न जाने

हुये पाप व महापाप व उपपाप व मन वचन और तनसे उपजेहुये भी पाप ॥ ९० ॥ सम्पूर्ण मेरी आज्ञासे निरसन्देह विनाशको प्राप्त होजाते हैं और ऐसेही पुत्र पौत्र धन धान्य कलत्र (स्त्री) क्षेत्र ॥ ९१ ॥ व सब मनवाञ्छित व स्वर्ग और सुखोंको भी इस अध्याय को जपकर पण्डितजन पावेहीगा इसमें संशय नहीं है ॥ ९२ ॥ इस भांति महादेवजी देवीजीके आगे जबतक कथाको कहते हैं तबतक नन्दीश्वर ने भलीभांति आकर व प्रणामकर ऐसी विज्ञापना किया ॥ ९३ ॥ कि मन्दिर बननेकी सब ओर से समाप्ति हुई है व यह रथ साजागयाहै और ब्रह्मादि देवलोग मिलित हैं याने एकत्र बटुर आये हैं ॥ ९४ ॥ और अवसर को परखते या सामने से देखतेहुये

सन्देहंममाज्ञया ॥ पुत्रान्पौत्रान्धनंधान्यंकलत्रंक्षेत्रमेवच ॥ ९१ ॥ मनःसमीहितंसर्वंस्वर्गंमोक्षंसुखान्यपि ॥ जप्त्वाध्यायमिमंविद्वान्प्राप्स्यत्येवनसंशयः ॥ ९२ ॥ इतियावत्समाख्यातिदेवोदेवीपुरःकथाम् ॥ तावन्नन्दीसमागत्यप्रणम्येतिव्यजिज्ञपत् ॥ ९३ ॥ जातापरिसमाप्तिश्चमहाप्रासादनिर्मितेः ॥ सज्जीकृतोरथश्चायंब्रह्माद्यामिलिताःसुराः ॥ ९४ ॥ तार्क्ष्यगःपुण्डरीकाक्षोद्वारितिष्ठतिसानुगः ॥ प्रतीक्षमाणोऽवसरंपुरस्कृत्यमुनीश्वरान् ॥ ९५ ॥ चतुर्दशसुलोकेषुयेयेतिष्ठन्तिसुव्रताः ॥ तेनिशम्याद्यमिलिताःप्रावेशिकमहोत्सवम् ॥ ९६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इतिनन्दिवचःश्रुत्वादेवोदेवीसमायुतः ॥ दिव्यंरथंसमारुह्यनिर्जगामत्रिविष्टपात् ॥ २९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेक्षेत्रतीर्थवर्णनंनामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व पार्षदों समेत गरुड़गामी कमलनेत्र विष्णुजी मुनीश्वरों को आगेकर द्वारमें टिके हैं या टिकते हैं ॥ ९५ ॥ व चौदहों लोकों में जे जे अच्छे व्रतवाले हैं वे आज गृहप्रवेश के महोत्सव को सुनकर इकट्ठेहुये हैं ॥ ९६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, इस प्रकार नन्दीश्वर के वचनको सुनकर देवीजी समेत महादेवजी दिव्य रथपर भलीभांति चढकर त्रिविष्टप (त्रिलोचनक्षेत्र) से निकलकर चले ॥ २९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेक्षेत्रतीर्थवर्णनंनामसप्तनवतितमोध्यायः ॥ ९७ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । आठनवे अध्यायमें वर्णित वृत्तसुवेश । श्रीयुतमुक्तिस्थानमें विश्वेश्वर परवेश ॥ श्रीव्यासजी बोले कि,हे महाभाग,सूत ! जैसे कार्त्तिकेयजी ने पूछतेहुये अगस्त्य जी के लिये शङ्करजीका महामहोत्सव कहा है वैसेही तुम सुनो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाप्राज्ञ ! त्रैलोक्य के आनन्दकी उपजानेवाली व महापापनाशिनी शङ्करजी की गृहप्रवेशसम्बन्धिनी कथाको तुम सुनो ॥ २ ॥ कि मन्दराचल से आयेहुये महादेवजी चैत्रदमन पर्व याने चैत्रसुदी त्रयोदशी में आनन्दवन को प्राप्त होकर भी हर्ष से ऐसी व वैसी विचरने लगे ॥ ३ ॥ अनन्तर मोक्षलक्ष्मीविलासनामक शिवालय जब सिद्धिको सब ओर से प्राप्तहुआ तब देवने आनन्दसे घरके भीतर

व्यासउवाच॥ शृणुसूतमहाभागयथास्कन्देनभाषितः॥महामहोत्सवःशम्भोःपृच्छतेकुम्भसम्भवे॥ १ ॥स्कन्दउवाच॥निशामयमहाप्राज्ञशम्भुप्रावेशिकींकथाम्॥त्रैलोक्यानन्दजननींमहापातकतङ्किनीम् ॥ २॥मन्दरादागतःशम्भुश्चैत्रेदमनपर्वणि ॥ प्राप्याप्यानन्दगहनमितश्चेतश्चचारह ॥ ३॥ मोक्षलक्ष्मीविलासेथप्रासादेसिद्धिमागते ॥ देवोविरजसःपीठादन्तर्गेहंविवेशह॥ ४॥ऊर्जशुक्लप्रतिपदिबुधराधासमायुजि॥चन्द्रेसप्तमराशिस्थेशेषेषूच्चग्रहेषुच॥५॥वाद्यमानेषुवाद्येषुप्रसन्नासुहरित्सुच ॥ ब्राह्मणानांश्रुतिरवन्यक्कृतान्यरवान्तरे ॥ ६ ॥ प्रतिशब्दितभूर्लोकभुवर्लोकान्तराध्वनि ॥ सर्वंप्रमुदितंचासीच्छम्भोःप्रावेशिकोत्सवे ॥ ७ ॥ जगुर्गन्धर्वनिकरानन्नृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ चारणास्तुस्तुतिंकुर्युर्जहृषुर्देवतागणाः ॥ ८ ॥ ववुर्गन्धवहावातावव्रृषुःकुसुमैर्घनाः॥ सर्वेमङ्गलनेपथ्याःसर्वेमङ्गलभाषिणः ॥ ९ ॥ स्थावराजङ्गमाःसर्वे

प्रवेश किया ॥ ४ ॥ बुधवार अनुराधानक्षत्र समेत कार्त्तिकसुदी प्रतिपदा (परिवा) में जब विश्वेश्वरके नामकी वृषराशिसे सतई वृश्चिकराशि में चन्द्रमा टिकाथा व अन्य शेष उच्चस्थानगत ग्रह थे ॥ ५ ॥ व बाजे वाद्यमान (बजायेजाते) थे व दिशायें प्रसन्नथीं व ब्राह्मणोंकी वेदध्वनिसे अन्य शब्दान्तर नीचे कियागया था ॥ ६ ॥ व भूलोक और भुवर्लोक के मध्यका मार्ग प्रतिशब्दितथा तब शङ्करके गृहप्रवेशसम्बन्धी उत्सव मे सबजगत् अधिक आनन्दित हुआ ॥ ७ ॥ और गन्धर्वों के समूहोंने गाया व अप्सराओं के गणोंने नाचा व चारणों ने स्तुतिकिया और देवतागण आनन्दित हुये ॥ ८ ॥ व सुगन्धवाही वायु बहे व मेघ फूलोंसे बरसे थे और उस समय सबकोई

मंगलभूषणवाले व सब मंगलभाषी ॥ ९ ॥ व सब स्थावर और जंगमजन आनन्द से व्याप्तहुये व सब देव दैत्य गन्धर्व्व और नाग ॥ १० ॥ व विद्याधर साध्य किन्नर नर और सब स्त्री व पुरुष समूहों मे चार पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) विराजे ॥ ११ ॥ व वे अर्थादि पुरुषार्थ विघ्नके विना बहुतही स्थान स्थान या क्षण क्षणमें थे और हे मुने ! तब धूपके धुवां समूहोंके द्वारा जिस श्यामतासे आकाश रंगितहुआ ॥ १२ ॥ उस श्यामताको आज भी कभी नहीं त्यागताहै और उससमय नीराजन (आरती) के लिये जे सब दीप प्रबोधित याने जगाये गये हैं ॥ १३ ॥ उनकी ज्योतियां आज भी आकाशमें ताराओंके मिषसे विराजती हैं और प्रतिमहलों

जाताआनन्दमेदुराः ॥ सुरासुरेषुसर्वेषुगन्धर्वेषूरगेषुच ॥ १० ॥ विद्याधरेषुसाध्येषुकिन्नरेषुनरेषुच ॥ स्त्रीपुञ्जातेषुसर्वेषु रेजुश्चत्वारएवच ॥ ११ ॥ निष्प्रत्यूहंचनितरांपुरुषार्थाःपदेपदे ॥ धूपधूमभरैर्व्योमयद्रक्तन्तुतदामुने ॥ १२ ॥ नाद्यापिनी लिमानन्तंपरित्यजतिकर्हिचित् ॥ नीराजनाययेदीपास्तदासर्वेप्रबोधिताः ॥ १३ ॥ तेषांज्योतींषिखेद्यापिराजन्तेता रकाच्छलात् ॥ प्रतिसौधंपताकाश्चनानाकाराविचित्रिताः ॥ १४॥ रम्यध्वजप्रभाधौतारेजुःप्रतिशिवालयम् ॥ कचिद्गा यन्तिगीतज्ञाःकचिन्नृत्यन्तिनर्तकाः ॥ १५॥ चतुर्विधानिवाद्यानिवाद्यन्तेचकचित्कचित् ॥ प्रत्यध्वंचन्दनरसच्छटापि च्छिलभूमयः ॥ १६ ॥ हरितश्वेतमाञ्जिष्ठनीलपीतबहुप्रभाः ॥ प्रत्यङ्गणंशुभाकारारङ्गमालाश्चकाशिरे ॥ १७॥ रत्नकु ट्टिमभूभागागोपुराग्रेषुरेजिरे ॥सुधोज्ज्वलाहर्म्यमालाःसौधनामप्रपेदिरे॥१८॥अचेतनान्यपितदाचेतनानीवसम्बभुः॥

में अनेकों आकारवाली विचित्रित पताकायें ॥ १४ ॥ जेकि रम्य ध्वजोंकी दीप्तिसे धोईगई शुद्ध हैं वे प्रति शिवालयों में सोहती हैं (थीं) व कहीं गीतोंके जाननेवाले गायकजन गाते है कहीं नर्त्तक नाचते हैं ॥ १५ ॥ और कहीं कहीं चार भांति के बाजे बजाये जातेहैं व प्रति गलियोंमें चन्दन रसके प्रक्षेपों या छीटोंसे पिच्छिल (रसीली, चीकन) पृथिवियां हैं ॥ १६ ॥ व हरी उजली लाली काली पीली और बहुती प्रभा (छवि) वाली रंगोंकी मालायें प्रति आंगनोंमें प्रकाशती हैं (थीं) ॥ १७ ॥ व बाहर वाले द्वारो (फाटकों) के आगे रत्नो और मणियोसे जड़ेहुये भूमिके भाग विराजतेथे व चूनासे पोती उजली महलोंकी पंक्तियां सौधनामको प्राप्तहुई ॥ १८ ॥ और उस

समय जड़भी चेतनों की नाईं संशोभित हुये हे अगस्त्यजी ! यहा जे कोई मंगल कहेजाते हैं ॥ १९ ॥ उन सबहीका भी वह दिन जन्मदिन हुआ याने उस दिनमें सब मङ्गल उत्पन्न हुये अनन्तर देवोंके देव श्रीविश्वनाथजी ने आकर मुक्तिमण्डपमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ तदनन्तर शुभ सिंहासन में बैठे व कुमारो याने गणेश कार्त्तिकेयादि या सनकादिकों के समूहों से सबओर घिरेहुये पार्वती से सहित देवदेव महादेवजी महर्षि समूहों के साथ ब्रह्माजी से अभिषिक्त हुये ॥ २१ ॥ उस समय आनन्द से युक्त देवसमूहों और महानागेन्द्रों ने असंख्य रत्न बहुत रेशमी वस्त्र या पीताम्बर और सोहती हुई प्यारे सुगन्धवाली विचित्र मालाओं से महेशजी की पूजा

यानिकानीहकीर्त्यन्तेमङ्गलानिघटोद्भव ॥ १९ ॥ तेषामेवहिसर्वेषान्तत्तुजन्मदिवाभवत् ॥ आगत्यदेवदेवोथमुक्तिमण्डपमाविशत् ॥ २० ॥ अथाभिषिक्तश्चतुराननेनमहर्षिवृन्दैःसहदेवदेवः ॥ शुभासनस्थःसहितोभवान्याकुमारवृन्दैःपरितोवृतश्च ॥ २१॥ रत्नैरसङ्ख्यैर्बहुभिर्दुकूलैर्माल्यैर्विचित्रैर्लसदिष्टगन्धैः ॥ अपूपुजन्देवगणामहेशंतदामुदातेचमहोरगेन्द्राः ॥ २२ ॥ रत्नाकरैश्चापिगिरीन्द्रवर्यैर्यथास्वमन्यैरपिपुण्यधीभिः ॥ सम्पूजितःकुम्भजतत्रशम्भुर्नीराजितोमातृगणैरथेशः ॥ २३ ॥ सन्तोष्यसर्वान्प्रथमंमुनीन्द्रान्स्वैःस्वैर्हृदिस्थैश्चचिराभिलाषैः ॥ ब्रह्माणमाभाष्यशिवोथविष्णुंजगादसर्वामरवृन्दवन्द्यः ॥ २४ ॥ इतोनिषीदेतिसमानपूर्वन्त्वंमेसमस्तप्रभुतैकहेतुः ॥ दूरेपितिष्ठन्निकटस्त्वमेवत्वत्तोनकश्चिन्ममकार्यकर्ता ॥ २५ ॥ त्वयादिवोदासनरेन्द्रवर्यःसदूपदेशैश्चतथोपदिष्टः ॥ यथाससिद्धिंपरमामवापसमीहितंमेनि

किया ॥ २२ ॥ हे अगस्त्यमुने ! समुद्र, पर्वतेन्द्र श्रेष्ठ और अन्य भी पुण्यबुद्धिवालों से यथाधन याने अपने ऐश्वर्य के अनुसार वहां सम्पूजित परमेश्वर शङ्करजी अनन्तर मातृगणो से नीराजित हुये ॥ २३ ॥ और पहले अपने अपने हृदय में टिकेहुये बहुत कालके मनोरथो से सब मुनीन्द्रों को सन्तुष्टकर व ब्रह्माजी को सामने से बोलकर अनन्तर सब देवसमूहों से वन्दनीय शिवजी ने विष्णुजी से कहा ॥ २४ ॥ कि ऐसेवह तुम आदरपूर्वक यहां बैठो क्योंकि तुम मेरी समस्त प्रभुता के कारण हो व दूर भी टिके हुये तुम निकटही हो और तुम से अधिक मेरा कार्य्यकर्त्ता कोई नहीं है ॥ २५ ॥ और तुमने दिवोदास नरेंद्रवर्य्य को वैसे उपदेश दिया कि जैसे वह परम

सिद्धि को प्राप्त हुआ फिर मेरा सम्पूर्ण वाञ्छित विचार सिद्ध होगया ॥ २६ ॥ अहो विष्णो! जो तुम्हारा मनमाना मनोरथहो उस वरको कहो यहां कुछ भी तुमको अदेय नहीं है क्योंकि जो यह आनन्दवन मुझको मिला है उस में तुम और यह गणेशही कारण हैं ॥ २७ ॥ जहां मेरे जन्तुओं का फिर जन्म नहीं है वह यह ब्रह्मरसायन की खानि व श्रेष्ठ सौख्यकी भूमि काशीपुरी जैसे प्यारी है वैसे त्रिलोक में मेरा प्यारा कुछ भी नहीं है ॥ २८ ॥ व इसभांति जगदीश्वर के वाक्य को सुनकर विष्णुजी वरदायक महेश्वरजी से अधिकता समेत बोले कि हे पिनाकपाणे! जो तुम प्रसन्नहो तो मैं तुम्हारे चरणारविन्द से दूर न होऊं ॥ २९ ॥ ऐसा मधुदैत्यविनाशन विष्णुजीका वचन

खिलञ्चसिद्धम् ॥ २६ ॥ विष्णोवरंब्रूहियईप्सितस्तेनादेयमत्रास्तिकिमप्यहोते ॥ इदंमयाऽऽनन्दवनंयदाप्तंहेतुस्तुतत्र त्वमसौगणेशः ॥ २७ ॥ नमेप्रियंकिञ्चनविष्टपत्रयेतथायथेयंपरसौख्यभूमिः ॥ वाराणसीब्रह्मरसायनस्यखनिर्जनिर्यत्रनदीर्घशायिनाम् ॥ २८ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यंजगदीशितुश्चप्रोवाचविष्णुर्वरदंमहेशम् ॥ यदिप्रसन्नोसिपिनाकपाणेत्वदापदादूरमहंनतेस्याम् ॥ २९ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यंमधुसूदनस्यजगादतुष्टोनितरांपुरारिः ॥ सदामुरारेममसन्निधौत्वन्तिष्ठस्वनिर्वाणरमाश्रयेत्र ॥ ३० ॥ आदावनाराध्यभवन्तमत्रयोमांभजिष्यत्यपिभक्तियुक्तः ॥ समीहितंतस्यनसेत्स्यतिध्रुवंपरात्परान्मेम्बुजचक्रपाणे ॥ ३१ ॥ सर्वत्रसौख्यंममसुक्तिमण्डपेसन्तिष्ठमानस्यभवेदिहाच्युत ॥ नतत्तुकैलासगिरौसुनिर्मलेनभक्तचेतस्यपिनिश्चलश्रियि ॥ ३२ ॥ निमेषमात्रंस्थिरचित्तवृत्तयस्तिष्ठन्तियेदक्षिणमण्डपेत्रमे ॥ अनन्यभावा

सुनकर बहुतही प्रसन्न हुये त्रिपुर के शत्रु शिवजी ने कहा कि हे मुरदैत्य के वैरिन्! तुम यहां मुक्तिलक्ष्मी के अच्छे स्थान याने मुक्तिमण्डप में मेरे समीपही सदा टिको ॥ ३० ॥ हे कमल या शङ्खचक्रपाणे! भक्तियुक्त भी जो जन यहां पहले आपको न पूजकर मुझको सेवेगा उसका वाञ्छित परसे परे याने बड़े से बड़े भी मुझ से निश्चय कर न सिद्ध होवेगा ॥ ३१ ॥ हे अच्युत! इस मेरे मुक्तिमण्डप में टिकते हुये का जो सौख्य सर्वत्र है वह बहुत विमल कैलास पर्वत में नहीं है और निश्चल शोभावाले भक्तके चित्तमें भी नहीं है ॥ ३२ ॥ जे कि स्थिर चित्तवृत्तिवाले, दृढमानस, अनन्यभक्त मेरे इस दक्षिण मुक्तिमण्डप में निमेषमात्र तक भी टिकते हैं वे फिर गर्भदशाकी

उपासना नहीं करते हैं या उसके समीप में नहीं बसते हैं ॥ ३३ ॥ व जे कोई सबतीर्थों के मुख्य मस्तकविभूषण (शिरोमणि) अथाह चक्रसर (मणिकर्णिका) में भलीभांति स्नानकर इस मुक्तिमण्डप में क्षणभर पैठते हैं वे पापहीन मेरे गणही हैं ॥३४ ॥ व मेरे मुक्तिमण्डप में क्षणभर स्थिर हुये जे जन मुझको सुमिरते हैं व यथाशक्ति कुछ धनको देते भी हैं और पुण्यकथाओं को सुनते हैं वे करोड़ गौओं के दान के फलको सेवते हैं ॥ ३५ ॥ हे उपेन्द्र ! जे इस मणिकर्णिका कुण्ड में स्नानकर मुक्ति के लिये जनो के आश्रय (आधार) मुक्तिमण्डप में क्षणभर भलीभांति बसते हैं उनसे बहुत कालतक तपस्यायें तपीगई हैं और वे सम्पूर्ण तीर्थसमूहों से नहायेही

अपिगाढमानसानतेपुनर्गर्भदशामुपासते ॥ ३३ ॥ संस्नाययेचक्रसरस्यगाधेसमस्ततीर्थैकशिरोविभूषणे ॥ क्षणंविशन्तीहनिरीहमानसान्निरेनसस्तेममपार्षदाहि ॥ ३४ ॥ स्मरन्तियेमामपवर्गमण्डपेकिञ्चिद्यथाशक्तिददत्यपिस्वम् ॥ शृण्वन्तिपुण्याश्चकथाःक्षणं स्थिरास्तेकोटिगोदानफलंभजन्ति ॥ ३५ ॥ उपेन्द्रतप्तानितपांसितैश्चिरंस्नाताहितेचाखिलतीर्थसार्थकैः ॥ स्नात्वेहयेवैमणिकर्णिकाह्रदेसमासतेमुक्तिजनाश्रयेक्षणम् ॥ ३६ ॥ तीर्थानिसन्तीहपदेपदेहरेतुलाकतेषांमणिकर्णिकायाः ॥ कतीहनोसन्तिशुभाश्चमण्डपाःपरंपरोमुक्तिरमाश्रयोयम् ॥ ३७ ॥ कैवल्यमण्डपस्यास्यभविष्येद्वापरेहरे ॥ लोकेख्यातिर्भवित्रीयमेषकुक्कुटमण्डपः ॥ ३८ ॥ हरिरुवाच ॥ भालनेत्रसमाख्याहिकथंनिर्वाणमण्डपः ॥ तथाख्यातिमसौगन्तायथादेवेनभाषितम् ॥ ३९ ॥ देवदेवउवाच ॥ महानन्दोद्विजोनामभविष्योत्रचतुर्भुज ॥ अग्रवेदीसमाचारस्त्यक्ततीर्थप्रतिग्रहः ॥ ४० ॥ अदाम्भिकोऽक्रूरमनाःसदैवातिथिवल्लभः ॥ अथयौवनमासाद्यपितर्युपरते

हैं ॥ ३६ ॥ हे हरे ! यहां स्थान स्थान में जे तीर्थ हैं उनकी मणिकर्णिका के साथ समता कहां है और यहां कितने शुभमण्डप नहीं हैं परन्तु यह मुक्तिलक्ष्मी का स्थान (मुक्तिमण्डप) सबों से श्रेष्ठहै ॥ ३७ ॥ हे भक्तार्तिहारिन्, भगवन् ! भविष्य (होनहारे) द्वापरयुग में इस मुक्तिमण्डप की यह लोकप्रसिद्धि होवेगी कि यह कुक्कुटमण्डप है ॥ ३८ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे भालनेत्र ! जैसे देवने कहा वैसी ख्याति को यह निर्वाणमण्डप कैसे प्राप्तहोवेगा उसको आप कहो ॥ ३९ ॥ श्रीमहादेव जी बोले कि, हे चतुर्भुज ! यहां महानन्द नाम ब्राह्मण होनेवाला है जोकि ऋग्वेदी अच्छा आचारवान् तीर्थ में दानों का त्यागी ॥ ४० ॥ अदम्भी, अहिंसकमन (कोमलचित्त)

सदैव अतिथियों को प्यारकरता था वहही यौवन को प्राप्त होकर अनन्तर पिताके मरे हुये होतेही ॥ ४१ ॥ तीव्र कामबाणों से अनवसर में स्थान कराया गया है और उसके साथ निश्चय से मित्रता को कर किसी की स्त्री को हरलाया ॥ ४२ ॥ व उससे विमोहित और प्रेरित होकर पीने के न योग्य मद्य को पीनेलगा व काम से मोहित हुआ अभक्ष्यभक्षण (मांसादि खाने) में रुचिवाला होगया ॥ ४३ ॥ व धनी वैष्णवों को देखकर क्षणभर वैष्णववेषधारी मूढ़ात्मा नरकका कारण वह शैवोंको निंदता है ॥ ४४ ॥ और कुछेक वस्तु को सबओर से देना चाहते हुये शिवभक्तोंको देखकर शैव चिह्नों से उपजीविकावाला होकर सब वैष्णवों की निन्दा करे है ॥ ४५ ॥ ऐसे

सहि ॥ ४१ ॥ विषमेषुशरैस्तीव्रैःकारितस्त्वपदेपदम् ॥ जहारकस्यचिद्भार्यांमैत्रींकृत्वातुतेनवै ॥ ४२ ॥ तयाचप्रेरितोऽपेयंपपौचापिविमोहितः ॥ अभक्ष्यभक्षणरुचिरभून्मदनमोहितः ॥ ४३ ॥ वैष्णवान्धनिनोदृष्ट्वाक्षणंवैष्णववेषभृत् ॥ शैवान्निन्दतिमूढात्मानरकत्राणकारणम् ॥ ४४ ॥ शिवभक्तान्समालोक्यकिञ्चिच्चपरिदित्सुकान् ॥ गर्हयेद्वैष्णवान्सर्वाञ्छैवलिङ्गोपजीवकः ॥ ४५ ॥ इतिपाखण्डधर्मज्ञःसन्ध्यास्नानपराङ्मुखः ॥ विशालतिलकःस्रग्वीशुद्धधौताम्बरोज्ज्वलः ॥ ४६ ॥ शिखीचोपग्रहकरःसर्वेभ्योऽसत्प्रतिग्रही ॥ तस्यापत्यद्वयंजातमुन्मत्तपथवर्तिनः ॥ ४७ ॥ एवंतस्यप्रवृत्तस्यकश्चित्पर्वतदेशतः ॥ समागमिष्यतिधनीतीर्थयात्रार्थसिद्धये ॥ ४८ ॥ स्नात्वासचक्रसरसिकथयिष्यतिचेतिवै ॥ अहमस्तिधनोदित्सुर्जात्याचाण्डालसत्तमः ॥ ४९ ॥ अस्तिकश्चित्प्रतिग्राहीयस्मैदद्यामहंधनम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाकैश्चिच्चांगुलिसञ्ज्ञया ॥ ५० ॥ उद्दिष्टउपविष्टोसौयोजपेद्ध्याननमुद्रया ॥ एषप्रतिग्रहंत्वत्तोग्रहीष्यतिनचेतरः ॥ ५१ ॥ इति

पाखण्ड धर्मोंकापण्डित, सन्ध्या व स्नानसे विमुख विशाल तिलककारी मालाधारी शुद्ध धोये कपड़ों से उज्ज्वल ॥ ४६ ॥ व बड़ीचोटी रखाये हुआ हस्तकुशलकर्ता और सबों से असत (निषिद्ध) दान लेनेवाला है उस उन्मत्तमार्गवर्ती के दो लड़के हुये ॥ ४७ ॥ ऐसे उसके प्रवृत्त होतेही कोई धनी तीर्थयात्रार्थ सिद्धिके लिये पर्वत देश से भलीभांति आवेगा ॥ ४८ ॥ और वह चक्रसर (मणिकर्णिका) में स्नानकर निश्चय से ऐसा कहेगा कि जाति से चाण्डालसत्तम, धनवान् मैं दान देने का चाहीहूँ ॥ ४९ ॥ कोई सामने से लेनेवाला है जिसको मैं धनदूं इसप्रकार उसके वचन को सुनकर किसी ने अंगुली की संज्ञा से ॥ ५० ॥ उद्देश किया कि जो वह बैठा आ

ध्यानमुद्रा से जप करे है यह तुमसे दान लेवेगा और अन्य कोई नहीं ग्रहण करेगा ॥ ५१ ॥ तब ऐसा उसका वचन सुनकर उसके समीप में जाकर व दण्डवत् प्रणाम कर उस अन्त्यज(चाण्डाल) ने उससे कहा ॥ ५२ ॥ कि हे महाब्राह्मण ! तुम मुझको उबारो व मेरे तीर्थ को सफलकरो व मेरे कुछ वस्तु है उसको ग्रहण करो और दया को करो ॥ ५३ ॥ अनन्तर रुद्राक्षकी मालाको कानें में कर व ध्यान को छोड़कर उस ब्राह्मण ने हाथ की संज्ञासे पूंछा कि यहां तुम्हारे कितना धन है ॥ ५४ ॥ और उस संज्ञाको जानकर अत्यन्त आनन्दित के समान वह अधिकता से बोला कि जितने से तुम्हारी भलीभांति तृप्ति होवे उतने धनको मैं निश्चयसे दूँगा यह अन्यथा नहीं

तेषांवचःश्रुत्वासगत्वातत्समीपतः ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याथतम्बभाषेतदान्त्यजः ॥ ५२ ॥ मामुद्धरमहाविप्रतीर्थंमेसफलीकुरु ॥ किञ्चिद्वस्त्वस्तिमेतत्त्वंगृहाणानुग्रहंकुरु ॥ ५३ ॥ अथाक्षमालिकांकर्णेकृत्वाध्यानंविसृज्यच ॥ कियद्धनंतवास्तीहपप्रच्छकरसञ्ज्ञया ॥ ५४ ॥ तच्चसञ्ज्ञांसवैबुद्ध्वाप्रोवाचातिप्रहृष्टवत् ॥ संतृप्तिर्यावतातेस्यात्तावद्दास्यामिनान्यथा ॥ ५५ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वात्यक्त्वामौनमुवाचह ॥ सानन्दःसमहानन्दोनिःस्पृहोस्मिप्रतिग्रहे ॥ ५६ ॥ परन्तेऽनुग्रहार्थन्तुकरिष्यामिप्रतिग्रहम् ॥ किञ्चमेवचनंत्वञ्चेत्करिष्यस्युत्तमोत्तम ॥ ५७ ॥ यावदस्त्यखिलंवित्तंतन्मध्येन्यस्यकस्यचित् ॥ नस्तोकमपिदातव्यंतदाऽऽदास्यामिनान्यथा ॥ ५८ ॥ चाण्डालउवाच ॥ यावदस्तिमयानीतंविश्वेशप्रीतयेवसु ॥ तावत्तुभ्यंप्रदास्यामिविश्वेशस्त्वंयतोमम ॥ ५९ ॥ येवसन्तीहविश्वेशराजधान्यांद्विजोत्तम ॥ क्षुद्राक्षुद्राजन्तुमा

है ॥ ५५ ॥ इसभांति उसके वचन को सुनकर व मौनको त्यागकर आनन्द समेत उस महानन्द ने स्पष्ट कहा कि मैं दान लेने में स्पृहा (चाह) से हीनहूँ ॥ ५६ ॥ परन्तु हे उत्तमोत्तम ! जो तुम मेरे कुछेक वचन को करोगे तो मैं तुम्हारे अनुग्रह के अर्थ प्रतिग्रह (दानलेना) को करूंगा ॥ ५७ ॥ कि जितना सम्पूर्ण धन है उस के बीच में से अन्य किसी को थोडा भी न देना चाहिये तो मैं लेऊँगा अन्यथा नहीं ॥ ५८ ॥ चाण्डाल बोला कि, श्रीविश्वनाथजी की प्रीति के लिये जितना धन मुझ से लायागया है उसको मैं तुम्हारे लिये अधिकता से दूँगा जिससे तुमही मेरे विश्वेश्वरहो ॥ ५९ ॥ क्योंकि हे द्विजोत्तम ! जोकि छोटेबड़े जन्तुमात्र इस शिवराजधानी

काशी में बसते हैं वे भी विश्वेश्वर के अंशही हैं ॥ ६० ॥ जे पराया उद्धार करने के स्वभाववाले हैं व जे पराई इच्छा के बड़े पूरक है और जे परोपकार करनेशील हैं वे भी विश्वेश के अंशही हैं ॥ ६१ ॥ उससमय इसभांति उसके वचन को सुनकर अधिक आनन्दित इन्द्रिय व मनवाले उस ब्राह्मणने उस पर्वत देशवासी अन्त्यज (चाण्डाल) से कहा ॥ ६२ ॥ कि वेग समेत तुम आवो कुशोंको लेवो और दान को करो ऐसेही उस महामनस्वी पर्वतदेशवासीने शीघ्रही वैसेही किया ॥ ६३ ॥ और श्रीविश्वनाथजी प्रसन्न होवें ऐसा कहकर वह यथागत चलागया व अन्य ब्राह्मणों से धिक्कृत भी यहां बसता हुआ वह ब्राह्मण ॥ ६४ ॥ बाहेर निकला मात्र

त्र।विश्वेशांशास्तएवहि ॥ ६० ॥ परोद्धरणशीलायेयेपरेच्छाप्रपूरकाः ॥ परोपकृतिशीलायेविश्वेशांशास्तएवहि ॥ ६१ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वाप्रहृष्टेन्द्रियमानसः ॥ उवाचपार्वतीयन्तंसोऽग्रजन्मान्त्यजन्तदा ॥ ६२ ॥ आयाहिदर्भानादेहि कुरूत्सर्गंत्वरान्वितः ॥ तथेतिसचकाराशुपार्वतीयोमहामनाः ॥ ६३ ॥ विश्वेशःप्रीयताञ्चेतिप्रोच्ययातोयथागतः ॥ सचद्विजोद्विजैरन्यैर्धिकृतोपिवसन्निह ॥ ६४ ॥ बहिर्निर्गतमात्रस्तुबहुभिःपरिभूयते ॥ चाण्डालब्राह्मणश्चैषचाण्डालात्तध नस्त्वसौ ॥ ६५ ॥ असावेवहिचाण्डालःसर्वलोकबहिष्कृतः ॥ इत्थन्तमनुधावन्तिथूत्कुर्वन्तःपरितोहरे ॥ ६६ ॥ सचत द्भयतोगेहात्काकभीतादिवान्धवत् ॥ ननिःसरेत्कचिदपिलज्जाकृतिनतास्यकः ॥ ६७ ॥ सएकदासंप्रधार्यगृहिण्यालो कदूषितः ॥ जगामकीकटान्देशांस्त्यक्त्वावाराणसींपुरीम् ॥ ६८ ॥ मध्येमार्गंसगच्छन्वैलुण्ठितस्तुसकाञ्चनः ॥ अपि

होकर बहुतेजनों से तिरस्कृत होता है कि यह चाण्डाल ब्राह्मण है व यह चाण्डालसे धन लेनेवाला है ॥ ६५ ॥ ऐसे सबलोगों या लोकोसे बाहेर कियागया यहही चांडाल है, हे हरे ! इसभांति थू शब्द पूर्वक थूंक को करते हुये बहुत से लोग उसके पीछेधावते हैं ॥ ६६ ॥ और लज्जा करने से नीचे हुये मुखवाला वह कागों से डरे उल्लू की नाईं उनके डरसे घर से कहीं भी नहीं निकलै है ॥ ६७ ॥ व एक समय स्त्री के साथ विनिश्चय कर लोगों से दूषित हुआ वह काशीपुरी को छांडकर कीकट (मगह गया प्रदेश) देशों को चलागया ॥ ६८ ॥ व बीचगली में जाताहुआ वह सोने समेत लखागया और कार्पटिको (लालेवस्त्रवाले शूद्र तपस्वी) के बीच मे टिका भी

वह मार्ग रोंकनेवाले बटपारों से रुद्ध हुआ ॥ ६९ ॥ और वे चोर स्त्रीआदि सकल सामग्री समेत उसको बडे वन में लेजाकर लूटकर धनको लेकर व परस्पर भलीभांति सबओरसे देखकर या विचारकर ॥ ७० ॥ फिर अधिकतासे बोले कि इसके न जीवतही यह बहुत धन पचेगा इसलिये परिचारकों याने सबओर चलनेवाले दासों समेत यह धनी बड़े यत्न से मारने योग्य है ॥ ७१॥ ऐसा हृदय में भलीभांति अधिकता से धारणकर (विनिश्चयकर) उन चोरों ने उच्चस्वरसे कहा कि हे पथिक! तुम सुमिरने योग्यको सुमिरो दासों समेत तुमको हम मारेंगे यह विनिश्चितहै ॥ ७२॥ ऐसा सुनकर उस ब्राह्मण ने मनमेंही कहा कि खेद या कष्ट है कि जिसके लिये बहुतसा धन मुझ से प्रति-

कार्पटिकान्तस्थःसरुद्धोमार्गरोधिभिः ॥६९॥ नीत्वातेतमरण्यानींतस्कराःसपरिच्छदम् ॥ उल्लुण्ठ्यधनमादायसमा
लोच्यपरस्परम् ॥ ७० ॥ प्रोचुर्भूरिधनंचैतज्जीर्यत्यस्मिन्नजीवति ॥ असौधनीप्रयत्नेनवध्यःसपरिचारकः ॥ ७१ ॥ सं
प्रधार्यैतितेप्राहुःस्मर्तव्यंस्मरपान्थिक ॥ त्वांवयंघातयिष्यामोनिश्चितंसपरिच्छदम् ॥ ७२ ॥ निशम्येतिमनस्येवकथ
यामाससद्विजः ॥ अहोप्रतिगृहीतंमेयदर्थेवसुभूरिशः ॥ ७३ ॥ कुटुम्बमपितन्नष्टंनष्टश्चापिप्रतिग्रहः ॥ जीवितञ्चापिमेन
ष्टंनष्टाकाशीपुरीस्थितिः ॥ ७४ ॥ युगपत्सर्वमेवाशुनष्टन्दुर्बुद्धिचेष्टया ॥ नकाश्याम्मरणम्प्राप्तंतस्माद्दुष्टप्रतिग्रहा
त् ॥ ७५ ॥ प्रान्तेकुटुम्बस्मरणात्तथाकाशीस्मृतेरपि ॥ चौरैर्हतोपिसतदाकीकटेकुक्कुटोऽभवत् ॥७६ ॥ साकुक्कुटीसुतौ
तौतुताम्रचूडत्वमापतुः ॥ प्रान्तेकाशीस्मरणतोजाताजातिस्मृतिःपरा ॥ ७७ ॥ इत्थम्बहुतिथेकालेगतेकार्पटिकोत्त

गृहीत हुआ याने दान लिया गया ॥ ७३ ॥ वह कुटुम्बभी नष्ट है व दानभी नष्ट है व मेरा जीवनभी नष्टहै और काशीपुरी की स्थिति (टिकना) नष्ट हुईहै ॥ ७४ ॥ दुर्बुद्धि के व्यापार से एक साथ ही शीघ्रही सब नष्ट हुआ और उस दुष्ट दान से काशी में मरना नहीं प्राप्त हुआ ॥ ७५ ॥ इसप्रकार प्रांत याने देहांत समय कुटुम्ब के स्मरण से तथा काशी के सुमिरने से भी चोरों से भी मारा गया वह गया प्रदेश में कुक्कुट (मुर्गा) हुआ ॥ ७६ ॥ व वह स्त्री मुर्गीहुई और वे दोनों पुत्र भी कुक्कुट भाव को प्राप्तहुए परन्तु देहांत समय काशी के सुमिरने से श्रेष्ठ, जातिस्मृति हुई याने पूर्वजन्म की सुधि बनीरही ॥ ७७ ॥ ऐसे बहुतसे समय के बीत जातेही जहा

वे चारो मुर्गे हैं उसही गली में वे पूर्वोक्त कार्पाटिकोत्तम प्राप्त हुए ॥ ७८ ॥ जे कि आपुसमें ही काशी की कथा को अधिकतासे करते हुए हैं उस समय काशी की कथा तो भलीभाति सुनकर वे चारो मुर्गे ॥ ७९॥ जातिस्मृति (पूर्वजन्मकी सुधि)के प्रभाव से उनके सङ्गसेही निकलकर चले और गली में देखकर उन दयालु कार्पाटिक श्रेष्ठों करके ॥ ८० ॥ चावल आदिको के सबओर फेंकनेसे उत्तम क्षेत्र (काशी) को पहुँचाये गये और क्षेत्रको भलीभांति प्राप्तहोकर वे चारो कुक्कुट ॥ ८१ ॥ यहां मुक्ति मण्डप के सबओर विचरनेवाले होनेहारे हैं व जेकि भोजनको जीते व नियमों समेत व काम और क्रोधसे विमुख ॥ ८२ ॥ व मेरी कथाओंके आलापोंसे बहुत हँसनेवाले

मा: ॥ तस्मिन्नेवाध्वनिप्राप्ताश्चत्वारोयत्रकुक्कुटाः ॥ ७८ ॥ वाराणस्याःकथाम्प्रोच्चैःकुर्वन्तोऽन्योन्यमेवहि ॥ काशीकथांसमाकर्ण्यतदातेचरणायुधाः ॥ ७९ ॥ जातिस्मृतिप्रभावेणतत्सङ्गेनतुनिर्गताः ॥ तैश्चकार्पटिकश्रेष्ठैःपथिदृष्ट्वाकृपालुभिः ॥ ८० ॥ तन्दुलादिपरिक्षेपैःप्रापिताःक्षेत्रमुत्तमम् ॥ तेतुक्षेत्रंसमासाद्यचत्वारश्चरणायुधाः ॥ ८१ ॥ चरिष्यन्तोऽत्रपरितोमुक्तिमण्डपमुत्तमम् ॥ जिताहारान्सनियमान्कामक्रोधपराङ्मुखान् ॥ ८२ ॥ प्रहासान्मत्कथालापान्लोभमोहविवर्जितान् ॥ स्वर्धुनीस्नानसंक्लिन्नसुनिर्मलशिरोरुहान् ॥ ८३ ॥ मन्नामोच्चारणपरान्मत्कथार्पितसुश्रुतीन् ॥ मद्दत्ताचित्तसद्वृत्तीन्दृष्ट्वाक्षेत्रनिवासिनः ॥ ८४ ॥ मानयामासुरथतान्कुक्कुटान्साधुवर्त्मनः ॥ प्राक्तनाद्वासनायोगात्सम्प्रधार्यपरस्परम् ॥ क्रमेणाहारमाकुञ्च्यप्राणांस्त्यक्ष्यन्तिचात्रवै ॥ ८५ ॥ पश्यतांसर्वलोकानांविष्णोतेमदनुग्रहात् ॥ विमानमधिरुह्याशुकैलासम्प्राप्यमत्पदम् ॥ ८६ ॥ निर्विश्यसुचिरङ्कालंदिव्यान्भोगाननुत्तमान् ॥ ततोऽत्रज्ञानिनोभूत्वामु

व लोभ और मोहसे विहीन व गङ्गास्नान से भलीभांति भीगे हुये बहुत विमलबालोंवाले ॥ ८३ ॥ व मेरे नामोच्चारण में परायण व मेरी कथा में अच्छे कानोंको अर्पण किये और मुझ में चित्तकी अच्छी वृत्ति को दिये हुये हैं उन क्षेत्र निवासियों को देखकर विचरेंगे ॥ ८४ ॥ अनन्तर वे भी साधुमार्गी उन कुक्कुटों को मान करते भये याने मान करेंगे और वे मुर्गे पूर्वजन्म की वासना के योग से आपुस में विनिश्चयकर क्रम से भोजन को सिकोड़कर याने कमकर यहांहीं प्राणों को त्यागेंगे ॥ ८५ ॥ व हे विष्णो ! सब लोगों के देखतेही वे मेरे अनुग्रह से विमान में चढ़कर मेरे स्थानकैलास को शीघ्रही प्राप्त होकर ॥ ८६ ॥ बहुत अधिक कालतक अत्यन्त उत्तम

दिव्य भोगों को भोगकर तदनन्तर यहां काशी या कैलास में ज्ञानीहोकर निरन्तर रहनेवाली मुक्तिको प्राप्तहोवेंगे ॥ ८७ ॥ उसकारण तब से लगाकर सबलोग यह मुक्ति मण्डप का नाम कहेंगे कि यह कुक्कुटमण्डप है ॥ ८८ ॥ और जे मनुष्य मुक्ति मण्डप को आकर उनके चरित्र को भी सुमिरेंगे वे भी कल्याण या पुण्यकोही निश्चय से प्राप्त होवेंगे ॥ ८९ ॥ इसभांति जबतक शङ्करजीने विष्णुजी के आगे भविष्य कथाको किया तबतक घण्टाओं का रोमहर्षण शब्द उदय हुआ ॥ ९० ॥ अनन्तर नन्दीश्वर को बुलाकर देवों के देव पार्वती के पति वचन को उच्चस्वरसे बोले कि हे नन्दिन्! यह शब्द क्यों हुआ है उसको जानकर और आकर तुमकहो ॥ ९१ ॥ तदनन्तर भली-

क्तिम्प्राप्स्यन्तिशाश्वतीम् ॥ ८७ ॥ ततोलोकास्तदारभ्यकथयिष्यन्तिसर्वतः ॥ मुक्तिमण्डपनामैतदेषकुक्कुटमण्डपः ॥ ८८ ॥ चरित्रमपिवैतेषांयेस्मरिष्यन्तिमानवाः ॥ मुक्तिमण्डपमासाद्यश्रेयःप्राप्स्यन्तितेपिहि ॥ ८९ ॥ इतियावत्कथांशम्भुर्भविष्यामग्रतोहरेः ॥ अकरोत्तुमुलोनादोघण्टानान्तावदुद्गतः ॥ ९० ॥ अथनन्दिनमाहूयदेवदेवउमाधवः ॥ प्रोवाचनन्दिन्विज्ञायागत्यब्रूहिकुतोरवः ॥ ९१ ॥ अथनन्दीसमागत्यप्रोवाचवृषभध्वजम् ॥ नमस्कृत्यप्रहृष्टास्यःप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ९२ ॥ नन्द्युवाच ॥ देवदेवत्रिनयनकिमपूर्वम्ब्रवीमिते ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासोऽत्रकैश्चित्कैश्चित्समर्च्यते ॥ ९३ ॥ अथस्मित्वाब्रवीच्छम्भुःसिद्धंनस्तुसमीहितम् ॥ उत्थायदेवदेवेशःसहदेव्यासुमङ्गलः ॥ ९४ ॥ ब्रह्मणाहरिणासार्धंततोऽगाद्रङ्गमण्डपम् ॥ स्कन्दउवाच ॥ श्रुत्वाध्यायमिमम्पुण्यंपरमानन्दकारणम् ॥ नरःपराम्मुदम्प्राप्यकैलासम्प्राप्स्यतिध्रुवम् ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेमुक्तिमण्डपगमनंनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

भांति लौट आकर व वृषभध्वज (शिव) के नमस्कारकर दोनो हाथ जोडेहुये प्रसन्न मुखवाले नन्दीश्वरने कहा ॥ ९२ ॥ श्रीनन्दीश्वरजी बोले कि, हे देवदेव, त्रिनयन ! मैं तुम से किस अपूर्वको कहताहूँ कि यह मोक्ष लक्ष्मी विलास मन्दिर किसी किसी लोगोंसे भलीभांति पूजाजाताहै ॥९३॥ अनन्तर मुसकाकर शङ्करजीने कहा कि मेरा वांछित सिद्ध हुआ और सुमङ्गलवाले देवदेवेश महेश जी देवीजीके साथ ॥९४॥ व ब्रह्मा और विष्णुजीके साथ उस स्थान से रंगमण्डप (शृंगारमण्डप) को चलेगये श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, उत्तम आनन्दके कारण इस मनोहर अध्याय को सुनकर नर परम आनन्दको प्राप्त होकर निश्चयसे कैलासको प्राप्त होताहै ॥९५॥ अष्टनवतितमोऽध्यायः॥९८॥

दो० । नवनब्बेअध्यायमेंबड़ाविचित्रबखान । विश्वनाथजूकीमहामहिमासेयुतजान ॥ श्री व्यासजी बोले कि, हे सूत ! जैसे कार्त्तिकेयजी ने अगस्त्यमुनि से देवों के देव परमात्मा विश्वनाथजी के चित्तको कहा है वैसे तुम सुनो ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे देव सेनाकेनायक ! उस मुक्तिमण्डप से निकलकर देवेन्द्रों से सहित महादेव जी ने हर्ष से क्या किया उसको तुम मुझ से कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, ब्रह्मा और विष्णु के आगे चलनेवाले शम्भुजीने मुक्तिमण्डप से शृंगारमण्डप को प्राप्त होकर जिसको किया उसको मैं कहता हूँ ॥ ३ ॥ कि तदनन्तर हम सबों केसाथ व परमेश्वरी पार्वतीजी के साथ पूर्वमुख हुये बैठकर महेश्वरजी जोकि दक्षिण

व्यासउवाच ॥ शृणुसूतयथाप्रोक्तंकुम्भजेशरजन्मना ॥ देवदेवस्यचरितंविश्वेशस्यपरात्मनः ॥ १ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ सेनानीःकथयत्वम्मेततोनिर्वाणमण्डपात् ॥ निर्गत्यदेवोदेवेन्द्रैःसहितःकिञ्चकारह ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मुक्तिमण्डपतःशम्भुर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमः ॥ शृङ्गारमण्डपम्प्राप्ययच्चकारवदामितत् ॥ ३ ॥ प्राङ्मुखस्तूपविश्येशःसहास्माभिःसहेशया ॥ ब्रह्मणाधिष्ठितःसव्येवामपार्श्वेथशार्ङ्गिणा ॥ ४ ॥ वीज्यमानोमहेन्द्रेणऋषिभिःपरितोवृतः ॥ गणैःपृष्ठप्रदेशस्थैर्जोषन्तिष्ठद्भिरादरात् ॥ ५ ॥ उदायुधैःसेव्यमानश्चावसन्मानभूरिभिः ॥ ब्रह्मणेविष्णवेशम्भुःपाणिमुत्क्षिप्यदक्षिणम् ॥ ६ ॥ दर्शयामासदेवेशोलिङ्गम्पश्यतपश्यत ॥ इदमेवपरञ्ज्योतिरिदमेवपरात्परम् ॥ ७ ॥ इदमेवहिमेरूपंस्थावरञ्चातिसिद्धिदम् ॥ एतेपाशुपताःसिद्धाआबालब्रह्मचारिणः ॥ ८ ॥ जितेन्द्रियास्तपोनिष्ठाःपञ्चार्थज्ञाननिर्म

ओर में ब्रह्माजी से और वाम पार्श्व में विष्णु से आश्रित हैं ॥ ४ ॥ व महेन्द्र से वीज्यमान (इन्द्रजी से चौंर चलाये हैं) व ऋषियों से सबओर घिरे व आदर से पृष्ठप्रदेश मे (पीछे) टिके और चुपचाप खड़े हुये गण ॥ ५ ॥ व बहुतमानवाले, आयुधउठाये हुये गणो से सेव्यमान हैं वह शङ्करजी वहां बसे और दक्षिण हाथ को उठाकर ब्रह्माजी व विष्णुजी के लिये ॥ ६ ॥ क्रीडाकारी महेशजी ने दिखाया कि तुम सबजने लिंगको देखो देखो यहही परम ज्योति है यहही परसे पर है ॥ ७ ॥ और यहही अत्यन्त सिद्धिदायक मेरा स्थावररूप है व ये पाशुपत याने पशुपति सम्बन्धिनी दीक्षाको प्राप्त मेरेभक्त जे कि सिद्ध हैं व बालपन से लगाकर ब्रह्मचारी हैं ॥ ८ ॥

व भीतर की इन्द्रियों को जीते व तपस्या में स्थिति या प्रीतिवाले व पञ्चाक्षर मन्त्र या अकार उकार मकार नाद और बिंदु इनपांचों के अर्थ ज्ञान से निर्मल व भस्म समूह में सोवनेवाले व बाहर की इन्द्रियों को दमन किये हुये व सुशील या अच्छे सदाचारी व ऊर्ध्वरेता याने वीर्य्य को ऊपर चढ़ाये हैं ॥ ९ ॥ व नित्यही लिंग की पूजा में रत व अन्य में इन्द्रिय और मनके न लगानेवाले व सदैव जल और भस्मके दो स्नानों से बहुत विमल हैं ॥ १० ॥ व कन्द मूल और फलों के खानेवाले व परमात्माके स्वरूप में आंखों को अर्पे हुये व सत्यवान् जितक्रोध निर्मोह और सब ओर से वस्तुओं के ग्रहण से हीन हैं याने जितने से देहका निर्वाहमात्र होसक्ता

ला: ॥ भस्मकूटशयादान्ताःसुशीलाऊर्ध्वरेतसः ॥९॥ लिङ्गार्चनरतानित्यमनन्येन्द्रियमानसाः ॥ सदैववारुणाग्नेय स्नानद्वयसुनिर्मलाः ॥ १० ॥ कन्दमूलफलाहाराःपरतत्त्वार्पितेक्षणाः ॥ सत्यवन्तोजितक्रोधानिर्मोहानिष्परिग्रहाः ॥ ११ ॥ निरीहानिष्प्रपञ्चाश्चनिरातङ्कानिरामयाः ॥ निर्भगानिरुपायाश्चनिःसङ्गानिर्मलाशयाः ॥१२॥ निस्तीर्णोदग्रसंसारानिर्विकल्पानिरेनसः ॥ निर्द्वन्द्वानिश्चितार्थाश्चनिरहङ्कारवृत्तयः ॥ १३ ॥ सदैवमेमहाप्रीतामत्पुत्रामत्स्वरूपिणः ॥ एतेपूज्यानमस्याश्चमद्बुद्ध्यामत्परायणैः ॥ १४ ॥ अर्चितेष्वेष्वहम्प्रीतोभविष्यामिनसंशयः ॥ अस्मिन्वैश्वेश्वरेक्षेत्रे सम्भोज्याःशिवयोगिनः ॥ १५ ॥ कोटिभोज्यफलंसम्यगेकैकपरिसंख्यया ॥ अयंविश्वेश्वरःसाक्षात्स्थावरात्माजगत्प्रभुः ॥ १६ ॥ सर्वेषांसर्वसिद्धीनांकर्ताभक्तिजुषामिह ॥ अहङ्कदाचिद्दृश्यःस्यामदृश्यःस्याङ्कदाचन ॥ १७ ॥

है उतने को ही ग्रहण किये हैं ॥ ११ ॥ व व्यापार से रहित, देहादिक अभिमान से शून्य, निडर निरोग व ऐश्वर्यहीन निरुपाय निःसंग और निर्मल अन्तःकरणवाले हैं ॥ १२ ॥ व उदग्र संसारसागरको निःशेष तरेहुये, निर्विकल्प, निष्पाप, निर्द्वन्द्व (शीत उष्ण सुख दुःखादिसे रहित) निश्चित अर्थवाले और अहङ्कारकी वृत्तियोसे हीन हैं ॥ १३ ॥ व सदैव मेरे परम प्यारे व मेरे पुत्रोंके समान और मेरे स्वरूपवाले हैं वे ये मुझमें परायण याने मेरे भक्तजनों करके मेरी बुद्धि से पूजनीय हैं व नमस्कार के योग्य हैं ॥ १४ ॥ इनके पूजित होतेही मैं प्रसन्न होऊंगा इस में संशय नहीं है इसलिये इस विश्वेश्वर के क्षेत्रमें शिवजी के योगीजन भलीभांति भोजन कराने योग्य हैं ॥ १५ ॥ क्योंकि एक एककी परिसंख्या (क्रम से गिनती) से कोटि भोज्यका फल अच्छेप्रकार से होता है और जगत के प्रभु स्थावर लिंगरूप यह प्रत्यक्ष

विश्वनाथ जी ॥ १६ ॥ यहां सब भक्तिसेवियो की सब सिद्धियों के कर्त्ता हैं मैं कभी दृश्य होताहूँ कभी अदृश्य होता हूँ ॥ १७ ॥ और हे देवताओ ! मैं सबों के अनुग्रह के लिये इस आनन्दवनमें अपनी प्रेरणा से स्वेच्छाचारी भाव से सदा टिकता हूं ॥ १८ ॥ किन्तु चिन्तित अर्थफलोंका प्रदायक मैं लिंगरूप से टिकूंगा व जेकि स्वयम्भु (आपही आप हुये) अस्वयम्भु (थापेहुये) लिंग सर्वत्र हैं वे सब इस लिंगको देखने के लिये सदा आते हैं ॥ १९ ॥ मैं सब लिंगों व तीर्थों में टिकाही हूं इस में संशय नहीं है परन्तु यह लिंगस्वरूपिणी मेरी श्रेष्ठमूर्त्ति है ॥ २० ॥ हे स्वर्गवासी देवो ! जिस शुद्धनेत्रवाले ने श्रद्धा से इस लिंगको देखा उससे साक्षात्कार सेही मैं देखाहुआ

आनन्दकाननेचात्रस्वैरन्तिष्ठामिदेवताः ॥ अनुग्रहायसर्वेषांभक्तानामिहसर्वदा ॥ १८ ॥ स्थास्यामिलिङ्गरूपेणचिन्तितार्थफलप्रदः ॥ स्वयम्भून्यस्वयम्भूनियानिलिङ्गानिसर्वतः ॥ तानिसर्वाणिचायान्तिद्रष्टुंलिङ्गमिदंसदा ॥ १९ ॥ अहंसर्वेषुलिङ्गेषुतिष्ठाम्येवनसंशयः ॥ परन्त्वियम्परामूर्तिर्ममलिङ्गस्वरूपिणी ॥ २० ॥ येनलिङ्गमिदन्दृष्टंश्रद्धयाशुद्धचक्षुषा ॥ साक्षात्कारेणतेनाहंदृष्टएवदिवौकसः ॥ २१ ॥ श्रवणादस्यलिङ्गस्यपातकञ्जन्मसञ्चितम् ॥ क्षणात्क्षयतिशृण्वन्तुदेवाऋषिगणैःसह ॥ २२ ॥ स्मरणादस्यलिङ्गस्यपापञ्जन्मद्वयार्जितम् ॥ अवश्यंनश्यतिक्षिप्रंममवाक्यान्नसंशयः ॥ २३ ॥ एतल्लिङ्गंसमुद्दिश्यगृहान्निष्क्रमणक्षणात् ॥ विलीयतेमहापापमपिजन्मत्रयार्जितम् ॥ २४ ॥ दर्शनादस्यलिङ्गस्यहयमेधशतोद्भवम् ॥ पुण्यंलभेतनियतंममानुग्रहतोमराः ॥ २५ ॥ स्वयम्भुवोस्यलिङ्गस्यममविश्वेशितुःसुराः ॥ राजसूयसहस्रस्यफलंस्यात्स्पर्शमात्रतः ॥ २६ ॥ पुष्पमात्रप्रदानाच्चचुलुकोदकपूर्वकम् ॥ शतसौवर्णिकम्पुण्यंलभतेभक्तियोग

हूं ॥ २१ ॥ ऋषिगणों के साथ देवतायें सुनें कि जन्मों से संचित पाप इस लिंग के दर्शन से क्षणभर में नशजाता है ॥ २२ ॥ व दो जन्मोंमें अर्जित हुआ पाप इस लिंग के स्मरण से मेरे वचन से अवश्यकर शीघ्रही नशता है इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥ व इस लिंग को भलीभांति उद्देशकर घरसे निकलने के क्षणमेंही तीन जन्मों से बटोरा महापाप भी बिलाजाता है ॥ २४ ॥ और हे देवो ! इस लिंग के दर्शन के द्वारा मेरे अनुग्रह से सौ अश्वमेध यज्ञों से उपजी हुई पुण्यको नियमसे पावैहै ॥ २५ ॥ हे देवो ! मुझ विश्वेश्वर के इस स्वयम्भू लिंग के स्पर्शमात्र से हज़ारों राजसूय यज्ञोंका फल होवे है ॥ २६ ॥ और भक्तियोग से चुल्लूभर जलपूर्वक फूलमात्र के प्रदान

से सौ मोहर दान की पुण्यको पाताहै ॥ २७ ॥ व भक्ति से इस लिंगराजकी पूजामात्र को कर हज़ार सुवर्णकमलों की पूजाका फल मिलता हे ॥ २८ ॥ व इस लिंगकी पञ्चामृतपूर्वक बडी पूजाको कर चारों पुरुषार्थों को पाता है ॥ २९ ॥ हे देवो ! वस्त्रसे पवित्र (छाने) जलों से मेरे इस लिंग को नहवाकर सत्तमजन लाख अश्वमेध यज्ञों से उपजी हुई पुण्य को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ व भक्ति से सुगन्ध चन्दन रसो से लिंगको सबओरसे लेपन कर देवो की स्त्रियों करके सुगन्ध यक्षकर्दमों से सब ओर या सामने से लेपाजाता है ॥ ३१ ॥ व सुगन्ध समेत धूप देने से दिव्य सुगंधों का आश्रय और घृत के दीप जगाने (जलाने) से ज्योतिरूप विमान से चलने

तः ॥ २७ ॥ पूजामात्रंविधायास्यलिङ्गराजस्यभक्तितः ॥ सहस्रहेमकमलपूजाफलमवाप्यते ॥ २८ ॥ विधायमहतीम्पूजांपञ्चामृतपुरःसराम् ॥ अस्यलिङ्गस्यलभतेपुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ २९ ॥ वस्त्रपूतजलैर्लिङ्गंस्नापयित्वाममामराः ॥ लक्षाश्वमेधजनितंपुण्यमाप्नोतिसत्तमः ॥ ३० ॥ सुगन्धचन्दनरसैर्लिङ्गमालिप्यभक्तितः ॥ आलिप्यतेसुरस्त्रीभिःसुगन्धैर्यक्षकर्दमैः ॥ ३१ ॥ सामोदधूपदानैश्चदिव्यगन्धाश्रयोभवेत् ॥ घृतदीपप्रबोधैश्चज्योतीरूपविमानगः ॥ ३२ ॥ कर्पूरवर्तिदीपेनसकृद्दत्तेनभक्तितः ॥ कर्पूरदेहगौरश्रीर्भवेद्भालविलोचनः ॥ ३३ ॥ दत्त्वानैवेद्यमात्रन्तुसिक्थेसिक्थेयुगंयुगम् ॥ कैलासाद्रौवसेद्धीमान्महाभोगसमन्वितः ॥ ३४ ॥ विश्वेशेपरमान्नंयोदद्यात्साज्यंसशर्करम् ॥ त्रैलोक्यन्तर्पितन्तेनसदेवपितृमानवम् ॥ ३५ ॥ मुखवासन्तुयोदद्याद्दर्पणञ्चारुचामरम् ॥ उल्लोचंसुखपर्यङ्कन्तस्यपुण्यफलम्महत् ॥ ३६ ॥ संख्यासागररत्नानांकथंचित्कर्तुमिष्यते ॥ मुखवासादिदानस्यकःसंख्यामत्रकारयेत् ॥ ३७ ॥ पूजोपकरणद्रव्यंयोद

वाला होवे है ॥ ३२ ॥ व भक्तिके साथ एकबार दिये हुये कपूर बाती के दीप से कपूर के समान गौर रंग अंग शोभावान् और माथे में आंखवाला याने शिवस्वरूप होवेहै ॥ ३३ ॥ व नैवेद्यमात्र को देकर बुद्धिमान् जन सीथ सीथमें युग युग तक बड़े भोगोसे समन्वित होकर कैलास पर्वतमे बसे ॥३४॥ जोकि घी व शक्कर समेत खीर को विश्वनाथजी के लिये देवे उससे देव पितर और मनुष्यो समेत त्रैलोक्य तर्पितहै ॥ ३५ ॥ व जोकि मुखवास (लवंगपानआदि) दर्पण सुन्दर चामर चँदोवा (वितान) और सुखशय्या को देवे उसका बड़ा पुण्यफलहै ॥ ३६ ॥ कि समुद्र के रत्नोंकी संख्या किसी भांति करने के लिये इच्छित होती है परन्तु पूर्वोक्तमुखवासादि दानके फल

की संख्या को यहां कौन करावे याने कोई भी नहीं करसक्ता है ॥ ३७ ॥ व जोकि मेरे स्थान में पूजा के उपकारक पात्रादि द्रव्य व घण्टागडुकादि को भक्तिसे देवे वह यहां मेरे समीप मे बसे ॥ ३८ ॥ व जोकि मेरी प्रीति के लिये गीतवाद्य और नृत्य मेंसे एकको भी करे या करताभया उसके आगे दिनोरात बड़ाभारी तौर्यत्रिक (नृत्य गीतवाद्य) होवे है ॥ ३९ ॥ व जो कोई मेरे इस महल मे चित्रलेखन कर्मादिको करावे वह मेरे आगे या लोक में टिकाहुआ विचित्र बड़े भोगोंको भोगताहै ॥४० ॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य जन्म के बीच में एकबार श्रीविश्वनाथजी को नमस्कार कर त्रिलोक से वन्दित पावोंवाला पृथिवीपति होता है ॥ ४१ ॥ और जो विश्वेश्वर को

एटागडुकादिकम् ॥ भक्त्यामेभवनेदद्यात्सवसेदत्रमेन्तिके ॥ ३८ ॥ योगीतवाद्यन्नृत्यानामेकंमत्प्रीतयेऽव्यधात् ॥ तस्याग्रतोदिवारात्रम्भवेत्तौर्यत्रिकंमहत् ॥ ३९ ॥ चित्रलेखनकर्मादिप्रासादेमेऽत्रकारयेत् ॥ यःसचित्रान्महाभोगान्भुङ्क्ते मत्पुरतःस्थितः ॥ ४० ॥ सकृद्विश्वेश्वरंनत्वामध्येजन्मसुधीर्नरः ॥ त्रैलोक्यवन्दितपदोजायतेवसुधापतिः ॥ ४१ ॥ यस्तुविश्वेश्वरंदृष्ट्वाह्यन्यत्रापिविपद्यते ॥ तस्यजन्मान्तरेमोक्षोभवत्येवनसंशयः ॥ ४२ ॥ विश्वेशाख्यातुजिह्वाग्रेविश्वनाथकथाश्रुतौ ॥ विश्वेशशीलनंचित्तेयस्यतस्यजनिःकुतः ॥ ४३ ॥ लिङ्गंमेविश्वनाथस्यदृष्ट्वायश्चानुमोदते ॥ समेगणेषुगण्येतमहापुण्यबलाश्रितः ॥ ४४ ॥ नित्यंविश्वेशविश्वेशविश्वनाथेतियोजपेत् ॥ त्रिसन्ध्यन्तंसुकृतिनंजपाम्यहमपिध्रुवम् ॥ ४५ ॥ ममापीदंमहालिङ्गंसदापूज्यतमंसुराः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपूज्यन्देवर्षिमानवैः ॥ ४६ ॥ यैर्न

देखकर अन्यत्र भी मरताहै उसकी मुक्ति जन्मान्तर में होतीही है इसमें संशय नहीं है ॥ ४२ ॥ व जिसकी जिह्वा के आगे विश्वनाथजी का नाम है जिसके कान में विश्वनाथजी की कथा है और जिसके चित्तमें विश्वनाथजी का ध्यानहै उसका जन्म कैसे होवेगा ॥ ४३ ॥ व जो मुझ विश्वेश्वर के लिंगको देखकर पीछे से आनन्दित (प्रसन्न) होता है वह महापुण्य के बल से सेवित हुआ मेरे गणों में गना जाताहै ॥ ४४ ॥ व जो नित्य तीनों सन्ध्याओं में हे विश्वेश, विश्वेश, विश्वनाथ ! ऐसा जपे उस पुण्यवान् को मैं भी निश्चयसे जपता हूँ ॥ ४५ ॥ हे देवो ! जिरासे मेरा भी यह लिंग सदा बहुत पूजनीय है उसलिये देव ऋषि और मनुष्यों से बड़े यत्न के साथ पूजने

योग्य है ॥ ४६ ॥ जिन्होंने विश्वेश्वर को न देखा व जिन्हों ने विश्वेश्वरको न सुमिरा वे यमराज के दूतों से देखेगये और उन्होंने गर्भवासकी पीडाको प्राप्त किया ॥४७॥ व जिन्हों ने इस लिंगको प्रणाम किया वे देव और दैत्यों मे भी प्रणमेगये हैं व जिन श्रीविश्वनाथजी के एक प्रणाम से दिक्पालों का पद (अधिकार या लोक) बहुत थोड़ा है क्योंकि दिक्पालपद से गिरना है और शिवजी के नमस्कार से गिरना नहीं है ॥ ४८ ॥ हे देवर्षिगणो! आप सब जने सुनें मैं पराये उपकार के लिये उस सत्य को कहता हूँ कि भूमि भुवः स्वः महः जन तप और सत्य लोकके बीच में विश्वनाथ के समान लिंग कहीं नहीं है ॥ ४९ ॥ अहो देवो! विश्वेश्वर के समान अन्य

विश्वेश्वरोदृष्टोयैर्नविश्वेश्वरःस्मृतः ॥ कृतान्तदूतैस्तेदृष्टास्तैःस्मृतागर्भवेदना ॥ ४७ ॥ यैरिदम्प्रणतंलिङ्गंप्रणतास्ते सुरासुरैः ॥ यस्यैकेनप्रणामेनदिक्पालपदमल्पकम् ॥ दिक्पालपदतःपातःपातःशिवनतेर्नहि ॥ ४८ ॥ शृण्वन्तुदेवर्षिग णाःसमस्तास्तथ्यंब्रुवेतच्चपरोपकृत्यै ॥ नभूर्भुवःस्वर्गमहर्जनान्तर्विश्वेशतुल्यंक्वचिदस्तिलिङ्गम् ॥ ४९ ॥ नसत्यलोकेन तपस्यहोसुरावैकुण्ठकैलासरसातलेषु ॥तीर्थंक्वचिदैमणिकर्णिकासमंलिङ्गञ्चविश्वेश्वरतुल्यमन्यतः॥ ५०॥ नविश्वना थस्यसमंहिलिङ्गंनतीर्थमन्यन्मणिकर्णिकातः ॥तपोवनंकुत्रचिदस्तिनान्यच्छुभंममानन्दवनेनतुल्यम्॥५१॥ वाराण सीतीर्थमयीसमस्तायस्यास्तुनामापिहितीर्थतीर्थम् ॥ तत्रापिकाचिन्ममसौख्यभूमिर्महापवित्रामणिकर्णिकासौ ॥५२॥ स्थानादमुष्मान्ममराजसौधात्प्राच्यांमनागीशसमाश्रितायाम् ॥ सव्येपसव्येचकराःक्रमेणशतत्रयीचापिशतद्वयी

लिंग व मणिकर्णिका के तुल्य तीर्थ सत्यलोक में नहीं तपोलोक में नहीं व वैकुण्ठ कैलास और रसातल में कहीं नहीं है ॥ ५० ॥ व विश्वनाथ के समान लिंग निश्चय से नहीं है व मणिकर्णिका से पर अन्य तीर्थ नहीं है और मेरे आनन्दवन के तुल्य अन्य शुभ तपोवन कहीं नहीं है ॥ ५१ ॥ समस्त काशीपुरी तीर्थमयी है जिसका नाम भी निश्चय से तीर्थोंका तीर्थ है उसमें भी महापवित्र यह मणिकर्णिका कोई मेरे सौख्यकी भूमि है ॥५२॥ इस स्थान से जो मेरा राजमहल मोक्षद्वार और स्वर्गद्वारके बीचमें है उससे कुछेक ईशान कोणसे समाश्रित पूर्व दिशामें याने पूर्व और उत्तर के बीच में वामओर हरिश्चन्द्रेश्वर पर्यंत तीनसौ हाथ व दक्षिण पार्श्व मे गङ्गाकेशव

पर्यंत दोसौ हाथ ॥ ५३ ॥ और गङ्गा में पांचसौ हाथ उत्तर दक्षिण आदि चारोंकोणों में सब तीर्थोंका सार व परमात्मा का आधारस्थान यह मणिकर्णिका जिन्होंने सेई गई वे मेरे हृदयमें सोचनेवालेही हैं ॥ ५४ ॥ इस मेरे आनन्दवनमें मोक्षका मन्दिर व अच्छे स्थानोंमें प्रकाशवाला जो यह लिंगहै वह सात पाताल तक आपही आप हुआ व भक्त कृपावशसे भलीभांति उठाहै ॥ ५५ ॥ जे कि इस स्थानमें कुतर्कों के साथ कृत्रिम होनेकी बुद्धिसे लिंगको सेवेंगे उनको यहही श्रेष्ठ दण्डहै कि वे निश्चयकर गर्भवाससे विश्रामवाले नहीं होते हैं ॥ ५६ ॥ व जो जो वस्तु अपना का हित है वह वह इस लिंगमें मेरे भक्तों से सदैव देने योग्यहै क्योंकि जैसे यहां पापियों

च ॥ ५३ ॥ हस्ताःशतम्पञ्चसुरापगायामुदीच्यवाच्योर्मणिकर्णिकेयम् ॥ सारस्त्रिलोक्याःपरकोशभूमिर्यैःसेवितातेमहृच्चयाहि ॥ ५४ ॥ अस्मिन्ममानन्दवनेयदेतल्लिङ्गंसुधाधामसुधामधाम ॥ आसप्तपातालतलात्स्वयम्भुसमुत्थितम्भक्तकृपावशेन ॥ ५५ ॥ येस्मिञ्जनाःकृत्रिमभावबुद्ध्यालिङ्गंभजिष्यन्तिचहेतुवादैः ॥ तेषांहिदण्डःपरएषएवनगर्भवासाद्विरमन्तितेध्रुवम् ॥ ५६ ॥ यद्यद्धितंस्वस्यसदैवतत्तल्लिङ्गेत्रदेयंममभक्तिमद्भिः ॥ इहाप्यमुत्रापिनतस्यसंक्षयोयथेहपापस्यकृतस्यपापिभिः ॥ ५७ ॥ दूरस्थितैरप्यधिबुद्धिभिर्यैर्लिङ्गंसमाराधिममेदमत्र ॥ मयैवदत्तैःशुभवस्तुजातैर्निःश्रेयसःश्रीर्वसयेत्सतस्तान् ॥ ५८ ॥ शृणुष्वविष्णोशृणुसृष्टिकर्तःशृण्वन्तुदेवर्षिगणाःसमस्ताः ॥ इदंहिलिङ्गंपरसिद्धिदंसताम्भेदोमनागत्रनमत्सकाशतः ॥ ५९ ॥ अस्मिन्हिलिङ्गेऽखिलसिद्धिसाधनेसमर्पितंयैःसुकृतार्जितंवसु ॥ तेभ्योतिमात्राखिलसौख्यसाधनन्ददामिनिर्वाणपदंसुनिर्भयम् ॥ ६० ॥ उत्क्षिप्यबाहुन्त्वसकृद्ब्रवीमित्रयीमयेस्मिन्स्त्र

से कियेहुये पापका नाश नहीं है वैसेही इस लोक और उस लोकमें भी उस दिये हुयेकी पुण्यका संशय नहीं है ॥ ५७ ॥ व अधिक बुद्धिवाले जिन दूरवासियों ने भी यहां मेरे इस लिंगका भलीभांति पूजन किया उन सज्जनों को मुझसेही दियेहुये सब वस्तुसमूहोंके साथ मोक्षलक्ष्मी बसावे है ॥ ५८ ॥ हे विष्णो ! तुम सुनो हे सृष्टिकर्त्तः (ब्रह्माजी) ! तुम सुनो और सब देव ऋषिगण सुनें कि यह लिंगही सन्तोंको श्रेष्ठ सिद्धिदायकहै यहां मेरे समीपसे थोड़ा कुछ भेद नहींहै ॥ ५९ ॥ और जिन्होंने सम्पूर्ण सिद्धियों के साधनेवाले इसही लिंग में सुकर्म से बटोरे हुये धन को समर्पण किया उनको मैं अतिशय सुखोंका साधन सुनिर्भय मोक्ष ज्ञान देताहूं ॥ ६० ॥

व बाहुको उठाकर मैं बार बार कहताहूं कि इस त्रिगुणमय जगत् में तीनही सार हैं कि श्रीविश्वनाथजी का लिंग व मणिकर्णिका का जल और काशीपुरी यह त्रिसत्य है याने तीनबार सत्य है ॥ ६१ ॥ अनन्तर उठकर उस लिंगमें सुन्दर पूजन किये हुये शक्ति (पार्वती) समेत, क्रीड़ाकारी महेशजी उसही लिंग में लय को प्राप्तहोगये और उन देवों ने जय ऐसा फिर जय ऐसा कहकर उन ईश्वरकी स्तुति किया ॥ ६२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महामते, मैत्रावरुणे (अगस्त्य जी) ! पापनाशनेवाला यह अविमुक्त (काशी) क्षेत्रके प्रभाव का एक देश कहा गया ॥ ६३ ॥ व काशी के वियोगसे तापवाले तुम्हारे आगे क्या कहना चाहिये

यमेवसारम् ॥ विश्वेशलिङ्गंमणिकर्णिकाम्बुकाशीपुरीसत्यमिदन्त्रिसत्यम् ॥ ६१ ॥ उत्थायदेवोथसशक्तिरीशस्तस्मिन्हिलिङ्गेकृतचारुपूजः ॥ ययौलयन्तेचसुराजयेतिजयेतिचोक्त्वानुनुवुस्तमीशम् ॥ ६२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ क्षेत्रस्यमैत्रावरुणेविमुक्तस्यमहामते ॥ प्रभावस्यैकदेशोयङ्कथितःकल्मषापहः ॥ ६३ ॥ तवाग्रेतुयथाबुद्धिकाशीविश्लेषतापिनः ॥ अचिरेणैवकालेनकाशीम्प्राप्स्यस्यनुत्तमाम् ॥ ६४ ॥ अस्ताचलस्यशिखरम्प्राप्तवानेषभानुमान् ॥ तवापिहिममाप्येषमौनस्यसमयोभवत् ॥ ६५ ॥ व्यासउवाच ॥ श्रुत्वेतिसमुनिःसूतसन्ध्योपास्त्यैविनिर्गतः ॥ प्रणम्यौमेयमसकृल्लोपामुद्रासमन्वितः ॥ ६६ ॥ रहस्यम्परिविज्ञायक्षेत्रस्यशशिमौलिनः ॥ अगस्त्योनिश्चितमनाःशिवध्यानपरोभवत् ॥ ६७ ॥ आनन्दकाननस्येहमहिमानम्महत्तरम् ॥ कोत्रवर्णयितुंशक्तःसूतवर्षशतैरपि ॥ ६८ ॥ यथादेव्यैसमाख्यायिशिवेनपरमा

किन्तु तुम थोड़ेही कालमें अत्यन्त उत्तम काशीपुरीको प्राप्त होवोगे ॥ ६४ ॥ जिससे यह सूर्य्य देव अस्ताचल के शिखर को प्राप्तहुये हैं उसमे तुम्हारे भी और हमारे भी मौन (बोलबन्द करने) का समय हुआ है ॥ ६५ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे सूत ! ऐसा सुनकर लोपामुद्रा समेत वह मुनि पार्वतीजी के पुत्रके बार बार प्रणाम कर सन्ध्योपासन के लिये विशेषतासे निकलगये ॥ ६६ ॥ व चन्द्रभाल (शिवजी) के क्षेत्र याने काशीपुरी के रहस्यको सब ओर विशेषतासे जानकर निश्चित मनवाले अगस्त्यजी शिवजीके ध्यानमे परायण हुये ॥ ६७ ॥ हे सूत ! सैकडो वर्षों से भी यहां काशीकी बडी भारी महिमा को कहने के लिये इस जगत में कौन समर्थ है ॥ ६८ ॥

जैसे परमात्मा शिवजीने देवीजी के लिये भलीभांति सब ओरसे कहा वैसेही श्री कार्त्तिकेयजी करके अगस्त्यजी के लिये आनन्दवनका माहात्म्य कहा गया ॥ ६९ ॥ और हे सत्तम ! तुम्हारे व शुकादिकों के आगे उसको मैंने अच्छे प्रकार समन्ताद्भावसे कहा इस समय तुम क्या पूछने के चाहीहो उसको पूछो मैं तुम से कहताहूं ॥ ७० ॥ समस्त चिन्तितफलप्रदायक वे सब पापघायक इस मनोरम अध्यायको सुन कर मनुष्य कृतार्थ होवे है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेविश्वेश्वरलिङ्गमहिमाख्योनामनवनवतितमोध्यायः ॥ ९९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

त्मना ॥ तथास्कन्देनकथितंमाहात्म्यंकुम्भसम्भवे ॥ ६९ ॥ तवाग्रेचसमाख्यातंशुकादीनाञ्चसत्तम ॥ इदानीम्प्रष्टुकामोसिकिन्तत्पृच्छवदामिते ॥ ७० ॥ श्रुत्वाध्यायमिमम्पुण्यंसर्वकल्मषनाशनम् ॥ समस्तचिन्तितफलप्रदम्मर्त्योभवेत्कृती ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेविश्वेश्वरलिङ्गमहिमाख्योनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सूतउवाच ॥ इदंस्कान्दमहंश्रुत्वाकाशीखण्डमनुत्तमम् ॥ नितराम्परितृप्तोस्मिहृदिचापिविधारितम् ॥ १ ॥ अनुक्रमणिकाध्यायंतथामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ पाराशर्यसमाचक्ष्वयथापूर्वमिदम्भवेत् ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ सूतावधेहिधर्मात्मन्जातूकर्ण्यनिशामय ॥ शुकवैशम्पायनाद्याःशृण्वन्त्वपिचबालकाः ॥ ३ ॥ अनुक्रमणिकाध्यायंमाहात्म्यञ्चापिखण्डजम् ॥ प्रवक्ष्याम्यघनाशायमहापुण्यप्रवर्धनम् ॥ विन्ध्यनारदसंवादःप्रथमेपरिकीर्तितः ॥ ४॥ सत्यलोकप्रभाव

दो० । शतसंख्यक अध्याय यह सब अभीष्ट फलदानि । कथित सकल संक्षेप सेअनुक्रमणिका मानि ॥ श्रीसूतजी बोले कि स्कन्दपुराणके अत्यन्त उत्तम इस काशीखण्डको सुनकर मैं बहुतही संतृप्तहूं और वह हृदयमें भी धारा गया ॥ १ ॥ हे पाराशर्य्य, श्रीवेदव्यासजी ! जैसे यह श्रेष्ठहोवे वैसेही अनुक्रमणिका अध्याय और माहात्म्य को आप कहो ॥ २ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे धर्मात्मन्,सूत ! तुम सावधान होकर सुनो व हे जातूकर्ण्य ! तुम सुनो और शुकदेव व वैशम्पायनादि बालक भी सुनें ॥ ३॥ मैं पापों के नाशने के लिये महा पुण्य के बड़े बढ़ाने वाले अनुक्रमणिक अध्याय और खण्डसे उपजेहुये माहात्म्यको भी अधिकतासे कहूंगा। ॥ ४ ॥ कि पहले अध्याय

में विन्ध्याचल व नारद का संवाद सब ओरसे कहा गया फिर दूसरा याने दूसरे अध्यायमें कहाहुआ सत्यलोक का प्रभाव उच्चतासे आनागया॥ ५ ॥ तदनन्तर तीसरेमें अगस्त्यजीके आश्रमपदमें देवताओंका आगमन है चौथे में पतिव्रताका चरित्र और पचयें में अगस्त्यमुनिका प्रस्थान है ॥ ६ ॥ उसके बाद छठयें में तीर्थोंकी प्रशंसा व सतयें में सातो मुक्तिपुरियां कहीगई हैं तदनन्तर अठयें में यमकी पुरीका स्वरूपहै उसके उपरान्त नवयें में सूर्य्यलोक वर्णितहै ॥ ७ ॥ तदनन्तर दशयेंमें इन्द्र व अग्नि के लोकमें शिवशर्माकी संप्राप्ति है ग्यारहवें में अग्निकी उत्पत्ति है उससे आगे बारहवें में निर्ऋति और वरुणका सम्भव है ॥ ८ ॥ तेरहवें में वायुपुरी व कुबेरपुरीका

श्चद्वितीयःसमुदाहृतः ॥ ५ ॥ अगस्तेराश्रमपदेदेवानामागमस्ततः ॥ पतिव्रताचरित्रञ्चप्रस्थानंकुम्भसम्भुवः ॥ ६ ॥ तीर्थप्रशंसाचततःसप्तपुर्यस्ततःस्मृताः ॥ संयमिन्याःस्वरूपञ्चब्रध्नलोकस्ततःपरम् ॥ ७ ॥ इन्द्राग्न्योर्लोकसम्प्राप्तिस्ततश्चशिवशर्मणः ॥ अग्नेःसमुद्भवस्तस्मात्क्रव्याद्वरुणसम्भवः ॥ ८ ॥ गन्धवत्यलकापुर्योरीशयोस्तुसमुद्भवः ॥ चन्द्रलोकपरिप्राप्तिःशिवशर्मद्विजन्मनः ॥ ९ ॥ उडुलोककथातस्मात्ततःशुक्रसमुद्भवः ॥ माहेयगुरुसौरीणांलोकानांवर्णनन्ततः ॥ १० ॥ सप्तर्षीणान्ततोलोकाध्रुवस्यचतपस्ततः ॥ ततोध्रुवपदप्राप्तिर्ध्रुवलोकस्थितिस्ततः ॥ ११ ॥ दर्शनंसत्यलोकस्यतस्यवैशिवशर्मणः ॥ चतुर्भुजाभिषेकश्चनिर्वाणंशिवशर्मणः ॥ १२ ॥ स्कन्दागस्त्योश्चसंवादोमणिकर्ण्याःसमुद्भवः ॥ ततस्तुगङ्गामाहात्म्यंततोदशहरास्तवः ॥ १३ ॥ प्रभावश्चापिगङ्गायागङ्गानामसहस्रकम् ॥ वाराणस्याःप्रशंसा

वर्णन व ऐश्वर्य्यसमेत वायु और कुबेरकी समुत्पत्ति है व चौदहवें में शिवशर्मा ब्राह्मणकी चन्द्रलोककी परिप्राप्ति है ॥ ९ ॥ उसके बाद पन्द्रहवें में नक्षत्रलोककी कथा है तदनन्तर सोलहवें में शुक्रकी समुत्पत्ति है उसके आगे सत्रहवें में मंगल बृहस्पति और शनैश्चरके लोकोंका वर्णन है ॥ १० ॥ तदनन्तर अठारहवें में सप्तर्षियोंका लोक है फिर उसके बाद उन्नीसवें में ध्रुवकी तपस्या है उससे परे बीसवें में निश्चित ज्ञानस्वरूप विष्णुजी की प्राप्ति है उसके बाद इक्कीसवें में ध्रुव लोककी स्थितिहै ॥ ११ ॥ बाइसवें में शिवशर्माको सत्यलोकका दर्शनहै तेइसवें में चतुर्भुज विष्णुजीका अभिषेकहै और चौबिसवें में शिवशर्माकी मुक्तिहै ॥ १२ ॥ पच्चीसवेंमें स्कन्द (कार्त्तिकेय) व अगस्त्यजी का संवाद है छब्बीसवें में मणिकर्णिका की समुत्पत्तिहै उसके बाद सत्ताइसवें में गंगाका माहात्म्य है व दशहरा स्तोत्रहै तदन-

न्तर ॥ १३ ॥ अट्ठाइसवें में गंगाका प्रभाव है और उन्तीसवें में गंगासहस्र नामहै अनन्तर तीसवें में काशीकी प्रशंसा है उसके बाद इकतीसवें में भैरवजीका प्रकट होनाहै ॥ १४ ॥ बत्तीसवें में दण्डपाणिकी समुत्पत्ति है तदनन्तर तेंतिसवें में ज्ञान वापीका उद्भव है व चौंतिसवें में कलावतीका आख्यानहै उसके बाद पैंतिसवें में सदाचारहै ॥ १५ ॥ तदनन्तर छत्तिसवें में ब्रह्मचारीका प्रकरण है सैंतिसवें में स्त्रियों के लक्षणहैं अड़तिसवें में कृत्य (करने योग्य) व अकृत्यका प्रकरणहै और उन्तालिसवें में अविमुक्तेश्वरका वर्णनहै ॥ १६ ॥ उसके बाद चालिसवें में गृहस्थके धर्महैं तदनन्तर इकतालिसवें में योगका निरूपण है उससे परे बयालिसवें में कालज्ञान कहा गयाहै और तेंतालिसवें में दिवोदास राजाका वर्णन है ॥ १७ ॥ व उसके आगे चौवालिसवें में काशीका वर्णनहै तदनन्तर पैंतालिसवें में योगिनियोंका वर्णनहै और

थभैरवाविर्भवस्ततः ॥ १४ ॥ दण्डपाणेःसमुद्भूतिर्ज्ञानवाप्युद्भवस्ततः ॥ आख्यानञ्चकलावत्याःसदाचारस्ततःपरम् ॥ १५ ॥ ब्रह्मचारिप्रकरणन्ततःस्त्रीलक्षणानिच ॥ कृत्याकृत्यप्रकरणमविमुक्तेशवर्णनम् ॥ १६ ॥ ततोगृहस्थधर्माश्चततो योगनिरूपणम् ॥ कालज्ञानन्ततःप्रोक्तंदिवोदासस्यवर्णनम् ॥ १७ ॥ काश्याश्चवर्णनन्तस्माद्योगिनीवर्णनन्ततः ॥ लोलार्कस्यसमाख्यानमुत्तरार्ककथाततः ॥ १८ ॥ साम्बादित्यस्यमहिमाद्रुपदादित्यशंसनम् ॥ ततस्तुगरुडाख्यानमरुणार्कादयस्ततः ॥ १९ ॥ दशाश्वमेधिकन्तीर्थंमन्दराच्चगणागमः ॥ पिशाचमोचनाख्यानंगणेशप्रेषणन्ततः ॥ २० ॥ मायागणपतेश्चाथढुण्ढिप्रादुर्भवस्ततः ॥ विष्णुमायाप्रपञ्चोथदिवोदासविसर्जनम् ॥ २१ ॥ ततःपञ्चनदोत्पत्तिर्बिन्दुमाध

छियालिसवेंमें लोलार्कका भलीभांति आख्यान है उसके बाद सैंतालिसवेंमें उत्तरार्ककी कथाहै ॥ १८ ॥ अड़तालिसवें में साम्बादित्यकी महिमाहै उनचासवें में द्रुपदादित्य व मयूखादित्यका कथन है तदनन्तर पचासवें में गरुडका आख्यानहै उसके बाद इक्कावनवें में अरुणार्कादिक याने अरुणादित्य, वृद्धादित्य केशवादित्य, विमलादित्य और गंगादित्यहैं ॥ १९ ॥ व बावनवें में दशाश्वमेधिक तीर्थ है तिरपनवें में मन्दरा चलसे गणोंका आनाहै चौवनवें में पिशाचमोचनका आख्यानहै उसकेबाद पचपनवें में गणेशका पठाना है ॥ २० ॥ और छप्पनवें में गणेशजीकी मायाहै अनन्तर सत्तावनवें में ढुंढिराजका प्रकट होनाहै अट्ठावनवें में विष्णुजीकी मायाका प्रपंच है उसके बाद दिवोदासका विसर्जन (कैलास प्रस्थान) है ॥ २१ ॥ तदनन्तर उनसठवें में पंचनदतीर्थकी उत्पत्ति है साठिवें में बिन्दुमाधवकी समुत्पत्तिहै उसके बाद इकसठवें

में वैष्णवतीर्थोंका सब ओरसे वर्णनहै ॥ २२ ॥ बासठवें में वृषभध्वज व त्रिशूलधारी शिवजीका काशीके प्रतिप्रयाण है और तिरसठवें में ज्येष्ठ स्थानमें जैगीषव्यके साथ महेशजीका संवाद है ॥ २३ ॥ तदनन्तर चौंसठवें में पापोंका नाशक क्षेत्ररहस्यका कथनहै इससे आगे पैंसठवे में मंगलमय कन्दुकेश्वर और व्याघ्रेश्वरका समुद्भव है॥ २४ ॥ तदनन्तर छियासठवें में शैलेश्वरकी कथाहै व सतसठवें में रत्नेश्वरका दर्शनहै उसके बाद अडसठवें में कृत्तिवासकी समुत्पत्तिहै और उनहत्तरवें में आयतन याने सब ओरसे स्थानवासी शिव लिंगादिकोंका आनाहै ॥ २५ ॥ और सत्तरवें में देवताओं का अधिष्ठानहै इकहत्तरवें में दुर्गदैत्यका पराक्रम है अनन्तर बहत्तरवें में दुर्गाजी का विजयहै उसके बाद तिहत्तरवें में ॐकारका वर्णनहै ॥ २६ ॥ फिर चौहत्तरवेंमें ॐकारेश्वरका माहात्म्यहै ऐसे पचहत्तरवें में त्रिलोचनकी समुत्पत्ति है तदनन्तर छियत्तरवें

वसम्भवः ॥ ततोवैष्णवतीर्थानांमाहात्म्यपरिवर्णनम् ॥ २२ ॥ प्रयाणम्मन्दरात्काशींवृषभध्वजशूलिनः ॥ जैगीषव्येन संवादोज्येष्ठस्थानेमहेशितुः ॥ २३ ॥ ततःक्षेत्ररहस्यस्यकथनम्पापनाशनम् ॥ अथातःकन्दुकेशस्यव्याघ्रेशस्यसमुद्भवः ॥ २४ ॥ ततःशैलेश्वरकथारत्नेशस्यचदर्शनम् ॥ कृत्तिवासःसमुत्पत्तिस्ततश्चायतनागमः ॥ २५ ॥ देवतानामधिष्ठानंदुर्गासुरपराक्रमः ॥ दुर्गायाविजयश्चाथततॐकारवर्णनम् ॥ २६ ॥ पुनरोङ्कारमाहात्म्यंत्रिलोचनसमुद्भवः ॥ त्रिलोचनप्रभावोथकेदाराख्यानमेवच ॥ २७ ॥ ततोधर्मेशमहिमाततःपक्षिकथाशुभा ॥ ततोविश्वभुजाख्यानन्दुर्दमस्यकथाततः ॥ २८ ॥ ततोवीरेश्वराख्यानंवीरेशमहिमापुनः ॥ गङ्गातीर्थैश्चसंयुक्ताकामेशमहिमाततः ॥ २९ ॥ विश्वकर्मेशमहिमा दक्षयज्ञसमुद्भवः ॥ सत्यादेहविसर्गश्चततोदक्षेश्वरोद्भवः ॥ ३० ॥ ततोवैपार्वतीशस्यमहिम्नःपरिकीर्तनम्॥ गङ्गेशस्याथ

में त्रिलोचनका प्रभावहै और सतत्तरवें में केदारेश्वरका आख्यान है ॥ २७ ॥ उसके बाद अठत्तरवें में धर्मेश्वरकी महिमाहै तदनन्तर उन्नासिवें में मंगलमयी पक्षियों की कथाहै उससे आगे असीवें में विश्वभुजा देवीका आख्यानहै उसके उपरान्त इक्यासिवें में दुर्दमकी कथाहै ॥ २८ ॥ तदनन्तर बयासिवें में वीरेश्वरका आख्यान है फिर तिरासिवें में वीरेशकी महिमा है और चौरासिवें में तीर्थो से संयुत गंगाहैं उसके बाद पचासिवें में कामेश्वरकी महिमा है ॥ २९ ॥ और छियासिवें में विश्वकर्मेश्वरकी महिमाहै सत्तासिवें में दक्षके यज्ञका समुद्भवहै अट्ठासिवें में सतीजीका देहत्याग है तदनन्तर नवासिवें में दक्षेश्वरकी समुत्पत्ति है ॥ ३० ॥ उसके बाद नब्बेवें में पार्वतीश्वर

की महिमाका प्रसिद्धता से परिकीर्त्तनहै अनन्तर इक्यान्नवेंमें गंगेश्वरकी महिमा है और बान्नवें में नर्मदेश्वरका समुद्भवहै ॥ ३१ ॥ तिरान्नवें में सतीश्वरकी समुत्पत्तिहै चौरान्नवें में अमृतेश्वरादिकोंका वर्णनहै पंचान्नवें में व्यासजीकी बाहुकाही स्तम्भन है व छियान्नवें में काशीके प्रति व्यासशापका विमोक्षणहै ॥ ३२ ॥ और सत्तान्नवें में क्षेत्र व तीर्थोंका समूहहै फिर अट्ठान्नवें में मुक्तिमण्डपकी भलीभांति कथाहै उसके बाद निन्नानवें में श्रीविश्वनाथजीका प्रकट होनाहै तदनन्तर सवें अध्यायमें क्षेत्रयात्राका परिक्रमहै ॥ ३३ ॥ यहआख्यानोंका सैकड़ा क्रमसे परिकीर्तितहै, जिसके सुननेमात्रसे सबखण्डके श्रवणकाफलहै और अनुक्रमणिका अध्यायमें यात्राका

महिमानर्मदेशसमुद्भवः ॥ ३१ ॥ सतीश्वरसमुत्पत्तिरमृतेशादिवर्णनम् ॥ व्यासस्यहिभुजस्तम्भोव्यासशापविमोक्षणम् ॥ ३२ ॥ क्षेत्रतीर्थकदम्बञ्चमुक्तिमण्डपसङ्कथा ॥ विश्वेशाविर्भवश्चाथततोयात्रापरिक्रमः ॥ ३३ ॥ एतदाख्यानशतकंक्रमेण परिकीर्तितम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेणसर्वखण्डश्रुतेःफलम् ॥ अनुक्रमणिकाध्यायेप्यस्तियात्रापरिक्रमः ॥ ३४ ॥ सूतउवाच ॥ यात्रापरिक्रमम्ब्रूहिजनानांहितकाम्यया ॥ यथावत्सिद्धिकामानांसत्यवत्याःसुतोत्तम ॥ ३५ ॥ व्यासउवाच ॥ निशामयमहाप्राज्ञलोमहर्षणवच्मिते ॥ यथाप्रथमतोयात्राकर्तव्यायात्रिकैर्मुदा ॥ ३६ ॥ सचैलमादौसंस्नायचक्रपुष्करिणीजले ॥ सन्तर्प्यदेवान्सपितॄन्ब्राह्मणांश्चतथार्थिनः ॥ ३७ ॥ आदित्यन्द्रौपदींविष्णुंदण्डपाणिम्महेश्वरम् ॥ नमस्कृत्य ततोगच्छेद्द्रष्टुंढुण्ढिविनायकम् ॥ ३८ ॥ ज्ञानवापीमुपस्पृश्यनन्दिकेशन्ततोर्चयेत् ॥ तारकेशन्ततोभ्यर्च्यमहाका

परिक्रम भी है ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले कि, हे सत्यवतीके पुत्रोत्तम व्यासजी ! आप सिद्धिचाही जनोंके हितकी कामनासेयात्राके परिक्रमको यथावत्कहो ॥ ३५ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे महाप्राज्ञ, लोमहर्षणनामक सूत ! जैसे आनन्दसमेत यात्रिक जनोंकोप्रथमसे यात्राकरनाचाहिये वैसेही मैं तुमसेकहताहूं और तुम सुनो ॥ ३६ ॥ कि पहले चक्रपुष्करिणी (मणिकर्णिका)के जलमें वस्त्रसमेत भलीभांति स्नानकर देवोंसमेत पितर तथा धनके अर्थी ब्राह्मणोंको संतृप्तकर ॥ ३७ ॥ आदित्य द्रौपदी विष्णु दण्डपाणि और महेश्वरके नमस्कारकर तदनन्तर ढुंढि विनायकको देखनेके लिये जावे ॥ ३८ ॥ फिर ज्ञानवापी में स्नानकर उसके बाद नन्दिकेशको पूजे तदनन्तर तारकेशको सामनेसे

पूजकर उनसे आगे महाकालेश्वरकी पूजाकरे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर फिर दण्डपाणिकोपूजे ऐसे यह पंच तीर्थिका ॥ ४० ॥ जोकि दिन दिनकी है वह बड़े फलको वांछते हुये जनों को करना चाहिये तदनन्तर सब अर्थोंकी सिद्धिके लिये श्रीविश्वनाथजी की यात्रा करनेयोग्य है ॥ ४१ ॥ और बहत्तर आयतनोंकी यात्रा कृष्णपक्षकी प्रतिपदा को प्राप्तहोकर चतुर्दशी तक यथाविधि प्रयत्नसे करना चाहिये ॥ ४२ ॥ अथवा क्षेत्रकी सिद्धि को चाहते हुये जनों से प्रतिचतुर्दशी में यात्रा करने योग्य है और उन उन तीर्थों में स्नानकर्त्ता व उन उन लिंगों की पूजाकरनेवाला ॥ ४३ ॥ यात्रिक मौनसे यात्राको करता हुआ फलको प्राप्तहोताहै मत्स्योदरी में स्नानादि जल

लेश्वरन्ततः ॥ ३९ ॥ ततःपुनर्दण्डपाणिमित्येषापञ्चतीर्थिका ॥ ४० ॥ दैनन्दिनीविधातव्यामहाफलमभीप्सुभिः ॥ ततोविश्वेश्वरीयात्राकार्यासर्वार्थसिद्धिदा ॥ ४१ ॥ द्विसप्तायतनानाञ्चकार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ कृष्णाम्प्रतिपदम्प्राप्यभूतावधियथाविधि ॥ ४२ ॥ अथवाप्रतिभूतञ्चक्षेत्रसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ तत्तत्तीर्थकृतस्नानस्तत्तल्लिङ्गकृतार्चनः ॥ ४३ ॥ मौनेनयात्रांकुर्वाणःफलम्प्राप्नोतियात्रिकः ॥ ॐङ्कारम्प्रथमम्पश्येन्मत्स्योदर्याकृतोदकः ॥ ४४ ॥ त्रिविष्टपंमहादेवं ततोवैकृत्तिवाससम् ॥ रत्नेशञ्चाथचन्द्रेशंकेदारञ्चततोव्रजेत् ॥ ४५ ॥ धर्मेश्वरञ्चवीरेशंगच्छेत्कामेश्वरन्ततः ॥ विश्वकर्मेश्वरञ्चाथमणिकर्णीश्वरन्ततः ॥ ४६ ॥ अविमुक्तेश्वरन्दृष्ट्वाततोविश्वेशमर्चयेत् ॥ एषायात्राप्रयत्नेनकर्तव्याक्षेत्रवासिना ॥ ४७ ॥ यस्तुक्षेत्रमुषित्वातुनैतांयात्रांसमाचरेत् ॥ विघ्नास्तस्योपतिष्ठन्तेक्षेत्रोच्चाटनसूचकाः ॥ ४८ ॥ अष्टायतनयात्रान्याकर्तव्याविघ्नशान्तये ॥ दक्षेशःपार्वतीशश्चतथापशुपतीश्वरः ॥ ४९ ॥ गङ्गेशोनर्मदेशश्चगभस्ती

क्रिया किये हुआ जन पहले ॐकारेश्वर को देखे ॥ ४४ ॥ उसके बाद त्रिलोचन फिर महादेव तदनन्तर कृत्तिवास अनन्तर रत्नेश्वर व चन्द्रेश्वर और केदारेश्वर को भी जावे ॥ ४५ ॥ व धर्मेश्वर अनन्तर वीरेश्वर तदनन्तर कामेश्वर और विश्वकर्मेश्वर उसके बाद मणिकर्णिकेश्वर को जावे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर अविमुक्तेश्वर को देखकर श्रीविश्वेश्वरजी को सामने से पूजे यह यात्रा क्षेत्रवासी को बड़े यत्नके साथकरना चाहिये ॥ ४७ ॥ और जो क्षेत्रमें बसकर भी इस यात्रा को भलीभांति न करे उसको क्षेत्रसे उच्चाटनसूचक विघ्न समीपमें टिकते हैं ॥ ४८ ॥ और विघ्नोंकी शान्तिके लिये अन्यभी आठ स्थानों की यात्रा करना चाहिये दक्षेश्वर व पार्वतीश्वर तथा

पशुपतीश्वर ॥ ४९ ॥ व गङ्गेश्वर, नर्मदेश्वर, गभस्तीश्वर, सतीश्वर और अष्टमतारकेश्वर प्रति अष्टमी में विशेषसे ॥ ५० ॥ महापापों की शान्तिके लिये ये लिंग देखने योग्यहैं व सदैव योग क्षेम करनेवाली शुभ अन्य भी, यात्रा ॥ ५१ ॥ जो कि सब विघ्नोंकी समीपता से नाशिका है वह क्षेत्रवासियों को करना चाहिये व पहले वरणा में स्नान पूर्वक शैलेश्वर को विशेषता से देखकर ॥ ५२ ॥ संगम में स्नान को कर संगमेश्वर देखने योग्य हैं फिर स्वलीनतीर्थ में अच्छे प्रकार से नहाया हुआ स्वलीनेश्वरको देखे ॥ ५३ ॥ व मन्दाकिनीतीर्थ में स्नानकर मध्यमेश्वर का दर्शन करना चाहिये और उस तीर्थ में स्नानादि जलक्रिया किये हुआ जन हिरण्यगर्भेश्वर

शःसतीश्वरः ॥ अष्टमस्तारकेशश्चप्रत्यष्टमिविशेषतः ॥ ५० ॥ दृश्यान्येतानिलिङ्गानिमहापापोपशान्तये ॥ अपरापिशुभायात्रायोगक्षेमकरीसदा ॥ ५१ ॥ सर्वविघ्नोपहन्त्रीचकर्तव्याक्षेत्रवासिभिः ॥ शैलेशंप्रथमंवीक्ष्यवरणास्नानपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ स्नानंतुसङ्गमेकृत्वाद्रष्टव्यःसङ्गमेश्वरः ॥ स्वलीनतीर्थेसुस्नातःपश्येत्स्वलीनमीश्वरम् ॥ ५३ ॥ स्नात्वामन्दाकिनीतीर्थेद्रष्टव्योमध्यमेश्वरः ॥ पश्येद्धिरण्यगर्भेशंतत्रतीर्थेकृतोदकः ॥ ५४ ॥ मणिकर्ण्यान्ततःस्नात्वापश्येदीशानमीश्वरम् ॥ ततःकूपमुपस्पृश्यगोप्रेक्षमवलोकयेत् ॥ ५५ ॥ कापिलेयह्रदेस्नात्वावीक्षेतवृषभध्वजम् ॥ उपशान्तशिवंपश्येत्तत्कूपविहितोदकः ॥ ५६ ॥ पञ्चचूडाह्रदेस्नात्वाज्येष्ठस्थानंततोर्चयेत् ॥ चतुःसमुद्रकूपेतुस्नात्वादेवंसमर्चयेत् ॥ ५७ ॥ देवस्याग्रेतुयावापीतत्रोपस्पर्शनेकृते ॥ शुक्रेश्वरंततःपश्येत्तत्कूपविहितोदकः ॥ ५८ ॥ दण्डखातेततःस्नात्वाव्याघ्रेशम्पूजयेत्ततः ॥ शौनकेश्वरकुण्डेतुस्नानंकृत्वाततोर्चयेत् ॥ ५९ ॥ जम्बुकेशंमहालिङ्गंकृत्वाया

को देखे ॥ ५४ ॥ तदनन्तर मणिकर्णिका में स्नानकर ईशानईश्वर को देखे उसके बाद कूप में नहाकर गोप्रेक्षको अवलोकनकरे ॥ ५५ ॥ व कापिलेय कुण्डमें स्नानकर वृषभध्वज को विशेषतासे देखे फिर उनके कूपमें स्नानादि जलक्रिया को किये हुआ उपरान्त शिवजी के दर्शन करे ॥ ५६ ॥ तदनन्तर पञ्च चूडाकुण्डमें स्नानकर ज्येष्ठ स्थानकी पूजाकरे फिर चतुःसमुद्र कूपमें नहाकर देवको भलीभांति पूजे ॥ ५७ ॥ और देव के आगे वहां वापीमें स्नान किये होतेही तदनन्तर उनके कूपमें जलक्रिया किये हुआ शुक्रेश्वर को देखे ॥ ५८ ॥ उसके बाद दण्डखातमें स्नानकर तदनन्तर व्याघ्रेश्वरको पूजे और शौनकेश्वर कुण्डमें स्नानकोकर उसके बाद पूजाकरे ॥ ५९ ॥

फिर जम्बुकेश्वर महालिंग को पूजे इस यात्राको कर मनुष्य फिर दुःखसागर संसार में कभी, या, कहीं नहीं उपजता है ॥ ६० ॥ प्रतिपदा से लगाकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तक इस क्रमसे ये आयतन (स्थान) निश्चय से करने योग्य हैं ॥ इस यात्राको कर भी मनुष्य फिर नहीं उत्पन्नहोताहै और ग्यारह स्थानोंसे उपजीहुई अन्य यात्रा अधिकता से करनाचाहिये ॥ ६२ ॥ कि आग्नीध्र कुण्ड में भलीभांति नहाये हुआ आग्नीध्रेश्वरको देखे उसके बाद उर्वशीश्वर और तदनन्तर नकुलीश्वर को जावे ॥ ६३ ॥ उसके बाद आषढ़ीश्वर तदनन्तर भारभूतेश्वर को देखकर अनन्तर लांगलीश्वर और तदनन्तर त्रिपुरान्तकको देखकर ॥६४॥ उसके बाद मनःप्रका

त्रामिमांनरः ॥ कश्चिन्नजायतेभूयःसंमारेदुःखसागरे ॥ ६०समारभ्यप्रतिपदंयावत्कृष्णाचतुर्दशी ॥ एतत्क्रमेणकर्तव्या न्येतदायतनानिवै ॥ ६१ ॥ इमांयात्रांनरःकृत्वानभूयोप्यभिजायते ॥ अन्यायात्राप्रकर्तव्यैकादशायतनोद्भवा ॥ ६२॥ आग्नीध्रकुण्डेसुस्नातःपश्येदाग्नीध्रमीश्वरम् ॥ उर्वशीशन्ततोगच्छेत्ततस्तुनकुलीश्वरम् ॥ ६३ ॥ आषाढीशन्त तोदृष्ट्वाभारभूतेश्वरंततः ॥ लाङ्गलीशमथालोक्यततस्तुत्रिपुरान्तकम् ॥ ६४ ॥ ततोमनःप्रकामेशंप्रीतिकेशमथोव्र जेत् ॥ मदालसेश्वरंतस्मात्तिलपर्णेश्वरंततः ॥ ६५ ॥ यात्रैकादशलिङ्गानामेषाकार्याप्रयत्नतः ॥ इमांयात्रांप्रकुर्वाणोरु द्रत्वंप्राप्नुयान्नरः ॥ ६६ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिगौरीयात्रामनुत्तमाम् ॥ शुक्लपक्षेतृतीयायांयायात्राविश्वगृद्धिदा ॥ ६७॥ गोप्रेक्षतीर्थेसुस्नायमुखनिर्मालिकांव्रजेत् ॥ ज्येष्ठावाप्यांनरःस्नात्वाज्येष्ठांगौरींसमर्चयेत् ॥ ६८ ॥ सौभाग्यगौरीस म्पूज्याज्ञानवाप्यांकृतोदकैः ॥ ततःशृङ्गारगौरीञ्चतत्रैवचकृतोदकः ॥ ६९ ॥ स्नात्वाविशालगङ्गायांविशालाञ्चींततोव्र

मेश्वर अनन्तर प्रीतिकेश्वर उनसे आगे मदालसेश्वर तदनन्तर तिलपर्णेश्वरको जावे ॥ ६५ ॥ यह ग्यारह लिंगोंकी यात्रा बड़े यत्नसे करना चाहिये इस यात्राको बहुत करताहुआ नर रुद्रभावको प्राप्त होवेहै ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त मैं अत्यन्त उत्तम गौरीयात्राको अधिकता से कहूंगा कि शुक्लपक्षकी तृतीयामें जो यात्राहै वह सब ओर से ऋद्धियोंकी देनेवाली है ॥ ६७ ॥ गोप्रेक्ष तीर्थमें भलीभांति नहाकर मुखनिर्मालिकाको जावे फिर ज्येष्ठा वापीमें स्नानकर मनुष्य ज्येष्ठा गौरीको संपूजनकरे ॥ ६८ ॥ व ज्ञानवापी में स्नानादि जल क्रियाको कियेहुये जनों से सौभाग्यगौरी भलीभांति पूजने योग्यहै और तदनन्तर [illegible]

उसके बाद विशाल गंगामें स्नानकर विशालाक्षी देवी के दर्शन को जावे तदनन्तर ललितातीर्थ में अच्छेप्रकार से नहायेहुश्रा ललिताकी पूजाकरे ॥ ७० ॥ अनन्तर भवानी तीर्थमें स्नानकर भवानीको सब श्रोरसे पूजे फिर तदनन्तर बिन्दुतीर्थ में जल क्रिया करनेवाले मनुष्यों से मंगलादेवी सामने से पूजने योग्यहैं ॥ ७१ ॥ उसके बाद निश्चल लक्ष्मी की समृद्धिके लिये महालक्ष्मी को जावे मुक्तिके उपजानेवाले इस क्षेत्रमें मनुष्य इस यात्राकोकर ॥ ७२ ॥ इसलोक और उस लोकमें भी कहीं दुःख से तिरस्कृत नहीं होवेहै और यहां सदैव प्रतिचौथिमें विघ्नेश्वर गणेशजीकी यात्राकोकरे ॥ ७३ ॥ व उन गणेशजी के उद्देश से आनन्दके अर्थ ब्राह्मणों के लिये निश्चय से

जेत् ॥ सुस्नातोललितातीर्थेललितामर्चयेत्ततः ॥ ७० ॥ स्नात्वाभवानीतीर्थेथभवानींपरिपूजयेत् ॥ मङ्गलाचततोभ्यर्च्याबिन्दुतीर्थकृतोदकैः ॥ ७१ ॥ ततोगच्छेन्महालक्ष्मींस्थिरलक्ष्मीसमृद्धये ॥ इमांयात्रान्नरःकृत्वाक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिजन्मनि ॥ ७२ ॥ नदुःखैरभिभूयेतइहामुत्रापिकुत्रचित् ॥ कुर्यात्प्रतिचतुर्थीहयात्रांविघ्नेशितुःसदा ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तदुद्देशाद्देयावैमोदकामुदे ॥ भौमेभैरवयात्राचकार्यापातकहारिणी ॥७४॥ रविवारेरवेर्यात्राषष्ठयांवाररविसंयुजि ॥ तथैवरविसप्तम्यांसर्वविघ्नोपशान्तये ॥७५॥ नवम्यामथवाष्टम्यांचण्डीयात्राशुभामता॥ अन्तर्गृहस्यवैयात्राकर्तव्याप्रतिवासरम् ॥ ७६ ॥प्रातःस्नानंविधायादौनत्वापञ्चविनायकान्॥ नमस्कृत्वाथविश्वेशंस्थित्वानिर्वाणमण्डपे॥ ७७॥ अन्तर्गृहस्ययात्रांवैकरिष्येघौघशान्तये ॥ गृहीत्वानियमञ्चेतिगत्वाथमणिकर्णिकाम् ॥ ७८ ॥ स्नात्वामौनेनचागत्यमणि

लड्डू देना चाहिये और मंगलवारमें पापहारिणी भैरवजीकी यात्रा करने योग्यहै ॥ ७४ ॥ ऐसेही सूर्य्यवार व सूर्य्यवारसमेत षष्ठी तथा सूर्य्यवार संयुत सप्तमी में सब विघ्नों के विनाश के लिये सूर्य्यदेवकी यात्रा करना चाहिये ॥ ७५ ॥ नवमी अथवा अष्टमी में चंडिकाजी की यात्रा शुभ मानीगई है व अन्तर्गृहकी यात्रा निश्चयसे प्रतिदिन करना चाहिये ७६ ॥ पहले प्रातःकालमें स्नानकोकर पांच विनायकों (गणेशों) के नमस्कारकर अनन्तर श्रीविश्वेश्वरजी के नमस्कारकर मुक्तिमण्डपमें टिककर ॥ ७७ ॥ फिर मैं पापसमूहोंकी शान्तिके लिये अन्तर्गृहकी यात्राको करूंगा ऐसे नियमको ग्रहणकर अनन्तर मणिकर्णिकाको जाकर ॥ ७८ ॥ स्नानकर और मौन (चुपचाप) से आकर

मणिकर्णिकेश्वरको पूजे व कम्बल और अश्वतरनागके नमस्कारकर फिर वासुकीश्वरके प्रणामकर ॥ ७९ ॥ उसके बाद पर्वतेश्वर अनन्तर गंगाकेशवको भी देखकर तदनन्तर ललितादेवी तदनन्तर जरासन्धेश्वरके दर्शनकर ॥ ८० ॥ व उसके बाद सोमनाथ और तदनन्तर वाराहेश्वरको निश्चयसे जावे तदनन्तर ब्रह्मेश्वरके नमस्कार कर तदनन्तर अगस्तीश्वरके नमस्कारकर ॥ ८१ ॥ फिर कश्यपेश्वरके नमस्कारकर तदनन्तर हरिकेशवन उसके बाद वैद्यनाथ अनन्तर ध्रुवेश्वरको विशेषता से देखकर ८२ ॥ गोकर्णेश्वरको सामने से पूजकर अनन्तर हाटकेश्वरको जावे और अस्तिक्षेप तड़ागमें कीकसेश्वरको निश्चयसे देखकर ॥ ८३ ॥ उसके बाद भारभूतेश्वरके नम-

कर्णीशमर्चयेत् ॥ कम्बलाश्वतरौनत्वावासुकीशंप्रणम्यच ॥ ७९ ॥ पर्वतेशन्ततोदृष्ट्वागङ्गाकेशवमप्यथ ॥ ततस्तुल लितांदृष्ट्वाजरासन्धेश्वरंततः ॥ ८० ॥ ततोवैसोमनाथञ्चवाराहञ्चततोव्रजेत ॥ ब्रह्मेश्वरंततोनत्वानत्वागस्तीश्वरंत तः ॥ ८१ ॥ कश्यपेशंनमस्कृत्यहरिकेशवनंततः ॥ वैद्यनाथंततोदृष्ट्वाध्रुवेशमथवीक्ष्यच ॥ ८२ ॥ गोकर्णेश्वरमभ्य र्च्यहाटकेशमथोव्रजेत् ॥ अस्थिक्षेपतडागेचदृष्ट्वावैकीकसेश्वरम् ॥ ८३ ॥ भारभूतंततोनत्वाचित्रगुप्तेश्वरंततः ॥ चि त्रघण्टांप्रणम्याथततःपशुपतीश्वरम् ॥८४॥ पितामहेश्वरंगत्वाततस्तुकलशेश्वरम्॥चन्द्रेशस्त्वथवीरेशोविद्येशोग्नी शएवच ॥ ८५ ॥ नागेश्वरोहरिश्चन्द्रश्चिन्तामणिविनायकः ॥ सेनाविनायकश्चाथद्रष्टव्यःसर्वविघ्नहृत् ॥८६॥ वसिष्ठ वामदेवौचमूर्तिरूपधरावुभौ ॥ द्रष्टव्यौयत्नतःकाश्यांमहाविघ्नविनाशिनौ ॥ ८७ ॥ सीमाविनायकश्चाथकरुणेशंततो व्रजेत् ॥ त्रिसन्ध्येशोविशालाक्षीधर्मेशोविश्वबाहुका ॥ आशाविनायकश्चाथवृद्धादित्यस्ततःपुनः ॥ ८८ ॥ चतुर्वक्त्रे

स्कारकर तदनन्तर चित्रगुप्तेश्वर अनन्तर चित्रघण्टादेवी तदनन्तर पशुपतीश्वरके प्रणामकर ॥ ८४ ॥ उसके बाद पितामहेश्वर और तदनन्तर कलशेश्वर को जाकर फिर चन्द्रेश्वर अनन्तर वीरेश्वर विद्येश्वर और अग्नीश्वर भी ॥ ८५ ॥ अनन्तर नागेश्वर, हरिश्चन्द्रेश्वर, चिन्तामणि विनायक और सब विघ्नों के हर्त्ता सेना विनायक देखने योग्यहैं ॥ ८६ ॥ और काशीमें महाविघ्नविनाशी मूर्तिरूपधारी दोनों जन वसिष्ठ व वामदेवजी यत्नसे देखने योग्य हैं ॥ ८७ ॥ अनन्तर सीमा विनायक और अरुणेश्वरको जावे उसके बाद त्रिसन्ध्येश्वर, विशालाक्षी तदनन्तर धर्मेश्वर और विश्वभुजा, अनन्तर आशा विनायक फिर वृद्धादित्य ॥ ८८ ॥ व चतुर्वक्त्रेश्वर लिंग

उससे पर ब्राह्मीश्वर तदनन्तर मनःप्रकामेश्वर उससे पर ईशानेश्वरलिंग ॥ ८९ ॥ तदनन्तर चण्डी, चण्डीश्वर भवानी और शंकर देखने योग्यहैं उनके आगे ढुंढिराज गणेशके प्रणामकर फिर राजराजेश्वरको पूजे ॥ ९० ॥ तदनन्तर लांगलीश्वर तदनन्तर नकुलीश्वर सामने से पूजनीयहैं अनन्तर परान्नेश्वर तदनन्तर परद्रव्येश्वरके नमस्कारकर ॥ ९१ ॥ व प्रतिग्रहेश्वर भी और निष्कलंकेश्वर भी व मार्कण्डेयेश्वर तदनन्तर अप्सरसेश्वरकी पूजाकरे ॥ ९२ ॥ तदनन्तर गंगेश्वर पूजने योग्यहैं व ज्ञान वापी में स्नानको भलीभांतिकरे तदनन्तर नन्दिकेश्वर तारकेश्वर महाकालेश्वर ॥ ९३ ॥ और दण्डपाणि, महेश्वर तदनन्तर मोक्षेश्वरके प्रणामकरे उसके बाद वीरभद्रे

श्वरंलिङ्गंब्राह्मीशस्तुततःपरः ॥ ततोमनःप्रकामेशईशानेशस्ततःपरम् ॥ ८९ ॥ चण्डीचण्डीश्वरौदृश्यौभवानीशं करौततः ॥ ढुण्ढिंप्रणम्यचततोराजराजेशमर्चयेत् ॥ ९० ॥ लाङ्गलीशस्ततोभ्यर्च्यस्ततस्तुनकुलीश्वरः ॥ परान्नेशम थोनत्वापरद्रव्येश्वरंततः ॥ ९१ ॥ प्रतिग्रहेश्वरंवापिनिष्कलङ्केशमेवच ॥ मार्कण्डेयेशमभ्यर्च्यततअप्सरसेश्वरम् ॥ ९२ ॥ गङ्गेशोर्च्यस्ततोज्ञानवाप्यांस्नानंसमाचरेत् ॥ नन्दिकेशंतारकेशंमहाकालेश्वरंततः ॥ ९३ ॥ दण्डपाणिंमहेशं च मोक्षेशंप्रणमेत्ततः ॥ वीरभद्रेश्वरंनत्वाअविमुक्तेश्वरंततः ॥ ९४ ॥ विनायकांस्ततःपञ्चविश्वनाथंततोव्रजेत् ॥ ततो मौनंविसृज्याथमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ ९५ ॥ अन्तर्गृहस्ययात्रेयंयथावद्यामयाकृता ॥ न्यूनातिरिक्तयाशम्भुःप्रीयता मनयाविभुः ॥ ९६ ॥ इतिमन्त्रंसमुच्चार्यक्षणंवैमुक्तिमण्डपे ॥ विश्रम्ययायाद्भवनंनिष्पापःपुण्यवान्नरः ॥ ९७ ॥ सं प्राप्यवासरंविष्णोर्विष्णुतीर्थेषुसर्वतः ॥ कार्यायात्राप्रयत्नेनमहापुण्यसमृद्धये ॥ ९८ ॥ नभस्यपञ्चदश्याञ्चकुलस्तम्भं

श्वर और अविमुक्तेश्वरके नमस्कारकर ॥ ९४ ॥ तदनन्तर पांचो विनायक तदनन्तर श्रीविश्वनाथजी के मन्दिरको जावे उसके बाद मौनको त्यागकर अनन्तर इस मन्त्र को उच्चारणकरे ॥ ९५ ॥ कि जो यह अन्तर्गृहकी यात्रा मुझसे यथावत् कीगई है इस न्यून और अतिरिक्त यात्रासे समर्थ शंकरजी प्रसन्नहोवें ॥ ९६ ॥ ऐसे मन्त्रको भली- भांति उच्चारणकर मुक्तिमण्डप में क्षणभर निश्चयसे विश्रामकर पापहीन पुण्यवान् मनुष्य घरको जावे ॥ ९७ ॥ और महापुण्योंकी समृद्धिके लिये एकादशीसमेत द्वादशी को भलीभांति प्राप्तहोकर सब श्रीविष्णुजी के तीर्थों में यात्रा करना चाहिये ॥ ९८ ॥ और भादोंकी पंचदशी में कुलस्तम्भको भलीभांतिपूजे क्योंकि जिसकी पूजासे दुःख व

रुद्रपिशाचत्व नहीं होवैहै ॥ ९९ ॥ क्षेत्रवासियोंको ये यात्रायें श्रद्धापूर्वक करना चाहिये और पर्वों में विशेष से सर्वत्रयात्रा करना चाहिये ॥ १०० ॥ इससे पुण्यवान् जन यात्राके विना कभी या कहीं दिनको विफल नहीं करे व दो यात्रायें प्रतिदिन बड़े यत्नसे करना चाहिये ॥ १ ॥ कि पहले स्वर्ग नदी गंगाकी तदनन्तर विश्वेश्वर की यात्रा निश्चितहै और काशीमें निवसतेहुए जिस सज्जनका दिन विफल बीतगया ॥ २ ॥ उसके पितर उसही दिनमें निराशहुये व वह कालसर्प्प से डसागया वह मृत्यु से स्पष्ट डसागया ॥ ३ ॥ और वह उस दिनमें चोरागया किसने जिस दिनमें श्रीविश्वनाथजीको न देखा व उसने सब तीर्थों में नहाया और उसने सब यात्राको किया ॥

समर्चयेत् ॥ दुःखंरुद्रपिशाचत्वंनभवेद्यस्यपूजनात् ॥९९॥ श्रद्धापूर्वमिमायात्राःकर्तव्याःक्षेत्रवासिभिः ॥ पर्वस्वपिविशेषेणकार्यायात्राश्चसर्वतः ॥ १००॥ नबन्ध्यंदिवसंकुर्याद्विनायात्रांकचित्कृती॥ यात्राद्वयंप्रयत्नेनकर्तव्यंप्रतिवासरम्॥ १ ॥ आदौस्वर्गतरङ्गिण्यास्ततोविश्वेशितुर्ध्रुवम् ॥ यस्यबन्ध्यन्दिनंयातंकाश्यांनिवसतःसतः ॥ २ ॥ निराशाःपितरस्तस्यतस्मिन्नेवदिनेऽभवन् ॥ सदष्टःकालसर्पेणमदृष्टोमृत्युनास्फुटम् ॥ ३॥ समुष्टस्तत्रदिवसेविश्वेशोयत्रनेक्षितः॥ सर्वतीर्थेषुसस्नौससर्वयात्रांव्यधात्सच ॥ ४॥ मणिकर्ण्यांतुयःस्नातोयोविश्वेशंनिरैक्षत ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यंसत्यंपुनःपुनः ॥ दृश्योविश्वेश्वरोनित्यंस्नातव्यामणिकर्णिका ॥ ५ ॥ व्यासउवाच ॥ सूतस्कान्दमिदंश्रुत्वाकाशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ नरोननिरयंयातिकृत्वाप्यघसहस्रकम् ॥ ६ ॥ स्नात्वासर्वाणितीर्थानियच्छ्रेयःसमुपार्ज्यते ॥ काशीखण्डस्यश्रवणात्तस्यात्सूतनसंशयः ॥ ७ ॥ दत्त्वादानानिसर्वाणिकृत्वायज्ञाननेकशः ॥ यत्पुण्यंलभ्यतेमर्त्यैस्तदेत

४ ॥ जोकि मणिकर्णिका में स्नातहुआ और जिसने श्रीविश्वेश्वरको निश्शेषता से देखा सत्यहै सत्यहै फिर सत्यहै सत्यहै बार बार सत्यहै कि मणिकर्णिका नहाने योग्य है और विश्वेश्वरदेव देखने योग्यहै ॥ ५ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे सूत! मनुष्य हजारों पापोंको कर भी स्कन्दपुराणके इस उत्तम काशी माहात्म्यको सुनकर नरक को नहीं जाताहै ॥ ६ ॥ और हे सूत! सब तीर्थों में स्नानकर जो पुण्य या कल्याण भलीभांति बटोराजाता है वह काशीखण्डके सुनने से होवे इसमें संशय नहीं है ॥ ७

व अनेकों दानोंको देकर सब यज्ञोंको कर जो पुण्य मनुष्यों से पाईजाती है वह इसके सुनने से निश्चितहै ॥ ८ ॥ व उग्र तपस्याओं को तपकर जो बड़ा फल मिलताहै उसको इसके सुनने से पाताहै संशय नहीं है ॥ ९ ॥ व अंगों समेत चारों वेदोंको पढ़कर जो फल प्राप्त कियाजाताहै वह फल काशीखण्डको भलीभांति सुनकर मनुष्यों से पायाजाताहै ॥ १० ॥ और जैसे गयामें श्राद्ध देने से पूर्वज तृप्त होतेहैं वैसेही इसके सुनने से मनुष्यों के पितर तृप्त होजाते हैं ॥ ११ ॥ और उन निश्चल बुद्धिवालोंने सब पुराणों को सुना कि जिन्होंने सब पुण्यों और सब फलोंके स्थान काशीखण्ड को श्रवण किया है ॥ १२ ॥ और महापुण्यैकराशिरूप उन लोगों से सब धर्म सुनेगये हैं कि

च्छ्रवणाद्ध्रुवम् ॥ ८ ॥ तप्त्वातपांसिचोग्राणिप्राप्यतेयन्महत्फलम् ॥ श्रवणादस्यखण्डस्यलभतेतन्नसंशयः ॥ ९ ॥ अधीत्यचतुरोवेदान्साङ्गान्यत्फलमाप्यते ॥ काशीखण्डंसमाकर्ण्यतत्फलंलभ्यतेनरैः ॥ १० ॥ गयायांश्राद्धदानाच्चयथातृप्यन्तिपूर्वजाः ॥ तथैतच्छ्रवणान्नृणान्तृप्नुवन्तिपितामहाः ॥ ११ ॥ तैश्चसर्वपुराणानिश्रुतानिस्थिरबुद्धिभिः ॥ काशीखण्डंश्रुतंयैश्चसर्वेषांश्रेयसांपदम् ॥ १२ ॥ श्रुताश्चसर्वधर्मास्तैर्महापुण्यैकराशिभिः ॥ श्रुतंयैःस्थिरचेतोभिःकाशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥ इदमेवहिदेवेज्यापरमापरिकीर्तिता ॥ जपेत्तत्खण्डमखिलंश्रोतव्यंश्रद्धयाद्विजाः ॥ १४ ॥ शृणुयादेकमपियआख्यानंकाशिखण्डजम् ॥ श्रुतानितेनसर्वाणिधर्मशास्त्राण्यसंशयम् ॥ १५ ॥ महाधर्मैकजननंमहार्थप्रतिपादकम् ॥ कारणंसर्वकामाप्तेःकाशीखण्डमिदंस्मृतम् ॥ १६ ॥ एतच्छ्रवणतःपुंसांकैवल्यंनैवदूरतः ॥ तुष्यन्तिसर्वेपितरःश्रुत्वैतत्खण्डमुत्तमम् ॥ १७ ॥ प्रीणन्त्यमर्त्याःसर्वेपिब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ मुनयःपरिमोदन्तेमाद्यन्तिस

जिन स्थिर चित्तवालों से उत्तम काशीमाहात्म्य सुनागया है ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! यहही परमोत्तम देवपूजा सब ओर से कहीगई है कि सम्पूर्ण काशीखण्ड को जपे (पढ़े) और वह सुनने योग्य है ॥ १४ ॥ व जो काशीखण्ड से उपजेहुये एकभी आख्यानको सुने उस करके निस्सन्देह सब धर्मशास्त्र सुनेगये हैं ॥ १५ ॥ यह काशीखण्ड महाधर्मोंका मुख्य उपजानेवाला महाअर्थोंका प्रतिपादक और सब कामों की प्राप्तिका कारण कहा गयाहै ॥ १६ ॥ इसके सुनने से मनुष्यो की मुक्तिभी दूर नहीं है और इस उत्तम खण्डको सुनकर सब पितर तृप्त होते हैं ॥ १७ ॥ व सब मनुष्य और ब्रह्मा विष्णु व शिवादि देव प्रसन्न होते हैं व मुनिलोग सब ओर से

आनन्दित होते हैं और सनकादिक भी हर्षित होते हैं॥ १८ ॥ और इस काशी की महिमा सुनने से चारभांतिके सब जन्तु समूह हृष्टही होवेहैं संशय नहीं है ॥१९॥ और जो पण्डित सम्पूर्ण व आधासी व चौथाईमात्र व उसका आधा अथवा एक भी उत्तम आख्यान को सुनावे ॥ २० ॥ वह बड़े यत्नसे नमस्कारके योग्यहै व इष्टदेवके समान भलीभांति पूजनीयहै और विश्वेश्वरकी प्रीति के लिये उसको सदा सब कुछ देना चाहिये ॥ २१ ॥ जिससे उसके तुष्ट होतेही श्रीविश्वनाथजी सन्तुष्टहैं इसमें संशय नहीं है व उत्तम आनन्द का निधान यह खण्ड जहां पढ़ा जाताहै॥ २२ ॥ वहां कोई भी अमंगलका समुद्भव समर्थ नहीं होवे है व जो विद्वान् और जो सुबुद्धिमान्

नकादयः ॥ १८ ॥ हृष्टःसर्वोभवेदेवभूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ महिमश्रवणादस्माद्वाराणस्यानसंशयः ॥ १९ ॥ यइदंश्रावयेद्विद्वान्समस्तंत्वर्धमेववा ॥ पादमात्रन्तदर्धंवात्वेकंव्याख्यानमुत्तमम् ॥ २० ॥ सनमस्यःप्रयत्नेनसम्पूज्यस्त्विष्टदेववत् ॥ तस्मैदेयंप्रयत्नेनविश्वेशप्रीतयेसदा ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तुष्टेहिसन्तुष्टोविश्वेशोनात्रसंशयः ॥ यत्रैतत्पठ्यतेखण्डंपरानन्दसमाश्रयम् ॥ २२ ॥ नतत्रप्रभवेत्कश्चिदमङ्गलसमुद्भवः ॥ यइदंश्रृणुयाद्विद्वान्यश्चेदंश्रावयेत्सुधीः॥२३॥ यःपठेदपिपुण्यात्मातेसर्वेरुद्रमूर्तयः ॥ यएतत्पुस्तकंरम्यंलेखयित्वासमर्पयेत् ॥ २४ ॥ अखिलानिपुराणानितेनदत्तानिनान्यथा ॥ अत्राख्यानानियावन्तिश्लोकायावन्तएवहि ॥ २५ ॥ तथापदानियावन्तिवर्णायावन्तएवहि ॥ यावन्त्यपिचमात्राणियावत्यःपदपङ्क्तयः ॥ २६ ॥ गुणेसूत्राणियावन्तियावन्तःपटतन्तवः ॥ चित्ररूपाणियावन्तिरम्यपुस्तकसंचके ॥ २७ ॥ तावद्युगसहस्राणिदातास्वर्गेमहीयते ॥ एतद्द्वादशकृत्वोयःश्रृणुयात्खण्डमुत्तमम् ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यापि

इसको सुनावे ॥ २३ ॥ व जो पुण्यात्मा इसको पढ़े भी वे सब रुद्ररूपहैं और जो इस रम्य पुस्तक को लिखाकर भलीभाति दानकरे ॥ २४ ॥ उसने सम्पूर्ण पुराणों का दान किया यह अन्यथा नहीं है इसमें जितने आख्यान हैं और जितने श्लोक भी हैं॥ २५ ॥ तथा जितने पाद हैं ऐसेही जितने अक्षर भी हैं व जितनी मात्राये है और जितनी पदोंकी पंक्तियां भी हैं ॥ २६ ॥ व पुस्तक बन्धन के डोरामें जितने सूत्र हैं व जितने वस्त्रमें सूत्रहैं और रम्यपुस्तक सञ्चक याने पुस्तक के शुभ सिंहासनमे जितने चित्ररूप हैं ॥ २७ ॥ उतने हजार युगोंतक पुस्तकका दाता स्वर्ग में पूजा जाताहै और जो कोई इस उत्तम खण्ड को बारह बार सुने ॥ २८ ॥ उसकी ब्रह्महत्या भी शम्भु

की दयासे शीघ्रही नष्ट होवे है और भलीभांति नहाये हुआ श्रद्धासमेत जो अपुत्रभी सुने ॥ २९ ॥ उसके पुत्र शङ्करजी की आज्ञाके प्रभाव से होताही है हे सूत ! बहुत कहने से क्याहै यहां जिस जिसका मनोरथ ॥ ३० ॥ जो जो होवे वह वह उस उसको पुण्यवान् सुकर्मी इसको सुनकर सदैव पावे व जो दूरदेशमें भी उत्तम काशीखण्डको सुने ॥ ३१ ॥ वह शिवजीकी आज्ञासे काशीवास पुण्यका पात्र होवे व इसके सुनने से सर्वत्र पुरुषोंका विजय होवे है और निर्मल अन्तःकरणवाला श्रोता सर्वत्र सौभाग्य को भी प्राप्तहोवे ॥ ३२ ॥ किन्तु जिससे विश्वेश्वरजी सन्तुष्टहैं उस निर्मल चित्तवाले पुण्यवान् की मति इसके सुननेमें होतीहै ॥ ३३ ॥ और यह उत्तम खण्ड सब मङ्गलों के मध्यमें महामंगलहै व सब मंगलोंकी सिद्धि के लिये घरमें भी लिखा हुआ पूजने योग्यहै ॥ १३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेरायबरेलीप्रदेशान्त

तस्याशुनश्येच्छम्भोरनुग्रहात् ॥ अपुत्रःशृणुयाद्यस्तुसुस्नातःश्रद्धयान्वितः ॥ २९ ॥ तस्यपुत्रोभवत्येवशम्भोराज्ञाप्रभावतः ॥ किम्बहूक्तेनसूतेहयस्ययस्यमनोरथः ॥ ३० ॥ योयस्तन्तंसमसदाश्रुत्वैतत्प्राप्नुयात्कृती ॥ शृणुयाद्दूरदेशेपि यःकाशीखण्डमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ सकाशीवासपुण्यस्यभाजनंस्याच्छिवाज्ञया ॥ एतच्छ्रवणतःपुंसांसर्वत्रविजयोभवेत ॥ सौभाग्यञ्चापिसर्वत्रप्राप्नुयान्निर्मलाशयः ॥ ३२ ॥ यस्यविश्वेश्वरस्तुष्टस्तस्यैतच्छ्रवणेमतिः ॥ जायतेपुण्ययुक्तस्यमहानिर्मलचेतसः ॥ ३३ ॥ सर्वेषांमङ्गलानाञ्चमहामङ्गलमुत्तमम् ॥ गृहेपिलिखितम्पूज्यंसर्वमङ्गलसिद्धये ॥ १३४ ॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽनुक्रमणिकानामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ॐ समाप्तञ्चेदंकाशीखण्डम् ॥

गतडिघौरग्रामधामसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेऽनुक्रमणिकानामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दोहा। श्रीयुत मथुरानाथ गुरुचरण शरण ममअस्तु। जिनकी कृपा कटाक्षमे काशीखण्ड समस्तु ॥ षट्पदछन्द ॥ श्रीयुत भारद्वाज त्रिवेदी रामनिरंजन। तासुत गंगादत्त मत्तविद्वन्मदभंजन ॥ तासुत लालाराम तदङ्गज शालग्रामा। तासुत रामदयाल पुत्र सिधिनाथ सुनामा ॥ यह ताकृत काशीखण्डकी भाषाटीका जानिये। ज्याहि पढ़त सुनत सब फल सुलभ श्रीशिवप्रीति प्रमानिये ॥ चतुष्पदीछन्द ॥ मालिकमतबा नवलकिशोर। बाबू प्रागनरायण ओर ॥ पण्डित सूर्य्यदीन अधिकार। मैं उनकी रुचि के अनुसार ॥ दोहा ॥ टीका काशीखण्डकी भाषामें शुभ कीन। बालबात सुनि मात पितु मोद शिवा शिव लीन ॥ ॐ शुभमस्तु ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

॥ इश्तहार ॥

प्रथमवार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा

सन् १९०७ ई० ॥

पर्वत, ऋक्ष, वृक्ष नामवाली को न ब्याहे नदी व सर्प नामवाली को न ब्याहे पक्षी, नाग, व दास नामवाली को न ब्याहे और सुबुद्धिमान् मनुष्य अच्छे नामवाली स्त्री को ब्याहे ॥ ९२ ॥ अधिक व न्यून अंगवालीको न ब्याहे बहुत बड़ीको न ब्याहे व दुबली को न ब्याहे विना रोमवालीको न ब्याहे अधिक रोमवालीको न ब्याहे बहुत रूखे मोटे बालवालीको न ब्याहे ॥ ९३ ॥ और मोहसे कुलहीन कन्याको न ब्याहे क्योंकि कुलहीन कन्याके ब्याहने से सन्तति भी हीनताको प्राप्त होतीहै ॥ ९४ ॥ इससे पहले लक्षणों को परीक्षाकर तदनन्तर कन्याको ब्याहे जो कन्या सुलक्षणा और अच्छे आचारवाली होवे वह पतिकी आयुको बढ़ावे है ॥ ९५ ॥ हे अगस्त्य! यह

ह्वांननदीसर्पनामिकाम् ॥ नपक्ष्यहिप्रेष्यनाम्नींसौम्याख्यामुद्वहेत्सुधीः ॥ ९२ ॥ नचातिरिक्तहीनाङ्गींनातिदीर्घांनवाकृशाम् ॥ नालोमिकांनातिलोमांनास्निग्धस्थूलमौलिजाम् ॥ ९३ ॥ मोहात्समुपयच्छेतकुलहीनांनकन्यकाम् ॥ हीनोपयमनाद्यातिसन्तानमपिहीनताम् ॥ ९४ ॥ लक्षणानिपरीक्ष्यादौततःकन्यांसमुद्वहेत् ॥ सुलक्षणासदाचारापत्युरायुर्विवर्धयेत् ॥ ९५ ॥ ब्रह्मचारिसदाचारइतितेसमुदीरितः ॥ घटोद्भवप्रसङ्गेनस्त्रीलक्षणमथब्रुवे ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेब्रह्मचारिसदाचारवर्णनंनामषट्त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ सदागृहीसुखंभुङ्क्तेस्त्रीलक्षणवतीयदि ॥ अतःसुखसमृद्ध्यर्थमादौलक्षणमीक्षयेत् ॥ १ ॥ वपुरावर्तगन्धाश्चछायासत्त्वंस्वरोगतिः ॥ वर्णश्चेत्यष्टधाप्रोक्ताबुधैर्लक्षणभूमिका ॥ २ ॥ आपादतलमारभ्ययावन्मौलिरुहंक्रमात् ॥ शु

ब्रह्मचारियों का सदाचार तुमसे कहागया अनन्तर मैं प्रसंग से स्त्रियों के लक्षणको कहताहूं ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धोसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते ब्रह्मचारिसदाचारवर्णनंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । सैतिसयें अध्याय में तियलक्षण कहि दीन । प्रथम परखि पुनि ब्याहिये पूरुष परम प्रवीन ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, जो स्त्री सुलक्षणवालीहो तो गृहस्थ सदा सुखको भोगताहै इससे सुखकी वृद्धिके अर्थ पहलेही स्त्रीके लक्षणको देखलेवे ॥ १ ॥ देह, दक्षिणावर्त्त (नाभी आदि) गन्ध, कान्ति, अन्तःकरण या परपुरुष मे मनके न लगाने का कारण गुणविशेष, स्वर, गमन और रंग ऐसे आठप्रकार से लक्षणो के स्थानको पण्डितोने कहाहै ॥ २ ॥ हे मुने! पावोंसे लगाकर बालोंतक क्रमसे

शुभ और अशुभ लक्षणों को मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि पहले पांव व तलवा उसके बाद रेखा अँगुठा अंगुलियां नख पद पृष्ठ दोनों घुटुनू एड़ी मुरवा रोम गांठें ॥ ४ ॥ ऊरू (गांठों के ऊपर मोटी जांघें) कटि, नितम्ब, कूल, योनि, जघन (कटिका अग्रभाग) वस्ति (नाभीका नीचाभाग) नाभि, दोनों कोखें, पार्श्व, पेट, मध्य, त्रिबली ॥ ५ ॥ रोमपंक्ति, हृदय, वक्षस्थल, दोनों कुच, कुचों के अग्रभाग, हँसिया याने कांधों के जोड़, कांध, कांधोंका ऊपर भाग, कांख, बाहैं, पहुँचा, दोनों हाथ ॥ ६ ॥ हाथोंकी पीठ, गदोरी, रेखा, अंगुलियां, नख, पीठ, गले के पीछे कृकाटिका याने घेंटा, कण्ठ, ठोंढ़ी, दोनों हनु (कपोलों के परभाग) ॥ ७ ॥ कपोल, मुख, नीचेका

भाशुभानिवक्ष्यामिलक्षणानिमुनेश्शृणु ॥ ३ ॥ आदौपादतलंरेखास्ततोंगुष्ठांगुलीनखाः ॥ पृष्ठंगुल्फद्वयंपार्ष्णीजङ्घेरोमाणिजानुनी ॥ ४ ॥ ऊरूकटीनितम्बस्फिग्भगोजघनवस्तिके ॥ नाभिःकुक्षिद्वयंपार्श्वोदरमध्यबलित्रयम् ॥ ५ ॥ रोमालीहृदयंवक्षोवक्षोजद्वयचूचुकम् ॥ जत्रुस्कन्धांसकक्षादोर्मणिबन्धकरद्वयम् ॥ ६ ॥ पाणिपृष्ठम्पाणितलंरेखांगुष्ठांगुलीनखाः ॥ पृष्ठिःकृकाटिकाकण्ठंचिबुकञ्चहनुद्वयम् ॥ ७ ॥ कपोलौवक्त्रमधरोत्तरौष्ठौद्विजजिह्विकाः ॥ घण्टिकातालुहसितंनासिकाक्षुतमक्षिणी ॥ ८ ॥ पक्ष्मभ्रूकर्णभालानिमौलिसीमन्तमौलिजाः ॥ षष्टिःषडुत्तरायोषिदङ्गलक्षणसत्खनिः ॥ ९ ॥ स्त्रीणांपादतलंस्निग्धंमांसलंमृदुलंसमम् ॥ अस्वेदमुष्णमरुणंबहुभोगोचितंस्मृतम् ॥ १० ॥ रूक्षंविवर्णम्परुषंखण्डितप्रतिबिम्बकम् ॥ शूर्पाकारंविशुष्कञ्चदुःखदौर्भाग्यसूचकम् ॥ ११ ॥ चक्रस्वस्तिकशङ्खाब्जध्वजमीनातपत्रवत् ॥

ओठ, ऊपरका ओठ, दन्त, जीभ, जीभका नीचाभाग, तालु, हास्य, नासिका, छींक, आंखें, ॥ ८ ॥ पलकें, भौंहें, कान, माथ, मस्तक, मांग, और बाल इन छासठ सुलक्षणों की खानि स्त्री की देहहो तो सदा सौभाग्यवती कहीजाती है ॥ ९ ॥ अब क्रमसे एक एक अंगों के शुभाशुभलक्षण कहते हैं कि जो स्त्रियोंके पावों के तलवा चीकन, मसीले, मृदुल व पसीनासे हीन और लालेरंगवालेहों तो बहुते भोगकेयोग्य कहेगये हैं ॥ १० ॥ और रूखे, विवर्ण, कठोर, खण्डितप्रतिबिंबक (जिनका प्रतिबिंब खण्डित होवे याने धूलिमें चलने से पूरा चिह्न न बने) व सूपके आकार और विशेष सूखेसेहों तो दुःख व दुर्भाग्यको सूचनकरते हैं ॥ ११ ॥ व जिस स्त्रीके पादतल में

चक्र स्वस्तिक शंख कमल ध्वज मछली और छत्रसी रेखाहो वह रानी होती है ॥ १२ ॥ व बीचवाली अंगुली में मिली और नीचे से गई ऊर्ध्वरेखा अखण्ड भोगके लिये कहीजाती है व मूश सर्प और कागके आकारवाली रेखा दुःख और दारिद्र्य को सूचती है ॥ १३ ॥ व ऊंचा, मांससे पूर्ण और गोल अँगुठा अतौल भोगको देनेवाला होताहै व जो कुटिल छोटा और चिपिटाहो तो सुख और सौभाग्यको तोड़ता है ॥ १४ ॥ क्योंकि बहुत चौड़े अंगुष्ठ से स्त्री विधवा और बहुतलम्बे से दुर्भगा होती है व सघन सुगोल ऊंची और कोमल अंगुलियां प्रशंसनीयहैं ॥ १५ ॥ और लम्बी अंगुलियों से कुलटा व पतलियों से महादारिद्रिणी व बहुत छोटी अंगुलियों से थोड़ी आ-

यस्याःपादतलेरेखासाभवेत्क्षितिपाङ्गना ॥ १२ ॥ भवेदखण्डभोगायोर्ध्वामध्यांगुलिसङ्गता ॥ रेखाखुसर्पकाकाभा दुःखदारिद्र्यसूचिका ॥ १३ ॥ उन्नतोमांसलोंगुष्ठोवर्तलोतुलभोगदः ॥ वक्रोह्रस्वश्चचिपिटःसुखसौभाग्यभञ्जकः ॥ १४ ॥ विधवाविपुलेनस्याद्दीर्घांगुष्ठेनदुर्भगा ॥ मृदवोंगुलयःशस्ताघनावृत्ताःसमुन्नताः ॥ १५ ॥ दीर्घांगुलीभिःकुलटाकृशाभिरतिनिर्धना ॥ ह्रस्वायुष्याचह्रस्वाभिर्भुग्नाभिर्भुग्नवर्त्तिनी ॥ १६ ॥ चिपिटाभिर्भवेद्दासीविरलाभिर्दरिद्रिणी ॥ परस्परंसमारूढाःपादांगुल्योभवन्तिहि ॥ १७ ॥ हत्वाबहूनपिपतीन्परप्रेष्यातदाभवेत् ॥ यस्याःपथिसमायान्त्यारजोभूमेःसमुच्छलेत् ॥ १८ ॥ सापांसुलाप्रजायेतकुलत्रयविनाशिनी ॥ यस्याःकनिष्ठिकाभूमिंनगच्छन्त्याःपरिस्पृशेत् ॥ १९ ॥ सानिहत्यपतिंयोषाद्वितीयंकुरुतेपतिम् ॥ अनामिकाचमध्याचयस्याभूमिंनसंस्पृशेत ॥ २० ॥ पतिद्वयंनि

युवाली और टेढ़ी अंगुलियों से स्त्री कुटिल व्यवहार में बर्तनेहारी होती है ॥ १६ ॥ व चिपटी अंगुलियों से दासी और विरली अंगुलियों से दारिद्रिणी होवे और जो पावों की अंगुलियां परस्पर एक एक पर चढ़ी होतीहैं ॥ १७ ॥ तो वह स्त्री बहुते पतियों को भी मारकर पराये अधीन होतीहै व गलीमें चलतीहुई जिस स्त्रीके पीछेसे भूमिकी धूलि उड़ती या ऊपरको उठती है ॥ १८ ॥ वह स्त्री तीनों अर्थात् माता पिता और पतिके कुलकी विनाशनेवाली व्यभिचारिणी होतीहै व चलती हुई जिस स्त्रीकी कनिष्ठा अं-गुली पृथिवीको न परसे ॥ १९ ॥ वह स्त्री अपने पतिको मारकर दूसरे पतिको करतीहै व जिसकी अनामिका और जिसकी मध्यमा अंगुली भूमिको न छुवे वे दोनो स्त्रियां

बराने योग्य हैं ॥ २० ॥ क्योंकि पहली याने जिसकी अनामिका पृथिवी को नहीं परसती है वह दो पतियोंको और दूसरी तीन पतियों को मारती है और जो वे पूर्वोक्त अनामिका व मध्यमा अंगुलियां हीन होवें तो पतिकी हीनता करनेवाली होती हैं ॥ २१ ॥ व यह बहुत निश्चय है कि जिस स्त्रीकी प्रदेशिनी याने अँगुठाके लगेवाली अंगुली अँगुठासे मिलीहोवे वह कन्याही कुलटा होतीहै ॥ २२ ॥ व सचिक्कण समुन्नत सुगोल और लाले रंगवाले पाद नख शुभहैं और इनसे उलटा होनेसे अशुभहैं ॥२३॥ व स्त्रियों के पावोंकी पीठ जो उन्नत व पसीना और नसोंसे हीन व मांसयुक्त सचिक्कण और कोमलहो तो रानीके भावको सूचनकरती है याने वह स्त्री रानी होती है ॥२४॥ व पांवके ऊपर बीचमें नम्र होनेसे दरिद्रिणी व नसयुक्त से सदा गली चलनेवाली व रोमयुक्त से दासी और मांसहीन पदपृष्ठसे दुर्भगा होती है ॥ २५ ॥ व नसोंसे हीन

हन्त्याद्याद्वितीयाचपतित्रयम् ॥ पतिहीनत्वकारिण्यौहीनेतेद्वेइमेयदि ॥ २१ ॥ प्रदेशिनीभवेद्यस्याअंगुष्ठाव्यतिरेकिणी ॥ कन्यैवकुलटासास्यादेषएवविनिश्चयः ॥ २२ ॥ स्निग्धाःसमुन्नतास्ताम्राद्वृत्ताःपादनखाःशुभाः ॥ २३ ॥ राज्ञीत्वसूचकंस्त्रीणांपादपृष्ठंसमुन्नतम् ॥ अस्वेदमशिराढ्यञ्चमसृणंमृदुमांसलम् ॥ २४ ॥ दरिद्रामध्यनम्रेणशिरालेनसदाध्वगा ॥ रोमाढ्येनभवेद्दासीनिर्मांसेनचदुर्भगा ॥ २५ ॥ गूढौगुल्फौशिवायोक्तावशिरालौसुवर्तुलौ ॥ स्थपुटौशिथिलौदृश्यौस्यातान्दौर्भाग्यसूचकौ ॥ २६ ॥ समपार्ष्णिःशुभानारीपृथुपार्ष्णिश्चदुर्भगा ॥ कुलटोन्नतपार्ष्णिःस्याद्दीर्घपार्ष्णिश्चदुःखभाक् ॥ २७ ॥ रोमहीनेसमेस्निग्धेयज्जङ्घेक्रमवर्त्तुले ॥ साराजपत्नीभवतिविशिरेसुमनोहरे ॥ २८ ॥ एकरोमाराजपत्नीद्विरोमाचसुखावहा ॥ त्रिरोमारोमकूपेषुभवेद्वैधव्यदुःखभाक् ॥ २९ ॥ वृत्तंपिशितसंलग्नंजानुयुग्मम्प्रशस्यते ॥ नि

सुगोल और मांससे मूँदे गुल्फ याने पावों के घुट्ठना कल्याण के लिये कहेगये हैं और जो नीचे व शिथिल व उघड़े देख पड़तेहों तो दुर्भाग्य को जनाते हैं ॥ २६ ॥ जिसकी एड़ी समानहो वह स्त्री शुभहै व मोटी एड़ीवाली दुर्भगा होतीहै व ऊंची एड़ीवाली कुलटा होतीहै और जिसकी एड़ी दीर्घहो वह स्त्री दुःख सेवनेवाली होतीहै ॥ २७ ॥ व जिसके मुरवा मनोहर समान चढ़ा उतार व रोमरहित व नसोंसेहीन और क्रमसे सुगोल होवें वह रानी होती है ॥ २८ ॥ व जिसके रोमकूपों में एक रोमहो वह भी रानी होती है व दो रोमवाली स्त्री सुखके प्राप्त करनेहारी होतीहै और तीन रोमवाली स्त्री विधवा और दुःखिनी होतीहै ॥ २९ ॥ व गोली और मांससे मूँदी दोनों

पावोंकी गांठें प्रशंसी जाती हैं व स्वैरिणी की मांसहीन और दरिद्रिणी स्त्रीकी गांठें शिथिल होतीहैं ॥ ३० ॥ करभ (मणिबन्धसे कनिष्ठा अंगुलीतक) के आकार व नसोंसे हीन सचिक्कण सघन व रोमरहित और गोली ऊरुओं से स्त्रियां रानी होती हैं ॥ ३१ ॥ व रोमभरी ऊरुओं से वैधव्य व चिपिटियों से दौर्भाग्य व जिनके बीचमें नसेंहों या बिलहों उनसे महादुःख है और कठिन चर्मवाली ऊरुओसे दरिद्रता कही गई है ॥ ३२ ॥ चौबीरा अंगुलकी चौकोन व ऊंचे नितम्ब बिम्बसे समेत स्त्रियों की कटि प्रशस्त होती है ॥ ३३ ॥ व चिपिटी लम्बी मांसहीन व कठिन और ह्रस्व (छोटे) रोमों से संयुत कटि स्त्रीके वैधव्य व दुःखकी सूचन करनेवाली है ॥ ३४ ॥

मांसंस्वैरचारिण्यादरिद्रायाश्चविश्लथम् ॥ ३० ॥ विशिरैःकरभाकारैरूरुभिर्मसृणैर्घनैः ॥ सुवृत्तैरोमरहितैर्भवेयुर्भूपवल्लभाः ॥ ३१ ॥ वैधव्यंरोमशैरुक्तंदौर्भाग्यञ्चिपिटैरपि ॥ मध्यच्छिद्रैर्महादुःखंदारिद्र्यंकठिनत्वचैः ॥ ३२ ॥ चतुर्भिरंगुलैःशस्ताकटिर्विंशतिसंयुतैः ॥ समुन्नतनितम्बाढ्याचतुरस्रामृगीदृशाम् ॥ ३३ ॥ विनताचिपिटादीर्घानिर्मांसासङ्कटाकटिः ॥ ह्रस्वारोमयुतानार्यादुःखवैधव्यसूचिका ॥ ३४ ॥ नितम्बविम्बोनारीणामुन्नतोमांसलःपृथुः ॥ महाभोगायसम्प्रोक्तस्तदन्योऽशर्मणेमतः ॥ ३५ ॥ कपित्थफलवद्वृत्तौमृदुलौमांसलौघनौ ॥ स्फिचौबलिविनिर्मुक्तौरतिसौख्यविवर्धनौ ॥ ३६ ॥ शुभःकमठपृष्ठाभोगजस्कन्धोपमोभगः ॥ वामोन्नतस्तुकन्याजःपुत्रजोदक्षिणोन्नतः ॥ ३७ ॥ आखुरोमागूढमणिःसुश्लिष्टःसंहतःपृथुः ॥ तुङ्गःकमलपर्णाभःशुभोऽश्वत्थदलाकृतिः ॥ ३८ ॥ कुरङ्गखुररूपोयश्चुल्लिकोदरसन्निभः ॥

ऊंचा व मांसल और विस्तारयुक्त स्त्रियों का नितम्बबिम्ब भारी भोगों के लिये कहा गया है और उससे उलटाहुवा दुःख के लिये मानाजाता है ॥ ३५ ॥ व कैथाके फलके समान गोल कोमल व मांसयुक्त सघन व विना बलिके स्फिक् याने कूल रतिसौख्य के बढ़ानेवाले होतेहैं ॥ ३६ ॥ जोकि स्त्रियों की योनि कछुवे की पीठ की नाईं निबिड़ व हाथी के माथे के कुम्भ के समान उन्नत होवे वह शुभ है और जो वाम ओर को ऊंची होती है वह कन्या उपजानेवाली है व जो दक्षिण को उन्नत होवे वह पुत्रको उपजाती है ॥ ३७ ॥ व मूशके रो रोमों से संयुत गुप्तमध्यभागवाली अच्छी भांति से सघन व दृढ़ विस्तार युक्त उन्नत व कमल

दलके समान और पीपल पत्रके आकारवाली योनि शुभ होती है ॥ ३८ ॥ और जोकि हरिणके खुरके समान व चूल्हे के उदर के आकार व रोमों से भरी पुरी व उघड़े मुखवाली व दृश्यनासा (जिसका छिद्रयुक्त मध्यदेश देख पड़ताहो) है वह अत्यन्त निन्दित या दुर्भाग्य का कारणहै ॥ ३९ ॥ जिस स्त्री की योनि शंख के समान आवर्तवाली या तीन रेखादिकों से अङ्कित होती है वह इसमें गर्भ की इच्छा नहीं करती है और चिपिटी व फूटे घड़े की खपड़ी के आकार बनी हुई योनि दासी पद के देनेवाली है ॥ ४० ॥ वैसेही बांस व बेंतकी पाती के समान व हाथी के से ऊंचे रोमों से संयुत विकट व वक्राकार और लम्बे गलवाली योनि अशुभ होती

रोमशोविवृतास्यश्चदृश्यनासोतिदुर्भगः ॥ ३९ ॥ शङ्खावर्तोभगोयस्याःसागर्भमिहनेच्छति ॥ चिपिटःखर्परशाकारः किङ्करीपददोभगः ॥ ४० ॥ वंशवेतसपत्राभोगजरोमोच्चनासिकः ॥ विकटःकुटिलाकारोलम्बगल्लस्तथाऽशुभः ॥ ४१ ॥ भगस्यभालञ्जघनंविस्तीर्णन्तुङ्गमांसलम् ॥ मृदुलंमृदुलोमाढ्यंदक्षिणावर्तमीडितम् ॥ ४२ ॥ वामावर्तञ्चनिर्मांसंभुग्नंवैधव्यसूचकम् ॥ सङ्कटस्थपुटंरूक्षंजघनन्दुःखदंसदा ॥ ४३ ॥ वस्तिःप्रशस्ताविपुलामृद्वीस्तोकसमुन्नता ॥ रोमशाचशिरालाचरेखाङ्कानैवशोभना ॥ ४४ ॥ गम्भीरादक्षिणावर्तानाभीस्यात्सुखसम्पदे ॥ वामावर्तासमुत्ताना व्यक्तग्रन्थिर्नशोभना ॥ ४५ ॥ सूतेसुतान्बहून्नारीपृथुकुक्षिःसुखास्पदम् ॥ क्षितीशञ्जनयेत्पुत्रंमण्डूकाभेनकुक्षिणा ॥ ४६ ॥ उन्नतेनबलीभाजासावर्तेनापिकुक्षिणा ॥ बन्ध्याप्रव्रजितादासीक्रमाद्योषाभवेदिह ॥ ४७ ॥ समैःसमांसैर्मृदुभिर्योषिन्म

है ॥ ४१ ॥ जोकि भगका भाल याने योनि का ऊपर भाग जघन कहाता है वह विस्तारयुक्त, उन्नत, मसीला, मृदुल और दक्षिणावर्त कोमल रोमोंसे संयुत होवे वह प्रशंसितहै ॥ ४२ ॥ व वाम ओर को घूमी हुई रेखाओं या रोमों से व्याप्त, मांसहीन कुटिल जघन वैधव्यका सूचक होताहै और सिकुड़ा नीचा व रूखा हुवा वह सदैव दुःख देनेवाला है ॥ ४३ ॥ कुछेक ऊंची विस्तार युक्त व कोमल वस्ति (कटिका नीचा भाग) प्रशस्त होती है व नाड़ी रोम और रेखाओं से अङ्कित हुई वह अशुभहै ॥ ४४ ॥ गम्भीर व दक्षिणावर्त घूमी हुई नाभी सुख और सम्पत्ति के लिये होवे है व वामावर्त घूमी रोमपङ्क्तिवाली ऊंची और प्रकट मध्यभागवाली भी शुभ नहीं है ॥ ४५ ॥ विस्तीर्ण कोखवाली स्त्री बहुते पुत्रों को उत्पन्न करती है व मेढ़क के उदर के समान कोखसे सुखके स्थानरूप राजा पुत्रको उपजावे है ॥ ४६ ॥ व इस लोकमें

स्त्री क्रम से ऊंची कोखसे बांझ बलीवाली से संन्यासिनी और आवर्त सहित कोखसे दासी होवे या होती है ॥ ४७ ॥ व मांससंयुत, समान, शुभ, कोमल और मूंदे हाड़ वाले पार्श्वों से स्त्री सौभाग्य व सुखकी निधि होवे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४८ ॥ जिस स्त्री के पार्श्वभाग नाड़ी याने नसों से संयुत प्रकट होवें व उन्नत और रोमराजी से युक्त होवें वह पुत्रादिको से हीन व दुःशीला और दुःखकी निधि होवे ॥ ४९ ॥ व नाड़ीरहित, कोमल चर्मवाले, बहुत छोटे उदरसे स्त्री सदैव भोगवती और मिष्टान्नसेविनी होती है ॥ ५० ॥ व दरिद्रिणी स्त्रीका उदर घड़े के आकार, मृदंगके समान, कुम्हड़ाके तुल्यहै और यवके समान बनाहुवा उदर दुष्पूर होताहै ॥ ५१ ॥

ग्नास्थिभिःशुभैः ॥ पार्श्वैःसौभाग्यसुखयोर्निधानंस्यादसंशयम् ॥ ४८ ॥ यस्यादृश्यशिरेपार्श्वेउन्नतेरोमसंयुते ॥ निरपत्याचदुःशीलासाभवेद्दुःखशेवधिः ॥ ४९ ॥ उदरेणातितुच्छेनाविशिरेणमृदुत्वचा ॥ योषिद्भवतिभोगाढ्यानित्यंमिष्टान्नसेविनी ॥ ५० ॥ कुम्भाकारन्दरिद्रायाजठरञ्चमृदङ्गवत् ॥ कूष्माण्डाभंयवाभञ्चदुष्पूरञ्जायतेस्त्रियाः ॥ ५१ ॥ सुविशालोदरीनारीनिरपत्याचदुर्भगा ॥ प्रलम्बजठराहन्तिश्वशुरञ्चापिदेवरम् ॥ ५२ ॥ मध्यक्षामाचसुभगाभोगाढ्यासबलित्रया ॥ ऋज्वीतन्वीचरोमालीयस्याःसाशर्मनर्मभूः ॥ ५३ ॥ कपिलाकुटिलास्थूलाविच्छिन्नारोमराजिका ॥ चौरवैधव्यदौर्भाग्यंविदध्यादिहयोषिताम् ॥ ५४ ॥ निर्लोमहृदयंयस्याःसमंनिम्नत्ववर्जितम् ॥ ऐश्वर्यञ्चाप्यवैधव्यंप्रियप्रेमचसालभेत् ॥ ५५ ॥ विस्तीर्णहृदयायोषापुंश्चलीनिर्दयातथा ॥ उद्भिन्नरोमहृदयापतिंहन्तिविनिश्चितम् ॥ ५६ ॥ अष्टा

बहुत विस्तारयुक्त उदरवाली स्त्री अपत्यों (लड़कों) से हीन व दुर्भगा होतीहै व लम्बे उदरवाली स्त्री श्वशुर और देवरको भी मारडालती है ॥ ५२ ॥ व पतले मध्यभागवाली स्त्री सुभगा होतीहै व तोंदीके समीप त्रिवलीवाली स्त्री भोगोंसे संयुत होतीहै व जिसकी रोमपंक्ति सीधी सूक्ष्म और लम्बी होवे वह सुख व क्रीड़ाका स्थान होती है ॥ ५३ ॥ कपिलरंग, कुटिल, स्थूल और बीचमें छिन्न भिन्न हुई स्त्रियोंकी रोमपंक्ति इस लोकमें चोरी वैधव्य और दौर्भाग्यको करती है ॥ ५४ ॥ जिस स्त्रीका हृदय रोमरहित, बराबर व गहरा नहीं है वह ऐश्वर्य्य, अवैधव्य और पतिके प्रेमको भी पातीहै ॥ ५५ ॥ व विस्तारयुक्त हृदयवाली स्त्री पुंश्चली तथा निर्दया होती है और जिसके

हृदयमें रोमराजी जमी होवे वह स्त्री निश्चयकरके पतिको मारडालती है ॥ ५६ ॥ व अठारह अंगुलका चौड़ा सघन समुन्नत वक्षःस्थल सुखके लिये होताहै और बहुत विरतारवाला रोमों से संयुत व कुटिल उर दुःखके लिये होताहै ॥ ५७ ॥ गोलाकार व सघन व समान व मोटे व कड़े कुच प्रशस्त हैं व स्थूल अग्रवाले बीरल और सूखे हुये कुच स्त्रियों के सुखदाता नहीं हैं ॥ ५८ ॥ जिस स्त्रीको दक्षिण ओरका कुच उन्नत होताहै वह पुत्रवती और श्रेष्ठ मानी जाती है व वामोन्नत कुचवाली स्त्री सौभाग्य संयुत सुन्दरी कन्याको उत्पन्न करती है ॥ ५९ ॥ व रहँटके बीचवाली घटीके समान कुच दुष्टशीलताके सूचक होते हैं व मोटे मुखवाले अन्तरसमेत और अन्तके समीप

दशांगुलततमुरःपीवरमुन्नतम् ॥ सुखायदुःखायभवेद्रोमशंविषमंपृथु ॥५७॥ घनौवृत्तौदृढौपीनौसमौशस्तौपयोधरौ ॥ स्थूलाग्रौविरलौशुष्कौवामोरूणांनशर्मदौ ॥ ५८ ॥ दक्षिणोन्नतवक्षोजापुत्रिणीत्वग्रणीर्मता ॥ वामोन्नतकुचासूतेकन्यांसौभाग्यसुन्दरीम् ॥ ५९ ॥ अरघट्टघटीतुल्यौकुचौदौःशील्यसूचकौ ॥ पीवरास्यौसान्तरालौपृथूपान्तौनशोभनौ ॥ ६० ॥ मूलेस्थूलौक्रमकृशावग्रेतीक्ष्णौपयोधरौ ॥ सुखदौपूर्वकालेतुपश्चादत्यन्तदुःखदौ ॥ ६१ ॥ सुदृढंचूचुकयुगंशस्तंश्यामंसुवर्तुलम् ॥ अन्तर्मग्नञ्चदीर्घञ्चकृशंक्लेशायजायते ॥ ६२ ॥ पीवराभ्याञ्चजत्रुभ्यांधनधान्यनिधिर्वधूः ॥ श्लथास्थिभ्याञ्चनिम्नाभ्यांविषमाभ्यान्दरिद्रिणी ॥ ६३ ॥ अबद्धावनतौस्कन्धावदीर्घावकृशौशुभौ ॥ वक्रौस्थूलौचरोमाढ्यौप्रेष्यवैधव्यसूचकौ ॥ ६४ ॥ निगूढसन्धीस्रस्ताग्रौशुभावंसौसुसंहतौ ॥ वैधव्यदौसमुच्चाग्रौनिर्मांसावतिदुःख

में विरतारयुक्त कुच शुभ नहीं हैं ॥ ६० ॥ मूलमें स्थूल व क्रमसे कृश (पतले) और अग्रभाग में तीक्ष्णतासंयुत कुच पूर्वकालमें सुखदाता होते हैं व उसके बाद अधिक दुःखदायक हैं ॥ ६१ ॥ व सुदृढ़ सुगोल और काले रंगवाले दोनों चूचुक (कुचों के अग्रभाग) शुभहैं व भीतर डूबेहुये लम्बे और कृशतायुक्त चूचुकयुगल क्लेशके लिये होताहै ॥ ६२ ॥ मोटी हासियों से स्त्री धन व धान्यकी निधिहै और पसरे हाड़वाली खाली व विषम जत्रुवों से दरिद्रिणी होतीहै ॥ ६३ ॥ व विना बँधेहुये दीर्घताहीन, मांसयुक्त स्कन्ध शुभ हैं व कुटिल स्थूल और रोमों से भरेहुये वे दास्य व वैधव्यके सूचक हैं ॥ ६४ ॥ मूंदे जोड़वाले व नयेहुये अग्रभागवाले व बहुत दृढ़ अंस

शुभ होतेहैं और उन्नताग्रवाले वैधव्यके दायक होते हैं व मांससे हीनहुये वे बहुत दुःख देनेवाले होते हैं ॥ ६५ ॥ व बहुत सूक्ष्म रोमवाली ऊंची मसीली सचिक्कण कांखें शुभ होती हैं व गहरी, नसवाली और स्वेद (पसीना) से चीकनहुई वे शुभ नहीं हैं ॥ ६६ ॥ मूँदेहुये हाड़ों की गांठोंवाली, कोमल, सरल, रोमरहित और नसों से हीन स्त्रियों की बाहैं निर्दोषहैं ॥ ६७ ॥ व स्थूल रोमवाली बाहैं वैधव्यको सूचित करती हैं व छोटी बाहैं दौर्भाग्य के सूचनेवाली होती हैं और प्रकट नसवाली बाहैं स्त्रियों के क्लेश के लिये कही गई हैं ॥ ६८ ॥ कमलकी अधफूली कलीके समान आकारवाला व अंगुठा अंगुलियों और अच्छे मुखसे युक्त हाथोंका जोड़ा स्त्रियोंके बहुते भोगोंके

दौ ॥ ६५ ॥ कक्षेसुसूक्ष्मरोमेतुतुङ्गेस्निग्धेचमांसले ॥ शस्तेनशस्तेगम्भीरेशिरालेस्वेदमेदुरे ॥ ६६ ॥ स्यातांदोषौसुनिर्दोषौगूढास्थिग्रन्थिकोमलौ ॥ विशिरौचविरोमाणौसरलौहरिणीदृशाम् ॥ ६७ ॥ वैधव्यंस्थूलरोमाणौह्रस्वौदौर्भाग्यसूचकौ ॥ परिक्लेशायनारीणांपरिदृश्यशिरौभुजौ ॥ ६८ ॥ अम्भोजमुकुलाकारमंगुष्ठांगुलिसम्मुखम् ॥ हस्तद्वयंमृगाक्षीणांबहुभोगायजायते ॥ ६९ ॥ मृदुमध्योन्नतंरक्तंतलंपाण्योररन्ध्रकम् ॥ प्रशस्तंशस्तरेखाढ्यमल्परेखंशुभश्रियम् ॥ ७० ॥ विधवाबहुरेखेणविरेखेणदरिद्रिणी ॥ भिक्षुकीसुशिराढ्येननारीकरतलेनवै ॥ ७१ ॥ विरोमविशिरंशस्तंपाणिपृष्ठंसमुन्नतम् ॥ वैधव्यहेतुरोमाढ्यंनिर्मांसंस्नायुमत्त्यजेत् ॥ ७२ ॥ रक्ताव्यक्तागभीराचस्निग्धापूर्णाचवर्तुला ॥ कररेखाङ्गनायाःस्याच्छुभाभाग्यानुसारतः ॥ ७३ ॥ मत्स्येनसुभगानारीस्वस्तिकेनवसुप्रदा ॥ पद्मेनभूपतेःपत्नीजनयेद्भूपतिंसुत

लिये होताहै ॥ ६९ ॥ कोमल, मध्योन्नत, रक्तरंगसहित व छिद्ररहित अच्छी रेखावाला व थोड़ी रेखाओं से संयुत शुभ शोभावान् हाथोका तल प्रशस्त होताहै ॥ ७० ॥ बहुत रेखावाले करतलसे स्त्री विधवा होती है व रेखाहीन से दरिद्रिणी और नस भरेहुये करतल से भी भिक्षुकी होती है ॥ ७१ ॥ रोमरहित व नसहीन जो हाथों का पृष्ठहै वह शुभ होताहै व रोमों से भराहुवा वैधव्यका कारणहै व निर्मांस और नसवाले करपृष्ठको त्यागदेवे ॥ ७२ ॥ व लाली प्रकट, गहरी सचिक्कण पूरी और गोली हाथोंकी रेखा स्त्रियोंकी भाग्यके अनुसारसे शुभ होतीहै ॥ ७३ ॥ और स्त्री मीनरेखा से सुभगा होती है व स्वस्तिक से धन देनेवाली है व कमलरेखासे रानी होती है व

भूपति पुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ७४ ॥ चक्रवर्ती राजाकी स्त्री के हाथमें दक्षिणावर्त्त स्वस्तिक रेखा व शंख, छत्र और कछुवे के समान रेखायें नृपके माताभावको सूचन करती हैं ॥ ७५ ॥ व तुलामानके आकार रेखायें वणिक्पत्नीत्व याने बनियाकी स्त्री होने में कारणहैं व स्त्रियोंके बायें हाथमें हाथी घोड़ा और बैलके आकार ॥ ७६ ॥ व प्रासाद (महल) और वज्रके समान रेखायें उसके पुत्रको तीर्थ करनेवाला कहती हैं अथवा दो शकट (गाड़ी) रेखाओंसे किसानकी स्त्री होतीहै ॥ ७७ ॥ यह निश्चयहै कि चँवर अंकुश और धन्वासे राजाकी स्त्री होवेहै व अंगुष्ठमूलसे निकलकर रेखा कनिष्ठा अंगुलीको जावे ॥ ७८ ॥ जो ऐसा होवे तो सुबुद्धिमान् उस स्त्रीको दूरसे त्यागदेवे क्योंकि

म् ॥ ७४ ॥ चक्रवर्तिस्त्रियाःपाणौनन्द्यावर्तःप्रदक्षिणः ॥ शङ्खातपत्रकमठान्नृपमातृत्वसूचकाः ॥ ७५ ॥ तुलामानाकृतीरेखेवणिक्पत्नीत्वहेतुके ॥ गजवाजिवृषाकाराःकरेवामेमृगीदृशाम् ॥ ७६ ॥ रेखाःप्रासादवज्राभाब्रूयुस्तीर्थकरंसुतम् ॥ कृषीवलस्यपत्नीस्याच्छकटेनयुगेनवा ॥ ७७ ॥ चामरांकुशकोदण्डैराजपत्नीभवेद्ध्रुवम् ॥ अंगुष्ठमूलान्निर्गत्यरेखायातिकनिष्ठिकाम् ॥ ७८ ॥ यदिसापतिहन्त्रीस्याद्दूरतस्तान्त्यजेत्सुधीः ॥ त्रिशूलासिगदाशक्तिदुन्दुभ्याकृतिरेखया ॥ नितम्बिनीकीर्तिमतीत्यागेनपृथिवीतले ॥ ७९ ॥ कङ्कजम्बूकमण्डूकवृकवृश्चिकभोगिनः ॥ रासभोष्ट्रबिडालाःस्युःकरस्थादुःखदाःस्त्रियाः ॥ ८० ॥ शुभदःसरलोंगुष्ठोवृत्तोवृत्तनखोमृदुः ॥ ८१ ॥ अंगुल्यश्चसुपर्वाणोदीर्घावृत्ताःक्रमात्कृशाः ॥ चिपिटाःस्थपुटारूक्षाःपृष्ठरोमयुजोऽशुभाः ॥ ८२ ॥ अतिह्रस्वाःकृशावक्राविरलारोगहेतुकाः ॥ दुखायांगुलयःस्त्रीणांबहुपर्वसमन्विताः ॥ ८३ ॥ अरुणाःसशिखास्तुङ्गाःकरजाःसुदृशांशुभाः ॥ निम्नाविवर्णाःशुक्त्याभाःपीतादारिद्र्य

वह पतिके मारनेवाली होवे है व त्रिशूल, तलवार, गदा, शक्ति और दुन्दुभि (नगरिया) के आकारवाली रेखासे स्त्री दानके द्वारा पृथिवीतल में कीर्तिवाली होती है ॥ ७९ ॥ व स्त्री के हाथमें टिकेहुये कंक (चील्हभेद) स्यार, मेढुक, भेड़िया, वृश्चिक, सर्प्प, गधा, ऊंट और बिलार दुःखदायक होतेहैं ॥ ८० ॥ व गोले नखवाला सरल सुगोल कोमल अंगुठा शुभहै ॥ ८१ ॥ व क्रमसे छोटी या पतली लम्बी गोली और अच्छी गांठोंवाली अंगुलियां शुभहोतीहैं व चिपिटी खाली रूखी व पीछे रोमवाली अशुभहैं ॥ ८२ ॥ व बहुत छोटी, पतली, कुटिल, बिरली अंगुलियां रोगका कारण हैं और विस्तारयुक्त पर्ववाली अंगुलियां स्त्री के दुःखके लिये होती हैं ॥ ८३ ॥ शिखासमेत, उन्नत, लाले

रंगवाले स्त्रियोंके नख शुभहोते हैं व खाली, विवर्ण, सूती के समान श्वेत और पीतरंगवाले नख दारिद्र्यके दायकहैं ॥ ८४ ॥ व बहुधा पुंश्चली स्त्री के नखोंमें उजले बिन्दु होतेहैं और पुरुषभी श्वेत पुष्पके समान नखोंसे दुःखित होते हैं ॥ ८५ ॥ व भीतर निमग्नहै बांसके आकार बीचकी हड्डी जिसमें वह मांसयुक्त पीठ शुभहै और रोमसंयुत पीठसे स्त्री निश्चय वैधव्यको पाती है ॥ ८६ ॥ कुटिल व विशेष नईहुई व नाड़ी (नस)युक्त पीठसे स्त्री दुःखितहोती है मांससमेत व ऊंची और समान सीधी घांटी श्रेष्ठहै ॥८७॥ व नससंयुत, सूखी रोमों से भरी चौंड़ी और टेढ़ी कृकाटिका (घांटी) अशुभहोती है और मांसल व गोलाकार चार अंगुलका कण्ठ प्रशस्तहोताहै ॥ ८८ ॥ तीन रेखाओंसे

दायकाः ॥ ८४ ॥ नखेषुबिन्दवःश्वेताःप्रायःस्युःस्वैरिणीस्त्रियाः ॥ पुरुषाअपिजायन्तेदुःखिनःपुष्पितैर्नखैः ॥ ८५ ॥ अन्तर्निमग्नवंशास्थिःपृष्ठिःस्यान्मांसलाशुभा ॥ पृष्ठेनरोमयुक्तेनवैधव्यंलभतेध्रुवम् ॥ ८६ ॥ भुग्नेनविनतेनापिसशिरेणापिदुःखिता ॥ ऋज्वीकृकाटिकाश्रेष्ठासमांसाचसमुन्नता ॥ ८७ ॥ शुष्काशिरालारोमाढ्याविशालाकुटिलाशुभा ॥ मांसलोवर्तुलःकण्ठःप्रशस्तश्चतुरंगुलः ॥ ८८ ॥ शस्ताग्रीवात्रिरेखाङ्कात्वव्यक्तास्थिःसुसंहता ॥ निर्मांसाचिपिटादीर्घास्थपुटानशुभप्रदा ॥८९॥ स्थूलग्रीवाचविधवावक्रग्रीवाचकिङ्करी ॥ वन्ध्याहिचिपिटग्रीवाह्रस्वग्रीवाचनिःसुता ॥ ९० ॥ चिबुकंद्व्यंगुलंशस्तंवृत्तंपीनंसुकोमलम् ॥ स्थूलंद्विधासंविभक्तमायतंरोमशन्त्यजेत् ॥ ९१ ॥ हनुश्चिबुकसंलग्नानिर्लोमासुघनाशुभा ॥ वक्रास्थूलाकृशाह्रस्वारोमशानशुभप्रदा ॥ ९२ ॥ शस्तौकपोलौवामाक्ष्याःपीनौवृत्तौसमुन्नतौ ॥ रोमशौपरुषौनिम्नौनिर्मांसौपरिवर्जयेत ॥ ९३ ॥ समंसमांसंसुस्निग्धंस्वामोदंवर्तुलम्मुखम् ॥ जनेतृवदनच्छायन्धन्याना

युक्त, मूंदेहुये हाड़वाली व मांससे भरी सुदृढ़ ग्रीवा शुभहै व मांसहीन चिपटी लम्बी व खालीहुई ग्रीवा शुभ देनेवाली नहीं है ॥ ८९ ॥ स्थूलग्रीवावाली स्त्री विधवा कुटिल-ग्रीवा दासी चिपिटग्रीवा बन्ध्या और ह्रस्वग्रीवा स्त्री पुत्रोंसे हीन होती है ॥९०॥ गोल, कोमल व मोटी दो अंगुलकी दाढ़ी शुभहै व बहुत स्थूल व दो भागसे बिलग बँटीहुई रोमयुक्त व चौंडी चिबुक को त्यागदेवे ॥ ९१ ॥ और चिवुक में संलग्नहुई रोमहीन सघन हनु शुभ होती है व कुटिल मोटी पतली छोटी और रोमवाली हनु शुभप्रदा नहीं है ॥ ९२ ॥ स्त्रीके मोटे, समुन्नत व गोल कपोल प्रशस्तहैं व रोमयुक्त, कठोर गहरे और मांसहीन कपोलोंको सबओरसे बरादेवे ॥ ९३ ॥ इसलोकमें धन्य लोगोंका मुख

है व सचिक्कण, कोकनदके समान सुरंगवाला और कोमल तालु प्रशस्त होताहै ॥ ३ ॥ उजले तालुसे वैधव्य व पीले से संन्यासिनी व कालेसे पुत्रादि वियोगसे पीड़ित और रूखे से बहुत कुटुम्बवाली होवे है ॥ ४ ॥ व कण्ठ में स्थूल सुगोल व क्रमसे सूक्ष्म व लोहित रंगवाली और लम्बाई से हीन घण्टी शुभहै व स्थूल और काले रंगवाली दुःखदाहै ॥ ५ ॥ जिसमें दांत न देखपड़ें व कुछेक कपोल गोल फूल उठें और आंखें न मूंदें वह सुनयनियों का हँसना प्रशस्तहै ॥ ६ ॥ समान संचार मार्गवाली छोटे छिद्रों से युक्त नासिका शुभके प्राप्त करनेहारी होती है व आगे स्थूल बीचमें विनम्र और समुन्नत नासिका प्रशस्त नहीं है ॥ ७ ॥ संकुचित व अग्रभाग में लाले रंगवाली

भाक्॥ स्निग्धंकोकनदाभासंप्रशस्तंतालुकोमलम् ॥ ३ ॥ सितेतालुनिवैधव्यंपीतेप्रव्रजिताभवेत् ॥ कृष्णेऽपत्यवियोगार्तारूक्षेभूरिकुटुम्बिनी ॥ ४ ॥ कण्ठेस्थूलासुवृत्ताचक्रमतीक्ष्णासुलोहिता ॥ अप्रलम्बाशुभाघण्टीस्थूलाकृष्णाचदुःखदा ॥ ५ ॥ अलक्षितद्विजंकिञ्चित्किञ्चित्फुल्लकपोलकम् ॥ स्मितंप्रशस्तंसुदृशामनिमीलितलोचनम् ॥ ६ ॥ समवृत्तपुटानासालघुच्छिद्राशुभावहा ॥ स्थूलाग्रामध्यनम्राचनप्रशस्तासमुन्नता ॥ ७ ॥ आकुञ्चितारुणाग्राचवैधव्यक्लेशदायिनी ॥ परप्रेष्याचचिपिटाह्रस्वादीर्घाकलिप्रिया ॥ ८ ॥ दीर्घायुःकृत्क्षुतन्दीर्घंयुगपद्द्वित्रिपिण्डितम् ॥ ललनालोचनेशस्तेरक्तान्तेकृष्णतारके ॥ ९ ॥ गोक्षीरवर्णविशदेसुस्निग्धेकृष्णपक्ष्मणी ॥ उन्नताक्षीनदीर्घायुर्वृत्ताक्षीकुलटाभवेत् ॥ १० ॥ मेषाक्षीमहिषाक्षीचकेकराक्षीनशोभना ॥ कामगृहीलानितरांगोपिङ्गाक्षीसुदुर्वृता ॥ ११ ॥ पारावताक्षीदुः

नासिका वैधव्यदायिनी है व चिपटी हुई नासिका पराई दासी होती है याने उस स्त्री को दासी करदेतीहै व छोटी और लम्बी नासिका कलिप्रियाहै ॥ ८ ॥ एक साथही दो तीनबार क्षुत (छींकना) दीर्घायुका कर्ता है व लाले अन्तवाले और श्याम तारों से संयुत स्त्री के नेत्र शुभ होते हैं ॥ ९ ॥ व गोदुग्धके समान श्वेत और काली पलकों वाली आंखें अच्छी होतीहैं व उन्नत आंखोंवाली स्त्री दीर्घायु नहीं होती है और गोली आंखोंवाली स्त्री पुंश्चली होवेहै ॥ १० ॥ व मेषाक्षी महिषाक्षी और चिपिटाक्षी स्त्री शुभ नहीं है व गऊके समान पिंगाक्षी स्त्री बहुतही कामकी चाहिनी और अच्छे दुर्जनोंसे घिरीहुई होतीहै ॥ ११ ॥ व कपोतके समान आंखोंवाली स्त्री कुशीला होती है व लाली

मांससमेत, समान, सचिक्कण, सुगन्धसंयुत, सुगोल और माता व पिताके मुख की छायावाला होताहै ॥ ९४ ॥ पाटल फूलके समान रंगसंयुत व मध्यदेश में रेखाओं से भूषित व सुगोल स्त्रियोंका अधर राजाका प्यारा होताहै ॥ ९५ ॥ व पतला, लम्बा, स्फुटित और रूखाहुवा वह दौर्भाग्यका सूचकहै व स्थूल और कपिशवर्ण नीचेका ओठ वैधव्य और कलहके देनेवालाहै ॥ ९६ ॥ बीचमें कुछेक उन्नत, सचिक्कण व रोमरहित स्त्रीका उत्तरोष्ठ (ऊपरका ओठ) सुभोगों का दाता होताहै और उससे उलटाहुवा विरुद्ध फल करनेवालाहै ॥ ९७ ॥ और नीचे व ऊंचे बराबर, कुछेक ऊंचे, सचिक्कण दूधके समान श्वेतवर्ण बत्तिस दांत शुभ होतेहैं ॥ ९८ ॥ व पीले, कबीले,

मिहजायते ॥ ९४ ॥ पाटलोवर्तुलःस्निग्धोलेखाभूषितमध्यभूः ॥ सीमन्तिनीनामधरोधराजानिप्रियोभवेत् ॥ ९५ ॥ कृशःप्रलम्बःस्फुटितोरूक्षोदौर्भाग्यसूचकः ॥ श्यावःस्थूलोऽधरोष्ठःस्याद्वैधव्यकलहप्रदः ॥ ९६ ॥ मसृणोमतकाशिन्याश्चोत्तरोष्ठःसुभोगदः ॥ किञ्चिन्मध्योन्नतोऽरोमाविपरीतोविरुद्धकृत् ॥ ९७ ॥ गोक्षीरसन्निभाःस्निग्धाद्वात्रिंशद्दशनाःशुभाः ॥ अधस्तादुपरिष्टाच्चसमाःस्तोकसमुन्नताः ॥ ९८ ॥ पीताःश्यावाश्चदशनाःस्थूलादीर्घाद्विपङ्क्तयः ॥ शुक्त्याकाराश्चविरलादुःखदौर्भाग्यकारणम् ॥ ९९ ॥ अधस्तादधिकैर्दन्तैर्मातरंभक्षयेत्स्फुटम् ॥ पतिहीनाचविकटैःकुलटाविरलैर्भवेत् ॥ १०० ॥ जिह्वेष्टमिष्टभोक्त्रीस्याच्छोणामृद्वीतथासिता ॥ दुःखायमध्यसङ्कीर्णापुरोभागसविस्तरा ॥ १ ॥ सितयातोयमरणंश्यामयाकलहप्रिया ॥ दरिद्रिणीमांसलयालम्बयाऽभक्ष्यभक्षिणी ॥ २ ॥ विशालयारसनयाप्रमदातिप्रमाद

स्थूल, दीर्घ व दो पंक्तिवाले व सूती के आकार बिरले दन्त दुःख और दौर्भाग्य का कारणहैं ॥ ९९ ॥ यह स्पष्ट है कि, नीचेकी पंक्तिमें अधिक दांतों से कन्या माताका भक्षण करलेती है व विकट दांतों से विधवा और बिरलों से कुलटा होती है ॥ १०० ॥ व कुछेक लाले रंगवाली कोमल जीभ प्यारी मनमानी मिष्ट चीजों की भोगनेहारी होतीहै वैसेही आगे विस्तारयुक्त व बीचमें संकीर्ण और काली या उजली जीभ दुःखके लिये होतीहै ॥ १ ॥ उजली जीभसे जलमें डूबकर मरना होताहै व काली से स्त्री कलहको प्यार करती है व मांसल जीभसे दरिद्रिणी होती है और लम्बी से अभक्ष्य भोजन खानेवाली होतीहै ॥ २ ॥ व चौंड़ी जीभसे स्त्री बड़े प्रमादके सेवनेवाली होती

शीलारक्ताक्षीभर्तृघातिनी ॥ कोटरानयनादुष्टागजनेत्रानशोभना ॥ १२ ॥ पुंश्चलीवामकाणाक्षीबन्ध्यादक्षिणकाणिका ॥ मधुपिङ्गाक्षीरमणीधनधान्यसमृद्धिभाक् ॥ १३ ॥ पक्ष्मभिःसुघनैःस्निग्धैःकृष्णैःसूक्ष्मैःसुभाग्यभाक् ॥ कपिलैर्विरलैःस्थूलैर्निन्द्याभवतिभामिनी ॥ १४ ॥ भ्रुवौसुवर्तुलेतन्व्याःस्निग्धेकृष्णेअसंहते ॥ प्रशस्तेमृदुरोमाणौसुभ्रुवःकार्मुकाकृती ॥ १५ ॥ खररोमाचपृथुलाविकीर्णासरलास्त्रियाः ॥ नभ्रूःप्रशस्तामिलितादीर्घरोमाचपिङ्गला ॥ १६ ॥ लम्बौकर्णौशुभावर्तौसुखदौचशुभप्रदौ ॥ शष्कुलीरहितौनिन्द्यौशिरालौकुटिलौकृशौ ॥ १७ ॥ भालःशिराविरहितोनिर्लोमार्धेन्दुसन्निभः ॥ अनिम्नस्त्र्यंगुलोनार्याःसौभाग्यारोग्यकारणम् ॥ १८ ॥ व्यक्तस्वस्तिकरेखञ्चललाटंराज्यसम्पदे ॥ प्रलम्बम्मस्तकंयस्यादेवरंहन्तिसाध्रुवम् ॥ १९ ॥ रोमशेनशिरालेनप्रांशुनारोगिणीमता ॥ २० ॥ सीमन्तःसरलःशस्तोमौलिःशस्तःसमुन्नतः ॥ गजकुम्भनिभोवृत्तःसौभाग्यैश्वर्यसूचकः ॥ २१ ॥ स्थूलमूर्धाचविधवादीर्घशीर्षाचबन्धकी ॥ वि

आंखोंवाली पतिको मारती है व वृक्षोंके छेदों के समान नेत्रोंवाली स्त्री दुष्टा होती है और गजनेत्रा स्त्री शोभना नहीं है ॥ १२ ॥ वाम ओरकी कानी स्त्री पुंश्चली व दक्षिण नेत्रकी कानी बन्ध्या होतीहै और मधु के समान पिंगाक्षी स्त्री धन और धान्यकी समृद्धि को भजती है ॥ १३ ॥ व सघन सचिक्कण श्याम और सूक्ष्म पलकों से स्त्री सुभाग्यकी सेविनी है व कपिलरंग बिरली व स्थूल पलकों से स्त्री निन्दित होती है ॥ १४ ॥ व अच्छी भौंहवाली स्त्रीकी जे भौंहैं सुगोल सचिक्कण श्याम व परस्पर न जुड़ीहुई कोमल रोमवाली और धन्वाके आकार बनी हैं वे प्रशस्त हैं ॥ १५ ॥ तीक्ष्णरोमा विस्तारयुक्त बिथुड़ीहुई सरला दीर्घरोमा पीली और मिलीहुई स्त्रीकी भौंह शुभ नहीं है ॥ १६ ॥ शुभ आवर्त्त (घेर) वाले लम्बे कान सुखद व शुभदायकहैं व शष्कुलीरहित, नससहित, कुटिल और कृश हुये कान निंदनीयहैं ॥ १७ ॥ नसोंसे हीन, रोमरहित, चन्द्रखण्डके समान समुन्नत तीन अंगुलका भाल स्त्री की सौभाग्य और आरोग्यका कारण होताहै ॥ १८ ॥ व स्पष्टस्वस्तिकरेखावाला माथ राज्यसम्पत्ति के लिये है और जिसका माथ लम्बाहै वह स्त्री निश्चय से देवरको मारती है ॥ १९ ॥ व रोमयुक्त, नससमेत और ऊंचे माथसे स्त्री रोगिणी मानीगई है ॥ २० ॥ स्त्रीका सरल सीमंत (मांग) शस्त होताहै व समुन्नत मस्तक शस्त होताहै और जोकि मस्तक हाथी के कुम्भ की नाईं सुगोलहै वह सौभाग्य और ऐश्वर्य्य का सूचक होताहै ॥ २१ ॥

स्थूलमस्तकवाली स्त्री विधवा व दीर्घमस्तकवाली स्त्री पुंश्चली होती है और चौड़े मस्तक से दौर्भाग्य का भाजन होती है ॥ २२ ॥ भौंर भीर के समान श्याम, सचिक्कण, सूक्ष्म, सुकोमल, कुटिल और कुछेक आकुंचित अग्रवाले बाल बहुत शुभहैं ॥ २३ ॥ व कठोर आगे फाटेहुये बिरले पीले छोटे व रूखे बाल दुःख दारिद्र्य और बन्धन के दाता हैं ॥ २४ ॥ स्त्री की भौंहों के बीच में व माथ में मशा राज्य का सूचक होताहै व कपोलमें कुछेक लालरंगवाला मशा मिष्टान्नदाताहै ॥ २५ ॥ हृदय में तिलक व लक्षण सौभाग्य का कारण है व जिसके दहिने कुच में तिलक व लक्षण होताहै ॥ २६ ॥ वह स्त्री चार कन्याओं को उपजाती है और तीन पुत्रों

शालेनापिशिरसाभवेद्दौर्भाग्यभाजनम् ॥ २२ ॥ केशाश्चालिकुलच्छायाःसूक्ष्माःस्निग्धाःसुकोमलाः ॥ किञ्चिदाकुञ्चिताग्राश्चकुटिलाश्चातिशोभनाः ॥ २३ ॥ परुषाःस्फुटिताग्राश्चविरलाश्चशिरोरुहाः ॥ पिङ्गलालघवोरूक्षादुःखदारिद्र्यबन्धदाः ॥ २४ ॥ भ्रुवोरन्तर्ललाटेवामशकोराज्यसूचकः ॥ वामेकपोलेमशकःशोणोमिष्टान्नदःस्त्रियाः ॥ २५ ॥ तिलकंलाञ्छनंवापिहृदिसौभाग्यकारणम् ॥ यस्यादक्षिणवक्षोजेशोणेतिलकलाञ्छने ॥ २६ ॥ कन्याचतुष्टयंसूतेसूतेसाचसुतत्रयम् ॥ तिलकंलाञ्छनंशोणंयस्यावामेकुचेभवेत् ॥ २७ ॥ एकंपुत्रंप्रसूयादौततःसाविधवाभवेत् ॥ गुह्यस्यदक्षिणेभागेतिलकंयदियोषितः ॥ २८ ॥ तदाक्षितिपतेःपत्नीसूतेवाक्षितिपंसुतम् ॥ नासाग्रेमशकःशोणोमहिष्याएवजायते ॥ २९ ॥ कृष्णःसएवभर्तृघ्नयाःपुंश्चल्याश्चप्रकीर्तितः ॥ नाभेरधस्तात्तिलकंमशकोलाञ्छनंशुभम् ॥ ३० ॥ मशकस्तिलकंचिह्नंगुल्फदेशेदरिद्रकृत् ॥ करेकर्णेकपोलेवाकण्ठेवामेभवेद्यदि ॥ ३१ ॥ एषांत्रयाणामेकंतुप्राग्गर्भेपुत्रदम्भवेत् ॥ भालगेनत्रिशूलेन

को उत्पन्न करती है तथा जिसके वाम कुचमें तिलक व लाञ्छन होवे ॥ २७ ॥ वह पहलेही एक पुत्रको उत्पन्नकर तदनन्तर विधवा होजावे व जो स्त्री की योनि के दक्षिण भाग में तिलकहो ॥ २८ ॥ तो राजा की स्त्री होती है अथवा भूपति पुत्रको उत्पन्न करती है और पटरानी कीही नासाके आगे कुछेक लाल मशा होता है ॥ २९ ॥ व वही काला हुवा मशा पुंश्चली और पति के मारनेहारी नारी के भी कहागया है नाभी से नीचे अङ्गमें तिलक व लक्षण शुभ है ॥ ३० ॥ व गुल्फदेशमें हुआ मशा तिलक और लाञ्छन दरिद्रकारी है व हाथ कपोल और कण्ठ में जो होवे ॥ ३१ ॥ इन तीनोंमें से एक तो पहले गर्भ में पुत्रको देनेवाला होवे और ब्रह्मा के बनाये

हुये माथगत त्रिशूल से ॥ ३२ ॥ स्त्री हजारों स्त्रियों के स्वामित्वको पावे जो कि सोतीहुई स्त्री परस्पर दांत कटकटाती है ॥ ३३ ॥ वैसेही जो कुछ बक उठती है वह सुलक्षणा भी स्त्री शुभ नहीं है व हाथ में रोमों का दक्षिणावर्त धर्म के योग्यहै और वामावर्त शुभ नहीं है ॥ ३४ ॥ व नाभी कान और उरमें दक्षिणावर्त प्रशंसितहै व पीठ के बीचमें वंशाकार हाड़ के दक्षिणदेश मे दक्षिणावर्त सुखके लिये होताहै ॥ ३५ ॥ व पीठ के बीचमें नाभी के समान गोलाकार दक्षिणावर्त्त बहुती आयु और पुत्रों के बढ़ानेवालाहै व रानी की योनि के शिर पर दक्षिणावर्त्त देख पड़ता है ॥ ३६ ॥ जो वह शकट के समान हो तो बहुत पुत्रादि सुखदायकहै और गुह्यपर्य्यन्त से

निर्मितेनस्वयम्भुवा ॥ ३२ ॥ नितम्बिनीसहस्राणांस्वामित्वंयोषिदाप्नुयात् ॥ सुप्तापरस्परंयातुदन्तान्किटिकिटायते ॥ ३३ ॥ सुलक्ष्मापिनसाशस्तायाकिञ्चित्प्रलपेत्तथा ॥ पाणौप्रदक्षिणावर्त्तोधर्म्योवामोनशोभनः ॥ ३४ ॥ नाभौश्रुतावुरसिवादक्षिणावर्तईडितः ॥ सुखायदक्षिणावर्तःपृष्ठवंशस्यदक्षिणे ॥ ३५ ॥ अन्तःपृष्ठंनाभिसमोबह्वायुःपुत्रवर्धनः ॥ राजपत्न्याःप्रदृश्येतभगमौलौप्रदक्षिणः ॥ ३६ ॥ सचेच्छकटभङ्गःस्याद्बह्वपत्यसुखप्रदः ॥ कटिगोगुह्यवेधेनपत्यपत्यनिपातनः ॥ ३७ ॥ स्यातामुदरवेधेनपृष्ठावर्तौनशोभनौ ॥ एकेनहन्तिभर्तारंभवेदन्येनपुंश्चली ॥ ३८ ॥ कण्ठगोदक्षिणावर्तोदुःखवैधव्यहेतुकः ॥ सीमन्तेथललाटेवात्याज्योदूरात्प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ सापतिंहन्तिवर्षेणयस्यामध्येकृकाटिकम् ॥ प्रदक्षिणोवावामोवारोम्णामावर्त्तकःस्त्रियाः ॥ ४० ॥ एकोवामूर्धनिद्वौवावामेवामगतीयदि ॥ आदशाहम्पतिघ्नौतौत्याज्यौदूरात्सुबुद्धिना ॥ ४१ ॥ कट्यावर्ताचकुलटानाभ्यावर्तापतिव्रता ॥ पृष्ठावर्त्ताचभर्तृघ्नीकुलटावाथजायते ॥ ४२ ॥

कटिमें प्राप्त दक्षिणावर्त्त पति व पुत्रका नाशकहै ॥ ३७ ॥ उदरपर्य्यन्त प्राप्त वेधसे पृष्ठावर्त्त शुभ नहीं है क्योंकि एक से स्त्री अपने पतिको मारडाले व अन्य दूसरे से पुंश्चली होवे ॥ ३८ ॥ व कण्ठगत दक्षिणावर्त्त दुःख और वैधव्य का कारण है व सीमन्त (मांग) अथवा ललाटमें वह प्रयत्नसे दूर त्यागने योग्यहै ॥ ३९ ॥ और जिस स्त्री की बीच घांटी में प्रदक्षिण व रोमोंका वामावर्त्त है वह एक वर्ष में पतिको मारडालती है ॥ ४० ॥ व जो मस्तक के वामभाग में एक व दो वामावर्त्त हों तो वे दश दिनतकमें पतिके मारनेवाले हैं इससे सुबुद्धिमान् करके दूर त्यागने योग्यहैं ॥ ४१ ॥ कटिमें रोमावर्त्तवाली स्त्री कुलटा व नाभि में आवर्त्तवाली पतिव्रता व पीठमें

आवर्त्तवाली पतिविनाशिनी अथवा पुंश्चली होती है ॥ ४२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि सुलक्षणा भी जो दुष्टशीलवाली स्त्री है वह कुलक्षणवालियों में शिरोमणि है व लक्षणों से हीन हुई भी जो पतिव्रताहै वह सकल सुलक्षणों की भूमि है ॥ ४३ ॥ व घर में विश्वनाथके अनुग्रह सेही सुलक्षणा, सुशीला, स्वाधीना व पतिव्रता स्त्री मिलती है ॥ ४४ ॥ जिन्होंने पूर्वजन्ममें अनेक भांति से सुवासिनियों को अलङ्कार कियाहै वेही स्वरूपवाली स्त्री होती हैं ॥ ४५ ॥ व जिन्होंने अच्छे तीर्थ में देहको क्षीण किया व तजदिया वेही स्त्रियां इस लोक में सुलक्षणा व सुन्दरताकी नदियां होती हैं ॥ ४६ ॥ व जिन्होंने जगदम्बा श्रीपार्वतीजी की भी पूजा कियाहै वे सुधर्म्म

स्कन्दउवाच ॥ सुलक्षणापिदुःशीलाकुलक्षणशिरोमणिः ॥ अलक्षणापिसासाध्वीसर्वलक्षणभूस्तुसा ॥ ४३ ॥ सुलक्षणासुचारित्रास्वाधीनापतिदेवता ॥ विश्वेशानुग्रहादेवगृहेयोषिदवाप्यते ॥ ४४ ॥ अलंकृताःस्ववासिन्योयाभिःप्राक्तनजन्मनि ॥ नानाविधैरलङ्कारैस्ताःसुरूपाभवन्तिहि ॥ ४५ ॥ सुतीर्थेषुवपुर्याभिःक्षयितंवाविहायितम् ॥ तालावण्यतरङ्गिण्योभवन्तीहसुलक्षणाः ॥ ४६ ॥ अर्चिताजगताम्मातायाभिर्मृडवधूरिव ॥ ताभवन्तिसुचारित्रायोषाःस्वाधीनभर्तृकाः ॥ ४७ ॥ स्वाधीनपतिकानाञ्चसुशीलानांमृगीदृशाम् ॥ स्वर्गापवर्गावत्रैवसुलक्षणफलंहितत् ॥ ४८ ॥ सुलक्षणैःसुचरितैरपिमन्दायुषम्पतिम् ॥ दीर्घायुषम्प्रकुर्वन्तिप्रमदाःप्रमदास्पदम् ॥ ४९ ॥ अतःसुलक्षणायोषापरिणेयाविचक्षणैः ॥ लक्षणानिपरीक्ष्यादौहित्वादुर्लक्षणान्यपि ॥ ५० ॥ लक्षणानिमयोक्तानिसुखायगृहमेधिनाम् ॥ विवाहानपिवक्ष्यामितन्निबोधघटोद्भव ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे स्त्रीलक्षणवर्णनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

कर्म्मवाली स्त्रियां स्वाधीनपतिका होती हैं ॥ ४७ ॥ स्वाधीनपतिका व सुशीला व सुनेत्रवाली सुनयनी स्त्रियों का स्वर्ग और मोक्ष यहांही है वह सुलक्षण का ही फल है ॥ ४८ ॥ जिससे अच्छे लक्षण और अच्छे चरितों से संयुत स्त्रियां थोडी आयुवाले पति को भी दीर्घायु व आनन्द का आश्रय करदेती हैं ॥ ४९ ॥ इससे पहलेही सुलक्षणों को परखकर व कुलक्षणोंको भी त्यागकर पण्डितोंको सुलक्षणा स्त्री ब्याहना चाहिये ॥ ५० ॥ हे अगस्त्यजी ! मैंने गृहस्थों के सुखके लिये लक्षणों को कहा अब विवाहों को भी कहूंगा उसको तुम सुनो ॥ ५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते स्त्रीलक्षणकथनं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

दोहा। अड़तिसयें अध्याय में आठ भांति के ब्याह। ब्रह्मयज्ञ इत्यादि इत सदाचार चितचाह ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच ये आठप्रकार के ब्याह कहेजाते हैं ॥ १ ॥ जिसमें वरको बुलाकर भूषणभूषित कन्या दीजाती है वह ब्राह्म नामक ब्याह है उसका पुत्र इक्कीस पुरुषों को पवित्र करता है ॥ २ ॥ व यज्ञ में टिके ऋत्विज् के लिये कन्यादान को दैव ब्याह कहते हैं उससे उत्पन्न हुआ पुत्र चौदह पुरुषों को तारताहै और वर से दो गौवें लेकर कन्या देने से आर्ष ब्याह होताहै उससे उपजा हुआ लड़का छः पुरुषों को उबारताहै ॥ ३ ॥ तुम दोनों साथही धर्म कर्म करो यह कहकर जिस ब्याह में

स्कन्दउवाच ॥ विवाहाब्राह्मदैवार्षाःप्राजापत्यासुरौतथा ॥ गान्धर्वोराक्षसश्चापिपैशाचोऽष्टमउच्यते ॥ १ ॥ सब्राह्मोव रमाहूययत्रकन्यास्वलंकृता ॥ दीयतेतत्सुतःपूयात्पुरुषानेकविंशतिम् ॥ २ ॥ यज्ञस्थायर्त्विजेदैवस्तज्जःपातिचतुर्दश ॥ वरादादायगोद्वन्द्वमार्षस्तज्जःपुनातिषट् ॥ ३ ॥ सहोभौचरतान्धर्ममित्युक्त्वादीयतेर्थिने ॥ यत्रकन्याप्राजापत्यस्तज्जो वंशान्पुनातिषट् ॥ ४ ॥ चत्वारएतेविप्राणांधर्म्याःपाणिग्रहाःस्मृताः ॥ आसुरःक्रयणाद्द्रव्यैर्गान्धर्वोन्योन्यमैत्रतः ॥ ५ ॥ प्रसह्यकन्याहरणाद्राक्षसोनिन्दितःसताम् ॥ छलेनकन्याहरणात्पैशाचोगर्हितोऽष्टमः ॥ ६ ॥ प्रायःक्षत्रविशोरुक्तागा न्धर्वासुरराक्षसाः ॥ अष्टमस्त्वेषपापिष्ठःपापिष्ठानाञ्चसम्भवेत् ॥ ७ ॥ सवर्णयाकरोग्राह्योधार्यःक्षत्रिययाशरः ॥ प्रतोदो वैश्ययाधार्योवासोन्तःपज्जयातथा ॥ ८ ॥ असवर्णस्त्वेषविधिःस्मृतोदृष्टश्चवेदने ॥ सवर्णाभिस्तुसर्वाभिःपाणिर्ग्राह्यस्त्व

अर्थी को कन्या दीजाती है वह प्राजापत्यहै उससे उपजा हुआ पुत्र छह वंशोंको पवित्र करता है ॥ ४ ॥ ये चार प्रकार के ब्याह ब्राह्मणों के धर्म्म कहेगये हैं और द्रव्य से मोल लेने से आसुरहै व परस्पर वर और कन्याकी प्रीति से गान्धर्व ब्याह होता है ॥ ५ ॥ व हठसे कन्याके हरने से जो राक्षस ब्याह वह सज्जनों के लिये निन्दित है और छलसे कन्या हरने से आठवां पैशाच नामक ब्याह बहुतही निन्दितहै ॥ ६ ॥ व गान्धर्व आसुर तथा राक्षस ये ब्याह बहुधा क्षत्रिय वैश्य और शूद्रों केही कहे गये हैं और यह आठवां बड़ा पापी पैशाच नामक ब्याह पापी लोगों काही होताहै ॥ ७ ॥ समान वर्णवाली कन्या को वर का हाथ पकड़ना चाहिये क्षत्रियाको बाण व वैश्याको कोड़ा तथा शूद्री को वस्त्रका मध्य धारना चाहिये है ॥ ८ ॥ यह असवर्ण ब्याह की विधि शास्त्रमें देखी हुई कहीगई है और समानवर्णवाली सब कन्याओं

को वरका हाथ पकड़ना चाहिये यही विधि जानना चाहिये ॥ ९ ॥ धर्म्य ब्याहों से सौ वर्ष जीनेवाले धर्मज्ञ पुत्र उपजते हैं ओर अधर्म्य ब्याहों से अधर्मी, अभागी, अधन और अल्पायुवाले होते हैं ॥ १० ॥ ऋतुकालमें स्त्री के समीप जाना यह गृहस्थोंका उत्तम धर्म है अथवा स्त्रियोंके वरको सुमिरकर यथाभिलाषी होवे ॥ ११ ॥ दिनमें स्त्रियो के साथ समागम करना बड़ा आयु का नाशक मानागया है व श्राद्ध दिन व सब पर्वों याने अमावस पूर्णमासी चतुर्दशी अष्टमी और संक्रांति को बुद्धिमान् करके बराना चाहिये ॥ १२ ॥ क्योकि उनमें मोहसे स्त्री के समीप जाता हुआ पुरुष श्रेष्ठ धर्म से पतित होजाता है ॥ १३ ॥ जो कि ऋतुकाल याने मासिकधर्म से शुद्ध स्त्री

यंविधिः ॥ ९ ॥ धर्म्यैर्विवाहैर्जायन्तेधर्म्याएवशतायुषः ॥ अधर्म्यैर्धर्मरहितामन्दभाग्यधनायुषः ॥ १० ॥ ऋतुकालाभिगमनंधर्मोयंगृहिणःपरः ॥ स्त्रीणांवरमनुस्मृत्ययथाकाम्यथवाभवेत् ॥ ११ ॥ दिवाभिगमनंपुंसामनायुष्यंपरंमतम् ॥ श्राद्धाहःसर्वपर्वाणियत्नात्त्याज्यानिधीमता ॥ १२ ॥ तत्रगच्छन्स्त्रियंमोहाद्धर्मात्प्रच्यवतेपरात् ॥ १३ ॥ ऋतुकालाभिगामीयःस्वदारनिरतश्चयः ॥ ससदाब्रह्मचारीचविज्ञेयःसगृहाश्रमी ॥ १४ ॥ ऋतुःषोडशयामिन्यश्चतस्रस्तासुगर्हिताः ॥ पुत्रास्तास्वपियायुग्माअयुग्माःकन्यकाप्रजाः ॥ १५ ॥ त्यक्त्वाचन्द्रमसंदुःस्थंमघांपौष्णांविहायच ॥ शुचिःसन्निर्विशेत्पत्नींपुन्नामर्क्षेविशेषतः ॥ शुचिंपुत्रंप्रसूयेतपुरुषार्थप्रसाधकम् ॥ १६ ॥ आर्षेविवाहेगोद्वन्द्वंयदुक्तंतन्नशस्यते ॥ शुल्कमण्वपिकन्यायाःकन्याविक्रयपापकृत् ॥ १७ ॥ अपत्यविक्रयीकल्पंवसेद्विट्कृमिभोजने ॥ अतोनाण्वपिकन्यायाउपजीवेत्पि

के समीप जानेवाला व अपनी स्त्री का नियमी होवे उस गृहस्थको सदा ब्रह्मचारी जानना चाहिये ॥ १४ ॥ सोलह रात्रियां ऋतु कहाती हैं उनमें से पहले की चार निन्दित कही हैं शेष बारह रात्रियोंमें से जो समहैं उनमें पुत्र उपजते हैं और विषम याने पँचईं सतईं नवईं ग्यारहवीं तेरहवीं और पन्द्रहवीं ये कन्या प्रजावाली होती हैं ॥ १५ ॥ इससे पवित्र हुआ पुरुष चौथी छठईं आठईं आदि रात्रियों में राहु ग्रस्त दुष्ट चन्द्रमाको छोंडकर व मघा और रेवती नक्षत्र को बराबर विशेषसे श्रवण हस्त पुनर्वसु मूल पुष्य और मृगशिरा इन पुरुष संज्ञक नक्षत्रों मे स्त्री को भोगकरे या पासजावे तो स्त्री पुरुषार्थ साधनेवाले पवित्र पुत्रको उत्पन्न करे ॥ १६ ॥ और आर्ष ब्याह में जो दो गौवो का लेना कहागयाहै वह प्रशसनीय नहीं है क्योकि कन्याका थोड़ा भी मोललेना कन्या बेंचने के पापको करताहै ॥ १७ ॥ जिससे लड़की बेंचनेवाला

मनुष्य विट्कृमिभोजन नरक में कल्प भर याने हजार चौयुगी तक बसताहै इस से पिता कन्या के थोड़े भी धनसे जीविका को न करे ॥ १८ ॥ इस लोकमें जो बांधव लोग मोहसे कन्या के धनसे जीवते हैं वे केवल आपही नहीं नरकगामी होते हैं बरन उनके पुरिखा भी नरक को जाते हैं ॥ १९ ॥ जहां स्त्री पति से सन्तुष्ट होती है और जहां स्त्री से पति तुष्ट होताहै वहां विष्णुसमेत महालक्ष्मीजी बसती हैं ॥ २० ॥ वाणिज्य व राजाकी सेवा तथा वेदों का न पढ़ाना कुत्सित ब्याह और क्रियाओं को लुप्त करना ये सब कुलमें पतित होने के कारणहैं ॥ २१ ॥ अब वैवाहिक अग्निसे यज्ञादि कर्म्मोंको कहते हैं कि गृहस्थ विवाहवाली आगमें रोज रोज घरके उचितकर्म

ताधनम् ॥ १८ ॥ स्त्रीधनान्युपजीवन्तियेमोहादिहबान्धवाः ॥ नकेवलंनिरयगास्तेषामपिहिपूर्वजाः ॥ १९ ॥ पत्यातुष्यति यत्रस्त्रीतुष्येद्यत्रस्त्रियापतिः ॥ तत्रतुष्टामहालक्ष्मीर्निवसेद्दानवाऽरिणा ॥ २० ॥ वाणिज्यंनृपतेःसेवावेदानध्यापनंतथा ॥ कुविवाहःक्रियालोपःकुलेपतनहेतवः ॥ २१ कुर्याद्वैवाहिकेवह्नौगृह्यंकर्मान्वहंगृही ॥ पञ्च यज्ञक्रियांचापिपक्तिंदैनन्दिनी मपि ॥ २२ ॥ गृहस्थाश्रमिणःपञ्चसूनाकर्मदिनेदिने ॥ कण्डनीपेषणीचुल्लीह्युदकुम्भस्तुमार्जनी ॥ २३ ॥ तासांचपञ्चसूनानांनिराकरणहेतवः ॥ क्रतवःपञ्चनिर्दिष्टागृहिश्रेयोभिवर्धनाः ॥ २४ ॥ पाठनंब्रह्मयज्ञःस्यात्तर्पणञ्चपितृक्रतुः ॥ होमोदैवोबलिर्भौतोऽतिथ्यर्चानृक्रतुःक्रमात् ॥ २५ ॥ पितृप्रीतिम्प्रकुर्वाणःकुर्वीतश्राद्धमन्वहम् ॥ अन्नोदकपयोमूलैःफलैर्वापिगृहाश्रमी ॥ २६ ॥ गोदानेनचयत्पुण्यंपात्रायविधिपूर्वकम् ॥ सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षान्दत्त्वातत्फलमाप्नुयात् ॥ २७ ॥ तपोविद्यासमिद्धेद्धेहुतंविप्रास्यपावके ॥ तारयेद्भिसङ्केभ्यःपापाब्धेरपिदुस्तरात् ॥ २८ ॥ अनर्चितोऽतिथिर्गेहाद्भग्ना

व दिनोदिनका अन्न पकाना और पंचयज्ञ क्रियाको भी करे ॥ २२ ॥ जिससे कांड़ी जांत चूल्ह व पानी का पात्र और बढ़नी ये पांचों दिनोदिन गृहस्थोंके हिंसाके स्थान होते हैं ॥ २३ ॥ इससे उन पांचों हिंसा स्थानों के पापों के दूर करने के कारण व गृहस्थों के कल्याण बढ़ानेवाले पांच यज्ञ कहेगये हैं ॥ २४ ॥ उनको क्रमसे कहते हैं कि वेदपाठ ब्रह्मयज्ञ व तर्पण पितृयज्ञ व होम देवयज्ञ व बलिवैश्वदेव भूतयज्ञ और अतिथिपूजा मनुष्ययज्ञ ये पांचों क्रमसे होते हैं ॥ २५ ॥ व पितरों की प्रीति करताहुआ गृहस्थ अन्न जल दूध जड़ और फलों से भी रोजरोज श्राद्धको करे ॥ २६ ॥ और विधिपूर्वक सुपात्रके लिये गौ देनेसे जो पुण्य होतीहै उस फलको सत्कार

करकेभिक्षुके लिये भिक्षा देकर पुरुष प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ व तपस्या और विद्यारूप ईंधनसे प्रज्वलित ब्राह्मण मुख अग्निमें जो कुछ होमागया वह विघ्नसमूह और दुस्तर पापसमुद्र से तारताहै ॥ २८ ॥ व विना पूजा हुवा निराश अतिथि जिसके घरसे जाताहै वह जन्मभरेकी कमाई पुण्यसे क्षणमें बाहर होताहै ॥ २९ ॥ इससे प्यारे वचन व शय्याके अर्थ भूमि और तृणादि बिछौना व अन्न और जल ये सब भी अतिथिकी प्रसन्नताके लिये देने योग्य हैं ॥ ३० ॥ और पराये पाकका खानेवाला गृहस्थ उसके पशुभावको प्राप्तहोताहै जिससे परान्नसे पुष्ट पुरुषकी पुण्यको अन्नदाता लेलेताहै ॥ ३१ ॥ सायंकालमें अस्तमित सूर्य्यके साथमें आयाहुआ अतिथि प्रयत्न से सत्कार करनेयोग्यहै क्योंकि आदरसे हीन होकर अन्यत्र जाताहुआ वह बहुत पापको देताहै ॥ ३२ ॥ इस लोकमें अतिथि भोजनसे शेष अन्नको खाताहुआ गृहस्थ

शोयस्यगच्छति ॥ आजन्मसञ्चितात्पुण्यात्क्षणात्सहिवहिर्भवेत् ॥ २९ ॥ सान्त्वपूर्वाणिवाक्यानिशय्यार्थेभूस्तृणोदके ॥ एतान्यपिप्रदेयानिसदाभ्यागततुष्टये ॥ ३० ॥ गृहस्थःपरपाकादीप्रेत्यतत्पशुतांव्रजेत् ॥ श्रेयःपरान्नपुष्टस्यगृहीयादन्नदोयतः ॥ ३१ ॥ आदित्योढोऽतिथिःसायंसत्कर्तव्यःप्रयत्नतः ॥ असत्कृतोन्यतोगच्छन्दुष्कृतंभूरियच्छति ॥ ३२ ॥ भुञ्जानोऽतिथिशेषान्नमिहायुर्धनभाग्भवेत् ॥ प्रणोद्यातिथिमन्नाशीकिल्विषीचगृहाश्रमी ॥ ३३ ॥ वैश्वदेवान्तसम्प्राप्तःसूर्योढोवातिथिःस्मृतः ॥ नपूर्वकालआयातोनचदृष्टचरःक्वचित् ॥ ३४ ॥ बलिपात्रकरेविप्रेयद्यन्योतिथिरागतः ॥ अदत्त्वातम्बलिन्तस्मैयथाशक्त्यान्नमर्पयेत् ॥ ३५ ॥ कुमाराश्चस्ववासिन्योगर्भिण्योऽतिरुजान्विताः ॥ अतिथेरादितोप्येतेभोज्यानात्रविचारणा ॥ ३६ ॥ पितृदेवमनुष्येभ्योदत्त्वाश्नात्यमृतंगृही ॥ स्वार्थम्पचन्नघम्भुङ्क्तेकेवलंस्वोदरम्भ

अधिक आयुवाला और धनवान् होताहै व अतिथिको दूरकर अन्नभोजी मनुष्य महापापी कहाताहै ॥ ३३ ॥ जोकि वैश्वदेव के अन्तमें व अस्तमित सूर्य्यके साथ आया हो वह अतिथि कहागयाहै और उससे पहले आया नहीं व कहीं जाता देखा गया अतिथि नहीं है ॥ ३४ ॥ और जब भूतों के लिये बलिदेने को हाथमे अन्नका पात्र लेकर ब्राह्मण विद्यमान हो तब जो अन्य अतिथि आवे तो उस भूतबलिको न देकर उसके लिये यथाशक्ति कुछ अन्नको देवे ॥ ३५ ॥ लड़का लडकी बूढ़ी सुवासिनी व गर्भवती स्त्रियां और रोग समेत लोग इनको अतिथि से पहले भी खिलाना चाहिये इसमें विचार नहीं है ॥ ३६ ॥ क्योंकि देव पितर और मनुष्यो के लिये देकर गृहस्थ

अमृत खाताहै और केवल अपने अर्थ पकानेवाला व अपना उदर भरताहुआ मनुष्य पाप खाताहै ॥ ३७ ॥ इससे दुपहर में वैश्वदेवविधानको गृहस्थ आपही करे और सायंकालमें स्त्रीही सिद्ध अन्नों से मंत्रहीन बलिको देदेवे ॥ ३८ ॥ यह सायंकालका वैश्वदेव गृहस्थाश्रममें प्रसिद्ध है इस भांति प्रयत्नसे मध्याह्न और सायंकालमें वैश्वदेव विधान होताहै ॥ ३९ ॥ व जे बलिवैश्वदेवसे हीनहैं और अतिथिपूजासे विमुखहैं ये सब वेदपाठी ब्राह्मण भी शूद्रही जानने योग्यहैं ॥ ४० ॥ और जे ब्राह्मणाधम वैश्वदेवको न कर याने उसके किये विना खाते हैं वे इस लोक में अन्नहीन होते हैं और उसके बाद काकयोनिको जाते हैं ॥ ४१ ॥ इससे आलस्यरहित होकर नित्य अपने

रिः ॥ ३७ ॥ माध्याह्निकंवैश्वदेवंगृहस्थःस्वयमाचरेत् ॥ पत्नीसायम्बलिन्दद्यात्सिद्धान्नैर्मन्त्रवर्जितम् ॥ ३८ ॥ एतत्सायन्तनंनामवैश्वदेवंगृहाश्रमे ॥ सायम्प्रातर्भवेदेवंवैश्वदेवंप्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ वैश्वदेवेनयेहीनाआतिथ्येनविवर्जिताः ॥ सर्वेतेवृषलाज्ञेयाःप्राप्तवेदाअपिद्विजाः ॥ ४० ॥ अकृत्वावैश्वदेवन्तुभुञ्जतेयेद्विजाधमाः ॥ इहलोकेन्नहीनाःस्युःकाकयोनिंव्रजन्त्यथ ॥ ४१ ॥ वेदोदितंस्वकङ्कर्मनित्यंकुर्यादतन्द्रितः ॥ तद्धिकुर्वन्यथाशक्तिप्राप्नुयात्सद्गतिम्पराम् ॥ ४२ ॥ षष्ठ्यष्टम्योर्वसेत्पापंतैलेमांसेसदैवहि ॥ पञ्चदश्याञ्चतुर्दश्यान्तथैवचभगेक्षुरे ॥ ४३ ॥ उदयन्तंनचेक्षेतनास्तंयन्तंनमध्यगम् ॥ नराहुणोपसृष्टञ्चनाम्बुसंस्थन्दिवाकरम् ॥ ४४ ॥ नवीक्षेतात्मनोरूपमाशुधावेन्नवर्षति ॥ नोल्लङ्घयेद्वत्सतन्त्रींननग्नोजलमाविशेत् ॥ ४५ ॥ देवतायतनंविप्रंधेनुंमधुमृदंघृतम् ॥ जातिवृद्धंवयोवृद्धंविद्यावृद्धंतपस्विनम् ॥ ४६ ॥

वेदोक्त कर्मको करे क्योंकि यथाशक्ति उसकोही करता हुआ परम उत्तम गति को जाताहै ॥ ४२ ॥ व छठि और अष्टमी तथा अमावस और चतुर्दशीको क्रमसे तेल मांस छूरा और स्त्री की योनिमेंही सदैव पाप बसताहै इससे उनको बरावे ॥ ४३ ॥ उगते को नहीं अस्त प्राप्त होते को नहीं व दुपहर में मध्य आकाशमें वर्त्तमान को नहीं व राहुसे ग्रसे को नहीं और जलके भीतर प्रतिबिम्बरूपसे टिकेहुये सूर्य्यको न देखे ॥ ४४ ॥ व अपनी परछाहीं के ओर न निहारे व मेघके बरसतेही शीघ्र न दौड़े व बछड़ा बन्धन की रस्सी को न लांघे और नग्न होकर जलमें न पैठे ॥ ४५ ॥ देवमन्दिर ब्राह्मण गऊ शहद गोपीचन्दन घी व जाति से बड़ा व अवस्थासे बूढ़ा विद्यासे वृद्ध

व तपस्वी ॥ ४६ ॥ व पीपलवृक्ष व पूज्यवृक्ष गुरु व पानी से भरा घड़ा सिद्ध अन्न दही और सर्षप इन सबको चलताहुआ अपने दहिनेओर में करदेवे ॥ ४७ ॥ व रजस्वला स्त्री को न सेवे व स्त्री के साथ न खावे व एक वस्त्र पहनेहुये न खावे व उत्कट आसन मे बैठकर न खावे ॥ ४८ ॥ व भोजन करती हुई स्त्री को न देखे और तेजका चाही द्विजोत्तम देवता व पितरोंको तृप्त किये विना नवीन अन्नको कभी न भोजनकरे ॥ ४९ ॥ व दीर्घ काल तक जीवनेकी इच्छावाला मनुष्य देवोंको अरपे विना पक्वान्नको न खावे व मांसको न खावे व गोशालामें बेबौरमें नहीं और भस्ममे मूत्रको न करे ॥ ५० ॥ व जन्तुयुक्त गड्ढेमें नहीं खड़ा नहीं व चलताहुआ भी न मूते व गऊ ब्राह्मण

अश्वत्थञ्चैत्यवृत्तञ्चगुरुंजलभृतंघटम् ॥ सिद्धान्नन्दधिसिद्धार्थंगच्छन्कुर्यात्प्रदत्तिणम् ॥ ४७ ॥ रजस्वलांनसेवेतना श्नीयात्सहभार्यया ॥ एकवासानभुञ्जीतनभुञ्जीतोत्कटासने ॥ ४८ ॥ नाश्नन्तींस्त्रींसमीत्तेततेजस्कामोद्विजोत्तमः ॥ असन्तर्प्यपितॄन्देवान्नाद्यादन्नन्नवंकचित् ॥ ४९ ॥ पकान्नञ्चापिनोमांसंदीर्घकालञ्जिजीविषुः ॥ नमूत्रङ्गोव्रजेकुर्यान्न वल्मीकेनभस्मनि ॥ ५० ॥ नगर्तेषुससत्त्वेषुनतिष्ठन्नव्रजन्नपि ॥ गोविप्रसूर्यवाय्वग्निचन्द्रत्तांम्बुगुरूनपि ॥ ५१ ॥ अभि पश्यन्नकुर्वीतमलमूत्रविसर्जनम् ॥ तिरस्कृत्यावनिंलोष्टकाष्ठपर्णतृणादिभिः ॥ ५२ ॥ प्रावृत्यवाससामौलिंमौनीवि ण्मूत्रमुत्सृजेत् ॥ यथासुखमुखोरात्रौदिनेछायान्धकारयोः ॥ ५३ ॥ भीतिषुप्राणबाधायांकुर्यान्मलविसर्जनम् ॥ मुखे नोपधमेन्नाग्निंनग्नांनेत्तेतयोषितम् ॥ ५४ ॥ नांघ्रीप्रतापयेदग्नौनवस्त्वशुचिनिन्तिपेत् ॥ प्राणिहिंसांनकुर्वीतनाश्नी

सूर्य वायु अग्नि चन्द्रमा नक्षत्र जल और गुरुको भी ॥ ५१ ॥ सामने से देखता हुआ मल मूत्रका त्याग न करे व कंकड़ काठ पत्ते और तृणादिकों से भूमि को आच्छादनकर ॥ ५२ ॥ व वस्त्रसे शिर को ढांपकर मौनधारी (चुपचाप होकर) मल मूत्रको तजे व यथासुख मुख याने जैसी चहै वैसी को मुखकर बैठा हुआ मनुष्य रातमे व दिनमें छाया और अन्धकारमें ॥ ५३ ॥ व डर व प्राणबाधा में मलमूत्र का त्याग करे अर्थात् जब स्वस्थचित्त होवे तब पूर्वोक्त विचार करके त्यागे व अग्निको मुखसे न फूंके और नग्न स्त्री को न देखे ॥ ५४ ॥ अग्निमे पांवको न तपावे और अशुद्ध वस्तुको न डाले व प्राणियो का वध न करे और दोनो संध्याओ

में न खावे ॥ ५५ ॥ संध्यामें न सोवे व पश्चिम और उत्तर में शिरवाला भी न सोवे व बहुत कालजीने का चाही मनुष्य पानी में विष्ठा मूत्र और थूकको न करे ॥ ५६ ॥ बछड़ेको पिलाती गऊ या पीती हुई बछिया को न बतावे व इन्द्रधनुषको न दिखावे व शून्य स्थानमें कहीं अकेले न सोवे और सोतेको न जगावे ॥ ५७ ॥ व अकेला गली में न चले व अंजली से पानीको न पीवे व दिनमें पीना आदि और रातमें दहीको न खावे ॥ ५८ ॥ व रजस्वला स्त्री से न बोले व रातमें तृप्तिपर्य्यंत भोजनको न करे व नाच गान और बाजाओंके प्यार करनेवाला न होवे व कांसेके पात्रमें पांवोंको न पखारे ॥ ५९ ॥ व जो अज्ञानी श्राद्ध करके अन्य के श्राद्ध में खाताहै वह पापभोजी

यात्सन्ध्ययोर्द्वयोः ॥ ५५ ॥ नसंविशेतसन्ध्यायांप्रत्यक्सौम्यशिराअपि ॥ विण्मूत्रष्ठीवनन्नाप्सुकुर्याद्दीर्घंजिजीवि षुः ॥ ५६ ॥ नाचक्षीतधयन्तींगांनेन्द्रचापंप्रदर्शयेत् ॥ नैकःसुप्यात्क्वचिच्छून्येनशयानम्प्रबोधयेत् ॥ ५७ ॥ पन्थानन्नैकलोयायान्नवार्य्यञ्जलिनापिबेत् ॥ नदिवोद्धृतसारञ्चभक्षयेद्दधिनोनिशि ॥ ५८ ॥ स्त्रीधर्मिण्यानाभिवदेन्नाद्यादातृप्ति रात्रिषु ॥ तौर्यत्रिकप्रियोनस्यात्कांस्येपादौनधावयेत् ॥ ५९ ॥ श्राद्धंकृत्वापरश्राद्धेयोऽश्नीयाज्ज्ञानवर्जितः ॥ दातुःश्राद्ध फलन्नास्तिभोक्ताकिल्बिषभुग्भवेत् ॥ ६० ॥ नधारयेदन्यभुक्तंवासश्चोपानहावपि ॥ नभिन्नभाजनेऽश्नीयान्नासीताग्न्या दिदूषिते ॥ ६१ ॥ आरोहणंगवांपृष्ठेप्रेतधूमंसरित्तरम् ॥ बालातपन्दिवास्वापंत्यजेद्दीर्घंजिजीविषुः ॥ ६२ ॥ स्नात्वान मार्जयेद्गात्रंविसृजेन्नशिखांपथि ॥ हस्तौशिरोनधुनुयान्नाकर्षेदासनम्पदा ॥ ६३ ॥ नोत्पाटयेल्लोमनखंदशनेनकदा चन ॥ करजैःकरजच्छेदंतृणच्छेदंविवर्जयेत् ॥ ६४ ॥ शुभायनयदायत्यांत्यजेत्तत्कर्मयत्नतः ॥ अद्वारेणनगन्तव्यंस्व

होताहै और अन्नदाताको श्राद्धका फल नहीं है ॥ ६० ॥ वऔर के जूंठे कपड़े और जूतोंको भी न पहने व फूटे पात्र में न भोजनकरे और अग्निआदि से दूषित आसन में न बैठे ॥ ६१ ॥ व बहुत जीवन चाहता हुआ मनुष्य गौवों की पीठपर चढ़ना मुर्दा का धुवां नदी पैरना व प्रातःकाल के बाल सूर्य्य का घाम और दिन में सोना इन सबको त्यागे ॥ ६२ ॥ व स्नानकर पीछे से देहको न मीड़े व गली में चोटी को न छोड़े व हाथों और मस्तक को न कँपावे व आसन को पांवसे न खींचे ॥ ६३ ॥ व दांतसे रोम और नखको कभी न उखाड़े व नखों से नखों के छेदने और तृण तोड़नेको भी बरावे ॥ ६४ ॥ जो कर्म उत्तर कालमें शुभके लिये न हो अर्थात् जिसका परि-

णाम न अच्छाहो उसको यत्नसे त्यागे व अपने घर और पराये घर में भी अद्वार याने खिरकी आदिक गली से न जाना चाहिये ॥ ६५ ॥ पांसों से न खेले व पाखण्डियोंको नहीं और रोगियोंके साथ न बैठे व नग्न होकर कभी न सोवे व हाथ मेंही न भोजन करे ॥ ६६ ॥ भीगे पांव हाथ और मुखवाला होकर भोजन करता हुआ बहुत काल तक जीवताहै व ओदे पगवाला न सोवै या न पौढ़े व जूंठा कहीं नहीं जावे ॥ ६७ ॥ व शय्या पर बैठा हुआ ब्राह्मणादि वर्ण न खावे न पीवे और न जप करे व पादुका पहने न अँचवे व खड़ा हुआ एक धारा से पानी को न पीवे ॥ ६८ ॥ व सुखका चाही सायंकालमें सब तिलमय अन्नको न खावे व मलमूत्रको न देखे और जूंठे मुख मस्तक

वेश्मपरवेश्मनोः ॥ ६५ ॥ क्रीडेन्नाक्षैःसहासीतनधर्मघ्नैर्नरोगिभिः ॥ नशयीतकचिन्नग्नःपाणौभुञ्जीतनैवच ॥ ६६ ॥ आर्द्रपादकरास्योऽश्नन्दीर्घकालञ्चजीवति ॥ संविशेन्नार्द्रचरणोनोच्छिष्टःकचिदाव्रजेत् ॥ ६७ ॥ शयनस्थोनचाश्नीयान्नपिबेन्नजपेद्द्विजः ॥ सोपानत्कश्चनाचामेन्नतिष्ठन्धारयापिबेत् ॥ ६८ ॥ सर्वंतिलमयन्नाद्यात्सायंशर्माभिलाषुकः ॥ ननिरीक्षेतविण्मूत्रेनोच्छिष्टःसंस्पृशेच्छिरः ॥ ६९ ॥ नाधितिष्ठेत्तुषाङ्गारभस्मकेशकपालिकाः ॥ पतितैःसहसंवासःपतनायैवजायते ॥ ७० ॥ श्रावयेद्वैदिकंमन्त्रंनशूद्रायकदाचन ॥ ब्राह्मण्याद्धीयतेविप्रःशूद्रोधर्माच्चहीयते ॥ ७१ ॥ धर्मोपदेशःशूद्राणांस्वश्रेयःप्रतिघातयेत् ॥ द्विजशुश्रूषणन्धर्मःशूद्राणांहिपरोमतः ॥ ७२ ॥ कण्डूयनंहिशिरसःपाणिभ्यांनशुभस्मृतम् ॥ आताडनङ्कराभ्याञ्चक्रोशनङ्केशलुञ्चनम् ॥ ७३ ॥ अशास्त्रवर्तिनोभूपाल्लुब्धात्कृत्वाप्रतिग्रहम् ॥ ब्राह्मणःसान्व

को न छुवे ॥ ६९ ॥ फरहा या भूसी अङ्गार भस्म बाल और खपडो में न बैठे व पतित लोगोंके साथ भलीभांति बसना पतनकेही लिये होताहै याने उनके संगमें न बसे ॥ ७० ॥ व शूद्रको वेदका मंत्र कभी न सुनावे क्योंकि उसके सुनाने से ब्राह्मण ब्रह्मतेज से हीन होताहै और शूद्र भी धर्म से हीन होताहै ॥ ७१ ॥ इससे शूद्रोंके लिये धर्म का उपदेश अपनी पुण्यको विनाशताहै जिससे ब्राह्मणादि वर्णो की सेवाही शूद्रोंका परमधर्म माना गयाहै ॥ ७२ ॥ व दोनों हाथों से मूड खजुवाना व ताड़ना व बाल उखाड़ना और चिघड़ना शुभ नहीं मानागयाहै ॥ ७३ ॥ व राजनीतिसे हीन लोभी राजासे दानको ग्रहणकर ब्राह्मण कुटुम्ब समेत इक्कीस नरकोंको जाताहै इससे उस

का दान न लेवे ॥ ७४ ॥ अकालमें बिजली सहित मेघगर्जन व वर्षाऋतु में धूलिवर्षण व बड़ी बयारका शब्द और रात इन समयोंको अनध्याय कहते हैं ॥ ७५ ॥ उल्कापात भूडोल दिग्दाह आधीरात दोनों सन्ध्यायें शूद्रका समीप राजाका सूतक और राहुका सूतक (ग्रहणसमय) ॥ ७६ ॥ व अमावस व अष्टका याने भाद्र अगहन पूस माघ और फागुनकी कृष्णाष्टमी व चतुर्दशी में व श्राद्ध का निमन्त्रण लेकर व पूरी प्रतिपदा व हाथी और ऊंटका बीच ॥ ७७ ॥ व गर्दभ ऊंट और स्यार इनके बोलते समय व इकट्ठे रोने समय व उपाकर्म व ऋग्वेदादिकोंका उत्सर्ग व नाव गली डोंगा और जलमें ॥ ७८ ॥ व आरण्यक को पढ़कर भी व बाण और सामवेदका

योयातिनरकानेकविंशतिम् ॥ ७४ ॥ अकालविद्युत्स्तनितेवर्षतौपांसुवर्षणे ॥ महावातध्वनौरात्रावनध्यायाःप्रकीर्तिताः ॥ ७५ ॥ उल्कापातेचभूकम्पेदिग्दाहेमध्यरात्रिषु ॥ सन्ध्ययोर्वृषलोपान्तेराज्ञोराहोश्चसूतके ॥ ७६ ॥ दर्शाष्टकासुभूतायांश्राद्धिकम्प्रतिगृह्यच ॥ प्रतिपद्यपिपूर्णायांगजोष्ट्राभ्यांकृतान्तरे ॥ ७७ ॥ खरोष्ट्रक्रोष्टृविरुतेसमवायेरुदत्यपि ॥ उपाकर्मणिचोत्सर्गेनाविमार्गेतरौजले ॥ ७८ ॥ आरण्यकमधीत्यापिबाणसाम्नोरपिध्वनौ ॥ अनध्यायेषुचैतेषुनाधीयीतद्विजःक्वचित् ॥ ७९ ॥ कृतान्तरायोनपठेद्भेकाखुश्वाहिबभ्रुभिः ॥ भूताष्टम्योःपञ्चदश्योर्ब्रह्मचारीसदाभवेत् ॥ ८० ॥ अनायुष्यकरञ्चैवपरदारोपसर्पणम् ॥ तस्मात्तद्दूरतस्त्याज्यंवैरिणाञ्चोपसेवनम् ॥ ८१ ॥ पूर्वर्धिभिःपरित्यक्तमात्मानंनावमानयेत् ॥ सदोद्यमवतांयस्माच्छ्रियोविद्यानदुर्लभाः ॥ ८२ ॥ सत्यम्ब्रूयात्प्रियम्ब्रूयान्नब्रूयात्सत्यमप्रियम् ॥ प्रियञ्चनानृतम्ब्रूयादेषधर्मोघटोद्भव ॥ ८३ ॥ भद्रमेववदेन्नित्यंभद्रमेवविचिन्तयेत् ॥ भद्रैरेवेहसंसर्गोनाभद्रैश्चकदाचन ॥ ८४ ॥

शब्द सुन पड़ने में इत्यादि पूर्वोक्त अनध्यायोंमें ब्राह्मणादि कहीं न पढ़े ॥ ७९ ॥ व मेढुक,मूस,कूकर, सर्प और निउलासे किया गयाहो विघ्न जिसका वह न पढे व चतुर्दशी अष्टमी अमावस और पूर्णमासी में सदा ब्रह्मचारी होवे ॥ ८० ॥ जिससे पर स्त्री के समीपमें जाना आयुकाहीन करनेवालाहै उससे उसको और शत्रुके समीपसे वनको दूर से त्यागना चाहिये ॥ ८१ ॥ व पहलेकी बढ़ती से हीन हुये अपने को अनादर न करावे जिससे सदा उद्यमी लोगों के लिये सब सम्पत्तियां और विद्यायें दुर्लभ नहीं हैं ॥ ८२ ॥ और सत्यको बोले प्रियको बोले व जोकि प्यार न हो उस सत्यको भी न बोले व असत्य प्रिय वचनको न बोले हे अगस्त्य ! यह धर्महै ॥ ८३ ॥ व सदैव

मंगल वचन कोही बोले व मंगलकोही विचारे व यहां कल्याणकारी मंगल मय महात्माओंकाही समीप करे और दुष्टों का संसर्ग कभी न करे याने उनके पास आने जाने को बरावे ॥ ८४ ॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य रूप धन और कुलसेहीन लोगों को मत निदरे व अपवित्र होकर चन्द्रमा व सूर्य्य और नक्षत्रों के समूह को न देखे ॥८५॥ व वचनके वेग मनके वेग और जिह्वाके वेगको बरावे अर्थात् बहुत न बोले मनको न डुलावे व नीके मीठे का स्वाद न चाहे व उत्कोच (जोकि भय दिखाकर लियाजाताहै) द्यूत (जुवा) दूतपन और आर्त के धनको दूरसे त्यागदेवे ॥ ८६ ॥ व गऊ ब्राह्मण और अग्निको जूंठे हाथसे न छुवे और जोकि आतुर न होवे वह विना

रूपवित्तकुलैर्हीनान्सुधीर्नाधिक्षिपेन्नरान् ॥ पुष्पवन्तौनचेक्षेतत्वशुचिर्ज्योतिषाङ्गणम् ॥ ८५ ॥ वाचोवेगंमनोवेगंजिह्वावेगंचवर्जयेत् ॥ उत्कोचद्यूतदौत्यार्तद्रव्यन्दूरात्परित्यजेत् ॥ ८६ ॥ गोब्राह्मणाग्नीनुच्छिष्टपाणिनानैवसंस्पृशेत् ॥ नस्पृशेदनिमित्तेनखानिस्वानित्वनातुरः ॥ ८७ ॥ गुह्यजान्यपिलोमानितत्स्पर्शादशुचिर्भवेत् ॥ पादधौतोदकंमूत्रमुच्छिष्टान्नोदकानिच ॥ ८८ ॥ निष्ठीवनञ्चश्लेष्माणंगृहाद्दूरंविनिक्षिपेत् ॥ अहर्निशंश्रुतेर्जाप्याच्छौचाचारनिषेवणात् ॥ अद्रोहवत्याबुद्ध्याचपूर्वञ्जन्मस्मरेद्द्विजः ॥ ८९ ॥ वृद्धान्प्रयत्नाद्वन्देतदद्यात्तेषांस्वमासनम् ॥ विनम्रश्चनिस्तस्मादनुयायात्ततश्चतान् ॥ ९० ॥ श्रुतिभूदेवदेवानांनृपसाधुतपस्विनाम्॥पतिव्रतानांनारीणांनिन्दांकुर्यान्नकर्हिचित्॥९१॥ नमनुष्यस्तुतिंकुर्यान्नात्मानमपमानयेत् ॥ अभ्युद्यतंनप्रणुदेत्परमर्माणिनोचरेत् ॥ ९२ ॥ अधर्मादेधतेपूर्वंविद्वेष्टृनपिस

कारण अपने कान आदि छिद्रों को न छुवे ॥ ८७ ॥ जोकि गुह्य इन्द्रियके समीपमें उपजे रोमहैं उनके स्पर्श से अशुद्धहोताहै वे रोम व पाद धोवन पानी व मूत्र व जूंठा अन्न व जल ॥ ८८ ॥ और थूक व श्लेष्म इन सबको घर से दूर में बहावे व दिनों रात वेद पाठ शौच आचार सेवन और विना वैरकी बुद्धिसे ब्राह्मण पूर्वजन्मकी सुधि करताहै ॥ ८९ ॥ व जिससे नाड़ियों के नवानेवाला होकर बडे यत्नसे बूढ़े लोगोंकी वन्दनाकरे तदनन्तर उनको अपना आसन देवे उससे उनके पीछे चले ॥ ९० ॥ वेद ब्राह्मण देव राजा साधु तपस्वी और पतिव्रता स्त्रियों की निन्दाको कभी न करे ॥ ९१ ॥ व मनुष्यों की स्तुति को न करे याने देवों की स्तुतिको करे व अपना अपमान न करावे व सामने उद्यतहुयेको न प्रेखे और के मर्मभेदी वचनोंको न बोले ॥ ९२ ॥ व अधर्म से पहले बढ़ताहै और शत्रुओंको भी जीतताहै तदनन्तर सबओर से कल्याण

को प्राप्त होकर भी पीछे से कुटुम्ब समेत नष्ट होजाताहै इससे अधर्म्म को बरावे ॥ ९३ ॥ व पराये खनाये जलाशयमें पांच पिण्डमाटीको निकालकर स्नान करे क्योंकि माटीको न निकालकर उस जलाशय कर्त्ता के पाप के चतुर्थांशको भजता होताहै ॥ ९४ ॥ व सुदेश और सुकालमें सुपात्रको पासमें पाकर श्रद्धासे विधि पूर्वक जो कुछ धन दियाजाताहै वह अनंतताके लिये कल्पित होताहै अर्थात् उसका महाफल कहागयाहै ॥ ९५ ॥ भूमि दाता खण्डमण्डलेश्वर होताहै व अन्न देनेवाले लोग सुखी होते हैं व जलदाताजन सदा तृप्त रहता है और रूप्य दाता रूपवान् होता है ॥ ९६ ॥ व दीपदाता निर्मल नेत्रवाला होताहै व गोदाता सूर्य्यलोक का सेवी होता है व स्वर्ण

ञयेत् ॥ सर्वतोभद्रमाप्यापिततोनश्येच्चसान्वयः ॥ ९३ ॥ उद्धृत्यपञ्चमृत्पिण्डान्स्नायात्परजलाशये ॥ अनुद्धृत्यचतत्कर्तुरेनसःस्यात्तुरीयभाक् ॥ ९४ ॥ श्रद्धयापात्रमासाद्ययत्किञ्चिद्दीयतेवसु ॥ देशेकालेचविधिनातदानन्त्यायकल्पते ॥ ९५ ॥ भूप्रदोमण्डलाधीशःसर्वत्रसुखिनोऽन्नदाः ॥ तोयदातासदातृप्तोरूपवान्रूप्यदोभवेत् ॥ ९६ ॥ प्रदीपदोनिर्मलाक्षोगोदाताऽर्यमलोकभाक् ॥ स्वर्णदाताचदीर्घायुस्तिलदःस्यात्तुसुप्रजाः ॥ ९७ ॥ वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशोवस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक् ॥ हयप्रदोदिव्ययानोलक्ष्मीवान्वृषभप्रदः ॥ ९८ ॥ सुभार्यःशिबिकादातासुपर्यङ्कप्रदोपिच ॥ धान्यैःसमृद्धिमान्नित्यमभयप्रदईशिता ॥ ९९ ॥ ब्रह्मदोब्रह्मलोकेज्योब्रह्मदःसर्वदोमतः ॥ उपायेनापियोब्रह्मदापयेत्सोपितत्समः ॥ १०० ॥ श्रद्धयाप्रतिगृह्णातिश्रद्धयायःप्रयच्छति ॥ स्वर्गिणौतावुभौस्यातांपततोऽश्रद्धयात्यधः ॥ १ ॥ अनृतेनच

दाता दीर्घायु होताहै और तिलदाता सुपुत्रवाला होताहै ॥ ९७ ॥ व गृहदाता अधिक ऊंचे महलोंका स्वामी होताहै व वस्त्रदाता चन्द्रलोक का भागी है व घोड़े का दाता सुविमानवाला होताहै व बैलका दाता लक्ष्मीवान् होताहै ॥ ९८ ॥ और पीनस पालकी आदि का दाता अच्छी स्त्री वाला व पलंगका दाता धान्यों से सम्पृद्धिमान् और अभय दाता सदैव स्वामी होताहै ॥ ९९ ॥ वेददाता ब्रह्मलोकमें पूजापाताहै व वेददाताही सब देनेवाला मानागयाहै इससे जोकि उपाय से वेदपाठ दिलाताहै वह भी उसके समान होताहै ॥ १०० ॥ जोकि श्रद्धासे देताहै और जो श्रद्धासे लेताहै वे दोनो स्वर्गवासी होते हैं व अश्रद्धासे नीचे गिरते हैं ॥ १ ॥ और असत्य से यज्ञ च्युत होवे

व विस्मयसे तपस्या चूजावे व कहनेसे दान चुवे और ब्राह्मणमें दोष लगाने से आयु घटजाती है ॥ २ ॥ सुगन्ध फूल कुश शय्या साग मांस दूध दही मणि मछली घर और अन्न ये सब जो समीपमें प्राप्त होवें तो लेने योग्यहैं ॥ ३ ॥ व सहत जल फल मूल ईंधन व अभयदान ये सब सम्मुख उद्यत होवें तो निकृष्ट जातिके जनों से भी लेनाचाहिये ॥ ४ ॥ व दास नाऊ गोप कुलमित्र और आधे हलवाले ये शूद्र वर्ग में भोज्यान्नहैं अर्थात् इनके अन्न खाने योग्य हैं वैसेही आत्मनिवेदन करनेवाला भी भोज्यान्न मानागयाहै ॥ ५ ॥ इसप्रकार से देवऋषि और पितरों के ऋण से आनृण्य को प्राप्त होकर पुत्रको सब ओरसे भार (कारबार) सौंपकर घर में उदासीनताको

रेद्यज्ञस्तपोविस्मयतःक्षरेत ॥ क्षरेत्कीर्तनतोदानमायुर्विप्रापवादतः ॥ २ ॥ गन्धपुष्पकुशाञ्छय्यांशाकंमांसम्पयोदधि ॥ मणिमत्स्यगृहंधान्यंग्राह्यमेतदुपस्थितम् ॥ ३ ॥ मधूदकंफलंमूलमेधांस्यभयदक्षिणा ॥ अभ्युद्यतानिग्राह्याणित्वेतान्यपिनिकृष्टतः ॥ ४ ॥ दासनापितगोपालकुलमित्रार्धसीरिणः ॥ भोज्यान्नाःशूद्रवर्गेमीतथात्मविनिवेदकः ॥ ५ ॥ इत्थमानृण्यमासाद्यदेवर्षिपितृजादृणात् ॥ माध्यस्थ्यमाश्रयेद्गेहेसुतेविष्वग्विसृज्यच ॥ ६ ॥ गेहेपिज्ञानमभ्यस्येत्काशींवाथसमाश्रयेत ॥ सम्यग्ज्ञानेनवामुक्तिःकिंवाविश्वेशवेश्मनि ॥ ७ ॥ सम्यग्ज्ञानम्भवेत्पुंसांकुतएकेनजन्मना ॥ वाराणस्यान्ध्रुवामुक्तिःशरीरत्यागमात्रतः ॥ ८ ॥ अद्यश्वोवापरश्वोवाकालाद्वाथपरःशतात् ॥ सत्वरोगत्वरोदेहःकाश्याञ्चेदमृतीभवेत् ॥ ९ ॥ साचवाराणसीलभ्यासदाचारवतासदा ॥ मनसापिसदाचारमतोविद्वान्नलङ्घयेत् ॥ १० ॥ आकर्ण्येतिततोगस्त्यःपुनःप्राहषडाननम् ॥ पुनःकाशींसमाचक्ष्वसदाचारेणयाप्यते ॥ ११ ॥ कानिकानिचलिङ्गानिस्क

आश्रयकरे ॥ ६ ॥ व घर मेंही ज्ञान का अभ्यास राखे अथवा काशीको सेवे क्योंकि सम्यग्ज्ञान से याकि विश्वनाथ की पुरी में मुक्ति होती है ॥ ७ ॥ परन्तु एक जन्मसे लोगों का अच्छा ज्ञान कैसे होवेगा और काशीमें मरण मात्र से मुक्ति निश्चित होती है ॥ ८ ॥ आज व काल्ह व परसों व नरसों अथवा सैकड़ों बरसों के बाद कालमे कभी मरना अवश्य होताहै इससे जो वेग समेत देह काशी मे चलनेवाली होवे तो मुक्त होजाताहै ॥ ९ ॥ जिससे वह काशी पुरी भी सदैव अच्छे आचारवालेको मिलती है इससे सुजानजन मन से भी सदाचार को न उल्लंघन करे ॥ १० ॥ ऐसा सुनकर तदनन्तर अगस्त्यजी षट् मुखसे फिर बोले कि जो सदाचार से मिलती है उस काशीको

फिर कहो ॥ ११ ॥ हे स्कन्दजी ! काशीमें कौन कौन लिंग ज्ञान दाताहैं उनको सब ओर पूंछतेहुये मुझसे तुम सब ओर से बतावो ॥ १२ ॥ हे षडानन ! काशी विना मेरी प्रीति कहीं नहीं है व काशी विना मेरा सनेह नहीं है और काशी विना मैं चित्रपटके पुतलाके समानहूं ॥ १३ ॥ व न सोताहूं न जागताहूं न अन्न खाताहूं न पानी पीता हूं क्योंकि केवल काशी दो अक्षररूप अमृतकोही पीताहूं ॥ १४ ॥ इस प्रकार से अगस्त्यजी के वचनको सुनकर श्रीकार्तिकेयजीने काशी माहात्म्य के कहने को प्रारम्भ किया ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेसदाचारवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

न्दज्ञानप्रदानिच ॥ वाराणस्याम्परिब्रूहितानिमेपरिपृच्छतः ॥ १२ ॥ विनाकाशींनमेप्रीतिर्विनाकाशींनमेरतिः ॥ चित्रपुत्रकवच्चास्मिविनाकाशींषडानन ॥ १३ ॥ ननिद्रामिनजागर्मिनाश्नामिनपिबाम्यपः ॥ काशीद्व्यक्षरपीयूषंपिबामिहिचकेवलम् ॥ १४ ॥ इतिश्रुत्वावचःस्कन्दोमैत्रावरुणिभाषितम् ॥ अविमुक्तस्यमाहात्म्यंवक्तुंसमुपचक्रमे ॥ ११५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसदाचारवर्णनंनामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृणवगस्त्यमहाभागकथाम्पापप्रणाशिनीम् ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोहेतुमविमुक्तसमाश्रयाम् ॥ १ ॥ परंब्रह्मयदाम्नातंनिष्प्रपञ्चंनिरात्मकम् ॥ निर्विकल्पंनिराकारमव्यक्तंस्थूलसूक्ष्मवत् ॥ २ ॥ तदेतत्क्षेत्रमापूर्यस्थितंसर्वगमप्यहो ॥ किमन्यत्रनशक्तोसौजन्तून्मोचयितुम्भवात् ॥ ३ ॥ भवोध्रुवंयदत्रैवमोचयेतंनिशामय ॥ महत्यायोगयुक्त्यावा

दोहा ॥ उनतालिस अध्यायमें वाराणसी वखान । अविमुक्तेश महात्म्य अरु दिवोदास आख्यान ॥ श्रीस्कन्दजी बोले कि, हे महाभाग, अगस्त्यजी ! मुक्ति संपत्ति कारिणी व पापहारिणी अविमुक्त क्षेत्रको भलीभांति आश्रय करनेवाली कथाको तुम सुनो ॥ १ ॥ जोकि दो भांति की देह से रहित व प्रपंचहीन व निर्भेद निराकार अव्यक्त और कार्य्य कारण रूप परब्रह्म वेदान्तमें जाना गयाहै ॥ २ ॥ वह सर्वग होकर भी इस क्षेत्रको सब ओर से पूरणकर टिकाहै यही आश्चर्य्य है क्या अन्यत्र जन्तुवों को संसारसे छुड़ावे को वह समर्थ नहीं है ॥ ३ ॥ परन्तु जिससे महादेवजी निश्चय से यहांहीं छुड़ाते हैं उस कारण को सुनो कि बड़ी योगयुक्ति व

निष्काम महादान ॥४॥ और अच्छी भारी तपस्यासेभी शिवजी अन्यत्र मुक्तिदेते हैं व बड़ी योगयुक्तिको नहीं व महान् दानोंको नहीं ॥ ५ ॥ और बहुत भारी तपस्याओं कोभी काशीमें मुक्तिके लिये शिवजी नहीं पार्थते हैं क्योंकि जो बड़ी पीड़ामे भी काशी से विलग नहीं होताहै ॥ ६ ॥ यही यहां महायोगहै और अन्ययोग उपयोगहै इससे नियमसे श्री विश्वनाथजी के लिये पत्र पुष्प फल जल ॥ ७ ॥ और अन्य जो कुछ मनकी सुवृत्ति से दियागया वह यहां महादानही है व मुक्तिमण्डपमें जो क्षणभर स्थिरता से टिका जाताहै ॥ ८ ॥ व श्रीगंगाजी के शुद्ध जलमें नहाकर यही यहां उत्तम तपस्या है और काशी में सत्कारकर भिक्षुकको जो भिक्षा सबओरसे दीजाती है इसकी

महादानैरकामिकैः ॥ ४ ॥ सुमहद्भिस्तपोभिर्वाशिवोन्यत्रविमोचयेत् ॥ योगयुक्तिंनमहतींनदानानिमहान्तिच ॥ ५ ॥ नतपांस्यतिदीर्घाणिकाश्याम्मुक्त्यैशिवोर्थयेत् ॥ विमुनक्तिनयत्काश्याउपसर्गेमहत्यपि ॥ ६ ॥ अयमेवमहायोगउपयोगस्त्विहापरः ॥ नियमेनतुविश्वेशेपुष्पम्पत्रंफलंजलम् ॥ ७ ॥ यद्दत्तंसुमनोवृत्त्यामहादानन्तदत्रवै ॥ मुक्तिमण्डपिकायांचक्षणंयत्स्थिरमास्यते ॥ ८ ॥ स्नात्वागङ्गामृतेशुद्धेतपएतदिहोत्तमम् ॥ सत्कृत्यभिक्षवेभिक्षायत्काश्याम्परिदीयते ॥ तुलापुरुषएतस्याःकलांनार्हतिषोडशीम् ॥ ९ ॥ हृदिसंचिन्त्यविश्वेशंक्षणंयद्विनिमील्यते ॥ देवस्यदक्षिणेभागेमहायोगोयमुत्तमः ॥ १० ॥ इदमेवतपोत्युग्रंयदिन्द्रियविलोलताम् ॥ निषिध्यस्थीयतेकाश्यांक्षुत्तापाद्यवमन्यच ॥ ११ ॥ मासिमासियदाप्येतव्रताच्चान्द्रायणात्फलम् ॥ अन्यत्रतदिहाप्येतभूतायांनक्तभोजनात् ॥ १२ ॥ मासोपवासादन्यत्रयत्फलंसमुपार्ज्यते ॥ श्रद्धयैकोपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम् ॥ १३ ॥ चातुर्मास्यव्रतात्प्रोक्तंयदन्यत्रमहाफलम् ॥

सोलहीं कलाकी समताके लिये तुला पुरुष दानभी समर्थ नहीं होसक्ताहै ॥ ९ ॥ व देवके दक्षिण भागमें बैठकर हृदयमें विश्वनाथ का ध्यानधर क्षणभर जो पलक ढांपी जातीहै यही यहां उत्तम महायोगहै ॥ १० ॥ व जोकि भूँख व प्यासको अनादरकर और इन्द्रियोंकी चञ्चलताको रोंककर काशीमें टिकाजाता है यही बड़ी घोर तपस्या है ॥ ११ ॥ और अन्यत्र चान्द्रायण व्रतसे मास मासमें जो फल मिले वह यहां चतुर्दशी मे रात्रिके भोजन से प्राप्तहोवै है ॥ १२ ॥ व अन्यत्र मासभर उपाससे जो फल भलीभांति बटोराजाता है वह काशीमे श्रद्धाकेसाथ एक उपास से निस्सन्देह होताहै ॥ १३ ॥ व अन्यत्र चातुर्मास्यव्रतसे जो महाफल कहागयाहै वह काशीमें एकादशी

के उपास से होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ व अन्यत्र छःमासतक अन्नत्यागनेसे जिस फलको पावै वह काशीमें शिवरात्रि के उपाससे निश्चयकर होवैहै ॥ १५ ॥ हे मुने ! अन्यत्र वर्षभर उपासोंको कर व्रतवाला जिस फलको पावै वह सम्पूर्ण फल काशीमें त्रिरात्रसे होवैहै ॥ १६ ॥ व अन्यत्र मास मासमें कुशका पानी पीने से जो फल होता है वह काशीमें उत्तरवाहिनी गङ्गाके एक चुल्लू जलसे मिलता है ॥ १७ ॥ इससे काशीकी अनन्त महिमा है उसके कहने को कौनसमर्थ है जहां मृत्युचाही जन्तुके दहिने कानमें जपनेवाले शिवजी विद्यमान हैं ॥ १८ ॥ और जहां शङ्करजी मरतेहुये देहधारी के कानमें किसी अक्षरको जपते हैं जिसको सुनकर मराहुआ भी मोक्षको

एकादश्युपवासेनतत्काश्यांस्यादसंशयम् ॥ १४ ॥ षण्मासान्नपरित्यागाद्यदन्यत्रफलंलभेत् ॥ शिवरात्र्युपवासेनतत्काश्याञ्जायतेध्रुवम् ॥ १५ ॥ वर्षंकृत्वोपवासानिलभेदन्यत्रयद्व्रती ॥ तत्फलंस्यात्रिरात्रेणकाश्यामविकलंमुने ॥ १६ ॥ मासिमासिकुशाग्राम्बुपानादन्यत्रयत्फलम् ॥ काश्यामुत्तरवाहिन्यामेकेनचुलुकेनतत् ॥ १७ ॥ अनन्तोमहिमाकाश्याःकस्तंवर्णयितुम्प्रभुः ॥ विपत्तिमिच्छतोजन्तोर्यत्रकर्णेजपःशिवः ॥ १८ ॥ शम्भुस्तत्किञ्चिदाचष्टेम्रियमाणस्यजन्मिनः ॥ कर्णेऽक्षरंयदाकर्ण्यमृतोप्यमृततांव्रजेत् ॥ १९ ॥ स्मारंस्मारंस्मररिपोःपुरींत्वमिवशङ्करः ॥ अद्युनोन्मन्दरंयातोबहुशस्तदवाप्तये ॥ २० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ स्वकार्यनिपुणैःस्वामिन्गीर्वाणैरतिदारुणैः ॥ त्याजितोहम्पुरीङ्काशींहरोत्याक्षीत्कुतःप्रभुः ॥ २१ ॥ पराधीनोहमिवकिन्देवदेवःपिनाकवान् ॥ काशिकांसोऽत्यजत्कस्मान्निर्वाणमणिराशिकाम् ॥ २२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मित्रावरुणसम्भूतकथयामिकथामिमाम् ॥ तत्याजचयथास्थाणुःकाशींविद्युपरोध

प्राप्तहोता है ॥ १९ ॥ हे अगस्त्यजी ! मन्दराचल को गयेहुये महादेवजी भी तुम्हारी नाईं शिवपुरी काशीको सुमिर सुमिरकर उसकी प्राप्तिके लिये बहुत खिन्नभये थे याने उपतप्त हुयेथे ॥ २० ॥ अगस्त्यजी बोले कि,हे स्वामिन् ! अपने कार्य्य में कुशल बड़े दारुण देवोंने मुझसे काशीका त्यागकराया और समर्थ शिवजीने उसको किस लिये त्यागाथा ॥ २१ ॥ क्या पिनाक धन्वावान् महादेवजी मेरे समान पराधीन हैं उन्होंने मुक्तिमणि राशीकाशी को क्यों त्यागाथा उस कारणको कहो ॥ २२ ॥

स्कन्दजी बोले कि, हे मित्रावरुण से उत्पन्न अगस्त्यमुने! जैसे महादेवने ब्रह्माकी प्रार्थनासे काशीको त्यागा है वसे मैं इस कथाको कहताहूं ॥ २३ ॥ हे मुने! जैसे परोपकार के लिये तुम देवोंसे प्रार्थेगयेहो वैसे अपने भक्तोंकी रक्षामें चतुर रुद्रजी भी ब्रह्मासे प्रार्थितहुये हैं ॥ २४ ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुख! वह ऐश्वर्य्य सम्पन्न व कृपाके समुद्र रुद्रजी कैसे व किस लिये ब्रह्मासे प्रार्थेगये हैं उसको तुम मुझसे कहो ॥२५॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि, हे विप्र! पूर्वकालमें जब पाद्मनामक कल्पवर्तमान था तब स्वायम्भुव मनुके अन्तरमें सब भूतोंके कंपानेवाली अनावृष्टि हुईथी ॥ २६ ॥ उस साठिवरस के सूखामे सम्पूर्ण प्राणी पीड़ितहुये थे व कोई समुद्रके किनारे

तः ॥ २३ ॥ प्रार्थितस्त्वंयथालेखैःपरोपकृतयेमुने ॥ द्रुहिणेनतथारुद्रःस्वरक्षणविचक्षणः ॥ २४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ कथंसभगवान्रुद्रोद्रुहिणेनकृपाम्बुधिः ॥ प्रार्थितोभूत्किमर्थञ्चतन्नोब्रूहिषडानन ॥ २५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ पाद्मेकल्पेपुरावृत्तेमनोःस्वायम्भुवेन्तरे ॥ अनावृष्टिरभूद्विप्रसर्वभूतप्रकम्पिनी ॥ २६ ॥ तयातुषष्टिहायिन्यापीडिताःप्राणिनोऽखिलाः ॥ केचिदम्बुधितीरेषुगिरिद्रोणीषुकेचन ॥ २७ ॥ महानिम्नेषुकच्छेषुमुनिवृत्त्याजनाःस्थिताः ॥ अरण्यान्यवनिर्जाताग्रामखर्वटवर्जिता ॥ २८ ॥ क्रव्यादाएवसर्वेषुनगरेषुपुरेषुच ॥ आसन्नभ्रंलिहोवृक्षाःसर्वत्रक्षोणिमण्डले ॥ २९ ॥ चौराएवमहाचौरैरुल्लुण्ठ्यन्तइतस्ततः॥मांसवृत्त्योपजीवन्तिप्राणिनःप्राणरक्षिणः॥ ३० ॥अराजकेसमुत्पन्नेलोकेऽत्याहितशंसिनि ॥ प्रयत्नोविफलस्त्वासीत्सृष्टेःसृष्टिकृतस्तदा ॥ ३१ ॥ चिन्तामवापमहतींजगद्योनिःप्रजाक्षयात ॥ प्रजासु

कोई पर्वतोंकी कन्दराओ में ॥ २७ ॥ व कोई बडेगहरे भूमिभागोंमें और कोई जन पर्वतोंके प्रान्तोंमें मुनियों की वृत्ति याने फल और मूलादि भोजन से टिके थे उस समयमें ग्राम और खर्वटों से हीनभई भूमि वन होगईथी जिसमें चारोवर्ण वसें वह ग्रामहै व जोकि ग्राम और नगरके बीचमें या नदी व पर्वतके किनारे में हो उस बस्तीको खर्बट कहते हैं ॥ २८ ॥ व नगर और पुरों में तब सब लोग मांस भक्षी होगये व सब ओर भूमिमण्डल में मेघपर्य्यन्त ऊंचे जे वृक्षभये थे वे भी सूखे खडे थे ॥ २९ ॥ व चोर भी ऐसी वैसी महाचोरों से लूटेजाते थे और प्राणोंकी रक्षा करतेहुये प्राणीसमूह मांस वृत्तिसे जीवते थे ॥ ३० ॥ और अतिशय अनिष्टसूचक व राजा से हीनहुये लोकमें तब ब्रह्माका सृष्टिके किये प्रयत्न विफल होगया ॥ ३१ ॥ व प्रजाओं के विनाशसे ब्रह्माजी बड़ी चिन्तनाको पहुंचे कि प्रजाओंका क्षय होतेही यज्ञा-

दिक क्रियायें क्षीण होगईं हैं ॥ ३२ ॥ और उनके घटतेही सब देवतालोग भी हीनहुयेहैं तदनन्तर चिन्ता करतेहुये विधाताने राजर्षि सत्तमको देखा ॥ ३३ ॥ जोकि अविमुक्तनामक महाक्षेत्रमें तपस्या करताहुवा मनुके वंशमें उत्पन्न व बड़ा वीर और अडोल इन्द्रियवाला होकर क्षत्रियों के धर्मकी नाईं उदित था ॥ ३४ ॥ और जोकि शत्रुपुरी के जीतनेवाला राजा रिपुञ्जय इस नामसे कहागया भया प्रसिद्ध था उसके पासमें जाकर अनन्तर ब्रह्माजीने गौरवपूर्वक ॥ ३५ ॥ वचनको कहा कि हे महामते रिपुञ्जय राजन् भूपाल! तुम समुद्रपर्वत और वनसमेत पृथिवी को पालो ॥ ३६ ॥ व नागोंका राजा वासुकी स्त्रीके अर्थ तुम्हारे लिये शील सम्पन्न अनंग मोहिनी नाम

क्षीयमाणासुक्षीणायज्ञादिकाःक्रियाः ॥ ३२ ॥ तासुक्षीणासुसंक्षीणाःसर्वेयज्ञभुजोऽभवन् ॥ ततश्चिन्तयतास्रष्ट्राहष्टो राजर्षिसत्तमः ॥ ३३ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेतपस्यन्निश्चलेन्द्रियः ॥ मनोरन्वयजोवीरःक्षात्रोधर्मइवोदितः ॥ ३४ ॥ रिपुञ्जयइतिख्यातोराजापरपुरञ्जयः ॥ अथब्रह्मातमासाद्यबहुगौरवपूर्वकम् ॥ ३५ ॥ उवाचवचनंराजन्रिपुञ्जयमहामते ॥ इलां पालयभूपालससमुद्राद्रिकाननाम् ॥ ३६ ॥ नागकन्यांनागराजःपत्न्यर्थन्तेप्रदास्यति ॥ अनङ्गमोहिनींनाम्नावासुकिः शीलभूषणाम् ॥ ३७ ॥ दिवोपिदेवादास्यन्तिरत्नानिकुसुमानिच ॥ प्रजापालनसन्तुष्टामहाराजप्रतिक्षणम् ॥ ३८ ॥ दिवोदासइतिख्यातमतोनामत्वमाप्स्यसि ॥ मत्प्रभावाच्चनृपतेदिव्यंसामर्थ्यमस्तुते ॥ ३९ ॥ परमेष्ठिवचःश्रुत्वाततो सौराजसत्तमः ॥ वेधसंबहुशःस्तुत्वावाक्यंचेदमुवाचह ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ पितामहमहाप्राज्ञजनाकीर्णेमहीतले ॥ कथंनान्येचराजानोमांकथंकथ्यतेत्वया ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वयिराज्यंप्रकुर्वाणेदेवोवृष्टिंविधास्यति ॥ पापनिष्ठेचवैश

नाग कन्या को देवेगा ॥ ३७ ॥ हे महाराज! प्रतिक्षण प्रजापालन से संतुष्ट देवता लोग भी स्वर्ग से रत्न और फूलों को देवेंगे ॥ ३८ ॥ हे नरेश! इससे तुम दिवोदास इस नामको प्राप्त होवोगे और हमारी प्रसन्नता से तुम्हारी दिव्यशक्ति (सामर्थ्य) होवेगी ॥ ३९ ॥ तदनन्तर विधाताका वचन सुनकर उस राजसत्तमने ब्रह्माजी की बहुत स्तुतिकर हर्पसे इस वाक्यकोकहा ॥ ४० ॥ राजा बोला कि, हे महाप्राज्ञ, पितामह! जनोंसे युक्त भूमण्डलमें क्या अन्य राजा लोग नहीहैं और आपकरके मुझसे

ज्ञिनदेवोवर्षतेपुनः ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ पितामहमहामान्यत्रिलोकीकरणक्षम ॥ महाप्रसादइत्याज्ञांत्वदीयांमूर्ध्न्युपा
ददे ॥ ४३ ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोहंतन्मदर्थङ्करोपिचेत् ॥ ततःकरोम्यहंराज्यंपृथिव्यामसपत्नवत् ॥ ४४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥
अविलम्बेनतद्ब्रूहिकृतंमन्यस्वपार्थिव ॥ यत्तेहृदिमहाबाहोतवादेयंनकिञ्चन ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ यद्यहंपृथिवीनाथः
सर्वलोकपितामह ॥ तदादिविपदोदेवादिवितिष्ठन्तुमाभुवि ॥ ४६ ॥ देवेषुदिवितिष्ठत्सुमयितिष्ठतिभूतले ॥ असपत्नेन
राज्येनप्रजासौख्यमवाप्स्यति ॥ ४७ ॥ तथेतिविश्वसृक्प्रोक्तोदिवोदासोनरेश्वरः ॥ पटहङ्घोषयाञ्चक्रेदिवन्देवाव्रज
न्त्विति ॥ ४८ ॥ मागच्छन्त्विहवैनागानराःस्वस्थाभवन्त्वितः ॥ मयिप्रशासतिक्षोणींसुराःस्वस्थाभवन्त्विति ॥ ४९ ॥
एतस्मिन्नन्तरेब्रह्माविश्वेशम्प्रणिपत्यह ॥ यावद्विज्ञप्तुकामोभूत्तावदीशोब्रवीद्विधिम् ॥ ५० ॥ लोकेश्वरसमायाहिमन्द
रोनामभूधरः ॥ कुशद्वीपादिहागत्यतपस्तप्यतेदुष्करम् ॥ ५१ ॥ यावत्तस्मैवरन्दातुंवहुकालंतपस्यते ॥ इत्युक्त्वापा

किस लिये कहा जाताहै ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, पापनिष्ठ राजाके होतेही देव फिर नहीं बरसता है व जब तुम राज्य करोगे तब देव बरसा को करेगा ॥ ४२ ॥ राजा बोला कि, हे त्रिलोक रचने में समर्थ,महामान्य,पितामह ! यह आपका महाप्रसादहै इससे मैं आपकी आज्ञाको शिरमें लेताहूं ॥ ४३ ॥ परन्तु मैं कुछ विज्ञापना करनेको चाहीहूं जो आप उस मेरे अर्थको करो तो मैं भूमें अकण्टक राज्यको करूं ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे महाबाहो, राजन् ! जो तुम्हारे मनमें है उसको शीघ्रही कहो और कियाहुवा मानो क्योंकि तुमको कुछ भी अदेय नहींहै ॥ ४५ ॥ राजा बोला, कि हे सर्वलोक पितामह ! जो मैं भूपालहूं तो स्वर्गवासी देवलोग स्वर्ग में टिकें भूमिमें मत आवें ॥ ४६ ॥ जब देवलोग स्वर्ग में बसेंगे और मैं भूतल में टिकोंगा तब अकंटक राज्यसे प्रजासमूह भी सौख्यको प्राप्त होवेगा ॥ ४७ ॥ और वैसे होवे ऐसे ब्रह्माके कहेहुये दिवोदास नरेशने देशमें ऐसे ढक्काको बजवाया कि देवतालोग स्वर्गकोजावें ॥४८॥ और नाग भी यहां मतआवें क्योंकि भूमिमें मेरे राज्य करतेही इस लोकमें मनुष्य स्वस्थ होवें व स्वर्गवासी देव और ऐसेही पातालवासी नाग भी स्वस्थ होवें ॥ ४९ ॥ इसी अन्तर में आनन्द से विश्वनाथके प्रणामकर ब्रह्माजी जबतक विज्ञापना करने की इच्छावाले हुये तबतक महेशजीने ब्रह्माजी से कहा कि ॥ ५० ॥ हे लोकेश्वर ! तुम भलीभांति से आवो क्योंकि मंदरनामक पर्वत कुशद्वीपसे यहां आकर बड़ी

दुष्कर तपस्याको करता है ॥ ५१ ॥ इससे बहुत कालसे तप करतेहुये उसके लिये यथावत् वर देने योग्यहै इस भांतिसे कहकर नंदी और भृंगी आदि गणों के आगे चलनेवाले पार्वतीके नाथ ॥ ५२ ॥ बैलपर चढ़कर तहांगये जहां मंदराचल टिका था और देवोंके देव वृषध्वज महादेवजी प्रसन्न मन होकर बोले ॥ ५३ ॥ कि, हे पर्वतोत्तम ! तुम उठो उठो तुम्हारा कल्याण होवे व वाञ्छित वरको मांगो तदनन्तर त्रिनेत्र देव देवको सुनकर उस ॥ ५४ ॥ पर्वतने बहुतसे प्रणामकर यह विज्ञापना किया कि, हे लीलाशरीरधर, प्रणतों के लिये मुख्य कृपानिधान शंकर ॥ ५५ ॥ हे सब वृत्तान्तों के पण्डित शरणागतरक्षक ! सर्वज्ञ नामसे प्रसिद्ध भी आप मेरे मनो-

र्वतीनाथोनन्दिभृङ्गिपुरोगमः ॥ ५२ ॥ जगामवृषमारुह्यमन्दरोयत्रतिष्ठति ॥ उवाचचप्रसन्नात्मादेवदेवोवृषध्वजः ॥ ५३ ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्तेवरम्ब्रूहिधरोत्तम ॥ सोथश्रुत्वामहेशानंदेवदेवंत्रिलोचनम् ॥ ५४ ॥ प्रणम्यबहुशोभूमाद्रिरेतद्व्यजिज्ञपत् ॥ लीलाविग्रहभृच्छम्भोप्रणतैककृपानिधे ॥ ५५ ॥ सर्वज्ञोपिकथंनामनवेत्थममवाञ्छितम् ॥ शरणागतसन्त्राणसर्ववृत्तान्तकोविद ॥ ५६ ॥ सर्वेषांहृदयानन्दशर्वसर्वगसर्वकृत् ॥ यदिदेयोवरोमह्यंस्वभावाद्दृषदात्मने ॥५७॥ याचकायातिशोच्यायप्रणतार्तिप्रभञ्जक ॥ ततोऽविमुक्तक्षेत्रस्यसाम्यंह्यभिलषाम्यहम् ॥ ५८ ॥ कुशद्वीपउमासार्धंनाथाद्यसपरिच्छदः ॥ मन्मौलौविहितावासःप्रयात्वेषवरोमम ॥ ५९ ॥ सर्वेषांसर्वदःशम्भुःक्षणंयावद्विचिन्तयेत् ॥ विज्ञातावसरोब्रह्मातावच्छम्भुंव्यजिज्ञपत् ॥ प्रणम्याग्रेसरोभूत्वामौलौबद्धकरद्वयः ॥ ६० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ विश्वेश

रथको कैसे नहीं जानतेहो ॥ ५६ ॥ हे सर्वगत सर्वकृत सबके हृदयके आनन्ददायक पार्वतीनायक ! जो स्वभावसेही जड़ पत्थररूप मेरेलिये वर देने योग्यहै ॥ ५७ ॥ तो हे भक्तार्त्तिभंजन ! जोकि मैं अतिशय शोचने योग्य याचकहूं वह मैं काशी की समताको चाहताहूं ॥ ५८ ॥ हे नाथ ! यही मेरा वरदान लेनाहै कि पार्वती के साथ सब सामग्री समेत आप मेरे माथपर निवास करनेवाले होकर आज कुशद्वीप को चलो ॥ ५९ ॥ ऐसा सुनकर सबके सब कुछ देनेवारे शंकरजी जबतक क्षणभर विचार करनेलगे तबतक जानागयाहै अवसर जिनकरके उन ब्रह्माने विज्ञापना किया जोकि अग्रगामी होकर प्रणामकर माथमें दोनों हाथ जोड़ेहुये खड़े थे वह ॥ ६० ॥

श्रीब्रह्माजी बोले, कि हे विश्वेश्वर, जगन्नाथ विभो! प्रसन्नहुये स्वामी से मैं चार भांतिकी सृष्टिकरनेको व्यापार कराया गयाहूं ॥ ६१ ॥ इससे आपकी आज्ञासे मैंने यत्नपूर्वक जिस सृष्टिको सिरजाहै वह साठि वर्षकी अनावृष्टि से प्रजाओं से हीनहोकर उस भूमिमें नष्ट होगई है ॥ ६२ ॥ और विना राजाका यह जगत् बहुतही दुःस्थित हुवाहै उससे मनुवंश में उत्पन्न रिपुञ्जयनामक ॥ ६३ ॥ राजर्षिको प्रजापालने के लिये मैंने अभिषेक कियाहै और उस महा तपस्वी, बड़े वीर्य्यवान्ने भी समय कियाहै ॥ ६४ ॥ कि जो तुम्हारी आज्ञासे सब देवता स्वर्ग में तथा नाग भी पाताल मे टिकेंगे तो मैं राज्यको करूंगा ॥ ६५ ॥ और वैरो होगा यह वह मेरा कहाहुवा वचन प्रमाण

जगतांनाथपत्याऽव्यापारितोस्म्यहम् ॥ कृतप्रसादेनविभोसृष्टिङ्कर्तुञ्चतुर्विधाम् ॥ ६१ ॥ प्रयत्नेनमयासृष्टासासृष्टिस्त्वदनुज्ञया ॥ अवृष्ट्याषष्टिहायिन्यातत्रनष्टाऽप्रजाभुवि ॥ ६२ ॥ अराजकंमहच्चासीद्दुरवस्थमभूज्जगत् ॥ ततोरिपुञ्जयोनामराजर्षिर्मनुवंशजः ॥ ६३ ॥ मयाभिषिक्तोराजर्षिःप्रजाःपातुंनरेश्वरः ॥ चकारसमयंसोपिमहावीर्योमहातपाः ॥६४॥ तवाज्ञयाचेत्स्थास्यन्तिसर्वेदिविषदोदिवि ॥ नागलोकेतथानागास्ततोराज्यंकरोम्यहम् ॥ ६५ ॥ तथेतिचमयाप्रोक्तंप्रमाणीक्रियतान्तुतत् ॥ मन्दरायवरोदत्तोभवेदेवंकृपानिधे ॥ ६६ ॥ तस्यराज्ञःप्रजास्त्रातुम्भूयाच्चैषमनोरथः ॥ ममनाडीद्वयंराज्यंतस्यापिचशतक्रतोः ॥ ६७ ॥ मर्त्यानाङ्गणनाकेहनिमेषार्धनिमेषिणाम् ॥ देवोपिनिर्मलंमत्वामन्दरञ्चारुकन्दरम् ॥ ६८ ॥ विधेश्चगौरवंरक्षंस्तथोरीकृतवान्हरः ॥ जम्बूद्वीपेयथाकाशीनिर्वाणपददासदा ॥ ६९ ॥ तथाबहुतिथंकालंद्वीपोभूत्सोपिमन्दरः ॥ यियासुनाचदेवेनमन्दरञ्चित्रकन्दरम् ॥ ७० ॥ निजमूर्तिमयंलिङ्गमविज्ञातंविधेरपि ॥

कियाजावे हे कृपानिधान! आपने भी मन्दराचलको वरदान दियाहै इससे ऐसेही होवे अर्थात् देव शिरोमणि आप भी इस समय काशी को छोंड़कर मन्दर पर्वतपर कुशद्वीप मे निवासकरो ॥ ६६ ॥ तब प्रजापालने के लिये उस राजाका यह मनोरथ भी सिद्ध होजावेगा व मेरे दो दण्डतक उस इन्द्रकी राज्य रहेगी ॥ ६७ ॥ और इस लोकमे आधे निमेष पर्य्यंत पलक भांजनेवाले मनुष्यों की गणना कहांहै तब मन्दराचलको सुन्दर कन्दरावाला मानकर महादेव भी ॥ ६८ ॥ जोकि भक्तोंकी भवभीति को हरते हैं वह ब्रह्माकी गुरुताको राखतेहुये वैसेही अगीकार करते भये व जैसे जम्बूद्वीप मे काशीपुरी सदा मोक्षदाहै ॥ ६९ ॥ वैसे बहुत कालतक वह मन्दराचल

और कुशद्वीप भी मुक्तिदाता होगया परन्तु विचित्र कन्दरावाले मन्दराचलमें जाना चाहतेहुये महादेवजीने ॥ ७० ॥ जोकि ब्रह्माका भी न जाना था उस अपने मूर्तिमय लिंगको काशीमें स्थापित किया क्योंकि भक्तोंको सब सिद्धि देनेके लिये ॥ ७१ ॥ व मरे जन्तुवों को मुक्ति सम्पत्ति देने के लिये व यहां टिके सब सदाचारियों और क्षेत्रकी रक्षाकरने के लिये यह लिंग थापा गयाहै ॥ ७२ ॥ व जिससे मन्दराचलको गये भी महादेवने लिंगरूप से इस क्षेत्रको नहीं त्यागा इससे यह अविमुक्त नामसे कहाजाताहै ॥ ७३ ॥ आगे यह क्षेत्र आनन्दवन नाम कहागया था परन्तु तबसे लगाकर पृथिवी में इसका अविमुक्त नाम प्रसिद्धहै ॥७४॥ इस भांतिसे क्षेत्र और लिंगका

स्थापितंसर्वसिद्धीनांस्थापकेभ्यःसमर्पितुम् ॥ ७१ ॥ विपन्नानाञ्चजन्तूनांदातुंनैःश्रेयसींश्रियम् ॥ सर्वेषामिहसंस्थानां क्षेत्रंचैवाभिरक्षितुम् ॥ ७२ ॥ मन्दराद्रिङ्गतेनापिक्षेत्रंनैतत्पिनाकिना ॥ विमुक्तंलिङ्गरूपेणअविमुक्तमतःस्मृतम् ॥ ७३ ॥ पुरानन्दवनंनामक्षेत्रमेतत्प्रकीर्तितम् ॥ अविमुक्तंतदारभ्यनामास्यप्रथितम्भुवि ॥ ७४ ॥ नामाविमुक्तमभवदुभयोःक्षेत्रलिङ्गयोः ॥ एतद्द्वयंसमासाद्यनभूयोगर्भभाग्भवेत् ॥७५॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वाक्षेत्रेऽविमुक्तके ॥ विमुक्तएवभवतिसर्वस्मात्कर्मबन्धनात् ॥७६॥ अर्चन्तिविश्वेविश्वेशंविश्वेशोर्चतिविश्वकृत्॥अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंभुविमुक्तिप्रदायकम् ॥ ७७ ॥ पुरानस्थापितंलिङ्गंकस्यचित्केनचित्कचित् ॥ किमाकृतिभवेल्लिङ्गंनैतद्वेत्त्यपिकश्चन ॥ ७८ ॥ आकारमविमुक्तस्यदृष्ट्वाब्रह्माच्युतादयः ॥ लिङ्गंसंस्थापयामासुर्वसिष्ठाद्यास्तथर्षयः ॥ ७९ ॥ आदिलिङ्गमिदम्प्रोक्तमविमुक्तेश्वर

भी अविमुक्त नाम भयाहै इससे इन दोनोंके पासमें पहुंचकर फिर गर्भसेवी न होवे ॥ ७५ ॥ जिससे अविमुक्त क्षेत्र याने काशीमें अविमुक्तेश्वरके दर्शनकर सबकर्मबन्धन से विमुक्तही होताहै ॥ ७६ ॥ व सबलोग विश्वनाथको पूजते हैं और जगत्कर्त्ता विश्वनाथजी भूमिमें मुक्तिदायक अविमुक्तेश्वरनामक लिंगको पूजते हैं ॥ ७७ ॥ किन्तु पहले किसीकरके किसीका कोई लिंग नहीं थापागया और यह भी न कोई जानता था कि वह लिंग किसआकारका होताहै ॥ ७८ ॥ परन्तु अविमुक्तेश्वरके आकारको देखकर ब्रह्मा विष्णु और वसिष्ठादि ऋषियोंने भी लिंगोंका स्थापन कियाहै ॥ ७९ ॥ इससे सबसे बड़ा यह अविमुक्तेश्वरनामक लिंग आदि लिंग कहागयाहै

उसके बाद भूमण्डलमें अन्य अनेक लिंग प्रकट हुयेहैं ॥ ८० ॥ और अविमुक्तेश्वरका नाम भी सुनकर मनुष्य क्षणभरमें जन्मके कमाये पापसे विमुक्त होवेहै इसमें वि-चारणा न करना चाहिये ॥ ८१ ॥ व दूर देशवासी भी काशीमें अविमुक्तेश्वर लिंगका स्मरणकर क्षणभर में दो जन्मके किये पापसे छूटजाताहै ॥ ८२ ॥ व अविमुक्तनामक महाक्षेत्रमें अविमुक्तेश्वरको देखकर तीन जन्मों के उत्पन्न पापको त्यागकर पुण्यमय होताहै ॥ ८३ ॥ व ज्ञानके नाशसे पांच जन्मोंमें जो पाप कियागयाहै वह अविमु-क्तेश्वरके संस्पर्श से नष्ट होवे है यह अन्यथा नहीं है ॥ ८४ ॥ व अविमुक्तेश्वर महालिंगकी पूजाकर मनुष्यकृतार्थ होवे और फिर इस संसारमें जन्मधारी कभी न हो-

स्महत् ॥ ततोलिङ्गान्तराण्यत्रजातानिक्षितिमण्डले ॥ ८० ॥ अविमुक्तेशनामापिश्रुत्वाजन्मार्जितादघात् ॥ क्षणान्मुक्तोभवेन्मर्त्योनात्रकार्याविचारणा ॥ ८१ ॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गंस्मृत्वादूरगतोपिच ॥ जन्मद्वयकृतात्पापात्क्षणादेवविमुच्यते ॥ ८२ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेऽविमुक्तमवलोक्यच ॥ त्रिजन्मजनितंपापंहित्वापुण्यमयोभवेत् ॥ ८३ ॥ यत्कृतंज्ञानविभ्रंशादेनःपञ्चसुजन्मसु ॥ अविमुक्तेशसंस्पर्शात्तत्क्षयेदेवनान्यथा ॥ ८४ ॥ अर्चयित्वामहालिङ्गमविमुक्तेश्वरंनरः ॥ कृतकृत्योभवेदत्रनचस्याज्जन्मभाक्पुनः ॥ ८५ ॥ स्तुत्वानत्वार्चयित्वाचयथाशक्तियथामति ॥ अविमुक्तेविमुक्तेशंस्तूयतेनम्यतेऽर्च्यते ॥ ८६ ॥ अनादिमदिदंलिङ्गंस्वयंविश्वेश्वरार्चितम् ॥ काश्याम्प्रयत्नतःसेव्यमविमुक्तंविमुक्तये ॥ ८७ ॥ सन्तिलिङ्गान्यनेकानिपुण्येष्वायतनेषुच ॥ आयान्तितानिलिङ्गानिमाघींप्राप्यचतुर्दशीम् ॥ ८८ ॥ कृष्णायांमाघभूतायामविमुक्तेशजागरात् ॥ सदाविगतनिद्रस्ययोगिनोगतिभाग्भवेत् ॥ ८९ ॥ नानायतनलिङ्गानिच

गा ॥८५॥ व यथाशक्ति यथामति याने अपनी शक्ति और बुद्धिके अनुसार काशीमें अविमुक्तेश्वरकीस्तुतिकर व नमस्कारकर व पूजाकर लोकमें प्रशंसाजाता व प्रणमाजाता और पूजाजाताहै ॥ ८६ ॥ जोकि स्वयं विश्वनाथसे पूजित अविमुक्तेश्वरनामक यह अनादिवाला लिंग काशीमें है वह मोक्षके लिये प्रयत्न से सेवने योग्यहै ॥८७॥ व जे अनेक लिंग पुण्य स्थानों में हैं वे सब लिंग माघकी चतुर्दशीको प्राप्तहोकर इसमेंही आते हैं ॥ ८८ ॥ इससे यहां मनुष्य माघबदी चतुर्दशी में जागरण करने से सदा जागतेहुये योगीकी गतिका भागी होताहै ॥८९॥ क्योंकि अर्थ धर्म काम और मोक्ष नामक चतुर्वर्गदायक भी अनेक स्थानोंके लिंग माघबदी चतुर्दशी में अविमुक्तेश्वर की

उपासना करते हैं ॥ ९० ॥ और जो धीर मनुष्य अविमुक्तेश्वर लिंगकी भक्तिरूप वज्रको धरताहै तो पाप पर्वत से क्यों डरता है ॥ ९१ ॥ कहां चतुर्वर्ग फलके उदय करनेवाला अविमुक्तेश्वर महालिंग और कहां बहुत थोड़ा पापीका पाप पर्वत याने उसके आगे यह क्याहै जोकि नाम स्मरण सेही नष्ट होजाताहै ॥ ९२ ॥ जोकि अविमुक्तेश्वरनामक उत्तम लिंग काशी मे विश्वनाथ से अधिक होकर टिकाहै उसको जिन्होंने नहीं देखा वे विशेष मूढ़हैं ॥ ९३ ॥ व अविमुक्तेश्वरके दर्शनकर्त्ता को देखकर दोनों हाथ जोड़े दण्डधारी यमराजजी दूरसेही प्रणाम करते हैं ॥९४॥ और जो जिनसे अविमुक्तेश्वरको देखता है व जिनसे छूताहै उसके उन नेत्रोंका निर्माण धन्यहै और वे

तुर्वर्गप्रदान्यपि ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यामविमुक्तमुपासते ॥ ९० ॥ किंबिभेतिनरोधीरः कृतादघशिलोच्चयात् ॥ अविमुक्तेशलिङ्गस्यभक्तिवज्रधरोयदि ॥ ९१ ॥ क्वाविमुक्तंमहालिङ्गंचतुर्वर्गफलोदयम् ॥ क्वपापिपापशैलोऽल्पोयःक्षयेन्नाम्निसंस्मृते ॥ ९२ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेविश्वेशसमधिष्ठिते ॥ यैर्नदृष्टंविमूढास्तेऽविमुक्तंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ९३ ॥ द्रष्टारमविमुक्तस्यदृष्ट्वादण्डधरोयमः ॥ दूरादेवप्रणमतिप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ९४ ॥ धन्यन्तन्नेत्रनिर्माणंकृतकृत्यौतुतौकरौ ॥ अविमुक्तेश्वरंयेनयाभ्यामैक्षिष्टयःस्पृशेत् ॥ ९५ ॥ त्रिसन्ध्यमविमुक्तेशंयोजपेन्नियतःशुचिः ॥ दूरदेशविपन्नोपिकाशीमृतफलंलभेत् ॥ ९६ ॥ अविमुक्तंमहालिङ्गंदृष्ट्वाग्रामान्तरंव्रजेत् ॥ लब्ध्वाशुकार्यसंसिद्धिंक्षेमेणप्रविशेद्गृहम् ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽविमुक्तेशाविर्भावोनामैकोनचत्वारिंशोध्यायः ॥ ३९ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ अविमुक्तेशमाहात्म्यंवर्णितन्तेग्रतोमया ॥ अथोकिमसिशुश्रूषुःकथयिष्यामितत्पुनः ॥ १ ॥ अगस्त्य

हाथ भी कृतार्थ हैं ॥ ९५ ॥ जोकि नियमवाला पवित्र मनुष्य तीनों सन्ध्याओं में अविमुक्तेश्वरको जपे वह दूर देशमें मराहुवा भी काशी में मरेका फल पावे ॥ ९६ ॥ और जो अविमुक्तेश्वरं महालिंगका दर्शनकर दूसरे ग्रामकोजावे तो शीघ्रही कार्य्य की सिद्धि पाकर कुशल से आकर अपने घरमें प्रवेशकरे ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितअविमुक्तेश्वरलिंगप्रादुर्भावोनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चालिसयें अध्यायमें बुद्धि शुद्धि मिति मानि। विधि निषेध गोचर गृही धर्म निरूपण जानि ॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि मैंने तुम्हारे आगे अविमुक्तेश्वरके माहात्म्य को

कहा अब क्या सुना चाहतेहो उसको फिर कहूंगा ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले कि मेरे कान अविमुक्तेशकी महिमाको सुन सुनकर शोभन श्रवणवाले हुये तो भी मैं तृप्त नहीं होताहूँ ॥ २ ॥ हे षण्मुख! अविमुक्तेश्वर लिंग और काशी क्षेत्र इन दोनों की प्राप्ति कैसे होतीहै उसको कहो ॥ ३ ॥ स्कन्दजी बोले कि हे महामते अगस्त्य! जैसे इस लोकमें मुक्तिदाता इस अविमुक्तकी प्राप्ति होवे वैसे मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ ४ ॥ हे विप्र! पापसमूह से वाञ्छित अर्थकी सिद्धि मिलती है और वह पुण्य वेद मार्गके सेवनसे होतीहै ॥ ५ ॥ हे मुने! सदा पापके अवसर को प्राप्त होकर जोकि कलि और काल ये दोनों प्राणियोंको नाशना चाहते हैं वे वेदमार्ग सेवी पुरुषके संस्पर्श से नष्ट

उवाच ॥ अविमुक्तेशमाहात्म्यंश्रावंश्रावंश्रुतीमम ॥ अतीवसुश्रुतेजातेतथापिनधिनोम्यहम् ॥ २ ॥ अविमुक्तेश्वरंलिङ्गं क्षेत्रंचाप्यविमुक्तकम् ॥ एतयोस्तुकथंप्राप्तिर्भवेत्षण्मुखतद्वद ॥ ३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृणुकुम्भजवक्ष्यामियथाप्राप्तिर्भवेदिह ॥ स्वश्रेयोदातुरेतस्याविमुक्तस्यमहामते ॥ ४ ॥ समीहितार्थसंसिद्धिर्लभ्यतेपुण्यभारतः ॥ तच्चपुण्यम्भवेद्विप्रश्रुतिवर्त्मसभाजनात् ॥ ५ ॥ श्रुतिवर्त्मजुषःपुंसःसंस्पर्शान्नश्यतोमुने॥कलिकालावपिसदाछिद्रंप्राप्यजिघांसतः ॥ ६॥ वर्जितस्यविधानेनप्रोक्तस्याकरणेनवै ॥ कलिकालावपिहतोब्राह्मणंरन्ध्रदर्शनात् ॥ ७ ॥ निषिद्धाचरणन्तस्मात्कथयिष्येतवाग्रतः ॥ तद्दूरतःपरित्यज्यनरोननिरयीभवेत् ॥ ८ ॥ पलाण्डुंविड्वराहञ्चशेलुंलशुनगृञ्जने ॥ गोपीयूषन्तण्डुलीयंवर्ज्यञ्चकवकंसदा ॥९॥ व्रश्चनान्वृक्षनिर्यासान्पायसापूपशष्कुलीः ॥ अदेवपित्र्यंपललमवत्सागोपयस्त्यजेत् ॥ १० ॥ पयएकशफंहेयंतथाक्रामेलकाविकम् ॥ रात्रौनदधिभोक्तव्यंदिवाननवनीतकम् ॥ ११॥ टिट्टिभङ्कलविङ्कञ्चहंसं

होजाते हैं ॥ ६ ॥ व निषिद्ध कर्मके करने और वेदोक्तके न करनेसेही छिद्र देखनेसे कलि और काल भी ये दोनों ब्राह्मणको नाशते हैं ॥ ७ ॥ उससे आपके आगे निषिद्ध आचरणको कहताहूं जिससे उसको दूरसे त्यागकर मनुष्य नरकवासी न होवे ॥ ८ ॥ प्याज ग्राम सूकर लसोढ़ाका फल लहसुन गाजर व दश दिनके भीतर में ब्यानी गऊका दूध व विष्ठामें उपजी चौराई और धरतीका फूल सदा सबको बराना चाहिये ॥ ९ ॥ व छेदने से उपजी वृक्षोंकी गाद व देवता और पितरो के लिये समर्पे विना खीर पुवा सुहारी व मांस और विना बछड़ेकी गऊके दूधको भी त्यागदेवे ॥ १० ॥ एक खुरके पशुका तथा ऊंटका व भेड़का दूध बराने योग्यहै व दिनमें नैनू

और रातमेंदही न खाना चाहिये ॥११॥ टिटिहिरी गरगैया हंस चकवा जल मुरगा बगुला सारस मुरगा सुवा और मांस भक्षी सब पक्षीसमूहों को भी त्याग देवे ॥ १२ ॥ व बत्तख आदि हंस विशेष खञ्जन और बुड़ी मारकर मछली खानेवाले पक्षियों को त्यागे व जिससे मत्स्यभक्षी सब मांस खानेवाला होताहै उससे मछलियों को भी सर्वथा त्यागदेवे ॥ १३॥ व देवता और पितरोंके अन्तमें विहित पढ़िना व रोहू मछलियां खाने योग्य होतीहैं व शशा साही और कच्छप ये मांस भक्षियों से खाने योग्य हैं ॥ १४ ॥ साही व चन्दन गोह व जानेहुये मृग और पक्षी भी प्रशस्तहैं परन्तु आयु चाही और स्वर्ग चाही लोगोंकरके प्रयत्न से मांसखाना त्यागने योग्यहै अर्थात

चक्रंप्लवम्बकम् ॥ त्यजेन्मांसाशिनःसर्वान्सारसंकुक्कुटंशुकम् ॥ १२ ॥ जालपादान्खञ्जरीटान्बुडित्वामत्स्यभक्षका न् ॥ मत्स्याशीसर्वमांसाशीतन्मत्स्यान्सर्वथात्यजेत् ॥ १३ ॥ हव्यकव्यनियुक्तौतुभक्ष्यौपाठीनरोहितौ ॥ मांसाशि भिस्त्वमीभक्ष्याःशशशल्लककच्छपाः ॥ १४॥ श्वाविद्गोधेप्रशस्तेचज्ञाताश्चमृगपक्षिणः॥आयुष्कामैःस्वर्गकामैस्त्या ज्यंमांसम्प्रयत्नतः ॥ १५ ॥ यज्ञार्थंपशुहिंसायासास्वर्ग्यानेतराक्वचित्॥ त्यजेत्पर्युषितंसर्वमखण्डस्नेहवर्जितम्॥१६॥ प्राणात्ययेक्रतौश्राद्धेभेषजेविप्रकाम्यया ॥ अलौल्यमित्थंपललम्भक्षयन्नैवदोषभाक् ॥ १७॥ नतादृशम्भवेत्पापंमृग यावृत्तिकाङ्क्षिणः ॥ यादृशम्भवतिप्रेत्यलौल्यान्मांसोपसेविनः ॥ १८ ॥ मखार्थम्ब्रह्मणासृष्टाःपशुद्रुममृगौषधीः ॥ निघ्नन्नहिंसकोविप्रस्तासामपिशुभागतिः ॥ १९ ॥ पितृदेवक्रतुक्तेमधुपर्कार्थमेवच ॥ तत्रहिंसाप्यहिंसास्याद्धिंसान्य

मांसभक्षी की आयु घटजाती है व स्वर्ग में उसका बास नहीं होताहै ॥ १५ ॥ और जोकि यज्ञके अर्थ पशुहिंसा है वह स्वर्ग के लिये होतीहै व अन्य हिंसा स्वर्ग देने-वाली कहीं नहीं है इससे उसको त्यागना चाहिये व सब बासी और निःशेष निरस अन्नको भी त्याग देवे ॥ १६ ॥ प्राणसंकट यज्ञ श्राद्ध और औषधमें व ब्राह्मण की इच्छा से व अलोभ होकर इस भांतिसे मांस खाताहुवा दोषसेवी नहीं होताहै ॥ १७ ॥ व इन्द्रियों की चंचलता से मांससेवीका जैसा पाप मरने के बाद होताहै वैसा शिकारकी वृत्तिके चाहीका भी नहीं होवे है ॥ १८ ॥ ब्रह्माजीने यज्ञों के लिये पशु वृक्ष मृग और ओषधियोंको सिरजाहै इससे यज्ञादिकों में बलि देताहुवा ब्राह्मण अहिंसकहै और उनकी भी शुभगति होतीहै ॥ १९ ॥ देव व पितरों की यज्ञके लिये और मधुपर्क के अर्थही हिंसा भी वहां अहिंसाहै व अन्यत्र हिंसा दुस्तर

होवे है ॥ २० ॥ व जो अज्ञानी अपनी देह पोषनेकेअर्थ जन्तुओंको मारताहै उस दुष्टका इस उसलोकमें भी सुख कहीं नहींहै ॥ २१ ॥ जो खाताहै जो अनुमति देताहै जो पकाता है जो मोल लेताहै जो बेचताहै जो मारताहै जो परोसता है और जो मरवाताहै ये आठप्रकारके हिंसक कहेगये हैं ॥ २२ ॥ जोकि सौ बर्षतक प्रति संबत् में अश्वमेध से पूजाकरे और जो मांस न खाता होवे उन दोनों में से अन्नवाला मांस त्यागी मनुष्यही विशेष होताहै ॥ २३ ॥ इससे सुख चाही करके अपने समान दूसरा भी देखने योग्यहै क्योंकि जैसे अपना में वैसे अन्य में भी सुख और दुख बराबर होतेहैं ॥ २४ ॥ व सुख अथवा अन्य दुख जो कुछ अन्य में कियाजाता है वह सब

त्रसुदुस्तरा ॥ २० ॥ योजन्तूनात्मपुष्ट्यर्थंहिनस्तिज्ञानदुर्बलः ॥ दुराचारस्यतस्येहनामुत्रापिसुखंक्वचित् ॥ २१ ॥ भोक्तानुमन्तासंस्कर्ताक्रयिविक्रयिहिंसकाः ॥ उपहर्ताघातयिताहिंसकाश्चाष्टधास्मृताः ॥ २२ ॥ प्रत्यब्दमश्वमेधेनशतंवर्षाणियोयजेत् ॥ अमांसभक्षकोयश्चतयोरन्त्योविशिष्यते ॥ २३ ॥ यथैवात्मापरस्तद्वद्द्रष्टव्यःसुखमिच्छता ॥ सुखदुःखानितुल्यानियथात्मनितथापरे ॥ २४ ॥ सुखंवायदिवाचान्यंयत्किञ्चित्क्रियतेपरे ॥ तत्कृतंहिपुनःपश्चात्सर्वमात्मनिसम्भवेत् ॥ २५ ॥ नक्लेशेनविनाद्रव्यमर्थहीनेकुतःक्रियाः ॥ क्रियाहीनेकुतोधर्मोधर्महीनेकुतःसुखम् ॥ २६ ॥ सुखंहिसर्वैराकाङ्क्ष्यंतच्चधर्मसमुद्भवम् ॥ तस्माद्धर्मोत्रकर्तव्यश्चातुर्वर्ण्येनयत्नतः ॥ २७ ॥ न्यायागतेनद्रव्येणकर्तव्यम्पारलौकिकम् ॥ दानञ्चविधिनादेयंकालेपात्रेचभावतः ॥ २८ ॥ विधिहीनन्तथाऽपात्रेयोददातिप्रतिग्रहम् ॥ नकेवलंहित

कियाहुवाही फिर पीछे से अपनामेही संभवित होवे है याने उसका फल भोगने पड़ता है ॥ २५ ॥ क्लेश विना धन नहीं होता है व धनसे हीनमें क्रियायें कैसे होवेंगी व क्रियाहीन में धर्म कैसे होवेगा और धर्महीन मे सुख कैसे होवेगा इसमे इनका उपाय करना उचित है ॥ २६ ॥ व सुखही सर्वो से आकांक्ष्य है याने सुखको सब कोई चाहता है परन्तु वह सुख धर्म्म से समुत्पन्न होताहै उससे इसलोक मे यत्नसे चारो वर्णोंको निज धर्म करना चाहिये ॥ २७ ॥ व न्यायपूर्वक कमाये धनसे पारलौकिक कर्म्म करने योग्य है और भक्तिसे सुकाल मे विधिसे सुपात्रको दान देना चाहिये ॥ २८ ॥ तथा जो कुपात्र को विधिहीन दान देता

है उसका केवल वहही नहीं जाताहै किन्तु शेष पुण्य भी नष्ट होतीहै ॥ २९ ॥ व्यसनार्थ व कुटुम्बार्थ और ऋणके अर्थ जो दियाजाता है वह इस लोक व परलोकमें भी अक्षय फलवाला होताहै इसमें संशय नहींहै ॥ ३० ॥ व जोकि अपने धनसे माता पितासे विहीन बालकको यज्ञोपवीत और ब्याह आदिकों से संस्कार कराता है उसको अनन्त पुण्य होतीहै ॥ ३१ ॥ व एक ब्राह्मणके प्रतिष्ठित होतेही याने प्रतिष्ठा करने से मनुष्यों को जो पुण्य मिलती है वह पुण्य अग्निहोत्रों से नहीं और अग्निष्टोमादि यज्ञों से नहींहै ॥ ३२ ॥ व जो धर्मात्मा मनुष्य अनाथ ब्राह्मणका हाथ पकड़ावे याने ब्याह करावे वह इस लोकमें सुखको पावे और अन्तमें अक्षय स्वर्गको जावे

द्यातिशेषन्तस्यचनश्यति ॥ २९ ॥ व्यसनार्थेकुटुम्बार्थेयदृणार्थेचदीयते ॥ तदक्षयंभवेदत्रपरत्रचनसंशयः ॥ ३० ॥ मातापितृविहीनंयोमौञ्जीपाणिग्रहादिभिः ॥ संस्कारयेन्निजैरर्थैस्तस्यश्रेयस्त्वनन्तकम् ॥ ३१ ॥ अग्निहोत्रैर्नतच्छ्रेयो नाग्निष्टोमादिभिर्मखैः ॥ यच्छ्रेयःप्राप्यतेमर्त्यैर्द्विजेचैकेप्रतिष्ठिते ॥ ३२ ॥ योह्यनाथस्यविप्रस्यपाणिंग्राहयतेकृती ॥ इहसौख्यमवाप्नोतिसोक्षयंस्वर्गमाप्नुयात् ॥ ३३ ॥ पितृगेहेतुयाकन्यारजःपश्येदसंस्कृता ॥ भ्रूणहातत्पिताज्ञेयोवृषली सापिकन्यका ॥ ३४ ॥ यस्तांपरिणयेन्मोहात्सभवेद्वृषलीपतिः ॥ तेनसम्भाषणन्त्याज्यमपाङ्क्तेयेनसर्वदा ॥ ३५ ॥ विज्ञायदोषमुभयोःकन्यायाश्चवरस्यच ॥ सम्बन्धंरचयेत्पश्चादन्यथादोषभाक्पिता ॥ ३६ ॥ स्त्रियःपवित्राःसततंनैता दुष्यन्तिकेनचित् ॥ मासिमासिरजस्तासांदुष्कृतान्यपकर्षति ॥ ३७ ॥ पूर्वंस्त्रियःसुरैर्भुक्ताःसोमगन्धर्ववह्निभिः ॥ भुञ्ज तेमानुषाःपश्चान्नैतादुष्यन्तिकेनचित् ॥ ३८ ॥ स्त्रीणांशौचन्ददौसोमःपावकःसर्वमेध्यताम् ॥ कल्याणवाणीङ्गन्धर्वा

है ॥ ३३ ॥ व जोकि विना ब्याही हुई कन्या पिताके घरमें रजोधर्म को देखे या देखतीहै उसका पिता ब्रह्मघाती जानने योग्यहै और वह कन्या शूद्रीके समान होजातीहै ॥ ३४ ॥ व जो पुरुष मोहसे उसको ब्याह लेवे है वह भी शूद्रीका पति होवे है उस अपङ्क्तिवाले के साथ सम्भाषण सदैव बराना चाहिये ॥ ३५ ॥ और इससे वर व कन्याके दोषको जानकर पीछे से उनका पिता दोनों के ब्याहादि सम्बन्ध को करे अन्यथा वह दोषभागी होताहै ॥ ३६ ॥ स्त्रियां सदैव पवित्रहैं ये किसी से दुष्ट नहीं होतीहैं क्योंकि मास मासमें रजोधर्म उनके पापको खींच लेताहै ॥ ३७ ॥ व पहले स्त्रियां चन्द्रमा गन्धर्व और अग्नि इन देवोंसे भोगी जातीहैं उसके बाद मनुष्य भो-

गते हैं परन्तु ये किसीसे अशुद्ध नहीं होती हैं ॥ ३८ ॥ क्योंकि चन्द्रमाने स्त्रियों को शौच दियाहै व अग्नि सबसे पवित्रता देताहै और गन्धर्व मंगल वाणी देतेहैं उससे स्त्रियां सदैव पवित्र हैं ॥ ३९ ॥ व रजोधर्म समयमें अग्नि रोमदर्शन में चन्द्रमा और कुच निकलने में गन्धर्व कन्याको भोगते हैं इससे उसके पहलेही दी जाती है ॥ ४० ॥ क्योंकि जिस कन्याके रोमावली देख पड़ती है वह लड़कोंको नाशती है व कुचवाली कन्या कुलको नाशती है और प्रकटकृत रजोवती कन्या पिताको नाशती है उससे तीनोंको सब ओरसे बरावे ॥ ४१ ॥ व उसी कारण कन्यादानका फल चाहताहुवा मनुष्य अग्निआदि देवों से न भोगीगई कन्याको दानकरै अन्यथा दाताका फल नहीं होताहै और लेनेवाला भी नीचे गिरजावे है ॥ ४२ ॥ व चन्द्रादिकों से न भोगीगई कन्याको देताहुवा दानका फल पावैहै और देवभोगी कन्याको देताहुवा

स्तेनमेध्याःसदास्त्रियः ॥ ३९ ॥ कन्याम्भुङ्क्तेरजःकालेऽग्निःशशीलोमदर्शने ॥ स्तनोद्भेदेषुगन्धर्वास्तत्प्रागेवप्रदीयते ॥ ४० ॥ दृश्यरोमात्वपत्यघ्नीकुलघ्न्युद्गतयौवना ॥ पितृघ्न्याविष्कृतरजास्ततस्ताःपरिवर्जयेत् ॥ ४१ ॥ कन्यादानफलप्रेप्सुस्तस्माद्द्द्यादनग्निकाम् ॥ अन्यथानफलन्दातुःप्रतिग्राहीपतेदधः ॥४२॥ कन्यामभुक्तांसोमाद्यैर्ददद्दानफलंलभेत् ॥ देवभुक्तान्ददद्दातानस्वर्गमधिगच्छति ॥ ४३ ॥ शयनासनयानानिकुणपंस्त्रीमुखंकुशाः ॥ यज्ञपात्राणिसर्वाणिनदुष्यन्तिबुधाःक्वचित् ॥ ४४ ॥ वत्सःप्रस्रवणेमेध्यःशकुनिःफलपातने ॥ नार्योरतिप्रयोगेषुश्वामृगग्रहणेशुचिः ॥ ४५ ॥ अजाश्वयोर्मुखम्मेध्यङ्गावोमेध्यास्तुपृष्ठतः ॥ पादतोब्राह्मणामेध्याःस्त्रियोमेध्यास्तुसर्वतः ॥ ४६ ॥ बलात्कारोपभुक्तावाचोरहस्तगतापिवा ॥ नत्याज्यादयितानारीनास्यास्त्यागोविधीयते ॥ ४७ ॥ अम्लेनताम्रशुद्धिःस्याच्छुद्धिःकांस्य

दाता स्वर्ग में नहीं जाताहै ॥ ४३ ॥ व शय्या आसन वाहन खड्ग पात्र स्त्रीका मुख कुश सब यज्ञपात्र और पंडित कहीं दोषयुक्त नहीं होते हैं याने सदैव शुद्ध रहते हैं ॥ ४४ ॥ दोहनसमय गऊ पन्हवाने मे बछड़ा पवित्रहै व फल गिराने में पक्षी व रति संयोगमें स्त्रियां और मृगके पकड़ने में श्वान (कूकर) शुद्ध माना जाताहै ॥ ४५ ॥ छाग व घोड़ेका मुख पवित्रहै गौवें पीठसे पवित्रहैं ब्राह्मण पांवों से पवित्र हैं और स्त्रियां सब अंगों से पवित्र हैं ॥ ४६ ॥ व जोकि स्त्री बलात्कार से भोगीभई व चोरके हाथमें गई भी होवे वह प्यारी त्यागने योग्य नहींहै क्योंकि शास्त्रसे इसका त्याग नहीं विधान कियाजाता है ॥ ४७ ॥ व खटाई से तांबेकी शुद्धि भस्मसे कांसेकी शुद्धि

रजोधर्म से स्त्रीकी संशुद्धि और पवाह से नदीकी शुद्धि होतीहै ॥ ४८ ॥ जोकि स्त्री मनसे भी यहां दूसरे पुरुषको नहीं विचारती है वह पार्वतीके साथ सौख्यों को भोगती
है और इसलोकमें भी सुयशसेविनी होती है ॥ ४९ ॥ बाप व बाबा व भाई व कुलवाला तथा माता इतने लोग कन्यादानके अधिकारी हैं और इनमें से पहले के नाश
में क्रमसे पीछे पीछेवाला स्वभाव में टिकाहुवा जन कन्याप्रद कहाता है ॥ ५० ॥ वह कन्याको न देताहुवा मनुष्य ऋतु ऋतुमें बालघातके पातकको प्राप्त होताहै और
दाताओं के न होने में कन्या आपही स्वयंवरको करलेवे ॥ ५१ ॥ हताधिकारा याने जिसका अधिकार हरलिया गया होवे वह व मलिना व पिण्डमात्र से जीविका करने-

स्यभस्मना ॥ संशुद्धीरजसानार्यास्तटिन्यावेगतःशुचिः ॥ ४८ ॥ मनसापिहियानेहचिन्तयेत्पुरुषान्तरम् ॥ सोमयास
हसौख्यानिभुङ्क्तेचात्रापिकीर्तिभाक् ॥ ४९ ॥ पितापितामहोभ्रातासकुल्योजननीतथा ॥ कन्याप्रदःपूर्वनाशेप्रकृतिस्थः
परःपरः ॥ ५० ॥ अप्रयच्छन्समाप्नोतिभ्रूणहत्यामृतावृतौ ॥ स्वयन्त्वभावेदातॄणांकन्याकुर्यात्स्वयंवरम् ॥५१॥ हताधि
कारांमलिनांपिण्डमात्रोपजीविनीम् ॥ परिभूतामधःशय्यांवासयेद्व्यभिचारिणीम् ॥ ५२ ॥ व्यभिचाराद्दतौशुद्धिर्गर्भे
त्यागोविधीयते ॥ गर्भभर्तृवधादौतुमहत्यपिचकल्मषे ॥ ५३ ॥ शूद्रस्यभार्याशूद्रैवसाचस्वाचविशःस्मृते ॥ तेचस्वा
चैवराज्ञस्तुताश्चस्वाचाग्रजन्मनः ॥ ५४ ॥ आरोप्यशूद्रांशयनेविप्रोगच्छेदधोगतिम् ॥ उत्पाद्यपुत्रंशूद्रायांब्राह्मण्यादे
वहीयते ॥ ५५ ॥ दैवपित्र्यातिथेयानितत्प्रधानानियस्यतु ॥ देवाद्यास्तन्नचाश्नन्तिसचस्वर्गंनगच्छति ॥ ५६ ॥ जामयो

वाली व अनादरी और व्यभिचारिणी स्त्रीको अपनी शय्याके नीचे में बाहर बसावे ॥ ५२ ॥ मनके व्यभिचार से ऋतुकाल में शुद्धि होतीहै परन्तु गर्भ रहने में उस स्त्री
का त्याग विधान कियाजाता है व गर्भ और पतिके मारनेआदि व बड़े पापमें त्याग कहागयाहै ॥ ५३ ॥ शूद्रकी स्त्री शूद्रीही होतीहै वह और अपनी ये दोनों वैश्यकी
कहीगईहैं वे दोनो और अपनी ये तीनों क्षत्रियकी और वे तीनों व अपनी याने ब्राह्मणी ये चारों ब्राह्मणकी स्त्रियां होतीहैं ॥ ५४ ॥ परन्तु शूद्रीको पलँगपर पौढ़ाकर
ब्राह्मण नरकको जाताहै व शूद्रीमें पुत्रको उत्पन्नकर ब्राह्मणता से हीन होजाता है ॥ ५५ ॥ जिसके घरमें होम श्राद्ध और आतिथिभोजनादि तत्प्रधान होते हैं अर्थात्
उन कर्मों में शूद्रीकी अगुवाकारी रहती है उस होमादिकको देवादिक नहीं भोगते हैं और वह गृहस्थ उन कर्म्मों से स्वर्गको नहीं जाताहै ॥ ५६ ॥ व ज्ञातिकी स्त्री बहन

कन्या और बहू आदि स्त्रियां अपूजित होकर जिन घरोंको शापती हैं याने अनिष्ट मनाती हैं वे घर मारणादि कृत्याओं से हते के समान निस्सन्देह नष्ट होजाते हैं ॥ ५७ ॥ उससे ऐश्वर्य्यचाहियों करके कौतुक और यज्ञोपवीतादि उत्सवों में पूर्वोक्त स्त्रियां गहने कपड़े और भोजनादिकों से पूजने योग्यहैं ॥ ५८ ॥ क्योंकि जहां भूषण वस्त्र अन्नादिको से स्त्रियां प्रसन्न रहती हैं वहां देवतायें रमती हैं व सब क्रियायें सफल होती हैं ॥ ५९ ॥ जिस घरमें स्त्री पतिसे प्रसन्न रहती है व स्त्री से पति प्रसन्न रहता है उसमे क्षण क्षणपर कल्याण भलीभांति प्राप्त होवे है ॥ ६० ॥ अहुत हुत प्रहुत प्राशित और पांचवां ब्राह्महुत ये पांच यज्ञ शुभहैं ॥ ६१ ॥ अब आगे उनको

यानिगेहानिशपन्त्यप्रतिपूजिताः ॥ कृत्याभिर्निहतानीवनश्येयुस्तान्यसंशयम् ॥ ५७ ॥ तदभ्यर्च्याःसुवासिन्योभूषणाच्छादनाशनैः ॥ भूतिकामैर्नरैर्नित्यंसत्कारेषूत्सवेषुच ॥ ५८ ॥ यत्रनार्यःप्रमुदिताभूषणाच्छादनाशनैः ॥ रमन्तेदेवतास्तत्रस्युस्तत्रसफलाःक्रियाः ॥ ५९ ॥ यत्रतुष्यतिभर्त्रास्त्रीस्त्रियाभर्ताचतुष्यति ॥ तत्रवेश्मनिकल्याणंसम्पद्येतपदेपदे ॥ ६० ॥ अहुतञ्चहुतञ्चैवप्रहुतम्प्राशितन्तथा ॥ ब्राह्मंहुतम्पञ्चमञ्चपञ्चयज्ञाइमेशुभाः ॥ ६१ ॥ जपोहुतोहुतोहोमः प्रहुतोभौतिकोबलिः ॥ प्राशितम्पितृसंतृप्तिर्हुतम्ब्राह्मंद्विजार्चनम् ॥ ६२ ॥ पञ्चयज्ञानिमान्कुर्वन्ब्राह्मणोनावसीदति ॥ एतेषामननुष्ठानात्पञ्चसूनाश्रवाप्नुयात् ॥ ६३ ॥ ब्राह्मणंकुशलम्पृच्छेद्बाहुजातमनामयम् ॥ वैश्यंसुखंसमागम्यशूद्रंसन्तोषमेवच ॥ ६४ ॥ जातमात्रःशिशुस्तावद्यावदष्टौसमाःस्मृताः ॥ भक्ष्याभक्ष्येषुनोदुष्येद्यावन्नैवोपनीयते ॥ ६५ ॥ भरणम्पोष्यवर्गस्यदृष्टादृष्टफलोदयम् ॥ प्रत्यवायोह्यभरणेभर्तव्यस्तत्प्रयत्नतः ॥ ६६ ॥ मातापितागुरुःपत्नीत्वपत्यानि

प्रकट करते हैं कि जपको हुत होमको अहुत बलिवैश्वदेवको प्रहुत पितरों के तर्प्पणको प्राशित और ब्राह्मणपूजाकोही ब्राह्महुत कहते हैं ॥ ६२ ॥ इन पांचों यज्ञों को करताहुवा ब्राह्मण दुःखित नहीं होताहै और इनके न करने से पांच हिंसाओं को प्राप्त होताहै ॥ ६३ ॥ व समागमकरके ब्राह्मण से कुशल क्षत्रिय से अनामय वैश्य से सुख और शूद्रसे संतोष पूछना चाहिये ॥ ६४ ॥ जबतक आठ वर्ष कहीगई हैं और जबतक यज्ञोपवीत कर्म नहीं कियाजाता है तबतक उत्पन्नमात्र लड़का भक्ष्याभक्ष्य में दोषयुत नहीं होताहै ॥ ६५ ॥ पोष्यवर्ग (कुटुम्ब) का पोषना देखे व न देखेहुये फलों के उदय करनेवालाहै व उसके न पोषने में पापहै उससे यत्नसे उसका पोषण

करना चाहिये ॥ ६६ ॥ माता पिता गुरु स्त्री लड़का दासी दास अभ्यागत और अतिथि ये नवो पोष्यवर्ग कहाते हैं ॥ ६७ ॥ जो इस लोक में बहुते जनों के साथ जीविका करता है वह पुरुष जीवता है और अनन्तर अपना उदर भरनेवाला पुरुष जीवताही मृतक जानने योग्यहै ॥ ६८ ॥ इससे ऐश्वर्य्यकी कामना से दीन अनाथ और विशेषणयुक्त लोगो को देना चाहिये क्योंकि जिन्होंने पूर्व जन्म में दान नहीं दिया वे पराई भाग्य से जीविकावाले होते हैं ॥ ६९ ॥ जो कि यथोचित वस्तुका बांटना व सदाचार या अच्छे स्वभाव से संयुक्त व दयावान् व क्षमावान् व देवता और अतिथियोंका भक्त होवे वह धर्मवान् गृहस्थ कहागया है ॥ ७० ॥ व रातके बीचमें

समाश्रिताः ॥ अभ्यागतोतिथिश्चाग्निःपोष्यवर्गाश्रमीनव ॥ ६७ ॥ सजीवतिपुमान्योत्रबहुभिश्चोपजीव्यते ॥ जीवन्मृतोथविज्ञेयःपुरुषःस्वोदरम्भरिः ॥ ६८ ॥ दीनानाथविशिष्टेभ्योदातव्यम्भूतिकाम्यया ॥ अदत्तदानाजायन्तेपरभाग्योपजीविनः ॥ ६९ ॥ विभागशीलसंयुक्तोदयावांश्चक्षमायुतः ॥ देवतातिथिभक्तस्तुगृहस्थोधार्मिकःस्मृतः ॥ ७० ॥ शर्वरीमध्ययामौयौहुतशेषञ्चयद्धविः ॥ तत्रस्वपंस्तदश्नंश्चब्राह्मणोनावसीदति ॥ ७१ ॥ नवैतानिगृहस्थस्यकार्याण्यभ्यागतेसदा ॥ सुधाव्ययानियत्सौम्यंवाक्यञ्चक्षुर्मनोमुखम् ॥ ७२ ॥ अभ्युत्थानमिहायातसस्नेहम्पूर्वभाषणम् ॥ उपासनमनुव्रज्यागृहस्थोन्नतिहेतवे ॥ ७३ ॥ तथैषद्व्ययुक्तानिकार्याण्येतानिवैनव ॥ आसनम्पादशौचञ्चयथाशक्त्याशनंक्षितिः ॥ ७४ ॥ शय्यातृणजलाभ्यङ्गदीपागार्हस्थ्यसिद्धिदाः ॥ तथानवविकर्माणित्याज्यानिगृहमेधिनाम् ॥ ७५ ॥

जे दोपहर हैं और जोकि हवि होमसे बची है उसको खाता व उनमें सोताहुवा मनुष्य दुःखित नहीं होताहै ॥ ७१ ॥ जब अभ्यागत आवे तब सदैव ये नवो गृहस्थके करने योग्यहैं जोकि अमृत के समान कल्याणरूप हैं उनको कहते हैं कि अच्छा वचन अच्छा नेत्र अच्छा मन अच्छा मुख ॥ ७२ ॥ और यहां आवो ऐसा कहकर सामनेसे खड़ा होना व प्रीतिपूर्वक बतलाना व उपासना (सेवाकरना) और पीछे चलना ये नवो गृहस्थकी बढ़ती के कारणहैं ॥ ७३ ॥ वैसेही थोड़े खर्चवाले नव ये भी करने योग्यहैं कि आसनदेना व पद पखारना व यथाशक्ति भोजन व स्थान ॥ ७४ ॥ व शय्या व तृण व जल व अभ्यंग (उबटन आदि) और दीपक ये नवो गृहस्थों

के लिये सिद्धिदाता हैं तथा ये नव विकर्म गृहस्थोंका त्यागना चाहिये ॥ ७५ ॥ क्योंकि क्रूरता परस्त्री हिंसा क्रोध असत्य कठोरवचन वैर पाखण्ड और कपट ये नवो स्वर्गमार्ग के निषेध करनेवाले व बेड़ी बन्धनके समान हैं ॥७६ ॥ व नव आवश्यक कर्म प्रतिदिन करना चाहिये वे ये हैं कि स्नान सन्ध्या जप होम वेदपाठ देवपूजा॥ ७७ ॥ वैश्वदेव अतिथिसेवा और नववां पितरोंका तर्प्पण गनागया है हे मुने ! जोकि यहां गोप्यहैं उनको सुनो ॥ ७८ ॥ जन्म नक्षत्र मैथुन मंत्र गृहच्छिद्र छलजाना आयु धन अपमान और स्त्री ये सब प्रकार से प्रकाशने योग्य नहीं होते हैं ॥ ७९ ॥ व इन नवोंका प्रकाश करना चाहिये कि एकान्तका पाप व अनिन्दित व प्रयोग सम्बन्धी

पैशुन्यम्परदाराश्चद्रोहःक्रोधानृतांप्रियम् ॥ द्वेषोदम्भश्चमायाचस्वर्गमार्गार्गलानिहि ॥ ७६ ॥ नवावश्यककर्माणिकार्याणिप्रतिवासरम् ॥ स्नानंसन्ध्याजपोहोमःस्वाध्यायोदेवतार्चनम् ॥ ७७ ॥ वैश्वदेवन्तथातिथ्यंनवमंपितृतर्पणम् ॥ नवगोप्यानियान्यत्रमुनेतानिनिशामय ॥ ७८ ॥ जन्मर्क्षंमैथुनंमन्त्रोगृहच्छिद्रञ्चवञ्चनम् ॥ आयुर्धनापमानंस्त्रीनप्रकाश्यानिसर्वथा ॥ ७९ ॥ नवैतानिप्रकाश्यानिरहःपापमकुत्सितम् ॥ प्रायोग्यमृणशुद्धिश्चसान्वयःक्रयविक्रयौ ॥ कन्यादानंगुणोत्कर्षोनान्यत्केनापिकुत्रचित् ॥ ८० ॥ पात्रमित्रविनीतेषुदीनानाथोपकारिषु ॥ मातापितृगुरुष्वेतन्नवकंदत्तमक्षयम् ॥ ८१ ॥ निष्फलंनवसूतसृष्टंचाटचारणतस्करे ॥ कुवैद्येकितवेधूर्तेशठेमल्लेचवन्दिनि ॥ ८२ ॥ आपत्स्वपिनदेयानिनववस्तूनिसर्वथा ॥ अन्वयेसतिसर्वस्वंदारांश्चशरणागतान् ॥ ८३ ॥ न्यासाधीकुलवृत्तिंचनिक्षेपंस्त्रीधनं

व ऋणशुद्धि व वंशवृद्धि व क्रय व विक्रय व कन्यादान और नववां गुणोत्कर्ष कहागयाहै इनसे अन्य किसीकरके कहीं कहने योग्य नहीं है ॥ ८० ॥ सुपात्र मित्र विनययुक्त दीन अनाथ उपकारी माता पिता और गुरु इन नवो मे दियाहुवा अक्षयफलवाला होताहै ॥ ८१ ॥ व वाचाल स्तुतिपाठक चोर कुवैद्य वंचक धूर्त्त दुष्ट मल्ल और वन्दी इन नवो में दियाहुवा निष्फलहै ॥ ८२ ॥ व जो सन्ततिहो तो विपत्तिमें भी नव वस्तुवें सर्वथा न देना चाहिये उनको कहते है कि स्त्री सर्वस्व शरणागत ॥ ८३ ॥ न्यास (थोडे दिन धरोहर धरना) बन्धान कुलवृत्ति निक्षेप (बहुत कालतक अन्यत्र धन धरना) स्त्रीका धन और पुत्र इनको जो देताहै वह मूढात्मा

प्रायश्चित्तों से विशुद्ध होताहै ॥ ८४ ॥ इसपूर्वोक्त नवों के नवकको जानकर सुख पाताहै और अब सबको स्वर्गमार्ग देनेवाले अन्य नवकको कहताहूं ॥ ८५ कि सत्य शौच अहिंसा क्षमा दान दया दम (इन्द्रियनिग्रह) अस्तेय (चोरी न करना) और प्रत्याहार यह नवक सबके धर्मका साधन है ॥ ८६ ॥ इससे सज्जनों से मानीगई व पुण्यमयी व स्वर्गमार्गकी प्रकाशिनी इसनवतिको अभ्यासकर गृहस्थ कहीं नहीं दुःखी होताहै ॥ ८७ ॥ व जिह्वा स्त्री पुत्र भ्राता मित्र दास और पासवर्त्ती ये सातो जिसके विनीत होते हैं उसकी सर्वत्र प्रतिष्ठा होतीहै ॥ ८८ ॥ पान (नशा पीना) दुर्जनका संसर्ग पतिसे विरह ऐसी वैसी आना जाना स्वप्न और परघरमें बसना ये छः

सुतम् ॥ योददातिसमूढात्माप्रायश्चित्तैर्विशुध्यति ॥ ८४ ॥ एतन्नवानांनवकंज्ञात्वाप्रियमवाप्नुयात् ॥ अन्यच्चनवकंवच्मिसर्वेषांस्वर्गमार्गदम् ॥ ८५ ॥ सत्यंशौचमहिंसाचक्षान्तिर्दानन्दयादमः ॥ अस्तेयमिन्द्रियाकोचः सर्वेषान्धर्मसाधनम् ॥ ८६ ॥ अभ्यस्यनवतिञ्चैतांस्वर्गमार्गप्रदीपिकाम् ॥ सतामभिमताम्पुण्यांगृहस्थोनावसीदति ॥ ८७ ॥ जिह्वाभार्यासुतोभ्रातामित्रदाससमाश्रिताः ॥ यस्यैतेविनयाढ्याश्चतस्यसर्वत्रगौरवम् ॥ ८८ ॥ पानन्दुर्जनसंसर्गः पत्याचविरहोटनम् ॥ स्वप्नोन्यगृहवासश्चनारीणांदूषणानिषट् ॥ ८९ ॥ समर्घंधान्यमुद्धृत्यमहर्घंयःप्रयच्छति ॥ सहिवार्धुषिकोनामतस्यान्नंनचभक्षयेत् ॥ ९० ॥ अग्रेमाहिषिकंदृष्ट्वामध्येचवृषलीपतिम् ॥ अन्तेवार्धुषिकञ्चैवनिराशाःपितरोगताः ॥ ९१ ॥ महिषीत्युच्यतेनारीयाचस्याद्व्यभिचारिणी ॥ तान्दुष्टाङ्कामयेद्यस्तुसवैमाहिषिकःस्मृतः ॥ ९२ ॥ स्वव्रृपंयापरित्यज्यपरवृषेवृषायते ॥ वृषलीसाहिविज्ञेयानशूद्रीवृषलीभवेत् ॥ ९३ ॥ यावदुष्णम्भवत्यन्नंयावन्मौनेनभुज्यते ॥ ता

स्त्रियोंके दूषण कहाते हैं ॥ ८९ ॥ जोकि थोड़े मोलकी धान्यको खोलकर महंगीको देताहै उसका वार्धुषिक नामहै उसके अन्नको न भोजनकरे ॥ ९० ॥ क्योंकि श्राद्धके आदि मध्य और अन्तमें क्रमसे माहिषिक व वृषलीपति व वार्धुषिकको देखकर पितर निराश होजाते हैं ॥ ९१ ॥ अब माहिषिक व वृषलीपतिका लक्षण कहतेहैं कि जो स्त्री व्यभिचारिणी होती है वह महिषी ऐसा कहाती है और उस दुष्टाको जो चाहताहै वहही माहिषिककहागयाहै ॥ ९२ ॥ व जोकि अपने पतिको त्यागकर पर पुरुषमे रतिकी इच्छा करती है उसकोही वृषलीजानना चाहिये यहां शूद्री वृषली नहींहै ॥ ९३ ॥ और जबतक अन्न उष्ण रहताहै व जबतक मौनसे भोजन कियाजाता है व जबतक

हविके गुण नहीं कहेजाते हैं तबतक पितरलोग खातेहैं ॥ ९४ ॥ जब विद्या विनय सम्पन्न श्रोत्रिय ब्राह्मण घरमें आताहै तब सब ओषधियां प्रसन्न होतीहैं कि हम परम गतिको जावैंगी ॥ ९५ ॥ व शौचव्रत और आचार से भ्रष्ट व वेदवर्जित ब्राह्मण को दियाजाताहुवा अन्न रोताहै कि मैंने क्या पाप कियाहै जिससे इसके लिये दियाजाता हूं ॥९६ ॥ क्योंकि जिसके कोष्ठमें गया अन्न वेदाभ्यास से पचता है वह दाताके व उसके आगे और पाछे के दश दश पुरुषों को तारता है ॥ ९७ ॥ व स्त्रियों के मूडे का मुण्डन न करना चाहिये व गौओं के पीछे न चले याने गोरक्षण वृत्तिवाली न होवे व रात्रिको गोशालामें न बसे व वेदका श्रवण न करे ॥ ९८ ॥ व सब बालो को

वदश्नन्तिपितरोयावन्नोक्ताहविर्गुणाः ॥ ९४ ॥ विद्याविनयसम्पन्नेश्रोत्रियेगृहमागते ॥ क्रीडन्त्योषधयःसर्वायास्यामः परमाङ्गतिम् ॥ ९५ ॥ भ्रष्टशौचव्रताचारेविप्रेवेदविवर्जिते ॥ रोदित्यन्नन्दीयमानङ्किमयादुष्कृतंकृतम् ॥ ९६ ॥ यस्य कोष्ठगतंचान्नंवेदाभ्यासेनजीर्यति ॥ सतारयतिदातारंदशपूर्वान्दशापरान् ॥ ९७ ॥ नस्त्रीणांवपनङ्कार्यंनचगाःसमनुव्रजेत् ॥ नचरात्रौवसेद्गोष्ठेनकुर्याद्वैदिकींश्रुतिम् ॥ ९८ ॥ सर्वान्केशान्समुद्धृत्यच्छेदयेदंगुलद्वयम् ॥ एवमेवतुनारीणां शिरसोमुण्डनम्भवेत् ॥ ९९ ॥ राजावाराजपुत्रोवाब्राह्मणोवाबहुश्रुतः ॥ अकारयित्वावपनम्प्रायश्चित्तंविनिर्दिशेत् ॥ १०० ॥ केशानांरक्षणार्थायद्विगुणंव्रतमादिशेत् ॥ द्विगुणादक्षिणादेयाब्राह्मणेवेदपारगे ॥ १ ॥ योगृहीत्वाविवाहाग्निं गृहस्थइतिमन्यते ॥ अन्नन्तस्यनभोक्तव्यंवृथापाकोहिसस्मृतः ॥ २ ॥ दाराग्निहोत्रदीक्षाञ्चकुरुतेयोऽग्रजेस्थिते ॥ परिवेत्तासविज्ञेयःपरिवित्तिस्तुपूर्वजः ॥ ३ ॥ परिवित्तिःपरिवेत्तायायाचपरिविद्यते ॥ सर्वेतेनरकंयान्तिदातृयाजकपञ्च

उबारकर दो दो अंगुल कतरावे ऐसेही स्त्रियों के शिरका मुण्डन होवे है ॥ ९९ ॥ और जे राजा व राजपुत्र व बहु श्रुत ब्राह्मण हैं उनके मुण्डनको न कराकर प्रायश्चित्तको विनिर्देशकरे ॥ १०० ॥ व शिरके बालों को बचानेके लिये द्विगुण व्रतको बतावे और वेदपारग ब्राह्मणको दूनी दक्षिणा देना चाहिये ॥ १ ॥ व जोकि ब्याह की अग्नि को न ग्रहणकर अपनाको गृहस्थ मानता है उसका अन्न न खाना चाहिये क्योंकि वह वृथा पाकवाला कहागया है ॥ २ ॥ और जब ज्येष्ठ भ्राता विना ब्याहेका रहगया होवे तब जोकि ब्याह और अग्निहोत्र दीक्षाको करताहै वह परिवेत्ताजानने योग्यहै व उसका ज्येष्ठ भ्राता परिवित्ति नामसे कहाजाता है ॥ ३ ॥ परि-

विवित्ति व परिवेत्ता व जिस कन्याके साथ ब्याह कियाजाता है व जो कन्या दान देताहै और जो पण्डित उसके ब्याहमें होम कराता है वे सब पांचो लोग नरकको जाते हैं ॥ ४ ॥ और जो ज्येष्ठ भ्राता नपुंसक व विदेशवासी व संन्यासी व गूंगा व जड़ व कुब्जा व वामन व पतितहोवे तो छोटे भाईके ब्याहमें दोष नहींहै ॥ ५ ॥ व वेद विक्रयकर्ता धनादि प्राप्तिके लिये वेदों के जितने अक्षरोंको नियुक्तकरे उतनीही ब्रह्महत्याओं को पावे ॥ ६ ॥ और जोकि संन्यासी होकर फिर मैथुनको सेवता है वह साठि सहस्र वर्षतक विष्ठामें कीड़ा होताहै ॥ ७ ॥ व शूद्रका अन्न शूद्रका संसर्ग शूद्रके साथ आसन और शूद्रसे कोई विद्यागम ये चारो तेजसे ज्वलतेहुये को भी

मा: ॥ ४ ॥ क्लीबेदेशान्तरस्थेचमूकेप्रव्रजितेजडे ॥ कुब्जेखर्वेचपतितेनदोषःपरिवेदने ॥ ५ ॥ वेदाक्षराणियावन्तिनियुञ्ज्यादर्थकारणे ॥ तावतीर्वैभ्रूणहत्यावेदविक्रयकृल्लभेत् ॥ ६ ॥ यस्तुप्रव्रजितोभूत्वासेवतेमैथुनम्पुनः ॥ षष्टिर्वर्षसहस्राणिविष्ठायाञ्जायतेकृमिः ॥ ७ ॥ शूद्रान्नंशूद्रसम्पर्कःशूद्रेणचसहासनम् ॥ शूद्राद्विद्यागमःकश्चिज्ज्वलन्तमपिपातयेत् ॥ ८ ॥ शूद्रादाहृत्यनिर्वापंयेपचन्त्यबुधाद्विजाः ॥ तेयान्तिनरकङ्घोरम्ब्रह्मतेजोविवर्जिताः ॥ ९ ॥ माक्षिकंफाणितंशाकंगोरसंलवणंघृतम् ॥ हस्तदत्तानिभुक्तानिदिनमेकमभोजनम् ॥ १० ॥ हस्तदत्ताश्चयेस्नेहालवणव्यञ्जनानिच ॥ दातारंनोपतिष्ठन्तेभोक्ताभुङ्क्तेतुकिल्बिषम् ॥ ११ ॥ आयसेनैवपात्रेणयदन्नमुपदीयते ॥ भोक्तातद्विट्समंभुङ्क्तेदाताचनरकंव्रजेत् ॥ १२ ॥ अंगुल्यादन्तकाष्ठञ्चप्रत्यक्षंलवणञ्चयत् ॥ मृत्तिकाभक्षणंयच्चसमंगोमांसभक्षणैः ॥ १३ ॥ पानीयम्पाय

नीचे गिराते हैं ॥ ८ ॥ व जोकि अज्ञानी ब्राह्मण शूद्रसे लेकर चरु पुरोडाशादिको पकाते हैं वे ब्रह्मतेजसे हीनहोकर घोर नरक को जाते हैं ॥ ९ ॥ व जो हाथमें दियागया सहत व शर्करा या राब व शाक व गोरस व लवण और घृत खाया गयाहो तो एक दिनउपास करना चाहिये ॥ १० ॥ व लवण व्यंजन और जे स्नेह याने तेल घृतादिक हाथ में दियेगये हैं वे दाताको नहीं प्राप्त होते हैं व उनके भोगनेवाला पाप खाताहै ॥ ११ ॥ व जो अन्न लोहेके पात्रसे दियागयाहो उसके भोगनेवाला विष्ठा के समान खाताहै और दाता भी नरकको जाताहै ॥ १२ ॥ जोकि केवल अंगुली से दन्त शोधना व प्रत्यक्ष लवण खाना और मृत्तिका भक्षणहै वह मांस खाने

के समानहै ॥ १३ ॥ व हाथे में दियेहुये पानी पायस भिक्षा घी और लोनको न लेवे क्योंकि वह गोमांस भक्षणके बराबर होताहै ॥ १४ ॥ और जो आगे मूर्ख ब्राह्मण बैठाहो व गुणवान् दूरहो तो गुणवान्को देना चाहिये मूर्खको नहीं इसउलटा पलटामें दोष न होगा ॥ १५ ॥ जिससे प्रज्वलित अग्निको छोड़कर भस्म मे नही होमाजाताहै इससे वेदवर्जित ब्राह्मण में ब्राह्मणातिक्रम नही है ॥ १६ ॥ जौकि पढ़तेहुये समीपवासी ब्राह्मणको व्यतिक्रमकरे याने दूरवासी मूर्खको देवे वह सात पुश्ति पर्यन्त पुरुषों को जलावे है ॥ १७ ॥ व गोरक्षकवाणिज्यकर्त्ता चटाई बनानेवाले या शिल्पी व कथिक या मूल्य से कर्म करनेवारे व प्रेष्य और वार्धुषिक याने व्याज

सम्भैक्षंघृतंलवणमेवच ॥ हस्तदत्तंनगृह्णीयात्तुल्यंगोमांसभक्षणैः ॥ १४ ॥ अग्रतोनिवसेन्मूर्खोदूरतश्चगुणान्वितः ॥ गुणान्वितायदातव्यंनास्तिमूर्खेव्यतिक्रमः ॥ १५ ॥ ब्राह्मणातिक्रमोनास्तिविप्रेवेदविवर्जिते ॥ ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्यनहि भस्मनिहूयते ॥ १६ ॥ सन्निकृष्टमधीयानंब्राह्मणंयोव्यतिक्रमेत् ॥ भोजनेचैवदानेचदहेदासप्तमंकुलम् ॥ १७ ॥ गोरक्षकान्वाणिजकांस्तथाकारुकुशीलवान् ॥ प्रेष्यान्वार्धुपिकांश्चैवविप्राञ्छूद्रवदाचरेत् ॥ १८ ॥ देवद्रव्यविभागेनब्रह्मस्वहरणेनच ॥ कुलान्याशुविनश्यन्तिब्राह्मणातिक्रमेणच ॥ १९ ॥ मादेहीतिचयोब्रूयाद्गवाग्निब्राह्मणेषुच ॥ तिर्यग्योनिशतङ्गत्वाचाण्डालेष्वभिजायते ॥ २० ॥ वाचायच्चप्रतिज्ञातंकर्मणानोपपादितम् ॥ ऋणन्तद्धर्मसंयुक्तमिहलोकेपरत्र च ॥ २१ ॥ विघसाशीभवेन्नित्यंनित्यञ्चामृतभोजनः ॥ यज्ञशेषोऽमृतम्भुक्तशेषन्तुविघसंविदुः ॥ २२ ॥ सव्यादंसात्परिभ्रष्टेनाभिदेशेव्यवस्थिते ॥ वस्त्रेसएकवासास्तंदैवेपित्र्येचवर्जयेत् ॥ २३ ॥ यदेवतर्पयत्यद्भिःपितॄन्स्नात्वाद्विजोत्तमः ॥

बढ़ानेवाले इन ब्राह्मणों को शूद्रके समान आचरणकरे ॥ १८ ॥ देवद्रव्य बांटलेने व ब्राह्मणका धन हरने व ब्राह्मणके अतिक्रम से कुल शीघ्रही नष्ट होजाते है ॥ १९ ॥ व गऊ अग्नि और ब्राह्मणों मे मत देवो जो ऐसा कहता है वह सैकड़ों तिर्य्यग्योनियों में जाकर चांडालोंमे उत्पन्न होताहै ॥ २० ॥ जोकि वचन से प्रतिज्ञातहुवा और कर्मसे न कियागया वह धर्मसंयुक्त इसलोक व परलोक में भी ऋण होताहै ॥ २१ ॥ और नित्यही विघस भोजनी व अमृत भोजनी होवे किन्तु यज्ञशेषको अमृत व भुक्त शेषकोही विघस कहते हैं ॥ २२ ॥ व जिसके बायें कांधसे नाभीदेशतक एक वस्त्र स्थित होवे वह एक वासा कहाता है उसको देवताओं और पितरोंके कर्म मे

बरावे ॥ २३ ॥ व स्नानकर ब्राह्मणादि त्रिवर्ण जो जलसे तर्प्पण करता है उससेही पितृयज्ञ क्रियाका फल पाताहै ॥ २४ ॥ जोकि भोजनके बाद हाथों को धोकर कुल्ला का जल पीताहै वह यज्ञ व श्राद्धादिकर्म और आप इन तीनों को विनाशता है ॥ २५ ॥ व बहुते लोगोंकरके एकमें पकाकर बांटागया अन्न व गणिकाका अन्न व ग्राम याजकका अन्न स्त्रियों के पहले गर्भमें याने सिरवन्त आदिमे दियाजाता उसको भोजनकर चान्द्रायण व्रतकोकरे ॥ २६ ॥ व जिस द्विरात्माके घरमें पक्ष अथवा मासभर में भी एक ब्राह्मण न खाता होवै उसका अन्न भोजनकर चान्द्रायण व्रतकोकरे ॥ २७ ॥ यज्ञवान् दीक्षित सन्यासी ब्रह्मचारी ऋत्विज और कर्मकारी इनका सूतक नहीं

तेनैवसर्वमाप्नोतिपितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ २४ ॥ हस्तौप्रक्षाल्यगण्डूषंयःपिबेद्भोजनोत्तरम् ॥ दैवंपित्र्यन्तथात्मानंत्रयं सउपघातयेत् ॥२५॥ गणान्नंगणिकान्नञ्चयदन्नंग्रामयाजके ॥ स्त्रीणांप्रथमगर्भेषुभुक्त्वाचान्द्रायणञ्चरेत् ॥ २६ ॥ पक्षेवा यदिवामासेयस्यगेहेत्तिनाद्विजः ॥ भुक्त्वादुरात्मनस्तस्यचरेच्चान्द्रायणव्रतम् ॥ २७ ॥ सत्रिणान्दीक्षितानाञ्चयतीनांब्र ह्मचारिणाम् ॥ एतेषांसूतकंनास्तिऋत्विजाङ्कर्मकुर्वताम् ॥ २८ ॥ अजीर्णेऽभ्युदितेवान्तेश्मश्रुकर्मणिमैथुने ॥ दुःस्वप्ने दुर्जनस्पर्शेस्नानमेवविधीयते ॥ २९ ॥ चैत्यवृक्षञ्चितिंयूपंशिवनिर्माल्यभोजनम् ॥ वेदविक्रयिणंस्पृष्ट्वासचैलोजल माविशेत् ॥ ३० ॥ अग्न्यगारेगवाङ्गोष्ठेदेवब्राह्मणसन्निधौ ॥ स्वाध्यायेभोजनेपानेपादुकेवैविसर्जयेत् ॥ ३१ ॥ खलक्षे त्रगतन्धान्यंकूपवापीषुयज्जलम् ॥ अग्राह्यादपितद्ग्राह्यंयच्चगोष्ठगतम्पयः ॥ ३२ ॥ यद्वेष्टितशिराभुङ्क्तेयद्भुङ्क्तेदक्षिणा

है ॥ २८ ॥ व अजीर्ण अभ्युदित वमन क्षौरकर्म मैथुन दुःस्वप्न और दुर्जनके स्पर्श में स्नानही कियाजाता है ॥ २९ ॥ व ग्राम्यलोगोंका पूज्यवृक्ष चिता यूप शिवनिर्माल्यभोजी और वेद बेंचनेवालेको छूकर वस्त्रसमेतही पानी में प्रवेशकरे ॥ ३० ॥ व अग्निस्थान गोशाला देवता व ब्राह्मणका समीप व पढ़ना खाना और पीना इनमें पादुकाओं को त्याग देवे ॥ ३१ ॥ और जो धान्य खलक्षेत्र में गतहै व जो जल कूप तथा बावलीमें है व जो दूध गौओं के रहने के स्थान में प्राप्तहै वह अग्राह्य से भी लेने योग्य है ॥ ३२ ॥ व मूंड़ेमें वस्त्र बांधेहुवा जिसको खाताहै व दक्षिणमुख बैठा हुवा जिसको खाताहै व पादुका पहने मनुष्य जिस चीजको खाताहै उसकोही राक्षस

भोजन करतेहैं ॥ ३३ ॥ व यातुधान पिशाच और क्रूरकर्मा राक्षस ये मण्डलरहित अन्नकारस हरलेते हैं ॥ ३४ ॥ जिससे ब्रह्मादि सब देव व वसिष्ठादि महर्षिलोग म- ण्डल से उपजीविका को करते हैं उससे मण्डलको करे ॥ ३५ ॥ अब मण्डल की विधिको कहते हैं कि ब्राह्मणका चौकोठा क्षत्रियका त्रिकोन और वैश्यका जल छिड़- कनाही कहागयाहै ॥ ३६ ॥ गोदमें बैठकर भोजन न करे व एकवार भोजनकर दिनमें दुबारा न भोजनकरे व हाथ कपड़ा आसन और शय्यामें न भोजनकरे व म- लार्दित होकर न भोजनकरे ॥ ३७ ॥ व धर्म शास्त्ररूप रथपर चढ़े और वेद खड्गधारी ब्राह्मण क्रीड़ाके अर्थ जो कुछ कहैं वही परमधर्म कहागयाहै ॥ ३८ ॥ व धर्मका

मुखः ॥ सोपानत्कश्चयद्भुङ्क्तेतद्वैरक्षांसिभुञ्जते ॥ ३३ ॥ यातुधानाःपिशाचाश्चराक्षसाःक्रूरकर्मिणः ॥ हरन्तिरसमन्नस्य मण्डलेनविवर्जितम् ॥ ३४ ॥ ब्रह्माद्याश्चसुराःसर्वेवसिष्ठाद्यामहर्षयः ॥ मण्डलञ्चोपजीवन्तिततःकुर्वीतमण्डलम् ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणेचतुरस्रंस्यात्त्र्यस्रंवैबाहुजन्मनः ॥ वर्तुलञ्चविशःप्रोक्तंशूद्रस्याभ्युक्षणंस्मृतम् ॥ ३६ ॥ नोत्सङ्गेभोजनंकृत्वानो पाणौनैवकर्पटे ॥ नासनेनचशय्यायाम्भुञ्जीतनमलार्दितः ॥ ३७ ॥ धर्मशास्त्ररथारूढावेदखड्गधराद्विजाः ॥ क्रीडार्थमपि यद्ब्रूयुःसधर्मःपरमःस्मृतः ॥ ३८ ॥ रात्रौधानादधियुतंधर्मकामोनभक्षयेत् ॥ अश्नतोधर्महानिःस्याद्व्याधिभिश्चोपपी ड्यते ॥ ३९ ॥ फाणितङ्गोरसन्तोयंलवणम्मधुकाञ्जिकम् ॥ हस्तेनब्राह्मणोदत्त्वाकृच्छ्रञ्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥ ४० ॥ गन्धा भरणमाल्यानियःप्रयच्छतिधर्मवित् ॥ससुगन्धिःसदाहृष्टोयत्रयत्रोपजायते ॥ ४१ ॥ नीलीरक्तन्तुयद्वस्त्रंदूरतःपरिव र्जयेत् ॥ स्त्रीणांक्रीडार्थसंयोगेशयनीयेनदुष्यति ॥ ४२ ॥ पालनाद्विक्रयाच्चैवतद्वृत्तेरुपजीवनात् ॥ अपवित्रोभवेद्विप्र

चाही मनुष्य रातमें लावा और दहीसे मिश्रित अन्नको न भोजनकरे क्योंकि उसको खातेहुये के धर्मकी हानि होतीहै और वह भोक्ता रोगोंसे भी पीड़ित होताहै ॥ ३९ ॥ फेनी गोरस जल लोन सहत और कांजी इनको हाथसे हाथमेंदेकर ब्राह्मण कृच्छ्र चान्द्रायण व्रतकोकरे तो शुद्धहोवे ॥ ४० ॥ जोकि धर्मज्ञ पुरुष सुगन्ध भूषण और मालाओंको देताहै वह जहां जहां जन्म लेताहै वहां वहां सुगन्धवान् व सदैव आनन्दित होताहै ॥ ४१ ॥ काले रंगवाले जो वस्त्र होवें उनको बरावे परन्तु स्त्रियों के क्रीड़ार्थ संयोग और शयनीयमें दूषित नहींहै ॥ ४२ ॥ किन्तु लीलके पालने व बेंचने व उसकी वृत्तिसे जीविका करने से ब्राह्मण अपवित्र होवेहै और वह तीन कृच्छ्र

क्षय और ब्राह्मणकी कार्यसिद्धि में शपथों से पाप नहीं है ॥ ५४ ॥ अब शपथ की विधि बताई जाती है कि सत्यसे ब्राह्मणको वाहन व आयुध से क्षत्रियको गऊ बीज व सुवर्ण से वैश्यको और सब पापो से शूद्रको शपथ करावे ॥ ५५ ॥ अथवा इस शूद्रसे अग्नि पकड़ावे व जलमें डुबावे व अलग अलग पुत्र और स्त्रियों के माथ परसावे ॥ ५६ ॥ जिससे पण्डितलोग यमराजको यम नहीं कहते हैं किन्तु मनही यम कहाता है इससे जिसने मनको रोकाहै उसका यमराज क्या करेगा ॥ ५७ ॥ क्योंकि तीक्ष्ण शस्त्र व सर्प व क्रोधयुक्त शत्रु वैसा दुस्तर नहीं है जैसा अवशमन होताहै ॥ ५८ ॥ क्षमावान् लोगोंका यह एकही दोषहै दूसरा किसीप्रकारसे नहीं है जोकि इस

चशपथैर्नास्तिपातकम् ॥ ५४ ॥ सत्येनशापयेद्विप्रंक्षत्रियंवाहनायुधैः ॥ गोबीजकाञ्चनैर्वैश्यंशूद्रंसर्वैस्तुपातकैः ॥५५॥ अग्निंवाहारयेदेनमप्सुचैनंनिमज्जयेत् ॥ स्पर्शयेत्पुत्रदाराणांशिरांस्येनञ्चवापृथक् ॥ ५६ ॥ नयमंयममित्याहुरात्मावैयमउच्यते ॥ आत्मासंयमितोयेनतंयमःकिङ्करिष्यति ॥ ५७ ॥ ननिस्त्रिंशस्तथातीक्ष्णःफणीवादुरतिक्रमः ॥ रिपुर्वानित्यसंक्रुद्धोयथात्मादुरधिष्ठितः ॥ ५८ ॥ एकःक्षमावतान्दोषोनद्वितीयःकथञ्चन ॥ यदेनंक्षमयायुक्तमशक्तंमन्यतेजनः ॥ ५९ ॥ नशब्दशास्त्राभिरतस्यमोक्षोनचैवरम्यावसथप्रियस्य ॥ नभोजनाच्छादनतत्परस्यनलोकवित्तग्रहणेरतस्य ॥ ६० ॥ एकान्तशीलस्यसदैवतस्यसर्वेन्द्रियप्रीतिनिवर्तकस्य ॥ स्वाध्याययोगेगतमानसस्यमोक्षोध्रुवंनित्यमहिंसकस्य ॥ ६१ ॥ क्वैकान्तशीलत्वमिहास्तिपुंसःक्वचेन्द्रियप्रीतिनिवृत्तिरस्ति ॥ क्वयोगयुक्तिःक्वचदैवतेज्याक्काश्यांविनैभिःसहजेनमुक्तिः ॥ ६२ ॥ विश्वेशसंशीलनमेवयोगस्तपश्चविश्वेशपुरीनिवासः ॥ व्रतानिदानंनियमायमाश्च

क्षमायुक्तको सब जन असमर्थ मानताहै ॥ ५९ ॥ जोकि शब्दशास्त्रमें प्रीतिवाला व रम्यस्थानको प्यारकरता व भोजनाच्छादनमें तत्पर व लोगोंका धनलेनेमें स्नेहवान् है उसका मोक्ष नहीं है ॥ ६० ॥ व यह निश्चय है कि जो मनुष्य एकान्तशील व देवतासमेत व इन्द्रियप्रीतिहीन व स्वाध्याय योगमें मन लगानेवाला और सदैव हिंसा से रहितहै उसकी मुक्ति होती है ॥ ६१ ॥ इस लोकमें मनुष्यकी एकान्तशीलता व इन्द्रियोंकी प्रीतिकी निवृत्ति व योगयुक्ति व देवपूजा कहां है किन्तु काशीमें इनके विना सहजसेही मुक्ति होती है ॥ ६२ ॥ क्योंकि विश्वनाथकी सेवाही योग व काशीवासही तपस्या है और जोकि उत्तरवाहिनी गंगामें नहाना है वही व्रत दान यम और निय-

व्रतों से शुद्ध होताहै ॥ ४३ ॥ जोकि नीलवस्त्रको धारण करताहै उसके स्नान दान तप होम वेदपाठ पितृतर्पण और यज्ञादि सब सुकर्म वृथाहैं ॥ ४४ ॥ व जो ब्राह्मण लीलसे रंगे वस्त्रको अपने अंगमें धारे वह सूत्रसंख्यक नरक में निश्चय बसे ॥ ४५ ॥ किन्तु वह रातो दिन उपवासकर पंचगव्य पीनेसे शुद्ध होताहै ॥ ४६ ॥ व लीलसे रंगे वस्त्रसे जिस अन्नको समीप में कल्पितकरे याने परसे उसका भोक्ता विष्ठाके समान खाताहै और दाताभी नरकको जाताहै ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणका अन्न अमृत क्षत्रियका अन्न दूध वैश्यका अन्न अन्न और शूद्रका अन्न रक्त कहागयाहै ॥ ४८ ॥ क्योंकि बलिवैश्वदेव होम देवपूजा, जप, ऋग् यजुः और साम इन सबोंमे संस्कृत होताहै उस

त्रिभिः कृच्छ्रैर्विशुध्यति ॥ ४३ ॥ स्नानन्दानन्तपोहोमःस्वाध्यायःपितृतर्पणम् ॥ वृथातस्यमहायज्ञानीलीवासोबिभर्ति यः ॥ ४४ ॥ नीलीरक्तंयदावस्त्रंविप्रःस्वाङ्गेषुधारयेत् ॥ तन्तुसन्ततिसंख्याकेनरकेसवसेद्ध्रुवम् ॥ ४५ ॥ अहोरात्रोपितो भूत्वापञ्चगव्येनशुध्यति ॥ ४६ ॥ नीलीरक्तेनवस्त्रेणयदन्नमुपकल्पयेत् ॥ भोक्ताविष्ठासमम्भुङ्क्तेदाताचनरकंव्रजेत् ॥ ४७ ॥ अमृतम्ब्राह्मणस्यान्नंक्षत्रियान्नम्पयःस्मृतम् ॥ वैश्यस्यचान्नमेवान्नंशूद्रस्यरुधिरंस्मृतम् ॥ ४८ ॥ वैश्वदेवेनहोमेनदेवताभ्यर्चनैर्जपैः ॥ अमृतन्तेनविप्रान्नमृग्यजुःसामसंस्कृतम् ॥ ४९ ॥ व्यवहारानुरूपेणन्यायेनतुयदर्जनम् ॥ क्षत्रियस्यपयस्तेनप्रजापालनतोभवेत् ॥ ५० ॥ प्रहरानड्वाहाद्यदन्नमुत्पाद्ययच्छति ॥ सीतायज्ञविधानेनवैश्यान्नन्तेनसंस्कृतम् ॥ ५१ ॥ अज्ञानतिमिरान्धस्यमद्यपानरतस्यच ॥ रुधिरन्तेनशूद्रान्नंवेदमन्त्रविवर्जितम् ॥ ५२ ॥ नवृथाशपथंकुर्यात्स्वल्पेप्यर्थेनरोत्तमः ॥ वृथाहिशपथंकुर्वन्प्रेत्यचेहविनश्यति ॥ ५३ ॥ कामिनीपुविवाहेचगवाम्भुक्तेधनक्षये ॥ ब्राह्मणाभ्युपपत्तौ

से ब्राह्मणका अन्न अमृतहै ॥ ४९ ॥ व जिससे व्यवहारके अनुरूप न्यायसे और प्रजापालनेसे कमाई करनाहै उससे क्षत्रियका अन्न दूधके समानहै ॥ ५० ॥ व जिससे वैश्य एक पहर पर्य्यन्त जोतने के लिये नहेंबैलसे उपजाकर हल पद्धतिसम्बन्धी यज्ञविधानसे संस्कृत अन्नको देताहै उससे वैश्यका अन्न अन्न कहागयाहै ॥ ५१ ॥ और जिससे शूद्र अज्ञान अन्धकार से अन्धा व मद्यपान में रत होताहै उससे वेद मन्त्रोंसे हीन उसका अन्न रक्तके समान अशुद्ध है ॥ ५२ ॥ श्रेष्ठ मनुष्य थोडे प्रयोजनमेही शपथ न करे क्योंकि वृथाही शपथ करताहुआ मरकर परलोक में व इस लोकमें भी विनष्ट होताहै ॥ ५३ ॥ परन्तु स्त्रियोंका बीच व्याह गौओका चरना धन-

महै ॥ ६३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि इसलोक में न्याय से धन कमानेवाला व तत्त्वज्ञान में निष्ठ व अतिथियोंको प्यार करता व श्राद्धकृत् और सत्यवादी गृहस्थभी मुक्त होजाता है ॥ ६४ ॥ व दीन अन्धे कृपण और याचकों के लिये धनको देकर व गृह्य सूत्रोक्त कर्मों को कर गृहस्थ मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ६५ ॥ जोकि इसप्रकारसे आचरण करतेहुये पुरुषों पर काशीनाथ शिवजी प्रसन्नहोते हैं और काशीनाथकी प्रसन्नतासे मोक्ष करनेवाली काशी प्राप्तहोती है ॥ ६६ ॥ जिसने काशी का सेवनकिया वह सबतीर्थों में नीके नहाचुका व उसने सबयज्ञों में दीक्षालिया व उसने सब दान दिया यानै काशीवासमात्रसे इन सबका फल मिलजाता है इससे वह काशीवासी

स्नानंपुनर्यांयदुदग्वहायाम् ॥ ६३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ न्यायागतधनस्तत्त्वज्ञाननिष्ठोतिथिप्रियः ॥ श्राद्धकृत्सत्यवादी चगृहस्थोपीहमुच्यते ॥ ६४ ॥ दीनान्धकृपणार्थिभ्योदत्त्वान्नानिविशेषतः ॥ कृत्वागार्ह्याणिकर्माणिगृहस्थःश्रेयआप्नुयात् ॥ ६५ ॥ इत्थमाचरताम्पुंसांकाशीनाथःप्रसीदति ॥ काशीनाथप्रसादेनकाशीप्राप्तिस्तुमोक्षकृत् ॥ ६६ ॥ ससर्वतीर्थसुस्नातःससर्वक्रतुदीक्षितः ॥ सदत्तसर्वदानस्तुकाशीयेननिषेविता ॥ १६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे गृहस्थधर्माख्यानंनामचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ उषित्वैवंगृहेविप्रोद्वितीयादाश्रमात्परम् ॥ वलीपलितसंयुक्तस्तृतीयाश्रममाविशेत् ॥ १ ॥ अपत्यापत्यमालोक्यग्राम्याहारान्विसृज्यच ॥ पत्नींपुत्रेषुसन्त्यज्यपत्न्यावावनमाविशेत् ॥ २ ॥ वसानश्चर्मचीराणिसाग्निर्मु

मनुष्य धन्यहै ॥ १६७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेगृहस्थधर्मकथनंनामचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४० ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । यकतालिस अध्याय मे वानप्रस्थ सुधर्म । पुनि संन्यासी धर्म कहि जानि योगयुत कर्म ॥ श्रीस्कन्दजी बोले कि ब्राह्मण इस भांतिसे घरमें बसकर व वृद्धहो-कर दूसरे आश्रम से परे तीसरे आश्रम मे प्रवेशकरे अर्थात् वानप्रस्थाश्रमको प्राप्त होवे ॥ १ ॥ पुत्रके पुत्र याने पोतेको देख व ग्राम्य भोजनों को छोड़ और स्त्री को पुत्रों मे भलीभांति से त्यागकर अथवा स्त्रीके साथही वनमें पैठे ॥ २ ॥ चर्म वस्त्रों को धारताहुवा व नित्य होमाग्निसमेत व मुनियों के अन्नों से बर्त्ताहुवा व जटा

रखावे व दाढ़ीके केशों को न कटावे व नख और रोमों का धारनेवाला होकर सन्ध्या प्रातः और मध्याह्नमें भी स्नान करता होवे ॥ ३ ॥ व शाकमूल और फलों से भी पंचयज्ञों को न त्यागे व जल मूल और फल फूलादि भिक्षाओं से भिक्षुक अतिथियों को पूजे ॥ ४ ॥ व किसीसे दान न लेवे व आप भिक्षुकों को देवे व वेदपाठ में तत्पर होकर यथा विधिसे वैतानिक अग्निहोत्रको हवनकरे अब यहां यह जानना चाहिये कि आहवनीय व दक्षिणाग्निकुण्ड में गार्हपत्यकुण्डस्थ अग्नियों के विहार का वितान नामहै और उनसे हुये कर्म्मको वैतानिक कहते हैं ॥ ५ ॥ और वह वानप्रस्थ अपने लायेहुये मुनि अन्नों से अर्थात् तिनी व पसाढ़ी आदिकों से पुरोडाशों

न्यन्नवर्तनः ॥ जटीसायम्प्रगेस्नायीश्मश्रुलोनखलोमभृत् ॥ ३ ॥ शाकमूलफलैर्वापिपञ्चयज्ञान्नहापयेत् ॥ अम्मूलफलभिक्षाभिरर्चयेद्भिक्षुकातिथीन् ॥ ४ ॥ अनादाताचदाताचदान्तःस्वाध्यायतत्परः ॥ वैतानिकञ्चजुहुयादग्निहोत्रंयथाविधि ॥ ५ ॥ मुन्यन्नैःस्वयमानीतैःपुरोडाशांश्चनिर्वपेत् ॥ स्वयंकृतञ्चलवणञ्चादेत्स्नेहंफलोद्भवम् ॥ ६ ॥ वर्जयेच्छेलुशिग्रूचकवकम्पललम्मधु॥मुन्यन्नमाश्विनेमासित्यजेत्चत्पूर्वसञ्चितम् ॥७॥ ग्राम्याणिफलमूलानिफालजान्नञ्चसन्त्यजेत् ॥ दन्तोलूखलकोवास्यादश्मकुट्टोथवाभवेत् ॥ ८ ॥ सद्यःप्रक्षालकोवास्यादथवामाससञ्चयी ॥ त्रिषड्द्वादशमासान्नफलमूलादिसंग्रही ॥ ९ ॥ नक्ताश्येकान्तराशीवापष्ठकालाशनोपिवा ॥ चान्द्रायणव्रतीवास्यात्पक्षभुग्वाथमासभु

को निर्वपनकरे याने देवताओंके लिये यज्ञभाग देवे व अपने बनायेहुये लोन और फलों से उत्पन्न तेलको भी भोजनकरे ॥ ६ ॥ व लसोढ़ा साहिजन धरतीका फूल मांस और शहदको बरावे व जोकि पसाढ़ी आदि अन्न पहले संचित कियागया है उसको आश्विनमासमें त्यागदेवे ॥ ७ ॥ व ग्रामके फल मूल और फालसे जोते खेतों में उत्पन्न अन्नको भी भलीभांति से त्यागै व कांडी के समान दन्तोंसेही अन्न का कूटनेवाला होवे अथवा पत्थर से कूटनेवाला होवे ॥ ८ ॥ या कि एक दिन के भोजनादिका संग्रही व मासभरे की जीविका का संचयी व तीन छः और बारहमास की जीविकाके लिये अन्न फलफूल और मूलादिकोंके इकट्ठे संग्रह करनेवाला होवे ॥ ९ ॥ व रात्रिमें भोजन करनेवाला व दूसरे दिन भोजन करनेवाला व छठयें कालमें भोजन करनेवाला व पक्षमें भोजन करनेवाला व मासमे भोजन करनेवाला अथवा

चान्द्रायण व्रत करनेवाला होवे ॥ १० ॥ याकि वैखानसमत में टिकाहुआ फलमूलभोक्ता होकर तपस्या से देहको सुखावे व पितरों और देवताओं को तृप्त करे ॥ ११ ॥ अब अशक्त के प्रति कहते हैं कि वैखानस शास्त्रके विधान से याने भस्म पानादि से श्रौत अग्निको अपने आत्मा में भलीभांति से आरोपणकर व लौकिकाग्निवाले घरसे हीन होकर विचरे और प्राण यात्राके लिये तपस्वी वनवासी ब्राह्मणो से भीख मांगलावे ॥ १२ ॥ अथवा वनमें बसताहुआ ग्रामसे आठ कवल अन्न आन कर भोजनकरे इसप्रकार से वानप्रस्थ ब्राह्मण ब्रह्मलोकमें पूजा जाताहै ॥ १३ ॥ ऐसेही आयुके तीसरे हिस्से को वनमें बिताकर फिर आयुके चौथे भाग में सब संगों

क् ॥ १० ॥ वैखानसमतस्थस्तुफलमूलाशनोपिवा ॥ तपसाशोषयेद्देहंपितॄन्देवांश्चतर्पयेत् ॥ ११ ॥ अग्निमात्मनि चाधायविचरेदनिकेतनः ॥ भिक्षयेत्प्राणयात्रार्थंतापसान्वनवासिनः ॥ १२ ॥ ग्रामादानीयवाश्नीयादष्टौग्रासान्वस न्वने ॥ इत्थंवनाश्रमीविप्रोब्रह्मलोकेमहीयते ॥ १३ ॥ अतिवाह्यायुषोभागंतृतीयमितिकानने ॥ आयुषस्तुतुरीयांशेत्य क्त्वासङ्गान्परिव्रजेत् ॥ १४ ॥ ऋणत्रयमसंशोध्यत्वनुत्पाद्यसुतानपि ॥ तथायज्ञाननिष्ट्वाचमोक्षमिच्छन्व्रजत्यधः ॥ १५ ॥ मनागपिनभूतानांयस्माद्दुत्पद्यतेभयम् ॥ सर्वभूतानितस्येहप्रयच्छन्त्यभयंसदा ॥ १६ ॥ एकएवचरेन्नित्यम नग्निरनिकेतनः ॥ सिद्ध्यर्थमसहायःस्याद्ग्राममन्नार्थमाश्रयेत् ॥ १७ ॥ जीवितम्मरणंवाथनाभिकाङ्क्षेत्कदाचिदपि ॥ कालमेवप्रतीक्षेतनिर्देशम्भृतकोयथा ॥ १८ ॥ सर्वत्रममताशून्यःसर्वत्रसमतायुतः ॥ वृक्षमूलनिकेतश्चमुमुक्षुरिहश

को छोड़ संन्यासाश्रमको जावे ॥ १४ ॥ जोकि विना वेद पढ़े व विना पुत्र उपजाये व विना यज्ञ किये और तीन ऋणों को न संशोधनकर मोक्षका चाही होताहै वह नीचे को जाताहै ॥ १५ ॥ इसलोकमें जिससे प्राणियों को थोड़ाभी डर नहीं उपजताहै उसको सब भूत सदैव अभय देते हैं ॥ १६ ॥ इससे लौकिक और वैदिक अग्नि से रहित व घर से शून्य होकर अकेलाही विचरे व मुक्तिके लिये सहाय से हीन होवे व अन्न के अर्थ ग्रामको सेवे याने भिक्षा करनेको उसमें आवे ॥ १७ ॥ व संन्यासी कभी जीने और मरने की कांक्षा न करे किन्तु जैसे सेवक सेवासमयको परखता है वैसे अपने कर्म के आधीन मरणकाल को भी परखे ॥ १८ ॥ जोकि इस

लोकमें सर्वत्र ममतासे रहित व सबमें समता सहित व वृक्षमूलमें निवास करनेवाला है वह मुमुक्षु प्रशंसाजाताहै ॥ १९ ॥ व ध्यान शौच भिक्षा और नित्यही एकांत सेवन ये चार कर्म संन्यासी के होते हैं इनसे अन्य पांचवां नहीं सिद्ध होताहै ॥ २० ॥ व इससे संन्यासी वर्षाके चौमासामे कहीं न विचरे जिससे उस समय में बीज अंकुर और जंतुओंकी हिंसाहोती है ॥ २१ ॥ जंतुओं को बराताहुवा चले व वस्त्रसे छाना पानी पीवे व जिसमे किसी का उद्वेग न होवे उस वचनको बोले व कहीं किसी से क्रोध न करे ॥ २२ ॥ किन्तु आत्मसहायक व निष्काम व निराधार व सदैव ब्रह्मध्यान में तत्पर व इन्द्रियजित् और नख व बालोंके संस्कार से हीन होकर लोकमें

स्यते ॥ १९ ॥ ध्यानंशौचन्तथाभिक्षानित्यमेकान्तशीलता ॥ यतेश्चत्वारिकर्माणिपञ्चमंनोपपद्यते ॥ २० ॥ वार्षिकांश्चतुरोमासान्विहरेन्नयतिःक्वचित् ॥ बीजांकुराणांजन्तूनांहिंसातत्रयतोभवेत् ॥ २१ ॥ गच्छेत्परिहरञ्जन्तून्पिबेत्कंवस्त्रशोधितम् ॥ वाचंवदेदनुद्वेगांनक्रुध्येत्केनचित्क्वचित् ॥ २२ ॥ चरेदात्मसहायश्चनिरपेक्षोनिराश्रयः ॥ नित्यमध्यात्मनिरतोनीचकेशनखोवशी ॥ २३ ॥ कुसुम्भवासादण्डाढ्योभिक्षाशीख्यातिवर्जितः ॥ अलाबुदारुमृद्वेणुपात्रंशस्तंनपञ्चमम् ॥ २४ ॥ नग्राह्यन्तैजसम्पात्रंभिक्षुकेनकदाचन ॥ वराटकेसंगृहीतेतत्रतत्रादिनेदिने ॥ २५ ॥ गोसहस्रवधम्पापंश्रुतिरेषासनातनी ॥ हृदिसस्नेहभावेनचेद्वक्षेत्स्त्रियमेकदा ॥ २६ ॥ कोटिद्वयम्ब्रह्मकल्पंकुम्भीपाकीनसंशयः ॥ एककालञ्चरेद्भैक्ष्यंनकुर्यात्तत्रविस्तरम् ॥ २७ ॥ विधूमेसन्नमुसलेव्यङ्गारेभुक्तवज्जने ॥ वृत्तेशरावसम्पातेभिक्षांनित्यञ्चरे

विचरे ॥ २३ ॥ व कुसुंभसे रँगे वस्त्रहैं जिसके वह भिक्षाभोजनकरनेवाला दंडी ख्यातिसे वर्जितहोवे याने किसी से अपनी श्रेष्ठता न कहवावे व उसकेलिये तोंबी काष्ठ मृत्तिका और बांसका पात्र प्रशस्तहै इनचारों से अन्य पंचम पात्र नहीं है ॥ २४ ॥ क्योंकि संन्यासीको तैजसपात्र न लेनाचाहिये व तहां तहां कौड़ीमात्र धनसंग्रह करने से दिन दिनमें ॥ २५ ॥ हजारगऊ मारने का पापहोताहै यह सनातन की श्रुतिहै और जो एकबार भी हृदयमे काम सहित अभिप्रायसे स्त्री को देखे तो ॥ २६ ॥ ब्रह्मा के दोकरोड दिनतक कुंभीपाक नरक का वासीहोवे इसमे संशय नहीं है इससे प्राणधारणके अर्थ एकबार भिक्षाको विचरे उसमें भी विस्तार न करे क्योंकि अधिक भोजनके द्वारा धातुवृद्धि होने से स्त्री आदि विषय में आसक्त होताहै ॥ २७ ॥ जब रसोई का धुवां निकलजावे व मूसलसे कूटना बन्द होवे व अंगार बुझगये होवें व

लोग भोजनकरचुकें व भोजनोच्छिष्ट अन्न से भरी परई का त्यागहोगयाहो तब संन्यासी सदैव भिक्षाकरे ॥ २८ ॥ व थोड़ाखाता व एकांतबासी व इन्द्रियों के विषयो में अलोलुप और राग व द्वेषसे हीन संन्यासी मोक्षके लिये कल्पितहोता है ॥ २९ ॥ व संन्यासी जन जिस मनुष्य के आश्रम याने घरमें मुहूर्त्त मात्र (क्षण भर या दो दंड काल) तक भी विश्रामकरे उसको बहुते बलोंसे क्याहै वह कृतार्थ होताहै ॥ ३० ॥ जोकि मरण पर्य्यन्ततक गृहस्थने पाप बटोरा उस सबको ही एक रात्रिबासी संन्यासी निश्शेष जाल डालेगा ॥ ३१ ॥ व बुढ़ाई से तिरस्कार रोगसे पीड़ित असह्य देहत्याग व फिर गर्भ व दारुण गर्भक्लेशको देखकर ॥ ३२ ॥ व अनेक योनियोंमें बास

द्यतिः ॥ २८ ॥ अल्पाहारोरहःस्थायीत्विन्द्रियार्थेष्वलोलुपः ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्तोभिक्षुर्मोक्षायकल्पते ॥ २९ ॥ आश्रमेतुयतिर्यस्यमुहूर्तमपिविश्रमेत् ॥ किन्तस्यानेकतन्त्रेणकृतकृत्यःसजायते ॥ ३० ॥ सञ्चितंयद्गृहस्थेनपापमामरणान्तिकम् ॥ निर्धक्ष्यतिहितत्सर्वमेकरात्रोषितोयतिः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वाजराभिभवनमसह्यंरोगपीडितम् ॥ देहत्यागंपुनर्गर्भङ्गर्भक्लेशञ्चदारुणम् ॥ ३२ ॥ नानायोनिनिवासञ्चवियोगञ्चप्रियैःसह ॥ अप्रियैःसहसंयोगमधर्माद्दुःखसम्भवम् ॥ ३३ ॥ पुनर्निरयसंवासंनानानरकयातनाः ॥ कर्मदोषसमुद्भूतान्नृणांगतिरनेकधा ॥ ३४ ॥ देहेष्वनित्यतांदृष्ट्वानित्यतांपरमात्मनः ॥ कुर्वीतमुक्तयेयत्नंयत्रयत्राश्रमेरतः ॥ ३५ ॥ करपात्रीतिविख्याताभिक्षापात्रविवर्जिताः ॥ तेषांशतगुणम्पुण्यम्भवत्येवदिनेदिने ॥ ३६ ॥ आश्रमांश्चतुरस्त्वेवंक्रमादासेव्यपण्डितः ॥ निर्द्वन्द्वस्त्यक्तसङ्गश्चब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ३७ ॥ असंयतःकुबुद्धीनामात्माबन्धायकल्पते ॥ धीमद्भिःसंयतःसोपिपदन्दद्यादनामयम् ॥ ३८ ॥

व प्यारजनों के साथ वियोग व अप्रियों के साथ संयोग व अधर्म से दुःखकी उत्पत्ति ॥ ३३ ॥ व फिर नरकवास व बहुती नरकयातना व कर्म्म दोषोंसे उपजी मनुष्योंकी अनेक भांतिसे गति ॥ ३४ ॥ व देहों में अनित्यता और परमात्माकी नित्यताको देखकर जिसजिस आश्रममें रत होवे उस उसमें मोक्षके लिये यत्नकरे ॥ ३५ ॥ जोकि भिक्षाके पात्रसे हीनहैं वे करपात्री कहेगये हैं उनको दिन दिन में सौगुण पुण्य होती है ॥ ३६ ॥ इसप्रकार क्रमसे चार आश्रमों को सेवनकर शीत उष्ण क्षुधा तृषादि द्वन्द्वों से हीन और असंग होकर ब्रह्मज्ञानी मोक्षके लिये कल्पित होता है ॥ ३७ ॥ और नहीं रोंकाहुवा कुबुद्धिवाले मनुष्यों का मन बन्धनके लिये समर्थ होताहै व बु-

द्धिमानो करके रोंका गया वही सब उपद्रवोंसे शून्य कैवल्य पदको देताहै ॥ ३८ ॥ व श्रुति, स्मृति, पुराण, उपासना, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, भाष्य और जो अन्य कुछ वचन मय कहीं है वह ॥ ३९ ॥ व वेद पाठ व ब्रह्मचर्य्य व तपस्या व इन्द्रियनिग्रह व श्रद्धा व उपवास और अपने वश होना इन सब आत्मज्ञान के कारणों को जानकर ॥ ४० ॥ सब आश्रमवर्तियों करके यत्न से वह आत्माही विचारने व सुनने व मानने और देखने के योग्य है ॥ ४१ ॥ क्योंकि आत्मज्ञान से मुक्तिहोती है पर न्तु वह ब्रह्मज्ञान योगविना नहीं होताहै और वह योग बहुत कालतक अभ्यासहीसे सधता है ॥ ४२ ॥ किन्तु वनवास व वनकी भलीभांति सेवासे नहीं बहुत ग्रन्थोंके

श्रुतिस्मृतिपुराणञ्चविद्योपनिषदस्तथा॥ श्लोकाःसूत्राणिभाष्याणियच्चान्यद्वाङ्मयंक्वचित्॥३९॥वेदानुवचनंज्ञात्वाब्रह्म चर्यन्तपोदमः ॥ श्रद्धोपवासःस्वातन्त्र्यमात्मनोज्ञानहेतवः॥४०॥सहिसर्वैर्विजिज्ञास्यआत्मैवाश्रमवर्तिभिः॥श्रोतव्य स्त्वथमन्तव्योद्रष्टव्यश्चप्रयत्नतः ॥ ४१ ॥ आत्मज्ञानेनमुक्तिःस्यात्तच्चयोगादृतेनहि ॥ सचयोगश्चिरङ्कालमभ्यासा देवसिध्यति ॥ ४२ ॥ नारण्यसंश्रयाद्योगोननानाग्रन्थचिन्तनात् ॥ नदानैर्नव्रतैर्वापिनतपोभिर्नवामखैः ॥ ४३ ॥ न चपद्मासनाद्योगोनवाघ्राणाग्रवीक्षणात् ॥ नशौचेननमौनेननमन्त्राराधनैरपि ॥ ४४ ॥ अभियोगात्सदाभ्यासात्तत्रैव चविनिश्चयात्॥ पुनःपुनरनिर्वेदात्सिध्येद्योगोनचान्यथा॥४५॥ आत्मक्रीडस्यसततंसदात्ममिथुनस्यच ॥ आत्मन्ये वसुतृप्तस्ययोगसिद्धिर्नदूरतः ॥ ४६ ॥ अत्रात्मव्यतिरेकेणद्वितीयंयोनपश्यति॥ आत्मारामःसयोगीन्द्रोब्रह्मीभूतोभवे

विचारसे नहीं दानों से नहीं व व्रतों से नहीं व तपस्याओं से नहीं व यज्ञोंसेभी योग नहींहै ॥ ४३ ॥ और पद्मासन से नहीं व नासिका के अग्रभाग को देखने से नहीं शौचसे नहीं व मौनसे नहीं व मन्त्रों के आराधन से भी योग नहींहै ॥ ४४ ॥ और सम्मुखमन को जोड़ना व सदाचार या सब ओरसे ब्रह्माभ्यास व उसमें निश्चय व बारबार वितृष्णा न होनेसे योग सिद्धहोता है अन्यथा नहीं ॥ ४५ ॥ जोकि आत्मा मेंही निरन्तर क्रीड़ा करता है व आत्ममिथुन याने परमात्माके एकताभाव को प्राप्त है व आत्मामेंही सुतृप्तहै उसको योगकी सिद्धिदूर नहीं है ॥ ४६ ॥ जोकि इसलोकमें आत्माके उलटा पलटाहोने से दूसरे को नहीं देखता है वह आत्माराम योगीराज

इसी देहमें ब्रह्मरूप है ॥ ४७ ॥ क्योंकि आत्मा और मनके संयोगकोही पण्डितोंने योग ऐसा कहाहै व किसीकरके प्राण और अपान वायुका संयोगही योगऐसा कहा जाता है ॥ ४८ ॥ व अज्ञानी लोग विषयोंके साथ इन्द्रियों के संयोगकोही योग ऐसा भी कहते हैं परन्तु जिनकामन विषयोंमें लगा है उनका ज्ञान और मोक्षभी बड़ी दूरहै ॥ ४९ ॥ क्योंकि दुःखसे निवारीजाती हुई मनकी वह वृत्ति जबतक नहीं फिरती है तबतक थोडीभी योगकी वार्ता निकट वर्तिनी कैसे होसक्ती है ॥ ५० ॥ जोकि मनको वृत्तियोंसे हीनकर व क्षेत्रज्ञ परमात्मा में तद्रूपसे संयुक्तकर विमुक्त होता है वह योगयुक्त कहाजाताहै ॥ ५१ ॥ इससे बहिर्मुख याने नेत्र श्रवण आदि

दिह ॥ ४७ ॥ संयोगस्त्वात्ममनसोर्योगइत्युच्यतेबुधैः ॥ प्राणापानसमायोगोयोगइत्यपिकैश्चन ॥ ४८ ॥ विषयेन्द्रिय संयोगोयोगइत्यप्यपण्डितैः ॥ विषयासक्तचित्तानांज्ञानंमोक्षश्चदूरतः ॥ ४९ ॥ दुर्निवारामनोवृत्तिर्यावत्सानननिवर्तते ॥ किंवदन्त्यपियोगस्यतावन्नेदीयसीकुतः ॥ ५० ॥ वृत्तिहीनंमनःकृत्वाक्षेत्रज्ञेपरमात्मनि ॥ एकीकृत्यविमुच्येतयोगयुक्तःस उच्यते ॥ ५१ ॥ बहिर्मुखानिसर्वाणिकृत्वाखान्यन्तराणिवै ॥ मनस्येवेन्द्रियग्रामंमनश्चात्मनियोजयेत् ॥ ५२ ॥ सर्वभाव विनिर्मुक्तंक्षेत्रज्ञंब्रह्मणिन्यसेत् ॥ एतद्ध्यानंचयोगश्चशेषोन्योग्रन्थविस्तरः ॥ ५३ ॥ यन्नास्तिसर्वलोकेषुतदस्तीतिविरुध्यते ॥ कथ्यमानंतदन्यस्यहृदयेनावतिष्ठते ॥ ५४ ॥ स्वसंवेद्यंहितद्ब्रह्मकुमारीस्त्रीसुखंयथा ॥ अयोगीनैवतद्वेत्तिजात्यन्धइववर्तिकाम् ॥ ५५ ॥ नित्याभ्यसनशीलस्यस्वसंवेद्यंहितद्भवेत् ॥ तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्यंपरंब्रह्मसनातनम् ॥ ५६ ॥

सब इन्द्रियों और भीतरकी बुद्धि चित्त व अहङ्कारनामक इन तीनों को भी विषयों से खींचकर मनमेंकर फिर मनसमेत इन्द्रिय समूहको क्षेत्रज्ञ आत्मामें जोड़े ॥ ५२ ॥ उसके बाद साक्षित्व व द्रष्टत्वादि सब विकारशून्य शुद्ध क्षेत्रज्ञको परमानन्द स्वरूप ब्रह्म में एकीभूतकरे यही ध्यान व योगहै और शेष अन्य सब ग्रन्थों का विस्तार है ॥ ५३ ॥ "अब जो कहाजावे कि जो ऐसाध्यान व योग वर्तमानहै तो सब के चित्तमें क्योंनहीं जगमगाताहै उसपर कहतेहैं कि" जोकि ब्रह्मकी एकसा सब लोगों में नहीं प्रकाशती है वह है इसभांति से तत्त्वज्ञानियों से कथ्यमान होकर विरुद्ध होतीहै इससे वह अन्य प्राकृतके मनमें नहीं टिकतीहै ॥ ५४ ॥ जैसे स्त्रियों से कहेहुये भी पुरुष संयोग सुखको कुमारी नहीं जानती है व जैसे जन्मका अन्धा दीपदशा को नहीं जानता है वैसे उसको अयोगी नहीं जानता है इससे वह ब्रह्म

योगाभ्यास से अपनेही जानने योग्य है ॥ ५५ ॥ और वह ब्रह्म सदा अभ्यास शीलवालेका अपनासेही जानने योग्यहै अन्यकोई नहीं जानसक्ता है क्योंकि वह सनातन परब्रह्म सूक्ष्म होनेसे वचनआदिकों से निर्देश करनेको अशक्य है याने मन और वचनसे भी परेहै ॥ ५६ ॥ जैसे बयारका मारापानी व जैसे चित्त एकक्षण भी स्थिरता को नहीं प्राप्तहोता है वैसे वह ब्रह्म है उससे कुयोगी उसका विश्वास न करे ॥ ५७ ॥ इससे चित्तकी स्थिरताके लिये वायुको रोंके और वायुरोंकने के अर्थ छःअंगवाले योगको अभ्यासकरे ॥ ५८ ॥ आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारण ध्यान और समाधि ये छः योगके अंगहोते हैं ॥ ५९ ॥ " अब उनको क्रमसे कहतेहैं कि"

क्षणमप्येकमुदकंयथानस्थिरतामियात् ॥ वाताहतंयथाचित्तंतस्मात्तस्यनविश्वसेत् ॥५७॥ अतोऽनिलंनिरुन्धीतचित्तस्यस्थैर्यहेतवे ॥ मरुन्निरोधनार्थायषडङ्गंयोगमभ्यसेत् ॥ ५८ ॥ आसनंप्राणसंरोधःप्रत्याहारश्चधारणा ॥ ध्यानंसमाधिरेतानियोगाङ्गानिभवन्तिषट् ॥ ५९ ॥ आसनानीहतावन्तियावन्त्योजीवयोनयः ॥ सिद्धासनमिदंप्रोक्तंयोगिनोयोगसिद्धिदम् ॥ ६० ॥ एतदभ्यसनान्नित्यंवर्ष्मदार्ढ्यमवाप्नुयात् ॥ ६१ ॥ दक्षिणंचरणंन्यस्यवामोरूपरियोगवित् ॥ याम्योरूपरिवामंचपद्मासनमिदंविदुः ॥ ६२ ॥ कराभ्यांधारयेत्पश्चादंगुष्ठौदृढबन्धवित् ॥ भवेत्पद्मासनादस्मादभ्यासाद्दृढविग्रहः ॥६३॥ अथवाह्यासनेयस्मिन्सुखमस्योपजायते ॥ स्वस्तिकादौतदध्यास्ययोगंयुञ्जीतयोगवित् ॥६४॥ नतोय

यहां जितनी जीवों की योनियां हैं उतने आसन हैं उनमें से यह सिद्धासन योगियों के लिये योग सिद्धिका दाताहै " उसका लक्षण ग्रन्थान्तर से कहाजाता है कि लिंगके ऊपर बायें पायके घुटुनाको धर फिर उसके ऊपरमें दक्षिण गुल्फको धरनेसे सिद्धासन होजाताहै " ॥ ६० ॥ नित्यही इसके अभ्यास से देह दृढ़ताको प्राप्तहोती है ॥ ६१ ॥ और योगके जाननेवाला मनुष्य बाईं ऊरूके ऊपर दहिने पायँको धरकर दहिनी ऊरूपर वामपादको धरे इसको पद्मासन कहते हैं ॥ ६२ ॥ परन्तु ध्यान व प्राणायाम के समयमें दृढ़बन्ध को जानता हुआ योगी पीठके पीछे से दोनों हाथों को लाकर उनसे दोनो पायँके अंगुठा को पकडे अर्थात् बायेंहाथ से दहिने और दहिनेसे बायेंअँगुठाको पकडे इसपद्मासनको अभ्याससे दृढ देहवाला होजावे ॥ ६३॥ अथवा जिस आसनमें इसका सुख उपजता है उस स्वस्तिकादि आसनमें बैठकर

को रोके ॥ ७३ ॥ किन्तु जबतक प्राणबयार देहमें बँधीहै व जबतक चित्त निराधार याने बाह्यविषयों के आकार से शून्यहै व जबतक दृष्टि भौहोंके बीचमें है तबतक कालकाडर कहां है ॥७४॥ इससे ब्रह्माजी भी कालके डरसे सदैव प्राणायामको करते हैं और योगीजनभी भलीभांति से प्राणायाम करनेसे सिद्धिको प्राप्तभयेहैं ॥ ७५ ॥ अब प्राणायाम का भेद कहते हैं कि जितने कालमें ह्रस्व अक्षरका उच्चारण होताहै उतने की जो एकमात्रा संज्ञामानी गई है उन बारह मात्राओं का प्राणायाम लघु व उस पहिले से दुगुना मध्यम और उससे तिगुना उत्तम है ॥ ७६ ॥ जिससे यह तीन प्रकारका प्राणायाम स्वेद व कंप व विषादको उपजाता है उससे पहिले से पसीना और

यावद्बद्धोमरुद्देहेयावच्चेतोनिराश्रयम् ॥ यावद्दृष्टिर्भ्रुवोर्मध्येतावत्कालभयंकुतः ॥ ७४ ॥ कालसाध्वसतोब्रह्माप्राणायामंसदाचरेत् ॥ योगिनःसिद्धिमापन्नाःसम्यक्प्राणनियन्त्रणात् ॥ ७५ ॥ मन्दोद्वादशमात्रस्तुमात्रालघ्वक्षरामता ॥ मध्यमोद्विगुणःपूर्वादुत्तमस्त्रिगुणस्ततः ॥ ७६ ॥ स्वेदंकम्पंविषादंचजनयेत्क्रमशस्त्वसौ ॥ प्रथमेनजयेत्स्वेदंद्वितीयेनतुवेपथुम् ॥ ८७ ॥ विषादंहितृतीयेनसिद्धःप्राणोथयोगिनः ॥ भवेत्क्रमात्सन्निरुद्धःसिद्धःप्राणोथयोगिना ॥ क्रमेणसेव्यमानोसौनयतेयत्रचेच्छति ॥ ७८ ॥ हठान्निरुद्धप्राणोयंरोमकूपेषुनिःसरेत् ॥ देहंविदारयत्येषकुष्ठादिजनयत्यपि ॥ ७९ ॥ तत्प्रत्याययितव्योसौक्रमेणारण्यहस्तिवत् ॥ वन्योगजोगजारिर्वाक्रमेणमृदुतामियात् ॥ ८० ॥ करोतिशास्तृनिर्देशंनचतंपरिलङ्घयेत् ॥ तथाप्राणोहृदिस्थोयंयोगिनाक्रमयोगतः ॥ गृहीतःसेव्यमानस्तुविश्रम्भमुपगच्छति ॥ ८१ ॥

दूसरे से देह कंपकोजीते ॥ ७७ ॥ व तीसरे से विषादको भी जीतलेवे उसके बाद योगीका प्राण सिद्धहोजाता है अनन्तर योगीसे सेव्यमान व क्रमसे निश्चलहुव वह सिद्धप्राण वहां पहुंचाताहै कि योगीजन जहांकी इच्छा करताहै ॥ ७८ ॥ और हठसे रोकागयाहुवा यह प्राण रोमके बिलोंसे निकलआता है व यह देहको विदारता है

योगवित् योगको जोड़े ॥ ६४ ॥ किन्तु अग्नि व जलके समीपमें नहीं जीर्ण वन व गौओंके स्थानमें नहीं डांश और मसाओं से व्याप्त देशमें नहीं पूज्यवृक्ष में नहीं व चतुष्पथमें नहीं ॥ ६५ ॥ व केश भस्म भूसी अँगार और हाड़ आदि से दूषित स्थान में नहीं व दुर्गन्धादि युक्तमें नहीं व जनोंसे पूर्ण स्थान में योगाभ्यास को नहीं करे ॥६६॥ जोकि सब बाधाओंसे रहित व सब इन्द्रियों के सुखसहित व मनकी प्रसन्नता उपजानेवाला और धूप सुगन्धादिकों से सुगन्ध समेत होवे उस स्थानमे योग का अभ्यास करे ॥ ६७ ॥ और बहुत भोजनसे तृप्तहुवा नहीं भूंखसे व्याकुल नहीं व मलमूत्र से पीड़ित नहीं गली चलने से खिन्न नहीं व चिन्तासे आर्तहुवा योगके

वह्निसामीप्येनजीर्णारण्यगोष्ठयोः ॥ नदंशमशकाकीर्णेनचैत्येनचचत्वरे ॥ ६५ ॥ केशभस्मतुषाङ्गारकीकसादिप्रदूषिते ॥ नाभ्यसेत्पूतिगन्धादौनस्थानेजनसंकुले ॥ ६६ ॥ सर्वबाधाविरहितेसर्वेन्द्रियसुखावहे ॥ मनःप्रसादजननेस्रग्धूपामोदमोदिते ॥ ६७ ॥ नातितृप्तःक्षुधार्तोननविण्मूत्रप्रबाधितः ॥ नाध्वखिन्नोनचिन्तार्तोयोगंयुञ्जीतयोगवित् ॥ ६८ ॥ ऊरुस्थोत्तानचरणःसव्येन्यस्योत्तरंकरम् ॥ उत्तानंकिञ्चिदुन्नम्यवक्त्रंविष्टभ्यचोरसा ॥ ६९ ॥ निमीलिताक्षःसत्त्वस्थोदन्तैर्दन्तान्नसंस्पृशेत् ॥ तालुस्थाचलजिह्वश्चसंवृतास्यःसुनिश्चलः ॥ ७० ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामंनातिनीचोच्छ्रितासनः ॥ मध्यमंचोत्तमंचाथप्राणायाममुपक्रमेत् ॥ ७१ ॥ चलेऽनिलेचलंसर्वंनिश्चलेतत्रनिश्चलम् ॥ स्थाणुत्वमाप्नुयाद्योगीततोऽनिलनिरुन्धनात् ॥ ७२ ॥ यावद्देहेस्थितःप्राणोजीवितंतावदुच्यते ॥ निर्गतेतत्रमरणंततःप्राणंनिरुन्धयेत् ॥ ७३ ॥

जाननेवाला योगको न जोड़े ॥ ६८ ॥ " अब प्राणायाम का विधान कहते हैं कि " दोनों उरुवोंपर टिके हैं उताने पावँ जिसके वह वाम ऊरूमें उताने उत्तर हाथ को धरकर फिर मुखकी ठोढ़ीको उरसे लगाय कुछेक उन्नतकर ॥ ६९ ॥ फिर नेत्र बन्दकिये व सत्त्वमें टिकाहुवा व तालुमें अचल जिह्वाको लगाये व मुखमूंदे व सुनिश्चल बैठाहुवा दन्तोंसे दन्तोंको न छुवे ॥ ७० ॥ व बहुत नीचे और बहुत ऊँचे नहीं है मुख जिसका वह इन्द्रिय समूहको रोंककर लघु व मध्यम अथवा उत्तम प्राणायाम का आरम्भ करे ॥ ७१ ॥ क्योंकि जब वायु चञ्चल होताहै तब सब देह चञ्चल रहती है और उसके अचञ्चल होतेही सब निश्चल होता है उससे योगीजन वायु के रोंकने से स्थिरताको प्राप्तहोता है ॥ ७२ ॥ व जबतक प्राण देहमें टिकाहै तबतक जीवन कहाजाताहै और उसके निकलतेही मरण होताहै उसकारण प्राणवायु

विनम्रताको प्राप्तहोताहै ॥ ८१ ॥ व पूरक कुम्भक और रेचक भेदसे छत्तीस अंगुल पर्यंत जाने योग्य देशवाला वायु करके वाम व दक्षिण मार्ग से बाहरको प्रयाण करताहै और प्रयाण करनेसेही प्राण कहाताहै ॥ ८२ ॥ व जब व्याकुलतासे हीनहुआ सब नाड़ी समूह शुद्धताको प्राप्त होताहै याने भूतशुद्धि कीजातीहै तबहीं योगीजन प्राणरोकने में समर्थ होताहै ॥ ८३ ॥ और दृढ़ आसनवाला योगी यथाशक्ति चन्द्रदेवतावाली इडानाड़ी याने वामनासिका के छिद्रसे प्राणको पूरण करे अर्थात् बाहर से भीतर में भरे उसके बाद सूर्य्य देवतावाली पिंगलानाड़ी याने दक्षिण श्वासा से वायु को बाहर निकाले यह प्राणायाम कहाता है ॥ ८४ ॥ अब पूरक व रेचक प्राणायाम

षट्त्रिंशदंगुलोहंसःप्रयाणंकुरुतेबहिः॥सव्यापसव्यमार्गेणप्रयाणात्प्राणउच्यते ॥ ८२ ॥ शुद्धिमेतियदासर्वंनाडीचक्रमनाकुलम् ॥ तदैवजायतेयोगीक्षमःप्राणनिरोधने ॥ ८३ ॥ दृढासनोयथाशक्तिप्राणंचन्द्रेणपूरयेत् ॥ रेचयेदथसूर्येण प्राणायामोयमुच्यते ॥ ८४ ॥ स्रवत्पीयूषधारौघंध्यायंश्चन्द्रसमन्वितम् ॥ प्राणायामेनयोगीन्द्रःसुखमाप्नोतितत्क्षणात् ॥ ८५ ॥ रविणाप्राणमाकृष्यपूरयेदौदरींदरीम् ॥ कुम्भयित्वाशनैःपश्चाद्योगीचन्द्रेणरेचयेत्॥ ८६॥ ज्वलज्ज्वलनपुञ्जाभंशीलयन्नुष्मगुंहृदि ॥ अनेनयाम्यायामेनयोगीन्द्रःशर्मभाग्भवेत् ॥ ८७ ॥ इत्थंमासत्रयाभ्यासादुभयायामसेवनात् ॥ सिद्धनाडीगणोयोगीसिद्धप्राणोभिधीयते ॥ ८८ ॥ यथेष्टन्धारणंवायोरनलस्यप्रदीपनम् ॥ नादाभिव्यक्तिरारोग्यंभवेन्नाडीविशोधनात् ॥ ८९ ॥ प्राणोदेहगतोवायुरायामस्तन्निबन्धनम् ॥ एकश्वासमयीमात्राप्राणायामोनिरु

को कहकर कुम्भकको कहते हैं कि जोकि चन्द्रमा या चन्द्रबीज मकार या उकार या लकार से संयुक्त है उस झिरते हुये अमृतधारा समूहको ध्यावताहुआ योगीन्द्र वायुको रोंककर कुम्भकनामक प्राणायाम से तत्क्षण सुखको प्राप्त होताहै ॥ ८५ ॥ तदनन्तर योगी दक्षिणमार्ग से प्राणको खींचकर उदरकी गुहाको भरे व रोंककर फिर धीरे धीरे वाममार्ग से उतारे ॥ ८६ ॥ व हृदय में ज्वलती हुई अग्निसमूह के समान सूर्य्यको अर्थात् सूर्य्यमण्डल के मध्यगत साम्ब शिव या श्रीमन्नारायण को ध्यावताहुआ योगीराज इस प्राणायाम से ब्रह्मानन्दका सेवी होवे ॥ ८७ ॥ इसप्रकार से तीन मासतक अभ्यास कियागया है जिसमें उस दो भांतिके प्राणायामके सेवन से सिद्धहुवा है नाड़ीसमूह जिसका वह योगी सिद्ध प्राण कहाजाता है ॥ ८८ ॥ "अब नाड़ी विशोधनका फल कहते हैं कि" अपनी इच्छा से वायुका धारना व पेट

की अग्निका प्रदीप्त करना व मूलाधार चक्रमें टिकी परावाणीका सुनना और आरोग्य यह सब फल नाड़ी शुद्ध करने से होताहै ॥ ८९ ॥ जोकि वायु देहमें गतहै उसका प्राण नामहै और उसका बांधनाही आयामहै किन्तु ह्रस्व अक्षरके उच्चारण कालको मात्रा कहते हैं व एक श्वासमयी मात्राका प्राणायाम कहागया है ॥ ९० ॥ अधम प्राणायाम मे स्वेद व मध्यम में कम्प होताहै और बार बार पद्मासन बांधने से उत्तम प्राणायाम में देह भूमिको परित्यागकर अन्तरिक्षको उठती है ॥ ९१ ॥ इस से प्राणायाम से दोषोंको व प्रत्याहार से पापको जलावे और धारणा से मनकी धीरता व ध्यान से ईश्वरका दर्शन होताहै ॥ ९२ ॥ व समाधि से शुभाशुभ पुण्य पापको

च्यते ॥ ९० ॥ प्राणायामेऽधमेघर्मःकम्पोभवतिमध्यमे ॥ उत्तिष्ठेदुत्तमेदेहोबद्धपद्मासनोमुहुः ॥ ९१ ॥ प्राणायामैर्दहे द्दोषान्प्रत्याहारेणपातकम् ॥ मनोधैर्यन्धारणयाध्यानेनेश्वरदर्शनम् ॥ ९२ ॥ समाधिनालभेन्मोक्षंत्यक्त्वाधर्मंशुभा शुभम् ॥ आसनेनवपुर्दार्ढ्यंषडङ्गमितिकीर्तितम् ॥ ९३ ॥ प्राणायामद्विषट्केनप्रत्याहारउदाहृतः ॥ प्रत्याहारैर्द्वादशभि र्धारणापरिकीर्तिता ॥ ९४ ॥ भवेदीश्वरसङ्गत्यैध्यानंद्वादशधारणम् ॥ ध्यानद्वादशकेनैवसमाधिरभिधीयते ॥ ९५ ॥ समाधेःपरतोज्योतिरनन्तंस्वप्रकाशकम् ॥ तस्मिन्दृष्टेक्रियाकाण्डंयातायातंनिवर्तते ॥ ९६ ॥ पवनेव्योमसम्प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यतेमहान् ॥ घण्टादीनाम्प्रवाद्यानान्ततःसिद्धिरदूरतः ॥ ९७ ॥ प्राणायामेनयुक्तेनसर्वव्याधिक्षयोभवेत् ॥ अयुक्ताभ्यासयोगेनसर्वव्याधिसमुद्भवः ॥ ९८ ॥ हिक्काश्वासश्चकासश्चशिरःकर्णाक्षिवेदनाः ॥ भवन्तिविविधादोषाःपव

त्यागकर मोक्ष पाताहै व आसन से देहकी दृढ़ता होतीहै इस भांतिसे यह षडंग योग कहागया है ॥ ९३ ॥ व बारह प्राणायाम से प्रत्याहार कहागया है अर्थात् जितने कालमें प्राणायाम होताहै उसके बारह गुनामें प्रत्याहार होताहै व बारह प्रत्याहारोंसे धारणा कहीगई है ॥ ९४ ॥ और ईश्वरकी प्राप्तिके लिये बारह धारणावाला ध्यान होवेहै व बारह ध्यानों से समाधि कहीजाती है ॥ ९५ ॥ उस समाधि से परे याने समाधि से मिलने योग्य व ज्योतिरूप व स्वप्रकाश व अनन्त जो परब्रह्महै उसके दे-खने से कर्म्म और संसार में आना जाना निवृत्त होजाताहै ॥ ९६ ॥ व जब प्राण ब्रह्मरन्ध्रमें पहुंचता है तब घण्टादि बाजाओंका शब्द सुन पड़ताहै तदनन्तर योगकी सिद्धि समीपमेंही रहती है ॥ ९७ ॥ परन्तु युक्त याने यथा विधि से कियेहुये प्राणायाम से सब रोगोंका नाश होताहै और अयोग्य अभ्यास योगसे सब रोगोंकी उत्पत्ति

होतीहै ॥ ९८ ॥ क्योंकि वायुके उलटा होनेसेही हिक्का श्वास काश और शिर व नेत्र व कान आदिकी पीड़ायें और अन्य भी अनेकभांति के दोष होते हैं ॥ ९९ ॥ इससे उचित उचित याने थोड़ी थोड़ी बयारको त्यागे व युक्त युक्तको पूरे व युक्त युक्तको रोंके इस भांतिसे योगके जाननेवाला सिद्ध होजाताहै ॥ १०० ॥ " अब प्रत्याहारादिकोंका लक्षण कहते हैं कि" जिमी किसी भांतिसे विचरती इन्द्रियोंका जो युक्तिसे याने विषयों में दोष देखने से अपने ओर आनना है वह प्रत्याहार कहाताहै ॥ १ ॥ जोकि योगी कच्छपकी नाईं प्रत्याहार के विधान से अर्थात् विषयों में दोषानुसन्धानसे अपने अंगोंको सब ओरसे खींचकर अपनेप्रति हरलाता है वह विगत पाप होता

नस्यव्यतिक्रमात् ॥ ९९ ॥ युक्तंयुक्तन्त्यजेद्वायुंयुक्तंयुक्तञ्चपूरयेत्॥युक्तंयुक्तञ्चबध्नीयादित्थंसिध्यतियोगवित्॥ १०० ॥ इन्द्रियाणांहिचरतांविषयेषुयदृच्छया ॥ यत्प्रत्याहरणंयुक्त्याप्रत्याहारःसउच्यते ॥ १ ॥ प्रत्याहरतियःस्वानिकूर्मोङ्गानीवसर्वतः ॥ प्रत्याहृतिविधानेनसस्याद्विगतकल्मषः ॥ २ ॥ नाभिदेशेवसेद्भानुस्तालुदेशेचचन्द्रमाः ॥ वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रोग्रसेदूर्ध्वमुखोरविः ॥ ३ ॥ करणन्तच्चकर्तव्यंयेनसाप्राप्यतेसुधा ॥ ऊर्ध्वंनाभिरधस्तालुरूर्ध्वंभानुरधःशशी ॥ करणंविपरीताख्यमभ्यासादेवजायते ॥ ४ ॥ काकचञ्चुवदास्येनशीतलंशीतलंपिबेत् ॥ प्राणंप्राणविधानज्ञोयोगीभवतिनिर्जरः ॥ ५ ॥ रसनांतालुविवरेनिधायोर्ध्वमुखोऽमृतम् ॥ धयन्निर्जरताञ्चच्छेदाषण्मासान्नसंशयः ॥ ६ ॥ ऊर्ध्वजिह्वःस्थिरोभूत्वासोमपानंकरोतियः ॥ मासार्धेननसन्देहोमृत्युञ्जयतियोगवित् ॥ ७ ॥ सम्पीड्यरसनाग्रेणराजदन्त

है ॥ २ ॥ " अब दश मुद्राओं में से विपरीताख्याकरणी मुद्राको कहने के लिये प्रस्ताव करते हैं कि" नाभिदेशमें सूर्य्य व तालुदेश में चन्द्रमा बसता है और अधोमुख चन्द्रमा अमृत बरसता है व ऊर्ध्वमुख सूर्य्य उसके रसको ग्रसता है ॥ ३ ॥ इसलिये वह करण करने योग्य है कि जिसके करने से वह अमृत मिलता है किन्तु जब ऊपर नाभि व नीचे तालु और ऊंचे सूर्य्य व तले चन्द्रमा होजावे तब अभ्यास से विपरीताख्यकरण होताहै ॥ ४ ॥ जोकि प्राणायामके विधानको जानता हुवा योगीकागचोंचके समान मुखमें शीतल शीतल प्राणको पीवे वह बुढ़ाईसे हीन होवे ॥ ५ ॥ और छःमास पर्य्यन्त ऊर्ध्वमुख होकर व जिह्वाको तालु विवरमें धरकर उस अमृत को पीवताहुवा योगी निर्जरताको प्राप्तहोवे इसमें संशय नहीं है ॥ ६ ॥ व जोकि योगका पण्डित ऊर्ध्वजिह्वा वाला व निश्चल होकर अमृत पानकरता है

वह पन्द्रहदिन में मृत्युको जीतताहै सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥ और दीप्तिमान् व महान् जिह्वाके मूलभागमें टिके हुये छिद्रको जिह्वासे संपीड़ितकर व अमृतमयी देवीको ध्यानधर छःमासमें कवि होजावे ॥ ८ ॥ व अणिमादि गुणोंका उदय करनेवाला अमृत से पूर्ण देहवाले योगी का रेत दो तीनवर्ष मे ऊपर को चलाजाता है ॥ ९ ॥ व जिस योगीकी देह सदैव अमृत कलासे भरी है उसको जो तक्षकभी डसे तोभी विप नहीं व्यापताहै ॥ १० ॥ इससे आसन व प्राणायाम व प्रत्याहारसे संयुक्तहोकर अनन्तर धारणा का अभ्यास करे ॥ ११ ॥ वह यह है कि मनकी निश्चलता से हृदयमें जो पञ्चतत्त्वों का अलग अलग धारण करना है वही धारणा कही जाती

बिलंमहत् ॥ ध्यात्वासुधामयींदेवींषण्मासेनकविर्भवेत् ॥ ८ ॥ अमृतापूर्णदेहस्ययोगिनोद्वित्रिवत्सरात् ॥ ऊर्ध्वंप्रवर्ततेरेतोह्यणिमादिगुणोदयम् ॥ ९ ॥ नित्यंसोमकलापूर्णंशरीरंयस्ययोगिनः ॥ तक्षकेणापिदष्टस्यविषंतस्यनसर्पति ॥ १० ॥ आसनेनसमायुक्तःप्राणायामेनसंयुतः ॥ प्रत्याहारेणसम्पन्नोधारणामथचाभ्यसेत् ॥ ११ ॥ हृदयेपञ्चभूतानांधारणंयत्पृथक्पृथक् ॥ मनसोनिश्चलत्वेनधारणासाभिधीयते ॥ १२ ॥ हरितालनिभांभूमिंसलकारांसवेधसम् ॥ चतुष्कोणांहृदिध्यायेदेषास्यात्क्षितिधारणा ॥ १३ ॥ कण्ठेऽम्बुतत्त्वमर्धेन्दुनिभंविष्णुसमन्वितम् ॥ वकारबीजंकुन्दाभन्ध्यायन्नम्बुजयेदिति ॥ १४ ॥ तालुस्थमिन्द्रगोपाभंत्रिकोणंरेफसंयुतम् ॥ रुद्रेणाधिष्ठितंतेजोध्यात्वावह्निंजयेदिति ॥ १५ ॥ वायुतत्त्वंभ्रुवोर्मध्येवृत्तमञ्जनसन्निभम् ॥ यम्बीजमीशदैवत्यंध्यायन्वायुंजयेदिति ॥ १६ ॥ आकाशञ्चमरीचिवारिस

है ॥ १२ ॥ उनमें से यह पृथिवी की धारणा है कि हृदय में ब्रह्मा देवता समेत व लं बीजसे संयुत व चौकोन व हरिताल के समान रंगवाली भूमिको ध्यावे ॥ १३ ॥ व कण्ठमें विष्णुदेव समेत व कुन्दके फूलसे श्वेत व अर्धचन्द्र के समान और वं बीजहै जिसका उस जल तत्त्वको ध्याताहुआ इस भांतिसे जलको जीते ॥ १४ ॥ व रं बीज से संयुत, रुद्रदेवसे अधिष्ठित व त्रिकोण व बीरबहूटी के समान सुरंग व तालुमें टिकीहुई अग्नितत्त्वको ध्यानकर अग्निको जीते ॥ १५ ॥ व भौंहों के बीच में गोलाकार व अञ्जनके समान श्याम व यं बीज समेत व ईश देवतावाले वायु तत्त्वको ध्याताहुआ वायुको जीते ॥ १६ ॥ और जोकि किरण जलके याने सूर्य्य के

समान व शान्त व हं बीजसे संयुत आकाश तत्त्व ब्रह्मरंध्र मैं स्थितहै व जो सदाशिव स्वामीसे सहितहै उसमें ब्रह्मचिन्तन समेत प्राणको प्राप्तकर पांचदण्ड पर्य्यन्त काल तक धारणकरे यह मोक्ष किवाँड़ों के खोलनेमेंदक्षहुई आकाशकी धारणा कही गई है ॥ १७ ॥ व क्रमसे पञ्चतत्त्वोंकी इन पांचों धारणाओंके स्तम्भनी,प्लावनी,दहनी, भ्रामणी और शमनी ये नाम होते हैं ॥ १८ ॥ अब ध्यानका स्वरूप कहते हैं कि, ध्यै यह धातु चिन्ता अर्थमें वर्तमानहै और पदार्थ में एकाग्रता रूप जो चिन्ताहोती है यह सगुण (रूपादिसहित) व निर्गुण (रूपादिरहित) यहां दो भांतिसे ध्यान कहागया है ॥ १९ ॥ वह रूप भेदसे व मन्त्रसमेत सगुणहै और केवल याने रूप

दृशंयब्रह्मरन्ध्रस्थितं यन्नाथेनसदाशिवेनसहितंशान्तंहकाराक्षरम् ॥ प्राणंतत्रविनीयपञ्चघटिकंचिन्तान्वितन्धारयेदे षामोक्षकपाटपाटनपटुःप्रोक्तानभोधारणा॥ १७ ॥ स्तम्भनीप्लावनीचैवदहनीभ्रामणीतथा ॥ शमनीचभवन्त्येताभूता नांपञ्चधारणाः ॥ १८ ॥ ध्यैचिन्तायांस्मृतोधातुश्चिन्तातत्त्वेसुनिश्चला ॥ एतद्ध्यानमिहप्रोक्तंसगुणंनिर्गुणंद्विधा ॥ १९ ॥ सगुणंवर्णभेदेननिर्गुणंकेवलम्मतम् ॥ समन्त्रंसगुणंविद्धिनिर्गुणंमन्त्रवर्जितम् ॥ २० ॥ अन्तश्चेतोबहिश्चक्षुरवस्थाप्य सुखासनम् ॥ समत्वञ्चशरीरस्यध्यानमुद्रातिसिद्धिदा ॥ २१ ॥ नाश्वमेधेनतत्पुण्यंनचैराजसूयतः ॥ यत्पुण्यमेक ध्यानेनलभेद्योगीस्थिरासनः ॥ २२ ॥ शब्दादीनाञ्चतन्मात्रायावत्कर्णादिषुस्थिता ॥ तावदेवस्मृतंध्यानंस्यात्समाधि रतःपरम् ॥ २३ ॥ धारणापञ्चनाडीकाध्यानंस्यात्षष्टिनाडिकम् ॥ दिनद्वादशकेनस्यात्समाधिरिहभण्यते ॥ २४ ॥

रहित व मन्त्रस्मरण से हीन निर्गुण मानागया है ॥ २० ॥ व बाहेर चक्षु और भीतर चित्तको स्थापितकर सुखपूर्वक आसन से जो शरीर की समता है वह अत्यन्त सिद्धिकी देनेवाली ध्यानमुद्रा होती है ॥ २१ ॥ उस ध्यानसे अचल आसनवाला योगी जिस पुण्यको पाताहै वह पुण्य राजसूय और अश्वमेध यज्ञसे नहीं है ॥ २२ ॥ जबतक शब्द,स्पर्श,रूप, रस व गन्धादिकोंकी सूक्ष्मावस्था कान त्वचा नेत्र जिह्वा और नासिकादिकों में टिकी रहती है तबतक ध्यान कहाताहै व उसके बाद समाधि होती है ॥ २३ ॥ व इस योगमार्ग में पांचनाड़ी कालपर्य्यन्त धारणा व साठिनाड़ी का ध्यान होताहै और जोकि बारहदिनसे होती है वह समाधि कही जाती है ॥ २४ ॥

अब उसको अन्य प्रकारों से दिखाते हैं कि जैसे एकमें मिलाने से जल और सैंधव लोनकी एकता होती है वैसे आत्मा और मनकी एकताहीं यहां समाधि कहाती है ॥ २५ ॥ व जब प्राण भलीभातिसे क्षीणहोताहै और मनभीलीन कियाजाताहै तब जो समरसत्त्व याने परमानन्दताहै वह यहां समाधि कहीजाती है ॥ २६ ॥ व जब जीवात्मा और परमात्मा की समता होती है तब जिसमें सब संकल्प नष्टहोजाते हैं वह यहां समाधि कहीजाती है ॥ २७ ॥ उसका यह फलहै कि, समाधिसे संयुत योगीन्द्र शीत उष्ण सुख दुःख अपना और अन्यको भी नहीं जानता है ॥ २८ ॥ व समाधिसे युक्त योगी कालसे नहीं चलायाजाता व कर्म से नहीं लिप्त होता व

जलसैन्धवयोःसाम्यंयथाभवतियोगतः ॥ तथात्ममनसोरैक्यंसमाधिरिहभण्यते ॥ २५ ॥ यदासंक्षीयतेप्राणोमानसञ्चप्रलीयते ॥ तदासमरसत्वंयत्ससमाधिरिहोच्यते ॥ २६ ॥ यत्समत्वंद्वयोरत्रजीवात्मपरमात्मनोः ॥ सनष्टसर्वसङ्कल्पःसमाधिरभिधीयते ॥ २७ ॥ नात्मानन्नपरंवेत्तिनशीतंनोष्ममेवच ॥ समाधियुक्तोयोगीन्द्रोनसुखंनसुखेतरत् ॥ २८ ॥ काल्यतेनैवकालेनलिप्यतेनैवकर्मणा ॥ भिद्यतेनचशस्त्रास्त्रैर्योगीयुक्तःसमाधिना ॥ २९ ॥ युक्ताहारविहारश्चयुक्तचेष्टोहिकर्मसु ॥ युक्तनिद्रावबोधश्चयोगीतत्त्वंप्रपश्यति ॥ ३० ॥ तत्त्वंविज्ञानमानन्दम्ब्रह्मब्रह्मविदोविदुः ॥ हेतुदृष्टान्तरहितंवाङ्मनोभ्यामगोचरम् ॥ ३१ ॥ तत्रयोगीनिरालम्बेनिरातङ्केनिरामये ॥ षडङ्गयोगविधिनापरेब्रह्मणिलीयते ॥ ३२ ॥ यथाघृतेघृतंक्षिप्तंघृतमेवहितद्भवेत् ॥ क्षीरेक्षीरंतथायोगीतत्रतन्मयतांव्रजेत् ॥ ३३ ॥ श्रमसञ्जातपानीये

शस्त्र और अस्त्रों से नहीं खण्डित कियाजाता है ॥ २९ ॥ किन्तु थोडे आहार विहारवाला व कर्मों में थोड़े व्यापारवाला व थोड़े सोने जागनेवाला योगी तत्त्वको देखता है ॥ ३० ॥ और ब्रह्मज्ञानी लोग जिस स्वप्रकाश चैतन्य व आनन्द रूप व कारण और दृष्टान्त से हीन व मन वचन से परे ब्रह्मको तत्त्वकहते हैं ॥ ३१ ॥ उस आलम्बनशून्य निर्भय निरोग निर्गुण परब्रह्म मे योगीजन समाधिकी विधिसे लीन होता है ॥ ३२ ॥ जैसे घी में छोंड़ाहुवा घी घीहीहोवे व जैसे दूध में छोडाहुवा दूध दूधहीहोवे वैसे उस ब्रह्ममें लीनहुवा योगी तन्मयताको याने ब्रह्ममय भावको प्राप्तहोवे ॥ ३३ ॥ और जोकि प्राणायामादि परिश्रमोत्पन्न पानीसे देहको

मर्दन करे व कुछेक तप्तजल व लवणको त्यागे व सदैव दूधाधारी होवे ॥ ३४ ॥ वह ब्रह्मचारी व जितक्रोध व जितलोभ व मत्सरसे हीन होकर एक वर्ष तक इस भांतिसे सदा अभ्यास करने से योगी कहाता है ॥ ३५ ॥ और जोकि महामुद्रा व आकाशमुद्रा व उड्डीयान व जलन्धर व मूलबन्धको जानता है वह योगी योगसिद्धिका सेवी होता है ॥ ३६ ॥ अब क्रमसे इनका लक्षण कहते हैं कि पूरक कुम्भक और रेचकनामक प्राणायाम से नाड़ीसमूहका शुद्ध करना व चन्द्र सूर्य्य याने इड़ा और पिंगलाका जोड़ना व भलीभांति से विकारकारी रसोंका सोखनाही महामुद्रा कहाती है ॥ ३७ ॥ अथवा बायें पायें से लिंगको पीड़ितकर व चिबुक (ठोढ़ी) को

विदध्यादङ्गमर्दनम् ॥ त्यजेत्कदुष्णंलवणंक्षीरभोजीसदाभवेत् ॥ ३४ ॥ ब्रह्मचारीजितक्रोधोजितलोभोविमत्सरः ॥ अब्दमित्थंसदाभ्यासात्सयोगीतिनिगद्यते ॥ ३५ ॥ महामुद्रांनभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम् ॥ मूलबन्धन्तुयोवेत्तिसयोगीयोगसिद्धिभाक् ॥ ३६ ॥ शोधनन्नाडीजालस्यघटनञ्चन्द्रसूर्ययोः ॥ रसानांशोषणंसम्यङ्महामुद्राभिधीयते॥३७॥ योनिंवामाङ्घ्रिणाऽऽपीड्यकृत्वावक्षस्थलेहनुम् ॥ हस्ताभ्यांप्रसृतम्पादन्धारयेद्दक्षिणंचिरम् ॥३८॥ प्राणेनकुक्षिमापूर्यचिरंसंरेचयेच्छनैः ॥ एषाप्रोक्तामहामुद्रामहाघौघविनाशिनी ॥ ३९ ॥ चन्द्राङ्गेतुसमभ्यस्यसूर्याङ्गेपुनरभ्यसेत् ॥ यावत्तुल्याभवेत्सङ्ख्याततोमुद्रांविसर्जयेत् ॥ ४० ॥ नहिपथ्यमपथ्यंवारसाःसर्वेपिनीरसाः ॥ अपिघोरंविषम्पीतम्पीयूषमिवजीर्यति ॥ ४१ ॥ क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ॥ तस्यदोषाःक्षयंयान्तिमहामुद्राञ्चयोभ्यसेत् ॥ ४२ ॥ कपाल

वक्षस्थल में कर पसारे हुये दहिने पांवको बड़ी दृढ़ता से पकड़े ॥ ३८ ॥ व उदरमें बहुतही बयार भरकर फिर उसको धीरे धीरे बाहर निकाले यह महापापसमूह के विनाशनेवाली महामुद्रा कहीजातीहै ॥ ३९ ॥ व जबतक पूरक कुम्भक और रेचककी संख्या बराबर होवे तबतक वाम नाड़ीमें अभ्यासकर फिर दक्षिण नाड़ीमें अभ्यास करे उसके बाद मुद्राको छोड़देवे ॥ ४० ॥ इस मुद्राके अभ्यास करनेवाले से खाया गया पथ्य अन्न अपथ्य नहीं होताहै व विकार के कारण सब रस नीरस होजाते हैं और पियाहुवा घोर विषभी अमृतकी नाईं पचजाता है ॥ ४१ ॥ व जो महामुद्रा का अभ्यास करताहै उसके क्षयी कुष्ठ बवासीर बायुगोला और अजीर्ण आदि रोग नाश

को प्राप्त होते हैं ॥ ४२ ॥ और जब मुखमें दोनों कपालों के भीतर उलटा गईहुई जिह्वा पैठी होवे व दृष्टि भौंहों के बीचमें गई होवे तब आकाशमुद्रा याने खेचरी मुद्रा होती है ॥ ४३ ॥ जो खेचरीमुद्रा को जानता है वह बाणसमूह से नहीं पीड़ाजाता व कर्म से नहीं लिप्त होता व कालसे नहीं बाधाजाता है ॥ ४४ ॥ जिससे चित्त आकाशमें विचरता है व जिह्वा आकाशमें गईहुई होकर विचरती है उससे सिद्धोंसे सेवित यह मुद्रा खेचरी नामसे प्रसिद्धहै ॥ ४५ ॥ किन्तु जबतक विन्दु याने अन्त वाला धातु देह में टिकाहै तबतक मृत्युका डर कहां है और जबतक खेचरी मुद्रा बांधीगई है तबतक विन्दु बाहर नहीं जाताहै ॥ ४६ ॥ "अब उड्डीयानबन्धके

कुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा ॥ भ्रुवोरन्तर्गतादृष्टिर्मुद्राभवतिखेचरी ॥ ४३ ॥ नपीड्यतेशरौघेणनचलिप्येतकर्मणा ॥ बाध्यतेनसकालेनयोमुद्रांवेत्तिखेचरीम् ॥ ४४ ॥ चित्तञ्चरतिखेयस्माज्जिह्वाचरतिखेगता॥तेनैषाखेचरीनाममुद्रासिद्धैर्निषेविता ॥ ४५ ॥ यावद्बिन्दुःस्थितोदेहेतावन्मृत्युभयंकुतः ॥यावद्बद्धानभोमुद्रातावद्बिन्दुर्नगच्छति॥ ४६ ॥ उड्डीनंकुरुतेयस्मादहोरात्रंमहाखगः ॥ उड्डीयानन्ततःप्रोक्तंतत्रबन्धोविधीयते ॥ ४७ ॥ जठरेपश्चिमन्तानन्नाभेरूर्ध्वञ्चधारयेत् ॥ उड्डीयानोह्ययम्बन्धोमृत्योरपिभयंत्यजेत् ॥ ४८ ॥ बध्नातिहिशिराजालमधोगामिनभोजलम् ॥ एषजालन्धरोबन्धःकण्ठेदुःखौघनाशनः ॥ ४९ ॥ जालन्धरेकृतेबन्धेकण्ठसङ्कोचलक्षणे ॥ नपीयूषंपतत्यग्नौनचवायुःप्रधावति ॥ ५० ॥ पार्ष्णिभागेनसंपीड्ययोनिमाकुञ्चयेद्गुदम् ॥ अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूलबन्धोविधीयते ॥ ५१ ॥ अपा

नामका अर्थ और उसका लक्षण कहते हैं कि" जिससे प्राण रातोदिन उड़ा करताहै उससे उड्डीयान कहागया है उसमें बन्ध कियाजाताहै ॥ ४७ ॥ कि, पश्चिम तान अर्थात् हस्ताग्रों से बीचमें धरकर पसारे हुये दोनों पावोंका मध्य जैसेहो वैसे जठर और नाभीके ऊपर धारणकरे यह उड्डीयानबन्धहै इससे मृत्युके डरकोभी त्यागदेवे ॥ ४८ ॥ और जोकि नाड़ीसमूह व नीचे चलतेहुये शरीरांतर्गत छिद्रमें प्राप्त पानीको धारता है वह यह दुःखराशिका नाशक जालन्धरबन्ध कण्ठ में होताहै ॥ ४९ ॥ व कण्ठको सिकोड़कर हृदय में लगाना लक्षण है जिसका वह जालन्धरबन्ध जब कियाजाता है तब ललाटस्थ चन्द्रमण्डल में स्थित अमृत उदरकी अग्नि में नहीं गिरता और वायुका कोप नहीं होताहै ॥५०॥ व ऍंड़ीसे लिंगका आपीड़नकर फिर अपान वायुको ऊंचे खींचकर गुदाको संकुचितकरे यह मूलबन्ध कहाजाताहै ॥ ५१॥

इस मूलबन्धके निरन्तर करने से प्राण और अपान की एकता होतेही मल मूत्रका नाश व वृद्ध भी युवा होताहै ॥ ५२॥ और प्राण व अपान के वश चञ्चल हुवा जीव वाम व दक्षिण मार्ग से अर्थात् इड़ा व पिंगला नाड़ी से ऊपर नीचे को चारों ओरसे दौड़ता है इससे स्थितिको नहीं पाताहै ॥ ५३॥ जैसे रस्सी से बँधाहुवा पक्षी चलागया भी फिर खींच लियाजाताहै वैसेही सत्त्व रज और तमगुण से बँधा हुवा जीव प्राणायाम से खींचाजाता है ॥ ५४ ॥ व प्राण अपान को खींचताहै और अपान प्राणको खींचताहै इससे योगका जाननेवाला ऊपर व नीचे टिकेहुये इन दोनों को भलीभांति से जोड़ता है ॥ ५५ ॥ जिससे हकारसे बाहर को जाताहै व सकार

नप्राणयोरैक्येक्षयोमूत्रपुरीषयोः ॥ युवाभवतिवृद्धोपिसततम्मूलबन्धनात् ॥ ५२ ॥ प्राणापानवशोजीवऊर्ध्वाधःपरिधावति ॥ वामदक्षिणमार्गेणचञ्चलोनस्थितिंलभेत् ॥ ५३ ॥ गुणबद्धोयथापक्षीगतोप्याकृष्यतेपुनः ॥ गुणैर्बद्धस्तथाजीवःप्राणायामेनकृष्यते ॥ ५४ ॥ अपानःकर्षतिप्राणम्प्राणोपानञ्चकर्षति ॥ ऊर्ध्वाधःसंस्थितावेतौसंयोजयतियोगवित् ॥ ५५ ॥ हकारेणबहिर्यातिसकारेणविशेत्पुनः ॥ हंसहंसेत्यतोमन्त्रञ्जीवोजपतिसर्वदा ॥ ५६ ॥ षट्शतानिदिवारात्रौसहस्राण्येकविंशतिः ॥ एतत्संख्यान्वितंमन्त्रंजीवोजपतिसर्वदा ॥ ५७ ॥ अजपानामगायत्रीयोगिनांमोक्षदायिनी ॥ अस्याःसङ्कल्पमात्रेणनरःपापैःप्रमुच्यते ॥५८॥ अन्तरायाभवन्तीहयोगिनोयोगहानिदाः ॥ श्रूयतेदूरगावार्तादूरस्थंदृश्यतेपुरः ॥ ५९ ॥ योजनानांशतंयातुंशक्तिःस्यान्निमिषार्धतः ॥ अचिन्तितानिशास्त्राणिकण्ठपाठीभवन्तिहि ॥ ६०॥

से भीतर पैठताहै इससे जीवात्मा हंस हंस इस मन्त्रको सदैव जपा करताहै ॥५६॥ किन्तु रातोदिनमें इक्कीसहजार छःसौ जो संख्या होती है इस संख्यासमेत हंस मन्त्र को जीवात्मा सदा जपता है ॥ ५७ ॥ यह योगियों की सिद्धि देनेवाली अजपा नाम गायत्री है इसके सङ्कल्पमात्र से मनुष्य पापोंसे छूटजाता है ॥ ५८ ॥ और इस योग मार्गमे जोकि विघ्नरूप सिद्धियां होतीहैं वे योगी के योगकी हानि देनेवाली हैं इससे सिद्धियों को त्याग ब्रह्ममेंही मन धारना चाहिये अब आगे वे सिद्धियां कहीजाती हैं कि दूरकी वार्ता सुन पड़ती है व दूरमें टिकाहुवा आगे दिखाता है ॥ ५९ ॥ व आधे निमेष में सौ योजनतक चलनेकी शक्ति होतीहै व विना चिन्तेहुये भी शास्त्र

कण्ठपाठी होते हैं याने उनकी पाठ कण्ठ होजाती है ॥ ६० ॥ व अतिशय उग्र धारण करनेकी शक्ति होतीहै व बड़ा भार लघु होजाता है व क्षणमें दुबला क्षणमें स्थूल क्षणमें छोटा और क्षणमें बड़ा भी होताहै ॥ ६१ ॥ व पराई देहमें पैठजाता है व पशुओं की बोली जानता है व देहमें दिव्य सुगन्धको धारण करता है व दिव्य वचन बोलता है ॥ ६२ ॥ व दिव्य कन्याओं से प्रार्थना कियाजाता है व दिव्य देहको धर लेताहै इत्यादि विघ्न योगकी संसिद्धि के सूचन करनेवाले हैं ॥ ६३ ॥ जो इस भोग भूमिमें इन विघ्नों से योगीका मन न क्षुब्ध होवे तो आगे ब्रह्मादिकों के दुर्लभ उस ब्रह्मपदको प्राप्त होताहै ॥ ६४ ॥ हे अगस्त्यमुने ! जिसको प्राप्त होकर संसारमें फिर

धारणाशक्तिरत्युग्रामहाभारोलघुर्भवेत् ॥ क्षणंकृशःक्षणंस्थूलःक्षणमल्पःक्षणंमहान् ॥ ६१ ॥ परकायंप्रविशति तिरश्चांवेत्तिभाषितम् ॥ दिव्यगन्धन्तनौधत्तेदिव्यांवाणींप्रवक्तिच ॥ ६२ ॥ प्रार्थ्यतेदिव्यकन्याभिर्दिव्यन्धारयतेव पुः ॥ इत्यादयोऽन्तरायाःस्युर्योगसंसिद्धिसूचकाः ॥ ६३ ॥ यद्येभिरन्तरायैर्नक्षिप्यतेऽस्येहमानसम् ॥ तदग्रेतत्समाप्नो तिपदम्ब्रह्मादिदुर्लभम् ॥ ६४ ॥ यत्प्राप्यननिवर्तेतयत्प्राप्यनचशोचति ॥ तल्लभ्यतेषडङ्गेनयोगेनकलशोद्भव ॥ ६५ ॥ एकेनजन्मनायोगःकथमित्थम्प्रसिध्यति ॥ ऋतेचयोगसंसिद्धेःकथंमुक्तिरिहाप्यते ॥ ६६ ॥ उभेएवहिनिर्वाणवर्त्मनी किलकुम्भज ॥ किंवाकाश्यान्तनुत्यागःकिंवायोगोयमीदृशः ॥ ६७॥ चञ्चलेन्द्रियवृत्तित्वात्कलिकल्मषजृम्भणात् ॥ अल्पायुषान्तथानृणांकेहयोगमहोदयः ॥ ६८ ॥ अतएवहिजन्तूनांमहोदयपदप्रदः ॥ सदैवसदयावार्धिःकाश्यांविश्वे श्वरःस्थितः ॥ ६९ ॥ काश्यांसुखेनकैवल्यंयथालभ्येतजन्तुभिः ॥ योगयुक्त्याद्युपायैश्चनतथान्यत्रकुत्रचित् ॥ ७० ॥

नहीं आता है व जिसको प्राप्त होकर शोचता नहीं है वह षडंगयोग से मिलता है ॥ ६५ ॥ परन्तु इस भांति का योग एक जन्म से कैसे सिद्ध होसक्ता है और योगसिद्धि के विना मुक्ति कैसे प्राप्त कीजाती है ॥ ६६ ॥ हे अगस्त्य ! काशी में देहत्याग या कि यह ऐसा षडंगयोग ये दोही मुक्ति के मार्ग हैं ॥ ६७ ॥ परन्तु इन्द्रियोंकी वृत्तिकी चंचलता से व कलियुग में पापके प्रचण्ड होने से इस लोकमें थोड़ी आयुवाले मनुष्यों के योगका महोदय कहां है ॥ ६८ ॥ इससेही जन्तुओं के लिये महोदयपदके दायक दयासमुद्र वह विश्वनायक शिवजी काशीमें सदैव टिके हैं ॥ ६९ ॥ और जैसे काशीमें सब जन्तुओं को सुखसे मुक्ति मिलती है वैसे योग

युक्ति आदि उपायों से अन्यत्र कहीं नहीं मिलती है ॥ ७० ॥ क्योंकि काशीमें अपनी देहका संयोगही सम्यग्योग कहागया है और इस संसार में अन्य किसी योगसे शीघ्रही मुक्त नहीं होताहै ॥ ७१ ॥ जिससे श्रीविश्वनाथ व विशालाक्षी व गंगा व कालभैरव व श्रीढुंढिराज व दण्डपाणि यही षडंगयोग है ॥ ७२ ॥ इससे जो काशीमें इस षडंगयोगको सदैव सेवताहै वह समाधिरूप निद्राको भलीभांति से प्राप्तहोकर मोक्षपाताहै ॥ ७३ ॥ व इस काशीमें ॐकारेश्वर कृत्तिवासेश्वर केदारेश्वर त्रिविष्टपेश्वर वीरेश्वर और विश्वेश्वर यह अन्य षडंग है ॥ ७४ ॥ व पादोदक (वरणा) असीसंगम ज्ञानवापी मणिकर्णिका ब्रह्मकुण्ड और धर्मकुण्ड भी यह षडंग महायोगहै ॥ ७५ ॥

काश्यांस्वदेहसंयोगःसम्यग्योगउदाहृतः ॥ मुच्यतेनेहयोगेनक्षिप्रमन्येनकेनचित् ॥ ७१ ॥ विश्वेश्वरोविशालाक्षीद्युनदीकालभैरवः ॥ श्रीमान्ढुण्ढिर्दण्डपाणिःषडङ्गोयोगएषवै ॥ ७२ ॥ एतत्षडङ्गंयोयोगंनित्यङ्काश्यांनिषेवते ॥ सम्प्राप्ययोगनिद्रांसदीर्घाममृतमश्नुते ॥ ७३ ॥ ॐङ्कारःकृत्तिवासाश्चकेदारश्चत्रिविष्टपः ॥ वीरेश्वरोथविश्वेशःषडङ्गोयमिहापरः ॥ ७४ ॥ पादोदकासिसम्भेदज्ञानोदमणिकर्णिकाः ॥ षडङ्गोयम्महायोगोब्रह्मधर्महृदावपि ॥ ७५ ॥ षडङ्गसेवनादस्माद्वाराणस्यांनरोत्तम ॥ नजातुजायतेजन्तुर्जननीजठरेपुनः ॥७६॥ गङ्गास्नानंमहामुद्रामहापातकनाशिनी ॥ एतन्मुद्राकृताभ्यासोप्यमृतत्वमवाप्नुयात् ॥ ७७ ॥ काशीवीथिषुसञ्चारोमुद्राभवतिखेचरी ॥ खेचरोजायतेनूनंखेचर्यामुद्रयानया ॥ ७८ ॥ उड्डीयसर्वतोदेशाद्यानंवाराणसीम्प्रति ॥ उड्डीयानोमहाबन्धएषमुक्त्यैप्रकल्पते ॥ ७९ ॥ जलस्यधारणंमूर्ध्निविश्वेशस्नानजन्मनः ॥ एषजालन्धरोबन्धःसमस्तसुरदुर्लभः ॥ ८० ॥ वृतोविघ्नशतेनापियन्नकाशीन्त्य

हे नरोत्तम ! काशीमें इस षडंगसेवन से मनुष्य माताके उदरमें फिर कभी नहीं जन्मता है ॥ ७६ ॥ क्योंकि काशी में गंगास्नानही महापापनाशिनी महामुद्रा है इस मुद्रामें अभ्यास करनेवाला मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ७७ ॥ और काशीकी गलियों में भलीभांति से विचरना खेचरीमुद्रा होती है इस खेचरीमुद्रासे निश्चय करके ब्रह्मनिष्ठ होजाताहै ॥ ७८ ॥ व सब देशों से उड़कर जो काशीके ओर जाताहै वह यह उड्डीयाननामक महाबन्ध मुक्तिके लिये समर्थ है ॥ ७९ ॥ व जो विश्वनाथके स्नान से उत्पन्न हुये जलका माथमें धरना है यह सब देवों को दुर्लभ जालन्धरबन्ध है ॥ ८० ॥ और सैकड़ों विघ्नों से घिराहुवा भी सुबुद्धिमान् मनुष्य जो काशीको नहीं त्या-

गताहै यह दुःखकी जड़ काटनेवाला मूलबन्ध कहागया है॥ ८१ ॥ हे मुने! मुक्तिके लिये महादेवके कहेहुये व मुद्रासमेत व षडंगसहित दोभांतिका योग मैंने तुमसे कहा ॥ ८२ ॥ और जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीहै व जबतक रोग नहीं बाधा करताहै व जबतक मरणकालका विलम्बहै तबतक योगमें रतहोवे ॥ ८३ ॥ परन्तु दो योगों के बीचमे काशीयोग श्रेष्ठहै क्योंकि काशीयोग में अभ्यासकर उत्तम योगको अर्थात् जीवात्मा और परमात्माकी एकताको प्राप्तहोवे ॥ ८४ ॥ व मनके और तन के रोगोकी सहायिनी व मृत्युचिह्नवाली बुढ़ाई से कालको समीप में जानकर काशीनाथको भलीभांति से आश्रयकरे ॥ ८५ ॥ व काशीनाथके शरण होकर मनुष्यों को काल

जेत्सुधीः ॥ मूलबन्धःस्मृतोह्येषदुःखमूलनिकृन्तनः ॥ ८१ ॥ इतियोगःसमाख्यातोमयातेद्विविधोमुने ॥ सषडङ्गःसमुद्रश्चमुक्तयेशम्भुभाषितः ॥ ८२ ॥ यावन्नेन्द्रियवैकल्यंयावद्व्याधिर्नबाधते ॥ यावत्कालविलम्बोस्तितावद्योगरतोभवेत ॥ ८३ ॥ उभयोर्योगयोर्मध्येकाशीयोगोयमुत्तमः ॥ काशीयोगंसमभ्यस्यप्राप्नुयाद्योगमुत्तमम् ॥ ८४ ॥ आधिव्याधिसहायिन्याजरयामृत्युलिङ्गया ॥ कालंनिकटतोज्ञात्वाकाशीनाथंसमाश्रयेत् ॥ ८५ ॥ काशीनाथंसमाश्रित्यकुतःकालभयंनृणाम् ॥ क्रुद्धोपिजीवहृत्कालस्तत्रकाश्यांसुमङ्गलम् ॥ ८६ ॥ आतिथ्येनेहसियथाप्रतीक्षेतातिथिंकृती ॥ काश्यांकालन्तथायान्तंभाग्यवान्सम्प्रतीक्षते ॥ ८७ ॥ कलिःकालःकृतङ्कर्मत्रिकण्टकमितीरितम् ॥ एतत्त्रयंनप्रभवेदानन्दवनवासिनाम् ॥ ८८ ॥ अन्यत्रातर्कितःकालःकलयिष्यत्यसंशयम् ॥ कालादभयमिच्छेच्चेत्ततःकाशींसमाश्रयेत ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेयोगाख्यानंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ * ॥

का डर कहां है और जो काशीमें कुपितहुवा काल भी जीवको हरे तो भी सुमंगलहै ॥ ८६ ॥ जैसे पुण्यवान् मनुष्य अतिथि आनेकी वेलामे आतिथ्य से अतिथि को परखता है वैसेही भाग्यवान् काशीमें आतेहुये मरणकालको परखता है ॥ ८७ ॥ किन्तु कलि व काल व कियाहुवा कर्म यह त्रिकण्टक कहागयाहै और ये तीनों काशीवासी लोगोंके लिये नहीं प्रभुता करते हैं याने नहीं समर्थ होते हैं ॥ ८८ ॥ और अन्यत्र अतर्कितहुवा काल निरसन्देह प्रचलित करेगा इससे जो कालसे अभय चाहे तो काशी को भलीभांति से आश्रयकरे ॥ ८९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेयोगाख्याननामैकचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥

दो० । बयालीस अध्यायमें कालवंचनोपाय । पुनि काशीमाहात्म्य को कथन कियो इत आय ॥ अगस्त्यमुनि बोले कि, हे शंकरनन्दन! समीप में मरणकाल किस भांतिसे जानाजाताहै और वे कितने चिह्नहैं उनको पूंछतेहुये मुझसे कहो ॥१॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने! जब देहधारियों की मृत्यु निकटमें प्राप्त होतीहै तब जे मरणकाल के चिह्न होतेहैं उनको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ २ ॥ जिसके दहिने नासिका छिद्र में रातोदिन बयार बहती है उसकी अखण्ड भी आयु तीन वर्ष में घटजाती है ॥ ३ ॥ व दो तीन रात दिनतक निरन्तर जिसका दक्षिण श्वासा चलताहै उसके जीवनकी अवधि यहां एक वर्ष कहीगई है ॥ ४ ॥ व जिसके दोनों नासा

अगस्तिरुवाच ॥ कथंनिकटतःकालोज्ञायतेहरनन्दन ॥ तानिचिह्नानिकतिचिह्नहिमेपरिपृच्छतः ॥ १ ॥ कुमारउवाच ॥ वदामिकालचिह्नानिजायन्तेयानिदेहिनाम् ॥ मृत्यौनिकटमापन्नेमुनेतानिनिशामय ॥ २ ॥ याम्यनासापुटेयस्य वायुर्वातिदिवानिशम् ॥ अखण्डमेवतस्यायुःक्षयत्यब्दत्रयेणहि ॥ ३ ॥ द्व्यहोरात्रंत्र्यहोरात्रंरविर्वहतिसन्ततम् ॥ अब्दमेकञ्चतस्येहजीवनावधिरुच्यते ॥ ४ ॥ वहेन्नासापुटयुगेदशाहानिनिरन्तरम् ॥ वातश्चेत्सहसंक्रान्तिस्तयाजीवेद्दिनत्रयम् ॥ ५ ॥ नासावर्त्मद्वयंहित्वामातरिश्वामुखाद्वहेत् ॥ शंसेद्दिनद्वयादर्वाक्प्रयाणन्तस्यचाध्वनि ॥ ६ ॥ अकस्मादेवयत्कालेमृत्युःसन्निहितोभवेत् ॥ चिन्तनीयःप्रयत्नेनसकालोमृत्युभीरुणा ॥ ७ ॥ सूर्येसप्तमराशिस्थेजन्मर्क्षस्थेनिशाकरे ॥ पौष्णःसकालोद्रष्टव्योयदायाम्येरविर्वहेत ॥ ८ ॥ अकस्माद्वीक्षतेयस्तुपुरुषंकृष्णपिङ्गलम् ॥ तस्मिन्नेवक्षणेऽरूपंसजीवेद्वत्सरद्वयम् ॥ ९ ॥ यस्यबीजम्मलम्मूत्रंक्षुतम्मूत्रंमलन्तुवा ॥ इहैकदापतेद्यस्यअब्दन्तस्यायुरिष्यते ॥ १० ॥

छिद्रों में दश दिन निरन्तर ऊर्ध्वश्वास समेत बयार बहै वह उससे तीन दिनतक जीवे ॥ ५ ॥ व जिसके दोनों नासाछिद्रों को छोड़कर बयार मुखसे बहे उसके यममार्ग में प्रयाण को दो दिनके इसी ओरमे सूचितकरे ॥ ६ ॥ व जिस कालमें मृत्यु निकटवर्ती होवे वह काल यत्नसे मृत्यु से डरभुतके चिन्तने योग्यहै ॥ ७ ॥ व जब सूर्य्य सप्तम राशि में टिकेहोवें व चन्द्रमा जन्मनक्षत्र में टिके होवे और जब दक्षिणनासापुट में बयार बहे तब वह काल सूर्य्य देवतावाला देखने योग्यहै ॥ ८ ॥ और जो अकस्मात् कृष्णपिंगल पुरुषको देखे व उसही क्षणमें रूपान्तर से मुक्त देखे वह दो वर्ष तक जीवे ॥ ९ ॥ व जिसका शुक्र मल और मूत्र अथवा छींक मल और मूत्र

वह छह मास तक जीताहै ॥ ११ ॥ व जो आकाश में ऐसी वैसी पसरेहुये काले नागसमूह को देखता है
एक समय में गिरे उसकी आयु एक वर्षभर इष्ट है ॥ १० ॥ और निकट मृत्युवाला
व जलसे भरा मुख और छहमास जीवनहै जिसका वह विना मेघके दिनमें सूर्यको पीछेकर व शीघ्रही फुफककर इन्द्रधनुको न देखे ॥ १२ ॥ विष्णुपद भौंहों के
मनुष्य अरुन्धती व ध्रुव व विष्णुके तीनपद व चौथे मातृमण्डल को नहीं देखताहै ॥ १३ ॥ किन्तु अरुन्धती जिह्वाहै व ध्रुव नासाग्र कहाताहै व
बीचमें हैं व मातृमण्डल आंखों में है ॥ १४ ॥ व जो अकस्मात् नीले पीले आदि रंगका और कडुवे व अम्ले रसका भी अन्यथा भाव जानता है अर्थात् औरेको और

इन्द्रनीलनिभंव्योम्निनागवृन्दंयईक्षते ॥ इतस्ततःप्रसृमरंषण्मासंनसजीवति ॥ ११ ॥ व्यभ्रेह्निवारिपूर्णास्यःपृष्ठीकृ
त्यदिवाकरम् ॥ फूत्कृत्याशिवन्द्रचापंनपश्येत्षण्मासजीवितः ॥ १२ ॥ अरुन्धतीन्ध्रुवञ्चैवविष्णोस्त्रीणिपदानिच ॥
आसन्नमृत्युर्नोपश्येच्चतुर्थंमातृमण्डलम् ॥ १३ ॥ अरुन्धतीभवेज्जिह्वाध्रुवोनासाग्रमुच्यते ॥ विष्णोःपदानिभ्रूमध्येने
त्रयोर्मातृमण्डलम्॥१४॥वेत्तिनीलादिवर्णस्यकट्वम्लादिरसस्यहि॥अकस्मादन्यथाभावंषण्मासेनसमृत्युभाक्॥१५॥
षण्मासमृत्योर्मर्त्यस्यकण्ठोष्ठरसनारदाः॥शुष्यन्तिसततंतद्वद्विच्छायास्तालुपञ्चमाः ॥ १६॥ रेतःकरजनेत्रान्तानीलि
मानम्भजन्तिचेत् ॥ तर्हिकीनाशनगरींषष्ठेमासिव्रजेन्नरः ॥ १७ ॥ सम्प्रवृत्तेनिधुवनेमध्येन्तेक्षौतिचेन्नरः ॥ निश्चितं
पञ्चमेमासिधर्मराजातिथिर्भवेत् ॥ १८ ॥ द्रुतमारुह्यसरटस्त्रिवर्णोयस्यमस्तके ॥ प्रयातियातितस्यायुःषण्मासेनपरि
क्षयम् ॥ १९ ॥ सुस्नातस्यापियस्याशुहृदयम्परिशुष्यति ॥ चरणौचकरौवापित्रिमासन्तस्यजीवितम् ॥ २० ॥ प्रति

प्रकार से समझताहै वह छहमासमें मृत्युभागी होताहै ॥ १५ ॥ व छह मासमें मृत्युवाले मनुष्यके कण्ठ ओठ जिह्वा दंत और पंचम तालु ये सब निरन्तर सूखजाते हैं
वैसेही विना छायाके होते हैं ॥ १६ ॥ व जो रेत, नख और नेत्रों के अन्त ये तीनों श्यामताको सेवें तो मनुष्य छठयें मासमें यमपुरको जावे ॥ १७ ॥ व जो स्त्रीके साथ
सुरत वर्तमान होने के आदि मध्य और अन्तमें छींके व जमुहाई लावे तो वह मनुष्य पँचयें मासमें यमराजका अतिथि होवे ॥ १८ ॥ व तीनरंगका गिरदान जिसके
मूडेपर चढ़कर शीघ्रही चलाजाताहै उसकी आयु छह मासमे नाशको प्राप्त होतीहै ॥ १९ ॥ व अच्छी भांतिसे नहायेहुये जिस जनका हृदय सूखजाता है व हाथ और

पांव भी शीघ्र शुष्क होजाते हैं उसकी आयु तीन मासतक रहती है ॥ २० ॥ व जिसके पांवका प्रतिबिम्ब धूलि और कीचमें खण्डितपदके आकार होवे वह पांच मास तक जीताहै ॥ २१ ॥ व देहदण्डके निश्चल होते भी जिसकी छाया कांपती है उस मनुष्यको चौथेमास में यमराजके दूत बांधते हैं ॥ २२ ॥ व जो मनुष्य जल घृत और दर्पणादिकों में अपने प्रतिबिम्बका शिर नहीं देखता है वह एक मास जीताहै ॥ २३ ॥ और बुद्धि भ्रष्ट होजावे व वाणी स्पष्ट न निकले व रातमें इन्द्रधनु और दो चन्द्रमा देखे व दिनमे भी दो सूर्य्य देखे ॥ २४ ॥ व दिनमें नक्षत्रसमूह व रातमें विना नक्षत्रोंका आकाश व एकही बार चारों दिशाओंमें इन्द्रधनुका मण्डल ॥२५॥

बिम्बम्भवेद्यस्यपदङ्खण्डपदाकृति॥ पांसौवाकर्दमेवापिपञ्चमासान्सजीवति ॥ २१ ॥ छायाप्रकम्पतेयस्यदेहबन्धेपिनिश्चले ॥ कृतान्तदूताबध्नन्तिचतुर्थेमासितंनरम् ॥ २२ ॥ निजस्यप्रतिबिम्बस्यनीराज्यमुकुरादिषु ॥ उत्तमाङ्गंनयःपश्येत्समासेनविनश्यति ॥ २३ ॥ मतिर्भ्रश्येत्स्खलेद्वाणीधनुरैन्द्रंनिरीक्षते ॥ रात्रौचन्द्रद्वयञ्चापिदिवाद्वौचदिवाकरौ ॥ २४ ॥ दिवाचतारकाचक्रंरात्रौव्योमवितारकम् ॥ युगपच्चचतुर्दिक्षुशाक्रकोदण्डमण्डलम् ॥ २५ ॥ भूरुहेभूधराग्रेच गन्धर्वनगरालयम् ॥ दिवापिशाचनृत्यञ्चएतेपञ्चत्वहेतवः ॥ २६ ॥ सर्वेष्वेतेषुचिह्नेषुयद्येकमपिवीक्षते ॥ तदामासावधिंमृत्युःप्रतीक्षेतनचाधिकम् ॥ २७ ॥ करावरुद्धश्रवणःशृणोतिनयदाध्वनिम् ॥ स्थूलःकृशःकृशःस्थूलस्तदामासान्निवर्तते ॥ २८ ॥ यःपश्येदात्मनश्छायांदक्षिणाशासमाश्रिताम् ॥ दिनानिपञ्चजीवित्वापञ्चत्वमुपयातिसः ॥ २९ ॥ प्रोह्यतेभक्ष्यतेवापिपिशाचासुरवायसैः ॥ भूतैःप्रेतैःश्वभिर्गृध्रैर्गोमायुखरसूकरैः ॥ ३० ॥ रासभैःकरभैःकीशैःश्येनैरृक्ष

व वृक्ष और पर्वतों के अग्रभाग में गन्धर्व नगर याने आकाश में अकस्मात् देखताहुआ नगरके आकार आधार और दिनमें पिशाचोंका नाच ये सब जो देखपड़ें तो मृत्युके कारणहैं ॥ २६ ॥ इन सब चिह्नों मे से जो एकको भी देखताहै तो मृत्यु एक मासकी अवधि को परखती है अधिकको नहीं याने एक मासके बाद मृत्यु होती है ॥ २७ ॥ व जब हाथों से कानों को बन्द कियेहुये भी शब्दको नहीं सुनता है व थोड़े थोड़े दिनों में स्थूल दुबला और दुबला स्थूल हुआ करता है वह एक मास में संसार से निवृत्त होताहै ॥ २८ ॥ व जो दक्षिणदिशा में टिकीहुई अपनी छायाको देखता है वह पांच दिन जीकर फिर मरणको प्राप्त होताहै ॥ २९ ॥ व जोकि पिशाच

असुर काग भूत प्रेत कूकुर गीध स्यार गर्दभ और सूकरोंकरके स्वप्न में पीठपर चढ़ाकर अन्यत्र प्राप्त कियाजाता व खायाजाता है ॥ ३० ॥ व गर्दभ ऊंट वानर बाज खच्चर और बकों से भी स्वप्नमे भक्षण कियाजाताहै वह एक वर्षके बाद जीवितको छोंड़कर यमराजको देखताहै ॥ ३१ ॥ अहो अगस्त्य ! जो मनुष्य स्वप्नसमयमें लाले रंगवाले सुगन्ध व फूल व वस्त्रों से अपने अंगको भूपित देखता है वह आठ मास जीताहै ॥ ३२ ॥ और जो स्वप्न में धूलिकी राशि व बँबौर व खम्भाके दण्डपर चढताहै वह छठयें मासमे मरता है ॥ ३३ ॥ व जो स्वप्न में गर्दभपर चढ़े तेल लगाये मूड़ मुड़ाये और अपने पितरोंको दक्षिण दिशामें लिये जातेहुये अपनाको देखताहै ॥३४॥

तरैर्बकैः ॥ स्वप्नेसजीवितंत्यक्त्वावर्षान्तेयममीक्षते ॥ ३१ ॥ गन्धपुष्पांशुकैःशोणैःस्वान्तनुंभूषितांनरः ॥ यःपश्येत्स्व प्नसमयेसोऽष्टौमासाननित्यहो ॥ ३२ ॥ पांसुराशिञ्चवल्मीकंयूपदण्डमथापिवा ॥ योधिरोहतिवैस्वप्नेसषष्ठेमासिनश्य ति ॥ ३३ ॥ रासभारूढमात्मानंतैलाभ्यक्तञ्चमुण्डितम् ॥ नीयमानंयमाशांयःस्वप्नेपश्येत्स्वपूर्वजान् ॥ ३४ ॥ स्वमौ लौस्वतनौवापियःपश्येत्स्वप्नगोनरः ॥ तृणानिशुष्ककाष्ठानिषष्ठेमासिनतिष्ठति ॥ ३५ ॥ लोहदण्डधरंकृष्णंपुरुषंकृष्ण वाससम् ॥ स्वयंयोग्रेस्थितम्पश्येत्सत्रीन्मासान्नलङ्घयेत् ॥ ३६ ॥ कालीकुमारीयंस्वप्नेबध्नीयाद्बाहुपाशकैः ॥ समासेन समीक्षेतनगरींशमनोषिताम् ॥ ३७ ॥ नरोयोवानरारूढोयायात्प्राचीन्दिशंस्वपन् ॥ दिनैःसपञ्चभिरेवपश्येत्संयमि नीम्पुरीम् ॥ ३८ ॥ कृपणोपिवदान्यःस्याद्वदान्यःकृपणोयदि ॥ प्रकृतेर्विकृतिश्चेत्स्यात्तदापञ्चत्वमृच्छति ॥ ३९ ॥ ए

व जो स्वप्न में प्राप्त मनुष्य अपने मस्तक या कि शरीर में सूखे तृण और काठों को देखता है वह छठये मासमें नहीं ठहरता है ॥ ३५ ॥ व जो स्वप्नमें लोहेका दण्डा लिये काले वस्त्रवाले श्यामरंग अंग पुरुषको अपने आगे टिका देखे वह तीन मासोंको न लांघे याने तीन मासोंके भीतरमेंही मरजावे ॥ ३६ ॥ व स्वप्न में काले रंग की कुमारी बाहुपाशों से जिसको आलिंगन करे वह एक मासमे यमराजकी बसी पुरी को देखे ॥ ३७ ॥ व जो सोताहुआ मनुष्य वानरपर चढ़कर पूर्वदिशा को जावे वह पांच दिनमें संयमिनी नाम यमपुरीको देखे ॥ ३८ ॥ व जो कृपण मनुष्य बड़ा दानी और बड़ा दानी कृपण होजावे व जो स्वभावका त्याग होजावे तो मरणको प्राप्त

होताहै ॥ ३९ ॥ ये और अनेकों अन्य भी मरणकालके चिह्नहैं उनको जानकर मनुष्य योगका अभ्यासकरे अथवा काशीपुरी को सेवे ॥ ४० ॥ हे मुने ! मैं गर्भवासके रोकनेवाले मृत्युंजय काशीनाथ विश्वनाथके विना अन्य कालवंचनका उपाय नहीं जानताहूं ॥ ४१ ॥ किन्तु तबतक पाप गर्जते हैं व तबतक यमराज गर्जता है जब तक बहुत प्रीतिवाला मनुष्य विश्वनाथकी पुरीको नहीं जाताहै ॥ ४२ ॥ और जिसने विश्वनाथका स्थान प्राप्तकिया व उत्तरवाहिनी गंगाका जल पिया व विश्वनाथ का लिंग छुवाहै वह कौन वन्दने योग्यके भावको नहीं पहुँचताहै अर्थात् वह वन्दनीय होताहै ॥ ४३ ॥ और कुपितहुवा काल काशीवासी लोगोंका क्या करेगा क्योंकि

तानिकालचिह्नानिसन्त्यन्यानिबहून्यपि॥ज्ञात्वाभ्यसेन्नरोयोगमथवाकाशिकांश्रयेत् ॥ ४० ॥ नकालवञ्चनोपायंमुनेन्यमवयाम्यहम् ॥ विनामृत्युञ्जयङ्काशीनाथंगर्भावरोधकम् ॥ ४१ ॥ तावद्गर्जन्तिपापानितावद्गर्जेद्यमोनृपः ॥ यावद्विश्वेशशरणंनरोननिरतोव्रजेत् ॥ ४२ ॥ प्राप्तविश्वेश्वरावासःपीतोत्तरवहापयाः ॥ स्पृष्टविश्वेशसल्लिङ्गःकश्चयातिनवन्द्यताम् ॥ ४३ ॥ करिष्येत्कुपितःकालःकिङ्काशीवासिनांनृणाम् ॥ कालेशिवःस्वयङ्कर्णेयत्रमन्त्रोपदेशकः ॥ ४४ ॥ यथाप्रयातिशिशुताकौमारञ्चयथागतम् ॥ सत्वरङ्गत्वरन्तद्वद्यौवनञ्चापिवार्द्धकम् ॥ ४५ ॥ यावन्नहिजराक्रान्तिर्यावन्नेन्द्रियवैक्लवम् ॥ तावत्सर्वंफल्गुरूपंहित्वाकाशींश्रयेत्सुधीः ॥ ४६ ॥ अन्यानिकाललक्ष्माणितिष्ठन्तुकलशोद्भव ॥ जरैवप्रथमंलक्ष्मचित्रन्तत्रापिभीर्नहि ॥ ४७ ॥ पराभूतोहिजरयासर्वैश्चपरिभूयते ॥ हृततारुण्यमाणिक्योधनहीनःपुमानिव ॥ ४८ ॥ सुतावाक्यंनकुर्वन्तिपत्नीप्रेमापिमुञ्चति ॥ बान्धवानैवमन्यन्तेजरसाश्लेषितंनरम् ॥ ४९ ॥ आश्लिष्टञ्जरया

जहां स्वयं शिवजी मरणसमय होतेही दक्षिण कानमें तारकमन्त्रोपदेश करनेवाले हैं ॥ ४४ ॥ और जैसे बालपन चलाजाताहै व कुमारपन भी गत होजाताहै वैसेही युवापन व वृद्धापन भी शीघ्रही चले जानेवाला है ॥ ४५ ॥ इससे जबतक बुढ़ाईका आना और इन्द्रियों की विकलता न होवे तबतक बुद्धिमान् मनुष्य सब तुच्छरूप को छोड़कर काशीपुरीको सेवे याने उसमें बसे ॥ ४६ ॥ हे अगस्त्य ! अन्य कालके चिह्न तो तबतक रहैं पहला चिह्न तो वृद्धापनही है और जो उसमें भी डर नहीं है तो यह आश्चर्य्य है ॥ ४७ ॥ क्योंकि बुढ़ाई से हाराहुवा मनुष्य सबों से हराया जाताहै व जिसकी युवावस्था हीरा हरगया है वह धनहीन पुरुषके समान होजाताहै ॥ ४८ ॥

किन्तु पुत्र उसका कहना नहीं करते हैं व स्त्री भी प्रीति छोड़ देतीहै व बांधवलोग भी बुढ़ाई से लिपटाये गये मनुष्यको नहीं मानते हैं ॥ ४९ ॥ व प्रीतिवाली कामिनी परस्त्री भी बुढाईसे आलिंगित पुरुषको देखकर व विशंकित होकर नित्यही पराङ्मुखी होती है याने उसके सम्मुख नहीं रहतीहै ॥ ५० ॥ इससे बुढ़ाई के समान रोग व बुढ़ाई के समान अन्य दुःख नहीं है क्योंकि मनुष्योंका अनादर करानेवाली बुढ़ाईही मरना है ॥ ५१ ॥ और जैसे मरणपर्य्यन्त काशीवास से काल जीता जाताहै वैसे तपस्या व योगकी युक्तियों से नहीं जीताजाताहै ॥ ५२ ॥ परन्तु यज्ञ व दान व व्रत व जपादि व पुण्यसमूहके विना कौन मनुष्य काशी प्राप्तहोने को व्यापार करसक्ता

दृष्ट्वापरयोषिद्विशङ्किता ॥ भवेत्पराङ्मुखीनित्यंप्रणयिन्यपिकामिनी ॥५०॥ नजरासदृशोव्याधिर्नदुःखञ्जरयासमम् ॥ कारयित्र्यपमानस्यजरैवमरणंनृणाम् ॥ ५१ ॥ नजीयतेतथाकालस्तपसायोगयुक्तिभिः ॥ यथाचिरेणकालेनकाशीवासाद्विजीयते ॥ ५२ ॥ विनायज्ञैर्विनादानैर्विनाव्रतजपादिभिः ॥ विनातिपुण्यसम्भारैःकःकाशीम्प्राप्तुमीहते ॥ ५३ ॥ काशीप्राप्तिरयंयोगःकाशीप्राप्तिरिदन्तपः ॥ काशीप्राप्तिरिदन्दानंकाशीप्राप्तिःशिवैकता ॥ ५४ ॥ कःकलिःकोथवाकालःकाजराकिञ्चदुष्कृतम् ॥ कारुजःकेन्तरायावाश्रितावाराणसीयदि ॥ ५५ ॥ कलिस्तानेवबाधेतकालस्तांश्चजिघांसति ॥ एनांसितांश्चबाधन्तेयेनकाशींसमाश्रिताः ॥ ५६ ॥ काशीसमाश्रितायैश्चयैश्चविश्वेश्वरोर्चितः ॥ तारकंज्ञानमासाद्यतेमुक्ताःकर्मपाशतः ॥ ५७ ॥ धनिनोनतथासौख्यम्प्राप्नुवन्तिनराःक्वचित् ॥ यथानिधनतःकाश्यांलभन्तेसुख

है ॥ ५३ ॥ और काशीकी प्राप्ति यह योगहै व काशीकी प्राप्ति यह तपस्या है व काशीकी प्राप्ति यह दानहै व काशीकी प्राप्तिही शिवकी एकता याने कैवल्य मुक्तिहै ॥५४॥ क्योंकि जो काशी सेई गई या बसीगई तो कलि व काल व बुढाई व पाप व रोग व विघ्न ये सब क्याहैं याने कुछ भी नहीं हैं ॥५५॥ जिससे कलि उनकोही बाधता है व काल उनकोही मारताहै व पाप उनकोही पीडा देते हैं जोकि काशीवासी नहीं है ॥ ५६ ॥ और जिसने काशीसेवन किया व विश्वनाथको भलीभांति से पूजाहै वे तारक ज्ञानको प्राप्तहोकर-कर्मबन्धनसे मुक्त होते हैं ॥ ५७ ॥ जैसे मनुष्य काशीमें मरने से अविकार अखण्ड सुखको पाते हैं वैसे सुखको धनी लोग भी अन्यत्र कहीं नहीं प्राप्त

होते हैं ॥ ५८॥ इससे काशीवासी श्रेष्ठहै और स्वर्गवासी श्रेष्ठ नहींहै जिससे पहला मोक्षपाताहै व अन्य याने स्वर्गवासी सुखका अन्त पाताहै ॥ ५९ ॥ और सुन्दर कन्दरा वाले मन्दराचलमें टिकेहुये भी ऐश्वर्य्यसम्पन्न शिवजी दिवोदास राजासे बसीगई काशी विना प्रीतिको न प्राप्तहुये इसमें यह भावहै कि जो काशीपुरी परमेश्वरकेलिये भी परमानन्द उपजाती है तो मनुष्योंका क्या कहनाहै ॥६०॥इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकालवञ्चनोपायोनामद्विचत्वारिंशोध्यायः॥४२॥

दो० । तेंतालिस अध्याय में देखो सकल सुजान । दिवोदास भूपालकर परम प्रताप बखान ॥ अगस्त्यजी बोले कि तीन नेत्रवाले महादेवजीने दिवोदास राजा से

म०ययम् ॥ ५८ ॥ वरङ्काशीसमावासीनासीनोद्युसदाम्पदम् ॥ दुःखान्तंलभतेपूर्वःसुखान्तंलभतेपरः ॥ ५९ ॥ स्थितो पिभगवानीशोमन्दरञ्चारुकन्दरम् ॥ काशींविनारतिंनाऽऽपदिवोदासनृपोषिताम् ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशी खण्डेकालवञ्चनोपायोनामद्विचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्तिरुवाच ॥ दिवोदासंनरपतिंकथन्देवस्त्रिलोचनः ॥काशींसन्त्याजयामासकथमागाच्चमन्दरात् ॥एतदाख्या नमाख्याहिश्रोतॄणाम्प्रमुदेभगोः ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मन्दरङ्गतवान्देवोब्रह्मणोवाक्यगौरवात् ॥ तपसातस्यसन्तु ष्टोमन्दरस्यैवभूभृतः ॥ २ ॥ गतेविश्वेश्वरेदेवेमन्दराद्रिंसुन्दरम् ॥ गिरिशेनसमञ्जग्मुरपिसर्वेदिवौकसः ॥ ३ ॥ क्षेत्रा णिवैष्णवानीहत्यक्त्वाविष्णुरपिक्षितेः ॥ प्रयातोमन्दरंयत्रदेवदेवउमाधवः ॥ ४ ॥ स्थानानिगाणपत्यानिगणेशोपित तोव्रजत् ॥ हित्वाहमपिविप्रेन्द्रगतवान्मन्दरम्प्रति ॥ ५ ॥ सूरःसौराणिसन्त्यज्यगतश्चायतनादरम् ॥ स्वंस्वंस्थानंक्षि

कैसे काशीका त्याग कराया व अपना उसमें फिर कैसे आये हे पूज्य ! श्रोताओंके आनन्दके लिये आप इस आख्यानको कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजीबोले कि उस मन्दर पर्वतकी तपस्या से भी संतुष्टहुये महादेवजी ब्रह्माके वचनकी गुरुता से मन्दर को गये थे ॥ २ ॥ और जब विश्वनाथदेवजी पर्वतों मे सुन्दर कन्दर मन्दरगिरिको गये तब गिरिनाथके साथ सब देव भी चलेगये ॥ ३ ॥ किन्तु काशीमें व पृथिवीके वैष्णव क्षेत्रोंको छोंड़ विष्णुजी भी उस मन्दराचलको चलेगये कि जहां देवोंके देव पार्वतीके पति महादेवजी विद्यमान थे ॥ ४ ॥ हे विप्रेन्द्र ! गणेशजी भी गाणपत्य स्थानों को छोंड़कर उस काशी से निकलगये व मैं भी मन्दरपर्वत के प्रति चलागया था ॥ ५ ॥

व सूर्य्यजी सौरक्षेत्रो को छोंडकर घरसे चलेगये व अन्य देव भी पृथिवी में अपने अपने स्थानको छोंड़कर वहुतही चलेगये ॥ ६ ॥ और पृथिवीसे देवसमूहो के जातेही प्रतापी दिवोदास राजाने निर्द्वन्द्व राज्यको किया ॥ ७ ॥ व काशीमें अचल राजधानीकर धर्मसे प्रजाओंको पालते हुये उस बड़े बुद्धिमान्ने वर्धित किया ॥ ८ ॥ और वह दुष्टोंके हृदय व नेत्रों में सूर्य्य के समान तपनेवाला हुवा व मित्रों के मनों में व अपने जनों में भी चन्द्रमा की नाई आनन्ददायक हुवा ॥ ९ ॥ व संग्राम में इन्द्र की नाई अखण्डधन्वाको टंकोरता हुवा वह भगे जाते हुये शत्रुसैन्यसमूहरूप मेघों से देखागया ॥ १० ॥ व जे दण्ड देने योग्यहैं उनको दण्ड देताहुवा और जे अदण्ड्य

तौत्यक्त्वाययुरन्येपिनिर्जराः ॥ ६ ॥ गतेषुदेवसङ्घेषुपृथिव्याःपृथिवीपतिः ॥ चकारराज्यंनिर्द्वन्द्वंदिवोदासःप्रतापवान् ॥ ७ ॥ विधायराजधानींसवाराणस्यांसुनिश्चलाम् ॥ एधाञ्चक्रेमहाबुद्धिःप्रजाधर्मेणपालयन् ॥ ८ ॥ सूर्यवत्सप्रतपितादुर्हृदांहृदिनेत्रयोः ॥ सोमवत्सुहृदामासीन्मानसेषुस्वकेष्वपि ॥ ९ ॥ अखण्डमाखण्डलवत्कोदण्डंकलयन्रणे ॥ पलायमानैरालोकिशत्रुसैन्यबलाहकैः ॥ १० ॥ सधर्मराजवज्जातोधर्माधर्मविवेचकः ॥ अदण्ड्यान्मण्डयन्राजादण्ड्यांश्चपरिदण्डयन् ॥ ११ ॥ धनञ्जयइवाधाक्षीत्परारण्यान्यनेकशः ॥ पाशीवपाशयाञ्चक्रेवैरिचक्रंविदूरगः ॥ १२ ॥ सोभूत्पुण्यजनाधीशोरिपुराक्षसवर्धनः ॥ जगत्प्राणसमानश्चजगत्प्राणनतत्परः ॥ १३ ॥ राजराजःसएवाभूत्सर्वेषान्धनदःसताम् ॥ सएवरुद्रमूर्तिश्चप्रैक्षिष्टरिपुभीरणे ॥ १४ ॥ विश्वेषांसहिदेवानांतपसारूपधृग्यतः ॥ विश्वेदेवास्ततस्तन्तुस्तुवन्तिचभजन्तिच ॥ १५ ॥ असाध्यःसहिसाध्यानांवसुभ्योवसुनाधिकः ॥ ग्रहाणांविग्रहधरोदस्र

हैं उनको भूषित करताहुवा वह राजा धर्मराजके समान पुण्य व पापको विचारकर बिलगानेवाला हुवा ॥ ११ ॥ व अग्निकी नाई बहुते वैरी वनोंको जलाताभया व दूर देशमें बसाहुवा भी वरुणकी नाई वैरीसमूहका बन्धन करनाभया ॥ १२ ॥ व कुबेरके समान वह वैरी राक्षसोंका छेदक हुवा व वायुके समान जगतके जिवाने में तत्पर हुवा ॥ १३ ॥ और कुबेरकी नाई सब सज्जनोंका धनदाता हुवा वही कुबेर होगया व वह संग्राम में शत्रुओं करके रुद्ररूप देखागया ॥ १४ ॥ जिससे वह तपस्या से सब देवों का रूप धरनेवाला था उससे विश्वेदेवा उसकी स्तुति करते हैं व भजते हैं ॥ १५ ॥ और वह साध्यदेवों से अजेय था व धनसे वसुदेवों से अधिक था

व ग्रहोंका रूपधारी होकर वह अश्विनीकुमार से अधिकरूपका सेवी था॥ १६ ॥ व गुणों से मरुद्गणों को न गिनता व तुषितदेवों को संतुष्ट करताहुवा जो सब विद्याधरों के बीचमें भी सब विद्याओंका धर्ता था ॥ १७ ॥ व जिसने अपने गानसे गन्धर्वों को गर्वसे हीनकिया उसके स्वर्गसमान दुर्ग याने कोटको यक्ष और राक्षस रखाते थे ॥ १८ ॥ व नागलोग उस हाथीके समान बलवान्का पाप न करतेथे व दानवलोग उसको मनुष्यके आकार करके सेवते थे॥ १९ ॥ व गुह्यकलोग सब ओरसे मनुष्यो में उसके गुप्तचर (हाल देनेवाले) हुये व "असुरोंने उससे यह कहा कि" हे राजन्! हम असुरलोग अपने ऐश्वर्य्य से आपकी भलीभांति से सेवा करेंगे ॥ २० ॥

तोऽजस्ररूपभाक् ॥ १६ ॥ मरुद्गणानगणयंस्तुषितांस्तोषयन्गुणैः ॥ सर्वविद्याधरोयस्तुसर्वविद्याधरेष्वपि ॥ १७ ॥ अग र्वानेवगन्धर्वान्यश्चक्रेनिजगीतिभिः ॥ ररक्षुर्यत्नरक्षांसितद्दुर्गंस्वर्गसोदरम् ॥ १८ ॥ नागानागांसिचक्रुश्चतस्यनागबली यसः ॥ दनुजामनुजाकारंकृत्वातञ्चासिषेविरे ॥ १९ ॥ जाताग्गुह्यचरायस्यगुह्यकाःपरितोनृषु ॥ संसेविष्यामहेराजन्नसुरा स्त्वांस्ववैभवैः ॥ २० ॥ वयंयतस्त्वद्विषयेसुरावासोऽपिदुर्लभः ॥ अशिक्षयत्द्विजातिपतेरिहयस्यतुरङ्गमान् ॥ आशुग श्चाशुगामित्वंपावमानेपथिस्थितः ॥ २१ ॥ अगजान्यस्यतुगजान्नगवर्ष्मसुवर्ष्मणः ॥ अजस्रदानिनोदृष्ट्वाभवन्नन्ये पिदानिनः ॥ २२ ॥ सदोजिरेचबोद्धारोयोद्धारश्चरणाजिरे ॥ नयस्यशास्त्रैर्विजितानशस्त्रैःकेनचित्क्वचित् ॥ २३ ॥ नने त्रविषयेजाताविषयेयस्यभूभृतः ॥ सदानष्टपदाद्वेष्यास्तदाऽनष्टपदाःप्रजाः ॥ २४ ॥ कलावानेकएवास्तित्रिदिवेपिदिवौ

क्योंकि हम आपकी इस राज्यमें बसते हैं कि जिसमें देवताओंका बसना भी दुर्लभहै और अश्वगति शिक्षारूप शास्त्र या वायुमार्गमें टिकाहुवा भी वायुदेव जिस राजा के घोडोंको शीघ्रगमन सिखाताथा ॥ २१ ॥ और जिसके पर्वतों में उत्पन्न, व पर्वतसमान देहवाले व निरन्तर मद झिरतेहुये हाथियों को देखकर अन्यलोग भी दान देने वाले होगये ॥ २२ ॥ व जिसके सभाअंगनमें विचार करनेवाले मन्त्रियोंको शास्त्रसे और संग्राम में योधाओं को शस्त्रसे किसीने कहीं नहीं हराया है ॥ २३ ॥ व जिस राजाकी राज्य में सदैव प्रजालोग नष्ट स्थानवाले और किसीसे विरोध करनेवाले होकर नेत्रगोचर न हुये याने न देखपड़े किन्तु उस समय या उस राजाके होतेही सब अनष्टस्थानवाले हुये अर्थात् सुखसे घरों मे बसते थे ॥ २४ ॥ और देवताओं के स्वर्ग से भी एकही कलावान् (चन्द्रमा) है व उस राजाकी भूमिमें सब जन चौंमठ

कलाओं के निधानहुये ॥ २५ ॥ व स्वर्गमें जो एकही कामहै वह भी अंगसे हीनहै और उस राजाकी भूमिमें सब लोगोंके सब काम भी अंगों और उपांगों से संयुक्त थे ॥ २६ ॥ व स्वर्ग मे देवोंका राजा गोत्रों (पर्वतों) के भेदन करनेवाला कहागयाहै और उस दिवोदासकी राज्य मे एक जन भी गोत्रभेदी कहीं नहीं सुनागया याने सब लोग गोत्रपालक थे ॥ २७ ॥ व स्वर्ग में चन्द्रमा पाख पाखमे क्षीण होजाताहै और उसकी राज्य में किसीने किसीको भी राजरोगी न सुना ॥ २८ ॥ व स्वर्ग में नवग्रह हैं और उस राजाके देश अनवग्रह (वर्षाके प्रतिघात से रहित) थे याने उनमें कभी न झूरा पड़ता था ॥ २९ ॥ व स्वर्गमे एकही हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा) विरा-

कसाम् ॥ तस्यक्षोणिभृतःक्षोण्यांजनाःसर्वेकलालयाः ॥२५॥ एकएवहिकामोस्तिस्वर्गेसोप्यङ्गवर्जितः॥ साङ्गोपाङ्गश्चसर्वेषांसर्वेकामाहितद्भुवि ॥ २६ ॥ तस्योपवर्तनेप्येकोनश्रुतोगोत्रभित्कचित्॥ स्वर्गेस्वर्गसदामीशोगोत्रभित्परिकीर्तितः ॥ २७ ॥ क्षयीचतस्यविषयेकोप्याकर्णिनकेनचित् ॥ त्रिविष्टपेक्षपानाथःपक्षेपक्षेक्षयीष्यते ॥ २८ ॥ नाकेनवग्रहाः सन्तिदेशास्तस्याऽनवग्रहाः ॥ २९ ॥ हिरण्यगर्भःस्वर्लोकेप्येकएवप्रकाशते ॥ हिरण्यगर्भाःसर्वेषान्तत्पौराणामिहालयाः ॥ ३० ॥ सप्ताश्वएकःस्वर्लोकेनितरांभासतेंऽशुमान् ॥ सदंशुकाःप्रतिदिनंबह्वश्वास्तत्पुरौकसः ॥ ३१ ॥ सदप्सरायथास्वर्भूस्तत्पुर्यपिसदप्सराः ॥ एकैवपद्मावैकुण्ठेतस्यपद्माकराःशतम्॥ ३२ ॥ अनीतयश्चतद्ग्रामानाराजपुरुषाःकचित् ॥ गृहेगृहेत्रधनदानाकएकोऽलकापतिः ॥ ३३ ॥दिवोदासस्यतस्यैवंकाश्यांराज्यंप्रशासतः ॥ गतंवर्षंदिन

जमानहै और उसके सब नगरनिवासियों के घर इस लोकमेंही हिरण्यगर्भ थे अर्थात् उनके भीतर सोना भराथा ॥ ३० ॥ व स्वर्ग में सात घोंडेवाला एकही अंशुमान् (सूर्य्य) बहुत प्रकाशमानहै और उस राजाके पुरवासी प्रतिदिन अनेक घोड़ेवाले व अच्छे अंशुक (वस्त्र) वाले थे ॥ ३१ ॥ व जैसे स्वर्गभूमि अच्छी अप्सरावालीहै क्या वैसेही उसकी पुरी भी थी किन्तु उनसे अच्छी अप्सराओं से संयुत थी व वैकुण्ठ में एकही लक्ष्मी है और उसके सैकडों लक्ष्मीनिधान तडाग थे ॥ ३२ ॥ व उस राजाके ग्राम अनीति याने अतिवृष्टि अनावृष्टि मूषक शलभ शुक स्वचक्र और परचक्र इसछहभांतिकी ईतिभीति से हीनथे और राजपुरुषोसे रहित कहीं नहीं थे अर्थात् सब ग्रामों मे राजाके पुरुष टिके थे व स्वर्ग में एक अलकापति (कुबेरही) धनदहै और यहां घर घरमें धनदाता थे ॥ ३३ ॥ इस भांतिसे काशी में राज्य करते

हुये दिवोदास राजाकी अस्सीहज़ार वर्षे एक दिनके समान बीतगई ॥ ३४ ॥ उसके बाद उसका अपकार करना चाहतेहुये व धर्ममार्ग में चलनेवाले देवोंने अपने गुरु बृहस्पति के साथ मन्त्र किया ॥ ३५ ॥ कि हे मुने ! बहुधा आपकी नाईं धर्मचारियों के लिये देवलोग विपत्तियोंकी परंपरा करतेही हैं ॥ ३६ ॥ किन्तु यद्यपि इस राजाने दुष्करयज्ञों से उन देवोंको पूजाहै तोभी वे उसके अत्यन्त मित्र नहीं हैं ॥ ३७ ॥ क्योंकि पराये उत्कर्षका न सहना यह देवताओंका स्वभावही है देखो कि बलि व बाणासुर और दधीचि आदि लोगोंने उनके साथ क्या अपराध किया था ॥ ३८ ॥ इससे यद्यपि देवलोग पद पदमें भी धर्म्म के विघ्न होतेही हैं तो भी धर्म्मज्ञलोग अपना

प्रायंशरदामयुताष्टकम् ॥ ३४ ॥ गीर्वाणाविप्रतीकारमथतस्यचिकीर्षवः ॥ गुरुणामन्त्रयाञ्चक्रुर्धर्मवर्त्मानुयायिनः ॥ ३५ ॥ भवादृशामिवमुनेप्रायशोधर्मचारिणाम् ॥ विबुधाविदधत्येवमहतीरापदान्ततीः ॥ ३६ ॥ यद्यप्यसौधराधीशो ऽयाधिनोदुर्धराध्वरैः ॥ तानध्वरभुजोऽत्यन्तंतथापिसुहृदोनते ॥ ३७ ॥ स्वभावएवद्युसदाम्परोत्कर्षासहिष्णुता ॥ ब लिबाणदधीच्याद्यैरपराद्धंकिमत्रतैः ॥ ३८ ॥ अन्तरायाभवन्त्येवधर्मस्यापिपदेपदे ॥ तथापिननिजोधर्मोधर्मधीभिर्विमु च्यते ॥ ३९ ॥ अधर्मिणःसमेधन्तेधनधान्यसमृद्धिभिः ॥ अधर्मादेवचपरंसमूलंयान्त्यधोगतिम् ॥ ४० ॥ प्रजाःपाल यतस्तस्यपुत्रानिवनिजौरसान् ॥ रिपुञ्जयस्यनाल्पोपिबभूवाधर्मसंग्रहः ॥ ४१ ॥ षाड्गुण्यवेदिनस्तस्यत्रिशक्त्यूर्जित चेतसः ॥ चतुरोपायवित्तस्यनरन्ध्रंविविदुःसुराः ॥ ४२ ॥ बुद्धिमन्तोपिविबुधाविप्रतीकर्तुमुद्यताः ॥ मनागपिनसंशेकु

धर्म्म नहीं छोड़ते हैं ॥ ३९ ॥ जिससे अधर्मीलोग पहले धन व धान्य समृद्धि से बढ़ते हैं परन्तु अधर्मसेही जड़समेत जैसे होवे वैसेही अधोगति को जाते हैं ॥ ४० ॥ और अपनी ब्याही स्त्री में अपने बीजसे उपजे पुत्रकी नाईं प्रजाओं को पालते हुये व शत्रुओं के जीतनेवाले उस दिवोदास राजाके थोड़ा भी अधर्मका संग्रह नहीं हुवाहै ॥ ४१ ॥ जोकि मिलाप करना वैर वाहन आसन द्वैधीभाव और संश्रय इन छः गुणों के भावको जानता है व जिसका चित्त तीन शक्तियों से याने बुद्धि बल व तेजसे बढ़ाहै व अर्थ धर्म काम और मोक्ष इन चारों के उपायो में जिसका ज्ञानहै उसके छिद्रको देवलोग नहीं जानते हैं ॥ ४२ ॥ व उस राजाके अपकार करने को

उद्यतहुये बुद्धिमान् भी देव अपकार करने के लिये थोड़ा भी न समर्थ हुये ॥ ४३ ॥ क्योंकि उसके मण्डलमें सब पुरुष एक स्त्रीके व्रतवाले हैं व स्त्रियों में व्यभिचारिणी कोई नहीं है ॥ ४४ ॥ व अपढ़ा ब्राह्मण व शूरतासे हीन क्षत्रिय नहीं हुवाहै व धनोपार्जन कर्मों में मूर्ख वैश्य नहीं हुवाहै ॥ ४५ ॥ व उस दिवोदास राजाके देशमे शूद्र लोग द्विजोंकी अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योकी सेवाके प्रति अनन्यवृत्तिवाले हैं याने उनके अन्य वृत्ति नहींहै ॥ ४६ ॥ व उसकी राज्यमे ब्रह्मचारीलोग अखण्डित ब्रह्मचर्य्य व गुरुकुलके अधीन व वेदपाठ लेने मे तत्पर हैं ॥ ४७ ॥ व उसकी राज्यमें गृहस्थलोग भी अतिथि पूजा धर्मके सेवक व धर्मशास्त्रों के पण्डित और सब ओर

रपकर्तुंतदीशितुः ॥ ४३ ॥ एकपत्नीव्रताःसर्वेपुमांसस्तस्यमण्डले ॥ नारीषुकाचिन्नैवासीदपतिव्रतधर्मिणी ॥ ४४ ॥ अनधीतोनविप्रोभूदशूरोनैवबाहुजः ॥ वैश्योनभिज्ञोनैवासीदर्थोपार्जनकर्मसु ॥ ४५ ॥ अनन्यवृत्तयःशूद्राद्विजशुश्रूषणम्प्रति ॥ तस्यराष्ट्रेसमभवन्दिवोदासस्यभूपतेः ॥ ४६ ॥ अविप्लुतब्रह्मचर्य्यास्तद्राष्ट्रेब्रह्मचारिणः ॥ नित्यंगुरुकुलाधीनावेदग्रहणतत्पराः ॥ ४७ ॥ आतिथ्यधर्मप्रवणाधर्मशास्त्रविचक्षणाः ॥ नित्यंसाधुसमाचारागृहस्थास्तस्यसर्वतः ॥ ४८ ॥ तृतीयाश्रमिणोयस्मिन्वनवृत्तिकृतादराः ॥ निःस्पृहाग्रामवार्तासुवेदवर्त्मानुसारिणः ॥ ४९ ॥ सर्वसङ्गविनिर्मुक्तानिर्मुक्तानिष्परिग्रहाः ॥ वाङ्मनःकर्मदण्डाढ्यायतयोयत्रनिःस्पृहाः ॥ ५० ॥ अन्येनुलोमजन्मानःप्रतिलोमभवाअपि॥स्वपारम्पर्यतोदृष्टंमनागवर्त्मनतत्यजुः॥५१॥ अनपत्योनतद्राष्ट्रेधनहीनोपिकोपिन॥अवृद्धसेवीनोकश्चिदकाण्डमृतिभाक्चन॥५२॥नचाटानैववाचाटावञ्चकानोनहिंसकाः॥नपाखण्डानवैभण्डानरण्डानचशौण्डिकाः॥ ५३ ॥ श्रुति

से अच्छे आचारवाले हैं ॥ ४८ ॥ व जहां वानप्रस्थलोग वनवृत्तिके आदरकर्त्ता व ग्रामवार्त्ताओ मे चाहसे हीन और वेदमार्ग में चलनेवाले हैं ॥ ४९ ॥ व जहां संन्यासीलोग सब संगसे छूटे व जीवन्मुक्त व स्पृहासे रहित व कुछ न ग्रहण करनेवाले व वचन,मन और कर्मके दण्डसे संयुतहैं ॥ ५० ॥ व अन्य अनुलोमज याने अंबष्ठ और करण आदि व सूत मागध और वैदेहादि प्रतिलोमज लोगोने भी अपनी परंपरासे देखीहुई गलीको थोडा भी नहीं त्यागकियाहै ॥ ५१ ॥ व उसकी राज्य में पुत्रहीन, धनहीन व वृद्धो का न सेवनेवाला और अकालमृत्युवाला कोई नहीं है ॥ ५२ ॥ व चंचल वाचाल वंचक वधकर्त्ता पाखण्ड भण्ड रण्ड और मद्य बेचनेवाले लोग

घोषोहिसर्वत्रशास्त्रवादःपदेपदे ॥ सर्वत्रसुभगालापामुदामङ्गलगीतयः ॥ ५४ ॥ वीणावेणुप्रवादाश्चमृदङ्गामधुरस्वनाः ॥ सोमपानंविनान्यत्रपानगोष्ठीनकर्णगा ॥ ५५ ॥ मांसाशिनःपुरोडाशेनैवान्यत्रकदाचन ॥ नदुरोदरिणोयत्रनाधमर्णानतस्कराः ॥ ५६ ॥ पुत्रस्यपित्रोःपदयोःपूजनन्देवपूजनम् ॥ उपवासोव्रतन्तीर्थंदेवताराधनम्परम् ॥ ५७॥ नारीणांभर्तृपदयोरर्चनन्तद्वचःश्रुतिः॥ समर्चयन्तिसततंमनुजानिजमग्रजम् ॥ ५८ ॥ सपर्ययन्तिमुदिताभृत्याःस्वामिपदाम्बुजम् ॥ हीनवर्णैरग्रवर्णोवर्ण्यतेगुणगौरवैः ॥ ५९ ॥ वरिवस्यन्तिभूयोपित्रिकालङ्काशिदेवताः ॥ सर्वत्रसर्वेविद्वांसःसमर्च्यन्तेमनोरथैः ॥ ६० ॥ विद्वद्भिश्चतपोनिष्ठास्तपोनिष्ठैर्जितेन्द्रियाः ॥ जितेन्द्रियैर्ज्ञाननिष्ठाज्ञानिभिःशिवयोगिनः ॥ ६१ ॥ मन्त्रपूतंमहार्हञ्चविधियुक्तंसुसंस्कृतम् ॥ वाडवानांमुखाग्नौचहूयतेऽहर्निशंहविः ॥ ६२ ॥ वापीकूपतडागा

नहीं हैं ॥ ५३ ॥ किन्तु सर्वत्र वेदोंका शब्द व क्षण क्षणमें शास्त्रोंका वाद व शुभ आलाप और सब ओरमें आनन्द से मंगल गीत होते हैं ॥ ५४ ॥ व वीणा और वंशीका बजाना मृदंगोंका मधुर शब्द होरहाहै व सोमयज्ञ में सोमपानके विना अन्यत्र मद्यपानकी सभा नहीं सुनपड़ी है ॥ ५५ ॥ व यज्ञके प्रथम समयमें पुरोडाश याने यज्ञके योग्य व अग्नि से पकायागया मांसखण्ड होम कियाजाता है तब कोई पुरुष उसका भोग लगानेवाला होताहै और अन्यत्र मांसभक्षी जन कहीं नहींहैं व जहां जुवारी, ऋण लेनेवाले और चोर भी नहीं हैं ॥ ५६ ॥ किन्तु माता व पिताके पांवोंकी पूजा व देवोंकी पूजा व उपवास व व्रत व तीर्थ व श्रेष्ठ देवताओंकी उपासना यह पुत्रोंका धर्म है ॥ ५७ ॥ व पतिके पांवोंकी पूजा और उसके वचनका सुनना यह स्त्रियोंका धर्म है व वहांके लोग सदैव अपने जेठे भाईको भलीभांति से पूजते हैं ॥ ५८ ॥ व सेवक लोग आनन्दित होकर स्वामीके पदकमलकी पूजा करते हैं व हीन वर्णों करके गुणों की गुरुता से श्रेष्ठवर्ण कहा जाताहै याने सब लोग ब्राह्मणो को मानते हैं ॥ ५९ ॥ व काशी के देवों को वारंवार त्रिकालमें पूजतेही हैं व सर्वत्र सब पण्डितलोग मनोरथों से पूजेजाते हैं ॥ ६० ॥ व विद्वानों से तपस्वी तपस्वियो से जितेन्द्रिय जितेन्द्रियों से ज्ञानी और ज्ञानियों से शिवजी के योगीलोग पूजेजाते हैं ॥ ६१ ॥ और मन्त्रों से पवित्र व बहुत योग्य व विधिसमेत व अच्छीभांति से संस्कार कीगई हवि

ब्राह्मणों के मुखरूप अग्नि में होमीजाती है ॥ ६२ ॥ व जहां क्षण क्षणमें शुद्ध द्रव्यसंभारों से बावली कूप और तड़ागों के कर्त्ता लोग अनेक हैं ॥ ६३ ॥ व जिसकी राज्य में लोभी पशुघातकों के बिना अनिन्द्य सेवासे सम्पन्न सब जातियां हृष्ट पुष्ट देख पड़तीहैं॥ ६४ ॥ इस भांतिसे उन्मेषपूर्वक विचार करतेहुये भी देवोंने सर्वत्र पवित्रता से बरतने शील उस राजाके थोड़े छिद्रको न पाया ॥ ६५ ॥ उसके बाद मन्त्रोंके जाननेवालो में श्रेष्ठ व धर्मिष्ठ उस राजामें अपकार करनेके चाही देवों से बृहस्पति जी बोले ॥ ६६ ॥ कि जैसे वह राजा सन्धि विग्रह यान आसन संश्रय और द्वैधीभावको जानता है वैसे यहां भी कोई नहींहै ॥ ६७ ॥ हे देवताओ! जो उस तपोबली में

नामारामाणाम्पदेपदे ॥ शुचिभिर्द्रव्यसम्भारैःकर्तारोयत्रभूरिशः ॥ ६३ ॥ यद्राष्ट्रेहृष्टपुष्टाश्चदृश्यन्तेसर्वजातयः ॥ अनिन्द्यसेवासम्पन्नाविनामृगयुसौनिकान् ॥ ६४॥ इत्थंतस्यमहीजानेःसर्वत्रशुचिवर्तिनः॥ उन्मिषन्तोप्यनिमिषामना क्छिद्रंनलेभिरे ॥ ६५ ॥ अथोवाचामरगुरुर्देवानपचिकीर्षुकान् ॥ तस्मिन्राजनिधर्मिष्ठेवरिष्ठेमन्त्रवेदिषु ॥ ६६ ॥ गुरुरुवाच ॥ सन्धिविग्रहयानास्तिसंश्रयन्द्वैधभावनम् ॥ यथासराजासंवेत्तिनतथात्रापिकश्चन ॥ ६७ ॥ उपायोप्येकएवास्तिचतुर्ष्विहदिवौकसः ॥ भेदोनामसचेत्सिध्येत्तपोबलिनितत्रहि ॥ ६८ ॥ तेनयद्यपिभूभर्त्राभूमेर्देवाविवासिताः ॥तथापिभूरिशस्तत्रसन्त्यस्मत्पक्षपातिनः ॥ ६९ ॥ कालोनिमिषमात्रोपियान्विनानसुखंव्रजेत् ॥ अस्माकमपितस्यापिसन्तितेतत्रमानिताः ॥ ७० ॥ अन्तर्बहिश्चरानित्यंसर्वविश्रम्भभूमयः ॥ समागतेषुतेष्वत्रसर्वनःसेत्स्यतिप्रियम् ॥ ७१ ॥ समाकर्ण्यचतेसर्वेत्रिदशागीष्पतीरितम् ॥ निर्णीतवन्तस्तस्यार्थंतस्मादन्तर्बहिश्चरान् ॥ अभिनन्द्याथतंसर्वेप्रोचुरित्थ

वह सिद्धहोवे तो यहां साम दान दण्ड और भेद इन चारों के बीचमें से भेदनामक एकही उपायहै ॥ ६८ ॥ कि यद्यपि उस राजाने देवोंको पृथिवी से निकालकर बाहर कियाहै तो भी वहां बहुतसे हमारे पक्षपाती हैं ॥ ६९ ॥ जिन बिना निमेषमात्र भी हमारा समय सुखसे नहीं बीतता है वे उस राजा से भी आदरित होकर वहां हैं ॥ ७० ॥ जोकि सदैव बाहर और भीतरमें विचरनेवाले व सब विश्वासके पात्रहैं उनके यहां आतेही हमारा सब प्यारा होगा ॥ ७१ ॥ उस समय सब देवोंने बृहस्पतिका

वचन सुनकर उसके अर्थको किन्तु बाहर भीतरके चरोंको निर्णयकिया और उन बृहस्पतिको सब ओरसे आनन्दितकर सबोंने यह कहा कि इसी भांतिसे होवे ॥७२॥ तदनन्तर इन्द्रजी आगे टिकेहुये अग्निदेवको भलीभांति से बुलाकर अधिक आदरपूर्वक मधुर वचन बोले ॥ ७३ ॥ हे अग्ने ! जो तुम्हारी वहां प्रतिष्ठित मूर्तिहै उसको शीघ्रही उस राजाकी राज्य से खींचलेवो ॥ ७४ ॥ क्योंकि उस मूर्त्तिके आतेही नष्टाग्निहुये प्रजालोग देव और पितरों के योग्य अन्नादि क्रियासे हीन होकर राजामें विरक्त होवेंगे याने उसमें स्नेह न करेंगे ॥ ७५ ॥ व जब राज्यकी कामना दुहनेवाली प्रजायें विरक्त होजावेंगी तब कष्ट से उपार्जन किया गया राजशब्द गतार्थ होगा ॥ ७६ ॥

म्भवेदिति ॥ ७२ ॥ ततःशक्रःसमाहूयवीतिहोत्रम्पुरःस्थितम् ॥ ऊचेमधुरयावाचाबहुमानपुरःसरम् ॥ ७३ ॥ हव्यवाहनयामूर्तिस्तवतत्रप्रतिष्ठिता ॥ तामुपासंहरक्षिप्रंविषयात्तस्यभूपतेः ॥ ७४ ॥ समागतायान्तन्मूर्तौसर्वानष्टाग्नयःप्रजाः ॥ हव्यकव्यक्रियाशून्याविरजिष्यन्तिराजनि ॥ ७५ ॥ प्रजासुचविरक्तासुराज्यकामदुघासुवै ॥ कृच्छ्रेणोपार्जितोऽपार्थोराजशब्दोभविष्यति ॥ ७६ ॥ प्रजानांरञ्जनाद्राजायेयंरूढिरुपार्जिता ॥ तस्यांरूढ्यांप्रणष्टायांराज्यमेवविनङ्क्ष्यति ॥७७॥ प्रजाविरहितोराजाकोशदुर्गबलादिभिः॥समृद्धोप्यचिरान्नश्येत्कूलसंस्थइवद्रुमः ॥७८॥ त्रिवर्गसाधनाहेतुःप्राक्प्रजैवमहीपतेः ॥ क्षीणवृत्त्याम्प्रजायांवैत्रिवर्गःक्षीयतेस्वयम् ॥ ७९ ॥ क्षीणेत्रिवर्गेसंक्षीणागतिर्लोकद्वयात्मिका ॥ ८० ॥ इतीन्द्रवचनाद्वह्निरह्नायक्षोणिमण्डलात् ॥ आचकर्षनिजाम्मूर्तिंयोगमायाबलान्वितः ॥ ८१ ॥ निन्येनकेवलं

जिससे प्रजाओं के रंजन करने से जो यह रूढ़ि राजाशब्द उपार्जित है उस रूढ़िके नष्ट होतेही राज्य भी नष्ट होगा ॥ ७७ ॥ और कोश व कोट व बल याने सैन्यादिकों से समृद्ध भी प्रजाओं से रहित राजा नदी किनारे टिकेहुये वृक्षकी नांई शीघ्रही नष्ट होजावेगा ॥ ७८ ॥ क्योंकि पहले प्रजाही राजाके अर्थ धर्म और काम नाम त्रिवर्गसाधनाका कारण है इससे जब प्रजा वृत्तिसे क्षीण होती है तब त्रिवर्ग भी आपही क्षीण होजाताहै ॥ ७९ ॥ और त्रिवर्ग के क्षीण होतेही दोनों लोककी गति भलीभांति से क्षीण होजाती है ॥ ८० ॥ इस भांतिके इन्द्रके वचन से योगमाया बलसे संयुत अग्निने शीघ्रही पृथिवीमण्डल से अपनी मूर्तिको खींचलिया ॥ ८१ ॥ व

प्रभुतायुक्त अग्निदेवने इन्द्र के वचन से आहवनीय गार्हपत्य और दक्षिणाग्निरूप त्रित्वको व अपनी शक्तिसे संयुत उदराग्निको भी न प्राप्तकिया ॥ ८२ ॥ और अग्निके स्वर्गलोकमें प्राप्त होतेही दुपहर में माध्याह्निक कर्मके करनेवाला होकर राजा शीघ्रही भोजनशालामें प्रवेश करताभया ॥ ८३ ॥ तब वारंवार डरसे थरथरातेहुये पाकशालाके अधिकारी लोगोंने धीरेसे भूंखसे विकल भी राजाको यह जनाया ॥ ८४ ॥ सूपकार बोले कि, हे सूर्य्य से अधिकतेजस्विन् ! हे प्रताप से अग्निके जीतनेवाले ! हे संग्रामके पण्डित ! हम लोग असमयमे भी आपसे कुछ विज्ञापना करनेके चाही हैं ॥ ८५ ॥ हे राजन् ! जो आप हमको अभयदक्षिणा दो तो हाथ जोडेहुये हम विज्ञा-

त्रेतांजाठराग्निमपिप्रभुः ॥ वज्रिणोवचसावह्निर्निजशक्तिसमन्वितम् ॥ ८२॥ वह्नौस्वर्लोकमापन्नेजातेमध्यन्दिनेनृपः॥ कृतमाध्याह्निकस्तूर्णंप्राविशद्भोज्यमण्डपम् ॥ ८३ ॥ महानसाधिकृतयोवेपमानास्ततोमुहुः ॥ क्षुधार्तमपिभूपालमिदंमन्दंव्यजिज्ञपन् ॥ ८४॥ सूपकाराऊचुः ॥ अत्यहस्करतेजस्कप्रतापविजितानल ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामाःस्मोप्यकाण्डेरणपण्डित ॥ ८५ ॥ यदिविश्राणयेद्राजन्भवानभयदक्षिणाम् ॥ तदाविज्ञापयिष्यामःप्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ ८६ ॥ भ्रूसञ्ज्ञयाकृतादेशाःप्रशस्तास्येनभूभुजा ॥ मृदुविज्ञापयाञ्चक्रुःपाकशालाधिकारिणः ॥ ८७ ॥ नजानीमोवयंनाथत्वत्प्रतापभयार्दितः ॥ कुसृत्याथकयाविद्वान्नष्टोवैश्वानरःपुरात् ॥ ८८ ॥ कृशानोःकृशताम्प्राप्तेकथम्पाकक्रियाभवेत् ॥ तथापिसूर्यपाकेनसिद्धापक्तिर्हिकाचन ॥ ८९ ॥ प्रभोरादेशमासाद्यतामिहैवानयामहे ॥ मन्यामहेचभूजानेपक्तिरद्यतनीशुभा ॥ ९० ॥ श्रुत्वान्धसिकवाक्यंसमहासत्त्वोमहामतिः॥नृपतिश्चिन्तयामासदेवानांवैकृतंत्विदम् ॥ ९१ ॥ क्षणंसंशी

पना करेंगे ॥ ८६ ॥ तब प्रसन्नमुखवाले राजाने भौंहों की सञ्ज्ञा से किया आज्ञा जिनके लिये उन पाकशालाधिकारियों ने कोमल वचन से जनाया ॥ ८७ ॥ कि हे नाथ ! हमलोग यह नहीं जानते हैं कि आपके प्रताप के डरसे पीडितहुई अग्नि किसी कुचाली से नगर मे नष्ट होगई है ॥ ८८ ॥ और अग्निके नाशको प्राप्तहोतेही पाकक्रिया कैसे होवे तो भी सूर्य्य के पाकसे कोई रसोई सिद्ध कीगई है ॥ ८९ ॥ हे राजन् ! स्वामीकी आज्ञाको प्राप्त होकर हम उसको यहा आनते है और मानते हैं कि आजका हुत्रा पकाना शुभहै ॥ ९० ॥ इसप्रकार से पाककर्त्ताओंका वचन सुनकर बड़े बलवान् व बड़े बुद्धिमान् उस राजाने चिन्तना किया कि यह देवताओंका

ही कर्म्म है ॥ ९१ ॥ व वहां क्षणभर भलीभांति से विचारतेहुये राजाने देखा कि अग्निने केवल घरको नहीं त्यागदिया बरन उदरकी गुहाको ॥ ९२ ॥ भी त्याग दियाहै और वह अग्नि इस लोकरो स्वर्गको चलीगई है परन्तु अग्निके जानेसे यहांभी हमारी क्या हानि होगी ॥ ९३ ॥ बरन विचार करने से उन देवताओं कीही हानि है क्योंकि क्या मैंने उनके बलसे इस राज्यको अंगीकार कियाहै ॥ ९४ ॥ जोकि ब्रह्माजीने बड़ी गुरुता से दियाहै इस भांतिसे विचार करतेहुये उस भूलोकेन्द्रके ॥ ९५ ॥ द्वारमें देशवासी मनुष्यों के साथ काशीपुरीके लोग भलीभांति से आये तदनन्तर द्वारपालने राजाकी आज्ञासे उनको भीतर प्रवेश कराया ॥ ९६ ॥ और उन्होने

लयंस्तत्रददर्शतपसोबलात् ॥ नकेवलंअहौगेहंहुतभुक्चोदरींदरीः ॥ ९२ ॥ अप्यहासीदितोलोकाज्जगामचसुरालयम् ॥ भवत्विहहिकाहानिरस्माकंज्वलनेगते ॥ ९३ ॥ तेषामेवविचाराच्चहानिरेषासुपर्वणाम् ॥ तद्बलेनचकिंराज्यंमयेदमुररीकृतम् ॥ ९४ ॥ पितामहेनमहतोगौरवात्प्रतिपादितम् ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यमध्यलोकशतक्रतोः ॥ ९५ ॥ पौराःसमागताद्द्वारिसहजानपदैर्नरैः ॥ द्वास्थेनचाज्ञयाराज्ञस्ततस्तेन्तःप्रवेशिताः ॥ ९६ ॥ दत्त्वोपदंयथार्हन्तेप्रणेमुःक्षोणिवज्रिणम् ॥ केचित्सम्भाषिताराज्ञादरसोदरयागिरा ॥ ९७ ॥ केचिच्चसमुदादृष्ट्याकेचिच्चकरसंज्ञया ॥ विसर्जितासनाराज्ञाबहुमानपुरःसरम् ॥ ९८ ॥ तेजिरेभेजिरेसर्वेरत्नार्चिःपरिसेविते ॥ विजितामोदसन्दोहेसुरानोकहसौरभैः ॥ राज्ञःशतशलाकस्यच्छत्रस्यच्छाययाशुभे ॥ ९९ ॥ विशाम्पतिरथोवाचतन्मुखच्छाययेरितम् ॥ विज्ञायतदभिप्रायमलम्भीत्यापुरौकसः ॥ १०० ॥ विकारकारिभिर्लेखैर्यदिनीतोऽनलोभुवः ॥ एतावतैवकिंसिद्धेन्मयितेषाम्पराभवः ॥ १ ॥ चिकीर्षुरहमेवासं

भेंटदेकर भूमीन्द्रके प्रणाम किया उस समय राजाने किसीको आदरसोदरवचनसे बुलाया ॥ ९७ ॥ व राजाने अधिक आदरपूर्वक किसीको आनन्द समेत दृष्टिसे और किसीको हाथों की सञ्ज्ञा से आसन दिया ॥ ९८ ॥ व वे सबलोग उस आंगन में आसनोंपर बैठगये जोकि रत्नोंकी ज्योतिसे सब ओरसे सेवित व देववृक्षोंके सुगन्धो से अन्य सुगन्धसमूहको जीते व राजाके सौ शलाका (डांड़ी) वाले छत्रकी छाया से शुभहै ॥ ९९ ॥ उसके बाद उन जनों के मुखोंकी कान्ति रो सूचित कियेगये उनके अभिप्रायको जानकर राजा बोला कि हे पुरवासियो ! डरसे हीन होवो ॥ १०० ॥ और जो विकारकर्त्ता देवोंने अग्निको पृथिवी से हरकर आनलिया है तो इतने

सेही उनका किया पराभव याने हार क्या मुझमें सिद्ध होवे ॥ १ ॥ हे पुरवासियो ! मंगल है कि मैंही पहले यह कार्य्य करना चाहता रहाहूं परन्तु बहुत कालसे परखा जाताहुवा वह उनसे आज स्मरण कराया गयाहै ॥ २ ॥ और जो अग्निगई तो कल्याण हुवा अब वायुदेव भी यहांसे चलाजावे व चन्द्रमा और सूर्य्य के साथ वरुण भी शीघ्रही यहां से चलाजावे ॥ ३ ॥ क्योंकि मैंही तपोवनसे देशवासियों के आनन्दार्थ सब सस्यों की समृद्धिका दाता मेघ होऊंगा ॥ ४ ॥ व मैंही तपस्याके योग बलसे अपनाको तीन भांतिसे परिकल्पित करके अग्निरूप से पाक यज्ञका बड़ा दाहक होऊंगा ॥ ५ ॥ व जोकि बाहर और भीतर में दो भांतिसे वर्त्तमान है उस वायुकी

पौराःकार्यमिदम्पुरा ॥ परंह्युपेक्षितप्रायन्दिष्ट्यातैःस्मारितञ्चिरात् ॥ २ ॥ गतोऽनलोऽभवद्भद्रंजगत्प्राणोपियात्वितः ॥ वरुणःपुष्पवन्ताभ्यामविलम्बम्प्रयात्वितः ॥ ३ ॥ अहमेवहिपर्जन्योभविष्यामितपोबलात् ॥ मुदेजनपदानाञ्चसर्वसस्यसमृद्धिदः ॥ ४ ॥ तपोयोगबलेनाहमात्मानम्परिकल्प्यच ॥ त्रिधावह्निस्वरूपेणपक्तीष्टिव्युष्टिकृत्तमः ॥ ५ ॥ अन्तर्बहिश्चयोद्वेधानभस्वत्पदवीन्दधत् ॥ सर्वेषामेववेत्स्यामित्वन्तःकरणचेष्टितम् ॥ ६ ॥ विधायचाम्भसीम्मूर्तिंसर्वजीवैकजीवनीम् ॥ प्रजाःसञ्जीवयिष्यामिकिञ्जडैर्विषयेमम ॥ ७ ॥ यदाखेतमसापौराग्रस्येतेशशिभास्करौ ॥ तदानकिंविनाताभ्यांजीवामःक्षितिमण्डले ॥ ८ ॥ श्रियञ्चान्द्रमसीम्प्राप्यह्लादयिष्याम्यहम्प्रजाः ॥ निशाचरेणकिमिहक्षयिणाचकलङ्किना ॥ ९ ॥ अस्मत्कुलेमूलभूतोभास्करोमान्यएवनः ॥ सतिष्ठतुसुखेनात्रयातायातंकरोतुच ॥ १० ॥ सएकोजगता

पदवीको धारताहुवा मै सबकेही अन्तःकरणके कर्मको जानूंगा ॥ ६ ॥ व सब जीवो के मुख्य जियानेवाली जलमयी वरुणमूर्ति बनकर प्रजाओंको जिलाऊंगा मेरे राज्य में जड़ जलादिको से क्याहै ॥ ७ ॥ हे पुरवासियो ! जब आकाश मे चन्द्रमा और सूर्य्य राहुसे ग्रसे जातेहैं तब हमलोग उन विना क्या भूमिमण्डल में नहीं जीते हैं ॥ ८ ॥ व मैं चन्द्रमाकी शोभाको प्राप्त होकर प्रजाओं को आनन्दित करूंगा इससे यहां क्षयी व कलंकी चन्द्रमा से क्याहै ॥ ९ ॥ व हमारे कुलमें मूलभूत सूर्य्य हम लोगों के मान्यही है वह सुखसे यहांरहें और आना जाना कियाकरें ॥ १० ॥ क्योंकि वह जगत्के एक आत्मा व विशेषसे हमारे कुलके देवता हैं और वह अपकार करने

को नहीं जानते हैं यह उनका उत्तमव्रतहै ॥ ११ ॥ इसभांति से भूपतिके वचन अमृतसमूहको दोनों कानोंके द्वारा सबओरसे पीकर विकसितमुख व मानसी व्यथा से हीन अन्तःकरणवाला होकर पुरवासियोंका समूह अपने अपने घरको गया ॥ १२ ॥ और इस त्रिलोक में तपस्या से क्या असाध्यहै याने कुछ नहीं इससे वह राजा भी उस पूर्वोक्त वचनको वैसेहीकर अग्नि व सूर्य्य से अधिक तेजको धारताहुवा देवों के हृदयमें शल्य (कील) के समान उच्चता से होताभया ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेमिड्ढिनाथत्रिवेदिविरचितेदिवोदासप्रतापवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

मात्माविशेषात्कुलदेवता॥ सोपकर्तुंनवेत्त्येवतस्येदंव्रतमुत्तमम् ॥ ११ ॥ इतिनरपतिवाक्सुधारसौघंश्रुतिपुटकैःपरिपीयपौरवर्गः ॥ विकसितवदनाम्बुजोजगामनिजनिजमालयमाधिमुक्तचित्तः ॥ १२॥ क्षितिपतिरपितत्तथाविधायतपसोसाध्यमिहास्तिकिंत्रिलोक्याम् ॥ अतिवह्न्यर्कमसौदधच्चतेजोद्युसदांशल्यमिवोच्चकैर्बभूव ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदिवोदासप्रतापवर्णनंनामत्रिचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४३ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच॥ अथमन्दरकन्दरोदरोल्लसदसमद्युतिरत्नमन्दिरे ॥ परितःसमधिष्ठितामरैर्निजशिखरैर्वसनीकृताम्बरे॥ १ ॥ निवसञ्जगदीश्वरोहरःकुशरजनीशकलामनोहरः ॥ लभतेस्मनशर्मशङ्करःप्रसरत्काशिवियोगजज्वरः॥२॥ विरहानलशान्तयेतदासमलेपित्रिपुरारिणापियः ॥ मलयोद्भवपङ्कएषसम्प्रतिपेदेह्यधुनापिपांसुताम् ॥ ३ ॥ परितापह

दो० । चवालीस अध्याय में काशीविरही शम्भु । योगिनिगण प्रेरण कियो नृपति निकासन दम्भु ॥ अथ (बहुत काल टिकनेके बाद) जोकि मन्दराचलकी कन्दरा के भीतर जगमगाते हुये अनूप छबीले रत्नोंवाला मन्दिरहै व जिसमें सब ओरसे देवतालोग टिके हैं व वस्त्र कियागया है आकाश जिसमें याने बहुत ऊंचाहै उसमें ॥ १ ॥ बसतेहुये, जगदीश्वर भवभयहर व चन्द्रकला धरनेसे मनोहर शंकरजीने पसरेहुये काशीके वियोगजनित ज्वरसे युक्तहोकर जब सुखको न पाया ॥ २ ॥ तब महादेवजीने विरहाग्निकी शान्तिके लिये जिस चन्दन कीचको लेपनकिया यह अब भी भस्मके भावको प्राप्तभयाहै ॥ ३ ॥ व महेश्वरने सब ओरसे ताप हरनेवाले कोमल

कमलों के जिन मृणालोंको भी कंकणकिया उनको जो सर्पकहा वह सत्य होगया यह महेशकी इच्छा आश्चर्य्य है ॥ ४ ॥ और यह विचित्रहै कि देवोंने क्षीरसागरको मथकर कोमल साररूप जिस चन्द्रमाको निकाला वह काशीके विरहसे तपे महेश्वरके माथेकी उष्णतासे क्षीणदेह होकर कृश होगया याने कलामात्र शेष रहताभया ॥ ५ ॥ व जिससे उस समय काशीवियोगसे उत्पन्न तापवाले महादेवजी विस्तारयुक्त मस्तक जटाकुंजके कोणमें जिस तापहारिणी गंगाको धारते भये हैं उसको अब भी नहीं त्यागते हैं ॥ ६ ॥ परन्तु सभागत देवोंने भी बलात्कार से इन्द्रियोंको वशकियेहुये भी शंकरजी को उस बड़े विरहके वशमें गयेभये न जाना क्योंकि वह अप्रकट

राणिपद्मिनीनांमृदुलान्यपिकङ्कणीकृतानि ॥ गदितानियदीश्वरेणसर्पास्तदभूत्सत्यमहोमहेश्वरेच्छा ॥ ४ ॥ यदुदुग्ध निधिंनिमथ्यदेवैर्मृदुसारःसमकर्षिपूर्णचन्द्रः ॥ सबभूवकृशोवियोगतप्तेश्वरमूर्धोष्णपरिक्षतच्छरीरः ॥ ५ ॥ यददीध रदेषजाततापःपृथुलेमौलिजटानिकुञ्जकोणे ॥ परितापहरांहरस्तदानीन्द्युनदीन्तामधुनापिनोज्झिहीते ॥ ६ ॥ महतो विरहस्यशङ्करःप्रसभन्तस्यवशीवशङ्गतः ॥ विविदेनसुरैःसदोगतैरपिसंवीतसुतापवेष्टितः ॥ ७ ॥ अतिचित्रमिदंयदा त्मनाशुचिरप्येषकृपीटयोनिना ॥ स्वपुरीविरहोद्भवेनवैपरिताप्येतजगत्त्रयेश्वरः ॥ ८ ॥ निजभालतलङ्कलानिधेःकल यानित्यमलङ्करोतियः ॥ सतदीश्वरमप्यतापयद्विधुरेकोविपरीतएवतु ॥ ९ ॥ गरलङ्गलनालिकातलेविलसेदस्यनतेन तापितः ॥ अमृतांशुतुषारदीधितिप्रचयैरेवतुतापितोऽद्भुतम् ॥ १० ॥ विलसद्धरिचन्दनोदकच्छटयातद्विरहापनुत्तये ॥

तापसे घिरेहुये थे ॥ ७ ॥ व यह अत्यन्त अद्भुतहै जोकि तीनलोकके स्वामी शुद्ध भी यह शिवजी अपनी पुरीके विरहसे उत्पन्न व आठ मूर्तियो में अपनी मूर्ति अग्नि सेही तपाये जावे ॥ ८ ॥ और यह आश्चर्य्य है कि जो महादेवजी जिस चन्द्रमाकी कलासे अपने माथको सदैव भूषित करते हैं उन ईश्वरको भी उस विपरीत हुये एक चन्द्रमाने भी तपाया ॥ ९ ॥ व जिन इन शंकरके कण्ठ मे जो विष विराजमानहै वह उससे न तपायेगये बरन चन्द्रमाकी शीतल किरणसमूहोंनेही उनको संतप्तकिया यह अद्भुत है ॥ १० ॥ व अन्य आश्चर्य्य को सुनो कि जो शिवजी पसरतेहुये सर्पफणाओ से उत्पन्न विषों से न तप्तहुये उन्होंने उस काशीपुरी के विरहके विनाश के

लिये वक्षःस्थल में लगाईगई शोभायमान हरिचन्दन के जलकी छटासे तापको अनुभवकिया ॥ ११ ॥ और यह भक्तभयहारी विश्वनाथजी माला व सर्प सूती व चांदी इत्यादि दृष्टान्तों से सिद्धहुये सकल संसार भ्रमको संहार करते हैं इससे इनके स्पष्ट मालामें भी महासर्पका सम्भवरूप जो भ्रमहै यह अद्भुत है ॥ १२ ॥ व सुमिरनेमात्र की गलीमे गये याने स्मरणके विषयहुये भी जो जन्म से हीन महेशजी तीन भांतिकी तापको बहुतही विनाश करते हैं वह काशीके विरहसे संतप्तहोकर अपनामें प्राप्त यह कुछ कहनेलगे ॥ १३ ॥ कि जो काशीसे भलीभांतिसे आईहुई बयार भी मेरे अंगोंमें लगे तो विरह से थरथराना शान्तिको प्राप्तहोवे अन्यथा हिमसमूहके संस्पर्श

हृदयाहितयाप्यदूयतप्रसरद्भोगिफटाभवैर्नतु ॥ ११ ॥ सकलम्भ्रममेषनाशयेत्स्रगहित्वाद्यपदेशजंहरः ॥ इदमद्भुतम स्ययद्भ्रमःस्फुटमाल्येपिमहाहिसम्भवः ॥ १२ ॥ स्मृतिमात्रपथङ्गतोपियस्त्रिविधन्तापमपाकरोत्यलम् ॥ सहिकाशिवि योगतापितःस्वगतङ्किञ्चिदजल्पदित्यजः ॥ १३ ॥ अपिकाशिसमागतोऽनिलोयदिगात्राणिपरिष्वजेन्मम ॥ दवथुःप रिशान्तिमेतितन्नहिमानीपरिगाहनैरपि ॥ १४ ॥ अगमिष्यदहोकथंसतापोनन्नुदत्ताङ्गजयायएधितः ॥ ममजीवातुल ताभ्फटित्यलंह्यभविष्यन्नहिमाद्रिजायदि ॥ १५ ॥ नतथोज्झितदेहयातयाममदक्षोद्भवयामनोऽद्दुनोत् ॥ अविमुक्तवि योगजन्मनापरिदूयेतयथामहोष्मणा ॥ १६ ॥ अयिकाशिमुदाकदापुनस्तवलप्स्येसुखमङ्गसङ्गजम् ॥ अतिशीतलिता नियेनमेऽद्भुतगात्राणिभवन्तितत्क्षणात् ॥ १७ ॥ अयिकाशिविनाशिताघसङ्घेतवविश्लेषजआशुशुक्षणिः ॥ अमृतां शुकलामृदुद्रवैरतिचित्रंहविषेववर्धते ॥ १८ ॥ अगमन्ममदक्षजावियोगजोदवथुःप्राग्घिमवत्सुतौषधेन ॥ अधुनाखलु

से भी न शान्त होगा ॥ १४ ॥ और खेद व शंकाहै कि जो इससमय निश्चयकर समर्थ व मेरे जीवनकी ओषधि लतारूप पार्वती न होती तो दक्षपुत्री सतीसे जो संताप बढाया गयाथा वह कैसे चलाजाता ॥ १५ ॥ व जैसे काशीके विरह से उत्पन्न महाविरहाग्नि से मेरा मन संतप्तहै वैसे देह त्यागनेवाली उस दक्षकुमारी से नहीं तप्तभया ॥ १६ ॥ हे काशि ! अब कब फिर आनन्द से तेरे अंगसंग से उपजेहुये सुखको पाऊंगा जिससे उसी क्षणमें मेरे अद्भुत अंग अत्यन्त शीतल होवेंगे ॥ १७ ॥ हे पापराशिविनाशिनि, काशि ! जैसे होमकी अग्नि हविसे बढ़ती है वैसेही तेरे वियोगसे उत्पन्नहुई अग्नि चन्द्रकलाके शीतल अमृत से भी बढ़ती है यह बड़ा विचित्र

है ॥ १८ ॥ व पहले सती के विरहसे उपजाहुआ मेरा कम्प पार्वतीरूप औषध से चलागया था परन्तु मैं जो इस समय में शीघ्रही काशीको नहीं देखताहूं तो निश्चयकर शान्तिको नहीं प्राप्त होताहूं ॥ १९ ॥ उससमय बुद्धियों की माता पार्वतीने मनसे ऐसे कहतेहुये व गुप्त तापसे विकल इन शिवजी को कैसे वियोगी माना ॥ २० ॥ किन्तु इन अर्धांगी प्यारी पार्वतीने भी नहीं जाना वियोगका कारण जिनका वह भक्तजनोंकी तापके विदारनेवाले शिवजी वचनों से सेयेगये ॥ २१ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे सर्वग ! हे विलसद्योग ! आपके हाथमें सब कुछ है इससे आपका क्या विरहहै और आश्चर्य्य है कि आपकी विभूति ब्रह्मादि देवों के लिये ऐश्वर्य्य देनेवाली

नैवशान्तिमीयांयदिकाशींनविलोकयेहमाशु ॥ १९ ॥ मनसेतिगृणंस्तदाशिवःसुतरांसंभृततापवैकृतः ॥ जगदम्बिकया धियाञ्जनन्याकथमप्येषवियुक्तइत्यमानि ॥ २० ॥ प्रिययावपुषोर्धयानयाप्यपरिज्ञातवियोगकारणः ॥ वचनैरुपचर्यतेस्म सप्रणतप्राणिनिदाघदारणः ॥ २१ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ तवसर्वगसर्वमस्तिहस्तेविलसद्योगवियोगएवकस्ते ॥ तवभूतिरहोवि भूतिदात्रीसकलापत्कलिकापिभूतधात्री ॥ २२ ॥ त्वदनीक्षणतःक्षणाद्विभोप्रलयंयान्तिजगन्तिशोच्यवत् ॥ च्यवतेभव तःकृपालवादितरोपीशनयस्त्वयोङ्कृतः ॥ २३ ॥ भवतःपरितापहेतवोनभवन्तीन्दुदिवाकराग्नयः ॥ नयनानियतस्त्रिने त्रतेऽमीप्रणयिन्यस्तिलसज्जलाचमौलौ ॥ २४ ॥ भुजगाभुजगाःसदैवतेऽमीनविषंसंक्रमतेचनीलकण्ठ ॥ अहमस्मि चवामदेववामातववामंवपुरत्रचित्तयुक्ता ॥ २५ ॥ इतिसंस्तुतिसम्बीजजनन्याभिहितेहिते ॥ गिरांनिगुम्फेगिरिशोवकुम

व सब विपत्तिहारिणी व सब प्राणियों की धारिणीभी है ॥ २२ ॥ हे विभो ! हे ईश ! आपकी कृपादृष्टि न होनेसे शोच्यके समान सब जगत् क्षणमें प्रलयको प्राप्त होतेहैं व जोकि आपकी कृपाके लेशमात्र से नहीं अंगीकार कियागया है वह अन्य ब्रह्मादि भी नीचे गिरपड़ता है ॥ २३ ॥ हे त्रिनयन ! जिससे चन्द्रमा व सूर्य्य व अग्नि ये तीनों आपके नेत्रहैं व सोहत जलवाली प्यारी गंगा भी मस्तकमें है इससे ये सब आपके परितापके कारण नहीं होते हैं ॥ २४ ॥ हे नीलकण्ठ ! यहां वे प्रसिद्ध शेषादि ये सर्प भी आपके भुजदण्डमें मण्डनहैं इससे विष आपमें नहीं प्रभुता करसक्ता है और हे वामदेव ! चित्तानुसारिणी व मनोहर रूपवाली मैं आपकी वामदेहहूं ॥ २५ ॥

इस भांतिसे जब संसार के कारण मूलाज्ञान या महत्तत्त्वकी माताने वचनरत्नन से गूंथेहुये हितको कहा तब महादेवजीने भी बोलने के लिये वचनको ग्रहणकिया॥२६॥ श्रीशिवजी बोले कि, हे काशि! पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश चन्द्रमा सूर्य्य और आत्मा इन आठ मूर्तियोंवाला व जगत्कर्त्ता व सत्स्वरूप व प्रत्यक्ष अनुमान उपमान शब्द अर्थापत्ति ऐतिह्य अनुपलब्धि और सम्भव इन आठ प्रमाणोंका रूप मैं भक्तभयहारी महादेव पार्वतीकरके काशीसे हराहुवा याने तुझसे संतापित जाना गयाहूं यह निश्चय है ॥ २७ ॥ तदनन्तर श्रीपार्वतीजीने संसारसे परे व मुक्ति देनेवाली व बालकाल में सखीभूतहैं उन उन वनोकी लतायें जिसमें उस काशीका प्रस्ताव किया ॥ २८ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे कामविनाशन, शिव! जोकि आकाशमें मिलित होताहै जल जिसमें उस प्रलयमें भी त्रिशूल के ऊपर धरी रहती है व जो कि

प्याददेगिरम् ॥ २६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ अयिकाशीत्यष्टमूर्तिर्भवोभावाष्टकोभवत् ॥ सत्वरंशिवयाज्ञायिध्रुवङ्काश्याहृतोहरः ॥ २७ ॥ अथबालसखीभूततत्तत्काननवीरुधम् ॥ शिवाप्रस्तावयाञ्चक्रेविमुक्तांमुक्तिदाम्पुरीम् ॥ २८ ॥ पार्वत्युवाच ॥ गगनतलमिलितसलिलेप्रलयेपिभवत्रिशूलपरिविधृताम् ॥ कृतपुण्डरीकशोभांस्मरहरकाशीम्पुरींयावः ॥ २९ ॥ धराधरेन्द्रस्यधरातिसुन्दरानमान्तथास्याःपिधिनोतिधूर्जटे॥ धरागतापीहनयाध्रुवन्धरापुरीधुरीणातवकाशिकायथा॥३०॥ नयत्रकाश्याङ्कलिकालजम्भयंनयत्रकाश्यांमरणात्पुनर्भवः॥ नयत्रकाश्याङ्कलुषोद्भवम्भयङ्कथंविभोसानयनातिथिर्भवेत् ॥ ३१ ॥ किमत्रनोसन्तिपुरःसहस्रशःपदेपदेसर्वसमृद्धिभूमयः ॥ परंनकाशीसदृशीदृशोःपदंकचिद्गतामेभवताश

कमलों की शोभा करनेवाली है उस काशीपुरीको मैं और हे धूर्जटे! जोकि इस लोकमें पृथिवीपर प्राप्त भी श्रेष्ठ तुम्हारी काशीपुरी निश्चय से भूमि नहीं है याने आपके त्रिशूलमें धरीहै वह जैसे मुझको संतापित करती है वैसे इस पर्वतराज मेरे पिता हिमवान्‌की भी अतिशय सुन्दर भूमि नहीं संतापित करती है॥ २९।३० ॥ हे विभो! जिस काशी में कलिकाल से उत्पन्नहुवा डर नहीं है व जिस काशी में मरने से फिर जन्म नहीं होताहै और जिस काशीमें पापसे उपजा डर नहीं है वह आंखोंका विषय कैसे होवे ॥ ३१ ॥ हे शिव! मैं आपकी शपथ करतीहूं कि इस पृथिवी के बीच स्थान स्थानमें सब समृद्धिकी भूमि अन्य हजारो पुरियां नहीं है किन्तुहैं परन्तु काशीके समान पुरी

मेरे नेत्रो के विषय में कहीं नहीं प्राप्तभई है ॥ ३२ ॥ हे पुरशत्रो ! सब आश्चर्य्यों की स्थान सैकड़ों पुरियां क्या स्वर्ग में नहींहैं परन्तु वे पुरियां संसार से द्वेष राखनेवाले आपकी पुरीके एक देशको प्राप्तहोकर तृणके समान होजाती हैं ॥ ३३ ॥ इससे काशीके विरहसे उत्पन्नहुआ ज्वर केवल आपकोही नही पीड़ा करताहै किन्तु इस मन्दराचलमें जैसे आपको बाधताहै वैसे मुझको भी बाधा करताहै और उस तापकी शान्तिकेलिये वह पुरी अथवा मेरी जन्मभूमि यह एकही उपाय इसलोकमें है ॥ ३४ ॥ और हे ईश्वर ! सब संतापके विघातकी व सब ओरसेप्रशान्तिकी देनेवाली काशीपुरीको प्राप्तहोकर मैंने अपनी जन्मभूमि से उत्पन्न तापको नहीं जानाहै ॥ ३५ ॥ हे आनन्ददा-

पेशिव॥३२॥त्रिविष्टपेसन्तिनकिम्पुरःशतंसमस्तकौतूहलजन्मभूमयः ॥ तृणीभवन्तीहचताःपुरःपुरःपदम्पुरारेभवतो भवद्विषः ॥ ३३ ॥ नकेवलङ्काशिवियोगजोज्वरःप्रबाधतेत्वान्तुतथाययथात्रमाम् ॥ उपायएषोत्रनिदाघशान्तयेपुरीतुसा वाममजन्मभूरथ ॥ ३४ ॥ मयानमेनेममजन्मभूमिकावियोगजन्मापरिदाघईशितः॥ अवाप्यकाशींपरितःप्रशान्ति दांसमस्तसन्तापविघातहेतुकाम् ॥ ३५ ॥नमोक्षलक्ष्म्योत्रसमक्षमीक्षितास्तनूभृताकेनचिदेवकुत्रचित् ॥ अवैम्यहंश मंदसर्वशर्मदासरूपिणीमुक्तिरसौहिकाशिका ॥ ३६ ॥ नमुक्तिरस्तीहतथासमाधिनास्थिरेन्द्रियत्वोज्झिततत्समाधि ना ॥ क्रतुक्रियाभिर्ननवेदविद्ययायथाहिकाश्याम्परिहायविग्रहम् ॥ ३७ ॥ ननाकलोकेसुखमास्तितादृशंकुतस्तुपाता लतलेऽतिसुन्दरे॥ वार्तापिमर्त्येसुखसंश्रयाकवाकाश्यांहियादृक्तनुमात्रधारिणि ॥ ३८ ॥ क्षेत्रेत्रिशूलिन्भवतोऽविमुक्तेवि

यक ! इसजगत्में किसीप्राणीने भी मोक्षकी लक्ष्मियोंको कहीं नहीं प्रत्यक्ष देखा और मैं यह जानतीहूं कि यह सबके आनन्द देनेवाली काशीही रूपधारिणी मुक्तिहै ॥३६ ॥ व जैसे काशी में देहको छोड़कर याने मरने से मुक्तिहै वैसे इस जगत् मे चंचल इन्द्रियों की वृत्तिसे ब्रह्मसमाधानसे हीन योग व यज्ञ क्रिया व उपासनादि वेद विद्यासे भी नहीं है ॥ ३७ ॥ काशीमेंही देहधारी मात्रको जैसा सुखहै वैसा स्वर्गलोकमें नही है व अत्यन्त सुन्दरतासंयुक्त पातालतल मे कहाहै और मनुष्यलोकमें भी वैसी सुखाधार वार्त्ता कहां है ॥ ३८ ॥ हे त्रिशूलिन्, शिव ! जोकि प्राणिश्रेष्ठ आपकी मुक्तिलक्ष्मी से कभी भी न हीनहुये काशीक्षेत्रमें मनको जोड़ताहै वह सदैव षडंग

योगकोही जोड़ता है ॥ ३९ ॥ हे शिव ! काशी में जाकर क्षणभर आपमें नेत्रोंको स्थिर कर मनुष्यों को जैसी योगसिद्धि सुखसे मिलती है वैसी इसलोकमें पडंगयोगसे भी नहीं है ॥ ४० ॥ व अज्ञान के विस्तारवाला याने आत्मानात्मविवेक से रहित पशुत्व भी श्रेष्ठ है परन्तु बहुतसी बुद्धियों का पात्र मनुष्यत्व नहीं श्रेष्ठ है क्योंकि जिसका उदय काशी के न देखने से निष्फलहै वह कमलपत्र में जलबिन्दु के समान चंचलहै यहां यह भावहै कि काशीवासी व काशी के दर्शनपानेवालों का जीवन सफलहै ॥ ४१ ॥ हे शिव ! काशी के दर्शन करनेवाले नेत्र कृतार्थ हैं व काशीवासी शरीर कृतार्थ है व जिससे काशी का आश्रय कियागया वह मन कृतार्थ

मुक्तिलक्ष्म्यानकदापिमुक्ते ॥ मनोपियःप्राणिवरःप्रयुङ्क्षेषडङ्गयोगंससदैवयुङ्क्ते ॥ ३९ ॥ षडङ्गयोगान्नहिताद्दशीन्द्रिभिःश रीरसिद्धिःसहसात्रलभ्यते ॥ सुखेनकाशींसमवाप्ययाद्दशीदृशौस्थिरीकृत्यशिवत्वयिक्षणम् ॥ ४० ॥ वरंहितिर्यक्त्वम बुद्धिवैभवंनमानवत्वम्बहुबुद्धिभाजनम् ॥ अकाशिसन्दर्शननिष्फलोदयंसमन्ततःपुष्करबुद्बुदोपमम् ॥ ४१ ॥ दृशौकृ तार्थेकृतकाशिदर्शनेतनुःकृतार्थाशिवकाशिवासिनी ॥ मनःकृतार्थन्धृतकाशिसंश्रयंमुखंकृतार्थंकृतकाशिसम्मु खम् ॥ ४२ ॥ वरंहितत्काशिरजोतिपावनंरजस्तमोध्वंसिशशिप्रभोज्ज्वलम् ॥ कृतप्रणामैर्मणिकर्णिकासुवैललाट गंयद्बहुमन्यतेसुरैः ॥ ४३ ॥ नदेवलोकोनचसत्यलोकोननागलोकोमणिकर्णिकायाः ॥ तुलांव्रजेद्यत्रमहाप्रयाणकृच्छ्रु तिर्भवेदक्षररसायनास्पदम् ॥ ४४ ॥ महामहोभूर्मणिकर्णिकास्थलीतमस्ततिर्यत्रसमेतिसंक्षयम् ॥ परःशतैर्जन्मभि

है और काशी के संमुखहुआ मुख कृतार्थ है ॥ ४२ ॥ व जोकि माथ में धारीहुई देवों से बहुत मानीजाती है और वह अत्यन्त पवित्र व चन्द्रचांदनी से चटक चमकवाली व रजोगुण और तमोगुणकी विनाशिनी काशी की धूलि श्रेष्ठही है जोकि मणिकर्णिका भूमि के लिये प्रणामकारी देवों के शिर में धारी हुई होकर बहुत ही मानीजाती है ॥ ४३ ॥ व स्वर्ग सत्यलोक और पाताल भी उस मणिकर्णिका की समताको नहीं प्राप्तहोताहै क्योंकि जहां मरतेहुये प्राणीका कान ॐकार या राम षड- क्षर मन्त्रका स्थानहोताहै ॥ ४४ ॥ व जोकि सैकड़ों से अधिक याने असंख्य जन्मों से बढ़ी व सूर्य्य अग्नि और चन्द्रनाकी किरणों से नहीं नाशीगई है वह अज्ञानकी

परंपरा जहां विनाशको प्राप्त होती है वह मणिकर्णिका स्थली महातेजकी भूमि है ॥ ४५ ॥ याकि मणिकर्णिका स्थली परमेश्वर का सिंहासनहै अथवा मुक्ति लक्ष्मी की कोमलशय्या है अथवा परमानन्द के सुकंदकी (तारकमन्त्रोपदेश की) जन्मभूमि है ॥ ४६ ॥ जहां सुखसे बैठे हुये व अपने मरणमहोत्सवमें अभिलाषवाले लोगों कर-के जगमगातीहुई सूक्ष्म धूलिसे भूतकालके विमुक्त जन्तुवों की संख्याकीजाती है वह मणिकर्णिका धन्य है ॥ ४७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने ! श्रीपार्वतीजीने इस भांति से काशीपुरी का वर्णनकर फिर काशी की प्राप्तिके लिये शिवजी से विज्ञापनाकिया ॥ ४८ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे गणनायक, हे वरदायक, हे नित्यस्वा-

रेधितापियादिवाकराग्नीन्दुकरैरनिग्रहा ॥ ४५ ॥ किमुनिर्वाणपदस्यभद्रपीठंमृदुलंतल्पमथोनुमोक्षलक्ष्म्याः ॥ अथवाम णिकर्णिकास्थलीपरमानन्दसुकन्दजन्मभूमिः ॥ ४६ ॥ समतीतविमुक्तजन्तुसङ्ख्याक्रियतेयत्रजनैःसुखोपविष्टैः ॥ विलसद्द्युतिसूक्ष्मशर्कराभिःस्ववपुःपातमहोत्सवाभिलाषैः ॥ ४७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अपर्णापरिवर्ण्येतिपुरींवाराणसीं मुने ॥ पुनर्विज्ञापयामासकाशीप्राप्त्यैपिनाकिनम् ॥ ४८ ॥ श्रीपार्वत्युवाच ॥ प्रमथाधिपसर्वेशनित्यस्वाधीनवर्तन ॥ य थानन्दवनंयायांतथाकुरुवरप्रद ॥ ४९ ॥ जितपीयूषमाधुर्यांकाशीस्तवनसुन्दरीम् ॥ अथाकर्ण्याहमुदितोगिरिशोगि रिजांगिरम् ॥ ५० ॥ श्रीदेवदेवउवाच ॥ अयिप्रियतमेगौरित्वद्वागमृतसीकरैः ॥ आप्यायितोस्मिनितरांकाशीप्राप्त्यै यतेधुना ॥ ५१ ॥ त्वंजानासिमहादेविममयत्तन्महद्व्रतम् ॥ अभुक्तपूर्वमन्येनवस्तूपाश्नामिनेतरत् ॥ ५२ ॥ पितामह स्यवचनाद्दिवोदासेमहीपतौ ॥ धर्मेणशासतिपुरींकउपायोविधीयताम् ॥ ५३ ॥ कथंसराजाधर्मिष्ठःप्रजापालनतत्परः ॥

धीनवर्तन, हे सर्वेश ! जैसे मैं काशीको जाऊं आप वैसेही करो ॥ ४९ ॥ उसके अनन्तर अमृत की माधुरीको जीते व काशी की स्तुति करने में सुन्दरवाणी को सुनकर शिवजीने पार्वतीजी से कहा ॥ ५० ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे परमप्यारी ! हे गौरी ! मैं तेरे वचनामृतकणों से बढ़ाया गयाहूं व इस समय में काशीकी प्राप्ति के लिये यत्न करताहूं ॥ ५१ ॥ हे महादेवि ! जो मेरा बड़ाव्रतहै उसको तुम जानती हो कि जो वस्तु पहले अन्यसे न भोगी गईहो उसको मैं भोगताहूं अन्यको नहीं याने किसीसे भोगी वस्तुको नहीं सेवताहूं ॥ ५२ ॥ और जोकि दिवोदास राजा ब्रह्माके वचन से काशीपुरी में धर्मपूर्वक राज्यकरताहै उसमें कौन उपाय कियाजावे ॥ ५३ ॥

क्योंकि पृथिवी का पति जो दिवोदास राजा प्रजाओं के पालने में तत्पर व बहुत धर्मवान् है वह काशीपुरीसे कैसे वियुक्त कियाजावे याने अलग होवे ॥ ५४ ॥ हे ईशे! जिससे अधर्मी को विघ्न होता है और अन्य धर्मवान् को विघ्न नहीं है उससे मैं किसको पठाऊं जो उसको काशीसे वियोग करावे ॥ ५५ ॥ हे प्रेमवर्धिनि ! जो धर्ममार्गमें चलतेहुये लोगोंका विघ्न करता है बरन उसकाही विघ्नहोता है ॥ ५६ ॥ हे प्रिये ! जिससे धर्मधुरन्धर मेरे रक्षाकरने योग्यहैं इससे मैं छिद्रके विना उसराजा के निकालने को समर्थ नहीं हूं ॥ ५७ ॥ किन्तु इस जगतमें जो धर्ममार्गका धारनेवालाहै उसको बुढ़ाई नहीं दबासक्ती है व उसको मृत्यु नहीं मारती है व उसको

वियोज्यतेपुरःकाश्यादिवोदासोमहीपतिः ॥ ५४ ॥ अधर्मवर्तिनोयस्माद्विघ्नःस्यान्नेतरस्यतु ॥ तस्मात्कंप्रेषयामीशेय स्तंकाश्यावियोजयेत् ॥ ५५ ॥ धर्मवर्त्मानुसरतांयोविघ्नंसमुपाचरेत् ॥ तस्यैवजायतेविघ्नःप्रत्युतप्रेमवर्धिनि ॥ ५६ ॥ विनाच्छिद्रेणतंभूपंनोत्सादयितुमुत्सहे ॥ मयैवहियतोरक्ष्याःप्रियेधर्मधुरन्धराः ॥ ५७ ॥ नजरातमतिक्रामेन्नतंमृत्युर्जिघांसति ॥ व्याधयस्तंनबाधन्तेधर्मवर्त्मभृदत्रयः ॥ ५८ ॥ इतिसञ्चिन्तयन्देवोयोगिनीचक्रमग्रतः ॥ ददर्शातिमहाप्रौढंगाढकार्यस्यसाधनम् ॥ ५९ ॥ अथदेव्यासमालोच्यव्योमकेशोमहामुने ॥ योगिनीवृन्दमाहूयजगौवाक्यमिदंहरः ॥ ६० ॥ सत्वरंयातयोगिन्योममवाराणसींपुरीम् ॥ यत्रराजादिवोदासोराज्यंधर्मेणशास्त्यलम् ॥ ६१ ॥ स्वधर्मविच्युतःकाशींयथातूर्णंत्यजेन्नृपः ॥ तथोपचरतप्राज्ञायोगमायाबलान्विताः ॥ ६२ ॥ यथापुनर्नवीकृत्यपुरींवाराणसीमहम् ॥ इतःप्रयामियोगिन्यस्तथाक्षिप्रंविधीयताम् ॥ ६३ इतिप्रसादमासाद्यशासनंशिरसावहन् ॥ कृतप्रणामोनिर्या

रोग नहीं पीड़ादेते हैं ॥ ५८ ॥ इस प्रकारसे विचारते हुये महादेवजीने अपने आगेखड़ेहुये अतिशय दक्ष व दृढ़कार्य्यके सिद्धकरनेवाले योगिनीसमूहको देखा ॥ ५९ ॥ हे महामुने ! उसके अनन्तर देवीजीके साथ विचारकर भक्तभयहारी शिवजीने योगिनीवृन्दको बुलाकर यह वचन कहा ॥ ६० ॥ कि हे योगिनियो ! जहां दिवोदासराजा अधिक धर्मसे राज्यकरताहै उस मेरी काशीपुरी को तुम शीघ्रहीजावो ॥ ६१ ॥ हे योगमाया बलसमेत, पण्डिताओ ! जैसे अपने धर्मसे रहित होकर राजा शीघ्रही काशीको त्याग देवे वैसेहीकरो ॥ ६२ ॥ और हे योगिनियो ! जैसे मैं फिर काशीपुरीको नवीनकर यहां से प्रयाणकरूं वैसेही शीघ्र कियाजावे ॥ ६३ ॥ इस भांतिसे शिवके प्रसादको प्राप्तहोकर

शिरपर आज्ञा धरताहुवा व प्रणामकरनेवाला योगिनियोंका गण उस मन्दराचल से निकलकर चला ॥ ६४ ॥ किन्तु आनन्द समेत व आपुरामें बतलातीहुई वे योगिनियां आकाश में पैठकर मनसेभी अधिक वेगसे चलती भईं ॥ ६५ ॥ उस परस्पर वार्ताको कहते हैं कि इससे हमलोग आज बहुतही धन्यहैं जिससे स्वयं महादेवजीने किया प्रसाद जिनमें वह हम श्रीकाशीको पठाई गईहैं ॥ ६६ ॥ व त्रिनेत्रराजका सम्मान और काशीका दर्शन ये दोनों दुर्लभ महालाभ आज हमको शीघ्रहीहुयेहैं ॥ ६७ ॥ इस भांतिसे परस्पर बतलातेहुये वे मन्दराचलके कुञ्जसे निकले व आनन्दितमन और आकाशमें वेगमे दौड़नेवाले योगिनियों के समूहने उस काशीपुरी को नेत्रगोचर किया ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकाशीवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

तोयोगिनीनांगणस्ततः ॥ ६४ ॥ ययुराकाशमाविश्यमनसोप्यतिरंहसा ॥ परस्परंभाषमाणायोगिन्यस्तामुदान्विताः ॥ ६५ ॥ अद्यधन्यतराःस्मोवैदेवदेवेनयत्स्वयम् ॥ कृतप्रसादाःप्रहिताःश्रीमदानन्दकाननम् ॥ ६६ ॥ अद्यसद्योमहालाभा वभूतांनोतिदुर्लभौ ॥ त्रिनेत्रराजसंमानस्तथाकाशीविलोकनम् ॥ ६७ ॥ इतिमुदितमनाःसयोगिनीनांनिकुरम्बस्त्वथम न्दराद्रिकुञ्जात् ॥ नभसिलघुकृतप्रयाणवेगोनयनातिथ्यमलम्भयत्पुरींताम् ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे काशीवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ अथतद्योगिनीवृन्दंदूराद्दृष्टिंप्रसार्यच ॥ स्वनेत्रदैर्घ्यनिर्माणंप्रशशंससफलान्वितम् ॥ १ ॥ दिव्यप्रासादमालानांपताकाश्चलपल्लवाः ॥ सादरंदूरमार्गस्थान्पान्थानाह्वयतीरिव ॥ २ ॥ चञ्चत्प्रासादमाणिक्यैर्विजृम्भितम

दो० । पैंतालिस अध्याय मे काशीपुरी प्रवेश । योगिनियों ने कीन्ह अरु उनके नाम विशेश ॥ अब (काशीदर्शन के अनन्तर) उस योगिनीसमूहने दूरसे दृष्टिको पसारकर अपनी आंखों की दीर्घता बनाने को फल समेत प्रशंसित किया ॥ १ ॥ व जोकि उडतीहुई देवमन्दिरपंक्तियों की पताकायें दूर गली में टिके बटोही लोगों को आदर समेत बुलाती ऐसी विराजती हैं उनका भी प्रशंसन किया ॥ २ ॥ और उठीहुई किरणवाले व देवमन्दिरों में जटित मणिसमूहों से निर्मल श्वेत रंग होकर

देखे जातेहुये श्यामवर्ण आकाश की भी प्रशंसा की ॥ ३ ॥ तदनन्तर देवत्वको मायासे ढांपकर व लालेवस्त्रवाले तपस्वियों का वेष बनाकर योगिनियों का समूह विना क्रमसे काशी में पैठगया ॥ ४ ॥ "और अनेक रूपोंको धारताभया उनमेंसे कुछेक कहेजाते हैं कि" कोई योगिनी, योगिनी (अष्टांगयोगयुक्त) कापालिकी होगई व कोई तपस्विनी (चान्द्रायणादि व्रतों में तत्पर) होगई व कोई परघरके रहनेवाली और कोई मासोपवासिनी होतीभई ॥ ५ ॥ व कोई मालिनी कोई नाइनी कोई सौरिकर्मविचार के जाननेवाली और कोई वैद्यकर्म में निपुणहुई ॥ ६ ॥ व कोई मोललेने और बेंचने में चतुर वैश्यकी स्त्रीभई व कोई सर्प पकड़नेवाली कोई दासी

रीचिभिः ॥ सुनीलमपिचव्योमवीक्ष्यमाणंसुनिर्मलम् ॥ ३ ॥ देवत्वंमाययाच्छाद्यवेषंकार्पटिकोचितम् ॥ विधायका शीमविशद्योगिनीचक्रमक्रमम् ॥ ४ ॥ काचिद्योगिनीभूताकाचिज्जातातपस्विनी ॥ काचिद्बभूवसैरन्ध्रीकाचिन्मा सोपवासिनी ॥ ५ ॥ मालाकारवधूःकाचित्काचिन्नापितसुन्दरी ॥ सूतिकर्मविचारज्ञाऽपराभैषज्यकोविदा ॥ ६ ॥ वै श्याचकाचिदभवत्क्रयविक्रयचञ्चुरा ॥ व्यालग्राहिण्यभूत्काचिद्दासीधात्रीचकाचन ॥ ७ ॥ एकाचनृत्यकुशलात्वन्या गानविशारदा ॥ अपरावेणुवादज्ञापरावीणाधराभवत् ॥ ८ ॥ मृदङ्गवादनज्ञान्याकाचित्तालकलावती ॥ काचित्कार्मण तत्त्वज्ञाकाचिन्मौक्तिकगुम्फिका ॥ ९ ॥ गन्धभागविधिज्ञान्याकाचिद्द्यूतकलालया ॥ आलापोल्लासकुशलाकाचिच्चत्वर चारिणी ॥ १० ॥ वंशाधिरोहणेदक्षारज्जुमार्गेणचेतरा ॥ काचिद्वातुलचेष्टाऽभूत्पथिचीवरवेष्टना ॥ ११ ॥ अपत्यदाऽनप

और कोई धाई होगई ॥ ७ ॥ व एक कोई नाचने में निपुणहुई व अन्य कोई गानमें पण्डिताहुई व अपर कोई वेणु बजानेवालीहुई और परा कोई वीणाधरा हुई ॥ ८ ॥ व अन्य कोई मृदंगबजाना जाननेवाली कोई तालकलावाली कोई वशीकरण जाननेवाली और कोई मोती गूँधनेवाली हुई ॥ ९ ॥ व अन्य कोई सुगन्ध विभागके प्रकारके जाननेवाली कोई द्यूतकला (जुवां) का मन्दिर कोई गाने में कुशल और कोई भिक्षुकीरूप से चतुष्पथचारिणी होती भई ॥ १० ॥ व कोई बांसपर चढ़ने में कुशल कोई रस्सी बांधकर चलने में चतुर कोई वातुलव्यापारवाली और कोई गलियों के वस्त्रखण्ड धारनेवाली होगई ॥ ११ ॥ व अन्य कोई अपुत्रलोगों को पुत्रदा होकर उस

पुरी मे बसी और कोई हाथों व पांवोंकी रेखाओंके लक्षण जानती या कहती थी ॥ १२ ॥ व कोई चित्रलिखने की निपुणतासे जनों के मनोंको हरनेहारा हुइ व कोइ वशीकरणमन्त्रज्ञा होकर उस पुर में आनन्द से विचरनेलगी ॥ १३ ॥ व कोई स्त्री और पुरुषके सम्बन्ध में वीर्य्य रोकनेवाली गुटिका की सिद्धिदा व कोई आंखो मे लगाने मात्रसे अभीष्टदेशप्राप्तिके द्वारा दर्शनादि सिद्धिरूप अञ्जनकी सिद्धिदा व अन्य कोई सुवर्णादि धातु रिद्धि कहने में निपुण और अन्य कोई पांवो मे पादुकाओं के स्पर्शमात्र से अभीष्टदेशप्राप्ति आदि पादुकासिद्धिकी देनेवालीहुई ॥ १४ ॥ व किसीने अग्निस्तम्भ व जलस्तम्भ और वचनस्तम्भकी शिक्षाकिया व अन्यने आकाश-

स्यानांपरातत्रपुरेऽवसत् ॥ काचित्कराङ्घ्रिरेखाणांलक्षणानिचिकेतिच ॥ १२ ॥ चित्रलेखननैपुण्यात्काचिज्जनमनोहरा ॥ वशीकरणमन्त्रज्ञाकाचित्तत्रचचारह ॥ १३ ॥ गुटिकासिद्धिदाकाचित्काचिदञ्जनसिद्धिदा ॥ धातुवादविदग्धान्यापादुकासिद्धिदापरा ॥ १४ ॥ अग्निस्तम्भंजलस्तम्भंवाक्स्तम्भंचाप्यशिक्षयत् ॥ खेचरीत्वंददौकाचिददृश्यत्वंपराददौ ॥ १५ ॥ काचिदाकर्षणींसिद्धिंददावुच्चाटनंपरा ॥ काचिन्निजाङ्गसौन्दर्ययुवचित्तविमोहिनी ॥ १६ ॥ चिन्तितार्थप्रदाकाचित्काचिज्ज्योतिःकलावती ॥ इत्यादिवेषभाषाभिरनुकृत्यसमन्ततः ॥ १७ ॥ प्रत्यङ्गणंप्रतिगृहंप्राविशद्योगिनीगणः ॥ इत्थमब्दंचरन्त्यस्तायोगिन्योऽहर्निशंपुरि ॥ १८ ॥ नच्छिद्रंलेभिरेकापिनृपविघ्नचिकीर्षवः ॥ ततःसमेत्यताःसर्वायोगिन्योवन्ध्यवाञ्छिताः ॥ तस्थुःसंमन्त्र्यतत्रैवनगतामन्दरंपुनः ॥ १९ ॥ प्रभुकार्यमनिष्पाद्यसदःसम्भावनैधितः ॥ कःपुरःश

गामित्व और अदृश्यत्व याने न देखपड़ने की विद्यादिया ॥ १५ ॥ व किसीने आकर्षणसिद्धि और अन्य किसीने उच्चाटनसिद्धि को दिया व किसीने अपने अंगों की सुन्दरता से युवकजनों के मनों को मोहिलिया ॥ १६ ॥ और कोई वाञ्छितार्थदायिनी व कोई ज्योतिषविद्यावाली होतीभई इत्यादि रूपरचन और वचनों से सब ओर अनुकरण कर ॥ १७ ॥ योगिनियो का गण प्रतिअंगण व प्रतिगृह मे प्रवेश करता भया इस भांतिसे एक वर्षतक काशीपुरी में रातोदिन विचरती हुई उन योगिनियो ने ॥ १८ ॥ छिद्रको कहीं नहीं पाया तदनन्तर व्यर्थ होगया है वाञ्छित जिनका ऐसी वे सब योगिनियां राजाके विघ्नकी चाहिनी व इकट्ठेहोकर भलीभांति से मन्त्रकर तहांही टिकती भई किन्तु फिर मन्दराचलको न गई ॥ १९ ॥ क्योंकि सभामें सभावना से याने कार्य्य करने मे दक्षतासे बढ़ायागया व जीवताहुवा कौन पुरुष प्रभुके

कार्य्य को न सिद्धकर स्वामी के आगे टिकने को समर्थ होवे ॥ २० ॥ हे मुने! उन योगिनियों ने अन्य यह विचार किया कि प्रभुके विनाभी हमलोग जीवतीहैं परन्तु काशी विना फिर न जीवेंगी ॥ २१ ॥ जिससे अच्छे सेवक में रुष्टहुवाभी प्रभु जीविकामात्रके हरनेहारा होताहै और हाथ से छूटीहुई काशी अर्थादि चारोंपुरुषार्थों को हर लेती है ॥ २२ ॥ हे महामुने! त्रिलोकमे विचरती हुई भी योगिनियां तबसे लगाकर अबतक भी काशीको छोड़ अन्यत्र नहीं टिकती हैं ॥ २३ ॥ इससे जोकि श्रीमती काशी को प्राप्तहोकर भी त्यागकरने की इच्छा करता है बरन वह अज्ञानीही धर्म काम अर्थ और मुक्तिसे त्यागाजाता है ॥ २४ ॥ व तुच्छसम्पत्ति में किया है मन

क्कयात्स्थातुंस्वामिनोक्षतविग्रहः ॥ २० ॥ अन्यच्चचिन्तितंताभिर्योगिनीभिरिदंमुने ॥ प्रभुंविनापिजीवामोनतुकाशीं विनापुनः ॥ २१ ॥ प्रभूरुष्टोपिसद्भृत्येजीविकामात्रहारकः ॥ काशीहरेत्कराद्भ्रष्टापुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ २२ ॥ नाद्यापि काशींसन्त्यज्यतदारभ्यमहामुने ॥ योगिन्योन्यत्रतिष्ठन्तिचरन्त्योपिजगत्त्रयम् ॥ २३ ॥ प्राप्यापिश्रीमतींकाशींयस्त्य तिच्छतिदुर्मतिः ॥ सएवप्रत्युतत्यक्तोधर्मकामार्थमुक्तिभिः ॥ २४ ॥ कःकाशींप्राप्यदुर्बुद्धिरपरत्रयियासति ॥ मोक्षनिक्षे पकलशींतुच्छश्रीकृतमानसः ॥ २५ ॥ विमुखोपीश्वरोस्माकंकाशीसेवनपुण्यतः ॥ सम्मुखोभवितापुण्यंकृतकृत्याः स्मतद्वयम् ॥ २६ ॥ दिनैःकतिपयैरेवसर्वज्ञोपिसमेष्यति ॥ विनाकाशींनरमतेयतोऽन्यत्रत्रिलोचनः ॥ २७ ॥ शम्भोः शक्तिरियंकाशीकाचित्सर्वैरगोचरा ॥ शम्भुरेवहिजानीयादेतस्याःपरमंसुखम् ॥ २८ ॥ इतिनिश्चित्यमनसिशम्भोरा नन्दकानने ॥ अतिष्ठद्योगिनीवृन्दंकयाचिन्माययावृतम् ॥ २९ ॥ व्यासउवाच ॥ इत्थंसमाकर्ण्यमुनिःपुनःपप्रच्छषण्मु

जिसने वह कौन कुबुद्धिजन मोक्षधरने की कलशी रूप काशीको छोड़कर अन्यत्र जाना चाहता है ॥ २५ ॥ व विमुखहुवा भी पुण्यरूप ईश्वर जब काशीकी सेवासे हमारे सम्मुख होगा तब हम कृतकृत्य होवेंगी ॥ २६ ॥ व जिससे सर्वज्ञ शिवजी भी काशी विना अन्यत्र नहीं रमण करते हैं इससे कुछ दिनोंमेंही यहां भलीभांति से आवेंगे ॥ २७ ॥ क्योंकि सबके नेत्रोंके अगोचर हुई यह काशी शङ्करजी की कोई अनिर्वचनीया शक्ति है इससे शम्भुजीही इसके परमसुख को जानते हैं ॥ २८ ॥ इस भांतिसे मनमें निश्चयकर किसी माया से घिराहुवा योगिनियोंका समूह शम्भुजी की काशीपुरी में टिकताभया ॥ २९ ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि, इसप्रकारसे सुनकर

अगस्त्य मुनिने फिर श्रीकार्त्तिकेयजी से पूंछा कि हे ईश्वर ! उन योगिनियोंके कौन कौन नामथे उनको कहो ॥ ३० ॥ व काशीमें योगिनियों की भक्तिसे क्या फल होताहै और वे किस पर्वमें किस भांतिसे पूजने योग्यहैं वहभी कहो ॥ ३१ ॥ हे मुने ! तदनन्तर इस भांतिसे योगिनियों के आश्रित प्रश्नको सुनकर कार्त्तिकेयजी कहने लगे और मैंभी वही कहताहूं व आप एकाग्रचित्त होकर सुनो ॥ ३२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्य ! योगिनियों के उन नामोंको कहताहूं कि जिनको सुनकर क्षणभरमें संसारी जनों के पाप क्षीण होजाते हैं ॥ ३३ ॥ गजानना व सिंहमुखी व गृध्रास्या व काकतुण्डिका व उष्ट्रग्रीवा व हयग्रीवा व वाराही व शरभानना ॥ ३४ ॥

खम् ॥ कानिकानिचनामानितासांतानिवदेश्वर ॥ ३० ॥ भजनाद्योगिनीनांचकाश्यांकिंजायतेफलम् ॥ कस्मिन्पर्वणि ताःपूज्याःकथंपूज्याश्चतद्वद ॥ ३१ ॥ श्रुत्वेतिप्रश्नमौमेयोयोगिनीसंश्रयंततः॥ प्रत्युवाचमुनेवच्मिशृणोत्ववहितोभवा न् ॥ ३२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ नामधेयानिवक्ष्यामियोगिनीनांघटोद्भव ॥ आकर्ण्ययानिपापानिक्षयन्तिभविनांक्षणात् ॥ ३३ ॥ गजाननासिंहमुखीगृध्रास्याकाकतुण्डिका ॥ उष्ट्रग्रीवाहयग्रीवावाराहीशरभानना ॥ ३४ ॥ उलूकिकाशिवारावा मयूरीविकटानना ॥ अष्टवक्त्राकोटराक्षीकुब्जाविकटलोचना ॥ ३५ ॥ शुष्कोदरीललज्जिह्वाश्वदंष्ट्रावानरानना ॥ ऋक्षाक्षीकेकराक्षीचबृहत्तुण्डासुराप्रिया ॥ ३६ ॥ कपालहस्तारक्ताक्षीशुकीश्येनीकपोतिका ॥ पाशहस्तादण्डहस्ता प्रचण्डाचण्डविक्रमा ॥ ३७ ॥ शिशुघ्नीपापहन्त्रीचकालीरुधिरपायिनी ॥ वसाधयागर्भभक्षाशवहस्तान्त्रमालिनी ॥ ३८ ॥ स्थूलकेशीबृहत्कुक्षिःसर्पास्याप्रेतवाहना ॥ दन्दशूककराक्रौञ्चीमृगशीर्षावृषानना ॥ ३९ ॥ व्यात्तास्याधूमनिः

व उलूकिका व शिवारावा व मयूरी व विकटानना व अष्टवक्त्रा व कोटराक्षी व कुब्जा व विकटलोचना ॥ ३५ ॥ व शुष्कोदरी व ललज्जिह्वा व श्वदंष्ट्रा व वानरानना व ऋक्षाक्षी व केकराक्षी व बृहत्तुण्डा व सुराप्रिया ॥ ३६ ॥ व कपालहस्ता व रक्ताक्षी व शुकी व श्येनी व कपोतिका व पाशहस्ता व दण्डहस्ता व प्रचण्डा व चण्डविक्रमा ॥ ३७ ॥ व शिशुघ्नी व पापहन्त्री व काली व रुधिरपायिनी व वसाधया व गर्भभक्षा व शवहस्ता व अन्त्रमालिनी ॥ ३८ ॥ व स्थूलकेशी व बृहत्कुक्षि व सर्पास्या

व प्रेतवाहना व दन्दशूककरा व क्रौंची व मृगशीर्षा व वृषानना ॥ ३९ ॥ व व्यात्तास्या व धूमनिःश्वासा व व्योमैकचरणा व ऊर्ध्वदृक् व तापनीदृष्टि व शोषणीकोटरी व स्थूलनासिका ॥ ४० ॥ व विद्युत्प्रभा व बलाकास्या व मार्जारी व कटपूतना व अट्टाट्टहासा व कामाक्षी व मृगाक्षी और मृगलोचना ॥ ४१ ॥ इन चौंसठ नामोंको जो मनुष्य दिनोंदिन तीनो संध्याओं में जपताहै उसकी यहां सब दुष्ट बाधायें नष्ट होजाती हैं ॥ ४२ ॥ व जो इन नामोंको पढ़ता है उसको डाकिनी शाकिनी कूष्मांड और राक्षसभी पीड़ा नहीं करते हैं ॥ ४३ ॥ व ये नाम बालकों की शांति करनेवाले व गर्भोंकी शान्ति करनेवाले व संग्राम, राजकुल और विवादमें भी जीति देनेवाले

श्वासाव्योमैकचरणोर्ध्वदृक् ॥ तापनीशोषणीदृष्टिःकोटरीस्थूलनासिका ॥ ४० ॥ विद्युत्प्रभाबलाकास्यामार्जारीकट पूतना ॥ अट्टाट्टहासाकामाक्षीमृगाक्षीमृगलोचना ॥ ४१ ॥ नामानीमानियोमर्त्यश्चतुःषष्टिंदिनेदिने ॥ जपेत्त्रिसन्ध्यंत स्येहदुष्टबाधाप्रशाम्यति ॥ ४२ ॥ नडाकिन्योनशाकिन्योनकूष्माण्डानराक्षसाः ॥ तस्यपीडांप्रकुर्वन्तिनामानीमा नियःपठेत् ॥ ४३ ॥ शिशूनांशान्तिकारीणिगर्भशान्तिकराणिच ॥ रणेराजकुलेवापिविवादेजयदान्यपि ॥ ४४ ॥ ल भेदभीप्सितांसिद्धिंयोगिनीपीठसेवकः ॥ मन्त्रान्तराण्यपिजपंस्तत्पीठेसिद्धिभाग्भवेत् ॥ ४५ ॥ बलिपूजोपहारैश्चधूप दीपसमर्पणैः ॥ क्षिप्रंप्रसन्नायोगिन्यःप्रयच्छेयुर्मनोरथान् ॥ ४६ ॥ शरत्कालेमहापूजांतत्रकृत्वाविधानतः ॥ हवींषिहु त्वामन्त्रज्ञोमहतींसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४७ ॥ आरभ्याश्वयुजःशुक्लांतिथिंप्रतिपदंशुभाम् ॥ पूजयेन्नवमींयावन्नराश्चिन्तित माप्नुयात् ॥ ४८ ॥ कृष्णपक्षस्यभूतायामुपवासीनरोत्तमः ॥ तत्रजागरणंकृत्वामहतींसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ४९ ॥ प्रणवादि

हैं ॥ ४४ ॥ इससे योगिनीपीठका सेवक मनमानी सिद्धि को पावे व उस पीठमें अन्य मन्त्रों को भी जपताहुवा जन सिद्धिसेवी होजावे ॥ ४५ ॥ व बलि पूजा उपहार धूप और दीप समर्पण से शीघ्रही प्रसन्न हुई योगिनियां मनोरथों को देवें ॥ ४६ ॥ व मन्त्रोंको जाननेवाला मनुष्य शरत्कालमें वहां विधिसे बड़ी पूजाकर और हवियों को हवनकर महासिद्धिको पावे ॥ ४७ ॥ व जो मनुष्य कुवारसुदी शुभ प्रतिपदा तिथि से लगाकर नवमीतक पूजाकरे वह वाञ्छित को प्राप्त होवे ॥ ४८ ॥ व कृष्णपक्षकी

चतुर्दशी में उपास किये हुवा मनुष्यश्रेष्ठ तहां जागरणकर बडी सिद्धिको प्राप्तहोवे ॥ ४९ ॥ व भक्तिमान् मनुष्य रात्रिमें ओङ्कारादि चतुर्थ्यन्त प्रत्येक नामों से अष्टोत्तर शत हवन करे ॥ ५० ॥ और छोटे बेरके फलभर घृतसमेत गुग्गुलु से होमकर मनुष्य जिरा सिद्धिको चाहता है उस उसको प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥ व क्षेत्रके विघ्नोंकी शान्तिके अर्थ पुण्यवान् लोगों करके वहां यत्नसे यात्रा करने योग्य है ॥ ५२ ॥ और जोकि अनादरसे वार्षिकी यात्रा को न करे उस काशीवासी को योगिनियां विघ्न देती हैं ॥ ५३ ॥ व वे सब मणिकर्णिका को आगेकर काशीमें टिकी हैं और उनके नमस्कारमात्र से मनुष्य विघ्नों से नहीं बाधाजाता है याने उसको विघ्न नहीं बाधा

चतुर्थ्यन्तैर्नामभिर्भक्तिमान्नरः ॥ प्रत्येकंहवनंकृत्वाशतमष्टोत्तरंनिशि ॥ ५० ॥ ससर्पिषागुग्गुलुनालघुकोलिप्रमाणतः ॥ यांयांसिद्धिमभीप्सेततांतांप्राप्नोतिमानवः ॥ ५१ ॥ चैत्रकृष्णप्रतिपदितत्रयात्राप्रयत्नतः ॥ क्षेत्रविघ्नप्रशान्त्यर्थंकर्तव्यापुण्यकृज्जनैः ॥ ५२ ॥ यात्रांचसांवत्सरिकींयोनकुर्यादवज्ञया ॥ तस्यविघ्नंप्रयच्छन्तियोगिन्यःकाशिवासिनः ॥ ५३ ॥ अग्रेकृत्वास्थिताःसर्वास्ताःकाश्यांमणिकर्णिकाम् ॥ तन्नमस्कारमात्रेणनरोविघ्नैर्नबाध्यते ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेचतुःषष्टियोगिन्यागमनंनामपञ्चचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४५ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ गतेथयोगिनीवृन्देदेवदेवोघटोद्भव ॥ काशीप्रवृत्तिंजिज्ञासुःप्राहिणोदंशुमालिनम् ॥ १ ॥ देवदेव उवाच ॥ सप्ताश्वत्वरितोयाहिपुरींवाराणसींशुभाम् ॥ यत्रास्तिसदिवोदासोधर्ममूर्तिर्महीपतिः ॥ २ ॥ तस्यधर्मविरोधेनयथातत्क्षेत्रमुद्वसेत् ॥ तथाकुरुष्वभोःक्षिप्रंमावमंस्थाश्चतंनृपम् ॥ ३ ॥ धर्ममार्गप्रवृत्तस्यक्रियतेयावमानना ॥ साभ

करसक्ते हैं ॥ ५४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेचतुःषष्टियोगिन्यागमनंनामपञ्चचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । छयालिसये अध्याय में बारह नाम बखानि । लोलारक महिमा महत चारि पदारथ दानि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्य ! जब योगिनियों का समूह चलागया तब काशीकी प्रवृत्तिको जानना चाहते हुये महादेवजी ने सूर्य्यदेव को पठाया ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे सातघोड़ेवाले सूर्य्य ! तुम उस मंगलमयी काशीपुरी को जावो कि जहां धर्मात्मा दिवोदास राजा विद्यमान है ॥ २ ॥ हे सूर्य्य ! उसके धर्मविरोध से जैसे वह क्षेत्र उच्छिन्न होवे वैसे शीघ्रही करो और उस नरेश

को मत अनादरो ॥ ३ ॥ क्योंकि धर्ममार्ग में वर्तमान हुये मनुष्य का जो अपमान किया जाता है वह अपनेकोही होताहै और महापापभी उपजताहै ॥ ४ ॥ हे भानो ! जो तुम्हारी बुद्धिके विकाससे वह राजा धर्मसे च्युत होवे तो तुम करके अगह किरणोंसे वह पुरी उद्वास करने योग्यहै ॥ ५ ॥ जिससे वे प्रसिद्ध काम क्रोध लोभ मोह मत्सर और अहङ्कार भी उस राजामें नहीं हैं उससे उसको कालभी नहीं जीतसक्ता है ॥ ६ ॥ हे रवे ! जबतक धर्ममें अचल बुद्धि है व जबतक धर्म में स्थिर मनहै तब तक विपत्तिकाल मे भी मनुष्यों में विघ्नका उदय कहां है ॥ ७ ॥ हे ब्रध्न ! जिससे तुम सब जन्तुओं के कर्मको जानतेहो इससेही जगत् के प्रकाशक या धर्माधर्मबो-

वेदात्मनोनूनंमहदेनश्चजायते ॥ ४ ॥ तवबुद्धिविकासेनच्यवतेचेत्सधर्मतः ॥ तदासानगरीभानोत्वयोद्वास्याऽसहैःकरैः ॥ ५ ॥ कामक्रोधौलोभमोहौमत्सराहङ्कृतीअपि ॥ तेतत्रनभवेतांयत्तत्कालोपिनतंजयेत् ॥ ६ ॥ यावद्धर्मेस्थिराबुद्धिर्याव द्धर्मेस्थिरंमनः ॥ तावद्विघ्नोदयःकास्तिविपद्यपिरवेनृषु ॥ ७ ॥ सर्वेषामिहजन्तूनांत्वंवेत्सिब्रध्नचेष्टितम् ॥ अतएवजगच्च क्षुर्व्रजत्वंकार्यसिद्धये ॥ ८ ॥ रविरादायदेवाज्ञांमूर्तिमन्यांप्रकल्प्यच ॥ नभोध्वगामहोरात्रंकाशीमभिमुखोऽभवत् ॥ ९ ॥ मनसातीवलोलोऽभूत्काशीदर्शनलालसः ॥ सहस्रचरणोप्यैच्छत्तदाखेनैकपादताम् ॥ १० ॥ हंसत्वंतस्यसूर्यस्यतदा सफलतामगात् ॥ सदानभोध्वनीनस्यकाशींप्रतियियासतः ॥ ११ ॥ अथकाशींसमासाद्यरविरन्तर्बहिश्चरन् ॥ मनागपि नतद्रूपेधर्मध्वस्तिमवैक्षत ॥ १२ ॥ विभावसुर्वसन्काश्यांनानारूपेणवत्सरम् ॥ क्वचिन्नावसरंप्रापतत्रराज्ञिसुधर्मिणि ॥ १३ ॥

धक तुम कार्य्यकी सिद्धिके लिये जावो ॥ ८ ॥ इस भांतिसे महादेवकी आज्ञा लेकर सूर्य्यदेव आकाश में चलनेवाली अन्य मूर्त्तिको कल्पितकर रातोदिन काशीके सम्मुख हुये ॥ ९ ॥ व काशीके दर्शन की लालसा है जिनके वह सहस्रचरण याने हजार किरणवाले सूर्य्य भी मनसे अत्यन्त चञ्चल हुये और आकाश में अनेक पदों की इच्छा करते भये ॥ १० ॥ तब सदा आकाशमार्गगामी व काशी के प्रति जानाचाहते हुये उन सूर्य्यका हंसत्व अर्थात् चलतेहुयेका भाव सफलताको प्राप्तहुवा ॥ ११ ॥ उसके बाद काशी में पहुँचकर बाहर व भीतर विचरते हुये सूर्य्यजीने उस राजामें थोड़ेभी धर्मध्वंस को न देखा ॥ १२ ॥ व वर्षभरतक काशीमें अनेक रूपसे बसतेहुये

सूर्य्यजी उस सुधर्मा राजा में अवसरको कहीं नहीं प्राप्त हुये ॥ १३ ॥ व कभी अतिथि भये दुर्लभ वस्तु की प्रार्थना करतेहुये सूर्य्यदेवने उस राजाके देश में कुछ न दुर्लभ देखा ॥ १४ ॥ और वह कभी याचक हुये व कभी बहुत दानी होगये व कभी दीनताको प्राप्तहुये व कभी गणक (ज्योतिषी) होगये ॥ १५ ॥ व कभी पाखण्डरूप क्रियाका कथन किया व कभी प्रत्यक्षज्ञानविषय ऐहिक वस्तुका स्थापन किया ॥ १६ ॥ और वह कभी जटिल कभी दिगम्बर और कभी विषविद्यामें विशारद वैद्यविशेष हुये ॥ १७ ॥ व कभी शिवोक्त पाखण्ड धर्म के पण्डित कभी वेदवादी और कभी लोगोंको भ्रमातेहुये ऐन्द्रजालिक होगये ॥ १८ ॥ व कभी दृष्टान्त कथाओं

कदाचिदतिथिर्भूतोदुर्लभंप्रार्थयन्रविः ॥ नतस्यराज्ञोविषयेदुर्लभंकिञ्चिदैक्षत ॥ १४ ॥ कदाचिद्याचकोजातोबहुदोपि कदाप्यभूत् ॥ कदाचिद्दीनतांप्राप्तःकदाचिद्गणकोप्यभूत् ॥ १५ ॥ वेदबाह्यांक्रियाञ्चापिकदाचित्प्रत्यपादयत् ॥ कदाचित्स्थापयामासदृष्टप्रत्ययमैहिकम् ॥ १६ ॥ कदाचिज्जटिलोजातःकदाचिच्चदिगम्बरः ॥ सकदाचिज्जाङ्गलिकोविषविद्याविशारदः ॥ १७ ॥ सर्वपाखण्डधर्मज्ञःकदाचिद्ब्रह्मवाद्यभूत् ॥ ऐन्द्रजालिकआसीच्चकदाचिद्भ्रामयञ्जनान् ॥ १८ ॥ नानाव्रतोपदेशैश्चकदाचित्सपतिव्रताः ॥ क्षोभयामासबहुशःसदृष्टान्तकथानकैः ॥ १९ ॥ कापालिकव्रतधरःकदाचिच्चाभवद्द्विजः ॥ कदाचिदपिविज्ञानीधातुवादीकदाचन ॥ २० ॥ क्वचिद्विप्रःक्वचिद्राजपुत्रोवैश्योन्त्यजःक्वचित् ॥ ब्रह्मचारीक्वचिदभूद्गृहीवनचरःक्वचित् ॥ २१ ॥ यतिःकदाचिदितिसरूपैरभ्रामयज्जनान् ॥ सर्वविद्यासुकुशलःसर्वज्ञश्चाभवत्क्वचित् ॥ २२ ॥ इतिनानाविधैरूपैश्चरन्काश्यांग्रहेश्वरः ॥ नकदापिजनेक्वापिच्छिद्रंप्रापकदाचन ॥ २३ ॥ ततोनिनिन्दचा

से संयुक्त अनेक व्रतों के उपदेशों से पतिव्रताओ को बहुत प्रकार से सक्षुब्ध किया ॥ १९ ॥ व कभी कपालवाले योगी, कभी पक्षी, कभी ब्रह्मज्ञानी और कभी सुवर्णादि सिद्धिवादी होतेभये ॥ २० ॥ व कहीं ब्राह्मण कहीं क्षत्रिय कहीं वैश्य कही शूद्र कहीं अन्त्यज कहीं ब्रह्मचारी कहीं गृहस्थ और कहीं वानप्रस्थ हुये ॥ २१ ॥ व कभी संन्यासी होकर अनेक रूपों से लोगो को भ्रमाते भये और सब विद्याओं मे कुशल व सर्वज्ञ भी होगये ॥ २२ ॥ इस भांतिसे अनेक विध रूपो से काशी में विचरते

हुये सूर्य्यजीने किसी जनमें किसी भांतिसे किसी छिद्रको कभी कहीं नहीं पाया ॥ २३ ॥ तदनन्तर चिन्तासे पीड़ित होकर कश्यपके पुत्र श्रीसूर्य्यजीने अपनी निन्दा किया कि जिसमें यश कहीं नहीं मिलताहै उस परप्रेष्यताको धिक्है ॥ २४ ॥ श्रीसूर्य्यजी बोले कि जो अब शीघ्रही मन्दराचलको जाताहूं तो नहीं सिद्ध किया है कार्य्यार्थ जिसने ऐसे सामान्य भृत्यके समान मुझमें महेशजी कोप करेंगे ॥ २५ ॥ और जो कोपकोभी अंगीकारकर किसी भांतिसे जाऊं तो मूढ़ दासकी नाईं उनके आगे कैसे टिकूंगा ॥ २६ ॥ अनन्तर अपमान को भी अंगीकारकर जो किसीप्रकार से जाताहूं तो जब शिवजी मुझको क्रोधसे देखें तब विष मेरे पीने योग्य होवे ॥ २७ ॥

त्मानंचिन्तार्तःकश्यपात्मजः॥धिक्परप्रेष्यतांयस्यांयशोलभ्येतनक्वचित् ॥ २४ ॥ मार्तण्डउवाच ॥ मन्दरंयदियास्यद्यसद्यस्तत्कुध्यतीश्वरः ॥ अनिष्पादितकार्यार्थेमयिसामान्यभृत्यवत् ॥ २५ ॥ कोपमप्युररीकृत्ययदियायांकथञ्चन ॥ कथंतिष्ठेपुरस्तस्यतर्हिवैमूढभृत्यवत् ॥ २६ ॥ अथोङ्कृत्यावहेलंवायामिचेच्चकथञ्चन ॥ क्रोधाग्निरीक्षितस्त्र्यक्षोमांविषंपेयन्तदामया ॥ २७ ॥ हरकोपानलेनूनंयदियातःपतङ्गताम् ॥ पितामहोपिमान्त्रातुन्तदाशक्ष्यतिनस्फुटम् ॥ २८ ॥ स्थास्याम्यत्रैवतन्नित्यंनत्यक्ष्यामिकदाचन ॥ क्षेत्रसंन्यासविधिनावाराणस्यांकृताश्रमः ॥ २९ ॥ पुरःपुरारेःकार्यार्थमनिवेद्येहतिष्ठतः ॥ यत्पापंभाविमेतस्यकाशीपापस्यनिष्कृतिः ॥ ३० ॥ अन्यान्यपिचपापानिमहान्त्यल्पानियानिच ॥ क्षयन्तितानिसर्वाणिकाशींप्रविशतांसताम् ॥ ३१ ॥ बुद्धिपूर्वंमयाचैतन्नपापंसमुपार्जितम् ॥ पुरारिणैवहिपुराऽऽशासिधर्मोहिरक्ष्यताम् ॥ ३२ ॥ धर्मोहिरक्षितोयेनदेहेसत्वरगत्वरे ॥ त्रैलोक्यंरक्षितंतेनकिंकामार्थैःसुरक्षितैः ॥ ३३ ॥ रक्षणीयो

व यह निश्चय और स्पष्ट है कि जो मैं रुद्रकी क्रोधाग्निमें गया तो ब्रह्मा भी मेरी रक्षा न करसकेंगे ॥ २८ ॥ उस कारण क्षेत्रसंन्यास की विधिसे काशी में परिश्रम करने वाला मैं सदैव यहांही टिकूंगा व इसको कभी न त्याग करूंगा ॥ २९ ॥ किन्तु शिवके आगे कार्य्यरूप अर्थको न निवेदितकर यहांपर टिकतेहुये मुझको जो पाप होगा उस पापका प्रायश्चित्त याने उद्धार काशीपुरी है ॥ ३० ॥ क्योंकि काशीमें पैठतेहुये जनों के अन्य भी जे बड़े व छोटे पाप हैं वह सब नष्ट होजाते हैं ॥ ३१ ॥ और मैंने बुद्धिपूर्वक इस पापको नहीं बटोरा बरन पहले शिवजीसेही सिखायागयाहूं कि धर्मकी ही रक्षा कीजावे ॥ ३२ ॥ व शीघ्रही गत होजानेवाली देहमें जिसने धर्मकी रक्षाकिया

उसके द्वारा त्रिलोक रक्षित होचुका इससे अच्छे प्रकार से रक्षित कामार्थों से क्या है ॥ ३३ ॥ और बहुतोंका सुखकर्त्ता भी काम जो रक्षाके योग्य होता तो शिवजीने
कैसे क्षणभर मे अनंगताको प्राप्तकियाहै ॥ ३४ ॥ व धनकी सदा रक्षा करना चाहिये यह किसीका कहा वचन यथार्थ होता तो हरिश्चन्द्रराजाने विश्वामित्र से क्यों न धन
की रक्षाकिया ॥ ३५ ॥ बरन शिबिआदि राजाओं और दधीच्यादि सब ब्राह्मणोंने देह व्यय से भी धर्मको रक्षित कियाहै ॥ ३६ ॥ इससे काशीसेवन से उत्पन्नहुवा यही
धर्मही क्रोधयुक्त रुद्रसे मेरी रक्षा करेगा इसमें संशय नहींहै ॥ ३७ ॥ व दुर्लभ काशी को प्राप्त होकर कौन सुजान फिर उसको त्याग करता है जैसे कि हाथमें टिकेहुये

यदिभवेत्कामःकामारिणाकथम्॥ क्षणादनङ्गतांनीतोबहूनांसुखकार्यपि ॥३४॥ अर्थश्चेत्सर्वथारक्ष्यइतिकैश्चिदुदाहृतम्॥
तत्कथंनहरिश्चन्द्रोऽरक्षत्कुशिकनन्दने ॥ ३५ ॥ धर्मस्तुरक्षितःसर्वैरपिदेहव्ययेनच ॥ शिबिप्रभृतिभूपालैर्दधीचिप्रमुखै
र्द्विजैः ॥ ३६ ॥ अयमेवहिवैधर्मःकाशीसेवनसम्भवः ॥ रुषितादपिरुद्रान्मांरक्षिष्यतिनसंशयः ॥ ३७ ॥ अवाप्यकाशीं
दुष्प्रापांकोजहातिसचेतनः॥रत्नंकरस्थमुत्सृज्यकःकाचंसञ्जिघृक्षति॥३८॥वाराणसींसमुत्सृज्ययस्त्वन्यत्रयियासति॥
हत्वानिधानंपादेनसोर्थमिच्छतिभिक्षया ॥ ३९ ॥ पुत्रमित्रकलत्राणिक्षेत्राणिचधनानिच ॥ प्रतिजन्मेहलभ्यन्तेकाश्ये
कानैवलभ्यते ॥ ४० ॥ येनलब्धापुरीकाशीत्रैलोक्योद्धरणक्षमा ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यदुष्प्रापंतेनलब्धंमहासुखम् ॥ ४१ ॥
कुपितोपिहिमेरुद्रस्तेजोहानिंविधास्यति ॥ काश्यांचलप्स्येतत्तेजोयद्वैस्वात्मावबोधजम् ॥ ४२ ॥ इतराणीहतेजांसिभा
सन्तेतावदेवहि ॥ खद्योताभानियावन्नोजृम्भतेकाशिजंमहः ॥ ४३ ॥ इतिकाशीप्रभावज्ञोजगच्चक्षुस्तमोनुदः ॥ कृत्वाद्वाद

रत्नको छोंडकर कौन जन कांच लेना चाहता है ॥ ३८ ॥ वैसेही जोकि काशीको छोंड़ कर अन्यत्र जानेकी इच्छा करताहै ॥ वह पांवसे निधिको हनकर भिक्षासे धनकी
इच्छा धरताहै ॥ ३९ ॥ इस लोकमें पुत्र, मित्र, स्त्री, क्षेत्र और धन ये सब प्रतिजन्म मे मिलते हैं केवल काशी नहीं मिलती है ॥ ४० ॥ और जिसने त्रिलोक के उद्धार
करने में समर्थ श्रीकाशीपुरीको पाया उसको तीनों लोकों के ऐश्वर्य्योंसेभी दुर्लभ महासुख मिलचुकाहै ॥ ४१ ॥ व रुष्टहुये रुद्रजी जो मेरे तेजकी हानि करेंगे तो काशीमें
उस तेजको पाऊंगा जोकि आत्मज्ञान से उत्पन्न हुवाहै ॥ ४२ ॥ व जबतक काशी से उत्पन्न तेज नहीं उदित होताहै तबतक इस लोकमें अज्ञान अन्धकार होने से

जुगुनूके समान अन्य तेज प्रकाशमान होरहे हैं ॥ ४३ ॥ इस भांति से काशीके प्रभावको जानतेहुये व जगत्के नेत्ररूप सूर्य्यजी अपनाको बारह प्रकारसे कर काशीपुरी के निवासी होगये ॥ ४४ ॥ "अब उन बारहरूपों के नाम कहते हैं कि" पहला लोलार्क दूसरा उत्तरादित्य तीसरा साम्बादित्य चौथा द्रुपदादित्य पांचवां मयूखादित्य ॥ ४५ ॥ छठा खखोल्क सातवां अरुणादित्य आठवां वृद्धादित्य नवां केशवादित्य दशवां विमलादित्य ग्यारहवां गंगादित्य ॥ ४६ ॥ और बारहवां यमादित्य संज्ञक सूर्य्य काशीपुरी में हैं हे अगस्त्य ! ये सब सदैव अधिक तामसी दुष्टोंसे क्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥ ४७ ॥ जिससे काशीके दर्शनमें उन सूर्य्यका मन लोल (चञ्चल) हुआथा

शधात्मानंकाशीपुर्यांव्यवस्थितः ॥ ४४ ॥ लोलार्कउत्तरार्कश्चसाम्बादित्यस्तथैवच ॥ चतुर्थोद्रुपदादित्योमयूखादित्यएवच ॥ ४५ ॥ खखोल्कश्चारुणादित्योवृद्धकेशवसञ्ज्ञकौ ॥ दशमोविमलादित्योगङ्गादित्यस्तथैवच ॥ ४६ ॥ द्वादशश्चयमादित्यःकाशिपुर्यांघटोद्भव ॥ तमोऽधिकेभ्योदुष्टेभ्यःक्षेत्रंरक्षन्त्यमीसदा ॥४७॥ तस्यार्कस्यमनोलोलंयदासीत्काशिदर्शने ॥ अतोलोलार्कइत्याख्याकाश्यांजाताविवस्वतः ॥ ४८ ॥ लोलार्कस्त्वसिसम्भेदेदक्षिणस्यांदिशिस्थितः ॥ योगक्षेमंसदाकुर्यात्काशीवासिजनस्यच ॥ ४९ ॥ मार्गशीर्षस्यसप्तम्यांषष्ठ्यांवाररविवासरे ॥ विधायवार्षिकींयात्रांनरःपापैःप्रमुच्यते ॥ ५० ॥ कृतानियानिपापानिनरैःसंवत्सरावधि ॥ नश्यन्तिक्षणतस्तानिषष्ठ्यर्केलोलदर्शनात् ॥ ५१ ॥ नरःस्नात्वासिसम्भेदेसंतर्प्यपितृदेवताः ॥ श्राद्धंविधायविधिनापित्रानृण्यमवाप्नुयात् ॥ ५२ ॥ लोलार्कसङ्गमेस्नात्वादानंहोमंसुरार्चनम् ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्मतदानन्त्यायकल्पते ॥ ५३ ॥ सूर्योपरागेलोलार्केस्नानदानादिकाः

इससे काशीमें सूर्य्यका लोलार्क यह नाम होगयाहै ॥ ४८ ॥ और असीसंगमके समीप दक्षिण दिशामें टिकेहुये लोलार्कजी सदैव काशीवासी जनका योग क्षेम करते हैं॥४९॥ व अगहनकी सप्तमी और छठसे रविवारका योग होनेमें वार्षिकी यात्राकोकर मनुष्य महापापों से छूटजाताहै ॥ ५० ॥ व मनुष्योंने वर्ष पर्य्यन्त जो पाप कियाहै वह छठ और रविवारके योगमें लोलार्क के दर्शनमात्रसे क्षणमात्रमें नष्ट होताहै ॥ ५१ ॥ व मनुष्य असीसंगममें नहाय देवपितरों का तर्पणकर और विधिपूर्वक श्राद्धकर पितरों की आनृण्यको प्राप्त होताहै याने उनके ऋण से छूटजाताहै ॥ ५२ ॥ व लोलार्कके समीप संगममें स्नानकर जोकि दान व होम और देवपूजादि कुछ कर्म्म कियाजाता

है वह आनंत्यके लिये समर्थ होताहै ॥ ५३ ॥ व सूर्य्यग्रहण के समय में लोलार्क के समीप स्नान और दानादि क्रियायें कुरुक्षेत्र से दशगुना होती हैं इसमें संशय नहीं है ॥ ५४ ॥ व माघसुदी सप्तमी मे लोलार्क के समीप गंगा और असी नदी के संगममें नहाकर उसीक्षणमें सात जन्मोमे कियेहुये पातको से विमुक्त होताहै ॥ ५५ ॥ व जोकि पवित्रव्रत होकर प्रति रविवार में लोलार्क के दर्शन करताहै उसको इस लोकमें दुःख कभी न होगा ॥ ५६ ॥ व जोकि रविवार में लोलार्कको देखे और उनके चरणामृतका सेवक होवे उसकी देहमें ददरी व दाद व खाज आदि रोग और दुःख भी कभी न होगा ॥ ५७ ॥ व काशीमें बसकर भी जो लोलार्ककी सेवा नहीं करताहै

क्रियाः ॥ कुरुक्षेत्राद्दशगुणाभवन्तीहनसंशयः ॥ ५४ ॥ लोलार्केरथसप्तम्यांस्नात्वागङ्गासिसङ्गमे ॥ सप्तजन्मकृतैःपापै र्मुक्तोभवतितत्क्षणात् ॥ ५५ ॥ प्रत्यर्कवारंलोलार्कंयःपश्यतिशुचिव्रतः ॥ नतस्यदुःखंलोकेस्मिन्कदाचित्सम्भविष्य ति ॥ ५६ ॥ नतस्यदुःखंनोपामानदद्रुर्नविचर्चिका ॥ लोलार्कमर्केयःपश्येत्तत्पादोदकसेवकः ॥ ५७ वाराणस्यामुषित्वा पियोलोलार्कंनसेवते ॥ सेवन्तेतंनरंनूनंक्लेशाःक्षुद्व्याधिसम्भवाः ॥ ५८ ॥ सर्वेषांकाशितीर्थानांलोलार्कःप्रथमंशिरः ॥ त तोऽङ्गान्यन्यतीर्थानितज्जलप्लावितानिहि ॥ ५९ ॥ तीर्थान्तराणिसर्वाणिभूमीवलयगान्यपि ॥ असिसम्भेदतीर्थस्यक लांनार्हन्तिषोडशीम् ॥ ६० ॥ सर्वेषामेवतीर्थानांस्नानाद्यल्लभ्यतेफलम् ॥ तत्फलंसम्यगाप्येतनरैर्गङ्गासिसङ्गमे ॥ ६१ ॥ नार्थवादोयमुदितःस्तुतिवादोनवैमुने ॥ सत्यंयथार्थवादोयंश्रद्धेयःसद्भिरादरात ॥ ६२ ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षाद्यत्रस्वर्गत रङ्गिणी ॥ मिथ्यातत्रानुमन्यन्तेताकिंकाश्चानुसूयकाः ॥ ६३ ॥ उदाहरन्तियेमूढाःकुतर्कबलदर्पिताः ॥ काश्यांसर्वेर्थवा

उस मनुष्यको भूंख और रोगों से उपजेहुये क्लेश निश्चय करके सेवते है ॥ ५८ ॥ क्योकि काशी के सब तीर्थोंके बीचमें लोलार्क मुख्य व मस्तकहै और उस जलसे भीगेहुये अन्य अनेकों तीर्थ उसके अंगहैं ॥ ५९ ॥ व भूमण्डलमे प्राप्त सब तीर्थांतर भी असीसंगम तीर्थकी सोलहवीं कलाको योग्य नहीं होते हैं ॥ ६० ॥ सब तीर्थ नहाने से मनुष्योको जो फल मिलताहै वह फल गंगा और असीनदी के संगममें भलीभांतिसे प्राप्त होताहै ॥ ६१ ॥ हे मुने ! यह अर्थवाद व स्तुतिवाद नहीं कहागयाहै किन्तु यह सत्य से यथार्थवाद है इससे आदरपूर्वक सज्जनों को श्रद्धा करना चाहिये ॥ ६२ ॥ जहां साक्षात् विश्वनाथजी देव व जहां गंगाजी विराजमानहै तहां

तार्किक निन्दकलोग मिथ्या अनुमान करते हैं ॥ ६३ ॥ कुतर्कों के बलसे गर्वित जे सब मूढ़ कहते हैं या उदाहरण देते हैं कि काशीमें यह अर्थवादहै वे लोग युग युग मे विष्ठाके कीड़े होते हैं ॥ ६४ ॥ हे मुने ! त्रैलोक्यमण्डप भी काशीके किसी तीर्थकी बडी महिमाकी तुलामें नहीं चढ़ताहै याने उसकी समता नहीं करसक्ताहै यह निश्चयहै ॥ ६५ ॥ जोकि नास्तिक, वेदमतसे बाहर व शिश्नोदरपरायण और अत्यजहैं उनके आगे काशी न बरणीजावे ॥ ६६ ॥ लोलार्ककी किरणोसे तपेहुये व असीनदीकी धारसे विखंडित बड़े मल या महामलिन मनवाले मनुष्य काशी के दक्षिण भागमें नहीं पैठसक्ते हैं ॥ ६७ ॥ और उत्तम जन दुःखसागर संसारमे लोलार्क के इस माहात्म्य

दोयन्तेविट्कीटायुगेयुगे ॥ ६४ ॥ कस्यचित्काशितीर्थस्यमहिम्नोमहतस्तुलाम् ॥ नाधिरोहेन्मुनेनूनमपित्रैलोक्यमण्डपः ॥ ६५ ॥ नास्तिकावेदबाह्याश्चशिश्नोदरपरायणाः ॥ अन्त्यजाताश्चयेतेषांपुरःकाशीनवर्ण्यताम् ॥ ६६ ॥ लोलार्ककरनिष्टप्ताअसिधारविखण्डिताः ॥ काश्यांदक्षिणदिग्भागेनविशेयुर्महामलाः ॥ ६७ ॥ महिमानमिमंश्रुत्वालोलार्कस्यनरोत्तमः ॥ नदुःखीजायतेक्कापिसंसारेदुःखसागरे ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेलोलार्कवर्णनंनामषट्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ अथोत्तरस्यामाशायांकुण्डमर्काख्यमुत्तमम् ॥ तत्रनाम्नोत्तरार्केणरश्मिमालीव्यवस्थितः ॥ १ ॥ तापयन्दुःखसङ्घातंसाधूनाप्याययन्रविः ॥ उत्तरार्कोमहातेजाःकाशींरक्षतिसर्वदा ॥ २ ॥ तत्रेतिहासोयोवृत्तस्तंनिशा

को सुनकर कभी भी दुःखी नहीं होताहै ॥ ६८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेलोलार्कमाहात्म्यवर्णनंनामषट्चत्वारिंशोध्यायः ॥ ४६ ॥

दो० । सैंतालिस अध्याय में वर्णन युत विस्तार । उत्तरार्क माहात्म्यको सुनि भागत भवभार ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि अब (लोलार्ककी उत्पत्तिपूर्वक माहात्म्य कहनेके बाद उत्तरार्ककी उत्पत्ति व महिमा कही जाती है) काशीकी उत्तरदिशा में जो उत्तम अर्ककुण्ड है वहां उत्तरार्क नामसे सूर्य्यजी टिके हैं ॥ १ ॥ दुःखसमूह को तपाते व साधुओंको बढ़ातेहुये उत्तरार्क नामक महातेजवाले सूर्य्यजी सदैव काशीपुरीकी रक्षा करते हैं ॥ २ ॥ हे सुव्रत ! वहां जो इतिहास वर्त्तमान होगयाहै उसको सुनो

कि आत्रेय वंशमें उत्पन्न कोई प्रियव्रतनामक ब्राह्मण ॥ ३ ॥ काशीमें हुआ जोकि अच्छा आचारवान् व सदैव अतिथिलोगों के प्यार करनेवालाथा उसकी महामनोहर, शुभव्रता नामवाली स्त्री ॥ ४ ॥ पतिकी सेवामे तत्पर व घरके कर्मों में कुशलथी उस प्रियव्रत ब्राह्मणने उसशुभव्रता स्त्री में सुलक्षणा नाम्नी एक कन्याको उत्पन्न किया॥५॥ जब बृहस्पति केन्द्रस्थान में टिके थे तब मूलनक्षत्र के पहले पाद में उपजीहुई वह कन्या माता पिताके घरमें उजेले पाख के चन्द्रमाकी नाईं बढ़नेलगी ॥ ६ ॥ जोकि सुरूपवती विनय व आचारवाली माता पिताकी प्रियकारिणी और घरके उपस्कर याने पात्रादि सामग्री शुद्धकरनेमें बहुतही निपुणहुई ॥ ७ ॥ वह पिताके घरमें जैसे जैसे

मयसुव्रत ॥ विप्रःप्रियव्रतोनामकश्चिदात्रेयवंशजः ॥ ३ ॥ आसीत्काश्यांशुभाचारःसदातिथिजनप्रियः ॥ भार्याशुभव्रतातस्यबभूवातिमनोहरा ॥ ४ ॥ भर्तृशुश्रूषणरतागृहकर्मसुपेशला ॥ तस्यांसजनयामासकन्यामेकांसुलक्षणाम् ॥ ५ ॥ मूलर्क्षप्रथमेपादेतथाकेन्द्रेबृहस्पतौ ॥ ववृधेसागृहेपित्रोःशुक्लेपक्षेयथाशशी ॥ ६ ॥ सुरूपाविनयाचारापित्रोश्चप्रियकारिणी ॥ अतीवनिपुणाजातागृहोपस्करमार्जने ॥ ७ ॥ यथायथासमैधिष्टसाकन्यापितृमन्दिरे ॥ तथातथापितुस्तस्याश्चिन्तासंववृधेतराम् ॥ ८ ॥ कस्मैदेयावराकन्यासुरम्येयंसुलक्षणा ॥ अस्याअनुगुणोलभ्यःक्वमयावरउत्तमः ॥ ९ ॥ कुलेनवयसाचापिशीलेनापिश्रुतेनच ॥ रूपेणार्थेनसंयुक्तःकस्मैदत्तासुखंलभेत् ॥ १० ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यज्वरोभूदतिदारुणः ॥ यश्चिन्ताख्योज्वरःपुंसामौषधैर्नापिशाम्यति ॥ ११ ॥ तन्मूलर्क्षविपाकेनचिन्ताख्येनज्वरेणच ॥ सविप्रःपञ्चतांप्राप्तस्त्यक्त्वासर्वंगृहादिकम् ॥ १२ ॥ पितर्युपरतेतस्याःकन्यायाःसाजनन्यपि ॥ शुभव्रतापरित्यज्यतांक

भलीभांति से बाढ़ी वैसे वैसे उसके पिताके मनमें यह चिन्ता भी बहुतही बाढ़ी ॥ ८ ॥ कि यह श्रेष्ठ सुन्दरी सुलक्षणा कन्या किस के लिये देने योग्यहै व इसके अनुरूप उत्तम वर मुझको कहांपर लभ्य होगा ॥ ९ ॥ जोकि कुल, अवस्था, सदाचार या अच्छा स्वभाव, वेदादि पढ़ना व रूप और धन से भी संयुतहोवे उस किसके लिये दीहुई यह कन्या सुखको पावे ॥ १० ॥ इसभांतिसे चिन्ता करतेहुये उस प्रियव्रत के अत्यन्त दारुण वह ज्वरहुआ जोकि चिन्तानामक मनुष्यों का ज्वर औषधों से नहीं शान्त होताहै ॥ ११ ॥ जब उस कन्याके मूल नक्षत्रके फलसे व चिन्तानामक ज्वरसे वह ब्राह्मण गृहादि सब वस्तुको छोड़कर मरणको प्राप्तहोगया ॥ १२ ॥ तब पिताके मरतेही उस

कन्याकी माता शुभव्रता भी उस कन्याको छोड़कर पतिके पीछे चलीगई याने सती धर्मसे आपही अग्निमें पैठकर जलगई ॥ १३ ॥ क्योंकि स्त्रीका यह धर्महै कि जीते मरतेभी पतिके साथही पतिव्रता को सदा टिकना चाहिये ॥ १४ ॥ पुत्र, पिता, माता व बांधव आदि कोई जन नहीं रक्षा करता है केवल पति के पांवोंकी सेवाही स्त्री की रक्षा करती है ॥ १५ ॥ जब माता व पिता ये दोनों मरणको प्राप्त होगये तब दुःखसे पीड़ित सुलक्षणा भी दशाह को बिताकर और्ध्वदैहिक याने द्वादशाह पिण्डादि देकर ॥ १६ ॥ दीनताको प्राप्तहुई अनाथ होकर बड़ी चिन्ताको पहुँची कि माता व पिता से हीन अकेली मैं कैसे संसारसागर के ॥ १७ ॥ दुस्तर पारको पाऊंगी जिससे

न्यांपतिमन्वगात् ॥ १३ ॥ धर्मोयंसहचारिण्याजीवताजीवतापिवा ॥ पत्यासहैवस्थातव्यंपतिव्रतयुजासदा ॥ १४ ॥ ना पत्यंपातिनोमातानपितानैवबान्धवा ॥ पत्युश्चरणशुश्रूषापायाद्वैकेवलंस्त्रियम् ॥ १५ ॥ सुलक्षणापिदुःखार्तापित्रोःपञ्चत्वमाप्तयोः ॥ और्ध्वदैहिकमापाद्यदशाहंविनिवर्त्यच ॥ १६ ॥ चिन्तामवापमहतीमनाथादैन्यमागता ॥ कथमेकाकिनी पित्रामात्राहीनाभवाम्बुधेः ॥ १७ ॥ दुस्तरंपारमाप्स्यामिस्त्रीत्वंसर्वाभिभावियत् ॥ नकस्मैचिदहंयाहंपितृभ्यांप्रतिपादिता ॥ १८ ॥ तददत्ताकथंस्वैरमहमन्यंवरंवृणे ॥ वृतोपिनकुलीनश्चेद्गुणवान्नचशीलवान् ॥ १९ ॥ स्वाधीनोपिनतत्तेनवृतेनापिहिकिम्भवेत् ॥ इतिसञ्चिन्तयन्तीसारूपौदार्यगुणान्विता ॥ २० ॥ युवभिर्बहुभिर्नित्यंप्रार्थितापिमुहुर्मुहुः ॥ नकस्यापिददौबालाप्रवेशंनिजमानसे ॥ २१ ॥ पित्रोरुपरतिंदृष्ट्वावात्सल्यंचतथाविधम् ॥ निनिन्दबहुधात्मानंसंसारंचनिनिन्दह ॥ २२ ॥ याभ्यामुत्पादिताचाहंयाभ्याञ्चपरिपालिता ॥ पितरौकुत्रतौयातौदेहिनोधिगनित्यताम् ॥ २३ ॥

स्त्रीभाव सबसे अनादरित है व माता और पिता ने मुझको किसी वर के लिये नहीं दिया ॥ १८ ॥ उससे विना दीहुई मैं अपनी इच्छासे कैसे अन्य वरको अंगीकार करूं व बराहुवा भी वर जो कुलीन गुणवान् शीलवान् ॥ १९ ॥ और अपने अधीन न होवे तो उस बरेहुये पति से क्या होगा इस प्रकार से बड़ी चिन्ता करतीहुई रूप व उदार गुणोंसे संयुत वह ॥ २० ॥ कन्या बारबार युवावस्थावाले बहुते जनों से नित्यही प्रार्थित होकर भी अपने मनमे किसीका प्रवेश न देतीभई ॥ २१ ॥ माता व पिता के मरण और उनकी वैसी वत्सलता को देखकर उसने अपनाको व संसारको भी बहुत भांतिसे निन्दा किया ॥ २२ ॥ कि जिन्होने मुझको उपजाया व जिन्होंने पाला

वे माता और पिता कहां गये देहधारियों की अनित्यता को धिक्है ॥ २३ ॥ आश्चर्य्य व खेदहै कि जैसे मेरे आगे माता व पिताकी देह नष्ट होगई है वैसेही मेरीभी देह विनाशवाली है ऐसा निश्चयकर मन और इन्द्रियों के जीतनेवाली उस कन्या ने ॥ २४ ॥ दृढ़ ब्रह्मचर्य्यव्रत को धारणकर अविचलमनहो हर्ष से उत्तरार्क देवके समीप में उग्र तपस्याको किया ॥ २५ ॥ वहां उसके तपस्या करतेही एक बहुत छोटी छागी प्रतिदिन आकर उसके आगे अचल होकर खड़ीहोवे ॥ २६ ॥ व सायङ्काल कुछ तृण पर्णादिक चरकर उस कुण्डका पानी पीनेवाली वह अपने स्वामी के घरको जावे ॥२७॥ तदनन्तर इस भांतिसे पांच छह वर्ष बीततेही देवीजी के साथ लीलासे विचरतेहुये

अहोदेहोप्यहोऽङ्गत्वंयथापित्रोःपुरोमम ॥ इतिनिश्चित्यसाबालाविजितेन्द्रियमानसा ॥ २४ ॥ ब्रह्मचर्यंदृढंकृत्वातपउग्रं चचारह ॥ उत्तरार्कस्यदेवस्यसमीपेस्थिरमानसा ॥ २५ ॥ तस्यांतपस्यमानायामेकाछागीलघीयसी ॥ तत्रप्रत्यहमागत्यतिष्ठेत्तत्पुरतोऽचला ॥ २६ ॥ तृणपर्णादिकंकिञ्चित्सायमभ्यवहृत्यसा ॥ तत्कुण्डपीतपानीयास्वस्वामिसदनंव्रजेत् ॥ २७ ॥ ततइत्थंव्यतीतासुपञ्चषासुसमासुच ॥ लीलयाविचरन्देवस्तत्रदेव्यासहागतः ॥ २८ ॥ सन्निधावुत्तरार्कस्यतपस्यन्तींसुलक्षणाम् ॥ स्थाणुवन्निश्चलांस्थाणुरद्राक्षीत्तपसाकृशाम् ॥ २९ ॥ ततोगिरिजयाशम्भुर्विज्ञप्तःकरुणात्मना ॥ वरेणानुगृहाणेमांबन्धुहीनांसुमध्यमाम् ॥ ३० ॥ शर्वाणीगिरमाकर्ण्यततःशर्वःकृपानिधिः ॥ समाधिमीलिताक्षींतामुवाचवरदोहरः ॥ ३१ ॥ सुलक्षणेप्रसन्नोस्मिवरंवरयसुव्रते ॥ चिरंखिन्नासितपसाकस्तेऽस्तीहमनोरथः ॥ ३२ ॥ सापिशम्भोर्गिरंश्रुत्वामुखपीयूषवर्षिणीम् ॥ महासन्तापशमनींलोचनेउदमीलयत् ॥ ३३ ॥ त्र्यक्षंप्रत्यक्षमावीक्ष्य

वहां आयेहुये देव ॥ २८ ॥ महादेवजीने उत्तरार्क के समीप तपस्या करती व ठूंठकी नाईं निश्चल और तपस्या से दुर्बल देहवाली सुलक्षणा को देखा ॥ २९ ॥ उसके बाद दयारूप देवीजी ने शङ्कर से विज्ञापना किया कि हे स्वामिन्! बन्धुवर्जित इस सुमध्यमाको वरसे अनुग्रह करो याने इसको वर देना चाहिये ॥ ३० ॥ तब यह पार्वतीका वचन सुनकर भक्तभयभञ्जन कृपानिधान वरदायक शिवजीने समाधि से आंखें मूँदे बैठीहुई उस सुलक्षणा से कहा ॥ ३१ ॥ कि हे सुव्रते, सुलक्षणे! हम प्रसन्न हैं वरको स्वीकार कर तू तपस्या से बहुत खिन्न है इस लोक में तेरा क्या मनोरथ है ॥ ३२ ॥ उसने भी मुखामृत के बरसनेवाली व महासन्तापनाशिनी महादेवजी की वाणी को

सुनकर नेत्रोंको उघाड़ा ॥ ३३ ॥ व अपने आगे वरदान देनेमें सम्मुख प्रत्यक्ष त्र्यक्ष (त्रिनयन) और उनके बाम ओरमें टिकीहुई श्रीदेवीजीको देखकर हाथजोड़नेवाली होकर प्रणामकिया ॥ ३४ ॥ व क्या वरदान मांगूं इस भांतिसे जबतक उस सुमध्यमाने विचारा तबतक उसने अपने आगे उस बापुरी बकरी को देखा और चिन्तना किया कि ॥ ३५ ॥ इस जीवलोकमें अपने अर्थ कौन मनुष्य नहीं जीवताहै परन्तु जो परोपकारके अर्थ जीवता है वही जीवता है ॥ ३६ ॥ जिससे मेरी तपोवृत्तिकी साक्षिणी इस छागीकरके मैं बहुतकाल से सेईगईहूं उससे इसकेही लिये जगतपति से वर लेतीहूं ॥ ३७ ॥ अपने मनमें यह विचारकर सुलक्षणाने शिवजी से कहा कि हे

वरदानोन्मुखंपुरः ॥ देवीञ्चवामभागस्थांप्रणनामकृताञ्जलिः ॥ ३४ ॥ किंवृणेयावदित्थंसाचिन्तयेच्चारुमध्यमा ॥ तावत्तयानिरैक्षिष्टवराकीवर्करीपुरः ॥ ३५ ॥ आत्मार्थंजीवलोकेस्मिन्कोनजीवतिमानवः ॥ परंपरोपकारार्थंयोजीवतिसजीवति ॥ ३६ ॥ अनयामत्तपोवृत्तिसाक्षिण्याबह्वनेहसम् ॥ असेव्यहन्तदेतस्यैवरयामिजगत्पतिम् ॥ ३७ ॥ परामृश्येत्थमनस्येतत्प्राहत्र्यक्षंसुलक्षणा ॥ कृपानिधेमहादेवयदिदेयोवरोमम ॥ ३८ ॥ अजशावीवराक्येषातर्हिप्रागनुगृह्यताम् ॥ वक्तुंपशुत्वान्नोवेत्तिकिञ्चिन्मद्भक्तिपेशला ॥ ३९ ॥ इतिवाचंनिशम्येशःपरोपकृतिशालिनीम् ॥ सुलक्षणायानितरान्तुतोषप्रणतार्तिहा ॥ ४० ॥ देवदेवस्ततःप्राहदेविपश्यगिरीन्द्रजे ॥ साधूनामीदृशीबुद्धिःपरोपकरणोर्जिता ॥ ४१ ॥ तेधन्याःसर्वलोकेषुसर्वधर्माश्रयाश्चते ॥ यतन्तेसर्वभावेनपरोपकरणायये ॥ ४२ ॥ संचयाःसर्ववस्तूनांचिरन्तिष्ठन्तिनोक्वचित् ॥ सुचिरन्तिष्ठतेचैकंपरोपकरणंप्रिये ॥ ४३ ॥ धन्यासुलक्षणाचैषायोग्याऽनुग्रहकर्मणि ॥ ब्रूहिदेविवरोदेयःकोऽस्यै

कृपानिधान, महादेवजी ! जो मुझको वर देने योग्यहै ॥ ३८ ॥ तो पहले इस बापुरी बकरीपर अनुग्रहकरो क्योंकि मेरी सेवामें दक्ष यह पशुभाव से कुछ बोलने नहीं जानती है ॥ ३९ ॥ इसभांति से सुलक्षणाकी परोपकार से सोहतीहुई वाणीको सुनकर प्रणतपीड़ाहर शंकरजी बहुतही सन्तुष्टहुये ॥ ४० ॥ तदनन्तर देवोंके देव महादेवजी बोले कि हे पार्वति, देवि ! देखो कि परोपकारमें बाढ़ीहुई साधुओंकी ऐसी बुद्धि होतीहै ॥ ४१ ॥ जे सब भावसे परोपकारके लिये यत्न करते हैं वे सब लोकों या लोगों में धन्य हैं और वे सब धर्मों के आधारहैं ॥ ४२ ॥ हे प्रिये ! सब वस्तुओंकी राशियां बहुत कालतक कहीं नहीं टिकती हैं परन्तु एक परोपकार बहुत कालतक रहताहै ॥ ४३ ॥ हे प्रिये,

देवि! अनुकूल कार्य्य के लिये यह सुलक्षणा धन्यहै इससे तुम कहो कि कौन वर इसको और कौन छागीको देने योग्यहै ॥ ४४ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि, हे सब सृष्टिकर्ताओं के कारक, भक्तार्तिहारक, सर्वज्ञ! शुभ उद्यमवाली शुभाचारा यह सुलक्षणा मेरी सखी होवे ॥ ४५ ॥ जैसे जया जैसे विजया जैसे जयन्तिका जैसे शुभा, नन्दा, सुनन्दा, कौमुदी और उर्मिलाहै ॥ ४६ ॥ व जैसे चम्पकमाला, जैसे मलयवासिनी, जैसे कर्पूरलतिका व जैसे गन्धधारा, शुभहै ॥ ४७ ॥ जैसे अशोका व विशोका व मलयगन्धिनी, जैसे चन्दननिःश्वासा, जैसे मृगमदोत्तमा ॥ ४८ ॥ व जैसे कोकिलालापा, जैसे मधुरभाषिणी, जैसे गद्यपद्यनिधि, जैसे वह अनुक्तज्ञा ॥ ४९ ॥ व जैसे दृगं-

छाग्यैचकःप्रिये ॥ ४४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ सर्वसृष्टिकृतांकर्तःसर्वज्ञप्रणतार्तिहन् ॥ सुलक्षणाशुभाचारासखीमेस्तुशुभोद्यमा ॥ ४५ ॥ यथाजयाचविजयायथाचैवजयन्तिका ॥ शुभानन्दासुनन्दाचकौमुदीचयथोर्मिला ॥ ४६ ॥ यथाचम्पकमालाचयथामलयवासिनी ॥ कर्पूरलतिकायद्वद्गन्धधारायथाशुभा ॥ ४७ ॥ अशोकाचविशोकाचयथामलयगन्धिनी ॥ यथाचन्दननिःश्वासायथामृगमदोत्तमा ॥ ४८ ॥ यथाचकोकिलालापायथामधुरभाषिणी ॥ गद्यपद्यनिधिर्यद्वदनुक्तज्ञायथाचसा ॥ ४९ ॥ दृगञ्चलेङ्गितज्ञाचयथाकृतमनोरथा ॥ गानचित्तहरायद्वत्तथास्त्वेषासुलक्षणा ॥ ५० ॥ अतिप्रियाभवित्रीमेयद्बालब्रह्मचारिणी ॥ अनेनैवशरीरेणदिव्यावयवभूषणा ॥ ५१ ॥ दिव्याम्बरादिव्यगन्धादिव्यज्ञानसमन्विता ॥ समयामांसदैवास्तांचञ्चच्चामरधारिणी ॥ ५२ ॥ एषापिकाशिराजस्यकुमार्यस्त्विहवर्करी ॥ अत्रैवसोगान्संप्राप्यमुक्तिंप्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ ५३ ॥ अनयात्वर्ककुण्डेस्मिन्पुष्येमासिरवेर्दिने ॥ स्नातंत्वनुदितेसूर्येशीताद

चलेंगितज्ञा व कृतमनोरथा और जैसे गानचित्तहरा सखी है वैसेही यह सुलक्षणा भी होवे ॥ ५० ॥ जिससे यह बालब्रह्मचारिणी है इससे मेरी बड़ी प्यारी होवेगी व इस देहसेही अच्छे अंग और अलंकारवाली ॥ ५१ ॥ व दिव्यवस्त्रा दिव्यगन्धा दिव्यज्ञानसमन्विता और स्फुरतेहुये बालव्यजनके चलानेवाली होकर सदैव मेरे समीप में बसे ॥ ५२ ॥ और यह बकरी भी इस लोकमें काशीनरेशकी कन्या होवे इस काशी में भोगों को भलीभांति से प्राप्त होकर उत्तम मोक्षको पावेगी ॥ ५३ ॥ क्योंकि जाड़ेसे

जोकि कृष्णमार्गियों में प्रतापी थे ॥ २ ॥ उनके सूर्य्य से तेजस्वी अस्सीसमेत लाख पुत्रहुये हे अगस्त्यजी ! स्वर्ग में भी उनके समान बालक नहीं हैं ॥ ३ ॥ वे सब अत्यन्त सुन्दर बड़े बलवान् शस्त्रविद्या व शास्त्रों के अतिशय जाननेवाले और अधिक सुलक्षण थे ॥ ४ ॥ उस द्वारकाके देखने के लिये ब्रह्माजी के मनसे उत्पन्नहुये पुत्र तपस्याओं के निधान व वल्कलको कोपीन किये कालेमृगचर्मका वस्त्रलिये ॥ ५ ॥ व हाथसे ब्रह्मचारीके योग्य दण्डको पकड़े तिगुनी मूंजकी मेखलावाले व वक्षःस्थलमें टिकी तुलसीकी मालासे विभूषित ॥ ६ ॥ व सोहतेहुये गोपीचन्दनके रसका लेपन लगाये व तपस्यासे सब अंगों में कृशतायुक्त और मूर्त्तिमान् अग्निकी नाईं जगमगाते

सः ॥ स्वर्गेपिताद्दशाबालाःसुशीलानहिकुम्भज ॥ ३ ॥ अतीवरूपसम्पन्नाअतीवसुमहाबलाः ॥ अतीवशस्त्रशास्त्रज्ञा अतीवशुभलक्षणाः ॥ ४ ॥ तान्द्रष्टुम्मानसःपुत्रोब्रह्मणस्तपसांनिधिः ॥ कृतवल्कलकोपीनोधृतकृष्णाजिनाम्बरः ॥ ५ ॥ गृहीतब्रह्मदण्डश्चत्रिवृन्मौञ्जीसुमेखलः ॥ उरस्थलस्थतुलसीमालयासमलंकृतः ॥ ६ ॥ गोपीचन्दननिर्यासलसदङ्गविलेपनः ॥ तपसाकृशसर्वाङ्गोमूर्तोज्वलनवज्ज्वलन् ॥ ७ ॥ आजगामाम्बरचरोनारदोद्वारकांपुरीम् ॥ विश्वकर्मविनिर्माणांजितस्वर्गपुरीश्रियम् ॥ ८ ॥ तंदृष्ट्वानारदंसर्वेविनम्रतरकन्धराः ॥ प्रबद्धमूर्धाञ्जलयःप्रणेमुर्वृष्णिनन्दनाः ॥ ९ ॥ साम्बःस्वरूपसौन्दर्यगर्वसर्वस्वमोहितः ॥ ननाममुनिन्तत्रहसंस्तद्रूपसम्पदम् ॥ १० ॥ साम्बस्यतमभिप्रायंविज्ञायसमहामुनिः ॥ विवेशसुमहारम्यंनारदःकृष्णमन्दिरम् ॥ ११ ॥ कृष्णोथदृष्ट्वाऽऽगच्छन्तम्प्रत्युद्गम्यचनारदम् ॥ मधुपर्केणसम्पूज्यस्वासनेचोपवेशयत् ॥ १२ ॥ कृत्वाकथाविचित्रार्थास्ततएकान्तवर्तिनः ॥ कृष्णस्यकर्णेऽकथयन्नारदः

हुये ॥ ७ ॥ आकाशचारी नारदजी विश्वकर्माकी बनाई व स्वर्गपुरीकी शोभाकी जीतनेवाली श्रीद्वारकापुरीको आये ॥ ८ ॥ उन नारदजीको देखकर बहुत विनम्रकन्धरवाले व माथों मे हाथोंकी अंजलियां बांधेहुये सब यदुवंशियो के कुमारोंने प्रणामकिया ॥ ९॥ और वहां उन नारदकी रूपसंपत्तिको हँसतेहुये व अपने रूप सुन्दरताके गर्व सर्वस्वसे मोहित साम्बने मुनिके नमस्कार न किया ॥ १० ॥ व साम्बके उस अभिप्रायको जानकर वह महामुनि नारदजी महामनोरम श्रीकृष्णजी के मन्दिरमे पैठगये ॥ ११ ॥ उसके बाद आतेहुये नारदजीको देख व उनके प्रति उठ चलकर व मधुपर्कसे भलीभांति पूजकर अपने आसन में बैठाया ॥ १२ ॥ तदनन्तर अद्भुत अर्थवाली

क्षोभरहित अन्तःकरणवाली इसने पूसमासके रविवारमें जब सूर्य्य नहीं उगे तब अर्ककुण्ड में नहाया है ॥ ५४ ॥ उस पुण्य से यह शुभलोचना राजपुत्री होवे हे विश्वेश्वर, प्रभो ! आपके वरदानके प्रभावसे ॥ ५५ ॥ अर्ककुण्डका वर्करीकुण्ड नाम होजावे व यहां इस छागीकी प्रतिमा मनुष्यों से पूजनीय होगी ॥ ५६ ॥ पूसमासके रविवारमे उत्तरार्कदेवकी वार्षिकीयात्रा फलचाही भक्तोको करना चाहिये ॥ ५७ ॥ इस भांतिसे पार्वती के कहेहुये इस सब वचनको सिद्धकरके उसके बाद सर्वव्यापक समर्थ और अतर्कित याने मन व वचनसे परे विश्वनाथजी अपने प्रासाद (मन्दिर) में पैठगये ॥ ५८ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाभाग, ब्राह्मण, अगस्त्यजी ! लोलार्क व

क्षुब्धचित्तया ॥ ५४ ॥ राजपुत्रीततःपुण्यादस्त्वेषाशुभलोचना ॥ वरदानप्रभावेणतवविश्वेश्वरप्रभो ॥ ५५ ॥ वर्करीकुण्डमित्याख्यात्वर्ककुण्डस्यजायताम् ॥ एतस्याःप्रतिमापूज्याभविष्यत्यत्रमानवैः ॥ ५६ ॥ उत्तरार्कस्यदेवस्यपुष्ये मासिरवेर्दिने ॥ कार्यासांवत्सरीयात्रानतैःकाशीफलेप्सुभिः ॥ ५७ ॥ मृडान्याभिहितंसर्वंकृत्वैतद्दिश्वगोविभुः ॥ विश्वनाथोविवेशाथप्रासादंस्वमतर्कितः ॥ ५८ ॥ स्कन्दउवाच ॥ लोलार्कस्यचमाहात्म्यमुत्तरार्कस्यचद्विज ॥ कथितंते महाभागसाम्बादित्यंनिशामय ॥ ५९ ॥ श्रुत्वैतत्पुण्यमाख्यानंशुभंलोलोत्तरार्कयोः ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयेतनदारिद्र्येणबाध्यते ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेउत्तरार्कवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४७ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृणुष्वमैत्रावरुणेद्वारवत्यांयदूद्वहः ॥ दानवानांवधार्थायभुवोभारापनुत्तये ॥ १ ॥ आविरासीत्स्वयंकृष्णःकृष्णवर्त्मप्रतापवान् ॥ वासुदेवोजगद्धामदेवक्यांवसुदेवतः ॥ २ ॥ साशीतिलक्षंतस्यासन्कुमाराअर्कवर्च

उत्तरार्ककी महिमा तुमसे कहीगई अब साम्बादित्यको सुनो ॥ ५९ ॥ लोलार्क और उत्तरार्कके इस पुण्यरूप शुभ आख्यानको सुनकर मनुष्य रोगों से न हरायाजावे व दारिद्र्यसे न पीड़ितहोगा ॥ ६० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेउत्तरार्कवर्णनंनामसप्तचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४७ ॥ ॥

दो० । अड़तालिस अध्यायमें साम्बादित्य प्रकाश । महिमा बहु विस्तार से साम्ब कुष्ठका नाश ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि जिस द्वारकापुरी के बीच यदुवंशियो में श्रेष्ठ जोकि दानवों के वधके अर्थ व भूमिका भार उतारने के लिये ॥ १ ॥ स्वयं सदानन्दरूप श्रीकृष्णजीनामक जगदाधार विष्णुजी वसुदेव से देवकी देवीमें प्रकटहुये

कथाओं को कहकर नारदजी ने एकान्तवर्त्ती श्रीकृष्णजी के कानमें साम्बके कर्मको कहा ॥ १३ ॥ कि, हे यशोदानन्दवर्धन ! इस अन्तःपुर में अवश्यकर जो कुछ है वह बहुधा नहीं घटित होताहै अथवा स्त्रियोको असंभाव्य है याने सम्भावनाके योग्य नहीं होसक्ताहै ॥ १४ ॥ कि, त्रिलोकवासी युवाजनों के बीचमें साम्ब बडा स्वरूपवान् है व स्त्रियों के चित्तकी वृत्ति बहुतही चञ्चल होती है ॥ १५ ॥ किन्तु कामसे मोहित, सुन्दर आंखोंवाली स्त्रियां कुल शील पढ़ना सुनना और धनकी अपेक्षा नहीं करती हैं रूपकीही अपेक्षा करती हैं ॥ १६ ॥ अथवा आपने स्त्रियों के कर्मको नहीं जाना कि रुक्मिणी आदि आठ पट्टरानियों के विना अन्य स्त्रियां इस सांबको चाहती

साम्बचेष्टितम् ॥ १३ ॥ अवश्यङ्किञ्चिदत्राऽस्तियशोदानन्दवर्द्धन ॥ प्रायशस्तन्नघटतेऽसम्भाव्यन्नाथवास्त्रियाम् ॥ १४ ॥ यूनांत्रिभुवनस्थानांसाम्बोऽतीवसुरूपवान् ॥ स्वभावचञ्चलास्त्रीणांचेतोवृत्तिःसुचञ्चला ॥ १५ ॥ अपेक्षन्ते नमुग्धाक्ष्यःकुलंशीलंश्रुतन्धनम् ॥ रूपमेवसमीक्षन्तेविषमेषुविमोहिताः ॥ १६ ॥ अथवाविदितन्नोतेबल्लवीनांविचेष्टितम् ॥ विनाष्टौनायिकाःकृष्णकामयन्तेऽबलाह्यमुम् ॥ १७ ॥ वामभ्रुवांस्वभावाच्चनारदस्यचवाक्यतः ॥ विज्ञाताऽखिलवृत्तान्तस्तथ्यंकृष्णोप्यमन्यत ॥ १८ ॥ तावद्धैर्यञ्चलाक्षीणांतावच्चेतोविवेकिता ॥ यावन्नार्थीविविक्तस्थोविविक्तेर्थिनिनान्यथा ॥ १९ ॥ इत्थंविवेचयंश्चित्तेकृष्णःक्रोधनदीरयम् ॥ विवेकसेतुनाऽऽस्तभ्यनारदंप्राहिणोत्सुधीः ॥ २० ॥ साम्बस्यवैकृतंकिञ्चित्कचित्कृष्णोनवैक्षत ॥ गतेदेवमुनौतस्मिन्वीक्षमाणोप्यहर्निशम् ॥ २१ ॥ कियत्यपिगतेकाले पुनरप्यराययौमुनिः ॥ मध्येलीलावतीनाञ्चज्ञात्वाकृष्णमवस्थितम् ॥ २२ ॥ बहिःक्रीडन्तमाहूयसाम्बमित्याहनारदः ॥

हैं ॥ १७ ॥ तब सब स्त्रियों के स्वभाव व नारद के वचन से सब वृत्तांत के जाननेवाले श्रीकृष्णजी ने भी तथ्य माना ॥ १८ ॥ कि, चञ्चलनेत्रवाली स्त्रियोंकी धीरता व चित्तकी विवेकिता तबतक होती है जबतक एकांत में टिकाहुवा अर्थी न होवे और एकांतवासी अर्थीके होतेही पूर्वोक्त अन्यथा नहीं हैं ॥ १९ ॥ इसभांति से चित्त में विचारते हुये सुबुद्धि श्रीकृष्णजी ने क्रोधरूप नदी के वेगको विचाररूप सेतुसे बांधकर नारदमुनिको पठाया ॥ २० ॥ व उन नारदके जातेही रातोदिन देखतेहुये कृष्णजीने सांबके किसी विकारको कहीं नहीं देखा ॥ २१ ॥ इस प्रकार से कुछकाल बीततेही लीलावती स्त्रियों के बीचमें टिकेहुये श्रीकृष्णजी को जानकर नारदमुनिभी फिर

आये ॥ २२ ॥ व बाहर खेलते हुये सांबको बुलाकर नारदजी ने यह कहा कि तुम शीघ्रही कृष्णके समीप में जावो व मेरा आना बतावो ॥ २३ ॥ तब सांबने क्षणभर इस प्रकार से चिंतना किया कि जाऊँ या न जाऊँ क्योंकि स्त्रीसमूहसखा है जिनका उन एकांतवासी पिताके प्रति किस भांति से जाऊँ ॥ २४ ॥ व ज्वलते हुये अंगार के समान जगमगाते तेजवाले ब्रह्मचारी इन मुनिके वचन से मैं कैसे न जाऊँ ॥ २५ ॥ एक समय प्रणाम करते हुये कुमारों के बीचमें मुझसे यह लज्जित हुये हैं याने उपहास करायेगये हैं इस समय भी इन महामुनि के वचन से जो न जाऊँ ॥ २६ ॥ तो दो अपराध देखने से अत्यन्त अहित होगा इस से पिताका क्रोध

याहिकृष्णान्तिकंतूर्णंकथयागमनंमम ॥ २३ ॥ साम्बोपियामिनोयामित्तणमित्थमचिन्तयत् ॥ कथंरहःस्थंपितरंयामिस्त्रैणसखंप्रति ॥ २४ ॥ नयामिचकथंवाक्यादस्याहंब्रह्मचारिणः ॥ ज्वलदङ्गारसंकाशस्फुरत्सर्वाङ्गतेजसः ॥ २५ ॥ प्रणमत्सुकुमारेषुव्रीडितोयम्मयैकदा ॥ इदानीमपिनोयायामस्यवाक्यान्महामुनेः ॥ २६ ॥ अत्याहितन्तदस्तीहतदागोद्वयदर्शनात् ॥ पितुःकोपोपिसुश्लाघ्योमयिनोब्राह्मणस्यतु ॥ २७ ॥ ब्रह्मकोपाग्निनिर्दग्धाःप्ररोहन्तिनजातुचित् ॥ अपराग्निविनिर्दग्धारोहन्तेदावदग्धवत् ॥ २८ ॥ इतिध्यात्वात्तणंसाम्बोऽविशदन्तःपुरम्पितुः ॥ मध्येस्त्रैणसभंकृष्णंयावज्जाम्बवतीसुतः ॥ २९ ॥ दूरात्प्रणम्यविज्ञप्तिंसचकारसशङ्कितः ॥ तावत्तमन्वगच्छच्चनारदःकार्यसिद्धये ॥ ३० ॥ ससम्भ्रमोथकृष्णोपिदृष्ट्वासाम्बञ्चनारदम् ॥ समुत्तस्थौपरिदधत्पीतकौशेयमम्बरम् ॥ ३१ ॥ उत्थितेदेवकीसूनौताः

मुझ में बहुत प्रशंसनीय है परन्तु ब्राह्मणका कोप नहीं ॥ २७ ॥ क्योंकि ब्राह्मणकी क्रोधाग्नि से जलेहुये कभी नहीं प्ररोहते (पनपते) हैं और अन्य अग्नि से जले हुये दावानल से दहे वृक्षों के समान फिर पनप आते हैं ॥ २८ ॥ इसभांति से क्षणभर विचारकर जांबवती का पुत्र सांब पिताके अन्तःपुर में पैठा व स्त्रीसमूह सभा के बीचमें जबतक कृष्णजी को ॥ २९ ॥ दूरसे प्रणामकर सशंकितहो उसने विज्ञापना किया तबतक नारदभी कार्य्यसिद्धि के लिये उसके पीछे चलेगये ॥ ३० ॥ उसके बाद रेशमीपीतांबरको धारतेहुये उद्वेग या आदर समेत श्रीकृष्णजी सांब और नारदमुनिको देखकर भलीभांति से उठखड़े होगये ॥ ३१ ॥ व देवकीपुत्रके उठतेही वे

सब गोपिकायें (इन्द्रियों के पालक देवोंकी भोग्य स्त्रियां जेकि अष्टावक्र के वरदानसे राजकन्या भई हैं वे) अपने अपने वस्त्रोंको धारतीहुई विलज्जित होकर खड़ी होगई ॥ ३२ ॥ श्रीकृष्णजी ने महामुनि नारदको हाथ पकड़कर महामोल के योग्य शय्या में बैठाया और सांब खेलने को चलागया ॥ ३३ ॥ तब कृष्णके साथ क्रीडा करने से ओदीयोनिवाली व आगे खड़ीहुई उन स्त्रियों के वीर्य्यपातको देखकर मुनिने हरिसे कहा ॥ ३४ ॥ कि, हे महाबुद्धे! देखो देखो सांबको देखकर उसके रूपसे क्षोभयुक्त मनवाली ये स्त्रियां वीर्य्यच्युतिको प्राप्तभई हैं ॥ ३५ ॥ यह सुनकर कृष्णने भी सबोंको जांबवती के समान देखते हुये सांब पुत्रको बुलाकर दुष्टदैव होने से

सर्वाअपिगोपिकाः ॥ विलज्जिताःसमुत्तस्थुर्गृह्णन्त्यःस्वंस्वमम्बरम् ॥ ३२ ॥ महार्हशयनीयेतंहस्तेधृत्वामहामुनिम् ॥ समुपावेशयत्कृष्णःसाम्बश्चक्रीडितुंययौ ॥ ३३ ॥ तासांस्खलितमालोक्यतिष्ठन्तीनाम्पुरोमुनिः ॥ कृष्णलीलाद्रवीभूतवराङ्गानाङ्गगौहरिम् ॥ ३४ ॥ पश्यपश्यमहाबुद्धेदृष्ट्वाजाम्बवतीसुतम् ॥ इमाःस्खलितमापन्नास्तद्रूपक्षुब्धचेतसः ॥ ३५ ॥ कृष्णोपिसाम्बमाहूयसहसैवाशपत्सुतम् ॥ सर्वाजाम्बवतीतुल्याःपश्यन्तमपिदुर्विधेः ॥ ३६ ॥ यस्मात्त्वद्रूपमालोक्यगोपाल्यःस्खलिताइमाः ॥ तस्मात्कुष्ठीभवक्षिप्रमकाण्डागमनेनच ॥ ३७ ॥ वेपमानोमहाव्याधिभयात्साम्बोपिदारुणात ॥ कृष्णंप्रसादयामासबहुशःपापशान्तये ॥ ३८ ॥ कृष्णोप्यनेनसज्ञानन्साम्बंस्वसुतमौरसम् ॥ अब्रवीत्कुष्ठमोक्षायव्रजवैश्वेश्वरीम्पुरीम् ॥ ३९ ॥ तत्रब्रध्नंसमाराध्यप्रकृतिंस्वामवाप्स्यसि ॥ महैनसांक्षयोन्यत्र नास्तिवाराणसींविना ॥ ४० ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षाद्यत्रस्वर्गापगाचसा ॥ येषांमहैनसांदृष्टाम्मुनिभिर्नैवनिष्कृतिः ॥

अकस्मात् शापदिया ॥ ३६ ॥ कि जिससे तेरा रूप देखकर ये दिव्य स्त्रियां स्खलितहुई हैं उससे और अनवसर में आने से तू शीघ्रही कोढ़ीहोवे ॥ ३७ ॥ तदनन्तर दारुण महारोगके डरसे कांपते हुये सांबने भी पापशांत होनेके लिये श्रीकृष्णजी को बहुतही प्रसन्नता कराया ॥ ३८ ॥ व अपने औरस पुत्रको अपाप जानते हुये श्रीकृष्णजी ने भी साम्ब से कहा कि तुम कुष्ठरोग छूटनेके लिये विश्वनाथकी पुरीको जावो ॥ ३९ ॥ उस काशी में सूर्य्यदेव को भलीभांति से पूजकर अपनी प्रकृतिको पावोगे उस काशी विना अन्यत्र महापापों का नाश नहीं होता है ॥ ४० ॥ कि, जहां साक्षात् विश्वनाथ और वह गंगाजी विराजमानहैं जिन महापापोंका प्रायश्चित्त मुनियों से

[illegible] विशुद्ध काशीपुरी में जाकर होती है ॥ ४१ ॥ व काशीमें केवल पापसेही नहीं छूटताहै बरन शङ्करकी आज्ञा से प्रकृतिके कार्य्यरूप पापों से भी छूट जाताहै याने मोक्ष पाता है ॥ ४२ ॥ क्योंकि पूर्वकाल मे कृपाकरके शिवजी ने अन्त में देह त्यागते हुये सब जन्तुओं के भी मोक्षके लिये काशीको सिरजा है ॥ ४३ ॥ हे साम्ब ! शंकर के उस आनन्दवनमें तेरा शापोद्धार होगा अन्यथा शापसे सुख नहीं है यह सत्यता से कहागया है इस से तुम वहां जावो ॥ ४४ ॥ तदनन्तर कृतार्थ हुये व कर्मों से कर्म छुड़ानेवाले नारदजी कृष्णजी से पूंछकर आकाशमार्ग से चलेगये ॥ ४५ ॥ व सांबभी काशीको प्राप्तहो सूर्य्यको भलीभांतिसे पूजकर

तेषांविशुद्धिरस्त्येवप्राप्यवाराणसीम्पुरीम् ॥ ४१ ॥ नकेवलंहिपापेभ्योवाराणस्यांविमुच्यते ॥ प्राकृतेभ्योपिपापेभ्योमुच्यतेशङ्कराज्ञया ॥ ४२ ॥ पुरापुरारिणासृष्टमविमुक्तंविमुक्तये ॥ सर्वेषामेवजन्तूनांकृपयान्तेतनुत्यजाम् ॥ ४३ ॥ तत्रानन्दवनेशम्भोस्तवशापनिराकृतिः ॥ साम्बतत्त्वेरितंयाहिनान्यथाशापनिर्वृतिः ॥ ४४ ॥ ततःकृष्णंसमापृच्छ्यकर्मनिर्मुक्तचेष्टितः ॥ नारदःकृतकृत्यःसन्ययावाकाशवर्त्मना ॥ ४५ ॥ साम्बोवाराणसीम्प्राप्यसमाराध्यांशुमालिनम् ॥ कुण्डन्तत्पृष्ठतःकृत्वानिजाम्प्रकृतिमाप्तवान् ॥ ४६ ॥ साम्बादित्यस्तदारभ्यसर्वव्याधिहरोरविः ॥ ददातिसर्वभक्तेभ्योऽनामयाःसर्वसम्पदः ॥ ४७ ॥ साम्बकुण्डेनरःस्नात्वारविवारेऽरुणोदये ॥ साम्बादित्यञ्चसम्पूज्यव्याधिभिर्नाभिभूयते ॥ ४८ ॥ नस्त्रीवैधव्यमाप्नोतिसाम्बादित्यस्यसेवनात् ॥ बन्ध्यापुत्रम्प्रसूयेतशुद्धरूपसमन्वितम् ॥ ४९ ॥ शुक्लायांद्विजसप्तम्यांमाघमासिरवेर्दिने ॥ महापर्वसमाख्यातंरविपर्वसमंशुभम् ॥ ५० ॥ महारोगात्प्रमुच्ये

व उनके पीछे कुण्ड बनवाकर अपनी प्रकृतिको प्राप्तहुआ ॥ ४६ ॥ तब से लगाकर सबरोगहर सांबादित्य नामके सूर्य्यजी सब भक्तोंको नीरोग सब सम्पत्ति देते हैं ॥ ४७ ॥ इससे मनुष्य सूर्य्यवार में अरुणोदय समय सांबकुण्ड मे स्नानकर व साम्बादित्यको पूजकर रोगो से नहीं हराया जाताहै ॥ ४८ ॥ व साम्बादित्यकी सेवा से स्त्रीवैधव्यको नहीं प्राप्तहोती और बंध्याभी शुद्धरूप समेत सुपुत्रको उत्पन्न करती है ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मण ! माघमास के उजेले पाखकी द्वितीया तिथि व सूर्य्य वारके संयोग

में सूर्य्यग्रहण के समान महापर्वनामक यह शुभ योग भलीभांति से कहा गया है ॥ ५० ॥ उसमें अरुणोदय समय नहाकर व सांबादित्य की अधिक पूजाकर भी अक्षय धर्मको प्राप्तहोवे ॥ ५१ ॥ सूर्य्यग्रहण के होतेही कुरुक्षेत्र के बीच संनिहती (रामकुण्ड) में जो पुण्य होती है वह पुण्य काशी में सूर्य्यवार और सप्तमी तिथिके योगमे है इसमें संशय नहीं है ॥ ५२ ॥ व चैतमासके सूर्य्यवारमें साम्बादित्यकी वार्षिकी यात्रा होती है उसमें विधान से कुण्डमें नहाकर अशोक के फूलो से भलीभांति पूजा कर ॥ ५३ ॥ साम्बादित्यको देखताहुआ मनुष्य शोकों से कभी नहीं हारता है और उसी क्षण में वर्षदिनके किये पापों से बाहर होजाताहै ॥ ५४ ॥ यहां विश्वेश्वर से

तत्रस्नात्वारुणोदये ॥ साम्बादित्यम्प्रपूज्यापिधर्मसत्त्वयमाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ सन्निहत्यांकुरुक्षेत्रेयत्पुण्यंराहुदर्शने ॥ तत्पुण्यंरविसप्तम्यांमाघेकाश्यान्नसंशयः ॥ ५२ ॥ मधौमासिरवेर्वारेयात्रासांवत्सरीभवेत् ॥ अशोकैस्तत्रसम्पूज्यकुण्डेस्नात्वाविधानतः ॥ ५३ ॥ साम्बादित्यन्नरोजातुनशोकैरभिभूयते ॥ संवत्सरकृतात्पापाद्बहिर्भवतितत्क्षणात् ॥ ५४ ॥ विश्वेशात्पश्चिमाशायांसाम्बेनात्रमहात्मना ॥ सम्यगाराधितामूर्तिरादित्यस्यशुभप्रदा ॥ ५५ ॥ इयम्भाविष्यातन्मूर्तिरगस्तेत्वत्पुरोऽकथि ॥ तामभ्यर्च्यनमस्कृत्यकृत्वाष्टौचप्रदक्षिणाः ॥ नरोभवतिनिष्पापःकाशीवासफलंलभेत् ॥ ५६ ॥ साम्बादित्यस्यमाहात्म्यंकथितन्तेमहामते ॥ यच्छ्रुत्वापिनरोजातुयमलोकंनपश्यति ॥ ५७ ॥ इदानीन्द्रौपदादित्यंकथयिष्यामितेनघ ॥ तथाद्रौपदआदित्यःसंसेव्योभक्तसिद्धिदः ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसाम्बादित्यमाहात्म्यकथनन्नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पश्चिमदिशा में महात्मा सांबने शुभदेनेवाली सूर्य्यकी मूर्त्तिको सम्यक् प्रकारसे पूजाहै ॥ ५५ ॥ हे अगस्ते ! यह भविष्य (आगे होनेवाली) उन सूर्य्यदेवकी मूर्त्ति तुम्हारे आगे कहीगई उसको सब ओरसे पूज व नमस्कारकर और आठ प्रदक्षिणा करके मनुष्य निष्पाप होवे व काशीवासका फल पावेगा ॥ ५६ ॥ हे महामते ! मैंने तुम्हारे आगे साम्बादित्यका माहात्म्यकहा जिसको सुनकर भी मनुष्य यमलोकको कभी नहीं देखताहै ॥ ५७ ॥ हे अनघ (अपाप) ! इस समय मैं जैसे तुमसे द्रौपदादित्यको कहूंगा वैसेही द्रौपद आदित्य भक्तों के लिये सिद्धिदाता और सब करके भलीभांति से सेवने योग्य हैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेऽष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८ ॥

दो० । उंचसयें अध्याय में कथित द्रौपदादित्य । और मयूखादित्यजी देत चारि फल नित्य ॥ श्रीसूतजी बोले कि, हे पराशर के पुत्र, महामुनि, व्यासजी ! जब श्री-कार्त्तिकेयजी ने अगस्त्यजी से इस कथाको कहाथा तब द्रौपदी कहांथी ॥ १ ॥ श्रीव्यासदेवजी बोले कि, हे सूत ! पुराणरूप धर्मशास्त्र भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालकी कथाको कहताहै व जिससे सम्पूर्ण उसके विषयहै इससे यहां संदेह न करना चाहिये ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने! तुम सुनो कि जगत् के हितकारी पञ्चमुख महादेवजी आपही पृथिवी में पांच प्रकारसे होकर प्रकट हुये ॥ ३ ॥ व जगदम्बा श्रीपार्वतीजी भी बड़ी सुन्दरी कन्या होकर यज्ञकरतेहुये द्रुपदराजा के

सूतउवाच ॥ पाराशर्यमुनेव्यासकुमारःकुम्भजन्मने ॥ यदावदत्कथामेतान्तदाक्वद्रुपदात्मजा ॥ १ ॥ व्यासउवाच ॥ पुराणसंहितासूतब्रूतेत्रैकालिकीङ्कथाम् ॥ सन्देहोनात्रकर्तव्योयतस्तद्गोचरोखिलम् ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयमुनेपूर्वंपञ्चवक्त्रोहरःस्वयम् ॥ पृथिव्यांपञ्चधाभूत्वाप्रादुरासीज्जगद्धितः ॥ ३ ॥ उमापिचजगद्धात्रीद्रुपदस्य महीभुजः ॥ यजतोवह्निकुण्डाच्चप्रादुश्चक्रेतिसुन्दरी ॥ ४ ॥ पञ्चापिपाण्डुतनयाःसाक्षाद्रुद्रवपुर्धराः ॥ अवतेरुरिहस्वर्गाद्दुष्टसंहारकारकाः ॥५॥नारायणोपिकृष्णत्वंप्राप्यतत्साहचर्यकृत ॥ उद्वृत्तवृत्तशमनःसद्वृत्तस्थितिकारकः ॥ ६ ॥ प्रतपन्तःपृथिव्यांतेपार्थाश्चेरुःपृथक्पृथक् ॥ उदयानुदयौतस्मिन्सम्पदांविपदामपि ॥७॥ कदाचित्तेमहावीराभ्रातृव्यप्रतिपादिताम् ॥ विपत्तिमाप्यमहतींबभूवुःकाननौकसः ॥ ८ ॥ पाञ्चाल्यपिचतत्पत्नीपतिव्यसनतापिता ॥ धर्मज्ञाप्राप्य तन्वङ्गीब्रध्नमाराधयद्भृशम् ॥ ९ ॥ आराधितोथसवितातयाद्रुपदकन्यया ॥ सदर्वींसपिधानाञ्चस्थालिकामक्षयां

अग्निकुण्ड से प्रकटहुईं ॥ ४ ॥ और साक्षात् रुद्ररूपधारी व दुष्टसंहारकारी पांचों भी पाण्डु केपुत्र स्वर्ग से इस लोकमें उतरआये ॥ ५ ॥ व दुष्टों के वृत्तके नाशक, सदाचार के स्थापक नारायण भी कृष्णभावको प्राप्त होकर उनके सहायक हुये ॥ ६ ॥ उससमय पृथिवीमें प्रताप पसारतेहुये वे कुन्ती के पुत्र संपत्ति व विपत्तिके भी उदय और न उदयको प्राप्तभये ॥ ७ ॥ व कभी वे महावीर युधिष्ठिरादि पाण्डुपुत्र शत्रुओं से सम्पादित बडी विपत्तिको पहुँचकर वनवासी होगये ॥ ८ ॥ उनकी स्त्री भी जो कि पंजाब के राजाद्रुपदकी पुत्री व शुभांगी और धर्मज्ञाथी उसने पतियो के दुःख से संतापसंयुक्त होकर व काशीमें जाकर सूर्य्यदेव को बहुत पूजन किया ॥ ९ ॥ तद-

नन्तर उस द्रौपदी से पूजितहुये सूर्य्यजीने कलछुल व ऊपरकी ढकनी कटोरीसमेत अक्षया स्थाली (पाकपात्र याने बटुई) को दिया॥ १० ॥ और प्रसन्नमन, सूर्य्यदेवने सर्वत्र शुद्धमनवाली व पूजा करतीहुई द्रुपदकुमारीसे कहा॥ ११॥ कि हे महाभागे! जबतक तुम न भोजन करोगी तबतक जितने अन्नार्थी जन होवेंगे उतने इसस्थाली से तृप्तिको पहुँच जायँगे ॥ १२ ॥ व तेरे भोजन करतेही भात आदि अन्नोंसे भरी, रसीले व्यंजनोंकी निधि और इच्छा भोजन देनेवाली यह स्थाली छूंछी होजावेगी ॥१३॥ हे मुने! उसने काशी में इसभांतिसे वर पाया और श्रीसूर्य्यदेवने उस द्रौपदीको अन्यभी वरदिया ॥ १४ ॥ श्रीसूर्य्यजी बोले कि जो मनुष्य विश्वनाथ के दक्षिणभाग में

ददौ॥१०॥उवाचचप्रसन्नात्माभास्करोद्रुपदात्मजाम् ॥ आराधयन्तींस्भावेनसर्वत्रशुचिमानसाम् ॥११॥स्थाल्यैतया महाभागेयावन्तोऽन्नार्थिनोजनाः ॥ तावन्तस्तृप्तिमाप्स्यन्तियावच्चत्वंनभोक्ष्यसे ॥ १२ ॥ भुक्तायान्त्वयिरिक्तैषापूर्णभक्ताभविष्यति ॥ रसवद्व्यञ्जननिधिरिच्छाभक्ष्यप्रदायिनी ॥ १३ ॥ इत्थंवरस्तयालब्धःकाश्यामादित्यतोमुने ॥ अपरश्चवरोदत्तस्तस्यैदेवेनभास्वता ॥ १४॥ रविरुवाच ॥ विश्वेशाद्दक्षिणेभागेयोमान्त्वत्पुरतःस्थितम् ॥ आराधयिष्यति नरःक्षुद्बाधातस्यनश्यति ॥ १५ ॥ अन्यश्चमेवरोदत्तोविश्वेशेनपतिव्रते ॥ तपसापरितुष्टेनतंनिशामयवच्मिते ॥ १६ ॥ प्राग्वेत्वांसमाराध्ययोमान्द्रक्ष्यतिमानवः ॥ तस्यत्वंदुःखतिमिरमपानुदनिजैःकरैः ॥ १७॥ अतोधर्मप्रियेनित्यंप्राप्य विश्वेश्वरादरम् ॥ काशीस्थितानांजन्तूनांनाशयाम्यघसञ्चयम् ॥ १८ ॥ येमामत्रभजिष्यन्तिमानवाःश्रद्धयान्विताः ॥ त्वद्वरोद्यतपाणिश्चतेषांदास्यामिचिन्तितम् ॥ १९ ॥ भवतींमत्समीपस्थांयुधिष्ठिरपतिव्रताम् ॥ विश्वेशाद्दक्षिणे

तेरे आगे टिकेहुये मुझको पूजेगा उसकी भूंखकी बाधा नष्ट होजायगी ॥ १५ ॥ हे पतिव्रते! तपस्यासे सन्तुष्टहुये विश्वेश्वर ने मुझको अन्यभी वर दियाहै उसको सुन मैं तुझसे कहताहूं ॥ १६ ॥ हे सूर्य्य! जो मनुष्य पहले तुमको भलीभांति से पूजकर हमको देखेगा उसके दुःखरूप अन्धकार को तुम अपनी किरणों से दूर करदेवो ॥ १७ ॥ हे धर्मप्रिये! इससे मैं विश्वेश्वरसे वर पाकर अन्य देशोंसे आयेहुये काशीवासी जन्तुओं की पापराशिको नाश करताहूं ॥ १८ ॥ जे श्रद्धासमेत मनुष्य यहां तुझको वर देने के लिये हाथ उठाये हुये मुझको भजैंगे उनके मनमाने फलको दूंगा ॥ १९ ॥ व विश्वेश्वर के दक्षिण दण्डपाणिके समीप में मेरे निकट टिकीहुई युधिष्ठिर की

पतिव्रता स्त्री आपको ॥ २० ॥ जे पुरुष और स्त्रियांभी भक्तिसे पूजेंगी उनको प्यारेके वियोगसे उपजाहुवा डर कभी होनेवाला नहीं है ॥ २१ ॥ हे धर्मप्रिये, अपापे, द्रौपदि ! रोगोंसे उपजा व भूंख और प्याससे हुवा डर काशी में तेरे दर्शन से कहींभी नहीं होगा ॥ २२ ॥ इस भांतिसे पूर्वोक्त वरोंको देकर सन्तों के सब दायक दिननायक देवने महादेवजी की पूजाकिया व द्रौपदी युधिष्ठिर के समीप चलीगई ॥ २३ ॥ जो मनुष्य द्रौपदीसे पूजितभी सूर्य्यकी इस कथाको भक्तिसे सुनेगा उसका पाप नाशको प्राप्त होगा ॥ २४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्यजी ! मैंने संक्षेप से द्रौपदादित्य की महिमाको कहा इस समय तुम मयूखादित्य के माहात्म्य को सुनो ॥ २५ ॥ पूर्व

भागेदण्डपाणेःसमीपतः ॥ २० ॥ येर्चयिष्यन्तिभावेनपुरुषावास्त्रियोपिवा ॥ तेषांकदाचिन्नोभाविभयंप्रियवियोगजम् ॥ २१ ॥ नव्याधिजम्भयंकापिनक्षुत्तृड्दोषसम्भवम् ॥ द्रौपदीक्षणतःकाश्यांतवधर्मप्रियेनघे ॥ २२ ॥ इतिदत्त्वावरान्देवआदित्यःसर्वदःसताम् ॥ शम्भुमाराधयामासधर्मंद्रौपद्युपाययौ ॥ २३ ॥ आदित्यस्यकथामेतांद्रौपद्याराधितस्यवै ॥ यःश्रोष्यतिनरोभक्तयातस्यैनःक्षयमेष्यति ॥ २४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ द्रौपदादित्यमाहात्म्यंसंक्षेपात्कथितंमया ॥ मयूखादित्यमाहात्म्यंशृणिवदानींघटोद्भव ॥ २५ ॥ पुरापञ्चनदेतीर्थेत्रिपुलोकेषुविश्रुते ॥ सहस्ररश्मिर्भगवांस्तपस्तेपेसुदारुणम् ॥ २६ ॥ प्रतिष्ठाप्यमहालिङ्गंगभस्तीश्वरसंज्ञितम् ॥ गौरींचमङ्गलानाम्नींभक्तमङ्गलदांसदा ॥ २७ ॥ दिव्यंवर्षसहस्रन्तुशतेनगुणितम्मुने ॥ आराधयञ्छिवंसोमंसोमार्धकृतशेखरम् ॥ २८ ॥ स्वरूपतस्तुतपनस्त्रिलोकीतापनक्षमः ॥ ततोतितीव्रतपसाजज्वालनितरांमुने ॥ २९ ॥ मयूखैस्तत्रसवितुस्त्रैलोक्यदहनक्षमैः ॥ ततंसमस्तन्तत्कालेद्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ ३० ॥

काल में ऐश्वर्य्यसम्पन्न श्रीसूर्य्यदेवने त्रिलोक मे विदित पञ्चनद तीर्थ के समीप में सुदारुण तप किया ॥ २६ ॥ गभस्तीश्वरनामक महालिंग व सदाभक्तों को मंगल देनेवाली मगलानाम्नी गौरीदेवीको थापकर ॥ २७ ॥ हे मुने ! सौसे गुणे हुये दिव्य सहस्र वर्ष याने लक्षवर्ष पर्य्यन्त चन्द्रखण्ड भालवाले पार्वती समेत शिवको पूजते हुये ॥ २८ ॥ व स्वरूपसेही तपनेवाले और त्रिलोकके तपाने में समर्थ सूर्य्यजी उस तीव्रतपसे बहुतही प्रज्वलित होगये हे मुने ! ॥ २९ ॥ उससमय मे द्युलोक व भूमिका

जो अन्तर है वह सब तहां त्रैलोक्य दहनेमें समर्थ, सूर्य्यकिरणों से व्याप्तहुवा ॥ ३० ॥ व तीव्र, सूर्य्य तेजके होतेही पतंगत्व के समान भयसे अर्थात् जैसे अग्निमें पड़ने से पतंगों (पांखियो) का नाश होताहै वैसेही इसमें हमारा नाश होगा इस डरसे देवोंने ध्रुवलोक में आनाजाना छोड़दिया ॥ ३१ ॥ व कदम्बफूलके समान स्थितिवाले सूर्य्य के मयूख (किरणें) ही तिरछा ऊँचे और नीचे भी देखपड़ती थीं सूर्य्यजी नहीं ॥ ३२ ॥ किन्तु तेजों की राशि व तपस्याओं की राशिरूप उन सूर्य्य देवकी तपोज्वालाओं के तीव्र डर से स्थावर जंगम समेत सब जगत् कॉपनेलगा ॥ ३३ ॥ कि सूर्य्यजी वेदों में इस जगत् के आत्मा पढ़े जाते हैं वही जो ज्वाला करनेवाले हैं

वैमानिकैर्विष्णुपदेतत्यजेचगतागतम् ॥ तीव्रेपतङ्गमहसिपतङ्गत्वभयादिव ॥ ३१ ॥ मयूखाएवदृश्यन्तेतिर्य्यगूर्ध्वमधोपि च ॥ आदित्यस्यनचादित्योनीपपुष्पस्थितेरिव ॥ ३२ ॥ तस्यवैमहसांराशेस्तपोराशेस्तपोर्चिषाम् ॥ चकम्पेसाध्वसात्त्रीव्रात्त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३३ ॥ सूर्यआत्मास्यजगतोवेदेषुपरिपठ्यते ॥ सएवचेज्ज्वालयिताकोनस्त्राताभवेदिह ॥ ३४ ॥ जगच्चक्षुरसौसूर्योजगदात्मैषभास्करः ॥ जगद्योयन्मृतप्रायंप्रातःप्रातःप्रबोधयेत् ॥ ३५ ॥ तमोन्धकूपपतितमुद्यन्नेषदिनेदिने ॥ प्रसार्यपरितःपाणीन्प्राणिजातंसमुद्धरेत् ॥ ३६ ॥ उदितेऽत्रोदिमोनित्यमस्तंयात्यस्तमाप्नुमः ॥ उदयेऽनुदयेतस्मादस्माकङ्कारणंरविः ॥ ३७ ॥ इतिव्याकुलितंविश्वम्पश्यन्विश्वेश्वरःस्वयम् ॥ विश्वत्रातावरंदातुंसञ्जग्मेतिग्मरश्मये ॥ ३८ ॥ मयूखमालिनंशम्भुरालोक्यातिसुनिश्चलम् ॥ समाधिविस्मृतात्मानंविसिस्मायतपःप्र

तो इस लोकमें कौन हमारा रक्षक होगा ॥ ३४ ॥ यह सूर्य्यजी जगत् के नेत्र हैं व यह प्रकाशकर्ता जगत् के आत्मा हैं व जोकि जगतरूप है जिससे प्रति प्रातःकाल में जगत् को जगाते हैं ॥ ३५ ॥ व उगतेहुये यह सूर्य्य दिन दिन में सब ओर से अपनी रश्मियोंको पसारकर तमोंधकारमें पतित प्राणी समूह को उबारते हैं ॥ ३६ ॥ इन सूर्य्य के उगतेही हमलोग उदित होते हैं और अस्तको जातेही अस्तको प्राप्त होते हैं उससे हमारे उदय व न उदयके कारण सूर्य्यही हैं ॥ ३७ ॥ इस भांति से व्याकुलित विश्वको देखकर विश्वके रक्षक स्वयं विश्वनाथजी सूर्य्य के लिये वरदेने को भलीभांति से गये ॥ ३८ ॥ व समाधि में अपना को बिसरे हुये सुनिश्चल सूर्य्य

को देखकर शङ्करने तपस्या के प्रति विस्मय किया ॥ ३९ ॥ और प्रसन्नमनवाले, भक्तार्तिभंजन महादेवजी ने कहा कि हे तेजों के निधान, द्युमणे ! तपस्याकरके पूर्ण-ता है अब तुम वर को कहो ॥ ४० ॥ इस प्रकार से बधिर के समान दो तीनवार कहेहुये भी सूर्य्य देवने ध्यान समाधि के द्वारा इन्द्रियों की वृत्ति रोंकने से शम्भुके वचन को न ग्रहण किया ॥ ४१ ॥ उन सूर्य्यको काष्ठीभूत जानकर शंकरजी ने बडी तपस्या से उपजी तपनि के निवारनेवाले अमृत के वर्षक हाथ से छूदिया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर विश्वलोचन (सूर्य्यजी) ने आंखो को उघाड़ा कि जैसे प्रातःकालमें उन सूर्य्य के उदयको प्राप्त होकर कमलों का वन विकस उठता है ॥ ४३ ॥ न जैसे

ति ॥ ३९ ॥ उवाचचप्रसन्नात्माश्रीकण्ठःप्रणतार्तिहृत् ॥ अलन्तप्त्वावरंब्रूहिद्युमणेमहसांनिधे॥४०॥निरुद्धेन्द्रियवृत्तित्वाद्धनोध्यानसमाधिना ॥ नजग्राहवचःशम्भोर्द्वित्रिरुक्तोप्यकर्णवत् ॥ ४१ ॥ काष्ठीभूतन्तुतंज्ञात्वाशिवःपस्पर्शपाणिना ॥ महातपः समुद्भूतसन्तापामृतवर्षिणा ॥ ४२ ॥ ततउन्मीलयांचक्रेलोचनेविश्वलोचनः ॥ तस्योदयमिवप्राप्यप्रगेपङ्कजिनीवनी ॥ ४३ ॥ परिव्यपेतसन्तापस्तपनःस्पर्शनाद्विभोः ॥ अवग्रहितसस्यश्रीरुल्लासयथाम्बुदात् ॥ ४४ ॥ मित्रोनेत्रातिथीकृत्यत्र्यक्षंप्रत्यक्षमग्रतः ॥ दण्डवत्प्रणनामोच्चैस्तुष्टावचपिनाकिनम् ॥ ४५ ॥ रविरुवाच ॥ देवदेवजगतांपतेविभोभर्गभीमभवचन्द्रभूषण ॥ भूतनाथभवभीतिहारकत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ४६ ॥ चन्द्रचूडमृडधूर्जटेहरत्र्यक्षदक्षशततन्तुशातन ॥ शान्तशाश्वतशिवापतेशिवत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ४७ ॥ नीललोहितसमीहि

वृष्टिप्रतिबंधवाली सस्यकी शोभा मेघसे उल्लसित होती है वैसेही विश्वनाथ के छूने से सूर्य्यजी संतापसे हीन होगये ॥ ४४ ॥ और सूर्य्यजी ने आगे प्रत्यक्ष हुये त्रिनेत्र शिवको आंखों का अतिथिकर याने देखकर दंड के समान प्रणाम व स्तुति किया ॥ ४५ ॥ सूर्य्यजी बोले कि हे देवदेव ! हे जगतांपते ! हे विभो ! हे भर्ग ! हे भीम ! हे भव ! हे चन्द्रभूषण ! हे भूतनाथ ! हे भवभीतिहारक ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ४६ ॥ हे चन्द्रचूड ! हे मृड ! हे धूर्जटे ! हे हर ! हे त्र्यक्ष ! हे दक्षशततन्तुशातन ! हे शांत ! हे शाश्वत ! हे शिवापते ! हे शिव ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ४७ ॥ हे नीललोहित ! हे समीहि-

तार्थद ! हे द्व्येकलोचन ! हे विरूपलोचन ! हे व्योमकेश ! हे पशुपाशनाशन ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ४८ ॥ हे वामदेव ! हे शिति-कण्ठ ! हे शूलभृत् ! हे चन्द्रशेखर ! हे फणीन्द्रभूषण ! हे कामकृत् ! हे पशुपते ! हे महेश्वर ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ४९ ॥ हे त्र्यम्बक ! हे त्रिपुरसूदन ! हे ईश्वर ! हे त्राणकृत् ! हे त्रिनयन ! हे त्रयीमय ! हे कालकूटदलन ! हे अंतकांतक ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करने वालाहूं ॥ ५० ॥ हे शर्वरीरहित ! हे शर्व ! हे सर्वग ! हे स्वर्गमार्गसुखद ! हे अपवर्गद ! हे अंधकासुररिपो ! हे कपर्दभृत् ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करने

तार्थदद्व्येकलोचनविरूपलोचन ॥ व्योमकेशपशुपाशनाशनत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ४८ ॥ वामदेवशितिकण्ठशूलभृच्चन्द्रशेखरफणीन्द्रभूषण ॥ कामकृत्पशुपतेमहेश्वरत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ४९ ॥ त्र्यम्बकत्रिपुरसूदनेश्वरत्राणकृत्त्रिनयनत्रयीमय ॥ कालकूटदलनान्तकान्तकत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ५० ॥ शर्वरीरहितशर्वसर्वगस्वर्गमार्गसुखदापवर्गद ॥ अन्धकासुररिपोकपर्दभृत्त्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ५१ ॥ शङ्करोग्रगिरिजापतेपतेविश्वनाथविधिविष्णुसंस्तुत ॥ वेदवेद्यविदिताऽखिलेङ्गितत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ५२ ॥ विश्वरूपपररूपवर्जितब्रह्मजिह्मरहितामृतप्रद ॥ वाङ्मनोविषयदूरदूरगत्वांनतोस्मिनतवाञ्छितप्रद ॥ ५३ ॥ इत्थंपरीत्यमार्तण्डोमृडन्देवंमृडानिकाम् ॥ अथतुष्टावप्रीतात्माशिववामार्धहारिणीम् ॥ ५४ ॥ रविरुवाच ॥ देवित्वदीयचरणाम्बुजरेणुगौरींभा

वालाहूं ॥ ५१ ॥ हे शंकर ! हे उग्र ! हे गिरिजापते ! हे पते ! हे विश्वनाथ ! हे विधिविष्णुसंस्तुत ! हे वेदवेद्य ! हे विदिताखिलेङ्गित ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ५२ ॥ हे विश्वरूप ! हे पर ! हे रूपवर्जित ! हे ब्रह्मस्वरूप ! हे जिह्मरहित ! हे अमृतप्रद ! हे वाङ्मनोविषयदूर ! हे दूरग ! हे नतवाञ्छितप्रद ! मैं तुम्हारे नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ५३ ॥ इस भांति से सुखकारक महादेवजी की प्रदक्षिणापूर्वक स्तुतिकर तदनन्तर प्रसन्नमन होकर सूर्य्यदेवने शिववामार्धहारिणी पार्वती की स्तुति किया ॥ ५४ ॥ श्रीसूर्य्यदेवजी बोले कि हे देवि ! दण्डवत् प्रणाम करने में प्रवीण जो कोई तुम्हारे पदकमलकी धूलिसे गोरे रंगवाली भालस्थली को

धारताहै उस पुरुषकी उस भालस्थली को अन्य जन्ममें भी चन्द्रमा की सुन्दर लेखाभी बहुतही शोभित करती है ॥ ५५ ॥ हे श्रीयुक्तमूर्तिमन्मंगले ! हे सकलमङ्गलजन्मभूमे ! हे लक्ष्मी के लिये मंगलदायिनि ! हे सकल पातकरूप रुई राशि की अग्निरूपिणि ! हे ब्रह्मविद्या की मंगलकारिणि ! हे सकलदानवगर्वहारिणि ! हे अविद्या माया की सौभाग्यसाधिके ! तुम इस सम्पूर्ण विश्वकी रक्षा करो ॥ ५६ ॥ हे विश्वेश्वरि ! तुम विश्वजनकी करनेवाली हो व पालनकारिणी हो वैसेही प्रलयकाल में भी जगत्की संहारिणी हो व तुम्हारे नाम के संकीर्तनसे स्वच्छ पुण्यवाली नदी पापरूप किनारे के वृक्षोंको जड़से उखाड़ डालती है ॥ ५७ ॥ हे मातः ! हे भवानि ! हे संसार

लस्थलींवहतियःप्रणतिप्रवीणः ॥ जन्मान्तरेपिरजनीकरचारुलेखातांशौरयत्यतितराङ्किलतस्यपुंसः ॥ ५५ ॥ श्रीमङ्गलेसकलमङ्गलजन्मभूमेश्रीमङ्गलेसकलकल्मषतूलवह्ने ॥ श्रीमङ्गलेसकलदानवदर्पहन्त्रिश्रीमङ्गलेऽखिलमिदंपरिपाहिविश्वम् ॥ ५६ ॥ विश्वेश्वरित्वमसिविश्वजनस्यकर्त्रीत्वंपालयित्र्यसितथाप्रलयेपिहन्त्री ॥ त्वन्नामकीर्तनसमुल्लसदच्छपुण्यास्रोतस्विनीहरतिपातककूलवृक्षान् ॥ ५७ ॥ मातर्भवानिभवतीभवतीव्रदुःखसंभारहारिणिशरण्यमिहास्तिनान्या ॥ धन्यास्तएवभुवनेषुतएवमान्यायेषुस्फुरेत्तवशुभःकरुणाकटाक्षः ॥ ५८ ॥ येत्वांस्मरन्तिसततंसहजप्रकाशांकाशीपुरीस्थितिमतींनतमोक्षलक्ष्मीम् ॥ तान्संस्मरेत्स्मरहरोधृतशुद्धबुद्धीन्निर्वाणरक्षणविचक्षणपात्रभूतान् ॥ ५९ ॥ मातस्तवाङ्घ्रियुगलंविमलंहृदिस्थंयस्यास्तितस्यभुवनंसकलंकरस्थम् ॥ योनामतेजपतिमङ्गलगौरिनित्यंसिद्ध्यष्टकंनपरिमुञ्चतितस्यगेहम् ॥ ६० ॥ त्वंदेविवेदजननीप्रणवस्वरूपागायत्र्यसित्वमसिवैद्विजकामधेनुः ॥ त्वंव्याहृतित्रयमि

के तीव्र दुःखसमूहों की विनाशिनि ! इस जगत् में आपही शरण्यहो अन्य कोई नहीं है इससे तुम्हारा शुभ करुणाकटाक्ष जिनमें उल्लसित होवे वेही लोग लोकों में धन्य हैं और वेही मान्य हैं ॥ ५८ ॥ जे मनुष्य स्वप्रकाशिका व काशिकापुरी की निवासिका और भक्तोंकी मुक्तिरूपिणी तुमको निरन्तर सुमिरते हैं उन शुद्ध बुद्धिवाले व कैवल्य मोक्षके धारने मे निपुण अधिकारियोंको महादेवजी भलीभांतिसे स्मरण करे है ॥ ५९ ॥ हे मातः, मंगलगौरि ! तुम्हारे निर्मल दोनोंपदकमल जिसके हृदयमें टिकेहैं उसके करतलगत सब लोकहैं व जो नित्यही तुम्हारा नाम जपताहै उसके घरको अणिमादि आठो सिद्धियां नहीं छोड़ती हैं याने उसमें बसती हैं ॥ ६० ॥ हे देवि !

तुम ॐकारस्वरूपा वेदमाता व गायत्रीहो व तुमहीं ब्राह्मणों के लिये कामधेनु हो व तुम भूः,भुवः,स्वः,नामक तीनों व्याहृतियों का स्वरूपहो और तुम इस जगत् में सकल कर्मों की सिद्धिके लिये देवताओं व पितरोंकी तृप्तिकी कारिणी स्वाहा और स्वधाहो ॥ ६१ ॥ हे अमलरूपिणि, मातः, मंगलगौरि ! तुमहीं शिव में गौरीहो तुम ब्रह्मा में सावित्रीहो तुम विष्णुमें सुन्दरी लक्ष्मीहो तुम काशी में मोक्षलक्ष्मीहो और तुम इस जगत में मेरी रक्षाकरनेवालीहो ॥ ६२ ॥ इसभांति श्रीसूर्य्यदेवजी श्रीमंगलाष्टकनामक महास्तोत्र से शिवके आधे अंगकी शोभा करनेवाली उन देवीजीकी स्तुतिकर व देवी और महादेवके सबओरसे वारंवार प्रणामकरके गौरीशंकरके आगे चुपहोगये ॥६३॥

हाऽखिलकर्मसिद्ध्यैस्वाहास्वधासिसुमनःपितृतृप्तिहेतुः ॥ ६१ ॥ गौरीत्वमेवशशिमौलिनिवेधसित्वंसावित्र्यसित्वम सिचक्रिणिचारुलक्ष्मीः ॥ काश्यान्त्वमस्यमलरूपिणिमोक्षलक्ष्मीस्त्वंमेशरण्यमिहमङ्गलगौरिमातः ॥ ६२ ॥ स्तुत्वेति तांस्मरहरार्धशरीरशोभांश्रीमङ्गलाष्टकमहास्तवनेनभानुः ॥ देवींचदेवमसकृत्परितःप्रणम्यतूष्णींबभूवसविताशिवयोः पुरस्तात् ॥ ६३ ॥ देवदेवउवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठभद्रन्तेप्रसन्नोस्मिमहामते ॥ मित्रमन्नेत्रगोनित्यंप्रपश्येतच्चराचरम् ॥ ६४ ॥ मममूर्तिर्भवान्सूर्यसर्वज्ञोभवसर्वगः ॥ सर्वेषांमहसांराशिःसर्वेषांसर्वकर्मवित् ॥ ६५ ॥ सर्वेषांसर्वदुःखानिभक्तानां त्वंनिराकुरु ॥ त्वयानाम्नांचतुःषष्ट्यायदष्टकमुदीरितम् ॥६६ ॥ अनेनसाम्परिष्टुत्यनरोमद्भक्तिमाप्स्यति ॥ अष्टकं मङ्गलागौर्यामङ्गलाष्टकसंज्ञकम् ॥ ६७ ॥ अनेनमङ्गलागौरींस्तुत्वामङ्गलमाप्स्यति ॥ चतुःषष्ट्यष्टकंस्तोत्रंमङ्गलाष्टक मेवच ॥ ६८ ॥ एतत्स्तोत्रवरंपुण्यंसर्वपातकनाशनम् ॥ दूरदेशान्तरस्थोपिजपन्नित्यंनरोत्तमः ॥ ६९ ॥ त्रिसन्ध्यम्परि

श्रीमहादेवजी बोले कि, हे महामते, मित्र (सूर्य्य) ! उठो उठो तुम्हारा कल्याण होवे मैं प्रसन्नहूं तुम नित्यही मेरे नेत्रगत हो उससे मैं स्थावर जंगमरूप जगत् को देखताहूं ॥ ६४ ॥ हे सूर्य्य ! आप हमारी मूर्ति हैं और तुम सर्वज्ञ सर्वगत व सब तेजोंकी राशि और सब के सब कर्मोंके जाननेवाले होवो ॥६५॥ व तुम सब भक्तों के सब दुःखोंको निकालकर दूर करो और तुमने चौंसठ नामों से जो अष्टक कहाहै ॥ ६६ ॥ इससे मेरी स्तुति करके मनुष्य मेरी भक्ति पावेगा और मंगलाष्टक नामक जो मंगला गौरी का अष्टकहै ॥ ६७ ॥ इससे मंगला गौरी की स्तुतिकर नर मंगलको प्राप्त होगा व चतुःषष्ट्यष्टक और मंगलाष्टक भी ॥ ६८ ॥ यह स्तोत्रों मे श्रेष्ठ पुण्यरूप व सब

पापो का नाशकहै सदैव इन दोनों को जपता हुआ दूरदेशान्तरवासी भी नरोत्तम ॥ ६९ ॥ तीनों संध्याओं में विशुद्धमन होकर दुर्लभ काशीको प्राप्त होगा व मनुष्यों करके प्रतिदिन जपेहुये इस स्तोत्रयुगल से ॥ ७० ॥ रोजरोज का पाप धोयागया होताहै निश्चयसे इसमें संदेह नहीं है उस देहधारीकी देह में पापका वास कभी नहीं रहता है ॥ ७१ जोकि नित्यही त्रिकालमें इन दोनों शुभ स्तोत्रोंको पढताहै और मनुष्योंको चञ्चललक्ष्मी के देनेवाले जपेहुये बहुते स्तोत्रों से क्या है ॥ ७२ ॥ जिससे ये दोनो स्तोत्र काशी में मुक्तिसम्पत्ति को देते है उससे मोक्षचाही मनुष्यों करके सब यत्नसे ॥ ७३ ॥ अन्य अनेक स्तोत्रोंको छोड़कर ये दोनों स्तोत्र पढ़ने योग्यहैं क्योंकि

शुद्धात्माकाशींप्राप्स्यतिदुर्लभाम् ॥ अनेनस्तोत्रयुग्मेनजप्तेनप्रत्यहंनृभिः ॥ ७० ॥ ध्रुवन्दैनन्दिनंपापंक्षालितंनात्रसंशयः ॥ नतस्यदेहिनोदेहेजातुचित्किल्बिषस्थितिः ॥ ७१ ॥त्रिकालंयोजपेन्नित्यमेतत्स्तोत्रद्वयंशुभम् ॥ किंजप्तैर्बहुभिःस्तोत्रैश्चञ्चलश्रीप्रदैर्नृणाम् ॥ ७२ ॥ एतत्स्तोत्रद्वयंदद्यात्काश्यान्नैःश्रेयसींश्रियम् ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमानवैर्मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ ७३ ॥ एतत्स्तोत्रद्वयंजप्यंत्यक्त्वास्तोत्राण्यनेकशः ॥ प्रपञ्चआवयोरेवसर्वएषचराचरः ॥ ७४ ॥ तदावयोस्तवादस्मान्निष्प्रपञ्चोजनोभवेत् ॥ समृद्धिमाप्यमहतींपुत्रपौत्रवतीमिह ॥ ७५ ॥ अन्तेनिर्वाणमाप्नोतिजपन्स्तोत्रमिदंनरः ॥ अन्यच्चशृणुसप्ताश्वग्रहराजदिवाकर ॥ ७६ ॥ त्वयाप्रतिष्ठितंलिङ्गंगभस्तीश्वरसंज्ञितम् ॥ सेवितंभक्तिभावेनसर्वसिद्धिसमर्पकम् ॥ ७७॥ त्वयागभस्तिमालाभिश्चाम्पेयाम्बुजकान्तिभिः ॥ यदर्चितंवैश्वरंलिङ्गंसर्वभावेनभास्कर॥ ७८ ॥ गभस्तीश्वरइत्याख्यान्ततोलिङ्गमवाप्स्यति ॥ अर्चयित्वागभस्तीशंस्नात्वापञ्चनदेनरः ॥७९॥ नजातुजायते

यह सब चराचर प्रपंच हमारा है अर्थात् हम दोनों से विरचागयाहै ॥ ७४ ॥ उस लिये हम दोनोंकी इस स्तुति से जन प्रपंचसे हीन होवे है व इस लोकमें पुत्र पौत्र समेत बड़ी समृद्धिको प्राप्त होकर ॥ ७५ ॥ इस स्तोत्रको जपता हुआ नर अन्तमें मुक्ति पाताहै हे सात घोड़ेवाले, ग्रहराज, दिनकर ! अन्य भी सुनो ॥ ७६ ॥ कि जो गभस्तीश्वर नामक लिंग तुमसे प्रतिष्ठित हुआ व सेयागया वह सब सिद्धियों का दायकहै ॥ ७७ ॥ हे भास्कर ! जिससे सब भाव समेत तुमने कमल के समान कांतिवाली किरणपंक्तियों से ईश्वर के लिंगको पूजाहै ॥ ७८ ॥ उससे यह लिंग गभस्तीश्वर इस नाम को प्राप्त होगा और मनुष्य पंचनद में नहा गभस्तीश्वरको पूजकर ॥ ७९ ॥

पापहीन होकर माता के उदर में कभी न जन्म धरेगा व इस मंगला गौरी को स्त्री अथवा पुरुष ॥ ८० ॥ चैतसुदी तीजमें उपासवाला होकर रेशमी पीताम्बर और अलंकारादि महोपचारो से भलीभांति पूजकर ॥ ८१ ॥ व गीत नृत्य कथादिकों से रात में जागरणकर प्रातःकालमें वस्त्रादिकों से बारह कुमारियों की पूजाकर ॥ ८२ ॥ खीर आदि अन्नों से खिलापिला व अन्य लोगों को भी दक्षिणा देकर " जातवेदसेसुनवामसोममरातीयतोनिदहातिवेदः सनः पर्षदतिदुर्गाणि विश्वानावेवसिन्धुं दुरितात्यग्निः " इस ऋचा से विधिपूर्वक होमकर ॥ ८३ ॥ व अष्टोत्तरशतसंख्यक तिल और घृतकी आहुतियों से किये हुये होमके बाद प्रातःकाल में कुटुंबी ब्राह्मणको एक

मातुर्जठरेधूतकल्मषः ॥ इमाञ्चमङ्गलागौरीन्नारीवापुरुषोपिवा ॥ ८० ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायामुपोषणपरायणः ॥ महोपचारैःसंपूज्यदुकूलाभरणादिभिः ॥ ८१ ॥ रात्रौजागरणंकृत्वागीतनृत्यकथादिभिः ॥ प्रातःकुमारीःसंपूज्यद्वादशाच्छादनादिभिः ॥ ८२ ॥ सम्भोज्यपरमान्नाद्यैर्दत्त्वान्येभ्योपिदक्षिणाम् ॥ होमंकृत्वाविधानेनजातवेदसइत्यृचा ॥ ८३ ॥ अष्टोत्तरशताभिश्चतिलाज्याहुतिभिःप्रगे ॥ एकङ्गोमिथुनंदत्त्वाब्राह्मणायकुटुम्बिने ॥ ८४ ॥ श्रद्धयासमलंकृत्यभूषणैर्द्विजदम्पती ॥ भोजयित्वामहार्हान्नैःप्रीयेतांमङ्गलेश्वरौ ॥ ८५ ॥ इतिमन्त्रंसमुच्चार्यप्रातःकृत्वाथपारणम् ॥ नदुर्भगत्वमाप्नोतिनदारिद्र्यंकदाचन ॥ ८६ ॥ नवैसन्तानविच्छित्तिंभोगोच्छित्तिंनजातुचित् ॥ स्त्रीवैधव्यंनचाप्नोतिननायोषिद्वियोगभाक् ॥ ८७ ॥ पापानिविलयंयान्तिपुण्यराशिश्चलभ्यते ॥ अपिबन्ध्याप्रसूयेतकृत्वैतन्मङ्गलाव्रतम् ॥ ८८ ॥ एतद्व्रतस्यकरणात्कुरूपत्वंनजातुचित ॥ कुमारीविन्दतेत्यन्तंगुणरूपयुतम्पतिम् ॥ ८९ ॥ कुमारोपिव्रतंकृत्वाविन्दतिस्त्रियमुत्तमा

गोमिथुन याने गऊसमेत बैलदेकर ॥ ८४ ॥ श्रद्धासे ब्राह्मण वा ब्राह्मणी को भूषणों से संभूषितकर महामोल के योग्य अन्नों से भोजन कराकर मंगलादेवी और महेश्वरजी प्रसन्न होवें ॥ ८५ ॥ इस मन्त्रको भलीभांति से पढ उसके बाद प्रातःकाल में पारणकरके दुर्भाग्य और दारिद्र्यको कभी नहीं प्राप्तहोता है ॥ ८६ ॥ न वंशच्छेद को व भोगोच्छेद को भी कभी नहीं प्राप्त होता है व स्त्री वैधव्यको नहीं प्राप्तहोती है और पुरुष स्त्रीका वियोगी नहीं होताहै ॥ ८७ ॥ व पाप विनाशको प्राप्त होजाते हैं पुण्यों की राशि मिलती है और इस मंगलाव्रतको करके बन्ध्याभी बालक उपजाती है ॥ ८८ ॥ इस व्रत के करने से कुरूपता कभी नहीं होती है व कुमारी अत्यन्तगुणवान्

रूपवान् पतिको पाती है ॥ ८९ ॥ व कुमार भी व्रत करके उत्तम स्त्री को पाता है किंतु धन कामना देनेवाले जे अनेक व्रत हैं ॥ ९० ॥ वे मंगलाव्रतकी समता को कभी नहीं पहुँचसक्ते हैं व चैतमास की उस उजेलेपाखकी तीज तिथि में मंगलादेवीकी वार्षिकी यात्रा मनुष्यो को करना चाहिये ॥ ९१ ॥ और सब विघ्नों के विनाशने के अर्थ काशीवासी जनोको सदैव यात्रा करना चाहिये हे सूर्य्य ! अन्य कुछ कहताहूं कि यहां तपस्या करते हुये तुम्हारे ॥ ९२ ॥ मयूख (किरण) ही देखेगये हैं देह नहीं देखपड़ी हे अदितिनन्दन ! उससे मयूखादित्य यह तुम्हारा नाम होगा ॥ ९३ ॥ व तुम्हारी पूजा से मनुष्यों को कोई रोग न प्रभुता करसकेगा और सूर्य्यवार मे तुम्हारे

म् ॥ सन्तिव्रतानिबहुशोधनकामप्रदानिच ॥ ९० ॥ नाप्नुयुर्जातुचित्तानिमङ्गलाव्रततुल्यताम् ॥ कर्तव्याचाब्दिकीयात्रा मधौतस्यान्तिथौनरैः ॥ ९१ ॥ सर्वविघ्नप्रशान्त्यर्थंसदाकाशीनिवासिभिः ॥ अपरंद्युमणेवच्मितवचात्रतपस्यतः ॥ ९२ ॥ मयूखाएवखेदृष्टानचदृष्टङ्कलेवरम् ॥ मयूखादित्यइत्याख्याततस्तेदितिनन्दन ॥ ९३ ॥ त्वदर्चनान्नृणांकश्चिन्नव्याधिः प्रभविष्यति ॥ भविष्यतिनदारिद्र्यंरविवारेत्वदीक्षणात् ॥ ९४ ॥ इत्थंमयूखादित्यस्याशिवोदत्त्वाबहून्वरान् ॥ तत्रैवान्तर्हितोभूतोरविस्तत्रैवतस्थिवान् ॥ ९५ ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यम्मयूखादित्यसंश्रयम् ॥ द्रौपदादित्यसहितन्नरोननिरयं व्रजेत् ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेद्रौपदादित्यमयूखादित्ययोर्वर्णनन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ४९ ॥
स्कन्दउवाच ॥ वाराणस्यांतथादित्यायेचान्येतान्वदान्यतः ॥ कलशोद्भवतेप्रीत्यासर्वेसर्वाघनाशनाः ॥ १ ॥ खखो

दर्शनसे दारिद्र्य न होगा ॥ ९४ ॥ इसभांतिसे मयूखादित्यको बहुत वर देकर शिवजी वहां अन्तर्धान होतेभये व सूर्य्यजी वहांही टिकगये ॥ ९५ ॥ इस द्रौपदादित्यके समेत मयूखादित्यके पुण्य आख्यान को सुनकर मनुष्य नरकको न जावेगा ॥ ९६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेद्रौपदादित्यमयूखादित्योत्पत्तिमाहात्म्यवर्णनन्नामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दोहा । पचासवें अध्याय में प्रकट खखोल्कादित्य ॥ तैसे तार्क्ष्यादित्यजी पूजनीय जो नित्य ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्य ! जिससे सब सूर्य्य सब पापों

के नाशक हैं इसलिये तुम्हारी प्रीति से वैसे जे काशी में अन्य आदित्य हैं उनको मैं कहता हूं ॥ १ ॥ कि, त्रिलोचन स्थान के उत्तर भागमें सब रोगों के नाशकारी ऐश्वर्य्यधारी खखोल्कनामक आदित्य सबओर से कहे गये हैं ॥ २ ॥ जैसे उन आदित्य का खखोल्क यह नाम हुवा है उसको सुनो कि पूर्वकाल में कद्रू व विनता ये दोनों दक्षकी शुभ कन्यायें थीं ॥ ३ ॥ हे मुने! आगे वे दोनों मरीचिपुत्र कश्यपकी स्त्रियांहुईं व एकसमय खेलती हुई उनदोनो ने परस्पर यह कहा ॥ ४ ॥ कद्रू बोली कि, हे विनते! जिससे आकाशमण्डल में तेरी गति अखण्डितहै इससे जो तुम विशेष से जानतीहो तो मेरे आगे कहो ॥ ५ ॥ जोकि, वह उच्चैःश्रवानामक घोड़ा सूर्य्य के रथ

ल्कोनामभगवानादित्यःपरिकीर्त्तितः ॥ त्रिविष्टपोत्तरेभागेसर्वव्याधिविघातकृत् ॥ २ ॥ यथाखखोल्कइत्याख्यातस्या दित्यस्यतच्छृणु ॥ पुराकद्रूश्चविनतादक्षस्यतनयेशुभे ॥३॥ कश्यपस्यचतेपत्न्यौमारीचेःप्राक्प्रजापतेः ॥ क्रीडन्त्यावे कदान्योन्यंमुनेतेऊचतुस्त्विति ॥ ४ ॥ कद्रूरुवाच ॥ विनतेत्वंविजानासियदितद्ब्रूहिमेग्रतः ॥ अखण्डितागतिस्तेस्तियतो गगनमण्डले ॥ ५ ॥ योसावुच्चैःश्रवावाजीश्रूयतेसवितूरथे ॥ किंरूपःसोस्तिशबलोधवलोवावदाशुभे ॥ ६ ॥ पणञ्चकुरुक ल्याणितुभ्यंयोरोचतेनघे ॥ एवमेवनयात्येषकालःक्रीडनकंविना ॥ ७ ॥ विनतोवाच ॥ किंपणेनभगिन्यत्रकथयाम्ये वमेवहि ॥ त्वज्जयेकाचमेप्रीतिर्मज्जयेकिंनुतेसुखम् ॥ ८ ॥ ज्ञात्वापणोनकर्तव्योमिथःस्नेहमभीप्सता ॥ ध्रुवमेकस्यवि जयेक्रोधोन्यस्येहजायते ॥ ९ ॥ कद्रूरुवाच ॥ क्रीडेयन्नात्रभगिनिकारणंकिमपिक्रुधः ॥ खेलस्यव्यवहारोयंपणेयत्कि ञ्चिदुच्यते ॥ १० ॥ विनतोवाच ॥ तथाकुरुयथाप्रीतिस्तवास्तिपवनाशिनि ॥ अथतांविनतामाह कद्रूःकुटिलमान

में सुनाजाता है वह किस रूपका है कर्बुर है याकि श्वेत है मेरे आगे शीघ्रही कहो ॥ ६ ॥ व हे कल्याणि! हे अनघे! जो तुमको रुचता है उस पणको करो इसभांति सेही खेलने विना यह काल नहीं बीतता है ॥ ७ ॥ विनता बोली कि, हे भगिनि! इसमें पणसे क्या है मैं ऐसेही कहती हूं कि तेरी जीति में मुझका क्या प्रीति है और मेरी जीतिमें तुझका क्या सुख है ॥ ८ ॥ जानकर परस्पर प्रीतिचाही को पण न करना चाहिये क्योंकि यहां निश्चय से एककी जीति में अन्य के क्रोध उत्पन्न होताहै ॥ ९ ॥ कद्रू बोली कि, हे भगिनि! यह क्रीडा है इस में कोई भी क्रोधका कारण नहीं है जो कुछ पण में कहा जाता है यह खेलका व्यवहार है ॥ १० ॥ विनता बोली

कि, हे सर्पिणि ! जैसी तुम्हारी प्रीतिहो वैसेही करो तदनन्तर कुटिलमनवाली कद्रूने विनतासे कहा ॥ ११ ॥ कि जो जिससे हारे वह उसकी दासी होवे इस पणमें हमारी व तुम्हारी ये सब सखियां भी साक्षिणी हैं ॥ १२ ॥ इस भांति से आपुसमें पण करके सर्पिणी कद्रूने घोड़े को कर्बुर कहा और पक्षिणी विनताने भी श्वेत कहा ॥ १३ ॥ और अब कब आना चाहिये ऐसे उन दोनोंने आनेकी अवधि किया व उसकेबाद विश्राम करके अपने अपने घरको चलदिया ॥ १४ ॥ व विनता के जातेही कद्रूने पुत्रों को बुलाकर कहा कि हे पुत्रो ! तुम मेरे वचन से शीघ्रही जावो ॥ १५ ॥ देवताओं व दैत्योंसे मथ्यमान व मन्दराचल के घातसे डरभुत हुये क्षीरसागर से उत्पन्न

सा ॥ ११ ॥ तस्यास्तुसाभवेद्दासीपराजीयेतयाययां ॥ अस्मिन्पणेऽमाःसर्वाःसख्यःसाक्षिण्यएवनौ ॥ १२ ॥ इत्यन्योन्यम्पणीकृत्यसर्पिण्यपिपतत्रिणी ॥ उवाचकर्बुरंकद्रूरश्वंश्वेतंगरुत्मती ॥ १३ ॥ कदागन्तव्यमितिचचक्रातेतेगमावधिम् ॥ जग्मतुश्चविरम्याथक्रीडनात्स्वस्वमालयम् ॥ १४ ॥ विनतायाङ्गतायान्तुकद्रूराहूयचाङ्गजान् ॥ उवाचयातवैपुत्राद्रुतंवचनतोमम ॥ १५ ॥ तुरङ्गमुच्चैःश्रवसंप्रोद्भूतंक्षीरनीरधेः ॥ सुरासुरैर्मथ्यमानान्मन्दराघातसाध्वसात् ॥ १६ ॥ कार्यंकारणरूपस्यसादृश्यमधिगच्छति ॥ अतस्तंक्षीरवर्णाभङ्कलमषायतपुत्रकाः ॥ १७ ॥ तस्यबालधिमध्यास्यकृष्णकुन्तलताङ्गताः ॥ तथातदङ्गलोमानिविधत्तविषसीत्कृतैः ॥ १८ ॥ इतिश्रुत्वावचोमातुःकाद्रवेयाःपरस्परम् ॥ सम्मन्त्र्यमातरम्प्रोचुःकद्रूंकद्रूपमागताः ॥ १९ ॥ नागाऊचुः ॥ मातर्वयंत्वदाह्वानाद्विहायक्रीडनंबलात् ॥ प्राप्ताःप्रहृष्टामृष्टान्नन्दास्यत्यद्यप्रसूरिति ॥ २० ॥ मृष्टन्तिष्ठतुतद्दूरंविषादप्यधिकंकटु ॥ तत्त्वयावादियन्मन्त्रैरौषधैर्नोपशाम्यति ॥ २१ ॥

उच्चैःश्रवा घोडे के समीप जावो ॥ १६ ॥ हे पुत्रो ! जिससे कार्य्य भी कारण रूप की सारूप्यको अधिकतासे प्राप्त होताहै इससे दूधके रंग अंगवाले उस घोड़े को कलमष वर्ण के समान याने श्यामतासंयुक्त कर देवो ॥ १७ ॥ वैसेही उसकी पूंछपर वासकर काले बालों के भाव के प्राप्त हुये तुम विष समेत फुफकारोंसे उसके अंगके रोमोंको काले करदो ॥ १८ ॥ इस भांतिसे माता का वचन सुनकर परस्पर संमंत्रकर कुरीतरूपको प्राप्त हुये कद्रूके पुत्रोंने माता से कहा ॥ १९ ॥ नाग बोले कि, हे मातः ! आज माता शुद्ध अन्न देवेगी यह जानकर हमलोग तुम्हारे बुलाने के बलसे खेलको छोंड़कर अतिशय आनंदितहो आपके निकट में प्राप्त हुये हैं ॥ २० ॥ वह मृष्ट अन्न तो

दूर रहा बरन जोकि विषसे भी अधिक कडूहै व मंत्रों और औषधों से नहीं शांत होताहै वह तुम करके कहा गया ॥ २१ ॥ तब उन विषधर मुखवाले कुटिलचाली नागोंने कहा कि हम न जायँगे यहां जो हमको होनाहै वह होवे ॥ २२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, अन्य भी जे कुटिलचालवाले व पराये दोषों के देखनेहारे व कानों से हीन और दुष्ट हृदय समेतहैं वे माता पिताको उपहास करातेहैं ॥ २३ ॥ व जे दुष्टमदवाले मनुष्य माता पिताके वचनको टालकर टिकते हैं वे इस लोकमेही अत्यन्त अनिष्टको पाकर थोड़े काल में नाशको प्राप्त होतेहैं ॥ २४ ॥ हम न जायँगे यह उन पुत्रोका वचन सुनकर क्रोधसे भरीहुई उस सर्पिणीने अपराधमे प्राप्तहुये उन सर्प्पो

वयंनयामोयद्भाव्यंतदस्माकंभवत्विह ॥ इतिप्रोक्तंविषास्यैस्तैस्तदाकुटिलगामिभिः ॥ २२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अन्येपि येकुटिलगाःपररन्ध्रनिषेविणः ॥ अकर्णाःक्रूरहृदयाःपितरौव्रीडयन्तिते ॥ २३ ॥ पित्रोर्गिरंनिराकृत्ययेतिष्ठेयुःसुदुर्मदाः ॥ अत्याहितमिहप्राप्यगच्छेयुस्तेऽचिरात्क्षयम् ॥ २४ ॥ तेषांवचनमाकर्ण्यनयामइतिसोरगी ॥ शशापतान्क्रुधाविष्टानागांश्चागःसमागतान् ॥ २५ ॥ तार्क्ष्यस्यभक्ष्याभवतयूयंमद्वाक्यलङ्घनात् ॥ जातमात्रांश्चसर्पिण्योभक्षयन्तुस्वबालकान् ॥ २६ ॥ इतिशापानलाद्भीतैःकैश्चित्पातालमाश्रितम् ॥ जिजीविषुभिरन्यैश्चद्वित्रैश्चक्रेप्रसूवचः ॥ २७ ॥ तेपुच्छमौच्चैःश्रवसमधिगम्यमहाधियः ॥ सुनीलचिकुराभासंचक्रुरङ्गञ्चकर्बुरम् ॥ २८ ॥ तत्क्ष्वेडानलधूमौघैःफूत्कारभरनिःसृतैः ॥ मातृवाक्कृतिजाद्धर्मान्नदग्धाभानुभानुभिः ॥ २९ ॥ विनतापृष्ठमारुह्यकद्रूःस्नेहवशात्ततः ॥ वियन्मार्गमलंकृत्यददर्शो

को शापदिया ॥ २५ ॥ कि, तुमलोग मेरा वचन टालनेसे गरुड़के भक्ष्य होवो व सर्पिणियांभी उत्पन्नमात्र अपने बालकोंको भक्षण करलेवें ॥ २६ ॥ इस शापाग्निसे डरे हुये किसी सर्प्पोंने पातालको आश्रयण किया याने वहां चलेगये और जीने की इच्छावाले अन्य दो तीन नागोंने माता का वचन किया ॥ २७ ॥ वे बडे बुद्धिमान् कद्रूके पुत्र उच्चैःश्रवाकी पूंछमें प्राप्त होकर उसके काले केशों के समान व अंगको कर्बुर रंग करदेते भये ॥ २८ ॥ उन सर्प्पोंके फुफकार समूह से निकलेहुये विषकी अग्निके धूमधारसे वह काला होगया व वे नागभी माता का वचन करने से उत्पन्नहुये धर्म्म से सूर्य्य की रश्मियों से न जले ॥ २९ ॥ तदनन्तर कद्रूने स्नेह के वशसे विनता

की पीठपर चढ़कर आकाशमार्ग को भूषितकर सूर्य्यमंडल को देखा ॥ ३० ॥ तब सूर्य्य की तीक्ष्ण किरणोंके प्रभावसे व्याकुल हुये मनवाली कद्रूने विनता से कहा कि हे विनते! अब तू नीचेको चल ॥ ३१ ॥ क्योकि सूर्य्यकी ताती किरणोंसे मेरा शरीर बहुतही तपाया जाताहै मैं स्वभावसे अपेक्षाहीनहूं व तू सब ओर से अपेक्षा सहित है ॥ ३२ ॥ जिससे तू स्वरूपसे पतंगी (पक्षिणी) है और यह सूर्य्य पतंग हैं इससेही आकाशमें तापसे हुई बाधा तुझको नहीं है ॥ ३३ ॥ व जिससे यह सूर्य्य, आकाश सरोवर में हंसहैं और आप हंसगामिनीहो इससे यहां प्रचंडरश्मिकी प्रतापाग्नि तुझको नहीं बाधा करती है ॥ ३४ ॥ आकाश में उडती हुई पक्षिणी से सर्पिणीने फिर

ष्णांशुमण्डलम् ॥ ३० ॥ तिग्मरश्मिप्रभावेणव्याकुलीभूतमानसा ॥ कद्रूस्ततःखगींप्राहविस्रब्धंविनतेव्रज ॥ ३१ ॥ उष्णगोरुष्णगोभिर्मेताप्यतेनितरांतनुः ॥ विस्रब्धाहंस्वभावेनत्वंसापेक्षाहिसर्वतः ॥ ३२ ॥ स्वरूपेणपतङ्गीत्वम्पतङ्गोसौ सहस्रगुः ॥ अतएवनतेबाधागगनेतापसम्भवा ॥ ३३ ॥ वियत्सरसिहंसोयम्भवतीहंसगामिनी ॥ चण्डरश्मिप्रतापाग्नि स्त्वामतोनेहबाधते ॥ ३४ ॥ खगीमुड्डीयमानांखेपुनरूचेबिलेशया ॥ त्राहित्राहिभगिन्यत्रयावोन्यत्रवियत्पथः ॥ ३५ ॥ विनतेविनताम्मान्त्वंकिन्नावसिपतत्रिणी ॥ तवदासीभविष्यामित्वदुच्छिष्टनिषेविणी ॥ ३६ ॥ यावज्जीवमहंभूयांत्व त्पादोदकपायिनी ॥ खखोल्कानिपतेदेषाभृशङ्गद्गदभाषिणी ॥३७ ॥ मूर्च्छाङ्गतवतीपक्षपुटौधृत्वाबिडोरगी॥ सख्युल्का निपतेदेषावक्तव्येत्वितिसम्भ्रमात् ॥ ३८ ॥ खखोल्केतियदुक्तार्गीःकद्वासम्भ्रान्तचेतसा ॥ तदाखखोल्कनामार्कःस्तुतो विनतयाबहु ॥ ३९ ॥ मनागतिग्मताम्प्राप्तेखेप्रयातिविवस्वति ॥ ताभ्यान्तुरङ्गमोदर्शिकिञ्चित्किर्मीरवान्रथे ॥ ४० ॥

कहा कि हे भगिनि! तुम यहां मुझको बचावो बचावो हम व तुम दोनोंजनी आकाशमार्ग से अन्यत्र जावें ॥ ३५ ॥ हे विनते! पक्षिणी तू विनम्रहुई मुझको क्यों नहीं बचाती है मैं तेरी जूंठन सेवनेवाली तेरी दासी होऊंगी ॥ ३६ ॥ यह खखोल्का बहुतही निपतित होती है ऐसे गद्गदभाषिणी ॥ ३७ ॥ बिलसर्पिणी कद्रू विनताके दोनों पक्षोंको पकड़कर मूर्च्छाको प्राप्त होगई हे सखि! यह उल्का गिरती है इस कहने योग्य वचन के स्थानमें उद्वेगसे ॥ ३८ ॥ संभ्रांतमनवाली कद्रूने जब खखोल्का इस वचनको कहा तब विनताने खखोल्कनामक सूर्य्य की बहुत स्तुति किया ॥ ३९ ॥ इससे कुछेक तीक्ष्णतासे हीनताको प्राप्त हुये सूर्य्यके चलतेही उन दोनोने रथमें घोड़े

को कुछ काला रंगवाला देखा ॥ ४० ॥ और विनताने ताप से उपहत नेत्रवाली इस क्रूर सर्पिणी से कहा कि सत्यवादिनी व सब लोगों से माननीया तुमने जीत लिया ॥ ४१ ॥ हे कल्याणि, कद्रु! जिससे चन्द्रमाकी किरणोंके समान श्वेतरंग अंगवाला यह उच्चैःश्रवा अश्व कुछेक कालासा भासताहै ॥ ४२ ॥ हे सर्पिणि! जीत व हार में दैव बलवान् है यह विचित्रहै देखो कि, क्रूर भी कहीं विजयी होताहै और क्रूरतारहित भी जन हारवाला होताहै ॥ ४३ ॥ इस वचनको कहती हुई विनम्रताकी आधारभूत विनता यथागमनसे कद्रूके स्थान में प्राप्त भई और उसकी दास्य (सेवा) करनेलगी ॥ ४४ ॥ तब कभी गरुड़ने कांतिहीन, मलिन, दीन और दीर्घनिःश्वास

उक्त्वाविनतयैवैषातापोपहतलोचना ॥ क्रूरासरीसृपीसत्यवादिन्याविश्वमान्यया ॥ ४१ ॥ कद्रुत्वयाजितम्भद्रेयतउच्चैःश्रवाहयः ॥ चन्द्ररश्मिप्रभोप्येषकल्माषइवभासते ॥ ४२ ॥ विधिर्बलीयान्भुजगिचित्रञ्जयपराजये ॥ क्रूरोपिविजयीकापित्वऽक्रूरोपिपराजयी ॥ ४३ ॥ विनताविनताधारावदन्तीतियथागतम् ॥ कद्रूनिवेशनम्प्राप्तातस्यादास्यमचीकरत् ॥ ४४ ॥ कदाचिद्विनतादर्शिसुपर्णेनाश्रुलोचना ॥ विच्छायामलिनादीनादीर्घनिःश्वासवत्यपि ॥ ४५ ॥ सुपर्णउवाच ॥ प्रातःप्रातरहोमातःक्वयासित्वंदिनेदिने ॥ सायमायासिचकुतोविच्छायादीनमानसा ॥ ४६ ॥ कुतोनिःश्वसिसिप्रोच्चैरश्रुपूर्णविलोचना ॥ यथाक्लीबसुतायोषिद्यथापतितिरस्कृता ॥ ४७ ॥ ब्रूहिमातर्झटित्यद्यकुतोदूनासिपक्षिणि ॥ मयिजीवतितेबालेकालेपिकृतसाध्वसे ॥ ४८ ॥ अश्रुनिर्माणकरणेकारणङ्किंतपस्विनि ॥ सुचरित्रासुनारीषुनामङ्गलमिहेष्यते ॥ ४९ ॥ धिक्तांश्चपुत्रान्यन्माताजीवत्सुदुःखभाक् ॥ वरंबन्ध्यैवसायस्याःसुताबन्ध्यमनोरथाः ॥ ५० ॥ इत्यूर्ज

वाली अश्रुलोचना विनताको देखा ॥ ४५ ॥ गरुड़जी बोले कि हे मातः! तुम दिनोदिन प्रातः प्रातः कालमें कहां जातीहो व सायंकाल कहां से आती हो व तुम क्यों कांतिहीन और दीनमनवालीहो ॥ ४६ ॥ व नपुंसककी माता की नाईं और पति से अनादरी स्त्री की नाईं आंसुवों से भरीहुई आंखोंवाली होकर क्यों ऊंचे श्वास लेती हो ॥ ४७ ॥ हे मातः, पक्षिणि! आज शीघ्रही कहो कि तुम क्यो उपताप से युक्तहो जब काल के लिये भी भयंकर तुम्हारा बालक मैं जीवताहूं तब ॥ ४८ ॥ अश्रुवों का निर्माण करने में क्या कारणहै हे तपस्विनि! इस जगत् में पतिव्रतास्त्रियों को अमंगल नहीं प्राप्त होताहै ॥ ४९ ॥ जिनके जीवतेही जिनकी माता दुःखसेविनी है उन

उसके पुत्रोंको धिक्कार है व जिसके पुत्र विफल मनोरथवाले हैं वह बंध्याही श्रेष्ठहै ॥ ५० ॥ इस भांति मे अपने बालक गरुडका पौरुषयुक्त वचन सुनकर विनताने माता की भक्ति समेत पुत्रसे कहा ॥ ५१ ॥ कि, रे बालक, पुत्रक ! मैं क्रूरचित्ता कद्रू की दासीहूं इससे उसको और उसके पुत्रोंको भी नित्यही पीठमें वहतीहूं ॥ ५२ ॥ कभी मंदराचलको व कभी मलयाचलको जातीहूं और कभी उन प्रसिद्ध समुद्रों के मध्यवर्ती जलगर्भित द्वीपों में विचरतीहूं ॥ ५३ ॥ हे पुत्र ! जिससे मैं उनके अधीन हू इससे वे महामदवाले कद्रू के पुत्र जहां जहां मुझको लेजाते हैं तहां तहां मैं जातीहूं ॥ ५४ ॥ गरुडजी बोले कि, हे दक्षप्रजापति की पुत्रि, कश्यपकी प्यारी, पाप-

स्वलमाकर्ण्यवचःसूनोर्गरुत्मतः ॥ विनताप्राहतम्पुत्रम्मातृभक्तिसमन्वितम् ॥ ५१ ॥ अहंदास्यस्मिरेबालकद्र्वाश्चक्रूरचेतसः ॥ पृष्ठेवहामितान्नित्यन्तत्पुत्रानपिपुत्रक ॥ ५२ ॥ कदाचिन्मन्दरंयामिकदाचिन्मलयाचलम् ॥ कदाचिदन्तरीपेषुचरेयन्तदुदन्वताम् ॥ ५३ ॥ यत्रयत्रनयेयुस्तेकाद्रवेयाःसुदुर्मदाः ॥ व्रजेयन्तत्रतत्राहंतदधीनायतःसुत ॥ ५४ ॥ गरुडउवाच ॥ दासीत्वकारणम्मातःकिन्तेजातंसुलक्षणे ॥ दक्षप्रजापतेःपुत्रिकश्यपस्यप्रियेऽनघे ॥५५॥ विनतोवाचगरुडम्पुरावृत्तमशेषतः॥ दासीत्वकारणंयद्ददादित्याश्वविलोकनम् ॥ ५६ ॥ श्रुत्वेतिगरुडःप्राहमातरंसत्वरंव्रज ॥ पृच्छाद्यमातस्तान्दुष्टान्काद्रवेयानिदंवचः ॥ ५७ ॥ यद्दुर्लभंहिभवतांयत्रात्यन्तरुचिश्चवः ॥ मद्दासीत्वविमोक्षायतद्याचध्वंददाम्यहम् ॥ ५८ ॥ तथाकरोच्चविनतातेपिश्रुत्वातदीरितम् ॥ सर्पाःसम्मन्त्र्यतांप्रोचुर्विनतांहृष्टमानसाः ॥ ५९ ॥ मातृशापविमोक्षाययदिदास्यतिनःसुधाम् ॥ तदासमीहितन्तेस्तुनदास्यत्यथदास्यसि ॥ ६० ॥ इत्योक्तंत्यसमापृच्छ्य

हीने, सुलक्षणे, मातः ! तुम्हारे दासीभावका क्या कारण उत्पन्न हुआहै ॥ ५५ ॥ तब विनताने गरुड से आगे का संपूर्ण वृत्तांत कहा कि जैसे सूर्य्य के घोड़े का देखना दास्यका कारण भयाहै ॥ ५६ ॥ उसको सुनकर गरुडजी मातासे बोले कि हे मातः ! तुम शीघ्रही जावो आज उन दुष्ट, काद्रवेयोंसे इस वचनको पूंछो ॥ ५७ ॥ कि जो कुछ आपलोगों को दुर्लभही है और जिसमें तुम्हारी रुचि है उसको मेरा दासीभाव छूटनेके लिये तुम मांगो मैं दूगी ॥ ५८ ॥ तब विनताने वैसेही किया व उसका वचन सुनकर प्रसन्नमन उन सर्पोने भी भलीभांति से सम्मत कर उस विनतासे कहा ॥ ५९ ॥ कि, जो गरुड, माता के शाप छूटने के लिये हमको अमृत देगा तो तुम्हारा

मनोरथ या कर्म्म सिद्ध होगा और जो न देगा तो तुम दासीहो ॥ ६० ॥ इस वचनको अंगीकार कर व कद्रूसे पूंछकर शीघ्र गमनवाली विनताने बहुत प्रसन्नचित्त गरुड़ को देखकर कहा ॥ ६१ ॥ तदनन्तर सर्पों के काल गरुड़जी चिंतासे आतुर हुईं मातासे बोले कि, हे मातः ! मुझे भोजन दो व अमृतको आना हुआ जानो ॥ ६२ ॥ यह सुनकर भलीभांति से खड़े हुये हैं रोम जिसके उस विनताने उस पुत्रसे कहा कि हे गरुड़ ! तेरा मंगल होवे तू शीघ्रही समुद्रको जा ॥ ६३ ॥ तहांभी समुद्र तीर के ऊंचे प्रदेशमें बसनेवाले जे बहुते मत्स्यघाती निषादहैं उन दुष्टात्माओंको भोजनकर ॥ ६४॥ क्योंकि जे दुर्बुद्धिलोग यहां पराये प्राणोंसे अपने प्राणोंको पोषते हैं वे यत्नसे मारने

कद्रूंद्रुतगतिःखगी॥गरुत्मन्तंसमाचष्टदृष्ट्वासंहृष्टमानसम् ॥ ६१ ॥ नागान्तकस्ततःप्राहमातरञ्चिन्तयातुराम् ॥ आनीतंविद्धिपीयूषंमातर्मेदेहिभोजनम् ॥ ६२ ॥ विनताप्राहतम्पुत्रंसम्प्रहृष्टतनूरुहा ॥ भोस्सुपर्णार्णवन्तूर्णंयाहिमङ्गलमस्तु ते ॥ ६३ ॥ सन्तितत्रापिबहुशोनिषादामत्स्यघातिनः ॥ वेलातटनिवासाश्चताम्भक्षयदुरात्मनः ॥ ६४॥ परप्राणैर्निजप्राणान्येपुष्णन्तीहदुर्धियः॥ शासनीयाःप्रयत्नेनश्रेयस्तच्छासनम्परम् ॥ ६५ ॥ बहुहिंसाकृतांहिंसाभवेत्स्वर्गस्यसाधनम् ॥ विहिंसितेषुदुष्टेषुरक्ष्यन्तेभूरिशोयतः ॥ ६६ ॥ निषादेष्वपिचेद्विप्रःकश्चिद्भवतिपुत्रक ॥ सरक्षणीयोयत्नेनभक्षणीयोनकर्हिचित् ॥ ६७ ॥ गरुडउवाच ॥ मत्स्यादिनांवसन्मध्येकथंज्ञेयोद्विजोमया ॥ अभक्ष्योयस्त्वयाप्रोक्तस्तच्चिह्नंकिञ्चनात्थमे ॥ ६८ ॥ विनतोवाच ॥ यज्ञसूत्रङ्गलेयस्यसोत्तरीयंसुनिर्मलम् ॥ नित्यधौतानिवासांसिभालन्तिलकलाञ्छितम् ॥ ६९ ॥ सपवित्रौकरौयस्ययन्नीवीकुशगर्भिणी ॥ यन्मौलिःसशिखाग्रन्थिःसज्ञेयोब्राह्मणस्त्वया ॥ ७० ॥ उच्चरेद्दृग्यजुः

योग्यहैं उनको दण्ड देनाही बड़ा धर्म्म है ॥ ६५ ॥ जिससे दुष्टों के विहिंसित (मारेहुये) होतेही बहुते जन बचायेजाते हैं इससे बहुते जन्तुओंके मारनेवालों का मारना स्वर्गका साधन होताहै ॥ ६६ ॥ हे पुत्रक ! जो उन निषादों के बीचमें कोई ब्राह्मण होवे वह यत्नसे रक्षणीयहै कभी भक्षणीय नहीं है ॥ ६७ ॥ गरुड़जी बोले कि मत्स्य-भक्षियों के बीचमें बसता हुआ ब्राह्मण मुझ करके कैसे जानने योग्यहै जिसको तुमने अभक्ष्य कहा उसके कुछेक चिह्नको मुझसे कहो ॥ ६८ ॥ विनता बोली कि जिसके गले में अच्छा निर्मल यज्ञोपवीत व नित्यही धोये वस्त्र और माथ भी तिलकसे चिह्नित होवे ॥ ६९ ॥ व जिसके हाथ कुशोंकी पवित्री समेतहों व जिसका परिधान वस्त्र

कुशोंसे गर्भितहो और जिसका मस्तक चोटीकी गांठसे संयुतहोवे वह तुमको ब्राह्मण जानना चाहिये ॥ ७० ॥ जोकि यहां ऋक्, यजुः और सामवेद की एक भी ऋचाको उच्चारण करे व गायत्रीमात्र मंत्रवाला भी होवे वह तुमको ब्राह्मण जानना चाहिये ॥ ७१ ॥ गरुड़जी बोले कि, हे जननि ! जो ब्राह्मण सदा निषादों के बीच मे बसे उसके जनानेवाले एकभी चिह्नको इनमें नहीं मानताहूं ॥ ७२ ॥ हे मातः ! ब्राह्मण बोध करनेवाले अन्य चिह्नको कहो कि जिससे उसको जानकर कण्ठमें गयेभये भी ब्राह्मण को मैं त्यागदेवों ॥ ७३ ॥ उस वचनको सुनकर विनता बोली कि हे पुत्र ! तेरे गलेमें गयाहुवा जो खैरकाष्ठके ज्वलतेहुये अंगार के समान जलावे उसको दूरसे त्यागदे ॥ ७४ ॥

साम्नामृचमेकामपीहयः ॥ गायत्रीमात्रमन्त्रोपिसविज्ञेयोद्विजस्त्वया ॥ ७१ ॥ गरुडउवाच ॥ मध्येसदानिषादानांयोव सेज्जननिद्विजः ॥ तस्यैतेष्वेकमप्येवनमन्येलक्ष्मबोधकम् ॥ ७२ ॥ लक्ष्मान्तरंसमाचक्ष्वद्विजबोधकरम्प्रसूः ॥ येनवि ज्ञायतंविप्रन्त्यजेयमपिकण्ठगम् ॥ ७३ ॥ तच्छ्रुत्वाविनताप्राहयस्तेकण्ठगतोऽङ्गज ॥ खदिराङ्गारवद्दह्यात्तमपाकुरुद्दू रतः ॥ ७४ ॥ द्विजमात्रेपियाहिंसासाहिंसाकुशलायन ॥ देशंवंशंश्रियंस्वञ्चनिर्मूलयतिकालतः ॥ ७५ ॥ निशम्यका श्यपिरितिप्रसूपादौप्रणम्यच ॥ गृहीताशीर्ययौशीघ्रंखमार्गेणखगेश्वरः ॥ ७६ ॥ दूरादालोकयाञ्चक्रेनिषादान्मत्स्य जीविनः ॥ पक्षौविधूयपक्षीन्द्रोरजसापूर्यरोदसी ॥ ७७ ॥ अन्धीकृत्यदिशोभागानब्धिरोधस्युपाविशत् ॥ व्यादायवदनं घोरम्महाकन्दरसन्निभम् ॥ ७८ ॥ कान्दिशीकानिषादास्तुविविशुस्तत्रचस्वयम् ॥ मन्वानेष्वथपन्थानन्तेषुकण्ठंवि

क्योंकि जो ब्राह्मणमात्रका मारना या पीड़ित करना है वह हिंसा कल्याण के लिये नहीं होती है बरन कालके क्रमसे देश वंश ऐश्वर्य्य या शोभा और धनको भी जड़ से उखाडडालती है ॥ ७५ ॥ इस वचन को सुन माता के पांवों के प्रणामकर आशीर्वाद लेनेवाले, कश्यप के पुत्र गरुड़ ने शीघ्रही आकाशमार्ग से गमन किया ॥ ७६ ॥ व मत्स्यजीवी निषादों को दूरसे देखा तदनन्तर पक्षिराजजी पक्षोंको डुलाकर द्यावाभूमियों को धूलिसे भर ॥ ७७ ॥ व दिशा के भागोंको अन्धकारयुक्तकर और कन्दरा के समान घोर मुखको पसारकर समुद्र के तीरमे बैठगये ॥ ७८ ॥ अनन्तर भयसे भागेहुये निषाद आपही उस मुखकन्दरा में पैठते भये किन्तु कण्ठको मार्ग मानते

हुये उन निषादों के पैठतेही ॥ ७९ ॥ अग्नि के समान संस्पर्शवाले ब्राह्मणने उन के गलगुच्छे को जलादिया उसके बाद गरुड़जी ने उदरकन्दरामें पहले पैठेहुये निषादों को ॥ ८० ॥ प्रवेश कराकर व कण्ठ तालु में टिकेहुये उस ब्राह्मण को स्पष्ट जानकर माताके वचन से नियन्त्रितहो डर से शीघ्रही उगल दिया ॥ ८१ ॥ उगलेहुये उस पुरुषको देखकर पक्षिराज ने भलीभांति से कहा कि कहो मेरे कण्ठ के जलानेवाले तुम जातिसे कौनहौ ॥ ८२ ॥ तब पूछेगयेहुये उसने गरुड़ के आगे कहा कि, मैं ब्राह्मणहूं जातिमात्र से उपजीविकावाला होकर इन निषादों के बीचमें बसताहूं ॥ ८३ ॥ तदनन्तर उसके दूर पठाकर वा बहुते मीनोंको खाकर प्रलयाग्नि के समान

शतस्वपि ॥ ७९ ॥ जज्वालेङ्गलसंस्पर्शोद्विजस्तत्कण्ठकन्दलीम् ॥ प्राक्प्रविष्टानथोताक्ष्र्योनिषादानौदरींदरीम् ॥ ८० ॥ प्रवेश्यकण्ठतालुस्थन्तंविज्ञायद्विजंस्फुटम् ॥ भयादुदगिरत्तूर्णम्मातृवाक्यनियन्त्रितः ॥ ८१ ॥ तमुद्गीर्णन्नरन्दृष्ट्वापक्षिराट्समभाषत ॥ कस्त्वञ्जात्यासिनिगदममकण्ठविदाहकृत् ॥ ८२ ॥ सतदाहेतिविप्रोहम्पृष्टःसन्गरुडाग्रतः ॥ वसाम्येषुनिषादेषुजातिमात्रोपजीवकः ॥ ८३ ॥ तम्प्रेष्यगरुडोदूरम्भक्षयित्वाथभूरिशः ॥ नभोविक्षोभयाञ्चक्रेप्रलयानिलसन्निभः ॥ ८४ ॥ तन्दृष्ट्वातिग्मतेजस्कंज्वालाततदिगन्तरम् ॥ ज्वलद्दावानलंशैलमिवबिभ्युर्दिवौकसः ॥ ८५ ॥ तेसन्नद्धन्तयुद्धायसज्जीकृतबलायुधाः ॥ अध्यास्यवाहनान्याशुसर्वेवर्मभृतःसुराः ॥ ८६ ॥ तिर्यग्गतीरविर्नायन्नायमग्निःसधूमवान् ॥ क्षणप्रभाप्यसौनैवकोनःसम्मुखएत्यसौ ॥ ८७ ॥ नदैत्येषुप्रभेदृक्स्यान्नाकृतिर्दानवेष्वियम् ॥ महासाध्वसदःकोयमस्माकंहृत्प्रकम्पनः ॥ ८८ ॥ यावत्सम्भावयन्तीतिनीतिज्ञाअपिनिर्जराः ॥ तावद्दुधावस्वौपक्षौपक्षिराजोमहाब

गरुड़जी ने आकाश को क्षोभयुक्त किया ॥ ८४ ॥ व ज्वलतेहुये दावानलवाले पहाड़के समान तीक्ष्णतेजधारी व दिगन्तर ज्वालापसारी उन गरुड़को देखकर देवतालोग डरगये ॥ ८५ ॥ सैन्य व आयुध साजे हुये, कवचधारी वे सब देवलोग शीघ्रही वाहनों पर चढ़कर युद्धके लिये कटिबद्ध हुये ॥ ८६ ॥ कि तिरछाचलनेवाला यह सूर्य्य नहीं है व यह अग्नि भी नहीं है क्योंकि वह आग धूमवाली होती है और यह बिजुली भी नही है यह कौनहै जो हमारे संमुख आता है ॥ ८७ ॥ दैत्यों मे ऐसी छटा नहीं है व दानवों में यह आकार नहीं है महाभयदायक और हमारे हृदयका कम्पानेहारा यह कौन है ॥ ८८ ॥ इस प्रकार से नीतिके जाननेवाले देव जबतक

यह सम्भावना करनेलगे तबतक बडे बलवान् गरुड़जी ने अपने पंखों को कँपाया ॥ ८९ ॥ उस समय आयुध समेत, वाहनवाले देवतालोग बवंडर से तृण व पत्तोंकी नाईं उनके पक्षोंकी बयार से नहीं जानेजाते भये कि कहां प्राप्त होगये ॥ ९० ॥ तदनन्तर उन देवोंके अदृश्य होतेही उन गरुड़जी ने बुद्धि से जानकर तहां अमृत का कोशस्थान और रक्षकलोगों को देखा ॥ ९१ ॥ व हाथों से शस्त्रास्त्र उठायेहुये उन रक्षकों को सब ओर भगाकर अमृत के ऊपर धरेहुये कर्तरीयन्त्र (कैंचीकेआकार काटडालनेवाले) को देखा ॥ ९२ ॥ जोकि मन व वायुके वेगसे भ्रमताहुआ बड़ा वेगवान् यंत्र स्पर्शकरते हुये मशाको भी करोड़ भांति से काटडालता है ॥ ९३ ॥ उस

लः ॥ ८९ ॥ निपेतुःपक्षवातेनसायुधाश्चसवाहनाः ॥ नज्ञायन्तेकसम्प्राप्तावात्ययापार्णतार्णवत् ॥ ९० ॥ अथतेषुप्रणष्टेषुबुद्ध्याविज्ञायपक्षिराट् ॥ कोशागारंसुधायाःसतत्रापश्यच्चरक्षिणः ॥ ९१ ॥ शस्त्रास्त्रोद्यतपाणींस्तान्सुरानाधूयसर्वशः ॥ ददर्शकर्तरीयन्त्रममृतोपरिसंस्थितम् ॥ ९२ ॥ मनःपवनवेगेनभ्रममाणम्महारयम् ॥ अपिस्पृशन्तम्मशकंयत्खण्डयतिकोटिशः ॥ ९३ ॥ उपोपविश्यपक्षीन्द्रस्तस्ययन्त्रस्यनिर्भयः ॥ क्षणंविचारयामासकिमत्रकरवाण्यहो ॥ ९४ ॥ स्प्रष्टुन्नलभ्यतेचैतद्वात्यानप्रभवेदिह ॥ कउपायोत्रकर्तव्योवृथाजातोममोद्यमः ॥ ९५ ॥ नवलम्प्रभवेदत्रनकिञ्चिदपिपौरुषम् ॥ अहोप्रयत्नोदेवानामेतत्पीयूषरक्षणे ॥ ९६ ॥ यदिमेशङ्करेभक्तिर्निर्द्वन्द्वातीवनिश्चला ॥ तदासदेवदेवोमांवियुनक्तुमहाधिया ॥ ९७ ॥ यद्यहम्मातृभक्तोस्मिस्वामिनःशङ्करादपि ॥ तदामेबुद्धिरत्रास्तुपीयूषहरणक्षमा ॥ ९८ ॥ आत्मार्थन्नोद्यमश्चायंहृत्स्थोवेत्तीतिविश्वगः ॥ मातुर्दास्यविमोक्षाययतेहममृतम्प्रति ॥ ९९ ॥ जरितौपितरौयस्यबालापत्यश्चयःपुमा

यंत्रके समीप में टिककर पक्षिराजने क्षणभर विचार किया कि आश्चर्य्य है यहां मैं क्या करूं ॥ ९४ ॥ यह यंत्र स्पर्श करने को नहीं मिलता है और वायुका बवंडर भी इसमें नहीं प्रभुता करसक्ता है इससे यहां क्या उपाय करना चाहिये मेरा उद्यम वृथा होगया ॥ ९५ ॥ इसमें बल व कुछ पौरुष भी नहीं प्रभुता करसक्ता है इस अमृतकी रक्षा में देवों का यह प्रयत्न आश्चर्य्यरूप है ॥ ९६ ॥ जो शिवजी में मेरी अविचल अनन्य भक्ति है तो वह देवों के देव मुझको बड़ी बुद्धिसे जोडदेवें ॥ ९७ ॥ व जो मैं स्वामी शंकरजी से भी अधिक माताका भक्तहूं तो यहां मेरी बुद्धि अमृतके हरने में समर्थ होवे ॥ ९८ ॥ और हृदयमें टिके हुये सर्वव्यापक परमेश्वर जानते

हैं कि यह उद्यम अपने लिये नहीं है किंतु मैं माताका दासीभाव छूटने के लिये अमृत के प्रति यत्न करताहूं ॥ ९९ ॥ जिसके माता व पिता ये दोनों बूढ़े होवें व जो पुरुष छोटे लड़कोंवालाहो और जिसकी स्त्री पतिव्रताहो उसका उनके पोषने के लिये अकृत्य (अनुचित कर्म) में भी दोष नहीं है ॥ १०० ॥ इसभांति विचारते हुये उन महात्मा गरुड़जी के बुद्धि होगई ॥ १ ॥ तब उन्होंने छोटीसे अधिक छोटी देह धारण कर लिया व जाले में सूर्य्य की किरण पड़ने से जो सूक्ष्म रजके किनके देखपड़ते हैं उनमें से एकके साठिवें अंशको परमाणु कहते हैं उस परमाणु के सहस्र अंशों में से एक के समान महाअद्भुतरूप को करके ॥ २ ॥ देह की लघुता से कर्त्तरीयंत्र के

न् ॥ साध्वीभार्याचतत्पुष्ट्यैदोषोऽकृत्येपितस्यन ॥ १०० ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यबुद्धिरासीन्महात्मनः ॥ १ ॥ देहञ्चका रसोत्यन्तमणीयांसमणोरपि ॥ परमाणुसहस्रांशंकृत्वारूपम्महाद्भुतम् ॥ २ ॥ प्रविश्यकर्तरीयन्त्रमधोदेहस्यलाघवा त् ॥ बिभ्यतत्तद्यन्त्रतोदेहंवञ्चयन्वायुखण्डनात ॥ ३ ॥ मूलमुत्पाट्यतरसागृहीत्वाऽमृतभाजनम् ॥ निर्ययौपावनेमार्गे क्रोशत्सुस्वर्गसद्मसु ॥ ४ ॥ तथावैकुण्ठनाथन्तेगत्वाप्रोचुःसुधाभुजः ॥ निर्जित्यनीयतेचक्रिन्सुधानोजीवितम्परम् ॥ ५ ॥ इत्याकर्ण्यहरिस्तेभ्योऽभयन्दत्त्वात्वरायुतः ॥ कृत्वायुद्धञ्चसुमहद्विंशार्कघटिकाद्वयम् ॥ ६ ॥ शुम्भदेव्योर्यथासूतगरु डस्तत्रचाधिकः ॥ तदाप्रसन्नोभगवान्महायुद्धेनसर्वदः ॥ ७ ॥ गत्वागरुडमाहेदम्प्रसन्नोस्मिखगेश्वर ॥ वरंवृणीहिभद्र न्तेजितवृन्दारवृन्दक ॥ ८ ॥ हसित्वागरुडःप्राहविश्वरूपञ्जनार्दनम् ॥ अहमेवप्रसन्नोस्मित्वंप्रार्थयवरद्वयम् ॥ ९ ॥

नीचे पैठकर वायुके खंडनेवाले याने अत्यन्तचंचल उस यंत्रसे डरते व तिरछाहोकर देहको बचातेहुये ॥ ३ ॥ गरुड़जी वेगसे मूलको उखाड़कर (जिसमें अमृत धराथा उसको उखाड़कर) व अमृतका पात्र लेकर देवों के पुकारतेही वायुमार्ग मे निकल चले ॥ ४ ॥ वैसेही उन देवोंने विष्णुजी के समीप जाकर कहा कि हे चक्रधारिन् ! हमको जीतकर हमारा परम जीवनभूत अमृत हराजाताहै ॥ ५ ॥ यह सुनकर उनको अभय देकर वेगवान् विष्णुजी बीस और अर्क (बारह) याने बत्तिस दूना चौंसठ दंड तक बड़ा युद्ध करके रोकते भये ॥ ६ ॥ हे सूत ! जैसे शुंभदैत्य और देवीजी का युद्ध हुआ था वैसेही उन दोनों के मध्य में गरुड़ अधिक हुये तब महायुद्ध से प्रसन्नहुये, सब कुछ देनेवाले भगवान्ने ॥ ७ ॥ जाकर गरुड़से कहा कि हे देवसमूह के जीतनेवाले, पक्षिराज ! मैं प्रसन्नहूं तुम वरदान मांगो तुम्हारा कल्याणहो ॥ ८ ॥ यह सुन

हँसकर गरुडजी विश्वरूप विष्णुजी से बोले कि मैं भी प्रसन्नहूं तुम दो वरदान मांगलो ॥ ९ ॥ तदनंतर आनन्द समेत विष्णुजीने गरुड़ से कहा कि हे महोदर! मैंने बरा बरा तुम दो वरदान देवो देवो ॥ १० ॥ इस भांतिसे विष्णुका वचन सुनकर हँसतेहुये गरुडजी बोले कि विलम्ब करने से क्याहै तुम उन दोनों वरों को बोलो मैंने दिया दिया ॥ ११ ॥ क्योंकि जुवांआदि खेलोंकी जीति के उदय में अलब्ध वस्तुका लाभ होतेही सुबुद्धिमान् जनको पात्रमें दान देना चाहिये जिससे लाभ और विजय सदैव कहां होताहै ॥ १२ ॥ विष्णुजी बोले कि हे कश्यपपुत्र, वरदायक, पक्षिनायक! जिससे तुम बलवान्हो उससे मेरे वाहनभाव को प्राप्त होवो यह एक वर है और

ततःकैटभजित्प्राहवैनतेयम्मुदान्वितः ॥ वृतंवृतम्महोदारदेहिदेहिवरद्वयम् ॥ १० ॥ इतिविष्णूदितंश्रुत्वाप्रहसन्नाहप त्त्रिराट् ॥ किंविलम्बेनतद्ब्रूहिदत्तन्दत्तंवरद्वयम् ॥ ११ ॥ अलब्धलाभेसञ्जातेद्यूतादिविजयोदये ॥ दातव्यंसुधियापात्रे सदालाभजयौक्वा ॥ १२ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ बलवानसिपक्षीन्द्रतन्मेवाहनतांव्रज ॥ एकोवरोयंवरदद्वितीयंश्रृणुका श्यप ॥ १३ ॥ दर्शयित्वामृतम्प्राज्ञमातृदास्यविमोक्षकम् ॥ द्विजिह्वेभ्यःकुरुतथाद्रागश्नन्तिनतेयथा ॥ १४ ॥ देयासुधा सुधाभुग्भ्योद्वितीयोस्तुवरोमम ॥ तथेतिसप्रतिज्ञायनिर्ययौपत्त्रिराड्दिवः ॥ १५ ॥ समातरंविनिर्मोच्यदास्यात्काश्यपन न्दनः ॥ नागानांपुरतोधृत्वामहामृतकमण्डलुम् ॥ १६ ॥ अमृतम्पातुकामांस्तानित्याचष्टमहामतिः ॥ नागाःशुचित्व मासाद्यभोक्तव्यैषासुधाशुभा ॥ १७ ॥ नोचेदशुचिभिःस्पृष्टास्नानादिपरिवर्जितैः ॥ यास्यत्यदृश्यतामेषासुधाऽनिसि परक्षिता ॥ १८ ॥ सामान्यमपियद्भक्ष्यंस्पृश्यतेऽशुचिभिःक्वचित् ॥ हरन्तितद्रसन्देवास्तच्चतिष्ठतिनीरसम् ॥ १९ ॥

दूसरे को भी सुनो ॥ १३ ॥ हे प्राज्ञ! सर्पों से माताकी दास्य छुडानेवाले अमृत को दिखाकर शीघ्रही वैसे करो कि जैसे वे न पानकरे ॥ १४ ॥ क्योंकि देवों को अमृत देनाचाहिये यह हमारा दूसरा वरहै वैसेही प्रतिज्ञाकर गरुडजी स्वर्ग से निकलकर चले गये ॥ १५ ॥ व महाअमृतकमंडलु को नागो के आगे धर माता को दासीभाव से छुड़ाकर वह कश्यप के नंदन ॥ १६ ॥ बडे बुद्धिमान् गरुडजी अमृत पीने के चाही उन सर्पो से बोले कि हे नागो! पवित्रता को प्राप्तहोकर यह शुभ अमृत खाने योग्यहै ॥ १७ ॥ जो ऐसा न करोगे तो स्नानादिकों से हीन अशुद्धजनोंसे छुवाहुआ देवों से रक्षित यह अमृत अदृश्यताको प्राप्त होजायगा ॥ १८ ॥ जो सामान्य भोजन

भी कहीं अपवित्र लोगों से छुवाजाताहै उसके रसको देवलोग हरलेते हैं वह रससे हीन होकर रहजाताहै ॥ १९ ॥ यह कहकर उन सर्पोंसे कहेहुये मातासमेत गरुड़जी कुशासनपर अमृतका पात्र धरकर निकलगये ॥ २० ॥ व नाग भी जबतक नहानेगये तबतक विष्णुजीने अमृतसे पूर्णपात्रको लेकर जीवन की नाईं देवोंको देदिया॥२१॥ और स्नानकर वहां आकर व अमृत पात्रको न देखकर यह शब्द किया कि अहो हम छलेगये किसीने अमृतको हरलिया ॥ २२ ॥ तदनन्तर अमृतस्पर्श के चाही नाग लोग कुशोंको सबओरसे चाटनेलगे तब पहले अमृत तो दूर रहा उनकी जीभ भी फटकर दो भांतिकी होगई ॥ २३ ॥ ऐसेही जे अन्य लोग भी अन्यायसे मिलेहुये

इत्युक्त्वासहितोमात्रावैनतेयोविनिर्ययौ ॥ कुशासनेचतैरुक्तोधृत्वापीयूषभाजनम् ॥ २० ॥ यावत्स्नातुङ्गताःसर्पास्तावत्पीयूषभाजनम् ॥ आदायविष्णुनादत्तन्देवेभ्यइवजीवितम् ॥ २१ ॥ आगत्यभुजगाःस्नात्वानदृष्ट्वामृतभाजनम् ॥ अहोप्रतारितानीतममृतञ्चेतिचुकुशुः ॥ २२ ॥ ततःपर्यलिहन्दर्भान्पीयूषस्पर्शकाङ्क्षिणः ॥ आस्तान्तावत्सुधादूरञ्जिह्वास्तेषांद्विधाभवन् ॥ २३ ॥ अन्येप्यन्यायलब्धार्थंयेबुभुक्षन्तिकेवलम् ॥ तन्नोपरिणतिङ्गच्छेद्वाकुंवातैर्नलभ्यते ॥ २४ ॥ न्यायाध्वस्थेनतार्क्ष्येणसुधाप्राप्तातिदुर्लभा ॥ लब्धाप्यन्यायतोनागैर्दृष्टमात्राक्षणाद्गता ॥ २५ ॥ अथदास्याद्विनिर्मुक्ताविनतोवाचखेचरम् ॥ पुत्रकाशींप्रयास्यामिदास्यपापापनुत्तये ॥ २६ ॥ तावत्पापानिजृम्भन्तेनानाजन्मार्जितान्यपि ॥ यावत्काशीनहृत्संस्थापुनर्भवविघातिनी ॥ २७ ॥ काशीस्मरणमात्रेणकिञ्चित्रंयदघंव्रजेत् ॥ गर्भवासोपिनश्येतविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ २८ ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षात्तारापतिविभूषणः ॥ तारयेत्तारकद्रोण्यादुस्तराद्भवसागरात् ॥ २९ ॥

अर्थ के भोजनकी इच्छा करते हैं उनको वह खानेको नहीं मिलताहै अथवा परिपाकको नहीं प्राप्त होताहै ॥ २४ ॥ जैसे कि न्यायमार्ग में टिकेहुये गरुड़ने बड़ा दुर्लभ अमृत पाया और अन्याय से नागोंको मिला व देखागया भी क्षणमें नष्ट होगया ॥ २५ ॥ उसकेबाद दास्यसे छूटीहुई विनताने आकाशगामी गरुड़से कहा कि, हे पुत्र ! मैं दासीभावपाप दूर करनेके लिये काशीपुरीको जाऊंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि जबतक फिर जन्म होनेकी हरनेहारी काशी हृदय में टिकीहुई नहीं है तबतक अनेक जन्मों के बटोरेहुये पाप जमुहाते हैं ॥ २७ ॥ जो काशीके स्मरणमात्रसे पाप चलाजावे तो क्या आश्चर्य्य है बरन विश्वनाथ के उत्तम अनुग्रहसे गर्भवास भी नष्ट होवे है ॥ २८ ॥

जिस काशीमें साक्षात् चन्द्रभूषण विश्वनाथजी तारकमन्त्र नौकाके द्वारा दुरतर संसारसागरसे तारदेते हैं ॥ २९॥ जोकि विश्वनाथकी दयासहित व सम्पूर्ण कर्म्मबन्धन से रहितहैं उनकी बुद्धि काशीके प्रति होती है अन्य लोगोंकी मति काशी के प्रति कभी नहीं होती है ॥ ३० ॥ व संपूर्ण पाप पखारनेवाले जिन लोगोंका मन काशी के प्रति होताहै वही लोकमें मनुष्यहै अन्यजन मनुष्यरूपधारी पशुहैं यह सत्यहै ॥ ३१ ॥ इस लोकमे जिनको काशीपुरी प्राप्तहुई है उन्होनेही कालको जीताहै व वेही पापहीन हैं और वेही फिर गर्भवाससे रहितहैं ॥३२॥ जोकि यह मनुष्य जन्म कल्याणों या सुखोंका पात्र व देवोंको भी दुर्लभहै उसको काशीके दर्शन विना वृथा न वितावे ॥ ३३ ॥

विश्वेशानुगृहीतानांविच्छिन्नाखिलकर्मणाम् ॥ भवेत्काशींप्रतिमतिर्नेतरेषांकदाचन ॥ ३० ॥ काशींप्रतिमनोयेषांनिः शेषपत्ालितैनसाम् ॥ तएवमानवालोकेसत्यंनृपशवोपरे ॥ ३१ ॥ तैरेवकालोविजितस्तएवहिगतैनसः ॥ अपुनर्गर्भवासा स्तेप्राप्तावाराणसीहयैः॥३२॥श्रेयसाम्भाजनञ्चैतन्नृजन्मनमुधानयेत् ॥ देवानामपिदुष्प्राप्यंकाशीसन्दर्शनादृते॥३३॥ कःकलिःकोथवाकालःकिंवाकर्माण्यनेकधा ॥ परानन्दप्रदंक्षेत्रमविमुक्तंयदीक्षितम् ॥ ३४ ॥ तेगर्भवासेतिष्ठन्तिपुन स्तेगर्भवासिनः ॥ येनगर्भवनच्छेत्रींसेवन्तेवरणामसिम् ॥ ३५ ॥ निशम्येतिवचःप्राहताक्ष्योनत्वाथमातरम् ॥ अहमप्या गमिष्यामिकाशींद्रष्टुंशिवार्चिताम् ॥ ३६ ॥ मातुराज्ञामथप्राप्यजनन्यासहपक्षिराट् ॥ क्षणाद्वाराणसींप्रापमोक्षनिक्षेप भूमिकाम् ॥ ३७ ॥ उभावपिचतेपातेतपउग्रम्महामती ॥ संस्थाप्यशाम्भवंलिङ्गम्पतत्रीन्द्रोऽचलेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ नाम्ना

जो परानन्दका दाता अविमुक्त (काशी) क्षेत्र देखागया तो कलि क्याहै काल क्याहै और अनेक भांतिके कर्म भी क्याहैं ॥ ३४ ॥ जो लोग गर्भवासवनकी काटनेवाली वरणा और असिको या वरणारूप तलवारको नहीं सेवतेहैं वे गर्भवासमें टिकतेहैं और वेही फिर गर्भवासी होते हैं ॥ ३५ ॥ ऐसा वचन सुनकर अनन्तर गरुड़ने नमस्कार कर मातासे कहा कि मैं भी शिवसे पूजित काशीके देखनेको आऊंगा ॥ ३६ ॥ उसके बाद माताकी आज्ञापाकर विनताके साथ पक्षिराज गरुड़जी क्षणमें मोक्ष धरनेकी भूमिवाली काशी को प्राप्तहुये ॥ ३७ ॥ वहां उन दोनों बड़ी बुद्धिवालोंने उग्र तपस्या किया और जब शिवलिङ्गका स्थापनकर अचंचल इन्द्रियवाला होकर गरुड़ने॥३८॥

और खखोल्क नाम शुभ सूर्य्यका स्थापन करके विनताने तपकिया तब थोड़ेही कालमें उनदोनोंकी बड़ी तपस्यासे ॥ ३९ ॥ काशीमें शङ्कर व सूर्य्य ये दोनों देव प्रसन्नहुये उनमेंसे शिवजी गरुड़के थापेलिङ्ग से प्रकट होगये ॥४०॥ व गरुड़के लिये अति दुर्लभ बहुतसे वरोंको देतेभये कि, हे पक्षीन्द्र ! तुम हमारे भक्तहो इससे तुम्हारे ज्ञानहोगा ॥ ४१ ॥ और जोकि हमारी रहस्य देवोंसे भी नहीं जानीगई उसको तुम जानोगे व तुम्हारा थापाहुआ यह गरुड़ेश्वर नामक लिङ्ग ॥ ४२ ॥ देखागया व छुवाहुआ व पूजित होकर लोगों को उत्तमज्ञानदायक होगा हे पक्षीन्द्र ! और भी सुनो मैं इस समय तेरा हितकहताहूं ॥ ४३ ॥ कि, यह हमहीं वह विष्णुहैं इससे हम दोनोंमें भेद

खखोल्कमादित्यंसंस्थाप्यविनताशुभम् ॥ अचिरेणैवकालेनमहतस्तपसस्तयोः ॥ ३९ ॥ काश्यांप्रसन्नौसञ्जातौदेवौ शङ्करभास्करौ ॥ गरुडस्थापितात्लिङ्गादाविरासीदुमापतिः ॥ ४० ॥ गरुडायवरान्प्रादात्सुबहूनतिदुर्लभान् ॥ खगेन्द्रमम भक्तोसितवज्ञानम्भविष्यति ॥ ४१ ॥ वेत्स्यासित्वंरहस्यम्मेयन्नज्ञातंसुरैरपि ॥ त्वयैतत्स्थापितंलिङ्गंगरुडेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ ४२ ॥ परमज्ञानदम्पुंसान्दृष्टंस्पृष्टंसमर्चितम् ॥ अन्यच्चशृणुपक्षीन्द्रहितन्तेवच्मिसाम्प्रतम् ॥ ४३ ॥ असावहंसवैविष्णुर्मास्तुतेभेददृक्क्वचनौ ॥ एवन्तस्यैवपक्षीन्द्रदैत्येन्द्रबलहारिणः ॥ ४४ ॥ प्राप्यसत्पत्रतांपत्रिंस्त्वमप्यर्च्योभविष्यसि ॥ इतिदत्त्वावरंशम्भुःस्वभक्तायगरुत्मते ॥ ४५ ॥ तत्रैवान्तर्हितोजातोगरुडोपिहरिंययौ ॥ हरेरथत्वंसम्प्राप्यसोपिपूज्योऽभवद्भुवि ॥ ४६ ॥ तपस्यन्तीमथालोक्यकदाचिद्विनतांप्रभुः ॥ शिवस्यैवपरामूर्तिःखखोल्कोनामभास्करः ॥ ४७ ॥ दत्त्वावरञ्चपापघ्नंशिवज्ञानसमन्वितम् ॥ काशीवासिजनानेकभवपापक्षयङ्करः ॥ ४८ ॥ विनतादित्यइत्याख्यःखखो

दृष्टि मतहोवे हे पक्षिराज ! इस भांति से विष्णुके ॥ ४४ ॥ अच्छे वाहनभाव को प्राप्तहोकर हे पक्षिन् ! तुमभी पूजनीय होगे इसप्रकार से अपने भक्तगरुड़ को वरदेकर श्रीशंकरजी ॥ ४५ ॥ वहांहीं अंतर्धान होगये और वह गरुड़जी भी विष्णुजी के समीप को गये व भक्तभयहारी के वाहनभाव को प्राप्तहोकर पृथिवी में पूजनीय भी होते भये ॥ ४६ ॥ इसके अनंतर कभी तपस्याकरती हुई विनता को देखकर शिवजीकीहीं दूसरीमूर्त्ति व समर्थ खखोलकनामक सूर्य्यदेवजी ॥ ४७ ॥ पापनाशक व शिव

ज्ञान समेत वरदान देकर जो कि काशीवासी लोगों के अनेकजन्मों के किये पापोंको विनाशते हैं ॥ ४८ ॥ वह विनतादित्यनामक खखोल्कजी वहां भलीभांति से टिके हैं इसभांति से काशी के विघ्नरूपअंधकारहारक खखोल्कनामक आदित्य (सूर्य्य) प्रकट हुये हैं ॥ ४९ ॥ उनके दर्शनमात्र से मनुष्य सब पापों से छूटजाता है काशी में पिलिपिलातीर्थ के समीप खखोल्कादित्य के दर्शन से मनुष्य क्षण में विचारे हुये मनमाने फल को पाता है और रोगसे हीनहोजाता है ॥ ५० ॥ गरुडेश्वर सहित इस

ल्कस्तत्रसंस्थितः ॥ इत्थङ्खखोल्कआदित्यःकाशीविघ्नतमोहरः ॥ ४९ ॥ तस्यदर्शनमात्रेणसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ काश्यांपैशङ्गिलेतीर्थेखखोल्कस्यविलोकनात् ॥ नरश्चिन्तितमाप्नोतिनीरोगोजायतेक्षणात् ॥ ५० ॥ नरःश्रुत्वैतदाख्यानंखखोल्कादित्यसम्भवम् ॥ गरुडेशेनसहितंसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ १५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेखखोल्कादित्यगरुडेशयोर्वर्णनन्नामपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ इतिकाशीखण्डपूर्वार्द्धंसमाप्तम् ॥ * ॥ * ॥

खखोल्कादित्य की उत्पत्ति वाले आख्यान को सुनकर मनुष्य सब पापों से प्रमुक्त होता है ॥ १५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते खखोल्कादित्यगरुडेशयोर्वर्णनंनाम पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

॥ इति पूर्वार्ध समाप्तम् ॥

प्रथमबार
लखनऊ
मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा ॥
सन् १९०६ ई० ॥

॥ इति श्रीकाशी खंड पूर्वार्ध समाप्तम ॥

श्रीगणेशाय नमः

अथ स्कन्दपुराण काशीखण्ड सटीक उत्तरार्द्ध ॥

दोहा ॥ इक्यावन अध्याय में सूर्य्य सुमहिमा नित्य । वरुण, वृद्ध, केशव, विमल, गङ्गा, यम, आदित्य ॥ सिद्धिसदन वर बुद्धि निधि एकरदन शुभदानि । गणप गरीबनेवाजके वन्दों पद उर आनि ॥ श्रीयुत अगस्तिजी बोले कि हे पार्वतीहृदयानन्द, सर्वज्ञपुत्र, प्रभो, स्वामिन् ! मैं कुछ पूछने के लिये मनवालाहूं उसको आप कहनेके लिये योग्यहैं ॥ १ ॥ कि, दक्षप्रजापतिकी पुत्री, कश्यपजी की स्त्री व गरुड़की माता वह पतिव्रता विनता क्यों दासीभावको प्राप्तहुई ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी

श्रीगणेशाय नमः ॥ अगस्तिरुवाच ॥ पार्वतीहृदयानन्दसर्वज्ञाङ्गभवप्रभो ॥ किञ्चित्प्रष्टुमनाःस्वामिंस्तद्भवान्वक्तुमर्हति ॥ १ ॥ दक्षप्रजापतेःपुत्रीकश्यपस्यपरिग्रहः ॥ गरुत्मतःप्रसूःसाध्वीकुतोदास्यमवापसा ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ हञ्जिकात्वंयथाप्राप्ताविनतासातपस्विनी ॥ तदप्यहंसमाख्यामिनिशामयमहामते ॥ ३ ॥ कद्रूरजीजनत्पुत्राञ्छतंकश्यपतःपुरा ॥ उलूकमरुणन्तार्क्ष्यमसूतविनतात्रयम् ॥ ४ ॥ कौशिकोराज्यमाप्यापिश्रेष्ठत्वात्पक्षिणाम्मुने ॥ निर्गुणत्वाच्चतैःसर्वैःसराज्यादवरोपितः ॥ ५ ॥ क्रूराक्षोयान्दिवान्धोयंसदावक्रनखस्त्वसौ ॥ अतीवोद्वेगजनकंसर्वेषामस्यभा

बोले कि हे महामते ! जैसे वह तपस्विनी विनता दास्यको प्राप्तहुई उसको भी मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि पूर्वकाल में कद्रू ने कश्यपजी से सौ पुत्रों को उत्पन्न किया व विनता ने उलूक, अरुण और गरुड़ इन तीनों को उपजाया ॥ ४ ॥ हे मुने ! पक्षियों में ज्येष्ठ होने से राज्यको प्राप्त होकर भी वह उलूक फिर उन सबों करके राज्य से उतार दिया गया ॥ ५ ॥ कि, यह क्रूरनेत्र है व यह दिन में अन्धा रहता है व यह सदा कुटिल नखवाला है और इसकी बोलीभी सबको बहुत भय-

ङ्कर है ॥ ६ ॥ इस भांति उसके गुणसमूहोंको बहुतबार विशेषसे कहकर स्वेच्छाचारी पक्षीलोग आजभी राज्य में किसी गुणहीन कोभी नहीं अङ्गीकार करतेहैं ॥ ७ ॥ तदनन्तर जब उलूक वैसे वृत्तान्तवाला हुआ तब पुत्र के देखनेकी लालसावाली विनता ने मध्यम अण्डे को फोड़डाला ॥ ८ ॥ हे अगस्त्यजी ! जो कि अण्डा पूरे हजार वर्ष में ही फोड़ने योग्य था वह उस करके उत्सुकता से अठयें सैकड़ा में फोड़ा गया ॥ ९ ॥ तबतक उस अण्डे के भीतर बसनेहारे, बड़े तेजवाले, उस बालक के सब अङ्ग ऊरुवोंके ऊपर सिद्ध होगये थे ॥ १० ॥ और अण्डासे निकले मात्र व क्रोध से लाली मुख शोभाशाली व अधबनी देहवाले बालक ने माता को

षणम् ॥ ६ ॥ इत्थन्तस्यगुणग्रामान्विकथ्यबहुशःखगाः ॥ नाद्यापिदृष्टएवतेराज्येकमपिस्वैरचारिणः ॥ ७ ॥ कौशिकेथ तथावृत्तेपुत्रवीक्षणलालसा ॥ अण्डम्प्रस्फोटयामासमध्यमंविनतातदा ॥ ८ ॥ पूर्णेवर्षसहस्रेतुप्रस्फोट्यंयदसम्भव ॥ तदभेदितयौत्सुक्यादण्डमष्टमकेशते ॥ ९ ॥ तावत्सर्वाणिगात्राणितस्यातिमहसःशिशोः ॥ ऊर्वोरुपरिसिद्धानित दण्डान्तर्निवासिनः ॥ १० ॥ अण्डान्निर्गतमात्रेणक्रोधारुणमुखश्रिया ॥ अर्धनिष्पन्नदेहेनशिशुनाशापिताप्रसूः ॥ ११ ॥ जनयित्रित्वयादृष्ट्वाकाद्रवेयान्स्वलीलया ॥ खेलतोमातुरुत्सङ्गेयदण्डंव्याधितद्द्विधा ॥ १२ ॥ तदनिष्पन्न सर्वाङ्गःशपामित्वांविहङ्गमे ॥ तेषामेवैधिदासीत्वंसपत्न्यङ्गभुवामिह ॥ १३ ॥ वेपमानाथतच्छापादिदम्प्रोवाचपक्षिणी ॥ अनूरोब्रूहिमेशापावसानम्मातुरङ्गज ॥ १४ ॥ अनूरुरुवाच ॥ अण्डन्तृतीयंमाभिन्धिह्यनिष्पन्नम्ममैवहि ॥ अस्मिन्न ण्डेभविष्योयःसतेदास्यंहरिष्यति ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वासोरुणोगच्छदुड्डीयानन्दकाननम् ॥ यत्रविश्वेश्वरोदद्यादपिप

शाप दिया ॥ ११ ॥ कि, हे मातः ! जिससे तुमने अपनी लीलासे माताकी गोद में खेलते हुये कद्रू के कुमारों को देखकर उस अण्डे को दो भांति, विदीर्ण किया ॥ १२ ॥ उससे न सिद्ध हुये सर्वाङ्गवाला मैं तुमको शाप देताहूं कि, हे आकाशगामिनि ! तुम यहां उन सौति के पुत्रों कीही दासी होवो ॥ १३ ॥ अनन्तर उसके या, उस शाप से कांपतीहुई पक्षिणी ने यह कहा कि, हे अनूरो (ऊरुओंसे हीन) पुत्र ! तुम मुझ माताके शाप का अन्त कहो ॥ १४ ॥ अनूरु बोले कि मेरेही अंडेकी नाई असिद्ध तीसरे अण्डेको भी मत फोड़ो क्योंकि इस अण्डे में जो भविष्य (होनेहारा) है वह तुम्हारे दासीभावको हरेगा ॥ १५ ॥ यह कहकर वह अरुण उड़कर

काशी को गया जहां विश्वेश्वरजी चलनशक्ति से हीन को भी शुभ गति देते हैं ॥ १६ ॥ हे मुने ! यह विनता के शाप का कारण पूंछतेहुये तुमसे कहागया और अब आगे प्रसंग से अरुणादित्यकी उत्पत्ति कहताहूं ॥ १७ ॥ जो कि ऊरुवों से हीन होने से अनूरु हुआ व जिससे क्रोधसे लालरंग अंग होगया था उससे अरुण नाम से प्रसिद्ध हुआ उसने काशी में तपस्या तपकर सूर्य्यदेव को पूजन किया ॥ १८ ॥ तदनन्तर प्रसन्न हो वह सूर्य्यदेव भी उस अनूरु को वर देकर उसके नाम से अरुणादित्य इस नाम से प्रसिद्ध हुये ॥ १९ ॥ श्रीसूर्य्यजी बोले कि हे विनतात्मज , अनूरो ! लोकों के हित के अर्थ अन्धकार को विदारते हुये भी तुम

ङ्गोःशुभाङ्गतिम् ॥ १६ ॥ एतत्तेपृच्छतःख्यातंविनतादास्यकारणम् ॥ मुनेप्रसङ्गतोवच्मिअरुणादित्यसम्भवम् ॥ १७ ॥ अनूरुत्वादनूरुर्योरुणःक्रोधारुणोयतः ॥ वाराणस्यान्तपस्तप्त्वातेनाराधिदिवाकरः ॥ १८ ॥ सोपिप्रसन्नोदत्त्वाथवरांस्तस्माअनूरवे ॥ आदित्यस्तस्यनाम्नाभूदरुणादित्यइत्यपि ॥ १९ ॥ अर्कउवाच ॥ तिष्ठानूरोममरथेसदैवविनतात्मज ॥ जगताञ्चहितार्थायध्वान्तंविध्वंसयन्पुरः ॥ २० ॥ अत्रत्वत्स्थापिताम्मूर्तिंयेभजिष्यन्तिमानवाः ॥ वाराणस्याम्महादेवोत्तरेतेषांकुतोभयम् ॥ २१ ॥ येर्चयिष्यन्तिसततमरुणादित्यसञ्ज्ञकम् ॥ मामत्रतेषांनोदुःखंनदारिद्र्यंनपातकम् ॥ २२ ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयन्तेनोपसर्गैश्चकैश्चन ॥ शोकाग्निनानदह्यन्तेह्यरुणादित्यसेवनात् ॥ २३ ॥ अथस्यन्दनमारोप्यनीतवानरुणंरविः ॥ अद्यापिसरथेसौरेप्रातरेवसमुद्यति ॥ २४ ॥ यःकुर्यात्प्रातरुत्थायनमस्कारंदिनेदिने ॥ अरुणायससूर्यायतस्यदुःखभयंकुतः ॥ २५ ॥ अरुणादित्यमाहात्म्यंयःश्रोष्यतिनरोत्तमः ॥ नतस्यदुष्कृतंकिञ्चिद्

मेरे आगे सदैव रथमें टिको ॥ २० ॥ जे मनुष्य इस काशी में महादेव के उत्तर ओर तुम्हारी थापीहुई हमारी मूर्ति को सेवेंगे उनको डर कहां सेहै याने कहीं नहीं ॥ २१ ॥ जे यहां अरुणादित्य नामक मुझको निरन्तर पूजेंगे उनको न दुःख है न दारिद्र्य है और न पाप है ॥ २२ ॥ व वे अरुणादित्य की सेवा से न रोगों से व किसी उपद्रवों से नहीं हारतेहैं और शोकाग्निसे भी नहीं जलाये जातेहैं ॥ २३ ॥ उसके बाद श्रीसूर्य्यजी अरुणको रथ में चढ़ाकर लेगये तब से लगाकर अब भी वह सूर्य्य के रथ में प्रातःकालही भलीभांति से उगते हैं ॥ २४ ॥ जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर दिन दिनमें सूर्य्य समेत अरुण के नमस्कार करे उसको दुःख का

डर कहां है ॥ २५ ॥ और जो नरोत्तम अरुणादित्य का माहात्म्य सुनेगा उसका कुछ भी दुष्कर्म (पाप) कभी न होगा ॥ २६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्ति जी ! वृद्धादित्यका माहात्म्य सुनो उस को मैं तुम से कहताहूं जिसके सुनने मात्रसे मनुष्य दुष्टकर्म को न सेवे ॥ २७ ॥ आगे इस काशी में महातपस्वी, वृद्धहारीतने बड़ीतपस्याकी समृद्धिकेलिये सूर्य्यदेवको भलीभांति से पूजन किया ॥ २८ ॥ व विशालाक्षीदेवी के दक्षिण में शुभलक्षण व शुभदेनेवाली सूर्य्यदेवकी मूर्त्तिको संस्थापनकर दृढभक्ति से संयुत हुवा ॥ २९ ॥ तब संतुष्ट होकर श्रीसूर्य्यजीने उस वृद्धतपस्वी को वर दिया कि विलंब करके वृथा है तुम मागो कि कौन वर तुमको

ष्यतिकदाचन ॥ २६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ वृद्धादित्यस्यमाहात्म्यंशृणुतेकथयाम्यहम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेणनरोनोदुष्कृतम्भजेत् ॥ २७ ॥ पुरात्रवृद्धहारीतोवाराणस्यांमहातपाः ॥ महातपःसमृद्ध्यर्थंसमाराधितवान्रविम् ॥ २८ ॥ मूर्तिंसंस्थाप्यशुभदांभास्वतःशुभलक्षणाम् ॥ दक्षिणेनविशालाक्ष्यादृढभक्तिसमन्वितः ॥ २९ ॥ तुष्टस्तस्मैवरम्प्रादाद्वृद्धनोवृद्धतपस्विने ॥ अलंविलम्बययाचस्वकस्तेदेयोवरोमया ॥ ३० ॥ सोथप्रसन्नाद्द्युमणेरवृणीतवरम्मुनिः ॥ यदिप्रसन्नोभगवान्युवत्वन्देहिमेपुनः ॥ ३१ ॥ तपःकरणसामर्थ्यंस्थविरस्यनमेयतः ॥ पुनस्तारुण्यमाप्तोहंचरिष्याम्युत्तमन्तपः ॥ ३२ ॥ तपएवपरोधर्मस्तपएवपरंवसु ॥ तपएवपरःकामोनिर्वाणंतपएवहि ॥ ३३ ॥ ऋतेनतपसःकापिलभ्याऐश्वर्यसम्पदः ॥ पदंध्रुवादिभिःप्रापिकेवलंतपसोबलात् ॥ ३४ ॥ ततस्तपश्चरिष्यामिलोकद्वयमहत्त्वदम् ॥ प्राप्यत्वद्वरदानेनयौवनंसर्वसम्मतम् ॥ ३५ ॥ धिग्जरांप्राणिनामत्रययासर्वोविरज्यति ॥ जरातुरेन्द्रियग्रामेस्त्रियोपिनयतःस्व

मेरे देने योग्य है ॥ ३० ॥ तदनन्तर उस मुनि ने प्रसन्न हुये सूर्य्यदेव से वरको स्वीकार किया कि ऐश्वर्य्य से संपन्न तुम जो प्रसन्नहो तो मुझको फिर युवापन दो ॥ ३१ ॥ जिससे मुझ बूढ़ेकी तप करने में सामर्थ्य नहीं है उस से फिर युवापनको प्राप्तहुवा मैं उत्तम तपस्या करूंगा ॥ ३२ ॥ क्योंकि तपस्याही श्रेष्ठ धर्म तपस्याही श्रेष्ठधन तपस्याही श्रेष्ठकाम और तपस्याही श्रेष्ठ मुक्तिभी है ॥ ३३ ॥ व तपस्या विना ऐश्वर्य्य संपत्तियां कहीं भी मिलने योग्य नहीं हैं ध्रुवादिको ने केवल तपस्या के बलसे उत्तमस्थानको प्राप्तकिया है ॥ ३४ ॥ उस लिये तुम्हारे वरदान से सबके सम्मत, युवापनको प्राप्तहोकर मैं दोनों लोकों में महत्त्वदेनेवाली तपस्या करूंगा ॥ ३५ ॥

प्राणियों की उस बुढ़ाई को धिक्कार है जिस से इस लोक में सब कोई स्नेहहीन होजाता है व जिस से बुढ़ाई से व्याकुल इंद्रियसमूहवाले पुरुष में स्त्रियां भी अपने अधीन नहीं रहती हैं ॥ ३६ ॥ इस से मरणही श्रेष्ठहो और अधिक शोचकरनेवाली बुढ़ाई मतहो क्योंकि मरना क्षणभर दुःखवाला होता है और बुढ़ाई का दुःख क्षण क्षण में रहता है ॥ ३७ ॥ इस से जितेन्द्रिय जन दीर्घ तपस्या के लिये बहुत कालकी आयु व दान के लिये धन व पुत्र के लिये स्त्री और मोक्ष के लिये ज्ञान को चाहते हैं ॥ ३८ ॥ उससमय सूर्य्यजी ने वृद्धकी बुढ़ाई को भी दूर करके पुण्यका साधन व सुंदरता का कारण युवापन दिया ॥ ३९ ॥ इस भांति महामुनि

सात् ॥ ३६ ॥ वरंमरणमेवास्तुमाजरास्त्वतिशोच्यकृत् ॥ क्षणंदुःखकृन्मरणञ्जरादुःखंक्षणेक्षणे ॥ ३७ ॥ काङ्क्षन्तिदीर्घतपसेचिरमायुर्जितेन्द्रियाः ॥ धनन्दानायपुत्रायकलत्रम्मुक्तयेधियम् ॥ ३८ ॥ वृद्धस्यवार्धकन्तस्यतत्क्षणादपहृत्यवै ॥ ददौचचारुताहेतुन्तारुण्यम्पुण्यसाधनम् ॥ ३९ ॥ एवंसवृद्धहारीतोवाराणस्यांमहामुनिः ॥ सम्प्राप्ययौवनम्ब्रध्नात्तपउग्रञ्चचारह ॥ ४० ॥ वृद्धेनाराधितोयस्माद्धारीतेनतपस्विना ॥ आदित्योवार्धकहरोवृद्धादित्यस्ततःस्मृतः ॥ ४१ ॥ वृद्धादित्यंसमाराध्यवाराणस्याङ्घटोद्भव ॥ जरादुर्गतिरोगघ्नस्वहवःसिद्धिमागताः ॥ ४२ ॥ वृद्धादित्यन्नमस्कृत्यवाराणस्यांरवौनरः ॥ लभेदभीप्सितांसिद्धिन्नक्वचिद्दुर्गतिंलभेत् ॥ ४३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अतः परंशृणुमुनेकेशवादित्यमुत्तमम् ॥ यथातुकेशवम्प्राप्यसविताज्ञानमाप्तवान् ॥ ४४ ॥ व्योम्निसञ्चरमाणेनसप्ताश्वेना

वृद्धहारीतने काशीमें सूर्य्यसे युवापनको भलीभांतिसे प्राप्तहोकर हर्षसे उग्र तपस्या किया ॥ ४० ॥ जिस से वृद्धताहारी दिनचारीदेवजी तपस्वी वृद्धहारीत से पूजे गये उससे वृद्धादित्य कहाते हैं ॥ ४१ ॥ हे कुंभसंभव ! बहुतलोग काशीमें जरा (बुढ़ाई) व दुर्गति व रोगके विनाशी वृद्धादित्यको भलीभांतिसे पूजनकर सिद्धिको प्राप्त हुये हैं ॥ ४२ ॥ व मनुष्य सूर्य्यवारमें काशीके बीच वृद्धादित्यके नमस्कार करके मनमानी सिद्धिको पावे और दुर्गतिको कहीं न पावे ॥४३॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! इसके उपरान्त तुम उत्तम केशवादित्यको सुनो कि जैसे केशवको प्राप्तहोकर सूर्य्यदेवनेभी ज्ञान पायाहै ॥ ४४ ॥ एकसमय आकाश में विचरते हुये सूर्य्यजी ने भक्तिसे

ईश्वरके लिङ्गकी पूजाकरते हुये आदिकेशवको देखा ॥ ४५ ॥ व कौतुककी नाईं ऊपरसे उतरकर शब्दसे हीन, अचल, स्वस्थ और अधिक आश्चर्य्य समेत सूर्य्यजी विष्णुके समीपमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥ और हरिसे कुछ पूंछनेके लिये मनवाले व अवसरको परखते हुये व हाथ जोड़नेहारे होकर पूजाको विसर्जन किये हुये विष्णुजीके प्रणाम किया ॥ ४७ ॥ और विष्णुजीने बहुत आदरपूर्वक यह कहा कि तुम्हारा अच्छा आनाहुआ व शिर नवाये हुये सूर्य्यजीको अपने समीप में बैठाया ॥ ४८ ॥ उसके बाद अवसर देखकर दैत्यशत्रु करके आज्ञा किये हुये सूर्य्यदेवने विष्णुके नमस्कार कर विज्ञापना किया ॥ ४९ ॥ श्रीसूर्य्यदेवजी बोले कि हे जगत्पते, विश्वम्भर, जगत्पू-

दिकेशवः ॥ एकदादर्शिभावेनपूजयँल्लिङ्गमैश्वरम् ॥ ४५ ॥ कौतुकादिवउत्तीर्य्यहरेरविरुपाविशत् ॥ निःशब्दोनिश्चलःस्वस्थोमहाश्चर्यसमन्वितः ॥ ४६ ॥ प्रतीक्षमाणोवसरङ्किञ्चित्प्रष्टुमनाहरिम् ॥ हरिंविसर्जितार्चञ्चप्रणनामकृताञ्जलिः ॥ ४७ ॥ स्वागतन्तेहरिःप्राहबहुमानपुरःसरम् ॥ स्वाभ्याशआसयामासभास्वन्तन्नतकन्धरम् ॥ ४८ ॥ अथावसरमालोक्यलोकचक्षुरधोक्षजम् ॥ नत्वाविज्ञापयामासकृतानुज्ञोऽसुरारिणा ॥ ४९ ॥ ॥ रविरुवाच ॥ ॥ अन्तरात्मासिजगतांविश्वम्भरजगत्पते ॥ तवापिपूज्यःकोप्यस्तिजगत्पूज्यात्रमाधव ॥ ५० ॥ त्वत्तआविर्भवेदेतत्त्वयिसर्वम्प्रलीयते ॥ त्वमेवपातासर्वस्यजगतोजगतान्निधे ॥ ५१ ॥ इत्याश्चर्यंसमालोक्यप्राप्तोस्म्यत्रतवान्तिकम् ॥ किमिदम्पूज्यतेनाथभवताभवतापहृत् ॥ ५२ ॥ इतिश्रुत्वाहृषीकेशः सहस्रांशोरुदीरितम् ॥ उच्चैर्माशंससप्ताश्वंवारयन्करसंज्ञया ॥ ५३ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ देवदेवोमहादेवोनीलकण्ठउमापतिः ॥ एकएवहिपूज्योत्रसर्वकारणकारणम् ॥ ५४ ॥

ज्य, माधव ! तुमहीं सब लोकोंके अंतरात्माहो इससे इस लोक में क्या तुम्हाराभी पूज्य कोई है ॥ ५० ॥ हे जगतांनिधे ! यह सब जगत् तुमसे प्रकटहोता है व तुममें प्रलयको प्राप्तहोजाताहै और तुमहीं सब जगत्के रक्षकहो ॥ ५१ ॥ हे संसारतापहारक नाथ ! यहां इस आश्चर्य्यको भली भांति सर्व ओरसे देखकर मैं तुम्हारे समीपको प्राप्तभयाहूं आपकरके यह क्या पूजाजाताहै ॥५२॥ इस भांति सूर्य्यका कहना सुनकर ऊंचे स्वरसे मत बोलो ऐसे हाथकी संज्ञा से सूर्य्यको निवारतेहुये इन्द्रियों के स्वामीसे ॥ ५३ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, देवों के देव, सब प्रकृत्यादिकारणों के कारण, पार्वती के पति, नीलकण्ठ, एक महादेवजीही यहां पूजनीय हैं ॥ ५४ ॥

इस लोकमें जो थोड़ी बुद्धिवाला त्रिलोचनसे अन्य किसीको भली भांतिसे पूजताहै वह आंखों समेतभी नेत्रोंसे हीन (अन्धा) जानने योग्यहै॥ ५५॥ व जन्म मृत्यु और जराके हरनेहारे एक मृत्युंजय (शिव) पूजनीयहैं क्योंकि निश्चयसे मृत्युंजयकी पूजाकरके श्वेत मुनि मृत्युके जीतनेहारा हुआहै॥ ५६॥ व भृङ्गीनेभी कालके कालको भली भांति सब ओरसे पूजनकर कालको जीतलियाहै व मृत्युंजयके पूजक नन्दीश्वरकोभी मृत्युने छोड़ दियाहै॥ ५७॥ व जिन्होंने लीलासेही एक बाण छोंड़नेसे त्रिपुरको जीताहै उन शिवकी पूजाकर कौन बहुत पूजनीय न होवै॥ ५८॥ हे सूर्य्य ! सबके कारण, कामके शत्रु, सारभूत त्रिलोकविजयी शङ्करका पूजन श्रेष्ठहै इससे उन विश्वनाथ

अत्रत्रिलोचनादन्यंसमर्चयतियोल्पधीः ॥ सलोचनोपिविज्ञेयोलोचनाभ्यांविवर्जितः ॥ ५५ ॥ एकोमृत्युञ्जयःपूज्योजन्ममृत्युजराहरः ॥ मृत्युञ्जयङ्किलाभ्यर्च्यश्वेतोमृत्युञ्जयोभवत् ॥ ५६ ॥ कालकालंसमाराध्यभृङ्गीकालञ्जिगायवै ॥ शैलादिमपितत्याजमृत्युर्मृत्युञ्जयार्चकम् ॥ ५७ ॥ विजिग्येत्रिपुरंयस्तुहेलयैकेषुमोक्षणात् ॥ तंसमभ्यर्च्यभूतेशङ्कोनपूज्यतमोभवेत् ॥ ५८ ॥ त्रिजगज्जयिनोहेतोस्त्र्यक्षस्याराधनम्परम् ॥ कोनाराधयतिब्रध्नसारस्यस्मरविद्विषः ॥ ५९ ॥ यद्दृक्पक्ष्मसङ्कोचाज्जगत्सङ्कोचमेत्यदः ॥ विकस्वरंविकासाच्चकस्यपूज्यतमोनसः ॥ ६० ॥ शम्भोर्लिङ्गंसमभ्यर्च्यपुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ प्राप्नोत्यत्रपुमान्सद्योनात्रकार्याविचारणा ॥ ६१ ॥ समर्च्यशाम्भवंलिङ्गमपिजन्मशतार्जितम् ॥ पापपुञ्जञ्जहात्येवपुमानत्रक्षणाद्ध्रुवम् ॥ ६२ ॥ किङ्किन्नसम्भवेदत्रशिवलिङ्गसमर्चनात् ॥ पुत्राःकलत्रक्षेत्राणिस्वर्गोमोक्षोप्यसंशयम् ॥ ६३ ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यसम्पत्तिर्मयाप्राप्तासहस्रगो ॥ शिवलिङ्गार्चना

जीको को न पूजे ॥ ५९ ॥ व जिनके नेत्रकी पलकके संकोचसे यह जगत् संकोचको प्राप्तहोताहै और विकसनेसे विकसितहै वह शिवजी किसके महापूज्य नहीहैं ॥ ६० ॥ इस लोकमें मनुष्य शिवजी के लिंगको भली भांति से पूजनकर शीघ्रही चार पुरुषार्थों को प्राप्तहोता है इस में विचार न करनाचाहिये ॥ ६१ ॥ निश्चय है कि मनुष्य इस लोकमें या इस काशीमें क्षणभर शङ्करके लिङ्गकी पूजाकर सैकड़ों जन्मके बटोरेहुये समूह पापकोभी छोडताही है ॥ ६२ ॥ यहां शिवलिङ्गकी पूजासे पुत्र, स्त्री, क्षेत्र स्वर्ग व मोक्षभी और क्या क्या निरसन्देह संभवित न होवै ॥ ६३ ॥ हे सहस्रांशो ! फिर फिर सत्यहै सत्यहै एक (मुख्य या केवल) शिवलिङ्ग की

पूजासे त्रिलोकके ऐश्वर्य्यकी संपत्ति मुझको प्राप्तहुईहै ॥ ६४ ॥ जोकि शिवलिंग पूजाजाताहै यहही उत्तम योग यहही उत्तम तपस्या और यहही उत्तमज्ञानहै ॥ ६५ ॥ व जिनरो एक वारभी यहां पार्वतीपतिका लिङ्गपूजागया उनको दुःखसागर संसारमें दुःखका डर कहां है ॥ ६६ ॥ हे दिवाकर, रवे ! जो सबको परित्याग कर शिवलिंगके शरण गयाहै उसको बडे भी पाप नहीं बाधा करसक्ते हैं ॥६७॥ हे भास्कर ! श्रीमहेशजी जिनकी फिर उत्पत्तिका छेदन करना चाहते हैं उनकीही बुद्धि यहां लिंगार्चन में होवे है ॥ ६८ ॥ और शिवलिंग पूजासे अधिक अन्य पुण्य तीनो लोकों में नहीं है व लिंगस्नानके नीरकी सेवासे सब तीर्थोंका अभिषेक होजावैहै ॥ ६९ ॥ हे सूर्य्य ! उस

देवात्सत्यंसत्यंपुनःपुनः ॥ ६४ ॥ अयमेवपरोयोगस्त्विदमेवपरन्तपः ॥ इदमेवपरंज्ञानंस्थाणुर्लिङ्गंयदर्च्यते॥ ६५ ॥ यैर्लिङ्गंसकृदप्यत्रपूजितम्पार्वतीपतेः ॥ कुतोदुःखभयन्तेषांसंसारेदुःखभाजने ॥ ६६ ॥ सर्वम्परित्यज्यरवेयोलिङ्गं शरणङ्गतः ॥ नतम्पापानिबाधन्ते महान्त्यपिदिवाकर ॥ ६७ ॥ लिङ्गार्चनेमतेर्बुद्धिस्तेषामेवात्रभास्कर ॥ येषाम्पुनर्भवच्छेदञ्चिकीर्षतिमहेश्वरः ॥ ६८ ॥ नलिङ्गाराधनात्पुण्यन्त्रिषुलोकेषुचापरम् ॥ सर्वतीर्थाभिषेकःस्याल्लिङ्गस्नानाम्बुसेवनात् ॥ ६९ ॥ तस्माल्लिङ्गन्त्वमप्यर्कसमर्चयमहेशितुः ॥ सम्प्राप्तुं परमांलक्ष्मीम्महातेजोभिज्ञम्भणीम् ॥ ७० ॥ इतिश्रुत्वाहरेर्वाक्यन्तदारभ्यसहस्रगुः ॥ विधायस्फाटिकंलिङ्गंमुनेद्यापिसमर्चयेत् ॥ ७१ ॥ गुरुत्वेन तदाकल्प्यविवस्वानादिकेशवम् ॥ तत्रोपतिष्ठतेद्यापिउत्तरेणादिकेशवात् ॥ ७२ ॥ अतःसकेशवादित्यःकाश्यांतम कतमोनुदः ॥ समर्चितःसदादेयान्मनसोवाञ्छितम्फलम् ॥ ७३ ॥ केशवादित्यमाराध्यवाराणस्यांनरोत्तमः ॥ परमंज्ञा

से तुमभी महातेजकी बढानेवाली उत्तम शोभा या संपत्तिको संप्राप्त होने के लिये महेश के लिंगको भली भांति से पूजो ॥ ७० ॥ हे मुने ! ऐसा विष्णुका वचन सुनकर तब से लगाकर अबतक भी सूर्य्यदेवजी स्फटिकका लिंग बनाकर भलीभांतिसे पूजा करते हैं ॥ ७१ ॥ उस समय श्रीसूर्य्यजी गुरुभावसे आदिकेशवको कल्पित कर आदिकेशव से उत्तर ओर उस स्थानमें अबभी समीपही टिकेहैं ॥ ७२ ॥ इससे काशीमे भक्तों का अन्धकार या अज्ञानहारक, वह केशवादित्यहैं जोकि पूजेहुये सदा

मनवाञ्छित फलको देवेहैं ॥ ७३ ॥ व काशी में केशवादित्यकी पूजा करके मनुष्यश्रेष्ठ परमज्ञान को प्राप्त होताहै कि जिसके द्वारा मोक्षभागी होवेहै ॥ ७४ ॥ व वहां पादोदक तीर्थमें सकल जलक्रिया कियेहुये जन, केशवादित्य के दर्शनकर जन्मके पापोंसे छूटजाताहै॥ ७५ ॥ हे अगस्ते ! जब अचलासप्तमीमें सूर्य्यवार मिलता है तब आदिकेशवके समीप पादोदकतीर्थमें ॥ ७६ ॥ चारदण्ड राति रहजाने के समय मौनधारी मनुष्य स्नान करके केशवादित्यकी पूजासे उसीक्षण सात जन्मों में बटोरे हुये पापोंसे छूटाहुआ होताहै ॥ ७७ ॥ मैंने जन्म से लगाकर सात जन्मों में जो जो पाप कियाहै उसको व मेरे रोग और शोचको भी माघकी सप्तमी विनाशकरे ॥७८॥

नमाप्नोतियेननिर्वाणभाग्भवेत् ॥ ७४ ॥ तत्रपादोदकेतीर्थेकृतसर्वोदकक्रियः ॥ विलोक्यकेशवादित्यं मुच्यतेजन्मपातकः ॥ ७५ ॥ अगस्तेरथसप्तम्यां रविवारोयदाप्यते ॥ तदापादोदकेतीर्थे आदिकेशवसन्निधौ ॥ ७६ ॥ स्नात्वोषसिनरोमौनी केशवादित्यपूजनात् ॥ सप्तजन्मार्जितात्पापान्मुक्तोभवतितत्क्षणात् ॥ ७७ ॥ यद्यज्जन्मकृतम्पापंमया सप्तसुजन्मसु ॥ तन्मेरोगंचशोकंचमाकरीहन्तुसप्तमी ॥७८॥ एतज्जन्मकृतंपापं यच्चजन्मान्तरार्जितम् ॥ मनोवाक्कायजंयच्च ज्ञाताज्ञातेचयेपुनः ॥ ७९ ॥ इतिसप्तविधंपापंस्नानान्मेसप्तसप्तिके ॥ सप्तव्याधिसमायुक्तं हरमाकरिसप्तमि ॥ ८० ॥ एतन्मन्त्रत्रयञ्जप्त्वा स्नात्वापादोदकेनरः ॥ केशवादित्यमालोक्य क्षणान्निष्कलुषोभवेत् ॥ ८१ ॥ केशवादित्यमाहात्म्यंशृण्वञ्छ्रद्धासमन्वितः ॥ नरोनलिप्यतेपापैःशिवभक्तिंचविन्दति ॥ ८२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अतःपरंशृणुमुने विमलादित्यमुत्तमम् ॥ हरिकेशवनेरम्ये वाराणस्यांव्यवस्थितम् ॥८३॥ उच्चदेशेऽभवत्पूर्वं विमलोनामबाहुजः ॥

जो कि पाप इस जन्म में किया गयाहै व अन्य जन्मों में बटोरा हुआहै व जो मन वचन और देहसे उत्पन्न है व जे पाप जाने और न जानेहुये है ॥ ७९ ॥ हे सात घोड़ेवाले सूर्य्यकी शक्तिसे समन्विते, मकरसंक्रांतिसम्बन्धिनि, सप्तमि ! सात रोगों समेत इस सात भांति के पापको तुम हरलो ॥ ८० ॥ इन तीनो मन्त्रों को जपकर पादोदक तीर्थमें स्नानकर और केशवादित्यके दर्शनकर मनुष्य क्षणभर में निष्पाप होजाते है ॥ ८१ ॥ व केशवादित्य का माहात्म्य सुनताहुआ श्रद्धा समेत मनुष्य पापों से नहीं लिप्त होताहै और शिवजीकी भक्तिको पाता है ॥ ८२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! तुम इसके आगे उत्तम, विमलादित्य को सुनो

जो कि काशीके बीच रमणीक, हरिकेशके वनमें विशेषसे टिके हैं ॥ ८३ ॥ आगे उच्चदेश में जो विमल नामक क्षत्रिय हुआथा वह विमल मार्गमें भी टिकाथा परन्तु प्रारब्ध कर्मके संयोग से ॥ ८४ ॥ अधिक कुष्ठरोग को प्राप्तहोकर स्त्री घर और धनको छोड़कर काशीमें भलीभांति से आगमनकर उस सुबुद्धिमान् ने सूर्य्यदेवकी पूजा किया ॥ ८५ ॥ जब वह सुगन्धसंयुत कनैर, दुपहरी, शुभपलाश, व लालरंगवाले कमल और अशोकके फूलोंसे प्रकाशकारी देवको पूजता भया ॥ ८६ ॥ तब पाटल व चम्पा के फूलों से बनायेहुये अद्भुत रचनावाले माल्य व कुंकुम अगर और कपूरसे मिश्रित रक्तचन्दन ॥ ८७ ॥ व देवमोहन धूप (अष्टांग)

सप्राक्तनात्कर्मयोगाद्विमलेपथ्यपिस्थितः ॥ ८४ ॥ कुष्ठरोगमवाप्योच्चैस्त्यक्त्वादारान्गृहंवसु ॥ वाराणसींसमासाद्य ब्रध्नमाराधयत्सुधीः ॥ ८५ ॥ करवीरैर्जपाभिश्च गन्धकैःकिंशुकैःशुभैः ॥ रक्तोत्पलैरशोकैश्च ससमानर्चभास्करम् ॥ ८६ ॥ विचित्ररचनैर्माल्यैः पाटलाचम्पकोद्भवैः ॥ कुङ्कुमागुरुकर्पूरमिश्रितैःशोणचन्दनैः ॥ ८७ ॥ देवमोहनधूपैश्च बह्वामोदततांबरैः॥कर्पूरवर्तिदीपैश्चनैवेद्यैर्घृतपायसैः ॥८८॥ अर्घदानैश्चविधिवत्सौरैःस्तोत्रजपैरपि ॥ एवंसमाराधयत स्तस्यार्कोवरदोभवत् ॥ ८९ ॥ उवाचचवरंब्रूहिविमलामलचेष्टित ॥ कुष्ठश्चतेप्रयात्वेषप्रार्थयान्यंवरंपुनः ॥ ९० ॥ आ कर्ण्यविमलश्चेत्थमालापंरश्मिमालिनः ॥ प्रणतोदण्डवद्भूमौ संप्रहृष्टतनूरुहः ॥ ९१ ॥ शनैर्विज्ञापयाञ्चक्रे एक चक्ररथंरविम् ॥ जगच्चक्षुरमेयात्मन्महाध्वान्तविधूनन ॥ ९२ ॥ यदिप्रसन्नोभगवन् यदिदेयोवरोमम ॥ तदात्वद्भ

सुगन्धित अनेक वस्त्र, कपूर बाती के दीप व घृतसमेत खीर नैवेद्य ॥ ८८ ॥ व विधिपूर्वक अर्घदान और सूर्य्यसम्बन्धी स्तोत्रोंके जपोंसे भी इसप्रकार भलीभांति पूजतेहुये उसके लिये दिननायकदेव वरदायक हुये ॥ ८९ ॥ और बोले कि हे विमलकर्मवाले, विमल ! तुम मनमाने वरको बोलो और तुम्हारा यह कुष्ठरोग दूरचला जावे व फिर भी अन्य वरदान मांगो ॥ ९० ॥ इसभांति सूर्य्यदेवका कहना सुनकर भूमिमें दण्डके समान प्रणाम करतेहुये व आनन्दसे खड़े रोमवाले विमल ने ॥ ९१ ॥ एक चक्र (पैहा) के रथवाले सूर्य्यदेवसे विज्ञापना किया कि हे जगतके नेत्र, अतौल, आत्मन्, महान्धकारहार ! ॥ ९२ ॥ हे भगवन् ! जो तुम प्रसन्नहो व जो

वर मेरे देने योग्य है तो जे जन तुम्हारी भक्ति में निष्ठावाले हैं उनके वंशमें कुष्ठरोग मतहोवे ॥ ९३ ॥ हे सहस्रकिरण ! उन तुम्हारे भक्तोंके अन्यरोगभी मतहोवें व दरिद्रता मतहोवे और कोई सन्ताप मतहोवे ॥ ९४ ॥ श्रीसूर्य्यदेव बोले कि, हे महाप्राज्ञ, महामते ! यह वैसेही होवे और तुम अन्य उत्तम वरको सुनो कि काशीमें यह मूर्त्ति इसभांति तुमसे पूजित हुई है ॥ ९५ ॥ इससे मैं इसके समीपको कभी न त्याग करूंगा और यह प्रतिमा (मूर्त्ति) तुम्हारे नामसे प्रसिद्ध होवेगी ॥ ९६ ॥ जो कि विमलादित्य ऐसो नामवाली है वह सदा भक्तों को वर देनेवाली व सब रोगसंहारिणी और सबपापविनाशकारिणी होवेगी ॥ ९७ ॥ ऐसा वरदान देकर

क्तिनिष्ठाये कुष्ठंमास्तुतदन्वये ॥ ९३ ॥ अन्येपिरोगामासन्तु मास्तुतेषान्दरिद्रता ॥ मास्तुकश्चनसन्तापस्त्वद्भक्तानां सहस्रगो ॥ ९४ ॥ श्रीसूर्य्यउवाच ॥ तथास्त्वितिमहाप्राज्ञशृणुवन्यंवरमुत्तमम् ॥ त्वयेयंपूजितामूर्तिरेवंकाश्यांमहामते ॥ ९५ ॥ अस्याःसान्निध्यमत्राहं नत्यक्ष्यामिकदाचन ॥ प्रथितातवनाम्नाच प्रतिमैषाभविष्यति ॥ ९६ ॥ विमलादित्यइत्याख्या भक्तानांवरदासदा ॥ सर्वव्याधिनिहन्त्रीच सर्वपापक्षयङ्करी ॥ ९७ ॥ इतिदत्त्वावरान्सूर्यस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ विमलोनिर्मलतनुः सोपिस्वभवनंययौ ॥ ९८ ॥ इत्थंसविमलादित्यो वाराणस्यांशुभप्रदः ॥ तस्यदर्शनमात्रेण कुष्ठरोगःप्रणश्यति ॥ ९९ ॥ यश्चैतांविमलादित्यकथांवैशृणुयान्नरः ॥ प्राप्नोतिनिर्मलांशुद्धिंत्यज्यते चमनोमलैः ॥ १०० ॥ स्कन्दउवाच ॥ गङ्गादित्योस्तितत्रान्यो विश्वेशाद्दक्षिणेनवै ॥ तस्यदर्शनमात्रेण नरःशुद्धिमियादिह ॥ १ ॥ यदागङ्गासमायाता भगीरथपुरस्कृता ॥ तदागङ्गांपरिष्टोतुं रविस्तत्रैवसंस्थितः ॥ २ ॥ अद्याप्यहर्नि

श्रीसूर्य्यजी अन्तर्धान होगये व निर्मल देह हुआ वह विमलभी अपने घरको गया ॥ ९८ ॥ इसभांति से वह शुभदायक विमलादित्य काशी में हैं उनके दर्शनमात्रसे कुष्ठरोग विनष्ट होजाता है ॥ ९९ ॥ और जो मनुष्य इस विमलादित्यकी कथाको भी सुनताहै वह विमल बुद्धि शुद्धिको प्राप्तहोता है व मन के मलोंसे त्यागाजाता है ॥ १०० ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि अन्य गंगादित्यभी विश्वनाथके दक्षिण ओर में वहां हैं उनके दर्शनमात्रसे मनुष्य यहां शुद्धताको प्राप्त होता है ॥ १ ॥ जब भगीरथ राजाको आगे कियेहुई गंगाजी भलीभांतिसे आई हैं तब गंगाकी सब ओरसे स्तुति करनेके लिये सूर्य्यजी वहांही संस्थितहुये हैं ॥ २ ॥ अब भी रातोदिन गंगा

को सम्मुखकरके प्रसन्नमनवाले भास्करजी गंगाकी सब ओरसे स्तुति करते हैं और गंगाभक्तोंके वरदाता हैं ॥ ३ ॥ इससे मनुष्योत्तम काशीमें गंगादित्य को भली भांतिसे पूजकर कभी कहीं भी दुर्गति को नहीं पाता है और रोगसेवी नहीं होता है ॥ ४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महाभाग ! अन्य यमादित्यकी उत्पत्ति को भी सुनो जिसको सुनकर भी मनुष्य यमलोकको कभी नहीं देखता है ॥ ५ ॥ हे मुने ! यमेश्वरसे पश्चिम व वीरेश्वरसे पूर्वभाग में यमादित्यको देखकर मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है ॥ ६ ॥ व मंगलवार समेत चतुर्दशी तिथि में मनुष्य यमतीर्थ में स्नानकर व यमेश्वर को देखकर शीघ्रही सब पापोंसे छूटजाताहै ॥ ७ ॥

शङ्गां सम्मुखीकृत्यभास्करः ॥ परिष्टौतिप्रसन्नात्मा गङ्गाभक्तवरप्रदः ॥ ३ ॥ गङ्गादित्यंसमाराध्य वाराणस्यान्नरोत्तमः ॥ नजातुदुर्गतिंक्वापि लभतेनचरोगभाक् ॥ ४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अन्यच्छृणुमहाभाग यमादित्यस्यसम्भवम् ॥ यच्छ्रुत्वापिनरोजातुयमलोकंनपश्यति ॥ ५ ॥ यमेशात्पश्चिमेभागेवीरेशात्पूर्वतोमुने ॥ यमादित्यंनरोदृष्ट्वायमलोकंनपश्यति ॥ ६ ॥ यमतीर्थेनरःस्नात्वाभूतायाम्भौमवासरे ॥ यमेश्वरंविलोक्याशु सर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ ७ ॥ यमतीर्थेयमः पूर्वं तप्त्वासुविमलन्तपः ॥ यमेशञ्चयमादित्यंप्रत्यष्ठाद्भक्तसिद्धिदम् ॥ ८ ॥ यमेनस्थापितोयस्मादादित्यस्तत्रकुम्भज ॥ अतःसहियमादित्योयामींहरतियातनाम् ॥ ९ ॥ यमेशञ्चयमादित्यंयमेनस्थापितंनमन् ॥ यमतीर्थेकृतस्नानो यमलोकं नपश्यति ॥ १० ॥ यमतीर्थेचतुर्दश्यांभरण्याम्भौमवासरे ॥ तर्पणंपिण्डदानञ्च कृत्वापितृऋणीभवेत् ॥ ११ ॥ अभिलष्यन्तिसततं पितरोनरकौकसः ॥ भौमेभरण्याम्भूतायांयदियोगोयमुत्तमः ॥ १२ ॥ काश्यांकश्चिद्यमतीर्थे कृत्वा

पूर्वकालमें यमराजने यमतीर्थके समीप बहुत बड़ी तपस्या तपकर भक्तोंकी सिद्धिके दायक यमेश्वर और यमादित्य को स्थापित किया है ॥ ८ ॥ हे अगस्त्यजी ! जिससे वहां सूर्य्यजी यमसे थापेगये हैं इससेही वही यमादित्य यमकी यातनाको हरलेते हैं ॥ ९ ॥ यमके थापेहुये यमेश व यमादित्यके नमस्कार करताहुआ व यम तीर्थ में स्नानकरनेवाला मनुष्य यमलोकको नहीं देखता है ॥ १० ॥ व चतुर्दशी तिथि, भरणी नक्षत्र और मंगलवार इनतीनों का योग होतेही यमतीर्थ में पिण्ड दान व तर्पण करके पितरों के ऋण से हीन होजावे ॥ ११ ॥ जो मंगलवार भरणी नक्षत्र और चतुर्दशी तिथि में यह उत्तम योग होताहै तो नरकनिवासी पितर

निरन्तर अभिलापकरते हैं ॥ १२ ॥ कि जो कोई बड़ा बुद्धिमान् काशीके बीच यमतीर्थमें स्नानकर तिलसमेत तर्पणको भी करेगा वह हमारी विमुक्तिके लिये होगा ॥ १३ ॥ व इस योगके होतेही जो काशी में यमतीर्थके समीप श्राद्ध प्राप्त कीजाती है तो लोगोंके गया मे जानेसे क्या है और बहुती दक्षिणावाली श्राद्धों से क्या है ॥ १४ ॥ यमतीर्थ में श्राद्धकर व यमेश्वरकी पूजाकर व यमादित्यके दर्शनकर पितरों के ऋणसे हीन होवे है ॥ १५ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि इसभांति से मैंने पापनाशक उन बारह आदित्यों को तुमसे कहा जिनकी उत्पत्तिको भलीभांतिसे सुनकर मनुष्य नरकनिवासी न होवे ॥ १६ ॥ हे कुम्भसम्भव ! सूर्य्यभक्तों के थापेहुये अ-

स्नानंमहामतिः ॥ अपियस्तर्पणंकुर्यात्सतिलंनोविमुक्तये ॥ १३ ॥ किङ्गयागमनैःपुंसां किंश्राद्धैर्भूरिदक्षिणैः ॥ यदि काश्यांयमेतीर्थे योगेस्मिन्च्छ्राद्धमाप्यते ॥ १४ ॥ श्राद्धंकृत्वायमेतीर्थे पूजयित्वायमेश्वरम् ॥ यमादित्यंनमस्कृत्य पितॄणामनृणोभवेत् ॥ १५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इतितेद्वादशादित्याः कथिताःपापनाशनाः ॥ यत्सम्भवंसमाकर्ण्य नरोननिरयीभवेत् ॥ १६ ॥ अन्येपिसन्तिघटजरविभक्तैरनेकशः ॥ काश्यांसंस्थापिताःसूर्या गुह्यकार्कादयः किल ॥१७॥ श्रुत्वाध्यायानिमान्पुण्यान् द्वादशादित्यसूचकान् ॥ श्रावयित्वापिनोमर्त्यो दुर्गतिंयातिकुत्रचित्॥११८॥

इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽरुणवृद्धकेशवविमलगङ्गायमादित्यवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

स्कन्दउवाच ॥ गभस्तिमालिनिगते काशींत्रैलोक्यमोहिनीम् ॥ पुनश्चिन्तामवापोच्चैर्मन्दरस्थोमुनेहरः ॥ १ ॥ नाद्याप्यायान्तियोगिन्यो नाद्याप्यायातितिग्मगुः ॥ प्रवृत्तिरपिमेकाश्याश्चित्रमप्यन्तदुर्लभा ॥ २ ॥ किमत्रचि

न्यभी गुह्यकार्क आदि अनेक आदित्य काशीमें प्रसिद्धहैं॥१७॥और बारह सूर्य्योंको सूचन करनेवाले इन पुण्यरूप अध्यायोंको सुनकर व सुनाकर भी मनुष्य दुर्गतिको कहीं नहीं जाता है ॥ ११८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिबेदिविरचितेऽरुणवृद्धकेशवविमलगंगायमादित्यवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥ ५१ ॥

दोहा ॥ इस दुसरे अध्याय में मन्दरसे बिधि जाय। काशी में किययज्ञ दश अश्वमेध उत आय ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! जब किरणमाली सूर्य्यजी त्रिलोक मोहनी काशी को चले गये तब मंदराचलमें टिके शिवजी फिर बड़ी चिंताको प्राप्तहुये ॥ १ ॥ कि वे योगिनियां आजभी नहीं आतीहैं व सूर्य्य देव आजभी

नहीं आतेहै इससे काशीमें मेरी प्रवृत्तिभी अत्यन्त दुर्लभहै यह आश्चर्य्य है ॥ २॥ परन्तु इससे इसमें क्या आश्चर्य्य है जिससे काशीपुरी मेरेभी निश्चल मनको चञ्चल करतीहै तो अन्यदेवमे क्या गणना है ॥ ३ ॥ और यह आश्चर्य्य है कि मैंने त्रिलोकविजयी कामको नेत्रसे जलाडाला है तो भी काशीका अभिलाष यहां मुझकोभी बहुतही तपाता है ॥ ४ ॥ और निश्चय से काशीका हाल हेरने के लिये मैं यहां से किसको पठाऊं जिससे वह चारमुख वालेहैं इससे ब्रह्माजीही जानने के लिये निपुण हैं ॥ ५ ॥ यह विचार कर अधिक आदरपूर्वक ब्रह्माजी को बुलाकर व वहां अपने समीप बैठाकर महादेवजी ने चतुर्मुखसे कहा ॥ ६ ॥ कि, हे कमलसंभव !

त्वंयत्काशी मदीयमपिमानसम् ॥ निश्चलंचञ्चलयतिगणनाकेतरेसुरे ॥ ३ ॥ अधाक्षिषमहंकामं त्रिजगज्जित्वरंदृशा ॥ अहोकाश्यभिलाषोत्र मामेवदुनुयात्तराम् ॥ ४ ॥ काशीप्रवृत्तिमन्वेष्टुं कंवाप्रहिणुयामितः ॥ ज्ञातुङ्कएवनिपुणो यतःसचतुराननः ॥ ५ ॥ इत्याहूयविधातारं बहुमानपुरःसरम् ॥ तत्रोपवेश्यश्रीकण्ठः प्रोवाचचतुराननम् ॥ ६ ॥ योगिन्यःप्रेषिताःपूर्वं प्रेषितोथसहस्रगुः ॥ नाद्यापितेनिवर्तन्ते काश्याःकमलसम्भव ॥ ७ ॥ सासमुत्सुकयेत्काशी लोकेशममानसम् ॥ प्राकृतस्यजनस्येव चञ्चलाक्षीवकाचन ॥ ८ ॥ मन्दरेत्ररतिर्मेन भृशंसुन्दरकन्दरे ॥ अनच्छतुच्छपानीये नक्रस्येवाल्पपल्वले ॥ ९ ॥ नाबाधिष्टतथामांस तापोहालाहलोद्भवः ॥ काशीविरहजन्मात्र यथामामतिबाधते॥१०॥शीतरश्मिःशिरस्थोपि वर्षन्पीयूषसीकरैः ॥ काशीविश्लेषजन्तापं नाहोगमयितुंप्रभुः ॥११॥

पहले योगिनियां पठाई गई उसके बाद सूर्य्यदेव पठाये गये वे अबतक भी काशी से नहीं लौटतेहैं ॥ ७ ॥ हे लोकेश! प्राकृतजनके मनके समान किसी चंचलनयनी स्त्री की नाई वह काशी मेरे मनको भी भलीभांति से उत्कण्ठित करती है ॥ ८ ॥जैसे स्वच्छता रहित थोडेपानीवाले छोटे तड़ाग में मगरकी रति नहींहोती है वैसे ही सुन्दर कन्दर संयुत इस मन्दर पर्वतमें मेरी बड़ी प्रीति नहीं है ॥ ९ ॥ विषसे उत्पन्नहुई उस तापनें वैसे मुझको पीड़ित नहीं किया था जैसे काशीके विरहसे उपजी हुई ताप मुझको बहुत बाधा करती है ॥ १० ॥ आश्चर्य्य है कि माथमें टिकाहुआ भी अमृतके किनकोंको वर्षताहुआ चन्द्रमा काशीके विरहसे उपजीहुई

तापका चलाने को नहीं समर्थ है ॥ ११ ॥ हे धर्मज्ञोंमें धुरीधर, महामते, ब्रह्मन् ! तुम मेरा काम करो कि यहांसे शीघ्रही काशीको जावो और मेरेही हितमें यत्नकरो ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! तुम्हीं काशीके त्यागका वह कारण जानतेहो कि मन्द मनुष्यभी काशीको न छोड़े फिर जो कुछ जानता है उसको क्या कहनाहै ॥ १३ ॥ इससे अपनी माया श्रीपार्वतीके साथ मैं आजही क्या काशीको न चलाजाऊं परन्तु स्वधर्म में टिके हुये दिवोदासराजाको उल्लङ्घन करनेके लिये मैं समर्थ नहींहूं ॥ १४ ॥ हे विधातः ! जिससे तुमही सब कार्य्योंको करतेहो इससे सम्पूर्ण कार्य्य इसभांति से करना चाहिये यह कहने योग्य वचन तुममें व्यर्थ है अर्थात् तुम सब जानतेहो ॥ १५ ॥

विधेविधेहिमेकार्यं मार्यधुर्यमहामते ॥ याहिकाशीमितस्तूर्णं यतस्वचममेहिते ॥ १२ ॥ ब्रह्मंस्त्वमेवतद्वेत्सि काशीत्यजनकारणम् ॥ मन्दोपिनत्यजेत्काशीं किमुयोवेत्तिकिञ्चन ॥ १३ ॥ अद्यैवकिंनगच्छेयं काशींब्रह्मन्स्वमायया ॥ दिवोदासंस्वधर्मस्थं नतूल्लंघितुमुत्सहे ॥ १४ ॥ विधेसर्वंविधेयानि त्वमेवविदधासियत् ॥ इतिचेतिचवक्तव्यं त्वय्यपार्थमतोखिलम् ॥ १५ ॥ अरिष्टंगच्छपन्थास्ते शुभोदर्कोभवत्वलम् ॥ आदायाज्ञांविधिर्मूर्ध्नि ययौवाराणसींमुदा ॥ १६ ॥ सितहंसरथस्तूर्णं प्राप्यवाराणसींपुरीम् ॥ कृतकृत्यमिवात्मान ममन्यततदात्मभूः ॥ १७ ॥ हंसयानफलंमेद्य जातंकाशीसमागमे ॥ काशीप्राप्तौयतःप्रोक्ता अन्तरायाःपदेपदे ॥ १८ ॥ दृशिधातुरभूदद्यमदृशौप्राप्यसान्वयः ॥ स्पष्टंदृष्टिपथंप्राप्ता यदेषाऽऽनन्दवाटिका ॥ १९ ॥ स्वयंसिञ्चतियामद्भिः स्वाभिःस्वर्गतरङ्गिणी ॥ यत्रानन्दमया

और शुभ जैसेहो वैसे जावो व तुम्हारी गली बहुत शुभफलवाली होवे ऐसे कहेगये हुये ब्रह्माजीने माथमें विश्वनाथकी आज्ञाधरकर आनन्दसे आनन्दवनको गमन किया ॥ १६ ॥ तब शीघ्रही काशीपुरीको प्राप्तहोकर श्वेतहंसवाहनवाले ब्रह्माजीने अपनाको कृतार्थके समान माना ॥ १७ ॥ कि जिससे काशीकी प्राप्तिमें क्षण क्षण या, पग पग में विघ्न बहुतही कहेगये हैं उससे आज काशी के समागम में मेरे हंसवाहनका फल प्रकटहुआ ॥ १८ ॥ व जिससे यह आनन्दवाटिका (काशी) स्पष्ट दृष्टिमार्गको प्राप्तहुई याने देखपड़ी उससे आज मेरे दृशों (नेत्रों) को प्राप्तहोकर दृशिर्प्रेक्षणे (देखने अर्थमें बर्त्ततीहुई दृशिर्) धातु अर्थसमेतहै ॥ १९ ॥ जिस आनन्दवाटिका को

गंगाजी आपही अपने जलों से सींचरही हैं व जहां आनन्दमय वृक्ष और आनन्दमय जन हैं ॥ २० ॥ व काशी में सदैव आनन्दवालेभी फल प्रवेश करते हैं व काशी सदैव आनन्द भूमिवाली है, और शिवजी सदा आनन्दके दाताहैं ॥ २१ ॥ उससे काशी मेंही सब जन्तु आनन्दरूप उत्पन्न होते हैं व यहां पुण्यात्मा लोगोंके वेही चरण (पावँ) चलने के लिये जानते हैं ॥ २२ ॥ जे कि पद, विश्वनाथपुरी की पृथ्वी में विचरें व बहुत सुननेवाले वेही कान सुनने के लिये भलीभांति से जानते हैं ॥ २३ ॥ कि इस लोकमें श्रवणसंयुत प्राणियोंके जिनकानों से एकवारभी काशी सुनीगईहै व यहां वहही मनस्वियोंका मन ध्यान करताहै॥ २४॥ कि जिसकरके सब

वृक्षा यत्रानन्दमयाजनाः ॥ २० ॥ निर्विशन्तिसदाकाश्यां फलान्यानन्दवन्त्यपि ॥ सदैवानन्दभूःकाशी सदैवानन्द दःशिवः ॥ २१ ॥ आनन्दरूपाजायन्ते तेनकाश्यांहिजन्तवः ॥ चरणौचरितुंवित्तस्तावेवकृतिनामिह ॥ २२ ॥ चरणौ विचरेतांयौ विश्वभर्तृपुरीभुवि ॥ तावेवश्रवणौश्रोतुं संविदातेबहुश्रुतौ ॥ २३ ॥ इहश्रुतिमतांपुंसां याभ्यांकाशीश्रुतासकृत् ॥ तदेवमनुतेसर्वं मनस्त्विहमनस्विनाम् ॥ २४ ॥ येनानुमन्यतेचैषा काशीसर्वप्रमाणभूः ॥ बुद्धिर्बुध्यतिसासर्वमिहबुद्धिमतांसताम् ॥ ययैतद्धूर्जटेर्धाम ध्रुवंस्वविषयीकृतम् ॥ २५ ॥ वरन्तृणानिधान्यानि तानिवात्याहतान्यपि ॥ काश्यांयान्यापतन्तीह नजनाःकाश्यदर्शनाः ॥ २६ ॥ अद्यमेसफलञ्चायुः परार्धद्वयसम्मितम् ॥ यस्मिन्सतिमया प्रापि दुष्प्रापाकाशिकापुरी ॥ २७ ॥ अहोमेधर्मसम्पत्ति रहोमेभाग्यगौरवम् ॥ यदद्राक्षिषमद्याहं काशींसुचिरचिन्तिताम् ॥ २८ ॥ अद्यमेस्वतपोवृक्षो मनोरथफलैरलम् ॥ शिवभक्त्यंबुनासिक्तः फलितोतिबृहत्तरैः ॥ २९ ॥ मयाऽद्यधा

प्रमाणोंकी भूमि यह काशीपुरी अनुमान कीजाती है व यहां बुद्धिमान् सज्जनोंकी वह बुद्धि सबको निश्चय करती है जिसने निश्चय से महादेवजीके से इस स्थानको अपने विषय कियाहै ॥ २५ ॥बौंडरसे ताड़ितहुयेभी जे तृण व धान्यआदि इस काशीमें सबओरसे गिरतेहैं वे श्रेष्ठ हैं परन्तु काशीको न देखनेवाले जन श्रेष्ठ नहीं हैं॥२६॥ व दोपरार्ध परिमित मेरी आयु आज सफलहुई जिसके होतेही मैंने दुर्लभ काशीपुरी को प्राप्तकिया है ॥ २७ ॥ इससे मेरे धर्मकी सम्पत्ति आश्चर्य्यरूपहै व भाग्यकी गुरुता भी आश्चर्य्य है जिससे मैं बहुतकालसे चिन्तनाकीगई हुई काशीपुरीको आज देखताहूं ॥ २८ ॥ व श्रीशिवजीकी भक्तिरूप पानी से सींचाहुआ मेरा अच्छा तपो-

वृक्ष आज बड़ेभारी फलोंसे बहुतही फलित है ॥ २९ ॥ और सृष्टिको विस्तार करतेहुये मैंने बहुत भांतिकी सृष्टि बनाया परन्तु स्वयं विश्वनाथकी बनाई हुई काशी औरही प्रकारकीहै ॥ ३० ॥ और ऐसे आनन्दसे काशीपुरीको देखकर प्रसन्न मनवाले ब्रह्माजी ने बूढ़े ब्राह्मणके रूपसे दिवोदासराजाको देखा ॥ ३१ ॥ उसके बाद राजासे कियेगये प्रणामवाले व पानीसे भीगे अक्षतोंको हाथमें लियेहुये ब्रह्माजी ने पृथिवीपतिके लिये स्वस्ति शब्दको कहकर उसके दियेहुये आसनको सेवनकिया ॥ ३२ ॥ व सामने उठकर खड़ाहोना और आसनादिको के द्वारा राजासे आदरितहुये उन ब्राह्मणदेवने आनेका कारण पूँछतेहुये भूपतिको विशेषसे जनाया ॥ ३३ ॥

यिबहुधा सृष्टिःसृष्टिंवितन्वता ॥ परमन्यादृशीकाशीस्वयंविश्वेशनिर्मितिः ॥ ३० ॥ इतिहृष्टमनावेधा दृष्ट्वावाराणसीं पुरीम् ॥ वृद्धब्राह्मणरूपेण राजानञ्चददर्शह ॥ ३१ ॥ जलार्द्राक्षतपाणिश्च स्वस्त्युक्त्वापृथिवीभुजे ॥ कृतप्रणामोराज्ञाथ भेजेतद्दत्तमासनम् ॥ ३२ ॥ कृतमानोनृपतिना सोभ्युत्थानासनादिभिः ॥ विप्रोऽव्यजिज्ञपद्भूपं पृष्टागमनकारणम् ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ भूपालबहुकालीनो स्म्यहमत्रचिरन्तनः ॥ त्वन्तुमांनैवजानासि जानेत्वांहिरिपुञ्जयम् ॥ ३४ ॥ परःशतामयादृष्टा राजानोभूरिदक्षिणाः ॥ विजितानेकसंग्रामा यायज्वकाजितेन्द्रियाः ॥ ३५ ॥ विनिष्कृतारिषड्वर्गाः सुशीलाःसत्त्वसालिनः ॥ श्रुतस्यपारदृश्वानो राजनीतिविचक्षणाः ॥ ३६ ॥ दयादाक्षिण्यनिपुणाः सत्यव्रतपरायणाः ॥ क्षमयाक्षमयातुल्या गाम्भीर्यजितसागराः ॥ ३७ ॥ जितरोषरयाःशूराः सौम्यसौन्दर्यभूमयः ॥ इत्यादि

ब्राह्मण बोले कि, हेभूपाल ! इस लोकमें मैं बहुत कालकाहुआ व बड़ा पुरानाहूं और तुम मुझको नहीं जानतेहो व शत्रुवोंके जीतनेवाले तुमको भी मैं जानताहूं॥ ३४ ॥ व मैंने सैकड़ोंसे परे याने असंख्य राजाओंको देखा है जे कि बहुत दक्षिणा देनेवाले, अनेक संग्रामजीतेहुये यज्ञकर्त्ता व जितेन्द्रिय थे ॥ ३५ ॥ व शत्रुभूत मन समेत ज्ञानेन्द्रियोंके विजयी, सुशील, सत्त्वसम्पन्न, शास्त्रों के पारदेखनेहारे, व राजनीतिके पण्डितथे ॥ ३६ ॥ व दयासमेत दाक्षिण्यमें निपुण, सत्यव्रत में परायण, क्षमा से पृथिवी के समान व गम्भीरतासे समुद्रोंको जीतेहुये थे ॥ ३७ ॥ व क्रोधके वेग के विजेता, शूर, शुभसुन्दरताके स्थान, और सुयशरूपधनको सुसंचित कियेहुये

इत्यादि गुणोंसे सम्पन्नथे ॥ ३८ ॥ परन्तु हे राजर्षे ! जो तुम्हारे दो तीन, पवित्र, अच्छे गुणहैं वे बहुधा उन्हीं इन राजाओंमें मेरे नेत्र या ज्ञानको नहीं प्राप्तहुये ॥३९॥ जैसे तुम प्रजाओंसे अपने कुटुम्बवालेहो याने उनको पुत्रादिकोंके समानपोषण करतेहो व तुम ब्राह्मण देवतावालेहो और तुम महातपस्वियोंके सहायकहो वैसे अन्य नरेश नहीं हैं ॥ ४० ॥ हे दिवोदास ! तुम धन्य व माननीयहो और अच्छे गुणोंसे सज्जनोंके पूजनीयहो व तुम्हारेडरसे देवलोगभी कुमार्गगामी नहीं हैं ॥ ४१ ॥ हेनृप! धनादि की चाहसे हीन हम ब्राह्मणलोगों को तुम्हारी स्तुति से क्या है तो भी हम क्याकरें तुम्हारे गुणसमूह हमलोगों को स्तुति कर्ता बनाते हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! यह

गुणसम्पन्नाःसुसञ्चितयशोधनाः ॥ ३८ ॥ परंद्वित्राःपवित्राये राजर्षेतवसद्गुणाः ॥ तेष्वेषुराजसुमम प्रायशोनदृश ङ्गताः ॥ ३९ ॥ प्रजानिजकुटुम्बस्त्वं त्वन्तुभूदेवदैवतः ॥ महातपःसहायस्त्वं यथानान्येतथान्नृपाः ॥ ४० ॥ धन्यो मान्योसिचसतां पूजनीयोसिसद्गुणैः ॥ देवाअपिदिवोदास त्वत्त्रासान्नविमार्गगाः ॥ ४१ ॥ किंनःस्तुत्यातव नृप द्विजानामस्पृहावताम् ॥ किंकुर्मस्त्वद्गुणग्रामाः स्तावकान्नःप्रकुर्वते ॥ ४२ ॥ गोष्ठीतिष्ठत्वियंतावत्प्रस्तुतंस्तौमि सांप्रतम् ॥ यष्टुकामोस्म्यहंराजंस्त्वांसहायमतोवृणे ॥ ४३ ॥ त्वयाराजन्वतीचैषाऽवनिःसर्वर्द्धिभाजनम् ॥ अहंचास्ति धनोराजन् न्यायोपात्तमहाधनः ॥ ४४ ॥ इयञ्चराजधानीते कर्मभूमावनुत्तमा ॥ यस्यांकृतानांकार्याणां संवर्तेपिन संक्षयः ॥ ४५ ॥ सञ्चितंयद्धनंपुम्भिर्नयसन्मार्गगामिभिः ॥ तत्काश्यांविनियुज्येत क्लेशायेतरथाभवेत् ॥ ४६ ॥ महिमा नंपरंकाश्याः कोपिवेदनभूपते ॥ ऋतेत्रिनयनाच्छम्भोः सर्वज्ञानप्रदायिनः ॥ ४७ ॥ मन्येधन्यतरोसित्वं बहुजन्मश

वार्ता तबतक रहे किन्तु अब प्रकरण के अनुसार वचन को कहता हूं कि, इस समय मैं यज्ञ करने की इच्छावाला हूं इससे तुमको सहायक स्वीकार करता हूं ॥ ४३ ॥ व हे राजन् ! सब ऋद्धियोंकी पात्र यह पृथ्वी तुमसे राजावाली है और मैं न्याय से महाधन संग्रह करनेवाला व धनवान् हूं ॥ ४४ ॥ और यह तुम्हारी राजधानी कर्मभूमि में अधिक उत्तम है जिसमें कियेहुये कर्म्मों का विनाश कल्पान्तमें भी नहीं होता है ॥ ४५ ॥ व नीति समेत सुमार्गगामी पुरुषों ने जो धन बटोरा वह काशी मे विशेषता से कर्मों में जोडाजावे अन्यथा क्लेश के लिये होवे है ॥ ४६ ॥ हे भूपते ! सब ज्ञान के प्रदायक, त्रिनेत्र, पार्वतीनायक बिना कोई भी काशी की उ-

त्तम महिमा को नहीं जानता है ॥ ४७ ॥ इस से मैं मानता हूं कि तुम बड़े धन्यहो जिससे बहुत शत जन्मों में बटोरे सुकर्म्मों से या उनकी पुण्यों से विश्वनाथ की अन्यमूर्तिहुई काशीको पालते हो ॥ ४८ ॥ महर्षियो ने ऐसा निर्णय कियाहै कि श्रीकाशीपुरीही तीनों लोकों का सार व तीनों वेदों का सार और अर्थादि त्रिवर्ग के उपरान्त का सारभी है ॥ ४९ ॥ इससे विश्वनाथ के अनुग्रहसेही तुम करके यह पुरी पालीजाती है क्योंकि काशी में एक जन की रक्षा करने से त्रिलोकरक्षित होवे है ॥ ५० ॥ हे अपाप ! मैं तुम्हारे अन्यभी हितको कहताहूं कि जो तुमको रुचे तो सदैव सब कर्मों से एक (मुख्य या केवल) विश्वनाथजी प्रसन्न करने योग्य

तार्जितैः ॥ सुकृतैःपासियत्काशीं विश्वभर्तुःपरान्तनुम् ॥ ४८ ॥ काशीत्रिजगतीसारस्त्रिवेदीसारएववै ॥ त्रिवर्गोत्तर सारश्च निर्णीतेतिमहर्षिभिः ॥ ४९ ॥ विश्वेशानुग्रहेणैव त्वयैषापाल्यतेपुरी ॥ एकस्याप्यवनात्काश्यां त्रैलोक्यमवित स्भवेत् ॥ ५० ॥ अन्यच्चतेहितंवच्मि यदितेरोचतेऽनघ ॥ प्रीणनीयःसदैवैको विश्वेशःसर्वकर्मभिः ॥ ५१ ॥ अन्य देवधियाराजन् विश्वेशंपश्यमाक्वचित् ॥ ब्रह्मविष्णिवन्द्रचन्द्रार्काः क्रीडयन्तस्यधूर्जटेः ॥ ५२ ॥ विप्रैरुद्र्कमिच्छद्भिः शिक्षणीयायतोनृपाः ॥ अतस्तवहितंख्यातं किंवामेचिन्तयानया ॥ ५३ ॥ इतिजोषंस्थितंविप्रं प्रत्युवाचनृपोत्तमः ॥ सर्वंमयाहृदिधृतंयत्त्वयोक्तंद्विजोत्तम ॥ ५४ ॥ राजोवाच ॥ अहंयियक्षमाणस्य तवसाहाय्यकर्मणि ॥ दासोऽस्मियज्ञ सम्भारान्नयमेकोशतोऽखिलान् ॥ ५५ ॥ यदस्तिमेखिलन्तन्न सम्राङ्गेपिमहान्प्रभुः ॥ यजस्वैकमनाब्रह्मन् सिद्धंमन्य

हैं॥५१॥हे राजन् ! अन्य देवों की समान बुद्धि से विश्वनाथ जी को कभी, या कहीं मत देखो क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य्य यह सब उन शङ्करजी का खेल है ॥ ५२ ॥ जिससे उत्तर फलको चाहते हुये ब्राह्मणों करके राजालोग सिखाने योग्य हैं इससे तुम्हारा हित कहागया अथवा इस चिन्तना से मुझको क्या है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार चुपचाप टिकेहुये ब्राह्मण के प्रति नृपोत्तम बोला कि हे द्विजोत्तम ! तुमने जो कहा उस सबको मैंने हृदय में धरलिया ॥५४॥ दिवोदास राजा बोला कि, यज्ञ करने को चाहतेहुये तुम्हारी सहायता के योग्य कर्म्म में मैं दास हूं और तुम मेरे कोश (खजाना) से सम्पूर्ण, यज्ञसामग्रियों को लेजावो ॥ ५५ ॥

हे ब्रह्मन् ! जो सब कुछ मेरे " स्वामी, अमात्य, सुहृद्, कोश, राष्ट्र, दुर्ग और सैन्य " इस सप्ताङ्ग में भी है उसको भी लो और समर्थ आप, सावधान होकर यज्ञकरो व अपने वाञ्छित को सिद्धमानो ॥ ५६ ॥ हे ब्रह्मन् ! जो मैं राज्य करताहूं वह अपने अर्थ कुछ भी नहीं है क्योंकि पुत्रों स्त्रियों और देहसे भी परोपकार के लिये यत्न करता हूं ॥ ५७ ॥ और यज्ञक्रियाओं से भी वसबओर के तीर्थों से भी अधिक राजाओंका मुख्य धर्म प्रजाओं का पालनाही बुद्धिमानों ने कहाहै ॥५८॥ व प्रजाओं के सन्तापसे उपजीहुई अग्नि वज्राग्नि से भी अधिक दारुणहै क्योंकि वज्रपातकी अग्नि दो तीन जनों को जलाती है और पहली याने प्रजासन्तापजा-

स्ववाञ्छितम् ॥ ५६ ॥ राज्यंकरोमियद्ब्रह्मन् स्वार्थंतन्नमनागपि ॥ पुत्रैःकलत्रैर्देहेन परोपकृतयेयते ॥ ५७ ॥ राज्ञां क्रतुक्रियाभ्योपि तीर्थेभ्योपिसमन्ततः ॥ प्रजापालनमेवैको धर्मःप्रोक्तोमनीषिभिः ॥ ५८ ॥ प्रजासन्तापजोवह्निर्वज्राग्नेरपिदारुणः ॥ द्वित्रान्दहतिवज्राग्निः पूर्वोराज्यंकुलंतनुम् ॥ ५९ ॥ यदावभृथसिस्नासुर्भवेयंद्विजसत्तम ॥ तदाविप्रपदाम्भोभिरभिषेकङ्करोम्यहम् ॥ ६० ॥ हवनंब्राह्मणमुखेयत् करोमिद्विजोत्तम ॥ मन्येक्रतुक्रियाभ्योपि तद्विशिष्टंमहामते ॥ ६१ ॥ अभिलाषेषुसर्वेषु जागर्त्येकोहृदीहमे ॥ अद्यापिमार्गणःकोपिद्रष्टव्यःस्वतनोरपि ॥ ६२ ॥ अहोअहोभिर्बहुभिःफलितोमेमनोरथः ॥ यत्त्वंमेगृहेप्राप्तः किञ्चित्प्रार्थयितुंद्विज ॥ ६३ ॥ एकाग्रमानसोविप्रयज्ञान्विपुलदक्षिणान् ॥ बहून्यजक्रतंविद्धिसाहाय्यंसर्ववस्तुषु ॥ ६४ ॥ इतिराज्ञोमहाबुद्धेर्धर्मशीलस्यभाषितम् ॥ श्रुत्वातुष्टमनाःस्रष्टा

ग्नि राज्य, कुल, व देह को भी दहदेती है ॥ ५९ ॥ हे द्विजसत्तम ! जब मैं यज्ञान्तस्नानका चाही होताहूं तब ब्राह्मणों के पदप्रक्षालन पानी से अभिषेक करता हूं ॥ ६० ॥ हे महामते,द्विजोत्तम ! मैं ब्राह्मणों के मुख में जो हवन करता हूं उसको यज्ञक्रियाओं से भी अधिक मानताहूं ॥ ६१ ॥ व यहां मेरे हृदय में सब अभिलाषों के बीच में से एक यह मनोरथ अबभी जागता है कि अपनी देह का भी याचक कोई भी देखने योग्य है ॥ ६२ ॥ हे द्विजोत्तम ! आश्चर्य्य है कि जिससे तुम कुछ मांगने को मेरे घरमें प्राप्तहुये हो इससे मेरा मनोरथ बहुत दिनों से आज सफल हुआ है ॥ ६३ ॥ हे विप्र ! तुम एकाग्रचित्त होकर बहुत दक्षिणायुक्त अनेक यज्ञों

को पूजनकरो व सब वस्तुओं में सहायता को की हुई जानो ॥ ६४ ॥ ऐसे महाबुद्धिमान्, धर्मशील, दिवोदास राजाका वचन सुनकर संतुष्टमन, ब्रह्माजी ने यज्ञ संभार को सब ओर से बटोर लिया ॥ ६५ ॥ व दिवोदास राजर्षिकी सहायता को प्राप्तहोकर कमलजन्मजीने दश अश्वमेध नामक महायज्ञों से काशीमें पूजनाकिया ॥ ६६ ॥ उससे जब से लगाकर आकाश का अंतर होमके धूमसमूहों से भरगया तबसे लगाकर यह आकाश अबभी श्यामताको नहीं छोड़ताहै ॥ ६७ ॥ व तबसे लगा कर पृथिवीतल में प्रसिद्ध, महामङ्गलदायक, दशाश्वमेधनामक तीर्थ काशी के बीच उस यज्ञवाट में होगया ॥ ६८ ॥ हे कुम्भसम्भव ! जो कि पहले रुद्रसरनामक

क्रतुसम्भारमाहरत् ॥ ६५ ॥ साहाय्यंप्राप्यराजर्षेर्दिवोदासस्यपद्मभूः ॥ इयाजदशभिःकाश्यामश्वमेधैर्महामखैः ॥ ६६ ॥ अद्यापिहोमधूमौघैर्यद्व्याप्तङ्गगनान्तरम् ॥ तदाप्रभृतिनव्योमनीलिमानञ्जहात्यदः ॥ ६७ ॥ तीर्थंदशाश्वमेधाख्यं प्रथितञ्जगतीतले ॥ तदाप्रभृतितत्रासीद्वाराणस्यांशुभप्रदम् ॥ ६८ ॥ पुरारुद्रसरोनाम तत्तीर्थंकलशोद्भव ॥ दशाश्वमेधिकंपश्चाज्जातंविधिपरिग्रहात् ॥ ६९ ॥ स्वर्धुन्यथततःप्राप्ताभगीरथसमागमात् ॥ अतीवपुण्यवज्जातमतस्तत्तीर्थमुत्तमम् ॥ ७० ॥ विधिर्दशाश्वमेधेशं लिङ्गंसंस्थाप्यतत्रवै ॥ स्थितवान्नगतोद्यापि क्वापिकाशींविहायतु ॥ ७१ ॥ राज्ञोधर्मरतेस्तस्यच्छिद्रंनावापकिञ्चन ॥ अतःपुरारेःपुरतो व्रजित्वाकिंवदेद्विधिः ॥ ७२ ॥ क्षेत्रप्रभावंविज्ञाय ध्यायन्विश्वेश्वरंशिवम् ॥ ब्रह्मेश्वरंचसंस्थाप्य विधिस्तत्रैवसंस्थितः ॥ ७३ ॥ परातनुरियंकाशी विश्वेशस्येतिनिश्चि

तीर्थ था वह पीछे से ब्रह्माका सम्बन्ध लेने से दशाश्वमेधिक प्रकटहुआ ॥ ६९ ॥ उसके बाद भगीरथराजाके समागमसे स्वर्ग नदी (गङ्गा) तहां प्राप्तहुई इससे वह उत्तम तीर्थ अत्यन्त पुण्यवान् प्रसिद्ध होताभया ॥ ७० ॥ वहांही दशाश्वमेधेश्वर लिंग को संस्थापनकर ब्रह्माजी टिकेहैं और अबभी काशी को छोड़कर कहीं नहीं गये हैं ॥ ७१ ॥ क्योंकि ब्रह्माजी ने उस धर्मस्नेही राजा के किसी छिद्रको न पाया इस से वह शिवजी के आगे जाकर क्या कहें ॥ ७२ ॥ व क्षेत्रका प्रभाव जानकर और ब्रह्मेश्वर का संस्थापनकर श्रीविश्वनाथ शिवजी को ध्यावते हुये ब्रह्माजी वहांही भलीभांति से टिकगये ॥ ७३ ॥ यह निश्चित है कि,यह काशीपुरी विश्वनाथ

की उत्तम मूर्ति है व इस पुरी की भली भांति सेवा करने से शंकर जी मुझपर न कोप करेंगे ॥ ७४ ॥ इस लोक मे अनेक जन्पजनित कर्मों के निर्मूल करने को समर्थ काशीपुरी को पहुँचकर कौन दुर्बुद्धिजन फिर त्यागने के लिये व्यापार करताहै ॥ ७५ ॥ युक्त है कि समस्तसंतापविनाशी, अविनाशी, विश्वनाथकी देह काशीके वियोग से उपजी हुई बड़ी अग्नि से भलीभांति बहुतही तपाई जाती है ॥ ७६ ॥ और जोकि सकलपापसमूहनाशिका, काशिकापुरी को प्राप्त होकर त्यागदेवै वह महासौख्यसे विमुख हुवा मनुष्यो मे पशु के समान सब ओरसे जानने योग्य है ॥ ७७ ॥ व जो शिवके अनुग्रह से काशी मिलीहो तो जो जन ससारकी दुर्गतिको

तम् ॥ अस्याःसंसेवनाच्छम्भुर्नकुप्यतिमयि ॥ ७४ ॥ कःप्राप्यकाशींदुर्मेधाःपुनस्त्यक्तुमिहेहते ॥ अनेकजन्मज नितकर्मनिर्मूलनक्षमाम् ॥ ७५ ॥ विश्वसन्तापसंहर्तुः स्थानेविश्वपतेस्तनुः ॥ सन्ताप्यतेतरांकाश्या विश्लेषजमहाग्निना ॥ ७६ ॥ प्राप्यकाशीन्त्यजेद्यस्तु समस्ताघौघनाशिनीम् ॥ नृपशुःसपरिज्ञेयो महासौख्यपराङ्मुखः ॥ ७७ ॥ निर्वाणलक्ष्मींयःकाङ्क्षे त्त्यक्त्वासंसारदुर्गतिम् ॥ तेनकाशीनसन्त्याज्या यद्यास्तैशादनुग्रहात् ॥ ७८ ॥ यःकाशींसम्परित्यज्य गच्छेदन्यत्रदुर्मतिः ॥ तस्यहस्ततलाद्गच्छेच्चतुर्वर्गफलोदयः ॥ ७९ ॥ निर्वहणीमघौघस्यसुपुण्यपरिबृंहिणीम् ॥ कःप्राप्यकाशींदुर्मेधास्त्यजेन्मोक्षसुखप्रदाम् ॥ ८० ॥ सत्यलोकेक्वतत्सौख्यं क्वसौख्यंवैष्णवेपदे ॥ यत्सौख्यंलभ्यतेकाश्यां निमेषार्धनिषेवणात् ॥ ८१ ॥ वाराणसीगुणगणान्निर्णीयद्रुहिणस्त्विति ॥ व्यावृत्यमन्दरगिरिंनपुनः

त्यागकर मोक्षकी संपत्ति को चहे उस को काशी न छोंडना चाहिये ॥ ७८ ॥ और जो दुर्बुद्धि मनुष्य काशी को भलीभांति से परित्याग करके अन्यत्र जावे उस के हस्ततल से अर्थ,धर्म,काम, मोक्ष नामक चतुर्वर्ग फलका उदय चलाजावे ॥ ७९ ॥ इस से कौन कुबुद्धि मनुष्य मोक्ष सुखदात्री, सुपुण्यो की धात्री (सब ओर से बढ़ानेवाली) पापसमूहनाशिका काशिका को प्राप्तहोकर त्यागदेवे ॥ ८० ॥ किन्तु आधे निमेष कालतक भी सेवा करने से काशी मे जो सौख्य मिलता है वह सौख्य सत्यलोक मे कहा है और वह सौख्य विष्णु के लोक में कहां है ॥ ८१ ॥ हे मुने ! इस भांति काशी के गुण गणों को निश्चयकर ब्रह्माजी मंदराचलको व्यावर्तनकर

याने लौटजाना बंद करके फिर शिवजी के प्रति नहीं गये हैं ॥ ८२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मित्रावरुण के पुत्र अगस्त्यजी! मैं काशी में सब तीर्थशिरोमणि, दशाश्वमेध की महिमा को कहताहूं ॥ ८३ ॥ कि, सबतीर्थों में उत्तमोत्तम, दशाश्वमेधिक तीर्थ को प्राप्तहोकर जो कुछ कर्म कियाजाता है वह यहां अक्षय (नाशरहित) कहा गया है ॥ ८४ ॥ स्नान, दान, जप, होम, वेदादिपाठ, देवपूजा, संध्योपासन, तर्पण, श्राद्ध, और पितरोंकी पूजा इत्यादि सबकर्म सफल होता है ॥ ८५ ॥ व एक बारभी दशाश्वमेधिक तीर्थमें स्नान करके दशाश्वमेधेश्वर को देखकर मनुष्योत्तम सब पापों से विमुक्तहोजाता है ॥ ८६ ॥ व ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष

प्रत्यगान्मुने ॥ ८२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मित्रावरुणयोःपुत्र महिमानंब्रवीमिते ॥ काश्यान्दशाश्वमेधस्य सर्वतीर्थशिरोमणेः ॥ ८३ ॥ दशाश्वमेधिकंप्राप्य सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ यत्किञ्चित्क्रियतेकर्म तदक्षयमिहेरितम् ॥ ८४ ॥ स्नानंदानंजपोहोमःस्वाध्यायोदेवतार्चनम् ॥ सन्ध्योपास्तिस्तर्पणंचश्राद्धंपितृसमर्चनम् ॥ ८५ ॥ दशाश्वमेधिकेतीर्थे सकृत्स्नात्वानरोत्तमः ॥ दृष्ट्वादशाश्वमेधेशं सर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ८६ ॥ ज्येष्ठेमासिसितपक्षे प्राप्यप्रतिपदन्तिथिम् ॥ दशाश्वमेधिकेस्नात्वा मुच्यतेजन्मपातकैः ॥ ८७ ॥ ज्येष्ठेशुक्लद्वितीयायां स्नात्वारुद्रसरोवरे ॥ जन्मद्वयकृतंपापं तत्क्षणादेवनश्यति ॥ ८८ ॥ एवंसर्वासुतिथिषु क्रमस्नायीनरोत्तमः ॥ आशुक्लपक्षदशमिप्रतिजन्माघमुत्सृजेत् ॥ ८९ ॥ तिथिंदशहरांप्राप्य दशजन्माघहारिणीम् ॥ दशाश्वमेधिकेस्नातो यामींपश्येन्नयातनाम् ॥ ९० ॥ लिङ्गन्दशाश्वमेधेशं दृष्ट्वादशहरातिथौ ॥ दशजन्मार्जितैःपापैस्त्यज्यतेनात्रसंशयः ॥ ९१ ॥ स्नातोदशहरायांयः पूजयेल्लिङ्गमुत्त

में प्रतिपदा तिथिको प्राप्तहो दशाश्वमेधिक तीर्थ में स्नानकर जन्मभरे के पापों से छूटजाताहै ॥ ८७ ॥ व ज्येष्ठसुदी द्वितीयाके होतेही रुद्र सरोवरमें स्नानकर दोजन्मों का किया हुवा पाप उसी क्षण में नष्टहोता है ॥ ८८ ॥ ऐसे उजेले पाखकी दशमी तक सब तिथियों में क्रमसे नहानेवाला नरोत्तम प्रति जन्मों के पापों को त्यागदेवे ॥ ८९ ॥ व दशजन्मों के पापों की हरनेहारी दशहरा तिथिको प्राप्तहोकर दशाश्वमेधिक तीर्थमें नहाया हुवा मनुष्य यमकी यातना को न देखे ॥ ९० ॥ व दशहरा तिथिमें दशाश्वमेधेश्वर लिंग के दर्शनकर दशजन्मों के बटोरेहुये पापों से त्यागा जाता है इस में संशय नहीं है ॥ ९१ ॥ जोकि दशहरा में नहायाहुवा नर भक्ति से

दशाश्वमेधेश्वर उत्तम लिंगको पूजै उसको गर्भकी दशा न स्पर्शकरे ॥ ९२ ॥ व ज्येष्ठ मास के उजेले पाख में पंद्रह दिनतक रुद्रसरोवर में स्नानकर वार्षिकी यात्रा को करता हुवाभी मनुष्य विघ्नोंसे नहीं अनाहत होता है ॥ ९३ ॥ व दशाश्वमेध यज्ञोंके अंतमें स्नानोंसे भलीभांति जो फलहै वह दशहरा तिथिमें निश्चयसे दशाश्वमेध तीर्थमें स्नान करके प्राप्त किया जाताहै ॥ ९४ ॥ व गंगा के पश्चिम तीर में दशहरेश्वर के नमस्कारकर परमपुण्यात्मा पुरुष दुर्दशाको कहीं नहीं प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ और काशी में जो अंतरगेह का दक्षिण द्वार कहाता है वहां ब्रह्मेश्वरको देखकर ब्रह्मलोक में पूजाजाताहै ॥ ९६ ॥ इस भांति जबतक विश्वनाथ का आना हुवा तबतक

मम॥भक्त्यादशाश्वमेधेशं नतद्गर्भंदशास्पृशेत॥९२॥ज्येष्ठेमासिसितेपक्षे पक्षंरुद्रसरेनरः॥ कुर्वन्वैवार्षिकींयात्रांनवि घ्नैरभिभूयते॥९३॥ दशाश्वमेधानभृथैर्यत्फलंसम्यगाप्यते॥ दशाश्वमेधेतन्नूनंस्नात्वादशहरातिथौ॥९४॥ स्वर्धुन्याः पश्चिमेतीरे नत्वादशहरेश्वरम्॥ नदुर्दशामवाप्नोति पुमान्पुण्यतमःक्वचित्॥ ९५॥ यत्काश्यांदक्षिणद्वारमन्तर्गेहस्य कीर्त्यते॥ तत्रब्रह्मेश्वरंदृष्ट्वा ब्रह्मलोकेमहीयते॥९६॥ इतिब्राह्मणवेषेण वाराणस्यांमहाधिया॥ द्रुहिणेनस्थितंतावद्याव द्विश्वेश्वरागमः॥९७॥ दिवोदासोपिराजेन्द्रो वृद्धब्राह्मणरूपिणे॥ ब्रह्मणेकृतयज्ञाय ब्रह्मशालामकल्पयत्॥९८॥ ब्रह्मे श्वरसमीपेतु ब्रह्मशालामनोहरा॥ ब्रह्मातत्रावसद्व्योम ब्रह्मघोषैर्निनादयन्॥ ९९॥ इतितेकथितोब्रह्मन्माहिमातिमहत्त रः॥ दशाश्वमेधतीर्थस्य सर्वाघौघविनाशनः॥१००॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यं श्रावयित्वातथैवच॥ ब्रह्मलोकमवाप्नोति श्रद्धयामानवोत्तमः॥ १०१॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे दशाश्वमेधवर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

बड़े बुद्धिमान्, ब्राह्मणवेष, ब्रह्माजीने काशीमें वास किया ॥ ९७ ॥ व दिवोदास राजेन्द्रनेभी वृद्धब्राह्मणवेषधारी, यज्ञकारी ब्रह्माजीके लिये वेदशाला बनवादिया ॥ ९८ ॥ जोकि ब्रह्मेश्वर के समीप में मनोहर ब्रह्मशालाहै उसमें वेदघोषोंसे आकाश को अधिक शब्दायमान करते हुये ब्रह्माजीने निवास किया ॥ ९९ ॥ हे ब्रह्मन् ! सब पापसमूहहारी, बड़ाभारी दशाश्वमेध तीर्थका माहात्म्य मैंने तुमसे कहा और वह समाप्त हुवा ॥ १०० ॥ व श्रद्धासे इस पुण्य रूप अध्यायको सुनकर वैसेही सुनाकर मनुष्योत्तम ब्रह्मलोक को प्राप्तहोता है ॥ १०१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते दशाश्वमेधवर्णनंनामद्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

दोहा ॥ तिरपनके अध्यायमें शंकुकर्ण गण आदि। शिवप्रेरित काशी गये तासु महात्म्य अनादि ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे ब्रह्मवित्तम ! आपने यह अपूर्व, ब्रह्माजीकी कथा कही और जब ब्रह्माजी भी वहां टिकगये तब शङ्करजीने फिर क्या किया ॥१॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाभाग, अगस्त्यजी ! तुम सुनो कि जब काशी में ब्रह्माजी भी टिकगये तब उद्वेग समेत मनवाले महादेवजीने बहुतही चिन्तना किया ॥ २ ॥ कि वशीकरणकी भूमि जैसी वह काशीपुरी है वैसी इस लोक में बहुधा निश्चयसे मेरी दृष्टि में कहीं नहीं हुई है॥ ३ ॥ व जो जो उस पुरीको जाताहै वह वह वहां टिक रहता है यह सन्देह है कि काशी में भलीभांति गई हुई

अगस्तिरुवाच ॥ अपूर्वेयंकथाख्याताब्रह्मणोब्रह्मवित्तम ॥ किंचकारपुनःशम्भुस्तत्रब्रह्मण्यपिस्थिते ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ शृण्वगस्त्यमहाभागकाश्यांब्रह्मण्यपिस्थिते ॥ गिरिशश्चिन्तयामासभृशमुद्विग्नमानसः ॥ २ ॥ पुरीसायादृशीकाशी वशीकरणभूमिका ॥ नतादृशीदृशीहासीत्कचिन्मेप्रायशोध्रुवम् ॥ ३ ॥ योयोयातिपुरींतान्तु ससतत्रैवतिष्ठति ॥ अभूवन्ननुयोगिन्योऽयोगिन्यःकाशिसङ्गताः ॥ ४ ॥ अकिञ्चित्करतांप्राप्तः ससहस्रकरोप्ययम् ॥ विधिर्विधानदक्षोपि नमेसमविधोभवत् ॥ ५ ॥ चिन्तयन्नितिदेवेशोगणानाहूयभूरिशः ॥ प्रेषयामासभोयात क्षिप्रंवाराणसींपुरीम् ॥ ६ ॥ किंकुर्वन्तितुयोगिन्यःकिङ्करोतिसभानुमान् ॥ गत्वावित्तत्वरायुक्ता विधिश्चविदधातिकिम् ॥ ७ ॥ नामग्राहन्ततोऽप्रैषीद्बहुमानपुरःसरम् ॥ शङ्कुकर्णमहाकाल घण्टाकर्णमहोदर ॥ ८ ॥ सोमनन्दिन्नन्दिषेणकालपिङ्गलकुक्कुट ॥ कुण्डोदरमयूराक्ष बाणगोकर्णतारक ॥ ९ ॥ तिलपर्णस्थूलकर्णद्रुमिचण्डप्रभामय ॥ सुकेशविन्दतेच्छाग

योगिनियां योगसे हीन भोगिनियां होगई ॥ ४ ॥ व वह सूर्य्यदेवभी कुछ न करसकनेवाले के भावको अत्यन्त प्राप्तहोगये और विधान में दक्षभी वह ब्रह्माजी भी मेरा कार्य्य करने में विधान समेत न हुये ॥ ५ ॥ ऐसे विचारतेहुये महादेवजीने बहुते गणोंको बुलाकर पठाया कि हे गणो ! तुम काशीपुरीको शीघ्रही चलेजावो ॥ ६ ॥ व वेगयुक्त होकर जाकर जानो कि योगिनियां क्या करती हैं व सूर्य्य क्या करता है और ब्रह्माभी क्या करता है ॥ ७ ॥ उसके बाद नामग्रहणकरके अधिक आदरपूर्वक पठाया कि हे शंकुकर्ण ! हे महाकाल ! हे घण्टाकर्ण ! हे महोदर ! ॥ ८ ॥ हे सोमनन्दिन् ! हे नन्दिषेण ! हे काल ! हे पिङ्गल ! हे कुक्कुट ! हे कुण्डोदर ! हे मयू-

राक्ष ! हे बाण ! हे गोकर्ण ! हे तारक ! ॥ ९ ॥ हे तिलपर्ण ! हे स्थूलकर्ण ! हे द्रमिचण्ड ! हे प्रभामय ! हे सुकेश ! हे विन्दते ! हे छाग ! हे कपर्दिन् ! हे पिङ्गलाक्षक ! ॥ १० ॥ हे वीरभद्र ! हे किराताख्य ! हे चतुर्मुख ! हे निकुम्भक ! हे पञ्चाक्ष ! हे भारभूत ! हे त्र्यक्ष ! हे क्षेमक ! हे लाङ्गलिन् ! ॥ ११ ॥ हे विराध ! हे सुमुख ! हे आषाढे ! आपलोग वैसे मेरे पुत्र हैं कि जैसे ये स्कन्द व गणेश और जैसे यह नैगमेय ॥ १२ ॥ जैसे शाख व विशाख और जैसे नन्दी व भृंगी हैं परन्तु बड़े विक्रमशाली आपलोगोंके विद्यमानरहतेही ॥ १३ ॥ मैं काशीपुरी व दिवोदासराजा योगिनी, सूर्य्य और ब्रह्माकी भी प्रवृत्तिको नहीं जानताहूं उससे ये दोनों तुम जावो ॥१४॥

कपर्दिन्पिङ्गलाक्षक ॥ १० ॥ वीरभद्रकिराताख्य चतुर्मुखनिकुम्भक ॥ पञ्चाक्षभारभूताख्यत्र्यक्षक्षेमकलाङ्गलिन् ॥ ११ ॥ विराधसुमुखाषाढे भवन्तोममसूनवः ॥ यथेमौस्कन्दहेरम्बौ नैगमेयोयथात्वयम् ॥ १२ ॥ यथाशाखविशाखौ चयथेमौनन्दिभृङ्गिणौ ॥ भवत्सुविद्यमानेषु महाविक्रमशालिषु ॥ १३ ॥ काशीप्रवृत्तिंनोजाने दिवोदासनृपस्यच ॥ योगिन्यर्कविधीनांच तद्द्वौयातंभवत्स्वमू ॥ १४ ॥ शङ्कुकर्णमहाकालौ कालस्यापिप्रकम्पनौ ॥ ज्ञातुंवाराणसी वार्तामायातंचत्वरान्वितौ ॥ १५ ॥ कृतप्रतिज्ञौतौतूर्णं प्राप्यवाराणसींपुरीम् ॥ शङ्कुकर्णमहाकालौ विस्मृत्यशाम्भवीं गिरम् ॥१६॥ यथेन्द्रजालिकींदृष्ट्वा मायामिहविचक्षणः ॥ क्षणेनमोहमायाति काशींवीक्ष्यतथैवतौ ॥ १७ ॥ अहो मोहस्यमाहात्म्यमहोभाग्यविपर्ययः ॥ निर्वाणराशिंयत्काशीं प्राप्ययान्त्यन्यतोऽबुधाः ॥ १८ ॥ तत्यजेयैरियंकाशी महाशीर्वादभूमिका ॥ तेषांकरतलान्मुक्तिःप्राप्तापिपरितोगता ॥ १९ ॥ यत्रसर्वावभृथतःस्नानमात्रंविशिष्यते ॥

काशीकी वार्ता जानने के लिये और हे शंकुकर्ण व महाकाल ! कालके भी बहुत कंपानेवाले तुम दोनों जने शीघ्रता समेत होकर लौट आवो ॥१५॥ और जे कि शंकुकर्ण व महाकाल ये दोनों थे वे प्रतिज्ञा कियेहुये थे व शीघ्रही काशीपुरी में पहुँचकर शङ्करका वचन बिसरकर ॥ १६ ॥ व काशीको देखकर वे दोनों वैसेही होगये कि जैसे यहां इन्द्रजालिकी मायाको देखकर पण्डितजन भी क्षणमें मोहको सब ओरसे प्राप्तहोता है ॥ १७ ॥ इससे मोहका माहात्म्य आश्चर्य्यरूपहै और भाग्यका उलटा होना आश्चर्य्यरूप है जिससे काशीको प्राप्तहोकर मूर्ख मनुष्य अन्यत्र चलेजाते हैं ॥ १८ ॥ व जिन्होंने बड़े आशीर्वादोंकी भूमिका, काशिका पुरी को त्यागदिया

उनके हाथसे प्राप्तभी मुक्ति सब ओरको चलीगई ॥१९॥ जहां तप्तकिये पानी से भी स्नानमात्र सब यज्ञान्तरस्नानोंसे अधिक होताहै उस काशीको कौन प्राणी परित्याग करे ॥ २० ॥ जहां शिवलिंगके शिरमें एक फूल देनेसे दशतोले सोना दानकी पुण्य है उस काशीको कौन परित्याग करे ॥ २१ ॥ जहां शिवजीके आगे एकही दण्डप्रणाम से इन्द्रके पदको तुच्छ कहते हैं उस काशीको कौन परित्याग करे ॥ २२ ॥ जहां एक द्विजमात्रको और अन्यजनको भी यथेच्छा से याने उसकी इच्छानुसार खिला पिलाकर वाजपेय यज्ञसे अधिक पुण्य है उस काशी को कौन परित्यागकरे ॥ २३ ॥ जहां ब्राह्मण को विधिपूर्वक एक भी गऊ देकर निश्चयसे दशहजार गौओं

अप्यूष्णीकृतपानीयैस्तांकाशींकःपरित्यजेत् ॥ २० ॥ यत्रैकपुष्पदानेन शिवलिङ्गस्यमूर्धनि ॥ दशसौवर्णिकंपुण्यं कस्तांकाशींपरित्यजेत् ॥ २१ ॥ यत्रदण्डप्रणामेन अप्येकेनाशिवाग्रतः ॥ तुच्छमैन्द्रपदंप्राहुस्तांकाशींकोविमुञ्चति॥ २२ ॥ यत्रैकद्विजमात्रन्तु भोजयित्वायथेच्छया ॥ वाजपेयाधिकंपुण्यं तांकाशींकोविमुञ्चति ॥२३॥ एकांगांयत्रदत्त्वा वै विधिवद्ब्राह्मणायवै ॥ लभेदयुतगोपुण्यं कस्तांकाशींत्यजेत्सुधीः ॥ २४ ॥ एकंलिङ्गंप्रतिष्ठाप्ययत्रसंस्थापितम्भवेत्॥ अपित्रैलोक्यमखिलं तांकाशींकःसमुज्झति ॥ २५ ॥ परिनिश्चित्यतावित्थंलिङ्गंसंस्थाप्यपुण्यदे॥ तत्रैवसंस्थितिंप्राप्तौ काशींनाद्यापिमुञ्चतः ॥ २६ ॥ शङ्कुकर्णेश्वरंलिङ्गंशङ्कुकर्णगणार्चितम् ॥ दृष्ट्वानजायतेजन्तुर्जातुमातुर्महोदरे ॥ २७॥ विश्वेशाद्वायुदिग्भागे शङ्कुकर्णेश्वरंनरः ॥ संपूज्यनविशेदत्रघोरेसंसारसागरे ॥ २८॥ महाकालेश्वरंलिङ्गम्महाकाल

की पुण्य पावे उस काशीको कौन सुबुद्धिमान् परित्यागकरे ॥ २४ ॥ और जहां एकलिंगकी प्रतिष्ठा कर सब त्रैलोक्य भलीभांति थापाहुआ होवे उस काशीको कौन परित्यागकरे ॥ २५ ॥ इसप्रकार सब ओरसे निश्चयकर व पुण्यदायक, लिंगों को संस्थापनकर उसमें ही निवासको प्राप्तहुये वे दोनों आजभी काशी को नहीं छोड़ते हैं ॥ २६ ॥ व शंकुकर्ण नामक गणसे पूजित शंकुकर्णेश्वरलिंगको देखकर प्राणी फिर माताके महोदरमें कभी नहीं जन्मधरता है ॥ २७ ॥ विश्वनाथ से वायव्य दिशाके समान भाग में याने नैर्ऋत्यकोण में शंकुकर्णेश्वरको भलीभांति पूजकर मनुष्य इस घोर संसारसागर में न पैठे ॥ २८ ॥ व महाकालनामक गणसे पूजित

महाकालेश्वरलिंगकी पूजा नमस्कार और स्तुतिकर कालका डर कहां है ॥ २९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि जब शंकुकर्ण व महाकाल बहुतकाल विलंबितहुये तब जानकर उसके बाद सर्वज्ञोंके नाथ, विश्वनाथजीने अन्य दोगणोंको पठाया ॥ ३० ॥ हे घण्टाकर्ण ! हे महामते, महोदर ! तुम आवो और तुम दोनों वहांके निवासी लोगोंका कर्म जाननेके लिये शीघ्रही काशीको जावो ॥ ३१ ॥ हे अगस्ते ! ऐसे पठाये हुये वे गणभी महापुरी काशीको जाकर आजभी लौटकर कही भी नहीगये किन्तु उसमें ही भलीभांति से टिके हैं ॥ ३२ ॥ उनमेंसे घण्टाकर्ण गणोत्तम काशीमें विधानके समान घण्टाकर्णेश्वरलिंगको संस्थापनकर आपभी वहां सुखितहुवा ॥

गणार्चितम् ॥ अर्चयित्वाचनत्वाच स्तुत्वा कालभयंकुतः ॥ २९ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शङ्कुकर्णेमहाकालेचिरन्तनाविलम्बिते ॥ ज्ञात्वासर्वज्ञनाथोथप्राहैषीदपरौगणौ ॥ ३० ॥ घण्टाकर्णत्वमागच्छमहोदरमहामते ॥ काशींयातंयुवान्तूर्णंज्ञातुन्तत्रत्यचेष्टितम् ॥ ३१ ॥ इत्यगस्तेगणौतौतुगत्वाकाशींमहापुरीम् ॥ व्यावृत्त्याद्यापिनोयातौकापितत्रैवसंस्थितौ ॥ ३२ ॥ घण्टाकर्णेश्वरंलिङ्गंघण्टाकर्णगणोत्तमः ॥ काश्यांसंस्थाप्यविधिवत्स्वयन्तत्रैवनिर्वृतः ॥ ३३ ॥ कुण्डंतत्रैवसंस्थाप्यलिङ्गस्नपनकर्मणे ॥ नाद्यापिसन्त्यजेत्काशींध्यायँल्लिङ्गन्तथैवहि ॥ ३४ ॥ महोदरोपितत्प्राच्यांशिवध्यानपरायणः ॥ महोदरेश्वरंलिङ्गन्ध्यायेदद्यापिकुम्भज ॥ ३५ ॥ महोदरेश्वरंदृष्ट्वावाराणस्यांद्विजोत्तम ॥ कदाचिदपिवैमातुःप्रविशेन्नोदरींदरीम् ॥ ३६ ॥ घण्टाकर्णह्रदेस्नात्वादृष्ट्वाव्यासेश्वरंविभुम् ॥ यत्रकुत्रविपन्नोपिवाराणस्यांमृतोभवेत् ॥ ३७ ॥ घण्टाकर्णेमहातीर्थेश्राद्धंकृत्वाविधानतः ॥ अपिदुर्गतिमापन्नानुद्धरेत्सप्तपूर्वजान् ॥ ३८ ॥ निमज्ज्या

३३ ॥ व लिंगस्नानकराने कर्म्म के लिये उस स्थान में ही कुण्डको भलीभांति थापकर वैसेही लिंगको ध्यावते हुये अबभी काशी को नहीं त्याग करे है ॥ ३४ ॥ हे अगस्त्यजी ! शिवके ध्यानमें परायण, महोदरभी उसके पश्चिम में महोदरेश्वरलिंगको थापकर अबभी ध्यावे है ॥ ३५ ॥ हे द्विजोत्तम ! काशीमें महोदरेश्वरके दर्शनकर माताकी उदरकन्दरामें कभी भी न पैठे ॥ ३६ ॥ व घण्टाकर्ण के कुण्डमें स्नानकर और व्यासेश्वर प्रभुको देखकर जहां कहीं मराभी काशी मे माराहुवा होवे ॥ ३७ ॥ घण्टाकर्णकुण्ड नामक महातीर्थ में विधिसे श्राद्धकर दुर्गति को प्राप्तहुये भी सात पुरितके पितरों का उद्धारकरे ॥ ३८ ॥ जो कि आजभी उस कुण्ड में

स्नानकर क्षणभर सावधान (या ध्यानधारी) होवे वह श्रीविश्वनाथजीकी महापूजाकी घण्टाके शब्दोंको सुने ॥ ३९ ॥ और पितर लोग यह कहते हैं कि, हमारे वंश में कोई भी क्या घण्टाकर्णकुण्डके विमल जल में तिलोदक का भी देनेवाला उत्पन्न होगा ॥ ४० ॥ क्योंकि, हे कुम्भसम्भव ! घण्टाकर्णनामक बड़े कुण्डमें जिस तिलोदकदाताके वंशमें उपजेहुये लोग कि जिनके लिये उस कुण्ड में जलक्रिया (तर्प्पणादि) कीगई है वे मुनिहोकर उत्तम सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्तहुये हैं वैसे ही हमभी होवेंगे यह उन पितरोंका अभिप्रायहै ॥ ४१ ॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि घण्टाकर्ण गणके जाते ही और महोदरके भी प्रयाण करते ही बारबार शिरडुलाते

घापितत्कुण्डेक्षणंयोवहितोभवेत् ॥ विश्वेश्वरमहापूजाघण्टारावाञ्छृणोतिसः ॥ ३९ ॥ वदन्तिपितरःकाश्यांघण्टा कर्णेमलेजले॥दातातिलोदकस्यापिवंशेनःकोपिजायते॥४० ॥यद्वंश्यामुनयःकाश्यांघण्टाकर्णेमहाह्रदे ॥ कृतोदकक्रि याःप्राप्ताःपरांसिद्धिंघटोद्भव ॥ ४१ ॥ स्कन्दउवाच॥ घण्टाकर्णेगणेयातेप्रयातेचमहोदरे ॥ विसिस्मायस्मरद्वेष्टामौलि मान्दोलयन्मुहुः ॥ ४२ ॥ उवाचचमनस्येवहरःस्मित्वापुनःपुनः ॥ महामोहनविद्यासिकाशित्वाम्पर्यवैम्यहम्॥४३॥ पुराविदःप्रशंसन्तित्वाम्महामोहहारिणीम् ॥ काशींत्विंतिनजानन्तिमहामोहनभूरियम् ॥ ४४॥ प्रेषयिष्याम्यहंसर्वा न्भवतीमोहयिष्यति ॥ इतिसम्यग्विजानामिकाशित्वाम्मोहनौषधिम् ॥ ४५॥ तथापिप्रेषयिष्यामियावान्मेस्तिपरि च्छदः ॥ नोद्यमाद्विरमन्तीहज्ञानिनःसाध्यकर्मणि ॥ ४६ ॥ नोद्यमाद्विरतिःकार्याकापिकार्येविचक्षणैः ॥ प्रतिकूलोपि

हुये कामके शत्रु शिवजी ने विस्मय किया ॥ ४२ ॥ और मनमेंही बारबार विस्मित होकर या मुसकाकर भक्तभयहारी ने कहा कि, हे काशि ! तुम महामोहनकी विद्याहो मैं तुमको सब ओरसे जानताहूँ ॥ ४३ ॥ और पुराने पण्डित तुम काशीको महामोहकीहरनेहारी कहकर प्रशंसाकरते हैं फिर यह नहीं जानते हैं कि यह काशी महामोहनकी भूमि है॥ ४४ ॥ हे काशि ! मोहनकी ओषधीरूप तुमको मैं ऐसे भलीभांति विशेषसे जानताहूं कि जिनसबोंको पठाऊंगा उनको आप मोहित करलोगी ॥ ४५ ॥ तोभी मेरा जितना परिकरहै उतनेको पठाऊंगा क्योंकि ज्ञानीलोग साधने योग्य कर्म में उद्यमसे नहीं विश्रामकरतेहैं अर्थात् उद्यमसे नहीं विरक्तहोते हैं ॥ ४६॥

किसी भी कार्य्य में परिडतों को वैराग्य न करना चाहिये जिससे प्रतिकूल भी दैव (भाग्य) उनके निरन्तर उद्यमसे खिन्नहोवै अर्थात् अनुकूल होजाता है॥४७॥ इसमें दृष्टान्त देखो कि, राहुसे ग्रसे गये भी, चलनेमें उद्यम कियेहुये चन्द्रमा व सूर्य्य आजभी आकाश अंगणमें गमनको नहीं त्यागतेहैं ॥ ४८ ॥ बारबार प्रतिकूल होनेसे दैव एक ओर कार्य्योंका विनाशकरताहै और एक ओर अधिक उद्यमसे कार्य्य सिद्ध होवेंगे ॥ ४९ ॥ व पूर्वजन्ममें कियाहुआ कर्महो दैव कहाता है फिर वह अन्य नहीं है उसके दूरकरनेमें बुद्धिमानोंको आपही यत्न करना चाहिये॥ ५० ॥ भाग्यसे भाजन में भराधराहुवा भी भोजन आपही मुखमें नहीं पैठे है और वही हाथ व

खिद्येतविधिस्तस्सततोद्यमात् ॥ ४७ ॥ शीतोष्णभानूस्वर्भानुग्रस्तावपिनभोङ्गणे ॥ गतिंनत्यजतोद्यापिप्रक्रान्तव्य कृतोद्यमौ ॥ ४८ ॥ एकत्रहन्तिकार्याणिप्रातिकूल्याद्विधिर्मुहुः ॥ एकत्रकरणीयानिसेत्स्यन्त्यत्रभृशोद्यमात् ॥ ४९ ॥ दैवंपूर्वकृतंकर्मकथ्यतेनेतरत्पुनः ॥ तन्निराकरणेयत्नःस्वयंकार्योविपश्चिता ॥ ५० ॥ भाजनोपस्थितंदैवाद्भोज्यंनास्यं स्वयंविशेत् ॥ हस्तवक्त्रोद्यमात्तच्चप्रविशेदौदरींदरीम् ॥५१॥इत्युद्यमंसमर्थ्येशोनिश्चितंदैवजित्वरम् ॥ पुनश्चप्रेषयांचक्रे गणान्पञ्चमहारयान् ॥५२॥ सोमनन्दीनन्दिषेणःकालपिङ्गलकुक्कुटाः॥ तेद्यापिनानिवर्तन्तेकाश्यांजीवामृतायथा॥५३॥ तेपिस्वनाम्नालिङ्गानिशम्भुसंतुष्टिकाम्यया ॥ प्रतिष्ठाप्यास्थिताःकाश्यांविश्वनिर्वाणजन्मनि ॥५४॥ सोमनन्दीश्वरंदृष्ट्वालिङ्गंनन्दवनेपरम्॥सोमलोकेपरानन्दंप्राप्नुयाद्भक्तिमान्नरः॥५५॥तदुत्तरेविलोक्याथनन्दिषेणेश्वरंनरः॥आनन्दसेनां

मुखके उद्यमसे उदरकी कन्दरा में प्रवेशकरे है ॥ ५१ ॥ इसभांति युक्तिसे दृढ़ कियेहुये व दैवके जीतने शीलवाले उद्यमको साधनकर ईश्वर ने फिरभी बड़े वेगवान् पांच गणोंको पठाया ॥ ५२ ॥ वे सोमनन्दी, नन्दिषेण, काल, पिंगल और कुक्कुट काशीमें मरेजीवोंकी नाई अबभी नहीं लौटते हैं ॥ ५३ ॥ व वे भी शंकरको संतुष्ट करनेकी कामनासे समस्त मुक्तिकी उपजाने वाली काशी में अपने नाम से लिंगोंकी प्रतिष्ठाकर टिकगये ॥ ५४ ॥ उनमेंसे नन्दवन में सोमनन्दीश्वर नामक उत्तम लिंगको देखकर भक्तिमान् मनुष्य सोमलोकमें परमानन्दको पावै ॥ ५५ ॥ और उसके उत्तरमें सोमनन्दीश्वर के दर्शनकर नर आनन्दसेना को संप्राप्त होकर

मृत्युको भी क्षणभरमें जीतलेवे ॥ ५६ ॥ व गंगाके वायव्य कोणमें कालेश्वर महालिंगको प्रणामकर कालपाशसे कभी न बँधे ॥ ५७ ॥ व कालेश्वरसे कुछेक उत्तर ओरमें पिंगलेश्वर को भलीभांति पूजकर पिंगलेश्वर के स्वरूपका ज्ञान पाताहै कि जिसके द्वारा तन्मयताको (उनके भावको) प्राप्त होजावे ॥ ५८ ॥ जे कि यहां कुक्कुट (मुर्गा) के अंडके समान आकारवाले उस कुक्कुटेश्वर लिंगकी भक्तिको विस्तार करते हैं वे गर्भवास के पासको न जावें ॥ ५९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! जब सोमनन्दी आदि पांच गणभी काशी को प्राप्त होकर टिकगये तब शिवजीने मनमें कहा कि, ॥ ६० ॥ जो भली भाँति विचारा जाताहै तो हमारा भी

सम्प्राप्यंजयेन्मृत्युमपिक्षणात् ॥५६॥ कालेश्वरम्महालिङ्गङ्गङ्गायाःपश्चिमोत्तरे ॥ प्रणम्यकालपाशेननोबध्येतकदाचन ॥ ५७ ॥ पिङ्गलेश्वरमभ्यर्च्यकालेशात्किञ्चिदुत्तरे ॥ लभतेपिङ्गलज्ञानंयेनतन्मयतांव्रजेत् ॥ ५८ ॥ कुकुटेश्वरलिङ्गस्ययेत्रभक्तिंवितन्वते ॥ कुकुटाण्डाकृतेस्तस्यनतेगर्भमवाप्नुयुः ॥५९॥ स्कन्दउवाच ॥ सोमनन्दिप्रभृतिषुमुनेपञ्चगणेष्वपि ॥ आनन्दकाननम्प्राप्यस्थितेषुस्थाणुरब्रवीत् ॥ ६० ॥ कार्यमस्माकमेवैतद्यदिसम्यग्विमृश्यते ॥ अनेनोपाधिनाप्येतेतत्रातिष्ठन्तुमामकाः ॥ ६१ ॥ प्रथमेषुप्रविष्टेषुमायावीर्यमहत्स्वपि ॥ अहमेवप्रविष्टोस्मिवाराणस्यांनसंशयः ॥ ६० ॥ क्रमेणप्रेषयिष्यामियोस्तिमेस्वपरिच्छदः ॥ तत्रसर्वेषुयातेषुततोयास्याम्यहम्पुनः ॥ ६३ ॥ सम्प्रधार्येतिहृदयेदेवदेवेनशूलिना ॥ प्रैषिष्टप्रमथानान्तुततोगणाचतुष्टयम् ॥ ६४ ॥ कुण्डोदरोमयूराख्योबाणोगोकर्णएवच ॥ मायाबलंसमाश्रित्यकाशीम्प्रविविशुर्गणाः ॥ ६५ ॥ कृत्वोपायशतन्तैस्तुदिवोदासस्यसम्भ्रमे ॥ यदैकोपिसमर्थोनत

यही कार्य्यहै कि इस उपाधिसेही ये मेरे जन वहां पर टिकें ॥६१॥ और माया व वीर्य्य से बड़ेभारी गणोंके पैठजातेही मैं भी काशी में प्रविष्टहूं इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ इसलिये जो मेरा धनरूप परिकर है उसको क्रमसे पठाऊंगा व वहां सबोंका जाना होतेही उसकेबाद फिर मैं जाऊंगा ॥ ६३ ॥ ऐसे अपने हृदयमें भली भांति विचार धारणकर देवों के देव, त्रिशूलधारी लीलाकारीने तदनन्तर चारगणों को फिर पठाया ॥ ६४ ॥ कुंडोदर, मयूराख्य, बाण और गोकर्णभी ये चारोगण मायाके बल

को भलीभांति आधारकर काशी में प्रवेशकरगये ॥ ६५ ॥ फिर दिवोदास के उद्वेगमें सैकडों उपायकर जब एकभी न समर्थ हुआ तब उन करके वहांहीं टिकागया ॥ ६६ ॥ व अपराधों का सैकड़ा होतेही परमेश्वर किरा कर्म से प्रसन्न होतेहैं यह निश्चय समेत विचार धारणकर उन्होंने उत्तम लिंगाराधन किया ॥ ६७ ॥ कि जब यहां एक भी शंकर सम्बन्धी लिंग विधि से संपूजित होताहै तब त्रिनेत्र शिवजी अपराधों के सैकड़ा को क्षमा करते हैं और मोक्ष देते हैं ॥ ६८ ॥ व जैसे एकबार भी विधि से लिंगके पूजित होतेही शंकरजी संतुष्ट होते हैं वैसे यज्ञ, दान, तप और व्रतों से नहीं संतोष पाते हैं ॥ ६९ ॥ जो कि दो आंखोंवाला भी मनुष्य लिङ्ग

दातत्रैवसंस्थितम् ॥ ६६ ॥ अपराधशतेष्वीशः केनतुष्यतिकर्मणा ॥ सम्प्रधार्येतितेचक्रुर्लिङ्गाराधनमुत्तमम् ॥ ६७ ॥ एकस्मिन्छाम्भवेलिङ्गेविधिनात्रसमर्चिते ॥ क्षमेत्त्र्यक्षोपराधानांशतम्मोक्षञ्चयच्छति ॥ ६८ ॥ नतुष्यतितथाशम्भुर्यज्ञदानतपोव्रतैः ॥ यथातुष्येत्सकृल्लिङ्गेविधिनाभ्यर्चितेसति ॥ ६९ ॥ लिङ्गार्चनविधानज्ञोलिङ्गार्चनरतःसदा ॥ त्र्यक्ष एवसविज्ञेयःसाक्षाद्द्व्यक्षोपिमानवः ॥ ७० ॥ नगोशतप्रदानेननस्वर्णशतदानतः ॥ तत्फलंलभ्यतेपुम्भिर्यत्सकृल्लिङ्गपूजनात् ॥ ७१ ॥ अश्वमेधादिभिर्यागैर्नतत्फलमवाप्यते ॥ यत्फलंलभ्यतेमर्त्यैर्नित्यंलिङ्गप्रपूजनात् ॥ ७२ ॥ स्नापयित्वाविधानेनयोलिङ्गस्नपनोदकम् ॥ त्रिःपिबेत्त्रिविधम्पापंतस्येहाशुप्रणश्यति ॥ ७३ ॥ लिङ्गस्नपनवार्भिर्यःकुर्यान्मूर्द्धन्यभिषेचनम् ॥ गङ्गास्नानफलन्तस्यजायतेत्रविपाप्मनः ॥ ७४ ॥ लिङ्गंसमर्चितंदृष्ट्वायःकुर्यात्प्रणतिंसकृत् ॥ सन्दे

पूजाका विधान जानताहुवा वा सदा लिङ्गकी पूजामें रतहै उसको त्रिनेत्र (शिव) ही विचारना चाहिये ॥ ७० ॥ एकबार लिंगपूजासे लोगों को जो फल मिलता है वह सैकडों गौओं के दानसे नहीं है और सैकड़ा सुवर्णों के दानसे भी नही है ॥ ७१ ॥ व नित्यही लिंगकी पूजासे मनुष्योंको जो फल मिलताहै वह फल अश्वमेधादि यज्ञों से नहीं पायाजाताहै ॥ ७२ ॥ जो यहां विधि से नहवाकर शिवलिंग स्नानके जलको तीनबार पीताहै उसका तीन भांति का (मन, वचन और तनसे उत्पन्न) पाप शीघ्रही विनष्ट होताहै ॥ ७३ ॥ व जो यहां लिंगस्नान कराये हुये जल से मस्तक में अभिषेक करताहै उस अपापी को गंगा नहाने का फल होताहै ॥ ७४ ॥

जो संपूजित शिवलिंग को देखकर एकबार प्रणाम करताहै उसके फिर देह रूप बड़े बन्धनमें संदेह उपजता है अर्थात् वह दुबारा देहधारी नहीं होताहै ॥ ७५ ॥ और जो भक्तिसे शिवलिंगको थापताहै वह सात जन्मोंके किये हुये पापों से छूटताहै व विशेष शुद्ध होकर स्वर्गसेवी होताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७६ ॥ ऐसा विचार कर स्वामिद्रोह विनाशने के लिये गणोंने काशीमें भारी पापविदारी भी शिवलिंग प्रतिष्ठित किया ॥ ७७ ॥ ॥ लोलार्क के समीपमें कुंडोदरेश्वरलिंग को देखकर सब पापों से विनिर्मुक्त होकर शिवलोकमे पूजाजाताहै याने आदर पाताहै ॥ ७८ ॥ व कुंडोदरेश्वरलिंगसे पश्चिम असीनदी के किनारे मयूरेश्वर को सब ओरसे पूजकर

होजायतेतस्यपुनर्देहनिबन्धने ॥ ७५ ॥ लिङ्गंयःस्थापयेद्भक्त्यासप्तजन्मकृतादघात् ॥ मुच्यतेनात्रसन्देहोविशुद्धःस्वर्गभाग्भवेत् ॥ ७६ ॥ विचार्येतिगणैःकाश्यांस्वामिद्रोहोपशान्तये ॥ प्रतिष्ठितानिलिङ्गानिमहापातकभिन्त्यपि ॥ ७७ ॥ कुण्डोदरेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वालोलार्कसन्निधौ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःशिवलोकेमहीयते ॥ ७८ ॥ कुण्डोदरेश्वराल्लिङ्गात्प्रतीच्यामसिरोधसि ॥ मयूरेश्वरमभ्यर्च्यनगर्भम्प्रातिपद्यते ॥ ७९ ॥ मयूरेशप्रतीच्याञ्चलिङ्गम्बाणेश्वरम्महत् ॥ तस्यदर्शनमात्रेणसर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ ८० ॥ गोकर्णेशम्महालिङ्गमन्तर्गेहस्यपश्चिमे ॥ द्वारेसमर्च्यवैकाश्यांनविघ्नैरभिभूयते ॥ ८१ ॥ गोकर्णेश्वरभक्तस्यपञ्चत्वसमयेसति ॥ ज्ञानभ्रंशोनजायेतक्वचिदप्यन्तमृच्छतः ॥ ८२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ चिरयत्सुगणेष्वेषुचतुर्ष्वपिगणेश्वरः ॥ महिमानम्महत्त्वन्तुतत्काश्याःपर्यवर्णयत् ॥ ८३ ॥ वैष्णव्यामाययाविश्वम्भ्राम्यतेतानयाखिलम् ॥ ध्रुवंमूर्तिमतीसैषाकाशीविश्वैकमोहिनी ॥ ८४ ॥ अपास्यसोदरान्दारान्पुत्रंक्षेत्रंगृहंवसु ॥

फिर गर्भ के सामने नहीं जाता है ॥ ७९ ॥ व मयूरेश्वर से पश्चिम में जो बड़ा पूजनीय बाणेश्वरलिंग है उसके दर्शनमात्रके द्वारा सब पापोंसे छूटजाता है ॥ ८० ॥ व काशी में अन्तर्गेहके पश्चिम द्वारपर गोकर्णेश्वरमहालिंग को पूजकरभी विघ्नोंसे नहीं पीड़ित होताहै ॥ ८१ ॥ और मरणसमय होतेही कहीं भी मृत्युको प्राप्त होते हुये, गोकर्णेश्वरके भक्तके ज्ञान का विनाश न होवे ॥ ८२ ॥ श्रीकार्तिकेयजी बोले कि उन चारों भी गणोंके बहुत विलम्बकारी होतेही गणोंकेनाथ श्रीविश्वनाथजी ने उस काशीकी महिमा और बड़प्पनको सब ओरसे वर्णन किया ॥ ८३ ॥ कि जिस विष्णुसम्बंधिनी मायासे यहां सम्पूर्ण विश्व (जगत्) भ्रमायाजाताहै वह

निश्चयकर मूर्तिवाली यह विश्वविमोहिनी काशीहै ॥ ८४ ॥ क्योंकि भ्राता, स्त्री, पुत्र, क्षेत्र, गृह और धनको दूरत्यागकर व मरणको भी अंगीकारकर सब लोग काशी की उपासना करते हैं याने उसके समीप टिकते हैं ॥ ८५ ॥ व जिस काशीमें मरनेसे भी कुछ डर नहीं है उसमे टिकते हुये गण मुझसे क्यों डरते होंगे ॥ ८६ ॥ जहां मरना मंगल है जहां विभूति भूषण है और जहां कौपीन रेशमीवस्त्र है वह काशी कहां उपमावाली की जाती है याने उसकी समताको कोई नहीं है ॥ ८७ ॥ व जहां मुक्तिरूप रमणी प्राणान्त समय में हुये तारकमन्त्रोपदेश भूषणवाले धनी व निर्धनी व ब्राह्मण व चाण्डालको भी अंगीकार करती है ॥ ८८ ॥ जहां मरे मुक्ति

अप्यङ्गीकृत्यनिधनंसर्वेकाशीमुपासते ॥ ८५ ॥ मरणादपिनोकाश्याम्भयंयत्रमनागपि ॥ गणास्तत्रतु तिष्ठन्तःकुतोमत्तोपिबिभ्यति ॥ ८६ ॥ मरणम्मङ्गलंयत्रविभूतिर्यत्रभूषणम् ॥ कौपीनंयत्रकौशेयङ्काशीकुत्रोपमीयते ॥ ८७ ॥ निर्वाणरमणीयत्ररङ्कंवाऽरङ्कमेववा ॥ ब्राह्मणंवाश्वपाकंवावृणीतेप्रान्त्यभूषणम् ॥ ८८ ॥ मृतानांयत्रजन्तूनांनिर्वाणपदमृच्छताम् ॥ कोट्यंशेनापिनसमाश्रपिशक्रादयःसुराः ॥ ८९ ॥ यत्रकाश्यांमृतोजन्तुर्ब्रह्मनारायणादिभिः ॥ प्रबद्धमूर्धाञ्जलिभिर्नमस्येतातियत्नतः ॥ ९० ॥ यत्रकाश्यांशवत्वेपिजन्तुर्नाशुचितांव्रजेत् ॥ अतस्तत्कर्णसंस्पर्शङ्करोम्यहमपिस्वयम् ॥ ९१ ॥ यस्तुकाशीतिकाशीतिद्विस्त्रिर्जपतिपुण्यवान् ॥ अपिसर्वपवित्रेभ्यःसपवित्रतरोमहान् ॥ ९२ ॥ येनकाशीहृदिध्यातायेनकाशीहसेविता ॥ तेनाहंहृदिसन्ध्यातस्तेनाहंसेवितःसदा ॥ ९३ ॥ काशींयःसेवतेजन्तुर्निर्विकल्पेनचेत

पदको जातेहुये जन्तुओंके कोट्यंशके समान इन्द्रादि देवभी नहीं हैं ॥ ८९ ॥ जिस काशी में मराहुवा प्राणी माथोंमें हाथोंकी अञ्जलीजोड़हुये ब्रह्मा व विष्णु आदि देवोंकरके अधिक यत्नसे नमस्कार कियाजावे है ॥ ९० ॥ जिस काशीमें मुर्दाहोनेपर भी जन्तु अशुद्धताको नहीं प्राप्तहोता है इससे मैं आपही मरणसमय मे उसके कानका संस्पर्श करताहूं ॥ ९१ ॥ और जो पुण्यवान् काशी काशी ऐसा शब्द दो तीन बार जपता है वह सब पवित्रोंसे भी परमपवित्र व पूजनीय है ॥ ९२ ॥ इसलोकमें या हर्ष से जिसने काशीको हृदयमें ध्याया व जिसने काशीको सेया उससे मैं मनमें ध्यायागया व उससे मैं सदा सेया गयाहूं ॥ ९३ ॥ जो जन्तु एकाग्रमनसे का-

शीको सेवता है उसको मैं नित्यही बड़े यत्नसे अपने हृदय में धारण करताहूं ॥९४॥ आप बसने को असमर्थभी जो जन मोलसे एक तीर्थवासी को भी काशीमें बसावै वह निश्चयसे काशीवासीके फलका सेवनेवाला है याने उसको भी काशीवासका फल होता है ॥ ९५ ॥ व मरणतक विनिश्चयवाले जे धीर लोग काशीमें बसते हैं वे जीवन्मुक्तही जानने योग्य है व वेही वन्दनीय और पूजनीय भी है ॥ ९६ ॥ इसभांति शिवजीने बहुतसे काशीके गुणोंको विचारकर प्रीतिपूर्वक अन्य गणों को भलीभांति बुलाकर प्रेरण किया ॥ ९७ ॥ कि हे अतिस्वच्छमानस, तारक ! तुम भलीभांति आवो व धर्मका आश्रय दिवोदासराजा जिस पुरीको अधिकता से

सा ॥ तमहंहृदयेनित्यंधारयामिप्रयत्नतः ॥ ९४ ॥ स्वयंवस्तुमशक्तोपिवासयेत्तीर्थवासिनम् ॥ अप्येकमपिमूल्येनस वस्तुःफलभाग्ध्रुवम् ॥ ९५ ॥ काश्यांवसन्तियेधीराआपञ्चत्वविनिश्चयाः ॥ जीवन्मुक्तास्तुतेज्ञेयावन्द्याःपूज्यास्तएव हि ॥ ९६ ॥ इत्थंविमृश्यबहुशःस्थाणुर्वाराणसीगुणान् ॥ गणानन्यान्समाहूयप्राहिणोत्प्रीतिपूर्वकम् ॥ ९७ ॥ तारकत्वं समागच्छगच्छातिस्वच्छमानस ॥ दिवोदासोवृषावासोयामधीष्टेवरांपुरीम् ॥ ९८ ॥ तिलपर्णस्थूलकर्णद्रुमिचण्डप्रभा मय ॥ सुकेशविन्दतेछागकपर्दिन्पिङ्गलाक्षक ॥ ९९ ॥ वीरभद्रकिराताख्यचतुर्मुखनिकुम्भक ॥ पञ्चाक्षभारभूताख्य त्र्यक्ष क्षेमकलाङ्गलिन् ॥ १०० ॥ विराधसुमुखाषाढेयान्तुसर्वेपृथक्पृथक् ॥ एतेगणामहाभागाःस्वामिभक्तादृढव्रताः ॥ १ ॥ कृत्वामायाबहुविधाबहुरूपाविचक्षणाः ॥ अनिमेषेक्षणास्तस्थुःक्षोणीशच्छिद्रकाङ्क्षिणः ॥ २ ॥ अपरिज्ञाततच्छि द्राविद्रावितयशोधनाः ॥ आःकिमेतदहोजातंनिनिन्दुःस्वमितीहते ॥ ३ ॥ गणाऊचुः ॥ धिगस्मान्स्वामिनानित्यंकृ

शिक्षाकरताहै याने आज्ञा फिराता है उसको जावो ॥ ९८ ॥ हे तिलपर्ण,स्थूलकर्ण, द्रुमिचण्ड, प्रभामय, सुकेश, विन्दते, छाग, कपर्दिन्, पिंगलाक्षक ! ॥ ९९ ॥ हे वीरभद्र, किराताख्य, चतुर्मुख, निकुम्भक, पञ्चाक्ष, भारभूताख्य, त्र्यक्ष, क्षेमक, लांगलिन् ! ॥ १०० ॥ हे विराधसुमुख, आषाढे ! आप सब जने अलग अलग जावें तब ये सब स्वामी के सेवक, दृढ़व्रत भारीभागवाले गण ॥ १ ॥ जे कि बहुत भांतिकी मायाकर अनेकरूपधारी और बड़े विचक्षण (पण्डित) थे वे दिवोदासराजा का छिद्रचाहतेहुये, निमेष रहित नेत्रवाले (सावधान) होकर काशी मे टिकते भये ॥ २ ॥ और उसके छिद्रको सब ओरसे न जानपाये व अपने सुयशरूप धनको

दुराये हुये व निद्रासे हीन होकर उन्होंने क्रोध और खेदसे अपनाको ऐसे निंदा किया कि यहां यह क्या भया ॥ ३ ॥ गण बोले कि, बारबार सदैव स्वामीसे की गई है पालना जिनकी व जिन्होंने यहां एक मनुष्यमात्रको भी नही-वशकिया उन हम सबको धिक्कार है ॥ ४ ॥ बहुतमान दान और सौहार्दकेद्वारा महापूज्य महादेवजीसे कियेहुये प्रसादवाले होकरभी उनके कार्य्य बिगारनेवाले हमलोगोंको धिक्कार है ॥ ५ ॥ व स्वामीके कार्य्य में मतवाले हुये हम लोगोंकी यहां क्या गति होगी जानते हैं कि निश्चयसे अन्धतमोमय लोकमे वसना होगा ॥ ६ ॥ खेद है कि, स्वामीका कार्य्य न करनेवाले और इन्द्रियोंकी वृत्तियोंको न खण्डित किये

तसम्भावनान्मुहुः ॥ मनुष्यमात्रमप्यत्रयैरेकंनवशीकृतम् ॥ ४ ॥ बहुमानेनदानेनसौहार्देनमहीयसा ॥ कृतप्रसादांस्त्र्यक्षेणधिङ्नस्तत्कार्यवञ्चकान् ॥ ५ ॥ कागतिर्नोभवित्रीहस्वामिकृत्यप्रमादिनाम् ॥ अन्धन्तमोमयेलोकेध्रुवंवासोभविष्यति ॥ ६ ॥ अकृतस्वामिकार्याणामहोजीवितधारिणाम् ॥ अक्षतेन्द्रियवृत्तीनांदुर्गतिश्चपदेपदे ॥ ७ ॥ लब्धसम्भावनानाञ्चन्यक्कृतस्वामिकर्मणाम् ॥ भृत्यानाम्भूरिभाजाञ्चभङ्गुराःस्युर्मनोरथाः ॥ ८ ॥ अनिष्पादितकार्यार्थायेमुखंप्रेक्षयन्त्यहो ॥ अपत्रपाःपुरोभर्तुस्तैर्भूर्भारवतीत्वियम् ॥ ९ ॥ नाद्रीणांनसमुद्राणांनद्रुमाणांमहीयसाम् ॥ भूतधात्र्यास्तथाभारोयथास्वामिद्रुहांमहान् ॥ १० ॥ अहोपौराणिकीगाथास्मृतास्माभिरनिन्दिता ॥ तदर्थमवलम्ब्येहस्थास्यामःकृतनिश्चयाः ॥ ११ ॥ अनाकलितपुण्यानांपरिक्षीणधनायुषाम् ॥ सर्वोपायविहीनानाङ्गतिर्वाराणसीपुरी ॥ १२ ॥ अ

हुये जनोंकी क्षण क्षणमें दुर्गति होती है ॥ ७ ॥ और पालना पाये हुये भी स्वामीके कामको नीचे करनेवाले व बहुतोंके भजनेवाले दासोंके मनोरथ नाशशील होवे हैं ॥ ८ ॥ व कार्य्यार्थोंको न सिद्धकियेहुये जे निर्लज्ज स्वामी के आगे फिरमुख दिखाते हैं उनसे यह भूमि भारवाली है यह आश्चर्य्य है ॥ ९ ॥ जैसा स्वामिद्रोहियोंका भारीभार भूमिको होताहै वैसा पर्वतोंका नहीं व समुद्रो का नही व बहुत बडे वृक्षोंका भी नही होताहै ॥ १० ॥ आश्चर्य्य है कि, जो पुराणकी अनिन्दित गाथा हम लोगों से स्मरणकीगई उसके अर्थ को अवलम्बनकर निश्चय कियेहुये हम लोग इस काशीपुरी में टिकेंगे ॥ ११ ॥ वह गाथा यह है कि जिन्होंने पुण्य न

कियाहो व जिनकी सम्पत्ति और आयु सब ओरसे घटगईहो व जे सब उपायों से विहीन होवें उनकी काशीपुरी गति है ॥ १२ ॥ जे पापके भारसे खिन्न व पश्चात्तापको प्राप्त हुये और सर्वत्र ऊंची नीची योनियोमें जानेवाले हैं उनकी काशीपुरी गति है ॥ १३ ॥ जे स्वामिद्रोही व कृतघ्न (उपकारके न माननेवाले) और विश्वासघाती हैं उनकी गति काशीपुरी को छोड़कर कहींभी नहीं है ॥ १४ ॥ इसभांति गाथाके अर्थको निश्चयकर और दिवोदासराजा से न जानेहुये स्वरूपवालेहोकर काशीमें निवास किया ॥ १५ ॥ परन्तु बहुतही बुद्धिमान् भी उस राजाने अनेक भांतिके आकारोंसे याने अनेकरूपोंसे टिकेहुये देवोंको महादेवजीके प्रभावसे न जान

पुण्यभारखिन्नानांपश्चात्तापमुपेयुषाम् ॥ विष्वगूर्ध्वगतीनाञ्चगतिर्वाराणसीपुरी ॥ १३ ॥ स्वामिद्रुहःकृतघ्नाश्चयेचविश्रम्भघातकाः ॥ तेषांकापिगतिर्नास्तिमुक्त्वावाराणसींपुरीम् ॥१४॥ इत्थंनिश्चित्यगाथार्थंप्रमथाश्रवतास्थिरे ॥ अविज्ञातस्वरूपाश्चदिवोदासेनभूभुजा ॥ १५ ॥ नबुबोधसभूपालोनितरांबुद्धिमानपि ॥ विबुधान्विविधाकारैः स्थितानीशप्रभावतः ॥ १६ ॥ चित्रंनचित्रगुप्तोपिवेत्तिवाराणसीस्थितान् ॥ जन्तून्कागणनान्येषांमर्त्यलोकनिवासिनाम् ॥ १७ ॥ अविच्छिन्नप्रभावाणामपरिच्छिन्नतेजसाम् ॥ कृतलिङ्गप्रतिष्ठानांनान्तंप्राप्नोतिधर्मराट् ॥ १८ ॥ इतितेप्रमथाःसर्वेघटोद्भव महामुने ॥ कृतलिङ्गार्चनाः काशींनाद्याप्युज्झन्तिशर्मदाम् ॥ १९ ॥ तारकेशंमहालिङ्गंतारकाख्योगणोत्तमः ॥ तारकज्ञानदंपुंसांमुनेऽद्यापिसमर्चयेत् ॥ २० ॥ तारकेश्वरलिङ्गस्यकृत्वाभक्तिंसुनिश्चलाम् ॥ सुखेनतारकज्ञानंलभ्यतेतैर्नरोत्तमैः ॥ २१ ॥ तिलपर्णेश्वरंलिङ्गन्तिलपर्णप्रतिष्ठितम् ॥ तिलप्रमाणमप्यत्रदृष्ट्वापापंनसम्भवेत् ॥ २२ ॥ स्थूलकर्णे

पाया ॥ १६ ॥ यह आश्चर्य्य नहींहै क्योंकि चित्रगुप्तभी काशीवासी जनोंको नहीं जानता है तो मनुष्यलोकवासी अन्यलोगोंकी क्या गणनाहै ॥ १७ ॥ व अखण्डित प्रभाववाले अखण्डित तेजवाले और शिवलिंगकी प्रतिष्ठा करनेवाले जनोंके अन्तको यमराज जी नहीं जानते हैं ॥ १८ ॥ हे महामुने अगस्त्यजी ! ऐसाजानकर शिवलिंगोंकी पूजाकरते हुये वे सब गण सुखदायिनी काशीको आजभी नहीं परित्याग करते हैं ॥ १९ ॥ हे मुने ! तारकनाम गणोत्तम लोगोंको संसार से तारनेहारे ब्रह्मज्ञानके दाता तारकेश्वरमहालिंगको अबभी पूजतेहैं ॥ २० ॥ व तारकेश्वर लिंगकी बहुत निश्चल भक्तिकर उन मनुष्योत्तमोंको तारक ज्ञान सुखसे मिलताहै ॥ २१ ॥

व यहां तिलपर्णा के थापेहुये तिलपर्ण लिंग के दर्शनकर तिलभरभी पाप न संभवित होवै ॥ २२ ॥ व स्थूलकर्णेश्वरकी सब ओर से पूजाकर नरोत्तम दुर्गतिको नहीं प्राप्तहोता है और उत्तम पुण्यको प्राप्तहोता है ॥ २३ ॥ और द्वमिचंडेश्वर लिङ्ग वैसे उससे पश्चिमप्रभामयेश लिङ्गको पूजकर पापों से नहीं तिरस्कृत होता है याने उसको पाप नहीं दबासक्केहैं ॥ २४ ॥ प्रभामयेश्वर लिङ्गके दर्शनकर अन्यत्रभी मराहुआ सुबुद्धिमान् प्रकाशवान् विमानसे शिवलोकमें जावै ॥ २५ ॥ व हरिकेशवनमें सुकेशेश्वरलिङ्ग कोसामनेसे पूजनकर मनुष्य संसारमे बार बार छः कोश (त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, अस्थि, मज्जा) वाली देहको न धारणकरे ॥ २६ ॥ व भीमचंडीके समीप में

श्वरंलिङ्गम्परिपूज्यनरोत्तमः ॥ नदुर्गतिमवाप्नोतिपुण्यमाप्नोतिचोत्तमम् ॥ २३ ॥ द्वमिचण्डेश्वरंलिङ्गन्तथालिङ्गंप्रभामयम् ॥ आराध्यतत्प्रतीच्याञ्चनपापैरभिभूयते ॥ २४ ॥ प्रभामयेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वान्यत्रापिसंस्थितः ॥ प्रभामयेनयानेनशिवलोकेव्रजेत्सुधीः ॥ २५ ॥ सुकेशेश्वरमभ्यर्च्यहरिकेशवनेनरः ॥ षाट्कौशिकमयन्देहंधारयेन्नपुनःपुनः ॥ २६ ॥ विन्दतीशन्नरोभ्यर्च्यभीमचण्डीसमीपतः ॥ त्यक्त्वाप्रचण्डमप्येनोमोक्षंविन्दतिशाश्वतम् ॥ २७ ॥ छागलेशंमहालिङ्गंपित्रीश्वरसमीपगम् ॥ विलोक्यपशुवत्कोपिनपापंप्राकृतंस्पृशेत् ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे वाराणसीवर्णनगणप्रेषणंनामत्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ कुम्भसम्भववक्ष्यामिशृणोत्ववहितोभवान् ॥ कपर्दीशस्यलिङ्गस्यमहामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १ ॥

विंदतीश्वर नामक लिंगको सब ओर से पूजकर प्रचण्डभी पापका त्यागकर नर नित्य रहनेवाली मुक्तिको पाताहै ॥ २७ ॥ और पित्रीश्वरके समीपगत छागलेश्वर महालिंगको देखकर कोईभी पशुके समान प्राकृत पापको न स्पर्शकरे ॥ २८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकाशीवर्णनगणप्रेषणं नामत्रिपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५३ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० चौवनके अध्यायमें कपर्दीशमाहात्म्य ॥ पुनि पिशाचमोचनकथा कथित कीन याथात्म्य ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी ! मैंकपर्दीश्वरनामक लिंगके उत्तम

महामाहात्म्यको कहूंगा। आप सावधान होकर सुनें कि ॥ १ ॥ शङ्करजीके परमप्यारे कपर्दीनामक गणेश्वरने पित्रीश्वरलिंग के उत्तरभागमें शम्भुसम्बन्धी लिंगको संस्थापनकर ॥ २ ॥ उसके आगे विमलोदक नाम कुण्ड खनाया जिसके जलके संस्पर्शसे नर निर्मल होजाताहै ॥ ३ ॥ हे कुम्भसम्भव ! पूर्वकाल त्रेतायुग में तहां जो इतिहास जैसे प्रवृत्तहोगया है वैसेही उस पातकघातक इतिहासको कहूंगा ॥ ४ ॥ कि कपर्दीश्वरको भलीभांति पूजतेहुये बाल्मीकि इस नामवाले शिवभक्तश्रेष्ठ एक मुनिने तपस्या कियाथा ॥ ५ ॥ एकसमय हेमन्तऋतु मार्गमास मध्याह्नकालमें उसही तपस्वीने उस विमलोदक तीर्थमें ॥ ६ ॥ स्नानकर पादतल से मस्तक पर्य्यंत भस्मसे स्नान किया

कपर्दीनामगणपःशम्भोरत्यन्तवल्लभः ॥ पित्रीशादुत्तरेभागेलिङ्गंसंस्थाप्यशाम्भवम् ॥ २ ॥ कुण्डञ्चखानतस्याग्रेविमलोदकसंज्ञकम् ॥ यस्यतोयस्यसंस्पर्शाद्विमलोजायतेनरः॥ ३ ॥ इतिहासंप्रवक्ष्यामितत्रत्रेतायुगेपुरा ॥ यथावृत्तंकुम्भयोनेश्रवणात्पातकापहम् ॥ ४ ॥ एकःपाशुपतश्रेष्ठोबाल्मीकिरितिसंज्ञितः ॥तपश्चचारसमुनिःकपर्दीशंसमर्चयन् ॥ ५ ॥ एकदासहिहेमन्तेमार्गेमासितपोधनः ॥ स्नात्वातत्रमहातीर्थेमध्याह्नेविमलोदके ॥ ६ ॥ चकारभस्मनास्नानमापादतलमस्तकम् ॥ लिङ्गस्यदक्षिणेभागेकृतमाध्याह्निकक्रियः ॥ ७ ॥ न्यस्तमस्तकपांसुश्चसन्ध्यामाध्यात्मिकींस्मरन् ॥ जपन्पञ्चाक्षरींविद्यांध्यायन्देवंकपर्दिनम् ॥ ८ ॥ कृत्वासंहारमार्गेणसप्रमाणंप्रदक्षिणम् ॥ हुडुंकृत्यहुडुंकृत्यहुडुंकृत्यत्रिरुच्चकैः ॥ ९ ॥ प्रणवंपुरतःकृत्वाषड्जादिस्वरभेदतः ॥ गीतंविधायसानन्दंसन्नृत्यंहस्तकान्वितम् ॥ १० ॥ अङ्गहारैर्मनोहारिचारीमण्डलसंयुतम् ॥ क्षणंतत्रसरस्तीरउपविष्टोमहातपाः॥ ११ ॥अद्राक्षीद्राक्षसंघोरमतीवविकृताकृ

और वह लिंगके दक्षिणभागमें मध्याह्नकी क्रिया कियेहुये ॥ ७ ॥ और मस्तकमें विभूतिधारण करनेवाला होकर आध्यात्मिकी (कार्य्य कारणसंघात आत्माको अधिकारकर हुई) सन्ध्या (भलीभांति ब्रह्मध्यान) को करता व पंचाक्षरमन्त्ररूप विद्याको जपता व जटीले शिवदेवको ध्यावताहुआ ॥ ८ ॥ वामावर्त्त मार्गसे प्रमाण समेत प्रदक्षिणाकर तीनबार उच्चस्वरसे हुडुकर हुडुकर हुडुकर ॥ ९ ॥ फिर ॐकारको आगेकर षड्ज, मध्यम, धैवत, निषाद, ऋषभ और गान्धार इन स्वरोंके भेद से गीतको कर आनन्द समेत नृत्यसहित हाथचलानेसे संयुक्त ॥ १० ॥ मण्डल संबद्ध और अंगविक्षेपोंसे मनोहर जैसेहो वैसे नृत्याचरणशीलहोकर क्षणभर वहां उस सरोवर के कि-

नारे पर बैठाहुआ बड़ातपस्वी॥ ११॥ एक राक्षसको देखता भया जोकि बहुत विकटाकार घोर, व सूखेहुये शङ्ख (ललाटप्रांत) कपोल और मुखवालाथा व नीचेपैठेहुये कुछेकपीले नेत्रोंसे संयुक्तथा॥ १२॥ व जिसके बालोंके अग्रभाग रूखे टूटे फूटे हुयेथे व जिसकी ग्रीवा बड़ीमोटी और लम्बीथी व जिसकी नासिका बहुतही चिपटीथी व जिसके दोनों ओठ सूखेहुयेथे व जोकि बडादँतारा॥ १३॥ बहुत चौड़े मूडवारा और पीली दाढ़ीके बालोंसे बहुतभयङ्करथा व जिस के शिर के बाल ऊपरको उठेहुयेथे और कानोंके ऊपरभाग बड़ेलम्बेथे॥ १४॥ व जिसकी बहुत लम्बी जीभ ऐसी वैसी चलती फिरतीथी व जिसकी घंटिका का ऊपरभाग बहुत विकटथा व जिसके कण्ठके अधोभाग मोटेहाड़वाले थे व जोकि दीर्घ दोनों कांधोंसे भारीभयानक थ॥१५॥ और जिसकी कांखों के बिल बहुत गहरेथे व दोनोंबाहैं छोटी और सूखीहुई

तिम्॥शुष्कशङ्खकपोलास्यंनिमग्नापिङ्गलोचनम्॥ १२ ॥रूक्षस्फुटितकेशाग्रंमहालम्बशिरोधरम् ॥ अतीवचिपिट घ्राणंशुष्कोष्ठमतिदन्तुरम् ॥ १३ ॥ महाविशालमौलिञ्चप्रोर्ध्वीभूतशिरोरुहम् ॥ प्रलम्बकर्णपालीकंपिङ्गलश्मश्रु भीषणम् ॥ १४ ॥ प्रलम्बितललज्जिह्वमत्युत्कटकृकाटिकम् ॥ स्थूलास्थिजत्रुसंस्थानंदीर्घस्कन्धद्वयोत्कटम् ॥ १५ ॥ निमग्नकक्षाकुहरंशुष्कह्रस्वभुजद्वयम् ॥ विरलाङ्गुलिहस्ताग्रंनतपीननखावलिम् ॥ १६ ॥ विशुष्कपांसुलोत्क्रोडंपृष्ठलग्नोदरत्वचम् ॥ कटीतटेनविकटंनिर्मांसत्रिकबन्धनम्॥ १७॥ प्रलम्बस्फिग्युगयुतंशुष्कमुष्काल्पमेहनम्॥ दीर्घनिर्मांसलोरुकंस्थूलजान्वस्थिपञ्जरम्॥ १८॥ अस्थिचर्मावशेषंचशिराजालितविग्रहम् ॥ शिरालंदीर्घजङ्घं चस्थूलगुल्फास्थिभीषणम् ॥ १९ ॥ अतिविस्तृतपादञ्चदीर्घवक्रकृशाङ्गुलिम् ॥ अस्थिचर्मावशेषेणशिराताडित

थीं व जिसके हाथों के अग्रभाग बिरली अंगुलीवालेथे व जिसकी मोटी नखपंक्ति नईहुईथी॥ १६॥ व जिसका क्रोड (कोरवा) विशेष सूखारूखा धूलि से धूसरथा व जिसके उदरकी त्वचा पीठमें लगीथी व जोकि कटितटसे विकटथा व जिसका तिहड्डा मांससे हीनथा॥ १७॥ व जोकि लम्बे दो कूलोंसे संयुक्तथा व जिसका अण्डकोश सूखाथा और लिंग छोटा था याने वह नग्नथा व जिसकी ऊरुवें दीर्घ और निर्मांसथीं व जोकि स्थूल जानुवाला और अस्थिपंजर के समानथा॥ १८॥ व जिसकी देहमें हाड़ और चर्मही अवशेषरहगयाथा व जिसका शरीर नस समूहोंसे व्याप्तथा व नसों से भरेहुये जिसके मुरवा बहुत भारीथे व जोकि मोटे घुट्ठनाके

हाड़ोंसे भीषणथा ॥ १९ ॥ व अत्यन्त विरतारयुक्त पावोंवालाव लम्बी टेढ़ी पतली अंगुलियोंवाला व हाड़ और चर्म के अवशेषसे ताड़ीहुईसी देहवालाथा ॥ २० ॥ व कुत्सित, भीषणाकार, क्षुधासे क्षीण, बहुते रोमों समेत, दावानलसेदहे वृक्षके समानाकार अतिचञ्चल लोचन ॥ २१ ॥ व मूर्त्तिमान् भयानककी नाईं सब प्राणियों को भयदायक, अत्यन्त दीनमुख और हृदय कँपानेवालाथा उस प्रेतको देखकर बूढ़े तपस्वीने धैर्य्य से ऐसा पूंछा कि तू कौनहै ॥ २२ ॥ व तू क्यों यहां संप्राप्त है व किस कारण तेरी ऐसी गतिहुई है हे रक्षः ! मैं दयाबुद्धिसे पूंछताहूं तू निडरताके साथ कह ॥ २३ ॥ और शिवसहस्रनाम वाले विभूति से कवच कियेहुये तपस्वी हमलोगों

विग्रहम् ॥ २० ॥ विकटंभीषणाकारंक्षुत्क्षाममतिलोमशम् ॥ दावदग्धद्रुमाकारमतिचञ्चललोचनम् ॥ २१ ॥ मूर्तं भयानकमिवसर्वप्राणिभयप्रदम् ॥ हृदयाकम्पनंदृष्ट्वातंप्रेतंवृद्धतापसः ॥ अतिदीनाननंकस्त्वमितिधैर्येणपृष्टवान् ॥ २२ ॥ कुतस्त्वमिहसम्प्राप्तः कस्मात्तेगतिरीदृशी ॥ अनुक्रोशधियारक्षःपृच्छामिवदनिर्भयम् ॥ २३ ॥ अस्माकन्तापसानाञ्चनभयन्त्वद्विधान्मनाक् ॥ शिवनामसहस्राणांविभूतिकृतवर्मणाम् ॥ २४ ॥ तापसोदीरितमितितद्रक्षःप्रीतिपूर्वकम् ॥ निशम्यप्राञ्जलिः प्राहतंकृपालुन्तपोधनम् ॥ २५ ॥ राक्षसउवाच ॥ अनुक्रोशोस्तियदितेभगवंस्तापसोत्तम ॥ स्ववृत्तान्तन्तदावच्मिशृणुष्वावहितःक्षणम् ॥ २६ ॥ प्रतिष्ठानाभिधानोस्ति देशोगोदावरीतटे ॥ तीर्थप्रतिग्रहरुचिस्तत्रासंब्राह्मणस्त्वहम् ॥ २७ ॥ तेनकर्मविपाकेनप्राप्तोस्मिगतिमीदृशीम् ॥ मरुस्थलेमहाघोरे तरुतोयविवर्जिते ॥ २८ ॥ गतोबहुतरःकालस्तत्रमेवसतोमुने ॥ क्षुधितस्यतृषार्तस्यशीततापसहस्यच ॥ २९ ॥ वर्षत्यपिमहामेघे धारा

को तेरे समान जनसे कुछभी डर नहीं है ॥ २४ ॥ ऐसे प्रीतिपूर्वक तापसका वचनसुनकर हाथजोड़ेहुये उस राक्षसने उन दयालु तपोधनसे कहा ॥ २५ ॥ राक्षस बोला कि, हे भगवन् तापसोत्तम ! जो आपके दया है तो क्षणभर सावधानहोकर सुनो मैं अपना वृत्तान्त कहताहूं ॥ २६ ॥ कि गोदावरीनदी के किनारे प्रतिष्ठान नामक देशहै उसमें मैं तीर्थदान लेनेकी रुचिवाला ब्राह्मण हुआ ॥ २७ ॥ उस कर्मविपाक से ऐसी गति को प्राप्तहूं वृक्ष और जल से विवर्जित, महाघोर जो मरुस्थल है ॥ २८ ॥ उस में बसताहुआ भूंखा व प्यास से पीड़ित व जाड़ और घाम सहनेवाला जो मैं हूं उसका बहुतसे बहुत काल बीतगया हे मुने ! ॥ २९ ॥

वर्षाकाल में राती दिन धारा सम्पात से महामेघोंके वर्षतेहुये भी वायु के बहतेही मेरे कुछ आच्छादन नहीं है ॥ ३० ॥ जिन्हों ने पर्व में दान नहीं दिया व जिन्हों ने तीर्थ में प्रतिग्रह किया याने दान लिया है वे इस महादुःखनिबन्धनी योनिको प्राप्त होते हैं ॥ ३१ ॥ हे मुने ! जब मरुभूमिमें बहुतकाल बीतगया तब एकसमय आयाहुआ कोई एक ब्राह्मणका पुत्र मुझ करके देखागया ॥ ३२ ॥ जो कि सूर्योदयको पछिसे प्राप्तहोकर सन्ध्याकी विधि से विवर्जित और मलमूत्रका त्याग कर शौच व आचमनसे हीनथा ॥ ३३ ॥ उस कच्छाछोरेहुये अशुद्ध और सन्ध्याकर्मसे रहित ब्राह्मणको देखकर मैं भोग मिलनेकी इच्छासे उसकी देहमें पैठगया ॥ ३४ ॥

सारैर्दिवानिशम् ॥ प्रावृट्कालेऽनिलेवाति किञ्चित्प्रावरणंनमे ॥ ३० ॥ पर्वण्यदत्तदानायेकृततीर्थप्रतिग्रहाः ॥ तइमां योनिमृच्छन्तिमहादुःखनिबन्धनीम् ॥ ३१ ॥ गतेबहुतिथेकालेमरुभूमौमुनेमया ॥ दृष्टोब्राह्मणदायाद एकदाकश्चिदागतः ॥ ३२ ॥ सूर्योदयमनुप्राप्यसन्ध्याविधिविवर्जितः ॥ कृत्वामूत्रपुरीषेतुशौचाचमनवर्जितः ॥ ३३ ॥ मुक्तकच्छमशौचंचसन्ध्याकर्मविवर्जितम् ॥ तंदृष्ट्वातच्छरीरेहंसंक्रान्तोभोगलिप्सया ॥ ३४ ॥ सद्विजोमन्दभाग्यान्मेकेनचिद्वणिजासह ॥ अर्थलोभेनसम्प्राप्तःपुरींपुण्यामिमांमुने ॥ ३५ ॥ अन्तःपुरिप्रविष्टोभूत्सद्विजोमुनिसत्तम ॥ तच्छरीराद्बहिर्भूतस्त्वहंपापैःसमंक्षणात् ॥ ३६ ॥ प्रवेशोनास्तिचास्माकंप्रेतानांतपसान्निधे ॥ महतांपातकानांचवाराणस्यांशिवाज्ञया ॥ ३७ ॥ अद्यापितानिपापानितद्बहिर्निर्गमेच्छया ॥ बहिरेवहितिष्ठन्तिसीम्निप्रमथसाध्वसात् ॥ ३८ ॥ अद्यश्वोवापरश्वोवासबहिर्निर्गमिष्यती ॥ इत्याशयास्थिताःस्मोवैयावदद्यतपोधन ॥ ३९ ॥ नाद्यापिसबहिर्गच्छेन्नाद्याप्याशा

हे मुने ! वह ब्राह्मण मेरी मन्दभाग्यसे किसी वणिक् के साथ लोभसे इस पुरीको प्राप्तभया था ॥ ३५ ॥ हे मुनिसत्तम ! वह ब्राह्मण पुरीके भीतर प्रविष्टहुआ और पापों के साथ मैं क्षणमें उसके शरीरसे बाहर होगया ॥ ३६ ॥ व हे तपोनिधान ! श्रीशिवजी की आज्ञा से काशी में हम लोग प्रेत और बड़े पापों का भी पैठना नहीं है ॥ ३७ ॥ अबभी वे पाप उस पैठेहुये की बाहर निकलनेकी इच्छा करकेभी गणों के डरसे बाहरही डांड़ में टिके रहते हैं ॥ ३८ ॥ कि आज व काल्ह व परसों वह बाहर निकलेगा हे तपोधन! ऐसी आशा से आज तकभी हम लोग स्थित हैं ॥ ३९ ॥ आजभी वह बाहर नहीं निकले है और आजभी हमारी आशा नहीं जाती

है इस लिये आशापाश से बांधेहुये हम यहां हैं ॥ ४० ॥ हे तपस्विन् ! आज के हुये आश्चर्य्यको मैं कहता हूं आप उसको सुनो इससमय मेंही अत्यन्त कल्याण होने वाला है मैं ऐसा मानताहूं ॥ ४१ ॥ और भूखेहुये हमलोग भोजन की चाहसे प्रतिदिन प्रयागतक जाते हैं परन्तु कहीं कुछ नहीं पाते हैं ॥ ४२ ॥ सर्वत्र प्रतिवन में फूलेफले वृक्ष हैं और निर्मल जलवाले जलाशयभी भूमि में पग पग पै हैं ॥ ४३ ॥ हे मुने ! अन्यभी भोजन और विचित्र बहुतेपानभी सर्वत्र सब को सुलभ हैं ॥ ४४ ॥ परन्तु दृग्गतभी नहीं हैं याने देख पड़ते भी नहीं हैं यह आश्चर्य्य है हे मुने ! आज दैवसे आतेहुये एक कार्पटिक लालेवस्त्रवाले तपस्वी को देखकर भूंख से भारी पी-

प्रयातिनः ॥ इत्यास्महेनिराधारा आशापाशनियन्त्रिताः ॥ ४० ॥ चित्रमद्यतनंवच्मितपस्विंस्तन्निशामय ॥ अतीवभाविकल्याणमितिमन्येधुनैवहि ॥ ४१ ॥ आप्रयागंप्रतिदिनंप्रयामःक्षुधितावयम् ॥ आहारकाम्ययाक्वापिपरंनोकिञ्चिदाप्नुमः ॥ ४२ ॥ सन्तिसर्वत्रफलिनःपादपाःप्रतिकाननम्॥जलाशयाश्चस्वच्छापाःसन्तिभूम्याम्पदेपदे ॥४३॥ अन्यान्यपिचभक्ष्याणिसर्वेषांसुलभान्यहो ॥ पानान्यपिविचित्राणिसन्तिभूयांसिसर्वतः ॥ ४४ ॥ परन्नोदृग्गतान्येवदूरेदूरेव्रजन्त्यहो ॥ दैवादद्यैकमायान्तं दृष्ट्वाकार्पटिकम्मुने ॥ ४५ ॥ तस्यान्तिकमहंप्राप्तःक्षुधयापरिपीडितः ॥ प्रसह्यभक्षयाम्येनमितिमत्वात्वरान्वितः ॥ ४६ ॥ यावत्तन्तुजिघृक्षामितावत्तद्वदनाम्बुजात् ॥ शिवनामपवित्रावाङ्गिरगाद्विघ्नहारिणी ॥ ४७ ॥ शिवनामस्मरणतोमदीयमपिपातकम् ॥ मन्दीभूतंततस्तेनप्रवेशंलब्धवानहम् ॥ ४८ ॥ सीमस्थैःप्रमथैर्नाहंसद्योदृग्गोचरीकृतः ॥ शिवनामश्रुतौयेषांतान्नपश्येद्यमोपियत् ॥ ४९ ॥ अन्तर्गेहस्यसीमानं प्राप्तस्तेन

ड़ित हुआ मैं उस के समीप में प्राप्तभया ॥ ४५ ॥ कि, हठ से इस को खा डालूंगा ऐसा मानकर वेग समेतहोकर ॥ ४६ ॥ जबतक मैंने उसके पकड़नेकी इच्छा किया तब तक उसके मुख कमल से विघ्नविदारिणी व शिवजी के नाम से पवित्र वाणी निकल आई ॥ ४७ ॥ व शिवजी के नामके सुमिरने से मेराभी पाप मंदहोगया तदनंतर मैंने उसमे पैठना पाया ॥ ४८ ॥ और डांड़में टिकेहुये गणों करकेमैं शीघ्रही न देखागया नेत्रगोचर न कियागया जिस से जिन के कान में शिवजी का नाम होवे

उस को यमराजभी न देखे ॥ ४९ ॥ इससमय उस के साथ मैं अंतरघरकी सीमा में प्राप्तहूं व वह कार्पटिक बींचमें पैठगया और मैं यहां टिकाहूं ॥ ५० ॥ हे मुने कृपालो! इस समय तुमको देखकर मैं अपनाको बहुत मानताहूं और तुम इस सुदारुण योनिसे मेरा उद्धार करो ॥ ५१ ॥ इस भांति प्रेत का वचन सुनकर उन कृपालु, तपोधन ने मनसे चिन्तना किया कि अपने अर्थ उद्यमवाले मनुष्यों को धिक्कार है ॥ ५२ ॥ क्योंकि, पशु, पक्षी और मृगादिक सब प्राणी अपना पेट भरनेहारे होते हैं जो जन सदा पराये अर्थ में उद्यत है वहही संसार में धन्यहै ॥ ५३ ॥ आज मेरेही शरणको प्राप्त व पापसे पीड़ित हुये इस प्रेतका निस्सन्देह अपनी तपस्या से उद्धार क-

सहाधुना ॥ सतुकार्पटिकोमध्यं प्रविष्टोहमिहस्थितः ॥ ५० ॥ आत्मानंबहुमन्येहंत्वांविलोक्याधुनामुने ॥ मामुद्धरकृपालोत्वंयोनेरस्मात्सुदारुणात् ॥ ५१ ॥ इतिप्रेतवचःश्रुत्वासकृपालुस्तपोधनः ॥ मनसाचिन्तयामास धिङ्निजार्थोद्यमान्नरान् ॥ ५२ ॥ स्वोदरम्भरयःसर्वेपशुपक्षिमृगादयः ॥ सएवधन्यःसंसारेयःपरार्थोद्यतःसदा ॥ ५३ ॥ तपसाद्यनिजेनाहंप्रेतमेतमघातुरम् ॥ मामेवशरणंप्राप्तमुद्धरिष्याम्यसंशयम् ॥ ५४ ॥ विमृश्येतिसवैचित्तेपिशाचंप्राहसत्तमः ॥ विमलोदेसरस्यस्मिन्स्नाहि रेपापनुत्तये ॥ ५५ ॥ पिशाचतेपिशाचत्वंतीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ कपर्दीशेक्षणादद्यक्षणात्क्षीणंविनङ्क्ष्यति ॥ ५६ ॥ श्रुत्वेतिसमुनेर्वाक्यंप्रेतःप्राहप्रणम्यतम् ॥ प्रीतात्माप्रीतमनसंप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ५७ ॥ पानीयंपातुमपिनोलभेयंमुनिसत्तम ॥ स्नानस्यकाकथानाथरक्षेयुर्जलदेवताः ॥ ५८ ॥ पानस्याप्यत्रकावार्ताजलस्पर्शोपिदुर्लभः ॥ इतिप्रेतोक्तमाकर्ण्यसभृशम्प्रीतिमानभूत् ॥ ५९ ॥ उवाचचतपस्वीतं जगदुद्धरणक्षमः ॥ गृहाणेमांविभू

रूंगा ॥ ५४ ॥ ऐसे मन में ही विचारकर उस सन्तशिरोमणि ने पिशाचसे कहा कि रे पापिन् ! तू पाप दुराने के लिये इस विमलोदक सरोवर में स्नान कर ॥ ५५ ॥ हे पिशाच ! इस तीर्थ के प्रभाव से व कपर्दीश्वरके दर्शन से तेरा पिशाचभाव क्षीणहोकर आजही विनष्टहोजावेगा ॥ ५६ ॥ इसभांति मुनिका वचन सुनकर प्रसन्न चित्त दोनों हाथ जोड़े हुये उस प्रेतने उस प्रसन्नमन मुनिके नमस्कार कर कहा ॥ ५७ ॥ कि, हे मुनिसत्तम, नाथ ! मैं पीनेको भी पानी नहीं पाताहूं तो नहाने की क्या वार्त्ता है क्योंकि यहां जलके देवता जलको रखाते हैं ॥ ५८ ॥ इस लिये यहां पीनेकी भी क्या वार्त्ता है बरन पानीका छूना ही दुर्लभ है ऐसा प्रेतका वचन सुनकर

वह बहुत अधिक प्रसन्न हुवा॥ ५९ ॥ और जगत् का उद्धार करने को समर्थ तपस्वी उससे बोला कि तू इस विभूतिको ले व ललाट पाट में कर याने लगाले ॥ ६० ॥ हे प्रेत ! आश्चर्य्य है कि, इस विभूतिमाहात्म्य से कोई भी कहीं भी किसीकी भी व महापापी की भी बाधा नहीं करता है ॥ ६१ ॥ व विभूतिधारणरूप पाशुपत अस्त्रसे डरे हुये यमराजके गण महापापीके भी भाल (माथ) को भस्मसे उज्ज्वल देखकर भागजातेहैं ॥ ६२ ॥ जैसे बटोही लोग जलाशयको मुर्दाके कङ्कालादिकों से अङ्कित देखकर दूरचलेजाते हैं वैसेही भस्माङ्कितभालवाले को देखकर यमके किङ्कर भागजाते हैं ॥ ६३ ॥ और सब ओर हिंसक जन्तुभी शिवमन्त्रों से विभूति के द्वारा देहकी रक्षाकिये हुये नियमी नरोत्तमके समीप नहीं जाते हैं ॥ ६४ ॥ जो जन शिवमन्त्रसे पवित्रित भस्मको भक्ति से माथ छाती और बाहोंके मूलमें

तिन्त्वंललाटफलकेकुरु ॥ ६० ॥ अस्माद्विभूतिमाहात्म्यात्प्रेतकोपिनकुत्रचित ॥ बाधाङ्करोतिकस्यापि महापातकिनोप्यहो ॥ ६१ ॥ भालंविभूतिधवलंविलोक्ययमकिङ्कराः ॥ पापिनोपिपलायन्तेभीताःपाशुपतास्त्रतः ॥ ६२ ॥ अस्थिध्वजाङ्कितंदृष्ट्वायथापान्थाजलाशयम् ॥ दूरयन्तितथाभस्मभालाङ्कंयमकिङ्कराः ॥ ६३ ॥ कृतभूतितनुत्राणंशिवमन्त्रैर्नरोत्तमम् ॥ नोपसर्पन्तिनियतमपिहिंस्राःसमंततः ॥ ६४ ॥ भक्त्याबिभर्तियोभस्मशिवमन्त्रपवित्रितम् ॥ भालेवक्षसिदोर्मूलेनतंहिंसन्तिहिंसकाः ॥ ६५ ॥ सर्वेभ्योदुष्टसत्त्वेभ्योयतोरक्षेदहर्निशम् ॥ रक्षेत्येषाततःप्रोक्ताविभूतिर्भूतिकृद्यतः ॥ ६६ ॥ भासनाद्भर्त्सनाद्भस्मपांसुःपांसुत्वदायतः ॥ पापानांक्षारणात्क्षारोबुधैरेवन्निरुच्यते ॥ ६७ ॥ गृहीत्वाधारमध्यात्सभस्मप्रेतकरेऽर्पयत् ॥ सोप्यादरात्समादायभालदेशेन्यवेशयत् ॥ ६८ ॥ विभूतिधारिणंवीक्ष्यपिशाचंजलदेवताः ॥ जलावगा

धारण करता है उसको हिंसक (घातक) लोग नहीं मारते हैं ॥ ६५ ॥ जिससे यह सब दुष्ट वनवासी जन्तुओंसे रक्षाकरतीहै उससे रक्षा इस नामसे कही गई है व जिससे ऐश्वर्य्य करनेवाली है उससे विभूति कहाती है ॥ ६६ ॥ और प्रकाश पसारने से व अज्ञानका भर्त्सन करने से इसका भस्म नामहै व जिससे यह पापभावके खण्डन करनेवाली है उससे पांसुदाहै और पापोंके झारडालनेसे क्षार है इसभांति यह विभूति पण्डितों करके अर्थ समेत नामोंसे कहीजाती है ॥ ६७ ॥ इसभांति निर्वचन (नामार्थ) कर उस मुनिने आधारसे भस्म लेकर प्रेतके हाथमें दिया और उसने भी आदरसे भलीभांति लेकर भालदेश में लगालिया ॥ ६८ ॥ व विभूति

लगाये हुये उस पिशाचको पानीके भीतर पैठने में परायण देखकर जलके देवोंने न मने किया ॥ ६९ ॥ और जबतक यह स्नानकर व जलपानकर उस सरोवरसे बाहर निकले तबतक पिशाचभाव दूर चलागया व और वह दिव्यदेहको प्राप्तभया ॥ ७० ॥ अनन्तर दिव्यमाला व वस्त्रोंको धारेहुये व दिव्यसुगन्धोंका अनुलेपन लगाये हुये वह दिव्य विमानमें भलीभांति चढ़कर पवित्र या पवन संबंधी आकाश मार्गको प्राप्तहुवा ॥ ७१ ॥ और आकाशमें जातेहुये उसने उस तपस्वी के नमस्कार किया व बहुत ऊंचे स्वरसे कहा कि हे अपाप, ऐश्वर्य्यसम्पन्न ! मैं आप करके पाप से छुड़ायागयाहूं ॥ ७२ ॥ सब ओर से अत्यन्त निन्दित उस कदर्य्ययोनित्व

हनपरंवारयाञ्चक्रिरेनतम् ॥ ६९ ॥ स्नात्वापीत्वासनिर्गच्छेद्यावत्तस्माज्जलाशयात् ॥ तावत्पैशाच्यमगमद्दिव्यदेहम वापच ॥ ७० ॥ दिव्यमालाम्बरधरोदिव्यगन्धानुलेपनः ॥ दिव्ययानंसमारुह्यवर्त्मप्राप्तोथपावनम् ॥ ७१ ॥ गच्छताते नगगनेसतपस्वीनमस्कृतः ॥ प्रोच्चैःप्रोवाचभगवन्मोचितोस्मित्वयानघ ॥ ७२ ॥ तस्मात्कदर्ययोनित्वादतीवपरिनि न्दितात् ॥ अस्यतीर्थस्यमाहात्म्याद्दिव्यंदेहमवाप्तवान् ॥ ७३ ॥ पिशाचमोचनंतीर्थमद्यारभ्यसमाख्यया ॥ अन्ये षामपिपैशाच्यमिदंस्नानाद्धरिष्यति ॥ ७४ ॥ अस्मिंस्तीर्थेमहापुण्येयेस्नास्यन्तीहमानवाः ॥ पिण्डांश्चनिर्वपिष्यन्ति सन्ध्यातर्पणपूर्वकम् ॥ ७५ ॥ दैवात्पैशाच्यमापन्नास्तेषांपितृपितामहाः ॥ तेपिपैशाच्यमुत्सृज्ययास्यन्तिपरमांगति म् ॥ ७६ ॥ अद्यशुक्लचतुर्दश्यांमार्गेमासितपोनिधे ॥ अत्रस्नानादिकंकार्यंपैशाच्यपरिमोचनम् ॥ ७७ ॥ इमांसांवत्सरीं यात्रांयेकरिष्यन्तिमानवाः ॥ तीर्थप्रतिग्रहात्पापान्निःसरिष्यन्तितेनराः ॥ ७८ ॥ पिशाचमोचनेस्नात्वाकपर्दीशंस

से छूटा हुवा मैं इसतीर्थ के माहात्म्य से दिव्यदेहको प्राप्तभयाहूं ॥ ७३ ॥ आज से लगाकर भलीभांति नाम से प्रसिद्ध हुवा यह पिशाचमोचनतीर्थ स्नान मात्र से अन्य लोगों के भी पिशाचभाव को हरलेगा ॥ ७४ ॥ व जो मनुष्य यहां इस महापुण्य तीर्थ में स्नानकरेंगे व संध्या तर्प्पणपूर्वक पिंडा पारेंगे उनके पिता व पितामहादि पितर ॥ ७५ ॥ जो कि दैवयोगसे पिशाचभाव को प्राप्तहोवें वे भी पैशाच्यको परित्यागकर उत्तम गति को जावेंगे ॥ ७६ ॥ हे तपोनिधे ! आज अगहन मासकी सुदी चतुर्दशी में पैशाच के परिमोचन करनेवाला स्नान आदि यहां करने योग्य है ॥ ७७ ॥ जे मनुष्य इस वार्षिकी यात्रा को करेंगे वे नर तीर्थ में दानलेने के पाप से

निकल जावेंगे ॥ ७८ ॥ पिशाचमोचन तीर्थ में स्नानकर व कपर्दीश्वर को भली भांति पूजकर और यहां अन्नदानकर नर अन्यत्रभी निडर होवेंगे ॥ ७९ ॥ व अगहन सुदी चतुर्दशी तिथि में कपर्दीश्वर के समीप पिशाचमोचन तीर्थमे स्नानकर अन्यत्रभी मरने से पिशाचभाव को न प्राप्तहोवेंगे ॥ ८० ॥ ऐसे कहकर उस तपोधनी के बारबार नमस्कार कर वह महाभाग दिव्यपुरुष दिव्यगति को प्राप्तहोगया ॥ ८१ ॥ हे घटोद्भव अगस्त्यजी! उस बड़े आश्चर्य्यको देखकर वह तपोधनभी कपर्दीश्वर लिंगकी पूजाकर काल से कैवल्य मुक्ति को पाताभया ॥८२॥ हे महामुने! तबसे लगाकर सब पापहारी पिशाचतीर्थ काशी में परम प्रसिद्धि को पहुँचगया ॥ ८३ ॥ व पि-

मर्च्यंच ॥ कृत्वातत्रान्नदानञ्च नरोन्यत्रापिनिर्भयाः ॥ ७९ ॥ मार्गशुक्लचतुर्दश्यांकपर्दीश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वान्यत्रापिमरणान्नपैशाच्यमवाप्नुयुः ॥ ८० ॥ इत्युक्त्वादिव्यपुरुषोभूयोभूयोनमस्यतम् ॥ तपोधनंमहाभागोदिव्यांगतिमवाप्तवान् ॥ ८१ ॥ तपोधनोपितद्दृष्ट्वामहाश्चर्यंघटोद्भव ॥ कपर्दीश्वरमाराध्यकालान्निर्वाणमाप्तवान् ॥ ८२ ॥ पिशाचमोचनंतीर्थंतदारभ्यमहामुने ॥ वाराणस्यांपराख्यातिमगमत्सर्वपापहृत् ॥ ८३ ॥ पैशाचमोचनेतीर्थेसम्भोज्यशिवयोगिनम् ॥ कोटिभोज्यफलंसम्यगेकैकपरिसंख्यया ॥ ८४ ॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यंनरोनियतमानसः ॥ भूतैःप्रेतैःपिशाचैश्चकदाचिन्नाभिभूयते ॥ ८५ ॥ बालग्रहाभिभूतानांबालानांशान्तिकारकम् ॥ पठनीयंप्रयत्नेनमहाख्यानमिदंपरम् ॥ ८६ ॥ इदमाख्यानमाकर्ण्यगच्छन्देशान्तरंनरः ॥ चोरव्याघ्रपिशाचाद्यैर्नाभिभूयेतकुत्रचित् ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपिशाचमोचनमहिमकथनंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ * ॥

शाचमोचन तीर्थके समीप शिवयोगीको भलीभांति खिलापिलाकर क्रमसे एक एककी परिसंख्या (गंती) से करोड़ ब्रह्मभोजका फल अच्छे प्रकारसे होताहै ॥८४॥ सावधान मनुष्य इस पुण्यरूप अध्यायको सुनकर भूत प्रेत और पिशाचोंसे कभी नहीं दबायाजाताहै ॥ ८५ ॥ व पूतनादि बालग्रहोंसे तिरस्कृत (दबेहुये) बालकोंकी शांति का करनेवाला यह उत्तम महाख्यान बड़े यत्नसे पढ़ने योग्यहै ॥ ८६ ॥ व इस आख्यानको भलीभांति सुनकर देशांतरको जाताहुवा नर चोर बाघ और पिशाचादिकोंसे कहीं न तिरस्कार पावे ॥ ८७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपिशाचमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामचतुष्पञ्चाशत्तमोध्यायः ॥ ५४ ॥

दो० । पचपनके अध्याय में काशी महिमा उक्त । पिङ्गलादिगण कृत विविध लिंगाराधनयुक्त ॥ हे कुम्भयोने ! जे अन्यभी गण काशीमें थे उन्होंने वहां जिन लिंगोंको किया उन सबको भी तुमसे कहूंगा तुम सुनो ॥ १ ॥ कि पिंगलाख्यगण ने कपर्दीश्वरसे उत्तर दिशामें पिंगलाख्येश्वर नामक शिवलिंगकी प्रतिष्ठा किया॥ २ ॥ उसके दर्शनमात्र से पापों का विनाश होजाता है व देवोंके देव त्रिशूलधारी महादेवजी के परमप्यारे ॥ ३ ॥ वीरभद्रजी आजतकभी अचलहोकर वीरभद्रेश्वर लिंग को ध्यान करतेहैं उसके दर्शन मात्रसे वीरसिद्धि बहुतही होती है ॥ ४ ॥ और अविमुक्तेश्वरसे पश्चिमदिशामें वीरभद्रेश्वरको भलीभांति पूजकर मनुष्य संग्राममें भंगको

स्कन्दउवाच ॥ अन्येपिमेगणास्तत्रकाश्यांलिङ्गानिचक्रिरे ॥ तांश्चतेकथयिष्यामिकुम्भयोनेनिशामय ॥ १ ॥ गणेनपिङ्गलाख्येनपिङ्गलाख्येशसंज्ञितम् ॥ लिङ्गंप्रतिष्ठितंशम्भोःकपर्दीशादुदग्दिशि ॥ २ ॥ तस्यदर्शनमात्रेण पापानांजायतेक्षयः ॥ वीरभद्रोमहाप्रीतोदेवदेवस्यशूलिनः ॥ ३ ॥ वीरभद्रेश्वरंलिङ्गंध्यायेदद्यापिनिश्चलः ॥ तस्य दर्शनमात्रेणवीरसिद्धिःप्रजायते ॥ ४ ॥ अविमुक्तेश्वरात्पश्चाद्वीरभद्रेश्वरंनरः ॥ समर्च्यनरणेभङ्गंकदाचिदपिचाप्नुयात ॥ ५ ॥ वीरभद्रःस्वयंसाक्षाद्वीरमूर्तिधरोमुने ॥ संहरेद्विघ्नसंघातमविमुक्तनिवासिनाम् ॥ ६ ॥ भद्रयाभद्रकाल्या चभार्ययाशुभयायुतम् ॥ वीरभद्रंनरोभ्यर्च्यकाशीवासफलंलभेत् ॥ ७ ॥ किरातेनकिरातेशंलिङ्गंकाश्यांप्रतिष्ठितम् ॥ केदाराद्दक्षिणेभागेभक्तानामभयप्रदम् ॥ ८ ॥ चतुर्मुखोगणःश्रीमान्वृद्धकालेशसन्निधौ ॥ चतुर्मुखेश्वरंलिङ्गंध्यायेदद्यापिनिश्चलः ॥ ९ ॥ भक्ताश्चतुर्मुखेशस्यचतुराननवद्दिवि ॥ पूज्यन्तेसुरसङ्घातैःसर्वभोगसमन्विताः ॥ १० ॥

कभी न प्राप्तहोवे ॥ ५ ॥ हे मुने ! साक्षात् श्रीवीरभद्रजी आपही काशीवासी जनोंके विघ्नसमूहका विनाशकरें ॥ ६ ॥ और मंगलमयी शुभकारिणी भद्रकाली स्त्री से संयुत श्रीवीरभद्रजीको सामने से पूजकर नर काशीवासका फल पावे ॥ ७ ॥ व किरातगणने केदारेश्वरके दक्षिण ओर काशीमें भक्तोंके अभयदायक किरातेश्वर लिंगकी प्रतिष्ठाकिया ॥ ८ ॥ व अबतक भी निश्चलहुवा श्रीमान् चतुर्मुख नामक गण चतुर्मुखेश्वर लिंगको ध्यानधरता है ॥ ९ ॥ उस चतुर्मुखेश्वरके भक्तलोग सब

भोगसे संयुत होकर स्वर्ग मे देवसमूहोंसे ब्रह्माके समान पूजे जाते हैं ॥ १० ॥ व कुबेरेश्वर के समीप में निकुम्भगणसे पूजेहुये निकुम्भेश्वर को सब ओरसे देखकर पूजाकर ग्रामको जाताहुवा मनुष्य कार्य्यकी सिद्धिको प्राप्तहोता है और शिवलोक में पूजाजाताहै ॥ ११ ॥ व काशीमें महादेवजीसे दक्षिण पञ्चाक्षेश्वर महालिंगको भली भांति पूजकर जातिस्मरणको प्राप्त होवे याने उसके पूर्वजन्मोंकी सुधिहोआवे ॥ १२ ॥ व काशी में अन्तर घरके द्वारपर भारभूतेश नामक गणेश्वर से पूजेहुये भारभूतेश्वर लिंग को ध्यानधर मनुष्य शिवलोक में निवासकरे ॥ १३ ॥ जिन्होंने काशी में भारभूतेश्वर लिंग को नहीं देखा वे विनाफलके वृक्षोंकी नाई भूमिके भारभूत

निकुम्भेश्वरमालोक्यनिकुम्भगणपूजितम् ॥ पूजयित्वाव्रजन्ग्रामंकार्यसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ कुबेरेशसमीपेतुशिवलोकेमहीयते ॥ ११ ॥ पञ्चाक्षेशंमहालिङ्गंमहादेवस्यदक्षिणे ॥ समभ्यर्च्यनरःकाश्यांजातिस्मृतिमवाप्नुयात् ॥ १२ ॥ भारभूतेश्वरंलिङ्गंभारभूतगणार्चितम् ॥ अन्तर्गृहोत्तरद्वारिध्यात्वाशिवपुरेवसेत् ॥ १३ ॥ भारभूतेश्वरंलिङ्गंयैःकाश्यांनविलोकितम् ॥ भारभूताःपृथिव्यास्तेऽवकेशिनइवद्रुमाः ॥ १४ ॥ गणेनत्र्यक्षसंज्ञेनलिङ्गंत्र्यक्षेश्वरंपरम् ॥ त्रिलोचनपुरोभागेशील्येताद्यापिकुम्भज ॥ १५ ॥ तस्यलिङ्गस्ययेभक्तास्तेतुदेहावसानतः ॥ त्र्यक्षाएवप्रजायन्तेनात्रकार्याविचारणा ॥ १६ ॥ क्षेमकोनामगणपःकाश्यांमूर्त्तिधरःस्वयम् ॥ विश्वेश्वरंसर्वगतंध्यायेदद्यापिनिश्चलः ॥ १७ ॥ क्षेमकंपूजयेद्यस्तुवाराणस्यांमहागणम् ॥ विघ्नास्तस्यप्रलीयन्तेक्षेमंस्याच्चपदेपदे ॥ १८ ॥ देशान्तरंगतोयस्तुतस्यागमनकाम्यया ॥ क्षेमकःपूजनीयोत्रक्षेमेणाशुसआव्रजेत् ॥ १९ ॥ लाङ्गलीश्वरमालोक्यलिङ्गंलाङ्गलिनार्चितम् ॥ विश्वेशा

हैं ॥ १४ ॥ हे अगस्त्यजी ! अबतक भी, त्रिलोचन के अग्रभाग में त्र्यक्ष नामक गणसे त्र्यक्षेश्वर उत्तम लिंग ध्यायाजाता है ॥ १५ ॥ और उस लिंगके जे भक्तहैं वे देहांत में त्रिनेत्र शिवही होजाते हैं इस में विचार न करना चाहिये ॥ १६ ॥ व काशी में मूर्तिधारी क्षेमक नाम गणेश्वर आजभी निश्चलहोकर सर्वगत सर्वव्यापक विश्वनाथजी का ध्यान करता है ॥ १७ ॥ और जो मनुष्य काशीपुरी में क्षेमक नामक महागणको पूजे उस के सब विघ्न विनष्ट होजाते हैं व क्षण क्षण मे कल्याण होता है ॥ १८ ॥ व जो विदेश को गयाहो उसके आनेकी कामना से यहां क्षेमक गण पूजनीय हैं क्योंकि वह परदेशी कल्याण के साथ अपने घर को चलाआवे ॥ १९ ॥ व श्री-

विश्वनाथ जी के उत्तरभाग में लांगलीगण से पूजित लागलीश्वर को देखकर मनुष्य रोगसेवी न होवे ॥ २० ॥ एकबार श्रीलांगलीश्वरकी पूजाकर पंचलांगलदान से उत्पन्न उत्तम सम्पूर्ण सब संपत्ति करनेवाले फलको पावे ॥ २१ ॥ व विराधगणसे पूजित विराधेश्वरकी पूजाकर सब अपराधों से संयुतभी मनुष्य कहीं भी नहीं अपराध को प्राप्त होता है ॥ २२ ॥ और काशीवासी जनो से जो दिन दिन अपराध किया जाता है वह विराधेश्वरकी अच्छी पूजा से शीघ्रही विनाशको प्राप्त होजाता है ॥ २३ ॥ व दण्डपाणिजी से नैर्ऋत्यकोण में बडे यत्न से विराधेश्वर के नमस्कार कर सब अपराधों से छूटजाता है इस में संशय नही है ॥ २४ ॥

दुत्तरेभागेननरोरोगभाग्भवेत्॥ २० ॥ लाङ्गलीशंसकृत्पूज्यपञ्चलाङ्गलदानजम् ॥ फलंप्राप्नोत्यविकलंसर्वसम्पत्करं परम् ॥ २१ ॥ विराधेश्वरमाराध्यविराधगणपूजितम् ॥ सर्वापराधयुक्तोपिनापराध्यतिकुत्रचित् ॥ २२ ॥ दिनेदिने पराधोयःक्रियतेकाशिवासिभिः ॥ सयातिसंक्षयंक्षिप्रंविराधेशसमर्चनात् ॥ २३ ॥ नैर्ऋतेदण्डपाणेस्तुविराधेशंप्रयत्न तः ॥ नत्वासर्वापराधेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ २४ ॥ सुमुखेशंमहालिङ्गंसुमुखाख्यगणार्चितम् ॥ पश्चिमाभिमुखंलि ङ्गंदृष्ट्वापापैःप्रमुच्यते ॥ २५ ॥ स्नात्वापिलिपिलातीर्थेसुमुखेशंविलोक्यच ॥ सदैवसुमुखंपश्येद्धर्मराजंनदुर्मुखम् ॥ २६ ॥ आषाढिनार्चितंलिङ्गमाषाढीश्वरसंज्ञिकम् ॥ दृष्ट्वाषाढ्यांनरोभक्त्यासर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ २७ ॥ उदीच्यांभार भूतेशादाषाढीशंसमर्चयन्॥ आषाढ्यांपञ्चदश्यांवैनपापैःपरितप्यते ॥ २८ ॥ शुचिशुक्लचतुर्दश्यांपञ्चदश्यामथापि

और जो कि सुमुखाख्य गण से भलीभांति पूजित सुमुखाख्येश्वरनामक पश्चिमाभिमुख महालिंग है उस लिंग को देखकर सब पापों से छूटजाता है ॥ २५ ॥ व पिलिपिलातीर्थ में स्नानकर फिर सुमुखेश्वर के दर्शन कर सदैव धर्मराज को सुमुख देखे दुर्मुख न देखे याने उस से धर्मराजजी भी प्रसन्न रहते हैं ॥ २६ ॥ व आषाढि गण से पूजित आषाढीश्वर संज्ञक लिंग को भक्ति से आषाढ की पूर्णमासी में देखकर मनुष्य सब पापों से छूटजाता है ॥ २७ ॥ व भारभूतेश्वर से उत्तर दिशा में आषाढीश्वर को आषाढकी पूर्णिमा में भलीभांति पूजताहुवाभी पापो से परितप्त न होवे ॥ २८ ॥ और आषाढ सुदी चतुर्दशी अथवा पूर्णमासी मे वार्षिकी यात्रा कर मनुष्य

पापों से हीन होजाता है ॥ २९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने! इस भांति जब ये गण और योगिनी सूर्य्यादि देव भी श्रीविश्वनाथ जी की प्रसन्नता के लिये अपने नाम से लिंगों को थापकर श्रीकाशीपुरी में टिकगये तब ॥ ३० ॥ काशीपुरी की प्रवृत्ति के लिये श्रीविश्वनाथजी ने फिर चिंतना किया कि आज किस हितकारी कोही पठाकर उत्तम सुख को सेवनकरूं ॥ ३१ ॥ योगिनियां सूर्य्य ब्रह्मा और शंकुकर्णादि गण समुद्र से नदियोंकी नाईं काशी से लौटकर न आये ॥ ३२ ॥ यह निश्चय है कि जे काशी में पैठे हैं वे मेरे उदर मे पैठगये हैं इससे प्रज्वलित अग्नि में पैठीहुई हवि के समान उनका निकलना नहीं है ॥ ३३ ॥ व लिंगपूजा में स्नेहसंयुत मन-

वा ॥ कृत्वासांवत्सरींयात्रामनेनाजायतेनरः ॥ २९ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मुनेगणेषुचैतेषुवाराणस्यांस्थितेष्विति ॥ स्वनाम्नास्थाप्यलिङ्गानिविश्वेशपरितुष्टये ॥ ३० ॥ विश्वेशश्चिन्तयांचक्रेपुनःकाशीप्रवृत्तये ॥ कंवाहितंप्रहित्याद्यनिर्वृतिंपरमाम्भजे ॥ ३१ ॥ योगिन्यस्तिग्मगुर्वेधाःशङ्कुकर्णमुखागणाः ॥ व्यावृत्यनागताःकाश्याःसिन्धुगाइवसिन्धवः ॥ ३२ ॥ ध्रुवंकाश्यांप्रविष्टायेतेप्रविष्टाममोदरे ॥ तेषांविनिर्गमोनास्तिदीप्तेग्नौहविषामिव ॥ ३३ ॥ येषांहिसंस्थितिः काश्यांलिङ्गार्चनरतात्मनाम् ॥ तएवममलिङ्गानिजङ्गमानिनसंशयः ॥ ३४ ॥ स्थावराजङ्गमाःकाश्यामचेतनसचेतनाः ॥ सर्वेममैवलिङ्गानितेभ्योद्रुह्यन्तिदुर्धियः ॥ ३५ ॥ वाचिवाराणसीयेषांश्रुतौवैश्वेश्वरीकथा ॥ तएवकाशीलिङ्गानिवराण्यर्च्यान्यहंयथा॥३६॥ वाराणसीतिकाशीतिरुद्रावासइतिस्फुटम् ॥ मुखाद्विनिर्गतंयेषान्तेषांनप्रभवेद्यमः॥३७॥ आनन्दकाननंप्राप्ययेनिरानन्दभूमिकाम् ॥ अन्यांहृदापिवाञ्छन्तिनिरानन्दाःसदात्रते॥३८॥ अद्यैववास्तुमरणंबहुका

वाले जिन लोगों की भलीभांति स्थिति या मरना काशी में है वेही मेरे जंगम (चलनेवाले) लिंग हैं इस में संशय नहीं है ॥ ३४ ॥ स्थावर जंगम जड़ और सचेतन जे सब कोई काशी में हैं वे मेरे लिंग हैं उन से दुर्बुद्धि लोग द्रोह करते हैं ॥३५॥ जिनके वचन में काशीपुरी व कानमें श्रीविश्वनाथ जी की कथा है वे श्रेष्ठ काशी के लिंग मेरी नाईं पूजने योग्य हैं॥ ३६ ॥ वाराणसी ऐसे काशी ऐसे रुद्रावास ऐसे जिनके मुखसे स्पष्ट विशेषसे निकला है उनके लिये यमराज न प्रभुता करे याने समर्थ न होवे ॥ ३७ ॥ और निकलता है आनन्द जिससे ऐसे निरानन्दभूमिवाले आनन्दवन (काशी) को प्राप्त होकर जे अन्यपुरी को मन से भी चाहते हैं वे इस लोक में या

यहां सदैव आनन्दसे हीन होते हैं ॥ ३८ ॥ व आजही अथवा बहुत कालान्तरमें मरनाहो परन्तु कलिकालके डरसे लोगोंको कभी न काशी त्यागना चाहिये ॥ ३९ ॥ होनहारे भाव अवश्यकर क्षण क्षणमें होवेंगे इसलिये वे अज्ञानीलोग लक्ष्मी जी के स्थान समेत श्रीकाशीपुरीको क्यों त्याग करते हैं ॥ ४० ॥ काशीमें क्षण क्षण या पग पग में हजारों विघ्न सहने योग्य हैं यह श्रेष्ठ है और अन्यत्र कहीं निर्विघ्न राज्य की भी न वाञ्छा करे ॥ ४१ ॥ व क्षण क्षणमें संपत्तियां कितने निमेषकाल तक भलीभांति भोग करने योग्य होती हैं याने एक निमेष भी नहीं क्योंकि लक्ष्मी जी चञ्चलतासे सदैव एकत्र नहीं रहतीहैं परन्तु काशीपुरी इस और उस लोकमेंभी

लान्तरेपिवा॥ कलिकालभियापुंसांकाशीत्याज्यानकर्हिचित ॥३९॥ अवश्यंभाविनोभावाभविष्यन्तिपदेपदे॥सलक्ष्मी निलयांकाशींत्यजन्तिकुतोधियः॥४०॥ वरंविघ्नसहस्राणिसोढव्यानिपदेपदे ॥ काश्यांनान्यत्रनिर्विघ्नंवाञ्छेद्राज्यम पिकचित्॥४१॥ कियन्निमेषसम्भोग्याःसन्तिलक्ष्म्यःपदेपदे॥ परंनिरन्तरसुखाऽमुत्राप्यत्रापिकाशिका॥४२॥ विश्वना थोह्यहंनाथःकाशिकामुक्तिकाशिका ॥ सुधातरङ्गास्वर्गङ्गात्रय्येषाकिन्नयच्छति॥४३॥ पञ्चक्रोश्यापरिमितातनुरेषापु रीमम ॥ अविच्छिन्नप्रमाणार्धिर्भक्तनिर्वाणकारणम्॥४४॥ संसारभारखिन्नानांयातायातकृतांसदा ॥ एकैवमेपुरीका शीध्रुवंविश्रामभूमिका ॥ ४५ ॥ मण्डपःकल्पवल्लीनांमनोरथफलैरलम् ॥ फलितःकाशिकाख्योयंसंसाराध्वजुषां सदा॥४६॥ चक्रवर्तेरियंछत्रंविचित्रंसर्वतापहृत॥ काशीनिर्वाणराजस्यममशूलोच्चदण्डवत् ॥ ४७ ॥ निर्वाण

निरन्तर सुखरूप है ॥ ४२ ॥ मैं विश्वनाथ नाथ व मुक्तिकी प्रकाशिका काशिका और अमृतलहरवाली स्वर्गसम्बन्धिनी गंगा यह त्रयी याने तीनोंका एकत्र होना क्या नहीं देता है याने सब फल देताहै ॥ ४३ ॥ पांच कोशोंसे परिमाणवाली मेरी देह यह काशीपुरी अखण्ड समृद्धिसमेत और भक्तोंकी मुक्ति का कारणहै ॥ ४४ ॥ और यह निश्चयहै कि सदा आना जानाकरते याने जन्मधरते व मरतेहुये व संसारभारसे खिन्न मनुष्योंकी एक विश्रामभूमि यह मेरी पुरी काशीही है ॥ ४५ ॥ और सं-सारमार्गसेवी या उसकी प्रीतिसंयुत लोगों के लिये यह काशीनामक कल्पलताओंका मण्डप सदा मनोरथ फलोंसे बहुतही फलवालाहै ॥ ४६ ॥ व यह श्रीकाशी

न्तरंविना ॥ ५६ ॥ लब्धप्रवेशास्तावन्तस्तेसर्वेमत्स्वरूपिणः ॥ यतिष्यन्तियतोवश्यंमदागमनहेतवे ॥ ५७ ॥ अन्यानपिप्रेषयामिमत्पार्श्वपरिवर्तिनः ॥ येतेतत्रस्थिताःश्रेष्ठाअपिगन्तास्म्यहंततः ॥ ५८ ॥ विचार्येतिमहादेवःसमाहूयगजाननम् ॥ प्राहिणोत्कथयित्वेतिगच्छकाशीमितःसुत ॥ ५९ ॥ तत्रस्थितोपिसंसिद्ध्यैयतस्वसहितोगणैः ॥ निर्विघ्नंकुरुचास्माकंनृपेविघ्नंसमाचर ॥ ६० ॥ आधायशासनंमूर्ध्निगणाधीशोथधूर्जटेः ॥ प्रतस्थेत्वरितःकाशींस्थितिज्ञःस्थितिहेतवे ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेकाशीवर्णनगणेशप्रेषणंनामपञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

स्कन्द उवाच ॥ अथेशाज्ञांसमादायगजवक्त्रःप्रतस्थिवान् ॥ शम्भोःकाश्यागमोपायंचिन्तयन्मन्दराद्रितः ॥ १ ॥ प्राप्यवाराणसींतूर्णमाखुस्यन्दनगोविभुः ॥ वाडवींमूर्तिमालम्ब्यप्राविशच्छकुनैस्तुतः ॥ २ ॥ नक्षत्रपाठकोभूत्वा

में भेदके लिये प्रभुता करताहै ॥ ५६ ॥ और जिससे मेरे रूपवाले उतने वे सब वहां प्रवेश पागये हैं उससे मेरे आनेके हेतु अवश्यही यत्नकरेंगे ॥ ५७ ॥ व जे वहां टिके हैं वे श्रेष्ठहैं इससे अपने पार्श्ववर्ती अन्यगणोंको भी पठाताहूं तदनन्तर मैं भी चलाजाऊंगा ॥ ५८ ॥ इसभांति विचारकर महादेवजी ने गणेशजीको बुलाकर और हे पुत्र ! तुम यहांसे काशीको जावो ऐसा कहकर पठादिया ॥ ५९ ॥ कि गणों समेत वहां टिकेहुये भी तुम संसिद्धिके लिये यत्नकरो व हमारा निर्विघ्नकरो और दिवोदासराजामें भलीभांति विघ्नकरो ॥ ६० ॥ तदनन्तर शिवजीकी आज्ञा माथ में धर स्थिति के जाननेवाले वेगवान् गणनाथजी ने टिकनेके हेतु काशीको प्रस्थान किया ॥ ६१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते काशीवर्णनगणेशप्रेषणं नाम पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । छप्पन के अध्यायमें गणपति काशी जाय। ब्राह्मण रूप अनूप धरि मायादीन दिखाय॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, तदनन्तर शंकर जी की आज्ञा भली भांति लेकर काशी में आनेका उपाय विचारते हुये गजमुख गणेश जी ने मन्दराचल से प्रस्थान किया ॥ १ ॥ और मूषकरथ से चलनेवाले समर्थ श्रीगणेशजी ने ब्राह्मणकी देह धरकर व सुमंगलसूचक शकुनों से स्तुत होकर काशी में पहुँचकर प्रवेश किया ॥ २ ॥ तब काशीपुरीवासी जनों की प्रीति को सब ओर से प्राप्त

पुरी कैवल्यराज्यचक्रवर्तीका मेरे ऊंचे त्रिशूलरूप दण्डावाला छत्र है ॥ ४७ ॥ व जे पुण्यवान् पुरुष लीलासे मुक्ति सम्पत्तिकी वाञ्छा करते हैं उन मनुष्योंको निरन्तर सुख की प्राप्तिके लिये काशी न त्यागना चाहिये ॥ ४८ ॥ जे कि अन्यत्र निरन्तर वनवासी हैं वे मेरी काशीमें शोभनस्वाद समेत मोक्षसंपत्तिसंयुत फलों को पाते हैं ॥ ४९ ॥ और जो काशीपुरी ममताहीन भी व निर्मोहहुये भी मुझको विशेषसे मोहती है वह विश्वविमोहिनी किनसे भलीभांति सुमिरने योग्य नहीं है अर्थात् सबसे सुमिरने योग्य है ॥ ५० ॥ व जिस काशी का मधुर नामभी परमानन्दका प्रकाशक है वह काशी ऐसे काशी ऐसे किन पुण्यवानोंसे नहीं जपी जाती है ॥ ५१ ॥ जे लोग

लक्ष्मींयेपुण्याःपरिवाञ्छन्तिलीलया ॥ निरन्तरसुखप्राप्त्यैकाशीत्याज्यानतैर्नृभिः ॥ ४८ ॥ ममानन्दवनेयेवैनिरन्तरवनौकसः ॥ मोक्षलक्ष्मीफलान्यत्रसुस्वादूनिलभन्तिते ॥ ४९ ॥ निर्ममञ्चापिनिर्मोहंयामामपिविमोहयेत् ॥ कैर्नसंस्मरणीयासाकाशीविश्वविमोहिनी ॥ ५० ॥ नामापिमधुरंयस्याःपरानन्दप्रकाशकम् ॥ काश्याःकाशीतिकाशीतिसाकैःपुण्यैर्नजप्यते ॥ ५१ ॥ काशीनामसुधापानंयेकुर्वन्तिनिरन्तरम् ॥ तेषांवर्त्मभवत्येवसुधामवसुधामयम् ॥ ५२ ॥ ममतारहितस्यापिममसर्वात्मनोध्रुवम् ॥ तएवमामकालोकेयेकाशीनामजापकाः ॥ ५३ ॥ रहस्यमितिविज्ञायवाराणस्यागणेश्वरैः ॥ सब्रह्मयोगिनीब्रध्नैःस्थितंतत्रैवनान्यथा ॥ ५४ ॥ अन्यथाताश्चयोगिन्यःसरविःसपितामहः ॥ तेगणामांपरित्यज्यकथंतिष्ठेयुरन्यतः ॥ ५५ ॥ अतीवभद्रंसंजातंकाश्यान्तिष्ठत्सुतेषुहि ॥ एकोपिभेदेप्रभवेद्राज्येराज्या

काशीनामरूप अमृतको निरन्तर पान करते हैं उनकीही गली सुमन्दिर और सुभूमिमयी होती है ॥ ५२ ॥ यह निश्चयहै कि लोकमें जे लोग काशीनामके जपने वालेहैं वेही ममतारहित भी मुझ सर्वात्मा (सर्वव्यापक) के मामक याने स्वजन होते हैं अर्थात् उनको मैं अपना मानताहूं ॥ ५३ ॥ ऐसे काशीकी रहस्यको विशेषसे जानकर ब्रह्मा योगिनी और सूर्य्य समेत गणोंसे उसमेंही टिकागया है यह अन्य था नहीं है ॥ ५४ ॥ जो अन्यथा होता तो वे योगिनियां वह सूर्य्य वह ब्रह्मा और वे गण मेरा परित्यागकर अन्यत्र कैसे टिकते ॥ ५५ ॥ इससे काशीमें उनके टिकते हुयेही अत्यन्त कल्याण भलीभांति उत्पन्न हुवा व राज्यान्तर विना एकभी परराज्य

करते हुये वह प्रति घर के भीतर जानेवाले वृद्धज्योतिषी होकर नगर के बीच विचरने लगे ॥ ३ ॥ रात्रिभाग में मनुष्यों को स्वप्न दिखते हुये आपही प्रातःकाल उनके घरको जाकर बल निर्बल फलको कहते हैं ॥ ४ ॥ कि आपने आज रात्रि में जो स्वप्नविचेष्टित देखा उसकोही मैं आपके कौतुक उपजनेके लिये कहताहूं ॥ ५ ॥ कि रात के चौथे पहर में सोते हुये आपने एक बड़ाभारी कुण्ड देखा फिर उसमें डूबते उतराते हुये आप किनारे को गयेहो ॥ ६ ॥ व तुम उस जल के कीच में बहुत ही डूबे उतराने हो और इस दुःस्वप्नका फल अत्यन्त भयदायक है ॥ ७ ॥ व खेदहै कि आपसे भी जो काषाय (गेरुहारंग) वस्त्रवाला मुण्डा देखा गया है यह महात्मा

वृद्धःप्रत्यवरोधगः ॥ चचारमध्येनगरंपौराणांप्रीतिमावहन् ॥३॥ स्वयमेवनिशाभागेस्वप्नंसंदर्शयन्नृणाम् ॥ प्रातस्तेषा गृहान्गत्वातेषांवक्तिबलाबलम् ॥ ४ ॥ भवद्भिरद्यरात्रौयद्दृष्टंस्वप्नविचेष्टितम् ॥ भवत्कौतूहलोत्पत्त्यैतदेवकथयाम्य हम् ॥ ५ ॥ स्वपताभवतारात्रौतुर्येयामेमहाह्रदः ॥ अदर्शितत्रचभवान्मज्जन्मज्जंस्तटंगतः ॥ ६ ॥ तदम्बुपिच्छिले पङ्केमग्नोन्मग्नोसिभूरिशः ॥ दुःस्वप्नस्यास्यचमहान्विपाकोतिभयप्रदः ॥ ७ ॥ काषायवसनोमुण्डःप्रेक्ष्यहोभवतापि यः ॥ परितापंमहानेषजनयिष्यतिदारुणम् ॥ ८ ॥ रात्रौसूर्यग्रहोदृष्टोमहानिष्टकरोध्रुवम् ॥ ऐन्द्रंधनुर्द्वयंरात्रौयदलो किनतच्छुभम् ॥ ९ ॥ प्रतीच्यांरविरागत्यप्रोद्यन्तंव्योम्निशीतगुम् ॥ पातयामासभूपृष्ठेतद्राज्यभयसूचकम् ॥ १० ॥ युगपत्केतुयुगलंयुध्यमानंपरस्परम् ॥ यददर्शिनतद्भद्रंराष्ट्रभङ्गायकेवलम् ॥ ११ ॥ विशीर्यत्केशदशनंनीयमानञ्च दक्षिणे ॥ आत्मानंयत्समद्राक्षीःकुटुम्बस्यापिभीषणम् ॥ १२ ॥ प्रासादध्वजभङ्गोयस्त्वयैक्षतनिशात्यये ॥ राज्यक्षय

अतिदारुण परिताप को उपजावेगा ॥ ८ ॥ व रात्रि मे सूर्य्यग्रहण देखा गया है वह निश्चय से बड़ा अरिष्टकारक है और तुम ने रात में जो दो इन्द्र के धन्वा देखा वह शुभ नहीं हैं ॥ ९ ॥ व आपने ऐसा देखाहै कि सूर्य्यदेवने पश्चिममें आकर आकाश में उगते हुये चन्द्रमा को भूपृष्ठमें गिरा दिया है वह राज्य भयका सूचक है॥ १० ॥ व परस्पर लड़ताहुवा जो केतु युगल (दोको) एकत्र देखागया वह कल्याण नहीं है किंतु केवल राज्यभंग के लिये है ॥ ११ ॥ और टूटे फूटे बाल व दांतवा- ले अपना को जो तुमने दक्षिण दिशा में प्राप्त कियाहुवा देखा है वह कुटुम्ब का भी भयानक है ॥ १२ ॥ व तुमने रात्रि के अन्त में जो प्रासाद (देवमन्दिर या

महल) की ध्वजाका भंजन देखाहै उस को राज्यविनाशक व बड़े उत्पात के लिये निश्चित जानो ॥ १३ ॥ स्वप्न में क्षीरसागर की लहरों से नगरी डुबाई गई है इस से मैं तीनचार पाखों के द्वारा पुरवासियों की बड़ी शंका को संदेह करता हूं ॥ १४ ॥ हे महामते ! स्वप्न में वानर विमान से जो तुम दक्षिण दिशा को प्राप्त कियेगये हो इस से पुरीका त्याग करदेनाही उस के वंचनका उपाय है ॥ १५ ॥ व रात्रि के अन्त में छूटेबालोंवाली विवस्त्र रोतीहुई जो एक स्त्री तुम से देखी गई है वह स्त्री सम्पत्ति के समान ऊपर को चलीगई है ॥ १६ ॥ व जो तुम करके देवमन्दिर का कलश गिरताहुवा देखागया है इस लिये कुछेक दिनों में राज्यभंग होगा ॥ १७ ॥

करंविद्धिमहोत्पातायनिश्चितम् ॥ १३॥ नगरीप्लावितास्वप्नेतरङ्गैःक्षीरनीरधेः॥ पक्षैस्त्रिचतुरैःशङ्केमहाशङ्कांपुरौकसाम् ॥ १४ ॥ स्वप्नेवानरयानेनयत्त्वमूढोसिदक्षिणाम् ॥ अतस्तद्वञ्चनोपायःपुरत्यागोमहामते ॥ १५ ॥ रुदतीयात्वयादृष्टामहिलैकानिशात्यये ॥ मुक्तकेशीविवसनासानारीश्रीरिवोद्गता॥ १६॥ देवालयस्यकलशोयत्त्वयावीक्षितःपतन्॥ दिनैःकतिपयैरेवराज्यभङ्गोभविष्यति ॥ १७ ॥ पुरीपरिवृतास्वप्नेमृगयूथैःसमन्ततः ॥ रोरूयमाणैरत्यर्थंमासेनैवोद्वसीभवेत् ॥ १८ ॥ आतायियूकगृध्राद्यैःपुरीमुपरिचारिभिः ॥ सूच्यतेत्याहितंकिञ्चिद्ध्रुवमत्रनिवासिनाम् ॥ १९ ॥ स्वप्नोत्पातानितिबहूञ्छंसञ्छंसन्नितस्ततः॥बहूनुच्चाटयांचक्रेसविघ्नेशःपुरौकसः ॥ २० ॥ केषांचित्पुरतोवादीद्ग्रहचारंप्रदर्शयन् ॥ एकराशिस्थिताःसौरिसितभौमानशोभनाः ॥२१ ॥ योयंधूमग्रहोऽयोम्निभित्त्वासप्तर्षिमण्डलम् ॥ प्रयातःपश्चिमामाशांसनाशायविशाम्पतेः ॥ २२ ॥ अतिचारगतोमन्दःपुनर्वक्राध्वसंस्थितः ॥ पापग्रहसमायुक्तोनयुक्तो

और स्वप्न में बहुतही बार बार रोते हुये कुक्कुरसमूहों से पुरी सब ओर घेरीगई है इस से एक मासमेंही उड़सी होवेगी ॥ १८ ॥ व पुरी के ऊपर उड़ते हुये चील्ह बक या घूघू और गृध्रादिकों से यहां के वासियों का कुछ अहित निश्चय से सूचित किया जाता है ॥ १९ ॥ इस भांति ऐसी वैसी बहुते स्वप्न के उत्पातों को कहते कहते हुये उन विघ्नेश (गणेश) जीने काशीपुरीवासी जनोंको उच्चाटन करदिया ॥ २० ॥ और ग्रहोंका चलना दिखातेहुये उन्होंने किसी लोगोंके आगे कहा कि एकराशिमें टिके शनि शुक्र और मंगल शुभ नहीं हैं ॥२१॥ व जो यह केतु सप्तर्षिमंडलका भेदनकर पश्चिम दिशाको गयाहै वह प्रजापालकके विनाशके लियेहै ॥ २२ ॥ व अति-

चार (राशिको उल्लंघनकर चलना) से चलाहुवा फिर वक्रमार्गमें संस्थित और पापग्रहों (राहु, केतु, मंगल) से समेत यह शनैश्चर यहां उचित नहीं इच्छा कियाजाता है ॥ २३ ॥ जो कि दिन बीते पर याने सायंकालमें जो यह भूमिकंप भलीभांति प्राप्त हुवा है वह पुरवासी मेरे भी हृदयके कंपको उत्पन्न करताहै ॥ २४॥ उत्तर व दक्षिण दिशामें वज्रपातके साथ बहुतही धाई हुई जो यह उल्का आकाशमे विलीन भी होगईहै वह शुभ नहीं है ॥ २५ ॥ जो कि चतुष्पथ में महामूलवाला यह पूज्य वृक्ष बड़े वायुवेग से उखाड़ा गया वह महान् उत्पात को कहता है ॥ २६ ॥ व सूर्योदयको पीछे से प्राप्त होकर पूर्वदिशा में सूखे वृक्ष के ऊपर यह उत्कट भयदायक काग

यमिहेष्यते ॥ २३ ॥ व्यतीतेवासरेयोयंभूकम्पःसमपद्यत ॥ कम्पंजनयतेऽतीवहृदोमेपिपुरौकसः ॥ २४ ॥ उदीच्यांदक्षिणाशायांयेयमुल्काप्रधाविता ॥ विलीनाचवियत्येवसनिर्घातंनसाशुभा ॥ २५ ॥ उन्मूलितोमहामूलोमहानिलरयेणयः ॥ चत्वरेचैत्यवृक्षोयंमहोत्पातंप्रशंसति ॥ २६ ॥ सूर्योदयमनुप्राप्यप्राच्यांशुष्कतरूपरि ॥ करटोरारटीत्येषकटूत्कटभयप्रदः ॥ २७॥ मध्येविपणियत्तूर्णंकौचिच्चारण्यचारिणौ ॥ मृगौमृगयतांयातौपौराणांपुरतोऽहितौ ॥ २८ ॥ रसालशालमुकुलंवीक्ष्यतेयच्छरद्यदः ॥ महाकालभयंमन्येप्यकालेपिपुरौकसाम् ॥ २९ ॥ साध्वसंजनयित्वेतिकेचिदुच्चाटिताःपुरः ॥ तेनविघ्नकृतापौराःकपटद्विजरूपिणा ॥३०॥ अथमध्येवरोधंसप्रविश्यनिजमायया ॥ दृष्टार्थमेवकथयन्स्त्रीणांविस्रम्भभूरभूत् ॥३१॥तत्पुत्रशतंजज्ञेसप्तोनंशुभलक्षणे॥ तेष्वेकस्तुरगारूढोबाह्याल्यांपतितोमृतः॥३२॥

कटुबानी से बारबार बोल रहाहै ॥ २७ ॥ व जिससे खोजते हुये जनों के होतेही याने उनका अनादर कर बीच बजार में वनचारी कोई दो मृग आगे से चले गये हैं उससे पुरवासियों के अनिष्टकारी हैं ॥ २८ ॥ जो कि शरद् ऋतु में यह आम्र और सर्जकी फूलती हुई कली देखी जातीहै इससे अकालमें भी पुरवासियों को महाकालका भय मानता हूँ ॥ २९ ॥ ऐसे डर या उद्वेग उपजाकर उन कपट ब्राह्मणरूपी विघ्नकर्ता गणेशजी ने किसी पुरवासियों को पुरीसे उच्चाटन करादिया॥३०॥ अनंतर अपनी माया से अंतःपुर (रनिवास) के मध्य में प्रवेश कर देखे अर्थ कोही कहते हुये वह स्त्रियों के विश्वासपात्र हुये ॥ ३१ ॥ हे शुभलक्षणे ! सातकम

सौ पुत्र उपजे हैं उनमें से घोड़ेपर चढ़ा व वाहरकी पंक्तिमें गिराहुवा एक मरगया है ॥ ३२ ॥ व यह गर्भवती स्त्री शोभन कन्या को उत्पन्न करेगी और यहही पहले दुर्भगाथी अब सुभगा हुई है ॥ ३३ ॥ व वहही यहाँ रानियों के बीच राजाकी परमप्यारी है राजा ने इसको अपने उरसे मुक्तालंकार याने हार दिया है ॥ ३४ ॥ और यहां यह तर्कणा कीजाती है कि पाँच सातही दिन हुये हैं तब प्रसन्नता समेत राजामे इसके लिये दो ग्राम देनेको कहेगये हैं ॥ ३५ ॥ इस भांति देखेहुये अर्थोंके कहने से वह ब्राह्मण रानियों के मान्य हुये और वे राजा के परोक्षमें भी बहुत गुणोंका वर्णन करती हैं (थीं) ॥ ३६ ॥ आश्चर्य्य है कि जैसा यह ब्राह्मण है जो कि सब

अन्तर्वत्नीत्वियंकन्यांजनयिष्यतिशोभनाम् ॥ एषाहिदुर्भगापूर्वंसांप्रतंसुभगाऽभवत् ॥ ३३ ॥ असौहिराज्ञोराज्ञीनामत्यन्तमिहवल्लभा ॥ मुक्तालंकृतिरेतस्यैराज्ञादत्तानिजोरसः ॥ ३४ ॥ पञ्चसप्तदिनान्येवजातानीतीहतर्क्यते ॥ अस्यैराज्ञाप्रसादेनग्रामौदातुमुदीरितौ ॥ ३५ ॥ इतिदृष्टार्थकथनैराज्ञीमान्योभवद्द्विजः ॥ वर्णयन्तिचताराज्ञःपरोक्षेपिगुणान्बहून् ॥ ३६ ॥ अहोयादृगसौविप्रःसर्वत्रातिविचक्षणः ॥ सुशीलश्चसुरूपश्चसत्यवाङ्मितभाषणः ॥ ३७ ॥ अलोलुपउदारश्चसदाचारोजितेन्द्रियः ॥ अपिस्वल्पेनसंतुष्टःप्रतिग्रहपराङ्मुखः ॥ ३८ ॥ जितक्रोधः प्रसन्नास्यस्त्वनसूयुरवञ्चकः ॥ कृतज्ञः प्रीतिसुमुखःपरिवादपराङ्मुखः ॥ ३९ ॥ पुण्योपदेष्टापुण्यात्मासर्वव्रतपरायणः ॥ शुचिःशुचिचरित्रश्चश्रुतिस्मृतिविशारदः ॥ ४० ॥ धीरःपुण्येतिहासज्ञःसर्वदृक्सर्वसम्मतः ॥ कलाकलापकुशलोज्योतिःशास्त्रविदुत्तमः ॥ ४१ ॥ क्षमीकुलीनोऽकृपणोभोक्तानिर्मलमानसः ॥ इत्यादिगुणसम्पन्नःकोपिक्वापिनदृग्गतः ॥ ४२ ॥

शास्त्रों में पण्डित, सुशील व सुरूप सत्यवादी और थोडा बोलनेवाला ॥ ३७ ॥ व अलोलुप, उदार, सदाचार, जितेन्द्रिय, स्वल्प वस्तुसे भी सन्तुष्ट, दानलेने से विमुख ॥ ३८ ॥ व क्रोधको जीतेहुवा, प्रसन्नमुख, किसीके दोषों को न प्रकटनेवाला, अवञ्चक, उपकार को जानताहुवा, प्रीति के सुमुख, अपवाद कहने से विमुख ॥ ३९ ॥ व पुण्य का उपदेशकर्ता, पुण्यात्मा, सब व्रतोंमें परायण, सदाशुद्ध, पवित्रचरित्र और वेद व धर्मशास्त्रों में बडा विद्वान् ॥ ४० ॥ व धीर, पुण्य इतिहासों के जाननेवाला, सब देखनेहारा या सर्वज्ञ, सबके संमतवाला व कलासमूहों मे याने चौंसठ कलाओं में कुशल (दक्ष), ज्योतिषियो मे उत्तम ॥ ४१ ॥

क्षमावान्, कुलीन, कृपणता से हीन, धर्म समेत भोगवान् और निर्मलमानस, इत्यादि गुणों से संपन्न कोई कहीं भी नेत्रगत नहीं हुवा याने नहीं देखपडा॥ ४२ ॥ इस भांति क्षण क्षण में उसके गुणसमूह का वर्णन करती हुई वे अंतःपुरमें विचरनेवाली स्त्रियां कालको बिताती भई या विनोदको प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ एक समय अवसर पाकर लीलावती नामसे प्रसिद्ध दिवोदास राजाकी रानीने महाराजसे उन ब्राह्मणको जनाया ॥४४॥ कि हे राजन्! वयससे वृद्ध, गुणोंसे वृद्ध, बहुत विचक्षण और मूर्तिधारी अन्य या उत्तम वेदसमुद्रके समान जो एक ब्राह्मणहै वह देखने योग्यहै॥४५॥ और राजासे आज्ञा कीहुई रानीने बड़ी सुजान सखीको पठाकर रूपधारी ब्रह्मतेज की नाई उस ब्राह्मण को आनकर प्राप्त किया ॥ ४६ ॥ तब दूरसे आतेहुये उस ब्राह्मण को देखकर राजा भी अपने मन में ऐसा कहता हुवा आनन्द को प्राप्तभया कि

इत्थंतास्तद्गुणग्रामंवर्णयन्त्यः पदे पदे ॥ कालंविनोदयन्तिस्म अन्तःपुरचराः स्त्रियः ॥ ४३ ॥ एकदावसरंप्राप्य दिवोदासस्यभूभुजः ॥ राज्ञीलीलावतीनाम राज्ञेतंविन्यवेदयत् ॥ ४४ ॥ राजन्वृद्धोगुणैर्वृद्धो ब्राह्मणःसुविचक्षणः ॥ एकोस्तिसतुद्रष्टव्योमूर्तोब्रह्मनिधिःपरः ॥ ४५ ॥ राज्ञीराज्ञाकृतानुज्ञासखींप्रेष्यविचक्षणाम् ॥ आनिनायचतंविप्रंब्राह्मंतेजइवाङ्गवत् ॥ ४६ ॥ राजापिदूरादायान्तंतंविलोक्यमहीसुरम् ॥ यत्राकृतिर्गुणास्तत्रजहर्षेतिवदन्हृदि ॥ ४७ ॥ पदैर्द्वित्रैर्नृपतिनाकृताभ्युत्थानसत्कृतिः ॥ चतुर्निगमजाभिःसतमाशीर्भिरनन्दयत् ॥ ४८ ॥ कृतप्रणामोराज्ञासमादरंदत्तमासनम् ॥ भेजेथकुशलंपृष्टःसराज्ञातेनभूपतिः ॥ ४९ ॥ परस्परंकुशलिनौकुशलौचकथागमे ॥ प्रश्नोत्तराभ्यांसंतुष्टौद्विजवर्यक्षमाभृतौ ॥ ५० ॥ कथावसानेराज्ञाथगेहंविससृजेद्विजः ॥ लब्धमानमहापूजःसस्वमाश्रम

जहां अच्छा आकार (रूप) है वहां गुण रहते हैं ॥ ४७ ॥ और दो तीन (पांच) पग चलकर नरेश से कियागया सामने उठने समेत सत्कार जिसका ऐसे उस ब्राह्मण ने चार वेदों से हुये आशीर्वादों से उस राजा को आनंदित किया ॥ ४८ ॥ व राजा से किये हुये प्रणामवाला वह आदर समेत, दियेहुये आसन को सेवता भया अनंतर राजासे वह कुशल पूंछागया और इससे वह राजा कुशल पूंछागया ॥४९॥ व परस्पर कुशलवाले कथाशास्त्र या कथा के आने में निपुण ब्राह्मणवर्य्य और भूपति प्रश्न व उत्तर रो दोनों संतुष्ट होगये ॥ ५० ॥ तदनन्तर कथा के अन्तमें ब्राह्मण घर को बिदा किया गया और आदर व अधिक पूजा पाये हुये वह अपने आश्रममें

आकर पैठता भया ॥ ५१ ॥ जब ब्राह्मण अपने आश्रम को चलागया तब दिवोदास नरेशने लीलावती रानी के अग्रभाग में उस ब्राह्मण को बहुतही वर्णन किया ॥ ५२ ॥ हे महादेवि, महाप्राज्ञे, गुणप्रिये, लीलावति ! जैसे तुमने प्रशंसा किया वैसे यह ब्राह्मणहै बरन उससे भी अधिक गुणी है ॥ ५३ ॥ भूतकालका सब हाल जानता है और वर्त्तमानको ज्ञान करलेताहै परन्तु प्रातःकाल बुलाकर कुछ भविष्यके भी प्रति यह पूंछने योग्यहै ॥५४॥ व बड़े ऐश्वर्य्य के संभारों समेत अनेक भांति के भारी भोगों से रात बीत जातेही प्रातःकाल उस नरेशने ब्राह्मणको बुलवाया ॥५५॥ व भक्तिसमेत रेशमी आदि वस्त्र देनेसे उस ब्राह्मणको सत्कारकर फिर राजाने एकान्तमें बुलाकर

माविशत् ॥ ५१ ॥ गतेऽथस्वाश्रमंविप्रेदिवोदासोनरेश्वरः ॥ लीलावत्याःपुरोविप्रंवर्णयामासभूरिशः ॥ ५२ ॥ महादेवि महाप्राज्ञेलीलावतिगुणप्रिये ॥ यथाशंसितथाविप्रस्ततोपिगुणवत्तरः ॥ ५३ ॥ अतीतंवेत्तिसकलंवर्त्तमानमवैतिच ॥ प्रष्टव्यःप्रातराहूयभविष्यंकिञ्चिदेषवै ॥५४॥ महाविभवसम्भारैर्महाभोगैरनेकधा ॥व्युष्टायांसन्तृपोरात्र्यांप्रातराहूतवान् द्विजम् ॥ ५५ ॥ सत्कृत्यतंद्विजंभक्त्यादुकूलादिप्रदानतः ॥ एकान्तेतंद्विजंराजापप्रच्छनिजहृत्स्थितम् ॥ ५६ ॥ राजोवाच ॥ द्विजवर्योभवानेकःप्रतिभातीतिनिश्चितम् ॥ यथातत्त्ववर्तातेधीर्नतथान्यस्यमेमतिः ॥ ५७ ॥ दृष्ट्वात्वान्तुमहाप्राज्ञंशान्तंदान्तंतपोनिधिम् ॥ किञ्चित्प्रष्टुमनाविप्रतदाख्याहियथार्थवत् ॥ ५८ ॥ शासितेयंमयापृथ्वीनतथान्यैस्तुपार्थिवैः ॥ यावद्भूतिमयाभुक्तादिव्याभोगाअनेकधा ॥ ५९ ॥ निजौरसेभ्योप्यधिकंरात्रिंदिवमतन्द्रितम् ॥ विनि

अपने हृदय में टिकेहुये प्रश्नको उस विप्रसे पूछा ॥५६॥ राजा बोला कि, हे द्विजवर्य्य ! ऐसा निश्चितहै कि आप एक (मुख्य या केवल) जान पड़तेहो मेरी यह मतिहै कि जैसी तत्त्ववाली तुम्हारी बुद्धिहै वैसे अन्यकी नहीं है ॥ ५७ ॥ हे विप्र ! तुमको बड़ाबुद्धिमान् शांत (भीतरकी इन्द्रियोंको जीते) दांत (बाहर की इन्द्रियोंको जीते) और तपस्याका निधान जानकर मैं कुछ पूंछने के लिये मनवालाहूं उस को तुम यथार्थके समान सब ओर से कहो ॥ ५८ ॥ कि जैसे मुझ से यह पृथिवी शासितहुई है वैसे अन्य राजाओं से नहीं और मैंने ऐश्वर्य्य पर्य्यत अनेक भांति दिव्य भोगों को भोग किया है ॥ ५९ ॥ व रातो दिन आलस्यहीन और अपने औरस (स्वधर्मपत्नी

में उत्पन्न) पुत्रों से भी अधिक जैसेहो वैसे यह प्रजा हठ से दुष्टों को जीतकर सब ओर से पाली गई है॥ ६०॥ और मैं ब्राह्मणों के पांवोंकी पूजा से अधिक अन्य कुछ या कोई पुण्य नहीं जानताहूं किंतु सब ओर से कहनेके न योग्य, कहेहुये इस अपने सुकृत से यहां मुझको क्या है ॥ ६१ ॥ हे आर्य्य (सदाचारनिष्ठ) सत्तम ! इससमय मेरा मन सब कर्मों से विरक्त सा हुवाहै इस से तुम शुभ उत्तर फल को विचारकर कहो ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण बोले कि जो कि राजाओंका बहुत थोड़ाभी कार्य्य यहां होवे वह एकांत में पूछे हुये सुबुद्धिमान् मनुष्यको सदैव कहना चाहिये ॥ ६३ ॥ और बडे अपमान से डरभुत, न पूंछेहुये मंत्री करके भी यहां राजाके आगे थोड़ा

जित्यहठाद्दुष्टान्प्रजेयंपरिपालिता ॥ ६० ॥ द्विजपादार्चनात्किञ्चित्सुकृतंवेद्मिनापरम् ॥ अनेनापरिकथ्येनकथितेनेह किंमम ॥ ६१ ॥ निर्विस्मिमिवमेचेतःसांप्रतंसर्वकर्मसु ॥ विचार्यायंशुभोदर्कमतआख्याहिसत्तम ॥ ६२ ॥ द्विजउवाच ॥ अपिस्वल्पतरंकृत्यंयद्भवेद्भूभुजामिह ॥ एकान्तेतत्तुपृष्टेनवक्तव्यंसुधियासदा ॥ ६३ ॥ अमात्येनाप्यपृष्टेननवक्तव्यं नृपाग्रतः ॥ महापमानभीतेनस्तोकमप्यत्रकिञ्चन ॥ ६४ ॥ पृष्टश्चेत्कथयामीहमातत्रकुरुसंशयम् ॥ तत्कृतेतवगन्ता वैमनोनिर्वेदकारणम् ॥ ६५ ॥ शृणुराजन्महाबुद्धेनायथार्थंब्रवीम्यहम् ॥ विक्रान्तोस्यतिशूरोसिभाग्यवानसिस वंदा ॥ ६६ ॥ पुण्येनयशसाबुद्धयासम्पन्नोस्तिभवान्यथा ॥ मन्येतथामरावत्यांत्रिदशेशोपिनैवहि ॥ ६७ ॥ सु धियात्वांगुरुंमन्येप्रसादेनसुधाकरम् ॥ तेजसास्तिभवानर्कःप्रतापेनाशुशुक्षणिः ॥ ६८ ॥ प्रभञ्जनोबलेनासिश्रीदोसि श्रीसमर्पणैः॥शासनेनभवान्रुद्रोनिर्ऋतिस्त्वंरणाङ्गणे॥६९॥ दुष्टपाशयितापाशीयमोनियमनेसताम् ॥ इन्दनात्त्वंमहे

भी कुछ कहने योग्य नहीं है ॥ ६४ ॥ जो मैं पूछागयाहूँ तो कहताहूँ उसमें संशय मतकरो व उसके किये हुयेही तुम्हारा मन निश्चयकर निर्वेद कारण को प्राप्त हो जावेगा ॥ ६५ ॥ हे महाबुद्धे, राजन् ! मैं अयथार्थ (असत्य) नहीं कहताहूँ तुम विक्रमवालेहो अत्यन्त शूरहो और सदैव भाग्यवान्हो ॥ ६६ ॥ मैं मानताहूँ कि जैसे आप पुण्य सुयश और बुद्धिसे संपन्नहैं वैसे अमरावती पुरीमें इन्द्रभी नहीं है ॥६७॥ व मैं तुम को सुबुद्धिसे बृहस्पति और प्रसन्नता से चन्द्रमा मानताहूँ आप तेजसे सूर्य्य व प्रतापसे अग्नि के समानहो ॥ ६८ ॥ व तुम निजबल से वायुहो धनदेनेसे कुबेर हो व आप शिक्षा करने से रुद्र हैं और संग्राम आंगनमें निर्ऋति हैं ॥ ६९ ॥

व तुम दुष्टों के फँसानेवाले वरुणहो असज्जनों के लिये दण्डादि नियम करनेमें यमहो बड़े ऐश्वर्य्य से इन्द्रहो और तुम क्षमासे पृथिवीहो ॥ ७० ॥ व आप मर्यादा से समुद्रहो महत्त्व से हिमवान्हो राज्यनीति से शुक्रहो और राज्यसे मनुके समान हो ॥ ७१ ॥ व मेघकी नाईं संतापहारीहो गंगाके नामकी नाईं पवित्रकारी हो और सब जंतुओंके भी काशी सम्बन्धी धन व गतिके देनेवाले हो ॥ ७२ ॥ व संहार (विनाश करना) रूपसे रुद्रहो पालने से विष्णुहो व ब्रह्मा के समान विधानकर्ता हो और तुम्हारे मुख कमलमें सरस्वती बसती है ॥ ७३ ॥ व तुम्हारे हस्तकमलमें लक्ष्मीहै तुम्हारे क्रोध में विषहै तुम्हारा वचनही अमृत है और तुम्हारी बाहैं अश्विनीकुमार

न्द्रोसित्तमयात्वमसित्त्मा ॥ ७० ॥ मर्यादयाभवानब्धिर्महत्त्वेहिमवानसि ॥ भार्गवोराजनीत्यासिराज्येनमनुनास मः ॥७१॥ सन्तापहर्ताम्बुदवत्पवित्रोगाङ्गनामवत् ॥ सर्वेषामेवजन्तूनांकाशीवसुगतिप्रदः ॥ ७२ ॥ रुद्रःसंहाररूपेणपा लनेनचतुर्भुजः ॥ विधिवत्त्वंविधातासिभारतीतेमुखाम्बुजे ॥७३ ॥ त्वत्पाणिपद्मेकमलात्वत्क्रोधेस्तिहलाहलः ॥ अमृतं तववागेवत्वद्भुजावश्विनीसुतौ ॥ ७४ ॥ तत्किंयत्त्वयिभूजानौसर्वदेवमयोह्यसि ॥ तस्मात्तवशुभोदर्कोमयाज्ञातोस्तित त्त्वतः ॥ ७५ ॥ आरभ्याद्यदिनाद्भूपब्राह्मणोऽष्टादशेहनि ॥ उदीच्यःकश्चिदागत्यध्रुवंत्वामुपदेक्ष्यति ॥ ७६ ॥ तस्यवा क्यंत्वयाराजन्कर्तव्यमविचारितम् ॥ ततस्तेहृत्स्थितंसर्वंसेत्स्यत्येवमहामते ॥७७॥ इत्युक्त्वापृच्छ्यराजानंलब्धानुज्ञो द्विजोत्तमः ॥ विवेशस्वाश्रमंतुष्टोनृपोप्याश्चर्यवानभूत् ॥ ७८ ॥ इत्थंविघ्नजितासर्वापुरीस्वात्मवशीकृता ॥ सपौरासा

हैं ॥ ७४ ॥ व जिससे तुम सर्वदेवमयहीहो उस से बहुत कहने से क्याहै जो कुछ सारवस्तु है वह सब तुम पृथिवीपति में है उस लिये तुम्हारा शुभ कर्मों का उत्तर फल स्वरूप से मेरा जाना है ॥ ७५ ॥ हे भूप ! जिस दिनसे लगाकर अठारहवें दिनमें आकर कोई उत्तर दिशाका ब्राह्मण निश्चय से तुमको उपदेश करेगा ॥ ७६ ॥ हे महामते, राजन् ! तब से लगाकर विना विचारे उसका वचन तुम्हारे करने योग्य है तदनंतर तुम्हारे हृदय में जो कुछ टिका है वहभी सिद्धहोगा ॥ ७७ ॥ ऐसे कहकर राजा से पूँछकर आज्ञापाये हुये सन्तुष्ट ब्राह्मणोत्तम अपने आश्रम में प्रवेश किया और राजाभी आश्चर्य्यवान् होगया ॥ ७८ ॥ इस भांति विघ्नविजयी

श्रीगणेशजी ने अपनी मायासे पुरवासी समेत रानी समेत और राजा समेत सब काशीपुरीको अपने स्वरूप के वश करलिया ॥ ७९ ॥ तदनंतर वह गणेशजी अपनाको कृतकृत्य के समान मानकर व अपना को बहुत प्रकारसे कर काशीमें स्थितिको प्राप्तहुये ॥ ८० ॥ हे कुंभसंभव ! जब पहले वहां दिवोदास राजा नहीं हुवा तब के अपने स्थानको गणेशजी ने भूषित किया ॥ ८१ ॥ और जब विष्णुजीके द्वारा दिवोदास राजा उच्चाटित हुवा व विश्वकर्माने नगरीको फिर नवीन करदिया तब ॥ ८२ ॥ मंदराचल से सुन्दरी काशीपुरी को आकर क्रीडाकारी महादेवजी ने पहले गणेशजीकी स्तुति किया ॥ ८३ ॥ अगस्त्यजी बोले कि, ऐश्वर्य्यसंपन्न, देवोंके देवसे वि-

वरोधाचसनृपानिजमायया ॥ ७९ ॥ कृतकृत्यमिवात्मानंततोमत्वासविघ्नजित् ॥ विधायबहुधात्मानंकाश्यांस्थितिमवापच ॥ ८० ॥ यदासनदिवोदासःप्रागासीत्कुम्भसम्भव ॥ तदातनंनिजंस्थानमलंचक्रेगणाधिपः ॥ ८१ ॥ दिवोदासेनरपतौविष्णुनोच्चाटितेसति ॥ पुनर्नवीकृतायाञ्चनगर्यांविश्वकर्मणा ॥ ८२ ॥ स्वयमागत्यदेवेनमन्दरात्सुन्दरींपुरीम् ॥ वाराणसींप्रथमतस्तुष्टुवेगणनायकम् ॥ ८३ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ कथंस्तुतोभगवतादेवदेवेनविघ्नजित् ॥ कथञ्चबहुधात्मानंसचकारविनायकः ॥ ८४ ॥ केनकेनसवैनाम्नाकाशिपुर्यांव्यवस्थितः ॥ इतिसर्वंसमासेनकथयस्वषडानन ॥ ८५ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यकुम्भयोनेःषडाननः ॥ यथावत्कथयामासगणराजकथांशुभाम् ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेगणेशमायाप्रपञ्चोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ विश्वेशोविश्वयासार्धंमयाचमुनिसत्तम ॥ महाशाखविशाखाभ्यांनन्दिभृङ्गिपुरोगमः ॥ १ ॥

घ्नविजयी विनायक (गणेशजी) कैसे स्तुति कियेगये और वह अपना को बहुत भांति कैसे करते भये ॥ ८४ ॥ हे षडानन ! वहही गणेशजी किस किस नाम से काशीपुरी में बसे हैं ऐसे सब संक्षेपसे कहो ॥ ८५ ॥ इसभांति अगस्त्यजीका वचन सुन कर छः मुखवाले श्रीकार्त्तिकेयजी ने मंगलमयी गणराजकी कथाको यथावत् वर्णन किया ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते गणेशमायाप्रपञ्चोनामषट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ ❀ ॥

दो० । सत्तावन के अध्याय में गणपस्तुति शिवकीन । ढुंढिविनायक आदिका इत माहात्म्य प्रवीन ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, हे मुनिसत्तम ! श्रीपार्वती जी व मैं

व शाख और विशाखके साथ नन्दी व भृंगी आदि गणों के आगे चलनेवाले श्रीविश्वनाथ जी ॥ १ ॥ जो कि नैगमेय से सहित, रुद्रों से सब ओर घिरे देवर्षियों से समायुक्त सनकादिकों से सब ओर या सामने से स्तुति किये गये ॥ २ ॥ और सकल लोकपालों व दिक्पालों से अभिनंदित, मूर्त्तिमान् तीर्थों का जल पाये हुये व गंधर्वों से गाये मंगलवाले ॥ ३ ॥ और नृत्य समेत हस्त पल्लवों के द्वारा अप्सराओं से पूजित और आकाश में सब ओर अनाहत बाजों से अनुमोदित ॥ ४ ॥ व ऋषियों के वेद शब्द से दिशाओं के मुखको बधिर किये हुये व चारण समूहों से प्रशंसित व सब ओर विमानों से घेरेगये ॥ ५ ॥ व इंद्राणी की मूठि से गिरेहुये लावों से

नैगमेयेनसहितोरुद्रैःसर्वत्रसंवृतः ॥ देवर्षिभिःसमायुक्तःसनकाद्यैरभिष्टुतः ॥ २ ॥ समस्तायतनाधीशैर्दिक्पालैरभिनन्दितः ॥ तीर्थैर्दर्शिततीर्थश्चगन्धर्वैर्गीतमङ्गलः ॥ ३ ॥ कृतपूजोप्सरोभिश्चनृत्यहस्तकपल्लवैः ॥ वियत्यनाहतैर्वाद्यैः समन्तादनुमोदितः ॥ ४ ॥ ऋषीणांब्रह्मनिर्घोषैर्बधिरीकृतदिङ्मुखः ॥ कृतस्तुतिश्चारणौघैर्विमानैरभितोवृतः ॥ ५ ॥ त्रिविष्टपवधूमुष्टिभ्रष्टैर्लाजैरितस्ततः ॥ अभिवृष्टोमहादेवःसम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ६ ॥ दत्तमाल्योपहारश्चबहुविद्याधरीगणैः ॥ यक्षगुह्यकसिद्धैश्चखेचरैरभिनन्दितः ॥ ७ ॥ कृतप्रवेशशकुनोमृगैःशकुनिभिःपुरः ॥ किन्नरीभिःप्रहृष्टास्यैः किन्नरैरुपवर्णितः ॥ ८ ॥ विष्णुनाचमहालक्ष्म्याब्रह्मणाविश्वकर्मणा ॥ नन्दिनाथगणेशेनआविष्कृतमहोत्सवः ॥ ९ ॥ नागाङ्गनाभिःपरितःकृतनीराजनाविधिः ॥ प्रविवेशमहादेवःपुरींवाराणसींशुभाम् ॥ १० ॥ पश्यतांसर्वदेवानाम

ऐसी वैसी सब ओर या संमुख बरसाये हुये बड़े क्रीड़ाकारी या प्रकाशमान व भलीभांति आनंदित उठे रोमवाले ॥ ६ ॥ व बहुत विद्याधरी समूहों से दियेहुये माल्यों-पहारों को लिये व यक्ष गुह्यक सिद्ध और खेचरों से अभिनन्दित ॥ ७ ॥ व आगे शकुनी मृगोंसे कियेहुये शकुनवाले व किन्नरी और सानंद मन्द मुसकान समेत मुखवाले किन्नरों से उपवर्णित ॥ ८ ॥ व विष्णु महालक्ष्मी जगत्कर्त्ता ब्रह्मा और गणनाथ नंदीश्वर से प्रकट किये गये महोत्सववाले ॥ ९ ॥ और नागस्त्रियों से की गई है सब ओर नीराजनकी अवधि (पूजाके अंतवाली आरती) जिनकी वे श्रीमहादेव जी मंगलमयी काशीपुरीमें प्रवेश करतेभये ॥ १० ॥ व सब देवों के देखतेही वृषेन्द्र

स्कार किये हुये ! तुम जयकरो हे संहारकर्त्तः, स्तुति के योग्य ! तुम जयकरो हे अच्छे कर्म्मोंके सिद्धिदायक ! तुम जयकरो ॥ २१ ॥ हे सिद्धों से वंदनीयपदकमलवा-ले, सिद्धिकारक, सब सिद्धियों के मुख्य स्थान, मुक्तिसमृद्धिसूचक ! तुम जयकरो॥ २२ ॥ हे सम्पूर्ण गुणों के निर्माण करनेहारे, गुणोंसे परे, गुणाग्रणी, परिपूर्णच-रित्रार्थ, गणों से वर्णित ! तुम जयकरो ॥ २३ ॥ हे सब बलों के अधीश्वर इन्द्रके बलदायक, बकपंक्ति के समान श्वेत दंताग्रवाले, बालक, अबालपराक्रम ! तुम जयकरो ॥ २४ ॥ हे अनंतमहिमा के आधार, पर्वतविदारण, दंत के अग्रभाग से ग्रथित दिग्गजवाले, सर्पालंकार ! तुम जयकरो ॥ २५ ॥ हे दयामय, दिव्यमूर्त्ते ! जे

सिद्धिद ॥ २१ ॥ सिद्धवन्द्यपदाम्भोजजयसिद्धिविधायक ॥ सर्वसिद्ध्येकनिलयमहासिद्ध्यृद्धिसूचक ॥ २२ ॥ अशेषगुण निर्माणगुणातीतगुणाग्रणीः ॥ परिपूर्णचरित्रार्थजयत्वंगुणवर्णित ॥ २३ ॥ जयसर्वबलाधीशबलारातिबलप्रद ॥ बलाकोज्ज्वलदन्ताग्रबालाबालपराक्रम ॥ २४ ॥ अनन्तमहिमाधारधराधरविदारण ॥ दन्ताग्रप्रोतदिङ्नागजयनागविभूषण ॥ २५ ॥ येत्वांनमन्तिकरुणामयदिव्यमूर्तेसर्वैनसामपिभुवोभुविमुक्तिभाजः ॥ तेषांसदैवहरसीहमहोपसर्गान्स्वर्गापवर्गमपिसंप्रददासितेभ्यः ॥ २६ ॥ येविघ्नराजभवताकरुणाकटाक्षैःसंप्रेक्षिताःक्षितितलेक्षणमात्रमत्र ॥ तेषांक्षयन्तिसकलान्यपिकिल्बिषाणि लक्ष्मीः कटाक्षयतितान्पुरुषोत्तमान्हि ॥ २७ ॥ येत्वांस्तुवन्तिनतविघ्नविघातदक्षदाक्षायणीहृदयपङ्कजतिग्मरश्मे ॥ श्रूयन्तएवतइहप्रथितानचित्रंचित्रंतदत्रगणपायदहोतएव ॥ २८ ॥ येशीलयन्तिसततंभवतोंऽघ्रियुग्मंतेपुत्रपौत्रधनधान्यसमृद्धिभाजः ॥ संशीलिताङ्घ्रिकमलाबहुभृत्यवर्गैर्भूपालभोग्यकमलांविमलांलभन्ते ॥ २९ ॥

सब पापों के आश्रयहुये भी जन तुम्हारे नमस्कार करते हैं वे मुक्तिसेवी होते हैं व तुम यहां उन के बड़े उपद्रवों को हरलेतेहो व उन को स्वर्ग और मुक्तिभी देतेहो ॥ २६ ॥ हे विघ्नराज ! जे इस भूतल में क्षणमात्र आप से करुणाकटाक्षों के द्वारा देखेगये हैं उनके सब पाप भी नष्ट होजाते हैं और उन पुरुषोत्तमोंकोही लक्ष्मीजी करुणाकटाक्ष से देखती हैं ॥ २७ ॥ हे भक्तविघ्नविघातदक्ष, दक्षपुत्री हृदय कमल के सूर्य्य ! जे तुम्हारी स्तुति करते हैं वे यहां प्रसिद्ध सुनेजाते हैं यह अद्भुत नहीं हैं जो वेही लोग यहां गणों के स्वामी होते हैं वह विचित्र है ॥ २८ ॥ जे आपके दोनों पदारविंदों को निरन्तर ध्यान धरते हैं वे धन धान्यपुत्र और पौत्रोंकी समृद्धि के

से उतरकर गणेशजी को अंग में लिपटाकर वृषध्वज जी ने ऊंचे स्वर से कहा॥ ११ ॥ कि जो शुभ काशीपुरी मुझको अत्यन्त दुष्प्राप्य (दुर्लभ) थी उसको जो मैं प्राप्तहुवाहूं वह इस बालक कीही प्रसन्नता है ॥ १२ ॥ और जोकि त्रिलोकतल में पिताकाभी दुष्प्रसाध्यथा वह पुत्रसे सुसाध्य होवे यह यहां मुझमें ही दृष्टांतभावहै॥ १३ ॥ जैसे मुझको काशी की प्राप्तिहोवे वैसेही इस गजमुखने अपनी बुद्धि की विभुता से यहां कुछ किया है ॥ १४ ॥ व जो मुझ करके बहुत काल से चिंतितरहे उस को जिसने अपने पौरुष से हस्त प्राप्त करदिया इस बालक से मैं पुत्रवानहूं ॥ १५ ॥ ऐसे कहकर इन्द्रादि देवों से स्तुत त्रिपुरहारी लीलाकारी परम प्रसन्न परमे-

वरुह्यवृषेन्द्रतः ॥ परिष्वज्यगणाधीशंप्रोवाचवृषभध्वजः ॥ ११ ॥ यदहंप्राप्तवानस्मिपुरींवाराणसींशुभाम् ॥ मया प्यतीवदुष्प्राप्यांसप्रसादोस्यवैशिशोः ॥ १२ ॥ यद्दुष्प्रसाध्यंहिपितुरपित्रिजगतीतले॥तत्सूनुनासुसाध्यंस्यादत्रदृष्टा न्ततामयि॥ १३ ॥ अनेनगजवक्रेणस्वबुद्धिविभवैरिह॥काशीप्राप्तिर्यथामेस्यात्तथाकिञ्चिदनुष्ठितम् ॥ १४॥ पुत्रवानहमे वास्मियच्चमे चिरचिन्तितम् ॥स्वपौरुषेणकृतवानभिलाषंकरस्थितम् ॥ १५॥इत्युक्त्वात्रिपुरीहर्त्तापुरुहूतादिभिःस्तुतः॥ परितुष्टावसंहृष्टःस्पष्टगीर्भिर्गजाननम् ॥ १६ ॥ श्रीकण्ठउवाच॥ जय विघ्नकृतामाद्यभक्तनिर्विघ्नकारक॥ अविघ्नविघ्नश मनमहाविघ्नैकविघ्नकृत् ॥ १७ ॥ जयसर्वगणाधीशजयसर्वगणाग्रणीः ॥ गणप्रणतपादाब्जगणनातीतसद्गुण ॥ १८ ॥ जयसर्वगसर्वेशसर्वबुद्ध्येकशेवधे ॥ सर्वमायाप्रपञ्चज्ञसर्वकर्माग्रपूजित ॥ १९ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्यजयत्वंसर्वमङ्गल ॥ अमङ्गलोपशमनमहामङ्गलहेतुक ॥ २० ॥ जयसृष्टिकृतांवन्द्यजयस्थितिकृतानत ॥ जयसंहृतिकृत्स्तुत्यजयसत्कर्म

श्वरजी ने स्पष्ट वाणी से गणेशजी की स्तुति किया ॥ १६ ॥ शिवजी बोले कि, हे विघ्नकर्त्ताओं के कारण ! भक्तों के निर्विघ्नकारक, विघ्नहीन, विघ्नविनाशन, महा-विघ्नों के मुख्य विघ्न करनेवाले ! तुम जय करो ॥ १७ ॥ हे सर्वगणाधीश, सर्वगणाग्रणी ! तुमजयकरो हे गणों से प्रणाम कियेहुये पदकमलवाले , गणनातीतसद्गुण ! तुम जयकरो ॥ १८ ॥ हे सर्वगत, सर्वेश, सब बुद्धियों के मुख्य निधान, सब मायाप्रपञ्च के जाननेवाले, सब कर्मों मे अग्रपूजित ! तुम जयकरो ॥ १९ ॥ हे सब मंगलों के मंगल स्वरूप सब मंगलवाले, अमंगलनाशक , महामंगलकारण ! तुम जयकरो ॥ २० ॥ हे सृष्टिकर्त्ताओं के वंदनीय ! तुम जयकरो हे पालनकर्त्ता विष्णु से नम-

सेवी होते हैं व बहुत भृत्यवर्गों से सेवित पदकमलवाले होकर विमल व राजाओं से भोगने योग्य सम्पत्ति को पाते हैं ॥ २९ ॥ हे परमकारण, निजकारण परब्रह्म के कहनेवाले वचनों के अविषय, दिव्यमूर्त्ते ! तुम कारणों के कारणहो व वेदों के पंडितों से तुम एक निरन्तर जानने योग्यहो और जो कुछ खोजने योग्य है वह तुम हो ॥ ३० ॥ हे मन से भी अगम्य, चराचरसूत्रधार ! वेद आपको यथातथ्यसे नहीं जानते हैं व ब्रह्मादिदेव भी नहीं जानते हैं एक तुम संसार को संहार करते हो व पालतेहो और बनाते हो इस से तुम्हारी स्तुति करने का व्यवहार कौन है याने कोई भी नहीं है ॥ ३१ ॥ और हे सिद्धिदायक ! मैं तुम्हारे क्रोध दर्शन रूप बाणों से मारे

त्वंकारणंपरमकारणकारणानां वेद्योसिवेदविदुषांसततंत्वमेकः॥त्वंमार्गणीयमसिकिञ्चनमूलवाचांवाचामगोचरचराचरदिव्यमूर्त्ते॥ ३० ॥ वेदा विदन्ति न यथार्थतया भवन्तं ब्रह्मादयोपिनचराचरसूत्रधार ॥ त्वंहंसिपासिविदधासिसमस्तमेकःकस्तेस्तुतिव्यतिकरोमनसाप्यगम्य॥ ३१ ॥ त्वद्दुष्टदृष्टिविशिखैर्निहतान्निहन्मिदैत्यान्पुरान्धकजलन्धरमुख्यकांश्च ॥ कस्यास्तिशक्तिरिहयस्त्वदृतेपितुच्छंवाञ्छेद्विधातुमिहसिद्धिदकार्यजातम् ॥३२॥ अन्वेषणेढुढिरयंप्रथितोस्तिधातुःसर्वार्थढुण्ढिततयातवढुण्ढिनाम ॥ काशीप्रवेशमपिकोलभतेत्रदेहीतोषंविनातवविनायकढुण्ढिराज॥ ३३ ॥ढुण्ढेप्रणम्यपुरतस्तवपादपद्मं योमांनमस्यतिपुमानिहकाशिवासी ॥ तत्कर्णमूलमधिगम्यपुरादिशामितत्किञ्चिदत्रनपुनर्भवतास्तियेन ॥ ३४ ॥ स्नात्वानरःप्रथमतोमणिकर्णिकायामुद्धूलिताङ्घ्रियुगलस्तुसचैलमाशु ॥ देवर्षिमानवपितॄन्

हुये त्रिपुर अंधक और जलन्धर मुख्य दैत्यों को मारताहूं व यहां किसकी शक्ति है जो तुम विना छोटे भी यहां कार्य्यसमूह को विधान करनेके लिये वाञ्छाकरे ॥३२॥ हे ढुंढिराज, विनायक ! यह ढुढि धातु खोजने अर्थ में प्रसिद्ध है इस लिये सर्वार्थ ढूंढ़ने से तुम्हारा ढुंढिनाम है और इस लोक में कौन देहधारी तुम्हारे संतोष विना काशी प्रवेश को भी पावे ॥ ३३ ॥ हे ढुंढ ! जो काशीवासी पुरुष यहां पहले तुम्हारे पदकमल के प्रणामकर मेरे नमस्कार करता है उसे के कान के समीप प्राप्तहोकर मैं उस किसी ब्रह्मज्ञान को देताहूं कि जिस से इस जगत् में उपजना नहीं होता है ॥ ३४ ॥ धूरि से धूसरित दोनों पांवों वाला पुरुष पहले वस्त्र समेत शीघ्रही मणिक-

र्णिका में स्नानकर देवऋषि मनुष्य और पितरों का तर्पणकर फिर ज्ञानोदतीर्थको सामने से पाकर तदनंतर तुम्हारी सेवा करे ॥ ३५ ॥ हे ढुंढे ! सुगंधसमेत लड्डूसमूह श्रेष्ठ धूप दीप माल्य और सुगंध समूह समेत अनुलेपनों से काशीपुरीके फल देने में दक्षहुये तुम को भलीभांति तृप्तकर अनन्तर मेरी स्तुतिकर कौन यहां नहीं सिद्ध होता है याने सब कोई सिद्ध होजाता है ॥ ३६ ॥ हे ढुंढे! तदनन्तर क्रम से रहित भी होकर आपके करुणाकटाक्षोंसे अन्य तीर्थों को भी यहां भली भांति साधन करता व दूर किये अपने हितघाती उत्पात समूहोंवाला होताहुआ इस काशीपुरीमें अविकलतासे फलको पाताहै ॥ ३७ ॥ और जो प्रातःकाल काशीमें प्रतिदिन तुम ढुंढि विनायकके

पितर्पयित्वाज्ञानोदतीर्थमभिलभ्यभजेत्ततस्त्वाम् ॥ ३५ ॥ सामोदमोदकभरैर्वरधूपदीपैर्माल्यैः सुगन्धबहुलैरनुलेपनैश्च ॥ संप्रीणयकाशिनगरीफलदानदक्षंप्रोक्त्वाथमाङ्कइहसिध्यतिनैवढुण्ढे ॥ ३६ ॥ तीर्थान्तराणिचततःक्रमवर्जितोपि संसाधयन्निहभवत्करुणाकटाक्षैः ॥ दूरीकृतस्वहितघात्युपसर्गवर्गोढुण्ढेलभेदविकलंफलमत्रकाश्याम् ॥ ३७ ॥ यःप्रत्यहंनमतिढुण्ढिविनायकंत्वाङ्काश्यांप्रगेप्रतिहताखिलविघ्नसङ्घः ॥ नोतस्यजातुजगतीतलवर्तिवस्तुदुष्प्रापमत्रचपरत्रचकिञ्चनापि ॥ ३८ ॥ योनामतेजपतिढुण्ढिविनायकस्यतंवैजपन्त्यनुदिनंहृदिसिद्धयोष्टौ ॥ भोगान्विभुज्यविविधान्निबुधोपभोग्यान्निर्वाणयाकमलयाव्रियतेसचान्ते॥३९॥दूरेस्थितोप्यहरहस्तवपादपीठंयःसंस्मरेत्सकलसिद्धिदढुण्ढिराज ॥ काशीस्थितेरविकलंसफलंलभेतनैवान्यथानवितथाममवाक्कदाचित् ॥ ४० ॥ जानेविघ्नानसंख्यातान्विनिहन्तुमनेकधा॥क्षेत्रस्यास्यमहाभागनानारूपैरिहस्थितः॥४१॥यानियानिचरूपाणियत्रयत्रचतेनघ ॥ तानितत्रप्रवक्ष्यामि

नमस्कार करताहै वह विघ्नसमूहका विनाशक होताहै व उसको पृथिवीतलमें वर्त्तमान कोईभी वस्तु इस और उस लोकमें भी कभी दुर्लभ नहींहै ॥ ३८ ॥ जोकि तुम ढुंढि विनायकका नाम जपताहै उसकोही प्रतिदिन हृदयमें आठोंसिद्धियां सुमिरतीहैं और वह देवोंके भोगने योग्य अनेक भांतिके भोगोंको भोगकर अन्तमें मोक्षलक्ष्मी से अंगीकार कियाजाताहै ॥ ३९ ॥ हे सकलसिद्धिद, ढुंढिराज ! दूर देशमें टिकाहुवा भी जो दिनों दिन तुम्हारे पद पीठको सुमिरे वह काशीवासका सम्पूर्ण फलपावे यह मेरा वचन कभी अन्यथा नहीं व असत्य नहीं है ॥ ४० ॥ हे महाभाग ! मैं जानताहूं कि तुम इस क्षेत्र के असंख्य विघ्नोंको बहुत भांतिसे विनाशनेके लिये अनेक रूपोंसे यहां

टिकेहां ॥४१॥ और हे अपाप ! जहां जहां तुम्हारे जोजो रूप हैं वहां वहां उन उनको कहूंगा क्योंकि ये देवलोग सुनलेवें ॥ ४२ ॥ कि पहले तो तुम मेरे कुछेक दूर दक्षिणदिशा में ढुंढिराजहो क्योंकि सब अर्थों को सब ओर से ढूंढ़कर सब भक्तों को देतेहो ॥ ४३ ॥ हे गणेश ! यहां मंगल दिनवाली चौथिको भली भांति प्राप्तहोकर जिन लोगोंने गंध माल्य व सुगंध समेत मोदक(लड्डू)समूहोंसे तुम्हारी अनेक भांति की पूजा किया उनको मैं गण बनाताहूं ॥४४॥ हे ढुंढे, गजमुख ! जे धनी बुद्धिवाले प्राणी यहां प्रति चौथि में तुम को पूजेंगे वेही पुण्यवान् हैं और वे सब विपत्तियों के शिरपर वामपद को धर भलीभांति गजमुख के भाव को पाते हैं ॥ ४५ ॥ हे ढुंढे !

शृण्वन्त्वेतेदिवौकसः ॥ ४२॥ प्रथमंढुण्ढिराजोसिममदक्षिणतोमनाक् ॥ आढुण्ढ्यसर्वभक्तेभ्यःसर्वार्थान्संप्रयच्छसि॥ ४३ ॥ अङ्गारवासरवतीमिहयैश्चतुर्थींसंप्राप्यमोदकभरैःपरिमोदवद्भिः ॥ पूजाऽयधायिविविधातवगन्धमाल्यैस्तानत्रपुत्रविदधामिगणान्गणेश ॥ ४४॥ येत्वामिहप्रतिचतुर्थिसमर्चयन्तिढुण्ढेविगाढमतयःकृतिनस्तएव ॥ सर्वापदांशिरसिवामपदंनिधायसम्यग्गजाननगजाननतांलभन्ते॥ ४५ ॥माघशुक्लचतुर्थ्यांतुनक्तव्रतपरायणाः ॥ येत्वांढुण्ढेर्चयिष्यन्तितेऽर्च्याःस्युरसुरद्रुहाम् ॥४६ ॥ विधायवार्षिकींयात्राञ्चतुर्थींप्राप्यतापसीम् ॥ शुक्लांशुक्लतिलैर्बद्धाप्राश्नीयाल्लड्डुकान्व्रती ॥ ४७ ॥ कार्यायात्राप्रयत्नेनक्षेत्रसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ तस्यांचतुर्थ्यांत्वत्प्रीत्यैढुण्ढेसर्वोपसर्गहृत ॥ ४८॥ तांयात्रांनात्रयःकुर्यान्नैवेद्यन्तिललड्डुकैः ॥ उपसर्गसहस्रैस्तुसहन्तव्योममाज्ञया ॥४९॥ होमन्तिलाज्यद्रव्येणयःकरिष्यतिभक्तितः॥तस्याञ्चतुर्थ्यांमन्त्रज्ञस्तस्यमन्त्रःप्रसेत्स्यति॥५०॥वैदिकोऽवैदिकोवापियोमन्त्रस्तेगजानन ॥ जप्तस्त्वत्सन्नि

नक्तव्रत (रात्रि में भोजन का नियम) में परायण जे जन माघसुदी चौथि में तुम को पूजेंगे वे देवों के पूज्य होवेंगे ॥ ४६ ॥ इस से व्रतवाला मनुष्य माघकी शुक्ल चतुर्थी को प्राप्तहोकर व वार्षिकी यात्रा को कर श्वेत तिलों से लड्डू बांधकर भोजनकरे ॥ ४७ ॥ हे सर्वविघ्नविनाशक, ढुंढे ! तुम्हारी प्रीति के लिये चौथि में क्षेत्र सिद्धि को चाहते हुये लोगों का यत्नसे यात्रा करना चाहिये ॥ ४८ ॥ और जो कि यहां उस यात्रा व लड्डुवों से नैवेद्य को नहीं करे है वह मेरी आज्ञा से हजारों विघ्नों के द्वारा हंतव्य है ॥ ४९ ॥ भक्तिसमेत जो मंत्रज्ञ उस चौथि मे लाजा आदि द्रव्यों से होम करेगा उसका मंत्र बहुत सिद्धहोगा ॥ ५० ॥ हे गजानन, ढुंढे ! तुम्हारे स-

मीप में जपाहुवा वैदिक व तांत्रिकभी तुम्हारा मंत्र वाञ्छित सिद्धिको देवेगा ॥ ५१ ॥ श्रीशिवजी बोले कि, यह निश्चय किया गया है कि जे अच्छीबुद्धिवाले लोग मेरी की हुई इस स्तुति को पढ़ेंगे उन को विघ्नसमूह कभी न पीडा देवेंगे॥ ५२ ॥ व पुण्यरूप ढुंढिराजकी इस स्तुति को जो पढ़ेगा उसकी समीपता को सब सिद्धियां निरन्तर भजेंगी॥५३॥ और बहुत सावधान मनुष्य इस स्तुतिको पढ़कर उन मनके पापों से भी कभी तिरस्कृत न होवे ॥ ५४ ॥ व ढुंढिराज की स्तुतिको जपताहुवा मनुष्य पुत्र स्त्री क्षेत्र श्रेष्ठ घोडे श्रेष्ठ घर धन और धान्य को प्राप्तहोवे ॥ ५५ ॥ सर्वसंपत्कर नामक यह मेरा कहा हुवा स्तोत्र मुक्तिचाही मनुष्यो से यत्नपूर्वक सदैव

धौढुण्ढेसिद्धिंदास्यतिवाञ्छिताम् ॥ ५१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ इमांस्तुतिंममकृतिंयःपठिष्यतिसन्मतिः ॥ नजातुतन्तु विघ्नौघाःपीडयिष्यन्तिनिश्चितम् ॥ ५२ ॥ दौण्ढींस्तुतिमिमांपुण्यांयःपठेड्ढुण्ढिसन्निधौ ॥ सान्निध्यन्तस्यसततंभजेयुःसर्वसिद्धयः ॥ ५३ ॥ इमांस्तुतिन्नरोजप्त्वापरंनियतमानसः ॥ मानसैरपिपापैस्तैर्नाभिभूयेतकर्हिचित् ॥ ५४ ॥ पुत्रान्कलत्रंक्षेत्राणिवराश्वान्वरमन्दिरम् ॥ प्राप्नुयाच्चधनंधान्यंढुण्ढिस्तोत्रंजपन्नरः ॥ ५५ ॥ सर्वसम्पत्करंनामस्तोत्रमेतन्मयेरितम् ॥ प्रजप्तव्यंप्रयत्नेनमुक्तिकामेनसर्वदा ॥ ५६ ॥ जप्त्वास्तोत्रमिदंपुण्यंक्वापिकार्येगमिष्यतः ॥ पुंसः पुरःसमेष्यन्तिनियतंसर्वसिद्धयः ॥ ५७ ॥ अन्यच्चकथयाम्यत्रश्रृण्वन्त्वेतेदिवौकसः ॥ ढुण्ढिनाक्षेत्ररक्षार्थंयत्रयत्रस्थितिःकृता ॥ ५८ ॥ काश्याङ्गङ्गासिसम्भेदेनामतोर्कविनायकः ॥ दृष्टोर्कवासरेपुम्भिःसर्वतापप्रशान्तये ॥ ५९ ॥ दुर्गोनामगणाध्यक्षःसर्वदुर्गतिनाशनः ॥ क्षेत्रस्यदक्षिणेभागेपूजनीयःप्रयत्नतः ॥ ६० ॥ भीमचण्डीसमीपेतुभीमच

जपने योग्य है ॥ ५६ ॥ व इस स्तोत्र को पढ़कर कहीं भी किसी कार्य्य के लिये जानेहारे पुरुष के आगे सब सिद्धियां नियम से भली भांति आजाती हैं ॥ ५७ ॥ और यहां ये देव लोग सुनें कि क्षेत्र की रक्षा के अर्थ ढुंढिराजने जहां जहां निवास किया है उस अन्य स्थान को भी मैं कहताहूं ॥ ५८ ॥ कि काशी में गंगा असी के संगम के समीप में अर्कविनायक नाम से प्रसिद्ध हैं सूर्य्यवार में लोगों से देखेहुये वह सब पापों के विनाश के लिये होते हैं ॥ ५९ ॥ व सब दुर्गति के नाशनेवाले

दुर्ग नामक गणाध्यक्ष क्षेत्र के दक्षिणभाग में यत्न से पूजनीय हैं ॥ ६० ॥ व भीमचण्डी के समीप में क्षेत्र के दक्षिण और पश्चिम के कोण मे टिके व देखे हुये भीम चंड विनायक बड़ेडर को हरलेते हैं ॥ ६१ ॥ और क्षेत्रके पश्चिमभागमें जो देहलिविनायकहैं वह भक्तोंके सब विघ्नों को निवारण करते हैं इस में संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ व क्षेत्र के वायव्यकोण में उद्दण्ड नामक गजमुखजी भक्तों के बहुते विकट विघ्नोंको भी सदा दण्डदेते हैं ॥ ६३ ॥ व काशीकी उत्तर दिशा नें पाशपाणि नामक विनायक जी भाक्ति से काशीवासी जनों के बडे विघ्नों को सदैव फांसलेते हैं ॥ ६४ ॥ व गंगा और वरणा नदी के संगम में जो रमणीक खर्वविनायक हैं वह सज्जन भक्तों

ण्डविनायकः ॥ क्षेत्रनैर्ऋतदेशस्थो दृष्टोहन्तिमहाभयम् ॥ ६१ ॥ क्षेत्रस्यपश्चिमेभागेसदेहलिविनायकः ॥ सर्वान्निवारयेद्विघ्नान्भक्तानात्रसंशयः ॥ ६२ ॥ क्षेत्रवायव्यदिग्भागेउद्दण्डाख्योगजाननः ॥ उद्दण्डानपिविघ्नौघान्भक्तानां दण्डयेत्सदा ॥ ६३ ॥ काश्याःसदोत्तराशायां पाशपाणिर्विनायकः ॥ विनायकान्पाशयन्तिभक्त्याकाशीनिवासिनाम् ॥ ६४ ॥ गङ्गावरणयोःसङ्गेरम्यःखर्वविनायकः ॥ अखर्वानपिविघ्नौघान्भक्तानांखर्वयेत्सताम् ॥ ६५ ॥ प्राच्यान्तु क्षेत्ररक्षार्थंसिद्धःसिद्धिविनायकः ॥ पश्चिमेयमतीर्थस्यसाधकक्षिप्रसिद्धिदः ॥ ६६ ॥ बाह्यावरणगाश्चैतेकाश्यामष्टौविनायकाः ॥ उच्चाटयन्त्यभक्तांश्चभक्तानांसर्वसिद्धिदाः ॥ ६७ ॥ द्वितीयावरणेचैवयेरक्षन्तिविनायकाः ॥ अविमुक्तमिदंक्षेत्रंतानहंकथयाम्यतः ॥ ६८ ॥ स्वर्धुन्याःपश्चिमेकूलेउत्तरेर्कविनायकात् ॥ लम्बोदरोगणाध्यक्षःक्षालयेद्विघ्नकर्दमम् ॥ ६९ ॥ तत्पश्चिमेकूटदन्तउदग्दुर्गविनायकात् ॥ दुर्गोपसर्गसंहर्तारक्षेत्क्षेत्रमिदंसदा ॥ ७० ॥ भीमचण्डगणाध्यक्षा

के भारी भी विघ्नों को काटकर थोड़ा करडालते हैं ॥ ६५ ॥ व काशी क्षेत्रकी रक्षा के अर्थ पूर्व दिशा में यमतीर्थ के समीप भक्तों के शीघ्रही सिद्धिदायक सिद्धिविनायक जी सिद्ध हैं ॥ ६६ ॥ और काशी में बाहरवाले आवरण में प्राप्त ये आठ विनायक अभक्तों का उच्चाटन करते हैं व भक्तों के सिद्धिदाता हैं ॥ ६७ ॥ और ऐसेही दूसरे आवरण में टिके हुये जे विनायक इस अविमुक्त क्षेत्रकी रक्षा करते हैं उनको मैं यहां कहताहूं ॥ ६८ ॥ कि अर्कविनायक से उत्तर ओर गंगा के पश्चिम किनारे लंबोदर नामक गणेशजी विघ्नरूप पंकको प्रक्षालन करते हैं ॥ ६९ ॥ उससे पश्चिम व दुर्गविनायक से उत्तर ओर में दुर्ग उपसर्गसंहारी कूटदंत विनायक इस क्षेत्र की

सदैव रक्षाकरते हैं ॥ ७० ॥ व भीमचंड गणेश से कुछेक दूर ईशान दिशा में प्राप्त क्षेत्र के रक्षक शालकटंकट नामक गणाध्यक्ष पूजनीय हैं ॥ ७१ ॥ व देहलिविनायक से पूर्व दिशा में कूश्मांड नामक विनायक सब महाउत्पातों की शांतिके लिये भक्तों से पूजने योग्य हैं ॥ ७२ ॥ व उद्दंड नामक गणेश से आग्नेय कोण में टिके हुये वडे प्रसिद्ध मुंडविनायक जी भलीभांति पूज्य हैं ॥ ७३ ॥ जिससे उनकी देह पाताल में है और मूड़ काशी में टिका है इस से वह देव काशी में मुंडविनायक नाम से गाये जाते हैं ॥ ७४ ॥ व पाशपाणि गणेश से दक्षिण में विकटद्विज (विकटदंत) गणनायक को पूजकर गणपति के पदको पावे ॥ ७५ ॥ व खर्व नामक

त्किञ्चिदीशानदिग्गतः ॥ क्षेत्ररक्षोगणाध्यक्षःपूज्यःशालकटङ्कटः ॥ ७१ ॥ प्राच्यांदेहलिविघ्नेशात्कूश्माण्डाख्यो विनायकः ॥ पूजनीयःसदाभक्तैर्महोत्पातप्रशान्तये ॥७२॥ उद्दण्डाख्याद्गणपतेराशुशुक्षणिदिक्स्थितः ॥ महाप्रसिद्धः सम्पूज्योभक्तैर्मुण्डविनायकः ॥ ७३ ॥ पातालेतस्यदेहोस्तिमुण्डंकाश्यांव्यवस्थितम् ॥ अतःसङ्गीयतेकाश्यांदेवो मुण्डविनायकः ॥ ७४ ॥ पाशपाणेर्गणेशानाद्दक्षिणेविकटद्विजम् ॥ पूजयित्वागणपतिङ्गाणपत्यपदंलभेत् ॥ ७५ ॥ खर्वाख्यान्नैर्ऋतेभागेराजपुत्रोविनायकः ॥ भ्रष्टराज्यञ्चराजानंराजानंकुरुतेऽर्चितः ॥ ७६ ॥ गङ्गायाःपश्चिमेकूलेप्रणवाख्योगणाधिपः ॥ अवाच्यांराजपुत्राच्चप्रणतःप्रणयेद्दिवम् ॥ ७७ ॥ द्वितीयावरणेकाश्यामष्टावेतेविनायकाः ॥ उत्सादयेयुर्विघ्नौघान्काशीस्थितिनिवासिनाम् ॥ ७८ ॥ क्षेत्रेतृतीयावरणेक्षेत्ररक्षाकृतःसदा ॥ येविघ्नराजाःसन्तीहते वक्तव्यामयाधुना ॥ ७९ ॥ उदग्वहायाःस्वर्धुन्यारम्येरोधसिविघ्नराट् ॥ लम्बोदराद्दुदीच्यान्तुवक्रतुण्डोघसङ्घ

विनायक से नैर्ऋत्य भाग में पूजेहुये राजपुत्रविनायक राज्यभ्रष्ट (छूटी राज्यवाले) राजा को राजा करदेते हैं ॥ ७६ ॥ व गंगा के पश्चिम किनारे व राजपुत्र से दक्षिण में नमस्कार किये गये हुये प्रणव नामक गणेश जी लोगोंको स्वर्ग में पठाते हैं ॥ ७७ ॥ काशी के मध्य द्वितीयावरण मे टिके हुये ये आठ विनायक काशीवासी जनों के विघ्नसमूहों को उखाड़ कर चलादेते हैं ॥ ७८ ॥ इस क्षेत्र के तीसरे आवरण में जे सदैव क्षेत्र के रक्षक विघ्नराज (गणेश) हैं वे इस समय मेरे कहने

योग्य हैं ॥ ७९ ॥ व उत्तर वाहिनी गंगा के मनोरमतीरमें लंबोदरसे उत्तर ओर पापसमूह घायक वक्रतुंड नामक विनायक हैं ॥ ८० ॥ औरकूट दंत गणेश से उत्तर दिशा में टिकेहुये एकदंतजी विघ्नों के समीप से काशीकी सदैव रक्षाकरें ॥ ८१ ॥ व शालकटंकट से ईशानकोण में टिकेहुये वानर सिंह और हाथी के समान मुखवाले त्रिमुख नामक विनायक जी काशीके भयहर्ता हैं ॥ ८२ ॥ व कूश्माण्ड से पूर्व भागमेंसिंह समते श्रेष्ठरथवाले पंचास्य नाम विघ्नराज काशीपुरीको पालते हैं ॥ ८३ ॥ व मुण्ड विनायक से आग्नेय कोण मे हेरम्ब नामक गणेश जी सदा पूजनीय हैं और वह माताकी नाई सब काशी वासी जनों के वांछितों को पूर करते हैं ॥ ८४ ॥ व

हृत ॥ ८० ॥ कूटदन्ताद्गणपतेरुदीच्यामेकदन्तकः ॥ सदोपसर्गसंसर्गात्पायादानन्दकाननम् ॥ ८१ ॥ काशीभयहरोनित्यमैश्यांशालकटङ्कटात् ॥ त्रिमुखोनामविघ्नेशःकपिसिंहद्विपाननः ॥ ८२ ॥ कूश्माण्डात्पूर्वदिग्भागेपञ्चास्योनामविघ्नराट् ॥ पञ्चास्यस्यन्दनवरःपातिवाराणसींपुरीम् ॥ ८३ ॥ हेरम्बाख्यःसदाग्नेय्यांपूज्योमुण्डविनायकात् ॥ अम्बावत्पूरयेत्कामान्सर्वेषाङ्काशिवासिनाम् ॥ ८४ ॥ अवाच्यामर्चयेद्धीमान्सिद्ध्यैविकटदन्ततः ॥ विघ्नराजङ्गणपतिंसर्वविघ्नविनाशनम् ॥ ८५ ॥ विनायकाद्राजपुत्रात्किञ्चिद्रक्षोदिशिस्थितः ॥ वरदाख्योगणाध्यक्षःपूज्योभक्तवरप्रदः ॥ ८६ ॥ याम्यांप्रणवविघ्नेशाद्गणेशोमोदकप्रियः ॥ पूज्यःपिशङ्गिलातीर्थेदेवनद्यास्तटेशुभे ॥ ८७ ॥ चतुर्थावरणेकाश्यांभक्तविघ्नविनाशकाः ॥ द्रष्टव्याहृष्टचेतोभिःस्पष्टमष्टौविनायकाः ॥ ८८ ॥ वक्रतुण्डादुदग्दिक्स्थःस्वःसिन्धोरोधसिस्थितः ॥ विनायकोस्त्यभयदःसर्वेषांभयनाशनः ॥ ८९ ॥ कौबेर्यामेकदशनात्सिंहतुण्डोविनायकः ॥ उपसर्गगजान्हन्ति

बुद्धिमान् मनुष्य सिद्धिके लिये विकट दंत से दक्षिण दिशा में टिकेहुये सब विघ्नों के विनाशक विघ्न राज नामक गणेशजी की पूजाकरे ॥ ८५ ॥ व राज पुत्र विनायक से कुछ नैर्ऋत्य में टिकेहुये भक्तवर दायक वरद नाम विनायक पूजनीय हैं ॥ ८६ ॥ व प्रणव विनायक से दक्षिण ओर गंगा के शुभ किनारे पर पिशंगिला तीर्थ में मोदक प्रिय गणेश जी पूज्य हैं इस श्लोक में उत्तरबाहिनी गगा के अभिप्राय से दक्षिण दिशा कही गई है वस्तुतः पश्चिम दिशा जानना चाहिये ॥ ८७ ॥ और काशी के चौथे आवरण में भक्तों केविघ्न विनाशक आठ विनायक प्रसन्न मन वालेजनों से स्पष्ट देखने योग्य हैं ॥ ८८ ॥ वे ये हैं कि, वक्रतुंड से उत्तर ओर गंगा किं

नारे टिके हुये अभयद नामक विनायक सब के भयनाशक हैं ॥ ८९ ॥ व एकदंत से उत्तर में सिंहतुण्डनामक गणेश जी काशीवासी जनो के विघ्नरूप हाथियों को हन डालते हैं ॥ ९० ॥ व त्रितुण्ड से ईशान कोण में टिके हुये कूणिताक्ष नामक गणेश दुष्टों की कुदृष्टि से निरन्तर काशी की रक्षा करे हैं ॥ ९१ ॥ व पंचास्य से पूर्वमें टिके हुये क्षिप्रप्रसादन नामक गणेश्वरपुरी की रक्षा करते हैं और क्षिप्रप्रसादन गणेश की पूजा से सिद्धियां शीघ्रही सिद्ध होती हैं ॥ ९२ ॥ व हेरंबसे आग्नेय कोण में टिके हुये चिंतामणि विनायक साक्षात् भक्त चिंतामणि और चिंतित अर्थों के दायक हैं ॥ ९३ ॥ व विघ्नराज से दक्षिण दिशा में दंतहस्त नामक गणेश जी

वाराणसिनिवासिनाम् ॥ ९० ॥ कूणिताक्षोगणाध्यक्षस्त्रितुण्डादीशदिक्स्थितः ॥ महाश्मशानंसततंपायाद्दुष्टकुदृष्टितः ॥ ९१ ॥ प्राच्यांपञ्चास्यतःपायात्पुरींक्षिप्रप्रसादनः ॥ क्षिप्रप्रसादनार्चातःक्षिप्रंसिध्यन्तिसिद्धयः ॥ ९२ ॥ हेरम्बाद्वह्निदिग्भागेचिन्तामणिविनायकः ॥ भक्तचिन्तामणिःसाक्षाच्चिन्तितार्थसमर्पकः ॥ ९३ ॥ विघ्नराजादवाच्यान्तुदन्तहस्तोगणेश्वरः ॥ लिखेद्विघ्नसहस्राणिनृणांवाराणसीद्रुहाम् ॥ ९४ ॥ वरदाद्यातुधान्यांचयातुधानगणावृतः ॥ देवःपिचिंडिलोनामपुरींरक्षेदहर्निशम् ॥ ९५ ॥ दृष्टःपिलिपिलातीर्थेदक्षिणेमोदकप्रियात् ॥ उद्दण्डमुण्डोहेरम्बो भक्तेभ्यःकिंनयच्छति ॥ ९६ ॥ प्राकारेपञ्चमेकाश्यांद्विचतुष्कविनायकाः ॥ कुर्वन्तिरक्षांक्षेत्रस्ययेतानत्रब्रवीम्यहम् ॥ ९७ ॥ तीरेस्वर्गतरङ्गिण्याउत्तरेचाभयप्रदात् ॥ स्थूलदन्तोगणेशानःस्थूलाःसिद्धीर्दिशेत्सताम् ॥ ९८ ॥ सिंहतुण्डादुदग्भागेकलिप्रियविनायकः ॥ कलहंकारयेन्नित्यमन्योन्यंतीर्थकद्रुहाम् ॥ ९९ ॥ कूणिताक्षात्तथैशान्याञ्चतुर्दन्तोविनायकः ॥ तस्यदर्शनमात्रे

काशीद्रोही मनुष्यों के हजारों विघ्नों को लिखैं हैं ॥ ९४ ॥ और वरदगणेश से नैर्ऋत्यकोण में राक्षस गणों से घिरेहुये पिचिंडिनामक देवपुरीको राती दिन रखातेहैं ॥ ९५ ॥ व मोदक प्रियगणेशसे दक्षिण ओर पिलपिला तीर्थमें देखेहुये उद्दंड मुंडनामक विनायक भक्तों के लिये क्या नहीं देतेहैं याने सब मनमाने फल देतेहैं ॥ ९६ ॥ औरकाशीके पंचम आवरण में टिकेहुये जे आठ गणेश क्षेत्र की रक्षा करतेहैं उनको मैं यहां कहताहूं ॥ ९७ ॥ कि अभयप्रदसे उत्तर गंगा किनारे स्थूलदंत गणेश संतों को स्थूल सिद्धियां देते हैं ॥ ९८ ॥ व सिंहतुंड (श्रेष्ठतुंड) से उत्तर भागमें टिकेहुये कलिप्रियनामक गणेशजी तीर्थसेवी प्राणियों के हिंसकों को नित्यही परस्पर

लड़ाईकरा देते हैं ॥ ९९ ॥ वैसेही कूणिताक्षसे ईशानदिशामें चतुर्दंत विनायक हैं उनके दर्शन मात्र से विघ्नसमूह आपही नष्टहोजावे ॥१०० ॥ व क्षिप्रप्रसादन से पूर्व में द्विंतुड नामक गणेश जी आगे और पाछे से भी समान संपत्ति को भरते हैं ॥ १ ॥ उनके दर्शन मात्रसे लोगोंकी सर्वतो मुखी लक्ष्मी होती है और मेरी संतान संपत्ति में जो ज्येष्ठ नामक गणेश ज्येष्ठ (श्रेष्ठ) हैं ॥ २ ॥ वह श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिये जेठ सुदी चतुर्दशी तिथि में पूजनेयोग्य हैं व चिंतामणि विनायक से अग्नि दिशाके भागमें टिके हैं ॥ ३ ॥ और दंतहस्त से दक्षिण दिशामें गजविनायक जी पूजनीय हैं भक्ति पूर्वक उनकी पूजासे हाथी पर्य्यंत संपत्ति प्राप्ति होती है ॥

णविघ्नसङ्घःक्षयेत्स्वयम् ॥ १०० ॥ क्षिप्रप्रसादनादैन्द्र्यांद्वितुण्डोगणनायकः ॥ अग्रतःपृष्ठतश्चापिबिभर्तिसदृशींश्रियम् ॥ १ ॥ तस्यसंदर्शनात्पुंसांभवेच्छ्रीःसर्वतोमुखी ॥ ज्येष्ठोनामगणाध्यक्षोज्येष्ठोमेपुत्रसम्पदि ॥ २ ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यां सम्पूज्योज्येष्ठताप्तये ॥ स्थितोवह्निदिशोभागेचिन्तामणिविनायकात् ॥ ३ ॥ दन्तहस्ताद्यमाशायांपूज्योगजविनायकः ॥ तस्यसम्पूजनाद्भक्त्यागजान्ताश्रीरवाप्यते ॥ ४ ॥ पिचिण्डिलाद्गणपतेर्याम्यांकालविनायकः ॥ भयंनकालकलितं तस्यसंसेवनान्नृणाम् ॥ ५ ॥ उद्दण्डमुण्डाद्गणपात्कीनाशदिशिसंस्थितम् ॥ नागेशङ्गणपंदृष्ट्वानागलोकेमहीयते ॥ ६ ॥ अथषष्ठावरणगाःप्रोच्यन्तेविघ्ननायकाः ॥ तेषांनामश्रवणादेवपुंसांसिद्धिःप्रजायते ॥ ७ ॥ मणिकर्णोगणपतिःप्राच्यांविघ्नविघातकृत् ॥ आशाविनायकोवह्न्यांभक्ताशांपूरयन्स्थितः ॥ ८ ॥ याम्यांसृष्टिगणेशश्चसृष्टिसंहारसूचकः ॥ नैर्ऋत्यां यक्षविघ्नेशःसर्वविघ्नहरःपरः ॥ ९ ॥ प्रतीच्यांगजकर्णश्चसर्वेषांक्षेमकारकः ॥ चित्रघण्टोगणपतिर्वायव्यांपालयेत्पुरी

४ ॥ व पिचिंडिल गणेश से दक्षिण में कालविनायक हैं उनकी भली भांति सेवा करनेसे मनुष्यों को काल से रचित भयान होवे ॥ ५ ॥ व उद्दंडमुंड नामक गणेश से ईशान दिशा में टिकेहुये नागेश गणेश जी के दर्शन कर नागलोक में पूजाजाता याने आदर पाताहै ॥ ६ ॥ इसके बाद छठयें आवरण में प्राप्त गणेशकहे जातेहैं उनके नाम सुननेसेही मनुष्यों की सिद्धि होती है ॥ ७ ॥ पूर्व में विघ्न विनाश कर्ता मणिकर्ण नामक गणेश हैं व भक्तों की आशा पूरकरते हुये आशा विनायक आग्नेय कोण में टिके हैं ॥ ८ ॥ और सृष्टि व संहार (प्रलय) के सूचन करने वाले सृष्टि गणेश दक्षिण में हैं व सब विघ्नोंके हरनेवाले और उत्तम यक्ष

विघ्नेश नैर्ऋत्य में हैं ॥ ९ ॥ व सब के कल्याणकर्त्ता गजकर्ण नामक गणेश पश्चिम में है वे वायव्यमें चित्र घंट गणेश पुरीको पालते हैं ॥ १० ॥ व उत्तर में टिके हुये स्थूलजंघ गणेश शांतजनों के रोग को विनाश करे है और ईशान दिशामें टिके हुये वह मंगलविनायक शिव की पुरी की रक्षाकरैं ॥ ११ ॥ व यम जीर्थ से उ-त्तर में मित्र विनायक पूजनेयोग्य हैंऔर जे विनायक (गणेश) सतयें आवरण में है उनको मैं कहूंगा या कहताहूं ॥ १२ ॥ कि मोदआदि पांच विघ्नेश हैं व छठयें ज्ञान विनायक सप्तम महाद्वार के आगे विचरनेवाले द्वार विघ्नेश हैं ॥ १३ ॥ अष्टम अविमुक्त विनायकजी मेरे अविमुक्त (काशी) क्षेत्र में बिनम्रचित्त

म् ॥ १० ॥ स्थूलजङ्घउदीच्यांञ्चशमयेच्छमिनामघम् ॥ ऐश्यामैशींपुरींपायात्समङ्गलविनायकः ॥ ११ ॥ यमतीर्था दुदीच्यांञ्चपूज्योमित्रविनायकः ॥ सप्तमावरणेयेचतांश्चवक्ष्येविनायकान् ॥ १२ ॥ मोदाद्याःपञ्चविघ्नेशाःषष्ठोज्ञानविनाय कः ॥ सप्तमोद्वारविघ्नेशोमहाद्वारपुरश्चरः ॥ १३ ॥ अष्टमःसर्वकष्टौघानविमुक्तविनायकः ॥ अविमुक्तेममक्षेत्रेहरेत्प्रणत चेतसाम् ॥ १४ ॥ षट्पञ्चाशद्गजमुखानेतान्यःसंस्मरिष्यति ॥ दूरदेशान्तरस्थोपिसस्मृतोज्ञानमाप्नुयात् ॥ १५ ॥ ढु ण्ढिस्तुतिंमहापुण्यांषट्पञ्चाशद्गजाननाम् ॥ यःपठिष्यतिपुण्यात्मातस्यसिद्धिःपदेपदे ॥ १६ ॥ इमेगणेश्वराःसर्वे स्मर्तव्यायत्रकुत्रचित् ॥ महाविपत्समुद्रान्तःपतन्तंपान्तिमानवम् ॥ १७ ॥ इतिस्तुतिंमहापुण्यांश्रुत्वाचैतान्विनायकान् ॥ जातुविघ्नैर्नबाध्येतपापेभ्योपिप्रहीयते ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवोपिमहोत्सवितमानसः ॥ कृताभिषेकोब्रह्माद्यैस्तेभ्यो दत्त्वाभिवाञ्छितम् ॥ १९ ॥ संप्रसाद्ययथायोगंसर्वाननुचितचञ्चुरः ॥ अविशद्राजसदनंविश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ २० ॥

वाले लोगों के कष्ट समूहों को हरलेते हैं ॥ १४ ॥ जो कि एक सिंह मुख और छप्पन गजमुख याने इन सत्तावन गणेशोंको भलीभांति सुमिरेगा वह दूरदेशांतर में टिका हुवा मराहुवा ज्ञान को प्राप्त होवेगा ॥ १५ ॥ छप्पन गजमुख वाली व महा पुण्य रूप ढुंढिराज की स्तुति को जो पढ़ेगा उसकी क्षण क्षण में सिद्धिहोवेगी ॥ १६ ॥ ये सब गणेश्वर जहां कहीं याने सर्वत्र सुमिरने योग्य हैं और ये बडीविपत्ति सागर में गिरते हुये मनुष्य की रक्षा करते हैं ॥ १७ ॥ इसभांति महापुण्य रूप स्तुति और इन विनायकों को सुनकर विघ्नों से की भी न बाधित होवे व पापों से भी छूटजाता है ॥ १८ ॥ ऐसे कह कह कर अधिक उत्सव समेत मनवाले

देवों के देव ब्रह्मादि देवों से अभिषेक किये हुये व उनको वाञ्छित देकर ॥ १९ ॥ यथायोग्य व्यवहार में दक्ष होकर फिर विश्वकर्मा से बनाये राजमन्दिर में प्रवेश करते भये ॥ २० ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, इस प्रकार देवों के देव भगवान् श्रीमहादेव जी से विघ्नजित् (गणेशजी) स्तुतिकिये गये और उन विनायक जी ने ऐसे बहुत भांति अपना को किया ॥ २१ ॥ हे कुम्भज ! उन ढुंढिराज के ये नाम हैं कि जिनको जपकर नर निजमनमाने फल पावे ॥ २२ ॥ और वह उन ढुंढिराज गणेश जी के अन्य भी असंख्य सहस्रों भेद भक्ति समेत भक्तों से भली भांति पूजित हैं ॥ २३ ॥ भगीरथ गणेश, हरिश्चन्द्रविनायक, कपर्दनामक ग-

स्कन्दउवाच ॥ एवंस्तुतोभगवतादेवदेवेनविघ्नजित् ॥ इत्थञ्चबहुधात्मानंसचकारविनायकः ॥ २१ ॥ एतानितस्यनामानिढुण्ढिराजस्यकुम्भज ॥ जपित्वायानिमनुजोलप्स्यतेनिजवाञ्छितम् ॥ २२ ॥ अन्येपितत्रवैभेदास्तस्यढुण्ढेर्गणेशितुः ॥ भक्तैःसमर्चिताभक्त्याह्यसंख्याताःसहस्रशः ॥२३॥ भगीरथगणाध्यक्षोहरिश्चन्द्रविनायकः ॥ कपर्दाख्योगणपतिस्तथाबिन्दुविनायकः ॥ २४ ॥ इत्याद्यास्तत्रविघ्नेशाःप्रतिभक्तप्रतिष्ठिताः ॥ तेषामप्यर्चनात्पुंसाञ्जायन्तेसर्वसम्पदः ॥ २५ ॥ श्रुत्वाध्यायमिमंपुण्यन्नरःश्रद्धासमन्वितः ॥ सर्वविघ्नान्समुत्सृज्यलभतेवाञ्छितम्पदम् ॥ १२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेढुण्ढिविनायकप्रादुर्भावोनामसप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ किञ्चकारहरःस्कन्दमन्दराद्रिगतस्तदा ॥ विलम्बमालंबयतितस्मिन्नपिगजानने ॥ १ ॥ स्कन्द

णेश तथा बिन्दुविनायक ॥ २४ ॥ इत्यादि गणेश वहां प्रति भक्त जनों से थापे गये हैं उनके भी पूजन से मनुष्यों की सब संपत्तियां उत्पन्न होती हैं ॥ २५ ॥ और श्रद्धा समेत मनुष्य इस पुण्य रूप अध्यायको सुनकर सब विघ्नों को भली भांति दूर त्यागकर वाञ्छित स्थान को पाता है ॥ १२६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते ढुण्ढिविनायकप्रादुर्भावो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

अट्ठावन अध्याय में विष्णु बौद्धवपु कीन। काशीवासी मोहिकै दिवोदास सुखदीन ॥ अगस्त्य जी बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी ! उन गणेशजी के भी विलम्ब का

आलंबन करतेही मंदराचल में प्राप्त महादेवजी ने क्या कियाथा ॥ १ ॥श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्यजी ! अब काशिका के एक विषय करने वाली व सब पाप समूह नाशिका व मुझसे कही जातीहुई बड़ी पुण्यरूपा कथा को सुनो ॥२॥कि जब गजेन्द्र मुख गणेशजी उस काशी क्षेत्र श्रेष्ठ में विलंब सेवी होगये तब शिवजी ने शीघ्रही विष्णुजी को देखा ॥ ३ ॥व तदनंतर बहुत आदरपूर्वक बहुत भांति से ऐसे कहा कि जैसे पहले के पठाये गये जनों ने किया है वैसेही तुमभी मत करना ॥ ४ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे शंकर ! जैसे बुद्धिका बल और अबल है वैसे याने अपनी बुद्धिके बलानुसार प्राणियों को उद्यम करना चाहिये परंतु तु-

उवाच ॥ शृण्वगस्त्यकथाम्पुण्याङ्कथ्यमानांमयाधुना ॥ वाराणस्येकविषयामशेषाघौघनाशिनीम् ॥ २ ॥ करीन्द्रवदनेतत्रक्षेत्रवर्येऽविमुक्तके ॥ विलम्बभाजित्र्यक्षेणप्रैक्षिक्षिप्रमधोक्षजः ॥ ३ ॥ प्रोक्तोथबहुशश्चेतिबहुमानपुरःसरम् ॥ तथात्वमपिमाकार्षीर्यथाप्राक्प्रस्थितैःकृतम् ॥ ४ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ उद्यमःप्राणिभिःकार्योयथाबुद्धिबलाबलम् ॥ परंफलन्तिकर्माणित्वदधीनानिशङ्कर ॥ ५ ॥ अचेतनानिकर्माणिस्वतन्त्राःप्राणिनोपिन ॥ त्वञ्चतत्कर्मणांसाक्षीत्वञ्प्राणिप्रवर्तकः ॥ ६ ॥ किन्तुत्वत्पादभक्तानांतादृशीजायतेमतिः ॥ ययात्वमेवकथयेःसाध्वनेनत्वनुष्ठितम् ॥ ७ ॥ यत्किञ्चिदिहवैकर्मस्तोकम्वाऽस्तोकमेववा ॥ तत्सिद्ध्यत्येवगिरिशत्वत्पादस्मृत्यनुष्ठितम् ॥ ८ ॥ सुसिद्धमपिवैकार्यंसुबुद्ध्यापिस्वनुष्ठितम् ॥ अत्वत्पदस्मृतिकृतंविनश्यत्येवतत्क्षणात् ॥ ९ ॥ शम्भुनाप्रेषितेनाद्यसूद्यमःक्रियतेमया ॥

म्हारे अधीन हुये वे कर्म्म फलवान् होते हैं ॥ ५ ॥ क्योंकि वे कर्म जड हैं व प्राणीभी स्वतंत्र (अपने अधीन) नहीं हैं किंतु तुमहीं कर्मों के साक्षी हो और तुमहीं प्राणियों के प्रेरक या कर्मों में वर्त्तानेवाले हो ॥ ६ ॥ किंतु तुम्हारे पद कमल केभक्तों की वैसी बुद्धि उपजती है जिस से तुमहीं कहते हो कि इसने अच्छा कर्म किया ॥ ७ ॥ व हे गिरिश ! यह निश्चय है कि इस लोक में जो कुछ थोड़ा व बडाभी कर्म्म है वह तुम्हारे चरणारविंद के स्मरण से किया हुवाही सिद्ध होता है ॥ ८ ॥ और जो कि तुम्हारे पांवों के स्मरण विना कियागया है वह सुसिद्धभी, सुबुद्धिसे भलीभांति किया हुवा भीकार्य्य निश्चय से उसही क्षण मे नष्ट होजाता है ॥ ९ ॥

और कल्याण करि आपसे प्रेरित हुये मुझ से अच्छा उद्यम किया जाता है व तुम्हरी भक्तिसंपत्तिवाले हमलोगों का उद्यम सिद्ध प्रायही है ॥ १० ॥ हे शिव ! जो कि कार्य्य अपनी बुद्धिबल और पौरुष से अत्यंत असाध्य होवे वहभी तुम्हारे ध्यान समेत स्मरण से सुसिद्ध होजावे ॥ ११ ॥ हे विभो ! जे लोग आप सुखदायक की प्रदक्षिणा कर कहीं को जाते हैं उनके कार्य्य आप के डरसे आगे हुये होतेहैं ॥ १२ ॥ हे महादेव जी ! बहुतही निश्चय किये हुये इस कार्य्य को हुवा जानों परंतु काशी पुरी में प्रवेश करने के योग्य शुभ लग्न का उदय विचारना चाहिये ॥ १३ ॥ अथवा काशी की भली भांति प्राप्ति में शुभ व अशुभ विचारने योग्य नहीं

त्वद्भक्तिसम्पत्तिमतांसम्पन्नप्रायएवनः ॥ १० ॥ अतीवयदसाध्यंस्यात्स्वबुद्धिबलपौरुषैः ॥ तत्कार्यंहिसुसिद्धंस्यात्त्वद नुध्यानतःशिव ॥ ११ ॥ यान्तिप्रदक्षिणीकृत्ययेभवन्तंभवंविभो ॥ भवन्तितेषाङ्कार्याणिपुरोभूतानितेभयात् ॥ १२ ॥ जातंविद्धिमहादेवकार्यमेतत्सुनिश्चितम् ॥ काशीप्रावेशिकश्चिन्त्यःशुभलग्नोदयःपरम् ॥ १३ ॥ अथवाकाशिस म्प्राप्तौनचिन्त्यंहिशुभाशुभम् ॥ तदैवहिशुभःकालोयदैवाप्येतकाशिका ॥ १४ ॥ शम्भुम्प्रदक्षिणीकृत्यप्रणम्यचपु नःपुनः ॥ प्रतस्थेऽथसलक्ष्मीकोमन्दराद्गरुडध्वजः ॥ १५ ॥ दृशोरतिथितान्नीत्वाविष्णुर्वाराणसीन्ततः ॥ पुण्डरीकाक्ष इत्याख्यांसफलीकृतवान्मुदा ॥ १६ ॥ गङ्गावरणयोर्विष्णुःसम्भेदेस्वच्छमानसः ॥ प्रक्षाल्यपाणिचरणंसचैलःस्नात वानथ ॥ १७ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थंपादोदकमितीरितम् ॥ पादौयदादौशुभदौक्षालितौपीतवाससा ॥ १८ ॥ तत्रपादोद केतीर्थेयेस्नास्यन्तीहमानवाः ॥ तेषांविनश्यतिक्षिप्रंपापंसप्तभवार्जितम् ॥ १९ ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वादत्त्वाचैवतिलोदक

है क्योंकि जबहीं काशी पुरी प्राप्त होवे तबहीं शुभकाल है ॥ १४ ॥ तदनंतर शंकर जीके प्रदक्षिणाकर और बार बार प्रणामकर श्री लक्ष्मी जी समेत श्री गरुड़ध्वज (विष्णु)जीने मंदराचल से प्रस्थान किया ॥ १५ ॥ उसके बाद विष्णुजीने काशीपुरी को नेत्रों के अतिथि भावकोप्राप्तकर याने देखकर आनंदसे पुंडरीकाक्ष ऐसेनाम को सफल किया ॥ १६ ॥ अनंतर वस्त्रसमेत अमलअंतःकरण वाले विष्णु जी गंगा व वरणा नदी के संगम में हाथ पांव धोकर नहाते भये ॥ १७ ॥ जब पहले पीतांबर धारी विष्णु जीने शुभदायक पावों को पखारा तब से लगाकर वहतीर्थ पादोदकइस भांति कहागया है ॥ १८ ॥ उस पादोदकतीर्थ में यहां जे मनुष्य स्नान करेंगे उनके सा-

न जन्मों का बटोरा हुवा पाप शीघ्रही विनष्ट होजावेगा ॥१९॥ और मनुष्य वहां श्राद्धकर व तिलोदक भी देकर सात सात तथा फिरसात याने इक्कीस पुश्तिके अपने पितरों को तारेगा ॥ २० ॥ यह निश्चय है कि गयामें पितरोंको जैसी तृप्तिमिलतीहै वैसीही काशी के बीच पादोदकतीर्थ में भी मिलती है ॥ २१ ॥व जिसने पादोदक तीर्थमें स्नान किया व पादोदक का जल पिया और देवादिकों के लिये पादोदकतीर्थ का पानी दियाहो उस मनुष्य को नरक न स्पर्शकरे याने न छूसके ॥ २२ ॥ व ऐसा निश्चय किया हुवा है कि, श्री विष्णुजी के पादोदकतीर्थ में पादप्रक्षालनका जल पानकर फिर माताका दूध कभी न पीवे याने जन्म न होवे ॥ २३॥ व पा-

म् ॥ सप्तसप्ततथासप्तस्ववंश्यांस्तारयिष्यति ॥ २० ॥ गयायांयादृशीतृप्तिर्लभ्यतेप्रपितामहैः ॥ तीर्थेपादोदकेकाश्यां तादृशीलभ्यतेध्रुवम् ॥ २१ ॥ कृतपादोदकस्नानंपीतपादोदकोदकम् ॥ दत्तपादोदपानीयंनरंननिरयःस्पृशेत् ॥ २२ ॥ विष्णुपादोदकेतीर्थेप्राश्यपादोदकंसकृत् ॥ जातुचिज्जननीस्तन्यन्नपिबेदितिनिश्चितम् ॥ २३ ॥ सचक्रशालग्रामस्यशङ्खेनस्नापितस्यच ॥ अद्भिःपादोदकस्याम्बुपिबन्नमृततांव्रजेत् ॥ २४ ॥ विष्णुपादोदकेतीर्थेविष्णुपादोदकंपिबेत् ॥ यदितत्सुधयाकिंनुबहुकालीनयातया ॥ २५ ॥ काश्यांपादोदकेतीर्थेयैःकृतानोदकक्रियाः ॥ जन्मैवविफलन्तेषां जलबुद्बुदसश्रियाम् ॥ २६ ॥ कृतनित्यक्रियोविष्णुःसलक्ष्मीकःसकाश्यपिः ॥ उपसंहृत्यताम्मूर्तिंत्रैलोक्यव्यापिनीन्तथा ॥ २७ ॥ विधायदार्षदींमूर्तिंस्वहस्तेनादिकेशवः ॥स्वयंसम्पूजयामाससर्वसिद्धिसमृद्धिदाम् ॥ २८ ॥ आदिकेशवनाम्नींतांश्रीमूर्तिंपारमेश्वरीम् ॥ सम्पूज्यमर्त्योवैकुण्ठंमन्यतेस्वगृहाङ्गणम् ॥ २९ ॥ श्वेतद्वीपइतिख्याततंतत्स्थानं

दोदकतीर्थ के पानी से शंख के द्वारा स्नान कराये हुये चक्र समेत शालग्राम का चरणामृत पीताहुवा मनुष्य मुक्तिको प्राप्तहोवे ॥ २४ ॥ व जो विष्णु पादोदकतीर्थमें विष्णुका चरणामृत पीवे तो उस प्रसिद्ध बहुत कालके अमृतसे क्याहै ॥ २५ ॥ काशी के बीच पादोदकतीर्थ में जिन्होंने जलक्रियाको नहीं किया उन जल बुल्लाके समान शोभा वालों का जन्म विफल है ॥ २६ ॥ और त्रैलोक्यव्यापिनी उस मूर्तिको उप संहार कर लक्ष्मीसमेत व गरुडसंयुत नित्यक्रिया किये हुये विष्णुजी ॥ २७ ॥ जो कि आदि केशव हैं उन्होंने आपही अपने हाथसे (सब समृद्धि देने वाली) पत्थर की मूर्ति बनाकर भलीभांति पूजा किया ॥ २८ ॥ उस आदि केशव

नाम वाली परमेश्वर की श्री मूर्तिको भलीभांति पूजकर मनुष्य वैकुंठ को अपने घरका आँगन मानता है ॥ २९ ॥ और काशीकी सीमामें वह स्थान श्वेतद्वीप इस नाम से कहागया या प्रसिद्ध है उस मूर्ति के सेवक मनुष्य श्वेतद्वीपमेंहीं बसते हैं ॥ ३० ॥ व केशव के आगे वहां क्षीरसागरनामक अन्यभी तीर्थ हैं उसमें जलक्रिया कियेहुये मनुष्य क्षीरसमुद्र के किनारे बसे ॥ ३१ ॥ व वहां श्राद्धकर और यथोक्त याने सोने के सींग रूपे के खुर आदि अलंकारवाली पयस्विनी (दुधारी) गऊ को दानकर नर अपने पितरोंको क्षीरसागर में बसावे ॥ ३२ ॥ व उस में भक्ति से एक गऊ देने वाला पुण्यात्मा वंशके एक अधिक एक सौ पितरों को खीररूपकीच

काशिसीमनि ॥ श्वेतद्वीपेवसन्त्येवनरास्तन्मूर्तिसेवकाः ॥ ३० ॥ क्षीराब्धिसंज्ञन्तत्रान्यत्तीर्थंकेशवतोग्रतः ॥ कृतोदकक्रियस्तत्रवसेत्क्षीराब्धिरोधसि ॥ ३१ ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वागांदत्त्वाचपयस्विनीम् ॥ यथोक्तसर्वाभरणांक्षीरोदेवासयेत्पितॄन् ॥ ३२ ॥ एकोत्तरशतंवंश्यान्नयेत्पायसकर्दमम् ॥ क्षीरोदरोधःपुण्यात्माभक्त्यातत्रैकधेनुदः ॥ ३३ ॥ बह्वीश्चनैचिकीर्दत्त्वाश्रद्धयात्रसदक्षिणाः ॥ शय्योत्तरांश्चप्रत्येकंपितॄंस्तत्रसुवासयेत् ॥ ३४ ॥ क्षीरोदाद्दक्षिणेतत्रशङ्खतीर्थमनुत्तमम् ॥ तत्रापिसन्तर्प्यपितॄन्विष्णुलोकेमहीयते ॥ ३५ ॥ तद्याम्यांचक्रतीर्थंचपितॄणामपिदुर्लभम् ॥ तत्रापिविहितश्राद्धोमुच्यतेपैतृकादृणात् ॥ ३६ ॥ तत्सन्निधौगदातीर्थंविश्वगाधिनिबर्हणम् ॥ तारणञ्चपितॄणांवैकारणंचैनसांक्षये ॥ ३७ ॥ पद्मतीर्थंतदग्रेतुतत्रस्नात्वानरोत्तमः ॥ पितॄन्सन्तर्प्यविधिनापद्मयानेमहीयते ॥ ३८ ॥ तत्रैवचमहाल

वाले क्षीरसागर के तीरको प्राप्तकरे ॥ ३३ ॥ व इस में श्रद्धा से दक्षिणासमेत वहुती उत्तम गौवें देकर शय्याभोगों के साधन उत्तर फल वाले प्रत्येक पितरोंको उस क्षीरसमुद्र के तीर में बास करावे ॥ ३४ ॥ और वहां क्षीरोदकतीर्थ से दक्षिण में अत्यंत उत्तम, शंखतीर्थ है उसमेंभी पितरों का भली भांति तर्पण कर नर विष्णुलोक में आदर पाता है ॥ ३५ ॥ उसके दक्षिण चक्रतीर्थ है जो कि पितरोंको बहुतहीदुर्लभ है उसमेंभी श्राद्ध किये हुआ मनुष्य पितरों के ऋण से छूटजाता है ॥ ३६ ॥ उस चक्रतीर्थ के समीप में सनरोगहारण, पितरों का तारण और पापों के विनाशमें कारण गदातीर्थ है ॥ ३७ ॥ और उसके आगे पद्मतीर्थ है उस में स्नान कर व

विधि से पितरों को तर्प्पण कर उत्तम नर लक्ष्मीसे कभी नहीं हीन होताहै ॥ ३८॥ व उस स्थानमेंही त्रिलोक में प्रसिद्ध महालक्ष्मीजी का तीर्थहै जहां तीनलोकोंकी हर्ष देनेवाली श्री महालक्ष्मी जीने आपही स्नान किया है ॥ ३९ ॥ उस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य (ब्राह्मणों को) रत्न सोना और रेशमी वस्त्र देकर लक्ष्मी से नही त्यागाजाता है ॥ ४० ॥ और जहां जहां उत्पन्नहोवे वहां वहां समृद्धिमान् होवे व तीर्थकी गुरुतासे उस के पितरभी सपत्ति या शोभा समेत होवें॥४१॥ वहांहीं त्रैलोक्य से वंदित जो महालक्ष्मीजीकी मूर्ति है उसको भक्ति से प्रणाम कर नर रोगी कहीं नहीं होता है ॥ ४२ ॥ और भादो सुदी अष्टमी की रातमें जा-

क्ष्म्यास्तीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ स्वयंयत्रमहालक्ष्मीःस्नातात्रैलोक्यहर्षदा ॥ ३९ ॥ तत्रतीर्थेकृतस्नानोदत्त्वारत्नानिकाञ्चनम् ॥ पट्टाम्बराणिविप्रेभ्योनलक्ष्म्यापरिहीयते ॥ ४० ॥ यत्रयत्रहिजायेततत्रतत्रसमृद्धिमान् ॥ पितरोपिहिसश्रीकास्तस्यस्युस्तीर्थगौरवात् ॥४१॥ तत्रास्तिहिमहालक्ष्म्यामूर्तिस्त्रैलोक्यवन्दिता ॥ ताम्प्रणम्यनरोभक्त्यानरोगीजायतेक्वचित्॥४२॥नभस्यबहुलाष्टम्यांकृत्वाजागरणंनिशि॥समर्च्यचमहालक्ष्मींव्रतीव्रतफलंलभेत् ॥४३॥तार्क्ष्यतीर्थंहितत्रास्तितार्क्ष्यकेशवसन्निधौ॥तत्रस्नात्वानरोभक्त्यासंसाराहिंनपश्यति॥४४॥तदग्रेनारदंतीर्थंमहापातकनाशनम्॥ ब्रह्मविद्योपदेशञ्चप्राप्तवान्यत्रनारदः॥४५॥तत्रस्नातोनरःसम्यग्ब्रह्मविद्यामवाप्नुयात्॥केशवात्तेनतत्रोक्तःकाश्यान्नारदकेशवः॥४६॥अर्चयित्वानरोभक्त्यादेवन्नारदकेशवम्॥जनन्याजठरंपीठमध्यास्तेनकदाचन॥४७॥प्रह्लादतीर्थंतस्याग्रेयत्रप्रह्लादकेशवः॥तत्रश्राद्धादिकंकृत्वाविष्णुलोकेमहीयते॥४८॥आम्बरीषमहातीर्थमघघ्नंतस्यसन्निधौ ॥तत्रोदकींक्रियांकुर्वन्नि

गरण कर व महालक्ष्मी जीकी पूजाकर व्रतवान् मनुष्य व्रतका फलपावे ॥ ४३ ॥ व वहांहीं तार्क्ष्यकेशवके समीप में तार्क्ष्यतीर्थ है उसमें भक्ति से स्नानकर नर संसार रूप सर्प को नहीं देखता है ॥ ४४ ॥ और उस के आगे महा पातक घातक नारदतीर्थ है जहां नारदजीने ब्रह्मविद्याका उपदेश पाया है ॥ ४५ ॥ उसमें नहाया हुवा मनुष्य भलीभाति केशव से ब्रह्मविद्याको प्राप्तहोवे उससे वहां काशी में नारदकेशव कहेगये हैं ॥ ४६ ॥ भक्तिसमेत मनुष्य नारदकेशवकी पूजाकर माताके उदर पीढ़े में कभी नहीं बसता है ॥ ४७ ॥ और उस के आगे प्रह्लादतीर्थ है जहां प्रह्लाद केशव जी हैं उस तीर्थ में श्राद्धादि कर विष्णुलोकमें पूजा पाता है ॥ ४८ ॥ उसके

समीप में पातक घातक, आंबरीष महातीर्थ है उसमें जल संबन्धिनी क्रियाको करताहुवा मनुष्य निष्पापताको पाता है याने पापों से हीन होजाताहै ॥ ४९ ॥ और आदि केशव से पूर्व में आदित्य केशव जी पूजनीयहैं व उन के दर्शन मात्र सेही उपपातकों से छूटजाता है ॥ ५० ॥ वहां दत्तात्रेयेश्वरतीर्थ व आदि गदाधर हैं वहांहीं पितरों का भली भांति तर्पण कर ज्ञान योगको प्राप्तहोवे ॥ ५१ ॥ व भृगु केशव से पूर्व और उत्तम भार्गवतीर्थ है उस में नहाया मनुष्य शुक्रके समान सुबुद्धि वाला पण्डित होवे ॥ ५२ ॥ और वहां वामन केशवसे पूर्वमें वामनतीर्थहै उसमें स्नानकर व उन वामन विष्णु जीकी पूजाकर वामन जीके समीप में बसे ॥ ५३ ॥ व नर

ष्कालुष्यंलभेन्नरः ॥४९॥ आदित्यकेशवःपूज्यआदिकेशवपूर्वतः ॥ तस्यसंदर्शनादेवमुच्यतेचोपपातकैः ॥ ५० ॥ दत्तात्रेयेश्वरंतीर्थंतत्रैवादिगदाधरः ॥ पितॄन्सन्तर्प्यतत्रैवज्ञानयोगमवाप्नुयात् ॥ ५१ ॥ भृगुकेशवपूर्वेणतीर्थंवैभार्गवंपरम् ॥ तत्रस्नातोनरःप्राज्ञोभवेद्भार्गववत्सुधीः ॥ ५२ ॥ तत्रवामनतीर्थञ्चप्राच्यांवामनकेशवात् ॥ पूजयित्वाचतंविष्णुंवसेद्वामनसन्निधौ ॥५३॥ नरनारायणंतीर्थंनरनारायणात्पुरः ॥ तत्रतीर्थेकृतस्नानोनरोनारायणोभवेत् ॥५४॥ यज्ञवाराहतीर्थञ्चतदग्रेपापनाशनम् ॥ प्रतिमज्जनतस्तत्रराजसूयक्रतोःफलम् ॥ ५५ ॥ विदारनारसिंहाख्यन्तत्रतीर्थंसुनिर्मलम् ॥ स्नातोविदारयेत्तत्रपापंजन्मशतार्जितम् ॥ ५६ ॥ गोपिगोविन्दतीर्थञ्चगोपिगोविन्दपूर्वतः ॥ स्नात्वातत्रसमभ्यर्च्यविष्णुंविष्णुप्रियोभवेत् ॥ ५७ ॥ तीर्थंलक्ष्मीनृसिंहाख्यङ्गोपिगोविन्ददक्षिणे ॥ नलक्ष्म्यात्यज्यतेक्वापितत्तीर्थपरिमज्जनात ॥ ५८ ॥ तदग्रेशेषतीर्थंचशेषमाधवसन्निधौ ॥ तर्पितानांपितॄणांचयत्रतृप्तिर्नशिष्यते ॥ ५९ ॥ शङ्खमाधवतीर्थं

नारायणके आगे नर नारायणतीर्थ है उस तीर्थमें स्नान किया हुवा मनुष्य नारायण होजावे याने उनके समान रूपधारी होकर वैकुंठादि लोकों में बास पावे ॥ ५४ ॥ और उसके आगे यज्ञ वाराहतीर्थ है जो कि पापोंका नाश करनेवाला है उस में प्रति मज्जन से याने डुबुकी डुबुकी से राजसूययज्ञ का फल है ॥ ५५ ॥ वहां विदारनारसिंह नामक बहुत विमलतीर्थ है उसमें नहाया हुवा नर सैकड़ों जन्मों के बटोरे हुये पापोंको विदारडाले ॥ ५६ ॥ और गोपीगोविंदसे पूर्व में गोपीगोविंदतीर्थ है उस में स्नानकर फिर विष्णुजी की पूजाकर नर विष्णुजी का प्यारा होवे ॥ ५७ ॥ व गोपीगोविंद से दक्षिण में लक्ष्मी नृसिंहनामकतीर्थ है उस तीर्थ में स्नान कर

ने से लक्ष्मी से कहीं भी नहीं त्यागाजाता है ॥ ५८॥ और उसके आगे शेषमाधव के समीप में शेषतीर्थ है जहां तर्पित हुये पितरों की तृप्ति अवशेष नहीं रहजाती याने वे पितर बहुतही तृप्त होजाते हैं ॥ ५९ ॥ व उससे दक्षिण ओर अच्छा निर्मल शङ्ख माधवतीर्थ है उसमें स्नानादि करनेवाला पापीभी निर्मल होजावे ॥ ६० ॥ और उस के आगे परमपवित्र हयग्रीवतीर्थ है उस में स्नानकर फिर हयग्रीव केशव की पूजाकर ॥ ६१ ॥ व वहां हयग्रीव के समीपमें पिंडापार कर पितरों समेत वह मनुष्य हयग्रीवकी संपत्ति या शोभाको प्राप्त होकर संसार से छूटजावे ॥ ६२ ॥ श्री कार्तिकेयजी बोले कि, मैंने प्रसङ्ग से इन कुछेक तीर्थोंको तुमसे कहा जिससे तिलमध्य

चतद्वाच्यांसुनिर्मलम् ॥ कृतोदकोनरस्तत्रभवेत्पापोपिनिर्मलः ॥ ६० ॥ तदग्रेचहयग्रीवंतीर्थंपरमपावनम् ॥ तत्र स्नात्वाहयग्रीवंकेशवंपरिपूज्यच ॥ ६१ ॥ पिण्डंचतत्रनिर्वाप्यहयग्रीवस्यसन्निधौ ॥ हायग्रीवींश्रियम्प्राप्यसमुच्येत सपूर्वजः ॥ ६२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ प्रसङ्गतोमयैतानितीर्थानिकथितानिते॥भूमौतिलान्तरायांयत्तत्रतीर्थान्यनेकशः॥ ६३ ॥ उद्दिष्टानान्तुतीर्थानामेतेषाङ्कलशोद्भव ॥ नाममात्रमपिश्रुत्वानिष्पापोजायतेनरः ॥ ६४ ॥ इदानींप्रस्तुतंविप्र शृणुवक्ष्यामितेग्रतः ॥ वैकुण्ठनाथोयच्चक्रेशङ्खचक्रगदाधरः ॥ ६५ ॥ तस्यांमूर्तौसमावेश्यकेशव्यामथकेशवः ॥ शम्भोःकार्येकृतमनाअंशांशांशेननिर्गतः ॥ ६६ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ अंशांशांशेननिश्चक्रेकुतोभोचक्रपाणिना ॥ क्वनिर्गतंचहरिणाप्राप्यकाशींषडानन ॥ ६७ ॥ स्कन्दउवाच॥सामस्त्येनयदर्थंनानिर्गतंविष्णुनामुने ॥ ब्रुवेतत्कारण

प्रमाण भूमिमें वहां लिंगों समेत अनेकतीर्थ हैं ॥ ६३ ॥ हे कलशसे उत्पन्न अगस्त्यजी ! उद्देश किये हुये इन तीर्थोंका नाममात्रभी सुनकर और उनमें स्नानकर नर निष्पाप (पापहीन) होजाता है ॥ ६४ ॥ हे विप्र ! इस समय मैं प्रकरण के अनुकूल अर्थको कहताहूं तुम सुनो कि शङ्ख चक्र गदाधारी वैकुंठ विहारीने जो किया है ॥ ६५ ॥ तदनंतर उस केशव की मूर्ति में व्यापिनी देहको भली भांति प्रवेश कराकर शङ्कर के कार्य्य में मन कियेहुये केशवजी अंशांश अशसे निकले ॥ ६६ ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे षण्मुख ! हाथमें चक्रधारी भक्तभयहारी भगवान् अंशके अंशांश से कैसे निकले और काशीपुरीको प्राप्त होकर निकलकर कहांगये ॥ ६७ ॥ श्री

कार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने! जिसलिये समस्त भावसे विष्णु करके नहीं निकलागया उसके ऐसे कारणको कहताहूं तुम क्षणमात्र सुनो॥ ६८ ॥ कि पुण्यसमूहों से काशीपुरी को प्राप्तहोकर बड़ेलाभों से प्रेरित हुवाभी पण्डित जन सब भाव से न त्याग करे ॥ ६९ ॥ हे कलशज (अगस्त्य)! इससे मुरारिजी ने काशीमें वहां अपनी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा किया और थोड़े अंशसे निकलागया ॥७०॥ व काशी से कुछेक उत्तर ओर जाकर चक्रधारी विष्णुजी ने अपने टिकने के लिये उस स्थान को कल्पित किया जोकि धर्मक्षेत्र इस भांति कहागया है याने धर्मेश नामसे लोकमें प्रसिद्धहै ॥ ७१ ॥ तदनंतर लक्ष्मीनाथ जीने आपही बुद्धसंबंधी रूपको आश्रय किया याने बौद्धरूप

मितिक्षणमात्रंनिशामय ॥ ६८ ॥ सम्प्राप्यपुण्यसम्भारैःप्राज्ञोवाराणसींपुरीम् ॥ नत्यजेत्सर्वभावेनमहालाभैरपीरितः ॥ ६९ ॥ अतःप्रतिकृतिःस्वीयातत्रकाश्यांमुरारिणा ॥ प्रतितस्थेकलशजस्तोकांशेनचनिर्गतम् ॥ ७० ॥ किञ्चित्काश्याउदीच्याञ्चगत्वादेवेनचक्रिणा॥ स्वस्थित्यैकल्पितंस्थानंधर्मक्षेत्रमितीरितम् ॥ ७१ ॥ ततस्तुसौगतंरूपंशिश्रायश्रीपतिःस्वयम्॥अतीवसुन्दरतरंत्रैलोक्यस्यापिमोहनम् ॥७२॥श्रीःपरिव्राजिकाजातानितरांसुभगाकृतिः॥यामालोक्यजगत्सर्वंचित्रन्यस्तमिवास्थितम् ॥ ७३ ॥ विश्वयोनिञ्जगद्धात्रींन्यस्तहस्ताग्रपुस्तकाम् ॥ गरुत्मानपितच्छिष्योजातोलोकोत्तराकृतिः ॥ ७४ ॥ अत्यद्भुतमहाप्राज्ञोनिःस्पृहःसर्ववस्तुषु ॥ गुरुशुश्रूषणपरोन्यस्तहस्ताग्रपुस्तकः ॥ ७५ ॥ अपृच्छत्परमंधर्मंसंसारविनिमोचकम् ॥ आचार्यवर्यंसौम्यास्यंप्रसन्नात्मानमुत्तमम् ॥ ७६ ॥ धर्मार्थशास्त्रकु

धरलिया जोकि सुन्दर से अधिक सुन्दर था और त्रिलोक के भी मोह करनेवाला था ॥ ७२ ॥ और अधिक सुन्दर आकारवाली लक्ष्मीजी परिव्राजिका (बौद्धकी स्त्री) होगई जिनको देखकर सब जगत् चित्रपट में न्यास कियागया सा रहगया ॥ ७३ ॥ जोकि विश्वकी कारण जगत् की धारने या पोषनेहारी और हाथके अग्रभाग में पुस्तकवाली थीं और गरुड़जी भी उन बौद्ध भगवान् के शिष्य होगये जोकि सबलोगों से अधिक सुन्दर आकारवान् ॥ ७४ ॥ व अद्भुत महाप्राज्ञ, सब वस्तुवों में वाञ्छाहीन, गुरुकी सेवा में तत्पर और हस्ताग्र में पुस्तकवाले थे ॥ ७५ ॥ उन गरुड़जी ने संसार से छुड़ानेहारे परमधर्म को ऐसे आचार्य्य श्रेष्ठ से पूंछा जोकि सुंदर

मुख प्रसन्नमनवाले थे ॥ ७६ ॥ व धर्मार्थ शास्त्रों में निपुण ज्ञान (शास्त्र से उत्पन्न) विज्ञान (अनुभव) से शोभनशील, अच्छे स्वरवाले, व सुन्दर पदों का स्पष्ट होना जैसेहो वैसे बहुत स्नेह समेत कोमल वचनवाले थे ॥ ७७ ॥ व स्तंभन (रोकदेना) उच्चाटन, आकर्षण (खींच लेना) और वशीकरण आदि कर्म्म में पंडित और व्याख्या के समय सुनने के लिये आकृष्ट (बुलाये हुये) पक्षियों के अङ्ग में रोमांच करनेहारे थे ॥ ७८ ॥ और उन के गीतरूप अमृत को पिये हुये मृगसमूहों से उपासित व महासुगंधभार से आक्रांत वात (वायु) की चंचलता हरनेवारे ॥ ७९ ॥ और गिरते हुये फूलोंके मिष वाले वृक्षों से पूजित कियेगयेथे उन पुण्यात्मा पुण्यकीर्ति बौद्धजी ने उस से कहा ॥ ८० ॥ जो कि वह विनयकीर्ति नामक शिष्य महाविनयरूप भूषणवाला था ॥ ८१ ॥ पुण्यकीर्ति बोले कि, हे महामते,

शलंज्ञानविज्ञानशालिनम् ॥ सुस्वरंसुपदव्यक्तिसुस्निग्धमृदुभाषिणम् ॥ ७७ ॥ स्तम्भनोच्चाटनाकृष्टिवशीकर्मादि कोविदम् ॥ व्याख्यानसमयाकृष्टपक्षिरोमाञ्चकारिणम् ॥ ७८ ॥ पीततद्गीतपीयूषमृगपूगैरुपासितम् ॥ महामोदभराक्रान्तवातचाञ्चल्यहारिणम् ॥ ७९ ॥ वृक्षैरपिपतत्पुष्पच्छलैःकृतसमर्चनम् ॥ ततःप्रोवाचपुण्यात्मापुण्यकीर्तिः ससौगतः ॥ ८० ॥ शिष्यंविनयकीर्तितंमहाविनयभूषणम् ॥ ८१ ॥ पुण्यकीर्तिरुवाच ॥ त्वयाविनयकीर्तेयोधर्मःपृष्टः सनातनः ॥ वक्ष्याम्यहमशेषेणशृणुष्वत्वंमहामते ॥ ८२ ॥ अनादिसिद्धःसंसारःकर्तृकर्मविवर्जितः ॥ स्वयंप्रादुर्भवेदेष स्वयमेवविलीयते ॥ ८३ ॥ ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तंयावद्देहनिबन्धनम् ॥ आत्मैवैकेश्वरस्तत्रनद्वितीयस्तदीशिता ॥ ८४ ॥ यद्ब्रह्मविष्णुरुद्राद्यास्तथाख्यादेहिनामिमाः ॥ आख्यायथास्मदादीनांपुण्यकीर्त्यादिरुच्यते ॥ ८५ ॥ देहोय

विनयकीर्ते ! तुमने जो सनातन धर्म पूंछा उसको मैं सम्पूर्ण भावसे कहताहूँ तुम सुनो ॥ ८२ ॥ कि कर्ता और कर्म से रहित यह संसार अनादि कालसे सिद्धहै और यह आपही प्रकट होता है व आपही बिलाजाता है ॥ ८३ ॥ ब्रह्मा से लगाकर गुल्म पर्य्यंत जितना देहनिबन्धन है वह जगत् है उस मे आपही एक स्वतन्त्र ईश्वर है उस जगत का नियामक ईश्वर अन्य कोई नहीं है अथवा उस स्वतंत्र आत्मा का ईश्वर अन्य नहीं है ॥ ८४ ॥ जिस से जैसे देहधारी हम लोगों का पुण्यकीर्त्ति आदिक नाम कहाजाता है याने कल्पित किया जाता है उस से वैसेही ब्रह्मा विष्णु और रुद्रादि ये सब नाम कहे गये हैं याने नियम्य

नियामक भाव कल्पित है वास्तव नहीं है ॥ ८५ ॥ व जैसे अस्मदादिकों की देह अपने काल से नष्ट होजाती है वैसेही ब्रह्मादि और मशापर्य्यतकी देह अपने काल से बिलाजाती है ॥ ८६ ॥ और जिस से भोजन मैथुन निद्रा और भय सर्वत्र समान वर्तमान है इस लिये इस देह में विचार करने से कुछ कहीं अधिक नहीं है ॥ ८७ ॥ सबही देहधारी अपने भोजन की परिमिति को प्राप्तहोकर समानही तृप्ति को प्राप्त होताहै अधिक और इतर याने न्यून तृप्ति को नहीं प्राप्त होताहै अर्थात् जैसे थोड़ा खानेवाला थोड़े भोजन से तृप्त होता है वैसेही बहुत खानेवाला बहुते भोजन से तृप्त होता है परंतु तृप्ति में भेद नहीं है ॥ ८८ ॥ व जैसे हम लोग

थास्मदादीनांस्वकालेनविलीयते ॥ ब्रह्मादिमशकान्तानांस्वकालाल्लीयतेतथा ॥ ८६ ॥ विचार्यमाणेदेहेस्मिन्नकिञ्चिदधिकंक्वचित् ॥ आहारोमैथुनंनिद्राभयंसर्वत्रयत्समम् ॥ ८७ ॥ निजाहारपरीमाणंप्राप्यसर्वोपिदेहभृत् ॥ सदृशीमेवसंतृप्तिंप्राप्नुयान्नाधिकेतराम् ॥ ८८ ॥ यथावितृषिताःस्यामपीत्वापेयंमुदावयम् ॥ तृषितास्तुतथान्येपि नविशेषोल्पकोधिकः ॥ ८९ ॥ सन्तुनार्यःसहस्राणिरूपलावण्यभूमयः ॥ परन्निधुवनेकालेह्येकैवेहोपयुज्यते ॥ ९० ॥ अश्वाःपरःशताःसन्तुसन्त्वनेकेप्यनेकपाः ॥ अधिरोहेतथाप्येकोनद्वितीयस्तथात्मनः ॥ ९१ ॥ पर्यङ्कशायिनांस्वापेसुखंयदुपपद्यते ॥ तदेवसौख्यंनिद्रायामिहभूशायिनामपि ॥ ९२ ॥ यथैवमरणाद्भीतिरस्मदादिवपुष्मताम् ॥ ब्रह्मादिकीटकान्तानान्तथामरणतोभयम् ॥ ९३ ॥ सर्वेतनुभृतस्तुल्यायदिबुद्ध्याविचार्यते ॥ इदन्निश्चित्यकेनापिनोहिंस्यः

पानी पीकर आनंद से प्यासहीन होते हैं वैसे अन्य प्यासे भी प्यासहीन होते हैं इस में थोड़ा व बहुत विशेष नहीं है ॥ ८९ ॥ और रूपलावण्य की भूमि याने पात्र हजारों स्त्रियां होवें परंतु यहां मैथुनसमय में एकही भोगी जाती है ॥ ९० ॥ सैकड़ों से अधिक घोड़े होवें व अनेक हाथी होवें तोभी चढ़ने में एकही होता है दूसरा नहीं वैसेही आत्मा को साधन की अधिकता व न्यूनता से अधिक और न्यून तृप्ति नहीं होती है ॥ ९१ ॥ व पलँग पर सोते हुये लोगों के सोने में जो सुख उत्पन्न होता है वहही सुख भूमि में सोते हुये जनों की निद्रा में भी होता है ॥ ९२ ॥ जैसे हम आदि सब देहियों को मरने से डर है वैसेही ब्रह्मादि और कीट पर्य्यंत जंतुवों

को भी मरने से डर है ॥ ९३ ॥ जो बुद्धि से विचारा जाता है तो सब देहधारी तुल्यहैं यह निश्चयकर कहीं कोई भी किसीसे हिंस्य (पीडा देने योग्य) नहीं है ॥ ९४ ॥ भूतल में जीवदयाके बराबर अन्य धर्म कहीं भी नही है उस लिये सब यत्न से मनुष्यों को जीवों में दया करनी चाहिये ॥ ९५ ॥ क्योंकि एक जीव के रक्षित होतेही त्रैलोक्य रक्षित होवे है वैसेही जब एक जीव का घात किया जाता है तब त्रिलोक घातित होजाता है उस लिये सबकी रक्षाकरे घात न करावे ॥ ९६ ॥ इस लोकमें अहिंसा परमधर्म है इसभांति पूर्वकाल के आचार्य्यों से कहागया है उस से नरकसे डरभुत नरों को हिंसा न करनी चाहिये ॥ ९७ ॥ स्थावर जंगम रूप जगत्में हिंसा के समान पाप नहीं है व हिंसक (वध आदि से पीडादायक) नरकको जावे और अहिंसक जन स्वर्गको जावे है ॥ ९८ ॥ जोकि अनेक दानहैं उन थोडे फल

कोपिकुत्रचित् ॥ ९४ ॥ धर्मोजीवदयातुल्योनक्वापिजगतीतले ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकार्याजीवदयान्नृभिः ॥ ९५ ॥ एकस्मिन्रक्षितेजीवेत्रैलोक्यंरक्षितंभवेत् ॥ घातितेघातितंतद्वत्तस्माद्रक्षेन्नघातयेत् ॥ ९६ ॥ अहिंसापरमोधर्मइहोक्तःपूर्वसूरिभिः॥तस्मान्नहिंसाकर्तव्यानरैर्नरकभीरुभिः ॥ ९७ ॥ नहिंसासदृशम्पापंत्रैलोक्येसचराचरे ॥ हिंसकोनरकङ्गच्छेत्स्वर्गङ्गच्छेदहिंसकः ॥ ९८ ॥ सन्तिदानान्यनेकानिकिन्तैस्तुच्छफलप्रदैः ॥ अभीतिदानसदृशंपरमेकमपीह न ॥ ९९ ॥ इहचत्वारिदानानिप्रोक्तानिपरमर्षिभिः ॥ विचार्यनानाशास्त्राणिशर्मणेत्रपरत्रच ॥ १०० ॥ भीतेभ्यश्चाभयंदेयंव्याधितेभ्यस्तथौषधम् ॥ देयाविद्यार्थिनांविद्यादेयमन्नंक्षुधातुरे ॥ १ ॥ अविचिन्त्यप्रभावंहिमणिमन्त्रौषधीबलम्॥ तदभ्यस्यम्प्रयत्नेननानार्थोपार्जनायवै ॥ २ ॥ अर्थानुपार्ज्यबहुशोद्वादशायतनानिवै ॥ परितःपरिपूज्यानिकि

देनेवालों से क्याहै क्योंकि इस लोक में अभीतिदान (किसी को भय न देना) के समान उत्तम अन्य एकभी दान नहीं है ॥ ९९ ॥ और इस व उस लोकमें सुख के लिये महर्षियों ने अनेक शास्त्रों को विचार कर यहां चार दान कहा है ॥ १०० ॥ वे ये हैं कि डरे हुये लोगों को अभय देना चाहिये वैसेही रोगियोको औषध देना चाहिये व विद्यार्थियों को विद्या देना चाहिये और क्षुधासे पीड़ित जनको अन्न देना चाहिये ॥ १ ॥ जिससे मणि मंत्र और ओषधियोका बल अविचित्य प्रभाव वाला है याने जिसका प्रभाव विशेष से चिंतना करने योग्य नहीं है उस कारण अनेक भांति धनों के संपादनार्थ (बटोरने के लिये) अभ्यास करना चाहिये ॥ २ ॥

उस अभ्यास से बहुत प्रकारके धन कमाकर बारह आयतनही सब ओर से पूजनेयोग्य हैं यहां अन्य पूजितों से क्या है ॥ ३ ॥ द्वादश आयतनोंको कहते है कि पांच कर्मेन्द्रिय (हाथ,पांव,वाक्,गुदा,लिंग) पांच ज्ञानेन्द्रिय(श्रोत्र,त्वक्,घ्राण,नेत्र,जिह्वा) मन और बुद्धि यह शुभ द्वादशायतन यहां कहागया है ॥ ४ ॥ और प्राणियों का स्वर्ग व नरक यहांही है अन्यत्र कहीं नहीं है क्योंकि सुखही स्वर्ग कहागयाहै और दुःखही नरकहै ॥ ५ ॥ सुखोंका भोग होतेही जो देहका त्याग होनाहै यहही उत्तम मोक्ष है और अन्य मोक्ष कहीं नहीं है ॥ ६ ॥ और जब वासना समेत पांचक्लेशोंका भली भांति उच्छेद (विनाश) होताहै तब घेरनेहारी संवृति माया की निवृत्ति रूप मोक्ष तत्त्वचिन्तक लोगों से विशेष जानने योग्य है ॥ ७ ॥ यह प्रामाणिकी श्रुति वेदवादियों करके कही जाती है कि अहिंसा परम धर्म है इससे सब प्राणियों की

मन्यैरिहपूजितैः ॥ ३ ॥ पञ्चकर्मेन्द्रियाण्येवपञ्चबुद्धीन्द्रियाणिच ॥ मनोबुद्धिरिहप्रोक्तंद्वादशायतनंशुभम् ॥ ४॥ इहैव स्वर्गनरकौप्राणिनान्नान्यतःक्वचित् ॥ सुखंस्वर्गःसमाख्यातोदुःखंनरकएवहि ॥५॥ सुखेषुभुज्यमानेषुयत्स्याद्देहविसर्जनम् ॥ अयमेवपरोमोक्षोनमोक्षोऽन्यःक्वचित्पुनः ॥ ६ ॥ वासनासहितक्लेशसमुच्छेदेसतिध्रुवम् ॥ विज्ञानोपरमोमोक्षोविज्ञेयस्तत्त्वचिन्तकैः ॥७॥ प्रामाणिकीश्रुतिरियम्प्रोच्यतेवेदवादिभिः ॥ नहिंस्यात्सर्वभूतानिनान्याहिंसाप्रवर्तिका॥ ८ ॥ अग्नीषोमीयमितियाश्रामिकासाऽसतामिह ॥ नसाप्रमाणंज्ञातॄणाम्पश्वालम्भनकारिका ॥ ९ ॥ वृक्षांश्छित्त्वा पशून्हत्वाकृत्वारुधिरकर्दमम् ॥ दग्ध्वावह्नौतिलाज्यादिचित्रंस्वर्गोऽभिलष्यते ॥ १० ॥ इत्येवंधर्मजिज्ञासाम्पुण्यकीर्तौप्रकुर्वति ॥ पारम्पर्येणतच्छ्रुत्वापौरायात्राम्प्रचक्रिरे॥११॥परिव्राजिकयाप्येवंसमाकृष्टाःपुराङ्गनाः॥तयाविज्ञानकौमु

हिंसा न करे याने उनको पीड़ा मत देवै और हिंसा में बर्तानेवाली अन्य श्रुति नहीं है ॥ ८ ॥ अग्नीषोमीयं पशुमालभेत वायव्यं श्वेतमालभेत इत्यादि जो श्रुति हिंसा में बर्तानेवाली देख पड़ती है वह यहां असत् लोगों को भ्रमानेवाली है और देवता के उद्देश से पशुका हनना पश्वालंभन कहाता है उसकी कारिका याने करानेवाली जो श्रुति हैं वह ज्ञाता (जानदार) जनों का प्रमाण नहीं है ॥ ९ ॥ यह आश्चर्य्य है कि,वृक्षों को काटकर पशुवों को मारकर रुधिर का कर्दम (कीच) कर और आग में तिल व घृतादि वस्तुको जलाकर स्वर्ग का अभिलाष किया जाता है ॥ १० ॥ इस भांति पुण्यकीर्ति के धर्म विचार करतेही परंपरा के

क्रम से उसको सुनकर पुरवासी लोगो ने यात्रा किया याने उन बौद्धरूपधारी भगवान् के निकट में प्राप्तभये ॥ ११ ॥ ऐसेही सब विद्याओं में चतुर वशीकरणादि ज्ञानकी प्रकाशनेवाली उन बौद्धस्त्रीरूपधारिणी लक्ष्मीजी ने पुरवासियों की स्त्रियों को खींच लिया ॥ १२ ॥ तदनंतर उन्होंने उन स्त्रियों के आगे देहसौख्यों के मुख्य साधन व देखेहुये अर्थों की प्रतीति करनेवाले बौद्धधर्मों को कहा ॥ १३ ॥ विज्ञानकौमुदी नामवाली बौद्धस्त्रीरूपिणी लक्ष्मीजी बोलीं कि, आनंदही ब्रह्मका रूप है इस भांति जो वेदसे कहा जाताहै वह वैसेही यहां जानने योग्य है अनेक भांति के भावकी कल्पना मिथ्या है याने सुखका जन्म नाश अधिकता और स्वल्पहोना उपाधि भेदसे होताहै परमार्थ से नहीं है ॥ १४ ॥ और "वह सौख्य इसही देहमें संपादन करने योग्य है यह बौद्धोंका मत है उसको कहती हैं कि" जबतक यह देह

द्यासर्वविद्याविदग्धया ॥ १२ ॥ ततस्तासाम्पुरस्तात्साबौद्धधर्मानवीवदत् ॥ दृष्टार्थप्रत्ययकरान्देहसौख्यैकसाधनान् ॥ १३ ॥ विज्ञानकौमुद्युवाच ॥ आनन्दंब्रह्मणोरूपंश्रुत्यैवंयन्निगद्यते ॥ तत्तथैवेहमन्तव्यंमिथ्यानानात्वकल्पना ॥ १४ ॥ यावत्स्वस्थमिदंवर्ष्मयावन्नेन्द्रियविक्लवः ॥ यावज्जराचदूरेस्तितावत्सौख्यंप्रसाधयेत् ॥ १५ ॥ अस्वास्थेन्द्रियवैकल्येवार्धकेतुकुतःसुखम् ॥ शरीरमपिदातव्यमर्थिभ्योतःसुखेप्सुभिः ॥ १६ ॥ याचमानमनोवृत्तिप्रीणनेयस्यनोजनिः ॥ तेनभूर्भारवत्येपासमुद्रागद्रुमैर्नहि ॥ १७ ॥ सत्वरोगत्वरोदेहःसञ्चयाःसपरिक्षयाः ॥ इतिविज्ञायविज्ञातादेहसौख्यंप्रसाधयेत् ॥ १८ ॥ श्ववायसक्रुमीणाञ्चप्रान्तेभोज्यमिदंवपुः ॥ भस्मान्तन्तच्छरीरञ्चवेदेसत्यंप्रपद्यते ॥ १९ ॥

स्वस्थ है व जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीं है और जबतक बुढाई दूरहै तबतक सौख्य की साधनाकरे ॥ १५ ॥ क्योंकि अस्वस्थता इन्द्रियों की विकलता और वृद्धता में सुख कैसे होगा इससे याचकोंके लिये सुखचाही जनों करके देहभी देदेने योग्य है ॥ १६ ॥ याचक जनकी मनवृत्ति के तृप्त करने में जिसका जन्म नहीं है उससे यह भूमिभारवाली है व समुद्र पर्वत और वृक्षों से भारवती नहीं है ॥ १७ ॥ देह शीघ्रही जानेशील है व सञ्चय याने धनादि का बटोरना परिक्षय (सब ओर से नाश) समेत है ऐसा जानकर विशेष जाननेवाला जन देह मे सौख्य की साधना करे ॥ १८ ॥ अन्त में यह देह कूकुर काग और कृमियो का भोज्य होजाती

है वह शरीर भस्मांत है याने अन्त में देहकी भस्म होती है यह वेद में सत्य जानाजाताहै ॥ १९ ॥ व लोकों में यह जातिका विकल्प व्यर्थ कल्पाजाता है मनुष्य भाव के सामान्य होतेही को अधमहै और को उत्तम है ॥ २० ॥ वृद्ध पुरुषोंसे ऐसा कहाजाता है कि यह ब्रह्मादि सृष्टि है याने इस के आदिमें ब्रह्मा उत्पन्न हुयेहैं उन सिरजनेहार के दो पुत्र हैं जो कि दक्ष और मरीचि नाम से प्रसिद्ध हैं ॥ २१ ॥ और मरीचि के पुत्र कश्यपजी करके सुनयनी तेरह दक्षकी कन्यायें धर्ममार्ग से ब्रेहीगई यह प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ थोड़ी बुद्धि और थोड़े पराक्रमवाले अबके हुये मनुष्यों करकेभी इस समय वृथा विचार किया जाता है कि यह गम्य है और यह अगम्यहै याने गम्य अगम्यकी कल्पना वृथा है ॥ २३ ॥ व मुख बाहु ऊरु और पद इन से उपजे हुये चारों वर्ण कहेगये हैं यह यहां पूर्वकाल के लोगों से कल्पना कीगईहै विचार

मुधाजातिविकल्पोयंलोकेषुपरिकल्प्यते ॥ मानुष्येसतिसामान्येकोधमःकोथचोत्तमः ॥२०॥ ब्रह्मादिसृष्टिरेषेतिप्रोच्य तेवृद्धपूरुषैः॥तस्यस्रष्टुःसुतौदक्षमरीचीचेतिविश्रुतौ॥२१॥मारीचिनाकश्यपेनदक्षकन्याःसुलोचनाः ॥ धर्मेणकिल मार्गेणपरिणीतास्त्रयोदश ॥ २२ ॥ अपीदानीन्तनैर्मर्त्यैरल्पबुद्धिपराक्रमैः ॥ अयङ्गम्यस्त्वगम्योयंविचारःक्रियते मुधा ॥ २३ ॥ मुखबाहूरुपज्जातश्चातुर्वर्ण्यमिहोदितम् ॥ कल्पनेयंकृतापूर्वैर्नघटेतविचारतः ॥ २४ ॥ एकस्याश्चत नौजाताएकस्माद्यदिवाकचित् ॥ चत्वारस्तनयास्तत्किंभिन्नवर्णत्वमाप्नुयुः ॥२५॥ वर्णावर्णविवेकोयन्तस्मान्नप्रतिभा सते ॥ अतोभेदोनमन्तव्योमानुष्येकेनचित्क्वचित् ॥ २६ ॥ विज्ञानकौमुदीवाणीमित्याकर्ण्यपुराङ्गनाः ॥ भर्त्तृशुश्रूषण वर्तींविजहुर्मतिमुत्तमाम् ॥ २७ ॥ अभ्यस्याकर्षणींविद्यांवशीकृतिमतीमपि ॥ पुरुषाःसफलीचक्रुःपरदारेषुमोहि

से नहीं घटत है ॥ २४ ॥ क्योंकि जो एक देहमें व एक जन से चार पुत्र उपजेहोवें तो भिन्नवर्णत्व को क्यों प्राप्तहोवें याने एकही पुरुष के पुत्र चार वर्ण कैसे हो सक्ते हैं ॥ २५ ॥ उस लिये यह वर्ण और अवर्णका विवेक प्रतीति से नहींप्रकाशताहै इससे मनुष्य जाति में किसीके साथ कहीं भेद न मानना चाहिये ॥ २६ ॥ इस भांति विज्ञानकौमुदी का वचन सुनकर पुरवासिनी स्त्रियों ने पतिसेवावाली उत्तम बुद्धिको छोड़ दिया ॥ २७ ॥ और परस्त्रियोंमें मोहित पुरुषोने आकर्षणी व वशीकरणवाली विद्याका अभ्यासकर उसको सफल किया याने पुरुष लोग आकर्षणी विद्या पढ़कर परस्त्रियों को खींचकर अपने समीप बुलाने लगे और वशी-

करणी विद्या से परस्त्रियों को वश करने लगे ॥ २८ ॥ अन्तःपुर में विचरनेवाली रानी आदि स्त्रियां तथा राजाके पुत्र,पुरवासी और पुरीकी स्त्रियां ये सब उन दोनों से मोहेगये ॥ २९ ॥ और उन परिव्राजिकाने वन्ध्या स्त्रियोंके वन्ध्यात्वको भी हरलिया याने उनको मन्त्र यन्त्रों के द्वारा पुत्रवती करदिया और उन उन कर्मों के उ-पायों से अभागिनी स्त्रियों को ॥ ३० ॥ उन विज्ञानकौमुदी ने सुभाग्य से सम्पन्न किया व किसी को अञ्जन दिया और किसी स्त्री को तिलक में औषध दिया ॥ ३१ ॥ और वैसेही बहुती स्त्रियों को वशीकरण मन्त्रों से अपदीक्षित करलिया याने बौद्धधर्म की दीक्षा दिया तब कोई स्त्रियां मन्त्रों को जपें और अन्य स्त्रियां यन्त्रोंको

ताः ॥२८॥ अन्तःपुरचरानार्यस्तथाराजकुमारकाः ॥ पौराःपुराङ्गनाश्चापिसर्वैताभ्यांविमोहिताः ॥ २९ ॥ वन्ध्यानाञ्चापि वन्ध्यात्वंसापरिव्राजिकाहरत् ॥ तैस्तैश्चकार्मणोपायैरसौभाग्यवतीःस्त्रियः ॥३०॥ सौभाग्यभाग्यसम्पन्नाव्यधाद्विज्ञानकौमुदी ॥ कस्यैचिदञ्जनंदत्तंकस्यैचित्तिलकौषधम् ॥ ३१ ॥ वशीकरणमन्त्रैश्चतथाबह्व्योपदीक्षिताः ॥ मन्त्राञ्जपेयुःकाश्चिच्चयन्त्राण्यन्यालिखन्तिच ॥ ३२ ॥ काश्चिज्जुह्वतिकुण्डाग्नौनानाद्रव्याणिनिश्चलाः ॥ एवंसर्वेषुपौरेषुनिजधर्मेपुसर्वथा ॥ पराङ्मुखेपुजातेपुप्रोल्ललासवृषेतरः ॥ ३३ ॥ सिद्धयोकृष्टपच्याद्यानष्टाएनःप्रवेशनात् ॥ आसीत्कुण्ठितसामर्थ्योन्नृपोपिसमनाङ्मनाक् ॥ ३४ ॥ दूरस्थितोपिविघ्नेशोन्नृपान्निर्विण्णमानसम् ॥ चकारराज्यकरणेढुण्ढिराजोरिपुञ्जयम् ॥३५॥ अजीगणद्दिवोदासोप्यष्टादशदिनावधिम् ॥ कदागन्तासवैविप्रोयोमांसमुपदेक्ष्यति ॥३६॥ इत्थमष्टादशेप्राप्तेदिवसेदिवसेश्वरे ॥ प्राप्तेमध्यन्नभोभागंद्वारम्प्राप्तोद्विजोत्तमः ॥ ३७ ॥ सएवपुण्यकीर्त्याख्योधर्मक्षेत्रादधोक्ष

लिखें ॥ ३२ ॥ और कोई स्त्रियां निश्चलहोकर कुंडोंकी अग्नि में अनेक भांतिकी द्रव्योंको होम करनेलगीं ऐसेही जब सब पुरवासी अपने धर्मों में विमुख होगये तब अधर्म बहुतही बढ़गया ॥ ३३ ॥ और पापके प्रवेश से अकृष्टपच्यादि (जोते विनाही अन्नादिकों का उपजना) सिद्धियां नष्टहोगई व वह राजाभी क्रमसे कुछ कुछ कुंठित सामर्थ्यवाला होगया ॥ ३४ ॥ और दूरमें टिके हुयेभी गणेशजीने शत्रुविजयी उस राजाको राज्य करनेमें विरक्तचित्त करदिया ॥ ३५ ॥ व दिवोदास राजा अठारह दिनकी अवधिकोभी गननेलगा कि जो मुझको भली भांति उपदेश देगा वहही ब्राह्मण कब आवेगा ॥ ३६ ॥ ऐसेही जब अठारहवां दिन प्राप्तहुवा व सूर्य

देव आकाश के बीच भागमें प्राप्तहोगये याने मध्याह्न समयभया तब वह ब्राह्मणोत्तम राजाके द्वार में प्राप्तहुये ॥ ३७ ॥ वहही पुण्यकीर्ति नामक विष्णुजी ब्राह्मण के वेषको भली भांति आलंबन कर धर्मक्षेत्र से राजा के समीपको आये ॥ ३८ ॥ बहुधा जयजीव ऐसे कहते हुये दो तीन पवित्र शिष्यों से संयुत मूर्तिमान् अग्नि के समान वह ब्राह्मण आगये ॥ ३९ ॥ भली भांति आते हुये उनको दूरसे देखकर उत्कंठित नरेश ने अपने मन में मान लिया कि मेरे उपदेश में यह गुरु योग्य हैं ॥ ४० ॥ और उनके संमुख चलकर बारबार प्रणामकर आशीर्वाद लिये हुये राजाने ब्राह्मण को अंतःपुर (रनिवास) में प्राप्तकिया ॥ ४१ ॥ व जनोंके स्वामीने शास्त्रोक्त प्रकारवाले मधुपर्क (दही, शहद, घृत को एकत्र मिलाना) से भली भांति पूजाकर व गली के श्रम को विगत किये हुये स्वस्थचित्त प्रसन्नमुखकमलवाले

जः ॥ द्विजवेषंसमालम्ब्यसमायातोनृपान्तिकम् ॥३८॥ द्वित्रैःपवित्रैर्बहुधाजयजीवेतिवादिभिः ॥ समेतःसइतोविप्रोमूर्तिमानिवपावकः॥३९॥ विलोक्यतंसमायान्तंदूरादुत्कण्ठितोनृपः ॥ मेनेमवेद्गुरुरयंयुक्तोमदुपदेशने ॥ ४० ॥ अभिगम्यचतंराजाप्रणम्यचपुनःपुनः ॥ गृहीतस्वस्तिवचनोनिनायान्तःपुरंद्विजम् ॥ ४१ ॥ मधुपर्केणविधिनातंसम्पूज्यजनाधिपः ॥ व्यपेताध्वश्रमंस्वस्थम्प्रोल्लसन्मुखपङ्कजम् ॥ ४२ ॥ निवेद्यखाद्यवस्तूनिकृतकृत्यक्रियाविधिम् ॥ परितृप्तंसुखासीनंपप्रच्छब्राह्मणंनृपः ॥ ४३ ॥ राजोवाच ॥ खिन्नोस्मिविप्रवर्याहंराज्यभारंसमुद्वहन् ॥ खेदोनास्त्येवहिपरंवैराग्यमिवजायते ॥ ४४ ॥ किङ्करोमिक्वगच्छामिकथंमेनिर्वृतिर्भवेत् ॥ पक्षद्वय्येवयातेतिममचिन्तयतोद्विज ॥ ४५ ॥ असीमसुखसन्तानंभुक्तंराज्यंमयाद्विज ॥ परिक्षीणविपक्षञ्चत्र्यक्षैश्वर्यमिवस्फुटम् ॥ ४६ ॥ स्वसामर्थ्यादहञ्जातः

उनको ॥ ४२ ॥ भोजन के योग्य वस्तु निवेदितकर फिर सब ओरसे तृप्त व सुखसे बैठेहुये और कियागया है करने योग्य अनुष्ठान का विधान जिनके लिये उनसे नृपाल ने पूंछा ॥ ४३ ॥ राजा बोला कि, हे ब्राह्मणश्रेष्ठ ! राज्यभारको भली भांति उच्चता से बहताहुवा मैं खिन्नहूँ याने पीड़ितहूं परंतु खेदभी नहीं है किंतु वैराग्य सा उत्पन्न होता है॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मण! मैं क्या करूं कहां जाऊं कैसे मुझको सुखहोवे ऐसे विचारते हुये मुझको दो पक्ष याने एक मास होगया ॥ ४५ ॥ हे द्विज ! सुख सन्तान की सीमासे रहित याने बहुत सुख सहित व शत्रुवोंसे हीन शिवके ऐश्वर्य्यके समान स्पष्ट राज्यको मैंने भोग किया॥ ४६ ॥ व अपनी शक्तिसे मैं इन्द्र या मेघ

व अग्नि और वायुरूप होगया व मैंने अपने औरस (धर्मपत्नीमें स्ववीर्यसे उत्पन्न) पुत्रोंकी नाईं प्रजाओंको भलीभांति पाला ॥ ४७ ॥ और दिनोंदिन द्रव्यसे ब्राह्मणों को तृप्तकिया परंतु राज्यशिक्षा करते हुये मैंने एकही अपराध किया ॥ ४८ ॥ कि अपनी तपस्याके बलके गर्वसे देवों को तृणके समान करदिया वहभी अपने अर्थ नहीं किंतु प्रजाओं के उपकारके लियेही ऐसा किया गयाहै यह मैं आपसे शपथ करताहूं ॥ ४९ ॥ और इस समय मेरे भाग के उदय से आये हुये तुम मेरे गुरु होवे ऐसे मैं काल के डरसे रहित राज्यको करताहूं ॥ ५० ॥ कि मेरी राज्यमें अकालकालका विचरना कहीं नहीं है व मेरी राज्यमें बुढ़ाई व्याधि और दरिद्रसेभी डर

पर्जन्याग्न्यनिलात्मकः ॥ प्रजाश्चपालिताःसम्यक्पुत्राइवनिजौरसाः ॥ ४७ ॥ तर्पिताश्चापिभूदेवावसुभिश्चादिनेदिने ॥ एकमेवापराद्धंचमयाराज्यंप्रशासता ॥ ४८ ॥ देवास्तृणीकृताःसर्वेस्वतपोबलदर्पतः ॥ तच्चप्रजोपकारार्थंनस्वार्थंभवता शपे ॥४९॥ अधुनागुरुरेधित्वंममभाग्योदयागतः ॥ राज्यन्तुप्रकरोम्येवंन्यक्कृतान्तकसाध्वसम् ॥५०॥ अकालकाल कलनंममराज्येनकुत्रचित् ॥ जराव्याधिदरिद्रेभ्योममराज्येपिनोभयम् ॥ ५१ ॥ कोपिधर्मेतरांवृत्तिन्नश्रयेन्मयिशा सति ॥ धर्मोदयाजनाःसर्वेसर्वेसन्तिसुखोदयाः ॥ ५२ ॥ सद्विद्याव्यसनाःसर्वेसर्वेसन्मार्गचञ्चुराः ॥ अथवायदिकल्पा न्तंतिष्ठेदायुस्ततोपिकिम् ॥ ५३ ॥ सर्वेभोग्यास्तथाभान्तियथाचर्वितचर्वणम् ॥ किंपिष्टपेषणेनात्रराज्येनद्विजपुङ्गव ॥ ५४ ॥ किमप्युपदिशप्राज्ञगर्भवासोपशान्तये ॥ अथवात्वांप्रपन्नस्यममकिञ्चिन्तनैरिमैः ॥ ५५ ॥ यदेवकथयस्यद्यत त्करिष्याम्यसंशयम् ॥ त्वद्विलोकनमात्रेणसर्वएवमनोरथाः ॥ ५६ ॥ अन्येषामपिजायन्तेजातप्रायाममैवतु ॥ जा

नहीं है ॥ ५१ ॥ व मेरे शिक्षा करतेही कोई भी अधर्मकी वृत्तिको नहीं सेवताहै बरन सब जन धर्म के उदयवाले हैं व सब लोग सुख के उदयवाले हैं ॥ ५२ ॥ व सब जन अच्छी विद्या के व्यसनी हैं व सब लोग सुमार्गगामी हैं अथवा जो कल्पांत तक आयुरहै तो उससे भी क्याहै ॥ ५३ ॥ हे द्विजपुंगव ! जैसे चबेहुये को चबाना वैसेही सब भोगने योग्य पदार्थ शोभते हैं इसलिये पीसे के पीसने रूप राज्यसे क्याहै ॥ ५४ ॥ हे प्राज्ञ ! गर्भवासके विनाशके लिये तुम कोई उपदेश करो अथवा तुम्हारे शरणागत हुये मुझको इन चिंतनों (विचारों) से क्याहै ॥ ५५ ॥ आज तुम जो कहो उसको मैं निस्संदेह करूंगा आपके दर्शनमात्र से सबही मनो-

रथ ॥ ५६ ॥ सबोंके भी होजाते हैं और मेरेभी मनोरथ हुयेही हैं मैं जानताहूं कि देवों के विरोध से कौन कौन जन प्रलयको नहीं प्राप्तभये याने सब विनष्ट होगये हैं ॥ ५७ ॥ पूर्वकाल में अपनी प्रजाओं को पालते हुये भी धर्ममें अनुव्रत व शूर और शिवभक्ति में परायणभी वे प्रसिद्ध त्रिपुर याने तीनोंपुरोके वासी जे दैत्य थे उनको ॥ ५८ ॥ भूमिमय रथकर हिमाचलको धन्वाकर व वासुकी नागको प्रत्यंचा (रोदा)कर व वेदोंको घोड़े कर ॥५९॥ व ब्रह्माको सारथीकर विष्णु को बाणकर चं-द्रमा व सूर्य्य को रथके चाक कर ओंकार रूप कोडाकर ॥ ६० ॥ नक्षत्र और ग्रहमयकीले कर आकाश रूप वरूथ (रथका गुम्मज) कर सुमेरु गिरि को ध्वजा का दंडा और उन्नत कल्पवृक्ष को ध्वजाकर ॥ ६१ ॥ सर्प्पों को यंत्र याने जोड़ने की रस्सी व छंद व्याकरणादि वेदांगों को रक्षक व कालाग्नि रुद्रको भाला और

नेदेवविरोधेनकेकेनप्रलयङ्गताः ॥ ५७ ॥ अवन्तोपिप्रजाःस्वीयानिजधर्ममनुव्रताः ॥ पुरातेत्रिपुराःशूराःशिवभक्तिपरा अपि॥५८॥धरामयंरथंकृत्वाधनुःकृत्वाहिमाचलम्॥वेदांश्चवाजिनःकृत्वागुणंकृत्वाचवासुकिम् ॥ ५९ ॥ विरिञ्चिंसारथिं कृत्वाकृत्वाविष्णुञ्चपत्रिणम् ॥ रथचक्रेपुष्पवन्तौप्रतोदंप्रणवात्मकम् ॥ ६० ॥ ताराग्रहमयान्कीलान्वरूथङ्गगना त्मकम् ॥ ध्वजदण्डंसुमेरुञ्चप्रांशुकल्पतरुन्ध्वजम् ॥६१॥योक्त्राणिचक्षुःश्रवसश्छन्दांस्यङ्गानिरक्षकान् ॥ भल्लङ्काला ग्निरुद्राख्यंपुङ्खीकृत्यप्रभञ्जनम् ॥ ६२ ॥ हरेणैकेषुपातेनलीलयाभस्मसात्कृताः॥ बलिर्यज्ञकृतांश्रेष्ठःकृत्वाकपटखर्वता म् ॥ ६३ ॥ पातालङ्गमितःपूर्वंहरिणाविक्रमैस्त्रिभिः ॥ वृत्तवानपिवैवृत्रःसुत्राम्णाविनिसूदितः ॥६४॥ दधीचिरपिविप्रेन्द्रो देवैरस्थिकृतेहतः ॥ पूर्ववैरमनुस्मृत्यजयार्थंयुध्यतोहरेः ॥ कुशास्त्रैर्विजितस्याजौतेनैवचदधीचिना ॥ ६५ ॥ शिवभक्त

वायुको पुंख कर ॥ ६२ ॥ महादेव जीने लीला से एक बाणपात के द्वारा भस्मके अधीन कर दिया और यज्ञकर्त्ताओंमें श्रेष्ठ राजाबलि वामनरूप बनकर ॥६३॥ विष्णुने पाताल को पठा दिया व पूर्वकाल में सदाचारवाला भी वृत्रासुर इंद्र से मारागया ॥ ६४ ॥ और जीति के अर्थ संग्राम में युद्ध करते हुये जो विष्णु उनहीं दधीचि से कुशास्त्रके द्वारा जीते गये थे, उनका पूर्व वैर स्मरण कर देवों से हाड़ों के लिये दधीचि ब्राह्मणेन्द्र भी हनेगये इस में यह कथा है कि जब दक्षने यज्ञ में शिव जी का निमंत्रण नहीं दिया तब यज्ञशाला से निकल कर चलते हुये शिवभक्त दधीचि जीने क्रोध किया और युद्ध करते हुये विष्णु को भी जीति लिया तो अन्य देवों

को क्या कहना है ॥ ६५ ॥ और पूर्वकाल में कृष्ण जीनें रण में जिस शिवभक्त बाणासुर की हजार बाहैं काटलिया उस अच्छे बर्तनेवाले ने क्या अपराध किया था ॥ ६६ ॥ उस लिये यद्यपि सुमार्ग में चलनेवाले मुझ को देवों से कुछ भी भय नहीं है तौ भी देवों के साथ विरोध कल्याण के लिये नहीं होता है ॥ ६७ ॥ क्योंकि इंद्रादि देव लोग यज्ञो से देवभावको प्राप्तभये हैं और यज्ञ दान व तपस्याओं के द्वारा देवोंसेभी मेरी अधिकताहै ॥ ६८ ॥ परंतु अधिकता व न्यूनताहो उससे इस समय मुझको क्याहै किंतु तुम्हारे दर्शनसे सुख देनेवाला इंद्रियो का विषयो से निवृत्त होना विश्राम प्राप्तहोगया है ॥ ६९ ॥ हे तात, उपायज्ञ ! इस समय तुम

स्यबाणस्यदोःसहस्रंपुराहरिः ॥ चिच्छेदसंख्येकिन्तेनापराद्धंसाधुवर्तिना ॥ ६६ ॥ तस्माद्विरोधोभद्रायनभवेद्दैवतैःसह ॥ देवेभ्योमद्भयंनास्तिसत्पथीनस्यवैमनाक् ॥ ६७ ॥ यज्ञैर्देवत्वमापन्नागीर्वाणावासवादयः ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिश्चतेभ्यो प्याधिक्यमस्तिमे ॥ ६८ ॥ अस्तुन्यूनत्वमाधिक्यंकिमनेनाधुनामम ॥ इन्द्रियोपरमःप्राप्तःसुखदस्तवदर्शनात् ॥ ६९ ॥ इदानीन्दिशमेतातकर्मनिर्मूलनक्षमम् ॥ उपायन्त्वमुपायज्ञयेननिर्वृतिमाप्नुयाम् ॥ ७० ॥ स्कन्दउवाच ॥ गणेशावेशवशतोराज्ञेतियदुदीरितम् ॥ तदाकर्ण्यहृषीकेशःप्राहब्राह्मणवेषभृत् ॥ ७१ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ साधुसाधुम हाप्राज्ञनृपचूडामणेनघ ॥ मयायदुपदेष्टव्यन्तत्त्वयैवनिरूपितम् ॥ ७२ ॥ त्वमादावेवनिर्वृत्तःपरम्मेमानदोह्यसि ॥ क्षालितेन्द्रियपङ्कश्चसुतपःस्वच्छवारिभिः ॥ ७३ ॥ यदुक्तंभवताभूपतत्सर्वंतथ्यमेवहि ॥ तवशक्तिञ्चजानामिविरक्तिंच महामते ॥ ७४ ॥ नभवत्सदृशोराजाभुविभूतोभविष्यति ॥ राज्यम्भोक्तुंत्वयाज्ञायियुक्तंयत्तुमुमुक्षसि ॥ ७५ ॥ विरोधेपि

कर्मों के निर्मूल करने में समर्थ उस उपायको बतावो कि जिससे मैं सुखको प्राप्त होजाऊं ॥ ७० ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, श्रीगणेशजी के प्रवेश के वशसे राजा ने जो ऐसा कहा उसको सुनकर ब्राह्मणवेषधारी विष्णुजी बोले ॥ ७१ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे महापंडित, अपाप, राजशिरोमणे ! अच्छा हुवा अच्छा हुवा कि जो मुझको उपदेश करना चाहिये उसको तुम्हींने कहदिया ॥ ७२ ॥ और अच्छी तपस्यारूप स्वच्छ जल से इंद्रियों के मलको धोयेहुये तुम पहलेही विरक्त थे परंतु इस समय मेरे मान देनेवाले हो ॥ ७३ ॥ हे भूप, महामते ! आपने जो कहा वह सब वैसेही सत्यहै और मैं तुम्हारी शक्ति व वैराग्य को जानताहूं ॥ ७४ ॥ आपके

समान राजा भूमि में न हुवाहै न होगा व राज्यको भोग करने के लिये तुमने जानलिया और जो तुम मुक्तिकी इच्छावाले होतेहो वह उचित है ॥ ७५ ॥ व विरोध में भी तुमने कहीं देवोंका अपकार नहीं किया और तुम्हारे राष्ट्र (राज्य) में अधर्म का प्रवेशभी नहीं हुवा है ॥ ७६ ॥ हे स्वधर्मज्ञ ! आपसे धर्ममें प्रवृत्तकी गईहुई प्रजावों ने जो धर्मकिया उससे स्वर्गवासी देवभी तृप्तहैं ॥ ७७ ॥ परंतु जो आपने काशी से बिश्वनाथ जी को दूर किया वह एकही तुम्हारा दोष मेरे हृदय में निश्चयसे प्रतीत होताहै ॥ ७८ ॥ हे भूपतिसत्तम ! मैं इसको तुम्हारा बड़ा अपराध जानताहूं उस पापकी शांतिके लिये बड़ेभारी उपायको कहताहूं ॥ ७९ ॥ कि देह-

हिदेवानांत्वयानापकृतंकचित् ॥ धर्मेतरप्रवेशश्चतवराष्ट्रेपिनोभवत् ॥ ७६ ॥ प्रवर्तिताभिर्भवताप्रजाभिर्यदनुष्ठितम् ॥ धर्मंधर्मस्वधर्मज्ञतेनतृप्तादिवौकसः ॥ ७७ ॥ एकएवहितेदोषोहृदिमेप्रतिभासते ॥ काश्याविश्वेश्वरोदूरंयत्कृतोभवता किल ॥ ७८ ॥ महान्तमपराधन्तेजानेभूजानिसत्तम ॥ इमन्तत्पापशान्त्यैचवच्म्युपायम्महत्तरम् ॥ ७९ ॥ संख्यास्ति यावतीदेहेदेहिनोरोमसम्भवा ॥ तावन्तोप्यपराधावैयान्तिलिङ्गप्रतिष्ठया ॥ ८० ॥ एकंप्रतिष्ठितंयेनलिङ्गमत्रेश भक्तितः ॥ तेनात्मनासमंविश्वंजगदेतत्प्रतिष्ठितम् ॥ ८१ ॥ रत्नाकररत्नसंख्यासंख्याविद्भिरपीष्यते ॥ लिङ्गप्रतिष्ठापुण्य स्यनतुसंख्येतिलिख्यते ॥ ८२ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकुरुलिङ्गप्रतिष्ठितिम् ॥ तयालिङ्गप्रतिष्ठित्याकृतकृत्योभविष्य सि ॥ ८३ ॥ इत्युक्त्वाब्राह्मणोदध्यौक्षणन्निश्चलमानसः ॥ उवाचचप्रहृष्टास्योराजानंपाणिनास्पृशन् ॥ ८४ ॥ श्रीवि

धारियोंकी देहमें रोमों से हुई जितनी संख्याहै याने देहमें जितने रोमहैं उतनेभी अपराध शिवलिंगकी प्रतिष्ठासे चलेजाते हैं यह निश्चयहै ॥ ८० ॥ व जिसने शिव-भक्तिसे यहां एक लिंगकी प्रतिष्ठा किया उससे आत्मा समेत यह समस्त जगत् प्रतिष्ठित हुवा ॥ ८१ ॥ समुद्रमें रत्नोंकी संख्या भी गणितके पंडितों से इच्छाकी जाती है परंतु लिंगप्रतिष्ठा पुण्यकी संख्या इतनी है यह नहीं लिखा जाता है ॥ ८२ ॥ उस लिये तुम सब यत्नसे लिंगको प्रतिष्ठित करो उस लिंगप्रतिष्ठासे कृतार्थ होजावोगे ॥ ८३ ॥ ऐसे कहकर निश्चलमनवाले ब्राह्मणवेष बनाये हुये विष्णुजीने क्षणभर ध्यान किया फिर हाथ से राजा का स्पर्श करते हुये व सानंद मंद मुसकान

मुखवाले वे बोले ॥ ८४ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे पंडितसत्तम, भूपाल ! मैं ज्ञानदृष्टि से अन्य कुछभी देखताहूं उसको भी सावधान होकर तुम सुनो ॥ ८५ ॥ कि, तुम धन्यहो कृतकृत्यहो याने जो करना चाहिये वह कियागया है व तुम महात्माओं में भी मान्यहो और इस लोकमें शुभफलचाही जनसे प्रातःकाल तुम्हारा नाम जपने योग्यहै ॥ ८६ ॥ हे दिवोदास ! हमलोगभी तुम्हारे समीप से बड़े धन्य हैं और मनुष्यलोकमें जे तुम्हारा नाम कहते हैं वेभी बहुत धन्यहैं ॥ ८७ ॥ ऐसे कहकर फिर हृदयमें भी बहुतही हर्ष समेत और आनंद से खड़ेहुये रोमवाले होकर बारबार मूड डुलाते हुये वह ब्राह्मण मुसका मुसकाकर कहने लगे ॥ ८८ ॥

ष्णुरुवाच ॥ अन्यच्चकिञ्चित्पश्यामिभूपालज्ञानचक्षुषा ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वातदपिप्राज्ञसत्तम ॥ ८५ ॥ धन्योसिकृतकृत्योसिमान्योसिमहतामपि ॥ जप्यञ्चतवनामेहप्रातःशुभफलेप्सुना ॥ ८६ ॥ दिवोदासत्वदभ्याशादपिधन्यतरावयम् ॥ तेपिधन्यतरामर्त्त्येयेत्वदाख्याम्प्रचक्षते ॥ ८७ ॥ स्मायंस्मायञ्जगौविप्रोमौलिमान्दोलयन्मुहुः ॥ हृद्येवबहुशोहृष्टःसम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ ८८ ॥ अहोभाग्योदयश्चास्यअहोनैर्मल्यमस्यवै ॥ यदेनमनिशंध्यायेद्धयेयोविश्वेश्वरोऽखिलैः ॥ ८९ ॥ अहोउदर्कएतस्यनकैश्चित्प्रतिपद्यते ॥ अस्माकमपियद्दूरमदवीयस्तदस्ययत् ॥ ९० ॥ हृद्यालोच्येतिविप्रोथवर्णयित्वाक्षितीश्वरम् ॥ आविश्चकारतत्सर्वंयत्समाधावलोकयत् ॥ ९१ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ राजंस्तवाद्यफलितोमनोरथमहाद्रुमः ॥ अनेनैवशरीरेणत्वङ्गन्तासिपरम्पदम् ॥ ९२ ॥ यथाविश्वेश्वरोनित्यन्त्वामेवहृदिशीलयेत ॥ तथा

इसकी भाग्यका उदय आश्चर्य्यरूप है और इसकी निर्मलताभी आश्चर्य्यरूप है जिससे सबके ध्यावने योग्य श्रीविश्वनाथजी इसको रातोदिन ध्यान करते हैं ॥ ८९ ॥ और जिससे जोकि हम लोगोंको दूरहै वह इसके समीपमें है व जो किसीसे नहीं प्राप्त कियाजाता है वह इसका उत्तरफल है इससे आश्चर्य्य है ॥ ९० ॥ इस भांति हृदयमें देखकर अनंतर उन ब्राह्मण ने जो समाधिमें देखा उस सबको राजाका वर्णनकर प्रकट करदिया ॥ ९१ ॥ ब्राह्मण बोले कि, हे राजन् ! तुम्हारा मनोरथ रूप बड़ाभारी वृक्ष आज फलित हुवा व तुम इसही देह से परमपदको जावोगे ॥ ९२ ॥ जैसे श्रीविश्वनाथजी नित्यही तुमको हृदयमें ध्यावते हैं वैसे उनके पांवोंमें

आंखों को लगाये हुये जे हम आदि ब्राह्मणहैं उनको भी नहीं ध्यावते हैं ॥ ९३ ॥ किंतु आजसे सातयें दिनमेंही प्रतिष्ठा कियेहुये तुमको लेजाने के लिये शंकरका दिव्य विमान आकर प्राप्तहोगा ॥ ९४ ॥ हे राजन् ! तुम जानते हो कि यह तुम्हारे किस सुकर्म का फलहै मैं तो ऐसा जानताहूं कि यह काशीपुरी की भलीभांति सेवासे हुवाहै ॥ ९५ ॥ हे राजसत्तम ! जोकि इस काशी में टिकेहुये एक जनकी भी रक्षा करे उसकेभी देहांतमें ऐसाही फलहै ॥ ९६ ॥ इस भांति सुनकर प्रसन्न हुये प्रतापी उस दिवोदास राजर्षिने शिष्य समेत ब्राह्मण के लिये वाञ्छित वस्तु दिया ॥ ९७ ॥ तदनंतर संतृप्त किये हुये उन ब्राह्मण के बारबार प्रणाम कर अधिक आनंद समेत

स्मदादीनपिनोद्विजांस्तत्पादलोचनान् ॥ ९३ ॥ कृतलिङ्गप्रतिष्ठन्त्वांसप्तमेह्व्यवासरात् ॥ दिव्यंविमानमागत्यनेतुमेष्यति शाम्भवम् ॥ ९४ ॥ राजंस्त्वंवेत्सिकस्यायंविपाकःसुकृतस्यते ॥ वाराणस्याःपुरःसम्यक्सेवनादित्यवैम्यहम् ॥ ९५ ॥ एकमप्यत्रयःपायाद्वाराणस्यांस्थितञ्जनम् ॥ तस्याप्येवंविपाकोस्तिदेहान्तेराजसत्तम ॥ ९६ ॥ इतिश्रुत्वासराजर्षि र्दिवोदासःप्रतापवान् ॥ ब्राह्मणायसशिष्यायप्रादात्प्रीतोभिवाञ्छितम् ॥ ९७ ॥ अथसम्प्रीणितंविप्रंप्रणम्यचमुहुर्मुहुः ॥ प्रोवाचराजासंहृष्टस्तारितोस्मिभवार्णवात् ॥ ९८ ॥ ब्राह्मणोपिप्रहृष्टात्मापरिपूर्णमनोरथः ॥ समापृच्छ्यमहीनाथं स्वेष्टंदेशञ्जगामह ॥ ९९ ॥ विलोक्यकाशींपरितोमायाद्विजवपुर्हरिः ॥ भूयोभूयोविचार्यापिकिमत्रातीवपावनम् ॥ २०० ॥ स्थानंयत्राहमध्यास्यनिजभक्तानशेषतः ॥ नेष्यामिपरंधामविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ १ ॥ सम्प्रधार्येतिभ गवान्दृष्ट्वापाञ्चनदंह्रदम् ॥ तत्रकृत्वाविधिस्नानन्ततस्तत्रैवसंस्थितः ॥ २ ॥ प्रतीक्षमाणोलक्ष्मीशोसङ्गत्यत्त्वसमा

राजाने कहा कि मैं संसारसागर से पार उतार दिया गयाहूँ ॥ ९८ ॥ और आनंदितमन परिपूर्णमनोरथवाले ब्राह्मणवेषधारी विष्णुजी भी राजा से पूछकर अपने प्यारे देशको चले गये ॥ ९९ ॥ व मायासे ब्राह्मणरूप विष्णुजी सब ओर से काशीपुरीको देखकर व बारबार विचारकरभी कि यहां अत्यंत पवित्र कौन ॥ २०० ॥ स्थानहै जिसमें निवासकर मैं अपने संपूर्ण भक्तोंको विश्वनाथके उत्तम अनुग्रहसे परम धामको प्राप्त करूंगा याने पठाऊंगा ॥ १ ॥ ऐसे मनमें विचार धारणकर व पांचनद कुण्डको देख कर उसमें विधिपूर्वक स्नानकर तदनंतर भगवान् वहांही भलीभांति टिकगये ॥ २ ॥ और शीघ्रही शिवजी के समागमको परखते हुये लक्ष्मीजी के नाथ विष्णुजी राजा

का वृत्तांत जाननेवाले गरुड़को पठाते भये ॥ ३ ॥ और ब्राह्मणेन्द्र को प्रशंसतेहुये दिवोदास राजेन्द्रने भी मंत्रियों समेत मंडलेश्वर व सब प्रजाओंको बुलाकर ॥ ४ ॥ कोश अश्व और हाथीआदिकों की रक्षाके लिये नियोजित सब अध्यक्षभी व पांच सौ पुत्र व समरंजय नामक ज्येष्ठ पुत्र ॥ ५ ॥ व पुरोहित व प्रतीहार (चोपदार) व ऋत्विज् (यज्ञ करने को बरेहुये पंडित) व ज्योतिषी ब्राह्मण व सामंत राजपुत्र व सूपकार (रसोईदार) व वैद्य ॥ ६ ॥ व अनेक कार्य्यों के लिये आयेहुये बहुते विदेशी व सबस्त्रियों समेत पटरानी और बूढ़ीगौओं के पालनेवाले बालक ॥ ७ ॥ इन सबों के आगे हाथजोड़नेवाला होकर सबों से वैसे कहा कि जैसे उन ब्राह्मण ने

गमम् ॥ तार्क्ष्यम्प्रस्थापयाञ्चक्रेराजवृत्तान्तवेदिनम् ॥ ३ ॥ दिवोदासोपिराजेन्द्रोविप्रेन्द्रंपरिवर्णयन् ॥ आहूयप्रकृतीः सर्वाःसामात्यान्मण्डलेश्वरान् ॥ ४ ॥ अध्यक्षानपिसर्वांश्चकोशाश्वेभादिदेशितान् ॥ पुत्रान्पञ्चशतंप्राग्र्यंसुतञ्चसमरञ्जयम् ॥ ५ ॥ पुरोहितंप्रतीहारमृत्विजोगणकान्द्विजान् ॥ सामन्तान्राजपुत्रांश्चसूपकारांश्चिकित्सकान् ॥ ६ ॥ वैदेशिकानपिबहून्नानाकार्यसमागतान् ॥ सान्तःपुराञ्चमहिषींवृद्धगोपालबालकान् ॥ ७ ॥ सर्वान्प्रोवाचहृष्टात्माप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ यथासब्राह्मणःप्राहदिनसप्तावधिस्थितिम् ॥ ८ ॥ आश्चर्यन्तेषुशृण्वत्सुविषण्णवदनेषुच ॥ स्वयंराजगृहंनीत्वाकुमारंसमरञ्जयम् ॥ ९ ॥ अभिषिच्यमहाबुद्धिःपौराञ्जानपदानपि ॥ प्रसादीकृत्यपुण्यात्मापुनःकाशीमगान्नृपः ॥ १० ॥ आगत्यकाशींमेधावीसभूपालोरिपुञ्जयः ॥ प्रासादंकारयामासस्वर्धुन्याःपश्चिमेतटे ॥ ११ ॥ रिपून्प्रमथ्यसमरेयावतीश्रीरुपार्जिता ॥ तावत्यासहिभूपालःशिवालयमचीकृपत् ॥ १२ ॥ भूपाललक्ष्मीरखिलायत्तत्रविनियोजि

सात दिन की अवधिकी स्थितिको कहाथा ॥ ८ ॥ और आश्चर्य्य सुनते हुये उनके मलिनमुख होतेही आपही समरंजय नामक कुमार को राजमंदिर में प्राप्तकर ॥ ९ ॥ व उसको अभिषेक कर पुरवासी व देशवासी जनोंको भी प्रसन्न कर बड़ा बुद्धिमान् पुण्यात्मा राजा फिर काशी को गया याने बौद्धवेष विष्णु के वचन से काशी को छोड़कर उसके पूर्वभाग में गोमती के किनारे परिवार समेत राजा चला गयाथा और वहां पुत्रका अभिषेक कर काशी को फिर आया ॥ १० ॥ और काशी में आकर बुद्धिमान् शत्रुंजय उस भूपने गंगा के पश्चिमतीर में देवमंदिर कराया याने बनवाया ॥ ११ ॥ किंतु उसही राजाने संग्राममें शत्रुओं को जीतकर जितनी संपत्ति बटोरा

यानै इकट्ठे कियाथा उतनी से शिवालय बनवादिया ॥ १२ ॥ जिससे वहां संपूर्ण राजाकी लक्ष्मी जोड़दीगई या गाड़दीगई थी उससे वह शुभभूमि भूपालश्री इस भांति कहीगई है याने भूपालश्री नाम से प्रसिद्ध भई है ॥ १३ ॥ और वहां दिवोदासेश्वर नामक लिंगकी प्रतिष्ठाकर उस शत्रुंजय नरेश ने अपना को कृतकृत्यसा मान लिया ॥ १४ ॥ तदनंतर एक दिन राजाने उस लिंगको विधिपूर्वक भली भांति पूज कर व नमस्कार कर जबतक तुष्टिदायक शिवजी की स्तुति किया ॥ १५ ॥ तबतक दिव्य विमान आकाश आंगन से शीघ्रही भूमिमें उतर आया जोकि हाथों में शूल व खट्वांग लियेहुये पार्षदों से सब ओर युक्त है ॥ १६ ॥ और जोकि पार्षद सूर्य्य व अग्नि से भी अधिक तेजस्वी भाल नेत्र जटाजूटधारी शुद्धस्फटिक के समान श्वेत रंगों अंगों से आकाश आंगन को दीपित करतेथे ॥ १७ ॥ व जिनकी देहैं भूषण

ता ॥ भूपालश्रीरितिख्याताततःसाभूरभूच्छुभा ॥ १३ ॥ दिवोदासेश्वरंलिङ्गंप्रतिष्ठाप्यरिपुञ्जयः ॥ कृतकृत्यमिवात्मानममन्यतनरेश्वरः ॥१४॥ अथैकस्मिन्दिनेराजाताल्लिङ्गंविधिपूर्वकम् ॥ समभ्यर्च्यनमस्कृत्ययावत्तुष्टावतुष्टिदम् ॥१५॥ तावन्नभोङ्गणादाशुदिव्यंयानमवातरत् ॥ पार्षदैःपरितःकीर्णंशूलखट्वाङ्गपाणिभिः ॥ १६ ॥ अत्यादित्याग्नितेजोभिर्भालनेत्रैःकपर्दिभिः ॥ शुद्धस्फटिकसङ्काशैरङ्गैर्दीप्तनभोङ्गणैः ॥ १७ ॥ विभूषाहिफणारत्नज्योतिःपूजितविग्रहैः ॥ नित्यप्रकाशसन्त्रस्ततमःश्रितशिरोधरैः ॥ १८ ॥ चामरव्यग्रहस्ताग्ररुद्रकन्याशतावृतम् ॥ अथपारिषदैराजादिव्यस्रगनुलेपनैः ॥ १९ ॥ दिव्यैर्दुकूलनेपथ्यैरलङ्कृत्यमुदान्वितैः ॥ त्रिनेत्रीकृतसद्भालंश्यामीकृतशिरोधरम् ॥ २० ॥ सुगौरीकृतसर्वाङ्गङ्कपर्दीकृतमौलिजम् ॥ चतुर्भुजीकृततनुंभूषणीकृतपन्नगम् ॥ २१ ॥ चन्द्रार्धीकृतमूर्धानन्निन्युस्तंपार्षदादिव

रूप सर्पोंकी फणाओं के रत्नों से पूजितथीं व नित्य प्रकाशसे संत्रस्त हुवा अंधकार जिनके कंठमें आश्रितथा याने नीलकंठथे ॥ १८ ॥ और जोकि विमान चँवर चलाने से डोलते हुये हस्ताग्रवाली सैकड़ों रुद्रकन्याओं से घिराहुवा था उसके बाद पार्षदोंने राजाको दिव्य माला अनुलेपन ॥ १९ ॥ व दिव्य रेशमीवस्त्र और भूषणों से आनंद समेत होकर अलंकृत किया व जिसका अच्छा माथ तीन नेत्रवाला किया गया व कंठकाला किया गया ॥ २० ॥ व जिसके सब अंग अति उज्ज्वल कियेगये व बाल जटाजूट किये गये व जिसका शरीर चतुर्भुज किया गया व सर्प भूषण कियागया ॥ २१ ॥ व जिसका मस्तक चन्द्रार्धवाला किया गया उसको पार्षदों ने शिव

जीके कैलासमें प्राप्त करदिया ॥ २२ ॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ भूपालश्री इस नामसे सुनागया है उस में श्राद्धादि कर व अपनी शक्ति अनुसार दान देकर ॥ २३ ॥ दिवोदासेश्वर के दर्शन कर व भक्तिसे पूजाकर और राजाका आख्यान सुनकर मनुष्य फिर गर्भ में न प्रवेशकरे याने जन्म मरणसे हीन होजावे ॥ २४ ॥ व दिवोदास राजा के इस पवित्र आख्यान को पढ व पढ़ाकरभी नर सब पापो से छूट जाता है ॥ २५ ॥ जोकि दिवोदास का शुभ आख्यान सुनकर संग्राम में पैठे उसको शत्रुवों से किया हुवा डर कहीं कभी नहीं होता है ॥ २६ ॥ व सब पापोंकी काटनेवाली महापुण्यरूप यह दिवोदास राजा की कथा सब विघ्नोंके विनाशके लिये बड़े यत्न से

म् ॥ २२ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थंभूपालश्रीरितिश्रुतम् ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वादानंदत्त्वास्वशक्तितः ॥ २३ ॥ दिवोदासेश्वरं दृष्ट्वासमभ्यर्च्यचभक्तितः ॥ राज्ञश्चाख्यायिकांश्रुत्वाननरोगर्भमाविशेत् ॥ २४ ॥ आख्यानमेतन्नृपतेर्दिवोदासस्य पावनम् ॥ पठित्वापाठयित्वापिनरःपापैःप्रमुच्यते ॥ २५ ॥ दिवोदासशुभाख्यानंश्रुत्वायःसमरंविशेत् ॥ नजातुजायतेतस्यभयंवैरिकृतंकचित् ॥ २६ ॥ दिवोदासकथापुण्यामहोत्पातनिकृन्तनी ॥ पठनीयाप्रयत्नेनसर्वविघ्नोपशान्तये ॥ २७ ॥ नावृष्टिर्जायतेतत्रनाकालमरणाद्भयम् ॥ दैवोदासीकथायत्रसर्वपातकनाशिनी ॥ २८ ॥ अस्याख्यानस्यपठनाद्विष्णोरिवमनोरथाः ॥ सम्पूर्णताङ्गमिष्यन्तिशम्भोश्चिन्तितकारिणः ॥ २२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदिवोदासनिर्वाणप्राप्तिर्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पढ़ने योग्य है ॥ २७ ॥ जहां सब पापनाशिनी दिवोदास की कथा कही व सुनी जाती है वहां अवृष्टि (पानी का न बरसना भूरा) नहीं होती है और अकाल मरने से डर नहीं होता है ॥ २८ ॥ और शिवजी का चिंतित कार्य्य करनेवाले विष्णुजी के मनोरथों की नाईं सबलोगों के मनोरथ इस आख्यानके पढ़ने से संपूर्णताको प्राप्तहोवेंगे याने सब मनोरथ सिद्ध होजायँगे ॥ २२९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते दिवोदासमुक्तिप्राप्तिर्नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० । उनसठयें अध्याय में पांच नदी उत्पत्ति । तथा पंचनद तीर्थ की महिमा की निष्पत्ति ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे पार्वती से चुम्बित बालोंवाले ! सर्वज्ञहृदयानन्द, तारकान्तक, सर्वज्ञाननिधान षण्मुख, संसारपारदातार, कल्याणकार ॥ १ ॥ कुमार, सर्वज्ञ शिवजी के पुत्र,महात्मा व सब प्रकारसे काम के जीतने वाले तुम्हारे नमस्कार है ! ॥ २ ॥ प्रसिद्ध है कि जिन आप कुमारने भी काम से किये हुये शिवजी को अर्धनारीश्वर रूप देखकर काम को जीतलिया उन तुम्हारे लिये नमस्कार हो ॥ ३ ॥ हे स्कन्द ! जो आपने कहा कि माया से ब्राह्मण वेष बनेहुये विष्णुजीने काशी में परमपवित्र पञ्चनद तीर्थ के समीप निवास कि-

अगस्त्यउवाच ॥ सर्वज्ञहृदयानन्दगौरीचुम्बितमूर्धज ॥ तारकान्तकषड्वक्रतारिणेभद्रकारिणे ॥ १ ॥ सर्वज्ञाननिधे तुभ्यन्नमःसर्वज्ञसूनवे ॥ सर्वथाजितमारायकुमारायमहात्मने ॥ २ ॥ कामारिमर्धनारीशंवीक्ष्यकामकृतङ्किल ॥ योजिगायकुमारोपिमारन्तस्मैनमोस्तुते ॥ ३ ॥ यदुक्तंभवतास्कन्दमायाद्विजवपुर्हरिः ॥ काश्यांपञ्चनदन्तीर्थमध्यासातीवपावनम् ॥ ४ ॥ भूर्भुवःस्वःप्रदेशेषुकाशीपरमपावनम् ॥ तत्रापिहरिणाज्ञायितीर्थंपञ्चनदम्परम् ॥ ५ ॥ कुतःपञ्चनदन्नामतस्यतीर्थस्यषण्मुख ॥ कुतश्चसर्वतीर्थेभ्यस्तदासीत्पावनम्परम् ॥ ६ ॥ कथञ्चभगवान्विष्णुरन्तरात्माजगत्पतिः ॥ सर्वेषाञ्जगताम्पाताकर्ताहर्ताचलीलया ॥ ७ ॥ अरूपोरूपमापन्नोह्यव्यक्तोव्यक्ततांगतः ॥ निराकारोपिसाकारोनिष्प्रपञ्चःप्रपञ्चभाक् ॥ ८ ॥ अजन्मानेकजन्माचत्वनामास्फुटनामभृत ॥ निरालम्बोऽखिलालम्बोनिर्गुणोपि

या वह सुनागया ॥ ४ ॥ परन्तु भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक इन सब प्रदेशोंमें काशीपुरी परमपावन है उसमें भी विष्णुजी ने पञ्चनद तीर्थ को बहुत उत्तम जाना ॥ ५ ॥ हे षण्मुख ! उस तीर्थ का पञ्चनद नाम क्यों हुआ और वह क्यों सब तीर्थों से परमपावन हुआ है ॥ ६ ॥ और क्यों भगवान् विष्णुजी जो कि अन्तरात्मा (सर्वव्यापक) जगत् के पति व लीला से सब जगतों के पालक, घालक और उपजानेवाले हैं ॥ ७ ॥ व जो कि रूपरहित भी रूप को प्राप्त व अप्रकट भी प्रकटताको प्राप्त व आकाररहित भी आकारसहित व प्रपञ्च से हीन भी प्रपञ्चसेवी ॥ ८ ॥ व अजन्मा भी अनेक जन्मकारी व अनामा भी स्पष्टनाम-

धारी व निराधार भी सबके आधार व निर्गुण भी गुणों के स्थान हैं ॥ ९ ॥ व इन्द्रियों से हीन भी इन्द्रियों के नायक और पांवों से हीन होकर भी सर्वत्र जाने वाले हैं वह सर्वव्यापी, जनार्दन (जनोंसे याचे जातेहुये) विष्णु जी अपने रूपको उपसंहारकर याने अन्तर्धानकर ॥ १० ॥ उत्तम पञ्चनद तीर्थमें सर्वात्मभाव से टिके हैं हे षण्मुख ! आपने जैसे शिवजी से सुना है वैसे इसको कहो ॥ ११ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि मैं महेश जीके नमस्कार कर सब पापसमूहहारिणी सब कल्याणकारिणी इस कथा को कहता हूं ॥ १२ ॥ कि जैसे पञ्चनद तीर्थ काशी में प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है व जिसका नाम लेने सेही हजारों भांति का पाप चला

गुणास्पदम् ॥ ९ ॥ अहृषीकोहृषीकेशोप्यनङ्घ्रिरपिसर्वगः ॥ उपसंहृत्यरूपंस्वंसर्वव्यापीजनार्दनः ॥ १० ॥ स्थितःसर्वात्मभावेनतीर्थेपञ्चनदेपरे ॥ एतदाख्याहिषड्वक्त्रपञ्चवक्त्राद्यथाश्रुतम् ॥ ११ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कथयामिकथामेतान्नमस्कृत्यमहेश्वरम् ॥ सर्वाघौघप्रशमनींसर्वश्रेयोविधायिनीम् ॥ १२ ॥ यथापञ्चनदंतीर्थंकाश्याम्प्रथितिमागतम् ॥ यन्नामग्रहणादेवपापंयातिसहस्रधा ॥ १३ ॥ प्रयागोपिचतीर्थेशोयत्रसाक्षात्स्वयंस्थितः ॥ पापिनाम्पापसङ्घातंप्रसह्यनिजतेजसा ॥ १४ ॥ हरन्तिसर्वतीर्थानिप्रयागस्यबलेनहि ॥ तानिसर्वाणितीर्थानिमाघेमकरगेरवौ ॥ १५ ॥ प्रत्यब्दन्निर्मलानिस्युस्तीर्थराजसमागमात् ॥ प्रयागश्चापितीर्थेन्द्रःसर्वतीर्थार्पितम्मलम् ॥ १६ ॥ महाघिनांमहाघञ्चहरेत्पाञ्चनदाद्बलात् ॥ यंमञ्चयतिपापौघमावर्षन्तीर्थनायकः ॥ तमेकमज्जनाद्धूर्जंत्यजेत्पञ्चनदेध्रुवम् ॥ १७ ॥ यथापञ्चनदोत्प

जाता है ॥ १३ ॥ व जिसमें तीर्थराज प्रयाग भी साक्षात् आपही टिका है और पापियों के पापसमूह को हठ से अपने तेज के द्वारा ॥ १४ ॥ प्रयाग के बल सेही जे सब तीर्थ हर लेते हैं वे सब तीर्थ जब माघ में सूर्य्य मकरराशि में प्राप्त होते हैं तब ॥ १५ ॥ प्रतिवर्ष तीर्थराज के समागम से मलहीन होजाते हैं और तीर्थों का राजा प्रयागभी सब तीर्थों से दिये हुये मल को ॥ १६ ॥ व महापापियों के बड़े पापको भी पञ्चनद तीर्थ के बल से हरै है किन्तु तीर्थनायक प्रयाग वर्ष पर्य्यन्त जिस पापसमूह को बटोरता है उसको एक मज्जन से पञ्चनद में त्याग करदेताहै यह निश्चय है ॥ १७ ॥ हे महाभाग, मित्रावरुणनन्दन ! जैसे उस पञ्चनद

की उत्पत्ति है वैसे मै कहता हूं तुम सुनो ॥ १८ ॥ पूर्वकाल में मूर्त्तिधारी अन्य वेदकी नाई बड़ा तपस्वी भृगुवंश में उत्पन्न वेदशिरा नाम मुनि हुआ ॥ १९ ॥ व तपस्या करते हुये उस मुनिके आगे अप्सराओं में श्रेष्ठ व सुन्दरता और अङ्गोंकी साजसे सोहती हुई शुचि इस नामवाली अप्सरा नेत्रगोचर होगई याने देखपड़ी ॥ २० ॥ उसके देखनेमात्र से मुनि का मन सब ओर से क्षोभवाला होगया और वह मुनि शीघ्रही स्खलित हुआ याने उसका रेत गिरपड़ा अनन्तर वह वराप्सरा डरगई ॥ २१ ॥ और उस मुनिके शाप देने के डरसे बहुतही थरथरातेहुये अङ्गोंवाली उस शुचि अप्सराने दूरसेही उस मुनि के नमस्कारकर कहा ॥ २२ ॥ कि, हे बड़ी

त्तिस्तथाचकथयाम्यहम् ॥ निशामयमहाभागमित्रावरुणनन्दन ॥ १८ ॥ पुरावेदशिरानाममुनिरासीन्महातपाः ॥ भृगुवंशसमुत्पन्नोमूर्तोवेदइवापरः ॥ १९ ॥ तपस्यतस्तस्यमुनेःपुरोदृग्गोचरङ्गता ॥ शुचिरप्सरसांश्रेष्ठारूपलावण्यशालिनी ॥ २० ॥ तस्यादर्शनमात्रेणपरिक्षुब्धम्मुनेर्मनः ॥ चस्कन्दसमुनिस्तूर्णंसाथभीतावराप्सरा ॥ २१ ॥ दूरादेवनमस्कृत्यतमृषिंसाभ्यभाषत ॥ अतीववेपमानाङ्गीशुचिस्तच्छापभीतितः ॥ २२ ॥ नापराध्नोम्यहङ्किञ्चिन्महोग्रतपसान्निधे ॥ क्षन्तव्यंमेक्षमाधारक्षमारूपास्तपस्विनः ॥ २३ ॥ मुनीनाम्मानसम्प्रायोयत्पद्मादपितन्मृदु ॥ स्त्रियःकठोरहृदयाःस्वरूपेणैवसत्तम ॥ २४ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्याःशुचेरप्सरसोमुनिः ॥ विवेकसेतुनास्तम्भीन्महारोषनदीरयम् ॥ २५ ॥ उवाचचप्रसन्नात्माशुचेशुचिरसिध्रुवम् ॥ नमेऽल्पोपिहिदोषोत्रनतेदोषोस्तिसुन्दरि ॥ २६ ॥ वह्निस्वरूपाललनानवनीतसमःपुमान् ॥ अनभिज्ञावदन्तीतिविचारान्महदन्तरम् ॥ २७ ॥ स्निह्येदुद्धृतसारोपिवह्नेःसंस्पर्शमाप्यवै ॥ चित्रं

तपस्याओं के निधान, क्षमा के आधार ! मैं कुछ अपराध नहीं करतीहूं क्षमा करना चाहिये क्योंकि तपस्वीलोग क्षमारूप होते हैं ॥ २३ ॥ हे सत्तम ! जो मुनियों का मन है वह बहुधा कमलसे भी अधिक कोमल होता है और स्त्रियां स्वरूप सेही कठोरहृदयवाली हैं ॥ २४ ॥ इस भांति उस शुचि अप्सराका वचन सुनकर मुनिने बड़े क्रोधरूप नदीके वेगको विचाररूप सेतु (बंधी) से रोंक लिया ॥ २५ ॥ और प्रसन्नमन होकर कहा कि हे शुचे, सुन्दरि ! तुम निश्चयसे पवित्रहो याने अपराधहीन हो व यहां मेरा थोड़ाभी दोष नहीं है ॥ २६ ॥ स्त्री अग्निरूप और पुरुष नेनूके समान होता है ऐसा अनभिज्ञ (अजान) लोग कहते हैं परंतु विचार करने से बड़ा अन्तर

है ॥ २७ ॥ व आश्चर्य्य है कि घृतभी अग्नि के संयोग को प्राप्त होकरही पघिलता है और पुरुष दूरसे स्त्री का नाम लेनेसेही स्नेहसमेत होजाता है ॥ २८ ॥ हे पवि-त्रमनवृत्तिवाली, शुचे ! इसमें तुमको डरना न चाहिये क्योंकि मेरे मनका क्षोभ करनेको न विचार कर समीप में टिकी हुई तेरेसे मैं स्खलितहुवाहूं ॥२६॥ और अकाम रेतक्षरने में वैसे मुनिकी तपस्या की हानि नहीं है कि जैसे क्षणभर में अंधा करनेवाले क्रोधवेगरूप शत्रुसे हानि होती है ॥ ३० ॥ व जोकि तपस्या बड़े कष्ट से सं-चीगई है वह कोपसे वैसे नाशको प्राप्त होजाती है कि जैसे मेघघटाको प्राप्त होकर चन्द्रमा व सूर्य्य का प्रकाश हीन होजाताहै ॥ ३१ ॥ अनर्थकर्ता क्रोधसे पुरुषार्थों का

स्त्र्याख्यासमादानात्पुमान्स्निह्यतिदूरतः ॥ २८ ॥ अतःशुचेनभेतव्यन्त्वयाशुचिमनोगते ॥ अतर्कितोपस्थितया त्वयाचस्खलितम्मया ॥ २६ ॥ स्खलनान्नतथाहानिरकामात्तपसोमुनेः ॥ यथाक्षणान्धीकरणाद्धानिःकोपरयादरेः ॥ ३० ॥ कोपात्ततःक्षयंयातिसञ्चितंयत्सुकृच्छ्रतः ॥ यथाभ्रपटलम्प्राप्यप्रकाशःपुष्पवन्तयोः ॥ ३१ ॥ अनर्थकारिणः क्रोधात्कार्थानाम्परिजृम्भणम् ॥ क्वाखलजनोत्सेधात्साधूनाम्परिवर्धनम् ॥ ३२ ॥ अमर्षेकर्षतिमनोमनोभूसम्भवःकुतः ॥ विधुन्तुदेतुदत्युच्चैर्विधुंकुत्रास्तिकौमुदी ॥ ३३ ॥ ज्वलतोरोषदावाग्नेःक्वाशान्तितरोःस्थितिः ॥ दृष्टाकेनापिकिंकापिसिंहात्कलभसुस्थता ॥ ३४ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनप्रदीपःप्रतिघातुकः ॥ चतुर्वर्गस्यदेहस्यपरिहेयोविपश्चिता ॥ ३५ ॥ इदानींश्रृणुकल्याणिकर्तव्यंयत्त्वयाशुचे ॥ अमोघबीजाहिवयन्तद्बीजमुररीकुरु ॥ ३६ ॥ एतस्मिन्नर

सब ओर से स्फुरना कहां है व दुष्ट जनकी बढ़ती से साधुओं का बहुत बढ़ना कहां है ॥ ३२ ॥ व जब क्रोध मनको खींचता है तब स्त्र्यादिविषयक काम कहां है व चंद्रमा को अधिक पीड़ते हुये राहुके होतेहीं चांदनी कहां है ॥ ३३ ॥ व ज्वलते हुये क्रोध दावानल से शांतिवृक्ष का टिकना कहां है और सिंहसे हाथी के बच्चाकी सुस्थता क्या कहीं किसी से देखीगई है ॥ ३४ ॥ जिससे प्रतिकूल हुवा जन सब यत्न से प्रतिनाशक होता है उस लिये धर्मादि चतुर्वर्ग साधनेवाली देहका सबधी क्रोध पण्डितों से परित्याग करने योग्य है ॥ ३५ ॥ हे कल्याणि, शुचे ! इस समय जो करना चाहिये उस को तुम सुनो कि जिससे हमलोग अखडित बीजवाले हैं

यानें हमारा बीज सफल होता है उससे तुम बीजको अङ्गीकार करो याने अपने उदर में धरो ॥ ३६ ॥ तेरे देखने से गिराहुवा यह वीर्य्य जब तुमरो रक्षित होगा तब तुम्हारे बड़ी पवित्र एक रत्नरूप कन्या उत्पन्न होवेगी ॥ ३७ ॥ इस भांति उस मुनि से कहीहुई फिर उपजीसी उस अप्सरा ने महाप्रसाद है ऐसा कहकर मुनि के वीर्य्यको निगल लिया ॥ ३८ ॥ उसके बाद अप्सरा ने कालसे समय आनेपर रूपसंपत्तियों का निधान व आंखोंका आनंददायक एक कन्यारत्न उपजाया ॥ ३९ ॥ और उसही वेदशिरा के आश्रम में उस कन्या को धरकर अप्सराओं में श्रेष्ठ वह शुचि यथारुचि चली गई ॥ ४० ॥ व स्नेहसमेत वेदशिरा ने उस मृगनयनी

क्षितेवीर्येपरिस्कन्नेत्वदीक्षणात ॥ त्वयातवभवित्रेकङ्कन्यारत्नंमहाशुचि ॥ ३७ ॥ इत्युक्तातेनमुनिनापुनर्जातेवसाप्सरा ॥ महाप्रसादइत्युक्त्वामुनेःशुक्रमजीगिलत् ॥ ३८ ॥ अथकालेनदिव्यश्रीकन्यारत्नमजीजनत् ॥ अतीवनयनानन्दिनिधानंरूपसम्पदाम् ॥ ३९ ॥ तस्यैववेदशिरसआश्रमेतान्निधायसा ॥ शुचिरप्सरसांश्रेष्ठाजगामचयथेप्सितम् ॥ ४० ॥ ताञ्चवेदशिराःकन्यांस्नेहेनसमवर्धयत ॥ क्षीरेणस्वाश्रमस्थायाहरिण्याहरिणीक्षणाम् ॥ ४१ ॥ मुनिर्नामददौतस्यैधूतपापेतिचार्थवत् ॥ यन्नामोच्चारणेनापिकम्पतेपातकावली ॥ ४२ ॥ सर्वलक्षणशोभाढ्यांसर्वावयवसुन्दरीम् ॥ मुनिस्तत्याजनोत्सङ्गात्क्षणमात्रमपिक्वचित् ॥ ४३ ॥ दिनेदिनेवर्धमानान्ताम्पश्यन्मुमुदेभृशम् ॥ क्षीरनीरधिवद्रम्यान्निशिचान्द्रमसींकलाम् ॥ ४४ ॥ अथाष्टवार्षिकींदृष्ट्वाताङ्कन्यांसमुनीश्वरः ॥ कस्मैदेयेतिसञ्चिन्त्यतामेवसमपृच्छत ॥ ४५ ॥ वेदशिराउवाच ॥ अयिपुत्रिमहाभागेधूतपापेशुभेक्षणे ॥ कस्मैदद्यांवरायत्वान्त्वमेवाख्याहितंवरम् ॥ ४६ ॥

कन्याको अपने आश्रम में टिकीहुई मृगी के दूधसे भलीभांति वर्धित किया ॥ ४१ ॥ और मुनिने उसको धूतपापा ऐसा अर्थवाला नाम दिया कि जिस नामके कहनेसेही पापोंकी पंक्ति कांपती है उसको धूतपापा कहतेहैं ॥ ४२ ॥ जोकि सकल सुलक्षण व शोभा से संपन्न और सर्वांगसुन्दरी थी उसको मुनिने क्षणमात्र भी कहीं गोद से नहीं त्यागकिया ॥ ४३ ॥ व रात्रि में चन्द्रमाकी रमणीक कलाको देखकर समुद्रकी नाईं दिनोदिन बढती हुई उसको देखता हुवा वह मुनि बहुतही आनंदित होता था ॥ ४४ ॥ तदनंतर आठवर्ष की उस कन्या को देखकर और यह किसके लिये देने योग्य है ऐसे भलीभांति चिन्तनाकर उस मुनीश्वर ने उससेही पूछा ॥ ४५ ॥

वेदशिरा बोले कि, हे महाभागे, शुभनेत्रे, धूतपापे, पुत्रि ! मैं तुमको किस वर के लिये दूँ उस वरको तुमहीं कहो ॥ ४६ ॥ तब अधिक स्नेह से भीगे चित्तवाले पिताका ऐसा वचन सुनकर नीचे मुखनवानेवाली वह धूतपापा बोली ॥ ४७ ॥ धूतपापा बोली कि, हे पितः ! जो मैं सुन्दर वरके लिये तुमसे देने योग्यहूँ तो मैं जिसको तुमसे कहतीहूँ उस के लिये मुझको तुम दो ॥ ४८ ॥ हे तात ! जो तुमको रुचता है सावधान होकर आप सुनें कि जो सबों से अधिक पवित्र व सबो से नमस्कृत है याने सबलोग जिसके नमस्कार करते है ॥ ४९ ॥ व सबलोग जिसको चाहते हैं व जिससे सब सुखोंका उदय होवे व जो कभी न नष्टहोवे व जो सदैव पीछे

अतिस्नेहार्द्रचित्तस्यजनेतुश्चेतिभाषितम् ॥ निशम्यधूतपापासाप्रोवाचविनतानना ॥ ४७॥ धूतपापोवाच ॥ जनेतर्यद्यहन्देयासुन्दरायवरायते॥ तदातस्मैप्रयच्छत्वंयमहङ्कथयामिते ॥४८॥ तुभ्यञ्चरोचतेतातश्रृणोत्ववहितोभवान् ॥ सर्वेभ्योतिपवित्रोयोयःसर्वेषांनमस्कृतः ॥४९॥ सर्वेयमभिलष्यन्तियस्मात्सर्वसुखोदयः ॥ कदाचिद्योननश्येतयःसदैवानुवर्तते॥५०॥इहामुत्रापियोरक्षेन्महापदुदयाद्ध्रुवम्॥सर्वेमनोरथायस्मात्परिपूर्णाभवन्तिहि॥५१॥ दिनेदिनेचसौभाग्यंवर्धतेयस्यसन्निधौ॥ नैरन्तर्येणयत्सेवांकुर्वतोनभयंक्वचित्॥५२॥यन्नामग्रहणादेवकेपिबाधान्नकुर्वते॥ यदाधारेणतिष्ठन्तिभुवनानिचतुर्दश ॥ ५३ ॥ एवमाद्यागुणायस्यवरस्यवरचेष्टितम् ॥ तस्मैप्रयच्छमान्तातममतेपीहशर्मणे ॥ ५४ ॥ एतच्छ्रुत्वापितातस्याभृशम्मुदमवापह ॥ धन्योस्मिधन्यामेपूर्वेयेषामेषासुतान्वये ॥ ५५ ॥ ध्रुवाहिधूतपापासौयस्याईदृग्वि

वर्त्तमान होता है ॥ ५० ॥ और जो इस व उस लोकमें भी बडी विपत्तिके उदयसे भी रक्षाकरे व जिससे सब मनोरथ परिपूर्णही होजाते हैं ॥ ५१ ॥ व जिसके समीप में दिनोदिन सौभाग्य बढ़ती है व जिसकी सदैव सेवा करते हुये मनुष्य को कहीं डर नहीं है ॥ ५२ ॥ व जिसका नाम लेनेसेही कोई लोगभी पीडा नहीं करते है व जिसके आधार से चौदहो लोक टिके है ॥ ५३ ॥ हे तात ! जिस वरके इत्यादि गुण और श्रेष्ठ कर्म्महै उसके लिये इस लोकमें मेरे और तुम्हारेभी सुखके लिये मुझको दीजिये ॥ ५४ ॥ इस वचन को सुनकर उसका पिता बहुतही आनंद को प्राप्तहुवा कि मैं धन्यहूँ व जिनके वंश मे यह कन्या है वे मेरे पहले पितरभी धन्य है ॥ ५५ ॥

व जिसकी इस प्रकार की बुद्धि है वह यह कन्या ध्रुवाही (अविचल) धूतपापा है याने पाप इससे दूर भागगये हैं निश्चय है कि इस लोक में ऐसे गुणगणोंसे बहुत श्रेष्ठ या गरू कौन होवे है ॥ ५६ ॥ अथवा पुण्यसमूह के उदय विना वह कैसे मिलने योग्य है इस भांति क्षणभर मनको सावधान कर उस मुनिश्रेष्ठने ॥ ५७ ॥ ऐसे गुणोदयवाले उस वरको ज्ञानदृष्टि से भलीभांति देखकर याने विचार कर अनंतर उस धन्या कन्या से कहा कि हे शुभचाहिनि वत्से ! सुनो ॥ ५८ ॥ पिता बोला कि, हे विचक्षणे ! तुमने वरके जे ये गुण कहा इन गुणोंका आधार वरहै ऐसा निश्चय किया गयाहै ॥ ५९ ॥ परंतु बहुतही शुभग आकारवाला वह सुखसे मिलने

धामतिः ॥ ईदृग्विधैर्गुणगणैर्गरिम्णाकोत्रवैभवेत् ॥ ५६ ॥ अथवासकथंलभ्योविनापुण्यभरोदयम् ॥ इतिक्षणंसमाधायमनःसमुनिपुङ्गवः ॥ ५७ ॥ ज्ञानेनतंसमालोच्यवरमीदृग्गुणोदयम् ॥ धन्याङ्कन्यांबभाषेथश्रृणुवत्सेशुभैषिणि॥ ५८ ॥ पितोवाच ॥ वरस्ययेत्वयाप्रोक्ताशुणाएतेविचक्षणे ॥ एषांगुणानामाधारोवरोस्तीतिविनिश्चितम् ॥५९ ॥ परंत्सुखलभ्योननितरांशुभगाकृतिः ॥ तपःपणेनसक्रय्यःसुतीर्थविपणौक्वचित् ॥ ६० ॥ नार्थभारैःससुलभोनकौलीन्येनकन्यके ॥ नवेदशास्त्राभ्यसनैर्नचैश्वर्यबलेनवै ॥ ६१ ॥ नसौन्दर्येणवपुषानबुद्ध्यानपराक्रमैः ॥ एकयैवमनःशुद्ध्याकरणानाञ्जयेनच॥ ६२ ॥ महातपःसहायेनदमदानदयायुजा॥ लभ्यतेसमहाप्राज्ञोनान्यथासदृशःपतिः ॥ ६३ ॥ इतिश्रुत्वाथसाकन्यापितरंप्रणिपत्यच ॥ अनुज्ञाम्प्रार्थयामासतपसेकृतनिश्चया ॥ ६४ ॥ स्कन्दउवाच॥ कृतानुज्ञाजनेत्रासा

योग्य नहीं है किंतु वह कहीं अच्छे तीर्थरूप हाटमें तपस्यारूप मोलसे खरीदने योग्य है ॥ ६० ॥ हे कन्यके ! वह धनसमूहों व कुलीनतासे सुलभ नहीं है और वेदों व शास्त्रों के अभ्यास से नहीं ऐश्वर्य्यबलसे भी नहीं ॥ ६१ ॥ सुन्दरतासंयुक्त देहसे नहीं बुद्धिसे नहीं और पराक्रमों से भी नहीं सुलभ है परंतु एक मनकी शुद्धि सेही और जोकि इन्द्रियों का जीतना ॥ ६२ ॥ बड़ी तपस्या सहायकवाला व दम (बाहरकी इन्द्रियोंका रोंकना) दान और दयासे युक्तहै उससे वह बड़ाबुद्धिमान् समान स्वामी मिलता है अन्यथा नहीं मिलता है ॥ ६३ ॥ ऐसे सुनकर तदनंतर पिता के प्रणाम कर तपस्या के लिये निश्चय किये हुई उस कन्या ने प्रार्थना

किया ॥ ६४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, जिसके लिये पिताने आज्ञा किया था वह कन्या परमपवित्र क्षेत्र में उत्तम तपको तपती भई जो कि तप तपस्वियों से असाध्य है याने उनसे भी नहीं होसक्ता है ॥ ६५ ॥ कहां वह कोमलांगी कन्या व कहां कठोर देहसे संसाध्य वह वैसा तप याने बहुत अन्तर है परंतु सज्जनों के चित्तकी धारणा आश्चर्य्यरूप है ॥ ६६ ॥ धारा से गिरती हुई बूंदीवाली व बड़ी बयारवाली संपूर्ण वर्षाओ में उसने अवकाशसमेत शिलाओं में बहुती रातें बिताया ॥ ६७ ॥ और गर्जने का घोरशब्द सुनकर व बिजुलीका चमकना देखकर अखंड गिरते हुये जल के कणों से भीगीहुई वह कुछभी न कांपती

क्षेत्रेपरमपावने ॥ तपस्ततापपरमंयदसाध्यंतपस्विभिः ॥ ६५ ॥ क्वसाबालातिमृद्वङ्गीक्वचतत्तादृशन्तपः ॥ कठोरव र्ष्मसंसाध्यमहोसच्चेतसोधृतिः ॥ ६६ ॥ धारासारासुवर्षासुमहावातवतीष्वलम् ॥ शिलासुसावकाशासुसाबह्वीरनय न्निशाः ॥ ६७ ॥ श्रुत्वागर्जरवंघोरंदृष्ट्वाविद्युच्चमत्कृतीः ॥ आसारशीकरैःक्लिन्नानचकम्पेमनाक्चसा ॥६८॥ तडित्स्फु रन्तीत्वसकृत्तमिस्रासुतपोवने ॥ यातायातंकरोतीवद्रष्टुन्तत्तपसःस्थितिम् ॥ ६९ ॥ तपर्तुरेवसाक्षाच्चकुमारीकैतवा त्किल ॥ पञ्चाग्नीन्परिधायात्रतपस्यतितपोवने ॥ ७० ॥ जलाभिलाषिणीबालानमनागपिसापिबत् ॥ कुशाग्रतोय पृषतंपञ्चाग्निपरितापिता॥७१॥रोमाञ्चकञ्चुकवतीवेपमानतनुच्छदा ॥ पर्यक्षिपत्त्तपाःक्षामातपसाहैमनीश्चसा ॥७२॥ निशीथिनीषुशिशिरेश्रयन्तीसारसंरसम् ॥ मेनेसासारसैःकेयमुद्यताद्येतिपद्मिनी ॥ ७३ ॥ मनस्विनामपिमनोराग

भई ॥ ६८ ॥ रातों में बार बार चमकती हुई बिजुली उसकी तपस्या की स्थिति देखने के लिये तपोवन में आनाजानाकरती सी थी ॥ ६९ ॥ व साक्षात् ग्रीष्मऋतु कुमारी के मिष से प्रसिद्ध पञ्चाग्नियों को सब ओर धारण कर तपोवन में तपस्या करता है ॥ ७० ॥ व पञ्चाग्नि से परितापित हुई पानी पीने को अभिलाषवाली उस कन्या ने थोड़े भी कुशाग्र के जलबिन्दु को न पिया ॥ ७१ ॥ और रोमाञ्च कञ्चुकवाली व थरथराती हुई त्वचावाली व तपस्या से दुबली देहवाली उस बाली ने हेमन्त ऋतुकी रातों को व्यतीत किया ॥ ७२ ॥ और शिशिर ऋतुकी रात्रियोंमें सारभूत सम्यक्प्रकारके धर्मविषय रस को सेवती हुई वह सारसों से मानी गई कि

आज यह कौन पद्मिनी भलीभांति उद्यत भई है ॥ ७३ ॥ वसन्तऋतु में मनस्वियों तपस्वियों का भी मन अनुरागता को सिरजताहै याने अनुरागवाला होजाता है और उसके ओष्ठ पल्लवों से निकलाहुआ राग आम्रके पल्लवों से हरागया इससे यह सूचित हुआ कि बाहर भीतर भी वैराग्य होने से वह अन्य तपस्वियों से श्रेष्ठथी व उसकी तपस्या भी बहुत अधिक थी ॥ ७४ ॥ व वन में बसती हुई उस बालाने वसन्त ऋतु में कोकिलाओं का काकलीरव याने पिकों की मधुरध्वनि सुनकर अचल मनको तपस्या मेंही किया याने वसन्त में कैली की बोली सुनकर भी उसका मन चलायमान न हुआ ॥ ७५ ॥ और वह बन्धूक (दुपहरी के फूल) में ओठोंकी शोभा और कलहंसों में विलासरूप गमन को धरोहरसी धरकर शरदृऋतु में तपस्या में रत (स्नेहवाली) हुई ॥ ७६ ॥ व विषयभोगों के त्यागनेवाली वह धूत-

तांसृजतेमधौ ॥ तदोष्ठपल्लवाद्रागोजहेमाकन्दपल्लवैः ॥ ७४ ॥ वसन्तेनिवसन्तीसावनेबालाचलंमनः ॥ चक्रेतपस्यपिश्रुत्वाकोकिलाकाकलीरवम् ॥ ७५ ॥ बन्धुजीवेऽधररुचिंकलहंसेकलागतीः ॥ निक्षेपमिवसान्क्षिप्त्वाशरद्यासीत्तपोरता ॥ ७६ ॥ अपास्तभोगसंपर्काभोगिनांवृत्तिमाश्रिता ॥ क्षुदुद्बोधनिरोधायधूतपापातपस्विनी ॥ ७७ ॥ शाणेनमणिवल्लीढाकृशाप्यायादनर्घताम् ॥ तथापितपसाक्षामादिदीपेतत्तनुस्तराम् ॥ ७८ ॥ निरीक्ष्यतांतपस्यन्तींविधिःसंशुद्धमानसाम् ॥ उपेत्योवाचसुप्रज्ञेप्रसन्नोस्मिवरंवृणु ॥ ७९ ॥ साचतुर्वक्त्रमालोक्यहंसयानोपरिस्थितम् ॥ प्रणम्यप्राञ्जलिःप्रीताप्रोवाचाथप्रजापतिम् ॥ ८० ॥ धूतपापोवाच ॥ पितामहवरोमह्यंयदिदेयोवरप्रद ॥ सर्वेभ्यःपावनेभ्योपिकुरुमाम

पापा तपस्विनी क्षुधा (भूख) जागनेको दूर करनेके लिये सर्प्पोंकी वृत्तिको सेवतीभई याने बयार भखकर रहगई ॥७७॥ और शानसे घिसी क्षीणहुई भी मणि जैसे अत्यन्त प्रकाशता को आती है (प्राप्त होती है) वैसेही तपस्या से कृश उसकी देहने बहुत ही दीप्ति किया ॥ ७८ ॥ ऐसे भलीभांति शुद्धमनवाली व तपस्या करती हुई उस को देखकर व समीप में आकर ब्रह्माजी ने कहा कि हे सुप्रज्ञे ! मैं प्रसन्न हूं तुम वरको अङ्गीकार करो ॥ ७९ ॥ तदनन्तर हंस वाहनपर टिकेहुये चारमुखवाले ब्रह्माजी को सब ओर से देखकर व उनके प्रणामकर हाथ जोड़ व प्रसन्नमन हुई वह प्रजापति से बोली ॥ ८० ॥ धूतपापा बोली कि हे वरप्रद, पितामह ! जो मेरे लिये वर देने

योग्य है तो सब पवित्रकर्ताओं से भी अधिक मुझको पवित्रकारिणी करो ॥८१॥ ऐसा उसका प्यारा या वाञ्छित सुनकर अनन्तर बहुतही सन्तुष्टमनवाले सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी उस विमलवाहिनी निर्मल हुई के प्रति बोले ॥८२॥ ब्रह्माजी बोले कि, हे धूतपापे ! इस लोक में सर्वत्र जे पवित्र हैं उनसे अधिक अतुलपवित्र तुम मेरे वर से होजावो ॥ ८३ ॥ हे कन्यके ! भूमि अन्तरिक्ष और स्वर्ग में उत्तरोत्तर याने एक से अधिक एक इस क्रम से पवित्र जे साढ़े तीन करोड तीर्थ हैं ॥ ८४ ॥ वे सब तीर्थ तुम्हारी देह में प्रति रोम में बसें और यह निश्चय है कि मेरे वचन से तुम सबसे अधिक पावना होवो ॥ ८५ ॥ ऐसा कहकर ब्रह्माजी अन्तर्द्धान होगये उसके

तिपावनीम् ॥ ८१ ॥ स्रष्टातदिष्टमाकर्ण्यनितरांतुष्टमानसः ॥ प्रत्युवाचाथताम्बालांविमलांविमलैषिणीम् ॥ ८२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ धूतपापेपवित्राणियानिसन्त्यत्रसर्वतः ॥ तेभ्यःपवित्रमतुलंत्वमेधिवरतोमम ॥ ८३ ॥ तिस्रःकोट्योऽर्धकोटीचसन्तितीर्थानिकन्यके ॥ दिविभुव्यन्तरिक्षेचपावनान्युत्तरोत्तरम् ॥ ८४ ॥ तानिसर्वाणितीर्थानित्वत्तनौप्रतिलोम वै ॥ वसन्तुममवाक्येनभवसर्वातिपावनी ॥ ८५ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेवेधाःसापिनिर्धूतकल्मषा ॥ धूतपापोटजंप्राप्ताथोवेदशिरसःपितुः ॥ ८६ ॥ कदाचित्तांसमालोक्यखेलन्तीमुटजाजिरे ॥ धर्मस्तत्तपसाकृष्टःप्रार्थयामासकन्यकाम् ॥ ८७ ॥ धर्मउवाच ॥ पृथुश्रोणिविशालाक्षिक्षामोदरिशुभानने ॥ क्रीतःस्वरूपसम्पत्त्यात्वयाहंदेहिमेरहः ॥ ८८ ॥ नितराम्बाधतेकामस्त्वत्कृतेमांसुलोचने॥ अज्ञातनाम्नासातेनप्रार्थितेत्यसकृद्दृढः ॥ ८९ ॥ उवाचसापितादातातंप्रार्थयसुदुर्मते ॥

बाद पापों को कँपाती हुई वह धूतपापा भी वेदशिरानामक पिता की पर्णशाला जोकि लक्ष्मीनृसिंहके निकटमें थी उसको प्राप्तहुई ॥ ८६ ॥ व कभी पर्णशाला के आंगन में खेलती हुई उस कन्या को देखकर उसकी तपस्या से खींचेहुये आकर धर्म ने प्रार्थना किया ॥ ८७ ॥ धर्म बोले कि, पृथुश्रोणि, विशालाक्षि, कृशोदरि, शुभानने ! तुमने अपनी सुन्दरतासम्पत्ति से मुझको मोललिया इससे मुझको एकान्त दो ॥ ८८ ॥ हे सुलोचने ! तेरे लिये मुझको काम बहुतही पीडताहै इस भांति वह अज्ञातनामवाले पुरुष से बार बार प्रार्थना कीगई क्यों कि उस धर्म का आग्रह था ॥ ८९ ॥ तब उसने भी कहा कि हे सुदुर्मते ! मेरे देनेवाला पिता है उससे तू

प्रार्थना कर जिससे यह सनातनी श्रुति है कि कन्या पिता से देने योग्य होती है ॥ ९० ॥ ऐसा वचन सुनकर होनेहारे अर्थ की गुरुतासे अधीरहुये धर्म ने धैर्य्य से सोहती हुई उस कन्या से फिर आग्रह किया याने हठ से बारबार अपना अभिप्राय कहा ॥ ९१ ॥ धर्म बोले कि, हे सुभगे, सुन्दरि ! मैं तेरे पिता से न प्रार्थना करूंगा तू गान्धर्व व्याह से मेरा वाञ्छित पूरकर ॥ ९२ ॥ इसभांति आग्रह समेत वचनको सुनकर वह पिता का क्रन्या फल दिया चाहतीहुई कुमारिका उस ब्राह्मणसे फिर बोली ॥ ९३ ॥ कि अरे जड़मते ! तू मत बोल यहां से चलाजा ऐसे कन्यासे कहा हुआ कामसे आतुर वह न टिका याने अपना कहना न बन्द किया ॥ ९४ ॥ तदनन्तर तपस्या के बल से महुत प्रबल हुई उस कन्या ने उसको शाप दिया कि जिससे तू बहुतही जड़ है उसलिये तुम जलका आधार नद होवो ॥९५॥ उस कन्यासे ऐसे शापेहुये व क्रोध समेत धर्म ने शाप दिया कि हे सुदुर्मते, कठोरहृदये ! तुम भी शिला होजावो ॥ ९६ ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, हे मुने ! ऐसे परस्पर के शाप से अविमुक्त (काशी) महाक्षेत्र में बड़ाभारी धर्मनद नामसे प्रसिद्ध धर्मनदरूपहोगया ॥ ९७ ॥ और त्रस्तहुई उसने भी शिला होने का कारण पितासे कहा और ध्यान से धर्म को जानकर तदनन्तर वह मुनि कन्या से बोला ॥ ९८ ॥ हे पुत्रि ! तू मत डर मैं तेरा सब शुभोदय करूंगा कि उसका शाप भी अन्यथा

पितृप्रदेयायत्कन्याश्रुतिरेषासनातनी ॥ ९० ॥ निशम्येतिवचोधर्मोभाविनोर्थस्यगौरवात् ॥ पुनर्निर्बन्धयांचक्रेऽपधृतिर्धृतिशालिनीम् ॥ ९१ ॥ धर्मउवाच ॥ नप्रार्थयेहंसुभगेपितरंतवसुन्दरि ॥ गान्धर्वेणविवाहेनकुरुमेत्वंसमीहितम् ॥ ९२ ॥ इतिनिर्बन्धवद्वाक्यंसानिशम्यकुमारिका ॥ पितुःकन्याफलंदित्सुःपुनराहेतितंद्विजम् ॥ ९३ ॥ अरेजडमतेमात्वंपुनर्ब्रूहीतियाहितः ॥ इत्युक्तोपिकुमार्यासनातिष्ठन्मदनातुरः ॥ ९४ ॥ ततःशशापतंबालाप्रबलातपसोबलात् ॥ जडोसिनितरांयस्माज्जलाधारोनदोभव ॥ ९५ ॥ इतिशप्तस्तयासोथतांशशापक्रुधान्वितः ॥ कठोरहृदयेत्वन्तुशिलाभवसुदुर्मते ॥ ९६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्यन्योन्यस्यशापेनमुनेधर्मोनदोऽभवत् ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेख्यातोधर्मनदोमहान् ॥ ९७॥ साप्याहपितरंत्रस्तास्वशिलात्वस्यकारणम् ॥ ध्यानेनधर्मंविज्ञायमुनिःकन्यामथाब्रवीत् ॥ ९८ ॥ माभैःपुत्रिकरिष्यामितवसर्वंशुभोदयम् ॥ तच्छापोनान्यथाभूयाच्चन्द्रकान्तशिलाभव ॥ ९९ ॥ चन्द्रोदयमनुप्राप्यद्रवी

न होवे इससे तुम चन्द्रकान्त पत्थर होजावो ॥ ९९ ॥ हे साध्वि, सुते ! जो कि चन्द्रमा के उदय को प्राप्त होकर पघिले हुये शरीरवाली होकर तदनन्तर धूतपापा ऐसे नाम से प्रसिद्ध तुम नदी होवो ॥ १०० ॥ हे कन्ये ! जिन गुणों की तुमने प्रार्थना किया उन गुणों से परिपूर्ण अंगवाला वह सुशोभन धर्मनद तेरा भर्ता (पति) होवेगा ॥ १ ॥ हे सद्बुद्धे ! अन्य भी सुनो कि मेरीभी तपस्याके बलसे प्राकृत (पहलारूप) जल ये दोनों रूप आप दोनोंके होवेंगे ॥ २ ॥ हे परन्तप ! चन्द्रकांत शिलाहुई उस धूतपापा कन्या को आश्वासनकर बुद्धिमान् पिताने अनुग्रह किया ॥ ३ ॥ हे मुने ! तबसे लगाकर महापातकनाशन धर्म जलरूप से काशीमें धर्मनद

भूततनुस्ततः ॥ धुनीभवसुतेसाध्विधूतपापेतिविश्रुता ॥ १०० ॥ सचधर्मनदःकन्येतवभर्तासुशोभनः ॥ तैर्गुणैःपरिपूर्णाङ्गोयेगुणाःप्रार्थितास्त्वया ॥ १ ॥ अन्यच्चशृणुसद्बुद्धेममापितपसोबलात् ॥ द्वैरूप्यंभवतोर्भाविप्राकृतंचद्रवञ्चवै ॥ २ ॥ इत्याश्वास्यपिताकन्यांधूतपापांपरन्तप ॥ चन्द्रकान्तशिलाभूतामनुजग्राहबुद्धिमान् ॥ ३ ॥ तदारभ्यमुनेकाश्यांख्यातोधर्मनदोह्रदः ॥ धर्मोद्रवस्वरूपेणमहापातकनाशनः ॥ ४ ॥ धुनीचधूतपापासासर्वतीर्थमयीशुभा ॥ हरेन्महाघसंघातान्कूलजानिवपादपान् ॥ ५ ॥ तत्रधर्मनदेतीर्थेधूतपापासमन्विते ॥ यदानस्वर्धुनीतत्रतदाब्रध्नस्तपोऽव्यधात् ॥ ६ ॥ गभस्तिमालीभगवान्गभस्तीश्वरसन्निधौ ॥ शीलयन्मङ्गलांगौरींतपउग्रंचचारह ॥ ७ ॥ नाम्नामयूखादित्यस्यतीर्थेतत्रतपस्यतः ॥ किरणेभ्यःप्रववृतेमहास्वेदोतिखेदतः ॥ ८ ॥ किरणेभ्यःप्रवृत्तायामहास्वेदस्यसन्ततिः ॥ ततःसाकिरणानामजातापुण्यातरङ्गिणी ॥ ९ ॥ महापापान्धतमसंकिरणाख्यातरङ्गिणी ॥ ध्वंमयेत्स्नानमा

कुण्ड कहागया याने प्रसिद्ध भया ॥ ४ ॥ और सब तीर्थमयी मङ्गलमयी नदीरूप हुई वह धूतपापा तीरमें उपजेहुये वृक्षोंकी नाई बड़े पापसमूहों को हरलेती है ॥ ५ ॥ वहां जब गङ्गा न थीं तब उस धूतपापा समेत धर्मनदतीर्थ में सूर्य्यदेव ने तपस्या कियाथा ॥ ६ ॥ गभस्तीश्वर के समीप मे मङ्गलागौरी को ध्यानते हुये ऐश्वर्यसम्पन्न किरणमाली (सूर्य) जीने हर्षसे उग्र तपस्या किया ॥ ७ ॥ और उस तीर्थमें तपस्या करते हुये मयूखादित्यनामक सूर्य्यके अत्यन्त खेदसे किरणों से बहुत स्वेद (पसीना) वर्तमान होगया ॥ ८ ॥ व जोकि बडे स्वेदका विस्तार किरणों से प्रवृत्त हुआ उससे वह किरणानाम पुण्यनदी होगई ॥ ९ ॥ धूतपापा से मिलीहुई किरणा

नाम प्रसिद्धनदी, स्नानमात्र से महापापरूप अन्धतम को विध्वंस करदेती है ॥ १० ॥ पहले तो अपना को राव तीर्थरूप करनेवाली जिस धूतपापा ने पापों को भगादिया उससे मिलाहुआ धर्मनद पुण्यरूप रहा ॥ ११ ॥ तदनन्तर भी जिसका नाम सुमिरने सेही महामोह अन्धता (असामर्थ्य) को प्राप्त होवे है वह सूर्य्य से बढाईहुई किरणाभी आकर मिलगई ॥ १२ ॥ इस भांति काशीमें स्रवती (झिरती) हुई पापोंकी विनाशिनी किरणा और धूतपापा ये दोनों नदियां शुभजलवाले उस शुभधर्मनद में टिकगई ॥ १३ ॥ तदनन्तर उस प्रसिद्ध भगीरथराजाके साथ भागीरथीगङ्गा प्राप्तहोगई और यमुना व सरस्वती भी भागीरथी गङ्गाके साथ भली-

त्रेणमिलिताधूतपापया ॥ १० ॥ आदौधर्मनदःपुण्योमिश्रितोधूतपापया॥ययाधूतानिपापानिसर्वतीर्थीकृतात्मना॥ ११ ॥ ततोपिमिलितागत्यकिरणारविणैधिता ॥ यन्नामस्मरणादेवमहामोहोन्धतांव्रजेत् ॥ १२ ॥ किरणाधूतपापे चतस्मिन्धर्मनदेशुभे ॥ स्रवन्त्यौपापसंहर्त्र्यौवाराणस्यांशुभद्रवे ॥ १३ ॥ ततोभागीरथीप्राप्तातेनदेलीपिनासह ॥ भागीरथीसमायातायमुनाचसरस्वती ॥ १४ ॥ किरणाधूतपापाचपुण्यतोयासरस्वती ॥ गङ्गाचयमुनाचैवपञ्चनद्यो त्रकीर्तिताः ॥ १५ ॥ अतःपञ्चनदंनामतीर्थंत्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ तत्राप्लुतोनगृह्णीयाद्देहंनापाञ्चभौतिकम् ॥ १६ ॥ अस्मिन्पञ्चनदीनाञ्चसम्भेदेघौघभेदिनि ॥ स्नानमात्रात्प्रयात्येवभित्त्वाब्रह्माण्डमण्डपम् ॥ १७ ॥ तीर्थानिसन्तिभू यांसिकाश्यामत्रपदेपदे ॥ नपञ्चनदतीर्थस्यकोट्यंशेनसमान्यपि ॥ १८ ॥ प्रयागेमाघमासेतुसम्यक्स्नातस्ययत्फल

भांति आगई ॥ १४ ॥ ऐसे यहां किरणा व धूतपापा व पुण्यजलवाली सरस्वती व गङ्गा और यमुना ये पांच नदियां कहीगई हैं ॥ १५ ॥ इससे पञ्चनद नाम तीर्थ तीनोंलोकों में विशेषता से सुनागया याने प्रसिद्धभयाहै उसमें नहायाहुआ मनुष्य पांच भूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी) मयी देहको न धारणकरेगा याने मुक्त होजावेगा ॥ १६ ॥ व पाप विदारनेवाले इस पांच नदियों के संगममें स्नानमात्र से ब्रह्माण्डमण्डप को भेदनकर ऊपरकोही चलाजाता है ॥ १७ ॥ इस काशीमें पग पग पर बहुतसेभारी तीर्थ हैं परन्तु पञ्चनदतीर्थ के कोट्यंश के समान भी नहीं हैं याने पञ्चनदतीर्थ सबोंसे बड़ाहै ॥ १८ ॥ और प्रयाग में माघमास

भंर भलीभांति नहाये हुये प्राणीका जो फल है वह फल काशी में एक दिन पञ्चनद के स्नान से निश्चयकर होताहै॥ १९॥ और पञ्चनदतीर्थ मे स्नानकर व उसमे पितरों का तर्प्पण कर व बिन्दुमाधवजी की पूजाकर नर फिर जन्मसेवी न होवेगा ॥ २०॥ व पुण्यरूप पञ्चनदतीर्थ में पितरोंके लिये जितनी संख्यावाले तिल दियेगये उतने वर्ष की तृप्ति होवे है॥ २१॥ व जिन्होंने श्रद्धासे पञ्चनद नामक शुभतीर्थ में श्राद्धको किया उनके पितर जे कि अनेकों योनियोंमें गयेहों वेभी मुक्तहोजाते हैं॥ २२॥ और श्राद्धके विधानसे पञ्चनद की महिमा को देखकर यमलोक में पितृगणों से यह गाथा सब ओर गाईजाती है॥ २३॥ कि हमारा भी वंशवाला कोई इस काशीमें पञ्चनदतीर्थ को

म् ॥ तत्फलंस्याद्दिनैकेनकाश्यांपञ्चनदेध्रुवम् ॥ १९॥ स्नात्वापञ्चनदेतीर्थेकृत्वाचपितृतर्पणम् ॥ बिन्दुमाधवमभ्यर्च्यनभूयोजन्मभाग्भवेत् ॥ २० ॥ यावत्सङ्ख्यास्तिलादत्ताःपितृभ्योजलतर्पणे ॥ पुण्येपञ्चनदेतीर्थेतृप्तिःस्यात्तावदाब्दिकी ॥ २१ ॥श्रद्धयायैःकृतंश्राद्धंतीर्थेपञ्चनदेशुभे ॥ तेषांपितामहामुक्तानानायोनिगताअपि ॥ २२ ॥ यमलोके पितृगणैर्गाथेयंपरिगीयते ॥ महिमानंपाञ्चनदंदृष्ट्वाश्राद्धविधानतः ॥ २३ ॥ अस्माकमपिवंश्योत्रकश्चिच्छ्राद्धंकरिष्यति ॥ काश्यांपञ्चनदंप्राप्ययेनमुच्यामहेवयम् ॥ २४ ॥ इयंगाथाप्रतिदिनंश्राद्धदेवस्यसन्निधौ ॥ पितृभिःपरिगीयेतकाश्यांपञ्चनदंप्रति ॥ २५ ॥ तत्रपञ्चनदेतीर्थेयत्किञ्चिद्दीयतेवसु ॥ कल्पक्षयेपिनभवेत्तस्यपुण्यस्यसंक्षयः ॥ २६ ॥ वन्ध्यापिवर्षपर्यन्तंस्नात्वापञ्चनदेह्रदे ॥ समर्च्यमङ्गलांगौरींपुत्रंजनयतिध्रुवम् ॥ २७ ॥ जलैःपाञ्चनदैःपुण्यैर्वाससापरिशोधितैः ॥ महाफलमवाप्नोतिस्नपयित्वेष्टदेवताम् ॥ २८ ॥ पञ्चामृतानांकलशैरष्टोत्तरशतोन्मितैः ॥ तु

प्राप्त होकर श्राद्धकरेगा कि जिससे हम सबलोग मुक्त होजावैंगे ॥ २४ ॥ व यमराजजी के समीप प्रतिदिन काशीमें पञ्चनदतीर्थ के प्रति यह गाथा पितरों से सब ओर गाईजाती है ॥ २५ ॥ और उस पञ्चनदतीर्थ में जो कुछ धन दियाजाता है उस पुण्यका नाश कल्पान्त में भी नहीं होगा ॥ २६ ॥ व वन्ध्यास्त्री भी वर्ष पर्यन्त पञ्चनदकुण्ड में स्नानकर व मंगलागौरी की भलीभांति पूजाकर निश्चय से पुत्र को उत्पन्न करती है ॥ २७॥ व वस्त्रसे छानेहुये पञ्चनद के पुण्य रूप पानीसे अपने इष्टदेव को स्नान कराकर बडे फलको प्राप्त होताहै ॥ २८ ॥ क्योंकि पञ्चामृतोंके आठ अधिक सौसंख्यक कलशों से तौलाहुआ पञ्चनद के जलका एक

बिन्दु अधिकताको प्राप्तहुआहै ॥ २९ ॥ इस लोकमें विधानसे बनायेहुये पञ्चकूर्च याने पञ्चगव्यके पीनेसे जो शुद्धि कहीगईहै वह शुद्धि श्रद्धासे पञ्चनदके जलका एक बिन्दु पीकर होजाती है ॥३०॥ और राजसूय व अश्वमेधयज्ञके अन्तवाले स्नानसे जो फल होवे उससे सौगुणा फल पञ्चनद के जलद्वारा स्नानसे होवेगा ॥३१॥ किन्तु राजसूय और अश्वमेध ब्रह्माजी की दो घड़ीतक स्वर्गके साधनेवाले होवेंगे और पञ्चनदतीर्थमें नहाना मुक्तिके लिये होताहै ॥ ३२ ॥ व स्वर्गराज्यका अभिषेक भी वैसा सन्तों के सम्मत नहीं है याने उनसे भलीभांति नहीं मानागयाहै जैसा कि अधिक सुख देनेवाला पञ्चनदतीर्थका अभिषेक होताहै ॥ ३३ ॥ और काशीपुरी

लितोधिकतांयातोबिन्दुःपाञ्चनदाम्भसः ॥ २९ ॥ पञ्चकूर्चेनपीतेनयात्रशुद्धिरुदाहृता ॥ साशुद्धिःश्रद्धयाप्राश्यबिन्दुंपाञ्चनदाम्भसः ॥ ३० ॥ भवेदवभृथस्नानाद्राजसूयाश्वमेधयोः ॥ यत्फलंतच्छतगुणंस्नानात्पाञ्चनदाम्भसा ॥ ३१ ॥ राजसूयाश्वमेधौचभवेतांस्वर्गसाधनम् ॥ आब्रह्मघटिकाद्वन्द्वंमुक्त्यैपाञ्चनदाप्लुतिः ॥३२॥ स्वर्गराज्याभिषेकोपिनतथासम्मतःसताम् ॥ अभिषेकःपाञ्चनदोयथानल्पसुखप्रदः ॥ ३३ ॥ वरंवाराणसींप्राप्यभृत्यःपञ्चनदोक्षिणाम् ॥ नान्यत्रसेवकीभूतभूपकोटिर्नरेश्वरः ॥ ३४ ॥ यैर्नपञ्चनदेस्नातंकार्त्तिकेपापहारिणि ॥ तेऽद्यापिगर्भेतिष्ठन्तिपुनस्तेगर्भवासिनः ॥ ३५ ॥ कृतेधर्मनदंनामत्रेतायांधूतपापकम् ॥द्वापरेबिन्दुतीर्थञ्चकलौपञ्चनदंस्मृतम् ॥३६॥ शतंसमास्तपस्तप्त्वाकृतेयत्प्राप्यतेफलम् ॥ तत्कार्त्तिकेपञ्चनदेसकृत्स्नानेनलभ्यते ॥ ३७ ॥ इष्टापूर्तेषुधर्मेषुयावज्जन्मकृतेषु

को प्राप्त होकर पञ्चनदतीर्थ के जलसे अभिषेक करनेवाले लोगोंका भृत्य (सेवक) श्रेष्ठ है परन्तु अन्यत्र करोड़ों राजा जिसके सेवक हुयेहैं वह चक्रवर्त्ती नरेश भी श्रेष्ठ नहीं है ॥३४॥ व जिन्होंने कार्त्तिकमासमें पापहारी पंचनदतीर्थ में नहीं नहाया वे लोग आजभी गर्भमें टिकेहैं और वे फिरभी गर्भवासी होवेंगे ॥ ३५ ॥ सत्ययुग में इसका धर्मनद नामथा व त्रेतामें धूतपापक व द्वापर में बिन्दुतीर्थ और कलियुगमें पंचनद कहागया है ॥ ३६ ॥ सत्ययुग में सौवर्षतक तपस्या कर जो फल प्राप्त होताहै वह कार्त्तिकमास में पंचनदके जलमें एकबार स्नानसे मिलताहै ॥ ३७ ॥ और जन्मपर्यन्त अन्यत्र इष्ट (अन्तर्वेदीमें दियेहुये दान) व पूर्त (वापी कूप त-

ड़ागादिकों का बनाना) धर्मोंके कियेहुये होतेही जो फलहोवे वह कार्त्तिकमें धर्मनदके स्नानसे होवेगा ॥ ३८ ॥ व धूतपाप (पंचनद) के समान तीर्थ भूतल में कहीं नहीं है जिसके एक स्नानसे तीन जन्मोंका बटोराहुआ पाप नष्ट होजावे है ॥ ३९ ॥ व बिन्दुतीर्थ (पंचनद) में रत्तीभर सोना देकर मनुष्य कहीं दरिद्री नहीं होताहै और स्वर्णसे कभी नहीं वियुक्तहोताहै ॥ ४० ॥ गऊ, भूमि, तिल, सोना, घोडे, वस्त्र, अन्न, माला और भूषण आदि जो कुछहै उसको इस बिन्दुतीर्थमें दानकर अक्षय फलको पावेगा ॥ ४१ ॥ व पुण्यरूप पंचनदतीर्थ के समीप प्रज्वलित अग्निमें विधानसे एकभी आहुति देकर करोड होम का फलपावेगा ॥४२॥ जोकि धर्मादि चतुर्वर्गका

यत् ॥ अन्यत्रस्यात्फलंतत्स्याद्धूर्जेधर्मनदाप्लुवात् ॥ ३८॥ नधूतपापसदृशंतीर्थंक्वापिमहीतले ॥ यदेकस्नानतोनश्येद घंजन्मत्रयार्जितम् ॥ ३९ ॥ बिन्दुतीर्थेनरोदत्त्वाकाञ्चनंकृष्णलोन्मितम् ॥ नदरिद्रोभवेत्क्वापिनस्वर्णेनवियुज्यते ॥ ४० ॥ गोभूतिलहिरण्याश्ववासोन्नस्रग्विभूषणम् ॥ यत्किञ्चिद्बिन्दुतीर्थेत्रदत्त्वाक्षयमवाप्नुयात् ॥ ४१ ॥ एकाम प्याहुतिंदत्त्वासमिद्धेग्नौविधानतः ॥ पुण्येधर्मनदेतीर्थेकोटिहोमफलंलभेत् ॥ ४२ ॥ नपञ्चनदतीर्थस्यमहिमानमन न्तकम् ॥ कोपिवर्णयितुंशक्तश्चतुर्वर्गशुभौकसः ॥ ४३ ॥ श्रुत्वाख्यानमिदंपुण्यंश्रावयित्वापिभक्तितः ॥ सर्वपापविशु द्धात्माविष्णुलोकेमहीयते ॥ १४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपञ्चनदाविर्भावोनामैकोनषष्टितमोध्यायः ॥५९॥ स्कन्दउवाच ॥ उक्तापञ्चनदोत्पत्तिर्मित्रावरुणनन्दन ॥इदानींकथयिष्यामिमाधवाविष्कृतिंपराम् ॥ १ ॥ यांश्रुत्वा

शुभस्थानहै उस पंचनदतीर्थकी अनन्त महिमा कहनेको कोई या ब्रह्मासी समर्थ नही है ॥ ४३ ॥ इस पुण्यदायक आख्यानको भक्तिसे सुन व सुनाकर भी सब पापों से विशुद्ध मनवाला होकर विष्णुजी के लोकमें पूजाजाता याने आदर पाताहै ॥ १४४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितपञ्चनदतीर्थोत्पत्तिमाहात्म्यकथनंनामैकोनषष्टितमोध्यायः ॥ ५९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ साठिसंख्य अध्याय में अग्निबिंदु आख्यान । प्रकट बिंदुमाधव भये जासु महात्म्य महान ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मित्रावरुणनन्दन! मैंने पंचन

तीर्थकी उत्पत्तिको कहा अब श्रीबिंदुमाधवजीका परम प्रकटकरना कहूंगा ॥ १ ॥ कि जिसको श्रद्धासे सुनकर बुद्धिमान् मनुष्य क्षणभरमें सब पापोंसे छूटजाताहै व संपत्ति से वियुक्त नहीं होता और धर्मसे संयुक्त होजाताहै ॥ २ ॥ श्रीचंद्रभाल महादेवजी से पूछकर गरुड़रूप रथ से चलनेवाले श्रीविष्णुजी मंदर पर्वत से काशीपुरी को आकर ॥ ३ ॥ व अपनी माया से भूप दिवोदास को भलीभांति उच्चाटनकर व केशव नामक स्वरूप से पादोदक तीर्थ में टिककर ॥ ४ ॥ काशी में उत्तम महिमा को विचारकर और बहुतही विचारकर व पंचनद तीर्थको देखकर परम आनंदको प्राप्तहुये ॥५॥ व प्रसन्नमन होकर कमलनयनजी बोले कि अन्यसे गिननेके न योग्य भी

श्रद्धयाधीमान्पापेभ्योमुच्यतेक्षणात् ॥ नचश्रियावियुज्येतसंयुज्येतवृषेणच ॥ २ ॥ आगत्यमन्दराद्द्रेरुपेन्द्रश्चन्द्रशेखरम् ॥ आपृच्छ्यतार्क्ष्यरथगःक्षणाद्वाराणसींपुरीम् ॥ ३ ॥ दिवोदासंमहीपालंसमुच्चाट्यस्वमायया ॥ स्थित्वापादोदकेतीर्थेकेशवाख्यस्वरूपतः ॥ ४ ॥ महिमानंपरंकाश्यांविचार्यसुविचार्यच ॥ दृष्ट्वापञ्चनदंतीर्थंपरांमुदमवापह ॥ ५ ॥ उवाचचप्रसन्नात्मापुण्डरीकविलोचनः ॥ अगण्याअपिवैकुण्ठगुणाविगणितामया ॥ ६ ॥ क्षीरनीरधौसन्तितावन्तोनिर्मलागुणाः ॥ यावन्तोविजयन्तेत्रकाश्यांपञ्चनदेह्रदे ॥ ७ ॥ श्वेतद्वीपेपिसामग्रीकगुणानाङ्गरीयसी ॥ ईदृशीयादृशीकाश्यांधूतपापेस्तिपावनी ॥ ८ ॥ मुदेकौमोदकीस्पर्शास्तथानममजायते ॥ धूतपापाम्बुसंपर्कोयथामनतिसर्वथा ॥ ९ ॥ नक्षीरनीरधिजयासुखंमेश्लिष्टगात्रया ॥ तथाभवेद्यथात्रस्यात्स्पृष्टयाधूतपापया ॥ १० ॥ इत्थंपञ्चनदेतीर्थेक्षीरनीरधिजाधवः ॥ संप्रेष्यतार्क्ष्यंन्त्यक्षाग्रेवृत्तान्तंविनिवेदितुम् ॥ ११ ॥ आनन्दकाननस्वान्दिवोदासक्षमापतेः ॥ संव

वैकुंठके गुण मुझसे विशेषकर गिनेगये ॥६॥ और उतने अमल गुण क्षीरसागरमें कहांहैं कि जितने काशीके बीच इस पंचनद कुण्डमें उत्कर्षको प्राप्त होते हैं ॥७॥ व ऐसी बहुतश्रेष्ठ परमपावनी गुणों की सामग्री श्वेतद्वीप में भी कहां है कि जैसी काशी के बीच धूतपाप (पंचनद) तीर्थ मे है ॥ ८ ॥ व जैसे पंचनद के जल का संसर्ग मेरे आनंदके लिये सर्वथा होताहै वैसे कौमोदकी नामवाली गदाका स्पर्श भी सब भांतिसे आनंदके लिये नहीं होताहै ॥ ९ ॥ व अंगमें लिपटाईहुई लक्ष्मी से वैसे मुझको सुख नहीं है कि जैसे यहां स्पर्श कीहुई धूतपापा नदीसे होता है ॥ १० ॥ इस प्रकार पंचनद तीर्थमे लक्ष्मीनाथजी गरुड़को महादेवजीके आगे वह वृत्तांत ब-

तानेके लिये पठाकर॥ ११॥जो कि दिवोदास राजाकाथा व काशीमें हुवाथा और पंचनदतीर्थसे उपजे पुण्यरूप गुणसमूहको कहते हुये ॥ १२ ॥ व बहुत आनंदित सुख से बैठे हुये सुंदरदृष्टिवाले व वेदों से सुनेगये विष्णु जी तपस्यासेवित एक दुर्बल देहवाले तपोधन को देखते भये ॥ १३ ॥ और उस ऋषिने उन कमलनेत्रवाले अच्युत जी के संमुख आकर जो कि समीप में बैठी हुई लक्ष्मी से संयुत व वनमाला से विराजित है ॥ १४ ॥ व शंख पद्म गदा और चक्र से चमकते हुये चार हाथवाले व जिनका उर कौस्तुभ मणिसे भूषित या प्रकाशित है व जिनका पीला रेशमी वस्त्र है ॥ १५ ॥ व जो कि अच्छे श्याम सरोज के समान शोभायमान व सचिक्कण मधुर आकारवाले व जिन के नाभिदेश में कमल सोहता है व जो सुंदर पाटल के फूलसे लाल ओठवाले हैं ॥ १६ ॥ व जिनके दाडिम (अनार) वीजसे

र्णयन्गुणग्रामंपुण्यंपाञ्चनदोद्भवम् ॥ १२ ॥ सुखोपविष्टःसंहृष्टःसुदृष्टिर्विष्टरश्रवाः ॥ दृष्टवांस्तपसाजुष्टमपुष्टाङ्गंतपोधनम् ॥ १३ ॥ सऋषिस्तंसमभ्येत्यपुण्डरीकाक्षमच्युतम्॥उपोपविष्टकमलंवनमालाविराजितम् ॥ १४ ॥शङ्खपद्मगदाचक्रचञ्चत्करचतुष्टयम् ॥ कौस्तुभोद्भासितोरस्कंपीतकौशेयवाससम्॥१५॥सुनीलेन्दीवररुचिंसुस्निग्धमधुराकृतिम् ॥ नाभीह्रदलसत्पद्मंसुपाटलरदच्छदम् ॥ १६॥ दाडिमीबीजदशनंकिरीटद्योतिताम्बरम् ॥ देवेन्द्रवन्दितपदंसनकादिपरिष्टुतम् ॥ १७ ॥ दिव्यर्षिभिर्नारदाद्यैःपरिगीतमहोदयम्॥प्रह्लादाद्यैर्भागवतैःपरिनन्दितमानसम् ॥ १८ ॥ धृतशार्ङ्गधनुर्दण्डं दण्डिताखिलदानवम् ॥ मधुकैटभहन्तारंकंसविध्वंससूचकम् ॥ १९ ॥ कैवल्यंयत्परंब्रह्म निराकारमगोचरम् ॥ तत्पुम्मूर्त्यापरिणतंभक्तानांभक्तिहेतुतः ॥ २० ॥ वेदाविदुर्यदाकारन्नैवोपनिषदोदितम् ॥ ब्रह्माद्यानचगीर्वाणा

दंत हैं व जिन्होंने आकाशको मुकुट की मणियों से दीपित किया है व जिनके पद देवेन्द्रोंसे वंदितहैं व जो कि सनकादिकोंसे प्रशंसितहैं ॥ १७॥ व जिनका बड़ा भारी उदय नारदादि दिव्य ऋषियों ने गाया है व प्रह्लादादि वैष्णव भक्तों से जिनका मन सब ओर बढ़ायाहुवा या आनंदित है ॥ १८ ॥ व जो कि शार्ङ्ग नामक धन्वा के दंडको धारण किये हुये व संपूर्ण दानवों के दंडदायक व मधु और कैटभके घायक व कंसके विध्वंस को सूचनाकरते हैं ॥ १९ ॥ व जो कि इंद्रियोंके अविषय, आकारहीन कैवल्य परब्रह्म है वह भक्तोंकी भक्ति के कारण पुरुषरूप से परिणाम को प्राप्त हुये वही है ॥ २० ॥ और उपनिषदों से कहे हुये जिन के आकार को कर्मो-

पासना विषयक वेद व ब्रह्मादि देवलोग भी नहीं जानते हैं उनको आंखोंका अतिथि किया याने देखाथा और उसने ॥ २१ ॥ आनंदसंयुत भूमिमें माथधरनेवा-ला होकर उन इंद्रियनाथके प्रणाम किया व महातपस्वी वह अग्निबिन्दुनामक ऋषि ॥ २२ ॥ हाथोंकी बांधी हुई अंजली को मस्तक में लगायेहुवा बड़ीभक्तिसे विस्तारयुक्त शिला में बैठेहुये, बलियज्ञविध्वंसनकारी अविकारी विष्णुजीकी स्तुतिकरनेलगा ॥ २३ ॥ व मार्कण्डेयादि मुनियों से सेवित उस पंचनदतीर्थके समीपमें सन्तुष्ट मनवाले उस अग्निबिन्दु ने गोविन्द की स्तुतिको किया ॥ २४ ॥ अग्निबिन्दु बोले कि, हे ॐकार के अर्थ, कमलनयन ! जोकि आप हजारों शिरवाले हजारों आंखोंवाले हजारों पावोंवाले और पुर देहोंमें सोनेवालेहो उन बाहर व भीतर शुद्धतादायक आपके लिये नमस्कारहो ॥ २५ ॥ हे इन्द्रादिदेववन्दित, विष्णो !

अक्षनेत्रातिथिंसतम् ॥ २१ ॥ प्रणनाममुदायुक्तःक्षितिविन्यस्तमस्तकः ॥ सऋषिस्तंहृषीकेशमग्निबिन्दुर्महातपाः ॥ २२ ॥ तुष्टावपरयाभक्त्यामौलिबद्धकराञ्जलिः ॥ अध्यस्तविस्तीर्णशिलं बलिध्वंसिनमच्युतम् ॥ २३ ॥ तत्रपञ्चनदाभ्याशेमार्कण्डेयादिसेविते ॥ गोविन्दमग्निबिन्दुःसस्तुतवांस्तुष्टमानसः ॥ २४ ॥ अग्निबिन्दुरुवाच ॥ ॐनमःपुण्डरीकाक्षबाह्यान्तःशौचदायिने ॥ सहस्रशीर्षापुरुषःसहस्राक्षःसहस्रपात् ॥ २५ ॥ नमामितेपदद्वन्द्वंसर्वद्वन्द्वनिवारकम् ॥ निर्द्वन्द्वयाधियाविष्णोजिष्णवादिसुरवन्दित ॥ २६ ॥ यंस्तोतुन्नाधिगच्छन्तिवाचोवाचस्पतेरपि ॥ तमीष्टेकइहस्तोतुंभक्तिरत्रबलीयसी ॥ २७ ॥ अपियोभगवानीशोमनःप्राचामगोचरः ॥ समादृशैरल्पधीभिःकथंस्तुत्योवचःपरः ॥ २८ ॥ यंवाचोनविशन्तीशंमनतीहमनोनयम् ॥ मनोगिरामतीतंतंकःस्तोतुंशक्तिमान्भवेत् ॥ २९ ॥ यस्यनिःश्वसितंवेदाः

सब द्वन्द्वके याने आध्यात्मिकादि तीन तापोंके निवारण करनेवारे तुम्हारे दोनोंपावोंको दुविधाहीन अकुण्ठितबुद्धि से मैं नमस्कार करताहूं ॥ २६ ॥ कि बृहस्पति या ब्रह्माके भी वचन जिनकी स्तुति करने के लिये अधिकार को नहीं प्राप्त होतेहैं उनकी स्तुति करने के लिये इसलोकमें कौन समर्थ होताहै परन्तु यहां भक्तिही बहुत बलवती है याने आप भक्तिसे प्रसन्न होतेहैं ॥ २७ ॥ सम्भावना कीजाती है कि जो भगवान् ईश्वर मनसे परे ब्रह्मादिकों के अगोचर हैं याने उनकी भी इन्द्रियों के भीतर नहीं आतेहैं वह वचन से परे परमेश्वर मेरे समान थोड़ी बुद्धिवाले लोगोंसे किसभांति स्तुति करने योग्यहैं ॥ २८ ॥ व जिन ईश्वर में वाणियां नहीं प्रवेश करती

है और जिनको मन नहीं जानता है उन मन व वाणी से परे परमेश्वर की स्तुति करने को इसलोक में कौन शक्तिमान् होवेगा ॥ २९ ॥ अंग और पदक्रमसमेत वेद जिनका निःश्वसितहैं उन देवकी बड़ीभारी महिमा किनसे जानीजाती है याने उनकी महिमा अनन्त है ॥ ३० ॥ हृदयरूप आकाश में ध्यावते हुयेभी अकुण्ठित मन बुद्धिवाले सनकादिक यथार्थतासे नहीं पाते हैं ॥ ३१ ॥ व बालपन से लगाकर ब्रह्मचारी नारदादि मुनिश्रेष्ठोंसे गायेजातेहुये चरित्रवाले भी जो भलीभांति अधिकतासे नहीं जानेजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे चराचर, चराचर भिन्न ! जोकि तुम सूक्ष्मरूप, जन्महीन, अविकार एक आद्य व ब्रह्मादिकोंकी इन्द्रियोंसे बाहर व जीतने के न योग्य अनन्त सामर्थ्यवान् नित्य नीरोग निराकार और अचिन्त्यमूर्त्तिहो उन तुमको कौन जन जानताहै ॥३३॥ हे मुरारे, मुकुन्द, मधुसूदन, माधव! इसभांति जपाहुआ तुम्हारा

सषडङ्गपदक्रमाः॥तस्यदेवस्यमहिमामहान्कैरवगम्यते॥ ३०॥ अतन्द्रितमनोबुद्धीन्द्रियायंमनकादयः॥ध्यायन्तोपि हृदाकाशेनविन्दन्तियथार्थतः ॥ ३१॥ नारदाद्यैर्मुनिवरैराबालब्रह्मचारिभिः ॥ गीयमानचरित्रोपिनसम्यग्योधिगम्यते ॥ ३२ ॥ तंसूक्ष्मरूपमजमव्ययमेकमाद्यंब्रह्माद्यगोचरमजेयमनन्तशक्तिम् ॥ नित्यन्निरामयममूर्तमचिन्त्यमूर्तिकस्त्वांचराचरचराचरभिन्नवेत्ति ॥ ३३ ॥ एकैकमेवतवनामहरेन्मुरारेजन्मार्जिताघमघिनांचमहापदाढ्यम्॥ दद्यात्फलंच महितंमहतोमखस्यजप्तम्मुकुन्दमधुसूदनमाधवेति ॥३४॥ नारायणेतिनरकार्णवतारणेतिदामोदरेतिमधुहेतिचतुर्भुजेति ॥ विश्वम्भरेतिविरजेतिजनार्दनेति कास्तीहजन्मजपतांककृतान्तभीतिः॥३५॥ येत्वांत्रिविक्रमसदाहृदिशीलयन्ति कादम्बिनीरुचिररोचिषमम्बुजाक्षम् ॥ सौदामनीविलसितांशुकवीतमूर्तेतेपिस्पृशन्तितवकान्तिमचिन्त्यरूपाम् ॥ ३६ ॥

एक एकही नाम पापियोंके बहुत जन्मोंसे बटोरेहुये बडी विपत्तिसमेत पापको हरलेवे और भारी या श्रेष्ठ ब्रह्मयज्ञादि का पूजित फलदेवे ॥ ३४ ॥ हे नारायण ! ऐसा व हे नरकार्णवतारण ! ऐसा व हे दामोदर ! ऐसा व हे मधुहन् ! ऐसा व हे चतुर्भुज ! ऐसा व हे विश्वम्भर ! ऐसा व हे विरज ! ऐसा व हे जनार्दन ! ऐसा जपते हुये जनोंका यहां जन्म कहां है और यमराज का डर कहां है ॥ ३५ ॥ हे बिजली विलसित की नाईं पीताम्बर से घिरीहुई मूर्त्तिवाले, त्रिविक्रम ! जे लोग मेघमाला के समान सुन्दर शोभायमान व कमलदल से चौड़ी आंखोंवाले तुमको हृदय में सदा ध्यावते हैं वे भी तुम्हारी अचिन्त्यरूप स्वप्रकाश शोभाका स्पर्श करते है ॥३६॥

वाले श्रीविष्णुजीने ऐसा कहा कि, वैसाही होवेगा ॥ ५० ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे मुनिश्रेष्ठ, अग्निबिन्दो ! काशी की भक्तिवाले मनुष्योंके लिये मुक्तिमार्गको भलीभांति उपदेश करताहुवा मैं यहां निश्चय से टिकूंगा ॥ ५१ ॥ हे मुने ! मैं प्रसन्न हूं तुम फिर वर को बोलो मैं तुमको वर देताहूं कि तुम मेरे बडे भारीभक्त हो और मुझ में तुम्हारी दृढ़भक्ति होवे ॥ ५२ ॥ हे तपोनिधे ! मैं पहलेही यहां टिकनेका चाहीथा तदनंतर तुमने भलीभांति प्रार्थना किया इस से मैं यहां सदैव टिकूंगा ॥ ५३ ॥ प्राकृत बुद्धि मनुष्य जो ज्ञानवान् है याने यह जानता है कि काशी न छोड़ना चाहिये तो काशी को प्राप्तहोकर फिर कौन त्याग देवे क्योंकि अमोल उत्तम

श्रेष्ठस्थास्याम्यहमिहध्रुवम् ॥ काशीभक्तिमताम्पुंसांमुक्तिमार्गंसमादिशन् ॥ ५१ ॥ मुनेपुनःप्रसन्नोस्मिवरम्ब्रूहिददामिते ॥ अतीवममभक्तोसिभक्तिस्तेस्तुदृढामयि ॥ ५२ ॥ आदावेवहितिष्ठासुरहमत्रतपोनिधे ॥ ततस्त्वयासमभ्यर्थिस्थास्याम्यत्रसदैवहि ॥ ५३ ॥ प्राप्यकाशींसुदुर्मेधाःकस्त्यजेज्ज्ञानवान्यदि ॥ अनर्घ्यम्प्राप्यमाणिक्यंहित्वाकाचङ्कइहते ॥ ५४ ॥ अल्पीयसाश्रमेणेहवपुषोऽव्ययमात्रतः ॥ अवश्यङ्गत्वरस्याशुयथामुक्तिस्तथाक्कहि ॥ ५५ ॥ विनिमय्यजराजीर्णंदेहंपार्थिवमत्रवै ॥ प्राज्ञाःकिमुनगृह्णीयुरमृतन्नैर्जरंवपुः ॥ ५६ ॥ नतपोभिर्नवादानैर्न्नयज्ञैर्बहुदक्षिणैः ॥ अन्यत्रलभ्यतेमोक्षोयथाकाश्यांतनुव्ययात् ॥ ५७ ॥ अपियोगंहियुञ्जानायोगिनोयतमानसाः ॥ नैकेनजन्मनामुक्ताःकाश्यांमुक्तावपुर्व्ययात् ॥ ५८ ॥ इदमेवमहादानमिदमेवमहत्तपः ॥ इदमेवव्रतंश्रेष्ठंयत्काश्यांम्रियतेतनुः ॥ ५९ ॥ सएवविद्वाञ्जग

मणिको पाकर कांचके लिये कौन जन व्यापार करता है ॥ ५४ ॥ व यहां बहुत थोड़े परिश्रम से चलेजानेवाली क्षणभङ्गुर देह के नाशमात्रसेही जैसे शीघ्रही मुक्ति होती है वैसे कहां है ॥ ५५ ॥ इसलिये बुढ़ाईसे जीर्ण हुये पृथिवी के विकाररूप शरीर को यहां बदलकर पण्डितलोग जराआदि विकारों से हीन कैवल्य देहको क्यों न ग्रहणकरलेवें ॥ ५६ ॥ व जैसे काशी में देहत्यागियों की मुक्ति होती है वैसे अन्य तपस्याओं से नहीं दानों से नहीं और बहुत दक्षिणायुक्त यज्ञों से भी नहीं मिलती है ॥ ५७ ॥ व योगकोही जोड़ते हुये व मनकोरोंकेहुये योगीभी एक जन्मसे मुक्त नहीं होते हैं परंतु काशी में मरनेसे मुक्तहोजाते हैं ॥ ५८ ॥ जो कि काशी में

देह मरती है यहही बड़ादान है यहही बड़ी तपस्या है और यहही श्रेष्ठ व्रत है ॥ ५९ ॥ और जो काशी को पाकर न छोड़े वहही जगत् में पण्डितहै वहही बडा इन्द्रियजित् है और वहही धन्य पुण्यवान् है ॥ ६० ॥ हे मुने ! जबतक काशी यहां है तबतक मैं इस में टिकूंगा किंतु श्रीशिवजी के त्रिशूल में भलीभांति टिकीहुई इस काशी का नाश प्रलय में भी नहीं होता है ॥ ६१ ॥ ऐसा विष्णुजी का वचन सुनकर आनंद से देह में उठे हुये रोमोंवाला अग्निबिंदु महामुनि फिर बोला कि अन्यवरको भी अंगीकार करताहूं ॥ ६२ ॥ कि हे लक्ष्मीपते ! इस शुभ पंचनदतीर्थ में मेरेनाम से टिकेहुये तुम भक्त और अभक्तों को भी सदैव मुक्ति दो ॥ ६३ ॥

तिसएवविजितेन्द्रियः ॥ सएवपुण्यवान्धन्यो लब्ध्वाकाशींनयस्त्यजेत् ॥६०॥ तावत्स्थास्याम्यहंचात्रयावत्काशीमुनेत्विह ॥ प्रलयेपिननाशोस्याःशिवशूलाग्रसुस्थितेः ॥६१॥इत्याकर्ण्यगिरंविष्णोरग्निबिन्दुर्म्महामुनिः ॥ प्रहृष्टरोमाप्रोवाचपुनरन्यंवरंवृणे ॥ ६२ ॥ मापतेममनाम्नात्रतीर्थेपञ्चनदेशुभे ॥ अभक्तेभ्योपिभक्तेभ्यःस्थितोमुक्तिंसदादिश ॥ ६३ ॥ येत्रपञ्चनदेस्नात्वागत्वादेशान्तरेष्वपि ॥ नराःपञ्चत्वमापन्नामुक्तिंतेभ्योपिवैदिश ॥ ६४ ॥ येतुपञ्चनदेस्नात्वात्वाम्भजिष्यन्तिमानवाः ॥ चलाचलापिद्विरूपामात्याक्षीच्छ्रीश्चतान्नरान् ॥ ६५ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ एवमस्त्वग्निबिन्दोत्रभवतायद्वृतम्मुने ॥ त्वन्नाम्नोऽर्धेनमेनाम मयासहभविष्यति ॥ ६६ ॥ बिन्दुमाधवइत्याख्या ममत्रैलोक्यविश्रुता ॥ काश्याम्भविष्यतिमुनेमहापापौघघातिनी ॥ ६७॥ येमामत्रनराःपुण्याःपुण्येपञ्चनदेहृदे ॥ सदासपर्यायिष्यन्तितेषांसंसारभीःकुतः ॥ ६८ ॥ वसुस्वरूपिणीलक्ष्मीर्लक्ष्मीर्निर्वाणसंज्ञिका ॥ तत्पार्श्वगासदायेषांहृदिपञ्चनदेत्विह

जे नर इस पंचनदमें स्नानकर देशांतरोंमें भी जाकर मरण को प्राप्त होवें उनके लिये भी निश्चय से मुक्ति दो ॥ ६४ ॥ व जे मनुष्य पंचनद में नहाकर तुमको भजें उन मनुष्योंको चला (धनादिरूपा) अचला (मोक्षसंपत्ति) दोरूपवाली लक्ष्मी मत त्याग करे ॥ ६५ ॥ श्रीविष्णुजीबोले कि, हे अग्निबिंदो, मुने ! आपने जो वर यहां स्वीकार किया वह ऐसेहीहो किंतु तुम्हारे आधे नामके सहित मा(लक्ष्मी) के साथ मेरा नाम होगा ॥ ६६ ॥ हे मुने ! महापापसमूहनाशक व त्रिलोक में विश्रुत (प्रसिद्ध) बिन्दुमाधव ऐसा मेरा नाम काशीमें होगा ॥६७॥ जे पुण्यात्मा मनुष्य इस पुण्यरूप पंचनदकुंडके समीप सदा पूजेंगे उनको संसारका डर कहां है ॥ ६८ ॥

धनस्वरूपिणी लक्ष्मी व मुक्तिसंज्ञिका लक्ष्मी उनके समीप गत है कि जिनके हृदयमें सदा पंचनदमें टिकाहुवा मैं वर्त्तमान हूं ॥ ६९ ॥ व जिन्हों ने पंचनदमें प्राप्त होकर धनों से ब्राह्मणों को न तृप्तकिया उन शीघ्र विपत्ति पानेवालों का वह धन रोताहै ॥ ७० ॥ वेही लोग इस लोकमें धन्य हैं और वेही कृतकृत्य हैं याने करनेयोग्य कर्मोंको करचुके हैं कि जिन्होंने मेरे सामीप्यको प्राप्त होकर धनोंको मेरे अधीन करदियाहै ॥ ७१ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ,अग्निबिन्दो ! सब पातकघातक यह विन्दु-तीर्थनामक तीर्थ तुम्हारे नामसे प्रसिद्धहोगा ॥ ७२ ॥ और जोकि कार्त्तिकमें ब्रह्मचर्य्य व्रतमें परायण होकर जब सूर्य्य न उगेहों तबहीं स्नान करेगा उसको भानुनन्दन

म् ॥ ६९ ॥ यैर्नपञ्चनदम्प्राप्यवसुभिःप्रीणिताद्विजाः ॥ आशुलभ्यविपत्तीनांतेषांतद्वसुरोदिति ॥ ७० ॥ तएवधन्यालो
केस्मिन्कृतकृत्यास्तएवहि ॥ प्राप्ययैर्ममसांनिध्यंवसवोममसात्कृताः ॥ ७१ ॥ बिन्दुतीर्थमिदंनामतवनाम्नाभविष्य
ति ॥ अग्निबिन्दोमुनिश्रेष्ठसर्वपातकनाशनम् ॥ ७२ ॥ कार्त्तिकेबिन्दुतीर्थेयोब्रह्मचर्यपरायणः ॥ स्नास्यत्यनुदितेभा
नौभानुजात्तस्यभीःकुतः ॥ ७३ ॥ अपिपापसहस्राणिकृत्वामोहेनमानवः ॥ ऊर्जेधर्मनदेस्नातोनिष्पापोजायतेक्षणा
त् ॥ ७४ ॥ यावत्स्वस्थोस्तिदेहोयंयावन्नेन्द्रियविक्लवः ॥ तावद्व्रतानिकुर्वीतयतोदेहफलंव्रतम् ॥ ७५ ॥ एकभक्तेननक्ते
नतथैवायाचितेनच ॥ उपवासेनदेहोयंसंशोध्योशुचिभाजनम् ॥ ७६ ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिकर्तव्यानिप्रयत्नतः ॥
अशुचिःशुचितामेतिकायोयद्व्रतधारणात् ॥ ७७ ॥ व्रतैःसंशोधितेदेहेधर्मोवसतिनिश्चलः ॥ अर्थकामौसनिर्वाणौत

यमराजसे डर कहां है ॥ ७३ ॥ व मोहसे हज़ारों पापभी कर कार्त्तिक में धर्मनद में नहाया हुवा मनुष्य क्षणभर में पापहीन होजाता है ॥ ७४ ॥ क्योंकि व्रतकरना देह का फल है इसलिये जबतक यह देह स्वस्थ है और जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीं है तबतक व्रतों को करे ॥ ७५ ॥ अपवित्र मल मूत्रादिकों का पात्र यह देह एकबार भोजन व रात्रिमें भोजन व अयाचितभोजन वैसेही उपवास से भी भलीभांति शुद्ध करना योग्य है ॥ ७६ ॥ और जिन व्रतों के धारण करने से अपवित्र देह पवित्रता को प्राप्त होती है वे कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रत बड़ेयत्नसे करनेयोग्य हैं ॥७७॥ क्योंकि व्रतोंसे देहको संशोधित होनेपर धर्म निश्चल होकर ब-

सता है और जहां धर्मकी स्थिति होतीहै वहां मोक्ष समेत अर्थ व काम भी टिकते हैं ॥७८॥ इसलिये धर्मादि चतुर्वर्ग फलोंके अभिलाषी मनुष्योंको धर्मकी समीपता करने वाले व्रत निरन्तर करने चाहिये ॥ ७९ ॥ व जो मनुष्य सदा व्रत करने को न समर्थ हो तौ चौमासा को प्राप्तहोकर बड़े यत्नों से व्रतकरे ॥ ८० ॥ कि भूमि में शयन ब्रह्मचर्य्य (अष्टाङ्ग मैथुनत्याग) कुछ भोजन का बराना, एकबार या एक अन्नादि भोजन का नियम, व अपनी शक्तिसे नित्यदान ॥ ८१ ॥ व पुराणों का सुनना फिर उनका अर्थ करना, अखण्ड दीपजलाना, व इष्टदेवता में महापूजा इत्यादि सब करना चाहिये ॥ ८२ ॥ और धर्मकी विशेष वृद्धिके लिये बुद्धिमान् मनुष्य

त्रयत्रवृषस्थितिः ॥ ७८ ॥ तस्माद्व्रतानिसततञ्चरितव्यानिमानवैः ॥ धर्मसान्निध्यकर्तॄणिचतुर्वर्गफलेप्सुभिः ॥ ७९ ॥ सदाकर्तुन्नशक्नोतिव्रतानियदिमानवः ॥ चातुर्मास्यमनुप्राप्यतदाकुर्यात्प्रयत्नतः ॥ ८० ॥ भूशय्याब्रह्मचर्यञ्चकिञ्चिद्भक्ष्यनिषेधनम् ॥ एकभक्तादिनियमोनित्यदानंस्वशक्तितः ॥ ८१ ॥ पुराणश्रवणंचैवतदर्थाचरणम्पुनः ॥ अखण्डदीपोबोधश्चमहापूजेष्टदैवते ॥ ८२ ॥ प्रभूताङ्कुरबीजाढ्येदेशेचापिगतागतम् ॥ यत्नेनवर्जयेद्धीमान्महाधर्मविवृद्धये ॥ ८३ ॥ असम्भाष्यानसम्भाष्याश्चातुर्मास्यव्रतस्थितैः ॥ मौनञ्चापिसदाकार्यंतथ्यंवक्तव्यमेववा ॥ ८४ ॥ निष्पावांश्चमसूरांश्चकोद्रवान्वर्जयेद्व्रती ॥ सदाशुचिभिरास्थेयंस्प्रष्टव्योनाव्रतीजनः ॥ ८५ ॥ दन्तकेशाम्बरादीनिनित्यंशोध्यानियत्नतः ॥ अनिष्टचिन्तानोकार्याव्रतिनाहृद्यपिकंचित् ॥ ८६ ॥ द्वादशस्वपिमासेषुव्रतिनोयत्फलंभवेत् ॥ चातुर्मा

बहुत अंकुर व बीजों से युक्त देश में आने जाने को यत्न से बरादेवे ॥ ८३ ॥ और चातुर्मास्य व्रत में टिकेहुये मनुष्यों को असम्भाष्य याने पतित चाण्डालादि लोगों से नहींबोलना चाहिये व सदैव मौन करनाचाहिये अथवा सत्य यथार्थ थोड़ा वचन बोलना चाहिये ॥ ८४ ॥ और व्रत करनेवाला मनुष्य दुबिया मसूर व कोदौं आदि अन्नों को बरावे याने इनका भोजन न करे व सदैव पवित्र होकर या पवित्र शुद्धलोगों केसाथ टिकना चाहिये व व्रतहीन जनको नहीं छूना चाहिये ॥ ८५ ॥ व दन्त बाल और वस्त्रादिकोंको यत्न से सदा शुद्ध करना चाहिये और व्रतधारीको मनमें कभी या कहीं अनिष्टकी चिन्ता नहीं करना चाहिये ॥ ८६ ॥ व बारह मासों में भी व्रती

को जो फल होवे वह अखण्डित फल चातुर्मास्य व्रतधारी लोगोंको होवे है॥८७॥ और जो चार मासोंमें भी व्रतकी सामर्थ्य न हो तो वर्ष भर व्रत करनेका फल चाहतेहुये मनुष्यको कार्त्तिकमें व्रतवाला होना चाहिये॥८८॥ व जिन सूकरके समान मन या देहवाले व मूढ़बुद्धिवाले जिनमनुष्योंका यहां कार्त्तिक मास व्रतसे हीन हुआ बीतगया उनको पुण्यका लेशमात्र नहीं होवे है॥८९॥इससे जब कार्त्तिकमास भलीभांति प्राप्तहो तब परमपुण्यवान् पुरुष शक्तिसे याने अपनी सामर्थ्यके अनुसार कृच्छ्र व अतिकृच्छ्र अथवा प्राजापत्य इनव्रतोंको करे इनके लक्षण पहले कहेगयेहैं ॥ ९० ॥ व कार्त्तिकमास के भलीभांति प्राप्त होतेही व्रतवाला जन एकांतर (एकदिनके बाद भोजनादि

स्यंव्रतभृतान्तत्फलंस्यादखण्डितम् ॥ ८७ ॥ चतुर्ष्वपिचमासेषुनसामर्थ्यंव्रतेयदि ॥ तदोर्जेव्रतिनाभाव्यमप्यब्दफलमिच्छता ॥ ८८ ॥ अव्रतःकार्त्तिकोयेषाङ्गतोमूढधियामिह ॥ तेषाम्पुण्यस्यलेशोपिनभवेत्सूकरात्मनाम् ॥ ८९ ॥ कृच्छ्रंवाचातिकृच्छ्रंवाप्राजापत्यमथापिवा ॥ सम्प्राप्तेकार्त्तिकेमासिकुर्याच्छक्त्यातिपुण्यवान् ॥ ९० ॥ एकान्तरंव्रतंकुर्यात्त्रिरात्रव्रतमेववा ॥ पञ्चरात्रंसप्तरात्रंसम्प्राप्तेकार्त्तिकेव्रती ॥ ९१ ॥ पक्षव्रतंवाकुर्वीतमासोपोषणमेववा ॥ नोर्जोवन्ध्योविधातव्योव्रतिनाकेनचित्कचित् ॥ ९२ ॥ शाकाहारंपयोहारंफलाहारमथापिवा ॥ चरेद्यवान्नाहारंवासम्प्राप्तेकार्त्तिकेव्रती ॥ ९३ ॥ नित्यन्नैमित्तिकंस्नानंकुर्यादूर्जेव्रतीनरः ॥ ब्रह्मचर्यञ्चरेदूर्जेमहाव्रतफलार्थवान् ॥ ९४ ॥ बाहुलंब्रह्मचर्येणयःक्षिपेच्छुचिमानसः ॥ समस्तंहायनन्तेनब्रह्मचर्यंकृतम्भवेत् ॥ ९५ ॥ यस्तुकार्त्तिकिकम्मासमुपवासैःसमापये

नियम) व्रत व त्रिरात्रव्रत व पंचरात्रव्रत और सप्तरात्रव्रतको करे ॥ ९१ ॥ व पक्षभर व्रत करे अथवा मासभर उपास या व्रतकरे किंतु किसी व्रतीसे कहीं कार्त्तिक मास वंध्य (व्रतसे हीन) करनेयोग्य नहींहै याने सबको इसमें व्रत करना चाहिये॥९२॥ जब कार्त्तिक मास भलीभांति प्राप्तहोवे तब व्रतवान् मनुष्य सागका भोजन व दूधका भोजन व फलका भोजन अथवा यव अन्नकाभी भोजन करे ॥ ९३ ॥ और व्रतवान् मनुष्य कार्त्तिक में नित्य व नैमित्तिक स्नानको करे व महाव्रतके फलका अभिलाषी पुरुष कार्त्तिकमास में ब्रह्मचर्य्य व्रतको धारणकरे ॥ ९४ ॥ जोकि शुद्धमनवाला मनुष्य ब्रह्मचर्य्य से कार्त्तिकमास को बितावे उससे सम्पूर्ण वर्षभर ब्रह्मचर्य्य किया

हुवा होजावे ॥ ९५ ॥ और जोकि कार्त्तिकमास को उपासों करके समाप्त करे उससे वर्षभर भलीभांति उपास कियाहुवा होजावे याने वह व्रतवान् वर्षभर के उपास का फलपावे ॥ ९६ ॥ व जिसने शाक भोजन और दूधपान से कार्त्तिक मासको बिताया उसने उस भोजन से सम्पूर्ण वर्षभर बिताया ॥ ९७ ॥ और कार्त्तिक में पत्रावली पर धरकर भोजन करनेवाला होवे व कांसके पात्रको यत्नसे त्यागदेना चाहिये क्योंकि जो व्रती कांसके पात्रमें भोजन करनेवाला होवे वह उस व्रतका फल न पावे ॥ ९८ ॥ कांसके नियममें याने जो कांसके पात्रमें भोजन न करने को नियम हो तो घीसे भराहुवा कांसे का पात्र दानकरे व कार्त्तिक में बहुत क्षुद्र गति देनेवाले शहद को भोजन न करे ॥ ९९ ॥ व शहदके त्यागमें घी और खंड समेत खीरका दानदेवे और उबटन आदि व भोजनमें भी कार्त्तिक मासभर तेलको विशेषतासे बरावे ॥१००॥

त् ॥ अप्यब्दमपितेनेहभवेत्सम्यगुपोषितम् ॥ ९६ ॥ शाकाहारपयोहारैरूर्जोयैरतिवाहितः ॥ अखण्डिताशरत्तेनत दाहारेणयापिता ॥ ९७ ॥ पत्रभोजीभवेदूर्जेकांस्यन्त्याज्यंप्रयत्नतः ॥ योव्रतीकांस्यभोजीस्यान्नतद्व्रतफलंलभेत् ॥ ९८ ॥ कांस्यस्यनियमेदद्यात्कांस्यंसर्पिःप्रपूरितम् ॥ ऊर्जेनभक्षयेत्क्षौद्रमतिक्षुद्रगतिप्रदम् ॥ ९९ ॥ मधुत्यागेघृतंद द्यात्पायसञ्चसशर्करम् ॥ अभ्यङ्गेऽभ्यवहारेचतैलमूर्जेविवर्जयेत् ॥ १०० ॥ भूयात्सनारकीदेहीतत्राभ्यङ्गाद्यतोनघ ॥ तैलत्यागेतिलान्दद्याद्द्रोणमात्रान्सकाञ्चनान् ॥ १ ॥ कार्त्तिकेमत्स्यभोजीयःसतैर्मीयोनिमृच्छति॥बाहुलेमांसभोजीयः सकृमिःपूयशोणिते ॥ २ ॥ मांसाशिनोपियेभूपास्त्यजेयुस्तेपिकार्त्तिके ॥ मत्स्यमांसानिसन्त्यज्यकार्त्तिकेव्रततत्प रः ॥३॥ मत्स्यमांसादनाद्दोषाद्बहिर्भवतिनिश्चितम्॥ नियमेमत्स्यमांसानान्दद्यात्कार्त्तिकिकेव्रती॥ कूश्माण्डानिसमा

हे अपाप ! जिससे उस कार्त्तिक मासमें तेल लगाने व खाने से वह देहधारी नरकनिवासी होवे है इस लिये उसको बराना चाहिये और जब तैलका त्याग हो तब सुवर्ण समेत द्रोणमात्र याने दोसौ छप्पन टकेभर तौलकर तिलदान करे ॥ १ ॥ जो कार्त्तिक में मछली खानेवालाहै वह मत्स्ययोनि को जाताहै याने मरकर मछली होताहै व जो कार्त्तिक में मांसभोजी होताहै वह पीब और रक्तमें कृमिहोकर नरकनिवास पाता है ॥ २ ॥ जे कि राजालोग मांसभक्षी हैं वेभी कार्त्तिकमास मे मांसको तज देवे और अन्य जनभी मत्स्य व मांसोंको भलीभांति त्यागकर व्रतमें परायण होवे ॥ ३ ॥ क्योंकि मत्स्य व मांस के भक्षण रूप दोषसे व्रतसे बाहर होजाताहै यह

निश्चितहै और कार्त्तिक मासभर मत्स्य व मांस न खानेरूप नियममें व्रतवाला मनुष्य दश तोला सोना समेत व माष(उड़द)सहितभी कुम्हड़ाके फलोंका दान करे ॥४॥ व जो कार्त्तिकमें मौनभोजी याने बोलबंदकरके भोजनकरताहै वह मौनधारी सोना सहित और तिल समेत सुंदरी घंटाका प्रदानकरे ॥५॥ व जिस व्रतधारी सज्जनने कार्त्तिक में लोन त्यागा उसने सब रसोंका त्याग करदिया और उस लोनका छोड़नेवाला व्रती एक गोदानकरे ॥६॥ व कार्त्तिक मे भूमिमें शय्या करता हुवा भूमिको भलीभांति न स्पर्श करे वह भूमिशायी व्रती तोशक सहित व तकिया समेत पलँग दानकरे ॥ ७ ॥ जो कार्त्तिकमें घीकी बातीवाला अखंड दीपको देताहै वह मोहरूप अंधतमको प्राप्त

षाणिदशस्वर्णयुतान्यपि ॥ ४ ॥ कार्त्तिकेमौनभोजीयःसोऽश्नात्यमृतमेवहि ॥ सुघण्टांसतिलाम्मौनीसहिरण्याम्प्रदापयेत्॥५॥कार्त्तिकेलवणंत्यक्तंयेनव्रतभृतासता ॥ त्यक्ताःसर्वेरसास्तेनतत्त्यागीगाम्प्रदापयेत् ॥६॥ भूशय्याङ्कार्त्तिकेकुर्वन्नभुवंसंस्पृशेद्व्रती ॥ पर्यङ्कम्भूशयोदद्यात्सतूलंसोपधानकम् ॥ ७ ॥ दीपंयःकार्त्तिकेदद्यादखण्डंघृतवर्तिकम् ॥ मोहान्धतमसम्प्राप्यसनगच्छतिदुर्गतिम् ॥ ८ ॥ यःकुर्यात्कार्त्तिकेमासेरजन्यान्दीपकौमुदीम् ॥ तामिस्रंचान्धतामिस्रंनसपश्येत्कदाचन ॥ ९ ॥ पापान्धकारसंक्रुद्धःकार्त्तिकेदीपदानतः ॥ क्रोधान्धकारितमुखम्भास्करिंसनवीक्षते ॥ १० ॥ सउद्योतमयम्पश्येत्त्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ प्रबोधयेन्ममाग्रेयोदीपंसोज्ज्वलवर्तिकम् ॥ ११ ॥ पञ्चामृतानाङ्कलशैस्रूर्जेमांस्नापयेन्नरः ॥ क्षीराब्धितटमासाद्यवसेत्कल्पंसपुण्यवान् ॥ १२ ॥ प्रतिक्षपंकार्त्तिकिकेकुर्वञ्ज्योत्स्नाम्प्रदीपजाम् ॥

होकर दुर्गतिको नहीं पाताहै ॥८॥ जो कार्त्तिकमासमें रात्रिके समय दीपों से उजेला करैगा वह तामिस्र और अंधतामिस्र नरक को कभी न देखैगा ॥९॥ व जो पापरूप अंधकारके लिये भलीभांति कोपयुक्त है वह कार्त्तिक में दीपदान से क्रोधभरे अंधकार समेत मुखवाले यमराजको नहीं देखताहै ॥ १० ॥ व जो मेरे आगे उजली बाती समेत दीप को जगाता याने जलाताहै वह स्थावर जंगम समेत त्रैलोक्यको उद्योतमय देखताहै याने उसको सर्वत्र ब्रह्मका प्रकाश देखपड़ताहै ॥ ११ ॥ व जो मनुष्य कार्त्तिकमें पंचामृतों (दूध,दही,घी शक्कर,शहद) के कलशोंसे मुझको स्नान करावेगा वह पुण्यवान् क्षीरसागरके तीरपर प्राप्तहोकर कल्पभर वास पावेगा ॥ १२ ॥ व

कार्त्तिकमास में प्रतिरात्रि मेरे आगे दीपों से उपजी उजेली को करताहुवा भक्तिमान् मनुष्य गर्भ के अंधकार में न पैठे ॥ १३ ॥ जो कार्त्तिकमें मेरे आगे घृतकी बाती वाले दीपको जगाताहै वह महामृत्युका डर होतेही बुद्धिके विनाशको नहीं प्राप्त होताहै॥१४॥ व कार्त्तिकमासमें बिंदुतीर्थ पै स्नान कियेहुये व भक्तिमें तत्पर होकर जिन जनोंसे मेरी यात्रा कीगई उनकी मुक्ति दूर नहीं है ॥ १५॥ और हे दनुजेन्द्रनिषूदन, दामोदर ! तुम कार्त्तिकमास में विधानके समान नहाये हुये मुझ व्रतवाले का अर्घ्य ग्रहण करो ॥ १६ ॥ हे कृष्ण ! राधा सहित आप पापशोषनेहारे कार्त्तिक मासके नैमित्तिक स्नानमें मेरे दिये अर्घ्यको ग्रहण करो ॥ १७ ॥ इन मंत्रोंको पढ़-

ममाग्रेभक्तिसंयुक्तोगर्भध्वान्तन्नसंविशेत् ॥ १३ ॥ आज्यवर्तिकमूर्जेयोदीपम्मेग्रेप्रबोधयेत् ॥ बुद्धिभ्रंशन्नचाप्नोतिम हामृत्युभयेसति ॥ १४ ॥ कार्त्तिकेमासिमेयात्रायैःकृताभक्तितत्परैः ॥ बिन्दुतीर्थेकृतस्नानैस्तेषांमुक्तिर्नदूरतः ॥ १५ ॥ व्रतिनःकार्त्तिकेमासिस्नातस्यविधिवन्मम ॥ दामोदरगृहाणार्घ्यन्दनुजेन्द्रनिषूदन ॥ १६ ॥ स्नानेनैमित्तिके कृष्णकार्त्तिकेपापशोषणे ॥ गृह्णात्वर्घ्यंमयादत्तंराधयासहितोभवान् ॥ १७ ॥ इमौमन्त्रौसमुच्चार्य योर्घ्यंमह्यं प्रयच्छति ॥ सुवर्णरत्नपुष्पाम्बुयुजा शङ्खेनपुण्यवान् ॥ १८ ॥ सुवर्णपूर्णपृथिवीसङ्कल्पोदकपूर्वकम् ॥ तेनदत्ताभवे त्सम्यक्सुपात्रायसुपर्वणि ॥ १९ ॥ एकादशींसमासाद्यप्रबोधकरणींमम ॥ बिन्दुतीर्थेकृतस्नानोरात्रौजागरणान्वितः॥ २० ॥ दीपान्प्रबोध्यबहुशोममालंकृत्यशक्तितः ॥ तौर्यत्रिकविनोदेनपुराणश्रवणादिभिः ॥ २१ ॥ महामहोत्सवंकृत्वा

कर जो पुण्यवान् सोना रत्न फूल और जलयुक्त शंखसे मुझको अर्घ्य देताहै॥१८॥ उससे सुपर्वमें सुपात्रके लिये संकल्प जलपूर्वक सुवर्ण से पूर्ण पृथ्वी भलीभांति दीगई होजाती है याने वह सोनेसे भरी सकल भूमिदान का फल पाताहै ॥ १९ ॥ व मेरी प्रबोधकरणी याने जिरामें मैं जागताहूं उस कार्त्तिकसुदी एकादशी को प्राप्त होकर बिंदुतीर्थ में स्नान कियेहुवा व रात्रिमे जागरण समेत होकर ॥ २० ॥ बहुतसे दीपोंको जगाकर याने जलाकर व शक्तिसे मेरा अलंकार कर याने अनेक भूषणों से मुझको भूषितकर तौर्य्यत्रिक विनोद (नाचना, गाना, बजाना) और पुराण के सुनने आदिकों से ॥ २१ ॥ जबतक तिथि पूरीहोवे तबतक महामहोत्सवको

कर फिर वहां मेरी प्रीति के लिये द्वादशी में बहुतसा अन्नदानकर मनुष्य ॥ २२ ॥ जोकि बड़े पापोंसे संयुत होवे वहभी स्त्री के उदर में प्रवेश न करे याने गर्भ में न पैठे और जो यहां बिंदुमाधवनामक मुझको भलीभांति पूजताहै ॥ २३ ॥ वहही बिंदुतीर्थ में स्नान कियेहुवा मुक्तिको पाताहै हे मुने ! आदिमाधव नामक मैं सत्ययुग में पूजनीयहूं ॥ २४ ॥ व त्रेतामें सब सिद्धिदायक अनंतमाधव नामक मैं जानने योग्यहूं व श्रीदमाधवसंज्ञक मैं द्वापर में मोक्ष करताहूं ॥ २५ ॥ और कलियुग में कलिमलविनाशी मैं बिंदुमाधव जानने योग्यहूं याने मेरा बिंदुमाधव नाम है परंतु कलियुग में पापों से सम्पन्न मनुष्य मुझको नहीं पाते हैं ॥ २६ ॥ और मेरी भक्ति

यावत्पूर्णातिथिर्भवेत् ॥ तत्रान्नदानंबहुशःकृत्वामत्प्रीतयेनरः ॥ २२ ॥ महापातकयुक्तोपिनविशेत्प्रमदोदरम् ॥ बिन्दुमाधवनामानंयोमामत्रसमर्चयेत् ॥ २३ ॥ बिन्दुतीर्थकृतस्नानोनिर्वाणंसहिविन्दति ॥ आदिमाधवनामाहं पूज्यः सत्ययुगेमुने ॥ २४ ॥ अनन्तमाधवोज्ञेयस्त्रेतायांसर्वसिद्धिदः ॥ श्रीदमाधवसंज्ञोहंद्वापरेपरमार्थकृत् ॥ २५ ॥ कलौकलिमलध्वंसीज्ञेयोहंबिन्दुमाधवः ॥ कलौकल्मषसम्पन्नानमांविन्दन्तिमानवाः ॥ २६ ॥ ममैवमाययामूढाभेदवादपरायणाः ॥ ममभक्तिम्प्रकुर्वाणायेविश्वेशंद्विषन्तिवै ॥२७॥ विद्विषोममतेज्ञेयाःपिशाचपदगामिनः ॥ पैशाचींयोनिमाप्यापिकालभैरवशासनात् ॥ २८ ॥ त्रिंशद्वर्षसहस्राणिउषित्वादुःखसागरे ॥ विश्वेशानुग्रहादेवततोमोक्षमवाप्नुयुः ॥२९॥ तस्माद्द्वेषोनकर्तव्योविश्वेशेपरमात्मनि ॥ विश्वेशद्वेषिणांपुंसां प्रायश्चित्तंयतोनहि ॥ ३० ॥मनसापिहिविश्वेशंविद्विषन्तीहयेऽधमाः ॥अध्यासतेन्धतामिस्रंमृतास्तेन्यत्रसंततम् ॥ ३१ ॥ शिवनिन्दापरायेचयेपाशुपतनिन्दकाः ॥ वि

करते हुये जे मेरी मायासे मोहित व भेदवादमें परायण होकर निश्चयसे विश्वनाथजीका विद्वेष करते हैं ॥ २७ ॥ वे पिशाचपद में जानेवाले मेरे वैरी जानने योग्यहैं व कालभैरवके शासनसे पिशाचकी योनिको भी प्राप्तहोकर ॥ २८ ॥ तीस हज़ार वर्षतक दुःखसागर में बसकर तदनंतर श्रीविश्वेश्वर की दयासेही मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥ उससे परमात्मा श्रीविश्वनाथजी में विद्वेष नहीं करना चाहिये क्योंकि विश्वनाथजी के विद्वेषी पुरुषोंका प्रायश्चित्त नहींहै याने अन्य पापोंका उद्धार कहागयाहै परंतु शिव व शिवभक्तोंके विद्वेषीलोगोंका उद्धार नहीं है ॥ ३० ॥ व जे अधम जन मनसेभी यहां श्रीविश्वनाथजीसे विद्वेष करते हैं वे अन्यत्र मरकर निरं-

तर अंधतामिस्र नामक नरकमें बसते हैं ॥ ३१ ॥ व जे शिवजीकी निंदामें परायण हैं व शिवजी के भक्तों के निंदकहैं वे अशुद्ध नरकमें गिरतेहुये लोग मेरे वैरी जानने योग्यहै ॥३२॥ और जे विश्वेश्वरकी निंदा करनेवाले हैं वे क्रमसेही अट्ठाइस करोड़ नरकोंमें कल्प कल्प याने हज़ार हज़ार चौयुगीतक निवासकरेंगे ॥३३॥ हे मुने ! श्रीविश्वनायक की दयाको प्राप्तहोकर मैं भी मुक्तिदायक हूं उस कारण मेरे भक्तोंसे विशेष कर विश्वेश्वर जी निरंतर सेवनेयोग्यहैं ॥ ३४ ॥ हे मुने ! इस काशीको पाशुपतस्थली जानना चाहिये याने यह शिवभक्तोंका स्थलहै उसलिये काशीमें मुक्तिचाही मनुष्यों को शिवजी की सेवा करनी चाहिये ॥ ३५ ॥ और कार्त्तिकमासमें गणों

द्विषोममतेज्ञेयाःपतन्तोनरकेऽशुचौ ॥ ३२ ॥ अष्टाविंशतिकोटीषुनरकेषुक्रमेणहि ॥ कल्पंकल्पंवसेयुस्तेयेविश्वेश्वर निन्दकाः ॥ ३३ ॥ विश्वेशानुग्रहंप्राप्यमुनेहमपिमुक्तिदः ॥ मद्भक्तैस्तद्विशेषेणसेव्योविश्वेश्वरोऽनिशम् ॥ ३४ ॥ इयं वाराणसीज्ञेयामुनेपाशुपतस्थली ॥ तस्मात्पशुपतिःसेव्यःकाश्यांनिःश्रेयसार्थिभिः ॥ ३५ ॥ अत्रपञ्चनदेतीर्थेस्नाति विश्वेश्वरःस्वयम् ॥ ऊर्जेसदैवसगणःसस्कन्दःसपरिच्छदः ॥ ३६ ॥ ब्रह्मासवेदःसमखोब्रह्माण्याद्याश्चमातरः ॥ सप्ताब्ध यःससरितःस्नान्त्यूर्जेधूतपापके ॥ ३७ ॥ सचेतनाहियावन्तस्त्रैलोक्येदेहधारिणः ॥ तावन्तःस्नातुमायान्ति कार्त्तिकेधूत पापके ॥ ३८ ॥ यैर्नपञ्चनदेस्नातं प्राप्यकार्त्तिकिकंशुभम् ॥ जलबुद्बुदवत्तेषांवृथाजन्मशरीरिणाम् ॥ ३९ ॥ आनन्द काननंपुण्यंपुण्यंपाञ्चनदन्ततः ॥ ततोपिममसान्निध्यमग्निबिन्दोमहामुने ॥ ४० ॥ अनेनैवानुमानेनविद्धिपञ्चनद

समेत, कार्त्तिकेय समेत व उपयोगी वस्तुवों समेत श्रीविश्वनाथजी आपही इस पंचनद तीर्थमें सदैव नहाते हैं ॥३६॥ यज्ञों समेत व वेदों समेत ब्रह्माजी व ब्रह्माणी आदि मातृकायें और सब नदियों समेत सातो समुद्रभी कार्त्तिकभर इस धूतपापक पंचनद तीर्थमें नहाते हैं ॥३७॥ व तीनों लोकोंमें जितने सचेतन देहधारी हैं उतने सब धूतपापक तीर्थ में नहाने के लिये कार्त्तिक में यहां आते हैं ॥ ३८ ॥ व शुभ कार्त्तिक मास को प्राप्तहोकर जिन्होंने पंचनदमें नहीं नहाया उन देहधारियों का जन्म जल के बुल्लाकी नाईं वृथाहै ॥ ३९ ॥ हे अग्निबिंदो, महामुने ! पहले तो आनंदवन (काशी) पुण्यरूप है फिर पंचनद तीर्थ उससे अधिक है और मेरा समीप होना उससेभी

हे श्रीवत्सचिह्न, हरे, अच्युत, कैटभशत्रो, गोविन्द, गरुड़वाहन, केशव, चक्रहस्त, लक्ष्मीपते, दानवविदारण, शार्ङ्गपाणे ! तुम्हारी भक्ति (अनुराग) के से वी पुरुषमें डर कहीं नहीं है ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! दूरकिया कस्तूरी के सुगन्ध को जिसने वैसे सुगन्धवाले तुलसी के फूलोंसे जिन करके तुम पूजेगयेहो उन वि-मलस्वभाववाले जनोंको स्वर्गमें सब देवगण मन्दारके फूलोंकी मालाओंसे बहुतही पूजते हैं ॥ ३८ ॥ हे कमलनेत्र ! जिनकी वाणीमें वाञ्छितफलदायक तुम्हारा नाम है व जिनके कानोंमें तुम्हारी कथाके मधुरअक्षर हैं और जिनकी चित्तभित्ति में आपका रूप लिखित है उनको निराकार (ब्रह्म) रूपकी स्थिति दुष्प्रापा या दुर्लभा

श्रीवत्सलाञ्छनहरेच्युतकैटभारेगोविन्दतार्क्ष्यरथकेशवचक्रपाणे ॥ लक्ष्मीपतेदनुजसूदनशार्ङ्गपाणे त्वद्भक्तिभाजिन भयंक्वचिदस्तिपुंसि ॥ ३७ ॥ यैरर्चितोसिभगवंस्तुलसीप्रसूनैर्दूरीकृतैणमदसौरभदिव्यगन्धैः ॥ तानर्चयन्ति दिविदेवगणाःसमस्ता मन्दारदामभिरलंविमलस्वभावान् ॥ ३८ ॥ यद्वाचिनामतवकामदमब्जनेत्रयच्छ्रोत्रयोस्तव कथामधुराक्षराणि ॥ यच्चित्तभित्तिलिखितंभवतोस्तिरूपंनीरूपभूपपदवीनहितैर्दुरापा ॥ ३९ ॥ येत्वांभजन्तिसततं भुविशेषशायिंस्ताँल्लक्ष्मीपतेपितृपतीन्द्रकुबेरमुख्याः ॥ वृन्दारकादिविसदैवसभाजयन्तिस्वर्गापवर्गसुखसन्ततिदान दत्त ॥ ४० ॥ येत्वांस्तुवन्तिसततंदिवितान्स्तुवन्तिसिद्धाप्सरोमरगणालसदब्जपाणे ॥ विश्राणयत्यखिलसिद्धिदकोवि नात्वांनिर्वाणचारुकमलांकमलायताक्ष ॥ ४१ ॥ त्वंहंसिपासिसृजसिक्षणतःस्वलीलालीलावपुर्धरविरिञ्चिनताङ्घ्रियुग्म ॥ विश्वन्त्वमेवपरविश्वपतिस्त्वमेव विश्वस्यबीजमसितत्प्रणतोस्मिनित्यम् ॥ ४२ ॥ स्तोतात्वमेवदनुजेन्द्ररिपोस्तुति

नहीं है ॥३९॥ हे स्वर्गमुक्तिसुखसन्ततिदानदक्ष, शेषशायिन्, लक्ष्मीपते ! जे भूलोकमें तुमको निरन्तर भजतेहैं उनको स्वर्गमें यम इन्द्र और कुबेरादि देव सदैव पूजते हैं ॥ ४० ॥ हे सोहतेहुये कमलहाथवाले, कमलायताक्ष, सकलसिद्धिदायक ! जे जन निरन्तर तुम्हारी स्तुति करते हैं उनकी स्वर्गमें सिद्ध अप्सरा और देवसमूह स्तुति करते हैं और तुम्हारे विना मुक्तिकी सुन्दरी सम्पत्तिको कौन देताहै याने कोई नहीं देसक्ता है ॥ ४१ ॥ हे ब्रह्मासे वन्दितयुगलपदवाले, व अपनी लीलासे लीला-रूपधारिन्, परमेश्वर ! तुम जगत्को क्षणमें रचतेहो व पालतेहो और बालतेहो व तुमहीं जगत्हो व तुमहीं जगत् के पतिहो और तुमहीं जगत् के कारणहो उस

लिये मैं नित्यही तुम्हारे नमस्कारकरनेवालाहूं ॥ ४२ ॥ हे संसारशत्रो, दानवेन्द्रवैरिन्, विष्णो ! तुमहीं स्तुतिकर्त्ताहो व तुमहीं स्तुतिहो व तुमहीं स्तुतिकेयोग्य हो और इस ब्रह्माण्डमें सब कुछ एक आपही हैं व तुमसे भिन्न कुछ भी मैं नहीं जानताहूं इससे तुम संसारसे उपजी हुई मेरी तृष्णाको सदैव काटो ॥ ४३ ॥ इसभांति इन्द्रियोंके स्वामी (विष्णुजी) की स्तुतिकर बड़ातपस्वी अग्निबिन्दु ऋषि मौनहो टिकरहा तदनन्तर वरदायक विष्णुजी मुनिसे बोले ॥४४॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे बड़ी तपस्याओं के निधान,महापण्डित,अग्निबिन्दो ! मैं बहुत प्रसन्नहूं और तुमको कुछ अदेय नहींहै याने सब कुछ देनेयोग्यहै इससे तुम वरको अंगीकारकरो॥४५॥

स्त्वंस्तुत्यस्त्वमेवसकलंहिभवानिहैकः ॥ त्वत्तोनकिञ्चिदपिभिन्नमवैमिविष्णोतृष्णांसदाकृणुहिमेभवजाम्भवारे ॥ ४३ ॥ इतिस्तुत्वाहृषीकेशमग्निबिन्दुर्महातपाः ॥ तस्थौतूष्णींततोविष्णुरुवाचवरदोमुनिम् ॥ ४४ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ अग्निबिन्दोमहाप्राज्ञमहतांतपसांनिधे ॥ वरंवरयसुप्रीतस्तवादेयंनकिञ्चन ॥ ४५ ॥ अग्निबिन्दुरुवाच ॥ यदिप्रीतोसिभगवन्वैकुण्ठेशजगत्पते ॥ कमलाकान्ततद्देहियदिहप्रार्थयाम्यहम् ॥ ४६ ॥ कृतानुज्ञोथहरिणाभ्रूभङ्गेनसतापसः ॥ कृतप्रणामोहृष्टात्मावरयामासकेशवम् ॥ ४७ ॥भगवन्सर्वगोपीहतिष्ठपञ्चनदेहृदे ॥ हितायसर्वजन्तूनांमुमुक्षूणांविशेषतः ॥ ४८ ॥ लक्ष्मीशेनवरोमह्यमेषदेयोऽविचारतः ॥ नान्यंवरंसमीहेहंभक्तिञ्चत्वत्पदाम्बुजे ॥ ४९ ॥ इतिश्रुत्वावरंतस्याग्निबिन्दोर्म्मधुसूदनः ॥ प्रीतःपरोपकारार्थंतथेत्याहाब्धिजापतिः ॥ ५० ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ अग्निबिन्दोमुनि

अग्निबिन्दु बोले कि, हे भगवन्, वैकुण्ठेश, जगत्पते, लक्ष्मीनाथ ! जो तुम प्रसन्नहो तो मैं जो यहां मांगताहूं उसको मुझे दीजिये ॥ ४६ ॥ तदनन्तर भौंह भंगसे कीगई आज्ञा जिसके लिये उस प्रणाम कियेहुये, प्रसन्नमनवाले तपस्वीने विष्णुजीसे वरदानको स्वीकार किया ॥ ४७ ॥ कि हे भगवन् ! सब जतुओं व विशेषता से मुक्ति चाहियों के हित के लिये सर्वगत भी आप इस पंचनदकुंडमे तुम टिको ॥ ४८ ॥ हे लक्ष्मीश ! विना विचारेही मेरे लिये यह श्रेष्ठवर देने योग्य है और मैं अन्यवरको नहीं चाहताहूं परंतु तुम्हारे चरणारविंद में भक्तिको चाहताहूं ॥ ४९ ॥ इसभांति पराये उपकार के अर्थ उस अग्निबिन्दु का वर सुनकर प्रसन्नहुये, मधुदैत्य के मारने

अधिक है ॥ ४० ॥ हे महाप्राज्ञ! इस अनुमान सेही पंचनद तीर्थकी महिमाको सब तीर्थों से उत्तमोत्तम जानो ॥ ४१ ॥ कि जिस महिमाको सुनकरभी बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य महापापों से छूटजाता है इस भांति श्रीविष्णुजीके मुखसे सुनकर उस अग्निबिंदु नामक महामुनि ने ॥ ४२ ॥ जोकि कभी नहीं च्युत होतेहैं उन श्रीबिंदुमाधवजीके प्रणाम कर फिर पूंछा ॥ ४३ ॥ अग्निबिंदु बोले कि, हे भगवन्, जनार्दन, बिंदुमाधवजी! मैं सुनने की इच्छाकरताहूँ कि काशी में तुम्हारे कितने भांति के रूप हैं उनको तुम कहो ॥ ४४ ॥ हे अच्युत ! यहां भविष्यभी कौनहैं उनको मुझसे कहो कि जिनको भलीभांति पूजकर तुम्हारे भक्त कृतकृत्यताको प्राप्त

स्यवै ॥ महिमानंमहाप्राज्ञसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ४१ ॥ श्रुत्वापियंमहाप्राज्ञोमहापापैःप्रमुच्यते ॥ विष्णोर्मुखादितिश्रुत्वासोग्निबिन्दुर्महामुनिः ॥ ४२ ॥ पुनःप्रणम्यपप्रच्छबिन्दुमाधवमच्युतम् ॥ ४३ ॥ अग्निबिन्दुरुवाच ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामिबिन्दुमाधवतद्वद ॥ कतिधातवरूपाणिकाश्यांसन्तिजनार्दन ॥ ४४ ॥ भविष्याण्यपिकानीहतानिमेकथयाच्युत ॥ यानिसम्पूज्यतेभक्ताःप्राप्स्यन्तिकृतकृत्यताम्॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेबिन्दुमाधवाविर्भावोनामषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ षडास्यमाधवाख्यानं श्रुतंमेपापनाशनम् ॥ महिमापिश्रुतःश्रेयान्सम्यक्पञ्चनदस्यवै॥१॥यदग्निबिन्दुनापृच्छिमाधवोदैत्यसूदनः ॥ तस्योत्तरंसमाख्याहियथाख्यातंमधुद्विषा ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृणवगस्त्यमहर्षेत्वंकथ्यमानंमयाधुना ॥ माधवेनयथाचष्टमुनयेचाग्निबिन्दवे ॥ ३ ॥ बिन्दुमाधवउवाच ॥ आदौपादोदकेती

होवेंगे ॥ १४५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते श्रीबिन्दुमाधवाविर्भावो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो०। यकसठयें अध्याय में वैष्णव तीर्थ अनेक। केशवादि चौबीस कहि मूर्त्ति सुचिह्न विवेक ॥ अगस्त्य जी बोले कि हे षण्मुख! मैंने पापविनाशी श्रीबिंदुमाधवजी का आख्यान सुना और पंचनद तीर्थ की श्रेष्ठ महिमा भी मुझ से भलीभांति सुनी गई है ॥ १ ॥ अग्निबिंदुने दैत्यदलन श्रीबिंदुमाधवजी से जो पूंछा व मधु दैत्य के वैरी विष्णुजी ने जैसे उसका उत्तर कहा उस को तुम भलीभांति कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महर्षे, अगस्त्य जी! जैसे बिंदुमाधव जी ने अग्नि-

बिंदु मुनिसे कहा वैसेही इस समय मुझसे कहे जातेहुये उस उत्तरको सुनो ॥ ३ ॥ श्रीबिंदुमाधवजी बोले कि, हे महाप्राज्ञ, अग्निबिन्दो ! पहले तो पादोदक तीर्थमें भक्तोंको मुक्तिदायक आदिकेशव नामक मुझको जानो ॥ ४ ॥ व मुक्तिक्षेत्र काशीमें जे आदिकेशव की पूजा करते हैं वे सब दुःखोंसे हीन होकर मोक्षको ही सेवते हैं ॥ ५ ॥ वह आदिकेशव जी दर्शन से मनुष्यों के पापहारी संगमेश्वर नामक महालिंगकी प्रतिष्ठाकर सदैव भुक्ति व मुक्तिको देते हैं ॥ ६ ॥ व पादोदक तीर्थसे दक्षिणमें जो बड़ा भारी परम पूजनीय श्वेतद्वीप तीर्थ है वहां ज्ञानकेशवनामक मैं मनुष्यों का ज्ञानदाता हूं ॥ ७ ॥ उन ज्ञानकेशव के समीप श्वेतद्वीप तीर्थ में स्नानकर ज्ञान-

र्थेविद्धिमामादिकेशवम् ॥ अग्निबिन्दोमहाप्राज्ञभक्तानांमुक्तिदायकम् ॥ ४ ॥ अविमुक्तेऽमृतक्षेत्रेयेर्चयन्त्यादिकेशवम् ॥ तेऽमृतत्वंभजन्त्येवसर्वदुःखविवर्जिताः ॥ ५ ॥ सङ्गमेशंमहालिङ्गंप्रतिष्ठाप्यादिकेशवः ॥ दर्शनादघहंनृणांभुक्तिमुक्तिंदिशेत्सदा ॥ ६ ॥ याम्यांपादोदकाच्छ्वेतद्वीपतीर्थंमहत्तरम् ॥ तत्राहंज्ञानदोनृणांज्ञानकेशवसंज्ञकः ॥ ७ ॥ श्वेतद्वीपेनरःस्नात्वाज्ञानकेशवसन्निधौ ॥ नज्ञानाद्भ्रश्यतेक्वापिज्ञानकेशवपूजनात् ॥ ८ ॥ ताक्ष्र्यकेशवनामाहंताक्ष्र्यतीर्थेनरोत्तमैः ॥ पूजनीयःसदाभक्त्याताक्ष्र्यवत्तेप्रियाममम ॥ ९ ॥ तत्रैवनारदेतीर्थेस्म्यहंनारदकेशवः ॥ ब्रह्मविद्योपदेष्टाचतत्तीर्थाप्लुतवर्ष्मणाम् ॥ १० ॥ प्रह्लादतीर्थेतत्रैवनाम्नाप्रह्लादकेशवः ॥ भक्तैःसमर्चनीयोहंमहाभक्तिसमृद्धये ॥ ११ ॥ तीर्थेऽम्बरीषेतत्राहन्नाम्नैवादित्यकेशवः ॥ पातकध्वान्तनिचयंध्वंसयामीक्षणादपि ॥ १२ ॥ दत्तात्रेयेश्वराद्याम्यामहमा

केशवकी पूजा करनेसे मनुष्य कहीं भी ज्ञानसे नहीं भ्रष्ट होताहै ॥ ८ ॥ व ताक्ष्र्यतीर्थमें ताक्ष्र्यकेशवनामक मैं नरोत्तमोंसे सदैव भक्तिसे पूजनीय हूं और वे पूजकलोग गरुड़ की नाईं मेरे प्यारे होते हैं ॥ ९ ॥ व वहांही नारदतीर्थ में नारदकेशवनामक मैं उस तीर्थ में डुबाई हुई देहोंवाले लोगों को ब्रह्मविद्याका उपदेश करनेवालाहूं ॥ १० ॥ और वहांही प्रह्लादतीर्थ में प्रह्लादकेशव नाम से प्रसिद्ध मैं बड़ी भक्तिकी समृद्धिके लिये भक्तों से भलीभांति पूजनीय हूं ॥ ११ ॥ व वहां अंबरीष तीर्थ में आदित्य-केशव नामक मैं क्षणमेंही पापरूप अन्धकार समूह का विध्वंस करदेताहूं ॥ १२ ॥ और दत्तात्रेयेश्वर से दक्षिण में टिकाहुवा आदिगदाधर नामक मैं भक्तों के ससार

रूप रोग की राशिको हरलेताहूं ॥ १३ ॥ व वहांही भार्गवतीर्थ में भृगुकेशव नामक मैं काशीवासी जनों को मनोरथों से पोषण करताहूं ॥ १४ ॥ व मनवाञ्छित फलदा-
यक वामन नामक मङ्गलकारक महातीर्थ में नामसे वामनकेशव कहाताहुवा मैं शुभकी इच्छा करतेहुये जनोंसे पूजनीयहूं ॥ १५ ॥ व नरनारायण तीर्थ में नरनारायण
रूप मुझको भलीभांति पूजकर भक्तलोग निश्चयसे नरनारायणात्मक होजाते हैं ॥१६॥ व यज्ञवराहनामक तीर्थमें यज्ञवाराहसंज्ञक मैं सब यज्ञोंके फल चाहतेहुये मनुष्यों
से भलीभांति पूजने योग्य हूं ॥ १७ ॥ और काशीवासी लोगों के विघ्नों का विदारनेवाला विदारनारसिंह नामक मैं तीर्थोपद्रवों की शांति के लिये उन विदारनार-

दिगदाधरः ॥ हरामितत्रभक्तानांसंसारगदसञ्चयम् ॥१३॥ तत्रैवभार्गवेतीर्थेभृगुकेशवनामतः ॥ काशीनिवासिनःपुंसो
बिभर्मिचमनोरथैः ॥ १४ ॥ वामनाख्येमहातीर्थेमनःप्रार्थितदेशुभे ॥ पूज्योहंशुभमिच्छद्भिर्नाम्नावामनकेशवः ॥ १५ ॥
नरनारायणेतीर्थेनरनारायणात्मकम् ॥ भक्ताःसमर्च्यमांस्युर्वैनरनारायणात्मकाः ॥ १६ ॥ तीर्थेयज्ञवराहाख्येयज्ञवारा
हसंज्ञकः ॥ नरैःसमर्चनीयोहंसर्वयज्ञफलेप्सुभिः ॥ १७ ॥ विदारनरसिंहोहंकाशीविघ्नविदारणः ॥ तन्नाम्नितीर्थेसंसे
व्यस्तीर्थोपद्रवशान्तये ॥ १८ ॥ गोपीगोविन्दतीर्थेतुगोपीगोविन्दसंज्ञकम् ॥ समर्च्यमान्नरोभक्त्याममभायान्नसंस्पृ
शेत् ॥ १९ ॥ मुनेलक्ष्मीनृसिंहोस्मितीर्थेतन्नाम्निपावने ॥ दिशामिभक्तियुक्तेभ्यःसदानैःश्रेयसींश्रियम् ॥ २० ॥ शेष
माधवनामाहंशेषतीर्थेऽघहारिणि ॥ विश्राणयाम्यशेषांश्चविशेषान्भक्तचिन्तितान् ॥ २१ ॥ शङ्खमाधवतीर्थेचस्ना
त्वामांशङ्खमाधवम् ॥ शङ्खोदकेनसंस्नाप्यभवेच्छङ्खनिधेःपतिः ॥ २२ ॥ हयग्रीवेमहातीर्थेमांहयग्रीवकेशवम् ॥ प्रण

सिंह के नामवाले तीर्थ में भलीभांति सेवने योग्य हूं ॥ १८ ॥ व गोपीगोविंदतीर्थमें गोपीगोविंद संज्ञक मुझको भक्तिसे भलीभांति पूजकर मनुष्य मायाको नहीं छूता
है ॥१९॥ हे मुने! उन लक्ष्मीनृसिंहके नामवाले पावनतीर्थमें मैं लक्ष्मीनृसिंह हूं व भक्तियुत लोगोंके लिये सदैव मुक्तिसम्पत्तिको देताहूं ॥२०॥ व पापहारी शेष तीर्थमें
शेषमाधवनामक मैं भक्तोंके चिंतनकियेहुये सम्पूर्ण विशेष वाञ्छितोंकोदेताहूं॥२१॥व शङ्खमाधव तीर्थमें नहाकर शङ्खमाधवनामक मुझको शङ्खके जलसे स्नानकराकर प्राणी

शङ्ख नामक निधिका स्वामी होताहै ॥२२॥ व हयग्रीव महातीर्थमें हयग्रीवकेशवनामक मुझको प्रणामकर विष्णुजीके उस प्रसिद्ध परमपदको निश्चयकर मनुष्य प्राप्तहोवे है ॥ २३ ॥ व वृद्धकालेश्वर के पश्चिम में भक्तियोग के द्वारा भक्तों से सेवित हुवा भीष्मकेशव नामक मैं भारी भयानक विघ्नों को हरलेताहूं ॥ २४ ॥ व लोलार्क से उत्तर भाग मे भक्तोंका मुक्तिसूचक निर्वाणकेशवनामक मैं मनकी चञ्चलता को हरताहूं ॥ २५ ॥ व काशी में त्रिलोकसुन्दरी वन्दी देवी से दक्षिण ओर त्रिभुवन-केशवनामक मुझ को जो भलीभांति पूजेगा वह फिर गर्भसेवी न होवेगा ॥ २६ ॥ व ज्ञानवापी के पूर्व ओर में मुझ को ज्ञानमाधव जानो वहां भक्ति से मेरी पूजाकर

स्यप्राप्नुयान्नूनन्तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ २३ ॥ भीष्मकेशवनामाहंवृद्धकालेशपश्चिमे ॥ उपसर्गान्हरेभीष्मान्सेवितोभक्तियुक्तितः ॥ २४ ॥ निर्वाणकेशवश्चाहम्भक्तानिर्वाणसूचकः॥लोलार्कादुत्तरेभागेलोलत्वञ्चेतसोहरे॥२५॥वन्द्यास्त्रिलोकसुन्दर्यायाम्यांयोमांसमर्चयेत् ॥ काश्यांख्यातंत्रिभुवनकेशवंनसगर्भभाक् ॥ २६ ॥ ज्ञानवाप्याःपुरोभागेविद्धिमांज्ञानमाधवम् ॥ तत्रमाम्भक्तितोभ्यर्च्यज्ञानंप्राप्नोतिशाश्वतम् ॥ २७ ॥ श्वेतमाधवसंज्ञोहंविशालाक्ष्याःसमीपतः ॥ श्वेतद्वीपेश्वरंरूपंकुर्याम्भक्त्यासमर्चितः ॥ २८ ॥ उदग्दशाश्वमेधान्माम्प्रयागाख्यञ्चमाधवम्॥ प्रयागतीर्थेसुस्नातोदृष्ट्वापापैःप्रमुच्यते ॥ २९ ॥ प्रयागगमनेपुंसांयत्फलंतपसिश्रुतम् ॥ तत्फलंस्याद्दशगुणमत्रस्नात्वाममाग्रतः ॥ ३०॥ गङ्गायमुनयोःसङ्गेयत्पुण्यंस्नानकारिणाम् ॥ काश्याम्मत्सन्निधावत्रतत्पुण्यंस्याद्दशोत्तरम् ॥ ३१ ॥ दानानिराहुग्रस्तेर्केददतांयत्फलम्भवेत् ॥ कुरुक्षेत्रेहितत्काश्यामत्रैवस्याद्दशाधिकम् ॥ ३२ ॥ गङ्गोत्तरवहायत्रयमुनापूर्ववाहि

सदैव रहनेवाले अखण्ड ज्ञान को प्राप्तहोता है ॥ २७ ॥ व विशालाक्षी देवी के समीप में भक्ति से भलीभांति पूजाहुवा श्वेतमाधव संज्ञक मैं श्वेतद्वीपेश्वर रूप को करदेताहूं ॥ २८ ॥ व दशाश्वमेध से उत्तर प्रयागतीर्थ में नहाया हुवा मनुष्य प्रयागमाधव नामक मुझ को देखकर सब पापों से छूटजाताहै ॥ २९ ॥ माघमासमें प्रयाग तीर्थ के जाने में पुरुषोंके लिये जो फल सुनागयाहै वह फल यहां मेरे आगे स्नानकर दशगुना होवे है ॥ ३० ॥ व गंगा और यमुना के सङ्गम में स्नानकर्त्ताओं को जो पुण्यहै वह काशीमें मेरे समीप यहां दशगुना अधिक होवे ॥ ३१ ॥ व राहुसे ग्रसे हुये सूर्य्यके होतेही याने सूर्य्यग्रहण समय कुरुक्षेत्रमें दान देते हुये जनों को

जो फलहोवे वहही काशी में यहांही दशगुना अधिक होवे ॥ ३२ ॥ व जहां गंगा उत्तरवाहिनी है व यमुना पूर्ववाहिनी है उन के संगमको प्राप्तहोकर नर ब्रह्महत्या से छूटजाताहै ॥ ३३ ॥ और महाफल चाहतेहुये जनको वहा मूड़ मुड़ाना चाहिये व भक्तिसे पिंडा पारना चाहिये व सब दान देना चाहिये ॥ ३४ ॥ प्रजापति (ब्रह्मा) के क्षेत्र (प्रयाग) में जे सब गुण भलीभांति कहेगये हैं वेही अविमुक्त नामक (काशी) महाक्षेत्रमें असंख्य होजाते हैं ॥ ३५ ॥ क्योंकि वहां वाञ्छितफलदायक प्रयागेश्वर नामक (शूलटंकेश्वर) महालिंग टिकाहै उसका समीप होनेसे वह तीर्थ कामना देनेवाला कहागया है ॥ ३६ ॥ जिन्होंने अरुणोदय को प्राप्तहोकर मकरके सूर्य्यमें प्राप्त

नी ॥ तत्सम्भेदन्नरःप्राप्यमुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ३३ ॥ वपनन्तत्रकर्तव्यंपिण्डदानञ्चभावतः ॥ देयानितत्रदानानिमहाफलमभीप्सुना ॥ ३४ ॥ गुणाःप्रजापतिक्षेत्रेयेसर्वेसमुदीरिताः ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेऽसंख्याताश्चभवन्तिहि ॥ ३५ ॥ प्रयागेशंमहालिङ्गंतत्रतिष्ठतिकामदम् ॥ तत्सान्निध्याच्चतत्तीर्थंकामदम्परिकीर्तितम् ॥ ३६ ॥ काश्यांमाघःप्रयागेयैर्नस्नातोमकरार्कगः ॥ अरुणोदयमासाद्यतेषांनिःश्रेयसङ्कुतः ॥ ३७ ॥ काश्युद्भवेप्रयागेयेतपसिस्नान्तिसंयताः ॥ दशाश्वमेधजनितंफलंतेषाम्भवेद्ध्रुवम् ॥ ३८ ॥ प्रयागमाधवम्भक्त्याप्रयागेशञ्चकामदम् ॥ प्रयागेतपसिस्नात्वायेर्चयन्त्यन्वहंसदा ॥ ३९ ॥ धनधान्यसुतर्द्धीस्तेलब्ध्वाभोगान्मनोरमान् ॥ भुक्त्वेहपरमानन्दंपरम्मोक्षमवाप्नुयुः ॥ ४० ॥ माघेसर्वाणितीर्थानिप्रयागमधियान्तिहि ॥ प्राच्युदीचीप्रतीचीतोदक्षिणाधस्तथोर्ध्वतः ॥ ४१ ॥ काशीस्थितानितीर्थां

माघमासभर काशीसम्बंधी प्रयाग तीर्थ में नहीं नहाया उनकी मुक्ति कहांसे होगी ॥ ३७ ॥ और इन्द्रियों व मनको रोंके हुये जे लोग माघमासभर काशीमें उपजेहुये प्रयागतीर्थ में नहाते हैं उनको दश अश्वमेध यज्ञों से उपजाहुवा फल निश्चयकर होता है ॥ ३८ ॥ और जे माघ में काशी के प्रयाग में स्नानकर भक्ति से प्रतिदिन प्रयागमाधव व मनमाने फलदायक प्रयागेश्वर को सदैव पूजते हैं ॥ ३९ ॥ वे धन धान्य पुत्र व समृद्धिको पाकर व इस लोक में मनोरम भोगो को और उत्तम आनन्द को भोगकर अंत में श्रेष्ठ मुक्तिको पाते हैं ॥ ४० ॥ व माघमास में सब तीर्थ पूर्व उत्तर पश्चिम दक्षिण नीचे तथा ऊंचे से प्रयाग में ही आते हैं ॥ ४१ ॥

हे मुने! काशी में टिकेहुये तीर्थ कहीं नहीं जाते हैं और जो जाते हैं तो अधिक उत्तम तीन तीर्थों में जाते हैं॥ ४२ ॥ महापापसमूहघायक व महापुण्यविधायक जो पंच-नदतीर्थ मेरे समीप पै है उसमें कार्त्तिकभर प्रातः प्रातः याने प्रतिदिन प्रातःकाल सब तीर्थ आते हैं ॥ ४३ ॥ व पापों के वैरी माघमास को प्राप्तहोकर सब तीर्थ प्रयागेश्वर के समीप और मेरे निकट प्रयाग तीर्थमें प्रातःकाल स्नान करते हैं॥ ४४ ॥ व मध्याह्न को प्राप्तहोकर सब तीर्थ नित्यही मुक्तिदायिका मणिकर्णिका नहानेको जाते हैं॥ ४५ ॥ हे मुने! काशी में जैसे अपने अपने समय पै तीन तीर्थ विशेषता से श्रेष्ठ हैं वैसे यह उत्तम रहस्य तुम से कहा ॥ ४६ ॥ और अन्यरहस्य को भी कहूंगा जो कि

निमुनेयान्तिनकुत्रचित् ॥ यदियान्तितदायान्तितीर्थत्रयमनुत्तमम् ॥ ४२ ॥ आयान्त्यूर्जेपञ्चनदेप्रातःप्रातर्ममान्ति कम् ॥ महाघौघप्रशमनेमहाश्रेयोविधायिनि ॥ ४३ ॥ प्राप्यमाघमघारिञ्चप्रयागेशसमीपतः ॥ प्रातःप्रयागेसंस्ना न्तिसर्वतीर्थानिमामनु ॥ ४४ ॥ समासाद्यचमध्याह्नमभियान्तिचनित्यशः ॥ संस्नातुंसर्वतीर्थानिमुक्तिदांमणिकर्णि काम् ॥ ४५ ॥ काश्यांरहस्यम्परममेतत्तेकथितम्मुने ॥ यथातीर्थत्रयीश्रेष्ठास्वस्वकालेविशेषतः ॥ ४६ ॥ अन्यद्रहस्यं वक्ष्यामिनवाच्यंयत्रकुत्रचित् ॥ अभक्तेषुसदागोप्यंनगोप्यंभक्तिमज्जने ॥ ४७ ॥ काश्यांसर्वाणितीर्थानिएकैकादुत्तरो त्तरम् ॥ महैनांसिप्रहन्त्येवप्रसह्यनिजतेजसा ॥ ४८ ॥ एतदेवरहस्यन्तेवाराणस्याउदीर्यते ॥ उत्क्षिप्यैकाङ्गुलिंतथ्यं श्रेष्ठकामणिकर्णिका॥ ४९॥ गर्जन्तिसर्वतीर्थानिस्वस्वधिष्ण्यगतान्यहो ॥ केवलम्बलमासाद्यसुमहन्माणिकर्णिकम् ॥ ५० ॥ पापानिपापिनांहत्वामहान्त्यपिबहून्यपि ॥ काशीतीर्थानिमध्याह्नेप्रायश्चित्तचिकीर्षया ॥ ५१ ॥ पर्वस्वपर्वस्व

जहां कहीं कहने योग्य नहीं है व भक्तिरहित जनों के बीच में सदैव गोपनीय है और भक्तिसहित जनमें गोपनीय नहीं है याने भक्त से न छिपाना चाहिये ॥ ४७ ॥ कि काशी में सब तीर्थ एकएक से उत्तर उत्तर जैसेहो वैसेही अपने तेज के द्वारा हठसेही बडेपापों को विनष्ट करदेते हैं ॥ ४८ ॥ एक अंगुली उठाकर यहही काशी का तथ्य रहस्य तुम से कहाजाता है कि एक मणिकर्णिका सब से श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥ आश्चर्य्य है कि केवल मणिकर्णिकाके बड़े बलको प्राप्तहोकर अपने अपने स्थान में गयेहुये सब तीर्थ गर्जते है ॥ ५० ॥ व पापियों के बहुते भी बड़े भी पापोंको हनकर काशीके सब तीर्थ प्रायश्चित्त करने की इच्छा से मध्याह्न समय ॥ ५१ ॥ पर्वो व विना

पर्वों में भी नित्यनियमी होकर मणिकर्णिका में स्नानकर निश्चय से निर्मल होजाते हैं ॥ ५२ ॥ व श्रीपार्वती जी के साथ श्रीविश्वनाथजी मध्याह्नको प्राप्तहोकर सदैव मणिकर्णिका मे प्रतिदिन भलीभांति स्नान करते हैं ॥ ५३ ॥ हे मुने! लक्ष्मीजीके साथ वैकुंठ से आकर मैं भी नित्यही मध्याह्न समय में अधिक आनंद से मणिकर्णिका में नहाताहूं ॥ ५४ ॥ और जिसलिये कभी एक बार मेरा नाम जपते हुये लोगों के पापों को मैं हरलेताहूं उस लिये मणिकर्णिका के बल से मैं हरि इस नाम को प्राप्तहुवाहूं ॥ ५५ ॥ और सत्यलोक से हंस पै सवार ब्रह्माजी प्रतिदिन मध्याह्न समय की क्रिया करने के लिये मणिकर्णिका को भलीभांति आते हैं ॥ ५६ ॥

पिवानित्यंनियमवन्त्यहो ॥ निर्मलानिभवन्त्येवविगाह्यमणिकर्णिकाम् ॥ ५२ ॥ विश्वेशोविश्वयासार्धंसदोपमणिकर्णिकम् ॥ मध्यंदिनंसमासाद्यसंस्नातिप्रतिवासरम् ॥ ५३ ॥ वैकुण्ठादप्यहंनित्यंमध्याह्नेमणिकर्णिकाम् ॥ विगाहेपद्मयासार्धंमुदापरमयामुने ॥ ५४ ॥ सकृन्ममाख्यांगृणतांनिर्हरन्यदघान्यहम् ॥ हरिनामसमापन्नस्तद्बलान्मणिकर्णिकात् ॥ ५५ ॥ सत्यलोकात्प्रतिदिनंहंसयानःपितामहः ॥ माध्याह्निकविधानाय समायान्मणिकर्णिकाम् ॥ ५६ ॥ इन्द्राद्यालोकपालाश्चमरीचाद्यामहर्षयः ॥ माध्याह्निकींक्रियांकर्तुंसमीयुर्मणिकर्णिकाम् ॥ ५७ ॥ शेषवासुकिमुख्याश्चनागावैनागलोकतः ॥ समायान्तीहमध्याह्नेसंस्नातुंमणिकर्णिकाम् ॥ ५८ ॥ चराचरेषुसर्वेषुयावन्तश्चसचेतनाः ॥ तावन्तःस्नान्तिमध्याह्नेमणिकर्णीजलेमले ॥ ५९ ॥ केमाणिकर्णिकेयानांगुणानांसुगरीयसाम् ॥ शक्तावर्णयितुंविप्राऽसङ्ख्येयानांमदादिभिः ॥ ६० ॥ चीर्णान्युग्राण्यरण्येषुतैस्तपांसितपोधनैः ॥ यैरियंहिसमासादिमुक्तिभूर्मणिकर्णिका ॥ ६१ ॥ विश्राणितमहादानास्तएवनरपुङ्गवाः ॥ चरमेवयसिप्राप्तायैरेषामणिकर्णिका ॥ ६२ ॥ चीर्णसर्वव्रतास्तेतुयथोक्तविधिना

व इन्द्रादि लोकपाल और मरीचि आदिक महर्षि मध्याह्नकी क्रिया करने के लिये मणिकर्णिका को आते हैं ॥ ५७ ॥ शेष व वासुकी आदि नाग भी नागलोक से मणिकर्णिका नहानेको मध्याह्न समय में यहां आते हैं ॥ ५८ ॥ व सब स्थावर जङ्गमों में जितने सचेतन हैं उतने मध्याह्न समय विमल मणिकर्णिका के जल में नहाते हैं ॥ ५९ ॥ हे विप्र ! हम आदि लोगों से असंख्येय याने गन्ती करनेके न योग्य मणिकर्णिका के बड़े भारी बहुतसे गुणों का वर्णन करने को कौन समर्थ हैं ॥ ६० ॥ व

मुक्ति की भूमिका इस मणिकर्णिका को जिन तपोधनोंने पाया है उन्होंने वनोंमें बड़ी उग्र तपस्या किया है॥ ६१ ॥ व वेही मनुष्योत्तम महादान दे चुके हैं कि जिन्हों ने अन्त अवस्था में इस मणिकर्णिका को प्राप्त किया ॥ ६२ ॥ और यह निश्चय है कि, वे लोग यथोक्त विधान से सब व्रतों को किये हुयेहैं कि जिन्होंने कोमल मणिकर्णिका स्थली को स्वतल्प किया याने बहुत दुर्लभ भी मणिकर्णिका जिन को मिलगई है ॥ ६३ ॥ व वेही इस लोक में धन्य है और सब यज्ञों में दीक्षित हैं कि जिन्होंने पुण्य से कमाई हुई लक्ष्मी को दानकर मणिकर्णिका को देखा ॥ ६४ ॥ उन मनुष्यों ने इष्टापूर्त आदि अनेक भांति के धर्मोंको किया व जिन्होंने वृद्धावस्था को पाकर मणिकर्णिका को प्राप्त किया ॥ ६५ ॥ और रेशमी या पीतांबर वस्त्र समेत रत्न व सुवर्ण और घोड़े भी बुद्धिमान् जन से यत्नपूर्वक मणिकर्णिका के समीप में सदैव

ध्रुवम् ॥ यैःस्वतल्पीकृतामाणिकर्णिकेयीस्थलीमृदुः ॥ ६३ ॥ तएवधन्यामर्त्यैस्मिन्सर्वक्रतुषुदीक्षिताः ॥ त्यक्त्वापुण्या र्जितांलक्ष्मीमैक्षियैर्मणिकर्णिका ॥ ६४ ॥ कृतानानाविधाधर्माइष्टापूर्तास्तुतैर्नृभिः ॥ वार्धकंसमनुप्राप्यप्रापियैर्मणि कर्णिका ॥ ६५ ॥ रत्नानिसद्दुकूलानिकाञ्चनंगजवाजिनः ॥ देयाःप्राज्ञेनयत्नेनसदोपमणिकर्णिकम् ॥ ६६ ॥ पुण्येनोपा र्जितंद्रव्यमत्यल्पमपियैर्नरैः ॥ दत्तंतदक्षयंनित्यंमुनेधिमणिकर्णिकम् ॥ ६७ ॥ कुर्याद्यथोक्तमप्येकंप्राणायामंनरोत्त मः ॥ यस्तेनविहितोनूनंषडङ्गोयोगउत्तमः ॥ ६८ ॥ जप्त्वैकामपिगायत्रींसंप्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ लभेदयुतगायत्री जपनस्यफलंस्फुटम् ॥ ६९ ॥ एकामप्याहुतिंप्राज्ञोदत्त्वोपमणिकर्णिकम् ॥ यावज्जीवाग्निहोत्रस्यलभेदविकलंफलम् ॥ ७० ॥ इतिश्रुत्वाहरेर्वाक्यमग्निबिन्दुर्महातपाः ॥ प्रणिपत्यमहाभक्त्यापुनःपप्रच्छमाधवम् ॥ ७१ ॥ अग्निबिन्दुरुवाच ॥

देने योग्य हैं ॥ ६६ ॥ हे मुने ! जिन मनुष्योंने पुण्य से बटोराहुवा बहुत थोडाभी धन मणिकर्णिका में दिया उन को वह नित्यही अक्षयफलवाला होता है ॥ ६७ ॥ व जो मनुष्योत्तम मणिकर्णिका के समीप में एक भी प्राणायाम को करे उस ने निश्चय कर उत्तम षडङ्गयोगको किया ॥ ६८ ॥ और मणिकर्णिकाको भलीभांति प्राप्त होकर जो एकबार भी गायत्री जपता है वह दश हज़ार गायत्री जपने का फल पाताहै यह प्रसिद्ध है ॥ ६९ ॥ व बुद्धिमान् लोग मणिकर्णिका के समीप में एकभी आहुति देकर जन्मपर्यन्त के अग्निहोत्रका सकल फलपावे ॥ ७० ॥ इसभांति विष्णु का वचन सुनकर महातपस्वी अग्निबिन्दुमुनिने भारीभक्तिसे प्रणामकर फिर बिन्दु-

माधवजी से पूँछा॥ ७१॥ अग्निबिन्दु बोले कि, हे पुण्डरीकाक्ष, विष्णो ! यह पुण्यरूपा मणिकर्णिका कितनी परिमाणवाली है उसको मुझसे कहो क्योंकि तुमसे अन्य कोई तत्त्वका जाननेवाला नहीं है ॥ ७२ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि,गङ्गाकेशव तक व हरिश्चन्द्रके मण्डपतक व स्वर्गद्वारसे गङ्गाके बीचतक मणिकर्णिकाहै॥७३॥ यह स्थूलमणिकर्णिकाका परिमाण है और सूक्ष्मको भी तुमसे कहता हूं कि हरिश्चन्द्रतीर्थके आगे हरिश्चन्द्रविनायकहैं ॥ ७४ ॥ व यहां मणिकर्णिकाकुण्डके उत्तरमें सीमाविनायकहैं और उन सीमाविनायकको मनुष्योत्तम भक्तिसे पूजकर ॥ ७५ ॥ व उपचारों समेत मोदकों (लड्डुवों) से पूजकर मणिकर्णिकाको प्राप्तहोवे और जे लोग

विष्णोकियत्परीमाणापुण्यैषामणिकर्णिका ॥ ब्रूहिमेपुण्डरीकाक्षनत्वत्तस्तत्त्ववित्परः ॥ ७२ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ आ गङ्गाकेशवादाचहरिश्चन्द्रस्यमण्डपात् ॥ आमध्याद्देवसरितःस्वर्द्वारान्मणिकर्णिका ॥ ७३ ॥ स्थूलमेतत्परीमाणंसू क्ष्मंचप्रवदामिते ॥ हरिश्चन्द्रस्यतीर्थाग्रेहरिश्चन्द्रविनायकः ॥ ७४ ॥ सीमाविनायकश्चात्रमणिकर्णीह्रदोत्तरे ॥ सी माविनायकंभक्त्यापूजयित्वानरोत्तमः ॥ ७५ ॥ मोदकैःसोपचारैश्चप्राप्नुयान्मणिकर्णिकाम् ॥ हरिश्चन्द्रेमहातीर्थेतर्प येयुःपितामहान् ॥ ७६ ॥ शतंसमाःसुतृप्ताःस्युःप्रयच्छन्तिचवाञ्छितम् ॥ हरिश्चन्द्रेमहातीर्थेस्नात्वाश्रद्धान्वितोनरः ॥ ७७ ॥ हरिश्चन्द्रेश्वरंनत्वानसत्यात्परिहीयते ॥ ततःपर्वततीर्थञ्चपर्वतेश्वरसंनिधौ ॥ ७८ ॥ अधिष्ठानंमहामेरोर्महापा तकनाशनम् ॥ तत्रस्नात्वार्चयित्वेशंकिञ्चिद्दत्त्वास्वशक्तितः ॥ ७९ ॥ अध्यास्यमेरुशिखरंदिव्यान्भोगान्समश्नु ते ॥ कम्बलाश्वतरंतीर्थंपर्वतेश्वरदक्षिणे ॥ ८० ॥ कम्बलाश्वतरेशंचतत्तीर्थात्पश्चिमेशुभम् ॥ तस्मिंस्तीर्थेकृतस्नान

हरिश्चन्द्र नामक महातीर्थमें पितरों का तर्पण करतेहैं ॥ ७६ ॥ उनके पितर सौवर्ष तक बहुतही तृप्तहोते हैं व वाञ्छितफलको देतेहैं व हरिश्चन्द्रमहातीर्थ में स्नानकर श्रद्धासमेत मनुष्य ॥ ७७ ॥ हरिश्चन्द्रेश्वर के नमस्कार कर सत्यसे हीन नहीं होता है उसके आगे पर्वतेश्वर के समीप में पर्वततीर्थ है ॥ ७८ ॥ जोकि महामेरु पर्वत का आधार होकर बडेपापोंका नाशकहै उसमें स्नानकर व पर्वतेश्वरजीकी पूजाकर व अपनी शक्तिसे कुछ दानकर ॥ ७९ ॥ सुमेरुगिरि के शिखरपर बसकर दिव्यभोगों को भोगता है व पर्वतेश्वर से दक्षिण में कम्बलाश्वतरतीर्थ है ॥ ८० ॥ उस तीर्थ में स्नान कियेहुआ जो जन उस तीर्थमे पश्चिम मे कल्याणरूप कम्बलाश्वतरेश्वर

उस लिङ्ग की भलीभांति पूजाकरेगा ॥८१॥ उसके कुलमें उपजेहुये भी लोग गीतज्ञ और सम्पत्ति व शोभासे संयुतहोंवें व वहां कम्बलाश्वतरतीर्थमें योनिचक्र को निवारण करनेवाली सूक्ष्मचक्रपुष्करिणी है ॥ ८२ ॥ जिसमें नहाया हुआ मनुष्य विकट संसारचक्र में नहीं पैठता है वह चक्रपुष्करिणीतीर्थ मेरा उत्तम आधार या स्थानहै ॥ ८३ ॥ मैंने वहां परार्धसंख्यक याने ब्रह्माकी पचास वर्षोंतक बड़ा तप तपा है और वहां परमात्मा विश्वेश्वरजी मेरी प्रत्यक्षता को प्राप्तहुये हैं ॥ ८४ ॥ व वहां मैंने अविनाशी अखण्ड व बड़ेभारी ऐश्वर्य्यको पाया और वह चक्रपुष्करिणीभी मणिकर्णिकानामसे कहीगई याने प्रसिद्ध भई है ॥८५॥ और वहां जलरूपको छोड़कर स्त्री

स्तल्लिङ्गंयःसमर्चयेत् ॥ ८१ ॥ अपितस्यकुलेजातागीतज्ञाःस्युःश्रियान्विताः ॥ चक्रपुष्करिणीतत्रयोनिचक्रनिवारिणी ॥ ८२ ॥ संसारचक्रेगहनेयत्रस्नातोविशेन्नना ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थममाधिष्ठानमुत्तमम् ॥ ८३ ॥ समाःपरार्धसङ्ख्यातास्तत्रतप्तंमहातपः ॥ तत्रप्रत्यक्षतांयातोममविश्वेश्वरःपरः ॥ ८४ ॥ तत्रलब्धंमयैश्वर्यमविनाशिमहत्तरम् ॥ चक्रपुष्करिणीचैवख्याताभून्मणिकर्णिका ॥ ८५ ॥ द्रवरूपंपरित्यज्यललनारूपधारिणी ॥ प्रत्यक्षरूपिणीतत्रमयैक्षि मणिकर्णिका ॥ ८६ ॥ तस्यारूपंप्रवक्ष्यामिभक्तानांशुभदंपरम् ॥ यद्रूपध्यानतःपुम्भिरापण्मासंत्रिसन्ध्यतः ॥ ८७ ॥ प्रत्यक्षरूपिणीदेवीदृश्यतेमणिकर्णिका ॥ चतुर्भुजाविशालाक्षीस्फुरद्भालविलोचना ॥ ८८ ॥ पश्चिमाभिमुखीनित्यंप्रबद्धकरसम्पुटा ॥ इन्दीवरवतींमालांदधतीदक्षिणेकरे ॥ ८९ ॥ वरोद्यतेकरेसव्येमातुलुङ्गफलंशुभम् ॥ कुमारीरूपिणीनित्यंनित्यंद्वादशवार्षिकी ॥ ९० ॥ शुद्धस्फटिककान्तिश्चसुनीलस्निग्धमूर्द्धजा ॥ जितप्रवालमाणिक्यरमणीयरदच्छदा ॥ ९१ ॥

रूपधारिणी प्रत्यक्षरूपवाली चक्रपुष्करिणी मुझ से देखीगई है ॥ ८६ ॥ इससे भक्तोंके शुभ देनेवाले उसके उत्तमरूप को कहूंगा कि छः मासपर्यन्त तीनों सन्ध्याओं में ॥ ८७ ॥ जिस रूपका ध्यान करने से मनुष्यों को प्रत्यक्षरूपवाली मणिकर्णिका देवी जोकि चतुर्भुजा विशालनेत्रा और माथमें जगमगाती आंखवाली है वह देख पडती है ॥८८॥ व पश्चिम दिशाके सन्मुखमुखवाली व नित्यही दोनों हाथ जोड़ेहुई व दक्षिणहाथ में श्यामकमलकी माला लियेहुई ॥ ८९ ॥ व वरदेनेको उद्यतहुये वामहाथ में शुभदायक बिजौराबिम्बूका फल धारतीहुई व नित्यही कन्यारूपिणी व नित्यही बारह वर्षकी अवस्थावाली है ॥ ९० ॥ व शुद्धस्फटिकके समान

कान्तिमती व बहुत श्याम सचिक्कणबालोंवाली व मूँगा और माणिक्य को जीते हुये रमणीय ओठोंवाली है ॥ ९१ ॥ व नवीन केतकी के फूलोंसे सोहते व बांधेहुये बालसमूह हैं जिसमें ऐसा जिसका मस्तक है व जिसके सब अङ्गोंमें मोतियों के भूषण हैं व जोकि चन्द्रमा से चमकते हुये वस्त्रसे घिरी है ॥ ९२ ॥ व जोकि शोभा समेत,कमलमयी मालाको हृदयमें धारती हुई बर्त्तीहै वह इस रूपसे मुक्तिचाही लोगोंको निरन्तर ध्यानकरनेयोग्यहै ॥ ९३ ॥ व जोकि श्रीमती मणिकर्णिका मुक्तिसम्पत्तिका मन्दिर है उसके भक्त कल्पद्रुम नामक मन्त्रको मैं कहूंगा कि जिस मन्त्र के जपनेसे मनुष्यों ,की सिद्धियोंका अष्टक भी सिद्ध होजाताहै याने जिसके जपने से आठों सिद्धियां सिद्ध होजाती हैं ॥ ९४ ॥ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ इनको पहले कहे फिर बिन्दुसमेत मं, इसके आगे मणिपद फिर कर्णिके पद के आगे नमः समेत व

प्रत्यग्रकेतकीपुष्पलसद्धम्मिल्लमस्तका॥सर्वाङ्गमुक्ताभरणा चन्द्रकान्त्यंशुकावृता॥९२॥ पुण्डरीकमयींमालांसश्रीकांबिभ्रतीहृदि ॥ ध्यातव्यानेनरूपेणमुमुक्षुभिरहर्निशम्॥९३॥निर्वाणलक्ष्मीभवनंश्रीमतीमणिकर्णिका॥ मन्त्रंतस्याश्चवक्ष्यामिभक्तकल्पद्रुमाभिधम्॥यस्यावर्तनतःसिद्ध्येदपिसिद्ध्यष्टकंनृणाम्॥९४॥ वाग्भवमायालक्ष्मीमदनप्रणवान्वदेत्पूर्वम् ॥ भान्त्यंबिन्दूपेतंमणिपदमथकर्णिकेसहृत्प्रणवपुटः ॥९५॥ मन्त्रःसुरद्रुमसमःसमस्तसुखसन्ततिप्रदोजप्यः॥ तिथिभिः परिमितवर्णःपरमपदन्दिशातिनिशितधियाम् ॥ ९६ ॥ तारस्तारतृतीयोबिन्द्वन्तोमणिपदन्ततःकर्णिके ॥ प्रणवात्मिपदङ्केनमइतिमनुसङ्ख्यवर्णमनुः ॥ ९७ ॥ अयंमन्त्रोऽनिशंजप्यःपुम्भिर्मुक्तिमभीप्सुभिः॥ होमोदशांशकःकार्यःश्रद्धाबद्धादरैर्न्नृभिः ॥ ९८ ॥ परिप्लुतैःपुण्डरीकैर्गव्येनहविषास्फुटैः ॥ सशर्करेणमेधावीसक्षौद्रेणसदाशुचिः ॥ ९९ ॥ त्रि

ॐकारसे सम्पुटित याने (ओं ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं मं मणिकर्णिके नमः ॐ) यह मन्त्रहै॥ ९५ ॥ जोकि मन्त्र कल्पवृक्षके समान सब सुख व संततिका देनेवाला व जपनेयोग्य होकर पन्द्रह संख्यक अक्षरवालाहै वह सूक्ष्मबुद्धियोंको परमपद देताहै ॥९६॥ तथा ॐ और बिन्दुसमेत ॐकारका तीसरा अक्षर (मं) फिर मणिपद उसके आगे कर्णिके उसके बाद प्रणवात्मिके नमः इस भांति याने (ॐमं मणिकर्णिके प्रणवात्मिके नमः) यह चौदह संख्यक अक्षरवाला दूसरा मन्त्रहै॥ ९७ ॥ मुक्तिचाही पुरुषों को यह मन्त्र निरन्तर जपना चाहिये व श्रद्धासे आदर बांधेहुये नरोंको दशांश होम करना चाहिये ॥ ९८ ॥ और सदा पवित्रहुआ बुद्धिमान् मनुष्य फूलेहुये व घृतसे भिगोये

कमल के फूलोंके साथ खण्डसमेत व शहद सहित खीरसे होमकरे ॥ ९९ ॥ तीनलाखसंख्यक मन्त्र जपसे देशान्तरो मे भी मराहुआ इस मन्त्रके प्रभाव से अवश्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ १०० ॥ व पहले कहेहुये रूपसे सम्पन्न, सुवर्णमयी मूर्त्ति नवीनरत्नोंसे संयुत करनेयोग्य और भलीभांति पूजनेयोग्य है ॥१॥ जे पुरुष केवल मुक्तिके चाही हैं उनको सदैव घरमें मूर्त्तिकी पूजा करनाचाहिये अथवा भलीभांति पूजाकर बड़े यत्नसे मणिकर्णिकामें छोड़ देना चाहिये ॥२॥ व संसारसे डरभुत दूर देशनिवासी भी जे पुरुष यहां याने काशीके बीच मणिकर्णिकामें श्रद्धासे आदर बांधे हैं उनको यह उपाय भलीभांति करना चाहिये ॥ ३ ॥ क्योंकि मणिकर्णिकामें स्नान

लक्षमन्त्रजप्येनमृतोदेशान्तरेष्वपि ॥ अवश्यंमुक्तिमाप्नोतिमन्त्रस्यास्यप्रभावतः ॥ १०० ॥ सौवर्णीप्रतिमाकार्यानवरत्नसमन्विता ॥ पूर्वोक्तरूपसम्पन्नासम्पूज्यासाप्रयत्नतः ॥ १ ॥ सम्पूज्यावासदागेहेनरैर्मोक्षैककाङ्क्षिभिः ॥ मणिकर्ण्यामथाक्षेप्यासमभ्यर्च्यप्रयत्नतः ॥ २ ॥ संसारभीरुभिःपुम्भिःश्रद्धाबद्धादरैरिह ॥ उपायःसमनुष्ठेयोह्यपिदूरनिवासिभिः ॥३॥ मणिकर्ण्यांकृतस्नानोमणिकर्णीशवीक्षणात् ॥ जननीजठरावासेवसतिन्नलभेन्नरः ॥ ४ ॥ मणिकर्णीश्वरंलिङ्गंपुरासंस्थापितम्मया ॥ प्राग्द्वारेन्तर्गृहस्यात्रसमर्च्योमोक्षकाङ्क्षिभिः ॥ ५ ॥ ततःपाशुपतंतीर्थमवाच्यांमणिकर्णितः ॥ कृतोदकक्रियस्तत्रपश्येत्पशुपतीश्वरम् ॥ ६ ॥ यत्रपाशुपतोयोगउपदिष्टःपिनाकिना ॥ ममापिविधिमुख्यानांसुराणाम्पशुपाशहृत् ॥ ७ ॥ अतःपशुपतिर्यत्रलिङ्गरूपधरःस्वयम् ॥ पशुपाशविमोक्षायनित्यंकाश्यांप्रकाशते ॥ ८ ॥ तत्रचैत्रचतुर्दश्यांशुक्लायांशुचिमानसैः ॥ कार्यायात्राप्रयत्नेनरात्रौजागरणंतथा ॥ ९ ॥ पूजयित्वापशुपतिमुपोष

कियेहुआ जन मणिकर्णिकेश्वरके दर्शनसे माताके उदरमें वासको नहीं पाताहै याने वह मुक्त होजाता है ॥ ४ ॥ मैंने पूर्वकालमे अन्तर्गेह के पूर्वद्वारपर मणिकर्णीश्वर लिंगकी भलीभांति प्रतिष्ठा कियाहै वह मणिकर्णीश्वर मोक्ष चाहियोंसे यहां भलीभांति पूजनेयोग्यहै ॥५॥ उस मणिकर्णीसे दक्षिण दिशामें पाशुपततीर्थहै उसमें स्नानादि नित्यक्रिया कियेहुआ नर पशुपतीश्वरका दर्शनकरे ॥६॥ जहां ब्रह्मादि देव और मेरेलिये भी पिनाकधारी शिवजीने संसारी जीवोंका पाशहारी पाशुपतयोग उपदेश कियाहै ॥७॥ इसलिये शिवजी आपही पशुरूप जीवोंकी माया छुडानेके लिये लिङ्गरूपधारी होकर जहां काशीमें नित्यही प्रकाश करते है ॥८॥ और वहां चैतसुदी चतुर्दशी

को तरकर अपने पितरों को भी तारदेवे ॥ १९ ॥ उसके समीप में जो स्कन्दतीर्थ है उसमें स्नानकर और षएमुखजी का दर्शनकर मनुष्योत्तम छः कोशकी याने त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, अस्थि और मज्जा इन छः कोशोंवाली देहको त्यागदेवे ॥ २० ॥ व तारकेश्वर से पूर्वमें षएमुखदेव के दर्शनकर कौमाररूप को प्राप्तहोताहुआ श्री कार्त्तिकेयजीके लोकमें बसे ॥ २१ ॥ उससे परे पुण्यरूप ढुण्ढितीर्थ है उसमें स्नानादि जलक्रिया करनेवाला मनुष्य ढुण्ढिराज गणेशजी की स्तुतिकर विघ्नों से नहीं हरायाजाताहै याने विघ्न उसको नीचे नहीं करसक्ते हैं ॥ २२ ॥ व ढुण्ढितीर्थके दक्षिणमें जो अनूपभवानीतीर्थ है उसमें स्नानकर और विधानसे भवानीकी पूजा

तत्राप्लुत्यनरोत्तमः ॥ दृष्ट्वाषडाननंचैवजह्यात्षाट्कौशिकींतनुम् ॥ २० ॥ तारकेश्वरपूर्वेणदृष्ट्वादेवंषडाननम् ॥ वसेत्षडाननेलोकेकौमारंवपुरुद्वहन् ॥२१॥ ढुण्ढितीर्थंततःपुण्यंनरस्तत्रकृतोदकः ॥ ढुण्ढिंगणपतिंस्तुत्वानविघ्नैरभिभूयते॥ २२ ॥ भवानीतीर्थमतुलंढुण्ढितीर्थस्यदक्षिणे ॥ तत्रस्नात्वाविधानेनभवानींपरिपूज्यच ॥ २३ ॥ दुकूलैरत्नेपथ्यैर्नैवेद्यैर्बहुविस्तरैः ॥ पुष्पैर्धूपैःप्रदीपैश्चभवानीशौप्रपूज्यच ॥ २४॥समस्तमर्चितंतेनत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ भवानीशङ्करौकाश्यामर्चितौश्रद्धयातुयैः ॥ २५ ॥ चैत्राष्टम्यांमहायात्राभवान्याःकारयेत्सुधीः ॥ अष्टाधिकाःप्रकर्तव्याःशतकृत्वःप्रदक्षिणाः ॥ २६ ॥ प्रदक्षिणीकृतातेनसप्तद्वीपवतीमही ॥ सशैलाससमुद्राचसाश्रमाचसकानना ॥ २७ ॥ अष्टौप्रदक्षिणादेयाःप्रत्यहंभक्तितत्परैः ॥ नमनीयौप्रयत्नेनभवानीशङ्करौसदा ॥ २८ ॥ भक्तानांकामदानित्यं भवानीवाससाम्प्र

कर ॥२३॥ फिर रेशमीवस्त्र रत्नजटित भूषण व बहुत विस्तारयुक्त नैवेद्य फूल धूप और दीपों से भवानी व ईश (शिव) दोनोंजनोंकी पूजाकर वाञ्छितफल पाताहै ॥२४॥ और जिसने श्रद्धा(आस्तिक्यबुद्धि)से काशीमें भवानीसमेत शङ्करकी पूजा किया उससे समस्त स्थावर जङ्गमसमेत त्रैलोक्य पूजित होजाताहै ॥२५॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य चैतकी अष्टमी में भवानी की महायात्राको करावे तब आठ अधिक सौबार प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥ २६ ॥ जिसने देवीजी की प्रदक्षिणा किया उसने पर्वत समेत, समुद्र समेत, आश्रम समेत और वनसमेत सातद्वीपवाली पृथिवी की प्रदक्षिणा की ॥ २७ ॥ और प्रातिदिन भक्ति में तत्पर पुरुषों को आठ प्रदक्षिणा देना चाहिये व

में शुद्धमनवाले लोगोंको बड़े यत्नसे यात्रा तथा रात्रिमें जागरण करना चाहिये ॥ ६ ॥ क्योंकि पशुपतिकी पूजाकर उपवासमें परायण व अमावसमें पारण करनेवाले नर मोहादि फांसोंसे नहीं बँधते हैं ॥ १० ॥ उस पाशुपततीर्थ के आगे रुद्रावास तीर्थ है उसमें स्नानकर मनुष्योंको रुद्रावासेश्वर शिवकी पूजा करनी चाहिये ॥११॥ व मणिकर्णीश्वर से दक्षिण में रुद्रावासेश्वर की पूजाकर मनुष्य रुद्रावासलोक में बसे इसमें संशय नहींहै ॥१२॥ उससे दक्षिणमें समस्त तीर्थोंसे संयुत विश्वतीर्थ है उसमें भक्तिसे स्नानकर नर श्रीविश्वनाथजीका दर्शनकरे ॥१३॥ तदनन्तर अत्यन्त भक्तिसे विश्वागौरीकी पूजाकर सब जगत्का पूजनीय होताहै उसके बाद विश्वनाथ-

णपरायणाः ॥ पशुपाशैर्नबध्यन्तेदर्शेविहितपारणाः ॥ १० ॥ रुद्रावासस्ततस्तीर्थंतीर्थात्पाशुपतात्पुरः ॥ तत्रस्नात्वान रैरच्र्योरुद्रावासेश्वरोहरः ॥ ११ ॥ मणिकर्णीश्वराद्याम्यांरुद्रावासेश्वरन्नरः ॥ समाराध्यवसेल्लोकेरुद्रावासेनसंश यः ॥ १२ ॥ विश्वतीर्थंततोयाम्यांविश्वैस्तीर्थैरधिष्ठितम् ॥ तत्रस्नात्वानरोभक्त्याविश्वनाथंविलोकयेत ॥ १३ ॥ विश्वाङ्गौरीञ्चतदनुपूजयित्वातिभक्तितः ॥ विश्वस्यपूज्योभवतिततोविश्वमयोभवेत् ॥ १४ ॥ मुक्तितीर्थंचतद नुतत्रापिकृतमज्जनः ॥ मोक्षेश्वरंततोभ्यर्च्यमोक्षमाप्नोत्यसंशयम् ॥ १५ ॥ अविमुक्तेश्वरात्पश्चान्मोक्षेशंवीक्ष्य मानवः ॥ नपुनर्मानवेलोकेयातायातङ्करोत्यहो ॥ १६ ॥ अविमुक्तेश्वरंतीर्थंमुक्तितीर्थान्मनाक्परे ॥ तत्राप्लुत्याविमुक्ते शमर्चयित्वाविमुच्यते ॥ १७ ॥ तत्परेतारकंतीर्थंयत्रविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ आचष्टेतारकंब्रह्ममृतकर्णेमृतात्मकम् ॥ १८ ॥ सुस्नातस्तारकेतीर्थेतारकेश्वरदर्शनात् ॥ संसारसागरंतीर्त्वातारयेत्स्वपितॄनपि ॥ १९ ॥ तत्राभ्याशेस्कन्दतीर्थं

मय होजाताहै याने उनमें लीन होताहै॥१४॥उसके पीछे मुक्तितीर्थहै उसमें भी मज्जनकिये हुआ जन तदनन्तर मोक्षेश्वर की पूजाकर निस्सन्देह मोक्षको प्राप्तहोताहै ॥१५॥ अविमुक्तेश्वर से पीछे मोक्षेश्वर का दर्शनकर मनुष्य फिर मनुष्यों के लोकमें आना जाना नहीं करताहै याने मुक्त होजाताहै यह अद्भुतहै ॥ १६ ॥ और मुक्तितीर्थसे कुछेक दूर पर अविमुक्तेश्वरतीर्थ है उसमें स्नानकर व अविमुक्तेश्वर की पूजाकर संसारसे विशेषकर छूटजाताहै ॥१७॥ उसके आगे तारकतीर्थ है जहां श्रीविश्वनाथजी आपही मोक्षरूप रामतारक या ॐकारमन्त्र को मरेहुये के कानमें कहते हैं ॥ १८ ॥ उस तारकतीर्थमें भलीभांति नहायाहुआ जन तारकेश्वरके दर्शन से संसारसागर

बड़े यत्नसे सदैव भवानी शङ्करके नमस्कार करना चाहिये ॥ २८ ॥ क्योंकि भक्तोंको वाञ्छितफलदेनेवाली भवानी नित्यही दक्षदेनेवालीहै इसलिये काशीमें तीर्थवासी लोगोंसे भवानी भलीभांति पूजनीयहै ॥२९॥ व जिससे भवानीजी काशीवासी जनोंके योगका कल्याण करती हैं उससे काशीवासी लोगोंको निरन्तर भवानीकी भलीभांति सेवा करना चाहिये ॥३०॥ और मोक्षचाही भिक्षुसे काशीमें सदैव भिक्षा भिक्षणीय याने मागनेयोग्यहै क्योंकि विश्वनाथजीकी कुटुम्बिनी (घरकी स्वामिनी) भिक्षादेने वाली हैं ॥३१॥ इस काशीपुरीमें श्रीविश्वनाथजी गृहस्थहैं और उनकी कुटुम्ववाली स्त्री भवानीजी सब काशीवासी लोगोंके लिये मोक्ष शिक्षाको देतीहैं ॥३२॥ व का-

दा ॥ अतोभवानीसम्पूज्याकाश्यांतीर्थनिवासिभिः ॥ २९ ॥ योगक्षेमंसदाकुर्याद्भवानीकाशिवासिनाम् ॥ तस्माद्भवानीसंसेव्यासततंकाशिवासिभिः ॥ ३० ॥ भिक्षणीयासदाभिक्षाभिक्षुणामोक्षकाङ्क्षिणा ॥ यतोभिक्षाप्रदाकाश्यांविश्वेशस्यकुटुम्बिनी ॥ ३१ ॥ गृहमेध्यत्रविश्वेशोभवानीतत्कुटुम्बिनी ॥ सर्वेभ्यःकाशिसंस्थेभ्योमोक्षशिक्षांप्रयच्छति ॥ ३२ ॥ दुष्प्रापमपियत्किञ्चित्काशीक्षेत्रनिवासिनाम् ॥ तत्सुप्राप्यंकरोत्येवभवानीपूजितान्नृभिः ॥ ३३ ॥ कुर्याज्जागरणंरात्रौमहाष्टम्यांव्रतीनरः ॥ प्रातर्भवानीमभ्यर्च्यप्राप्नुयाद्वाञ्छितंफलम् ॥ ३४ ॥ शुक्रेशात्पश्चिमाशायांभवानींयोऽभिवीक्षते ॥ सर्वेमनोरथास्तस्यसिद्ध्यन्तीहनसंशयः ॥ ३५ ॥ काश्यांसदैववस्तव्यंस्नातव्योत्तरवाहिनी ॥ भवानीशङ्करौसेव्यौप्राप्तव्येभुक्तिमुक्तिके ॥ ३६ ॥ मातर्भवानितवपादरजोभवानिमातर्भवानितवदासतरोभवानि ॥

शीक्षेत्रवासीजनों को जो कुछ वस्तु दुर्लभ भी है उसको मनुष्यों से पूजीहुई भवानी सुलभही करदेती हैं ॥ ३३ ॥ और महाष्टमी (चैतसुदी अष्टमी) में व्रत करने वाला मनुष्य रात्रिमें जागरणकरे फिर प्रातःकाल भवानीकी चारोंओर पूजाकर वाञ्छित फलको प्राप्तहोवे ॥३४॥ जोकि शुक्रेश्वरसे पश्चिम दिशामें भवानीको सबओर या सामनेसे देखताहै उसके सब मनोरथ यहां सिद्धहोते हैं संशय नहीं है ॥ ३५ ॥ इस लिये काशीमें सदैव बसना चाहिये व उत्तरवाहिनी गंगामें स्नान करना चाहिये व भवानी समेत शङ्करकी सेवा करना चाहिये और भुक्ति व मुक्तिको प्राप्त करना चाहिये ॥३६॥ हे मातः भवानि ! मैं तुम्हारे पांवोंकी धूरिहोऊं हे मातः भवानि ! मैं तुम्हारा बड़ा

सेवकहोऊँ हे मातः भवानि ! जैसें इस संसार में मैं न होऊँ वैसे तुम्हारे भजनेवाला होऊँ और ब्रह्माजीके प्रतिदिनमें फिर न होऊँ ॥ ३७ ॥ यह मन्त्र टिकते व चलते व सोते व जागतेहुये भी काशीवासी को सुखप्राप्तिके लिये सदा जपना चाहिये ॥ ३८ ॥ और वहांही भवानीतीर्थ के समीप में ईशानतीर्थ है उसमें नहायाहुआ जो ईशानजीको पूजे वह जन्मसेवी न होवे याने संसारसे छूटजावे ॥ ३९ ॥ व वहांही ज्ञानियों मनुष्यों का सदा ज्ञानदाता ज्ञानतीर्थ है उस तीर्थमें स्नान कियेहुआ जन ज्ञानेश्वर शिवजीका दर्शनकर फिर गर्भमें नहीं आताहै ॥ ४० ॥ ज्ञानवापी के समीपमें टिकेहुये ज्ञानेश्वर जिनसे भलीभांति पूजेगये उन मृत्युको भी पातेहुये लोगोंका

मातर्भवानिनभवानियथाभवेस्मिंस्त्वद्भाग्भवान्यनुदिनंनपुनर्भवानि ॥ ३७ ॥ तिष्ठतागच्छतावापिस्वपताजाग्रतापि वा ॥ अयंमन्त्रःसदाजप्यःसुखाप्त्यैकाशिवासिना ॥ ३८ ॥ ईशानतीर्थंतत्रैवभवानीतीर्थसन्निधौ ॥ तत्रस्नातोयईशान मर्चयेन्नसजन्मभाक् ॥ ३९ ॥ ज्ञानतीर्थञ्चतत्रैवज्ञानदंसर्वदानृणाम् ॥ कृताभिषेकस्तत्तीर्थेदृष्ट्वाज्ञानेश्वरंशिवम् ॥ ४० ॥ ज्ञानवापीसमीपस्थोज्ञानेशोयैःसमर्चितः ॥ ज्ञानभ्रंशोनतेषांस्यादपिपञ्चत्वमृच्छताम् ॥ ४१ ॥ शैलादितीर्थं तत्रैवपरमर्द्धिप्रकाशकम् ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वादत्त्वादानंस्वशक्तितः ॥ ४२ ॥ शैलादीश्वरमालोक्यज्ञानवाप्याउद ग्दिशि ॥ लभेद्गणत्वपदवींनात्रकार्याविचारणा ॥ ४३ ॥ नन्दितीर्थादवाच्यान्तुविष्णुतीर्थंपरंमम ॥ तत्रपिण्डान्वि निर्वाप्यपितॄणामनृणोभवेत् ॥ ४४ ॥ विष्णुतीर्थेकृतस्नानोयोमांविष्णुंविलोकयेत् ॥ विश्वेशाद्दक्षिणेपार्श्वे विष्णु लोकंसगच्छति ॥ ४५ ॥ यःप्रत्येकादशीम्प्राप्यशयनीम्बोधिनींतथा ॥ कुर्याज्जागरणंरात्रौममर्मूर्तिसमीपतः ॥४६॥

ज्ञान नाश नहीं होताहै ॥४१॥ व वहांही परम ऋद्धिका प्रकाशक नन्दीश्वरतीर्थ है उसमें श्राद्धादिकर व अपनी शक्तिके अनुसार दान देकर ॥ ४२ ॥ व ज्ञानवापी से उत्तर दिशामें शैलादीश्वर का दर्शनकर गणभावकी पदवी पावे इसमें विचार नहीं करना चाहिये ॥ ४३ ॥ व नन्दितीर्थ से दक्षिण में हमारा उत्तम विष्णुतीर्थ है उस में पिण्डा पारकर पितरोंसे उरिण होजावे ॥ ४४ ॥ उस विष्णुतीर्थ में स्नान किये हुआ जो विश्वनाथ से दक्षिणमार्ग में मुझ विष्णुको देखता है वह विष्णुलोक को जाताहै ॥ ४५ ॥ व जोकि प्रति एकादशी व शयनी (आषाढ़सुदी एकादशी) तथा बोधिनी (कार्त्तिकसुदी एकादशी) एकादशी को प्राप्त होकर मेरी मूर्त्तिके समीप

रातमें जागरण करे ॥ ४६ ॥ व प्रातःकाल भक्तिसे मुझको भलीभांति पूजकर ब्राह्मणोंको भी खिला पिलाकर गौवें सोना और भूमिदान कर फिर भूमिसेवी न होवे याने फिर भूलोक में देहधारण न करे ॥ ४७ ॥ व वित्तशाठ्यसे हीनहुआ बुद्धिमान् वहां व्रतोत्सर्गकर मेरी आज्ञासे भलीभांति व्रत के फलको प्राप्त होताहै ॥४८॥ व मेरे तीर्थसे दक्षिण में पितामह ब्रह्माका शुभतीर्थ है उसमें श्राद्धके विधान से पितामहों का तर्प्पणकर ॥ ४९ ॥ ब्रह्मनाल के ऊपर टिकेहुये पितामहेश्वर लिंगको भक्तिसे पूजकर नर ब्रह्मलोकको प्राप्तहोवे ॥ ५० ॥ व ब्रह्मस्रोतः याने ब्रह्मतीर्थ के समीप में कियाहुआ शुभ और अशुभ कर्म्म बड़ी अक्षयताको प्राप्त होताहै उससे

प्रातःसमर्च्यमाम्भक्त्याभोजयित्वाद्विजानपि ॥ दत्त्वागाःकाञ्चनम्भूमिंनभूयोभूमिभाग्भवेत् ॥ ४७ ॥ कृत्वातत्रव्रतोत्सर्गंवित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ सम्यग्व्रतफलन्धीमान्प्राप्नोत्येवममाज्ञया ॥ ४८ ॥ ममतीर्थादवाच्यान्तुतीर्थम्पैतामहंशुभम् ॥ तत्रश्राद्धविधानेनतर्पयित्वापितामहान् ॥ ४९ ॥ पितामहेश्वरंलिङ्गंब्रह्मनालोपरिस्थितम् ॥ पूजयित्वानरोभक्त्याब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ ५० ॥ ब्रह्मस्रोतःसमीपेतुकृतङ्कर्मशुभाशुभम् ॥ परामक्षयतामेतिशुभमेवततश्चरेत् ॥ ५१ ॥ अत्यल्पमपियत्कर्मकृतमत्रशुभाशुभम् ॥ प्रलयेपिनतस्यास्तिप्रलयोमुनिसत्तम ॥ ५२ ॥ नाभितीर्थमिदम्प्रोक्तं नाभिभूतंयतःक्षितेः ॥ अपिब्रह्माण्डगोलस्यनाभिरेषाशुभोदया ॥ ५३ ॥ सामाणिकर्णिकेयीयं नाभिर्गाम्भीर्यभूमिका ॥ ब्रह्माण्डगोलकंसर्वंयस्यामेतिलयोदयम् ॥५४॥ब्रह्मनालम्परन्तीर्थंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ तत्सङ्गमेनरःस्नात्वाकोटिजन्ममलंहरेत्॥५५॥ब्रह्मनालेपतन्त्येषामपिकीकसमात्रकम्॥ब्रह्माण्डमण्डपान्तस्तेनविशन्तिकदाचन ॥५६॥

शुभही कर्म्मकरे ॥ ५१ ॥ हे मुनिसत्तम ! बहुत थोडाभी शुभ व अशुभ जो कर्म यहां कियागया उसका प्रलयमें भी नहीं नाश होताहै ॥५२॥ जिससे यह भूमिकी नाभि है उससे नाभितीर्थ कहागया है और यह शुभ उदयवाली ब्रह्माण्डगोल की भी नाभि है ॥ ५३ ॥ वही यह गाम्भीर्य्य की भूमिका मणिकर्णिका की भी नाभि है जिसमें सब ब्रह्माण्डगोलक लय (नाश) और उदयको प्राप्त होताहै ॥ ५४ ॥ और तीनोंलोकों में विशेष सुनाहुआ याने प्रसिद्ध जो ब्रह्मनालतीर्थ बहुत उत्तम है उसके सङ्गममें स्नानकर मनुष्य करोड़ों जन्मके पापोंको हरलेवे ॥५५॥ व जिनके हाड़मात्रभी ब्रह्मनालमें गिरते हैं वे ब्रह्माण्डमण्डपके भीतर कभी नहीं पैठते हैं॥५६॥

उस ब्रह्मनालसे दक्षिणमें भागीरथ नामक तीर्थ है उसमें भलीभाति स्नान कर मनुष्य ब्रह्महत्यारूप पापसे छूटजाता है॥ ५७॥ व स्वर्गद्वार के समीपमें भागीरथीश्वर नामक लिंगके दर्शन से ब्रह्महत्याका पुरश्चरण कहाजाता है ॥ ५८ ॥ व जिसके पहले के पितामह अशुभगति को प्राप्तहुये हों उनको भागीरथीतीर्थ में बड़े यत्नसे तर्पण करना चाहिये ॥ ५९ ॥ व उस भागीरथतीर्थ में विधिसे श्राद्धकर और ब्राह्मणोंको खिला पिलाकर पितरों को ब्रह्मलोक में पठादेवे ॥ ६० ॥ उसके दक्षिणमें खुरकर्त्तरिनामक महातीर्थ है क्योंकि गोलोकसे आईहुई गौओंने खुरोंके अग्रभागोंसे ॥ ६१ ॥ भूमिके भागको शिथिल किया या ढांपिलिया उस लिये वह खुरकर्त्तरि

ततोभागीरथेस्तीर्थंब्रह्मनालाच्चदक्षिणे ॥ तत्रस्नात्वानरःसम्यङ्मुच्यतेब्रह्महत्यया ॥ ५७ ॥ भागीरथीश्वरंलिङ्गं स्वर्गद्वारस्यसन्निधौ॥दर्शनाद्ब्रह्महत्यायाःपुरश्चरणमुच्यते ॥ ५८ ॥ अशुभाङ्गतिमापन्नायस्यपूर्वेपितामहाः॥ तेन भागीरथीतीर्थेतर्पणीयाःप्रयत्नतः ॥ ५९ ॥ तत्रभागीरथेतीर्थेश्राद्धंकृत्वाविधानतः॥ ब्राह्मणान्भोजयित्वातुब्रह्मलोकेन येत्पितॄन् ॥ ६० ॥ तद्दक्षिणेमहातीर्थंखुरकर्तरिसंज्ञितम्॥ गोलोकादागताभिश्चगोभिर्यत्खुरकोटिभिः ॥ ६१ ॥ स्थपुटीकृतभूभागंततस्तत्खुरकर्तरि ॥ तस्मिंस्तीर्थेकृतस्नानःकृतपिण्डोदकक्रियः ॥ ६२ ॥ खुरकर्तरीशंलिङ्गंदृष्ट्वागोलोकमाप्नुयात्॥ गोधनैर्नविमुच्येततल्लिङ्गस्यसमर्चनात्॥६३॥ दक्षिणेखुरकर्तर्यामार्कण्डंतीर्थमुत्तमम्॥ कृतश्राद्धविधानश्चतस्मिंस्तीर्थेघहारिणि॥ ६४॥ मार्कण्डेयेश्वरंलिङ्गंदृष्ट्वायुर्दीर्घमाप्नुयात् ॥ ब्रह्मतेजोभिवृद्धिञ्चकीर्तिञ्चपरमाम्भुवि ॥ ६५ ॥ वसिष्ठतीर्थम्परमं महापातकनाशनम्॥तर्पयित्वापितॄंस्तत्रवसिष्ठेशंविलोक्यच॥६६॥नरोनलिप्यते

कहाता है उस तीर्थमें स्नान कियेहुआ व पिण्डोदकक्रिया कियेहुआ प्राणी ॥ ६२ ॥ खुरकर्त्तरीश्वर लिंगके दर्शनकर गोलोकको प्राप्तहोवे और उस लिंगकी भली भांति पूजा करने से गोधनों से न छोड़ाजावे याने उसके घरमें गौवें रहें ॥ ६३ ॥ और खुरकर्त्तरि से दक्षिण में उत्तम मार्कण्डतीर्थ है उस पापहारीतीर्थ में श्राद्धकी विधि करनेवाला ॥ ६४ ॥ मार्कण्डेयेश्वर के दर्शनकर दीर्घ आयु व ब्रह्मतेज की सब ओरसे वृद्धि और पृथ्वी में उत्तमकीर्त्ति को प्राप्तहोवे ॥ ६५ ॥ व वहां जो महा-

पापनाशक बहुत उत्तम वसिष्ठतीर्थ है उसमें पितरों का तर्प्पणकर और वसिष्ठेश्वरका दर्शनकर ॥ ६६ ॥ मनुष्य तीन जन्मोंके कमाये या बटोरेहुये पापोंसे लिप्त नहीं होताहै और ब्रह्मतेज से संयुत होकर वसिष्ठलोक में बसताहै ॥ ६७ ॥ उस वसिष्ठ तीर्थके समीप में वहां स्त्रियोंकी सौभाग्य बढ़ानेवाला जो अरुन्धतीतीर्थ है उस तीर्थ में पतिव्रता स्त्रियोंको विशेषतासे स्नान करना चाहिये ॥ ६८ ॥ व उस तीर्थमें स्नान करनेसे पुंश्चलीभाव से उपजाहुवा याने परपुरुषके संगसे उत्पन्न हुवा दोष अरुन्धतीके प्रभावसे क्षणभरमें विनाशको प्राप्त होजावे ॥ ६९ ॥ और मार्कण्डेयेश्वरसे पूर्व में वसिष्ठेश्वरकी पूजासे मनुष्य पापहीन होजाता है व बड़ी पुण्यको पाता

पापैर्जन्मत्रयसमर्जितैः ॥ वसिष्ठलोकेवसतिब्रह्मतेजःसमन्वितः ॥६७॥ तत्रैवारुन्धतीतीर्थंस्त्रीणांसौभाग्यवर्धनम् ॥ पतिव्रताभिस्तत्तीर्थंगाहनीयंविशेषतः ॥ ६८ ॥ पौंश्चल्यजनितोदोषस्तत्तीर्थपरिमज्जनात् ॥ क्षणाद्विनाशमागच्छेदरुन्धत्याःप्रभावतः ॥ ६९ ॥ मार्कण्डेयेश्वरात्प्राच्यांवसिष्ठेश्वरपूजनात् ॥ निष्पापोजायतेमर्त्यो महत्पुण्यमवाप्नुयात् ॥ ७० ॥ मूर्तीवसिष्ठारुन्धत्योस्तत्रपूज्येप्रयत्नतः ॥ नस्त्रीवैधव्यमाप्नोतिनपुमांस्त्रीवियोगिताम् ॥ ७१ ॥ वसिष्ठतीर्थतोयाम्यांनर्मदातीर्थमुत्तमम् ॥ विधायश्राद्धंमेधावीनर्मदेशंविलोक्यच ॥ ७२ ॥ तत्रदत्त्वामहादानंपद्मयानविमुच्यते ॥ ततस्त्रिसन्ध्यंवैतीर्थंत्रिसन्ध्येश्वरपूर्वतः॥७३॥तत्रतीर्थेनरःस्नात्वाकृत्वासन्ध्यांविधानतः॥सन्ध्याकालविलोपोत्थपातकैर्नाभिभूयते ॥ ७४ ॥ त्रिसन्ध्येश्वरमालोक्यकृतसन्ध्यस्त्रिकालतः ॥ त्रिवेदावर्तजम्पुण्यंप्राप्नुयाच्छ्रद्धया

है ॥ ७० ॥ वहां वसिष्ठ व अरुन्धतीकी मूर्त्तियां बड़े यत्नसे पूजने योग्यहैं क्योंकि उनकी पूजासे स्त्री वैधव्यको नहीं प्राप्त होतीहै और पुरुष स्त्रीके विरहको नहीं प्राप्त होता है ॥ ७१ ॥ व वसिष्ठतीर्थ से दक्षिणमें उत्तम नर्मदातीर्थ है वहां बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्धकर व नर्मदेश्वरका दर्शनकर ॥ ७२ ॥ और उसमें बड़े दानदेकर लक्ष्मीसे नहीं छोड़ा जाताहै याने उसके पास सदा धन बनारहताहै उसके आगे त्रिसंध्येश्वरसे पूर्वमें निश्चयकर त्रिसंध्यतीर्थ है ॥७३॥ उस तीर्थमें स्नानकर व विधिसे संध्योपासनकर संध्याके काल विलोपनेसे उठेहुये पापोंसे नहीं तिरस्कृत होता है ॥ ७४ ॥ व त्रिकाल संध्योपासन कियेहुवा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य श्रद्धा से त्रिसंध्येश्वर

का दर्शन करतीन वेदोंकी आवृत्ति करनेकी पुण्यको प्राप्तहोवे ॥ ७५ ॥ उसके बाद योगिनीतीर्थ है उसमें स्नान किये हुवा मनुष्य योगिनीपीठको देखकर योगकी सिद्धिको प्राप्तहोवे ॥ ७६ ॥ और वहां बडेपातकसमूहों का विघातक अगस्त्य तीर्थ है उसमें बहुतयत्न से स्नानकर व अगस्तीश्वर प्रभुके दर्शनकर ॥ ७७ ॥ तदनंतर अगस्तिकुंड में पितामहोंका तर्प्पणकर फिर अगस्ति समेत लोपामुद्राके प्रणामकर ॥ ७८ ॥ सब पापोंसे छूटाहुआ व सब क्लेशोंसे हीन होकर वह मनुष्योत्तम पितरों के साथ शिवजी के लोकको चलाजावे ॥ ७९ ॥ और अगस्त्यतीर्थ से दक्षिण में परम पावन व सब पापनशावन गङ्गाकेशव नामक तीर्थ है ॥ ८० ॥ हे मुने ! वहां उस

द्विजः ॥ ७५ ॥ ततोऽनुयोगिनीतीर्थंनरस्तत्रकृताप्लवः ॥ दृष्ट्वातुयोगिनीपीठंयोगसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥ अगस्तितीर्थंतत्रास्तिमहाघौघविघातकृत् ॥ तत्रस्नात्वाप्रयत्नेनदृष्ट्वागस्तीश्वरंविभुम् ॥ ७७ ॥ अगस्तिकुण्डेचततःसन्तर्प्यचपितामहान् ॥ अगस्तिनासमेताञ्चलोपामुद्रांप्रणम्यच ॥ ७८ ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तःसर्वक्लेशविवर्जितः ॥ गच्छेत्सपूर्वजैःसार्धंशिवलोकंनरोत्तमः ॥ ७९ ॥ दक्षिणेऽगस्त्यतीर्थाच्चतीर्थमस्त्यतिपावनम् ॥ गङ्गाकेशवसंज्ञञ्चसर्वपातकनाशनम् ॥ ८० ॥ तत्रमेशुभदांमूर्तिंमुनेतत्तीर्थसञ्ज्ञिकाम् ॥ सम्पूज्यश्रद्धयाधीमान्ममलोकेमहीयते ॥ ८१ ॥ तत्रपिण्डान्विनिर्वाप्यदत्त्वादानंस्वशक्तितः ॥ शतसांवत्सरीन्तृप्तिंपितॄणांसमर्पयेत् ॥ ८२ ॥ मणिकर्णीपरीमाणमेतत्तेकीर्तितंमहत् ॥ सीमाविनायकाद्याम्यांसर्वविघ्नविघातनात् ॥ ८३ ॥ वैरोचनेश्वरात्प्राच्यामहंवैकुण्ठमाधवः ॥ तत्रमांभक्तितोभ्यर्च्यवैकुण्ठार्चामवाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ वीरमाधवसंज्ञोहंवीरेशात्पश्चिमेमुने ॥ तत्रव्रतीसम

तीर्थकी संज्ञावाली शुभदायिनी मेरी मूर्त्तिको याने गंगाकेशव नामक मुझको श्रद्धासे भलीभांति पूजकर बुद्धिमान् मनुष्य मेरे लोकमें आदर पाता है ॥ ८१ ॥ और वहां पिण्डा पारकर व अपनी शक्तिके अनुसार दानदेकर वह बुद्धिमान् पितरोंको सौ वर्षकी तृप्तिदेवे ॥ ८२ ॥ सब विघ्नविघायक सीमाविनायक से दक्षिणसे यह मणिकर्णिकाका बडा या पूजनीय परिमाण मैंने तुमसे कहा ॥ ८३ ॥ और वैरोचनेश्वरसे पूर्वमें मैं वैकुण्ठमाधव नामसे वर्तमानहूं यहां भक्तिसे मेरी पूजाकर वैकुण्ठकी पूजाको

प्राप्तहोवे ॥ ८४ ॥ हे मुने ! वीरेश्वरसे पश्चिम में वीरमाधवनामक मैं हूं वहां भलीभांति पूजाकर व्रत करनेवाला जन यमराजसे पीड़ा न पावे ॥ ८५ ॥ व कालभैरव के समीप में कालमाधव नाम मैं हूं मेरे भक्तको कलि और काल नहीं चलासक्ता यह निश्चित है ॥ ८६ ॥ व अगहन सुदी एकादशी उपासाहुआ नर वहां जागरण कर यमको कहीं न देखेगा ॥ ८७ ॥ व पुलस्तीश्वर से दक्षिण में मैं निर्वाणनृसिंह हूं उस मूर्त्तिके नमस्कार करने से भी भक्तजन मुक्तिको प्राप्तहोता है ॥ ८८ ॥ हे मुने ! ॐकारेश्वर से पूर्वमें महाबलनृसिंह नामक मैं हूं उस मूर्त्तिका पूजनेवाला बड़े बली यमदूतों को कभी न देखे ॥ ८९ ॥ व चण्डभैरव से पूर्वमें प्रचण्ड नर-

भ्यर्च्यनयामींयातनांलभेत् ॥ ८५ ॥ कालमाधवनामाहंकालभैरवसन्निधौ ॥ कलिःकालोनकलयेन्मद्भक्तमितिनिश्चितम् ॥ ८६ ॥ मार्गशीर्षस्यशुक्लायामेकादश्यामुपोषितः ॥ तत्रजागरणंकृत्वायमन्नालोकयेत्कचित् ॥ ८७ ॥ निर्वाणनरसिंहोहंपुलस्तीश्वरदक्षिणे ॥ भक्तोनिर्वाणमाप्नोतितन्मूर्तिनमनादपि ॥ ८८ ॥ महाबलनृसिंहोहमोङ्कारात्पूर्वतोमुने ॥ दूतान्महाबलान्याम्यान्नपश्येत्तदर्चकः ॥ ८९ ॥ प्रचण्डनरसिंहोहञ्चण्डभैरवपूर्वतः ॥ प्रचण्डमप्यघंकृत्वा निष्पाप्मास्यात्तदर्चनात् ॥ ९० ॥ अहंगिरिनृसिंहोस्मितद्देहलिविनायकात् ॥ प्राच्याम्प्रबलपापौघगजानाम्प्रविदारणः ॥ ९१ ॥ महाभयहरश्चाहंनरसिंहोमहामुने ॥ पितामहेश्वरात्पश्चाद्भक्तसाध्वससाध्वसः ॥ ९२ ॥ अत्युग्रनरसिंहोहंकलशेश्वरपश्चिमे ॥ अत्युग्रमपिपापौघंहरामिश्रद्धयार्चितः ॥ ९३ ॥ ज्वालामालीनृसिंहोऽहंज्वालामुख्याःसमीपतः ॥ संज्वालयामिपापौघतृणानिपरिपूजितः ॥ ९४ ॥ कोलाहलनृसिंहोस्मिदैत्यदानवमर्दनः ॥ ममनामसमुच्चारा

सिंह नामक मैं हूं उनके पूजने से प्रचण्ड भी पापको कर पापसे हीन होजावे ॥ ९० ॥ और उस देहलिविनायक से पूर्वमें गिरिनृसिंह नामक मैं बड़े बली पापसमूहरूप हाथियों के विदारनेवालाहूं ॥ ९१ ॥ हे महामुने ! पितामहेश्वर से पश्चिम मे महाभयहारी नरसिंह नामक मैं भक्तोंके डरको डररूपहूं ॥ ९२ ॥ व कलशेश्वर से पश्चिम में अत्युग्र नरसिंह नामक मैं श्रद्धा से पूजाहुआ अत्यन्त उग्र पापियों के पापसमूह को हरलेताहूं ॥ ९३ ॥ व ज्वालामुखी देवीके समीप में ज्वालामाली नृसिंह नामक मैं सब ओरसे पूजित होकर पापसमूह तृणोंको भलीभांति भस्म करदेताहूं ॥ ९४ ॥ और दैत्य व दानवों के मर्दन करनेवाला

कोलाहलनृसिंहनामक मैं हूं मेरा नाम भलीभांति कहनेसे पापोंका कोलाहल होताहै याने वे सब बहुत शब्दकर भागजाते हैं ॥ ९५ ॥ व जहां काशीकी रक्षामें दक्षबुद्धिवाले कङ्कालभैरवहैं वहां भक्तिसे मेरी पूजाकर विघ्नोंसे नहीं रोंकाजाताहै ॥ ९६ ॥ व नीलकण्ठेश्वरके पीछे विटंकनरसिंहनामक मैं हूं वहां श्रद्धासे मेरी पूजा कर नर निडर होजाता है ॥ ९७ ॥ व अनन्तेश्वर के समीप में पूजाहुआ अनन्तवामननामक मैं भक्तोंके अनन्त पापोंको भी हरलेता हूं ॥ ९८ ॥ व दधिवामनना-मक मैं भक्तोंको दही भात देनेवालाहूं व जिसका नाम सुमिरनेसेही मनुष्य दरिद्री न होवे ॥९९॥ व त्रिलोचनसे उत्तर काशीमें त्रिविक्रमनामक जो मैं हूं वह मैं पूजित

दघकोलाहलोयतः ॥ ९५ ॥ कङ्कालभैरवोयत्रकाशीरक्षणदक्षधीः ॥ तत्रमाम्भक्तितोभ्यर्च्यनोपसर्गैर्निरुध्यते ॥ ९६ ॥ विटङ्कनरसिंहोस्मिनीलकण्ठेश्वरादनु ॥ तत्रमांश्रद्धयापूज्यनरोभवतिनिर्भयः ॥ ९७ ॥ अनन्तवामनश्चाहमनन्तेश्वरसन्निधौ ॥ अनन्तान्यपिभक्तस्यकलुषाणिहरेऽर्चितः ॥ ९८ ॥ दधिवामनसंज्ञोहंभक्तानान्दधिभक्तदः ॥ यन्नामस्मरणादेवनदरिद्रोनरोभवेत् ॥ ९९ ॥ त्रिविक्रमोस्म्यहंकाश्यामुदीच्यांश्चत्रिलोचनात् ॥ ददामिपूजितोलक्ष्मींहरामिवृजिनान्यपि ॥ २०० ॥ बलिवामननामाहंबलिनापरिपूजितः ॥ बलिभद्रेश्वरात्प्राच्याम्भक्तानाम्बलवर्धनः ॥ १ ॥ दक्षिणेभवतीर्थाच्चताम्रद्वीपादिहागतः ॥ नाम्नाताम्रवराहोस्मिभक्तानांचिन्तितार्थदः ॥ २ ॥ मुनेधरणिवाराहःप्रयागेश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वावाराहतीर्थेत्र दृष्ट्वामांक्रिटिरूपिणम् ॥ ३ ॥ सम्पूज्यबहुभावेन नविशेद्योनिसङ्कटम् ॥ तत्राल्पमपिदत्त्वान्नन्धरादानफलंलभेत् ॥ ४ ॥ महाकलुषगम्भीरसागरेनिपतञ्जनः ॥ ममभक्त्युडुपंप्राप्यप्रलयेपिनमज्जति ॥ ५ ॥

होकर धनको देताहूं और पापोंको भी हरलेताहूं ॥२००॥ व बलिभद्रेश्वर से पूर्वमें बलिसे परिपूजित हुआ बलिवामननामक मैं भक्तोंका बल बढ़ानेवालाहूं ॥ १ ॥ व भवतीर्थ से दक्षिणमें ताम्रद्वीप से यहां आयाहुआ ताम्रवराह नामसे प्रसिद्ध मैं भक्तोंका वाञ्छितदाता हूं ॥ २ ॥ हे मुने ! प्रयागेश्वर के समीप में मै धरणिवाराहनाम से प्रसिद्धहूं इस वराहतीर्थ में स्नानकर व वराहरूपधारी मुझको देखकर ॥ ३ ॥ और बहुत भक्तिसे भलीभांति पूजकर योनिसङ्कट में न पैठे व वहां थोडाभी अन्नदान कर भूमिदानका फलपावे ॥ ४ ॥ व महापापरूप गहरे समुद्र में गिराहुआ जन मेरी भक्तिरूपनौका को प्राप्त होकर प्रलयमें भी नहीं डूबता है ॥ ५ ॥

और किटीश्वर (वाराहेश्वर) के समीपमें मैं कोकावराहहूं वहां मुझको पूजताहुआ मनुष्य वाञ्छितफलको पाताहै ॥ ६ ॥ पांचसौ नारायण व एकसौ जलशायी व तीस कच्छपरूप व बीस मत्स्यरूप ॥७॥ व आठसमेत सौ गोपाल व हजार बुद्ध व तीस परशुराम और एक अधिक सौ रामचन्द्रके स्वरूपहै॥८॥हे मुने ! मुक्तिमण्डपके मध्यमें विष्णुरूप मैं एकहूं और प्रसाद कियेहुये श्रीविश्वनाथजीसे आपही आश्रितहूं ॥ ९ ॥ और नारायणस्वरूपसे उपलक्षित चक्र व गदाको उठायेहुये छःलाख गण सब ओरसे क्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥१०॥ इस भांति सुनकर बहुत आनन्दसे उठेहुये रोमोंवाले उस बुद्धिमान् अग्निबिन्दुने फिर पूंछा कि हे प्रभो ! अब तुम मूर्त्तियोंके भेद कहो ॥११॥

अहङ्कोकावराहोस्मिकिटीश्वरसमीपतः ॥ तत्रमाम्पूजयन्मर्त्त्योलभतेचिन्तितम्फलम् ॥ ६ ॥ नारायणाःशतम्पञ्चशतञ्चजलशायिनः ॥ त्रिंशत्कमठरूपाणिमत्स्यरूपाणिविंशतिः ॥ ७ ॥ गोपालाश्चशतंसाष्टंबुद्धाःसन्तिसहस्रशः ॥ त्रिंशत्परशुरामाश्चरामाएकोत्तरंशतम् ॥ ८ ॥ विष्णुरूपोस्म्यहञ्चैकोमुक्तिमण्डपमध्यतः ॥ मुनेकृतप्रसादेनविश्वेशेनश्रितःस्वयम् ॥ ९ ॥ नारायणस्वरूपेणगणाश्चक्रगदोद्यताः ॥ कुर्वन्तिरक्षांक्षेत्रस्यपरितोनियुतानिषट् ॥ १० ॥ सोग्निबिन्दुरितिश्रुत्वासम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ पुनःपप्रच्छमेधावीमूर्तिभेदान्वदप्रभो ॥ ११ ॥ हितायनिजभक्तानांममसन्देहशान्तये ॥ कतितेमूर्तयोनन्त कथंज्ञेयास्तथावद ॥ १२ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्याग्निबिन्दोस्तपसान्निधेः॥ उवाचभगवान्विष्णुर्मूर्तिभेदाननुक्रमात् ॥ १३ ॥ यान्छुत्वापिहिनोमर्त्त्योयमगोचरतांव्रजेत् ॥ केशवादींश्चतुर्विंशद्भेदानाहप्रजापतिः ॥ १४ ॥ श्रीविष्णुरुवाच ॥ अग्निबिन्दोमहाप्राज्ञश्रृणुतेकथयाम्यहम् ॥ आद्यदक्षिणहस्ताच्चविद्धि

हे अनन्त ! तुम्हारी कितनी मूर्त्तियां हैं व वे किस प्रकारसे जाननेयोग्य हैं उनको अपने भक्तोंके हित व मेरा सन्देह शान्त करने के लिये तुम वैसेही कहो ॥ १२ ॥ ऐसे तपस्याओं के निधान उस अग्निबिन्दु का वचन सुनकर भगवान् विष्णुजी अनुक्रम से मूर्त्तियों के भेदोंको कहनेलगे ॥ १३ ॥ जिनको सुनकर भी मनुष्य यमराजकी गोचरताको नहीं प्राप्तहोवे उन केशवादि चौबिस भेदोंको प्रजापतिने कहा॥१४॥श्रीविष्णुजी बोले कि, हे महाप्राज्ञ, अग्निबिन्दो, मुने ! सुनो मैं तुमसे कहताहूं

और पहले दहने हाथसे लगाकर दक्षिणामार्ग से जानो ॥ १५ ॥ शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे केशवकीमूर्त्ति जानो जोकि पूजीहुई होकर निस्सन्देह मनुष्यों के वाञ्छितार्थको करे ॥ १६ ॥ व शङ्ख, पद्म, गदा और चक्रसे मधुहा पहिंचानने योग्यहैं उस मूर्त्तिकी सब ओर सेवासे वैरी नाशको प्राप्त होजाते हैं ॥ १७ ॥ व शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा आयुधवाले सङ्कर्षण यहां भलीभांति पूजनीयहैं उनकी मूर्त्ति पूजने से प्राणी फिर जन्मवाला कभी न होवे ॥ १८ ॥ व शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मसे उपलक्षित दामोदर पूजेजाते हैं वह धन पुत्र गोधन और अन्नको भी देतेहैं ॥ १९ ॥ व घरमें भी थापेहुये शङ्ख, चक्र, पद्म और गदासे उपलक्षित वामनजी जन को धनवान् करें ॥ २० ॥

सृष्टिक्रमान्मुने ॥ १५ ॥ शङ्खचक्रगदापद्मैर्मूर्तिंजानीहिकैशवीम् ॥ पूजितायान्नृणांकुर्याच्चिन्तितार्थमसंशयम् ॥ १६ ॥ मधुहापरिचेतव्यःशङ्खपद्मगदारिभिः ॥ वैरिणोनाशमायान्तितन्मूर्तिपरिसेवनात् ॥ १७ ॥ सङ्कर्षणःसमर्च्योत्रशङ्खाब्जारिगदायुधः ॥ तन्मूर्तिपूजनाज्जातु जन्तुर्नस्यात्पुनर्भवी ॥ १८ ॥ शङ्खकौमोदकीचक्रपद्मैर्दामोदरोर्च्यते ॥ ददातिवित्तम्पुत्रांश्चगोधनन्धान्यमेवहि ॥ १९ ॥ वामनःशङ्खचक्राब्जगदाभिरुपलक्षितः ॥ लक्ष्मीवन्तंजनङ्कुर्याद्गृहेपिपरिधारितः ॥ २० ॥ पाञ्चजन्यङ्गदांपद्मंचित्रमूर्तिसुदर्शनम् ॥ प्रद्युम्नःपूज्यतेमर्त्यैर्बहुद्युम्नम्प्रयच्छति ॥ २१ ॥ ऊर्ध्ववामकरात्सृष्ट्याविष्णवाद्यंषट्कमुच्यते ॥ यस्यस्मरणमात्रेणविलीयन्तेघराशयः ॥ २२ ॥ शङ्खारिभ्याङ्गदाब्जाभ्यां पूज्योविष्णुःश्रियेनरैः ॥ शङ्खपद्मगदाचक्रैर्माधवःपरमर्द्धिदः ॥ २३ ॥ ध्येयोऽनिरुद्धःसंसिद्धचैशङ्खाब्जारिगदोद्यतः ॥ शङ्खेनगदयाचक्राम्बुजाभ्याम्पुरुषोत्तमः ॥ २४ ॥ अधोक्षजोजनिहरःशङ्खार्यब्जगदोमुने ॥ शङ्खकौमोदकीपद्मचक्रैर्ध्येयोज

व शङ्ख, गदा, पद्म और विचित्र सुदर्शनचक्र को धारतेहुये प्रद्युम्नजी मनुष्यों से पूजेजाते हैं वह हैं व बहुत अन्न या प्रकाशको देतेहैं ॥ २१ ॥ अब ऊपर के वाम हाथ से लगाकर दक्षिणामार्ग से विष्णुआदि छः रूप कहेजाते हैं जिनके स्मरणमात्रसे पापोंकी राशियां बिलायजाती हैं ॥ २२ ॥ शङ्ख, चक्र व गदा और पद्मसे उपलक्षित विष्णुजी ऐश्वर्य्यके लिये मनुष्यों से भलीभांति पूजनेयोग्य हैं व शङ्ख, पद्म, गदा और चक्रसे संयुत माधवजी परम समृद्धिदायक है ॥ २३ ॥ व शङ्ख, पद्म, चक्र और गदा को उठाये हुये अनिरुद्ध भलीभांति सिद्धिके लिये ध्यान करनेयोग्य हैं व शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मसे पुरुषोत्तम होतेहैं ॥ २४ ॥ हे मुने ! शङ्ख, चक्र, पद्म और गदा

वाले अधोक्षजजी संसारमें जन्मके हरनेवाले हैं व शङ्ख, गदा, पद्म और चक्रसे युक्त जनार्दनजी ध्यान करनेयोग्यहैं ॥ २५ ॥ और नीचेके वामहाथसे लगाकर दक्षिण मार्गसे छः गोविन्दादि मूर्त्तियां हैं उनमें से गोविन्दजी शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मको सदैव धारण करते हैं ॥ २६ ॥ व शङ्ख, पद्म, गदा और चक्र से युक्त त्रिविक्रमजी लक्ष्मीके लिये पूजनीय हैं तथा शङ्ख, पद्म व चक्रको धारतेहुये गदावाले श्रीधरजी सम्पत्तिके लिये होतेहैं ॥ २७ ॥ व शङ्ख, गदा, चक्र और पद्मसे हृषीकेश मानेगये हैं व शङ्ख, चक्र, पद्म और गदासे नृसिंह विचारेजाते हैं ॥ २८ ॥ व जोकि नित्यही शङ्खधारी व गदा, पद्म और चक्रवान् हैं वह अच्युत भगवान् हैं और नीचेके दक्षिण

नार्दनः ॥ २५ ॥ अधोवामकरात्सृष्ट्याषड्गोविन्दादिमूर्तयः ॥ शङ्खंचक्रङ्गदांपद्मंगोविन्दोबिभृयात्सदा ॥ २६ ॥ शङ्खपद्मगदाचक्रैरर्च्योलक्ष्म्यैत्रिविक्रमः ॥ शङ्खाब्जचक्रंबिभ्राणोगदावाञ्छ्रीधरःश्रिये ॥ २७ ॥ हृषीकेशश्चशङ्खेनगदाचक्राम्बुजैर्मतः ॥ नृसिंहःशङ्खचक्राभ्यां पद्मेनगदयोह्यते ॥ २८ ॥ अच्युतःशङ्खभृन्नित्यं गदापद्मरथाङ्गवान् ॥ दक्षिणाधःकरादूह्यावासुदेवादयश्चषट् ॥ २९ ॥ वासुदेवश्चशङ्खारिगदाजलजभृत्सदा ॥ शङ्खाम्बुजगदाचक्रीध्येयोनारायणोनृभिः ॥ ३० ॥ शङ्खीपद्मीपद्मनाभोज्ञेयश्चक्रीगदीमुने ॥ उपेन्द्रःशङ्खवान्नित्यंगदारिकमलायुधः ॥ ३१ ॥ हरिर्हरेदघंशङ्खीचक्रीपद्मीगदीनृणाम् ॥ शङ्खेनगदयापद्मचक्राभ्यांकृष्णउच्यते ॥ ३२ ॥ एतेभेदामयाख्याताःस्वमूर्तीनाम्महामुने ॥ यान्विज्ञायध्रुवंमर्त्योभुक्तिंमुक्तिंचविन्दति ॥ ३३ ॥ एवंवदतिगोविन्देमुनयेचाग्निबिन्दवे ॥ पक्षीन्द्रःपक्षविक्षिप्तविपक्षो

हाथके क्रमसे वासुदेवादि छः रूप वितर्क करनेयोग्यहैं ॥ २९ ॥ उनमें से सदैव शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मधारी वासुदेव हैं व शङ्ख, पद्म, गदा और चक्रवाले नारायणजी मनुष्योंसे ध्यावने योग्य हैं ॥ ३० ॥ हे मुने ! शङ्ख, पद्म, चक्र और गदावाले पद्मनाभ जाननेयोग्यहैं व नित्यही शङ्ख, गदा, चक्र और कमल व आयुधवाले उपेन्द्र हैं ॥ ३१ ॥ व शंख, चक्र, पद्म और गदावाले हरिजी मनुष्योंका पाप हर लेतेहैं व शंख, गदा, पद्म और चक्र से कृष्ण कहेजाते हैं ॥ ३२ ॥ हे महामुने ! मैंने अपनी मूर्त्तियों के ये भेद कहे जिनको विशेष से जानकर मनुष्य निश्चय से भुक्ति और मुक्तिको पाता है ॥ ३३ ॥ इसभांति अग्निबिन्दु मुनिसे गोविन्द के बतलातेही पक्षोंसे वैरियों को

बहातेहुये गरुडजी नेत्रमार्ग मे प्राप्त हुये याने देखपड़े ॥३४॥ और शीघ्रही प्रणामकर आनन्द से त्रिनेत्र महादेवजी का आना बताते भये तदनन्तर विष्णुजी ने आदर या आनन्द से ऐसा कहा कि ईश (महादेव) जी कहां हैं ॥ ३५ ॥ गरुड़जी बोले कि जिसकी ध्वजामें बडे बैलकी मूर्त्तिहै व जिसकी ध्वजाके रत्नोंकी ज्योति इस द्यावा-पृथ्वी को पूर्ण करती है वह यह शिवजी का रथ प्रत्यक्ष कियाजावे याने देखाजावै ॥ ३६ ॥ तब विष्णुजी लोगोंकी आंखोके बननेको सफल करनेमें समर्थ व करोड़ों सूर्य्य प्रकाश के समान दिशाओं के मुखको प्रकाशित करतेहुई ॥ ३७ ॥ शिवजीके वृषमूर्त्तिवाले ध्वजासमेत रथको देखकर कि जिसके लिये देवोंके विमानसमूहों

ऽद्गिपथङ्गतः ॥ ३४ ॥ प्राहचप्रणिपत्याशुत्र्यक्षस्यागमनम्मुदा ॥ सम्भ्रमेणहृषीकेशःक्वेशइत्यवदत्ततः ॥ ३५ ॥ गरुडउवाच ॥ प्रत्यक्षःक्रियतामेषमहावृषभकेतनः ॥ यस्यध्वजस्यरत्नार्चिःपूरयेद्रोदसीमिमाम् ॥ ३६ ॥ लोकलोचननिर्माणसफलीकरणक्षमम् ॥ कोटिमार्तण्डविद्योतप्रद्योतितदिगाननम् ॥ ३७ ॥ निरीक्ष्यपुण्डरीकाक्षस्त्र्यक्षस्यवृषभध्वजम् ॥ विमानिनांविमानौघैःपरीतगगनाङ्गणम् ॥ ३८ ॥ महावाद्यनिनादौघैःप्रतिस्वानितकन्दरम् ॥ विद्याधरीपरिक्षिप्तपुष्पाञ्जलिसुगन्धितम् ॥ ३९ ॥ प्रणम्यदूरादपिचसम्प्रहृष्टतनूरुहः ॥ अभ्युत्थातुंमनश्चक्रेशङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४० ॥ अग्निबिन्दुमथप्राहमुक्तिदस्तुमुदान्निधिः ॥ इदंसुदर्शनंचक्रंस्पृशासव्येनपाणिना ॥ ४१ ॥ अग्निबिन्दुरितिप्रोक्तःस्पृशेद्यावत्सुदर्शनम् ॥ तावत्सुदर्शनोजातःपरमानुग्रहाद्धरेः ॥ ४२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ ज्योतीरूपोथसमुनिः

से आकाशरूप आंगन व्याप्त है ॥ ३८ ॥ व जिसने बड़े बाजोंके शब्दसमूहों से कन्दराओं को प्रतिशब्दित कियाहै व जोकि विद्याधारियोंसे सबओर छोड़ीहुई फूलों की अञ्जलियों से सुगन्धित है ॥ ३९ ॥ उसके दूरसेही प्रणामकर कि जिनके सम्भ्रमसे भलीभांति बहुतही हृष्ट (आनन्दित) रोम थे वह शखचक्रगदाधर (विष्णु) जी संमुख उठनेको मन करते भये ॥ ४० ॥ तदनन्तर आनन्दों के निधान मुक्तिदायक भगवान्जी अग्निबिन्दुमुनि से बोले कि, तुम दक्षिणहाथ से इस सुदर्शनचक्रको छूलेवो॥४१॥ऐसे कहेहुये अग्निबिन्दुमुनि जबतक सुदर्शनको छुवें तबतक भक्तभयहारी विष्णुजीकी परम(उत्तम) दयासे अच्छे ज्ञानवान् होगये॥४२॥स्कन्दजी बोले कि,

हे कलशज (अगस्त्यजी) ! अनन्तर ज्योतिरूपहुये वह मुनि बिन्दुमाधवजीकी सेवासे ज्योतियोंकी मूर्त्ति कौस्तुभमणिमें एकीभूत होगये याने उसमें मिलगये ॥४३॥ हे कलशोद्भव ! यह निश्चित है कि जिन लोगोंने श्रीबिन्दुमाधवजी के पदकमलोंमें अपने मनको भौंरा कियाहै वे अग्निबिन्दुमुनि की उपमाको याने समताको प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ इसलिये काशीमें सदैव बसना चाहिये व श्रीबिन्दुमाधवजी के दर्शन करना चाहिये व यह आख्यान सुनना चाहिये और जगतोंकी गतिको जीतना चाहिये ॥४५॥ मनोज्ञ, पञ्चनदकी उत्पत्ति व मनोज्ञ, श्रीबिन्दुमाधवजीकी भलीभांतिकी कथा और मनोज्ञ, काशीका वास पुण्यवान् जनोंको सम्भवित होवे है ॥ ४६ ॥

कौस्तुभेज्योतिषान्तनौ ॥ एकीभूतःकलशजबिन्दुमाधवसेवनात् ॥ ४३ ॥ बिन्दुमाधवपादाब्जभ्रमरीकृतमानसाः ॥ अग्निबिन्दूपमांयान्तिकलशोद्भवनिश्चितम् ॥ ४४ ॥ काश्यांसदैववस्तव्यंद्रष्टव्योबिन्दुमाधवः ॥ श्रोतव्यमिदमाख्यानंजेतव्याजगताङ्गतिः ॥ ४५ ॥ पुण्यापञ्चनदोत्पत्तिःपुण्यामाधवसङ्कथा ॥ पुण्योवाराणसीवासःसम्भवेत्पुण्यजन्मनाम् ॥ ४६ ॥ अग्निबिन्दोःस्तुतिंयोत्रमाधवाग्रेपठिष्यति ॥ समृद्धसर्वकामःसमोक्षलक्ष्मीपतिर्भवेत् ॥ ४७ ॥ श्राद्धकालेसदाजप्यमिदमाख्यानमुत्तमम् ॥ द्विजानाम्भुञ्जमानानाम्पुरस्तात्परतृप्तये ॥ ४८ ॥ जप्तव्यमिदमाख्यानंपर्वकालेविशेषतः ॥ पुण्येपञ्चनदाभ्याशेपुण्यलक्ष्मीविवृद्धये ॥ ४९ ॥ पठितव्यःप्रयत्नेनबिन्दुमाधवसम्भवः ॥ श्रोतव्यःपरयाभक्त्याभुक्तिमुक्तिसमृद्धये ॥ ५० ॥ सम्प्राप्तेवासरेविष्णोरात्रौजागरणान्वितः ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यंवै

जो यहां श्रीबिन्दुमाधवजीके आगे अग्निबिन्दु की स्तुति पढ़ेगा वह सब कामनाओंसे समृद्ध (भलीभांति बढ़ाहुआ) होकर मोक्षसम्पत्तिका स्वामी या विष्णुजीमें लीन होकर विष्णुरूप होजावेगा ॥ ४७ ॥ श्राद्धसमयमें भोजन करतेहुये ब्राह्मणोंके आगे बड़ी तृप्तिके लिये यह उत्तम आख्यान सदा जपनेयोग्यहै ॥ ४८ ॥ व मनोज्ञ पञ्च-नदके समीप पुण्यसम्पत्तिकी बहुत वृद्धिके लिये पर्वकाल में यह आख्यान विशेषतासे पढ़नेयोग्य है ॥ ४९ ॥ व भुक्ति और मुक्तिकी समृद्धिके लिये श्रीबिन्दुमाधवजीका भलीभांति होना बहुतयत्न से पढ़ना चाहिये तथा सुनना चाहिये ॥ ५० ॥ और एकादशी समेत द्वादशी तिथिके प्राप्तहोतेही रात्रिमें जागरण से संयुत सुकृतीजन

इस मनोज्ञ अध्यायको सुनकर वैकुण्ठमे वामपावे ॥ २५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते श्रीबिन्दुमाधवाविर्भावोमाधवाग्निबिन्दुसंवादोवैष्णवतीर्थमाहात्म्यंनामैकषष्टितमोध्यायः ॥ ६१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ बासठयें अध्याय में प्रकट भये वृषकेतु । ब्रह्मा विष्णु गणेशगण काशी देखन हेतु ॥ श्रीअगस्त्यजी बोले कि, हे स्कन्द (श्रीकार्त्तिकेयजी) ! आपके मुख से कहीहुई कथाको सुनकर मैं तृप्त नहीं होताहूं आपने अत्यन्त आश्चर्य्य करनेवाला श्रीबिन्दुमाधवजी का आख्यान कहा ॥ १ ॥ इस समय मैं देवोंके देव श्रीमहा-

कुण्ठेवसतिंलभेत् ॥ २५१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेबिन्दुमाधवाविर्भावोमाधवाग्निबिन्दुसंवादोवैष्णवतीर्थमाहात्म्यन्नामैकषष्टितमोध्यायः ॥ ६१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ श्रुत्वास्कन्दनतृप्तोस्मितववक्त्रेरिताङ्कथाम् ॥ अत्याश्चर्यकरम्प्रोक्तमाख्यानम्बैन्दुमाधवम् ॥ १ ॥ इदानींश्रोतुमिच्छामिदेवदेवसमागमम् ॥ ताक्ष्यात्र्यक्षःसमाकर्ण्यदिवोदासस्यचेष्टितम् ॥ २ ॥ विष्णुमायाप्रपञ्चंच किमाहगरुडध्वजम् ॥ केकेचशम्भुनासार्धंसमीयुर्मन्दराद्रिरेः ॥ ३ ॥ ब्रह्मणेशःकथंदृष्टस्त्रपाकुलितचक्षुषा ॥ किमाह देवोब्रह्माणं किमुक्तम्भास्वतापिच ॥ ४ ॥ योगिनीभिःकिमाख्यायिगणाह्रीणाःकिमब्रुवन् ॥ एतदाख्याहिमेस्कन्दमहत्कौतूहलंमयि ॥ ५ ॥ इमंप्रश्नंनिशम्यैशिर्मुनेःकलशजन्मनः ॥ प्रत्युवाचनमस्कृत्यशिवौप्रणतसिद्धिदौ ॥ ६ ॥

देवजी का समागम सुननेकी इच्छा करताहूं कि त्रिनेत्रवाले महादेवजी ने गरुड़से दिवोदास का कर्म्म भलीभांति सुनकर ॥ २ ॥ और विष्णुजी का मायाप्रपञ्च सुनकर गरुडध्वज (विष्णु) जीसे क्या कहा व शंकरजीके साथ कौन कौन जन मन्दरपर्वतसे भलीभांति आये ॥ ३ ॥ व लाजसे व्याकुल नेत्रवाले ब्रह्माजीने ईशको किस प्रकारसे देखा व महादेवजी ने ब्रह्मासे क्या कहा और सूर्य्यदेवने भी महादेवजी से क्या कहा ॥ ४ ॥ व योगिनियों ने क्या कहा और लज्जितहुये गणोंने क्या कहा था हे कार्त्तिकेयजी ! इसको मुझसे कहो क्योंकि मुझमें बड़ा कुतूहल है ॥ ५ ॥ अगस्त्यमुनि के इस प्रश्नको सुनकर भक्तोंकी सिद्धिके दायक गौरीशङ्कर के प्रणाम

कर परमेश्वरके पुत्र श्रीकार्त्तिकेयजी उनके प्रति कहनेलगे ॥ ६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! सब पापनाशिनी व संपूर्ण विघ्नविनाशिनी और परम पुण्य की बढ़ानेवाली इस कथाको तुम सुनो ॥ ७ ॥ तदनन्तर दैत्यों के वैरी उन विष्णुदेवजीने शंकरजी का भलीभांति आना सुनकर आनंदसे उन गरुड़को पारितोषिक (इनाम) दिया ॥ ८ ॥ जोकि काशी के समीप शम्भुके प्यारे आने को कहतेहुये टिके थे और उसके बाद ब्रह्माको आगेकर भक्तभयहारीजी उठकर चले ॥ ९ ॥ जोकि सूर्य्य समेत और गणों से सब ओर घिरे हैं व जिनके पीछे योगिनियो ने गमन कियाहै वह गणेशजी के निकट टिकगये ॥ १० ॥ तदनन्तर देवोंके देव वृषध्वज महादेवजीको देखकर

स्कन्दउवाच ॥ मुनेशृणुकथामेतांसर्वपातकनाशिनीम् ॥ अशेषविघ्नशमनीम्महाश्रेयोभिवर्धिनीम् ॥ ७ ॥ अथ देवोऽसुररिपुःश्रुत्वाशम्भुसमागमम् ॥ द्विजराजायसमुदासमदात्पारितोषिकम् ॥ ८ ॥ आयानंशंसतेशम्भोरुपवाराणसिप्रियम् ॥ ब्रह्माणमग्रतःकृत्वाततश्चाभ्युद्ययौहरिः ॥ ९ ॥ विवस्वतासमेतश्चतैर्गणैःपरितोवृतः ॥ योगिनीभिरनूद्यातोगणेशमुपसंस्थितः ॥ १० ॥ अथनेत्रातिथीकृत्यदेवदेवंवृषध्वजम् ॥ मङ्क्षुताक्ष्यादवारुह्यप्रणनामश्रियःपतिः ॥ ११ ॥ पितामहोपिस्थविरोभृशन्नम्रशिरोधरः ॥ प्रणतेनमृडेनैवप्रणमन्विनिवारितः ॥ १२ ॥ स्वस्त्यभ्युदितपाणिश्चरुद्रसूक्तैरमन्त्रयत ॥ अक्षतान्यथसार्द्राणिदर्शयन्सफलान्यजः ॥ १३ ॥ मौलिम्पादाब्जयोःकृत्वागणेशःसत्वरोनतः ॥ मूर्ध्न्युपाजिघ्रयाश्चक्रेहरोहर्षाद्गजाननम् ॥ १४ ॥ अभ्युपावेशयच्चापिपरिष्वज्यनिजासने ॥ सोमनन्दिप्रभृतयःप्रणेमुर्दण्डवद्गणाः ॥ १५ ॥ योगिन्योपिप्रणम्येशञ्चक्रुर्मङ्गलगायनम् ॥ तरणिःप्रणनामाथप्रमथाधिपतिंहरम् ॥ १६ ॥ खण्डेन्दुशेखरश्चाथ

शीघ्रही गरुड़ से उतरकर लक्ष्मीजीके पति विष्णुजीने प्रणाम किया ॥ ११ ॥ व नमस्कार करतेहुये बहुतही विनम्र कंठवाले बड़े बूढ़े ब्रह्माजीभी प्रणाम करतेहुये शिवजी सेही निवारित कियेगये ॥ १२ ॥ उसके बाद फलों समेत जल से भिगोयेहुये अक्षतों को दिखातेहुये व स्वस्तिवाचन के लिये संमुख हाथ उठानेवाले ब्रह्माजीने रुद्र सूक्तों से मन्त्रित किया ॥ १३ ॥ और वेगवान् गणनाथने चरणारविंदोंमें माथको कर (धर) नमस्कार किया व शिवजीने आनन्दसे गणेशजीको शिर मे समीप से सूंघ लिया ॥ १४ ॥ और सब ओर से लिपटाकर अपने आसनमें भी सामने बैठाया व सोम नंदी आदि गणोंने शिवजीके दण्डवत् प्रणाम किया ॥ १५ ॥ व योगिनियां भी

परमेश्वर के प्रणामकर मंगल गानको करती भई अनन्तर सूर्य्यदेव ने गणों के स्वामी भवभयहारी शंकरजी के प्रणाम किया ॥ १६ ॥ उसके बाद चन्द्रखण्डमाथ वाले विश्वनाथजी ने अपने सिंहासन के समीप वामभागमें विष्णुजीको आदरपूर्वक भलीभांति बैठाया ॥ १७ ॥ व सामने से दियेहुये आसनवाले ब्रह्माजी को दक्षिण भाग मे बैठाया और चारों ओर देखकर शिवजी ने प्रणाम करतेहुये सब गणों की सेमान किया ॥ १८ ॥ व योगिनियां भी मूड़ डुलाने मात्रसे प्रसन्नताको प्राप्त कीगईं और बैठो ऐसी हाथों की संज्ञासे सूर्य्य भी संतोषेगये ॥ १९ ॥ तदनन्तर दोनों हाथोंका संपुट बांधेहुये ब्रह्माजी ने प्रसन्न मुख कमलवाले शंकरजी के प्रति सब ओर से

उपसिंहासनंहरिम् ॥ समुपावेशयद्वामपार्श्वेमानपुरःसरम् ॥ १७ ॥ ब्रह्माणन्दक्षिणेभागेपरिविश्राणितासनम् ॥ दृष्ट्वासम्भावितःसर्वेशर्वेणप्रणतागणाः ॥ १८ ॥ मौलिचालनमात्रेणयोगिन्योपिप्रसादिताः ॥ सन्तोषितोरविश्चापिविशेतिकरसंज्ञया ॥ १९ ॥ अथशम्भुंशतधृतिःप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ परिविज्ञापयाञ्चक्रेप्रसन्नवदनाम्बुजम् ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्देवदेवेशक्षन्तव्यंगिरिजापते ॥ वाराणसींसमासाद्ययदहन्नागतःपुनः ॥ २१ ॥ प्रसङ्गतोपिकःकाशींप्राप्यचन्द्रविभूषण ॥ किञ्चिद्विधातुंशक्तोपित्यज्येत्स्थविरतान्दधत् ॥ २२ ॥ स्वरूपतोब्राह्मणत्वादपाकर्तुन्नशक्यते ॥ अथशक्तोप्यपाकर्तुंकःपुण्येसञ्चिकीर्षति ॥ २३ ॥ विभोरपिसमाज्ञेयन्धर्मवर्त्मानुसारिणि ॥ नकिञ्चिदपकर्तव्यज्ञानताकेनचित्क्वचित् ॥ २४ ॥ कस्तादृशिमहीजानौपुण्यवर्त्मन्यतन्द्रिते ॥ काशीपालेदिवोदासेमनागपिविरुद्धधीः ॥ २५ ॥ निशम्येतिवच

विज्ञापना किया (विशेषतासे जनाया) ॥ २० ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे देवदेवेश, भगवन्, पार्वतीपते ! जिससे मैं काशी को प्राप्त होकर फिर नहीं आयाहूं उससे क्षमा करना चाहिये ॥ २१ ॥ हे चन्द्रविभूषण ! बुढ़ाई को धारता हुआ कुछ करने को समर्थ भी कौन जन प्रसंगसे भी काशी को प्राप्त होकर फिर त्याग देवे ॥ २२ ॥ और स्वभाव से व ब्राह्मण होने से अपकार करने को नहीं योग्य होताहै अथवा अपकार करने को समर्थ भी कौन जन पुण्यात्मा पुरुषमें भलीभांति करने के लिये इच्छा करता है ॥ २३ ॥ क्योंकि स्वामी का भी भलीभांति अधिकतासे जानना चाहिये या परमेश्वर की भी यह अच्छी आज्ञा है कि जानतेहुये किसी को कहीं कुछ नहीं अपकार करना चाहिये ॥ २४ ॥ और पुण्यमार्ग में आलस्यसे हीन पृथिवी के पति काशीके पालक वैसे दिवोदासमें कौन कुछेकभी विरुद्ध बुद्धिवाला होवे ॥ २५ ॥ ऐसे वचन

को सुनकर हँसतेहुये बहुत विशुद्धबुद्धिवाले सन्तुष्ट शिवजीने ब्रह्माजी के प्रति अधिकता से कहा कि हे ब्रह्मन्! मैं सब को जानताहूं ॥ २६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, पहले तुम ब्राह्मण का तबतक या उतना ब्राह्मणत्व (ब्राह्मणभाव) ही अदोषहै और उसके बाद भी तुमने अश्वमेध यज्ञों के दशकको याने दश अश्वमेध यज्ञोंको कियाहै॥ २७ ॥ हे ब्रह्मन्! जिससे आपने मेरे लिंगको थाप दियाहै उससे भी परम (उत्तम) हितको कियाहै क्योंकि हजारों अपराधोंको कर भी ॥ २८ ॥ जिससे मेरा एक भी लिंग जहां कहीं थापा गयाहै उस सब अपराधोंवाले के पापों का लेश नहीं है ॥ २९ ॥ और हजार अपराधके होते हुये भी जो ब्राह्मण का अपराधकरे उसका

स्तुष्टःश्रीकण्ठोतिविशुद्धधीः ॥ हसन्प्रोवाचधातारम्ब्रह्मन्सर्वमवैम्यहम् ॥ २६ ॥ देवदेवउवाच ॥ आदौतावददोषंहिब्रह्मत्वम्ब्राह्मणस्यते ॥ वाजिमेधाध्वराणाञ्चततोपिदशकंकृतम् ॥ २७ ॥ ततोपिविहितम्ब्रह्मन्भवतापरमंहितम् ॥ अपराधसहस्राणियल्लिङ्गंस्थापितम्मम ॥ २८ ॥ येनैकमपिमेलिङ्गंस्थापितंयत्रकुत्रचित् ॥ तस्यापराधलेशोपिनास्तिसर्वापराधिनः ॥ २९ ॥ अपराधसहस्रेपिब्राह्मणंयोपराध्नुयात् ॥ दिनैःकतिपयैरेवतस्यैश्वर्यंविनश्यति ॥ ३० ॥ इतिब्रुवतिदेवेशेप्यन्तरुच्छ्वसितङ्गणैः ॥ समातृभिःसमन्ताच्चविलोक्यास्यम्परस्परम् ॥ ३१ ॥ अर्कोप्यवसरंज्ञात्वानत्वाशम्भुंव्यजिज्ञपत् ॥ प्रसन्नास्यमुमाकान्तन्दृष्ट्वादृष्टचराचरः ॥ ३२ ॥ अर्कउवाच ॥ नाथकाशीमितोगत्वायथाशक्तिकृतोपधिः ॥ अकिञ्चित्करताम्प्राप्तःसहस्रकरवानपि ॥ ३३ ॥ स्वधर्मपालकेतस्मिन्दिवोदासेधरापतौ ॥ निश्चितागमनंज्ञात्वादेवस्या

ऐश्वर्य्य कितेक थोड़े दिनोंसेही विनष्ट होजाताहै ॥ ३० ॥ व देवों के स्वामी शिवजी के ऐसा कहतेही मातृकाओं (योगिनियों) समेत गणोंने भी आपुसमें देखकर सब ओर से भीतर ऊंचे श्वास को लिया अर्थात् शिवलिंगों के थापनेवाले होने से अपराधोंके डर को त्याग दिया ॥ ३१ ॥ तदनन्तर स्थावर जंगम जगत् के देखनेवाले सूर्य्य देवने भी समय को जानकर व पार्वती के पति शंकरजीको प्रसन्न मुख देखकर व नमस्कारकर विज्ञापना किया ॥ ३२ ॥ श्रीसूर्य्यदेवजीबोले कि हे नाथ! यहांसे याने आपके समीपसे काशीको जाकर यथाशक्ति छलरूप उपायको कियेहुये हजार हाथों (किरणों) वालाभी मैं न कुछ करनेवाले के भावको प्राप्त होगया ॥ ३३ ॥ और

अपने धर्मके रक्षक पृथिवी के पति उस दिवोदास के होतेही मैं क्रीड़ाकारी आपके निश्चित आनेको जानकर यहां टिकाहूं ॥ ३४ ॥ हे देवेश ! उत्तम तुम्हारे आने को परखताहुआ मैं अपनाको बहुतभांति से विभागकर तुम्हारी पूजामे तत्परहूं ॥ ३५ ॥ और कुछेक भक्तिके लवरूप जलो से सींचागया व ध्यानसे फूलाहुआ मेरा मनोरथ वृक्ष आज श्रीमान्के दर्शनसे फलितहुआ ॥ ३६ ॥ इस भांति सूर्य्य के वचनको सुनकर सूर्य्यनेत्रवाले देवदेवेश महेशजी अधिकतासे बोले कि, हे भास्कर ! तुम निश्चय से नहीं अपराध करतेहो ॥ ३७ ॥ जिसलिये उस राजाके राज्यशिक्षा करतेही जिस पुरीमें देवोंका प्रवेश (पैठना) नहीं था इसमें तुम विशेषताके साथ भीतर टिकेहो

हमिहस्थितः ॥ ३४ ॥ प्रतीक्षमाणोदेवेशत्वदागमनमुत्तमम् ॥ विभज्यबहुधात्मानन्त्वदाराधनतत्परः ॥ ३५ ॥ मनोरथद्रुमश्चाद्यफलितःश्रीमदीक्षणात् ॥ किञ्चिद्भक्तिलवाम्भोभिःसिक्तोध्यानेनपुष्पितः ॥ ३६ ॥ इत्युदीरितमाकर्ण्यरवेर्वैरविलोचनः ॥ प्रोवाचदेवदेवेशोनापराध्यसिभास्कर ॥ ३७॥ ममैवकार्यंविहितन्त्वंयदत्रऽव्यवस्थितः ॥ यस्यांसुरप्रवेशोन तस्मिन्राजनिशासति ॥ ३८ ॥ इतिसूरंसमाश्वास्यदेवदेवःकृपानिधिः ॥ गणानाश्वासयामासव्रीडानम्रशिरोधरान् ॥ ३९ ॥ योगिन्योपिसुदृष्ट्याथशम्भुनासम्प्रसादिताः ॥ त्रपाभरसमाक्रान्तकन्धराइवसङ्गताः ॥ ४० ॥ ततोऽव्यापारयाञ्चक्रेत्र्यक्षोनेत्राणिचक्रिणि ॥ हरिर्नकिञ्चिदप्यूचेसर्वज्ञाग्रेमहामनाः ॥ ४१ ॥ ईशोपिश्रुतवृत्तान्तस्तार्क्ष्याद्गणपशार्ङ्गिणोः ॥ मनसैवप्रसन्नोभून्नकिञ्चित्पर्यभाषत ॥ ४२ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तागोलोकात्पञ्चधेनवः ॥ सुनन्दासुमनाश्चापिसुशीलासु

इसलिये मेराही कार्य्य कियागयाहै ॥ ३८ ॥ ऐसा सूर्य्यका अच्छा आश्वासनकर दयाके निधान देवोंकेदेव महादेवजीने लाजसे नयेहुये गलवाले गणोंको आश्वासन किया ॥ ३९ ॥ उसकेबाद लज्जाके भारसे बहुत दबी (नई) हुई ग्रीवावालीसी संगम हुई योगिनियां भी शंकरजी करके अच्छीदृष्टिसे भलीभांति प्रसन्न कीगईं ॥ ४० ॥ तदनंतर त्रिनेत्र (शिव) जीने चक्रधारी (विष्णु) जी में नेत्रोंको व्यापार कराया याने उनको देखा और बड़े मनवाले भक्तभयहारी भगवान् ने सर्वज्ञ शंकरजी के आगे कुछ भी नहीं कहा ॥ ४१ ॥ परन्तु गरुड़ से गणेश व विष्णुजी का वृत्तान्त सुनेहुये परमेश्वर भी मनसेही प्रसन्नहुये और सबओरसे कुछ न कहतेभये ॥ ४२ ॥

इसी अन्तरमें पांचगौवें गोलोकसे आकर प्राप्त होगईं सुनन्दा व सुमनाभी व सुशीला तथा सुरभि ॥ ४३ ॥ और सब पापसमूहों को विनाशनेवाली पंचईं कपिला भी थी उन गौवोंके आयन महादेवजीकी वात्सल्यदृष्टिसे चूनेलगे ॥ ४४ ॥ व जबतक कुण्ड हुआ तबतक उनके दुग्धाशय स्तनरूप मेघोंने अखण्ड दूधपूरोंके द्वारा धारा-संपात से बरसा ॥ ४५ ॥ और पार्षदोंने उस कुण्डको दूसरे क्षीरसागरके समान देखा व श्रीमहादेवजी के भलीभांति आधार होनेसे वह उत्तम तीर्थ होगया ॥ ४६ ॥ श्री महादेवजी ने उसका कपिलाकुण्ड ऐसा नाम किया तदनन्तर क्रीड़ाकारी शिवजीकी आज्ञासे सबदेवोंने उसमें नहाया ॥ ४७ ॥ अनंतर उस तीर्थ से दिव्य पितर प्रकट हो

रभिस्तथा ॥ ४३ ॥ पञ्चमीकपिलाचापिसर्वाघौघविघट्टिनी ॥ वात्सल्यदृष्ट्याभर्गस्यतासामूधांसिसुस्रुवुः ॥ ४४ ॥ ववर्षुःपयसाम्पूरैस्तदूधांसिपयोधराः ॥ धारासारैरविच्छिन्नैस्तावद्यावद्ध्रदोऽभवत् ॥ ४५ ॥ पयःपयोधिरिवसद्द्वितीयःप्रैक्षिपार्षदैः ॥ देवेशसमधिष्ठानात्तत्तीर्थमभवत्परम् ॥ ४६ ॥ कपिलाह्रदइत्याख्याञ्चक्रेतस्यमहेश्वरः ॥ ततोदेवाज्ञयासर्वेस्नातास्तत्रदिवौकसः ॥ ४७ ॥ आविरासुस्ततस्तीर्थादथदिव्यपितामहाः ॥ तान्दृष्ट्वातेसुराःसर्वेतर्पयाञ्चक्रिरेमुदा ॥ ४८ ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषदआज्यपाःसोमपास्तथा ॥ इत्याद्यादिव्यपितरस्तृप्ताःशम्भुंव्यजिज्ञपन् ॥ ४९ ॥ देवदेवजगन्नाथभक्तानामभयप्रद ॥ अस्मिंस्तीर्थेत्वदभ्याशाज्जातानस्तृप्तिरक्षया ॥ ५० ॥ तस्माच्छम्भोवरन्देहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ इतिदिव्यपितॄणांसश्रुत्वावाक्यंवृषध्वजः ॥ ५१ ॥ शृण्वतांसर्वदेवानामिदंवचनमब्रवीत् ॥ सर्वःसर्वपितॄणांवैपरतृप्तिकरम्परम् ॥ ५२ ॥ श्रीदेवदेवउवाच ॥ शृणुविष्णोमहाबाहोशृणुत्वञ्चपितामह ॥ एतस्मिन्कापिलेतीर्थेकापिलेयपयोभृते ॥ ५३ ॥

गये उनको देखकर उन सब देवोंने आनन्दसे तर्प्पण किया ॥ ४८ ॥ व अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपा और वैसेही सोमपा इत्यादि दिव्य पितरोंने शंकरजीसे विज्ञापना किया ॥ ४९ ॥ कि हे देवोंकेदेव, जगत् के नायक, भक्तोंके अभयदायक ! तुम्हारे समीपसे इस तीर्थमें हमारी अक्षय तृप्ति हुई ॥ ५० ॥ हे शम्भो ! उसलिये आप प्रसन्नमनसे हमको वरदानदो इसभांति दिव्य पितरोंका वचन सुनकर वृषकी मूर्त्तिसे चिह्नित ध्वजावाले उन ॥ ५१ ॥ शिवजीने सब देवोंके सुनतेही सब पितरोंका भी बहुत तृप्तिकारी यह उत्तम वचन कहा ॥ ५२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे महाबाहो ! हे विष्णो! हे ब्रह्मन् ! तुम सुनो कि कपिलागौवोंके दूध से भरेहुये इस कापिलेय तीर्थमें ॥ ५३ ॥

जे श्रद्धासमेत श्राद्धदानसे पिण्डापारेंगे उनके पितरोंकी भलीभांति बहुत तृप्ति मेरी आज्ञासे होवेगी ॥ ५४ ॥ व बड़ी तृप्ति करनेवाले उत्तम अन्य विशेषको भी कहताहूं कि अमावस और सोमवारके समायोगमें यहां दियाहुआ श्राद्ध अविनाशी फलवालाहै याने इस तीर्थ में दियेहुये श्राद्ध तर्प्पणादिकोंका फल अक्षयहै ॥ ५५ ॥ व प्रलयकाल के भलीभांति प्राप्तहोतेही समुद्र और सब जलभी क्षीण होजाते हैं परन्तु यहां सोमवारी अमावसमें पितरों के लिये कियागया श्राद्ध तर्प्पणादि सुकर्म कभी नहीं क्षीण होता है ॥ ५६ ॥ जो अमावस और सोमवारके संयोगमें पितरोंको इस कपिलधारा तीर्थमें श्राद्ध मिले या मिलताहै तो गया व पुष्करसे क्याहै ॥ ५७ ॥ हे गदाधर (विष्णो)!

येपिण्डान्निर्वपिष्यन्तिश्रद्धयाश्राद्धदानतः ॥ तेषाम्पितॄणांसन्तृप्तिर्भविष्यतिममाज्ञया ॥ ५४ ॥ अन्यंविशेषंवक्ष्यामिमहातृप्तिकरम्परम् ॥ कुहूसोमसमायोगेदत्तंश्राद्धमिहाक्षयम् ॥ ५५ ॥ संवर्तकालेसम्प्राप्तेजलराशिर्जलान्यपि ॥ क्षीयन्तेनक्षयत्यत्रश्राद्धंसोमकुहूकृतम् ॥ ५६ ॥ अमासोमसमायोगेश्राद्धंयद्यत्रलभ्यते ॥ तीर्थेकापिलधारेस्मिन् गययापुष्करेणकिम् ॥ ५७ ॥ गदाधरभवान्यत्रयत्रत्वञ्चपितामह ॥ वृषध्वजोस्म्यहंयत्रफल्गुस्तत्रनसंशयः ॥ ५८ ॥ दिव्यान्तरिक्षभौमानियानितीर्थानिसर्वतः ॥ तान्यत्रनिवसिष्यन्तिदर्शेसोमदिनान्विते ॥ ५९ ॥ कुरुक्षेत्रेनैमिषेच गङ्गासागरसङ्गमे ॥ ग्रहणेश्राद्धतोयत्स्यात्तत्तीर्थेवार्षभध्वजे ॥ ६० ॥ अस्यतीर्थस्यनामानियानिदिव्यपितामहाः ॥ तान्यहङ्कथयिष्यामिभवतान्तृप्तिदान्यलम् ॥ ६१ ॥ मधुस्रवेतिप्रथममेषापुष्करिणीस्मृता ॥ कृतकृत्याततोज्ञेयाततोऽसौक्षीरनीरधिः ॥ ६२ ॥ वृषभध्वजतीर्थञ्चतीर्थम्पैतामहन्ततः ॥ ततोगदाधराख्यञ्चपितृतीर्थन्ततःपरम् ॥ ६३ ॥

जहां आपहैं व हे ब्रह्मन् ! जहां तुमहो और जहां वृषध्वज मैंहूं वहां फल्गुनदी है इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥ व स्वर्ग अंतरिक्ष और भूमिके जे तीर्थ हैं वे सब सोमवार समेत अमावस मे यहां बसेंगे ॥ ५९ ॥ कुरुक्षेत्र नैमिषारण्य गंगासागरसंगम और ग्रहणसमय में श्राद्धसे जो फलहै वह वृषध्वज के तीर्थ में होवे है ॥ ६० ॥ हे दिव्य पितरो ! इस तीर्थ के जे नाम आपके बहुतही तृप्तिदायकहैं उनको मैं कहूंगा ॥ ६१ ॥ पहले यह पुष्करिणी मधुस्रवा ऐसा कहीगई है तदनन्तर कृतकृत्या जाननेयोग्य है उसके बाद यह क्षीरनीरधि इस नामसे प्रसिद्धहै ॥ ६२ ॥ तदनन्तर वृषभध्वजतीर्थ व पैतामहतीर्थ फिर गदाधरनामक तीर्थ है उसके उपरांत पितृतीर्थ है ॥ ६३ ॥

उसके बाद कपिलधाराहै फिर यह सुधाखानिहै तदनन्तर यह शुभ तीर्थ शिवगयानाम जाननेयोग्यहै ॥ ६४ ॥ हे पितरो! इस तीर्थ के ये दश नाम श्राद्ध और तर्पणोंके विना भी आप लोगोंकी तृप्तिकरनेवाले हैं ॥ ६५ ॥ इसलिये पितरो की तृप्तिके चाही जे लोग सूर्य्य व चन्द्रमाके संगममें याने अमावस तिथिमें यहां ब्राह्मणोंको खिलावें पिलावेंगे उनके श्राद्ध तर्पणादि पितृकर्म अनन्त फलवाले होवेंगे ॥ ६६ ॥ व जे पितरोंकी संतृप्तिके लिये श्राद्धमें यहां शुभ कपिला गऊको देवेंगे उनके पितरों का गण (समूह) क्षीरसागरके तीरमें बसेगा ॥ ६७॥ व जिन्होंने इस वृषभध्वजके तीर्थ में वृषोत्सर्ग किया उसने अश्वमेधयज्ञमें होमनेयोग्य पवित्र वस्तुसे पितरोंको तृप्तकिया ॥६८॥ हे पितरो!

ततःकापिलधारंवैसुधाखनिरियम्पुनः॥ततःशिवगयाख्यञ्चज्ञेयन्तीर्थमिदंशुभम्॥६४॥एतानिदशनामानितीर्थस्यास्य पितामहाः ॥ भवतान्तृप्तिकारीणिविनापिश्राद्धतर्पणैः॥६५॥सूर्येन्दुसङ्गमेयेत्रपितॄणांतृप्तिकामुकाः ॥ ब्राह्मणान्भोजयिष्यन्तितेषांश्राद्धमनन्तकम् ॥ ६६ ॥ श्राद्धेपितॄणांसन्तृप्त्यैदास्यन्तिकपिलांशुभाम् ॥ येत्रतेषांपितृगणोवसेत्क्षीरोदरोधसि ॥ ६७ ॥ वृषोत्सर्गःकृतोयैस्तुतीर्थेस्मिन्वार्षभध्वजे ॥ अश्वमेधपुरोडाशैःपितरस्तेनतर्पिताः ॥ ६८ ॥ गयातोष्टगुणम्पुण्यमस्मिंस्तीर्थेपितामहाः ॥ अमायांसोमयुक्तायांश्राद्धैःकापिलधारिके ॥ ६९ ॥ येषाङ्गर्भेऽभवत्स्रावोयेऽदन्तजननामृताः ॥ तेषांतृप्तिर्भवेन्नूनन्तीर्थेकापिलधारिके ॥ ७० ॥ अदत्तमौञ्जीदानायेयेचादारपरिग्रहाः ॥ तेभ्योनिर्वापितंपिण्डमिहह्यक्षयतांव्रजेत् ॥ ७१ ॥ अग्निदाहमृतायेवैनाग्निदाहश्चयेषुवै ॥ तेसर्वेतृप्तिमायान्तितीर्थेकापिलधारिके ॥ ७२ ॥ और्ध्वदैहिकहीनायेषोडशश्राद्धवर्जिताः ॥ तेतृप्तिमधिगच्छन्तिघृतकुल्यान्निवापतः ॥ ७३ ॥ अपुत्राश्चमृतायेवै

सोमवार समेत अमावस तिथिमें इस कापिलधारिक तीर्थ के समीप श्राद्धों से गयासे आठगुना अधिक पुण्यहै ॥ ६९ ॥ और जिनका गर्भ में स्राव होगया है तथा जे विना दांतजसे मरगये हैं उनकी तृप्ति निश्चयकरके कापिलधारिक तीर्थ में होती है ॥७०॥ और जिनको मौंजीदान नहीं दियागया याने यज्ञोपवीत कर्म नहीं भया व जिन्होंने स्त्री का ग्रहण नहीं किया याने विना ब्याहे मरगये हैं उनके लिये भी यहां दियाहुवा पिंडा अक्षयभावको प्राप्तहोवे ॥ ७१ ॥ व जे अग्निदाहसे मरे हैं और जिनका अग्निदाह भी नहीं भया वे सब इस कापिलधारिक तीर्थ में तृप्तिको सबओरसे प्राप्त होते हैं ॥ ७२ ॥ जे और्ध्वदैहिक (मरने के बाद करने योग्य दाह दशगात्रादिकर्म) से हीन हैं

व जे षोड़शी आदि सोलह श्राद्धों से वर्जित हैं वे भी इस घृतकुल्या तीर्थमें पिंडदानसे तृप्तिको अधिकतासे प्राप्त होजाते हैं ॥ ७३ ॥ जे विना पुत्रके मरगये हैं व जिनका तिलजलांजलि देनेवाला कोई नहीं है वेभी इस मधुस्रवस तीर्थ में तर्पितहोकर बड़ी उत्तम तृप्तिको प्राप्त होते हैं ॥ ७४ ॥ और जे चोर बिजुली व जलमें डूबना आदि अपमृत्युमे मरेहैं उनकेलिये भी यहां कियाहुवा श्राद्ध तर्पणादिकर्म अच्छीगति देनेवाला होता है ॥ ७५ ॥ व इस लोक में जिन कुकर्मियों का आत्मघात से मरना हुवाहै वेभी यहां शिवगयामें कियेहुये पिंडो से तृप्तिको पाते हैं ॥ ७६ ॥ जे पिताके गोत्रमें मरे हैं व जे माताके पक्षमें (नाना आदि) मरेहैं उनके लिये भी यहां किया हुवा पिंडदान

येषांनास्त्युदकप्रदः ॥ तेपितृप्तिंपरांयान्तिमधुस्रवसितर्पिताः ॥ ७४ ॥ अपमृत्युमृतायेवैचोरविद्युज्जलादिभिः ॥ तेषा मिहकृतंश्राद्धञ्जायतेसुगतिप्रदम् ॥ ७५ ॥ आत्मघातेननिधनंयेषामिहविकर्मणाम् ॥ तेपितृप्तिंलभन्तेत्रपिण्डैःशिवग याकृतैः ॥ ७६ ॥ पितृगोत्रेमृतायेवैमातृपक्षेचयेमृताः ॥ तेषामत्रकृतःपिण्डोभवेदक्षयतृप्तिदः ॥ ७७ ॥ पत्नीवर्गेमृता येवैमित्रवर्गेचयेमृताः ॥ तेसर्वेतृप्तिमायान्तितर्पितावार्षभध्वजे ॥ ७८ ॥ ब्रह्मक्षत्रविशांवंशेशूद्रवंशेऽन्त्यजेषुच ॥ येषांना मगृहीत्वात्रदीयतेतेसमुद्धृताः ॥ ७९ ॥ तिर्यग्योनिमृतायेवैयेपिशाचत्वमागताः ॥ तेप्यूर्ध्वगतिमायान्तितृप्ताःकापि लधारिके ॥ ८० ॥ येतुमानुषलोकेस्मिन्पितरोमर्त्ययोनयः ॥ तेदिव्ययोनयःस्युर्वैमधुस्रवसितर्पिताः ॥ ८१ ॥ येदिव्यलो केपितरःपुण्यैर्देवत्वमागताः ॥ तेब्रह्मलोकेगच्छन्तितृप्तास्तीर्थेवृषध्वजे ॥ ८२ ॥ कृतेक्षीरमयन्तीर्थंत्रेतायांमधुमत्पुनः ॥

अक्षय तृप्तिका दाता होवे है ॥ ७७ ॥ व जे स्त्री के वर्ग में मरेहैं और जे मित्रवर्ग में भी मरे हैं वे सब इस वार्षभध्वजतीर्थ में तर्पित होकर तृप्तिको प्राप्त होजाते हैं ॥ ७८ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्योंके वंशमें व शूद्रोंके वंश में और अंत्यजों मे भी जिनका नाम लेकर यहां पिंडा पानी दियाजाताहै वे भलीभांति उद्धारेजाते हैं ॥ ७९ ॥ जे तिर्य्यग्योनि याने पशु आदि योनियो में मरे हैं व जे पिशाच भावको भी प्राप्तहैं वेभी कापिलधारिक तीर्थ में तृप्तहोकर ऊंची गतिको जाते हैं ॥ ८० ॥ और जे पितर इस मनुष्यलोक में मनुष्ययोनिवाले हैं वे भी इस मधुस्रवसतीर्थ में तर्पितहोकर दिव्ययोनि होजावें ॥ ८१ ॥ व जे पितर पुण्योंसे देवलोकमें देवभावको प्राप्तहैं और वृषध्वज तीर्थमें तृप्तहुये

हैं याने इस तीर्थ में जिनका तर्प्पण कियागयाहै वे ब्रह्मलोकमें चलेजाते हैं ॥ ८२ ॥ यह तीर्थ सतयुगमें दूधमय फिर त्रेतामें शहदसमेत व द्वापरमें घृतसे पूर्ण और कलियुग में जलमय होवे है ॥ ८३ ॥ सीमाके बाहरमें भी प्राप्त यह शुभ श्रेष्ठ तीर्थ मेरा समीप होनेसे काशीके बीचमें मनुष्यों से जाननेयोग्य है ॥ ८४ ॥ हे पितरो ! जिससे काशी में टिकेहुये जनों से बैलकी मूर्ति से चिह्नित मेरी ध्वजा देखीगई है इसलिये वृषध्वज नाम से मैं यहां टिकूंगा ॥ ८५ ॥ और हे पितरो ! ब्रह्मासे सहित व विष्णु समेत मैं सूर्य्य और गणोंके साथ तुम्हारी तुष्टिके लिये यहां रहूंगा ॥ ८६ ॥ इसभांति जबतक शिवजी पितरोंको वरदेते हैं तबतक भलीभांति आकर व परमेश्वरके प्रणाम

द्वापरेसर्पिषापूर्णंकलौजलमयंभवेत् ॥ ८३ ॥ सीमाबहिर्गतमपिज्ञेयन्तीर्थमिदंशुभम् ॥ मध्येवाराणसिश्रेष्ठम्ममसान्निध्यतोनरैः ॥ ८४ ॥ काशीस्थितैर्यतोदर्शिध्वजोमेवृषलाञ्छनः ॥ वृषध्वजेननाम्नातःस्थास्याम्यत्रपितामहाः ॥ ८५ ॥ पितामहेनसहितोगदाधरसमन्वितः ॥ रविणापार्षदैःसार्धन्तुष्ट्येवःपितामहः ॥ ८६ ॥ इतियावद्वरंदत्तेपितृभ्योवृषभध्वजः ॥ तावन्नन्दीसमागत्यप्रणम्येशंव्यजिज्ञपत् ॥ ८७ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ विहितःस्यन्दनःसज्जस्ततोस्तुविजयोदयः ॥ अष्टौकण्ठीरवायत्रयत्रोक्षणामष्टकंशुभम् ॥ ८८ ॥ यत्रेभाःपरिभान्त्यष्टौयत्राष्टौजविनोहयाः ॥ मनःसंयमनंयत्रकशापाणिव्यवस्थितम् ॥ ८९ ॥ गङ्गायमुनयोरीषेचक्रेपवनदेवता ॥ सायंप्रातर्मयेचक्रेछत्रंद्योर्मण्डलंशुचि ॥ ९० ॥ तारावलीमयाःकीलाआहेयाउपनायकाः ॥ श्रुतयोमार्गदर्शिन्यःस्मृतयोरथगुप्तयः ॥ ९१ ॥ दक्षिणाधूर्द्दढायत्रम

कर नन्दीश्वरने विज्ञापना किया ॥ ८७ ॥ नन्दीश्वर बोले कि उचित रथ साजागयाहै उससे विजयका उदयहोवे जिस रथमें आठ सिंहहैं (प्रकृति, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथिवी) व जिसमें आठ शुभ बैलहैं (त्वचा, मांस, रुधिर, स्नायु, मेदा, मज्जा, अस्थि, शुक्र) ॥ ८८ ॥ व जिसमें आठ हाथी सबओरसे सोहते हैं (दिग्गज याने ऐरावत, पुण्डरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम, सुप्रतीक) व जिसमें आठ वेगवान् घोडे हैं (चित्त, अहंकार, बुद्धि और पांच ज्ञानेन्द्रिय याने श्रवण, चक्षु, रसना, घ्राण, त्वक्) व जिसमें वृत्तिरूप कोड़ाको हाथमें लिये हुआ मन सारथि बैठाहै ॥ ८९ ॥ व गंगा और यमुना रथकी दंडी (फरी) हैं व प्रतिचक्रमें पवन देवता है व जिसमें संध्या और प्रातःकालमय चक्र (पैहा) हैं व पवित्र द्योमंडल छत्र है ॥ ९० ॥ व ताराओं की पंक्तिमय कीले हैं व सर्प बंधनकी रस्सी हैं व वेद

मार्ग दिखानेवाले हैं व स्मृतियां रथके वरूथहैं ॥ ९१ ॥ व जिसमें दक्षिणा दृढ धूरी है व जिसमें यज्ञ सबओरसे रक्षकहैं व जिसमें ॐकार आसन है व गायत्री पादपीठ की भूमि है ॥ ९२ ॥ व जिसमें व्याकरण, ज्योतिष, निरुक्त, कल्प, शिक्षा और छन्दोलक्षण इन अंगोंसमेत भूः भुवः स्वः व्याहृतियां शुभ सीढ़ीकी गलीहैं व जिसमें च-न्द्रमा और सूर्य्य निरन्तर द्वारके रक्षकहैं ॥ ९३ ॥ व अग्नि मकराकार तुण्डहै व चांदनीमयी रथकी भूमिहै व महामेरु ध्वजाका दण्डहै व सूर्य्यकी प्रभा पताकाहै ॥ ९४ ॥ और जिसमें वाग्देवता (श्रीसरस्वती) आपही चमकते या चलतेहुये चामरकी धारण करनेवाली हैं श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, इसभांति नंदीश्वरसे विज्ञापना कियेहुये,

सूर्या खायत्राभिरक्षकाः ॥ आसनंप्रणवोयत्रगायत्रीपादपीठभूः ॥९२ ॥ साङ्गाव्याहृतयोयत्रशुभाःसोपानवीथिकाः ॥ सूर्या चन्द्रमसौयत्रसततन्द्वाररक्षकौ ॥ ९३ ॥ अग्निर्मकरतुण्डश्चरथभूःकौमुदीमयी ॥ ध्वजदण्डोमहामेरुःपताकाहस्कर प्रभा ॥ ९४ ॥ स्वयंवाग्देवतायत्रचञ्चच्चामरधारिणी ॥ स्कन्दउवाच ॥ शैलादिनेतिविज्ञप्तोदेवदेवउमापतिः ॥ ९५ ॥ कृतनीराजनविधिरष्टभिर्देवमातृभिः ॥ पिनाकपाणिरुत्तस्थौदत्तहस्तोथशार्ङ्गिणा ॥ ९६ ॥ निनादोदिव्यवाद्यानांरो दसीपर्य्यपूरयत् ॥ गीतमङ्गलगीर्भिश्चचारणैरनुवर्धितः ॥ ९७ ॥ तेनदिव्यनिनादेनबधिरीकृतदिङ्मुखाः ॥ आहूताइव आजग्मुर्विष्वग्भुवनवासिनः ॥ ९८ ॥ देवाःकोट्यस्त्रयस्त्रिंशद्गणाःकोट्ययुतद्वयम् ॥ नवकोट्यस्तुचामुण्डाभैरव्यःकोटि सम्मिताः ॥ ९९ ॥ षडाननाःकुमाराश्चमयूरवरवाहनाः ॥ ममानुगाःसमायाताःकोटयोष्टौमहाबलाः ॥ १०० ॥ आययुः

देवदेव, पार्वतीपति महादेवजी ॥ ९५ ॥ कि जिनकी नीराजनविधि (आरती) को आठ मातृकाओंने (ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री, वाराही, नारसिंही, कौमारी, माहेन्द्री, चामुण्डा, चण्डिका अथवा जया, विजया, जयन्ती, अपराजिता, सिद्धा, रक्ता, अलंबुषा) किया है अनन्तर विष्णुने जिनको हाथ दियाहै वह पिनाक हाथवाले विश्वनाथजी उठते भये ॥ ९६ ॥ तब गीत व मंगल वचनो के द्वारा चारणों से पीछे बढ़ायाहुवा दिव्य बाजोंका जो शब्दहै उसने द्यावाभूमि के अन्तरको सब ओरसे पूरा करादिया ॥ ९७ ॥ और उस दिव्य शब्द से दिशाओं के मुखोंको बधिर कियेहुये सब ओर लोको के वासी बुलायेहुये के समान आनकर प्राप्तभये ॥ ९८ ॥ तेंतीम करोड़ देव, बीसहजार करोड़ गण, नवकरोड चामुण्डा और करोडसंख्यक भैरवी ॥ ९९ ॥ व मयूरवरवाहनवाले षण्मुख कुमार और बडे बलवान् आठकरोड मेरे अनुगामी सेवक ये सब भली

भांति आये ॥ १०० ॥ व चमकतेहुये फरसा हाथवाले, बड़े वेगवान् तुँदारे, विघ्नविनाशी सातकरोड़ गजमुख (गणेश) जी आये ॥ १ ॥ व छियासीहजार ब्रह्मवादी मुनि और उतनेही अन्य गृहस्थ भी मुनि वहां भली भांति आये ॥ २ ॥ व पातालतलके बसनेवाले तीनकरोड़ नाग व दोकरोड़ दानव और दो दो करोड़ शिवभक्त दैत्य ॥ ३ ॥ और आठ करोड़ गन्धर्व व पचासलाख यक्ष व राक्षस व दोलाखसमेत दशहजार विद्याधर ॥ ४ ॥ तथा साठिसहस्र शुभ, दिव्य, अप्सरायें व आठलाख गौओंकी मातायें व साठिहजार अच्छे पक्षोंवाले, या गरुड़के वंशमे उपजेहुये पक्षी ॥ ५ ॥ और अनेक भांतिके रत्न भेंट देनेवाले सातसमुद्र भी भलीभांति प्राप्तहुये व तिरपन

कोटयःसप्तस्फुरत्परशुपाणयः ॥ पिचण्डिलामहावेगाविघ्नविघ्नागजाननाः ॥ १ ॥ षडशीतिसहस्राणिमुनयोब्रह्मवादिनः ॥ तावन्तोपिसमाजग्मुस्तत्रान्येगृहमेधिनः ॥ २ ॥ नागानाङ्कोटयस्तिस्रःपातालतलवासिनाम् ॥ दानवानाञ्चदैत्यानांद्वेद्वेकोटीशिवात्मनाम् ॥ ३ ॥ गन्धर्वानियुतान्यष्टौकोट्यर्धंयक्षरक्षसाम् ॥ विद्याधराणामयुतंनियुतद्वयसंयुतम् ॥ ४ ॥ तथाषष्टिसहस्राणिदिव्याश्चाप्सरसःशुभाः ॥ गोमातरोऽष्टौलक्षाणिसुपर्णान्ययुतानिषट् ॥ ५ ॥ सागराःसप्तसम्प्राप्तानानारत्नोपदप्रदाः ॥ सरिताञ्चसहस्राणित्रीणिपञ्चायुतानिच ॥ ६ ॥ गिरयोऽष्टौसहस्राणिवनस्पतिशतत्रयम् ॥ आजग्मुर्दिग्गजाश्चाष्टौयत्रदेवःपिनाकधृक् ॥ ७ ॥ एतैःसमेतःसन्तुष्टःपरिष्टुतइतस्ततः ॥ श्रीकण्ठोरथमारुह्यकाशींप्राविशदुत्तमाम् ॥ ८ ॥ सगिरीन्द्रसुतस्त्र्यक्षोमुदांधाममुधाङ्कनिः ॥ काशींप्रैक्षिष्टसंहृष्टस्त्रिविष्टपसमुत्कटाम् ॥ ९ ॥ स्कन्दउवाच ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यङ्कोटिजन्माघनाशनम् ॥ पठित्वापाठयित्वाचशिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥ १० ॥ श्राद्धका

हजार नदियां ॥ ६ ॥ व आठहजार पर्वत व तीनसौ वनस्पति (जिनमें फूल विना फल लगते हैं) और आठ दिशाओंके हाथी ये सब जहां पिनाकधारी क्रीड़ाकारी शिवजी रहैं वहां आतेभये ॥ ७ ॥ इन सबों से समेत व ऐसी वैसी प्रशंसितहुये संतुष्ट शिवजीने रथपर चढ़कर उत्तम काशीपुरी में प्रवेश किया ॥ ८ ॥ और परमार्थों के स्थान आनन्दों के निधान श्रीपार्वतीसमेत सन्तुष्टहुये त्रिनेत्र शिवजीने स्वर्ग से भी बड़ीविचित्र श्रीकाशीपुरीको देखा ॥९॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, करोड़ों जन्मों के पाप पछाड़नेवाले पुण्यरूप अनूप इस आख्यानको सुनकर और पढ़कर व पढ़ाकर शिवजीकी सायुज्यमुक्ति को प्राप्तहोवे ॥ १० ॥ और श्राद्ध समय में बड़ेयत्नके साथ विशेष

पढ़ना चाहिये क्योंकि वह श्राद्ध पितरों की तृप्ति करनेवाला उत्तम और अक्षय (अविनाशी) होजाता है ॥ ११ ॥ व शिवजी के समीप में प्रतिदिन एक वर्ष समयतक वृषभध्वज के माहात्म्यको पढ़कर पुत्रसे हीन भी जन पुत्रवान् होवैहै ॥ १२ ॥ जोकि काशी में विश्वेश्वरजीका भलीभांति प्रवेश कहागया यह परमानन्दकन्दका अच्छा निश्चितबीजहै ॥१३॥ और जोकि इस आख्यानको आनन्दसे पढ़कर नयेघरमें प्रवेशकरे वह सब सौख्योंका स्थानही होवे इसमें संशय नहीं है ॥ १४ ॥ यह उत्तम आख्यान त्रिलोकका आनंद उपजानेवालाहै इसके सुननेमात्रसेही विश्वनाथजी भलीभांति प्रसन्न होतेहैं ॥ १५ ॥ जिसलिये इसमेंही महादेवजीका श्रेष्ठ अलभ्य लाभहुवाहै उसलिये

लेविशेषेणपठनीयम्प्रयत्नतः ॥ अक्षयन्तद्भवेच्छ्राद्धंपितृतुष्टिकरम्परम् ॥ ११ ॥ वृषभध्वजमाहात्म्यंपठित्वाशिवसन्निधौ ॥ प्रत्यहंवर्षमात्रन्तुह्यपुत्रःपुत्रवान्भवेत ॥ १२ ॥ विश्वेशितुःसम्प्रवेशोयःकाश्यांसमुदाहृतः ॥ परमानन्दकन्दस्य बीजमेतत्सुनिश्चितम् ॥ १३ ॥ पठित्वैतन्मुदाख्यानम्प्रविशेन्नोनवंगृहम् ॥ ससर्वसौख्यनिलयोभवेदेवनसंशयः ॥ १४ ॥ त्रैलोक्यानन्दजनकमेतदाख्यानमुत्तमम् ॥ अस्यश्रवणमात्रेणविश्वेशःसंप्रसीदति ॥ १५ ॥ अलभ्यलाभोदेवस्यजातोत्रहियतःपरः ॥ ततःकाशीप्रवेशाख्यञ्जप्यमाख्यानमुत्तमम् ॥ ११६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवृषभध्वजप्रादुर्भावोनामद्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ दृष्ट्वाकाशींदृगानन्दान्तारकारेपुरारिणा ॥ किमकारिसमाचक्ष्वप्राप्ताम्बहुमनोरथैः ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ पतिव्रतापतेऽगस्त्यशृणुवक्ष्याम्यशेषतः ॥ मृगाङ्कलक्ष्मणोत्कण्ठङ्काशीनेत्रातिथीकृता ॥ २ ॥ अथसर्वज्ञना

काशीप्रवेशनामक उत्तमआख्यान जपने योग्यहै॥११६॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डेभाषानन्वेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेवृषभध्वजप्रादुर्भावोनामद्विषष्टितमोऽध्यायः॥६२॥

दो० । तिरसठयें अध्यायमें महिमायुत ज्येष्ठेश । जैगीषव्यमुनीन्द्रपर करुणा कीन महेश ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे तारकासुर के वैरिन् ! आंखों को आनंद देनेवाली व बहुते मनोरथों से प्राप्तहुई काशीपुरी को देखकर त्रिपुरविनाशी अविनाशी शिवजीने क्या किया उसको तुम भलीभांति सब ओरसे कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे पतिव्रतापते, अगस्त्यजी ! तुम सुनो मैं सकल वृत्तांत को कहूगा कि चंद्रलाञ्छनवाले शिवजीने उत्कंठासमेत जब काशीको आंखोंकी अतिथि किया

याने उसको देखा ॥ २ ॥ तदनंतर सर्वज्ञों के नाथ व भक्तवत्सलतासंयुत मनवाले महेशजीने कंदरा के भीतर टिकेहुये, मुनिश्रेष्ठ जैगीषव्यजी को देखा ॥ ३ ॥ और जिस कालको लगाकर वृषेन्द्रवाहनगामी रुद्रजी पार्वतीजी के साथ मंदराचल को विशेषसे निकलगये थे ॥ ४ ॥ हे कुंभसंभव ! उस दिनको आगेकर बड़े बुद्धिमान् परमपुण्यवान् जैगीषव्यजीने दृढ़ नियम को ग्रहण किया ॥ ५ ॥ कि जब मैं त्रिनेत्र शिवजी के चरणारविंद को फिर देखूंगा तबहीं पानी का बूँद भी पान करूंगा ऐसा आश्चर्य्य है ॥ ६ ॥ हे मुने ! किसी धारणा के योगसे अथवा शिवजीकी दयासे न खाते व न पीते हुयेभी योगीन्द्र जैगीषव्य वहां टिकेहुये थे ॥ ७ ॥ उनको शंकरजी ही

थेनभक्तवत्सलचेतसा ॥ जैगीषव्योमुनिश्रेष्ठोगुहान्तस्थोनिरीक्षितः ॥ ३ ॥ यमनेहसमारभ्यमन्दराद्रिंविनिर्ययौ ॥ अद्रीन्द्रसुतयासार्धंरुद्रेणोक्षेन्द्रगामिना ॥ ४ ॥ तंवासरम्पुरस्कृत्यजग्राहनियमंदृढम् ॥ जैगीषव्योमहामेधाःकुम्भयोनेमहाकृती ॥ ५ ॥ विषमेक्षणपादाब्जंसमीक्षिष्येयदापुनः ॥ तदाम्बुविप्रुषमपिभक्षयिष्यामिचेत्यहो ॥ ६ ॥ कुतश्चिद्धारणायोगादथवाशम्भ्वनुग्रहात् ॥ अनश्नन्नपिबन्योगीजैगीषव्यःस्थितोमुने ॥ ७ ॥ तंशम्भुरेवजानातिनान्योजानातिकश्चन ॥ अतएवततःप्राप्तःप्रथमम्प्रमथाधिपः ॥ ८ ॥ ज्येष्ठशुक्लचतुर्दश्यांसोमवारानुराधयोः ॥ तत्पर्वणिमहायात्राकर्त्तव्यातत्रमानवैः ॥ ९ ॥ ज्येष्ठस्थानन्ततःकाश्यांतदाभूदपिपुण्यदम् ॥ तत्रलिङ्गंसमभवत्स्वयंज्येष्ठेश्वराभिधम् ॥ १० ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसांपापञ्जन्मशतार्जितम् ॥ तमोर्कोदयमाप्येवतत्क्षणादेवनश्यति ॥ ११ ॥ ज्येष्ठवाप्यान्नरःस्नात्वातर्पयित्वापितामहान् ॥ ज्येष्ठेश्वरंसमालोक्यनभूयोजायतेभुवि ॥ १२ ॥ आविरासीत्स्वयन्तत्रज्येष्ठेश्वरसमी

जानते थे और अन्य कोई भी नहीं जानताथा इससेही गणों के नाथ विश्वनाथजी पहले वहां प्राप्तहुये ॥ ८ ॥ और जेठसुदी चतुर्दशी सोमवार और अनुराधा नक्षत्रमें जो उनकी पर्व है उसमें वहां मनुष्यों को महायात्रा करनाचाहिये ॥ ९ ॥ उसलिये तब काशीमें पुण्यदायक ज्येष्ठस्थान भी होगया और वहां ज्येष्ठेश्वर नामक लिंग आपहीं आप भलीभांति होताभया ॥ १० ॥ उस लिंग के दर्शनसेही मनुष्यों के सैकड़ों जन्मों का बटोरा हुवा पाप सूर्य्योदय को प्राप्त होकर अंधकार की नाईं उसी क्षणमें ही नष्ट होजाता है ॥ ११ ॥ व ज्येष्ठवापी में स्नानकर व पितरों का तर्प्पणकर और ज्येष्ठेश्वर को भलीभांति देखकर नर फिर पृथिवीमें नहीं उत्पन्न होताहै ॥ १२ ॥ और वहां

ज्येष्ठेश्वर के समीप मे सब ओर से सबको या सब सिद्धि देनेवाली श्रेष्ठा ज्येष्ठा गौरी आपही प्रकट होगई हैं ॥ १३ ॥ इससे सब संपत्ति की समृद्धि के लिये ज्येष्ठमास की सुदी अष्टमी में वहां महोत्सव करनाचाहिये और रात्रिमें जागरण करनाचाहिये ॥ १४ ॥ व ज्येष्ठवापी में स्नान कियेहुई अभाग्यसेविनी भी स्त्री ज्येष्ठा गौरी के नमस्कारकर सौभाग्यका पात्र होजावे ॥ १५ ॥ और जिससे शंभुजीने आपही उस स्थानमें निवास किया उसलिये निवासेश्वर ऐसा कहागयाहुवा अन्य उत्तमलिंग वहां होगया ॥ १६ ॥ उस निवासेश्वर लिंगकी सेवासे सब संपत्तियां नित्यही घरमें बसती हैं फिर नित्यपद के प्रति निवास करती हैं याने मोक्षसंपत्तियां भी प्राप्त होजाती हैं ॥ १७ ॥ व ज्येष्ठस्थान

पतः ॥ सर्वसिद्धिप्रदागौरीज्येष्ठाश्रेष्ठासमन्ततः ॥ १३ ॥ ज्येष्ठेमासिसिताष्टम्यांतत्रकार्योमहोत्सवः ॥ रात्रौजागरणंकार्यंसर्वसम्पत्समृद्धये ॥ १४ ॥ ज्येष्ठाङ्गौरींनमस्कृत्यज्येष्ठवापीपरिप्लुता ॥ सौभाग्यभाजनम्भूयाद्योषासौभाग्यभागपि ॥ १५ ॥ निवासंकृतवाञ्छम्भुस्तस्मिन्स्थानेयतःस्वयम् ॥ निवासेशइतिख्यातंलिङ्गंतत्रपरन्ततः ॥ १६ ॥ निवासेश्वरलिङ्गस्यसेवनात्सर्वसम्पदः ॥ निवसन्तिगृहेनित्यन्नित्यंप्रतिपदम्पुनः ॥ १७ ॥ कृत्वाश्राद्धंविधानेनज्येष्ठस्थानेनरोत्तमः ॥ ज्येष्ठांतृप्तिंददात्येवपितृभ्योमधुसर्पिषा ॥ १८ ॥ ज्येष्ठतीर्थेनरःकाश्यांदत्त्वादानानिशक्तितः ॥ ज्येष्ठान्स्वर्गानवाप्नोतिनरोमोक्षञ्चगच्छति ॥ १९ ॥ ज्येष्ठेश्वरोऽर्च्यःप्रथमङ्काश्यांश्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ॥ ज्येष्ठागौरीततोऽभ्यर्च्यासर्वज्येष्ठमभीप्सुभिः ॥ २० ॥ अथनन्दिनमाहूयधूर्जटिःसकृपानिधिः ॥ शृण्वतांसर्वदेवानामिदंवचनमब्रवीत ॥ २१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शैलादेप्रविशाशुत्वंगुहास्त्यत्रमनोहरा ॥ तदन्तरेऽस्तिमेभक्तोजैगीषव्यस्तपोधनः ॥ २२ ॥ महानियमवा

में शहद और घृतसे विधिपूर्वक श्राद्धकोकर नरोत्तम पितरोंको ज्येष्ठ (श्रेष्ठ) तृप्तिदेताहै यह निश्चय है ॥ १८ ॥ और काशीमें ज्येष्ठतीर्थ के समीप अपनी शक्ति के अनुसार दानको देकर मनुष्य श्रेष्ठ स्वर्गों को प्राप्तहोता है फिर नेता (स्वामी) होकर मोक्षको प्राप्तहोता है ॥ १९ ॥ काशी में कल्याणचाही मनुष्यों को पहले ज्येष्ठेश्वर की पूजा करनाचाहिये तदनंतर सब श्रेष्ठ फल चाहियोंको ज्येष्ठागौरी की पूजा करनाचाहिये ॥ २० ॥ अनंतर नंदीश्वर को बुलाकर उन कृपानिधान शिवजीने सब देवों के सुनतेही इसवचन को कहा ॥ २१ ॥ श्रीमहेश्वरजी बोले कि हे शिलादके पुत्र, नंदिन् ! जो यहां मनोहर कन्दराहै उसमें तुम शीघ्रही पैठजावो क्योंकि उसके भीतर तपस्या का धनी

जैगीषव्य नामक मेरा भक्तहै ॥ २२ ॥ हे नंदिन्! जोकि बड़ा नियमी है व जिसकी देह में चर्म हाड़ और नसें शेष रहगई हैं व जिसके मेरे दर्शनके लिये दृढ़व्रत है उस मेरे भक्तको तुम यहां आनलावो ॥ २३ ॥ जबसे लगाकर मैं काशीसे सब सुन्दर कन्दरवाले मन्दर पर्वतको चलागया हूं तब से लगाकर भोजन को त्यागेहुवा यह महानियमवान् है ॥ २४ ॥ तुम अमृतके समान पोषनेहारे इस लीलाकमलको लो और बहुत वृद्धि करनेवाले इस कमलसे शीघ्रही उसके अंगोंको छुवो ॥ २५ ॥ तदनन्तर नन्दीश्वरजी ने समर्थ शिवजीका वह लीलाकमल लेकर व देवोंकेदेव महादेवजी के प्रणामकर उस गहरी गुफामें प्रवेश किया ॥ २६ ॥ अनन्तर तपस्यारूप

न्नन्दिस्त्वगस्थिस्नायुशेषितः ॥ तमिहानयमद्भक्तम्मद्दर्शनदृढव्रतम् ॥ २३ ॥ यदाप्रभृत्यगाङ्काश्यामन्दरंसर्वसुन्दरम् ॥ महानियमवानेषतदारभ्योज्झिताशनः ॥ २४ ॥ गृहाणलीलाकमलमिदम्पीयूषपोषणम् ॥ अनेनतस्यगात्राणिस्पृश सद्यःसुबृंहिणा ॥ २५ ॥ ततोनन्दीसमादायतल्लीलाकमलंविभोः ॥ प्रणम्यदेवदेवेशमाविशद्गह्वरांगुहाम् ॥ २६ ॥ नन्दी दृष्ट्वाथतन्तत्रधारणादृढमानसम् ॥ तपोग्निपरिशुष्काङ्गंकमलेनसमस्पृशत् ॥ २७ ॥ तपान्तेवृष्टिसंयोगाच्छालूरइव कोटरे ॥ उल्ललाससयोगीन्द्रःस्पर्शमात्रात्तदब्जजात् ॥ २८ ॥ अथनन्दीसमादायसत्वरम्मुनिपुङ्गवम् ॥ देवदेवस्य पादाग्रेनमस्कृत्यन्यपातयत् ॥ २९ ॥ जैगीषव्योथसम्भ्रान्तःपुरतोवीक्ष्यशङ्करम् ॥ वामाङ्गसन्निविष्टाद्रितनयम्प्रणना मह ॥ ३० ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमौपरिलुठ्यसमन्ततः ॥ तुष्टावपरयाभक्त्यासमुनिश्चन्द्रशेखरम् ॥ ३१ ॥ जैगीषव्यउवाच ॥

अग्नि से सब ओर सूखे अंगोंवाले व धारणा से दृढ़ मनवाले उस महामुनिको वहां देखकर नन्दीश्वरजी ने कमल से भलीभांति छूलिया ॥ २७ ॥ उस कमल से हुये स्पर्शमात्र से वह योगीन्द्र जैगीषव्यजी गुफाके भीतर बहुतही शोभित होगये कि जैसे वर्षाऋतु में वृष्टिके संयोग से मेंढकका उल्लास होता है ॥ २८ ॥ तदनन्तर नन्दीश्वरजी ने शीघ्रही मुनीश्वरको भलीभांति लेकर नमस्कारकर देवोंकेदेव श्रीमहादेवजीके चरणारविन्दोंके आगे छोड़दिया ॥ २९ ॥ उसके बाद सम्भ्रम (उद्वेग या आदर) समेत हुये जैगीषव्यजीने वामांगमें बैठीहुई पार्वतीसंयुत शङ्करजीको आगे देखकर आनन्दसे प्रणाम किया ॥ ३० ॥ और दण्डके समान प्रणामकर व भूमिमें सब ओर

छोड़कर गद्गद मुनि भारी भक्तिसे चन्द्रभालकी स्तुति करनेलगे ॥ ३१ ॥ श्रीजैगीषव्यजी बोले कि सुखस्वरूप शान्त सर्वज्ञ मंगलमूर्ति व जगत्को आनन्द बरसाने के लिये मेघके समान और परमानन्द के कारण जो आप हैं उनके लिये नमस्कार है ॥ ३२ ॥ रूपरहित रूपसहित व अनेक रूपधारी विरूपनेत्रवाले व भाग्यस्वरूप व ब्रह्मा और विष्णु से स्तुति कियेगये हुये आपके लिये नमस्कार है ॥ ३३ ॥ स्थावररूप तुम्हारे लिये नमस्कार है जंगमरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है सर्वस्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है और परमात्मारूप तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३४ ॥ तीनोंलोकों से चाहेहुये व कामकी देह जलानेवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है व सबसे विशेषरूपवाले तु-

नमःशिवायशान्तायसर्वज्ञायशुभात्मने ॥ जगदानन्दकन्दायपरमानन्दहेतवे ॥ ३२ ॥ अरूपायसरूपायनानारूपधरायच ॥ विरूपाक्षायविधयेविधिविष्णुस्तुतायच ॥ ३३ ॥ स्थावरायनमस्तुभ्यञ्जङ्गमायनमोस्तुते ॥ सर्वात्मनेनमस्तुभ्यन्नमस्तेपरमात्मने ॥ ३४ ॥ नमस्त्रैलोक्यकाम्यायकामाङ्गदहनायच ॥ नमोशेषविशेषायनमःशेषाङ्गदायते ॥ ३५ ॥ श्रीकण्ठायनमस्तुभ्यंविषकण्ठायतेनमः ॥ वैकुण्ठवन्द्यपादायनमोऽकुण्ठितशक्तये ॥ ३६ ॥ नमःशक्त्यर्धदेहायविदेहायसुदेहिने ॥ सकृत्प्रणाममात्रेणदेहिदेहनिवारिणे ॥ ३७ ॥ कालायकालकालायकालकूटविषादिने ॥ व्यालयज्ञोपवीतायव्यालभूषणधारिणे ॥ ३८ ॥ नमस्तेखण्डपरशोनमःखण्डेन्दुधारिणे ॥ खण्डिताशेषदुःखायखड्गखेटकधारिणे ॥ ३९ ॥ गीर्वाणगीतनाथायगङ्गाकल्लोलमालिने ॥ गौरीशायगिरीशायगिरिशायगुहारणे ॥ ४० ॥ चन्द्रार्धशुद्धभू

म्हारे लिये नमस्कार है और शेषनागको बजुल्लाबनाये हुये तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ३५ ॥ शोभासमेत या श्यामकण्ठवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है विषकण्ठवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है विष्णुसे वन्दनीय चरणारविन्दवाले और अकुण्ठितशक्तिवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३६ ॥ देहसे हीन व सुदेहवान् व एकबार प्रणाममात्र से संसारी देहधारी लोगोंकी देहके निवारण करनेवाले और शक्ति (श्रीपार्वतीजी) हैं आधीदेह जिनकी उन आपके लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ जगत के काल (चलानेवाले) व कालके काल याने कालसे परे व कालकूट विषके खानेवाले व सर्पोंका यज्ञोपवीत पहनेहुये और सर्पोंके गहने धारनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ३८ ॥ हे खण्डपरशो ! चन्द्रखण्डधारी तुम्हारेलिये नमस्कार है व सम्पूर्ण दुःखहारी और ढाल तलवारधारी आपके लिये नमस्कार है ॥ ३९ ॥ हे गुहारणे (कार्त्तिकेयकी उत्पत्तिके का-

रण)! देवोंसे गायेहुये नाथ व गंगालहरों की पंक्तिवाले व गौरी (पार्वती) के नायक, वाणीकी गतिदायक व कैलासपर्वत में सोनेवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ४० ॥ हे चर्मवसन ! चन्द्रार्धशुद्धभूषणवाले व चन्द्रमा सूर्य्य और अग्निरूपनेत्रवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है व दिशावस्त्रवाले तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४१ ॥ जगत् के ईश्वर, पुराणपुरुषोत्तम, व जरा (बुढ़ाई) और जन्मादि हरनेहारे तुम्हारे लिये नमस्कार है व पापादि अनेक तापविनाशी जीवरूप अविनाशी तुम्हारेलिये नमस्कार है ॥ ४२ ॥ एक हाथ में डमरूलिये व दूसरे हाथमें धन्वा लिये हुये तुम्हारे लिये नमस्कारहै त्रिनेत्र तुम्हारे लिये नमस्कारहै और जगत्के प्रकाशक तुम्हारे लिये नमस्कार

षायचन्द्रसूर्याग्निचक्षुषे ॥ नमस्तेचर्मवसननमोदिग्वसनायते ॥ ४१ ॥ जगदीशायजीर्णायजराजन्महरायते ॥ जीवायतेनमस्तुभ्यञ्जञ्जपूकादिहारिणे ॥ ४२ ॥ नमोडमरुहस्तायधनुर्हस्तायतेनमः ॥ त्रिनेत्रायनमस्तुभ्यञ्जगन्नेत्रायतेनमः ॥ ४३ ॥ त्रिशूलव्यग्रहस्तायनमस्त्रिपथगाधर ॥ त्रिविष्टपाधिनाथायत्रिवेदीपठितायच ॥ ४४ ॥ त्रयीमयायतुष्टायभक्ततुष्टिप्रदायच ॥ दीक्षितायनमस्तुभ्यंदेवदेवायतेनमः ॥ ४५ ॥ दारिताशेषपापायनमस्तेदीर्घदर्शिने ॥ दूरायदुरवाप्यायदोषनिर्दलनायच ॥ ४६ ॥ दोषाकरकलाधारत्यक्तदोषागमायच ॥ नमोधूर्जटयेतुभ्यन्धत्तूरकुसुमप्रिय ॥ ४७ ॥ नमोधीरायधर्मायधर्मपालायतेनमः ॥ नीलग्रीवनमस्तुभ्यन्नमस्तेनीललोहित ॥ ४८ ॥ नाममात्रस्मृतिकृतान्त्रैलोक्यैश्वर्यपूरक ॥ नमःप्रमथनाथायपिनाकोद्यतपाणये ॥ ४९ ॥ पशुपाशविमोक्षायपशूनाम्पतयेनमः ॥ नामोच्चारणमात्रेण

है ॥ ४३ ॥ हे गंगाधर ! स्वर्गके स्वामी, तीनोंवेदों में पठित व त्रिशूलसे चञ्चल हाथवाले आपकेलिये नमस्कार है ॥ ४४ ॥ वेदत्रयीरूप, सन्तुष्ट व भक्तों के सन्तोषदायक तुम्हारे लिये नमस्कारहै व दिव्यज्ञान के देनेवाली दीक्षासमेत और देवोंके देव तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ४५ ॥ सम्पूर्ण पापविदारी दोषदलनकारी इन्द्रियों से दूरचारी दिव्यदीर्घज्ञानधारी और दुःख से मिलनेयोग्य तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४६ ॥ हे धत्तूरकुसुमप्रिय, चन्द्रकलाधर ! निर्दोषशास्त्रवाले या दोषोंके आनेको त्यागेहुये व जटाभारधारी तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ४७ ॥ हे नीललोहित, नीलकण्ठ ! बुद्धिदायक तुम्हारे लिये नमस्कारहै धर्मरूप तुम्हारे लिये नमस्कार है और धर्मपालक तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ४८ ॥ हे नाममात्र स्मरण करते हुये लोगों के त्रैलोक्य ऐश्वर्यपूरक ! गणोंकेनाथ व पिनाक नाम धन्वासे उद्यत हाथवाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ४९ ॥

पशुरूप संसारीजीवोंकी चौबीस तत्त्वमयी फांसी छोरनेवाले व जीवोंके स्वामी और नाममात्र जपनेसे महापापहारी आपके लिये नमस्कारहै ॥ ५० ॥ परसे परे याने प्रकृतिके प्रवर्तक व संसारपारकार या प्रलयके अवधिभूत व कारण कार्य्य से परे अनन्त चरित्र और सुपवित्र कथावाले आपके लिये नमस्कारहै ॥ ५१ ॥ मनोहर क्रीडाकारी स्त्रीको अर्धांगधारी वृषसवारी से विहारी भक्तभयहारी पापभंजनकारी और दुष्टोंके लिये भारी भयानक बानकवाले आपके लिये नमस्कार है ॥ ५२ ॥ हे तेजों के स्वामिन्, महेश, महादेव ! जगत्प्रकाशक, भवनाशक के लिये नमस्कारहै व आकाशादि पञ्चतत्त्वों या सब प्राणियोंके पति तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ५३ ॥ पार्वतीपतिके लिये नमस्कारहै

महापातकहारिणे ॥ ५० ॥ परात्परायपारायपरापरपरायच ॥ नमोऽपारचरित्रायसुपवित्रकथायच ॥ ५१ ॥ वामदेवा यवामार्धधारिणेवृषगामिने ॥ नमोभर्गायभीमायनतभीतिहरायच ॥ ५२ ॥ भवायभवनाशायभूतानाम्पतयेनमः ॥ म हादेवनमस्तुभ्यम्महेशमहसाम्पते ॥ ५३ ॥ नमोमृडानीपतयेनमोमृत्युञ्जयायते ॥ यज्ञारयेनमस्तुभ्यंयक्षराजप्रिया यच ॥ ५४ ॥ यायजूकाययज्ञाययज्ञानाम्फलदायिने ॥ रुद्रायरुद्रपतयेकद्रुद्रायरमायच ॥ ५५ ॥ शूलिनेशाश्वतेशा यश्मशानावनिचारिणे ॥ शिवाप्रियायसर्वायसर्वज्ञायनमोस्तुते ॥ ५६ ॥ हरायक्षान्तिरूपायक्षेत्रज्ञायक्षमाकर ॥ क्षमा यक्षितिहर्त्रेचक्षीरगौरायतेनमः ॥ ५७ ॥ अन्धकारेनमस्तुभ्यमाद्यन्तरहितायच ॥ इडाधारायईशायउपेन्द्रेन्द्रस्तुता यच ॥ ५८ ॥ उमाकान्तायउग्रायनमस्तेऊर्ध्वरेतसे ॥ एकरूपायचैकायमहदैश्वर्यरूपिणे ॥ ५९ ॥ अनन्तकारिणेतुभ्य

मृत्यु के जीतनेवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै व कुबेरके प्यारे और दक्षयज्ञ के वैरी तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ५४ ॥ बड़ेयज्ञकर्त्ता, यज्ञरूप, यज्ञों के फलदायक, रुद्रों के नायक; रोगोंकेघायक व कुत्सित रोदनके भगानेहारे और लोगों के रमानेवारे आपके लिये नमस्कार है ॥ ५५ ॥ त्रिशूलधारी, नित्य ऐश्वर्य्यकारी, श्मशानभूमिचारी, जगत् संहारी, सर्वज्ञ और प्यारीपार्वतीवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ५६ ॥ हे क्षमाकर ! भक्तभवभयहर शांतिरूप क्षेत्रज्ञस्वरूप समर्थ भूमिप्राप्तिकारी और दूधके समान श्वेतरंग अंगवाले तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥ ५७ ॥ हे अंधकासुरके वैरिन् ! आदि व अंतसे रहित अविकार, भूमिके आधार सदा ऐश्वर्य्य आगार व उपेन्द्र और इन्द्रसे प्रशंसित तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ ५८ ॥ उमाके कांत, अशांत, ऊर्ध्वरेता, एकरूप अनूप मुख्य और अधिक ऐश्वर्य्य रूपवान् आपके लिये नमस्कारहै ॥ ५९ ॥ अनंतकर्त्ता अंबिकाके भर्त्ता

आपके लिये नमस्कारहै व तुम ॐकार और वषट्कारहौ व तुमहीं भूर्भुवःस्वः नामक त्रिलोकहो ॥ ६० ॥ हे पार्वतीपते ! इस ब्रह्माण्डमे जो दृश्य और अदृश्य है वह सब तुमहींहो मैं स्तुतिकरने को नहीं जानताहूं बरन स्तुतिकर्त्ता भी तुमहींहो ॥ ६१ ॥ हे महेश्वर, महादेव ! नाम व नामवाला याने शब्द और अर्थ व वचनभी तुमहींहो मैं तुम्हारे प्रणाम करनेवालाहूं अन्यको नहीं जानताहूं और अन्यकी स्तुति नहीं करता हूं ॥ ६२ ॥ हे गौरीश, शिव ! मैं अन्यके नमस्कार नहीं करताहूं व अन्यका नाम नहीं लेताहूं किंतु अन्यका नामलेनेमें गूंगाहूं और अन्यकी कथा सुननेमें बहराहूं ॥ ६३ ॥ अन्यके सामने चलने में पंगुलाहूं व अन्यको सब ओरसे देखनेमें अंधाहूं आपही

मम्बिकापतयेनमः ॥ त्वमोङ्कारोवषट्कारोभूर्भुवःस्वस्त्वमेवहि ॥ ६० ॥ दृश्यादृश्यंयदत्रास्तितत्सर्वंत्वमुमाधव ॥ स्तुतिङ्कर्तुंनजानामिस्तुतिकर्तात्वमेवहि ॥ ६१ ॥ वाच्यस्त्वंवाचकस्त्वंहिवाक्चत्वंप्रणतोस्मिते ॥ नान्यंवेद्मिमहादेवनान्यंस्तौमिमहेश्वर ॥ ६२ ॥ नान्यंनमामिगौरीशनान्याख्यामाददेशिव ॥ मूकोन्यनामग्रहणेबधिरोन्यकथाश्रुतौ ॥ ६३ ॥ पंगुरन्याभिगमनेऽस्म्यन्धोऽन्यपरिवीक्षणे ॥ एकएवभवानीशएकःकर्तात्वमेवहि ॥ ६४ ॥ पाताहर्तात्वमेवैकोनानात्वंमूढकल्पना ॥ अतस्त्वमेवशरणंभूयोभूयःपुनःपुनः ॥ ६५ ॥ संसारसागरेमग्नंमामुद्धरमहेश्वर ॥ इतिस्तुत्वामहेशानंजैगीषव्योमहामुनिः ॥ ६६ ॥ वाचंयमोभवत्स्थाणोःपुरतःस्थाणुसन्निभः ॥ इतिस्तुतिंसमाकर्ण्यमुनेश्चन्द्रविभूषणः ॥ उवाचचप्रसन्नात्मावरंब्रूहीतितंमुनिम् ॥ ६७ ॥ जैगीषव्यउवाच ॥ यदिप्रसन्नोदेवेशततस्तवपदाम्बुजात् ॥ माभवानिभवानीशदूरंदूरपदप्रद ॥ ६८ ॥ अपरश्चवरोनाथदेयोयमविचारतः ॥ यन्मयास्थापितंलिङ्गंतत्रसान्निध्यम

एक ईश्वर हैं व तुमहीं एक कर्त्ता हौ ॥ ६४ ॥ तुमहीं एक रक्षक व हर्त्ताहो क्योंकि अनेक भांतिका होना मूढ़ोंकी कल्पना है इससे तुमहीं बार बार फिर फिर आधार या रक्षाकरनेवालेहो ॥ ६५ ॥ हे महेश्वर ! तुम संसारसागरमें डूबेहुये मुझको उबारलो इसभांति महेशजीकी स्तुतिकर जैगीषव्य महामुनि ॥ ६६ ॥ शिवजीके आगे ठूंठके समाने वचन बंद करनेवाले होगये और ऐसी मुनिकी स्तुतिको सुनकर चन्द्रविभूषण महादेवजीने प्रसन्नमन होकर उन मुनि से ऐसा कहा कि तुम वरको बोलो ॥ ६७ ॥ श्रीजैगीषव्यजी बोले कि, हे दूरपदप्रद, भवानीश, देवेश ! जो तुम प्रसन्न हो तो मैं तुम्हारे चरणारविंद से दूर मत होऊं ॥ ६८ ॥ हे नाथ ! अन्य भी यह वर विना विचार

ही देने योग्यहै कि जो मेरा थापा हुआ लिंगहै उसमें तुम्हारी समीपता होवे ॥ ६९ ॥ श्रीमहेशजी बोले कि हे महाभाग, अपाप, जैगीषव्य ! आपने जो कहा वह सब तुम्हारा प्यारा मनोरथ सिद्ध होवे और मै तुमको अन्य वर देताहूं ॥ ७० ॥ कि मैंने मुक्ति का साधक योगशास्त्र तुमको दिया व आप सब योगियों के बीच में योगके आचार्य्य भी होवें ॥ ७१ ॥ हे तपोधन ! तुम मेरी प्रसन्नता से योगविद्या के रहस्य को यथावत् भलीभांति जानोगे कि जिससे कैवल्य मुक्तिको प्राप्त होवोगे ॥ ७२ ॥ जैसे नंदीश्वर जैसे भृंगीश्वर और जैसे सोमनंदी हैं वैसे तुम भी मेरे भक्त व जरा मरणसे हीन होजावोगे ॥ ७३ ॥ इस लोकमें बहुत व्रतहैं व अनेक भांति के नियम हैं

स्तुते ॥ ६९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ जैगीषव्यमहाभागयदुक्तंभवतानघ ॥ तदस्तुसर्वंतेभीष्टंवरमन्यंददामिच ॥ ७० ॥ योगशास्त्रंमयादत्तंतवनिर्वाणसाधकम् ॥ सर्वेषांयोगिनांमध्येयोगाचार्योऽस्तुवैभवान् ॥ ७१ ॥ रहस्यंयोगविद्यायायथावत्त्वंतपोधन ॥ संवेत्स्यसेप्रसादान्मेयेननिर्वाणमाप्स्यसि ॥ ७२ ॥ यथानन्दीयथाभृङ्गीसोमनन्दीयथातथा ॥ त्वंभविष्यसिभक्तोमेजरामरणवर्जितः ॥ ७३ ॥ सन्तिव्रतानिभूयांसिनियमाःसन्त्यनेकधा ॥ तपांसिनानासन्त्यत्रसन्तिदानान्यनेकशः ॥ ७४ ॥ श्रेयसांसाधनान्यत्रपापघ्नान्यपिसर्वथा ॥ परंहिपरमश्चैषनियमोयस्त्वयाकृतः ॥ ७५ ॥ परोहिनियमश्चैषमांविलोक्ययदश्यते ॥ मामनालोक्ययद्भुक्तंतद्भुक्तंकेवलंत्वघम् ॥ ७६ ॥ असमर्च्यचयोभुङ्क्तेपत्रपुष्पफलैरपि ॥ रेतोभक्षीभवेन्मूढःसजन्मान्येकविंशतिम् ॥ ७७ ॥ महतोनियमस्यास्यभवतानुष्ठितस्यवै ॥ नार्हन्तिषोडशींमात्रामप्यन्येनियमायमाः ॥ ७८ ॥ अतोमच्चरणाभ्याशेत्वंनिवत्स्यसिसर्वथा ॥ अतोनैःश्रेयसींलक्ष्मींतत्रैवप्राप्स्यसि

व अनेक तपहैं व अनेक दानहैं ॥ ७४ ॥ और यहां सब प्रकारसे पाप विनाशनेवाले व सुखों के साधनभी हैं परन्तु जो तुम्हारा कियाहुआ नियमहै यह सबसे परे है ॥ ७५ ॥ क्योंकि जो मेरा दर्शनकर भोजन किया जाताहै यह नियमही बहुत उत्तम है और मुझको न देखकर जो खाया गया वह केवल पाप खाया गया याने नित्यही मेरी मूर्तियों के दर्शन करने के बाद भोजन करना चाहिये ॥ ७६ ॥ जोकि पत्र फूल और फलों से भी मुझको नहीं पूजकर खाता पीताहै वह मूढ़ इक्कीस जन्मतक रेतोभक्षी होवे है ॥ ७७ ॥ यह निश्चयहै कि अन्य शौचादि नियम व अहिंसादि यम आपके कियेहुये इस बड़ेभारी नियमकी सोलहवीं मात्राके भी नहीं योग्य होते हैं ॥ ७८ ॥ इस

से तुम मेरे पांवों के समीपमें सदैव बसोगे और इससेही वहांही निश्चय से मोक्षसंबंधिनी सम्पत्तिको प्राप्त होजावोगे ॥ ७९ ॥ व जैगीषव्येश्वर नामक लिंग काशी में बहुतही दुर्लभहै व तीनवर्षतक जिसकी भलीभांति सेवाकर योगको पावे इसमें संशय नहीं है ॥ ८० ॥ व जैगीषव्यकी गुहामें प्राप्तहोकर योगाभ्यासमें तत्पर मनुष्य मेरी दयासे छह मास में वाञ्छितसिद्धिको पावे ॥ ८१ ॥ यह तुम्हारा थापाहुवा लिङ्ग बहुत यत्नपूर्वक भक्तोंसे पूजनीय है व उत्तम सिद्धि चाहियों से यह मनोहर गुफा देखने योग्य है ॥ ८२ ॥ यहां ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रमें जो तुम्हारा थापाहुवा सब सिद्धिदायक लिङ्गहै वह देखा व छुवा और भलीभांति पूजाहुवा पापसमूहों को नशावे है ॥ ८३ ॥ इस

ध्रुवम् ॥ ७९ ॥ जैगीषव्येश्वरंनामलिङ्गंकाश्यांसुदुर्लभम् ॥ त्रीणिवर्षाणिसंसेव्यलभेद्योगंनसंशयः ॥ ८० ॥ जैगीषव्यगुहां प्राप्ययोगाभ्यसनतत्परः ॥ षण्मासेनलभेत्सिद्धिंवाञ्छितांमदनुग्रहात् ॥ ८१ ॥ तवलिङ्गमिदंभक्तैःपूजनीयंप्रयत्नतः ॥ विलोक्याचगुहारम्यापरांसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ ८२ ॥ अत्रज्येष्ठेश्वरक्षेत्रेत्वल्लिङ्गंसर्वसिद्धिदम् ॥ नाशयेदघसङ्घानिदृष्टंस्पृष्टंसमर्चितम् ॥ ८३ ॥ अस्मिञ्ज्येष्ठेश्वरक्षेत्रेसम्भोज्यशिवयोगिनः ॥ कोटिभोज्यफलंसम्यगेकैकपरिसंख्यया ॥ ८४ ॥ जैगीषव्येश्वरंलिङ्गंगोपनीयंप्रयत्नतः ॥ कलौकलुषबुद्धीनांपुरतश्चविशेषतः ॥ ८५ ॥ करिष्याम्यत्रसान्निध्यमस्मिँल्लिङ्गेतपोधन ॥ योगसिद्धिप्रदानायसाधकेभ्यःसदैवहि ॥ ८६ ॥ ददेशृणुमहाभागजैगीषव्यापरंवरम् ॥ त्वयेदंयत्कृतंस्तोत्रंयोगसिद्धिकरंपरम् ॥ ८७ ॥ महापापौघशमनंमहापुण्यप्रवर्धनम् ॥ महाभीतिप्रशमनंमहाभक्तिविवर्धनम् ॥ ८८ ॥ एतत्स्तोत्रजपात्पुंसामसाध्यंनैवकिञ्चन ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनजपनीयंसुसाधकैः ॥ ८९ ॥ इतिदत्त्वावरंत

ज्येष्ठेश्वर क्षेत्रमें शिवयोगियों को भलीभांति खिलापिलाकर एक एककी संख्यासे करोड़ ब्रह्मभोजका फल अच्छेप्रकारसे होता है ॥ ८४ ॥ और कलियुग में पापबुद्धिवाले लोगोंके आगे जैगीषव्येश्वर लिंग विशेषताके साथ यत्नसे गोपनीय है ॥ ८५ ॥ हे तपोधन ! मैं साधक जनोंको योगसिद्धि देने के लिये यहां इस लिंगमें सदैवही सामीप्यको करूंगा ॥ ८६ ॥ हे जैगीषव्य ! मैं अन्य वरको देताहूं तुम सुनो कि तुम्हारा कियाहुवा यह स्तोत्र जोकि योगका सिद्धिकर्त्ता और बहुत उत्तमहै ॥ ८७ ॥ व महापापसमूहों का नाशक, महापुण्यो का बहुत बढ़ानेवाला व भारी भयभञ्जन और भक्तिका बड़ा वृद्धिकर्त्ताहै ॥ ८८ ॥ इस स्तोत्रके जपने से मनुष्योंको कुछ असाध्य नहीं

है उस कारण अच्छे साधक लोगों से बहुत यत्नपूर्वक जपने योग्य है ॥ ८९ ॥ इस भांति उन जैगीषव्यको वर देकर मुसकान समेत आंखोंवाले कामके वैरी महादेवजी ने वहां बटुरेहुये क्षेत्रवासी ब्राह्मणोंको देखा ॥ ९० ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि बुद्धिमान् मनुष्य बहुत यत्नसे इस अनूप आख्यान को सुनकर पापोंसे हीन होता है और उपद्रवों से नहीं पीड़ाजाताहै ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेज्येष्ठेशाख्यानंजैगीषव्यवरप्रदानंचनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

दो० । चौंसठयें अध्याय में ब्राह्मण वृन्द निहारि । काशिरहस्य बखानकरि वर दीन्ह्यो त्रिपुरारि ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे षण्मुख! ब्राह्मणों को देखकर शङ्करजी ने

स्मेरस्मरारिःस्मेरलोचनः ॥ ददर्शब्राह्मणांस्तत्रसमेतान्क्षेत्रवासिनः ॥ ९० ॥ स्कन्दउवाच ॥ निशम्याख्यानमतुलमेतत्प्राज्ञःप्रयत्नतः ॥ निष्पापोजायतेमर्त्योनोपसर्गैःप्रबाध्यते ॥ ९१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेज्येष्ठेशाख्यानंनामत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ दृष्ट्वाभूदेवताःशम्भुःकिमाचक्षेषडानन ॥ कानिकानिचलिङ्गानितत्रतान्यपिचक्ष्वमे ॥ १ ॥ ज्येष्ठस्थानेमहापुण्येदेवदेवस्यवल्लभे ॥ आश्चर्यंकिमभूत्तत्रतदाचक्ष्वषडानन ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृण्वगस्त्ययथापृच्छिभवतातद्ब्रवीम्यहम् ॥ मन्दराद्रिंयदादेवोगतवान्ब्रह्मगौरवात् ॥ ३ ॥ तदानिराश्रयाविप्राःक्षेत्रसंन्यासिनोनघाः ॥ उपाकृताश्चाविरतंमहाक्षेत्रप्रतिग्रहात् ॥ ४ ॥ खातंखातंचदण्डाग्रैर्भूमिंकन्दादिवृत्तयः ॥ चक्रुःपुष्करिणींरम्यांदण्डखाताभिधांमुने ॥ ५ ॥ तत्तीर्थंपरितःस्थाप्यमहालिङ्गान्यनेकशः ॥ महेशाराधनपरास्तपश्चक्रुःप्रयत्नतः ॥ ६ ॥ विभूतिधारिणो

क्या कहाथा और वहां कौन कौन लिंग है उनको भी तुम मुझसे कहो ॥ १ ॥ हे षडानन! महादेवजी के प्यारे महामनोज्ञ उस ज्येष्ठस्थान मे क्या आश्चर्य हुआ उसको तुम कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी! आपने जैसे पूंछा उसको मैं कहताहूं तुम सुनो कि जब ब्रह्माजीकी गुरुतासे महादेवजी मन्दराचलको चलेगये थे ॥ ३ ॥ तब निराश्रय (निराधार) हुये क्षेत्रसंन्यासी पापहीन ब्राह्मण बडे क्षेत्रके दानसे निरन्तर निवृत्त होगये ॥ ४ ॥ और हे मुने! कन्दमूल फूलफलादि वृत्तिवाले होकर उन्होंने दण्डों के अग्रभागों से भूमिको खनखनकर दण्डखात नामक रम्य पुष्करिणी को बनालिया ॥ ५ ॥ व उस तीर्थके सब ओर मे बहुतसे बडे लिंगोंको थाप

कर और महेश्वरकी पूजामें तत्पर होकर बहुत यत्नसे तपस्याको किया ॥ ६ ॥ और वे नित्यही विभूतिधारी नित्यही रुद्राक्षधारी नित्यही लिंगकी पूजा में स्नेहकारी और शतरुद्रिय के जपनेवाले हुये ॥ ७ ॥ हे मुने ! तपस्या से दुबले हुयेभी वे देवोंकेदेव श्रीमहादेवजीका फिर आना सुनकर अतिशय आनन्दसे सचिक्कण सुन्दर होगये ॥ ८ ॥ व बहुत तपस्या को करतेहुये पांचहजार ब्राह्मण महादेवजी के दर्शन के लिये दण्डखात नामक महातीर्थ से आये ॥ ९ ॥ व शिवजी की मुख्यसेवा में तत्पर पाशुपत व्रतवाले दशसहस्रसंख्यक ब्राह्मण मन्दाकिनी नामक तीर्थ से बटुरआये ॥ १० ॥ व तीनसौ अधिक दशहजार द्विज हंसतीर्थ से आकर प्राप्तहुये व ग्यारहसौ अधिक

नित्यंनित्यंरुद्राक्षधारिणः ॥ लिङ्गपूजारतानित्यंशतरुद्रियजापिनः ॥ ७ ॥ तेश्रुत्वादेवदेवस्यपुनरागमनंमुने ॥ तपःकृशा अतितरामासुरानन्दमेदुराः ॥ ८ ॥ द्विजाःपञ्चसहस्राणिचरन्तोविपुलंतपः ॥ दण्डखातान्महातीर्थादाजग्मुर्देवदर्शने ॥ ९ ॥ तीर्थान्मन्दाकिनीनाम्नोद्विजाःपाशुपतव्रताः ॥ शिवैकाराधनपराःसमेताअयुतोन्मिताः ॥ १० ॥ हंसतीर्थात्परिप्राप्ताअ युतंत्रिशतोत्तरम् ॥ शतन्दुर्वाससस्तीर्थादेकादशशताधिकम् ॥ ११ ॥ मत्स्योदर्याःपरापेतुःसहस्राणिषडेवहि ॥ कपाल मोचनात्सप्तशतान्यभ्यागताद्विजाः ॥ १२ ॥ ऋणमोचनतस्तीर्थात्सहस्रंद्विशताधिकम् ॥ वैतरण्याअपिमुनेद्विजाना मयुतार्धकम् ॥ १३ ॥ ततःपृथूदकात्कुण्डात्पृथुनापरिखानितात् ॥ अयासिषुर्द्विजानाञ्चशतान्येवत्रयोदश ॥ १४ ॥ त थैवाप्सरसःकुण्डान्मेनकाख्याच्छतद्वयम् ॥ उर्वशीकुण्डतःप्राप्तःसहस्रंद्विशताधिकम् ॥ १५ ॥ तथैरावतकुण्डाच्चब्रा ह्मणास्त्रिशतानिच ॥ गन्धर्वाप्सरसःसप्तशतानिद्विशतानिच ॥ १६ ॥ वृषेशतीर्थादाजग्मुर्नवतिःसशतत्रया ॥ यक्षिणी

एकसौ याने बारहसौ ब्राह्मण दुर्वासातीर्थ से आये ॥ ११ ॥ ऐसेही छहहजार मत्स्योदरीसे आये व सातसौ ब्राह्मण कपालमोचन से सामने आये ॥ १२ ॥ हे मुने ! दोसौ अधिक हजार याने बारहसौ ऋणमोचन तीर्थ से और पांचहजार ब्राह्मण वैतरणी से भी आये ॥ १३ ॥ तदनन्तर पृथुके खनाये हुये पृथूदक कुण्डसेभी तेरहसौ ब्राह्मण आये ॥ १४ ॥ वैसेही मेनका नामक अप्सरा के कुण्ड से दोसौ व उर्वशी के कुण्ड से दोसौ अधिक एक हजार ब्राह्मण प्राप्तहुये ॥ १५ ॥ तथैव ऐरावत कुण्ड से तीनसौ व गन्धर्वाप्सरा कुण्डसे सातसौ और दोसौ याने नवसौ ब्राह्मण आये ॥ १६ ॥ व तीनसौ समेत नब्बे ब्राह्मण वृषेशतीर्थ से आये और तीनसौ अधिक एकहजार यक्षिणी

कुण्डसे प्राप्तहुये ॥ १७ ॥ परन्तु लक्ष्मीतीर्थ से सोलहसौ व ऐसेही पिशाचमोचनतीर्थ से सातहजार द्विजोत्तम आये ॥ १८ ॥ पितृकुण्ड से सवासौ व ध्रुवतीर्थ से छहसौ और मानस नामक सरोवर से तीनसौ समेत दोसौ याने पांचसौ ब्राह्मण आये ॥ १९ ॥ व वासुकिकुण्ड से दशहजार वैसेही ज़ानकीकुण्डसे आठसौ ब्राह्मण देखनेकेलिये ॥ २० ॥ उत्तम आनन्द के दायक काशीनायक के समीप में प्राप्तहुये और वैसेही गौतमकुण्डसे नवसौ ब्राह्मण आये ॥ २१ ॥ व पार्वती के पति महादेवजी के देखने के लिये दुर्गतिसंहर्ता तीर्थसे ग्यारहसौ ब्राह्मण प्राप्तहुये ॥ २२ ॥ हे अगस्त्यजी ! असीसंगमसे लगाकर संगमेश्वरतक गंगा किनारे टिकेहुये ब्राह्मण वहां सब ओरसे प्राप्तहुये ॥ २३ ॥

कुण्डतःप्राप्तःसहस्रन्त्रिशतोत्तरम् ॥ १७ ॥ लक्ष्मीतीर्थात्परंजग्मुःषोडशैवशतानिच ॥ पिशाचमोचनात्सप्तसहस्राणिद्विजोत्तमाः ॥ १८ ॥ पितृकुण्डाच्छतंसाग्रन्ध्रुवतीर्थाच्छतानिषट् ॥ मानसाख्याच्चसरसोद्विशतीसशतत्रया ॥ १९ ॥ ब्राह्मणावासुकिह्रदात्सहस्राणिदशैवतु ॥ तथैवाष्टशतन्द्रष्टुंजानकीकुण्डतोद्विजाः ॥ २० ॥ काशीनाथमनुप्राप्तःपरमानन्ददायिनम् ॥ तथागौतमकुण्डाच्चशतानिनवचागताः ॥ २१ ॥ तीर्थाद्दुर्गतिसंहर्तुर्ब्राह्मणाःप्रतिपेदिरे ॥ एकादशशतान्येवद्रष्टुन्देवमुमापतिम् ॥२२॥ असीसम्भेदमारभ्यगङ्गातीरस्थिताद्विजाः ॥ आसङ्गमेश्वरात्तत्रपरिप्राप्ताघटोद्भव ॥२३॥ अष्टादशसहस्राणितथापञ्चशतान्यपि ॥ ब्राह्मणाःपञ्चपञ्चाशद्गङ्गातीरात्समागताः॥२४॥सार्द्रदूर्वाक्षतकरैःसपुष्पफलपाणिभिः ॥ सुगन्धमाल्यहस्तैश्चब्राह्मणैर्जयवादिभिः ॥ २५ ॥ स्तुतोमङ्गलसूक्तैश्चप्रणतश्चपुनःपुनः ॥ तेभ्योदत्ताभयःशम्भुःपप्रच्छकुशलम्मुदा ॥२६॥ ततस्तेब्राह्मणाःप्रोचुःप्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ क्षेत्रेनिवसतांनाथसदानःकुशलोदयः ॥२७॥

वैसेही अठारहहजार पांचसौ पचपनभी ब्राह्मण गंगाके तीरसे भलीभांतिआये॥ २४ ॥ और ओदीदूब समेत अक्षत हाथवाले व फूल समेत फल हाथवाले व सुगन्धसंयुत माला हाथवाले व जयजय बोलतेहुये ब्राह्मणोने ॥ २५ ॥ मंगलसूक्तो से शिवजीकी स्तुति किया और बारबार प्रणामकिया व उनके लिये अभयको दियेहुये शङ्करजीने आनन्दसे कुशलको पूंछा ॥ २६ ॥ तदनन्तर दोनोहाथो का सम्पुट बांधेहुये उन ब्राह्मणोने कहा कि हे नाथ ! क्षेत्रमें बसतेहुये हमलोगोंके कुशलका उदय सदैवहै॥ २७॥

और हम लोगोंने साक्षात् तुमको विशेष से नेत्रगोचर किया कि जिस स्वरूप को श्रुतियांभी परमार्थ से नहीं जानती हैं ॥ २८ ॥ जोकि तुम्हारे क्षेत्रसे विमुख हैं उनका सदैव अमंगल है और चौदहो लोकभी उनसे नित्यही विमुख हैं यह निश्चय है ॥ २९ ॥ हे सर्प्पांगद (सर्पोंके बजुल्लावाले)! जिनके हृदय में काशी सदैव बसती है उनके लिये संसार सर्प्प का विष कहीं नहीं प्रभुता करसक्ता है ॥ ३० ॥ व काशी ऐसा दो अक्षररूप मन्त्र गर्भरक्षा की मणिहै वह जिसके कण्ठमें सदैव टिके उसका अमंगल क्या या कहां से होवे ॥ ३१ ॥ व जो काशी ऐसे दो अक्षररूप अमृतको नित्यही पीता है वह बहुत बुढ़ाईवाली याने छःविकार समेत दशाको छोंड़कर मोक्षा-

विशेषतःकृतोऽस्माभिःसाक्षान्नयनगोचरः ॥ त्वंयत्स्वरूपंश्रुतयोनविदुःपरमार्थतः ॥ २८ ॥ सदैवाकुशलन्तेषांये त्वत्क्षेत्रपराङ्मुखाः ॥ चतुर्दशापिवैलोकास्तेषांनित्यम्पराङ्मुखाः ॥ २९ ॥ येषांहृदिसदैवास्तेकाशीत्वाशीविषाङ्गद ॥ संसाराशीविषविषन्नतेषांप्रभवेत्क्वचित् ॥ ३० ॥ गर्भरक्षामणिर्मन्त्रःकाशीवर्णद्वयात्मकः ॥ यस्यकण्ठेसदातिष्ठेत्तस्या कुशलताकुतः ॥ ३१ ॥ सुधांपिबतियोनित्यंकाशीवर्णद्वयात्मिकाम् ॥ सनैर्जरींदशांहित्वासुधैवपरिजायते ॥ ३२ ॥ श्रुतंकर्णामृतंयेनकाशीत्यक्षरयुग्मकम् ॥ नसमाकर्णयत्येवसपुनर्गर्भजाङ्कथाम् ॥ ३३ ॥ काशीरजोपियन्मूर्ध्निपतेदप्य निलाहतम् ॥ चन्द्रशेखरतन्मूर्धाभवेच्चन्द्रकलाङ्कितः ॥ ३४ ॥ प्रसङ्गतोपियन्नेत्रपथमानन्दकाननम् ॥ यातन्तेत्रनजायन्ते नेक्षेरन्पितृकाननम् ॥ ३५ ॥ गच्छतातिष्ठतावापिस्वपताजाग्रताथवा ॥ काशीत्येषमहामन्त्रोयेनजप्तःसनिर्भयः ॥ ३६ ॥ येनबीजाक्षरयुगङ्काशीतिहृदिधारितम् ॥ अबीजानिभवन्त्येवकर्मबीजानितस्यवै ॥ ३७ ॥ काशीकाशीतिकाशीतिजप

वस्थाही होजाता है ॥ ३२ ॥ व जिसने कानोंके अमृतके समान काशी ऐसे दो अक्षरों को सुना वह फिर गर्भवासकी कथाको नहीं सुनताहै ॥ ३३ ॥ हे चन्द्रभाल! बयार से बहाई हुईभी काशीकी धूरि जिसके मस्तक में परे उसका शिर चन्द्रमाकी कला से चिह्नित होजावे ॥ ३४ ॥ व प्रसंगसे भी आनन्दवन जिनके नेत्रमार्ग में प्राप्तहुवा हो याने जिन्होंने काशीपुरी को देखा है वे फिर इस लोकमें नहीं उपजते हैं और पितृकानन याने यमराजका वन नहीं देखै हैं ॥ ३५ ॥ चलते व टिकते व सोते अथवा जागते हुयेभी जिसने काशी ऐसा यह महामन्त्र जपा वह निडर है ॥ ३६ ॥ व जिसने काशी ऐसे दो बीज अक्षरों को हृदय में धारण किया उसके कर्मबीज निर्बीजही

होजाते हैं यह निश्चय है ॥ ३७ ॥ व अन्यत्र भी रहते हुये काशी काशी ऐसा काशी ऐसा जपते हुये जिस जनका मरण या भलीभांति टिकना हुवा उस सन्तके आगे मुक्ति प्रकाशती है ॥ ३८ ॥ हे शिव ! यह काशी मंगलकीमूर्ति है व आप मंगलकी मूर्ति हैं और गंगाजी मंगलकी मूर्ति हैं अन्यत्र कहीं मंगलत्रय नहीं है ॥ ३९ ॥ इसभांति क्षेत्रकी भक्तिसे बढ़ाहुवा ब्राह्मणों का वचन सुनकर हिमवान् कुमारीके कान्त भक्तभयहारी शिवजी बहुतही सन्तुष्ट हुये ॥ ४० ॥ और प्रसन्नमन होकर बोले कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठो ! तुम धन्यहो कि मेरे इस परमपावन क्षेत्रमें जिनकी ऐसी भक्ति है ॥ ४१ ॥ मैं जानताहूं कि तुमलोग इस क्षेत्रकी सेवासे शुद्ध सत्त्वमय व रजोगुण से हीन व

तोयस्यसंस्थितिः ॥ अन्यत्रापिसतस्तस्यपुरोमुक्तिःप्रकाशते ॥ ३८ ॥ क्षेममूर्त्तिरियङ्काशीक्षेममूर्त्तिर्भवान्भव ॥ क्षेममूर्त्तिस्त्रिपथगानान्यत्क्षेमत्रयंकचित् ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणानामितिवचःक्षेत्रभक्तिविबृंहितम् ॥ निशम्यगिरिजाकान्तस्तुतोषनितरांहरः ॥ ४० ॥ प्रोवाचचप्रसन्नात्माधन्यायूयंद्विजर्षभाः ॥ येषामिहेदृशीभक्तिर्ममक्षेत्रेतिपावने ॥ ४१ ॥ जाने सत्त्वमयाजाताःक्षेत्रस्यास्यनिषेवणात् ॥ नीरजस्कावितमसःसंसारार्णवपारगाः ॥ ४२ ॥ वाराणस्यास्तुयेभक्तास्तेभक्ताममनिश्चितम् ॥ जीवन्मुक्ताहितेनूनंमोक्षलक्ष्म्याकटाक्षिताः ॥ ४३ ॥ यैश्चकाशीस्थितोजन्तुरल्पकोपिविरोधितः ॥ तैर्वैविश्वम्भरासर्वामयासहविरोधिता ॥ ४४ ॥ वाराणस्याःस्तुतिमपियोनिशम्यानुमोदते ॥ अपिब्रह्माण्डमखिलंध्रुवन्तेनानुमोदितम् ॥ ४५ ॥ निवसन्तिहियेमर्त्याअस्मिन्नानन्दकानने ॥ ममान्तःकरणेतेवैनिवसेयुरकल्मषाः ॥ ४६ ॥ निव

तमोगुणसे हीन और संसारसागरके पारगामी होगयेहो ॥ ४२ ॥ और यह निश्चित है कि जे काशीके भक्त हैं वे मेरे भक्त हैं व निश्चय से जीवन्मुक्त हैं और मोक्षसम्पत्तिके कटाक्षवाले हैं याने उनमें मुक्तिसम्पत्ति का कटाक्ष होता है ॥ ४३ ॥ व यह निश्चय है कि जिनसे काशी में टिकाहुवा बहुत छोटाभी जन्तु विरोधयुक्त कियागया उनसे मुझसमेत सब वसुधा विरोधी गई है ॥ ४४ ॥ व जो काशीकी स्तुतिको भी सुनकर प्रसन्न होता है उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्डको भी अनुमोदित किया याने उससे सब कोई प्रसन्न होता है यह निश्चय है ॥ ४५ ॥ व जे पापहीन मनुष्य इस आनन्दवन में बसते हैं वेही मेरे अन्तःकरण में निवास करते हैं ॥ ४६ ॥ व जे मेरे क्षेत्रमें

बसते हैं और मेरी भक्तिको करते हैं व जे मेरे चिह्नों (विभूति त्रिपुण्ड्र रुद्राक्षादि) को धारतेहैं उनकोही मैं उपदेश देताहूं ॥४७॥ और जे मेरे क्षेत्रमें बसतेहैं मेरी भक्ति को नहीं करते हैं व मेरे चिह्नों के धारण करनेवाले नहीं हैं उनको मैं उपदेश नहीं देताहूं ॥ ४८ ॥ व मुक्तिकी पुरी काशी जिनके चित्तमें प्रकाश करती है वे मोक्षसम्बन्धिनी सम्पत्ति में घिरेहुये होकर मेरे आगे या सम्मुख शोभा पाते हैं ॥ ४९ ॥ और यह मोक्षलक्ष्मी काशीपुरी जिन स्वर्गसम्पत्तिचाहियों को नहीं रुचती है वे संसार सागर में परे हैं या पतित (सङ्करजातीय) हैं इस में संशय नहीं है ॥ ५० ॥ हे ब्राह्मणो! चार पुरुषार्थ याने धर्मादि चतुर्वर्ग काशी चाहियों के सामने दासके समान

सन्तिममक्षेत्रेममभक्तिंप्रकुर्वते ॥ ममलिङ्गधरायेतुतानेवोपदिशाम्यहम् ॥ ४७ ॥ निवसन्तिममक्षेत्रेममभक्तिंनकुर्वते ॥ ममलिङ्गधरायेनोनतानुपदिशाम्यहम् ॥ ४८ ॥ काशीनिर्वाणनगरीयेषांचित्तेप्रकाशते ॥ तेमत्पुरःप्रकाशन्तेनैःश्रेयस्याश्रियावृताः ॥ ४९ ॥ मोक्षलक्ष्मीरियंकाशीनयेभ्यःपरिरोचते ॥ स्वर्लक्ष्मींकाङ्क्षमाणेभ्यःपतितास्तेनसंशयः ॥५०॥ काशींसंकाङ्क्षमाणानांपुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ पुरःकिङ्करवत्तिष्ठेन्ममानुग्रहतोद्विजाः ॥ ५१ ॥ आनन्दकाननेह्यत्रज्वलद्दावानलोस्म्यहम् ॥ कर्मबीजानिजन्तूनांज्वालयेनप्ररोहये ॥५२॥ वस्तव्यंसततंकाश्यांयष्टव्योहंप्रयत्नतः ॥ जेतव्यौकलिकालौचरन्तव्यामुक्तिरङ्गना ॥५३॥ प्राप्यापिकाशींदुर्बुद्धिर्योनमांपरिसेवते ॥ तस्यहस्तगताप्याशुकैवल्यश्रीःप्रणश्यति ॥ ५४ ॥ धन्यामद्भक्तिलक्ष्माणोब्राह्मणाःकाशिवासिनः ॥ यूयंयच्चेतसोवृत्तेर्नदूरेहंनकाशिका ॥ ५५ ॥ दातव्योवोवरःकोत्रव्रियतांमेयथारुचि ॥ प्रेयांसोमेयतोयूयंक्षेत्रसंन्यासकारिणः ॥ ५६ ॥ इतिपीत्वामहेशानमुखक्षीराब्धिजां

मेरी दयासे टिकै है ॥ ५१ ॥ इस आनन्दवन में मैं ज्वलते हुये दावानल के समानहूं किन्तु जन्तुओं के कर्मबीजों को जलाताहूं फिर नहीं जमाताहूं ॥ ५२ ॥ इससे काशीमें निरन्तर बसनाचाहिये व अधिक यत्नसे मुझे पूजना चाहिये व कलि और कालको जीतना चाहिये व मुक्ति स्त्रीके साथ रमना चाहिये ॥ ५३ ॥ जो दुर्बुद्धि काशी को प्राप्त होकर भी मुझको नहीं सब ओरसे सेवता है उसकी हस्तगत भी मुक्तिलक्ष्मी शीघ्रही विनष्ट होजाती है ॥ ५४ ॥ हे काशीवासी, ब्राह्मणो! मेरी भक्ति और त्रिपुण्ड्रादि चिह्नवाले तुमलोग धन्यहो जिससे तुम्हारी चित्तवृत्ति से मैं दूरमें नहीं हूं व काशीपुरी भी दूरमें नहीं है ॥ ५५ ॥ इससे तुमलोगों को कौन वर यहां देनेयोग्य है

वह यथारुचि मुझसे स्वीकार कियाजावे जिससे क्षेत्रसंन्यास करनेवाले तुम मेरे परमप्यारेहो ॥ ५६ ॥ इस भांति महेश के मुखरूप क्षीरसागर से उपजे हुये वचन अमृतको पानकर बहुत तृप्तहुये सब ब्राह्मणों ने अत्यन्त उत्तम वरको अंगीकार किया ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणलोग बोले कि हे पार्वतीपते, महेश, सर्वज्ञ! हमारा यह वरहै कि, संसारतापहारिणी काशी आपसे कभी त्यागने योग्य नहीं है ॥ ५८ ॥ व यहां काशीमें ब्राह्मणोंके वचनसे मोक्षका विघ्नरूप किसीका शाप कभी भी न प्रभुताकरे ॥ ५९ ॥ और आपके दोनों पदकमलोंमें हमारी निर्द्वन्द्व भक्ति होवे व देहपात याने मरनेतक निरन्तर हमारा काशीवास होवे ॥ ६० ॥ हे ईश, अंधकध्वंसिन्! अन्य वरसे क्याहै

सुधाम् ॥ परितृप्ताद्विजाःसर्वेवव्रुर्वरमनुत्तमम् ॥ ५७ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ उमापतेमहेशानसर्वज्ञवरएषनः ॥ काशीकदापि नत्याज्याभवताभवतापहृत् ॥ ५८ ॥ वचनाद्ब्राह्मणानान्तुशापोमाप्रभवत्विह ॥ कदाचिदपिकेषाञ्चित्काश्यांमोक्षान्तरायकः ॥ ५९ ॥ तवपादाम्बुजद्वन्द्वेनिर्द्वन्द्वाभक्तिरस्तुनः ॥ आकलेवरपातञ्चकाशीवासोस्तुनोनिशम् ॥ ६० ॥ किमन्येनवरेणेशदेयएषवरोहिनः ॥ अवधेह्यन्धकध्वंसिन्वरमन्यंवृणीमहे ॥ ६१ ॥ तवप्रतिनिधीकृत्यास्माभिस्त्वद्भक्तिभावितैः ॥ प्रतिष्ठितेषुलिङ्गेषुसान्निध्यंभवतोऽस्त्विह ॥ ६२ ॥ श्रुत्वेतितेषांवाक्यानितथास्त्वितिपिनाकिना ॥ प्रोचेऽन्योपिवरोदत्तो ज्ञानंवश्चभविष्यति ॥ ६३ ॥ पुनःप्रोवाचदेवेशोनिशामयतभोद्विजाः ॥ हितंवःकथयाम्यत्रतदनुष्ठीयतांध्रुवम् ॥ ६४ ॥ सेव्योत्तरवहानित्यंलिङ्गमर्च्यंप्रयत्नतः ॥ दमोदानंदयानित्यंकर्तव्यंमुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ ६५ ॥ इदमेवरहस्यंचकथितंक्षे

यहही वर हमको देने योग्यहै व हमलोग अन्य भी वरको अंगीकार करते हैं उसको तुम जानो ॥ ६१ ॥ कि तुम्हारी भक्तिसे भावनावाले हमलोगोंने यहां तुम्हारा प्रतिनिधिकर जिन लिंगोंकी प्रतिष्ठा कियाहै उनमें आपकी समीपता होवे ॥ ६२ ॥ ऐसे उनके वचनोंको सुनकर पिनाकधन्वाधारी शिवजीने कहा कि वैसेहीहो और अन्य भी वरदिया कि तुम्हारे ज्ञान होवेगा ॥ ६३ ॥ व देवेश महेशजीने फिर कहा कि हे ब्राह्मणो! तुम सुनो मैं तुम्हारा हित कहताहूं वह यहां निश्चय से कियाजावे ॥ ६४ ॥ कि मुक्तिचाहियों से उत्तरवाहिनी गंगा नित्यही सेवने योग्यहैं व बहुत यत्नसे लिंग पूजनेयोग्यहै व दान दया और दम (बाहरकी इन्द्रियों को विषयों से रोंकना) करने

योग्यहै ॥ ६५ ॥ यहही रहस्य क्षेत्रवासियों के लिये कहागया है कि पराये हितवाली बुद्धि करना चाहिये और उद्वेग करनेवाला वचन नहीं बोलना चाहिये ॥ ६६ ॥ वे जिससे यहां उत्पन्नहुवा पुण्य पापरूप कर्म्म अक्षयहै इससे यहां जीतिचाहीको मनसे भी पाप न करना चाहिये ॥ ६७ ॥ अन्यत्र जो पाप कियागया वह काशी में विनशताहै और काशी में कियाहुवा पाप अन्तर्गेहमें विनष्ट होताहै ॥ ६८ ॥ व अन्तर्गेहमें कियाहुवा पाप पैशाच्य नरकके प्राप्त करनेवाला होताहै याने वह पाप उन पापियोंको रुद्रपिशाच बनाताहै और पिशाच नरक प्राप्ति याने अन्तर्गेहमें पाप करनेवालापुरुष जो काशी से बाहर चलाजाता है ॥ ६९ ॥ तो काशी में किया हुवा पापकर्म

त्रवासिनाम् ॥ मतिःपरहिताकार्यावाच्यंनोद्वेगकृद्वचः ॥ ६६ ॥ मनसापिनकर्तव्यमेनोत्रविजिगीषुणा ॥ अत्रत्यमक्षयं यस्मात्सुकृतंसुकृतेतरम् ॥ ६७ ॥ अन्यत्रयत्कृतंपापंतत्काश्यांपरिणश्यति ॥ वाराणस्यांकृतंपापमन्तर्गेहेप्रणश्यति ॥ ६८ ॥ अन्तर्गेहेकृतंपापंपैशाच्यनरकावहम् ॥ पिशाचनरकप्राप्तिर्गच्छत्येवबहिर्यदि ॥ ६९ ॥ नकल्पकोटिभिःकाश्यां कृतंकर्मप्रमृज्यते ॥ किन्तुरुद्रपिशाचत्वंजायतेऽत्रायुतत्रयम् ॥ ७० ॥ वाराणस्यांस्थितोयोवैपातकेषुरतःसदा ॥ योनिं प्राप्यापिपैशाचींवर्षाणामयुतत्रयम् ॥ ७१ ॥ पुनरत्रैवनिवसञ्ज्ञानंप्राप्स्यत्यनुत्तमम् ॥ तेनज्ञानेनसंप्रान्तेमोक्षमा प्स्यत्यनुत्तमम् ॥ ७२ ॥ दुष्कृतानिविधायेहबहिःपञ्चत्वमागताः ॥ तेषांगतिंप्रवक्ष्यामिशृणुतद्विजसत्तमाः ॥ ७३ ॥ यामाख्यामेगणाःसन्तिघोराविकृतमूर्तयः ॥ मूषायान्तेधमन्त्यादौक्षेत्रदुष्कृतकारिणः ॥ ७४ ॥ नयन्त्यनूपप्रायाञ्चत

करोड़ों कल्पों में नहीं शुद्ध होताहै किन्तु यहां तीसहजार वर्षतक रुद्रपिशाचता होती है ॥ ७० ॥ और यह निश्चयहै कि काशीमें टिकाहुवा जो सदैव पापों में रतहै वह तीसहजार वर्ष पिशाचों की योनिको प्राप्त होवेगा ॥ ७१ ॥ फिर यहांही बसताहुवा बहुत उत्तम ज्ञानको प्राप्तहोकर तदनन्तर उस ज्ञानसे भोगके अन्तमें अधिक उत्तम मोक्षको पावेगा ॥ ७२ ॥ हे द्विजसत्तमो! जे यहां पापोंकोकर बाहर मरणको प्राप्तहुये उनकी गतिको मैं कहूंगा तुमलोग सुनो ॥ ७३ ॥ कि जे यामनामक बड़े घोर विकटरूप मेरे गणहैं वे पहले तो क्षेत्र में पाप करनेवालों को मूषायंत्र में डालकर अग्नि में तपाते हैं (वैद्यक में तरे व ऊपर दो सरवाधरने व कपरौटीकर बन्द

करनेको मूषायंत्र कहते हैं) ॥ ७४ ॥ तदनन्तर वे उनको बहुत जलवाली व दुःखसे जानेवाली पूर्वदिशाको लेजाते हैं व वर्षाकालमें उन पापियों को महाजलमें गिराते हैं ॥ ७५ ॥ और वे पापीलोग पंखसमेत जोंक व जलसेहुये दंदशूक व दुःखसे निवारने योग्य मशों से रातोदिन डसेजाते हैं ॥ ७६ ॥ तदनन्तर वे हेमन्तऋतु में याम गणोंकरके पालाके पहार में प्राप्त कियेजाते हैं व भोजन वस्त्रों से हीनहुये वे रातोदिन क्लेशयुक्त कियेजाते हैं ॥ ७७ ॥ उसके बाद वे ग्रीष्मऋतुमें जल और वृक्षोंसे वर्जित मरुदेशमें तीव्र सूर्य्य किरणो से तपाये जाते हैं व बहुतही प्यासे होते हैं ॥ ७८ ॥ इस भांति उग्रगणों से सब ओर यातनाओं के द्वारा असंख्य समयतक क्लेशितहुये वे तद-

तःप्राचींदुरासदाम् ॥ वर्षाकालेदुराचारान्पातयन्तिमहाजले ॥ ७५ ॥ जलौकाभिःसपक्षाभिर्दन्दशूकैर्जलोद्भवैः ॥ दुर्निवारैश्चमशकैर्दश्यन्तेतेदिवानिशम् ॥ ७६ ॥ ततोयामैर्हिमर्तौतेनीयन्तेऽद्रौहिमालये ॥ अशनावरणैर्हीनाःक्लिश्यन्तेतेदिवानिशम् ॥ ७७ ॥ मरुस्थलेततोग्रीष्मेवारिवृक्षविवर्जिते ॥ दिवाकरकरैस्तीव्रैस्ताप्यन्तेतेपिपासिताः ॥ ७८ ॥ क्लेशितास्तेगणैरुग्रैर्यातनाभिःसमन्ततः ॥ इत्थङ्कालमसंख्यातमानीयन्तेततस्त्विह ॥ ७९ ॥ निवेदयन्तितेयामाःकालराजान्तिकेततः ॥ कालराजोपितान्दृष्ट्वाकर्मसंस्मार्यदुष्कृतम् ॥ ८० ॥ विवस्त्रान्क्षुत्तृषार्तांश्चलग्नपृष्ठोदरत्वचः ॥ अन्यैरुद्रपिशाचैश्चसहसंयोजयत्यपि ॥ ८१ ॥ ततोरुद्रपिशाचास्तेभैरवानुचराःसदा ॥ सहन्तेक्लममत्यर्थंक्षुत्तृष्णोग्रत्वसम्भवम् ॥ ८२ ॥ आहारंरुधिरोन्मिश्रंतेलभन्तेकदाचन ॥ एवंत्त्ययुतसंख्याकंकालंतत्रातिदुःखिताः ॥ ८३ ॥ श्मशानस्तम्भमभितोनीयन्तेकण्ठपाशिताः ॥ पिपासिताअपिनतेऽम्बुस्पर्शमपिचाप्नुयुः ॥ ८४ ॥ अथसंक्षीणपापास्तेकालभैरवदु

नन्तर फिर यहां लायेजाते हैं ॥ ७९ ॥ अनन्तर वे यामनाम गण उनको कालराजके निकट में निवेदित करते हैं व कालराज भी उनको देखकर पाप व दुष्टकर्मकी सुध कराकर ॥ ८० ॥ जे कि विवस्त्र व भूंख और प्यास से व्याकुलहैं व जिनके उदरका चर्म सिकुड़कर पीठमें लगाहै उनको अन्य रुद्रपिशाचो के साथ भी संयोग कराते हैं ॥ ८१ ॥ तदनन्तर वे रुद्रपिशाच सदैव भैरवके अनुचर होकर भूंख व प्यासकी उग्रतासे उपजेहुये कष्टको बहुतही सहते हैं ॥ ८२ ॥ इसभांति तीनहजार वर्ष संख्यक कालतक वहां बहुत दुःखितहुये वे कभी कभी रक्तसे मिश्रित भोजनको पाते हैं ॥ ८३ ॥ व कण्ठ मे फांसेहुये वे श्मशान खम्भके सब ओरसे फिराये जाते हैं और बहुत

प्यासे हुये भी वे पानी छूनेको नहीं पातेहैं उसके बाद कालभैरवके दर्शनसे भलीभांति क्षीणहुये पापोंवाले वे यहांही देहधारी होकर फिर मेरी आज्ञासे मुक्तहोतेहैं ॥ ८५॥ उस कारण यहां वचन मन और कर्म से भी पापकी कामना न करे क्योंकि बड़ा लाभ चाहतेहुये जनोंको शुद्ध गलीमें सदा टिकना चाहिये ॥ ८६ ॥ और काशीमें जहीं कहीं मराहुवा कोई भी पापी नरकको नहीं जाताहै किन्तु मेरी दयाको प्राप्त होकर उत्तम मोक्षकोही प्राप्तहोताहै ॥ ८७ ॥ जोकि अच्छे व्रतवाला मेराभक्त यहां भोजन त्यागका नियम करताहै उसका करोड़ों सौ कल्पों में भी संसार में फिर लौटना नहीं होताहै याने वह मुक्त होजाताहै ॥ ८८॥ इसलिये बहुत पातकवाले इस मनुष्य भावको अनित्य

र्शनात ॥ इहैवदेहिनोभूत्वामुच्यन्तेतेममाज्ञया ॥ ८५ ॥ तस्मान्नकामयेतात्रवाङ्मनःकर्मणाप्यघम् ॥ शुचौपथिसदा स्थेयंमहालाभमभीप्सुभिः ॥ ८६ ॥ नाविमुक्तेमृतःकश्चिन्नरकंयातिकिल्बिषी ॥ ममानुग्रहमासाद्यगच्छत्येवपराङ्गतिम् ॥ ८७ ॥ अनाशनंयःकुरुतेमद्भक्तइहसुव्रतः ॥ नतस्यपुनरावृत्तिःकल्पकोटिशतैरपि ॥ ८८ ॥ अशाश्वतमिदंज्ञात्वामानुष्यंबहुकिल्बिषम् ॥ अविमुक्तंसदासेव्यंसंसारभयमोचकम् ॥ ८९ ॥ नान्यत्पश्यामिजन्तूनांमुक्त्वावाराणसींपुरीम् ॥ सर्वपापप्रशमनींप्रायश्चित्तंकलौयुगे ॥ ९० ॥ जन्मान्तरसहस्रेषुयत्पापंसमुपार्जितम् ॥ अविमुक्तंप्रविष्टस्य तत्सर्वंव्रजतिक्षयम् ॥ ९१ ॥ जन्मान्तरसहस्रेषुयुञ्जन्योगीयदाप्नुयात् ॥ तदिहैवपरोमोक्षोमरणादधिगम्यते ॥ ९२ ॥ तिर्यग्योनिगताःसत्त्वायेविमुक्तकृतालयाः ॥ कालेननिधनंप्राप्तास्तेपियान्तिपराङ्गतिम् ॥ ९३ ॥ अविमुक्तंनसेवन्तेयेमू

जानकर संसार डर की छुड़ानेवाली काशीपुरी सदैव सेवने योग्यहै ॥ ८९ ॥ व कलियुगमें सब पापनाशिका काशिकापुरीको छोड़कर जन्तुओंका अन्य प्रायश्चित्त नहीं देखताहूं ॥ ९० ॥ हज़ारों जन्मों में जो पाप इकट्ठा किया गयाहै वह समस्त पाप काशीमें प्रविष्टहुये जनका विनष्ट होजाताहै ॥९१॥ जोकि हजारों जन्मान्तरों में भली भांति कमायागयाहै वह काशी में पैठते हुये का सबपाप नाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ९० ॥ और हजारोंजन्मान्तरों में योगको जोड़ताहुवा योगी जिसको प्राप्तहोवे वहही उत्तम मोक्ष यहां मरनेमात्रसेही मिलताहै ॥९२ ॥ तिर्य्यग्योनि में प्राप्त भी जे पशुआदि प्राणी काशीमें स्थान कियेहैं वे भी कालसे मरणको प्राप्तहोकर उत्तम गतिको जाते हैं ॥९३॥

व जे अज्ञानसे घिरेहुये मूढ़ काशीको नहीं सेवते हैं वे विष्ठा रेत और मूत्रके कुण्डोंके बीचमें बार बार बसतेहैं ॥ ९४ ॥ और जो सुबुद्धिमान् मनुष्य काशीको प्राप्तहोकर लिंग की प्रतिष्ठाकरे उसका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी कभी फिर जन्म नहीं होता है ॥ ९५ ॥ यह निश्चयहै कि ग्रह नक्षत्र और ताराओंका भी गिरजाना कालसे होजाताहै परन्तु काशीमें मरेहुये जनोंका पतन नहींहै ॥ ९६ ॥ जोकि मनुष्य ब्रह्महत्याकोकर पीछेसे संयमसमेत मनवाला होकर काशीमें प्राणोंको छोड़ताहै वह संसारसे भी मुक्त होजाताहै इसमें सन्देह नहींहै ॥ ९७ ॥ हे ब्राह्मणो ! जेकि मेरी भक्तिमें सावधान पतिव्रता स्त्रियां काशी में मरीहैं वे उत्तम मोक्षको प्राप्त होतीहैं ॥ ९८ ॥ हे द्विजोत्तमो ! यहां मैं आपही

ढास्तमसावृताः ॥ विएमूत्ररेतसांमध्येतेवसन्तिपुनःपुनः ॥ ९४ ॥ अविमुक्तंसमासाद्ययोलिङ्गंस्थापयेत्सुधीः ॥ कल्पकोटिशतैर्वापिनास्तितस्यपुनर्भवः ॥ ९५ ॥ ग्रहनक्षत्रताराणांकालेनपतनंध्रुवम् ॥ अविमुक्तेमृतानान्तुपतनन्नैवविद्यते ॥ ९६ ॥ ब्रह्महत्यान्नरःकृत्वापश्चात्संयतमानसः ॥ प्राणांस्त्यजतियःकाश्यांसमुक्तोनात्रसंशयः ॥ ९७ ॥ स्त्रियःपतिव्रतायाश्चममभक्तिसमाहिताः ॥ अविमुक्तेमृताविप्रायान्तिताःपरमाङ्गतिम् ॥ ९८ ॥ अत्रोत्क्रमणकालेहंस्वयमेवद्विजोत्तमाः ॥ दिशामितारकंब्रह्मदेहीस्याद्येनतन्मयः ॥ ९९ ॥ मन्मनाममभक्तश्चमयिसर्वार्पितक्रियः ॥ यथामोक्षमिहाप्नोतिनतथान्यत्रकुत्रचित् ॥ १०० ॥ मरणंनिश्चितंज्ञात्वागतिंचासुखरूपिणीम् ॥ चलमागन्तुकंसर्वंततःकाशींसमाश्रयेत् ॥ १ ॥ काशींसमाश्रितायैस्तुमनोवाक्कायकर्मभिः ॥ तानत्रनिर्मलधियोनिर्वाणश्रीःसमाश्रयेत् ॥ २ ॥ काशीस्थितैकमपियःप्रीणयेन्न्यायजैर्धनैः ॥ तेनत्रैलोक्यमखिलंप्रीणितन्तुमयासह ॥ ३ ॥ यःप्रीणयातिपुण्यात्मानिर्वाणनगरीनर

मरण समयमें तारकब्रह्म (ॐकार या राम मंत्र) का उपदेश करताहूं जिससे वह देहधारी तन्मय याने उस ब्रह्ममय होजाताहै ॥ ९९ ॥ मुझमें मन लगाये व मुझमें सब कर्मोंको समर्पे हुवा मेराभक्त जैसे यहां मोक्षको प्राप्तहोताहै वैसे अन्यत्र कहीं भी नहीं है ॥१००॥ उससे मरणको निश्चित व स्वर्गादिगतिको दुःखरूपिणी और जगत्में हाथी घोड़ा स्त्री पुत्र माला चन्दन आदि सब आगन्तुक (आनेवाले) फलको चञ्चल जानकर काशीपुरीका भलीभांति आश्रयकरे (सेवे) ॥१॥ क्योंकि जिनने मन वचन तन और कर्मों से काशीकी सेवा किया उन विमल बुद्धियोंको यहां मोक्षलक्ष्मी भलीभांति सबओरसे सेवतीहै ॥ २ ॥ और जोकि न्यायम ार्गसे उपजेहुये धनों से एकभी काशीवासी

को तृप्त करताहै उससे मुझसमेत सम्पूर्ण त्रैलोक्य तृप्त होजाताहै ॥ ३ ॥ हे ब्राह्मणो ! जो पुण्यात्मा काशीवासी मनुष्यको तृप्तकरता है उसको मैं चार पुरुषार्थों से स्थिति (बसने)के लिये नित्यही तृप्तकरताहूं ॥ ४ ॥ देखोकि काशीको धर्मसे पालताहुवा राजर्षि दिवोदास भी सदेह मेरेलोकको प्राप्तहुवा जिससे फिर संसारमें आना नहीं है ॥ ५ ॥ योगज्ञान तथा मुक्ति यहां एकही जन्म में होती है इससे काशीको प्राप्तहोकर अन्य तपोवनको मत जावे ॥ ६ ॥ बरन् मोक्षको बहुत दुर्लभ और संसारको भारी भयानक जानकर यहां पत्थर से दोनों पांवोंको तोड़ फोड़कर मृत्युकाल को परखे ॥ ७ ॥ और जब कुबुद्धिजन काशीका परित्यागकर कहीं जावेंगे तब भूत लोग आपुस में ताड़ी

म् ॥ पुमर्थैनस्थितेर्नित्यंब्राह्मणाःप्रीणयामितम् ॥ ४ ॥ दिवोदासोपिराजर्षिःकाशींधर्मेणपालयन् ॥ सदेहोमत्पदंप्राप्तो यतोनपुनरागतिः ॥ ५ ॥ अत्रयोगस्तथाज्ञानंमुक्तिरेकेनजन्मना ॥ अतोविमुक्तमासाद्यनान्यद्गच्छेत्तपोवनम् ॥ ६ ॥ मोक्षंसुदुर्लभंज्ञात्वासंसारंचातिभीषणम् ॥ अश्मनाचरणौहत्वाकालमत्रप्रतीक्षयेत् ॥ ७ ॥ अविमुक्तंपरित्यज्ययदा यास्यन्तिदुर्धियः ॥ हसिष्यन्तितदाभूतान्यन्योन्यकरताडनैः ॥ ८ ॥ प्राप्यवाराणसींपुण्यांसिद्धिक्षेत्रमनुत्तमम् ॥ परिनिष्क्रान्तुमन्यत्रकस्यजन्तोर्मतिर्भवेत् ॥ ९ ॥ महादानेनचान्यत्रयत्फलंलभ्यतेनरैः ॥ अविमुक्तेतुकाकिण्यान्द त्वायान्तदवाप्यते ॥ १० ॥ एकंसमर्चयेल्लिङ्गंतपस्तप्येतचापरः ॥ तयोर्मध्येतुसश्रेष्ठोयोलिङ्गंपूजयेदिह ॥ ११ ॥ तीर्था न्तरेगवाङ्कोटिंविधिवद्यःप्रयच्छति ॥ एकाहंयोवसेत्काश्याङ्काशीवासीतयोर्वरः ॥ १२ ॥ अन्यत्रब्राह्मणानान्तुकोटिंस म्भोज्ययत्फलम् ॥ वाराणस्यान्तुचैकेनभोजितेनतदाप्यते ॥ १३ ॥ सन्निहत्यांकुरुक्षेत्रेराहुग्रस्तेदिवाकरे ॥ तुलापुरु

बजाने से हसेंगे ॥ ८ ॥ इसलिये महामनोज्ञ या पुण्यरूप अधिक उत्तम सिद्धिक्षेत्र काशीपुरीको प्राप्तहोकर अन्यत्र निकलजाने के लिये किस प्राणीकी मति (बुद्धि) होवे ॥ ९ ॥ और अन्यत्र बड़े दान देनेसे मनुष्योंको जो फल मिलताहै वह काशी में एक या बीस कौड़ीमात्र देतेही प्राप्त कियाजाताहै ॥ १० ॥ व एकजन यहां एक शिवलिंगकी पूजाकरे और अन्य कोई तपस्याको तपे परन्तु उन दोनों में से जो लिंगको पूजे वहही श्रेष्ठहै ॥ ११ ॥ जोकि अन्य तीर्थों में करोड़ों गौओंको विधानके समान देवे व जो काशी में एक दिन बसे उन दोनों में से काशीवासी श्रेष्ठहै ॥ १२ ॥ व अन्यत्र करोड़ों ब्राह्मणों को भलीभांति खिला पिलाकर जो फलहै वह काशी में भोजन

करायेहुये एकसेही प्राप्त कियाजाताहै ॥ १३ ॥ व राहुसे ग्रसेहुये सूर्य्यके होतेही याने सूर्य्य ग्रहण समय कुरुक्षेत्रमें रामकुण्डके समीप तुला पुरुष दानके समान काशीकी भिक्षा होवेहै ॥ १४ ॥ क्योंकि लिंगरूपधारी मेरा अनन्त उत्तम तेज पाताल पर्य्यन्त व सत्यलोकादिकों को लांघकर यहांपर टिकाहै ॥ १५ ॥ जोकि पृथिवीके अन्तमें भी मेरे अविमुक्त लिंगको सुमिरतेहैं वे बडे पापों से छूटजाते हैं ऐसा निश्चय कियाहुवा है ॥ १६ ॥ व इसक्षेत्रमें मैं जिससे देखा छुवा और पूजागयाहूं वह तारकज्ञान को भलीभांति प्राप्तहोकर फिर संसारमे नहीं उत्पन्न होताहै ॥ १७ ॥ और जो यहां मेरी भलीभांति पूजाकर अन्यत्र कहीं मरताहै वह जन्मान्तरमें भी मुझको प्राप्तहोकर मुक्त

षदानेनकाशीभिक्षासमाभवेत् ॥ १४ ॥ ममेहपरमंज्योतिरापातालाद्व्यवस्थितम् ॥ अतीत्यसमलोकादीननन्तंलिङ्गरूपधृक् ॥ १५ ॥ पृथिव्यन्तेपियेलिङ्गमविमुक्तंस्मरन्तिमे ॥ कलुषैस्तेविमुच्यन्तेमहद्भिरितिनिश्चितम् ॥ १६ ॥ अस्मिन्क्षेत्रेतुयेनाहंदृष्टःस्पृष्टःसमर्चितः ॥ संप्राप्यतारकंज्ञानन्नसभूयोभिजायते ॥१७॥ योमामिहसमभ्यर्च्यम्रियतेन्यत्रकुत्रचित् ॥ जन्मान्तरेपिमाम्प्राप्यसविमुक्तोभविष्यति ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वाक्षेत्रमाहात्म्यन्द्विजानामग्रतोहरः ॥ पश्यतामेवतेषान्तुतत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥ १९ ॥ तेपिसाक्षाद्विरूपाक्षंप्रत्यक्षीकृत्यवाडवाः ॥ प्रहृष्टमनसोऽत्यन्तंप्रययुःस्वंस्वमाश्रयम् ॥ २० ॥ शम्भोर्वाक्यंविनिश्चित्यसर्वज्ञस्यकृपानिधेः ॥ त्यक्त्वाकार्यान्तरंविप्रालिङ्गान्येवसमर्चिषुः ॥ २१ ॥ स्कन्द उवाच ॥ पठित्वापाठयित्वाचरहस्याख्यानमुत्तमम् ॥ श्रद्धालुःपातकैर्मुक्तःशिवलोकेमहीयते ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेक्षेत्ररहस्यकथनन्नामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

होवेगा ॥ १८ ॥ इसभांति ब्राह्मणोंके आगे क्षेत्रका माहात्म्य कहकर संसाररोगहर महादेवजी उनही सबोंके देखतेही वहां अन्तर्धानहुये ॥ १९ ॥ और वे ब्राह्मण भी साक्षात् शिवजीको प्रत्यक्षकर याने देखकर अत्यन्त आनन्दित मन होकर अपने अपने आश्रमको गये॥२०॥ व वे विप्र, कृपानिधान सर्वज्ञ शंकरजी के वचनको विशेष से निश्चयकर और अन्य कार्य्योंको छोड़कर लिंगोंकोही भलीभांति पूजतेभये ॥ २१ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, इस उत्तम रहस्यरूप आख्यानको पढ़कर और पढ़ाकर सब पापों से छूटाहुवा श्रद्धावान् नर शिवलोकमें पूजाजाता है याने आदर पाताहै ॥ २२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ❀ ॥

दो० ॥ पैंसठयें अध्याय में पराशरेश्वरआदि । लिंगों की महिमा महत जिरासे मिलैं अनादि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भज ! ज्येष्ठेश्वरके सब ओर में जे मुनियों के पांचहजार लिंगहैं वे बहुतही सिद्धिदायक हैं ॥ १ ॥ ज्येष्ठेश्वर से उत्तर में बड़ा पूजनीय पराशरेश्वर लिंगहै उसके दर्शनमात्र से विमलज्ञान मिलता है ॥ २ ॥ व वहांहीं सिद्धि देनेवाला माण्डव्येश्वरनामक लिंगहै उसके दर्शनसे मनुष्य दुर्बुद्धि को कभी न प्राप्त होवेहै ॥ ३ ॥ व वहांही सदा शुभ देनेवाला शंकरेशनामक लिंगहै और वहां भक्तो के सब सिद्धिदाता भृगुनारायणहैं ॥ ४ ॥ व वहां बहुत सिद्धिदायक जावालीश्वरनामक लिंगहै उसके भलीभांति दर्शन से प्राणी दुर्गतिको कभी नहीं

स्कन्दउवाच ॥ ज्येष्ठेश्वरस्यपरितोयानिलिङ्गानिकुम्भज ॥ तानिपञ्चसहस्राणिमुनीनांसिद्धिदान्यलम् ॥ १ ॥ पराशरेश्वरंलिङ्गंज्येष्ठेशादुत्तरेमहत् ॥ तस्यदर्शनमात्रेणनिर्मलंज्ञानमाप्यते ॥ २ ॥ तत्रैवसिद्धिदंलिङ्गंमाण्डव्येश्वरसंज्ञितम् ॥ नतस्यदर्शनाज्जातुदुर्बुद्धिंप्राप्नुयान्नरः ॥ ३ ॥ लिङ्गञ्चशङ्करेशाख्यंतत्रैवशुभदंसदा ॥ भृगुनारायणस्तत्रभक्तानांसर्वसिद्धिदः ॥ ४ ॥ जाबालीश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गंतत्रातिसिद्धिदम् ॥ तस्यसन्दर्शनाज्जातुनजन्तुर्दुर्गतिंव्रजेत् ॥ ५ ॥ सुमन्तुमुनिनाश्रेष्ठस्तत्रादित्यःप्रतिष्ठितः॥ तस्यसंदर्शनादेवकुष्ठव्याधिःप्रशाम्यति ॥ ६ ॥ भैरवीभीषणानामतत्रभीषणरूपिणी ॥ क्षेत्रस्यभीषणंसर्वंनाशयेद्भावतोर्चिता ॥ ७ ॥ तत्रोपजङ्घनेर्लिङ्गङ्कर्मबन्धविमोक्षणम् ॥ नृभिःसंसेवितम्भक्त्याषण्मासात्सिद्धिदम्परम् ॥ ८ ॥ भारद्वाजेश्वरंलिङ्गंलिङ्गंमाद्रीश्वरंवरम् ॥ एकत्रसंस्थितेह्येतुद्रष्टव्येसुकृतात्मना ॥ ९ ॥ अरुणिस्थापितंलिङ्गंतत्रैवकलशोद्भव ॥ तस्यलिङ्गस्यसेवातःसर्वामृद्धिमवाप्नुयात् ॥ १० ॥ लिङ्गंवाजसने

जावेहै ॥ ५ ॥ व वहां सुमन्तुमुनि से थापेहुये आदित्य (सूर्य्य) हैं उनके दर्शनसेही कुष्ठरोग प्रशान्त होजाता है ॥ ६ ॥ व वहां भयानकरूपिणी भीषणानाम भैरवीजी भक्तिसे पूजित होकर क्षेत्रके सब भीषणको नष्ट करदेतीहै ॥ ७ ॥ और वहां कर्मबन्धन से छुड़ानेवाला जो उपजंघनिका उत्तम लिंगहै वह भक्तिसमेत मनुष्यों से भली-भांति सेवितहुवा छःमासमें सिद्धिदाता होजाताहै ॥ ८ ॥ और भारद्वाजेश्वर लिंग व श्रेष्ठ माद्रीश्वर लिंग ये दोनों एकत्र टिकेहुये लिंग पुण्यात्मा पुरुष से देखने योग्य हैं ॥ ९ ॥ हे कलशोद्भव ! वहांहीं अरुणि से थापाहुवा लिंगहै उस लिंगकी सेवासे सब ऋद्धिको प्राप्त होवे है ॥ १० ॥ व वहां बहुत मनोहर वाजसनेयनामक लिंगहै

उसके संदर्शनसेही लोगोंको वाजपेय यज्ञका फल होवे है ॥ ११ ॥ व कण्वेश्वर शुभ लिंग व कात्यायनेश्वर लिंग व वामदेवेश्वरलिंग और औतथ्येश्वर भी ॥ १२ ॥ व हारीतेश्वरनामकलिंग व गालवेश्वर व कुम्भिका थापाहुवालिंग तथा महापुण्य कौसुमेश्वर ॥ १३ ॥ व अग्निवर्णेश्वर व नैध्रुवेश्वर व वत्सेश्वर व पर्णादेश्वर महालिंग ॥ १४ ॥ व सक्तुप्रस्थेश्वरलिंग वैसेही कणादेश्वर और अन्य भी माण्डूकायनि का थापाहुवा महालिंग वहांहै ॥ १५ ॥ व बाभ्रवेयेश्वरलिंग तथा शिलावृत्तीश्वर व च्यवनेश्वरलिंग व शालंकायनकेश्वर ॥ १६ ॥ व कलिंदमेश्वरलिंग व अक्रोधनेश्वरलिंग व कपोतवृत्तीश्वरलिंग व कंकेश्वर व कुन्तलेश्वर ॥ १७ ॥ व कण्ठेश्वर व कहोलेश्वर व तुम्बुरु से पू-

याख्यन्तत्रास्त्यतिमनोहरम् ॥ तस्यसन्दर्शनात्पुंसांवाजपेयफलम्भवेत् ॥ ११ ॥ कण्वेश्वरंशुभंलिङ्गंलिङ्गङ्कात्यायनेश्वरम् ॥ वामदेवेश्वरंलिङ्गमौतथ्येश्वरमेवच ॥ १२ ॥ हारीतेश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गंवैगालवेश्वरम् ॥ कुम्भेर्लिङ्गंमहापुण्यन्तथावैकौसुमेश्वरम् ॥ १३ ॥ अग्निवर्णेश्वरञ्चैवनैध्रुवेश्वरमेवच ॥ वत्सेश्वरम्महालिङ्गंपर्णादेश्वरमेवच ॥ १४ ॥ सक्तुप्रस्थेश्वरंलिङ्गङ्कणादेशन्तथैवच ॥ अन्यत्तत्रमहालिङ्गंमाण्डूकायनिरूपितम् ॥ १५ ॥ बाभ्रवेयेश्वरंलिङ्गंशिलावृत्तीश्वरंतथा ॥ च्यवनेश्वरलिङ्गञ्चशालङ्कायनकेश्वर ॥ १६ ॥ कलिन्दमेश्वरंलिङ्गंलिङ्गमक्रोधनेश्वरम् ॥ लिङ्गङ्कपोतवृत्तीशङ्कङ्केशंकुन्तलेश्वरम् ॥ १७ ॥ कठेश्वरङ्कहोलेशंलिङ्गंतुम्बुरुपूजितम् ॥ मतङ्गेशम्मरुत्तेशम्मगधेयेश्वरंतथा ॥ १८ ॥ जातूकर्णेश्वरंलिङ्गंजम्बुकेश्वरमेवच ॥ जारुधीशञ्जलेशञ्चजालमेशञ्जालकेश्वरम् ॥ १९ ॥ एवमादीनिलिङ्गानिअयुतार्धानिकुम्भज ॥ एतेषांशुभलिङ्गानांज्येष्ठस्थानेतिपावने ॥ २० ॥ स्मरणाद्दर्शनात्स्पर्शादर्चनान्नमनात्स्तुतेः ॥ नजातुजायतेजन्तोःकलुषस्यसमुद्भवः ॥ २१ ॥ स्कन्दउवाच ॥ एकदातत्रयद्वृत्तंज्येष्ठस्थानेमहामुने ॥ तदहन्तेप्रवक्ष्यामि

जितलिंग व मतंगेश व मरुत्तेश तथा मगधेयेश्वर ॥ १८ ॥ व जातूकर्णेश्वरलिंग व जम्बुकेश्वर व जारुधीश्वर व जलेश्वर व जालमेश्वर और जालकेश्वर ॥ १९ ॥ हे कुम्भज ! इत्यादि पांचहजारलिंग परमपावन ज्येष्ठ स्थानमें हैं इन शुभ लिंगों के ॥ २० ॥ सुमिरने देखने छूने पूजने नमस्कार करने और स्तुति से प्राणी के पापकी उत्पत्ति कभी नहीं होतीहै ॥ २१ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि,-हे महामुने ! एक समय उस ज्येष्ठ स्थान में जो पाप नाशनेवाला हालहुवा उसको मैं तुमसे कहूंगा तुम

सुनो २२ ॥ कि उस ज्येष्ठ स्थानमें अपनी इच्छा से विहरतेहुये महेशजीकी शक्ति पार्वतीजी कौतुकसे गेंदका खेल खेलतीथीं ॥ २३ ॥ जोकि ऊंचे व नीचे जातेहुये अंगों की लघुताको सब ओरसे पसारतीहुई निःश्वासके सुगन्ध से आनन्दितहुये भौंरों से आकुलित आंखोंवाली थीं ॥ २४ ॥ व जिन्हने नीचे गिरतीहुई बारोंकी पाटी से छूटी अच्छी फूलोंकी मालाओं से भूमिको ढांप (छाय) दियाहै व जो पसीजेहुये कपोलों से विरचित पत्रपंक्तिके द्वारा चूतेहुये जलके बिन्दुओं से देदीप्यमान हैं ॥ २५ ॥ व चलायमान चोली वस्त्रके छिद्रों में निकलीहुई अंगोंकी प्रभाओं से घिरीहै व ऊंचेको जातेहुये गेंदका जो नीचे गिरना है उससे लाले हाथ कमलवाली हैं ॥ २६ ॥ व

शृणुष्वाघविनाशनम् ॥ २२ ॥ स्वैरंविहरतस्तत्रज्येष्ठस्थानेमहेशितुः ॥ कौतुकेनैवचिक्रीडशिवाकन्दुकलीलया ॥ २३ ॥ उदञ्चन्यञ्चदङ्गानांलाघवंपरितन्वती ॥ निःश्वासामोदमुदितभ्रमराकुलितेक्षणा ॥ २४ ॥ भ्रश्यद्धम्मिल्लसन्माल्यस्थपुटीकृतभूमिका ॥ स्विद्यत्कपोलपत्रालीस्रवदम्बुकणोज्ज्वला ॥ २५ ॥ स्फुटच्चोलांशुकपथनिर्यदङ्गप्रभावृता ॥ उल्लसत्कन्दुकास्फालातिशोणितकराम्बुजा ॥ २६ ॥ कन्दुकानुगसद्दृष्टिनर्तितभ्रूलताञ्चला ॥ मृडानीकिलखेलन्तीददृशेजगदम्बिका ॥ २७ ॥ अन्तरिक्षचराभ्याञ्चदितिजाभ्यांमनोहरा ॥ कटाक्षिताभ्यामिववैसमुपस्थितमृत्युना ॥ २८ ॥ विदलोत्पलसंज्ञाभ्यांदृप्ताभ्यांवरतोविधेः ॥ तृणीकृतत्रिजगतीपुरुषाभ्यांस्वदोर्बलात् ॥ २९ ॥ देवींपरिजिहीर्षूतौविषमेषुप्रपीडितौ ॥ दिवोवतेरतुःक्षिप्रंमायांस्वीकृत्यशाम्बरीम् ॥ ३० ॥ धृत्वापारषदींमूर्त्तिमायातावम्बिकान्तिकम् ॥ तावत्यन्तंसुदु

जिन्हने गेंदके पीछे जातीहुई अच्छी दृष्टिसे भौंह लताके प्रांत (कोर) को नचाया है वह खेलतीहुई सुखदायिनी जगदम्बिकाजी दैत्यों से प्रसिद्ध देखीगई ॥ २७ ॥ जोकि पार्वतीजी मनोहर मूर्त्तिवाली हैं और वे दैत्य अन्तरिक्ष में विचरनेवाले व समीप में भलीभांति प्राप्तहुई मृत्यु से कटाक्षित (देखेहुये) के समान हैं ॥ २८ ॥ व विदल और उत्पल नामवाले हैं व ब्रह्माजीके वरसे गर्वित हैं व अपनी बाहों के बलसे त्रिलोकके पुरुषों को तृणके समान कियेहुये हैं ॥ २९ ॥ और काम से पीड़ित होकर देवीजी को हरना चाहते हुये वे शाबरी माया को अंगीकारकर द्युलोक से शीघ्रही उतरे ॥ ३० ॥ व पार्षदका रूपधर अंबिकाजीके समीप में आये परन्तु अत्यन्तदुरा-

चारी बहुत चंचल चित्तवाले वे ॥ ३१ ॥ आंखोंसे हुई चंचलतासे सर्वज्ञ शिवजीसे जानेगये तदनंतर दुर्गवैरी विनाशिनी दुर्गाजी महादेवजीके कटाक्षसे देखीगईं ॥३२॥ और उसके बाद आंखों की संज्ञाको विशेषसे जानकर (समझकर) सर्वज्ञ शिवजी की अर्धांगीने उसही गेंदसे उनको एक साथही मारडाला ॥ ३३ ॥ व महादेवीजी के गेंदसे मारेहुये बड़े बलवान् वे दुष्टदैत्य सब ओर घूम घूमकर गिरपड़े ॥ ३४ ॥ तालके टमुसे से बयार के डुलाये पकेहुये फलों की नाईं व वज्रसे मारे महापर्वत के कँगूरोंकी नाईं ॥३५॥ अकार्य्य करने में उद्यतहुये उन दोनों दैत्यों को नीचे गिराकर तदनन्तर वह गेंद लिंगरूप से परिणामको प्राप्तभया याने लिंगाकार होगया ॥३६॥

वृत्तावतिचञ्चलमानसौ ॥ ३१ ॥ सर्वज्ञेनपरिज्ञातौचाञ्चल्याल्लोचनोद्भवात् ॥ कटाक्षितार्थदेवेनदुर्गादुर्गारिघातिनी ॥ ३२ ॥ विज्ञायनेत्रसंज्ञान्तुसर्वज्ञार्धशरीरिणी ॥ तेनैवकन्दुकेनाथयुगपन्निजघानतौ ॥ ३३ ॥ महाबलौमहादेव्याकन्दुकेनसमाहतौ ॥ परिभ्रम्यपरिभ्रम्यतौदुष्टौविनिपेततुः ॥ ३४ ॥ वृन्तादिवफलेपक्वेतालादनिललोलिते ॥ दम्भोलिनापरिहतेशृङ्गे इवमहागिरेः ॥ ३५ ॥ तौनिपात्यमहादैत्यावकार्यकरणोद्यतौ ॥ ततःपरिणतिंयातोलिङ्गरूपेणकन्दुकः ॥ ३६ ॥ कन्दुकेश्वर संज्ञञ्चतल्लिङ्गमभवत्तदा ॥ ज्येष्ठेश्वरसमीपेतुसर्वदुष्टनिवारणम् ॥ ३७ ॥ कन्दुकेशसमुत्पत्तिंयःश्रोष्यतिमुदान्वितः ॥ पूजयिष्यतियोभक्तस्तस्यदुःखभयंकुतः ॥ ३८ ॥ कन्दुकेश्वरभक्तानांमानवानान्निरेनसाम् ॥ योगक्षेमंसदाकुर्याद्भवानी भयनाशिनी ॥ ३९ ॥ मृडानीतस्यलिङ्गस्यपूजांकुर्यात्सदैवहि ॥ तत्रैवदेव्याःसान्निध्यंपार्वत्याभक्तसिद्धिदम् ॥ ४० ॥ कन्दुकेशम्महालिङ्गङ्काश्यांयैर्नसमर्चितम् ॥ कथन्तेषांभवानीशौस्यातांसर्वेप्सितप्रदौ ॥ ४१ ॥ द्रष्टव्यञ्चप्रयत्नेनतल्लि

तब ज्येष्ठेश्वर के समीप में सबदुष्टों का निवारक वह कंदुकेश्वर संज्ञक लिंगहुवा ॥ ३७ ॥ जो कि आनन्द समेत कंदुकेश्वर की समुत्पत्तिको सुनेगा व जो भक्त पूजेगा उसको दुःखकाडर कहां है ॥ ३८ ॥ क्योंकि भयभञ्जनी भवानीजी कंदुकेश्वर के भक्त व पापहीन मनुष्योंका योग क्षेम सदा करतीहैं ॥ ३९ ॥ और श्रीपार्वती जी सदैव उस लिंगकी पूजा करती हैं और वहांही श्रीपार्वती देवीकी भक्तोंकी सिद्धि देनेवाली समीपता है ॥ ४० ॥ किन्तु काशी में कंदुकेश्वर लिंग जिनसे भलीभांति नहीं पूजागया उनको सब वांछितदायक भवानी और महादेवजी कैसे होवें ॥ ४१ ॥ उससे सब विघ्न समूह विनाशक उत्तम वह कंदुकेश्वर लिंग बहुत यत्नसे देखने

योग्य है ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य्योदय को प्राप्तहोकर अंधकार विनष्ट होजाताहै वैसेही कंदुकेश्वरका नामभी सुनकर पापसमूह शीघ्रही नाशको प्राप्त होता है ॥ ४३ ॥ श्री कार्त्तिकेयजी बोले कि हे महाभाग, विप्र! अधिक आश्चर्य्यकारी जो वृत्तान्त ज्येष्ठेश्वर के समीप में निश्चय से हुवा उसको तुम भलीभांति सुनो ॥ ४४ ॥ कि देवता ऋषि और पितरों की तृप्तिकेदायक दण्डखात नामक महातीर्थ के समीप में ब्राह्मणों के निष्काम उत्तम तपस्या तपतेही ॥ ४५ ॥ जो कि प्रह्लादका मामा दुंदुभि निर्ह्राद नामक दुष्ट दैत्यथा उसने ऐसा उपाय विचारा कि देवलोग कैसे बहुत जीतने योग्य होजावें ॥ ४६ ॥ और ये देवलोग किस बलवाले व किस भोजनवाले व किस आधार

ङ्कन्दुकेश्वरम् ॥ सर्वोपसर्गसङ्घातविघातकरणंपरम् ॥ ४२ ॥ कन्दुकेश्वरनामापिश्रुत्वावृजिनसन्ततिः ॥ द्विप्रंक्षयमवाप्नोतितमःप्राप्योष्णगुंयथा ॥ ४३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ संशृणुष्वमहाभागज्येष्ठेश्वरसमीपतः ॥ यद्वृत्तान्तमभूद्विप्रपरमाश्चर्यकृद्ध्रुवम् ॥ ४४ ॥ दण्डखातेमहातीर्थेदेवर्षिपितृतृप्तिदे ॥ तप्यमानेषुविप्रेषुनिष्कामंपरमन्तपः ॥ ४५ ॥ दैत्योदुन्दुभिनिर्ह्रादोदुष्टःप्रह्लादमातुलः ॥ देवाःकथंसुजेयाःस्युरित्युपायमचिन्तयत् ॥ ४६ ॥ किंबलाश्चकिमाहाराःकिमाधाराहिदेवताः ॥ विचार्यबहुशोदैत्यस्तत्त्वंविज्ञायनिश्चितम् ॥ ४७ ॥ अवश्यमग्रजन्मानोहेतवोत्रविचारतः ॥ ब्राह्मणान्हन्तुमसकृत्कृतवानुद्यमन्ततः ॥ ४८ ॥ यतःक्रतुभुजोदेवाःक्रतवोवेदसम्भवाः ॥ तेवेदाब्राह्मणाधीनास्ततोदेवबलंद्विजाः ॥ ४९ ॥ निश्चितंब्राह्मणाधाराःसर्ववेदाःसवासवाः ॥ गीर्वाणाब्राह्मणबलानात्रकार्याविचारणा ॥ ५० ॥ ब्राह्मणायदिनष्टाःस्युर्वेदानष्टास्ततःस्वयम् ॥ आम्नायेषुप्रणष्टेषुविनष्टाःशततन्तवः ॥ ५१ ॥ यज्ञेषुनाशङ्गच्छत्सुहृताहारास्ततःसुराः ॥ निर्बलाः

वाले हैं इसभांति बहुत विचारकर निश्चित तत्त्व (स्वरूप) विशेषसे जानकर दैत्यने ॥ ४७ ॥ निश्चय किया कि विचार से इसमें ब्राह्मणही अवश्यकर कारण हैं उस से उसने बारबार ब्राह्मणों के मारने को उद्यम किया ॥ ४८ ॥ जिससे देवलोग यज्ञमें भोजनकरनेवाले हैं व यज्ञ वेदसे उत्पन्न है और वे वेद ब्राह्मणों के अधीन हैं उस कारण ब्राह्मणही देवोंका बल हैं ॥ ४९ ॥ यह निश्चत है कि सब वेद ब्राह्मणों के आधारवाले हैं व इन्द्र समेत देव ब्राह्मणरूप बलवाले हैं इसमें विचारणा करने योग्य नहीं है ॥ ५० ॥ किन्तु जो ब्राह्मण नष्ट होवें तो वेदभी आपही नष्ट होजावें व जब वेद नष्टहोवें तब यज्ञ विनष्ट होजावें ॥ ५१ ॥ और यज्ञोंके नाशको प्राप्तहोतेही तब

हरगये हुये भोजनवाले निर्बल देवलोग सुखसे जीतनेयोग्य होजावेंगे अनन्तर देवोंके हारतेही ॥ ५२ ॥ मैंही माननीय व तीनोंलोकों का स्वामी होऊंगा और देवोंकी अक्षय सब संपत्तियों को सब ओरसे हरलाऊंगा ॥ ५३ ॥ व हनेगये हैं शत्रु जिसमें उस राज्यमें सुखों कोही भोगकरूंगा हेमुने! ऐसा निश्चयकर उस दुर्बुद्धिने फिर चिंतना किया ॥ ५४ ॥ कि वेदपढ़ने से सम्पन्न व तपस्या के बलसे समेत व ब्रह्मतेज से बहुत बढ़ेहुये श्रेष्ठ या बहुतसे ब्राह्मण कहां हैं ॥ ५५ ॥ और बहुते श्रेष्ठ ब्राह्मणों का स्थान काशी होवे इससे उनको पहले समीप में संहारकर (मारकर) तदनन्तर तीर्थांतर को जाऊंगा ॥ ५६ ॥ जहां जहां तीर्थों में व जहां जहां आश्रमों में सब

सुखजेयाःस्युर्जितेषुत्रिदशेष्वथ ॥ ५२ ॥ अहमेवभविष्यामिमान्यस्त्रिजगतीपतिः ॥ आहरिष्यामिदेवानामक्षयाःसर्वसम्पदः ॥ ५३ ॥ निर्वेक्ष्यामिसुखान्येवराज्येनिहतकण्टके ॥ इतिनिश्चित्यदुर्बुद्धिःपुनश्चिन्तितवान्मुने ॥५४ ॥ द्विजाःकसन्तिभूयांसोब्रह्मतेजोतिबृंहिताः ॥ श्रुत्यध्ययनसम्पन्नास्तपोबलसमन्विताः ॥ ५५ ॥ भूयसांब्राह्मणानांतुस्थानंवाराणसीभवेत् ॥ तानादावुपसंहृत्ययामितीर्थान्तरन्ततः ॥ ५६ ॥ यत्रयत्रहितीर्थेषुयत्रयत्राश्रमेषुच ॥ सन्तिसर्वेऽग्रजन्मानस्तेमयाद्याःसमन्ततः ॥ ५७ ॥ इतिदुन्दुभिनिर्ह्रादोमतिंकृत्वाकुलोचिताम् ॥ प्राप्यापिकाशींदुर्वृत्तोमायावीन्यवधीद्द्विजान् ॥ ५८॥ समित्कुशान्समादातुंयत्रयान्तिद्विजोत्तमाः ॥ अरण्येतत्रतान्सर्वान्सभक्षयतिदुर्मतिः ॥ ५९ ॥ यथाकोपिनवेत्त्येवतथाच्छन्नोऽभवत्पुनः ॥ वनेवनेचरोभूत्वायादोरूपीजलाशये ॥ ६०॥ अदृश्यरूपीमायावीदेवानामप्यगोचरः ॥ दिवाध्यानपरस्तिष्ठेन्मुनिवन्मुनिमध्यगः ॥ ६१ ॥ प्रवेशमुटजानाञ्चनिर्गमञ्चविलोकयन् ॥ यामिन्यांव्याघ्ररू

ब्राह्मण हैं वे सब ओरसे मुझसे खाडालने योग्यहैं ॥ ५७ ॥ इसभांति अपने कुलकी उचित बुद्धिकोकर मायावी दुष्ट दुंदुभि निर्ह्राद दैत्यने काशीको प्राप्तहोकर भी ब्राह्मणोंका बधकिया ॥ ५८ ॥ जे ब्राह्मणोत्तम इंधन व कुशलेने को जहां वनमें जातेथे उन सबको वहां वह दुष्ट खालेताथा ॥ ५९ ॥ और जैसे कोई नहीं जानता है (था) वैसे फिर छिपाहुवा होताथा और वनमें वनचर व जल में घरियार मगर आदि रूप धर होकर ॥ ६० ॥ अदृश्य रूपी मायावी दैत्य देवों के भी अगोचरथा याने उसको देवलोग भी नहीं देखपातेथे किन्तु वह दिनमें मुनियों कीनाईं ध्यान में परायण होकर मुनियों के मध्यगत टिकारहे ॥ ६१ ॥ व कुटियोंसे अपना पैठना और निकलना

अत्यंत आर्त शब्द करनेलगा एकाएक उसनाद से थरथरातेहुये मन या अंगवाले ॥ ७२ ॥ तपोधन ब्राह्मणलोग रात्रिमें शब्द के अनुसार से भलीभांति आगये व वहां सिंहको कांखमें कियेहुये परमेश्वरको अच्छे प्रकार सामनेसे देखकर ॥ ७३ ॥ प्रणामकरतेहुये सबों ने जय जय अक्षरों से दुष्टों के मारनेवाले शिवजी की स्तुति की कि जगत् के पालक ! आप इस दारुण मृत्यु से हमारे सब ओरसे रक्षकहो ॥ ७४ ॥ हे जगद्गुरो, ईश ! आप दयाकोकरो और इसही रूपसे व्याघ्रेश ऐसे नाम से यहांहीं टिको ॥ ७५ ॥ हे महादेव ! सदैव ज्येष्ठ स्थानकी रक्षाकरो व तीर्थवासी हमलोगों को अन्य उपसर्गों (उपद्रवों) से भी बचावो ॥ ७६ ॥ ऐसा उनका वचन सुनकर

तपोधनाःसमाजग्मुर्निशिशब्दानुसारतः ॥ तत्रेश्वरंसमालोक्यकक्षीकृतमृगेश्वरम् ॥ ७३ ॥ तुष्टुवुःप्रणताःसर्वेशर्वञ्जय जयाक्षरैः ॥ परित्राताजगत्रातःप्रत्यूहाद्दारुणादितः ॥ ७४ ॥ अनुग्रहंकुरुष्वेशतिष्ठात्रैवजगद्गुरो ॥ अनेनैवहिरूपेणव्या घ्रेशइतिनामतः ॥ ७५ ॥ कुरुरक्षांमहादेवज्येष्ठस्थानस्यसर्वदा ॥ अन्येभ्योप्युपसर्गेभ्योरक्षनस्तीर्थवासिनः ॥ ७६ ॥ इति श्रुत्वावचस्तेषांदेवश्चन्द्रविभूषणः ॥ तथेत्युक्कापुनःप्राहशृणुध्वंद्विजपुङ्गवाः ॥ ७७ ॥ योमामनेनरूपेणद्रक्ष्यतिश्रद्धयात्र वै ॥ तस्योपसर्गसङ्घातङ्घातयिष्याम्यसंशयम् ॥ ७८ ॥ एतल्लिङ्गंसमभ्यर्च्ययोयातिपथिमानवः ॥ चौरव्याघ्रादिसम्भू तम्भयन्तस्यकुतोभवेत् ॥ ७९ ॥ मच्चरित्रमिदंश्रुत्वास्मृत्वालिङ्गमिदंहृदि ॥ संग्रामेप्रविशन्मर्त्योजयमाप्नोतिनान्य था ॥ ८० ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गेलयंययौ ॥ सविस्मयास्ततोविप्राःप्रातर्यातायथागतम् ॥ ८१ ॥ स्कन्दउवा

चन्द्रभूषण महादेवजीने वैसेहीहो इसप्रकार से कहकर फिर कहा कि हे ब्राह्मण श्रेष्ठो ! तुमलोग सुनो ॥ ७७ ॥ कि जो श्रद्धाके साथ मुझको यहां इसही रूपसे देखेगा उसके उपद्रव समूहको मैं निस्संदेह बिनाशकरूंगा ॥ ७८ ॥ व जो मनुष्य इसलिंग की पूजाकर गली में जाताहै उसको चौर और बाघआदिकों से हुवा डरकैसेहोवे ॥ ७९ ॥ और मेरे इसचरित्रको सुनकर व हृदय में इसलिंगको स्मरणकर संग्राम में पैठताहुवा मनुष्य जीतिको प्राप्तहोता है यह अन्यथा नहीं है ॥ ८० ॥ इसभांति कहकर देवोंके देवेश महेश जी उस लिंगमें लयको प्राप्तहोगये तदनन्तर प्रातःकाल विस्मय समेत सब ब्राह्मणलोग यथागत याने जैसे आयेथे वैसे वहांको जातेभये ॥ ८१ ॥

देखताहुवा वह रात्रिमें बाघरूप से बहुत ब्राह्मणों को खाडाले ॥ ६२ ॥ व चुपचाप उठालेजावे और मांस खाकर हाड़ों को भी न त्यागकरे ऐसे उसदुष्टसे बहुत ब्राह्मण मारेगये ॥ ६३ ॥ और एकसमय शिवरात्रि में अपनी पर्णशाला में बैठाहुवा एकभक्त महादेवजी की पूजाकोकर ध्यान में स्थितभया ॥ ६४ ॥ उस समय बलसे गर्वित दुंदुभि निर्ह्लाद दैत्येन्द्रने बाघका रूपधर उसभक्त के पकड़ लेने के लिये बुद्धि धारण किया ॥ ६५ ॥ परन्तु वह ध्यान में प्राप्त व शिवजी के दर्शन में दृढ़चित्त व अस्त्ररूप मन्त्रन्यास कियेहुये उस ब्राह्मणको दबानेको या समीप में जानेको न समर्थ हुवा ॥ ६६ ॥ तदनन्तर भक्तभयहारी कल्याणकारी सब घटविहारी महादेवजीने

पेणब्राह्मणान्भक्षयेद्बहून् ॥ ६२ ॥ निःशब्दमेवनयतिनत्यजेदपिकीकसम् ॥ इत्थन्निपातिताविप्रास्तेनदुष्टेनभूरिशः ॥ ६३ ॥ एकदाशिवरात्रौतुभक्तस्त्वेकोनिजोटजे ॥ सपर्यांदेवदेवस्यकृत्वाध्यानस्थितोभवत् ॥ ६४ ॥ सचदुन्दुभिनिर्ह्लादो दैत्येन्द्रोबलदर्पितः ॥ व्याघ्ररूपंसमास्थायतमादातुम्मतिंदधे ॥ ६५ ॥ तम्भक्तन्ध्यानमापन्नन्दृढचित्तंशिवेक्षणे ॥ कृतास्त्रमन्त्रविन्यासंसंक्रान्तुमशकन्नसः ॥ ६६ ॥ अथसर्वगतःशम्भुर्ज्ञात्वातस्याशयंहरः ॥ दैत्यस्यदुष्टरूपस्यवधाय विदधेधियम् ॥ ६७ ॥ यावदादित्सतिव्याघ्रस्तावदाविरभूद्धरः ॥ जगद्रक्षामणिस्त्र्यक्षोभक्तरक्षणदक्षधीः ॥ ६८ ॥ रुद्र मायान्तमालोक्यतद्भक्तार्चितलिङ्गतः ॥ दैत्यस्तेनैवरूपेणववृधेभूधरोपमः ॥ ६९ ॥ सावज्ञमथसर्वज्ञंयावत्पश्यतिदानवः ॥ तावदायान्तमादायकक्षायन्त्रेन्यपीडयत् ॥ ७० ॥ पञ्चास्यस्त्वथपञ्चास्यस्मुष्ट्यामूर्धन्यताडयत् ॥ सचतेनैव रूपेणकक्षानिष्पेषणेनच ॥ ७१ ॥ अत्यार्तमरटद्व्याघ्रोरोदसीपरिपूरयन् ॥ तेननादेनसहसासम्प्रवेपितमानसाः ॥ ७२ ॥

उस दुष्टरूप दैत्यका अभिप्राय जानकर उसको मारने के लिये बुद्धिको किया ॥ ६७ ॥ जबतक बाघ भक्तको पकड़लेना चाहताहै तबतक भक्तके रक्षण में दक्षबुद्धिवाले व जगत्की रक्षाकरने को महामणि के समान त्रिनेत्र शिवजी प्रकटहोगये ॥ ६८ ॥ और उस भक्तके पूजेहुये लिंगसे आतेहुये रुद्रको देखकर वह दैत्य उसही रूप से पर्वत के समान बढ़गया ॥ ६९ ॥ अनन्तर जबतक दैत्यने सर्वज्ञको अनादर समेतदेखा तबतक दौड़े (झपटे) आतेहुये को, पकड़कर परमेश्वरने कक्षायंत्र में पीस डाला ॥ ७० ॥ व पंचमुख शिवजीने सिंहरूप दैत्यको मस्तकमें मूठीसे मारा और कांखमें पीसने से वह उसही रूपसे ॥ ७१ ॥ द्यावा भूमिके अन्तर को भरताहुवा बाघ

श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुंभोत्थ (अगस्त्यजी) ! तबसे लगाकर ज्येष्ठेश से उत्तरभाग में देखा व छुवाहुवा व्याघ्रेश्वरनामक लिंग भयके नाशनेवाला है ॥ ८२ ॥ व जे व्याघ्रेश्वरके भक्तहैं उनसे जयजीव ऐसा कहतेहुये बड़ेक्रूर यमके दूतभी डरते हैं ॥ ८३ ॥ और यहां पराशरेश्वर आदि लिंगोंकी भलीभांति उत्पत्ति को सुनकर मनुष्य महापापरूप पंकों से नहीं लिप्त होवे है ॥ ८४ ॥ व कंदुकेश्वरकी भलीभांति उत्पत्ति तथा व्याघ्रेश्वर का प्रकटहोना सुनकर मनुष्य उपसर्गों से कभी नहीं पीड़ा जाताहै ॥ ८५ ॥ और भक्तों की रक्षाके अर्थ हुवा जो उटजेश्वरलिङ्ग व्याघ्रेश्वर से पश्चिम में टिकाहै उसको भलीभांति पूजकर निडर होजावे है ॥ ८६ ॥ इति श्रीस्कन्द

च ॥ तदाप्रभृतिकुम्भोत्थलिङ्गंव्याघ्रेश्वराभिधम् ॥ ज्येष्ठेशादुत्तरेभागेदृष्टंस्पृष्टंभयापहम् ॥ ८२ ॥ व्याघ्रेश्वरस्यये भक्तास्तेभ्योबिभ्यतिकिङ्कराः ॥ यामाअपिमहाक्रूराजयजीवेतिवादिनः ॥ ८३ ॥ पराशरेश्वरादीनांलिङ्गानामिहसम्भवम् ॥ श्रुत्वानरोनलिप्येतमहापातककर्दमैः ॥ ८४ ॥ कन्दुकेशसमुत्पत्तिंव्याघ्रेशाविर्भवन्तथा ॥ समाकर्ण्यनरोजातुनोपसर्गैःप्रदूयते ॥ ८५ ॥ उटजेश्वरलिङ्गन्तुव्याघ्रेशात्पश्चिमेस्थितम् ॥ भक्तरक्षार्थमुद्भूतंस्यात्समभ्यर्च्यनिर्भयः ॥ ८६ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपराशरेश्वरादिकन्दुकेशव्याघ्रेश्वरादिलिङ्गसम्भवोनामपञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

स्कन्दउवाच ॥ ज्येष्ठेश्वरस्यपरितोलिङ्गान्यन्यानियानितु ॥ तानितेकथयिष्यामिशृणुवातापितापन ॥ १ ॥ ज्येष्ठेशाद्दक्षिणेभागेलिङ्गमप्सरसांशुभम् ॥ तत्रैवाप्सरसःकूपःसौभाग्योदकसंज्ञकः ॥ २ ॥ तत्कूपजलसुस्नातोविलोक्याप्सरसेश्वरम् ॥ नदौर्भाग्यमवाप्नोतिनारीवापुरुषोथवा ॥ ३ ॥ तत्रैवकुक्कुटेशाख्यंलिङ्गंवापीसमीपगम् ॥ तस्यपूजनतःपुं

पुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपराशरेश्वरादिकन्दुकेश्वरव्याघ्रेश्वरादिलिङ्गसमुत्पत्तिनामपञ्चषष्टितमोध्यायः ॥ ६५ ॥ ॥ ॥

दो० । छासठयें अध्यायमें हिमगिरि काशी गौन। शैलेश्वर इत्यादि बहु लिङ्ग कथा है तौन ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे वातापी राक्षसके तपानेवाले अगस्त्यजी! ज्येष्ठेश्वरके सब ओर में जे अन्य लिङ्गहैं उनको मैं तुमसे कहूंगा तुम सुनो ॥ १ ॥ कि ज्येष्ठेश से दक्षिणभाग में अप्सरों का शुभ लिंगहै और यहांही सौभाग्योदक नामक अप्सराका कूप है ॥ २ ॥ उस कूपके जलसे भलीभांति नहाया हुवा पुरुष अथवा स्त्री भी अप्सरसेश्वर के दर्शन कर दौर्भाग्यको नहीं प्राप्त होती है ॥ ३ ॥ और वहांही

बावली के समीपगत कुक्कुटेश्वर नामक लिंग है उसकी पूजा से मनुष्यों का कुटुम्ब सब ओर से बढ़ताहै ॥ ४ ॥ व ज्येष्ठवापी के तीरमें पितामहेश्वर नामक शुभ लिंगहै वहां श्राद्धको कर नर पितरों को आनन्ददेवे ॥ ५ ॥ व पितामहेश्वर से नैर्ऋत्यकोणमें पितरों का सब ओरसे तृप्तिदायक गदाधरेश्वर लिंग बड़े यत्नसे पूजने योग्यहै ॥ ६ ॥ हे मुने ! ज्येष्ठेश्वर से उत्तर ओर में वासुकीश्वर लिंग सब ओरसे पूजनीयहै ॥ ७ ॥ और वहां वासुकिकुण्ड में स्नानदानादिक क्रियायें वासुकीश्वरके प्रभाव से मनुष्यों के सर्पों से डरके हरनेवाली हैं ॥ ८ ॥ जो कि नागपञ्चमी तिथिके प्राप्त होतेही वासुकिसंज्ञित कुण्ड में नहाताहै उसके अंगमें सर्पों से हुवा विषका संसर्ग नहीं होवे है ॥ ९ ॥

सांकुटुम्बंपरिवर्धते ॥ ४ ॥ पितामहेश्वरंलिङ्गंज्येष्ठवापीतटेशुभम् ॥ तत्रश्राद्धन्नरःकृत्वापितॄणांमुदमर्पयेत् ॥ ५ ॥ पिता महेशान्नैर्ऋत्यांपूजनीयम्प्रयत्नतः ॥ गदाधरेश्वरंलिङ्गंपितॄणांपरितृप्तिदम् ॥ ६ ॥ दिशिपुण्यजनाख्यायांलिङ्गाज्ज्ये ष्ठेश्वरान्मुने ॥ वासुकीश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गमर्च्यंसमन्ततः ॥ ७ ॥ तत्रवासुकिकुण्डेचस्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ सर्पभी तिहराःपुंसांवासुकीशप्रभावतः ॥ ८ ॥ यःस्नातोनागपञ्चम्यांकुण्डेवासुकिसंज्ञिते ॥ नतस्यविषसंसर्गोभवेत्सर्पसमुद्भ वः ॥ ९ ॥ कर्तव्यानागपञ्चम्यांयात्रावर्षासुतत्रवै ॥ नागाःप्रसन्नाजायन्तेकुलेतस्यापिसर्वदा ॥ १० ॥ तत्कुण्डात्पश्चिमे भागेलिङ्गंवैतक्षकेश्वरम् ॥ पूजनीयंप्रयत्नेनभक्तानांसर्वसिद्धिदम् ॥ ११ ॥ मुनेतस्योत्तरेभागेकुण्डन्तक्षकसंज्ञितम् ॥ कृतोदकक्रियस्तत्रनसर्पैरभिभूयते ॥ १२ ॥ तत्कुण्डादुत्तरेभागेक्षेत्रक्षेमकरःसदा ॥ भक्तानांसाध्वसध्वंसीकपालीनाम भैरवः ॥ १३ ॥ भैरवस्यमहाक्षेत्रंतद्वैसाधकसिद्धिदम् ॥ तत्रसंसाधिताविद्याषण्मासात्सिद्धिमाप्नुयुः ॥ १४ ॥ तत्रचण्डी

इससे वर्षामें वहां नागपञ्चमी में यात्रा करना चाहिये उसके कुलमें सदैव नागलोग प्रसन्न होजाते हैं यह निश्चय है ॥ १० ॥ उस कुण्डसे पश्चिम भागमें भक्तों का सब सिद्धिदायक तक्षकेश्वर लिंग बहुत यत्नके साथ निश्चय से पूजने योग्यहै ॥ ११ ॥ हे मुने ! उससे उत्तर भागमें तक्षकसंज्ञित कुण्डहै उसमें स्नानादि जलक्रिया किये हुवा मनुष्य सर्प्पों से नहीं तिरस्कृत होताहै ॥ १२ ॥ उस कुण्ड से उत्तर भागमें भक्तों के भय भंजनेवारे व सदा क्षेत्र के कल्याणकर्त्ता कपालीनामक भैरवहैं ॥ १३ ॥ वहही भैरवजी का महाक्षेत्र साधकों की सिद्धियोंका दाताहै उसमें भलीभांति साधी हुई विद्यायें छह मासमें सिद्धिको प्राप्त होजावे हैं ॥ १४ ॥ और वहां अपने अभीष्टकी

सिद्धिके लिये भक्तों के विघ्नों की विनाशिनी महामुण्डाचण्डीजी भेंट व पूजाकी सामग्री आदिकों से सदा पूजनीय हैं ॥ १५ ॥ और जो मनुष्योत्तम महाअष्टमी में उनकी यात्रा को करे है वह यशस्वी व पुत्र और पौत्रों से सम्पन्न व धनी भी होता है ॥ १६ ॥ व महामुण्डा से पश्चिम दिशा में चतुःसागरवापिकाहै उसमें नहाया हुवा जन चारों भी समुद्रों में नहाया हुवा होजावे है ॥ १७ ॥ वह चतुःसागरसंज्ञित स्थान बहुतही प्रसिद्ध है वहां समुद्रों के थापे हुये चार लिंगहैं ॥ १८ ॥ उस बावली से चारों दिशाओं में पूजेहुये वे पापको जलादेते हैं उसके उत्तर में वृषभेश्वर नामक महालिंग है ॥ १९ ॥ वह अपनी भक्तिसे महादेवजी के बैल करकेही थापा गयाहै

महामुण्डाभक्तविघ्नोपशान्तिदा ॥ बलिपूजोपहाराद्यैः पूज्यास्वाभीष्टसिद्धये ॥ १५ ॥ तस्यायात्रान्तुयःकुर्यान्महाष्टम्यां नरोत्तमः ॥ यशस्वीपुत्रपौत्राढ्योलक्ष्मीवांश्चापिजायते ॥ १६ ॥ महामुण्डाप्रतीच्यान्तुचतुःसागरवापिका ॥ तस्यां स्नातोभवेत्स्नातःसागरेषुचतुर्ष्वपि ॥ १७ ॥ महाप्रसिद्धन्तत्स्थानञ्चतुःसागरसंज्ञितम्। चत्वारितत्रलिङ्गानिसागरैःस्थापितानिच ॥ १८ ॥ तस्यावाप्याश्चतुर्दिक्षुपूजितानिदहन्त्यघम् ॥ तदुत्तरेमहालिङ्गंवृषभेश्वरसंज्ञितम् ॥ १९ ॥ हरस्यवृषभेणैवस्थापितन्तत्स्वभक्तितः ॥ तस्यदर्शनतःपुंसांषण्मासान्मुक्तिरुद्भवेत् ॥ २० ॥ वृषेश्वराद्दुदीच्यान्तुगन्धर्वेश्वरसंज्ञितम्॥ गन्धर्वकुण्डन्तत्प्राच्यांतत्रस्नात्वानरोत्तमः ॥ २१ ॥ गन्धर्वेश्वरमभ्यर्च्यदत्त्वादानानिशक्तितः ॥ सन्तर्प्यपितृदेवांश्चगन्धर्वैःसहमोदते ॥ २२ ॥ कर्कोटनामानागोस्तिगन्धर्वेश्वरपूर्वतः॥ तत्रकर्कोटवापीचलिङ्गंकर्कोटकेश्वरम्॥ २३ ॥ तस्यांवाप्यान्नरःस्नात्वाकर्कोटेशंसमर्च्यच ॥ कर्कोटनागमाराध्यनागलोकेमहीयते ॥ २४ ॥ कर्कोटनागोयैर्दृ

उसके दर्शनमात्र से छहमास में मनुष्यों की मुक्ति उत्पन्न होवे है याने वे लोग जीवन्मुक्त होजाते हैं ॥ २० ॥ व वृषेश्वर से उत्तर में गंधर्वेश्वर नामक लिंग है और उससे पूर्व में गन्धर्वकुण्ड है उसमें स्नानकर मनुष्योत्तम ॥ २१ ॥ गन्धर्वेश्वर की पूजाकर व अपनी शक्ति के अनुसार दानोंको देकर व देव और पितरोंको भलीभांति तर्पणकर गन्धर्वों के साथ आनन्द पाता है ॥ २२ ॥ उस गन्धर्वेश्वर से पूर्व में कर्कोटक नामक नाग है व वहां कर्कोटवापी और कर्कोटकेश्वर लिंग है ॥ २३ ॥ उस बावली में स्नानकर व कर्कोटकेश्वर की पूजाकर व कर्कोटकनाग को सब ओर से पूज कर नर नागलोक में आदर पाता है ॥ २४ ॥ उस बावली में स्नानादि जलक्रिया

किये‌हुये जिन लोगों से कर्कोटकनाग देखागया उनकी देहमें स्थावर व जंगम विष नहीं चढ़ता है ॥ २५ ॥ व कर्कोटकेश्वर से पश्चिम में धुन्धुमारीश्वर नामक लिंग है उस लिंगकी पूजा से मनुष्यों को शत्रुओं से उपजाहुवा डर नहीं होवे है ॥ २६ ॥ और उससे उत्तरमें पुरूरवेश्वर लिंग टिका है वह धर्मादि चतुर्वर्गफलों का दाता व बड़े यत्नसे देखने योग्य है ॥ २७ ॥ और उसके आगे सुप्रतीक दिग्गज से पूजित व यश और बलके बढ़ानेवाला सुप्रतीकेश्वर नामक लिंग है ॥ २८ ॥ व उसके आगे सुप्रतीक नामक बड़ाभारी सरोवर सोहता है उसमें स्नानकर व उस लिंग के दर्शनकर दिक्पालकी पदवीको पावे है ॥ २९ ॥ वहां विजयभैरवी नामसे प्रसिद्ध एक महागौरी

ष्टस्तद्वाप्यांविहितोदकैः ॥ क्रमतेनविषन्तेषान्देहेस्थावरजङ्गमम् ॥ २५ ॥ कर्कोटेशात्प्रतीच्यान्तुधुन्धुमारीश्वराभिधम् ॥ तल्लिङ्गाभ्यर्चनात्पुंसान्नभवेद्वैरिजम्भयम् ॥ २६ ॥ पुरूरवेश्वरंलिङ्गन्तदुदीच्यांव्यवस्थितम् ॥ द्रष्टव्यन्तत्प्रयत्नेनचतुर्वर्गफलप्रदम् ॥ २७ ॥ दिग्गजेनार्चितंलिङ्गंसुप्रतीकेनतत्पुरः ॥ सुप्रतीकेश्वरन्नाम्नायशोबलविवर्धनम् ॥ २८ ॥ सरश्चसुप्रतीकाख्यन्तत्पुरोभासतेमहत् ॥ तत्रस्नात्वाचतल्लिङ्गंदृष्ट्वादिक्पतितांलभेत् ॥ २९ ॥ तत्रास्त्येकामहागौरीनाम्नाविजयभैरवी ॥ रक्षार्थमुत्तरद्वारिस्थितापूज्येष्टसिद्धये ॥ ३० ॥ वरणायास्तटेरम्येगणौहुण्डनमुण्डनौ ॥ क्षेत्ररक्षांविधत्तस्तौविघ्नस्तम्भनकारकौ ॥ ३१ ॥ तौद्रष्टव्यौप्रयत्नेनक्षेत्रानिर्विघ्नहेतवे ॥ हुण्डनेशम्मुण्डनेशन्तत्रदृष्ट्वासुखीभवेत् ॥ ३२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इल्वलारेकथामेकांशृणुष्वावहितोभव ॥ वरणायास्तटेरम्येयद्वृत्तंपूर्वमुत्तमम् ॥ ३३ ॥ एकदाद्रीन्द्रमालोक्यमेनासंहृष्टमानसम् ॥ उमांसंस्मृत्यनिःश्वस्यप्रोवाचेतिपतिव्रता ॥ ३४ ॥ मेनोवाच ॥ आर्यपुत्रनजानामिप्रवृ

है जो कि रक्षाकेलिये पुरीके द्वार में टिकी है वह इष्टकार्य्य सिद्धि के लिये पूजने योग्य है ॥ ३० ॥ और वरणानदीके रमणीक तटपर विघ्नों के रोंक करनेवाले हुण्डन व मुण्डन नामक वे दोनों गण क्षेत्रकी रक्षा करते हैं ॥ ३१ ॥ और क्षेत्र में निर्विघ्न के कारण वे बहुत यत्नसे देखने योग्य हैं व वहां हुंडनेश्वर और मुंडनेश्वर के दर्शनकर सुखी होवे ॥ ३२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे इल्वलदैत्यके वैरिन्, अगस्त्यजी ! तुम सावधान होवो व वरणानदी के रम्य किनारे में आगे जो उत्तम वृत्तान्त हुवाहै उस एक कथा को सुनो ॥ ३३ ॥ कि एक समय पर्वतराज हिमवान् को देखकर व पार्वती को स्मरणकर निःश्वास लेकर पतिव्रता मेनाने ऐसा कहा ॥ ३४ ॥ श्रीमेनाजी

बोलीं कि हे आर्य्यपुत्र, पर्वतेश्वर! मैं उस गौरीके विवाह समय के उपरान्त किसी भी प्रवृत्ति को नहीं जानतीहूं ॥ ३५ ॥ कि इस समय बैलसवारी से गमनकारी विभूति व सर्प्पभूषणधारी श्मशानविहारी वह क्रीडाकारी देव कहां हैं ॥ ३६ ॥ हे प्रिय! ब्राह्मी आदि जे आठमातृकायें देखी गई हैं व सुखरूपिणी हैं मैं ऐसा मानती हूं और अन्य कन्यकायें कष्टका कारण हैं ॥ ३७ ॥ हे विभो! एकरूप अद्वितीय उन त्रिशूलधारी के अन्य कोई नहीं है इससे उनकी उपरान्त प्रवृत्ति याने हाल जानने के लिये उद्यम कियाजावे ॥ ३८ ॥ इसभांति उस प्यारी के वचन से उसके लड़कों के प्यार करनेवाले पर्वतराज हिमवान्‌जी गौरी के स्नेह से गद्गदवचन रचनयुक्त होकर

त्तिमपिकांचन ॥ विवाहसमयादूर्ध्वंतस्यागौर्यागिरीश्वर ॥ ३५ ॥ सवृषेन्द्रगतिर्देवोभस्मोरगविभूषणः ॥ महापितृवनावासोदिग्वासाःक्वास्तिसंप्रति ॥ ३६ ॥ अष्टौयामातरोदृष्टाब्राह्मीप्रभृतयःप्रिय ॥ स्वस्वरूपास्तामन्येऽहंबालिकाःकष्टहेतवः ॥ ३७ ॥ तस्यैकस्यनकोप्यन्योस्त्यद्वितीयस्यशूलिनः ॥ तदुदन्तप्रवृत्त्यैचक्रियतामुद्यमोविभो ॥ ३८ ॥ तस्याःप्रियायावाक्येनतदपत्यप्रियोगिरिः ॥ उवाचवचनंसास्त्रमुमावात्सल्यसन्नगीः ॥ ३९ ॥ गिरिराजउवाच ॥ अहमेवगमिष्यामितस्यामेनेगवेषणे ॥ नितरांबाधतेप्रेमतदहृष्ट्यग्निदूषितम् ॥ ४० ॥ यदाप्रभृतिसागौरीनिर्गताममसद्मतः ॥ मन्येमेनेतदारभ्यपद्मसद्माविनिर्ययौ ॥ ४१ ॥ तदालापामृतधयौनमेशब्दग्रहौप्रिये ॥ प्राणेश्वरितदारभ्यस्यातांशब्दान्तरग्रहौ ॥ ४२ ॥ जैवातृकीयतोह्नःस्याद्दूरीभूतादृशोर्मम ॥ अहोजैवातृकीज्योत्स्नाततोह्नोतिदुनोतिमाम् ॥ ४३ ॥ इत्युक्त्वादायरत्नानिवासांसिविविधानिच ॥ धराधरेन्द्रोनिर्यातःशुभलग्नबलोदये ॥ ४४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ कानिकानिचर

आंसुओं समेत बोले ॥ ३९ ॥ पर्वतराज बोले कि, हे मेने! उस प्यारी पार्वती कुमारी के खोजने के लिये मैंही जाऊंगा क्योंकि उसके न देखने रूप अग्नि से संतापित मुझको प्रेम बाधाकरता है॥ ४० ॥ हे मेने! मैं ऐसा मानताहूं कि जबसे लगाकर वह गौरी मेरे घरसे निकलगई है तबसे लगाकर लक्ष्मी निकलगई है ॥ ४१ ॥ हे प्राणेश्वरि, प्रिये! तबसे लगाकर उसके मधुर वचनरूप अमृत के पीनेवाले मेरे कान अन्य शब्द के ग्रहणकर्त्ता नहीं होते हैं ॥ ४२ ॥ खेदहै कि चांदनी के समान गोरी गौरी जिसदिन से मेरे नेत्रों से दूरहोगई है उस दिनसे चन्द्रमा की चांदनी मुझको उपताप देती है ॥ ४३ ॥ ऐसा कहकर बहुत भांति के रत्नों व वस्त्रों को लेकर पर्वत-

राजजी शुभलग्नका बल उदय होतेही निकलकर चलतेभये ॥ ४४ ॥ श्रीअगस्त्यजी बोले कि हे षण्मुख! कौनं कौन व कितने रत्नथे जिनको लेकर उन हिमवान् ने प्रस्थान कियाथा उनको पूंछतेहुये मुझसे तुम कहो ॥ ४५ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि सौटकाकी एक तुला होती है और मोतियों की दोकरोड़ संख्यक तुलायेंथीं तथा जल में उतरानेवाले हीरों की सौतुलायेंथीं ॥ ४६ ॥ व अच्छे तेजवाले जगमगाते हुये छहकोन के हीरोंकी नवलाख अधिक सौतुलायेंथीं व विमलज्योतिवाली लाली मणियों की दोलाख तुलायेंथीं ॥ ४७ ॥ हे मुने! पद्मरागोंकी पांचकरोड़ तुलाओं व पुष्परागों की नव संख्यासे गुणीहुई लाख तुलाओं को (नौलाख) जानो ॥ ४८ ॥ हे मुने!

तानिकियन्त्यपिचषण्मुख ॥ यान्यादायप्रतस्थेसतानिमेब्रूहिपृच्छतः ॥ ४५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तुलामुक्ताफलानान्तु कोटिद्वयपरीमिताः ॥ तथावारितराणाञ्चहीरकाणान्तुलाशतम् ॥ ४६ ॥ नवलक्षाधिकंविप्रषडस्राणांसुतेजसाम् ॥ लक्ष द्वयंविद्रूराणान्तुलाविमलवर्चसाम् ॥ ४७ ॥ कोटयःपद्मरागाणांपञ्चवैहितुलामुने ॥ पुष्परागतुलालक्षंगुणितन्नवसंख्य या ॥ ४८ ॥ तथागोमेदरत्नानान्तुलालक्षमितामुने ॥ इन्द्रनीलमणीनाञ्चतुलाःकोट्यर्धसंमिताः ॥ ४९ ॥ गरुडोद्गाररत्ना नान्तुलाःप्रयुतसंमिताः ॥ शुद्धविद्रुमरत्नानान्तुलाश्चनवकोटयः ॥ ५० ॥ अष्टाङ्गाभरणानाञ्चसंख्याकर्तुंनशक्यते ॥ वा ससाञ्चविचित्राणाङ्कोमलानान्तथामुने ॥ ५१ ॥ चामराणिचभूयांसिद्रव्याण्यामोदवन्तिच ॥ सुवर्णदासदास्यादीन्य संख्यातानिवैमुने ॥ ५२ ॥ सर्वाण्यपिसमादायप्रतस्थेभूधरेश्वरः ॥ आगत्यवरणातीरन्दूरात्काशीमलोकयत् ॥ ५३ ॥ अनेकरत्ननिचयैःखचिताऽखिलभूमिकाम् ॥ नानाप्रासादमाणिक्यज्योतिस्तततताम्बराम् ॥ ५४ ॥ सौधाग्रविविधस्वर्ण

तथा गोमेद याने पीतरंग के रत्नों की लाख परिमित तुलायें और इन्द्रनीलमणियों की पचासलाख संख्यक तुलायेंथीं ॥ ४९ ॥ व हरीमणियों की लक्षसंमित तुलायें और निर्मल मूंगा रत्नोंकी नवकरोड़ तुलायेंथीं ॥ ५० ॥ हे मुने! आठ अंगों याने मस्तक माथ नासिका कान कण्ठ हाथ कटि और पांवों के गहनेरूप रत्नों तथा कोमलवस्त्रों की संख्या करने योग्य नहीं होसक्ती है ॥ ५१ ॥ हे मुने! बहुते चँवर सुगन्ध समेत द्रव्य सुवर्ण दासी और दासादि असंख्य थे ॥ ५२ ॥ इन सबको भलीभांति लेकर पर्वतेश्वरने प्रस्थान किया व वरणानदी के किनारे आकर दूरसे काशी को देखा ॥ ५३ ॥ जोकि अनेक रत्नसमूहों से जटित सम्पूर्ण भूमिसे भासतीहै व अनेक महलों

की मणियों की ज्योतिसे विस्तारयुक्त आकाश को व्याप्त करनेवाली है ॥ ५४ ॥ व महलों के कंगूरों में बहुत प्रकार के साजेहुये सोने के कलशों से दिशाओं के मुखों को उज्ज्वलकरती है व वैजयंती पताकाओं के समूहों से स्वर्गस्थली के समान शोभायमानहै ॥ ५५ ॥ व आठों महासिद्धियों की भी अद्भुत क्रीडामन्दिर सी है व सब फलों की रक्षावाले याने फलों से समृद्ध वनोंसे कल्पवृक्षों के वनों की जीतनेवाली है ॥ ५६ ॥ ऐसी काशी की समृद्धि को देखकर वह पर्वतेन्द्र हिमवान्जी विलज्जित होगये और मनमेंही इस वचनको बोलतेभये ॥ ५७ ॥ कि महल या देवमन्दिर व ग्रामके भीतरकी गलियां व प्राकार (रक़बा) व घर व बाहरके फाटक विचित्र किवांड़े और

कलशोज्ज्वलदिङ्मुखाम् ॥ जयन्तीवैजयन्तीनांनिकरैस्त्रिदिवस्थलीम् ॥ ५५ ॥ महासिद्ध्यष्टकस्यापिक्रीडाभवनमद्भुतम् ॥ जितकल्पद्रुमवनांवनैःसर्वफलावनैः ॥ ५६ ॥ इतिकाशींसमृद्धिंसविलोक्याभूद्विलज्जितः ॥ उवाचचमनस्येवभूधरेन्द्रइदंवचः ॥ ५७ ॥ प्रासादेषुप्रतोलीषुप्राकारेषुगृहेषुच ॥ गोपुरेषुविचित्रेषुकपाटेषुतटेष्वपि ॥ ५८ ॥ मणिमाणिक्यरत्नानामुच्छलच्चारुरोचिषाम् ॥ ज्योतिर्जालैर्जटिलितंयथेदमवलोक्यते ॥ ५९ ॥ द्यावाभूम्योरन्तरालन्तथेतिसमवैम्यहम् ॥ ईदृक्सम्पत्तिसंभारःकुबेरस्यापिनोगृहे ॥ ६० ॥ अपिवैकुण्ठभुवनेनेतरस्येहकाकथा ॥ इतियावद्गिरीन्द्रोसौसंभावयतिचेतसि ॥ ६१ ॥ तावत्कार्पटिकःकश्चित्तल्लोचनपथङ्गतः ॥ आहूयबहुमानन्तमपृच्छच्चाचलेश्वरः ॥ ६२ ॥ हिमवानुवाच ॥ हंहोकार्पटिकश्रेष्ठअध्यास्स्वैतदिहासनम् ॥ स्वपुरोदन्तमाख्याहिकिमपूर्वमिहाऽध्वग ॥ ६३ ॥ कोत्रसंप्रत्यधिष्ठाता

ऊंचेदेश अथवा नदियों के किनारे भी इत्यादि सबोंमें ॥ ५८ ॥ जगमगातीहुई सुन्दर ज्योतिवाले मणिमाणिक्य रत्नोंके ज्योतिजालों से जटित जैसे यह देखपड़ता है ५९ ॥ जोकि द्यावा भूमिका भीतर है वैसेही मैं ऐसा समझताहूं कि इसके समान सम्पत्ति का संभार (समूह) कुबेरके भी घर में नहीं है ॥ ६० ॥ और सम्भावना कीजाती है कि वैकुण्ठलोक में भी नहीं है तो अन्यकी क्या कथाहै इसभांति जबतक पर्वतेन्द्रने मनमें सम्भावना किया ॥ ६१ ॥ तबतक कोई लालेवस्त्रवाला शूद्र उनकी आंखोंकी गली में प्राप्तहुवा उसको बुलाकर पर्वतेश्वरने बहुतआदर पूर्वकपूंछा ॥ ६२ ॥ श्रीहिमवान्जी बोले कि, हे पथिक, कार्पटिक श्रेष्ठ ! तुम यहां इसआसनमें बैठो व अपने पुर

का वृत्तान्त कहो कि यहां क्या अपूर्व है ॥ ६३ ॥ इस समय यहां कौन अधिष्ठाता है व उस स्वामीका क्या कर्म्महै जो तुम जानतेहो तो मेरे आगे यहां उस सबको कहो ॥ ६४ ॥ हेमुने ! उन पर्वतराजका वचन सुनकर उस कार्पटिकने भी भलीभांति कहने के लिये प्रारम्भकिया ॥ ६५ ॥ कार्प्पटिक बोला कि, हे मानदायक, राजेन्द्र ! जिसके प्रति मैं तुमसे पूंछागयाहूं उस सम्पूर्ण को कहताहूं तुम सुनो कि पांचही छः दिन बीते हैं ॥ ६६ ॥ कि दिवोदास राजा स्वर्ग को गया है और पार्वती के पति विश्वनाथजी सुन्दर मन्दर पर्वतसे भलीभांति यहां आये हैं ॥ ६७ ॥ हेविभो ! जो जगत् के अधिष्ठाता हैं वह यहां स्वामी है वह सबके नायक सब कुछदायक सर्वगत

किमधिष्ठातृचेष्टितम् ॥ यदिजानासितत्सर्वमिहाचक्ष्वममाग्रतः ॥६४॥ सोपिकार्पटिकस्तस्यगिरिराजस्यभाषितम् ॥ समाकर्ण्यसमाचष्टुंमुनेसमुपचक्रमे ॥ ६५ ॥ कार्पटिकउवाच ॥ आचक्षेशृणुराजेन्द्रयत्पृष्टोस्मित्वयाखिलम् ॥ अहानिपञ्चषाण्येवव्यतिक्रान्तानिमानद ॥ ६६ ॥ समायातेजगन्नाथेपर्वतेन्द्रसुतापतौ ॥ सुन्दरान्मन्दरादद्रेर्दिवोदासेगतेदिवि ॥ ६७ ॥ योवैजगदधिष्ठातासोधिष्ठातात्रसर्वगः ॥ सर्वदृक्सर्वदःशर्वःकथंनज्ञायतेविभो ॥ ६८ ॥ मन्येदृषत्स्वरूपोसिदृषदोपिकठोरधीः ॥ यतोविश्वेश्वरंकाश्यांनवेत्सिगिरिजापतिम् ॥ ६९ ॥ स्वभावकठिनात्मापिसवरंहिमवान्गिरिः ॥ प्राणाधिकसुतादानाद्योधिनोद्विश्वनायकम् ॥७०॥ बिभ्रत्सहजकाठिन्यञ्जातोगौरीगुरुर्गुरुः ॥ शम्भुंप्रपूज्यसुतयास्रजाविश्वगुरोरपि॥७१॥चेष्टितन्तस्यकोवेदवेदवेद्यस्यचेशितुः॥ मनागितिचजानेहंतच्चेष्टितमिदंजगत् ॥७२॥ अधिष्ठातामया

शिवजी तुमसे क्यों नहीं जाने जाते हैं ॥ ६८ ॥ इससे मैं ऐसा मानताहूं कि तुम पत्थर रूपहो बरन् पत्थर से भी अधिक कठोर बुद्धिवाले हो जिससे काशीमें पार्वती के पति श्री विश्वनाथजी को नहीं जानतेहो ॥ ६९ ॥ किंतु स्वभावसे कठिन आत्मा (देह या मन) वाला वह हिमवान् पर्वत श्रेष्ठ है जिसने प्राणों से अधिक प्यारी कुमारी देने से विश्वनाथजी को सन्तुष्ट किया है ॥ ७० ॥ और वह सहज कठिनता को धारता हुआ पार्वतीका पिता हिमवान् गिरि ब्रह्माजी के शिरमें धारने योग्य माला के साथ पुत्री से शंकरजी की पूजाकर सबसे श्रेष्ठ होगया ॥ ७१ ॥ उन वेदों से जानने योग्य परमेश्वर शिवजीका कर्म कौन जानताहै मैं ऐसा कुछ जानताहूं कि यह जगत

उनका व्यापारहै ॥ ७२ ॥ मैंने अधिष्ठाता और अधिष्ठाता का कर्म कहा और तुमने जो अपूर्व पूंछा उसको कहताहूं तुम सुनो ॥ ७३ ॥ इस समय पर्वत राजकुमारी सहायवाले वह शिवजी काशीको प्राप्त होकर शुभ ज्येष्ठेश्वर स्थानमें टिके हैं ॥ ७४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, जबजब वह पथिक पार्वती के कोमल नाम के अक्षर अमृतको प्रकट करता था तबतब पर्वतेन्द्र हिमवान् आनन्दित होते थे ॥ ७५ ॥ हे कुंभ संभव ! जिसने इस पृथिवी तलमें उमा (पार्वती) का नाम अमृत पिया वह फिर कभी माताका दूध नहीं पीताहै याने मुक्त होजाताहै ॥ ७६ ॥ हे द्विज ! जोकि उमा ऐसे दो अक्षर मन्त्रको निरन्तर जपे उस पापकर्ता की भी चित्रगुप्त सुध न

ख्यातस्तथाधिष्ठातृचेष्टितम् ॥ अपूर्वंयत्त्वयापृष्टन्तदाख्यामितच्छृणु ॥ ७३ ॥ शुभेज्येष्ठेश्वरस्थानेसांप्रतंसउमापतिः ॥ काशींप्राप्यमुदातिष्ठेद्गिरिराजाङ्गजासखः ॥ ७४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ यदायदासगिरिजामृदुनामाक्षरामृतम् ॥ आविष्करोतिपथिकोऽद्रीन्द्रोहृष्येत्तदातदा ॥ ७५ ॥ उमानामामृतम्पीतंयेनेहजगतीतले ॥ नजातुजननीस्तन्यंसपिबेत्कुम्भसम्भव ॥ ७६ ॥ उमेतिद्व्यक्षरंमन्त्रंयोऽहर्निशमनुस्मरेत् ॥ नस्मरेच्चित्रगुप्तस्तंकृतपापमपिद्विज ॥७७॥ पुनःशुश्राव हिमवान्हृष्टःकार्पटिकोदितम् ॥ कार्पटिकउवाच ॥ राजन्विश्वेश्वरार्थेयःप्रासादोविश्वकर्मणा ॥ ७८ ॥ निर्मीयतेसुनिर्माणोजन्मिनिर्वाणदायिनः ॥ तदपूर्वंनकर्णाभ्यामप्याकर्णितवानहम् ॥ ७९ ॥ यत्रातिमित्रतेजोभिःशलाकाभिःसमन्ततः ॥ मणिमाणिक्यरत्नानांप्रासादेभित्तयःकृताः ॥ ८० ॥ यत्रसन्तिशतंस्तम्भाभास्वन्तोद्वादशोत्तराः ॥ एकैकम्भुवनन्धर्तुमष्टाष्टावितिकल्पिताः ॥८१॥ चतुर्दशसुयाशोभाविष्टपेषुसमन्ततः ॥ तस्मिन्विमानेसास्तीहशतकोटिगुणोत्तरा ॥८२॥

करे ॥ ७७ ॥ फिर हिमिवान्ने आनंदित होकर कार्प्पटिकका कहा हुआ वचन सुना कार्पटिक बोला कि हे राजन् ! श्रीविश्वेश्वर के अर्थ जो प्रासाद (महल) विश्वकर्म्मा से ॥ ७८ ॥ बनाया जाताहै वह अच्छी बनावटवाला व देहधारियों को मुक्ति देनेवाले शिवजीका प्यारा और अपूर्व है उससे अपूर्व को मैंने कान से नहीं सुना है ॥ ७९ ॥ जिस प्रासाद में सूर्य्य के तेजसे अधिक जगमगाती हुई शलाकाओं से सब ओर मणिमाणिक्य और अनेक रत्नोंकी भीती बनाई गई है ॥ ८० ॥ व जिसमें बारह अधिक एक सौ जगमगातेहुये खम्भाहैं क्योंकि चौदह लोकों में से एक एक लोक धारने को आठ आठ कल्पित किये गये हैं ॥ ८१ ॥ व जो चौदहो लोकों में

सब ओर शोभाहै वह उस विमान में सैकड़ों करोड़ गुणा अधिकहै ॥ ८२ ॥ व जे चंद्रकांत माणियोंके खम्भोंकी आधार शिलायें हैं वे उनकी ज्योति धारनेवाली व चित्र रत्न मई खंभों से दबी हैं ॥ ८३ ॥ व जिसमें पद्मराग, इन्द्र नील आदि मणियों की सुन्दरी पुतलियां रत्नों के दीपों से रातोदिन नीराजन करती हैं ॥ ८४ ॥ व चमकते स्फटिकों से बने सचीकन कमलाकार शिलातलमें सब ओर से विचित्र अनेक रत्नोंके रूप ॥ ८५ ॥ जे कि लाले, पीले, मजीठके रंगवाले नीले व कबुले वर्णों से विशेषताके साथ जड़ेगये हैं वे चित्रकर्ता के धरे हुये चित्रों के समान जिसमें सोहते हैं ॥ ८६ ॥ व अविमुक्त नाम अपने क्षेत्रके बीच जिस मंदिर में दृष्टि की बांधनेवाली माणिक्य

चन्द्रकान्तमणीनाञ्चस्तम्भाधारशिलाश्रयाः ॥ चित्ररत्नमयैःस्तम्भैःस्तम्भितास्तत्प्रभाभराः ॥ ८३ ॥ पद्मरागेन्द्रनीलानांशालीनाःशालभञ्जिकाः॥नीराजयन्त्यहोरात्रंयत्ररत्नप्रदीपकैः ॥८४॥ स्फुरत्स्फटिकनिर्माणश्लक्ष्णपद्मशिलातले॥ अनेकरत्नरूपाणिविचित्राणिसमन्ततः ॥ ८५ ॥ आरक्तपीतमञ्जिष्ठनीलकिर्मीरवर्णकैः ॥ विन्यस्तानिविभासन्तेचित्रे चित्रकृतायतः ॥ ८६ ॥ दृक्पिच्छिलाविलोक्यन्तेमाणिक्यस्तम्भराजयः ॥ यतोऽविमुक्तेस्वक्षेत्रेमोक्षलक्ष्म्यंकुराइव ॥ ८७ ॥ रत्नाकरेभ्यःसर्वेभ्योगणारत्नोच्चयान्बहून् ॥ राशींश्चक्रुःसमानीययत्राद्रिशिखरोपमान् ॥ ८८ ॥ यत्रपातालतलतोनागानाङ्कोशवेश्मतः ॥ गणैर्मणिगणाःसर्वेसमाहृत्यगिरीकृताः ॥८९॥ शिवभक्तःस्वयंयत्रपौलस्त्यःस्वद्रिकूटतः ॥ कोटिहाटककूटानिआनयामासराक्षसैः ॥ ९० ॥ प्रासादनिर्मितिंश्रुत्वाभक्ताद्वीपान्तरस्थिताः ॥ माणिक्यानिसमाजह्रुर्यथासंख्यान्यहोनृप ॥ ९१ ॥ चिन्तामणिःस्वयंयत्रकर्मणेविश्वकर्मणे ॥ विश्राणयेदहोरात्रंविचित्रांश्चिन्तितान्मणी

खम्भों की पक्तियां मोक्ष लक्ष्मियों के अंकुरों की नाई देखी जाती हैं ॥ ८७ ॥ व जहां गणोंने सब समुद्रों से या रत्नों की खानियों से बहुते रत्न समूहों को लाकर पर्वत शिखरों के समान राशि कर दियाहै ॥ ८८ ॥ व जहां गणोंने पाताल तलकेवासी नागों के कोशस्थान से भलीभांति हरकर मणिसमूहोंका पर्वत कियाहै ॥ ८९ ॥ व जहां शिवजी के भक्त कुबेरने आपही अपने राक्षसों के द्वारा अच्छे पर्वतों के शिखरों से करोड़ों सोनेकी राशियों को मंगाया है ॥ ९० ॥ हेराजन्! अन्यद्वीपों के वासी भक्त लोग काशी में मंडपका बनाना सुनकर यथावत् असंख्य माणिक्य ले आयेहैं ॥ ९१ ॥ व जहां चिंतामणि आपही कर्म के लिये विश्वकर्माको दिनोरात विचित्र विचारीहुई

मणियों को देती है ॥ ९२ ॥ और जहां कल्पवृक्ष व भक्तिसमेत जन नित्यही बहुती अनेक रंगकी पताकाओं को बनाते हैं ॥ ९३ ॥ व जहां दही दूध ऊखरस घृत और सहत के समुद्र पञ्चामृतों के कलशोंसे दिनोंदिन निरंतर नहवातेहैं ॥ ९४ ॥ व जहां कामधेनु आपही भक्ति से अपने दूधरूप सहत की धारासे लिंगरूपी विश्वनाथजी को नित्यही स्नान कराती है ॥ ९५ ॥ व मलयाचल जिन विश्वनाथजी को चंदन के रसों से सेवता है और कपूर उपजानेवाली केला भक्ति समेत कपूर समूहों से सेवाकरती है ॥ ९६ ॥ हे कठोर चित्त ! जिस शंकर के स्थान में प्रतिदिन इत्यादि अपूर्व हैं उन उमाकांत को तुम कैसे नहीं जानतेहो ॥ ९७ ॥ हे कुंभसम्भव ! इसभांति उन

न् ॥ ९२ ॥ नानावर्णपताकाश्चयत्रकल्पमहीरुहः ॥ अनल्पाःकल्पयन्त्येवनित्यम्भक्तिसमन्विताः ॥ ९३ ॥ अब्धयोयत्र सततंदधिक्षीरेक्षुसर्पिषाम् ॥ पञ्चामृतानाङ्कलशैःस्नपयन्तिदिनेदिने ॥ ९४ ॥ यत्रकामदुघानित्यंस्नपयेन्मधुधारया ॥ स्वदुग्धयास्वयम्भक्त्याविश्वेशंलिङ्गरूपिणम् ॥ ९५ ॥ गन्धसाररसैर्यञ्चसेवतेमलयाचलः ॥ कर्पूररम्भाकर्पूरपूरैर्भक्त्यानिषेवते ॥ ९६ ॥ इत्याद्यपूर्वंयत्रास्तिप्रत्यहंशङ्करालये॥कथन्तन्त्वमुमाकान्तंनवेत्सिकठिनाशय ॥ ९७ ॥ इतितस्य समृद्धिन्तांदृष्ट्वाजामातुरद्रिराट् ॥ त्रपयापरिभूतोभून्नितरांकुम्भसम्भव ॥ ९८ ॥ तस्मैकार्पटिकायाथसदत्त्वापारितोषिकम् ॥ पुनश्चिन्तापरोजातोऽद्रिराट्कार्पटिकेगते ॥ ९९ ॥ उवाचेतिमनस्येवविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ अहोभद्रमिदंजातंयत्त्वयाश्राविशर्मभाक् ॥ १०० ॥ यावत्सम्पत्तिसंभारःश्रूयतेदृश्यतेत्रवै ॥ जामातुरत्रसदनेलीलात्रिजगतीपतेः ॥ १ ॥ ततःप्राभृतकस्तुच्छोनितरांप्रतिभातिमे ॥ कन्यार्थंयोमयानीतोजामातुःपरितोषकृत् ॥ २ ॥ अहंमन्येतथैवासौय

यामाता (दमाद) की उस समृद्धि को देखकर पर्वतराज हिमवान्जी लाजसे परिभूत होगये ॥ ९८ ॥ तदनन्तर वह पर्वतराज कार्पटिक के लिये पारितोषिक याने जो प्रसन्नता से दियाजाता है उसको देकर व उस कार्पटिक के जातेही फिर चिंता में परायण हुये ॥ ९९ ॥ और विस्मय से फूली हुई आंखोंवाले वह मनमें कहने लगे कि अहो यह महामंगल हुवा जो कि तुमने शिव को सुखसेवी सुना है ॥ १०० ॥ इस लोक में जितना सम्पत्तिका समूह सुनाजाता है वह लीलासे रचित त्रिलोक के स्वामी मेरे जमाई के इस घरमें निश्चय से देखा जाता है ॥ १ ॥ उससे मैंने कन्या के अर्थ यामाता को परितोष करनेवाला जो उपस्कर (भेंट) आना है वह मुझको बहुतही

तुच्छ (थोड़ा) जान पडता है ॥ २ ॥ मैं मानतारहूं कि जैसे मैंने पहले देखा वैसेही वह होवेंगे कि वूढ़े बैलमात्र के धनी व सब कर्मों से विमुख हैं ॥ ३ ॥ न इनको कोई जाने न इनका कोई कभी वंश (गोत्र) है व जिनका नामभी नहीं है और किस देशके हैं ऐसा नहीं जाने जाते हैं ॥ ४ ॥ व किस वृत्तिवाले व किस आचारवाले हैं किंतु नाममात्र से ईश्वर हैं और जिनके ऐश्वर्य्य के सूचनेवाली कोई चीज नहीं दिखाती है ॥ ५ ॥ परन्तु यह आश्चर्य्य है कि, वही यह गरीबों को भी मुक्ति सम्पत्ति देते हैं और सम्मुख या प्रसन्न हुये वह सब कर्मों को फल समेत करते हैं ॥ ६ ॥ जो कि वेदोंसेही जानने योग्य हैं व सम्पूर्ण जगत जिनका सन्तान याने विस्तार किया

थादर्शिमयापुरा ॥ वृद्धोक्षमात्रसम्पत्तिःसर्वकर्मपराङ्मुखः ॥ ३ ॥ नैनङ्कोपिविजानीयान्नान्वयोस्यकदाचन ॥ नामापिय स्यनैकश्चकिंदेशीयश्चनोह्यते ॥४॥ किंवृत्तश्चकिमाचारोनाममात्रेणचेश्वरः ॥ ऐश्वर्यसूचकंवस्तुयस्यकिञ्चिन्नलक्ष्यते ॥ ५ ॥ सोसौनिर्वाणसम्पत्तिरङ्कायापिददात्यहो ॥ सुमुखःसर्वकर्माणिफलवन्तिकरोतिसः ॥ ६ ॥ वेदवेद्योहिसर्वज्ञोयत्स न्तानोऽखिलंजगत ॥ यंनकोपिहिवेदादौवेदवेद्यःसएषवै ॥ ७ ॥ योनभिज्ञःसदाज्ञातःससर्वज्ञोयमेवहि ॥ यस्यैकमपिनो नामपुंसाज्ञेयंनकेनचित् ॥ ८ ॥ सर्वेषांसर्वनामानियस्यनामानिनिश्चितम् ॥ सोसौहिसर्वदेशीयःसर्वेभ्यःसर्वसिद्धिदः ॥ ९ ॥ यस्यदेशोनविदितोयस्तुवृत्तिपराङ्मुखः ॥ आचारहीनमिवयंपुराऽपश्यङ्कठोरधीः ॥ १० ॥ श्रुतिस्मृतीयतःसर्वमा चारंवित्तएवहि ॥ नाममात्रेणनियतंयमज्ञासिषमीश्वरम् ॥ ११ ॥ साक्षादीश्वरएवैषसोन्येष्वैश्वर्यसूचकः ॥ अपिसर्वेषु

हुवा है व जिनको पहले कोई या ब्रह्माभी नहीं जानते हैं वहही यह वेदों से जाननीय हैं ॥ ७ ॥ व जो कि सदा अजान जाने जातेथे वहही यह सर्वज्ञ हैं व जिनका एक नामभी किसी पुरुष से जानने योग्य नहीं है ॥ ८ ॥ व यह निश्चित है कि सब जनों के सब नाम जिनकेही नाम हैं वहही यह सब देशो में रहनेवाले व सबों के लिये सब सिद्धिदायक हैं ॥ ९ ॥ जिनका देश नहीं जानागया है व जो कि वृत्तियों से विमुख हैं और कठोरबुद्धिवाला मैं जिनको पहले आचार हीन के समान देखता रहा हूँ ॥ १० ॥ किंतु श्रुतियां व स्मृतियां जिनसेही सब आचार को जानती हैं व मैं जिनको नियम समेत नाममात्रसे ईश्वर जानताथा ॥ ११ ॥ वहही यह साक्षात् ईश्वर व अन्य

जनों में ऐश्वर्य्य के सूचक व सबगुणों के आधार व तीनों गुणों से परे और कार्य्य कारण रूप हैं ॥ १२ ॥ व यहां अर्वाचीन याने अबके हुयेसे भी यह परसेपर पुराचीन हैं मैं तो केवल पर्वतों काही नाथहूं और उमा के पति विश्वंभरे के नाथहैं ॥ १३ ॥ मैं थोड़ी संपत्तिवालाहूं और यह श्रीविश्वनाथजी अतुलधनवान्हैं व मेरा लाया उपस्कर बहुतही कमहै उससे इससमय इनका दर्शन ॥ १४ ॥ न करूंगा अनन्तर लौटकर कभी दर्शन करूंगा इसभांति सायंकाल अपने मनमें भलीभांति धारणकर उन पर्वतेश्वरने ॥ १५ ॥ पर्वतसम्बन्धी बड़े बलवान् सब अनुचरोंको बुलाकर यह वचन आज्ञा दिया कि अधिकबलवान् तुम सब जने ॥ १६ ॥ मेरा एक आयसु करो कि जब

णाधारोगुणातीतःपरापरः ॥ १२ ॥ अर्वाचीनइहाप्येषपराचीनःपरात्परः ॥ भूधराणामहंनाथोविश्वनाथउमापतिः ॥ १३ ॥ अहंप्रमितसम्पत्तिरप्रमेयधनोह्यसौ ॥ तुच्छप्राभृतकस्तस्मान्नेदानीमस्यदर्शनम् ॥ १४ ॥ करिष्येथकरिष्यामिव्यावृत्त्यागत्यकर्हिचित् ॥ संप्रधार्येतिमनसिसायंसचगिरीश्वरः ॥ १५ ॥ आहूयसर्वाननुगान्पार्वतीयान्महाबलान् ॥ आदिष्टवानिदंवाक्यंसर्वेयूयंबलाधिकाः ॥ १६ ॥ कुर्वन्त्वेकंममादेशंयावन्नोद्यतिभानुमान् ॥ तावच्छिवालयश्चैकंविदधत्वत्रसत्वरम् ॥ १७ ॥ यस्मिन्कृतेकृतार्थःस्यामिहलोकेपरत्रच ॥ समागत्येहकाश्यांयःकुर्यादेकंशिवालयम् ॥ १८ ॥ तेनत्रैलोक्यमखिलंसालयंकृतमेवहि ॥ तेनदत्तानिदानानिमहान्तिविधिपूर्वकम् ॥ १९ ॥ सुपर्वणिसुपात्रायसुतीर्थेश्रद्धयाधिकम् ॥ येनस्ववित्तमानेनधर्मोपार्जितवित्ततः ॥ २० ॥ कृतंशम्भोर्महासद्मनतंपद्मात्यजेत्कचित् ॥ तपांसितेनतप्तानिशीर्णपर्णाशनान्यपि ॥ २१ ॥ वाराणसींसमासाद्ययेनाकारिशिवालयः ॥ अशेषाःसुविशेषाढ्याइष्टास्तेनमहाम

तक सूर्य्य न उगें तबतक यहां एक शिवालयको बहुत शीघ्रही बनादो ॥ १७ ॥ जिसके कियेहुयेही मैं इस व उस लोकमें भी कृतार्थ होऊं क्योंकि जो कोई इस काशी में भलीभांति आकर एक शिवालयको बनवाताहै ॥ १८ ॥ उससे सम्पूर्ण त्रिलोकभी स्थान समेत कियाहुआही होताहै व उसने विधिपूर्वक बड़े दानोंको दिया ॥ १९ ॥ व सूर्य्यग्रहण समय सुतीर्थ में सुपात्र के लिये श्रद्धासे अधिक दानोंको किया व जिसने धर्म्म से कमायेहुये धनसे अपने ऐश्वर्य्यके अनुसार ॥ २० ॥ शङ्करजी का स्थान किया उसको लक्ष्मी कहीं नहीं त्यागती है व उससे गिरेपड़े सूखे पत्ते भोजनवाली तपस्यायें भी तपीगई हैं ॥ २१ ॥ कि जिसने काशी में भलीभांति प्राप्तहोकर

शिवालयको बनवायाहै व उसने बहुत विशेषतासमेत सम्पूर्ण यज्ञोंका पूजनकिया॥२२॥ कि जिसने आनन्दवनमें महादेवजीका मन्दिर बनवाया इसभांति उन हिमवान् का आयसु सुनकर तदनन्तर अनुगामी सेवकोंने ॥ २३ ॥ जबतक रात न बीती तबतक श्रेष्ठ शिवालयको बनाकर तैयार करदिया व पर्व्वतराजने शैलेश्वर नाम लिङ्गकी प्रतिष्ठाकिया जोकि लिङ्ग चन्द्रकांतमणिकाथा व जगमगातीहुई ज्योतिसे मण्डपको उजला करताथा ॥ २४ ॥ और पर्वतराजने उस मन्दिर में सब पर्वतों से भी अपनी अधिक उन्नतिको कहतीहुई अच्छे अक्षरपंक्तिवाली प्रशस्तिको लिखाया ॥ २५ ॥ तदनन्तर अरुणोदय होतेही पंचनद कुण्डमें स्नानकर कालराजके नमस्कारकर व

खाः ॥२२॥ आनन्दकाननेयेनदेवदेवालयःकृतः ॥ इतितस्यसमादेशंसमाकर्ण्यानुगास्ततः ॥ २३ ॥ चक्रुर्देवालयंश्रेष्ठं यावद्व्युष्टानयामिनी ॥ तावच्छैलेश्वरंलिङ्गंशैलेशेनप्रतिष्ठितम् ॥ चन्द्रकान्तमणेश्चञ्चत्कान्तिश्वेतितमण्डपम् ॥ २४ ॥ अलेखयत्प्रशस्तिञ्चप्रशस्ताक्षरमालिनीम् ॥ व्याचक्षाणांनिजांसर्वगोत्रेभ्योप्यधिकोन्नतिम् ॥ २५ ॥ ततोऽरुणोदये जातेस्नात्वापञ्चनदेह्रदे ॥ शैलराजःकालराजंनमस्कृत्यसमर्च्यच ॥ २६ ॥ तत्रराशिंसमुत्सृज्यपरितस्त्वरितोययौ ॥ पार्वतीयैरनुगतःसर्वैरपिनिजालयम् ॥ २७ ॥ ततःप्रातःसमालोक्यगणौहुण्डनमुण्डनौ ॥हृष्टौदेवालयंरम्यंवरणाया स्तटेशुभे ॥ २८ ॥ अदृष्टपूर्वंदेवायनिवेदयितुमागतौ ॥ तौतुदृष्ट्वामहादेवमुमादर्शितदर्पणम् ॥ २९ ॥ प्रणम्यदण्डवद् भूमौकृताञ्जलिपुटौगणौ ॥ कृताभ्यनुज्ञौभ्रूक्षेपाद्विज्ञप्तिमथचक्रतुः ॥ ३० ॥ देवदेवनजानीवःकेनचिद्दृढभक्तिना ॥ अ

भलीभांति पूजाकर पर्वतराजजी ॥ २६ ॥ वहां सब ओरसे रत्नों की राशिको छोंडकर सब पर्वतपुत्रों से भी अनुगत व वेगवान् होकर अपने घर को चले गये ॥ २७ ॥ उसके बाद प्रातःकाल वरणानदी के मंगलमय किनारेपर रमणीक शिवालय को देख कर हुंडन मुंडन दोनों गण आनंदित हुये ॥ २८ ॥ व जो कि पहले नहीं देखागया था उसको महादेवजी से बताने के लिये आये हुये वे दोनों पार्वतीजी से दर्प्पण दिखाये हुये शिवजी के ॥ २९ ॥ भूमिमें दण्डवत् प्रणामकर फिर भौंह चलाने की संज्ञा से महादेवजी से कीहुई आज्ञावाले हाथ जोड़े हुये गण विज्ञापना करते भये ॥ ३० ॥ कि हे देवों के देव! हम नहीं जानते हैं कि किस भारीभक्तने वरणा के तीर में

महामनोहर मन्दिर को बनवाया है ॥ ३१ ॥ हे विभो ! संध्यासमय तक हमने नहीं देखा अभी प्रातःकाल वह देवालय देखागयाहै ऐसा गणोंका कहना सुनकर पार्वती को देखकर शंकरजी ने कहा ॥ ३२ ॥ कि हे पर्वतेन्द्रपुत्रि ! उस देवालय के देखने को हम तुम दोनों जने चलेंगे जो कि सब वृत्तांत के जाननेवाले व सर्वज्ञहैं वह अजान के समान हुये ॥ ३३ ॥ और हे मुने ! ऐसा कहकर पार्वती समेत व गणों से संयुत व देवमन्दिर के देखने को समुत्सुक महेशजी महारथ पर चढ़कर अपने स्थान से निकल चलते भये ॥ ३४ ॥ उसके बाद शिवजी ने वरणा के किनारेपर रात्रिमात्र में बनायेहुये अत्यन्त रम्य रचनावाले देवमन्दिर को देखा ॥ ३५ ॥ अनन्तर

तीवरम्यःप्रासादोनिर्मितोवरणातटे ॥ ३१ ॥ आसायंनैक्षिचावाभ्यांदृष्टोद्यैवप्रगेविभो॥ गणोदितमितीशानोनिशम्याह गिरीन्द्रजाम् ॥ ३२ ॥ विज्ञातसर्ववृत्तान्तःसर्वज्ञोप्यनभिज्ञवत् ॥ अचलेन्द्राङ्गजेयावस्तत्प्रासादविलोकने ॥ ३३ ॥ इत्युक्त्वेशःसगिरिजोनिरगात्सगणोमुने ॥ महास्यन्दनमारुह्यप्रासादन्द्रष्टुमुत्सुकः ॥ ३४ ॥ अथालुलोकेगिरिशःप्रासादंवरणातटे ॥ अतीवरम्यरचनंयामिनीमात्रनिर्मितम् ॥ ३५ ॥ स्यन्दनादवरुह्याथगर्भागारमवीविशत् ॥ ददर्शचमहालिङ्गंचन्द्रकान्तशिलामयम् ॥ ३६ ॥ देदीप्यमानंमहसामोक्षलक्ष्म्यंकुराकृति॥ दृष्टिप्रसादजननंपुनर्जननशातनम्॥ ३७॥ केनेदंस्थापितंलिङ्गंयावज्जिज्ञासतीश्वरः ॥ तावद्ददर्शपुरतःप्रशस्तिकर्तृसूचिकाम् ॥ ३८ ॥ वाचयित्वेवचमनाञ्ज्जनस्यैवमनोजहृत् ॥ उवाचदेवींदिष्ट्येतिप्रेक्षस्वात्मपितुःकृतिम् ॥ ३९ ॥ उमाश्रुत्वेतिसंहृष्टाकदम्बकुसुमश्रियम् ॥ आनन्दां

रथसे उतरकर गर्भागार याने मण्डप के मध्य में प्रवेश किया और चन्द्रकांतमणिमय महालिंग को देखा ॥ ३६ ॥ जो कि ज्योति से जगमगाता हुवा मोक्षलक्ष्मी के अंकुर के आकार व दृष्टि की प्रसन्नता उपजानेवाला और फिर जन्म होने का नाशक है ॥ ३७ ॥ यह लिंग किससे थापागया है इस भांति ईश्वरने जबतक जानने की इच्छा किया तबतक मन्दिर के आगे कर्ताकी सूचन करनेवाली प्रशस्तिको देखा ॥ ३८ ॥ और मनमेंही बांचकर कामहारी क्रीडाकारीने देवीजीसे ऐसा कहा कि मंगल हुवा तुम अपने पिताका करना देखलो ॥ ३९ ॥ ऐसा सुनकर कदम्ब के फूलकी शोभा व आनन्द के अंकुरों की लक्ष्मी के समान रोमावली को अंगमें धारती हुई हर्ष

समेत पार्वती ॥ ४० ॥ देवीने पार्वोंके प्रणामकर महादेवजी से विज्ञापना किया कि हे नाथ! इस लिंगश्रेष्ठ में तुमको दिनोरात निरन्तर टिकना चाहिये ॥ ४१ ॥ व शैलेश्वर नामक महेश्वर रूप इस लिंग के जे भक्तहैं उनको तुम इस लोक व परलोक में भी बड़ीभारी ऋद्धि को देओगे ॥ ४२ ॥ वैसेहीहो ऐसा कहकर महादेवजी ने उन पार्वतीजी से फिर कहा कि वरणानदी में स्नान किये हुये जिन जनों से शैलेश्वर लिंग भलीभांति पूजित होवेगा ॥ ४३ ॥ व आनन्द से पितरोंका तर्प्पणकर और अपनी शक्ति के अनुसार दानको देकर उनलोगोंका फिर इस संसार मार्ग में लौटना नहीं होवेगा ॥ ४४ ॥ हे शुभे! मैं शैलेश्वर महालिंग मे नित्यही टिकूंगा व इस लिंग के

कुरलक्ष्मीवदङ्गेषुपरिबिभ्रती ॥ ४० ॥ ततोऽयजिङ्गपद्देवन्देवीपादौप्रणम्यच ॥ अस्मिँल्लिङ्गवरेनाथत्वयास्थेयमहर्निशम् ॥ ४१ ॥ अस्यलिङ्गस्ययेभक्ताःशैलेशस्यमहेशितुः ॥ तेभ्यस्त्वंमहतीमृद्धिन्दास्यसीहपरत्रच ॥ ४२ ॥ तथेतिदेवउक्तातांपार्वतींपुनरब्रवीत् ॥ वरणायांकृतस्नानैःशैलेशोयैःसमर्चितः ॥४३॥ पितॄन्सन्तर्प्यचमुदादत्त्वादानानिशक्तितः॥ नतेषांपुनरावृत्तिरत्रसंसारवर्त्मनि ॥ ४४ ॥ शैलेश्वरेमहालिङ्गेनित्यंस्थास्याम्यहंशुभे ॥ प्रदास्यामिपरांमुक्तिमेतल्लिङ्गार्चकेजने ॥ ४५ ॥ शैलेश्वरंयेद्रक्ष्यन्तिवरणायाःसुरोधसि ॥ तेषांकाश्यांनिवसतान्दुःखंनाभिभविष्यति ॥ ४६ ॥ उमयापिवरोदत्तस्तत्रलिङ्गेघटोद्भव॥ शैलेश्वरस्ययेभक्तास्तेमेपुत्रानसंशयः ॥४७॥ स्कन्दउवाच ॥ इतिशैलेश्वरंलिङ्गंकथितन्तेमहामुने ॥ इदानीङ्कथयिष्यामिरत्नेश्वरसमुद्भवम् ॥४८॥ श्रुत्वाशैलेशमाहात्म्यंश्रद्धयापरयानरः ॥ पापकञ्चुकमुत्सृज्यशिवलोकमवाप्नुयात् ॥४९॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेशैलेशादिलिङ्गनिर्णयोनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

पूजक जनको उत्तम मुक्ति दूंगा ॥ ४५ ॥ व जे वरणा के किनारे पर शैलेश्वर को देखेंगे उन काशीवासी जनोंको दुःख न होवेगा ॥ ४६ ॥ हे अगस्त्यजी! उस लिंग में पार्वतीजी से भी वर दियागया कि जे शैलेश्वर के भक्त होवें वे मेरे पुत्रहैं इसमें संशय नहीं है ॥ ४७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महामुने! मैंने इसभांति शैलेश्वर लिंग को तुमसे कहा अब रत्नेश्वर की उत्पत्ति को कहूंगा ॥ ४८ ॥ श्रेष्ठ श्रद्धा समेत मनुष्य शैलेश्वरका माहात्म्य सुनकर पाप केंचुल को छोड़कर शिवलोक को प्राप्त होवे है ॥ ४९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेशैलेशादिलिङ्गनिर्णयोनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । सरसठवें अध्याय में रत्नेश्वर माहात्म्य । मंगलमय वर्णन बहुरि उनकी जनि याथात्म्य ॥ श्रीअगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुख ! जो महालिंग काशीमें रत्नभूत कहा जाता है उस रत्नेश्वरकी भलीभांति उत्पत्ति कहो ॥ १ ॥ हे गौरीहृदयनन्दन ! इस लिंग की क्या महिमा है व यह किससे थापागयाहै इसको तुम विस्तार से कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! जैसे उस लिंगका प्रकट होना भूमि में भया है वैसेही मैं रत्नेश्वरका माहात्म्य तुमसे कहूंगा ॥ ३ ॥ हे मुने ! सुना हुवा जिस लिंग का नामभी तीन जन्मों के बटोरे हुये पापको नशावे है उसका प्रकट होना कहताहूं ॥ ४ ॥ आश्चर्य्य है कि पर्वतराज हिमवान्ने कालभैरव के उत्तर ओर में जिन रत्नो

अगस्त्यउवाच ॥ रत्नेश्वरसमुत्पत्तिङ्कथयस्वषडानन ॥ रत्नभूतंमहालिङ्गंयत्काश्यांपरिवर्ण्यते ॥ १ ॥ कोस्यलिङ्गस्यमहिमाकेनैतच्चप्रतिष्ठितम् ॥ एवंविस्तरतोब्रूहिगौरीहृदयनन्दन ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ रत्नेश्वरस्यमाहात्म्यंकथयिष्यामितेमुने ॥ यथाचतस्यलिङ्गस्यप्रादुर्भावोऽभवद्भुवि ॥३॥ श्रुतंनामापिलिङ्गस्ययस्यजन्मत्रयार्जितम् ॥ वृजिनन्नाशयेत्तस्यप्रादुर्भावंब्रुवेमुने ॥ ४ ॥ शैलराजेनरत्नानियानिपुञ्जीकृतान्यहो ॥ उत्तरेकालराजस्यतानितस्यगिरेर्वृषात् ॥५॥ सर्वरत्नमयंलिङ्गंजातन्तत्सुकृतात्मनः ॥ शक्रचापसमच्छायंसर्वरत्नद्युतिप्रभम् ॥ ६ ॥ तल्लिङ्गदर्शनादेवज्ञानरत्नमवाप्यते ॥ शैलेश्वरंसमालोक्यशिवौतत्रसमागतौ ॥ ७॥ यत्ररत्नमयंलिङ्गमाविर्भूतंस्वयंमुने ॥ तस्यस्फुरत्प्रभाजालैस्ततमम्बरमण्डलम् ॥ ८ ॥ तत्रदृष्ट्वाशुभंलिङ्गंसर्वरत्नसमुद्भवम् ॥ भवान्यदृष्टपूर्वाहिपरिपप्रच्छशङ्करम् ॥ ९ ॥ देवदेवजगन्नाथसर्वभक्ताभयप्रद ॥ कुतस्त्यमेतल्लिङ्गंहिसप्तपातालमूलवत् ॥ १० ॥ ज्वालाजटिलिताकाशंप्रभाभासितदिङ्मुखम् ॥

की राशि को रचदियाथा वे उन पर्वतेश के धर्म्म से ॥ ५ ॥ पुण्यात्माका वह सब रत्नमय लिंग होगया जो कि इन्द्रधनु के समान शोभावाला व सब रत्नों की ज्योति से जगमगाता था ॥ ६ ॥ उस लिंग के दर्शन सेही ज्ञानरत्न प्राप्त होता है और शैलेश्वर को देखकर पार्वती समेत शिवजी वहां भलीभांति आगये ॥ ७ ॥ कि हे मुने ! जहां रत्नमय लिंग प्रकट हुवा है उसकी जगमगाती हुई ज्योति समूह से आकाशमण्डल व्याप्त है ॥ ८ ॥ व वहां सबरत्नों से उपजे हुये शुभलिंग को देखकर पहले न देखने वाली भवानीने शंकर से पूंछा ॥ ९ ॥ कि हे भक्तों के अभयदायक, जगतों के नायक, देवों के देव ! सातो पाताल तक मूलवाला यह लिंग कहां से भया है ॥ १० ॥ हे

संसारबन्धनविनाशक ! जो कि ज्वालाओं से आकाशको व्याप्त किये हुये व अपनी दीप्ति से दिशाओं के मुखको प्रकाशता है इसका क्या नाम व क्या स्वरूप और क्या प्रभाव है ॥ ११ ॥ हे नाथ ! जिसके दर्शनसेही मेरा मन अत्यन्त आनंदित है व इसमेंही रमताहै इसलिये आप इसको प्रसन्नता से बतावो ॥ १२ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे अपर्णे! याने तपस्यामें पर्णोंकी त्यागनेवाली, पार्वति ! सब तेजों के निधान इस लिंगका उत्तम स्वरूप जो तुमने पूंछा उसको मैं भलीभांति कहताहूं तुम सुनो॥ १३ ॥ हे भामिनि ! तुमको उद्देशकर तुम्हारे पिता पर्वतराज हिमवान्ने यहां महारत्नोंका समूह आना है ॥ १४ ॥ और उस हिमपर्वत से यहां सुकृत से बटोरे हुयेही उन रत्नों

किमाख्यङ्किंस्वरूपञ्चकिंप्रभावम्भवान्तक ॥ ११ ॥ यस्यसंवीक्षणादेवमनोमेतीवहृष्टवत् ॥ इहैवरमतेनाथकथयैतत्प्रसादतः ॥ १२ ॥ देवदेवउवाच ॥ शृणवपर्णेसमाख्यामियत्त्वयाप्टच्छिपार्वति ॥ स्वरूपमेतल्लिङ्गस्यसर्वतेजोनिधेःपरम् ॥ १३ ॥ तवपित्राहिमवतागिरिराजेनभामिनि ॥ त्वामुद्दिश्यमहारत्नसंभारोत्राप्यनायिहि ॥१४॥ अत्रतानिचरत्नानिराशीकृत्यहिमाद्रिणा॥सुकृतोपार्जितान्येवययौस्वसदनंपुनः ॥१५॥ तवार्थेवाममार्थेवाश्रद्धयायत्समर्प्यते॥ काश्यान्तस्यपरीपाकोभवेदीदृग्विधोऽनघे ॥ १६ ॥ लिङ्गंरत्नेश्वराख्यंवैमत्स्वरूपंहिकेवलम् ॥ अस्यप्रभावोहिमहान्वाराणस्यामुमेध्रुवम् ॥ १७ ॥ सर्वेषामिहलिङ्गानांरत्नभूतमिदंपरम् ॥ अतोरत्नेश्वरंनामपरंनिर्वाणरत्नदम् ॥ १८ ॥ अनेनैवसुवर्णेनपित्राराशीकृतेनच ॥ प्रासादमस्यलिङ्गस्यविधापयमहेश्वरि ॥ १९ ॥ लिङ्गप्रासादकरणात्खण्डस्फुटितसंस्कृतेः ॥ लिङ्गस्थापनजंपुण्यंहेलयैवहलभ्यते ॥ २० ॥ तथेतिभगवत्योक्त्वागणाःप्रासादनिर्मितौ ॥ सोमनन्दिप्रभृतयोऽसंख्या

को राशिकर फिर अपने घरको जायागया है ॥ १५ ॥ हे पापहीने, पार्वति ! तुम्हारे अर्थ व हमारे अर्थ जो कुछ काशी में श्रद्धा से सौंपाजाता है उसका फल ऐसाही होता है ॥ १६ ॥ हे उमे ! यह निश्चय है कि जो रत्नेश्वरनामक लिंग केवल मेरा स्वरूप है इससे इसका प्रभाव काशी में बहुतभारी होवे ॥ १७ ॥ और यह यहां सबलिंगों का रत्नभूत व उत्तम या सबसे परे है इससे रत्नेश्वरनामक उत्तम लिंग मुक्तिरत्नका दायक है ॥ १८ ॥ हे महेश्वरि ! तुम अपने पितासे राशि किये हुये इसही सोनेसे इस लिंग का मन्दिर बनवादो ॥ १९ ॥ क्योंकि यहां लिंगोंका शिवालय बनाने व फूटे टूटे मन्दिरोंका संस्कार करने से लिंगस्थापन की पुण्य अनादर के साथ मिलजाती है ॥२० ॥

हे मुने! वैसेहीहो ऐसा कहकर भगवतीने देवमंदिर बनाने के लिये सोमनन्दी आदि असंख्य गणोंको व्यापार में जोड़दिया ॥ २१ ॥ और उन गणोंने पहरभरेमेंही बहुते कौतुकोंसे चित्रित, सुमेरुके शिखरके समान सुवर्णमय मन्दिरका निर्माणकिया ॥ २२ ॥ उस समय प्रासादका बनना देखकर प्रसन्नमुखी देवीजीने गणोंको बहुतही सन्मान व पारितोषिक दिया ॥ २३ ॥ हे महामुने! देवीजीने प्रणामपूर्वक महादेवजी से इस लिंग की महिमाको फिर पूंछा ॥ २४ ॥ और श्रीमहादेवजी बोले कि, हे देवि! यह शुभदायक लिंग अनादिकालसे सिद्धहै परन्तु इस समय तुम्हारे पिताकी पुण्यकी गुरुतासे प्रकटहुवा है ॥२५॥ जोकि इस क्षेत्र के बीच गोप्यों में परम गोप्य अब मनो-

व्यापारितामुने ॥ २१ ॥ गणैश्चकाञ्चनमयोनानाकौतुकचित्रितः ॥ निर्ममेयाममात्रेणप्रासादोमेरुशृङ्गवत् ॥ २२ ॥ देवीप्रहृष्टवदनादृष्ट्वाप्रासादनिर्मितिम् ॥ गणेभ्योऽयतरद्भूरिसंमानंपारितोषिकम् ॥ २३ ॥ पुनश्चदेवीपप्रच्छप्रणिपातपुरःसरम् ॥ महिमानंमहादेवंलिङ्गस्यास्यमहामुने ॥ २४ ॥ देवदेवउवाच ॥ लिङ्गन्त्वनादिसंसिद्धमेतद्देविशुभप्रदम् ॥ आविर्भूतमिदानीन्त्वत्पितुःपुण्यगौरवात् ॥ २५ ॥ गुह्यानांपरमंगुह्यंक्षेत्रेऽस्मिंश्चिन्तितप्रदम् ॥ कलौकलुषबुद्धीनाङ्गोपनीयंप्रयत्नतः ॥ २६ ॥ यथारत्नंगृहेगुप्तंनकैश्चिज्ज्ञायतेपरैः ॥ अविमुक्तेतथालिङ्गंरत्नभूतंगृहेमम ॥ २७ ॥ यानिब्रह्माण्डमध्येत्रसन्तिलिङ्गानिपार्वति ॥ तैरर्चितानिसर्वाणिरत्नेशोयैःसमर्चितः ॥ २८ ॥ प्रमादेनापियैर्गौरिलिङ्गंरत्नेशमर्चितम् ॥ तेभवन्त्येवनियतंसप्तद्वीपेश्वरान्नृपाः ॥ २९ ॥ त्रैलोक्येयानिवस्तूनिरत्नभूतानितानितु ॥ रत्नेश्वरंसमभ्यर्च्यसकृत्प्राप्नोतिमानवः ॥ ३० ॥ पूजयिष्यन्तियेलिङ्गंरत्नेशंकामवर्जिताः ॥ तेसर्वेमद्गणाभूत्वाप्रान्तेद्रक्ष्यन्तिमामिह ॥ ३१ ॥ रु

रथदायक और कलियुगमें पापबुद्धियों में बहुते यत्नसे छिपानेयोग्यहै ॥ २६ ॥ जैसे घरमें रक्षितहुवा रत्न अन्यलोगोंसे नहीं जानाजाताहै वैसेही काशीरूप मेरे घरमें रत्नेश्वरलिंग रत्नभूत है ॥ २७ ॥ हे पार्वति! जिन्होंने रत्नेश्वरकी पूजाकिया उन्होंने इस ब्रह्माण्डके मध्यमें जे लिंगहैं उनकी भलीभांति पूजाकरदिया याने इसके पूजनेसे सब लिंग पूजजाते हैं ॥ २८ ॥ हे गौरि! यह नियमहै कि जिन्होंने प्रमाद से भी रत्नेश्वरकी पूजाकिया वे सातद्वीपोंके नायक नरेश होते हैं ॥ २९ ॥ व मनुष्य एक बारभी रत्नेश्वरकी पूजाकर त्रिलोकमें जो रत्नभूत वस्तुहैं उनको पाताहै ॥ ३० ॥ और जे कामनासे हीन होकर यहां रत्नेश्वर लिंगको पूजेंगे वे सब मरनेकेबाद मेरे गण होकर मुझ

को देखेंगे ॥ ३१ ॥ हे देवि! करोड़रुद्रसूक्तों के जपने से जो फल कहागयाहै वह फल रत्नेश्वरकी भलीभांति पूजासे मिलताहै ॥ ३२ ॥ और लिंगके अनादिकालसे सिद्ध होने में जो वृत्तांत है उस सब पापविनाशक अद्भुत इतिहासको तुमसे कहताहूं ॥३३॥ कि पूर्वकालमें यहां नाट्यकरने में पण्डिता कोई नर्त्तकी (नाचनेवाली) थी उस कलावती ने एकसमय फागुन मासकी शिवरात्रिमें ॥ ३४ ॥ जागरणको प्राप्तहोकर नृत्यकिया व मनोज्ञगीत को गाया और उस वाद्यों की जाननेहारी ने आपही अनेकों बाजोंको बजाया ॥ ३५॥ अनन्तर उस तौर्य्यत्रिक (नाचना, गाना, बजाना) से भी रत्नेश्वर महालिंगको प्रसन्नकर वह नटी अपने चहेहुये या प्यारेदेशको आनन्दसे

द्राणाङ्कोटिजप्येनयत्फलंपरिकीर्तितम् ॥ तत्फलंलभ्यतेदेविरत्नेशस्यसमर्चनात् ॥ ३२ ॥ लिङ्गेचानादिसंसिद्धेयद्वृत्तंत द्ब्रवीमिते ॥ इतिहासंमहाश्चर्यंसर्वपापनिकृन्तनम् ॥ ३३ ॥ पुरेहनर्तकीकाचिदासीन्नाट्यार्थकोविदा ॥ सैकदाफाल्गुनेमासिशिवरात्र्यांकलावती ॥ ३४ ॥ ननर्तजागरंप्राप्यजगौगीतंचपेशलम् ॥ स्वयंचवादयामासनानावाद्यानिवाद्यवित् ॥ ३५ ॥ तेनतौर्यत्रिकेणापिप्रीणयित्वाथसानटी ॥ रत्नेश्वरंमहालिङ्गंदेशमिष्टञ्जगामह ॥ ३६ ॥ कालधर्मवशंयातातत्रसावरनर्तकी ॥ सुतागन्धर्वराजस्यवसुभूतेर्बभूवह ॥ ३७ ॥ सङ्गीतस्यसवाद्यस्यतस्यलास्यस्यपुण्यतः॥ तत्रेशाग्रेकृतस्येहजागरेशिवरात्रिजे ॥ ३८ ॥ रम्यारत्नावलीनामरूपलावण्यशालिनी ॥ कलाकलापकुशलामधुरालापवादिनी ॥ ३९ ॥ पितुरानन्दकृन्नित्यंवसुभूतेर्घटोद्भव ॥ सर्वगान्धर्वकुशलागुणरत्नमहाखनिः ॥ ४० ॥ मुनेसखीत्रयन्तस्याश्चारुचातुर्यभाजनम् ॥ शशिलेखानङ्गलेखाचित्रलेखेतिनामतः ॥ ४१ ॥ तिसृभिस्ताभिरेकत्रवाग्देवीपरिशीलिता ॥ ताभ्यः

चलीगई ॥ ३६ ॥ और वहां कालधर्म के वशमें प्राप्तहुई याने मरीहुई वह नर्त्तकी वसुभूतिनामक गंधर्वराजकी कन्या होतीभई ॥ ३७ ॥ व यहां शिवरात्रिमें महादेवजीके आगे उस जन्ममें किये हुये उस बाजेसमेत संगीत और नाचकी पुण्यसे ॥३८॥ वह रूप व लावण्यसे सोहनेवाली रम्य व चौंसठ कलासमूहमें कुशल और मधुर आलाप बोलनेवाली व रत्नावली नामसे प्रसिद्ध हुई ॥ ३९ ॥ हे घटसम्भव, अगस्त्यजी! वह नित्यही वसुभूति नामक पिताकी आनन्दकारिणी व सब संगीतविद्या में दक्ष और गुण रत्नोंकी बड़ी खानि याने आकर थी ॥ ४० ॥ हे मुने! शशिलेखा अनंगलेखा और चित्रलेखा ऐसे नामोंवाली चतुरताका पात्र उसकी तीन सखियांथीं ॥ ४१ ॥

उन तीनों के साथ रत्नावलीने एक स्थान में सरस्वती की सेवा किया और प्रसन्नहुई सरस्वतीजीने उन चारों को सब कलायें दिया ॥ ४२ ॥ हे गौरि! उस रत्नावलीने अन्य जन्मकी वासना को प्राप्तहोकर रत्नेश्वर लिंगका शुभ नियम ग्रहण किया ॥ ४३ ॥ कि काशी में रत्नभूत रत्नेश्वर लिंगके दर्शनको नित्यही प्राप्तहोकर मुखसे वचन बोलेंगी ॥ ४४ ॥ ऐसे वह गंधर्व की पुत्री नियमवती हुई व उन सखियों के साथ नित्यही लिंग को देखती थी ॥ ४५ ॥ एक समय उस कन्याने मेरे इस रत्नेश्वर नामक उत्तम लिंग की आराधनाकर गीतों की माला से भलीभांति पूजाकिया ॥ ४६ ॥ हे उमे! उस समय वे तीनों सखियां प्रदक्षिणा करने को चलीगईं और उसके गीतसे

सर्वाःकलाःप्रादात्परिप्रीतासरस्वती ॥ ४२ ॥ प्राप्यरत्नावलीगौरिसाजन्मान्तरवासनाम् ॥ रत्नेश्वरस्यलिङ्गस्यजग्राहनियमंशुभम् ॥ ४३ ॥ रत्नभूतस्यलिङ्गस्यकाश्यांरत्नेश्वरस्यवै ॥ नित्यंसंदर्शनंप्राप्यवक्ष्याम्यपिवचोमुखे ॥४४॥ इत्थंनियमवत्यासीत्सागन्धर्वसुतोत्तमा ॥ ताभिःसखीभिःसहितानित्यंलिङ्गंचपश्यति ॥ ४५ ॥ एकदाराध्यरत्नेशंममैतल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ समानर्चचसाबालारम्ययागीतमालया ॥ ४६ ॥ सख्यःप्रदक्षिणीकर्तुंलिङ्गंतिस्रोऽप्युमेगताः ॥ तस्यागीतेनतुष्टोहंलिङ्गस्थोवरदोभवम् ॥ ४७ ॥ यस्त्वयारंस्यतेरात्राववद्यगन्धर्वकन्यके ॥ तवनामसमानाख्यःसतेभर्ताभविष्यति ॥ ४८ ॥ इतिलिङ्गाम्बुधेर्जाताम्परिपीयवचःसुधाम् ॥ बभूवानन्दसन्दोहमन्थरातीवह्रीमती ॥४९॥ गताथव्योममार्गेणसखीभिःस्वपितुर्गृहम् ॥ कथयन्तीनिजोदन्तन्तमालीनाम्पुरोमुदा ॥५०॥ ताभिर्दिष्ट्येतिदिष्ट्येतिसखीभिःपरिनन्दिता ॥ अद्यतेवाञ्छितम्भाविरत्नेशस्यसमर्चनात् ॥५१॥ यद्यायातिसतेरात्राववद्यकौमारहारकः ॥ चोरोबाहुलतापाशैःपाशितव्यो

संतुष्टहोकर लिंगमें टिकाहुवा मैं वरदायक भया ॥ ४७ ॥ कि हे गंधर्वकन्यके! तेरे नामके समान नामवाला जो कोई आज रात में तेरे साथ रमण करेगा वह तेरा पति होवेगा ॥ ४८ ॥ इसभांति लिंगसमुद्र से उपजेहुये वचन अमृतको पानकर आनन्दसमूहसे व्याप्त या स्तब्धहुई वह अतीवलज्जित होगई ॥ ४९ ॥ अनन्तर सखियों के आगे उस वृत्तान्त को आनन्द से कहती हुई व सखियों के साथ आकाशमार्ग से अपने पिताके घरको जातीभई ॥ ५० ॥ और मंगलहुवा मंगलहुवा ऐसे उन सखियों से बढ़ाई गई कि रत्नेश्वर की पूजासे आज तुम्हारा वाञ्छित होवेगा ॥ ५१ ॥ जो आज रात में तुम्हारे कुमारपनेका हरनेहारा चोर आवे तो बहुत यत्नकरके बाहुलता पाशसे

फांसने योग्य है ॥ ५२ ॥ व रत्नेश्वर की आज्ञा से आयाहुवा प्यारकर्त्ता तुम्हारा प्रियतम जो कि पुण्यका मुख्यपात्र है वह जैसे प्रातःकाल हमलोगों से नेत्रों का विषय कियाजावे वैसा करना चाहिये ॥ ५३ ॥ आश्चर्य्य है कि जब आनन्दित हुई हमलोग प्रदक्षिणा करने चलीगई तब आपने पुण्यकी गुरुता से रत्नेश्वरलिंग को प्रत्यक्ष कर लिया है ॥ ५४ ॥ मनुष्योंका भाग्योदय अद्भुत है और पुण्य की उच्चता आश्चर्य्यरूप है जिससे एकत्र टिकेहुये भी बहुते जनों मेंसे एक कीही सिद्धि होती है ॥ ५५ ॥ व दैवकी श्रेष्ठता कहनेवाले सत्य कहतेहैं वह असत्य नहींहै कि उद्यम नहीं और अन्य बलभी नहीं फलता है किंतु एक दैवही सर्वत्र फलित होता है ॥ ५६ ॥ जैसे कि

तियन्नतः ॥ ५२ ॥ गोचरीक्रियतेस्माभिर्यथासमुकृतैकभूः ॥ प्रातरेवतवप्रेयान्रत्नेशादिष्टइष्टकृत् ॥ ५३ ॥ यातास्वस्मा सुहृष्टासुभवतीपुण्यगौरवात् ॥ अहोरत्नेश्वरंलिङ्गंप्रत्यक्षीकृतवत्यसि ॥ ५४ ॥ अहोभाग्योदयोनॄणामहोपुण्यसमुच्छ्र यः ॥ एकस्यैवभवेत्सिद्धिर्यदेकत्रापितिष्ठताम् ॥ ५५ ॥ सत्यंवदन्तिनासत्यंदैवप्राधान्यवादिनः ॥ दैवमेवफलेदेकंनोद्य मोनापरम्बलम् ॥ ५६ ॥ भवत्याअपिचास्माकमेकएवहिचोद्यमः ॥ परंदैवंफलत्येकंयथातवननःपुरः ॥ ५७ ॥ लोकानां व्यवहारोयमालिप्रोक्तःप्रसङ्गतः ॥ परंमनोरथावाप्तिस्तवयासैवनःस्फुटम् ॥ ५८ ॥ इतिसंव्याहरन्तीनामनन्तोध्वाऽति तुच्छवत् ॥ क्षणात्तासांव्यतिक्रान्तःप्राप्ताश्चस्वंस्वमालयम् ॥ ५९ ॥ अथप्रातःसमुत्थायपुनरेकत्रसङ्गताः ॥ साचमौन वतीताभिःपरिभुक्तेवलक्षिता ॥ ६० ॥ तूष्णींप्राप्याथकाशींसास्नात्वामन्दाकिनीजले ॥ सखीभिःसहितापश्यल्लिङ्गंरत्नेश्व रंमम ॥ ६१ ॥ निर्वर्त्यनियमंसाथलज्जामुकुलितेक्षणा ॥ निर्बन्धेनवयस्याभिःपरिपृष्टाजगादह ॥ ६२ ॥ रत्नावल्युवा

आपका और हमाराभी एकही उद्यमथा परन्तु तुम्हारा दैव फला और हमारे आगे नहीं फला है ॥ ५७ ॥ हे सखि ! प्रसंग से यह लोकोंका व्यवहार कहागया परन्तु जो तुम्हारे मनोरथकी प्राप्ति है वहही हमारी है यह स्पष्ट है ॥ ५८ ॥ ऐसे बतलाती हुई उन सबोंका अनन्त मार्ग बहुत थोड़े के समान क्षणमें चलने से चुकाया गया और वे अपने अपने घरको गईं ॥५९॥ अनन्तर प्रातःकाल भलीभांति उठकर फिर एकत्र संगम हुईं और वह मौनधारिणी रत्नमाला उन सखियों से भोगी हुई सी लखी गई ॥ ६० ॥ अनन्तर चुपचाप काशी को प्राप्त होकर व सखियों से सहित उसने गंगाजल में स्नानकर मेरे रत्नेश्वर लिंग को देखा ॥ ६१ ॥ तदनन्तर नियम को निबाहकर हठ से

सखियों करके पूंछी हुई व लज्जा से कुछेक विकसित आंखोंवाली वह आनन्द से बोली ॥ ६२ ॥ रत्नावली बोली कि, जब रत्नेश्वर की यात्रा से आपलोग अपने घरोंको चली गईं उसके बाद रत्नेश्वर के वचन अमृत कोही सुमिरती हुई ॥ ६३ ॥ व विशेषता समेत अंगों के संस्कारवाली मैं शयनमन्दिर में पैठगई और निद्राका दरिद्र है आंखोंमें जिसके ऐसी उसके देखने की लालसावाली मैं ॥ ६४ ॥ होनहार अर्थ की गुरुता के बलसे स्वप्नदशा को प्राप्त होतीभई तदनन्तर अपना के बिसरने में मेरे दो कारणहुये ॥ ६५ ॥ एक तो आलस्य और दूसरा उसके अंगका भलीभांति स्पर्शहोना ये दोनों मेरे ज्ञानके हरनेवाले होगये किंतु मैं आलस्य के परवश होगई तदनन्तर उस

च ॥ अथरत्नेशयात्रायाःप्रयातासुस्वमन्दिरम् ॥ भवतीषुस्मरन्त्येवतद्रत्नेशवचोऽमृतम् ॥ ६३ ॥ सविशेषाङ्गसंस्कारा ऽविशंसंवेशमन्दिरम् ॥ निद्रादरिद्रनयनातद्विलोकनलालसा ॥ ६४ ॥ बलात्स्वप्नदशांप्राप्ताभाविनोर्थस्यगौरवात् ॥ आत्मविस्मरणेहेतूततोमेद्वौबभूवतुः ॥६५॥ तन्द्रीतदङ्गसंस्पर्शौममबोधापहारकौ ॥ तन्द्र्यापरवशाचासन्ततस्तत्स्पर्श नेनच ॥ ६६ ॥ नजानेत्वथकिंवृत्तंकाहंकाहंसचाथकः ॥ तन्निर्जिगमिषुंसख्योयावद्धर्तुंप्रसारितः ॥ ६७ ॥ दोःकङ्कणेनरि पुणाक्वणितन्तावदुत्कटम् ॥ महतासिञ्जितेनाहन्तेनाल्पम्परिबोधिता ॥६८॥ सुखसन्तानपीयूषह्रदेपरिनिमज्ज्यवै ॥ क्ष णेनतद्वियोगाग्निकीलासुपतिताबलात् ॥ ६९ ॥ किंकुलीयःसनोवेद्मिकिंदेशीयःकिमाख्यकः ॥ दुनोतिनितरांसख्यस्त द्विश्लेषानलोमहान् ॥ ७० ॥ अनल्पोत्कलितंचेतःपुनस्तत्सङ्गमाशया ॥ प्राणानांमेयियासूनामेकमेवमहौषधम् ॥७१॥

के अंगके स्पर्श से ॥ ६६ ॥ मैंने नहीं जाना कि क्या हालहुआ और मैं कहांहूं व कौनहूं और वह कौन है हे सखियो ! निकलजाने चाहते हुये उसके धरने को जबतक मैंने हाथ पसारा ॥ ६७ ॥ तबतक वैरी बाहुका कंकण बहुतही बाज उठा व उस बड़ेशब्दसे मैं कुछ जगादी गई ॥ ६८ ॥ और सुख विस्ताररूप अमृतकुण्ड में निमग्न होकर भी मैं बलसे क्षणभर में उसकी विरहाग्निकी ज्वालाओं में गिरपड़ी ॥ ६९ ॥ हे सखियो ! मैंने नहीं जाना कि वह किस कुलमें उपजाहुवा व किस देशकाहै व किस नामवाला है बरन उसकी बड़ीभारी विरहाग्नि मुझको बहुतही उपताप देती है ॥ ७० ॥ और फिर उसके संगकी आशा से बहुतही उत्कंठित हुवा चित्तही जाने चाहतेहुये

मेरे प्राणोंका एक औषध होगया ॥ ७१ ॥ हे सखियो ! रातमें भोगे हुये उसकाही फिर देखना और उसको फिर मेरा दर्शन आपलोगों के अधीन है ॥ ७२ ॥ हे सखियो ! सनेही सुन्दर सखीजन में कौन कपट वचन बतलाती है याने कोई नहीं इससे मैं निष्कपट कहतीहूं कि उसके दर्शनसेही प्राण ठहरेंगे अन्यथा निकलजावेंगे ॥ ७३ ॥ इस समय मुझको बहुतही बाधाकरनेको मरणावस्था प्रवृत्त होवे है इसभांति उस उपतापित हुईका वचन सुनकर वे सखियां ॥ ७४ ॥ कंपित हृदयवाली होकर व परस्पर देखकर कहनेलगीं ॥ ७५ ॥ सखियां बोलीं कि हे कल्याणि ! जिसका ग्राम नहीं नाम नहीं और वंशभी नहीं हमसे जानाजाता है वह कैसे मिलसक्ताहै और उसके लिये

वयस्यानिशिभुक्तस्यतस्यैवपुनरीक्षणम् ॥ भवतीनामधीनञ्चतत्पुनर्दर्शनंमम ॥ ७२ ॥ काऽलीकमालयोवक्तिस्निग्ध मुग्धेसखीजने ॥ तद्दर्शनेनस्थास्यन्ति प्राणायास्यन्तिचान्यथा ॥ ७३ ॥ दशम्यवस्थासन्नह्येबाधितुंमाधुनाभृशम् ॥ इतितस्यागिरःश्रुत्वाद्रूनायानितराञ्चताः ॥ ७४ ॥ प्रवेपमानहृदयाःप्रोचुर्वीक्ष्यपरस्परम् ॥ ७५ ॥ सख्यऊचुः ॥ यस्यग्रामोननोनामनान्वयोनापिबुध्यते ॥ सकथंप्राप्यतेभद्रेकउपायोविधीयताम् ॥ ७६ ॥ इतिरत्नावलीश्रुत्वाससन्देहाञ्चतद्गिरम् ॥ वयस्यास्तदवाप्तौमेयूयंकुण्ठिमुमूर्च्छह ॥ ७७ ॥ इत्यर्धोक्तेनसाबालायूयंकुण्ठितशक्तयः ॥ यद्वक्तव्यन्त्विवतितयायूयंकुण्ठीतिभाषितम् ॥ ७८ ॥ ततस्तास्त्वरिताःसख्यःपरितापोपहारकान् ॥ बहुशःशीतलोपायान्व्यधुर्मोहप्रशान्तये ॥ ७९ ॥ व्यपैतिनयदामूर्च्छातत्तच्छीतोपचारतः ॥ तस्यास्तदैकयानीतंरत्नेशस्नपनोदकम् ॥ ८० ॥ तदुक्षणात्क्षणादेवतन्मूर्च्छाविररामह ॥ सुप्तोत्थितेवसावादीन्मुहुःशिवशिवेतिच ॥ ८१ ॥ स्कन्दउवाच ॥ श्रद्धावतांस्वभक्तानामुपसर्गे

क्या उपाय कियाजावे ॥ ७६ ॥ इसभांति रत्नावली उनका संदेहसमेत वचन सुनकर व हे सखियो ! मुझको उसकी प्राप्तिमें तुम कुंठि ऐसा कहकर मूर्च्छितहोगई ॥७७॥ ऐसे अधकहे वचन से वह बाला रहगई कि तुम कुंठित शक्तिहो जो ऐसा कहना चाहिये वह उससे तुम कुंठि ऐसाही कहागया ॥ ७८ ॥ तदनन्तर वेगवती उन सखियोंने मूर्च्छा नाशने के लिये परितापहारी अनेक शीतल उपायोंको किया ॥ ७९ ॥ व जब उन उन अनेक शीतल उपचारों से उसकी मूर्च्छा नही विगतहुई तब एक सखीसे रत्नेश्वरके स्नानका जल लायागया ॥ ८० ॥ उसके छिड़कने से क्षणमेंही उसकी मूर्च्छाका अंत होगया और सोतीहुई उठीसी वह बारबार शिव शिव ऐसा कहनेलगी ॥८१॥

श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि श्रद्धावान् को अपने भक्तों की बड़ी पीड़ा या रोगों में भी शिवजी के चरणोदक के विना अन्य उपाय नहीं है ॥ ८२ ॥ जे बाहर और भीतर भी देहगत रोग दुःसाध्य हैं वे श्रद्धा समेत शिवजी के चरणोदकके स्पर्शसे नष्ट होजाते हैं अन्यथा नहीं ॥ ८३ ॥ जिसने भगवान् का चरणोदक सेया उस बाहर व भीतरसे पवित्र हुये जनके समीप में दुर्गति नहीं जाती है याने वह सदैव सुगति को प्राप्त होताहै ॥ ८४ ॥ तथा श्रीचरणोदक दैहिकताप व दैविक ताप और भौतिकताप को हर लेताहै ॥ ८५ ॥ हे मुने ! तदनन्तर विगत तापहुई उचितज्ञा गन्धर्वकुमारीने स्नेह समेत धीरबुद्धिवाली उन सखियोंसे ऐसाकहा ॥ ८६ ॥ रत्नावलीबोली कि, हे शशिलेखे !

महत्यपि ॥ नोपायान्तरमस्त्येवविनेशचरणोदकम् ॥ ८२ ॥ येऽप्याधयोपिदुःसाध्याबहिरन्तःशरीरगाः ॥ श्रद्धयेशोदकस्पर्शात्तेनश्यन्त्येवनान्यथा ॥ ८३ ॥ सेवितंयेनसततम्भगवच्चरणोदकम् ॥ तम्बाह्याभ्यन्तरशुचिंनोपसर्पतिदुर्गतिः ॥ ८४ ॥ आधिभौतिकतापञ्चतापञ्चाप्याधिदैविकम् ॥ आध्यात्मिकन्तथातापंहरेच्छ्रीचरणोदकम् ॥ ८५ ॥ व्यपेतसंज्वराचाथगन्धर्वतनयामुने ॥ उचितज्ञेतिहोवाचताःसखीःस्निग्धधीरधीः ॥ ८६ ॥ रत्नावल्युवाच ॥ शशिलेखेनङ्गलेखेचित्रलेखेमदीहिते ॥ यूयंकुण्ठितसामर्थ्याःकुतोवस्ताःकलाःक्व ॥ ८७ ॥ मत्प्रियप्राप्तयेसम्यगुपायोऽस्तिमयेक्षितः ॥ रत्नेश्वरानुग्रहतोऽनुतिष्ठतहितंहिताः ॥ ८८ ॥ शशिलेखेऽभिलषितप्राप्त्यैलेखांस्त्वमालिख ॥ संलिखानङ्गलेखेत्वंयूनःसर्वावनीचरान् ॥ ८९ ॥ चित्रज्ञेचित्रलेखेत्वंपातालतलशायिनः ॥ किञ्चिदाविर्भवच्चारुतारुण्यालंकृतान्लिख ॥ ९० ॥ अथाकर्ण्येतिताःसख्यास्तच्चातुर्यंप्रवर्ण्यच ॥ लिलिखुःक्रमशःसख्योयूनोयौवनशेवधीन् ॥ ९१ ॥ निर्यत्कौमारलक्ष्मीकान्पुं

हे अनंगलेखे ! हे चित्रलेखे ! तुम मेरे वाञ्छित में क्यों कुंठित शक्तिहो अथवा तुम्हारी वे कलायें कहां हैं ॥ ८७ ॥ हे हितकारिणियो ! मैंने मेरेप्यारे की प्राप्ति के लिये बहुत अच्छा उपाय देखा उस हितको तुमलोग रत्नेश्वरकी दयासे करो ॥ ८८ ॥ हे शशिलेखे ! तुम अभिलषित प्यारेकी प्राप्तिके लिये देवोंके चित्रलिखो हे अनंगलेखे ! तुम सब पृथिवीचारी युवावस्थावाले जनोंको लिखो ॥ ८९ ॥ हे चित्रज्ञे, चित्रलेखे ! तुम कुछेक प्रकटहुई सुन्दर तरुणाई से भूषित, पातालतलवासी नागादिकोंको लिखो ॥ ९० ॥ अनन्तर ऐसा सुनकर उस सखी की चतुरताकी प्रशंसाकर उन सखियोंने तरुणाई के निधान युवक जनों को क्रमसे लिखा ॥ ९१ ॥ और प्रातःसंध्याके समान उस

गन्धर्वकुमारीने निश्शेष से चलीगई है कुमारपन की सम्पत्ति जिनकी ऐसे पुरुषता शोभा से भूषितहुये उन राजादिको देखा ॥ ९२ ॥ व उस सुनयनीने सब देवसमूहों को देखा परन्तु उन स्वर्गवासियोंमें नेत्रोंकी चञ्चलताको न छोंड़ा ॥ ९३ ॥ तदनंतर स्नेहसे परिपूर्ण हुई वह मध्यलोक याने मनुष्यलोक में टिकेहुये मुनियों व राजों के कुमारोंको देखकर भी किसी में प्रीतिको न प्राप्तहुई ॥ ९४ ॥ उसके बाद कानों के निकटतक आंखोंवाली रत्नावली कुमारीने सुतल के तरुणों मेंभी नेत्रों को व्यापार कराया याने उनको देखा ॥ ९५ ॥ परन्तु कामके बाणों से तपाई हुई उस गन्धर्वीने दैत्य दानव कुमारोंको देखकर किसी में स्नेहको नहीं बांधा ॥ ९६ ॥ और चन्द्रमा

वत्त्वश्रीसमावृतान् ॥ प्रातःसन्ध्येवगन्धर्वीनृपाद्यांस्तानवैक्षत ॥ ९२ ॥ सर्वान्सुरनिकायान्साऽव्यलोकतशुभेक्षणा ॥ नचाञ्चल्यञ्जहावक्ष्णोस्तेषुस्वर्लोकवासिषु ॥ ९३ ॥ ततोमध्यमलोकस्थान्मुनिराजकुमारकान् ॥ विलोक्यापिनसाप्रीतिं काप्यापप्रेमनिर्भरा ॥ ९४ ॥ अथरत्नावलीबालाकर्णाभ्यर्णविलोचना ॥ दृशौव्यापारयामासबलिसद्मयुवस्वपि ॥ ९५ ॥ दितिजान्दनुजान्वीक्ष्यसागन्धर्वीकुमारकान् ॥ रतिम्बबन्धनक्वापितापितामान्मथैःशरैः ॥ ९६ ॥ सुधाकरकरस्पृष्टा प्यतिदूनाङ्गयष्टिका ॥ पश्यन्तीनागयूनःसाकिञ्चिदुच्छ्वसिताऽभवत् ॥ ९७ ॥ भोगिनस्तान्विलोक्यापिचित्रञ्चित्रगता नथ ॥ मनाक्संभुक्तभोगेवक्षणमासीत्कुमारिका ॥ ९८ ॥ यूनःप्रत्येकमद्राक्षीदशेषाञ्छेषवंशजान् ॥ तक्षकान्वयगां स्तद्वदथवासुकिगोत्रजान् ॥ ९९ ॥ पुलीकानन्तकर्कोटभद्रसन्तानगानपि ॥ दृष्ट्वानागकुमारांस्ताञ्छङ्खचूडमथैक्षत ॥ १०० ॥ शङ्खचूडेक्षणादेवपरांलज्जाम्बभारसा ॥ उद्भिन्नपुलकाप्यासीदङ्गप्रत्यङ्गसन्धिषु ॥ १ ॥ तत्रपाभरतोऽज्ञायित

की किरणों से छुई हुईभी बहुत व्यथित देहदण्डीवाली वह नागलोक के युवक जनों को देखती हुई कुछ उच्छ्वसित होगई ॥ ९७ ॥ यह आश्चर्य्य है कि अनन्तर चित्र पटमें प्राप्त उन नागोंको देखकरभी वह कुमारी क्षणभर कुछेक संभुक्तभोगा के समान होतीभई ॥ ९८ ॥ व प्रत्येक सम्पूर्ण तरुणों को देखने लगी उन मेंसे शेषके वंश में उपजे हुये वैसेही तक्षक के वंशमें गत ॥ ९९ ॥ व पुलीक, अनन्त, कर्कोट और भद्र के वंशमें प्राप्तहुये भी नागकुमारों को देखकर अनन्तर उसने शंखचूड को देखा ॥ १०० ॥ और शंखचूड़ के देखने सेही वह बड़ी लाजको धारती भई व अंग प्रत्यंगकी संधियों में रोमांचित होगई ॥ १ ॥ और उस चतुर चित्रलेखाने क्षणभर मे उसके

लाजभार सेही उसके कुमारपन हरनेहारे वरको जानलिया ॥ २ ॥ अनन्तर परिहास में मुख्य कुशल चित्रलेखाने चित्रपटीपर विचित्र वस्त्रका अंचल छोड़कर शीघ्रही ढांपलिया ॥ ३ ॥ व लाजसे मौनधारिणी प्रस्फुरित ओठवाली रत्नावलीने चित्रलेखा को कुटिल दृष्टि से देखा ॥ ४ ॥ अनन्तर उस अनंगलेखा से कटाक्षकर देखी हुई शशिलेखा ने चित्रलेखा के डाले हुये वस्त्र के अग्रभाग को उघाड़ दिया ॥ ५ ॥ उसके बाद वसुभूतिकी कुमारी उस शुभ रत्नावली ने शङ्खचूड़के वंशमें उस रत्नचूड़ को देखलिया ॥ ६ ॥ उसके देखने के अवसर या उत्सवसे दृष्टि आनन्दके आंसुओं से घिरगई और कपोलभित्तिभी पसीना के कणों से व्याप्त होगई ॥ ७ ॥ व रोमाञ्च

त्कौमारहरोवरः ॥ तयावैदग्ध्यवरयात्क्षणताश्चित्रलेखया ॥ २ ॥ अथचित्रपटींचित्रलेखाचित्रपटाञ्चलम् ॥ परिक्षिप्याट्टणोत्तूर्णम्परिहासैकपेशला ॥ ३ ॥ रत्नावलीचित्रलेखांह्रियामौनावलम्बिनी ॥ दृशाकुटिलयाद्राक्षीत्प्रस्फुरद्दशनाम्बरा ॥ ४ ॥ कटाक्षितानङ्गलेखातयाथशशिलेखया ॥ चित्रलेखापरिक्षिप्तपटाञ्चलमपाकरोत् ॥ ५ ॥ वसुभूतिसुता साथकन्यारत्नावलीशुभा ॥ शङ्खचूडान्ववायेतंरत्नचूडमवैक्षत ॥ ६ ॥ तदीक्षणक्षणाद्दृष्टिरानन्दाश्रुभिरावृता ॥ कपोलभित्तिरभवत्स्वेदोदकणिकाञ्चिता ॥ ७ ॥ चकम्पेगात्रलतिकाधृतरोमाञ्चकञ्चुका ॥ चित्रन्यस्तेवतस्तम्भक्षणम्मुकुलितानना ॥ ८ ॥ ततःसाचित्रलेखातामेत्याश्वासयदातुराम् ॥ मौत्सुक्यंव्रजगन्धर्विसिद्धस्तेद्यमनोरथः ॥ ९ ॥ एतस्यावगतंसर्वंदेशनामान्वयादिकम् ॥ माविषीदालिसुलभस्त्वेषरत्नेश्वरार्पितः ॥ १० ॥ अहोसदृग्वरावाप्त्यारत्नेशेनासितोषिता ॥ उत्तिष्ठयामःसदनंरत्नेशःसर्वदोहिनः ॥ ११ ॥ अथदैववशाद्यान्त्यस्ताद्दृष्टागगनाध्वगाः ॥ सुबाहुनादानवेन

कञ्चुकवाली देहलतिका थरथराने लगी और वह कुछेक विकसितमुखी होकर चित्र में थापीसी रुकरही ॥ ८ ॥ तदनन्तर उस चित्रलेखा ने उस आतुरीके समीप जाकर आश्वासन किया कि हे गन्धर्वि ! उत्कण्ठता को मत प्राप्त होवो आज तुम्हारा मनोरथ सिद्ध होगया है ॥ ९ ॥ क्योंकि हे सखि ! इसका देश, नाम व वंशादि सब जाना गयाहै इस से तुम मत विषाद करो यह रत्नेश्वरसे दिया हुवा वर बहुत सुलभहै ॥ १० ॥ अहो आलि ! हे सखि ! तुम समान वरकी प्राप्ति के द्वारा रत्नेश्वर से सन्तोषी गईहो अब उठो हम सब घरको चलती हैं और रत्नेश्वरजी हमारे लिये सब वस्तु के दाताहैं यह निश्चयहै ॥ ११ ॥ अनन्तर आकाशमार्ग में प्राप्त जाती हुई वे

दैवके वश पातालबिलवासी सुबाहुनामक दानवसे देखीगईं ॥ १२ ॥ और बीच गली में हरिणियों को विकटदाढ़ों समेत मुखवाले सिंहकी नाईं वह दानव उनचारों कोभी पकड़कर घरको निकल गया ॥ १३ ॥ दाढ़ों से विकट मुख व रक्तसे लाले नेत्रवाले उस दानवको देखकर वे गन्धर्वियां उपजेहुये कम्पका पात्रहोकर ॥ १४ ॥ हा मातः ! हा पितः ! हमारी रक्षाकरो हा विधातः ! उसको मत करो जो कि यह बहुतही निठुर हम अनाथोंमें करनेको प्रारम्भ किया गयाहै ॥ १५ ॥ हा दैव ! हम मन्द-भागिनियों ने क्या किया कि जिनसे पापकी वार्त्ताभी कहीं मनमें नहीं कही गई है ॥ १६ ॥ बालपनेका खेल छोड़कर व रत्नेश्वरकी पूजाको छोड़कर माता व पिता के

पातालतलवासिना ॥ १२ ॥ गृहीत्वाताश्चतस्रोपिनिरगाद्दानवोगृहम् ॥ हरिर्विकटदंष्ट्रास्यःप्रान्तरेहरिणीरिव ॥ १३ ॥ तास्तंविलोक्यगन्धर्व्योदंष्ट्राविकटिताननम् ॥ रुधिरारुणनेत्रञ्चजातावेपथुभूमयः ॥ १४ ॥ हामातर्हापितस्त्राहिहाविधे माविधेहितत् ॥ यदेतत्कर्तुमारब्धमनाथास्वतिनिष्ठुरम् ॥ १५ ॥ हादैवमन्दभाग्याभिःकिमस्माभिरनुष्ठितम् ॥ सुकृते तरवार्तापिनोचित्तेव्याहृताक्वचित् ॥ १६ ॥ शिशुक्रीडनकंहित्वाहित्वारत्नेश्वरार्चनम् ॥ पित्रोःस्वाधीनसच्चेष्टाइष्टंविद्मो नकिञ्चन ॥ १७ ॥ अधोभुवनगादीनाहीनानाथेनकोत्रनः ॥ त्रातित्राणार्थिनीर्बालाःशम्भोरत्नेशसर्वग ॥ १८ ॥ इत्थङ्ग न्धर्वतनयाविलपन्तीःकृपातुरम् ॥ शुश्रावनागराजोसौरत्नचूडोमहामनाः ॥ १९ ॥ कोसौमत्स्वामिनोनामरत्नेशस्यम हेशितुः ॥ लिङ्गराजस्यगृह्णातिकर्मबन्धनभेदिनः ॥ २० ॥ पुनरप्यार्तरावंसश्रुत्वाबालामुखेरितम् ॥ रत्नेशरक्षरक्षेतिगृ हीतास्त्रोविनिर्ययौ ॥ २१ ॥ तंवसासवपानेनमहामांसनिषेवणात् ॥ अत्यन्तोन्मत्तदुश्चेष्टंरत्नचूडोनिरैक्षत ॥ २२ ॥ अ

अधीन हमारा अच्छा व्यापार था और हम अपना मनमना कुछ नहीं जानती हैं ॥ १७ ॥ हे सर्वगत, रत्नेश्वर, शङ्कर ! नीचे लोकको जाती हुई दीन व नाथ से हीन व रक्षाकी चाहिनी व कुमारी हम लोगोंकी यहां कौन रक्षाकरे ॥ १८ ॥ ऐसे विलाप करती हुई गन्धर्वकुमारियों का शब्द कृपा से आतुर जैसे हो वैसे महामनस्वी उस रत्नचूड़नामक नागराजने सुना ॥ १९ ॥ और विचारा कि, लिंगों के राजा, कर्मबन्धन के बिदारनेवारे रत्नेश्वर महेश्वर मेरे स्वामी का नाम यह कौन लेता है ॥ २० ॥ फिर भी हे रत्नेश ! रक्षाकरो रक्षाकरो ऐसे कन्याओं के मुखसे कहेहुये आर्त्तशब्दको सुनकर अस्त्र लिये हुये वह निकलकर चला ॥ २१ ॥ और रत्नचूडने वसा व मद्य

पान और मांसकी सेवासे अत्यन्त उन्मत्त दुराचारी उस दानव को देखा ॥ २२ ॥ व आक्षेप किया याने उसका अनादर कर कहा कि रे शिष्टकन्यापहारक, दुष्ट ! रे अधम ! आज मेरी दृष्टि के गोचरमें प्राप्तहोकर तू कहां जावैगा ॥ २३ ॥ हे दुष्टबुद्धे ! आर्त्तोंकी रक्षाकरने में उद्यत बुद्धिवाले मेरे ताड़ित प्राणवाला तू यमपुरके प्रति पयानकर ॥ २४ ॥ और जिन्होंने रत्नेश्वर का नाम लिया उन डरप्लुत चित्तोंको मरणविपत्ति में भी तेरे सरीखे दुष्टोंसे डर नहीं होताहै यह स्पष्टहै ॥ २५ ॥ व जे मनुष्य रत्नेश्वरके महानामसे रक्षा किये गये हैं उनका जन्म जरा रोग कलि और कालका डर कहां है ॥ २६ ॥ ऐसा कहकर बाघसे धरी मृगियोंके समान उसके मुखमें आंखों

ध्याचिपचरेदुष्टशिष्टकन्यापहारक ॥ मद्दृष्टिगोचरंयातःक्वयास्यस्यधुनारेऽधम ॥ २३ ॥ ममबाणहतप्राणःप्रयाणंकुरु दुर्मते ॥ आर्तत्राणोद्यतमतेर्वैवस्वतपुरम्प्रति ॥ २४ ॥ रत्नेश्वरस्ययैर्नामप्रलयापद्यपिस्फुटम् ॥ गृहीतन्नभवादृग्भ्यस्तेषु भीतिर्भयात्मसु ॥ २५ ॥ रत्नेश्वरमहानामकृतत्राणास्तुयेनराः ॥ तेषांजन्मजराव्याधिकलिकालभयंकुतः ॥ २६ ॥ इत्युक्ताताभयत्रस्तास्तन्मुखप्रहितेक्षणाः ॥ व्याघ्रघ्राताइवमृगीर्माभैषिष्टेत्युवाचसः ॥ २७ ॥ इत्याश्वास्याथगन्धर्वीःसर्वे भुजगराजजः ॥ आकर्णपूर्णमाकृष्यकोदण्डम्प्राहिणोच्छरम् ॥ २८ ॥ सोपिक्रुद्धोदनुजराट्पदास्पृष्टभुजङ्गवत् ॥ आवि द्धयकालदण्डाभम्परिघंव्यसृजन्महत् ॥ २९ ॥ हृदिरत्नेश्वरंलिङ्गंयस्यसम्यग्विजृम्भते ॥ अलातदण्डवत्तस्मिन्कालद ण्डोपिजायते ॥ ३० ॥ अन्तरेवसचिच्छेदपरिघंस्वमहेषुभिः ॥ दुर्वृत्तस्ययथेहायुर्विच्छिद्येतान्तरैवहि ॥ ३१ ॥ ततोस्य

को लगाये हुई जो कि दानव के डरसे त्रासको प्राप्तहैं उनसे उस रत्नचूड़ने इस भांति कहा कि तुम लोग मत डरो ॥ २७ ॥ ऐसे गन्धर्वियों का आश्वासनकर अनन्तर उस नागराजकुमार ने कानोंतक पूरे धन्वाको खींचकर बाण को प्रेरण किया याने छोड़ दिया ॥ २८ ॥ और पावँ से छुये हुये सर्पके समान क्रोधवान् उस दानवराजने भी कालदण्ड के सदृश बड़े भारी परिघ (मूशल या बेड़ना) को बहाया ॥ २९ ॥ परन्तु जिसके हृदयमें रत्नेश्वर लिंग भलीभांति जगमगाताहै उसमें कालदण्डभी लुकुवाई खेलने कासा दण्डा होजाताहै ॥ ३० ॥ किन्तु उस रत्नचूड़ने अपने बड़े बाणों से परिघको बीचमें काटदिया कि जैसे दुराचारी दुष्टोंकी आयु बीचमेंही

कटजाती है ॥ ३१ ॥ तदनन्तर रत्नचूड़ ने कालाग्निके समान जगमगाते हुये बाणको छोड़ा और उसका बाण उस दैत्य के हृदय में पैठकर व भलीभांति खोजकर ॥ ३२ ॥ इस सुबाहुदानवके प्राणोंको निकालकर फिर अपना शीघ्रही तर्कसमें आगया इसमें उत्प्रेक्षा कीजाती है कि, उस दैत्यकी हृदयस्थ दुरात्मता को तत्त्व से जानकर नागकुमारका बाण दिशारूप स्त्री के आगे कहनेकेलिये उसकी देहसे निकलकर चलासा गया है ॥ ३३। ३४ ॥ जो कि अन्यायसे कमाई या बटोरीहुई सम्पत्तियोंसे सुख भोगना चाहताहै उसके प्राणों समेत वे द्रव्यें चलीजाती हैं तो सुख कहां होगा ॥ ३५ ॥ इस भांति उस दानव को मारकर अनन्तर बड़ा बलवान् नागराज उन क-

बाणञ्चिक्षेपकालानलसमप्रभम् ॥ सबाणस्तस्यहृदयंप्रविश्यप्रगवेष्यच ॥ ३२ ॥ प्राणानस्यविनिर्यात्यस्वयंतूणमगात्पुनः ॥ हृदिस्थन्तस्यदौरात्म्यंसर्वंविज्ञायतत्त्वतः ॥ ३३ ॥ दिगङ्गनापुरःख्यातुमिवनागाशुगोगतः ॥ ३४ ॥ अन्यायोपार्जितैर्द्रव्यैर्यःसुखम्भोक्तुमिच्छति ॥ तानिद्रव्याणियान्त्येवसप्राणानिकुतःसुखम् ॥ ३५ ॥ इतितंदानवंहत्वानागराजोमहाबली ॥ प्रत्युवाचाथताःकन्याःकायूयंकस्यचात्मजाः ॥ ३६ ॥ दुरात्मनाकुतोनेनसङ्गतादनुजन्मना ॥ क्वरत्नेश्वरंलिङ्गंभवतीभिर्विलोकितम् ॥ ३७ ॥ यस्यनामाक्षरोच्चाराद्व्यपेतपरमापदः ॥ यूयमाशुतदाख्यातयेनजानामितत्त्वतः ॥ ३८ ॥ इतिश्रुत्वागिरस्तस्यनितरांप्रेमनिर्भराः ॥ परस्परंमुखंवीक्ष्यकोसौस्याद्दृष्टपूर्ववत् ॥ ३९ ॥ अकारणसखाकोसौप्रान्तरेसमुपस्थितः ॥ निजप्राणान्पणीकृत्ययेनत्राताःस्मबालिकाः ॥ ४० ॥ अस्यसन्दर्शनादेवस्वभावचपलान्यपि ॥ मन्थराणीन्द्रियाणिस्युःपरिपीयसुधामिव ॥ ४१ ॥ यातुमन्यत्रनोनेत्रेप्रोत्सहेतेयथातथा ॥ अन्यद्वस्त्वन्तरंप्रेक्ष्यरम

न्याओंके प्रति बोला कि, तुम लोग कौनहो और किसकी पुत्रीहो ॥ ३६ ॥ व इस दुरात्मा दानव से कैसे संगतहुई हो व आपसे रत्नेश्वर लिंग कहां देखागयाहै ॥ ३७ ॥ जिसके नाम के अक्षर कहने से बड़ी भारी विपत्ति विगत होजाती है उसको बतावो जिससे मैं तत्त्वसे जानता हूं ॥ ३८ ॥ ऐसा उसका वचन सुनकर परस्पर मुख देखकर बहुतही प्रेम से निर्भर हुईं कि पहले देखा सा यह कौन है ॥ ३९ ॥ व विनाकारण का यह कौन सखा बीच गली में भलीभांति समीप में प्राप्त हुवाहै जिसने अपने प्राणोंको पण करके कन्याओं की रक्षा किया यह विस्मय है ॥ ४० ॥ व स्वभावसे चपल भी इन्द्रियां इसके दर्शन सेही अमृतसा पानकर स्तब्ध होगई हैं ॥ ४१ ॥

व आंखें अन्य अधिक रमणीय वस्तु को देखकर भी यथातथ्य से अन्यत्र जाने को नहीं उत्साह करती हैं ॥ ४२ ॥ व हमारे कान इसकेही वचन अमृतकी मधुरता को अधिकता से प्राप्त होकर आकाश का अन्यशब्द गहने की अपेक्षा नहीं करते हैं ॥ ४३ ॥ व हमारी अच्छी मनमणिके चुरानेवाले इस तरुण को देखकर चञ्चल भी हमारे पांव पंगुभावको प्राप्त होते हैं ॥ ४४ ॥ इसभांति आपुसमें कहती हुई वे कन्यायें उस सुकुमारांग को चित्रपट में प्राप्त देखकर भी न जानती भईं ॥ ४५ ॥ क्योंकि भारी भयानक देह दानव के बड़े डरसे अंधीसी हुई आंखोंवाली मृगनयनियों ने उसको न पहचान पाया ॥ ४६ ॥ और उन्होंने अपना जीवन बचानेवाले उस युवक से कहा कि

णीयतरन्त्वपि ॥ ४२ ॥ वचःपीयूषमाधुर्यैर्नितरांप्राप्यनःश्रुती ॥ शब्दान्तरग्रहापेक्षांनकुर्वातेस्वजन्मनः ॥ ४३ ॥ अप्युतःपंगुतामेतौपादौनश्चञ्चलावपि ॥ अमुंयुवानमालोक्यचोरंनःसन्मनोमणेः ॥ ४४ ॥ इतिब्रुवन्त्यस्ताबालाःपरस्परमनुल्बणम् ॥ दृष्ट्वापिचित्रमध्यस्थंविविदुस्तन्नबालिकाः ॥ ४५ ॥ अतीवभीषणाकारदनुजस्यातिसाध्वसात् ॥ अन्धीभूतेक्षणास्तंनाज्ञासिषुर्हरिणीक्षणाः ॥ ४६ ॥ ऊचुश्चतंयुवानन्तानिजजीवितरक्षिणम् ॥ यदङ्गभवतापृष्टंस्नेहनिर्भरचेतसा ॥ ४७ ॥ तदाचक्ष्महेसर्वंमवधेहिक्षणंमनः ॥ इयङ्गन्धर्वराजस्यवसुभूतेस्तनूद्भवा ॥ ४८ ॥ कन्यारत्नावलीनामगुणरत्नमहाखनिः ॥ वयंवयस्याएतस्याश्छायेवानुगताःसदा ॥ ४९ ॥ आरभ्यबाल्यमप्येषालिङ्गंरत्नेश्वराभिधम् ॥ यातिपित्राप्यनुज्ञाताकाश्यामर्चयितुंसदा ॥ ५० ॥ वरोपिदत्तस्तेनास्यैप्रसन्नेनाथशम्भुना ॥ हरिष्यतीतियःस्वप्नेकौमारन्तेकुमारिके ॥ ५१ ॥ तवनामसमानाख्यःसतेभर्ताभविष्यति ॥ युवानंस्वप्नभोक्तारंप्राप्याप्येषासुदुःखिता ॥ ५२ ॥

हे अंग (मित्र)! स्नेह से परिपूर्ण मनवाले आपने जो पूंछा ॥४७॥ उस सबको हम कहती हैं तुम क्षणभर मनको एकाग्र करो यह वसुभूतनामक गन्धर्वराजकीपुत्री ॥४८॥ जोकि गुण रूप रत्नोंकी बड़ी खानिकी समान यह रत्नावली नाम कन्याहै इसकी हम सखी हैं और छायाकी नाईं सदा पीछे चलनेवाली हैं ॥ ४९ ॥ व बालपन से लगाकर पिताकी आज्ञा पायेहुई यह काशी में रत्नेश्वर नामक लिंगकी पूजा करनेको सदैव जाती है ॥ ५० ॥ अनन्तर प्रसन्न हुये शंकर से इसको ऐसा वर भी दियागया है कि हे कुमारिके! स्वप्न में जो तेरे कुमारपनको हरेगा ॥ ५१ ॥ कि जिसका तेरे नाम के समान नाम है वह तेरा पति होगा। उसही रात स्वप्न में भोगनेहारे युवकको प्राप्त होकर

भी यह बहुत दुःखितहुई ॥ ५२ ॥ फिर उस प्यारे के विरहसे उठी अग्नि से बहुतही तपाई गई तब हमलोगों ने कलाकी कुशलता से उसको भी चित्रमें दिखाया ॥ ५३ ॥ कि जिसके ग्रामका नाम नहीं और वंशभी नहीं जानाजाता था उस चित्रलिखित को देखकर यह फिर जिलाई गई है ॥ ५४ ॥ तदनन्तर रत्नेश्वर के नमस्कार कर अपने घर जाने को उत्सुक हुई उसके बाद इसके साथ आकाशमार्ग की बीच गली में जाती हुई ॥ ५५ ॥ हमलोगों को धरकर अतर्कित आजानेवाला दानव पाताल मे पैठगया अनन्तर उस दनुजाधम को आपही जानते हैं ॥ ५६ ॥ हे कृपानिधे, मित्र! ऐसा अपना वृत्तांत हमने कहा और आप हमारे आगे प्रसाद करो कि कौन हो ॥ ५७ ॥ जब

पुनस्तद्विरहोत्थेनवह्निनातीवतापिता ॥ कलाकौशल्यतोऽस्माभिःसोपिचित्रेप्रदर्शितः ॥ ५३ ॥ यस्यनग्रामनामापिना न्वयोप्यवबुध्यते ॥ तंदृष्ट्वाचित्रलिखितमप्येषाजीवितापुनः ॥ ५४ ॥ ततोरत्नेश्वरंनत्वास्वगृहायोत्सुकाभवत् ॥ यान्ती स्ततोऽनयासार्धंप्रान्तरेगगनाध्वनि ॥ ५५ ॥ अतर्कितागमश्चास्मान्धृत्वापातालमाविशत् ॥ अनन्तरम्भवानेवतंवे त्तिदनुजाधमम् ॥ ५६ ॥ अङ्गइत्येववृत्तान्तोनिजोऽस्माभिरुदीरितः ॥ प्रसादंकुरुचास्माकंपुरःकोसिकृपानिधे ॥ ५७ ॥ यदाप्रभृतिचास्माभिःसदृष्टोदुष्टदानवः ॥ तदाप्रभृतिनोनेत्रेविद्युतेवहतप्रभे ॥ ५८ ॥ कान्दिशीकाभयत्रातर्नविद्मःकि ञ्चिदेवहि ॥ क्ववयंकावयंकस्त्वंकिंजातंकिंभविष्यति ॥ ५९ ॥ निशम्येतिसपुण्यात्मानागराजकुमारकः ॥ आश्वास्यता भयत्रस्ताःप्रोवाचेदञ्चपुण्यधीः ॥ ६० ॥ मयासहसमायातरत्नेशंदर्शयामिवः ॥ इत्याहूयसतानिन्येक्रीडावापींसुखोद काम् ॥ ६१ ॥ विचित्रमणिसोपानांहंसकोककृतारवाम् ॥ कवीनांवासितव्याजात्स्वागतंकुर्वतीमिव ॥ ६२ ॥ तत्रतेनाभ्य

से लगाकर हमने उस दुष्ट दानव को देखा तबसे लगाकर हमारी आंखें बिजुली से हतदीप्तिवालीसी हैं ॥ ५८ ॥ हे भयसे रक्षक! डरसे चलितहुई हम कुछ भी नहीं जानतीं हैं कि हम कहां हैं व हम कौन हैं व तुम कौन हो व क्या होगया है और क्या होगा ॥ ५९ ॥ ऐसा सुनकर पुण्यात्मा व पुण्यबुद्धिवाले उस नागराजकुमारने डरसे त्रसित हुई उन कुमारियों से इस वचनको कहा ॥ ६० ॥ कि तुम मेरे साथ भलीभांति चली आवो तुमको रत्नेश्वरके दर्शन करादूंगा इस भांति उनको बुलाकर वह सुख जलवाली क्रीड़ा बावलीको लेगया ॥ ६१ ॥ जोकि क्रीडावापी विचित्र मणिमयी सीढ़ियों से बँधी व हंसों और चकोरों के कियेहुये शब्दसे संयुत व जलपक्षियों के शब्दों

के मिष स्वागत करतीसी है ॥ ६२ ॥ उस क्रीड़ावापी में उससे आज्ञादीहुई वे जलाशयमें पैठकर तदनन्तर वस्त्र फूल और भूषण समेत फिर स्नान करतीभई ॥ ६३ ॥ और बाहर निकलकर देखतीहुई गंधर्वियां ठहरसीगई व कालराजके समीपमें रत्नेश्वरका मंदिर देखकर ॥ ६४ ॥ तब विस्मितहुईसी गंधर्वियोंने आपुस में कहा कि यह स्वप्नहै कि सत्यहै व रत्नेश्वरका खेलहै ॥ ६५ ॥ व हमीं भ्रमी हैं कि हम गंधर्वी नहीं हैं यह ऐन्द्रजालिकखेल के समान क्याहै हम नहीं जानती हैं ॥ ६६ ॥ किन्तु यहां यह स्पष्ट होताहै कि यह उत्तरवाहिनी गंगाहैं व यह शंखचूड़की बावली है और यह शंखचूड़का स्थान है ॥ ६७ ॥ यह पंचनदतीर्थ है व यह वागीश्वर का मंदिर है

नुज्ञाताःक्रीडावाप्यांनिमज्ज्यताः ॥ सचैलपुष्पाभरणाःप्रोन्ममज्जुस्ततःपुनः ॥६३॥ बहिर्निर्गत्यगन्धर्व्यःपश्यन्त्यः स्थगिताइव ॥ रत्नेशालयमालोक्यकालराजसमीपतः ॥ ६४॥ परस्परन्ततःप्रोचुर्गन्धर्व्योविस्मिताइव ॥स्वप्नोयंकिंनुवा सत्यंखेलोरत्नेश्वरस्यवा ॥ ६५ ॥ वयमेवहिवाभ्रान्तागन्धर्व्योनवयंकिमु ॥ किमेतन्नैवजानीमऐन्द्रजालिकखेलवत् ॥ ६६ ॥ एषोत्तरवहागङ्गास्फुटमेवमवेदिह ॥ शङ्खचूडस्यवाप्येषाशङ्खचूडालयस्त्वसौ ॥ ६७॥ एतत्पञ्चनदन्तीर्थमेषवा गीश्वरालयः ॥ यस्यसन्दर्शनादेववाग्विभूतिर्विजृम्भते ॥ ६८ ॥ शङ्खचूडेश्वरश्चैषशङ्खचूडप्रतिष्ठितः ॥ यस्यसन्दर्श नात्पुंसांनभयङ्कालसर्पजम् ॥ ६९ ॥ एषामन्दाकिनीनामदीर्घिकापुण्यतोयभूः ॥ यस्यांकृतोदकामर्त्यामर्त्यलोकेवि शन्तिन ॥ ७० ॥ असावाशापुरीदेवीयास्तुतात्रिपुरारिणा ॥ त्रिपुरंजेतुकामेनमन्दाकिन्यास्तटेशुभे ॥ ७१ ॥ याद्यापिपू जितामर्त्यैराशाम्पूरयतेर्थिनाम् ॥ मन्दाकिन्याःप्रतीच्यान्तुएषसिद्धयष्टकेश्वरः ॥ ७२ ॥ भवेद्यस्यसपर्यातोगृहेसिद्ध्यष्ट

जिसके भलीभांति दर्शन करने से वाणी की विभूति स्फुरित होती है ॥ ६८ ॥ और शंखचूड़से थापाहुवा यह शंखचूडेश्वर नामक लिंगहै जिसके दर्शनसे कालेसर्प्पों से उपजा हुवा डर नहीं है ॥ ६९ ॥ व यह मंदाकिनी नाम नदी है जो कि पुण्य पानी का पात्रहै और जिसमें स्नानादि कियेहुये मनुष्य फिर मनुष्यलोक में नहीं पैठते हैं ॥ ७० ॥ व मंदाकिनी (गंगा) के शुभ किनारे में यह आशापुरी देवी हैं जोकि त्रिपुरकी जीतिचाही महादेवजीसे स्तुति कीगई हैं ॥ ७१ ॥ व जोकि मनुष्यों से पूजी हुई आजभी अर्थियों की आशाको पूरी करती हैं व गंगा से पश्चिम यह सिद्ध्यष्टकेश्वरहैं ॥ ७२ ॥ जिसकी पूजासे घर में आठ सिद्धियां प्रकट होती हैं और वहांही

विमलजलवाला सिद्ध्यष्टक नाम कुण्डहै ॥ ७३ ॥ जिसमें स्नानकर श्राद्धकियेहुवा निर्मलनर स्वर्गको जाताहै व वे मूर्त्तिमती आठोसिद्धियां हैं जोकि काशी में सब सिद्धि देनेवाली हैं ॥ ७४ ॥ व यह सब सिद्धियों के दायक महाराज विनायक हैं जिनके प्रणामकरतेहुये मनुष्योंके सब विनायक याने बड़े बड़े विघ्न विनष्ट होजाते हैं ॥ ७५ ॥ व सोने से विमल यह रत्नेश्वरका ऊंचा मंदिर है जिसमें रत्नोंकी ध्वजायें और पताकायें हैं व जिसके दर्शनसे सिद्धि होवे है ॥ ७६ ॥ व क्षेत्रके मध्यभागमें यह मध्यमेश्वर प्रसिद्धहैं जिनके दर्शनसे मध्यलोक और पाताल लोकके बीचमें नहीं बसे याने ऊंचे स्वर्गादिलोकों में बसताहै ॥ ७७ ॥ व मध्यमेश्वर की पूजाकर मनुष्य जो भूलोकमें

कंस्फुटम् ॥ कुण्डंसिद्ध्यष्टकाख्यञ्चतत्रैवविरजोदकम् ॥ ७३ ॥ यत्रस्नात्वाकृतश्राद्धोविरजस्कोदिवंव्रजेत् ॥ मूर्त्य स्ताःसिद्धयश्चाष्टौयाःकाश्यांसर्वसिद्धिदाः ॥ ७४ ॥ सर्वसिद्धिप्रदश्चासौमहाराजविनायकः ॥ विनायकाःप्रणश्यन्तिय स्मैप्रणमतांनृणाम् ॥ ७५ ॥ असौसिद्धेश्वरस्योच्चैःप्रासादःकाञ्चनोज्ज्वलः ॥ रत्नध्वजपताकाश्चसिद्धिःस्याद्यद्विलो कनात् ॥ ७६ ॥ क्षेत्रस्यमध्यमेभागेमध्यमेश्वरएषवै ॥ मध्याधोलोकयोर्मध्येनवसेद्यस्यवीक्षणात् ॥ ७७ ॥ मध्यमे शंसमभ्यर्च्यनरोमध्यमविष्टपे ॥ आसमुद्रक्षितीन्द्रःस्यात्ततोमोक्षञ्चविन्दति ॥ ७८ ॥ ऐरावतेश्वरंलिङ्गंतत्प्राच्या मिष्टसिद्धिकृत् ॥ दृश्यतेयत्पताकायांरम्यऐरावतोगजः ॥ ७९ ॥ वृद्धकालेश्वरस्यैषप्रासादोरत्ननिर्मितः ॥ प्रतिदर्शंव सेद्यत्ररात्रौचन्द्रःसतारकः ॥ ८० ॥ यस्यसन्दर्शनान्नृणांनकालःप्रभवेद्भवे ॥ नकलिःप्रभवेत्सत्यंनचकल्मषराशयः ॥ ८१ ॥ इतियावत्कथाश्चक्रुःसंभ्रान्ताइवबालिकाः ॥ तावद्वसुविभूतिःसगन्धर्वस्त्वरयाययौ ॥ ८२ ॥ नारदाच्छ्रुतवृत्तान्तः

जन्मधरे तो समुद्रतक भूमिका राजा होवे और उसके बाद मोक्षको पावे ॥ ७८ ॥ व उस मध्यमेश्वरलिंगसे पूर्वमें इष्टसिद्धिकर्त्ता ऐरावतेश्वर लिंगहै जिसकी पताकामें रम्य ऐरावत हाथी दिखाई देता है ॥ ७९ ॥ व रत्नों से रचाहुवा यह वृद्धकालेश्वर का मंडपहै जिसमें प्रतिअमावस ताराओं समेत चन्द्रमा बसता है ॥ ८० ॥ व जिसके भली भांति दर्शन करने से मनुष्यों के जन्ममें काल नहीं प्रभुता करता व कलि नहीं प्रभुता करताहै और यह सत्यहै कि पापसमूह भी नहीं समर्थ होते हैं ॥ ८१ ॥ इसभांति जबतक संभ्रमवतीसी कन्याओंने कथा किया तब तक वह वसुभूति गंधर्व बड़े वेगसे आगया ॥ ८२ ॥ क्योंकि उसने नारदसे सुबाहु दानव का वृत्तांत सुना था व जैसे

सखियों समेत परम प्यारी रत्नावली कुमारी हरी गई है ॥ ८३ ॥ व जैसे रत्नेश्वर से सूने आकाशमार्ग में कन्यायें भलीभांति आती रहें व जैसे वह दैत्य पातालको लेगया व जैसे फिर युद्ध भया ॥ ८४ ॥ व जैसे रत्नेश्वरके भक्त बड़ेधन्वावाले रत्नचूड़ने बाण से उस सुबाहु दानवको मारा ॥ ८५ ॥ व जैसे वृत्तांतपूछे हुवा रत्नचूड़ बावलीकी गलीसे काशी में लेआया व जोकि शंखचूडकी बावली पातालमें प्रवर्त्तनेवाली थी उसको ॥ ८६ ॥ प्राप्तहोकर जैसे निकलीहुई कन्यायें काशीको देखकर भी बहुतही संभ्रमको प्राप्तहोगईं व देखतीहुई भी भलीभांति उत्सुक भई हैं ॥ ८७ ॥ तदनंतर त्राससे कुम्हिलानी मुखशोभावाली व सखियों समेत फिर उपजीहुई सी उस पुत्रीको

सुबाहुदनुजन्मनः ॥ रत्नावलीसुताप्रीतास्ससखीकायथाहृता ॥ ८३ ॥ रत्नेश्वरात्समायान्तिशून्येगगनवर्त्मनि ॥ यथा नयच्चपातालंयथायुद्धमभूत्पुनः ॥ ८४ ॥ यथारत्नेशभक्तेनरत्नचूडेनघातितः ॥ ससुबाहुर्दनुजन्मुर्महेष्वासेनचेषुणा ॥ ८५ ॥ यथाचपृष्टवृत्तान्तोवापीमार्गेणचानयत् ॥ शङ्खचूडस्यवापींतांपातालेषुप्रवर्तिनीम् ॥ ८६ ॥ यथाचप्राप्यनिर्याताःकाशींदृष्ट्वापिबालिकाः ॥ भृशंसंभ्रान्तिमापन्नाःपश्यन्त्योपिसमुत्सुकाः ॥ ८७ ॥ दृष्ट्वागन्धर्वराजस्ताम्पुनर्जातामिवात्मजाम् ॥ सवयस्यामनम्लानमुखपङ्कजसुश्रियम् ॥ ८८ ॥ परिष्वज्यसमाघ्रायललाटफलकंमुहुः ॥ अङ्कमारोप्यपप्रच्छसर्ववृत्तान्तमादरात् ॥ ८९ ॥ अथसाकथयामासदनुजापहृतेःकथाम् ॥ रत्नेश्वरवरावाप्तिंस्वप्नावस्थांविहाय च ॥ ९० ॥ रत्नावलीमनोवृत्तिंविज्ञायाथमुखेङ्गितैः ॥ शशिलेखासमाचष्टस्पष्टवर्णैःसविस्तरम् ॥ ९१ ॥ तुतोषनितरांसोथगन्धर्वाधिपतिःकृती ॥ प्रभावंवर्णयामासमुदारत्नेश्वरस्यच ॥ ९२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ आकर्ण्यमुनिश्रेष्ठविन्ध्यवृद्धि

देखकर गंधर्वराजने ॥ ८८ ॥ लिपटाकर बार बार माथफलकको सूंघकर व गोदमें चढ़ाकर आदरसे सब वृत्तांतको पूंछा ॥ ८९ ॥ अनन्तर उस कुमारीने रत्नेश्वरसे वरकी प्राप्ति और स्वप्नावस्थाको छोंड़कर दानवके हरलेजाने की कथाको कहा ॥ ९० ॥ तदनन्तर मुखकी संज्ञाओं से रत्नावली के मनकी वृत्तिको जानकर शशिलेखाने विस्तार समेत स्पष्ट अक्षरों से भलीभांति कहदिया ॥ ९१ ॥ उसके बाद वह पुण्यात्मा गंधर्वराज बहुतही तुष्टहुवा व आनंदसे रत्नेश्वरके प्रभावकी प्रशंसा करनेलगा ॥ ९२ ॥

श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे विंध्याचलकी बढ़ती के छेदनेवाले, मुनिश्रेष्ठ! तुम सुनो कि, प्रतिदिन संयमवाला रत्नचूड भी बावली की गली के द्वारा ॥ ९३ ॥ नागलोकसे भलीभांति आकर मंदाकिनी गंगाके जलमें नहाकर व आठ अंजली रत्नों से रत्नेश्वरकी भलीभांति पूजाकर ॥ ९४ ॥ आनंदित के समान सोने के आठ कमलोंको समर्पण करता है (था) एकसमय स्वप्नकालमें लिंगरूपधारी रत्नेश्वरने ॥ ९५ ॥ दृढव्रतकारी अपने भक्त रत्नचूड़ से यह कहा कि आप दानवसे हरी हुई जिस कन्याको छुड़ावोगे ॥ ९६ ॥ उस दानवको संग्राममें जीतकर तदनन्तर वह कन्या तुम्हारी प्यारी नारी होवेगी ऐसे वरको सुमिरताहुवा महामनस्वी नागराज रत्न-

विवर्धन ॥ प्रत्यहंरत्नचूडोपिवापीमार्गेणसंयमी ॥९३॥ नागलोकात्समागत्यस्नात्वामन्दाकिनीजले ॥ रत्नेश्वरंसमभ्य र्च्यरत्नाञ्जल्यष्टकेनवै ॥ ९४ ॥ सुवर्णपङ्कजान्यष्टौसमर्पयतिहृष्टवत् ॥ एकदास्वप्नसमयेरत्नेशोलिङ्गरूपधृक् ॥ ९५ ॥ रत्नचूडमुवाचेदंनिजभक्तंदृढव्रतम् ॥ दानवेनहृतांकन्यांसोचयिष्यतियाम्भवान् ॥ ९६ ॥ तन्दानवंरणेजित्वासातेप त्नीभविष्यति ॥ इतिस्मरन्वरंसोथनागराजोमहामनाः ॥ ९७ ॥ तांकन्यांदानवंहत्वाविमोच्यनिजवीर्यतः ॥ वापीमा र्गेणपातालादानिनायपुनर्महीम् ॥ ९८ ॥ स्वयंचसाधयाञ्चक्रेप्रत्यहंनियमंसुधीः ॥ लिङ्गंसमर्चयित्वाथकृत्वाचापिप्रद क्षिणम् ॥ ९९ ॥ यावद्बहिःसमागच्छेद्रम्याद्रत्नेशमण्डपात ॥ तावद्गन्धर्वराजायताभिःसवसुभूतये ॥ २०० ॥ सोयंसो यंयुवाधन्यस्तर्जन्यग्रेणदर्शितः ॥ गन्धर्वराजस्तंदृष्ट्वानागराजकुमारकम् ॥ १ ॥ अतीवस्मेरनयनःसंप्रहृष्टतनूरुहः ॥ मनस्येनञ्चसंवर्ण्यतद्रूपंसवयोन्वयम् ॥ २ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मिरत्नेशेनवरार्पणात् ॥ कन्याधन्यतराचेयमनु

चूड़ ॥ ९७ ॥ अपने वीर्य्य से दानवको मारकर व उस कन्याको छुड़ाकर वापीमार्ग के द्वारा पाताल से फिर भूमिमें लाया ॥ ९८ ॥ और वह सुबुद्धिमान् आपही अपने नियमोंको प्रतिदिन साधता था अनन्तर लिंगकी भलीभांति पूजाकर और प्रदक्षिणाभीकर ॥ ९९ ॥ जबतक रत्नेश्वर के मंडपसे बाहर भलीभांति आवै तबतक वह उन कन्याओं से वसुभूतिको ॥ २०० ॥ तर्जनी याने अंगुठाके लगेवाली अंगुली के अग्रभागसे दिखायागया कि वही यह धन्य युवाहै वही यहहै तब उस नागराजकुमारको देखकर गंधर्वराज ॥ १ ॥ अत्यन्त प्रसन्ननयन व रोमांचित होकर मनमें इसका वर्णनकर और वयस व वंश समेत उसके रूप (सुन्दरता) की प्रशंसाकर ॥ २ ॥

कि मैं धन्यहूं व रत्नेश्वरसे दया किया गयाहूं व रत्नेश्वरके वरसे यह कन्या भी बड़ी धन्याहै जिसका पति अनुरूप है ॥ ३ ॥ इसभांति हृदय में भलीभांति धारणकर व इस सुन्दर को बुलाकर व उसका नाम और गोत्र पूंछकर व बलाबलको गनकर ॥ ४ ॥ रत्नेश्वरके आगे उसके लिये आनन्दसे उस कन्याको देताभया और गंधर्वलोकमें लेजाकर कियेहुये कौतुकमंगलवाले वरको ॥ ५ ॥ मधुपर्क से भलीभांति पूजाकर तदनन्तर ब्याहकी विधिसे उसने कन्या का हाथ पकड़ा दिया व अनेकों रत्नदिया ॥ ६ ॥ हे कुंभज ! शशिलेखा अनंगलेखा और चित्रलेखा भी अपने पितासे विज्ञापनाकर उस पतिको वरलिया ॥ ७ ॥ तदनन्तर चारों भी शुभ गंधर्बकुमारियों को ब्याहकर

रूपोस्तियत्पतिः ॥ ३ ॥ संप्रधार्येतिहृद्येनंसमाकार्यचसुन्दरम् ॥ पृष्ट्वातन्नामगोत्रञ्चगणयित्वाबलाबलम् ॥ ४ ॥ रत्नेश्वरस्यपुरतस्तस्मैकन्यांददौमुदा ॥ नीत्वागन्धर्वलोकञ्चकृतकौतुकमङ्गलम् ॥ ५ ॥ मधुपर्केणसंपूज्यपाणिमग्राहयत्ततः ॥ वैवाहिकेनविधिनाददौरत्नान्यनेकशः ॥ ६ ॥ शशिलेखानङ्गलेखाचित्रलेखापिकुम्भज ॥ विज्ञाप्यस्वजनेतारंवरयामासतम्पतिम् ॥ ७ ॥ उपयम्यचतस्रोपिसगन्धर्वसुताःशुभाः ॥ रत्नचूडोजगामाथताभिःस्वपितृमन्दिरम् ॥ ८ ॥ यथाचतसृभिःसार्धंश्रुतिभिःप्रणवःशिवम् ॥ स्वपित्रोश्चरणौनत्वानवोढाभिःसनागराट् ॥ ९ ॥ विनिवेदितवृत्तान्तोरत्नेशानुग्रहस्यच ॥ उवासताभिःससुखंपितृभ्यामभिनन्दितः ॥ १० ॥ ईश्वरउवाच ॥ रत्नेश्वरस्यलिङ्गस्यममस्थावररूपिणः ॥ सर्वेषांसर्वदस्यास्यप्रभावोगिरिजेऽतुलः ॥ ११ ॥ अस्मिँल्लिङ्गेपरांसिद्धिंप्राप्ताःसिद्धाःसहस्रशः ॥ गुप्तमासीदिदंलिङ्गमद्ययावत्सुमध्यमे ॥ १२ ॥ तवपित्राहिमवताममभक्तेनसर्वथा ॥ पुण्यार्जितैर्महारत्नैरत्नेशःप्रकटीकृतः ॥ १३ ॥

रत्नचूड़ उनके साथ अपने पिताके घर को चलागया ॥ ८ ॥ कि जैसे चार श्रुतियों के साथ ॐकार विश्वनाथजी को प्राप्त होताहै वैसे वह नागराज उन नवोढ़ाओं के साथ माता व पिताके चरणारविन्दों के नमस्कारकर ॥ ९ ॥ और रत्नेश्वरकी दयाका वृत्तान्त निवेदित करनेवाला होकर माता व पिता से अभिनन्दित वह उन चारों के साथ सुख से बसा ॥ १० ॥ श्रीपरमेश्वरजी बोले कि, हे पार्वति ! जो कि मेरा स्थावर रूप सबको सब फलदायक रत्नेश्वरलिङ्ग है इसका अतुल प्रभावहै ॥ ११ ॥ हे सुमध्यमे ! इस लिंग में हजारों सिद्ध उत्तम सिद्धिको प्राप्त हुये हैं व आजतक यह लिंग गुप्त रहाहै ॥ १२ ॥ अब सब प्रकारसे हमारे भक्त तुम्हारे पिता हिमवान्ने पुण्य से

बटोरे बड़े रत्नों से रत्नेशको प्रकट कियाहै ॥ १३ ॥ हे पर्वतराजकुमारि ! इस लिंग में मेरी प्रीति बहुत अधिक है व काशी में यह लिंग बड़े यत्न से पूजने योग्य है ॥ १४ ॥ हे उमे, प्रिये ! रत्नेश्वरकी दयासे स्त्रीरत्न व पुत्ररत्नादि व स्वर्ग व मोक्ष भी इत्यादि अनेक रत्न मिलतेहैं ॥ १५ ॥ व जो कि यहां रत्नेश्वर के नमस्कारकर अन्य देशों में भी जाकर मरगया है वह सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी स्वर्ग से इस मनुष्यलोक में नहीं आता है ॥ १६ ॥ हे देवि ! रत्नेश्वर के समीप कृष्णपक्षकी चतुर्दशी में उपासकर रातमें जागने से मेरी समीपताको प्राप्त होवे ॥ १७ ॥ हे प्रिये ! तुमने अन्य जन्म में मेरी भक्ति से इस लिंग से पूर्व यहां दाक्षायणीश्वर लिंगकी प्रतिष्ठा किया

अस्मिँल्लिङ्गेममप्रीतिर्नितरामद्रिराजजे ॥ वाराणस्यामिदंलिङ्गंपूजनीयंप्रयत्नतः ॥ १४ ॥ नानारत्नानिलभ्यन्तेरत्नेशानुग्रहादुमे ॥ स्त्रीरत्नपुत्ररत्नादिस्वर्गमोक्षावपिप्रिये ॥ १५ ॥ योऽत्ररत्नेश्वरंनत्वामृतोदेशान्तरेष्वपि ॥ नसस्वर्गादिहागच्छेत्कल्पकोटिशतैरपि ॥ १६ ॥ असितायाश्चतुर्दश्यामुपोष्यनिशिजागरात् ॥ रत्नेशसन्निधौदेविममसान्निध्यमाप्नुयात् ॥ १७ ॥ अस्यलिङ्गस्यपूर्वेणत्वयाजन्मान्तरेप्रिये ॥ दाक्षायणीश्वरंलिङ्गंमद्भक्त्यात्रप्रतिष्ठितम् ॥ १८ ॥ तस्यसंदर्शनादेवननरोयातिदुर्गतिम् ॥ अम्बिकानामगौरीत्वंतत्राहंचाम्बिकेश्वरः ॥ १९ ॥ मूर्तःषडाननस्तत्रतवपुत्रःसुमध्यमे ॥ एतत्रयंनरोदृष्ट्वानगर्भंप्रविशेदुमे ॥ २० ॥ रत्नेश्वरस्यमाहात्म्यंमयातेसमुदीरितम् ॥ गोपनीयंप्रयत्नेनकलिकल्मषचेतसाम् ॥ २१ ॥ इदंरत्नेश्वराख्यानंयःपठिष्यतिसर्वदा ॥ सपुत्रपौत्रपशुभिर्नवियुज्येतकर्हिचित् ॥ २२ ॥ श्रुत्वारत्नेश्वरोत्पत्तिंसेतिहासांनरोत्तमः ॥ अनूढालभतेसत्यंकन्यारत्नंकुलोचितम् ॥ २३ ॥ कन्यापीमंसमाकर्ण्येतिवितिहासंमनोरम

है ॥ १८ ॥ उसके भलीभांति दर्शनसेही मनुष्य दुर्गति को नहीं जाताहै जहां तुम अम्बिका नाम गौरीहो वहां मैं अम्बिकेश्वरहूं ॥ १९ ॥ हे सुमध्यमे, उमे ! वहां मूर्त्तिमान् तुम्हारा पुत्र षण्मुखहै इन तीनों का दर्शनकर मनुष्य फिर गर्भ में न पैठे ॥ २० ॥ मैंने तुमसे रत्नेश्वरका माहात्म्य भलीभांति कहा जो कि कलियुग में पापचित्तवालों के मध्यमें बहुत यत्नसे गोपनीयहै ॥ २१ ॥ इस रत्नेश्वराख्यान को जो सदा पढ़ेगा वह पुत्र पौत्र और पशुओं से कभी वियोगी न होगा याने उसको ये सब सदैव मिलेंगे ॥ २२ ॥ व विना ब्याहा नरोत्तम इतिहास समेत रत्नेश्वरकी समुत्पत्ति को सुनकर सत्यही कुलोचित कन्यारत्नको पाताहै ॥ २३ ॥ व कन्याभी श्रद्धासे इस मनो-

उँचाईहै और इस मायावीकी देहकी उतनीही चौड़ाई है यहां दोनों हाथ पसारनेसे चौड़ाई जानना चाहिये ॥ ८ ॥ व जिसकी आंखों में पिलाई व तरलताई धाई है इस से जो आजभी बिजुली से नहीं त्यागा जाताहै वह यह वेग समेत आता है ॥ ९ ॥ यह निश्चयहै कि वह यह दुःसह दानव जिस जिस दिशाके सामने जाताहै वह वह दिशा इसके डरसे समसी होजाती है ॥ १० ॥ व इसने ब्रह्मासे ऐसा वर पायाहै कि मैं काम से निश्शेष जीते हुये स्त्रीजन और पुरुषों से भी अवध्य होजाऊं और इसने त्रिलोक को तृणके समान करदियाहै ॥ ११ ॥ तदनन्तर त्रिशूल अस्त्रधारी ने आते हुये उस दैत्यश्रेष्ठ को अन्यसे अवध्य जानकर उसको त्रिशूल से मारा ॥ १२ ॥ और

स्तनोर्मायाविनोस्यहि ॥ ८ ॥ यन्नेत्रयोःपिङ्गलिमातथातरलिमापुनः ॥ विद्युतानोज्झ्यतेऽद्यापिसोयमायातिसत्वरः ॥ ९ ॥ यांयान्दिशंसमभ्येतिसोयंदुःसहदानवः॥ सासासमीभवेदस्यसाध्वसादिवदिग्ध्रुवम्॥ १० ॥ ब्रह्मलब्धवरश्चायंतृणी कृतजगत्रयः ॥ अवध्योहंभवामीतिस्त्रीपुंसैःकामनिर्जितैः ॥ ११ ॥ ततस्त्रिशूलहेतिस्तमायान्तंदैत्यपुङ्गवम् ॥ विज्ञायाव ध्यमन्येनशूलेनाभिजघानतम् ॥ १२ ॥ प्रोतस्तेनत्रिशूलेनसचदैत्योगजासुरः ॥ छत्रीकृतमिवात्मानंमन्यमानोजगौ हरम् ॥ १३ ॥ गजासुरउवाच ॥ त्रिशूलपाणेदेवेशजानेत्वांस्मरहारिणम् ॥ तवहस्तेममवधःश्रेयानेवपुरान्तक ॥ १४ ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामिअवधेहिममेरितम् ॥ सत्यंब्रवीमिनासत्यंमृत्युञ्जयविचारय ॥ १५ ॥ त्वमेकोजगतांवन्द्योविश्व स्योपरिसंस्थितः ॥ अहंत्वदुपरिष्टाच्चास्थितोस्मीतिजितंमया ॥ १६ ॥ धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मित्वत्रिशूलाग्रसंस्थितः ॥

उस त्रिशूल से बिधा हुवा वह गजासुर दैत्य अपनाको छत्रसा किया मानता हुवा भक्तभयहारी महादेवजी से बोला ॥ १३ ॥ गजासुर बोला कि हे त्रिशूलहस्त, त्रिपुरान्तक, देवेश ! मैं संसारहार तुमको जानताहूं इससे तुम्हारे हाथसे मेरा मरना श्रेष्ठहै ॥ १४ ॥ हे मृत्युंजय ! मैं कुछ विज्ञापना करना चाहताहूं तुम मेरा कहा वचन सुनो मैं सत्य कहताहूं असत्य नहीं कहताहूं तुम विचार कर देखलो ॥ १५ ॥ कि जगत् से वन्दनीय एक तुम विश्व के ऊपर भलीभांति टिके हो परन्तु मैं इस समय तुम्हारे ऊपर टिकाहूं इस भांति मुझसेही जीता गयाहै याने आपकी हार होगई है ॥ १६ ॥ तुम्हारे त्रिशूल के आगे टिकाहुवा मैं धन्यहूं और आपसे दया किया

रम इतिहास को सुनकर अच्छे पतिको प्राप्तहोकर पतिव्रता होवेगी ॥ २४ ॥ स्त्री व पुरुषभी इस इतिहास को सुनकर प्यारेकी विरहाग्नि से कभी नहीं परितप्त होता है ॥ २२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेरत्नेशप्रशंसापूर्वकरत्नावलीतिहासवर्णनन्नामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ ❀ ॥

दो० । अरसठयें अध्याय शिव गजासुरहि वर दीन । ताकी त्वचको पट पहिरि कृत्तिवास वपु कीन ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे विप्रेन्द्र ! महापापहारी, अधिक आश्चर्यकारी वहां हुये अन्य इतिहास को भी तुम सुनो ॥ १ ॥ इस प्रकार महेश के रत्नेशकी कथा करतेही रक्षाकरो रक्षाकरो ऐसा बड़ा कोलाहल सब ओर से हुवा ॥ २ ॥

म् ॥ श्रद्धयासत्पतिंप्राप्यभविष्यतिपतिव्रता ॥ २४ ॥ इतिहासमिमंश्रुत्वानारीवापुरुषोपिवा ॥ नजातिवष्टवियोगाग्नितापेनपरितप्यते ॥ २२५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेरत्नेश्वरप्रशंसनन्नामसप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

स्कन्दउवाच ॥ अन्यच्चशृणुविप्रेन्द्रवृत्तान्तंतत्रसम्भवम् ॥ महाश्चर्यप्रजननंमहापातकहारिच ॥ १ ॥ इत्थङ्कथांप्रकुर्वाणेरत्नेशस्यमहेश्वरे ॥ कोलाहलोमहानासीत्त्रातत्रातेतिसर्वतः ॥ २ ॥ महिषासुरपुत्रोसौसमायातिगजासुरः ॥ प्रमथन्प्रमथान्सर्वान्निजवीर्यमदोद्धतः ॥ ३ ॥ यत्रयत्रधरायांसचरणंप्रमिणोतिहि ॥ अचलोच्चलयाञ्चक्रेतत्रतत्रास्यभारतः ॥ ४ ॥ ऊरुवेगेनतरवःपतन्तिशिखरैःसह ॥ यस्यदोर्दण्डघातेनचूर्णाःस्युश्चशिलोच्चयाः ॥ ५ ॥ यस्यमौलिजसङ्घर्षाद्घनाव्योमत्यजन्त्यपि ॥ नीलिमानंनचाद्यापिजह्युस्तत्केशसङ्गजम् ॥ ६ ॥ यस्यनिःश्वाससंभारैरुत्तरङ्गामहाब्धयः ॥ नद्योप्यमन्दकल्लोलाभवन्तितिमिभिःसह ॥ ७ ॥ योजनानांसहस्राणिनवयस्यसमुच्छ्रयः ॥ तावानेवहिविस्तार

व सब गणों को मथता हुवा अपने वीर्य्य के मदसे उन्नत यह महिषासुर का पुत्र गजासुर भलीभांति आताहै ॥ ३ ॥ वह जहां जहां भूमि में पग धरताहै वहां वहां इसके भारसे अचलाभी पृथिवी डगमग डगमग डोलती है ॥ ४ ॥ व जिसकी ऊरुओं के वेग से वृक्ष गिरते हैं व बाहुदण्डके घातसे शिखरों के साथ पर्वत चूर्ण होजाते हैं ॥ ५ ॥ व जिसके बाल घिसनेसे बादर भी आकाश को त्याग देते हैं और उसके बालों के संगसे उपजीहुई श्यामताको आजभी नहीं तजते हैं ॥ ६ ॥ व जिसके निःश्वास समूह से समुद्र ऊंची लहरोंवाले हैं व नदियां भी मछलियों आदि जलचरों के साथ बहुत भारी लहरोंवाली होती हैं ॥ ७ ॥ व छत्तिसहजार कोसकी जिसके अंगकी

गयाहूं किन्तु काल से सबका मरनाहै परन्तु ऐसी मृत्यु कल्याण के लिये होती है ॥ १७ ॥ हे घटोद्भव ! ऐसा उसका वचन सुनकर बिहँसते हुये कृपानिधान देवों के देव शङ्करजीने गजासुर से कहा ॥ १८ ॥ श्रीपरमेश्वर बोले कि हे बड़े पौरुषके पात्र, सुबुद्धे, गजासुर, दैत्य ! मैं प्रसन्नहूं तुम अपने अनुकूल वरको कहो ॥ १९ ॥ ऐसा सुनकर वह दैत्येन्द्र महेशजी के प्रति कहनेलगा, गजासुर बोला कि, हे दिगम्बर ! तुम जो प्रसन्नहो तो नित्यही मेरा चर्म्म पहरो ॥ २० ॥ हे विरूपाक्ष ! जोकि यह मेरा चर्म्म तुम्हारे त्रिशूलरूप अग्नि से पवित्र किया गयाहै व अपने बराबर है व सुखस्पर्शवाला है व संग्रामांगण में पण याने ग्लहभाव से दियागया है ॥ २१ ॥ और यह

कालेनसर्वैर्मर्त्तव्यंश्रेयसेमृत्युरीदृशः ॥ १७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वादेवदेवःकृपानिधिः ॥ प्रोवाचप्रहसञ्छम्भुर्घटोद्भवगजासुरम् ॥ १८ ॥ ईश्वरउवाच ॥ गजासुरप्रसन्नोस्मिमहापौरुषशेवधे ॥ स्वानुकूलंवरंब्रूहिददामिसुमतेऽसुर ॥ १९ ॥ इत्याकर्ण्यसदैत्येन्द्रःप्रत्युवाचमहेश्वरम् ॥ गजासुरउवाच ॥ यदिप्रसन्नोदिग्वासस्तदानित्यंवसानमे ॥ २० ॥ इमांकृत्तिंविरूपाक्षत्वत्त्रिशूलाग्निपाविताम् ॥ स्वप्रमाणांसुखस्पर्शांरणाङ्गणपणीकृताम् ॥ २१ ॥ इष्टगन्धिःसदैवास्तुसदैवास्त्वतिकोमला ॥ सदैवनिर्मलाचास्तुसदैवास्त्वतिमण्डनम् ॥ २२ ॥ महातपोऽनलज्वालाःप्राप्यापिसुचिरंविभो ॥ नदग्धाकृत्तिरेषामेपुण्यगन्धनिधिस्ततः ॥ २३ ॥ यदिपुण्यवतीनैषाममकृत्तिर्दिगम्बर ॥ तदात्वदङ्गसङ्गोस्याःकथंजातोरणाङ्गणे ॥ २४ ॥ अन्यञ्चमेवरन्देहियदितुष्टोसिशङ्कर ॥ नामास्तुकृत्तिवासास्तेप्रारभ्याद्यतनन्दिनम् ॥ २५ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वातथेत्युक्त्वाचशङ्करः ॥ पुनःप्रोवाचतन्दैत्यंभक्तिनिर्मलमानसम् ॥ २६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुपुण्य

सदैव वाञ्छित सुगन्धवाला होवे व सदैव बहुत कोमल होवे व सदैव निर्मल होवे व सदैव अतिशय भूषण होवे ॥ २२ ॥ हे विभो ! जिससे यह मेरा चर्म्म महातप रूप अग्निज्वालाको प्राप्तहोकर नहीं जलाहै उससे पुण्य और सुगन्धका निधानहै ॥ २३ ॥ हे दिगम्बर ! जो यह मेरा चर्म्म पुण्यवान् न होता तो संग्रामांगण में इसका तुम्हारे अंगोंका संग कैसे हुवाहै ॥ २४ ॥ हे शङ्कर ! जो प्रसन्नहो तो अन्य वर दो कि आज का दिन लगाकर तुम्हारा कृत्तिवास नाम होवे ॥ २५ ॥ ऐसा उसका वचन सुनकर व वैसेहीहो इसभांति कहकर शङ्करजी निर्मल अन्तःकरणवाले उस दैत्यसे फिर बोले ॥ २६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे काशीनामक महाक्षेत्र में देहछोड़नेवाले, बड़ीपुण्य

के निधान, दैत्य! तुम अन्यभी बहुत दुर्लभ वरको सुनो ॥ २७ ॥ कि इस मुक्तिसाधन क्षेत्रमें यह तुम्हारा शरीर सबका मुक्तिदायक मेरा लिंग होजावे ॥ २८ ॥ जोकि यह कृत्तिवासेश्वर नामक व महापापनाशक व सब लिंगों के बीच शिरोभूत और श्रेष्ठहो ॥ २९ ॥ व काशीमें जितने बड़े पूजनीय लिंग हैं उनके मध्यमें यह उत्तम लिंग शिरके समान उत्तमहो ॥ ३० ॥ और इसमें पार्वती गणेशादि सहित मैं मनुष्यों के हितके लिये टिकूंगा व इस लिंगके देखे पूजे और स्तुति कियेहुये से मनुष्य कृतकृत्य होजावे व फिर संसार में न पैठे याने न आवे ॥ ३१ ॥ जे रुद्र, पाशुपत, सिद्ध, ऋषि, तत्त्वचिन्तक, शान्त, दांत, जितक्रोध, शीतोष्णादिद्वन्द्वसे हीन, निष्परि-

निधेदैत्यवरमन्यंसुदुर्लभम् ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेरणत्यक्तकलेवर ॥ २७ ॥ इदंपुण्यशरीरन्तेक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिसाधने ॥ ममलिङ्गंभवत्वत्रसर्वेषांमुक्तिदायकम् ॥ २८ ॥ कृत्तिवासेश्वरंनाममहापातकनाशनम् ॥ सर्वेषामेवलिङ्गानांशिरोभूतमिदंवरम् ॥ २९ ॥ यावन्तिसन्तिलिङ्गानिवाराणस्यांमहान्त्यपि ॥ उत्तमंतावतामेतदुत्तमाङ्गवदुत्तमम् ॥ ३० ॥ मानवानां हितायात्रस्थास्येहंसपरिग्रहः ॥ दृष्टेनानेनलिङ्गेनपूजितेनस्तुतेनच ॥ कृतकृत्योभवेन्मर्त्यःसंसारंनविशेत्पुनः ॥ ३१ ॥ रुद्राःपाशुपताःसिद्धाऋषयस्तत्त्वचिन्तकाः ॥ शान्तादान्ताजितक्रोधानिर्द्वन्द्वानिष्परिग्रहाः ॥ ३२ ॥ अविमुक्तेस्थिता येतुममभक्तामुमुक्षवः ॥ मानापमानयोस्तुल्याःसमलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥ ३३ ॥ कृत्तिवासेश्वरेलिङ्गेस्थास्येहन्तदनुग्रहे ॥ दशकोटिसहस्राणितीर्थानिप्रतिवासरम् ॥ ३४ ॥ त्रिकालमागमिष्यन्तिकृत्तिवासेनसंशयः ॥ कलिद्वापरसंभूतानराःकल्मषबुद्धयः ॥ ३५ ॥ सदाचारविनिर्मुक्ताःसत्यशौचपराङ्मुखाः ॥ माययादम्भलोभाभ्यांमोहाहंकृतिसंयुताः ॥ ३६ ॥

ग्रह (देहका निर्वाह छोड़कर अन्य वस्तु न ग्रहण करनेवाले) ॥ ३२ ॥ व जे मेरे भक्त, मुक्तिचाही, मान और अपमान को बराबर मानतेहुये व जे ढेला और सोने को समान समझनेवाले काशी मे टिके हैं ॥ ३३ ॥ उनकी दयाकेलिये मैं कृत्तिवासेश्वर लिंगमें टिकूंगा व दशकरोड़ हज़ार तीर्थ प्रतिदिन ॥ ३४ ॥ त्रिकाल कृत्तिवासेश्वर को आवेंगे इस में संशय नहीं है व कलियुग और द्वापर में उपजेहुये पापबुद्धिवाले मनुष्य ॥ ३५ ॥ जोकि सदाचार को छोड़ेहुये व सत्य शौचादि से विमुख व पाखण्ड

छल लोभ मोह और अहङ्कारसे संयुत ॥ ३६ ॥ शूद्रान्न के सेवी, लोलुप बहुतही लालसावाले सन्ध्यास्नान जप और पूजासे मन व बुद्धिको बहुतही दूरकियेहुये ब्राह्मणादि हैं ॥ ३७ ॥ वे सब कृत्तिवासेश्वर को प्राप्तहोकर सबपापोंसे हीनहो सुखसे वैसे मोक्षको प्राप्तहोवेंगे कि जैसे पुण्यवान् सुकर्मी लोग मुक्त होते हैं ॥ ३८ ॥ इस कारण काशी में कृत्तिवासेश्वर लिंग मनुष्योंसे सेवनेयोग्य है क्योंकि अन्यत्र हजारों जन्मान्तरों में भी मोक्ष बहुतदुर्लभहै ॥ ३९ ॥ और कृत्तिवासेश्वर लिंगमें एकही जन्मसे मिलने योग्य होताहै व पूर्वजन्मों का पाप तप जप और दानादिकों से धीरे धीरे नशताहै परन्तु कृत्तिवासेश्वर के दर्शन से शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥ ४० ॥ व जे मनुष्य कृ-

शूद्रान्नसेविनोविप्राजिह्वालाश्रतिलालसाः ॥ सन्ध्यास्नानजपेज्यासुदूरीकृतमनोधियः ॥ ३७ ॥ कृत्तिवासेश्वरंप्राप्य सर्वपापविवर्जिताः ॥ सुखेनमोक्षमेष्यन्तियथासुकृतिनस्तथा ॥ ३८ ॥ कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंसेव्यङ्काश्यान्ततोनरैः ॥ जन्मान्तरसहस्रेषुमोक्षोन्यत्रसुदुर्लभः ॥ ३९ ॥ कृत्तिवासेश्वरेलिङ्गेलभ्यस्त्वेकेनजन्मना ॥ पूर्वजन्मकृतंपापंतपोदानादिभिःशनैः ॥ नश्येत्सद्योविनश्येतकृत्तिवासेश्वरेक्षणात् ॥ ४० ॥ कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंयेर्चयिष्यन्तिमानवाः ॥ प्रविष्टास्तेशरीरेमेतेषांनास्तिपुनर्भवः ॥ ४१ ॥ अविमुक्तेऽत्रवस्तव्यंजप्तव्यंशतरुद्रियम् ॥ कृत्तिवासेश्वरोदेवोद्रष्टव्यश्चपुनःपुनः ॥ ४२ ॥ सप्तकोटिमहारुद्रैःसुजप्तैर्यत्फलम्भवेत् ॥ तत्फलंलभ्यतेकाश्यांपूजनात्कृत्तिवाससः ॥ ४३ ॥ माघकृष्णचतुर्दश्यामुपोष्यनिशिजागृयात् ॥ कृत्तिवासेशमभ्यर्च्ययःसयायात्पराङ्गतिम् ॥ ४४ ॥ शुक्लायांपञ्चदश्यांयश्चैत्र्याङ्कर्त्ता महोत्सवम् ॥ कृत्तिवासेश्वरेलिङ्गेनसगर्भंप्रवेक्ष्यते ॥ ४५ ॥ कथयित्वेतिदेवेशस्तत्कृत्तिम्परिगृह्यच ॥ गजासुरस्यमहतीं

त्तिवासेश्वर लिंगको पूजेंगे वे मेरे शरीर में पैठे हुये होवेंगे और फिर उनका जन्म न होवेगा ॥ ४१ ॥ इस काशी में बसना चाहिये व शतरुद्रिय सूक्त जपना चाहिये व कृत्तिवासेश्वर देवके बारबार दर्शन करना चाहिये ॥ ४२ ॥ व सात करोड़ महारुद्रोंके भलीभांति जपनेसे जो फल होवे वह फल काशी में कृत्तिवास की पूजासे मिलताहै ॥ ४३ ॥ व जोकि माघबदी चतुर्दशी को उपासकर कृत्तिवासेश्वरकी भलीभांति पूजाकर रातमें जागे वह उत्तम मोक्षको प्राप्तहोवे ॥ ४४ ॥ व जो चैतसुदी पूर्णिमा में कृत्तिवासेश्वर लिंगके समीप महोत्सव करेगा वह गर्भमें न पैठेगा ॥ ४५ ॥ इसभांति कहकर व उस गजासुर का बड़ाचर्म्म लेकर दिगम्बर देवने देहमें ओढ़

लिया ॥ ४६ ॥ हे कुम्भज ! जिसदिन दिगम्बर कृत्तिवासत्त्व को प्राप्तभये उसदिन महामहोत्सव हुवा ॥ ४७ ॥ और जहां भूतलमें त्रिशूल गाडकर उसके ऊपर विधाहुवा दैत्य छत्रसा कियागया वहां उस त्रिशूल के उखाड़लेने से बडाभारी कुण्ड होगया ॥ ४८ ॥ उस कुण्डमें स्नानकर व कृत्तिवासेश्वर के दर्शनकर और पितरों का तर्प्पण कर मनुष्य कृतकृत्य होवे और बहुतोंका नायकहोवे ॥ ४९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्ते ! उस तीर्थका जो वृत्तान्तहै उसको तुम सुनो कि उसतीर्थ के प्रभाव से कौवाभी हंसभाव को प्राप्तहोगये ॥ ५० ॥ पूर्वकाल में एक समय चैतकी पूर्णमासी में कृत्तिवासेश्वर की महायात्राहुई थी वहां पूजोपहार से हुवा अन्नराशि कियागया

कृत्तिवासत्वमापेदे यस्मिन्देवो दिगम्बरः ॥ प्राप्तेणोद्धरिदम्बरः ॥ ४६ ॥ महामहोत्सवो जातस्तस्मिन्नहनि कुम्भज ॥ यत्रच्छत्रीकृतो दैत्यः शूलमारोप्य भूतले ॥ ४७ ॥ तच्छूलोत्पाटनाज्जातं तत्र कुण्डं महत्तरम् ॥ ४८ ॥ तस्मिन्कुण्डे नरः स्नात्वा कृत्वा च पितृतर्पणम् ॥ कृत्तिवासेश्वरं दृष्ट्वा कृतकृत्यो नरो भवेत् ॥ ४९ ॥ स्कन्द उवाच ॥ तस्मिंस्तीर्थे तु यद्वृत्तन्तदगस्ते निशामय ॥ काका हंसत्वमापन्नास्तत्तीर्थस्य प्रभावतः ॥ ५० ॥ एकदा कृत्तिवासे तु चैत्र्यां यात्राऽभवत्पुरा ॥ अन्नं राशीकृतं तत्र ह्युपहारसमुद्भवम् ॥ ५१ ॥ बहुदेवलकैर्विप्र तं दृष्ट्वा पक्षिणो मिलन् ॥ परस्परं तदन्नार्थं युध्यन्तो व्योमवर्त्मनि ॥ ५२ ॥ बलिपुष्टैरपुष्टाङ्गा रटन्तः करटाः कटु ॥ बलिभिश्चातिपुष्टाङ्गैरबलाश्चञ्चुभिर्हताः ॥ ५३ ॥ ते हन्यमाना न्यपतंस्तस्मिन्कुण्डे नभोङ्गणात् ॥ आयुःशेषेण सन्त्राता हंसीभूतास्तु वायसाः ॥ ५४ ॥ आश्चर्यवन्तस्तत्रत्या यात्रायां मिलिता जनाः ॥ ऊचुरंगुलिनिर्देशैरहो पश्यत पश्यत ॥ ५५ ॥ अस्मासु वीक्षमाणेषु काकाः कुण्डेत्र ये पतन् ॥ धार्तराष्ट्रास्तु

था ॥ ५१ ॥ हे विप्र ! बहुते देवपूजक पण्डों ने जो अन्नराशि बटोराथा उसको देखकर उस अन्नके अर्थ आकाश मार्ग में परस्पर लड़ते हुये पक्षी बटुरकर एकत्र संमिलित हुये ॥ ५२ ॥ और बहुत पुष्ट अंगवाले बलवान् कागोंने कटुशब्द करतेहुये निबल कागो को चोंचों से मारा ॥ ५३ ॥ व उनसे मारेहुये वे आकाश आंगन से उसकुण्डमें गिरपड़े परन्तु आयुशेषसे बचायेहुये वे काग हंसहोगये ॥ ५४ ॥ तब वहांके यात्रा में मिलित याने इकट्ठेहुये जन आश्चर्यवान् होकर अँगुलियों का निर्देशकर याने उन कागों कीओर अँगुली उठाकर कहनेलगे कि अहो लोगो ! यह आश्चर्य है देखोदेखो ॥ ५५ ॥ कि हमारे देखतेही जे काग इसकुण्डमें गिरे वे इसतीर्थके प्रभावसे श्यामरंग

चोंच और पांवोंवाले हंसहोगये ॥ ५६ ॥ हे अगस्त्य! तबसे लगाकर कृत्तिवासेश्वर के समीप वह कुण्ड हंसतीर्थ नामसे भूलोक में कहागया याने प्रसिद्धभया ॥ ५७ ॥ महामलिन कर्मोंसे बहुतही मलिन मनवाले मनुष्यादि जन हंसतीर्थ में स्नानादि जलक्रिया करनेवाले होकर क्षणभरमें निर्मलताको प्राप्तहोतेहैं ॥ ५८ ॥ इससे काशी में सदैव बसना चाहिये हंसतीर्थ में नहाना चाहिये कृत्तिवासेश्वर के दर्शन करना चाहिये और परमपद (मोक्ष) को प्राप्त होना चाहिये ॥ ५९ ॥ हे मुने! काशी में पगपग पर अनेक लिंगहैं परन्तु कृत्तिवासेश्वर लिंग सब लिंगों का शिर कहागया है ॥ ६० ॥ इस लिये काशी में कृत्तिवासेश्वर की भलीभांति पूजाकर सब लिंगोंकी

तेजातास्तीर्थस्यास्यप्रभावतः ॥ ५६ ॥ हंसतीर्थन्तदारभ्यकृत्तिवाससमीपतः ॥ नाम्नाख्यातमभूल्लोकेतत्कुण्डंकलशोद्भव ॥ ५७ ॥ अतीवमलिनात्मानोमहामलिनकर्मभिः ॥ क्षणान्निर्मलतांयान्तिहंसतीर्थकृतोदकाः ॥ ५८ ॥ काश्यां सदैववस्तव्यंस्नातव्यंहंसतीर्थके ॥ द्रष्टव्यःकृत्तिवासेशःप्राप्तव्यंपरमंपदम् ॥ ५९ ॥ काश्यांलिङ्गान्यनेकानिमुनेसन्ति पदेपदे ॥ कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंसर्वलिङ्गशिरःस्मृतम् ॥ ६० ॥ कृत्तिवासंसमाराध्यभक्तियुक्तेनचेतसा ॥ सर्वलिङ्गाराधनजं फलंकाश्यामवाप्यते ॥ ६१ ॥ जपोदानंतपोहोमस्तर्पणन्देवतार्चनम् ॥ समीपेकृत्तिवासस्यकृतंसर्वमनन्तकम् ॥ ६२ ॥ तीर्थन्त्वनादिसंसिद्धमेतत्कलशसम्भव ॥ पुनर्देवस्यसान्निध्यादाविरासीन्महेशितुः ॥ ६३ ॥ एतानिसिद्धलिङ्गानिछिन्नानिस्युर्युगेयुगे ॥ अवाप्यशम्भुसान्निध्यंपुनराविर्भवन्तिहि ॥ ६४ ॥ हंसतीर्थस्यपरितोलिङ्गानामयुतंमुने ॥ प्रतिष्ठितं मुनिवरैरत्रास्तिद्विशतोत्तरम् ॥ ६५ ॥ एकैकंसिद्धिदंनॄणामविमुक्तनिवासिनाम् ॥ लिङ्गङ्कात्यायनेशादिच्यवनेशान्त

पूजासे हुवाफल मिलता है ॥ ६१ ॥ जप तप दान होम तर्पण देवपूजा आदि अन्य सुकर्म भी कृत्तिवासेश्वरके समीप में कियाहुवा अनन्त फलवाला होता है ॥ ६२ ॥ हे कलशसभव! अनादिकाल से संसिद्ध वह तीर्थ महेश देवकी समीपतासे फिर प्रकट होगया ॥ ६३ और ये युग युगमें छिपेहुये सिद्धलिंग शंभुकी समीपता पाकर फिर प्रकटहोजातेहैं ॥ ६४ ॥ हे मुने! यहां हंस तीर्थ के सब ओरमे मुनिवरों से प्रतिष्ठित दोसौ ऊपर दशहजार लिंगहैं ॥ ६५ ॥ और कात्यायनेश्वरादि व च्यवनेश्वर अंतवाले

सबलिंगों में से एकएक भी लिंगकाशीवासी मनुष्यों को सब सिद्धिदायकहै ॥ ६६ ॥ कृत्तिवासेश्वरसे पश्चिममें लोमश ऋषिका थापा जो लोमशेश्वर महा लिंगहै उसके दर्शनकर कालसे डर कहाहै ॥ ६७ ॥ व कृत्तिवाससे उत्तरमें बडापूजनीय मालतीश्वर लिंगहै उस लिंग की पूजाकर हाथियों का पति राजाहोवै ॥ ६८ ॥ व उससे ईशानकोणमें टिका हुवा अन्तकेश्वर लिंगहै उसके देखने से महापापी भी निष्पाप होजाता है ॥ ६९ ॥ व उसके पासमें बहुत उत्तम ज्ञानदायक जनकेश्वर महालिंग है उस लिंग की पूजासे ब्रह्मज्ञान मिलता है ॥ ७० ॥ उससे उत्तरमें बड़ी मूर्त्तिवाले असित भैरव है उसके दर्शन से मनुष्यों को यमराजका दर्शन न होवे ॥ ७१ ॥ और

मेवहि ॥ ६६ ॥ लोमशेशंमहालिङ्गंलोमशेनप्रतिष्ठितम् ॥ कृत्तिवासःप्रतीच्यान्तुतद्दृष्ट्वाकान्तकाद्भयम्॥६७॥ मालतीशंशुभंलिङ्गंकृत्तिवासोत्तरेमहत् ॥ सपर्ययित्वातल्लिङ्गंराजागजपतिर्भवेत् ॥ ६८ ॥ अन्तकेश्वरसंज्ञञ्चलिङ्गंतद्रुद्रदिक्स्थितम् ॥ अतिपापोपिनिष्पापोजायतेतद्विलोकनात् ॥६९ ॥ जनकेशंमहालिङ्गंतत्पार्श्वेज्ञानदंपरम् ॥ तल्लिङ्गवरिवस्यातोब्रह्मज्ञानमवाप्यते ॥ ७० ॥ तदुत्तरेमहामूर्तिरसिताङ्गोस्तिभैरवः ॥ तस्यदर्शनतःपुंसांनभवेद्यमदर्शनम् ॥ ७१ ॥ शुष्कोदरीचतत्रास्तिदेवीविकटलोचना ॥ कृत्तिवासादुदीच्यान्तुकाशीप्रत्यूहभक्षिणी ॥ ७२ ॥ अग्निजिह्वोस्तिवेतालस्तस्यादेव्यास्तुनैर्ऋते ॥ ददातिवाञ्छितांसिद्धिंसोर्चितोभौमवासरे ॥ ७३ ॥ वेतालकुण्डंतत्रास्तिसर्वव्याधिविघातकृत् ॥ तत्कुण्डोदकसंस्पर्शाद्व्रणविस्फोटरुग्व्रजेत् ॥ ७४ ॥ वेतालकुण्डेसुस्नातावेतालंप्रणिपत्यच ॥ लभेतवाञ्छितांसिद्धिन्दुर्लभांसर्वदेहिभिः ॥ ७५ ॥ गणोस्तितत्रद्विभुजश्चतुष्पात्पञ्चशीर्षकः ॥ तस्यसंवीक्षणादेवपापंयातिसहस्रधा ॥ ७६ ॥

वहां कृत्तिवासेश्वर से उत्तरमें काशिका की विघ्न विनाशिका विकटलोचना शुष्कोदरी देवी है ॥ ७२ ॥ व उसदेवी से नैर्ऋत्यमें अग्निजिह्व वेताल है मंगलबारमें पूजा हुआ वह वांछित सिद्धि को देता है ॥ ७३ ॥ और वहां सबरोग बिनाशक वेताल कुण्ड है उस कुण्डका जल छूने से व्रण व बिस्फोटक रोग चलाजावे ॥ ७४ ॥ व वेताल कुण्ड में भलीभांति नहाया हुआ जन वेताल के प्रणाम कर सब देहियों से दुर्लभ वांछित सिद्धिको पावे ॥ ७५ ॥ व वहां दो भुजा पांच मूंड़ और चारपांवोंवाला

गण है उसके दर्शन सेही हजारभांतिसे पाप भागजाताहै ॥ ७६ ॥ हे मुने ! उसगणसे उत्तरमें भीषण रुद्रहैं जिसके चारवे दश्रृंग तीनकाल पांव व प्रायणीय और उदयनीय दो मूंड़ और सात छंद हाथ हैं ॥७७॥हे कुम्भज अगस्त्य जी ! वह वृषाकार धर्मरूप मन्त्रोक्त यज्ञरूप परमेश्वर तीन प्रकारसे बँधेहुये होकर याने ऋग्वेदसे प्रशंसित यजुर्वेद से पूजित व सामवेदसे स्तुत अर्थात् मन्त्र ब्राह्मण और कल्पसे बँधेहुये होकर बहुत शब्दकरतेहैं और जो काशीके विघ्नकर्ता हैं व जे काशी में पापबुद्धिवाले हैं ॥ ७८ ॥ उनको छेदन करने को मैं कुठारधारी हूं व जे काशी के विघ्नहर्ता और काशी में धर्मकर्ता सुबुद्धिवाले हैं ॥ ७९ ॥ उनके वंशका परिपोष करनेवाला मैं हाथ में

तदुत्तरेमुनेरुद्रश्चतुःश्रृङ्गोस्तिभीषणः ॥ त्रिपादस्तुद्विशीर्षाचहस्ताःस्युःसप्तएवहि ॥ ७७ ॥ रोरूयतेवृषाकारस्त्रिधाबद्धः सकुम्भज ॥ काशीविघ्नकरायेचयेकाश्यांपापबुद्धयः ॥ ७८ ॥ तेषाञ्चसंछिदाङ्कर्तुमहंधृतकुठारकः ॥ येकाश्यांविघ्नहर्तारोयेकाश्यांधर्मबुद्धयः ॥ ७९ ॥ सुधाघटकरश्चाहन्तद्वंशपरिषेककृत् ॥ तंदृष्ट्वावृषरुद्रंवैपूजयित्वातुभक्तितः ॥ ८० ॥ महामहोपचारैश्चनविघ्नैरभिभूयते ॥ मणिप्रदीपोनागोऽस्तितस्माद्रुद्रादुदग्दिशि॥८१॥मणिकुण्डंतदग्रेतुविषव्याधिहरं परम् ॥ तस्मिन्कुण्डेकृतस्नानस्तंनागंपरिवीक्ष्यच ॥ ८२ ॥ मणिमाणिक्यसम्पूर्णगजाश्वरथसंकुलम् ॥ स्त्रीरत्नपुत्ररत्नैश्चसमृद्धंराज्यमाप्नुयात् ॥ ८३ ॥ कृत्तिवासेश्वरंलिङ्गंकाश्यांयैर्नविलोकितम् ॥ तेमर्त्यलोकेभारायभुवोभूता नसंशयः ॥ ८४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कृत्तिवासःसमुत्पत्तिंयेश्रोष्यन्तीहमानवाः ॥ तल्लिङ्गदर्शनाच्छ्रेयोलप्स्यन्ते

अमृत से पूर्ण कलश लियेहुये वर्तमान हूं उस वृषरुद्र रूपके दर्शनकर व भक्ति से पूजाकर ॥ ८० ॥ और बड़े बड़े उपचारों से पूजाकर विघ्नों से तिरस्कृत नहीं होताहै ॥ ८१ ॥ उसके आगे विषरोग हरनेवाला उत्तम मणि कुण्ड है उस कुण्ड में स्नान किये हुआ जन उस नाग के दर्शन कर ॥ ८२ ॥ मणिमाणिक्य, सम्पूर्ण हाथी घोड़े और रथों से संयुत व स्त्री रत्न और पुत्र रत्नों से समृद्ध राज्य को प्राप्त होवे ॥ ८३ ॥ जिनसे काशी में कृत्तिवासेश्वर लिंग न देखागया वे मनुष्य लोकमें भूमि के भारा भये हैं इस में संशय नहीं है ॥ ८४ ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि जे मनुष्य यहां कृत्तिवासेश्वर की समुत्पत्ति को सुनेंगे वे उस लिंगके दर्शन से कल्याण पावेंगे इसमें संशय

नहीं है ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकृत्तिवासेश्वरसमुद्भवेनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥
दो० ॥ उनहत्तर अध्यायमें गर्भवासहर्तार । अरसठ क्षेत्रोंका कथित यहां समागमसार ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, हे तपोराशे अगस्त्य जी ! काशी में सेयेहुये जे लिंग भावनायुक्त मनवाले मनुष्यों की मुक्ति के लिये होवें उनको तुम सुनो ॥ १ ॥ श्रीमहादेव जी ने लीला से जहां गजासुरके चर्मका पहिरन किया वह सब सिद्धिदायक स्थान रुद्रवास ऐसा कहागया है ॥ २ ॥ वहां श्रीपार्वती जी के साथ अपनी इच्छासे शिव जीके टिकतेही नन्दीश्वरने आकर प्रणाम पूर्वक विज्ञापना किया ॥ ३ ॥ कि

नात्रसंशयः ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेकृत्तिवासःसमुद्भवोनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ * ॥
स्कन्दउवाच ॥ शृणवगस्त्यतपोराशेकाश्यांलिङ्गानियानिवै ॥ सेवितानिनृणांमुक्त्यैभवेयुर्भावितात्मनाम् ॥ १ ॥
कृत्तिप्रावरणंयत्रकृतन्देवेनलीलया ॥ रुद्रावासइतिख्यातंतत्स्थानंसर्वसिद्धिदम् ॥ २ ॥ स्थितेतत्रोमयासार्धंस्वेच्छया कृत्तिवाससि ॥ आगत्यनन्दीविज्ञप्तिञ्चक्रेप्रणतिपूर्वकम् ॥ ३ ॥ देवदेवेशविश्वेशप्रासादाःसुमनोहराः ॥ सर्वरत्नमयारम्याःसाष्टाषष्टिरभूदिह ॥ ४ ॥ भूर्भुवःस्वस्तलेयानिशुभान्यायतनानिहि ॥ मुक्तिदान्यर्पितानीहमयानीतानिसर्वतः ॥ ५ ॥ यतोयच्चसमानीतंयत्रयच्चकृतास्पदम् ॥ कथयिष्याम्यहंनाथक्षणन्तदवधार्यताम् ॥ ६ ॥ स्थाणुर्नाममहालिङ्गंदेवदेवस्य मोक्षदम् ॥ कुरुक्षेत्रादिहोद्भूतंकलाशेषोस्तितत्रवै ॥ ७ ॥ तदग्रेसन्निहत्याख्यामहापुष्करिणीशुभा ॥ लोलार्कपश्चिमेभागेकुरुक्षेत्रस्थलीतुसा ॥ ८ ॥ तत्रस्नातंहुतंजप्तंतप्तंदत्तंशुभार्थिभिः ॥ कुरुक्षेत्राद्भवेत्सत्यंकोटिकोटिगुणाधिकम् ॥ ९ ॥

हे देवदेवेश ! विश्वेश ! यहां सब रत्नमय सुमनोहर रमणीक अरसठ प्रासाद (देवमंदिर) बनकर तैयारहुये हैं ॥ ४ ॥ भूमिलोक भुवर्लोक और स्वर्गतल में मुक्तिदायक जे शुभ स्थान हैं उनको मैं सबसे यहां लायाहूं ॥ ५ ॥ हे नाथ ! जहां से जो लायागयाहै व जहां जे स्थापन किये हैं उनको मैं कहूंगा आप क्षणभर सुनलो ॥ ६ ॥ कि मोक्षदायक देव देव का स्थाणु नाम महालिंग कुरुक्षेत्रसे यह उत्पन्न हुआ है वहां कलामात्र शेष है ॥ ७ ॥ उसके आगे सन्निहती नाम शुभ महापुष्करिणी है वह लोलार्क से पश्चिम भागमे कुरुक्षेत्रस्थली है ॥ ८ ॥ वहां शुभ चाहियोंसे नहाया होमा जपा तपा और दिया हुआ कुरुक्षेत्र से करोड़गुना अधिक होवे यह सत्य है ॥ ९ ॥

हे विभो ! ब्रह्मावर्त नामक कूप समेत देवदेवजी वहां कलामात्र को थापकर यहां काशी में प्रकट हुये हैं ॥ १० ॥ ढुंढिराज से उत्तरभाग में साधकजन का सिद्धि दाता देवदेव नामक लिंग है उसके आगे उत्तम कूप है ॥ ११ ॥ ब्रह्मावर्त ऐसे कहागया है जोकि मनुष्यों की पुनरावृत्ति याने संसार में फिर लौटआनेको हरनेवाला है उस कूप के जलसे स्नान किये हुआ देवदेव की भलीभांति पूजाकर ॥ १२ ॥ जो जन वर्तता है उसका पुण्य नैमिषारण्य से कोटिगुना कहागया है व यहां गोकर्णस्थान से आपही प्रकट हुआ है जोकि बड़ा पूजनीय ॥ १३ ॥ लिंग महाबलनामक सांबादित्य के समीप में है जिसके दर्शन व स्पर्शन से क्षणभर में बड़ा बलवान् पाप ॥ १४ ॥

नैमिषाद्देवदेवोत्रब्रह्मावर्तेनसंयुतः ॥ तत्रांशमात्रंसंस्थाप्यकाश्यामाविरभूद्विभो ॥ १० ॥ ढुण्ढिराजोत्तरेभागेसिद्धिदं साधकस्यवै ॥ लिङ्गंवैदेवदेवाख्यंतदग्रेकूपउत्तमः ॥ ११ ॥ ब्रह्मावर्तइतिख्यातःपुनरावृत्तिहन्नृणाम् ॥ तत्कूपाद्भिःकृत स्नानोदेवदेवंसमर्च्यच ॥ १२ ॥ तत्पुण्यंनैमिषारण्यात्कोटिकोटिगुणंस्मृतम् ॥ गोकर्णायतनादत्रस्वयमाविरभून्म हत् ॥ १३ ॥ लिङ्गंमहाबलंनामसाम्बादित्यसमीपतः ॥ दर्शनात्स्पर्शनाद्यस्यक्षणादेनोमहाबलम् ॥ १४ ॥ वाताहत स्तूलराशिरिवविद्रातिदूरतः ॥ कपालमोचनपुरोदृष्ट्वालिङ्गंमहाबलम् ॥ १५ ॥ महाबलमवाप्नोतिनिर्वाणनगरंव्रजेत् ॥ ऋणमोचनतःप्राच्यांप्रभासात्क्षेत्रसत्तमात् ॥ १६ ॥ शशिभूषणसञ्ज्ञन्तुलिङ्गमत्रप्रतिष्ठितम् ॥ तल्लिङ्गसेवनान्मर्त्यःश शिभूषणतांव्रजेत ॥ १७ ॥ प्रभासक्षेत्रयात्रायाःपुण्यंप्राप्नोतिकोटिकृत॥उज्जयिन्यामहाकालःस्वयमत्रागतोविभुः॥ १८ ॥ यन्नामस्मरणादेवनभयंकलिकालतः ॥ प्रणवाख्यान्महालिङ्गात्प्राच्यांकल्मषनाशनम् ॥ १९ ॥ महाकालाभि

वायु की मारी रूईकी राशि की नाईं दूर भागजाता है उस महाबल लिंगको कपालमोचन के आगे देखकर ॥ १५ ॥ बड़े बलको पावे और कैवल्यस्थान को जावे व ऋणमोचन से पूर्व में क्षेत्रसत्तम प्रभास से ॥ १६ ॥ शशिभूषणसंज्ञक लिंग यहां प्रतिष्ठित हुआ है उस लिंगकी सेवा से मनुष्य चन्द्रभूषण के भावको प्राप्त होवे ॥ १७ ॥ और प्रभासक्षेत्रकी यात्रा से कोटिगुना अधिक पुण्य को प्राप्त होता है व महाकाल प्रभु आपही उज्जयिनी से यहां आगये हैं ॥ १८ ॥ जिनका नाम सुमिरतेही

कलिकाल से डर नहीं है प्रणवनामक याने ॐकारेश्वर महालिंग से पूर्व में पापविनाशी ॥ १९ ॥ काशी में महाकालनामक लिंग दर्शन से मुक्तिदाता और परे है व अयोगन्धेश्वरलिंग तीर्थसत्तम पुष्कर से ॥ २० ॥ यहां पुष्कर सहित प्रकट हुआ है जो कि बड़ाभारी व पूजनीय है उस अयोगन्धेश्वर को मत्स्योदरी के उत्तर ओर में देखकर ॥ २१ ॥ व अयोगन्ध कुण्ड में स्नानकर पितरों को संसार से तारदेवे व महानादेश्वर लिंग अट्टहासक्षेत्र से यहाँ आया है ॥ २२ ॥ त्रिलोचन से उत्तर में देखा हुआ वह मोक्ष के लिये मानागया है व जोमहोत्कटेश्वरलिंग मरुत्कोट से यहां आया है वह कामेश्वर से उत्तरभाग में देखा हुआ सब सिद्धियों का दाता

धंलिङ्गंदर्शनान्मोक्षदम्परम् ॥ अयोगन्धेश्वरंलिङ्गंपुष्करात्तीर्थसत्तमात् ॥ २० ॥ आविरासीदिहमहत्पुष्करेणसहैवतु ॥ मत्स्योदर्युत्तरेभागेदृष्ट्वाऽयोगन्धमीश्वरम् ॥ २१ ॥ स्नात्वाऽयोगन्धकुण्डेतुभवात्तारयतेपितॄन् ॥ महानादेश्वरंलिङ्गमट्टहासादिहागतम् ॥ २२ ॥ त्रिलोचनादुदीच्यान्तुतद्दृष्टंमुक्तयेमतम् ॥ महोत्कटेश्वरंलिङ्गंमरुत्कोटादिहागतम् ॥ कामेश्वरोत्तरेभागेदृष्टंविमलसिद्धिदम् ॥ २३ ॥ विश्वस्थानादिहायातंलिङ्गंवैविमलेश्वरम् ॥ स्वर्लीनात्पश्चिमेभागेदृष्टंविमलसिद्धिदम् ॥ २४ ॥ महाव्रतंमहालिङ्गंमहेन्द्रादिहसंस्थितम् ॥ स्कन्देश्वरसमीपेतुमहाव्रतफलप्रदम् ॥ २५ ॥ वृन्दारकर्षिवृन्दानांस्तुवतांप्रथमेयुगे ॥ उत्पन्नंयन्महालिङ्गंभूमिंभित्त्वासुदुर्भिदाम् ॥ २६ ॥ महादेवेतितैरुक्तंयन्मनोरथपूरणात् ॥ वाराणस्यांमहादेवस्तदारभ्याभवच्चयत् ॥२७॥ मुक्तिक्षेत्रंकृतंयेनमहालिङ्गेनकाशिका ॥ अविमुक्तेमहादेवंयोद्रक्ष्यत्यत्रमानवः ॥ २८ ॥ शम्भुलोकेगमस्तस्ययत्रतत्रमृतस्यहि ॥ अविमुक्तेप्रयत्नेनतत्संसेव्यंमुमुक्षुभिः ॥ २९ ॥

है ॥ २३ ॥ व विमलेश्वरलिंगभी विश्वस्थान से यहां आया है स्वर्लीनेश्वर से पश्चिमभागमें देखा हुआ वह विमल सिद्धिदायक है ॥ २४ ॥ व महाव्रत नामक महालिंग महेन्द्राचल से आकर यहांपर टिका है जोकि स्कन्देश्वर के समीपमें बड़ेव्रतों का फल देनेवाला है ॥ २५ ॥ व जोकि सतयुग में स्तुति करतेहुये देवर्षिसमूहों के बीचमें बड़ी कडी भी भूमिको फोडकर महालिंग उपजा है ॥ २६ ॥ व जोकि मनोरथ पूर्ण करने से उन करके महादेव ऐसा कहागया है और तब से लगाकर काशी में जो महादेव होगया है ॥ २७ ॥ व जिस महालिंग से काशी मुक्तिका क्षेत्र कीगई है इस अविमुक्तक्षेत्रमें जो मनुष्य महादेव को देखेगा ॥ २८ ॥ उस जहांतहां मरेका

भी शिवलोक में जाना होवेगा इससे काशी में मुक्ति चाहनेवाले से बहुत यत्नपूर्वक वह लिंग सेवने योग्यहै ॥ २९ ॥ जिस लिंगस्वरूप महादेव ने कल्पान्तरमेंभी काशी को सब प्रकारसे कभी नहीं त्याग किया ॥ ३० ॥ उसका यह मण्डप सब रत्नरचित मङ्गलमय और अतुल (अनूप) वही क्षेत्र रक्षकरूप महादेवनामक लिंग हिरण्यगर्भ तीर्थसे पश्चिम में है ॥३१॥ और महादेव ऐसी संज्ञावाली, सब लिंगस्वरूपिणी, अभिलाष देनेवाली वह देवता काशी में अधिष्ठात्री है ॥३२॥ यहां जिसने लिंगरूपधारी महादेवको देखा उससे त्रिलोकके लिंग देखगये इसमें संशय नहीं है ॥३३॥ व काशीमें एकबारभी महादेवकी पूजाकर मनुष्य प्रलयपर्यंततक आनन्दसे शिवलोक

कल्पान्तरेपिनत्यक्तंकदाप्यानन्दकाननम् ॥ येनलिङ्गस्वरूपेणमहादेवेनसर्वथा ॥ ३० ॥ तत्प्रासादोयमतुलःसर्वरत्नमयःशुभः ॥ हिरण्यगर्भतीर्थाच्चप्रतीच्यांक्षेत्ररक्षकम् ॥ ३१ ॥ वाराणस्यामधिष्ठात्रीदेवतासाभिलाषदा ॥ महादेवेतिसञ्ज्ञावैसर्वलिङ्गस्वरूपिणी ॥ ३२ ॥ वाराणस्यांमहादेवोदृष्टोयैर्लिङ्गरूपधृक् ॥ तेनत्रैलोक्यलिङ्गानिदृष्टानीह न संशयः ॥ ३३ ॥ वाराणस्यांमहादेवंसमभ्यर्च्यसकृन्नरः ॥ आभूतसम्प्लवंयावच्छिवलोकेवसेन्मुदा ॥ ३४ ॥ पवित्रपर्वणिसदाश्रावणेमासियत्नतः ॥ लिङ्गेपवित्रमारोप्यमहादेवे न गर्भभाक् ॥ ३५ ॥ पितामहेश्वरंलिङ्गंगयातीर्थादिहागतम् ॥ फल्गुप्रभृतिभिस्तीर्थैःसार्धकोट्यष्टसंमितैः ॥ ३६ ॥ धर्मेणयत्रवैतप्तंयुगानामयुतंशतम् ॥ साक्षीकृत्यमहालिङ्गंश्रीमद्धर्मेश्वराभिधम् ॥ ३७ ॥ पितामहेश्वरंलिङ्गंतत्राभ्यर्च्यनरोमुदा ॥ त्रिःसप्तकुलसंयुक्तोमुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ३८ ॥ प्रयागात्तीर्थराजाच्चशूलटङ्कोमहेश्वरः ॥ तीर्थराजेनसहितःस्थितआगत्यवैस्वयम् ॥ ३९ ॥ निर्वाणमण्डपाद्रम्यादवाच्यामतिनि

में बसे ॥ ३४ ॥ व श्रावणमास की चतुर्दशीपर्व में महादेवलिंगपर सदा पवित्रा (सूत्र) आरोपण कर गर्भसेवी न होवे ॥ ३५ ॥ व पिता महेश्वरलिंग गयातीर्थ से यहां आया है जोकि साढ़ेआठ करोड़ संमित फल्गु आदि तीर्थों के साथ वर्त्तमान है ॥ ३६ ॥ प्रसिद्ध है कि जहां धर्म, धर्मेश्वरनामक महालिंग को साक्षीकर दशलाख युगतक तपस्या तपा है ॥ ३७ ॥ वहां पितामहेश्वरलिंग की आनन्द से भलीभांति पूजाकर इक्कीस पुश्त समेत मनुष्य मुक्त होजाता है इस में संशय नहीं है ॥ ३८ ॥ व प्रयागतीर्थ समेत शूलटङ्केश्वरनामक महेश्वर प्रयागतीर्थ से आकर आपही यहां टिके हैं ॥ ३९ ॥ रमणीक निर्वाण मण्डप से दक्षिणदिशा में सोने से उज्ज्वल अत्य-

न्त अमल जिसका मन्दिर सुमेरु से स्पर्द्धा करता है ॥ ४० ॥ जहां पहले युगांतर में देवने हीवर दिया है कि काशी में पापविनाशी महेश्वर प्रथम पूजनीय हैं ॥ ४१ ॥ और जो यहां प्रयाग में स्नान कियेहुआ जन विधि पूर्वक बहुत सामग्री विस्तार से महेश्वरकी भलीभांति पूजाकर नमस्कार करे ॥ ४२ ॥ वह शूलटङ्केश्वर के दर्शन से प्रयागस्नान के पुण्य से करोड़गुना अधिक पुण्य पावे इसमें सन्देह नहीं है ॥ ४३ ॥ व महातेज की बडी वृद्धिका दायक महातेज ऐसा कहागया लिंग, शंकुकर्ण महाक्षेत्र से यहां प्रकट भया है ॥ ४४ ॥ अपनी ज्योति से आकाश के छावनेवाला अतिशय अमल, महातेज का निधान उसका स्थान माणिक्यों से ही बनाया गया

मलः ॥ प्रासादोमेरुणायस्यस्पर्धतेकाञ्चनोज्ज्वलः ॥ ४० ॥ देवेनैववरोदत्तोयत्रपूर्वेयुगान्तरे ॥ पूज्योमहेश्वरःकाश्यांप्रथमंकलुषापहः ॥ ४१ ॥ यःप्रयागइहस्नातोनमस्यतिमहेश्वरम् ॥ समभ्यर्च्यविधानेनमहासम्भारविस्तरैः ॥ ४२ ॥ प्रयागस्नानजातपुण्याच्छूलटङ्कविलोकनात् ॥ सप्राप्नुयान्नसन्देहःपुण्यंकोटिगुणोत्तरम् ॥ ४३ ॥ शंकुकर्णान्महाक्षेत्रान्महातेजइतीरितम् ॥ लिङ्गमाविरभूदत्रमहातेजोविवृद्धिदम् ॥ ४४ ॥ महातेजोनिधिस्तस्यप्रासादोतीवनिर्मलः ॥ ज्वालाजटिलिताकाशोमाणिक्यैरेवनिर्मितः ॥ ४५ ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्स्पर्शात्स्तवनाच्चसमर्चनात् ॥ प्राप्यतेतत्परन्धामयत्रगत्वानशोचते ॥ ४६ ॥ विनायकेश्वरात्पूर्वेमहातेजसमर्चनात् ॥ तेजोमयेनयानेनयातिमाहेश्वरम्पदम् ॥ ४७ ॥ रुद्रकोटिसमाख्यातात्तीर्थात्परमपावनात् ॥ महायोगीश्वरंलिङ्गमाविश्चक्रेस्वयम्परम् ॥ ४८ ॥ पार्वतीश्वरलिङ्गस्यसमीपेसर्वसिद्धिकृत् ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्पुसांकोटिलिङ्गफलंभवेत् ॥ ४९ ॥ तत्प्रासादस्यपरितोरुद्राणांकोटिसम्मिताः ॥ प्रासादा

है ॥ ४५ ॥ उसलिंगके देखने छूने स्तुतिकरने और भलीभांति पूजने से वह परमधाम मिलता है जहां जाकर नर फिर नहीं शोचता है ॥ ४६ ॥ विनायकेश्वर से पूर्व में महातेज के पूजन से तेजोमय विमानपर बैठकर महेश्वरके स्थान को जाता है ॥ ४७ ॥ व रुद्रकोटिनामक, परमपावन, तीर्थ से महायोगीश्वर श्रेष्ठलिंग आपही प्रकट-हुआ है ॥ ४८ ॥ जोकि सब सिद्धि करनेवाला पार्वतीश्वरलिंगके समीप में है उस लिंग के दर्शन से मनुष्यो को करोड़लिंग का फलहोवे ॥ ४९ ॥ उसकेया उस शिवा-

लय के सब ओर में रम्य रचनावाले करोड़ों सम्मित, रुद्रों के मन्दिर रुद्र मूर्त्तियोंसे रचेगये हैं ॥ ५० ॥ इसलिये वेदवादी पण्डितों से काशी में वह रुद्रस्थली पढ़ी जाती है उस रुद्रस्थली में जे कृमिकीट और पतंग मरे हैं ॥ ५१ ॥ व पशु पक्षी मृग मनुष्य और म्लेच्छभी अनन्तर दीक्षित हुये हैं उन रुद्रहुये जनोंका फिर लौटकर आना इस जगत में नहीं है ॥ ५२ ॥ रुद्रस्थली में पैठेहुये का जो हजारों जन्मों में बटोरा पाप है वह सब नाश को प्राप्त होजाता है ॥ ५३ ॥ व रुद्रस्थली में प्राणछोड़-ता हुआ कामनारहित व कामना सहित व पशुपक्षी आदि भी उत्तम कैवल्य को प्राप्त होवे ॥५४ ॥ और एकाम्बर क्षेत्र (भुवनेश्वर जोकि जगन्नाथजी के समीप है)

रम्यसंस्थानानिर्मितारुद्रमूर्तिभिः ॥ ५० ॥ काश्यांरुद्रस्थलीसातुपठ्यतेवेदवादिभिः ॥ रुद्रस्थल्यांमृतायेवैकृमिकीट पतङ्गकाः ॥ ५१ ॥ पशुपक्षिमृगामर्त्याम्लेच्छावाप्यथदीक्षिताः ॥ तेषान्तुरुद्रीभूतानांपुनरावृत्तिरत्र न ॥५२॥ जन्मान्तरसहस्रेषुयत्पापंसमुपार्जितम् ॥ रुद्रस्थलीम्प्रविष्टस्यतत्सर्वंव्रजतिक्षयम् ॥ ५३ ॥ अकामोवासकामोवातिर्यग्योनिगतोपिवा ॥ रुद्रस्थल्यांत्यजन्प्राणान्परंनिर्वाणमाप्नुयात् ॥ ५४ ॥ स्वयमेकाम्बरात्क्षेत्रात्कृत्तिवासाइहागतः ॥ कृत्तिवासिलिङ्गेत्रस्वयमेवव्यवस्थितः ॥ ५५ ॥ अस्मिन्स्थानेस्वभक्तानांसाम्बःसर्षिगणोविभुः ॥ स्वयंचोपादिशेद्ब्रह्मश्रुतौश्रुतिभिरीडितम् ॥ ५६ ॥ क्षेत्रेत्रसिद्धिदेप्राप्तश्चण्डीशोमरुजाङ्गलात् ॥ प्रचण्डपापसङ्घातंखण्डयेच्चहतधेक्षणात् ॥ ५७ ॥ पाशपाणिगणाध्यक्षसमीपेयःप्रपश्यति ॥ चण्डीश्वरंमहालिङ्गंसयातिपरमाङ्गतिम् ॥ ५८ ॥ कालंजरान्नीलकण्ठस्तिष्ठेदत्रस्वयंविभुः ॥ गणेशाद्दन्तकूटाख्यात्समीपेभवनाशनः ॥५९॥ नीलकण्ठेश्वरंलिङ्गंकाश्यांयैःपरिपूजितम् ॥ नील

से कृत्तिवास आपही यहां आये हैं व यहां कृत्तिवासेश्वरलिंगमें आपही टिके हैं ॥ ५५ ॥ इस स्थान में अम्बा (पार्वती) समेत व ऋषि समूह सहित समर्थ शिवजी आपही वेदों से प्रशंसित तारक ब्रह्मको अपने भक्तों के कानमें उपदेश करते हैं ॥ ५६ ॥ व मरुजांगल क्षेत्रसे आकर चण्डीश्वर इस सिद्धिदायक क्षेत्र में प्राप्तहुये जोकि दर्शन से प्रचण्ड पापसमूह का खण्डन करदेवें ॥ ५७ ॥ जो कोई पाशपाणि गणेशजी के समीप में चण्डीश्वर महालिंगको देखै है वह परमगतिको जावै है ॥ ५८ ॥ व संसारनाशक नीलकण्ठ प्रभु आपही कालञ्जर से आकर यहां दन्तकूटनामक गणेश के समीप टिके हैं ॥ ५९ ॥ वह नीलकण्ठेश्वरलिंग काशी में

जिस से परिपूजित हुआ वेही नीलकण्ठ और वेही चन्द्रभूषण होवें हैं ॥ ६० ॥ व मनुष्योंका सदा विजयदायक यह विजयसञ्ज्ञितलिंग काश्मीर से आकर यहां शालकटंकट से पूर्व में प्राप्तहुवा है ॥ ६१ ॥ विजयेश्वरकी भलीभांति पूजा करने से संग्राम, राजकुल द्यूत (जुवां) व विवादमें मनुष्योंकी जीत होती है ॥ ६२ ॥ और त्रिदंडापुरी से आकर आपही यहांपर प्राप्तहुये ऊर्ध्वरेता प्रभु कूष्मांडक गणेशको आगेकर विशेषता से टिकेहैं ॥ ६३ ॥ उस ऊर्ध्वरेताके दर्शनसे ऊंचीगतिको प्राप्तहोता है और जे ऊर्ध्वरेताके भक्तहैं उनकी नीचीगति नहीं है ॥ ६४ ॥ व श्रीकण्ठसञ्ज्ञकलिंग मण्डलेश्वर क्षेत्रसे आकर मण्डनामक गणेशसे उत्तरदिशामें टिकाहै ॥ ६५ ॥

कण्ठास्तएवस्युस्तएवशशिभूषणाः ॥ ६० ॥ काश्मीरादिहसम्प्राप्तंलिङ्गंविजयसञ्ज्ञितम् ॥ सदाविजयदम्पुसाम्प्राच्यां शालकटङ्कटात् ॥ ६१ ॥ रणेराजकुलेद्यूतेविवादेसर्वदैवहि ॥ विजयोजायतेपुंसांविजयेशसमर्चनात् ॥ ६२ ॥ ऊर्ध्वरेता स्त्रिदण्डायाःसम्प्राप्तोत्रस्वयंविभुः ॥ कूश्माण्डकङ्गणाध्यत्तंपुरस्कृत्यव्यवस्थितः ॥ ६३ ॥ ऊर्ध्वाङ्गतिमवाप्नोतिवीक्ष णादूर्ध्वरेतसः ॥ ऊर्ध्वरेतसियेभक्तानहितेषामधोगतिः ॥ ६४ ॥ मण्डलेश्वरतःक्षेत्राल्लिङ्गंश्रीकण्ठसञ्ज्ञितम् ॥ विनाय कान्मण्डसञ्ज्ञादुत्तरस्यांव्यवस्थितम् ॥ ६५ ॥ श्रीकण्ठस्यचयेभक्ताःश्रीकण्ठाएवतेनराः ॥ नेहश्रियावियुज्यन्ते न पर त्रकदाचन ॥ ६६ ॥ छागलाण्डान्महातीर्थात्कपर्दीश्वरसञ्ज्ञितः ॥ पिशाचमोचनेतीर्थेस्वयमाविरभूद्विभुः ॥ ६७ ॥ क पर्दीशंसमभ्यर्च्य न नरोनिरयंव्रजेत् ॥ न पिशाचत्वमाप्नोतिकृत्वात्राप्यघमुत्तमम् ॥ ६८ ॥ आम्रातकेश्वरात्क्षेत्राल्लिङ्गं सूक्ष्मेशसञ्ज्ञितम् ॥ स्वयमभ्यागतञ्चात्रक्षेत्रेवैश्रेयसाम्पदे ॥ ६९ ॥ विकटद्विजसञ्ज्ञस्यगणेशस्यसमीपतः ॥ दृष्ट्वासू

जे मनुष्य श्रीकण्ठके भक्तहैं वे श्रीकण्ठही हैं और वे इसलोकमें लक्ष्मी से हीन नहीं होतेहैं व परलोकमें भी मुक्ति सम्पत्तिसे हीन नहीं होतेहैं ॥ ६६ ॥ व कपर्दीश्वरना-मक प्रभु छागलांड महातीर्थ से आकर आपही कपालमोचनतीर्थ में प्रकट होगये हैं ॥ ६७ ॥ कपर्दीश्वरकी पूजाकर नर नरकको न जावे और यहां महापाप भी कर पिशाचत्वको न प्राप्तहोवे ॥ ६८ ॥ व सूक्ष्मेश्वरसञ्ज्ञितलिंग आपही आम्रातकेश्वर-क्षेत्रसे इस सुखस्थानक्षेत्र मे आयाहै ॥ ६९ ॥ विकटदन्तनामक गणेशके समीप में

सूक्ष्मेश्वरलिंगके दर्शनकर सूक्ष्मगतिको प्राप्तहोवे ॥ ७० ॥ देवोंकाईश जयन्तनामक जो लिंग मधुकेश्वरक्षेत्रसे यहां संप्राप्तहुआहै वह लम्बोदर गणेशसे पूर्वमें टिकाहै ॥ ७१ ॥ शुभ गंगाजलमें स्नानकर व जयन्तेश्वरके दर्शनकर मनमानी सिद्धिको पावै और सर्वत्र विजयी होजावे ॥ ७२ ॥ और श्रीशैलसे आकर त्रिपुरान्तक देवेश यहां प्रकटहुये हैं किन्तु श्रीशैलका शिखर देखकर जो फल कहागयाहै ॥ ७३ ॥ वह फल विना परिश्रम त्रिपुरांतकके दर्शनकर मिलताहै श्रीविश्वनाथके पश्चिमभागमें त्रिपुरांतकेश्वरको ॥ ७४ ॥ भारी भक्तिसे पूजकर मनुष्य फिर गर्भमें न पैठे व कुक्कुटेश्वर भगवान् सौम्यस्थान से यहां आयेहैं ॥ ७५ ॥ और वह वक्रतुंड गणेश के समीप

क्ष्मेश्वरंलिङ्गंगतिंसूक्ष्मामवाप्नुयात् ॥ ७० ॥ सम्प्राप्तमिहदेवेशंजयन्तंमधुकेश्वरात् ॥ लम्बोदराद्गणपतेःपुरस्तात्तदवस्थितम् ॥ ७१ ॥ जयन्तेश्वरमालोक्यस्नात्वागङ्गाजलेशुभे ॥ प्राप्नुयाद्वाञ्छितांसिद्धिंसर्वत्रविजयीभवेत् ॥ ७२ ॥ प्रादुश्चकारदेवेशःश्रीशैलात्त्रिपुरान्तकः ॥ श्रीशैलशिखरंदृष्ट्वायत्फलंसमुदीरितम् ॥ ७३ ॥ त्रिपुरान्तकमालोक्यतत्फलंहेलयाप्यते ॥ विश्वेशात्पश्चिमेभागेत्रिपुरान्तकमीश्वरम् ॥ ७४ ॥ सम्पूज्यपरयाभक्त्यानरोगर्भमाविशेत् ॥ सौम्यस्थानादिहायातोभगवान्कुक्कुटेश्वरः ॥ ७५ ॥ वक्रतुण्डगणाध्यक्षसमीपेसोपतिष्ठते ॥ तद्दर्शनादर्चनाच्चकरस्थाःसर्वसिद्धयः ॥ ७६ ॥ जालेश्वरात्त्रिशूलीचस्वयमीशःसमागतः ॥ कूटदन्ताद्गणपतेःपुरस्तात्सर्वसिद्धिदः ॥ ७७ ॥ रामेश्वरान्महाक्षेत्राज्जटीदेवःसमागतः ॥ एकदन्तोत्तरेभागेसोर्चितःसर्वकामदः ॥ ७८ ॥ त्रिसन्ध्यात्क्षेत्रतोदेवस्त्र्यम्बकास्तिसमागतः ॥ त्रिमुखात्पूर्वदिग्भागे पूजितस्त्र्यम्बकत्वकृत ॥ ७९ ॥ हरेश्वरोहरिश्चन्द्रात्क्षेत्रादत्रसमागतः ॥ हरि

में टिकेहैं उनके दर्शन व पूजासे सब सिद्धियां हाथमें टिकीहैं ॥ ७६ ॥ व सब सिद्धिदायक त्रिशूली नामक ईश्वर आपही जालेश्वर क्षेत्रसे यहां कूटदंतगणेश के आगे आयेहैं ॥ ७७ ॥ व सेतुबंधरामेश्वर से जो जटीदेव भलीभांति आयेहैं वह एकदंत विनायक से उत्तर ओरमें पूजित होकर सब कामदायक हैं ॥ ७८ ॥ व त्रिसंध्यक्षेत्र से त्र्यम्बकदेव आयेहैं जोकि त्रिमुखसे पूर्वदिशाके भागमें पूजेहुये त्रिनेत्र का भाव करनेवाले हैं याने भक्त कोभी त्रिनेत्र करदेतेहैं ॥ ७९ ॥ व हरिश्चंद्र क्षेत्रसे यहां

आयेहुये हरेश्वर हरिश्चंद्रेश्वरके आगे पूजित होकर सदैव जयदायक हैं ॥ ८० ॥ व मध्यमकेश्वर स्थानसे यहां शर्वभगवान् आयेहैं और चतुर्वेदेश्वर नामक लिंगको आके धरकर टिकेहुये ॥ ८१ ॥ सर्व सिद्धिकारी सर्व लिंगको काशीमें पूजकर मनुष्यजंतुपदवीको कभी कहीं नहीं प्राप्तहोवे ॥ ८२ ॥ और जहां सब लिंगोंका फलदायक यज्ञेश्वर लिंगहैं उस स्थलेश्वर क्षेत्रसे आकर उत्तम महालिंग यहां प्रकटहुआ है ॥ ८३ ॥ बडीश्रद्धा समेत जन महालिंग की भलीभांति पूजाकर इसलोक और परलोक में भी महासंपत्ति को प्राप्तहोताहै ॥ ८४ ॥ और सहस्राक्ष नामक लिंग सुवर्णनामक क्षेत्रसे यहां आयाहै जिसके दर्शनसे मनुष्योंके ज्ञाननेत्र होजाताहै ॥ ८५ ॥ शैलेश्वर

श्चन्द्रेश्वरपुरःपूजितोजयदःसदा ॥ ८० ॥ इहशर्वःसमायातःस्थानान्मध्यमकेश्वरात् ॥ चतुर्वेदेश्वरंलिङ्गंपुरोधायव्य वस्थितम् ॥ ८१ ॥ शर्वलिङ्गंसमभ्यर्च्य काश्यांपरमसिद्धिकृत् ॥ नजातुजन्तुपदवींप्राप्नुयात्कापिमानवः ॥ ८२ ॥ स्थ लेश्वरान्महालिङ्गं प्रादुर्भूतंपरंत्विह ॥ यत्रयज्ञेश्वरंलिङ्गंसर्वलिङ्गफलप्रदम् ॥ ८३ ॥ महालिङ्गंसमभ्यर्च्यमहाश्रद्धास मन्वितः ॥ महतींश्रियमाप्नोतिलोकेत्रचपरत्रच ॥ ८४ ॥ इहलिङ्गंसहस्राक्षंसुवर्णाख्यात्समागतम् ॥ यस्यसंदर्शनात्पुं सांज्ञानचक्षुःप्रजायते ॥ ८५ ॥ शैलेश्वरादवाच्यांतु सहस्राक्षेश्वरंविभुम् ॥ दृष्ट्वाजन्मसहस्राणां शतानांपातकंत्यजे त् ॥ ८६ ॥ हर्षिताद्धर्षितंचात्रप्रादुरासीत्तमोहरम् ॥ लिङ्गंहर्षप्रदंपुंसांदर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ८७ ॥ मन्त्रेश्वरसमीपेतु प्रासादोहर्षितेशितुः ॥ तद्विलोकनतःपुंसांनित्यंहर्षपरम्परा ॥ ८८ ॥ इहस्वयंसमायातो रुद्रोरुद्रमहालयात् ॥ यस्यदर्श नतोयान्ति रुद्रलोकेनराःस्फुटम् ॥ ८९ ॥ येस्तुरुद्रेश्वरंलिङ्गं काश्यामत्रसमर्चितम् ॥ तेरुद्ररूपिणोमर्त्याविज्ञेयानात्र

से दक्षिणमें सहस्राक्षेश्वर प्रभुके दर्शनकर सैकड़ों हजार जन्मोंके पापको त्यजदेवे ॥ ८६ ॥ व अज्ञानहारी हर्षित नामक लिंग हर्षितक्षेत्र से यहां प्रकटहुआ है जोकि दर्शन और स्पर्शनसेभी लोगोंका आनंददाता है ॥ ८७ ॥ मंत्रेश्वरके समीपमें हर्षितेश्वरका मंदिरहै उसके देखनेसे मनुष्यों को नित्यही आनंद की परंपरा होती है ॥ ८८ ॥ व रुद्रजी आपही रुद्रमहालय क्षेत्रसे यहां आगये हैं जिनके दर्शनसे मनुष्य रुद्रलोकको जातेहैं यह स्पष्टहै ॥ ८९ ॥ जिनसे यहां काशीमें रुद्रेश्वरलिंग पूजाग-

या वे मनुष्य रुद्ररूपी जाननेयोग्य हैं इसमें संशयनहीं है ॥ ९० ॥ त्रिपुरेश्वरके समीपमे रुद्रेश्वर प्रभुके दर्शनकर वे जीते व मरेहुये भी रुद्रोंके समान जानने योग्यहैं ॥ ९१ ॥ व वृषेशनामक महादेवजी वृषभध्वज क्षेत्रसे यहां बाणेश्वर लिंगके समीप में आयेहैं जोकि सदैव धर्मकेदायक हैं ॥ ९२ ॥ व केदारक्षेत्रसे यहां आयाहुआ वह ईशानेश्वर संज्ञित लिंग प्रह्लादकेशव से पश्चिम में देखने योग्य है ॥ ९३ ॥ उत्तरवाहिनी गंगा जलमें स्नानकर व ईशानेश्वरकी भलीभांति पूजाकर ईशानके समान प्रकाशमान होकर ईशानके लोकमें बसे ॥ ९४ ॥ व भैरवक्षेत्रसे भैरवीमूर्त्ति यहांआईहै जोकि मनोहर है वह देखने योग्य है वह संहारभैरव बहुत यत्नसे देखने योग्य

संशयः ॥ ९० ॥ त्रिपुरेशसमीपेतु दृष्ट्वारुद्रेश्वरंविभुम् ॥ रुद्रास्तइवविज्ञेया जीवन्तोपिमृताअपि ॥ ९१ ॥ आगादिह महादेवो वृषेशोवृषभध्वजात् ॥ बाणेश्वरस्यालिङ्गस्यसमीपेवृषदःसदा॥९२॥इहागतन्तुकेदारादीशानेश्वरसञ्ज्ञितम्॥ तद्द्रष्टव्यंप्रतीच्यांच लिङ्गंप्रह्लादकेशवात् ॥ ९३ ॥ ईशानेशंसमभ्यर्च्य स्नात्वोत्तरवहाम्भसि ॥ वसेदीशाननगरेईशान सदृशप्रभः ॥ ९४ ॥ भैरवाद्भैरवीमूर्तिरत्रायातामनोहरा ॥ संहारभैरवोनामद्रष्टव्यःसप्रयत्नतः ॥ ९५ ॥ पूजनात्सर्वसि द्ध्यैसप्राच्यांखर्वविनायकात् ॥ संहारभैरवःकाश्यांसंहरेदघसन्ततिम् ॥९६॥ उग्रःकनखलात्तीर्थादाविरासेहसिद्धिदः॥ तद्विलोकनतोनॄणामुग्रंपापंप्रणश्यति ॥ ९७ ॥ उग्रंलिङ्गंसदासेव्यंप्राच्यामर्कविनायकात् ॥ अत्युग्राअपिनश्येयुरुपस र्गास्तदर्चनात् ॥ ९८ ॥ वस्त्रापथान्महाक्षेत्राद्भवोनामस्वयंविभुः ॥ भीमचण्डीसमीपेतु प्रादुरासीदिहप्रभो ॥ ९९ ॥ भ वेश्वरंसमभ्यर्च्य भवेनाविर्भवेन्नरः ॥ प्रभुर्भवतिसर्वेषांराज्ञामाज्ञाकृतामिह ॥ १०० ॥ देवदारुवनाद्दण्डीदण्डयन्पातका

हैं ॥ ९५ ॥ और वह संहारभैरव पूजासे सब सिद्धि के लिये खर्वविनायकसे पूर्व में टिके हैं व सब पापसंतानको हरते हैं ॥ ९६ ॥ व सिद्धिदायक उग्रजी कनखल तीर्थ से यहां प्रकटहुये हैं उनके देखनेसे मनुष्योंका दारुण पाप विनष्ट होजाताहै ॥ ९७ ॥ अर्कविनायक से पूर्वमे उग्रलिंग सदासेवने योग्यहै उसकी पूजासे अत्यन्त उग्रभी रोगादि विघ्न विनष्ट होजातेहैं ॥ ९८ ॥ हे प्रभो ! भवनामक प्रभु आपही वस्त्रापथ महाक्षेत्रसे आकर यहां भीमचंडी के समीप मे प्रकटहुये हैं ॥ ९९ ॥ उस भवेश्वर लिंगकी पूजाकर नर फिर संसार में न प्रकटहोवे और जो इसलोक में जन्मधरता है तो सब आज्ञाकर्त्ता राजाओं का स्वामी होता है ॥ १०० ॥ व पाप पंक्तियों को

दंड देतेहुये लिंगरूप समर्थ दंडीदेव देवदारुवनसे आनंद वनमें आकर टिके हैं ॥ १ ॥ वह दंडीश्वर देहलिविनायक से पूर्वमें पूजनीयहैं उनकी पूजासे मनुष्योंका फिर जन्म नहीं देखाजाताहै ॥ २ ॥ व भद्रकर्णकुंड समेत साक्षात् शिव भद्रकर्ण कुंडसे यहां आयेहैं जोकि पूजितहोकर कल्याणदायक है ॥ ३ ॥ और उद्दंडनामक गणनायक से पूर्वमें उनका उत्तम तीर्थहै भद्रकर्ण कुंडमें स्नानकर व शिवनामक लिंगकी पूजाकर ॥ ४ ॥ सर्वत्र कल्याणको प्राप्तहोता है व भद्रकर्णेश्वरकी पूजासे सब भूतोंका कल्याण सुनताहै और आंखोंसे देखता है ॥ ५ ॥ हरिश्चंद्रसे आकर शंकर तुम्हारे आगे विराजतेहैं जिनकी पूजासे जनोंकी उत्पत्ति माताके गर्भमें नहीं

वर्ली: ॥ वाराणस्यांसमागत्यस्थितोलिङ्गाकृतिर्विभुः ॥ १ ॥ प्राच्यांदण्डीश्वरःपूज्यःसदेहलिविनायकात् ॥ तस्यार्चनेन मर्त्यानांनपुनर्भवईक्ष्यते ॥२॥ भद्रकर्णह्रदादत्रभद्रकर्णह्रदान्वितः ॥ शिवःसाक्षादिहायातःसर्वेषांशिवदोर्चितः ॥ ३ ॥ उद्दण्डाख्याद्गणपतेःप्राच्यांतत्तीर्थमुत्तमम् ॥ भद्रकर्णह्रदेस्नात्वाभ्यर्च्यलिङ्गंशिवाह्वयम् ॥४॥ सर्वत्रशिवमाप्नोतिभद्रकर्णेशपूजनात् ॥ शृणुयात्सर्वभूतानांभद्रंपश्यतिचाक्षिभिः ॥५॥ शङ्करश्चहरिश्चन्द्रात्त्वत्पुरःप्रतिभासते ॥ तत्पूजनाज्जनानां न जननीजठरेजनिः ॥ ६ ॥ यमलिङ्गान्महातीर्थात्काललिङ्गमिहस्थितम् ॥ कलशेशइतिख्यातंचन्द्रेशात्पश्चिमे नच ॥ ७ ॥ यमतीर्थेनरःस्नात्वामित्रावरुणदक्षिणे ॥ काललिङ्गंसमालोक्य कलिकालभयंकुतः ॥ ८ ॥ तत्रभौमचतुर्दश्यां यस्तुयात्रांकरिष्यति ॥ अपिपातकयुक्तःसयमयात्रांनयास्यति ॥ ९ ॥ नैपालाच्चमहाक्षेत्रादायातपशुपतिस्त्विह ॥ यत्रपाशुपतोयोगउपदिष्टःपिनाकिना ॥ १० ॥ भवतादेवदेवेन ब्रह्मादिभ्योविमुक्तये ॥ तस्यसंदर्शनादेव पशु

होतीहै ॥ ६ ॥ व यम लिंगनामक महातीर्थ से आकर काललिंग यहां टिका है जो कि चंद्रेश्वर से पश्चिम में कलशेश्वर ऐसा कहा हुआ प्रसिद्ध है ॥ ७ ॥ मित्राव-रुणके दक्षिणयमतीर्थ में स्नानकर मनुष्यको कलिकालका डर कहांहै ॥ ८ ॥ जोकि पाप युक्तभी मनुष्य वहां मंगलवार व चतुर्दशी तिथिमें यात्रा करेगा वह यमयात्रा को न जावेगा ॥ ९ ॥ व नैपालनामक महाक्षेत्रसे पशुपति यहां आयेहैं जहां पाशुपत योगको पिनाक धनुपधारी ने उपदेश कियाहै ॥ १० ॥ किंतु देवदेव आपने विमुक्ति के

लिये ब्रह्मादिकों से कहाहै उनके दर्शन से पशुरूप जीवों की पसरी जे चौबीसतत्त्वहैं उनसे हीन होजाताहै ॥ ११ ॥ व कपालीशजी करवीरक तीर्थ से यहां आयेहैं वह कपालमोचन तीर्थमें बहुतयत्नसे देखने योग्यहै ॥ १२ ॥ उनकेदर्शनमात्रसे ब्रह्महत्या बिलाजातीहै व देविकापुरीसे आकर उमापति यहां टिकेहैं जोकि पशुपति से पूर्वमें देखेहुये होकर बहुत कालके बटोरे पापको हरलेतेहैं ॥ १३ ॥ व दीप्तेश्वर नामकलिंगमहेश्वर क्षेत्रसे यहां आकर ॥ १४ ॥ उमापति के समीप में टिकाहै जोकि काशीके मध्यगत दीप्तेशलिङ्ग भुक्ति मुक्तिदायक है व इसलोक और परलोक में दीप्ति के लिये वर्तमानहै ॥ १५ ॥ व महापाशुपत व्रतवाले शिष्योंसे घिरेहुये नकुलीश्वर आचार्य्य

पाशैर्वियुज्यते ॥ ११ ॥ करवीरकतीर्थाच्चकपालीशइहागतः ॥ कपालमोचनेतीर्थेद्रष्टव्यःसप्रयत्नतः ॥ १२ ॥ तद्वि लोकनमात्रेण ब्रह्महत्याविलीयते ॥ उमापतिर्देविकायाइहागत्यव्यवस्थितः ॥ १३ ॥ दृष्टःपशुपतेःप्राच्यांहरेत्पापं चिरार्जितम् ॥ लिङ्गंमहेश्वरक्षेत्रादिहदीप्तेशसञ्ज्ञितम् ॥ १४ ॥ उपोमापतितिष्ठेतदीप्त्यैचेहपरत्रच ॥ भुक्तिमुक्तिप्रदं लिङ्गंदीप्तेशंकाशिमध्यगम् ॥ १५ ॥ कायारोहणतःक्षेत्रादाचार्योनकुलीश्वरः॥शिष्यैःपरिवृतस्तिष्ठेन्महापाशुपतव्र तैः ॥ १६ ॥ दक्षिणेहिमहादेवाद्दृष्टोज्ञानंप्रयच्छति ॥ अज्ञानंनाशयेत्क्षिप्रंगर्भसंसृतिहेतुकम् ॥ १७॥ गङ्गासागरतश्चा यादमरेशइतीरितम् ॥ लिङ्गंयद्दर्शनादेवनामरत्वंहिदुर्लभम् ॥ १८ ॥ सप्तगोदावरीतीर्थाद्देवोभीमेश्वरःप्रभुः ॥ प्रका शतेलिङ्गरूपीभुक्त्यैमुक्त्यैनृणामिह ॥ १९ ॥ नकुलीशात्पुरोभागेदृष्ट्वाभीमेश्वरंप्रभुम् ॥ महाभीमानिपापानिप्रण श्यन्तिहितत्क्षणात् ॥ २० ॥ भूतेश्वराद्भस्मगात्रंप्रादुरासीदिहस्वयम्॥ भीमेशाद्दक्षिणेभागेतदभ्यर्च्यंप्रयत्नतः ॥२१॥

कायारोहणसे आकरयहांटिकेहैं ॥ १६ ॥ जोकि महादेवसे दक्षिणमें देखेहुये शीघ्रही ज्ञानदेतेहैं और गर्भवास संसारके कारण अज्ञानको नाशतेहैं ॥ १७ ॥ व अमरेश ऐसा कहाहुआ लिङ्ग गङ्गासागरसे आयाहै जिसके दर्शन सेही अमरहोना भी दुर्लभनहींहै ॥१८॥ व भीमेश्वरदेव प्रभु सप्त गोदावरीतीर्थसे यहां आकर लिङ्गरूपी होकर मनुष्यों की भुक्ति व मुक्ति के लिये प्रकाशते हैं ॥ १९ ॥ नकुलीश्वर से पूर्वभाग में भीमेश्वर प्रभुके दर्शनकर भारीभयानक पाप भी उसी क्षण विनष्ट होजाते हैं ॥ २० ॥ व

भस्मगात्र लिंग आपही भूतेश्वर क्षेत्र से आकर यहां प्रकट हुआ है उसको भीमेश्वर से दक्षिण भाग में भलीभांति प्रयत्न से पूजकर ॥ २१ ॥ व भस्मगात्र के दर्शन से वह फल होताहै जोकि सौ वर्षतक अच्छेप्रकार अभ्यास कियेहुये पाशुपतयोग से प्राप्त कियाजाता है ॥ २२ ॥ व भक्तभयहारी लिङ्गाकारधारी स्वयंभू ऐसे नामसे प्रसिद्ध हुये देव नकुलीश्वर से आकर काशीमें आपसेही प्रकट होगयेहैं ॥ २३ ॥ महालक्ष्मीश्वर के आगे सिद्धिकुंडमें स्नानकर व स्वयंभुलिङ्गकी भलीभांति पूजाकर मनुष्य फिर जन्मसेवी न होवे ॥ २४ ॥ व प्रयागतीर्थ के समीप में मूंगा के समान प्रकाशमान महान् यह धरणीवराहनामक देवका मंदिर है ॥ २५ ॥ गणों

सम्यक्पाशुपताद्योगादभ्यस्ताच्चसमाःशतम् ॥ यत्प्राप्यतेफलंतत्स्याद्भस्मगात्रविलोकनात् ॥ २२ ॥ नकुलीश्वरतोदेवःस्वयम्भूरितिविश्रुतः ॥ आत्मनाप्रकटीभूतःकाश्यांलिङ्गाकृतिर्हरः ॥ २३ ॥ स्वयम्भुलिङ्गंसम्पूज्यस्नात्वासिद्धिह्रदेनरः ॥ महालक्ष्मीश्वरपुरोनभूयोजन्मभाग्भवेत् ॥ २४ ॥ प्रयागतीर्थनिकषाप्रासादोविद्रुमप्रभः ॥ वाराहस्यमहानेषधरणीनाम्नएवहि ॥ २५ ॥ विन्ध्यपर्वततःप्राप्तोदेवंश्रुत्वासमागतम् ॥ सगणंसर्षिदेवंचमन्दराद्रत्नकन्दरात् ॥ २६ ॥ काश्यांधरणिवाराहोद्रष्टव्यःसप्रयत्नतः ॥ आपत्समुद्रसंमग्नमुद्धरेच्छरणागतम् ॥ २७ ॥ कर्णिकाराद्गणाध्यक्षःकर्णिकारप्रसूनरुक् ॥ समर्च्योयंगदाहस्तउपसर्गसहस्रहृत ॥ २८ ॥ तस्माद्धरणिवाराहात्प्रतीच्यांदिशिसंस्थितम् ॥ पूजयित्वागणाध्यक्षंगाणपत्यपदंलभेत् ॥ २९ ॥ हेमकूटाद्विरूपाक्षंलिङ्गमत्राविरासह ॥ महेश्वरादवाच्यांचदृष्टंसंसारतारकम् ॥ ३० ॥

समेत व ऋषियों और देवो समेत महादेवजीको रत्नकन्दर मन्दर पर्वत से आये हुयेसुनकर वह धरणीवराहदेव विन्ध्याचल से यहां प्राप्त हुये हैं ॥ २६ ॥ वह धरणीवराह बहुत यत्नसे काशीमें देखने योग्य हैं जोकि विपत्तिसागर में डूबे हुये शरणागत का उद्धार करते हैं ॥ २७ ॥ व कर्णिकार क्षेत्र से आयेहुये कर्णिकार (नैनिया) के फूलकीसी छविवाले हाथमे गदाधारी व हजारों विघ्नहारी यह गणाध्यक्ष भलीभांति पूजनीय हैं ॥ २८ ॥ उन धरणीवराहसे पश्चिम दिशि मे टिके हुये गणाध्यक्ष की पूजाकर गणपति का पद पावे ॥ २९ ॥ व विरूपाक्षनामकलिंग हेमकूट पर्वत से आकर यहा प्रकटहुआ है जोकि महेश्वर से दक्षिण में देखाहुआ

संसार से उबार करता है ॥ ३० ॥ व हरद्वार से आया हुआ हिम (बरफ) के समान प्रकाशमान सिद्धिदायक हिमस्थेशलिङ्ग यहां ब्रह्मनाल से पश्चिम में देखने योग्य है ॥ ३१ ॥ हे प्रभो ! कैलास से गणेश आये और अन्य बड़े बलवान् सातकरोड़ संख्यक गण भी कैलास पर्वत से भलीभांति आये हैं॥३२॥व उन्होंने यहा द्वारोंसमेत व यन्त्रों समेत सातों स्वर्गोंके समान किले बनाये हैं ॥ ३३ ॥ जो कोट कि करोड़ोंकरोड़ों सुभटोंके रहने योग्य हैं व सब ऋद्धियों से सहित भी हैं व सोना रूपा तॉबा कांस पीतल और सीसा से बने हैं ॥ ३४ ॥ व चुम्बक पत्थरों से दीप्यमान हैं व दृढ़ हैं व आकाश व मेघों को चूमरहे हैं याने बहुत ऊंचे हैं तदनन्तर उन्होंने

गङ्गाद्वाराद्धिमस्थेशंलिङ्गंहिमसमप्रभम् ॥ ब्रह्मनालात्प्रतीच्यांचद्रष्टव्यमिहसिद्धिदम् ॥ ३१ ॥ गणाधिपश्चकैलासाद्गणाअन्येमहाबलाः ॥ कैलासाद्रेःसमायाताःसप्तकोटिमिताःप्रभो ॥ ३२ ॥ दुर्गाणितैःकृतानीहसप्तस्वर्गसमानिच ॥ सद्वाराणिसयन्त्राणिकपाटविकटानिच ॥ ३३ ॥ कोटिकोटिभटाढ्यानिसर्वर्द्धिसहितान्यपि ॥ सुवर्णरूप्यताम्रैश्चकांस्यरीतिकसीसकैः ॥ ३४ ॥ अयस्कान्तेनकान्तानिदृढान्यभ्रंलिहान्यपि ॥ ततःशैलंमहादुर्गंतैःकाशीपरितःकृतम् ॥ ३५ ॥ परिखापिकृतानिम्नामत्स्योदर्याजलाविला ॥ मत्स्योदरीद्विधाजाताबहिरन्तश्चरापुनः ॥ ३६ ॥ तच्चतीर्थंमहत्ख्यातंमिलितंगाङ्गवारिभिः॥यदासंहारमार्गेणगङ्गाम्भःप्रसरेदिह ॥ ३७ ॥ तदामत्स्योदरीतीर्थंलभ्यतेपुण्यगौरवात् ॥ सूर्याचन्द्रमसोःपर्वतदाकोटिगुणंशतम् ॥ ३८ ॥ सर्वपर्वाणितत्रैव सर्वतीर्थानितत्रवै ॥ तत्रैवसर्वलिङ्गानिगङ्गामत्स्योदरीयतः ॥ ३९ ॥ मत्स्योदर्यांहियेस्नातायत्रकुत्रापिमानवाः ॥ कृतपिण्डप्रदानास्तेनमातुरुदरेशयाः ॥ ४० ॥ अ

काशी के सब ओर शैल के समान महा दुर्ग (बड़ाकोट) किया है ॥ ३५ ॥ और उन्होंने मत्स्योदरी के जलसे ढाबर गहरी खाँई भी कियाहै फिर बाहर और भीतर बिचरनेवाली मत्स्योदरी दोभांति होगई है ॥ ३६ ॥ यह गंगाके जल से मिलाहुआ बड़ा तीर्थ कहागया याने प्रसिद्ध है जब उलटेमार्ग से याने दक्षिण प्रवाहसे इस मत्स्योदरी में गंगा का जल पसरता है ॥ ३७ ॥ तब पुण्यकी गुरुता से मत्स्योदरी तीर्थ मिलताहै तब सूर्य्य व चन्द्रग्रहणपर्व सौ करोड़ गुणहै ॥ ३८ ॥ जब गंगाके सहित मत्स्योदरी होती है तब वहां हीं सब पर्व हैं व वहांहीं सब तीर्थ भी हैं और वहांहीं सब लिंगहैं ॥ ३९ ॥ व जहां कहीं भी मत्स्योदरी में स्नान किये

हुये जे मनुष्य पितरों को पिण्डदान करनेवाले हैं वे फिर माताके उदरमें सोनेहारे नहीं होतेहैं ॥ ४० ॥ और जब गंगाकाजल सब ओर पसराहुआ दीखता है तब यह अविमुक्तक्षेत्र मत्स्याकारताको प्राप्तहोताहै॥४१॥जे मनुष्य मत्स्योदरीमें स्नानकियेहुयेहैं वे नरोत्तमहैं और वे बहुतपापोंको करकेभी यमराजकी पुरीको नहीं देखते हैं ॥४२॥ बहुत से तीर्थों में स्नानकरके क्या है व दुष्कर तपस्या करके क्या है क्योंकि जो मत्स्योदरी नहाई गई तो गर्भका डर कहां है ॥ ४३ ॥ जहां जहांहीं मनुष्य देव और ऋषियों के किये हुये भी लिंगहैं वहां प्राप्तहोकर मत्स्योदरी में भलीभांति स्नान कियेहुआ मनुष्य मोक्षका पात्र होता है ॥ ४४ ॥ भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक में प्राप्त

विमुक्तमिदंक्षेत्रंमत्स्याकारत्वमाप्नुयात् ॥ परितःस्वर्धुनीवारिसंसारिपरिवीक्ष्यते ॥ ४१ ॥ मत्स्योदर्यांकृतस्नानायेन रास्तेनरोत्तमाः॥कृत्वापिबहुपापानिनेक्षन्तेभास्करेःपुरीम् ॥४२॥ किंस्नात्वाबहुतीर्थेषुकिंतप्त्वादुष्करंतपः॥यदिमत्स्योदरीस्नाताकुतोगर्भभयंततः ॥ ४३ ॥ यत्रयत्रहिलिङ्गानिनृदेवर्षिकृतान्यपि ॥ तत्रमत्स्योदरींप्राप्यसुस्नातोमोक्षभाजनम् ॥४४॥ सन्तितीर्थान्यनेकानिभूर्भुवःस्वर्गतान्यपि ॥ नसमानिपरंतानिकोट्यंशेनापिनिश्चितम् ॥ ४५ ॥ इत्थंतीर्थंकृतंतेनविभोकैलासवासिना ॥ गणाधिपेनसुमहत्सुमहोदारकर्मणा ॥ ४६ ॥ भूर्भुवःसञ्ज्ञकंलिङ्गंपर्वताद्गन्धमादनात् ॥ स्वयमाविरभूदत्रतस्मात्प्राच्यांगणाधिपात् ॥४७॥ विलोक्यभूर्भुवंलिङ्गंभूर्भुवःस्वर्महःपरे ॥ निवसन्तिजनाःपुण्याःसुचिरंदिव्यभोगिनः ॥ ४८ ॥ हाटकेशंमहालिङ्गंभोगवत्यासमायुतम् ॥ सप्तपातालतलतइहायातंस्वयंविभो ॥ ४९ ॥ शेषवासुकिमुख्यैश्चतत्प्रासादोमहानिह ॥ मणिमाणिक्यरत्नौघैर्निरमायिप्रयत्नतः ॥ ५० ॥ तल्लिङ्गंहाटकमयंरत्नमा

भी अनेकों तीर्थ हैं परन्तु वे मत्स्योदरी के कोट्यंश के भी समान नहीं हैं यह निश्चय कियागया है ॥ ४५ ॥ हे विभो ! बहुत बड़े उदार कर्मवाले उन कैलासवासी गणेश्वर ने इसभांति बहुतभारी तीर्थकिया ॥ ४६ ॥ व उनगणाधिप से पूर्व में गन्धमादन पर्वत से आकर भूर्भुवः संज्ञक लिंग आपही यहां प्रकट हुआहै ॥ ४७ ॥ पुण्यवान् जन भूर्भुवः संज्ञक लिंगको देखकर दिव्यभोग वाले होकर भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक और महर्लोक के ऊपर बहुत कालतक बसते हैं ॥ ४८ ॥ हे विभो ! पाताल गंगा समेत हाटकेश्वर महालिंग आपही सात पाताल तलसे यहां आया है ॥ ४९ ॥ व शेष और वासुकी आदि नागोंने यहां बड़े यत्न से मणिमाणिक्य और रत्न समूहों

से उसका बड़ाभारी देवमन्दिर बनाया है ॥ ५० ॥ रत्नोंकी मालाओं से पूजित व सुवर्णमय वहलिंग ईशानेश्वर से पूर्व में बड़े यत्नसे पूजने योग्य है ॥ ५१ ॥ क्योंकि मनुष्य भक्तिसे उस लिंगको सबओर या सामने से पूजकर सबसमृद्धिवालाहो असंख्य भोगों को भोगकर अन्त में मोक्षको प्राप्त होता है ॥ ५२ ॥ और तारालोक आकाश से जो ज्योतिरूप लिंग यहां आया है वह तारकेश्वर लिंग ज्ञानवापी से पूर्वभाग में है ॥ ५३ ॥ ज्ञानवापी में स्नानकर और तारकेश्वर के दर्शनकर व उसलिंग की भलीभांति पूजासे मनुष्य तारक ज्ञानको प्राप्तहोवे ॥ ५४ ॥ व सन्ध्यादि नियम किये हुआ मौनव्रतधारी बुद्धिमान् मनुष्य पितरों का सबओर से तर्पणकर जबतक लिंग

लाभिरर्चितम्॥ईशानेश्वरतःप्राच्यांपूजनीयंप्रयत्नतः॥५१॥भक्तितोऽभ्यर्च्यतल्लिङ्गंनरःसर्वसमृद्धिमान् ॥ भुक्त्वाभोगानसंख्यातानन्तेनिर्वाणमृच्छति॥ ५२ ॥ आकाशात्तारकाल्लिङ्गंज्योतीरूपमिहागतम् ॥ ज्ञानवाप्याःपुरोभागेतल्लिङ्गंतारकेश्वरम् ॥ ५३ ॥ तारकंज्ञानमाप्येततल्लिङ्गस्यसमर्चनात् ॥ ज्ञानवाप्यांनरःस्नात्वातारकेशंविलोक्यच ॥ ५४ ॥ कृतसन्ध्यादिनियमःपरितर्प्यपितामहान् ॥ धृतमौनव्रतोधीमान्यावल्लिङ्गविलोकनम् ॥ ५५ ॥ मुच्यतेसर्वपापेभ्यःपुण्यंप्राप्नोतिशाश्वतम्॥प्रान्तेचतारकंज्ञानंयस्माज्ज्ञानाद्विमुच्यते ॥ ५६ ॥ किराताच्चकिरातेशइहचाविर्बभूवह ॥ किरातरूपोभगवान्यत्रदेवोऽभवत्पुरा ॥५७॥ तत्किरातेश्वरंलिङ्गंभारभूतेश्वरादनु॥ नमस्कृत्यनरोजातुनमातुरुदरेशयः॥५८॥ लङ्कापुर्याःसमागच्छन्मरुकेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ लिङ्गंयदर्चनात्पुंसांनभयंरक्षसाम्भवेत् ॥ ५९ ॥ नैर्ऋत्यांदिशितल्लिङ्गंनैर्ऋतेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ पौलस्त्यराघवात्पश्चात्पूजितंसर्वदुष्टहृत् ॥ ६० ॥ पुण्यंजलप्रियंलिङ्गंजललिङ्गस्थलादपि ॥ आ

का दर्शन करता है ॥ ५५ ॥ तबतक सब पापों से छूटजाता है व सदैव रहनेवाले अखण्ड पुण्यको प्राप्त होता है और अन्त में उस तारकज्ञान को प्राप्तहोता है कि जिस ज्ञान से मुक्त होता है ॥ ५६ ॥ व पूर्वकाल में जहां भगवान् महादेव जी किरातरूप हुये हैं उस किरात तीर्थ से आकर किरातेश्वर नामक लिंग यहां हर्ष से प्रकट हुआ है ॥ ५७ ॥ भारभूतेश्वर से पीछे उस किरातेश्वर लिंग के नमस्कार कर मनुष्य माताके गर्भ में सोनेवाला कभी नहीं होता है ॥ ५८ ॥ व जिस लिंगकी पूजासे लोगों को राक्षसों का डर न होवे वह मरुकेश्वर नामक लिंग लङ्कापुरी से यहां भलीभांति आया है ॥ ५९ ॥ और सब दुष्टोंका हर्ता वह नैर्ऋतेश्वर संज्ञक लिंग बिभीषण के

थापेहुये रामचन्द्रसे पीछे नैर्ऋत्यदिशामें पूजितहै ॥ ६० ॥ व स्थललिंगसे भी आयाहुआ जो जल प्रियलिंग मनोज्ञहै वह लिंग गंगाजलके बीचमें टिकाहै ॥ ६१ ॥ व सब धातुमय, सब रत्नमय, शुभ, श्रेष्ठ और अतिअद्भुत उस लिंगका मण्डप गंगाके मध्यमें देखपड़ताहै ॥ ६२ ॥ और आज भी वह लिंग मन्दिर पुण्यसमूहकी गुरुतासे किसीको देखपड़ताहै व कोटीश्वरतीर्थ से भी आयाहुआ जो श्रेष्ठलिंगहै ॥ ६३ ॥ उस लिंगके देखने से कोटिलिंगों के दर्शनका पुण्य होताहै और श्रेष्ठ सिद्धियों का बडा दाता वह श्रेष्ठलिंग ज्येष्ठेश्वरसे पीछे विराजमानहै ॥ ६४ ॥ व बड़वानलके मुखसे उत्पन्नहुआ अनलेश्वरनामकलिंग यहां नलेश्वरके अग्रभागमें पूजित और सब सिद्धियों

यातंतच्चगङ्गायाजलमध्येऽव्यवस्थितम् ॥ ६१ ॥ तत्प्रासादोऽद्भुततरोमध्येगङ्गंनिरीक्ष्यते ॥ सर्वधातुमयःश्रेष्ठःसर्वरत्नमयः शुभः ॥ ६२ ॥ अद्यापिदृश्यतेकैश्चित्पुण्यसम्भारगौरवात् ॥ श्रेष्ठंलिङ्गमिहायातंतीर्थात्कोटीश्वरादपि ॥ ६३ ॥ कोटिलि ङ्गेक्षणेपुण्यंतल्लिङ्गस्यनिरीक्षणात् ॥ श्रेष्ठंज्येष्ठेश्वरात्पश्चाच्छ्रेष्ठसिद्धिप्रदायकम् ॥ ६४ ॥ वडवास्यात्समुद्भूतंलिङ्गम त्रानलेश्वरम् ॥ नलेश्वरपुरोभागेपूजितंसर्वसिद्धिदम् ॥ ६५ ॥ आगत्यविरजस्तीर्थाद्देवदेवस्त्रिलोचनः ॥ लिङ्गेत्वनादिसंसि द्धेह्यवतस्थेत्रिविष्टपे ॥ ६६ ॥ पुण्येपिलिपिलातीर्थेसर्वेषान्तारकप्रदे ॥ आविश्चक्रेस्वयन्देवॐकारोमरकण्टकात् ॥ ६७ ॥ तदाद्यन्तारकक्षेत्रंयदागङ्गानचागता ॥ यदैवाविरभूत्काशीत्रैलोक्योद्धरणायवै ॥ ६८ ॥ तदाकृतिमहल्लिङ्गंस्वयमाविर भूत्ततः ॥ महिमानंनतस्यान्यःपरिवेत्तिविभोर्ऋते ॥ ६९ ॥ एतान्यायतनानीशआनिनायमहान्तिच ॥ शेषयित्वांश मात्रञ्चतस्मिन्क्षेत्रेनिजेनिजे ॥ ७० ॥ इहायातानिपुण्यानिसर्वभावेननान्यथा ॥ प्रासादाःसर्वतश्चैषांरम्याश्चभ्रंलि

का दायकहै ॥ ६५ ॥ व देवोंके देव त्रिलोचन महादेवजी विरजतीर्थ से आकर अनादि संसिद्ध त्रिविष्टपलिंगमेंही टिकेहैं ॥ ६६ ॥ और ॐकारनामक देवने आपही अमरकण्टकसे आकर सबके ज्ञानदायक मनोज्ञ, पिलपिला तीर्थमें आविर्भाव कियाहै ॥ ६७ ॥ किन्तु जब गंगा न आई थी और त्रिलोक तारने के लिये जबहीं काशी भी प्रकट हुईहै तबहीं वह आद्य लिंग प्रकटहुआहै जोकि ॐकारका स्थानहै ॥ ६८ ॥ और तब जो उसॐकारके आकारवाला महालिंग आपही प्रकटहुआहै उसकी महिमाको समर्थ शिवजी विना सब ओरसे अन्य कोई नहीं जानताहै ॥ ६९ ॥ हे ईश ! उस अपने अपने क्षेत्रमें अंशमात्रको शेष कराकर इन बड़े पूजनीय स्थानोंको मैं लायाहूं ॥ ७० ॥

हे विभो ! ये पुण्यस्थान सब भावसे यहां आये हैं अन्यथा नहीं और सब ओर रमणीक व आकाशके आस्वादन करनेवाले याने अधिक ऊंचे इनके देवालय बने हैं ॥ ७१ ॥ जोकि बहुत धातुओं से रचित विचित्र और सब रत्नोंसे अत्यन्त उज्ज्वलहैं जिनके कलशमात्रके दर्शनसे मुक्ति मिलतीहै ॥ ७२ ॥ और हे देवसत्तम ! संभावनाहै कि इन लिंगोंका नाममात्रभी सुनकर हजारो जन्मोकी उठीहुई पापोंकी राशियोंक्षीण होजाती हैं ॥ ७३ ॥ हे ईश्वर ! इस समय यहां क्या आज्ञाहै जोकि मेरे करने योग्यहै वह भी प्रसन्न कीजावे और सिद्धहोकर माननीयहै ॥ ७४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे कुम्भज ! इसप्रकार नंदीश्वरका वचन सुनकर देवदेवोंके स्वामी शिवजी

हाविभो ॥ ७१ ॥ बहुधातुमयाश्चित्राःसर्वरत्नसमुज्ज्वलाः ॥ येषांकलशमात्रस्यदर्शनान्मुक्तिराप्यते ॥ ७२ ॥ श्रुत्वापि नामचैतेषांलिङ्गानांसुरसत्तम ॥ अपिजन्मसहस्रोत्थाःक्षीयन्तेपापराशयः ॥७३ ॥ इदानींकोनिदेशोत्रमयानुष्ठेयईशितः ॥ प्रसादीक्रियतांसोपिसिद्धोमन्तव्यएवहि ॥ ७४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ श्रुत्वेतिनन्दिनोवाक्यंदेवदेवेश्वरोहरः ॥ श्रद्धाप्रसाद्यशैलादिमिदम्प्रोवाचकुम्भज ॥ ७५ ॥ श्रीदेवदेवउवाच ॥ साधूक्तन्त्वयानन्दिन्सदानन्दविधायक ॥ विधेहिमे निदेशञ्चचण्डीर्व्यापारयाधुना ॥ ७६ ॥ नवकोट्यस्तुचामुण्डायायत्रनिवसन्तिहि ॥ स्वदेवताभिःसहिताभूतवेतालभैरवैः ॥ ७७ ॥ ताःपुरीरक्षणार्थायसवाहनबलायुधाः ॥ प्रतिदुर्गन्दुर्गरूपाःपरितःपरिवासय ॥ ७८ ॥ स्कन्दउवाच ॥ नन्दिनंसंनिदेश्येतिमृडान्यासहितोमृडः ॥ ययौत्रैविष्टपंक्षेत्रंमुक्तिबीजप्ररोहणम् ॥ ७९ ॥ शिलादतनयोप्यैशींमूर्द्धन्याज्ञां

श्रद्धासे प्रसादके योग्य शिलादपुत्र नंदीसे यह बोले ॥ ७५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे सदा आनन्दकारिन्, नन्दिन् ! तुमने बहुत अच्छाकिया और इससमय मेरा आयसु करो कि चण्डिकाओंको व्यापार कराओ याने पठाओ ॥ ७६ ॥ भूत वेताल भैरव और अपने देवताओंसमेत जे नवकरोड़ चामुंडा देवियां जहां निवासकरती हैं ॥ ७७ ॥ जोकि वाहन बल और आयुधसहित व उग्ररूपाहैं उनको पुरीकी रक्षाके अर्थ प्रतिदुर्गोंमें सब ओरसे बसावो ॥ ७८ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि पार्वतीसमेत शिवजी इस प्रकार नंदीश्वरको भलीभांति आज्ञादेकर मोक्षबीजके जमानेवाले त्रैविष्टपक्षेत्रको चलेगये ॥ ७९ ॥ और शिलादकेपुत्र नंदीश्वरने भी परमेश्वरकी आज्ञाको शिरधर

सब ओरसे दुर्गाओंको बुलाकर प्रतिकोटों में निवासकराया ॥ ८० ॥ पुण्यस्थानगर्भवाले इस अध्यायको श्रद्धासे सुनकर मनुष्य क्रमसे स्वर्ग और मोक्षको प्राप्तहोवें ॥ ८१ ॥ व बड़े देवस्थानोंका आश्रय करनेहारी इस अडसठ संख्याको भी सुनकर मनुष्य माताकी उदर सम्बन्धिनी कन्दरामें कभी न पैठे याने फिर गर्भमें न बसे ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेअष्टषष्ठ्यायतनसमागमोनामैकोनसप्ततितमोध्यायः ॥ ६९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० सत्तरिके अध्यायमें चण्डी थापन उक्त । वेतालादिसमेत अरु सब परिवार सुयुक्त ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे पार्वतीके पुत्र श्रीकार्त्तिकेयजी ! विश्वके आनन्ददा-

विधायच ॥ आहूयसर्वतोदुर्गाःप्रतिदुर्गंन्यवेशयत ॥ ८० ॥ निशम्याध्यायमेतञ्चपुण्यायतनगर्भिणम् ॥ नरःस्वर्गापवर्गौचप्राप्नुयाच्छ्रद्धयाक्रमात् ॥ ८१ ॥ श्रुत्वाष्टषष्टिमेतांवैमहायतनसंश्रयाम् ॥ नजातुप्रविशेन्मर्त्योजनन्याजाठरीन्दरीम् ॥ ८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेअष्टषष्ट्यायतनसमागमोनामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ कात्यायनेयकथयनन्दिनाविश्वनन्दिना ॥ यथाऽव्यापारितादेव्योदेवदेवनिदेशतः ॥ १ ॥ अविमुक्तस्यरक्षार्थंयत्रयादेवताःस्थिताः ॥ प्रसादंकुरुमेदेवताःसमाचक्ष्वतत्त्वतः ॥ २ ॥ इत्यगस्त्युदितंश्रुत्वामहादेवतनूद्भवः ॥ कथयामासयायत्रस्थिताऽऽनन्दवनेमुदा ॥ ३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ वाराणस्यांविशालाक्षीक्षेत्रस्यपरमेष्टदा ॥ विशालतीर्थंगङ्गायांकृत्वापृष्ठेऽव्यवस्थिता ॥ ४ ॥ स्नात्वाविशालतीर्थेवैविशालाक्षीम्प्रणम्यच ॥ विशालांलभतेलक्ष्मीम्पर

यक नन्दीश्वरने जैसे श्रीमहादेवजीकी आज्ञासे देवियोंको व्यापार कराया वैसेही आप कहो ॥ १ ॥ हे देव ! मुझपर प्रसन्नता करो कि काशीकी रक्षाकेलिये जहां जे देवता टिकी हैं उनको तत्त्वसे भलीभांति वर्णनकरो ॥ २ ॥ इस प्रकार अगस्त्यमुनिका वचन सुनकर महादेवजीके अंगसे उपजेहुये कार्त्तिकेयजी ने उन देवताओंको वहांपर कहा जोकि आनन्दवनमें जहां आनन्दसे टिकीहैं ॥ ३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि क्षेत्रकी अधिक उत्तम इष्ट देनेवाली विशालाक्षी देवी काशीके बीच गंगामें विशालतीर्थ को कर पीछे से उसके भीतरटिकी हैं ॥ ४ ॥ उससे मनुष्य विशालतीर्थ में स्नानकर व श्रीविशालाक्षी देवी को प्रणामकर इस और उस लोकमें भी

सुख देनेवाली विशाल सम्पत्तिको पावे ॥ ५ ॥ व भादोंबदी तीजमें श्रीविशालाक्षी देवीके समीप रात्रिमें जागरणकर उपवासमें परायण मनुष्योंको॥६॥ प्रातःकाल यथाशक्ति माला वस्त्र और अलंकारों से भूषित चौदह कुमारियोंका बड़े यत्नसे भोजन कराना चाहिये ॥ ७ ॥ हे कुम्भज ! उसके बाद पारणकर पुत्र और सेवकसमेत साधकोंको भली भांति काशीवासका फल मिले ॥ ८ ॥ और उस तिथिमें उपसर्गोंके नाशके अर्थ व मोक्षलक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये क्षेत्रवासियोंको महायात्रा करना चाहिये ॥ ९ ॥ व काशीमें बड़े यत्नपूर्वक धूप, दीप, शुभ माल्य और मनोहर नैवेद्यों से विशालाक्षीदेवी पूजने योग्यहैं ॥१०॥ और मणिमुक्ता आदि भूषण, विचित्र वितान,शुभ चामर और सुगन्धों

त्रेहचशर्मदाम् ॥ ५ ॥ भाद्रकृष्णतृतीयायामुपोषणपरैर्नृभिः ॥ कृत्वाजागरणंरात्रौविशालाक्षीसमीपतः ॥ ६ ॥ प्रात भोज्याःप्रयत्नेनचतुर्दशकुमारिकाः॥अलंकृतायथाशक्त्यास्रगम्बरविभूषणैः ॥ ७ ॥ विधायपारणम्पश्चात्पुत्रभृत्यस मन्वितैः ॥ सम्यग्वाराणसीवासफलंलभ्येतकुम्भज ॥ ८ ॥ तस्यान्तिथौमहायात्राकार्याक्षेत्रनिवासिभिः ॥ उपसर्गप्र शान्त्यर्थंनिर्वाणकमलाप्तये ॥ ९ ॥ वाराणस्यांविशालाक्षीपूजनीयाप्रयत्नतः ॥ धूपैर्दीपैःशुभैर्माल्यैरुपहारैर्मनोहरैः ॥ १० ॥ मणिमुक्ताद्यलङ्कारैर्विचित्रोल्लोचचामरैः ॥ शुभैरनुपभुक्तैश्चदुकूलैर्गन्धवासितैः ॥ ११ ॥ मोक्षलक्ष्मीसमृद्ध्यर्थंय त्रकुत्रनिवासिभिः ॥ अप्यल्पमपियद्दत्तंविशालाक्ष्यैनरोत्तमैः ॥ १२ ॥ तदानन्त्यायजायेतमुनेलोकद्वयेपिहि ॥ विशा लाक्षीमहापीठेदत्तंजप्तंहुतंस्तुतम् ॥ १३ ॥ मोक्षस्तस्यपरीपाकोनात्रकार्याविचारणा ॥ विशालाक्षीसमर्चातोरूपसम्प त्तियुक्पतिः ॥ १४ ॥ प्राप्यतेत्रकुमारीभिर्गुणशीलाद्यलंकृतः ॥ गुर्विणीभिःसुतनयोबन्ध्याभिर्गर्भसम्भवः ॥ १५ ॥ अ

से वासित नवीन वस्त्रोंसे भी पूजने योग्यहैं ॥ ११ ॥ व जहाँ कहींके निवासी नरोत्तमों ने भी मोक्षलक्ष्मी समृद्धिके अर्थ विशालाक्षी देवीकेलिये जो थोड़ा भी दिया ॥ १२ ॥ वह दोनों लोकोंमें भी आनन्त्यके लियेहोजावे है हे मुने ! जिससे विशालाक्षीके महास्थान में जो कुछ दान जप होम और स्तवन कियागया ॥ १३ ॥ उसका फल मोक्ष है इस में विचार न करना चाहिये और श्रीविशालाक्षी देवी के भलीभांति पूजने से सुन्दरता सम्पत्ति संयुत पति ॥ १४ ॥ जो कि गुण और सुशील या सदा-

चारोंसे भूषित है वह यहां कुमारियों से प्राप्त किया जाता है व गर्भिणीस्त्रियों को सुपुत्र बन्ध्याओं को गर्भका सम्भव॥ १५ ॥ और दुर्भगाओं को बडी सौभाग्य मिल-तीहै व विधवाओंका फिर जन्मांतरमें वैधव्य कहीं नहीं होताहै ॥ १६ ॥ स्त्री व मुक्तिचाहनेवाले पुरुषोंसे भी काशीमें सुनी देखी और पूजीहुई विशालाक्षी देवी अभि-लाष के देनेवाली है ॥ १७ ॥ व उससे अन्य जो ललितातीर्थ गंगाकेशव के समीपहै उसमें क्षेत्रकी रक्षा करनेवाली उत्तम ललिता देवी है ॥ १८ ॥ और वह सब सम्पत्तिकी समृद्धिके लिये पूजने योग्य है व ललिताके पूजकोंको विघ्न कभीनहीं होताहै ॥ १९ ॥ व स्त्री और पुरुषभी आश्विन बदी द्वितीया में ललिता देवीको सब

सौभाग्यवतीभिश्चसौभाग्यंमहदाप्यते॥ विधवाभिर्नवैधव्यंपुनर्जन्मान्तरेक्कचित ॥ १६ ॥ सीमन्तिनीभिःपुम्भिर्वापरं निर्वाणमिच्छुभिः ॥ श्रुतादृष्टार्चिताकाश्यांविशालाक्ष्यभिलाषदा॥ १७॥ ततोन्यल्ललितातीर्थंगङ्गाकेशवसंन्निधौ ॥ तत्रास्तिललितादेवीक्षेत्ररक्षाकरीपरा ॥ १८ ॥ साचपूज्याप्रयत्नेनसर्वसम्पत्समृद्धये ॥ ललितापूजकानाञ्चजातुविघ्नोन जायते ॥ १९ ॥ इषेकृष्णद्वितीयायांललिताम्परिपूज्यवै ॥ नारीवापुरुषोवापिलभतेवाञ्छितम्पदम् ॥ २० ॥ स्नात्वाच ललितातीर्थेललिताम्प्रणिपत्यवै ॥ लभेत्सर्वत्रलालित्यंयद्वातद्वाऽनुलप्यच ॥ २१ ॥ मुनेविश्वभुजागौरीविशालाक्षी पुरःस्थिता ॥ संहरन्तीमहाविघ्नंक्षेत्रभक्तिजुषांसदा ॥ २२ ॥ शारदंनवरात्रञ्चकार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ देव्याविश्वभुजा यावैसर्वकामसमृद्धये ॥ २३ ॥ योनविश्वभुजांदेवींवाराणस्यांनमेन्नरः ॥ कुतोमहोपसर्गेभ्यस्तस्यशान्तिर्दुरात्मनः ॥ २४ ॥ यैस्तुविश्वभुजादेवीवाराणस्यांस्तुतार्चिता॥ नहि तान्विघ्नसङ्घातोबाधतेसुकृतात्मनः॥ २५ ॥ अन्यास्तिकास्यां

ओर से पूजकर निश्चय से वाञ्छित पदपाता है॥ २० ॥ और ललितातीर्थ में स्नान कर व जोकुछ हो वह स्तुतिकर व ललिताके प्रणाम भी कर सर्वत्र सौभाग्य को पावे ॥ २१ ॥ हे मुने ! क्षेत्र भक्तिसेवी लोगों को बड़े विघ्नको सदा विदारती हुई विश्वभुजादेवी विशालाक्षी के आगे टिकी है ॥ २२ ॥ और शरदऋतु के नवरात्रमें विश्वभुजादेवीकी भी यात्रा सब कामोंकी समृद्धिके लिये बड़े यत्नसे करने योग्य है ॥२३॥ क्योंकि जो मनुष्य काशीमें विश्वभुजा देवीके प्रणाम न करे उस दुरात्मा की बड़े उपसर्गों से शान्ति कैसे होवे ॥ २४ ॥ और जिन्होंने काशी में विश्वभुजा देवी की स्तुति व पूजा किया उन पुण्यात्माओंको विघ्नसमूह नहीं बाधता है ॥२५॥

व काशी में ऋतुवाराह के समीप जो अन्य वाराही देवी है उसको भक्तिसे प्रणामकर मनुष्य विपत्तिसमुद्र में नहीं डूबता है ॥ २६ ॥ और काशी की रक्षाके अर्थ उठाये हुये त्रिशूल से वैरियोंके तर्जनेवाली व विपत्तिकी विनाशिनी शिवदूती भी वहांही देखने योग्य है ॥ २७ ॥ तथा गजराज रथपर टिकीहुई व सदासम्पत्ति कारिणी व वज्रहस्ता ऐंद्रीदेवी इन्द्रेश्वरसे दक्षिणभागमें पूजित है ॥ २८ ॥ व मयूरवाहनवाली कौमारीदेवी महाफल समृद्धिके लिये स्कन्देश्वरके समीप में बड़े यत्नसे देखने योग्य है ॥ २९ ॥ व महाधर्म की समृद्धि देनेहारी वृषभ सवारी वारी माहेश्वरी देवी महेश्वर से दक्षिण में मनुष्यों से पूजनीय है ॥ ३० ॥ और चमकते हुये

वाराहीक्रतुवाराहसन्निधौ ॥ ताम्प्रणम्यनरोभक्त्याविपदब्धौ न मज्जति ॥ २६ ॥ शिवदूतीतुतत्रैवद्रष्टव्याऽऽपद्विनाशिनी ॥ आनन्दवनरक्षार्थमुद्यच्छूलारितर्जनी ॥ २७ ॥ वज्रहस्तातथाचैन्द्रीगजराजरथास्थिता ॥ इन्द्रेशाद्दक्षिणेभागेऽर्चितासम्पत्करीसदा ॥ २८ ॥ स्कन्देश्वरसमीपेतुकौमारीबर्हियानगा ॥ प्रेक्षणीयाप्रयत्नेनमहाफलसमृद्धये ॥ २९ ॥ महेश्वराद्दक्षिणतोदेवीमाहेश्वरीनरैः ॥ वृषयानवतीपूज्यामहावृषसमृद्धिदा ॥ ३० ॥ निर्वाणनरसिंहस्यसमीपेमोक्षकांक्षिभिः ॥ नारसिंहीसमर्च्याचसमुद्यच्चक्ररम्यदोः ॥ ३१ ॥ हंसयानवतीब्राह्मीब्रह्मेशात्पश्चिमेस्थिता ॥ गलत्कमण्डलुजलचुलकाताडिताहिता ॥ ३२ ॥ ब्रह्मविद्याप्रबोधार्थंकाश्याम्पूज्यादिनेदिने ॥ ब्राह्मणैर्यतिभिर्नित्यंनिजतत्त्वावबोधिभिः ॥ ३३ ॥ शार्ङ्गचापविनिर्मुक्तमहेषुभिरितस्ततः ॥ उत्सादयन्तीम्प्रत्यूहान्काश्यांनारायणींश्रयेत् ॥ ३४ ॥ प्रतीच्याङ्गोपिगोविन्दाद्भ्राम्यच्चक्रोच्चतर्जनीम् ॥ नारायणींयःप्रणमेत्तस्यकाश्यांमहोदयः ॥ ३५ ॥ ततोगौरींविरूपाक्षीं

चक्रसे रमणीक बाहुवाली नारसिंही देवी मोक्षचाहियोंसे निर्वाण नरसिंह के समीप पूजने योग्यहै ॥ ३१ ॥ व झिरतेहुये कमण्डलुजल के चुलुकसे शत्रुसंहारिणी हंस वाहनवाली ब्राह्मीदेवी ब्रह्मेश्वर से पश्चिम में टिकी है ॥ ३२ ॥ जोकिकाशी में ब्रह्म विद्याके बड़े बोधके अर्थ ब्रह्मज्ञानी संन्यासी ब्राह्मणोंरो दिनोदिन नित्यही पूजनीय है ॥ ३३ ॥ शार्ङ्गधन्वा से छूटेहुये बड़े वाणों से ऐसी वैसी विघ्नोंको उखाडती हुई नारायणी को काशी में सेवन करे ॥ ३४ ॥ जो काशी में गोपि गोविन्दसे पश्चिममें भ्रमाये हुये चक्रसे ऊंची तर्जनी वाली नारायणी के प्रणाम करे उसका महोदयहोवे ॥ ३५ ॥ उसके अनन्तर देवयानीसे उत्तरदिशामें विरूपाक्षी

देवीकी पूजाकर भक्तिसंयुत मनुष्य वांछित लक्ष्मीको पाताहै ॥ ३६ ॥ और उत्पातों से उपजेहुये दोषको तर्जतीहुई शैलेश्वर के समीपमें प्राप्त शैलेश्वरी देवी भलीभांति पूजने योग्यहै ॥ ३७ ॥ व मनुष्यों के विचित्र फलदायक चित्रकूपमें नर स्नानकर और चित्रगुप्तेश्वरके दर्शनकर व चित्रघंटाकी बड़ी पूजाकर ॥ ३८ ॥ अथवा जो नर बहुत पापों से संयुत भी व धर्ममार्ग को त्यागेहुये भी चित्रघंटाका पूजक है वह चित्रगुप्तके लिखने योग्य न होवे ॥ ३९ ॥ और जो स्त्री व पुरुषभी काशीमें चित्रघंटाको न पूजे उसको क्षण क्षणमें हजारों विघ्नसेवते हैं ॥ ४० ॥ चैत्रसुदी तीजमें बड़े यत्नसे यात्रा करना चाहिये तथा रात्रिमें जागरण और महा

देवयान्याउदग्दिशि ॥ पूजयित्वानरोभक्त्यावाञ्छितांलभतेश्रियम् ॥ ३६ ॥ शैलेश्वरीसमभ्यर्च्याशैलेश्वरसमीपगा ॥ तर्जयन्तीचतर्जन्यासंसर्गमुपसर्गजम् ॥ ३७ ॥ चित्रकूपेनरःस्नात्वाविचित्रफलदेन्नृणाम्॥ चित्रगुप्तेश्वरंवीक्ष्यचित्रघण्टाम्प्रपूज्यच ॥ ३८ ॥ बहुपातकयुक्तोपित्यक्तधर्मपथोपिवा ॥ नचित्रगुप्तलेख्यःस्याच्चित्रघण्टार्चकोनरः ॥ ३९ ॥ योषिद्वापुरुषोवापिचित्रघण्टांनयोर्चयेत् ॥ काश्यांविघ्नसहस्राणितंसेवन्तेपदेपदे ॥ ४० ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायांकार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ महामहोत्सवःकार्योनिशिजागरणन्तथा ॥ ४१ ॥ महापूजोपकरणैश्चित्रघण्टांसमर्च्यच ॥ शृणोतिनान्तकस्येहघण्टांमहिषकण्ठगाम् ॥ ४२ ॥ चित्राङ्गदेश्वरप्राच्यांचित्रग्रीवाम्प्रणम्यच ॥ नजातुजन्तुर्वीक्षेतविचित्रांयमयातनाम् ॥ ४३ ॥ भद्रकालींनरोदृष्ट्वानाभद्रम्पश्यतिक्वचित् ॥ भद्रनागस्यपुरतोभद्रवाप्यांकृतोदकः ॥ ४४ ॥ हरसिद्धिंप्रयत्नेनपूजयित्वानरोत्तमः ॥ महासिद्धिमवाप्नोतिप्राच्यांसिद्धिविनायकात् ॥ ४५ ॥ विधिंसम्पूज्यविधिवद्विविधैरुपहा

महोत्सव करना चाहिये ॥ ४१ ॥ और महापूजाकी सामग्रियों से यहां चित्रघंटाकी भलीभांति पूजाकर यमराजके महिषकी कंठगामिनी घंटाका शब्द नहीं सुनताहै ॥ ४२ ॥ व चित्रांगदेश्वर के पूर्वमें चित्रग्रीवाको प्रणामकर मनुष्यादि जंतु विचित्र यमयातनाको न देखे ॥ ४३ ॥ भद्रनाग के आगे भद्रवापी में जल क्रिया कियेहुआ मनुष्य भद्रकाली को देखकर अमंगलको कहीं नहीं देखताहै ॥ ४४ ॥ और सिद्धि विनायक से पूर्वमें बड़े यत्नसे हरसिद्धिकी पूजाकर नरोत्तम महासिद्धि को प्राप्तहोता

है विधिपूर्वक अनेक भांतिके उपहारोंसे विधीश्वरके समीपमें प्राप्त विधिकी भलीभांति पूजाकर बहुतप्रकार की सिद्धि को पाताहै ॥ ४५ । ४६ ॥ व प्रयागतीर्थ में अच्छे प्रकार नहायेहुआ मनुष्य निगडभंजनी देवीका पूजनकर लोहकी जंजीरोंसे कभी नहीं संपीड़ित होताहै ॥ ४७ ॥ बंदीछुड़ाने की कामना से मंगलवारमें एकबार भोजनकर यहां भक्ति से निगडभंजनी देवी सदा पूजनीय है ॥ ४८ ॥ क्योंकि पूजी हुई वह बंदीदेवी संसार बंधनके विच्छेद कोभी देतीहै और उसके संपूजनसे शृंखला (जंजीर) आदिकोंकी क्या गणना है ॥ ४९ ॥ व श्रद्धासे बंदीके पदसेवी पुरुषोंका जो प्याराजन दूरवासीभी है वहभी शीघ्रही भलीभांति समीपमें आवेगा इसमें

रकैः ॥ विविधांलभतेसिद्धिंविधीश्वरसमीपगाम् ॥ ४६ ॥ प्रयागतीर्थेसुस्नातोजनोनिगडभञ्जनीम् ॥ सभाजयित्वानो जातुनिगडैःपरिबाध्यते ॥४७॥ भौमवारेसदापूज्यादेवीनिगडभञ्जनी ॥ कृत्वैकभुक्तंभक्त्यात्रबन्दीमोक्षणकाम्यया ॥ ४८ ॥ संसारबन्धविच्छित्तिमपियच्छतिसार्चिता ॥ गणनाशृङ्खलादीनांकाचतस्याःसमर्चनात् ॥ ४९ ॥ दूरस्थोपिहि योबन्धुःसोपिक्षिप्रंसमेष्यति ॥ बन्दीपदजुषांपुंसांश्रद्धयानात्रसंशयः ॥ ५० ॥ किञ्चिन्नियममालम्ब्ययदिसापरिषेविता ॥ कामान्पूरयतिक्षिप्रंकाशीसन्देहहारिणी ॥ ५१ ॥ घनटङ्ककरादेवीभक्तबन्धनभेदिनी ॥ कङ्कन्नपूरयेत्कामंतीर्थराजसमीपगा ॥ ५२ ॥ देवीपशुपतेःपश्चादमृतेश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वाचैवामृतेकूपेनमनीयाप्रयत्नतः ॥५३ ॥ पूजयित्वानरोभक्त्या देवताममृतेश्वरीम् ॥ अमृतत्वंभजेदेवतत्पादाम्बुजसेवनात् ॥ ५४॥ धारयन्तींमहामायाममृतस्यकमण्डलुम् ॥ दक्षिणेऽभयदांवामेध्यात्वाकोनाऽमृतत्त्वभाक् ॥५५॥ सिद्धलक्ष्मीजगद्धात्रीप्रतीच्याममृतेश्वरात् ॥प्रपिता

संशय नहीं है ॥ ५० ॥ काशीमें मरने से मुक्तिहै या नहीं है इत्यादि संदेह के हरनेहारी वह देवी जो कुछेक नियमका आलम्बनकर सब ओरसे पूजीगई या सेवित हुई तो शीघ्रही कामोंको पूर्णकरतीहै ॥ ५१ ॥ प्रयागके निकटमें प्राप्त व मुद्गर और टांकी हाथवाली भक्तबंधनविदारिणी बंदीदेवी किस किस कामको न पूर्णकरे॥५२॥ और अमृतेश्वरसे पीछे अमृत कूपमें स्नानकर बड़े यत्नसे अमृतेश्वरी देवी नमस्कार करने के योग्यहै ॥ ५३ ॥ क्योंकि भक्तिसे अमृतेश्वरी देवताको पूजकर मनुष्य उसके चरणारविंदोंकी सेवासे मोक्षको भी सेवैहै ॥ ५४ ॥ दक्षिण हाथमें अमृतसेभरा कमंडलु और बायेंमें अभय देनेवाली मुद्राको धारतीहुई महामायाका ध्यानकर कौ-

न जन मोक्षसेवी नहीं होता है ॥ ५५ ॥ अमृतेश्वरसे पश्चिम प्रपितामह लिंगके आगे जगत्की धात्री सिद्धि लक्ष्मी पूजित होकर सिद्धि देनेवाली है ॥ ५६ ॥ और कमलाकार बनेहुये लक्ष्मी विलासनामक सिद्ध लक्ष्मीके मंदिर को देखकर कौनजन लक्ष्मीको न पावे ॥ ५७ ॥ उसके बाद प्रपितामह लिंग से पश्चिम नल कूबर लिंगके अग्रभाग में जगत्की माता कुब्जा पूजनीयहै ॥ ५८ ॥ और जिससे पूजी हुई कुब्जादेवी सम्पूर्ण उत्पातोंको हरलेतीहै उससे काशीमें बड़े यत्नसे शुभार्थियों करके कुब्जा पूजने योग्य है ॥ ५९ ॥ व नलकूबर लिंगसे पश्चिममें कुब्जाम्बरेश्वर लिंगहै वहां अभीष्ट देनेवाली त्रिलोक सुंदरी गौरी पूजनीयहै ॥ ६० ॥ क्योंकि त्रि-

महलिङ्गस्यपुरतःसिद्धिदार्चिता ॥५६॥प्रासादंसिद्धलक्ष्म्याश्च विलोक्यकमलाकृतिम् ॥ लक्ष्मीविलाससञ्ज्ञंचकोनलक्ष्मींसमाप्नुयात् ॥ ५७ ॥ ततःकुब्जाजगन्मातानलकूबरलिङ्गतः ॥ पूजनीयापुरोभागेप्रपितामहपश्चिमे ॥ ५८ ॥ उपसर्गानशेषांश्चकुब्जाहरतिपूजिता ॥ तस्मात्कुब्जाप्रयत्नेनपूज्याकाश्यांशुभार्थिभिः ॥५९॥ कुब्जाम्बरेश्वरंलिङ्गंनलकूबरपश्चिमे ॥ त्रिलोकसुन्दरीगौरीतत्रार्च्याभीष्टदायिनी ॥ ६० ॥ त्रिलोकसुन्दरीसिद्धिंदद्यात्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥ वैधव्यंनाप्यतेक्वापितस्यादेव्याःसमर्चनात् ॥ ६१ ॥ दीप्तानाममहाशक्तिःसाम्बादित्यसमीपगा ॥ देदीप्यमानलक्ष्मीकाजायन्तेतत्समर्चनात् ॥ ६२ ॥ श्रीकण्ठसन्निधौदेवीमहालक्ष्मीर्जगज्जनिः ॥ स्नात्वाश्रीकुण्डतीर्थेतुसमर्च्याजगदम्बिका ॥ ६३ ॥ पितॄन्सन्तर्प्यविधिवत्तीर्थेश्रीकुण्डसञ्ज्ञिते ॥ दत्त्वादानानिविधिवन्नलक्ष्म्यापरिमुच्यते ॥ ६४ ॥ लक्ष्मीक्षेत्रंमहापीठंसाधकस्यैवसिद्धिदम् ॥ साधकस्तत्रमन्त्रांश्चनरःसिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥ सन्तिपीठान्यनेकानिकाश्यांसि

लोकसुंदरी देवी त्रैलोक्य में सुंदरी सिद्धिको देतेहै और उस देवीकेभलीभांति पूजनसे विधवापन कहीं नही मिलताहै ॥ ६१ ॥ व साम्बादित्यके समीपगत जो दीप्तानाम महाशक्ति है उसकी भलीभांति पूजासे जन जगमगाती ज्योतिवाले होजाते हैं ॥ ६२ ॥ व श्रीकंठके समीप श्रीकुंडतीर्थ में स्नानकर जगत्की उपजानेवाली जगदंबा महा लक्ष्मी देवी भलीभांति पूजने योग्यहै ॥ ६३ ॥ व श्रीकुंड तीर्थमें पितरोंका विधिवत् भलीभांति तर्पणकर और विधिके समान दानदेकर लक्ष्मीसे नहीं छूटताहै ॥ ६४ ॥ जोकि लक्ष्मीक्षेत्र महापीठ साधनेवालेका महासिद्धिदायक है वहां साधक मनुष्य मंत्रों और सिद्धि को पावे याने प्राप्तहोवे ॥ ६५ ॥ व काशीमें सिद्धिकर्त्ता अनेक क्षेत्र

हैं परंतु महालक्ष्मी पीठके समान लक्ष्मी करनेवाला अन्य नहीं है ॥ ६६ ॥ यहां विधिवत् भलीभांति पूजीहुई लक्ष्मीजी महालक्ष्मीकी अष्टमीको प्राप्तहोकर वहां यात्राकरनेवाले मनुष्योंके घरको नहीं छोड़ती हैं याने उनके घरमें सदैव संपत्ति बनी रहतीहै ॥ ६७ ॥ और महालक्ष्मीसे उत्तरमें कुठार धारनेहारी हयकंठी देवी काशी के विघ्नरूप बड़े वृक्षोंको प्रतिदिन छेदनकरती है ॥ ६८ ॥ व महालक्ष्मीसे दक्षिणमें टिकीहुई पाशहस्ता कौर्मीशक्ति इसक्षेत्रके विघ्नसमूहको प्रतिक्षण बांधलेती है ॥६९॥ और मनुष्योंसे पूजी व प्रशंसीहुई वह क्षेत्रकी सिद्धिको बहुतही देतीहै और वायव्य कोणमें क्षेत्रकी रक्षाकरनेवाली व शक्तियोंमें श्रेष्ठ शिखीचंडीहै ॥ ७० ॥ जोकि विघ्नस-

द्धिकराण्यपि ॥ महालक्ष्मीपीठसमंनान्यल्लक्ष्मीकरंपरम् ॥ ६६ ॥ महालक्ष्म्यष्टमींप्राप्यतत्रयात्राकृतांनृणाम् ॥ सम्पूजितेहविधिवत्पद्मासद्मनमुञ्चति ॥ ६७ ॥ उत्तरेतुमहालक्ष्म्याहयकण्ठीकुठारधृक् ॥ काशीविघ्नमहावृक्षांश्छिनत्ति प्रतिवासरम् ॥ ६८ ॥ कौर्मीशक्तिर्महालक्ष्मीदक्षिणेपाशपाणिका॥बध्नातिविघ्नसंघातंक्षेत्रस्यास्यप्रतिक्षणम्॥६९॥ सापूजितास्तुतामर्त्यैःक्षेत्रसिद्धिंप्रयच्छति॥ वायव्यांचशिखीचण्डी क्षेत्ररक्षाकरीपरा ॥ ७० ॥ खादन्तीविघ्नसंघातं शिखीशब्दंकरोतिच ॥ तस्याःसंदर्शनात्पुंसांनश्यन्तिव्याधयोखिलाः ॥ ७१ ॥ भीमचण्ड्युत्तरद्वारंसदारक्षेदतन्द्रिता ॥ भीमेश्वरस्यपुरतःपाशमुद्गरधारिणीम् ॥ ७२ ॥ भीमचण्डींनरोदृष्ट्वा भीमकुण्डेकृतोदकः ॥ भीमाकृतीन्नवैपश्येद्याम्यान्दूतान्कचित्कृती ॥ ७३ ॥ छागवक्त्रेश्वरीदेवीदक्षिणेवृषभध्वजात् ॥ अहर्निशम्भक्षयतिविघ्नौघतरुपल्लवान् ॥ ७४ ॥ तस्यादेव्याःप्रसादेनकाशीवासःप्रलभ्यते ॥ अतश्छागेश्वरींदेवीं महाष्टम्यांप्रपूजयेत् ॥ ७५ ॥ तालजङ्घे

मूहको खातीहुई मयूरका सा शब्दकरती है उसका भलीभांति दर्शन करनेसे मनुष्योंके सम्पूर्ण रोगनष्ट होजातेहैं ॥ ७१ ॥ व आलस्यसे रहित भीमचंडीदेवी सदा उत्तर द्वारकी रक्षाकरे है भीमेश्वरके आगे पाशमुद्गरधारिणी ॥ ७२ ॥ भीमचंडीको देखकर भीमकुंडमें स्नानादि जलक्रिया कियेहुआ पुण्यात्मा नर यमराजके भयंकर देहवाले दूतोंको कहीं भी नहीं देखे॥७३॥ व वृषभध्वजसे दक्षिणमें छागवक्त्रेश्वरीदेवी दिनोरात विघ्नसमूह वृक्षोंके पल्लवोंको खा डालती है ॥ ७४ ॥ जिससे उस देवीकी प्रसन्नतासे

काशी का वास बहुत मिलता है इस लिये आश्विनसुदी अष्टमी में छागेश्वरी देवीकी बडी पूजाकरे ॥ ७५ ॥ व ताडके वृक्षका हथियार किये हुई तालजंघेश्वरी देवी काशी के मध्यगत विघ्नसमूहों को उखाड़कर बाहर बहादेती है ॥ ७६ ॥ संगमेश्वर लिङ्गके दक्षिणमें विकटमुखी तालजंघेश्वरी के नमस्कारकर विघ्नोंसे तिरस्कृत नहीं होताहै ॥ ७७ ॥ व उद्दालकेश्वर लिङ्ग से दक्षिण में उद्दालक नामक तीर्थ में यमदंष्ट्रानाम्नी देवी विघ्नों के समूहको चबाती है ॥ ७८ ॥ व पापों का समूह करकेभी जिन्होंने उद्दालक नाभक तीर्थ में यमदंष्ट्राको प्रणाम किया वे यहां यमराज से नहीं डरते हैं ॥ ७९ ॥ और दारुकेश्वरके समीप दारुकेश्वर तीर्थमें पातालसे तालु

श्वरीदेवी तालवृक्षकृतायुधा॥ उत्सादयतिविघ्नौघानानन्दवनमध्यगान् ॥ ७६ ॥ सङ्गमेश्वरलिङ्गस्यदक्षिणेविकटाननाम् ॥ तालजङ्घेश्वरींनत्वानविघ्नैरभिभूयते ॥७७॥ उद्दालकेश्वराल्लिङ्गात्तीर्थउद्दालकाभिधे ॥ याम्यांचयमदंष्ट्राख्याचर्वयेद्विघ्नसंहतिम् ॥७८॥ प्रणतायमदंष्ट्रायैस्तीर्थेचोद्दालकाभिधे ॥ कृत्वापिपापसंघातंनयमाद्बिभ्यतीहते ॥ ७९ ॥ दारुकेश्वरतीर्थेतुदारुकेशसमीपतः ॥ पातालतालुवदनामाकाशोष्ठींधराधराम् ॥८०॥ कपालकर्त्रीहस्तांचब्रह्माण्डकवलप्रियाम्॥शुष्कोदरींस्नायुबद्धांचर्ममुण्डेतिविश्रुताम् ॥८१॥ क्षेत्रस्यपूर्वदिग्भागंरक्षन्तींविघ्नसंघतः॥लसत्सहस्रदोर्दण्डांज्वलत्केकरवीक्षणाम् ॥ ८२ ॥ पारावारप्रसृमरहस्तन्यस्तारिमोदकाम् ॥ द्वीपिकृत्तिपरीधानांकटुकाट्टाट्टहासिनीम् ॥ ८३ ॥ मृणालनालवत्तीव्रंचर्वन्तीमस्थिपापिनः ॥ शूलाग्रप्रोतदुर्वृत्तक्षेत्रद्रोहिकलेवराम् ॥ ८४ ॥ कपालमालाभरणां

मुखवाली, आकाशतक ऊंचे ओठवाली, पृथिवीसे नीचे ओठवाली ॥ ८० ॥ व कपाल और छूरी को हाथमें लिये हुई, ब्रह्मांडको कवलकरने को प्यार करनेहारी व सूखे उदरवारी और बसासे बँधी हुई जोकि चर्ममुंडा इस नाम से प्रसिद्ध है ॥८१॥ व क्षेत्रके पूर्वदिशाके भागको विघ्न समूहसे रक्षाकरती हुई सोहतेहुये हजार भुजदंडवाली व जलतीसी तिरछी आंखों वाली है ॥ ८२ ॥ व समुद्रतक पसरनेहारे हाथोंमें शत्रुओ के मस्तकरूप मोदकोको लिये हुई, गजचर्म वस्त्रधारिणी, कटुक अट्टाट्टहासकारिणी है ॥ ८३ ॥ व कमलदंडीके नालके समान श्वेत तीव्र शत्रुओंकीहड्डीको चबातीहुई व शूलके अग्रभाग से छेदे हुये दुराचारी क्षेत्र द्रोहकारी दुष्टोंकी देह-

वाली ॥ ८४ ॥ व कपालकी मालाओं से भूषित और बड़ी भयंकर रूपिणी है उस चर्ममुण्डाके नमस्कारकर मनुष्य क्षेत्रके विघ्नोंसे नहीं पीडित होताहै ॥८५ ॥ जैसी ही यह चर्ममुण्डा है वैसीही महारुण्डा भी है किंतु इतनाही इसका भेद है कि यह महारुण्डा मुण्डोंसेहीन रुण्डोंकी मालाओके भूषणवालीहै ॥ ८६ ॥ व हाथ पसार ने से परस्पर करतालियों से हँसती हुई बड़ी बलवती ये दोनों देवियां क्षेत्र रक्षाको बहुतही करतीहैं ॥ ८७ ॥ भक्तोंकी विघ्नहारिणी,प्रचण्डमुखी,महारुण्डादेवी लोलार्क से उत्तर हयग्रीवेश्वर तीर्थ में सदा टिकती है ॥ ८८ ॥ जोकि चर्ममुण्डा और महामुण्डा ये दोनों देवतायें कहीगई हैं उनके बीचमें मुण्डरूपिणी,चामुण्डादेवी टिकी

महाभीषणरूपिणीम् ॥ चर्ममुण्डांनरोनत्वाक्षेत्रविघ्नैर्नबाध्यते ॥ ८५ ॥ यथैवचर्ममुण्डैषामहारुण्डापिताद्दृशी ॥ एतावानेवभेदोस्यारुण्डस्रग्भूषणात्वियम् ॥ ८६ ॥ क्षेत्ररक्षांप्रकुरुतउभेदेव्यौमहाबले ॥ हसन्त्यौकरतालीभिरन्योन्यंदोःप्रसारणात् ॥ ८७ ॥ हयग्रीवेश्वरेतीर्थे लोलार्कादुत्तरेसदा ॥ महारुण्डाप्रचण्डास्या तिष्ठतेभक्तविघ्नहृत् ॥ ८८ ॥ चर्ममुण्डामहारुण्डा कथितेयेतुदेवते ॥ तयोरन्तरतस्तिष्ठेच्चामुण्डामुण्डरूपिणी ॥ ८९ ॥ एतास्तिस्रःप्रयत्नेनपूज्याःक्षेत्रनिवासिभिः ॥ धनधान्यप्रदाश्चैताः पुत्रपौत्रप्रदाइमाः ॥९० ॥ उपसर्गानमून्घ्नन्तिदद्युर्नैःश्रेयसींश्रियम् ॥ स्मृतादृष्टानताःस्पृष्टाःपूजिताःश्रद्धयानरैः ॥ ९१ ॥ महारुण्डाप्रतीच्यांच देवीस्वप्नेश्वरीशुभा ॥ भविष्यंकथयेत्स्वप्ने भक्तस्याग्रेशुभाशुभम् ॥ ९२ ॥ तत्रस्वप्नेश्वरंलिङ्गं देवींस्वप्नेश्वरींतथा ॥ स्नात्वासिसङ्गमेपुण्ये यस्मिन्कस्मिंस्तिथावपि ॥ ९३ ॥ उपोषणपरोधीमान्नारीवापुरुषोपिवा ॥ सम्पूज्यस्थण्डिलशयःस्वप्नेभाविविलोकयेत् ॥ ९४ ॥ अद्यापिप्रत्ययस्तत्रकार्य

है ॥ ८९ ॥ ये तीनों देवियां क्षेत्र निवासियोसे बहुत यत्न पूर्वक पूजने योग्यहैं क्योंकि ये धन धान्य प्रदायिनी हैं और ये पुत्र व पौत्रके देनेवाली हैं ॥ ९० ॥ व श्रद्धा समेत मनुष्यों से सुमिरी और देखी प्रणामकी हुई तथा स्पर्शकर पूजी हुई ये देवियां उत्पातोंको नाशतीहैं व मोक्ष संबंधिनी संपत्तिको देतें हैं ॥ ९१ ॥ और महारुंडा से पश्चिम दिशामें टिकीहुई मंगलमयी स्वप्नेश्वरीदेवी भक्तके आगे भविष्य शुभ और अशुभ फलको कहैहै ॥ ९२ ॥ वहां जिसी किसी तिथिमें भी मनोज्ञ या पुण्यदायक असिसंगम में स्नानकर श्वप्नेश्वरलिङ्ग तथा स्वप्नेश्वरीदेवीको ॥ ९३ ॥ भलीभांति पूजकर उपवासमें तत्पर बुद्धिमान् व भूमिके चौतरेमें सोनेवाला पुरुष या

स्त्री स्वप्नमें होनीको विशेषतासेदेखे ॥ ९४ ॥ आजभी वहां विशेषजाननेवाले जन से यह विनिश्चय करने योग्यहै कि स्वप्नेश्वरी देवी रात्रिके समय स्वप्नमें भूत भविष्य और वर्त्तमान सब कुछ कहैहै ॥ ९५ ॥ अष्टमी, चतुर्दशी और नवमी की रात व दिनमें काशीके बीच वह स्वप्नेश्वरी ज्ञानार्थी मनुष्यो से बहुत यत्न पूर्वक भलीभांति पूजने योग्यहै ॥ ९६ ॥ और जोकि दुर्गादेवी स्वप्नेश्वरी से पश्चिममें टिकी है वह क्षेत्रके दक्षिण भागकी सदैव सब ओरसे रक्षाकरतीहै ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदेवताधिष्ठानंनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

एषविजानता ॥ भूतंभाविभवत्सर्वं वदेत्स्वप्नेश्वरीनिशि ॥ ९५ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां नवम्यांनिशिवादिवा ॥ प्रयत्नतःसमर्च्यासाकाश्यांज्ञानार्थिभिर्नरैः ॥ ९६ ॥ स्वप्नेश्वर्याश्चवारुण्यांदुर्गादेवीव्यवस्थिता ॥ क्षेत्रस्यदक्षिणंभागं सा सदैवाभिरक्षति ॥ ९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदेवताधिष्ठानंनामसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ❀

अगस्त्यउवाच ॥ कथंदुर्गेतिवैनामदेव्याजातमुमासुत ॥ कथंचकाश्यांसासेव्यासमाचक्ष्वेतिमामिह ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कथयामिमहाबुद्धे यथाकलशसम्भव ॥ दुर्गानामाभवद्देव्या यथासेव्याचसाधकैः ॥ २ ॥ दुर्गोनाममहादैत्योरुरुदैत्याङ्गजोभवत् ॥ सश्चतप्त्वातपस्तीव्रं पुम्भ्योजेयत्वमाप्तवान् ॥ ३ ॥ ततस्तेनाखिलालोका भूर्भुवःस्वर्मुखाअपि ॥ स्ववशात्कृताविनिर्जित्यरणेस्वभुजसारतः ॥ ४ ॥ स्वयमिन्द्रःस्वयंवायुःस्वयंचन्द्रःस्वयंयमः ॥ स्वयमग्निःस्वयंपाशी

दो० । इकहत्तर अध्याय में दुर्गानामनिरुक्ति । दुर्गअसुर बलकी बहुत वैसेहै इतउक्ति ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे श्रीपार्वतीजीके पुत्र ! देवीजीका दुर्गा ऐसा नाम निश्चयकर कैसेहुआ और वह काशीमें किसप्रकार भलीभांति सेवने योग्यहै यहां आप मुझसे इसको वर्णनकरो ॥१॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महाबुद्धे, अगस्त्यजी ! जैसे देवीका दुर्गानामहुआ और जैसे वह साधक जनोंसे सेवाकरने योग्यहै वैसेही मैं कहताहूं।२॥ कि रुरुदैत्यकापुत्र दुर्गनामक महादैत्यहुआ जोकि तीव्रतपस्याकर पुरुषों से न जीतनेयोग्य भावको प्राप्तभया ॥३॥ तब उसने अपने बाहुबलसे भूर्भुवःस्वर्गादि सम्पूर्णलोकोंको भी संग्राममें विशेषतासे निश्शेष जीतकर अपने अधीनकरलिया ॥४॥

व वह बलवान् आपही इंद्र वायु आपही चंद्रमा आपही यम आपही अग्नि आपही वरुण और आपही कुबेर होगया ॥ ५ ॥ उसने ईशान, रुद्र, सूर्य्य और वसुओंके अधिकारों या लोकोको लेलिया व उसके डरसे बड़े तपस्वियों ने तपस्याओंको बहुतही छोड़दिया ॥ ६ ॥ व उसके डरसे पीड़ित ब्राह्मणों ने वेदोंका अध्ययन (पठन) न किया व अत्यन्त दुःसह उसके सुभटोंने यज्ञस्थानोंको निश्शेष विध्वंसकरदिया ॥७॥ व पाखंडमार्गका आश्रय कियेहुये उन दुष्टोंसे बहुतसी पतिव्रतास्त्रियां विध्वस्तहुई याने पातिव्रत्य धर्मसे हीनकी गई व हठसे परधनोंको बलात्कार से हरकर दुर्गम्य ॥ ८ ॥ दुराचारी और क्रूरकर्मकारी दासोंवाले वे भोजनकरतेथे व

धनदोभूत्स्वयंबली ॥ ५ ॥ स्वयमीशानरुद्रार्कवसूनांपदमाददे ॥ तत्साध्वसाद्विमुक्तानितपांस्यतितपस्विभिः ॥ ६ ॥ न वेदाध्ययनंचक्रुर्ब्राह्मणास्तद्भयार्दिताः ॥ यज्ञवाटाविनिर्ध्वस्तास्तद्भटैरतिदुःसहैः ॥ ७ ॥ विध्वस्ताबहुशःसाध्व्यस्तैर मार्गकृतास्पदैः ॥ प्रसभञ्चपरस्वानिअपहृत्यदुरासदाः ॥८॥ अभोक्षिषुर्दुराचाराःक्रूरकर्मपरिग्रहाः ॥ नद्योविमार्गगाआसञ्ज्वलन्ति न तथाग्नयः ॥ ९ ॥ ज्योतींषि न प्रदीप्यन्तितद्भयाकुलितान्यहो ॥ दिग्वधूवसनान्यासन्विच्छायानिसमंततः ॥ १० ॥ धर्मक्रियाविलुप्ताश्चप्रवृत्ताःसुकृतेतराः ॥ तएवंजलदीभूयववृषुर्निजलीलया ॥ ११ ॥ सस्यानितद्भयात्सूतेत्वनुप्तापिवसुन्धरा ॥ सदैवफलिनोजातास्तरवोप्यवकेशिनः ॥ १२ ॥ बन्दीकृताःसुरर्षीणांपत्न्यस्तेनातिदर्पिणा ॥ दिवौकसःकृतास्तेनसमस्ताःकाननौकसः ॥ १३ ॥ मर्त्याअमर्त्यान्स्वगृहंप्राप्तानपिभयार्दिताः ॥ अपिभ्रूक्षेपमात्रेण

नदियां विमार्गगामिनी (मार्ग छोड़कर अन्यत्र बहनेवाली) होगई तथा अग्नियां नहीं प्रज्वलित होतीहैं ॥ ९ ॥ आश्चर्यहै कि उनसुभटोंके या उस दुर्गदैत्यके डरसे व्याकुल नक्षत्र नहीं प्रकाशतेहैं व दिशारूप स्त्रियोंके वस्त्र सबओरसे शोभाहीन होगये ॥१०॥ व धर्मक्रियायें विलुप्तहुई और अधर्मी अधमलोग बहुतही वर्तमानहुये व वेही सुभट अपनी मायासे मेघहोकर बरसतेथे ॥ ११ ॥ और विनाबोईहुई भी भूमि उस दैत्यके डरसे सस्योंको उत्पन्नकरती है व विनाफलकेभी वृक्ष सदैव फलवाले होगये ॥१२॥ व उस अत्यन्त अहंकारीने देव और ऋषियोकी स्त्रियोंको बंदकिया याने घरमें डाललिया व उसने सब स्वर्गवासी देवोंको वनवासी बनादिया ॥१३॥ और

उसके डरसे पीड़ित मनुष्य अपने घरमें आयेहुये भी विपत्तिसेवी देवोंको संभाषणमात्रसेभी नहीं पूजतेहैं ॥ १४ ॥ श्री कार्त्तिकेयजी बोले कि महत्त्वके लिये कुलीनता नहीं और सदाचार भी नहीं प्रकल्पित होताहै किंतु एक अपना स्थान या ऐश्वर्य्यही श्रेष्ठहै याने महत्त्वका कारणहै और पदसे भ्रष्टहोना लघुताका हेतुहै॥१५॥ इससे विपत्ति मेंभी वे लोग धन्यहैं जोकि दीनता से प्रेरितहुये भी मलिन मनवालेजनोंके आंगनको कहीं नहीं लहतेहैं याने उसमें नहीं जातेहैं ॥ १६ ॥ क्योंकि लोक में लघुतासे रहित मरनाभी श्रेष्ठहै और लघुता सहित अमरहोनाभी कल्याण का कारण नहीं है ॥ १७ ॥ जिनका चित्तसमुद्र विपत्तिमें भी गंभीरताको सब ओरसे

नार्चयन्तिविपज्जुषः ॥ १४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ नकौलीन्यंनसद्वृत्तंमहत्त्वायप्रकल्पते ॥ एकमेवपदंश्रेयःपदभ्रंशोहि लाघवम् ॥ १५ ॥ विपद्यपिहितेधन्यानयेदैन्यप्रणोदिताः ॥धनैर्मलिनचित्तानामालभन्तेङ्गणंक्वचित् ॥ १६ ॥ पञ्चत्व मेवहिवरंलोकेलाघववर्ज्जितम् ॥ नामरत्वमपिश्रेयोलाघवेनसमन्वितम् ॥ १७॥ तएवलोकेजीवन्तिपुण्यभाजस्तएव वै ॥ विपद्यपिनगाम्भीर्य्यंयच्चेतोऽब्धिःपरित्यजेत् ॥ १८ ॥ कदाचित्सम्पदुदयःकदाचिद्विपदुद्गमः ॥ दैवाद्द्वयमपिप्राप्यधी रोधैर्य्यं न हापयेत् ॥ १९ ॥ उदयानुदयौप्राज्ञैर्दृष्टौयौपुष्पवन्तयोः ॥ सदैकरूपताऽत्याज्याहर्षाहर्षौततोऽध्रुवौ ॥ २० ॥ यस्त्वापदंसमासाद्यदैन्यग्रस्तोविपद्यते ॥ तस्यलोकद्वयंनष्टंतस्माद्दैन्यंविवर्जयेत् ॥ २१ ॥ आपद्यपिहियेधीरा इहलो केपरत्रच ॥ नतान्पुनःस्पृशेदापत्तद्धैर्येणावधीरिता ॥ २२ ॥ भ्रष्टराज्याश्चविबुधामहेशंशरणंगताः ॥ सर्वज्ञेनततोदेवीप्रे

नहीं त्यागताहै वेही लोग लोकमें जीवतेहैं व वेही पुण्यसेवीहैं ॥ १८ ॥ कभी संपत्तिका उदय और कभी विपत्तिका उदयहोता है भाग्यसे दोनोंकोभी प्राप्तहोकर धीरजन धीरताको न त्यागकरे ॥ १९ ॥ उसमें यह दृष्टांतहै कि चंद्रमा व सूर्य्यका उदय और न उदयहोना याने अस्तभी बुद्धिमानों को देखनाचाहिये ऐसेही विपत्ति व संपत्ति में सदैव एकरूपता त्यागने योग्य नहींहै याने एक रसरहना उचितहैइसलिये हर्ष और शोक निष्फलहैं ॥२० ॥ व विपत्तिको प्राप्त होकर दीनतासे ग्रस्तहुआ जो जन मरजाता है उसके दोनों लोक नष्ट है उससे दैन्यको बहुतही बरावे ॥ २१ ॥ किंतु जो लोग विपत्ति मेंभी धैर्य्यवान् हैं उनको इसलोक और परलोक

मेंभी उनकी धीरतासे दूरकीगईहुई विपत्ति फिर नहीं स्पर्शकरेहै ॥ २२ ॥ " अब प्रासंगिकको कहते हैं कि ,, जब राज्यरहित देवतालोग महेशजीके शरणगये तब सर्वज्ञ शिवजीने दुर्गदैत्यके दलनेके लिये देवीजीको प्रेरिताकिया ॥ २३ ॥ और महेश्वरकी आज्ञाको भलीभांति प्राप्तहोकर अधिक आनंदित के समान भवानीजी ने देवसमूह को अभयदेकर संग्रामके लिये उपक्रम (आरंभ) किया ॥ २४ ॥ व कांतिसे त्रिलोकमें सुंदरी रुद्राणी कालरात्रिको भलीभांति बुलाकर उसदेवद्रोही दैत्य के प्रति कहने या उसको बुलाने के लिये पठाया ॥ २५ ॥ तब उस दुष्टकर्मा दैत्यके पास भलीभांति प्राप्तहोकर कालरात्रि देवी बोली कि, दैत्याधिपते ! तुम त्रैलोक्य

रिताऽसुरमर्दने ॥ २३ ॥ माहेश्वरींसमासाद्य भवान्याज्ञांप्रहृष्टवत् ॥ अमर्त्यायाऽभयंदत्त्वासमरायोपचक्रमे ॥ २४ ॥ कालरात्रींसमाहूयकान्त्यात्रैलोक्यसुन्दरीम् ॥ प्रेषयामासरुद्राणीं तमाह्वातुंसुरद्रुहम् ॥ २५ ॥ कालरात्रीसमासाद्यतंदैत्यंदुष्टचेष्टितम् ॥ उवाचदैत्याधिपतेत्यजत्रैलोक्यसम्पदम् ॥२६॥ त्रिलोकींलभतामिन्द्रस्त्वन्तुयाहिरसातलम् ॥ प्रवर्तन्तांक्रियाःसर्वावेदोक्तावेदवादिनाम्॥२७॥ अथचेद्गर्वलेशोऽस्तितदायाहिसमाजये ॥ अथवाजीविताकाङ्क्षीतदिन्द्रंशरणंव्रज ॥ २८ ॥ इतिवक्तुंमहादेव्यामहामङ्गलरूपया ॥ त्वदन्तिकंप्रेषिताहंमृत्युस्तेतदुपेक्षया ॥ २९ ॥ अतोयदुचितंकर्तुंतद्विधेहिमहासुर ॥ परंहितंचेच्छृणुयाज्जीवग्राहन्ततोव्रज ॥ ३० ॥ इत्याकर्ण्यवचोदेव्यामहाकाल्याःसदैत्यराट् ॥ प्रजज्वालतदाक्रोधाद्गृह्यतांगृह्यतामियम् ॥ ३१ ॥ त्रैलोक्यमोहिनीह्येषाप्राप्तामद्भाग्यगौरवैः ॥ त्रैलोक्यराज्यसम्पत्ति

की संपत्तिको त्यागदो ॥ २६ ॥ इंद्रजी त्रिलोकीको पावें और तुम रसातलको चलेजावो व वेदवादी ब्राह्मणादि वर्णोंकी सब वेदोक्त धर्म क्रियायें बहुतभांति वर्तमानहोवें ॥ २७ ॥ और यह प्रश्नहै कि जो गर्वका लेश हो तो तुम भलीभांति युद्धके लियेआवो अथवा जीनेके चाही होतो इंद्रके शरणको जावो ॥ २८ ॥ ऐसा कहनेको महा मंगलरूपिणी महादेवी से तेरेसमीप मैं पठाई गईहूं उन परमेश्वरी के वचन की उपेक्षासे तेरा मरणहोगा ॥ २९ ॥ हे महादैत्य ! इससे जो करनेको उचित है उस को करो और जो परमहितको सुनो तो तुम जीवतेही परमेश्वरी के शरणको जावो ॥ ३० ॥ इसभांति महाकाली देवीका वचन सुनकर वह दैत्यराज उससमय क्रोधसे प्रज्व-

लित हुआ और बोला कि यह पकड़ीजावे पकड़ीजावे ॥ ३१ ॥ जिससे यह त्रैलोक्यमोहिनी मेरी भाग्यकी गुरुतासे प्राप्तहुईहै और त्रिलोकराज्य संपत्तिलताका यह बड़ाभारी फलहै ॥ ३२ ॥ व इसकेही लिये मैंने देवर्षिनरेशोंको बंदकिया परंतु मेरे शुभके उदयसे विना परिश्रमही यह मेरे घरमें प्राप्तहुईहै ॥ ३३ ॥ क्योंकि इसलोक में जो जिसके योग्यहै वह भाग्यके गौरवमे वनमें व घरमेंभी अवश्यकर उसके समीप टिकताहै याने उसको मिलताहै ॥ ३४ ॥ हे अंतः पुरचरो (रनिवासके रक्षको) इसको बड़े उत्तम अंतःपुर (रनिवास) में प्राप्तकरो व इस अच्छे गहनेवाली से मेरा राष्ट्र भूषितहुआ ॥ ३५ ॥ और आश्चर्य्य है कि आज मुझ महामतिवाले का महान उदय उपजाहै किंतु केवल एक मेराही नहीं बरन सब दैत्यवंशका भी महोदयहुआ है ॥ ३६ ॥ इससे आज पितर व बांधवजन सुखसे आनंदित होवें

वल्ल्याःफलमिदंमहत् ॥ ३२ ॥ एतदर्थंहिदेवर्षिनृपावन्दीकृतामया ॥ अनायासेनमेप्राप्तागृह्यमेषाशुभोदयात् ॥ ३३ ॥ अवश्यंयस्ययोग्यंयत्तत्तस्येहोपतिष्ठते ॥ अरण्येवागृहेवापियतोभागस्यगौरवात् ॥ ३४ ॥ अन्तःपुरचराएतांनयन्त्वन्तःपुरंमहत् ॥ अनयासदलंकृत्याममराष्ट्रमलंकृतम् ॥३५ ॥ अहोमहोदयश्चाद्यजातोममहामतेः ॥ केवलंनममैकस्यसर्वदैत्यान्वयस्य च ॥ ३६ ॥ नृत्यन्तुपितरश्चाद्यमोदन्तांबान्धवाःसुखम् ॥ मृत्युःकालोऽन्तकोदेवाःप्राप्नुवन्त्वद्यमेभयम् ॥ ३७ ॥ इतियावत्समायातास्तांनेतुंसौविदल्लकाः ॥ तावत्तयाकालरात्र्याप्रत्युक्तोदैत्यपुङ्गवः ॥ ३८ ॥ कालरात्र्युवाच ॥ दैत्यराजमहाप्राज्ञनैतद्युक्तंभवादृशाम् ॥ वयंदूत्यःपरवशा राजनीतिंविदुत्तम ॥ ३९ ॥ अल्पोपिदूतसम्बाधांनविदध्यात्कदाचन ॥ किंपुनर्येभवादृत्तामहान्तोवलिनोऽधिपाः ॥ ४० ॥ दूतीषुकोनुरागोयं महारा

और नाचें व मृत्यु काल अंतक और देवलोग आज मेरे डर को प्राप्तहोवें ॥ ३७ ॥ इसभांति दैत्येन्द्र के कहतेही जबतक उस देवीके लेजाने को कवचधारी रनिवासके रक्षाकारी भलीभांति आये तबतक उस कालरात्रि से दैत्यनायक प्रत्युक्तहुआ याने उसने उसके प्रति कहा ॥ ३८ ॥ श्रीकालरात्रि देवी बोली कि, हे राजनीति विदोंमेंउत्तम, महाप्राज्ञ, दैत्यराज ! आपके समान जनोंका यह उचित नहीं है क्योंकि हम लोग दूतियां सदैव परवश है ॥ ३९ ॥ इससे क्षुद्रजनभी कभी दूतकी पीड़ाको नही करे है फिर जे आपके समान महान् बलवान् महाराजहैं उनकोक्या कहना है ॥ ४० ॥ हे महाराज ! यहां छोटी दूतियो मे यह क्या अनुराग है

क्योंकि हमलोग उसके आनेसे विना परिश्रमही चली आवेंगी ॥ ४१ ॥ हे दैत्यप ! इससे मेरी उस स्वामिनीको संग्राममें जीतकर मुझसी हजारों स्त्रियोंको यथेच्छासे संभोगकरो ॥ ४२ ॥ व उसके दर्शनसे आजही आपका महासौख्य होनेवालाहै और आजही पितरोंके साथ तुम्हारे बांधवोंको भी सुखहोवेगा ॥ ४३ ॥ व जोकि बहुत दिनोंसे विचारेगये हैं वे सब तुम्हारे काम आज भलीभांति प्राप्तहोवेंगे क्योंकि वह अबला (स्त्री) बहुत सुंदरी है और उसका रक्षक कोई नहीं है ॥४४॥ और वह सर्व रूपमयी भी है आपही उसके देखने योग्यहो किंतु जहां वह जगत की खानि है वहां मैंहीं उसको दिखाऊंगी ॥ ४५ ॥ और एकके धरीहुईहोतेही तुम्हारा क्या काम होगा

जालिपकास्त्विह ॥ अनायासेन च वयमायास्यामस्तदागमात् ॥ ४१ ॥ विजित्यसमरेतान्तुस्वामिनींसमदैत्यप ॥ मादृशीनांसहस्राणिपरिभुङ्क्ष्वयथेच्छया ॥ ४२ ॥ अद्यैवतेमहासौख्यंभावितस्याविलोकनात् ॥ बान्धवानांसुखंतेद्यभविता सहपूर्वजैः ॥ ४३ ॥ सम्पत्स्यन्तेऽद्यतेकामाःसर्वेयेचिरचिन्तिताः ॥ अबलासा च मुग्धा च तस्यास्त्राता न कश्चन ॥ ४४ ॥ सर्वरूपमयी चैव तां भवान्द्रष्टुमर्हति ॥ अहं हि दर्शयिष्यामियत्रसाऽस्तिजगत्खनिः ॥ ४५ ॥ धृतायामपिचैकस्यांक स्तेकामोभविष्यति ॥ अहन्तेसन्निधिंनैवत्यक्ष्याम्यद्यदिनावधि ॥ ४६ ॥ ततोनिवारयैतान्मामादित्सून्सौविदल्लका न् ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्याःसकामक्रोधमोहितः ॥ ४७ ॥ तामेनबहुमँस्तैकांदूतींमृत्योरिवासुरः ॥ शुद्धान्तरक्षिणश्चैतां शुद्धान्तंप्रापयन्त्वरम् ॥ ४८ ॥ इतितेनसमादिष्टाःसर्वेवर्षवरामुने ॥ तान्धर्तुमुद्यमञ्चक्रुर्बलेनबलवत्तराः ॥ ४९ ॥ सातान्भस्मीचकाराशुहुङ्कारजनिताग्निना ॥ ततोदैत्यपतिःक्रुद्धोदृष्ट्वातान्भस्मसात्कृतान् ॥ ५० ॥ क्षणेनैवतयादू

क्योंकि आजके दिनतक मैं तुम्हारा समीप न त्यागूंगी ॥ ४६ ॥ उसलिये मुझको पकडना चाहते हुये इन कवचधारियोंको निवारणकरो इस प्रकार उसकालरात्रि का वचन सुनकर काम और क्रोध से मोहित हुये उस ॥ ४७ ॥ असुर ने मृत्युके समान उस एक दूतीकोही बहुतकर माना और रानिवासकेरक्षक लोग इसको शीघ्रही अन्तःपुरमें पहुंचावे ॥ ४८ ॥ हे मुने ! ऐसे उसदैत्येंद्र से भलीभांति आयसु पाये हुये. सैन्यसे बड़े बलवान, व वृषण कटाये हुये सब रक्षकों ने उसके धरने को उद्यमकिया ॥ ४९ ॥ और उसने हुंकार से उपजी हुई आगसे उनको शीघ्रही भस्म करदिया तदनन्तर कुपित दैत्यराज ने उन सब रक्षकों को भस्म समूह किये हुये देखकर ॥ ५० ॥

क्षणभर में उस दूती के साथ युद्ध करने के लिये नेत्रकी संज्ञा से तीस हजार संख्यक दैत्यों को व्यापार कराया याने पठाया व दुर्धर, दुर्मुख, खर ॥ ५१ ॥ सीरपाणि, पाशपाणि, सुरेंद्रदमनु, हनु, यज्ञारि, खड्गलोमा, उग्रास्य, और देवकंपन से कहा ॥ ५२ ॥ कि हे दानवो ! बिछुरे केशपाशवाली व नीचे चुयेहुये वस्त्र और भूषणवाली इस दुष्टाको पाशों से बांधकर शीघ्रही लेआओ ॥ ५३ ॥ अनन्तर इसप्रकार दैत्याधिप, दुर्गकी आज्ञा से पसरीतलवार और मुद्गरधारी दुर्धरादि असुर उस के पकड़ने को उद्यमकियेहुये ॥ ५४ ॥ जोकि पर्वतेन्द्र के समान भारी देहधारी व शस्त्र और अस्त्रों से उद्यत हाथोंवाले थे वे उस देवी के निश्वास वायु से ताड़ित होकर दिशाओं

त्यादैत्यांस्त्र्ययुतसम्मितान् ॥ दृशाव्यापारयामासदुर्धरन्दुर्मुखङ्खरम् ॥ ५१ ॥ सीरपाणिम्पाशपाणिंसुरेन्द्रदमनंहनुम् ॥ यज्ञारिङ्खड्गलोमानमुग्रास्यन्देवकम्पनम् ॥ ५२ ॥ बद्ध्वापाशैरिमान्दुष्टामानयन्त्वाशुदानवाः ॥ विध्वस्तकेशवेशाञ्चविस्रस्ताम्बरभूषणाम् ॥ ५३ ॥ इतिदैत्याधिपादेशाद्दुर्धरप्रमुखास्ततः ॥ पाशासिमुद्गरधरास्तामादातुंकृतोद्यमाः ॥ ५४ ॥ गिरीन्द्रगुरुवर्ष्माणःशस्त्रास्त्रोद्यतपाणयः ॥ दिगन्तन्तेपरिप्राप्तास्तदुच्छ्वासानिलाहताः ॥ ५५ ॥ तेषूड्डीनेषुदैत्येषुशतकोटिमितेषु च ॥ निर्जगामततःसातुकालरात्रिर्नभोध्वगा ॥ ५६ ॥ ततस्तान्तुविनिर्यान्तीमनुजग्मुर्महासुराः ॥ कोटिकोटिसहस्राणिपूरयित्वातुरोदसी ॥ ५७ ॥ दुर्गोनाममहादैत्यःशतकोटिरथावृतः ॥ गजानामर्बुदशतद्वयेनपरिवारितः ॥ ५८ ॥ कोट्यर्बुदेनसहितोहयानांवातरंहसाम् ॥ पदातिभिरसंख्यातैःपच्चूर्णितशिलोच्चयैः ॥ ५९ ॥ उदायुधैर्महाभीमैःकृतत्रिजगतीभयैः ॥ समेतःसमहादैत्योदुर्गःक्रुद्धोविनिर्ययौ ॥ ६० ॥ अथदृष्ट्वामहादेवींविन्ध्याचलकृतालयाम् ॥

के अन्त को सब ओर से प्राप्तहुये ॥ ५५ ॥ और जब सौकरोड़ संख्यक वे दैत्यउड़गये तब आकाशमार्गगामिनी वह कालरात्रि भी उस स्थानसे निकलकर चली ॥ ५६ ॥ और तदनन्तर करोड़ों करोड़ सहस्र महादैत्य द्यावा भूमियों के अन्तर को भरकर विशेपता से निकलीजाती हुई उसके पीछे चलेगये ॥ ५७ ॥ व दुर्गनामक महादैत्य जोकि सौकरोड़ रथों से सब ओर घिराहुआ व हाथियों के दो खर्व से परिवारित ॥ ५८ ॥ व करोड़ अर्बुदसंख्यक वायुवेगी घोड़ों से सहित व असंख्य पदाति (पैदर) जोकि पावों से पर्वतोंको चूर्ण करनेवाले ॥ ५९ ॥ व आयुध उठाये, महाभयंकर, और त्रिलोको के भयकर्ता थे उनके समेत व महादैत्यों के साथ वर्त्तमान

और दुर्गम था वह क्रुद्धहोकर विशेषता समेत निकलकर चलागया ॥ ६० ॥ तदनन्तर विन्ध्याचल में स्थान कियेहुई महादेवी को देखकर कि जिनके समीपमें आकर कालरात्रि ने उसका अपराध निवेदित कियाहै ॥ ६१ ॥ व जोकि हजारों बड़ीबाहोंसे युक्त व महातेजों से सबओर बढ़ीहुई व उन उन अनेक घोरआयुधवाली और संग्राम कौतुक मे आदर समेत हैं ॥ ६२ ॥ व उल्लसत चन्द्रमा की हजारोरश्मियों स विशोधित शुभमुखी, व सुन्दरता समुद्र से निकलते और चमकते चन्द्रमा से मुख्य चंद्रिकावाली हैं ॥ ६३ ॥ व जिनकी देह महामाणिक्यसमूह की दीप्ति से व्याप्त है व जोकि त्रैलोक्यरम्यनगरीको सुप्रकाश करने के लिये प्रदीपिका हैं ॥ ६४ ॥ व महादेवजी

आगत्यकालरात्र्याचनिवेदिततदागसम् ॥ ६१ ॥ महाभुजसहस्राढ्यांमहातेजोभिर्बृंहिताम् ॥ तत्तद्घोरप्रहरणांरणकौतुकसादराम् ॥ ६२ ॥ प्रोद्यच्चन्द्रसहस्रांशुनिर्माजितशुभाननाम् ॥ लावण्यवार्धिनिर्गच्छच्चञ्चच्चन्द्रैकचन्द्रिकाम् ॥ ६३ ॥ महामाणिक्यनिचयरोचिःखचितविग्रहाम् ॥ त्रैलोक्यरम्यनगरीसुप्रकाशप्रदीपिकाम् ॥ ६४ ॥ हरनेत्राग्निनिर्दग्धकामजीवातुवीरुधम् ॥ लसत्सौन्दर्यसम्भारजगन्मोहमहौषधिम् ॥ ६५ ॥ विषमेषुशरैर्भिन्नहृदयोदैत्यपुङ्गवः ॥ आदिष्टवान्महासैन्यनायकानुग्रशासनः ॥ ६६ ॥ अयिजम्भमहाजम्भकुजम्भाविकटानन ॥ लम्बोदरमहाकायमहादंष्ट्रमहाहनो ॥ ६७ ॥ पिङ्गाक्षमहिषग्रीवमहोग्रात्युग्रविग्रह ॥ क्रूराक्षक्रोधनाक्रन्दसंक्रन्दनमहाभय ॥ ६८ ॥ जितान्तकमहाबाहोमहावक्त्रमहीधर ॥ दुन्दुभेदुन्दुभिरवमहादुन्दुभिनासिक ॥ ६९ ॥ उग्रास्यदीर्घदशनमेघकेशाट्टकानन ॥ सिंहास्य

के नेत्रकी आग से निश्शेष जलेहुये कामके जिवाने को सजीवनमूरिलताके समान व सोहती हुई सुन्दरता के समूहसे जगत् के मोहको महौषधिरूप हैं ॥ ६५ ॥ उस समय कामके बाणों से भिन्नहृदय व उग्रआज्ञावाले उस दैत्यनायकने महासैन्योंके स्वामियोंको आयसु दिया ॥ ६६ ॥ कि हे जम्भ ! हे महाजम्भ ! हे कुजम्भ ! हे विकटानन ! हे लम्बोदर ! हे महाकाय ! हे महादंष्ट्र ! हे महाहनो ! ॥ ६७ ॥ हे पिंगाक्ष ! हे महिषग्रीव ! हे महोग्र ! हे अत्युग्रविग्रह ! हे क्रूराक्ष ! हे क्रोधन ! हे आक्रन्द ! हे संक्रंदन ! हे महाभय ! ॥ ६८ ॥ हे जितांतक ! हे महाबाहो ! हे महावक्त्र ! हे महीधर ! हे दुन्दुभे ! हे दुन्दुभिरव ! हे महादुन्दुभिनासिक ! ॥ ६९ ॥ हे उग्रास्य !

हे ! दीर्घदशन ! हे मेघकेश ! हे वृकानन ! हे सिंहास्य ! हे सूकरमुख ! हे शिवाराव ! हे महोत्कट ! ॥ ७० ॥ हे शुकतुण्ड ! हे प्रचण्डास्य ! हे भीमाक्ष ! हे क्षुद्रमानस ! हे उलूकनेत्र ! हे कङ्कास्य ! हे काकतुण्ड ! हे करालवाक् ! ॥ ७१ ॥ हे दीर्घग्रीव ! हे महाजंघ ! हे क्रमेलकशिरोधर ! हे रक्तबिन्दो ! हे जपानेत्र ! हे विद्युज्जिह्व ! हे अग्नितापन ! ॥ ७२ ॥ हे धूम्राक्ष ! हे धूमनिःश्वास ! हे चण्ड ! हे चण्डांशुतापन ! और हे महाभीषणादि दैत्यो ! आपलोग मेरी आज्ञा को आदर से सुनो ॥ ७३ ॥ कि इन आपलोगों और अन्यों मेसे भी जो कोई धैर्य्य (साम) बुद्धि (दान) बल (दंड) व छल (भेद) से भी इस विन्ध्यवासिनी को पकड़कर मेरेपास प्राप्त करेगा ॥ ७४ ॥ उसको मैं आजही

सूकरमुखशिवारावमहोत्कट ॥ ७० ॥ शुकतुण्डप्रचण्डास्यभीमाक्षक्षुद्रमानस ॥ उलूकनेत्रकङ्कास्यकाकतुण्डकरालवाक् ॥ ७१ ॥ दीर्घग्रीवमहाजङ्घक्रमेलकशिरोधर ॥ रक्तबिन्दोजपानेत्रविद्युज्जिह्वाग्नितापन ॥ ७२ ॥ धूम्राक्षधूमनिःश्वासचण्डचण्डांशुतापन ॥ महाभीषणमुख्याश्चशृण्वन्त्वाज्ञांममादरात् ॥ ७३ ॥ भवत्स्वेतेषुचान्येषुएतांविन्ध्यवासिनीम् ॥ धृत्यानेष्यतिबुद्ध्यावाबलेनापिछलेनवा ॥ ७४ ॥ तस्याहमिन्द्रपदवीमद्यदास्याम्यसंशयम् ॥ दृष्ट्वैतांसुन्दरीमद्यमनोमेव्याकुलम्भवेत् ॥ ७५ ॥ यान्तुक्षिप्रंनयावन्मेपञ्चेषुशरपीडितम् ॥ मनोविह्वलतांगच्छेदेतत्प्राप्तेरभावतः ॥ ७६ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यदुर्गस्यदनुजेशितुः ॥ प्रोचुःसर्वेतदादैत्याःप्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ ७७ ॥ अवधेहिमहाराजकिमेतत्कर्मदुष्करम् ॥ अनाथायास्तथैकस्याअबलायाविशेषतः ॥ ७८ ॥ अस्याआनयनेकोयंमहायत्नविधिःप्रभो ॥ कोऽस्मान्प्रलयकालाग्निमहाज्वालावलीसमान् ॥ ७९ ॥ सहेतत्रिषुलोकेषुत्वत्प्रसादात्कृतोद्यमान् ॥ यद्यादेशोभवेदद्य

इन्द्रपदवी दूंगा इसमें सन्देह नहीं है आज इस सुन्दरी को देखकर मेरामन व्याकुल होवे है ॥ ७५ ॥ इसलिये काम के बाणो से पीडित हुआ मेरामन इसकी प्राप्ति न होने से जबतक व्याकुलताको न प्राप्त होजावे तबतक आपलोग शीघ्रही जावें ॥ ७६ ॥ तब इसभांति उसदानवेश्वर दुर्गका वचन सुनकर दोनो हाथ जोडेहुये सब दैत्यो ने उच्चस्वर से कहा ॥ ७७ ॥ कि हे महाराज ! तुम सुनो यह कर्म क्या दुष्कर है याने बहुतही सुगम है क्योंकि जोकि अनाथ तथा अकेली और विशेष से अबला स्त्री याने बलसे हीन है ॥ ७८ ॥ इस के आनलाने मे यह कौन बड़े यत्नका विधान है हे प्रभो ! कौन जन हमलोगों को जोकि प्रलयकालकी अग्नि की ज्वालामाला के

समान हैं ॥ ७९ ॥ और आपकी प्रसन्नता से उद्यम करनेवाले हैं उनको तीनों लोकों के बीचमें सहस के जो आज आज्ञाहो तो इन्द्र मरुद्गणों से संयुत उसको रनिवास समेत भलीभांति आनकर आपके पावों के आगे डाल दें क्योंकि भूर्भुवः स्वः नामक यह सब लोक तुम्हारी आज्ञाका वशवर्त्ती है ॥ ८१ ॥ व महः जनः तपः और सत्य लोकभी तुम्हारे अधिकार वाले हैं हे महादैत्य ! वहां भी आपके आयसु से हमलोगों को कुछ असाध्य नहीं है ॥ ८२ ॥ व जोकि रम्य रत्न हैं उनको आनन्द से भलीभांति पठाते हुये वैकुण्ठनाथ भी नित्यही तुम्हारी आज्ञाके परिपालक हैं ॥ ८३ ॥ व हमलोगों सेही भलीभांति त्यागे हुये वह कैलास के स्वामी भी अधिक निर्ब-

तदेन्द्रंसमरुद्गणम् ॥ ८० ॥ सान्तःपुरंसमानीयत्क्षिप्नुमस्त्वत्पदाग्रतः ॥ भूर्भुवःस्वरिदंसर्वन्त्वदाज्ञावशवर्तितम् ॥ ८१ ॥ महर्जनस्तपःसत्यलोकास्त्वदधिकारिणः ॥ तत्राप्यसाध्यंनास्माकंत्वन्निदेशान्महासुर ॥ ८२ ॥ वैकुण्ठनायकोनित्यं त्वदाज्ञापरिपालकः ॥ यानिरम्याणिरत्नानितानिसम्प्रेषयन्मुदा ॥ ८३ ॥ अस्माभिरेवसन्त्यक्तःकैलासाधिपतिःसवै ॥ विषाशीचातिनिःस्वत्वाद्भस्मकृत्त्यहिभूषणः ॥ ८४ ॥ अर्धाङ्गेनास्मद्भयतोयोषिदेकानिगूहिता ॥ तस्यग्रामेपिसकले द्वितीयोनचतुष्पदः ॥ ८५ ॥ एकोजरद्गवःसोपिनान्यस्मात्परिजीवति ॥ श्मशानवासिनःसर्वेसर्वेकौपीनवाससः ॥ ८६ ॥ सर्वेविभूतिधवलाःसर्वेप्येककपर्द्दिनः ॥ समस्तेनगरेतस्यवसन्त्येवंविधागणाः ॥ ८७ ॥ तेषाङ्गणानांकिंकुर्मोदरिद्राणां वयंविभो ॥ समुद्रारत्नसम्भारंप्रत्यहम्प्रेषयन्तिच ॥ ८८ ॥ नागावराकाश्चास्माकंसायंसायंस्वयम्प्रभो ॥ प्रदीपयन्तिस ततंफणारत्नप्रदीपकान् ॥ ८९ ॥ कल्पद्रुमःकामगवीचिन्तामणिगणाबहु ॥ तवप्रसादादस्माकमपितिष्ठन्तिवेश्मसु ॥ ९० ॥

लतासे विषभोजी व भस्म, गजचर्म और सर्पभूषणवाले होगये हैं ॥ ८४ ॥ व हमारे डरसे उन्होंने (अपने) आधे अंगसे एक स्त्री छिपाई है उनके सम्पूर्ण ग्राम में भी दूसरा चतुष्पद (चौपाया) नहीं है ॥ ८५ ॥ एक बहुत बूढ़ा बैलहै वह भी अन्य से सब ओर नहीं जीवताहै और जे कि सब श्मशानधारी व सब कौपीन वस्त्रधारी ॥ ८६ ॥ व सब विभूति से उज्ज्वल व सभी जटीले इसप्रकार के गण उनके समस्त नगरमें हैं ॥ ८७ ॥ उन दरिद्री गणोंका हम क्या करैं क्योंकि हे विभो ! समुद्रही प्रति दिन रत्नोंकी राशियां पठाते हैं ॥ ८८ ॥ व हे प्रभो ! बापुरे नाग आपही हमारे यहां प्रति सायंकाल में सदा फणारत्नरूपी दीपकों को प्रज्वलित करते हैं ॥ ८९ ॥ व

कल्पवृक्ष, कामधेनु, और बहुतसे चिन्तामणियों के समूह तुम्हारे प्रसाद से हमारे भी घरोंमें टिकते हैं ॥ ९० ॥ व अहो स्वामिन्! पंखाके भावको प्राप्त हुआ पवन तुम को बहुत यत्न से सेवे है व वरुणदेव प्रतिदिन कलशोंमें निर्मल जलको पूरण करता है ॥ ९१ ॥ व अग्निदेव वस्त्रोंको धोवे है व चन्द्रमा आपही छत्र धरनेवालाहै और सूर्य्य देव क्रीड़ा वापियों में उपजे कमलोंको नित्यही फुलावे है ॥ ९२ ॥ इससे मनुष्य देव और उरगों मेंसे भी कौन जन तुम्हारे प्रसादको नहीं देखे है किन्तु सब देव दैत्य और पक्षी तुम्हारे समीप जीते हैं याने आपसेही सबकी जीविकाहै ॥ ९३ ॥ हे राजन्! तुम हमलोगों के पौरुष को देखो कि बलसे इस पूर्वोक्त स्त्री को लिये आते हैं ऐसा

वायुर्व्यंजनतांयातस्त्वांसेवेतप्रयत्नतः ॥ स्वच्छान्यम्बूनिवरुणःप्रत्यहम्पूरयत्यहो ॥ ९१ ॥ वासांसिक्षालयेदग्निश्चन्द्रश्छत्रधरःस्वयम् ॥ सूर्यःप्रकाशयेन्नित्यंक्रीडावाप्यम्बुजानिच ॥९२॥ कस्त्वत्प्रसादंनेक्षेतमर्त्यामर्त्योरगेषुच ॥ सर्वेत्वामुपजीवन्तिसुराऽसुरखगादयः ॥ ९३ ॥ पश्यनःपौरुषंराजन्नानयामोबलादिमाम् ॥ इत्युक्त्वायुगपत्सर्वेक्षुब्धास्तोयधयोयथा ॥९४॥ संवर्तकालमासाद्यप्लावितुञ्जगतीमिमाम् ॥ रणतूर्यनिनादश्चसमुत्तस्थौसमन्ततः ॥ ९५ ॥ रोमाञ्चितायच्छ्रवणात्कातराअप्यकातराः ॥ ततोदेवाभयत्रस्ताश्चकम्पेचवसुन्धरा ॥ ९६ ॥ क्षुब्धाअम्बुधयःसर्वेपेतुर्नक्षत्रमालिकाः ॥ रोदसीमण्डलंव्याप्तंतेनतूर्यरवेणवै ॥ ९७ ॥ ततोभगवतीदेवीस्वशरीरसमुद्भवाः ॥ शक्तीरुत्पादयामासशतशोऽथसहस्रशः ॥ ९८ ॥ ताभिःशक्तिभिरेतेषांबलिनान्दितिजन्मनाम् ॥ प्रत्येकम्परितोरुद्धउद्वेलःसैन्यसागरः॥९९ ॥

कहकर वे सब एक साथही संचलित हुये कि जैसे सब समुद्र ॥ ९४ ॥ प्रलयकाल को प्राप्तहोकर इस पृथिवी को डुबाने के लिये उमड़कर चलते हैं और उस समय संग्रामकी तुरहियों का शब्द सब ओरसे भलीभांति उठाथा ॥ ९५ ॥ जिसके सुनने से कादर और शूरभी रोमांचित होगये तदनन्तर देवलोग भयसे त्रस्तहुये और भूमि कांपनेलगी ॥ ९६ ॥ व सब समुद्र संचालितहुये और नक्षत्रोंकी पंक्तियां पतितहोगई और उस तुरहियों के शब्दसे भूमि व द्युलोकके मध्यका मण्डलभी भरगया ॥ ९७ ॥ तदनन्तर ऐश्वर्य्यवती देवीजीने अपने अङ्गसे उपजी हुई सैकड़ों और हजारों शक्तियों को उत्पन्न किया ॥ ९८ ॥ उन शक्तियों ने बलवान् इन दैत्यों के लंघित मर्यादा

वाले उमड़े सैन्यसागर को प्रत्येक सब ओर से रोंकलिया ॥ ९९ ॥ और महादैत्यों ने संग्राम में जिनउग्रशस्त्र और अस्त्रोंका प्रक्षेपकिया उनको उन शक्तियों ने शीघ्रही तृणके समानकर त्यागदिया ॥ १०० ॥ उसके अनन्तर बड़े क्रोधसे भरेहुये जंभ आदिक वे देवोंके शत्रु दैत्यलोग तलवार चक्र भुशुंडी (सब ओर लोह के कांटों के क्रमसे उन्नत या बंदूख) गदा मुद्गर तोमर (गुर्ज) ॥ १ ॥ व भिंडिपाल (गुफनाकार) परिघ (हाथभरके दंडे या बड़ेना) कुंत (बरछी) शल्य (शर्वली) शक्ति (लोहकंटकों से व्याप्तचार हाथकी लंबीहोती है अथवा शतघ्नीका भेद या तोप) व अर्धचंद्राकार छूराकी धारसे तीक्ष्ण और विषउपजानेवाले बाण ॥ २ ॥ व

शस्त्रास्त्राणिमहादैत्यैर्यान्युत्सृष्टानिसङ्गरे ॥ ताभिःशक्तिभिरुग्राणितृणीकृत्योज्झितान्यरम् ॥ १०० ॥ ततोतिकोपपूर्णास्तेजम्भमुख्याःसुरारयः ॥ असिचक्रभुशुण्डीभिर्गदामुद्गरतोमरैः ॥ १ ॥ भिण्डिपालैश्चपरिघैःकुन्तैःशल्यैश्चशक्तिभिः ॥ अर्धचन्द्रैःक्षुरप्रैश्चनाराचैश्चशिलीमुखैः ॥२॥ महाभल्लैःपरशुभिर्भिंदुरैर्मर्मभेदिभिः॥ वृक्षोपलमहावर्षैर्ववृषुर्जलदाइव ॥ ३ ॥ अथसाविन्ध्यनिलयामहामायामहेश्वरी ॥ आदायोद्दण्डकोदण्डंवायव्यास्त्रेणहेलया ॥४॥ दैत्यास्त्रशस्त्रजालानिपरिचिक्षेपदूरतः ॥ ततोमहासुरोदुर्गोवीक्ष्यसैन्यंनिरायुधम् ॥ ५ ॥ ज्वलन्तींशक्तिमादायतांदेवींप्रतिसोऽक्षिपत् ॥ तान्तुशक्तिंसमायान्तींमहावेगवतींरणे ॥ ६॥ निजचापविनिर्मुक्तैर्बाणैश्चूर्णीचकारसा॥ भग्नांशक्तिंसमालोक्यततोदुर्गोमहासुरः ॥ ७ ॥ चक्रंचप्रेषयामास दैत्यचक्रातिहर्षदम् ॥ तच्चदेव्याशरशतैरन्तरैवाणुवत्कृतम् ॥ ८ ॥ ततः

बड़ेभाला परशा, भेदनशील व मर्मभेदी अन्य अनेक अस्त्र और वृक्ष तथा पत्थरों की महावर्षासे मेघोंकी नाईं बरसने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर विंध्यवासिनी महामाया महेश्वरीने बडाभारी धन्वालेकर वायव्य अस्त्रके द्वारा अनादरसे ॥ ४ ॥ दैत्योंके शस्त्रास्त्रसमूहों को बहुत दूर सबओर को चलाया उसके बाद आयुधों से हीन अपनी सेनाको देखकर जो कि दुर्गनामक महादैत्यथा ॥ ५ ॥ उसने ज्योति से जग मगातीहुई शक्तिको लेकर उन देवीजी के प्रति प्रेरितकिया और संग्राममें बड़ी वेगवती व भलीभांति आतीहुई उस शक्तिको ॥ ६ ॥ उन देवीजीने अपने धन्वा से छूटेहुये बाणों से चूर्ण के समान करडाला। तदनन्तर शक्तिको टूटी हुई देखकर महा असुर दुर्गने ॥ ७ ॥ फिर दैत्यसमूहको अत्यन्त आनन्द देनेवाले चक्रको चलाया और वह भी देवीजी के सैकड़ों बाणोंसे बीचमेंही काटकर अणुके समान कियागया ॥ ८ ॥

तदनन्तर देवपीड़क दैत्यने इंद्रधनुकी नाईं शार्ङ्गधन्वा को भलीभांति लेकर बाणसे उन देवीजीको हृदय में ताड़ित किया ॥ ९ ॥ और हे मुने ! उन देवीजी करके बड़े वेगवान् अपने बाणोंसे निवारित भी वह बाण वेगसे उन देवीजी के सामने चलागया ॥ १० ॥ तब देवीजीने धन्वाके दंडवाले शीघ्रगामी बाणसे अपर कालदंडके समान उस बाणको ताडितकर निवारणकिया ॥ ११ ॥ और उस बाणके विमुखताको प्राप्तहोतेही क्रोधयुक्त उस दुर्गमासुरने प्रलयाग्निसे जगमगातेहुये शूलको भलीभांति लेकर ॥ १२ ॥ बडे वेगसे उन देवीजी के संमुख बहाया जोकि दैत्यों के पालनेवालाथा और चंडिका ने अपने शूलसे सामने आतेहुये उस

शार्ङ्गसमादायधनुःशक्रधनुर्यथा ॥ हृदिविव्याधबाणेनतांदेवीममरार्दनः ॥ ९ ॥ सचबाणस्तयादेव्यानिजबाणैर्महाजवैः ॥ निवारितोपिवेगेनतांदेवीमभ्यगान्मुने ॥ १० ॥ ततःकोदण्डदण्डेनआशुगेनतमाशुगम् ॥ हत्वानिवारयामासकालदण्डमिवापरम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्विमुखतांयातेमार्गणेदुर्गमासुरः ॥ क्रुद्धःशूलंसमादाय संवर्तानलसुप्रभम् ॥ १२ ॥ महावेगेनचिक्षेपतांदेवीमभिदैत्यपः ॥ परापतच्चतच्छूलंनिजशूलेनचण्डिका ॥ १३ ॥ अन्तरैवप्रचिच्छेद सहदैत्यजयाशया ॥ तस्मिन्नपिमहाशूले देवीशूलावहेलिते ॥ १४ ॥ गदामादायदैत्येन्द्रःसहसाभिपपातह ॥ आजघानचतांदेवींभुजमूलेमहाबलः ॥ १५ ॥ सापिदेवीभुजंप्राप्य गिरींद्रशिखराकृतिः ॥ गदाशुपरिपुस्फोटशतधाचसहस्रधा ॥ १६ ॥ ताडितोदेव्यासदैत्येन्द्रोवामपादतलेनहि ॥ आताडितःपपातोर्व्यांहृदिगाढंप्रपीडितः ॥ १७ ॥ तत्क्षणादेवदैत्येन्द्रःपतित्वापुनरुत्थितः ॥ बभूवसहसादृश्योदीपोवातहतोयथा ॥ १८ ॥ तावज्जगज्जनन्याताः प्रेरितानिजशक्तयः ॥ विचे

शूलको ॥ १३ ॥ दैत्योंकी जयाशाके साथ बीचमेंही काटडाला और जब वह महा शूलभी देवीके शूलसे अवज्ञात (छिन्नभिन्न) हुआ तब ॥ १४ ॥ गदा लेकर बड़ा बलवान् दैत्येन्द्र शीघ्रतासे उन देवीजीके सामने आया और बाहुमूलमें मारताभया ॥१५॥ पर्वतेन्द्र के शृंगके समान आकारवाली वह गदाभी देवीजीकी बांहको प्राप्त होकर सैकड़ों औ सहस्रों प्रकारसे शीघ्र टूटगई ॥ १६ ॥ तब देवीजीके बाये पाउँके तलसेही हृदयमें संताड़ित व गाढ़े प्रपीड़ितहुआ वह दैत्येन्द्र भूमिमें गिरपड़ा ॥१७॥ और गिरकर उसी क्षणमें फिर उठाहुआ दैत्येश्वर वायुसे बुताये दियाकीनाईं अकस्मात् अदृश्य होगया॥१८॥तबतक जगदम्बासे प्रेरित वे अपनी शक्तियां दैत्य सैन्योंमें

प्रलयकेसमय मृत्यु सैन्यके समान विचरनेलगीं॥११९॥इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदुर्गपराक्रमवर्णनंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

दो० । बाहत्तर अध्यायमें शक्तिनाम कहिदीन । दुर्गा विजय बखान अरु कवच सुवर्णन कीन ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे पार्वतीहृदयानंद, सर्वज्ञनंदन, स्कन्द ! वे कौन कौन शक्तियाँ हैं व उनके नामभी मुझसे कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि हे कुंभसंभवमुने ! श्रीपार्वतीजीके अंगोसे उपजीहुई उन परमशक्तियोंके नामों को मैं कहूंगा तुम तत्त्वसे सुनो ॥ २ ॥ त्रैलोक्यविजया, तारा, क्षमा, त्रैलोक्यसुंदरी, त्रिपुरा, त्रिजगन्माता, भीमा, त्रिपुरभैरवी ॥ ३ ॥ कामाख्या, कमलाक्षी, धृति, त्रिपुर-

रुर्दैत्यसैन्येषुसंवर्तेमृत्युसैन्यवत्॥११९॥इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदुर्गपराक्रमोनामैकसप्ततितमोऽध्यायः॥७१॥

अगस्त्यउवाच ॥ पार्वतीहृदयानन्दस्कन्दसर्वज्ञनन्दन ॥ काःकास्तुशक्तयस्तावैतासांनामानिमेवद ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तासांपरमशक्तीनामुमावयवसम्भुवाम् ॥ आख्यास्याख्यांशृणुमुनेकुम्भसम्भवतत्त्वतः ॥ २॥ त्रैलोक्यविजयातारात्क्षमात्रैलोक्यसुन्दरी ॥ त्रिपुरात्रिजगन्मातामाभीमात्रिपुरभैरवी ॥ ३ ॥ कामाख्याकमलाक्षीचधृतिस्त्रिपुरतापनी ॥ जयाजयन्तीविजयाजलेशीचापराजिता ॥ ४॥ शङ्खिनीगजवक्त्राचमहिषघ्नीरणप्रिया॥ शुभानन्दाकोटराक्षी विद्युज्जिह्वाशिवारवा ॥ ५ ॥ त्रिनेत्राचत्रिवक्त्राचत्रिपदासर्वमङ्गला ॥हुङ्कारहेतिस्तालेशीसर्पास्यासर्वसुन्दरी ॥ ६ ॥ सिद्धिर्बुद्धिःस्वधास्वाहामहानिद्राशरासना ॥ पाशपाणिःखरमुखीवज्रताराषडानना ॥ ७॥ मयूरवदनाकाकीशुकीभासी गरुत्मती ॥ पद्मावतीपद्मकेशीपद्मास्यापद्मवासिनी ॥ ८ ॥अक्षरात्र्यक्षरातन्तुःप्रणवेशीस्वरात्मिका ॥ त्रिवर्गागर्वरहि

तापनी, जया, जयंती, विजया, जलेशी, अपराजिता ॥ ४ ॥ शंखिनी, गजवक्त्रा, महिषघ्नी, रणप्रिया, शुभा, नंदा, कोटराक्षी, विद्युज्जिह्वा, शिवारवा ॥ ५ ॥ त्रिनेत्रा, त्रिवक्त्रा, त्रिपदा, सर्वमंगला, हुंकारहेति, तालेशी, सर्प्पास्या, सर्वसुंदरी ॥ ६ ॥ सिद्धि, बुद्धि, स्वधा, स्वाहा, महानिद्रा व शरासना तथा पाशपाणि, खरमुखी, वज्रतारा और षडानना॥७॥मयूरवदना, काकी, शुकी, भासी, गरुत्मती, पद्मावती, पद्मकेशी, पद्मास्या एवं पद्मवासिनी ॥८॥ अक्षरा, त्र्यक्षरा, तंतु, प्रणवेशी, स्वरात्मिका, त्रिवर्गा, गर्वरहिता,

अजपा और जपहारिणी ॥९॥ जपसिद्धि,तपःसिद्धि, योगसिद्धि,परा, अमृता, मैत्रीकृत,मित्रनेत्रा,रक्षोघ्नी व दैत्यतापनी॥१०॥स्तम्भनी,मोहनी, माया,बहुमाया, बलोत्कटा उच्चाटनी, महोल्कास्या, दनुजेन्द्रक्षयंकरी॥११॥और क्षेमंकरी, सिद्धिकरी, छिन्नमस्ता,शुभानना,शाकम्भरी, मोक्षलक्ष्मी और त्रिवर्गफलदायिनी॥१२॥ वार्त्ताली, जंभली, क्लिन्ना,अश्वारूढ़ा, सुरेश्वरी, और ज्वालामुखी आदि जे बड़ी बलवती नवकरोड़संख्यक शक्तियां हैं ॥ १३ ॥ उन्होंने अपनी लीलासे प्रलयाग्निकी शिखाओंसे जगतों की नाईं बलवान् दैत्योंकी सेनाको नष्टकरदिया ॥ १४ ॥ तबतक बली दैत्येश्वर उस दुर्गने मेघोंके मध्यसे बहुतही बौंड़रों से वेगवाली जल पत्थरोंकी वर्षा

ताअजपाजपहारिणी ॥ ९ ॥ जपसिद्धिस्तपःसिद्धिर्योगसिद्धिःपरामृता ॥ मैत्रीकृन्मित्रनेत्राच रक्षोघ्नीदैत्यतापनी ॥ १० ॥ स्तम्भनीमोहनीमायाबहुमायाबलोत्कटा ॥ उच्चाटनीमहोल्कास्या दनुजेन्द्रक्षयङ्करी ॥ ११ ॥ क्षेमंकरीसिद्धिकरीछिन्नमस्ताशुभानना ॥ शाकम्भरीमोक्षलक्ष्मीस्त्रिवर्गफलदायिनी ॥ १२ ॥ वार्तालीजम्भलीक्लिन्नाअश्वारूढासुरेश्वरी ॥ ज्वालामुखीप्रमृतयोनवकोट्योमहाबलाः ॥ १३ ॥ बलानिबलिनांताभिर्दानवानांस्वलीलया ॥ संक्षिप्तानिजगन्तीवप्रलयानलहेतिभिः ॥१४॥ तावत्सदुर्गोदैत्येन्द्रःपयोदान्तरतोबली ॥ चकारकरकावृष्टिंवात्यावेगवतींबहु ॥१५॥ ततोभगवतीदेवी शोषणास्त्रप्रयोगतः ॥ वृष्टिंनिवारयामासवर्षोपलमयींक्षणात् ॥ १६ ॥ योषिन्मनोरथवतीषण्ढंप्राप्य यथाऽफला ॥ सादैत्यकरकावृष्टिर्देवींप्राप्यतथाभवत् ॥१७॥ अथदैतेयराजेन बाहुमङ्कर्षकोपतः ॥ उत्पाट्यशैलशिखरं परिक्षिप्तंनभोङ्गणात् ॥ १८ ॥ अद्रेःशृङ्गंसुविस्तीर्णं मापतत्परिवीक्ष्यसा ॥ शतकोटिप्रहारेण कोटिशःशकलंव्यधा

किया ॥ १५ ॥ तदनन्तर ऐश्वर्य्यवती देवीजीने शोषण अस्त्रके प्रयोगसे याने उसके चलानेसे पानीपत्थरकी वृष्टिको क्षणभरमें निवारण करदिया ॥ १६ ॥ जैसे मनोरथवती स्त्री नपुंसकको प्राप्तहोकर फलसे हीनहोतीहै वैसेही वह जलपत्थरोंकी वर्षा देवीजीको प्राप्तहोकर विफलहुई ॥ १७ ॥ उसकेबाद दैत्यराजने बाहु संताड़न पूर्वक क्रोधसे पर्वतके शृंगको उखाड़कर आकाशके आंगनसे नीचेमें बहाया ॥१८॥ और उस आतेहुये बहुत विस्तारयुक्त उस पर्वत शिखरको सब ओरसे देखकर उन

देवीजी ने वज्रके प्रहार से खंडित करडाला ॥ १९ ॥ व संग्राम में शीघ्रही हाथी होकर और कुंडलों से विराजित मुंडको बारबार डुलाकर वह दैत्य उन देवीजी के सम्मुख दौड़ा ॥ २० ॥ वेगसे आतेहुये पर्वत के समान आकारवाले उस हाथी को देखकर भगवतीने पाशसे बांधकर तलवारसे शुंडादंड के दोखंड करडाले ॥ २१ ॥ तदनन्तर देवीजी से काटीगई सूंडवाले उसहाथी ने अत्यन्त चिघड़कर और कुछभी न करसकेहुये के भावको प्राप्तहोकर भैंसाकी देह धरलिया ॥ २२ ॥ व उस बलवान् ने खुरों के घातसे सब पृथ्वी को कंपनसमेत करदिया और उसने अपने शृंगों से उखाड़कर बहुतसे पर्वतों को फेंक दिया ॥ २३ ॥ व निःश्वासकी वायुसे

त ॥ १९ ॥ आन्दोल्यमौलिमसकृत्कुण्डलाभ्यांविराजितम् ॥ गजीभूयाशुदुद्राव तान्देवींसमरेऽसुरः ॥ २० ॥ शैलाकारंतमायान्तं दृष्ट्वाभगवतीगजम् ॥ बद्ध्वापाशेनजवतः खड्गेनकरमच्छिनत ॥ २१ ॥ ततोत्यन्तंसचीत्कृत्य देव्याकृत्तकरःकरी ॥ अकिंचित्करतांप्राप्य माहिषंवपुराददे ॥ २२ ॥ अचलांसचलांसर्वांसचक्रेखुरघाततः ॥ शिलोच्चयांश्चबहुशः शृङ्गाभ्यांसोक्षिपद्बली ॥ २३ ॥ निश्वासवातनिहताः पेतुरुर्व्यांमहाद्रुमाः ॥ उद्वेलिताःसमभवन्सप्तापिजलराशयः ॥ २४ ॥ महामहिषरूपेण तेनत्रैलोक्यमण्डपः ॥ आन्दोलितोतिबलिना युगान्तेवात्ययायथा ॥ २५ ॥ ब्रह्माण्डमप्यकाण्डेन तद्भयेनसमाकुलम् ॥ दृष्ट्वाभगवतीक्रुद्धा त्रिशूलेनजघानतम् ॥ २६ ॥ त्रिशूलघातविभ्रान्तः पतित्वापुनरुत्थितः ॥ तंत्यक्त्वामाहिषंवेषमऽभूद्बाहुसहस्रभृत् ॥ २७ ॥ सदुर्गोनितरांदुर्गो विबभौसमराजिरे ॥ आयुधानांसहस्राणि बिभ्रत्कालान्तकोपमः ॥ २८ ॥ अथतूर्णंसदैत्येन्द्रस्तान्देवींरणकोविदाम् ॥ महाबलःप्रगृह्याशु नीतवान्गगनाङ्गण

निहतहुये बड़े बड़े वृक्ष भूमि में गिरपड़े और सातो समुद्रभी तटोंपरउमड़नेवाले होगये ॥ २४ ॥ व बड़े बलवान् उस महामहिषरूपने प्रलयकाल में वायु समूह के समान त्रिलोकमंडपको डगमग डगमग डुलाया ॥ २५ ॥ और अनवसर उसके डरसे ब्रह्मांडको व्याकुल देखकर भगवतीने त्रिशूलसे उसको मारा ॥ २६ ॥ तब त्रिशूलके घातसे घूमाहुआ भूमि में गिरकर फिर उठा और उस माहिषरूपको त्यागकर भारी हजारभुजधारी होगया ॥ २७ ॥ और हजारों आयुधों को धारताहुआ कालांतक के समान अत्यन्तदुर्गम वह दुर्गदैत्य संग्रामआंगन में विशेषता से सोहताभया ॥ २८ ॥ अनन्तर उस बड़े बली दैत्येन्द्र ने चपलतासे संग्रामपंडिता उन

देवीजीको पकड़कर शीघ्रही आकाश आंगनको प्राप्तकिया ॥ २९ ॥ उसके बाद उसवेगवान् असुरने ऊंचे आकाशआंगनसे जगदम्बिकाको दूरछोड़कर क्षणभरमें बाण समूहोंसे घेरदिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर उसके बाणोंके मध्यगत अन्तरिक्षमें प्राप्तहुईदेवीजी महामेघोंकी पंक्तिमें टिकीहुई विद्युतमालाकीनाई सुशोभितहुई ॥ ३१ ॥ और उन देवीजी ने अपने बाणसमूहों से उस शरपञ्जर को अतिशयसंचलित कर याने हटाकर अनन्तर बड़े बाणसे उस दैत्य जनेश्वर का ताडन किया ॥ ३२ ॥ व उन देवीजी करके उस बड़े बाणसे हृदय में विद्ध और विशेषता से सब ओर घूमती हुई आंखोंवाला वह बहुत विह्वल होकर पृथिवी में प्राप्तहुवा ॥ ३३ ॥ जो कि महारक्त-

म् ॥२९॥ ततोनभोङ्गणाद्दूरात्क्षिप्त्वासजगदम्बिकाम् ॥ क्षणात्कलम्बजालेनच्छादयामासवेगवान् ॥३०॥ अथान्तरिक्षगादेवी तस्यमार्गणमध्यगा ॥ विद्युन्मालेवविबभौ महाभ्रपटलीधृता ॥ ३१ ॥ तंविधूयशरव्रातं निजेषुनिकरैरलम् ॥ महेषुणाथविव्याध सातन्दैत्यजनेश्वरम् ॥ ३२ ॥ हृदिविद्धस्तयादेव्या सचतेनमहेषुणा ॥ व्याघूर्णमाननयनःक्षितिमापातिविह्वलः ॥ ३३॥ महारुधिरधाराभिः स्रवन्तींचप्रवर्तयन् ॥ तस्मिन्निपतितेदुर्गे महादुर्गपराक्रमे ॥ ३४ ॥ देवदुन्दुभियोनेदुःप्रहृष्टानिजगन्तिच ॥ सूर्याचन्द्रमसौसाग्नीतेजोनिजमवापतुः ॥ ३५ ॥ पुष्पवृष्टिंप्रकुर्वन्तः प्राप्तादेवा महर्षिभिः ॥ तुष्टुवुश्चमहादेवीं महास्तुतिभिरादरात् ॥ ३६ ॥ देवाऊचुः ॥ नमोदेविजगद्धात्रि जगत्रयमहारणे ॥ महेश्वरमहाशक्ते दैत्यद्रुमकुठारिके ॥ ३७ ॥ त्रैलोक्यव्यापिनिशिवेशङ्खचक्रगदाधरि ॥ स्वशार्ङ्गव्यग्रहस्ताग्रे नमो

धाराओं से नदी को प्रवर्त्तित करता हुवा टिकाथा उस बड़ेदुर्गपराक्रमवाले दुर्गके नीचे गिरतेही ॥ ३४ ॥ देवों के नगारे बाजनेलगे और जगत् अतिशय आनंदितहुये व अग्नि समेत सूर्य्य और चन्द्रमाने अपने तेज कोपाया ॥ ३५ ॥ और फूलोंकी वर्षाकरतेहुये देवतालोग महर्षियो के साथ प्राप्तहोकर बडी स्तुतियों से आदरपूर्वक महादेवीजी की स्तुति करने लगे ॥ ३६ ॥ देव बोले कि हे जगत् की पोषिणि (विष्णु की शक्ति) त्रिलोक के जन्मकी महास्थानरूपे ! (सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माकी शक्ति) महेश्वरमहाशक्ते ! (संहारकारिणि) दैत्य वृक्षों के काटने को कुठार रूपे ! तुम्हारे लिये नमस्कार है ॥ ३७ ॥ हे त्रैलोक्यव्यापिनि ! कल्याण रूपिणि ! शङ्ख चक्र गदा

रूपाहो व तुमही सर्वमन्त्रमयीहो और ब्रह्मादि जन तुमसेही समुत्पन्न हैं ॥ ४७ ॥ हे अर्थ धर्मादि चतुर्वर्ग फलोंकी उदयकारिणि ! सब जगत् की निधान रूपिणि ! तुमही अर्थादि चारपुरुषार्थरूपाहो व यह सब विश्व (जगत्) तुमसे उत्पन्न होताहै और यह सब तुममेंही टिकाहै ॥ ४८ ॥ जो कि स्थूल व सूक्ष्म रूप दृश्य (पृथिव्यादि) और अदृश्य (आकाशादि) है उसमें तुम शक्तिरूपसे बर्त्ततीहो इससेतुम्हारे विना कुछ भी कहीं नहीं है ॥ ४९ ॥ हे निरन्तरप्रणतपालिनि ! मातः ! हे देवि ! जोकि स्वभावसेही ज्ञानसिद्ध ब्रह्मादिदेवों में दैत्यसैन्यों को अर्पणकरनेवाला याने पुरुषों से अजेय, बड़ाभारी दैत्येन्द्रदुर्ग है उसको विशेषता से बधकर आज

का ॥ सर्वमन्त्रमयीत्वंवै ब्रह्माद्यास्त्वत्समुद्भवाः ॥ ४७ ॥ चतुर्वर्गात्मिकात्वंवै चतुर्वर्गफलोदये ॥ त्वत्तःसर्वमिदंविश्वंत्वयिसर्वंजगन्निधे ॥ ४८ ॥ यद्दृश्यंयददृश्यंच स्थूलसूक्ष्मस्वरूपतः ॥ तत्रत्वंशक्तिरूपेण किंचिन्नत्वदृतेक्वचित् ॥ ४९ ॥ मातस्त्वयाद्यविनिहत्यमहासुरेन्द्रं दुर्गन्निसर्गविबुधार्पितदैत्यसैन्यम् ॥ त्राताःस्मदेविसततंनमतांशरण्ये त्वत्तोऽपरःकइहयंशरणंव्रजामः ॥ ५० ॥ लोकेतएवधनधान्यसमृद्धिभाजस्तेपुत्रपौत्रसुकलत्रसुमित्रवन्तः ॥ तेषांयशःप्रसरचन्द्रकरावदातं विश्वंभवेद्भवसियेषुसुदृक्त्वमीशे ॥ ५१ ॥ त्वद्भक्तिचेतसिजनेनविपत्तिलेशः क्लेशःक्वानुभवतीनतिकृत्सुपुंसु॥ त्वन्नामसंस्मृतिजुषांसकलायुषांक भूयःपुनर्जनिरिहत्रिपुरारिपत्नि ॥ ५२ ॥ चित्रंयदत्रसमरेसहिदुर्गदैत्यस्त्वद्दृष्टिपात

तुमसे हमलोग रक्षितहुये यह प्रसिद्ध है और अन्य कौन तुमसे अधिक है जिसकीशरणको जावें याने आपसे अधिक कोई नहीं है इससे हम सब आपके शरणागतहैं ॥ ५० ॥ हे ईश्वरि ! जिन लोगों में तुम शोभनदृष्टिवाली होतीहो वेही लोग लोकमें धनधान्य समृद्धिसेवी हैं व वेही पुत्रपौत्र सुन्दरी स्त्री और सुमित्रवाले हैं और यह समस्त जगत् उनकेही सुयशचन्द्रमाकी चारोओर पसरतीहुई किरणों से उज्ज्वल होवे है ॥ ५१ ॥ हे त्रिपुरारिपत्नी ! तुम्हारी भक्तिसेयुक्त चित्तवाले जनमें विपत्तियोंका लेश नहीं हैं व आपके नमस्कारकर्त्ता पुरुषों मे क्लेश कहां है और तुम्हारे नामोंकी परमपद्धतिके सेवी सम्पूर्ण आयुवाले लोगों की वारंवार फिर उत्पत्ति इस संसारमें कहांहै याने नहीं है यह निश्चितहै ॥ ५२ ॥ और यह विचित्रहै जोकि इस संग्राम में वह दुर्गदैत्यभी अमृतनिधान के समान तुम्हारे दृष्टिपातको अधिकतासे पाकर मृत्यु

धारिणि ! और अपने शार्ङ्गधन्वा से व्यग्रहस्ताग्रवाली, विष्णुस्वरूपिणि ! ॥ ३८ ॥ व हे अनादि सिद्ध प्राचीन जनोंके वचनों की जन्म भूमे ! या उनके अगोचरे (परे) सर्वसृष्टिकारिणि ! हंसवाहिनि ब्रह्मरूपिणि ! तुम्हारेलिये नमस्कारहै ॥ ३९ ॥ व तुम इन्द्रकी तुम कुबेरकी तुम वायुकी तुम वरुणकी तुम यमकी तुम निर्ऋति की तुम ईशानकी और तुम अग्नि की शक्ति हो ॥ ४० ॥ और हे परमेश्वरि ! तुमही चन्द्रमा की चन्द्रिकाहो व तुमही सूर्य्य की प्रभाशक्ति हो व तुमही सब देवमयी शक्ति और अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाली हो ॥ ४१ ॥ व तुम गौरीहो तुम सावित्रीहो तुम गायत्रीहो तुम सरस्वतीहो तुम प्रकृतिहो तुम मति याने महत्तत्त्वहो और तुम अहंकार

विष्णुस्वरूपिणि ॥ ३८ ॥ हंसयानेनमस्तुभ्यंसर्वसृष्टिविधायिनि ॥ प्राचांवाचांजन्मभूमे चतुराननरूपिणि ॥ ३९ ॥ त्वमैन्द्रीत्वंचकौबेरी वायवीत्वंत्वमम्बुपा ॥ त्वंयामीनैर्ऋतीत्वंच त्वमैशीत्वंचपावकी ॥ ४० ॥ शशाङ्ककौमुदीत्वं चसौरीशक्तिस्त्वमेवच ॥ सर्वदेवमयीशक्तिस्त्वमेवपरमेश्वरी ॥ ४१ ॥ त्वंगौरीत्वंचसावित्रीत्वंगायत्रीसरस्वती ॥ प्रकृतिस्त्वंमतिस्त्वंच त्वमहंकृतिरूपिणी ॥ ४२ ॥ चेतःस्वरूपिणीत्वंवैत्वंसर्वेन्द्रियरूपिणी ॥ पञ्चतन्मात्ररूपात्वंमहाभूतात्मिकेम्बिके ॥ ४३ ॥ शब्दादिरूपिणीत्वंवै करणानुग्रहात्वमु ॥ ब्रह्माण्डकर्त्रीत्वं देविब्रह्माण्डान्तस्त्वमेवहि ॥ ४४ ॥ त्वंपरासिमहादेवि त्वंचदेविपरापरा ॥ परापराणांपरमा परमात्मस्वरूपिणी ॥ ४५ ॥ सर्वरूपात्वमीशानि त्वमरूपासिसर्वगे ॥ त्वंचिच्छक्तिर्महामाये त्वंस्वाहात्वंस्वधामृते ॥ ४६ ॥ वषड्वौषट्स्वरूपासि त्वमेवप्रणवात्मि

रूपिणीहो ॥ ४२ ॥ हे अम्बिके ! तुमही अंतःकरणस्वरूपिणीहो तुमही सब इंद्रियरूपिणीहो तुमही पंचतन्मात्र याने अपंचीकृत सूक्ष्मपंचतत्त्व रूपाहो और तुमही आकाशादि स्थूल पंचमहाभूत स्वरूपाहो ॥ ४३ ॥ हे देवि ! तुमही शब्दादि याने शब्द स्पर्श रूप रस और गन्धरूपिणीहो तुमही इंद्रियों की अधिष्ठात्री देवता रूपाहो तुमही ब्रह्मांड की करनेवालीहो और तुमही ब्रह्मांडका अन्त या ब्रह्मांडरूपिणीहो ॥४४ ॥ हे क्रीडाकारिणि ! महादेवि ! तुम परा (ईश्वरी) हो व तुम पर (महत्तत्त्वादि) और अपर (उनके कार्य्य) तद्रूपिणीहो व तुमहीपर अपरोंसे परे परमात्मस्वरूपिणीहो ॥ ४५ ॥ हे सर्वगे ! महामाये ! अमृते ! ईशानि ! तुम सब रूपवालीहो व तुम अरूपा (निराकार) हो व तुम चेतनशक्ति (ज्ञानैकस्वरूपा) हो व तुम स्वाहा हो और तुम स्वधाहो ॥ ४६ ॥ व तुमही वषट् और वौषट्स्वरूपाहो तुमही ओंकार

की अधीनताको प्राप्तहुआ हे भवानि! हम लोगोसे जानागया कि तुम्हारी दृष्टिके पथ में पराहुआ दुष्टभी दुर्गतिको नहीं प्राप्तहोता है याने मुक्त होजाताहै ॥ ५३ ॥ व इस लोकमें तुम्हारे अग्निसमान शस्त्रो में पांखीभावको प्राप्तहुयेभी दैत्यलोग सूर्य्यमण्डल को भेदनकर स्वर्गको जाते हैं जिससे संतजन दुष्टोंमें भी विरुद्धबुद्धिवाले नहीं होवे हैं और साधुओं मे स्नेहियों के समान अपनी गलीको उपदेश करते हैं ॥ ५४ ॥ हे मृडानि! नमस्कार करतेहुये हम लोगोंकी पूर्वमें सदैव सब ओरसे तुम रक्षाकरो व हे भवानि! तुम प्रतिक्षण विपत्तिसे रक्षाकरो व हे त्रिपुरतापनपालि! तुम पश्चिमदिशा में रक्षाकरो और हे महेशि! तुम उत्तरमें अपने भक्तजनोंकी रक्षाकरो ॥ ५५ ॥ हे ब्र-

मधिगम्यसुधानिधानम् ॥ मृत्योर्वशत्वमगमद्विदितंभवानिदुष्टोपितेदृशिगतःकुगतिन्नयाति॥५३ ॥ त्वच्छस्त्रवह्निशलभत्वमिताअपीहदैत्याःपतङ्गरुचिमाप्यदिवंव्रजन्ति॥सन्तःखलेष्वपिनदुष्टधियोयतःस्युःसाधुष्विवप्रणयिनःस्वपथन्दिशन्ति ॥ ५४ ॥ प्राच्यांमृडानिपरिपाहिसदानतान्नोयाम्यामवप्रतिपदंविपदोभवानि ॥ प्रत्यग्दिशित्रिपुरतापनपालिरक्ष त्वंपाह्युदीचिनिजभक्तजनान्महेशि ॥ ५५ ॥ ब्रह्माणिरक्षसततंनतमौलिदेशंत्वंवैष्णविप्रतिकुलम्परिपालयाधः ॥ रुद्राग्निनैर्ऋतिमदागतिदिक्षुपान्तुमृत्युञ्जयात्रिनयनात्रिपुरात्रिशक्तयः ॥५६॥ पातुत्रिशूलममलेतवमौलिजान्नोभालस्थलंशशिकलाभृदुमाभ्रुवौच ॥ नेत्रेत्रिलोचनवधूर्गिरिजाचनासामोष्ठञ्जयाचविजयात्वधरप्रदेशम् ॥ ५७॥ श्रोत्रद्वयंश्रुतिरवादशनावलिंश्रीश्चण्डीकपोलयुगलंरसनाञ्चवाणी ॥ पायात्सदैवचिबुकञ्जयमङ्गलानःकात्यायनीवदनमण्डलमेवस

ह्माणि! तुम निरन्तर प्रणतजनोंके मस्तकदेशकी रक्षाकरो हे वैष्णवि! तुम प्रतिभक्त कुलकी नीचेसे सब ओर रक्षाकरो व मृत्युंजया, त्रिनयना त्रिपुरा और त्रिशक्ति (सृष्टि स्थिति और प्रलयमें तीन शक्तिवाली) ये चारो देवियां क्रमसे ईशान, अग्नि, नैर्ऋत्य और वायुकी दिशाओं में रक्षाकरें ॥ ५६ ॥ हे अमले! तुम्हारा त्रिशूल हमारे मुण्डो में उपजेहुये बालोंकी रक्षाकरें व चन्द्रकलाधारिणी भालस्थलकी, उमा भौहोंकी, त्रिलोचन वधू नेत्रोंकी, गिरिजा नासिकाकी, जया ओठकी और विजया अधर याने नीचेके ओठप्रदेशकी रक्षाकरे ॥ ५७ ॥ व श्रुति हमारे दोनों कानोंकी, श्री दंत पंक्तिकी, चण्डी दोनों कपोलोंकी वाणी रसना (जिह्वा) की जयमंगला चिबुककी,

और कात्यायनी सब मुखमण्डलकी भी सदैव रक्षाकरे ॥ ५८ ॥ व यहां नित्य नमस्कार करतेहुये हमारे कंठप्रदेशकी नीलकण्ठी, व कृकाटिका याने ग्रीवा और शिरके जोडसे पीछे पृष्टवंशके ऊपरभागकी वाराहीशक्ति, व स्कन्धदेशकी कौर्मी व भुजदण्ड की ऐन्द्री व हस्तफलककी पद्मा सदैव रक्षाकरे ॥ ५९ ॥ व कमलजा हमारे हाथोंकी अँगुलियोंकी, विरजा नखोंकी, सूर्यमंडलगा अन्धकारविनाशिनी कांखों के बीचकी, स्थलचरी वक्षःस्थलकी धरित्री हृदयकी और रात्रिंचरघ्नी दोनों कोखोंकी रक्षाकरे ॥ ६० ॥ उसके बाद जगदीश्वरी हमारी उदरकन्दराकी आकाशगामिनी नाभिकी और अजापृष्ठदेशकी सदैव रक्षाकरे व विकटादेवी कटिकी परमा हमारे कूलोंकी कार्त्तिकेय

वम् ॥ ५८ ॥ कण्ठप्रदेशमवतादिहनीलकण्ठीभूदारशक्तिरनिशञ्चकृकाटिकायाम् ॥ कौर्म्यंसदेशमनिशम्भुजदण्ड मैन्द्रीपद्माचपाणिफलकंनतिकारिणां नः ॥ ५९ ॥ हस्ताङ्गुलीःकमलजाविरजानखांश्चकक्षान्तरन्तरणिमण्डलगात मोघ्नी ॥ वक्षःस्थलंस्थलचरीहृदयन्धरित्रीकुक्षिद्वयन्त्ववतुनःक्षणदाचरघ्नी ॥ ६० ॥ अव्यात्सदोदरदरीञ्जगदीश्वरी नोनाभिंनभोगतिरजात्वथपृष्ठदेशम् ॥ पायात्कटिञ्चविकटापरमास्फिचौनोगुह्यंगुहारणिरपानमपायहन्त्री ॥ ६१ ॥ ऊरुद्वयञ्चविपुलाललिताचजानूजङ्घेजवाऽवतुकठोरतरात्रगुल्फौ ॥ पादौरसातलचरांगुलिदेशमुग्राचान्द्रीनखान्पदतल न्तलवासिनीच ॥ ६२ ॥ गृहंरक्षतुनोलक्ष्मीःक्षेत्रंक्षेमकरीसदा ॥ पातुपुत्रान्प्रियकरीपायादायुःसनातनी ॥ ६३ ॥ यशः पातुमहादेवीधर्मम्पातुधनुर्धरी ॥ कुलदेवीकुलम्पातुसद्गतिंसद्गतिप्रदा ॥ ६४ ॥ रणेराजकुलेद्यूतेसंग्रामेशत्रुसङ्कटे ॥ गृहे वनेजलादौचशर्वाणीसर्वतोऽवतु ॥ ६५ ॥ इतिस्तुत्वाजगद्धात्रीम्प्रणेमुश्चपुनःपुनः ॥ सर्वेसवासवादेवाःसर्षिगन्धर्वचार

कीमाता गुह्य (लिंग) की और अपायहंत्री गुदाकी रक्षाकरे ॥ ६१ ॥ व विपुला ऊरुद्वयकी ललिता दोनों जानुवोंकी जवा जंघोंकी व यहां कठोरतरा गुल्फोंकी रसातलचरी पावोंकी उग्रा अंगुलिदेशकी चांद्री नखोंकी और तलवासिनी पदतलोंकी रक्षा करे ॥ ६२ ॥ व लक्ष्मी हमारे घरकी रक्षाकरे व क्षेमकरी क्षेत्रकी सदैव रक्षाकरे व प्रियकरी पुत्रोंकी रक्षाकरे और सनातनी आयुकी रक्षाकरे ॥ ६३ ॥ व महादेवी सुयशकी रक्षाकरे धनुर्धरी धर्मकी रक्षाकरे कुलदेवी कुलकी रक्षाकरे और सद्गतिप्रदा सुगतिकी रक्षाकरे ॥ ६४ ॥ व संग्राम राजकुल द्यूत (जुवा) युद्ध शत्रुओ से संकट घर वन और जलादि मे सर्वत्र शर्वाणीजी रक्षाकरे ॥ ६५ ॥ इस भांति जगदम्बाकी स्तुतिकर

ऋषि गन्धर्व और चारणोंसेसंयुत व इन्द्रसमेत सब देवोंने बारबार प्रणामकिया ॥६६॥ तदनन्तर सन्तुष्टहुई जगन्माताने उन देवसत्तमोंसे कहा कि सब देवता पहलेकीनाईं यथावत् अपने अधिकारोंकी शासनाकरें ॥ ६७ ॥ और हे सुरोत्तमो! अन्वयवाली इस स्तुतिसे बहुतही सन्तुष्टहुई मैं अन्यवरको दूंगी तुम लोग उसको सुनो ॥ ६८ ॥ दुर्गाजी बोलीं कि भक्तिसे पवित्र जो मनुष्य इस स्तुति से मेरी स्तुति करेगा उसकी विपत्ति और रोगादिकोंको मैं क्षण क्षणमें नष्टकरूंगी ॥ ६९ ॥ व जो मनुष्य इस स्तोत्र के कवच को सबओर से धारेगा उस वज्र पञ्जरगामी कोभी कहीं डर नहीं है ॥ ७० ॥ संग्राममें अत्यन्त दुर्गम दुर्ग दैत्यके मारनेसे आजसे लगाकर मेरानाम दुर्गा इसभांति

णाः ॥ ६६ ॥ ततस्तुष्टाजगन्मातातानाहसुरसत्तमान् ॥ स्वाधिकारान्सुराःसर्वेशासतुप्राग्यथायथा ॥ ६७ ॥ तुष्टाहमनयास्तुत्यानितरान्तुयथार्थया ॥ वरमन्यम्प्रदास्यामितच्छृणुध्वंसुरोत्तमाः ॥ ६८ ॥ दुर्गोवाच ॥ यःस्तोष्यतितुमांभक्त्यानरःस्तुत्यानयाशुचिः ॥ तस्याहंनाशयिष्यामिविपदश्चपदेपदे ॥ ६९ ॥ एतत्स्तोत्रस्यकवचंपरिधास्यतियोनरः ॥ तस्यकचिद्भयंनास्तिवज्रपञ्जरगस्यहि ॥ ७० ॥ अद्यप्रभृतिमेनामदुर्गेतिख्यातिमेष्यति ॥ दुर्गदैत्यस्यसमरेपातनादतिदुर्गमात् ॥ ७१ ॥ येमांदुर्गांशरणगानतेषान्दुर्गतिःक्वचित् ॥ दुर्गास्तुतिरियंपुण्यावज्रपञ्जरसञ्ज्ञिका ॥ ७२ ॥ अनयाकवचंकृत्वामाबिभेतुयमादपि ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्चशाकिनीडाकिनीगणाः ॥७३॥ झोंटिङ्गाराक्षसाःक्रूराविषसर्पाग्निदस्यवः ॥ वेतालाश्चापिकङ्कालग्रहाबालग्रहाअपि ॥ ७४ ॥ वातपित्तादिजनितास्तथाचविषमज्वराः ॥ दूरादेवपलायन्तेश्रुत्वास्तुतिमिमांशुभाम् ॥७५॥ वज्रपञ्जरनामैतत्स्तोत्रन्दुर्गाप्रशंसनम् ॥ एतत्स्तोत्रकृतत्राणेवज्रादपिभयंनहि ॥७६॥

की प्रसिद्धि को प्राप्तहोवेगा ॥ ७१ ॥ व जे मुझदुर्गा के शरणागतहैं उनकी दुर्गति कहीं नहीं है औ वज्रपंजरनामवाली यह दुर्गाकीस्तुति महामनोज्ञ या पुण्यबढ़ानेवाली है ॥ ७२ ॥ इससे कवचकर यमराज से भी मतडरे व भूत प्रेत पिशाच शाकिनी और डाकिनीगण ॥ ७३ ॥ व झोंटिंग राक्षस क्रूरजन्तु विष सर्प अग्नि चोर वेताल (भूतभेद) कंकाल ग्रह (पिशाच भेद) और बालग्रहभी (जो कि पूतनादि नामोंसे प्रसिद्धहैं) ॥ ७४ ॥ व वात पित्तादिकों से उपजेहुये रोग तथा विषमज्वर इस मंगलमयी स्तुतिको सुनकर दूरही से भागजाते हैं ॥ ७५ ॥ दुर्गाजी का प्रशंसन यह स्तोत्र वज्र पंजर नामक है व इस स्तोत्रसे रक्षा करनेपर वज्रसेभी डरनहीं है ॥ ७६ ॥

और जो कि आठबार जपेहुये इससे अभिमन्त्रित कर पानी पीवे उसके उदरगत पीड़ाकी कहींभी सम्भावना नहीं होवेगी ॥७७॥ व इसके अभिमन्त्रणसे गर्भपीड़ाभी कभी न होवेगी और इस स्तोत्र से अभिमन्त्रित पानी के पीने से बालकों की परमशान्ति होवेगी ॥ ७८ ॥ व जहां जहां इस स्तोत्रका समीप होवेगा वहां सर्वत्र मुझसमेत ये सर्वत्र मेरी शक्तियां ॥ ७९ ॥ मेरी आज्ञासे मेरे भक्तोंकी सब भावसे रक्षा करेंगी इस प्रकार देवों को वर देकर देवीजी उस समय अन्तर्धानहुई ॥ ८० ॥ और वे सबदेव भी आनन्दसे अपने अपने स्वर्गको चलेगये श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे महामुने ! इसभांति उन देवीजीका दुर्गा नाम हुआ और जैसे वह काशी में सेवने योग्यहैं उसको

अष्टजप्तेनचानेनयोभिमन्त्र्यजलंपिबेत ॥ तस्योदरगतापीडाकापिनोसम्भविष्यति ॥७७॥ गर्भपीडातुनोजातुभविष्यत्यभिमन्त्रणात् ॥ बालानाम्परमाशान्तिरेतत्स्तोत्राम्बुपानतः ॥ ७८ ॥ यत्रसान्निध्यमेतस्यस्तवस्येहभविष्यति ॥ एतास्तुशक्तयःसर्वाःसर्वत्रसहितामया ॥ ७९ ॥ रक्षाम्परिकरिष्यन्तिमद्भक्तानांममाज्ञया ॥ इतिदत्त्वावरान्देवीदेवेभ्योन्तर्हितातदा ॥ ८० ॥ तेपिस्वर्गौकसःसर्वेस्वंस्वंस्वर्गंययुर्मुदा ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्थन्दुर्गाभवन्नामतस्यादेव्यामहामुने ॥ काश्यांसेव्यायथासाचतच्छृणुष्ववदामिते ॥ ८१ ॥ अष्टम्याञ्चचतुर्दश्याम्भौमवारेविशेषतः ॥ सम्पूज्यासततङ्काश्यान्दुर्गादुर्गतिनाशिनी ॥ ८२ ॥ नवरात्रंप्रयत्नेनप्रत्यहंसासमर्चिता ॥ नाशयिष्यतिविघ्नौघान्सुमतिञ्चप्रदास्यति ॥ ८३ ॥ महापूजोपहारैश्चमहाबलिनिवेदनैः ॥ दास्यत्यभीष्टदासिद्धिंदुर्गाकाश्यांनसंशयः ॥ ८४ ॥ प्रतिसंवत्सरन्तस्याः कार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ शारदंनवरात्रञ्चसकुटुम्बैःशुभार्थिभिः ॥ ८५ ॥ योनसांवत्सरींयात्रान्दुर्गायाःकुरुतेकुधीः ॥

सुनो मैं तुमसे कहताहूं ॥ ८१ ॥ अष्टमी चतुर्दशी और विशेषकर मंगलकेदिन व निरन्तर दुर्गतिनाशिनी दुर्गाजी काशीमें भलीभांति पूजनेयोग्यहैं ॥८२॥ व आश्विनशुक्ल नवरात्रमें प्रतिदिन बहुतयत्नसे पूजीहुई वह विघ्नसमूहोंको नशावेंगी और अच्छा ज्ञानदेवेंगी ॥८३॥ व बड़ीपूजा सामग्रियों और यहां पकान्न नैवेद्योंसे पूजीहुई अभीष्टदात्री दुर्गाजी काशी में सिद्धिको देवेंगी इसमें संशय नहीं है ॥ ८४ ॥ इसलिये प्रतिवर्ष शरदऋतुके नवरात्र पर्यन्त बड़े यत्न से कुटुम्बसमेत शुभार्थियों को उनकी यात्राकरना

चाहिये ॥ ८५ ॥ और जो दुर्बुद्धिजन काशी में दुर्गादेवीकी वार्षिकी यात्राको नहीं करताहै उसको क्षण क्षणमें हजारों विघ्न होवे हैं ॥ ८६॥ दुर्गाकुण्डमें स्नानकर और दुर्गार्त्तिहारिणी दुर्गाजीकी विधिवत् भलीभांति पूजाकर नर नवजन्मों के पापको संत्यागकरे ॥ ८७ ॥ और वह दुर्गाजी जिन शक्तियों के साथ सब ओर काशीकी रक्षा करती हैं वे कालरात्रि आदिशक्तियां बहुत यत्नसमेत मनुष्यों से भलीभांति पूजनीय हैं ॥ ८८ ॥ तथा अन्य भी जे नव शक्तियां हजारों उत्पातों से इस क्षेत्रकी रक्षा करती हैं वेही क्रमसे दिशाओंकी देवताये हैं ॥ ८९ ॥ शतनेत्रा, सहस्रास्या तथा अन्या अयुतभुजा व अश्वारूढ़ा, गजास्या, त्वरिता, शववाहिनी ॥ ९० ॥ व विश्वा और

काश्यांविघ्नसहस्राणितस्यस्युश्चपदेपदे ॥ ८६ ॥ दुर्गाकुण्डेनरःस्नात्वासर्वदुर्गार्तिहारिणीम् ॥ दुर्गांसम्पूज्यविधिवन्नवजन्माघमुत्सृजेत् ॥ ८७ ॥ सादुर्गाशक्तिभिःसार्धंकाशींरक्षतिसर्वतः ॥ ताःप्रयत्नेनसम्पूज्याःकालरात्रिमुखानरैः ॥ ८८ ॥ रक्षन्तिक्षेत्रमेतद्वैतथान्यानवशक्तयः ॥ उपसर्गसहस्रेभ्यस्तावैदिग्देवताःक्रमात् ॥ ८९ ॥ शतनेत्रासहस्रास्यातथायुतभुजापरा ॥ अश्वारूढागजास्याचत्वरिताशववाहिनी ॥ ९० ॥ विश्वासौभाग्यगौरीचसृष्टाःप्राच्यादिमध्यतः ॥ एतायत्नेनसम्पूज्याःक्षेत्ररक्षणदेवताः ॥ ९१ ॥ तथैवभैरवाश्चाष्टौदिक्ष्वष्टासुप्रतिष्ठिताः ॥ रक्षन्तिसततंकाशींनिर्वाणश्रीनिकेतनम् ॥ ९२ ॥ रुरुश्चंडोसिताङ्गश्चकपालीक्रोधनस्तथा ॥ उन्मत्तभैरवस्तद्वत्क्रमात्संहारभीषणौ ॥ ९३ ॥ चतुःषष्टिस्तुवेतालामहाभीषणमूर्तयः ॥ रुण्डमुण्डस्रजःसर्वेकर्त्रीखर्परपाणयः ॥ ९४ ॥ श्ववाहनारक्तमुखामहादंष्ट्रामहाभुजाः ॥ नग्नाविमुक्तकेशाश्चप्रमत्तारुधिरासवैः ॥ ९५ ॥ नानारूपधराःसर्वेनानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ तदाकारैश्चतद्भृ

सौभाग्यगौरी ये देवीजी से नियुक्त कीगई हुई क्षेत्ररक्षण देवतायें पूर्वादि दिशाओं और मध्यमें यत्नसे भलीभांति पूजने योग्यहैं ॥ ९१ ॥ और वैसेही आठों दिशाओं में थापेहुये आठो भैरव मोक्ष लक्ष्मी के स्थानरूप काशीक्षेत्रकी निरन्तर रक्षा करते हैं ॥ ९२ ॥ रुरु, चण्ड असितांग व कपाली तथा क्रोधन वैसेही उन्मत्तभैरव व संहार भैरव और भीषण ये क्रमसे पूर्वादि दिशाओंमें टिकेहैं ॥ ९३ ॥ व चौंसठवेताल जेकि सब महाभयंकररूप व रुण्डमुण्ड मालावाले व छूरी या कैंची और खपरीको हाथोंमें लियेहैं ॥ ९४ ॥ व श्वानोंको वाहन कियेहुये लालमुखवाले महादंष्ट्र महाभुज नग्न व बालोंको छोरेहुये और रुधिररूप आसव याने मदकारक पानों से प्रमत्तहैं ॥ ९५ ॥

व जेकि करोड़ों याने अपरिमित सब अनेक रूपधारी और अनेकप्रकारके शस्त्रास्त्र हाथवाले व उनके आकारके समान शरीरधारी उनके भृत्यों (सेवकों) से सब ओर घिरेहैं ॥ ९६ ॥ "उनमें से कुछेक बेतालों के नाम कहेजाते हैं" कि विद्युज्जिह्व, ललज्जिह्व, क्रूरमुख, क्रूरलोचन, उग्र, विकटदंष्ट्र, वक्रमुख, वक्रनासिक ॥ ९७ ॥ जम्भक, जृम्भणमुख, ज्वालानेत्र, वृकोदर, गर्त्तनेत्र, महानेत्र, तुच्छनेत्र, अन्त्रमण्डन ॥ ९८ ॥ ज्वलत्केश, कम्बुशिर, खर्वग्रीव, महाहनु, महानास, लम्बकर्ण, कर्णप्रावरण और अनस ॥ ९९ ॥ हे मुने ! इत्यादि जे वेताल दुष्टोंके रक्तको प्यार करनेवालेहैं वे दुराचारियोंको त्रास देतेहुये सदैव सब ओरसे क्षेत्रकी रक्षाकरते हैं ॥ १०० ॥ व हे अगस्त्य

त्यैःकोटिशःपरिवारिताः ॥ ९६ ॥ विद्युज्जिह्वोललज्जिह्वःक्रूरास्यःक्रूरलोचनः ॥ उग्रोविकटदंष्ट्रश्चवक्रास्योवक्रनासिकः ॥ ९७ ॥ जम्भकोजृम्भणमुखोज्वालानेत्रोवृकोदरः ॥ गर्तनेत्रोमहानेत्रस्तुच्छनेत्रोन्त्रमण्डनः ॥ ९८ ॥ ज्वलत्केशः कम्बुशिराःखर्वग्रीवोमहाहनुः ॥ महानासोलम्बकर्णःकर्णप्रावरणोनसः ॥ ९९ ॥ इत्यादयोमुनेक्षेत्रंदुर्वृत्तरुधिरप्रियाः ॥ त्रासयन्तोदुराचारान्रक्षन्तिपरितःसदा ॥ १०० ॥ त्रैलोक्यविजयाद्याश्चज्वालामुख्यन्तगाश्चयाः ॥ शक्तयोऽत्रमयाख्याताभुनेकलशसम्भव ॥ १ ॥ ताःकाशींपरिरक्षन्तिचतुर्दिक्षूद्यतायुधाः ॥ ताःसमर्च्याःप्रयत्नेनमहाविघ्नप्रशान्तये ॥ २ ॥ भैरवारुरुमुख्याश्चमहाभयनिवारकाः ॥ संपूज्याःसर्वदाकाश्यांसर्वसंपत्तिहेतवः ॥ ३ ॥ विद्युज्जिह्वप्रभृतयोवेतालाउग्ररूपिणः ॥ अत्युग्रानपिविघ्नौघान्हरिष्यन्त्यर्चिताइह ॥ ४ ॥ तथाभूतावलीचात्रनानाभीषणरूपिणी ॥ उदायुधाऽवतिपुरींशतकोटिमितामुने ॥ ५ ॥ निर्वाणलक्ष्मीक्षेत्रस्यपालयित्रीपदेपदे ॥ एतावैदेवताःपूज्याःकाश्यांनिर्वाणकांक्षिभिः ॥ ६ ॥ श्रुत्वाध्या

मुने ! त्रैलोक्य विजयाआदि और ज्वालामुखी पर्यन्तवाली जिन शक्तियों को मैंने यहां कहाहै ॥ १ ॥ वे उद्यत आयुधोंवाली शक्तियां चारों दिशाओं में काशीकी सब ओरसे रक्षाकरती हैं और बड़े विघ्नोंके विनाश के लिये वे भलीभांति पूजने योग्यहैं ॥ २ ॥ और महाभयके निवारण कर्ता व सब सम्पत्तियो के कारण रुरुआदि भैरव काशीमें सदा संपूजनीयहै ॥ ३ ॥ व यहां पूजेहुये, उग्ररूपधारी, विद्युज्जिह्वादि वेताल अत्यन्त उग्र भी विघ्नसमूहोंको हरेंगे ॥ ४ ॥ और हे मुने ! वैसेही यहां आयुधों को उठायेहुई बहुत प्रकारके भयंकर रूपोंवाली शतकोटि परिमित भूतोंकी पंक्ति पुरीकी रक्षाकरती हैं ॥ ५ ॥ व क्षण क्षणमें मोक्षलक्ष्मी क्षेत्रकी पालिकाहै इसलिये काशीमें

मुक्ति चाहियोंसे ये प्रसिद्ध देवतायें पूजनीयहैं ॥ ६ ॥ बहुतप्रकारकी शक्तियोंसमेत महामनोज्ञ व दुर्गविजयनामक इस पुण्यअध्यायको सुनकर मनुष्य शीघ्रसंकटकोतरे-गा ॥७॥ व जोकि ये भैरव कहेगयेहैं और जे वेताल कहेगये हैं उनके नामोंको सुनकर नर विघ्नोंसे बाधित नहीं होताहै ॥ ८ ॥ और अदृश्यहुये वे भूतभी श्रोताजनके साथ इसआख्यानके पाठककी बहुतयत्नसे रक्षाकरते हैं ॥ ९ ॥ इसलिये महाविघ्न निवारनेवाला यह आख्यान बहुत यत्नसे काशी भक्ति परायण पुरुषोंको सुनना चाहिये ॥१०॥ व जिसके घरमेंभी पूजाहुआ यह टिकेगा उसकी हजारों विपत्तियों को देवतायें नशावेगी ॥ ११ ॥ और काशीमें जिसकी निश्चय से प्रीतिहै उससे बडा आदरकर वज्र

यमिमंपुण्यंनरोदुर्गजयाभिधम् ॥ नानाशक्तिसमायुक्तंदुर्गमाशुतरिष्यति ॥७॥ यएतेभैरवाःप्रोक्तायेवेतालाउदाहृताः॥ तेषांनामानिचाकर्ण्यनरोविघ्नैर्नदूयते ॥ ८ ॥ अदृष्टाअपितेभूताएतदाख्यानपाठकम् ॥ रक्षिष्यन्तिप्रयत्नेनसहश्रोतृजनेनच ॥९॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकाशीभक्तिपरैर्नरैः ॥ श्रोतव्यमिदमाख्यानंमहाविघ्ननिवारणम् ॥१०॥ गृहेपियस्यलिखितमेतत्स्थास्यतिपूजितम् ॥ तस्यापदांसहस्राणिनाशयिष्यन्तिदेवताः ॥११॥ काश्यांयस्यास्तिवैप्रेमतेनकृत्वाऽऽदरंगुरुम्॥ श्रोतव्यमिदमाख्यानंवज्रपञ्जरसन्निभम् ॥ ११२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

अगस्त्यउवाच ॥ त्रिलोचनंसमासाद्यदेवदेवःषडानन ॥ जगदम्बिकयायुक्तःकिंचकाराशुतद्वद ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मुनेकलशजाख्यामियत्पृष्टन्तन्निशामय ॥ विरजःसञ्ज्ञकंपीठंयत्प्रोक्तंसर्वसिद्धिदम् ॥२॥ तत्पीठदर्शनादेवविरजाजायतेनरः ॥ यत्रास्तितन्महालिङ्गंवाराणस्यांत्रिलोचनम् ॥३॥ तीर्थंपिलिपिलाख्यन्तद्युनग्रम्भासिविश्रुतम्॥सर्वतीर्थमयंती

पंजरके समान यह आख्यान सुनने योग्य है ॥ ११२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदुर्गाविजयोनामद्विसप्ततितमोध्यायः॥ ७२ ॥

दो० । तिरहत्तर अध्यायमें ॐकारेश महात्स्य । चौदहलिंगोंको कथन महिमा युक्त यथात्स्य ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे षण्मुख ! त्रिलोचनलिंगके समीपमें प्राप्तहो-कर जगदम्बासमेत महादेवजीने क्याकिया उसको शीघ्रही कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे कुम्भसम्भव मुने ! जो पूंछागया उसको मैं कहताहूं तुम सुनो जो कि सब सिद्धिदायक विरजनामक पीठ कहाहुआहै ॥ २ ॥ उस पीठके दर्शनसेही मनुष्य निर्मल होजाताहै व जहां काशी में वह त्रिलोचननामक महालिंग है ॥ ३ ॥

वह पिलपिलानामक तीर्थ गंगाजलमें प्रसिद्धहै और वह तीर्थ काशीमें सर्व तीर्थमय गायाजाताहै ॥ ४ ॥ हे मुने ! जोकि नदी पर्वत और वनोंसमेत देव ऋषि मनुज व उरग त्रिलोकके मध्यमें हैं वे जबसे उसमें हैं ॥ ५ ॥ तबसे लगाकर वह तीर्थ और वह त्रिलोचन लिंग भी त्रिविष्टप इस नामसे कहागयाहै इस कारणसे बडाभारी या बहुत पूजनीयहै ॥ ६ ॥ हे मुने ! पिनाकधन्वाधारी महादेवजीने जगदम्बाके आगेजैसे त्रिविष्टप लिंगकी महिमा कहाहै वैसेही उसको मैं कहताहूं ॥ ७ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि हे देवोंकेदेव, जगतों के नायक, सर्वफलदायक, सर्वगत, सबके देखनेवाले, सबके जनक, शर्व ! मैं कुछ पूंछतीहूं उसको कहो ॥ ८ ॥ कि कर्मबीज रोग हरनेको महौ-

र्थंतत्काश्यांपरिगीयते ॥ ४ ॥ विष्टपात्रितयान्तर्येदेवर्षिमनुजोरगाः ॥ससरित्पर्वतारण्याःसन्तितेतत्रयन्मुने ॥ ५ ॥ तदा रभ्यचतत्तीर्थंतच्चलिङ्गंत्रिलोचनम् ॥ त्रिविष्टपमितिख्यातमतोहेतोर्महत्तरम् ॥ ६ ॥ त्रिविष्टपस्यलिङ्गस्यमहिमोक्तःपि नाकिना ॥ जगज्जनन्याःपुरतोयथावच्मितथामुने ॥ ७ ॥ देव्युवाच ॥ देवदेवजगन्नाथशर्वसर्वदसर्वग ॥ सर्वदृक्सर्व जनककिञ्चित्पृच्छामितद्वद ॥ ८ ॥ इदन्तवप्रियंक्षेत्रंकर्मबीजमहौषधम् ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोगेहम्ममापिप्रीतिदम्महत् ॥ ९ ॥ यत्क्षेत्ररजसोप्यग्रेत्रिलोक्यपितृणायते ॥ तस्याखिलस्यमहिमाविष्वक्केनावगम्यते ॥ १० ॥ यानीहसन्ति लिङ्गानितानिसर्वाण्यमंशयम् ॥ निर्वाणकारणान्येवस्वयम्भून्यपितान्यपि ॥ ११ ॥ यद्यप्येवन्तथापीशविशेषंवक्तुमर्हसि ॥ काश्यामनादिसिद्धानिकानिलिङ्गानिशंकर ॥ १२ ॥यत्रदेवःसदातिष्ठेत्संवर्तेऽपिसवल्लभः ॥ यैरियंप्रथितिंप्राप्ताका

षधिरूप मुक्ति सम्बन्धिनी सम्पत्तिका स्थान महान् यह तुम्हारा प्यारा क्षेत्र मुझको भी प्रीतिदायकहै ॥ ९ ॥ जिस क्षेत्रकी धूलिके आगे त्रिलोक भी तृणके समान आच-रताहै उस सम्पूर्णका सर्वव्यापी माहात्म्य क्या किसीसे या ब्रह्मासे जानाजाता है ॥ १० ॥ व जे सब लिंग इसमें हैं वे निस्सन्देह मोक्षके कारणही हैं और वे भी स्वयम्भू लिंगोंके समानही हैं या आपही आप उपजे हैं ॥ ११ ॥ हे परमेश्वर, शंकर ! यद्यपि ऐसेही है तो भी आप विशेष कहने के योग्यहो कि कौन लिंग काशीमें अनादि-कालसे सिद्धहैं ॥ १२ ॥ जहां प्रलय समय भी शक्तिसमेत महादेवजी टिकेहै व जिन लिंगों से यह काशी मुक्तिपुरी इस प्रसिद्धिको प्राप्तहै व यहां जिनलिंगों के स्मरणसे

पापों का विनाश होवे है और दर्शन व स्पर्शनसे स्वर्ग और मोक्ष होवेहैं ॥ १४ ॥ हे विभो ! जन्मके बीच एकबार भी जिनके भलीभांति पूजने सेही काशी में सब लिंग निश्चित पूजित होजावें ॥ १५ ॥ हे कारुण्यामृतसागर, शंभो ! मेरे ऊपर अनुग्रहकर मुझसे इसको कहो क्योंकि मैं आप के चरणारविंदों में प्रणतहूं ॥ १६ ॥ हे विंध्यवृद्धिविघातक, सत्तम, अगस्त्यजी ! इसभांति उन देवीजी के सुवचन को सुनकर महेशजी ने महालिङ्गों को कहा ॥ १७ ॥ कि काशी में जिनके नामों के सुनने सेही पापों की राशियां क्षीण होजाती हैं और मोक्ष का कारण पुण्यसमूह प्राप्त कियाजाता है याने मिलता है ॥ १८ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे देवि !

शीमुक्तिपुरीतिच ॥ १३ ॥ येषांस्मरणतोप्यत्रभवेत्पापस्यसंक्षयः ॥ दर्शनस्पर्शनाभ्याञ्चस्यातांस्वर्गापवर्गकौ ॥१४॥ येषांसमर्चनादेवमध्येजन्मसकृद्विभो ॥ लिङ्गानिपूजितानिस्युःकाश्यांसर्वाणिनिश्चितम् ॥ १५ ॥ विधायमय्यनुक्रोशं कारुण्यामृतसागर ॥ एतदाचक्ष्वमेशम्भोपादयोःप्रणतास्म्यहम् ॥ १६ ॥ इत्याकर्ण्यमहेशानस्तस्यादेव्याःसुभाषितम्॥ कथयामासविन्ध्यारेमहालिङ्गानिसत्तम ॥ १७ ॥ यन्नामाकर्णनादेवक्षीयन्तेपापराशयः ॥ प्राप्यतेपुण्यसम्भारःका श्यांनिर्वाणकारणम् ॥ १८ ॥ देवदेवउवाच ॥ शृणुदेविपरंगुह्यंक्षेत्रेऽस्मिन्मुक्तिकारणम् ॥ इदंविदन्तिनैवापिब्रह्मना रायणादयः ॥ १९ ॥ असंख्यातानिलिङ्गानिपार्वत्यानन्दकानने ॥ स्थूलान्यपिचसूक्ष्माणिनानारत्नमयानिच ॥२०॥ नानाधातुमयानीशेदार्षदान्यप्यनेकशः ॥ स्वयम्भून्यप्यनेकानिदेवर्षिस्थापितान्यहो ॥ २१ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वय क्षरक्षोर्चितान्यपि ॥ असुरोरगमर्त्यैश्चदानवैरप्सरोगणैः ॥२२ ॥ दिग्गजैर्गिरिभिस्तीर्थैर्ऋक्षवानरकिन्नरैः ॥ पतत्रिप्रमु

इस क्षेत्र में परमगुप्त व मोक्षका कारण सुनो इसको ब्रह्मा और विष्णुआदि देव भी नहीं जानते हैं ॥ १९ ॥ हे पार्वति ! आनन्दवन (काशी) में स्थूल व सूक्ष्म भी अनेक रत्नों से रचित असंख्य लिङ्ग हैं ॥ २० ॥ हे ईश्वरि ! बहुत प्रकारके धातुमय व काष्ठोंसे विरचित भी अनेक लिङ्ग हैं व आपही आपहुये अनेक लिङ्ग हैं व देव और ऋषियों से थापेहुये भी हैं ॥२१॥ व सिद्ध चारण गन्धर्व यक्ष और राक्षसोंसे पूजित भी लिंगहैं व दैत्य नाग मनुष्य दानव और अप्सरा गणोंसे भी पूजितहैं॥२२॥

हे देवि ! दिग्गज पर्वत तीर्थ ऋक्ष वानर किन्नर और पक्षी आदिकों ने अपने अपने नामों से अंकित ॥ २३ ॥ जिन लिंगों को यहां प्रतिष्ठित कियाहै वेभी मुक्ति के कारणहैं हे प्रिये ! जेकि अदृश्य व दृश्य भी और म्लेच्छादिकोंसे दुष्ट अवस्थावाले भी हैं ॥२४॥ व हे सुन्दरि ! जेकि बहुत काल बीतने से टूटफूट गये हैं वे भी पूजने योग्य हैं और मैंने एक समय यहां सौ परार्ध संख्यक लिंगों को गनाहै याने ब्रह्माके पचास वर्षोंको परार्ध कहते हैं और सौपरार्ध में जितने दिन होते हैं उतने लिंग हैं ॥ २५ ॥ हे ईशे ! जोकि साठि करोड़ संख्यक सिद्धलिंग गंगाके जलमें भी टिकते हैं वे भी कलियुग में अदृश्यभाव को प्राप्त होगयेहैं याने न देखपड़ेंगे ॥ २६ ॥

खेदेविस्वस्वनामाङ्कितानिवै ॥ २३ ॥ प्रतिष्ठितानियानीहमुक्तिहेतूनितान्यपि ॥ अदृश्यान्यपिदृश्यानिदुरवस्थान्यपि प्रिये ॥ २४ ॥ भग्नान्यपिचकालेनतानिपूज्यानिसुन्दरि ॥ परार्धशतसंख्यानिगणितान्येकदामया ॥ २५ ॥ गङ्गाम्भस्यपितिष्ठन्तिषष्टिकोटिमितानिहि ॥ सिद्धलिङ्गानितानीशेतिष्येऽदृश्यत्वमाययुः ॥ २६ ॥ गणनादिवसादर्वाङ्मभक्तजनैःप्रिये ॥ प्रतिष्ठितानियानीहतेषांसंख्यानविद्यते ॥२७॥ त्वयातुयानिपृष्टानियैरिदंक्षेत्रमुत्तमम् ॥ तानिलिङ्गानिवक्ष्यामिमुक्तिहेतूनिसुन्दरि ॥ २८ ॥ कलावतीवगोप्यानिभविष्यन्तिगिरीन्द्रजे ॥ परन्तेषांप्रभावोयःस्वंस्वंस्थानंनहास्यति ॥ २९ ॥ कलिकल्मषपुष्टायेयेदुष्टानास्तिकाःशठाः ॥ एतेषांसिद्धलिङ्गानांज्ञास्यन्त्याख्यामपीहन ॥ ३० ॥ नामश्रवणतोपीहयल्लिङ्गानांशुभानने ॥ वृजिनानिक्षयंयान्तिवर्धन्तेपुण्यराशयः ॥ ३१ ॥ ॐकारःप्रथमंलिङ्गंद्वितीयश्चत्रिलोचनम् ॥

हे प्रिये ! जिसदिन मैंने गना है उसदिन से उपरांत काल में मेरे भक्तजनों से जे लिंग यहां प्रतिष्ठित हुये हैं उनकी संख्या नहीं है या नहीं जानी जाती है ॥ २७ ॥ हे सुन्दरि ! तुमने मुक्ति के कारणभूत जिन लिङ्गों को पूछाहै व जिनसे यह क्षेत्र उत्तमहै उनको मैं कहूंगा ॥ २८ ॥ हे पर्वतराजकुमारि ! वे लिंग कलियुगमें अत्यंत गोप्य होवेंगे परन्तु उनका जो प्रभाव है वह अपने अपने स्थान को न छोड़ेगा ॥ २९ ॥ जोकि कलियुग में पापसे पुष्ट (व्याप्त या स्थूल) दुष्ट और जे शठ नास्तिक होवेंगे वे इन सिद्धलिंगों के नाम को भी न जानेंगे ॥ ३० ॥ हे शुभमुखि ! यहां लिंगों के नाम सुननेसे भी पाप विनाशको प्राप्त होजाते हैं और पुण्योंकी राशियां

है ॥ ६१ ॥ हे मुने ! ये चौदह बड़े पूजनीय स्थान प्रसिद्धहैं इनकी भी सेवा से मनुष्य मोक्षको प्राप्त होवे है ॥ ६२ ॥ चैतबदी पड़िवा से लगाकर चतुर्दशीतक बड़े सज्जनों करके बहुत यत्न से ये लिंग पूजने योग्य हैं ॥ ६३ ॥ और क्षेत्रकी संसिद्धि देनेवाली इनलिंगों की वार्षिकी यात्रा मुमुक्षु (मुक्ति चाहतेहुये) लोगोंको अच्छे महोत्सवपूर्वक भलीभांति करनाचाहिये ॥ ६४ ॥ हे मुने ! इन चौदह लिंगों को यत्न से देखकर जन्तु फिर दुःखसागर संसारमें नहीं उपजताहै याने मुक्त होजाताहै ॥ ६५ ॥ हे प्रिये ! यहही निश्चयकर क्षेत्रका परमतत्त्व है व संसार रोग से ग्रसेहुये लोगों के लिये यही बड़ीभारी औषध है ॥ ६६ ॥ व हे प्यारी ! यह लिंगों की

तुर्दशैतानिमहान्त्यायतनानिवै ॥ एतेषामपिसेवातोनरोमोक्षमवाप्नुयात् ॥६२॥ चैत्रकृष्णप्रतिपदंसमारभ्यप्रयत्नतः ॥ आचतुर्दशिपूज्यानिलिङ्गान्येतानिसत्तमैः ॥ ६३ ॥ एतेषांवार्षिकीयात्रासुमहोत्सवपूर्वकम् ॥ कार्यामुमुक्षुभिःसम्यक् क्षेत्रसंसिद्धिदायिनी ॥ ६४ ॥ मुनेचतुर्दशैतानिमहालिङ्गानियत्नतः ॥ दृष्ट्वानजायतेजन्तुःसंसारेदुःखसागरे ॥ ६५ ॥ क्षेत्रस्यपरमन्तत्त्वमेतदेवप्रियेध्रुवम् ॥ संसाररोगग्रस्तानामिदमेवमहौषधम् ॥ ६६ ॥ क्षेत्रस्योपनिषच्चैषामुक्तिबीजमिदंपरम् ॥ कर्मकाननदावाग्निरेषालिङ्गावलिःप्रिये ॥ ६७ ॥ एकैकस्यास्यलिङ्गस्यमहिमाद्यन्तवर्जितः ॥ मयैवज्ञायतेदेवि सम्यङ्नान्येनकेनचित् ॥ ६८ ॥ इतिश्रुत्वामुनेप्राहदेवीहृष्टतनूरुहा ॥ प्रणम्यदेवमीशानंसर्वज्ञंसर्वदंशिवम् ॥ ६९ ॥ देव्युवाच ॥ रहस्यंपरमंकाश्यांयदेतत्समुदीरितम् ॥ तच्छ्रुत्वोत्सुकतांप्राप्तंमनोमेतीववल्लभ ॥ ७० ॥ यदुक्तंलिङ्गमेकैकंमहासारतरंपरम् ॥ काश्यांपरमनिर्वाणकारणंकारणेश्वर ॥ ७१ ॥ प्रत्येकंमहिमानंमेब्रूह्येषांभुवनेश्वर ॥ चतुर्दशा

पंक्ति क्षेत्रकी रहस्य है व यही मुक्तिका श्रेष्ठ बीजहै और यही कर्मवन जलानेको अग्नि है ॥ ६७ ॥ हे देवि ! इस एक एक लिंगकी महिमा आदि और अन्तसे हीन है मुझसेही अच्छेप्रकार जानीजाती है अन्य किसीसे नहीं जानीजाती है ॥ ६८ ॥ हे मुने ! ऐसा सुनकर व क्रीड़ाकारी, ऐश्वर्य्यधारी, सर्वज्ञ, सर्वदायक, शिवजीके प्रणामकर हर्षयुक्त रोमोंवाली देवीजी ने कहा ॥ ६९ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि,हे प्यारे ! आपने काशीमें जो यह परमरहस्य कहा उसको सुनकर मेरा मन अतिशय उत्सुकता को प्राप्त है ॥ ७० ॥ व हे कारणेश्वर ! आपने जो कहा कि एकही एकलिंग महासारतर और अतिउत्तमहै व काशीमें परमकैवल्य मोक्षका कारणहै ॥ ७१ ॥

दुःखो का हरनेवाला है यह इस क्षेत्रकी परमउत्तम रहस्य है ॥ ५१ ॥ हे पर्वतेन्द्रपुत्रि ! चौदहों भी ये लिंग मेरी समीपता करनेहारे हैं यही काशी का सारभूत
हृदय के समान है ॥ ५२ ॥ जेकि सबकेही मुक्तिदायक ये लिंग हैं और चौदहो लोकों मेंसे क्रमसे एकएक के शिवसार को लेकर मैंनेही भारी भक्तोंकी कृपा वश से
इनको कियाहै ॥ ५३ ॥ हे प्रिये ! इस क्षेत्र में निश्चय से मुक्ति होती है ऐसी जो प्रसिद्धिहै उसमें ये मेरे चौदह लिंग कारणहैं ॥ ५४ ॥ हे कांते ! जिन भक्तोंने आनंद-
वन (काशी) में इनलिंगों का ध्यान किया वेही व्रतवाले हैं और वेही तपस्वीहैं ॥ ५५ ॥ व जिन्होंने काशी में दूरसे भी इनलिंगों को देखा वेही अच्छे योगाभ्यासी हैं

णिहि ॥ अविमुक्तस्यहृदयमेतदेवगिरीन्द्रजे ॥५२॥ इमानियानिलिङ्गानिसर्वेषांमुक्तिदानिहि ॥ एकैकभुवनस्येहसारमा
दायसर्वतः॥मयैतानिकृतान्येवमहाभक्तिकृपावशात्॥५३॥अस्मिन्क्षेत्रेध्रुवंमुक्तिरितियाप्रथितिःप्रिये॥कारणंतत्रलिङ्गा
निममैतानिचतुर्दश ॥ ५४ ॥ तएवव्रतिनःकान्तेतएवचतपस्विनः ॥ ध्यातान्येतानियैर्भक्तैर्लिङ्गान्यानन्दकानने ॥
५५ ॥ तएवाभ्यस्तसद्योगादत्तदानास्तएवहि ॥ काश्यामिमानिलिङ्गानियैर्दृष्टान्यपिदूरतः ॥ ५६ ॥ इष्टापूर्ताश्चयेधर्माः
प्रणीतामुनिसत्तमैः ॥ तेसर्वेतेनविहितायावज्जीवन्निरेनसा ॥ ५७ ॥ येनाविमुक्तमासाद्यमहालिङ्गानिपार्वति ॥ सकृ
दभ्यर्चितानीहसमुक्तोनात्रसंशयः ॥ ५८ ॥ स्कन्दउवाच ॥अन्यान्यपिचविन्ध्यारेदेव्यैप्रोक्तानिशम्भुना ॥ स्वभक्ता
नांहितार्थायतान्यथाकर्णयाग्रज ॥ ५९ ॥ शैलेशःसङ्गमेशश्चस्वर्लीनोमध्यमेश्वरः ॥ हिरण्यगर्भईशानोगोप्रेक्षोवृष
भध्वजः ॥ ६० ॥ उपशान्तशिवोज्येष्ठोनिवासेश्वरएवच॥शुक्रेशोव्याघ्रलिङ्गञ्चजम्बुकेशश्चतुर्दशम् ॥ ६१ ॥ मुनेच

और वेही दान दियेहुये भी हैं ॥ ५६ ॥ व इष्टापूर्त आदि जिन धर्मोंको मुनिसत्तमोंने कहाहै उनसबको उस जन्मपर्यन्त निष्पापीने किया ॥ ५७ ॥ व जिसने काशीको
प्राप्त होकर यहां एकबार भी इनलिंगों की पूजा किया वह जीवन्मुक्तहै हे पार्वति ! इसमें संशय नहीं है ॥ ५८ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे विंध्यशत्रो, प्रथमोत्पन्न
(ब्राह्मण) ! शङ्करजीने अपने भक्तों के हितार्थ जिन अन्य लिंगों को भी देवीजीसे कहा है उनको भी अनन्तर श्रवणकरो ॥ ५९ ॥ शैलेश्वर, संगमेश्वर, स्वर्लीने-
श्वर, मध्यमेश्वर, हिरण्यगर्भेश्वर, ईशानेश्वर, गोप्रेक्षेश्वर, वृषभध्वज ॥६०॥ व उपशान्तशिव,ज्येष्ठेश्वर,निवासेश्वर,शुक्रेश्वर,व्याघ्रलिंग और चौदहवां जम्बुकेश्वर भी

बढ़ती है॥३१॥पहला लिंग ॐकार दूसरा त्रिलोचन व तीसरा महादेव चौथा कृत्तिवासहै ॥३२॥ हे प्रिये ! पांचवां लिंग रत्नेश छठवां चन्द्रेश्वरनामक सातवां केदार और आठवां लिंग धर्मेश्वरहै ॥ ३३ ॥ व नवां वीरेश्वर और दशयें को कामेश्वर कहते हैं व ग्यारहवाँ लिंग विश्वकर्मेश्वर जोकि शुभ और श्रेष्ठ है ॥ ३४ ॥ बारहवां मणिकर्णीश तेरहवां अविमुक्त और चौदहवां विश्वनाथ नामक मेरा महालिंग है ॥ ३५ ॥ हे प्यारी, सुन्दरि ! ये चौदह लिंग मुक्तिके कारणहैं और यहां इनका यह संमेलन मुक्ति क्षेत्र कहागया है ॥ ३६ ॥ इस क्षेत्रकी भलीभांति अधिष्ठात्री (स्वामिनी) ये श्रेष्ठ देवतायें संपूजित होकर मनुष्यों को मुक्तिकी सम्पत्ति देती हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रिये,

तृतीयश्च महादेवः कृत्तिवासाश्चतुर्थकम् ॥ ३२ ॥ रत्नेशः पञ्चमं लिङ्गं षष्ठश्चन्द्रेश्वराभिधम् ॥ केदारः सप्तमं लिङ्गं धर्मेशश्चाष्टमं प्रिये ॥ ३३ ॥ वीरेश्वरश्च नवमं कामेशन्दशमं विदुः ॥ विश्वकर्मेश्वरं लिङ्गं शुभमेकादशम्परम् ॥ ३४ ॥ द्वादशम्मणिकर्णीशमविमुक्तं त्रयोदशम् ॥ चतुर्दशम्महालिङ्गम्मम विश्वेश्वराभिधम् ॥ ३५ ॥ प्रिये चतुर्दशैतानि श्रियो हेतूनि सुन्दरि ॥ एतेषां समवायोयम्मुक्तिक्षेत्रमिहेरितम् ॥ ३६ ॥ देवताः समधिष्ठात्र्यः क्षेत्रस्यास्य पराइमाः ॥ आराधिताः प्रयच्छन्ति नृभ्यः श्रेयसीं श्रियम् ॥ ३७ ॥ आनन्दकानने मुक्त्यै प्रोक्तान्येतानि सुन्दरि ॥ प्रिये चतुर्दशेज्यानि महालिङ्गानि देहिनाम् ॥ ३८ ॥ प्रतिमासं समारभ्य तिथिं प्रतिपदं शुभाम् ॥ एतेषां लिङ्गमुख्यानां कार्या यात्रा प्रयत्नतः ॥ ३९ ॥ अनाराध्य महादेव मेषु लिङ्गेषु कुम्भज ॥ कः काश्यां मोक्षमाप्नोति सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥ ४० ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन काशीफलमभीप्सुभिः ॥ पूज्यान्येतानि लिङ्गानि भक्त्या परमया मुने ॥ ४१ ॥ अगस्त्य उवाच ॥ एतान्येव किमन्यानि महालिङ्गानि षण्मुख ॥

सुन्दरि ! काशी में देहधारियों की मुक्ति के लिये कहेहुये ये चौदहो महालिंग पूजनीय हैं ॥ ३८ ॥ और प्रतिमास मङ्गलमयी प्रतिपदा तिथि को आरम्भकर याने उसे लगाकर बड़े यत्न से इन मुख्य लिंगोंकी यात्रा करना चाहिये ॥ ३९ ॥ हे अगस्त्यजी ! काशी में इनलिंगों के मध्य महादेवजी को न पूजकर कौन जन मुक्ति को प्राप्त होताहै यह बारबार सत्यहै सत्यहै ॥४०॥ हे मुने ! उस लिये काशीफलाभिलाषियों करके सब प्रयत्नपूर्वक परमभक्ति से ये लिंग पूजनीयहैं ॥ ४१ ॥ अगस्त्य जी

बोले कि हे षरामुख ! येही महालिंग यहां मुक्तिके कारण हैं कि अन्य भी हैं और जो हैं तो आप उनको भी कहो ॥ ४२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे सुव्रत ! यहां अन्य भी महालिंग हैं और प्रसिद्ध भी वेही कलियुग के प्रभाव से गुप्त होवेंगे ॥ ४३ ॥ किन्तु ईश्वर मे सदैव जिसकी भक्तिहै व जो काशीके तत्त्वका बड़ा पंडितहै वही इनलिंगों को जानेगा और अन्य कोई न जानेगा ॥ ४४ ॥ जिनके नाम लेनेसेही कलियुग के पापोंका भलीभांति क्षय होजाताहै वे ये हैं कि अमृतेश, तारकेश, ज्ञानेश्वर, करुणेश्वर॥४५॥व मोक्षद्वारेश्वर तथा स्वर्गद्वारेश्वर, ब्रह्मेश्वर व लांगलेश्वर वैसेही वृद्धकालेश्वर ॥ ४६ ॥ व वृषेश्वर, चण्डीश्वर, नन्दिकेश्वर और चौदहवांलिंग

निर्वाणकारणानीहयदिसन्तितदावद ॥ ४२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अन्यान्यपिचसन्तीहमहालिङ्गानिसुव्रत ॥ कलिप्रभावाद्गुप्तानिभविष्यन्त्येवतानिवै ॥ ४३ ॥ यस्येश्वरेसदाभक्तिर्यःकाशीतत्त्ववित्तमः ॥ सएवैतानिलिङ्गानिवेत्स्यत्यन्योनकश्चन ॥ ४४ ॥ येषांनामग्रहेणापिकलिकल्मषसंक्षयः ॥ अमृतेशस्तारकेशोज्ञानेशःकरुणेश्वरः ॥ ४५ ॥ मोक्षद्वारेश्वरश्चैवस्वर्गद्वारेश्वरस्तथा ॥ ब्रह्मेशोलाङ्गलश्चैववृद्धकालेश्वरस्तथा ॥ ४६ ॥ वृषेशश्चैवचण्डीशोनन्दिकेशोमहेश्वरः ॥ ज्योतीरूपेश्वरंलिङ्गंख्यातमत्रचतुर्दशम् ॥ ४७ ॥ काश्याञ्चतुर्दशैतानिमहालिङ्गानिसुन्दरि ॥ इमानिमुक्तिहेतूनिलिङ्गान्यानन्दकानने ॥ ४८ ॥ कलिकल्मषबुद्धीनान्नाख्येयानिकदाचन ॥ एतान्याराधयेद्यस्तुलिङ्गानीहचतुर्दश ॥ ४९ ॥ नतस्यपुनरावृत्तिःसंसाराध्वनिकर्हिचित् ॥ काशीकोशोयमतुलोनप्रकाश्योयतस्ततः ॥ ५० ॥ एतल्लिङ्गाभिधादेविमहापद्यपिदुःखहृत् ॥ रहस्यंपरमञ्चैतत्क्षेत्रस्यास्यवरानने ॥ ५१ ॥ चतुर्दशापिलिङ्गानिमत्सान्निध्यकरा

ज्योतीरूपेश्वर नामसे यहां कहागयाहै याने प्रसिद्धहै ॥ ४७ ॥ हे सुन्दरि ! काशीमें यह चौदह महालिंगहैं व ये लिंग आनन्दवन में मुक्ति के कारणहैं ॥ ४८ ॥ व कलियुग के पाप बुद्धिवाले मनुष्यों के मध्य में कभी कहने योग्य नहीं हैं और यहां जो इन चौदह लिंगोंकी पूजाकरे ॥ ४९ ॥ उसकी फिर आवृत्ति संसारमार्गमें कभी न होवे याने वह फिर लौटकर जन्म न धरे यह अतुल, कोश जहां तहां प्रकाशने योग्य नहीं है ॥ ५० ॥ हे वरानने, देवि ! इनलिंगों का नाम बड़ी विपत्ति मे भी

इसलिये हे भुवनेश्वर ! सुनने से पापहारी इन चौदहो लिंगों की प्रत्येक महिमाको मुझसे कहो ॥ ७२ ॥ और महामनोहर उस अमरकंटक क्षेत्रसे ॐकारेश्वर लिंगका भलीभांति यहां आना कैसे हुआ ॥ ७३ ॥ हे भक्तभयहारिन् ! यह ॐकार किस स्वरूपवाले हैं व इनकी क्या महिमाहै व पुरातन कालमें किसने इनकी पूजा कियाहै और पूजेहुये ॐकार ने क्या फल दियाहै ॥ ७४ ॥ तब सुखकारिणी पार्वतीजीके अमृत समान इस वचनको श्रवणगोचर (सुन) कर महादेवजीने ॐकार की बड़ी अद्भुत कथाको कहा ॥ ७५ ॥ श्रीयुत देवों के देव शिवजी बोले कि हे पार्वति ! जैसे ॐकार लिंगका प्रकटहोना यहां हुआहै उस कथा को मैं तुम्हारे आगे

नांलिङ्गानांश्रवणादघहारिणाम् ॥ ७२ ॥ ॐकारेशस्यलिङ्गस्यकथमत्रसमागमः ॥ अतिपुण्यतमात्तस्मात्क्षेत्रादमरकण्टकात् ॥ ७३ ॥ किमात्मकोऽयमोङ्कारोमहिमास्यचकोहर ॥ केनाराधिपुराचैषददावाराधितश्चकिम् ॥ ७४ ॥ मृडानीवाक्सुधामेतांविधायश्रुतिगोचराम् ॥ कथामकथयद्देवॐकारस्यमहाद्भुताम् ॥ ७५ ॥ देवदेवउवाच ॥ कथामाकर्णयापर्णेवर्णयामितवाग्रतः ॥ यथोंकारस्यलिङ्गस्यप्रादुर्भावइहाभवत् ॥ ७६ ॥ पुरानन्दवनेचात्रब्रह्मणाविश्वयोनिना ॥ तपस्तप्तंमहादेविसमाधिन्दधतापरम् ॥ ७७ ॥ पूर्णेयुगसहस्रेऽथभित्त्वापातालसप्तकम् ॥ उदतिष्ठत्पुरोज्योतिर्विद्योतितहरिन्मुखम् ॥ ७८ ॥ यदन्तराविरभवन्निर्व्याजेनसमाधिना ॥ तदेवपरमंधामबहिराविरभूद्विधेः ॥ ७९ ॥ योभूच्चटचटाशब्दःस्फुटतोभूमिभागतः ॥ तच्छब्दाद्व्यसृजद्वेधाःसमाधिंक्रमतोवशी ॥ ८० ॥ स्रष्टाविसृष्टतद्ध्यानोयावदुन्मील्यलोचने ॥ पुरःपश्येद्ददर्शाग्रेतावदक्षरमादिमम् ॥ ८१ ॥ अकारंसत्त्वसम्पन्नमृक्क्षेत्रंसृष्टिपालकम् ॥ ना

कहताहूं तुम सुनो ॥ ७६ ॥ हे महादेवि ! पूर्वकाल में श्रेष्ठ समाधि को धारते हुये जगत्सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी से इस आनन्दवन में तपस्या तपीगई ॥ ७७ ॥ अनन्तर जब हजार युग पूरेहुये तब सातो पातालों को भेदनकर दिशाओं के मुखोंको दीपित कियेहुई ज्योति आगे उठीथी ॥ ७८ ॥ जोकि परम तेज निष्कपट समाधि से ब्रह्माजी के अन्तःकरणमें प्रकट हुआथा वही बाहर भी प्रकट होगया ॥ ७९ ॥ और फूटतेहुये भूमिभाग से जो चटचटा शब्दहुआ उस शब्दसे इन्द्रियजित् ब्रह्माजीने क्रम से समाधि को छोंड़दिया ॥ ८० ॥ व उस निर्गुण ब्रह्मके ध्यान को त्यागे हुये विधाताजीने आंखें खोलकर जबतक सामने दृष्टि किया तबतक अपने आगे आदिम याने

पहले हुये ॐकार अक्षर को देखा॥ ८१ ॥ उसमेंही सतोगुण से सम्पन्न, सृष्टिका पालक नारायणात्मक व साक्षात् अज्ञान के पारमें प्रतिष्ठित और ऋग्वेदका स्थान याने कारण अकार ॥ ८२ ॥ अनन्तर उसके आगे रजोगुण से व्याप्त, व सब जगत् का सिरजनेहारा अपने याने ब्रह्माके शरीर के समान प्रतिबिंबित और यजुर्वेद की उत्पत्तिका कारण उकार ॥ ८३ ॥ और उसके आगे शब्दसे रहित अन्धकार के संकेत स्थान के समान व तमोगुण रूप मकारको अनन्तर उन ब्रह्माजीने विशेषतासे देखा ॥ ८४ ॥ जोकि सामवेद की उत्पत्तिका स्थान व प्रलय में कारण व साक्षात् रुद्रस्वरूपी है तदनन्तर उसके आगे ध्यानी विधाताजीने उसको नेत्रों के अतिथि

रायणात्मकंसाक्षात्तमःपारेप्रतिष्ठितम् ॥ ८२ ॥ उकारमथतस्याग्रेरजोरूपंयजुर्जनिम् ॥ विधातारंसमस्तस्यस्वाकार मिवबिम्बितम् ॥ ८३ ॥ नीरवध्वान्तसङ्केतसदनाभन्तदग्रतः ॥ मकारंसददर्शाथतमोरूपंविशेषतः ॥ ८४ ॥ साम्नोयो निलयेहेतुंसाक्षाद्रुद्रस्वरूपिणम् ॥ अथतत्पुरतोध्याताव्यधात्स्वनयनातिथिम् ॥ ८५ ॥ विश्वरूपमयाकारंसगुणंवा पिनिर्गुणम् ॥ अनाख्यनादसदनम्परमानन्दविग्रहम्॥८६॥शब्दब्रह्मेतियत्ख्यातंसर्ववाङ्मयकारणम्॥ अथोपरिष्टान्ना दस्यबिन्दुरूपम्परात्परम् ॥८७॥ कारणङ्कारणानाञ्चजगद्योनिञ्चतम्परम् ॥ विधिर्विलोकयाञ्चक्रेतपसागोचरीकृतम् ॥ ८८ ॥ अवनादोमितिख्यातंसर्वस्यास्यप्रभावतः ॥ भक्तमुन्नयतेयस्मात्तदोमितियईरितः ॥ ८९ ॥ अरूपोपिसरूपा ढ्यःसधात्रानेत्रगीकृतः ॥तारयेद्यद्भवाम्भोधेःस्वजपासक्तमानसम् ॥ ततस्तारइतिख्यातोयस्तंब्रह्माव्यलोकयत् ॥९०॥

गोचर किया ॥ ८५ ॥ जोकि प्रपञ्चस्वरूपाकार, सगुण व निर्गुणभी व परा वाणी आश्रय याने कारण व परमानन्द स्वरूप है ॥ ८६ ॥ जोकि शब्दब्रह्म (वेद) इसभांति कहा गयाहै याने प्रसिद्धहै और सब वचन समूहोंका कारणहै अनन्तर उस नादके ऊपर, परोंसेपर बिंदुरूप ॥ ८७ ॥ जोकि प्रधानादि कारणोंका कारण व जगतों की उत्पत्तिका स्थान व उत्तम और तपस्या से नेत्रगोचर कियागया है उसको ब्रह्माजीने देखा ॥ ८८ ॥ "अब इसभांति अंगो के निरूपण से अंगी ॐकार को निरूपणकर उसके नामका निर्वचन (अर्थ) करतेहैं" जोकि अपने प्रभाव से इस सब जगतका अवन (रक्षण) करनेसे ॐ ऐसा कहा गयाहै और जिससे भक्तों को उन्नयति याने ऊर्ध्वगति को पहुंचाता है इससे जो ॐ इस प्रकारसे कहा गयाहै ॥ ८९ ॥ व जोकि रूपरहित भी सरूप सहित है उसको विधाताने नेत्रों के विषय कि-

या और जिस कारण अपने जपमें आसक्त चित्तवाले भक्तजन को संसार सागर से तारता है याने उसके पार करता है उसलिये जो तार इसनाम से कहा गयाहै उस को ब्रह्माजीने देखा ॥ ९० ॥ व जिस कारण उत्तम कैवल्य मुक्ति की कामनावाले सबलोगों से प्रणूयते याने बहुतही स्तुतियुक्त कियाजाता है व जिससे सबों से भी अधिकहै उस कारण से जो प्रणव कहागया है ॥ ९१ ॥ और जोकि अपने सेवक पुरुषको परमपदको प्रणयेत् याने पठावे है इससे प्रणव नामवाले उस शान्तस्वरूपको विधाताने प्रत्यक्ष किया ॥ ९२ ॥ व जोकि वेदत्रयीमय या ब्रह्मा विष्णु और रुद्रमय है व तुरीय याने असंग निर्विकार परमात्मा है व विश्व तैजस प्राज्ञ और तुरीय इस भांति विश्वादिकों की अपेक्षा से तुरीयता के कल्पित होने से तुरीयातीत है व माया से अखिलात्मक है व जोकि नाद और बिंदु स्वरूप है उसको हंसगामीने

प्रणूयतेयतःसर्वैःपरनिर्वाणकामुकैः ॥ सर्वेभ्योभ्यधिकस्तस्मात्प्रणवोयःप्रकीर्तितः ॥ ९१ ॥ स्वसेवितारम्पुरुषंप्रणयेद्यःपरम्पदम् ॥ अतस्तम्प्रणवंशान्तंप्रत्यक्षीकृतवान्विधिः ॥ ९२ ॥ त्रयीमयस्तुरीयोयस्तुर्यातीतोखिलात्मकः ॥ नादबिन्दुस्वरूपोयःसप्रैक्षिद्विजगामिना ॥ ९३ ॥ प्रावर्तन्तयतोवेदाःसाङ्गाःसर्वस्ययोनयः ॥ सवेदादिःपद्मभुवापुरस्तादवलोकितः ॥ ९४ ॥ वृषभोयस्त्रिधाबद्धोरोरवीतिमहोमयः ॥ सनेत्रविषयीचक्रेपरमःपरमेष्ठिना ॥ ९५ ॥ शृङ्गाश्चत्वारियस्यासन्हस्ताःसप्तएवच ॥ द्वेशीर्षेचत्रयःपादाःसदेवोविधिनैक्षत ॥ ९६ ॥ यदन्तर्लीनमखिलंभूतम्भाविभवत्तु नः ॥ तद्बीजम्बीजरहितंद्रुहिणेनविलोकितम् ॥ ९७॥ लीनंमृग्येतयत्रैतदाब्रह्मस्तम्बभाजनम् ॥ अतःसभाज्यतेसद्भिर्य

देखा ॥ ९३ ॥ व शिक्षादि अंगोंसमेत सबके कारण या प्रमाण वेद जिससे प्रवर्तमान होतेहैं या हुयेहैं वह वेदोंका आदि ॐकार कमलसम्भूत ब्रह्माजी से सामने देखा गया॥९४॥ व जोकि वृषभ याने यज्ञरूप परमेश्वर तीनभांति से (मन्त्र, ब्राह्मण, कल्प) सम्बद्ध होकर बारबार शब्द करताहै याने सवन के क्रमसे ऋग् यजुः और साम से शब्द युक्त होताहै व तेजोमय है व सबसे श्रेष्ठहै उसको उत्तम स्थान में टिकनेवाले ब्रह्माजीने नेत्रों के विषय किया ॥ ९५ ॥ व चारोंवेद जिसके शृंग हैं व सातों छन्द हाथहैं व प्रायणीय और उदयनीय दो शिर हैं व तीनों सवन (समय) पावँ हैं उस देवको विधाताजी ने देखा ॥ ९६ ॥ व भूत, भविष्य और वर्त्तमान यह सब जिसके बीचमें लीनहैं व फिर जो उस सबका बीज (कारण) है और अपना बीजसे रहित है उसको ब्रह्माजीने देखा ॥ ९७ ॥ व ब्रह्मासे लगाकर स्तंबतक का

पात्र यह सब जिसमें लीनहुआ देखाजावे है इससे जो लिंग नामकहोकर सन्तजनों से पूजाजाताहै वह देखागया ॥ ९८ ॥ व जिसमें पांच अर्थ याने है, भासताहै, प्यारा है, रूप और नाम ये भासित होते हैं व जोकि पांचो वेदमय है यहां ऋग् आदि चार और इतिहास पुराण रूप पंचम वेद गिना जाताहै व जोकि अकार आदिमे है जिनके उन उकार, मकार, अर्धमात्रा बिंदु और नाद इन पांचोंका स्वरूपहै उसकोही ब्रह्माजीने देखा ॥ ९९ ॥ तदनन्तर प्रपञ्च से हीन, अकारादि पंचाक्षर रूप, लिंग रूपी, ईश्वर शंकरजी को देखकर विधाताने स्तुति किया ॥ १०० ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हे सदाशिव ! ॐकार रूप के लिये नमस्कार है व अक्षर रूपधारी के लिये

ल्लिङ्गन्तद्विलोकितम् ॥ ९८॥ पञ्चार्थायत्रभासन्तेपञ्चब्रह्ममयंहियत् ॥ आदिपञ्चस्वरूपंयन्निरैक्षिब्रह्मणाहितत् ॥९९॥ तमालोक्यततोवेधालिङ्गरूपिणमीश्वरम् ॥ पञ्चाक्षरम्प्रपञ्चाचभिन्नन्तुष्टावशङ्करम् ॥ १०० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमॐकार रूपायनमोऽक्षरवपुर्धृते ॥ नमोऽकारादिवर्णानांप्रभवायसदाशिव ॥ १ ॥ अकारस्त्वमुकारस्त्वंमकारस्त्वमनाकृते ॥ ऋग्यजुःसामरूपायरूपातीतायतेनमः ॥ २ ॥ नमोनादात्मनेतुभ्यंनमोबिन्दुकलात्मने ॥ अलिङ्गलिङ्गरूपायसर्वरूप स्वरूपिणे ॥ ३ ॥ नमस्तेधामनिधयेनिधनादिविवर्जित ॥ नमोभवायरुद्रायशर्वायचनमोस्तुते ॥ ४ ॥ नमउग्रायभीमा यपशूनाम्पतयेनमः॥ नमस्तारस्वरूपायसम्भवायनमोस्तुते ॥ ५ ॥ अमायायनमस्तुभ्यंनमःशिवतरायते ॥ कपर्दिने

नमस्कार है और अकारादि अक्षरों के कारण के लिये नमस्कारहै ॥ १ ॥ हे आकाररहित ! तुम अकारहो व तुम उकारहो व तुम मकारहो याने ॐकार रूपहो व ऋग् यजुः और सामका रूपहौ और जोकि रूपसे अतीतहौ उन तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ २ ॥ व नादात्मक (परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी नामक) तुम्हारेलिये नमस्कारहो व बिन्दुकलारूप के लिये नमस्कारहो व अलिङ्ग (अदृश्य) लिङ्ग (दृश्य) रूपवाले और सब रूपों के स्वरूप के लिये नमस्कारहो ॥ ३ ॥ हे आदि अन्तसे वर्जित ! तेज या सत्त्वके निधान तुम्हारे लिये नमस्कारहो व भव, रुद्र और शर्व नामक तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ४ ॥ उग्ररूप व भयङ्कर रूप और जीवों के पति के लिये नमस्कारहो व संसारपारकारक ॐकार स्वरूप के लिये नमस्कारहो व सब जगत् भलीभांति होताहै जिनसे उन तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ५ ॥ व मायासे ही-

न शुद्ध स्वरूप तुम्हारे लिये नमस्कारहो व परम मङ्गल रूप तुम्हारे लिये नमस्कार हो व जटाजूटधारी तुम्हारे लिये नमस्कारहो और हे नीलकण्ठ ! तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ ६ ॥ हे गिरिश ! फलसेक्ताओं में श्रेष्ठ और यज्ञ रूपसे शिपि (पशुसमूह) में टिकेहुये, या शि (जल) के (पि) पीने, या पालनेसे शिपि जो सूर्य्यकी किरणैं हैं उनमे टिकनेवाले विश्वनाथ तुम्हारे लिये नमस्कारहो व दीर्घ, ह्रस्व, स्थूल और वृद्धरूपी के लिये नमस्कारहो ॥ ७ ॥ कार्त्तिकेय के पिता व कुमार अङ्गवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहो व श्वेत,श्याम,पीत, और कुछेक लाले शरीरवाले के लिये नमस्कारहो ॥ ८ ॥ व धूम्रवर्ण (कृष्णलोहित रूप) कपिलवर्ण, और कर्बुर रंग अंग तेजवाले के लिये नमस्कारहो व श्वेतरक्तमिश्रितवर्ण, और हरेतेजवालेकेलिये नमस्कारहो ॥ ९ ॥ अनेक रंग रूपवाले या ब्राह्मणादिवर्ण स्वरूप व वर्णों के पतिकेलिये नमस्कारहो

नमस्तुभ्यंशितिकण्ठनमोस्तुते ॥६॥ मीढुष्टमायगिरिशशिपिविष्टायतेनमः ॥ नमोऽह्रस्वायखर्वायबृहतेवृद्धरूपिणे ॥ ७ ॥ कुमारगुरवेतुभ्यंकुमारवपुषेनमः ॥ नमःश्वेतायकृष्णायपीतायारुणमूर्तये ॥ ८ ॥ धूम्रवर्णायपिङ्गायनमःकिर्मीरवर्चसे ॥ नमःपाटलवर्णायनमोहरिततेजसे ॥ ९ ॥ नानावर्णस्वरूपायवर्णानाम्पतयेनमः ॥ नमस्तेस्वररूपायनमोव्यञ्जनरूपिणे ॥ १० ॥ उदात्तायानुदात्तायस्वरितायनमोनमः ॥ ह्रस्वदीर्घप्लुतेशायसविसर्गायतेनमः ॥ ११ ॥ अनुस्वारस्वरूपायनमस्तेसानुनासिक ॥ नमोनिरनुनासायदन्त्यतालव्यरूपिणे ॥ १२ ॥ ओष्ठ्योरस्यस्वरूपायनमऊष्मस्वरूपिणे ॥ अन्तस्थायनमस्तुभ्यंपञ्चमायपिनाकिने ॥ १३ ॥ निषादायनमस्तुभ्यंनिषादपतयेनमः ॥ वीणावेणुमृ

व अकारादि स्वर रूप और ककारादि हकार पर्य्यंत व्यंजनरूपी तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ १० ॥ व उदात्त (ऊंचेस्वरसे उपलभ्यमान) अनुदात्त (पूर्वोक्तसे विपरीत) व स्वरित (दोनोंकासमाहार) के लिये नमस्कारहोनमस्कारहो व ह्रस्व दीर्घ और प्लुत (त्रिमात्र) के नियंता व विसर्गो समेत बर्ततेहुये वर्ण स्वरूप तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ ११ ॥ हे सानुनासिक (ञ, म, ङ, ण, न इन अक्षरों के साथ वर्तमान कारण स्वरूप) अनुस्वार स्वरूप ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो व निरनुनासिकवर्णस्वरूप व दंत्य (लृ, त, थ, द, ध, न, ल, स) और तालव्य (इ, च,छ,ज,झ,ञ, य, श) रूपवाले के लिये नमस्कारहो ॥ १२ ॥ व ओष्ठों में हुये (उवर्ण, प,फ,ब,भ,म) और उरसे हुये उन उन अक्षर स्वरूप के लिये नमस्कारहो व ऊष्म (श,ष,स,ह) स्वरूपीकेलिये नमस्कारहो व अंतःस्थ (य,र,ल,व) स्वरूप व पर,

पुरुष, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र इस गणना से पंचम और पिनाक धन्वाधारे हुये तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ १३ ॥ निषाद स्वरूप तुम्हारेलिये नमस्कारहो व निषादजनों के स्वामी या श्रीरामचन्द्रजी के मित्र शृंगवेर पुरवासी निषादराज गुह स्वरूपकेलिये नमस्कारहो व वीणा वेणु और मृदंगादि वाद्य स्वरूप तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥१४॥ व अत्यंत उच्चध्वनिरूप, गंभीर शब्दरूप, व पापियों के लिये भयकर और पुण्यवानों के लिये सौम्यरूप या अघोर मंत्र रूपके लिये नमस्कारहो व उनचास संख्यक तानस्वरूपके लिये नमस्कारहो और इक्कीस मूर्च्छनाओं के पतिकेलिये नमस्कारहो ॥ १५ ॥ व स्थावर और जंगम अथवा संगीतशास्त्रमें प्रसिद्ध स्थायी और संचारी के भेदसे भावस्वरूपीकेलिये नमस्कारहो व तालों के प्यारकरनेवाले, तालस्वरूप व लास्य और तांडव नामक नृत्यके कारणकेलिये नमस्कारहो ॥१६॥ हे भक्तिसे तौर्य्यत्रिक

दङ्गादिवाद्यरूपायतेनमः ॥१४॥ नमस्तारायमन्द्रायघोरायाघोरमूर्तये ॥ नमस्तानस्वरूपायमूर्च्छनापतयेनमः ॥१५॥ स्थायिसंचारिभेदेननमोभावस्वरूपिणे ॥ तालप्रियायतालाय लास्यताण्डवजन्मने ॥ १६ ॥ तौर्यत्रिकस्वरूपायतौर्यत्रिकमहाप्रिय ॥ तौर्यत्रिककृताम्भक्त्यानिर्वाणश्रीप्रदायक ॥ १७ ॥ स्थूलसूक्ष्मस्वरूपायदृश्यादृश्यस्वरूपिणे ॥ अर्वाचीनायचनमःपराचीनायतेनमः ॥ १८ ॥ वाक्प्रपञ्चस्वरूपायवाक्प्रपञ्चपरायच ॥ एकायानेकभेदायसदसत्पतयेनमः ॥ १९ ॥ शब्दब्रह्मनमस्तुभ्यंपरब्रह्मनमोस्तुते ॥ नमोवेदान्तवेद्यायवेदानाम्पतयेनमः ॥ २० ॥ नमोवेदस्वरूपायवेदगोचरमूर्तये ॥ पार्वतीशनमस्तुभ्यंजगदीशनमोस्तुते ॥ २१ ॥ नमस्तेदेवदेवेशदेवदिव्यपदप्रद ॥ शङ्करायनम

याने नृत्यगीत और वाद्य करनेवालों के मुक्तिसम्पत्तिदायक, तौर्य्यत्रिकमहाप्रिय! तौर्य्यत्रिक स्वरूप के लिये नमस्कार हो ॥ १७ ॥ स्थूल सूक्ष्म स्वरूप (कार्य्य कारण स्वरूप) व दृश्य (पृथिवी, जल, तेज) अदृश्य (वायु, आकाश) स्वरूप व अर्वाचीन याने इस समय में हुये के लिये नमस्कार हो और पुराचीन (पूर्वकाल में हुये) तुम्हारे लिये नमस्कार हो ॥ १८ ॥ व शब्द विस्तार स्वरूप, और वाणी के प्रपंच से परे याने उसके कारण व परमार्थ से एकरूप मायासे अनेकभेदवाले व कार्य्य और कारण के पतिके लिये नमस्कार हो ॥ १९ ॥ हे शब्दब्रह्म वेदस्वरूप! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे परब्रह्म! तुम्हारेलिये नमस्कारहो व वेदान्तों से जानने योग्यके लिये नमस्कारहो और वेदोके नियन्ताके लिये नमस्कारहो ॥ २० ॥ व वेदस्वरूपके लिये नमस्कारहो और वेद (स्वप्रकाश चैतन्य) के विषय रूपवाले के लिये नमस्कारहो

हे पार्वतीश ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और हे जगदीश ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ २१ ॥ हे देव, दिव्यपदप्रद, कल्याणकर्त्ता, देवदेवेश, तुम्हारे लिये नमस्कारहो व हे महेश्वर ! तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ २२ ॥ हे जगत् के आनन्ददायक ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे चन्द्रभाल ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे मृत्युंजय ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और तीननेत्रवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ २३ ॥ हे अन्धकदैत्यदलन ! पिनाकधन्वा हाथवाले के लिये नमस्कारहो व त्रिशूलआयुध धारी के लिये नमस्कारहो और त्रिपुरविनाशी के लिये नमस्कारहो ॥ २४ ॥ हे कामगर्वगंजन ! जालन्धरके शत्रु व कालके चलानेवाले व कालरूप और कालकूटनामक विषपीने वालेके लिये नमस्कारहो ॥२५॥ हे अभक्तोंके एक विषाददायक, भक्तोंके दुःखनाशक ! ज्ञानरूप और साधनरूप तुम्हारे लिये नमस्कारहो व स-

स्तुभ्यंनमस्तुभ्यंमहेश्वर ॥ २२ ॥ नमस्तेजगदानन्दनमस्तेशशिशेखर ॥ मृत्युञ्जयनमस्तुभ्यंनमस्तेत्र्यम्बकाय च ॥ २३ ॥ नमःपिनाकहस्तायत्रिशूलायुधधारिणे ॥ नमस्त्रिपुरहन्त्रेचनमोन्धकनिषूदन ॥ २४ ॥ कन्दर्पदर्पदलननमोजालन्धरारये ॥ कालायकालकालायकालकूटविषादिने ॥ २५ ॥ विषादहन्त्रेभक्तानामभक्तैकविषादद ॥ ज्ञानायज्ञानरूपायसर्वज्ञायनमोऽस्तुते ॥२६॥ योगसिद्धिप्रदोसित्वंयोगिनांयोगसत्तम ॥ तपसांफलदोसित्वंतपस्विभ्यस्तपोधन ॥ २७॥ त्वमेवमन्त्ररूपोसिमन्त्राणांफलदोभवान् ॥ महादानफलन्त्वंवैमहादानप्रदोभवान् ॥ २८ ॥ महायज्ञस्त्वमेवेशमहायज्ञफलप्रद ॥ त्वंसर्वःसर्वगस्त्वंवैसर्वदःसर्वदृग्भवान् २९ ॥ सर्वभुक्सर्वकर्तात्वंसर्वसंहारकारक ॥ योगिनांहृदयाकाशकृतालयनमोस्तुते ॥३०॥ त्वमेवविष्णुरूपेणशङ्खचक्रगदाधर ॥ त्रिलोकीन्त्रायसेत्रातःसत्त्वमूर्तेनमोस्तुते ॥३१॥

र्वज्ञके लिये नमस्कारहो ॥ २६ ॥ हे योगसत्तम ! आप योगियों को योगसिद्धिदायकहैं व हे तपोधन ! आप तपस्वियों को तपस्या की सिद्धिके दाताहैं ॥ २७ ॥ व आपही मन्त्ररूपहैं और आपही मंत्रों के फलदाताहैं व आपही महादानों के फलहैं और आपही महादानों के बड़े दानीहैं ॥ २८ ॥ हे महायज्ञफलप्रद ईश ! तुमहीं महायज्ञहो व तुम सर्वरूपहो व तुमहीं सर्वगतहो और तुम्हीं सब फलदायकहो ॥२९॥ हे सब जगत् के प्रलयकारक ! तुमहीं सबके कर्त्ता और सबरस भोगने वालेहो हे योगियोंके हृदयरूप आकाश में वासकारिन् ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ३० ॥ हे शङ्खचक्रगदाधर ! तुमहीं विष्णुरूप से त्रिलोककी रक्षा करतेहो व हे सत्त्वमूर्त्ते,

रक्षक ! तुम्हारेलिये नमस्कारहो ॥ ३१ ॥ हे विधानके जाननेवाले, निर्मल कैवल्यपद दायक ! तुमहीं विधाताहोकर व रजोगुणमयी मूर्त्तिको भलीभांति आलम्बनकर इस जगत्को विशेषकरके रचते हो ॥ ३२ ॥ हे सर्पधारिन् ! तुमहीं बड़े उग्र महारुद्रहो व हे महाश्मशानचारिन् ! तुम्हीं महाभीमहो ॥ ३३ ॥ व तुम्हीं तामसी देह को आश्रयकर यमके भी यमहो व तुमहीं अन्त में कालाग्नि रुद्र (सङ्कर्षण के मुखसे उपजीहुई अग्नि) होकर प्रलय के प्रवर्तकहो ॥ ३४ ॥ हे जन्मरहित ! तुमहीं आंखों की पलक खोलनेसे पुरुष और प्रकृति केद्वारा महत्तत्त्वादि सम्पूर्ण जगत्को फिर प्रकट करतेहो ॥ ३५ ॥ तुम्हारा पलकोंका खोलना मूँदना जगत्के जन्म और विनाशका मुख्य कारणहै व कपालों की माला(धारणकरना आदि तौ)अपनी इच्छासे विचरतेहुये आपका खेलहै ॥ ३६ ॥ हे धूर्जटे (जटाभारवाले) ! जोकि यह मनु-

त्वमेवविदधास्येतद्विधिर्भूत्वाविधानवित् ॥ रजोरूपंसमालम्ब्यनीरजस्कपदप्रद ॥३२॥ त्वमेवहिमहारुद्रस्त्वम्महोग्रो भुजङ्गभृत् ॥ त्वमेवहिमहाभीमोमहापितृवनेचर॥३३॥तामसीन्तनुमाश्रित्यत्वंकृतान्तकृतान्तकः॥कालाग्निरुद्रोभूत्वा न्तेत्वंसंवर्तप्रवर्तकः ॥३४॥ त्वंपुम्प्रकृतिरूपाभ्यांमहदाद्यखिलञ्जगत्॥ अक्षिपक्ष्मसमुत्क्षेपात्पुनराविःकरोष्यज ॥३५॥ उन्मेषविनिमेषौते सर्गासर्गैककारणम् ॥ कपालमालाखेलोयं भवतःस्वैरचारिणः ॥ ३६ ॥ त्वत्कण्ठेन्नृकरोटीयं धूर्ज टेयाविभासते ॥ सर्वेषामन्तदग्धानां सास्फुटंबीजमालिका ॥ ३७ ॥ त्वत्तःसर्वमिदंशम्भो त्वयिसर्वंचराचरम् ॥ क स्त्वांस्तोतुंविजानाति पुरावाचामगोचरम्॥३८॥ स्तोतात्वंहिस्तुतिस्त्वंहि नित्यंस्तुत्यस्त्वमेवच ॥वेद्म्यहंनमःशिवाये तिनान्यद्वेद्म्येवकिञ्चन ॥३९॥ त्वमेवहिशरण्यंमे त्वमेवहिगतिःपरा॥ त्वामेवप्रणमामीश नमस्तुभ्यंनमोनमः ॥४०॥

ष्यों के मुंडों की हड्डी तुम्हारे कण्ठ में विराजती है वह प्रलय में दहेहुये सबों के बीजरूप अज्ञान की मालिका है यह स्पष्ट है ॥ ३७ ॥ हे शम्भो ! यह सब स्थावर जंगम जगत् तुमसे है व यह सब तुममें है और पुरानी वाणी याने वेदों के अगोचरहुये तुमको स्तुति करने के लिये कौनजन जानताहै ॥ ३८ ॥ तुमहीं स्तुति कर्त्ता हो व तुमहीं स्तुतिहो और तुमहीं नित्य स्तुति के योग्यहो मैं तो, ॐनमः शिवाय (ॐकाररूप शिवके लिये नमस्कार है) ऐसा जानताहूं और अन्य कुछ भी नहीं जानताहूं ॥ ३९ ॥ तुमहीं मेरे आधार या रक्षकहो व तुमहीं परमगतिहो हे ईश ! मैं तुमकोही प्रणमताहूं और तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ४० ॥

इस प्रकार बारबार कहकर ब्रह्माजीने ॐकार नामक, महालिंगरूपी महेशजी के सम्मुख भूमि में दण्डवत् प्रणाम किया ॥ ४१ ॥ महादेवजी बोले कि, हे पर्वतराजकुमारि ! तदनन्तर परम ऐश्वर्य्य सम्पत्तिकी कारणभूत व अतिशय उत्तम और अद्भुत ब्रह्मस्तुतिको सुनकर हम सन्तुष्टहुये ॥ ४२ ॥ उसके अनन्तर मूर्त्तिरहित भी हमने लिंगसे शङ्करकी मूर्त्ति में सबओर से टिककर याने उसको धारणकर चारमुखवाले ब्रह्माजीके प्रति ऐसा कहा कि मैं प्रसन्नहूं तुम वर मांगो ॥ ४३ ॥ अनन्तर भलीभांति उठकर व मुझको प्रत्यक्ष देखकर और फिर जयजय ऐसा कहकर अञ्जली कियेहुये ब्रह्माजीने प्रणाम किया ॥ ४४ ॥ उसके पश्चात् आनन्द

इत्युदीर्यासकृद्वेधाः प्रणनाममहेश्वरम् ॥ प्रणवाख्यंमहालिङ्गरूपिणंदण्डवत्क्षितौ ॥ ४१ ॥ ईश्वरउवाच ॥ ततोगिरीन्द्रतनये श्रुत्वाब्रह्मस्तुतिम्पराम् ॥ परमैश्वर्यसम्पत्तिहेतुंतुष्टोहमद्भुताम् ॥ ४२ ॥ अमूर्तोऽहन्ततोलिंगान्मूर्तिमास्थायशाङ्करीम् ॥ प्रसन्नोस्मिवरंब्रूहीत्युवाच चतुराननम् ॥ ४३ ॥ चतुर्वक्त्रःसमुत्थाय प्रत्यक्षंवीक्ष्यमामथ ॥ पुनर्जयजयेत्युक्त्वा प्रणनामकृतांजलिः ॥ ४४ ॥ आनन्दबाष्पसलिलनेत्रोहृष्टतनूरुहः ॥ गद्गदेनस्वरेणाथ प्रोवाचजलजासनः ॥४५॥ ब्रह्मोवाच॥ यदिप्रसन्नोदेवेश यदिदेयोवरोमम॥ तदेतस्मिन्महालिङ्गेसान्निध्यंतेऽस्तुशङ्कर॥४६॥अयमेववरोदेयो नान्यंवरमहंवृणे ॥ ओंकारेश्वरनामैतदस्तुभक्तैकमुक्तिदम् ॥ ४७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ विध्युक्तमितिविप्रर्षे समाकर्ण्यतदेशिता ॥ उवाचवचनंचैतत्तथास्तुचतुराननम् ॥४८॥ वरानन्यानपिविभुःप्रसन्नस्तत्क्षणाद्ददौ॥ विधयेदी

से उपजे आंसुओं के पानी से पूरित आंखोंवाले, हृष्टरोमा कमलासन (ब्रह्मा) जीने गद्गदस्वर से कहा ॥ ४५ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे देवेश, शङ्कर ! जो आप प्रसन्नहैं व जो मुझको वर देने योग्य हैं तो इस महालिंग में तुम्हारी समीपता होवे ॥ ४६ ॥ यही वर देनेयोग्य है मैं अन्य वरको नहीं स्वीकार करताहूं और यह ॐकारेश्वर नाम भक्तों को मुख्य मुक्तिका दाताहोवे ॥ ४७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे विप्रर्षे ! इस प्रकार ब्रह्माजी का कहाहुआ सुनकर उस समय ईश्वरने चतुर्मुख से इस वचन को कहा कि वैसेही होवे ॥ ४८ ॥ और उस स्तुति से सन्तोषित, समर्थ शङ्करजी ने प्रसन्न होकर उसीक्षण बड़े तपस्वी विधाता के लिये अन्य

भी वरोंको दिया ॥ ४९ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे देवश्रेष्ठ, तपःश्रेष्ठ ! तुम मेरी दयासे सब वेदों के निधान होओ और तुम्हारी सृष्टि करनेमें शक्तिहोवे ॥ ५० ॥ तुम सबके पितामह (बाबा) हो और आप सबके माननीय पात्रहो व तुम्हारी तपस्याका फल देने के अर्थ जो यह लिंग उठा है ॥ ५१ ॥ और हे विधे ! जोकि सबसेपरे ॐकाररूप व वेदमय है इसकी पूजा से मनुष्यों को ब्रह्मपद दूरनहीं है ॥ ५२ ॥ यह लिंग अकारनामक है व यह श्रेष्ठ लिग उकारनामक है व यह मकार नामकहै व नादनामक और बिन्दुसंज्ञक है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार पञ्चायतन याने अकारादिपांचोंका या उनसे वाच्यअर्थ ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर और सदा शिवका आश्रयभूत

घंतपसेतयास्तुत्यातितोषितः ॥ ४९ ॥ ईश्वरउवाच ॥ सुरश्रेष्ठतपःश्रेष्ठ सर्वाम्नायनिधिर्भव ॥ सृष्टेःकरणसामर्थ्यं तवास्तुमदनुग्रहात् ॥ ५० ॥ पितामहस्त्वंसर्वेषां सर्वेषांमान्यभूर्भवान् ॥ त्वत्तपःफलदानार्थं यदेतल्लिङ्गमुत्थितम् ॥ ५१ ॥ परमोङ्काररूपंच शब्दब्रह्ममयंविधे ॥ अस्याराधनतःपुंसां नदूरंब्रह्मणःपदम् ॥ ५२ ॥ अकाराख्यमिदंलिङ्गमु काराख्यमिदंपरम् ॥ मकाराह्वयमेतच्च नादाख्यंबिन्दुसंज्ञकम् ॥ ५३ ॥ पञ्चायतनमीशानमित्थमेतदुदीरितम् ॥ मो क्षायसर्वजन्तूनामस्मिन्नानन्दकानने ॥ ५४ ॥ स्नात्वामत्स्योदरीतीर्थे विलोक्योङ्कारमीश्वरम् ॥ नजातुजायतेज न्तुर्जननीजठरेक्वचित् ॥ ५५ ॥ एतन्नादेश्वरंलिङ्गमेतल्लिङ्गंसुदुर्लभम् ॥ रम्येमत्स्योदरीतीरे दृष्टंस्पृष्टंविमुक्तिदम् ॥ ५६ ॥ यदेतत्कापिलंज्योतिरेतल्लिङ्गे विलोक्यते ॥ अतस्तुकपिलेशाख्यमेतल्लिङ्गंसुदुर्लभम् ॥ ५७ ॥ मत्स्योदरीयदा गङ्गाकपिलेश्वरसन्निधौ ॥ तदातत्रनरःस्नात्वा ब्रह्महत्यांव्यपोहति ॥ ५८ ॥ वरणोत्सिक्तपानीये द्युनदीतोयमिश्रिते ॥

यह ईशान (लिंग) इस काशी में सब जन्तुओं की मुक्तिके लिये कहागया है ॥ ५४ ॥ मत्स्योदरी तीर्थ में स्नानकर व ॐकार ईश्वर को देखकर जन्तु माताके उदर में कभी कहीं नहीं जन्मता है ॥ ५५ ॥ यह लिंग नादेश्वर है यह लिंग बहुतही दुर्लभ है व मनोज्ञ मत्स्योदरी के किनारे देखा और छुवाहुआ यह उत्तम मोक्षका दाता है ॥ ५६ ॥ और जिससे इस लिंग में यह कपिलरूप विष्णु का तेज विशेषता से देखाजाता है इससे कपिलेश नामक यह लिंग सुदुर्लभ है ॥ ५७ ॥ जब मत्स्योदरी गङ्गा कपिलेश्वर के समीप में है तब उसमें स्नान कर नर ब्रह्महत्या को विनाशता है याने दूर करदेता है ॥ ५८ ॥ व गंगाजल से मिश्रित, वरणा के समु-

तिथत पानीमें स्नानकर और नादेश्वरको देखकर मनुष्य क्यों फिर शोच करताहै ॥ ५९ ॥ जिससे अष्टमी और चतुर्दशी में साठकरोड़हजार तीर्थ समुद्रों के साथ मत्स्योदरी के मध्य में प्रवेश करते हैं ॥ ६० ॥ व जब गंगा ओंकारेश्वर के समीप मेंआवैंगी तब देव ऋषि और पितरोंका प्यारा बहुत पुण्यकाल होवेगा॥ ६१ ॥ उसमें ओंकारेश्वर के समीप मत्स्योदरी में स्नान जप दान होम और देवपूजा अक्षय होवै है ॥ ६२ ॥ व ओंकारेश्वर के दर्शन सेही अश्वमेधयज्ञ का फल होवैहै उसलिये बड़े यत्न से काशी में ओंकार ईश्वर देखने योग्य हैं ॥ ६३ ॥ जिसने नादेश्वर को न देखा उसका अर्थादि चतुर्वर्ग फलों का साधन, दुर्लभ मनुष्य का जन्म जलके

स्नात्वानादेश्वरंदृष्ट्वा नरःकिमनुशोचति ॥ ५९ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यां तीर्थानिसहसागरैः ॥ षष्टिकोटिसहस्राणि मत्स्योदर्यांविशन्तिहि ॥ ६० ॥ प्रणवेशसमीपेतु यदागङ्गासमेष्यति ॥ तदापुण्यतमःकालोदेवर्षिपितृवल्लभः ॥६१॥ तत्रस्नानंजपोदानं हवनंदेवतार्चनम् ॥ मत्स्योदर्यामक्षयंस्यादोङ्कारेश्वरसन्निधौ ॥ ६२ ॥ ओङ्कारदर्शनादेव वाजिमेधफलंलभेत् ॥ तस्मात्काश्यांप्रयत्नेन दृश्यओङ्कारईश्वरः ॥ ६३ ॥ दुर्लभंमानवंजन्म चतुर्वर्गैकसाधनम् ॥ जलबुद्बुदवत्तस्यान्नादेशोयेननेक्षितः ॥ ६४ ॥ निरीक्ष्यकपिलेशानंस्नात्वामत्स्योदरीजले ॥ कृत्वापिण्डप्रदानानि पितॄणामनृणोभवेत् ॥ ६५ ॥ कृत्वापिमोहात्पापानि भूरीण्येवमहान्त्यपि ॥ काश्यामोङ्कारमालोक्य कुतस्त्रस्यतिवैयमात ॥ ६६ ॥ ओंकारयात्राभिमुखं नरंवीक्ष्यपितामहाः ॥ परिनृत्यन्तिमुदिताः स्वसन्तानसमुद्भवम् ॥ ६७ ॥ यस्ययस्यचवैनामस्मृत्वास्मृत्वानमस्यति ॥ तन्तमुन्नयतेप्राज्ञःपितरंब्रह्मणःपदम् ॥ ६८ ॥ रुद्राणांनियुतंजप्त्वा यत्फलंस

बुल्ला के समान है ॥ ६४ ॥ इससे मत्स्योदरी के जल में स्नानकर व कपिलेश्वरको देखकर और पितरों को पिण्डदान कर उऋण होजावे ॥ ६५ ॥ व बड़े भारी भी बहुते पापों को करके भी काशी में ओंकारके सबओर से दर्शनकर निश्चयकर यमसे क्यों डरता है ॥ ६६ ॥ व अपने वंशमें उपजेहुये मनुष्यको ओंकार यात्राके सम्मुख देखकर आनन्दितहुये पितर सबओर से नाचते हैं ॥ ६७ ॥ क्योंकि बुद्धिमान् जन जिसके जिसके नाम को सुमिर सुमिर२कर ओंकार के नमस्कार करताहै उस उस

पितर को ब्रह्मलोक के ऊंचे पठाता है ॥ ६८ ॥ व एकलाख रुद्रोंकों भलीभांति जपकर जो फल मिलता है उस फलको भक्तिसमेत ॐकार के दर्शन से निश्चय कर पाता है ॥ ६९ ॥ व जिसने काशी में सब कामदायक ॐकार को न देखा उस देहधारी जन्तु का जन्म केवल भूमिकेभार केही लिये हुआ है ॥ ७० ॥ किन्तु एक ॐकार को सब भावों से देखकर समस्तभूमण्डल में सकल लिंग समूह देखेहुये होजावें इसमें संशय नहीं है ॥ ७१ ॥ अनन्तर ॐकारेश्वर के प्रणामकर यदि अन्यत्र मरताहै वह स्वर्गलोकको प्राप्त होकर उसके बाद काशीमें मुक्तिको पावे है ॥ ७२ ॥ हे ब्रह्मन् ! ऐसा विनिश्चित है कि मैं इस लिंग में सदा टिकूंगा और इस लिंग के

म्यगाप्यते ॥ तत्फलंलभतेनूनं भक्त्योङ्कारविलोकनात् ॥ ६९ ॥ केवलंभूमिभाराय जन्मिनोजन्मतस्यवै ॥ येनानन्दवनेदृष्टो नोङ्कारःसर्वकामदः ॥ ७० ॥ एकमोङ्कारमालोक्य समस्तेक्षोणिमण्डले ॥ लिङ्गजातानिसर्वाणि दृष्टानिस्युर्नसंशयः ॥ ७१ ॥ प्रणवेशंप्रणम्याथ यद्यन्यत्रविपद्यते ॥ स्वर्गलोकमवाप्याथ काश्यांमुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ अस्मिँल्लिङ्गेसदाब्रह्मन्स्थास्यामीतिविनिश्चितम् ॥ दास्यामिचसदामोक्षमेतल्लिङ्गार्चकायवै ॥ ७३ ॥ ओङ्कारंसकृदप्यत्र नरोनत्वाप्रयत्नतः ॥ कृतकृत्योभवेन्नूनं परमान्मदनुग्रहात् ॥ ७४ ॥ ओङ्कारपश्चिमेभागे तारतीर्थमनुत्तमम् ॥ कृतोदकक्रियस्तत्र नरस्तरतिदुर्गतिम् ॥ ७५ ॥ ओङ्कारेशस्ययेभक्ता ज्ञेयास्ते नैव मानवाः ॥ मनुष्यचर्मणानद्धास्तेरुद्रामोक्षगामिनः ॥ ७६ ॥ अस्यलिङ्गस्यमहिमा नान्यैरत्रावगम्यते ॥ त्वत्पुण्योदयतोयस्मादिधेत्राविरभूदिदम् ॥ ७७ ॥ एतल्लिङ्गप्रभावाच्च सर्वज्ञास्यसितत्त्वतः ॥ विधेविधेहितस्मात्त्वं सर्वमेतच्चराचरम् ॥ ७८ ॥ इतिदत्त्वावरंतस्मै ब्रह्मणेप

पूजक को सदैव मुक्ति दूंगा ॥ ७३ ॥ इस लिये यहां एकबार भी बडे यत्न से ॐकार को नमस्कार कर मनुष्य मेरे उत्तम अनुग्रह से निश्चयकर कृतार्थ होवे ॥ ७४ ॥ और ॐकार के पश्चिम भागमें जोकि अतिउत्तम तारतीर्थ है उसमें स्नानादि जल क्रिया कियेहुआ नर दुर्गतिको तरता है ॥ ७५ ॥ व जे ॐकारेश्वर के भक्तहैं उनको मनुष्य नहीं जानना चाहिये किन्तु मनुष्यके चर्म से मढ़ेहुये वे मोक्षगामी रुद्रहैं ॥ ७६ ॥ हे ब्रह्मन् ! यहां इस लिंगकी महिमा अन्यजनों से नहीं जानीजाती है जिस कारण तुम्हारे पुण्य के उदय से यह इस स्थान में प्रकटहुआ है ॥ ७७ ॥ उसलिये तुम इस लिंग के प्रभाव से सबकुछ तत्त्व से जानोगे और हे विधातः ! तुम इस

सब चराचर जगत् को बनावो ॥ ७८ ॥ इसभांति कमल से उपजेहुये उन ब्रह्माजीको वर देकर शङ्करजी उसी महालिंग में लीन होगये ॥ ७९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे घटज ! अपनेही विरचे ब्रह्मप्रतिपादक स्तोत्र सेही स्तुति करतेहुये ब्रह्माजी आज भी उस लिंग कोही सेवते हैं ॥ ८० ॥ और ब्रह्मस्तव को जपताहुआ मनुष्य सब पापों से बहुतही छूट जाता है व महापुण्यों से पूर्ण होताहै और अच्छे उत्तम ज्ञानको प्राप्त होताहै ॥ ८१ ॥ व एक वर्ष तक त्रिकाल में इस ब्रह्मस्तोत्रको जपकर अन्तकालमें वह ज्ञान होवे है कि जिसके द्वारा संसार बन्धनसे विमुक्तहोजाताहै ॥ १८२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते

द्मसम्भुवे ॥ तस्मिन्नेवमहालिङ्गे शम्भुर्लीनोबभूवह ॥७९॥स्कन्दउवाच ॥ ब्रह्मापिभजतेद्यापि तल्लिङ्गंकलशोद्भव ॥ स्तुवन्ब्रह्मस्तवेनैव स्वात्मनाविहितेनहि ॥ ८० ॥ ब्रह्मस्तवंजपन्मर्त्यः सर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ पूर्यतेचमहापुण्यैर्ज्ञानंप्राप्नोतिसत्तमम् ॥ ८१ ॥ ब्रह्मस्तवमिमंजप्त्वा त्रिकालंपरिवत्सरम् ॥ अन्तकालेभवेज्ज्ञानं येनबन्धात्प्रमुच्यते॥१८२॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेओङ्कारमहिमवर्णनन्नामत्रिसप्ततितमोध्यायः ॥ ७३ ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृणुवातापिसंहर्तः काश्यांपातकतङ्किनी ॥ पद्मकल्पेतुयावृत्ता दमनस्यद्विजन्मनः ॥ १ ॥ भारद्वाजस्यतनयोदमनोनामनामतः ॥ कृतमौञ्जीविधिःसोथ विद्याजातंप्रगृह्यच ॥२॥ संसारंदुःखबहुलं जीवितंचापिचञ्चलम् ॥ विज्ञायदमनोविद्वान्निर्जगामगृहान्निजात ॥ ३ ॥ कांचिद्दिशंसमालम्ब्य निर्वेदंपरमंगतः ॥ प्रत्याश्रमंप्रतिनगंप्र

ॐकारमाहिमवर्णनंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा । चौहत्तर अध्याय में फिर समेत विस्तार । ॐकारेश्वरका अहै इत माहात्म्य अपार ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे वातापी राक्षस के विनाशक अगस्त्यजी ! काशिका में पापनाशिका दमननामक ब्राह्मणकी जो कथा पद्मकल्प में वर्तमान होगई है उसको तुम सुनो ॥ १ ॥ कि भारद्वाजका पुत्र नाम से दमननामक हुआ और मौंजी की विधि करनेवाला होकर अनन्तर विद्यासमूह को बहुतही ग्रहणकर वह ॥ २ ॥ विद्वान् दमन संसारको बहुत दुःखवाला और जीवित को भी चंचल विचार

कर अपने घर से निकलगया ॥ ३ ॥ व किसी दिशा को भलीभांति आलम्बन कर परमवैराग्यको प्राप्तभया और प्रतिआश्रम, प्रतिपर्वत, प्रतिसमुद्र, प्रतिवन ॥ ४ ॥ व प्रतितीर्थ और प्रतिनदियों में उस तपस्वी ने भ्रमण किया व इस लोकमें पृथिवीके चारोंओर जितने देवस्थान टिकते हैं ॥ ५ ॥ उन में इन्द्रिय और मनको भली भांति रोंकेहुये उसने अधिकता से वास किया परन्तु उसने कहीं भी मनकी स्थिरता को न पाया ॥ ६ ॥ व मनोरथ के उपदेश करनेवाला कोई कभी कहीं न देख पड़ा और उस दमननामक तपस्वीने दैवयोग से कभी ॥ ७ ॥ नर्मदा नदी के किनारे अमरकण्टक तीर्थ को देखा व उसमेंही ॐकारके भी मनोज्ञ महास्थानको ॥८॥

त्यब्धिप्रतिकाननम् ॥ ४ ॥ प्रतितीर्थंप्रतिनदि सबभ्रामतपोयुतः ॥ यावन्त्यायतनानीह तिष्ठन्तिपरितोभुवम् ॥ ५ ॥ अध्युवाससतावन्ति संयतेन्द्रियमानसः ॥ परंनमनसःस्थैर्यंक्वापिप्रापिचतेनवै ॥ ६ ॥ मनोरथोपदेष्टाच कुत्रचित्का पिनेक्षितः ॥ कदाचिद्दैवयोगात्सदमनोनामतापसः ॥ ७ ॥ रेवातटेनिरैक्षिष्ट तीर्थंचामरकण्टकम् ॥ महदायतनंपुण्य मोङ्कारस्यापितत्रवै ॥ ८ ॥ दृष्ट्वाहृष्टमनाआसीच्चेतःस्थैर्यमवापह ॥ अथपाशुपतांस्तत्र सनिरीक्ष्यतपोधनान् ॥ ९ ॥ विभूतिभूषिततनून्कृतलिङ्गसमर्चनान् ॥ विहितप्राणयात्रांश्चकृतागमविचारणान् ॥ १० ॥ स्वस्थोपविष्टान्स्वगुरोरग्र तोऽचलमानसान् ॥ प्रणम्योपाविशत्तत्र तदाचार्यस्यसन्निधौ ॥ ११ ॥ प्रबद्धहस्तयुगलः प्रणमत्तरकन्धरः ॥ अथपा शुपताचार्यो गर्गोनाममहामुनिः ॥ १२ ॥ वार्धकेनसमाक्रान्तस्तपसाकृशविग्रहः ॥ शम्भोराराधनेनिष्ठः श्रेष्ठःसर्वतप

देखकर वह प्रसन्नमनवाला होगया व हर्ष से चित्तकी स्थिरता को प्राप्तहुआ अनन्तर वहां तपस्याके धनी उन पाशुपतों (शिवभक्तों) को देखकर ॥ ९ ॥ जोकि विभूति से भूषित देहवाले व लिंगों की भलीभांति पूजा कियेहुये व प्राणधारण के लिये भिक्षा करनेवाले व शास्त्रों के विचारकर्त्ता ॥ १० ॥ व अपने गुरु के आगे स्वस्थ बैठेहुये और अचल चित्त थे उनके प्रणामकर वहां उनके आचार्य्य के समीप में बैठगया ॥ ११ ॥ जोकि दोनों हाथ जोडेहुआ व बहुतही प्रणामकरते हुये कण्ठवाला था तदनन्तर पाशुपतों के आचार्य्य गर्गनामक महामुनि ॥ १२ ॥ जोकि वृद्धता से समाक्रान्त व तपस्यासे कृश (दुबली) देहवाले व शङ्करजीकी पूजा

में निष्ठ और सब तपस्वियों में श्रेष्ठ थे ॥ १३ ॥ उन्हों ने दमन से ऐसा पूंछा कि हे सत्तम ! तुम कौनहो व कहांसे यहां आये हो और युवा भी तुम क्यों वैराग्य युक्त हो उसको कहो ॥ १४ ॥ इसभांति बहुत नीतिपूर्वक या स्नेह समेत वचन को सुनकर वह दमनजी बोले कि हे पूज्य, सर्वज्ञ,पूजनप्रिय, पाशुपताचार्य्य ! ॥ १५ ॥ मैं यथार्थ अपने चित्तके कर्म को तुमसे कहताहूं कि वेद और शास्त्रों में परिश्रम कियेहुआ ब्राह्मण का पुत्र मैं ॥ १६ ॥ संसार की असारताको जानकर वानप्रस्थ आश्रम को आश्रितहुआहूं और इसही देहसे महासिद्धि को चाहतेहुये मैंने ॥ १७ ॥ बहुतेतीर्थों में नहाया व करोड़ों मन्त्रों को जपा व अनेक देवोंको सेया और बहुतेही होम

स्विषु ॥ १३ ॥ पप्रच्छदमनंचेति कस्त्वंकस्मादिहागतः ॥ तरुणोपिविरक्तोसि कुतस्तद्वदसत्तम ॥ १४ ॥ इतिप्रणयपूर्वंस निशम्यदमनोऽब्रवीत् ॥ भगोःपाशुपताचार्य सर्वज्ञाराधनप्रिय ॥ १५ ॥ कथयामियथार्थन्ते निजचेतोविचेष्टितम् ॥ अहंब्राह्मणदायादो वेदशास्त्रकृतश्रमः ॥ १६ ॥ संसारासारतांज्ञात्वा वानप्रस्थमशिश्रियम् ॥ अनेनैवशरीरेणमहासिद्धिमभीप्सता ॥ १७ ॥ स्नातंबहुषुतीर्थेषु मन्त्राजप्तास्तुकोटिशः ॥ देवताःसेविताबह्व्यो हवनंचकृतंबहु ॥ १८ ॥ शुश्रूषिताश्चगुरवो बहवोबहुनेहसम् ॥ महाश्मशानेषुनिशाभूयस्योप्यतिवाहिताः ॥ १९ ॥ शिखराणिगिरीन्द्राणां समयाचाध्युषितान्यहो ॥ दिव्यौषधिसहस्राणि मयासंसाधितान्यपि ॥ २० ॥ रसायनानिबहुशः सेवितानिमयापुनः ॥ महासाहसमालम्ब्य सिद्धाध्युषितकन्दराः ॥ २१ ॥ मयाप्रविष्टाबहुशः कृतान्तवदनोपमाः ॥ तपश्चापिमहत्तप्तं बहुभिर्नियमैर्यमैः॥ २२ ॥परंकिञ्चित्कचिन्नैक्षि सिद्धयङ्कुरमपिप्रभो ॥ इदानींत्वामनुप्राप्य.महींपर्यटतामया ॥ २३ ॥ मन

किया ॥ १८ ॥ व बहुत कालतक अनेक गुरुवों की सेवा किया व महाश्मशानोंमें बहुती रातों को बिताया ॥ १९ ॥ और आश्चर्य्य है कि मैंने पर्वतेन्द्रों के शृंगोंपर वास किया व मैंने हजारों दिव्य ओषधियों को भी भलीभांति साधनकिया ॥ २० ॥ फिर मैंने बहुते रसायनों को सेवन किया व बड़े साहसको आलम्बन कर सिद्धोंसे बसीगई हुई काल के मुख के समान अनेक कन्दरायें मुझ से पैठीगईं व बहुते नियम (शौचादि) और यमों (अहिंसादि) से तप भी तपागया ॥ २१ । २२ ॥ परन्तु हे प्रभो ! पृथिवी पर्य्यटन करतेहुये मैंने कुछेक भी सिद्धिका अंकुर (कारण) कहीं नहीं देखा और इस समय तुमको पीछे से प्राप्त होकर ॥ २३ ॥ सम्प्राप्तसिद्धि-

वाले मुझकरके मनकी स्थिरता अवश्यकर पाईगई सी है किन्तु तुम्हारे मुखकमलसे जो वचन निकलेगा ॥ २४ ॥ उससेही मेरी भारी सिद्धि होनेहारीहै अन्यथा नहीं उसलिये तुम अच्छे उपदेश को कहो कि किसभांति मेरी सिद्धिहोवे ॥ २५ ॥ जो कि इसही पार्थिव देहसे बहुत विस्तारयुक्त है तब दमनका ऐसा वचन सुनकर गर्गाचार्य्य ने ॥ २६ ॥ वहां मुक्ति चाहतेहुये स्थिरचित्तवाले पाशुपतव्रतधारी सब शिष्यों के सुनतेही प्रत्यक्ष देखेहुये बड़ेभारी उत्तम आश्चर्य्य को कहा ॥ २७ ॥ श्रीगर्गाचार्य्यजी बोले कि जो तुम इसही देहसे इस लोकमें सिद्धिके चाही हो तो सावधान होकर सुनो मैं तुमसे कहताहूं ॥ २८ ॥ कि अविमुक्त नामक (काशी) महा-

सःस्थैर्यमापन्नमिवसम्प्राप्तसिद्धिना ॥ अवश्यंत्वन्मुखाम्भोजाद्यद्वचोनिःसरिष्यति ॥ २४ ॥ तेनैवमहतीसिद्धिर्भवित्रीममनान्यथा ॥ तद्ब्रूहिसूपदेशंच कथंसिद्धिर्भवेन्मम ॥ २५ ॥ अनेनैवशरीरेण पार्थिवेनप्रथीयसी ॥ दमनस्यनिशम्येतिगर्गाचार्योवचस्तदा ॥ २६ ॥ प्रत्यक्षदृष्टंप्रोवाचमहदाश्चर्यमुत्तमम् ॥ सर्वेषांशृण्वतांतत्र शिष्याणांस्थिरचेतसाम् ॥ मुमुक्षूणांधृतवतां महापाशुपतंव्रतम् ॥ २७ ॥ गर्गउवाच ॥ अनेनैवेहदेहेन यदित्वंसिद्धिकामुकः ॥ शृणुष्वावहितोभूत्वा तदातेकथयाम्यहम् ॥ २८ ॥ अविमुक्तेमहाक्षेत्रेसर्वसिद्धिप्रदेसताम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यरत्नानांपरमाकरे ॥ २९ ॥ समाश्रितानांजन्तूनां सर्वेषांसर्वकर्मणाम् ॥ शलभानांप्रदीपाभे तमस्तोममहाद्विषि ॥ ३० ॥ कर्मभूरुहदावाग्नौ संसाराब्ध्यौर्वशोचिषि ॥ निर्वाणलक्ष्मीक्षीराब्धौसुखसङ्केतसद्मनि ॥ ३१ ॥ दीर्घनिद्राप्रसुप्तानां परमोद्बोधदायिनि ॥ यातायातश्रमापन्नप्राणिमार्गमहीरुहि ॥ ३२ ॥ अनेकजन्मजनितमहापापाद्रिवज्रिणि ॥ नामोच्चारकृतां

क्षेत्र जोकि सन्तों को सब सिद्धिदायक व धर्म, अर्थ, काम और मोक्षका उत्तम आकर (खानि) ॥ २९ ॥ व भलीभांति आश्रितहुये सब जन्तुओंके शलभ (पांखी) रूप सब कर्मों के जलाने को बडे दीपक के समान प्रकाशमान व अन्धकार या माया के समूह का महाशत्रु ॥ ३० ॥ व कर्मवृक्षोंके लिये दावानल व संसारसमुद्र के शोषने को बडवानल की रोचिप्रूप व मोक्षलक्ष्मी को क्षीरसागर व सुखों का संकेतस्थान ॥ ३१ ॥ व आत्मा के अज्ञान में सोयेहुये जनों का उत्तम बोधदाता व आनेजाने याने जन्मने और मरने से परिश्रमयुक्त प्राणियों के लिये गली के वृक्षके समान सुखदायक ॥ ३२ ॥ व अनेक जन्मजनित महापापपर्वत काटने को वज्र-

मिलने योग्यहै ॥ ४२ ॥ व अविमुक्त क्षेत्रमें देहत्याग करते (मरते) हुये कृमि कीट और पतंगों की जो विभूति देखीजाती है वह ब्रह्माण्डमण्डल में कहां है ॥ ४३ ॥ जब काल के क्रमसे या सब ओर बीतने से कभी काशीपुरी प्राप्तहुई हो तब वह उपाय करना चाहिये कि जिससे फिर बाहर निकलना न होवे ॥ ४४ ॥ जिसके पूर्व में मणिकर्णीश्वर व दक्षिण में ब्रह्मेश्वर वैसेही पश्चिममें गोकर्णेश्वर तथा उत्तरमें भारभूतेश्वर लिङ्ग टिका है ॥ ४५ ॥ ऐसा यह उत्तमक्षेत्र (अन्तर्गृह) काशी में बड़े फलवाला है इससे मणिकर्णिका कुण्ड में स्नानकर व विश्वनाथ स्वामी के दर्शन कर ॥ ४६ ॥ और क्षेत्र की प्रदक्षिणा कर राजसूय यज्ञ का फल पावे व वहां

विभूतिर्दृश्यतेयासा क्वास्तिब्रह्माण्डमण्डले ॥ ४३ ॥ वाराणसीयदाप्राप्ता कदाचित्कालपर्ययात् ॥ सउपायोविधात व्यो येननोनिष्क्रमोबहिः ॥ ४४ ॥ पूर्वतोमणिकर्णीशो ब्रह्मेशोदक्षिणेस्थितः ॥ पश्चिमेचैवगोकर्णो भारभूतस्तथोत्त रे ॥ ४५ ॥ इत्येतदुत्तमंक्षेत्रमविमुक्तेमहाफलम् ॥ मणिकर्णीह्रदेस्नात्वा दृष्ट्वाविश्वेश्वरंविभुम् ॥ ४६ ॥ क्षेत्रंप्रदक्षि णीकृत्यराजसूयफलंलभेत् ॥ तत्रश्राद्धप्रदातुश्च मुच्यन्तेप्रपितामहाः ॥ ४७ ॥ अविमुक्तसमंक्षेत्रमपिब्रह्माण्डगोल के ॥ नविद्यतेकचित्सत्यं सत्यंसाधकसिद्धिदम् ॥ ४८ ॥ रक्षन्तिसततंक्षेत्रं यत्रपाशासिपाणयः ॥ महापारिषदाउग्राः क्रूरेभ्योऽक्रूरबुद्धयः ॥ ४९ ॥ प्राग्द्वारमट्टहासश्च गणाकोटिपरीवृतः ॥ रक्षेदहर्निशंक्षेत्रं दुर्वृत्तेभ्योविभीषणः ॥ ५० ॥ त थैवभूतधात्रीशः क्षेत्रदक्षिणरक्षकः ॥ गोकर्णःपश्चिमद्वारंपातिकोटिगणावृतः ॥ ५१ ॥ उदग्द्वारंतथारक्षेद् घण्टाक र्णोमहागणः ॥ ऐशंकोणंछागवक्त्रो भीषणोवह्निदिग्दलम् ॥ ५२ ॥ रक्षःकाष्ठांशंकुकर्णो द्रमिचण्डोमरुद्दिशम् ॥ इत्थं

श्राद्धप्रदाता (कर्ता) के पितर मुक्त होजाते हैं ॥ ४७ ॥ व अविमुक्त के समान साधकों का सिद्धिदाता क्षेत्र भी ब्रह्माण्डमण्डल में कहीं नहीं है यह सत्य है सत्य है ॥ ४८ ॥ जहां पाश और तलवार हाथवाले,उग्ररूप, सौम्य बुद्धिमान् महापार्षद क्रूरोंसे निरन्तर क्षेत्र की रक्षा करते हैं ॥ ४९ ॥ किन्तु दुराचारियों के लिये भयंकर व करोड़ों गणों से सबओर घिरेहुये अट्टहास जी क्षेत्रके पूर्वद्वार की दिनोंरात रक्षा करे हैं ॥ ५० ॥ वैसेही भूतधात्रीशजी क्षेत्रके दक्षिण द्वारके रक्षकहैं व करोडों गणों से सब ओर घिरेहुये गोकर्णजी पश्चिम द्वार की रक्षा करते हैं ॥५१॥ तथा महागण घण्टाकर्णजी उत्तरद्वारकी रक्षाकरे हैं व छागमुख जी ईशानकोणकी व भीषणजी

धारी महेन्द्र व नाम का उच्चारण करतेहुये मनुष्यों का महाकल्याणकर्त्ता ॥ ३३ ॥ व विश्वेश्वरजी का परमधाम (श्रेष्ठ मन्दिर) व स्वर्ग और मोक्षकी सीमा व गङ्गा जीकी चचल लहरों से नित्यही धोयेहुये भूतलवाला ॥ ३४ ॥ और दुःखसमूहों का हर्त्ता है इसप्रकारके महाक्षेत्र में मेरे प्रत्यक्ष जो हालहुआ उसको हे महामते ! मैं तुमसे कहताहूं ॥ ३५ ॥ कि जहां कालका डर नहीं है व जहां पाप का डर नहीं है उसक्षेत्रकी महिमाको भलीभांति कहनेके लिये कौन समर्थ है ॥ ३६ ॥ व इस जगत् में जन्तुओं के पापों के विनाशी जे बड़े तीर्थ हैं वे सब शुद्धि के अर्थ नित्यही काशीको आतेहैं ॥ ३७ ॥ और सर्वभक्षी व सब बेंचनेवाला भी जो मनुष्य काशी में बसे

पुंसां महाश्रेयोविधायिनि ॥ ३३ ॥ विश्वेशितुःपरेधाम्नि सीम्निस्वर्गापवर्गयोः ॥ स्वर्धुनीलोलकल्लोलनित्यक्षालितभूतले ॥ ३४ ॥ एवंविधेमहाक्षेत्रे सर्वदुःखौघहारिणि ॥ प्रत्यक्षंममयद्वृत्तं तद्ब्रवीमिमहामते ॥ ३५ ॥ यत्रकालभयंनास्ति यत्रनास्त्येनसोभयम् ॥ तत्क्षेत्रमहिमानंकः सम्यग्वर्णयितुंक्षमः ॥ ३६ ॥ तीर्थानियानिलोकेस्मिञ्जन्तूनामघहान्यहो ॥ तानिसर्वाणिशुद्ध्यर्थं काशीमायान्तिनित्यशः ॥ ३७ ॥ अपिकाश्यांवसेद्यस्तु सर्वाशीसर्वविक्रयी ॥ सयांगतिंलभेन्मर्त्यो यज्ञैर्दानैर्नसान्यतः ॥ ३८ ॥ रागबीजसमुद्भूतःसंसारविटपोमहान् ॥ दीर्घस्वापकुठारेणच्छिन्नःकाश्यांनवर्धते ॥ ३९ ॥ सर्वेषामूषराणान्तु काशीपरमऊषरः ॥ वप्तुर्बीजमिदंतस्मिन्नुप्तंनैवप्ररोहति ॥ ४० ॥ स्मरिष्यन्तीहयेकाशीमवश्यन्तेपिसाधवः ॥ तेप्यघौघविनिर्मुक्ता यास्यन्तिगतिमुत्तमाम् ॥ ४१ ॥ विभूतिःसर्वलोकानां सत्यादीनांसुभंगुरा ॥ अभंगुराविमुक्तस्य सातुलभ्याशिवाज्ञया ॥ ४२ ॥ कृमिकीटपतङ्गानामविमुक्तेतनुत्यजाम् ॥

वह जिस मुक्तिको पावे वह अन्यत्र यज्ञ और दानों से नहीं होतीहै ॥ ३८ ॥ व रागबीज से समुत्पन्न, संसाररूप बड़ाभारी वृक्ष काशी में मरनेरूप कुठार से काटाहुआ फिर नहीं बढ़ताहै ॥ ३९ ॥ और सब ऊषरोंके मध्यमें काशी क्षेत्र उत्तम ऊषरहै क्योंकि उसमें बोनेवाले से बोयाहुआ यह बीज याने कर्म्मकर्त्ताओं का कियाहुआ कर्म फिर नहीं जमता है ॥ ४० ॥ जे कोई इस लोकमें काशी को सुमिरेंगे वेही अवश्य कर साधु होवेंगे व वेही पापसमूहों से विनिर्मुक्त होकर उत्तम गति (मुक्ति) को प्राप्त होवेंगे ॥ ४१ ॥ व सत्यादि सब लोकोंकी विभूति (सम्पत्ति, या ऐश्वर्य्य, या मुक्ति) विनशनेवाली है और काशी की विभूति अभंगुरहै व वह शिवकी आज्ञासे

उसका क्षेत्रसे अन्यत्र मरणहुआ "यद्यपि बाणलिंग और आपही आप उपजेहुये लिंगादिकों का नैवेद्य खानेसे कोटि गुना पुण्यहै तोभी भेकीने लोभसे खाया इसलिये कुछेक पापहुआ और भक्तिसे खाना उचितही है यह जानना चाहिये " ॥ ६३ ॥ कि श्रेष्ठ विषभी पीने योग्य है परन्तु शिवद्रव्य याने बाणलिंगादि व्यतिरिक्त लिंगों के निर्माल्यको न भोजन करे क्योंकि विष तो अकेले भोक्ताको ही मारता है और शिवधन पुत्र और पौत्रोंको भी मारता है॥ ६४॥ व शिवद्रव्य से परिपुष्ट देहवाले लोग साधुओंसे छूने योग्य नहीं हैं तदनन्तर वे उस कर्मफलसे रौरव नरकनिवासी होते हैं ॥ ६५ ॥ और ऐसी वैसी उछलती हुई उसी भेकीको देखकर चोंचसे पकड़ कर कोई काग क्षेत्र से बाहर निकलगया ॥ ६६ ॥ व उस कागने उस भेकीको क्षेत्रके बाहर छोड़दिया उसके बाद कालसे मरीहुई वह भेकी उसही बहुत अच्छे क्षेत्र

रणंजाततस्यास्तदेनसः ॥ ६३ ॥ वरंविषमपिप्राश्यं शिवस्वन्नैवभक्षयेत् ॥ विषमेकाकिनंहन्ति शिवस्वंपुत्रपौत्रकम्॥ ६४ ॥ शिवस्वपरिपुष्टाङ्गाः स्पर्शनीयानसाधुभिः ॥ तेनकर्मविपाकेनततस्तेरौरवौकसः ॥ ६५ ॥ कश्चित्काकःसमालोक्यमण्डूकींताभितस्ततः॥ पोप्लूयमानामादायचञ्च्वाक्षेत्राद्बहिर्गतः ॥ ६६ ॥ वर्षाम्वीतेनसाक्षिप्ता काकेनक्षेत्रबाह्यतः ॥ अथसाकालतोभेकी तत्रैवक्षेत्रसत्तमे ॥ ६७ ॥ प्रदक्षिणीकरणतोलिङ्गस्यस्पर्शनादपि ॥ पुण्यापुण्यवतीजाता कन्यापुष्पवटोर्गृहे ॥ ६८॥ शुभावयवसंस्थाना शुभलक्षणलक्षिता॥ परंगृध्रमुखीजाता निर्माल्याक्षतभक्षणात्॥६९॥ सम्यग्गीतरहस्यज्ञा नितरांमधुरस्वरा ॥ सप्तस्वरास्त्रयोग्रामा मूर्च्छनास्त्वेकविंशतिः ॥ ७० ॥ तानाएकोनपञ्चाश

में ॥६७॥ लिंगकी प्रदक्षिणाकरने और छूनेसेभी पुण्यवती मनोज्ञरूपवाली होकर पुष्पवटुके घर में कन्या उपजी ॥ ६८ ॥ जोकि शुभ अंगोंकी संस्थितिवाली और शुभलक्षणों से लक्षित थी परन्तु निर्माल्य अक्षत खानेसे गृध्रमुखी हुई ॥ ६९ ॥ व भलीभांति गीतरहस्यको जानेहुई अतिशय मधुरस्वरवाली थी व सात स्वर (षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत, निषाद) व तीनग्राम (षड्जग्राम,मध्यमग्राम, गान्धारग्राम) और इक्कीसमूर्च्छनायें (षड्जग्राममें उत्तरमन्द्रा, रजनी, उत्तरायता, शुद्धषड्जा, मत्सरिता, अश्वक्रान्ता, अभिरुद्गता व मध्यमग्राम में सौवीरी, हारिणा, अश्वा, कालोपतता, शुद्धमध्यमा, गीः, पौरवी और गान्धार ग्राममें नन्दा, विशाला, सुमुखी, चित्रा, चित्रवती, सुखा, आलापा) ॥ ७० ॥ व अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, वाजपेय, षोडशी, पुण्डरीक, अश्वमेध और राजसूयादि

अग्निदिशाके दलकी ॥ ५२ ॥ व शंकुकर्णजी नैर्ऋत्यदिशाकी और द्रुमिचण्ड जी वायुदिशा की रक्षा करते हैं इसभांति अत्यन्त प्रकाशवान् ये गण सदैव क्षेत्र की रक्षा करते हैं ॥ ५३ ॥ व कालनेत्र, रणभद्र, कौलेय और कालकम्पन ये गंगापार में टिकेहुये गण पूर्वसे रक्षा करते हैं ॥ ५४ ॥ वैसेही वीरभद्र, नभ, कर्दमालिप्तनिग्रह स्थूलकर्ण और महाबाहु ये असिनदी के पार में विशेषता से अवस्थित हैं ॥ ५५ ॥ व देहलीदेशमें टिकेहुये विशालाक्ष, महाभीम, कुण्डोदर और महोदर ये पश्चिमद्वारकी रक्षाकरते हैं ॥ ५६ ॥ व नन्दिसेन, पञ्चाल, करण्टक, आनन्दगोपक और बभ्रु ये वरणानदी के तट में रक्षा करते हैं ॥ ५७ ॥ उस महापुण्य क्षेत्र में

क्षेत्रंसदापान्ति गणाएतेऽतिभास्वराः ॥ ५३ ॥ कालाक्षोरणभद्रस्तु कौलेयःकालकम्पनः ॥ एतेपूर्वेणरक्षन्तिगङ्गापारे स्थितागणाः ॥ ५४ ॥ वीरभद्रोनभश्चैव कर्दमालिप्तविग्रहः ॥ स्थूलकर्णोमहाबाहुरसिपारेऽव्यवस्थिताः ॥ ५५ ॥ विशालाक्षोमहाभीमः कुण्डोदरमहोदरौ ॥ रक्षन्तिपश्चिमद्वारंदेहलीदेशसंस्थिताः ॥ ५६ ॥ नन्दिसेनश्चपञ्चालःखरपादः करण्टकः ॥ आनन्दोगोपकोबभ्रूरक्षन्तिवरणातटे ॥५७॥ तस्मिन्क्षेत्रेमहापुण्ये लिङ्गमोङ्कारसंज्ञकम् ॥ तत्रसिद्धिंपरां प्राप्ता देहेनानेनसाधकाः ॥ ५८ ॥ कपिलश्चैवसावर्णिःश्रीकण्ठःपिङ्गलोंशुमान् ॥ एतेपाशुपताःसिद्धास्तल्लिङ्गाराधनेन हि ॥ ५९ ॥ एकदातस्यलिङ्गस्य कृत्वापञ्चापिपूजनम् ॥ नृत्यन्तःसहुडुत्कारं तस्मिँल्लिङ्गेलयंययुः ॥ ६० ॥ अन्यच्चते प्रवक्ष्यामि तत्रयद्वृत्तमद्भुतम् ॥ निशामयमहाबुद्धे दमनद्विजसत्तम ॥ ६१ ॥ एकाभेकीमुनेतत्र चरन्तीलिङ्गसन्निधौ ॥ प्रदक्षिणंसदाकुर्यान्निर्माल्याक्षतभक्षिणी ॥६२॥ सातत्रमृत्युंनप्राप शिवनिर्माल्यभक्षणात् ॥ क्षेत्रादन्यत्रम

ॐङ्कार नामक लिंगहै वहां साधक लोग इसही देह से श्रेष्ठ सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ ५८ ॥ व कपिल, सावर्णि, श्रीकण्ठ, पिङ्गल और अंशुमान् भी ये पाशुपत (शिवभक्त) उस लिंगकी पूजासेही सिद्ध हुये हैं ॥ ५९ ॥ एकसमय उस लिंगका पूजन कर हुडुत्कार समेत नाचते हुये पांचोजनभी उस लिंग में लयको प्राप्त होगये ॥ ६० ॥ हे महाबुद्धे,द्विजसत्तम, दमन ! वहां अन्यभी जो अद्भुत हालहुआहै उसको मैं तुमसे कहताहूं और तुम सुनो ॥ ६१ ॥ हे मुने ! वहां लिंगके समीपमें विचरती हुई, निर्माल्य अक्षतों के खानेवाली एक दादुरी (मिंझकुरि) सदा प्रदक्षिणाकरे ॥ ६२ ॥ व शिवनिर्माल्य खाने से वह वहां मृत्युको न प्राप्तहुई किन्तु उस पाप से

उंचास तान व ध्रुव, साम्य और सन्निपातादि एकसौ एक ताल व छह राग (श्री, वसन्त, पंचम, भैरव, मेघ, जट्टलरायण) और उनकी पांच पाच स्त्रियां (रागिनियां) ॥ ७१ ॥ इस भांति छत्तिस रागरागिनियां रागियों (कामियों) को आनन्द प्राप्तकरनेवाली हैं तथा देश और कालके विशेषभेदसे अन्यभी पैंसठ रागिनियां हैं ॥ ७२ ॥ अथवा जितनेही तालहोवें उतने ही याने एकसौ एक राग व रागिनियां हैं इस भांति गान्धर्व वेद या संगीतरहस्य से प्रतिदिन शुभव्रतवाली वह ॥ ७३ ॥ मधुरालापा माधवीनाम्नी कन्या सदैव ॐङ्कारनाथकी भलीभांति पूजाकरे और वह पुष्पवट्ट की पुत्री अतिउत्तम तरुणाई को प्राप्तहोकर भी ॥ ७४ ॥ पहले जन्मकी

त्तालाएकोत्तरंशतम् ॥ रागाःषडेवतेषांतुपञ्चपञ्चापिचाङ्गनाः ॥ ७१ ॥ षट्त्रिंशद्रागरागिण्य इतिरागिमुदावहाः ॥ देशकालविभेदेन पञ्चषष्टिस्तथापराः ॥ ७२ ॥ यावन्तएवतालाःस्यू रागास्तावन्तएवहि ॥ इति गीतोपनिषदा प्रत्यहं साशुभव्रता ॥ ७३ ॥ माधवीमधुरालापा सदोङ्कारंसमर्चयेत् ॥ प्राप्याप्यनर्घ्यतारुण्यं सातुपुष्पवटोःसुता ॥ ७४ ॥ प्राग्जन्मवासनायोगादोङ्कारंबहुमंस्तवै ॥ स्वभावचञ्चलंचेतस्तस्यास्तल्लिङ्गसेवनात् ॥ ७५ ॥ दमनस्थैर्यमगमद्योगे नेवमहात्मनः ॥ नदिवाबाधयाञ्चक्रे क्षुत्तृण्निद्राक्षपासुताम् ॥ ७६ ॥ अतन्द्रितमनाआसीत्सातल्लिङ्गनिरीक्षणे ॥ अक्ष्णोर्निमेषायावन्तस्तस्याआसन्दिवानिशम् ॥ ७७ ॥ तावत्कालस्तयासाध्व्या महान्विघ्नोऽनुमीयते ॥ निमेषान्तरितःकालो योयोऽथ्यर्थोगतोमम ॥ लिङ्गानवेक्षणात्तत्रप्रायश्चित्तंकथंभवेत् ॥ ७८ ॥ इतिसंचिन्तयन्त्येव सेवांतस्या

वासनाके योगसे ॐङ्कार कोही बहुत मानती थी व स्वभावसे ही चञ्चल उसका चित्त उस लिंगकी सेवासे ॥ ७५ ॥ स्थिरताको प्राप्तहुवा कि जैसे महात्माजन का मन योगसे अचल होता है हे दमन ! भूंख, प्यास और निद्राने उस कन्याको दिन व रातों में भी न पीडित किया ॥ ७६ ॥ वह उस लिंगके देखने में आलस्यरहित चित्तवालीहुई किन्तु रातोदिन उसके जितने निमेष (पलकभांजना) हुये ॥७७॥ उतना काल उस साध्वीसे बड़ा विघ्न अनुमानकिया जाताहै (था) कि निमेषोसे अन्तरित जो जो मेरा समय लिंगके न देखने से बीतगया उसमें प्रायश्चित्त कैसे होवे ॥ ७८ ॥ इसप्रकार भलीभांति चिन्तना करती हुई वह ॐङ्कारकी सेवाको न

त्यागतीथी और जलकी चाहनावाली वह लिंगके नामरूप अमृतको पीवे ॥७६॥ व कानोंतक गये याने बड़े विशालभी उसके नेत्र सन्तोंके हृदय आकाशमें टिकेहुये ॐङ्कारलिङ्गको छोड़कर अन्यके दर्शनके चाही न थे ॥ ८० ॥ व उसके कान अन्य शब्द के ग्रहण में तत्पर न थे व उस लिंगके लिये माला बनानेवाले हाथ अत्यन्त निपुणहुये ॥ ८१ ॥ व मोक्षलक्ष्मीसे अधिष्ठित, ॐङ्कार की आगनभूमिको छोड कर उसके पावँभी सुखकी वाञ्छासे अन्यत्र नहीं विचरते है ॥ ८२ ॥ व ॐङ्कारेश्वर नाम जो कि सेवकों को ऊपर पठानेवाला, सार (प्रलयमें भी स्थिर) सबसे अधिक, परमात्माका प्रकाशक, शब्दब्रह्मवेदत्रयीरूप, नाद और बिन्दुकलाओंका आश्रय ॥८३॥

जनोंक्तेः ॥ जलाभिलाषिणीसातु लिङ्गनामामृतंपिबेत् ॥ ७९ ॥ नान्यद्दिदृक्षिणीतस्या अक्षिणीश्रुतिगेअपि ॥ विहायलिङ्गमोङ्कारं हृद्विहायःस्थितंसताम् ॥ ८० ॥ तस्याःशब्दग्रहौनान्यशब्दग्रहणतत्परौ ॥ अतीवनिपुणौजातौ तत्सन्माल्यकरौकरौ ॥ ८१ ॥ नान्यत्रचरणौतस्याश्चरतःसुखवाञ्छया ॥ त्यक्त्वोङ्कारांजिरक्षोणीं क्षुण्णांनिर्वाणपद्मया ॥ ८२ ॥ ओङ्कारंप्रणवंसारं परंब्रह्मप्रकाशकम् ॥ शब्दब्रह्मत्रयीरूपं नादबिन्दुकलालयम् ॥ ८३ ॥ सदक्षरंचादिरूपं विश्वरूपंपरावरम् ॥ वरंवरेण्यंवरदं शाश्वतंशान्तमीश्वरम् ॥ ८४ ॥ सर्वलोकैकजनकं सर्वलोकैकरक्षकम् ॥ सर्वलोकैकसंहर्तृ सर्वलोकैकवन्दितम् ॥ ८५ ॥ आद्यन्तरहितंनित्यं शिवंशङ्करमव्ययम् ॥ एकंगुणत्रयातीतं भक्तस्वान्तकृतास्पदम् ॥ ८६ ॥ निरुपाधिन्निराकारं निर्विकारंनिरञ्जनम् ॥ निर्मलंनिरहङ्कारं निष्प्रपञ्चंनिजोदयम् ॥ ८७ ॥ स्वात्माराममनन्तंच सर्वगंसर्वदर्शिनम् ॥ सर्वदंसर्वभोक्तारंसर्वंसर्वसुखास्पदम् ॥ ८८ ॥ वागिन्द्रियंतदीयंच प्रोच्चरक्षदह

सत्य, अक्षर (कूटस्थ), आदिरूप, सर्वप्रपंचरूप, कार्य्यकारणात्मक, सर्वश्रेष्ठ, अंगीकार के योग्य, वरदायक, शाश्वत, शान्त, ईश्वर (सबका नियन्ता) ॥ ८४ ॥ व सबलोकों का मुख्य जनक, सब लोकोंका मुख्य रक्षक, सबलोकोंका मुख्य प्रलयकर्त्ता, सब लोकों से एक वन्दित ॥ ८५ ॥ व आद्यन्तरहित, नित्य, कल्याणरूप, सुखकारक, अविनाशी, एक, तीनों गुणोंसे पर, भक्तों के अन्तःकरण में स्थानकर्त्ता ॥ ८६ ॥ व कार्य्य उपाधि से रहित, निराकार निर्विकार, कारणोपाधिसे हीन, निर्मल (रागादिशून्य), निरहङ्कार, प्रपंचसे विहीन, सहज उदयवाला ॥ ८७ ॥ व स्वात्माराम, अनन्त, सर्वगत, सर्वदर्शी, सब कुछ देनेवाला, सबका भोक्ता, सर्व

(श्रीरुद्ररूप) और सब सुखोंका मन्दिरहै ॥ ८८ ॥ उसको दिनोरात बहुतही जपती हुई उसकी वाक्इन्द्रिय अन्य किसीके नामान्तर को कभी कहीं नहीं ग्रहणकरती है ॥ ८९ ॥ व दिनोरात इस नामके अक्षरोंके रसको स्वादलेती हुई उसकी रसना (जिह्वा) अन्य रसान्तरको नहीं जानती है ॥ ९० ॥ और वह माधवी वहां शिवालयके सबओर सम्मार्जन व चित्रसमूह तथा पूजाके पात्रोंका सदा शोधनकरे याने करतीथी ॥ ९१ ॥ व ॐकारेश्वरकी पूजामें रत जे प्रसिद्ध पाशुपत वहां हैं उनको भारी भक्तिपूर्वक पिता की बुद्धि से नित्यही सेवे ॥ ९२ ॥ और एकसमय वैशाख सुदी चतुर्दशीके दिन उपास से युक्त वह माधवी रात्रिमें जागरण कर ॥ ९३ ॥ व

नामान्तरंनगृह्णाति क्वचिदन्यस्यकस्यचित ॥ ८९ ॥ एतन्नामाक्षररसं रसयन्तीदिवानिशम् ॥ रसनानैव जानाति तस्याअन्यद्रसान्तरम् ॥ ९० ॥ सम्मार्जनंरङ्गमालाः प्रासादंपरितःसदा ॥ विदध्यान्माधवीतत्र तथार्चापात्रशोधनम् ॥ ९१ ॥ तत्रपाशुपतायेवै प्रणवेशार्चनेरताः ॥ तांश्चशुश्रूषयेन्नित्यंपितृबुद्ध्यातिभक्तितः ॥९२॥ वैशाखस्य चतुर्दश्यामेकदासातुमाधवी ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा दिवोपवसनान्विता ॥९३॥ यात्रामिलितभक्तेषु प्रातर्यातेषुसर्वतः॥ सम्मार्जनादिकंकृत्वा लिङ्गमभ्यर्च्यहर्षतः ॥ ९४ ॥ गायन्तीमधुरंगीतं नृत्यन्तीनिजलीलया॥ध्यायन्तीलिङ्गमोङ्कारं तत्रलिङ्गेलयंययौ ॥ ९५ ॥ अनेनैवशरीरेण पार्थिवेनमहामतिः ॥ अस्मदाचार्य्यमुख्यानां पश्यतांचतपस्विनाम्॥ ९६ ॥ प्रादुर्बभूवयल्लिङ्गाज्ज्योतिर्जटिलिताम्बरम् ॥ तत्रज्योतिषिसाबाला ज्योतिर्मय्यपिसाप्यभूत् ॥ ९७ ॥ राधशुक्लचतुर्दश्यामद्यापिक्षेत्रवासिनः ॥ तत्रयात्रांप्रकुर्वन्तिमहोत्सवपुरःसराः ॥ ९८ ॥ तत्रजागरणंकृत्वा चतुर्दश्यामु

देवयात्रार्थ सम्मिलित भक्तोंके सबओर जातेही प्रातःकाल मन्दिरके सम्मार्जनादिकको कर व आनन्दसी लिङ्गका सम्पूजन कर ॥ ९४ ॥ अपनी लीला से मधुरगीत को गाती व नाचती और ॐकार लिङ्ग को ध्यावती हुई उस लिंग में लयको प्राप्तहोगई ॥ ९५ ॥ जो कि पृथ्वी के विकार से बने हुये इसही शरीर से बड़ी बुद्धिवाली थी और हमारे गुरु आदिक तपस्वियों को देखतेही ॥ ९६ ॥ आकाशमें व्यापनेवाली जो ज्योतिर्लिंग से प्रकट हुई उस ज्योति में वह कन्या भी ज्योतिमयी होगई ॥ ९७ ॥ आजभी महोत्सवपूर्वक क्षेत्रवासी लोग वैशाखसुदी चतुर्दशी में वहां यात्राको करतेहैं ॥ ९८ ॥ व चतुर्दशीमें उपासे हुये जन वहां जागरण को कर

जहां कहीं भी मृतक होकर निश्चय से उत्तम ज्ञानको प्राप्तहोते हैं ॥ ९९ ॥ व ब्रह्माण्डमण्डल के उदर के मध्यमें सबओर जे तीर्थहैं वे वैशाखसुदी चतुर्दशी में ॐकारेश्वर के दर्शन के लिये आते हैं ॥ १०० ॥ और लिंगके आगे अतिशय उत्तम श्रीमुखीनाम्नी गुहाहै वह पाताल का द्वारहै व उसमें सिद्धलोगही बसतेहैं ॥ १ ॥ जोकि अच्छे व्रतवाले लोग उस गुहामें पांच रात्रितक टिकें वे नागकन्याओं को देखते हैं और वे कन्यायें शुभ व अशुभ फलको कहै हैं ॥ २ ॥ वहां उस कन्दरा से उत्तरभाग में रसोदक नामक कूप है छह मासतक उसका पानी पीकर ब्रह्मरसायनको पानकरे ॥ ३ ॥ और वहां नादेश्वर लिंगको देखकर सब नादोका उत्पत्ति

पोषिताः ॥ प्राप्नुवन्तिपरंज्ञानं यत्रकुत्रापिवैमृताः ॥ ९९ ॥ ब्रह्माण्डोदरमध्येतु यानितीर्थानिसर्वतः ॥ तानिवैशाखभूतायामायान्त्योंकृतिदर्शने ॥ १०० ॥ लिङ्गाग्रेश्रीमुखीनाम्नी गुहास्तिपरमोत्तमा ॥ पातालस्यचतद्द्वारं तत्रसिद्धावसन्तिहि ॥ १ ॥ तिष्ठेयुःपञ्चरात्रंये गुहायांतत्रसुव्रताः ॥ तेनागकन्याःपश्यन्ति ब्रूयुस्ताश्चशुभाशुभम् ॥ २ ॥ कन्दरोत्तरदिग्भागे तत्रकूपोरसोदकः ॥ आषण्मासंचतत्पीत्वापिबेद्ब्रह्मरसायनम् ॥ ३ ॥ तत्रनादेश्वरंलिङ्गं दृष्ट्वानादनिदानभूः ॥ सर्वनादात्मकंविश्वं तच्छ्रवोगोचरीभवेत् ॥ ४ ॥ तत्रमत्स्योदरींस्नात्वा स्वर्धुनींवरुणाप्लुताम् ॥ कृतकृत्योभवेज्जन्तुर्नैवशोचतिकुत्रचित् ॥ ५ ॥ असंख्यातागताःसिद्धिमोङ्कारेश्वरसेवकाः ॥ पार्थिवेनैवदेहेन दिव्यभूतेनतत्क्षणात् ॥ ६ ॥ अविमुक्तंपरंक्षेत्रं ब्रह्माण्डादपिसर्वतः ॥ ततोपिपरओङ्कार उक्तोमत्स्योदरीतटे ॥ ७ ॥ प्रणवेशोऽङ्घ्र्यैःकाश्यां ननतोनापिचार्चितः ॥ किमर्थन्तेसमुत्पन्ना मातृतारुण्यहारिणः ॥ ८ ॥ यदाप्रभृतिविश्वेशो मन्दरादागतोऽभव

स्थान सर्वनादात्मक और विश्वमय वह लिंग उसके श्रवणगोचर होवे है ॥ ४ ॥ व वहां वरणा से भीगीहुई मत्स्योदरी गंगाको स्नानकर जन्तु कृतार्थ होजावे है और कहीं भी नहीं शोचता है ॥ ५ ॥ व असंख्य ॐकारेश्वर के सेवक उसीक्षण दिव्यहुई, पृथिव्यादि तत्त्वमयी देहसेही सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ ६ ॥ क्योंकि अविमुक्तक्षेत्र सब ब्रह्माण्डसे भी परे है और मत्स्योदरी के किनारे ॐकारेश्वर लिंग उस अविमुक्तसे भी श्रेष्ठ कहागयाहै ॥ ७ ॥ हे प्यारे मित्र ! जिन्होंने काशीमे ॐकारेश्वर के नमस्कार न किया व जिन से वह पूजित भी न हुये वे माताकी तरुणता (युवापन) के हरनेहारे लोग किस लिये भलीभांति उपजे हैं ॥ ८ ॥ हे सत्तम ! जब से

लगाकर श्रीविश्वनाथजी मन्दराचल से उस आनन्दवन (काशी) में आये हैं तब से लगाकर समुद्रों समेत, पर्वतों सहित, नदियों संयुत, तीर्थों से समन्वित और द्वीपों के साथ बर्तते हुये सब देवस्थानभी उसी समय शीघ्रही प्राप्तहुये हैं ॥ १० ॥ हे मुने ! इससमय मैं मेरे भागसे तुम करके सुध करायागयाहूं इस लिये मैं भी आऊंगा और हम सबलोग धीरे धीरे काशी को जाते हैं ॥ ११ ॥ जिसलिये महापाशुपतव्रतवाले व मुक्तिको चाहते हुये जे येभी सब मेरे शिष्यहैं वेभी काशी के जाने की इच्छावाले हैं ॥ १२ ॥ और बुढ़ाई को भी प्राप्तहोकर जिन्होंसे काशी नहीं सेई गई है उनके दुर्लभ मानुष शरीरके नष्ट होतेही महासुख कहांसे

त ॥ तस्मिन्नानन्दगहने तदाप्रभृतिसत्तम ॥ ९ ॥ सर्वाण्यायतनान्याशु साब्धीनिसगिरीण्यपि ॥ सनदीनिसतीर्थानि सद्वीपानियुस्ततः ॥ १० ॥ इदानींममभाग्येन स्मारितोहंत्वयामुने ॥ अहमप्यागमिष्यामि यामःकाशींशनैःशनैः ॥ ११ ॥ एतेपिममशिष्याये महापाशुपतव्रताः ॥ काशींयियासवस्तेपि यतःसर्वेमुमुक्षवः ॥ १२ ॥ अपिवार्धकमासाद्य यैःकाशीनैवशीलिता ॥ मानुषेदुर्लभेनष्टेकुतस्तेषांमहासुखम् ॥ १३ ॥ यावन्नेन्द्रियवैकल्यं यावन्नैवायुषःक्षयः ॥ तावत्सेव्यंप्रयत्नेनशम्भोरानन्दकाननम् ॥ १४ ॥ यत्रानन्दवनंशम्भोः शिश्रियुःश्रीनिकेतनम् ॥ अचलाश्रीर्न मुञ्चेत्तान्महासौख्यैकशेवधीन् ॥ १५ ॥ इत्याख्यायकथांरम्यां गर्गःपाशुपतोत्तमः ॥ भारद्वाजेनसहितः प्रापवा राणसींपुरीम् ॥ १६ ॥ दमनोपिहिधर्मात्मा गर्गाचार्येणसंयुतः ॥ आराध्यश्रीमदोङ्कारं तस्मिँल्लिङ्गेलयङ्गतः ॥ १७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इल्वलारेपरंस्थानमोङ्कारमविमुक्तके ॥ तत्रसिद्धिंपराञ्जग्मुः साधकाबहुशोमुने ॥ १८ ॥

होगा ॥ १३ ॥ इससे जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीं है व जबतक आयुका क्षय नहीं है तबतक शंकर का आनन्दवन बड़े यत्नसे सेवने योग्य है ॥ १४ ॥ और जो कि शम्भुका आनन्दवन सम्पत्ति का स्थान है उसको जिन्होंने सेवन किया उन महासौख्य के मुख्य निधानों को अचललक्ष्मी नहीं छोड़ै है ॥ १५ ॥ इस प्रकार रम्य कथाको सबओर से कहकर पशुपति (शिव) के भक्तों में उत्तम गर्ग जी भारद्वाजके पुत्रसे संयुत होकर काशीपुरी को प्राप्तहुये ॥ १६ ॥ और गर्गाचार्य्य से समेत, धर्मात्मा दमनभी श्रीयुत ॐकारेश्वर की पूजाकर उसही लिंगमें लयको प्राप्तहोगया ॥ १७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे इल्वल असुरके वैरिन्,

अगस्त्यमुने ! काशी में ॐकार अत्यंत उत्तम स्थानहै उसमें बहुतसे साधकलोग श्रेष्ठ सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १८ ॥ कलियुगमें पापचित्तवाले और विशेष से नास्तिकों के आगे ॐकारेश्वरका माहात्म्य इस प्रकार से नहीं कहनाचाहिये ॥ १९ ॥ जे अज्ञानी महादेवजीको निंदते हैं व जे क्षेत्रको निंदते हैं और जे पुराणकी निंदा करते हैं वे कहीं संभाषणके योग्य नहीं हैं याने उनसे बतलाना न चाहिये ॥२०॥ ॐकारेश्वर के समान लिंग भूतलमें कहीं नहीं है इसभांति निश्चय कियेहुयेको महादेवजी ने श्रीपार्वतीजी के लिये संकथन कियाहै ॥ २१ ॥ उसमें मन लायेहुवा मनुष्य इस अध्यायको सुनकर सब पापों से विमुक्तहोकर शिवलोकको पावे या जावे

कलौकलुषचित्तानांपुरोनाख्येयमेवहि ॥ प्रणवेश्वरमाहात्म्यंनास्तिकानांविशेषतः ॥ १९ ॥ येनिन्दन्तिमहादेवंक्षेत्रं निन्दन्तियेऽधियः ॥ पुराणंयेचनिन्दन्तितेसम्भाष्यानुकुत्रचित् ॥ २० ॥ ॐकारसदृशंलिङ्गंनक्वचिज्जगतीतले ॥ इति गौर्यैसमाख्यातंदेवदेवेननिश्चितम् ॥ २१ ॥ इममध्यायमाकर्ण्यनरस्तद्गतमानसः ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्यःशिवलोकमवाप्नुयात् ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेॐकारमाहात्म्यंनामचतुःसप्ततितमोध्यायः ॥ ७४ ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ श्रुत्वोङ्कारकथामेतांमहापातकनाशिनीम् ॥ नतृप्तोस्मिविशाखाथब्रूहित्रैविष्टपींकथाम् ॥ १ ॥ कथञ्चकथितादेव्यैदेवदेवेनषण्मुख ॥ आविर्भूतिर्महाबुद्धेपुण्यात्रैलोचनीपरा ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयमुनेवच्मिकथांश्रमनिवारिणीम् ॥ यथादेवेनकथितांत्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥ ३ ॥ विरजाख्यंहितत्पीठंतत्रलिङ्गंत्रिविष्टपम् ॥

है ॥ १२२ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेॐकारमाहात्म्यंनामचतुःसप्ततितमोध्यायः ॥ ७४ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । पचहत्तर अध्याय में कथित सहित चितचाव ॥ श्री त्रैलोचन लिङ्गको मंगल आविर्भाव ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे श्रीकार्त्तिकेयजी ! महापापनाशिनी इस ॐकारेश्वर की कथाको सुनकर मैं तृप्त नहींहूं अनन्तर आप त्रिलोचन तीर्थकी कथाको कहो ॥ १ ॥ और हे महाबुद्धे, षण्मुख ! श्रीमहादेवजी करके श्रीदेवीजी के लिये मनोज्ञ व उत्तम त्रिलोचनतीर्थ का प्रकट होना कैसे कहागया है ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! मैं महादेवजी से कही व त्रिलोचन से समुत्पन्न हुई श्रमहारिणी कथाको यथावत् कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि जिससे वह पीठ विरजनामक है और उसमें त्रिविष्टप (त्रिलोचन) लिंगहै इससे उस पीठके दर्शनसेही मनुष्य

विमल होजाताहै ॥ ४ ॥ व हे कुम्भसम्भव अगस्त्यजी ! वहां तीन नदियां संगत (संमिलित) हुईहैं किन्तु त्रिलोचन से दक्षिण मेंही पापहारिणी तीन नदियांहैं ॥ ५ ॥ साक्षात् लिंगस्नान कराने के कारण स्रोतोमूर्त्तिधारिणी सरस्वती अनन्तर यमुना और अत्यन्तसुखदायिनी नर्मदा ॥ ६ ॥ वे कलश हाथवाली तीनोंभी नदियां तीनों संध्याओं में पूजनीय परमतेजस्वी लिंगको नहवाती हैं ॥ ७ ॥ और उन्होंने अपने नामसे सब ओर लिंगोंकी स्थापना भी कियाहै उनके भलीभांति दर्शन करने से मनुष्योंको उन नदियों के स्नानका फल होवे है ॥ ८ ॥ त्रिलोचनसे दक्षिण ओर देखा और छुवा हुवा सरस्वतीश्वर लिंग सारस्वत लोकको देवेहै ॥ ९ ॥ व पापीभी मनुष्यों करके

तत्पीठदर्शनादेवविरजाजायतेनरः ॥ ४ ॥ तिस्रस्तुसङ्गतास्तत्रस्रोतस्विन्योघटोद्भव ॥ तिस्रःकल्मषहारिण्योदक्षिणेहित्रिलोचनात् ॥ ५ ॥ स्रोतोमूर्तिधराःसाक्षाल्लिङ्गस्नपनहेतवे ॥ सरस्वत्यथकालिन्दीनर्मदाचातिशर्मदा ॥ ६ ॥ तिस्रोपिहित्रिसन्ध्यन्ताःसरितःकुम्भपाणयः ॥ स्नपयन्तिमहाधामलिङ्गंत्रैविष्टपम्महत् ॥ ७ ॥ लिङ्गानिपरितस्ताभिःस्वनाम्नास्थापितान्यपि ॥ तेषांसन्दर्शनात्पुंसांतासांस्नानफलंभवेत् ॥ ८ ॥ सरस्वतीश्वरंलिङ्गंदक्षिणेनत्रिविष्टपात् ॥ सारस्वतंपदंदद्याद्दृष्टंस्पृष्टञ्चजाड्यहृत् ॥ ९ ॥ यमुनेशम्प्रतीच्याञ्चनरैर्भक्त्यासमर्चितम् ॥ अपिकिल्बिषवद्भिश्चयमलोकनिवारणम् ॥ १० ॥ दृष्टंत्रिलोचनात्प्राच्यांनर्मदेशंसुशर्मदम् ॥ तल्लिङ्गार्चनतोनृणाङ्गर्भवासोनिषिध्यते ॥ ११ ॥ स्नात्वापिलिपिलातीर्थेत्रिविष्टपसमीपतः ॥ दृष्ट्वात्रिलोचनंलिङ्गंकिंभूयःपरिशोचति ॥ १२ ॥ त्रिविष्टपस्यलिङ्गस्यस्मरणादपिमानवः ॥ त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्रकार्याविचारणा ॥ १३ ॥ त्रिविष्टपस्यद्रष्टारःस्रष्टारःस्युर्नसंशयः ॥ कृतकृत्या

भक्तिसे भलीभांति पूजाहुवा यमलोक के निवारण करनेवाला यमुनेश्वरलिंग पश्चिम में है ॥ १० ॥ और अच्छासुखदाता नर्मदेश्वर लिंग त्रिलोचन से पूर्वमें देखागयाहै उस लिंगकी पूजा से मनुष्योंका गर्भवास रोंकाजाता है ॥ ११ ॥ व त्रिविष्टप के समीप पिलिपिलातीर्थ में स्नानकर और त्रिलोचन लिंग को देखकर फिर क्यों सब ओरसे शोच करताहै ॥ १२ ॥ क्योंकि मनुष्य त्रिलोचन लिंग के स्मरणसेही त्रिलोक या स्वर्गका स्वामी होवे इसमें विचारणा न करना चाहिये ॥ १३ ॥ व त्रिविष्टप

(त्रिलोचन) लिंगके देखनेवाले लोग ब्रह्मा याने सृष्टि करने को समर्थ होवेहैं इसमें संशय नहीं है व वेही इस लोकमें कृतार्थ हैं और वेही बड़ेबुद्धिमान् हैं ॥ १४ ॥ जिन शुद्ध बुद्धिवालोंने काशीमें त्रिलोचन लिंगके प्रणाम किया व जिन्होंने त्रिलोचनका नामभी सुना ॥१५॥ वे सातजन्मोंमें बटोरे हुये पापोंसे पवित्र होतेहैं इसमें सन्देह नहींहै और पृथिवी में जो लिंगहैं उनके देखेहुये होतेही जो फलहै ॥ १६ ॥ वह काशी मे त्रिलोचन के देखतेही होवेहै व मैं तो उससे अधिकभी मानताहूं क्योंकि काशी में त्रिलोचन लिंग के देखेहुयेही सब त्रिलोक देखाहुवा होताहै ॥ १७ ॥ और क्षणमें विगतपापवाला वह द्रष्टा फिर गर्भसेवी नहीं होवे है व उसने सब तीर्थों में स्नान

स्तएवात्रतएवात्रमहाधियः ॥१४॥ आनन्दकाननेलिङ्गंप्रणतंयैस्त्रिविष्टपम् ॥ त्रिलोचनस्यनामापियैः श्रुतंशुद्धबुद्धिभिः ॥ १५ ॥ सप्तजन्मार्जितात्पापात्तेपूतानात्रसंशयः ॥ पृथिव्यांयानिलिङ्गानितेषुदृष्टेषुयत्फलम् ॥ १६ ॥ तत्स्यात्रिविष्टपेदृष्टेकाश्यांमन्येततोधिकम् ॥ काश्यांत्रिविष्टपेदृष्टेदृष्टंसर्वंत्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ क्षणान्निर्धूतपापोसौनपुनर्गर्भभाग्भवेत् ॥ सस्नातःसर्वतीर्थेषुसर्वावभृथवान्सच ॥ १८ ॥ योवैपिलिपिलातीर्थेस्नात्वोत्तरवहाम्भसि ॥ सरित्त्रयंमहापुण्यंयत्रसाक्षाद्वसेत्सदा ॥१९॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वागयायांकिंकरिष्यति ॥ स्नात्वापिलिपिलातीर्थेकृत्वावैपिण्डपातनम् ॥२०॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिङ्गंकोटितीर्थफलंलभेत् ॥ यदन्यत्रार्जितंपापंतत्काशीदर्शनाद्व्रजेत् ॥ २१ ॥ काश्यांतुयत्कृतंपापंतत्पैशाचपदप्रदम् ॥ प्रमादात्पातकंकृत्वाशम्भोरानन्दकानने ॥२२॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिङ्गंतत्पापमपिहास्यति ॥ सर्वस्मिन्नपिभू

किया और वह सब यज्ञांत स्नानवाला है ॥ १८ ॥ और जिस उत्तरवाही जलवाले पिलिपिलातीर्थ में महामनोज्ञ या परमपुण्यदात्री तीनों नदियां साक्षात् सदैव बसे हैं उसमे जोई स्नानकर ॥ १९ ॥ व वहां श्राद्धादिकको कर बर्तता है वह गया में क्या करेगा प्रसिद्ध है कि पिलिपिलातीर्थ में स्नानकर और पिंडोंका पातनकर ॥ २० ॥ व त्रिलोचन लिंगको देखकर करोड़ो तीर्थोंके फलको पावे है और जो पाप अन्यत्र कमाया गया है वह काशीके दर्शन से चलाजावे है ॥ २१ ॥ और काशीमें कियाहुवा जो पापहै वह पिशाच के पदका दायक है किन्तु शिवकी काशीमें प्रमाद से पाप को कर ॥ २२ ॥ और त्रिलोचन लिंग के दर्शन कर उस पाप कोभी त्याग

देवेगा क्योंकि सबही पृथिवीपृष्ठमें आनन्दवन श्रेष्ठ है ॥ २३ ॥ उसमें भी सब तीर्थ व उनसे भी ॐकारेश्वर की भूमि श्रेष्ठ है व मुक्तिमार्गप्रकाशक ॐकार नामक अच्छे लिंग सेभी ॥ २४ ॥ कल्याणरूप त्रिलोचन लिंग अत्यन्त बहुत श्रेष्ठहै ॥ २५ ॥ जैसे तेजस्वियों में सूर्य्य और जैसे देखने योग्य नक्षत्रादिकों में चन्द्रमा है वैसेही सब लिंगों में त्रिलोचन लिंग उत्तम है ॥ २६ ॥ और परमानन्द की मुख्य निधि कैवल्यमुक्तिलक्ष्मीका जो मार्ग है वह त्रिलोचनके पूजकोंके दूर रहनेवाला नहीं है ॥ २७ ॥ एक बारभी त्रिलोचन की पूजासे जो कल्याण भलीभांति बटोरा जाताहै वह जन्म पर्यन्त अन्य लिंगोंको पूजकर नहीं मिलताहै ॥ २८ ॥ व जे बड़ी बुद्धि

पृष्ठेश्रेष्ठमानन्दकाननम् ॥ २३ ॥ तत्रापिसर्वतीर्थानिततोप्योङ्कारभूमिका ॥ ओङ्कारादपिसल्लिङ्गान्मोक्षवर्त्मप्रकाशकात् ॥ २४ ॥ अतिश्रेष्ठतरंलिङ्गंश्रेयोरूपंत्रिलोचनम् ॥ २५ ॥ तेजस्विषुयथाभानुर्दृश्येषुचयथाशशी ॥ तथालिङ्गेषुसर्वेषु परंलिङ्गंत्रिलोचनम् ॥ २६ ॥ त्रिलोचनार्चकानांसापदवीनदवीयसी ॥ परंनिर्वाणपद्मायामहासौख्यैकशेवधेः ॥ २७ ॥ सकृत्त्रिलोचनार्चातोयच्छ्रेयःसमुपार्ज्यते ॥ नतदाजन्मसम्पूज्यलिङ्गान्यन्यानिलभ्यते ॥ २८ ॥ काश्यांत्रिलोचनंलिङ्गं येर्चयन्तिमहाधियः ॥ तेर्च्यास्त्रिभुवनौकोभिर्ममप्रीतिमभीप्सुभिः ॥ २९ ॥ कृत्वापिसर्वसंन्यासंकृत्वापाशुपतव्रतम् ॥ नियमेभ्यःस्खलित्वापिकुतोबिभ्यतिमानवाः ॥ ३० ॥ विद्यमानेमहालिङ्गेमहापापौघहारिणि ॥ त्रिविष्टपेपुण्यराशौमोक्षनिक्षेपसद्मनि ॥ ३१ ॥ समभ्यर्च्यमहालिङ्गंसकृद्देवंत्रिलोचनम् ॥ मुच्यतेकलुषैःसर्वैरपिजन्मशतार्जितैः ॥ ३२ ॥ ब्रह्महापिसुरापोवास्तेयीवागुरुतल्पगः ॥ तत्संयोग्यपिवावर्षमहापापीप्रकीर्तितः ॥ ३३ ॥ परदाररतश्चापिपरहिंसारतोपिवा ॥

वाले लोग काशी में त्रिलोचन लिंग की पूजा करते हैं वे मेरी प्रीति चाही त्रिलोकवासियों से पूजनीय हैं ॥ २९ ॥ व सर्व संन्यासको कर भी पाशुपत व्रतको कर सब नियमों से च्युत होकर भी मनुष्य क्यों डरते हैं ॥ ३० ॥ जब पुण्योंका समूहरूप व मोक्षके धरनेका मन्दिर व महापापसमूहोंका हरता त्रिलोचन महालिंग विद्यमान है तब ॥ ३१ ॥ एक बार भी त्रिलोचन महालिंगको भलीभांति पूजकर सैकड़ों जन्मो में बटोरेहुये सबों भी पापों से छूटजाताहै ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणका मारनेवाला भी व मद्य पीनेवाला व सुवर्णादिकों को चोरानेवाला व गुरुकी शय्यामें बैठनेवाला व उनका संयोग करनेवाला भी वर्षतक महापापी कहागयाहै ॥ ३३ ॥ और परस्त्री में रत भी

व परहिंसामें रत व पराये अपवाद करने का शीलवाला भी तथा विश्वासघातक ॥ ३४ ॥ व कृतघ्न भी व गर्भघाती भी व शूद्रीका संभोगी व माता पिता और गुरुके त्यागनेवाला व अग्निदाता व विषदाता ॥ ३५ ॥ व गोहन्ता व स्त्रीहन्ता भी व कन्या को दूषित करनेवाला भी व जन्तुओं को मारनेवाला व परदोषसूचक और अपने धर्म से विमुख ॥ ३६ ॥ व निन्दक व नास्तिक भी व असत्यसाक्षी बुलानेवाला या झूंठ साक्ष्य बोलनेवाला व अभक्ष्यभोजीभी तथा न बेंचने योग्य चीजों का बेंचनेवाला ॥ ३७ ॥ इत्यादि पापशील भी एक शिवनिन्दकको छोड़कर त्रिलोचन लिंगके नमस्कारकर पापसे उद्धारको प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥ और जोकि मूढ़ श्रीशिवजीकी निंदा

परापवादशीलोपितथाविस्रम्भघातकः ॥ ३४ ॥ कृतघ्नोपिभ्रूणहापिवृषलीपतिरेववा ॥ मातापितृगुरुत्यागीवह्निदोगरदोपिवा ॥ ३५ ॥ गोघ्नःस्त्रीघ्नोपिशूद्रघ्नःकन्यादूषयितापिच ॥ क्रूरोवापिशुनोवापिनिजधर्मपराङ्मुखः ॥ ३६ ॥ निन्दकोनास्तिकोवापिकूटसाक्ष्यप्रवादकः ॥ अभक्ष्यभक्षकोवापितथाऽविक्रेयविक्रयी ॥ ३७ ॥ इत्यादिपापशीलोपिमुक्त्वैकंशिवनिन्दकम् ॥ पापान्निष्कृतिमाप्नोतिनत्वालिङ्गंत्रिलोचनम् ॥ ३८ ॥ शिवनिन्दारतोमूढःशिवशास्त्रविनिन्दकः ॥ तस्यनोनिष्कृतिर्दृष्टाक्वापिशास्त्रेपिकेनचित् ॥ ३९ ॥ आत्मघातीसविज्ञेयःसदात्रैलोक्यघातकः ॥ शिवनिन्दांविधत्तेयःसोनाभाष्योऽधमाधमः ॥ ४० ॥ शिवनिन्दारतायेचशिवभक्तजनेष्वपि ॥ तेयान्तिनरकेघोरेयावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ४१ ॥ शैवाःपूज्याःप्रयत्नेनकाश्यांमोक्तुमभीप्सुभिः ॥ तेष्वर्चितेष्वपिशिवःप्रीतोभवत्यसंशयः ॥ ४२ ॥ सर्वेषामिहपापानांप्रायश्चित्तचिकीर्षया ॥ निःशङ्कैरेववक्तव्यंप्रमाणज्ञैरिदंवचः ॥ ४३ ॥ पुरश्चरणकामश्चेद्भीतोसियदिपापतः ॥

में रत व शिवसम्बन्धी शास्त्रोंका विनिंदकहै उसका प्रायश्चित्त किसीसे भी किसी शास्त्रमे भी नही देखागया ॥ ३९ ॥ जो श्रीशिवजी की निन्दा करताहै वह आत्मघाती जानने योग्यहै व सदैव त्रिलोकका घातकहै व अधमों से अधमहै और वह सम्भाषण करनेकेयोग्य नहीं है ॥ ४० ॥ जेकि श्रीशिवजीकी निन्दामें रतहैं और श्रीशिवजी के भक्तजनोंकी भी निन्दा में रत हैं वे तबतक घोर नरकों को जाते हैं कि जबतक चन्द्रमा व सूर्य्य जी हैं ॥ ४१ ॥ इसलिये काशी में मुक्तिचाही जनो से शिवभक्त पूजनीय हैं क्योंकि बड़े यत्न से उनके पूजित होतेही शिवजी प्रसन्न होते हैं संशय नहीं है ॥ ४२ ॥ सबपापों के प्रायश्चित्त करनेकी इच्छा से प्रमाणों के जाननेवाले

निश्शंक जनों को यह वचन कहना चाहिये ॥ ४३ ॥ कि जो तुम प्रायश्चित्तकी कामनावालेहो व जो पापों से डरेहुयेहो और जो शास्त्रों के प्रमाण से हमारे वचनको सत्य मानते हो ॥ ४४ ॥ तो मन में निश्चयकर व सबको परित्यागकर काशीको जावो कि जहां विश्वनाथ शिवजी हैं ॥ ४५ ॥ व जिस क्षेत्रमें पैठेहुये निश्चित आत्मावाले मनुष्यों का पापसमूह नहीं बाधताहै और परम धर्म्म प्राप्त किया जावे है ॥ ४६ ॥ यहां आजभी पिलिपिला नामक महातीर्थ जोकि तीन सोतावाला अतिनिर्मल व मनोज्ञ व तीन नदियों से सबओर सेवित है ॥ ४७ ॥ और त्रिलोचन के नेत्रविक्षेप याने उनकी दयादृष्टि से सबओर प्रेरित कियेगये हैं महापाप जिससे उसमें अपने गृह्यसूत्र के

मन्यसेयदिनःसत्यंवाक्यंशास्त्रप्रमाणतः॥४४॥ततःसर्वंपरित्यज्यकृत्वामनसिनिश्चयम् ॥ आनन्दकाननंयाहियत्रविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ ४५ ॥ यत्रक्षेत्रप्रविष्टानांनराणांनिश्चितात्मनाम् ॥ नबाधतेऽघनिचयःप्राप्यतेचपरोवृषः ॥ ४६ ॥ तत्राद्यापिमहातीर्थेत्रिस्रोतस्यतिनिर्मले ॥ पुण्येपिलिपिलानाम्नित्रिसरित्परिसेविते ॥ ४७ ॥ त्रिलोचनाक्षिविक्षेपपरिक्षिप्तमहैनसि ॥स्नात्वागृह्योक्तविधिनातर्पणीयान्प्रतर्प्यच॥४८॥दत्त्वादेयंयथाशक्तिवित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ दृष्ट्वात्रिविष्टपंलिङ्गंसमभ्यर्च्यातिभक्तितः ॥ ४९ ॥ गन्धाद्यैर्विविधैर्माल्यैःपञ्चामृतपुरःसरैः ॥ धूपैर्दीपैःसनैवेद्यैर्वासोभिर्बहुभूषणैः ॥ ५० ॥ पूजोपकरणैर्द्रव्यैर्घण्टादर्पणचामरैः ॥ चित्रध्वजपताकाभिर्नृत्यवाद्यसुगायनैः ॥ ५१ ॥ जपैःप्रदक्षिणाभिश्चनमस्कारैर्मुदायुतैः ॥ परिचारकसन्तोषैःकृत्वेतिपरिपूजनम् ॥ ५२ ॥ ब्राह्मणान्वाचयेत्पश्चान्निष्पापोहमितिब्रुवन् ॥ एवंकुर्वन्नरःप्राज्ञोनिरेनाजायतेक्षणात ॥ ५३ ॥ ततःपञ्चनदेस्नात्वामणिकर्णीह्रदेततः ॥ ततोविश्वेशमभ्यर्च्य

विधान से स्नानकर व तर्प्पण के योग्य देवादिकों को बहुतही तृप्तकर ॥४८॥ व वित्तशाठ्यसे हीनहोकर यथाशक्ति देनेयोग्य वस्तुको देकर व त्रिलोचन लिंगको देखकर और अत्यन्त भक्तिसे भलीभांति पूजकर ॥ ४९ ॥ व पञ्चामृतपूर्वक, सुगन्धादि बहुतभांतिके फूल या मालायें व धूपदीप व नैवेद्योंसमेत वस्त्र और बहुतसे भूषण ॥५०॥ व पूजासामग्री द्रव्य घण्टा दर्पण चॅवर विचित्र ध्वजा पताका नृत्य बाजा अच्छे गीत ॥ ५१ ॥ व जप प्रदक्षिणा व आनन्दसंयुक्त नमस्कार और सेवकोंके संतोषोंसे इसप्रकार सबओर पूजनकर ॥ ५२ ॥ मैं निष्पापहूं ऐसा कहताहुआ तत्पश्चात् ब्राह्मणोंसेभी कहवावे इसभांति करताहुआ बुद्धिमान् मनुष्य क्षणमें पापों से हीन होजाताहै ॥ ५३ ॥

तदनन्तर पञ्चनद में स्नानकर उसकेबाद मणिकर्णिकाकुण्ड में नहाकर तब श्रीविश्वेश्वरजीकी पूजाकर बड़े सुकृत (पुण्य) को प्राप्तहोता है ॥ ५४ ॥ महापापों से विशुद्ध करनेवाला यह प्रायश्चित्त कहा गया जोकि काशीमाहात्म्यनिन्दक व नास्तिक के समीप में कहने योग्य नहीं है ॥ ५५ ॥ हे घटोद्भव अगस्त्य मुने ! द्रव्य के लोभ से इस शुभ प्रायश्चित्तको देताहुआ दाता नरक को प्राप्तहोता है यह सत्य है सत्य है ॥ ५६ ॥ और पृथिवी की प्रदक्षिणाकर जो फल भलीभांति प्राप्त कियाजाता है वह प्रदोष समय काशी में त्रिलोचन मे सातबार प्रदक्षिणा करने से होता है ॥ ५७ ॥ व काशी में अनन्त सर्प्पकांचीवाले त्रिविष्टप लिङ्गको देखकर अन्यत्र मरण होतेही

प्राप्नोतिसुकृतंमहत् ॥ ५४ ॥ प्रायश्चित्तमिदंप्रोक्तंमहापापविशोधनम् ॥ नास्तिकेनप्रवक्तव्यंकाशीमाहात्म्यनिन्दके ॥ ५५ ॥ ददद्द्रव्यलोभेनप्रायश्चित्तमिदंशुभम् ॥ दातानरकमाप्नोतिसत्यंसत्यंघटोद्भव ॥ ५६ ॥ क्ष्मांप्रदक्षिणीकृत्यय त्फलंसम्यगाप्यते ॥ प्रदोषेतत्फलंकाश्यांसप्तकृत्वस्त्रिलोचने ॥ ५७ ॥ भुजङ्गमेखलंलिङ्गंकाश्यांदृष्ट्वात्रिविष्टपम् ॥ ज न्मान्तरेपिमुक्तःस्यादन्यत्रमरणेसति ॥ ५८ ॥ अन्यत्रसर्वलिङ्गेषुपुण्यकालोविशिष्यते ॥ त्रिविष्टपेपुण्यकालःसदा रात्रिंदिवंनृणाम् ॥ ५९ ॥ लिङ्गान्योङ्कारमुख्यानिसर्वपापप्रकृन्त्यलम् ॥ परंत्रैलोचनीशक्तिःकाचिदन्यैवपार्वति ॥ ६० ॥ यतःसर्वेषुलिङ्गेषुलिङ्गमेतदनुत्तमम् ॥ तत्कारणंशृणवपर्णेकर्णेकुरुवदाम्यहम् ॥ ६१ ॥ पुरामेयोगयुक्तस्यलिङ्गमेतद्भु वस्तलात् ॥ उद्भिद्यसप्तपातालंनिरगात्पुरतोमहत् ॥ ६२ ॥ अस्मिँल्लिङ्गेपुरागौरिसुगुप्तंतिष्ठतामया ॥ तुभ्यन्नेत्रत्रयंदत्तं

जन्मान्तर में भी मुक्त होवे है ॥ ५८ ॥ व अन्यत्र सबलिंगों में पुण्यकाल विशेषणयुक्त होताहै याने किसी किसी समय में मानाजाता है और त्रिलोचन में रातोदिन सदैव मनुष्योंका पुण्यकाल है ॥ ५९ ॥ हे पार्वति ! सब पापों के काटनेवाले ॐकारादि लिङ्ग समर्थहैं परन्तु त्रिलोचनकी कोई अन्यही शक्तिहै ॥ ६० ॥ हे तपस्या में सूखे हुये पत्तोंकी भी त्यागनेहारिणि ! जिससे यह लिंग सब लिंगों में अधिक उत्तम है उस कारण को सुनो मैं कहताहूं तुम कानमें करो ॥ ६१ ॥ पूर्वकाल में योगयुक्त जो मैं हूं उसके आगे यह बड़ा पूजनीय लिंग सात पातालों को फोड़कर भूतल से निकल आयाहै ॥ ६२ ॥ हे गौरि ! पहले समय इस लिंगमें बहुतही गुप्त टिकेहुये

मैंने तुमको तीन नेत्र दिया तुम वैसेही उत्तम को देखेहो ॥ ६३ ॥ हे देवेशि ! तबसे लगाकर त्रिलोक के बीचमें टिकेहुये जनों करके यह त्रिलोचनलिंग ज्ञानदृष्टि का दाता गाया जाताहै ॥ ६४ ॥ जे कि त्रिलोचन के भक्तहैं वे सब त्रिनेत्र हैं व वे मेरे पार्षद हैं और वेही जीवन्मुक्तहैं ॥ ६५ ॥ हे महेशानि ! मुझसेही सब ओर रक्षित हुई त्रिलोचन लिंग की महिमा को कोईभी अच्छेप्रकारसे नहीं जानता है ॥ ६६ ॥ वैशाखसुदी तीज के दिन पिलिपिलाकुण्ड में स्नानकर उपास में परायण व भक्तिसे रात्रिमें जागरण युक्त जन ॥ ६७ ॥ त्रिलोचन की पूजाकर फिर प्रातःकाल उस मेंही नहाकरभी फिर लिंगकी भलीभांति पूजाकर व धर्मको उद्देशकर देने योग्य घटों

निरैक्षिष्ठास्तथोत्तमम् ॥ ६३॥ तदाप्रभृतिदेवेशिलिङ्गमेतत्रिलोचनम्॥विष्टपत्रितयान्तस्थैर्गीयतेज्ञानदृष्टिदम्॥६४॥ त्रिलोचनस्ययेभक्तास्तेपिसर्वेत्रिलोचनाः॥ममपारिषदास्तेतुजीवन्मुक्तास्तएवहि ॥ ६५ ॥ त्रिलोचनस्यलिङ्गस्यमहिमानन्नकश्चन ॥ सम्यग्वेत्तिमहेशानिमयैवपरिगोपितम्॥६६ ॥ शुक्राधतृतीयायांस्नात्वापैलिपिलेह्रदे॥ उपोषणपराभक्त्यारात्रौजागरणान्विताः ॥ ६७॥ त्रिलोचनंपूजयित्वाप्रातःस्नात्वापितत्रवै॥ पुनर्लिङ्गंसमभ्यर्च्यदत्त्वाधर्मघटानपि ॥ ६८ ॥ सान्नान्सदक्षिणान्देविपितॄनुद्दिश्यहर्षिताः ॥ विधायपारणंपश्चाच्छिवभक्तजनैःसह ॥ ६९ ॥ विसृज्यपार्थिवंदेहंतेनपुण्येननोदिताः ॥ भवन्तिदेविनियतंगणाममपुरोगमाः ॥ ७० ॥ तावद्भ्रमन्तिसंसारेदेवामर्त्यामहोरगाः ॥ गौरियावन्नपश्यन्तिकाश्यांलिङ्गंत्रिलोचनम् ॥ ७१ ॥ सकृत्त्रिविष्टपंदृष्ट्वास्नात्वापैलिपिलेह्रदे ॥ नजातुमातुःस्तनपोजायतेजन्तुरत्रहि ॥७२॥ प्रतिमासंसदाष्टम्यांचतुर्दश्यांचभामिनि॥ आयान्तिसर्वतीर्थानिद्रष्टुंदेवंत्रिविष्टपम् ॥७३॥

कोभी देकर ॥ ६८ ॥ और हे देवि ! पितरों को उद्देशकर अन्नसमेत व दक्षिणासहित घटों को देकर व आनन्दित होकर पीछेसे शिवभक्त जनों के साथ पारणको कर ॥ ६९ ॥ व हे देवि ! पृथिव्यादि तत्त्वमयी देहको त्यागकर उस पुण्यसे प्रेरितहुये वे नियमसे मेरे आगे चलनेवाले गण होतेहैं ॥ ७० ॥ हे गौरि ! देव मनुष्य और महासर्प्प याने त्रिलोकवासी लोग जबतक काशी में त्रिलोचन लिंगको नहीं देखतेहैं तबतक संसारमें भ्रमते हैं ॥ ७१ ॥ और यहांही पिलिपिलाकुण्ड में स्नानकर व एकबारभी त्रिलोचन को देखकर कोई भी जन्तु फिर माताके स्तनों का पीनेवाला कभी नहीं होताहै ॥ ७२ ॥ हे भामिनि ! सब तीर्थभी प्रतिमास अष्टमी और चतुर्दशी में त्रिलोचन

देव को देखनेकेलिये सदैव आते हैं ॥ ७३ ॥ व त्रिविष्टप (त्रिलोचन) से दक्षिण ओर पिलिपिला के जल में स्नानकर और वहां एक सन्ध्या की उपासना कर राजसूय यज्ञका फल पावैहै ॥ ७४ ॥ व वहांही पापोंका विनाशक, पादोदक नामक जो कूपहै उसके जलको आचमनकर याने पीकर मनुष्य फिर मरनेवाला नहीं होताहै ॥ ७५ ॥ और उस लिंगके समीप में जे बहुतसे लिंगहैं वे यहां दर्शन व स्पर्शन से भी मोक्षदायक हैं ॥ ७६ ॥ व वहां गंगातीर में प्रतिष्ठितहुवा शन्तनुका लिंगहै उसको देखकर संसारसे तपाया मनुष्य शांतिको प्राप्तहोताहै ॥ ७७ ॥ हे अगस्त्य मुने ! उससे दक्षिण में भीष्मेश्वर संज्ञक महालिंगहै उसके देखनेसे कलि व काल और काम नहीं बाधा

त्रिविष्टपाद्दक्षिणतःस्नातःपैलिपिलेऽम्भसि ॥ तत्रसन्ध्यामुपास्यैकांराजसूयफलंलभेत् ॥ ७४ ॥ पादोदकाख्यस्तत्रैव कूपःपापविनाशकः ॥ प्राश्यतस्योदकंमर्त्योनमर्त्योजायतेपुनः ॥ ७५ ॥ तस्यलिङ्गस्यपार्श्वेतुसन्तिलिङ्गान्यनेकशः ॥ कैवल्यदानितान्यत्रदर्शनात्स्पर्शनादपि ॥ ७६ ॥ तत्रशान्तनवंलिङ्गंगङ्गातीरेप्रतिष्ठितम् ॥ तद्दृष्ट्वाशान्तिमाप्नोतिनरःसंसारतापितः ॥ ७७ ॥ तद्दक्षिणेमहालिङ्गंमुनेभीष्मेशसञ्ज्ञितम् ॥ कलिःकालश्चकामश्चबाधतेनतदीक्षणात् ॥ ७८ ॥ तत्प्रतीच्याम्महालिङ्गन्द्रोणेशइतिकीर्तितम् ॥ यल्लिङ्गपूजनाद्द्रोणोज्योतीरूपम्पुनर्दधौ ॥ ७९ ॥ अश्वत्थामेश्वरंलिङ्गंतदग्रेचातिपुण्यदम् ॥ यदर्चनवशाद्द्रौणिर्नबिभेत्यपिकालतः ॥ ८० ॥ द्रोणेशाद्वायुदिग्भागेबालखिल्येश्वरम्परम् ॥ तल्लिङ्गंश्रद्धयादृष्ट्वासर्वक्रतुफलंलभेत् ॥ ८१ ॥ तद्वामेलिङ्गमालोक्यवाल्मीकेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ तस्यसन्दर्शनादेवविशोकोजायतेनरः ॥ ८२ ॥ अन्यच्चात्रैवयद्वृत्तंतद्ब्रवीमिघटोद्भव ॥ त्रिविष्टपस्यमाहात्म्यंदेव्यैदेवेनभाषित

करताहै ॥ ७८ ॥ व उससे पश्चिम मे वही महालिंग द्रोणेश इसप्रकारसे कहागया है कि जिस लिंगकी पूजा से द्रोणने ज्योतिरूपको फिर धारण कियाहै ॥ ७९ ॥ उसके आगे अत्यन्त पुण्यदायक अश्वत्थामेश्वर लिंगहै जिसकी पूजा के वशसे द्रोणाचार्य्य के पुत्र अश्वत्थामा कालसेभी नहीं डरतेहैं ॥ ८० ॥ व द्रोणेश्वरसे वायु दिशाके भागमें बहुत उत्तम बालखिल्येश्वर लिंगहै उसको श्रद्धासे देखकर सब यज्ञोंका फल पावैहै ॥ ८१ ॥ उसके वामओरमें वाल्मीकेश्वर संज्ञक लिंगको सामनेसे देखकर नर उसके दर्शनसेही शोकहीन होजाता है ॥ ८२ ॥ हे घटोद्भव अगस्त्य मुने ! महादेवजी ने देवीजी के लिये त्रिविष्टपका माहात्म्य कहाहै और यहांही अन्यभी जो वृत्तांत हुवाहै

उसको मैं तुम से कहताहूं ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे भाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते त्रिलोचनाविर्भावो नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

दो०। छीयन्तरअध्यायमें पारावतइतिहास। उस से यहा त्रिनेत्रका परमप्रभाव प्रकास॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मित्र व वरुणके वीर्य्य से उपजेहुये अगस्त्यजी! पूर्वकाल रथन्तर कल्पमें इस विरजसंज्ञक पीठके बीच जो इतिहास हुआ है उसको तुम सुनो ॥ १ ॥ त्रिलोचन देवका मंदिर जोकि मणि और माणिक्यों मे बनाहुआ अनेकभांतिकी परिपाटियों से भीतों में छिद्रों (झरोखों) से संयुत व सुमेरुके समान विस्तारयुक्त है ॥ २ ॥ व जोकि स्थिति के अन्तसमय कभी प्रलय में स्वर्गलोकके

म् ॥ ८३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेत्रिलोचनाविर्भावोनामपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ शृणुष्वमैत्रावरुणेपुराकल्पेरथन्तरे ॥ इतिहासइहासीद्यःपीठेविरजसञ्ज्ञिते ॥ १ ॥ त्रिलोचनस्यप्रासादेमणिमाणिक्यनिर्मिते ॥ नानाभङ्गिगवाक्षाढ्येरत्नसानाविवायते ॥ २ ॥ कदाचिदपिकल्पान्तेद्योलोकेभ्रंशतिक्षये ॥ प्रोत्तम्भनस्तम्भइवदत्तोविश्वकृतास्वयम् ॥ ३ ॥ मरुत्तरङ्गिताग्राभिःपताकाभिरितस्ततः ॥ सन्निवारयतीवेत्थमघौघान्विशतोमुने ॥ ४ ॥ देदीप्यमानसौवर्णकलशेनविराजिते ॥ पार्वणेनशशाङ्केनखेदादिवसमाश्रिते ॥ ५ ॥ तत्रपारावतद्वन्द्वंवसेत्स्वैरंकृतालयम् ॥ प्रातःसायञ्चमध्याह्नेकुर्वन्नित्यम्प्रदक्षिणम् ॥ ६ ॥ उड्डीयमानम्परितःपक्षवातैरितस्ततः ॥ रजःप्रासादसंलग्नंदूरीकुर्वद्दिनेदिने ॥ ७ ॥ त्रिलोचनेतिसततंनामभक्तैरुदाहृतम् ॥ त्रिविष्टपेतिचतथातयोःकर्णातिथीभवे

पतित होतेही आपही ब्रह्माजी करके ऊपर रोंकने का खम्भासा दियागया है ॥ ३ ॥ और हे मुने! जोकि ऐसीवैसी वायुसे चञ्चलअग्रोंवाली पताकाओं से इस प्रकार क्षेत्रमें पैठते हुये के पापसमूहों को भलीभांति निवारण करतासा है ॥ ४ ॥ व जोकि ज्योति से जगमगाते हुये सोना के कलश से विराजित है इस में उत्प्रेक्षा कीजाती है कि पूर्णमासी के चन्द्रमा करके खेदसे भलीभांति आश्रित (संसेवित) सा है ॥ ५ ॥ उसमें घर करनेवाला कपोतों का जोड़ा नित्य प्रातःमध्याह्न और सायंकाल में प्रदक्षिणा करताहुआ अपनी इच्छासे बसताथा ॥ ६ ॥ व सबओर उड़ताहुआ वह ऐसीवैसी शिवालय में संलग्नहुई धूरिको पक्षोंकी वायुसे दिनोदिन दूर करताहुआ रहता था ॥ ७ ॥

और भक्तों से कहागया त्रिलोचन ऐसा तथा त्रिविष्टप ऐसा नाम उनदोनों के कानोका अतिथि (विषय) होवे है (होताथा) ॥ ८ ॥ व शम्भुकी प्रीति करनेवाले चार प्रकारके बाजे उनकी कानकन्दराको प्राप्त होकर प्रतिशब्द को बहुतही पसारते हैं ॥ ९ ॥ व तीनों सन्ध्याओं में नित्यही उन पक्षियोंकी आंखों के भीतर पैठतीहुई मंगल आरतियों की ज्योति भक्तों की चेष्टा को अधिकता से दिखावे है ॥ १० ॥ व प्राणयात्रा (भोजन) को छोड़कर भी कौतुक को देखतेहुये वे स्थिरमनवाले पक्षी उड़कर वाञ्छित देशको कभी नहीं जाते हैं ॥ ११ ॥ और हे मुने! वहां भक्तजनों से व्याप्त शिवालय के सबओर चावलआदि को चुनतेहुये वे प्रदक्षिणाको करते हैं ॥ १२ ॥

त ॥ ८ ॥ चतुर्विधानिवाद्यानिशम्भुप्रीतिकराण्यलम् ॥ तयोःकर्णगुहाम्प्राप्यप्रतिशब्दम्प्रतन्वते ॥ ९ ॥ मङ्गलारार्तिकज्योतिस्त्रिसन्ध्यम्पक्षिणोस्तयोः ॥ नेत्रान्तर्निविशन्नित्यंभक्तचेष्टाम्प्रदर्शयेत् ॥ १० ॥ प्राणयात्रांविहायापिकदाचित्स्थिरमानसौ ॥ नोड्डीयवाञ्छितंयातःपश्यन्तौकौतुकंखगौ ॥ ११ ॥ तत्रभक्तजनाकीर्णप्रासादम्परितोमुने ॥ तण्डुलादिचरन्तौतौकुर्वातेचप्रदक्षिणम् ॥ १२ ॥ देवदक्षिणदिग्भागेचतुःस्रोतस्विनीजलम् ॥ तृषार्तौधयतोविप्रस्नातौजातुचिदण्डजौ ॥ १३ ॥ तयोरित्थंविचरतोस्त्रिलोचनसमीपतः ॥ अगाद्बहुतिथःकालोद्विजयोःसाधुचेष्टयोः ॥ १४ ॥ अथदेवालयस्कन्धेगवाक्षान्तर्गतौचतौ ॥ श्येनेनकेनचिद्दृष्टौक्रूरदृष्ट्यासुखस्थितौ॥ १५ ॥ तच्चपारावतद्वन्द्वंश्येनःपरिजिघृक्षुकः ॥ अवतीर्याम्बरादाशुप्रविष्टोन्यशिवालये ॥ १६ ॥ ततोविलोकयामासतदागमविनिर्गमौ ॥ केनमार्गेणविशतोदुर्गमेतौपतत्रिणौ ॥ १७॥ केनाध्वनाचनिर्यातःक्कालेकुरुतश्चकिम् ॥ कथंयुगपदेतौमेग्राह्यौस्वैरम्भविष्य

हे ब्राह्मण! कभी प्यास से व्याकुल व नहाये हुये वे पक्षी महादेव जी से दक्षिण भाग में गंगा, सरस्वती, यमुना और नर्मदा इन चारो नदियों के जलको पीते हैं ॥ १३ ॥ इसप्रकार त्रिलोचन के समीप में विचरते हुये व अच्छे व्यापारवाले उन पक्षियों का बहुतसा समय बीतगया ॥ १४ ॥ अनन्तर शिवालयके शृंगके नीचे भागमें झरोखा के अन्तर्गत सुख से टिकेहुये वे किसी बाज करके क्रूरदृष्टि से देखे गये ॥ १५ ॥ और उस कपोतोंके जोड़ाको सबओर से पकडना चाहताहुआ बाज शीघ्रही आकाश से उतरकर अन्य शिवालय में पैठगया ॥ १६ ॥ तदनन्तर उन पक्षियों के आने और जाने को देखनेलगा कि वे पक्षी दुर्गमस्थान में किस गलीसे पैठते हैं ॥ १७ ॥ व

किस मार्ग से निकलते हैं और किस समय में क्या करते हैं व किस प्रकार एक साथही ये दोनों अपनी इच्छा से मेरे ग्राह्य होवेंगे ॥ १८ ॥ जिस रो दुर्ग के बीच में पैठेहुये ये मेरे वश्य नहीं हैं इसभांति विचारता हुआ एक दृष्टिवाला बाज क्षणभर टिकरहा ॥ १९ ॥ कि आश्चर्य है इसही कारण बुद्धिमान् लोग दुर्ग (कोट) के बलको कहते हैं याने प्रशंसा करते हैं कि जिसलिये दुर्बल भी शत्रु एकाएक चलाने के लिये योग्य नहीं होता है ॥ २० ॥ जोकि राजा के कर्म्म की सिद्धि एक दुर्ग से होवे है वह हज़ारों हाथी और लाखों घोड़ों से भी नहीं है ॥ २१ ॥ जो मर्म के जाननेवाले से न प्रकाश किया गया हुआ दुर्ग अपने अधीन होवे तो दुर्ग मे टिका

तः ॥ १८ ॥ मध्येदुर्गम्प्रविष्टौचममवश्याविमौनयत् ॥ एकदृष्टिःक्षणन्तस्थौश्येनइत्थंविचिन्तयन् ॥ १९ ॥ अहोदुर्गबलम्प्राज्ञाःशंसन्त्येवेतिहेतुतः ॥ दुर्बलोप्याकलयितुंसहसारिर्नशक्यते ॥ २० ॥ करिणान्तुसहस्रेणवराश्वानांनलक्षतः ॥ तत्कर्मसिद्धिर्नृपतेर्दुर्गेणैकेनयद्भवेत् ॥ २१ ॥ दुर्गस्थोनाभिभूयेतविपक्षःकेनचित्कचित् ॥स्वतन्त्रंयदिदुर्गंस्यादमर्मज्ञप्रकाशितम् ॥ २२॥ इतिदुर्गबलंशंसञ्श्येनोरोषारुणेक्षणः ॥ असाध्वसौकलरवौवीक्ष्ययातोनभोङ्गणम् ॥ २३ ॥ अथपारावतीदक्षाविपक्षम्प्रेक्ष्यपक्षिणम् ॥ महाबलन्दुर्गबलाप्राहपारावतम्पतिम् ॥ २४ ॥ कलरव्युवाच ॥ प्रियपारावतप्राज्ञसर्वकामिसुखारव ॥ तवदृग्विषयम्प्राप्तःश्येनोयम्प्रबलोरिपुः ॥ २५ ॥ सावज्ञंवाक्यमाकर्ण्यपारावत्याःसतत्पतिः ॥ पारावतीमुवाचेदंकाचिन्तेतितवप्रिये ॥ २६ ॥ पारावतउवाच ॥ कतिनामनसन्तीहसुभगेव्योमचारिणः ॥ कति

हुआ शत्रु किसी से कहीं नहीं तिरस्कृत होवे है ॥ २२ ॥ इसप्रकार दुर्ग के बल की प्रशंसा करता हुआ क्रोध से लाल नेत्रोंवाला बाज कपोतों को निडर देखकर आकाश आंगन को चलागया ॥ २३ ॥ तदनन्तर दुर्गबलवाली दक्ष (कुशल) कपोतीने वैरी पक्षीको देखकर बड़े बलवान् अपने पति कपोतसे कहा ॥ २४ ॥ कपोती बोली कि, हे सबकामियों के सुखद शब्दवाले, प्राज्ञ, प्यारे, कपोत ! यह बड़ा बलवान् वैरी बाज तुम्हारे नेत्रों के विषय को प्राप्तहुआ है याने इसको तुमने देखा है ॥ २५ ॥ इस प्रकार कपोती का अनादर समेत वचन सुनकर वह उसका पति कपोतीसे इस वचनको बोला कि हे प्रिये ! तुमको क्या चिन्ता है ॥ २६ ॥ कपोती बोली कि

हे सुभगे ! यहां कितने खग (पक्षी) प्रसिद्ध नहीं हैं व कितने आकाशचारी इन देवमन्दिरों में नहीं बैठते हैं॥ २७॥ और हे प्रिये ! इस प्रकार यहां सुखसे टिकेहुये हम दोनो को कितने नहीं देखते हैं उनसे जो डरनाहो तो हे प्यारी ! हमको क्यों सुखहोगा ॥ २८ ॥ हे शुभे ! तुम इस चिन्ताको त्यागो और मेरेसाथ रमणकरो क्योंकि मेरे मनमें इस बापुरे बाजकी गणना भी नहीं है ॥ २९ ॥ इसभांति कपोत के वचन को सुनकर तदनन्तर पति के पावों में आंखों को अर्प्पेहुई कपोती मौनको आलम्बन कर याने चुपहोकर भलीभांति टिकी ॥ ३० ॥ क्योंकि हितके मार्गको उपदेशकर भी प्यारे के प्रिय करने की इच्छा से प्रीति जैसेहो वैसे पतिव्रता को भली

देवालयेष्वेषुखगानोपविशन्तिहि ॥ २७॥ कतिचैवनपश्यन्तिनौसुखस्थाविहप्रिये ॥ तेभ्योयदिहिभेतव्यंकुतोनौतत्सुखम्प्रिये ॥ २८ ॥ रमस्वत्वम्मयासार्धंत्यजचिन्तामिमांशुभे ॥ अस्यश्येनवराकस्यगणनापिनमेहृदि ॥ २९ ॥ इत्थंपारावतवचःश्रुत्वापारावतीततः ॥ मौनमालम्ब्यसन्तस्थेपत्युःपादार्पितेक्षणा ॥ ३० ॥ हितवर्त्मोपदिश्यापिप्रियप्रियचिकीर्षया ॥ साध्व्याजोषंसमास्थेयंकार्यंपत्युर्वचःसदा ॥ ३१ ॥ अन्येद्युरप्यथायातःश्येनोपश्यत्सदम्पती ॥ अपरिच्छिन्नयादृष्ट्यायथामृत्युर्गतायुषम् ॥ ३२ ॥ अथमण्डलगत्यासप्रासादम्परितोभ्रमन् ॥ निरीक्ष्यतद्गतायातौयातोगगनमार्गतः ॥ ३३ ॥ गतेऽथनभसिश्येनेपुनःपारावताङ्गना ॥ प्रोवाचप्रेयसीनाथदृष्टोदुष्टस्त्वयाऽहितः ॥ ३४ ॥ तस्यावाक्यंसमाकर्ण्यपुनःकलरवोब्रवीत् ॥ किङ्करिष्यत्यसौमुग्धेममव्योमविहारिणः ॥ ३५ ॥ दुर्गञ्चस्वर्गतुल्यंमेयत्रना

भांति सामने टिकना चाहिये और सदैव पतिका वचन करना चाहिये॥ ३१ ॥ उसके बाद अन्य दिनमेंभी आये हुये उस बाजने सब ओर अखण्डित दृष्टिसे उन स्त्री पुरुषों को देखा कि जैसे गतजीवित जनको मृत्यु देखै है ॥ ३२ ॥ अनन्तर मण्डलाकार गमन से शिवालय के सब ओर भ्रमण करता हुवा वह बाज उनके आने और जानेको देखकर आकाशमार्ग से चलागया ॥ ३३ ॥ उसके बाद आकाश में बाजके जातेही परमप्यारी कपोतकी स्त्रीने कपोत से फिर कहा कि हे नाथ ! तुमने दुष्ट वैरीको देखाहै ॥ ३४ ॥ उसके वचन को भलीभांति सुनकर फिर कपोत बोला कि हे सुन्दरि ! यह बाज मुझ आकाशविहारीका क्या करेगा॥ ३५ ॥ क्योंकि जिस

में शत्रुसे डर नहीं है वह स्वर्ग के समान मेरा दुर्ग है और मैं आकाश आंगन में जिन चालों को जानताहूं उनको यह नहीं जानता है ॥ ३६ ॥ बहुत चलना उड़ना भलीभांति चलना रुककर चलना लौटकर पीछे को चलना गिरह लगाकर चलना ऊपर से उतरकर चलना और मण्डलाकार घूमना ये आठ गतियां कहीगई हैं ॥ ३७ ॥ हे प्रिये, कपोति ! आकाश के बीच यहां इन गतियों में जैसी मेरी कुशलता है वैसी कहीं भी किसी भी पक्षी की नहीं है ॥ ३८ ॥ हे प्रिये ! तुम सुखसे टिको मेरे जीवतेही तुमको क्या चिन्ताहै ऐसा उसका वचन सुनकर वह पतिव्रता मूक (गूंगा) के समान रहगई ॥ ३९ ॥ अन्य दिन भी वहां कुछेक अन्तर को प्राप्त होकर अत्यंत

स्त्यरितोभयम् ॥ अयंनतागतीर्वेत्तियावेदाहंनभोङ्गणे ॥ ३६ ॥ प्रडीनोड्डीनसण्डीनकाण्डव्याडकपाटिकाः ॥ स्रंसनी मण्डलवतीगतयोष्टावुदाहृताः ॥ ३७ ॥ यथैतास्विहकौशल्यंमयिपारावतिप्रिये ॥ गतिषुकापिकस्यापिपक्षिणोनतथा म्बरे ॥ ३८ ॥ सुखेनतिष्ठकाचिन्तामयिजीवतितेप्रिये ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वासास्थितामूकवत्सती ॥ ३९ ॥ अपरेद्युरपिश्येन स्तत्रभारशिलातले ॥ कियदन्तरमासाद्योपविष्टोऽतिप्रहृष्टवत् ॥ ४० ॥ आयामन्तत्रसंस्थित्वातत्कुलायंविलोक्य च ॥ पुनर्विनिर्गतःश्येनःसापिभीताब्रवीत्पुनः ॥ ४१ ॥ प्रियस्थानमिदन्त्याज्यंदुष्टदृष्टिविदूषितम् ॥ असौक्रूरोतिनिक टमुपविष्टोऽतिहृष्टवत् ॥ ४२ ॥ सावज्ञंसपुनःप्राहकिङ्करिष्यत्यसौप्रिये ॥ मृगाक्षीणांस्वभावोयंप्रायशोभीरुवृत्तयः ॥ ४३ ॥ इतरेद्युरपिप्राप्तःसचश्येनोमहाबलः ॥ तयोरभिमुखन्तत्रस्थितोयामद्वयावधि ॥ ४४ ॥ पुनर्विलोक्यतद्वर्त्मशी

आनन्दित के समान बाज बड़े पत्थर पर बैठगया ॥ ४० ॥ और एक पहर तक वहां भलीभांति टिककर व उनके थलकुरको देखकर वह बाज फिर निकलगया और डरीहुई उस कपोतीने फिर कहा ॥ ४१ ॥ कि हे प्यारे ! दुष्ट की दृष्टि से बहुत दूषित यह स्थान त्यागने योग्यहै क्योंकि अतिशय आनन्दित के समान यह क्रूर (हिंसक) बहुतही समीपमें बैठा है ॥ ४२ ॥ ऐसा सुनकर वह कपोत अनादर समेत वचनको फिर बोला कि हे प्रिये ! यह क्या करेगा बहुधा मृगनयनियों का यह स्वभावही है कि वे स्त्रियां डरभुत वृत्तिवाली होती हैं ॥ ४३ ॥ और अन्यदिनमें भी वहां प्राप्त हुआ वह बड़ा बलवान् बाज दोपहर तक उनके सम्मुख स्थित हुआ ॥ ४४ ॥ व उन

की गलीको विशेषतासे देखकर फिर यथागत याने जैसे आया वैसेही चलागया अनन्तर उस पक्षीके जातेही उस खगी (कपोती) ने कहा ॥ ४५ ॥ कि हे प्यारे नाथ! जिससे यहां मृत्यु निकटहै उससे हम तुम दोनो अन्य स्थानको चले जाते हैं फिर इस दुष्ट के विनष्ट होतेही सुखसे होवें ॥ ४६ ॥ हे प्रिय! जिस पक्ष समेत की सर्वत्र सिद्धि देनेवाली गति है वह बुद्धिमान् अपने देशके स्नेह से क्यों नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥ जोकि उत्पात समेत अपने देशको छोड़कर अन्यत्र नहीं चलाजाता है वह पंगुला नदीतटमें टिकेहुये वृक्षकी नाईं नाश को प्राप्तहोताहै ॥ ४८ ॥ इसभांति प्यारीके कहे वचनको सुनकर होनी दशा से पीड़ित वह अवज्ञासमेत वाक्यको फिर बोला

घ्रंयातोयथागतम् ॥ गतेथशकुनौतस्मिन्साबभाषेविहङ्गमी ॥ ४५ ॥ नाथस्थानान्तरंयावोमृत्युर्नौनिकटोत्रयत् ॥ पुनर्दुष्टेप्रणष्टेस्मिन्नावांस्यावःसुखम्प्रिय ॥ ४६ ॥ प्रिययस्यसपक्षस्यगतिःसर्वत्रसिद्धिदा ॥ सकिंस्वदेशरागेणनाशम्प्राप्नोतिबुद्धिमान् ॥ ४७ ॥ सोपसर्गंनिजन्देशंत्यक्त्वायोन्यत्रनव्रजेत् ॥ सपंगुर्नाशमाप्नोतिकूलस्थितइवद्रुमः ॥ ४८ ॥ प्रियोदितंनिशम्येतिसभवित्रीदशार्दितः ॥ सरोढंपुनरप्याहप्रियेमाभैःखगात्ततः ॥ ४९ ॥ अथापरस्मिन्नहनिसश्येनः प्रातरेवहि ॥ तद्वारदेशमासाद्यसायंयावत्स्थितोबली ॥ ५० ॥ अस्ताचलस्यशिखरंयातेभानौगतेखगे ॥ कुलायाद्बाह्यमागत्योवाचपारावतीपतिम् ॥ ५१ ॥ नाथनिर्गमनस्यायंकालःकालोऽतिदूरतः ॥ यावत्तावद्विनिर्याहित्यक्त्वामामपिसन्मते ॥ ५२ ॥ त्वयिजीवतिदुष्प्राप्यंनकिञ्चिज्जगतीतले ॥ पुनर्दाराःपुनर्मित्रंपुनर्वसुपुनर्गृहम् ॥ ५३ ॥ यद्यात्मारक्षितःपुंसादारैरपिधनैरपि ॥ तदासर्वेहरिश्चन्द्रभूपेनेवेहलभ्यते ॥ ५४ ॥ अयमात्माप्रियोबन्धुरयमात्मामहद्धनम् ॥

कि हे प्रिये! तुम उस पक्षी से मत डरो ॥ ४९ ॥ अनन्तर अन्यदिन में वह बलवान् श्येन (बाज) उस कपोत के द्वारदेशको प्राप्त होकर प्रातःकालसेही संध्यापर्य्यंत टिका रहा ॥ ५० ॥ और जब सूर्य्यनारायण अस्ताचलके शिखर को चले गये तब उस पक्षी के गयेहुये होतेही थलकुर के द्वार में आकर कपोतीने अपने पति कपोत से कहा ॥ ५१ ॥ कि हे सुबुद्धे, नाथ! यह निकलने का समय है क्योंकि जबतक मृत्युरूप पक्षी दूर है तबतक मुझको भी त्यागकर तुम निकलजावो ॥ ५२ ॥ क्योंकि तुम्हारे जीवतेही भूतलमें कुछ दुर्लभ नहींहै फिर स्त्रियां फिर मित्र फिर धन और फिर घर यह सब होजावेगा ॥ ५३ ॥ जो पुरुषने स्त्रियोंसे भी और धनो से भी आत्माकी

रक्षा किया तो इस लोकमे हरिश्चन्द्र राजाकीनाई सब कुछ मिलजाताहै ॥ ५४ ॥ यह आत्मा (देह)ही प्यारा बन्धुहै व यह आत्माही बड़ा धनहै और यह आत्माही धर्म अर्थ काम और मोक्षकाभी उत्तम अर्जन करनेवालाहै ॥५५॥ जबतक आत्मामेही कल्याणहै तबतक त्रिलोकमें कुशलहै परन्तु अच्छे बुद्धिमान्से वह क्षेमभी यशके साथ चहाजाता है ॥ ५६ ॥ किन्तु सुयश से हीन जो कल्याण है उस कल्याण से मरना श्रेष्ठ है और वह सुयश नीतिमार्ग के प्रवर्त्तन में पुरुषों से पायाजाता है ॥ ५७ ॥ हे नाथ! इस लिये नीति के मार्ग को सुनकर तुम इस स्थान से चलेजावो और जो न जावोगे तो प्रातःकाल मेरे वचन को भलीभांति स्मरणकरोगे ॥ ५८ ॥ इसप्रकार

धर्मार्थकाममोक्षाणामयमात्मार्जकःपरः ॥ ५५ ॥ यावदात्मनिवैक्षेमंतावत्क्षेमंजगत्त्रये ॥ सोपिक्षेमःसुमतिनायशसा सहवाञ्छ्यते ॥ ५६ ॥ यशोहीनन्तुयत्क्षेमंतत्क्षेमान्निधनंवरम् ॥ तद्यशःप्राप्यतेपुम्भिर्नीतिमार्गप्रवर्तने ॥ ५७ ॥ अतो नीतिपथंश्रुत्वानाथस्थानादितोव्रज ॥ नगमिष्यसिचेत्प्रातस्ततोमेसंस्मरिष्यसि ॥ ५८ ॥ इत्युक्तोपिसवैपत्न्यापाराव त्यासुमेधया ॥ ननिर्ययौप्रतिस्थानाद्भवित्र्याप्रतिवारितः ॥ ५९ ॥ अथोषसिसमागत्यश्येनेनबलिनातदा ॥ तन्निर्गमा ध्वासंरुद्धःकिञ्चिद्भक्ष्यषतामुने ॥ ६० ॥ दिनानिकतिचित्तत्रस्थित्वाश्येनोमहामतिः ॥ पारावतमुवाचेदन्धिक्त्वांपौरु षवर्जितम् ॥ ६१ ॥ किंवायुध्यस्वदुर्बुद्धेकिंवानिर्याहिमेगिरा ॥ क्षुधाक्षीणोमृतःपश्चान्निरयंयास्यसिध्रुवम् ॥ ६२ ॥ द्वौभ वन्तावहश्चैकश्चलौजयपराजयौ ॥ स्थानार्थंयुध्यतःसत्त्वात्स्वर्गोवादुर्गमेववा ॥ ६३ ॥ पुरुषार्थंसमालम्ब्ययेयतन्तेमहा

अच्छी बुद्धिवाली अपनी स्त्री कपोती से कहा हुआ भी वह भाविनी महामायासे प्रतिवारित होकर सामनेवाले स्थान से न निकला ॥ ५९ ॥ हे मुने ! अनन्तर उस समय उषःकाल याने चार पांच दण्ड रात रहगये समय में भलीभांति आकर कुछ भोजनवाले उस बलवान् बाज ने उस कपोत के निकलने की गलीको बहुतही रोंक लिया ॥ ६० ॥ और वहां कुछदिनोंतक टिककर बड़े बुद्धिमान् बाजने कपोतरो कहा कि पौरुषसे हीन जो तू है उसको धिक्कार है ॥ ६१ ॥ हे दुर्बुद्धे ! तुम कितो युद्धकरो या कि मेरे वचन से निकलजावो क्योंकि भूंखसे क्षीणहोकर पीछे मरेहुये तुम निश्चय से नरक को जावोगे ॥ ६२ ॥ आप दो जने हैं और मैं एकहूं और जीत व हार चञ्चल हैं इससे स्थान के अर्थ सतोगुणसे युद्ध करतेहुये का याकि स्वर्ग याकि दुर्ग मिलताहै ॥ ६३ ॥ जेकि बड़ी बुद्धिवाले लोग पुरुषार्थ को आश्रय कर यत्न करते हैं

उनके सत्त्वगुण से प्रेरित विधिही सहायता को करे है ॥ ६४ ॥ इसभांति बाजसे कहा व स्त्रीसेभी उत्साह करायाहुआ वह कपोत पक्षी अपने दुर्ग के द्वारको आश्रित होकर याने वहां टिककर उस बाजसे युद्ध करनेलगा ॥ ६५ ॥ अनन्तर बलवान् बाजने उस भूंखे और प्यासेको दृढ़ पांत्रसे पकड़लिया और चोंचसे उस पक्षिणीकोभी शीघ्रही धरलिया ॥ ६६ ॥ और उन दोनोंको लेकर व अन्य पक्षियोंसे हीन भोजनकरनेके योग्य स्थानको विचारताहुआ वह बाज शीघ्रही आकाशमें उड़गया ॥ ६७ ॥ अनन्तर वहां सुबुद्धिवाली स्त्री से कपोत कहागया कि हे नाथ ! तुमने यह स्त्री है ऐसी बुद्धिसे मेरे वचनको अनादर किया ॥ ६८ ॥ इससे इस अवस्थाको प्राप्तहो मैं क्या

धियः ॥ विधिरेवहिसाहाय्यंकुर्यात्तत्सत्त्वचोदितः ॥ ६४ ॥ इत्थंसश्येनसंप्रोक्तःपत्न्याप्युत्साहितःखगः ॥ अयुध्यत्तेन श्येनेनस्वदुर्गद्वारमाश्रितः ॥ ६५ ॥ क्षुधितस्तृषितःसोथश्येनेनबलिनाधृतः ॥ चरणेनदृढेनाशुचञ्च्वासापिधृताखगी ॥ ६६ ॥ तावादायोड्डयाञ्चक्रेश्येनोव्योमनिसत्वरम् ॥ चिन्तयन्भक्षणस्थानमन्यपक्षिविवर्जितम् ॥ ६७ ॥ अथपत्न्या कलरवःप्रोक्तस्तत्रसुमेधया ॥ वचोवमानितंनाथत्वयामेस्त्रीतिबुद्धितः ॥ ६८ ॥ अतोऽवस्थामिमाम्प्राप्तःकिंकुर्यामबला यतः ॥ अधुनापिवचश्चैकङ्करोषियदिमेप्रिय ॥ ६९ ॥ तदाहितन्तेवक्ष्यामिकुरुचैवाविचारितम् ॥ ममैकवाक्यकरणा त्स्त्रीजितोनभविष्यसि ॥ ७० ॥ यावदास्यगतास्म्यस्ययावत्स्वस्थोनभूमिगः ॥ तावदात्मविमुक्त्यैत्वमरेःपादंदृढन्द श ॥ ७१ ॥ इतिपत्नीवचःश्रुत्वातथासकृतवान्खगः ॥ सपीडितोदृढंपादेश्येनश्चीत्कृतवान्बहु ॥ ७२ ॥ तेनचीत्करणेना थमुक्तासामुखसम्पुटात् ॥ पादांगुलिश्लथत्वेनसोपिपारावतोऽपतत् ॥ ७३ ॥ विपद्यपिचनप्राज्ञैःसन्त्याज्यःक्वचिदुद्य

करूं जिससे अबला हूं व हे प्यारे ! अबभी जो मेरे एक वचनको करोगे ॥ ६९ ॥ तो मैं तुम्हारे हितको कहूंगी कि तुम उसको विनाविचारे ही करो किन्तु मेरे एक वचन के करने से तुम स्त्रीजित न होवोगे ॥ ७० ॥ जबतक मैं इसके मुखमे गतहूं और जबतक भूमिमें प्राप्तहोकर यह स्वस्थ नहीं है तबतक तुम अपने छूटने के लिये इसके पांवको दृढ़तासे डसो ॥ ७१ ॥ इसप्रकार स्त्रीका वचन सुनकर उसपक्षीने वैसेहीकिया और चंगुलमें दृढ़पीड़ितहुये उस बाजने बहुतही चीं चीं शब्दकिया ॥ ७२ ॥ उस चीत्कार करने से वह कपोती उसके मुखसम्पुट से छूटगई अनन्तर पांवोंकी अंगुलियों के शिथिल होजानेसे वह कपोतभी गिरपडा ॥ ७३ ॥ और इसलिये विपत्ति

मैंभी बुद्धिमानों को उद्यम कहीं न त्यागना चाहिये क्योंकि कहां उसका चंचुपुट और कहां उसके पावँका पीड़ना ॥ ७४ ॥ और कहां वैसे हुये शत्रुसे उन दोनों का छूटजाना यह अद्भुतहै जिससे उद्यमवाले दुर्बलमेंभी भाग्य फलको देवैहै ॥ ७५ ॥ उस लिये उद्यम भाग्यानुसार से सदैव फलता है और इस कारण बुद्धिमान् लोग विपत्तिमें भी उद्यमकी प्रशंसा करते हैं ॥ ७६ ॥ अनन्तर वे दोनों कालके योग से सरयू के किनारे मुक्तिपुरी अयोध्या में मरगये और उनमें से एक विद्याधर हुआ ॥ ७७ ॥ वह अयोध्यापुरी कि जहां मरेहुये जन्तुओंको काशी की प्राप्ति निश्चयसे होवे है उसमें मन्दारदामका पुत्र नामसे परिमलालय ऐसा प्रसिद्ध हुआ ॥ ७८ ॥ जोकि

मः ॥ क्वचचञ्चुपुटस्तस्यक्वचतत्पादपीडनम् ॥ ७४ ॥ क्वचद्वयोस्तथाभूतादरेर्मोक्षणमद्भुतम् ॥ दुर्बलेप्युद्यमवतिफलं भाग्यंयतोऽर्पयेत् ॥ ७५ ॥ तस्माद्भाग्यानुसारेणफलत्येवसदोद्यमः ॥ प्रशंसन्त्युद्यमञ्चातोविपद्यपिमनीषिणः ॥ ७६ ॥ अथतौकालयोगेनविपन्नौसरयूतटे ॥ मुक्तिपुर्यामयोध्यायामेकोविद्याधरोऽभवत् ॥ ७७ ॥ मृतानांयत्रजन्तूनांकाशीप्राप्तिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ मन्दारदामतनयोनाम्नापरिमलालयः ॥ ७८ ॥ अनेकविद्यानिलयःकलाकौशलभाजनम् ॥ कौमारंवयआसाद्यशिवभक्तिपरोऽभवत् ॥ ७९ ॥ नियमञ्चातिजग्राहविजितेन्द्रियमानसः ॥ एकपत्नीव्रतंनित्यञ्चरिष्यामीतिनिश्चितम् ॥ ८० ॥ परयोषित्समासक्तिरायुःकीर्तिम्बलंसुखम् ॥ हरेत्स्वर्गगतिञ्चापितस्मात्तांवर्जयेत्सुधीः ॥ ८१ ॥ अपरञ्चापिनियमंसशुचिष्मान्समाददे ॥ गतजन्मान्तराभ्यासात्त्रिलोचनसमाश्रयात् ॥ ८२ ॥ समस्तपुण्यनिलयंसमस्तार्थप्रकाशकम् ॥ समस्तकामजनकंपरानन्दैककारणम् ॥ ८३ ॥ यावच्छरीरमरुजंयावन्नेन्द्रियविप्लवः ॥ तावत्त्रिलोच

अनेक विद्याओं का स्थान व कलाओंकी कुशलता का पात्रथा वह कुमार अवस्था को प्राप्तहोकर शिवजी की भक्तिमें तत्परहुआ ॥ ७९ ॥ और इन्द्रिय व मनको जीते हुये उसने नियमको ग्रहण किया कि मैं एकस्त्रीव्रतको नित्यही करूंगा ऐसा निश्चित है ॥ ८० ॥ क्योंकि परस्त्री में भलीभांति आसक्तहोना आयु कीर्त्ति बल सुख और स्वर्गगमन को भी हरै है उस लिये सुबुद्धिमान् मनुष्य उसको बरावै है ॥ ८१ ॥ और उस शुद्धांतःकरणवालेने बीतेहुये जन्मान्तरके अभ्यास व त्रिलोचन के समाश्रित होने से अन्यभी नियमको भलीभांति लिया कि ॥ ८२ ॥ सब पुण्योंका स्थान व सब अर्थोंका प्रकाशक व सब अभिलाषों का उपजानेवाला और उत्तम आनंद

का एक कारण ॥ ८३ ॥ शरीर जबतक नीरोग है व जबतक इन्द्रियों की विकलता नहीं है तबतक काशी में त्रिलोचनको न पूजकर याने उनको पूजे विना अणु-
मात्र अर्थात् थोड़ी भी किसी चीजको न खाऊंगा ॥ ८४ ॥ इस प्रकार बड़े यत्नवाला मंदारदामका पुत्र वह परिमलालय काशीमें त्रिलोचन को देखने के लिये
नित्यही भलीभांति आवैहै याने आताथा ॥ ८५ ॥ और वह कपोतीभी पाताललोक के बीच नागोंके राजा रत्नदीप के घरमें रत्नावली ऐसे नाम से उत्पन्नहुई ॥ ८६ ॥
व वह रत्नदीप नागकी कन्या सब नागकन्याओं के मध्यमें रूप शील कला और गुणोंसे एकही रत्नभूत हुई ॥ ८७ ॥ व उसकी दो सखियां हुई उनमें से एक नाम

नकाश्यामनर्च्याश्नामिनाण्वपि ॥ ८४ ॥ इत्थंमान्दारदामिःसनित्यंपरिमलालयः ॥ काश्यांत्रिविष्टपन्द्रष्टुं समाग
च्छेत्प्रयत्नवान् ॥ ८५ ॥ पारावत्यपिसाजाता रत्नदीपस्यमन्दिरे ॥ नागराजस्यपाताले नाम्नारत्नावलीतिच ॥ ८६ ॥ सम
स्तनागकन्यानां रूपशीलकलागुणैः ॥ एकैवरत्नभूतासीद्रत्नदीपोरगात्मजा ॥ ८७ ॥ तस्याःसखीद्वयंचासीदेकाना
म्नाप्रभावती ॥ कलावतीतथान्याच नित्यंतदनुगेउभे ॥ ८८ ॥ स्वदेहादनपायिन्यौ छायाकान्तीयथातथा ॥ तेद्वेस
ख्यावभूतांहि रत्नावल्याघटोद्भव ॥ ८९ ॥ सातुबाल्येऽव्यतिक्रान्ते किञ्चिदुद्भिन्नयौवना ॥ शिवभक्तंस्वपितरं दृष्ट्वा
नियममग्रहीत् ॥ ९० ॥ पितस्त्रिलोचनंकाश्यामर्चयित्वादिनेदिने ॥ आभ्यांसखीभ्यांसहिता मौनंत्यक्ष्यामिनान्यथा ॥
९१ ॥ एवंनागकुमारीसा सखीद्वयसमन्विता ॥ त्रिलोचनंसमभ्यर्च्य गृहानहरहोव्रजेत् ॥ ९२ ॥ दिनेदिनेसाप्रत्यग्रैः कु

से प्रभावती और वैसेही अन्य कलावती है ये दोनों नित्यही उसकी अनुगामिनी थीं ॥ ८८ ॥ हे अगस्त्यजी ! जैसे छाया (परछाहीं) और छवि अपनी देहसे विलग
जानेवाली नहीं हैं वैसेही रत्नावलीकी वे दोनों सखियांहुईं याने सदैव उसके संग में रहती थीं ॥ ८९ ॥ और बालापन के बीतजातेही कुछेक अंकुरित यौवनवाली
उस कन्याने अपने पिताको शिवभक्त देखकर नियम को ग्रहण किया ॥ ९० ॥ कि हे पितः ! इन सखियों समेत मैं दिनोदिन काशीमें त्रिलोचन को भलीभांति पूज
कर मौनव्रत त्यागूंगी अन्यथा नहीं ॥ ९१ ॥ इस प्रकार दो सखियों समेत वह नागकुमारी दिनोदिन त्रिलोचनको भलीभांति पूजकर घरोंको जावैहै ॥ ९२ ॥ और

वह दिनदिनमें वाञ्छित या प्यारे सुगन्धवारे फूलेहुये फूलोंसे अच्छी विचित्र मालाओंको गूंधकर समर्थ शिवजीको पूजै है ॥ ९३ ॥ व तीनों नागकुमारियां भी गांधारराग से मनोहरगीत को गातीहैं और तीनोंही रासमण्डल के भेदसे नृत्य को करती हैं ॥ ९४ ॥ व लय और तालोंमें परम प्रवीन व आनन्द से संयुत वे तीनों भी परमेश्वर के समीप में वीणा, वेणु और मृदंगको बजाती हैं ॥ ९५ ॥ इसभांति तीनों नागकन्यायें विचित्र सुगन्ध संयुत माला संमार्जन और चन्दनादि विलेपनों से शिवजीको पूजती है ॥ ९६ ॥ एक समय वैशाखमास की तीजमें उपासी हुई वे नृत्य गीत और कथादिको से रात्रिमें जागरण कोकर ॥ ९७ ॥ प्रातःकाल चौथिको

सुमैरिष्टगन्धिभिः ॥ सुविचित्राणिमाल्यानि परिगुम्फ्यार्चयेद्विभुम् ॥ ९३ ॥ तिस्रोपिगीतंगायन्ति लसद्गान्धारसुन्दरम् ॥ रासमण्डलभेदेन लास्यंतिस्रोपिकुर्वते ॥ ९४ ॥ वीणावेणुमृदङ्गांश्च लयतालविचक्षणाः ॥ वादयन्तिमुदायुक्तास्तिस्रोपीश्वरसन्निधौ ॥ ९५ ॥ इत्थमाराधयन्तीशं तिस्रोनागकुमारिकाः ॥ विचित्रगन्धमालाभिः सम्मार्जनविलेपनैः ॥ ९६ ॥ एकदामाधवेमासि तृतीयायामुपोषिताः ॥ रात्रौजागरणंकृत्वा नृत्यगीतकथादिभिः ॥ ९७ ॥ प्रातश्चतुर्थींस्नात्वाथ तीर्थेपैलिपिलेशुभे ॥ त्रिलोचनंसमभ्यर्च्याथप्रसुप्तारङ्गमण्डपे ॥ ९८ ॥ सुप्तासुतासुबालासुत्रिनेत्रःशशिभूषणः ॥ शुद्धकर्पूरगौराङ्गो जटामुकुटमण्डलः ॥ ९९ ॥ तमालनीलसुग्रीवःस्फुरत्फणिविभूषणः ॥ वामार्धविलसच्छक्तिर्नागयज्ञोपवीतवान् ॥ १०० ॥ तस्मादेवविनिष्क्रम्यालिङ्गात्पन्नगमेखलात् ॥ उवाचचततोबाला विभुरुत्तिष्ठतेतिसः ॥ १ ॥ उत्थायताविनिर्माज्य लोचनेश्रुतिसङ्गते ॥ अङ्गमोटनवत्यश्च जृम्भाभिःक्वणिताननाः ॥ २ ॥ यावत्पश्य

मंगलमय पिलिपिलातीर्थ में स्नानकर अनन्तर त्रिलोचन को भलीभांति पूजकर उसके बाद रंगमन्दिर में बहुतही सोयगई ॥ ९८ ॥ और उन कन्याओं के सोईहुई होतेही त्रिलोचनजी जोकि चन्द्रभूषण व शुद्ध कपूरके समान गौराङ्ग व जटाओंसे रचित मुकुट मण्डलवाले ॥ ९९ ॥ व तमालसे सुनीलकण्ठ व स्फुरतेहुये सर्पोंसे भूषित व बायें आधे भागमें सोहतीहुई शक्तिवाले व नागयज्ञोपवीतवाले ॥१००॥ वे विभुजी उसी पन्नगमेखललिङ्गसे निकलकर ऐसा बोले कि हे कन्याओ ! तुम सब उठो तदनन्तर ॥ १ ॥ जमुहाईसे शब्दितमुखी व अङ्ग चलानेवाली वे उठकर और कानोंमें मिलीहुई आंखोंको विशुद्धकर ॥ २ ॥ व आदरसे व्याप्त अन्तःकरणवाली होकर

न्तिपुरतः संभ्रमापन्नमानसाः ॥ अतर्कितागमस्तावत्ताभिर्दृष्टस्त्रिलोचनः ॥ ३ ॥ ववन्दुरथताबाला ज्ञात्वालक्ष्मभिरी
श्वरम् ॥ तुष्टुवुश्चप्रहृष्टास्याः सन्नकण्ठ्योतिगद्गदम् ॥४॥जयशम्भोजयेशान जयसर्वगसर्वद ॥ जयत्रिपुरसंहर्तर्जया
न्धकनिषूदन ॥ ५ ॥ जयजालन्धरहर जयकन्दर्पदर्पहृत ॥ जयत्रैलोक्यजनक जयत्रैलोक्यवर्धन ॥ ६ ॥ जयत्रैलोक्य
निलयजयत्रैलोक्यवन्दित ॥ जयभक्तजनाधीन जयप्रमथनायक ॥७॥ जयत्रिपथगापाथःप्रक्षालितजटातट ॥ जयच
न्द्रकलाज्योतिर्विद्योतितजगत्त्रय ॥ ८ ॥ जयसर्पफणारत्नप्रभाभासितविग्रह ॥ जयाद्रिराजतनयातपःक्रीतार्धदेहक ॥
९ ॥जयश्मशाननिलय जयवाराणसीप्रिय ॥ जयानन्दवनाध्यासिप्राणिनिर्वाणदायक ॥ १० ॥ जयविश्वपतेशर्व श
र्वरीपरिवर्जित ॥ जननृत्यप्रियेशोग्र जयगीतविशारद ॥ ११ ॥ जयप्रणवसद्वास जयधाममहानिधे ॥ जयशूलिन्वि

जबतक आगे देखती हैं तबतक उन्होंने असम्भवित आनेवाले त्रिलोचन महादेवजीको देखा ॥ ३ ॥ अनन्तर लक्षणों से ईश्वरको जानकर प्रसन्नमुखी व संनिरुद्ध गलेवाली उन कुमारियों ने वन्दना किया और अतिगद्गदस्वर से स्तुति किया ॥ ४ ॥ कि हे शम्भो ! जयकरो हे ईशान ! जयकरो हे सर्वग, सर्वदायक ! तुम जय करो हे त्रिपुरविनाशिन् ! जयकरो हे अन्धकनिपूदन ! जयकरो ॥ ५ ॥ हे जालन्धरसंहारिन् ! जयकरो हे कामगर्वहारिन् ! जयकरो हे त्रैलोक्यजनक ! जयकरो हे त्रैलोक्यवर्धन ! तुम जयकरो ॥ ६ ॥ हे त्रैलोक्यमंदिर ! जयकरो हे त्रैलोक्यवन्दित ! जयकरो हे भक्तजनों के अधीन ! जयकरो हे प्रमथ (गण) नायक ! तुम जयकरो ॥७॥ हे गंगाजलसे प्रक्षालित जटातट ! जयकरो हे चन्द्रकलाकी ज्योतिसे त्रिलोकप्रकाशक ! तुम जयकरो ॥ ८ ॥ हे सर्पफणाओंके रत्नोंकी प्रभाओंसे दीपित देह ! जयकरो हे पर्वतराजकुमारी (पार्वती) की तपस्या से मोल लियेगये हुये आधे अंगवाले ! तुम जयकरो ॥ ९ ॥ हे श्मशानवासिन् ! जयकरो हे काशीप्रिय ! जयकरो हे काशीवासी प्राणियो के मुक्तिदायक ! तुम जयकरो ॥ १० ॥ हे रात्रिसे वर्जित, प्रलयकारिन्, विश्वनाथ ! जयकरो हे नृत्यप्रिय, उग्ररूप, ईश्वर ! जयकरो हे गीतोंके परमपण्डित तुम जयकरो ॥११॥ हे ॐकाररूप, सन्तोंके आश्रय ! जय करो हे तेजोंके महानिधान ! जयकरो हे विरूपनेत्रत्रिशूलधारिन् ! जयकरो हे

प्रणत जनोंके सर्वदायक ! तुम जयकरो ॥ १२ ॥ हे नाथ ! सब विधियों के जाननेवालेभी ब्रह्माजी तुम्हारी स्तुति करने के लिये पण्डित नहीं हैं व बृहस्पति के भी वचन तुम्हारी स्तुतिमें सबओरसे कुण्ठितहैं ॥ १३ ॥ हे सर्वज्ञ, स्वामिन् ! वेद यहां तुमको यथार्थ से नहीं जानते हैं व अनन्त और आदिसे रहित तुमको मनभी विचारके विषय नहीं करता है ॥ १४ ॥ हे त्रिलोचन ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो और हे त्रिविष्टप ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥१५॥ ऐसा कहकर कुमारियों ने भूमिमें दण्डवत् प्रणाम किया अनन्तर उन कन्याओं को उठाकर चन्द्रभूषण

रूपाक्ष जयप्रणतसर्वद ॥ १२ ॥ विधिःसर्वविधिज्ञोपि नत्वांस्तोतुंविचक्षणः ॥ वाचोवाचस्पतेर्नाथत्वत्स्तुतौपरिकुण्ठिताः ॥ १३ ॥ विदन्तिवेदाःसर्वज्ञ नत्वांनाथयथार्थतः ॥ मनतीहमनोनत्वामनन्तंचादिवर्जितम् ॥ १४ ॥ नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यंनमोनमः ॥ त्रिलोचननमस्तुभ्यं त्रिविष्टपनमोस्तुते ॥ १५ ॥ इत्युक्त्वादण्डवद्भूमौप्राणिपेतुःकुमारिकाः ॥ अथोत्थाप्यकुमारीस्ताः प्रोवाचशशिभूषणः ॥१६॥सुतोमन्दारदाम्नश्च नाम्नापरिमलालयः ॥ पतिर्विद्याधरवरो भवतीनांभविष्यति ॥ १७ ॥ चिरंविद्याधरेलोके भोगान्भुक्त्वासमन्ततः ॥ ततोनिर्वेदमापन्नाः काशीसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ १८ ॥ यूयंतिस्रोपिमेभक्ताः सचविद्याधरोयुवा ॥ चत्वारोप्येतएवात्र प्रान्तेमोक्षमवाप्स्यथ ॥ १९ ॥ जन्मान्तरेपिमेसेवा भवतीभिश्चतेनच ॥ विहितातेनवोजन्म निर्मलंभक्तिभावितम् ॥ २० ॥ एतच्चभवतीस्तोत्रं यःपठिष्यतिमेपुरः ॥ तस्यकामंप्रदास्यामि भवतीनामिवस्फुटम् ॥२१॥त्यजेत्क्षपाकृतंपापंशुचिःप्रातःपठन्नरः ॥ दिवाकृतमलंहन्ति

महादेवजीने कहा ॥ १६ ॥ कि मन्दारदामका पुत्र व विद्याधरोंमें श्रेष्ठ परिमलालय नामक आप सबों का पतिहोवेगा ॥ १७ ॥ व विद्याधर लोकमें बहुत कालतक सब ओरसे भोगोंको भोगकर तदनन्तर वैराग्य को प्राप्तहुई तुमलोग काशीकी सिद्धि को पावोगी ॥ १८ ॥ व मेरी भक्ता तुम तीनोंभी और वह युवाविद्याधर यही चारो भी तुम लोग यहां मरणमें मुक्तिको प्राप्त होवोगी ॥१९॥ जन्मान्तरमें भी आप लोग और उसनेभी मेरी सेवा किया उस लिये भक्तिसे युक्त तुम्हारा जन्म निर्मलहै ॥ २० ॥ और जो मेरे आगे आप के इस स्तोत्र को पढ़ेगा उसको मैं आपलोगों की नाईं स्फुट कामको दूंगा ॥ २१ ॥ व प्रातःकाल इसको पढ़ताहुआ पवित्र मनुष्य

राात्रिमें कियेहुये पापको त्याग देवेहै और स्पष्टहै कि सन्ध्यासमय में पढ़ने से दिन में कियेहुये मलको नष्ट करता है ॥ २२ ॥ इस प्रकार देवोंके स्वामी (शिव) के कहतेही दोनों हाथ जोड़ेहुईं आनन्दितमनवाली उन कन्याओं ने प्रणामकर परमेश्वर से कहा ॥ २३ ॥ नागकुमारियां बोलीं कि, हे नाथ, करुणाकर, शङ्कर ! हम पूंछती है उसको आप कहो कि हम चारोंने अन्य जन्म में किस प्रकार से आपकी सेवा किया है ॥ २४ ॥ हे कृपानिधान, जगत्कारण, शिवजी ! तुम उस पुण्यात्मा के भी व हमारेभी पूर्वजन्म के वृत्तान्त को कहो और कृपाको करो ॥ २५ ॥ इसभांति विनय से बालिकाओं के वचन को सुनकर ईश्वर ने उनके और उसकेभी

सायंपठनतःस्फुटम् ॥ २२ ॥ इत्युक्तवतिदेवेशे ताःकन्याहृष्टमानसाः ॥ प्रणम्यप्रोचुरीशानं प्रबद्धकरसम्पुटाः ॥ २३ ॥ नागकन्याऊचुः ॥ पृच्छामोब्रूहिनोनाथ करुणाकरशङ्कर ॥ जन्मान्तरेकथंसेवाचतुर्भिर्भवतःकृता ॥ २४ ॥ भवप्राग्भव वृत्तान्तं तस्यापिसुकृतात्मनः ॥ अस्माकमपिचाख्याहिकृपांकुरुकृपानिधे ॥ २५ ॥ इति श्रुत्वाप्रणयतोबालोदीरितमीशिता ॥ प्रोवाचतासांतस्यापि भवान्तरविचेष्टितम् ॥ २६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुध्वंनागतनयास्तिस्रोपिहिसमाहिताः ॥ प्राग्भवंभवतीनांच तस्यापिकथयाम्यहम् ॥ २७ ॥ एषारत्नावलीपूर्वमासीत्पारावतीखगी ॥ सचविद्याधरवरः पतिरस्याःखगोभवत् ॥ २८ ॥ प्रासादेत्रममैताभ्यामुषितंसुचिरंसुखम् ॥ रजःप्रासादसंलग्नं नुन्नंपक्षानिलैःपुनः ॥ २९ ॥ उपरिष्टादधस्ताच्च कृतावक्षयःप्रदक्षिणाः ॥ व्योम्नासंचरमाणाभ्यां सञ्चरद्भ्यांममाजिरे ॥ ३० ॥ स्नातंचतुर्नदेतीर्थे पीतंतत्राम्बुचासकृत् ॥ आभ्यांकलरवाभ्यांच कृतःकलरवोमुदे ॥ ३१ ॥ एताभ्यांस्थिरचेताभ्यां मुदिताभ्यामतीवहि ॥ दृष्टा

अन्य जन्मके कर्मको कहा ॥२६॥ शिवजी बोले कि, हे नागकुमारियो ! सावधान हुई तीनोंभी तुम सुनो मैं आपके और उसके भी पूर्वजन्मको कहताहूं ॥ २७ ॥ कि यह रत्नावली आगे कपोती पक्षिणी हुईथी और वह विद्याधर वर इसका पति पक्षी हुआथा ॥२८॥ इन दोनोंने मेरे इस मन्दिरमे बहुत कालतक सुखसे वास किया फिर शिवालय में संलग्नहुई धूरिको पक्षोंकी बयार से दूर किया ॥२९॥ व आकाशमें उडते और मेरे आंगन मे विचरते या चुनते हुये इन दोनो ने ऊपर और नीचे से भी बहुती प्रदक्षिणाओंको किया ॥ ३० ॥ व चतुर्नद (पिलिपिला) तीर्थमें स्नानकिया और उसमे बारबार पानी पिया व इन कपोतोंने मेरे आनन्दके लिये मधुर शब्दको

किया ॥ ३१॥ व अचल चित्तवाले अत्यन्त आनन्दित इन्होंने यहां मेरे भक्तों से कियेहुये कौतुकोंको भी देखा ॥३२॥ और इन्होंने बहुतसी मेरी मंगल आरतियोंको देखा व दोनों कानोंसे मेरे नामोंके अक्षर अमृतको पिया ॥ ३३ ॥ और तिर्य्यग्योनि के प्रभावसे ये मेरे समीपमे न मरे परन्तु निश्चय से काशीकी प्राप्ति करनेवाली अयोध्या पुरी में इनसे मरागया ॥ ३४ ॥ और अयोध्या में मरने से यह रत्नदीप नागकी कन्याहुई व इसका पति वह कपोत विद्याधरका पुत्र हुआहै ॥ ३५ ॥ और यह प्रभावती नागी इस जन्ममें नागराज पद्मीकी पुत्रीहुई है इसके पूर्वजन्मको तुम सबोंसे कहताहूं ॥ ३६॥ व यह कलावती सर्प्पोंके इन्द्र त्रिशिख की कन्याहै इसकेभी वृत्तान्तको

निकौतुकान्यत्र ममभक्तैःकृतानिवै ॥ ३२ ॥ अमूभ्यांबहुशोदृष्टाममममङ्गलदीपिकाः ॥ पीतंश्रुतिपुटाभ्यांच ममना मात्तरामृतम् ॥ ३३ ॥ तिर्यग्योनिप्रभावेण नमृतौममसन्निधौ ॥ मृतंपुर्यामयोध्यायां काशीप्राप्तिकृतिध्रुवम् ॥ ३४ ॥ अयोध्यानिधनादेषा रत्नदीपसुताभवत् ॥ पतिःपारावतोऽस्याः स जातोविद्याधराङ्गजः ॥ ३५ ॥ एषाप्रभावतीनागी नागराजस्यपद्मिनः ॥ इहजन्मनिकन्यासीत्पूर्वजन्मब्रवीमिवः ॥ ३६ ॥ त्रिशिखस्योरगेन्द्रस्य सुताचेयंकलावती ॥ एतस्याअपिवृत्तान्तं निशामयतवच्म्यहम् ॥ ३७ ॥ भवान्तरेतृतीयेऽतः कन्येचारायणस्यह ॥ आस्तांमहर्षेःशीला ढ्ये प्रेमवत्यौपरस्परम् ॥ ३८ ॥ पित्राचारायणेनापिताभ्यांसम्प्रेरितेनते ॥ आमुष्यायणपुत्राय दत्तेनारायणायहि ॥ ३९ ॥ अप्राप्तयौवनःसोथ समिदाहरणायवै ॥ गतोविधिवशाद्दष्टो दन्दशूकेनकानने ॥ ४० ॥ भवानीगौतमीनाम्न्यौ तेतुचारायणाङ्गजे ॥ वैधव्यदुःखमापन्ने दैन्यग्रस्तेबभूवतुः ॥ ४१ ॥ अतएवप्रयत्नेन परिणेताविवर्जयेत् ॥ देवता

सुनो मैं कहताहूं ॥ ३७ ॥ कि इस वर्तमानसे तीसरे जन्मान्तरमें ये चारायण महर्षिकी कन्यायेंहुईं जोकि शील (सद्वृत्ति) से सम्पन्न और परस्पर प्रीतिवालीथीं ॥ ३८॥ उनसे संप्रेरितहुये उनके पिता चारायणसेभी वे आमुष्यायणके पुत्र नारायणकेही लिये दीगईं ॥ ३९ ॥ अनन्तर ईंधन आननेकेलिये वनमें गयेहुये अप्राप्त यौवनवाले उसको विधिवशसे सर्पनेही काटखाया ॥४०॥ और वैधव्य दुःखसे व्याप्तहुईं भवानी व गौतमी नाम्नी वे चारायणकी कन्यायें दीनतासे ग्रस्तहोगईं ॥४१॥ इसमेंही अच्छी

बुद्धिवाला व्याहकर्त्ता व्याहमें देवता और नदी नामवाली कन्याको बड़े यत्नसे सबओर वरावे ॥ ४२ ॥ उसके बाद वे दोनों दैवयोगसे किसी ऋषिके बडेविचित्रआश्रममें विना दियेहुये केला फलोंको मोहसे लेलिया तब ॥ ४३ ॥ मासभर उपवासादि व्रतोंको कर ब्राह्मणकी पुत्रियां कालसे मरणको प्राप्तहोकर वानरीहुईं ॥४४॥ फल चुराने के विपाक (फल)से उनका वानरीभाव हुआ और शील रक्षणरूप धर्मसे उन्होंने काशीमें जन्मको पाया ॥४५॥ व सर्पसे डसागयाभी पिताकी सेवारूपवाला वह नारायण ब्राह्मण काशी मे कपोतहुआ ॥ ४६ ॥ इसप्रकार यह जन्मान्तरमें भी इनका पति हुआथा और इससमयभी आप तीनोंका पति होनेवालाहै ॥ ४७ ॥ इस शिवालयके पार्श्व (पास)

सरिदाह्वानां कन्यांपाणिग्रहेसुधीः ॥ ४२ ॥ अथर्षेःकस्यचिद्दैवादाश्रमेपरमाद्भुते ॥ रम्भाफलान्यदत्तानि मोहाज्जगृहतुस्तदा ॥ ४३ ॥ कृत्वामासोपवासादिव्रतानिब्राह्मणाङ्गजे ॥ अवाप्यनिधनंकालाच्छाखामृग्यौबभूवतुः ॥ ४४ ॥ फलचौर्यविपाकेनवानरीत्वन्तयोरभूत् ॥ शीलरक्षणधर्मेणकाश्यांजनिमवापतुः ॥ ४५ ॥ सचनारायणोविप्रःपितृशुश्रूषणव्रतः ॥ दष्टोपिदन्दशूकेनकाश्याम्पारावतोभवत् ॥ ४६ ॥ एवम्भवान्तरेचासीदेतयोःपतिरेषकः ॥ तिसृणाम्भवतीनाञ्च भावीभर्ताधुनापिहि ॥ ४७ ॥ प्रासादस्यास्यपार्श्वेतुन्यग्रोधस्तुमहानभूत् ॥ तस्मिञ्शाखिनिशाखाढ्येशाखामृग्यौबभूवतुः ॥ ४८ ॥ चतुःस्रोतस्विनीतीर्थेक्रीडयाचममज्जतुः ॥ पपतुश्चापिपानीयंतस्मिंस्तीर्थेतृषातुरे ॥ ४९ ॥ जातिस्वभावचापल्यात्क्रीडन्त्यौचप्रदक्षिणम् ॥ चक्रतुर्बहुकृत्वश्चलिङ्गंददृशतुर्बहु ॥ ५० ॥ विचरन्त्यावितिस्वैरंतत्रन्यग्रोधसन्निधौ ॥ केनचिद्योगिवेषेणपाशेनचनियन्त्रिते ॥ ५१ ॥ भिक्षार्थंशिक्षितेतेनतदुत्प्लुत्यादिनर्तनम् ॥ अथतेकापिमर्कट्यौ

में जो बडा भारी वट वृक्ष हुआथा और शाखाओं से व्याप्त (संयुत) उस वृक्षमें वे वानरीहुईंथीं ॥ ४८ ॥ व खेल से पिलिपिलातीर्थ में नहाती थीं और प्यास से आतुर होकर उस तीर्थ में पानी पीतीथीं ॥ ४९ ॥ व जाति के स्वभावकी चञ्चलता से क्रीडा करती हुई उन्होंने बहुत बार प्रदक्षिणा किया और लिंगको बहुत दर्शन किया ॥ ५० ॥ इसप्रकार वहां वट वृक्षके समीप में अपनी इच्छासे विचरती हुई वे किसी योगी वेषवाले करके पाशसे बांधीगई और उससेही भिक्षा के अर्थ उरा प्रसिद्ध कूदने

आदि नर्त्तन के प्रति सिखाई जाती भई ॥ ५१ ॥ उसके बाद वे वानरियां कहीं भी कालधर्म के वशमें प्राप्तहुईं याने मरगईं ॥ ५२ ॥ इस भांति काशीवास से उत्पन्न पुण्यसे व त्रिलोचनदेवकी प्रदक्षिणादि रूपिणी अनुसेवा से नागकुमारी उपजी हैं ॥ ५३ ॥ इस समय उस विद्याधर कुमारको पति पाकर व स्वर्ग केसे भोगोंको भोगकर तुम सब काशी मे सुख या मोक्षको प्राप्त होवोगी ॥ ५४ ॥ जो कि शुभ के प्राप्त करनेवाला थोड़ाभी कर्म काशी मे किया गया उसका फल मेरी दया से मोक्ष होता है यह निश्चित और प्रसिद्ध है ॥ ५५ ॥ काशीपुरी सब त्रिलोक से भी श्रेष्ठहै उससे भी ॐकार लिङ्ग श्रेष्ठहै और उससे भी यहां त्रिलोचन लिङ्ग श्रेष्ठहै ॥ ५६ ॥ इस

कालधर्मवशङ्गते ॥ ५२ ॥ काशीवासजपुण्येनत्रैलोचन्यानुसेवया ॥ प्रादक्षिण्यादिरूपिण्याजातेनागसुतेइति ॥ ५३ ॥ अधुनातम्पतिम्प्राप्यविद्याधरकुमारकम् ॥ निर्विश्यस्वर्गभोगांश्चकाश्यांनिर्वृतिमेष्यथ ॥ ५४ ॥ यदल्पमपिवैकाश्यांकृतंकर्मशुभावहम् ॥ तस्यमोक्षःपरीपाकोनिश्चितंमदनुग्रहात् ॥ ५५ ॥ त्रिलोक्याअपिसर्वस्याःश्रेष्ठावाराणसीपुरी ॥ ततोपिलिङ्गमोङ्कारंततोप्यत्रत्रिलोचनम् ॥ ५६ ॥ तिष्ठमानोत्रलिङ्गेहंभक्तमुक्तिंदिशाम्यहम् ॥ ततःसर्वप्रयत्नेनकाश्याम्पूज्यस्त्रिलोचनः ॥ ५७ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशःप्रासादान्तरमाविशत् ॥ अवाच्यरूपमासाद्यस्थूलन्त्रिभुवनादपि ॥ ५८ ॥ ताश्चस्वंस्वम्पदम्प्राप्यतद्वृत्तान्तमशेषतः ॥ स्वमातृपुरतश्चोक्त्वाकृतकृत्याइवाभवन् ॥ ५९ ॥ एकदामाधवेमासिमहायात्रासमागता ॥ विद्याधरास्तथानागामिलिताःसपरिच्छदाः ॥ ६० ॥ विरजस्केमहाक्षेत्रेत्रिलोचनसमीपतः ॥ देवस्यवरदानाच्चपृष्ट्वान्योन्यंकुलावलीम् ॥ ६१ ॥ विद्याधरायतानागैःकन्यास्तिस्रोपिकल्पिताः ॥ मन्दारदा

लिङ्ग में टिका हुआ मैं भक्तों को मुक्ति देताहूं उस कारण काशी में सब प्रयत्न से त्रिलोचन पूजनीयहैं ॥ ५७ ॥ ऐसा कहकर देवदेवों के ईश महादेवजी त्रिलोक से भी स्थूल याने व्यापक अकथनीयरूप को प्राप्त होकर शिवालय के भीतर पैठगये ॥ ५८ ॥ और वे कन्यायें अपने अपने घरको जाकर व अपनी माताओं के आगे उस सम्पूर्ण वृत्तान्त को कहकर कृतकृत्यसी हुईं ॥ ५९ ॥ एक समय वैशाखमासमें महायात्रा भलीभांति आई उसमें सेवकादिकों समेत विद्याधर तथा नागभी मिलित हुये ॥ ६० ॥ व त्रिलोचन के समीप विरजस्क नामक महाक्षेत्र में श्रीमहादेवजी के वरदान से परस्पर कुलकी परम्परा को पूंछकर ॥ ६१ ॥ नागोंने विद्याधर के लिये

उन तीनों कन्याओं को भी कल्पित किया और तीन बहुओं को पाकर मन्दारदामा सन्तुष्टहुआ ॥ ६२ ॥ और रत्नदीप नागेन्द्र व सर्पेश्वर पद्मी व नागों का इन्द्र त्रिशिखभी ये तीनों आनन्दितहुये ॥ ६३ ॥ और शुभ, परिमलालय नामक जामाता (दामाद) को प्राप्तहोकर आनन्दसे अन्योन्य प्रसन्न नेत्रवाले वे स्वजन ॥ ६४ ॥ विवाहोत्सव को कर त्रिलोचनकी अत्यन्त गुरुता को वर्णन करतेहुये अपने अपने घरको गये ॥ ६५ ॥ और वह श्रीमान् विद्याधर नागियों के साथ बहुते सुखको भोग कर अनन्तर काशीको प्राप्त होकर व त्रिलोचन की भलीभांति सेवाकर ॥ ६६ ॥ अच्छे मधुरगीत को गाता हुआ नागकन्याओं सहित पुण्यात्मा अपनाको अतिशय

मासन्तुष्टःप्राप्यतच्चस्नुषात्रयम् ॥ ६२ ॥ रत्नदीपश्चनागेन्द्रःपद्मीचभुजगेश्वरः ॥ त्रिशिखोपिफणीन्द्रश्चहृष्टाएतेत्रयोपिच ॥ ६३ ॥ जामातरंसमासाद्यशुभम्परिमलालयम् ॥ अन्योन्यंस्वजनास्तेतुमुदाविकसितेक्षणाः ॥ ६४ ॥ विवाहोत्सवमाकल्प्यस्वंस्वम्भुवनमाविशन् ॥ त्रिलोचनस्यलिङ्गस्यवर्णयन्तोतिगौरवम् ॥ ६५ ॥ सचविद्याधरःश्रीमान्नागीभिर्विपुलंसुखम् ॥ भुक्त्वावाराणसीम्प्राप्यसंसेव्याथत्रिलोचनम् ॥ ६६ ॥ गायन्गीतंसुमधुरंनागीभिःसहितःकृती ॥ आत्मानञ्चातिसंस्मृत्यमध्येलिङ्गंलयङ्गतः ॥ ६७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ त्रिलोचनस्यमहिमाकलौदेवेनगोपितः ॥ अतोल्पसत्त्वामनुजानतल्लिङ्गमुपासते ॥ ६८ ॥ त्रिलोचनकथामेतांश्रुत्वापापान्वितोप्यहो ॥ विपाप्माजायतेमर्त्योलभतेचपराङ्गतिम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेत्रिलोचनप्रभावोनामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ * ॥

पार्वत्युवाच ॥ नमस्तेदेवदेवेशप्रणमत्करुणानिधे ॥ वदकेदारमाहात्म्यंभक्तानामनुकम्पया ॥ १ ॥ तस्मिँल्लिङ्गेमहा

संस्मरण कर लिङ्गके बीचमें लयको प्राप्त होगया ॥ ६७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, कलियुग में त्रिलोचनकी महिमा महादेवजी से गुप्त कीगई है इससे थोड़े सत्त्ववाले मनुष्य उस लिंगकी उपासना नहीं करते हैं ॥ ६८ ॥ आश्चर्य्य है कि पाप समेतभी मनुष्य इस त्रिलोचनकी कथाको सुनकर पापों से हीन होजाता है और उत्तम मोक्ष को भी पाताहै ॥ ६९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेत्रिलोचनप्रभावोनामषट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । सतहत्तर अध्यायमें इत आख्यान सुयुक्त । केदारेश्वरलिंग का शुभमहात्म्य बहु उक्त ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे प्रणामकरतेहुये जनो के करुणानिधान,

देवदेवों के स्वामिन् ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और आप भक्तोंकी दयासे केदार के माहात्म्यको कहो ॥ १ ॥ हे देवों के देव ! काशी के बीच उस लिंगमें आपकी अतिशय उत्तम बहुत बड़ी प्रीतिहै और बड़े बुद्धिमान् लोग उस लिंग के भक्त हैं ॥ २ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे अपर्णे (पार्वति)! मैं केदारेश्वरकी भलीभांति कथाको कहूंगा तुम सुनो कि महापापी भी जिसको सुनकर ही क्षणभर में पापों से हीन होजाताहै ॥ ३ ॥ व केदारेश्वर के प्रति जानेके चाही निश्चित मनवाले मनुष्यका जन्म से लगाकर सञ्चित किया हुआ पाप उसही क्षणमें नष्ट होताहै ॥ ४ ॥ और निश्चितहै कि केदार के सामने मनुष्यके घरसे निकलतेही दो जन्मों का बटोरा पाप देहसे

प्रीतिस्तवकाश्यामनुत्तमा ॥ तद्भक्ताश्चजनानित्यंदेवदेवमहाधियः ॥ २ ॥ देवदेवउवाच ॥ शृणुत्वपर्णेभिधास्यामिकेदारेश्वरसङ्कथाम् ॥ समाकर्ण्यापियाम्पापोप्यपापोजायतेक्षणात् ॥ ३ ॥ केदारंयातुकामस्यपुंसोनिश्चितचेतसः ॥ आजन्मसञ्चितम्पापंतत्क्षणादेवनश्यति ॥ ४ ॥ गृहाद्विनिर्गतेपुंसिकेदारमभिनिश्चितम् ॥ जन्मद्वयार्जितम्पापंशरीरादपिनिर्व्रजेत् ॥ ५ ॥ मध्येमार्गम्प्रपन्नस्यत्रिजन्मजनितन्त्वघम् ॥ देहगेहाद्विनिःसृत्यनिराशंयातिनिःश्वसत् ॥ ६ ॥ सायङ्केदारकेदारकेदारेतित्रिरुच्चरन् ॥ गृहेपिनिवसन्नूनंयात्राफलमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वाकेदारशिखरंपीत्वातत्त्यमम्बु च ॥ सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ८ ॥ हरपापह्रदेस्नात्वाकेदारेशम्प्रपूज्यच ॥ कोटिजन्मार्जितैनोभिर्मुच्यतेनात्रसंशयः ॥ ९ ॥ सकृत्प्रणम्यकेदारंहरपापकृतोदकः ॥ स्थाप्यलिङ्गंहृदम्भोजेप्रान्तेमोक्षङ्गमिष्यति ॥ १० ॥

भी निकल जावे है ॥ ५ ॥ व गली के बीचमें प्राप्तहुयेका तीन जन्मोंमें उपजाहुआ पाप निःश्वास लेताहुआ देह और गेहसे निकलकर निराश होकर भागजाताहै ॥ ६ ॥ सायङ्काल मे हे केदार ! हे केदार !! हे केदार !!! इसप्रकार तीनबार कहता हुआ घर में भी बसता हुआ मनुष्य निश्चय से यात्राके फल को पावे ॥ ७ ॥ और केदारेश्वर के शिवालय के शिखर को देखकर व वहांके पानी को पीकर सात जन्मों में किये पापों से छूटताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ८ ॥ व हरपापकुण्ड में स्नानकर और केदारेश्वरको बहुत पूजकर करोड़ जन्मोंके बटोरे पापों से छूटजाताहै इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९ ॥ वह हरपापकुण्ड में स्नानादि जलक्रिया करनेवाला एकबार भी

केदारेश्वर के प्रणामकर और हृदयकमल में लिंगको थापकर मरणान्त में मुक्तिको प्राप्त होवेगा ॥ १० ॥ जो कि श्रद्धासे हरपापकुण्डमें श्राद्ध को करेगा वह सातपुरुषों को उद्धार कर मेरेलोकको जावेगा ॥ ११ ॥ हे पार्वति ! पूर्वकाल रथन्तर कल्पमें जो यहां हुआहै उसको तुम्हारे आगे मैं कहताहूं और कान दियेहुई तुम सुनो ॥ १२ ॥ कि एक ब्राह्मण का पुत्र उज्जयिनी से यहां आया जो कि पितासे कियेहुये उपनयन (यज्ञोपवीत) कर्म्मवाला व ब्रह्मचर्य्य व्रतमें स्थितथा ॥ १३ ॥ वह जटामुकुटो से भूषित उन पाशुपत (शैव) ब्राह्मणों से व्याप्तहुई पशुपति की स्थली काशीपुरी को सब ओर से देखकर ॥ १४ ॥ जे कि लिंगोंकी पूजा कियेहुये व विभूति से भूषित

हरपापह्रदेश्राद्धंश्रद्धयायःकरिष्यति ॥ उद्धृत्यसप्तपुरुषान्समेलोकङ्गमिष्यति ॥ ११ ॥ पुराराथन्तरेकल्पेयदभूदत्रत च्छृणु ॥ अपर्णेदत्तकर्णात्वंवर्णयामितवाग्रतः ॥ १२ ॥ एकोब्राह्मणदायादउज्जयिन्याइहागतः ॥ कृतोपनयनःपित्राब्र ह्मचर्यव्रतेस्थितः ॥ १३ ॥ स्थलीम्पाशुपतीङ्काशींसविलोक्यसमन्ततः ॥ द्विजैःपाशुपतैःकीर्णांजटामुकुटभूषितैः ॥ १४ ॥ कृतलिङ्गसमर्चैश्चभूतिभूषितवर्ष्मभिः ॥ भिक्षाहृतान्नसन्तुष्टैःपुष्टैर्गङ्गामृतोदकैः ॥ १५ ॥ बभूवानन्दितमनाब्रतञ्जग्रा हचोत्तमम् ॥ हिरण्यगर्भादाचार्यान्महत्पाशुपताभिधम् ॥ १६ ॥ सचशिष्योवशिष्ठोभूत्सर्वपाशुपतोत्तमः ॥ स्नात्वाह्र देहरपापेनित्यम्प्रातःसमुत्थितः ॥ १७ ॥ विभूत्याहरहःस्नातित्रिकालंलिङ्गमर्चयन् ॥ नान्तरंसविजानातिशिवलिङ्गगु रौतथा ॥ १८ ॥ सद्वादशाब्ददेशीयोवशिष्ठोगुरुणासह ॥ ययौकेदारयात्रार्थंगिरिङ्गौरीगुरोर्गुरुम् ॥ १९ ॥ यत्रगत्वान

देहवाले व भिक्षासे लायेहुये अन्नसे सन्तुष्ट व गंगा के अमृत समान जलसे सन्तुष्टथे ॥ १५ ॥ उनको देखकर आनन्दितमन हुआ और हिरण्यगर्भनामक आचार्य्य से बड़े पूजनीय पाशुपतनामक उत्तम व्रतको ग्रहण करता भया ॥ १६ ॥ और वह वशिष्ठनामक शिष्य सब पाशुपतों मे श्रेष्ठहुआ क्योंकि प्रातःकालमें भलीभांति उठा हुआ वह नित्यही हरपापकुण्ड मे स्नानकर ॥ १७ ॥ त्रिकालमे लिंग को पूजताहुआ दिन दिनमें विभूति से नहाता है (था) वह शिवलिंग तथा गुरुमें अन्तरको नहीं जानता है (था) ॥ १८ ॥ वह बारह वर्ष की अवस्थावाला वशिष्ठ गुरुके साथ केदारयात्रा के अर्थ पार्वती पिता के श्रेष्ठ पर्वतमें गया ॥ १९ ॥ कि जहां जाकर लिंग

रूप जलको पानकर लिंगरूपताको प्राप्तहुये संसारीजन कहीं कुछेकभी नहीं शोचते हैं ॥ २० ॥ वहां असिधारनामक पर्वत को प्राप्तहोकर तपस्वी वशिष्ठका हिरण्यगर्भनामक गुरु उस समय पंचत्व (मरण) को प्राप्त होगया ॥ २१ ॥ और तपस्वियों के देखतेही सब कामनादायक विमान में उसको चढ़ाकर शिवजीके पार्षद आनन्द से कैलास को लेगये ॥ २२ ॥ आश्चर्य्य है कि जो अकातर (कादर न हुआ) केदारको उद्देशकर घरसे आधीगलीमें भी प्राणोंको त्यागे वह बहुत कालतक कैलास में बसे ॥ २३ ॥ तब या उस आश्चर्य को भलीभांति सामने देखकर, उस तपोधन वशिष्ठने लिंगों के मध्यमें बहुत निश्चय कियेहुये केदारकोही बहुतमाना ॥ २४ ॥

शोचन्तिकिञ्चित्संसारिणःक्वचित् ॥ प्राश्योदकंलिङ्गरूपंलिङ्गरूपत्वमागताः ॥ २० ॥ असिधारङ्गिरिम्प्राप्यवशिष्ठस्य तपस्विनः ॥ गुरुर्हिरण्यगर्भाख्यःपञ्चत्वमगमत्तदा ॥ २१ ॥ पश्यतान्तापसानाञ्चविमानेसार्वकामिके ॥ आरोप्यत म्पारिषदाःकैलासमनयन्मुदा ॥ २२ ॥ यस्तुकेदारमुद्दिश्यगेहादर्धपथेप्यहो ॥ अकातरस्त्यजेत्प्राणान्कैलासेसचिरंव सेत् ॥ २३ ॥ तदाश्चर्यसमालोक्यसवशिष्ठस्तपोधनः ॥ केदारमेवलिङ्गेषुबह्वमंस्तसुनिश्चितम् ॥ २४ ॥ अथकृत्वासकै दारींयात्रांवाराणसीमगात् ॥ अग्रहीन्नियमञ्चापियथार्थञ्चाकरोत्पुनः ॥ २५ ॥ प्रतिचैत्रंसदाचैत्र्यांयावज्जीवमहन्ध्रुव म् ॥ विलोकयिष्येकेदारंवसन्वाराणसीम्पुरीम् ॥ २६ ॥ तेनयात्राःकृताःसम्यक्षष्टिरेकाधिकामुदा ॥ आनन्दकानने नित्यंवसताब्रह्मचारिणा ॥ २७ ॥ पुनर्यात्रांसवैचक्रेमधौनिकटवर्तिनि ॥ परमोत्साहसन्तुष्टःपलिताकलितोप्यलम् ॥ २८ ॥ तपोधनैस्तन्निधनंशङ्कमानैर्निवारितः ॥ कारुण्यपूर्णहृदयैरन्यैरपिचसङ्गिभिः ॥ २९ ॥ ततोपिनतदुत्साहभङ्गो

अनन्तर उसने केदारकी यात्रा को कर काशी को गमन किया व नियम को लिया और फिर उसको यथार्थ किया ॥ २५ ॥ कि काशीपुरी में बसताहुआ मैं जीवनपर्य्यंत सदैव प्रतिचैत्रमास की पूर्णिमा में केदारनाथ को निश्चय से देखूंगा ॥ २६ ॥ और काशी में नित्यही बसते हुये उस ब्रह्मचारी ने आनन्द से एक अधिक साठि यात्राओं को भलीभांति किया ॥ २७ ॥ उसके बाद बहुत बुढ़ाई से व्याप्तभी परम उत्साह से संतुष्ट हुये उसने चैत्र मासके निकटवर्ती होतेही फिर यात्रा को किया ॥ २८ ॥ परन्तु उसके मरने की शंका करते हुये तपोधन जन और दया से भरे हृदयवाले अन्य संगियों से भी वह निवारित हुआ ॥ २९ ॥ तो भी उस दृढ़ चित्तवाले के

उत्साह का भङ्ग न हुआ कि बीच गली में मरेहुये गुरुजीकी नाईं मेरी भी मुक्तिहोवेगी॥ ३० ॥ हे चण्डिके ! इसप्रकार शूद्रोंसे अन्य याने ब्राह्मणादिकोंके अन्नसे परिपुष्ट,
पवित्र, तपस्वी वशिष्ठ के निश्चित चित्तवाला होतेही मैं सन्तुष्ट हुआ ॥ ३१ ॥ और मैंने स्वप्न में उस उत्तम तपस्वी वशिष्ठ से भलीभांति कहा कि हे दृढ़व्रत ! मैं प्र-
सन्नहूं तुम यहां मुझ को केदार जानो ॥ ३२ ॥ और विना विचारेहुये प्यारे वरको मुझ से मांगो इस भांति मेरे कहते हुये भी वह ऐसा बोला कि स्वप्न मिथ्या है ॥
३३ ॥ तदनन्तर भी वह मुझ से कहागया कि अशुद्धतावालों का स्वप्न मिथ्या होता है और अपने नाम के समान वर्त्तनशील आप सरीखे जनों का स्वप्न सत्य

अशूद्रान्नप भूद्दृढचेतसः ॥ मध्येमार्गेमृतस्यापिगुरोरिवगतिर्मम ॥ ३० ॥ इतिनिश्चितचेतस्केवशिष्ठेतापसेशुचौ ॥ ततोपिसम रिपुष्टेतुष्टोहञ्चण्डिकेऽभवम् ॥ ३१ ॥ स्वप्नेमयासमप्रोक्तोवशिष्ठस्तापसोत्तमः ॥ दृढव्रतप्रसन्नोस्मिकेदारंविद्धिमामि ह ॥ ३२ ॥ अभीष्टञ्चवरंमत्तःप्रार्थयस्वाविचारितम् ॥ इत्युक्तवत्यपिमयिस्वप्नोमिथ्येतिसोब्रवीत् ॥ ३३ ॥ वरम्ब्रूहिप्रसन्नोस्मिस्वप्न याप्रोक्तःस्वप्नोमिथ्याऽशुचिष्मताम् ॥ भवादृशाममिथ्यैवस्वाख्यासदृशवर्तिनाम् ॥ ३४ ॥ शिष्यो शङ्कान्त्यजद्विज ॥ तवसत्त्ववतःकिञ्चिन्मयादेयंनकिञ्चन ॥ ३५ ॥ इत्युक्तंमेसमाकर्ण्यवरयामाससमामिति ॥ हिरण्यगर्भस्य तपस्विजनसत्तमः ॥ ३६ ॥ यदिप्रसन्नोदेवेश तदामेसानुगाइमे ॥ सर्वेशूलिन्ननुग्राह्याएषएववरोमम॥ ३७ ॥ देवितस्येदमाकर्ण्य परोपकृतिशालिनः ॥ वचनंनितरांप्रीतस्तथेतितमुवाचह ॥ ३८ ॥ पुनःपरोपकरणात्तत्तपो

ही है ॥ ३४ ॥ हे ब्राह्मण ! मैं प्रसन्न हूं तुम स्वप्न की शंका को त्यागो और वरको बोलो (मांगो) क्योंकि सत्त्व (धैर्य्य या सतोगुण) वाले तुमको मुझसे कुछ
देनेयोग्य नहीं है किन्तु न याने सबकुछ देनेयोग्य है ॥ ३५ ॥ इसप्रकार मेरेकहे वचन को सुनकर तपस्वी जनों में सत्तम, हिरण्यगर्भ के शिष्य ने मुझ से ऐसे
वर को स्वीकार किया कि ॥ ३६ ॥ हे त्रिशूलधारिन्, देवेश ! जो तुम प्रसन्न हो तो सेवकों समेत मेरे सम्बन्धी ये सब लोग दयाके योग्य हैं यहही मेरा वर है ॥ ३७ ॥ हे
देवि ! उस परोपकारशाली के इस वचन को सुनकर बहुतही प्रसन्न हुये मैंने हर्ष से उस के प्रति ऐसा कहा कि वैसाही होवे ॥ ३८ ॥ फिर पराये उपकार से उसकी

तपस्या दुगुनी कीगई उस पुण्य से मैंने उससे फिर कहा कि तुम वरको अंगीकार करो ॥ ३९ ॥ हे देवि ! बड़े बुद्धिमान्, दृढ़ पाशुपतव्रतवाले उस वशिष्ठने हिमाचल से इस काशीमें टिकने को मुझसे प्रार्थना किया "यहां यह जानाजाता है कि हरपापतीर्थ और केदारेश्वरलिंग काशी में पहलेही था परन्तु वशिष्ठ की प्रार्थनासे यहां ईश्वरांश अधिक होगया है" ॥ ४० ॥ तदनन्तर उसकी तपस्या से खींचाहुआ मैं कलामात्र से वहां हिमपर्वत में हूं और यहां तबसे सब भावकरके भलीभांति टिका हूं ॥ ४१ ॥ उस समय प्रातःकाल होतेही और सबके देखतेही देव और ऋषियोंसे प्रशंसित होताहुआ मैं हिमाचलसे प्रस्थित होकर याने चलकर यहां प्राप्तहुआ ॥ ४२ ॥

द्विगुणीकृतम् ॥ तेनपुण्येनसमया पुनःप्रोक्तोवरंवृणु ॥ ३९ ॥ सवशिष्ठोमहाप्राज्ञो दृढपाशुपतव्रतः ॥ देविमेप्रार्थयामा सहिमशैलादिहस्थितिम् ॥ ४० ॥ ततस्तत्तपसाकृष्टः कलामात्रेणतत्रहि ॥ हिमशैलेततश्चात्र सर्वभावेनसंस्थितः ॥ ४१ ॥ ततःप्रभातेसंजाते सर्वेषांपश्यतामहम् ॥ हिमाद्रेःप्रस्थितःप्राप्तः स्तूयमानःसुरर्षिभिः ॥ ४२ ॥ वशिष्ठंपुरतःकृ त्वा सर्वसार्थसमायुतम् ॥ हरपापह्रदेतीर्थे स्थितोहंतदनुग्रहात् ॥ ४३ ॥ मत्परिग्रहतःसर्वे हरपापेकृतोदकाः ॥ आरा ध्यमामनेनैव वपुषासिद्धिमागताः ॥ ४४ ॥ तदाप्रभृतिलिङ्गेस्मिन् स्थितःसाधकसिद्धये॥ अविमुक्तेपरेक्षेत्रे कलिकाले विशेषतः ॥ ४५ ॥ तुषाराद्रिंसमारुह्य केदारंवीक्ष्ययत्फलम् ॥ तत्फलंसप्तगुणितं काश्यांकेदारदर्शने ॥ ४६ ॥ गौरी कुण्डंयथातत्र हंसतीर्थंचनिर्मलम् ॥ यथामधुस्रवागङ्गाकाश्यांतदखिलंतथा ॥ ४७ ॥ इदंतीर्थंहरपापं सप्तजन्मा

और सब संगियों समेत वशिष्ठ को आगेकर मैं उसके अनुग्रह से हरपापकुण्डतीर्थ के समीप में स्थित हूं ॥ ४३ ॥ और मेरे परिग्रह से हरपापकुण्ड में स्नानादि जलक्रिया को कियेहुये लोग मुझको पूजकर इसही देह से सिद्धि (मुक्ति)को प्राप्त हुये हैं ॥ ४४ ॥ तबसे लगाकर कलिकाल में विशेष से साधकों की सिद्धिके लिये मैं उत्तम अविमुक्त क्षेत्रके बीच इस लिंगमें टिकाहूं ॥ ४५ ॥ इससे हिमाचल में भलीभांति चढ़कर केदारेश्वर के दर्शनकर जो फल है वह फल काशी के केदारेश्वर के दर्शन में सातगुनाहै ॥ ४६ ॥ जैसे वहां गौरीकुंड और निर्मल हंसतीर्थ है व जैसे मधुस्रवा गंगाहै वैसे काशीमें सबहै ॥ ४७ ॥ यह

हरपापतीर्थ सातजन्मों के पापोंका नाशक है और पीछे से गंगामें मिलित हुआ यह करोड़ों जन्मोंके पापोंका हंताहै ॥ ४८ ॥ और पूर्वसमयमें लडते हुये दो द्रोणकाग आकाश से इसमें गिरे व वहां टिकेहुये जनोंके देखतेही हंसहोकर निकलगये ॥ ४९ ॥ हे गौरि ! पहले तुमने महाकुण्ड में स्नानमात्र को कियाहै उससे सब तीर्थोत्तमोत्तम गौरीतीर्थ कहागया या प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥ और यहां महामोहान्धकारहारिणी व अनेक जन्मजनित जड़ता की विनाशकारिणी अमृतस्रवा गंगा है ॥ ५१ ॥ व आगे यहां मानससर से याने उसके अधिष्ठाता ब्राह्मण से बड़ी तपस्या तपीगई है इस लिये यह हरपापतीर्थ जनोंमें मानस ऐसी प्रसिद्धि को प्राप्तहुआ है ॥ ५२ ॥

घनाशनम् ॥ गङ्गायांमिलितंपश्चाज्जन्मकोटिकृताघहम् ॥ ४८ ॥ अत्रपूर्वन्तुकाकोलौ युध्यन्तौखान्निपेततुः ॥ पश्य तांतत्रसंस्थानां हंसौभूत्वाविनिर्गतौ ॥ ४९ ॥ गौरित्वयाकृतंपूर्वं स्नानमात्रंमहाह्रदे ॥ गौरीतीर्थंततःख्यातं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ ५० ॥ अत्रामृतस्रवागङ्गा महामोहान्धकारहृत् ॥ अनेकजन्मजनितजाड्यध्वंसविधायिनी ॥ ५१ ॥ सरसामानसेनात्र पूर्वंतप्तंमहातपः ॥ अतस्तुमानसंतीर्थंजनेख्यातिमिदंगतम् ॥ ५२ ॥ अत्रपूर्वंजनःस्नानमात्रेणैव प्रमुच्यते ॥ पश्चात्प्रसादितश्चाहं त्रिदशैर्मुक्तिदुर्दशैः ॥ ५३ ॥ सर्वेमुक्तिङ्गमिष्यन्ति यदिदेवेहमानवाः ॥ केदारकुण्डेसु स्नातास्तदोच्छित्तिर्भविष्यति ॥ ५४ ॥ सर्वेषामेववर्णानामाश्रमाणांचधर्मिणाम् ॥ तस्मात्तनुविसर्गेत्र मोक्षंदास्यति नान्यथा ॥ ५५ ॥ ततस्तदुपरोधेन तथेतिचमयोदितम् ॥ तदारभ्यमहादेवि स्नानात्केदारकुण्डतः ॥ ५६ ॥ समर्चनाच्चभक्त्यावै ममनामजपादपि ॥ नैःश्रेयसींश्रियंदद्यामन्यत्रापितनुत्यजाम् ॥ ५७ ॥ केदारतीर्थेयःस्नात्वा पिण्डान्दा

पूर्वसमय में जन यहां स्नानमात्र से विमुक्त होताथा उसके बाद मुक्तिकी दुर्दशावाले या मनुष्यों के प्राप्य कैवल्यको न देखसकेहुये देवोंसे मैं प्रसादित हुआ याने उन्होंने मुझको प्रसन्नकर प्रार्थना किया ॥ ५३ ॥ कि हे देव ! जो इस केदारकुण्डमें भलीभांति नहायेहुये सब मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होजावेंगे तो संसारका उच्छेद होवेगा ॥ ५४ ॥ उस लिये यहां सब वर्ण आश्रम और धर्मियोंके देहत्याग में मुक्तिको देवो अन्यथा नहीं ॥ ५५ ॥ हे महादेवि ! तदनन्तर उनके रोकने से वैसाहीहो ऐसा मैंने कहा तबसे लगाकर केदारकुण्ड में नहाने से ॥ ५६ ॥ व भक्तिसे मेरी पूजा करने से भी और मेरे नामोंके जपनेसे भी मैं अन्यत्र भी देह त्यागते हुये

जनों को मुक्तिसम्बन्धिनी सम्पत्ति देताहूं या देऊंगा ॥ ५७ ॥ और जोकि वेग से रहित याने सावधानता सहित मनुष्य केदारतीर्थमें स्नानकर पिंडोको देवेगा उसके एक अधिक एकसौ वंशके जन संसारसागर को उतरेहुये हैं ॥ ५८ ॥ जब मंगलवारमें अमावस तिथि होवे तब केदारकुण्डको प्राप्तहोकर जो मनुष्य श्राद्धका दाता है उसको गयामें श्राद्धसे क्या है ॥ ५९ ॥ और केदारको जानेकी कामनावाले को मनुष्यों से यह बुद्धि देनेयोग्य है कि काशी में केदारेश्वर को स्पर्श करतेहुये तुम कृतार्थ होवोगे ॥ ६० ॥ व चैतबदी चतुर्दशी में उपास को कर प्रातःकाल तीन गण्डूष (कुल्ला) पानी पीताहुआ हृदयके लिंगमें टिकता है ॥ ६१ ॥ जैसे वहां

स्यतिच त्वरः ॥ एकोत्तरशतंवंश्यास्तस्यतीर्णाभवाम्बुधिम् ॥ ५८ ॥ भौमवारेयदादर्शस्तदायःश्राद्धदोनरः ॥ केदारकुण्डमासाद्य गयाश्राद्धेनकिन्ततः ॥ ५९ ॥ केदारंगन्तुकामस्य बुद्धिर्देयानरैरियम् ॥ काश्यांस्पृशंस्त्वंकेदारं कृतकृत्योभविष्यसि ॥ ६० ॥ चैत्रकृष्णचतुर्दश्यामुपवासंविधायच ॥ त्रिगण्डूषान्पिबन्प्रातर्हृत्लिङ्गमधितिष्ठति ॥ ६१ ॥ केदारोदकपानेन यथातत्रफलंभवेत् ॥ तथात्रजायतेपुंसांस्त्रीणांचापिनसंशयः ॥ ६२ ॥ केदारभक्तंसम्पूज्य वासोन्नद्रविणादिभिः ॥ आजन्मजनितंपापं त्यक्त्वायातिममालयम् ॥ ६३ ॥ आषण्मासंत्रिकालंयः केदारेशंनमस्यति ॥ तन्नमस्यन्तिसततं लोकपालायमादयः ॥ ६४ ॥ कलौकेदारमाहात्म्यं योपिकोपिनवेत्स्यति ॥ योवेत्स्यतिसपुण्यात्मा सर्वंवेत्स्यतिसध्रुवम् ॥ ६५ ॥ केदारेशंसकृद्दृष्ट्वा देविमेऽनुचरोभवेत् ॥ तस्मात्काश्यांप्रयत्नेन केदारेशंविलोकयेत् ॥ ६६ ॥ चित्राङ्गदेश्वरंलिङ्गं केदारादुत्तरेशुभम् ॥ तस्यार्चनान्नरोनित्यं स्वर्गभोगानुपाश्नुते ॥ ६७ ॥ केदाराद्दक्षिणे

केदारकुण्ड का जल पीने से पुरुष और स्त्रियोंको भी फल होवेहै वैसेही यहां होताहै इसमें संशय नहीं है ॥ ६२ ॥ व वस्त्र अन्न और धनादिकों से केदारके भक्त को पूजकर जन्म से लगाकर हुये पापोंको त्यागकर मेरे लोकको जाताहै ॥ ६३ ॥ जो कि छह मासतक त्रिकाल में केदारेश्वर के नमस्कार करता है उसके यमादि लोकपाल निरन्तर नमस्कार करते हैं ॥ ६४ ॥ कलियुग में जोई कोई जन केदारके माहात्म्य को न जानेगा और जो जानेगा वह पुण्यात्माहै और वह निश्चयकर सब कुछ जानेगा ॥ ६५ ॥ हे देवि ! एकबारभी केदारेश्वर को देखकर मेरा गण होवे है उस लिये बड़े यत्नसे काशीमें केदारेश्वरको देखे ॥ ६६ ॥ और केदारेश्वर से उत्तर

में जो मंगलमय चित्रांगदेश्वर लिंगहै उसके नित्यही पूजने से मनुष्य स्वर्ग के भोगोंको भोगताहै ॥ ६७ ॥ व केदारके दक्षिणभागमें नीलकण्ठ के दर्शनसे संसार सर्पसे डसेहुये उस जनको दुःखरूप विषसे डर नहीं होताहै ॥ ६८ ॥ और उससे वायव्यमें जो अम्बरीषेश लिंगहै उसके देखनेसे मनुष्य दुःखसंयुत संसार में गर्भ वासको नहीं प्राप्त होताहै ॥ ६९ ॥ व उसके समीप में इन्द्रद्युम्नेश्वर लिंगको भलीभांति पूजकर वह तेजोमय विमान से स्वर्ग की भूमिमें आनन्दित होताहै ॥ ७० ॥ व उससे दक्षिणमे कालंजरेश्वरलिंगको देखकर मनुष्य बुढ़ाई और कालको जीतकर मेरे लोकमें बहुत कालतक वसे ॥ ७१ ॥ व चित्रांगदेश्वरसे उत्तरमें क्षेमेश्वरलिंग

भागे नीलकण्ठविलोकनात् ॥ संसारोरगदष्टस्य तस्यनास्तिविषाद्भयम् ॥ ६८ ॥ तद्वायव्येम्बरीषेशो नरस्तदवलोकनात् ॥ गर्भवासंनचाप्नोति संसारेदुःखसंकुले ॥ ६९ ॥ इन्द्रद्युम्नेश्वरंलिङ्गं तत्समीपेसमर्च्यच ॥ तेजोमयेनयानेन सस्वर्गभुविमोदते ॥ ७० ॥ तद्दक्षिणेनरोदृष्ट्वा लिङ्गंकालञ्जरेश्वरम् ॥ जरांकालंविनिर्जित्य ममलोकेवसेच्चिरम् ॥ ७१ ॥ दृष्ट्वाक्षेमेश्वरंलिङ्गमुदक्चित्राङ्गदेश्वरात् ॥ सर्वत्रक्षेममाप्नोति लोकेऽत्रचपरत्रच ॥ ७२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ देवदेवेन विन्ध्यारे केदारमहिमामहान् ॥ इत्याख्यायिपुराम्बायै मयातेपिनिरूपितः ॥ ७३ ॥ केदारेश्वरलिङ्गस्य श्रुत्वोत्पत्तिं कृतीनरः ॥ शिवलोकमवाप्नोति निष्पापोजायतेक्षणात् ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेकेदारमहिमाख्यानन्नामसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

को देखकर इस लोक और परलोकमें भी सर्वत्र कल्याण को पाताहै ॥ ७२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे विन्ध्याचलके वैरिन् अगस्त्यजी ! पूर्व समयमें इसभांति महादेवजी ने अम्बाके लिये केदारेश्वरका महान् माहात्म्य कहा और उसको मैंने तुमसे निरूपण किया॥ ७३ ॥ पुण्यवान् मनुष्य केदारेश्वर लिंगकी उत्पत्तिको सुनकर शिवलोक को पाताहै और क्षणभरमें पापोंसे हीन होजाता है ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेकेदारमहिमाख्यानंनामसप्तसप्ततितमोध्यायः ॥ ७७ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अठहत्तर अध्याय में धर्मराज तप लीन । श्रीधर्मेश्वर की यहां महिमा वर्णन कीन ॥ श्रीपार्वती जी बोलीं कि, हे शम्भो ! काशीमें जो लिंग पुण्य के बढ़ानेवालाहै व जिसके नाम के स्मरणसेही महापापों का विनाश होताहै ॥ १ ॥ व जो साधकोंसे नित्यही सेवने योग्य है व जिसमें अतिशय उत्तम प्रीति होती है व जहां दिया, हवन किया, जपा और ध्यायाहुआ अक्षय होताहै ॥ २ ॥ व जिसको भलीभांति सुमिरने सेही व जिस लिंग के दर्शन से व जिस लिंगके प्रणाम से व जिसके संस्पर्शन से भी ॥ ३ ॥ और पञ्चामृतादिकों से स्नान कराने पूर्वक जिसकी पूजा से कल्याण की परंपरा होवे है हे ईशान ! उस लिंग को कहो ॥ ४ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी

पार्वत्युवाच ॥ आनन्दकाननेशम्भो यल्लिङ्गंपुण्यवर्धनम् ॥ यन्नामस्मरणादेव महापातकसंक्षयः ॥ १ ॥ यत्सेव्यं साधकैर्नित्यं यत्रप्रीतिरनुत्तमा ॥ यत्रदत्तंहुतंजप्तं ध्यातंभवतिचाक्षयम् ॥ २ ॥ यस्यसंस्मरणादेव यल्लिङ्गस्यविलोकनात् ॥ यल्लिङ्गप्रणतेश्चापि यस्यसंस्पर्शनादपि ॥ ३ ॥ पञ्चामृतादिस्नपनपूर्वाद्यस्यार्चनादपि ॥ तल्लिङ्गंकथयेशान भवेच्छ्रेयःपरम्परा ॥ ४ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इति देवीसमुदितं समाकर्ण्यघटोद्भव ॥ सर्वज्ञेनयदाख्यातं तदाख्यास्यामितेशृणु ॥ ५ ॥ देवदेवउवाच ॥ उमेभवत्यायत्पृष्टं भवबन्धविमोक्षकृत् ॥ ततोऽहंकथयिष्यामि लिङ्गंस्थिरमनाभव ॥ ६ ॥ आनन्दकाननेचात्र रहस्यंपरमंमम ॥ नमयाकस्यचित्ख्यातं नप्रष्टुंवेत्तिकश्चन ॥ ७ ॥ सन्तिलिङ्गान्यनेकानि ममानन्दवनेप्रिये ॥ परंत्वयायथापृष्टं यथावत्तद्ब्रवीमिते ॥ ८ ॥ यत्रमुक्तिस्वरूपात्वं स्वयंतिष्ठसिविश्वगे ॥ यत्रतेनन्दनश्चास्ति क्षेत्रविघ्नविघातकृत् ॥ ९ ॥ ममापियेनत्रिपुरसमरेजयकाङ्क्षिणः ॥ जयाशापूरितास्तुत्या बहुमोद

बोले कि हे घटोद्भव ! इसप्रकार देवीजी के भलीभांति कहेहुये वचन को सुनकर सर्वज्ञ शिवजी ने जो कहा उसको मैं तुमसे कहूंगा और तुम सुनो ॥ ५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि पार्वति ! जिससे आपने संसारबन्धन से विमोक्ष करनेवाले लिंगको पूछा इसलिये मैं कहूंगा तुम सावधान होवो ॥ ६ ॥ इस आनन्दवन में मेरा परमरहस्यहै जिसको मैंने किसीसे नहीं कहा और कोई पूंछनेको भी नहीं जानताहै ॥ ७ ॥ हे प्रिये ! काशी में मेरे अनेक लिंग हैं परन्तु तुमने जैसा पूंछाहै उसको मैं तुमसे यथावत् कहताहूं ॥ ८ ॥ हे विश्वव्यापिनि ! जहां (जिस लिंग के समीप में) मुक्तिस्वरूपा विश्वभुजानाम्नी तुम आपही टिकी हो व जहां क्षेत्र के विघ्नों को

विनाशकर्त्ता तुम्हारा पुत्र आशाविनायक है ॥ ९ ॥ जिसने बहुती स्तुति व मोदकों (लड्डुवों) के दानसे त्रिपुरके संग्राम में मेरी भी जीतिकी आशा को पूर किया ॥ १० ॥ और जहां पापों का हर्त्ता पितरों की प्रीतिका वर्धनकर्त्ता तीर्थ है जिसमें स्नान करने से इन्द्रजी वृत्रासुर के मारने के पापसे छूटगये हैं ॥ ११ ॥ व जहां परमसमाधि से बहुत दुष्कर तपस्या को तपकर धर्म्मराज ने भी धर्म का अधिकार या आधार पाया है ॥ १२ ॥ व जहां पक्षियों ने भी संसार से छुड़ानेहारे ज्ञान को पाया है और जहां अनेक मूलवाला वृक्ष रम्य व सुवर्णमय होगया है ॥ १३ ॥ व लोकों का उद्वेगकर्त्ता भी दुर्दमनामक राजा जिस लिंग के दर्शन से क्षणभर में

कदानतः ॥ १० ॥ यत्रास्तितीर्थमघहृत्पितृप्रीतिविवर्धनम् ॥ यत्स्नानाद्वृत्रहावृत्रवधपापाद्विमुक्तवान् ॥ ११ ॥ धर्माधिकरणंयत्र धर्मराजोप्यवाप्तवान् ॥ सुदुष्करंतपस्तप्त्वापरमेणसमाधिना ॥ १२ ॥ पक्षिणोपिहियत्रापुर्ज्ञानंसंसारमोचनम् ॥ रम्योहिरण्मयोयत्र बभूवबहुपाद्द्रुमः ॥ १३ ॥यल्लिङ्गदर्शनादेवदुर्दमोनामपार्थिवः ॥ उद्वेजकोपिलोकानां क्षणाद्धर्ममतिस्त्वभूत् ॥ १४ ॥ तस्यलिङ्गस्यमाहात्म्यमाविर्भावंचसुन्दरि ॥ निशामयाभिधास्यामि महापातकनाशनम् ॥ १५ ॥ धर्मपीठंतदुद्दिष्टमत्रानन्दवनेमम ॥ तत्पीठदर्शनादेव नरःपापैःप्रमुच्यते ॥ १६ ॥ पुराविवस्वतःपुत्रोयमःपरमसंयमी ॥ तपस्ततापविपुलं विशालाक्षितवाग्रतः ॥ १७॥ शिशिरेजलमध्यस्थो वर्षास्वभ्रावकाशकः ॥ तपतौपञ्चवह्निस्थः कदाचिदितितप्तवान् ॥ १८ ॥ पादाग्रांगुष्ठभूस्पर्शी बहुकालंसतस्थिवान् ॥ एकपादस्थितःसोपिकदाचिद्बहुलनेहसम् ॥ १९ ॥ समीराभ्यवहर्तासीद्बहुदिष्टंसदिष्टवान् ॥ पयौसतुपिपासुःसन्कुशाग्रजलविप्रुषः ॥ २० ॥

धर्मबुद्धि हुआहै ॥ १४ ॥ हे सुन्दरि ! उस लिंगका प्रकट होना और माहात्म्य जो कि बडे पापोंका नाशक है उसको मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ १५ ॥ मेरे इस आनन्दवनमें वह धर्मपीठ नामसे कहागया है उस पीठ के दर्शनसेही मनुष्य पापोंसे विमुक्त होताहै ॥ १६ ॥ हे विशालाक्षि ! पूर्वसमय में उत्तमसंयमवाले सूर्य्यपुत्र यमराजने तुम्हारे आगे बहुते तपको तपाहै ॥ १७ ॥ कभी शिशिरऋतु याने शीतकालमें जलके मध्यमें टिके व वर्षामें मेघावरणवाले और ग्रीष्ममें अग्निके बीचमें टिके हुये उसने इस प्रकार तपस्या किया है ॥ १८ ॥ व पावँके अँगुठा के अग्रभाग से भूमिके स्पर्शवाला वह बहुत कालतक खड़ाहुआ और कभी वही बहुत काल तक

एकही पावँ से टिकाथा ॥ १९ ॥ व वह भाग्यवान् बहुत कालतक वायुभोजी हुआ और पानी पीनेका चाही होताहुआ वह कुशों के अग्रभागों के जल के कणों को पीताथा ॥ २० ॥ इसभांति तपस्या को करने व परमसमाधि से मुझको चौगुना देखा चाहते हुये उसने देवोंकी चौयुगीको बिताया ॥ २१ ॥ तदनन्तर उस अचल चित्तवाले की तपस्यासे संतुष्टहुआ मैं उस महात्मा यमको वरदेने के लिये गया ॥ २२ ॥ जोकि सुवर्णशाख नामक वटवृक्ष तपस्या से उपजी ताप परंपराको दूरकरताथा व अच्छी छायावाला था व बहुते पक्षियों का भलीभांति आश्रय (आधार) था ॥ २३ ॥ व जोकि ताप हरनेवाला मन्द मन्द वायु से चञ्चल, कोमल पत्ररूप

दिव्यांचतुर्युगीमित्थ सनिनायतपश्चरन् ॥ चतुर्गुणंदिदृक्षुर्मांपरमेणसमाधिना ॥ २१ ॥ ततोहंतस्यतपसा सन्तुष्टः स्थितचेतसः ॥ ययौतस्मैवरान्दातुं शमनायमहात्मने ॥ २२ ॥ वटःकाञ्चनशाखाख्यो यस्तपस्तापसन्ततिम् ॥ दूरीचकारसुच्छायो बहुद्विजसमाश्रयः ॥ २३ ॥ मन्दमन्दमरुल्लोलपल्लवैःकरपल्लवैः ॥ योध्वगानध्वसन्तप्तानाह्वयेदिवतापहृत् ॥ २४ ॥ स्वानुरागैःसुरभिभिः स्वादुभिश्चपचेलिमैः ॥ प्रीणयेदर्थिसार्थंयो वृत्तैर्निजफलैरलम् ॥ २५ ॥ तदधस्तात्परंवीक्ष्य तमहंतपनाङ्गजम् ॥ स्थाणुनिश्चलवर्ष्माणं नासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥ २६ ॥ तपस्तेजोभिरुद्यद्भिः परितःपरिधीकृतम् ॥ भानुमन्तमिवाकाशे सुनीलेस्वेनतेजसा ॥ २७ ॥ स्वाख्ययाङ्कितंमहालिङ्गं प्रतिष्ठाप्यातिभक्तितः ॥ स्वच्छसूर्योपलमयं तेजःपुञ्जैरिवार्चितम् ॥ २८ ॥ साक्षीकृत्यैवतल्लिङ्गं तप्यमानंमहत्तपः ॥ अतपनोधर्मराजंवरं

हस्तपल्लवों से मार्गमें संतप्तहुये बटोहियों को बुलातासा है ॥ २४ ॥ व जोकि अपने अनुराग (स्नेह या अरुणरंग) व सुगन्ध, स्वादसमेत पकेहुये गोलाकार अपने फलोंसे अर्थी जनसमूहको बहुतही तृप्त करताहै ॥ २५ ॥ उस वृक्षके नीचे मैं तपस्वियों में श्रेष्ठ उस सूर्य्यपुत्र को देखकर जोकि स्थाणु (ठूंठ) से निश्चल देहवाला व नासिका के आगे नेत्रोंकी दृष्टिको थापेहुआ ॥ २६ ॥ व अच्छेश्याम आकाश में अपने तेजसे घिरे सूर्य्यकी नाईं उगतेहुये तपस्या के तेजोंसे सब ओर मण्डलाकार से वेष्टित है॥२७॥ व स्वच्छ सूर्य्यकांतमणिमय और तेजसमूहों करके पूजित से अपने नामांकित (धर्मेश्वर) महालिंग को अत्यन्तभक्तिसे थापकर॥२८॥

और उसही लिंग को साखी कर महातप को तप्यमान याने बड़ी तपस्या को करता है उसके प्रति मैं ऐसा बोला कि हे सूर्य्यके पुत्र ! तुम वर को कहो (मांगो) ॥ २९ ॥ हे महाभाग, शुभव्रत ! मैं प्रसन्नहूं तपस्याको बन्दकरो ऐसा सुनकर यमराजने हर्षसे मेरे प्रणाम किया ॥ ३० ॥ और निष्कपट समाधि को त्यागकर प्रसन्न इन्द्रिय व इन्द्रियेश्वर (मन) वाले उस सूर्य्यनन्दन (धर्मराज) ने स्तुतिको भी किया ॥३१॥ धर्मराज बोले कि, हे कारणोंके कारण ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो व कारण से वर्जित के लिये नमस्कारहो नमस्कारहो हे कार्य्यों से विहीनरूपवाले ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो और कार्य्यमय याने प्रपंचके आधारके लिये नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ३२ ॥ रूपरहित रूपवाले व मायासे समस्तरूपी व परमसूक्ष्मरूप व कार्य्य कारणरूप व अपारपार (परिपूर्ण) व शत्रुरूप या श्रेष्ठ

ब्रूहीतिभास्करे ॥ २९ ॥ अलंतप्त्वामहाभाग प्रसन्नोस्मिशुभव्रत ॥ निशम्यशमनश्चेति हृष्ट्वामांप्रणनामह ॥ ३० ॥ चकारस्तवनंचापि परिहृष्टेन्द्रियेश्वरः ॥ निर्व्याजंससमाधिंच विसृज्यब्रध्ननन्दनः ॥ ३१ ॥ धर्मउवाच ॥ नमोनमः कारणकारणानां नमोनमःकारणवर्जिताय ॥ नमोनमःकार्यमयायतुभ्यं नमोनमःकार्यविभिन्नरूप ॥ ३२ ॥ अरूप रूपायसमस्तरूपिणे पराणुरूपायपरापराय ॥ अपारपारायपराब्धिपारप्रदायतुभ्यंशशिमौलयेनमः ॥ ३३ ॥ अनी श्वरस्त्वंजगदीश्वरस्त्वं गुणात्मकस्त्वंगुणवर्जितस्त्वम् ॥ कालात्परस्त्वंप्रकृतेःपरस्त्वं कालायकालात्प्रकृतेनमस्ते ॥ ३४ ॥ त्वमेवनिर्वाणपदप्रदोसि त्वमेवनिर्वाणमनन्तशक्ते ॥ त्वमात्मरूपःपरमात्मरूपस्त्वमन्तरात्मासिचराचरस्य ॥ ३५ ॥ त्वत्तोजगत्त्वंजगदेवसाक्षाज्जगत्त्वदीयंजगदेकबन्धो ॥ हर्तावितात्वंप्रथमोविधाता विधातृविष्णवीशनमोन

संसार के पारदातार व चन्द्रभालवाले तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ ३३ ॥ हे प्रकृते (कारणरूप) ! तुम ईश्वर से हीनहो याने सबके अधीश्वर हो व तुम जगतके ईश्वरहो व तुम गुणस्वरूप या गुणोंमें व्यापकहो व तुम गुणोंसे वर्जित हो व तुम कालसे परेहो व तुम प्रकृति से परेहो व तुम कालके भक्षकहो और कालरूप तुम्हारे लिये नमस्कारहो॥३४॥हे अनन्तशक्ते! तुमहीं कैवल्यपदके दायकहो व तुमहीं कैवल्यरूपहो व तुमहीं जीवरूपहो व तुमहीं परमात्मारूपहो और तुमहीं स्थावर व जंगमरूप जगत के अन्तरात्मा (अन्तर्यामी) हो ॥ ३५ ॥ हे जगत् के एकबन्धो, ब्रह्मा विष्णु रुद्रस्वरूप ! जगत् तुमसे होताहै व तुमहीं साक्षात् जगतहो व जगत् तुम्हाराहै व तुम जगत् के

श्रेष्ठ कर्त्ता रक्षक और हर्त्ताहो और तुम्हारे लिये नमस्कारहो नमस्कारहो ॥ ३६ ॥ हे सांब, शिव ! तुमहीं वेदमार्गगामियों में सुखरूपहो व तुमहीं वेदविरुद्धमार्गगामियोंमें दुर्दर्श (दुःखदाता) हो व तुम भक्तोंके कल्याणकर्त्ताहो और तुम अभक्तिरैवियों को उग्ररूपहो ॥ ३७ ॥ तुमहीं शत्रुओं को त्रिशूलधारीहो व तुमहीं विनम्र चित्त और वचनवाले जनोको कल्याणरूपहो व तुमहीं एक अपने चरणारविंदों के शरणागतहुये लोगोंको श्रीकण्ठ हो और तुमहीं दुरात्माओंको विषसे उग्रकण्ठवाले हो ॥ ३८ ॥ हे शांत, शम्भो, शङ्कर ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे चन्द्रकलाभूषण ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो हे पिनाकहस्त ! सर्पभूषणधारी और अन्धकासुर शत्रुके

मस्ते ॥ ३६ ॥ मृडस्त्वमेवश्रुतिवर्त्मगेषु त्वमेवभीमोऽश्रुतिवर्त्मगेषु ॥ त्वंशङ्करःसोमसुभक्तिभाजामुग्रोसिरुद्रत्वमभक्तिभाजाम् ॥ ३७ ॥ त्वमेवशूलीद्विषतांत्वमेव विनम्रचेतोवचसांशिवोसि ॥ श्रीकण्ठएकःस्वपदश्रितानां दुरात्मनांहालहलोग्रकण्ठः ॥ ३८ ॥ नमोस्तुतेशङ्करशान्तशम्भो नमोस्तुतेचन्द्रकलावतंस ॥ नमोस्तुतुभ्यंफणिभूषणाय पिनाकपाणेऽन्धकवैरिणेनमः ॥ ३९ ॥ सएवधन्यस्तवभक्तिभाग्यस्तवार्चकोयःसुकृतीसएव ॥ तवस्तुतिंयःकुरुतेसदैव सस्तूयतेद्रुश्च्यवनादिदेवैः ॥ ४० ॥ कस्त्वामिहस्तोतुमनन्तशक्तेशक्नोतिमादृग्लघुबुद्धिवैभवः॥प्राचांनराचामिहगोचरोयः स्तुतिस्त्वयीयंनतिरेवयावत् ॥ ४१ ॥स्कन्दउवाच॥उदीर्यसूर्यस्यसुतोतिभक्त्या नमःशिवायेतिसमुच्चरन्सः ॥ इलामिलन्मौलिरतीवहृष्टःसहस्रकृत्वःप्रणनामशम्भुम् ॥ ४२ ॥ ततःशिवस्तन्तपसातिखिन्नं निवार्यताभ्यःप्रणतिभ्यईश्वरः ॥ वरान्ददौसप्ततुरङ्गसूनवे त्वंधर्म्मराजोभवनामतोपि ॥ ४३ ॥ त्वमेवधर्माधिकृतौसमस्तशरीरिणांस्था

लिये नमस्कारहो ॥ ३९ ॥ जो तुम्हारी भक्तिका सेवीहै वहही धन्यहै व जो तुम्हारा पूजक है वहही पुण्यवान् है व जो सदैव तुम्हारी स्तुति को करता है वह इन्द्रादि देवोंसे प्रशंसित होताहै ॥ ४० ॥ हे अनन्तशक्ते ! यहां मेरे सरीखे थोड़ी बुद्धि विभुतावाला कौन तुम्हारी स्तुतिकेलिये समर्थहोताहै जोकि प्राचीनजनोंके वचनगोचर नहींहो इन तुम में साकल्यसे यह स्तुति नमस्कारही है ॥ ४१ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि इस प्रकार उच्चारणकर अत्यन्त भक्तिसे "नमःशिवाय" ऐसा भलीभांति कहते हुये व पृथिवी में मिले मस्तकवाले व अतिशय आनन्दित उस सूर्य्यसुत (यमराज) ने हजारबार शंकरजी के प्रणाम किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर परमेश्वर शिव

जीने तपस्या से बहुतही खिन्नहुये उनको उन स्तुतियों से निवारणकर सात घोड़ेवाले सूर्य्यके पुत्रको वर दिया कि तुम नामसेभी धर्मराज होवो ॥ ४३ ॥ व स्थावर जंगम सब देहधारियों के अधिकार में मुझसे नियुक्त (जोडे या आज्ञप्त) हुये और इस दिन के आदिमें याने इस दिनसे लगाकर करनेयोग्य धर्मादि विचारवाले तुम मेरी आज्ञासे सबकी शिक्षाकरो॥४४॥ व तुम दक्षिणदिशाके अधीश्वर होवो व तुम सब जन्तुसमूहके कर्मोंके साखीहोवो और तुम्हारी दिखाई गलीवाले उत्तम व अधम लोग इस मनुष्यलोकसे अपने कर्म्मोंकी योग्य गतिको जावें ॥४५॥ हे धर्म ! हमारी भक्तिके सेवी तुमसे यहां जो लिंग पूजागया उसके दर्शन, स्पर्शन और पूजनेसे पुरुषों

वरजङ्गमानाम् ॥ मयानियुक्तोद्यदिनादिकृत्यः प्रशाधिसर्वान्ममशासनेन ॥ ४४ ॥ त्वंदक्षिणायाश्चदिशोधिनाथस्त्वं कर्मसाक्षीभवसर्वजन्तोः ॥ त्वद्दर्शिताध्वानइतोत्रजन्तुस्वकर्मयोग्यांगतिमुत्तमाधमाः ॥ ४५ ॥ त्वयायदेतन्ममभक्तिभाजालिङ्गंसमाराधितमत्रधर्म ॥ तद्दर्शनात्स्पर्शनतोऽर्चनाच्च सिद्धिर्भविष्यत्यचिरेणपुंसाम् ॥४६॥ धर्मेश्वरंयःसकृदेवमर्त्यो विलोकयिष्यत्यवदातबुद्धिः ॥ स्नात्वापुरस्तेऽत्रचधर्मतीर्थे नतस्यदूरेपुरुषार्थसिद्धिः ॥ ४७ ॥ कृत्वाप्यघानामिहयःसहस्रं धर्मेश्वरंपश्यतिदैवयोगात् ॥ सहेतनोजातुसनारकींव्यथां कथांतदीयांदिविकुर्वतेमराः ॥ ४८ ॥ योधर्मपीठंप्रतिलभ्यकाश्यां स्वश्रेयसेनोयततेऽत्रमर्त्यः ॥ कथंसधर्मत्वमिवातितेजाः करिष्यतिस्वंकृतकृत्यमेव ॥ ४९ ॥ त्वयायथाप्ताइहधर्मराज मनोरथास्तेगुरुभिस्तपोभिः ॥ तथैवधर्मेश्वरभक्तिभाजां कामाःफलिष्यन्तिनसंशयोत्र ॥ ५० ॥ कृत्वाप्यघान्येवमहान्त्यपीह धर्मेश्वरार्चांसकृदेवकुर्वन् ॥ कुतोबिभेतिप्रियबन्धुरेव तवत्वदीयार्चितलिङ्गभक्तः ॥ ५१ ॥

की शीघ्रही सिद्धिहोवेगी ॥ ४६ ॥ और जोकि अमल अन्तःकरणवाला नर तुम्हारे आगे इस धर्मतीर्थ मे स्नानकर एकबारभी धर्मेश्वर को पूजेगा उसके पुरुषार्थोंकी सिद्धि दूरमें नहीं है ॥ ४७ ॥ व इस लोकमें हजारो पापोंकोभी कर जो जन दैवयोगसे धर्मेश्वर को देखेगा वह नरककी व्यथाको कभी नहीं सहै है और स्वर्ग में देवलोगभी उसकी कथाको करते हैं ॥४८॥ हे धर्म ! जोकि यहां काशीमें धर्मपीठको सामने से पाकर अपने कल्याण के लिये नही यत्न करताहै वह तुम्हारी नाई अतिशय तेजस्वी होकर अपना को किस प्रकारसेही कृतार्थ करेगा ॥ ४९ ॥ हे धर्मराज ! जैसे तुमने बड़ी तपस्याओं से उन मनोरथो को यहां पायाहै वैसेही धर्मेश्वर की

भक्तिके सेवियों के सब काम फलेंगे इसमें संशय नहीं है ॥ ५० ॥ और यहा या इस लोक में बड़ेभी पापोंकोही करभी एकबारभी धर्मेश्वर की पूजाको करताहुआ तुम्हारे थापे व पूजेहुये लिंगका भक्तजन तुम्हारा प्यारा बन्धु होकर क्यों डरता है या किससे डरता है ॥ ५१ ॥ हे धर्म ! जोकि पत्र पुष्प जल और दूबसे धर्मेश्वर को भलीभांति पूजेगा उसको अति आनन्दितहुये अमृतभोजी देवलोग मन्दारके फूलोंकी मालाओं से पूजेंगे ॥५२॥ और धर्मेश्वरके पूजन की रचना के करनेहारे व बन्धु भावसे तुम्हारे मनके हरनेहारे उनको कभी डर न होगा जोकि पापकर्त्ता लोग तुमसे डरते हैं ॥ ५३ ॥ हे धर्म ! गंगामें स्नान किये हुये और तुम्हारे सम्बन्धी लिंग

पत्रेणपुष्पेणजलेनदूर्वयायोधर्मधर्मेश्वरमर्चयिष्यति॥समर्चयिष्यन्त्यमृतान्धसस्तंमन्दारमालाभिरतिप्रहृष्टाः॥५२॥ त्वत्तोविभेष्यन्तिकृतैनसोयेभयन्नतेषांभविताकदाचित॥धर्मेश्वरार्चारचनांकरिष्यतांहरिष्यतांबन्धुतयामनस्ते॥५३॥ यदत्रदास्यन्तिहिधर्मपीठे नराद्युनद्यांकृतमज्जनाश्च ॥ तदक्षयंभावियुगान्तरेपि कृतप्रणामास्तवधर्मलिङ्गे ॥ ५४ ॥ ये कार्त्तिकेमासिसिताष्टमीतिथौ यात्राङ्करिष्यन्तिनराउपोषिताः ॥ रात्रौचवैजागरणंमहोत्सवैर्धर्मेश्वरेतेनपुनर्भवाभुवि ॥ ५५ ॥ स्तुतिंचयेवैत्वदुदीरितामिमान्नराःपठिष्यन्तितवाग्रतःक्वचित् ॥ निरेनसस्तेममलोकगामिनः प्राप्स्यन्तितेवैभव तःसखित्वम् ॥५६॥ पुनर्वरंब्रूहियथेप्सितंददे तेजोनिधेर्नन्दनधर्मराज ॥ अदेयमत्रास्तिनकिञ्चिदेवते विधेहिवागुद्यम मात्रमेव ॥ ५७॥ प्रसन्नमूर्तिंसविलोक्यशङ्करंकारुण्यपूर्णंस्वमनोरथाभिदम् ॥ आनन्दसन्दोहसरोनिमग्नो वक्तुंक्षण

में प्रणाम करनेवाले मनुष्य इस धर्मपीठ में जो कुछभी देवेंगे वह युगान्तर और कल्पान्तर में अक्षय होगा ॥ ५४ ॥ व जोकि उपास कियेहुये मनुष्य कार्त्तिकसुदी अष्टमी तिथि में यात्राको करेंगे व धर्मेश्वर में रात्रि के समय महोत्सवों से जागरणकोभी करेंगे वे भूमिमें फिर उत्पत्तिवाले न होवेंगे ॥ ५५ ॥ और जोकि मनुष्य तुम्हारी कही इस स्तुतिको तुम्हारे आगे कभी पढ़ेंगे वे निष्पाप और मेरे लोकके जानेवालेहोकर आपके सखाभावको प्राप्तहोवेंगे ॥ ५६ ॥ हे तेजोनिधान, सूर्य्यकेनन्दन, धर्मराज ! तुम जैसे फिर कहो वैसे वाञ्छित वरको मैं देताहूं क्योंकि यहां तुमको कुछभी अदेय नहीं है इससे तुम वचन के उद्यममात्रकोही करो ॥ ५७ ॥ इसभांति

अपने मनोरथोंके सबओर से दायक व दयासे पूर्ण प्रसन्नमूर्त्ति शङ्करजीको देखकर आनन्द समूह सरोवरमें डूबेहुये वह धर्मराजजी क्षणभर कुछभी कहनेको न समर्थ हुये ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेधर्मेशमहिमाख्याननामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । उन्नासी अध्यायमें सकल सुमंगल खानि । श्रीधर्मेश्वरकी सुखद महिमा बहुरि बखानि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि अमृतके सागर, सुखदायक शिवजी ने आनन्दसे उदित आंसुओ के जलसे रुकेहुये कण्ठवाले उन धर्मराज को विशेषतासे देखकर अमृत चुवानेहारे हाथों से स्पर्श किया ॥ १ ॥ अनन्तर बड़े तपस्वी धर्मराज

न्नैवशशाककिञ्चित् ॥ ५८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डे धर्मेशमहिमाख्याननामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

स्कन्दउवाच ॥ आनन्दबाष्पसलिलरुद्धकण्ठंविलोक्यतम् ॥ मृडःपस्पर्शपाणिभ्यां सौधाभ्यान्तुसुधाम्बुधिः ॥१॥ अथतत्स्पर्शसौख्येन धर्मराजोमहातपाः ॥ पुनरंकुरयामास तपोग्निज्वलितान्तनुम् ॥ २ ॥ ततःप्रोवाचसब्राध्निर्देव देवमुमापतिम्॥प्रसन्नवदनंशान्तंशान्तपारिषदावृतम् ॥३॥ प्रसन्नोसियदीशानसर्वज्ञकरुणानिधे ॥ किमन्येनवरेणात्र यत्त्वंसाक्षात्कृतोमया ॥ ४ ॥ यन्नवेदाविदुःसम्यङ्नचतौवेदपूरुषौ ॥ ततोपिवरयोग्योस्मितन्नाथप्रार्थयाम्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीकण्ठाण्डजडिम्भानाममीषांमधुरब्रुवाम्॥मत्तपश्चिरसाक्षीणांमत्पुरःप्राप्तजन्मनाम् ॥६॥ पितृभ्यांपरिहीनानामि तिहासकथाविदाम् ॥ त्यक्ताहारविहाराणांकीराणांवरदोभव ॥ ७ ॥ एतत्प्रसूतिसमयेआमयेनप्रपीडिता ॥ शुकीपञ्च

ने उन शिवजी के स्पर्श के सौख्यसे तपस्याकी अग्नि से ज्वलित देहको फिर अंकुरित किया ॥ २ ॥ तदनन्तर सूर्य्यजीके पुत्र उन धर्मराजजीने देवों के देव, पार्वतीजी के पति, प्रसन्नमुख, शान्तरूप और शान्तपार्षदों से सब ओर घिरेहुये महादेवजी से उच्चस्वर से कहा ॥ ३ ॥ कि हे सर्वज्ञ, दयानिधान, ईशान ! जो तुम प्रसन्नहो तो अन्य वरसे क्याहै जिससे तुम मुझकरके प्रत्यक्ष कियेगयेहो ॥ ४ ॥ हे नाथ ! जिनको वेद भलीभांति नहीं जानते हैं और वे वेदपुरुष याने ब्रह्मा व विष्णुजी भी नहीं जानते हैं उन आप के साक्षात्कार से भी जो मैं वरके योग्यहूं तो प्रार्थना करताहूं (मांगताहूं) ॥ ५ ॥ कि हे श्रीकण्ठ ! जे कि ये पक्षियों के बालक मधुर शब्दको बोलते हुये व मेरी तपस्या के बहुतकाल से साखी व मेरे आगे जन्मको प्राप्तहुये हैं ॥ ६ ॥ व माता और पितासे हीन व इतिहास कथाओं के पण्डित व आहार (भोजन) और

विहार को त्यागे हैं उन शुकों के वरदाता होवौ ॥ ७ ॥ इनकी उत्पत्ति के समय में रोग से पीड़ित शुकी मरणको प्राप्तहुई और शुक को बाजने खाडाला है ॥ ८ ॥ और हे अनाथों के नाथ ! जे कि आयुःशेषस्वरूपी आप से रक्षित व अनाथ और सदैव मेरा मुख देखनेवाले हैं उनको वर देवो ॥ ९ ॥ हे मुने ! इसप्रकार परोपकार से निर्मल, धर्मके वचन को सुनकर शङ्करजी ने विनयसे नये मुखवाले उन पक्षियोंको बुलाकर ॥ १० ॥ और धर्म में परम प्रसन्न होकर शुकके बच्चों से इस वचन को कहा कि हे पक्षियो ! धर्मराज के सङ्गी साधु तुम लोग बोलो ॥ ११ ॥ कि धर्मेश्वर के सेवक या धर्मेश्वर के सब ओर विचरनेहारे व साधुओं के समीप या संगसे भली

त्वमापन्नाशुकःश्येनेनभक्षितः ॥ ८ ॥ रक्षितानामनाथानांसदामन्मुखदर्शिनाम् ॥ अनाथनाथभवताह्यायुःशेषस्वरूपिणा ॥ ९ ॥ इतिधर्मवचःश्रुत्वापरोपकृतिनिर्म्मलम् ॥ तानाहूयमुनेशम्भुर्विनयावनताननान् ॥ १० ॥ उवाचधर्मेतिप्रीतःशुकशावानिदंवचः ॥ अयिपत्ररथाब्रूतसाधवोधर्म्मसङ्गताः ॥ ११ ॥ कोवरोभवतान्देयोधर्मेशपरिचारिणाम् ॥ साधुसंसर्गसंक्षीणजन्मान्तरमहैनसाम् ॥ १२ ॥ इतिश्रुत्वामहेशस्यवचनन्तेपतत्रिणः ॥ प्रोचुःप्रणम्यदेवेशंनमस्तेभवनाशन ॥ १३ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ अनाथनाथसर्वज्ञकोवरोनःसमीहितः ॥ इतोपित्र्यक्षयत्साक्षात्तिर्यक्त्वेपिसमीक्षिताः ॥ १४ ॥ लाभाःसन्तूद्यमवतांगिरीशेहपरःशताः ॥ परम्परोयंलाभोत्रयत्त्वंदृग्गोचरीभवेः ॥ १५ ॥ यदेतद्दृश्यते नाथतत्सर्वंक्षणभंगुरम् ॥ अभंगुरोभवानेकस्त्वत्सपर्याप्यभंगुरा ॥ १६ ॥ विचित्रजन्मकोटीनांस्मृतिर्नोत्रपरिस्फुरे

भांति क्षीणहुये जन्मान्तरों के महापापवाले आपलोगों को कौन वर देने योग्यहै ॥ १२ ॥ इसप्रकार महेशजी के वचनको सुनकर उन पक्षियों ने कहा कि हे जन्म या संसार के नाशक ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो ॥ १३ ॥ पक्षी बोले कि, हे अनाथों के नाथ, सर्वज्ञ, त्रिनेत्र ! जिसमे पक्षीभावमें भी हमलोग साक्षात् आप से भलीभांति देखेगये हैं इससेभी अधिक कौन वर हमारा प्यारा वाञ्छितहै ॥ १४ ॥ हे गिरीश ! इस लोकमें उद्यमी लोगोंको सैकड़ों से अधिक अनेक लाभहोवें परन्तु जिससे तुम नेत्रगोचर होतेहो यह यहां श्रेष्ठ लाभहै ॥ १५ ॥ हे स्वामिन् ! जो यह सब देखाजाताहै वह क्षणमे भंग होनेवालाहै एक आप अविनाशीहो और तुम्हारी पूजा अभंगुर

है याने उसका फल अनन्तहै ॥ १६ ॥ इन तपस्वी के रचित लिंग पूजनके देखने से करोड़ों विचित्र जन्मोंकी सुध हमको सब ओरसे स्फुरित होवे है ॥ १७ ॥ हे ईश्वर! हमने बहुत कालतक देवयोनि को भी प्राप्त किया है और उसने अपनी लीला से हजारों दिव्य स्त्रियों को भोगाहै ॥ १८ ॥ व दैत्यों की दानवोंकी नागोंकी निशाचरों की किन्नरोंकी विद्याधरोंकी और गन्धर्वोंकी भी योनि हम से अर्जितहुई है ॥ १६ ॥ व मनुष्यभाव में बहुतसा राज्य प्राप्तहुआ है व जलमें जलचरत्व और स्थलमे स्थलचारियों का भाव हुआहै ॥ २० ॥ व हम वनमें वनस्थानवाले व ग्रामों में ग्रामवासी व दाता याचक रक्षक और जन्तुओं के घातक भी हुये हैं ॥ २१ ॥ व हम सुखीहुये

त् ॥ एतत्तपस्विरचितलिङ्गपूजाविलोकनात् ॥ १७ ॥ देवयोनिरपिप्राप्ताचिरमस्माभिरीशितः ॥ दिव्याङ्गनाःसहस्राणितत्रभुक्ताःस्वलीलया ॥ १८ ॥ आसुरीदानवीनागीनैर्ऋतीचापिकैन्नरी ॥ विद्याधरीचगान्धर्वीयोनिरस्माभिरर्जिता ॥ १९ ॥ नरत्वेभूपतित्वञ्चपरिप्राप्तमनेकशः ॥ जलेजलचरत्वञ्चस्थलेचस्थलचारिता ॥ २० ॥ वनेवनौकसोजाताग्रामेषुग्रामवासिनः ॥ दातारोयाचितारश्चरक्षितारश्चघातुकाः ॥ २१ ॥ सुखिनोपिवयञ्जातादुःखिनोवयमास्मच ॥ जेतारश्चवयञ्जाताःपराजेतारएवच ॥ २२ ॥ अधीतिनोपिमूर्खाश्चस्वामिनःसेवकाअपि ॥ चतुर्षुभूतग्रामेषुउत्तमाधममध्यमाः ॥ २३ ॥ अभूमभूरिशःशम्भोनक्वापिस्थैर्यमागताः ॥ इतोयोनेस्ततोयोनौततोयोनेस्ततोन्यतः ॥ २४ ॥ पिनाकिन्क्वापिनप्रापिसुखलेशोमनागपि ॥ इदानींपुण्यसम्भारैर्धर्मेश्वरविलोकनात् ॥ २५ ॥ तापनेःसुतपोवह्निज्वालाप्रज्वलितैनसः ॥ संवीक्ष्यत्र्यक्षसाक्षात्त्वांकृतकृत्याबभूविम ॥ २६ ॥ तथापिचेद्वरोदेयस्तिर्यक्षस्मासुधूर्जटे ॥ कृपणेष्वपिशोच्येषु

और हम दुःखी भी हुये व हम जीतनेवाले हुये और हारनेवालेभी हुये ॥ २२ ॥ व पण्डित व मूर्खभी व स्वामी और सेवक भी हुये व चार भांति के भूत समूहों में याने जरायुज अंडज स्वेदज और उद्भिज्जों में भी उत्तम मध्यम और अधम ॥ २३ ॥ बहुतसे हुये परन्तु हे शंभो! कहीं स्थिरताको नहीं प्राप्तभये क्योंकि इस योनि से उस योनि में तदनन्तर उस योनिसे अन्यमें गये ॥ २४ ॥ हे पिनाकधन्वावाले, शिव! थोड़ाभी सुखका लेश कहींभी नहीं प्राप्तहुआ इस समय पुण्यसमूहों करके धर्मेश्वरके दर्शन से ॥ २५ ॥ श्रीसूर्य्यपुत्र यमराजजी की तपस्या अग्निकी ज्वाला से बहुतही जलाये पापोंवाले हमलोग हे त्रिनेत्र! साक्षात् तुमको देखकर कृतकृत्य होगये ॥ २६ ॥ हे

कि जहां साक्षात् श्रीविश्वेश्वरहैं वहां क्षण क्षण या पग पगमें मुक्ति है ॥ ३६ ॥ और तीर्थसंन्यासकारी बहुत पुराने अन्य लोमशादि मुनिभी कहते हैं कि काशिकापुरी मोक्षकी प्रकाशिकाहै ॥ ३७ ॥ व हमभी ऐसा जानते हैं कि जहां शिवजीके आनन्दवनमें गंगाहै उसमेंही मुक्तिहै यह निश्चितहै ॥ ३८ ॥ जोकि स्वर्ग व मनुष्य लोक और पाताल में भूत भविष्य और वर्त्तमान है उस सबको धर्मेश्वर के उत्तम अनुग्रह से हमलोग जानते हैं ॥ ३९ ॥ हे शम्भो ! इससे हम ब्रह्माजी के कहे व विष्णुजी के कहे व मुनियों के कहे व आपके कहेहुये सम्पूर्ण वचन को जानते हैं ॥ ४० ॥ यह सब ब्रह्माण्डगोलक धर्मपीठ की सेवा से हाथ में अमल

रःसाक्षान्मुक्तिस्तत्रपदेपदे ॥ ३६ ॥ वदन्त्यन्येपिमुनयस्तीर्थसंन्यासकारिणः ॥ चिरन्तनाल्लोमशाद्याःकाशिकामुक्तिकाशिका ॥ ३७ ॥ वयमप्येवंजानीमोयत्रस्वर्गतरङ्गिणी ॥ आनन्दकाननेशम्भोर्मोक्षस्तत्रैवनिश्चितम् ॥ ३८ ॥ भूतंभाविभविष्यंयत्स्वर्गेमर्त्येरसातले ॥ तत्सर्वमेवजानीमोधर्म्मेशानुग्रहात्परात् ॥ ३९ ॥ अतोहिरण्यगर्भोक्तंहरिप्रोक्तंमुनीरितम् ॥ भवतोक्तंचनिखिलंशम्भोजानीमहेवयम् ॥ ४० ॥ करामलकवत्सर्वमेतद्ब्रह्माण्डगोलकम् ॥ अस्मद्वाग्गोचरेऽस्त्येवधर्मपीठनिषेवणात् ॥ ४१ ॥ धर्मराजस्यतपसातिर्यञ्चोपिवयंविभो ॥ जाताःस्मनिर्विकल्पंहिसर्वज्ञानस्यभाजनम् ॥ ४२ ॥ मधुरम्मृदुलंसत्यंस्वप्रमाणंसुसंस्कृतम् ॥ हितम्मितंसदृष्टान्तंश्रुत्वापक्षिसुभाषितम् ॥ ४३ ॥ देवोतिविस्मयापन्नोऽवर्णयत्पीठगौरवम् ॥ त्रैलोक्यनगरेचात्रकाशीराजगृहम्मम ॥ ४४ ॥ तत्रापिभोगभवनमनर्घ्यमणिनिर्मितम् ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यःप्रासादोमेतिशर्मभूः ॥ ४५ ॥ पतत्रिणोपिमुच्यन्तेयंकुर्वाणाःप्रदक्षिणम् ॥ स्वेच्छ

जलके समान या आँवलों के फलके समान हमारे वचनगोचरमेंही है ॥ ४१ ॥ हे विभो ! तिर्य्यग्योनिगत पक्षी भी हम धर्मराज की तपस्या से विकल्पहीन और सब ज्ञानके पात्र होगये हैं ॥ ४२ ॥ व मधुर मृदुल सत्य व अपने अनुभव के गोचर व अच्छे संस्कारयुक्त हितकारी थोड़े अक्षरोंवाला और दृष्टान्त समेत जो पक्षियों का अच्छा वचन है उसको सुनकर ॥ ४३ ॥ अत्यन्त विस्मय को प्राप्तहुये महादेवजीने धर्मपीठ की गुरुता को वर्णन किया कि इस त्रिलोक नगर में काशी मेरा राजमन्दिर है ॥ ४४ ॥ उसमें भी अमोल उत्तम मणियों से बनाहुआ अत्यन्त सुखका स्थान मोक्षलक्ष्मीविलास नामक मेरा मन्दिर भोगों का घर है ॥ ४५ ॥ अपनी इच्छा से

सर्वज्ञ, जटाजूटभारवाले, शिव ! तोभी जो दीन शोचनीय और तिर्य्यग्योनिवाले पक्षी हम लोगों में वर देने योग्य है तो उस ज्ञानको देवो ॥ २७ ॥ कि, मेरे समान लोगों से दुर्भेद्य मायामय पाशों से बँधेहुये हम लोग जिस ज्ञानके द्वारा इस संसारबन्धनसे मुक्त होजावे हैं ॥ २८ ॥ हे शङ्कर ! हम इन्द्र के स्थानको नहीं व चन्द्रमाके स्थान को नहीं और अन्यलोक को भी नहीं चाहते हैं किन्तु काशीमें फिर जन्महीन केवल मृत्युकी वाञ्छा करते हैं ॥ २९ ॥ हे सर्वज्ञ ! आपका समीप होने से हम सब कुछ जानते हैं जैसे चन्दन के संसर्गसे सब वृक्ष सुगन्धवान् होजाते हैं ॥ ३० ॥ जो कि काल होतेही तुम्हारे आनन्दवन में देहका त्यागना है यहही संसार के विच्छेद का

ज्ञानंसर्वज्ञदेहितत् ॥ २७ ॥ येनज्ञानेनमुक्ताःस्मोऽमुष्मात्संसारबन्धनात् ॥ यन्त्रिताःप्राकृतैःपाशैरदुर्भेद्यैश्चमादृशैः ॥ २८॥ ऐन्द्रंपदंनवाञ्छामोनचान्द्रन्नान्यदेवहि॥ वाञ्छामःकेवलंमृत्युंकाश्यांशम्भोऽपुनर्भवम् ॥ २९ ॥ त्वत्सान्निध्याद्वि जानीमःसर्वज्ञसकलंवयम् ॥ यथाचन्दनसंसर्गात्सर्वेसुरभयोद्रुमाः ॥ ३० ॥ एतदेवपरंज्ञानंसंसारोच्छित्तिकारणम् ॥ वपुर्विसर्जनंकालेयत्तवानन्दकानने ॥ ३१ ॥ निर्मथ्यविष्वग्वाग्जालंसारभूतमिदंपरम् ॥ ब्रह्मणोदीरितंपूर्वंकाश्यांमुक्ति स्तनुत्यजाम् ॥ ३२ ॥ यद्वाच्यंबहुभिर्ग्रन्थैस्तदष्टाभिरिहाक्षरैः ॥ हरिणोक्तंरविपुरःकैवल्यंकाशिसंस्थितौ ॥ ३३ ॥ याज्ञ वल्क्योमुनिवरःप्रोक्तवान्मुनिसंसदि॥रवेरधीत्यनिगमान्काश्यामन्तेपरम्पदम् ॥ ३४ ॥ स्वामिनापिजगद्धात्रीपुरतोम न्दराचले ॥ इदमेवपुराप्रोक्तंकाशीनिर्वाणजन्मभूः ॥ ३५ ॥ कृष्णद्वैपायनोप्येवंशम्भोवक्ष्यतिनान्यथा ॥ यत्रविश्वेश्व

कारण उत्तम ज्ञानहै ॥ ३१ ॥ पूर्वसमय में सब ओरसे वचन समूह को निश्शेष मथकर ब्रह्माजीने यह श्रेष्ठ सारभूत कहाहै कि काशी में देह त्यागतेहुये जनोंकी मुक्ति होती है ॥ ३२ ॥ जो बहुते ग्रन्थों से कहने योग्यहै वह यहां आठ अक्षरों से वाच्यहै और सूर्य्यके आगे विष्णुजीने कहाहै कि, काशी मृत्युमें मुक्तिहै ॥ ३३ ॥ व श्रीसूर्य्यदेव से वेदों को पढ़कर याज्ञवल्क्य मुनिवरने मुनियोंकी सभामें कहाहै कि काशी में अन्त (मरना) होतेही परमपदहै ॥ ३४ ॥ और आगे मन्दराचल पर श्रीजगदम्बाजीके सामने स्वामीजीने भी इसी वचनको कहाहै कि काशी कैवल्य मुक्तिकी भूमि है ॥ ३५ ॥ हे शंभो ! विष्णु के अवतार व्यासजी भी ऐसा कहेंगे अन्यथा नहीं

आकाशमें विचरते हुये पक्षी भी व आकाशचारी देवभी जिसकी प्रदक्षिणा करतेहुये मुक्त होजाते हैं ॥ ४६ ॥ व मोक्षलक्ष्मीविलासनामक देवमन्दिर के दर्शनसे ब्रह्महत्या भी देहसे दूर चलीजाती है अन्यथा नहीं ॥ ४७ ॥ और जिन्हों ने मोक्षलक्ष्मीविलासमन्दिर के कलश को देखा उनको निधियों के कलश क्षणक्षण मे नहीं छोड़ते हैं ॥ ४८ ॥ व जिन्हों ने मेरे मन्दिर के मस्तक पर प्राप्तहुई पताकाको दूरसे भी नेत्रगोचर किया वे नित्यही मेरे अतिथि हैं ॥ ४९ ॥ कोई यह उत्तम आनन्दनामक कन्दका अंकुर उस शिवालयके मिषसे भूमिको फोड़कर आपही निकलकर उत्पन्न हुआहै ॥ ५० ॥ यह आश्चर्य्यहै कि जहां नित्यही चित्रोंमें गतभी ब्रह्मादि और स्थावर

यांविचरन्तःखेखेचराअपिदेवताः ॥ ४६ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्यविलोकनात् ॥ शरीराद्दूरतोयातिब्रह्महत्यापिनान्यथा ॥ ४७ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासस्यकलशोयैर्निरीक्षितः ॥ निधानकलशास्तांस्तुनमुञ्चन्तिपदेपदे ॥ ४८ ॥ दूरतोपिपताकापिममप्रासादमूर्धगा ॥ नेत्रातिथीकृतायैस्तुनित्यन्तेऽतिथयोमम ॥ ४९ ॥ भूमिंभित्त्वास्वयंजातस्तत्प्रासादमिषेणहि ॥ आनन्दाख्यस्यकन्दस्यकोप्येषपरमोंकुरः ॥ ५० ॥ ब्रह्मादिस्थावरान्तानियत्ररूपाण्यनेकशः ॥ मामेवोपासतेनित्यंचित्रंचित्रगतान्यपि ॥ ५१ ॥ ससौधोमेखिललोकेस्थानम्परमनिर्वृतेः ॥ रतिशालासमेरम्यासमेविश्वासभूमिका ॥ ५२ ॥ ममसर्वगतस्यापिप्रासादोयम्परास्पदम् ॥ परम्ब्रह्मयदाम्नातम्परमोपनिषद्गिरा ॥ अमूर्ततदहम्मूर्तोभूयांभक्तकृपावशात् ॥ ५३ ॥ नैःश्रेयस्याःश्रियोधामतद्याम्यांमण्डपोस्तिमे ॥ तत्राहंसततन्तिष्ठेत्तत्सदोमण्डपम्मम ॥ ५४ ॥ निमेषार्धप्रमाणञ्चकालंतिष्ठतिनिश्चलः ॥ तत्रयस्तेनवैयोगःसमभ्यस्तःसमाःशतम् ॥ ५५ ॥

पर्य्यंत अनेकरूप मेरीही उपासना करते हैं ॥५१॥ वह मेरा राजमहल सम्पूर्ण लोकमें परमानन्दका स्थानहै व वह मेरी रम्य रतिशालाहै और वह मेरे विश्वासकी भूमिका है ॥५२॥ व सर्वगत याने सर्वव्यापकभी जो मैं हूं उनका यह मन्दिर उत्तम स्थानहै और श्रेष्ठ उपनिषदों के वचन से जो मूर्त्तिरहित परब्रह्म विचारा या कहागया है वह मैं भक्तोंकी कृपाके वशसे मूर्त्तिसहित हुआहूं ॥५३॥ उस प्रासाद से दक्षिणदिशा में मुक्तिसम्बन्धिनी सम्पत्तिका स्थान जो मेरा मण्डप है उसमें मैं निरन्तर टिकाहूं और वह मेरा सभामन्दिर है ॥ ५४ ॥ जो कोई निश्छलहोकर उसमे आधेनिमेष प्रमाण कालतक टिकता है उसने निश्चय से सैकड़ोंवर्षतक योगका भलीभांति अभ्यासकिया

है॥५५॥ व पृथिवीतलमें वह स्थान निर्वाणमण्डपनामक है उसमें एक ऋचा को भलीभांति जपताहुआ जन सब वेदके फलको पावे है ॥ ५६ ॥ व जो मुक्तिमण्डप में एकभी प्राणायाम को करता है उस करके अन्यत्र दशहजार वर्षतक अष्टांगयोग अच्छेप्रकार से अभ्यास कियागया है ॥ ५७ ॥ व जो मुक्तिमण्डप में एक षडक्षर (ॐनमःशिवाय) मन्त्र को जपे उसको वह फलहोवे है जोकि जपेहुये करोड़ रुद्राध्यायों से होताहै ॥ ५८ ॥ और जोकि गंगामें नहाया हुआ पवित्र जन मुक्तिमण्डप में शतरुद्रिय को जपे वह ब्राह्मणवेषधारी रुद्रही जानने योग्य है ॥ ५९ ॥ व मेरे दक्षिण मण्डप में एकबारभी ब्रह्मयज्ञ (तत्त्वज्ञानोपदेश या वेदपाठ) को कर ब्रह्मलोकको प्राप्तहोकर

निर्वाणमण्डपन्नामतत्स्थानञ्जगतीतले ॥ तत्रचैकंजपन्नेकांलभेत्सर्वश्रुतेः फलम् ॥ ५६ ॥ प्राणायामन्तुयःकुर्यादप्येकम्मुक्तिमण्डपे ॥ तेनाष्टाङ्गःसमभ्यस्तोयोगोऽन्यत्रायुतंसमः ॥ ५७ ॥ निर्वाणमण्डपेयस्तुजपेदेकंषडक्षरम् ॥ कोटिरुद्रेणजप्तेनयत्फलंतस्यतद्भवेत् ॥ ५८ ॥ शुचिर्गङ्गाम्भसिस्नातोयोजपेच्छतरुद्रियम् ॥ निर्वाणमण्डपेज्ञेयःसरुद्रोद्विजवेषभृत् ॥ ५९ ॥ ब्रह्मयज्ञंसकृत्कृत्वाममदक्षिणमण्डपे ॥ ब्रह्मलोकमवाप्याथपरंब्रह्माधिगच्छति ॥ ६० ॥ धर्मशास्त्रंपुराणानिसेतिहासानितत्रयः ॥ पठेन्निरभिलाषुःसन्सवसेन्ममवेश्मनि ॥ ६१ ॥ तिष्ठेदिन्द्रियचापल्यंयोनिवार्यक्षणंकृती ॥ निर्वाणमण्डपेन्यत्रतेनतप्तम्महत्तपः ॥ ६२ ॥ वायुभक्षणतोन्यत्रयत्पुण्यंशरदांशतम् ॥ तत्पुण्यंघटिकार्धेनमौनन्दक्षिणमण्डपे ॥ ६३ ॥ मितंकृष्णलकेनापियोदद्यान्मुक्तिमण्डपे ॥ स्वर्णसौवर्णयानेनसतुसञ्चरतेदिवि ॥ ६४ ॥ तत्रैकंजागरंकुर्याद्यस्मिन्कस्मिन्दिनेपियः ॥ उपोषितोर्चयेल्लिङ्गंससर्वव्रतपुण्यभाक् ॥ ६५ ॥ तत्रदत्त्वामहादा

अनन्तर परब्रह्ममे जाताहै ॥ ६० ॥ और जो कि निष्काम होताहुआ वहां धर्मशास्त्र व इतिहासों समेत पुराणोंको पढ़े वह मेरे लोकमें बसे ॥ ६१ ॥ व जो पुण्यवान् इन्द्रियोंकी चञ्चलताको रोंककर मुक्तिमण्डप में क्षणभरभी टिके उससे अन्यत्र बडी तपस्या तपीगई है ॥ ६२ ॥ व अन्यत्र सौवर्ष तक वायुभोजनसे जो पुण्य है वह पुण्य मुक्तिमण्डप में आधी घड़ी मौनकर होवे है ॥ ६३ ॥ और जो मुक्तिमण्डप में रत्ती से भी परिमित सुवर्ण को देवे है वह सुवर्णके विमान से स्वर्ग में विचरताहै ॥ ६४ ॥ व जिसी किसी दिनमें भी जो उपासाहुआ वहां एक जागरणको करे और लिंगको पूजे वह सब व्रतोंका पुण्यसेवीहोवे है॥ ६५॥ वहां महादान को देकर व वहां महाव्रतको

कर व वहां सम्पूर्ण वेदको पढ़कर नर स्वर्गसे नहीं गिरताहै ॥ ६६ ॥ और जिसके प्राण मेरे मुक्तिमण्डपमें प्रयाणको करते हैं याने चलते है वह मुझमें पैठाहुआ तबतक यहां टिके कि जबतक मैं निश्चयसे हूं ॥६७॥ और पार्वतीके साथ मैं उस ज्ञानवापी में सदैव जलक्रीड़ाको करताहूं कि जिसके पानी पीनेमात्रसे निर्मल ज्ञान होताहै ॥६८॥ इस राजमन्दिर में जडता हरनेवाला व जलसे पूरित वह बड़ा जलक्रीड़ा का स्थान मेरी प्रीति करनेवाला है ॥ ६९ ॥ व उस मोक्षलक्ष्मीविलासनामक शिवालयके अग्र भागमे याने भैरवप्रदेशके समीप पश्चिमदिशा में मेरा शृंगारमण्डपहै वहही शोभाहीनों के लिये शोभा या सम्पत्ति के सौंपनेवाला श्रीपीठ जानने योग्यहै ॥ ७० ॥ उस

नन्तत्रकृत्वामहाव्रतम् ॥ तत्राधीत्याखिलंवेदंच्यवतेननरोदिवः ॥६६॥ प्रयाणंकुर्वतेयस्यप्राणामेमुक्तिमण्डपे ॥ समा मनुप्रविष्टोत्रतिष्ठेद्यावदहंखलु ॥ ६७ ॥ जलक्रीडांसदाकुर्यांज्ञानवाप्यांसहोमया ॥ यदम्बुपानमात्रेणज्ञानंजायेतनि र्मलम् ॥ ६८ ॥ तज्जलक्रीडनस्थानंममप्रीतिकरम्महत् ॥ अमुष्मिन्राजसदनेजाड्यहृज्जलपूरितम् ॥ ६९ ॥ त त्प्रासादपुरोभागेममशृङ्गारमण्डपः ॥ श्रीपीठन्तद्धिविज्ञेयंनिःश्रीकश्रीसमर्पणम् ॥ ७० ॥ मदर्थन्तत्रयोदद्याद्दुकूला निशुचीन्यहो ॥ माल्यानिसुविचित्राणियक्षकर्दमवन्तिच ॥ ७१ ॥ नानानेपथ्यवस्तूनिपूजोपकरणान्यपि ॥ सश्रि यालंकृतस्तिष्ठेद्यत्रकुत्रापिसत्तमः ॥ ७२ ॥ निर्वाणलक्ष्मीर्वृणुतेतन्निर्वाणपदाप्तये ॥ यत्रकुत्रापिनिधनंप्राप्नुयादपिसद् ध्रुवम् ॥ ७३ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासाख्यप्रासादस्योत्तरेमम ॥ ऐश्वर्यमण्डपंरम्यन्तत्रैश्वर्यन्ददाम्यहम् ॥ ७४ ॥ मत्प्रा सादैन्द्रदिग्भागेज्ञानमण्डपमस्तियत् ॥ ज्ञानंदिशामिसततंतत्रमान्ध्यायतांसताम् ॥ ७५ ॥ भवानिराजसदनेमम

में जो कि मेरे अर्थ अद्भुत पवित्र रेशमी या पीलेवस्त्र और यक्षकर्दम समेत सुविचित्र मालाओं को देवे ॥ ७१ ॥ व अनेक भांति के भूषणोकी चीजें और पूजाकी सामग्रियों को भी देवे है वह सत्तम जहां कहीं भी लक्ष्मी से भूषित होकर टिके है ॥ ७२ ॥ और जहां कहीं भी वह मरणको प्राप्त होवे है तब मोक्षलक्ष्मी कैवल्यपद की प्राप्ति के लिये उसको निश्चय से घेरती है ॥ ७३ ॥ व मोक्षलक्ष्मीविलासनामक प्रासादसे उत्तर ओरमें मेरा रम्य ऐश्वर्य्यमण्डप है उसमें टिकाहुआ मैं ऐश्वर्य्यको देताहूं ॥ ७४ ॥ और मेरे महल से इन्द्रादिशाके भागमें जो ज्ञानमण्डप है उसमें मुझको ध्यावतेहुये सन्तो को मैं निरन्तर ज्ञान देताहूं ॥ ७५ ॥ हे भवानि ! राजमन्दिर में मेरी

पाकशालाहै उसमें जो पुण्य उपहारभावसे समर्पितहै उसको आनन्द से सदैव बहुतही ग्रहण करताहूं ॥ ७६ ॥ और विशालाक्षी के बडे महलमें मेरे विश्रामकी भूमिहै वहां मै संसारसे खिन्नहुये लोगोको विश्राम देताहूं ॥ ७७ ॥ व मेरा चक्रपुष्करिणी नाम तीर्थ कि जिसमें दुपहरके समय नियमसे स्नान कियाजाताहै वहां स्नानकरनेवाले पुरुषों को मैं उस निर्मलकारी ज्ञानकोदेताहूं कि ॥ ७८ ॥ जिसको परमतत्त्व कहते हैं व जिसको सत्तम ब्रह्म कहते हैं और जिसको स्वसंवेद्य कहते हैं उसको वहां मैं अन्तमें देताहूं ॥ ७९ ॥ व जिसको तारक ज्ञान कहते हैं व जिसको अतिनिर्मल कहते हैं और जिसको आत्माराम कहते है उसको वहां मैं अन्त मे देताहूं ॥ ८० ॥

स्तिहिमहानसम् ॥ यत्तत्रोपहृतम्पुण्यंनिर्विशामिमुदैवतत् ॥ ७६ ॥ विशालाक्ष्यामहासौधेममविश्रामभूमिका ॥ तत्रसंसृतिखिन्नानांविश्रामंश्राणयाम्यहम् ॥ ७७ ॥ नियमस्नानतीर्थञ्चचक्रपुष्करिणीमम ॥ तत्रस्नानवतांपुंसांतन्नैर्मल्यन्दिशाम्यहम् ॥ ७८ ॥ यदाहुःपरमन्तत्त्वंयदाहुर्ब्रह्मसत्तमम् ॥ स्वसंवेद्यंयदाहुश्चतत्तत्रान्तेदिशाम्यहम् ॥ ७९ ॥ यदाहुस्तारकंज्ञानंयदाहुरतिनिर्मलम् ॥ स्वात्मारामंयदाहुश्चतत्तत्रान्तेदिशाम्यहम् ॥ ८० ॥ जगन्मङ्गलभूर्यात्रपरमा मणिकर्णिका ॥ विपाशयामितत्राहंकर्मभिःपाशितान्पशून् ॥ ८१ ॥ निर्वाणश्राणनेयत्रपात्रापात्रंनचिन्तये ॥ आनन्दकाननेतन्मेदानस्थानंदिवानिशम् ॥ ८२ ॥ भवाम्बुधौमहागाधेप्राणिनःपरिमज्जतः ॥ भूत्वैवकर्णधारोन्तेयत्रसन्तारयाम्यहम् ॥ ८३ ॥ सौभाग्यभाग्यभूर्यावैविख्यातामणिकर्णिका ॥ ददामितस्यांसर्वस्वमग्रजायान्त्यजायवा ॥ ८४ ॥ महासमाधिसम्पन्नैर्वेदान्तार्थनिषेविभिः ॥ दुष्प्रापोन्यत्रयोमोक्षःशोच्यैरपिसलभ्यते ॥ ८५ ॥ दीक्षितोवादिवाकी

जो कि यहां जगत् के मंगलोंकी भूमि उत्तम मणिकर्णिका है उसमें मैं कर्मों से बाधेहुये पशुओं (जीवों) को छोरताहूं ॥ ८१ ॥ जिस मुक्तिदायक आनन्दवनमें टिका हुआ मैं मुक्ति देने में पात्र और अपात्रकी चिन्तना नहीं करताहूं वह मेरा दिनोरात दानदेनेका स्थान हैं ॥ ८२ ॥ व जहां अन्तमे कर्णधार (केवट) होकर मैं बडे अथाह संसारसागरमें डूबते प्राणियोको भलीभांति से तारताहूं ॥ ८३ ॥ और जो कि मणिकर्णिका निश्चयसे सौभाग्यभूमि कहीगई या प्रसिद्ध है उसमें ब्राह्मण और अन्त्यज को भी सर्वस्व देताहूं ॥ ८४ ॥ व बड़े योग से सम्पन्न और वेदान्तके अर्थों के सेवनेवाले लोगोंसे जो मुक्ति दुष्प्राप्य है वह शोच्यजनों से भी पाईजाती है ॥ ८५ ॥ दीक्षित

(यज्ञकर्त्ता) व चाण्डाल व पण्डित व मूर्खभी मणिकर्णिका को प्राप्तहोकर मेरी मोक्षदीक्षा में बराबरहै ॥ ८६ ॥ और जिस कैवल्यके देने में मैं अन्यत्र कृपणहूं उस बहुत काल से संचित सर्वस्वको मणिकर्णिका में प्राप्त होकर जन्तुमात्र के लिये देताहूं ॥ ८७ ॥ जो अत्यन्त दुर्घट तीनोंका संयोग दैवयोगसे यहां प्राप्तहै तो विना विचारेही बहुतकाल से सञ्चित सर्वस्व देनेयोग्यहै ॥ ८८ ॥ देह अनन्तर सम्पत्ति तदनन्तर वह मणिकर्णिका यह तीनोका संयोग इन्द्रादि देवों से भी अप्राप्यहै ॥ ८९ ॥ इसप्रकार बारबार विचारकर मैं मणिकर्णिका के समीपमें सदैव जन्तुमात्रों को मोक्षलक्ष्मी देताहूं ॥ ९० ॥ काशी मे वह बड़ीभारी मेरी मुक्तिदानकी भूमिहै उस पृथिवी की धूरिकी

र्तिःपण्डितोवाप्यपण्डितः ॥ तुल्योमेमोक्षदीक्षायांसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ ८६ ॥ यत्त्यागेन्यत्रकृपणस्तत्प्राप्य मणिकर्णिकाम् ॥ ददामिजन्तुमात्रायसर्वस्वञ्चिरसञ्चितम् ॥ ८७ ॥ यदिदैवादिहप्राप्तस्त्रिसंयोगोऽतिदुर्घटः ॥ अविचारन्तदादेयंसर्वस्वञ्चिरसञ्चितम् ॥ ८८ ॥ शरीरमथसम्पत्तिरथसामणिकर्णिका ॥ त्रिसंयोगोयमप्राप्योदेवैरिन्द्रादिकैरपि ॥ ८९ ॥ पुनःपुनर्विचार्य्येतिजन्तुमात्रेभ्यएवच ॥ निर्वाणलक्ष्मींयच्छामिसदोपमणिकर्णिकम् ॥ ९० ॥ मुक्तिदानमहीसामेवाराणस्यांमहीयसी ॥ तन्महीरजसासाम्यंत्रिलोक्यपिनचोद्वहेत् ॥ ९१ ॥ परंलिङ्गार्चनस्थानमविमुक्तेश्वरेश्वरम् ॥ तत्रपूजांसकृत्कृत्वाकृतकृत्योनरोभवेत् ॥ ९२ ॥ सायम्पाशुपतींसन्ध्यांकुर्य्यांपशुपतीश्वरे ॥ विभूतिधारणात्तत्रपशुपाशैर्नबध्यते ॥ ९३ ॥ प्रातःसन्ध्यांकरोम्येवसदोङ्कारनिकेतने ॥ तत्रैकापिकृतासन्ध्यासर्वपातककृन्तनी ॥ ९४ ॥ वसामिकृत्तिवासेहंसदाप्रतिचतुर्दशि ॥ अत्रजागरणंकृत्वाचतुर्दश्यांनगर्भभाक् ॥ ९५ ॥ रत्नेश्वरोर्चितोदद्यान्म

समताको त्रिलोकी भी नहीं प्राप्त होती है ॥ ९१ ॥ और अविमुक्तेश्वरेश्वर लिंग पूजनका स्थान उत्तमहै उसमें एक बारभी पूजाको कर मनुष्य कृतकृत्य होवे है ॥ ९२ ॥ व सायङ्काल पशुपतीश्वरमें मैं पाशुपती सन्ध्याको करताहूं वहां विभूति के धारण करनेसे अज्ञानपाशों से नहीं बँधताहै ॥ ९३ ॥ ऐसेही ॐकार मन्दिरमें मैं सदैव प्रातःसन्ध्या को करताहूं वहां एक बारभी कीहुई सन्ध्या सब पापों के काटनेवाली होती है ॥ ९४ ॥ व प्रति चतुर्दशी को मैं कृत्तिबासमें बसताहूं इससे वहा चतुर्दशी में जाग-

रणको कर गर्भसेवी नहीं होताहै ॥ ९५ ॥ व भक्तिसे पूजाहुआ रत्नेश्वरलिंग महारत्नोंको देताहै इसलिये उस लिंगको रत्नों से पूजकर नर स्त्रीरत्नादिको पावेहै ॥ ९६ ॥ व त्रिलोकके भीतर टिकाहुआ याने सर्वव्यापक भी मैं भक्तों के मनोरथोंकी समृद्धि के लिये त्रिलोचन लिंग मे निरन्तर टिकताहूं ॥ ९७ ॥ और वहां विरजस्कनामक महापीठहै उसमें भलीभांति सेवाकर चतुर्नद तीर्थ में स्नानादि जलक्रिया करनेवाला मनुष्य पाप या रजोगुण से हीन होजाताहै ॥ ९८ ॥ व महादेव में मेरे साधकों का सिद्धिदायक महापीठहै उस पीठके दर्शनसेही महापापों से विमुक्त होताहै ॥ ९९ ॥ और पितरों का प्रीतिदाता वृषभध्वजनामक जो पीठहै वहां पितरों के तर्पणको

हारत्नानिभक्तितः ॥ रत्नैःसमर्च्यतल्लिङ्गंस्त्रीरत्नादिलभेन्नरः ॥ ९६ ॥ विष्टपत्रितयान्तस्थोप्यहंलिङ्गेत्रिविष्टपे ॥ तिष्ठामि सततम्भक्तमनोरथसमृद्धये ॥ ९७ ॥ विरजस्कंमहापीठंतत्रसंसेव्यमानवः ॥ विरजाजायतेनूनंचतुर्नदकृतोदकः ॥९८॥ महादेवेमहापीठंममसाधकसिद्धिदम् ॥ तत्पीठदर्शनादेवमहापापैःप्रमुच्यते ॥ ९९ ॥ पितृप्रीतिप्रदम्पीठंवृषभध्वजसञ्ज्ञकम् ॥ पितृतर्पणकृत्तत्रपितॄंस्तारयतिक्षणात् ॥ १०० ॥ आदिकेशवपीठेहमादिकेशवरूपधृक् ॥ श्वेतद्वीपं नयेभक्तान्वैष्णवानतिवल्लभान् ॥ १ ॥ तत्रैवमङ्गलापीठेसर्वमङ्गलदायिनि ॥ उपपञ्चनदेतीर्थेभक्तान्सन्तारयाम्यहम् ॥ २ ॥ बिन्दुमाधवरूपेणयत्राहंवैष्णवाञ्जनान् ॥ नयेपञ्चनदस्नातांस्तद्विष्णोःपरमम्पदम् ॥ ३ ॥ पञ्चमुद्रेमहापीठेये वीरेश्वरसेवकाः॥तेषांपरमनिर्वाणंकालेनाल्पेनजायते॥४॥तत्रसिद्धेश्वरीपीठेचन्द्रेश्वरसमीपतः ॥ तत्रसन्निधिकर्तॄणां सिद्धिःषण्मासतोभवेत् ॥ ५ ॥ काश्याञ्चयोगिनीपीठेयोगसिद्धिविधायिनि ॥ सिद्धीरुच्चाटनाद्याश्चकैर्नलब्धाःसुसाध

करताहुआ मनु ष्यक्षण भरमें पितरों को तारताहै ॥ १०० ॥ व आदिकेशवपीठमें आदिकेशवरूपधारी मैं अत्यन्त प्यारे वैष्णव भक्तों को श्वेतद्वीपमें पठाताहूं ॥ १ ॥ और वहांही पञ्चनदतीर्थ के समीप सब मंगलदायक मंगलापीठ मे मैं भक्तों को भलीभांति तारताहूं ॥ २ ॥ जहा बिन्दुमाधवरूप से मैं पञ्चनद में नहायेहुये वैष्णवजनों को विष्णु के उस परमपदको पठाताहूं ॥ ३ ॥ और पञ्चमुद्र नामक महापीठ मे जो वीरेश्वर के सेवकहैं उनको कैवल्य मुक्ति थोडेकाल से होतीहै ॥ ४ ॥ वहां चन्द्रेश्वर के समीप उस चन्द्रेश्वरी पीठमे समीप कर्त्ताओंकी सिद्धि छह मासमें होती है ॥ ५ ॥ व काशी में योगसिद्धिकर्त्ती योगिनीपीठमें किन अच्छे साधकोंसे उच्चाटनादि सिद्धियां

नहीं पाईगई हैं ॥ ६॥ इस काशीमें पग पग पर अनेक पीठहैं परन्तु धर्मेशपीठकी कोई श्रेष्ठ शक्तिहै ॥ ७ ॥ जहां त्रात त्रात ऐसा बोलतेहुये ये शुकोंके बच्चेभी मेरे अच्छे उपदेशसे निर्मल ज्ञानके पात्रहोगये हैं ॥ ८ ॥ हे सूर्य्यपुत्र, धर्मराज ! जो कि तुम्हारा तपोवन यह उत्तम धर्मपीठ है उसको आजके दिनतक मैं कभी नहीं त्यागताहूं ॥ ९ ॥ हे सूर्य्य के सुत ! मेरे अनुग्रहसे इन शुकोंको देखो कि दिव्य विमानपर चढ़कर मेरे बड़े या पूजनीय पुर (लोक) को जावेंगे ॥ १० ॥ और तुम्हारे संग या समीपसे अत्यन्त निर्मलहुये ये वहां बहुतकाल तक भोगोंको भोगकर फिर मेरे कहे ज्ञानको प्राप्तहोकर यहां मुक्तिको पावेंगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार देवों के स्वामी शिवजी के कहेहुये

कैः ॥ ६ ॥ अनेकानीहपीठानिसन्तिकाश्यांपदेपदे ॥ परन्धर्मेशपीठस्यकाचिच्छक्तिरनुत्तमा ॥ ७ ॥ यत्रामीबालकीराश्चनिर्मलज्ञानभाजनम् ॥ आसुःसदुपदेशान्मेत्रातत्रातेतिभाषिणः ॥ ८ ॥ एतद्धर्मेश्वरंपीठन्त्यजाम्यद्यदिनावधि ॥ नकदाचित्तरणिजत्वत्तपोवनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ ममानुग्रहतःकीरानेतान्पश्यरवेःसुत ॥ दिव्यंविमानमारुह्यगन्तारोमत्पुरम्महत् ॥ १० ॥ तत्रभुक्त्वाचिरम्भोगाञ्ज्ञानम्प्राप्यमयेरितम् ॥ इहमुक्तिमवाप्स्यन्तित्वत्संसर्गातिनिर्मलाः ॥ ११ ॥ इत्युक्तवतिदेवेशेकैलासशिखरोपमम् ॥ दिव्यंविमानमापन्नंरुद्रकन्यापरिष्कृतम् ॥ १२ ॥ आरुह्यतेनयानेनदिव्यरूपधराःखगाः ॥ कैलासमभिसञ्जग्मुर्धर्ममापृच्छ्यतेऽमलाः ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेधर्मेशाख्यानंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ कुम्भोद्भूततदाश्चर्यं विलोक्यजगदम्बिका ॥ उवाचशम्भुंप्रणता प्रणतार्तिहरंपरम् ॥ १ ॥ अ

होतेही कैलास के शृङ्गकी समतावाला दिव्य कन्याओं से भूषित दिव्य विमान आकर प्राप्तहुआ ॥ १२ ॥ और दिव्यरूपधारी वे अमल पक्षी धर्मराज से पूंछकर व विमान पर चढ़कर उस विमान से कैलासके सामने भलीभांति चलेगये ॥ ११३ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेधर्मेशाख्यानंनामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अस्सी के अध्याय में श्रीधर्मेशसुबीज । विश्वभुजाशागणपका व्रतसुमनोरथतीज ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भसम्भव, अगस्त्यजी ! उस आश्चर्य

को देखकर प्रणाम करनेवाली जगदम्बाजी ने भक्तार्त्तिहारी श्रेष्ठशंकरजी से कहा॥ १ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि, हे महादेव, महेश्वर ! इस पीठका यह माहात्म्य है कि जिससे तिर्य्यग्योनिवाले पक्षियों का संसारमोचन ज्ञान हुआ ॥ २ ॥ इससे हे धूर्जटे ! प्रभाव को जानकर मैं धर्मेश्वरके समीप में आज दिनसे लगाकर टिकूंगी ॥ ३ ॥ व जे कि स्त्री व पुरुष भी इस लिंगमें भक्त हैं उनकी अभीष्टसिद्धिको मैं सदैव साधूंगी ॥ ४ ॥ श्रीशिवजी बोले कि हे देवि ! यहां सन्तों के मनोरथकारी इस धर्मपीठको सबओर से ग्रहण करनेवाली तुमने बहुत अच्छा कियाहै ॥ ५ ॥ और जे मनुष्य यहां विश्वभुजा नामवाली तुमको पूजेंगे वेही समस्त भोगों के

म्बिकोवाच ॥ अस्यपीठस्यमाहात्म्यं महादेवमहेश्वर ॥ तिरश्चामपियज्जातं ज्ञानंसंसारमोचनम् ॥ २ ॥ अतःप्रभावं विज्ञाय धर्मपीठस्यधूर्जटे ॥ धर्मेश्वरसमीपेहं स्थास्याम्यद्यदिनावधि ॥ ३ ॥ अत्रलिङ्गेतुयेभक्ताः स्त्रियोवापुरुषास्तुवा॥ तेषामभीष्टांसंसिद्धिं साधयिष्याम्यहंसदा ॥ ४ ॥ ईश्वरउवाच ॥ साधुकृतंत्वयादेवि कृतवत्यापरिग्रहम् ॥ अस्येहधर्मपीठस्य मनोरथकृतःसताम् ॥ ५ ॥ तएवविश्वभोक्तारोविश्वमान्यास्तएवहि ॥ येत्वांविश्वभुजामत्र पूजयिष्यन्तिमानवाः ॥ ६ ॥ विश्वेविश्वभुजेविश्वस्थित्युत्पत्तिलयप्रदे ॥ नरास्त्वदर्चकाश्चात्र भविष्यन्त्यमलात्मकाः ॥ ७ ॥ मनोरथतृतीयायां यस्तेभक्तिंविधास्यति ॥ तन्मनोरथसंसिद्धिर्भवित्रीमदनुग्रहात् ॥ ८ ॥ नारीवापुरुषोवाथत्वद्व्रताचरणात्प्रिये ॥ मनोरथानिहप्राप्य ज्ञानमन्तेचलप्स्यते ॥ ९ ॥ देव्युवाच ॥ मनोरथतृतीयायां व्रतंकीदृक्कथाकथम् ॥ किंफलं कैःकृतन्नाथ कथयैतत्कृपांकुरु ॥ १० ॥ ईश्वरउवाच ॥ शृणुदेवियथापृष्टं भवत्याभवतारिणि ॥ मनोरथव्रतंचैतद्भु

भोक्ताहैं व वेही सबसे मान्य होवेंगे ॥ ६ ॥ हे जगत्‌की रक्षा उत्पत्ति और प्रलयकी प्रदायिनि, सर्वस्वरूपे, विश्वभुजे ! यहां तुम्हारे पूजक मनुष्य निर्मल मनवाले होवेंगे ॥ ७ ॥ जो मनोरथतृतीया (चैतसुदी तीज) में तुम्हारी भक्तिको करेगा उस के मनोरथों की संसिद्धि मेरे अनुग्रह से होनेहारी है ॥ ८ ॥ और हे प्रिये ! स्त्री व पुरुषभी तुम्हारा व्रतकरने से इस लोकमें मनोरथों को पाकर अनन्तर अन्तमें ज्ञान कोभी पावेगा ॥ ९ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि, हे नाथ ! मनोरथ,तृतीयामें कैसा व्रत है व किस प्रकारकी कथा है व क्या फलहै और किन्होंने किया है इसको कहो व कृपाको करो ॥ १० ॥ परमेश्वरजी बोले कि हे संसारतारिणि, देवि ! आपने जैसे

पूंछा है वैसेही गुह्यसेभी बहुत गुह्य और उत्तम इस मनोरथ व्रतको सुनो ॥ ११ ॥ पूर्वसमय में पुलोमतनया (इन्द्राणी) ने कुछ मनोरथ मिलनेके लिये बहुत उत्तम तपस्या को तपा(किया) परन्तु तपस्या का फल न प्राप्तहुआ ॥ १२ ॥ तदनन्तर आनन्द व उत्तमभक्ति से संयुत उस मधुरकण्ठी ने रहस्यसमेत व कोकिलस्वर के समान गीतसेही मेरी पूजा किया ॥ १३ ॥ व कोमल, मधुर,सुतालसमेत, शोभनरंगकर्त्ता धातु या तान व मात्रा और कलावाले उसके या उस गानसे संतुष्टहुये ॥ १४॥ मैंने कहा कि हे पुलोमजे ! इस अच्छेगीत और इस लिंगपूजासे मैं प्रसन्नहू तुम वरको बोलो ॥ १५ ॥ पुलोमजा बोली कि, हे महादेवी के महाप्यारे, देवेश,

ह्याद्गुह्यतरम्परम् ॥ ११ ॥ पुलोमतनयापूर्वं ततापपरमंतपः ॥ किञ्चिन्मनोरथंप्राप्तुं नचापतपसःफलम् ॥ १२ ॥ अपूपुजत्ततोमांसा भक्त्यापरमयामुदा ॥ गीतेनसरहस्येनकलकण्ठीकलेनहि ॥ १३ ॥ तद्गानेनातिसन्तुष्टो मृदुनामधुरेणच ॥ सुतालेनसुरङ्गेण धातुमात्राकलावता ॥ १४ ॥ प्रोवाचत्वंवरंब्रूहि प्रसन्नोस्मिपुलोमजे ॥ अनेनचसुगीतेन त्वनयालिङ्गपूजया ॥ १५ ॥ पुलोमजोवाच ॥ यदिप्रसन्नोदेवेश तदायोमेमनोरथः ॥ तंपूरयमहादेव महादेवीमहाप्रिय॥ १६ ॥ सर्वदेवेषुयोमान्यः सर्वदेवेषुसुन्दरः ॥ यायजूकेषुसर्वेषु यःश्रेष्ठःसोस्तुमेपतिः ॥ १७ ॥ यथाभिलषितंरूपं यथाभिलषितंसुखम् ॥ यथाभिलषितंचायुः प्रसन्नोदेहिमेभव ॥ १८ ॥ यदायदाचपत्यामे सङ्गःस्याद्धृत्सुखेच्छया ॥ तदातदाचतन्देहं त्यक्त्वान्यन्देहमाप्नुयाम् ॥ १९ ॥ सदाचलिङ्गपूजायां ममभक्तिरनुत्तमा ॥ भवभूयाद्भवहर जरामरणहारिणी ॥ २० ॥ भर्तुर्व्ययेपिवैधव्यं क्षणमात्रमपीहन ॥ ममभावमहादेव पातिव्रत्यंचयातुमा ॥ २१ ॥ स्कन्दउवाच ॥

महादेवजी ! जो आप प्रसन्नहो तो मेरा जो मनोरथहै उसको पूराकरो ॥ १६ ॥ कि जो सब देवोंमें मान्य है व सब देवोंमें सुन्दर है और जो सब यायजूकों याने अनेक यज्ञकर्त्ताओंमें श्रेष्ठहै वह मेरा पतिहोवे ॥ १७ ॥ और हे भव (जगत्कारण) ! प्रसन्नहुये तुम मेरे लिये यथाभिलषितरूप व यथाभिलषित सुख और यथाभिलषित आयुको देवो ॥ १८ ॥ व जब जब हृदय के सुखकी इच्छासे पतिके साथ मेरा संग होवे तब तब मैं उस देहको त्यागकर अन्य देहको प्राप्तहोऊं ॥ १९ ॥ और हे संसारहारक, उत्पत्तिकारक, महेशजी ! जरामरणहारिणी व अत्यन्त उत्तम मेरी भक्ति लिंगपूजामें सदैव होवे ॥ २० ॥ हे महादेव ! यहां पतिके नाशमें भी मेरा वैधव्य क्षण-

मात्रभी न होवे और पातिव्रत्य मतजावे ॥ २१ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, उस पुलोमपुत्री के इस मनोरथ को भलीभांति सुनकर व क्षणभर मुसकाकर विस्मय समेत त्रिपुरनाशक महेशजी ने उच्चस्वर से कहा ॥ २२ ॥ श्रीशिवजी बोले कि, हे जितेन्द्रिये, पुलोमकन्ये ! तुम करके जो यह मनोरथ कियागया उसको व्रतचर्या याने व्रत करने से पावोगी इस लिये उस व्रतको करो ॥ २३ ॥ मनोरथतृतीया के करने से मनोरथ होवेगा उसकी प्राप्तिके लिये मैं व्रतको कहूंगा और तुम जैसे कहे हुये उसको करो ॥ २४ ॥ और हे बाले ! महासौभाग्य के देनेवाले कियेहुये उस व्रतसे तुम्हारा ऐसा मनोरथ अवश्यकर सिद्ध होवेगा ॥ २५ ॥ पुलोमकी कन्या

इमंमनोरथंतस्याः पौलोम्याःपुरसूदनः ॥ समाकर्ण्यक्षणंस्मित्वा प्राहेशोविस्मयान्वितः ॥ २२ ॥ ईश्वरउवाच ॥ पुलोमकन्येयश्चैषत्वयाकारिमनोरथः ॥ लप्स्यसेव्रतचर्यातस्तत्कुरुष्वजितेन्द्रिये ॥ २३ ॥ मनोरथतृतीयायाश्चरणेन भविष्यति ॥ तत्प्राप्तयेव्रतंवक्ष्ये तद्विधेहियथोदितम् ॥ २४ ॥ तेनव्रतेनचीर्णेनमहासौभाग्यदेनतु ॥ अवश्यंभविताबाले तवचैवंमनोरथः ॥ २५ ॥ पुलोमकन्योवाच ॥ कारुण्यवारिधेशम्भो प्रणतप्राणिसर्वद ॥ किमात्मिकाथकाशक्तिः कापूज्यातत्रदेवता ॥ २६ ॥ कदाचतद्विधातव्यमितिकर्तव्यताचका ॥ इत्याकर्ण्यशिवोवाक्यं तान्तुप्राणिजगादह ॥ २७ ॥ ईश्वरउवाच ॥ मनोरथतृतीयायांव्रतंपौलोमितच्छुभम् ॥ पूज्याविश्वभुजागौरी भुजविंशतिशालिनी ॥ २८ ॥ वरदोऽभयहस्तश्च साक्षसूत्रःसमोदकः ॥ देव्याःपुरस्ताद्व्रतिना पूज्यआशाविनायकः ॥ २९ ॥ चैत्रशुक्लद्वितीयायां कृत्वावैदन्तधावनम् ॥ सायन्तनींचनिर्वर्त्य नातितृप्त्याभुजिक्रियाम् ॥ ३० ॥ नियमंचेतिगृह्णीयाज्जितक्रोधोजिते

बोली कि, हे प्रणतप्राणियों के सबदायक, दयासागर, शंकर ! किस रूपवाली व कौन शक्ति और कौन देवता उस व्रत में पूजनेयोग्य है ॥ २६ ॥ और कब वह व्रत करना चाहिये और इसकी क्या कर्तव्यता है ऐसा सुनकर शिवजीने हर्ष से वाक्यको उसके सामने उच्चस्वर से कहा ॥ २७ ॥ महेश्वरजी बोले कि, हे पुलोमकुमारि ! मनोरथतृतीया (चैतसुदी तीज) में वह शुभव्रत होता है और बीस बाहुओं से सोहती हुई विश्वभुजा गौरी पूजनीय देवता है ॥ २८ ॥ और अभय को हाथमें लियेहुये व अक्ष सूत्र समेत व मोदक सहित व वरदायक आशाविनायक गणेशजी देवीके आगे व्रतवाले से पूजनीय हैं ॥ २९ ॥ व चैतसुदी द्वितीया

में बहुत तृप्त न होने से सायंकाल की भोजन क्रियाको बन्दकर फिर निश्चय से दन्तधावन (दतून) को कर ॥ ३० ॥ क्रोधको जीतेहुआ व इन्द्रियजित् व जोकि वस्तु छूनेयोग्य नहीं है उसके संस्पर्शको भलीभांति त्यागेहुआ व पवित्र और उस व्रतादि मे गतमानसवाला जन ऐसे नियम को ग्रहण करे ॥ ३१ ॥ कि हे अपापे, मातः,विश्वभुजे, देवि ! मैं प्रातःकाल व्रतको करूंगा तुम मेरे मनोरथ की सिद्धिके लिये उसमें सामीप्यको करो ॥ ३२ ॥ इस प्रकार नियमको ग्रहणकर शुभ को सुमिरताहुआ बुद्धिमान् रात्रिमें सोवे और प्रातःकालमें उठकर आवश्यक विधानको कर ॥ ३३ ॥ व शौच और आचमन को कर फिर अशोकवृक्षका दन्तकाष्ठ (दतून) जोकि सब शोचका नाशक व शुभ है उसको भलीभांति ग्रहणकरे ॥ ३४ ॥ और विधिके पण्डितों में श्रेष्ठ वह व्रती नित्यकी स्नानादि विधिको सिद्धकर

न्द्रियः ॥ संत्यक्तास्पृश्यसंस्पर्शः शुचिस्तद्गतमानसः ॥ ३१ ॥ प्रातर्व्रतंचरिष्यामि मातर्विश्वभुजेनघे ॥ विधेहितत्र सान्निध्यं मन्मनोरथसिद्धये ॥ ३२ ॥ नियमंचेतिसंगृह्यस्वपेद्रात्रौशुभंस्मरन् ॥ प्रातरुत्थायमेधावी विधायावश्यकंविधिम् ॥ ३३ ॥ शौचमाचमनंकृत्वा दन्तकाष्ठंसमाददे ॥ अशोकवृक्षस्यशुभं सर्वशोकनिशातनम् ॥ ३४ ॥ नित्यंतनं चनिष्पाद्य विधिंविधिविदांवरः ॥ स्नात्वाशुद्धाम्बरःसायं गौरीपूजांसमाचरेत ॥ ३५ ॥ आदौविनायकंपूज्य घृतपूरान्निवेद्यच ॥ ततोर्चयेद्विश्वभुजामशोककुसुमैःशुभैः ॥ ३६ ॥ अशोकवर्तिनैवेद्यैर्धूपैश्चागुरुसम्भवैः ॥ कुंकुमेनानुलिप्यादावेकभक्तंततश्चरेत् ॥ ३७ ॥ अशोकवर्तिसहितैर्घृतपूरैर्मनोहरैः ॥ एवंचैत्रतृतीयायां व्यतीतायांपुलोमजे ॥ ३८ ॥ राधादिफाल्गुनान्तासु तृतीयासुव्रतंचरेत ॥ क्रमेणदन्तकाष्ठानि कथयामितवानघे ॥ ३९ ॥ अनुलेपनवस्तूनि

तदनन्तर सायंकाल में स्नानकर व शुद्धवस्त्रवाला होकर गौरीदेवी की पूजा को भलीभांति करे ॥ ३५ ॥ पहले गणेशजी को पूजकर व घृतपूर (घीवड़) नामक पक्वान्नों को निवेदितकर तदनन्तर शुभ अशोकफूलों से श्रीविश्वभुजा देवीको पूजे ॥ ३६ ॥ व पहले कुंकुमसे अनुलेपनकर अशोकबाती समेत नैवेद्य व अगरसे उपजे हुये धूपोंसे पूजकर उसके बाद उस एकभक्त याने एकबार भोजन को करे ॥३७ ॥ जोकि अशोकबाती समेत मनोहर घृतपूरों से होताहै हे पुलोमपुत्रि ! इसभांति चैतसुदी तीजके बीततेही ॥३८ ॥ वैशाखआदि फागुनपर्य्यंत तृतीयाओं में अच्छे व्रतको करे हे अपापे !उन मासों में क्रमसे दन्तकाष्ठों को मैं तुमसे कहूंगा ॥ ३९ ॥ और हे शुभ-

व्रते ! अनुलेपनवस्तु वैसेही फूल व गणेशजी और देवीजी के भी नैवेद्य ॥ ४० ॥ व एक भक्त के अन्नादिकों को फल की प्राप्ति के लिये तुम सुनो कि जामुन, लटजीरा, खैर, चमेली, आम्र, कदम्ब ॥ ४१ ॥ व पाकरि, गूलरि, खजूर व बिजौरा और दाडिम (अनार) समेत ये दतूनके वृक्ष व्रतवाले के लिये भलीभांति कहे गये हैं ॥ ४२॥ व सेंदुर, अगर, कस्तूरी, चन्दन, लालचन्दन, गोरोचन, देवदारु, पद्माख औरदोनों हरदी (हरदी व दारुहरदी) ॥ ४३ ॥ हे बाले ! यक्षकर्दम से समुत्पन्नहुआ अनुलेपन प्रीति से होता है व सबों के न मिलने में भी यक्षकर्दम प्रशस्तहै ॥४४॥ कस्तूरी के दोभाग व कुंकुम (रक्तकेशर) के दो भाग व चन्दन के तीनभाग और

कुसुमानितथैवच ॥ नैवेद्यानिगजास्यस्य देव्याश्चापिशुभव्रते ॥ ४० ॥ अन्नानिचैकभक्तस्य शृणुतानिफलाप्तये ॥ जम्ब्वपामार्गखदिरजातीचूतकदम्बकम् ॥ ४१ ॥ प्लक्षोदुम्बरखर्जूरीबीजपूरीसदाडिमी ॥ दन्तकाष्ठद्रुमाएते व्रतिनःसमुदाहृताः ॥ ४२ ॥ सिन्दूरागुरुकस्तूरीचन्दनंरक्तचन्दनम् ॥ गोरोचनादेवदारुपद्माक्षंचनिशाद्वयम् ॥ ४३ ॥ प्रीत्यानुलेपनंबालेयक्षकर्दमसम्भवम् ॥ सर्वेषामप्यलाभेच प्रशस्तोयक्षकर्दमः ॥ ४४ ॥ कस्तूरिकायाद्वौभागौ द्वौभागौकुंकुमस्यच ॥ चन्दनस्यत्रयोभागाः शशिनस्त्वेकएवहि ॥ ४५ ॥ यक्षकर्दमइत्येष समस्तसुरवल्लभः ॥ अनुलिप्याथ कुसुमैरर्चयेदक्षिमतान्यपि ॥ ४६ ॥ पाटलामल्लिकापद्मकेतकीकरवीरकैः ॥ उत्पलैराजचम्पैश्च नन्द्यावर्तैश्चजातिभिः ॥ ४७ ॥ कुमारीभिःकर्णिकारैरलाभेतच्छदैःसह ॥ सुगन्धिभिःप्रसूनौघैः सर्वालाभेपिपूजयेत् ॥ ४८ ॥ करम्भोदधिभक्तंच सचूतरसमण्डकाः ॥ फेणिकावटकाश्चैव पायसंचसशर्करम् ॥ ४९ ॥ समुद्गंसघृतंभक्तं कार्त्तिकेविनिवेदये

कपूरका एकही भाग ॥ ४५ ॥ इसप्रकार यह यक्षकर्दम सब देवोंका प्याराहै पूर्वोक्त अनुलेपन कर अनन्तर फूलों से पूजे उनको भी कहता हूं ॥ ४६ ॥ पाटल, बेला, कमल, केतकी, कनैर, श्यामकमल या श्वेतअनार, राजचम्पा, तगर व चमेली ॥४७॥ और कुमारिका व नैनियां व उक्त फूलों के न मिलने में उनके पत्रों के साथ और सबके अभाव में भी अन्य सुगन्धि संयुक्त फूलसमूहों से पूजे ॥ ४८ ॥ व करंभ (दधिमिश्रितसत्तू), दहीभात व आम्र के रस से संयुत मण्डक, फेनी, बरा और खण्ड समेत खीर को वैशाख से आश्विनतक क्रमसे निवेदित करे ॥ ४९ ॥ कातिक में मूंग समेत व घी सहित भात को निवेदित करे व अगहन में इंडरी पूस मे

लड्डू माघ में शुभ लपसी ॥ ५० ॥ और फागुन में शर्करा से भीतर भरीहुई व घृतसे परिसाधित (पकाई) पूरियां विघ्नविनाशी गणेशजी के साथ देवीजीके लिये आनन्द से निवेदित करने योग्यहैं ॥ ५१ ॥ जिस अन्न को निवेदित करे याने नैवेद्य लगावे वहही एकभक्त में भी कहागया है अन्य को निवेदित कर और अन्यको खाताहुआ विमूढ़ नीचे गिरता है या गिरे ॥ ५२ ॥ इसप्रकार प्रतिमास वर्षभर तीजमें पूजाकर व्रतके भलीभांति पूर होनेके लिये स्थण्डिल (वेदी) में अग्निकी पूजा होती है ॥ ५३ ॥ और व्रतवाला मनुष्य "जातवेदसे सुनवामसोमं" इस पूरे मन्त्रकरके तिल घृत और यवादि द्रव्य से विधिपूर्वक अष्टोत्तरशत होम को करावे ॥ ५४ ॥

त ॥ इण्डेरिकाश्चलड्डूका माघेलप्सिकाशुभा ॥ ५० ॥ मुष्टिकाःशर्करागर्भाः सर्पिषापरिसाधिताः ॥ निवेद्याःफाल्गुने दे॰व्यै सार्धंविघ्नजितामुदा ॥ ५१ ॥ निवेदयेद्यदन्नंहि एकभक्तेपितत्स्मृतम् ॥ अन्यन्निवेद्यसम्मूढो भुञ्जानोऽन्यत्पतेद धः ॥ ५२ ॥ प्रतिमासंतृतीयायामेवमाराध्यवत्सरम् ॥ व्रतसंपूर्तयेकुर्यात्स्थण्डिलेऽग्निसमर्चनम् ॥ ५३ ॥ जातवे दसमन्त्रेण तिलाज्यद्रविणेनच ॥ शतमष्टाधिकंहोमं कारयेद्विधिनाव्रती ॥ ५४ ॥ सदैवनक्तेपूजोक्ता सदानक्तेतुभोजन म् ॥ नक्तएवहिहोमोऽयं नक्तएवक्षमापनम् ॥ ५५ ॥ गृहाणपूजांमेभक्त्या मातर्विघ्नजितासह ॥ नमोस्तुतेविश्वभुजे पूरयाशुमनोरथम् ॥ ५६ ॥ नमोविघ्नकृतेतुभ्यं नमआशाविनायक ॥ त्वंविश्वभुजयासार्धं ममदेहिमनोरथम् ॥ ५७ ॥ एतौमन्त्रौसमुच्चार्य पूज्यौगौरीविनायकौ ॥ व्रतक्षमापनेदेयः पर्यङ्कस्तूलिकान्वितः ॥ ५८ ॥ उपधान्यासमायुक्तो दी पीदर्पणसंयुतः ॥ आचार्यंचसपत्नीकं पर्यङ्कउपवेश्यच ॥ ५९ ॥ व्रतीसमर्चयेद्वस्त्रैः करकर्णविभूषणैः ॥ सुगन्धचन्दनै

रात्रिमें सदैव यह पूजा कहीगई है व रात्रिमेंही यह होम और रात्रिमेंही क्षमापन होताहै ॥ ५५ ॥ हे मातः! गणेशजी के साथ तुम भक्तिसे कीहुई मेरी पूजाको ग्रहण करो हे विश्वभुजे! तुम्हारे लिये नमस्कारहो तुम मनोरथको शीघ्रही पूरकरो ॥ ५६ ॥ हे आशाविनायक! तुम्हारे लिये नमस्कारहो व विघ्नकर्त्ता के लिये नमस्कारहो तुम विश्वभुजादेवीके साथ मेरे मनोरथको देवो ॥ ५७ ॥ इन दोनों मन्त्रोंको भलीभांति उच्चारणकर गौरी और विनायकजी पूजनेयोग्यहैं व व्रतके क्षमापन में तूलिका (तोशक) समेत पलंग देना चाहिये ॥ ५८ ॥ जोकि तकिया से संयुत व दीपी (दीपधारिका पुतली या दीवट) और शीशा से सहित है उस पलंगमें स्त्रीसमेत

आचार्य्यको बैठाकर ॥ ५९ ॥ आनन्दयुक्त व्रतीजन वस्त्र व हाथ और कानों के गहने व सुगन्ध चन्दन माल्य और दक्षिणाओंसे भलीभांति पूजे ॥ ६० ॥ और व्रतके सबओर से पूरहोने के लिये पयस्विनी (दूधवाली) गऊ व उपभोगकी चीजें छत्र उपानत् (जूता) तथा कमण्डलु को देवे ॥ ६१ ॥ यह मनोरथतृतीया का व्रत मुझ से कियागया है और इसमें जो न्यून व अधिक हुआ है यह आपके वचन से सम्पूर्ण होवे ॥ ६२ ॥ इसभांति आचार्य्यसे अच्छेप्रकार सामनेसे पूंछकर वैसेहीहोवे ऐसे उससे भी कहाहुवा व्रती ग्रामके डांड़के अन्ततक उस आचार्य्यके पीछे जाकर और शक्ति से याने अपने ऐश्वर्य के अनुसार अन्य लोगोको भी देकर ॥ ६३ ॥ फिर बहुत

माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितः ॥ ६० ॥ दद्यात्पयस्विनींगांचव्रतस्यपरिपूर्तये ॥ तथोपभोगवस्तूनिच्छत्रोपानत्कमण्डलुम् ॥ ६१ ॥ मनोरथतृतीयाया व्रतमेतन्मयाकृतम् ॥ न्यूनातिरिक्तंसम्पूर्णमेतदस्तुभवद्गिरा ॥ ६२ ॥ इत्याचार्यंसमापृच्छ्य तथेत्युक्तश्चतेनवै ॥ आसीमान्तमनुव्रज्य दत्त्वान्येभ्योपिशक्तितः ॥ ६३ ॥ नक्तंसमाचरेत्पोष्यैः सार्धंसुप्रीतमानसः ॥ प्रातश्चतुर्थ्यांसम्भोज्य चतुरश्चकुमारकान् ॥ ६४ ॥ अभ्यर्च्यगन्धमाल्याद्यैर्द्वादशापिकुमारिकाः ॥ एवंसम्पूर्णतांयाति व्रतमेतत्सुनिर्मलम् ॥ ६५ ॥ कार्यंमनोरथावाप्त्यै सर्वैरेतद्व्रतंशुभम् ॥ पत्नींमनोरमांकुल्यांमनोवृत्त्यनुसारिणीम् ॥ ६६ ॥ तारिणींदुःखसंसारसागरस्यपतिव्रताम् ॥ कुर्वन्नेतद्व्रतंवर्षं कुमारःप्राप्नुयात्स्फुटम् ॥ ६७ ॥ कुमारीपतिमाप्नोति स्वाढ्यंसर्वगुणाधिकम् ॥ सुवासिनीलभेत्पुत्रान्पत्युःसौख्यमखण्डितम् ॥ ६८ ॥ दुर्भगासुभगास्या

प्रसन्नमनवाला होकर पोष्यवर्गोंके साथ रात्रिके भोजन को भलीभांति से करे और प्रातःकाल चौथिमें चार कुमारोंको भोजन कराकर ॥ ६४ ॥ और सुगन्ध मालादिकों से बारह कुमारिकाओं को भी सामने या सबओर से पूजकर इसप्रकार यह सुनिर्मल व्रत सम्पूर्णता को प्राप्तहोता है ॥ ६५ ॥ व मनोरथ मिलने के लिये यह व्रत सब को करना चाहिये और जोकि स्त्री मनोरमा व कुलमें उपजीहुई व मनकी वृत्तिके पीछे चलनेवाली ॥ ६६ ॥ व दुःखरूप संसारसागर की तारिणी और पतिव्रता होवे उसको वर्षपर्यन्त इस व्रतको करताहुआ कुमार प्रसिद्धता से प्राप्त होवे याने पावे ॥ ६७ ॥ व कुमारी भी सबगुणोंसे अधिक धनाढ्य पतिको पातीहै व सुवासिनी स्त्री पतिके

अखंडित सौख्य और पुत्रोंको पावे ॥ ६८ ॥ दुर्भगा स्त्री सुभगाहोवे व दरिद्रिणी धनाढ्या होवे और विधवाभी फिर वैधव्य को कहीं नहीं प्राप्तहोती है ॥ ६९ ॥ व गर्भवती स्त्री बहुत अधिक आयुवाले शुभपुत्र को पाती है व ब्राह्मण सब सौभाग्य देनेवाली विद्याको पाता है ॥ ७० ॥ राज्य से भ्रष्टहुआ जन राज्यको पावे है व वैश्य लाभको पाता है और शूद्रभी इस व्रतकी सेवा से मनमाने मनोरथ को पाता है ॥ ७१ ॥ व धर्मका चाही धर्म को प्राप्तहोता है धनार्थी धनको पावे है व कामी कामनाओं को प्राप्तहोता है और मोक्षार्थी मोक्षको पाताहै ॥ ७२ ॥ व जिस का जो जो मनोरथ है वह व्रती उस उसको मनोरथतृतीया का व्रत करने से नि-

च धनाढ्यास्याद्दरिद्रिणी ॥ विधवापिनवैधव्यं पुनराप्नोतिकुत्रचित् ॥ ६९ ॥ गुर्विणीचशुभंपुत्रं लभतेसुचिरायुषम् ॥ ब्राह्मणोलभतेविद्यां सर्वसौभाग्यदायिनीम् ॥ ७० ॥ राज्यभ्रष्टोलभेद्राज्यं वैश्योलाभंचविन्दति ॥ चिन्तितंलभते शूद्रो व्रतस्यास्यनिषेवणात् ॥ ७१ ॥ धर्मार्थीधर्ममाप्नोतिधनार्थीधनमाप्नुयात् ॥ कामीकामानवाप्नोतिमोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥ ७२ ॥ योयोमनोरथोयस्य सततंविन्दतेध्रुवम् ॥ मनोरथतृतीयाया व्रतस्यचरणाद्व्रती ॥ ७३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्थंनिशम्यशिवतः शिवासन्तुष्टमानसा ॥ पुनःपप्रच्छविश्वेशं प्रबद्धकरसम्पुटा ॥ ७४ ॥ अन्यत्रयेव्रतंचैतत्करिष्यन्तिसदाशिव ॥ तेकथंपूजयिष्यन्ति माञ्चआशाविनायकम् ॥ ७५ ॥ शिवउवाच ॥ साधुपृष्टंत्वयादेवि सर्वसन्देहभेदिनि ॥ वाराणस्यांसमर्च्यात्वं विश्वेप्रत्यक्षरूपिणी ॥ ७६ ॥ आशाविघ्नजितासार्धं सर्वाशापूर्तिकारिणा ॥ हारिणानन्तविघ्नानां ममक्षेत्रशुभार्थिना ॥ ७७ ॥ क्षिप्रमागमयित्वाच नत्वादूरंगतानपि ॥ कृतकृत्या

रन्तर निश्चय से पाताहै ॥ ७३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि इस प्रकार शिवजी से सुनकर दोनों हाथ जोड़ेहुई सन्तुष्ट अन्तःकरणवाली शिवा (श्रीपार्वती) जीने विश्वनाथजी से फिर पूंछा ॥ ७४ ॥ कि हे सदाशिव ! जे जन इस व्रतको अन्यत्र करेंगे वे आशाविनायक और मुझको किस प्रकार से पूजेंगे ॥ ७५ ॥ श्री शिवजी बोले कि, हे सर्वसंदेहविदारिणि, देवि ! तुमने अच्छा पूंछाहै हे विश्वभुजे ! काशी में प्रत्यक्षरूपिणी तुम भलीभांति पूजनेयोग्यहो ॥ ७६ ॥ अनन्त विघ्नोंके हर्त्ता सब आशाओं के पूर्णकर्त्ता व मेरे क्षेत्रका कल्याण चाहनेवाले आशाविनायक के साथ तुम पूजनीयहो ॥ ७७ ॥ और दूरदेशवासी भी जनोको नमस्कारकर शीघ्रही

आनकर अनन्तर चिन्तित अच्छे मनोरथों से कृतार्थकर व्रत करना चाहिये ॥७८॥ हे विश्वभुजे ! अन्यत्र व्रतवाले लोगों को तुम्हारी और आशाविनायक विघ्नहारी की भी पांच रत्तीसे ऊपर सोनेकी मूर्त्ति बनवाना चाहिये ॥ ७९ ॥ और व्रतवाला जन व्रतके अन्तमें दोनों मूर्त्तियों को आचार्य्य के लिये दैदेवे इस प्रकार एकबार भी इस व्रतके करतेही व्रतकर्ता कृतार्थ होवैहै ॥ ८० ॥ हे देवि ! तदनन्तर इस उत्तमव्रत को सुनकर व कर पुलोमजा ने जैसे हृदय में वाञ्छित था वैसे मनोरथ को पाया ॥ ८१ ॥ व अरुन्धती ने वसिष्ठ को और अनसूया ने अत्रिको भी पाया व सुनीति ने उत्तानपाद नामक पतिसे पुत्रोत्तम ध्रुवको प्राप्त किया॥ ८२ ॥ और इस

न्विधायाथ चिन्तितैःसुमनोरथैः ॥७८॥ अन्यत्रव्रतिभिर्विश्वे काञ्चनीप्रतिमातव ॥ पञ्चकृष्णलकादूर्ध्वं कार्याविघ्नहृ तोऽपिच ॥ ७९ ॥ आचार्यायव्रतीदद्याद्व्रतान्तेप्रतिमाद्वयम् ॥ सकृत्कृतेव्रतेचास्मिन्कृतकृत्योव्रतीभवेत् ॥ ८० ॥ त तःपुलोमजादेवि श्रुत्वैतद्व्रतमुत्तमम् ॥ कृत्वामनोरथंप्राप यथाभिवाञ्छितंहृदि ॥ ८१ ॥ अरुन्धत्यावसिष्ठोपि लब्धोऽ त्रिरनसूयया ॥ सुनीत्योत्तानपादाच्च ध्रुवःप्राप्तोऽङ्गजोत्तमः ॥८२ ॥ सुनीतेर्दुर्भगत्वंच पुनरस्माद्व्रताद्गतम् ॥ चतुर्भुजःप तिःप्राप्तःक्षीरनीरधिजन्मना॥८३॥ किंबहूक्तेनसुश्रोणि कृतंयेनव्रतंत्विदम् ॥ व्रतानितेनसर्वाणि कृतानिव्रतिनाध्रुवम् ॥ ८४ ॥ श्रुत्वाधीमान्कथाम्पुण्यां पुनस्तद्गतमानसः॥शुभबुद्धिमवाप्नोतिपापैरपिविमुच्यते ॥८५॥ इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डेधर्मेश्वराख्याने विश्वभुजाशाविनायकप्रशंसनेमनोरथतृतीयाव्रताख्यानन्नामाशीतितमोध्यायः॥८०॥

व्रत से सुनीतिका दुर्भगत्व फिर चलागया व क्षीरसागर से उपजी हुई लक्ष्मीको चतुर्भुज (विष्णुजी) पति प्राप्तहुआ ॥ ८३॥ हे सुश्रोणि (सुकटि) ! बहुत कहने से क्याहै जिसने इस व्रतको किया उस व्रतीसे निश्चय कर सब व्रत कियेगये है ॥ ८४ ॥ व उसमें मन लगायेहुआ बुद्धिमान् मनुष्य इस मनोज्ञ कथाको सुनकर शुभ ज्ञानको पाताहै और पापोंसे भी विमुक्त होजाताहै ॥ ८५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेधर्मेश्वराख्यानेविश्वभुजाशाविनायकप्रशंसनेमनोरथतृतीयाव्रताख्यानंनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

दो० । इक्यासी अध्याय में दुर्दमका आख्यान । श्रीधर्मेशाख्यान का ऐसे इत व्याख्यान ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे स्कन्द (श्रीकार्त्तिकेयजी)! क्रीड़ाकारी शङ्कर जीने देवीजी के लिये धर्मतीर्थ का कैसा माहात्म्य कहाहै उसको आप कहो और मेरे ऊपर कृपाकरो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे विंध्याचल की उन्नति के हरनेहारे, महाप्राज्ञ ! जैसे महादेवजीने धर्मतीर्थ के अच्छे उद्भवको कहाहै वैसेही मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ २ ॥ कि इन्द्रजी वृत्रासुर को मारकर ब्रह्महत्याको प्राप्तहुये अनन्तर पश्चात्ताप युक्तहोकर पुरोहितसे प्रायश्चित्तको पूछते भये ॥ ३ ॥ बृहस्पतिजी बोले कि, हे देवराज ! जो तुम इस सुदुस्त्यज ब्रह्महत्या को बिलग पठाने के

अगस्त्यउवाच ॥ धर्मतीर्थस्यमाहात्म्यं कीदृग्देवेनशम्भुना ॥ स्कन्ददेव्यैसमाख्यातं तदाख्याहिकृपांकुरु ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ विन्ध्योन्नतिहृदाख्यामि धर्मतीर्थसमुद्भवम् ॥ आकर्णयमहाप्राज्ञ यथादेवेनभाषितम् ॥ २ ॥ वृत्रंनिहत्यवृत्रारिर्ब्रह्महत्यामवाप्तवान् ॥ अनुतप्तोथपप्रच्छप्रायश्चित्तंपुरोहितम् ॥ ३ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ यदित्वन्देवराजेमां ब्रह्महत्यांसुदुस्त्यजाम् ॥ अपानुनुत्सुस्तद्याहि काशींविश्वेशपालिताम् ॥ ४ ॥ नान्यत्किञ्चित्क्वचिद्दृष्टं ब्रह्महत्यामहौषधम् ॥ राजधानींपरित्यज्य शक्रविश्वेशितुःपराम् ॥ ५ ॥ भैरवस्यापिहस्ताग्राद्पतद्वेधसंशिरः ॥ यत्रानन्दवने तत्रवृत्रशत्रोव्रजद्रुतम् ॥ ६ ॥ सीमानमपिसम्प्राप्य शक्रानन्दवनस्यहि ॥ ब्रह्महत्यापलायेत वेपमानानिराश्रया ॥ ७ ॥ अन्येषामपिपापानां महापापजुषामपि ॥ नाशयित्रीपराकाशी विश्वेशसमधिष्ठिता ॥ ८ ॥ महापातकतोमुक्तिः काश्यामेवशतक्रतो ॥ महासंसारतोमुक्तिःकाश्यामेवनचान्यतः ॥ ९ ॥ निर्वाणनगरीकाशी काशीसर्वाघसङ्घहृत् ॥

याने दूर करने की इच्छावाले हो तो श्रीविश्वेश्वर से पालित काशीपुरी को जावो ॥ ४ ॥ हे इन्द्रजी ! विश्वनाथ की उत्तम राजधानी को छोड़कर ब्रह्महत्या का महौषध अन्य कोई कहीं नहीं देखागया है ॥ ५ ॥ हे वृत्रशत्रो ! जिस आनन्दवनमें भैरवजी के भी हाथसे ब्रह्माका शिर गिरपड़ा है उसमें तुम शीघ्रही जावो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! काशी के डांड़को भी प्राप्तहोकर कांपती हुई निराधार ब्रह्महत्या निश्चयसे भागजावे है ॥ ७ ॥ और विश्वनाथसे भलीभांति अधिकतासमेत बसीगईहुई काशिकापुरी महापापसेवियों केभी अन्यभी पापोंकी श्रेष्ठ नाशिका है ॥ ८ ॥ हे सौ यज्ञवाले इन्द्र ! काशीमेंही महापापोंसे छूटना होता है व काशी मेंही बड़े संसारसे मुक्ति

होतीहै अन्यत्र नहीं ॥ ९ ॥ क्योंकि काशी मुक्तिपुरीहै व काशी सब पापसमूहहारिणीहै व काशीश्रीविश्वेश्वरजीकी प्यारीहै और स्वर्गपुरी भी काशीके समान नहींहै ॥ १० ॥ जिसका ब्रह्महत्यासे डरहै व जिसका संसारसे डरहै उस करके मुक्तिकी प्रकाशिका काशिकापुरी कभीभी त्यागनेयोग्य नहीं है ॥ ११ ॥ व जहां देह छोड़नेमे शिवजीकी दृष्टि से दाहको प्राप्तहुये जन्तुओं के कर्मबीजों का प्ररोह (उत्पत्ति) फिर कभी भी नहीं है ॥ १२ ॥ हे वृत्रासुर के वैरिन् ! उस काशीको प्राप्तहोकर तुम वृत्रहत्या दुराने के लिये जगत् के मुक्तिदायक विश्वनायकको भलीभांति पूजनकरो ॥ १३ ॥ ऐसा बृहस्पति का वचन सुनकर वह हजार आंखोंवाले इन्द्रजी बहुत शीघ्रही पापनाशि

विश्वेशितुःप्रियाकाशी द्यौःकाशीसदृशीनहि ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याभयंयस्य यस्यसंसारतोभयम् ॥ जातुचित्तेननत्याज्या काशिकामुक्तिकाशिका ॥ ११ ॥ जन्तूनांकर्मबीजानांयत्रदेहविसर्जने ॥ नजातुचित्प्ररोहोऽस्ति हरदृष्ट्याप्तशुष्मणाम् ॥ १२ ॥ ताङ्काशींप्राप्यवृत्रारे वृत्रहत्यापनुत्तये ॥ समाराधयविश्वेशं विश्वमुक्तिप्रदायकम् ॥ १३ ॥ बृहस्पतेरितिवचोनिशम्यससहस्रदृक्॥आयाद्द्रुततरंकाशीं महापातकघातुकाम् ॥ १४ ॥ स्नात्वोत्तरवहायांच धर्मेशंपरितःस्थितः ॥ आराधयन्महादेवं ब्रह्महत्यापनुत्तये ॥ १५ ॥ महारुद्रजपासक्तःसुत्रामाथत्रिलोचनम् ॥ ददर्शलिङ्गमध्यस्थंस्वभासादीपिताम्बरम् ॥ १६ ॥ पुनस्तुष्टाववेदोक्तै रुद्रसूक्तैरनेकधा ॥ विनिष्क्रम्यततोलिङ्गादाविर्भूयभवोऽवदत् ॥ १७ ॥ शचीपतेप्रसन्नोस्मि वरंवरयसुव्रत ॥ किन्देयंद्रुतमाख्याहिधर्मपीठकृतास्पद ॥ १८ ॥ श्रुत्वेतिदेवदेवस्य सप्रेमवचनं

काशिकापुरी को आये ॥ १४ ॥ और ब्रह्महत्या को दूर करने के लिये उत्तरवाहिनी गंगामें स्नानकर धर्मेश्वरके समीप में टिके व महादेवजी को पूजतेहुये ॥ १५ ॥ व महारुद्रके जपमें आसक्त इन्द्रजीने अनन्तर अपने प्रकाशसे आकाशको दीपित करतेहुये व लिङ्गके बीचमे टिकेहुये त्रिलोचनको देखा ॥ १६ ॥ फिर वेदोक्त रुद्रसूक्तों से अनेक भांति स्तुति किया तदनन्तर लिङ्गसे निकलकर और प्रकट होकर शिवजीने कहा ॥ १७ ॥ कि हे धर्मपीठ में स्थान कियेहुये, अच्छे व्रतवाले, शचीपते ! तुम वरको अंगीकार करो और क्या देनेयोग्य है उसको शीघ्रही कहो ॥ १८ ॥ इसभांति देवोंके देव श्रीमहादेवजी के प्रीतिसमेत वचन को सुनकर वृत्रासुर के विना-

शक इन्द्रजीने उनसे ऐसा कहा कि हे सर्वज्ञ ! तुमको क्या अविदित है याने आप सब कुछ जानतेहो ॥१६॥ तदनन्तर धर्मपीठकी सेवासे उन इन्द्रकेलिये कृपासे प्रेरित हुये महेशजी वहां तीर्थको बनाकर फिर ऐसा बोले कि हे इन्द्र ! तुम इसमें स्नानकरो ॥ २० ॥ और इन्द्रजी उसमें स्नानमात्रसेही क्षणभर में दिव्य सुगन्धवाले होगये व पहले उपजीहुई सौयज्ञवाली सुन्दरी दीप्तिको प्राप्तहुये ॥ २१ ॥ अनन्तर उस आश्चर्यको देखकर आनन्दसंयुत नारदादि मुनियोंने पापहारी धर्मतीर्थ में सब ओरसे नहाया ॥ २२ ॥ व दिव्य पितरोंको तर्पण किया व श्रद्धा से श्राद्धोंको किया और उस तीर्थके जलसे भरे कलशों से धर्मेश्वरको स्नान कराया ॥२३॥ तबसे लगाकर वह

हरिः ॥ सर्वज्ञकिन्तेऽविदितं तमुवाचेतिवृत्रहा ॥ १९ ॥ ततस्तत्कृपयानुन्नो धर्मपीठनिषेवणात् ॥ निष्पाद्यतीर्थंतत्रेशो ऽत्रस्नाहीन्द्रेतिचाब्रवीत् ॥ २० ॥ तत्रेन्द्रःस्नानमात्रेण दिव्यगन्धोऽभवत्क्षणात् ॥ अवापचरुचिञ्चारुं प्राक्तनींशात याज्ञिकीम् ॥ २१ ॥ तदाश्चर्यमथोदृष्ट्वामुनयोनारदादयः ॥ परिसस्नुर्मुदायुक्ता धर्मतीर्थेऽघहारिणि ॥२२॥ अतर्पयन्पि तॄन्दिव्यान्व्यधुःश्राद्धानिश्रद्धया ॥ धर्मेशंस्नापयामासुस्तत्तीर्थाम्बुभृतैर्घटैः ॥ २३ ॥ तदाप्रभृतितत्तीर्थं धर्मान्धुरिति विश्रुतम् ॥ ब्रह्महत्यादिपापानामक्लेशंक्षालनंपरम् ॥ २४ ॥ यत्फलंतीर्थराजस्य स्नानेनपरिकीर्त्यते ॥ सहस्रगुणितंत त्स्याद्धर्मान्धुस्नानमात्रतः ॥ २५ ॥ गङ्गाद्वारेकुरुक्षेत्रेगङ्गासागरसङ्गमे ॥ यत्फलंलभतेमर्त्यो धर्मतीर्थेतदाप्नुयात् ॥ २६ ॥ नर्मदायांसरस्वत्यां गौतम्यांसिंहगेगुरौ ॥ स्नात्वायत्फलमाप्येत धर्मकूपेतदाप्नुयात् ॥ २७ ॥ मानसेपुष्करेचैव द्वारिकेसागरेतथा ॥ तीर्थेस्नात्वाफलंयत्स्यात्तत्स्याद्धर्मजलाशये॥ २८॥कार्त्तिक्यांसूकरक्षेत्रे चैत्र्यांगौरीमहाह्रदे ॥

तीर्थ धर्मांधु याने धर्मकूप ऐसे नाम से प्रसिद्ध है और विना क्लेशकेही ब्रह्महत्यादि पापों के पखारनेवाला व श्रेष्ठ है ॥२४॥ जो फल समुद्र या प्रयागके स्नानसे सबओर कहाजाता है वह धर्मांधु में स्नानमात्र से हजार गुना होता है ॥२५॥ व हरद्वार, कुरुक्षेत्र और गंगासागरसंगम में मनुष्य जिस फलको पाताहै उसको धर्मतीर्थ में पावे है॥ २६॥ व जब बृहस्पति सिंहराशि मे गतहोवें तब नर्मदा सरस्वती और गोदावरी नदी में स्नानकर जो फल प्राप्त होवे उसको धर्मकूपमें पावे है ॥ २७ ॥ व मानससर पुष्कर तथा द्वारका सम्बन्धी समुद्रतीर्थ मे स्नानकर जो फल होवे वह धर्मकूप में होवेहै ॥ २८ ॥ व कार्त्तिककी पूर्णिमामें सूकरक्षेत्र (सौरभनामसे प्रसिद्ध) और चैत्रकी पूर्णिमा

में गौरीमहाह्रद (केदारनाथ में गौरीकुण्ड) व द्वादशीके दिन शङ्खोद्धार मे जो फल होताहै वह फल इसमें स्नान से होवेहै ॥ २९ ॥ और गङ्गा व धर्मतीर्थ इन दो तीर्थों मे नहानेकी इच्छाकरतेहुये मनुष्योंको पिण्डदान की आशासे पितरलोग परखते हैं ॥ ३० ॥ व पितामह (ब्रह्मा) के समीप में अथवा धर्मेश्वरके आगे व फल्गु और धर्मकूप में पितरलोग आनन्दित होते हैं ॥ ३१ ॥ धर्मकूप में स्नानकर व पितामहो को सब ओर से तर्पण कर मनुष्य फिर गयामे जाकर पितरोंका आनन्ददायक अधिक क्या करेगा ॥३२॥ जैसे गयामे पिण्डदान से पितरलोग तृप्तहोवे हैं वैसेही धर्मतीर्थ मे होवे हैं इसमें न्यून (कम) नही है और अधिकभी नहीं है ॥३३॥ जिन पुत्रोने धर्मतीर्थ

शङ्खोद्धारेहरिदिने यत्फलंतत्फलंत्विह ॥ २९ ॥ तीर्थद्वयेप्रतीक्षन्ते सिस्नासून्पितरोनरान् ॥ गङ्गायान्धर्मकूपेचपिण्डनिर्वपणाशया ॥ ३० ॥ पितामहसमीपेवा धर्मेशस्याग्रतोथवा ॥ फल्गौचधर्मकूपेच माद्यन्तिप्रपितामहाः ॥ ३१ ॥ धर्मकूपे नरःस्नात्वा परितर्प्यपितामहान् ॥ गयांगत्वाकिमधिकं कर्तापितृमुदावहम् ॥ ३२ ॥ यथागयायांतृप्ताःस्युःपिण्डदाने पितामहाः ॥ धर्मतीर्थेतथैवस्युर्नन्यूनंनैवचाधिकम् ॥ ३३ ॥ तेधन्याःपितृभक्तास्ते प्रीणितास्तैःपितामहाः ॥ पैत्रादृणाद्धर्मतीर्थे निष्कृतिर्यैःकृतासुतैः ॥ ३४ ॥ तत्तीर्थस्यप्रभावेणनिष्पापोभूत्क्षणेनच ॥ प्रणम्यदेवदेवेशमिन्द्रोऽगादमरावतीम् ॥ ३५ ॥ अपारोमहिमातस्यधर्मतीर्थस्यकुम्भज ॥ तत्कूपेस्वन्निरीक्ष्यापिश्राद्धदानफलंलभेत् ॥ ३६ ॥ तत्रापिकाकिणीमात्रं यच्छेत्पितृमुदेनरः ॥ अक्षयम्फलमाप्नोतिधर्मपीठप्रभावतः ॥ ३७ ॥ तत्रयोभोजयेद्विप्रान्यतिनोथतपस्विनः ॥ सिक्थेसिक्थेलभेत्सोथवाजपेयफलंस्फुटम् ॥ ३८ ॥ प्राप्यामरावतींशक्रस्ततोदिविषदांपुरः ॥ धर्मपीठस्यमाहात्म्यंमह

में पिण्डदानकर पितरों के ऋण से उरिण होना किया वे धन्य हैं व वे पितरों के भक्तहैं और उन्होने पितामहों को तृप्तकियाहै ॥ ३४ ॥ और इन्द्रजी उस तीर्थके प्रभाव से क्षणभरमें पापोंसे हीनहुये व देवदेवोंके स्वामी शिवजी के प्रणामकर अमरावतीपुरीको चलेगये ॥ ३५ ॥ हे कुम्भज, अगस्त्यजी ! उस धर्मतीर्थकी महिमा अपारहै कि उस कूपमें अपने प्रतिबिम्ब को देखकर भी श्राद्धदानका फल पावे है ॥ ३६ ॥ व जो मनुष्य पितरों के आनन्दकेलिये वहां कौडीमात्रकोभी देवेहै वह धर्मपीठके प्रभावसे अक्षय फलको प्राप्तहोताहै ॥ ३७ ॥ और जोकि वहां संन्यासी अथवा तपस्वी ब्राह्मणों को भोजन करावे है वह सीथ सीथ मे अनन्त वाजपेय यज्ञका प्रसिद्ध फलपावे है॥ ३८ ॥

तदनन्तर अमरावतीपुरी को प्राप्तहोकर इन्द्रजीने देवों के आगे काशी में धर्मपीठके बड़े माहात्म्य को वर्णन किया ॥ ३९ ॥ व फिरभी शङ्करजी के इस आनन्द-वनमें आकर मुनि और देवों के साथ इन्द्रजीने लिंगको स्थापन करदिया ॥ ४० ॥ जोकि तारकेश्वर से पश्चिम ओरमें इन्द्रेश्वर ऐसा कहागया है उस लिंगके भलीभांति दर्शन से पुरुषोंको इन्द्रका लोक दूर नहीं है ॥ ४१ ॥ और उससे दक्षिण में इन्द्राणी ने आपही शचीश्वर नामक लिंगको प्रतिष्ठित कियाहै उस शचीश्वर लिंगकी पूजा से स्त्रियोंका अतुल सौभाग्य होवेहै ॥ ४२ ॥ व उसके समीप में बहुत सौख्य समृद्धिदायक रंभेश्वर हैं और इन्द्रेश्वर के निकटमें अपर लोकपालेश्वर हैं ॥ ४३ ॥ उनकी

त्काश्यामवर्णयत् ॥ ३९ ॥ आगत्यपुनरप्यत्रशम्भोरानन्दकानने ॥ मुनिवृन्दारकैःसार्धंलिङ्गमस्थापयद्धरिः ॥ ४० ॥ तारकेशात्पश्चिमतइन्द्रेश्वरमितीरितम् ॥ तस्यसन्दर्शनात्पुंसामैन्द्रलोकोनदूरतः ॥ ४१ ॥ तद्दक्षिणेशचीशश्चस्वयंश च्याप्रतिष्ठितः ॥ शचीशार्चनतःस्त्रीणांसौभाग्यमतुलंभवेत् ॥ ४२ ॥ तत्समीपेस्तिरम्भेशोबहुसौख्यसमृद्धिदः ॥ इन्द्रे श्वरस्यपरितोलोकपालेश्वरोपरः ॥ ४३ ॥ तदर्चनात्प्रसीदन्तिलोकपालाःसमृद्धिदाः ॥ धर्मेशात्पश्चिमाशायांधरणी शःप्रकीर्तितः ॥ तद्दर्शनेनधैर्यंस्याद्राज्येराजकुलादिषु ॥ ४४ ॥ धर्मेशाद्दक्षिणेपूज्यंतत्त्वेशाख्यम्परन्नरैः ॥ तत्त्वज्ञा नम्प्रवर्तेततल्लिङ्गस्यसमर्चनात् ॥ ४५ ॥ धर्मेशात्पूर्वदिग्भागेवैराग्येशंसमर्चयेत् ॥ निवृत्तिश्चेतसस्तस्यलिङ्गस्यस्पर्श नादपि ॥ ४६ ॥ ज्ञानेश्वरंतथैशान्यांज्ञानदंसर्वदेहिनाम् ॥ ऐश्वर्येशमुदीच्याञ्चलिङ्गाद्धर्मेश्वराच्छुभात् ॥ ४७ ॥ तद्द र्शनाद्भवेन्नृणामैश्वर्यंमनसेप्सितम् ॥ पञ्चवक्त्रस्यरूपाणिलिङ्गान्येतानिकुम्भज ॥ ४८ ॥ एतान्यवश्यंसंसेव्यनरःप्रा

पूजासे समृद्धिदाता लोकपाल प्रसन्नहोते हैं व धर्मेश्वर से पश्चिम दिशामें धरणीश्वर कहेगये हैं उनके दर्शन से राज्य और राजकुलादिकों में धैर्य्यहोवे है ॥ ४४ ॥ व धर्मेश्वर से दक्षिण में तत्त्वेश्वर नामक श्रेष्ठलिंग मनुष्यों से पूजनीयहै उस लिंगकी पूजासे तत्त्वज्ञान वर्तमान होवेहै ॥ ४५ ॥ व धर्मेश्वरसे पूर्वदिशा भागमें वैराग्येश्वर को भलीभांति पूजे उस लिंगके छूनेसेही चित्तवृत्ति की निवृत्ति होती है ॥ ४६ ॥ वैसेही धर्मेश्वर नामक मंगलमय लिंगसे ईशान कोणमें सब देहधारियों के ज्ञानदाता ज्ञानेश्वर और उत्तरमें ऐश्वर्य्येश्वर लिंगको पूजे ॥ ४७ ॥ उस लिंगके दर्शनसे मनुष्योंका मन वाञ्छित ऐश्वर्य्य होता है हे अगस्त्यजी ! ये लिंग पञ्चमुखवाले शिव

जी के रूप हैं ॥ ४८ ॥ इनको भलीभांति सेवनकर नर निरन्तर रहनेवाले फलको अवश्यकर प्राप्तहोता है हे मुने ! वहांही जो अन्य वृत्तान्त हुआ है उसको मैं कहता हूं तुम सुनो ॥ ४९ ॥ जिसको सुनकर भी मनुष्य घोरसंसारसागर में नहीं डूबताहै और जोकि बड़ाभारी विन्ध्याचलका कच्छा कदम्बशिखर नामक इस लोकमें प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥ वहां दमका पुत्र दुर्दम नाम राजाहुआ व पिताके मरतेही राज्यको प्राप्त होकर विशेष से इन्द्रियों को न जीतेहुआ ॥ ५१ ॥ व कामसे मोहित वह पुरवासियों की स्त्रियोंको बलसे हरलेताथा व असाधु लोग उसके प्यारे थे और साधुजन अप्रियताको प्राप्तहुये ॥ ५२ ॥ और वह दण्डदेनेको न योग्य जनोंको दण्डदेता था व दण्ड

प्नोतिशाश्वतम् ॥ अन्यत्तत्रैवयद्वृत्तंतदाख्यामिमुनेशृणु ॥ ४९ ॥ यच्छ्रुत्वापिनरोघोरेसंसाराब्धौनमज्जति ॥ कदम्बशिखरोनामविन्ध्यपादोमहानिह ॥ ५० ॥ दमस्यपुत्रस्तत्रासीद्दुर्दमोनामपार्थिवः ॥ पितर्युपरतेराज्यंसम्प्राप्याविजितेन्द्रियः ॥ ५१ ॥ हरेत्पुरन्ध्रीःप्रसभम्पौराणांकाममोहितः ॥ असाधवःप्रियास्तस्यसाधवोऽप्रियतांययुः ॥ ५२ ॥ अदण्ड्यान्दण्डयांचक्रेदण्ड्येष्वासीत्पराङ्मुखः ॥ सदैवमृगयाशीलःसोऽभून्मृगयुसङ्गतः ॥ ५३ ॥ विवासिताःस्वविषयात्तेनसन्मतिदायिनः ॥ धर्माधिकारिणःशूद्राब्राह्मणाःकरदीकृताः ॥ ५४ ॥ परदारेषुसन्तुष्टःस्वदारेषुपराङ्मुखः ॥ आनर्चजातुचिन्नैवदेवौदुःखान्तकारिणौ ॥ ५५ ॥ हारिणौसर्वपापानांसर्ववाञ्छितदायिनौ ॥ सर्वेषांजगतीसारौश्रीकण्ठश्रीपतीपती ॥ ५६ ॥ स्वप्रजास्वेकउदितोधूमकेतुरिवापरः ॥ दुर्दमोनामभूपालःक्षयायाकाण्डएवहि ॥ ५७ ॥ सकदाचिन्मृग

के योग्य लोगों में विमुख हुआ याने उनको दण्ड न देताथा व मृगयु याने शिकारियोंके संगसे सदैव मृगयाशील होगया ॥ ५३ ॥ और उसने अच्छी बुद्धि देनेवालोंको अपने राज्यसे निकाल दिया व ब्राह्मणोको कर देनेवाले किया व शूद्रोंको धर्माधिकारी बनाया ॥५४॥ और वह परस्त्रियों में सन्तुष्ट व अपनी स्त्रियों में विमुख था व उन दोनों देवों को कभी भी नहीं पूजताथा जोकि दुःखो के अन्तकर्त्ता हैं ॥ ५५ ॥ व सब पापों के हर्ता, सबके सब वाञ्छित फलों के दाता, भूमिआदि लोकोंके सार, सबके स्वामी और श्रीकण्ठ (शिव) व श्रीपति (विष्णु) नामों से प्रसिद्ध हैं ॥ ५६ ॥ और जोकि दुर्दमनाम भूप अनवसर मेंही क्षय के लिये अपनी प्रजाओं मे अन्य मुख्य

मृत्युके समान उदित था ॥ ५७ ॥ व पाप बढ़ानेवाले व्यसनों में आतुर था वह घोड़ेवाला राजा कभी शिकारियों के साथ मृग के पीछे क्रमसे धावता हुआ दैवयोग से वनोंमें पैठा ॥ ५८ ॥ जोकि धन्वाधारी घोड़े मे चढ़ाहुआ और अकेलाथा वह पृथिवी का पति दुर्दम आनन्दवन (काशी) में प्रवेश करताभया ॥ ५९ ॥ और वह गर्वत्र फलोंसेरहित व अच्छीछाया सहित व बहुत विस्तारवाले वृक्षोंको देखकर अनन्तर गतश्रमके समान हुआ ॥ ६० ॥ व वृक्षोंकरके सुपल्लव पंखोंकेद्वारा सुगन्धसमेत,सुशीतल,सुमन्द,सुवायु से राजा संवीजित हुआ याने वृक्षोंने उसके ऊपर पल्लवरूप पङ्खोंको डुलाया ॥ ६१ ॥ व उस वनके देखने से केवल शिकारसे उपजाहुआही उसका

युभिःपापर्धिव्यसनातुरः ॥ सार्धविशेशारण्यानिमृगपृष्ठानुगोहयी ॥ ५८ ॥ एकाकीदैवयोगेनदुर्दमःसोऽवनीपतिः ॥ धन्वीतुरङ्गमारूढोऽविशदानन्दकाननम् ॥ ५९ ॥ सविलोक्याथसर्वत्रपादपानवकेशिनः ॥ सुच्छायांश्चसुविस्तारा न्गतश्रमइवाभवत् ॥ ६० ॥ सुगन्धेनसुशीतेनसुमन्देनसुवायुना ॥ क्षणंसंवीजितोराजापल्लवव्यजनैःकुजैः ॥६१॥ केवलम्मृगयाजातस्तत्खेदोनव्यपाव्रजत् ॥ आजन्मजनितःखेदोनिरगात्तद्वनेक्षणात् ॥६२॥ मध्येवनेसचापश्यत्प्रासादंचुम्बिताम्बरम् ॥ महारत्नशलाकानांरम्यमेकमिवाकरम् ॥ ६३ ॥ अथावरुह्यतुरगात्सभूपालोतिविस्मितः ॥ धर्मेशमण्डपम्प्राप्यस्वात्मानंप्रशशंसह ॥ ६४ ॥ धन्योस्म्यहम्प्रसन्नोस्मिधन्येमेद्यविलोचने ॥ धन्यमद्यतनञ्चाहर्यदपश्यमिमांभुवम् ॥६५॥ पुनर्निनिन्दचात्मानन्धर्मपीठप्रभावतः ॥ धिङ्मांदुर्जनसंसर्गैस्त्यक्तसज्जनसङ्गमम् ॥ ६६ ॥ जन्तूद्वेगक

खेद नहीं दूर भागगया बरन जन्मभरे का हुआ खेद निकल जाताभया ॥ ६२ ॥ और उसने वनके बीचमें महारत्नों से रचित शलाकाओं के आकार की नाईं रम्य व आकाशको चूंबतेहुये याने अधिक ऊंचे एक शिवालयको देखा ॥६३॥ उसकेबाद घोड़ेसे उतरकर बहुतविस्मित उस राजाने धर्मेश्वरके मण्डपको प्राप्तहोकर हर्षसे अपने आत्माकी प्रशंसा किया ॥ ६४ ॥ कि आज मैं धन्यहूं व प्रसन्नहूं व मेरी आंखें धन्यहैं और जिसमें मैंने इस भूमिको देखा वह आजका दिन धन्य है ॥ ६५ ॥ ऐसा कहकर फिर धर्मपीठ के प्रभावसे अपनी निन्दाकिया कि अच्छेजनों के संगको त्यागेहुये व दुष्टजनों के संगी मुझको धिक्कार है ॥ ६६ ॥ जोकि जन्तुओं का उद्वेगकर्त्ता व

मूढ़ व, प्रजाओंकी पीड़ामें पण्डित व परस्त्री और परधनके अपहारसे सुख माननेवाले को धिक्कार है ॥ ६७ ॥ व आजतक मुझ थोड़ी बुद्धिवाले का जन्म वृथा बीत गयाहै जिससे मैंने कहीं भी ऐसे धर्मस्थानों को नही देखाहै ॥६८॥ इसप्रकार अपना को बहुत निन्दाकर व धर्मेश्वरस्वामी के नमस्कारकर और घोड़ेपर चढ़कर दुर्दम राजा अपने देश या राज्यको चलागया ॥ ६९ ॥ तदनन्तर क्रमसे आयेहुये पुराने मन्त्रियों को भलीभांति बुलाकर व नवीनों को सब ओरसे निकालकर और पुरवासियों को भी अच्छेप्रकार से सामने बुलाताभया ॥७०॥ व ब्राह्मणों को नमस्कारकर और उन के लिये वृत्तियो को देकर व पुत्रमें राज्यको सौंपकर व प्रजाओं को धर्म में

रम्मूढम्प्रजापीडनपण्डितम् ॥ परदारपरद्रव्यापहृत्यासुखमानिनम् ॥ ६७ ॥ अद्ययावन्ममगतंवृथाजन्माल्पमेधसः ॥ धर्मस्थानानीदृशानियद्दृष्टानिनकुत्रचित् ॥६८॥ एवंबहुविनिन्द्यस्वंनत्वाधर्मेश्वरंविभुम् ॥ आरुह्याश्वंययौ राजादुर्दमोविषयंस्वकम् ॥ ६९ ॥ ततोमात्यान्समाहूयक्रमायातांश्चिरन्तनान् ॥ नवीनान्परिनिर्वास्यपौरांश्चापि समाह्वयत् ॥ ७० ॥ ब्राह्मणांश्चनमस्कृत्यतेभ्योवृत्तीःप्रदायच ॥ पुत्रेराज्यंसमारोप्यप्रजाधर्मेनिवेश्यच ॥ ७१ ॥ परिदण्ड्यचदण्डार्हान्साधूंश्चपरितोष्यच ॥ दारानपिपरित्यज्यविषयेषुपराङ्मुखः ॥ ७२ ॥ समागच्छदथैकाकीकाशीं श्रेयोविकासिनीम् ॥ धर्मेश्वरंसमाराध्यकालान्निर्वाणमाप्तवान् ॥ ७३ ॥ धर्मेशदर्शनान्नित्यंतथाभूतःसदुर्दमः ॥ बभूव दमिनांश्रेष्ठःप्रान्तेमोक्षञ्चलब्धवान् ॥ ७४ ॥ इत्थंधर्मेशमाहात्म्यंमयास्वल्पंनिरूपितम् ॥ धर्मपीठस्यमाहात्म्यंसम्यक्कोवेदकुम्भज ॥ ७५ ॥ इदन्धर्मेश्वराख्यानंयःश्रोष्यतिनरोत्तमः ॥ आजन्मसञ्चितात्पापात्समुक्तोभवतिक्षणा

पैठाकर ॥ ७१ ॥ व दण्डके योग्य लोगोंको सब ओरसे दण्डदेकर व साधुजनों को सन्तुष्टकर व स्त्रियोको भी परित्यागकर शब्दादि विषयो में विमुख हुआ ॥७२॥ और अकेला वह उसकेबाद कल्याणकी विकासिका काशिकापुरी को भलीभांति आया और धर्मेश्वरको अच्छेप्रकारसे पूजकर कालसे कैवल्य मोक्षको प्राप्तहुआ ॥७३॥ नित्य-ही तथाभूत याने पापकर्म्मोंमें परायण भी वह दुर्दमराजा धर्मेश्वर के दर्शन से जितेन्द्रियो में श्रेष्ठ होगया और देहान्त में मोक्षको पाताभया ॥ ७४ ॥ हे कुम्भज ! इस भांति मैंने थोडा धर्मेशका माहात्म्य कहा क्योकि धर्मपीठ के माहात्म्यको कौन जन अच्छेप्रकारसे जानता है ॥ ७५ ॥ जो कि नरोत्तम इस धर्मेश्वराख्यान को सुनेगा वह क्षण

व सबकर्मों में दक्ष व विद्यासमुद्र के पारका द्रष्टा व गुणवान् व गुणीजनों का प्यारकर्ता था ॥ ६ ॥ व कियेहुये उपकार का ज्ञाता, मधुरआलापवाला, पापकर्मों से विमुख, सत्यवादी, शौचकास्थान, स्वल्पवाक्, विजितेन्द्रिय था ॥ ७ ॥ व संग्राम आंगन में कालके समान व सभांगण में परमपण्डित व स्त्रियोंकी कामक्रीड़ा का विद्वान् व युवाभी वृद्धजनों को प्यारा था ॥ ८ ॥ व धर्मधन से कोष (खजाना) के बढ़ानेवाला बलवान् वाहनवान् सुभग सुरूप सुबुद्धिमान् अच्छीप्रजाओं का आधार या सेव्य था ॥ ९ ॥ व स्थिरता और धीरता से व्याप्त व देशकाल के जानने में परम प्रवीण व मानने योग्य जनोंका अधिक आदरदायक और सब दूषणोंसे हीन था ॥ १० ॥ वह

पकर्मपराङ्मुखः ॥ सत्यवाक्शौचनिलयःस्वल्पवाग्विजितेन्द्रियः ॥ ७ ॥ रणाङ्गणेकृतान्ताभःसंख्यावांश्चसदोजिरे ॥ कामिनीकामकेलिज्ञोयुवापिस्थविरप्रियः ॥ ८ ॥ धर्मार्थैधितकोशश्चसमृद्धबलवाहनः ॥ सुभगश्चसुरूपश्चसुमेधाःसुप्रजाश्रयः ॥ ९ ॥ स्थैर्यधैर्यसमापन्नोदेशकालविचक्षणः ॥ मान्यमानप्रदोनित्यंसर्वदूषणवर्जितः ॥ १० ॥ वासुदेवांघ्रियुगलेचेतोवृत्तिंनिधायसः ॥ चकारराज्यंनिर्द्वन्द्वंविष्वगीतिविवर्जितम् ॥ ११ ॥ अलङ्घ्यशासनःश्रीमान्विष्णुभक्तिपरायणः ॥ अभुनक्प्रचुरान्भोगान्समन्ताद्विष्णुसात्कृतान् ॥ १२ ॥ हरेरायतनान्युच्चैःप्रतिसौधम्पदेपदे ॥ तस्यराज्येसमभवन्महाभाग्यनिधेःशिवे ॥ १३ ॥ गोविन्दगोपगोपालगोपीजनमनोहर ॥ गदापाणेगुणातीतगुणाढ्यगरुडध्वज ॥ १४ ॥ केशिहृत्कैटभारातेकंसारेकमलापते ॥ कृष्णकेशवकञ्जाक्षकीनाशभयनाशन ॥ १५ ॥ पुरुषोत्तमपापारेपुण्ड

विष्णुजीके दोनों चरणारविन्दोंमें चित्तकी वृत्तिको धरकर सबओर ईतियों (अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, शलभ, शुक, अपने राज्यकी सेना और अन्यदेशके राजाकी सेना) से वर्जित निर्द्वन्द्व राज्यको करता था ॥ ११ ॥ और जोकि अखण्डनीय आज्ञावाला शोभावान् या लक्ष्मीवान् व विष्णुजी की भक्तिमें परायण था उसने सबओर से विष्णुके अधीन कियेहुये बहुते भोगोंको भोगकिया ॥ १२ ॥ हे पार्वति ! उस भाग्यनिधानके राज्यमें विष्णुजीके मन्दिरोंके प्रति स्थान स्थानमें ऊंचा देवालय भलीभांति से हुआ ॥ १३ ॥ व हे गोविन्द, गोपगोपाल, गोपीजनमनोहर ! गदापाणे, गुणातीत, गुणाढ्य, गरुडध्वज ॥ १४ ॥ केशिहृत, कैटभशत्रो, कंसारे, कमलापते, कृष्ण, केशव,

भरमें जन्मसे लगाकर सञ्चित पापों से मुक्त होताहै (होवेगा) ॥ ७६ ॥ और बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्धसमय में विशेषसे पितरोंकी तृप्तिका कारण अधिक उत्तम, धर्मेश्वर का आख्यान ब्राह्मणों को सुनावे ॥ ७७ ॥ और दूर देशमें टिकाहुआ भी सुबुद्धिमान् इस धर्मेशाख्यान को सुनकर सब पापोंसे विनिर्मुक्त होकर अन्त में शिवजीके स्थानको जावेगा ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेधर्मेश्वराख्यानंनामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ⊛ ॥

दो० । बैयासी अध्याय में श्रीवीरेश प्रसंग । और अभीष्टदतीजका शुभव्रतकथनसुढंग ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे महेशान ! वीरेश्वरकी बड़ी भारी महिमा सुनी

त् ॥ ७६ ॥ श्राद्धकालेविशेषेणधर्मेशाख्यानमुत्तमम् ॥ श्रावयेद्ब्राह्मणान्धीमान्पितॄणांतृप्तिकारणम् ॥ ७७ ॥ धर्माख्यानमिदंशृण्वन्नपिदूरस्थितःसुधीः ॥ सर्वपापैर्विनिर्मुक्तोगन्तान्तेशिवमन्दिरम् ॥ ७८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेधर्मेश्वराख्यानन्नामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पार्वत्युवाच ॥ वीरेशस्यमहेशानश्रूयतेमहिमामहान् ॥ परांसिद्धिंपरापेतुस्तत्रसिद्धाःपरःशताः ॥ १ ॥ कथमाविर्भवस्तस्यकाश्यांलिङ्गवरस्यतु ॥ आशुसिद्धिप्रदस्येहतन्मेब्रूहिजगत्पते ॥ २ ॥ महेश्वरउवाच ॥ निशामयमहादेविवीरेशाविर्भवम्परम् ॥ यंश्रुत्वापिनरःपुण्यम्प्राप्नोतिविपुलंशिवे ॥ ३ ॥ आसीदमित्रजिन्नामराजापरपुरञ्जयः ॥ धार्मिकःसत्त्वसंपन्नःप्रजारञ्जनतत्परः ॥ ४ ॥ यशोधनोवदान्यश्चसुधीर्ब्राह्मणदैवतः ॥ सदैवावभृथस्नानपरिक्लिन्नशिरोरुहः ॥ ५ ॥ विनीतोनीतिसम्पन्नःकुशलःसर्वकर्मसु ॥ विद्याब्धिपारदृश्वाचगुणवान्गुणिवत्सलः ॥ ६ ॥ कृतज्ञोमधुरालापःपा

जाती है कि वहां सैकडो से अधिक सिद्ध उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १ ॥ और हे जगत्पते ! काशी में शीघ्रही सिद्धिदायक उस लिंगनायक का कैसे प्रकट होना है उसको यहां मुझसे कहो ॥ २ ॥ महेशजी बोले कि हे कल्याणरूपिणि, महादेवि ! जिसको सुनकर भी मनुष्य बहुत पुण्यको प्राप्तहोता है वह उत्तम वीरेश्वर का प्रकट होना सुनो ॥३॥ कि आगे एक अमित्रजित् नाम राजाहुआ जोकि शत्रुओंके ग्रामोंका जीतनेवाला धर्मात्मा सतोगुण या धैर्य्य या बलसे सम्पन्न व प्रजाओके रञ्जनमें तत्पर था ॥ ४ ॥ व सुयश से धनी बड़ादानी सुबुद्धिमान् ब्रह्मण्यदेव व सदैव यज्ञान्तस्नानोंसे बहुत भीगेहुये बालोंवाला था ॥ ५ ॥ और विनय समेत व राजनीति से सम्पन्न

कंजाक्ष, कालभयनाशन, ॥ १५ ॥ पुरुषोत्तम,पापारे, पुण्डरीकविलोचन, पीतकौशेयवसन, पद्मनाभ, परात्पर, ॥ १६ ॥ जनार्दन, जगन्नाथ, गङ्गाजलजन्मभूमे, जन्तुजन्महरण, जयशीलजनों के पातकघातक, ॥ १७ ॥ श्रीवत्सवक्षः, श्रीकान्त, श्रीकर, श्रेयसांनिधे, श्रीरंग, शार्ङ्गधन्वन्, शौरे, शीतांशुलोचन, ॥ १८ ॥ दैत्यारे,दानवाराते, दामोदर, दुरन्तक, देवकीहृदयानन्द, सर्पेश्वरशयन, ॥ १९ ॥ विष्णो, वैकुण्ठनिलय, बाणासुरवैरिन्, विष्टरश्रवः, विष्वक्सेन, विराधारे, वनमालिन्, वनप्रिय, ॥ २० ॥ त्रिविक्रम, त्रिलोकीश, चक्रपाणे, चतुर्भुज इत्यादि नाम प्रति मन्दिरों में ॥ २१ ॥ जेकि मधुदैत्यके वैरी विष्णुजीके हैं वे रम्यहैं व स्त्री वृद्ध बालक और गोपालक जनों के

रीकविलोचन ॥ पीतकौशेयवसनपद्मनाभपरात्पर ॥ १६ ॥ जनार्दनजगन्नाथजाह्नवीजलजन्मभूः ॥ जन्मिनांजन्महरणजञ्जपूकाघनाशन ॥ १७ ॥ श्रीवत्सवक्षःश्रीकान्तश्रीकरश्रेयसान्निधे ॥ श्रीरङ्गशार्ङ्गकोदण्डशौरेशीतांशुलोचन ॥ १८ ॥ दैत्यारेदानवारातेदामोदरदुरन्तक ॥ देवकीहृदयानन्ददन्दशूकेश्वरेशय ॥ १९ ॥ विष्णोवैकुण्ठनिलयबाणारे विष्टरश्रवः ॥ विष्वक्सेनविराधारेवनमालिन्वनप्रिय ॥ २० ॥ त्रिविक्रमत्रिलोकीशचक्रपाणेचतुर्भुज ॥ इत्यादीनिपवित्राणिनामानिप्रतिमन्दिरम् ॥ २१ ॥ स्त्रीवृद्धबालगोपालवदनोदीरितानितु ॥ श्रूयन्तेयत्रकुत्रापिरम्याणिमधुविद्विषः ॥ २२ ॥ सुरसाकाननान्येवविलोक्यन्तेगृहेगृहे ॥ चरित्राणिविचित्राणिपवित्राण्यब्धिजापतेः ॥ २३ ॥ सौधभित्तिषुदृश्यन्तेचित्रकृन्निर्मितानितु ॥ ऋतेहरिकथायास्तुनान्यावार्तानिशम्यते ॥ २४ ॥ हरिणानैवविध्यन्तेहरिनामांशधारिणः ॥ तस्यराज्ञोभयाद्व्याधैररण्यसुखचारिणः ॥ २५ ॥ नमत्स्यानैवकमठानवराहाश्चकेनचित् ॥ हन्यन्ते

मुखोंसे कहेगये हैं वे जहां कहीं भी सुनपड़ते हैं ॥ २२ ॥ घर घर में तुलसी के वनही देखेजाते हैं व लक्ष्मीनाथ के पवित्र विचित्र चरित्रभी ॥ २३ ॥ व महलोंकी भीतियों में चित्रकारों से बनायेहुये दिखाते हैं और भक्तभयहारी भगवान् की कथाके विना अन्य वार्त्ता नहीं सुनीजाती है ॥ २४ ॥ व उस राजाके डरसे व्याधों करके वनमें सुखसे चरतेहुये हरिनाम के अंश (भाग) के धारी हरिणभी नहीं मारेजाते हैं ॥ २५ ॥ व किसी मछलीमांसखानेवाले करकेभी उसके डरसे मत्स्य नहीं कच्छप नहीं

और वराहभी नहीं कहीं हनेजाते हैं ॥ २६ ॥ व उस अमित्रजित् राजाके देशमें उताने सोवनेवाले बालक भी एकादशी समेत द्वादशी को भलीभांति पाकर स्तनपान को कहीं नहीं करते हैं ॥ २७ ॥ व पशुभी तृणभोजन को सबओर से त्यागकर एकादशीमें उपवासपरायण हुये हैं और अन्य मनुष्योंकी क्या कथा है ॥ २८ ॥ उस राजा के पृथिवीकी शासना करतेही जब हरिवासर सम्प्राप्त होवैहै तब सब पुरवासियों से महामहोत्सव पसाराजाता है ॥ २९ ॥ जोकि प्राणोंसेभी और धनोंसेभी विष्णुभक्ति से रहित है वहही पृथिवी मे उस अमित्रजित् राजासे दण्डनीय हुआ है ॥ ३० ॥ और उसके देशमें विष्णुसम्बन्धिनी दीक्षाको भलीभांति प्राप्त होकर शङ्खचक्रचिह्नधारी

कापितद्वीत्यामत्स्यमांसाशिनापिवै ॥ २६ ॥ अप्युत्तानशयास्तस्यराष्ट्रेमित्रजितःक्वचित् ॥ स्तनपानन्नकुर्वन्तिस म्प्राप्यहरिवासरम् ॥ २७ ॥ पशवोपितृणाहारम्परित्यज्यहरेर्दिने ॥ उपोषणपराजाताअन्येषांकाकथान्नृणाम् ॥ २८ ॥ महामहोत्सवःसर्वैःपुरौकोभिर्वितन्यते ॥ तस्मिन्प्रशासतिभुवंसम्प्राप्तेहरिवासरे ॥ २९ ॥ सएवदण्ड्योऽभूत्तस्यराज्ञो मित्रजितःक्षितौ ॥ योविष्णुभक्तिरहितःप्राणैरपिधनैरपि ॥ ३० ॥ अन्त्यजाअपितद्राष्ट्रेशङ्खचक्राङ्कधारिणः ॥ सम्प्रा प्यवैष्णवींदीक्षांदीक्षिताइवसम्बभुः ॥ ३१ ॥ शुभानियानिकर्माणिक्रियन्तेऽनुदिनंजनैः ॥ वासुदेवेसमर्प्यन्तेतानि तैरफलेप्सुभिः ॥ ३२ ॥ विनामुकुन्दङ्गोविन्दम्परमानन्दमच्युतम् ॥ नान्योजप्येतमन्येतनभज्येतजनैःक्वचित् ॥ ३३ ॥ कृष्णएवपरोदेवःकृष्णएवपरागतिः ॥ कृष्णएवपरोबन्धुस्तस्यासीदवनीपतेः ॥ ३४ ॥ एवन्तस्मिन्महीपालेरा ज्यंसम्यक्प्रशासति ॥ एकदानारदःश्रीमांस्तन्दिदृक्षुःसमाययौ ॥ ३५ ॥ राज्ञासमर्चितःसोथमधुपर्कविधानतः ॥ नार

अन्त्यज भी यज्ञोंमें दीक्षित जनोंकी नाईं विराजते थे ॥ ३१ ॥ व फलचाहनारहित जनोंसे जे शुभकर्म दिनपीछे याने रोज रोज किये जाते हैं वे उनकरके वासुदेव मे समर्पित होते हैं ॥ ३२ ॥ व मुकुन्द परमानन्द गोविन्द अच्युत विना अन्य कोई कहींभी जनोंसे न जपाजावे न मानाजावे और न भजाजावे ॥ ३३ ॥ किन्तु उस राजा के कृष्णही परमदेव व कृष्णही परमगति व कृष्णही परमबन्धु हुये हैं ॥ ३४ ॥ इसप्रकार उस भूपति के भलीभांति राज्यकी शासना करतेही एक समय उसको देखा चाहते

हुये श्रीमान् नारदमुनि आये ॥ ३५ ॥ अनन्तर उस राजाकरके मधुपर्कादि विधानसे सम्पूजित नारदजीने उस अमित्रजित् नरेशको वर्णन किया ॥३६॥ श्रीनारदजी बोले कि, हे प्रजाओं के पालक, राजन्! सबभूतोंमें गोविन्दको सबओरसे देखतेहुये तुम धन्यहो व कृतार्थहो और देवोंके भी मान्यहो ॥ ३७ ॥ जोकि विष्णुजी वेदपुरुष व यज्ञपुरुष हैं व जो भक्तभवभयहारी हैं व जो इस जगत्के अन्तर्यामी व कर्ता व हर्ता व रक्षक और समर्थ हैं ॥ ३८ ॥ हे भूपालसत्तम! उनमय सब जगत्को देखतेहुये तुम्हारे शुभदायक दर्शनको पाकर मैं परम पवित्रता को प्राप्तहुआ हूं ॥३९॥ इस क्षणभंगुर संसार में सम्पूर्णफलदायक, लक्ष्मीनायक के चरणारविन्दों में भक्तिका होनाही

दोवर्णयामासतममित्रजितंनृपम् ॥ ३६ ॥ नारदउवाच ॥ धन्योसिकृतकृत्योसिमान्योप्यसिदिवौकसाम् ॥ सर्वभूतेषुगोविन्दम्परिपश्यन्विशांपते ॥ ३७ ॥ योवेदपुरुषोविष्णुर्योयज्ञपुरुषोहरिः ॥ योन्तरात्मास्यजगतःकर्ताहर्तावितावि भुः ॥ ३८ ॥ तन्मयम्पश्यतोविश्वंतवभूपालसत्तम ॥ दर्शनम्प्राप्यशुभदंशुचित्वमगमम्परम् ॥ ३९ ॥ एकएवहिसारोत्रसंसारेक्षणभंगुरे॥ कमलाकान्तपादाब्जभक्तिभावोऽखिलप्रदः ॥ ४० ॥ परित्यज्यहियःसर्वंविष्णुमेकंसदाभजेत् ॥ सुमेधसम्भजन्तेतंपदार्थाःसर्वएवहि ॥ ४१ ॥ हृषीकेशेहृषीकाणियस्यस्थैर्यंगतान्यहो ॥ सएवस्थैर्यमाप्नोतिब्रह्माण्डेऽतिविचञ्चले ॥ ४२ ॥ यौवनन्धनमायुष्यंपद्मिनीजलबिन्दुवत् ॥ अतीवचपलंज्ञात्वाऽच्युतमेकंसमाश्रयेत् ॥ ४३ ॥ वाचिचेतसिसर्वत्रयस्यदेवोजनार्दनः ॥ सएवसर्वदावन्द्योनररूपीजनार्दनः ॥ ४४ ॥ निर्व्याजप्रणिधानेनशीलयित्वाश्रि

एक सारभूत है ॥ ४० ॥ जोकि सबकोही परित्यागकर एक विष्णुजीको भजै है उस सुबुद्धिमान्को सबही पदार्थ भलीभांति सेवते हैं ॥ ४१ ॥ हे राजन्! जिसकी इन्द्रियां इन्द्रियोंके स्वामी (विष्णु) में स्थिरता को प्राप्तहैं वहही अत्यन्त चञ्चल ब्रह्माण्डमें स्थिरता को प्राप्त होताहै ॥ ४२ ॥ व युवापन,धन और आयुष्य को पुरइनिपत्रपर परे हुये पानीके समान अतीव चञ्चल जानकर एक अच्युत भगवान्को भलीभांति सबओरसे सेवे ॥ ४३ ॥ जिसकी वाणी, चित्त तथा सर्वत्र देहादिकोंमें जनार्दन देव विद्यमान रहते हैं वह सदैव वन्दनीय होकर नररूपी जनार्दन कहाता है ॥ ४४ ॥ कपटरहित पूजन या ध्यान से लक्ष्मीकान्त को पूजनकर या ध्यानधर कौन प्राणी

इस भूतल में पुरुषोत्तमता को नहीं प्राप्त हुआहै ॥४५॥ हे भूपते ! तुम्हारी इस विष्णुभक्ति से सन्तुष्ट इन्द्रिय व मानसवाला मैं उपकार करनेको न गई उसको सुनिये ॥ ४६ ॥ और विद्याधरकी पुत्री मलयगन्धिनी नाम कन्या पिताके विहार स्थान में खेलती हुई कङ्कालकेतु करके हरीगई है ॥ ४७ ॥ और प्रसिद्ध है कि आने आने वाली तीजमें बड़े बलवान् दानव कपालकेतुके पुत्रसे उसका पाणिग्रहण (ब्याह) होवेगा ॥ ४८ ॥ इस समय वह पाताल के बीच चम्पकावती नगरी में है और आंसुओं समेत आंखोंवाली उसकरके हाटकेश्वर शिवजीके स्थानसे भलीभांति आताहुआ मैं ॥ ४९ ॥ देखागयाहूं व प्रणामकर जैसे विज्ञापना कियागयाहूं उसको त्यों वैसेही

यःपतिम् ॥ पुरुषोत्तमतांकोनप्राप्तवानिहभूतले ॥४५॥ अनयाविष्णुभक्त्यातोसन्तुष्टेन्द्रियमानसः ॥ उपकर्तुमनाब्रूयां तन्निशामयभूपते ॥ ४६ । बालाविद्याधरसुतानाम्नामलयगन्धिनी ॥ क्रीडन्तीपितुराक्रीडेहृताकङ्कालकेतुना ॥ ४७॥ कपालकेतुपुत्रेणदानवेनबलीयसा ॥ आगामिन्यांतृतीयायांतस्याःपाणिग्रहःकिल ॥ ४८ ॥ पातालेचम्पकावत्यान्नगर्यांसास्तिसाम्प्रतम् ॥ हाटकेशात्समागच्छंस्तयाहंसाश्रुनेत्रया ॥ ४९ ॥ दृष्टःप्रणम्यविज्ञप्तोयथातच्चनिशामय ॥ ब्रह्मचारिमुनिश्रेष्ठगन्धमादनशैलतः ॥ ५० ॥ बालक्रीडनकासक्तांमोहयित्वानिनायसः ॥ कङ्कालकेतुर्दुर्वृत्तोदुर्जयोन्यास्त्रघाततः ॥ ५१ ॥ स्वस्यत्रिशूलघातेनम्रियतेनान्यथारणे ॥ जगत्पर्याकुलीकृत्यनिद्रात्यत्रविनिर्भयः ॥ ५२ ॥ यदिकोपिकृतज्ञोमांहत्वेमन्दुष्टदानवम् ॥ मद्दत्तेनत्रिशूलेननयेद्भद्रंभवेन्नरः ॥ ५३ ॥ यदत्रोपचिकीर्षुस्त्वंरक्षमांदुष्टदानवात् ॥ ममापिहिवरोदत्तोभगवत्यामहामुने ॥ ५४ ॥ विष्णुभक्तोयुवाधीमान्पुत्रित्वांपरिणेष्यति ॥ आतृतीयातिथिय

तुम सुनो हे ब्रह्मचारिन्,मुनिश्रेष्ठ ! गन्धमादन पर्वतसे ॥ ५० ॥ बालखेल में आसक्त हुई मुझको मोहकर जो हरलाया है वह कङ्कालकेतु दुराचारी व अन्य अस्त्रोंके घातसे दुर्जयहै ॥ ५१ ॥ वह संग्राम में अपने त्रिशूल के घातसे मरेगा अन्यथा नहीं और जगत्को सबओर से व्याकुल कर यहां बहुत निर्भय होकर सोताहै ॥ ५२ ॥ जो कोई कृतज्ञ मनुष्य मेरे दियेहुये त्रिशूल से इस दुष्ट दानवको मारकर मुझको लेजावे तो मंगल होवे ॥ ५३ ॥ हे मुने ! जो तुम इस अर्थमें उपकार करने के चाहतेहो तो दुष्ट दानव से मुझको बचावो जिससे भगवती ने मुझको भी वरदिया है ॥ ५४ ॥ कि हे पुत्रि ! विष्णुका भक्त, युवा, बुद्धिमान्, मनुष्य तीज तिथितक तुझको वरेगा

यह उनका वाक्य जैसे सत्यता को प्राप्तहोवे ॥ ५५ ॥ वैसेही तुम निमित्तमात्र होवो व यत्न को भलीभांति से करो हे राजन् ! ऐसे उसके वचनसे मैं विष्णुभक्तिपरायण व युवा और बुद्धिमान् भी उस तुमको पीछे से प्राप्तहुवा हूं ॥ ५६ ॥ हे महाबाहो ! उस कारण तुम कार्य्य की सिद्धि के लिये जावो और उस दुष्टदानव को मारकर मङ्गलमयी मलयगन्धिनी को शीघ्रही ले आवो ॥ ५७ ॥ हे नरेश्वर ! वह विद्याधरी भी तुम को देखकर जीवेगी और पार्वती जी के वचन से विना यत्न ही उस दुष्ट को मरावेगी ॥ ५८ ॥ ऐसा नारद मुनिका वचन सुनकर वह राजा अमित्रजित् विद्याधर पुत्री के प्रति बहुतरोमाञ्चित हुवा ॥ ५९ ॥ और उस

यथातद्वाक्यन्तथ्यतांव्रजेत् ॥ ५५ ॥ तथानिमित्तमात्रंत्वंभवयत्नंसमाचर ॥ इतितद्वचनाद्राजन्विष्णुभक्तिपरायणम् ॥ युवानञ्चापिधीमन्तन्त्वामनुप्राप्तवानहम् ॥ ५६ ॥ तद्गच्छकार्यसिद्ध्यैत्वंहत्वातन्दुष्टदानवम् ॥ आनयाशुमहाबाहोशुभांमलयगन्धिनीम् ॥ ५७ ॥ सातुविद्याधरीजीवेद्दिलोक्यत्वान्नरेश्वर॥पार्वतीवचनाद्दुष्टंघातयिष्यत्ययत्नतः॥५८॥ इतिनारदवाक्यंसनिशम्यामित्रजिन्नृपः ॥ अनल्पोत्कलिकोजातोविद्याधरसुतांप्रति ॥ ५९ ॥ उपायञ्चापिपप्रच्छगन्तुन्तांचम्पकावतीम् ॥ नारदेनपुनःप्रोक्तःसराजागिरिराजजे ॥ ६० ॥ तूर्णमर्णवमासाद्यपूर्णिमादिवसेनृप ॥ भवान्द्रक्ष्यतिपोतस्थःकल्पवृक्षंरथस्थितम् ॥ ६१ ॥ तत्रदिव्याङ्गनाकाचिद्दिव्यपर्यङ्कसंस्थिता ॥ वीणामादायगायन्तीगाथांगास्यतिसुस्वरम् ॥ ६२ ॥ यत्कर्मविहितंयेनशुभंवाथशुभेतरम् ॥ सएवभुङ्क्तेतत्तथ्यंविधिसूत्रनियन्त्रितः ॥ ६३ ॥ गाथामिमांसासङ्गीयसरथासमहीरुहा ॥ सपर्यङ्कात्क्षणादेवमध्येसिन्धुंप्रवेक्ष्यति ॥ ६४ ॥ भवानप्यविशङ्कस्ततःपोता

चंपकावती पुरी को जाने के लिये उपायको पूंछनेलगा हे पर्वतराजकुमारि ! नारदजी करके वह राजा फिर कहागया ॥ ६० ॥ कि हे नृप ! शीघ्रही समुद्रको प्राप्त होकर नावपर टिकेहुये आप पूर्णिमा के दिन रथमें स्थित कल्पवृक्ष को देखोगे ॥ ६१ ॥ वहां वीणा को लेकर गातीहुई पलंगपर टिकी कोई दिव्य स्त्री अच्छे स्वरसे इस गाथा को गावेगी ॥ ६२ ॥ कि जिससे जो शुभ अथवा अशुभ कर्म कियागयाहै वहही विधिसूत्र से बँधाहुआ उसको भोगता है यह सत्य है ॥ ६३ ॥ इस गाथाको भलीभांति गाकर रथसमेत व कल्पवृक्षसमेत व पलंग समेत वह क्षणभरमेंही समुद्रके बीचमें पैठजावेगी ॥ ६४ ॥ और यज्ञवाराहभगवान् को सबओर से

प्रशंसते या सुमिरतेहुये आपभी निश्शंक होकर शीघ्रही उस नावसे समुद्र में उसके पीछे चलेजावो ॥ ६५ ॥ हे राजन्! तदनन्तर तुम पाताल में इस कन्या से सहित महामनोहर चंपकावती नगरी को देखोगे ॥ ६६ ॥ हे देवि! इसप्रकार कहकर वह ब्रह्माजी के पुत्र नारदमुनि अन्तर्द्धान हुये और राजा भी समुद्र को प्राप्तहोकर यथोक्त याने जैसे नारदजीने कहा था वैसेही सबओरसे देखकर ॥ ६७ ॥ समुद्र के भीतर पैठगया और उस नगरी में प्राप्तहुआ अनन्तर वह विद्याधरी बाला आँखोंकी अतिथि कीगई है ॥ ६८ ॥ और उस राजाने उसको देखा कि यह अकेली या मुख्य त्रिलोककी सुन्दरताकी शोभा सीहै व मेरे नेत्रोंके उत्सव के लिये क्या यह

न्महार्णवे ॥ तामनुव्रजतुच्छिप्रंयज्ञवाराहमास्तुवन् ॥ ६५ ॥ततोद्रक्ष्यसिपातालेनगरींचम्पकावतीम् ॥ महामनोहरांराजन्सहितांबालयानया ॥६६॥ इत्युक्त्वान्तर्हितोदेविसचतुर्मुखनन्दनः ॥ राजाप्यर्णवमासाद्ययथोक्तंपरिलक्ष्यच ॥६७॥ विवेशान्तःसमुद्रञ्चनगरीमाससादताम् ॥ साथविद्याधरीबालानेत्रप्राघुणकीकृता ॥ ६८ ॥ तेनराज्ञात्रिजगतीसौन्दर्यश्रीरिवैकिका ॥ पातालदेवतेयंवाममनेत्रोत्सवायकिम् ॥ ६९ ॥ निरणायिमधुद्वेष्ट्रास्रष्टुःसृष्टिविलक्षणा ॥ कुहूराहुभयादेषाकान्तिश्चान्द्रमसीकिमु ॥ ७० ॥ योषिद्रूपंसमाश्रित्यतिष्ठतेऽत्राकुतोऽभया ॥ इत्थंक्षणंतांनिर्वर्ण्यसराजागात्तदन्तिकम् ॥ ७१ ॥ साविलोक्याथतंबालानितराम्मधुराकृतिम् ॥ विशालोरस्थलतलंप्रलम्बतुलसीस्रजम् ॥ ७२ ॥ शङ्खचक्राङ्कसुभगभुजद्वयविराजितम् ॥ हरिनामाक्षरसुधासुधौतरदनावलिम् ॥७३॥ भवानीभक्तिबीजोत्थंभूरुहम्पुरुषा

पातालकी देवताहै ॥ ६९ ॥ कि मधुदैत्य के वैरी विष्णुजी करके ब्रह्माजी की सृष्टि से विलक्षण आनी या बनाई गई है कि अमावस और राहु के डरसे यह चन्द्रमाकी कांति ॥ ७० ॥ स्त्रीरूप को आश्रयकर सबकहीं से निडरहुई टिकी है इसप्रकार क्षणभर उसको वर्णनकर वह राजा उसके समीप में गया ॥ ७१ ॥ अनन्तर वह कन्या उसको देखकर जो कि बहुत मधुर आकारवाला व विशालउरस्थलतलवाला व लंबी तुलसी की मालावाला ॥ ७२ ॥ व शङ्ख और चक्र के चिह्न से सुभग दो बाहोंसे विराजित है व हरि नाम के अक्षर अमृत से जिसकी दन्तपंक्ति अच्छे प्रकार से धोईगई है ॥ ७३ ॥ और जोकि देवीजी की भक्तिबीज से उठाहुआ याने

उपजा व मनोरथ फलोंसे पूर्ण पुरुषाकार वृत्त है उसको देखकर रोमांचित होगई ॥ ७४ ॥ व झूला के पलंग को त्यागकर लाजके भार से नम्र ग्रीवावाली कन्या देह कंप को सबओरसे रोंककर पृथिवीपति से बोली ॥ ७५ ॥ कि हे मधुर आकारवाले ! तुम कौनहो जोकि मुझ मन्दभाग्यवाली के चित्तकी वृत्तिको रुकातेहुये यहां काल के घरमें प्राप्तहुये हो ॥ ७६ ॥ हे सुभग ! जबतक बहुत कठोर आकारवाला दानव बारबार त्रिलोकको अत्यन्त व्याकुल कर फिर नहीं आताहै ॥ ७७ ॥ जोकि कंकाल-केतु दुराचारी और पराये हथियारों से अवध्य है तबतक तुम गुप्तहोकर अत्यन्त गहरे शस्त्रधरने के घरमें भलीभांति आकर टिको ॥ ७८ ॥ श्रीपार्वती जीके वरदान

कृतिम् ॥ मनोरथफलैःपूर्णमासीद्धृष्टतनूरुहा ॥ ७४ ॥ दोलापर्यङ्कमुत्सृज्यह्रीभरानम्रकन्धरा ॥ वेपथुञ्चपरिष्टभ्यबाला प्रोवाचभूपतिम् ॥ ७५ ॥ कस्त्वमत्रकृतान्तस्यभवनम्मधुराकृते ॥ प्राप्तोमेमन्दभाग्यायाश्चेतोवृत्तिंनिरुन्धयन् ॥ ७६ ॥ यावन्नायातिसुभगसकठोरतराकृतिः ॥ अतिपर्याकुलीकृत्यत्रिलोकीन्दानवोमुहुः ॥ ७७ ॥ कङ्कालकेतुर्दुर्वृत्तस्त्ववध्यः परहेतिभिः ॥ तावद्गुप्तंसमातिष्ठशस्त्रागारेतिगह्वरे ॥ ७८ ॥ नमेकन्याव्रतंभङ्क्तुंससमर्थउमावरात् ॥ आगामिन्यांतृतीयायां परश्वःपाणिपीडनम् ॥ ७९ ॥ संचिकीर्षतिदुष्टात्मागतायुर्ममशापतः ॥ मातद्भीतिंकुरुयुवस्तत्कार्यंभविताचिरम् ॥ ८० ॥ विद्याधर्येतिचोक्तःसशस्त्रागारेनिगूढवत् ॥ स्थितोवीरोमहाबाहुर्दानवागमनेक्षणः ॥ ८१ ॥ अथसायंसमायातो दानवोभीषणाकृतिः ॥ त्रिशूलंकलयन्पाणौ मृत्योरपिभयावहम् ॥ ८२ ॥ आगत्यदानवोरौद्रः प्रलयाम्बुदनिःस्वनः ॥ विद्याधरींजगादेति मदाघूर्णितलोचनः ॥ ८३ ॥ गृहाणेमानिरत्नानि दिव्यानिवरवर्णिनि ॥ कन्यात्वंचपर

से वह मेरे कन्याव्रतको भङ्ग करने के लिये समर्थ नहीं है किन्तु परसों आनेवाली तीज में ब्याहको ॥ ७९ ॥ भलीभांति करने की इच्छा करता है हे युवक ! जो कि दुष्टात्मा मेरे शाप से गतआयुवाला है उसका डर मतकरो वह कार्य्य शीघ्रही होवेगा ॥ ८० ॥ इसभांति विद्याधरी से कहाहुआ वह गुप्तसा शस्त्रागार में टिका जो कि वीर व बड़ी बाहुओंवाला व दानवके आनेमें आंखोंको या दृष्टिको लगायेथा ॥ ८१ ॥ अनन्तर मृत्युके भी भयदायक त्रिशूलको हाथमें डुलाताहुआ भयङ्कररूप वह दानव सायङ्कालमें भलीभांति आया ॥ ८२ ॥ व मदसे सबओर घूमीहुई आंखोंवाला व प्रलयकालके मेघोंके समान शब्दवाला रौद्ररूप दानव आकर विद्याधरीसे ऐसा बोला ॥ ८३ ॥

श्वस्तेपाणिग्राहादपैष्यति ॥ ८४ ॥ दासीनामयुतंप्रातर्दास्यामितवसुन्दरि ॥ आसुरीणांसुरीणांच दानवीनांमनोहरम् ॥ ८५ ॥ गन्धर्वीणांनरीणांच किन्नरीणांशतंशतम् ॥ विद्याधरीणांनागीनां यक्षिणीनांशतानिषट् ॥ ८६ ॥ राक्षसीनां शतान्यष्टौ शतमप्सरसांवरम् ॥ एतास्तेपरिचारिण्यो भविष्यन्त्यमलाशये ॥ ८७ ॥ यावत्सम्पत्तिसम्भारो दिक्पाला नांगृहेषुवै ॥ मत्परिग्रहतांप्राप्य तावतस्त्वमिहेश्वरी ॥ ८८ ॥ दिव्यान्भोगान्मयासार्धं भोक्ष्यसेमत्परिग्रहात् ॥ कदापर श्वोभवितायस्मिन्वैवाहिकोविधिः ॥ ८९ ॥ त्वदङ्गसङ्गसंस्पर्शसुखसन्दोहमेदुरः ॥ परांनिर्वृतिमाप्स्यामि परश्वोनिक टंयदि ॥ ९० ॥ मनोरथाश्चिरंयावद्येमेहृदिसमेधिताः ॥ तान्कृतार्थीकरिष्यामि परश्वस्तवसङ्गमात् ॥ ९१ ॥ जित्वादेवा न्रणेसर्वानिन्द्रादीन्मृगलोचने ॥ त्रैलोक्यैश्वर्यसम्पत्तेस्त्वांकरिष्यामिचेश्वरीम् ॥ ९२ ॥ आधायाङ्केत्रिशूलंस्वे सुष्वा पेतिप्रलप्यसः ॥ नरमांसवसास्वादप्रमत्तोवीतसाध्वसः ॥ ९३ ॥ वरंस्मरन्तीसागौर्या विद्याधरकुमारिका ॥ विज्ञायतं

कि हे वरवर्णिनि ! इन दिव्य रत्नों को ग्रहणकरो और परसों में ब्याह से तुम्हारा कन्याभाव विगत होवेगा ॥ ८४ ॥ हे सुन्दरि ! दैत्यपुत्री व देवी और दानवी दासियों का मनोहर दशहजार प्रातःकाल में तुझे दूंगा ॥ ८५ ॥ व गन्धर्वी, मानुषी और किन्नरियों का सैकड़ा सैकड़ा व विद्याधरी नागी और यक्षिणियों के छहसैकडा ॥ ८६ ॥ और हे विमलचित्ते ! राक्षसियोंके आठ सैकडा और अप्सराओंका श्रेष्ठ सैकडा ये तेरी सेवकी होवेंगी ॥ ८७ ॥ व यहां दिक्पालोंके घरों में भी जितना सम्पत्तियोंका समूहहै उतने की तुम मेरी अधीनताको प्राप्तहोकर स्वामिनी होवोगी ॥ ८८ ॥ और मेरे परिग्रहणसे तुम मेरे साथ दिव्य भोगोंको भोग करोगी व जिसमें विवाहकी विधि होवेगी वह परसों कब है ॥ ८९ ॥ जो परसों निकट है तो तुम्हारे अङ्ग सङ्गके संस्पर्श से उपजेहुये सुखसमूह से व्याप्तहुआ मैं परमआनन्द को पाऊंगा ॥ ९० ॥ व जे मनोरथ बहुत कालतक मेरे हृदय में भलीभांति बढ़ेहैं उनको परसों तुम्हारे सङ्गमसे कृतार्थ करूंगा ॥ ९१ ॥ और हे मृगनयनि ! संग्राम में सब इन्द्रादि देवों को जीतकर तुमको त्रिलोक के ऐश्वर्य्य व सम्पत्तिकी स्वामिनी करूंगा ॥ ९२ ॥ ऐसा प्रलापकर व अपने अंकमें त्रिशूल को धर मनुष्यों के मास व मेदके खानेसे उन्मत्त और निडरहुआ वह सोयगया ॥ ९३ ॥ तब उसको अत्यन्त निडर व बहुत मतवाला व अधिक सोताहुआ जानकर पार्वती जी के वर

को सुमिरती हुई उस विद्याधरकुमारी ने ॥ ९४ ॥ मनुष्यों में श्रेष्ठ व सर्वाङ्गसुन्दर व विष्णुकी भक्ति से रक्षा कियेगये हुये उस वरको बुलाकर और हे प्राणनाथ ! ऐसा कहकर ॥ ९५ ॥ उस दैत्यके अङ्क से त्रिशूलको लेकर कहा कि इसको ग्रहण करो और इस दुष्ट दानव को शीघ्रही मारो इसभांति कन्या से त्रिशूल को लेकर बाल सूर्यके समान दीप्तिवाला ॥ ९६ ॥ वह हर्षयुक्त हुआ और उससमय बड़ी बाहुओंवाला अमित्रजित् नरेश कन्या को अभय देताहुआ ऊंचे स्वरसे गर्जा ॥९७॥ व जगत् की रक्षाके लिये मणिके समान भक्तभयहारी सुदर्शनचक्रधारी को चित्त में भलीभांति सुमिरते हुये उस निर्भयराजा ने बायें लात घात से उस दानव को

प्रमत्तंच सुसुप्तंचातिनिर्भयम् ॥ ९४ ॥ आहूयतंनरवरं वरंसर्वाङ्गसुन्दरम् ॥ विष्णुभक्तिकृतत्राणं प्राणनाथेतिजल्प्य च ॥ ९५ ॥ शूलंतदङ्कादादाय गृहाणेमंजहिद्रुतम् ॥ इतित्रिशूलंबालातो बालार्कसदृशद्युतिः ॥ ९६ ॥ समादायमहाबाहुः सतदामित्रजिन्नृपः ॥ जहर्षचजगादोच्चैर्बालायाश्चाभयंदिशन् ॥ ९७ ॥ वामपादप्रहारेण तमाताड्यसनिर्भयः ॥ संस्मरंश्चक्रिणंचित्ते जगद्रक्षामणिंहरिम् ॥ ९८ ॥ जगादोत्तिष्ठरेदुष्ट कन्याधर्षणलालस ॥ युध्यस्वात्रमयासार्धं नसुप्तंहन्म्यहंरिपुम् ॥ ९९ ॥ इति संश्रुत्यसम्भ्रान्त उत्थायसदनोःसुतः ॥ त्रिशूलंदेहिमेकान्ते प्रोवाचेतिमुहुर्मुहुः ॥१००॥ कोयंमृत्युगृहंप्राप्तः कस्यरुष्टोऽद्यचान्तकः ॥ कआयुषाद्यसन्त्यक्तोयः प्राप्तोममगोचरम् ॥ १ ॥ ममप्रचण्डदोर्दण्डकण्डूकण्डूयनक्षमः ॥ नाल्पोनरोयंभविता किंत्रिशूलेनसुन्दरि ॥ २ ॥ माभैर्मेकौतुकम्पश्य भक्ष्योऽयंममसाम्प्रतम् ॥ कालेनमत्तोभीतेन स्वयमेवोपढौकितः ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वामुष्टिघातेन तेनोच्चैर्दनुसूनुना ॥ हृदयेनिहतोराजा शि

सामने से ताड़नकर ॥ ९८ ॥ कहा कि हे कन्याधर्षणलालस, दुष्ट ! तू उठ व यहां मेरे साथ युद्धकर क्योंकि मैं सोतेहुये शत्रुको नहीं मारताहूं ॥ ९९ ॥ व ऐसा सुन कर सम्भ्रमसमेत हुआ वह दनुका पुत्र इसभांति बारबार बोला कि हे सुन्दरि ! तुम मुझको त्रिशूलदो ॥ १०० ॥ कौन यह मृत्युके घरमें प्राप्तहै व आज किससे काल रुष्ट है व आज कौन आयु से हीनहै जोकि मेरे नेत्रगोचर में प्राप्तहुआहै ॥ १ ॥ हे सुन्दरि ! त्रिशूल से क्या है क्योंकि यह अल्पमनुष्य, मेरे प्रचण्ड भुजदण्ड की खजुली खजुवानेको समर्थ न होगा ॥ २ ॥ और तुम मतडरो मेरा कौतुकदेखो कि इससमय यह मेरा भक्ष्यहै व मुझसे डरेहुये काल करके भेंटभावसे पठायागया

है ॥ ३ ॥ इसप्रकार उच्चस्वर से कहकर उस दानव ने मुष्टिघात से शिलासे अधिक कठोर हृदय में राजाको शीघ्रही ताड़ित किया ॥ ४ ॥ परन्तु चक्रधारी विष्णुजी से रक्षणकिये हुये उस कठोर उरवाले ने थोड़ी से थोड़ी भी पीड़ा को न जाना बरन उस दानवका हाथही दूखनेलगा ॥५॥ अनन्तर क्रोधवान् राजाकरके मुखमे चपेटासे माराहुआ आघूर्णित मस्तकवाला वह पृथिवीमे पतितहोकर फिर उठकर खड़ाहोगया ॥ ६ ॥ और धैर्य्यको धारणकर बड़े बलवान् दानवने वचन को कहा दानव बोला कि, मैंने जानलिया तुम मनुष्य नहींहो किन्तु मनुष्यरूप से विष्णुहो ॥ ७ ॥ व दानवों के काल तुम अवसर को प्राप्तहोकर मेरे मारने के लिये आयेहो ॥ ८ ॥ हे

लातिकठिनेद्रुतम् ॥ ४ ॥ सचक्रिणाकृतत्राणः पीडामल्पीयसीमपि ॥ नोवेदकठिनोरस्कस्तत्करंप्रत्युतानुदत् ॥ ५ ॥ अथकोपवताराज्ञा हतोवक्त्रेचपेटया ॥ आघूर्णितशिराभूमौपतित्वापुनरुत्थितः ॥ ६ ॥ उवाचचवचोधैर्यमवष्टभ्यमहाबली ॥ दानवउवाच ॥ ज्ञातंनत्वंमनुष्योसिनृरूपेणचतुर्भुजः ॥ ७ ॥ आयातश्छिद्रमासाद्य हन्तुंमान्दानवान्तकः ॥ ८ ॥ एकंविधेहिमधुभिद्यदित्वंबलवानसि ॥ विहायैतन्महच्छूलंयुध्यस्वस्वायुधैर्मया ॥ ९ ॥ त्वयाकपटरूपेणबलिनः कैटभादयः ॥ नबलेनहताःसंख्ये हताएवच्छलेनहि ॥ १० ॥ बलिंपातालमनयस्त्वंनृवामनतान्दधत् ॥ नृमृगत्वेनभवताहिरण्यकशिपुर्हतः ॥ ११ ॥ त्वयाजटिलरूपेण लङ्केशोविनिपातितः ॥ गोपालवेषमासाद्य कंसाद्याघातितास्त्वया ॥ १२ ॥ स्त्रीरूपेणाहरस्त्वन्तु विप्रलाप्यासुरान्सुधाम् ॥ यादोरूपेणभवता शङ्खाद्यानिहताबहु ॥ १३ ॥ मायावीनामग्रगण्य

मधुदैत्य के जीतनेवाले ! जो तुम बलवान्हो तो एक बातकरो कि इस बडेभारीत्रिशूल को छोडकर अपने आयुधों से मेरे साथ युद्धकरो ॥ ९ ॥ व कपटरूपधारी तुमने संग्राम में कैटभादि बलवान् दैत्यको बलसेही नही मारा किन्तु छलसेही मारा है ॥ १० ॥ और मनुष्यके समान वामनरूपको धारतेहुये तुमने बलिको पाताल मे पठायाहै व आपने नृसिंहभाव से हिरण्यकशिपु को हनाहै ॥ ११ ॥ व तुमने जटाधारी रामरूप से रावण को मारा है और तुमने गोपवेष को प्राप्तहोकर कंसादिको को मरायाहै ॥ १२ ॥ व तुमने स्त्रीरूपसे दैत्यों को विशेषता से प्रलाप कराकर याने उनमे परस्पर बातोंसे झगड़ा कराकर अमृतको हरलियाहै और आपने

मत्स्यरूप से शङ्खासुरादि बहुते दैत्यों को माराहै ॥ १३ ॥ हे मायावियोंमें अग्रगण्य, सर्वमर्मज्ञसाधक ! जो तुम त्रिशूल को त्यागोगे तो मैं तुमसे नहीं डरताहूं ॥ १४ ॥ अथवा कादरों के योग्य इन दीनता समेत वचनों से क्या है क्योंकि तुम त्रिशूल को न त्यागोगे और मैं संग्राम में तुमको न-जीतूंगा ॥ १५ और आज या प्रातःकाल देहधारीमात्र को अवश्यही मरना योग्यहै इससे बल व छलसे भी तुम्हारे हाथसे मृत्यु बहुत श्रेष्ठहै ॥ १६ ॥ यह अच्छे आचारवाली विद्याधरी कन्या मुझ से दूषित नहीं हुई व साक्षात् लक्ष्मीही मानने योग्य है और मैंने तुम्हारे अर्थ इसकी रक्षा कियाहै ॥ १७ ॥ ऐसा कहकर बहुत निठुर जैसेहो वैसे दनुके पुत्रने पर्वत से

सर्वमर्मज्ञसाधक॥ नत्वत्तोहंबिभेम्यद्य यदिशूलंविहास्यसि॥१४॥ अथवादैन्यवचनैः किमेभिःकातरोचितैः॥नत्यक्ष्यसि त्रिशूलंत्वं नत्वांजेष्याम्यहंरणे ॥ १५ ॥ अवश्यमेवमर्तव्यमद्यप्रातःशरीरिणा ॥ त्वत्करेणवरंमृत्युर्बलेनापिच्छलेन वा ॥ १६ ॥ इयंविद्याधरीकन्यानमयादूषितासती ॥ साक्षाच्छ्रीरेवमन्तव्या तवार्थेरक्षितामया ॥ १७ ॥ इत्युक्त्वावा मदोर्दण्डप्रहारेणातिनिष्ठुरम् ॥ निजघानदनोःसूनुस्तंशिलोच्चयकम्पिना ॥ १८ ॥ नृपोवक्षःप्रहारन्तं विषह्यरणमूर्द्ध नि ॥ लक्ष्यीचकारतद्वक्षस्त्रिशूलंतोलयन्करे ॥ १९ ॥ निजघानमहाबाहुः सचप्राणाञ्जहौक्षणात् ॥ इत्थंकङ्कालकेतुं स निहत्यसुरकम्पनम् ॥ २० ॥ विद्याधरींप्रपश्यन्तीं प्राहहृष्टतनूरुहाम् ॥ नारदस्यमुनेर्वाक्यात्तवसुश्रोणिवाञ्छितम् ॥ २१ ॥ कृतंमयाकृतज्ञेकिंकरवाण्यधुनावद ॥ श्रुत्वेतितस्यसावाक्यं प्राहगम्भीरचेतसः॥ २२॥ मलयगन्धिन्युवाच ॥

चलतेहुये वामभुजदण्डप्रहार से उस राजाको ताड़न किया ॥ १८ ॥ और संग्रामशिर में उस उरताड़न को विशेषता से सहकर हाथ में त्रिशूलको तौलतेहुये नरेश ने उस दानव के वक्षस्थल को लक्ष्य (निशाना) बनाया ॥ १९ ॥ व उस महाबाहुने उस त्रिशूलसे उसको मारा और उस दानव ने क्षणमें प्राणों को छोड़दिया इस प्रकार देवोंके कँपानेवाले कङ्कालकेतु को मारकर वह ॥ २० ॥ बहुतही देखती हुई हर्ष से उठे रोमोंवाली विद्याधरी से बोला कि हे सुश्रोणि ! नारदमुनि के वचन से तेरे वाञ्छितको ॥ २१ ॥ मैंने किया और हे कियेहुये उपकारके जाननेवारी प्यारी ! इस समय मैं क्याकरूं उसको तुम कहो, इसभांति उस गम्भीर चित्तवाले के वचन

की सुनकर उसने कहा ॥ २२ ॥ मलयगन्धिनी बोली कि, हे सजीवनमूरि के समान, उदारबुद्धिवाले, वीर ! प्रश्न है कि आप अपने प्राणों से बिकानीहुई अदूषित, कुलकन्या मुझसे क्या पूंछतेहो ॥ २३ ॥ ऐसे कन्याके कहतेही अतर्कित आनेवाले स्वेच्छाचारी नारदमुनिजी देवलोक से आकर फिर प्राप्तहुये ॥ २४ ॥ तदनन्तर उन मुनिसत्तम को देखकर प्रणामकियेहुये व मुनिके दिये आशीर्वादवाले वे दोनों संतुष्ट होगये ॥ २५ ॥ और नारदमुनि करके व्याह की विधिसे अभिषेक युक्तहोकर मंगल कियेहुये वे नारदजी की बताई गली से चलेगये ॥ २६ ॥ और उस मलयगन्धिनी से संयुक्त वह अमित्रजित् नरेश, पुरवासी जनों से किये हुये मंगल-

अथोदारमतेवीर निजप्राणैःपणीकृताम् ॥ किंमाम्पृच्छसिजीवातो कुलकन्यामदूषिताम् ॥ २३ ॥ इतिब्रुवत्यांकन्यायांपुनःस्वैरचरोमुनिः ॥ अतर्किततागमःप्राप्तो नारदोदेवलोकतः ॥ २४ ॥ ततस्तुतुषतुस्तौतु दृष्ट्वातम्मुनिसत्तमम् ॥ कृतप्रणामौमुनिना परिविश्राणिताशिषौ ॥ २५ ॥ पाणिग्रहेणविधिनाभिषिक्तौनारदेनतु ॥ जग्मतुर्नारदादिष्टवर्त्मनाकृतमङ्गलौ॥२६॥ तयामलयगन्धिन्या युतःसोमित्रजिन्नृपः॥पुरींवाराणसींप्राप्यपौरैर्विहितमङ्गलाम्॥२७॥यद्वीक्षणादपिनरोनारकींनैवजातुचित् ॥ गतिमाप्नोतिमेधावीताम्पुरीमविशन्नृपः ॥२८॥ यस्यांपुर्यांप्रवेशंनलभन्तेवासवादयः॥ कैवल्यजनयित्र्यांहितांपुरीमविशन्नृपः ॥ २९ ॥ अपिस्मृत्वापुरींयांवैकाशींत्रैलोक्यकाङ्क्षिताम् ॥ ननरोलिप्यतेपापैस्तांविवेशसभूपतिः ॥ ३० ॥ यस्यांपुर्यांप्रविष्टोनामहद्भिरपिपातकैः ॥ नाभिभूयेततांकाशींप्राविशत्सविशांपतिः ॥ ३१ ॥ सापिविद्याधरीकाशीसमृद्धिंवीक्ष्यदूरतः ॥ निनिन्दस्वर्गलोकञ्चपातालनगरीमपि ॥ ३२ ॥ प्राप्यामित्रजितंकान्तं

वाली काशीपुरी को प्राप्तहुआ ॥ २७ ॥ जिसके देखने से भी मनुष्य नरककी गतिको कभी भी नहीं प्राप्त होता है उस पुरी में बुद्धिमान् नृपने प्रवेश किया ॥ २८ ॥ व कैवल्य मोक्षकी उपजानेवाली जिस पुरी में इन्द्रादिक देव भी प्रवेश को नहीं पाते हैं उस में नृपने प्रवेश किया ॥ २९ ॥ व त्रिलोक से चाही हुई जिसही काशीपुरीको सुमिरकर भी मनुष्य पापोंसे नहीं लिप्त होता है उस में उस भूप ने प्रवेश किया ॥ ३० ॥ व जिस पुरीमें पैठाहुआ मनुष्य, बड़े भी पापों से नहीं दबता है उस काशी में उस प्रजापाल ने प्रवेश किया ॥ ३१ ॥ और वह विद्याधरीभी दूर से काशी की समृद्धि को देखकर स्वर्गलोक व पातालनगरी को भी

निन्दती भई ॥ ३२ ॥ आश्चर्य है कि परमानन्द की खानि काशीपुरीको देखकर भी वह स्त्री जैसे आनन्दितहुई वैसे अमित्रजित्को पति पाकर भी नहीं प्रसन्न हुई ॥ ३३ ॥ और अपना कों कृतार्थ सी मानती हुई वह मनस्विनी उस पति से व काशी से भी परमानन्द को प्राप्तहुई ॥ ३४ ॥ और वह अमित्रजित् भी मलयगंधिनी स्त्री को पाकर धर्मप्रधान (धर्मपीठ) को भलीभांति से सेवनकर उत्तम वाञ्छित सुखको प्राप्तहुवा ॥ ३५ ॥ एक समय पतिकी भक्तिवाली पुत्रार्थिनी उस रानीने विष्णु भक्तिमें परायण उस पतिसे एकान्तमें विज्ञापना किया ॥ ३६ ॥ रानी बोली कि, हे भूप ! जो स्वामीकी आज्ञाहोवे तौ पुत्रकी कामनावाली मैं वाञ्छितदायक अभीष्ट-

तथाहृष्टानसावधूः ॥ यथादृष्ट्वाप्यहोकाशींपरमानन्दकेतनम् ॥ ३२ ॥ साकृतार्थमिवात्मानंमन्यमानामनस्विनी ॥ तेनपत्याचकाश्याचपरांनिर्वृतिमाययौ ॥ ३४ ॥ सोप्यमित्रजिदासाद्यपत्नींमलयगन्धिनीम् ॥ धर्मप्रधानंसंसेव्यकामं प्रापोत्तमंसुखम् ॥ ३५ ॥ सैकदातंपतिंराज्ञीविष्णुभक्तिपरायणम् ॥ रहोविज्ञापयाञ्चक्रेपतिभक्तासुतार्थिनी ॥ ३६ ॥ राज्ञ्युवाच ॥ भूपाभीष्टतृतीयायाश्चरिष्यामिमहाव्रतम् ॥ यद्यनुज्ञाभवेद्भर्तुःपुत्रकामार्थितप्रदम् ॥ ३७ ॥ राजोवाच ॥ देव्यभीष्टतृतीयायाव्रतंकीदृग्भवेदिद ॥ कादेवतातत्रपूज्याविधानञ्चापिकिंफलम् ॥ ३८ ॥ नारीपत्यननुज्ञाताया व्रतादिसमाचरेत् ॥ जीवन्तीदुःखिनीसास्यान्मृतानिरयमृच्छति ॥ ३९ ॥ इतिराज्ञोदिताराज्ञीप्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ इतिकर्तव्यतान्तस्यव्रतस्यसरहस्यकाम् ॥ १४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवीरेश्वराविर्भावेमित्रजित्पराक्रमोनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

तृतीया का व्रत करूंगी ॥ ३७ ॥ राजा बोला कि हे देवि ! अभीष्टतृतीया में कैसा व्रत होवे है उसको तुम कहो कि उसमे कौनसी देवता पूजनेयोग्य है व उसका क्या विधान है और क्या फलहै ॥ ३८ ॥ पतिसे पूंछने के बाद आज्ञाको न पायेहुई जो स्त्री व्रतादि को भलीभांति करे वह जीवतीही दुःखिनी होवैहै और मरी हुई नरकको जातीहै ॥ ३९ ॥ इस प्रकार राजासे कहीहुई रानीने उस व्रतकी रहस्य समेत कर्त्तव्यताको इसभांति कहने के लिये उपक्रम किया याने लगालगाया ॥ १४० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेवीरेश्वराविर्भावेऽमित्रजित्पराक्रमोनामद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ❀ ॥

दो० । तीन असी अध्याय में व्रतविधि वर्णन जानि । श्रीवीरेश्वर को बहुरि आविर्भाव बखानि ॥ रानी बोली कि, हे पृथ्वीनाथ ! मैं इस व्रतके विधान व फल और इष्टदेवताको यथातथ्य से कहती हूं तुम अवधान करो याने जानो या सुनो॥ १ ॥ पूर्वसमयमें शोभा समेत या लक्ष्मी के समान मुखवाली, पुत्रार्थिनी कुबेरकी स्त्री ऋद्धिके आगे ब्रह्माजी के पुत्र नारदमुनि ने इस व्रतको कहाहै ॥ २ ॥ और उस देवीने किया अनन्तर नलकूबरनाम पुत्रहुआ व अन्यभी बहुती स्त्रियोंने इस व्रतसे पुत्रोंको प्राप्त किया है ॥ ३ ॥ उन्नत मुखवाले स्तनको पीतेहुये बालक से सहित व सब विधानों को जानतीहुई गौरी (पार्वती) जी इस व्रत में विधिसेही

राज्ञ्युवाच ॥ अवधेहिधरानाथकथयामियथातथम् ॥ व्रतस्यास्यविधानञ्चफलञ्चाभीष्टदेवताम् ॥ १ ॥ पुरापुरःश्रीदपत्न्याःश्रीमुख्याब्रह्मसूनुना ॥ नारदेनसुतार्थिन्याव्रतमेतदुदीरितम् ॥ २ ॥ चीर्णञ्चाथतयादेव्यापुत्रोऽभून्नलकूबरः ॥ अन्याभिरपिबह्वीभिःपुत्राःप्राप्ताव्रतादितः ॥ ३ ॥ विधिनाप्यत्रसम्पूज्यागौरीसर्वविधानवित् ॥ स्तनन्धयेनसहिताधयतास्तनमुन्मुखम् ॥ ४ ॥ मार्गशीर्षतृतीयायांशुक्लायांकलशोपरि ॥ ताम्रपात्रन्निधायैकंतण्डुलैःपरिपूरितम् ॥५॥ अविच्छिन्नंनवीनञ्चरजनीरागरञ्जितम् ॥ वासःपात्रोपरिन्यस्यसूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंपरम् ॥ ६ ॥ तस्योपरिशुभंपद्मंविरश्मिविकासितम् ॥ तत्कर्णिकायाउपरिचतुःस्वर्णविनिर्मितम् ॥ ७ ॥ विधिंसम्पूजयेद्भक्त्यारत्नपट्टाम्बरादिभिः ॥ पुष्पैर्नानाविधैरम्यैःफलैर्नारङ्गमुख्यकैः ॥ ८ ॥ सुगन्धैश्चन्दनाद्यैश्चकर्पूरमृगनाभिभिः ॥ परमान्नादिनैवेद्यैःपक्वान्नैर्बहुभङ्गिभिः ॥ ९ ॥ धूपैरगुरुमुख्यैश्चरम्येकुसुममण्डपे ॥ रात्रौजागरणंकार्यंविनिद्रैःपरमोत्सवैः ॥ १० ॥ हस्तमात्रमितेकु

पूजनेयोग्य हैं ॥ ४ ॥ अगहन सुदी तीजमें कलश के ऊपर चावलों से भरेहुये एक ताम्रपात्रको थापकर ॥५॥ जोकि छिद्रहीन व नवीनहो और हरदीके रंगसे रंजितहुये महीन से अधिक महीन वर वस्त्रको पात्रपर धरकर ॥ ६ ॥ उसके ऊपर सूर्य्यकी किरणो से फुलाये हुये शुभ कमल को धरे और उसकी कर्णिका के ऊपर चार सुवर्ण याने साढ़ेतीन तोले या चारतोले सोने से बनाई हुई॥७॥ब्रह्माणीजीकी मूर्त्तिको रत्नजटित रेशमी वस्त्रादि व अनेक प्रकार के रम्यफूल और नारंगीआदि फलो करके भक्तिसे भलीभाति पूजे ॥ ८ ॥ व चन्दनादि सुगन्ध कपूर कस्तूरी व बहुत भेदके पक्वान्न और खीरआदि नैवेद्योंसे ॥ ९ ॥ व अगर आदि धूपोंसे पूजाकर मनोहर और

फूलों से व्याप्त मण्डप में निद्रारहित अधिक उत्तम उत्सववाले लोगों को रात्रिमें जागरण करना चाहिये ॥ १० ॥ और मन्त्रोंको जानताहुआ ब्राह्मण व क्षत्रिय व वैश्य, हस्तप्रमाण कुण्ड में "जातवेदसे सुनवाम सोमं" इस पूरेमन्त्रसे घृत और शहदसे बोरकर हवनकरे ॥ ११ ॥ किन्तु आपसेही फूलेहुये हजार कमलों को होम कर फिर जोकि कपिलागऊ नईव्यानी सुशीला दूधवाली ॥ १२ ॥ व भूषणोंसमेत और अच्छे लक्षणों से सहितहो उसको आचार्य्य के लिये देने व नवीन वस्त्रों से विभूषित स्त्री और पुरुष दोनों भक्तिसे उपासकर ॥ १३ ॥ प्रातःकालही चौथिमें स्नानकर फिर वस्त्र, भूषण, माला और दक्षिणाओं से आचार्य्य को भलीभांति पूज कर आदर से आनन्दसंयुत होवें ॥ १४ ॥ और इस आगे कहेजाते हुये मन्त्रको भलीभांति उच्चारण करताहुआ व्रतकर्त्ता का जोड़ा सकल सामग्री समेत उस मूर्त्ति

ण्डेजातवेदसइत्यृचा ॥ घृतेनमधुनाप्लुत्यजुहुयान्मन्त्रविद्द्विजः ॥ ११ ॥ सहस्रंकमलानाञ्चस्मेराणांस्वयमेवहि ॥ नवप्रसूतांकपिलांसुशीलाञ्चपयस्विनीम् ॥ १२ ॥ दद्यादाचार्यवर्यायसालङ्कारांसलक्षणाम् ॥ उपोष्यदम्पतीभक्त्यानवाम्बरविभूषितौ ॥ १३ ॥ प्रातःस्नात्वाचतुर्थ्याञ्चसम्पूज्याचार्यमादृतः ॥ वस्त्रैराभरणैर्माल्यैर्दक्षिणाभिर्मुदान्वितौ ॥ १४ ॥ सोपस्कराञ्चताम्मूर्तिमाचार्यायनिवेदयेत् ॥ समुच्चरन्निमंमन्त्रंव्रतकृन्मिथुनंमुदा ॥ १५ ॥ नमोविश्वविधानज्ञेविधेविविधकारिणि ॥ सुतंवंशकरंदेहितुष्टास्मान्व्रताच्छुभात् ॥ १६ ॥ सहस्रंभोजयित्वाथद्विजानांभक्तिपूर्वकम् ॥ भुक्तशेषेणचान्नेनकुर्याद्वैपारणंततः ॥ १७ ॥ इत्थमेतद्व्रतंराजंश्चिकीर्षामित्वयासह ॥ कुरुचैतत्प्रियंमह्यमभीष्टफललब्धये ॥ १८ ॥ इतिभूपालवर्येणश्रुत्वासंहृष्टचेतसा ॥ मुनेव्रतंसमाचीर्णंसान्तर्वत्नीबभूवह ॥ १९ ॥ तयाथप्रार्थितागौरीगर्भिण्याभक्ति

को आचार्य्य के लिये आनन्द से निवेदित करे याने दैदेवे ॥ १५ ॥ हे विश्वविधानज्ञे, विविधकारिणि, ब्रह्माणि ! तुम्हारे लिये नमस्कारहो और इस शुभव्रतसे संतुष्ट हुई तुम वंशकर्त्ता पुत्रको देवो ॥ १६ ॥ उसके बाद ब्राह्मणों के हजारा को भक्तिपूर्वक भोजन कराकर तदनन्तर भुक्तशेष (ब्रह्मभोजमें बचेहुये) अन्नसेही पारणाको करे ॥ १७ ॥ हे राजन् ! इसभांति तुम्हारे साथ मैं इस व्रतको करना चाहतीहूं और आप अभीष्ट फल मिलने के लिये मेरे इस प्रियको करो ॥ १८ ॥ हे मुने ! ऐसा सुन कर बहुत प्रसन्नमन महाराज ने स्त्रीके साथ व्रतको भलीभांति किया और वह आनन्दसे गर्भवती हुई ॥ १९ ॥ अनन्तर उस गर्भवती रानीने भक्तिमें संतोषित गौरी

देवी से प्रार्थना किया कि हे महामाये ! विष्णुके अंशसे उपजे पुत्रको मुझे दो ॥ २० ॥ जोकि उत्पन्न हुआ मात्र स्वर्ग को चलाजावे और फिर यहांही लौटआवे व सदाशिवमें अत्यन्तभक्त और सब भूतल मे प्रसिद्ध ॥ २१ ॥ व दूधपीने विनाही क्षणभरमें सोलह वर्ष के आकारवाला होजावे हे गौरि ! जैसे ऐसाहुआ मेरा पुत्र होवे तुम वैसेही करो ॥ २२ ॥ और भक्तिसे सन्तुष्ट श्रीपार्वतीजी करके भी वैसाहो ऐसा कहीहुई उस रानीने भी कालसे मूलनक्षत्र में पुत्रको उपजाया ॥ २३ ॥ तदनन्तर हितकारी मन्त्रियों ने सौरि में टिकीहुई उस रानीसे विज्ञापना किया कि हे देवि ! जो तुम राजाकी चाहिनी हो,तो दुष्टनक्षत्र में उत्पन्नहुये इस पुत्रको त्यागदेवो ॥२४॥

तोषिता ॥ पुत्रंदेहिमहामायेसाक्षाद्विष्णवंशसम्भवम् ॥ २० ॥ जातमात्रोव्रजेत्स्वर्गंपुनरायातिचात्रवै ॥ भक्तःसदाशिवेऽत्यर्थंप्रसिद्धःसर्वभूतले ॥ २१ ॥ विनैवस्तन्यपानेनषोडशाब्दाकृतिःक्षणात् ॥ एवंभूतःसुतोगौरियथास्यात्तथाकुरु ॥ २२ ॥ मृडान्यापितथेत्युक्ताराज्ञीभक्त्यातितुष्टया ॥ अथ कालेनतनयंमूलर्क्षेसाप्यजीजनत् ॥ २३ ॥ हितैरमात्यैरथसा विज्ञप्तारिष्टसंस्थिता ॥ देविराजार्थिनीचेत्त्वंत्यजदुष्टर्क्षजंसुतम् ॥ २४ ॥ सामन्त्रिवाक्यमाकर्ण्यकेवलंपतिदेवता ॥ अत्याक्षीत्तंतथाप्राप्तंतनयंनयकोविदा ॥ २५ ॥ धात्रेयिकांसमाकार्यप्राहेदंसान्नृपाङ्गना ॥ पञ्चमुद्रेमहापीठेविकटानाम मातृका ॥ २६ ॥ तदग्रेस्थापयित्वामुम्बालंधात्रेयिकेवद ॥ गौर्यादत्तःशिशुरसौतवाग्रेविनिवेदितः ॥ २७ ॥ राज्यापत्युः प्रियैषिण्यामन्त्रिविज्ञप्तिनुन्नया ॥ सापिराज्ञ्युदितंश्रुत्वाशिशुंलास्यशशिप्रभम् ॥ २८ ॥ विकटायाःपुरःस्थाप्यगृहंधा

ऐसा मन्त्रियोंका वचन सुनकर नीतिमें पण्डिताव केवलपतिको देवता माननेवाली उसने वैसे प्राप्तहुये उस पुत्रको त्याग दिया ॥ २५ ॥ किन्तु धाईको बुलवाकर उस रानीने इस वचनको कहा कि पञ्चमुद्र नामक महापीठ मे विकटा नाम मातृकाहै ॥ २६ ॥ हे धात्रेयिके ! उसके आगे इस बालकको थापकर कहो कि श्रीगौरीदेवी से दियागया हुआ यह पुत्र आपके आगे विशेषता से निवेदित है ॥ २७ ॥ क्योकि मन्त्रियों की विज्ञापना से प्रेरितहुई पतिके प्यारकी इच्छावाली रानीने पठाया है इसभांति रानीके कहेहुये को सुनकर कमनीय चन्द्रमा के समान प्रकाशवान् उस बालक को वह ॥ २८ ॥ धाई विकटादेवी के आगे धरकर फिर घरको चलीआई

अनन्तर उस विकटा देवीने योगिनियोंको भलीभांति सबओर से बुलाकर ॥२९॥ कहा कि इस बालकको मातृकागण के आगे शीघ्रही लेजावो व उनकी आज्ञाको करो और इसको बहुत यत्नसे पालो ॥ ३० ॥ और विकटाके वाक्यसे आकाशगामिनी उन योगिनियोंने क्षणभरमें आकाशमार्गसे उस बालक को वहां प्राप्त किया कि जहां ब्राह्मी आदि मातृकायें थीं ॥ ३१ ॥ व योगिनियों के वृन्द (समूह) ने प्रणामकर और मातृकाओंके आगे सूर्य्य से तेजस्वी बालकको धरकर विकटाके बोलेहुये वचनको कहा ॥३२॥ व ब्रह्माणी,वैष्णवी,रौद्री,वाराही,नारसिंही,कौमारी,माहेन्द्री,चामुंडा और चंडिकाभी ॥ ३३ ॥ इन नव मातृकाओंने विकटासे पठाये उस सुन्दर बालकको देखकर तदन-

त्रेयिकागता ॥ अथसाविकटादेवीसमाहूयचयोगिनीः॥ २९॥ उवाचनयतत्विप्रंशिशुंमातृगणाग्रतः॥ तासामाज्ञांचकुरुतरक्षतामुंप्रयत्नतः॥ ३० ॥ योगिन्योविकटावाक्यात्खेचर्यस्ताःक्षणेनतम्॥ निन्युर्गगनमार्गेणब्राह्मयाद्यायत्रमातरः॥ ३१ ॥ प्रणम्ययोगिनीवृन्दंतंशिशुंसूर्यवर्चसम् ॥ पुरोनिधायमातृणांप्रोवाचविकटोदितम् ॥ ३२ ॥ ब्रह्माणीवैष्णवीरौद्रीवाराहीनारसिंहिका ॥ कौमारीचापिमाहेन्द्रीचामुण्डाचैवचण्डिका ॥ ३३ ॥ दृष्ट्वातंबालकंरम्यंविकटाप्रेषितंततः॥ पप्रच्छुर्युगपड्डिम्भंकस्तेतातःप्रसूश्चका ॥ ३४ ॥ मातृभिश्चेतिपृष्टःसयदाकिञ्चिन्नवक्तिच ॥ तदातद्योगिनीचक्रंप्राहमातृगणस्त्विति ॥ ३५ ॥ राजयोग्योभवत्येषमहालक्षणलाञ्छितः॥ पुनस्तत्रैवनेतव्योयोगिन्यस्त्वविलम्बितम् ॥ ३६ ॥ पञ्चमुद्रामहादेवीतिष्ठतेयत्रकाम्यदा ॥ यस्याःसंसेवनान्नृणांनिर्वाणश्रीरदूरतः॥ ३७॥ सर्वत्रशुभजन्मिन्यांकाश्यांमुक्तिःपदेपदे ॥ तथापिसविशेषंहितत्पीठंसर्वसिद्धिकृत् ॥ ३८ ॥तत्पीठसेवनादस्यषोडशाब्दाकृतेःशिशोः॥ सिद्धिर्भवित्री

न्तर एकही साथ बच्चे से पूंछा कि कौन तुम्हारा पिताहै और कौन माताहै ॥ ३४ ॥ इसभांति मातृकाओं से पूंछाहुआ वह जब कुछ न बोला तब मातृकागणने उस योगिनी समूहसे कहा ॥३५॥ कि हे योगिनियो ! बड़े लक्षणोंसे चिह्नित यह राजाके योग्यहै इसलिये फिर वहांही शीघ्रही लेजाने योग्यहै ॥ ३६ ॥ कि जहां वाञ्छित फल देनेवाली पंचमुद्रानाम वह महादेवी टिकी हैं जिनकी भलीभांति सेवासे मोक्षलक्ष्मी मनुष्यों के समीपमें है ॥ ३७ ॥ व मंगलों के जन्मवाली काशी में सर्वत्र स्थान स्थानमें मुक्तिहै तो भी सब सिद्धिकर्त्ता वह पीठ विशेषता समेतही है ॥ ३८ ॥ उस पीठकी सेवा और विश्वनाथके उत्तम अनुग्रहसे सोलह वर्ष के समान आकारवाले इस बालककी श्रेष्ठ

सिद्धि होवेगी ॥३९॥ एस मातृकागणके आशीर्वादों से युक्त उसको मातृकाओंके वचनसे योगिनियोंने क्षणभरमें पंचमुद्राके नामसे चिह्नित पीठमें फिर प्राप्तकिया ॥ ४० ॥ और स्वर्गलोकसे यहां आयाहुआ वह उस महापीठको भलीभांति प्राप्तहोकर आनन्दवन में बड़ीभारी दिव्य तपस्याको तपनेलगा ॥ ४१ ॥ व अचल इन्द्रिय और मनवाले उस राजकुमारकी अतीव तीव्र तपस्यासे श्रीपार्वतीजीके पति प्रसन्नहुये ॥ ४२ ॥ और उसके आगे शिवजी लिंगरूपसे प्रकट होगये व बोले कि हे राजकुमार! मैं प्रसन्नहूं तुम वरको कहो ॥ ४३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, बड़ी दयासे सात पातालको फोड़कर आगे टिकेहुये सब ज्योतिमय सब वेदमय लिंगको देखकर ॥ ४४ ॥ और दण्डके

परमाविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ ३९ ॥ एवंमातृगणाशीर्भिर्योगिनीभिःक्षणेनहि ॥ प्रापितोमातृवाक्येनपञ्चमुद्राङ्कितं पुनः ॥ ४० ॥ संप्राप्यतन्महापीठंस्वर्गलोकादिहागतः ॥ आनन्दकाननेदिव्यंततापविपुलंतपः ॥ ४१ ॥ तपसातिवतीव्रेणनिश्चलेन्द्रियचेतसः ॥ तस्यराजकुमारस्यप्रसन्नोभूदुमाधवः ॥ ४२ ॥ आविर्बभूवपुरतोलिङ्गरूपेणशङ्करः ॥ प्रोवाचचप्रसन्नोस्मिवरंब्रूहिनृपाङ्गज ॥ ४३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ सर्वज्योतिर्मयंलिङ्गंपुरतोवीक्ष्यवाङ्मयम् ॥ सप्तपातालमुद्भिद्यस्थितंबृहदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ प्रणम्यदण्डवद्भूमौपरितुष्टावधूर्जटिम् ॥ सूक्तैर्जन्मान्तराभ्यस्तैःसुहृष्टोरुद्रदैवतैः ॥ ४५ ॥ ततःप्रसन्नोभगवान्देवदेवोमहेश्वरः ॥ सन्तुष्टस्तपसातस्यप्रोवाचवृषभध्वजः ॥ ४६ ॥ देवदेवउवाच ॥ वरंवरयसंतप्ततपसाक्लेशितंवपुः ॥ त्वयेदंबालवपुषावशीकृतंमनोमम ॥४७॥ शिवोक्तंचसमाकर्ण्यवरदानंपुनःपुनः ॥ वरंचप्रार्थयांचक्रेपरिहृष्टतनूरुहः ॥ ४८ ॥ कुमारउवाच ॥ देवदेवमहादेवयदिदेयोवरोमम ॥ तदत्रभवतास्थेयंभवतापहतासदा ॥ ४९ ॥

समान पृथिवीमें प्रणामकर परम प्रसन्न होकर उसने अन्य जन्मों में अभ्यास कियेहुये व रुद्रदेवतावाले सूक्तोंसे जटाभारधारी शिवजीकी स्तुतिकिया ॥ ४५ ॥ तदनन्तर उसके तपसे संतुष्ट, देवोंकेदेव, ऐश्वर्य्यसम्पन्न, प्रसन्न, वृषभध्वज, महेशजीने कहा ॥ ४६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, भलीभांति तपस्या तपनेवाले बालरूप तुमने इस देहको क्लेशितकिया और मेरे मनको वश करलिया इससे तुम वरको स्वीकारकरो ॥ ४७ ॥ और बार बार शिवजीके कहेहुये वरदानको सुनकर फिर सब ओर आनन्दसे [illegible] वरको प्रार्थनाकिया ॥ ४८ ॥ राजकुमार बोला कि, हे देवोंकेदेव, महादेवजी! जो मुझको वरदेने योग्यहै तो संसारतापहारी आपको यहां सदा

टिकना चाहिये ॥ ४९ ॥ हे स्वामिन्, शम्भो ! इस लिंगमें टिकेहुये आप मुद्रादिकों से चिह्न करने विना और मंत्रके विना भी भक्तोंके मनोरथको पूर्णकरो ॥ ५० ॥ व दर्शन स्पर्शन और नमस्कारसे यहां उत्तम सिद्धिको देवो व मन वचन और देहके कर्मोंसे जे इस लिंगके भक्तहैं ॥ ५१ ॥ उनमें सदैव दया करना चाहिये यहही मेरा वरहै इसभांति उसके वरको सुनकर लिंगरूप समर्थ शिवजी बोले ॥ ५२ ॥ कि हे वीर ! वैष्णवके पुत्र तुमने जो कहा वह ऐसेही होवे और विष्णुके भक्त राजा अमित्रजित् पितासे आप ॥ ५३ ॥ विष्णुका अंशही उत्पन्न हुयेहो हे मेरी भक्तिमें तत्पर, पुत्र, वीर ! तुम्हारे नामसे यह लिंग वीरेश्वरनामक होवेगा ॥ ५४ ॥ और काशीमें भक्तों के

अस्मिँल्लिङ्गेस्थितःशम्भोकुरुभक्तसमीहितम् ॥ विनामुद्रादिकरणंमन्त्रेणापिविनाविभो ॥ ५० ॥ दिशसिद्धिंपराम त्रदर्शनात्स्पर्शनान्नतेः ॥ अस्यलिङ्गस्ययेभक्तामनोवाक्कायकर्मभिः ॥ ५१ ॥ सदैवानुग्रहस्तेषुकर्तव्योवरएषमे ॥ इतितद्वरमाकर्ण्यलिङ्गरूपोवदत्प्रभुः ॥ ५२ ॥ एवमस्तुयदुक्तंतेवीरवैष्णवसूनुना ॥ जनेतुर्विष्णुभक्ताच्चराज्ञोऽमित्र जितोभवान् ॥ ५३ ॥ विष्ण्वंशएवमुत्पन्नोममभक्तिपराङ्गज ॥ वीरवीरेश्वरंनामलिङ्गमेतत्त्वदाख्यया ॥ ५४ ॥ काश्यांदास्यत्यभीष्टानिभक्तानांचिन्तितान्यहो ॥ अस्मिँल्लिङ्गेसदावीरस्थास्याम्यद्यदिनावधि ॥ ५५ ॥ दास्यामिच परांसिद्धिमाश्रितेभ्योनसंशयः ॥ परंनमहिमानंमेकलौकश्चिच्चवेत्स्यति ॥ ५६ ॥ यस्तुवेत्स्यतिभाग्येनसपरांसिद्धि माप्स्यति ॥ अत्रजप्तंहुतंदत्तंस्तुतमर्चितमेववा ॥ ५७ ॥ जीर्णोद्धारादिकरणमक्षय्यफलहेतुकम् ॥ त्वंतुराज्यंपरंप्राप्य सर्वभूपालदुर्लभम् ॥ ५८ ॥ भुक्त्वाभोगांश्चविपुलानन्तेसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ पुरीवाराणसीरम्यासर्वस्मिञ्जगतीतले ॥ ५९ ॥

विचारे वाञ्छितोंको देवेगा अहो वीर ! मैं आजके दिनसे लगाकर इस लिंगमें सदा टिकूंगा ॥ ५५ ॥ और सेवकोंको परम सिद्धि दूंगा इसमें संशय नहींहै परन्तु कलियुगमें कोई मेरी महिमाको न जानेगा ॥ ५६ ॥ और जोकि भाग्य से जानेगा वह श्रेष्ठ सिद्धिको पावेगा यहां जपा होमा दिया स्तुतिकिया व पूजितहुआ भी ॥ ५७ ॥ और जीर्णोद्धार करना याने टूटे फूटे मन्दिरादिकोंको बनाना अविनाशी फलका कारणहै और तुम सब राजाओंके दुर्लभ श्रेष्ठ राज्यको प्राप्तहोकर ॥ ५८ ॥ व बहुते भारी भोगो

को भोगकर अन्तमें सिद्धि (मुक्ति) को पावोगे व सब पृथिवीतल में काशीपुरी सुन्दर है ॥ ५९ ॥ उस में भी असि और गंगा इन दो नदियों का संगम पुण्य (मनोहर) है और हयग्रीव तीर्थ उससे भी अधिक पुण्यदायकहै ॥ ६० ॥ जहां हयग्रीव व विष्णुजी भक्तोंके चिन्तित फलों को सौंप देते हैं उस हयग्रीवतीर्थ से गजतीर्थ विशेषता समेत होताहै याने अधिक है ॥ ६१ ॥ जहां स्नानमात्रसे ही हाथी दानके फलको पावे है व उस गजतीर्थ से अधिक पुण्यदाता कोकावराहतीर्थ है ॥ ६२ ॥ वहां कोकावराह के सामने या सबओर से पूजकर जन फिर जन्मसेवी नहीं होता है और कोकावराह से दिलीपेश्वर के समीप में ॥ ६३ ॥ बहुत श्रेष्ठ व

पुण्यस्तत्रापिसम्भेदःसरितोरसिगङ्गयोः ॥ ततोऽपिचहयग्रीवंतीर्थञ्चैवातिपुण्यदम् ॥ ६० ॥ यत्रविष्णुर्हयग्रीवोभक्तचिन्तितमर्पयेत् ॥ हयग्रीवाच्चवैतीर्थाद्गजतीर्थंविशिष्यते ॥ ६१ ॥ यत्रवैस्नानमात्रेणगजदानफलंलभेत् ॥ कोकावराहतीर्थञ्चपुण्यदंगजतीर्थतः ॥ ६२ ॥ कोकावराहमभ्यर्च्यतत्रनोजन्मभाग्जनः ॥ अपिकोकावराहाच्चदिलीपेश्वरसन्निधौ ॥ ६३ ॥ दिलीपतीर्थंसुश्रेष्ठंसद्यःपापहरंपरम् ॥ ततःसगरतीर्थञ्चसगरेशसमीपतः ॥ ६४ ॥ यत्रमज्जन्नरोमज्जेन्नभूयोदुःखसागरे ॥ सप्तसागरतीर्थञ्चशुभंसगरतीर्थतः ॥ ६५ ॥ सप्ताब्धिस्नानजंपुण्यंयत्रस्नात्वानरोलभेत् ॥ महोदधीतिविख्यातंतीर्थंसप्ताब्धितीर्थतः ॥ ६६ ॥ सकृद्यत्राप्लुतोधीमान्दहेदघमहोदधिम् ॥ चौरतीर्थंततःपुण्यंकपिलेश्वरसन्निधौ ॥ ६७ ॥ पापंसुवर्णचौर्यादियत्रस्नात्वाक्षयंव्रजेत् ॥ हंसतीर्थन्ततोपीड्यंकेदारेश्वरसन्निधौ ॥ ६८ ॥ हंसस्वरूपीयत्राहंनयामिब्रह्मदेहिनः ॥ ६९ ॥ ततस्त्रिभुवनाख्यस्यकेशवस्यातिपुण्यदम् ॥ तीर्थंयत्राप्लुतामर्त्यामर्त्यलोकंवि

शीघ्रही पापहरनेवाला दिलीपतीर्थ है व उससे पर सगरेश्वर के समीप में सगरतीर्थ है ॥ ६४ ॥ जहां स्नान करताहुआ नर फिर दुःखसागर में नहीं डूबे है और सगर तीर्थ से शुभ सप्तसागरतीर्थ है ॥ ६५ ॥ जहां स्नानकर मनुष्य सातसमुद्रों के स्नानसे उत्पन्न पुण्यको पावे है व सप्तसागरतीर्थ से पर महोदधि ऐसा तीर्थ विख्यात है ॥ ६६ ॥ जिसमें एकबार भी नहाया हुआ मनुष्य पापसमुद्र को जलावे है और कपिलेश्वरके समीप में चौरतीर्थ उस महोदधिसे भी अधिक पुण्यहै ॥६७॥ जहां स्नानकर सुवर्ण चोरीआदि पाप नाशको प्राप्तहोवे है व उससे भी श्रेष्ठ हंसतीर्थ केदारेश्वर के समीप में है ॥ ६८ ॥ जहां हंसस्वरूपी मैं देहधारियों को परब्रह्ममें पठाताहूं ॥ ६९ ॥

व त्रिभुवननामक केशवका तीर्थ उससे अधिक पुण्यदायक है जिसमें भीगेहुये मनुष्य मर्त्यलोक में नहीं पैठते हैं ॥ ७० ॥ और उससेभी अधिक गोव्याघ्रेश्वरतीर्थ है जहा स्वाभाविक वैरको त्यागकर गऊ और व्याघ्र ये दोनों सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ ७१ ॥ हे वीर ! उससे भी श्रेष्ठ मांधातासञ्ज्ञक तीर्थ है जहां उस भूपने चक्रवर्त्ती पदको पायाहै ॥ ७२ ॥ उमसे भी अधिक पुण्यदाता मुचुकुन्दतीर्थ है जहां नहाया हुआ नर शत्रुओं से कभी नहीं नीचे कियाजाता है ॥ ७३ ॥ उससे भी अधिक कल्याणों के साधनेवाला श्रेष्ठ पृथुतीर्थ है जहां पृथ्वीश्वर नामक लिंगको देख कर मनुष्य भूप होवे है ॥ ७४ ॥ उससे अत्यन्त सिद्धिदाता परशुराम तीर्थ है जहां

शन्तिन ॥ ७० ॥ गोव्याघ्रेश्वरतीर्थंचततोप्यधिकमेवहि ॥ स्वभाववैरमुत्सृज्ययत्रोभौसिद्धिमापतुः ॥ ७१ ॥ ततोपिहि वरंवीरतीर्थंमान्धातृसञ्ज्ञितम् ॥ चक्रवर्तिपदंयत्रप्राप्तंतेनमहीभुजा ॥७२॥ ततोपिमुचुकुन्दाख्यंतीर्थंचातीवपुण्यदम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुरिपुभिर्नाभिभूयते ॥ ७३ ॥ पृथुतीर्थंततोप्युच्चैःश्रेयसांसाधनंपरम् ॥ पृथ्वीश्वरंयत्रदृष्ट्वानरःपृथ्वीपतिर्भवेत ॥ ७४ ॥ ततःपरशुरामस्यतीर्थंचातीवसिद्धिदम् ॥ यत्रक्षत्रवधात्पापाज्जामदग्न्योविमुक्तवान् ॥ ७५ ॥ अद्यापिक्षत्रवधजंपापंतत्रप्रणश्यति ॥ एकेनस्नानमात्रेणज्ञानाज्ञानकृतेनच ॥ ७६ ॥ ततोपिश्रेयसांकर्तृतीर्थंकृष्णाग्रजस्यहि ॥ यत्रसूतवधात्पापाद्बलदेवोविमुक्तवान् ॥ ७७ ॥ दिवोदासस्यवैतीर्थंतत्रराज्ञोऽतिमेधसः ॥ तत्रस्नातोनरोजातुनज्ञानाच्च्यवतेऽन्ततः ॥ ७८ ॥ ततोपिहिमहातीर्थंसर्वपापप्रणाशनम् ॥ यत्रभागीरथीसाक्षान्मूर्तिरूपेणतिष्ठति ॥ ७९ ॥ स्नात्वाभागीरथीतीर्थेकृत्वाश्राद्धंविधानवित् ॥ दत्त्वादानंचपात्रेभ्योनभूयोगर्भभाग्भवेत् ॥ ८० ॥ हरपापंचभोवीरतीर्थं

जमदग्नि के पुत्र (परशुराम) क्षत्रियों के वधके पापसे छूटगये हैं ॥ ७५ ॥ आज भी क्षत्रवधसे उपजाहुआ पाप उसमें ज्ञान व अज्ञानसे भी कियेहुये एक स्नानमात्र से विनष्ट होजाता है ॥ ७६ ॥ उससे भी अधिक कल्याणकर्ता बलदेवतीर्थ है जहां बलदेवजी सूतके मारनेरूप पापसे छूटे हैं ॥ ७७ ॥ वहां अधिक बुद्धिवाले राजादिवोदास का तीर्थहै उसमें नहाया हुआ नर अन्तकाल में कभी ज्ञानसे नहीं भ्रष्ट होता है ॥ ७८ ॥ उससे पर, पापोंका नाशक महातीर्थ है जहां साक्षात् भागीरथी गंगा मूर्त्तिरूपसे टिकी हैं ॥ ७९ ॥ विधान का जाननेवाला मनुष्य भागीरथी तीर्थ में स्नानकर व श्राद्धको कर व सुपात्रोंको दान देकर फिर गर्भसेवी नहीं होवे है ॥ ८० ॥ हे

वीर ! भागीरथी के किनारे हरपापतीर्थ (केदारकुण्ड) है उसमें स्नानकर महापापों के कुलभी नाशको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ८१ ॥ और हे वीर ! जो मनुष्य वहां निष्पापेश्वर लिंगको देखता है वह उस लिंगके दर्शन से क्षणभर मे पापहीन होताहै ॥ ८२ ॥ व दशाश्वमेध तीर्थ उससे भी बहुत श्रेष्ठ मानागयाहै जहां स्नानकर दश अश्वमेध यज्ञोंके फलको पावे है ॥ ८३ ॥ हे वीर ! वन्दी तीर्थको उससे भी मंगलदायक कहते हैं जहां नहाया हुआ मनुष्य संसारबन्धनसे भी छूटजावे है ॥ ८४ ॥ पूर्वकाल में हिरण्याक्ष दैत्यसे बन्दकिये व लोहेकी ज़ंजीरों से बांधेहुये बहुतेदेवों ने जगदम्बाकी स्तुति किया ॥ ८५ ॥ तदनन्तर ज़ंजीरों से छूटेहुये देवोंसे जब जगन्माता वन्दितहुई हैं

भागीरथीतटे ॥ तत्रस्नात्वाक्षयंयान्तिमहापापकुलान्यपि ॥ ८१ ॥ योनिष्पापेश्वरंलिङ्गंतत्रपश्यतिमानवः ॥ निष्पापोजायतेवीरसतल्लिङ्गेक्षणात्क्षणात् ॥ ८२ ॥ दशाश्वमेधतीर्थंचततोपिप्रवरंमतम् ॥ दशानामश्वमेधानांयत्रस्नात्वाफलंलभेत् ॥ ८३ ॥ ततोपिशुभदंवीरवन्दीतीर्थंप्रचक्षते ॥ यत्रस्नातोनरोमुच्येदपिसंसारबन्धनात् ॥ ८४ ॥ हिरण्याक्षेणदैत्येनबहुशोदेवताःपुरा ॥ वन्दीकृतानिगडितास्तुष्टुवुर्जगदम्बिकाम् ॥ ८५ ॥ ततोविश्रृङ्खलीभूतैर्वन्दितायज्जगज्जनिः ॥ तदाप्रभृतिवन्दीतिगीयतेद्यापिमानवैः ॥ ८६ ॥ वन्दीतीर्थन्तुतत्रैवमहानिगडखण्डनम् ॥ यत्रस्नातोविमुच्येतसर्वस्मात्कर्मपाशतः ॥ ८७ ॥ वन्दीतीर्थंमहाश्रेष्ठंकाशिपुर्यांविशाम्पते ॥ तत्रस्नातोनरोयायाद्विमुक्तिंदेव्यनुग्रहात् ॥ ८८ ॥ ततोपिहिश्रेष्ठतरंप्रयागमितिविश्रुतम् ॥ प्रयागमाधवोयत्रसर्वयागफलप्रदः ॥ ८९ ॥ क्षोणीवराहतीर्थंचततोपिशुभदंपरम् ॥ तत्रस्नातोनरोजातुतिर्यग्योनिंनगच्छति ॥ ९० ॥ ततःकालेश्वरंतीर्थंवीरश्रेष्ठतरंपरम् ॥ कलिकालोन

तबसे लगाकर आजतक भी मनुष्यो से वन्दी ऐसा गाई जाती हैं ॥८६॥ और वहांही बड़ी बेड़ियों के तोडनेवाला वंदी तीर्थहै जिसमें नहायाहुआ सब कर्मपाशोंसे विमुक्त होवे है ॥ ८७ ॥ हे प्रजाओं के पालक ! काशीपुरी मे वन्दी तीर्थ बडाश्रेष्ठ है वहां नहाया हुआ नर देवीकी दयासे विमुक्ति को प्राप्त होवे है ॥ ८८ ॥ उससे भी बहुत श्रेष्ठ तीर्थ प्रयाग ऐसा प्रसिद्धहै जहां सब यज्ञोंके फलदाता प्रयागमाधवजी वर्तमान हैं ॥ ८९ ॥ व उससे भी उत्तम, शुभदायक क्षोणीवराह तीर्थ है उसमें नहायाहुआ

मनुष्य तिर्य्यग्योनि को कभी नहीं जाताहै ॥ ९० ॥ हे वीर ! उससे परे श्रेष्ठतर कालेश्वर तीर्थ है जिसमें नहायेहुये नरोत्तमको कलि और काल नहीं बाधते हैं ॥ ९१ ॥ और वहांही उससे भी बहुत अधिक मंगलमय अशोकतीर्थ है जिसमें नहायाहुआ मनुष्य शोकसागर में कभी नहीं गिरैहै ॥ ९२ ॥ हे राजकुमार ! शुक्रतीर्थ उससे भी अत्यन्त निर्मलतरहै जहां नहायाहुआ नरोत्तम फिर शुक्र (वीर्य्य) के द्वारा नहीं उत्पन्न होताहै ॥ ९३ ॥ हे राजन् ! भवानी तीर्थ उससे भी पुण्यदायक व उत्तम है जिसमें स्नानकर और गौरीशंकरके दर्शनकर फिर नहीं होवेहै ॥ ९४ ॥ व सोमेश्वर के आगे प्रभासतीर्थ उससे भी अधिक मनुष्यों का शुभदाता प्रसिद्धहै वहां नहाया

बाधेतेयत्रस्नातंनरोत्तमम् ॥ ९१ ॥ अशोकतीर्थंतत्रैवततोप्यतितरांशुभम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुनापतेच्छोकसागरे ॥ ९२ ॥ ततोतिनिर्मलतरंशुक्रतीर्थंनृपाङ्गज ॥ शुक्रद्वारानजायेतयत्रस्नातोनरोत्तमः ॥ ९३ ॥ ततोऽपिपुण्यदंराजन्भवानीतीर्थमुत्तमम् ॥ यत्रस्नात्वाभवानीशौदृष्ट्वानैवपुनर्भवेत् ॥ ९४ ॥ प्रभासतीर्थंविख्यातंततोपिशुभदंनृणाम् ॥ सोमेश्वरस्यपुरतस्तत्रस्नातोनगर्भभाक् ॥ ९५ ॥ ततोगरुडतीर्थंचसंसारविषनाशनम् ॥ गरुडेशंसमभ्यर्च्यतत्रस्नात्वानशोचति ॥ ९६ ॥ ब्रह्मतीर्थंततःपुण्यंवीरब्रह्मेश्वरात्पुरः ॥ ब्रह्मविद्यामवाप्नोतितत्रस्नानेनमानवः ॥ ९७ ॥ ततोवृद्धार्कतीर्थंचविधितीर्थंततःपरम् ॥ तत्राप्लुतोनरोयातिरविलोकंसुनिर्मलम् ॥ ९८ ॥ ततोनृसिंहतीर्थंचमहाभयनिवारणम् ॥ कालादपिकुतस्तत्रस्नात्वापरिबिभेतिच ॥ ९९ ॥ ततोपिपुण्यदंनृणांतीर्थंचित्ररथेश्वरम् ॥ यत्रस्नात्वाचदत्त्वाचचित्रगुप्तं

हुआ गर्भसेवी नहीं होताहै ॥ ९५ ॥ व संसारविषका नाशक गरुड़तीर्थ उससे श्रेष्ठहै उसमें स्नानकर और गरुड़ेश्वरको भलीभांति सामने से पूजकर नर फिर नहीं शोचता है ॥९६॥ हे वीर ! ब्रह्मेश्वरके आगे ब्रह्मतीर्थ उससे भी अधिक पुण्यहै उसमें नहाने से मनुष्य ब्रह्मविद्या (ब्रह्मज्ञान) को पाताहै ॥ ९७ ॥ व वृद्धार्क तीर्थ उससे भी श्रेष्ठ है और विधितीर्थ उससे भी उत्तमहै उसमें नहायाहुआ मनुष्य अच्छे निर्मल सूर्य्यलोकको जाताहै ॥ ९८ ॥ और महाभयका निवारण कारण नृसिंह तीर्थ उससे श्रेष्ठहै उसमें स्नानकर कालसे भी क्यो सब ओरसे डरताहै ॥ ९९ ॥ व मनुष्योंका पुण्यदाता चित्ररथेश्वर तीर्थ उससे भी अधिकहै जहां स्नानकर और दानको देकर चित्रगुप्तको

और व्रतवाले मनुष्योंकरके वीरेश्वरमें जो व्रतका उद्यापनादि कियागया वह करोड़ गुण संख्यक होताहीहै इसमें संशय नहींहै ॥२१॥ व जिसने वीरेश्वरके आगे आठ बार नमस्कारकिया उसको आठकरोड़ नमस्कारोंका फलहै इसमें सन्देह नहींहै ॥२२॥ हे वीर ! यह वीरेश्वरलिंग मेरे वरदानसे सब सम्पत्तियोंका स्थान होगा इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥ और मेरी आज्ञासे जीवतेही पुरुषोंका ज्ञान उपजेगा उससे यह लिंग शुभार्थियों से सेवने योग्यहै ॥ २४ ॥ इस वचनको सुनकर सब ओरसे पूरे मनोरथ वाला अमित्रजितका पुत्र वीर देवोंके देव महादेवजीके प्रणामकर फिर बोला ॥२५॥ कि हे प्रभो, देवेश ! आपने कृपाकरके जैसे मेरे आगे इन जिन तीर्थोंको कहा ऐसेही

तोत्सर्गादिवीरेशेयत्कृतंव्रतिभिर्नृभिः ॥ तत्कोटिगुणसंख्याकंभवत्येवनसंशयः ॥ २१ ॥ कृताअष्टौनमस्कारायेनवीरेश्वराग्रतः ॥ अष्टकोटिनमस्कारफलन्तस्यनसंशयः ॥ २२ ॥ सर्वासांसम्पदांस्थानमिदंलिङ्गंभविष्यति ॥ वीरेश्वरंनसन्देहोवीरमेवरदानतः ॥ २३ ॥ ज्ञानमुत्पत्स्यतेपुंसांतारकाख्यंममाज्ञया ॥ जीवतामेवतत्सेव्यमेतल्लिङ्गंशुभार्थिभिः ॥ २४ ॥ एतच्छ्रुत्वापुनःप्राहवीरोमित्रजितःसुतः ॥ प्रणम्यदेवदेवेशंपरिपूर्णमनोरथः ॥ २५ ॥ तीर्थान्येतानिदेवेशयान्युक्तानिममाग्रतः ॥ कृपयापुनरप्येवतदन्यानिवदप्रभो ॥ २६ ॥ आदिकेशवमारभ्यतत्तीर्थाच्चभगीरथात् ॥ येषांश्रवणमात्रेणनिष्पापोजायतेनरः ॥ २७ ॥ इतिश्रुत्वामहेशानोमहीपतनयोदितम् ॥ पुनस्तीर्थानिगङ्गायांवक्तुंसमुपचक्रमे ॥ १२८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवीरेश्वराविर्भावोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयत्त्वोणिसुरयथास्थाणुरचीकरत् ॥ गङ्गावरणयोःपुण्यात्संभेदात्तीर्थभूमिकाम् ॥ १ ॥ सङ्ग

उनसे अन्य भी तीर्थोंको कहो ॥ २६ ॥ व आदिकेशवको आरम्भमें कर उस भगीरथतीर्थतक जिनके सुननेमात्रसे मनुष्य पापोंसे हीन होजाताहै ॥ २७ ॥ ऐसे राजकुमार के कहे वचनको सुनकर महेशजीने फिर गंगामें तीर्थोंके कहनेको भलीभांति उपक्रम किया याने लगा लगाया ॥ १२८ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेवीरेश्वराविर्भावोनामत्र्यशीतितमोध्यायः ॥ ८३ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

दो० ॥ चौरासी अध्याय में सकल सुमंगलसार । आदिकेशवादिक यहां विविध तीर्थ विस्तार ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे ब्राह्मण ! जैसे शिवजी ने गंगा व वरणा

के संगमसे तीर्थभूमिका को कियाहै वैसेही उसको तुम सुनो ॥ १ ॥ उस संगममें अच्छे प्रकार अधिकार से नहायाहुआ मनुष्य संगमेश्वरको भलीभांति पूजकर फिर माता के गर्भ के संगको कभी नहीं प्राप्त होवे है ॥ २ ॥ और मन्दराचल से आयेहुये क्रीड़ाकारी शार्ङ्गधन्वाधारी विष्णुजी ने पहले जिससे जहां पावोंको पखारा है उस से वहां पादोदक तीर्थ है ॥ ३ ॥ जोकि विष्णुपादोदक तीर्थ मे जलके कार्य्यको करता है उसने फिर संसारकी गतिको बिताया याने वह फिर संसार में नहीं आता है ॥ ४ ॥ व काशी में पादोदक तीर्थ के जलमें स्नान कियेहुवा व केशव भगवान् का पूजन कियेहुवा मनुष्योत्तम संसार वासके बितानेवालाहुवाहै ॥ ५ ॥ व ब्राह्मणो ने

मेतत्रनिष्णातःसङ्गमेशंसमर्च्यच ॥ नरोनजातुजननीगर्भसङ्गमवाप्नुयात् ॥२॥ तत्रपादोदकंतीर्थंयत्रदेवेनशार्ङ्गिणा ॥ आदौपादौक्षालितौतुमन्दराच्चागतेनयत् ॥ ३ ॥ विष्णुपादोदकेतीर्थेवारिकार्यंकरोतियः ॥ व्यतीतातेननियतंभूयः सांसारिकीगतिः ॥ ४ ॥ कृतपादोदकस्नानःकृतकेशवपूजनः ॥ वीतसंसारवसतिःकाश्यामासीन्नरोत्तमः ॥ ५ ॥ काश्यांसाभूमिरुद्दिष्टाश्वेतद्वीपइतिद्विजैः ॥ तत्रपुण्यार्जनंकृत्वाश्वेतद्वीपाधिपोभवेत् ॥ ६ ॥ ततःपादोदकात्तीर्थात्तीर्थं क्षीराब्धिसञ्ज्ञकम् ॥ तत्रार्जितमहापुण्योवसेत्क्षीराब्धिरोधसि ॥ ७ ॥ क्षीरोदाद्दक्षिणेभागेतीर्थंशङ्खाख्यमुत्तमम् ॥ तत्रस्नातोभवेन्नूनंनाशङ्खादिनिधेःपतिः ॥ ८ ॥ अर्वाक्चशङ्खतीर्थाद्वैचक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥ संसारचक्रेनपतेत्तत्तीर्थजल मज्जनात् ॥ ९ ॥ गदातीर्थन्तदग्रेतुसंसारगदनाशनम् ॥ तत्रश्राद्धादिकरणात्पश्येद्देवङ्गदाधरम् ॥ १० ॥ पद्माङ्कितपद्म तीर्थञ्चतदग्रेपितृतृप्तिकृत् ॥ तत्रस्नानादिकरणात्प्राप्नुयादघसंक्षयम् ॥ ११ ॥ ततस्तीर्थंमहालक्ष्म्यामहापुण्यफलप्र

काशी में उस भूमिको श्वेतद्वीप ऐसे नामसे कहाहै उसमें पुण्यको बटोरकर श्वेतद्वीपका महाराज होवे है ॥ ६ ॥ उस पादोदक तीर्थ से आगे क्षीरसागरसंज्ञक तीर्थ है वहां महापुण्यको इकट्ठेकियेहुवा मनुष्य क्षीरसागर के तीरमें बसै है ॥ ७ ॥ और क्षीराब्धि से दक्षिणभागमें शंखनामक उत्तम तीर्थ है उसमे नहायाहुवा नर निश्चयकर शंखादि निधियों का पति होवे है ॥ ८ ॥ और शंखतीर्थ से इस ओरमें अधिक उत्तम चक्रतीर्थ है उस तीर्थ के जलमें मज्जन से संसारचक्र (भौंर) में न परे ॥ ९ ॥ व उसके आगे संसाररोग के नाशनेवाला गदातीर्थ है वहां श्राद्धादि करने से गदाधर (विष्णु) देवको देखे ॥१०॥ और उसके आगे पितरोंका तृप्तिकर्त्ता लक्ष्मीधर्ता पद्म

तीर्थ है उसमें स्नानादि करने से पापों के विनाशको प्राप्तहोवे है ॥ ११ ॥ उसकेबाद महापुण्यफलदायक महालक्ष्मीजी का तीर्थ है वहां महालक्ष्मी को सामने से पूज कर मोक्षसंपत्तिको पावे है ॥ १२ ॥ तदनन्तर संसार विषका नाशक गारुड तीर्थ है उसमें स्नानादि जलक्रियाको कियेहुवा जन वैकुंठ में वासको पावेहै ॥ १३ ॥ व उसके आगे ब्रह्मविद्या (ज्ञान) का मुख्य कारण नारद तीर्थ है उसमें स्नानसे नारदकेशवको देखकर संसारसे मुक्त होवे है ॥ १४ ॥ उससे दक्षिणमें महाभक्तिफलदायक प्रह्लादतीर्थ है उसमें स्नानमात्रसेही विष्णुका परमप्यारा होवे है ॥ १५ ॥ उसके आगे महापातकघातक अंबरीषतीर्थ है उसमें शुभकर्म करनेवाले नर फिर गर्भ में

दम् ॥ तत्राभ्यर्च्यमहालक्ष्मींनिर्वाणकमलांलभेत् ॥ १२ ॥ ततोगारुत्मतन्तीर्थंसंसारगरनाशनम् ॥ कृतोदकक्रियस्तत्रवैकुण्ठेवसतिंलभेत् ॥ १३ ॥ ततोनारदतीर्थञ्चब्रह्मविद्यैककारणम् ॥ तत्रस्नानेनमुक्तःस्याद्दृष्ट्वानारदकेशवम् ॥ १४ ॥ प्रह्लादतीर्थन्तद्याम्येमहाभक्तिफलप्रदम् ॥ तत्रवैस्नानमात्रेणविष्णोःप्रियतरोभवेत् ॥ १५ ॥ अम्बरीषन्ततस्तीर्थंमहापातकनाशनम् ॥ तत्रवैशुभकर्माणोजनानोगर्भभाजनम् ॥ १६ ॥ आदित्यकेशवंनामतदग्रेतीर्थमुत्तमम् ॥ कृताभिषेकस्तत्रापिलभेत्स्वर्गाभिषेचनम् ॥ १७ ॥ दत्तात्रेयस्यतत्रास्तितीर्थन्त्रैलोक्यपावनम् ॥ योगसिद्धिंलभेत्तत्रस्नानमात्रेणभावतः ॥ १८ ॥ तदग्रेभार्गवन्तीर्थंमहाज्ञानसमर्पकम् ॥ तत्रस्नानविधानेनभवेद्भार्गवलोकभाक् ॥ १९ ॥ ततोवामनतीर्थञ्चविष्णुसान्निध्यहेतुकम् ॥ तत्रश्राद्धविधानेनमुच्यतेपितृजादृणात् ॥ २० ॥ नरनारायणाख्यंहिततस्तीर्थंशुभप्रदम् ॥ तत्तीर्थमज्जनात्पुंसांगर्भवासःसुदुर्लभः ॥ २१ ॥ यज्ञवाराहतीर्थञ्चततोदक्षिणतःशुभम् ॥ यत्रस्नातस्यवै

आने के पात्र नहीं हैं ॥ १६ ॥ उसके आगे आदित्यकेशव नामक उत्तम तीर्थ है वहां भी अभिषेक कियेहुवा स्वर्ग में अभिषेकको पावे है ॥ १७ ॥ और वहां त्रिलोक का पवित्रकर्त्ता दत्तात्रेय का तीर्थ है उसमें भक्तिकरके स्नानमात्र से योगकी सिद्धि को पावे है ॥ १८ ॥ उसके आगे महाज्ञानदाता भार्गवतीर्थ है उसमें स्नानविधान से शुक्रलोक का भागी होवे है ॥ १९ ॥ उसके बाद विष्णुजी के सामीप्य का कारण वामन तीर्थ है वहां श्राद्ध करने से पितरों के ऋणसे छूटजाताहै ॥ २० ॥ और उस के आगेही कल्याणदाता नरनारायण तीर्थ है उस तीर्थ में मज्जन करने से गर्भवास बहुतही दुर्लभहै ॥ २१ ॥ व उससे दक्षिणमें मंगलमय, यज्ञवाराहतीर्थ है जहां नहाये

हुये पुरुषको राजसूय यज्ञका फल निश्चयकर होताहै ॥ २२ ॥ और वहां परम पवित्र विदारनारसिंहनामक तीर्थ है जिसमें एक बार स्नान से सौ जन्मों का बटोरा पाप नष्टहोवे है ॥ २३ ॥ व उसके आगे विष्णुसंबन्धी लोकका दाता गोपीगोविन्दतीर्थ है जहां नहायाहुवा सुजान मनुष्य गर्भपीड़ाको नहीं पावैहै ॥ २४ ॥ और गोपीगोविन्द से दक्षिण में लक्ष्मीनृसिंहतीर्थ है जहांका मनुष्योत्तम मुक्तिलक्ष्मी से भी बराजाता है ॥ २५ ॥ उससे दक्षिणदिशा में बहुत उत्तम शेषतीर्थ है जिसमें डुबकी लगाने से महापापों का शेष भी नहीं टिकै है ॥ २६ ॥ और उससे दक्षिणदिशा में उत्तम शंखमाधव तीर्थहै उस तीर्थकी सेवासे मनुष्योंको बड़ाभारी पापका डर कहां

पुंसांराजसूयफलन्ध्रुवम् ॥ २२ ॥ विदारनारसिंहाख्यंतीर्थन्तत्रास्तिपावनम् ॥ यत्रैकस्नानतोनश्येदघञ्जन्मशतार्जितम् ॥ २३ ॥ गोपीगोविन्दतीर्थञ्चततोवैष्णवलोकदम् ॥ यस्मिन्स्नातोनरोविद्वान्नविन्द्याद्गर्भवेदनम् ॥ २४ ॥ लक्ष्मीनृसिंहतीर्थञ्चगोपीगोविन्ददक्षिणे ॥ निर्वाणलक्ष्म्यायत्रत्योव्रियतेतुनरोत्तमः ॥ २५ ॥ तद्दक्षिणायांकाष्ठायांशेषतीर्थमनुत्तमम् ॥ महापापौघशेषोपिनतिष्ठेद्यन्निमज्जनात् ॥ २६ ॥ शङ्खमाधवतीर्थञ्चतद्याम्यान्दिशिचोत्तमम् ॥ तत्तीर्थसेवनान्नृणांकुतःपापभयम्महत् ॥ २७ ॥ ततोपिपावनतरन्तीर्थंतत्क्षणसिद्धिदम् ॥ नीलग्रीवाख्यमतुलंतत्स्नायीसर्वदाशुचिः ॥ २८ ॥ तत्रोद्दालकतीर्थञ्चसर्वाघौघविनाशनम् ॥ ददातिमहतीमृद्धिंस्नानमात्रेणतन्नृणाम् ॥ २९ ॥ ततःसांख्याख्यतीर्थञ्चसांख्येश्वरसमीपतः ॥ तत्तीर्थसेवनात्पुंसांसांख्ययोगःप्रसीदति ॥ ३० ॥ स्वर्लोकाद्यत्रसंलीनःस्वयन्देवउमापतिः ॥ अतःस्वर्लीनतीर्थञ्चस्वर्लीनेश्वरसन्निधौ ॥ ३१ ॥ तत्रस्नानेनदानेनश्रद्धयाद्विजभोजनैः ॥ जपहोमार्चनैः

से है याने कहींसे नहीं है ॥ २७ ॥ और उससे भी परमपावन व तत्क्षण सिद्धिदायक व अतुल (अनूप) नीलग्रीव नामक तीर्थ है उसमें नहानेवाला सदा पवित्रहै ॥ २८ ॥ और वहा सब पापसमूहविनाशक जो उद्दालक तीर्थ है वह स्नानमात्र से मनुष्योंकी बड़ी ऋद्धि (वृद्धि) को देताहै ॥ २९ ॥ और उसके आगे सांख्येश्वरके समीपमें जो सांख्यनामक तीर्थहै उस तीर्थकी सेवासे पुरुषोंका सांख्ययोग प्रसन्न होता है ॥ ३० ॥ व पार्वतीके पति महादेवजी आपही जहां स्वर्गलोकसे भलीभाति लीन

हुयेहैं इससे वहां स्वर्लीनेश्वरके समीपमें स्वर्लीन तीर्थहै ॥ ३१ ॥ उसमें स्नान, दान,श्रद्धासे ब्रह्मभोज, जप, होम और पूजासे भी लोगोंको सब अविनाशीही फलहै ॥३२॥ व उसके समीपमें अत्यन्त पवित्र महिषासुर तीर्थ है जहांपर तपस्याकर उस दैत्येन्द्रने सब देवों को जीताहै ॥ ३३ ॥ उस तीर्थका सेवक आज भी शत्रुओं से नहीं और बड़े पापों से भी नहीं नीचे कियाजाताहै याने नहीं हारताहै व प्रार्थित (मनमाने मांगेहुये) फलको पावे है ॥ ३४ ॥ व उसके समीपमें उस बाणासुरको हजारबाहुओं का दाता बाणतीर्थ है उसमें नहायाहुआ नर शंकरकी अचलभक्तिको प्राप्तहोवेहै ॥ ३५ ॥ उसके आगे गोप्रतारेश्वरनामक उत्तम तीर्थ है जहां नहायाहुआ पुत्रहीन भी

पुंसामक्षयंसर्वमेवहि ॥ ३२ ॥ महिषासुरतीर्थञ्चतत्समीपेतिपावनम् ॥ यत्रतप्त्वासदैत्येन्द्रोविजिग्येसकलान्सुरान् ।
३३ ॥ तत्तीर्थसेवकोद्यापिनारिभिःपरिभूयते ॥ नपातकैर्महद्भिश्चप्रार्थितञ्चफलंलभेत् ॥ ३४ ॥ बाणतीर्थञ्चतस्याराच्च
त्सहस्रभुजप्रदम् ॥ तत्रस्नातोनरोभक्तिंप्राप्नुयाच्छाम्भवींस्थिराम् ॥ ३५ ॥ गोप्रतारेश्वरंनामतदग्रेतीर्थमुत्तमम् ॥
अपुत्रोपितरेद्यत्रस्नातोवैतरणींसुखम् ॥ ३६ ॥ तीर्थंहिरण्यगर्भाख्यंतद्याम्येसर्वपापहृत् ॥ तत्रस्नातोहिरण्येनमुच्यते
नकदाचन ॥ ३७ ॥ ततःप्रणवतीर्थञ्चसर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ॥ जीवन्मुक्तोभवेत्तत्रस्नानमात्रेणमानवः ॥ ३८ ॥ ततःपि
शङ्गिलातीर्थंदर्शनादपिपापहृत् ॥ मुनेममाधिष्ठानंवैतदगस्तेऽतिसिद्धिदम् ॥ ३९ ॥स्नात्वापिशङ्गिलातीर्थेदत्त्वादान
ञ्चकिञ्चन ॥ किंशोचतिकृतात्पापादन्यत्रापिमृतोयदि ॥ ४० ॥ योवैपिशङ्गिलातीर्थेस्नात्वामामर्चयिष्यति ॥ भविष्य

मनुष्य सुखसे वैतरणीको तरजावे है ॥ ३६ ॥ व उससे दक्षिणमें सब पापोंका हर्त्ता हिरण्यगर्भ नामक तीर्थहै वहां नहायाहुआ नर सुवर्ण से कभी नहीं छोंडाजाता है ॥ ३७ ॥ और उसके बाद सब तीर्थोंसे उत्तमोत्तम प्रणव (ॐकार) तीर्थ है वहां नहायाहुआ मनुष्य स्नानमात्रसे जीवन्मुक्त होवेहै ॥ ३८ ॥ हे अगस्त्य, मुने ! उसके बाद दर्शनसे भी पापहारी व अत्यन्त सिद्धिदायक जो पिशंगिला तीर्थ है वह मेरा अधिष्ठानही (आधार या अधिकता समेत स्थान) है ॥ ३९ ॥ पिशंगिला तीर्थमें स्नानकर व कुछ दानको देकर जो अन्यत्र भी मराहै तो कियेहुये पापसे क्या शोचता है याने नहीं ॥ ४० ॥ और जोकि पिशंगिला तीर्थ में नहाकर निश्चयसे मुझको पूजेगा वह

सूर्य्य के समान प्रकाशवान् व मेरा मित्र होगा॥ ४१॥ उसके आगे त्रिलोचनकी दृष्टिसे निर्मल कियेहुये जलवाला व मनके मलोंका विनाशक पिलिपिलानामक तीर्थ प्रसिद्धहै॥ ४२॥ वहां श्राद्धादि करने व दीन और अनाथों के बहुत तर्पने से मनुष्य अतीव निश्चल, बड़ी भारी सम्पत्ति या शोभाको प्राप्तहोता है॥ ४३॥ उसके बाद महापापोंका सब ओरसे शुद्ध करनेवाला नागेश्वर तीर्थहै उस तीर्थमें मज्जनसेही सब पापोंका विनाश होवेहै॥ ४४॥ उससे दक्षिणमें महामनोहर अधिक उत्तम कर्णादित्य नामक तीर्थहै जहां नहायाहुआ मनुष्य सूर्य्यकी सम्पत्ति या शोभाको सब ओरसे प्राप्त करैहै॥ ४५॥ व उसके आगे बड़े पापोका नाशदाता चार पुरुषार्थोंका कर्त्ता और

तिसमेमित्रंमित्रतेजःसमप्रभम्॥४१॥ ततस्त्रैविष्टपीदृष्टिनिर्मलीकृतपुष्कलम्॥ तीर्थंपिलिपिलाख्यंवैमनोमलविनाशनम्॥ ४२॥ तत्रश्राद्धादिकरणाद्दीनानाथप्रतर्पणात्॥ महतींश्रियमाप्नोतिमानवोतीवनिश्चलाम्॥ ४३॥ ततोनागेश्वरन्तीर्थंमहाघपरिशोधनम्॥ तत्तीर्थमज्जनादेवभवेत्सर्वाघसंक्षयः॥ ४४॥ तद्दक्षिणेमहापुण्यंकर्णादित्याख्यमुत्तमम्॥ तीर्थंयत्राप्लुतोमर्त्योभास्करींश्रियमावहेत्॥ ४५॥ ततोभैरवतीर्थञ्चमहाघौघक्षयप्रदम्॥ चतुरर्थोदयकरं सर्वविघ्ननिवारणम्॥ ४६॥ भौमाष्टम्यान्तत्रनरःस्नात्वासन्तर्पयेत्पितॄन्॥ दृष्ट्वाचभैरवङ्कालंकलिङ्कालञ्चसञ्जयेत्॥ ४७॥ तीर्थंखर्वनृसिंहाख्यंतीर्थाद्भैरवतःपुरः॥ तत्रस्नातस्यवैपुंसःकुतोघजनितम्भयम्॥ ४८॥ मृकण्डस्यमुनेस्तीर्थं तद्याम्यामतिनिर्मलम्॥ तत्रस्नानेनमर्त्यानांनापायमरणंक्वचित्॥ ४९॥ ततःपञ्चनदाख्यंवैसर्वतीर्थनिषेवितम्॥ तीर्थंयत्रनरःस्नात्वानसंसारीपुनर्भवेत॥ ५०॥ ब्रह्माण्डोदरवर्तीनियानितीर्थानिसर्वतः॥ ऊर्जेयत्रसमायान्तिस्वाघौघ

सब विघ्नोंका हर्त्ता भैरव तीर्थहै॥ ४६॥ मंगलवार समेत सप्तमी में वहां स्नानकर नर पितरोंको भलीभांति तर्पणकरे और कालभैरवको देखकर कलि व कालको अच्छे प्रकार से जीतलेवे॥ ४७॥ व भैरवतीर्थ से आगे खर्वनृसिंहनामक तीर्थहै उसमें नहायेहुये भी पुरुषको पापों से उपजाहुआ डर कहांसे है॥ ४८॥ उससे दक्षिणमें बहुत विमल मृकण्डमुनिका तीर्थहै वहां नहाने से मनुष्योंका अकाल मरना कहीं नहीं है॥ ४९॥ और उससे परे सब तीर्थोंसे सुसेवित पंचनदनामक तीर्थहै जिसमें स्नानकर

मनुष्य निश्चयसे फिर संसारी नहीं होवेहै ॥ ५० ॥ व जोकि सब तीर्थ ब्रह्मांडके भीतर वर्तमानहैं वे अपने पापसमूह दुगने के लिये जिसमें भलीभांति आते हैं ॥ ५१॥ और सब तीर्थ श्रेष्ठ अपनी निर्मलताके हेतु जहां दशमी आदि तीन दिनतक टिकतेहैं ॥५२॥ काशीके बीच स्थान स्थानमें बहुते सब तीर्थहैं परन्तु पंचनदकी महिमाको किसीने कहीं नहीं पाया ॥ ५३ ॥ प्रसिद्धहै कि जिन लोगोंने वहा कातिकके एक भी दिनको जप होम पूजा और दानमे सफल किया वेही कृतार्थ हैं ॥ ५४ ॥ और एकही साथ तौलेहुये भी सब तीर्थ पंचनदीकी तुल्यताको भी नहीं अधिकता से प्राप्तहुयेहैं ॥ ५५॥ बुद्धिमान् मनुष्य पंचनदतीर्थ में स्नानकर व श्रीबिन्दुमाधवजी के दर्शनकर फिर

परिनुत्तये ॥ ५१ ॥ सर्वदायत्रसर्वाणिदशम्यादिदिनत्रयम् ॥ तिष्ठन्तितीर्थवर्याणिनिजनैर्मल्यहेतवे ॥ ५२ ॥ भूरिशः सर्वतीर्थानिमध्येकाशिपदेपदे ॥ परम्पाञ्चनदःकैश्चिन्महिमानापिकुत्रचित् ॥ ५३ ॥ अप्येकङ्कार्त्तिकस्याहस्तत्रवैसफलीकृतम् ॥ जपहोमार्चनादानैःकृतकृत्यास्तएवहि ॥ ५४ ॥ सर्वाण्यपिचतीर्थानियुगपत्तुलितान्यपि ॥ नाधिजग्मुःपञ्चनद्याःकलायाअपितुल्यताम् ॥ ५५ ॥ स्नात्वापाञ्चनदेतीर्थेदृष्ट्वावैबिन्दुमाधवम् ॥ नजातुजायतेधीमाञ्जननीजठराजिरे ॥ ५६ ॥ ततोज्ञानहृदन्तीर्थंजडानामपिजाड्यहृत् ॥ तत्रस्नातोनरोजातुज्ञानभ्रंशंनचाप्नुयात ॥ ५७ ॥ तत्रज्ञानहृदेस्नात्वादृष्ट्वाज्ञानेश्वरंनरः ॥ ज्ञानन्तदधिगच्छेद्वैयेननोबाध्यतेपुनः ॥ ५८ ॥ ततोस्तिमङ्गलन्तीर्थंसर्वामङ्गलनाशनम् ॥ तत्रावगाहनंकृत्वाभवेन्मङ्गलभाजनम् ॥ ५९ ॥ अमङ्गलानिनश्येयुर्भवेयुर्मङ्गलानिच ॥ स्नातुर्वैमङ्गलेतीर्थेनमस्कर्तुश्चमङ्गलम् ॥ ६० ॥ मयूखमालिनस्तीर्थंतदग्रेमलनाशनम् ॥ तत्राप्लुतोगभस्तीशंविलोक्यविमलोभवे

माताके उदर आंगन में कभी नहीं जन्मता है ॥ ५६ ॥ उसके बाद जड़ों की भी जडता का हर्ता ज्ञानकुण्डतीर्थ है उसमें नहायाहुआ मनुष्य ज्ञानभ्रंशको कभी नहीं प्राप्त होवे है याने उसकी बुद्धि भ्रष्ट नहीं होती है ॥ ५७ ॥ उस ज्ञानकुण्ड में स्नानकर व ज्ञानेश्वरको देखकर नर उस ज्ञानको अधिकतामे पावेहै कि जिससे फिर संसार मे नहीं पीडित होताहै ॥ ५८ ॥ उसके आगे सब अमंगलोंका नाशक मंगलतीर्थहै उसमें अवगाहन (प्रवेश या स्नान) को कर कल्याणोंका पात्र होवे है ॥ ५९ ॥ व मंगल तीर्थमें नहानेवाले के अमंगल नशते हैं और मंगल होते हैं व नमस्कारकर्ताका भी कल्याण होवे है ॥ ६० ॥ उसके आगे मलोंका नाशक मयूखमाली (सूर्य्य) का तीर्थ

है वहां नहायाहुआ मनुष्य गभस्तीश्वरके दर्शनकर निर्मल होवेहै ॥ ६१ ॥ और वहांही मखेश्वरके समीपमें मखतीर्थहै उसमें नहायाहुआ नरोत्तम यज्ञों से उपजेहुये पुण्य फलको प्राप्तहोताहै ॥ ६२ ॥ व उसके पार्श्व (पास) में परम ज्ञानका कारण बिन्दुतीर्थ है उसमें श्राद्धादिकको कर उत्तम पुण्यको पावेहै ॥ ६३ ॥ और उससे दक्षिणदिशामें टिकाहुआ पिप्पलादमुनिका तीर्थहै वहां शनैश्चरके दिनमें स्नानकर व पिप्पलेश्वर को देखकर भी ॥ ६४ ॥ और "अश्वत्थेवोनिषदनंपर्णेवोवसतिःकृता। गोभाजइकिलासथ यत्सनवथपूरुषम्" इत्यादि मन्त्रसे वहां पीपलकी सेवाकर शनिपीड़ाको नहीं पाताहै और दुष्टस्वप्नको भी नशाता है ॥ ६५ ॥ उसके आगे परमपावन, ताम्रवराह

त् ॥ ६१ ॥ मखतीर्थन्तुतत्रैवमखेश्वरसमीपतः ॥ मखजम्पुण्यमाप्नोतितत्रस्नातोनरोत्तमः ॥ ६२ ॥ तत्पार्श्वेबिन्दुतीर्थञ्चपरमज्ञानकारणम् ॥ तत्रश्राद्धादिकंकृत्वालभेत्सुकृतमुत्तमम् ॥ ६३ ॥ पिप्पलादस्यचमुनेस्तीर्थंतद्याम्यदिक्स्थितम् ॥ स्नात्वाशनेर्दिनेतत्रदृष्ट्वावैपिप्पलेश्वरम् ॥ ६४ ॥ पिप्पलन्तत्रसेवित्वाश्रश्वत्थइतिमन्त्रतः ॥ शनिपीडांनलभतेदुःस्वप्नञ्चापिनाशयेत् ॥ ६५ ॥ ततस्ताम्रवराहाख्यंतीर्थञ्चैवातिपावनम् ॥ यत्रस्नानेनदानेननमज्जेदघसागरे ॥ ६६ ॥ तदग्रेकालगङ्गाचकलिकल्मषनाशिनी ॥ तस्यांस्नात्वानरोधीमांस्तत्क्षणान्निरघोभवेत् ॥ ६७ ॥ इन्द्रद्युम्नंमहातीर्थमिन्द्रद्युम्नेश्वराग्रतः ॥ तोयकृत्यन्तत्रकृत्वालोकमैन्द्रमवाप्नुयात् ॥ ६८ ॥ ततस्तुरामतीर्थञ्चवीररामेश्वराग्रतः ॥ तत्तीर्थस्नानमात्रेणवैष्णवंलोकमाप्नुयात् ॥ ६९ ॥ ततऐक्ष्वाकवन्तीर्थंसर्वाघौघविनाशनम् ॥ तत्रस्नानेनपूतात्माजायतेमनुजोत्तमः ॥ ७० ॥ मरुत्ततीर्थन्तत्प्रान्तेमरुत्तेश्वरसन्निधौ ॥ तत्रस्नात्वातमर्च्येशंमहदैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ७१ ॥ मैत्रा

नामक भी तीर्थहै जहां स्नान व दानसे पापसागर में नहीं डूबै है ॥ ६६ ॥ और उसके आगे कलिपातकनाशिनी कालगंगाहै उसमें नहायाहुआ बुद्धिमान् मनुष्य उसी क्षणमें निष्पाप होवे है ॥ ६७ ॥ व इन्द्रद्युम्नेश्वरके आगे इन्द्रद्युम्ननामक महातीर्थहै उसमें जलके कार्य्यको कर इन्द्रके लोकको पावे या जावेहै ॥ ६८ ॥ और हे वीर ! उसके बाद रामेश्वरके आगे रामतीर्थहै उस तीर्थमें स्नानमात्रसेही विष्णुके लोकको प्राप्तहोवे है ॥ ६९ ॥ व उसके आगे सब पापसमूहका विनाशक इक्ष्वाकुका तीर्थहै उसमें नहाने से मनुष्योत्तम पवित्र अन्तःकरणवाला होजाता है ॥ ७० ॥ उसके आगे मरुत्तेश्वरके समीपमें मरुत्ततीर्थहै वहां स्नानकर और उन मरुत्तेश्वर शिवको पूजकर बड़े ऐश्वर्य

को पावे है ॥ ७१ ॥ व उसके बाद पापों का नाशनेवाला मैत्रावरुणी (अगस्त्य) तीर्थ है वहां पिण्डों के प्रदानसे पितरोंका प्यारा होताहै ॥ ७२ ॥ उसके बाद अग्नीश्वरके आगे मलो से हीन व बड़ा अग्नितीर्थ है उस तीर्थमें सब ओरसे मज्जन करने से अग्निलोकको प्राप्त होताहै ॥ ७३ ॥ और वहांही अंगारेश्वरके समीपमें अंगारतीर्थ है वहां अंगारचौथिमे स्नानकर निष्पाप भावको प्राप्तहोवेहै ॥ ७४ ॥ और उसके आगे कलशेश्वरके समीपमेंही कलशतीर्थ है उसमें स्नानकर व उस लिंगकी पूजाकर कलि कालसे नहीं डरताहै ॥ ७५ ॥ व वहांही चन्द्रेश्वरके समीपमें चन्द्रतीर्थ है उस में स्नान कर और चन्द्रेश्वर को पूजकर चन्द्रमाके लोकको प्राप्त होवे है ॥ ७६ ॥

वरुणतीर्थञ्चततःपातकनाशनम् ॥ तत्रपिण्डप्रदानेनपितॄणाम्भवतिप्रियः ॥ ७२ ॥ ततोग्नितीर्थंविमलमग्नीशपुरतोमहत् ॥ अग्निलोकमवाप्नोतितत्तीर्थपरिमज्जनात् ॥ ७३ ॥ अङ्गारतीर्थन्तत्रैवअङ्गारेश्वरसन्निधौ ॥ तत्राङ्गारचतुर्थ्यांतुस्नात्वानिष्पापतामियात् ॥ ७४ ॥ ततोवैकलतीर्थञ्चकलशेश्वरसन्निधौ ॥ स्नात्वातल्लिङ्गमभ्यर्च्यकलिकालान्नबिभ्यति ॥ ७५ ॥ चन्द्रतीर्थंचतत्रैवचन्द्रेश्वरसमीपतः ॥ तत्रस्नात्वार्च्यचन्द्रेशंचन्द्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ७६ ॥ तदग्रेवीरतीर्थञ्चवीरेश्वरसमीपतः ॥ यदुक्तम्प्राक्तवपुरस्तीर्थानामुत्तमम्परम् ॥ ७७ ॥ विघ्नेशतीर्थंचततःसर्वविघ्नविघातकृत् ॥ जातुचित्तत्रसंस्नातोनाविघ्नैरभिभूयते ॥ ७८ ॥ हरिश्चन्द्रस्यराजर्षेस्ततस्तीर्थमनुत्तमम् ॥ यत्रस्नातोनरोजातुनसत्याच्च्यवतेक्वचित् ॥ ७९ ॥ हरिश्चन्द्रस्यतीर्थेतुयच्छ्रेयःसमुपार्जितम् ॥ तदक्षयफलंवीरइहलोकेपरत्रच ॥ ८० ॥ ततःपर्वततीर्थञ्चपर्वतेशसमीपतः ॥ सर्वपर्वफलन्तस्यस्नात्वापर्वण्यपर्वणि ॥ ८१ ॥ कम्बलाश्वतरन्तीर्थन्तत्रसर्ववि

और उसके आगे वीरेश्वरके समीप में वीरतीर्थ है जोकि तुम्हारे आगे तीर्थो मे परमउत्तम कहागयाहै ॥ ७७ ॥ और उसके बाद सब विघ्नोंका विघातकर्ता विघ्नेशतीर्थ है उसमे भलीभांति नहायाहुआ मनुष्य कभी भी विघ्नों से नहीं हारता है ॥ ७८ ॥ उससे अधिक उत्तम राजऋषि हरिश्चन्द्रका तीर्थ है जिसमें नहायाहुआ नर सत्य से कहीं नहीं पतित होताहै ॥ ७९ ॥ और हे वीर ! हरिश्चन्द्रके तीर्थ मे जो कल्याणरूप सुकर्मादि उपार्जितहुआ वह यहां और परलोकमे भी अक्षयफलवालाहै ॥ ८० ॥ व उसके आगे पर्वतेश्वरके समीपमे पर्वत तीर्थ है उसके पर्व या अपर्व में भी स्नानकर सब तीर्थोंका फल होताहै ॥ ८१ ॥ और वहां सब विघ्नोंका विघातक कम्बला-

श्वतर तीर्थ है उसमें नहायाहुआ मनुष्य गीतविद्यामें बड़ा पण्डित होवे है ॥ ८२ ॥ व उसके आगे सब विद्याओंका सिद्धकर्ता सारस्वत तीर्थ है वहां देव ऋषि और मनुष्यों के साथ पितरलोग टिकै हैं ॥ ८३ ॥ और वहांही सब शक्तिसमेत वह उमातीर्थहै जोकि स्नानमात्रसेही उमा (पार्वती)के लोककी प्राप्तिके लिये निश्चित होवेहै ॥८४॥ हे वीर ! उससे बहुत श्रेष्ठ व त्रिलोकमें प्रसिद्ध व त्रिलोकके उद्धार करने को समर्थ वह तीर्थ है कि जिसका मणिकर्णिका नामहै ॥ ८५ ॥ और आदिमें विष्णु से किया हुआ वह चक्रपुष्करिणी तीर्थ है उसका नाम सुननेसेही सब पापों से बहुतही छूटजाता है ॥ ८६ ॥ व स्वर्गवासी भी तीनों संध्याओं में मणिकर्णिका को जपते हैं जिसको

पापहम् ॥ तत्रस्नातोभवेन्मर्त्योगीतविद्याविशारदः ॥ ८२ ॥ ततःसारस्वतन्तीर्थंसर्वविद्योपपादकम् ॥ तिष्ठेयुःपितरस्तत्रसहदेवर्षिमानवैः ॥ ८३ ॥ उमातीर्थन्तुतत्रैवसर्वशक्तिसमन्वितम् ॥ औमेयलोकप्राप्त्यैस्यात्स्नानमात्रेणनिश्चितम् ॥ ८४ ॥ ततस्त्रिलोकीविख्यातंत्रिलोक्युद्धरणक्षमम् ॥ तीर्थंश्रेष्ठतरंवीरयदाख्यामणिकर्णिका ॥ ८५ ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थंतदादौविष्णुनाकृतम् ॥ तदाख्याकर्णनादेवसर्वैःपापैःप्रमुच्यते ॥ ८६ ॥ स्वर्गौकसस्त्रिसन्ध्यंवैजपन्तिमणिकर्णिकाम् ॥ यन्नामग्रहणम्पुंसांश्रेयसेपरमायहि ॥ ८७ ॥ यैःश्रुतायैःस्मृतावीरयैर्दृष्टामणिकर्णिका ॥ तएवकृतिनोलोकेकृतकृत्यास्तएवहि ॥ ८८ ॥ त्रिलोकेयेजपन्तीहमानवामणिकर्णिकाम् ॥ जपामितानहंवीरत्रिकालंपुण्यकर्मणः ॥ ८९ ॥ इष्टन्तेनमहायज्ञैःसहस्रशतदक्षिणैः ॥ पञ्चाक्षरीमहाविद्यायेनोक्तामणिकर्णिका ॥ ९० ॥ महादानानिदत्तानितेनवैपुण्यकर्मणा ॥ येनाहमर्चितोवीरसम्प्राप्यमणिकर्णिकाम् ॥ ९१ ॥ मणिकर्ण्यम्बुभिर्येनतर्पिताःप्रपितामहाः ॥ तेनश्राद्धा

जिसका नाम लेना पुरुषों के परम कल्याण के लिये है ॥ ८७ ॥ हे वीर ! जिन्होंने मणिकर्णिका को सुना व जिन्होंने सुमिरा व जिन्होंने देखा वेही लोकमें पुण्यवान्हैं और वेही कृतार्थ हैं ॥८८॥ हे वीर ! त्रिलोकमें जे मनुष्य यहां मणिकर्णिकाको जपते हैं उन पुण्यकर्मियोंको मैं त्रिकालमें जपताहूं ॥ ८९ ॥ और जिसने पांच अक्षरोंवाली मणिकर्णिका इस महाविद्याको कहा उसने हजारों व सैकड़ों दक्षिणा समेत महायज्ञोंसे पूजा किया ॥ ९० ॥ व उस पुण्यकर्माने महादानोंको दिया कि जिस करके मणि-

कर्णिका को संप्राप्त होकर मैं पूजितहूं ॥ ९१ ॥ और जिसने मणिकर्णिका के जलोंसे पितरों का तर्पण किया उसने गयामें शहद समेत खीरसे श्राद्धोंको दिया ॥ ९२ ॥ व जिस शुद्धबुद्धिवाले ने मणिकर्णिका का जल भलीभांति पिया उसका फिर लौटने लक्षणवाले उन सोमपानोंसे क्या है अर्थात् सोमयज्ञकर्त्ता भी फिर जन्मते हैं और मणिकर्णिका का जल पीनेवाला संसार से मुक्त होजाताहै ॥ ९३ ॥ और जिन्हों से मणिकर्णिका नहाई गई है वे बहुते महापर्वों के होतेही सब तीर्थों में तथा सब यज्ञांत स्नानों से नहायेहुये हैं ॥ ९४ ॥ व उन करके यज्ञों से ब्रह्मा और विष्णुआदि सब देव पूजितहैं कि जिन्होंने सुवर्ण फूलों से मणिकर्णिकाकी पूजा कियाहै ॥९५ ॥

निदत्तानिगयायांमधुपायसैः ॥ ९२ ॥ मणिकर्णीजलंयेनसम्पीतंशुद्धबुद्धिना ॥ किन्तस्यसोमपानैस्तैःपुनरावृत्तिलक्ष णैः ॥ ९३ ॥ तेस्नाताःसर्वतीर्थेषुमहापर्वसुभूरिशः ॥ तथाचसर्वावभृथैर्यैःस्नातामणिकर्णिका ॥ ९४ ॥ तैःसुराःपूजिताः सर्वेब्रह्मविष्णुमुखामखैः ॥ यैःस्वर्णकुसुमैरत्नैरर्चितामणिकर्णिका ॥ ९५ ॥ अहन्तेनोमयासार्द्धंदीक्षांसम्प्राप्यशाम्भवी म् ॥ अर्चितःप्रत्यहंयेनपूजितामणिकर्णिका ॥ ९६ ॥ तपांसितेनतप्तानिशीर्णपर्णादिनाचिरम् ॥ सेविताश्रद्धयायेनश्री मतीमणिकर्णिका ॥ ९७ ॥ दत्त्वादानानिभूरीणिमखानिष्ट्वातुभूरिशः ॥ चिरन्तप्त्वाप्यरण्येषुस्वर्गैश्वर्यान्महीम्पु नः ॥ ९८ ॥ विपुलेत्रमहीपृष्ठेपञ्चक्रोश्यांमनोहरा ॥ संश्रितामणिकर्णीयैस्तेयाताश्चानिवर्तकाः ॥ ९९ ॥ दानानाञ्चव्र तानाञ्चक्रतूनान्तपसामपि ॥ इदमेवफलंमन्येयदाप्यामणिकर्णिका ॥ १०० ॥ मोक्षलक्ष्मीरियंसाक्षाच्छ्रीमतीमणिकर्णि

और शिवसम्बन्धी मंत्रोंकी दीक्षाको भलीभांति प्राप्त होकर उससे पार्वती सहित मैं पूजितहूं कि जिससे प्रतिदिन मणिकर्णिका पूजी हुई है ॥ ९६ ॥ और उस करके सूखे पत्ते आदिकों से बहुत काल तक तपस्या तपीगई है कि जिससे श्रीमती मणिकर्णिका श्रद्धासे सेवितहै ॥ ९७ ॥ व बहुते दानों को देकर व बहुत से यज्ञोंको पूजन कर और वनोंमें बहुत काल तक तपस्याकर स्वर्ग के ऐश्वर्य्य से पृथिवी को फिर आताहै ॥ ९८ ॥ और जिन्होंने बड़े विस्तार युक्त इस भूपृष्ठ में वर्तमान काशी में मनोहर मणिकर्णिका को भलीभांति सेवन किया है वे अनिवर्तक होकर गये हैं याने वे फिर नहीं लौटते हैं ॥ ९९ ॥ और दान व व्रत व यज्ञ व तपस्याओं का भी यहही फल

मानताहूं कि जिससे मणिकर्णिका मिलने योग्य होती है ॥ १०० ॥ और यह मणिकर्णिका साक्षात् मोक्षलक्ष्मीही है बहुधा इसकी महिमा को मैंभी स्पष्ट नहीं जानता हूं ॥ १ ॥ व मणिकर्णिका से दक्षिणमें पशुपतिका श्रेष्ठतीर्थ है और उससे आगे रुद्रवासनामक तीर्थहै व इससे पर विश्वतीर्थहै ॥ २ ॥ इससे सुन्दर मुक्तितीर्थहै उसके बाद उत्तम अविमुक्ततीर्थ, तारकतीर्थ व स्कन्दतीर्थ है और उसके आगे ढुंढि (गणेश) का तीर्थ है ॥ ३ ॥ तदनन्तर भवानीतीर्थ है उसकेबाद ईशानतीर्थ है अनन्तर उत्तम ज्ञानतीर्थ, नन्दितीर्थ, विष्णुतीर्थ और उसके आगे पितामह (ब्रह्मा) का तीर्थ है ॥ ४ ॥ और यहही नाभितीर्थ है व इससे पर ब्रह्मनाल है इसके बाद भागीरथ

का ॥ प्रायोस्यामहिमानंवैनवेद्म्यहमपिस्फुटम् ॥ १ ॥ अवाच्यांमणिकर्ण्याश्चतीर्थम्पाशुपतम्परम् ॥ तीर्थन्तुरुद्रवासाख्यंविश्वतीर्थमतःपरम् ॥ २ ॥मुक्तितीर्थन्ततोरम्यमविमुक्तमथोत्तमम् ॥ तीर्थंचतारकंस्कान्दंढुण्ढेस्तीर्थन्ततोपि च ॥ ३ ॥ भवानेयमथैशानंज्ञानतीर्थमथोत्तमम् ॥ नन्दितीर्थंविष्णुतीर्थंतीर्थंपैतामहन्ततः ॥ ४ ॥ नाभितीर्थमिदञ्चैव ब्रह्मनालमतःपरम् ॥ ततोभागीरथन्तीर्थंयत्तवाग्रेपुराकथि ॥ ५ ॥ तीर्थान्युत्तरवाहिन्यांस्वर्धुन्याङ्काशिसन्निधौ ॥ सन्त्यनेकानिपुण्यानिमयोक्तान्यल्पशःपुनः ॥ ६ ॥ तत्रापिनितरांश्रेष्ठापञ्चतीर्थीनृपाङ्गज ॥ यस्यांस्नात्वानरोभूयो गर्भवासंनसंस्मरेत् ॥ ७ ॥ प्रथमञ्चासिसम्भेदंतीर्थानांप्रवरम्परम् ॥ ततोदशाश्वमेधाख्यंसर्वतीर्थनिषेवितम् ॥ ८ ॥ ततःपादोदकंतीर्थमादिकेशवसन्निधौ ॥ ततःपञ्चनदम्पुण्यंस्नानमात्रादघौघहृत् ॥ ९ ॥ एतेषामपितीर्थानांचतुर्णाम पिसत्तम ॥ पञ्चमंमणिकर्ण्याख्यंमनोवयवशुद्धिदम् ॥ १० ॥ अहंस्नाम्यत्रसततमुमयासहपर्वसु ॥ ब्रह्मणाविष्णुना

तीर्थ है जोकि तुम्हारे आगे पहलेही कहागया है ॥ ५ ॥ काशीके समीप उत्तरवाहिनी गङ्गामें अनेक पुण्यतीर्थ हैं फिर थोड़ेसे मुझकरके कहेगये हैं ॥ ६ ॥ हे राजकुमार! उनमें भी पञ्चतीर्थी (पांचतीर्थ) बहुतही श्रेष्ठहै जिसमें स्नानकर नर फिर गर्भवास को नहीं सुमिरै है ॥ ७ ॥ उनमें से पहला व सबतीर्थों में बहुत श्रेष्ठ असीसंगम है व उससे पर सबतीर्थों से सुसेवित दशाश्वमेध नामक तीर्थ है ॥ ८ ॥ तदनन्तर आदिकेशव के समीप मे पादोदकतीर्थ है उसके बाद स्नानमात्र से पापसमूहहारी पुण्यकारी पंचनदतीर्थ है ॥ ९ ॥ हे सत्तम ! इन चारोंभी तीर्थों के मध्यमें मन व अङ्गों की शुद्धिका दाता पांचवां मणिकर्णिका नामक तीर्थहै ॥ १० ॥पार्वती के साथ

ब्रह्मा व विष्णुके साथ और इन्द्रादि देव ऋषियों के साथ मैं पर्वोंमें यहां निरन्तर नहाताहूं ॥ ११ ॥ इससेही नागलोक (पाताल) मे वासकिये हुये व स्वर्गमें स्थान वाले लोगों से यहां यह गाथा निरन्तर गाई जाती है ॥ १२ ॥ कि सत्य है सत्य है फिर सत्यहै व यह वचन सत्यपूर्वक है कि मणिकर्णिका के समान तीर्थ ब्रह्माण्ड गोलमें नहीं है ॥ १३ ॥ पांचतीर्थों में स्नानकर नर फिर आकाशादि पञ्चभूतमयी देह को कभीभी नहीं ग्रहण करता है अथवा काशीमें पंचमुख शिव स्वरूप होजाता है ॥ १४ ॥ इसभांति वीरको वर देकर शंकरजी अन्तर्धान होगये और वह वीरभी वीरेश्वर को बहुत पूजकर मनोरथ को प्राप्तहुआ ॥ १५ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे

सार्धंसहेन्द्रादिसुरर्षिभिः ॥ ११ ॥ अतएवात्रगीयेतगाथेयंश्रुतिसम्मता ॥ नागलोककृतावासैःस्वर्गौकोभिश्चसन्ततम् ॥ १२ ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यपूर्वमिदंवचः ॥ मणिकर्णीसमन्तीर्थंनास्तिब्रह्माण्डगोलके ॥ १३ ॥ पञ्चतीर्थ्यांनरःस्नात्वानदेहम्पाञ्चभौतिकम् ॥ गृह्णातिजातुचित्काश्यांपञ्चास्योवाथजायते ॥ १४ ॥ इतिदत्त्वावरान्देवोवीरस्यान्तर्दधेहरः ॥ सचवीरोपिवीरेशंप्राच्यर्प्राप्तःसमीहितम् ॥ १५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तीर्थाध्यायमिमंपुण्यमगस्तेयोनिशामयेत ॥ तस्याघंसंक्षयंयायादपिजन्मशतार्जितम् ॥ १६ ॥ इतिवीरेश्वराख्यानंतीर्थाख्यानप्रसङ्गतः ॥ कथितन्तेपुरागस्त्यकामेशङ्कथयाम्यतः ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेवीरेश्वराख्यानंनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥
स्कन्दउवाच ॥ जगज्जनन्याःपार्वत्याःपुरोगस्तेपुरारिणा ॥ यथाख्यायिकथापुण्यातथातेकथयाम्यहम् ॥ १ ॥

अगस्ते ! जोकि इस मनोहर तीर्थाध्याय को सुने उसका सैकड़ों जन्मोंमें भी बटोराहुवा पाप विनाश को प्राप्त होवेहै ॥ १६ ॥ हे अगस्ते ! इस प्रकार मैंने तीर्थाख्यान के प्रसंग से तुम्हारे आगे वीरेश्वराख्यान को कहा और इसके बाद मैं कामेश्वर को कहताहूं ॥ ११७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचिते वीरेश्वराख्याननंनामचतुरशीतितमोध्यायः ॥ ८४ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । पच्चासी अध्यायमें दुर्वासा वरदान । कामेश्वर की जानिये इत उत्पत्ति सुजान ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्यजी ! त्रिपुरके शत्रु शिवजी ने जैसे

जगदम्बा के आगे पुण्य कथा को कहा है वैसेही मैं तुमसे कहताहूं ॥ १ ॥ कि पूर्व समय में समुद्र पर्वत और वनों समेत व नदियों समेत व सागरों समेत व ग्राम पुर और शहरों समेत इस सब पृथिवी को ॥ २ ॥ सब ओर से भ्रमणकर बड़े असहनशील या क्रोधी व बड़े तेजस्वी व बड़े तपस्वी दुर्वासाऋषि शंकरजी के आनन्द-वनमे भलीभांति सब ओर से प्राप्तहुये ॥ ३ ॥ और बहुते महलो से मण्डित, बहुते कुण्डों व तड़ागों से संयुत, शम्भुके सम्पूर्ण विहारस्थान को देखकर संतोप को प्राप्त होगये ॥ ४ ॥ व स्थान स्थान में कालके बड़े डरको जीते हुये मुनियों की पर्णशालाओं को देखकर विस्मित हुये ॥ ५ ॥ व अच्छी लताओं से आलिंगित (लिपटे)

पुरामहीमिमांसर्वांससमुद्राद्रिकाननाम् ॥ ससरित्कांसार्णवांचसग्रामपुरपत्तनाम् ॥ २ ॥ परिभ्रम्यमहातेजामहामर्षो महातपाः ॥ दुर्वासाःसम्परिप्राप्तःशम्भोरानन्दकाननम् ॥ ३ ॥ विलोक्याक्रीडमखिलंबहुप्रासादमण्डितम् ॥ बहुकुण्डतडागञ्चशम्भोस्तोषमुपागमत् ॥ ४ ॥ पदेपदेमुनीनाञ्चजितकालमहाभियाम् ॥ दृष्ट्वोटजानिरम्याणिदुर्वासा विस्मितोभवत् ॥ ५ ॥ सर्वर्तुकुसुमान्वृक्षान्सुच्छायस्निग्धपल्लवान् ॥ सफलान्सुलताश्लिष्टान्दृष्ट्वाप्रीतिमगान्मुनिः ॥ ६ ॥ दुर्वासाश्चातिहृष्टोभूद्दृष्ट्वापाशुपतोत्तमान् ॥ भूतिभूषितसर्वाङ्गाञ्जटाजटितमौलिकान् ॥ ७ ॥ कौपीनमात्रवसनान्स्मरारिध्यानतत्परान् ॥ कक्षीकृतमहालाबून्हुडुत्कारजिताम्बुदान् ॥ ८ ॥ करण्डदण्डपानीयपात्रमात्रपरिग्रहान् ॥ कचित्त्रिदण्डिनोदृष्ट्वानिःसङ्गान्निष्परिग्रहान् ॥ ९ ॥ कालादपिनिरातङ्कान्विश्वेशशरणङ्गतान् ॥ कचिद्वेदरहस्य

हुये व सब ऋतुओं में फूलोंवाले व अच्छी छाया समेत सचिक्कण पल्लवोंवाले व फलों से सहित वृक्षों को देखकर मुनिजी प्रीति को प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ व दुर्वासाजी उन पाशुपतोत्तमों याने शिवभक्तों को देखकर अत्यन्त आनन्दित हुये कि जिनके सब अंग भस्मसे भूषित हैं व बाल, जटाओं से जटित हैं ॥ ७ ॥ और जे कि कौपीनमात्र वस्त्रवाले हैं व काम के शत्रु शिवजी के ध्यानमें तत्पर हैं व विभूति धरने के पात्रों को कांखोंमें किये हुये हैं व हुडुत्कार शब्दों से मेघों को जीते हैं ॥ ८ ॥ और कहीं करण्ड (देवों की पेटी) व दण्ड पानी पीने के पात्रमात्र को सब ओरसे ग्रहण करनेवाले व असंग व संगत्यागी त्रिदण्डियों को देखकर ॥ ९ ॥ व कहीं कालसेभी निडर

विश्वेश्वर के शरणागत व वेद रहस्यों के जाननेवाले व बालपने से लगाकर ब्रह्मचारी ॥ १० ॥ व नित्यही गंगा नहाने से कुछेक पीले बालोवाले ब्राह्मणोंको काशीमें देखकर दुर्वासाजी बहुतही आनन्दितहुये ॥ ११ ॥ और काशीके पशुओं में जो सन्तोषहै व मृगों में जो दीप्तिहै व पक्षियों में भी जो आनन्दहै वह अन्यत्र कहीं स्पष्ट नहीं है ॥ १२ ॥ यह अच्छे कल्याणका विशेषस्थान त्रिलोक या स्वर्ग व देवो में भी कहांहै जहां के पशुपक्षियों में भी यह पुरी परमानन्दके बढ़ानेवाली है ॥ १३ ॥ व आनन्द वनमे विचरतेहुये सदा आनन्दवाले ये पशु भी श्रेष्ठहैं फिर नन्दनवनके सेवी देव नहीं ॥ १४ ॥ और मंगलमय उत्तर फलवाला काशीपुरीवासी म्लेच्छ भी श्रेष्ठहै और

ज्ञानाबाल्यब्रह्मचारिणः ॥ १० ॥ नित्यम्भागीरथीस्नानपरिपिङ्गलमूर्धजान् ॥ विलोक्यकाश्यान्दुर्वासाब्राह्मणान्मुमुदेतराम् ॥ ११ ॥ पशुष्वपिचयातुष्टिर्मृगेष्वपिचयाद्युतिः ॥ तिर्यक्ष्वपिचयाहृष्टिःकाश्यांनान्यत्रसास्फुटम् ॥ १२ ॥ इदंसुश्रेयसोऽभ्युष्टिःक्कामरेषुत्रिविष्टपे ॥ यत्रतेष्वपितिर्यक्षुपरमानन्दवर्धिनी ॥ १३ ॥ वरमेतेपिपशवआनन्दवनचारिणः ॥ सदानन्दाःपुनर्देवाननन्दनवनाश्रिताः ॥ १४ ॥ वरङ्काशीपुरीवासीम्लेच्छोपिहिशुभायतिः ॥ नान्यत्रत्योदीक्षितोपिसहिमुक्तेरभाजनम् ॥ १५ ॥ वैश्वेश्वरीपुरीचैषायथामेचित्तहारिणी ॥ सर्वापिनतथाक्षोणीनस्वर्गोनैवनागभूः ॥ १६ ॥ स्थैर्यम्बबन्धनक्कापिभ्रमतोमेमनोगतिः ॥ सर्वस्मिन्नपिभूभागेयथास्थैर्यमगादिह ॥ १७ ॥ रम्यापुरीभवेदेषाब्रह्माण्डादखिलादपि ॥ परिष्टुत्येतिदुर्वासाश्चेतोवृत्तिमवापह ॥ १८ ॥ तप्यमानोपिहितपःसुचिरंसमहातपाः ॥ यदानापफलङ्किञ्चित्चुकोपचतदाभृशम् ॥ १९ ॥ धिक्चमान्तापसन्दुष्टंधिक्चमेदुश्चरंतपः ॥ धिक्चक्षेत्रमिदंशम्भोःसर्वेषाञ्चप्रतारकम् ॥ २० ॥

अन्यत्र उपजाहुआ यज्ञमें दीक्षित ब्राह्मण वर नहींहै क्योकि वह मुक्तिका पात्र नहीं है ॥ १५ ॥ व जैसे यह विश्वेश्वरकी पुरी मेरा मन हरनेवालीहै, वैसे सब भी भूमि नहीं व स्वर्ग नही व पाताल भी नहीं है ॥ १६ ॥ सब भी भूमिभागमें भ्रमतेहुये मेरे मनकी गति जैसे यहां स्थिरताको प्राप्त होगईहै वैसे कहीं भी अचलताको नहीं बांधती भईहै ॥ १७ ॥ और यह पुरी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से भी मनोहर होवेहै ऐसे सब ओरसे स्तुतिकर दुर्वासाजी चित्तकी वृत्तिको हर्षसे प्राप्तहुये ॥ १८ ॥ व बहुत अधिक कालतक तपस्याको तपतेहुये भी उन बड़े तपस्वीने जब कुछेक भी फलको न पाया तब बहुतही क्रोधकिया ॥ १९ ॥ कि दुष्ट तपस्वी मुझको धिक्है व मेरे दुष्कर तपको

धिक्है और सबके छलनेहारे इस शिवक्षेत्रको भी धिक्है ॥ २० ॥ इससे जैसे यहां किसीकी भी मुक्ति न होवे वैसेही करूं इस भांति शाप देनेको जब उद्यत या उद्योग वालेहुये तब शिवजी भलीभांति हँसेथे ॥ २१ ॥ व वहां एक लिंग हुआथा जोकि प्रहसितेश्वर कहागयाहै उस लिंगके दर्शन से पुरुषोंका क्षण क्षण या स्थान स्थान में आनन्द होवे है ॥ २२ ॥ और विस्मयसे संयुत महेश्वरजी ने मनमेंही ऐसा कहा कि ऐसे तपस्वियों के लिये बार बार नमस्कारहो ॥ २३ ॥ कि ब्राह्मण जहांही तपस्या करते हैं व जहांही आश्रमको कियेहुये हैं व जहांही पाई प्रतिष्ठावाले हैं वहांही असहनशील हैं ॥ २४ ॥ और तपस्वी लोग जो कुछेक चिन्तितमात्र को

यथानमुक्तिरत्रस्यात्कस्यापिकरवैतथा ॥ इतिशप्तुंयदोद्युक्तःसञ्जहासतदाशिवः ॥ २१ ॥ तत्रलिङ्गमभूदेकंख्यातंप्रह सितेश्वरम् ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसामानन्दःस्यात्पदेपदे ॥ २२ ॥ उवाचविस्मयाविष्टोमनस्येवमहेशिता ॥ ईदृशेभ्यस्त पस्विभ्योनमोस्त्वितिपुनःपुनः ॥ २३ ॥ यत्रैवहितपस्यन्तियत्रैवविहिताश्रमाः ॥ लब्धप्रतिष्ठायत्रैवतत्रैवामर्षिणोद्वि जाः ॥ २४ ॥ मनाक्चिन्तितमात्रन्तुचेल्लभन्तेनतापसाः ॥ क्रुधातदैवजीयन्तेहारिण्यातपसांश्रियः ॥ २५ ॥ तथापिता पसामान्याःस्वश्रेयोवृद्धिकांक्षिभिः ॥ अक्रोधनाःक्रोधनावाकाचिन्ताहितपस्विनाम् ॥ २६ ॥ इतियावन्महेशानोम नस्येवविचिन्तयेत् ॥ तावत्तत्क्रोधजोवह्निर्व्यानशेव्योममण्डलम् ॥ २७ ॥ तत्क्रोधानलधूमौघैर्व्यापितंयन्नभोङ्गण म् ॥ तद्द्यधातिनभोद्यापिनीलिमानंमहत्तरम् ॥ २८ ॥ ततोगणाःपरिक्षुब्धाःप्रलयार्णवनीरवत् ॥ आःकिमेतत्किमेत द्वैभाषमाणाःपरस्परम् ॥ २९ ॥ गर्जन्तस्तर्जयन्तश्चप्रोद्यतायुधपाणयः ॥ प्रमथाःपरितस्थुस्तेपरितोधामशाम्भव

नहीं पातेहैं तो तपस्याओंकी सम्पत्तिके हरनेहारे भी क्रोधसे जीतेजाते हैं ॥ २५ ॥ तो भी क्रोध करनेवाले या न क्रोध करनेवाले तपस्वीलोग अपने कल्याणकी वृद्धि चाही मनुष्यों से मानने योग्यहीहैं जिससे तपस्वियोंका क्या चिन्ताहै ॥ २६ ॥ इस प्रकार महेशजी जबतक मनमेंही विचारें तबतक दुर्वासाजीके क्रोधसे उपजीहुई अ-ग्नि आकाशमण्डलमें व्यापगई ॥ २७ ॥ और जिससे आकाश आंगन उस क्रोधाग्निके धूमसमूहों से व्यापितहुआ उससे आज भी वह आकाश बहुत भारी श्यामता को धारण करताहै ॥ २८ ॥ तदनन्तर आः यह क्याहै यह क्याहै इसही वाक्य को परस्पर कहतेहुये प्रलयसमुद्रके पानीकी नाईं सब ओरसे मंचलित होगये ॥ २९ ॥

और गर्जते व तर्जतेहुये अधिक उद्यत आयुधसमेत हाथोंवाले वे गण शम्भुके स्थान याने आनन्दवन (काशी) के सब ओरमें घेरकर टिके ॥ ३० ॥ कि हमारे क्रुद्ध होते ही यम कौनहै अथवा काल कौनहै व मृत्यु कौनहै तथा प्रलयाग्नि कौनहै व ब्रह्मा कौनहै व इन्द्रादि देव कौनहैं और विष्णु भी कौनहै ॥ ३१ ॥ हमलोग अग्निको पानी की नाईं पीतेहैं व सम्पूर्ण पर्वतोंको चूर्ण करते हैं व सातोसमुद्रों को भी शीघ्रही जलसे हीन स्थल करते हैं ॥ ३२ ॥ व पातालको ऊपर पठाते हैं अथवा स्वर्गको नीचे धारते हैं व आकाशको भी एकही ग्रास (कवल) करते हैं या करेंगे ॥३३॥ अथवा क्षणभरमेंही ब्रह्माण्ड भांडको फोरे डालते हैं व काल और मृत्युको परस्पर तालके समान दूरमें

म् ॥ ३० ॥ कोयमःकोथवाकालःकोमृत्युःकस्तथान्तकः ॥ कोवाविधाताकेलेखाःक्रुद्धेष्वस्मासुकःपरः ॥ ३१ ॥ अग्निं पिबामोजलवच्चूर्णीकुर्मोखिलान्गिरीन् ॥ सप्तापिचार्णवांस्तूर्णंकरवाममरुस्थलीम् ॥ ३२ ॥ पातालञ्चानयामोर्ध्वम धोदध्मोथवादिवम् ॥ एकमेवहिवाग्रासंगगनंकरवामहे ॥ ३३ ॥ ब्रह्माण्डभाण्डमथवास्फोटयामःक्षणेनहि॥ आस्फा लयामोवान्योन्यंकालंमृत्युञ्चतालवत् ॥ ३४ ॥ ग्रसामोवाथभुवनंमुक्त्वावाराणसीम्पुरीम् ॥ यत्रमुक्ताभवन्त्येवमृतमा त्रेणजन्तवः ॥ ३५ ॥ कुतोऽयन्धूमसम्भारोज्वालावल्यःकुतस्त्वमूः ॥ कोवामृत्युञ्जयंरुद्रंनोविद्यान्मदमोहितः ॥ ३६ ॥ इतिपारिषदाःशम्भोर्महाभयभयप्रदाः ॥ जल्पन्तःकल्पयामासुःप्राकारंगगनस्पृशम् ॥ ३७॥ शकलीकृत्यबहुशःशि लावत्प्रलयानलम् ॥ नन्दीचनन्दिषेणश्चसोमनन्दीमहोदरः ॥ ३८ ॥ महाहनुर्महाग्रीवोमहाकालोजितान्तकः ॥ मृत्यु प्रकम्पनोभीमोघण्टाकर्णोमहाबलः ॥ ३९ ॥ क्षोभणोद्रावणोजृम्भीपञ्चास्यःपञ्चलोचनः ॥ द्विशिरास्त्रिशिराःसोमः

प्रक्षेपकरेंगे ॥ ३४ ॥ अथवा जिसमें मरेमात्रसे जन्तु मुक्त होते हैं उसही काशीको छोड़कर जगत्को ग्रसते हैं ॥ ३५ ॥ यह धूमसमूह कहांसे या क्यों हुआहै और ये ज्वाला की पंक्तियां किससे हुईहैं व मदसे मोहित कौन जन मृत्युंजय रुद्रको नहीं जानैहै ॥ ३६ ॥ इसभांति बकतेहुये महाभयके भी बडे भयदायक शिवगणोंने आकाशके छूनेवाले याने बड़े ऊंचे प्राकार(घेर) को कल्पित किया ॥ ३७ ॥ व दुर्वासाके क्रोधसे उपजीहुई प्रलयाग्निको शिलाकी नाईं बहुतसे खण्डकर नन्दी, नन्दिषेण, सोमनन्दी व महोदर ॥ ३८ ॥ व महाहनु,हयग्रीव, महाकाल, जितान्तक, मृत्युप्रकम्पन, भीम,घंटाकर्ण, महाबल ॥ ३९ ॥ व क्षोभण, द्रावण, जृम्भी, पंचास्य, पंचलोचन, द्विशिरा, त्रिशिरा,

सोम, पंचहस्त, दशमुख ॥ ४० ॥ व चण्ड, भृंगिरिटि, तण्डी, प्रचण्ड, ताण्डवप्रिय, पिचिण्डिल, स्थूलशिरा, स्थूलकेश, गभस्तिमान् ॥ ४१ ॥ व क्षेमक, क्षेमधन्वा, वीरभद्र, रणप्रिय, चण्डपाणि, शूलपाणि, पाशपाणि, कृशोदर ॥ ४२ ॥ व दीर्घग्रीव, पिंगाक्ष, पिंगल, पिंगमूर्धज, बहुनेत्र, लम्बकर्ण, खर्व, पर्वतविग्रह ॥ ४३ ॥ व गोकर्ण, गजकर्ण, कोकिलनामक, गजानन (गणेश) व मैमी (कार्त्तिकेय) व विकटास्य, अट्टहासक ॥ ४४ ॥ व सीरपाणि, शिवाराव, वैणिक, वेणुवादन, दुराधर्ष, दुस्सह, गर्जन और रिपुतर्जन ॥ ४५ ॥ इत्यादि सैकड़ों करोड़ दुरासद गणेश्वरोंने काशी में वायुकी भी गतिको निवारण करदिया ॥ ४६ ॥ और उन वीरों के क्षोभयुक्त होतेही त्रिलोक कांप-

पञ्चहस्तोदशाननः ॥ ४० ॥ चण्डोभृङ्गिरिटिस्तण्डीप्रचण्डस्ताण्डवप्रियः ॥ पिचिण्डिलःस्थूलशिराःस्थूलकेशोगभस्तिमान् ॥४१॥ क्षेमकःक्षेमधन्वाचवीरभद्रोरणप्रियः॥ चण्डपाणिःशूलपाणिःपाशपाणिःकृशोदरः ॥ ४२ ॥ दीर्घग्रीवोथपिङ्गाक्षःपिङ्गलःपिङ्गमूर्धजः ॥ बहुनेत्रोलम्बकर्णःखर्वःपर्वतविग्रहः ॥ ४३ ॥ गोकर्णोगजकर्णश्चकोकिलाख्योगजाननः ॥ अहंवैनैगमेयश्चविकटास्योट्टहासकः ॥ ४४ ॥ सीरपाणिःशिवारावोवैणिकोवेणुवादनः ॥ दुराधर्षोदुःसहश्चगर्जनोरिपुतर्जनः ॥ ४५ ॥ इत्यादयोगणेशानाःशतकोटिदुरासदाः ॥ काश्यांनिवारयामासुरपिप्राभञ्जनीङ्गतिम् ॥ ४६ ॥ क्षुब्धेषुतेषुवीरेषुचकम्पेभुवनत्रयम् ॥ दुर्वाससश्चकोपाग्निज्वालाभिर्व्याकुलीकृतम् ॥ ४७॥ तदाविविशतुःकाश्यांसूर्याचन्द्रमसावपि ॥ नगणैरकृतानुज्ञौतत्तेजःशमितप्रभौ ॥ ४८ ॥ निवार्यप्रमथानीकमतिक्षुब्धमुमाधवः ॥ मदंशएनहिमुनिरानसूयेयएषवै ॥ ४९ ॥ अथोद्दुर्वाससोलिङ्गादाविरासीत्कृपानिधिः ॥ महातेजोमयःशम्भुर्मुनिशापात्पुरीमव

नेलगा जोकि दुर्वासाके क्रोधसे उपजीहुई अग्निकी ज्वालाओं से व्याकुल कियागया था ॥ ४७ ॥ उस समय उनके तेजसे नष्ट प्रकाशवाले व गणोंसे न कियेहुये आयसुवाले चन्द्रमा और सूर्य्य भी काशीमें नहीं पैठते थे किन्तु आज्ञावाले होकर पैठते थे॥ ४८ ॥ और अनसूयाका पुत्र यह मुनि भी मेरा अंशहीहै ऐसे कहकर अत्यन्त क्षोभयुक्त, गणोंकी सेनाको निवारणकर पार्वतीजीके पति॥ ४९ ॥ जोकि कृपाके निधान व बड़े तेजस्वी व कल्याणकर्त्ता हैं वह मुनिके शापसे पुरीकी रक्षा करतेहुये उसके

बाद दुर्वासाके लिंगसे प्रकटहुये ॥ ५० ॥ कि मुनिका शाप काशीमें मुक्तिके रोकनेवाला मत होवे ऐसी दयासे महादेवजी उन दुर्वासाजीकी प्रत्यक्षताको प्राप्तहोगये ॥ ५१ ॥ और बोले कि हे महाक्रोधन, तापस ! मैं प्रसन्नहूं इससे विशेष शंकासे हीनहुये तुम वरको अंगीकारकरो और मुझकरके कौनवर तुमको देने योग्यहै ॥ ५२ ॥ हे अगस्त्यजी ! तदनन्तर शापके लिये उद्यत हाथवाले मुनि इसभांति विशेषतासे लज्जित होगये कि क्रोधसे अन्धे व दुष्ट बुद्धिवाले मैंने बहुतही अपराधकिया ॥ ५३ ॥ और बहुतसे ऐसा बोले कि त्रिलोककी अभय देनेहारी काशीको शापने के लिये उद्यत चित्तवाले व क्रोधके वशमे गयेहुये मुझको धिक्है ॥ ५४ ॥ और दुःखसागर में डूबे

न् ॥ ५० ॥ माभूच्छापोमुनेःकाश्यांनिर्वाणप्रतिबन्धकः ॥ इत्यनुक्रोशतोदेवस्तस्यप्रत्यक्षताङ्गतः ॥ ५१ ॥ उवाचचप्रसन्नोस्मिमहाक्रोधनतापस ॥ वरयस्ववरःकस्तेमयादेयोविशङ्कितः ॥ ५२ ॥ ततोविलज्जितोगस्त्यशापोद्यतकरोमुनिः ॥ अपराद्धम्बहुमयाक्रोधान्धेनेतिदुर्धिया ॥ ५३ ॥ उवाचचेतिबहुशोधिङ्मांक्रोधवशङ्गतम् ॥ त्रैलोक्याभयदाङ्काशींशप्तुमुद्यतचेतसम् ॥ ५४ ॥ दुःखार्णवनिमग्नानांयातायातेतिखेदिनाम् ॥ कर्मपाशितकण्ठानांकाश्येकामुक्तिसाधनम् ॥ ५५ ॥ सर्वेषांजन्तुजातानांजनन्येकैवकाशिका ॥ महामृतस्तन्यदात्रीनेत्रीचपरमम्पदम् ॥ ५६ ॥ जनन्यासहनोकाशीत्वभेदुपामितिंकचित ॥ धारयेज्जननीगर्भेकाशीगर्भाद्विमोचयेत् ॥ ५७ ॥ एवम्भूतान्तुयःकाशीमन्योगिहिशपिष्यति ॥ तस्यैवशापोभवितानतुकाश्याःकथञ्चन ॥ ५८ ॥ इतिदुर्वाससोवाक्यंश्रुत्वादेवस्त्रिलोचनः ॥ अतीवतुष्टोजातःकाशीस्तवनलब्धमुत् ॥ ५९ ॥ यःकाशींस्तौतिमेधावीयःकाशींहृदिधारयेत ॥ तेनतप्तंतपस्तीव्रंतेनेष्टंक्रतु

व आने जाने में याने जन्मधरने व मरने में अत्यन्त खेदवान् व कर्मों से पाशित (फांसे) कण्ठवाले जनोंकी मुक्तिका साधन एक काशीही है ॥ ५५ ॥ और परमपदको पहुँचानेवाली व महामृत (मोक्ष) रूप दूध देनेवाली काशीही सब जन्तुसमूहों की मुख्य माताहै ॥ ५६ ॥ परन्तु काशीपुरी माताके साथ उपमाको कहीं नहीं पावैहै क्योंकि माता गर्भ में धारै है और काशी गर्भसे छोरैहै इससे यह अतिशय श्रेष्ठहै ॥ ५७ ॥ और जोकि अन्य भी ऐसीहुई काशीको शाप देवेगा उसकाही शाप होवेगा और काशीको किसीभांति से न होवेगा ॥ ५८ ॥ ऐसा दुर्वासाका वचन सुनकर काशी की स्तुति से आनन्दको पायेहुये त्रिनेत्रदेव बहुतही सन्तुष्टहुये ॥ ५९ ॥ जो बुद्धिमान्

काशीकी स्तुति करताहै व जो काशीको हृदयमें धरताहै उसने तीव्र तपस्या तपाहै और उसने कोटियज्ञों से पूजाकियाहै ॥ ६० ॥ काशी ऐसे दो अक्षर जिस सुबुद्धिमान् की जीभके आगे बर्तते हैं उसका गर्भवास कहीं नहीं होवे है॥ ६१ ॥ व जोकि काशी इस दो अक्षररूप मन्त्रको प्रातःकालमें जपताहै वह दोनों लोकोंको जीतकर लोकातीत पदको जावैहै ॥ ६२ ॥ हे अनसूयाके पुत्र, दुर्वासः! इससमय काशीकी स्तुतिकी पुण्य से जैसा तुम्हारा ज्ञानहै वैसा आगे तपस्यासे नहीं समुत्पन्न हुआथा॥ ६३ ॥ हे मुने ! काशीकी स्तुतिकी लालसावाला जन जैसा मेरा बहुत प्याराहै वैसा दीक्षासमेत पूजक मेरा प्यारा नहींहै यह सत्यहै ॥ ६४ ॥ व काशीकी भलीभांति

कोटिभिः ॥ ६० ॥ जिह्वाग्रेवर्ततेयस्यकाशीत्यक्षरयुग्मकम् ॥ नतस्यगर्भवासःस्यात्कचिदेवसुमेधसः ॥ ६१ ॥ योमन्त्रंजपतिप्रातःकाशीवर्णद्वयात्मकम् ॥ सतुलोकद्वयंजित्वालोकातीतंव्रजेत्पदम् ॥ ६२ ॥ आनसूयेयतेज्ञानंकाशीस्तवनपुण्यतः ॥ यथेदानींसमुत्पन्नंतथानतपसःपुरा ॥ ६३ ॥ मुनेनमेप्रियस्तद्वद्दीक्षितोममपूजकः ॥ यादृक्प्रियतरःसत्यंकाशीस्तवनलालसः ॥ ६४ ॥ तादृक्तुष्टिर्नमेदानैस्तादृक्तुष्टिर्नमेमखैः ॥ नतुष्टिस्तपसातादृग्यादृशीकाशिसंस्तवैः ॥ ६५ ॥ आनन्दकाननंयेनस्तुतमेतत्सुचेतसा ॥ तेनाहंसंस्तुतःसम्यक्सर्वैःसूक्तैःश्रुतीरितैः ॥ ६६ ॥ तवकामाःसमृद्धाःस्युरानसूयेयतापस ॥ ज्ञानन्तेपरमंभाविमहामोहविनाशनम् ॥ ६७ ॥ अपरञ्चवरम्ब्रूहिकिन्दातव्यन्तवानघ ॥ त्वादृशाएवमुनयःश्लाघनीयायतःसताम् ॥ ६८ ॥ यस्यास्त्येवहिसामर्थ्यन्तपसःक्रुध्यतीहसः ॥ कुपितोप्यसमर्थस्तुकिङ्कर्ताक्षीणवृत्तिवत् ॥ ६९ ॥ इतिश्रुत्वापरिष्टुत्यदुर्वासाःकृत्तिवाससम् ॥ वरञ्चप्रार्थयामासपरिहृष्टतनूरुहः ॥ ७० ॥ दुर्वासा

स्तुतियों से जैसे मेरी सन्तुष्टि होतीहै वैसी तुष्टि दानोंसे नहींहै व वैसी तुष्टि तपसे नहीं है और वैसी मेरी तुष्टि यज्ञों से भी नहींहै ॥ ६५ ॥ व जिस अच्छे चित्तवालेने इस आनन्दवनकी स्तुतिकिया उसने वेदोक्त सब सूक्तों से भलीभांति मेरी बहुत स्तुतिकिया॥ ६६ ॥ हे तापस, अनसूयाके पुत्र ! तुम्हारे मनोरथ समृद्ध होवें और महामोहका विनाशक तुम्हारा ज्ञान होनेवालाहै ॥ ६७ ॥ और हे अपाप ! अन्यवरको कहो कि तुम को क्या देने योग्यहै जिससे तुम्हारे समान मुनिलोग सन्तों से प्रशंसनीयहैं ॥ ६८ ॥ व जिसकेही तपसे सामर्थ्य है वहही क्रोध करताहै और रुष्टहुआ भी असमर्थ क्षीणवृत्ति (दरिद्री) की नाईं क्या करेगा ॥ ६९ ॥ ऐसा सुनकर हर्ष युक्त रोमोंवाले

दुर्वासाजीने शिवजीकी सब ओरसे स्तुतिकर वरको मांगा ॥ ७० ॥ दुर्वासाजी बोले कि, हे देवोंकेदेव, जगन्नाथ, करुणाकर, शंकर, महापराधविध्वंसिन्, अन्धकासुरशत्रो, कामान्तक, ॥ ७१ ॥ मृत्युंजय, उग्र, भूतेश, पार्वतीश, त्रिनेत्र, नाथ! जो आप मुझसे प्रसन्नहो व जो मुझको वर देने योग्य है ॥ ७२ ॥ तो हे धूर्जटे! यह कामदनामक लिंग यहां टिके और यह मेरा छोटा तड़ाग यहां कामकुण्डनामक प्रसिद्ध होवे ॥ ७३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे महातेजस्विन्, परमकोपन, मुने! ऐसाहीहो कि जो दुर्वासेश्वर सञ्ज्ञकलिंग तुमसे स्थापितहुआहै ॥ ७४ ॥ वहही मनुष्यो के कामोका पूर्णकर्त्ता यहां कामेश्वर ऐसा होजावे व शनैश्चर दिनसंयुत त्रयोदशी तिथिमें प्रदोषसमय जो

उवाच ॥ देवदेवजगन्नाथकरुणाकरशङ्कर ॥ महापराधविध्वंसिन्नन्धकारेस्मरान्तक ॥ ७१ ॥ मृत्युञ्जयोग्रभूतेशमृडानीशत्रिलोचन ॥ यदिप्रसन्नोमेनाथयदिदेयोवरोमम ॥ ७२ ॥ तदिदङ्कामदंनामलिङ्गमस्त्विहधूर्जटे ॥ इदञ्चपल्वलंमेत्रकामकुण्डाख्यमस्तुवै ॥ ७३ ॥ देवदेवउवाच ॥ एवमस्तुमहातेजोमुनेपरमकोपन ॥ यत्त्वयास्थापितंलिङ्गंदुर्वासेश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ ७४ ॥ तदेवकामकृन्नॄणांकामेश्वरमिहास्त्विति ॥ यःप्रदोषेत्रयोदश्यांशनिवासरसंयुजि ॥ ७५ ॥ संस्नास्यतिनरोधीमान्कामकुण्डेत्वदास्पदे ॥ त्वत्स्थापितञ्चकामेशंलिङ्गन्द्रक्ष्यतिमानवः ॥ ७६ ॥ सर्वैकामकृताद्दोषाद्यामींनाप्स्यतियातनाम् ॥ बहवोपिहिपाप्मानोबहुभिर्जन्मभिःकृताः ॥ ७७ ॥ कामतीर्थाम्बुसंस्नानाद्यास्यन्तिविलयंक्षणात् ॥ कामाःसमृद्धिमाप्स्यन्तिकामेश्वरनिषेवणात् ॥ ७८ ॥ इतिदत्त्वावरान्शम्भुस्तल्लिङ्गेलयमाययौ ॥ स्कन्दउवाच ॥ तल्लिङ्गाराधनात्कामाःप्राप्तादुर्वाससाभृशम् ॥ ७९ ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनकाश्यांकामेश्वरःसदा ॥ पूजनीयःप्रयत्नेनमहा

कि ॥ ७५ ॥ बुद्धिमान् मनुष्य कामकुण्डमे भलीभांति स्नान करेगा व जो मनुष्य तुम्हारे स्थानमें तुमकरके थापेहुये कामेश्वरलिंगको देखेगा ॥ ७६ ॥ वह भी कामसे कियेहुये दोषोसे यमकी यातनाको न पावेगा और बहुते जन्मों से कियेहुये बहुतेही पापभी ॥ ७७ ॥ कामतीर्थ के जलमे भलीभांति नहाने सेक्षणभर में विनाशको प्राप्तहोजावेंगे व सब काम कामेश्वर की सेवासे समृद्धिको प्राप्तहोवेंगे ॥ ७८ ॥ ऐसा वरदेकर शङ्करजी उस लिंग में लयको प्राप्तहुये, श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि दुर्वासाजीने उस लिंगकी पूजासे कामोको बहुतही प्राप्तकिया है ॥ ७९ ॥ उसलिये बडे यत्नसे सुलभहुई काशीमे बड़े कामो के अभिलाषी लोगों करके बड़ेयत्नसे कामेश्वर सदा

पुत्र ! तुम चोलीको बनावो ॥ ६ ॥ जोकि मेरे अंगके योग्यहो न कसी हो न ढीली हो व वस्त्रके विनाही बड़े यत्नसे वल्कलों से बनीहो व सुन्दरहो व सदा उज्ज्वल हो ॥ ७ ॥ और वह विश्वकर्मा गुरुके पुत्रसे आज्ञप्तहुये कि तुम मेरे अर्थ पादुकाओं (खड़ाऊं) को करो कि जिनमे चढ़ेहुये मेरे पावोंको कीचकहीं न छुवे ॥ ८ ॥ व जे कि चर्मादि बन्धनसे निर्मुक्त (हीन) व धावतेहुये मुझको सुख देनेवाली होवें और मैं जिनसे जलमें भी स्थलभूमिकी नाईं शीघ्रही भलीभांति चलाकरूं ॥ ९ ॥ और गुरुकी कन्याने उससे कहा कि हे त्वष्टाके पुत्र ! तुम अपने हाथसे मेरे कानों के योग्य व सोनेसे निर्मित भूषणोंको करो ॥ १० ॥ और अपने हाथोंसे बनायेहुये व हाथी

ढंनश्लथञ्चप्रयत्नतः ॥ विनैववाससाचारुवाल्कलञ्चसदोज्ज्वलम् ॥ ७ ॥ गुरुपुत्रेणचाज्ञप्तोममार्थम्पादुकेकुरु ॥ यदारूढस्यमेपादौनपङ्कःसंस्पृशेत्कचित् ॥ ८ ॥ चर्मादिबन्धनिर्मुक्तेधावतोमेसुखप्रदे ॥ याभ्याञ्चसञ्चरेवारिस्थलभूमाविवद्रुतम् ॥ ९ ॥ गुरुकन्यापितम्प्राहत्वाष्ट्रमेश्रवणोचिते ॥ भूषणेस्वेनहस्तेनकुरुकाञ्चननिर्मिते ॥ १० ॥ कुमारीक्रीडनीयानिकौतुकानिचदेहिमे ॥ दन्तिदन्तमयान्येवस्वहस्तरचितानिच ॥ ११ ॥ गृहोपकरणन्द्रव्यंमुसलोलूखलादिकम् ॥ तथाघटयमेधाविन्यथात्रुट्यतिनकचित् ॥ १२ ॥ अक्षालितान्यपियथानित्यंपीठानिसत्तम ॥ उज्ज्वलानिभवन्त्येवस्थालिकाश्चतथाकुरु ॥ १३ ॥ सूपकर्मण्यपिचमांप्रशाधित्वष्टृनन्दन ॥ यथांगुल्योनदह्यन्तेपाकःस्याच्चयथाशुभः ॥ १४ ॥ एकस्तम्भमयङ्गेहमेकदारुविनिर्मितम् ॥ तथाकुरुवरन्त्वाष्ट्रयत्रेच्छातत्रधारये ॥ १५ ॥ येसहाध्यायिनोप्यस्यच

दांतसे रचित व कौतुक उपजानेवाले कुमारीके खिलौनोंको भी मुझे दो ॥ ११ ॥ और हे बुद्धिमन् ! मूशल व कांड़ी आदि घरके उपकरण द्रव्यको वैसे बनावो कि जैसे कहीं नहीं टूटें फूटें ॥ १२ ॥ व हे सत्तम ! विना धोयेहुयेही पीढ़ा और थालियां जैसे नित्यही उजली होतीहैं वैसेही करो ॥ १३ ॥ और हे त्वष्टृनन्दन ! तुम दालि आदि रसोई कर्ममें भी मुझको बहुतही सिखावो कि जैसे हाथ नहीं जलैं व जैसे शुभ पाक होवे ॥ १४ ॥ और हे त्वाष्ट्र ! एक खम्भमय व एक काठसे बनाहुआ वैसा श्रेष्ठ घर बनावो कि जहां इच्छाहोवे वहां उसको धारणकरूं ॥ १५ ॥ व जे इस विश्वकर्माके साथ पढ़नेवाले अवस्थासे भी श्रेष्ठहैं वे सब भी उसके कियेही

पूजने योग्य है ॥ ८० ॥ और महापापों की शान्तिके लिये कामकुण्ड में स्नानकिये हुये लोगोंको भी कामेश्वर की पूजा करना चाहिये व जो पुण्यवान् इस कामेश्वर के आख्यान को पढ़ेगा और जो बुद्धिमान् सुनेगा वे दोनों निष्पाप होवेंगे ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदुर्वाससोवरप्रदानंनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ❀ ॥

दो० । छीयासी अध्यायमें विश्वकर्म तपमानि। विश्वकर्म ईश्वर सुखद उनका उद्भव जानि॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे देव देव ! जोकि विश्वकर्मेश्वर लिंग काशी

कामाभिलाषुकैः ॥ ८० ॥ कामकुण्डकृतस्नानैर्महापातकशान्तये ॥ इदङ्कामेश्वराख्यानंयःपठिष्यतिपुण्यवान् ॥ यःश्रोष्यतिचमेधावीतौनिष्पापौभविष्यतः ॥ ८१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदुर्वाससोवरप्रदानंनामपञ्चाशीतितमोध्यायः ॥ ८५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

पार्वत्युवाच ॥ विश्वकर्मेश्वरंलिङ्गंयत्काश्याम्प्रथितम्परम् ॥ तस्यलिङ्गस्यकथयदेवदेवसमुद्भवम् ॥ १ ॥ देवदेव उवाच ॥ शृणुदेविप्रवक्ष्यामिकथाम्पातकनाशिनीम् ॥ विश्वकर्मेशलिङ्गस्यप्रादुर्भावंमनोहरम् ॥ २ ॥ विश्वकर्माभवत्पूर्वंब्रह्मणस्त्वपरातनुः ॥ त्वष्टुःप्रजापतेःपुत्रोनिपुणःसर्वकर्मसु ॥ ३ ॥ कृतोपनयनःसोथबालोगुरुकुलेवसन् ॥ चकारगुरुशुश्रूषांभिक्षान्नकृतभोजनः ॥ ४ ॥ एकदातद्गुरुःप्राहप्रावृट्कालेसमागते ॥ कुरूटजंमदर्थन्त्वंयथाप्रावृषानबाधते ॥ ५ ॥ यत्कदाचिन्नभज्येतनपुरातनतांव्रजेत् ॥ गुरुपत्न्यात्वभिहितोरेत्वाष्ट्रकुरुकञ्चुकम् ॥ ६ ॥ ममाङ्गयोग्यंनोगा

में श्रेष्ठ प्रसिद्धहै उस लिंगकी भलीभांति उत्पत्तिको कहो ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे देवि ! मैं पापनाशिनी कथाको बहुतही कहूंगा तुम विश्वकर्मेश्वरलिंगके मनोहर प्रकट होनेको सुनो ॥ २ ॥ कि पूर्वकालमें त्वष्टा प्रजापतिका पुत्र व सब कर्म्मोंमें कुशल व ब्रह्माकी दूसरी देहसा विश्वकर्माहुआ ॥ ३ ॥ वह कियेहुये यज्ञोपवीत कर्मवाला बालक अनन्तर गुरुकुलमें बसताहुआ व भिक्षान्न भोजी होकर गुरुवोंकी सेवा करताभया ॥ ४ ॥ एक समय वर्षाकालके भलीभांति आतेही उसके गुरुने कहा कि जैसे वर्षा नहीं बाधा करै वैसेही तुम मेरे अर्थ पर्णशालाबनाओ ॥ ५ ॥ जोकि कभी न टूटे व पुरानेभावको न प्राप्तहोवे और वह गुरु की स्त्री से कहागया कि हे त्वष्टाके

सब कर्मकी वांछा करते हैं ॥ १६ ॥ हे पर्वतराजकुमारि ! वैसेहो इसभांति सबके आगे प्रतिज्ञाकर फिर बड़ी चिन्ता और डरसे पीडितहुआ वह वनके बीचमें पैठा ॥ १७ ॥ क्योंकि वह कुछ करने के लिये नहीं जानताहै और उसने सबके सामने प्रसिद्ध प्रतिज्ञा कियाथा कि मैं सब करूंगा ऐसा निश्चितहै ॥ १८ ॥ और क्या करूं कहां जाऊं कौनजन वनमें टिकेहुये मेरी बुद्धिकी भी सहायताको देवे और किसरक्षकको प्राप्तहोऊं ॥ १९ ॥ जो मनुष्य गुरु गुरुवानी और गुरुपुत्रके वचनको अंगीकारकर न सिद्ध करे वह मूढ़ नरकवासी होवे ॥ २० ॥ और गुरुकी सेवाही ब्रह्मचारियोंका मुख्यधर्म है इससे उनके वचनको न सिद्धकर मेरा उद्धार किसप्रकार होवेहै ॥ २१ ॥ व गुरु-

योज्येष्ठाश्चतेपिहि ॥ सर्वेसर्वसमीहन्तेकर्मतत्कृतमेवहि ॥ १६ ॥ तथेतिसप्रतिज्ञायसर्वेषाम्पुरतोद्विजे ॥ मध्येवनम्प्राविशचमहाचिन्ताभयार्दितः ॥१७॥ किञ्चित्कर्तुंनजानातिप्रतिज्ञातञ्चतेनवै ॥ सर्वेषाम्पुरतःसर्वंकरिष्यामीतिनिश्चितम् ॥ १८ ॥ किङ्करोमिकगच्छामिकोमेसाहाय्यमर्पयेत् ॥ बुद्धेरपिवनस्थस्यशरणङ्कंव्रजामिच ॥ १९ ॥ अङ्गीकृत्यगुरोर्वाक्यंगुरुपत्न्यागुरोःशिशोः ॥ योननिष्पादयेन्मूढःसभवेन्निरयीनरः ॥ २० ॥ गुरुशुश्रूषणन्धर्मएकोहिब्रह्मचारिणाम् ॥ अनिष्पाद्यतुतद्वाक्यंकथम्मेनिष्कृतिर्भवेत् ॥ २१ ॥ गुरूणांवाक्यकरणात्सर्वएवमनोरथाः ॥ सिद्ध्यन्तीतरथानैवतस्मात्कार्यंहितद्वचः ॥ २२ ॥ कथन्तद्वचसःसिद्धिंप्राप्स्याम्यत्रवनेस्थितः ॥ कश्चमेत्रसहायीस्याद्धिषणादुर्बलस्यवै ॥ २३ ॥ आस्तांगुरुकथादूरंयोऽन्यस्यापिलघोरपि ॥ ओमित्युक्त्वानकुरुतेकार्यंसोथव्रजत्यधः ॥ २४ ॥ कथमेतानिकर्माणिकरिष्येऽज्ञोऽसहायवान् ॥ अङ्गीकृतानितद्भीत्यानमस्तेभवितव्यते ॥ २५ ॥ यावदित्थंचिन्तयतिसत्वाष्ट्रोवनमध्यगः ॥ ता

ओंका वाक्य करने से सबही मनोरथ सिद्ध होतेहैं अन्यभांति से नहीं उससे उनका वचन करनाही चाहिये ॥ २२ ॥ और इस वनमें टिकाहुआ मैं उनके वचन की सिद्धिको कैसे प्राप्त होऊंगा व बुद्धिसे दुर्बल जो मैंहूं उसका यहां कौन सहायक भी होवे है ॥ २३ ॥ व गुरुवोंकी कथा तो दूररहै किन्तु अन्य छोटेके भी कार्य्यको अंगीकारकर जो नहीं करताहै वह अनन्तर नीचे (नरक) को जाताहै ॥ २४ ॥ और न सहायकवाला अज्ञानी मैं उनके डरसे अंगीकार किये हुये उन कर्मोंको कैसे करूंगा हे भवितव्यते ! तुम्हारे लिये नमस्कारहै ॥ २५ ॥ इसभांति वनके मध्यगत वह त्वष्टाका पुत्र जबतक चिन्तना करताहै तबतक उसने उस समयमेंही संप्राप्तहुये

एक तपस्वी को देखा ॥ २६ ॥ अनन्तर उसने वनमें देखे तपस्वी को नमस्कारकर उससे कहा कि आप कौनहैं जो मेरे मनको बहुतही सुखित करतेहो यह आश्चर्य्य है ॥ २७ ॥ कि चिन्ता सन्ताप से तपाया हुआ भी मेरा शरीर हिमसमूह में पैठने की नाईं तुम्हारे दर्शन से क्षणमें शीतल होता है ॥ २८ ॥ क्या तुम तापसरूप धारी होकर प्राप्तहुआ मेरापुरातन कर्महो अथवा आप करुणासागर शिव प्रकटहुये हो ॥ २९ ॥ आप जोहो सोहो आपकेलिये नमस्कार है आप मुझ को उपदेश से युक्त कीजिये गुरुके कहे व गुरुकी स्त्रीके कहे तथा गुरुपुत्रके भी कहेहुये ॥ ३० ॥ अद्भुत कर्मको करने के लिये मैं कैसे समर्थ होऊं उसमें उपदेश करो और निर्ज-

वत्तदैवसम्प्राप्तस्तेनैकोऽदर्शितापसः ॥ २६ ॥ अथनत्वासतम्प्राहवनेदृष्टन्तपस्विनम् ॥ कोभवान्मानसंमेयोनितरांसुख यत्यहो ॥ २७ ॥ त्वद्दर्शनेनमेगात्रंचिन्तासन्तापतापितम् ॥ हिमानीगाहनेनेवशीतलम्भवतिक्षणम् ॥ २८ ॥ किन्त्वंमे प्राक्तनङ्कर्मप्राप्तन्तापसरूपधृक् ॥ अथवाकरुणावार्धिराविर्भूतःशिवोभवान् ॥ २९ ॥ योसिसोसिनमस्तुभ्यमुपदेशेनयुं क्ष्वमाम् ॥ गुरूक्तंगुरुपत्न्युक्तंगुर्वपत्योक्तमेवच ॥ ३० ॥ कथङ्कर्तुमहंशक्तःकर्मतत्रादिशाद्भुतम् ॥ कुरुमेबुद्धिसाहाय्यंनिर्ज नेबन्धुताङ्गतः ॥ ३१ ॥ इत्युक्तस्तेनसवनेतापसोब्रह्मचारिणा ॥ कारुण्यपूर्णहृदयोयथोक्तमुपदिष्टवान् ॥ ३२ ॥ यआप्तत्वे नसम्पृष्टोदुर्बुद्धिंसम्प्रयच्छति ॥ सयातिनरकङ्घोरंयावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ३३ ॥ तापसउवाच ॥ ब्रह्मचारिन्शृणुब्रूयां किमद्भुततरन्त्विदम् ॥ विश्वेशानुग्रहाद्ब्रह्माप्यभवत्सृष्टिकोविदः ॥ ३४ ॥ यदित्वन्त्वाष्ट्रसर्वज्ञंकाश्यामाराधयिष्यसि ॥ ततस्तेविश्वकर्मेतिनामसत्यम्भविष्यति ॥ ३५ ॥ विश्वेशानुग्रहात्काश्यामभिलाषानदुर्लभाः ॥ सुलभोदुर्लभोप्यत्रय

नवन में बन्धुभाव को प्राप्तहुये तुम मेरी बुद्धिकी सहायता करो ॥ ३१ ॥ इसभांति वनमें उस ब्रह्मचारी से कहेहुये उन तपस्वीने यथोक्त वचन का उपदेश दिया ॥ ३२ ॥ जोकि आप्तयाने यथार्थवक्ता के भाव से भलीभांति पूछाहुआ दुर्बुद्धि को देता है वह प्रलयतक घोर नरकको जाता है ॥ ३३ ॥ तपस्वी बोले कि हे ब्रह्म चारिन्! मैं कहताहूं तुम सुनो कि यह क्या बहुत अद्भुत है क्योंकि ब्रह्माजी भी श्रीविश्वनाथ की दयासे सृष्टि करने में पण्डित हुये हैं ॥ ३४ ॥ हे त्वाष्ट्र! जो तुम काशी में सर्वज्ञ विश्वेश्वर को पूजोगे तो तुम्हारा विश्वकर्म्मा ऐसा नाम सत्यहोगा ॥ ३५ ॥ व श्रीकाशीपुरी में विश्वनाथजी की दयासे कोई अभिलाषा दुर्लभ नहीं हैं

और इस जगत में दुर्लभभी मोक्ष जहां देहत्यागियों को सुलभ है ॥ ३६ ॥ ब्रह्माजी ने सृष्टिकरने की शक्ति व विष्णुजी ने सृष्टि रक्षाकी प्रवीणताको श्रीविश्वनाथजी के उत्तम अनुग्रह से पाया है ॥ ३७ ॥ हे बालक! जो तुम अपने मनोरथों की इच्छाकरो तो मुक्तिसञ्ज्ञक सम्पत्तिसे भलीभांति अधिकता से टिकेहुये श्रीविश्वनाथ जीके स्थानको जावो ॥ ३८ ॥ व प्रसिद्ध है कि उपमन्युमुनिसे दूधमात्र याचित, सबमनोरथदायक उन विश्वनायक शङ्करजी ने उनको सब क्षीरसमुद्रही देदिया ॥ ३९ ॥ व आनन्द वनमें शिवजी से किसको क्या क्या नहीं मिलता है जहां बासकरते हुये पुरुषोंको स्थान स्थान या क्षण क्षणमें धर्मोंकी राशिहै ॥ ४० ॥ व जहां गङ्गा जल के

त्रमोक्षस्तनुत्यजाम् ॥ ३६ ॥ सृष्टेःकरणसामर्थ्यंसृष्टिरक्षाप्रवीणता ॥ विधिनाविष्णुनाप्रापिविश्वेशानुग्रहात्परात् ॥ ३७ ॥ याहिवैश्वेश्वरंसद्मपद्मयासमधिष्ठितम् ॥ निर्वाणसञ्ज्ञयाबालयदीच्छेःस्वान्मनोरथान् ॥ ३८ ॥ सहिसर्वप्रदः शम्भुर्याचितश्चोपमन्युना ॥ पयोमात्रन्ददौतस्मैसर्वंक्षीराब्धिमेवच ॥ ३९ ॥ आनन्दकाननेशम्भोःकिङ्किन्नल भ्यते ॥ यत्रवासकृताम्पुंसांधर्मराशिःपदेपदे ॥ ४० ॥ स्वर्धुनीस्पर्शमात्रेणमहापातकसन्ततिः ॥ यत्रसंक्षयतिक्षिप्रंता ङ्काशीङ्कोनसंश्रयेत् ॥ ४१ ॥ नतादृग्धर्मसम्भारोलभ्यतेक्रतुकोटिभिः ॥ यादृग्वाराणसीवीथीसञ्चारेणपदेपदे ॥ ४२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयद्यत्रास्तिमनोरथः ॥ तदावाराणसींयाहियाहित्रैलोक्यपावनीम् ॥ ४३ ॥ सर्वकामफलप्राप्तिस्त दैवस्याद्ध्रुवंनृणाम् ॥ यदैवसर्वदःसर्वःकाश्यांविश्वेश्वरःश्रितः ॥ ४४ ॥ सतापसोक्तमाकर्ण्यत्वाष्ट्रइत्थंमुदान्वितः ॥ काशीसम्प्राप्त्युपायंचतमेवसमपृच्छत ॥ ४५ ॥ त्वाष्ट्रउवाच ॥ तदानन्दवनंशम्भोःकास्तितापससत्तम ॥ यत्रनोदु

स्पर्शमात्र से महा महापापों की परम्परा शीघ्रही विनष्ट होती है उस काशीको कौन नहीं सेवे है ॥ ४१ ॥ व जैसा धर्मसमूह काशीकी गलियों में विचरने से पग पगमें मिलता है वैसाकरोड़ों यज्ञों से नहीं मिलै है ॥ ४२ ॥ व जो इसलोकमें धर्म अर्थ काम और मोक्षका मनोरथहै तो तुम त्रैलोक्य पावनी काशी पुरीको जावो जावो ॥ ४३ ॥ जबहीं काशी में सबदायक शिवजी सेवित हुये हैं तबहीं मनुष्यों के सब कामोंकी सिद्धि निश्चयसे होवै है ॥ ४४ ॥ इसप्रकार तपस्वीके कहेहुये वचनको सुनकर फिर बहुत आनन्दित उस त्वष्टाके पुत्रने काशी की सम्प्राप्ति के उपायको भलीभांति पूंछा ॥ ४५ ॥ विश्वकर्मा बोले कि हे तापस सत्तम! वह शङ्करजी का आनन्दवन

कहां है जहां त्रिलोकमें स्थितहुआ कुछभी साधकों का दुर्लभ नहीं है ॥ ४६ ॥ हे मुने! जहां आनन्द लक्ष्मी है यह आनन्दवन स्वर्ग में है व मनुष्य लोकमें है व पातालमें है व कहाँ है ॥ ४७ ॥ व जहाँ सबके कर्णधरनेवाले गुरु या पारकर्त्ता विश्वेश्वर देव उस तारक ज्ञानको विशेषता से सब ओर से कहते हैं कि जिससे वे उनके स्वरूप भावको प्राप्तहोजाते हैं ॥ ४८ ॥ व जहां आनन्दवन में विचरनेवाले को नियमसे मुक्ति सम्पत्तिभी सुलभहै और अन्य छोटे मनोरथ क्याहैं ॥ ४९ ॥ उसशम्भु पुरीको मुझे कौन पठावे व मैं कैसे जाऊं वैसेही तुम कहो ऐसे उसके श्रद्धा समेत वचन को सुनकर वह तपस्वी ॥ ५० ॥ उच्चस्वर से बोले कि तुम चलेआवो वहां

र्लभंकिञ्चित्साधकानान्त्रयीस्थितम् ॥ ४६ ॥ स्वर्गेवामर्त्यलोकेवाबलिसद्मनिवामुने॥ क्वतदानन्दगहनंयत्रानन्दपयो ब्धिजा ॥ ४७ ॥ यत्रविश्वेश्वरोदेवोविश्वेषांकर्णधारकः ॥ व्याचष्टेतारकंज्ञानंयेनतन्मयतांययुः ॥ ४८ ॥ सुलभायत्र नियतमानन्दवनचारिणः ॥ अपिनैःश्रेयसीलक्ष्मीःकिमन्येल्पमनोरथाः ॥ ४९ ॥ कस्तांमांप्रापयेच्छम्भोःकथंयामि तथावद ॥ सतपस्वीतितद्वाक्यमाकर्ण्यश्रद्धयान्वितम् ॥ ५० ॥ प्राहागच्छनयामित्वांधियासुरहमप्यहो ॥ दुर्लभम्प्रा प्यमानुष्यंयदिकाशीनसेविता ॥ ५१ ॥ पुनःक्वनृत्वंश्रेयोभूःक्वकाशीकर्मबन्धहृत् ॥ वृथागतेहिमानुष्येकाशीप्राप्ति विवर्जनात् ॥ ५२ ॥ आयुष्यञ्चभविष्यञ्चसर्वमेववृथागतम् ॥ अतोहंसफलीकर्तुंमानुष्यञ्चातिचञ्चलम् ॥ ५३ ॥ यास्या मिकाशीमायाहिमायांहित्वात्वमप्यहो ॥ इतितेनसहत्वाष्ट्रोमुनिनातिकृपालुना ॥ ५४ ॥ पुरींवैश्वेश्वरीम्प्राप्तोमनः

जानेकी इच्छावाला मैंभी तुमको पहुँचाताहूं आश्चर्य्य या खेदहै कि दुर्लभ मनुष्य भावको प्राप्तहोकर जो काशी नहीं सेवित हुई ॥ ५१ ॥ तो फिर मनुष्यता कहां है और कल्याण की भूमि कर्म बन्धनहारिणी काशी कहांहै यानेबडा बीचहै व काशीकी प्राप्तिके विवर्जनसे ॥ ५२ ॥ मनुष्यताके वृथा बीतजातेही आयुष्य यानेसुलक्षण रूप हाथ व पावोंकी रेखादि और भविष्यत् फलका सूचक स्वयोग ग्रह तारादि सबही वृथागया व इससे मैं अत्यन्त चञ्चल मनुष्यभावको सफल करने के लिये ॥ ५३ ॥ काशीको जाऊंगा और अहो ब्रह्मचारिन्! तुमभी मायाको छोड़कर आवो इसभांति अत्यन्त दयालु उन मुनिके साथ वह त्वष्टाके पुत्र ॥ ५४ ॥ श्रीविश्वनाथजी की पुरी

को गये और मनकी स्वस्थता को प्राप्तहुये तदनन्तर उस काशीको पहुँचाकर वह तपस्वी अतर्कित (असम्भवित) जैसे हो वैसे कहींभी ॥ ५५ ॥ चलेगये और हे अगस्त्यजी ! उस विश्वकर्माने ऐसामाना कि अवश्यकर वही विश्वेश्वरजी हैं जोकि सबके चिन्तित फलोंके बड़े दाता हैं ॥ ५६ ॥ व दूरस्थ भी सुमार्ग में स्थिरचित्त वृत्तिवालो के समीप गत हैं व त्रिनेत्र जी जिसमें निश्चय से प्रसन्न दृष्टिवाले हैं उस दूरवासी को भी आपही अपनी गलीका उपदेश करते हुये बहुतही निकटवासी करते हैं ॥ ५७ ॥ कहां उसवन में चिन्ता से व्याकुलित मनवाला मैं बालक और कहां वे तपस्वी जोकि अच्छा उपदेश कर मुझको यहांले आये हैं ॥ ५८ ॥ यहउन

स्वास्थ्यमवापच ॥ ततःप्रापय्यताङ्काशींतापसःक्वाप्यतर्कितम् ॥ ५५ ॥ जगामकुम्भसम्भूतसत्वाष्टोपीत्यमन्यत ॥ अवश्यंसहिविश्वेशःसर्वेषांचिन्तितप्रदः ॥ ५६ ॥ सत्पथस्थिरवृत्तीनांदूरस्थोपिसमीपगः ॥ यस्मिन्प्रसन्नदृक्त्र्यक्षस्त न्दविष्ठमपिध्रुवम् ॥ सुनेदिष्ठङ्करोत्येवस्वयंवर्त्मोपदेशयन् ॥ ५७ ॥ काहन्तत्रवनेबालश्चिन्ताकुलितमानसः ॥ क्वतापसः सयोमांवैसूपदिश्येहचानयत् ॥ ५८ ॥ खेलोयमस्यत्र्यक्षस्ययस्यभक्तस्यकुत्रचित् ॥ नदुर्लभतरङ्किञ्चिदहोकाहं क्वकाशिका ॥ ५९ ॥ नाराधितोमयाशम्भुःप्राक्तनेजन्मनिक्वचित् ॥ शरीरित्वानुमानेनज्ञातमेतदसंशयम् ॥ ६० ॥ अस्मिञ्जन्मनिबालत्वान्नचैवाराधितःस्फुटम् ॥ प्रत्यक्षमेवमेवैतत्कुतोनुग्रहधीर्मयि ॥ ६१ ॥ आज्ञातंगुरुभक्तिर्मेहे तुःशम्भुप्रसादने ॥ ययेहानुगृहीतोस्मिविश्वेशेनकृपालुना ॥ ६२ ॥ अथवाकारणापेक्षस्त्र्यक्षस्त्वितरदेववत् ॥ रङ्क

त्रिनेत्र शिवजी का खेलहै जिनके भक्तको कुछभी कहीं भी बहुत दुर्लभ नहीं है देखो कि कहां मैं और कहां काशी यह आश्चर्य्य है ॥ ५९ ॥ मुझसे पुरातन जन्म में कभी शम्भुजी नहीं पूजित हुये यह देहधारी होनेके अनुमान से निस्सन्देह जाना गयाहै ॥ ६० ॥ और वैसेही इस जन्ममें भी बालभाव से मैंने स्पष्टही पूजा नहीं किया यह प्रत्यक्षही है इस भांति शङ्करजी की अनुग्रह बुद्धि मुझमें क्यों हुई है ॥ ६१ ॥ स्मरण हुआ या सबओर से जाना कि मेरी गुरुभक्ति शम्भुकी प्रसन्नता में कारण है जिसके द्वारा मैं कृपालु विश्वनाथजी से अनुगृहीत हूं ॥ ६२ ॥ अथवा त्रिनेत्र शिवजी अन्यदेवों की नाईं क्या कारणकी अपेक्षावाले हैं जोकि निर्धन या दीन जनपर

भी अनुग्रह करते हैं उनकी कृपा केवल कारण है ॥ ६३ ॥ जो मुझमें शिवजी की दया नहीं है तो तपस्वी की सङ्गति कैसे हुई है और शङ्करजी आपही उन तपस्वीके या उस रूपसे निश्चयकर मुझको यहां लाये हैं ॥ ६४ ॥ व दाननहीं यज्ञ नहीं तप नहीं और व्रतभी शम्भुकी प्रसन्नता के कारण नहीं हैं किन्तु उनकी कृपाही कारण है ॥ ६५ ॥ और जब जन सन्तों से सेवित वेदोक्तमार्ग को न छोड़े तब वह विश्वेश्वर जी उत्तम दयाको भी करें ॥ ६६ ॥ इस भांति शङ्करजी की दयाका समर्थन कर शुद्धता समेत व स्वस्थमनवाले उस त्वाष्ट्रने महेशजी के लिङ्गको भलीभांति थापकर पूजा किया ॥ ६७ ॥ व कन्दमूल और फलोंको खाताहुआ वह ऋतुमें उपजे

मप्यनुगृह्णातिकेवलङ्कारणंकृपा ॥ ६३ ॥ यदिनोमय्यनुक्रोशःकथन्तापससङ्गतिः ॥ तद्रूपेणस्वयंशम्भुरानिनायेह मान्ध्रुवम् ॥ ६४ ॥ नदानानिनवैयज्ञानतपांसिव्रतानिच ॥ शम्भोःप्रसादहेतूनिकारणन्तत्कृपैवहि ॥ ६५ ॥ दयामपित दाकुर्यादसौविश्वेश्वरःपराम् ॥ यदाश्रुत्युक्तमध्वानंसद्भिःक्षुण्णंनसन्त्यजेत् ॥ ६६ ॥ अनुक्रोशंसमर्थ्यैतिसत्वाष्ट्रः शाम्भवंशुचिः ॥ संस्थाप्यलिङ्गमीशस्याराधयत्स्वस्थमानसः ॥ ६७ ॥ आनीयपुष्पसम्भारमार्तवंकाननाद्बहु ॥ स्ना त्वाभ्यर्चयतीशानंकन्दमूलफलाशनः ॥ ६८ ॥ इत्थन्त्वष्टृतनूजस्यलिङ्गाराधनचेतसः ॥ त्रिहायनात्प्रसन्नोभूत्तस्येशः करुणानिधिः ॥ ६९ ॥ तस्मादेवहिलिङ्गाच्चप्रादुर्भूयभवोऽब्रवीत् ॥ वरंवरयरेत्वाष्ट्रदृढभक्त्यानयातव ॥ ७० ॥ प्रसन्नो स्मिभृशम्बालगुर्वर्थकृतचेतसः ॥ गुरुणागुरुपत्न्याचगुर्वपत्यद्वयेनच ॥ ७१ ॥ यथार्थितन्तथाकर्तुंतेसामर्थ्यम्भविष्य ति ॥७२॥ अन्यान्वरांश्चतेदद्यान्त्वाष्ट्रतुष्टस्त्वदर्चया॥ ताञ्शृणुष्वमहाभागलिङ्गस्यास्याद्भुतश्रियः ॥७३॥ त्वंसुवर्णादि

हुये बहुतसे फूल समूहको वनसे लाकर फिर स्नानकर ईश्वरको सामने या सबओर से पूजता है ॥ ६८ ॥ ऐसे तीनदिन लिङ्गपूजा में मनलगाये हुये उस त्वष्टा के पुत्रसे करुणा निधान महेशानजी प्रसन्नहुये ॥ ६९ ॥ और ऐसे उसही लिङ्गसे प्रकट होकर जगत्कर्त्ता महादेवजी बोले कि रे त्वाष्ट्र ! तू वरको स्वीकारकर मैं तेरी इसदृढ़ भक्तिसे ॥ ७० ॥ गुरुके अर्थ में चित्तवाले से बहुतही प्रसन्नहूं और हे बालक ! गुरु व गुरुकी स्त्री व गुरुके दोनों लड़कों ने ॥ ७१ ॥ जैसे प्रार्थना किया (मांगा) है वैसे करने के लिये तेरी शक्ति होवेगी ॥ ७२ ॥ और हे महाभाग त्वाष्ट्र ! अद्भुत शोभावाले इस लिङ्गकी तेरी पूजासे तुष्टहुआ मैं तुझे अन्य वरोंको देताहूं उनको

सुनो ॥ ७३ ॥ कि तुम सुवर्णादि धातु व काठ व पत्थरभी व मणि व रत्न व फूलभी व वस्त्र ॥ ७४ ॥ कपूरादि सुगन्धवस्तु भी व जलभी व कन्दमूल और फल व द्रव्यभी व त्वचा ॥ ७५ ॥ और सब वस्तु समूहों के कर्मको करने के लिये बहुतही जानोगे व जहां जिस जिसकी रुचि घर और देवस्थानादिकों में जैसे होवेगी ॥ ७६ ॥ यहां उस उसकी तुष्टिके लिये तुम उसी भांति करनेको बहुतही जानोगे व सब भूषणोंकी रचना सब रसोईके संस्कार ॥ ७७ ॥ अनन्तर सब शिल्पि कार्य्य व नृत्यगीत वाद्य विधान और सबको भी करने के लिये तुम दूसरे ब्रह्माकी नाईं जानोगे ॥ ७८ ॥ व अनेक भांतिके यन्त्र (बाजाओं के भेद) व अनेक प्रकार आयुधों के विधान व

धातूनांदारूणांदृषदामपि ॥ मणीनामपिरत्नानांपुष्पाणामपिवाससाम् ॥ ७४ ॥ कर्पूरादिसुगन्धीनांद्रव्याणामप्यपामपि ॥ कन्दमूलफलानाञ्चद्रव्याणामपिचत्वचाम् ॥ ७५ ॥ सर्वेषांवस्तुजातानांकर्तुंकर्मप्रवेत्स्यसि ॥ यस्ययस्यरुचिर्यत्रसद्मदेवालयादिषु ॥ ७६ ॥ तस्यतस्येहतुष्ट्यैत्वंतथाकर्तुंप्रवेत्स्यसि ॥ सर्वनेपथ्यरचनाःसर्वाःसूपस्यसंस्कृतीः ॥ ७७ ॥ सर्वाणिशिल्पकार्याणितौर्यत्रिकमथापिच ॥ सर्वंज्ञास्यसिकर्तुंत्वंद्वितीयइवपद्मभूः ॥ ७८ ॥ नानाविधानियन्त्राणिनानायुधविधानकम् ॥ जलाशयानांरचनाःसुदुर्गरचनास्तथा ॥ ७९ ॥ तादृक्कर्तुंपुरावेत्सियादृङ्नान्योऽधियास्यति ॥ कलाजातंहिसर्वन्त्वमवयास्यसिमेवरात् ॥ ८० ॥ सर्वेन्द्रजालिकीविद्यात्वदधीनाभविष्यति ॥ सर्वकर्मसुकौशल्यंसर्वबुद्धिवरिष्ठताम् ॥ ८१ ॥ सर्वेषाञ्चमनोवृत्तिंत्वंज्ञास्यसिवरान्मम ॥ किम्बहूक्तेनयत्स्वर्गेयत्पातालेयदत्रच ॥ ८२ ॥ अतिलोकोत्तरंकर्मतत्सर्ववेत्स्यसिस्वयम् ॥ ८३ ॥ विश्वेषांविश्वकर्माणिविश्वेषुभुवनेषुच ॥ यतोज्ञास्यसितन्नामविश्वकर्मेति

जलाशयों (कूप तड़ाग बावली आदि) की रचना वैसेही अच्छे कोटकी रचनाको ॥ ७९ ॥ करने के लिये तुम आगेही वैसा जानोगे कि जैसा अन्य नहीं जानेगा व तुम सभी कलासमूह को मेरे वरसे जानोगे ॥ ८० ॥ व सब इन्द्रजाल की विद्या तुम्हारे आधीन होवेगी व सबकर्मों में कुशलता सब बुद्धियों की बहुत श्रेष्ठता ॥ ८१ ॥ और सबोंके मनकी वृत्तिको तुम मेरे वरसे जानोगे व बहुत कहने से क्या है जो स्वर्ग में है जो पातालमें है और जो इस भूलोकमें है ॥ ८२ ॥ व जो त्रिलोकसे अतीत याने अलौकिक कर्म है उस सबको तुम आपही जानोगे ॥ ८३ ॥ और हे निष्पाप! जिससे तुम सबलोकों में सबोंके सब कर्मोंको जानोगे उससे विश्वकर्मा ऐसा तुम्हारा

नाम है ॥ ८४ ॥ अहो बालक ! अन्य कौनवर तुमको देने योग्य है उसको मांगो क्योंकि लिङ्गपूजा में प्रीतिवाले तुमको मुझसे कुछभी अदेय नहीं है ॥ ८५ ॥ व जो सुबुद्धिमान् अन्यत्रभी लिङ्गको भलीभांति पूजता है उसकाभी वाञ्छित फल देने योग्य है फिर जो विशेषता समेत काशी सम्बन्धी लिङ्गको पूजे उसका क्या कहना है ॥ ८६ ॥ जिसने काशी में भलीभाति लिंगकी पूजा किया व जिसने काशीमें लिंगकी प्रतिष्ठा किया व जिसने काशीमे लिंगकी स्तुति किया वह मेरे रूपके लिये दर्पण है याने उसमें मेरा रूप प्रकटहोता है ॥ ८७ ॥ हे सुव्रत, त्वाष्ट्र ! जिससे काशीमें मुझ त्रिनेत्रके लिंगकी पूजासे तुम स्वच्छ शीशाहो उस लिये वरको स्वीकार

तेऽनघ ॥ ८४ ॥ अपरःकोवरोदेयस्तवतम्प्रार्थयास्वहो ॥ तवादेयंनमेकिञ्चिल्लिङ्गार्चनरतस्यहि ॥ ८५ ॥ अन्यत्रापिहि योलिङ्गंसमर्चयतिसन्मतिः ॥ तस्यापिवाञ्छितन्देयंकिम्पुनर्योविकाशिकम् ॥ ८६ ॥ येनकाश्यांसमभ्यर्चियेनकाश्यां प्रतिष्ठितम् ॥ येनकाश्यांस्तुतंलिङ्गंसमेरूपायदर्पणः ॥ ८७ ॥ तत्त्वंस्वच्छोसिमुकुरोममनेत्रत्रयस्यहि ॥ काश्यांलिङ्गा र्चनात्त्वाष्ट्रवरंवरयसुव्रत ॥ ८८ ॥ काश्यांयोराजधान्यांमेहित्वामामन्यमर्चयेत् ॥ सवराकोल्पधीर्मुष्टोऽल्पतुष्टिर्मुक्ति वर्जितः ॥ ८९ ॥ तदानन्दवनेह्यत्रसमर्च्योहंमुमुक्षुभिः ॥ द्रुहिणोपेन्द्रचन्द्रेन्द्रैरिहान्योनसमर्च्यते ॥ ९० ॥ यथानन्द वनम्प्राप्यत्वंमामर्चितवानसि ॥ तथान्येपुण्यकर्माणोमामभ्यर्च्यैवमासिताः ॥ ९१ ॥ अनुग्राह्योऽसिनितरान्ततोव रयदुर्लभम् ॥ आणितन्तद्वैहित्वंवदमाचिरयस्वभो ॥ ९२ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ इदंयत्स्थापितंलिङ्गंमयाज्ञेनापिशङ्क

करो ॥ ८८ ॥ जोकि मेरी राजधानी काशी में मुझसे अभेद दर्शनके होते भी मुझको छोंड़कर अन्यको पूजे है वह बापुरा थोडी बुद्धिवाला व थोड़ी तुष्टिवाला व चोरा हुआ व मोक्षसे वर्जित है ॥ ८९ ॥ उसीसेही इस आनन्दवन में मैं मुक्तिचाहियों से भलीभांति पूजनीय हूं क्योंकि ब्रह्मा विष्णु चन्द्र और इन्द्रादि देवों से भी यहां अन्य कोई नहीं पूजाजाता है ॥ ९० ॥ जैसे आनन्दवन को प्राप्तहोकर तुम मुझको पूजे हो वैसेही अन्य पुण्यकर्मवाले लोग मुझको पूजकरही मुझको प्राप्तहुये हैं ॥ ९१ ॥ हे बालक ! तुम बहुतही दयाके योग्यहो उस लिये दुर्लभवरको अंगीकार करो व उसको दिया हुआ जानो बोलो बिलम्ब मतकरो ॥ ९२ ॥ विश्वकर्मा बोले कि

हे शङ्कर ! मुझ अज्ञानी से जो यह लिंग थापा गया है उस लिंग को पूजकर अन्य लोगभी अच्छे ज्ञान के पात्र होवें ॥ ९३ ॥ हे नाथ, भव (जगत् के कारण) ! अन्यके भी लिये प्रार्थना करने योग्यहो और उसको देवोगे कि आप कब मुझसे अपने मन्दिर के बनवानेहारे होवोगे ॥ ९४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि तुमने जो कहा वह ऐसेही हो कि तुम्हारे थापेहुये लिंगके सम्पूजक जन निश्चय से अच्छी बुद्धिके भाजन होवें और मुक्तिके लिये दीक्षित होवें ॥ ९५ ॥ और हे तात ! जब ब्रह्माके वरसे दिवोदासराजा होवेगा तब तुम मेरे वचन से मेरे मन्दिर को बनावोगे ॥ ९६ ॥ व गणेशकी मायासे राज्यसे सर्वत्र विरक्त चित्तवाले उस राजासे फिर

र ॥ तल्लिङ्गमन्येप्याराध्यसन्तुसद्बुद्धिभाजनाः ॥ ९३ ॥ अन्यच्चनाथप्रार्थ्योसितच्चविश्राणयिष्यसि ॥ भवान्मयावि निर्मापयितास्वम्प्रासादङ्कदाभव ॥ ९४ ॥ देवदेवउवाच ॥ एवमस्तुयदुक्तन्तेतवलिङ्गसमर्चकाः ॥ सद्बुद्धिभाजनावै स्युःस्युश्चनिर्वाणदीक्षिताः ॥ ९५ ॥ यदाचराजाभवितादिवोदासोविधेर्वरात् ॥ तदामेवचनात्तातप्रासादम्मेविधास्य ति ॥ ९६ ॥ नवीकृत्यपुनःकाशीनिर्विष्टातेनभूभुजा ॥ गणेशमाययाराज्यात्परिनिर्विण्णचेतसा ॥ ९७ ॥ विष्णोःसदु पदेशाच्चामामेवशरणङ्गतः ॥ निर्वाणलक्ष्मीःप्राप्तेहहित्वाराज्यश्रियञ्चलाम् ॥ ९८ ॥ विश्वकर्मन्व्रजगुरोःशासनायय तस्वच ॥ गुरुभक्तिकृतोयस्मान्मद्भक्तानात्रसंशयः ॥ ९९ ॥ येगुरुञ्चावमन्यन्तेतेऽवमान्यामयाप्यहो ॥ तस्माद्गुरू पदिष्टंहिकुरुशिष्यसमीहितम् ॥ १०० ॥ ततआगत्यमेपार्श्वेयावन्निर्वाणमेष्यसि ॥ तावत्स्थास्यसिशुद्धात्मादेवानांहि तमाचरन् ॥ १ ॥ तवात्रलिङ्गेसततंस्थास्याम्यहमभीष्टदः ॥ अस्यलिङ्गस्यभक्तानांनिर्वाणश्रीरदूरतः ॥ २ ॥ अङ्गारेशादु

नवीन होकर काशी पुरी बसाई जावेगी ॥ ९७ ॥ और विष्णुजी के अच्छे उपदेश से चञ्चल राज्य लक्ष्मी को छोंड़कर मेरे शरणागत होवेगा व उसको यहां मोक्षल- क्ष्मी प्राप्तहोवेगी ॥ ९८ ॥ हे विश्वकर्मन् ! अबतुम जावो और गुरुके आयसुके लिये यत्नकरो जिससे गुरुकी भक्तिकर्त्ता लोग मेरे भक्तहैं इसमें सन्देह नहीं है ॥ ९९ ॥ खेदहै कि जे गुरुका अपमान करते हैं वे मुझसे भी अनादर करने के योग्य हैं उससे तुम गुरुके उपदेशे याने कहेहुये शिष्यों के योग्य वाञ्छित या व्यापार को करो ॥ १०० ॥ तदनन्तर मेरे पास आकर जबतक मोक्षको प्राप्त होवोगे तबतक देवों के हितको करते हुये शुद्धात्मा तुम टिकोगे ॥ १ ॥ व भक्तों का अभीष्ट

दाता मैं तुम्हारे इस लिंगमें निरन्तर टिकूंगा और इस लिंगके भक्तोंको मुक्तिलक्ष्मी निकटमेंही है ॥ २ ॥ अंगारेश्वरसे उत्तरमें जे तुम्हारे लिंगके पूजक हैं उनके मनोरथोंकी प्राप्ति क्षण क्षण या स्थान स्थान में होवेगी ॥ ३ ॥ ऐसा कहकर महादेवजी अन्तर्धान हुये और वह त्वष्टाका पुत्र भी गुरुके घरको आया व गुरुका बहुत वाञ्छित कर फिर अपने घरों की ओर चलागया ॥ ४ ॥ व घर में भी अपने कर्म से माता और पिताको सन्तुष्टकर व उनकी कही आज्ञा को भलीभांति सबओर से धारणकर फिर काशीपुरीको आये ॥ ५ ॥ और सब देवोंका प्यार करतेहुये व अपने थापे लिंगकी पूजामें आसक्त बुद्धिमान् त्वष्टाके पुत्र विश्वकर्माजी आजभी काशीको

दीच्यांयेत्वल्लिङ्गस्यसमर्चकाः ॥ तेषांमनोरथावाप्तिर्भविष्यतिपदेपदे ॥ ३ ॥ इत्युक्त्वान्तर्दधेदेवस्त्वाष्ट्रोपिगुरुमाप्तवान् ॥ गुरोःसर्माहितंभूरिविधायसगृहान्ययौ ॥ ४ ॥ गृहेपिमातापितरौसन्तोष्यनिजकर्मणा ॥ तदुक्ताज्ञांसमाधायपुनःकाशींसमाययौ ॥ ५ ॥ स्वलिङ्गाराधनासक्तोनाद्यापित्वष्टृनन्दनः ॥ काशींत्यजतिमेधावीसर्वदेवप्रियङ्करन् ॥ ६ ॥ ईश्वरउवाच ॥ पृष्टानियानिलिङ्गानित्वयादेविगिरीन्द्रजे ॥ काशीमुक्तौसमर्थानितान्युक्तानिमयातव ॥ ७ ॥ लिङ्गमोङ्कारसञ्ज्ञञ्चतथादेवंत्रिविष्टपम् ॥ महादेवःकृत्तिवासारत्नेशश्चन्द्रसंज्ञकः ॥ ८ ॥ केदारश्चापिधर्मेशस्तथावीरेश्वराभिधः ॥ कामेशविश्वकर्मेशौमणिकर्णीश्वरस्तथा ॥ ९ ॥ ममाच्चर्यमविमुक्ताख्यंततोदेविममाख्यकम् ॥ विश्वनाथेतिविश्वस्मिन्प्रथितंविश्वसौख्यदम् ॥ १० ॥ अविमुक्तंसमासाद्ययेनविश्वेश्वरोर्चितः ॥ नतस्यास्तिपुनर्जन्मकल्पकोटि

नहीं त्यागते हैं ॥ ६ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे पर्वतेन्द्र कुमारि देवि! काशीमें मुक्ति देनेको समर्थ जिन लिंगों को तुमने पूछा उनको मैंने तुमसे कहा ॥ ७ ॥ ॐकार सञ्ज्ञक लिंग व त्रिलोचन देव व महादेवेश्वर व कृत्तिवासेश्वर व रत्नेश्वर व चन्द्र सञ्ज्ञक (चन्द्रेश्वर) ॥ ८ ॥ व केदारेश्वर भी व धर्मेश्वर तथा वीरेश्वर नामक व कामेश्वर व विश्वकर्मेश्वर वैसेही मणिकर्णिकेश्वर ॥ ९ ॥ और हे देवि! अविमुक्त नामक मेरा लिंग पूजनीय है तदनन्तर सब जगत्को सुखदायक व मेरे नामवाला लिंग लोकमें विश्वनाथ ऐसा प्रसिद्ध है ॥ १० ॥ और अविमुक्त याने काशी क्षेत्रमें प्राप्तहोकर जिराने विश्वेश्वर की पूजा किया उसका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें

भी फिर जन्म नहींहै ॥११॥ और मनको भलीभांति रोंकेहुये यतियों याने संन्यासियों का आठमास विचरना होवे है व वर्षाके चौमासा में एकत्र बसना है और एक वर्षतक एकस्थानमें आवास कहीं नहीं इच्छाकिया जाताहै ॥ १२ ॥ परन्तु अविमुक्त क्षेत्रमें पैठेहुये संन्यासियोंका भी विचरना नहीं युक्तहोता है क्योंकि यहां संशय से हीन मोक्षभी है उस लिये काशी कभी त्यागने योग्य नहीं है ॥ १३ ॥ व जिससे यहां मेरे आश्रय या सेवनसे तपस्या व योग और मुक्तिभी है इस से आनन्दवन (काशी) छोंडकर अन्य तपोवन को न जावे ॥ १४ ॥ और सब जन्तुओं की कृपा से मैंने इस क्षेत्रको किया है इस लिये सिद्धियों की आकांक्षावाले लोग इसमें अवश्य

शतेष्वपि ॥ ११ ॥ अष्टौमासान्विहारःस्याद्यतीनांसंयतात्मनाम् ॥ एकत्रचतुरोमासानब्दंनावासइष्यते ॥ १२ ॥ अविमुक्तेप्रविष्टानांविहारोनैवयुज्यते ॥ मोक्षोप्यसंशयश्चात्रतस्मात्त्याज्यानकाशिका ॥ १३ ॥ आनन्दकाननंहित्वा नान्यद्गच्छेत्तपोवनम् ॥ तपोयोगश्चमोक्षश्चयतोत्रैवमदाश्रयात् ॥ १४ ॥ कृपयासर्वजन्तूनांक्षेत्रमेतन्मयाकृतम् ॥ अवश्यमेवसिद्ध्यन्तिक्षेत्रेस्मिन्सिद्धिकांक्षिणः ॥ १५ ॥ अतीतंवर्तमानंचज्ञानतोऽज्ञानतःकृतम् ॥ यदेनस्तत्क्षयंयायादानन्दवनवीक्षणात् ॥ १६ ॥ अत्युग्रैश्चतपोभिर्यन्महादानैर्महाव्रतैः ॥ नियमैश्चयमैःसम्यक्स्वयोगेनमहामखैः ॥ १७ ॥ वेदान्तशास्त्राभ्यसनैःसर्वोपनिषदाश्रयात् ॥ एभिर्वैयदवाप्येतततत्काश्यांहेलयाप्यते ॥ १८ ॥ कर्मसूत्रेणबद्धावैभ्राम्यन्तेतावदेवहि ॥ यावद्विश्वेश्वरेधाम्निममनैवतनुत्यजः ॥ १९ ॥ काश्यांस्वलीलयादेवितिर्यग्योनिजुषामपि ॥ ददाम्यिचान्तेतत्स्थानंयत्रयान्तिनयाज्ञिकाः ॥ २० ॥ भूतग्रामोऽखिलोप्यत्रमुक्तिक्षेत्रेकृतालयः ॥ कालेननिधनंयातोयात्येवप

ही सिद्ध होते हैं ॥ १५ ॥ जोकि ज्ञान व अज्ञान से कियाहुआ पाप होगया व वर्तमानहै वह आनन्दवन के दर्शनसे विनाशको प्राप्तहोजावे है ॥ १६ ॥ और अतिउग्र तपस्या, महादान, महायज्ञ, नियम, यम और अच्छे अध्यात्म योगसे जो होता है ॥१७॥ और सब उपनिषदों की सेवा व वेदान्त शास्त्रका अभ्यास इन सबोंसे जो प्राप्तहोवे है वह काशी में सहजही मिलता है ॥ १८ ॥ व कर्म सूत्रसे बांधेहुये लोग तबतकही भ्रमाये जाते हैं कि जबतक मेरे विश्वनाथ सम्बन्धी स्थानमें याने काशीपुरी में देहत्यागी नहीं हैं ॥ १९ ॥ और हे देवि ! मैं काशी में तिर्य्यग्योनि सेवी पशु पक्षियों कोभी अन्त में उस स्थान को देताहूं कि जहां यज्ञ कर्त्ता भी नहीं जाते हैं ॥ २० ॥

व इस मुक्तिक्षेत्र में घर करनेवाला सम्पूर्ण जन्तुसमूह कालसे मरणको प्राप्तहुआ उत्तम गति (मोक्ष) कोही प्राप्तहोजाता है ॥ २१ ॥ व विषयों में आसक्त चित्तवाला भी और धर्मकी प्रीतिका त्यागी भी कालसे यहां देहको त्यागताहुआ फिर संसार में नहीं पैठे है ॥ २२ ॥ हे देवि ! माघमास के उपःकालमें प्रयागके स्नान से जो फल है वह फल काशी में क्षणक्षणपर कोटि गुनाहै ॥ २३ ॥ इस क्षेत्रकी कोई भी महिमा वचन के अगोचर है परन्तु मैंने तुम्हारी प्रीतिकी कामनासे उद्देश मात्र कहा है ॥ २४ ॥ पूर्वोक्त चौदह लिंगों के आख्यानों को सुनकर सत्तमनर चौदह लोकों में अधिक उत्तम पूजाको पावेगा ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धे सिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेविश्वकर्मेशप्रादुर्भावोनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥ ⊛ ॥

रमाङ्गतिम् ॥ २१ ॥ विषयासक्तचित्तोपित्यक्तधर्मरतिस्त्वपि ॥ कालेनोज्झितदेहोऽत्रनसंसारंपुनर्विशेत् ॥ २२ ॥ प्रयागेयत्फलंदेविमाघेचोषसिमज्जनात ॥ तत्फलंकोटिगुणितंवाराणस्यांक्षणेक्षणे ॥ २३ ॥ अस्यक्षेत्रस्यमहिमाकोपिवाचामगोचरः ॥ उद्देशमात्रमाख्यातिमयातेप्रीतिकाम्यया ॥ २४ ॥ चतुर्दशानांलिङ्गानांश्रुत्वाख्यानानिसत्तमः॥ चतुर्दशसुलोकेषुपूजाम्प्राप्स्यत्यनुत्तमाम् ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेविश्वकर्मेशप्रादुर्भावोनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ सर्वज्ञसूनोषड्वक्त्रसर्वार्थकुशलप्रभो ॥ प्रादुर्भावंनिशम्यैषांलिङ्गानांमुक्तिदायिनाम् ॥ १ ॥ नितराम्परितृप्तोस्मिसुधाम्पीत्वेवनिर्जरः ॥ ॐकारप्रमुखैर्लिङ्गैरिदमानन्दकाननम् ॥ २ ॥ आनन्दमेवजनयेदपिपापजुषामिह ॥ परानन्दमहंप्राप्तः श्रुत्वैतल्लिङ्गकीर्तनम् ॥ ३ ॥ जीवन्मुक्तइवासंहिक्षेत्रतत्त्वश्रुतेरहम् ॥ स्कन्ददक्षेश्वरादीनिलिङ्गा

दो० । सत्तासी अध्याय में श्रीदक्षेश प्रसंग । दक्षयज्ञ वर्णन बहुरि विरचननानारंग ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे सर्वज्ञके पुत्र, सर्वार्थ कुशल, स्वामिन्, षण्मुख ! इन मुक्तिदाता लिंगोंका प्रकट होना सुनकर ॥ १ ॥ मैं अमृतको पीकर देवोंकी नाईं बहुतही परितृप्तहूं और यह आनन्दवन ॐकारेश्वरादि लिंगो के द्वारा ॥ २ ॥ पाप सेवियों के भी आनन्दको यहां उपजावे है व इस लिंगके कीर्त्तनको सुनकर मैं परम आनन्द को प्राप्तहूं ॥ ३ ॥ व क्षेत्रका तत्त्व सुनने मे जीवन्मुक्त के समानही हुआहूं

और हे कार्त्तिकेयजी ! जेकि दक्षेश्वरादि आठ व ॐकारेश्वरादि या शैलेश्वरादि चौदह लिंग यहां पहले कहेगये हैं उन सबोंके प्रभावको तुम भलीभांति कहो ॥ ४ ॥ और यह अद्भुत है कि जिन दक्षने देवोंकी सभाके बीचमें समर्थ शिवजी की निन्दा किया था उन्हों ने ईश्वर के लिंगकी प्रतिष्ठा कियाहै ॥ ५ ॥ हे सूत ! इसप्रकार अगस्त्यजी के कहेहुये वचनको सुनकर मयूर वाहन ने दक्षेश्वर की समुत्पत्तिको कहा ॥ ६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने ! मैं पापनाशिनी कथाको कहताहूं तुम सुनो कि पुरश्चरण याने पापोद्धार के चाही दक्षजी काशीपुरी को भलीभांति आये थे ॥ ७ ॥ जोकि छागमुखवारे, कुरूपमुख व दधीचिसे धिक्कारे व प्रायश्चित्त करने के

नीहचतुर्दश ॥ यान्युक्तानिसमाचक्ष्वतत्प्रभावमशेषतः ॥ ४ ॥ योदक्षोगर्हयामासमध्येदेवसभंविभुम् ॥ सकथंलिङ्गमीशस्यप्रत्यस्थापयदद्भुतम् ॥ ५ ॥ इतिश्रुत्वाशिखिरथःकुम्भयोनेरुदीरितम् ॥ सूतसंकथयामासदक्षेश्वरसमुद्भवम् ॥ ६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ आकर्णयमुनेवच्मिकथांकल्मषहारिणीम् ॥ पुरश्चरणकामोसौदक्षःकाशींसमाययौ ॥ ७ ॥ छागवक्रोविरूपास्योदधीचिपरिधिक्कृतः ॥ प्रायश्चित्तविधानार्थंसूपदिष्टःस्वयंभुवा ॥ ८ ॥ एकदादेवदेवस्यसेवार्थंशशिमौलिनः ॥ कैलासमगमद्विष्णुःपद्मयोनिपुरस्कृतः ॥ ९ ॥ इन्द्रादयोलोकपालाविश्वेदेवामरुद्गणाः ॥ आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याविद्याधरोरगाः ॥ १० ॥ ऋषयोऽप्सरसोयक्षागन्धर्वाःसिद्धचारणाः ॥ तैर्नतोदेवदेवेशःपरिहृष्टतनूरुहैः ॥ ११ ॥ स्तुतश्चनानास्तुतिभिश्शम्भुनापिकृतादराः ॥ विविशुश्चासनश्रेण्यान्तन्मुखासक्तदृष्टयः ॥ १२ ॥ अथतेषूपविष्टेषुशम्भुनावि

अर्थ ब्रह्माजी से बहुतही उपदेशे गये थे ॥ ८ ॥ एक समय ब्रह्माजी को आगे किये हुये विष्णुजी देवोंकेदेव चन्द्रभालकी सेवाके अर्थ कैलास को भलीभांति गये ॥९॥ व इन्द्रादि लोकपाल, विश्वेदेव, मरुद्गण, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विद्याधर, उरग ॥१०॥ ऋषि, अप्सरायें, यक्ष, गन्धर्व, सिद्ध और चारण जेकि सब ओर से आनन्दित उठे रोमोंवाले हैं उन से देवों के देव श्रीमहादेवजी प्रणाम किये गये ॥ ११ ॥ और अनेकप्रकारकी स्तुतियोंसे प्रशंसित हुये और शङ्कर से भी किये आदरवाले व उनके मुखमें दृष्टि लगायेहुये वे सबदेव आसनों की पंक्तिमें बैठे थे ॥ १२ ॥ अनन्तर जब वे सब बैठगये तब शंकरजी करके हाथ छूने से मानवाले विष्णुजी बड़े

आदर से पूंछे जातेभये ॥ १३ ॥ कि हे दैत्यवंशदहनेकोदावानल, श्रीवत्सलांछन, हरे ! क्या त्रिलोकको पालने के लिये तुह्मारी शक्ति अकुंठित है ॥ १४ ॥ व क्या संग्राम आंगन में दुष्ट दैत्य और दानवो को सिखातेहो व क्रुद्धभी ब्राह्मणोंको मेरी नाईं मानतेहो ॥ १५ ॥ और क्या भूतल में गौयें बाधासे हीन हैं व अच्छीशोभावाली स्त्रियां भी पतिव्रतमें परायणहैं ॥ १६ ॥ व बहुत दक्षिणायुक्त, विधिपूर्वक यज्ञ भूमिमें प्रवर्तमान हैं और क्या तपस्वियों का तप निरंतर सब ओरसे पीड़ाहीन है ॥ १७ ॥ हे केशव ! क्या ब्राह्मणलोग अंगोंसमेत वेदोंको निर्विघ्न पढ़ते व भूपाल (क्षत्रिय) तुह्मारीनाईं प्रजाओंको पालते हैं ॥ १८ ॥ और अधिक आनन्दित इंद्रिय व अन्तःक-

ष्टरश्रवाः ॥ कृतहस्तपरिस्पर्शमानःपृष्टोमहादरम् ॥ १३ ॥ श्रीवत्सलाञ्छनहरेदैत्यवंशदवानल ॥ कच्चित्पालयितुंश क्तिस्त्रिलोकीमस्त्यकुण्ठिता ॥ १४ ॥ दितिजान्दनुजान्दुष्टान्कच्चिच्छास्सिरणाङ्गणे ॥ अपिक्रुद्धान्महीदेवान्मामिवप्रति मन्यसे ॥ १५ ॥ बाधयारहितागावःकच्चित्सन्तिमहीतले ॥ स्त्रियःसन्तिहिसुश्रीकाःपतिव्रतपरायणाः ॥ १६ ॥ विधियज्ञाःप्रव र्तन्तेपृथिव्यांबहुदक्षिणाः ॥ निराबाधन्तपःकच्चिदस्तिशश्वत्तपस्विनाम् ॥ १७ ॥ निष्प्रत्यूहंपठन्त्येवसाङ्गान्वेदान्द्विजो त्तमाः ॥ महीपालाःप्रजाःकच्चित्पान्तित्वामिवकेशव ॥ १८ ॥ स्वेषुस्वेषुचधर्मेषुकच्चिद्वर्णाश्रमास्तथा ॥ निष्ठावन्तोहिति ष्ठन्तिप्रहृष्टेन्द्रियमानसाः ॥ १९ ॥ धूर्जटिःपरिपृच्छयेतिहृष्टंवैकुण्ठनायकम् ॥ ब्रह्माणञ्चापिपप्रच्छब्राह्मन्तेजःसमेध ते ॥ २० ॥ सत्यमस्खलितंकच्चिदस्तित्रैलोक्यमण्डपे ॥ तीर्थावरोधोनकापिकेनचित्क्रियतेविधे ॥ २१ ॥ इन्द्रादयःसुराः कच्चित्स्वेषुस्वेषुपुरेष्वहो ॥ राज्यंप्रशासतिस्वस्थाःकृष्णदोर्दण्डपालिताः ॥ २२ ॥ प्रत्येकम्परिपृच्छयेशःसर्वानित्थं

रणवाले भक्तिमान् वर्ण तथा आश्रम क्या अपने अपनेधर्मों में टिकते हैं ॥ १९ ॥ इसभांति महादेवजीने हर्षयुक्त वैकुंठनायक को पूंछकर फिर ब्रह्माजीको भी पूछा कि क्या वेदपाठका या ब्राह्मण सम्बन्धी तेजभलीभांति बढ़ताहै ॥ २० ॥ हे विधातः ! क्या त्रैलोक्य मंडपमें अखंडित या अच्युत सत्यहै व किसी से कहीं भी तीर्थोंका रोंकतो नहीं कियाजाताहै ॥ २१ ॥ और विष्णुके भुजदंडों से पालित, स्वस्थ, इन्द्रादिदेव क्या अपने अपने पुरों (लोकों) में राज्यकी रक्षाकरते हैं ॥ २२ ॥ ऐसे प्रत्येक

आदर कियेहुये सबको सब ओरसे पूछकर व आने के कार्य्यको पूछकर और उनके मनोरथोंको पूर्णकर महेशजीने ॥२३॥ उनसबोंको बिदाकिया व अनन्तर क्रीड़ाकारी महादेवजी चूनासे पोते उजले महल में पैठगये तदनन्तर अपने घरों में हर्षयुक्त देवोंके चलेजातेही ॥ २४ ॥ तब सतीके पिता दक्षजी बीचगली में चिन्तासमेत हुये क्योंकि उन्हों ने अन्य देवोंके समान मानको पायाथा और अधिक आदरको नहीं पाया ॥ २५ ॥ इस लिये मन्दराचल के मथने से समुद्रकी नाईं अत्यन्त सञ्चलित चित्त व बड़े क्रोधसे अन्धदृष्टि होगये और मनमें इस वचन को कहने लगे ॥ २६ ॥ कि मेरी सती कन्या को पाकर शिव अतीव गर्वित होगये हैं बहुधा यह किसी के

कृतादरान् ॥ पृष्ट्वागमनकार्यञ्चतेषांकृत्वामनोरथान् ॥ २३ ॥ विससर्जाथतान्सर्वान्देवःसौधंसमाविशत् ॥ गतेऽथ चदेवेषुस्वस्वधिष्ण्येषुहृष्टवत् ॥ २४ ॥ मध्येमार्गेसचिन्तोभूद्दक्षःसत्याःपितातदा ॥ अन्यदेवसमानं स मानंप्रापनचाधिकम् ॥ २५ ॥ अतीवक्षुब्धचित्तोभून्मन्दराघाततोऽब्धिवत् ॥ उवाचचमनस्येतन्महाक्रोधरयान्धदृक् ॥ २६ ॥ अतीवगर्वितोजातः सतींमेप्राप्यकन्यकाम् ॥ कस्यचिन्नाप्यसौप्रायोनकोस्यापिकश्चित्पुनः ॥ २७ ॥ किंवंश्यस्त्वेषकिङ्गोत्रःकिंदेशीयःकिमात्मकः ॥ किंवृत्तिःकिंसमाचारोविषादीवृषवाहनः ॥ २८ ॥ नप्रायशस्तपस्व्येषक्वतपःक्वास्त्रधारणम् ॥ नगृहस्थेषुगण्योसौश्मशाननिलयोयतः ॥२९॥ असौनब्रह्मचारीस्यात्कृतपाणिग्रहस्थितिः ॥ वानप्रस्थ्यंकुतश्चास्मिन्नैश्वर्यमदमोहिते ॥ ३० ॥ नब्राह्मणोभवत्येषयतोवेदानवेत्त्यमुम् ॥ शस्त्रास्त्रधारणात्प्रायःक्षत्रियःस्यान्नसोप्यय

भी नहीं हैं और उनका भी कहीं कोई नहीं है ॥ २७ ॥ व यह विषभोजी वृषवाहन किस वंशके किस गोत्रके और किस देशकेहैं व इनका क्यास्वरूप क्या वृत्ति और क्या समाचार है याने इनके यह कुछभी नहीं है ॥ २८ ॥ व प्रायः यह तपस्वी भी नहीं हैं क्योंकि कहां तपस्या और कहां अस्त्रोंका धारण करना बड़ाबीच है व जिस से यह श्मशानवासी हैं उससे गृहस्थों में गनने योग्य नहीं हैं ॥ २९ ॥ व कियेहुये ब्याहसे स्थितिवाले यह ब्रह्मचारी नहीं होवे हैं और ऐश्वर्य्य के मदसे मोहित हुये इनमें वानप्रस्थ भाव कैसे होसक्ता है ॥ ३० ॥ व जिस से इनको वेदनहीं जानते हैं उससे यह ब्राह्मण नहीं हैं व बहुधा शस्त्रास्त्र धारने से क्षत्रिय होवे है यह वहभी

नहीं हैं ॥ ३१ ॥ क्योंकि क्षतसे भलीभांति रक्षाकरने से क्षत्र (क्षत्रियजाति) है वह प्रलयके प्यार करनेवाले इनमें कहांहैं व यह वैश्यभी नहीं हैं जिससे सदा निर्धन व्यापारवाले हैं ॥३२॥ व यह नाग यज्ञोपवीतवान् हैं इससे प्रायः शूद्रभी नही होवै हैं इसप्रकार वर्ण और आश्रमों से विगत हुये या उनसे परे यह कौन हैं जोकि भली भांति नहीं कहेजाते हैं याने कहने में नहीं आते हैं ॥३३॥ क्योंकि सब कोई प्रकृति से जाना जावे है और यह स्थाणु याने अचल ठूंठके समान शिव प्रकृति (माया) से हीन हैं जिससे यह आधी स्त्री देहवाले हैं इससे बहुधा पुरुष नहीं हैं ॥ ३४ ॥ व जिससे यह दढ़ीलेमुखवाले हैं इससे स्त्रीभी नहीं होवेहैं व जिससे इनका लिंगपूजा

म् ॥ ३१ ॥ क्षतात्सन्त्राणनात्क्षत्रन्तत्कास्मिन्प्रलयप्रिये ॥ वैश्योपिनभवेदेषसदानिर्धनचेष्टनः ॥ ३२ ॥ शूद्रोपिनभवे त्प्रायोनागयज्ञोपवीतवान् ॥ एवंवर्णाश्रमातीतःकोसौसम्यङ्क्कीर्त्यते ॥ ३३ ॥ सर्वःप्रकृत्याज्ञायेतस्थाणुःप्रकृतिवर्जि तः ॥ प्रायशःपुरुषोनासावर्धनारीवपुर्यतः ॥ ३४ ॥ योषापिनभवेदेषयतोसौश्मश्रुलाननः ॥ नपुंसकोपिनभवेल्लिङ्गम स्ययतोर्च्यते ॥ ३५ ॥ बालोपिनभवत्येषयतोऽयंबहुवार्षिकः ॥ अनादिवृद्धोलोकेषुगीयतेचोग्रएषयत् ॥ ३६ ॥ अतो युवत्वंसंभाव्यंनात्रनूनञ्चिरन्तने ॥ वृद्धोऽपिनभवत्येषजरामरणवर्जितः ॥ ३७ ॥ ब्रह्मादीन्संहरेत्प्रान्तेतथापिचनपा तकी ॥ पुण्यलेशोपिनास्त्यस्मिन्ब्रह्ममौलिच्छिदिक्रुधा ॥ ३८ ॥ अस्थिनेपथ्यवतिचकशुचित्वंविवाससि ॥ किंबहूक्ते ननोकिञ्चिज्ज्ञायतेऽस्यविचेष्टितम् ॥ ३९ ॥ अहोधाष्टर्यमहद्दृष्टञ्जटिलस्याद्यचाद्भुतम् ॥ यदासनान्नोत्थितोसौद्द

जाता है उससे नपुंसक भी नहीं होवेहैं ॥ ३५ ॥ व जिससे यह बहुत वर्षोंके हैं इससे बालक भी नहीं होसकते हैं और जिस से यह उग्रलोकों में अनादि वृद्ध गायेजाते हैं ॥३६॥अतः बहुत कालके हुये इनमें निश्चयसे युवापन भी सम्भावना करने योग्य नहीं है व यह वृद्धभी नहीं होतेहैं क्योंकि जरा (बुढ़ाई) और मरणसे रहितहैं ॥३७॥ व जगत् के अन्त में (प्रलयसमय) ब्रह्मादिको का संहार करै हैं तोभी पापी नहीं हैं और क्रोध से ब्रह्माका मूँडकाटनेवाले इनमें पुण्यका लेशभी नहीं है याने पापी व पुण्यवान्से भी विलक्षण हैं ॥ ३८ ॥ और हाड़ों के गहने पहिने व वस्त्रोंसे विहीन में पवित्रता कहां है और बहुत कहने से क्या है इनका कुछभी चरित्र या कर्म नहीं

जाना जाता है ॥ ३९ ॥ आश्चर्य्य है कि आज मैंने जटीलेकी बड़ीभारी अद्भुत ढिठाईको देखा जिससे गुरुके समान माननीय मुझ श्वशुरको देखकर वह नहीं उठे हैं ॥ ४० ॥ किन्तु वे लोग एवं भूतही याने ऐसेही होते हैं जोकि माता व पितासे विहीन, निर्गुण, अकुलीन, कर्मभ्रष्ट निरंकुश ॥ ४१ ॥ व अपने वशचलनेवाले, अनाथ और सर्वत्र अहङ्काराभिमानी हैं व बहुधा अकिञ्चन (जिनके कुछभी नहीं है) हैं तोभी अपना को ईश्वर मानने हारे हैं ॥ ४२ ॥ और बहुधा जामाताओं (दामादों) का यह स्वभाव है प्रायः कुछ ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर गर्वका पात्र होताही है इसमें संशय नहीं है ॥ ४३ ॥ परन्तु रोहिणी की प्रीतिसे निर्भर व कृत्तिकादिकों में स्नेह

ष्ट्वामांश्वशुरंगुरुम् ॥ ४० ॥ एवंभूताभवन्त्येवमातापितृविवर्जिताः ॥ निर्गुणाअकुलीनाश्चकर्मभ्रष्टानिरंकुशाः ॥४१॥ स्वच्छन्दचारिणोऽनाथाःसर्वत्रस्वाभिमानिनः ॥ अकिञ्चनाअपिप्रायस्तथापीश्वरमानिनः ॥ ४२ ॥ जामातॄणांस्वभावोयंप्रायशोगर्वभाजनम् ॥ किञ्चिदैश्वर्यमासाद्यभवत्येवनसंशयः ॥ ४३ ॥ द्विजराजःसगर्विष्ठोरोहिणीप्रेमनिर्भरः ॥ कृत्तिकादिषुचास्नेहीमयाशप्तःक्षयीकृतः ॥ ४४ ॥ अस्याहङ्कर्वसर्वस्वंहरिष्याम्येवशूलिनः ॥ यथावमानितश्चाहमनेनास्यगृहङ्गतः ॥ ४५ ॥ तथास्याहङ्करिष्यामिमानहानिञ्चसर्वतः ॥ सम्प्रधार्येतिबहुशःसतुदक्षःप्रजापतिः ॥ ४६ ॥ प्राप्यस्वभवनन्देवानाजुहावसवासवान् ॥ अहंयियक्षुर्यूयंमेयज्ञसाहाय्यकारिणः ॥ ४७ ॥ भवन्तुयज्ञसम्भारानानयन्तुत्वरान्विताः॥श्वेतद्वीपमथोगत्वाचक्रेचक्रिणमच्युतम् ॥४८॥ महाक्रतूपद्रष्टारंयज्ञपूरुषमेवच ॥ तस्यर्त्विजोभवन्सर्वेऋष

रहित व बहुतगर्व सहित वह नक्षत्रनाथ चन्द्रमाभी मुझसे शाप दिया हुआ क्षयी कियागया है ॥ ४४ ॥ ऐसेही मैं इन त्रिशूलधारी के भी गर्व सर्वस्वको हरूंगा और जैसे इनके घरमें गयाहुआ मैं अपमानितहूं ॥ ४५ ॥ वैसेही मैं सर्वत्र इनके आदर की हानि करूंगा ऐसे मनमें भलीभांति बहुत धारणकर याने निश्चयकर प्रजाओं के पति उन दक्षजीने ॥ ४६ ॥ अपने घर जाकर इन्द्र समेत देवोंको बुलाया कि मैं यज्ञ करनेकी इच्छावाला हूं और आपलोग मेरे यज्ञ सहायताकारी होवें ॥ ४७ ॥ व वेगवान् होकर यज्ञ सामग्रियों को लेआवें उसकेबाद उन दक्षजी ने श्वेतद्वीप में जाकर चक्रधारी अच्युत भगवान् को महायज्ञ का उपद्रष्टा बनाया व जोकि

यज्ञपुरुष भी कहाता है और सब ब्रह्मवादी ऋषि उनके ऋत्विज हुये ॥ ४८ । ४६ ॥ व तदनन्तर उन दक्षका महायज्ञ अधिकता से वर्त्तमान हुआ और उस दक्ष महायज्ञ में उन देवसमूहोंको देखकर ॥ ५० ॥ जोकि महादेवजी से रहित हैं तब ब्रह्माजी किसी मिषको कर घरको चले गये तदनन्तर दधीचि नामक ऋषि उनसब त्रैलोक्यवासियों को भलीभांति विशेषता से देखकर ॥ ५१ ॥ जोकि दक्षके यज्ञमें अच्छेप्रकार से आये हैं व सती और ईश्वरजी से विहीनहैं व वस्त्र और भूषण पूर्वक सत्कार समूहों को पाये हैं ॥ ५२ ॥ उनके और दक्षकेही शुभ उत्तर फलको चाहते हुये निश्चय से ऐसे कहने लगे दधीचिजी बोले कि हे कर्मोंमें कुशल प्रजाओं के

योब्रह्मवादिनः ॥४९॥ प्रावर्तततस्तस्यदक्षस्यचमहाध्वरः ॥ दृष्ट्वादेवनिकायांश्चतस्मिन्दक्षमहाध्वरे ॥ ५० ॥ अनीश्वरांस्ततोवेधाव्याजंकृत्वागृहंययौ ॥ दधीचिरथसंवीक्ष्यसर्वांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥ ५१ ॥ दक्षयज्ञेसमायातान्सतीश्वरविवर्जितान् ॥ प्राप्तसंमानसम्भारान्वासोलंकृतिपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ दक्षस्यहिशुभोदर्कमिच्छन्प्रोवाचचेतिवै ॥ दधीचिरुवाच ॥ दक्षप्रजापतेदक्षसाक्षाद्धातृस्वरूपधृक् ॥ ५३ ॥ नचास्तितवसामर्थ्यंकापिकस्यापिनिश्चितम् ॥ यादृशः क्रतुसम्भारस्तवचेहसमीक्ष्यते ॥ ५४ ॥ नतादृङ्नेदसिप्रायःकापिज्ञातोमहामते ॥ क्रतुस्तुनैवकर्तव्योनास्तिक्रतुसमो रिपुः ॥ ५५ ॥ कर्तव्यश्चेत्तदाकार्यःस्याच्चेत्सम्पत्तिरीदृशी ॥ साक्षादग्निःस्वयंकुण्डेसाक्षादिन्द्रादिदेवताः ॥ ५६ ॥ साक्षाच्चसर्वेमन्त्रावैसाक्षाद्यज्ञपुमानसौ ॥ आचार्यपदवीमेषदेवाचार्यःस्वयञ्चरेत् ॥ साक्षाद्ब्रह्मास्वयञ्चैषभृगुर्वैकर्मका

पालक साक्षात् ब्रह्मस्वरूप धारिन् दक्ष ! ॥ ५३ ॥ तुम्हारी कहीं भी किसी की भी निश्चित शक्ति नहीं है व जैसा तुम्हारा यज्ञ सम्भार यहां भलीभांति देखा जाता है ॥ ५४ ॥ वैसा निकट में प्राप्तहुआ कहीं भी नहीं जानागया है और हे महामते ! यज्ञ करना योग्य नहीं है क्योंकि यज्ञके समान शत्रु नहीं है याने अन्नोंसे हीन यज्ञ देशको या राज्यको व मन्त्र से हीन ऋत्विज को और दक्षिणाओं से हीन हुआ यजमानको जलावैहै ॥ ५५ ॥ यद्यपि जो कर्तव्य होवे तो ऐसी सम्पत्तिहोवे तभी करना चाहिये कि कुण्डमें आपही प्रत्यक्ष अग्नि व प्रत्यक्ष इन्द्रादि देव ॥ ५६ ॥ व साक्षात् सब मन्त्रभी व साक्षात् यह यज्ञपुरुष विष्णुजी हैं व यह देवाचार्य्य (बृहस्पति)

आचार्य्य पदवीको आपही प्राप्तहोवे हैं व कर्मकाण्ड के पण्डित यह भृगुभी साक्षात् ब्रह्मा हैं ॥ ५७ ॥ व यह पूषा यह भग यह सरस्वतीदेवी और ये सब दिक्पाल आपही यज्ञकी रक्षाकरनेवाले हैं ॥ ५८ ॥ व तुमभी दीप्तिवाली शतरूपा (प्रसूति) के साथ शुभ दीक्षाको प्राप्तहो व तुम्हारे जामाता यह धर्मजी दशस्त्रियोंके साथ ॥ ५९ ॥ आपही धर्मकार्य्य को बड़ेयत्न से करैं हैं व तुम्हारे जामाताओं मे उत्तम यह ओषधियो के नाथ (चन्द्रमा) ॥ ६० ॥ सत्ताइस स्त्रियोंके साथ तुम्हारे कार्य्यकर्त्ता है व सब ओषधियों को पूरते हैं जोकि नक्षत्रों के राजा, बड़े बुद्धिमान् ॥ ६१ ॥ व राजसूय यज्ञमें दीक्षित होकर त्रिलोक दक्षिणाको दियेहुये हैं और प्रजापतियों में सत्तम

एडवित् ॥ ५७ ॥ अयम्पूषाभगस्त्वेषइयन्देवीसरस्वती ॥ एतेचसर्वेदिक्पालायज्ञरक्षाकृतःस्वयम् ॥ ५८ ॥ त्वञ्चदीक्षांशुभाम्प्राप्तोदेव्याचशतरूपया ॥ जामातात्वेषतेधर्मःपत्नीभिर्दशभिःसह ॥ ५९ ॥ स्वयमेवहिकुर्वीतधर्मकार्यम्प्रयत्नतः ॥ ओषधीनामयंनाथस्तवजामातृषूत्तमः ॥ ६० ॥ सप्तविंशतिभिःसार्धंपत्नीभिस्तवकार्यकृत् ॥ ओषधीःपूरयेत्सर्वाद्विजराजोमहासुधीः ॥ ६१ ॥ दीक्षितोराजसूयस्यदत्तत्रैलोक्यदक्षिणः ॥ मारीचःकश्यपश्चासौप्रजापतिषुसत्तमः ॥ त्रयोदशमिताभिश्चभार्याभिस्तवकार्यकृत् ॥ ६२ ॥ हविःकामदुघासूतेकल्पवृक्षःसमित्कुशान् ॥ दारुपात्राणिसर्वाणिशकटंमण्डपादिकम् ॥ ६३ ॥ विश्वकर्माप्यलङ्कारान्कुरुतेभ्यागतर्त्विजाम् ॥ वसूनिचापिवासांसिवसवोष्टौददत्यपि ॥ ६४ ॥ स्वयंलक्ष्मीरलंकुर्याद्यावैचात्रसुवासिनीः ॥ ६५ ॥ सर्वंसुखायमेदक्षवीक्षमाणस्यसर्वतः ॥ एकन्दुःखाकरोत्येवयत्त्वंविस्मृतवानसि ॥ ६६ ॥ जीवहीनोयथादेहोभूषितोपिनशोभते ॥ तथेश्वरंविनायज्ञःश्मशानमिवलक्ष्य

मरीचिके पुत्र यह कश्यपजी तेरह संख्यक स्त्रियोंके साथ तुम्हारे कार्य्य करनेवाले हैं ॥ ६२ ॥ व कामधेनु हविको उपजाती है व कल्पवृक्ष ईंधन, कुश, सब दारुपात्र, शकट (गाड़ी व बहल) और मण्डपादिकों को उपजाता है ॥ ६३ ॥ व विश्वकर्मा भी अभ्यागत (पाहुन) और ऋत्विजों के भूषणों को करते हैं और आठौवसु भी धनों व वस्त्रोंको भी देते हैं ॥ ६४ ॥ व जोकि आपही लक्ष्मी हैं वही यहां कुलस्त्रियों को भूषित करती हैं ॥ ६५ ॥ हे दक्षजी ! सबओर विशेषता से देखते हुये मेरे सुखके लिये सब हैं परन्तु एक यह दुःखको भी दुःखी करता है या अत्यन्तही दुःखकी खानि है कि जिससे तुम शिवजी को बिसारेहुये हो ॥ ६६ ॥ जैसे जीवसेहीन

हुआ भूषितभी शरीर नहीं सोहता है वैसेही महेशजी के विना यज्ञ श्मशान सा दीखता है ॥ ६७ ॥ इसभांति दधीचिजी के वचन को सुनकर प्रजाओं के पतिदक्षजी हविसे अग्निकी नाईं कोपसे बहुतही जलउठे ॥ ६८ ॥ जोकि यह दधीचिजी करके पहले स्तुति से अत्यन्त संहृष्टहृष्ट हुये फिर वही मुखसे कोपाग्निको भी उबक्ते हुये देखपड़े ॥ ६९ ॥ और अनन्तर क्रोधमे उन ब्राह्मण को मारने चाहते से, प्रजापति, कम्पितदेहदण्डीवाले दक्षजीने उनवेदाभ्यासी दधीचिजी के प्रति कहा ॥ ७० ॥ दक्षजी बोले कि हे दधीचे ! तुम ब्राह्मणहो इससे यहां मैं तुम्हारा क्याकरूं व खेदहै कि मैं दीक्षाको प्राप्तहूं उससे करनेके लिये कुछभी नहीं आताहै ॥ ७१ ॥ आपको

ते ॥ ६७ ॥ इत्थन्दधीचिवचनंश्रुत्वादक्षःप्रजापतिः ॥ भृशंजज्वालकोपेनहविषाकृष्णवर्त्मवत् ॥ ६८ ॥ पूर्वंस्तुत्यातिसंहृष्टोदृष्टोयोसौदधीचिना ॥ सएवचापिकोपाग्निमुद्वमन्वीक्षितोमुखात् ॥ ६९ ॥ प्रत्युवाचाथतंविप्रंवेपमानाङ्गयष्टिकः ॥ दक्षःप्रजापतीरोषाज्जिघांसुरिवतंद्विजम् ॥ ७० ॥ दक्षउवाच ॥ ब्राह्मणोसिदधीचेत्वंकिङ्करोमितवात्रवै ॥ दीक्षामहमहोप्राप्तःकर्तुंनायातिकिञ्चन ॥ ७१ ॥ भवान्केनसमाहूतोयदत्रागान्महाजडः ॥ आगतोपिहिकेनत्वंपृष्टइत्थमब्रवीषियत् ॥ ७२ ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्योयत्रश्रीमानयंहरिः ॥ स्वयंवैयज्ञपुरुषःसमखःकिंश्मशानवत् ॥ ७३ ॥ यत्रवज्रधरःशक्रःशतयज्ञैकदीक्षितः ॥ त्रयस्त्रिंशतिकोटीनाममराणाम्पतिःस्वयम् ॥ ७४ ॥ तन्त्वञ्चोपमिमीषेमुंश्मशानेनमहामखम् ॥ धर्मराट्चस्वयंयत्रधर्माधर्मैककोविदः ॥ ७५ ॥ श्रीदोस्तियत्रश्रीदातासाक्षाद्यत्राशुशुक्षणिः ॥ तंयज्ञमुपमासित्वममङ्गलभुवातया ॥ ७६ ॥ देवाचार्यःस्वयंयत्रक्रतोराचार्यताङ्गतः ॥ अभिमानवशात्तन्त्वमाख्यासिपितृका

किसने बुलाया है जो बड़ेजड़ तुम यहां आयेहो और आयेहुये भी किससे पूंछेगये हो जिससे ऐसा कहते हो ॥ ७२ ॥ जहां सर्वमंगल मांगल्य, श्रीमान् ये आपही यज्ञपुरुष हरि (विष्णुजी) हैं वह यज्ञ क्या श्मशानके समान है ॥ ७३ ॥ व जिम में तेंतीस करोड देवों के स्वामी व एकसौ यज्ञों में मुख्य दीक्षित वज्रधारी इन्द्रजी आपही वर्त्तमान हैं ॥ ७४ ॥ व जहा धर्माधर्मके मुख्य पण्डित धर्मराज जी आपही हैं उस महायज्ञ की तुम श्मशान से उपमाकरते हो ॥ ७५ ॥ व जहां कुबेर धनदाता है व जहां प्रत्यक्ष अग्नि हैं उस यज्ञकी तुम उस अमङ्गल भूमिसे उपमा करते हो ॥ ७६ ॥ व जहां देवाचार्य्य आपही यज्ञकी आचार्य्यताको प्राप्तहैं उसको तुम अभिमान

के वशसे पितृवन (श्मशान) कहते हो ॥ ७७ ॥ और जिसमें ये वसिष्ठादि ऋषि ऋत्विजभाव को भजते (सेवते) हैं उस यज्ञको तुम अमंगल भूमिके समानकहते हो ॥ ७८ ॥ ऐसा सुनकर ज्ञानियों मे श्रेष्ठ दधीचिमुनिने कहा कि यद्यपि सर्वमंगलों की मंगल क्रियावाले हरि यज्ञ पुरुषहोवे हैं ॥ ७९ ॥ तोभी वेदों में विष्णु शम्भुकी शक्ति पढ़ेजातेहैं व आद्य सृष्टिकर्त्ता शिवजीका वामांग विष्णुहैं और दक्षिणांग ब्रह्मा हैं ॥ ८० ॥ व जोकि सौ अश्वमेध यज्ञों के दीक्षित, वज्रआयुधवाले इन्द्र हैं वह दुर्वासा से क्षणभर में निःश्रीकता (दरिद्रता) को प्राप्तकिये गये हैं ॥ ८१ ॥ फिर महेशजी को पूजकर एक (मुख्य) अमरावती को प्राप्तहुये हैं और यहां तुमने जिन

ननम् ॥ ७७ ॥ यत्रार्त्विज्यम्भजन्तेऽमीवसिष्ठप्रमुखर्षयः ॥ तमध्वरंसमाचक्षेमङ्गलेतरभूमिवत् ॥ ७८ ॥ निशम्येति मुनिःप्राहदधीचिर्ज्ञानिनांवरः ॥ सर्वमङ्गलमाङ्गल्योभवेद्यज्ञपुमान्हरिः ॥ ७९ ॥ तथापिशाम्भवीशक्तिर्वेदेविष्णुःप्रपठ्य ते ॥ वामाङ्गंस्रष्टुराद्यस्यहरिस्तद्दितरद्विधिः ॥ ८० ॥ दीक्षितोयोश्वमेधानांशतस्यकुलिशायुधः ॥ दुर्वाससाक्षणेनापि नीतोनिःश्रीकतांहिसः ॥ ८१ ॥ पुनराराध्यभूतेशंप्रापैकाममरावतीम् ॥ यस्त्वयाधर्मराजोत्रकथितःक्रतुरक्षकः ॥ ८२ ॥ बलन्तस्याखिलैर्ज्ञातंश्वेतम्पाशयतःपुरा ॥ धनदस्त्र्यम्बकसखस्तच्चक्षुश्चाशुशुक्षणिः ॥ ८३ ॥ पार्ष्णिग्राहोभवद्रुद्रोदे वाचार्यस्यवैतदा ॥ यदातारामधार्षीत्सद्विजराजोऽतिसुन्दरीम् ॥ ८४ ॥ तंविदन्तिवसिष्ठाद्यास्तवार्त्विज्यम्भजन्तिये ॥ एकोरुद्रोनद्वितीयःसंविदानाअपीतिहि ॥ ८५ ॥ प्रावर्तन्तर्षयोन्येपिगौरवात्तवतेक्रतौ ॥ यदिमेब्राह्मणस्यैकंशृणोषिव चनंहितम् ॥ ८६ ॥ तदाक्रतुफलाधीशंविश्वेशन्त्वंसमाह्वय ॥ विनातेनक्रतुरसौकृतोप्यकृतएवहि ॥८७॥ सतितस्मि

धर्मराज को यज्ञरक्षक कहा ॥ ८२ ॥ श्वेतमुनिको बांधतेहुये उनके बलको आगे सबोंने जाना है याने शिवजी के भक्त श्वेतमुनि ने यमराज से प्रेरित मृत्युको जीतलिया है और कुबेरजी त्रिनेत्रके मित्र हैं व अग्निदेव उनका नेत्रहै ॥ ८३ ॥ व जब उस चन्द्रमा ने अतिसुन्दरी बृहस्पतिकी स्त्री ताराको हराथा तब रुद्रजी देवाचार्य्यके भी पार्ष्णिग्राह याने पीछे से रक्षकहुये हैं ॥ ८४ ॥ व जेकि वसिष्ठादि ऋषि तुम्हारे ऋत्विजभाव को भजते हैं वे उन शिवजीको जानते हैं कि एक रुद्रहैं दूसरा कोई नहीं है ऐसा जानतेहुये भी ॥ ८५ ॥ अन्यभी ऋषि तुम्हारी गुरुता से तुम्हारे यज्ञमें प्रवर्तमान हैं और जो मुझ ब्राह्मण का एकहित वचन सुनो ॥ ८६ ॥ तो तुम यज्ञफलों के

अधीश जगदीशको भलीभांति बुलावो उनविना कियाभी यह यज्ञ बिनकियाहुआही है ॥ ८७ ॥ व सबके कर्मोंके मुख्यसाक्षी उन महादेवजी के होतेही तुम्हारे और इन सबोंकेभी मनोरथ फलैंगे ॥ ८८ ॥ जैसे जड़बीज आपही नहीं फलते हैं वैसेही जड़ सब कर्म ईश्वर विना नहीं फलतेहैं ॥ ८९ ॥ जैसे अर्थसे हीनवाणी जैसे धर्मसेहीन देह और जैसे पतिसेहीन स्त्री है वैसेही शिवजीसे हीन कियाहै ॥ ९० ॥ जैसे गंगाहीन देश व जैसे पुत्रहीन घर और जैसे दानसेहीन सम्पत्ति है वैसेही शिवजीसे हीन किया है ॥ ९१ ॥ व जैसे मन्त्रीसे हीन राज्य जैसे वेदोंसे हीन ब्राह्मणादि त्रिवर्ण और जैसे स्त्रीसेहीन सौख्य है वैसेही शिवजीसे हीन क्रियाहै ॥ ९२ ॥ व जैसे कुशों

न्महादेवेविश्वकर्मैकसाक्षिणि ॥ तवापिचैषांसर्वेषांफलिष्यन्तिमनोरथाः ॥ ८८ ॥ यथाजडानिबीजानिनफलन्तिस्वयन्तथा ॥ जडानिसर्वकर्माणिनफलन्तीश्वरंविना ॥ ८९ ॥ अर्थहीनायथावाणीधर्महीनायथातनुः ॥ पतिहीनायथानारीशिवहीनातथाक्रिया ॥ ९० ॥ गङ्गाहीनायथादेशाःपुत्रहीनायथागृहाः ॥ दानहीनायथासम्पच्छिवहीनातथाक्रिया ॥ ९१ ॥ मन्त्रिहीनंयथाराज्यंश्रुतिहीनायथाद्विजाः ॥ योषाहीनंयथासौख्यंशिवहीनातथाक्रिया ॥ ९२ ॥ दर्भहीनायथासन्ध्यातिलहीनञ्चतर्पणम् ॥ हविर्हीनोयथाहोमःशिवहीनातथाक्रिया ॥ ९३ ॥ इत्थन्दधीचिनाख्यातंजग्राहवचनंनतत् ॥ दक्षोदक्षोपितत्रैवशम्भोर्मायाविमोहितः ॥ ९४ ॥ प्रोवाचचभृशंक्रुद्धःकाचिन्तातवमेक्रतोः ॥ क्रतुमुख्यानिसर्वाणियानिकर्माणिसर्वतः ॥ ९५ ॥ तानिसिद्ध्यन्तिनियतंयथार्थकरणादिह ॥ अयथार्थविधानेनसिद्ध्येत्कर्मापिनेशितुः ॥ ९६ ॥ स्वकर्मसिद्धयेचाथसर्वएवहिचेश्वरः ॥ ईश्वरःकर्मणांसाक्षीयत्त्वयापीतिभाषितम् ॥ ९७ ॥ तत्तथास्तुपरंसाक्षी

सेहीन सन्ध्या जैसे तिलोंसे हीन तर्पण और जैसे हविष्यान्नसे हीन होमहै वैसेही शिवजीसे हीन क्रियाहै ॥ ९३ ॥ वहांही ऐसे दधीचिजी से कहेहुये उस वचनको चतुर भी शिवमाया से विमोहित दक्षने न ग्रहण किया ॥ ९४ ॥ और बहुतही क्रुद्ध होकर कहा कि हमारे यज्ञकी तुम्हैं क्या चिन्ताहै जेकि यज्ञादि सबकर्म सर्वत्र हैं ॥ ९५ ॥ वे यथार्थ करने से यहा नियम समेत सिद्ध होते हैं और अयथार्थ विधि से ईश्वर का भी कर्म नहीं सिद्ध होवे है ॥ ९६ ॥ और आने कर्मकी सिद्धि के लिये

सबही कोई ईश्वर है व ईश्वर कर्मोंका साक्षी है ऐसा जो तुमने कहा ॥ ९७ ॥ वह वैसेही परन्तु साक्षी कहींभी अर्थको नहीं देवे है ॥ ९८ ॥ और आपने जो कहा कि सब कर्म जडहैं ईश्वर विना नहीं फलते हैं उसमें भी मैं सुखसे दृष्टान्त करताहूं ॥ ९९ ॥ कि जड़भी बीज अपने समयको भलीभांति प्राप्तहोकर कालसे अंकुरतेहैं व बढ़ते हैं व फूलते व फलते हैं ॥ १०० ॥ अहोमुने ! वैसेही कर्मभी ईशके विना कालसे आपही फलता है उसलिये या उस महामंगलमूर्ति ईश्वरसे यहां क्याहै ॥ १ ॥ श्रीदधीचिजी बोले कि यथार्थ करने से कभी कार्य्य सिद्धभी होता है और ईश्वर की प्रतिकूलता से सिद्धभी शीघ्रही नष्टहोता है ॥ २ ॥ व अविधान से याने विधिके

नार्थन्दद्याच्चकुत्रचित् ॥ ९८ ॥ जडानिसर्वकर्माणिनफलन्तीश्वरंविना ॥ यदुक्तंभवतातत्राप्यहोदृष्टान्तयाम्यहम् ॥ ९९ ॥ जडान्यपिचबीजानिकालंसम्प्राप्यचात्मनः ॥ अंकूरयन्तिकालाच्चपुष्प्यन्तिचफलन्तिच ॥ १०० ॥ विनापीशन्तथा कर्मस्वयङ्कालात्फलत्यहो ॥ किमीश्वरेणतेनात्रमहामङ्गलमूर्तिना ॥ १ ॥ दधीचिरुवाच ॥ यथार्थकरणात्सिद्धमपिकार्यङ्कदाचन ॥ ईश्वरप्रातिकूल्याच्चसिद्धमेवाशुनश्यति ॥ २ ॥ ईश्वरेच्छाबलात्कर्मकृतमप्यविधानतः ॥ संसिद्धयेत्तदधीनाश्चकथंसर्वइहेश्वराः ॥ ३ ॥ सामान्यसाक्षिवन्नेशःसर्वेषांसर्वकर्मणाम् ॥ साक्षीभवेदसन्दिग्धःफलस्यप्रतिभूरपि ॥ ४ ॥ भूजलादिस्वरूपेणबीजमाविश्यसर्वकृत् ॥ स्वयङ्कालस्वरूपेणविदध्यादंकुरोदयम् ॥ ५ ॥ यत्त्वयोक्तंविनापीशंकालेकर्मफलेत्स्वयम् ॥ सएवकालोभगवान्सर्वकर्तामहेशिता ॥ ६ ॥ अन्यच्चभवताप्रोक्तंतदेकन्तथ्यमेवतत् ॥ किमीश्वरेणतेनात्रमहामङ्गलमूर्तिना ॥ ७ ॥ येमहान्तोभवन्त्येवयेचमङ्गलमूर्तयः ॥ ईश्वराख्याच्चयेष्वस्तिकिन्तैरत्र

विना कियाहुवा भी कर्म ईश्वरकी इच्छा के बलसे भलीभांति सिद्धहोवे है और उन परमेश्वरके अधीन सबकोई यहां आपही ईश्वरकैसेहैं ॥ ३ ॥ व सबों के सबकर्मों के सामान्य साक्षी की नाईं परमेश्वर नहीं हैं किन्तु संदेह रहित साक्षी और फलकेदाता भी हैं ॥ ४ ॥ व सबके कर्त्ता परमेश्वर पृथिवी और पानी आदि रूपसे बीजमें पैठकर आपही कालस्वरूप से अंकुर का उदय करैहै ॥ ५ ॥ और जो तुमने कहा कि ईश्वर के विना काल में कर्म आपहीफलै है वहहीकाल भगवान् सर्वकर्त्ता महेशजी हैं ॥ ६ ॥ और अन्यभी जो एक वह आपने कहा कि उसमंगल मूर्त्ति ईश्वरसे यहां क्याहै वह तथ्य (सत्य) ही है ॥ ७ ॥ क्योंकि जेमहात्माही हैं व जे मंगलमूर्त्ति हैं

और जिनमें ईश्वर नामहै उनसे यहां तुम्हारे समीपमें क्याहै ॥८॥ इसभांति दधीचि ब्राह्मणके उत्तरसे उत्तर प्रति उत्तर करतेही गर्वकी अतिशय सुसंपत्ति या सुशोभासे दक्षने अत्यंत क्रोधकिया ॥ ९ ॥ व सबओर सामनेसे देखकर समीपमें टिकेहुये जनोंको ऐसीआज्ञाकिया कि इस ब्राह्मणाधमको शीघ्रही सबओरसे दूरकरदेवो॥१०॥ कि जिसका मन इस यज्ञश्रेष्ठसे अवरिष्ठमें याने बहुतही अश्रेष्ठमें गयाहै ऐसा सुनकर विहँसतेसे दधीचि जीने कहा ॥ ११ ॥ कि हे मूढ़! तुम मुझको क्या दूरकरातेहो व इनसबों के साथ आपभी निश्चयकर सब मंगलों से दूरीभूत (दूरहुये) हो ॥ १२ ॥ हे प्रजापते ! त्रिलोकके सब ओरसे सिखानेवाले या परिपालक महेशजीके क्रोधसे उपजा हुवादंड

तवान्तिके ॥ ८ ॥ उत्तरादुत्तरश्चेतिप्रत्युत्तरयतिद्विजे ॥ दधीचौचुक्रुधेऽत्यन्तन्दक्षोगर्वातिसुश्रिया ॥ ९ ॥ आदिदेशसमीपस्थानालोक्यपरितस्त्विति ॥ ब्राह्मणापसदञ्चामुम्परिदूरयताशुवै ॥ १० ॥ अमुष्मादध्वरश्रेष्ठादवरिष्ठमनोगतम् ॥ इत्थन्दधीचिराकर्ण्यप्रोवाचप्रहसन्निव ॥ ११ ॥ किंमान्दूरयसेमूढदूरीभूतोभवानपि ॥ सर्वेभ्योमङ्गलेभ्यश्चसर्वैरेभिः समन्ध्रुवम् ॥ १२ ॥ अकाण्डेक्रोधजोदण्डस्तवमूर्ध्निपतिष्यति ॥ महेशितुस्त्रिजगतीपरिशास्तुःप्रजापते ॥१३॥ इत्युक्त्वानिर्जगामाशुयज्ञवाटात्ततोद्विजः ॥ तस्मिन्निर्यातिनिर्यातोदुर्वासाश्च्यवनोभवान् ॥ १४ ॥ उत्तङ्कउपमन्युश्चऋचीकोद्दालकावपि ॥ माण्डव्योवामदेवश्चगालवोगर्गगौतमौ ॥ १५ ॥ शिवतत्त्वविदोन्येपिदक्षयज्ञाद्विनिर्ययुः ॥ गतेदधीचौसानन्दंप्रावर्ततमहामखः ॥ १६ ॥ येस्थिताब्राह्मणास्तत्रतेभ्योद्विगुणदक्षिणाम् ॥ प्रादात्प्रजापतिर्दक्षस्त्वन्येभ्योप्यधिकंवसु ॥ १७॥ सर्वेजामातरस्तेनतोषिताभूरिशोधनैः ॥ कन्याश्चालंकृतास्सर्वामहाविभवविस्तरैः ॥ १८ ॥ ऋषि

अनवसरमें तुह्मारे मूँड़ेपर पड़ेगा ॥ १३ ॥ ऐसा कहकर वह ब्राह्मण दधीचिजी उस यज्ञवाटसे निकलगये व उनके निकलजातेही दुर्वासा, च्यवन, और आप (अगस्त्य) भी निकलजातेभये ॥ १४ ॥ व उत्तंक, उपमन्यु, ऋचीक व उद्दालकभी व मांडव्य, वामदेव, गालव गर्ग, व गौतम ॥ १५ ॥ और अन्यभी शिवतत्त्वके जाननेवाले ऋषि लोग दक्ष के यज्ञसे विशेषता समेत निकलकर चलेगये और दधीचिके जातेही आनंदसमेत महायज्ञ प्रवृत्तहुवा ॥ १६ ॥ जे ब्राह्मण वहां टिकेहुयेथे उनको प्रजापति दक्षने दूनी दक्षिणा दिया और अन्योंको भी अधिक धनदिया ॥ १७ ॥ व उन्होंने बहुतधनों से सबजामाताओं को संतुष्टकिया फिर बड़े ऐश्वर्य के विस्तारों से सब

कन्याओं को भूषितकिया ॥ १८ ॥ व उन्होंने बहुतसी ऋषियों की स्त्री भी देवोंकी स्त्री भी तथा सब पुरवासियोंकी स्त्रियों को पूजाका पात्र किया ॥ १९ ॥ और उन दक्षजी ने आनंदित मनवाले ब्राह्मणोंके ऊंचे या ओंकार समेत वेदघोषसे आकाशको शब्दगुणवाला स्पष्टकराया ॥ २० ॥ व उन दीक्षितहुये दक्षकेहवन करतेही मंदाग्निभी अग्निहुई और दिशारूप स्त्रियां हविके सुगंध से सब ओरसे तृप्तहोगईं ॥ २१ ॥ व स्वाहाकार और वषट्कारों से देव तुँदारेहुये व उन्होंने स्थानस्थानमें अच्छे अन्नो के पर्वत रचाया ॥ २२ ॥ व उन्होंने घृतकी नदी शहदकी नदी दूधोंके बड़ेतडाग और गीले गुडके भी हजारों कुंडों को किया ॥ २३ ॥ व रेशमी या पीतांबरों की राशियां

पत्न्योपिबहुशोदेवपत्न्योप्यनेकशः ॥ तथापुराङ्गनाःसर्वास्तेनमानभुवः कृताः ॥ १९ ॥ ब्रह्मघोषेणतारेणओमशब्दगुणंस्फुटम् ॥ कारितन्तेनदक्षेणविप्राणांहृष्टचेतसाम् ॥ २० ॥ अग्निर्मन्दाग्निरभवत्तस्मिञ्जुह्वतिदीक्षिते ॥ हविःपरिमलेनैवपरितृप्तादिगङ्गनाः ॥ २१ ॥ स्वाहाकारैर्वषट्कारैःसुराजातापिचण्डिलाः ॥ रचितागिरयस्तेनसदन्नानास्पदेपदे ॥ २२ ॥ घृतकुल्याःकृतास्तेनमधुकुल्याःसहस्रशः ॥ महासरांसिपयसांद्रप्सस्यापिमहाह्रदाः ॥ २३ ॥ राशयश्चदुकूलानांरत्नानांशिखराणिच ॥ यज्ञवाटस्यवसुधास्वर्णरूप्यमयीकृता ॥ २४ ॥ नलभ्यन्तेकृतौतस्यमार्गिताअपिमार्गणाः ॥ हृष्टाःपुष्टाःसमभवन्नपितत्परिचारकाः ॥ २५ ॥ ध्वनिर्मङ्गलगीतानांव्यानशेगगनाङ्गणम् ॥ जहृषेचाप्सरोवृन्दैर्गन्धर्वैर्मुमुदेतराम् ॥ २६ ॥ विद्याधरैर्ननन्देचवसुधावृधेभृशम् ॥ महाविभवसम्भारेतस्मिन्दाक्षेमहाकृतौ ॥ इत्थम्प्रवृत्तेऽथमुनिःकैलासंनारदोययौ ॥ १२७ ॥ इति श्रीस्कं०पु०का०दक्षयज्ञप्रादुर्भावोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

और रत्नों के शिखर व यज्ञवाटकी भूमिको सुवर्णमयी करादिया ॥ २४ ॥ उनके यज्ञमें ढूंढ़ेहुये भी याचक नहीं मिलते हैं व उनके सेवक भी हृष्टपुष्टहोगये ॥ २५ ॥ व मंगलगीतों की ध्वनि आकाशआंगन में व्यापगई व अप्सरासमूहों ने हर्ष पाया और गंधर्वों से भी अधिक आनंदितहुवा गया ॥ २६ ॥ व विद्याधर प्रसन्नहुये व वसुधा बहुतही बढ़ी इसभांति बड़े विभवसमूह समेत उसदक्ष संबंधी महायज्ञ के प्रवृत्तहोतेही अनन्तर नारदमुनि कैलासकोगये ॥ १२७ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदक्षयज्ञप्रादुर्भावोनामसप्ताशीतितमोध्यायः ८७ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । अट्ठासी अध्याय में न लखि शंभुकाभाग । योग अग्निसे ही वहां सती देह का त्याग ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुखजी! शिवलोकको प्राप्तहोकर ब्रह्माजी के पुत्र नारदमुनि ने क्या किया उस कौतुकशालिनी कथाको आप कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भज! महात्मा नारदजी ने शिवके स्थान कैलास में शीघ्रही जाकर वहां जो किया उसको मैं कहूंगा तुम सुनो ॥ २ ॥ कि श्रीनारदमुनि उस शिवस्थान को प्राप्तहोकर व पार्वती और महादेवजी को देखकर व प्रणामकर अनन्तर शिवजी से किये आदरवाले होकर ॥ ३ ॥ उनका खेल देखते हुये उनके उद्देश कियेहुये याने दियेगये आसनको रे वते भये और जब पांसोंसे खेलते हुये वे

अगस्त्यउवाच ॥ शिवलोकंसमासाद्यमुनिनाब्रह्मसूनुना ॥ किञ्चक्रेब्रूहिषड्वक्त्रकथांकौतुकशालिनीम् ॥ १ ॥ स्कन्द उवाच ॥ शृणुकुम्भजवक्ष्यामिनारदेनमहात्मना ॥ यत्कृतन्तत्रगत्वाशुकैलासंशङ्करालयम् ॥ २ ॥ मुनिर्गगनमार्गेणप्राप्यतद्धामशाम्भवम् ॥ दृष्ट्वाशिवौप्रणम्याथशिवेनविहितादरः ॥ ३ ॥ तदुद्दिष्टासनंभेजेपश्यंस्तत्क्रीडनंपरम् ॥ क्रीडन्तौतौतुचाक्षाभ्यांयदानचविरेमतुः ॥ ४ ॥ तदौत्सुक्येनसमुनिःप्रेर्यमाणउवाचह ॥ नारदउवाच ॥ देवदेवतवक्रीडाखिलंब्रह्माण्डगोलकम् ॥ मासाद्वादशयेनाथतेसारिफलकेगृहाः ॥ ५ ॥ कृष्णाःकृष्णेतरायावैतिथयस्ताश्चसारिकाः ॥ द्विपञ्चदशमासेयास्त्वत्तयुग्मन्तथायने ॥ ६ ॥ सृष्टिप्रलयसंज्ञौद्वौग्लहौजयपराजयौ ॥ देवीजयेभवेत्सृष्टिरसृष्टिर्धूर्जटेर्जये ॥ ७ ॥ भवतोःखेलसमयोयःसास्थितिरुदाहृता ॥ इत्थंक्रीडैवसकलमेतद्ब्रह्माण्डमीशयोः ॥ ८ ॥ नदेवीजेष्यतिपतिंनेशःशक्तिंविजेष्यति ॥ किञ्चिद्विज्ञप्तुकामोस्मितन्मात्रवधार्यताम् ॥ ९ ॥ देवःसर्वज्ञनाथोपिनाकिञ्चिदवबुध्यति॥

दोनोंजने विश्रान्त न हुये ॥ ४ ॥ तब उत्सुकता से प्रेरे जातेहुये उन मुनिने हर्षसे कहा, नारदमुनि बोले कि, हे देवदेव! सम्पूर्ण ब्रह्माण्डगोलक तुम्हाराखेलहै व जेकि बारहमास हैं वे सारिफलकके निमित्त घर हैं ॥ ५ ॥ व मासमें जे काली व जेकि उजली भी तीस तिथियां हैं वे सारिकायें है याने बल हैं तथा दोनों (उत्तरायण व दक्षिणायन) अयन दो पांसे हैं ॥ ६ ॥ व सृष्टि और प्रलय दोनों जीतिहारवाले ग्लह (पण) हैं किन्तु देवीजीकी जीतिमें सृष्टिहै और शिवजीकी जीतिमें प्रलयहै ॥७॥ व जोकि आपका खेल समय है वह स्थिति कहीगई है ऐसे यह सकलब्रह्माण्ड गौरीशङ्कर का खेल है ॥ ८ ॥ और देवीजी पतिको न जीतेंगी व न शिवजी शक्तिको

जीतैंगे हे मातः ! मैं कुछ विज्ञापना करने के लिये कामनावालाहूं वह सुनाजावे ॥ ९ ॥ कि सर्वज्ञों के नाथभी महादेवजी कुछ नहीं जानते हैं जिसलिये यह मान और अपमान से दूर मे टिके हैं ॥ १० ॥ व यद्यपि यह लीलासे देहधारी और गुणवान् हैं तौभी विचार से निर्गुण हैं इससे सृष्ट्यादि कर्मोंको करतेहुये भी कर्मोंसे नहीं लिप्त होते हैं ॥ ११ ॥ व सबके मध्यस्थभी ये महेशान उदासीनता को अवलम्बन करते हैं क्योंकि सर्वत्र मित्र व शत्रुमें समदर्शी हैं ॥ १२ ॥ और इन देवकी शक्ति तुम सबोंकी मान्यभूमि व परा (श्रेष्ठ) हो व तुमने दक्षकोभी अपत्यनिमित्तक याने पुत्री होने से मान दियाहै ॥ १३ ॥ परन्तु तुम सब जगतोंकी भी मुख्य माता हो व

मानापमानयोर्यस्मादसौदूरेऽव्यवस्थितः ॥ १० ॥ लीलात्मागुणवानेषविचारादतिनिर्गुणः ॥ कुर्वन्नपिहिकर्माणिबाध्य तेनैवकर्मभिः ॥११॥ मध्यस्थोपिहिसर्वस्यमाध्यस्थ्यमवलम्बते ॥ सर्वत्रायंमहेशानोमित्रामित्रसमानदृक्॥१२॥ त्वंश क्तिरस्यदेवस्यसर्वेषांमान्यभूःपरा ॥ दत्तस्यापित्वयामानोदत्तोपत्यनिमित्तकः ॥ १३ ॥ परंत्वंसर्वजगतांजनयित्र्येकि काध्रुवम् ॥ त्वत्तआविर्भवन्त्येवधातृकेशववासवाः ॥ १४ ॥ त्वमात्मानंनजानासित्र्यक्षमायाविमोहिता ॥ अतएवहि मेचित्तन्दुनोत्यतितरांसति ॥ १५ ॥ अन्याअपिहियाःसत्यःपातिव्रत्यपरायणाः ॥ ताभर्तृचरणौहित्वाकिञ्चिदन्यन्नम न्वते ॥ १६ ॥ अथवास्तामियंवार्ताप्रस्तुतंप्रब्रवीम्यहम् ॥ अद्यनीलगिरेस्तस्माद्धरिद्वारसमीपतः ॥ १७ ॥ अपूर्वमिव संवीक्ष्यपरिप्राप्तस्तवान्तिकम् ॥ अत्याश्चर्यविषादाभ्यांकिञ्चिद्वक्तुमिहोत्सुकः ॥ १८ ॥ आश्चर्यहेतुरेवायंयत्पुत्रातन्त्र यीतले ॥ तद्दृष्टंसकलत्रश्चदक्षस्याध्वरमण्डपे ॥ १९ ॥ सालङ्कारंसमानञ्चसानन्दमुखपङ्कजम् ॥ विस्मृताखिलकार्य

ब्रह्मा विष्णु और इन्द्र तुमसेही प्रकट होते हैं ॥ १४ ॥ हे सती ! त्रिनेत्र शिवजीकी माया आपसेही विमोहित हुई तुम अपनाको नहीं जानतीहो इससेही मेरा चित्तबहुत व्यथित होताहै ॥ १५ ॥ जिससे अन्य भी जे पातिव्रत धर्म में परायण पतिव्रतायें हैं वे स्वामीके चरणारविन्दो को छोंड़कर अन्य कुछ नहीं मानतीहैं ॥ १६ ॥ अथवा यह वार्त्ता बन्दरहै अब मैं प्रकरण के अनुसार को कहताहूं कि आज हरद्वार के समीप उस नीलगिरिसे ॥ १७ ॥ अपूर्वकी नाईं भलीभांति विशेपता से देखकर तुम्हारे समीप को सब ओरसे प्राप्तहूं और अत्यन्त आश्चर्य्य व विषाद से यहां कुछ कहने को उत्सुक हूं ॥ १८ ॥ व वहही आश्चर्य्य का कारण है कि त्रिलोक में स्त्रीसमेत जो

पुरुषसमूह है वह दक्षके यज्ञमण्डप में देखागया है ॥ १९ ॥ जोकि भूषणोंसमेत, आदरसमेत, आनन्दसमेतमुखारविन्दवाला अन्य सम्पूर्ण कार्य्योंको बिसारेहुआ और दक्षके यज्ञका प्रवर्त्तकहै ॥ २० ॥ व विषादमें यह कारणहै कि जिससे यहजगत् उपजा है व जिसमें अधिकतासे वर्त्तमानहै व जहां निश्चयसे लयको प्राप्तहोवेगा ॥ २१॥ वहही संसारतापहारक आप दोनोंजनों का जोड़ा वहां नहीं देख पड़ा जोकि आपका अदर्शन (न देखना) है वह बहुधा विषादका उपजानेवाला है ॥ २२ ॥ वहही आपका दर्शन वहां नहीं हुआ किंतु जो अन्यही भलीभांति भया वह कहने योग्य नहींहै और वह दक्षही उसके वक्ताहैं ॥ २३ ॥ तदनंतर उन वचनोंको सुनकर

श्चदक्षयज्ञप्रवर्तकम् ॥ २० ॥ विषादेकारणञ्चैतद्यतोजातमिदंजगत् ॥ यस्मिन्प्रवर्ततेयत्रलयमेष्यतिचध्रुवम् ॥ २१ ॥ तदेवतत्रनोदृष्टंभवद्द्वन्द्वम्भवापहम् ॥ प्रायोविषादजनकंभवतोर्यददर्शनम् ॥ २२ ॥ तदेवनाभवत्तत्रसमभूदन्यदेव हि ॥ तच्चवक्तुंनशक्येततद्वक्तादक्षएवसः ॥ २३ ॥ तानिवाक्यानिचाकर्ण्यद्रुहिणेनययेततः ॥ महर्षिणादधीचेनाधिकृतो नितरांहिसः ॥ २४ ॥ शप्तश्चवीक्षमाणानांदेवर्षीणांप्रजापतिः ॥ मयाचकर्णौपिहितौश्रुत्वातद्गर्हणागिरः ॥ २५ ॥ दधीचिनासमंकेचिद्दुर्वासःप्रमुखाद्विजाः ॥ भवनिन्दांसमाकर्ण्यकियन्तोपिविनिर्ययुः ॥ २६ ॥ प्रावर्ततमहायागोहृष्टपुष्टमहाजनः ॥ तथाद्रष्टुंनशक्नोमिततआगतवानिह ॥ २७ ॥ भगिन्योपिचयादेवितवतत्रसभर्तृकाः ॥ तासाङ्गौरवमालोक्य नकिञ्चिद्वक्तुमुत्सहे ॥ २८ ॥ इतिदेवीसमाकर्ण्यसतीदक्षकुमारिका ॥ करादक्षौसमुत्सृज्यदध्यौकिञ्चित्क्षणंहृदि ॥ २९ ॥

ब्रह्माजी चलेगये और महर्षिदधीचि से धिक्कृत हुये वह ॥ २४ ॥ प्रजापति देवऋषियोंके देखतेही शापितहुये व उनके आपकी निंदा वचनों को सुनकर मैंने कानोंको ढांपलिया ॥ २५ ॥ और ईश्वरकी निन्दाको सुनकर दधीचिके साथ दुर्वासा आदि कोई ब्राह्मण कितने भी विशेषतासमेत निकलकर चलेगये ॥ २६ ॥ व हृष्टपुष्ट जनोंवाला महायज्ञ अधिकतासे वर्त्तमान होरहाहै वैसा देखने को मैं योग्य नहींहूं उससे यहां आयाहूं ॥ २७ ॥ और हे देवि ! स्वामियों समेत जे तुम्हारी बहनै वहां हैं उनकी गुरुता को देखकर मैं कुछ कहनेको उत्साही नहीं होताहूं ॥ २८ ॥ ऐसा सुनकर क्रीडावारी दक्षकुमारी सतीजीने हाथसे पांसों को फेंककर क्षणभर हृदय में कुछ

ध्यान किया ॥ २६ ॥ फिर कहा कि ऐसाहो परन्तु शिवही मेरे रक्षकहैं इसभांति मन में विचारसमेत निश्चय धारणकर तदनन्तर दक्षकी पुत्री सतीजी ॥ ३० ॥ शीघ्रहीं भलीभांति उठीं व शङ्करजी के प्रणाम करती भईं और शिरमें अंजली को धर देवीजीने महादेवजी से विज्ञापन किया ॥ ३१ ॥ श्रीपार्वतीजी बोलीं कि हे अन्धकध्वंसिन्, त्रिपुरान्तक, त्रिनेत्र, सदाशिव ! तुम विजय करो व तुम्हारे चरणारविन्द मेरे रक्षक या स्थान या आधार हैं व आप मुझको आयसु देवो ॥ ३२ ॥ मैं प्रार्थना करतीहूं कि मैं पिता के समीप को जाऊंगी आप मुझको मत रोको ऐसा कहकर अन्धकके वैरी शिवजी के चरणारविन्दों में मस्तक को धरदिया ॥ ३३ ॥ अनन्तर शङ्कर

उवाचचभवत्वेवंशरणम्भवएवमे ॥ सम्प्रधार्येतिमनसिसतीदाक्षायणीततः ॥ ३० ॥ द्रुतमेवसमुत्तस्थौप्रणनाम चशङ्करम् ॥ मौलावञ्जलिमाधायदेवीदेवंव्यजिज्ञपत् ॥ ३१ ॥ देव्युवाच ॥ विजयस्वान्धकध्वंसिंस्त्र्यम्बकत्रिपुरान्तक ॥ चरणौशरणन्तेमेदेह्यनुज्ञांसदाशिव ॥ ३२ ॥ मानिषेधीःप्रार्थयामियास्यामिपितुरन्तिकम् ॥ उक्त्वेतिमौलिमदधादन्धकारिपदाम्बुजे ॥ ३३ ॥ अथोक्ताशम्भुनादेवीमृडान्युत्तिष्ठभामिनि ॥ किमपूर्णन्तवास्त्यत्रवदसौभाग्यसुन्दरि ॥ ३४ ॥ लक्ष्म्याअपिचसौभाग्यंब्रह्माण्यैकान्तिरुत्तमा ॥ शच्यैनित्यनवीनत्वंभवत्यादत्तमीश्वरि ॥ ३५ ॥ त्वयाचशक्तिमानस्मिन्महदैश्वर्यरक्षणे ॥ त्वाञ्चशक्तिंसमासाद्यस्वलीलारूपधारिणीम् ॥ ३६ ॥ एतत्सृजामिपाम्यद्मित्वल्लीलाप्रेरितोऽङ्गने ॥ कुतोमांहातुमिच्छेस्त्वंममवामार्धधारिणि ॥ ३७ ॥ शिवाशिवोदितञ्चेतिश्रुत्वाप्याहमहेश्वरम् ॥ जीवितेशविहायत्वांनक्वापिपरियाम्यहम् ॥ ३८ ॥ मनोमेचरणद्वन्द्वेतवस्थास्यतिनिश्चलम् ॥ क्रतुन्द्रष्टुंपितुर्यामिनैत्विय

जीने देवीजीसे कहा कि हे सौभाग्य सुन्दरि, भामिनि, मृड़ानि ! उठो यहां तुमको क्या न्यूनहै ॥ ३४ ॥ हे ईश्वरि ! तुमने लक्ष्मीको सौभाग्य व सरस्वतीको उत्तम कान्ति और इन्द्राणी को भी नित्य नवीनता दियाहै ॥ ३५ ॥ व मैं बड़े ऐश्वर्यकी रक्षा में तुमसेही शक्तिमान्हूं फिर अपनी लीलासे रूप धारिणी तुम शक्तिको भलीभांति प्राप्तहोकर ॥ ३६ ॥ तुम्हारी लीलासे प्रेरित हुआ इस जगतको सिरजताहूं व पालताहूं व प्रलय करताहूं हे मेरे वामार्धकी धारिणि, अंगने ! तुम क्यों मुझको त्यागने को इच्छा करतीहो ॥३७॥ ऐसा शिवजीका कहा वचन सुनकर भी शिवा (सती) जीने महेशजीसे कहा कि हे जीवितेश ! मैं तुमको त्यागकर कहीं भी नहीं जाऊंगी ॥ ३८ ॥

मेरा निश्चल मन तुम्हारे दोनों चरणारविन्दों में टिकेगा किन्तु मैं पिता का यज्ञ देखने के लिये जाताहूं क्योंकि मैंने कहीं भी यज्ञको नहीं देखा ॥ ३९ ॥ तब देवीजी के वाक्यको सुनकर शङ्करजीने ऐसा कहा कि जो तुमने यज्ञ को नहीं देखा तो मैं यज्ञको करताहूं या सब ओरसे लाताहूं ॥ ४० ॥ अथवा मेरी शक्ति धारिणी तुम अन्य यज्ञ क्रियाको सिरजो कि अन्य यज्ञपुरुषहो व अन्य लोकपाल होवें ॥ ४१ ॥ और तुम ऋत्विजों के कर्म में अन्य ऋषियों को शीघ्रही करो इस प्रकार शम्भु के कहेहुये वचन को सुनकर देवीजीने फिर कहा ॥ ४२ ॥ कि हे नाथ ! पिताका यज्ञ मुझसे यहां निश्चय देखने योग्यहै इससे मुझको आज्ञादो मैं जाऊंगी

ज्ञोमयाक्वचित् ॥ ३९ ॥ शम्भुःकात्यायनीवाक्यमितिश्रुत्वातदाब्रवीत ॥ क्रतुस्त्वयानेक्षितश्चेदाहरामिततःक्रतुम् ॥ ४० ॥ मच्छक्तिधारिणीत्वंवासृजेवान्यांक्रतुक्रियाम् ॥ अन्योयज्ञपुमानस्तुसन्त्वन्येलोकपालकाः ॥ ४१ ॥ अन्यानाशुविधेहित्वमृषीनार्त्विज्यकर्मणि ॥ पुनर्जगाददेवीतिश्रुत्वाशम्भोरुदीरितम् ॥ ४२ ॥ पितुर्यज्ञोत्सवोनाथद्रष्टव्योऽत्रमयाध्रुवम् ॥ देह्यनुज्ञाङ्गमिष्यामिमामेकार्षीर्वचोन्यथा ॥ ४३ ॥ कःप्रतीपयितुंशक्तश्चेतोवाजलमेववा ॥ निम्नायाभ्युद्यतंनाथमाद्यमाम्प्रतिषेधय ॥ ४४ ॥ निशम्येतिपुनःप्राहसर्वज्ञोभूतनायकः ॥ मायाहिदेविमांहित्वागताचनमिलिष्यसि ॥ ४५ ॥ अद्यप्राचींयियासुन्त्वावारयेत्पंगुवासरः ॥ नक्षत्रञ्चतथाज्येष्ठातिथिश्चनवमीप्रिये ॥ ४६ ॥ अद्यसप्तदशोयोगोवियोगोद्यतनोऽशुभः ॥ धनिष्ठार्धसमुत्पन्नेतवताराद्यपञ्चमी ॥ ४७ ॥ मागादेविगताद्यत्वंनहिद्रक्ष्यसिमांपुनः ॥ पुनर्देवीबभाषेसा

व मेरे वचनको आप अन्यथा मतकरो ॥ ४३ ॥ व हे नाथ ! नीचे के सम्मुख जाने को उद्यत जल व चित्तको उलटाने के लिये कौन समर्थ है उससे आज मुझको मत रोंको ॥ ४४ ॥ ऐसा सुनकर सर्वज्ञ शिवजीने फिर कहा कि हे देवि ! तुम मुझको छोड़कर मत जावो और गईहुई फिर न मिलोगी ॥ ४५ ॥ क्योंकि हे प्रिये ! आज पूर्वदिशा को जाना चाहती हुई तुमको शनैश्चर दिन तथा ज्येष्ठा नक्षत्र और नवमीतिथि निवारण करै है ॥ ४६ ॥ व आज सत्रहवां (व्यतीपात) योगहै व आजका वियोग अशुभहै और हे धनिष्ठार्धसमुत्पन्ने ! आजतुम्हारी पचईं ताराहै ॥ ४७ ॥ हे देवि ! आज मतजावो व गईहुई तुम फिर मुझको नहीं देखोगी तब फिर उन देवीजी

ने कहा कि जो मैं नामसे सतीहूं ॥ ४८॥ तो अन्य देहसे भी तुम्हारी दासताको करूंगी तदनन्तर शिवजी फिर बोले कि निवारण करने को कौन समर्थ है क्योंकि सब ओर से सञ्चलित चित्तकी वृत्तिवाली स्त्री व पुरुषको भी कौन लौटा सक्ताहै हे देवि ! फिर मेरा दर्शन नहींहै मैं सत्य कहताहूं ॥ ४९।५०॥ परन्तु हे कान्ते, देवि ! मानधन के चाहियो को बुलाये विना माता पिताके घरों में भी न जाना चाहिये ॥ ५१ ॥ जैसे समुद्रमें गई नदी फिर नहीं लौटती है वैसेही आज जानेवाली जो तुमहो उन का आना कभी नहीं इच्छित होताहै ॥ ५२ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि जो मैं तुम्हारे दोनों चरणारविन्दों में अवश्यकर अनुराग (स्नेह) वालीहूं तो जन्मान्तर में भी

यदिनाम्नाप्यहंसती ॥ ४८ ॥ तदातन्वन्तरेणापिकरिष्येतवदासताम् ॥ ततोभवःपुनःप्राहकोवावारयितुंप्रभुः ॥ ४९ ॥ परिक्षुब्धमनोवृत्तिंस्त्रियंवापुरुषन्तुवा ॥ पुनर्नदर्शनन्देविमयासत्यम्ब्रवीम्यहम् ॥ ५० ॥ परंनदेविगन्तव्यंमहामान धनेच्छुभिः ॥ अनाहूततयाकान्तेमातापितृगृहानपि ॥ ५१ ॥ यथासिन्धुगतासिन्धुर्नपुनःपरिवर्तते ॥ तथाद्यगन्त्र्यानो जातुतवागमनमिष्यते ॥ ५२ ॥ देव्युवाच ॥ अवश्यंयद्यहंरक्तातवपादाम्बुजद्वये ॥ तथात्वमेवमेनाथोभविष्यसिभवा न्तरे ॥ ५३ ॥ इत्युक्त्वानिर्ययौदेवीकोपान्धीकृतलोचना ॥ यियासुभिश्चकार्यार्थेयत्कर्तव्यंनतत्कृतम् ॥ ५४ ॥ ननना ममहादेवंनचचक्रेप्रदक्षिणम् ॥ अतएवहिसादेवीनगतापुनरागता ॥ ५५ ॥ अप्रणम्यमहेशानमकृत्वापिप्रदक्षिणम् ॥ अद्यापिननिवर्तन्तेगताःप्राग्वासराइव ॥ ५६ ॥ तयाचरणचारिण्याराज्ञ्यात्रिभुवनेशितुः ॥ अपितत्पावनंवर्त्ममेनेतिक ठिनम्बहु ॥ ५७ ॥ देवोपितांसतींयान्तींदृष्ट्वाचरणचारिणीम् ॥ अतीवविव्यथेचित्तेगणांश्चाथसमाह्वयत् ॥ ५८ ॥

तुमहीं मेरे नाथ होवोगे ॥ ५३ ॥ ऐसा कहकर कोपसे अन्धी किईं आंखों वाली देवीजी निकलकर चलदी और जाना चाहतेहुये जनोंको जो कार्य्यार्थ यात्रा निमित्त करना चाहिये उसको भी न किया ॥ ५४ ॥ कि महादेवजी के नमस्कार नहीं किया और प्रदक्षिणा नहीं किया इससेही गईहुई देवीजी फिर नहीं आईं ॥ ५५ ॥ और आजभी महेशजी के प्रणाम न कर व प्रदक्षिणा को भी न कर गयेहुये लोग पहले बीते दिनोंकी नाईं नहीं लौटते हैं ॥ ५६ ॥ उस समय पावों से चलती हुई उन त्रि-लोकेशकी रानीने उस पावन मार्गको भी बहुतही अत्यन्त कठिन माना अथवा बहुतही अत्यन्त कठिन भी उस मार्गको पावन माना ॥ ५७ ॥ और महादेवजी भी

पावों से जातीहुई क्रीडा कारिणी सती को देखकर मनमें अतिशय व्यथित हुये अनन्तर गणोंको भलीभांति बुलाते भये ॥ ५८ ॥ कि हे गणो ! विमान को लेजावो जो कि मन और पवन चक्रवाला व दशहजार सिंहो से संयुत व सुमेरु ध्वजा से ऊंचाहै ॥ ५९ ॥ व जिसमें महावायु पताकाहै व जो कि महत्तत्त्वरूप अक्ष (जो कि बीचमें दीर्घाकार काष्ठ होताहै) से लक्षित है व जिसमें नर्मदा और गंगा ईषा दण्डता को प्राप्त हैं याने फरी हैं ॥ ६० ॥ व जिसमें सूर्य्य और चन्द्रमा भी छत्र हुये हैं व जिसमें उत्तमा वाराही शक्ति मकराकार तुण्डहै ॥ ६१ ॥ व जिसमे गायत्री भी आपही धुरी है व तक्षकादि नाग रस्सी हैं व ॐकार सारथी है और ॐकारकी

गणाविमानंनयतमनःपवनचक्रिणम् ॥ पञ्चास्यायुतसंयुक्तंरत्नसानुध्वजोच्छ्रितम् ॥ ५९ ॥ महावातपताकञ्चमहाबुद्ध्यक्षलक्षितम् ॥ नर्मदालकनन्दाचयत्रेषादण्डताङ्गते ॥ ६० ॥ छत्रीभूतौचयत्रस्तःसूर्याचन्द्रमसावपि ॥ यस्मिन्मकरतुण्डञ्चवाराहीशक्तिरुत्तमा ॥ ६१ ॥ धूःस्वयञ्चापिगायत्रीरज्जवस्तक्षकादयः ॥ सारथिःप्रणवोयत्रक्रेङ्कारःप्रणवध्वनिः ॥ ६२ ॥ अङ्गानिरक्षकायत्रवरूथश्छन्दसाङ्गणः ॥ इत्याज्ञप्तागणास्तूर्णंरथंनिन्युर्हराज्ञया ॥ ६३ ॥ देव्यासनाथंतंकृत्वाविमानम्पार्षदादिवि ॥ अनुजग्मुर्महादेवींदिव्यान्तेजोविजृम्भिणीम् ॥ ६४ ॥ सात्क्षणन्त्र्यक्षरमणीवीक्ष्यदक्षसभाङ्गणम् ॥ नभोऽङ्गणाद्विमानस्थाततोवेगादवातरत् ॥ ६५ ॥ अविशद्यज्ञवाटञ्चचकितंरक्षिवीक्षिता ॥ कृतमङ्गलनेपथ्यांप्रसून्दृष्ट्वाकिरीटिनीम् ॥ ६६ ॥ सभर्तृकाश्चभगिनीर्नवालंकृतिशालिनीः ॥ साश्चर्याश्चसगर्वाश्चसानन्दाश्चससाध्व

ध्वनि शब्द है ॥ ६२ ॥ व वेदों के अंग शिक्षा कल्पादि जिसमें रक्षकहैं और छन्दों का समूह वरूथ (रथगुप्ति) है उस रथको इस भांति आयसु पाये हुये गणों ने शिवजीकी आज्ञा से शीघ्रही प्राप्त किया ॥ ६३ ॥ व दिवलोक में उस विमानको देवीजी से सनाथकर पार्षद लोगों ने सूर्य्यादि तेजोंको नीचे करतीहुई दिव्य रूपिणी महादेवी के पीछे गमन किया ॥ ६४ ॥ तदनन्तर विमान में टिकीहुई वह त्रिनेत्रजी की रमणी सतीजी क्षणभर दक्षके सभांगणको देखकर आकाश आंगन से उतर आईं ॥ ६५ ॥ व रक्षकों से चकित २ देखी हुई यज्ञभूमि में पैठीं और मंगल के भूषणकिये हुई मुकुटवाली माता को देखकर ॥ ६६ ॥ नवीन भूषणों से सोहतीहुई पतियों

समेत उन भगिनियों (बहनो) को देखकर जे कि आश्चर्य्य समेत व गर्वसहित व आनन्द संयुत व संभ्रमरामेत हैं ॥ ६७ ॥ और क्षणभर ऐसे देखतीहुई हैं कि बिना विचारी व बिना बुलाई यह शिवकी प्यारी विमान से कैसे परि प्राप्तहोगई है ॥ ६८ ॥ उनसे न संभाषण करभी सतीजी दक्षके समीपमें गई व पिता और मातासे पूंछी जातीभई कि तुम्हारे आने मे कल्याण हुआ है ॥ ६९ ॥ सतीजी बोली कि हे पितः ! जो मेरे आने से मंगल होता तो जैसे ये मेरी बहनें भलीभांति बुलाई गई हैं वैसे मैं क्यों नहीं बुलाईगई ॥७०॥ दक्षजी बोले कि हे अनन्ये, सर्वमंगले, महाधन्ये, कन्ये ! यह तुम्हारा कुछ दोष नहीं है मेराही दोष है ॥ ७१ ॥ जिससे मूर्ख बुद्धिवाले मैंने

सा: ॥ ६७ ॥ अचिन्तितात्वनाहूताविमानाद्धरवल्लभा ॥ कथमेषापरिप्राप्तात्क्षणमित्थम्प्रपश्यतीः ॥ ६८ ॥ असम्भाष्यापिताःसर्वागतादक्षान्तिकंसती ॥ पित्राप्टष्टातुमात्रापिभद्रञ्जातन्त्वदागमे ॥ ६९ ॥ सत्युवाच ॥ यदिभद्रञ्जनेतर्मेसमागमनतोभवेत् ॥ कथंनाहंसमाहूतायथैतामेसहोदराः ॥ ७० ॥ दक्षउवाच ॥ अयिकन्येमहाधन्येह्यनन्येसर्वमङ्गले ॥ अयन्तेनमनाक्दोषोदोषएवममैवहि ॥ ७१ ॥ तादृग्विधाययत्पत्येमयादत्ताज्ञबुद्धिना ॥ यदहन्तंसमाज्ञास्यमीश्वरोसौनिरीश्वरः ॥ ७२ ॥ तदाकथमदास्यन्त्वांतस्मैमायास्वरूपिणे ॥ अहंशिवाख्ययातुष्टोनजानेशिवरूपिणम् ॥७३॥ पितामहेनबहुधावर्णितोसौममाग्रतः ॥ शङ्करोयमयंशम्भुरसौपशुपतिःशिवः ॥ ७४ ॥ श्रीकण्ठोसौमहेशोऽसौसर्वज्ञोसौवृषध्वजः ॥ अस्मैकन्याम्प्रयच्छत्वंमहादेवायधन्विने ॥ ७५ ॥ वाक्याच्छतधृतेस्तस्मात्तस्मैदत्तामयानघे ॥ नजानेतंविरूपाक्षमुक्षगंविषभक्षणम् ॥ ७६ ॥ पितृकाननसंवासंशूलिनञ्चकपालिनम् ॥ द्विजिह्वसङ्गसुभगंजलाधारङ्कपर्दिन

तुमको वैसे पति के लिये दिया जो मैं उनको जानता कि यह ईश्वर निरीश्वर हैं ॥ ७२ ॥ तो उन मायास्वरूपी के लिये तुमको क्यों देता व शिव नाम से सन्तुष्ट हुये मैंने अमंगलरूपी नहीं जाना ॥ ७३ ॥ क्योंकि मेरे आगे वह ब्रह्मा से बहुत भांति वर्णितहुये कि यह शिव सुख कर्त्ता हैं व यह कल्याण कर्त्ताहैं व यह जीवों के स्वामी हैं ॥ ७४ ॥ व यह श्रीकण्ठ हैं व यह महेशहैं और यह वृषध्वज (धर्मकी ध्वजावाले) हैं इन धन्वाधारी महादेवजी के लिये तुम कन्याको दो ॥ ७५ ॥ हे अपापे ! ब्रह्मा के उस वचन से मैंने उनको दिया और मैं उनको ऐसा नहीं जानता था कि यह विरूपनेत्र , वृषवाहन और विषभक्षी हैं ॥ ७६ ॥ व श्मशान संवासी, त्रिशूली,

कपालधारी व सर्पों के संग से सुभग व जलके आधार व जटीले हैं ॥ ७७ ॥ व कलंकी चन्द्रमा को माथेमें किये हुये, धूरिकी धूमरतासे लिप्त व कहीं कौपीन वस्त्रवाले और कहीं वातूलके समान नग्न हैं ॥ ७८ ॥ व कहीं चर्मवस्त्रधारी व कहीं भिक्षा को प्यारी करनेवाले व विरूपहुये अनुचरो (गणों) से संयुत,अचल,उग्र, व तमोगुणी हैं ॥ ७९ ॥ रुद्र व रौद्र रस सम्बन्धी परिवारवारे व महाकालरूपधारे व मनुष्यों के हाड़ों को परिकर (खट्वा आदि) कियेहुये व जाति और गोत्रसे हीनहैं ॥ ८० ॥ हे समस्त नीति शोभिनि, पुत्रि ! बहुत कहने से क्या है उनकी माया से वञ्चित हुआ जानता भी कोई उनको भलीभांति नहीं जानताहै ॥ ८१ ॥ कहां वह मैले कपड़े

म् ॥ ७७ ॥ कलङ्किकृतमौलिश्च धूलिधूसरचर्चितम् ॥ क्वचित्कौपीनवसनंनग्नंवातूलवत्क्वचित् ॥ ७८ ॥ क्वचिच्चर्मवसनं क्वचिद्भिक्षाटनप्रियम् ॥ विटङ्कभूतानुचरंस्थाणुमुग्रन्तमोगुणम् ॥ ७९ ॥ रुद्रंरौद्रपरीवारंमहाकालवपुर्धरम् ॥ नृकरोटीपरिकरंजातिगोत्रविवर्जितम् ॥ ८० ॥ नसम्यग्वेत्तितङ्कश्चिज्जानानोपिप्रतारितः ॥ किम्बहूक्तेनतनयेसमस्तनयशालिनि ॥ ८१ ॥ क्वपांसुलपटच्छन्नोमहाशङ्खविभूषणः ॥ प्रबद्धसर्पकेयूरःप्रलम्बितजटासटः ॥ ८२ ॥ डमड्डमरुकव्यग्रहस्ताग्रःखण्डचन्द्रभृत् ॥ ताण्डवाडम्बररुचिःसर्वामङ्गलचेष्टितः ॥ ८३ ॥ मृडानिसहरःक्वाऽयमध्वरोमङ्गलालयः ॥ अतएवसमाहूतानेहत्वंसर्वमङ्गले ॥ ८४ ॥ दुकूलान्यनुकूलानिरत्नालंकृतयःशुभाः ॥ प्रागेवधारितास्तेत्रपश्यागत्यगृहाणच ॥ ८५ ॥ इहमङ्गलवेशेषुदेवेन्द्रेषुसशूलधृक् ॥ कथमर्होभवेच्चेतिमङ्गलेविषमेक्षणः ॥ ८६ ॥ इत्याकर्ण्यस

पहने, शंखों के गहनेवाले व सर्पों का मुकुट बांधे और बहुत लम्बे जटा जूटधारी हैं ॥ ८२ ॥ जो कि डमडम डमडम डमरू से व्यग्र हस्ताग्रवाले व चन्द्र खण्डधारी व नृत्याटोप में रुचिकारी और सब अमंगल कर्मवाले हैं ॥ ८३ ॥ हे मृडानि (सुखकारिणि)! कहां वह हर और कहां यह मंगलों का स्थान यज्ञ है याने बडा बीचहै हे सर्वमंगले ! या इस सब मंगलमय यज्ञमें मैंने तुमको नहीं बुलाया ॥ ८४ ॥ किन्तु अनुकूल, दुकूल (रेशमी या पीताम्बर) व शुभ, रत्नभूषण तुम्हारे लिये यहां पहलेही धरायेगये हैं आकर उनको देखो और ग्रहण करो ॥ ८५ ॥ व इस मंगलकर्म में मंगल वेष इन्द्रादि देवो के बीच वह तीन आँखोंवाले त्रिशूलधारी कैसे यो-

ग्य होवे हैं ॥ ८६ ॥ इस प्रकार पिता के कहेहुये वचनको सुनकर अत्यन्त पीड़ित अन्तःकरणवाली पतिव्रता सतीजी ने उस समय कहने को भलीभांति उपक्रम (आरम्भ) किया ॥ ८७ ॥ श्रीसतीजी बोलीं कि हे प्रभो! तुम्हारे कहतेही दोपदों को सुनकर मैंने कुछ नहीं सुना और उस पदद्वयी को तुम से कहतीहूं ॥ ८८ ॥ कि माया से वञ्चित, जानता हुआभी उनको भलीभांति नहीं जानताहै यह तुमने अच्छा कहा है क्योंकि उन सदाशिव को कौन जन जानता है ॥ ८९ ॥ और उन से सम्बन्ध करके असम्बद्ध प्रलापको सेवतेहुये तुम तो पहले वञ्चित हुये इस समयभी वञ्चित हुयेहो ॥ ९० ॥ व तुमने शङ्करको जैसा कहा वैसा जो मानते थे तो जिनको

तीसाध्वीजनेतुरुदितन्तदा ॥ अत्यन्तदूनहृदयावक्तुंसमुपचक्रमे ॥ ८७ ॥ सत्युवाच ॥ नाकर्णितंमयाकिञ्चित्त्वयिप्रब्रुवतिप्रभो ॥ पदद्वयींसमाकर्ण्यताञ्चतेकथयाम्यहम् ॥ ८८ ॥ नसम्यग्वेत्तितंकश्चिज्जानानोपिप्रतारितः ॥ एतत्सम्यक्त्वयाख्यायिकस्तंवेत्तिसदाशिवम् ॥ ८९ ॥ त्वन्तुप्रतारितःपूर्वमधुनापिप्रतारितः ॥ कृत्वातेनचसम्बन्धमसम्बद्धप्रलापभाक् ॥ ९० ॥ यादृशंवर्णितंशम्भुन्तादृशंयद्यमन्यथाः ॥ कुतोमामददास्तस्मैयञ्चकश्चनवेदन ॥ ९१ ॥ अथवातेनसम्बन्धेनहेतुर्भवतोमतिः ॥ तत्रहेतुरभूत्तातममपुण्यैकगौरवम् ॥ ९२ ॥ अथोक्त्वैवंबहुतरन्त्वञ्जनेतास्यवर्ष्मणः ॥ श्रुतानेनचदेहेनपत्युःपरिविगर्हणा ॥ ९३ ॥ पुरश्चरणमेवैतद्यदस्यैवविसर्जनम् ॥ सुश्लाघ्यजन्मयातावत्प्राणितव्यंसुयोषिता ॥ यावज्जीवितनाथस्याश्रवणीयाविगर्हणा ॥ ९४ ॥ इत्युक्त्वाक्रोधदीप्ताग्नौमहादेवस्वरूपिणि ॥ जुहावदेहस

कोई नहीं जानता है उनके लिये मुझको क्यों दिया ॥ ९१ ॥ अथवा उनके साथ सम्बन्ध में आपकी बुद्धि कारण नहीं है किन्तु हे तात! मेरे पुण्यका मुख्य गौरव कारण है ॥ ९२ ॥ अनन्तर ऐसा बहुत अधिक कहकर कि तुम इस देहको उपजानेवाले हो व इस देहसे पतिकी सब ओर से निन्दा सुनीगई है ॥ ९३ ॥ इस से जो कि इस देहकाही छोड़नाहै वही पुरश्चरण (पापोद्धार) है क्योंकि अच्छे प्रशंसनीय जन्मवाली अच्छी स्त्री को तब तक जीना चाहिये कि जबतक प्राणनाथकी निन्दा सुनने योग्य न होवे ॥ ९४ ॥ ऐसा कहकर उन्होंने महादेवजी का स्वरूप जो क्रोधसे प्रज्वलित अग्नि है उसमें प्राणायामकी विधि से देह ईंधन को हवन कर

दिया ॥ ९५ ॥ तदनन्तर इन्द्रादि सब देव विवर्णता को प्राप्तहुये व जैसे पहले घीकी आहुतियों से अग्नि जलती थी वैसे नहीं ज्वलितहुई ॥ ९६ ॥ व उस क्षणमेंही मन्त्र कुण्ठित सामर्थ्य होगये आश्चर्य्य या खेदहै कि यह क्या बड़ा अनिष्ट समुपस्थित हुआहै ॥९७॥ इसप्रकार चारों ओर जाना चाहते हुये कोई ब्राह्मणवर परस्पर बतलाने लगे ॥ ९८ ॥ व पर्वत कँपाने को समर्थ बड़ी कठोर बयार बही उसने यज्ञ मण्डपकी भूमिको क्षणमें तृणादिकों से छादित किया व असमय में बिजुलीका गिरना और भूमिका बड़ा कम्पन हुआ ॥ ९९ ॥ व दिनमेंही उल्का गिरीं और पिशाचों ने नृत्यको सब ओरसे धारण किया और आकाश में गीध मण्डलाकार निरन्तर

मिथम्प्राणरोधविधानतः ॥ ९५ ॥ ततोविवर्णतांप्राप्ताःसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ नाग्निर्जज्वालचतथायथाज्याहुतिभिःपुरा ॥ ९६ ॥ मन्त्राःकुण्ठितसामर्थ्यास्तत्क्षणादेवचाभवन् ॥ अहोमहानिष्टतरंकिमेतत्समुपस्थितम् ॥ ९७ ॥ केचिदूचुर्द्विजवरामिथःपरियियासवः ॥ महाभञ्झानिलःप्राप्तःपर्वतान्दोलनक्षमः ॥ ९८ ॥ मखमण्डपभूस्तेनक्षणात्स्थपुटीकृता ॥ अकाण्डेतडिदापातोजातोभूद्भूप्रकम्पनः ॥ ९९ ॥ दिवश्चोल्काःप्रपतिताःपिशाचानृत्यमादधुः ॥ आतापिगृध्रैरुपरिगगनेमण्डलायितम् ॥ १०० ॥ रवेरधस्तादशिवंशिवास्तत्राप्यरारिषुः ॥ मेघारुधिरविप्रुड्भिस्तत्रवृष्टिंव्यधुःपराम् ॥ १ ॥ निर्घातनिःस्वनोभूमेरुत्थितोहृत्प्रकम्पनः ॥ दिव्यायुधानिचमिथोयुध्यन्तिस्मातिभीषणम् ॥ २ ॥ हवनीयंमहाद्रव्यन्दूषितंक्रोष्टुभिःश्वभिः ॥ चकोराःकरटास्तत्रविचेरुर्यज्ञमण्डपे ॥ ३ ॥ श्मशानवाटवज्जातोयज्ञवाटःसवैक्षणात् ॥ यद्यत्रावस्थितंसर्वन्तत्तत्रैवपरितिष्ठितम् ॥ ४ ॥ चित्रन्यस्तमिवासीच्चवस्तुजातमशोभिच ॥ स्थगिताइवसंवृत्तास्तत्रचक्रधरा

मड़राने लगे ॥ १०० ॥ व वहांहीं सूर्य्य के नीचे याने सूर्य्योदय के बाद शृगालियों (स्यारियों) ने अमङ्गल शब्द किया व मेघों ने रक्त के बूँदों से बड़ी बरसा कर दी ॥ १ ॥ व हृदय कम्पानेवाला वज्रपातका शब्द भूमिसे उठा और अत्यन्त भयानक जैसेहो वैसे दिव्य आयुध आपुसमें लड़नेलगे ॥ २ ॥ व होमके योग्य महा द्रव्य स्यार और श्वानों से दूषित भया व चकोर और काग उस यज्ञमण्डपमें विचरते फिरते थे ॥ ३ ॥ वह यज्ञवाट क्षणमें श्मशान भूमिसा होगया कि जो जहां धरा या टिकाथा वह सब वहांहीं सबओर से स्थितरहा ॥ ४ ॥ व शोभा रहित वस्तुओं का समूह चित्रमें धरासा होगया और वहां चक्रधारी विष्णुआदि देव शङ्कित की नाईं

भलीभांति वर्तमान हुये ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मणो ! मुखकी मलीनताको प्राप्तहोकर परिच्छद याने परिवार व दासी दासादि या सब सामग्रियों समेत दक्षने फिरभी जिसकिसी प्रकारसे यज्ञको प्रवर्त्तित किया ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेसतीदेहविसर्जनंनामाष्टाशीतितमोध्यायः ॥ ८८ ॥ ❀ ॥

दो० नौवासी अध्याय में दक्ष यज्ञ विध्वंस । समुत्पत्ति दक्षेशकी वर्णित सहित प्रशंस ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी ! देवीजीके आगे भलीभांति समीप में आये हुये वह नारदमुनि फिर उनके सम्पूर्ण वृत्तान्तको शिवजीसे जनानेके लिये गये ॥ १ ॥ व उन नारदजीने नन्दीश्वरके साथ तर्जनी अँगुली के विन्यास पूर्वक

दयः ॥ ५ ॥ दक्षोपिवदनम्लानिमवाप्यसपरिच्छदः ॥ पुनर्यथाकथञ्चिच्चयज्ञंप्रावर्तयन्द्विजाः ॥ १०६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसतीदेहविसर्जनंनामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ पुनःसनारदोऽगस्त्यदेव्याःप्राक्समुपागतः ॥ तद्वृत्तान्तमशेषञ्चहरायावेदितुंययौ ॥ १ ॥ दृष्ट्वासनारदःशम्भुंनन्दिनासहसङ्कथाम् ॥ काञ्चित्तर्जनिविन्यासपूर्वंकुर्वन्तमानमत् ॥ २ ॥ उपाविशच्चशैलादिविसृष्टासनंमुत्तमम् ॥ वैलक्ष्यंनाटयन्किञ्चित्क्षणंजोषन्समास्थितः ॥ ३ ॥ आकारेणैवसर्वज्ञस्तद्वृत्तान्तंविवेदह ॥ अवादीच्चमुनिंशम्भुःकुतोमौनावलम्बनम् ॥ ४ ॥ शरीरिणांस्थितिरियमुत्पत्तिप्रलयात्मिका ॥ दिव्यान्यपिशरीराणिकालाद्यान्त्येवमेवहि ॥ ५ ॥ दृश्यंविनश्वरंसर्वंविशेषाद्यदनीश्वरम् ॥ ततोऽत्रचित्रंकिंब्रह्मन्कङ्कालःकालयेन्नवै ॥ ६ ॥ अभाविनोहिभा

किसी कथाको करते हुये शङ्करजी को देखकर प्रणाम किया ॥ २ ॥ और वह शिलादके पुत्र नन्दीश्वर से दिये हुये उत्तम आसन पै समीप ही बैठे व पहले आने से कुछेक विलक्षणताको घटातेहुये क्षणभर चुप रहगये ॥ ३ ॥ व सर्वज्ञ शम्भुजीने आकारसेही उनके या उस सब वृत्तान्तको स्पष्ट जानलिया और मुनिसे कहा कि मौनका अवलम्बन क्योंहै ॥ ४ ॥ यह देहधारियोंकी स्थिति उत्पत्ति और प्रलयरूपिणी है ऐसेही दिव्य शरीरभी कालसे जातेही हैं ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मण ! जोकि विशेष से ईश्वर नहीं है याने परवशहै वह सब दृश्य (देखने योग्य जगत) नश्वर है इसलिये इसमें क्या आश्चर्य्य है क्या काल नहीं नाशकरे है ॥ ६ ॥ जोकि न होनेवाला भावहै उसका

होना कहीं भी नहीं सम्भवे है याने जो नहींहै उसका होना नहीं होताहै और जो पदार्थ सतही है उसका न होना भी नहींहै उससे ज्ञानीजन नहीं मोहते हैं ॥ ७ ॥ इस भांति शंकरजीके कहेहुये वचनको सुनकर उन मुनिपुंगवने कहा कि देवने जो यह कहा वह सत्यही है ॥ ८ ॥ जोकि अवश्यही होने योग्यथा वह हुआ इसमें संशय नहीं है परन्तु चित्तको मथनेवाली एक चिन्ता मुझको अत्यन्त बाधा करती है ॥ ९ ॥ कि तत्त्वसे तुम्हारा न कुछ घटे न बढ़े क्योंकि अविनाशी और पूर्ण होनेसे हानि व वृद्धि तुममें कैसे होसक्तीहै याने नहीं है ॥ १० ॥ और खेद या आश्चर्य्यहै कि बापुरा संसार कहां होवेगा जिससे आज दिनसे आरम्भ कर कोई भी तुमको न पूजेगे ॥ ११ ॥

वस्यभावःक्वापिनसंभवेत् ॥ भाविनोपिहिनाभावस्ततोमुह्यन्तिनोबुधाः ॥ ७ ॥ शम्भूदीरितमाकर्ण्यसइत्थंमुनिपुङ्गवः ॥ प्रोक्तवान्सत्यमेवैतद्यद्देवेनप्रभाषितम् ॥ ८ ॥ अवश्यमेवयद्भाव्यन्तद्भूतंनात्रसंशयः ॥ परंमाम्बाधतेत्यन्तञ्चिन्तैका चित्तमाथिनी ॥ ९ ॥ नापचीयेततेकिञ्चिन्नोपचीयेततत्त्वतः ॥ अव्ययत्वाच्चपूर्णत्वाद्धानिवृद्धीकुतस्त्वयि ॥ १० ॥ अहो वराकःसंसारःक्वभविष्यत्यनीश्वरः ॥ आरभ्याद्यदिनंनत्वामर्चयिष्यन्तिकेपियत् ॥ ११ ॥ यतःप्रजापतिर्दक्षोनत्वामाहूतवान्क्रतौ ॥ तेनाद्यरीढितंदृष्ट्वादेवर्षिमनुजाअपि ॥ १२ ॥ तवरीढाङ्करिष्यन्तिकिमैश्वर्येणरीढिनाम् ॥ प्राप्तावहेडना लोकेजितकालभयाअपि ॥ अथैश्वर्येणसम्पन्नाःप्रतिष्ठाभाजनंकिमु ॥ १३ ॥ महीयसायुषातेषांवसुभिर्भूरिभिश्चकिम् ॥ येऽभिमानधनानेहलब्धरीढाःपदेपदे ॥ १४ ॥ अचेतनाश्चसावज्ञाजीवन्तोपिनकीर्तये ॥ अभिमानधनाधन्यावरंयोषित्सुसासती ॥ १५ ॥ यात्वद्विनिन्दाश्रवणात्तृणीचक्रेस्वजीवितम् ॥ इत्याकर्ण्यमहाकालःसम्यग्ज्ञात्वासतीव्ययम् ॥ १६ ॥

व जिससे प्रजापतिदक्षजीने यज्ञमें तुमको न बुलाया उससे आज अवज्ञात (अनादरित) देखकर देवऋषि और मनुष्य भी ॥ १२ ॥ तुम्हारी अवज्ञाकरेंगे तो अनादरवालोंका ऐश्वर्य्य से क्याहै क्योंकि जे लोग कालके डरको जीते है अनन्तर ऐश्वर्य्य से सम्पन्न भी हैं परन्तु लोकमें अवज्ञाको प्राप्तहैं वे क्या प्रतिष्ठाके पात्र होते हैं याने नहीं ॥ १३ ॥ व जेकि अभिमान धनवाले जन यहां क्षण क्षणमें अवज्ञा को नहीं पायेहुये हैं उनको बहुत भारी आयु और बहुतसे धनोंसे भी क्याहै ॥ १४ ॥ व अनादरसमेत जीतेहुये भी जड़ जन्तु कीर्तिके लिये नहीं हैं इससे अभिमान धनवाली सतीजी स्त्रियोंमें धन्याहैं यह श्रेष्ठहै ॥ १५ ॥ कि जिन्होंने तुम्हारी विनिन्दाके सुनने

से अपने जीवितको तृणके समान करदिया ऐसे अच्छेप्रकार सती के नाशको जानकर महाकाल (शिव) जी बोले कि ॥ १६ ॥ हे मुने! सतीदेवीने अपने जीवितको तृणकिया यह सत्यहै उस समय वहां महाकालके डरसे मुनिके चुपचाप टिकतेहीं ॥ १७ ॥ बहुत क्रोधाग्नि से जलेहुये रुद्रजी अत्यन्त रुद्ररूप होगये तदनन्तर उनके क्रोधसे उपजीहुई अग्निसे महाज्योतिवाला एकजन प्रकटहुआ ॥ १८ ॥ जोकि प्रत्यक्ष व प्रतिमाकार याने पर्वतों से निकलीहुई पुत्तलिकाओं के समान आकारवान् काल मृत्यु प्रकम्पनहै और बड़ी बन्दूखको धारतेहुये उन्होंने परमेश्वरके प्रणामकर कहा ॥ १९ ॥ हे पितः! मुझको आज्ञादो कि मैं आपकी क्या उत्तम दासताकरूं व आपकी

सत्यंमुनेसतीदेवीतृणीचक्रेस्वजीवितम् ॥ जोषंस्थितेमुनौतत्रतन्महाकालसाध्वसात् ॥ १७ ॥ रुद्रश्चातीवरुद्रोभूद्बहुकोपाग्निदीपितः ॥ ततस्तत्कोपजाद्वह्नेराविरासीन्महाद्युतिः ॥ १८ ॥ प्रत्यक्षःप्रतिमाकारःकालमृत्युप्रकम्पनः ॥ उवाचचप्रणम्येशंभुशुण्डीम्महतीन्दधत् ॥ १९ ॥ आज्ञान्देहिपितःकिन्तेकरवैदास्यमुत्तमम् ॥ ब्रह्माण्डमेककवलंकरवाणित्वदाज्ञया ॥ २० ॥ पिबामिचार्णवान्सप्ताप्येकेनचुलुकेनवै ॥ रसातलंवापातालंपातालंवारसातलम् ॥ २१ ॥ त्वदाज्ञयानयामीशविनिमय्यस्वहेलया ॥ सलोकपालमिन्द्रंवाधृत्वाकेशैरिहानये ॥ २२ ॥ अपिवैकुण्ठनाथश्चेत्तत्साहाय्यङ्करिष्यति ॥ तदातंकुण्ठितास्त्रञ्चकरिष्यामित्वदाज्ञया ॥ २३ ॥ दनुजादितिजाःकेवैवराकारणदुर्बलाः ॥ तेषुचोत्कटताङ्कोपिधत्तेतम्प्रणिहन्म्यहम् ॥ २४ ॥ कालम्बध्नामिवासंख्येमृत्योर्वामृत्युमर्थये ॥ स्थावरेषुचरेष्वत्रमयिक्रुद्धेरणा

आज्ञासे ब्रह्माण्डको एक कौलकरूं ॥ २० ॥ व एकही चुल्लूसे सातो समुद्रोंको निश्चयसे पीसक्ताहूं व भूतलको पातालमें व पातालको भूतलमें ॥ २१ ॥ बदलकर आपकी आज्ञासे पहुंचाताहूं व हे ईश! अपनी लीलासे लोकपालोंसमेत इन्द्रको बालोंसे पकड़कर यहां लिये आताहूं ॥ २२ ॥ और जो वैकुण्ठकेनाथ भी उनकी सहायता को करेंगे तो आपकी आज्ञासे उनको कुण्ठित अस्त्रवाला करूंगा ॥ २३ ॥ व संग्राममें दुर्बल दानव और बापुरे दैत्य भी कौनहैं फिर उनमें से जो कोई उत्कटता को धारताहै (धारेगा) उसको मैं विनाश करूंगा ॥ २४ ॥ व संग्राममें कालको बांधूं व मृत्युके मृत्युको बुलाऊं व इस रणरूपी आंगन में मेरे क्रुद्धहुयेही यहां स्थावर

और जंगमों के बीच ॥ २५ ॥ कोई भी स्थिरताको न प्राप्तहोवेगा व हे महेशानजी ! आपके बलसे मेरे पदतलके घातसे यह पृथिवीतल जोकि निश्चयसे ॥ २६ ॥ रसातल समेतहै वह वायुसे केलाके पत्रकी नाईं कांपताहै और मैं अपने भुजदण्डोंके ताड़नसे इन कुल पर्वतोंको चूर्ण करताहूं ॥ २७ ॥ और बहुत कहने से क्याहै तुम्हारे चरणारविन्दों के बलसे मुझको कुछ असाध्य नहींहै इससे आज्ञादो और चिन्तित कार्य्यको आज कियाहुआ जानो ॥ २८ ॥ इसभांति उनकी प्रतिज्ञाको सुनकर परमेश्वरने कार्य्यको किया माना फिर अत्यन्त आनन्दसे कार्य्य कियेहुयेकी नाईं उनके प्रतिकहा ॥ २९ ॥ कि रेभद्र ! जिससे तुम यहां मेरे सब गणों में बड़े वीरहो इससे

ङ्गणे ॥ २५ ॥ त्वद्बलेनमहेशाननकोपिस्थैर्यमेष्यति ॥ ममपादतलाघातादेतद्वैक्षोणिमण्डलम् ॥ २६ ॥ कदलीदलवद्वाताद्वेपतेसरसातलम् ॥ चूर्णीकरोमिदोर्दण्डघाताच्चैतान्कुलाचलान् ॥ २७ ॥ किम्बहूक्तेनदेह्याज्ञांममासाध्यंनकिञ्चन ॥ त्वत्पादबलमासाद्यकृतंविद्ध्यद्यचिन्तितम् ॥ २८ ॥ इतिप्रतिज्ञान्तस्येशःश्रुत्वाकृतममन्यत ॥ कृतकृत्यमिवात्यन्तंतंमुदाप्रत्युवाचच ॥ २९ ॥ महावीरोसिरेभद्रममसर्वगणेष्विह ॥ वीरभद्राख्ययात्वंहिप्रथितिम्परमांव्रज ॥ ३० ॥ कुरुमेसत्वरङ्कार्यंदक्षयज्ञंक्षयंनय ॥ येत्वान्तत्रावमन्यन्तेतत्साहाय्यविधायिनः ॥ ३१ ॥ तेत्वयाप्यवमन्तव्याव्रजपुत्रशुभोदय ॥ इत्याज्ञांमूर्धिनचाधायसततःपारमेश्वरीम् ॥ ३२ ॥ हरम्प्रदक्षिणीकृत्यजग्मिवानतिरंहसा ॥ ततस्तदनुगाञ्छम्भुःस्वनिःश्वाससमुद्गतान् ॥ ३३ ॥ शतकोटिमितानुग्रान्गणानन्यानवासृजत् ॥ तेगणावीरभद्रन्तंयान्तङ्केचित्पुरोगताः ॥ ३४ ॥ केचित्तदनुगाजाताःकेचित्तत्पार्श्वगाययुः ॥ अम्बरन्तैःसमाक्रान्तंतेजोविजितभास्करैः ॥ ३५ ॥ शृ

वीरभद्र नामसे परम प्रसिद्धिको प्राप्तहोवो ॥ ३० ॥ व मेरे कार्य्यको शीघ्रही करो कि दक्षके यज्ञको विनाशको पहुंचावो और वहां जे जे उसके सहायकर्ता तुम्हारा अपमानकरें ॥ ३१ ॥ वे तुमसे भी अपमानके योग्यहैं हे शुभोदय, पुत्र ! तुम जावो ऐसी परमेश्वरकी आज्ञाको शिरमें धरकर तदनन्तर वह ॥ ३२ ॥ महादेवजीकी प्रदक्षिणाकर अत्यन्त वेगसे चले उसके बाद शंकरजीने उनके पीछे चलनेवाले जेकि अपने निःश्वासों से भलीभांति उत्पन्न हुये हैं ॥ ३३ ॥ व शतकोटिसख्यकहैं व उग्ररूपहैं ऐसे और गणोंको उत्पन्नकिया वे कोई गण जातेहुये उनवीरभद्रके आगेगये ॥ ३४ ॥ व कोई उनके पीछे चलनेवाले हुये व कोई उनके पार्श्वगत होकर चले और

तेजसे सूर्यको जीतेहुये उन गणों से आकाश व्याप्तहुआ ॥ ३५ ॥ किसीने पर्वतों के शिखराग्रों को उखाड़ा व किसीने मस्तक से मूलतक याने ऊपरसे नीचेतक पहाड़ों को डुलाया ॥ ३६ ॥ व कोईगण बड़े वृक्षोंको उखाड़कर यज्ञांगणमें प्राप्तहुये व वहांपर किसीसे यज्ञशालाके खम्भा उखाड़ेगये व किसीने कुण्डों को पूरा करदिया ॥ ३७ ॥ व क्रोधसे उद्धत किसी गणोंने मण्डपका विध्वंसकिया व किसी त्रिशूलधारियोंने वेदियोंको निश्चयसे खोदडाला व अन्य गणोंने हवियोंको खालिया व परोंने दही और दूधको पिया ॥ ३८ ॥ व किसीने पर्वतों के समान अन्नोंकी राशियोंको बिगाड़कर नीचे बिथड़ादिया व कोई खीर खानेवाले व कोई दूध पीनेवाले हुये ॥ ३९ ॥ व कोई

ङ्गाग्राणिगिरीणाञ्चकैश्चिदुत्पाटितानिवै ॥ आचूडमूलाःकैश्चिच्चविधूतावैशिलोच्चयाः ॥ ३६ ॥ उत्पाट्यमहतोवृक्षान्केचित्प्राप्तामखाङ्गणम् ॥ कैश्चिदुत्पाटितायूपाःकेचित्कुण्डान्यपूपुरन् ॥ ३७ ॥ मण्डपन्ध्वंसयामासुःकेचित्क्रोधोद्धुरागणाः ॥ अचीखनन्वैवेदीश्चकेचिद्वैशूलपाणयः ॥ अभक्षयन्हवींष्यन्येपृषदाज्यंपपुःपरे ॥ ३८ ॥ दध्वंसुरन्नराशींश्चकेचित्पर्वतसन्निभान् ॥ केचिद्वैपायसाहाराःकेचिद्वैक्षीरपायिनः ॥ ३९ ॥ केचित्पक्वान्नपुष्टाङ्गायज्ञपात्राण्यचूर्णयन् ॥ आमोटयन्स्रुचान्दण्डान्केचिद्दोर्दण्डशालिनः ॥ ४० ॥ व्यभञ्जञ्छकटान्केचित्पशून्केचिदजीगिलन् ॥ अग्निंनिर्वापयामासुःकेचिदत्यग्नितेजसः ॥ ४१ ॥ स्वयम्परिदधुश्चान्येदुकूलानिमुदायुताः ॥ जगृहुःकेचनपुरारत्नानांपर्वतंकृतम् ॥ ४२ ॥ एकेनचभगोदेवःपश्यंश्चक्रेविलोचनः ॥ पूष्णोदन्तावलीमन्यःपातयामासकोपितः ॥४३॥ यज्ञःपलायितोदृष्टःकेनचिन्मृगरूपधृक् ॥ शिरोविरहितश्चक्रेतेनचक्रेणदूरतः ॥४४॥ एकःसरस्वतींयान्तींदृष्ट्वानिर्नासिकांव्यधात् ॥ अदिते

पक्वान्नों से पुष्ट अंगवालोंने यज्ञपात्रों को चूर्णकिया व कोई भुजदण्डशालियोंने स्रुचों (यज्ञपात्र विशेषों) के दण्डोंको तोड़डाला ॥ ४० ॥ व किसीने शकटों (लढ़ियों) को विशेषतासे भंजनकिया व किसीने पशुओंको निगललिया व अग्निके समान तेजवाले किसीने अग्नियोंको बुझादिया ॥ ४१ ॥ व आनन्दसमेत अन्यों ने आपही रेशमीवस्त्रों या पीताम्बरोंको सब ओरसे धारणकिया व किसीने आगे रत्नोंके कियेहुये पर्वतको ग्रहण करलिया ॥४२॥ व एकने देखतेहुये भगदेवको विना आंखोंका किया व कोपितहुये अन्य गणने पूषादेवके दन्तोंकी पंक्तिको गिरादिया ॥ ४३ ॥ और जिस किसीने मृगरूपधारी व भगेजातेहुये यज्ञको देखा उसने दूरमेही चक्रसे मस्तकहीन

किया ॥ ४४ ॥ व एकने जातीहुई सरस्वतीको नासिकासे रहितकिया व अन्य क्रोधीने अदितिके दोनों ओठो को काटलिया ॥ ४५ ॥ तथा अपरगणने अर्य्यमादेवकी दोनों बाहुओंको उखाड़डाला और किसीने हठसे अग्निकी जीभको उखाडलिया ॥ ४६ ॥ व अन्य प्रतापवान् पार्षदने वायुके अण्डकोशको काटा व किसीने यमको बांधकर ऐसा पूंछा कि क्या धर्महै ॥ ४७ ॥ जिसमें पहले महेशजी नहीं सब ओरसे पूजेजाते हैं व अन्यने नैर्ऋतदेवको भलीभांति पकड़कर व बारबार बालोंमें खींचकर ॥ ४८ ॥ व तुमने परमेश्वरसे हीन हविको खाया ऐसा कहकर लात घात किया व अपरने कुबेरको पावों में धरकर बलसे कँपाया याने भ्रमाया ॥ ४९ ॥ व खाईहुई बहुतसी यज्ञाहुतियों को

रोष्ठपुटकौछिन्नावन्येनकोपिना ॥ ४५ ॥ अर्यम्णोबाहुयुगलंतथोत्पाटितवान्परः ॥ अग्नेरुत्पाटयामासकश्चिज्जिह्वाम्प्रसह्यच ॥ ४६ ॥ चिच्छेदवायोर्वृषणम्पार्षदोन्यःप्रतापवान् ॥ पाशयित्वायमङ्कश्चित्कोधर्मइतिपृष्टवान् ॥ ४७ ॥ यत्रधर्मेमहेशोनप्रथमम्परिपूज्यते ॥ नैर्ऋतंसंगृहीत्वान्यःकेशेष्वातोल्यचासकृत् ॥ ४८ ॥ अनीश्वरंहविर्भुक्तंत्वयेत्याताडयत्पदा ॥ कुबेरमपरोधृत्वापादयोरधुनोद्बलात् ॥ ४९ ॥ वामयामासबहुशोभक्षिताह्यध्वराहुतीः ॥ एकादशाऽपियेरुद्रालोकपालैकपङ्क्तयः ॥ ५० ॥ रुद्राख्याधारणवशात्प्रमथैस्तेऽवहेलिताः ॥ वरुणोदरमापीड्यप्रमथोन्योबलेनहि ॥ ५१ ॥ बहिरुद्गिरयामासयद्दत्तञ्चेशवर्जितम् ॥ मायूरीन्तनुमासाद्यसहस्राक्षोमहामतिः ॥ ५२ ॥ उड्डीयगिरिमाश्रित्यछन्नःकौतुकमैक्षत ॥ ब्राह्मणान्प्रमथानत्वायातयातेतिचाब्रुवन् ॥ ५३ ॥ प्रमथाःकालयामासुरन्यानपियाचकान् ॥ इत्थम्प्रमथितेयागेप्रमथैःप्रथमागतैः ॥ वीरभद्रःस्वतःप्राप्तःप्रमथानीकिनीवृतः ॥ ५४ ॥ यज्ञवाटंश्मशानाभंदृष्ट्वातैःप्रमथैः

वमन कराया व लोकपालोंकी एक पंक्तिवाले ग्यारहरुद्र जेकि ॥ ५० ॥ रुद्रनामके धारनेवाले हैं वे भी गणोंसे अवज्ञाको प्राप्तहुये व अन्य पार्षदने बलसेही वरुणदेवके उदरको सब ओरसे पीड़ितकर ॥ ५१ ॥ उसको बाहर उगिलालिया जोकि ईश्वरसे वर्जित भाग उनको दियागया था और बडे बुद्धिमान् इन्द्र मयूरकी देहको प्राप्तहोकर ॥ ५२ ॥ व उड़कर और पर्वतको आश्रय (आधार) कर याने उसपर बैठकर छिपे व कौतुकको देखनेलगे व गणोंने ब्राह्मणो के नमस्कारकर ऐसा कहा कि तुम लोग जावो जावो ॥ ५३ ॥ और पार्षदोंने अन्य याचकोंको भी चलादिया इसप्रकार पहले आयेहुये शिवगणोंसे यज्ञके बहुत मथित होतेही गणोंकी सेनासे घिरेहुये वीर-

भद्रजी आपही प्राप्तहुये ॥ ५४ ॥ व पहलेही उन पार्षदों से अत्यन्त शोचनीयदशाको पहुँचायेहुये व श्मशानके समान यज्ञवाटको देखकर तदनन्तर वीरभद्रजीने कहा ॥ ५५ ॥ कि हे गणो ! देखो कि ईश्वर स्नेहसे हीन दुराचारी दुष्टों से प्रारम्भ कियेहुये कर्मोंकी यह अवस्थाहै इसलिये महेश्वरमें द्वेष कैसे होवे है ॥ ५६ ॥ व धर्म कार्य्य में प्रवृत्तहुये भी जे जन सब कर्मोंके मुख्य साक्षी महादेवजीको द्वेष करते हैं वे ऐसी दशाको प्राप्तहोवेंगे ॥ ५७ ॥ हे गणो ! वह दुराचारी दक्ष कहांहै व यज्ञमें भोजन करने वाले देव कहांहैं सबको धरकर लावो तुमलोग बहुत शीघ्रही जावो ॥ ५८ ॥ इसभांति वीरभद्रजीकी आज्ञाको पाकर वे गण जबतक शीघ्रही जातेहैं तबतक आगे क्रुद्ध

पुरा ॥ अतिशोच्यान्दशांनीतंवीरभद्रस्ततोजगौ ॥ ५५ ॥ गणाःपश्यतदुर्वृत्तैःप्रारब्धानाञ्चकर्मणाम् ॥ अनीश्वरैरवस्थेयंकुतोद्वेषोमहेश्वरे ॥ ५६ ॥ येद्विषन्तिमहादेवंसर्वकर्मैकसाक्षिणम् ॥ धर्मकार्येप्रवृत्तास्तुतेप्राप्स्यन्तीदृशीन्दशाम् ॥ ५७ ॥ क्वसदक्षोदुराचारःक्वचयज्ञभुजःसुराः ॥ धृत्वासर्वानानयतयातद्द्रुततरङ्गणाः ॥ ५८ ॥ इत्याज्ञांवीरभद्रस्यप्राप्यतेप्रमथाद्रुतम् ॥ यावद्यान्त्यग्रतस्तावद्दृष्टःक्रुद्धोगदाधरः ॥ ५९ ॥ तेनतेप्रमथाःसर्वेमहाबलपराक्रमाः ॥ शुष्कपर्णतृणावस्थांप्रापितावात्ययेवहि ॥ ६० ॥ अथनष्टेषुसर्वेषुप्रमथेषुहरेर्भयात् ॥ चुकोपवीरभद्रःसप्रलयानलसन्निभः ॥६१॥ ददर्शशार्ङ्गिणञ्चाग्रेस्वगणैश्चपरिष्टुतम् ॥ चतुर्भुजैरसंख्यातैर्जितदैत्यमहाबलैः ॥ ६२ ॥ चक्रिभिर्गदिभिर्जुष्टंखड्गिभिश्चापिशार्ङ्गिभिः ॥ वीरभद्रस्ततःप्राहदृष्ट्वातन्दैत्यसूदनम् ॥ ६३ ॥ त्वन्तुयज्ञपुमानत्रमहायज्ञप्रवर्तकः ॥ रक्षितानिजवीर्येणदक्षस्यत्र्यक्षवैरिणः ॥६४॥ किंवादक्षंसमानीयदेहियुध्यस्ववामया॥ नदास्यसिचचेद्दक्षंततस्त्वंरक्षयत्नतः ॥६५॥

हुये गदाधर (विष्णु) जी देखपड़े ॥ ५९ ॥ और उन्होंनेही बड़े बल पराक्रमवाले उन गणोको बवंडरकी नाईं सूखे पत्ते और तृणकी अवस्थाको प्राप्तकिया ॥ ६० ॥ अनन्तर विष्णुके डरसे जब सब गण अदृश्य होगये तब प्रलयाग्नि के समान उन वीरभद्रने कोप किया ॥ ६१ ॥ और चतुर्भुज व असंख्य व दैत्योंको जीतेहुये बड़े बलवान् अपने गणोंसे सब ओर प्रशंसितहुये शार्ङ्गधन्वाधारीको आगे देखा ॥ ६२ ॥ व चक्रवाले गदावाले तरवारवाले और शार्ङ्गवाले भी पार्षदों से सेवित उन मधुसूदन को देखकर तदनन्तर वीरभद्रजीने कहा ॥ ६३ ॥ कि यहां तुमहीं यज्ञपुरुष व महायज्ञके करानेवाले व अपने वीर्य्य से शिववैरी दक्षके रक्षकहो ॥ ६४ ॥ इससे तुम कि

तो दक्षको भलीभांति आनकर दो व मुझसे लड़ो और दत्तको न देवोगे तो यत्नसे उसकी रक्षाकरो ॥ ६५ ॥ जिससे तुम बहुधा शिवभक्तों मे अग्रणी कहेजातेहो व आपने आगे एकसे कम कमलोंका हजारा होतेही नेत्रकमलको दियाहै ॥ ६६ ॥ उसलिये सन्तुष्टहुये शंकरजीने तुमको सुदर्शनचक्र दिया है जिसकी सहायताको प्राप्तहोकर तुमने संग्राममें दैत्यराजोंको जीतलियाहै ॥ ६७ ॥ और ऐसे वीरभद्रके बढ़ेहुये वचनको सुनकर उनके बलको जानना चाहतेहुये विष्णुजी हर्षसे वीरभद्रके प्रति बोले ॥ ६८ ॥ कि अहो वीरभद्र ! शम्भुके पुत्र स्थानीय या पुत्रसे कुछेक न्यून तुम गणोंमें बहुत श्रेष्ठहो व राजा (दीप्तिमान्) के आयसुको पाकर अत्यन्त बलवान्हो व उससे

प्रायशःशम्भुभक्तेषुयतस्त्वम्प्रोच्यसेऽग्रणीः ॥ एकोनेऽब्जसहस्रेप्रागददौनेत्राम्बुजम्भवान् ॥ ६६ ॥ तुष्टेनशम्भुनादत्तं तुभ्यञ्चक्रंसुदर्शनम् ॥ यत्साहाय्यमवाप्याजौत्वञ्जयेर्दनुजाधिपान् ॥ ६७ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यवीरभद्रस्यचोर्जितम् ॥ जिज्ञासुस्तद्बलंविष्णुर्वीरभद्रमुवाचह ॥ ६८ ॥ त्वंशम्भोःसुतदेशीयोगणानाम्प्रवरोस्यहो ॥ राजादेशमनुप्राप्यततोप्यतिबलोमहान् ॥ ६९ ॥ योसिसोस्यहमप्यत्रदक्षरक्षणदक्षधीः ॥ पश्यामितत्सामर्थ्यंकथन्दक्षंहरिष्यसि ॥ ७० ॥ इत्युक्तोवीरभद्रःसतेनवैशार्ङ्गधन्वना ॥ प्रमथान्दृष्टिभङ्ग्यैवप्रेरयामाससङ्गरे ॥ ७१ ॥ अथतैःप्रमथैर्विष्णोरनुगागदितारणे ॥ आददानास्तृणंवक्त्रेणापिताःपाशवीन्दशाम् ॥ ७२ ॥ ततस्तार्क्ष्यरथःक्रुद्धस्त्वेकैकंरणमूर्धनि ॥ सहस्रेणसहस्रेणबाणानांहृद्यताडयत् ॥ ७३ ॥ तेभिन्नवक्षसःसर्वेगणारुधिरवर्षिणः ॥ वासन्तींकैंशुकींशोभांपरिप्रापूरणाजिरे ॥ ७४ ॥ क्षरन्तइवमातङ्गाःस्रवन्तइवपर्वताः ॥ मदेनधातुरागेणमिश्रैःशुशुभिरेगणाः ॥७५॥ ततःप्रहस्यगणपोऽब्रवी

महान्हो ॥ ६९ ॥ व तुम जोहो सोहो मै भी यहां दक्षके रक्षणमें दक्षबुद्धिवालाहूं और तुम्हारी समर्थताको देखताहूं कि दक्षको कैसे हरलेजावोगे ॥ ७० ॥ ऐसे उन शार्ङ्गधन्वाधारी विष्णुसे कहेहुये उन वीरभद्रजीने भी कटाक्षसेही संग्राममें गणोंको प्रेरणकिया ॥ ७१ ॥ अनन्तर उन गणोंके कहे व मुखसे तृणको लेतेहुये विष्णुजीके पार्षद रणमें पशुओंकी दशाको पहुँचायेगये ॥ ७२ ॥ तदनन्तर संग्रामशिरमें क्रुद्धहुये गरुडवाहन विष्णुजीने हजार हजार बाणोंसे एक एकको हृदयमें ताडित किया ॥ ७३ ॥ और बिदरे उरवाले व रक्तको बरसतेहुये वे सब गण रणरूपी आंगनमें वसन्त ऋतुवाली किंशुक (पलाश) की शोभाको सब ओरसे प्राप्तहुये ॥ ७४ ॥ और चुचुवाते

हुये मदवाले हाथियोंकी नाईं व झिरतेहुये पर्वतोंकी नाईं वे गण मद व धातुराग व मिश्रित रक्तद्रवों से शोभितभये ॥ ७५ ॥ तदनन्तर गणोंकेनायक वीरभद्रजीने हँस कर वैकुण्ठनायक से कहा कि हे शार्ङ्गधन्वन्! मैं तुमको जानताहूं कि तुम संग्राम आंगनमें पण्डितहो ॥ ७६ ॥ परन्तु तुम दैत्येन्द्र व दानवेन्द्रों से युद्ध करतेहो पार्षदों से नहीं ऐसा कहकर वीरभद्रने हाथमें भुशुण्डी अस्त्रको लिया ॥ ७७ ॥ अनन्तर विष्णुजीने दैत्येन्द्र पर्वतोंको चूर्ण करनेवाली गदाको शीघ्रही ग्रहणकिया तदनन्तर वीरभद्रजीने भुशुण्डी से उन गदाधरको मारा॥ ७८ ॥ और उनके अंग संगको प्राप्तहोकर वह भुशुण्डी सैकड़ों प्रकारसे विदीर्णहुई व कौमोदकी गदाके प्रहार से जोकि

द्वैकुण्ठनायकम् ॥ हेशार्ङ्गधन्वञ्जानेत्वान्त्वंरणाङ्गणपण्डितः ॥ ७६ ॥ परंयुध्यसिदैत्येन्द्रैर्दानवेन्द्रैर्नपार्षदैः ॥ इत्युक्त्वा वीरभद्रेणभुशुण्डीकलिताकरे ॥ ७७ ॥ गदिनाऽथगदातूर्णंदैत्येन्द्रगिरिरेणुकृत् ॥ ततःप्रहतवान्वीरोभुशुण्ड्यातङ्गदाधरम् ॥ ७८ ॥ तदङ्गसङ्गमासाद्यविदद्रेशतधातया ॥ कौमोदकीप्रहारेणवीरभद्रम्प्रतापिनम् ॥ ७९ ॥ जघानवासुदेवोपि तरसाऽज्ञातवेदनम् ॥ ततःखट्वाङ्गमादायगदाहस्तङ्गदाधरम् ॥ ८० ॥ आताड्यसव्यदोर्दण्डेगदाम्भूमावपातयत् ॥ कुपितोयंमधुद्वेषीचक्रेणाताडयच्चतम् ॥ ८१ ॥ सचचक्रंसमागच्छद्दृष्ट्वासस्मारशङ्करम् ॥ शङ्करस्मरणाच्चक्रंमनागवक्रत्वमाप्यच ॥ कण्ठमासाद्यवीरस्यसम्यग्जातंसुदर्शनम् ॥ ८२ ॥ तेनचक्रेणशुशुभेनितरांसगणेश्वरः ॥ वीरलक्ष्म्यावृतइवसमरेविजयस्रजा ॥ ८३ ॥ ततःसुदर्शनन्दृष्ट्वातत्कण्ठाभरणंहरिः ॥ सनाक्सचकितंस्मितन्नाततोजग्राहनन्दक

वीरभद्र प्रतापी हैं ॥ ७९ ॥ व पीड़ाके न जाननेवाले हैं उनको वासुदेव भगवान्ने भी वेगसे मारा तदनन्तर खट्वांगको लेकर गदा हाथवाले विष्णुजीको ॥ ८० ॥ बायें भुजदण्डमें सब ओरसे ताड़नकर वीरभद्रजी ने गदाको भूमिमें गिराया और कुपितहुये इन मधुवैरी (विष्णु) ने चक्रसे उनको संताड़नकिया ॥ ८१ ॥ व भलीभांति सामने आतेहुये चक्रको देखकर उन वीरभद्रजीने शंकरको स्मरणकिया व शम्भुके स्मरण करनेसेही वह सुदर्शनचक्र कुछेक थोड़ीसी वक्रतासे व्याप्त होकर व वीरभद्रके कण्ठको प्राप्तहोकर अच्छा होगया ॥ ८२ ॥ और समरमें वीर लक्ष्मी की विजयमालासे घिरे से वह गणेश्वर वीरभद्र उस चक्रसे बहुतही विराजितहुये॥ ८३ ॥ उससमय

उनके कंठ के भूषणहुये सुदर्शनको देखकर व थोड़ा चकित चकित मुसकाकर तदनन्तर उन हरिने नन्दक नामक खड्गको ग्रहण किया ॥ ८४ ॥ व उन वीरभद्रजीने स्वर्ग मे सिद्धोंके देखतेही विष्णुजीके नंदक समेत बहुत उद्यत (उठे)हुये हाथको हुंकारसे रोंकदिया ॥ ८५ ॥ और उज्ज्वल शूलको लेकर वेगसे सामने दौड़े व जबतक हरि को मारनाचाहते है तबतक आकाशवाणी से ॥८६॥ वह गणराज निवारितहुये कि ऐसा साहस मतकरो तदनन्तर उनको त्यागकर गणोत्तम वीरभद्रजी ने शीघ्रही ॥८७॥ दक्षके समीप में प्राप्तहोकर व उच्चस्वर से गर्जकर कहा कि ईश्वरके निन्दक तुमको धिक् है कि जिसकी ऐसी संपत्तिहैं व देव जिसके सहायकहैं वह दक्षता

म् ॥ ८४ ॥ सनन्दकङ्करन्तस्यप्रोद्यतम्मधुविद्विषः ॥ पश्यतान्दिविसिद्धानांस्तम्भयामासहुंकृता ॥ ८५ ॥ अभ्यधाव च्चवेगेनगृहीत्वाशूलमुज्ज्वलम् ॥ यावज्जिघांसतिहरिंतावदाकाशवाचया ॥ ८६ ॥ वारितोगणराजःसमाकार्षीःसाहसं त्विति ॥ ततस्तमपहायाशुवीरभद्रोगणोत्तमः ॥ ८७ ॥ प्राप्यदक्षंविनद्योच्चैर्धिक्त्वामीश्वरनिन्दकम् ॥यस्येदृगस्तिस म्पत्तिर्यत्रदेवाःसहायिनः ॥ सकथंसेश्वरंकर्मनकुर्याद्दक्षतान्दधत् ॥ ८८ ॥ येनास्येनापवित्रेणभवतानिन्दितःशिवः ॥ चूर्णयामितदास्यन्तेचपेटाभिःसमन्ततः ॥ ८९॥ इत्युक्त्वातस्यदक्षस्यहरपारुष्यभाषिणः ॥ चिच्छेदवदनंवीरश्चपेट शतघातनैः ॥ ९० ॥ ततस्त्वदितिमुख्यानांमिलितानांमहोत्सवे ॥ त्रोटयामासकर्णादीन्यङ्गप्रत्यङ्गकानिच ॥ ९१ ॥ वे णीदण्डाश्चकासाञ्चित्तेनच्छिन्नामहारुषा ॥ कासाञ्चिचकराश्छिन्नाःकासाञ्चित्कर्तितास्तनाः ॥ ९२ ॥ नासापुटांस्तथा न्यासांपाटयामासपार्षदः ॥ चिच्छेदचांगुलीश्चापितथान्यासांशिवप्रियः ॥ ९३ ॥ येयेनिनिन्दुर्देवेशंयेयेचशुश्रुवुस्त

(चतुरता) को धारताहुआ ईश्वर समेत कर्म्मको क्यों न करे॥ ८८ ॥ आप करके जिस मुखसे शिवजी निन्दितहुये उस तुम्हारे मुखको मैं सबओर चपेटों से चूर्ण करताहूं ॥८९॥ ऐसा कहकर वीरभद्रजीने शिवनिन्दक दक्षके मुखको सैकड़ों चपेटों के घातों से छेदनकिया ॥ ९० ॥ तदनन्तर महोत्सव में मिलितहुई अदिति आदि स्त्रियो के कर्णादिकों को और अंग के भूषणोंको तोड़डाला ॥ ९१ ॥ व उन बड़े क्रोधीने किसी स्त्रियो के वेणीदंडों को छिन्न भिन्न किया व किसी के हाथोंको काटा व किसी के कुचोंको कतरलिया ॥ ९२ ॥ तथा शिवके प्यारे पार्षद ने अन्यों के नासापुटोंको उखाड़लिया वैसेही अन्यों की अंगुलियोंको भी छेदनकिया ॥ ९३ ॥ उस

समय जिन जिनने देवोंकेस्वामी शिवजी की निन्दाकिया व जिन जिनने सुनाथा उनकी जीभोंको काटलिया और कोपसे कानोंको दोभांति खण्डन किया ॥ ९४ ॥ व जिन्हों ने देवेश को छोंड़कर महाहविको लिया वे कोई गले में दृढ़बांध कर नीचे को मुखकिये खम्भा में लटकाये गये ॥ ९५ ॥ और उन वीरभद्रजी ने द्विजराज (चन्द्र) धर्म, भृगु और मारीच याने कश्यपादिकों को अत्यन्त अपमान का पात्र कराया ॥ ९६ ॥ जिससे ये दक्ष दुर्बुद्धि के जामाता (दामाद) हैं और उन दक्षने महेश्वरको छोंड़कर इनको शिवसे अधिक देखा है ॥ ९७ ॥ वे कुण्ड वे स्तम्भ (खम्भा) वे यज्ञयूप वह मण्डप वे वेदियां वे पात्र और वे अनेकप्रकारके हव्य ॥ ९८ ॥

दा ॥ तेषांजिह्वाःश्रुतीःकोपादच्छिनच्चाकरोद्द्विधा ॥ ९४ ॥ केचिदुल्लम्बितायूपेपाशयित्वाद्दृढङ्गले ॥ अधोमुखायैर्देवेशं विहायात्तम्महाहविः ॥९५॥ द्विजराजश्चधर्मश्चभृगुमारीचमुख्यकाः॥ अत्यन्तमपमानस्य भाजनन्तेनकारिताः॥९६॥ एतेजामातरस्तस्ययतोदक्षस्यदुर्धियः॥ हित्वामहेश्वरममून्सोपश्यदधिकाञ्छिवात्॥९७॥तानिकुण्डानितेयूपास्तेस्तम्भास्सचमण्डपः॥ तावेद्यस्तानिपात्राणितानिहव्यान्यनेकधा॥९८॥तेचवैयज्ञसम्भारास्तेतेयज्ञप्रवर्तकाः॥तेरक्षपाला स्तेमन्त्राविनेशुर्हेलयाऽखिलाः ॥ ९९ ॥ स्तोकेनैवहिकालेनयथर्धिःपरवञ्चनात ॥ अर्जितानश्यतिक्षिप्रंदक्षसम्पद्गताऽशिवा ॥ १०० ॥ नीतेमहाक्रतौतेनसगणेनेदृशीन्दशाम् ॥ विधिर्विधिविलोपाच्चहरंविज्ञाप्यचानयत् ॥ १॥ तत्रयत्रमखःसोभूदीदृक्षःशिववर्जितः ॥ आयातेथमहादेवेवीरभद्रोतिलज्जितः॥ २ ॥ नत्वानकिञ्चिदवदद्देवःसर्वमवैत्स्वयम् ॥ प्रसाद्यदेवदेवेशंसुरज्येष्ठोऽब्रवीत्पुनः ॥ ३ ॥ अपराध्यप्ययंदक्षःसम्प्रसाद्यःकृपानिधे ॥ यथापूर्वंपुनरमून्सर्वान्कारयश

व वे यज्ञसामग्रियां वे यज्ञके करानेवाले वे रक्षपाल और वे सम्पूर्ण मन्त्र वीरभद्र या शिवके अनादर से विनष्टहुये ॥ ९९ ॥ जैसे पराये वञ्चन (छल से) इकट्ठीकी हुई ऋद्धि थोड़ेहीकाल में नाश होजाती है वैसेही विना शिवकी दक्षसम्पत्ति शीघ्रहीं गतहुई ॥ १०० ॥ और जब गणसमेत उन वीरभद्रजी ने महायज्ञको ऐसी दशाको प्राप्तकिया तब ब्रह्माजी विधिके विलोप होने से भक्तभयहारी महादेवजीसे विज्ञापना कर वहां ले आये ॥ १ ॥ तदनन्तर जहां शिवसेहीन ऐसा यज्ञ हुआथा वहां महादेवजी के आतेही विलज्जित हुये वीरभद्रजी ने ॥ २ ॥ नमस्कार कर कुछभी न कहा परन्तु क्रीड़ाकारी शिवजीने आपही सब जानलिया फिर देवदेवोंकेस्वामीको प्रसन्न

कर ब्रह्माजी बोले ॥ ३ ॥ कि हे कृपानिधान, शङ्कर! आपका अपराधी भी यह दक्षभलीभांति प्रसाद (प्रसन्नता) के योग्यहै और इन सबजनो को यथापूर्व याने पहले की नाईं फिर करो ॥ ४ ॥ हे शम्भो! जैसे वैदिक विधान फिर प्रवर्त्तित होवे वैसेही आज्ञादीजावै क्योंकि ईश्वरसमेत कर्म सिद्धहोता है ॥ ५ ॥ हे परमेश्वर! ईश्वरसेहीन सब क्रियाओं में ऐसेही हजारों विघ्नसमूह होतेही हैं ॥ ६ ॥ व विचार से यह बापुरा दक्ष तुम्हारा बड़ाभारी भक्तहै जोकि अनीश्वर कर्मको करता हुआ उत्तम दृष्टान्तताको प्राप्तभया है ॥ ७ ॥ व अन्यभी जो कोई महेशजी को छोंड़कर कर्मको करेगा उसके उस कर्मकी संसिद्धि दक्षके यज्ञकीसी होवेगी ॥ ८ ॥ इसलिये इस दक्षके ऐसे कर्मको

ङ्कर ॥ ४ ॥ यथाविधिःप्रवर्त्तेतवैदिकःपुनरेवहि ॥ तथाज्ञादीयतांशम्भोकर्मसिद्ध्यतिसेश्वरम् ॥ ५ ॥ अनीश्वरासुसर्वासु क्रियासुपरमेश्वर ॥ एवमेवभवन्त्येवविघ्नजाताःसहस्रशः ॥ ६ ॥ विचारतोवराकोयंदक्षोभक्ततरस्तव ॥ कुर्वन्योऽनीश्वरंकर्मपरदृष्टान्तताङ्गतः ॥ ७ ॥ अन्योपियोमहेशानंहित्वाकर्मकरिष्यति ॥ तस्यतत्कर्मसंसिद्धिर्दक्षस्येवभविष्यति ॥ ८ ॥ अतोनकश्चित्किञ्चिच्चक्वचित्कर्मविनाशिवम् ॥ विधास्यतिनिशम्यास्यदक्षस्येदृक्चेष्टितम् ॥ ९ ॥ विधीरितमितिश्रुत्वास्मित्वादेवोमहेश्वरः ॥ वीरमाज्ञापयामासयथापूर्वम्प्रकल्पय ॥ १० ॥ वीरभद्रोपितत्सर्वंशर्वाज्ञाम्प्रतिपद्यच ॥ विनादक्षस्यवदनंयथापूर्वमकल्पयत् ॥ ११ ॥ ईश्वरंयेविनिन्दन्तितेमूकाःपशवोध्रुवम् ॥ ततोमेषमुखंदक्षंवीरभद्रोगणोऽव्यधात् ॥ १२ ॥ देवोब्रह्माणमापृच्छ्यधर्माद्गार्हस्थ्यतश्च्युतः ॥ सपार्षदोहिमप्रस्थञ्जगामतपसेततः ॥ १३ ॥ अनाश्रमवतापुंसायतःकालोमनागपि ॥ मुधाकलयितव्योनतस्माच्छ्रेयःसदाश्रमः ॥ १४ ॥ अतःससर्वतपसांफलदातामहेश्व

देख वा सुनकर कोई भी शिव विना कुछकर्म्म को कहीं नहीं करेगा ॥ ९ ॥ ऐसा ब्रह्माका वचन सुनकर व मुसक्याकर क्रीड़ाकारी महेश्वर ने वीरभद्रको आज्ञादिया कि पहलेकी नाईं सम्पादित करो ॥ १० ॥ और शिवजी की आज्ञाको प्राप्तहोकर वीरभद्र ने भी दक्षके मुखविना उस सबको पहलेकी नाईं कल्पित किया ॥ ११ ॥ क्योंकि जे ईश्वरकी विशेषता से निन्दा करते हैं वे निश्चयकर गूँगे पशुहोते हैं इस लिये वीरभद्रगण ने दक्षको भेड़के मुखवाला किया ॥ १२ ॥ तदनन्तर ब्रह्माजी से पूछकर गृहस्थाश्रम सम्बन्धी धर्म्मसे च्युत महादेवजी गणोंसमेत तपस्या के लिये हिमालय वानप्रस्थ को चलेगये ॥ १३ ॥ जिससे विना आश्रमवाले पुरुषकरके थोड़ाभी

काल वृथा बिताने योग्य नहीं है इससे आश्रम सदा कल्याण रूपहै ॥ १४ ॥ इससे सब तपस्याओं के फलदाता, गणोंसमेत महेशजीने तपस्या को किया और ब्रह्माजी ने दक्षको शिक्षादिया ॥ १५ ॥ कि जो शिव निन्दासे समुत्पन्न, सुदुरत्यज, पापपंक (कीच) के प्रक्षालन की आकांक्षाहै तो तुम काशीपुरीको जावो ॥ १६ ॥ व महापाप समूहहारिणी पुण्यकारिणी काशीको प्राप्तहोकर तुम लिंगकी प्रतिष्ठाकरो इससे वह शङ्करजी सन्तुष्टहोतेहैं १७ ॥ व महेशजी के तुष्टहोतेही यह स्थावर जङ्गमरूप जगत् सन्तुष्टहै और काशीपुरी विना अन्यत्र तुम्हारा पाप जानेवाला नहींहै ॥ १८ ॥ बुद्धिमानोंने ब्रह्महत्यादि पापोंका प्रायश्चित्त कहाहै और शिवनिन्दा का उद्धार नहीं कहा

रः ॥ तपश्चचारसगणोब्रह्मादक्षन्त्वऽशिक्षयत् ॥ १५ ॥ हरनिन्दासमुद्भूतपापपङ्कंसुदुस्त्यजम् ॥ यदिक्षालयितुङ्कांक्षा तदावाराणसींव्रज ॥ १६ ॥ प्राप्यवाराणसींपुण्यांमहापापौघहारिणीम् ॥ कुरुलिङ्गप्रतिष्ठान्त्वन्तेनशम्भुःसतुष्यति ॥ १७ ॥ तुष्टेमहेश्वरेतुष्टंजगदेतच्चराचरम् ॥ नान्यत्रपापन्तेगन्तृविनावाराणसींपुरीम् ॥ १८ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानाम्प्रायश्चित्तंमनीषिभिः ॥ प्रोक्तंनहरनिन्दायास्तत्रकाश्येवकेवलम् ॥ १९ ॥ काश्यांलिङ्गप्रतिष्ठायैःकृताऽत्रसुकृतात्मभिः ॥ सर्वेधर्माःकृतास्तैस्तुतएवपुरुषार्थिनः ॥ २० ॥ इत्याकर्ण्यविधेर्वाक्यंदक्षःप्राप्याथसत्वरम् ॥ अविमुक्तंमहाक्षेत्रन्ततापपरमन्तपः ॥ २१ ॥ संस्थाप्यलिङ्गंविधिवल्लिङ्गाराधनतत्परः ॥ नवेत्तिलिङ्गादपरंसकिञ्चिज्जगतीतले ॥ २२ ॥ दिवानिशंमहेशानम्परिष्टौतिसमर्चति ॥ नमतिध्यायतीक्षेतदक्षोदक्षप्रजापतिः ॥ २३ ॥ एकचित्तस्यदक्षस्यध्यायतोलिङ्गमैश्वरम् ॥ समासहस्रमगमन्मितंद्वादशसंख्यया ॥ २४ ॥ मेनांयावत्सतीप्राप्यहिमाचलपतिव्रताम् ॥ उमारूपातित

उसमें केवल काशीही है ॥ १९ ॥ इस लोकमें जिनपुण्यात्मा जनोंने काशीमें लिंगकी प्रतिष्ठा किया उनसे सब धर्म्म कियेगये और वेही चारो पुरुषार्थोंवाले हैं ॥ २० ॥ ऐसा ब्रह्माजी का वचनसुनकर अनन्तर दक्षजी शीघ्रही अविमुक्त (काशी) क्षेत्रको प्राप्तहोकर परम तपस्याको तपा याने किया ॥ २१ ॥ और विधिवत् लिंगको भलीभांति थापकर लिंगकी पूजामें तत्पर वह दक्षजी भूतलमें लिंगसे अन्यको नहीं जानते हैं ॥ २२ ॥ चतुरप्रजापति दक्षजी दिनोरातमें महेशजीको सबओरसे प्रशंसते व भलीभांति पूजते व प्रणामकरते व ध्यावते और देखते हैं ॥ २३ ॥ इसभांति परमेश्वर के लिंगको ध्यावते हुये एकचित्त, दक्षको बारहहजार बर्ष बीतगये ॥ २४ ॥ जबतक हिमाचल

की पतिव्रतास्त्री मेनाको मातृभाव से प्राप्तहोकर उमारूपा सतीजी अत्यन्त तपस्या से पिनाकधारी शिवजी पतिको प्राप्तहुई ॥ २५ ॥ तबतक तपस्या मे निश्चल उन दक्षजीने लिंगकी पूजाकिया तदनन्तर पतिके साथ काशीको भलीभांति प्राप्तहोकर पर्वतेन्द्रकुमारी ॥ २६ ॥ देवीजी ने शिवलिंग पूजा में रत व अचल हृदयहुये उन दक्षको देखकर भक्तार्त्तिहारी शिवजी से विज्ञापन किया कि हे विभो! यह तपस्या से क्षीणहोगये हैं ॥ २७ ॥ हे कृपासागर! इन प्रजापतिको वरसे प्रसन्नता को प्राप्तकरो इसप्रकार पार्वतीसे कहेहुये महेशजी उनदक्षसे बोले ॥ २८ ॥ कि हे महाभाग! तुम वरकोमांगो मैं मनसे वाञ्छितको दूंगा ऐसा ईश्वरका वचन सुनकर व भवभय हरनेवारे

पसापतिंप्रापपिनाकिनम् ॥ २५ ॥ तावत्सदक्षस्तपसिनिश्चलोलिङ्गमार्चयत् ॥ ततःकाशींसमासाद्यसहभर्त्रागिरीन्द्रजा ॥ २६ ॥ दृष्ट्वातंनिश्चलहृदंशिवलिङ्गार्चनेरतम् ॥ हरंव्यजिज्ञपद्देवीक्षीणोयन्तपसाविभो ॥ २७ ॥ प्रसादयकृपासिन्धोवरेणैनम्प्रजापतिम् ॥ इत्युक्तोऽपर्णयाशम्भुःप्राहतन्दक्षमीशिता ॥ २८ ॥ वरंब्रूहिमहाभागदास्यामिमनसेप्सितम् ॥ इतीशोदितमाकर्ण्यप्रणम्यबहुशोहरम् ॥ २९ ॥ स्तुत्वानानाविधैःस्तोत्रैःप्रसन्नंवीक्ष्यशङ्करम् ॥ प्रोवाचदेवदेवेशंयदिदेयोवरोमम ॥ ३० ॥ तत्त्वदीयपदद्वन्द्वेनिर्द्वन्द्वाभक्तिरस्तुमे ॥ इदंचतेमहालिङ्गंयन्मयाऽत्रप्रतिष्ठितम् ॥ अस्मिँल्लिङ्गेत्वयानाथस्थातव्यंसर्वदैवहि ॥ ३१ ॥ मयापराद्धंयद्देवतत्क्षन्तव्यंकृपानिधे ॥ एतएववराःसन्तुकिमन्यैरुत्तमैर्वरैः ॥ ३२ ॥ इतिश्रुत्वामहादेवःप्रसन्नोतितराम्भवः ॥ प्रोवाचचयदुक्तन्तेतत्तथास्तुनचान्यथा ॥ ३३ ॥ अन्यच्चतेवरंदद्यान्तच्छृणुष्वप्रजापते ॥ यत्त्वयास्थापितंलिङ्गमेतद्दक्षेश्वराभिधम् ॥ ३४ ॥ अस्यसंसेवनात्पुंसामपराधसहस्रकम् ॥

महादेवजीके बहुतसे प्रणामकर ॥ २९ ॥ व अनेकभांतिके स्तोत्रों से स्तुतिकर और शंकरजीको प्रसन्न देखकर दक्षजीने देवदेवेश्वर से कहा कि जो मुझको वर देने योग्यहै ॥ ३० ॥ तो तुम्हारे दोनों चरणारविन्दों में मेरी निर्द्वन्द्वा (द्विविधाहीन) भक्तिहोवे और यह जो तुम्हारा लिंग यहां मुझसे प्रतिष्ठितहै इस लिंगमें हे नाथ! तुमको सदैव टिकना चाहिये ॥ ३१ ॥ हे कृपानिधे देव! मैंने जो अपराधकिया वह क्षमा करने योग्यहै येही वर होवें अन्यश्रेष्ठ वरोंसे क्याहै ॥ ३२ ॥ ऐसा सुनकर जगत्कर्ता महादेवजी बहुतही प्रसन्नहुये और बोले कि जो तुमने कहा वह वैसाहीहो अन्यथा न हो ॥ ३३ ॥ हे प्रजापते! मैं तुमको फिर अन्य भी वरदेताहूं उसको तुम सुनो कि

यह जो दक्षेश्वरनामकलिंग तुमसे थापागया है ॥ ३४ ॥ इसकी भलीभांति सेवासे मैं पुरुषों के हजारों अपराधों को क्षमाकरूंगा इसमें सन्देह नहीं है इसलिये यह जनों से पूजने योग्यहै ॥ ३५ ॥ और तुम इस लिंग पूजासे सबके मान्य होवोगे तदनन्तर दोपराधों के अन्त में याने महाप्रलय समयमें मोक्षको पावोगे ॥ ३६ ॥ ऐसा कहकर देवदेवेश्वरजी उस लिंगमें लयको प्राप्तहुये और सब ओरसे प्राप्त मनोरथवाले दक्षजी भी घरको गये ॥ ३७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्त्यजी ! इसभांति दक्षेश्वर की समुत्पत्ति अच्छेप्रकार से कहीगई जिसको सुनकर प्राणी सैकड़ों अपराधों से भी छूटजाताहै ॥ ३८ ॥ और दक्षेश्वरके समुद्भववाले इस मनोहर आख्यानको सुन

क्षमिष्येहंनसन्देहस्तस्मात्पूज्यमिदञ्जनैः ॥ ३५ ॥ त्वन्तुलिङ्गार्चनादस्मात्सर्वमान्योभविष्यसि ॥ परार्धद्वितयप्रान्ते ततोमोक्षमवाप्स्यसि ॥ ३६ ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गेलयंययौ ॥ दक्षोपिगतवान्गेहंपरिप्राप्तमनोरथः ॥ ३७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्यगस्त्यसमाख्यातोदक्षेश्वरसमुद्भवः ॥ यंश्रुत्वामुच्यतेजन्तुरपराधशतैरपि ॥ ३८ ॥ श्रुत्वाख्यानमिदम्पुण्यंदक्षेश्वरसमुद्भवम् ॥ नरोनलिप्यतेपापैरपराधालयोपिहि ॥ १३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेदक्षेश्वरप्रादुर्भावोनामनवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ पार्वतीहृदयानन्दपार्वतीशसमुद्भवम् ॥ कथयेहयदुद्दिष्टंभवताप्रागघापहम् ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृण्वगस्तेयदामेनाहिमाचलपतिव्रता ॥ गिरीन्द्रजांसुतामाहपुत्रितेस्यमहेशितुः ॥ २ ॥ किंस्थानंवसतिर्वाकाकोबन्धु

कर अपराधोंका घर याने पापी भी मनुष्य पापोंसे नहीं लिप्त होताहै ॥ १३९ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेदक्षेश्वरप्रादुर्भावोनाम नवाशीतितमोध्यायः ॥ ८९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । नब्बे के अध्यायमें पार्वतीशमाहात्म्य । जिसकी सेवासे सुलभ सकल सुफलयाथात्म्य ॥ अगस्त्यजी बोले कि हे पार्वतीहृदयानन्द ! आपसे यहां जो पहले उद्देश कियाहुआ याने नाममात्रसे कहागयाहै उस पापहारी पार्वतीश्वरलिंगकी समुत्पत्तिको कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अगस्ते ! तुम सुनो कि जब हिमाचलकी पतिव्रता स्त्री मेनाजीने पर्वतेन्द्रसे उपजीहुई कन्यासे कहा कि हे पुत्रि ! तुम्हारा और इन महेशजीका ॥ २ ॥ कौन देशहै व कौन घरहै व कौन बन्धुहै तुम कुछ जानती

हो बहुधा इन जामाताका और कहीं भी कोई घर नहीं है ॥ ३ ॥ इसभांति माता के वचन को सुनकर लज्जितहुई पर्वतेन्द्रकुमारी ने अवसर को प्राप्तहोकर शंकर जीके नमस्कारकर विज्ञापनकिया ॥ ४ ॥ कि हे कान्त, नाथ ! आज विशेषसे निश्चितहुआ सासुका घर मुझसे जाने योग्यहै इससे आप मुझे अपने घरको लेचलो यहां न बसना चाहिये ॥ ५ ॥ ऐसा पार्वतीका वचन सुनकर अभिप्रायके जाननेवाले महादेवजी हिमवान् पर्वतको छोंड़कर अपने आनन्दवन (काशी) को प्राप्तहुये ॥ ६ ॥ और आनन्द के कारण आनन्दवनको प्राप्तहोकर पिताके स्थानको बिसरकर देवीजी आनन्दरूपिणी हुई ॥ ७ ॥ अनन्तर एक समय गौरीजी ने शिवजी से विज्ञापन

वेत्सिकिञ्चन ॥ प्रायोगृहंनजामातुरस्यकोपिचकुत्रचित् ॥ ३ ॥ निशम्येतिवचोमातुरतिह्रीणागिरीन्द्रजा ॥ आसाद्यावसरंशम्भुंनत्वागौरीव्यजिज्ञपत् ॥ ४ ॥ मयाश्वश्रूगृहंकान्तगम्यमद्यविनिश्चितम् ॥ नाथात्रनैववस्तव्यंनयमांस्वंनिकेतनम् ॥ ५ ॥ गिरीन्द्रजागिरंश्रुत्वागिरीशइतितत्त्ववित् ॥ हित्वाहिमगिरिम्प्राप्तोनिजमानन्दकाननम् ॥ ६ ॥ प्राप्यानन्दवनन्देवीपरमानन्दकारणम् ॥ विस्मृत्यपितृसंवासंजाताचानन्दरूपिणी ॥ ७ ॥ अथविज्ञापयाञ्चक्रेगौरीगिरिशमेकदा ॥ अच्छिन्नानन्दसन्दोहःकुतःक्षेत्रेऽत्रतद्वद ॥ ८ ॥ इतिगौरीरितंश्रुत्वाप्रत्युवाचपिनाकधृक् ॥ पञ्चक्रोशपरीमाणेक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिसद्मनि ॥ ९ ॥ तिलान्तरंनदेव्यस्तिविनालिङ्गंहिकुत्रचित् ॥ एकैकम्परितोलिङ्गंक्रोशंक्रोशञ्चयावनिः ॥ १० ॥ अन्यत्रापिहिसादेविभवेदानन्दकारणम् ॥ अत्रानन्दवनेदेविपरमानन्दजन्मनि ॥ ११ ॥ परमानन्दरूपाणिसन्तिलिङ्गान्यनेकशः ॥ चतुर्दशसुलोकेषुकृतिनोयेवसन्तिहि ॥ १२ ॥ तैःस्वनाम्नेहलिङ्गानिकृत्वाऽपिकृत[illegible]त्य

किया कि इस क्षेत्रमें अखण्ड आनन्दका समूह क्योंहै उसको कहो ॥ ८ ॥ इसप्रकार पार्वतीके वचनको सुनकर पिनाकधारीने उनके प्रति कहा कि पांचकोश परिमाण-वाले व मुक्तिके मन्दिररूप इस क्षेत्रमें ॥ ९ ॥ लिंगके विनाही तिलान्तरभर भी भूमि कहीं नहींहै और हे क्रीड़ाकारिणि ! एक एक लिंगके सब ओर कोश कोशतक जो भूमि है ॥ १० ॥ वह अन्यत्र भी आनन्दका कारणही होवैहै और हे प्रकाशवति, देवि ! जहां परमानन्दका जन्महै उस इस आनन्दवनमे ॥ ११ ॥ बहुतसे परमानन्द रूप लिंगहैं क्योंकि जे पुण्यवान् चौदहो लोकों में बसते हैं ॥ १२ ॥ उन्होंने यहां अपने नामों से लिंगोंकोकर कृतार्थताको प्राप्तकियाहै हे महादेवि ! जिससे यहां मेरा लिंग

भलीभांति स्थापितहुआ ॥ १३ ॥ उसके कल्याणकी संख्याको विशेष जाननेवाले शेषजी भी नहीं जानते हैं ॥ १४ ॥ हे पार्वति ! इससे यह क्षेत्र आवरणरहित आनन्दका परम कारणहै व बहुते लिंगोंसे श्रेष्ठहै ॥ १५ ॥ ऐसा सुनकर व महेश्वरके चरणारविन्दोंको प्रणामकर महादेवीजीने फिर कहा कि हे महादेवजी ! लिंगकी भलीभांति स्थापनाके लिये मुझे आज्ञादो ॥ १६ ॥ क्योंकि पतिव्रता स्त्री पतिकी आज्ञाको प्राप्तहोकर जिस पुण्यको संग्रह करती है उस पुण्यकी हानि प्रलयमें भी कभी नहींहै ॥ १७ ॥ इसभांति देवेशजीकी प्रसन्नता कराकर व महेशजीकी आज्ञाको पाकर गौरीजी से महादेवेश्वरके समीपमें लिंग संस्थापितहुआ ॥ १८ ॥ उस लिंगके दर्शन से पुरुषोंका

ता ॥ अत्रयेनमहादेविलिङ्गंसंस्थापितम्मम ॥ १३ ॥ वेत्तितच्छ्रेयसःसंख्यांशेषोपिनविशेषवित् ॥ १४ ॥ परिच्छेदव्यतीतस्यानन्दस्यपरकारणम् ॥ अतस्त्विदम्परंक्षेत्रंलिङ्गैर्भूयोभिरद्रिजे ॥ १५ ॥ निशम्येतिमहादेवीपुनःपादौप्रणम्यच ॥ देह्यनुज्ञांमहादेवलिङ्गसंस्थापनायमे ॥ १६ ॥ पत्युराज्ञांसमासाद्ययच्छ्रेयःपतिव्रता ॥ नतस्याःश्रेयसोहानिःसंवर्तेपि कदाचन ॥ १७ ॥ इतिप्रसाद्यदेवेशमाज्ञाम्प्राप्यमहेशितुः ॥ लिङ्गंसंस्थापितङ्गौर्यामहादेवसमीपतः ॥ १८ ॥ तल्लिङ्गदर्शनात्पुंसांब्रह्महत्यादिपातकम् ॥ विलीयेतनसन्देहोदेहबन्धोपिनोपुनः ॥ १९ ॥ तत्रलिङ्गवरोदत्तोदेवदेवेनयःपुनः ॥ निशामयमुनेतन्तुभक्तानांहितकाम्यया ॥ २० ॥ लिङ्गंयःपार्वतीशाख्यंकाश्यांसम्पूजयिष्यति ॥ तद्देहावसितिम्प्राप्यकाशीलिङ्गंभविष्यति ॥ २१ ॥ काशिलिङ्गत्वमासाद्यमामेवानुप्रवेक्ष्यति ॥ चैत्रशुक्लतृतीयायांपार्वतीशसमर्चनात् ॥ २२ ॥ इहसौभाग्यमाप्नोतिपरत्रचशुभाङ्गतिम् ॥ पार्वतीश्वरमाराध्ययोषिद्वापुरुषोपिवा ॥ २३ ॥ नगर्भमाविशेद्भूयोभवेत्सौभा

ब्रह्महत्यादि पाप बिलाजावे है और फिर देहबन्धन भी नहीं होवेहै ॥ १९ ॥ हे मुने ! फिर देवोंके देव महादेवजीने भक्तोंके हितकी कामना से जो वरदिया उसको तुम सुनो ॥ २० ॥ कि जो कोई काशीमें पार्वतीश्वरनामक लिंगको भलीभांति पूजेगा वह उस देहके अन्तको प्राप्तहोकर काशीका लिंग होवेगा ॥ २१ ॥ और काशीके लिंग भावको प्राप्तहोकर मुझमेंही पीछेसे प्रवेशकरेगा याने पैठेगा व चैतसुदी तीजमें पार्वतीश्वरकी पूजासे ॥ २२ ॥ इस लोकमे सौभाग्यको और परलोकमें मंगलमयी मुक्तिको

पाताहै व स्त्री अथवा पुरुष भी पार्वतीश्वरको पूजकर ॥ २३ ॥ फिर गर्भमें नहीं पैठे है और सौभाग्यका भाजन (पात्र) होवेहै व पार्वतीश्वरलिंगके नामको भी सब ओर से लेतेहुये जनके ॥ २४ ॥ हजारों जन्मोंका भी पाप उसही क्षणमें नष्ट होताहै व जो मनुष्योत्तम पार्वतीश्वरके माहात्म्यको सुनेगा वह बड़ा बुद्धिमान् इस लोकके और उस लोकके कामोंको पावेगा ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेपार्वतीश्वरवर्णनंनामनवतितमोध्यायः ॥ ९० ॥ ❀ ॥

दो० । यकनब्बे अध्यायको महामनोहर मान । गंगेश्वर माहात्म्यको तामें कियो बखान ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे अपाप, मुने ! मैंने तुमसे पार्वतीशकी महिमा

ग्यभाजनम् ॥ पार्वतीशस्यलिङ्गस्यनामापिपरिगृह्णतः ॥ २४ ॥ अपिजन्मसहस्रस्यपापंक्षयतितत्क्षणात् ॥ पार्वतीशस्यमाहात्म्यंयःश्रोष्यतिनरोत्तमः ॥ ऐहिकामुष्मिकान्कामान्सप्राप्स्यतिमहामतिः ॥ २५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेपार्वतीशवर्णनंनामनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ * ॥ * ॥ * ॥

स्कन्दउवाच ॥ पार्वतीशस्यमहिमाकथितस्तेमयानघ ॥ मुनेनिशामयेदानींगङ्गेश्वरसमुद्भवम् ॥ १ ॥ यंश्रुत्वायत्रकुत्रापिगङ्गास्नानफलंलभेत् ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थंयदागङ्गासमागता ॥ २ ॥ तेनदैलीपिनासार्धमस्मिन्नानन्दकानने ॥ क्षेत्रप्रभावमतुलंज्ञात्वाशम्भुपरिग्रहात् ॥ ३ ॥ स्मृत्वालिङ्गप्रतिष्ठायाःकाश्यांलोकोत्तरंफलम् ॥ गङ्गयास्थापितंलिङ्गंविश्वेशात्पूर्वतःशुभम् ॥ ४ ॥ गङ्गेश्वरस्यलिङ्गस्यकाश्यांदृष्टिःसुदुर्लभा ॥ तिथौदशहरायाञ्चयोगङ्गेशंसमर्चयेत् ॥ ५ ॥ तस्यजन्मसहस्रस्यपापंसंक्षीयतेक्षणात् ॥ कलौगङ्गेश्वरंलिङ्गंगुप्तप्रायंभविष्यति ॥ ६ ॥ तस्यसंदर्शनंपुंसां

कहा इस समय गंगेश्वरकी समुत्पत्तिको सुनो ॥ १ ॥ कि जिसको जहाँ कहीं भी सुनकर गंगास्नानके फलको पावेहै जब गंगाजी चक्रपुष्करिणी तीर्थको भलीभांति आई ॥ २ ॥ तब उन दिलीपकुमार भगीरथके साथ इस आनन्दवनमें शिवके सबओर ग्रहण करने से अतुल क्षेत्रप्रभावको जानकर ॥ ३ ॥ व काशीमें शिवलिंगप्रतिष्ठा का लोकोंसे अधिक फल सुमिरकर गंगाने श्रीविश्वनाथजी से पूर्वमें शुभ लिंगकी स्थापना किया ॥ ४ ॥ काशीमें गंगेश्वरलिंगका दर्शन बहुत दुर्लभहै और जेठसुदी दशहरा दशमी तिथिमें जो गंगेश्वरको भलीभांति पूजे ॥ ५ ॥ उसके हजारों जन्मका पाप क्षणभरमें विनष्ट होताहै व कलियुगमें गंगेश्वरलिंग गुप्तप्राय होवेगा ॥ ६ ॥ उसका

भलीभांति दर्शन मनुष्यों के पुण्यके लिये होताहै व जिसने काशीमें सुदुर्लभ गंगेश्वर लिंगको देखा ॥ ७ ॥ उसने प्रत्यक्षरूपिणी गंगा देखीगई इसमें संशय नहींहै व सब पापहारिणी गंगा कलियुग में सुदुर्लभ ॥ ८ ॥ होवेगी सन्देह नहींहै और हे मित्रावरुणनन्दन, अगस्त्यजी ! कलियुगके संप्राप्त होतेही काशीमें उससे याने पूर्वोक्त से भी अधिक सुदुर्लभ होवेगी ॥ ९ ॥ व काशीमें गंगेश्वरनामकलिंग उससे भी सुदुर्लभ है कि जिसका भलीभांति दर्शन पुरुषोंके पाप विनाशके लिये निश्चयसे होवे है॥१०॥ व गंगेश्वरके माहात्म्यको सुनकर मनुष्य नरकवासी न होवे व पुण्यसमूहको पावे और चिन्तित फलको अधिकतासे प्राप्त होताहै ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेगङ्गेशमहिमाख्यानंनामैकनवतितमोध्यायः ॥ ९१ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

जायतेपुण्यहेतवे ॥ दृष्टंगङ्गेश्वरंलिङ्गंयेनकाश्यांसुदुर्लभम् ७ ॥ प्रत्यक्षरूपिणीगङ्गातेनदृष्टानसंशयः ॥ कलौसुदुर्लभा गङ्गासर्वकल्मषहारिणी ॥ ८ ॥ भविष्यतिनसन्देहोमित्रावरुणनन्दन ॥ ततोपितिष्येसंप्राप्तेकाश्यत्यन्तंसुदुर्लभा ॥ ९ ॥ ततोपिदुर्लभंकाश्यांलिङ्गंगङ्गेश्वराभिधम् ॥ यस्यसंदर्शनंपुंसांभवेत्पापक्षयायवै ॥ १० ॥ श्रुत्वागङ्गेशमाहात्म्यंननरो निरयीभवेत् ॥ लभेच्चपुण्यसंभारंचिन्तितंचाधिगच्छति ॥ ११ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेगङ्गेश्वरमहिमाख्या नंनामैकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥ ✻ ॥

स्कन्दउवाच ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यंकथयामिमुनेतव ॥ यस्यस्मरणमात्रेणमहापातकसंक्षयः ॥ १ ॥ अस्यवाराह कल्पस्यप्रवेशेमुनिपुङ्गवैः ॥ आपृच्छिकासरिच्छ्रेष्ठावदतांत्वंमृकण्डज ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शृणुध्वंमुनयःस र्वेसन्तिनद्यःपरंशतम् ॥ सर्वाश्चाघहारिण्यःसर्वाश्चापिवृषप्रदाः ॥ ३ ॥ सर्वाभ्योपिनदीभ्यश्चश्रेष्ठाःसर्वाःसमुद्रगाः ॥

दो० । बानब्बे अध्यायको पापविनाशक जानि । नर्मदेश माहात्म्य इत वर्णितहै शुभदानि ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि हे मुने ! मैं नर्मदेश्वरके माहात्म्यको तुमसे कहताहूं जिसके स्मरणमात्रसे महापापोंका संक्षय होताहै ॥ १ ॥ इस वाराह कल्पका प्रवेश होतेही मुनिश्रेष्ठोंने सब ओरसे पूछा कि हे मृकण्डके पुत्र ! कौन नदी श्रेष्ठहै उसको तुम कहो ॥ २ ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले कि हे मुनियो ! तुम सब जने सुनो कि सैकड़ों से अधिक नदियां हैं और वे सब भी पापहारिणी व सब भी पुण्यदान-

कारिणी हैं ॥ ३ ॥ व सब नदियों में भी समुद्रको गईहुई सब श्रेष्ठहैं और नदियों में उत्तम नदियां उनसे भी महाश्रेष्ठहैं ॥ ४ ॥ हे मुनिपुंगवो ! गंगा व यमुना अनन्तर नर्मदा और सरस्वती यह चतुष्टय नदियों में पुण्यदायक या सुन्दर है ॥ ५ ॥ क्योंकि गंगा निश्चयमे ऋग्वेदकी मूर्त्ति होवे है व यमुना यजुर्वेदहै व नर्मदा सामवेदकी मूर्त्तिहोवे है अनन्तर सरस्वती अथर्ववेद है ॥ ६ ॥ और गंगा सब नदियों के जन्मका स्थान या कारणहै व समुद्रको पूरनेवाली है व कोई भी श्रेष्ठ नदी यहां गंगाकी समताको नहीं पावे है ॥ ७ ॥ किन्तु पूर्वसमयमें नर्मदाने बहुत कालतक तपस्याको तपकर वरदेनेको सम्मुखहुये ब्रह्माजीसे ऐसी प्रार्थनाकिया कि हे सत्तम, ॥ ८ ॥

ततोपिहिमहाश्रेष्ठाःसरित्सुसरिदुत्तमाः ॥ ४ ॥ गङ्गाचयमुनाचाथनर्मदाचसरस्वती ॥ चतुष्टयमिदंपुण्यंधुनीषुमुनिपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ ऋग्वेदमूर्तिर्गङ्गास्याद्यमुनाचयजुर्ध्रुवम् ॥ नर्मदासाममूर्तिस्तुस्यादथर्वासरस्वती ॥ ६ ॥ गङ्गासर्वसरिद्योनिःसमुद्रस्यापिपूरणी ॥ गङ्गायानलभेत्साम्यंकाचिदत्रसरिद्वरा ॥ ७ ॥ किन्तुपूर्वंतपस्तप्त्वारेवयाबह्वनेहसम् ॥ वरदानोन्मुखोधाताप्रार्थितश्चेतिसत्तम ॥ ८ ॥ गङ्गासाम्यंविधेदेहिप्रसन्नोसियदिप्रभो ॥ ब्रह्मणाथततःप्रोक्तानर्मदास्मितपूर्वकम् ॥ ९ ॥ यदित्र्यक्षसमत्वंतुलभ्यतेऽन्येनकेनचित् ॥ तदागङ्गासमत्वंचलभ्यतेसरिताऽन्यया ॥ १० ॥ पुरुषोत्तमतुल्यःस्यात्पुरुषोन्योयदिक्वचित् ॥ स्रोतस्विनीतदासाम्यंलभतेगङ्गयापरा ॥ ११ ॥ यदिगौरीसमानारीक्वचिदन्याभवेदिह ॥ अन्याधुनीहस्वर्धुन्यास्तदासाम्यमुपैष्यति ॥ १२ ॥ यदिकाशीपुरीतुल्याभवेदन्याक्वचित्पुरी ॥ तदास्वर्गतरङ्गिण्याःसाम्यमन्यानदीलभेत् ॥ १३ ॥ निशम्येतिविधेर्वाक्यंनर्मदासरिदुत्तमा ॥ धातुर्वरंपरित्यज्यप्राप्तावाराणसींपुरीम् ॥ १४ ॥

प्रभो, विधातः ! जो तुम प्रसन्नहो तो गंगाकी समताको देवो अनन्तर उस समय ब्रह्माजीने मुसकानपूर्वक नर्मदासे कहा ॥ ९ ॥ कि जो अन्य किसीको महादेवकी समता मिलतीहै तो अन्य नदीसे गंगाकी बराबरी पाईजाती है ॥ १० ॥ व जो कहीं अन्य पुरुष विष्णुके समान होवे तो अन्य नदी गंगाकी समताको पातीहै ॥ ११ ॥ व जो इस लोकमे कहीं अन्य स्त्री गौरीके तुल्य होवे तो अन्य नदी यहां गंगाकी समताको समीपतासे प्राप्तहोवेगी ॥ १२ ॥ व जो अन्यपुरी काशीके बराबर कहीं होवे तो अन्य नदी स्वर्गनदी गंगाकी समताको पावे ॥ १३ ॥ ऐसा ब्रह्माजीका वचनसुनकर नदियों मे उत्तम नर्मदा विधाताके वरको परित्यागकर काशीपुरीको प्राप्तहुई ॥ १४ ॥

क्योंकि सबभी पुण्यों के लिये काशीमें लिंगप्रतिष्ठासे अन्य कल्याणकारिणी क्रिया किसीसे भी नहीं समुद्दिष्ट हुई याने नाममात्रसेभी नहीं कहीगई है ॥ १५ ॥ अनन्तर उस पुण्यनदी नर्मदा ने त्रिलोचन के समीप पिलिपिलातीर्थ में विधिपूर्वक लिंगप्रतिष्ठाको किया ॥ १६ ॥ तदनन्तर शुभ अन्तःकरणवाली उस नदीके लिये शङ्करजी प्रसन्नहुये कि हे अपापे, शुभगे, नर्मदे ! जो तुमको रुचताहै उस वरको स्वीकारकर ॥ १७ ॥ ऐसा सुनकर नदीश्रेष्ठा नर्मदाने महेश्वरसे कहा कि हे देवेश, शिव ! यहां बहुत तुच्छ वर से क्या है ॥ १८ ॥ हे महेश्वर ! तुम्हारे दोनों चरणारविन्दों में मेरी दुबिधासे हीन भक्तिहोवे इस भांति नर्मदाके अतिउत्तम वचनको सुनकर शङ्करजी

सर्वेभ्योऽपिहिपुण्येभ्यःकाश्यांलिङ्गप्रतिष्ठितेः ॥ अपरानसमुद्दिष्टाकैश्चिच्छ्रेयस्करीक्रिया ॥ १५ ॥ अथसानर्मदापुण्याविधिपूर्वांप्रतिष्ठितिम् ॥ व्यधात्पिलिपिलातीर्थेत्रिविष्टपसमीपतः ॥ १६ ॥ ततःशम्भुःप्रसन्नोभूत्तस्यैनद्यैशुभात्मने ॥ वरंवृणीष्वसुभगेयत्तुभ्यंरोचतेऽनघे ॥ १७ ॥ सरिद्वरानिशम्येतिरेवाप्राहमहेश्वरम् ॥ किंवरेणेहदेवेशभृशंतुच्छेनधूर्जटे ॥ १८ ॥ निर्द्वन्द्वात्वत्पदद्वन्द्वेभक्तिरस्तुमहेश्वर ॥ श्रुत्वेतिनितरांतुष्टोरेवागिरमनुत्तमाम् ॥ १९ ॥ प्रोवाचचसरिच्छ्रेष्ठेत्वयोक्तंयत्तथास्तुतत् ॥ गृहाणपुण्यनिलयेवितरामिवरान्तरम् ॥ २० ॥ यावन्त्योदृषदःसन्तितवरोधसिनर्मदे ॥ तावन्त्योलिङ्गरूपिण्योभविष्यन्तिवरान्मम ॥ २१ ॥ अन्यंचतेवरंदद्यान्तमप्याकर्णयोत्तमम् ॥ दुष्प्रापंयच्चतपसांराशिभिःपरमार्थतः ॥ २२ ॥ सद्यःपापहरागङ्गासप्ताहेनकलिन्दजा ॥ त्र्यहात्सरस्वतीरेवेत्वंतुदर्शनमात्रतः ॥ २३ ॥ अपरञ्चवरंदद्यांनर्मदेदर्शनाघहे ॥ भवत्यास्थापितंलिङ्गंनर्मदेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥ २४ ॥ यत्तल्लिङ्गंमहापुण्यंमुक्तिंदास्यति

अधिक सन्तुष्ट हुये ॥ १९ ॥ और बोले कि हे नदीश्रेष्ठे ! तुमने जो कहा वह वैसेही होवे व हे पुण्यनिलये ! मैं अन्य वर को देताहूं तुम ग्रहणकरो ॥ २० ॥ कि हे नर्मदे ! तुम्हारे तीरमें जितने पत्थर हैं उतने मेरे वरसे लिङ्गरूपी होवेंगे ॥ २१ ॥ और मैं तुमको अन्यभी वरदेताहूं जोकि उत्तम व परमार्थ से तपस्याओं की राशियों करके दुर्लभ है उसको भी सुनो ॥ २२ ॥ कि हे नर्मदे ! गंगा शीघ्रही व यमुना सात दिनसे व सरस्वती तीनदिन से और तुम दर्शनमात्रसेही पाप हरनेवाली हो ॥ २३ ॥ हे दर्शन से पापविनाशिनि, नर्मदे ! फिर अपर वरको देताहू कि तुम्हारा थापाहुआ नर्मदेश्वरनामक लिंग ॥ २४ ॥ जोहै वह लिंग महापुण्यदायक या महामनोहर होवेगा

व निरन्तर रहनेवाली मुक्तिको देवेगा और इस लिंग के जे भक्त (सेवक) हैं उन को देखकर सूर्य्य के नन्दन यमराजजी ॥ २५ ॥ बड़ेकल्याणकी सबओरसे वृद्धिके लिये यत्नसे प्रणामकरैंगे हे देवि ! काशीके बीचस्थान स्थानमे अनेक लिंगहैं ॥ २६ ॥ परन्तु नर्मदेश्वर की कोई अकथनीय भी महिमा अद्भुत है ऐसा कहकर देवदेवेश्वर उस लिंगमें लयको प्राप्तहुये ॥ २७ ॥ और अद्भुत पवित्रताको पाकर नर्मदा भी आनन्दित हुई व देखने मात्रसे पापहारिणी वह अपने देशको सबओर से प्राप्त भई ॥ २८ ॥ इस प्रकार मार्कण्डेय मुनिके वचनको सुनकर वे मुनीश्वर भी प्रहृष्टचित्त हुये तदनन्तर उन्होंने अपने अपने हितको किया ॥ २९ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि भक्तियुतमनुष्य नर्मदेश्वर के माहात्म्य को सुनकर पापकेचुल को छोंड़कर उत्तम ज्ञानको पावेगा ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेनर्मदेश्वराख्यानंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

शाश्वतीम् ॥ अस्यलिङ्गस्ययेभक्तास्तान्दृष्ट्वासूर्यनन्दनः ॥ २५ ॥ प्रणमिष्यतियत्नेनमहाश्रेयोभिवृद्धये ॥ सन्तिलिङ्गान्यनेकानिकाश्यांदेविपदेपदे ॥ २६ ॥ परंहिनर्मदेशस्यमहिमाकोपिचाद्भुतः ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तस्मिँल्लिङ्गेलयंययौ ॥ २७ ॥ नर्मदापिप्रहृष्टासीत्पावित्र्यंप्राप्यचाद्भुतम् ॥ स्वदेशंचपरिप्राप्तादृष्टमात्राघहारिणी ॥ २८ ॥ वाक्यंमृकण्डजमुनेस्तेपिश्रुत्वामुनीश्वराः ॥ प्रहृष्टचेतसोजाताश्चक्रुःस्वंस्वंततोहितम् ॥ २९ ॥ स्कन्दउवाच ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यंश्रुत्वाभक्तियुतोनरः ॥ पापकञ्चुकमुत्सृज्यप्राप्स्यतिज्ञानमुत्तमम् ॥ ३० ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेनर्मदेश्वराख्यानंनामद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ नर्मदेशस्यमाहात्म्यंश्रुतंकल्मषनाशनम् ॥ इदानींकथयस्कन्दसतीश्वरसमुद्भवम् ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मित्रावरुणसम्भूतकथयामिकथांशृणु ॥ यथासतीश्वरंलिङ्गंकाश्यामाविर्बभूवह ॥ २ ॥ पुराततापसुमहत्त

दो० । त्रयनब्बे अध्याय यह परम सुपुण्यनिधान । शुभउत्पत्ति सतीशकी सुनतहि मोदमहान ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी मैंने महापापनाशक, नर्मदेश्वर का माहात्म्य सुना इस समय तुम सतीश्वरकी समुत्पत्तिको कहो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मित्रावरुणसम्भूत ! जैसे सतीश्वरलिंग काशीमें हर्षसे प्रकटहुआ

है उस कथाको मैं कहताहूं तुम सुनो ॥ २ ॥ हे मुने! पूर्वकाल में ब्रह्माजीने अच्छी भारी तपस्याको तपाथा उस तपस्या से सन्तुष्ट देवनायक वरदायक हुये ॥ ३ ॥ और ब्राह्मणोंको बहुतही प्यारकरनेवाले सर्वज्ञनाथ शिवजीने ब्रह्मासे कहाभी कि हे लोककृत! तुम वरको अङ्गीकार करो ॥ ४॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि, हे देवेश! जो प्रसन्न हुये तुम मुझको वाञ्छित वर देवोगे तो मेरे पुत्रहोवो और देवीजी दक्षकी कन्या होवें ॥ ५ ॥ इसभांति ब्रह्माके वरको सुनकर सबदायक महादेवजी मुसक्याकर व देवीजी के मुखको देखकर चारमुखवाले ब्रह्माजी से बोले ॥ ६ ॥ हे पितामह, ब्रह्मन्! तुम्हारा वाञ्छित होवे व तुमको क्या अदेय है ऐसा कहकर चन्द्रधारी शिवजी ब्रह्माजी के

सर्वज्ञनाथोलोका ॥ पःशतधृतिर्मुने ॥ तपसातेनदेवेशःसन्तुष्टोवरदोभवत् ॥ ३ ॥ उवाचचापिब्रह्माणंनितरांब्राह्मणप्रियः ॥ त्मावरंवरयलोककृत ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ यदिप्रसन्नोदेवेशवरंदास्यसिवाञ्छितम् ॥ तदात्वंमेभवसुतोदेवीदक्षसुताऽस्तु च ॥ ५ ॥ इतिश्रुत्वामहादेवःसर्वदोब्रह्मणोवरम् ॥ स्मित्वादेवीमुखंवीक्ष्यप्रोवाचचतुराननम् ॥ ६ ॥ ब्रह्मंस्त्वद्वाञ्छितंभूयात्किमदेयंपितामह ॥ इत्युक्त्वाब्रह्मणोभालादाविरासीच्चशाङ्कभृत् ॥ ७ ॥ रुदन्सउत्तानशयोब्रह्मणोमुखमैक्षत ॥ ततो ब्रह्मापितंबालंरुदन्तंप्रविलोक्यच ॥ ८ ॥ किंमांजनकमाप्यापित्वंरोदिषिमुहुर्मुहुः ॥ श्रुत्वेतिपृथुकःप्राहयथोक्तंपरमेष्ठिना ॥ ९ ॥ नाम्नेरोदिमिमेस्रष्टर्नामदेहिपितामह ॥ रोदनाद्रुद्रइत्याख्यांसमायाडिम्भकोलभत ॥ १० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ अर्भकत्वंगतोगीशःकिंरुरोदषडानन ॥ यदिवेत्सितदाचक्ष्वमहत्कौतूहलंहिमे ॥ ११ ॥ स्कन्दउवाच ॥ सर्वज्ञस्यकुमारत्वात्किञ्चित्किञ्चिदवैम्यहम् ॥ रोदनेकारणंवच्मिशृणुकुम्भसमुद्भव ॥ १२ ॥ मनसीतिविचारोभूद्देवस्यपरमात्मनः ॥ बुद्धि

माथसे प्रकट हुये ॥ ७ ॥ और रोतेहुये उन बालकरूपने ब्रह्माजीके मुखको देखा व तदनन्तर ब्रह्माजीने भी रोतेहुये उन बालक को अधिकता से देखकर कहा ॥ ८ ॥ कि तुम मुझ पिताको प्राप्तहोकर भी बारबार क्यों रोतेहो इसभांति ब्रह्माजी ने जैसे कहा उसको सुनकर बालकरूप शङ्करजी बोले ॥ ९ ॥ कि हे सृष्टिकर्त्तः, पितामह! मैं नामके लिये रोताहूं तुम मुझको नाम दो ऐसे रोने से उन मायाबालक ने रुद्र इस नामको पाया ॥ १० ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे षण्मुख! बालभावको प्राप्तभी महेश जी क्यों रोये जो तुम जानतेहो तो कहो मुझको महाकौतुक है ॥ ११ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भसमुद्भव! मैं सर्वज्ञ का पुत्रहोने से रोने में कुछ कुछ कारण

को जानताहूं और उसको कहताहूं ॥ १२ ॥ कि इन ब्रह्माजी की बुद्धिका वैभव देखने के लिये परमात्मा क्रीड़ाकारी देवके मनमें ऐसा विचारहुआ आश्चर्य्य है ॥ १३॥ जोकि सत्यलोक के अधीश व चारमुखवाले और विधानकर्त्ता हैं ऐसे आनन्दसे महेशजीसे बाष्पपूर याने आंसुओंका समूह या प्रवाह भलीभांति उत्पन्नहुआ ॥ १४॥ अगस्त्यजी बोले कि, शङ्करजी ने ब्रह्माजी की किस बुद्धिविभुताको मनमें देखा जिससे बालभाव में भी महेशजी के आंसूसमूह हुआ ॥ १५ ॥ हे सर्वज्ञ, शिवके आनन्दवर्धन, प्राज्ञ ! इसको मुझसे कहो ऐसे अगस्त्यजी से कहे हुये वचन को सुनकर तारकासुर के वैरी कार्त्तिकेयजी हर्ष से बोले ॥ १६ ॥ कि हे कुम्भज, मुने !

वैभवमस्याहोवीक्षितुंपरमेष्ठिनः ॥ १३ ॥ सत्यलोकाधिनाथस्यचतुरास्यस्यवेधसः ॥ इत्यानन्दात्समुद्भूतोबाष्पपूरो महेशितुः ॥ १४ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ किंबुद्धिवैभवंधातुःशम्भुनामनसीक्षितम् ॥ येनानन्दाश्रुसम्भारोबाल्येप्यभवदी शितुः ॥ १५ ॥ एतत्कथयमेप्राज्ञसर्वज्ञानन्दवर्धन ॥ श्रुत्वागस्त्युदितंवाक्यंतारकारिरुवाचह ॥ १६ ॥ देवेनमनसिध्या तमितिकुम्भजनेमुने ॥ विनापत्यंजनेतारंकउद्धर्तुमिहप्रभुः ॥ १७ ॥ एकोमनोरथश्चायंद्वितीयोयंसुनिश्चितम् ॥ अपत्य त्वंगतेचास्मिन्स्मर्तुरुत्पत्तिहारिणि ॥ १८ ॥ क्षणंक्षणंसमालोक्यमङ्गस्पर्शंक्षणंक्षणम् ॥ एकशय्यासनाहारंलप्स्येऽने नक्षणेक्षणे॥ १९ ॥ योयंनगोचरःक्वापिवाणीमनसयोरपि ॥ समेपत्यत्वमासाद्यकिंनदास्यतिचिन्तितम्॥ २०॥ योऽमुंस कृत्पृशेज्जन्तुर्योमुंपश्येत्सकृन्मुदा ॥ नसभूयोभिजायेतभवेच्चानन्दमेदुरः ॥ २१ ॥ गृहक्रीडनकंमेसौयदिभूयात्कथ

महादेवजीने मनमें ऐसा विचार किया कि इसलोकमें पुत्र विना पिताके उबारने को कौन समर्थ है ॥ १७ ॥ एक यह मनोरथ और दूसरा यह है कि सुमिरते हुये जनोंकी उत्पत्तिके हर्ता इन शिवजी के पुत्रता को प्राप्तहोतेही ॥ १८ ॥ क्षण क्षण में अच्छा दर्शन व क्षण में अंग स्पर्श और क्षणक्षणमें इनके साथ एक शय्या में आसन व भोजन को पाऊंगा ॥ १९ ॥ जो यह वचन और मन के भी कहीं विषय नहीं हैं वह मेरे पुत्रभावको प्राप्तहोकर किस चिन्तित फलको न देवेंगे याने सबको देवेंगे ॥ २० ॥ और जो जन्तु इनको एकबार देखे व जो इनको आनन्द से एकबार छुवे वह फिर न उपजे और आनन्दसे व्याप्त होवे ॥ २१ ॥ व जो यह

किसी भांति मेरे घरका खेलहोवें तो मैं निरसन्देह श्रेष्ठ सौख्यका निधान होऊं ॥ २२॥ इसभांति ब्रह्माजीके मनोरथ को निश्चय से जानकर उन सर्वज्ञने आनन्दके आंसुओं से भूषित तीन आंखों को धारण किया ॥ २३ ॥ ऐसा कार्त्तिकेय का वचन सुनकर अगस्तिजी सबओरसे अतिशय आनन्दित हुये व उनके पावों को नमस्कार करते भये और उच्चस्वरसे बोले कि हे सर्वज्ञनन्दन ! तुम जयकरो॥ २४ ॥ तुमने ब्रह्माका मनजाना व शङ्करकेभी मनोगतको जाना व भलीभांति चित्तकोजाना ज्ञानरूप तुम्हारे लिये नमस्कार हो ॥ २५ ॥ श्रोताके आनन्दके देखने से स्कन्दजीभी बहुतही सन्तुष्ट हुये कि हे अगस्त्यजी ! तुम धन्यहो धन्यहो व तत्त्व से सुननेके लिये जानते

श्चन ॥ तदापरस्यसौख्यस्यनिधानंस्यामसंशयम् ॥ २२ ॥ विधेःसमीहितंचेतिनूनंज्ञात्वाससर्ववित् ॥ आनन्दबाष्पकलितत्रक्षुस्त्रयमदीधरत् ॥ २३ ॥ श्रुत्वेत्यगस्तिःस्कन्दस्यभाषितंपर्यमूमुदत्॥ननामचाङ्घ्रीप्रोवाचजयसर्वज्ञनन्दन॥२४॥ विधेरपिमनोज्ञातंशम्भोरपिमनोगतम्॥ सम्यक्चित्तंत्वयाज्ञातंनमस्तुभ्यंचिदात्मने ॥ २५ ॥ स्कन्दोपिनितरांतुष्टःश्रोतुरानन्ददर्शनात्॥ धन्योस्यगस्त्यधन्योसिश्रोतुंजानासितत्त्वतः ॥ २६ ॥ नमेश्रमोवृथाजातोब्रुवतस्तेपुरःकथाम् ॥ इत्यगस्तिंसमाभाष्यपुनःप्राहषडाननः ॥ २७ ॥ देवेरुद्रत्वमापन्नेदेवीदक्षसुताभवत् ॥ सापितप्त्वातपस्तीव्रंसतीकाश्यांवरार्थिनी ॥ २८ ॥ ददर्शलिङ्गरूपेणप्रादुर्भूतंहरंपुरः ॥ अलंतप्त्वामहादेविप्रोक्तवन्तामितिस्फुटम्॥ २९ ॥ इदंसतीश्वरंलिङ्गंतवनाम्नाभविष्यति ॥ यथामनोरथस्तेऽत्रफलितोदक्षकन्यके ॥ ३० ॥ तथैतल्लिङ्गमाराध्यान्यस्यापिहिफलिष्यति ॥ कुमारीप्राप्स्यतिपतिम्मनसोपिसमुच्छ्रितम्॥ ३१ ॥ एतल्लिङ्गंसमाराध्यकुमारोपिवराङ्गनाम् ॥ यस्ययस्य

हो॥ २६ ॥तुम्हारे आगे कथाको कहतेहुये मेरा श्रम वृथा नहीं हुआ इसप्रकार अगस्तिजी को भलीभांति सामने से कहकर षण्मुखजी फिर बोले॥ २७॥ कि जब महादेवजी रुद्रभावको प्राप्तहुये तब देवीजी दक्षकी कन्याहुईं और वरको चाहतीहुईं उन सतीजीने भी काशी में तीव्रतपको तपकर ॥ २८ ॥ लिङ्गरूपसे प्रकटहुये व स्पष्ट ऐसा कहते हुये शिवजीको आगे देखा कि हे महादेवि ! तपकरके क्याहै ॥ २९ ॥ यह सतीश्वर लिङ्ग तुम्हारे नाम से होवेगा हे दक्षकन्यके ! जैसे तुम्हारा मनोरथ यहां फलित हुआ है ॥ ३० ॥ वैसेही इस लिंगकी पूजाकर अन्यकाभी मनोरथ फलेगा व कुमारी मनसे भी उत्तम पतिको पावेगी ॥ ३१ ॥ व कुमारभी इस लिङ्गको भलीभांति पूजकर श्रेष्ठ

कन्याको पावेगा व जिस जिस काही जो कामहै उस उस काही वह निश्चय से ॥ ३२॥ सतीश्वर के सम्पूजन से सिद्धहोवेगा इसमें सन्देह नहीं है और सतीश्वरको भली भाति पूजकर जो जो जन जिस जिस फलको चाहता है॥ ३३॥ उस उसका वह वह मनोरथ शीघ्रही होवेगा इससे आठवें दिन मे तुम्हारा पिता प्रजापति दक्ष ॥ ३४॥ तुम कन्याको मुझे देवेगा तुम्हारा मनोरथ सफल हुआ ऐसा कहकर देवदेवेश्वर उस लिङ्गमेही अन्तर्धान हुये ॥ ३५ ॥ और वह दक्षकुमारी सतीजी भी आनन्द से अपने घरकोगई व उनके पितानेभी आठवें दिनमे उनको रुद्रजीके लियेदिया ॥ ३६॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! ऐसे काशीमें सतीश्वर लिग प्रकटहुआ और वह

ह्रियःकामस्तस्यतस्यहिसध्रुवम् ॥ ३२ ॥ भविष्यतिनसंदेहःसतीश्वरसमर्चनात्॥सतीश्वरंसमभ्यर्च्ययोयोयंयंसमी हते ॥ ३३ ॥ तस्यतस्यससंसिद्धिंप्रभविष्यतिमनोरथः॥इतोष्टमेचदिवसेत्वज्जनेताप्रजापतिः ॥ ३४ ॥ मह्यन्दास्यतिकं न्यांत्वांसफलस्तेमनोरथः ॥ इत्युक्त्वादेवदेवेशस्तत्रैवान्तर्हितोभवत् ॥ ३५ ॥ सापिस्वभवनंयातासतीदाक्षायणीमुदा॥ पितापितस्मैप्रादात्तांरुद्रायदिवसेष्टमे ॥ ३६ ॥ स्कन्दउवाच॥ इत्थंसतीश्वरंलिङ्गंकाश्यांप्रादुरभून्मुने॥ स्मरणाद पिलिङ्गञ्चदद्यात्सत्त्वगुणंपरम् ॥ ३७ ॥ रत्नेशात्पूर्वतोभागेदृष्ट्वालिङ्गंसतीश्वरम् ॥ मुच्यतेपातकैःसद्यःक्रमाज्ज्ञानञ्च विन्दति ॥ ३८॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेसतीश्वरप्रादुर्भावोनामत्रिनवतितमोऽध्यायः॥ ९३ ॥ * ॥

स्कन्दउवाच॥ अन्यान्यपिचलिङ्गानिकथयामिमहामुने ॥ अमृतेशमुखादीनियन्नामाप्यमृतप्रदम् ॥ १ ॥ पुरास नारुनामासीन्मुनिरत्रगृहाश्रमी ॥ ब्रह्मयज्ञरतोनित्यंनित्यञ्चातिथिदैवतः ॥ २ ॥ लिङ्गपूजारतोनित्यंनित्यंतीर्थप्रति

लिंग सुमिरनेसेही श्रेष्ठ सतोगुण को देवे है ॥ ३७॥ रत्नेश्वर से पूर्वभाग में सतीश्वर लिंगको देखकर सब पापोंसे शीघ्रही छूटजाता है और क्रमसे ज्ञानको पाताहै ॥३८॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेसतीश्वरप्रादुर्भावोनामत्रिनवतितमोध्यायः॥ ९३ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । चारनबे अध्यायमें अमृतेश्वर करुणेश । ज्योतीरूपेश्वर तथा वर्णित कथा सुवेश ॥ हे महामुने ! जिनका नामभी मोक्षदाता है उन अमृतेश्वर मुख्यादि अन्य भी लिंगोंको मैं कहताहूं ॥१॥ कि पूर्वसमय इस काशीमे सनारु नामक मुनिहुआ जोकि गृहाश्रमी (गृहस्थ) व नित्यही ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) मे रत व नित्यही अतिथि

देववाला ॥ २ ॥ व नित्यही लिंगपूजामें रत और नित्यही तीर्थमें न दान लेनेवाला था उस सनारु ऋषिका पुत्र उपजङ्घनि हुआ ॥ ३ ॥ वह कभी वनको गया और वहां उसको सर्प्पने डसा अनन्तर उसके समान अवस्थावाले मित्रोंसे वह अपने आश्रम को लायागया ॥ ४ ॥ और सनारु ने भलीभांति ऊर्ध्वश्वास लेकर उस उपजङ्घनि को स्वर्गद्वारके समीप श्मशानभूमिभागमें प्राप्तकिया ॥ ५ ॥ वहां सुगुप्तके समान बिल्वफलके आकार एक लिंग हुआथा उस स्थान मे उस मुर्दाको धरकर जबतक सुबुद्धिमान् सनारुने चिन्तना किया ॥ ६ ॥ कि इसभांति सर्पसे डसेहुये का संस्कार निश्चय से किस प्रकार होता है तबतक जीवताहुआ वह उपजङ्घनि सोये हुयेकी नाईं

ग्रही ॥ तस्यर्षेरभवत्पुत्रःसनारोरुपजङ्घनिः ॥ ३ ॥ सकदाचिद्गतोरण्यंतत्रदष्टःपृदाकुना ॥ अथतत्सवयोभिश्चसत्रानीतःस्वमाश्रमम् ॥ ४ ॥ सनारुणासमुच्छ्वस्यनीतःसउपजङ्घनिः ॥ महाश्मशानभूभागंस्वर्गद्वारसमीपतः ॥ ५ ॥ तत्रासीच्छ्रीफलाकारंलिङ्गमेकंसुगुप्तवत् ॥ निधायतत्रतंयावच्छवंसञ्चिन्तयेत्सुधीः ॥ ६ ॥ सर्पदष्टस्यसंस्कारःकथंभवतिचेतिवै ॥ तावत्सजीवन्नुत्तस्थौसुप्तवच्चोपजङ्घनिः ॥ ७ ॥ अथतंवीक्ष्यसमुनिःसनारुरुपजङ्घनिम् ॥ पुनःप्राणितसंपन्नंविस्मयंप्राप्तवान्परम् ॥ ८ ॥ प्राणितव्येत्रकोहेतुर्मच्छिशोरुपजङ्घनेः ॥ क्षेत्राद्बहिरहिर्यंहिदष्टानैषीत्परासुताम् ॥ ९ ॥ इतियावत्ससंधत्तेधियंतज्जीवितैकिकाम् ॥ तावत्पिपीलिकात्वेकामृतंकापिपिपीलिकम् ॥ १० ॥ आनिनायचतत्रैवसोप्यनन्निर्गतस्ततः ॥ अथविज्ञायसमुनिस्तत्त्वंजीवितसूचितम् ॥ ११ ॥ मृदुहस्ततलेनैवयावत्स्वनतिवैमुनिः ॥ ताव

उठबैठा ॥ ७ ॥ अनन्तर फिर जीवितसम्पन्न उस उपजङ्घनि को देखकर वह सनारुमुनि परमविस्मयको प्राप्तहुआ ॥ ८ ॥ कि मेरे बालक उपजङ्घनिके प्राणितव्य याने जीने में यहां क्या कारण है कि जिसको क्षेत्रके बाहर सर्पने काटा वह गतप्राणता (मरेकेभाव) को नहीं प्राप्तहोता है ॥ ९ ॥ इसभांति वह सनारुमुनि उस पुत्रके जीवितमुख्यवाली बुद्धिको जबतक भलीभांति धारता है तबतक एक चींटी कहीं भी मरेहुये एक चींटेको ॥ १० ॥ वहांही लेआई और वहभी जीवता हुआ वहासे निकला अनन्तर वह मुनि जीवित सूचित याने दोनों के जीवन से अनुमित तत्त्व (पदार्थ) को विशेपतासे जानकर ॥ ११ ॥ जबतक मौनधारी होकर कोमल हस्ततल

से खोदने लगे तबतक उन्होंने बिल्वफल के बराबरही लिंग को भलीभांति देखा ॥ १२ ॥ तदनन्तर उन सनारुमुनिसे वहां वह लिंगसे पूजित हुआ और बहुतकालीन (पुराने) लिंगका अन्वय समेत नामभी कियागया ॥ १३ ॥ कि आनन्दवन में यह अमृतेश्वर नामक लिंग है इस लिंगके संस्पर्शसे निश्चयकर अमरताको पावे ॥ १४ ॥ और जीवतपुत्रवाले वहही मुनि अमृतेश्वर को भलीभांति पूजकर अपने घरको अच्छे प्रकार पीछे से प्राप्तहुये व जनोंसे आश्चर्य्य की नाईं देखेगये ॥ १५ ॥ हे मुनीश्वर ! तबसे लगाकर वह सिद्धिदाता अमृतेश्वर लिंग काशीमें है व कलियुगमें फिर गुप्त होवे है ॥ १६ ॥ व मरेहुये जन अमृतेश्वरके संस्पर्शसे उसी क्षणमें फिर जीवते

च्छ्रीफलमात्रंहिलिङ्गंतेनसमीक्षितम् ॥ १२ ॥ सनारुणाथतल्लिङ्गंतेनतत्रसमर्चितम् ॥ चिरकालीनलिङ्गस्यकृतंनामापिसान्वयम् ॥ १३ ॥ अमृतेश्वरनामेदंलिङ्गमानन्दकानने॥ एतल्लिङ्गस्यसंस्पर्शादमृतत्वंलभेद्ध्रुवम्॥ १४ ॥ अमृतेशंसमभ्यर्च्यजीवत्पुत्रःसवैमुनिः ॥ स्वास्पदंसमनुप्राप्तोदृष्टआश्चर्यवज्जनैः ॥ १५ ॥ तदाप्रभृतितल्लिङ्गममृतेशंमुनीश्वर ॥ काश्यांसिद्धिप्रदंनॄणांकलौगुप्तंभवेत्पुनः ॥ १६ ॥ अमृतेश्वरसंस्पर्शान्मृताजीवन्तितत्क्षणात्॥ अमृतत्वम्भजन्तेऽत्रजीवन्तःस्पर्शमात्रतः ॥ १७ ॥ अमृतेशसमंलिङ्गंनास्तिकापिमहीतले॥तल्लिङ्गंशम्भुनातिष्येकृतंगुप्तंप्रयत्नतः ॥ १८ ॥ अमृतेश्वरनामापियेकाश्यांपरिगृह्णते ॥ नतेषामुपसर्गोत्थम्भयंक्कापिभविष्यति ॥ १९ ॥ मुनेन्यच्चमहालिङ्गंकरुणेश्वरसंज्ञितम् ॥ मोक्षद्वारसमीपेतुमोक्षद्वारेश्वराग्रतः ॥ २० ॥ दर्शनात्तस्यलिङ्गस्यमहाकारुणिकस्यवै ॥ नक्षेत्रान्निर्गमोजातुबहिर्भवतिकस्यचित् ॥ २१ ॥ स्नातव्यंमणिकर्ण्यांञ्चद्रष्टव्यःकरुणेश्वरः ॥ क्षेत्रोपसर्गजाभीतिर्हातव्या

हैं और जीवते हुये यहां स्पर्शमात्र से मुक्तिभावको सेवते हैं ॥ १७ ॥ क्योंकि अमृतेश्वर के समान लिंग भूतलमें कहीं भी नहीं है इससे शङ्करजी ने कलियुग में उस लिंगको यत्नसे गुप्तकिया है ॥ १८ ॥ व जे काशीमें अमृतेश्वर के नामको भी सब ओरसे ग्रहण करते हैं उनको उपद्रवों से उठा हुआ डर कहीं भी नहीं होवेगा ॥ १९ ॥ हे मुने ! जोकि करुणेश्वर नामक अन्य महालिंग मोक्षद्वारेश्वर के आगे मोक्षद्वार के समीपमें है ॥ २० ॥ उस महादयालु लिंगके दर्शनसेही किसीका क्षेत्रसे बाहर निकलजाना कभी नहीं होता है ॥ २१ ॥ इसलिये मणिकर्णिका में नहाना चाहिये व करुणेश्वरका दर्शन करना चाहिये और क्षेत्रोपद्रवों से उपजे डरको परम

आनन्द से त्यागना चाहिये ॥ २२ ॥ व सोमवार को प्राप्तहोकर एकभक्तव्रतको करे व व्रतवाले जनों करके करुणा (ककरखिरुणी) के फूलोंसे करुणेश्वर पूजनेयोग्य हैं ॥ २३ ॥ उस व्रतसे सन्तुष्ट करुणेश्वर उसको कभी क्षेत्रसे बाहर नहीं करे हैं उससे यह व्रत करना चाहिये ॥२४॥ और उस करुणा वृक्षके पत्रों व उसके फूलोंसे भी करुणेश्वर पूजने योग्य हैं व ज्ञानसे वर्जित जो जन उस लिंग को भलीभांति नहीं जानता है ॥ २५ ॥ उसको देवेश प्रसन्न होवें ऐसा कहकर करुणा वृक्षकी पूजा करना चाहिये व जोकि द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) ऐसे एक वर्षतक सोमवार व्रतको करे ॥ २६ ॥ उसके वाञ्छित फलको प्रसन्नहुये करुणेश्वर यहां देवेंगे और इस काशीमें मनुष्यों

परयामुदा ॥ २२ ॥ सोमवासरमासाद्यएकभक्तव्रतञ्चरेत् ॥ यष्टव्यःकरुणापुष्पैर्व्रतिनाकरुणेश्वरः ॥ २३ ॥ तेनव्रतेनसंतुष्टःकरुणेशःकदाचन ॥ नतंक्षेत्राद्बहिष्कुर्यात्तस्मात्कार्यंव्रतंत्विदम् ॥ २४ ॥ तत्पत्रैस्तत्फलैर्वापिसंपूज्यःकरुणेश्वरः ॥ योनजानातितल्लिङ्गंसम्यग्ज्ञानविवर्जितः ॥ २५ ॥ तेनार्च्यःकरुणावृक्षोदेवेशःप्रीयतामिति ॥ योवर्षंसोमवारस्यव्रतंकुर्यादितिद्विजः ॥ २६ ॥ प्रसन्नःकरुणेशोत्रतस्यदास्यतिवाञ्छितम् ॥ द्रष्टव्यःकरुणेशोत्रकाश्यांयत्नेनमानवैः ॥ २७ ॥ इतितेकरुणेशस्यमहिमोक्तोमहत्तरः ॥ यंश्रुत्वानोपसर्गोत्थम्भयंकाश्याम्भविष्यति ॥ २८ ॥ मोक्षद्वारेश्वरञ्चैवस्वर्गद्वारेश्वरंतथा ॥ उभौकाश्यांनरोदृष्ट्वास्वर्गम्मोक्षञ्चविन्दति ॥ २९ ॥ ज्योतीरूपेश्वरंलिङ्गंकाश्यामन्यत्प्रकाशते ॥ तस्यसंपूजनाद्भक्ताज्योतीरूपाभवन्तिहि ॥ ३० ॥ चक्रपुष्करिणीतीरेज्योतीरूपेश्वरम्परम् ॥ समभ्यर्च्याप्नुयान्मर्त्यो ज्योतीरूपंनसंशयः ॥ ३१ ॥ यदाभागीरथीगङ्गातत्रप्राप्तासरिद्वरा ॥ तदारभ्यार्चयेन्नित्यन्तल्लिङ्गंस्वर्धुनीमुदा ॥ ३२ ॥

को यत्नसे करुणेश्वरका दर्शन करना चाहिये ॥ २७ ॥ इसभांति मैंने करुणेश्वरकी बड़ी भारी महिमाको तुममे कहा जिसको सुनकर उपद्रवों से उठाहुआ डर काशीमे न होगा ॥ २८ ॥ ऐसेही मोक्षद्वारेश्वर तथा स्वर्गद्वारेश्वर इन दोनोंको काशीमें देखकर मनुष्य मोक्ष और स्वर्गको पाताहै ॥ २९ ॥ व जोकि ज्योतीरूपेश्वर नामक अन्य लिंग काशी मे प्रकाशताहै उसके संपूजनेसेही भक्तजन ज्योतिरूप होते हैं ॥ ३० ॥ व चक्रपुष्करिणी के तीर में ज्योतीरूपेश्वरको भलीभांति पूजकर मनुष्य ज्योतिरूपको प्राप्त होवे है इसमें संशय नहीं है ॥ ३१ ॥ और नदियोंमें श्रेष्ठ, स्वर्ग की नदी भागीरथी गंगा जब से वहां प्राप्त हुईहैं तबसे लगाकर उस लिंगको नित्यही आन-

न्दसे पूजती हैं ॥ ३२ ॥ व पूर्वकालमे यहां विष्णुजीके तपस्या करतेही वहां तेजस्वी लिंग आपही प्रकट हुआहै उरासे यह क्षेत्र शुभहै ॥ ३३ ॥ और जब दूरवासी भी जो जन यहां चक्रपुष्करिणी के तीरमें ज्योतीरूपेश्वरको ध्यावे तब उसकी सिद्धि अदूर (समीप) मे है ॥ ३४ ॥ और हे सत्तम ! इन चौदहों लिंगों में भी आठ लिंग बडे वीर्यवान् व कर्मबीजों को जलाने के लिये दावाग्निके समान है ॥ ३५ ॥ और जेकि ॐकारेश्वरादि चौदह लिंग कहेगये हैं तथा जे दक्षेश्वरादि आठ महालिंगहै ॥ ३६ ॥ फिर वैसेही जे शैलेश्वरादि चौदह लिंगहैं ये छत्तीसलिंग क्षेत्रकी संसिद्धिके लियेहैं ॥ ३७ ॥ व इन लिंगों मे छत्तीस तत्त्वरूप व इस क्षेत्रमें नित्यही बसतेहुये वह सदा-

पुराविष्णोतपत्यत्रतल्लिङ्गंस्वयमेवहि ॥ तत्राविरासीत्तेजस्वितेनक्षेत्रमिदंशुभम् ॥ ३३ ॥ चक्रपुष्करिणीतीरेज्योतीरूपेश्वरन्तदा ॥ दूरस्थोपीहयोध्यायेत्तस्यासिद्धिरदूतः ॥ ३४ ॥ एतेष्वपिचलिङ्गेषुचतुर्दशसुसत्तम ॥ लिङ्गाष्टकंमहावीर्यंकर्मबीजदवानलम् ॥ ३५ ॥ ॐकारादीनिलिङ्गानियान्युक्तानिचतुर्दश ॥ तथादक्षेश्वरादीनिलिङ्गान्यष्टौमहान्तिच ॥ ३६ ॥ शैलेशादीनिलिङ्गानितथायानिचतुर्दश ॥ पुनःषट्त्रिंशदेतानिक्षेत्रसंसिद्धिहेतवे ॥ ३७ ॥ षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपोसौलिङ्गेष्वेषुसदाशिवः ॥ अस्मिन्क्षेत्रेवसन्नित्यंतारकंज्ञानमादिशेत् ॥ ३८ ॥ क्षेत्रस्यतत्त्वमेतद्धिषट्त्रिंशल्लिङ्गरूप्यहो ॥ एतेषाम्भजनात्पुंसांनभवेद्दुर्गतिःक्वचित् ॥ ३९ ॥ मुनेरहस्यभूतानिलिङ्गान्येतानिनिश्चितम् ॥ एतल्लिङ्गप्रभावाच्चमुक्तिरत्रसुनिश्चिता ॥ ४० ॥ मोक्षक्षेत्रमिदङ्काशीलिङ्गैरेतैर्महामते ॥ एतान्यन्यानिसिद्धानिसम्भवन्तियुगेयुगे ॥ ४१ ॥ आनन्दकाननंशम्भोःक्षेत्रमेतदनादिमत् ॥ अत्रसंस्थितिमापन्नामुक्ताएवनसंशयः ॥ ४२ ॥ योगसिद्धिरिहास्त्येवतपःसिद्धि

शिवजी तारक ज्ञानको उपदेश करते हैं ॥ ३८ ॥ यहही छत्तीस लिंगरूपी, क्षेत्रका अद्भुत स्वरूपहै व इन लिंगोंकी सेवासे मनुष्योंकी दुर्गति कहीं भी नहीं होवेहै ॥३९॥ हे मुने ! ये लिंग रहस्यभूत है यह निश्चितहै और यहां इन लिंगो के प्रभावसे मुक्ति सुनिश्चितहै ॥ ४० ॥ हे महामते ! इन लिंगोसे काशी यह मोक्षक्षेत्र है व ये और अन्य भी लिंग युग-युगमे सिद्ध होतेहैं ॥ ४१ ॥ शिवजीका क्षेत्र यह आनन्दवन अनादिवालाहै यहां मरणको या भलीभांति निवासको प्राप्तहुये जन मुक्तही हैं इसमें संशय

नहीं है ॥ ४२ ॥ व यहांही योगकी सिद्धिहै यहांही तपस्याकी सिद्धिहै व यहांही व्रतोंकी सिद्धि मन्त्रोंकी सिद्धि और तीर्थोंकी सिद्धि है यह बहुत निश्चितहै ॥ ४३ ॥ व जो कि बडा भारी अणिमादिसिद्धाष्टक कहागया है उसकी जन्मभूमि यह शम्भुकी आनन्दवाटिकाही है ॥ ४४ ॥ व यह आनन्दवन मोक्षलक्ष्मीका स्थानहै इसलिये पुण्यों से इसको प्राप्तहोकर संसारसे डरभुत जनको त्यागना न चाहिये ॥ ४५ ॥ जो यहां काशी मिली है तो यहही बड़ा लाभहै यहही उत्तम तप है और यहही महत् पुण्य है ॥ ४६ ॥ व जन्मवालेकी मृत्यु जहां कहीं भी अवश्यही होती है उसके बाद कर्मानुसारिणी शुभ व अशुभगति मिलने योग्यहै ॥ ४७ ॥ इससे नियत मृत्युको और

रिहैवहि ॥ व्रतसिद्धिर्मन्त्रसिद्धिस्तीर्थसिद्धिःसुनिश्चितम् ॥ ४३ ॥ सिद्ध्यष्टकन्तुयत्प्रोक्तमणिमादिमहत्तरम् ॥ तज्जन्मभूमिरेषैवशम्भोरानन्दवाटिका ॥ ४४ ॥ निर्वाणलक्ष्म्याःसदनमेतदानन्दकाननम् ॥ एतत्प्राप्यनमोक्तव्यंपुण्यैःसंसारभीरुणा ॥ ४५ ॥ अयमेवमहालाभइदमेवपरन्तपः ॥ एतदेवमहत्पुण्यंलब्धावाराणसीहयत् ॥ ४६ ॥ अवश्यंजन्मिनोमृत्युर्यत्रकुत्रभविष्यति ॥ कर्मानुसारिणीलभ्यागतिःपश्चाच्छुभाशुभा ॥ ४७ ॥ मृत्युंविज्ञायनियतंगतिङ्कर्मानुसारिणीम् ॥ अवश्यङ्काशिकासेव्यासर्वकर्मनिवारिणी ॥ ४८ ॥ मानुष्यम्प्राप्ययेमूढानिमेषमितजीवितम् ॥ नसेवन्तेपुरीङ्काशीन्तेमुष्टामन्दबुद्धयः ॥ ४९ ॥ दुर्लभञ्जन्ममानुष्यंदुर्लभाकाशिकापुरी ॥ उभयोःसङ्गमासाद्यमुक्ताएवनसंशयः ॥ ५० ॥ क्वचतादृक्तपांसीहक्वतादृग्योगउत्तमः ॥ यादृग्भिःप्राप्यतेमुक्तिःकाश्यांमोक्षोत्तमोत्तमः ॥ ५१ ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यपूर्वम्पुनःपुनः ॥ नकाशीसदृशीमुक्त्यैभूमिरन्यामहीतले ॥ ५२ ॥ विश्वेशोमुक्तिदोनित्यंमुक्त्यैचोत्तरवा

कर्मानुसारिणी गतिको जानकर सब कर्मनिवारिणी काशी अवश्यही सेवने योग्यहै ॥ ४८ ॥ और निमेष परिमित जीवितवाले मनुष्यभावको पाकर जे अविवेकी जन काशीपुरी को नहीं सेवते हैं वे मन्दबुद्धि मनुष्य दैवसे वञ्चित हैं ॥ ४९ ॥ व मनुष्यका जन्म दुर्लभ है और काशीपुरी दुर्लभहै इन दोनों के संगको प्राप्त होकर मुक्तही हैं इस मे संशय नहीं है ॥ ५० ॥ इस लोकमें वैसी तपस्यायें कहां हैं व वैसा उत्तम योग कहां है कि जैसों से मुक्ति मिलती है और काशीमें मोक्षोत्तमोत्तम सायुज्य मोक्ष होताहै ॥ ५१ ॥ यह सत्यहै सत्यहै फिर सत्यहै और फिर फिर सत्यपूर्वक सत्यहै कि मुक्तिके लिये काशी के समान अन्य भूमि भूतलमें नहीं है ॥ ५२ ॥ जहां नित्यही

मुक्तिदाता विश्वनाथजी हैं व मुक्तिके लिये उत्तरवाहिनी गंगाहैं उस आनन्दवनमें मुक्ति है अन्यत्र कहीं भी मुक्ति नहीं है ॥ ५३ ॥ क्योंकि एक विश्वेश्वरही मुक्तिदाता हैं अन्य कोई नहीं है वहही काशी में प्राप्तकर मुक्ति को देते हैं अन्यत्र नहीं ॥ ५४ ॥ किन्तु सायुज्य मुक्ति यहांही है अनन्तर सामीप्यादि मुक्ति अन्यत्र भी होती है परन्तु वहभी निश्चयसे सुलभ नहीं है और काशी मे अवज्ञासे मोक्षहै ॥ ५५ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाभाग, अगस्त्यजी ! मैं भविष्य (होनहार) को कहता हूं कि विष्णु का अंश द्वैपायन व्यासजी जिस वचनको कहेंगे और निश्चय करने के लिये मनवाले होकर पीछे से जो करेंगे उसको तुम सुनो ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्द-

हिनी ॥ आनन्दकाननेमुक्तिर्मुक्तिर्नान्यत्रकुत्रचित् ॥ ५३ ॥ एकएवहिविश्वेशोमुक्तिदोनान्यएवहि ॥ सएवकाशींम्प्राप्यमुक्तिंयच्छतिनान्यतः ॥ ५४ ॥ सायुज्यमुक्तिरत्रैवसान्निध्यादिरथान्यतः ॥ सुलभासापिनोनूनंकाश्यांमोक्षोस्तिहेलया ॥ ५५ ॥ स्कन्दउवाच ॥ शृणवगस्त्यमहाभागभविष्यंकथयाम्यहम् ॥ कृष्णद्वैपायनोव्यासोऽकथयद्यन्महद्वचः ॥ निश्चिकेतुमनाःपश्चाद्यत्करिष्यतितच्छृणु ॥ ५६ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽमृतेशादिलिङ्गप्रादुर्भावोनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व्यासउवाच ॥ शृणुसूतमहाबुद्धेयथास्कन्देनभाषितम् ॥ भविष्यंममतस्याग्रेकुम्भयोनेर्महामतेः ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ निशामयमहाभागत्वंमैत्रावरुणेमुने ॥ पाराशर्योमुनिवरोयथामोहमुपैष्यति ॥ २ ॥ व्यस्यवेदान्महाबुद्धिर्नाना

पुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेऽमृतेश्वरादिलिङ्गप्रादुर्भावोनामचतुर्नवतितमोध्यायः ॥ ९४ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

दो० । पांचनबे अध्यायमे व्यास भुजासंस्तंभु । शिवस्तोत्र इत व्यासकृत अरु व्यासेश्वर शंभु ॥ श्रीव्यासजी बोले कि हे महाबुद्धे, सूत ! जैसे श्रीकार्त्तिकेयजीने बडे बुद्धिमान् उन अगस्त्यजी के आगे मेरे भविष्य वृत्तान्तको कहा वैसे तुम सुनो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मित्र व वरुणसे उत्पन्न, महाभाग, मुने ! जैसे मुनि-श्रेष्ठ पाराशर्य्य (पराशर के पुत्र) वेदव्यासजी मोहको समीप से प्राप्त होवेंगे वैसेही तुम सुनो ॥ २ ॥ कि अनेक शाखाओं के भेदो से वेदोको बिलग बिलग विस्तारकर

और सूतादि शिष्यों को अठारह पुराणें पढ़ाकर बड़े बुद्धिमान् व्यासजी ॥ ३ ॥ कि जिन्होंने महाभारत नामक पुराणको प्रकटकिया जो कि सब लोगों के मनका हरने-वाला व वेद स्मृति और पुराणोंका रहस्य है ॥ ४ ॥ व सब पापविनाशक व सब शान्तिकारक और सब से श्रेष्ठ है व जिसके सुनने से ब्रह्महत्या विनष्ट होती है ॥ ५ ॥ वह श्रीमान् मुनि पृथिवीतल में सब ओर घूमते हुये एक समय नैमिषारण्य को भलीभांति प्राप्तहुये जहां मुनीश्वरहैं ॥ ६ ॥ जे कि अट्ठासी हजार शौनकादि ऋषि तपो-धन व माथमे त्रिपुण्ड्र लगाये व सोहतीहुई रुद्राक्ष मालावाले ॥ ७ ॥ व विभूतिको धारे व भक्तिसे रुद्रसूक्त जपको प्यार करनेवारे व लिंगकी पूजामें आसक्त व शिव

शाखाप्रभेदतः ॥ अष्टादशपुराणानिसूतादीन्परिपाठ्यच ॥ ३ ॥ श्रुतिस्मृतिपुराणानांरहस्यंयस्त्वचीकरत् ॥ महाभारतसञ्ज्ञञ्चसर्वलोकमनोहरम् ॥ ४ ॥ सर्वपापप्रशमनंसर्वशान्तिकरम्परम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेणब्रह्महत्याविनश्यति ॥ ५ ॥ एकदासमुनिःश्रीमान्पर्यटन्पृथिवीतले ॥ सम्प्राप्तोनैमिषारण्यंयत्रसन्तिमुनीश्वराः ॥ ६ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि शौनकाद्यास्तपोधनाः ॥ त्रिपुण्ड्रतमहाभालालसद्रुद्राक्षमालिनः ॥ ७ ॥ विभूतिधारिणोभक्त्यारुद्रसूक्तजपप्रियान् ॥ लिङ्गाराधनसंसक्ताञ्शिवनामकृतादरान् ॥ ८ ॥ एकएवहिविश्वेशोमुक्तिदोनान्यएवहि ॥ इतिब्रुवाणान्सततंपरिनिश्चितमानसान् ॥ ९ ॥ विलोक्यसमुनिर्व्यासस्तान्सर्वान्गिरिशात्मनः ॥ उत्क्षिप्यतर्जनीमुच्चैःप्रोवाचेदंवचःपुनः ॥ १० ॥ परिनिर्मथ्यवाग्जालंसुनिश्चित्यासकृद्बहु ॥ इदमेकंपरिज्ञातंसेव्यःसर्वेश्वरोहरिः ॥ ११ ॥ वेदेरामायणेचैवपुराणेषुच भारते ॥ आदिमध्यावसानेषुहरिरेकोऽत्रनापरः ॥ १२ ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंत्रिसत्यंनमृषापुनः ॥ नवेदादपरंशास्त्रंनदे

नामके आदरकर्त्ता ॥ ८ ॥ व एक विश्वेश्वरही मुक्तिदाताहैं अन्य नहीं है यह निश्चयहै ऐसा कहतेहुये और निरन्तर सब ओरसे निश्चित मनवाले हैं ॥ ९ ॥ व शिवजी में चित्त लगाये हैं उन सबोंको देखकर उन श्रीवेदव्यासमुनिने तर्जनी अंगुली को उठाकर इस वचनको बार बार उच्चस्वर से कहा ॥ १० ॥ कि वचनसमूहको सब ओरसे मथकर व बार बार बहुतही अच्छा निश्चय कर यह एक अधिकतासे जानागया है कि सबके ईश्वर विष्णुजी सेवने योग्यहैं ॥ ११ ॥ वेद व रामायण व पुराण और भारत मे भी आदि मध्य और अन्तमें सर्वत्र हरिही एकहैं यहां अन्य नहींहै ॥ १२ ॥ व सत्यहै सत्यहै फिर सत्यहै फिर तीनबार सत्य मृषा (असत्य) नहींहै कि वेदसे

अधिक अपर शास्त्र नहीं है और विष्णुसे परे (श्रेष्ठ) देव नहीं है ॥ १३ ॥ क्योंकि लक्ष्मी के पतिही सब फलों के दाताहैं व लक्ष्मीके पतिही मोक्षके भी दाताहैं उससे एक लक्ष्मीपतिही ध्याने योग्यहैं अन्य कोई नहीं है ॥ १४ ॥ इस लोकमें भोगका और अन्यत्र परलोक में मोक्षका दाता जनार्दन से अन्य कोई नहीं है उसलिये सुख चाहियों से चतुर्भुज भगवान् नित्यही सेवनीय हैं ॥ १५ ॥ जे थोडी बुद्धिवाले लोग विष्णुजी को छोंड़कर अन्य देवको सेवते हैं वे गम्भीर संसार चक्रमें बार बार पैठते हैं ॥ १६ ॥ व एक हृषीकेश याने इन्द्रियों के स्वामी विष्णुजीही सबोंके ईश्वर और परसे परहैं उनको निरन्तर सेवताहुआ जन तीनों लोकोंका सेव्य होवेहै ॥ १७ ॥ य

वोच्युततःपरः ॥ १३ ॥ लक्ष्मीशःसर्वदोनान्योलक्ष्मीशोप्यपवर्गदः ॥ एकएवहिलक्ष्मीशस्ततोध्येयोनचापरः ॥ १४ ॥ भुक्तेर्मुक्तेरिहान्यत्रनान्योदाताजनार्दनात् ॥ तस्माच्चतुर्भुजोनित्यंसेवनीयःसुखेप्सुभिः ॥ १५ ॥ विहायकेशवादन्यं येभजन्तेल्पमेधसः ॥ संसारचक्रेगहनेतेविशन्तिपुनःपुनः ॥ १६ ॥ एकएवहिसर्वेशोहृषीकेशःपरात्परः ॥ तंसेवमानः सततंसेव्यस्त्रिजगतांभवेत् ॥ १७ ॥ एकोधर्मप्रदोविष्णुस्त्वेकोबह्वर्थदोहरिः ॥ एकःकामप्रदश्चक्रीत्वेकोमोक्षप्रदोच्युतः ॥ १८ ॥ शार्ङ्गिणंयेपरित्यज्यदेवमन्यमुपासते ॥ तेसद्भिश्चबहिष्कार्यावेदहीनायथाद्विजाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यं व्यासस्यनैमिषारण्यवासिनः ॥ प्रवेपमानहृदयाःपरिप्रोचुरिदंवचः ॥ २० ॥ ऋषयऊचुः ॥ पाराशर्यमुनेमान्यस्त्वमस्माकंमहामते ॥ यतोवेदास्त्वयाव्यस्ताःपुराणान्यपिवेत्सियत् ॥ २१ ॥ यतश्चकर्तात्वमसिमहतोभारतस्यवै ॥

एक विष्णुही धर्म के दाता हैं एक हरिही बहुते अर्थों के दाताहैं एक चक्रधारीही कामों के दाता हैं और एक अच्युतही मोक्षके दाता हैं ॥ १८ ॥ व जे कोई जन शार्ङ्गधन्वाधारी को परित्याग कर अन्य देवकी उपासना करते हैं वे वेदहीन ब्राह्मणो की नाई सज्जनो से बाहर करने योग्य हैं ॥ १९ ॥ ऐसे व्यासजी के वाक्य को सुनकर बहुतही कांपतेहुये हृदयवाले नैमिषवनवासियोंने सब ओर उच्चस्वर से कहा ॥ २० ॥ ऋषि बोले कि, हे महामते, व्यास, मुने ! तुम हमारे मान्यहो जिससे तुमने वेदोंको विस्तार या विभाग कियाहै व जिससे तुम पुराणोंको भी जानतेहो ॥ २१ ॥ व जिससे तुम धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके निर्णयकारक महाभारतके भी कर्त्ताहो

यह निश्चयहै ॥ २२ ॥ हे सत्यवती के पुत्र! यहां तुमसे अन्य कौन तत्त्वज्ञहै और आपने तर्जनी अंगुलीको उठाकर व निश्चयकर जो प्रतिज्ञाकिया ॥ २३ ॥ उसमें यहां बालकलोग सब ओरसे श्रद्धा नहीं करते हैं व तुम्हारे प्रतिज्ञात वचनकी तब श्रद्धा होवे ॥२४॥ जब आनन्दवनमें शंकरके वचनको सामने से जानतेहो याने जानोगे ॥ २५ ॥ हे व्यासजी! तुम काशीको जाओ जहां आपही विश्वनाथजी हैं वहां युगोंका धर्म नहीं है याने युगके धर्मसे तुम ऐसा कहतेहो काशीमें जानेसे न कहोगे और जहां भूमि संलग्न नहींहै अर्थात् वह काशी शिवजीके त्रिशूलपर टिकीहै ॥ २६ ॥ ऐसा सुनकर मनमें कुछेक कुपितकी नाईं श्रीव्यासमुनि दशहजार संख्यक अपने शिष्यों के

धर्मार्थकाममोक्षाणांविनिश्चयकृतोध्रुवम् ॥ २२ ॥ तत्त्वज्ञःकोपरश्चात्रत्वत्तःसत्यवतीसुत ॥ भवतायत्प्रतिज्ञातंनिश्चित्योत्क्षिप्यतर्जनीम् ॥ २३ ॥ अस्मिन्माणवकास्तत्रपरिश्रद्दधतेनहि ॥ प्रतिज्ञातस्यवचसस्तवश्रद्धाभवेत्तदा ॥ २४ ॥ यदाऽऽनन्दवनेशम्भोःप्रतिजानासिवैवचः ॥ २५ ॥ गच्छवाराणसींव्यासयत्रविश्वेश्वरःस्वयम् ॥ नतत्रयुगधर्मोस्तिनचलग्नावसुन्धरा ॥ २६ ॥ इतिश्रुत्वामुनिर्व्यासःकिञ्चित्कुपितवद्धृदि ॥ जगामतूर्णंसहितःस्वशिष्यैरयुतोन्मितैः ॥ २७ ॥ प्राप्यवाराणसींव्यासःस्नात्वापञ्चनदेह्रदे ॥ श्रीमन्माधवमभ्यर्च्यययौपादोदकन्ततः ॥ २८ ॥ तत्रस्नानादिकंकृत्वादृष्ट्वाचैवादिकेशवम् ॥ पञ्चरात्रन्ततःकृत्वावैष्णवैरभिनन्दितः ॥ २९ ॥ अग्रतःपृष्ठतःशङ्खैर्वाद्यमानैःप्रमोदितः ॥ जयविष्णोहृषीकेशगोविन्दमधुसूदन ॥ ३० ॥ अच्युतानन्तवैकुण्ठमाधवोपेन्द्रकेशव ॥ त्रिविक्रमगदापाणेशार्ङ्गपाणेजनार्दन ॥ ३१ ॥ श्रीवत्सवक्षःश्रीकान्तपीताम्बरसुरान्तक ॥ कैटभारेबलिध्वंसिन्कंसारेकेशिसूदन ॥ ३२ ॥ नारा

साथचले ॥ २७ ॥ तदनन्तर श्रीव्यासजी काशीपुरीको प्राप्तहोकर पंचनदकुण्डमें स्नानकर व श्रीयुत बिन्दुमाधवजीको सामनेसे पूजकर पादोदक तीर्थकोगये ॥२८॥ वहां स्नानादिककोकर व आदिकेशवको भी देखकर तदनन्तर पंचरात्रकोकर याने पांच दिनतक विष्णु सम्बन्धी तीर्थोंकी सेवाकर अथवा पंचरात्रके विधानसे माधव केशवादिकोंकी पूजाकर वैष्णवजनों से सब ओर वर्धित या प्रशंसितहुए ॥ २९ ॥ व आगे और पीछे बजाये जातेहुए शंखोंसे आनन्दित कियेगये और हे विष्णो! तुम जयकरो व हे हृषीकेश, गोविन्द, मधुसूदन, ॥ ३० ॥ अच्युत, अनन्त, वैकुण्ठ, माधव, उपेन्द्र, केशव, त्रिविक्रम, गदापाणे, शार्ङ्गपाणे, जनार्दन ॥ ३१ ॥ श्रीवत्सवक्षः, श्रीकान्त, पीता-

स्वर, मुरान्तक, कैटभारे, बलिध्वंसिन्, कंसारे, केशिसूदन ॥ ३२ ॥ नारायण, असुररिपो, कृष्ण, शौरे, चतुर्भुज, देवकीहृदयानन्द, यशोदानन्दवर्धन ॥ ३३ ॥ पुण्डरीकाक्ष, दैत्यारे, दामोदर, बलप्रिय, बलारातिस्तुत, हरे, वासुदेव, वसुप्रद ॥ ३४ ॥ विष्वक्चमू (विष्वक्सेन) तार्क्ष्यरथ, वनमालिन्, नरोत्तम, अधोक्षज, क्षमाधार, पद्मनाभ, जलेशय ॥ ३५ ॥ नृसिंह, यज्ञ, वाराह, गोप, गोपालवल्लभ, गोपीपते, गुणातीत, गरुड़ध्वज, गोत्रभृत् ॥ ३६ ॥ और हे चाणूरमथन ! तुम जयकरो हे त्रैलोक्यरक्षण ! जयकरो हे अनाद्य ! जयकरो हे आनन्द ! जयकरो हे नीलोत्पलद्युते ! तुम जयकरो ॥ ३७ ॥ और हे कौस्तुभोद्भूषितोरस्क, पूतनाधातुशोषण, जगद्रत्नामणे, नरकहारक ! तुम रक्षा-

यणासुररिपोकृष्णशौरेचतुर्भुज ॥ देवकीहृदयानन्दयशोदानन्दवर्धन ॥ ३३ ॥ पुण्डरीकाक्षदैत्यारेदामोदरबलप्रिय ॥ बलारातिस्तुतहरेवासुदेववसुप्रद ॥ ३४ ॥ विष्वक्चमूस्तार्क्ष्यरथवनमालिन्नरोत्तम॥ अधोक्षजक्षमाधारपद्मनाभजलेशय ॥३५॥ नृसिंहयज्ञवाराहगोपगोपालवल्लभ ॥ गोपीपतेगुणातीतगरुडध्वजगोत्रभृत् ॥ ३६ ॥जयचाणूरमथनजय त्रैलोक्यरक्षण ॥ जयानाद्यजयानन्दजयनीलोत्पलद्युते ॥ ३७॥ कौस्तुभोद्भूषितोरस्कपूतनाधातुशोषण ॥ रक्षरक्षजगद्रत्नामणेनरकहारक ॥ ३८ ॥ सहस्रशीर्षपुरुषपुरुहूतसुखप्रद ॥ यद्भूतंयच्चभाव्यंवैतत्रैकःपुरुषोभवान् ॥ ३९ ॥ इत्यादि नाममालाभिःसंस्तुवन्वनमालिनम् ॥स्वच्छन्दलीलयागायन्नृत्यंश्चपरयामुदा॥ ४० ॥ व्यासोविश्वेशभवनंसमायातः सहृष्टवत् ॥ ज्ञानवापीपुरोभागेमहाभागवतैःसह ॥ ४१ ॥ विराजमानसत्कण्ठस्तुलसीवरदामभिः ॥ स्वयंतालधरोजातः स्वयंजातःसुनर्तकः ॥ ४२ ॥ वेणुवादनतत्त्वज्ञःस्वयंश्रुतिधरोभवत् ॥ नृत्यंपरिसमाप्येत्थंव्यासःसत्यवतीसुतः ॥ ४३ ॥

करो रक्षाकरो ॥ ३८॥ व हे सहस्रशीर्ष, पुरुष पुरुहूत, सुखप्रद, या इन्द्र सुखदायक ! जो होगया व होताहै और होनेवालाहै उसमें आपही एक निश्चित पुरुषहो ॥ ३९ ॥ इत्यादि नाम मालाओंसे बनमालाधारी विष्णुजीकी भलीभांति स्तुति करते व अपने अधीन लीलासे गावते और अतिशय उत्तम आनन्द से नाचतेहुए ॥ ४० ॥ वह व्यासजी बहुत आनन्दितकी नाईं श्रीविश्वनाथजीके मन्दिरमें भलीभाति आये जोकि ज्ञान वापीके अग्रभागमें भारी भगवद्भक्तों के साथ ॥ ४१ ॥ तुलसीकी श्रेष्ठ मालाओं से विराजतेहुये अच्छे कण्ठवाले हैं वह आपही तालधारीहुये व आपही अच्छे नर्तकहुये ॥ ४२ ॥ और बेणु बजानेका स्वरूप जानतेहुये सत्यवती के पुत्र श्रीव्यासजी

आपही श्रुतिधर होगये इसभांति नृत्यको सब ओरसे समाप्तकर ॥ ४३ ॥ फिर शिष्यों के मध्यगत होकर दक्षिणभुजाको ऊपरकर उनहीं श्लोकोंको ऊंचेस्वरसे गातेसे फिर पढ़नेलगे ॥ ४४ ॥ कि वचनसमूहको सब ओरसे मथकर व बार बार बहुत अच्छा निश्चयकर यह एक परिज्ञात हुआहै कि सबोंके ईश्वर हरि (विष्णुजी) सेवने योग्य हैं ॥ ४५ ॥ दहिनी बांहको उठाकर वह श्रीव्यासजी इत्यादि अपनी प्रतिज्ञाके बहुत बोध करनेवाले श्लोकसमूहको जबतक पढ़ते हैं ॥ ४६ ॥ तबतक नन्दीश्वरने अपनी लीलासे उनकी या उस बांहको स्तम्भन करदिया और हे सन्मुने अगस्त्यजी ! उन व्यासमुनिकी वाणीका भी स्तम्भन होगया ॥ ४७ ॥ तदनन्तर गुप्त जैसेहो वैसे भली-

पुनरूर्ध्वंभुजंकृत्वादक्षिणंशिष्यमध्यगः ॥ पुनःपपाठतानेवश्लोकान्गायन्निवोच्चकैः ॥ ४४ ॥ परिनिर्मथ्यवाग्जालंसुनिश्चित्यासकृद्बहु ॥ इदमेकंपरिज्ञातंसेव्यःसर्वेश्वरोहरिः ॥ ४५ ॥ इत्यादिश्लोकसङ्घातंस्वप्रतिज्ञाप्रबोधकम् ॥ यावत्पठतिसव्यासःसव्यमुत्क्षिप्यवैभुजम् ॥ ४६ ॥ तस्तम्भतावत्तद्बाहुंसशैलादिःस्वलीलया ॥ वाक्स्तम्भश्चापितस्यासीन्मुनेर्व्यासस्यसन्मुने ॥ ४७ ॥ ततोगुप्तंसमागम्यविष्णुर्व्यासमभाषत ॥ अपराद्धंमहच्चात्रभवताव्यासनिश्चितम् ॥ ४८ ॥ तवैतदपराधेनभीतिर्मेपिमहत्तरा ॥ एकएवहिविश्वेशोद्वितीयोनास्तिकश्चन ॥ ४९ ॥ तत्प्रसादादहञ्चक्रीलक्ष्मीशस्तत्प्रभावतः ॥ त्रैलोक्यरक्षासामर्थ्यंदत्तन्तेनैवशम्भुना ॥ ५० ॥ तद्भक्त्यापरमैश्वर्यंमयालब्धंवरात्ततः ॥ इदानींस्तुहितंशम्भुंयदिमेशुभमिच्छसि ॥ ५१ ॥ अन्यदापिनवैकार्याभवताशेमुषीदृशी ॥ पाराशर्यइतिश्रुत्वासञ्ज्ञयाव्याजहारह ॥ ५२ ॥ भुजस्तम्भःकृतस्तेननन्दिनादृष्टिमात्रतः ॥ वाक्स्तम्भस्तद्भयाज्जातःस्पृशमेकण्ठकन्दलीम् ॥ ५३ ॥

भांति आकर विष्णुजीने श्रीव्यासजी से कहा कि हे व्यास ! आपने यहां निश्चित बड़ा अपराधकिया ॥ ४८ ॥ और तुम्हारे इस अपराधसे मुझको भी बहुत भारी डरहै क्योंकि एक विश्वनाथही मुख्यहैं दूसरा कोई नहींहै ॥ ४९ ॥ मैं उनके प्रसाद से चक्रवालाहूं व उनके प्रभावसे लक्ष्मीका पतिहूं और उन शंकरजीनेही मुझको त्रिलोक रक्षाकी शक्ति दियाहै ॥ ५० ॥ व मैंने उनकी भक्तिसे उन श्रेष्ठसे परम अधिक ऐश्वर्य्यको पायाहै इस समय जो तुम मेरे मंगलको चाहतेहो तो उन शम्भुकी स्तुतिकरो ॥ ५१ ॥ और अन्य कालमें भी आपको ऐसी बुद्धिही न करना चाहिये ऐसा सुनकर पराशरके पुत्र श्रीव्यासजीने सञ्ज्ञासे कहा ॥ ५२ ॥ कि उन नन्दीश्वरने दृष्टिमात्रसे मेरी बाहु

का स्तम्भन कियाहै व उनके डरसे वचनका भी रुकना होगयाहै इससे आप मेरे कण्ठमूलको छुवो ॥ ५३ ॥ कि जैसे मैं संसारनाशक पार्वतीपतिकी स्तुति करनेको समर्थ होताहूं तब विष्णुजी उनके कण्ठको भलीभांति स्पर्शकर हर्षसे गुप्तही चलेगये ॥ ५४ ॥ तदनन्तर उसप्रकार से स्तम्भित (रोंकीहुई) भुज लतावाले उदारबुद्धि सत्यवती के पुत्र श्रीव्यासजीने महेशजीकी सब ओरसे स्तुति करनेको प्रारम्भकिया ॥ ५५ ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि दुःखके भगानेवाले रुद्र शिवजी एकहैं दूसरा नहींहै जिससे वह ब्रह्म एकही है यहां अनेकप्रकारका कुछ नहींहै और जो कुछ भी किसी काल मे व किसी देशमें भी है उसको अन्य कोई भी कि जिसकी शक्तिहै वह मेरे आगे विशे-

यथास्तोतुम्भवानीशंप्रभवामिभवान्तकम् ॥ संस्पृश्यविष्णुस्तत्कण्ठंगुप्तमेवजगामह ॥ ५४ ॥ ततःसत्यवतीसूनुस्त थास्तम्भितदोर्लतः ॥ प्रारब्धवान्महेशानंपरिष्टोतुमुदारधीः ॥ ५५ ॥ व्यासउवाच ॥ एकोरुद्रोनद्वितीयोयतस्तद्ब्रह्मैवैकं नेहनानास्तिकिञ्चित् ॥ यद्यप्यन्यःकोपिवाकुत्रचिद्वाव्याचष्टान्तद्यस्यशक्तिर्मदग्रे ॥ ५६ ॥ यःक्षीराब्धेर्मन्दराघातजा तोज्वालामालीकालकूटोतिभीमः ॥ तंसोढुंवाकोपरोऽभून्महेशाद्यत्कीलाभिःकृष्णतामापविष्णुः ॥ ५७ ॥ यद्बाणोभू च्छ्रीपतिर्यस्ययन्तालोकेशोयत्स्यन्दनम्भूःसमस्ता ॥ वाहावेदायस्ययेनेषुपाताद्दग्धाग्रामास्त्रैपुरास्तत्समःकः ॥५८॥ यंकन्दर्पोवीक्षमाणःसमानंदेवैरन्यैर्भस्मजातःस्वयंहि ॥ पौष्पैर्बाणैःसर्वविश्वैकजेताकोवास्तुत्यःकामजेतुस्ततोन्यः ॥ ५९ ॥ यंवैवेदोवेदनोनैवविष्णुर्नोवावेधानोमनोनैववाणी ॥ तंदेवेशंमादृशःकोल्पमेधा याथात्म्याद्वैवेत्त्यहोविश्वनाथ

षतासे आकर कहे ॥ ५६ ॥ जोकि क्षीरसागरमें मन्दराचलके मथने से उपजा हुआ ज्वाला मालावाला व अत्यन्त भयानक विषहै कि जिसकी झारों से विष्णुजी श्यामता को प्राप्त होगये उसको सहने के लिये महेशजी से अपर (दूसरा) कौनहै ॥ ५७ ॥ लक्ष्मी के पति विष्णुजी जिनका बाण हुयेहैं व ब्रह्माजी जिनके सारथी हैं व सब भूमि जिनका रथहै व वेद जिनके घोडेहैं और जिन्होंने बाणपातसे त्रिपुर सम्बन्धी ग्रामों को जलायाहै उन शिवजीके समान कौनहै ॥ ५८ ॥ व फूलों के बाणों से सब लोकों का एक जीतनेवाला काम जिनको अन्य देवों के समान देखताहुआ आपही भस्म होगया उन काम जेता शंकरजी से अन्य कौन स्तुतिके योग्यहै ॥ ५९ ॥ जिन विश्व-

नाथजीको वेद नहीं विष्णु भी नहीं व ब्रह्मा नहीं मन नहीं व वाणी भी नहीं जानतीहै उन देवेशको मेरे समान थोड़ी बुद्धिवाला कौनजन यथा स्वरूपता से निश्चय कर जानताहै यह आश्चर्य्य है ॥ ६० ॥ जिसमें सब जगत्है व जो सबमें हैं व जो सबहैं व जो जगत्के कर्त्ता प्रसिद्ध हैं व जो रक्षक हैं व जो विनाशक हैं व जिनका आदि नहींहै व जो एक होकर सबके आदिहैं व जिनका अन्त नहीं है और जो अन्त कर्त्ताहैं उनके प्रति मैं नमस्कार करनेवालाहूं ॥ ६१ ॥ जिनका एक नाम अश्वमेध यज्ञके तुल्य है जिनके एक प्रणामसे इन्द्रकी लक्ष्मी थोड़ी है जिनकी स्तुति से सत्यलोक मिलता है और जिनकी पूजासे मुक्ति सम्पत्ति समीप गतहै उन शम्भुके समान

म् ॥ ६० ॥ यस्मिन्सर्वंयस्तुसर्वत्रसर्वोयोवैकर्तायोऽवितायोऽपहर्ता ॥ नोयस्यादिर्यःसमस्तादिरेकोनोयस्यान्तोयोन्त कृत्तंनतोस्मि ॥ ६१ ॥ यस्यैकाख्यावाजिमेधेनतुल्यायस्यानत्याचैकयाल्पेन्द्रलक्ष्मीः ॥ यस्यस्तुत्यालभ्यतेसत्यलोको यस्यार्चातोमोक्षलक्ष्मीरदूरा ॥ ६२ ॥ नान्यन्देवंवेद्म्यहंश्रीमहेशान्नान्यंदेवंस्तौमिशम्भोर्ऋतेऽहम् ॥ नान्यन्देवंवा नमामित्रिनेत्रात्सत्यंसत्यंसत्यमेतन्मृषान ॥ ६३ ॥ इत्थंयावत्स्तौतिशम्भुंमहर्षिस्तावन्नन्दीशाम्भवाद्दृक्प्रसादात् ॥ तद्दोःस्तम्भन्त्यक्तवांश्चाबभाषेस्मायंस्मायंब्राह्मणेभ्योनमोवः ॥ ६४ ॥ नन्दिकेश्वरउवाच ॥ इदंस्तवम्महापुण्यंव्यास तेपरिकीर्तितम् ॥ यःपठिष्यतिमेधावीतस्यतुष्यतिशङ्करः ॥ ६५ ॥ व्यासाष्टकमिदम्प्रातःपठितव्यंप्रयत्नतः ॥ दुःस्वप्न पापशमनंशिवसान्निध्यकारकम् ॥ ६६ ॥ मातृहापितृहावापिगोघ्नोबालघ्नएववा ॥ सुरापीस्वर्णहृद्वापिनिष्पापोस्याःस्तुते

कौनहै ॥ ६२ मैं महेशजी से अन्य देवको नहीं जानताहूं व मैं शंकरजीके बिना अन्यदेवको नहीं प्रशंसताहू व मैं त्रिनेत्र से अन्य देवके नहीं नमस्कार करताहूं यह सत्यहै सत्य है सत्य है मृषा (झूंठ) नहीं है ॥ ६३ ॥ इसप्रकार जबतक महर्षि वेदव्यासजी शंकरजीकी स्तुति करते हैं तबतक नन्दीश्वरने शिवजीकी दृष्टिकी प्रसन्नता से उनकी बांहके स्तम्भको त्यागदिया और कुछेक हँस हँसकर कहा कि तुम ब्राह्मणों के लिये नमस्कारहो ॥ ६४ ॥ श्रीनन्दीश्वरजी बोले कि, हे श्रीव्यासजी ! तुम्हारे कहेहुये इस महामनोहर, या, परम पुण्यदायक स्तोत्रको जो बुद्धिमान् पढ़ेगा उससे शिवजी सन्तुष्ट होवेंगे ॥ ६५ ॥ दुष्ट स्वप्न और पापोंका नाशक व शिव सामीप्यकारक यह व्यासाष्टक प्रातःकाल प्रयत्नसे पढ़ने योग्यहै ॥ ६६ ॥ माताके मारनेवाला व पिताके मारनेवाला भी व गोघाती व बालघाती भी व मद्य पीनेवाला और सुवर्णका चोर भी

इस स्तुतिके जपसे पापों से हीन होवेहै ॥ ६७ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, तबसे लगाकर व्यासजी शंकरजीकी भक्तिमें परायणहुये व घण्टा कर्णकुण्डके आगे व्यासे श्वरलिंगका स्थापनकर ॥ ६८ ॥ नित्यही विभूति भूषण नित्यही रुद्राक्ष भूषण नित्यही रुद्रसूक्तों के पढ़ने में तत्पर और नित्यही शिवलिंगों के पूजक होगये ॥ ६९ ॥ व मुक्तिपददायक क्षेत्रके स्वरूपको विशेषता से जानकर वह व्यासजी क्षेत्रसंन्यास को कर आज भी काशीको नहीं छोड़े हैं ॥ ७० ॥ व घण्टाकर्णकुण्ड में स्नानकर व व्यासेश्वरको देखकर जहीं कहीं मरा भी मनुष्य काशीमें मराहुआ होवे है ॥ ७१ ॥ और मनुष्य काशीमें व्यासेश्वर लिंगको पूजकर ज्ञानसे नहीं भ्रष्ट होताहै व पापों से

जपात् ॥ ६७ ॥ स्कन्दउवाच ॥ पाराशर्यस्तदारभ्यशम्भुभक्तिपरोभवत् ॥ लिङ्गंव्यासेश्वरंस्थाप्यघण्टाकर्णह्रदाग्रतः ॥ ६८ ॥ विभूतिभूषणोनित्यंनित्यंरुद्राक्षभूषणः ॥ रुद्रसूक्तपरोनित्यंनित्यंलिङ्गार्चकोभवत् ॥ ६९ ॥ सकृत्वाक्षेत्रसंन्यासंत्यजेन्नाद्यापिकाशिकाम् ॥ तत्त्वंक्षेत्रस्यविज्ञायनिर्वाणपददायिनः ॥ ७० ॥ घण्टाकर्णह्रदेस्नात्वादृष्ट्वाव्यासेश्वरंनरः ॥ यत्रकुत्रमृतोवापिवाराणस्यांमृतोभवेत् ॥ ७१ ॥ काश्यांव्यासेश्वरंलिङ्गंपूजयित्वानरोत्तमः ॥ नज्ञानाद्भ्रश्यतेक्वापिपातकैर्नाभिभूयते ॥ ७२ ॥ व्यासेश्वरस्ययेभक्तानतेषांकलिकालतः ॥ नपापतोभयंक्वापिनचक्षेत्रोपसर्गतः ॥ ७३ ॥ व्यासेश्वरःप्रयत्नेनद्रष्टव्यःकाशिवासिभिः ॥ घण्टाकर्णकृतस्नानैःक्षेत्रपातकभीरुभिः ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेव्यासभुजस्तम्भोनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ * ॥ * ॥ * ॥

अगस्त्यउवाच ॥ कृष्णद्वैपायनःस्कन्दशम्भुभक्तिपरोयदि ॥ यदिक्षेत्ररहस्यज्ञःक्षेत्रसंन्यासकृद्यदि ॥ १ ॥ तथा

पीडित नहीं होताहै ॥ ७२ ॥ जेकि व्यासेश्वरके भक्तहैं उनको कलिकाल से नहीं पापसे नहीं और क्षेत्रके उपद्रवों से कहीं भी नहीं डरहै ॥ ७३ ॥ क्षेत्रके पापों से डरभुत व घण्टाकर्णकुण्ड मे स्नान कियेहुये काशीवासी जनों से बहुत यत्नके साथ व्यासेश्वर देखने योग्य हैं ॥ ७४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेव्यासबाहुस्तम्भोनामपञ्चनवतितमोध्यायः ॥ ९५ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दो० । छानब्बे अध्यायमें व्यास शापकी मुक्ति । कृच्छ्रादिक लक्षण कथित व्यास निकासनयुक्ति ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी ! कृष्णद्वैपायन याने वेद

व्यासजी जो शम्भुकी भक्तिमें तत्पर व जो क्षेत्र रहस्यके पण्डित व जो क्षेत्र संन्यासकर्त्ता ॥१॥ तथा जो प्रभावको देखेहुये और वैसेही ज्ञानियों में श्रेष्ठहैं तो बड़ी उत्तम काशीपुरी को क्यों प्रसिद्ध शाप देवेंगे ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे मुने ! तुमने यह सत्यही पूंछाहै और तुम्हारे पूंछतेही मैं उन व्यासजी के भविष्य चरित्र को कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ कि जब से लगाकर श्रीनन्दीश्वरजी ने उन मुनि की बांहका स्तम्भन करादिया तब से लगाकर अतिशय आदरसमेत वह महेशजी की भलीभांति स्तुतिकरते हैं ॥ ४ ॥ कि काशी में अनेकों तीर्थ हैं व काशी में अनेकसे लिंगहैं तोभी मणिकर्णिका में नहाना चाहिये और श्रीविश्वनाथजी सेवने योग्यहैं ॥ ५ ॥

दृष्टप्रभावश्चेत्तथाचेज्ज्ञानिनांवरः॥ पुरींवाराणसींश्रेष्ठांकथंकिलशापिष्यति ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ सत्यमेतत्त्वयापृष्टंच्छि कथयामिमुनेश्शृणु ॥ तस्यव्यासस्यचरितंभविष्यन्त्वयिपृच्छति ॥ ३ ॥ यदारभ्यमुनेस्तस्यनन्दीस्तम्भितवान्भुजम् ॥ तदारभ्यमहेशानंसंस्तौतिपरमादृतः ॥ ४ ॥ काश्यान्तीर्थान्यनेकानिकाश्यांलिङ्गान्यनेकशः ॥ तथापिसेव्योविश्वे शःस्नातव्यामणिकर्णिका ॥ ५ ॥ लिङ्गेष्वेकोहिविश्वेशस्तीर्थेषुमणिकर्णिका ॥ इतिसंव्याहरन्व्यासस्तद्वयम्बहुमन्य ते ॥ ६ ॥ त्यक्त्वासबहुवाग्जालंप्रातःस्नात्वादिनेदिने ॥ निर्वाणमण्डपेवक्तिमहिमानंमहेशितुः ॥ ७ ॥ शिष्याणाम्पुरतो नित्यंक्षेत्रस्यमहिमामहान् ॥ व्याख्यायतेमुदातेनव्यासेनपरमर्षिणा ॥ ८ ॥ अत्रयत्क्रियतेक्षेत्रेशुभंवाऽशुभमेववा ॥ संवर्तेपिनतस्यान्तस्तस्माच्छ्रेयःसमाचरेत् ॥ ९ ॥ क्षेत्रसिद्धिंसमीहन्तेयेचात्रकृतिनोजनाः ॥ यावज्जीवंनतैस्त्याज्या

लिंगों में से एक विश्वनाथही मुख्यहैं व तीर्थों में मणिकर्णिका मुख्यहै ऐसा भलीभांति कहतेहुये व्यासजी उन दोनोंको बहुत मानतेहैं ॥ ६ ॥ और वह दिनदिनमें प्रातः काल स्नानकर बहुते वचन समूहको त्यागकर मुक्ति मण्डपमें महेशकी महिमाको कहते हैं ॥ ७ ॥ व उन महर्षि व्यासजीसे शिष्यो के आगे नित्यही क्षेत्रकी बड़ी भारी महिमा आनन्दसे व्याख्यान की जाती है ॥ ८ ॥ कि इस क्षेत्रमें जो शुभ व अशुभ भी कर्म याने पुण्य और पाप कियाजाताहै उसका प्रलयमें भी नहीं अन्तहै उस कारण पुण्य कर्मकोही भलीभांति सब ओरसे करे ॥ ९ ॥ जे पुण्यवान् जन यहां क्षेत्रकी सिद्धिको चाहते हैं उन सुबुद्धिमानोंको जीवन पर्य्यन्त मणिकर्णिका न त्यागना चा-

हिये ॥ १० ॥ व प्रतिदिन चक्रपुष्करिणी तीर्थ में नहाना चाहिये व फूल फल पत्र और जलसे सदैव विश्वनाथकी पूजाकरना चाहिये ॥ ११ ॥ कुछेक थोड़ाभी अपने वर्ण व आश्रमका धर्म त्यागने योग्य नहीं है और प्रतिदिन बारबार श्रद्धासे क्षेत्रकीमहिमा सुनने योग्यहै ॥ १२ ॥ व यहां विघ्नोंको सब ओरसे निवारने चाहतेहुये जन करके यथाशक्ति सुगुप्तसे दानदेने योग्य हैं और अन्न भी देनेयोग्यहैं ॥ १३ ॥ व यहांसुबुद्धिमान् को सदा परोपकार करना चाहिये और पर्वोंमें विशेषसे स्नान व दानादि क्रियायें करना चाहिये ॥ १४ ॥ व बड़े उत्सवपूर्वक विशेष पूजा करना चाहिये तथा अधिक यात्रा करना चाहिये व क्षेत्रदेवताओं की भलीभांति पूजा करना चा-

सुधीभिर्मणिकर्णिका ॥ १० ॥ चक्रपुष्करिणीतीर्थेस्नातव्यंप्रतिवासरम् ॥ पुष्पैःपत्रैःफलैस्तोयैरर्च्योविश्वेश्वरःसदा ॥ ११ ॥ स्ववर्णाश्रमधर्मश्चत्यक्तव्योनमनागपि ॥ प्रत्यहंक्षेत्रमहिमाश्रोतव्यःश्रद्धयासकृत् ॥ १२ ॥ यथाशक्तिचदेयानि दानान्यत्रसुगुप्तवत् ॥ अन्नान्यपिचदेयानिविघ्नान्परिजिहीर्षुणा ॥ १३ ॥ परोपकरणञ्चात्रकर्तव्यंसुधियासदा ॥ पर्वस्व पिविशेषेणस्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ १४ ॥ विशेषपूजाकर्तव्यासुमहोत्सवपूर्वकम् ॥ कार्यास्तथाधिकायात्राःसमर्च्याः क्षेत्रदेवताः ॥ १५ ॥ अत्रमर्मनवक्तव्यंसुधियाकस्यचित्कचित् ॥ परदारपरद्रव्यपरापकरणन्त्यजेत् ॥ १६ ॥ परापवा दोनोवाच्यःपरेर्ष्यांनचकारयेत् ॥ असत्यंनैववक्तव्यम्प्राणैःकण्ठगतैरपि ॥ १७ ॥ अत्रत्यजन्तुरक्षार्थमसत्यमपिभा षयेत् ॥ येनकेनप्रकारेणशुभेनाप्यशुभेनवा ॥ १८ ॥ अत्रत्यःप्राणिमात्रोपिरक्षणीयःप्रयत्नतः ॥ एकस्मिन्रक्षितेजन्ता वत्रकाश्यांप्रयत्नतः ॥ त्रैलोक्यरक्षणात्पुण्यंयत्स्यात्तत्स्यान्नसंशयः ॥ १९ ॥ येवसन्तिसदाकाश्यांक्षेत्रसंन्यासकारि

हिये ॥ १५ ॥ व यहां सुबुद्धिमान्को किसीका मर्म वचन कहीं नहीं कहना चाहिये व परस्त्री परधन और पराये अपकारको त्यागकरे ॥ १६ ॥ व पराया अपवाद बतलाने योग्य नहीं है और पराई ईर्ष्या याने अन्यकी उन्नति के न सहने को न करे या करावे व कण्ठगत प्राणों से भी असत्य बोलने योग्य नहीं है ॥ १७ ॥ व शुभ अथवा अ- शुभ भी जिसी किसी प्रकार से यहां के जन्तुओंकी रक्षाके लिये असत्यभी बोले या बुलावे ॥ १८ ॥ और यहां उपजाहुआ प्राणीमात्र बड़े यत्न से रक्षाकरने योग्य है क्योंकि इस काशी में प्रयत्नसे एक जन्तुके रक्षित होतेही वह पुण्य होवे है जो कि त्रिलोककी रक्षासे होवेहै इसमें संशय नहीं है ॥ १९ ॥ जे क्षेत्र संन्यासकारी लोग.

काशी में सदा बसते हैं वे रुद्र मानने योग्यहैं और जीवन्मुक्तहैं संशय नहींहै ॥ २० ॥ वे पूजने योग्यहैं वे नमस्कार करने योग्यहैं और वे बड़े यत्नसे सन्तुष्ट करने योग्य हैं क्योंकि उनके परितुष्ट होतेही विश्वेश्वरजी आपही निश्चयसे सन्तुष्ट होवे हैं ॥ २१ ॥ व जे मनुष्य काशीमें बसते हैं उनके योगका कल्याण विश्वेश्वरके आनन्दके लिये दूरस्थ भी सज्जनों से करने योग्यहै ॥ २२ ॥ व यहांके निवासियों को इन्द्रियों का पसरना या बिचरना निवारना चाहिये और यहां मनकी चंचलता भी बड़े यत्नसे बराना चाहिये ॥ २३ ॥ व मरणकीही सब ओरसे आकांक्षा न करे फिर मोक्ष भी नहीं चाहने योग्यहै और सुबुद्धिमान्को देह सुखानेका उपाय नहीं करना चाहिये ॥२४॥

णः ॥ तएवरुद्रामन्तव्याजीवन्मुक्तानसंशयः ॥ २० ॥ तेपूज्यास्तेनमस्कार्यास्तेसन्तोष्याःप्रयत्नतः ॥ तेषुवैपरितुष्टेषु तुष्येद्विश्वेश्वरःस्वयम् ॥ २१ ॥ काश्यांवसन्तियेमर्त्यादूरस्थैरपिसन्नरैः ॥ योगक्षेमोविधातव्यस्तेषांविश्वेशितुर्मुदे ॥ २२ ॥ प्रसरस्त्विन्द्रियाणाञ्चनिवार्योत्रनिवासिभिः ॥ मनसोपिहिचाञ्चल्यमिहवार्यम्प्रयत्नतः ॥ २३ ॥ मरणंनाभिकांक्षेद्धिकांक्ष्योमोक्षोपिनोपुनः ॥ शरीरशोषणोपायःकर्तव्यःसुधियानहि ॥ २४ ॥ शरीरसौष्ठवंकांक्ष्यंव्रतस्नानादिसिद्धये ॥ आयुर्बह्वत्रवैचिन्त्यंमहाफलसमृद्धये ॥ २५ ॥ आत्मरक्षात्रकर्तव्यामहाश्रेयोभिवृद्धये ॥ अत्रात्मत्यजनोपायंमनसापिनचिन्तयेत् ॥ २६ ॥ एकस्मिन्नपियच्चाह्निकाश्यांश्रेयोभिलभ्यते ॥ नतुवर्षशतेनापितदन्यत्राप्यतेक्वचित् ॥ २७ ॥ अन्यत्रयोगाभ्यसनाद्यावज्जन्मयदर्ज्यते ॥ वाराणस्यान्तदेकेनप्राणायामेनलभ्यते ॥ २८ ॥ सर्वतीर्थावगाहाच्चयाव

व्रत व स्नानादिकोंकी सिद्धिके लिये देहकी पटुताकी आकांक्षा करना चाहिये और बड़े फलोंकी समृद्धि के लिये यहां बहुत आयुकी चिन्तना करनाही चाहिये ॥ २५ ॥ व महापुण्यकी सब ओरसे वृद्धिके लिये यहां देहकी रक्षा करना चाहिये व यहां देहत्यागके उपायको मनसे भी न बिचारे याने अनशनादि व्रतोंसे देहत्यागकोकरे आत्मघातसे नहीं ॥ २६ ॥ व एक दिनमें भी जो कल्याण या पुण्य काशीमे मिलताहै वह अन्यत्र कहीं सैकड़ों बर्षोंसे भी नहीं मिलताहै ॥ २७ ॥ जोकि अन्यत्र जन्म पर्य्यन्त योगाभ्याससे बटोराजाताहै वह काशीमें एक प्राणायाम से पायाजाता है ॥ २८ ॥ व जन्म पर्य्यन्त सब तीर्थों में नहाने से जो धर्म कमाया जाताहै वह काशीमें मणिकर्णिका

के एक मज्जन से मिलने योग्यहै ॥ २९ ॥ और जन्म पर्य्यन्त सब लिंगोंकी पूजासे जो फल बटोराजाताहै वह श्रद्धासे एक बार विश्वनाथजीको सामने से पूजकर मिलताहै ॥ ३० ॥ व हजारों जन्मों से जो पुण्य अर्जित है उस पुण्यके बदलने से श्रीविश्वेश्वरका दर्शन होवेहै ॥ ३१ ॥ व अच्छेप्रकार से दियेहुये करोड़ गौओं के महा दानसे जो फलहै वह विश्वेश्वरके दर्शन से भलीभांति प्राप्त होवे है ॥ ३२ ॥ व महर्षियोंने सोलह महा दानों से जो पुण्य कहाहै वह पुण्य विश्वेश्वर में फूल चढ़ाने से होवेहै ॥ ३३ ॥ व जो फल सम्पूर्ण अश्वमेधादि यज्ञों से प्राप्त कियाजाता है वह विश्वेश्वरमें पंचामृतके नहवाने से मिलताहै ॥ ३४ ॥ व भलीभांति पूजेहुए हजारों वाज-

ज्जन्मयदर्ज्यते ॥ तदानन्दवनेप्राप्यंमणिकर्ण्येकमज्जनात् ॥ २९ ॥ सर्वलिङ्गार्चनात्पुण्यंयावज्जन्मयदर्ज्यते ॥ सकृद्विश्वेशमभ्यर्च्यश्रद्धयातदवाप्यते ॥ ३० ॥ यज्जन्मनांसहस्रेणनिर्मलम्पुण्यमर्जितम् ॥ तत्पुण्यपरिवर्तेनभवेद्विश्वेशदर्शनम् ॥ ३१ ॥ गवांकोटिप्रदानेनसम्यग्दत्तेनयत्फलम् ॥ तत्फलंसम्यगाप्येतविश्वेश्वरविलोकनात् ॥ ३२ ॥ यत्षोडशमहादानैःपुण्यम्प्रोक्तम्महर्षिभिः ॥ तत्पुण्यञ्जायतेपुंसांविश्वेशेपुष्पदानतः ॥ ३३ ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्यत्फलम्प्राप्यतेखिलैः ॥ पञ्चामृतानांस्नपनाद्विश्वेशेतदवाप्यते ॥ ३४ ॥ वाजपेयसहस्रेणसम्यगिष्टेनयत्फलम् ॥ सकृन्महार्हैर्नैवेद्यैर्विश्वेशेतच्छताधिकम् ॥ ३५ ॥ ध्वजातपत्रञ्चमरंविश्वेशेयःसमर्पयेत् ॥ एकच्छत्रंसवैराज्यंप्राप्नुयाद्वसुधातले ॥ ३६ ॥ महापूजोपकरणंयोर्पयेद्विश्वभर्तरि ॥ नतंसम्पत्तिसम्भाराविमुञ्चन्तीहकुत्रचित ॥ ३७ ॥ सर्वर्तुकुसुमाढ्याञ्चयःकुर्यात्पुष्पवाटिकाम् ॥ तदङ्गणेकल्पवृक्षाश्छायांकुर्वन्तिशीतलाम् ॥ ३८ ॥ यःक्षीरस्नपनार्थंवैविश्वेशेधेनु

पेय यज्ञों से जो फलहै उससे सैकड़ों गुना अधिक फल एक बार विश्वनाथजी में महामोलके योग्य उत्तम नैवेद्यों से होताहै ॥ ३५ ॥ जोकि श्रीविश्वनाथजी में ध्वजा छत्र और चमरको समर्पितकरे वह भूतलमें एक छत्र राज्यको निश्चयसे पावे ॥ ३६ ॥ व जोकि श्रीविश्वनाथजी में महापूजाके उपकरण याने पूजाकी सामग्री पात्रादिकों को देवे उसको इसलोकमें व कहीं भी सम्पत्तियों के समूह नहीं छोड़ते हैं ॥ ३७ ॥ व जो श्रीविश्वनाथजीके लिये सब ऋतुवों में फूलों से युक्त फुलवाईको करे उसके

घरमें कल्पवृक्ष शीतलछायाको करते हैं ॥ ३८ ॥ व जो दूधसे नहवाने के अर्थ विश्वेश्वरजी में गऊको समर्पे उसके पितर क्षीरसागरके तीरमें निवास करेहैं ॥ ३९ ॥ व जो श्रीविश्वनाथजीके राजमन्दिरमें चूनाकारी और चित्रोंको भी करावे उसका घर कैलासमें चित्रितहोवे ॥ ४० ॥ व जोकि इस काशीमें एक एक गन्तीके क्रमसे ब्राह्मण व संन्यासी भी वैसेही शिव योगियों को निश्चय से भोजन करावे ॥ ४१ ॥ उसका करोड़ ब्रह्मभोजका फल श्रद्धासे होताहै इसमें संशय नहींहै व यहां तपस्या बहुत करना चाहिये और यहां दानको अधिकतासे देवे या दिलावे ॥ ४२ ॥ व यहां स्नान, होम और जपादिकों से श्रीविश्वनाथजी सन्तुष्ट करने योग्यहैं व अन्यत्र मनुष्यों करके

मर्पयेत् ॥ क्षीरार्णवतटेतस्यनिवसेयुःपितामहाः ॥ ३९ ॥ विश्वेशराजसदनेयःसुधाञ्चित्रमेववा ॥ कारयेत्तस्यभवनं कैलासेचित्रितम्भवेत् ॥ ४० ॥ ब्राह्मणान्यतिनोवापितथैवशिवयोगिनः ॥ भोजयेद्योत्रवैकाश्यामेकैकगणनाक्रमात् ॥ ४१ ॥ कोटिभोज्यफलन्तस्यश्रद्धयानात्रसंशयः ॥ तपस्त्वत्रप्रकर्तव्यंदानमत्रप्रदापयेत् ॥ ४२ ॥ विश्वेशस्तोषणीयोत्रस्नानहोमजपादिभिः ॥ अन्यत्रकोटिजप्येनयत्फलम्प्राप्यतेनरैः ॥ अष्टोत्तरशतञ्जप्त्वातदत्रसमवाप्यते ॥४३॥ कोटिहोमेनयत्प्रोक्तंफलमन्यत्रसूरिभिः ॥ अष्टोत्तराहुतिशतात्तदत्रानन्दकानने ॥ ४४ ॥ योजपेद्रुद्रसूक्तानिकाश्यांविश्वेशसन्निधौ ॥ पारायणेनवेदानांसर्वेषांफलमाप्यते ॥ ४५ ॥ तस्यपुण्यंनजानामिचिन्तितेचाक्षरेपरे ॥ काश्यांनित्यं प्रवस्तव्यंसेव्योत्तरवहासदा ॥ ४६ ॥ आपद्यपिहिघोरायांकाशीत्याज्यानकुत्रचित् ॥ यतःसर्वापदांहर्तात्राताविश्वपतिः

कोटि जपसे जो फल पायाजाताहै वह यहां अष्टोत्तर शत जपकर भलीभांति मिलताहै ॥ ४३ ॥ व अन्यत्र पण्डितोंने कोटिहोम से जो फल कहाहै वह इस आनन्दवन में आठ अधिक सौ आहुतियों से होताहै ॥ ४४ ॥ व जो कोई श्रीविश्वनाथजी के समीपमें रुद्रसूक्तोंको जपे याने पाठकरे उसको सब वेदों के पारायण से फल मिलता है ॥ ४५ ॥ और सबसे परे नित्य महादेवजी या श्रेष्ठ अक्षर ॐकारकी चिन्तना करतेही उसके पुण्य फलको मैं नहीं जानताहूं याने उसका अकथनीय अनन्त फलहै व काशीमें नित्यही बहुत बसना चाहिये और उत्तर बाहिनी गंगा सदा सेवने योग्य हैं ॥ ४६ ॥ व घोर विपत्तिमें भी काशी कभी या कहीं नहीं त्यागना चाहिये जिससे

सब विपत्तियों के हर्त्ता व रक्षाकर्त्ता समर्थ विश्वनाथजी वहांही विराजमान हैं ॥ ४७ ॥ और जिस कारण काशीमें कियाहुआ कर्म महत्त्वके लिये प्रकल्पित होताहै उस लिये स्नान दान और जपादिकों से दिन को अवन्ध्य याने सफलकरे ॥ ४८ ॥ व कृच्छ्र चान्द्रायणादिक व्रत बड़े यत्नसे करना चाहिये उसप्रकारसे यहां इन्द्रियों के विकार कभी नहीं बाधा करते हैं ॥ ४९ ॥ और जो यहां देहधारियोंकी इन्द्रियां विकारको करे तो इस काशीमें बसनेकी संसिद्धि विघ्नों से नहीं मिलती है ॥ ५० ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे कार्त्तिकेयजी ! श्रीवेदव्यासजी इन्द्रियोंकी विशुद्धिके लिये जिन कृच्छ्र व चान्द्रायणादि व्रतोंको कहेंगे उनके स्वरूपको आप सामने से कहो ॥ ५१ ॥

प्रभुः ॥ ४७॥ अवन्ध्यन्दिवसंकुर्यात्स्नानदानजपादिभिः ॥ यतःकाश्यांकृतंकर्ममहत्त्वायप्रकल्पते ॥ ४८ ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिकर्तव्यानिप्रयत्नतः ॥ तथेन्द्रियविकाराश्चनबाधन्तेत्रकर्हिचित ॥ ४९॥ यदीन्द्रियाणिकुर्वन्तिविक्रियामिहदेहिनाम् ॥ तदात्रवाससंसिद्धिर्विघ्नैर्भ्योनैवलभ्यते ॥ ५० ॥ अगस्त्यउवाच ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिव्यासोवक्ष्यतियानिवै ॥ तेषांस्वरूपमाख्याहिस्कन्देन्द्रियविशुद्धये ॥ ५१ ॥ स्कन्दउवाच ॥ कथयामिमहाबुद्धेकृच्छ्रादीनितवाग्रतः ॥ यानिकृत्वात्रमनुजोदेहशुद्धिंलभेत्पराम् ॥ ५२ ॥ एकभक्तेननक्तेनतथैवायाचितेनच ॥ उपवासेनचैकेनपादकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ॥ ५३ ॥ वटोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकम् ॥ प्रत्येकंप्रत्यहम्पीतंपर्णकृच्छ्रःप्रकीर्तितः ॥ ५४॥ पिण्याकघृततक्राम्बुसक्तूनाम्प्रतिवासरम् ॥ एकैकमुपवासश्चकृच्छ्रःसौम्यःप्रकीर्तितः ॥ ५५ ॥ हविषाप्रातरश्नीतहविष्यायमेवच ॥ हविषायाचितंत्रींस्तुसोपवासस्त्र्यहंवसेत ॥ ५६ ॥ एकैकंग्रासमश्नीयादहानित्रीणिपूर्ववत् ॥ त्र्यहञ्चोप

श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाबुद्धे ! मैं तुम्हारे आगे कृच्छ्रादि व्रतोंको कहताहूं जिनकोकर मनुष्य यहां श्रेष्ठ देहशुद्धिको पावेहैं ॥ ५२ ॥ रात्रिसे एकबार भोजन से वैसेही अयाचितसे और एक उपाससे पादकृच्छ्र कहागयाहै ॥ ५३ ॥ व जब बरगद गूलर कमल बिल्वपत्र और कुशाका जल प्रत्येक याने एक एक क्रमसे प्रतिदिन मे पियाहुआहै तब पर्णकृच्छ्र कहागयाहै ॥ ५४ ॥ व प्रतिदिन क्रमसे पीना घी माठा जल और सेत्तू इनमे से एक एक भोजन व एक उपवास यह कृच्छ्र सौम्य व्रत कहाना है ॥ ५५ ॥ व तीन दिन प्रातःकालमें हविको (जाउर) भोजनकरे और वैसेही तीन दिन सायंकालमे हविको भोजनकरे और तीनादिन अयाचित हविष्यको भोजनकरे

और तीनदिन उपवास समेत होकर बसे ॥ ५६ ॥ व अतिकृच्छ्र व्रतको करताहुआ द्विज पहलेकी नाईं प्रातःकालादिकोंमें तीन तीन दिन एक एक कवलको भलीभांति भोजनकरे और अन्तके तीन दिनोंमें उपासकरे ॥ ५७ ॥ व इक्कीस दिन दूध पीने से कृच्छ्रातिकृच्छ्र व्रतहै व बारह दिन उपास करने से पराकव्रत कहागयाहै ॥ ५८ ॥ और प्राजापत्य व्रतको करताहुआ द्विज तीन दिन प्रातःकाल व तीन दिन सायंकाल में भोजनकरे और तीन दिन अयाचितको भोजनकरे व अन्तके तीन दिनोंमें उपास करे ॥ ५९ ॥ व एक दिन गोमूत्र गोबर दूध दही घी और कुशका पानी इनको मिलाकर पीवे व एक दिन उपासकरे यह दो दिनमें कृच्छ्रसान्तपन व्रत कहागयाहै॥६०॥

वसेदन्त्यमतिकृच्छ्रञ्चरन्द्विजः ॥ ५७ ॥ कृच्छ्रातिकृच्छ्रम्पयसादिवसानेकविंशतिः ॥ द्वादशाहोपवासेनपराकःपरिकीर्त्तितः ॥ ५८ ॥ त्र्यहम्प्रातस्त्र्यहंसायंत्र्यहमद्यादयाचितम् ॥ त्र्यहञ्चोपवसेदन्त्यंप्राजापत्यञ्चरन्द्विजः ॥ ५९ ॥ गोमूत्रंगोमयंक्षीरंदधिसर्पिःकुशोदकम् ॥ एकरात्रोपवासश्चकृच्छ्रःसान्तपनःस्मृतः ॥ ६० ॥ पृथक्सान्तपनद्रव्यैःषडहःसोपवासकः ॥ सप्ताहेनतुकृच्छ्रोयंमहासान्तपनःस्मृतः ॥ ६१ ॥ तप्तकृच्छ्रञ्चरन्विप्रोजलक्षीरघृतानिलान् ॥ एतांस्त्र्यहम्पिबेदुष्णान्सकृत्स्नायीसमाहितः ॥ ६२ ॥ त्र्यहमुष्णाःपिबेदापस्त्र्यहमुष्णम्पयःपिबेत् ॥ त्र्यहमुष्णंघृतम्प्राश्यवायुभक्षोदिनत्रयम् ॥६३॥ पलमेकम्पयःपीत्वासर्पिषश्चपलद्वयम् ॥ पलमेकन्तुतोयस्यतप्तकृच्छ्रउदाहृतः॥६४॥ गोमूत्रेणसमायुक्तंयावकंयःप्रयोजयेत् ॥ कृच्छ्रमेकाह्निकम्प्रोक्तंशरीरस्यविशोधनम् ॥६५॥ हस्तावुत्तानतःकृत्वादिव

व अलग अलग सांतपनके गोमूत्रादि द्रव्यों से जे छह दिनहैं वे उपवाससमेत होवें याने क्रमसे एक एकदिन गोमूत्र गोबरका रस गोदुग्ध गोदधि गोघृत और कुशका जल पीवे और सातयें दिनमें उपासकरे यह सात दिनसे कृच्छ्रमहासान्तपन व्रत कहाताहै ॥ ६१ ॥ व तप्तजलदूध और घी व वायु इनको तीन तीन दिन पीवे इस बारह दिनके तप्तकृच्छ्र व्रतको करताहुआ एकबार नहानेवाला ब्राह्मण सावधान होवे ॥ ६२॥ तीनदिन तप्तजलको पीवे तीनदिन तप्तदुग्धको पीवे व तीनदिन तप्तघृतको पीकर फिर तीनदिन वायुभक्ष होवे ॥ ६३ ॥ एकटका पानी पीवे एकटका दूध पीवे और दोटकाभर घृतको पीवे यह तप्तकृच्छ्रमें विधान कहागयाहै ॥ ६४ ॥ व जोकि गोमूत्रसमेत यवान्नको भोजनकरे उसके शरीरके शोधनेवाला यह एक दिनका कृच्छ्र व्रत कहागयाहै ॥ ६५ ॥ व हाथोंको उतानकर दिनमें वायुभोजी होकर रात्रिमें जलके बीच

टिकाहुआ प्रातःकालके प्राप्तकरनेवाला होवे यह व्रत प्राजापत्यके समानहै ॥ ६६ ॥ व तीन समय में नहाताहुआ कृष्णपक्ष में क्रमसे एक एक कवलको घटावे और शु-
क्लपक्षमें बढ़ावे यह चान्द्रायणव्रत कहाताहै ॥ ६७ ॥ अथवा उजेले पाखमें एक एककवलको क्रमसे बढ़ावे व काले पाखमें घटावे और अमावस में कुछभी न खावे यह
चांद्रायणकी विधिहै ॥६८॥ व सावधान ब्राह्मण चार पिंडों (कवलों) को प्रातःकालमें खावे और चार पिंडोंको सूर्य्य के अस्तमितहोतेही याने सायंकालमें खावे यह शिशु-
चांद्रायण याने ब्रह्मचारिचांद्रायण कहाताहै ॥ ६९ ॥ व मनके रोकनेवाला जन मध्यदिनके टिकतेही याने दुपहरमें हविष्यके आठ आठ पिण्डोंको रोज खावे यह संन्यासि-

सम्मारुताशनः ॥ रात्रौजलेस्थितोऽव्युष्टःप्राजापत्येनतत्समम् ॥ ६६ ॥ एकैकंह्रासयेद्ग्रासंकृष्णेशुक्लेचवर्धयेत् ॥ उप
स्पृशंस्त्रिषवणमेतच्चान्द्रायणंस्मृतम् ॥ ६७ ॥ एकैकंवर्धयेद्ग्रासंशुक्लेकृष्णेचह्रासयेत ॥ भुञ्जीतदर्शेनोकिञ्चिदेषचा
न्द्रायणोविधिः ॥ ६८ ॥ चतुरःप्रातरश्नीयात्पिण्डान्विप्रःसमाहितः ॥ चतुरोस्तमितेसूर्येशिशुचान्द्रायणंस्मृतम् ॥६९॥
अष्टावष्टौसमश्नीयात्पिण्डान्मध्यन्दिनेस्थिते ॥ नियतात्माहविष्यस्ययतिचान्द्रायणंस्मृतम् ॥ ७० ॥ यथाकथञ्चि
त्पिण्डानांतिस्रोशीतीःसमाहितः ॥ मासेनाश्नन्हविष्यस्यचन्द्रस्यैतिसलोकताम् ॥ ७१ ॥ अद्भिर्गात्राणिशुध्यन्तिम
नःसत्येनशुध्यति ॥ विद्यातपोभ्याम्भूतात्माबुद्धिर्ज्ञानेनशुध्यति ॥ ७२ ॥ तच्चज्ञानम्भवेत्पुंसांसम्यक्काशीनिषेवणात् ॥
काशीनिषेवणेनस्याद्विश्वेशकरुणोदयः ॥ ७३ ॥ ततोमहोदयावाप्तिःकर्मनिर्मूलनक्षमा ॥ अतःकाश्याम्प्रयत्नेनस्ना
नन्दानन्तपोजपः ॥ ७४ ॥ व्रतंपुराणश्रवणंस्मृत्युक्ताध्वनिषेवणम् ॥ प्रतिक्षणंप्रतिदिनंविश्वेशपदचिन्तनम् ॥ ७५ ॥

चांद्रायण कहा गयाहै ॥७०॥ जिस किसी भांति एक मासमें हविष्यान्नके पिंडोंकी तीन अशीति याने दोसौचालीस कवलोंको खाताहुआ एकाग्रचित्तवाला जन चंद्रमाकी स-
लोकताको प्राप्त होताहै ॥ ७१ ॥ देहके अंग पानीसे शुद्ध होते हैं व मन सत्यसे शुद्धहोताहै व विद्या और तपस्या से अहंकार शुद्धहोताहै व बुद्धि ज्ञानसे शुद्धहोती है ॥
७२ ॥ और वह मनुष्योंका ज्ञान भलीभांति काशी सेवनसे होवेहै व काशीकी सेवासे श्रीविश्वनाथजी की दया का उदय होवेहै ॥ ७३ ॥ और उससे कर्मों की जड़ उखा-
ड़ने को समर्थ महोदयकी प्राप्ति होती है इसलिये काशी में बड़े यत्न से स्नान दान तप जप ॥ ७४ ॥ व व्रत व पुराणों का सुनना व स्मृतियो से कही गलीको सेवना व

प्रतिदिन प्रतिक्षण श्रीविश्वनाथजी के चरणारविन्दों का चिन्तन ॥ ७५ ॥ व त्रिकाल लिंगपूजा व लिंगकी प्रतिष्ठा भी व साधुओं के साथ सम्भाषण और शिव शिव ऐसा जपना ॥ ७६ ॥ व अतिथिका सत्कार भी व तीर्थनिवासियों से मित्रता व आस्तिक्यबुद्धि व विनय व मान और अपमानमें समान ज्ञान ॥ ७७ ॥ व अकामिता (किसी वस्तुकी न चाहना) व उद्धतपनाका न होना व वैराग्य व अहिंसा व अप्रतिग्रह वृत्ति (विना दानकी वृत्ति) और दयारूपिणी बुद्धि ॥ ७८ ॥ व अदम्भिता अमत्सरता और विना मांगे धनका आगम व अलोभित्व व अनालस्य व अपरुषता और अदीनता ॥ ७९ ॥ इत्यादि अच्छी प्रवृत्ति क्षेत्रवासीको करना चाहिये इसभांति वह व्यासजी

लिङ्गार्चनान्त्रकालञ्चलिङ्गस्यापिप्रतिष्ठितिः ॥ साधुभिःसहसंलापोजल्पःशिवशिवेतिच ॥ ७६ ॥ अतिथेश्चापिसत्कारोमैत्रीतीर्थनिवासिभिः ॥ आस्तिक्यबुद्धिर्विनयोमानामानसमानधीः ॥ ७७ ॥ अकामितात्वनौद्धत्यमरागित्वमहिंसनम् ॥ अप्रतिग्रहवृत्तिश्चमतिश्चानुग्रहात्मिका ॥ ७८ ॥ अदम्भितात्वमात्सर्यमप्रार्थितधनागमः ॥ अलोभित्वमनालस्यमपारुष्यमदीनता ॥ ७९ ॥ इत्यादिसत्प्रवृत्तिश्चकर्तव्याक्षेत्रवासिना ॥ प्रत्यहंचेतिशिष्येभ्यःसधर्ममुपदेक्ष्यति ॥ ८० ॥ नित्यंत्रिषवणस्नायीनित्यंभिक्षाकृताशनः ॥ लिङ्गपूजार्चकोनित्यमित्थंव्यासोवसेत्पुरा ॥ ८१ ॥ एकदातस्यजिज्ञासांकर्तुंदेवींहरोवदत् ॥ अद्यभिक्षाटनंप्राप्तेव्यासेपरमधार्मिके ॥ ८२ ॥ अपिसर्वगतेक्वापिभिक्षांमायच्छसुन्दरि ॥ तथेत्युक्त्वाभवानीसाभवंभवनिवारणम् ॥ ८३ ॥ नमस्कृत्यप्रतिगृहंतस्यभिक्षांन्यषेधयत् ॥ समुनिःसहितःशिष्यैर्भि

शिष्यों के लिये प्रतिदिन धर्मको उपदेश करेंगे ॥ ८० ॥ व नित्यही त्रिकाल स्नानकर्ता नित्यही भिक्षाको भोजन कियेहुये और नित्यही लिंगके रुद्रियपाठ से पूजक ऐसे व्यासजी पहले बसेहैं याने बसेंगे ॥ ८१ ॥ एक समय उनकी जिज्ञासा (जाननेकी इच्छा) को करने के लिये महादेवजीने देवीजी से कहा कि आज परमधार्मिक व्यासमुनिके भिक्षाटनको प्राप्त होतेही ॥ ८२ ॥ और सर्वत्र गयेहुये भी होतेही हे सुन्दरि ! तुम कहीं भी भिक्षाको मतदो तब वैसेही होवे ऐसा कहकर पार्वतीजीने संसार के निवारणवाले महादेवजीके ॥ ८३ ॥ नमस्कारकर प्रतिघरमे उनकी भिक्षाको वर्जित करादिया और शिष्यों से सहित वह मुनि भिक्षाको न पाकर पीड़ित या संतप्त से

होगये ॥ ८४ ॥ व वेलाका अतिक्रम (बीतना) देखकर उस पुरीमें फिर भ्रमतेभये और घर घरमें अन्य सब भिक्षुकोंको भिक्षा सब ओरसे मिली ॥ ८५ ॥ परन्तु शिष्यों समेत उन मुनिने उस दिनमें कहीं भी भिक्षाको न पाया अनन्तर विद्यार्थियों के साथ सायंकालके सन्ध्यावन्दनादि कर्मको कर ॥ ८६ ॥ व उपासमें परायण होकर दिनों रात वैसेहीहुये उसके बाद अन्य दिनमे मध्याह्नके विधानको कर व्यासमुनि ॥ ८७ ॥ भिक्षाटन करनेको पुरीके सब ओरमें गये और शिष्योंसमेत वह प्रतिमन्दिरों में सर्वत्र बार बार सब ओरसे भ्रमतेभये ॥ ८८ ॥ किन्तु जैसे भाग्यसे हीन जन धनको नहीं पाताहै वैसेही सब ओर घूमतेहुये परिश्रमसमेत याने थकेहुये व्यासजीने कहीं भी

क्षामप्राप्यदूनवत् ॥ ८४ ॥ वेलातिक्रममालोक्यपुनर्बभ्रामतांपुरीम् ॥ गृहेगृहेपरिप्राप्ताभिक्षान्यैःसर्वभिक्षुकैः ॥ ८५ ॥ तदह्निनालभद्भिक्षांसशिष्यःसमुनिःक्वचित् ॥ अथसायंतनंकर्मकृत्वाछात्रैःसमन्वितः ॥ ८६ ॥ उपोषणपरोभूत्वातथैवा सीदहर्निशम् ॥ अथान्येद्युर्मुनिर्व्यासःकृत्वामाध्याह्निकंविधिम् ॥ ८७ ॥ ययौभिक्षाटनंकर्तुंसशिष्यःपरितःपुरीम् ॥ सर्वत्रसपरिभ्रान्तःप्रतिसौधंमुहुर्मुहुः ॥ ८८ ॥ नकापिलब्धवान्भिक्षाम्भाग्यहीनोधनंयथा ॥ अथचिन्तितवान्व्यासःप रिश्रान्तःपरिभ्रमन् ॥ ८९ ॥ कोहेतुर्यन्नलभ्येतभिक्षायत्नेनरक्षिता ॥ अन्तेवासिनआहूयव्यासःपप्रच्छचाखिलान् ॥ ९० ॥ भवद्भिरपिनोभिक्षापरिप्राप्तेतिगम्यते ॥ किमत्रपुरिसंवृत्तंद्वित्रायातममाज्ञया ॥ ९१ ॥ द्वितीयेह्न्यपियद्भिक्षान लभ्येतातियत्नतः ॥ अनिष्टंकिञ्चिदत्रासीन्महागुरुनिपातजम् ॥ ९२ ॥ अन्नक्षयोवासर्वस्यांनगर्यामभवत्क्षणात् ॥ राज दण्डोथयुगपज्जातःसर्वपुरौकसाम् ॥ ९३ ॥ अथवावारिताभिक्षाकेनाप्यस्मासुचेर्ष्यया ॥ पुरौकसोभवन्दुस्थास्तूपस

भिक्षाको न पाया अनन्तर चिन्तनाकिया ॥ ८९ ॥ कि क्या कारण है जिससे आज यत्नसे रक्षितहुई भिक्षा नहीं मिलेहै ऐसा विचारकर फिर व्यासजी ने सब शिष्यों को बुलाकर पूंछा ॥ ९० ॥ कि ऐसा जान पड़ताहै कि आप लोगोंको भी भिक्षा सब ओरसे नहीं प्राप्तहुई है इस पुरी में क्या भलीभांति वृत्तान्तहै तुम दो तीन जने मेरी आज्ञा से जावो और उस कारणको जान आवो ॥ ९१ ॥ कि जिससे दूसरे दिनमें भी बडे यत्नसे भिक्षा नहीं मिलैहै क्या महागुरु निपातसे उत्पन्न कोई अनिष्ट यहां हुआहै ॥ ९२ ॥ व क्षणभर से सब नगरीमें अन्नका क्षय होगयाहै अथवा एक साथही सब पुरवासियोका राजदण्ड हुआहै ॥ ९३ ॥ अथवा किसीने हम लोगों में ईर्षा से भिक्षाको

बन्द करादियाहै व किसी भी उपद्रव से पुरवासी पीड़ितहुये हैं ॥ ९४ ॥ क्या कारणहै इस सम्पूर्ण को जानकर शीघ्रही लौटआवो तदनन्तर पवित्र याने पूजने योग्य पावोंवाले गुरुकी आज्ञाको पाकर दो तीनजनोंने जाकर उन पुरवासियोकी समृद्धि (बढ़ती) को देखकर व लौटआकर भलीभांति सामने से कहा ॥ ९५ ॥ शिष्य बोले कि हे पूजनीय चरणारविन्दोंवाले गुरुजी ! आप सुनें कि यहां कोई उपद्रव नहीं है व इस सब नगरी में अन्नका क्षय कहीं भी नहींहै ॥ ९६ ॥ क्योंकि जहां साक्षात् विश्वनाथजी हैं व जहां देवनदी गंगा आपही हैं व जहां आपके समान मुनि हैं वहां उपद्रवों से उपजा हुआ डर कहांहै ॥ ९७ ॥ इस शिवपुरीमें जो गृहस्थोंकी समृद्धिहै वह

गैणकेनचित् ॥ ९४ ॥ किमेतदखिलंज्ञात्वासमागच्छतसत्वरम् ॥ द्वित्राःपवित्रचरणात्प्राप्यानुज्ञांगुरोरथ ॥ समाचख्युः समागम्यदृष्ट्वर्धिन्तत्पुरौकसाम् ॥ ९५ ॥ शिष्याऊचुः ॥ शृणवन्त्वाराध्यचरणानोपसर्गोत्रकश्चन ॥ नान्नक्षयोवा सर्वस्यांनगर्यामिहकुत्रचित् ॥ ९६ ॥ यत्रविश्वेश्वरःसाक्षाद्यत्राऽमरधुनीस्वयम् ॥ त्वादृशायत्रमुनयःक्वभीस्तत्रोपसर्गजा ॥ ९७ ॥ समृद्धिर्यागृहस्थानामिहविश्वेशितुःपुरि ॥ नसर्धिरस्तिवैकुण्ठेत्वल्पास्ताअलकादयः ॥ ९८ ॥ रत्नाकरेषुरत्नानिनतावन्तिमहामुने ॥ यावन्तिसन्तिविश्वेशनिर्माल्योपभुजांगृहे ॥ ९९ ॥ गृहेगृहेत्रधान्यानांराशयोयादृशःपुनः ॥ नतादृशःकल्पवृक्षदत्ताऐन्द्रेपुरेकचित् ॥ १०० ॥ यत्रसाक्षाद्विशालाक्षीसुविस्तारफलप्रदा ॥ नतत्रपुरिसर्वस्यांनरोवैनिर्धनःक्वचित् ॥ १ ॥ निर्वाणलक्ष्म्याःसदनेत्वस्मिन्नानन्दकानने ॥ मोक्षोपियत्रसुलभः किमन्यत्तत्रदुर्लभम् ॥ २ ॥ सीमन्तिन्यःस्त्रियःसर्वाःपतिव्रतपरायणाः ॥ सर्वाभवानीरूपिण्योविश्वेशार्पितसत्क्रियाः ॥ ३ ॥ यावन्तःपुरु

ऋद्धि वैकुण्ठमें भी नहींहै और वे अलका (कुबेरकी पुरी) आदि पुरी तो अल्पही हैं ॥ ९८ ॥ हे महामुने ! जितने रत्न श्रीविश्वनाथजीके निर्माल्यके उपभोगी जनों के घरमें हैं उतने समुद्रमें नहींहैं ॥ ९९ ॥ और यहां घर घरमें जैसी अन्नोंकी राशिया हैं वैसी कल्पवृक्ष से दीहुई भी इन्द्रके लोकमें भी कहीं नहींहैं ॥ १०० ॥ व जहां अच्छे विस्तारयुक्त याने बड़े भारी फलोंकी देनेवाली साक्षात् विशालाक्षी देवीजी हैं उस सब पुरीमें निश्चयसे निर्धन मनुष्य कहीं नहींहै ॥ १ ॥ व मोक्षलक्ष्मी के मन्दिर जिस इस आनन्दवनमें मुक्ति भी सुलभहै उसमें अन्य क्या दुर्लभहै ॥ २ ॥ व यहां सब स्त्रियां मांग सँवारे हुईहैं व पतिव्रतमें परायणहैं व सब भवानीरूपिणी हैं व श्रीविश्व-

नाथजी में सुकर्मोंकी समर्पनवाली हैं ॥ ३ ॥ और काशीमें जितने पुरुषहैं उतने सबही गणाधिपहैं व सबही कुमार (कार्त्तिकेय) के समानहैं व सबही ॐकारमें दृष्टिवाले
हैं ॥ ४ ॥ जेकि त्रिपुण्ड्र से याने भस्मकी तिरछी तीन रेखाओं से अंकित माथवाले हैं वे सब चन्द्रभाल शिवस्वरूपहैं और जेकि यहां हजारों उपद्रवों से पीड़ित होतेहुये
भी ॥ ५ ॥ काशीको सदैव नहीं त्यागते हैं वे सब सर्वज्ञही है और घर घरमें भी जे ब्रह्मचारी विद्यार्थी हैं वे ब्रह्मके या वेदके वादके विवादवाले हैं ॥ ६ ॥ व गंगाके स्नान
से पापोंको भगाये हुयेहैं व चतुरतासमेत मुखवाले या ब्रह्माजीके समानहैं और यहां क्षेत्रसंन्यासकर्त्ता जन मोक्षलक्ष्मीके पतिहैं ॥ ७ ॥ व सबही हृषीकेश (इन्द्रियों के

पाःकाश्यांसर्वएवगणाधिपाः ॥ सर्वएवकुमारावैसर्वेतारकदृष्टयः ॥ ४ ॥ त्रिपुण्ड्राङ्कितभालायेतेसर्वेचन्द्रमौलयः॥ उप
सर्गसहस्रैश्चपीड्यमानाअपीहये ॥ ५ ॥ नत्यजन्तिसदाकाशींसर्वज्ञाएवतेखिलाः ॥ गृहेगृहेपिवटवोब्रह्मवादविवादि
नः ॥ ६ ॥ स्वर्धुनीधूतकलुषाःसन्तीहचतुराननाः ॥ निर्वाणलक्ष्मीपतयःक्षेत्रसंन्यासकारिणः ॥ ७ ॥ सर्वएवहृषीकेशाः
सर्वेवैपुरुषोत्तमाः ॥ अच्युताएवविज्ञेयाएतत्क्षेत्रपरिग्रहाः ॥ ८ ॥ स्त्रियोवापुरुषावापिसर्वएवनसंशयः ॥ सर्वएवत्रिनय
नाःसर्वएवचतुर्भुजाः ॥ ९ ॥ श्रीकण्ठाःसर्वएवात्रसर्वेमृत्युञ्जयाध्रुवम् ॥ मोक्षश्रीश्रितवर्ष्माणस्त्वर्धनारीश्वरायतः॥ १० ॥
धर्मराशिःपरश्चात्रमहान्तोऽत्रार्थराशयः ॥ सर्वेकामाःफलन्त्यत्रकैवल्यञ्चात्रनिर्मलम् ॥ ११ ॥ नगर्भवाससंसर्गःका
शीसंस्थितिकारिणाम् ॥ नकलिश्चात्रबाधेतकालोनैवप्रबाधते ॥ १२ ॥ एनांसिनात्रबाधन्तेविश्वेशशरणार्थिनः ॥ यत्र

स्वामी) हैं व सबही पुरुषोत्तमहैं और इस क्षेत्रको सब ओरसे ग्रहण करनेवाले (क्षेत्रसंन्यासी) अच्युत (विष्णु) के समान विशेषता से जानने योग्यहैं अथवा कभी
च्युत नहीं होतेहैं अखण्ड मोक्ष सुखको भोगते हैं ॥ ८ ॥ व स्त्रियां अथवा पुरुष भी शिवही हैं इसमें संशय नहींहै सबही त्रिनेत्रहैं सबही चतुर्भुजहैं ॥ ९ ॥ व सबही श्री
कण्ठहैं सबही मृत्युंजयहैं और जिससे अर्धनारीश्वर हैं उसलिये मोक्षलक्ष्मी से आश्रित देहवाले हैं ॥ १० ॥ व यहां श्रेष्ठ धर्मराशिहै यहां बड़ी अर्थोंकी राशियां हैं यहां
सब काम फलते हैं और यहां निर्मल कैवल्य मोक्षहै ॥ ११ ॥ काशी में भलीभाति वास या मरण करनेवाले लोगोंको गर्भवासका संसर्ग नहींहै याने वे फिर गर्भमें नहीं
आतेहैं व यहां कलि नहीं बाधा करताहै और काल भी नहीं बहुत बाधा करता है ॥ १२ ॥ व यहां श्रीविश्वेश्वरके शरणचाही जनोंको पाप नहीं पीड़ा देसक्ते हैं जहां

शिष्य बोले कि, काशी विद्याओंका स्थानहै व काशी लक्ष्मीका श्रेष्ठ घरहै व काशी यह मुक्तिक्षेत्र है और काशी वेदत्रयीमयी है ॥ २३ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे अगस्त्यजी ! उस समय ऐसा सुनकर क्रोधसे अन्धी कीहुई आंखोंवाले व भूंख अग्निसे ज्वलतीहुई देहवाले व्यासजी काशीको शाप देवेंगे ॥ २४ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, त्रैपौरुषी याने तीन पुरितक रहनेवाली विद्या मतहोवे व तीन पुरितक रहनेवाला धन मतहोवे और तीन पुरितक मुक्ति मतहोवे इसभांति व्याराजीने काशीको शाप दिया ॥ २५ ॥ क्योंकि यहां विद्याओंका भी बड़ा गर्वहै व यहां धनका बड़ा गर्वहै और यहांके वासी मुक्तिके गर्वसे भिक्षाको नहीं देतेहैं ॥ २६ ॥ ऐसी बुद्धिको कर तब

यी ॥ २३ ॥ स्कन्दउवाच ॥ निशम्येतितदाव्यासःक्रोधान्धीकृतलोचनः ॥ क्षुत्कृशानुज्वलन्मूर्तिःकाशींशप्स्यतिकुम्भज ॥ २४ ॥ व्यासउवाच ॥ माभूत्त्रैपूरुषीविद्यामाभूत्त्रैपूरुषन्धनम् ॥ माभूत्त्रैपूरुषीमुक्तिःकाशींव्यासःशपन्निति ॥ २५ ॥ गर्वःपरोत्रविद्यानांधनगर्वोत्रवैमहान् ॥ मुक्तिगर्वेणनोभिक्षांप्रयच्छन्त्यत्रवासिनः ॥ २६ ॥ इतिकृत्वामतिंव्यासःकाश्यांशापमदात्तदा ॥ दत्त्वापिशापंसमुनिर्भिक्षितुंक्रोधवान्ययौ ॥ २७ ॥ प्रतिगेहन्त्वरायुक्तःप्रविशन्व्योमदत्तदृक् ॥ बभ्रामनगरींसर्वांक्वापिभैक्षंनलब्धवान् ॥ २८ ॥ अंशुमालिनमावीक्ष्यमनाग्लोहितमण्डलम् ॥ भिक्षापात्रम्परिक्षिप्यनिर्ययावाश्रमम्प्रति ॥ २९ ॥ अथगच्छन्महादेव्यागृहद्वारिनिषण्णया ॥ प्राकृतस्त्रीस्वरूपिण्याभिक्षायैप्रार्थितोतिथिः ॥ ३० ॥ गृहिण्युवाच ॥ भगवन्भिक्षुकास्तावदद्यदृष्टानकुत्रचित् ॥ असत्कृत्यातिथिंनाथोनमेभोक्ष्यतिकर्हिचित् ॥ ३१ ॥

व्यासजीने काशीमें शापको दिया और शापको देकर भी क्रोधवान् वह मुनि भिक्षाके लिये चलेगये ॥ २७ ॥ जोकि प्रतिघरमें पैठतेहुये, वेगसेयुक्त और आकाशमें दृष्टिको दिये हुयेहैं उन्होंने सब नगरीको घूमा व कहीं भी भिक्षाको न पाया ॥ २८ ॥ व कुछेक लाले मण्डलवाले सूर्य्यको देखकर अर्थात् जब बहुत थोड़ा दिन रहगया तब भिक्षा के पात्रको फेंककर अपने आश्रमके प्रति निकलकर चले ॥ २९ ॥ अनन्तर प्राकृत स्त्रीके स्वरूपको धारण कियेहुई घरके द्वारमें ठाढ़ी महादेवीजीने जातेहुये अतिथि को भिक्षाके लिये प्रार्थनायुक्त किया ॥ ३० ॥ गृहस्थकी स्त्रीरूपिणी देवीजी बोलीं कि, हे भगवन् ! तबतक या आपके दर्शनके पहले आज कहीं भी कोई भिक्षुक नहीं देखे

नाद, बिन्दु और कलास्वरूप साक्षात् विश्वनाथजी हैं ॥ १३ ॥ जिससे वहां ध्वनिरूपी मन्त्रस्वरूप ॐकारहै इससे यहां रूपधारी वेदहैं यह निश्चितहै ॥ १४ ॥ व यहां नदीरूपा सरस्वतीजी हैं इससे शास्त्रोंका स्थान है और यह सब आनन्दवन धर्मशास्त्रोंके कियेहुये घरोंवालाहै याने इसमें धर्मशास्त्र भी बसेहैं ॥ १५ ॥ व जितने देव स्वर्ग में हैं उतने यहां हैं यह असत्य नहींहै व सर्पलोग रात्रि रात्रिमें सदैव श्रीविश्वनाथजी को नीराजन (आरती) करते हैं ॥ १६ ॥ किन्तु रसातलसे काशीमें प्राप्तहोकर अपने फणोंकी मणिरूप दीपिकाओं से प्रकाशते हैं व कामधेनुओं के समूहोंसमेत सबही समुद्र यहांहैं ॥ १७ ॥ व पंचामृतोंकी धाराओं से श्रीविश्वनाथजीको नहवातेही हैं व

विश्वेश्वरःसाक्षान्नादबिन्दुकलात्मकः ॥ १३ ॥ ध्वनिरूपीहितत्रास्तिप्रणवोमन्त्रविग्रहः ॥ अतोविग्रहवन्तोत्रसन्तिवेदाविनिश्चितम् ॥ १४ ॥ सरस्वतीसरिद्रूपाह्यतःशास्त्रनिकेतनम् ॥ आनन्दकाननंसर्वंधर्मशास्त्रकृतालयम् ॥ १५ ॥ यावन्तोदिविवैदेवास्तावन्तोत्रमृषानहि ॥ नीराजयन्तिविश्वेशंरात्रौरात्रौसदाऽहयः ॥ १६ ॥ स्वफणामणिदीपैश्चप्राप्यकाशींरसातलात् ॥ समुद्राःसर्वएवात्रकामधेनुव्रजान्विताः ॥ १७ ॥ पञ्चपीयूषधाराभिर्विश्वेशंस्नपयन्तिहि ॥ मन्दारःपारिजातश्चसन्तानोहरिचन्दनः ॥ १८ ॥ कल्पद्रुमश्चपञ्चैतेतरुभिःसहसर्वदा ॥ १९ ॥ सर्वेसुरनिकायाश्चसर्वएवमहर्षयः ॥ योगिनःसर्वएवात्रकाशीनाथमुपासते ॥ २० ॥ विद्यानांसदनङ्काशीकाशीलक्ष्म्याःपरालयः ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदङ्काशीकाशीसर्वात्रयीमयी ॥ २१ ॥ इतिश्रुत्वामुनिवरःपाराशर्योमहातपाः ॥ एवम्बभाषेताञ्छिष्यान्पुनःश्लोकम्पठन्त्वमुम् ॥ २२ ॥ शिष्याऊचुः ॥ विद्यानांचाश्रयःकाशीकाशीलक्ष्म्याःपरालयः ॥ मुक्तिक्षेत्रमिदङ्काशीकाशीसर्वात्रयीम

मन्दार पारिजात सन्तान हरिचन्दन ॥ १८ ॥ और कल्पवृक्ष ये पांचों अन्य वृक्षों के साथ यहां सदा बसते हैं ॥ १९ ॥ व सब देवसमूह सबही महर्षि और सब योगी भी यहां काशीके नाथ श्रीविश्वनाथजीकी उपासना करते हैं या उनके समीपमें टिके हैं ॥ २० ॥ व काशीपुरी विद्याओं का स्थान है व काशी लक्ष्मीका श्रेष्ठ घरहै व काशी यह मुक्तिक्षेत्र है और सब काशी वेदत्रयीमयी है ॥ २१ ॥ ऐसा सुनकर मुनियों में श्रेष्ठ, महातपस्वी व्यासजीने इसभांति कहा कि आपलोग इस श्लोकको फिर पढ़ें ॥ २२ ॥

गये और मेरे नाथ (पति) अतिथिको न सत्कारकर याने अतिथिका सत्कार करने विना कभी नहीं भोजन करेंगे ॥ ३१ ॥ व मेरे घरके स्वामी बलिवैश्वदेवादिक कर्म को कर अतिथिकी गलीको परखैहैं उसलिये तुम अतिथि होवो ॥ ३२ ॥ क्योंकि अतिथिके विना जो अकेला गृहस्थ अन्नको सेवताहै याने खाता पीताहै वह अपने पितरों के सहित केवल पापको खाताहै ॥ ३३ ॥ उससे तुम शीघ्रही आवो व अतिथिकी पूजासे गृहस्थताको सफल करने के लिये इच्छा करतेहुये मेरे पतिके मनोरथको करो ॥ ३४ ॥ ऐसा सुनकर विगतकोप व विस्मययुक्त हुये व्यासजीने कहा श्रीव्यासजी बोले कि, हे कल्याणि! तुम कौनहो व कहांसे प्राप्तहुईहो पहले कहीं भी नहीं देखी

वैश्वदेवादिकङ्कर्मकृत्वागृहपतिर्मम ॥ प्रतीक्षतेतिथिपथंतस्मात्त्वमतिथिर्भव ॥ ३२ ॥ विनातिथिंगृहस्थोयस्त्वन्नमेको निषेवते ॥ निषेवतेघंसपरंसहितःस्वपितामहैः ॥ ३३ ॥ तस्मात्त्वरितमायाहिकुरुमेपत्युरीहितम् ॥ गार्हस्थ्यंसफलंकर्तु मिच्छतोतिथिपूजनात् ॥ ३४ ॥ इतिश्रुत्वागतामर्षोव्यासस्तामाहविस्मितः ॥ व्यासउवाच ॥ भद्रेकात्वंकुतःप्राप्तापूर्वं दृष्टानकुत्रचित् ॥ ३५ ॥ मन्येधर्ममयीमूर्तिःकापित्वंशुचिमानसा ॥ त्वद्दर्शनात्परांप्रीतिंसंप्राप्तानीन्द्रियाणिमे ॥ ३६ ॥ त्वंसुधेवभवेत्प्रायःसर्वावयवसुन्दरि ॥ मन्दराघातसंत्रासात्त्यक्तक्षीरार्णवस्थितिः ॥ ३७ ॥ कलासुधाकरस्याथकुहूराहु भयार्दिता ॥ सीमन्तिनीस्वरूपेणतिष्ठेःकाश्यामनिर्भया ॥ ३८ ॥ अथवाकमलासित्वंविहायकमलालयम् ॥ निशिसं कोचिनंकाश्यांविकाशिन्यांवसेःसदा ॥ ३९ ॥ किंवानुकरुणामूर्तिरिहकाशिनिवासिनाम् ॥ सर्वदुःखौघहरिणीपरा नन्दप्रदायिनी ॥ ४० ॥ वाराणस्याःकिमथवाऽधिष्ठात्रीदेवतात्वमु ॥ किंवानिर्वाणलक्ष्मीस्त्वंयाकाश्यांपरिगीय

गईहो ॥ ३५ ॥ मैं मानताहूं कि पवित्रमनवाली तुम कोई धर्ममयी मूर्त्तिहो व तुम्हारे दर्शन से मेरी इन्द्रियां परम उत्तम प्रीति को प्राप्तहैं ॥ ३६ ॥ हे सर्वांगसुन्दरि! बहुधा तुम मन्दराचलके आघात (संताडन) के संत्राम से क्षीरसागरकी स्थितिको त्यागेहुई अमृतकी अधिष्ठात्री देवताहीहो ॥ ३७ ॥ अथवा तुम अमावस और राहुके डरसे अर्दितहुई चन्द्रमाकी कलाहो जोकि निश्चित भयसे हीनहुई स्त्रीस्वरूप से काशीमें टिकीहो ॥ ३८ ॥ अथवा तुम लक्ष्मीहो रात्रिमें सिकुड़नेवाले कमल स्थानको छोड़कर सदाविकाशिका काशिका में बसीहो ॥ ३९ ॥ याकि तुम यहां काशीवासी जनों के सब दुःखसमूहकी हरणी उत्तम आनन्दकी अधिकदानकरणी दयाकी मूर्त्तिहो ॥ ४० ॥

अथवा वितर्क है कि तुम क्या काशीकी अधिष्ठात्री देवताहो किंवा तुम मुक्तिसम्पत्तिहो जोकि काशीमें सब ओरसे गाईजातीहो ॥ ४१ ॥ व चाण्डाल और यज्ञ करने शील ब्राह्मणको बड़े अन्त याने मरने में समान भूषण करतीहुईहो अथवा मेरा भागधेय (भाग्य) इस स्त्रीस्वरूप से परिणाम (अन्त अवस्था) को प्राप्तहै ॥ ४२ ॥ अथवा जो संसारनाशिनी भवानीजी क्षेत्रमें भक्तिसे भवसागर उतरने के लिये भक्तोंको विद्यारूप नौका देनेवाली सब ओर से गाई जाती हैं वह निश्चय से तुमहीं हो ॥ ४३ ॥ सबप्रकारसे तुम मानुषी नहीं आसुरी नहीं किन्नरी नहीं विद्याधरी नहीं नागी नहीं गन्धर्वी नहीं और यक्षिणी नहीं हो ॥ ४४ ॥ मेरा मोह हरनेहारी तुम कोई इष्टदेवता

ते॥४१। श्वपाकंयायजूकंवाप्रान्तेऽलंकुर्वतीसमम्॥मद्भागयंवापरिणतमेतद्योषित्स्वरूपतः॥४२॥ अथवासाभवेन्नूनंया क्षेत्रेपरिगीयते॥भक्तपोतप्रदाभक्त्याभवानीभवनाशिनी॥४३॥ सर्वथैवननारीत्वंनासुरी नैवकिन्नरी॥विद्याधरीननोना गीनोगन्धर्वीनयक्षिणी॥४४॥त्वमिष्टदेवतैवासिकाचिन्मेमोहहारिणी॥ केयंचिन्ताथवामेत्रकाचित्त्वंभवसुन्दरि॥४५॥ परवानस्म्यहंजातस्तवदर्शनतोधुना ॥ अवश्यमेवकर्तास्मितवादेश्यंतदादिश ॥ ४६ ॥ एकंतपोऽव्ययंहित्वाकारयि ष्यसियत्पुनः॥ तदेवाहंकरिष्यामिविधेयःशुभलोचने॥४७॥ नचचस्त्वादृशीनांहिमहत्त्वंहापयेत्सताम्॥ परंत्वंका सिसुभगेसत्यंब्रूहिममाग्रतः॥४८॥ अथवातवदेहेस्मिन्कासत्यंनिर्मलेक्षणे॥ इतिपृष्टाहमुनिनासाविश्वायुर्घटोद्भव॥ ४९॥ अत्रत्यस्यैवहिमुनेगृहिणीगृहमेधिनः॥ नित्यंवीक्ष्येचरन्तंत्वांभित्तांशिष्यगणैर्वृतम्॥५०॥ त्वमेवमांनोजानीषे

हीहो अथवा हे सुन्दरि! तुम कोई भी हो यहां मुझको यह क्या चिन्तनाहै ॥ ४५ ॥ इस समय मैं तुम्हारे दर्शन से परवश हुआहूं इससे अवश्यही तुम्हारे आयसु को कर्त्ताहूं उसको आज्ञाकरो ॥ ४६ ॥ हे शुभलोचने! एक तपस्याके विनाशको छोंडकर तुम जो करावोगी उसको फिर तुम्हारे अधीनहुआ मैं करूंगा ॥ ४७ ॥ हे सुभगे! तुम सरीखी स्त्रियोंकाही वचन सन्तों के महत्त्वको नहीं छुडाताहै परन्तु तुम कौनहौ मेरे आगे सत्यही कहो ॥ ४८ ॥ हे निर्मलनेत्रे! अथवा तुम्हारी इस देहमें असत्य कहांहै हे अगस्त्यजी! इसप्रकार मुनिसे पूंछीहुई उन समस्त जगत्की जीवनभूत देवीजीने कहा ॥ ४९ ॥ हे मुने! यहांके हुयेही गृहस्थकी गृहिणी मैं शिष्यगणो से

युक्त भिक्षाको विचरते या करतेहुये तुमको नित्यही देखतीहूं ॥ ५०॥ तुमहीं मुझको नहीं जानतेहो और मैं तुमको जानतीहीहूं हे तपस्विन्! बहुत कहने से क्याहै जबतक सूर्य्यदेव अस्तको नहीं जावेहैं ॥ ५१ ॥ तबतक तुम मेरे प्राणनाथके अतिथिभावको सफलकरो उस वचनको सुनकर विनय से विनम्रकन्धरवाले उन मुनिने कहा ॥ ५२ ॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि, हे शुभे! कोई मेरा नियमहै जो वह सिद्धि को प्राप्तहोवे तो मैं एक भिक्षाको करूंगा फिर अन्यथा नहीं ॥ ५३ ॥ इसभांति तपस्वीके कहे वचनको सुनकर तदनन्तर उन्होने कहा कि हे सुबुद्धे, मुने! तुम निःशंकतासे बतावो कि तुम्हारा क्या नियमहै ॥ ५४ ॥ जिससे मेरे स्वामीके प्रसाद से यहां

जानेत्वामहमेवहि॥ तपस्विन्किंबहूक्तेनयावन्नास्तंव्रजेद्रविः ॥५१॥ प्राणनाथस्यमेतावदातिथ्यंसफलीकुरु ॥ तच्छ्रुत्वा समुनिःप्राहविनयानतकन्धरः ॥ ५२ ॥ व्यासउवाच ॥ अस्तिमेनियमःकश्चित्ससिद्धिंचेद्व्रजेच्छुभे ॥ एकभिक्षांतदाहंतु करिष्येनान्यथापुनः ॥ ५३ ॥ तपस्व्युदीरितंश्रुत्वासाप्रोवाचवचस्ततः ॥ अविशङ्कंवदमुनेकस्तेस्तिनियमःसुधीः॥५४॥ ममभर्तुःप्रसादेनकिञ्चिन्न्यूनंयतोऽत्रन ॥ इतिश्रुत्वाप्रहृष्टात्मासतामाहतपोधनः ॥ ५५ ॥ अयुतंममशिष्यायेतैःसपक्तिमहंवृणे ॥ अस्तंयावन्नयात्यर्कस्तावद्भोक्ष्येन्यथानहि ॥ ५६ ॥ निशम्येतिप्रहृष्टास्यासाप्रोवाचमुनिन्ततः ॥ किंविलम्बेनतद्याहिसर्वाञ्छिष्यान्समाह्वय ॥ ५७ ॥ पुनःप्राहसतांसाध्वित्वेतावत्सिद्धिरस्तिते ॥ येनतृप्तिङ्गमिष्यन्तिमच्छिष्याःसर्वएवते ॥ ५८ ॥ स्मित्वाथसाब्रवीत्तन्तुमुनेभर्तुरनुग्रहात् ॥ सिद्धमेवसदैवास्तेसर्वन्तावन्ममालये ॥ ५९ ॥ याव

कुछ कम नहींहै ऐसा सुनकर प्रसन्नचित्त हुये वह तपोधन उनसे बोले॥ ५५ ॥ कि जे मेरे दशहजार शिष्यहैं उनके साथ मैं पाकको अंगीकार करताहूं व जबतक सूर्य अस्ताचलको नहीं जातेहैं तबतक मैं भोजन करूंगा अन्यथा नहीं ॥ ५६ ॥ ऐसा सुनकर तदनन्तर प्रसन्नमुखवाली उन देवीजी ने मुनिसे कहा कि तो विलम्बसे क्या है तुम जावो व सब शिष्योंको भलीभांति बुलावो ॥ ५७ ॥ फिर वह व्यासजी उनसे बोले कि हे पतिव्रते! तुम्हारी इतनी सिद्धिहै कि जिससे वे मेरे सबही शिष्य तृप्तिको प्राप्तहोवेंगे ॥ ५८ ॥ अनन्तर मुसकाकर उन देवीजीने उन मुनिसे फिर कहा कि हे मुने! मेरे घरमें पतिकी दयासे उतना सब सदैव सिद्धही रहताहै ॥ ५९ ॥ कि जितने

से सब भी अर्थी (चाही) जन सब प्रकारसे तृप्तिको प्राप्त होते हैं हम स्वामीको सन्देह करानेवाली वैसी स्त्रियां नहीं हैं ॥ ६० ॥ जब अर्थीजन घरमें आया तबही कार्य सिद्धहै सब दिशायें परिपूर्ण हैं व सब मनोरथ परिपूर्ण हैं ॥ ६१ ॥ और पतिके पावों के प्रसाद से सब घर परिपूर्ण है तुमजावो व जितने अन्नार्थी जन होवें उनके साथ शीघ्रही भलीभांति लौटआवो ॥ ६२ ॥ क्योंकि बहुकालीन (बड़े पुराने) मेरे स्वामी बहुत बेरको नहीं सहते हैं जोकि मेरे परमप्यारे अतिथियों को प्रिय करनेवाले है उनकी अतिथिताकी समृद्धिके लिये ॥ ६३ ॥ जबतक सूर्य्यदेव अस्तमित नहीं हैं या अस्तको गये नहीं हैं तबतक तुम शीघ्रही जाकर भलीभांति

तार्थिजनस्तृप्तिमेतिसर्वोपिसर्वशः ॥ वयंनतादृश्यमहिलाभर्तृसन्देहकारिकाः ॥ ६० ॥ आयातोर्थीयदागेहेसिद्धङ्कार्य न्तदैवहि ॥ परिपूर्णादिशःसर्वाःपरिपूर्णामनोरथाः ॥ ६१ ॥ परिपूर्णंगृहंसर्वंपत्युःपादप्रसादतः ॥ याहितूर्णंसमायाहि यावदन्नार्थिभिःसह ॥ ६२ ॥ पतिर्मेबहुकालीनःकालंनसहतेचिरम् ॥ प्रियातिथिःप्रियतमस्तदातिथ्यसमृद्धये ॥ ६३ ॥ आशुगत्वासमागच्छयावन्नास्तमितोरविः ॥ इतिप्रहृष्टस्त्वरितःशिष्यानाहूयसर्वतः ॥ ६४ ॥ आगत्यताम्पुनःप्राहदृ ष्ट्वातन्मार्गलोचनाम् ॥ मातःसर्वेसमायातास्त्वरितन्देहिभोजनम् ॥ ६५ ॥ अस्ताचलंहिसमयासमियादेषभास्करः॥ इत्युक्त्वामन्दिरस्यान्तर्विविशुस्तेतपोधनाः ॥६६॥ तन्मण्डपमणिज्योतिस्तत्याहितदिनश्रियः ॥ यावद्गच्छन्तितत्सौ धमध्यमाशुतपस्विनः ॥ ६७ ॥ पादौप्रक्षाल्यतावत्तेकैश्चित्कैश्चित्समर्च्यच ॥ कतिचित्परिविष्टान्नाभोक्तुमेवोपवेशि

आवो ऐसा सुनकर अधिक आनन्दित व वेगवान् व्यासजी सब ओरसे शिष्यों को बुलाकर ॥ ६४ ॥ व आकर उनके आनेकी गलीमें दृष्टिवाली उनसे फिर बोले कि हे मातः ! सब जन भलीभांति आयेहैं तुम शीघ्रही भोजनको देवो ॥ ६५ ॥ क्योंकि यह सूर्य्यजी समीपमेंही अस्ताचलको अच्छेप्रकार से जावेहैं ऐसा कहकर वे तपस्याओ के धनी घरके भीतर पैठगये ॥ ६६ ॥ व उस मण्डप में मण्डित मणियोंकी ज्योतिके समूह से समर्पित दिनकी शोभावाले तपस्वीलोग जबतक उस महलके मध्यमें शीघ्रही जातेहैं ॥ ६७ ॥ तबतक किसीसे पावोंको पखारकर व किसीसे भलीभांति पूजाकर और किसी जनों से परोसे अन्नवालेहुये वे भोजन करनेकोही समीप में बैठाये

गये ॥ ६८ ॥ व उनके या उन दिव्य पाकोंके समूहों या सामग्रियोंको देखकर उनमें दृष्टि लगायेहुये वे क्षणभर में घ्राण इन्द्रियके हितकारी सुगन्धोंकी पंक्तियों से परम उत्तम तृप्तिको समीपसे प्राप्तहुये ॥ ६९ ॥ उन अन्नोंके सेवन से अत्यन्त तृप्तिको भलीभांति सब ओरसे प्राप्त व आचमन कियेहुये वे चन्दन माला और वस्त्रोंसे सम्भूषितभये ॥ ७० ॥ अनन्तर सन्ध्याकी विधिकोकर व उन गृहस्थके आगे बहुत समीपमें बैठकर और बड़े आशीर्वादों से सामने या सब ओरसे बढ़ाकर जबतक चलने को पांव उठानेलगे ॥ ७१ ॥ तबतक बूढ़े गृहस्थके वेषसे बनेहुये महादेवजी से कटाक्षसे प्रेरितहुई उन गृहणी देवीजीने पूंछा कि तीर्थ में बसतेहुये जनोंका कौनसा

ताः ॥ ६८ ॥ तद्दिव्यपाकसम्भारान्दृष्ट्वातद्दृष्टयःक्षणात् ॥ परान्तृप्तिमुपागच्छन्घ्राणन्यामोदराजिभिः ॥ ६९ ॥ अतितृप्तिंसमापन्नास्तेतदन्ननिषेवणात् ॥ आचान्ताश्चन्दनैःस्रग्भिरम्बरैःपरिभूषिताः ॥७० ॥ अथसान्ध्यंविधिंकृत्वा प्रोपविश्यतदग्रतः ॥ अभिनन्द्यमहाशीर्भिर्यावद्गन्तुम्प्रचक्रमुः ॥ ७१ ॥ तावद्वृद्धगृहस्थेनगृहिणीसाकटाक्षिता ॥ पप्रच्छ तीर्थेवसतांकोधर्मोमुख्यएवहि ॥ ७२ ॥ तथातदनुसारेणतीर्थेवर्तामहेवयम् ॥ सर्वधर्मविदांश्रेष्ठःश्रुत्वातद्गृहिणीवचः ॥ ७३ ॥ तदादरसुधाक्लिन्नमहान्नस्वादतर्पितः ॥ प्रत्युवाचमुनिर्व्यासःस्मित्वातांसर्ववित्तमाम् ॥ ७४ ॥ व्यासउवाच ॥ स्वच्छान्तःकरणेमातर्महामिष्टान्नमानदे ॥ सएषधर्मोनान्योस्तियत्त्वयापरिचर्यते ॥ ७५ ॥ त्वमेवधर्मञ्जानासिपतिशुश्रूषणेरता ॥ यदिपृच्छसिमांसत्यंतदाकिञ्चनवच्मिते ॥ ७६ ॥ वक्तव्यमेवपृष्टेनमनागपिविजानता ॥ सएवधर्मःसुभगेनान्योधर्मोस्तिकश्चन ॥ ७७ ॥ येनैषतोषमायातितवभर्ताचिरन्तनः ॥ गृहिण्युवाच ॥ अयन्धर्मोभवेन्नूनंक्रियते

धर्म मुख्य है ॥ ७२ ॥ उसप्रकार उसके सारसे हमलोग तीर्थमें वर्त्तमानहोवें ऐसे उन स्त्रीके वचनको सुनकर सब धर्मज्ञों में श्रेष्ठ ॥ ७३ ॥ व्यासमुनि जोकि उनके आदर अमृत से भीगे महाअन्नके स्वाद से तर्पितहैं उन्होंने कुछेक हँसकर उन सर्वज्ञ शिरोमणिके प्रतिकहा ॥ ७४ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे स्वच्छान्तःकरणे, महामिष्टान्नमानदे, मातः! जो तुमसे सब ओर कियाजाताहै या सेवित होताहै वहही यह धर्महै अन्य नहीं है ॥ ७५ ॥ पतिकी सेवामें प्रीतिवाली तुमहीं धर्मको जानतीहो परन्तु जो मुझसे सत्यको पूंछतीहो तो मैं कुछेकको कहताहूं ॥ ७६ ॥ क्योंकि पूंछेगये थोड़ा भी जानतेहुयेको कहना चाहिये हे सुभगे! वहही धर्महै अन्य कोई नहीं है ॥ ७७ ॥ कि

जिससे यह तुम्हारे बहुत कालके हुये पति सन्तोषको सब ओरसे प्राप्त होतेहैं, गृहणी बोलीं कि, यह निश्चयसे धर्म होवैहै और अपनी शक्तिके अनुसार कियाजाताहै ॥७८॥ मैं साधारण धर्मोंको भलीभांति पूंछतीहूं उनको तुम मुझसे कहो, श्रीव्यासजी बोले कि, किसी का उद्वेग करनेवाले से हीन वचन व पराई बढ़ती को सहना ॥ ७९ ॥ व विचारकर करना और नित्यही अपने घरके उदयका चिन्तन यह साधारण धर्महै, गृहस्थ बोले कि, हे विद्वन्! इन धर्मोंमें से तुममें कौनहै उसको यहां कहो ॥ ८० ॥ तब कुछेक रुके से व्यासजी ठहरगये और कुछ भी न कहतेभये तदनन्तर गृहस्थने उन्हीं तपोधनसे फिर कहा ॥ ८१ ॥ कि जिनको तुमने प्रतिपादनकिया जो येही

चस्वशक्तितः ॥ ७८ ॥ साधारणानिधर्माणिसम्पृच्छेतानिमेवद ॥ व्यासउवाच ॥ अनुद्वेगकरंवाक्यंपरोत्कर्षसहिष्णु ता ॥ ७९ ॥ विचार्यकारितानित्यंस्वधिष्ण्योदयचिन्तनम् ॥ गृहस्थउवाच ॥ एषुधर्मेषुभोविद्वंस्त्वयिकोस्तीहतद्वद ॥ ८० ॥ ततःस्थगितवद्व्यासस्तस्थौकिञ्चिन्नचोक्तवान् ॥ ततःपुनर्गृहस्थेनसहिप्रोक्तस्तपोधनः ॥ ८१ ॥ यद्येतएववैधर्मास्त्व यायेप्रतिपादिताः ॥ तद्वान्तताताववैत्विदानंशापस्यचोत्तमम् ॥ ८२ ॥ त्वय्येवहिदयासम्यग्धैर्यंत्वय्येवचोत्तमम् ॥ त्व यिसम्भावनास्त्येवकामक्रोधविनिग्रहे ॥ ८३ ॥ त्वमेवसम्यग्जानीषेवक्तुञ्चोद्वेगवर्जितम् ॥ त्वय्येवसम्यग्दृश्येतपरोत्क र्षसहिष्णुता ॥ ८४ ॥ विचार्यकारितायाश्चत्वमेवानिलयोमहान् ॥ स्वस्यधिष्ण्यस्यचभवांश्चिन्तयेदुदयन्ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ ममैकम्ब्रूहिभोविद्वञ्छापंदद्याचयःक्रुधा ॥ अलभन्स्वार्थसंसिद्धिमभाग्यात्तस्यकस्यसः ॥ ८६ ॥ व्यासउवाच ॥ यःस्वा

निश्चय से धर्महै तो शापका उत्तम देना उन धर्मोंमें तुम्हारी दांतता याने इन्द्रियों का दमन करना देखागया ॥ ८२ ॥ तुममेंहीं भलीभांति दयाहै व तुममेंहीं उत्तम धैर्य्य है और तुममेंहीं काम व क्रोधके बांधने में सम्भावनाहै ॥ ८३ ॥ व तुम्हीं उद्वेगसे हीनवचनको बोलने के लिये अच्छा जानतेहो व तुममेंहीं अन्यके उत्कर्ष का सहना देखपड़े है ॥ ८४ ॥ व तुम्हीं विचारकर करने के महान् मन्दिरहो और आप अपने घरके उदयको निश्चयसे चिन्तन करैहैं ॥ ८५ हे विद्वन्! तुम एकको मुझसे कहो कि, अपने अभाग से स्वार्थकी सिद्धिको न पाताहुआ जो क्रोधसे फिर शापको देवे उसका वह शाप किसको होवे ॥ ८६ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, अभाग्यसे स्वार्थ

की सिद्धिको न पाताहुआ जो क्रोधसे शापदेताहै उस अविवेकी शापदाताकाही उलटा वह शाप होवेहै ॥ ८७ ॥ गृहस्थ बोले कि, अहो विप्र ! जब भ्रमतेहुये आपने भी भिक्षाको न पाया तब यहां बापुरे क्षेत्रवासियोंने क्या अपराध कियाहै ॥ ८८ ॥ हे तपस्विन ! तुम मेरे वाक्यको सुनो कि, जो कोई इसमेरी राजधानी में ऋद्धिको देखने के लिये नहीं समर्थहोता है याने उसको नहीं देखसक्ता है वहही शापयुक्त है ॥ ८९ ॥ हे क्रोधन, मुने ! आजसे लगाकर शापसे वर्जित इस मेरे क्षेत्रमें तुम न बसो यहां बसने में तुम्हारी योग्यता नहीं है ॥ ९० ॥ तुम अबहीं निकलो इस क्षेत्रसे बाहर होवो व मोक्षका मुख्यसाधन मेराक्षेत्र तुम सरीखों के योग्य नहीं है ॥ ९१ ॥

थंसिद्धिमलभन्नभाग्याच्छपतिक्रुधा ॥ सशापःप्रत्युतभवेच्छप्तुरेवाविवेकिनः ॥ ८७ ॥ गृहस्थउवाच ॥ भवताभ्रमता विप्रनाप्ताभिक्षायदाप्यहो ॥ तदापराद्धङ्किमिहवराकैःक्षेत्रवासिभिः ॥ ८८ ॥ तपस्विञ्छृणुमेवाक्यंराजधान्यांममेह यः ॥ ऋद्धिन्द्रष्टुंनशक्नोतिपरिशप्तःसएवहि ॥ ८९ ॥ अद्यप्रभृतिनक्षेत्रेमदीयेशापवर्जिते ॥ आवसक्रोधनमुनेनवासे योग्यतात्रते ॥ ९० ॥ इदानीमेवनिर्गच्छबहिःक्षेत्रादितोभव ॥ त्वद्विधानांनयोग्यंमेक्षेत्रंमोक्षैकसाधनम् ॥ ९१ ॥ अत्रा ल्पमपियद्दौष्ट्यंकृतंमत्क्षेत्रवासिनाम् ॥ तद्दौष्ट्यस्यपरीपाकोरुद्रपैशाच्यमेवहि ॥ ९२ ॥ तच्छ्रुत्वावेपमानःसपरिशु ष्कौष्ठतालुकः ॥ जगामशरणङ्गौरींलुठंस्तच्चरणाग्रतः ॥ ९३ ॥ उवाचचवचोमातस्त्राहित्राहिभृशंरुदन् ॥ अनाथस्त्व त्सनाथोहंबालिशस्तवबालकः ॥ ९४ ॥ शरणागतञ्चसन्त्राहिरक्षमांशरणागतम् ॥ बहूनामागसाङ्गेहमस्माकन्दुष्ट मानसम् ॥ ९५ ॥ शम्भुशापोऽन्यथाकर्तुंभवत्यापिनशक्यते ॥ अहञ्चशरणायातस्तदेकंक्रियतांशिवे ॥ ९६ ॥ प्रत्यष्ट

और यहां क्षेत्रवासियों की करी जो थोड़ीभी दुष्टता है उस दुष्टताका फल रुद्र पिशाच होनाही है ॥ ९२ ॥ उस वचन को सुनकर थरथराते हुये व सब ओरसे सूखे ओठों और तालूवाले वे पार्वतीजी के शरण (स्थान) को गये व उनके पावों के आगे लोटते हुये ॥ ९३ ॥ फिर वचन को बोले कि हे मातः ! तुम रक्षाकरो रक्षाकरो बहुतरोता हुआ अज्ञानी अनाथ तुम्हारा बालक मैं तुमसे सनाथहूं ॥ ९४ ॥ तुम शरणागत को भलीभांति बचावो और मुझ शरणागत की रक्षाकरो हमारादुष्टमन बहुते पापोंका घर है ॥ ९५ ॥ हे शिवे ! आपसे भी शम्भुका शाप अन्यथा करनेको नहीं योग्य होता है और मैं शरणागत हूं इससे यह एक किया जावे ॥ ९६ ॥ कि, हे पा-

वैति ! तुम प्रति अष्टमी व प्रतिचतुर्दशी में सदा क्षेत्र प्रवेशका आयसु देवो महेशजी तुम्हारे वचनके उल्लङ्घक नहीं हैं ॥ ९७ ॥ इसभांति उन मुनिसे कहीहुई दयाकी देह देवीजी ने महेश्वरका मुख देखकर उनकी आज्ञासे ऐसा कहा कि वैसाही होवे ॥ ९८ ॥ तदनन्तर क्षेत्रक कल्याणकर्त्ता वे गौरीशङ्कर अन्तर्द्धानहुये और अपनाको अपराधके वश कहतेहुये व्यासजी भी क्षेत्रसे निकलगये ॥ ९९ ॥ व दृष्टिके समीप गत क्षेत्रको दिनोरात देखतेहुये वह प्रति अष्टमी और प्रति चतुर्दशी में सदैव क्षेत्रके बीचमें पैठै हैं ॥ २०० ॥ व लोलार्क से आग्नेयकोण मे गङ्गाके पूर्वकिनारेपर टिके हुयेही वह आजभी काशी के महलोंकी मालाको देखै हैं ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले

मिसदाक्षेत्रेप्रतिभूतञ्चपार्वति ॥ दिशप्रवेशनादेशंनेशस्त्वद्वाक्यलङ्घकः ॥ ९७ ॥ इत्युक्तातेनमुनिनाभवानीकरुणाजनिः ॥ मुखम्महेशितुर्वीक्ष्यतथेत्याहतदाज्ञया ॥ ९८ ॥ अथान्तर्हितवन्तौतौशिवौक्षेत्रशिवङ्करौ ॥ व्यासोपिनिर्ययौक्षेत्रात्स्वापराधवशंवदन् ॥ ९९ ॥ अहोरात्रंसपश्यन्वैक्षेत्रन्दृष्टेरदूरगम् ॥ प्राप्याष्टमीञ्चभूताञ्चमध्येक्षेत्रंसदाविशेत् ॥ २०० ॥ लोलार्कादग्निदिग्भागेस्वर्धुनीपूर्वरोधसि ॥ स्थितोह्यद्यापिपश्येत्सकाशीप्रासादराजिकाम् ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इत्थंकुम्भजसव्यासःक्षेत्रेशापंप्रदास्यति ॥ क्षेत्रशापप्रदानाच्चबहिर्यास्यतितत्क्षणात् ॥ २ ॥ अतएवाविमुक्तस्यक्षेत्रस्यशुभशंसिनः ॥ भविष्यतिशुभंनित्यमन्यथात्वन्यथैवहि ॥ ३ ॥ श्रुत्वाध्यायामिमंपुण्यंव्यासशापविमोक्षणम् ॥ महादुर्गोपसर्गेभ्योभयंतस्यनकुत्रचित् ॥ २०४ ॥ इतिश्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेव्यासशापविमोक्षणंनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

कि, हे अगस्त्यजी ! इस प्रकार वह व्यासजी क्षेत्रमें शापको अधिकतासे देवेंगे और क्षेत्रके शापप्रदानसे उसही क्षणमें बाहर जावेंगे ॥ २ ॥ इससेही क्षेत्रके शुभ शंसीजनका नित्यही शुभहोवेगा और अन्यथा याने अशुभवक्ता का अन्यथा (अशुभ) ही होवेगा ॥ ३ ॥ व्यासशाप विमोक्षण नामक इसमनोहर अध्यायको सुनकर उसका बड़े उग्रउपद्रवोंसे भी कहीं भी डर नहीं है ॥ २०४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेव्यासशापविमोक्षणंनामषण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

दो० । सातनवे अध्यायमें क्षेत्र सुतीर्थ बखान । जिनके सुनतहि देखतहि महा पापकाहान ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे शिवनन्दन ! श्रीव्यासजी के इस भविष्यको सुनकर मैं आश्चर्य्य का पात्रहुआ इस समय आप तीर्थोंको कहो ॥ १ ॥ हे षण्मुख ! आनन्दवन में जे जहां हैं उन लिंग स्वरूपों को मेरे आगे भलीभांति कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे कुम्भसेउत्पन्न अगस्त्यजी ! यहही प्रश्न देवीजी के लिये महादेवजी से जैसा कहा गया है वैसेको मैं निश्चयसे कहताहूं तुम सुनो ॥ ३ ॥ श्रीदेवीजी बोलीं कि, हे प्रभो, महेश्वर ! जे जे तीर्थ इस काशीमें जहां जहां हैं उन उनको वहां वहांहीं मुझसे कहो ॥ ४ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि, हे विशालाक्षि, देवि !

अगस्त्यउवाच ॥ एतद्भविष्यंश्रुत्वाहंव्यासस्यशिवनन्दन ॥ आश्चर्यभाजनंजातस्तीर्थानिकथयाधुना ॥ १ ॥ आनन्दकाननेयानियत्रसन्तिषडानन ॥ तानिलिङ्गस्वरूपाणिसमाचक्ष्वममाग्रतः ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ अयमेवहिवैप्रश्नोदेव्यैदेवेनभोस्तदा ॥ यादृशःकथितोवाच्मितादृशंशृणुकुम्भज ॥ ३ ॥ देव्युवाच ॥ यानियानीहितीर्थानियत्रयत्रमहेश्वर ॥ तानितानीहमेकाश्यांतत्रतत्रवदप्रभो ॥ ४ ॥ देवदेवउवाच ॥ शृणुदेविविशालाक्षितीर्थंलिङ्गमुदाहृतम् ॥ जलाशयेपितीर्थाख्याजातामूर्तिपरिग्रहात् ॥ ५ ॥ मूर्तयोब्रह्मविष्ण्वर्कशिवविघ्नेश्वरादिकाः ॥ लिङ्गंशैवमितिख्यातंयत्रैतत्तीर्थमेवतत् ॥ ६ ॥ वाराणस्यांमहादेवःप्रथमंतीर्थमुच्यते ॥ तदुत्तरेमहाकूपःसारस्वतपदप्रदः ॥ ७ ॥ क्षेत्रपूर्वोत्तरेभागेतद्दृष्टंपशुपाशहृत् ॥ तत्पश्चाद्विग्रहवतीपूज्यावाराणसीनरैः ॥ ८ ॥ सापूजिताप्रयत्नेनसुखवास्तिप्रदासदा ॥ महादेवस्यपूर्वेणगोप्रेक्षंलिङ्गमुत्तमम् ॥ ९ ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्सम्यग्गोदानजनितंफलम् ॥ गोलोकात्प्रेषितागावःपूर्वंय

लिङ्गही तीर्थ कहा गया है मूर्त्तियों के परिग्रह (सब ओर ग्रहण) से जलाशय में भी तीर्थ नाम हुआ है ॥ ५ ॥ ब्रह्मा विष्णु सूर्य्य शिव गणेशादि मूर्त्तियां हैं और शिवसम्बन्धी मूर्त्तिरूप लिंग ऐसा सब ओरसे कहागया है जहां यहहै वहही उत्तम तीर्थ है ॥ ६ ॥ काशी में महादेवजी पहलातीर्थ कहेजाते हैं उनसे उत्तर में सरस्वती स्थानके देनेवाला सारस्वत महाकूपहै ॥ ७ ॥ व क्षेत्रके पूर्वोत्तर भाग में देखा हुआ वह पशुपाशहर्ता है याने जीवोंके चौबीस तत्त्वरूप पाशों को दूरकर्त्ता है व उसके पीछे मूर्त्तिमती काशीपुरी मनुष्यों से पूजनीय है ॥ ८ ॥ और बड़ेयत्न से सदैव पूजीहुई वह सुख समेत सुवास देनेवाली है व महादेवसे पूर्वमें गोप्रेक्षेश्वर नामक उत्तम

लिंगहै ॥ ९ ॥ उसके दर्शन से गोदानसे जनितफल भलीभांति होवे है और जिससे पूर्व समय में शम्भुजी ने आपही गोलोकसे गौवोंको पठायाहै ॥ १० ॥ व वे काशी को भलीभांति आई हैं व उन्होने जिस लिंगको देखा है उससे वह गोप्रेक्षेश्वर कहाता है व गोप्रेक्षेश्वर से दक्षिणभाग में दधीचेश्वर नामक लिंग है ॥ ११ ॥ उसके दर्शनसे मनुष्यों को यज्ञसे समुत्पन्न हुआ फल होवे है और उससे पूर्वमें मधुकैटभ से पूजित अत्रीश्वर ॥ १२ ॥ लिंगको बड़े यत्नसे देखकर विष्णु के लोकको जाताहै व गोप्रेक्षेश्वरसे पूर्व दिशाके भागमें विज्वर नामक लिंग प्रसिद्धतासे कहागयाहै ॥ १३ ॥ उसके सम्पूजन से मनुष्य क्षणभर में ज्वरसेहीन होजाता है व उसके पूर्व में

च्छम्भुनास्वयम् ॥ १० ॥ वाराणसींसमायातागोप्रेक्षंतत्ततःस्मृतम् ॥ गोप्रेक्षाद्दक्षिणेभागेदधीचीश्वरसञ्ज्ञितम्॥११॥ तद्दर्शनाद्भवेत्पुंसांफलंयज्ञसमुद्भवम् ॥ अत्रीश्वरंतुतत्प्राच्यांमधुकैटभपूजितम् ॥ १२॥ लिङ्गंदृष्ट्वाप्रयत्नेनवैष्णवंपद मृच्छति ॥ गोप्रेक्षात्पूर्वदिग्भागेलिङ्गंवैविज्वरंस्मृतम् ॥ १३ ॥ तस्यसम्पूजनान्मर्त्योविज्वरोजायतेक्षणात् ॥ प्राच्यां वेदेश्वरस्तस्यचतुर्वेदफलप्रदः ॥ १४ ॥ वेदेश्वरादुदीच्यान्तुक्षेत्रज्ञश्चादिकेशवः ॥ दृष्टन्त्रिभुवनंसर्वन्तस्यसन्दर्शना दूध्रुवम् ॥ १५ ॥ सङ्गमेश्वरमालोक्यतत्प्राच्याञ्जायतेनघः ॥ चतुर्मुखेनविधिनातत्पूर्वेणचतुर्मुखम् ॥ १६ ॥ प्रयागसंज्ञ कंलिङ्गमर्चितम्ब्रह्मलोकदम् ॥ तत्रशान्तिकरीगौरीपूजिताशान्तिकृद्भवेत ॥ १७ ॥ वरणायास्तटेपूर्वेपूज्यंकुन्तीश्वरं नृभिः ॥ तत्पूजनात्प्रजायन्तेपुत्रानिजकुलोज्ज्वलाः ॥ १८ ॥ कुन्तीश्वरादुत्तरतस्तीर्थंवैकापिलोह्रदः ॥ तत्रवैस्नानमा

चारो वेदोंके फलों के दाता वेदेश्वर लिंग हैं ॥ १४ ॥ व वेदेश्वर से उत्तर में क्षेत्रज्ञ (ईश्वर) आदिकेशव हैं उनके भलीभांति दर्शन से सब त्रिलोक निश्चय से देखा हुआ होता है ॥ १५ ॥ व उससे पूर्वमें सङ्गमेश्वर के सब ओर या सामने से देखकर पापों से हीन होजाता है उसके पूर्व मे चारमुखवाले ब्रह्माजी ने चतुर्मुख लिंगकी स्थापना किया है ॥ १६ ॥ व प्रयागसंज्ञक लिङ्ग पूजित होकर ब्रह्मलोक का दाता है वहां पूजीहुई शान्तिकरी गौरी शांति करनेवाली होवे है ॥ १७ ॥ व वरणा के पूर्व किनारे मे कुन्तीश्वर लिङ्ग मनुष्यों से पूजनीय है उसकी पूजा से अपने कुल में उज्ज्वल, पुत्र उत्पन्न होते हैं ॥ १८ ॥ व कुन्तीश्वर से उत्तर में कपिलका कुण्ड तीर्थ प-

सिद्ध है वहां भी स्नानमात्र से और वृषभध्वज शिवकी पूजा से ॥ १९ ॥ राजसूय यज्ञका सकलफल होवै है और करोडों संख्यक जे कोई पितर रौरवादि नरकों में हैं ॥ २० ॥ वे वहां पुत्रों से श्राद्ध के किये हुये होतेही पितृलोक को पयान करते हैं हे मुने ! गोप्रेक्ष से उत्तर में आनुसूयेश्वर लिंग है ॥ २१ ॥ उसके दर्शन से स्त्रियों को पातिव्रत्यका स्पष्ट फलहोवे है व उस लिङ्ग से पूर्वदिशा के भाग में सिद्धिविनायक पूजनीय हैं ॥ २२ ॥ व जो जिरासिद्धि की वाञ्छा करे है वह उसको उनके नमस्कार से प्राप्तहोता है और उनगणेश से पश्चिम मे हिरण्यकशिपुका लिङ्ग है ॥ २३ ॥ व वहां सोना और घोडों की समृद्धि करनेवाला हिरण्यकूप है ॥ २४ ॥ उससे पश्चिम

त्रेणवृषभध्वजपूजनात् ॥ १९ ॥ राजसूयस्ययज्ञस्यफलन्त्वविकलम्भवेत् ॥ रौरवादिषुयेकेचित्पितरःकोटिसङ्मिताः ॥ २० ॥ तत्रश्राद्धेकृतेपुत्रैःपितृलोकंप्रयान्तिते ॥ आनुसूयेश्वरंलिङ्गङ्गोप्रेक्षादुत्तरेमुने ॥ २१ ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्स्त्रीणाम्पातिव्रत्यफलंस्फुटम् ॥ तल्लिङ्गपूर्वदिग्भागेपूज्यःसिद्धिविनायकः ॥ २२ ॥ यांसिद्धिंयःसमीहेतसतामाप्नोतितन्नतेः ॥ हिरण्यकशिपोर्लिङ्गङ्गणेशात्पश्चिमेततः ॥ २३ ॥ हिरण्यकूपस्तत्रास्तिहिरण्याश्वसमृद्धिकृत ॥ २४ ॥ मुण्डासुरेश्वरंलिङ्गन्तत्प्रतीच्याञ्चसिद्धिदम् ॥ अभीष्टदन्तुनैर्ऋत्याङ्गोप्रेक्षाद्वृषभेश्वरम् ॥ २५ ॥ मुनेस्कन्देश्वरंलिङ्गंमहादेवस्यपश्चिमे ॥ तल्लिङ्गपूजनान्नृणाम्सर्वेन्ममसलोकता ॥ २६ ॥ तत्पार्श्वतोहिशाखेशोविशाखेशश्चतत्रवै ॥ नैगमेयेश्वरस्तत्रयेन्येनन्द्यादयोगणाः ॥ २७ ॥ तेषामपिहिलिङ्गानितत्रसन्तिसहस्रशः ॥ तद्दर्शनाद्भवेत्पुंसान्तत्तद्गणसलोकता ॥ २८ ॥ नन्दीश्वरात्प्रतीच्याञ्चशिलादेशःकुधीहरः ॥ महाबलप्रदस्तत्रहिरण्याक्षेश्वरःशुभः ॥ २९ ॥ तद्दक्षिणेट्टहासाख्यंलिङ्गं

में सिद्धिदायक मुण्डासुरेश्वर लिङ्गहै व गोप्रेक्षसे नैर्ऋत्य कोण में अभीष्टदाता वृषभेश्वर लिंग है ॥ २५ ॥ हे मुने ! महादेवेश्वर के पश्चिम में स्कन्देश्वर लिंग है उसलिंग की पूजा से पुरुषों को मेरे समान लोकता होती है ॥ २६ ॥ और वहांही उसके पार्श्व (पास) में शाखेश व विशाखेश प्रसिद्ध हैं व वहां नैगमेयेश्वर नामक लिंग है और जोकि अन्य नन्दीश्वरादिगण हैं ॥ २७ ॥ उनके भी वहांही हजारों लिंग हैं उनके दर्शन से मनुष्यों को उस उस गण के समान लोकका भाव होवे है ॥ २८ ॥ व नन्दीश्वर से पश्चिममें कुबुद्धिका हर्त्ता शिलादेश्वर लिंग है और वहांही बड़े बलका प्रदाता मंगलमय हिरण्याक्षेश्वर लिंग है ॥ २९ ॥ उससे दक्षिण में सर्वसुखप्रद

अट्टहास नामक लिंग है उसके उत्तर में प्रसन्नवदनेश्वर नामक शुभलिंगहै ॥ ३० ॥ उसके शुभदर्शन से भक्त प्रसन्नमुखवाला होकर टिकै है उससे उत्तर में मनुष्यों को निर्मलता का दाता प्रसन्नोद नामक कुण्ड है ॥ ३१ ॥ व अट्टहास के पश्चिम में मित्र और वरुण के नामवाले याने मित्रेश्वर व वरुणेश्वर ये दो लिंग हैं जे कि उन दोनो देवों की सलोकता के दायक व पूजनीय व महा पापों के हर्त्ता हैं ॥ ३२ ॥ और अट्टहास के नैर्ऋत्य कोण में वृद्ध वासिष्ठ संज्ञक लिंग है उसकी पूजा से मनुष्यों के बड़ाज्ञान उत्पन्न होता है ॥ ३३ ॥ व वसिष्ठेश्वर के समीप में टिकेहुये विष्णुलोकके दाता कृष्णेश्वर हैं उनसे दक्षिण में ब्रह्मतेज के विशेषतासे बढ़ानेवाले याज्ञवल्क्येश्वर

सर्वसुखप्रदम् ॥ प्रसन्नवदनेशाख्यंलिङ्गन्तस्योत्तरेशुभम् ॥ ३० ॥ प्रसन्नवदनस्तिष्ठेद्भक्तस्तद्दर्शनाच्छुभात् ॥ तदुत्तरेप्रसन्नोदंकुण्डन्नैर्मल्यदंनृणाम् ॥ ३१ ॥ प्रतीच्यामट्टहासस्यमित्रावरुणनामनी ॥ लिङ्गेतल्लोकदेपूज्येमहापातकहारिणी ॥ ३२ ॥ नैर्ऋत्यांश्चाट्टहासस्यवृद्धवासिष्ठसंज्ञकम् ॥ लिङ्गन्तत्पूजनात्पुंसांज्ञानमुत्पद्यतेमहत् ॥ ३३ ॥ वसिष्ठेशसमीपस्थःकृष्णेशोविष्णुलोकदः ॥ तद्याम्यांयाज्ञवल्क्येशोब्रह्मतेजोविवर्धनः ॥ ३४ ॥ प्रह्लादेश्वरमभ्यर्च्यतत्पश्चाद्भक्तिवर्धनम् ॥ स्वयंलीनःशिवोयत्रभक्तानुग्रहकाम्यया ॥ ३५ ॥ अतःस्वलीनन्तत्पूर्वेलिङ्गंपूज्यम्प्रयत्नतः ॥ सदैवज्ञाननिष्ठानाम्परमानन्दमिच्छताम् ॥ यागतिर्विहितातेषांस्वलीनेसातनुत्यजाम् ॥ ३६ ॥ वैरोचनेश्वरंलिङ्गंस्वलीनात्पुरतःस्थितम् ॥ तदुत्तरेबलीशञ्चमहाबलविवर्धनम् ॥ ३७ ॥ तत्रैवलिङ्गंबाणेशम्पूजितंसर्वकामदम् ॥ चन्द्रेश्वरस्यपूर्वेणलिङ्गंविद्येश्वराभिधम् ॥ ३८ ॥ सर्वाविद्याःप्रसन्नाःस्युस्तस्यलिङ्गस्यसेवनात् ॥ तद्दक्षिणेतुवीरेशोमहासिद्धिविधायकः ॥ ३९ ॥

हैं ॥ ३४ ॥ उनसे पश्चिम में प्रह्लादेश्वर को सामनेसे पूजकर भक्तिका बढ़ना होताहै और शिवजी आपही भक्तोंपर दया करने की इच्छा से जहां लीन हुये हैं ॥ ३५ ॥ इससे वह स्वलीनेश्वर नामक लिंग उस प्रह्लादेश्वर से पूर्व में बड़े यत्न से पूजने योग्य हैं व परमानन्दकी इच्छा करते हुये सदैव ज्ञान में निष्ठावाले उनलोगों की जो गति (मुक्ति) विहित है वह स्वलीनके समीप मे देह त्यागियों की होती है ॥ ३६ ॥ वस्वलीनेश्वर के आगे वैरोचनेश्वर लिंग टिका है और उससे उत्तर में बड़े बलका विवर्धक बलीश्वर है ॥ ३७ ॥ व वहाहीं बाणेश्वर लिंगहै जो कि पूजित होकर सब कामोंका दाता है और चन्द्रेश्वरसे पूर्व में विद्येश्वर नामक लिंग है ॥ ३८ ॥ उसलिंग

की सेवा से सब विद्यायें प्रसन्न होवे हैं उसके दक्षिण में महासिद्धि कर्त्ता वीरेश्वर हैं ॥ ३९ ॥ वहांही सबदुःख समूहों की छुड़ानेवाली विकटा देवी हैं वह पञ्चमुद्र नामक महापीठ सब सिद्धिदायक जानने योग्य है ॥ ४० ॥ वहां जपेहुये महामन्त्र शीघ्रहीसिद्ध होते हैं अन्यथा नहीं उस पीठ के वायव्य कोणमें सगरेश्वर पूजनीय हैं ॥ ४१ ॥ उस लिंगकी पूजा से अश्वमेध यज्ञ का सम्पूर्ण फल होवे है व उससे ईशानकोणमें तिर्य्यग् योनि के निवारण कर्त्ता बालीश्वर है ॥ ४२ ॥ व उसके उत्तरमें महापाप समूहों के विनाशक सुग्रीवेश्वर जी वर्त्तमान हैं वहांही ब्रह्मचर्य्य के फलप्रदायक हनूमदीश्वरहैं ॥ ४३ ॥ व वहां बड़ीबुद्धि के दाता जाम्बवदीश्वर पूजनीयहैं और गंगा के पश्चिम

तत्रैवविकटादेवीसर्वदुःखौघमोचनी ॥ पञ्चमुद्रम्महापीठन्तज्ज्ञेयंसर्वसिद्धिदम् ॥ ४० ॥ तत्रजप्तामहामन्त्राःक्षिप्रंसिद्ध्यन्तिनान्यथा ॥ तत्पीठेवायुकोणेतुसम्पूज्यःसगरेश्वरः ॥४१॥ तदर्चनादश्वमेधफलन्त्वविकलम्भवेत् ॥ तदीशानेचबालीशस्तिर्यग्योनिनिवारकः ॥४२॥ महापापौघविध्वंसीसुग्रीवेशस्तदुत्तरे ॥ हनूमदीश्वरस्तत्रब्रह्मचर्यफलप्रदः ॥ ४३ ॥ महाबुद्धिप्रदस्तत्रपूज्योजाम्बवतीश्वरः ॥ आश्विनेयेश्वरौपूज्यौगङ्गायाःपश्चिमेतटे ॥ ४४ ॥ तदुत्तरेभद्रह्रदोगवांक्षीरेणपूरितः ॥ कपिलानांसहस्रेणसम्यग्दत्तेनयत्फलम् ॥ ४५ ॥ तत्फलंलभतेमर्त्यःस्नातोभद्रह्रदेध्रुवम् ॥ पूर्वाभाद्रपदायुक्तापौर्णमासीयदाभवेत् ॥ ४६ ॥ तदापुण्यतमःकालोवाजिमेधफलप्रदः ॥ ह्रदपश्चिमतीरेतुभद्रेश्वरविलोकनात् ॥ ४७ ॥ गोलोकम्प्राप्नुयात्तस्मात्पुण्यान्नैवात्रसंशयः ॥ भद्रेश्वराद्यातुधान्यामुपशान्तशिवोमुने ॥ ४८ ॥ तस्यलिङ्गस्यसंस्पर्शात्परांशान्तिसमृच्छति ॥ उपशान्तशिवंलिङ्गंदृष्ट्वाजन्मशतार्जितम् ॥ ४९ ॥ त्यजेदश्रेयसोरा

किनारे में अश्विनी कुमारों के थापे आश्विनेयेश्वर नामक दो लिंग पूजने योग्य हैं ॥ ४४ ॥ उनसे उत्तर में गौओं के दूधसे पूरित भद्रकुण्ड है और भलीभांति दिये हुये कपिला गौओं के हजारा से जो फल है ॥ ४५ ॥ उस फलको भद्रह्रद में नहाया हुआ मनुष्य निश्चय से पाता है जब पूर्वभाद्रपद नक्षत्र से युक्त पूर्णमासी होवे ॥ ४६ ॥ तब अश्वमेध के फल का दायक बहुतही अधिक पुण्यकाल है व भद्रह्रद के पश्चिम किनारे में भद्रेश्वर के दर्शन से ॥ ४७ ॥ जो पुण्य है उस पुण्य से गोलोक को प्राप्त होवे है इसमें संशय नहीं है हे मुने! भद्रेश्वर से नैर्ऋत्य कोणमें उपशांत शिव हैं ॥ ४८ ॥ उस लिंगके भलीभांति छूने से श्रेष्ठ शांतिको संप्राप्त होता है उपशांत शिव

नामक लिंग को देखकर सकड़ों जन्मों की बटोरी ॥ ४९ ॥ अमंगल या पापकी राशिको त्यागदेते हैं और पुण्यकी राशिको पाता है और उसके उत्तर में योनिचक्र के नि-
वारण कर्त्ता चक्रेश्वर हैं ॥ ५० ॥ उनके उत्तर में महापुण्यों का विवर्धक चक्रहृद (कुण्ड) है उस चक्रकुण्ड में स्नानकर और चक्रेश्वर को सब ओर से पूजकर मनुष्य ॥
५१ ॥ भक्तियुक्त चित्त से शिवलोक को पाता है ॥ उसके नैर्ऋत्य कोण में शूलेश्वर बडे यत्न से देखने योग्य हैं ॥ ५२ ॥ हे वरवर्णिनि पार्वति ! पूर्वकाल में मैंने स्नान के
अथ वहां त्रिशूलको धरदिया उस स्थान में शूलेश्वर के आगे बड़ाभारी कुण्ड समुत्पन्न हुआ है ॥ ५३ ॥ उस कुण्ड में स्नान को करे व समर्थ शूलेश्वर को देखकर

शिश्रेयोराशिञ्चविन्दति ॥ तदुत्तरेचचक्रेशोयोनिचक्रनिवारकः ॥ ५० ॥ तदुत्तरेचक्रहृदोमहापुण्यविवर्धनः ॥ स्ना
त्वाचक्रहृदेमर्त्यश्चक्रेशम्परिपूज्यच ॥ ५१ ॥ शिवलोकमवाप्नोतिभावितेनान्तरात्मना ॥ तन्नैर्ऋतेचशूलेशोद्रष्टव्यश्च
प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ शूलन्तत्रपुरान्यस्तंस्नानार्थंवरवर्णिनि ॥ हृदस्तत्रसमुत्पन्नःशूलेशस्याग्रतोमहान् ॥ ५३ ॥ स्नानंकृ
त्वाहृदेतत्रदृष्ट्वाशूलेश्वरंविभुम् ॥ रुद्रलोकंनरायान्तित्यक्त्वासंसारगह्वरम् ॥ ५४ ॥ तत्पूर्वतोनारदेनतपस्तप्तंमहत्तर
म् ॥ लिङ्गञ्चस्थापितंश्रेष्ठंकुण्डञ्चापिशुभंकृतम् ॥ ५५ ॥ तत्रकुण्डेनरःस्नात्वादृष्ट्वावैनारदेश्वरम् ॥ संसाराब्धिम्महा
घोरंसन्तरेन्नात्रसंशयः ॥ ५६ ॥ नारदेश्वरपूर्वेणदृष्ट्वावभ्रातकेश्वरम् ॥ निर्मलाङ्गतिमाप्नोतिपापौघञ्चविमुञ्चति ॥ ५७ ॥
तदग्रेताम्रकुण्डञ्चतत्रस्नातोनगर्भभाक् ॥ विघ्नहर्तागणाध्यक्षस्तद्वायव्येस्थविघ्नहृत ॥ ५८ ॥ तत्रविघ्नहरंकुण्डन्तत्र

मनुष्य संसार रूप गुफा या वन या कुञ्ज को छोंड़कर रुद्र लोकको जाते हैं ॥ ५४ ॥ उसके पूर्व में नारद मुनि ने बडीभारी तपस्या को तपा है व श्रेष्ठ लिंगको थापा है
और शुभकुण्ड को भी किया है ॥ ५५ ॥ उस कुण्ड में स्नानकर व नारदेश्वर को देखकर मनुष्य निश्चय से बडे घोर संसार सागर को भलीभांति उतरजावे इस में संशय
नहीं है ॥ ५६ ॥ व नारदेश्वर के पूर्व में अवभ्रातकेश्वर को देखकर निर्मलगति को प्राप्त होता है और पापों के समूह को विशेषता से छोडदेता है ॥ ५७ ॥ उसके आगे
ताम्रकुण्ड है उस में नहाया हुआ गर्भसेवी नहीं है व उसके वायव्य कोण में अच्छेविघ्नों के हरनेवाले विघ्नहर्त्ता गणेश हैं ॥ ५८ ॥ और वहां विघ्नहर कुण्ड है उस में

नहाया हुआ मनुष्य विघ्नसेवी नहीं होता है व उससे उत्तर दिशामें उत्तम अनारकेश्वर लिंग है ॥ ५९ ॥ और अनारक नामक कुण्ड भी प्रसिद्ध है उसमें नहाया हुआ नर नरक निवासी नहीं होता है उसके उत्तर मे वरणा नदी के मनोहर किनारे पर वरणेश्वर विराजमान हैं ॥ ६० ॥ और हे महामुने! वहां सिद्ध हुये पाशुपत (शिवभक्त) अक्षयपाद मुनि इसही देह से निरन्तर रहनेवाली अखण्ड सिद्धि को सब ओर से प्राप्त होगये हैं ॥ ६१ ॥ व उससे पश्चिम में श्रेष्ठमुक्ति और कामों के दाता शैलेश्वर हैं व उन से दक्षिण मे सदैव रहनेवाली सिद्धि का दायक कोटीश्वर लिंग है ॥ ६२ ॥ कोटितीर्थ कुण्ड में स्नानकर फिर कोटीश्वर को सब ओर से पूजकर मनुष्य करोड़

स्नातोनविघ्नभाक् ॥ अनारकेश्वरंलिङ्गन्तदुदग्दिशिचोत्तमम् ॥ ५९ ॥ कुण्डञ्चानारकाख्यंवैतत्रस्नातोननारकी ॥ वरणायास्तटेरम्येवरणेशस्तदुत्तरे ॥ ६० ॥ तत्रपाशुपतःसिद्धस्त्वक्षपादोमहामुने ॥ अनेनैवशरीरेणशाश्वतींसिद्धिमागतः ॥ ६१ ॥ तत्पश्चिमेचशैलेशःपरनिर्वाणकामदः ॥ कोटीश्वरन्तुतद्याम्यांलिङ्गंशाश्वतसिद्धिदम् ॥ ६२ ॥ कोटितीर्थेह्रदेस्नात्वाकोटीशम्परिपूज्यच ॥ गवाङ्कोटिप्रदानस्यफलमाप्नोतिमानवः ॥ ६३ ॥ महाश्मशानस्तम्भोस्तिकोटीशाद्वह्निदिक्स्थितः ॥ तस्मिन्स्तम्भेमहारुद्रस्तिष्ठतेचोमयासह ॥ ६४ ॥ तंस्तम्भंसमलंकृत्यनरस्तत्पदमाप्नुयात् ॥ तत्रैवतीर्थंपरमंकपालेशसमीपतः ॥ ६५ ॥ कपालमोचनंनामतत्रस्नातोऽश्वमेधभाक् ॥ ऋणमोचनतीर्थन्तुतदुदग्दिशिशोभनम् ॥ ६६ ॥ तत्रतीर्थेनरःस्नात्वामुक्तोभवतिचर्णतः ॥ तत्रैवाङ्गारकन्तीर्थंकुण्डञ्चाङ्गारनिर्मलम् ॥ ६७ ॥ स्नात्वा

गौओं के बड़े दानका फल पाता है ॥ ६३ ॥ व कोटीश्वर से अग्निकी दिशा में टिकाहुआ महाश्मशान स्तम्भहै जो कि कुलस्तम्भ इसनाम से प्रसिद्ध है उस स्तम्भ (खम्भ) में पार्वतीजी के साथ महारुद्रजी टिकते हैं ॥ ६४ ॥ उस खम्भ को भलीभांति भूषितकर मनुष्य उन महारुद्र के स्थान को या पदको पावे है वहांही कपालेश्वर के समीप में अधिक उत्तम तीर्थ ॥ ६५ ॥ कपाल मोचन नाम से प्रसिद्ध है उसमें नहाया हुआ अश्वमेध यज्ञ के फलका सेवीहै और उससे उत्तर दिशामें शोभन ऋणमोचन तीर्थ है ॥ ६६ ॥ उस तीर्थ में नहाकर नर सब ऋणों से मुक्त होता है और वहांही अंगार के समान निर्मल अंगारक तीर्थ नामक कुण्ड है ॥ ६७ ॥ उस अंगारक

तीर्थ में स्नानकर फिर गर्भसेवी न होवे और जो मनुष्य मंगल दिन से युक्त चौथितिथि में वहां नहाता है वह रोगों से तिरस्कृत नहीं होवे है व कभी दुःखी नहीं होता है ॥ ६८ ॥ फिर उससे उत्तर में ज्ञानदाता विश्वकर्मेश्वर लिंग है व उसके दक्षिण में मंगलमय महामुण्डेश्वर लिंग है ॥ ६९ ॥ और शुभोदक नामक कूप भी है उसमें निश्चिन्त नहाना चाहिये व वहां अत्यन्त अच्छीमुण्डमयीमाला मुझसे फेंकीगई है ॥ ७० ॥ उसमे पापहारिणी महामुण्डा देवी समुत्पन्नहुई हैं और वहां खट्वांगधरागयाहै उससे खट्वांगेश्वर लिंग हुआ है ॥ ७१ ॥ उस खट्वांगेश्वर के दर्शन से मनुष्य पापों से हीन होजाता है और उससे दक्षिण में भुवनेश्वर लिंग व भुवनेश्वर कुण्ड

ङ्गारकतीर्थेतुभवेद्भूयोनगर्भभाक् ॥ अङ्गारवारयुक्तायाञ्चतुर्थ्यांस्नातियोनरः ॥ व्याधिभिर्नाभिभूयेतनचदुःखीकदाचन ॥ ६८ ॥ विश्वकर्मेश्वरंलिङ्गंज्ञानदञ्चतदुत्तरे ॥ महामुण्डेश्वरंलिङ्गन्तस्यदक्षिणतःशुभम् ॥ ६९ ॥ कूपःशुभोदनामापिस्नातव्यन्तत्रनिश्चितम् ॥ तत्रमुण्डमयीमालामयाक्षिप्तातिशोभना ॥ ७० ॥ महामुण्डाततोदेवीसमुत्पन्नाघहारिणी ॥ खट्वाङ्गञ्चधृतन्तत्रखट्वाङ्गेशस्ततोभवत् ॥ ७१ ॥ निष्पापोजायतेमर्त्यःखट्वाङ्गेशविलोकनात् ॥ भुवनेशस्ततोयाम्यांकुण्डञ्चभुवनेश्वरम् ॥ ७२ ॥ तत्रकुण्डेनरःस्नातोभुवनेशोभवेन्नरः ॥ तद्याम्यांविमलेशश्चकुण्डञ्चविमलोदकम् ॥ ७३ ॥ तत्रस्नात्वाविलोक्येशंविमलोजायतेनरः ॥ तत्रपाशुपतःसिद्धस्त्र्यम्बकोनामनामतः ॥ ७४ ॥ अनेनैवशरीरेणरुद्रलोकमवाप्तवान् ॥ भृगोरायतनन्तस्यपश्चिमेतीवपुण्यदम् ॥ ७५ ॥ विधिपूर्वन्तदभ्यर्च्यप्राप्नुयाच्छिवमन्दिरम् ॥ शुभेश्वरश्चतद्याम्यांमहाशुभफलप्रदः ॥ ७६ ॥ तत्रसिद्धःपाशुपतःकपिलर्षिर्महातपाः ॥ तत्रास्तिहिगुहार

है ॥ ७२ ॥ उस कुण्डमें नहाया हुआ नर भुवनेश्वर होवे है उसके दक्षिणमें विमलेश्वर और विमलोदक कुण्डहै ॥ ७३ ॥ उसमें स्नानकर व विमलेश्वर को देखकर मनुष्य विमल होता है वहा नाम से त्र्यम्बक नामक पाशुपत सिद्धहुये है ॥ ७४ ॥ इसही देहसे रुद्रलोकों को गये हैं और उसके पश्चिम में अतीव पुण्यका दाता भृगुका मन्दिर है ॥ ७५ ॥ उसको विधि पूर्वक सामने से पूजकर शिवजी के स्थान को प्राप्त होवे व उससे दक्षिण मे बड़े शुभफल के दाता शुभेश्वर हैं ॥ ७६ ॥ वहां पशुपति के भक्त

महातपस्वी कपिलऋषि सिद्ध हुये हैं व उस स्थान मेंही कपिलेश्वर के समीप में रम्य गुफा है ॥ ७७ ॥ उस गुफा में जोई प्रवेश करे वह माता के गर्भ में कभी नहीं पैठे व वहां अश्वमेध यज्ञ के फलका बड़ा दायक यज्ञोद कूप है ॥ ७८ ॥ यहही वह अकारादि अक्षरमयात्मक ॐकार है और मत्स्योदरी के उत्तर किनारे में नादेश्वर मैंहीहूं ॥ ७९ ॥ नादेश्वर परब्रह्म हैं नादेश्वर परमगति हैं नादेश्वर परमस्थानहैं और नादेश्वर दुःख व संसार के छुड़ानेवाले हैं ॥ ८० ॥ व कभी उन देव के दर्शन के लिये गंगा वहां जाती हैं वहही मत्स्योदरी कहीगई हैं और पुण्यों से उसमें स्नान मिलता है ॥ ८१ ॥ हे महादेवि! जब मत्स्योदरी गंगा पश्चिम में कपिलेश्वर के समीप

म्याकपिलेश्वरसन्निधौ ॥ ७७ ॥ तांगुहाम्प्रविशेद्योवैनसगर्भेविशेत्कचित् ॥ तत्रयज्ञोदकूपोस्तिवाजिमेधफलप्रदः ॥ ७८ ॥ ॐकारएषएवासावादिवर्णमयात्मकः ॥ मत्स्योदर्युत्तरेकूलेनादेशस्त्वहमेवच ॥ ७९ ॥ नादेशःपरमम्ब्रह्मनादेशःपरमागतिः ॥ नादेशःपरमंस्थानन्दुःखसंसारमोचनम् ॥ ८० ॥ कदाचित्तस्यदेवस्यदर्शनेयातिजाह्नवी ॥ मत्स्योदरीसाकथितास्नानम्पुण्यैरवाप्यते ॥ ८१ ॥ मत्स्योदरीयदागङ्गापश्चिमेकपिलेश्वरम् ॥ समायातिमहादेवितदायोगःसुदुर्लभः ॥ ८२ ॥ उद्दालकेश्वरंलिङ्गमुदीच्यांकपिलेश्वरात् ॥ तद्दर्शनेनसंसिद्धिःपरासर्वैरवाप्यते ॥ ८३ ॥ तदुत्तरेबाष्कुलीशंलिङ्गंसर्वार्थसिद्धिदम् ॥ बाष्कुलीशाद्दक्षिणतोलिङ्गंवैकौस्तुभेश्वरम् ॥ ८४ ॥ तस्यार्चनेनरत्नौघैर्नवियुज्येतकर्हिचित् ॥ शंकुकर्णेश्वरंलिङ्गंकौस्तुभेश्वरदक्षिणे ॥ ८५ ॥ संसेव्यपरमंज्ञानंलभेदद्यापिसाधकः ॥ अघोरेशोगुहाद्वारिकूपस्तस्योत्तरेशुभः ॥ ८६ ॥ अघोरोदइतिख्यातोवाजिमेधफलप्रदः ॥ गर्गेशोदमनेशश्चतत्रलिङ्गद्वयंशुभम् ॥ ८७ ॥ अनेनैवेहदेहेन

भलीभांति आती है तब योग बहुत दुर्लभ है ॥ ८२ ॥ व कपिलेश्वर से उत्तर में उद्दालकेश्वर लिंग है उसके दर्शन से सब को श्रेष्ठ संसिद्धि मिलती है ॥ ८३ ॥ उस के उत्तर में सर्वार्थसिद्धिदाता बाष्कुलीश्वर लिंग है और बाष्कुलीश्वर से दक्षिणमें कौस्तुभेश्वर लिंग प्रसिद्ध है ॥ ८४ ॥ उसकी पूजा से रत्नों के समूहों से कभी न हीन होवे व कौस्तुभेश्वर के दक्षिण में शंकुकर्णेश्वर लिंग है ॥ ८५ ॥ उसकी भलीभांति सेवाकर साधक नर परम ज्ञान को पावे है और गुफाके द्वारमें अघोरेश्वर हैं उन के उत्तर में शुभकूप है ॥ ८६ ॥ जोकि अघोरोद ऐसे नामसे कहागया है या प्रसिद्धहै व अश्वमेध के फलका प्रदायक है व वहां गर्गेश्वर और दमनेश्वर ये दो शुभ लिंग

हैं ॥ ८७ ॥ जहां वे गर्ग और दमन दोनोंजने इसही देह से यहां सिद्धि को प्राप्तहुयेहैं उनके थापे लिंगों के सम्पूजन से वांछित सिद्धि होवे है ॥ ८८ ॥ उसके दक्षिण में महाकुण्ड है जोकि रुद्रावास ऐसा कहागया है वहां रुद्रेश्वर को सामने से पूजकर करोड रुद्रसूक्त के जपका फल पावे है ॥ ८९ ॥ हे पार्वती ! जब आर्द्रा नक्षत्र से संयुक्त चतुर्दशी तिथि होवे तब उस कुण्ड में बडे फलवाला पुण्यतम काल है ॥ ९० ॥ रुद्रकुण्ड में स्नानकर व समर्थ रुद्रेश्वर को देखकर जहां कहीं भी माराहुआ मनुष्य रुद्रलोकको प्राप्त होवे ॥ ९१ ॥ व रुद्रेश्वर से नैर्ऋत्य भाग में वहां महालय लिंगहै उसके आगे पितरों का महास्थान पितृकूप है ॥ ९२ ॥ वहां श्राद्ध को कर जो मनुष्य

यत्रतौसिद्धिमापतुः॥ तल्लिङ्गयोःसमर्चातःसिद्धिर्भवतिवाञ्छिता ॥ ८८ ॥ तद्दक्षिणेमहाकुण्डंरुद्रावासइतिस्मृतम् ॥ तत्र रुद्रेशमभ्यर्च्यकोटिरुद्रफलंलभेत् ॥ ८९ ॥ चतुर्दशीयदापर्णेरुद्रनक्षत्रसंयुता ॥ तदापुण्यतमःकालस्तस्मिन्कुण्डेमहाफलः ॥ ९० ॥ रुद्रकुण्डेनरःस्नात्वादृष्ट्वारुद्रेश्वरंविभुम् ॥यत्रतत्रमृतोवापिरुद्रलोकमवाप्नुयात् ॥ ९१ ॥ रुद्रस्यनैर्ऋतेभागेलिङ्गंतत्रमहालयम् ॥ तदग्रेपितृकूपोस्तिपितॄणामालयःपरः ॥ ९२ ॥ तत्रश्राद्धंनरःकृत्वापिण्डान्कूपेपरिक्षिपेत् ॥ एकविंशकुलोपेतःश्राद्धकृद्रुद्रलोकभाक् ॥ ९३ ॥ तत्रवैतरणीनामदीर्घिकापश्चिमानना ॥ तस्यांस्नातोनरोदेविनरकंनैवगच्छति ॥ ९४ ॥ बृहस्पतीश्वरंलिङ्गंरुद्रकुण्डाच्चपश्चिमे ॥ गुरुपुष्यसमायोगेदृष्ट्वादिव्यांलभेद्गिरम् ॥ ९५ ॥ रुद्रावासाद्दक्षिणतःकामेशंलिङ्गमुत्तमम् ॥ तद्दक्षिणेमहाकुण्डंस्नानाच्चिन्तितकामदम् ॥ ९६ ॥ चैत्रशुक्लत्रयोदश्यांतत्रयात्राचकामदा ॥ नलकूबरलिङ्गञ्चप्राच्यांकामेश्वराच्छुभम् ॥ ९७ ॥ तदग्रेपावनःकूपोधनधान्यसमृद्धिदः ॥ नलकूब

पिण्डो को कूप में सब ओर से डालदेवे वह श्राद्धकर्त्ता इकीस पुश्त के पितरों समेत होकर रुद्रलोक का सेवी होवे ॥ ९३ ॥ हे देवि ! वहां पश्चिममुखी वैतरणी नाम दीर्घिका (बावली या नदी) है उस में नहाया हुआ नर नरक को नहीं जाता है ॥ ९४ ॥ और रुद्रकुण्ड से पश्चिम में बृहस्पतीश्वर लिंग है उसको बृहस्पतिवार व पुष्य नक्षत्र के समायोग में देखकर दिव्यवाणी को पावे ॥ ९५ ॥ व रुद्रावास से दक्षिण में उत्तम कामेश्वर लिंग है उसके दक्षिण में स्नान से चिन्तित कामोंका दायक महाकुण्ड है ॥ ९६ ॥ वहां चैतसुदी त्रयोदशीमें यात्रा सब कामनाओं की देनेवाली है और कामेश्वर से पूर्व में शुभ नलकूबरेश्वर लिंग है ॥ ९७ ॥ उसके आगे धन व धान्य की समृद्धि

का दाता पवित्र कूप है व नलकूबर से पूर्व में सूर्य्येश्वर और चन्द्रेश्वर ये दो लिंगहैं ॥ ९८ ॥ व भलीभांति पूजे हुये वे अज्ञान अन्धकार समूह को हरते हैं उनसे दक्षिण में अध्वकेश्वर हैं जोकि देखे होकर मोह के विनाशक हैं ॥ ९९ ॥ व वहां बड़ी सिद्धियों का दाता सिद्धीश्वर लिंग है और वहांही मण्डलेश्वर पद के प्रदायक याने भूमण्डल का नरनायक करनेवाले मण्डलेश्वर हैं ॥ १०० ॥ व कामकुण्ड के पूर्व में समृद्धिदाता च्यवनेश्वर हैं और वहांही राजसूय यज्ञ फलके प्रदायक सनकेश्वर हैं ॥ १ ॥ व उससे पीछे योगका सिद्धिकर्त्ता सनत्कुमारेश्वर लिंग है उसके उत्तर में बड़े ज्ञानका समर्थक सनन्दनेश्वर हैं ॥ २ ॥ व उनसे दक्षिण में आहुतीश्वर हैं

रपूर्वेणसूर्याचन्द्रमसेश्वरौ ॥ ९८ ॥ अज्ञानध्वान्तपटलींहरतस्तौसमर्चितौ ॥ तद्दक्षिणेध्वकेशश्चदृष्टोमोहविनाशनः ॥ ९९ ॥ तत्रसिद्धीश्वरंलिङ्गंमहासिद्धिसमर्पकम् ॥ तत्रैवमण्डलेशश्चमण्डलेशपदप्रदः ॥ १०० ॥ कामकुण्डस्यपूर्वेणच्यवनेशःसमृद्धिदः ॥ तत्रैवसनकेशश्चराजसूयफलप्रदः ॥ १ ॥ सनत्कुमारलिङ्गञ्चतत्पश्चाद्योगसिद्धिकृत् ॥ तदुत्तरेसनन्देशोमहाज्ञानसमर्थकः ॥ २ ॥ तद्याम्यामाहुतीशश्चदृष्टोहोमफलप्रदः ॥ तद्याम्याम्पुण्यजनकंलिङ्गंपञ्चशिखेश्वरम् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयह्रदस्तस्यपश्चिमेपुण्यवर्धनः ॥ तस्मिन्ह्रदेनरः स्नात्वाकिम्भूयःपरिशोचति ॥ ४ ॥ तत्रस्नानञ्चदानञ्च भवेदक्षयपुण्यदम् ॥ तदुत्तरेचकुण्डेशःसर्वसिद्धैर्नमस्कृतः ॥ ५ ॥ दीक्षाम्पाशुपतींलब्ध्वाद्वादशाब्देनयत्फलम् ॥ तत्फलंलभतेविप्रमर्त्यःकुण्डेशदर्शनात् ॥ ६ ॥ मार्कण्डेयह्रदात्पूर्वेशाण्डिल्येशःसुपुण्यदः ॥ तत्पश्चिमेचचण्डेशश्चण्डांशुग्रहणाघहृत् ॥ ७ ॥ दक्षिणेचकपालेशात्कुण्डंश्रीकण्ठसंज्ञितम् ॥ तत्रकुण्डेनरःस्नात्वादातास्याच्छ्रीप्रभाव

जोकि देखे हुये, होमफल प्रदायकहैं उनके दक्षिणमें पुण्यों के उपजानेवाला पंचशिखेश्वर लिंगहै ॥ ३ ॥ उसके पश्चिममें पुण्योंका वर्धक मार्कण्डेयकुण्ड है उस कुण्ड में स्नानकर नर फिर क्या सब ओरसे शोचताहै याने नहीं शोचताहै ॥ ४ ॥ और वहां स्नान व दान पुण्यों का दाता होवे है उससे उत्तर में सब सिद्धोंसे नमस्कृत कुण्डेश्वर है ॥ ५ ॥ हे ब्राह्मण, अगस्त्यजी ! पशुपतिकी दीक्षाको पाकर मनुष्य बारहवर्ष में जिस फलको पाता है उस फलको कुण्डेश्वर के दर्शन से पाता है ॥ ६ ॥ और मार्कण्डेयकुण्ड से पूर्व में सुपुण्यके दायक शांडिल्येश्वर हैं उनके पश्चिममें सूर्य्यग्रहण के समान पापहर्ता चण्डेश्वर है ॥ ७ ॥ और कपालेश्वर से दक्षिण में

कल्पोंसे भी नहींहै किन्तु उस पानीको पीकर मनुष्य जन्म बन्धनसे उठेहुये डरसे छूटजाताहै ॥ २६ ॥ व हे कलशसम्भव अगस्त्यजी ! उस कूपके समीपमें शिवकी भक्ति से युक्त मनवाले लोगोंको जो दान दियागया उसका नाश कल्पान्तमें भी नहीं है॥ २७॥ और जेकि मनुष्य वहां टूटे फूटेका संस्कार करते हैं वे रुद्रलोकको प्राप्तहोकर सदा सुखी हुये आनन्दित होते हैं ॥ २८ ॥ व कालेश्वर से दक्षिणभाग में अपमृत्यु के हर्त्ता मृत्यवीश्वर महादेवहैं और उस कालोद कूपसे उत्तर दिशामें दक्षेश्वरनामक लिंगहै ॥ २९ ॥ उसके सम्पूजन से अपराधों का हजारा नष्ट होजावे है ॥ ३० ॥ व दक्षेश्वर से पूर्वमें बड़ा भारी महाकालेश्वर लिंगहै और महाकालकुण्डहै जो मनुष्य

पेतुयद्दत्तन्दानंशिवरतात्मनाम् ॥ संवर्तेपिनतस्यास्तिनाशःकलशसम्भव ॥ २७ ॥ खण्डस्फुटितसंस्कारन्तत्रकुर्वन्तियेनराः ॥ तेरुद्रलोकमासाद्यमोदन्तेसुखिनःसदा ॥ २८ ॥ कालेशाद्दक्षिणेभागेमृत्यवीशस्त्वपमृत्युहृत् ॥ लिङ्गंदक्षेश्वराख्यञ्चततःकूपादुदग्दिशि ॥ २९ ॥ अपराधसहस्रन्तुनश्येत्तस्यसमर्चनात् ॥ ३० ॥ महाकालेशलिङ्गञ्चदक्षेशात्पूर्वतोमहत् ॥ महाकुण्डेनरःस्नात्वामहाकालन्तुयोर्चयेत् ॥३१॥ अर्चितन्तेनवैतत्रजगदेतच्चराचरम् ॥ अन्तकेश्वरमालोक्यतद्याम्यांनान्तकस्यभीः ॥ ३२ ॥ हस्तिपालेश्वरंलिङ्गंतस्यदक्षिणतोमुने ॥ तस्यपूजनतोयातिपुण्यंवैहस्तिदानजम् ॥ ३३ ॥ तत्रैरावतकुण्डञ्चलिङ्गमैरावतेश्वरम् ॥ तल्लिङ्गमर्चयन्मर्त्योधनधान्यसमृद्धिभाक् ॥ ३४ ॥ तद्दक्षिणेश्रेयसेचलिङ्गंस्यान्मालतीश्वरम् ॥ हस्तीश्वरादुत्तरेतुजयन्तेशोजयप्रदः ॥ ३५ ॥ वन्दीश्वरोमहाकालकुण्डादुत्तरतः

महाकालकुण्डमें स्नानकर महाकालेश्वरको पूजे ॥ ३१ ॥ उससे वहां यह स्थावर जंगमरूप जगत् निश्चय से पूजितहै और उसके दक्षिणमे अन्तकेश्वरको सब ओर से देखकर कालका डर नहींहै ॥ ३२ ॥ हे मुने ! उसके दक्षिणमें हस्तिपालेश्वर लिंगहै उसकी पूजासे हाथी दानसे उत्पन्न पुण्यको निश्चय से प्राप्त होताहै ॥ ३३ ॥ वहां ऐरावतकुण्ड और ऐरावतेश्वर लिंगहै उसमें नहाया व उस लिंगको पूजताहुआ मनुष्य धन और धान्यकी समृद्धिका सेवी होताहै ॥ ३४ ॥ व उसके दक्षिणमें कल्याण या पुण्यके लिये मालतीश्वर लिंग होवे है और हस्तीश्वरसे उत्तरमें जयदायक जयन्तेश्वरहैं ॥३५॥ व महाकालकुण्डसे उत्तरमें शुभ, वन्दीश्वरहैं और वहां काशीमें महापापों

का हर्त्ता वन्दिकुण्ड विख्यात है यानें प्रसिद्ध है या विशेषतासे कहागयाहै ॥ ३६ ॥ उसमें स्नान दान और श्राद्ध करने से अविनाशी फलको व्याप्त होताहै व ऐसेही धन्वन्तरीश्वर लिंग और उनके नामवाला धन्वन्तरिकुण्ड है ॥ ३७ ॥ उस लिंगका अन्य नामहै व कुण्डका नाम भी अन्यही है किन्तु लिंगका नाम तुंगेश्वरहै और कुण्ड वैद्येश्वर नामक है ॥ ३८ ॥ जेकि बड़ी बुद्धि याने स्वस्थताकी देनेवाली अमृतमयी महौषधियांहैं वे उस कुण्डमें छोंड़ीगई हैं उस कारण उस कुण्डके स्नान से और उस लिंगके संदर्शन से बडे दारुण पापों के साथ सब रोग नशते हैं ॥ ३९ ॥ उसके उत्तर मे सब रोगों के विनाशक हलीशेश्वर हैं और तुंगनाम याने तुंगेश्वर से दक्षिण में

शुभः ॥ वन्दिकुण्डञ्चविख्यातंवाराणस्यांमहाघहृत ॥ ३६ ॥ तत्रस्नानेनदानेनश्राद्धेनाक्षयमश्नुते ॥ धन्वन्तरीश्वरं लिङ्गंकुण्डन्तन्नामचैवहि ॥ ३७ ॥ तस्यलिङ्गस्यनामान्यत्कुण्डनामान्यदेवहि ॥ तुङ्गेश्वरंलिङ्गनामकुण्डंवैद्येश्वराभिधम् ॥ ३८ ॥ सुधामय्योमहौषध्यःक्षिप्तास्तत्रमहाधियः ॥ तत्कुण्डस्नानतस्तस्मात्तल्लिङ्गपरिवीक्षणात् ॥ नश्यन्तिव्याधयःसर्वेसहपापैःसुदारुणैः ॥ ३९ ॥ तदुत्तरेहलीशेशःसर्वव्याधिनिषूदनः ॥ शिवेश्वरःशिवकरस्तुङ्गनाम्नश्चदक्षिणे ॥ ४० ॥ जमदग्नीश्वरंलिङ्गंशिवेशाद्दक्षिणेशुभम् ॥ तत्पश्चिमेभैरवेशःकूपस्तस्योत्तरेशुभः ॥ ४१ ॥ तदुदस्पर्शमात्रेणसर्वयज्ञफलंलभेत् ॥ तत्कूपपश्चिमेभागेसुकेशोयोगसिद्धिदः ॥ ४२ ॥ तन्नैर्ऋत्याञ्चव्यासेशःकूपश्चविमलोदकः ॥ व्यासकूपेनरःस्नात्वातर्पयित्वासुरान्पितॄन् ॥ ४३ ॥ अक्षयंलभतेलोकंयत्रकुत्राभिकांक्षितम् ॥ व्यासतीर्थात्पश्चिमतोघण्टाकर्णोह्रदोमहान् ॥ ४४ ॥ घण्टाकर्णह्रदेस्नात्वाव्यासेशपरिदर्शनात् ॥ यत्रतत्रमृतोवापिवाराणस्यांमृतोभ

कल्याणकर्त्ता शिवेश्वर हैं ॥ ४० ॥ व शिवेश्वर से दक्षिण में मंगलमय, जमदग्नीश्वर लिंगहै उससे पश्चिम में भैरवेश्वर है उनसे उत्तर मे शुभ कूप है ॥ ४१ ॥ उसके जलके छूनेमात्रसे सब यज्ञोंके फलको पावैहै उस कूपसे दक्षिणभागमें योग सिद्धिके दाता शुकेश्वर हैं ॥ ४२ ॥ उनसे नैर्ऋत्य कोणमे व्यासेश्वर हैं और विमल जलवाला कूपहै उस व्यास कूपमें स्नानकर देव व पितरोंको तर्पणकर नर ॥ ४३ ॥ अक्षयलोक और जहीं कहीं भी अभिवाञ्छित फलको पाताहै व व्यास तीर्थ से पश्चिम मे बड़ा पूजनीय घण्टाकर्ण कुण्डहै ॥ ४४ ॥ उस घण्टाकर्णकुण्ड में स्नानकर व व्यासेश्वरके सब ओर दर्शनसे जहां तहां मराभी काशी में मराहुआ होवैहै ॥ ४५ ॥ और

घण्टाकर्ण कुण्डके समीपमें पञ्चचूडा अप्सराका सरोवर है पञ्चचूडा के तडाग के जलमें स्नानकर व उन ईश्वरदेव को याने पञ्चचूडेश्वर को देखकर ॥ ४६ ॥ मनुष्य स्वर्गलोक को जाता है और पञ्चचूडा का प्यारा होवे है उससे दक्षिण में सब जडता का विनाशक गौरीकूप है ॥ ४७ ॥ और पञ्चचूडेश्वर से उत्तरभाग में अशोक संज्ञक तीर्थ है उससे उत्तर में महापापोंकी हरणी महातीर्थ मन्दाकिनी हैं ॥ ४८ ॥ अहोमुने ! वह स्वर्गलोक में भी मनोहर है तो फिर मनुष्यलोक में क्या कहना है उससे उत्तर मध्यमेश्वर क्षेत्रके मध्यमें सोते हैं ॥ ४९ ॥ वहां चैत्रमासकी अशोकाष्टमी में जागरणकर मनुष्य शोकको कभी नहीं पाता है और सदा आनन्दमय होवे

वेत् ॥ ४५ ॥ घण्टाकर्णसमीपेतुपञ्चचूडाप्सरःसरः ॥ पञ्चचूडाजलेस्नात्वादृष्ट्वादेवंतमीश्वरम् ॥ ४६ ॥ स्वर्गलोकंनरोयातिपञ्चचूडाप्रियोभवेत् ॥ गौरीकूपस्ततोवाच्यांसर्वजाड्यविनाशनः ॥ ४७ ॥ पञ्चचूडोत्तरेभागेतीर्थञ्चाशोकसंज्ञितम् ॥ मन्दाकिनीमहातीर्थन्तदुदीच्यांमहाघहृत् ॥ ४८ ॥ स्वर्गलोकेपिसापुण्याकिंपुनर्मानवेमुने ॥ तदुत्तरेमध्यमेशोमध्येक्षेत्रंस्वपित्यहो ॥ ४९ ॥ तत्रजागरणंकृत्वाऽशोकाष्टम्यांमधौनरः ॥ नजातुशोकंलभतेसदानन्दमयोभवेत् ॥ ५० ॥ मुक्तिक्षेत्रप्रमाणञ्चक्रोशंक्रोशञ्चसर्वतः ॥ आरभ्यलिङ्गादस्माच्चपुण्यदान्मध्यमेश्वरात् ॥ ५१ ॥ एतदेवसदाप्राहुःसर्वेवैप्रपितामहाः ॥ कश्चिदस्मत्कुलेजातोमन्दाकिन्याजलाप्लुतः ॥ ५२ ॥ भोजयेत्प्रयतोविप्रान्यतीन्पाशुपतानपि ॥ मन्दाकिन्यांनरःस्नात्वादृष्ट्वावैमध्यमेश्वरम् ॥ ५३ ॥ एकविंशत्कुलोपेतोरुद्रलोकेवसेच्चिरम् ॥ मध्यमेशादवाच्याञ्चविश्वेदेवेश्वरःशुभः ॥ ५४ ॥ तदर्चनादर्चिताःस्युर्विश्वेदेवास्त्रयोदश ॥ तत्पूर्वेवीरभद्रेशोमहावीरपदप्रदः ॥ ५५ ॥ भद्रदा

है ॥ ५० ॥ व पुण्यदायक इस मध्यमेश्वर लिंगसे लगाकर सबओर कोश कोश भर तक मुक्ति क्षेत्रहै ॥ ५१ ॥ सब पितर इसही वचनको निश्चयकर अधिकतासे कहते हैं कि गङ्गाके जलमें नहायाहुआ हमारे कुलमें उत्पन्न कोईजन ॥ ५२ ॥ बहुतयत्नवान् होकर ब्राह्मण संन्यासी और पाशुपतोंको भी भोजनकरावे और मन्दाकिनीमें स्नान कर व मध्यमेश्वर को देखकर भी मनुष्य ॥ ५३ ॥ इक्कीस पुश्तिके पितरोंसे समेत होकर रुद्रलोकमें बहुतकालतक बसे और मध्यमेश्वर से दक्षिण में शुभ, विश्वेदेवेश्वर हैं ॥ ५४ ॥ उनकी पूजासे तेरह विश्वेदेव पूजित होवे हैं उस लिंग से पूर्व में वीरपद (स्थान) के प्रदायक, वीरभद्रेश्वर हैं ॥ ५५ ॥ और उनके दक्षिण में

मंगलदायिनी मङ्गलमयी भद्रकालीजी हैं व वहां अत्यन्त शुभप्रदायक भद्रकालनाम कुण्डहै ॥ ५६ ॥ उससे पूर्वमें ज्ञानदाता उत्तम आपस्तम्बेश्वर लिंगहै उससे उत्तर में पुण्यकूपहै उसके पीछे शौनक कुण्डहै ॥ ५७ ॥ और कुण्डसे पश्चिममें सुबुद्धिका बड़ा दाता शौनकेश्वर लिंगहै उस कुण्डमें निश्चय से स्नानकर व शौनकेश्वरको देख कर मनुष्य ॥ ५८ ॥ उस ज्ञानको भलीभांति पावे कि जिससे वह मृत्युको तरजाता है उससे दक्षिण में तिर्य्यग्योनि के निवारक, जम्बुकेश्वर हैं ॥ ५९ ॥ उनसे उत्तरमें गानविद्या के बड़े बोधदायक मतंगेश्वर हैं और मतगेश्वर के वायव्यकोणमें सबओर अनेकों लिंगहैं ॥ ६० ॥ जेकि यहां मुनियो से स्थापित हैं और सब सिद्धियों के

भद्रकालीचतस्यदक्षिणतःशुभा ॥ भद्रकालह्रदोनामतत्रातीवशुभप्रदः ॥ ५६ ॥ आपस्तम्बेश्वरंलिङ्गन्तत्प्राच्यांज्ञानदम्परम् ॥ तदुत्तरेपुण्यकूपस्तत्पश्चाच्छौनकोह्रदः ॥ ५७ ॥ ह्रदपश्चिमतोलिङ्गंशौनकेशंसुधीप्रदम् ॥ ह्रदेतत्रनरःस्नात्वादृष्ट्वावैशौनकेश्वरम् ॥ ५८ ॥ ज्ञानन्तत्संलभेद्दिव्यंयेनमृत्युन्तरत्यसौ ॥ तद्दक्षिणेजम्बुकेशस्तिर्यग्योनिनिवारकः ॥ ५९ ॥ तदुत्तरेमतङ्गेशोगानविद्याप्रबोधकः ॥ मतङ्गेशस्यवायव्येनानालिङ्गानिसर्वतः ॥ ६० ॥ मुनिभिःस्थापितानीहसर्वसिद्धिप्रदानिच ॥ ब्रह्मरातेश्वरंलिङ्गंमतङ्गेशाच्चदक्षिणे ॥ ६१ ॥ तल्लिङ्गदर्शनादायुर्नान्तराच्छिद्यतेक्वचित् ॥ तत्राज्यपेश्वरंलिङ्गंपितृलिङ्गान्यनेकशः ॥ तल्लिङ्गसेवयासर्वेतुष्यन्तिप्रपितामहाः ॥ ६२ ॥ तद्दक्षिणेसिद्धकूपःसिद्धाःसन्तिसहस्रशः ॥ वायुरूपास्तुयेसिद्धायेसिद्धाभानुरश्मिगाः ॥ ६३ ॥ तैःस्थापितन्तुयल्लिङ्गन्तत्सिद्धेश्वरमीरितम् ॥ तस्यसन्दर्शनादेवसर्वाःस्युःसिद्धयोऽमलाः ॥ ६४ ॥ तत्पश्चिमेसिद्धवापीपीतास्नाताचसिद्धिदा ॥ प्राच्यांचसिद्धकूपाद्वैलिङ्गंव्याघ्रे

प्रदायक हैं व मतंगेश्वरसे दक्षिणमें ब्रह्मरातेश्वर लिंगहै ॥ ६१ ॥ उस लिंगकेदर्शन से आयु बीचमें कभी नहीं छिन्नहोतीहै व वहां आज्यपेश्वर लिंगहै और अनेकशः पितरों के लिंग हैं उन लिंगोंकी सेवासे सब पितर सन्तुष्ट होते हैं ॥ ६२ ॥ उस आज्यपेश्वर से दक्षिणमें सिद्धकूप है व हजारों सिद्धहैं जेकि सिद्ध वायुरूप हैं व जे सूर्य्यकी किरणों में प्राप्तहैं ॥ ६३ ॥ उनसे जो लिंग स्थापित है वह सिद्धेश्वर कहा गया है उसके सन्दर्शनसे ही सब निर्मल सिद्धियां होवेहैं ॥ ६४ ॥ उससे पश्चिम में

सिद्धवापी है जोकि पिई और नहाईगई हुई होकर सिद्धियोंकी देनेवाली है व सिद्ध कूपसे पूर्वमें व्याघ्रेश्वर नामक लिंग प्रसिद्ध है ॥ ६५ ॥ उस लिंगके दर्शन से मनुष्योंका व्याघ्र और चोरों से उपजाहुआ डर नहीं है व उससे दक्षिण ज्येष्ठ स्थान मे अत्यन्त सिद्धिदाता ज्येष्ठेश्वर लिंग है ॥ ६६ ॥ उससे दक्षिण में आनन्दोंका मन्दिर प्रहसितेश्वर लिंग है उससे उत्तर मे काशीवास के फलका प्रदायक निवासेश्वर लिंग है ॥ ६७ ॥ व वहां समुद्र स्नानकीसी पुण्यका दाता चतुःसमुद्रकूप है और वहां ज्येष्ठादेवी हैं जोकि प्रणमी हुई श्रेष्ठ पदकी प्रदायिनी हैं ॥ ६८ ॥ व व्याघ्रेश्वर लिंगसे दक्षिणमें चण्डीश्वरनामक लिंग है उससे उत्तर मे पितरों के आनन्द का

श्वराभिधम् ॥ ६५ ॥ तल्लिङ्गदर्शनान्नृणांनभयंव्याघ्रचोरजम् ॥ ज्येष्ठेश्वरंचतद्याम्यांज्येष्ठस्थानेतिसिद्धिदम् ॥ ६६ ॥
तद्दक्षिणेमुदांधामलिङ्गंप्रहसितेश्वरम् ॥ तदुत्तरेनिवासेशःकाशीवासफलप्रदः ॥६७ ॥ चतुःसमुद्रकूपोऽस्तितत्राब्धिस्ना
नपुण्यदः ॥ ज्येष्ठादेवीतुतत्रास्तिनताज्येष्ठपदप्रदा ॥ ६८ ॥ अवाच्यांव्याघ्रलिङ्गाच्चलिङ्गंचण्डीश्वराभिधम् ॥ तदुत्तरे
दण्डखातंसरःपितृमुदावहम् ॥ ६९ ॥ ग्रहणानन्तरेस्नानंदण्डखातेतिपुण्यदम् ॥ जैगीषव्यगुहातत्रतत्रलिङ्गंतदाह्व
यम् ॥ ७० ॥ त्रिरात्रोपोषितस्तत्रज्ञानंलभ्येतनिर्मलम् ॥ महापुण्यप्रदंलिङ्गंतत्पश्चाद्देवलेश्वरम् ॥ ७१ ॥ शतकालस्त
त्समीपेशतंकालानुमापतिः ॥ तल्लिङ्गाविर्भवेकाश्यांकालयामासकुम्भज ॥ ७२ ॥ तल्लिङ्गदर्शनादायुःशतवर्षाण्यख
ण्डितम् ॥ शातातपेशस्तद्याम्यांमहाजपफलप्रदः ॥ ७३ ॥ तत्पश्चिमेहेतुकेशोहेतुभूतोमहाफले ॥ तद्दक्षिणेक्षपादेशो

प्राप्तकरनेवाला दण्डखातनामक तडाग है ॥ ६९ ॥ उस दण्डखात में ग्रहण के अनन्तर नहाना अतिशय पुण्यका दायक है वहां जैगीषव्य की गुहा (गुफा) है व उस स्थान में उन जैगीषव्य के नामवाला जैगीषव्येश्वर लिंगहै ॥ ७० ॥ वहां तीन रात्रितक समीप में बसा या उपास कियेहुआ मनुष्य निर्मलज्ञान को पावे है उसके पीछे या पश्चिममें महापुण्य का दाता देवलेश्वर लिंग है ॥ ७१ ॥ उसके समीप में शतकाल नामक शिवहैं हे कुम्भज ! उस लिंगका प्रकट होना होतेही पार्वतीके पतिने काशी में सैकडों कलोंको चलाया याने भगाया है ॥ ७२ ॥ उस लिंगके दर्शन से सौवर्षतक अखण्डित आयुहोती है उसके दक्षिण में महाजप फलोंके प्रदायक

शातातपेश्वर हैं ॥ ७३ ॥ उनसे पश्चिम ओर बड़े फलके कारण हुये हेतुकेश्वर हैं उनके दक्षिण में बड़े ज्ञानके प्रवर्त्तक अक्षपादेश्वर हैं ॥ ७४ ॥ और उनके आगे कणादेश्वर हैं वहां पुण्योदक कूप है जो कोई काणाद कूपमें स्नानकर कणादेश्वर को भलीभांति पूजे ॥ ७५ ॥ वह कभी धनसे नहीं और धान्य से नहीं त्यागाजाता है उसके दक्षिण में सज्जनों के ऐश्वर्य्यकर्त्ता भूतीश्वर देखने योग्यहैं ॥ ७६ ॥ उनसे पश्चिम में पापोंका विनाशक आषाढीश्वरनामक लिंग है उससे पूर्वमें सबकामोंकी समृद्धिके कर्त्ता दुर्वासेश्वर हैं ॥ ७७ ॥ उनसे दक्षिण में पापसमूह या उसके भारके अपहर्ता भारभूतेश्वर हैं और व्यासेश्वर के पूर्वमें शङ्खेश्वर व लिखितेश्वर

महाज्ञानप्रवर्तकः ॥ ७४ ॥ तदग्रेचकणादेशस्तत्रपुण्योदकःप्रहिः ॥ स्नात्वाकाणादकूपेयःकणादेशंसमर्चयेत् ॥ ७५ ॥ नधनेननधान्येनत्यज्यतेसकदाचन ॥ तस्यदक्षिणतोदृश्योभूतीशोभूतिकृत्सताम् ॥ ७६ ॥ तत्पश्चिमेऽघसंहर्तृआषाढीश्वरसञ्ज्ञितम् ॥ दुर्वासेशश्चतत्पूर्वेसर्वकामसमृद्धिकृत् ॥ ७७ ॥ तद्याम्यांभारभूतेशःपापभारापहारकः ॥ व्यासेश्वरस्यपूर्वेणद्वौशङ्खलिखितेश्वरौ ॥ तौदृश्यौयत्नतःकाश्यांमहाज्ञानप्रवर्तकौ ॥ ७८ ॥ यत्समाप्याऽप्यतेपुण्यंनिष्ठापाशुपतव्रतम् ॥ तदाप्यतेत्रविश्वेशसकृदीक्षणतःक्षणात् ॥ ७९ ॥ तदीशानेवधूतेशोयोगज्ञानप्रवर्तकः ॥ तीर्थंचैवावधूतेशंसर्वकल्मषनाशकृत् ॥ ८० ॥ अवधूतेश्वरात्पूर्वेलिङ्गंपशुपतीश्वरम् ॥ तल्लिङ्गसेवयापुंसांपशुपाशविमोक्षणम् ॥ ८१ ॥ तद्दक्षिणेगोभिलेशोमहाभिलाषितप्रदः ॥ जीमूतवाहनेशश्चतत्पश्चाल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ ८२ ॥ विद्याधरपदप्राप्तिस्त

ये दो लिंग हैं और बड़ेज्ञान के प्रवर्त्तक वे काशी में यत्नसे देखने योग्यहैं ॥ ७८ ॥ जोकि पुण्य नियम पूर्वक पाशुपत व्रतको समाप्तकर प्राप्त कीजातीहै वह यहां विश्वेश याने शंखेश्वर व लिखितेश्वर के एकबार दर्शनसे क्षणमें मिलती है ॥ ७९ ॥ उनसे ईशान कोणमें योग और ज्ञानके प्रवर्त्तक अवधूतेश्वरहैं व सब पापोंका नाशकर्त्ता अवधूतेशतीर्थ है ॥ ८० ॥ अवधूतेश्वर से पूर्व में पशुपतीश्वर लिंगहै उस लिंगकी सेवासे पुरुषोंका अज्ञानकृत बन्धनों से छूटना होताहै ॥ ८१ ॥ उससे दक्षिणमें बड़े अभिलषित फलों के बहुत देनेवाले गोभिलेश्वरहैं व उनके पीछे उत्तम जीमूतवाहनेश्वर लिंग है ॥ ८२ ॥ उस लिंगकी सब ओर सेवासे विद्याधरों के पद

(स्थान) की प्राप्तिहोती है और पञ्चनद में मयूखादित्य हैं व वहांही गभस्तीश्वर हैं ॥ ८३ ॥ उन से उत्तर में दधिकल्प कुण्ड नामक बड़ा कूप है उस कूपमें स्नान दुर्लभ है और उन गभस्तीश्वर का दर्शन दुर्लभ है ॥ ८४ ॥ गभस्तीश्वर से उत्तर भागमें भवभयहारी दधिकल्पेश्वर हैं उनको शीघ्रही भलीभांति विशेषता से देखकर नर एक कल्पभर त्रिनेत्र (शिव) के लोकमें बसै है ॥ ८५ ॥ और गभस्तीश्वरसे दक्षिणमें मङ्गलों के मन्दिर सी मंगलमयी मंगला गौरीको उद्देशकर स्त्री पुरुष ब्राह्मणों को खिलावै पिलावै ॥ ८६ ॥ व यथाशक्ति उनको भूषितकर उस पुण्यका अन्त कभी नहीं है व मंगलाकी एक प्रदक्षिणा पृथिवी प्रदक्षिणाके फलोंवाली है ॥ ८७ ॥ और

ल्लिङ्गपरिसेवनात् ॥ मयूखार्कःपञ्चनदेगभस्तीशश्चतत्रवै ॥ ८३ ॥ दधिकल्पह्रदोनामतदुदीच्यांमहाप्रहिः ॥ दुर्लभंतत्प्र हिस्नानंदुर्लभंचतदीक्षणम् ॥ ८४ ॥ गभस्तीशोत्तरेभागेदधिकल्पेश्वरोहरः ॥ नरस्तमाशुसंवीक्ष्यकल्पंत्र्यक्षपुरेवसे त् ॥ ८५ ॥ गभस्तीशाद्दक्षिणेतुमङ्गलांमङ्गलालयाम् ॥ उद्दिश्यमङ्गलाङ्गौरींभोजयेद्द्विजदम्पती ॥ ८६ ॥ अलंकृत्य यथाशक्तितत्पुण्यान्तोनकर्हिचित् ॥ क्षितिप्रदक्षिणफलामङ्गलैकाप्रदक्षिणा ॥ ८७ ॥ वदनप्रेक्षणादेवीमुखप्रेक्षेश्वरोत्त रे ॥ मङ्गलायाःसमीपेतुसर्वसिद्धिकरीशिवा ॥ ८८ ॥ लिङ्गेत्वष्ट्रीशवृत्तेशौमुखप्रेक्षोत्तरेशुभे ॥ सहेमभूमिदानस्यफलं दर्शनतस्तयोः ॥ ८९ ॥ तदुत्तरेचर्चिकायादेव्याःसंदर्शनंशुभम् ॥ रेवतेश्वरलिङ्गंचचर्चिकाग्रेणशान्तिकृत् ॥ ९० ॥ म हाशुभायतस्याग्रेलिङ्गंपञ्चनदेश्वरम् ॥ मङ्गलोदोमहाकूपोमङ्गलापश्चिमेशुभः ॥ ९१ ॥ उपमन्योर्महालिङ्गंमङ्गलाप श्चिमेशुभम् ॥ व्याघ्रपादेश्वरंलिङ्गंतत्पश्चाद्व्याघ्रभीतिहृत् ॥ ९२ ॥ नैर्ऋत्याञ्चगभस्तीशाच्छशाङ्केशोघसङ्घहृत ॥ तत्प

मंगला के समीपमेंही मुखप्रेक्षेश्वर से उत्तर मे सर्वसिद्धिकरी कल्याणरूपिणी वदनप्रेक्षणा देवी हैं ॥ ८८ ॥ उन वदन प्रेक्षणादेवीजी से उत्तरमें त्वष्ट्रीश्वर और वृत्तेश्वर ये दो शुभ लिंग हैं उनके दर्शन से सुवर्ण समेत पृथिवी दानका फल है ॥ ८९ ॥ व उनसे उत्तर में चर्चिका देवीका शुभ सन्दर्शन है और चर्चिका के आगे शान्ति कर्त्ता रेवतेश्वर लिंगहै ॥ ९० ॥ उसके आगे महामंगलके लिये पञ्चनदेश्वरलिंगहै और मंगला गौरी के पश्चिम मे मंगलमय मंगलोदक नामक महाकूपहै ॥ ९१ ॥ व मंगला से पश्चिम मे शुभ, उपमन्युका महालिंग है उसके पीछे व्याघ्रो से डरका हरनेवाला व्याघ्रपादेश्वर लिंगहै ॥ ९२ ॥ और गभस्तीश्वर से नैर्ऋत्यमें पापों के

फाल्गुनेश्वर हैं और उनसे दक्षिण में शुभकर्त्ता व श्रेष्ठ महापाशुपतेश्वर हैं ॥ १३ ॥ उनसे पश्चिम में समुद्रेश हैं उनसे उत्तरमें ईशानेश हैं व उनसे पूर्वमें लांगलीश हैं जोकि सब सिद्धियों के सौंपनेवाले हैं ॥ १४ ॥ उनके पूजकजन राग (प्रीति) और द्वेष (वैर) से विनिर्मुक्त होकर सिद्धिको प्राप्तहोते हैं व वे मनुष्यनहीं हैं और उनकी मुक्ति मुझसे कही गई है ॥ १५ ॥ मधुपिंग व श्वेतकेतु ये दो तपस्वी इसही देहसे लांगलीश्वर के समीप में उत्तम सिद्धिको प्राप्तहुये हैं ॥ १६ ॥ और वहांही नकुलीश्वर हैं व वहां कपिलेश्वर प्रसिद्ध हैं व मेरे व्रतके सेवक वे दोनों परमरहस्यहैं ॥ १७ ॥ हे प्रिये ! उनके समीप में प्रीतिकेश हैं उनमें मेरी प्रीतिहै वहां एकउपास

त्तरे ॥ तत्पूर्वेलाङ्गलीशश्चसर्वसिद्धिसमर्पकः ॥ १४ ॥ रागद्वेषविनिर्मुक्ताःसिद्धिंयान्तिचपूजकाः ॥ तेषांमोक्षोमयाख्याताेनतुतेदेविमानवाः ॥ १५ ॥ मधुपिङ्गश्वेतकेतूलाङ्गलीशेतपस्विनौ ॥ अनेनैवशरीरेणजग्मतुःसिद्धिमुत्तमाम् ॥ १६ ॥ तत्रैवनकुलीशश्चकपिलेशश्चतत्रवै ॥ रहस्यम्परमञ्चोभौममव्रतनिषेविणौ ॥ १७ ॥ तत्सन्निधौप्रीतिकेशस्तत्रप्रीतिर्ममप्रिये ॥ तत्रोपवासादेकस्मात्फलमब्दशताधिकम् ॥ १८ ॥ एकंजागरणंकृत्वाप्रीतिकेशउपोषितः ॥ गणत्वपदवीतस्यनिश्चितामम पर्वणि ॥ १९ ॥ देवस्यदक्षिणेभागेतत्रवापीशुभोदका ॥ तदम्बुप्राशनंनॄणामपुनर्भवहेतवे ॥ २० ॥ तज्जलात्पश्चिमेभागेदण्डपाणिःसदावति ॥ तत्प्राच्यवाच्युत्तरस्यांतारःकालःशिलादजः ॥ २१ ॥ लिङ्गत्रयंहृदब्जेयच्छ्रद्धयापीतमपयत् ॥ यैस्तत्रतज्जलंपीतंकृतार्थास्तेनरोत्तमाः ॥ २२ ॥ अविमुक्तसमीपेच्योमोक्षेशोमोक्षबुद्धिदः ॥ करुणेशोदया

से सौवर्ष से अधिकफल है ॥ १८ ॥ मेरी पर्व याने शिवरात्रि में उपासाहुआ प्रीतिकेश्वर के समीप में एक जागरणकोकर टिकता है उसकी गणत्वपदवी निश्चित है ॥ १९ ॥ और वहां देवके दक्षिण भागमें शुभ जलवाली वापीहै उसके पानीका पीना मनुष्यों की फिर न उत्पात्ति (मुक्ति) का कारण होताहै ॥ २० ॥ उस जलाशयसे पश्चिम भागमें दण्डपाणि (हरिकेश) जी सदारक्षा करते हैं उनसे पूर्वमें तारेश्वर दक्षिण में कालेश्वर और उत्तर में नन्दिकेश्वर हैं ॥ २१ ॥ जोकि जल श्रद्धासे पिया हुआ हृदयकमलमें तीनलिंगोंको अर्पितकरेहै वह वहां जिनसे पियागया वे नरोत्तम कृतार्थहैं ॥ २२ ॥ और अविमुक्त के समीपमें मोक्षबुद्धिके दाता मोक्षेश्वर भलीभांति

पूजनीय हैं उनसे उत्तरमें दयाके घर जो करुणेश्वर हैं उनको सम्पूजन करे ॥ २३ ॥ व उनमे पूर्वमें स्वर्णाक्षेश हैं और उनसे उत्तर में ज्ञानदाता है वहां बहुत सौभाग्य सम्पत्तिके लिये सौभाग्यगौरी भलीभांति पूजने योग्य हैं ॥ २४ ॥ व विश्वेश्वरसे दक्षिणभाग में क्षेत्रके कल्याणकर्त्ता निकुम्भेश बड़े यत्नसे पूजनीय हैं उनके पीछे विघ्ननायक (गणेश) जी ॥ २५ ॥ जोकि सब विघ्नों के खण्डनकर्त्ता हैं वह चौथिमें विशेषसे सन्मुख पूजने योग्य हैं और निकुम्भेश से आग्नेय कोणमें सुसिद्धिदायक विरूपाक्ष पूजनीय हैं ॥ २६ ॥ उनसे दक्षिण में पुत्र और पौत्रोंके बडे बढ़ानेवाले शुक्रेश हैं उनसे उत्तरमें देवयानीश्वर नामक महालिंगहै ॥ २७ ॥ व शुक्रेश के आगे

धामतदुदीच्यांसमर्चयेत ॥ २३ ॥ स्वर्णाक्षेशस्तुतत्प्राच्यांज्ञानदस्तस्यचोत्तरे ॥ सौभाग्यगौरीसम्पूज्याबहुसौभाग्यसम्पदे ॥ २४ ॥ विश्वेशाद्दक्षिणेभागेनिकुम्भेशःप्रयत्नतः ॥ क्षेत्रक्षेमकरःपूज्यस्तत्पश्चाद्विघ्ननायकः ॥ २५ ॥ सर्वविघ्नच्छिदभ्यर्च्यश्चतुर्थ्यान्तुविशेषतः ॥ विरूपाक्षोनिकुम्भेशाद्वह्नौपूज्यःसुसिद्धिदः ॥ २६ ॥ तद्दक्षिणेचशुक्रेशःपुत्रपौत्रप्रवर्धनः ॥ तदुदीच्यांमहालिङ्गंदेवयानीश्वराभिधम् ॥ २७ ॥ शुक्रेशादग्रतःपूज्यःकचेशइतिसञ्ज्ञितः ॥ शुक्रकूपमुपस्पृश्यहयमेधफलंलभेत् ॥ २८ ॥ भवानीशौनमस्यौचशुक्रेशात्पश्चिमेशुभौ ॥ भक्तिपोतप्रदौतौतुनिजभक्तस्यसर्वदा ॥ २९ ॥ अलर्केशःसमभ्यर्च्यःशुक्रेशात्पूर्वदिक्स्थितः ॥ मदालसेश्वरस्तत्रतत्पूर्वेसर्वविघ्नहृत् ॥ ३० ॥ गणेश्वरेश्वरंलिङ्गंसर्वसिद्धिकरंपरम् ॥ हत्वालङ्केश्वरंविप्ररघुनाथप्रतिष्ठितम् ॥ ३१ ॥ तल्लिङ्गस्पर्शनादाशुब्रह्महापिविशुध्यति ॥ महापुण्य

कचेश ऐसी संज्ञावाला लिंग पूजनीय है और शुक्रकूप में स्नानकर अश्वमेध यज्ञका फल पावे है ॥ २८ ॥ व शुक्रेश्वर से पश्चिम में मङ्गलमय भवानी और ईश नमस्कार के योग्य हैं और वे संसारपार के लिये अपने भक्तको सदैव भक्तिनौका के प्रदायक हैं ॥ २९ ॥ व शुक्रेशसे पूर्वदिशा में टिकेहुये अलर्केश्वर भलीभांति सामने से पूजने योग्य हैं और वहांही मदालसेश्वरहैं उनसे पूर्वमें सब विघ्नोंका हर्ता ॥ ३० ॥ गणेश्वरेश्वर लिंग है जोकि सब सिद्धियों का कर्त्ता व श्रेष्ठहै, हे ब्राह्मण ! जोकि लिंग लङ्केश्वर रावणको मारकर रघुनाथ (श्रीरामचन्द्र) जीसे प्रतिष्ठित है ॥ ३१ ॥ उस लिंगके स्पर्शनसे ब्रह्मघातीभी शीघ्रही विशुद्ध होताहै और वहां महापुण्यप्र-

समूह के हर्त्ता शशाङ्केश्वरहैं उनसे पश्चिममें दिव्यगतिदायक चित्ररथका लिंगहै ॥ ९३ ॥ व रेवतेश्वर से पश्चिम में महापापहारी जैमिनीश्वरहैं हे ऋषि सत्तम! वहां ऋषियों के अनेकों लिंगहैं ॥ ९४ ॥ और जैमिनेश से वायव्य मे रावणेश्वर लिंग प्रसिद्ध है उसके दर्शन से मनुष्यों को राक्षसों का बड़ा डर नहीं है ॥ ९५ ॥ उस से दक्षिण में वराहेश्वरहैं और उनसे दक्षिणमें माण्डव्येश्वर हैं उनसे दक्षिणमें प्रचण्डेश्वरहैं उनसे दक्षिणमें योगेश्वरहैं ॥ ९६ ॥ और उनसे दक्षिणमें धातेश्वर हैं व उनके आगे सोमेश्वर हैं उनसे नैर्ऋत्यकोणमें सज्जनों को बड़े सुवर्णके दाता कनकेश्वरहैं ॥ ९७ ॥ उनसे उत्तर में सन्तों के आनन्द के लिये पाण्डवों के पांच लिंग हैं

श्चिमेचैत्ररथंलिङ्गंदिव्यगतिप्रदम् ॥ ९३ ॥ रेवतेशात्पश्चिमतोजैमिनीशोमहाघहृत् ॥ तत्रलिङ्गान्यनेकानिऋषीणामृषिसत्तम ॥ ९४ ॥ जैमिनेशाच्चवायव्येलिङ्गंवैरावणेश्वरम् ॥ नतद्दर्शनतःपुंसांराक्षसानांमहाभयम् ॥ ९५ ॥ तद्दक्षिणेवराहेशोमाण्डव्येशस्ततोयमे ॥ तद्दक्षिणेप्रचण्डेशोयोगेशोदक्षिणेततः ॥ ९६ ॥ तद्दक्षिणेचधातेशःसोमेशश्चतदग्रतः ॥ तन्नैर्ऋत्यांकनकेशोमहाकनकदःसताम् ॥ ९७ ॥ तदुत्तरेपाण्डवानांपञ्चलिङ्गानिसन्मुदे ॥ संवर्तेशस्तदग्रेचश्वेतेशस्तस्यपश्चिमे ॥ ९८ ॥ ततपश्चात्कलशेशश्चलिङ्गंकालाभयप्रदम् ॥ कालेनपाशितेश्वेतेमुनेकुम्भात्समुत्थितम् ॥ ९९ ॥ चित्रगुप्तेश्वरंलिङ्गंतदुदीच्यामघापहम् ॥ चित्रगुप्तेश्वरात्पश्चाद्योदृढेशोमहाफलः ॥ २०० ॥ कलशेशादवाच्यांचग्रहेशोलिङ्गमुत्तमम् ॥ ग्रहबाधांशमयतितल्लिङ्गपरिलोकनम् ॥ १ ॥ चित्रगुप्तेश्वरात्पश्चादृक्षेशोमहाफलः ॥ उतथ्यवामदेवेशौलिङ्गंयाम्यांग्रहेश्वरात ॥ २ ॥ कम्बलाश्वतरेशौचतस्यदक्षिणतःशुभे ॥ तत्रैवनिर्मलंलिङ्गंनलकूबरपूजि

और उनके आगे संवर्त्तेश्वर हैं उनसे पश्चिम में श्वेतेश्वर हैं ॥ ९८ ॥ व उनसे पीछे कालसे अभयदायक कलशेश्वर लिंग है हे अगस्त्यमुने! जोकि लिंग श्वेतमुनिके कालसेपाशित (बांधेहुये) होतेही कलशसे भलीभांति उठकर टिका है ॥ ९९ ॥ उससे उत्तर में पापोंका विनाशक चित्रगुप्तेश्वर लिंग है व चित्रगुप्तेश्वर से पीछे जो दृढेश्वर लिंग हैं वह बड़े फलोंका दाताहै ॥ २०० ॥ और कलशेश्वर से दक्षिण में उत्तमग्रहेश्वर लिंगहै उसलिंगका सबओरसे दर्शन ग्रहोंकी पीडाको नशाताहै ॥ १ ॥ व चित्रगुप्तेश्वर से पीछे जो ऋक्षेश्वर लिंग है वह महा फलवाला है और ग्रहेश्वर से दक्षिण में उतथ्येश्वर व वामदेवेश्वर लिंगहै ॥ २ ॥ उसके दक्षिण में मंगलमय

कम्बलाश्वतरेश्वर याने कम्बलेश्वर व अश्वतरेश्वर दो लिंगहैं और वहांही निर्मल, नलकूबर से पूजित नलकूबरेश्वर लिंग है ॥ ३ ॥ उससे दक्षिण में मणिकर्णीश्वर व उससे उत्तर में पलितेश्वर लिंग है और वहांही जराहर याने बुढ़ाई का हरनेवाला लिंग है उससे पीछे पापनाशन लिंग है ॥ ४ ॥ उससे पश्चिम में निर्जरेश्वर हैं उनसे नैर्ऋत्यकोण में पितामह हैं और वहां पितामह (ब्रह्मा) का सोता है उस में श्राद्धमहाफलवान् है ॥ ५ ॥ और उससे दक्षिण में वरुणेश्वर हैं व उनसे दक्षिण में बाणेश्वर हैं और पितामह की स्रोतिका में सिद्धिकर्त्ता कूष्माण्डेश्वर हैं ॥ ६ ॥ उन से पूर्वमें राक्षसेश्वर हैं व उनसे दक्षिण में गंगेश्वर हैं उनसे उत्तर में अनेकसे

तम् ॥ ३ ॥ तद्याम्यांमणिकर्णीशंतदुदक्पलितेश्वरम् ॥ जराहरंचतत्रैवतत्पश्चात्पापनाशनम् ॥ ४ ॥ तत्पश्चिमेनिर्जरेशस्तन्नैर्ऋत्यांपितामहः ॥ पितामहस्रोतिकाचतत्रश्राद्धंमहाफलम् ॥ ५ ॥ तद्याम्यांवरुणेशश्चबाणेशस्तस्यदक्षिणे ॥ पितामहस्रोतिकायांकूष्माण्डेशस्तुसिद्धिकृत् ॥ ६ ॥ तत्पूर्वतोराक्षसेशोगङ्गेशस्तस्यदक्षिणे ॥ तदुत्तरेनिम्नगेशाःसन्तिलिङ्गान्यनेकशः ॥ ७ ॥ वैवस्वतेश्वरस्तत्रयमलोकनिवारकः ॥ तत्पश्चाददितीशश्चचक्रेशस्तस्यचाग्रतः ॥ ८ ॥ तदग्रेकालकेशाख्योदृष्टप्रत्ययकृत्परः ॥ छायासंदृश्यतेतत्रनिष्पापस्तदवेक्षणात् ॥ ९ ॥ तदग्रेतारकेशश्चतदग्रेस्वर्णभारदः ॥ तदुत्तरेमरुत्तेशःशक्रेशश्चतदग्रतः ॥ १० ॥ तद्दक्षिणेचरम्भेशस्तत्रैवचशचीश्वरः ॥ तदुत्तरेलोकपेशास्तत्रलिङ्गान्यनेकशः ॥ ११ ॥ नागगन्धर्वयक्षाणांकिन्नराप्सरसामपि ॥ देवर्षिगणवृन्दानांनानासिद्धिकराण्यपि ॥ १२ ॥ शक्रेशाद्दक्षिणेभागेफाल्गुनेशोमहाघहृत् ॥ महापाशुपतेशश्चतद्याम्यांशुभकृत्परः ॥ १३ ॥ तत्पश्चिमेसमुद्रेशईशानेशस्तदु

नदीश्वर लिंग हैं ॥ ७ ॥ और वहां यमलोकके निवारण कारण वैवस्वतेश्वरहैं उनसे पीछे अदितीश्वरहैं उनके आगे चक्रेश्वरहैं ॥ ८ ॥ उनके आगे देखेहुये प्रतीतिकारी व श्रेष्ठ कालकेश नामक लिंग है वहां छाया भलीभांति देखीजाती है उसके देखने से निष्पाप होताहै ॥ ९ ॥ उसके आगे तारकेश्वर हैं और उनसे आगे स्वर्णभारद हैं उनसे उत्तर में मरुत्तेश हैं व उनके आगे शक्रेश हैं ॥ १० ॥ व उनसे दक्षिण में रम्भेश हैं और वहांही शचीश्वर हैं उनसे उत्तर में वहां लोकपालेश्वर अनेकों लिंग हैं ॥ ११ ॥ व नाग गन्धर्व यक्ष किन्नर अप्सराओंकेभी व देव ऋषि और गणसमूहों के बहुतसे सिद्धिकर्त्ता भी लिंगहैं ॥ १२ ॥ व शक्रेशसे दक्षिण भागमें महापापहारी

दायक अन्य त्रिपुरान्तक लिंग पूजनीय है ॥ ३२ ॥ उससे पश्चिममें शुभ दत्तात्रेयेश्वर लिंगहै उसके दक्षिणमें हरिकेशेश्वरहैं उससे परे (आगे) गोकर्णेश्वरहैं ॥ ३३ ॥ उनके आगे पातकघातक तड़ाग है व उसके पीछे ध्रुवेश्वरहैं और उनके आगे पितरोंकी प्रीतिका करनेवाला व उत्तम ध्रुवकुण्डहै ॥ ३४ ॥ उससे उत्तर में पिशाचता पदके हर्त्ता पिशाचेश्वर हैं उनसे दक्षिण में पित्रीश्वर हैं उनके आगे पितृकुण्ड है ॥ ३५ ॥ वहां श्राद्धकर्त्ता मनुष्यों के पितर सन्तुष्ट होवे हैं और ध्रुवेश्वर के आगे जो तारेश्वर हैं वहही वैद्यनाथ हैं ॥ ३६ ॥ उनसे नैर्ऋत्य कोण मे वंशवृद्धिकर्त्ता व श्रेष्ठ मनुका लिंगहै व वैद्यनाथके अग्रगत प्रियव्रतेश्वर लिंगहै ॥ ३७ ॥ उससे दक्षिण

प्रदंचान्यत्तत्राच्यँत्रिपुरान्तकम् ॥ ३२ ॥ दत्तात्रेयेश्वरंलिङ्गंतस्यपश्चिमतःशुभम् ॥ तद्याम्यांहरिकेशेशोगोकर्णेशस्ततःपरम् ॥ ३३ ॥ सरस्तदग्रेपापघ्नंतत्पश्चाद्ध्रुवेश्वरः ॥ तदग्रेध्रुवकुण्डञ्चपितृप्रीतिकरंपरम् ॥ ३४ ॥ तदुत्तरेपिशाचेशः पैशाच्यपदहारकः ॥ पित्रीशस्तद्यमदिशिपितृकुण्डंतदग्रतः ॥ ३५ ॥ तत्रश्राद्धकृतांपुंसान्तुष्येयुःप्रपितामहाः ॥ अग्रेध्रुवेशात्तारेशोवैद्यनाथःसएवहि ॥ ३६ ॥ तन्नैर्ऋत्यांमनोर्लिङ्गंवंशवृद्धिकरंपरम् ॥ प्रियव्रतेश्वरंलिङ्गंवैद्यनाथपुरोगतम् ॥ ३७ ॥ तद्याम्यांमुचुकुन्देशस्तत्पार्श्वेगौतमेश्वरः ॥ तत्पश्चिमेनभद्रेशस्तद्याम्यामृष्यशृङ्गिणः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मेशस्तत्पुरस्ताच्चपर्जन्येशस्तदीशगः ॥ तत्प्राच्यांनहुषेशश्चविशालाक्षीचतत्पुरः ॥ ३९ ॥ विशालाक्षीश्वरंलिङ्गंतत्रैवक्षेत्रवास्तिदम् ॥ जरासन्धेश्वरंलिङ्गंतद्याम्यांज्वरनाशनम् ॥ ४० ॥ तत्पुरस्ताद्धिरण्याक्षलिङ्गंपूज्यंहिरण्यदम् ॥ तत्पश्चिमेगयाधीशस्तत्प्रतीच्यांभगीरथः ॥ ४१ ॥ तदग्रेचदिलीपेशोब्रह्मेशात्पश्चिमेमुने ॥ तत्रलिङ्गंसकुण्डञ्चस्नातुरिष्टफलप्रद

में मुचुकुन्देश्वर हैं उनके पार्श्व (पास) में गौतमेश्वर हैं उनके पश्चिम में भद्रेश्वर हैं उनसे दक्षिणमें ऋष्यशृङ्गी के ईश्वर हैं ॥ ३८ ॥ और उनके आगे ब्रह्मेश्वर हैं उनसे ईशान कोणमें प्राप्त पर्जन्येश्वरहैं व उनसे पूर्वमें नहुषेश्वरहैं और उनके आगे विशालाक्षी देवीजीहैं ॥ ३९ ॥ व वहांही क्षेत्रवासदाता विशालाक्षीश्वर लिंगहै उससे दक्षिण में ज्वरका नाशक जरासन्धेश्वर लिंग है ॥ ४० ॥ उसके आगे सुवर्णका दायक हिरण्याक्षका लिंग पूजनीय है उससे पश्चिम में गयाधीश हैं उनसे पश्चिम में भगीरथेश्वर हैं ॥ ४१ ॥ उनके आगे व ब्रह्मेश्वर से पश्चिम में दिलीपेश्वर हैं और हे मुने! वहां वह लिंग कुण्डसमेत है व स्नानकर्त्ताओं के वाञ्छित फलोंका प्रदायक

है ॥ ४२ ॥ और वहां विश्वावसु का लिंग है उसके पूर्व मे मुण्डेश्वरहैं उनसे दक्षिण में विधीश्वर हैं और उनसे दक्षिण में वाजिमेधेश्वर (अश्वमेधेश्वर) हैं ॥ ४३ ॥ दशाश्वमेधिक तीर्थ में स्नानकर व उस उत्तम लिंगको देखकर मनुष्य दश अश्वमेधयज्ञों के फलको पाताहै ॥ ४४ ॥ और उससे उत्तरमें स्नानकर्त्ता के फिर उत्पन्न होने के डरका हर्त्ता मातृतीर्थ है उसमें जो स्त्री व पुरुष व नपुंसक भी स्नानकरे ॥ ४५ ॥ वह मातृकाओं की प्रसन्नतासे मनमाने फलोंको प्राप्तहोताहै और तुम्हारे याने अगस्तिके कुण्डसे दक्षिणमे श्रेष्ठ, पुष्पदन्तेश्वरहैं ॥ ४६ ॥ उनसे अग्निकी दिशा (आग्नेय कोण) में अनेकसे, देव ऋषि और गणों के लिंगहैं व पुष्पदन्तेश्वर से

म् ॥ ४२ ॥ तत्रविश्वावसोर्लिङ्गंमुण्डेशस्तत्रपूर्वतः ॥ तद्दक्षिणेविधीशश्चतद्याम्यांवाजिमेधकः ॥ ४३ ॥ दशाश्वमेधिके स्नात्वादृष्ट्वातल्लिङ्गमुत्तमम् ॥ दशानामश्वमेधानांफलंप्राप्नोतिमानवः ॥ ४४ ॥ तदुत्तरेमातृतीर्थंस्नातुर्जन्मभयापहत् ॥ तत्रस्नानंतुयःकुर्यान्नारीवापुरुषोपिवा ॥ ४५ ॥ ईप्सितंफलमाप्नोतिमातॄणाञ्चप्रसादतः ॥ दक्षिणेतवकुण्डाच्चपुष्पदन्तेश्वरःपरः ॥ ४६ ॥ तदग्निदिशिदेवर्षिगणलिङ्गान्यनेकशः ॥ पुष्पदन्ताद्दक्षिणतःसिद्धीशःपरसिद्धिदः ॥ ४७ ॥ पञ्चोपचारपूजातःस्वप्नेसिद्धिंपरांदिशेत् ॥ राज्यप्राप्तिर्भवेत्पुंसांहरिश्चन्द्रेशसेवया ॥ ४८ ॥ तत्पश्चिमेनैर्ऋतेशोङ्गिरसेशस्ततोयमे ॥ तद्दक्षिणेचक्षेमेशश्चित्राङ्गेशस्ततोयमे ॥ ४९ ॥ तद्दक्षिणेचकेदारोरुद्रानुचरताप्रदः ॥ चन्द्रसूर्यान्वयैर्भूपैःकेदाराद्दक्षिणापथे ॥ ५० ॥ प्रतिष्ठितानिलिङ्गानिशतशोथसहस्रशः ॥ लोलार्काद्दक्षिणाशायांसर्वाशापूरकोर्चितः ॥ ५१ ॥

दक्षिण मे श्रेष्ठ सिद्धिदाता सिद्धीश्वरहैं ॥ ४७ ॥ जो कि पञ्चोपचार पूजन से स्वप्न में उत्तम सिद्धिको कहदेवे हैं और हरिश्चन्द्रेश्वरकी सेवासे पुरुषों को राज्यकी प्राप्ति होवे है ॥ ४८ ॥ उनसे पश्चिममें नैर्ऋतेश्वर हैं उनसे दक्षिणमें अंगिरसेश्वरहैं उनसे दक्षिणमें क्षेमेश्वरहैं और उन से दक्षिणमें चित्राङ्गेश्वर हैं ॥ ४९ ॥ व उनसे दक्षिणमें रुद्रकी अनुचरता (पीछे चलना, दास्य, गणता) के बड़े दाता केदारेश्वर हैं और केदारसे दक्षिण दिशामें चन्द्रमा व सूर्य्य के वंशमें उत्पन्न हुये भूपों (राजाओं) से ॥ ५० ॥ सैकड़ों अथवा हजारों लिंग प्रतिष्ठित हैं और लोलार्क से दक्षिण दिशा में पूजेहुये सर्व आशा के पूर्णकर्त्ता विनायकजी हैं ॥ ५१ ॥

उनसे पश्चिममें बड़े फलोंवाला करन्धमेश्वर लिंगहै उससे पश्चिममें महादुर्गे प्रभञ्जनीमहादुर्गाहैं ॥ ५२ ॥ और उनमे दक्षिणमें शुष्केश्वर लिंग असीनदी से पूजितहै उससे पश्चिम मे जनकेश्वर हैं उनसे उत्तरमे शंकुकर्ण हैं ॥ ५३ ॥ उनसे पूर्वमें सब सिद्धिदायक महासिद्धीश्वर लिंगहै उसके समीप में सिद्धकुण्डमें स्नानकर व बड़े पूजनीय सिद्धेश्वर लिंगको देखकर मनुष्य ॥ ५४ ॥ सबही सिद्धियों के पारको जाता है व मानको प्राप्त हुआ होताहै और शंकुकर्णेश्वरसे वायव्यकोणमें वाडव्यनामक लिंग है ॥ ५५ ॥ उसके आगे विभाण्डेश्वरहैं उनसे उत्तरमें कहोलेश्वरहैं और वहा द्वारेश्वर लिंग है व मङ्गलमयी द्वारेश्वरी देवीजी हैं ॥ ५६ ॥ उनकी पूजासे काशी वासदेनेवाली

करंधमेश्वरंलिङ्गंतत्प्रतीच्यांमहाफलम् ॥ तत्पश्चिमेमहादुर्गामहादुर्गप्रभञ्जनी ॥ ५२ ॥ शुष्केश्वरञ्चतद्याम्यांशुष्कया सरितार्चितम् ॥ जनकेशस्तत्प्रतीच्यांशंकुकर्णस्तदुत्तरे ॥ ५३ ॥ महासिद्धीश्वरंलिङ्गंतत्प्राच्यांसर्वसिद्धिदम् ॥ सिद्धकुण्डेनरःस्नात्वादृष्ट्वासिद्धेश्वरंमहत ॥ ५४ ॥ सर्वासामेवसिद्धीनांपारङ्गच्छतिमानवः ॥ शंकुकर्णेशवायव्येलिङ्गंवाडव्यसञ्ज्ञितम् ॥ ५५ ॥ तदग्रेचविभाण्डेशःकहोलेशस्तदुत्तरे ॥ तत्रद्वारेश्वरंलिङ्गंदेवीद्वारेश्वरीशुभा ॥ ५६ ॥ तत्पूजनाद्भवेत्सिद्धिरानन्दारण्यवस्तिदा ॥ रक्षकाश्चगणास्तत्रनानारूपायुधामुने ॥ ५७ ॥ तत्रैवहरिदीशश्चालिङ्गंकात्यायनंततः ॥ तत्पार्श्वेजाङ्गलेशश्चतत्पश्चान्मुकुटेश्वरः ॥ ५८ ॥ तत्रैवकुण्डंविमलंसर्वयात्राफलप्रदम् ॥ स्नात्वामुकुटकुण्डेचदृष्ट्वावैमुकुटेश्वरम् ॥ ५९ ॥ यात्रयासर्वलिङ्गानांयत्फलंतदवाप्यते ॥ तपसश्चापियोगस्यसिद्धिदासाऽवनीपरा ॥ ६० ॥ मुनेशतंसहस्राणितत्रलिङ्गानिसिद्धये ॥ एकादिगुत्तरादेविवाराणस्यांप्रियामम ॥ ६१ ॥ तत्रापिपञ्चायतनेरतिर्मेनितरांप्रिये ॥ उ

सिद्धिहोवे है और हे मुने! वहां बहुतभांति के रूप व आयुधोंवाले रक्षक हैं ॥ ५७ ॥ व वहांही हरिदीश लिंगहै उसके आगे कात्यायन लिंगहै उसके पार्श्वमें जांगलेश्वर हैं और उनसे पीछे मुकुटेश्वर हैं ॥ ५८ ॥ वहांही सब यात्राओं के फलोंका बड़ादेनेवाला विमलकुण्ड है उस मुकुटकुण्ड में स्नान कर फिर निश्चय से मुकुटेश्वर को देखकर ॥ ५९ ॥ वह फल मिलता है जोकि सब लिंगोंकी यात्रासे होता है और वह उत्तम भूमि तपस्या व योगकी भी सिद्धिदात्री है ॥ ६० ॥ हे मुने! वहां सिद्धिके लिये सैकड़ों हजारों लिंग हैं हे देवि पार्वति! काशीमें उत्तरदिशा हमारी मुख्य प्यारी है ॥ ६१ ॥ हे प्रिये! उसमें भी पञ्चायतन याने ॐकार में मेरी बहुतही प्रीति है

क्योंकि उत्पत्ति पालन और प्रलयकाल में भी मैं वहां सदैव टिकाहूं ॥ ६२ ॥ जो कोई ऐसा जानता है वह पापोंसे नहीं लिपटता है हे प्रिये ! यह सत्यहै सत्यहै ।फिर सत्य है तीनबार सत्य अन्य नहीं है ॥ ६३ ॥ जो मेरे स्थान की इच्छाकरे तो वहांही शीघ्रही जाना चाहिये, हे मुने अगस्त्यजी ! मैंने उद्देशमात्र याने नामोंके कथन मात्रसे लिंगोंको कहा ॥ ६४ ॥ और कोई लिंग भक्तिसे दो तीनबार स्थापित हैं वे पुनरुक्त नहीं हैं व सर्वत्र श्रद्धासे पूजनीय हैं ॥ ६५ ॥ जे ये लिंग जे कुण्ड जे कूप और जे वापी हैं वे सब मनष्यों से श्रद्धेय हैं याने आस्तिक्य बुद्धिसे सेवने योग्यहैं ॥ ६६ ॥ यहां इनके दर्शन व स्नान से अधिक अधिक फल है व यहांके लिंग कूप

त्पत्तिस्थितिकालेपितत्राहंसर्वदास्थितः ॥ ६२ ॥ एवंयस्तुविजानातिनसपापैःप्रलिप्यते ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंत्रिसत्यं नान्यतःप्रिये ॥ ६३ ॥ शीघ्रंतत्रैवगन्तव्यंयदिच्छेन्मामकंपदम् ॥ उद्देशमात्रंलिङ्गानिकथितानिमयामुने ॥ ६४ ॥ द्वि त्रिःकृत्वःस्थापितानिभक्त्यालिङ्गानिकानिचित् ॥ नतानिपुनरुक्तानिश्रद्धयार्च्यानिसर्वतः ॥ ६५ ॥ एतानियानिलिङ्गा नियानिकुण्डानियेऽन्धवः ॥ यावाप्यस्तानिसर्वाणिश्रद्धेयानिमनीषिभिः ॥ ६६ ॥ एतेषांदर्शनात्स्नानात्फलमत्रोत्तरो त्तरम् ॥ अत्रत्यानाञ्चलिङ्गानांकूपानांसरसामपि ॥ ६७ ॥ वापीनाञ्चापिमूर्त्तीनांकःसंख्यातुंप्रभुर्भवेत् ॥ आनन्दकान नस्थानितृणान्यपिपरंवरम् ॥ ६८ ॥ दिवौकसोपिनान्यत्रयत्पुनर्जन्मभाजनम् ॥ सर्वलिङ्गमयीकाशीसर्वतीर्थैकजन्म भूः ॥ ६९ ॥ स्वर्गापवर्गयोर्दात्रीदृष्टादेहान्तसेविता ॥ ममप्रियतमादेवित्वमेवतपसोबलात् ॥ ७० ॥ स्वभावतस्त्वियं काशीसुखविश्रामभूर्मम ॥ येकाश्यानामगृह्णन्तियेनुमोदन्तएवहि ॥ ७१ ॥ तेमेशाखविशाखाभाःस्कन्दनन्दिगजास्य

सरोवर भी ॥ ६७ ॥ व वापी और मूर्त्तियोंकी भी संख्या (गणना) करने के लिये कौन समर्थहोवेहै क्योंकि आनन्दवन (काशी) में टिकेहुये तृणभी परमश्रेष्ठहैं ॥ ६८ ॥ और इससे अन्यत्र स्वर्गवासी देवभी श्रेष्ठ नहीं हैं जिससे वे फिर जन्म होनेके पात्रहैं व सब तीर्थोंकी मुख्य जन्मभूमि, सब लिगमयी काशीपुरी ॥ ६९ ॥ देखी व देहा- न्ततक सेईहुई होकर स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष) की देनेवाली है याने उसके दर्शन से स्वर्ग और मरणपर्य्यन्त सेवन से मुक्तिहोती है, हे देवि ! तुमभी तपस्याके बल से हमारी परमप्यारी हो ॥ ७० ॥ और यह काशी स्वभावसेही मेरे सुख व विश्रामकी भूमिहै जे काशीका नामलेते हैं ऐसेही जे सुनकर पीछे से प्रसन्न या आनन्दित

होतेहैं ॥ ७१ ॥ वे मेरे शाख व विशाखके समान व कार्त्तिकेय नन्दीश्वर और गजमुख (गणेश) के तुल्य हैं, हे देवि ! वेही मेरे भक्तहैं व वेही मेरे सेवकहैं ॥ ७२ ॥ और वेही यहां मुमुक्षु हैं जेकि काशीवासी हैं व उन्होंने बड़ी तपस्या तपा व उन्होंने बड़े व्रतको किया है ॥ ७३ ॥ व उन्होंने महादान को दिया जेकि काशीवासी हैं और वे सब तीर्थों में नहाये हुये हैं व वे निश्चय से सब हिंसारहित यज्ञों में दीक्षित हैं ॥ ७४ ॥ व वे मब धर्मोको कियेहुये हैं जेकि काशीवासी हैं व देव दैत्य नाग और नर वे सब भूमिके भारके लिये हैं ॥ ७५ ॥ जेकि अन्त अवस्था में भी काशीवासी नहीं हैं व काशीमें अन्त्यज (महाशूद्र) भी श्रेष्ठ है अन्यत्र वेद पारग ब्राह्मण नहीं क्योंकि काशीवासी

वत् ॥ तएवभक्तामेदेवितएवममसेवकाः ॥ ७२ ॥ मुमुक्षवस्तएवात्रयेचानन्दवनौकसः ॥ तपस्तप्तंमहत्तैस्तुकृतंतैस्तुमहाव्रतम् ॥ ७३ ॥ तैश्चदत्तंमहादानंयेचानन्दवनौकसः ॥ तेस्नातसर्वतीर्थावैतेखिलाध्वरदीक्षिताः ॥ ७४ ॥ तेचीर्णसर्वधर्माहियेचानन्दवनौकसः ॥ सुरासुरोरगनराभूमिभारायतेऽखिलाः ॥ ७५ ॥ वयस्यपीहचरमेयेनानन्दवनौकसः ॥ अन्त्यजोपिवरःकाश्यांनान्यत्रश्रुतिपारगः ॥ संसारपारगःपूर्वस्त्वन्त्यश्चान्त्यजतोप्यधः ॥ ७६ ॥ सएवनूनंसर्वज्ञःसएवह्यधिकेक्षणः ॥ यःपार्थिवींतनुंहित्वाकाश्यांधत्तेसुधामयीम् ॥ ७७ ॥ श्रुत्वाध्यायमिदंपुण्यंसर्वतीर्थरहस्यवत् ॥ काशीदर्शनजंपुण्यंप्राप्नोतिनियतन्नरः ॥ ७८ ॥ यःपठेदिममध्यायंप्रातःप्रातर्दिनेदिने ॥ दृष्टानितेनसर्वाणितीर्थान्येतानिनान्यथा ॥ ७९ ॥ सर्वलिङ्गमयाध्यायंयोऽमुंनित्यंजपेत्सुधीः ॥ नतंयमोनतद्दूतानैनमंहोपिबाधते ॥ ८० ॥ ब्रह्मयज्ञफलंत

अन्त्यज संसारके पारको प्राप्तहै याने मुक्त है और अन्यत्र बसनेवाला पूर्व याने सब वर्णों में श्रेष्ठ या पहले हुआ ब्राह्मण उस अन्त्यजसे नीचाहै ॥ ७६ ॥ जोकि पृथिवी आदि पञ्चतत्त्वमयी देहको काशीमें त्यागकर अमृतमयी तनुको धारण करता है वहही सर्वज्ञ है और वहही निश्चय से अधिक दृष्टिवाला है ॥ ७७ ॥ सब तीर्थरहस्य वाले इस मनोहर अध्याय को नियम से सुनकर मनुष्य काशी के दर्शन से उत्पन्नहुई पुण्यको प्राप्तहोता है ॥ ७८ ॥ व जोकि दिनोंदिन प्रातःकाल में इस अध्याय को पढ़े उससे ये सब तीर्थ देखेहुये हैं यह अन्यथा नहीं है ॥ ७९ ॥ जो सुबुद्धिमान् सब लिंगमय इस अध्याय को जपे उस इसको यम नहीं दूतनहीं और पापभी नहीं बाधा

करसक्ता है ॥ ८० ॥ जो तद्गतचित्त और पवित्र होकर इस अध्याय को जपे उस पुण्यात्मा को ब्रह्मयज्ञ (वेदपाठ) का फल होताहै ॥ ८१ ॥ व जो इस अध्याय को सब ओरसे जपे (पढ़े) वह सब कुण्डों में नहायाहुआ है और वह सब तीर्थों के जलका पीनेवाला है व वह यहां सब लिंगोंका पूजकहै ॥ ८२ ॥ अत्यन्त छोटेफल दायक अन्य स्तोत्रों से क्या है मेरी प्रीतिवाले जनोंको यह महाफलवान् अध्याय पढ़ना चाहिये ॥ ८३ ॥ और महादानोंके दियेहुये होतेही जो फल यहां प्रसिद्धता से मिलता है वह एकबार पढ़ेहुये इस अध्याय से भलीभांति प्राप्त कियाजाता है ॥ ८४ ॥ सब तीर्थों में स्नानकर व अनेकसे लिंगोंको देखकर मनुष्यों से जो फल पाया

स्यजायतेसुकृतात्मनः ॥ योजपेदमुमध्यायंशुचिस्तद्गतमानसः ॥८१॥ सस्नातःसर्वकुण्डेषुसर्ववाप्यम्बुपःसच॥ सर्वलिङ्गार्चकःसोत्रयोऽमुमध्यायमाजपेत् ॥ ८२ ॥ किमन्यैर्बहुभिःस्तोत्रैरतिस्तोकफलप्रदैः ॥ मत्प्रेमवद्भिरध्यायोजप्तव्यो यंमहाफलः ॥ ८३ ॥ महादानेषुदत्तेषुयत्फलंप्राप्यतेऽत्रवै ॥ सकृज्जपान्महाध्यायादमुष्मात्तत्समाप्यते ॥ ८४ ॥ स्नात्वासर्वाणितीर्थानिदृष्ट्वालिङ्गान्यनेकशः ॥ यत्फलंलभ्यतेमर्त्यैस्तदेतज्जपनाद्ध्रुवम् ॥ ८५ ॥ इदमेवतपोत्युग्रमयमेवजपोमहान् ॥ काशीलिङ्गावलीनामाध्यायोजप्येतयन्मुने ॥ ८६ ॥ ममद्रुहेनास्तिकायवेदनिन्दारतायच ॥ नदातव्योनदातव्योनदातव्योजपस्त्वयम् ॥ ८७ ॥ अध्यायस्यास्यजपनात्पापंब्रह्मवधोद्भवम् ॥ अगम्यागमनञ्चापितथाभक्ष्यस्यभक्षणम् ॥ ८८ ॥ गुरुदाराभिचारोत्थंहेमस्तेयसमुद्भवम् ॥ मातापितृवधाज्जातंगोभ्रूणहननोद्भवम् ॥ ८९ ॥ महापापानिपापानिज्ञाताज्ञातानिभूरिशः ॥ उपपापानिपापानिमनोवाक्कायजान्यपि ॥ ९० ॥ विलयंयान्त्यशेषाणिनिः

जाताहै वह इसके पढ़ने से निश्चित है ॥ ८५ ॥ हे मुने ! जोकि काशी के लिंगोंकी नाममालावाला अध्याय जपाजावे यहही अत्यन्त उग्रतप है और यहही बडाभारी जपहै ॥ ८६ ॥ मेरे द्रोही व नास्तिक और वेदोंकी निन्दामें रतहुये मनुष्यको यह अध्याय न देना चाहिये न देना चाहिये न देना चाहिये ॥ ८७ ॥ इस अध्याय के जपने से ब्राह्मण के वधसे उपजाहुआ पाप व अगम्य स्त्रीका गमनभी (अयोग्यस्त्री का सम्भोग) तथा अभक्ष्य का भक्षण ॥ ८८ ॥ व गुरुस्त्री के भोगसे उठाहुआ व सुवर्णकी चोरी से समुत्पन्न व माता और पिताके मारने से उपजा व गऊ और बालक या गर्भ या श्रेष्ठ ब्राह्मण के हनने से उत्पन्न हुआ पाप ॥ ८९ ॥ व जाने न जाने

हुये पाप व महापाप व उपपाप व मन वचन और तनसे उपजेहुये भी पाप ॥ ९० ॥ सम्पूर्ण मेरी आज्ञासे निस्सन्देह विनाशको प्राप्त होजाते हैं और ऐसेही पुत्र पौत्र धन धान्य कलत्र (स्त्री) क्षेत्र ॥ ९१ ॥ व सब मनवाञ्छित व स्वर्ग और सुखोंको भी इस अध्याय को जपकर पण्डितजन पावेहीगा इसमें संशय नहीं है ॥ ९२ ॥ इस भांति महादेवजी देवीजीके आगे जबतक कथाको कहते हैं तबतक नन्दीश्वर ने भलीभांति आकर व प्रणामकर ऐसी विज्ञापना किया ॥ ९३ ॥ कि मन्दिर बननेकी सब ओर से समाप्ति हुई है व यह रथ साजागयाहै और ब्रह्मादि देवलोग मिलित हैं याने एकत्र बटुर आये हैं ॥ ९४ ॥ और अवसर को परखते या सामने से देखतेहुये

सन्देहंममाज्ञया ॥ पुत्रान्पौत्रान्धनंधान्यंकलत्रंक्षेत्रमेवच ॥ ९१ ॥ मनःसमीहितंसर्वंस्वर्गंमोक्षंसुखान्यपि ॥ जप्त्वाध्यायमिमंविद्वान्प्राप्स्यत्येवनसंशयः ॥ ९२ ॥ इतियावत्समाख्यातिदेवोदेवीपुरःकथाम् ॥ तावन्नन्दीसमागत्यप्रणम्येतिव्यजिज्ञपत् ॥ ९३ ॥ जातापरिसमाप्तिश्चमहाप्रासादनिर्मितेः ॥ सज्जीकृतोरथश्चायंब्रह्माद्यामिलिताःसुराः ॥ ९४ ॥ तार्क्ष्यगःपुण्डरीकाक्षोद्वारितिष्ठतिसानुगः ॥ प्रतीक्षमाणोऽवसरंपुरस्कृत्यमुनीश्वरान् ॥ ९५ ॥ चतुर्दशसुलोकेषुयेयेतिष्ठन्तिसुव्रताः ॥ तेनिशम्यायमिलिताःप्रावेशिकमहोत्सवम् ॥ ९६ ॥ स्कन्दउवाच ॥ इतिनन्दिवचःश्रुत्वादेवोदेवीसमायुतः ॥ दिव्यंरथंसमारुह्यनिर्जगामत्रिविष्टपात् ॥ २९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेक्षेत्रतीर्थवर्णनंनामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥ * ॥

व पार्षदों समेत गरुड़गामी कमलनेत्र विष्णुजी मुनीश्वरों को आगेकर द्वारमें टिके हैं या टिकते हैं ॥ ९५ ॥ व चौदहों लोकों में जे जे अच्छे व्रतवाले हैं वे आज गृहप्रवेश के महोत्सव को सुनकर इकट्ठेहुये हैं ॥ ९६ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, इस प्रकार नन्दीश्वर के वचनको सुनकर देवीजी समेत महादेवजी दिव्य रथपर भलीभांति चढकर त्रिविष्टप (त्रिलोचनक्षेत्र) से निकलकर चले ॥ २९७ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेक्षेत्रतीर्थवर्णनंनामसप्तनवतितमोध्यायः ॥ ९७ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥ ❁ ॥

दो० । आठनवे अध्यायमें वर्णित वृत्तसुवेश । श्रीयुतमुक्तिस्थानमें विश्वेश्वर परवेश ॥ श्रीव्यासजी बोले कि,हे महाभाग,सूत ! जैसे कार्त्तिकेयजी ने पूछतेहुये अगस्त्य जी के लिये शङ्करजीका महामहोत्सव कहा है वैसेही तुम सुनो ॥ १ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महाप्राज्ञ ! त्रैलोक्य के आनन्दकी उपजानेवाली व महापापनाशिनी शङ्करजी की गृहप्रवेशसम्बन्धिनी कथाको तुम सुनो ॥ २ ॥ कि मन्दराचल से आयेहुये महादेवजी चैत्रदमन पर्व याने चैत्रसुदी त्रयोदशी में आनन्दवन को प्राप्त होकर भी हर्ष से ऐसी व वैसी विचरने लगे ॥ ३ ॥ अनन्तर मोक्षलक्ष्मीविलासनामक शिवालय जब सिद्धिको सब ओर से प्राप्तहुआ तब देवने आनन्दसे घरके भीतर

व्यासउवाच ॥ शृणुसूतमहाभागयथास्कन्देनभाषितः ॥ महामहोत्सवःशम्भोःपृच्छतेकुम्भसम्भवे ॥ १ ॥ स्कन्दउवाच ॥ निशामयमहाप्राज्ञशम्भुप्रावेशिकींकथाम् ॥ त्रैलोक्यानन्दजननींमहापातकतङ्किनीम् ॥ २ ॥ मन्दरादागतःशम्भुश्चैत्रेदमनपर्वणि ॥ प्राप्याप्यानन्दगहनमितश्चेतश्चचारह ॥ ३ ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासेथप्रासादेसिद्धिमागते ॥ देवोविरजसःपीठादन्तर्गेहंविवेशह ॥ ४ ॥ ऊर्जशुक्लप्रतिपदिबुधराधासमायुजि ॥ चन्द्रेसप्तमराशिस्थेशेषेषूच्चग्रहेषुच ॥ ५ ॥ वाद्यमानेषुवाद्येषुप्रसन्नासुहरित्सुच ॥ ब्राह्मणानांश्रुतिरवन्यकृतान्यरवान्तरे ॥ ६ ॥ प्रतिशब्दितभूर्लोकभुवर्लोकान्तराध्वनि ॥ सर्वंप्रमुदितंचासीच्छम्भोःप्रावेशिकोत्सवे ॥ ७ ॥ जगुर्गन्धर्वनिकरानन्नृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ चारणास्तुस्तुतिंकुर्युर्जहृषुर्देवतागणाः ॥ ८ ॥ ववुर्गन्धवहावाताववृषुःकुसुमैर्घनाः ॥ सर्वेमङ्गलनेपथ्याःसर्वेमङ्गलभाषिणः ॥ ९ ॥ स्थावराजङ्गमाःसर्वे

प्रवेश किया ॥ ४ ॥ बुधवार अनुराधानक्षत्र समेत कार्त्तिकसुदी प्रतिपदा (परिवा) में जब विश्वेश्वरके नामकी वृषराशिसे सतई वृश्चिकराशि में चन्द्रमा टिकाथा व अन्य शेष उच्चस्थानगत ग्रह थे ॥ ५ ॥ व बाजे वाद्यमान (बजायेजाते) थे व दिशायें प्रसन्नथीं व ब्राह्मणोंकी वेदध्वनिसे अन्य शब्दान्तर नीचे कियागया था ॥ ६ ॥ व भूलोक और भुवर्लोक के मध्यका मार्ग प्रतिशब्दितथा तब शङ्करके गृहप्रवेशसम्बन्धी उत्सव मे सबजगत् अधिक आनन्दित हुआ ॥ ७ ॥ और गन्धर्वों के समूहोंने गाया व अप्सराओं के गणोंने नाचा व चारणो ने स्तुतिकिया और देवतागण आनन्दित हुये ॥ ८ ॥ व सुगन्धवाही वायु बहे व मेघ फूलोंसे बरसे थे और उस समय सबकोई

मंगलभूषणवाले व सब मंगलभाषी ॥ ६ ॥ व सब स्थावर और जंगमजन आनन्द से व्याप्तहुये व सब देव दैत्य गन्धर्व्व और नाग ॥ १० ॥ व विद्याधर साध्य किन्नर नर और सब स्त्री व पुरुष समूहों मे चार पुरुषार्थ (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) विराजे ॥ ११ ॥ व वे अर्थादि पुरुषार्थ विघ्नके विना बहुतही स्थान स्थान या क्षण क्षणमें थे और हे मुने ! तब धूपके धुवां समूहोंके द्वारा जिस श्यामतासे आकाश रंगितहुआ ॥ १२ ॥ उस श्यामताको आज भी कभी नहीं त्यागताहै और उससमय नीराजन (आरती) के लिये जे सब दीप प्रबोधित याने जगाये गये हैं ॥ १३ ॥ उनकी ज्योतियां आज भी आकाशमें ताराओंके मिषसे विराजती हैं और प्रतिमहलों

जाताआनन्दमेदुराः ॥ सुरासुरेषुसर्वेषुगन्धर्वेषूरगेषुच ॥ १० ॥ विद्याधरेषुसाध्येषुकिन्नरेषुनरेषुच ॥ स्त्रीपुञ्जातेषुसर्वेषु रेजुश्चत्वारएवच ॥ ११ ॥ निष्प्रत्यूहंचनितरांपुरुषार्थाःपदेपदे ॥ धूपधूमभरैर्व्योमयद्रक्तन्तुतदामुने ॥ १२ ॥ नाद्यापिनी लिमानन्तंपरित्यजतिकर्हिचित् ॥ नीराजनाययेदीपास्तदासर्वेप्रबोधिताः ॥ १३ ॥ तेषांज्योतींषिखेद्यापिराजन्तेता रकाच्छलात् ॥ प्रतिसौधंपताकाश्चनानाकारविचित्रिताः ॥ १४ ॥ रम्यध्वजप्रभाधौतारेजुःप्रतिशिवालयम् ॥ क्वचिद्गा यन्तिगीतज्ञाःक्वचिन्नृत्यन्तिनर्तकाः ॥ १५ ॥ चतुर्विधानिवाद्यानिवाद्यन्तेचक्वचित्क्वचित् ॥ प्रत्यध्वंचन्दनरसच्छटापि च्छिलभूमयः ॥ १६ ॥ हरितश्वेतमाञ्जिष्ठनीलपीतबहुप्रभाः ॥ प्रत्यङ्गणंशुभाकारारङ्गमालाश्चकाशिरे ॥ १७ ॥ रत्नकु ट्टिमभूभागागोपुराग्रेषुरेजिरे ॥ सुधोज्ज्वलाहर्म्यमालाःसौधनामप्रपेदिरे ॥ १८ ॥ अचेतनान्यपितदाचेतनानीवसम्बभुः ॥

में अनेकों आकारवाली विचित्रित पताकायें ॥ १४ ॥ जेकि रम्य ध्वजोंकी दीप्तिसे धोईगई शुद्ध हैं वे प्रति शिवालयों में सोहती हैं (थीं) व कहीं गीतोंके जाननेवाले गायकजन गाते है कहीं नर्त्तक नाचते हैं ॥ १५ ॥ और कहीं कहीं चार भांति के बाजे बजाये जातेहैं व प्रति गलियोंमें चन्दन रसके प्रक्षेपों या छींटोंसे पिच्छिल (रसीली, चीकन) पृथिवियां हैं ॥ १६ ॥ व हरी उजली लाली काली पीली और बहुती प्रभा (छवि) वाली रंगोंकी मालायें प्रति आंगनोंमें प्रकाशती हैं (थीं) ॥ १७ ॥ व बाहर वाले द्वारो (फाटकों) के आगे रत्नो और मणियोसे जड़ेहुये भूमिके भाग विराजतेथे व चूनासे पोती उजली महलोंकी पंक्तियां सौधनामको प्राप्तहुई ॥ १८ ॥ और उस

समय जड़भी चेतनों की नाईं संशोभित हुये हे अगस्त्यजी ! यहा जे कोई मंगल कहेजाते हैं ॥ १९ ॥ उन सबहीका भी वह दिन जन्मदिन हुआ याने उस दिनमें सब मङ्गल उत्पन्न हुये अनन्तर देवोंके देव श्रीविश्वनाथजी ने आकर मुक्तिमण्डपमें प्रवेश किया ॥ २० ॥ तदनन्तर शुभ सिंहासन में बैठे व कुमारो याने गणेश कार्त्तिकेयादि या सनकादिकों के समूहों से सबओर घिरेहुये पार्वती से सहित देवदेव महादेवजी महर्षि समूहों के साथ ब्रह्माजी से अभिषिक्त हुये ॥ २१ ॥ उस समय आनन्द से युक्त देवसमूहों और महानागेन्द्रों ने असंख्य रत्न बहुत रेशमी वस्त्र या पीताम्बर और सोहती हुई प्यारे सुगन्धवाली विचित्र मालाओं से महेशजी की पूजा

यानिकानीहकीर्त्यन्तेमङ्गलानिघटोद्भव ॥ १९ ॥ तेषामेवहिसर्वेषान्तत्तुजन्मदिवाभवत् ॥ आगत्यदेवदेवोथमुक्तिमण्डपमाविशत् ॥ २० ॥ अथाभिषिक्तश्चतुराननेनमहर्षिवृन्दैःसहदेवदेवः ॥ शुभासनस्थःसहितोभवान्याकुमारवृन्दैःपरितोवृतश्च ॥ २१॥ रत्नैरसङ्ख्यैर्बहुभिर्दुकूलैर्माल्यैर्विचित्रैर्लसदिष्टगन्धैः ॥ अपूपुजन्देवगणामहेशंतदामुदातेचमहोरगेन्द्राः ॥ २२ ॥ रत्नाकरैश्चापिगिरीन्द्रवर्यैर्यथास्वमन्यैरपिपुण्यधीभिः ॥ सम्पूजितःकुम्भजतत्रशम्भुर्नीराजितोमातृगणैरथेशः ॥ २३ ॥ सन्तोष्यसर्वान्प्रथमंमुनीन्द्रान्स्वैःस्वैर्हृदिस्थैश्चचिराभिलाषैः ॥ ब्रह्माणमाभाष्यशिवोथविष्णुंजगाद सर्वामरवृन्दवन्द्यः ॥ २४ ॥ इतोनिषीदेतिसमानपूर्वन्त्वंमेसमस्तप्रभुतैकहेतुः ॥ दूरेपितिष्ठन्निकटस्त्वमेवत्वत्तोनकश्चिन्ममकार्यकर्ता ॥ २५ ॥ त्वयादिवोदासनरेन्द्रवर्यःसद्रूपदेशैश्चतथोपदिष्टः ॥ यथाससिद्धिंपरमामवापसमीहितंमेनि

किया ॥ २२ ॥ हे अगस्त्यमुने ! समुद्र, पर्वतेन्द्र श्रेष्ठ और अन्य भी पुण्यबुद्धिवालों से यथाधन याने अपने ऐश्वर्य के अनुसार वहां सम्पूजित परमेश्वर शङ्करजी अनन्तर मातृगणो से नीराजित हुये ॥ २३ ॥ और पहले अपने अपने हृदय में टिकेहुये बहुत कालके मनोरथो से सब मुनीन्द्रों को सन्तुष्टकर व ब्रह्माजी को सामने से बोलकर अनन्तर सब देवसमूहों से वन्दनीय शिवजी ने विष्णुजी से कहा ॥ २४ ॥ कि ऐसेवह तुम आदरपूर्वक यहां बैठो क्योंकि तुम मेरी समस्त प्रभुता के कारण हो व दूर भी टिके हुये तुम निकटही हो और तुम से अधिक मेरा कार्य्यकर्त्ता कोई नहीं है ॥ २५ ॥ और तुमने दिवोदास नरेंद्रवर्य्य को वैसे उपदेश दिया कि जैसे वह परम

सिद्धिको प्राप्त हुआ फिर मेरा सम्पूर्ण वाञ्छित विचार सिद्ध होगया ॥ २६ ॥ अहो विष्णो ! जो तुम्हारा मनमाना मनोरथहो उस वरको कहो यहां कुछ भी तुमको अदेय नहीं है क्योंकि जो यह आनन्दवन मुझको मिला है उस में तुम और यह गणेशही कारण हैं ॥ २७ ॥ जहां मेरे जन्तुओं का फिर जन्म नहीं है वह यह ब्रह्मरसायन की खानि व श्रेष्ठ सौख्यकी भूमि काशीपुरी जैसे प्यारी है वैसे त्रिलोक में मेरा प्यारा कुछ भी नहीं है ॥ २८ ॥ व इसभांति जगदीश्वर के वाक्य को सुनकर विष्णुजी वरदायक महेश्वरजी से अधिकता समेत बोले कि हे पिनाकपाणे ! जो तुम प्रसन्नहो तो मैं तुम्हारे चरणारविन्द से दूर न होऊं ॥ २९ ॥ ऐसा मधुदैत्यविनाशन विष्णुजीका वचन

खिलञ्चसिद्धम् ॥ २६ ॥ विष्णोवरंब्रूहियईप्सितस्तेनादेयमत्रास्तिकिमप्यहोते ॥ इदंमयाऽऽनन्दवनंयदाप्तंहेतुस्तुतत्र त्वमसौगणेशः ॥ २७ ॥ नमेप्रियंकिञ्चनविष्टपत्रयेतथायथेयंपरसौख्यभूमिः ॥ वाराणसीब्रह्मरसायनस्यखनिर्जनियं त्रनदीर्घशायिनाम् ॥ २८ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यंजगदीशितुश्चप्रोवाचविष्णुर्वरदंमहेशम् ॥ यदिप्रसन्नोसिपिनाकपाणेत्वदाप दाद्दूरमहंनतेस्याम् ॥ २९ ॥ श्रुत्वेतिवाक्यंमधुसूदनस्यजगादतुष्टोनितरांपुरारिः ॥ सदामुरारेममसन्निधौत्वन्तिष्ठस्वनि र्वाणरमाश्रयेत्र ॥ ३० ॥ आदावनाराध्यभवन्तमत्रयोमांभजिष्यत्यपिभक्तियुक्तः ॥ समीहितंतस्यनसेत्स्यतिध्रुवंपरा त्परान्मेम्बुजचक्रपाणे ॥ ३१ ॥ सर्वत्रसौख्यंममभुक्तिमण्डपेसन्तिष्ठमानस्यभवेदिहाच्युत ॥ नतत्तुकैलासगिरौसुनिर्म लेनभक्तचेतस्यपिनिश्चलश्रियि ॥ ३२ ॥ निमेषमात्रंस्थिरचित्तवृत्तयस्तिष्ठन्तियेदक्षिणमण्डपेत्रमे ॥ अनन्यभावा

सुनकर बहुतही प्रसन्न हुये त्रिपुर के शत्रु शिवजी ने कहा कि हे मुरदैत्य के वैरिन् ! तुम यहां मुक्तिलक्ष्मी के अच्छे स्थान याने मुक्तिमण्डपमें मेरे समीपही सदा टिको ॥ ३० ॥ हे कमल या शङ्खचक्रपाणे ! भक्तियुक्त भी जो जन यहां पहले आपको न पूजकर मुझको सेवेगा उसका वाञ्छित परसे परे याने बड़े से बड़े भी मुझ से निश्चय कर न सिद्ध होवेगा ॥ ३१ ॥ हे अच्युत ! इस मेरे मुक्तिमण्डप में टिकते हुये का जो सौख्य सर्वत्र है वह बहुत विमल कैलास पर्वत में नहीं है और निश्चल शोभावाले भक्तके चित्तमें भी नहीं है ॥ ३२ ॥ जे कि स्थिर चित्तवृत्तिवाले, दृढमानम, अनन्यभक्त मेरे इस दक्षिण मुक्तिमण्डप मे निमेषमात्र तक भी टिकते हैं वे फिर गर्भदशाकी

उपासना नहीं करते हैं या उसके समीप में नहीं बसते हैं ॥ ३३ ॥ व जे कोई सबतीर्थों के मुख्य मस्तकविभूषण (शिरोमणि) अथाह चक्रसर (मणिकर्णिका) में भलीभांति स्नानकर इस मुक्तिमण्डप में क्षणभर पैठते हैं वे पापहीन मेरे गणही हैं ॥३४ ॥ व मेरे मुक्तिमण्डपमें क्षणभर स्थिर हुये जे जन मुझको सुमिरते हैं व यथाशक्ति कुछ धनको देते भी हैं और पुण्यकथाओं को सुनते हैं वे करोड़ गौओं के दान के फलको सेवते हैं ॥ ३५ ॥ हे उपेन्द्र ! जे इस मणिकर्णिका कुण्ड में स्नानकर मुक्ति के लिये जनो के आश्रय (आधार) मुक्तिमण्डप में क्षणभर भलीभाति बसते हैं उनसे बहुत कालतक तपस्यायें तपीगई हैं और वे सम्पूर्ण तीर्थसमूहों से नहायेही

अपिगाढमानसानतेपुनर्गर्भदशामुपासते ॥ ३३ ॥ संस्नाययेचक्रसरस्यगाधेसमस्ततीर्थैकशिरोविभूषणे ॥ क्षणंविशन्तीहनिरीहमानसान्निरेनसस्तेममपार्षदाहि ॥ ३४ ॥ स्मरन्तियेमामपवर्गमण्डपेकिञ्चिद्यथाशक्तिददत्यपिस्वम् ॥ शृण्वन्तिपुण्याश्चकथाःक्षणं स्थिरास्तेकोटिगोदानफलंभजन्ति ॥ ३५ ॥ उपेन्द्रतप्तानितपांसितैश्चिरंस्नाताहितेचाखिलतीर्थसार्थकैः ॥ स्नात्वेहयेवैमणिकर्णिकाह्रदेसमासतेमुक्तिजनाश्रयेक्षणम् ॥ ३६ ॥ तीर्थानिसन्तीहपदेपदेहरेतुलाकतेषांमणिकर्णिकायाः ॥ कतीहनोसन्तिशुभाश्चमण्डपाःपरंपरोमुक्तिरमाश्रयोयम् ॥ ३७ ॥ कैवल्यमण्डपस्यास्यभविष्येद्वापरेहरे ॥ लोकेख्यातिर्भवित्रीयमेषकुक्कुटमण्डपः ॥ ३८ ॥ हरिरुवाच ॥ भालनेत्रसमाख्याहिकथंनिर्वाणमण्डपः ॥ तथाख्यातिमसौगन्तायथादेवेनभाषितम् ॥ ३९ ॥ देवदेवउवाच ॥ महानन्दोद्विजोनामभविष्योत्रचतुर्भुज ॥ अग्रवेदीसमाचारस्त्यक्ततीर्थप्रतिग्रहः ॥ ४० ॥ अदाम्भिकोऽक्रूरमनाःसदैवातिथिवल्लभः ॥ अथयौवनमासाद्यपितर्युपरते

हैं ॥ ३६ ॥ हे हरे ! यहां स्थान स्थान में जे तीर्थ हैं उनकी मणिकर्णिका के साथ रामता कहां है और यहां कितने शुभमण्डप नहीं है परन्तु यह मुक्तिलक्ष्मी का स्थान (मुक्तिमण्डप) सबों से श्रेष्ठहै ॥ ३७ ॥ हे भक्तार्त्तिहारिन्, भगवन् ! भविष्य (होनहारे) द्वापरयुग में इस मुक्तिमण्डप की यह लोकप्रसिद्धि होवेगी कि यह कुक्कुटमण्डप है ॥ ३८ ॥ श्रीविष्णुजी बोले कि, हे भालनेत्र ! जैसे देवने कहा वैसी ख्याति को यह निर्वाणमण्डप कैसे प्राप्तहोवेगा उसको आप कहो ॥ ३९ ॥ श्रीमहादेव जी बोले कि, हे चतुर्भुज ! यहां महानन्द नाम ब्राह्मण होनेवाला है जोकि ऋग्वेदी अच्छा आचारवान् तीर्थ में दानों का त्यागी ॥ ४० ॥ अदम्भी, अहिंसकमन (कोमलचित्त)

सदैव अतिथियों को प्यारकरता था वहही यौवन को प्राप्त होकर अनन्तर पिताके मरे हुये होतेही ॥ ४१ ॥ तीव्र कामबाणों से अनवसर में स्थान कराया गया है और उसके साथ निश्चय से मित्रता को कर किसी की स्त्री को हरलाया ॥ ४२ ॥ व उससे विमोहित और प्रेरित होकर पीने के न योग्य मद्य को पीनेलगा व काम से मोहित हुआ अभक्ष्यभक्षण (मांसादि खाने) में रुचिवाला होगया ॥ ४३ ॥ व धनी वैष्णवों को देखकर क्षणभर वैष्णववेषधारी मूढ़ात्मा नरकका कारण वह शैवोंको निंदता है ॥ ४४ ॥ और कुछेक वस्तु को सबओर से देना चाहते हुये शिवभक्तोंको देखकर शैव चिह्नों से उपजीविकावाला होकर सब वैष्णवों की निन्दा करे है ॥ ४५ ॥ ऐसे

सहि ॥ ४१ ॥ विषमेषुशरैस्तीव्रैःकारितस्त्वपदेपदम् ॥ जहारकस्यचिद्भार्यांमैत्रींकृत्वातुतेनवै ॥ ४२ ॥ तयाचप्रेरितोऽपेयंपपौचापिविमोहितः ॥ अभक्ष्यभक्षणरुचिरभून्मदनमोहितः ॥ ४३ ॥ वैष्णवान्धनिनोदृष्ट्वाक्षणंवैष्णववेषभृत् ॥ शैवान्निन्दतिमूढात्मानरकत्राणकारणम् ॥ ४४ ॥ शिवभक्तान्समालोक्यकिञ्चित्परिदित्सुकान् ॥ गर्हयेद्वैष्णवान्सर्वाञ्छैवलिङ्गोपजीवकः ॥ ४५ ॥ इतिपाखण्डधर्मज्ञःसन्ध्यास्नानपराङ्मुखः ॥ विशालतिलकःस्रग्वीशुद्धधौताम्बरोज्ज्वलः ॥ ४६ ॥ शिखीचोपग्रहकरःसर्वेभ्योऽसत्प्रतिग्रही ॥ तस्यापत्यद्वयंजातमुन्मत्तपथवर्तिनः ॥ ४७ ॥ एवंतस्यप्रवृत्तस्यकश्चित्पर्वतदेशतः ॥ समागमिष्यतिधनीतीर्थयात्रार्थसिद्धये ॥ ४८ ॥ स्नात्वासचक्रसरसिकथयिष्यतिचेतिवै ॥ अहमस्तिधनोदित्सुर्जात्याचाण्डालसत्तमः ॥ ४९ ॥ अस्तिकश्चित्प्रतिग्राहीयस्मैदद्यामहंधनम् ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वाकैश्चिदंगुलिसञ्ज्ञया ॥ ५० ॥ उद्दिष्टउपविष्टोसौयोजपेद्ध्याननमुद्रया ॥ एषप्रतिग्रहंत्वत्तोग्रहीष्यतिनचेतरः ॥ ५१ ॥ इति

पाखण्ड धर्मोंकापण्डित, सन्ध्या व स्नानसे विमुख विशाल तिलककारी मालाधारी शुद्ध धोये कपड़ों से उज्ज्वल ॥ ४६ ॥ व बड़ीचोटी रखाये हुआ हस्तकुशलकर्ता और सबों से असत (निषिद्ध) दान लेनेवाला है उरा उन्मत्तमार्गवर्त्ती के दो लड़के हुये ॥ ४७ ॥ ऐसे उसके प्रवृत्त होतेही कोई धनी तीर्थयात्रार्थ सिद्धिके लिये पर्वत देश से भलीभाति आवेगा ॥ ४८ ॥ और वह चक्रसर (मणिकर्णिका) में स्नानकर निश्चय से ऐसा कहेगा कि जाति से चाण्डालसत्तम, धनवान् मैं दान देने का चाही हूँ ॥ ४९ ॥ कोई सामने से लेनेवाला है जिसको मैं धनदूं इसप्रकार उसके वचन को सुनकर किसी ने अंगुली की संज्ञा से ॥ ५० ॥ उद्देश किया कि जो वह बैठा आ

ध्यानमुद्रा से जप करे है यह तुमसे दान लेवेगा और अन्य कोई नहीं ग्रहण करेगा ॥ ५१ ॥ तब ऐसा उसका वचन सुनकर उसके समीप में जाकर व दण्डवत् प्रणाम कर उस अन्त्यज(चाण्डाल) ने उससे कहा ॥ ५२ ॥ कि हे महाब्राह्मण ! तुम मुझको उबारो व मेरे तीर्थ को सफलकरो व मेरे कुछ वस्तु है उसको ग्रहण करो और दया को करो ॥ ५३ ॥ अनन्तर रुद्राक्षकी मालाको कान में कर व ध्यान को छोड़कर उस ब्राह्मण ने हाथ की संज्ञासे पूंछा कि यहां तुम्हारे कितना धन है ॥ ५४ ॥ और उस संज्ञाको जानकर अत्यन्त आनन्दित के समान वह अधिकता से बोला कि जितने से तुम्हारी भलीभांति तृप्ति होवे उतने धनको मैं निश्चयसे दूँगा यह अन्यथा नहीं

तेषांवचःश्रुत्वासगत्वातत्समीपतः ॥ दण्डवत्प्रणिपत्याथतम्बभाषेतदान्त्यजः ॥ ५२ ॥ मामुद्धरमहाविप्रतीर्थंमेसफलीकुरु ॥ किञ्चिद्वस्त्वस्तिमेतत्त्वंगृहाणानुग्रहंकुरु ॥ ५३ ॥ अथाक्षमालिकांकर्णेकृत्वाध्यानंविसृज्यच ॥ कियद्धनंतवास्तीहपप्रच्छकरसञ्ज्ञया ॥ ५४ ॥ तच्चसञ्ज्ञांसवैबुद्ध्वाप्रोवाचातिप्रहृष्टवत् ॥ संतृप्तिर्यावतातेस्यात्तावद्दास्यामिनान्यथा ॥ ५५ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वात्यक्त्वामौनमुवाचह ॥ सानन्दःसमहानन्दोनिःस्पृहोस्मिप्रतिग्रहे ॥ ५६ ॥ परन्तेऽनुग्रहार्थन्तुकरिष्यामिप्रतिग्रहम् ॥ किञ्चमेवचनंत्वञ्चेत्करिष्यस्युत्तमोत्तम ॥ ५७ ॥ यावदस्त्यखिलंवित्तंतन्मध्येन्यस्यकस्यचित् ॥ नस्तोकमपिदातव्यंतदाऽऽदास्यामिनान्यथा ॥ ५८ ॥ चाण्डालउवाच ॥ यावदस्तिमयानीतंविश्वेशप्रीतयेवसु ॥ तावत्तुभ्यंप्रदास्यामिविश्वेशस्त्वंयतोमम ॥ ५९ ॥ येवसन्तीहविश्वेशराजधान्यांद्विजोत्तम ॥ क्षुद्राक्षुद्राजन्तुमा

है ॥ ५५ ॥ इसभांति उसके वचन को सुनकर व मौनको त्यागकर आनन्द समेत उस महानन्द ने स्पष्ट कहा कि मैं दान लेने में स्पृहा (चाह) से हीनहूँ ॥ ५६ ॥ परन्तु हे उत्तमोत्तम ! जो तुम मेरे कुछेक वचन को करोगे तो मैं तुम्हारे अनुग्रह के अर्थ प्रतिग्रह (दानलेना) को करूंगा ॥ ५७ ॥ कि जितना सम्पूर्ण धन है उस के बीच में से अन्य किसी को थोडा भी न देना चाहिये तो मैं लेऊँगा अन्यथा नहीं ॥ ५८ ॥ चाण्डाल बोला कि, श्रीविश्वनाथजी की प्रीति के लिये जितना धन मुझ से लायागया है उसको मैं तुम्हारे लिये अधिकता से दूँगा जिससे तुमही मेरे विश्वेश्वरहो ॥ ५९ ॥ क्योंकि हे द्विजोत्तम ! जोकि छोटेबड़े जन्तुमात्र इस शिवराजधानी

काशी में बसते हैं वे भी विश्वेश्वर के अंशही हैं ॥ ६० ॥ जे पराया उद्धार करने के स्वभाववाले हैं व जे पराई इच्छा के बड़े पूरक हैं और जे परोपकार करनेशील हैं वे भी विश्वेश के अंशही हैं ॥ ६१ ॥ उससमय इसभांति उसके वचन को सुनकर अधिक आनन्दित इन्द्रिय व मनवाले उस ब्राह्मणने उस पर्वत देशवासी अन्त्यज (चाण्डाल) से कहा ॥ ६२ ॥ कि वेग समेत तुम आवो कुशोंको लेवो और दान को करो ऐसेही उस महामनस्वी पर्वतदेशवासीने शीघ्रही वैसेही किया ॥ ६३ ॥ और श्रीविश्वनाथजी प्रसन्न होवें ऐसा कहकर वह यथागत चलागया व अन्य ब्राह्मणो से धिक्कृत भी यहां बसता हुआ वह ब्राह्मण ॥ ६४ ॥ बाहेर निकला मात्र

त्र।विश्वेशांशास्तएवहि ॥ ६० ॥ परोद्धरणशीलायेयेपरेच्छाप्रपूरकाः ॥ परोपकृतिशीलायेविश्वेशांशास्तएवहि ॥ ६१ ॥ इतितद्वचनंश्रुत्वाप्रहृष्टेन्द्रियमानसः ॥ उवाचपार्वतीयन्तंसोऽग्रजन्मान्त्यजन्तदा ॥ ६२ ॥ आयाहिदर्भानादेहि कुरुत्मर्गंत्वरान्वितः ॥ तथेतिसचकाराशुपार्वतीयोमहामनाः ॥ ६३ ॥ विश्वेशःप्रीयताञ्चेतिप्रोच्ययातोयथागतः ॥ सचद्विजोद्विजैरन्यैर्धिक्कृतोपिवसन्निह ॥ ६४ ॥ बहिर्निर्गतमात्रस्तुबहुभिःपरिभूयते ॥ चाण्डालब्राह्मणश्चैषचाण्डालात्तध नस्त्वसौ ॥ ६५ ॥ असावेवहिचाण्डालःसर्वलोकबहिष्कृतः ॥ इत्थन्तमनुधावन्तिथूत्कुर्वन्तःपरितोहरे ॥ ६६ ॥ सचत द्भयतोगेहात्काकभीतादिवान्धवत् ॥ ननिःसरेत्कचिदपिलज्जाकृतिनतास्यकः ॥ ६७ ॥ सएकदासंप्रधार्यगृहिण्यालो कदूषितः ॥ जगामकीकटान्देशांस्त्यक्त्वावाराणसींपुरीम् ॥ ६८ ॥ मध्येमार्गंसगच्छन्वैलुण्ठितस्तुसकाञ्चनः ॥ अपि

होकर बहुतेजनों से तिरस्कृत होता है कि यह चाण्डाल ब्राह्मण है व यह चाण्डालसे धन लेनेवाला है ॥ ६५ ॥ ऐसे सबलोगों या लोको से बाहेर कियागया यहही चांडाल है, हे हरे ! इसभांति थू शब्द पूर्वक थूंक को करते हुये बहुत से लोग उसके पीछेधावते हैं ॥ ६६ ॥ और लज्जा करने से नीचे हुये मुखवाला वह कागों से डरे उल्लू की नाईं उनके डरसे घर से कहीं भी नहीं निकलै है ॥ ६७ ॥ व एक समय स्त्री के साथ विनिश्चय कर लोगों से दूषित हुआ वह काशीपुरी को छोडकर कीकट (मगह गया प्रदेश) देशों को चलागया ॥ ६८ ॥ व बीचगली में जाताहुआ वह सोने समेत लखागया और कार्पटिको (लालेवस्त्रवाले शूद्र तपस्वी) के बीच मे टिका भी

वह मार्ग रोंकनेवाले बटपारों से रुद्ध हुआ ॥ ६९ ॥ और वे चोर स्त्रीआदि सकल सामग्री समेत उसको बडे वन में लेजाकर लूटकर धनको लेकर व परस्पर भलीभांति सबओरसे देखकर या विचारकर ॥ ७० ॥ फिर अधिकतासे बोले कि इसके न जीवतही यह बहुत धन पचेगा इसलिये परिचारकों याने सबओर चलनेवाले दासों समेत यह धनी बड़े यत्न से मारने योग्य है ॥ ७१॥ ऐसा हृदय में भलीभांति अधिकता से धारणकर (विनिश्चयकर) उन चोरों ने उच्चस्वरसे कहा कि हे पथिक ! तुम सुमिरने योग्यको सुमिरो दासों समेत तुमको हम मारेंगे यह विनिश्चितहै ॥ ७२॥ ऐसा सुनकर उस ब्राह्मण ने मनमेंही कहा कि खेद या कष्ट है कि जिसके लिये बहुतसा धन मुझ से प्रति-

कार्पटिकान्तस्थःसरुद्धोमार्गरोधिभिः ॥६९॥ नीत्वातेतमरण्यानींतस्कराःसपरिच्छदम् ॥ उल्लुण्ठ्यधनमादायसमा लोच्यपरस्परम् ॥ ७० ॥ प्रोचुर्भूरिधनंचैतज्जीर्यत्यस्मिन्नजीवति ॥ असौधनीप्रयत्नेनवध्यःसपरिचारकः ॥ ७१ ॥ संप्रधार्येतितेप्राहुःस्मर्तव्यंस्मरपान्थिक ॥ त्वांवयंघातयिष्यामोनिश्चितंसपरिच्छदम् ॥ ७२ ॥ निशम्येतिमनस्येवकथयामाससद्विजः ॥ अहोप्रतिगृहीतंमेयदर्थंवसुभूरिशः ॥ ७३ ॥ कुटुम्बमपितन्नष्टंनष्टश्चापिप्रतिग्रहः ॥ जीवितञ्चापिमेनष्टंनष्टाकाशीपुरीस्थितिः ॥ ७४ ॥ युगपत्सर्वमेवाशुनष्टन्दुर्बुद्धिचेष्टया ॥ नकाश्याम्मरणम्प्राप्तंतस्माद्दुष्टप्रतिग्रहात् ॥ ७५ ॥ प्रान्तेकुटुम्बस्मरणात्तथाकाशीस्मृतेरपि ॥ चौरैर्हतोपिसतदाकीकटेकुक्कुटोऽभवत् ॥७६ ॥ साकुक्कुटीसुतौतौतुताम्रचूडत्वमापतुः ॥ प्रान्तेकाशीस्मरणतोजाताजातिस्मृतिःपरा ॥ ७७ ॥ इत्थम्बहुतिथेकालेगतेकार्पटिकोत्त

गृहीत हुआ याने दान लिया गया ॥ ७३ ॥ वह कुटुम्बभी नष्ट है व दानभी नष्ट है व मेरा जीवनभी नष्टहै और काशीपुरी की स्थिति (टिकना) नष्ट हुईहै ॥ ७४ ॥ दुर्बुद्धि के व्यापार से एक साथ ही शीघ्रही सब नष्ट हुआ और उस दुष्ट दान से काशी में मरना नहीं प्राप्त हुआ ॥ ७५ ॥ इसप्रकार प्रांत याने देहांत समय कुटुम्ब के स्मरण से तथा काशी के सुमिरने से भी चोरों से भी मारा गया वह गया प्रदेश में कुक्कुट (मुर्गा) हुआ ॥ ७६ ॥ व वह स्त्री मुर्गीहुई और वे दोनों पुत्र भी कुक्कुट भाव को प्राप्तहुए परन्तु देहांत समय काशी के सुमिरने से श्रेष्ठ, जातिस्मृति हुई याने पूर्वजन्म की सुधि बनीरही ॥ ७७ ॥ ऐसे बहुतसे समय के बीत जातेही जहा

वे चारो मुर्गे हैं उसही गली में वे पूर्वोक्त कार्पाटिकोत्तम प्राप्त हुए ॥ ७८ ॥ जे कि आपुसमें ही काशी की कथा को अधिकतासे करते हुए हैं उस समय काशी की कथा तो भलीभाति सुनकर वे चारो मुर्गे ॥ ७९॥ जातिस्मृति (पूर्वजन्मकी सुधि)के प्रभाव से उनके सङ्गसेही निकलकर चले और गली में देखकर उन दयालु कार्पाटिक श्रेष्ठों करके ॥ ८० ॥ चावल आदिको के सबओर फेंकनेसे उत्तम क्षेत्र (काशी) को पहुँचाये गये और क्षेत्रको भलीभांति प्राप्तहोकर वे चारो कुक्कुट ॥ ८१ ॥ यहां मुक्ति मण्डप के सबओर विचरनेवाले होनेहारे हैं व जेकि भोजनको जीते व नियमों समेत व काम और क्रोधसे विमुख ॥ ८२ ॥ व मेरी कथाओंके आलापोंसे बहुत हँसनेवाले

मा: ॥ तस्मिन्नेवाध्वनिप्राप्ताश्चत्वारोयत्रकुक्कुटाः ॥ ७८ ॥ वाराणस्याःकथाम्प्रोच्चैःकुर्वन्तोऽन्योन्यमेवहि ॥ काशीकथांसमाकर्ण्यतदातेचरणायुधाः ॥ ७९ ॥ जातिस्मृतिप्रभावेणतत्सङ्गेनतुनिर्गताः ॥ तैश्चकार्पटिकश्रेष्ठैःपथिदृष्ट्वाकृपालुभिः ॥ ८० ॥ तन्दुलादिपरिक्षेपैःप्रापिताःक्षेत्रमुत्तमम् ॥ तेतुक्षेत्रंसमासाद्यचत्वारश्चरणायुधाः ॥ ८१ ॥ चरिष्यन्तोऽत्रपरितोमुक्तिमण्डपमुत्तमम् ॥ जिताहारान्सनियमान्कामक्रोधपराङ्मुखान् ॥ ८२ ॥ प्रहासान्मत्कथालापान्लोभमोहविवर्जितान् ॥ स्वर्धुनीस्नानसंक्लिन्नसुनिर्मलशिरोरुहान् ॥ ८३ ॥ मन्नामोच्चारणपरान्मत्कथार्पितसुश्रुतीन् ॥ मद्दत्ताचित्तसद्वृत्तीन्दृष्ट्वाक्षेत्रनिवासिनः ॥ ८४ ॥ मानयामासुरथतान्कुक्कुटान्साधुवर्त्मनः ॥ प्राक्तनाद्वासनायोगात्सम्प्रधार्यपरस्परम् ॥ क्रमेणाहारमाकुञ्च्यप्राणांस्त्यक्ष्यन्तिचात्रवै ॥ ८५ ॥ पश्यतांसर्वलोकानांविष्णोतेमदनुग्रहात् ॥ विमानमधिरुह्याशुकैलासम्प्राप्यमत्पदम् ॥ ८६ ॥ निर्विश्यसुचिरङ्कालंदिव्यान्भोगाननुत्तमान् ॥ ततोऽत्रज्ञानिनोभूत्वामु

व लोभ और मोह से विहीन व गङ्गास्नान से भलीभांति भीगे हुये बहुत विमलबालोंवाले ॥ ८३ ॥ व मेरे नामोच्चारण में परायण व मेरी कथा में अच्छे कानोंको अर्पण किये और मुझ में चित्तकी अच्छी वृत्ति को दिये हुये हैं उन क्षेत्र निवासियों को देखकर विचरेंगे ॥ ८४ ॥ अनन्तर वे भी साधुमार्गी उन कुक्कुटों को मान करते भये याने मान करेंगे और वे मुर्गे पूर्वजन्म की वासना के योग से आपुस में विनिश्चयकर क्रम से भोजन को सिकोड़कर याने कमकर यहांहीं प्राणों को त्यागेंगे ॥ ८५ ॥ व हे विष्णो ! सब लोगों के देखतेही वे मेरे अनुग्रह से विमान में चढ़कर मेरे स्थानकैलास को शीघ्रही प्राप्त होकर ॥ ८६ ॥ बहुत अधिक कालतक अत्यन्त उत्तम

दिव्य भोगों को भोगकर तदनन्तर यहां काशी या कैलास में ज्ञानीहोकर निरन्तर रहनेवाली मुक्तिको प्राप्तहोवेंगे ॥ ८७ ॥ उसकारण तब से लगाकर सबलोग यह मुक्ति मण्डप का नाम कहेंगे कि यह कुक्कुटमण्डपहै ॥ ८८ ॥ और जे मनुष्य मुक्ति मण्डप को आकर उनके चरित्र को भी सुमिरेंगे वे भी कल्याण या पुण्यकोही निश्चय से प्राप्त होवेंगे ॥ ८९ ॥ इसभांति जबतक शङ्करजीने विष्णुजी के आगे भविष्य कथाको किया तबतक घण्टाओं का रोमहर्षण शब्द उदय हुआ ॥ ९० ॥ अनन्तर नन्दीश्वर को बुलाकर देवों के देव पार्वती के पति वचन को उच्चस्वरसे बोले कि हे नन्दिन्! यह शब्द क्यों हुआ है उसको जानकर और आकर तुमकहो ॥ ९१ ॥ तदनन्तर भली-

क्तिम्प्राप्स्यन्तिशाश्वतीम् ॥ ८७ ॥ ततोलोकास्तदारभ्यकथयिष्यन्तिसर्वतः ॥ मुक्तिमण्डपनामैतदेषकुक्कुटमण्डपः ॥ ८८ ॥ चरित्रमपिवैतेषांयेस्मरिष्यन्तिमानवाः ॥ मुक्तिमण्डपमासाद्यश्रेयःप्राप्स्यन्तितेपिहि ॥ ८९ ॥ इतियावत्कथांशम्भुर्भविष्यामग्रतोहरेः ॥ अकरोत्तुमुलोनादोघण्टानान्तावदुद्गतः ॥ ९० ॥ अथनन्दिनमाहूयदेवदेवउमाधवः ॥ प्रोवाचनन्दिन्विज्ञायागत्यब्रूहिकुतोरवः ॥ ९१ ॥ अथनन्दीसमागत्यप्रोवाचवृषभध्वजम् ॥ नमस्कृत्यप्रहृष्टास्यःप्रबद्धकरसम्पुटः ॥ ९२ ॥ नन्द्युवाच ॥ देवदेवत्रिनयनकिमपूर्वम्ब्रवीमिते ॥ मोक्षलक्ष्मीविलासोऽत्रकैश्चित्कैश्चित्समर्च्यते ॥ ९३ ॥ अथस्मित्वाब्रवीच्छम्भुःसिद्धंनस्तुसमीहितम् ॥ उत्थायदेवदेवेशःसहदेव्यासुमङ्गलः ॥ ९४ ॥ ब्रह्मणाहरिणासार्धंततोऽगाद्रङ्गमण्डपम् ॥ स्कन्दउवाच ॥ श्रुत्वाध्यायमिमम्पुण्यंपरमानन्दकारणम् ॥ नरःपराम्मुदम्प्राप्यकैलासम्प्राप्स्यतिध्रुवम् ॥ ९५ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेमुक्तिमण्डपगमनंनामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

भांति लौट आकर व वृषभध्वज (शिव) के नमस्कारकर दोनो हाथ जोडेहुये प्रसन्न मुखवाले नन्दीश्वरने कहा ॥ ९२ ॥ श्रीनन्दीश्वरजी बोले कि, हे देवदेव, त्रिनयन! मैं तुम से किस अपूर्वको कहताहूँ कि यह मोक्ष लक्ष्मी विलास मन्दिर किसी किसी लोगोंसे भलीभांति पूजाजाताहै ॥ ९३ ॥ अनन्तर मुसकाकर शङ्करजीने कहा कि मेरा वांछित सिद्ध हुआ और सुमङ्गलवाले देवदेवेश महेश जी देवीजीके साथ ॥ ९४ ॥ व ब्रह्मा और विष्णुजीके साथ उस स्थान से रंगमण्डप (शृंगारमण्डप) को चलेगये श्रीकार्त्तिकेय जी बोले कि, उत्तम आनन्दके कारण इस मनोहर अध्याय को सुनकर नर परम आनन्दको प्राप्त होकर निश्चयसे कैलासको प्राप्त होताहै ॥ ९५ ॥ अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ९८ ॥

दो० । नवनब्बेअध्यायमेंबड़ाविचित्रबखान । विश्वनाथजूकीमहामहिमासेयुतजान ॥ श्री व्यासजी बोले कि, हे सूत ! जैसे कार्त्तिकेयजी ने अगस्त्यमुनि से देवों के देव परमात्मा विश्वनाथजी के चित्तको कहा है वैसे तुम सुनो ॥ १ ॥ अगस्त्यजी बोले कि, हे देव सेनाकेनायक ! उस मुक्तिमण्डप से निकलकर देवेन्द्रों से सहित महादेव जी ने हर्ष से क्या किया उसको तुम मुझ से कहो ॥ २ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, ब्रह्मा और विष्णु के आगे चलनेवाले शम्भुजीने मुक्तिमण्डप से श्रृंगारमण्डप को प्राप्त होकर जिसको किया उसको मैं कहता हूँ ॥ ३ ॥ कि तदनन्तर हम सबों केसाथ व परमेश्वरी पार्वतीजी के साथ पूर्वमुख हुये बैठकर महेश्वरजी जोकि दक्षिण

व्यासउवाच ॥ श्रृणुसूतयथाप्रोक्तंकुम्भजेशरजन्मना ॥ देवदेवस्यचरितंविश्वेशस्यपरात्मनः ॥ १ ॥ अगस्त्यउवाच ॥ सेनानीःकथयत्वम्मेततोनिर्वाणमण्डपात् ॥ निर्गत्यदेवोदेवेन्द्रैःसहितःकिञ्चकारह ॥ २ ॥ स्कन्दउवाच ॥ मुक्तिमण्डपतःशम्भुर्ब्रह्मविष्णुपुरोगमः ॥ श्रृङ्गारमण्डपम्प्राप्ययच्चकारवदामितत् ॥ ३ ॥ प्राङ्मुखस्तूपविश्येशःसहास्माभिःसहेशया ॥ ब्रह्मणाधिष्ठितःसव्येवामपार्श्वेथशार्ङ्गिणा ॥ ४ ॥ वीज्यमानोमहेन्द्रेणऋषिभिःपरितोवृतः ॥ गणैःपृष्ठप्रदेशस्थैर्जोषन्तिष्ठद्भिरादरात् ॥ ५ ॥ उदायुधैःसेव्यमानश्चावसन्मानभूरिभिः ॥ ब्रह्मणेविष्णवेशम्भुःपाणिमुत्क्षिप्यदक्षिणम् ॥ ६ ॥ दर्शयामासदेवेशोलिङ्गम्पश्यतपश्यत ॥ इदमेवपरञ्ज्योतिरिदमेवपरात्परम् ॥ ७ ॥ इदमेवहिमेरूपंस्थावरञ्चातिसिद्धिदम् ॥ एतेपाशुपताःसिद्धाआबालब्रह्मचारिणः ॥ ८ ॥ जितेन्द्रियास्तपोनिष्ठाःपञ्चार्थज्ञाननिर्म

ओर में ब्रह्माजी से और वाम पार्श्व में विष्णु से आश्रित हैं ॥ ४ ॥ व महेन्द्र से वीज्यमान (इन्द्रजी से चौंर चलाये हैं) व ऋषियों से सबओर घिरे व आदर से पृष्ठप्रदेश मे (पीछे) टिके और चुपचाप खड़े हुये गण ॥ ५ ॥ व बहुतमानवाले, आयुधउठाये हुये गणो से सेव्यमान हैं वह शङ्करजी वहां बसे और दक्षिण हाथ को उठाकर ब्रह्माजी व विष्णुजी के लिये ॥ ६ ॥ क्रीडाकारी महेशजी ने दिखाया कि तुम सबजने लिंगको देखो देखो यहही परम ज्योति है यहही परसे पर है ॥ ७ ॥ और यहही अत्यन्त सिद्धिदायक मेरा स्थावररूप है व ये पाशुपत याने पशुपति सम्बन्धिनी दीक्षाको प्राप्त मेरेभक्त जे कि सिद्ध हैं व बालपन से लगाकर ब्रह्मचारी हैं ॥ ८ ॥

व भीतर की इन्द्रियों को जीते व तपस्या में स्थिति या प्रीतिवाले व पञ्चाक्षर मन्त्र या अकार उकार मकार नाद और बिंदु इनपांचों के अर्थ ज्ञान से निर्मल व भस्म समूह में सोवनेवाले व बाहर की इन्द्रियों को दमन किये हुये व सुशील या अच्छे सदाचारी व ऊर्ध्वरेता याने वीर्य्य को ऊपर चढ़ाये हैं ॥ ९ ॥ व नित्यही लिंग की पूजा में रत व अन्य में इन्द्रिय और मनके न लगानेवाले व सदैव जल और भस्मके दो स्नानों से बहुत विमल हैं ॥ १० ॥ व कन्द मूल और फलों के खानेवाले व परमात्माके स्वरूप में आंखों को अर्पे हुये व सत्यवान् जितक्रोध निर्मोह और सब ओर से वस्तुओं के ग्रहण से हीन हैं याने जितने से देहका निर्वाहमात्र होसक्ता

लाः ॥ भस्मकूटशयादान्ताःसुशीलाऊर्ध्वरेतसः ॥९॥ लिङ्गार्चनरतानित्यमनन्येन्द्रियमानसाः ॥ सदैववारुणाग्नेय स्नानद्वयसुनिर्मलाः ॥ १० ॥ कन्दमूलफलाहाराःपरतत्त्वार्पितेक्षणाः ॥ सत्यवन्तोजितक्रोधानिर्मोहानिष्परिग्रहाः ॥ ११ ॥ निरीहानिष्प्रपञ्चाश्चनिरातङ्कानिरामयाः ॥ निर्भगानिरुपायाश्चनिःसङ्गानिर्मलाशयाः ॥१२॥ निस्तीर्णोदग्रसंसारानिर्विकल्पानिरेनसः ॥ निर्द्वन्द्वानिश्चितार्थाश्चनिरहङ्कारवृत्तयः ॥ १३ ॥ सदैवमेमहाप्रीतामत्पुत्रामत्स्वरूपिणः ॥ एतेपूज्यानमस्याश्चमद्बुद्ध्यामत्परायणैः ॥ १४ ॥ अर्चितेष्वेष्वहम्प्रीतोभविष्यामिनसंशयः ॥ अस्मिन्वैश्वेश्वरेक्षेत्रे सम्भोज्याःशिवयोगिनः ॥ १५ ॥ कोटिभोज्यफलंसम्यगेकैकपरिसंख्यया ॥ अयंविश्वेश्वरःसाक्षात्स्थावरात्माजगत्प्रभुः ॥ १६ ॥ सर्वेषांसर्वसिद्धीनांकर्ताभक्तिजुषामिह ॥ अहङ्कदाचिद्दृश्यःस्यामदृश्यःस्याङ्कदाचन ॥ १७ ॥

है उतने कोही ग्रहण किये हैं ॥ ११ ॥ व व्यापार से रहित, देहादिक अभिमान से शून्य, निडर निरोग व ऐश्वर्यहीन निरुपाय निःसंग और निर्मल अन्तःकरणवाले हैं ॥ १२ ॥ व उदग्र संसारसागरको निःशेष तरेहुये, निर्विकल्प, निष्पाप, निर्द्वन्द्व (शीत उष्ण सुख दुःखादिसे रहित) निश्चित अर्थवाले और अहङ्कारकी वृत्तियोंसे हीन हैं ॥ १३ ॥ व सदैव मेरे परम प्यारे व मेरे पुत्रोंके समान और मेरे स्वरूपवाले हैं वे ये मुझमें परायण याने मेरे भक्तजनों करके मेरी बुद्धि से पूजनीय हैं व नमस्कार के योग्य हैं ॥ १४ ॥ इनके पूजित होतेही मैं प्रसन्न होऊंगा इस में संशय नहीं है इसलिये इस विश्वेश्वर के क्षेत्रमें शिवजी के योगीजन भलीभांति भोजन कराने योग्य हैं ॥ १५ ॥ क्योंकि एक एककी परिसंख्या (क्रम से गिनती) से कोटि भोज्यका फल अच्छेप्रकार से होता है और जगत के प्रभु स्थावर लिंगरूप यह प्रत्यक्ष

विश्वनाथ जी ॥ १६ ॥ यहां सब भक्तिसेवियो की सब सिद्धियों के कर्त्ता हैं मैं कभी दृश्य होताहूँ कभी अदृश्य होता हूँ ॥ १७ ॥ और हे देवताओ ! मैं सबों के अनुग्रह के लिये इस आनन्दवनमें अपनी प्रेरणा से स्वेच्छाचारी भाव से सदा टिकता हूं ॥ १८ ॥ किन्तु चिन्तित अर्थफलोंका प्रदायक मैं लिंगरूप से टिकूंगा व जेकि स्वयम्भु (आपही आप हुये) अस्वयम्भु (थापेहुये) लिंग सर्वत्र हैं वे सब इस लिंगको देखने के लिये सदा आते हैं ॥ १९ ॥ मैं सब लिंगों व तीर्थों में टिकाही हूं इस में संशय नहीं है परन्तु यह लिंगस्वरूपिणी मेरी श्रेष्ठमूर्त्ति है ॥ २० ॥ हे स्वर्गवासी देवो ! जिस शुद्धनेत्रवाले ने श्रद्धा से इस लिंगको देखा उससे साक्षात्कार सेही मैं देखाहुआ

आनन्दकाननेचात्रस्वैरन्तिष्ठामिदेवताः ॥ अनुग्रहायसर्वेषांभक्तानामिहसर्वदा ॥ १८ ॥ स्थास्यामिलिङ्गरूपेणचिन्तितार्थफलप्रदः ॥ स्वयम्भून्यस्वयम्भूनियानिलिङ्गानिसर्वतः ॥ तानिसर्वाणिचायान्तिद्रष्टुंलिङ्गमिदंसदा ॥ १९ ॥ अहंसर्वेषुलिङ्गेषुतिष्ठाम्येवनसंशयः ॥ परन्त्वियम्परामूर्तिर्ममलिङ्गस्वरूपिणी ॥ २० ॥ येनलिङ्गमिदन्दृष्टंश्रद्धयाशुद्धचक्षुषा ॥ साक्षात्कारेणतेनाहंदृष्टएवदिवौकसः ॥ २१ ॥ श्रवणादस्यलिङ्गस्यपातकञ्जन्मसञ्चितम् ॥ क्षणात्क्षयतिशृण्वन्तुदेवाऋषिगणैःसह ॥ २२ ॥ स्मरणादस्यलिङ्गस्यपापञ्जन्मद्वयार्जितम् ॥ अवश्यंनश्यतिक्षिप्रंममवाक्यान्नसंशयः ॥ २३ ॥ एतल्लिङ्गंसमुद्दिश्यगृहान्निष्क्रमणक्षणात् ॥ विलीयतेमहापापमपिजन्मत्रयार्जितम् ॥ २४ ॥ दर्शनादस्यलिङ्गस्यहयमेधशतोद्भवम् ॥ पुण्यंलभेतनियतंममानुग्रहतोमराः ॥ २५ ॥ स्वयम्भुवोस्यलिङ्गस्यममविश्वेशितुःसुराः ॥ राजसूयसहस्रस्यफलंस्यात्स्पर्शमात्रतः ॥ २६ ॥ पुष्पमात्रप्रदानाच्चचुलुकोदकपूर्वकम् ॥ शतसौवर्णिकम्पुण्यंलभतेभक्तियोग

हूं ॥ २१ ॥ ऋषिगणों के साथ देवतायें सुनें कि जन्मों से संचित पाप इस लिंग के दर्शन से क्षणभर में नशजाता है ॥ २२ ॥ व दो जन्मोंमें अर्जित हुआ पाप इस लिंग के स्मरण से मेरे वचन से अवश्यकर शीघ्रही नशता है इसमें संशय नहीं है ॥ २३ ॥ व इस लिंग को भलीभांति उद्देशकर घरसे निकलने के क्षणमेंही तीन जन्मों से बटोरा महापाप भी बिलाजाता है ॥ २४ ॥ और हे देवो ! इस लिंग के दर्शन के द्वारा मेरे अनुग्रह से सौ अश्वमेध यज्ञों से उपजी हुई पुण्यको नियमसे पावेहै ॥ २५ ॥ हे देवो ! मुझ विश्वेश्वर के इस स्वयम्भू लिंग के स्पर्शमात्र से हज़ारों राजसूय यज्ञोंका फल होवे है ॥ २६ ॥ और भक्तियोग से चुल्लूभर जलपूर्वक फूलमात्र के प्रदान

से सौ मोहर दान की पुण्यको पाताहै ॥ २७ ॥ व भक्ति से इस लिंगराजकी पूजामात्र को कर हज़ार सुवर्णकमलों की पूजाका फल मिलता है ॥ २८ ॥ व इस लिंगकी पञ्चामृतपूर्वक बडी पूजाको कर चारों पुरुषार्थों को पाता है ॥ २९ ॥ हे देवो ! वस्त्रसे पवित्र (छाने) जलों से मेरे इस लिंग को नहवाकर सत्तमजन लाख अश्वमेध यज्ञों से उपजी हुई पुण्य को प्राप्त होता है ॥ ३० ॥ व भक्ति से सुगन्ध चन्दन रसो से लिंगको सबओरसे लेपन कर देवो की स्त्रियों करके सुगन्ध यक्षकर्दमों से सब ओर या सामने से लेपाजाता है ॥ ३१ ॥ व सुगन्ध समेत धूप देने से दिव्य सुगंधों का आश्रय और घृत के दीप जगाने (जलाने) से ज्योतिरूप विमान से चलने

तः ॥ २७ ॥ पूजामात्रंविधायास्यलिङ्गराजस्यभक्तितः ॥ सहस्रहेमकमलपूजाफलमवाप्यते ॥ २८ ॥ विधायमहतीम्पूजांपञ्चामृतपुरःसराम् ॥ अस्यलिङ्गस्यलभतेपुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ २९ ॥ वस्त्रपूतजलैर्लिङ्गंस्नापयित्वाममामराः ॥ लक्षाश्वमेधजनितंपुण्यमाप्नोतिसत्तमः ॥ ३० ॥ सुगन्धचन्दनरसैर्लिङ्गमालिप्यभक्तितः ॥ आलिप्यतेसुरस्त्रीभिःसुगन्धैर्यक्षकर्दमैः ॥ ३१ ॥ सामोदधूपदानैश्चदिव्यगन्धाश्रयोभवेत् ॥ घृतदीपप्रबोधैश्चज्योतीरूपविमानगः ॥ ३२ ॥ कर्पूरवर्तिदीपेनसकृद्दत्तेनभक्तितः ॥ कर्पूरदेहगौरश्रीर्भवेद्भालविलोचनः ॥ ३३ ॥ दत्त्वानैवेद्यमात्रन्तुसिक्थेसिक्थेयुगंयुगम् ॥ कैलासाद्रौवसेद्धीमान्महाभोगसमन्वितः ॥ ३४ ॥ विश्वेशेपरमान्नंयोदद्यात्साज्यंसशर्करम् ॥ त्रैलोक्यन्तर्पितन्तेनसदेवपितृमानवम् ॥ ३५ ॥ मुखवासन्तुयोदद्याद्दर्पणञ्चारुचामरम् ॥ उल्लोचंसुखपर्यङ्कन्तस्यपुण्यफलम्महत् ॥ ३६ ॥ संख्यासागररत्नानांकथंचित्कर्तुमिष्यते ॥ मुखवासादिदानस्यकःसंख्यामत्रकारयेत् ॥ ३७ ॥ पूजोपकरणद्रव्यंयोद

वाला होवे है ॥ ३२ ॥ व भक्तिके साथ एकबार दिये हुये कपूर बाती के दीप से कपूर के समान गौर रंग अंग शोभावान् और माथे में आंखवाला याने शिवस्वरूप होवेहै ॥ ३३ ॥ व नैवेद्यमात्र को देकर बुद्धिमान् जन सीथ सीथमें युग युग तक बड़े भोगोसे समन्वित होकर कैलास पर्वतमे बसे ॥३४॥ जोकि घी व शक्कर समेत खीर को विश्वनाथजी के लिये देवे उससे देव पितर और मनुष्यो समेत त्रैलोक्य तर्पितहै ॥ ३५ ॥ व जोकि मुखवास (लवंगपानआदि) दर्पण सुन्दर चामर चँदोवा (वितान) और सुखशय्या को देवे उसका बड़ा पुण्यफलहै ॥ ३६ ॥ कि समुद्र के रत्नोंकी संख्या किसी भांति करने के लिये इच्छित होती है परन्तु पूर्वोक्तमुखवासादि दानके फल

की संख्या को यहां कौन करावे याने कोई भी नहीं करसक्ता है ॥ ३७ ॥ व जोकि मेरे स्थान में पूजा के उपकारक पात्रादि द्रव्य व घण्टागडुकादि को भक्तिसे देवे वह यहां मेरे समीप मे बसे ॥ ३८ ॥ व जोकि मेरी प्रीति के लिये गीतवाद्य और नृत्य मेंसे एकको भी करे या करताभया उसके आगे दिनोरात बड़ाभारी तौर्यत्रिक (नृत्य गीतवाद्य) होवे है ॥ ३९ ॥ व जो कोई मेरे इस महल मे चित्रलेखन कर्मादिको करावे वह मेरे आगे या लोक में टिकाहुआ विचित्र बड़े भोगोंको भोगताहै ॥४० ॥ व सुबुद्धिमान् मनुष्य जन्म के बीच में एकबार श्रीविश्वनाथजी को नमस्कार कर त्रिलोक से वन्दित पावोंवाला पृथिवीपति होता है ॥ ४१ ॥ और जो विश्वेश्वर को

ण्टागडुकादिकम् ॥ भक्त्यामेभवनेदद्यात्सवसेदत्रमेन्तिके ॥ ३८ ॥ योगीतवाद्यन्नृत्यानामेकंमत्प्रीतयेऽव्यधात् ॥ तस्याग्रतोदिवारात्रम्भवेत्तौर्यत्रिकंमहत् ॥ ३९ ॥ चित्रलेखनकर्मादिप्रासादेमेऽत्रकारयेत् ॥ यःसचित्रान्महाभोगान्भुङ्क्मत्पुरतःस्थितः ॥ ४० ॥ सकृद्विश्वेश्वरंनत्वामध्येजन्मसुधीर्नरः ॥ त्रैलोक्यवन्दितपदोजायतेवसुधापतिः ॥ ४१ ॥ यस्तुविश्वेश्वरंदृष्ट्वाह्यन्यत्रापिविपद्यते ॥ तस्यजन्मान्तरेमोक्षोभवत्येवनसंशयः ॥ ४२ ॥ विश्वेशाख्यातुजिह्वाग्रेविश्वनाथकथाश्रुतौ ॥ विश्वेशशीलनंचित्तेयस्यतस्यजनिःकुतः ॥ ४३ ॥ लिङ्गंमेविश्वनाथस्यदृष्ट्वायश्चानुमोदते ॥ समेगणेषुगण्येतमहापुण्यबलाश्रितः ॥ ४४ ॥ नित्यंविश्वेशविश्वेशविश्वनाथेतियोजपेत् ॥ त्रिसन्ध्यन्तंसुकृतिनंजपाम्यहमपिध्रुवम् ॥ ४५ ॥ ममापीदंमहालिङ्गंसदापूज्यतमंसुराः ॥ तस्मात्सर्वप्रयत्नेनपूज्यन्देवर्षिमानवैः ॥ ४६ ॥ यैर्न

देखकर अन्यत्र भी मरताहै उसकी मुक्ति जन्मान्तर में होतीही है इसमें संशय नहीं है ॥ ४२ ॥ व जिसकी जिह्वा के आगे विश्वनाथजी का नाम है जिसके कान में विश्वनाथजी की कथा है और जिसके चित्तमें विश्वनाथजी का ध्यानहै उसका जन्म कैसे होवेगा ॥ ४३ ॥ व जो मुझ विश्वेश्वर के लिंगको देखकर पीछे से आनन्दित (प्रसन्न) होता है वह महापुण्य के बल से सेवित हुआ मेरे गणों में गना जाताहै ॥ ४४ ॥ व जो नित्य तीनों सन्ध्याओं में हे विश्वेश, विश्वेश, विश्वनाथ ! ऐसा जपे उस पुण्यवान् को मैं भी निश्चयसे जपता हूँ ॥ ४५ ॥ हे देवो ! जिससे मेरा भी यह लिंग सदा बहुत पूजनीय है उसलिये देव ऋषि और मनुष्यों से बड़े यत्न के साथ पूजने

योग्य है ॥ ४६ ॥ जिन्होंने विश्वेश्वर को न देखा व जिन्हों ने विश्वेश्वर को न सुमिरा वे यमराज के दूतों से देखेगये और उन्होंने गर्भवासकी पीडाको प्राप्त किया ॥४७॥ व जिन्हों ने इस लिंगको प्रणाम किया वे देव और दैत्यों मे भी प्रणमेगये हैं व जिन श्रीविश्वनाथजी के एक प्रणाम से दिक्पालों का पद (अधिकार या लोक) बहुत थोड़ा है क्योकि दिक्पालपद से गिरना है और शिवजी के नमस्कार से गिरना नहीं है ॥ ४८ ॥ हे देवर्षिगणो ! आप सब जने सुनें मैं पराये उपकार के लिये उस सत्य को कहता हूं कि भूमि भुवः स्वः महः जन तप और सत्य लोकके बीच में विश्वनाथ के समान लिंग कहीं नहीं है ॥ ४९ ॥ अहो देवो ! विश्वेश्वर के समान अन्य

विश्वेश्वरोदृष्टोयैर्नविश्वेश्वरःस्मृतः ॥ कृतान्तदूतैस्तेदृष्टास्तैःस्मृतागर्भवेदना ॥ ४७ ॥ यैरिदम्प्रणतंलिङ्गंप्रणतास्ते सुरासुरैः ॥ यस्यैकेनप्रणामेनदिक्पालपदमल्पकम् ॥ दिक्पालपदतःपातःपातःशिवनतेर्नहि ॥ ४८ ॥ शृण्वन्तुदेवर्षिग णाःसमस्तास्तथ्यंब्रुवेतच्चपरोपकृत्यै ॥ नभूर्भुवःस्वर्गमहर्जनान्तर्विश्वेशतुल्यंक्वचिदस्तिलिङ्गम् ॥ ४९ ॥ नसत्यलोकेन तपस्यहोसुरावैकुण्ठकैलासरसातलेषु ॥ तीर्थंक्वचिद्वैमणिकर्णिकासमंलिङ्गञ्चविश्वेश्वरतुल्यमन्यतः ॥ ५० ॥ नविश्वना थस्यसमंहिलिङ्गंनतीर्थमन्यन्मणिकर्णिकातः ॥ तपोवनंकुत्रचिदस्तिनान्यच्छुभंममानन्दवनेनतुल्यम् ॥ ५१ ॥ वाराण सीतीर्थमयीसमस्तायस्यास्तुनामापिहितीर्थतीर्थम् ॥ तत्रापिकाचिन्ममसौख्यभूमिर्महापवित्रामणिकर्णिकासौ ॥ ५२ ॥ स्थानादमुष्मान्ममराजसौधात्प्राच्यांमनागीशसमाश्रितायाम् ॥ सव्येपसव्येचकराःक्रमेणशतत्रयीचापिशतद्वयी

लिंग व मणिकर्णिका के तुल्य तीर्थ सत्यलोक में नहीं तपोलोक में नहीं व वैकुण्ठ कैलास और रसातल में कहीं नहीं है ॥ ५० ॥ व विश्वनाथ के समान लिंग निश्चय से नहीं है व मणिकर्णिका से पर अन्य तीर्थ नहीं है और मेरे आनन्दवन के तुल्य अन्य शुभ तपोवन कहीं नहीं है ॥ ५१ ॥ समस्त काशीपुरी तीर्थमयी है जिसका नाम भी निश्चय से तीर्थोंका तीर्थ है उसमें भी महापवित्र यह मणिकर्णिका कोई मेरे सौख्यकी भूमि है ॥५२॥ इस स्थान से जो मेरा राजमहल मोक्षद्वार और स्वर्गद्वारके बीचमेंहै उससे कुछेक ईशान कोणसे समाश्रित पूर्व दिशामें याने पूर्व और उत्तर के बीच में वामओर हरिश्चन्द्रेश्वर पर्यंत तीनसौ हाथ व दक्षिण पार्श्व मे गङ्गाकेशव

पर्यंत दोसौ हाथ ॥ ५३ ॥ और गङ्गा में पांचसौ हाथ उत्तर दक्षिण आदि चारोंकोणों में सब तीर्थोंका सार व परमात्मा का आधारस्थान यह मणिकर्णिका जिन्होंने सेई गई वे मेरे हृदयमें सोवनेवालेही हैं ॥ ५४ ॥ इस मेरे आनन्दवनमें मोक्षका मन्दिर व अच्छे स्थानोंमें प्रकाशवाला जो यह लिंगहै वह सात पाताल तक आपही आप हुआ व भक्त कृपावशसे भलीभांति उठाहै ॥ ५५ ॥ जे कि इस स्थानमें कुतर्कों के साथ कृत्रिम होनेकी बुद्धिसे लिंगको सेवेंगे उनको यहही श्रेष्ठ दण्डहै कि वे निश्चयकर गर्भवाससे विश्रामवाले नहीं होते हैं ॥ ५६ ॥ व जो जो वस्तु अपना का हित है वह वह इस लिंगमें मेरे भक्तों से सदैव देने योग्यहै क्योंकि जैसे यहां पापियों

च ॥ ५३ ॥ हस्ताःशतम्पञ्चसुरापगायामुदीच्यवाच्योर्मणिकर्णिकेयम् ॥ सारस्त्रिलोक्याःपरकोशभूमिर्यैःसेवितातेम महृच्छयाहि ॥ ५४ ॥ अस्मिन्ममानन्दवनेयदेतल्लिङ्गंसुधाधामसुधामधाम ॥ आसप्तपातालतलात्स्वयम्भुसमुत्थितम्भक्तकृपावशेन ॥ ५५ ॥ येस्मिञ्जनाःकृत्रिमभावबुद्ध्यालिङ्गंभजिष्यन्तिचहेतुवादैः ॥ तेषांहिदण्डःपरएषएवनगर्भवासाद्विरमन्तितेध्रुवम् ॥ ५६ ॥ यद्यद्धितंस्वस्यसदैवतत्तल्लिङ्गेन्नदेयंममभक्तिमद्भिः ॥ इहाप्यमुत्रापिनतस्यसंक्षयोयथेहपापस्यकृतस्यपापिभिः ॥ ५७ ॥ दूरस्थितैरप्यधिबुद्धिभिर्यैर्लिङ्गंसमाराधिममेदमत्र ॥ मयैवदत्तैःशुभवस्तुजातैर्निःश्रेयसःश्रीर्वसयेत्सतस्तान् ॥ ५८ ॥ शृणुष्वविष्णोशृणुसृष्टिकर्तःशृण्वन्तुदेवर्षिगणाःसमस्ताः ॥ इदंहिलिङ्गंपरसिद्धिदंसताम्भेदोमनागत्रनमत्सकाशतः ॥ ५९ ॥ अस्मिन्हिलिङ्गेऽखिलसिद्धिसाधनेसमर्पितंयैःसुकृतार्जितंवसु ॥ तेभ्योतिमात्राखिलसौख्यसाधनन्ददामिनिर्वाणपदंसुनिर्भयम् ॥ ६० ॥ उत्क्षिप्यबाहुन्त्वसकृद्ब्रवीमित्रयीमयेस्मिन्स्न

से कियेहुये पापका नाश नहीं है वैसेही इस लोक और उस लोकमें भी उस दिये हुयेकी पुण्यका संशय नहीं है ॥ ५७ ॥ व अधिक बुद्धिवाले जिन दूरवासियों ने भी यहां मेरे इस लिंगका भलीभांति पूजन किया उन सज्जनों को मुझसेही दियेहुये सब वस्तुसमूहोंके साथ मोक्षलक्ष्मी बसावे है ॥ ५८ ॥ हे विष्णो ! तुम सुनो हे सृष्टिकर्त्तः (ब्रह्माजी) ! तुम सुनो और सब देव ऋषिगण सुनें कि यह लिंगही सन्तोंको श्रेष्ठ सिद्धिदायकहै यहां मेरे समीपसे थोड़ा कुछ भेद नहींहै ॥ ५९ ॥ और जिन्हों ने सम्पूर्ण सिद्धियों के साधनेवाले इसही लिंग में सुकर्म से बटोरे हुये धन को समर्पण किया उनको मैं अतिशय सुखोंका साधन सुनिर्भय मोक्ष ज्ञान देताहूं ॥ ६० ॥

व बाहुको उठाकर मैं बार बार कहताहूं कि इस त्रिगुणमय जगत् में तीनही सार हैं कि श्रीविश्वनाथजी का लिंग व मणिकर्णिका का जल और काशीपुरी यह त्रिसत्य है याने तीनबार सत्य है ॥ ६१ ॥ अनन्तर उठकर उस लिंगमें सुन्दर पूजन किये हुये शक्ति (पार्वती) समेत, क्रीड़ाकारी महेशजी उसही लिंग में लय को प्राप्तहोगये और उन देवों ने जय ऐसा फिर जय ऐसा कहकर उन ईश्वरकी स्तुति किया ॥ ६२ ॥ श्रीकार्त्तिकेयजी बोले कि, हे महामते, मैत्रावरुणे (अगस्त्य जी) ! पापनाशनेवाला यह अविमुक्त (काशी) क्षेत्रके प्रभाव का एक देश कहा गया ॥ ६३ ॥ व काशी के वियोगसे तापवाले तुम्हारे आगे क्या कहना चाहिये

यमेवसारम् ॥ विश्वेशलिङ्गंमणिकर्णिकाम्बुकाशीपुरीसत्यमिदन्त्रिसत्यम् ॥ ६१ ॥ उत्थायदेवोथसशक्तिरीशस्तस्मिन्हिलिङ्गेकृतचारुपूजः ॥ ययौलयन्तेचसुराजयेतिजयेतिचोक्त्वानुनुवुस्तमीशम् ॥ ६२ ॥ स्कन्दउवाच ॥ क्षेत्रस्यमैत्रावरुणेविमुक्तस्यमहामते ॥ प्रभावस्यैकदेशोयङ्कथितःकल्मषापहः ॥ ६३ ॥ तवाग्रेतुयथाबुद्धिकाशीविश्लेषतापिनः ॥ अचिरेणैवकालेनकाशीम्प्राप्स्यस्यनुत्तमाम् ॥ ६४ ॥ अस्ताचलस्यशिखरम्प्राप्तवानेषभानुमान् ॥ तवापिहिममाप्येषमौनस्यसमयोभवत् ॥ ६५ ॥ व्यासउवाच ॥ श्रुत्वेतिसमुनिःसूतसन्ध्योपास्त्यैविनिर्गतः ॥ प्रणम्यौमेयमसकृल्लोपामुद्रासमन्वितः ॥ ६६ ॥ रहस्यम्परिविज्ञायक्षेत्रस्यशशिमौलिनः ॥ अगस्त्योनिश्चितमनाःशिवध्यानपरोभवत् ॥ ६७ ॥ आनन्दकाननस्येहमहिमानम्महत्तरम् ॥ कोत्रवर्णयितुंशक्तःसूतवर्षशतैरपि ॥ ६८ ॥ यथादेव्यैसमाख्यायिशिवेनपरमा

किन्तु तुम थोड़ेही कालमें अत्यन्त उत्तम काशीपुरीको प्राप्त होवोगे ॥ ६४ ॥ जिससे यह सूर्य्य देव अस्ताचल के शिखर को प्राप्तहुये हैं उसमे तुम्हारे भी और हमारे भी मौन (बोलबन्द करने) का समय हुआ है ॥ ६५ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे सूत ! ऐसा सुनकर लोपामुद्रा समेत वह मुनि पार्वतीजी के पुत्रके बार बार प्रणाम कर सन्ध्योपासन के लिये विशेषतासे निकलगये ॥ ६६ ॥ व चन्द्रभाल (शिवजी) के क्षेत्र याने काशीपुरी के रहस्यको सब ओर विशेषतासे जानकर निश्चित मनवाले अगस्त्यजी शिवजीके ध्यानमे परायण हुये ॥ ६७ ॥ हे सूत ! सैकडो वर्षों से भी यहां काशीकी बडी भारी महिमा को कहने के लिये इस जगत में कौन समर्थ है ॥ ६८ ॥

जैसे परमात्मा शिवजीने देवीजी के लिये भलीभांति सब ओरसे कहा वैसेही श्री कार्त्तिकेयजी करके अगस्त्यजी के लिये आनन्दवनका माहात्म्य कहा गया ॥ ६९ ॥ और हे सत्तम ! तुम्हारे व शुकादिकों के आगे उसको मैंने अच्छे प्रकार समन्ताद्भावसे कहा इस समय तुम क्या पूछने के चाहीहो उसको पूछो मैं तुम से कहताहूं ॥ ७० ॥ समस्त चिन्तितफलप्रदायक वे सब पापघायक इस मनोरम अध्यायको सुन कर मनुष्य कृतार्थ होवे है ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेविश्वेश्वरलिङ्गमहिमाख्योनामनवनवतितमोध्यायः ॥ ९९ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

त्मना ॥ तथास्कन्देनकथितंमाहात्म्यंकुम्भसम्भवे ॥ ६९ ॥ तवाग्रेचसमाख्यातंशुकादीनाञ्चसत्तम ॥ इदानीम्प्रष्टुकामोसिकिन्तत्पृच्छवदामिते ॥ ७० ॥ श्रुत्वाध्यायमिमम्पुण्यंसर्वकल्मषनाशनम् ॥ समस्तचिन्तितफलप्रदम्मर्त्योभवेत्कृती ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेविश्वेश्वरलिङ्गमहिमाख्योनामनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

सूतउवाच ॥ इदंस्कान्दमहंश्रुत्वाकाशीखण्डमनुत्तमम् ॥ नितराम्परितृप्तोस्मिहृदिचापिविधारितम् ॥ १ ॥ अनुक्रमणिकाध्यायंतथामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ पाराशर्यसमाचक्ष्वयथापूर्वमिदम्भवेत् ॥ २ ॥ व्यासउवाच ॥ सूतावधेहिधर्मात्मन्जातूकर्ण्यनिशामय ॥ शुकवैशम्पायनाद्याःशृण्वन्त्वपिचबालकाः ॥ ३ ॥ अनुक्रमणिकाध्यायंमाहात्म्यञ्चापिखण्डजम् ॥ प्रवक्ष्याम्यघनाशायमहापुण्यप्रवर्धनम् ॥ विन्ध्यनारदसंवादःप्रथमेपरिकीर्तितः ॥ ४ ॥ सत्यलोकप्रभाव

दो० । शतसंख्यक अध्याय यह सब अभीष्ट फलदानि । कथित सकल संक्षेप सेअनुक्रमणिका मानि ॥ श्रीसूतजी बोले कि स्कन्दपुराणके अत्यन्त उत्तम इस काशीखण्डको सुनकर मैं बहुतही संतृप्तहूं और वह हृदयमें भी धारा गया ॥ १ ॥ हे पाराशर्य्य, श्रीवेदव्यासजी ! जैसे यह श्रेष्ठहोवे वैसेही अनुक्रमणिका अध्याय और माहात्म्य को आप कहो ॥ २ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे धर्मात्मन्,सूत ! तुम सावधान होकर सुनो व हे जातूकर्ण्य ! तुम सुनो और शुकदेव व वैशम्पायनादि बालक भी सुनें ॥ ३ ॥ मैं पापों के नाशने के लिये महा पुण्य के बड़े बढ़ाने वाले अनुक्रमणिक अध्याय और खण्डसे उपजेहुये माहात्म्यको भी अधिकतासे कहूंगा ॥ ४ ॥ कि पहले अध्याय

में विन्ध्याचल व नारद का संवाद सब ओरसे कहा गया फिर दूसरा याने दूसरे अध्यायमें कहाहुआ सत्यलोक का प्रभाव उच्चतासे आनागया ॥ ५ ॥ तदनन्तर तीसरेमें अगस्त्यजीके आश्रमपदमें देवताओंका आगमन है चौथे में पतिव्रताका चरित्र और पचयें में अगस्त्यमुनिका प्रस्थान है ॥ ६ ॥ उसके बाद छठयें में तीर्थोंकी प्रशंसा व सतयें में सातो मुक्तिपुरियां कहीगई हैं तदनन्तर अठयें में यमकी पुरीका स्वरूपहै उसके उपरान्त नवयें में सूर्य्यलोक वर्णितहै ॥ ७ ॥ तदनन्तर दशयेंमें इन्द्र व अग्नि के लोकमें शिवशर्माकी संप्राप्ति है ग्यारहवें में अग्निकी उत्पत्ति है उससे आगे बारहवें में निर्ऋति और वरुणका सम्भव है ॥ ८ ॥ तेरहवें में वायुपुरी व कुबेरपुरीका

श्चद्वितीयःसमुदाहृतः ॥ ५ ॥ अगस्तेराश्रमपदेदेवानामागमस्ततः ॥ पतिव्रताचरित्रञ्चप्रस्थानंकुम्भसम्भुवः ॥ ६ ॥ तीर्थप्रशंसाचततःसप्तपुर्यस्ततःस्मृताः ॥ संयमिन्याःस्वरूपञ्चब्रध्नलोकस्ततःपरम् ॥ ७ ॥ इन्द्राग्न्योर्लोकसम्प्राप्ति स्ततश्चशिवशर्मणः ॥ अग्नेःसमुद्भवस्तस्मात्क्रव्याद्वरुणसम्भवः ॥ ८ ॥ गन्धवत्यलकापुर्योरीशयोस्तुसमुद्भवः ॥ च न्द्रलोकपरिप्राप्तिःशिवशर्मद्विजन्मनः ॥ ९ ॥ उडुलोककथातस्मात्ततःशुक्रसमुद्भवः ॥ माहेयगुरुसौरीणांलोकानांवर्ण नन्ततः ॥ १० ॥ सप्तर्षीणान्ततोलोकाध्रुवस्यचतपस्ततः ॥ ततोध्रुवपदप्राप्तिर्ध्रुवलोकस्थितिस्ततः ॥ ११ ॥ दर्शनंसत्यलो कस्यतस्यवैशिवशर्मणः ॥ चतुर्भुजाभिषेकश्चनिर्वाणंशिवशर्मणः ॥ १२ ॥ स्कन्दागस्त्योश्चसंवादोमणिकर्ण्याःसमु द्भवः ॥ ततस्तुगङ्गामाहात्म्यंततोदशहरास्तवः ॥ १३ ॥ प्रभावश्चापिगङ्गायागङ्गानामसहस्रकम् ॥ वाराणस्याःप्रशंसा

वर्णन व ऐश्वर्य्यसमेत वायु और कुबेरकी समुत्पत्ति है व चौदहवें में शिवशर्मा ब्राह्मणकी चन्द्रलोककी परिप्राप्ति है ॥ ९ ॥ उसके बाद पन्द्रहवें में नक्षत्रलोककी कथा है तदनन्तर सोलहवें में शुक्रकी समुत्पत्ति है उसके आगे सत्रहवें में मंगल बृहस्पति और शनैश्चरके लोकोंका वर्णन है ॥ १० ॥ तदनन्तर अठारहवें में सप्त र्षियोंका लोक है फिर उसके बाद उन्नीसवें में ध्रुवकी तपस्या है उससे परे बीसवें में निश्चित ज्ञानस्वरूप विष्णुजी की प्राप्ति है उसके बाद इक्कीसवें में ध्रुव लोककी स्थितिहै ॥ ११ ॥ बाइसवें में शिवशर्माको सत्यलोकका दर्शनहै तेइसवें में चतुर्भुज विष्णुजीका अभिषेकहै और चौबिसवें में शिवशर्माकी मुक्तिहै ॥ १२ ॥ पचीसवेंमें स्कन्द (कार्त्तिकेय) व अगस्त्यजी का संवाद है छब्बीसवें में मणिकर्णिका की समुत्पत्तिहै उसके बाद सत्ताइसवें में गंगाका माहात्म्य है व दशहरा स्तोत्रहै तदन-

न्तर ॥ १३ ॥ अट्ठाइसवें में गंगाका प्रभाव है और उन्तीसवें में गंगासहस्र नामहै अनन्तर तीसवें में काशीकी प्रशंसा है उसके बाद इकतीसवें में भैरवजीका प्रकट होनाहै ॥ १४ ॥ बत्तीसवें में दण्डपाणिकी समुत्पत्ति है तदनन्तर तेंतिसवें में ज्ञान वापीका उद्भव है व चौंतिसवें में कलावतीका आख्यानहै उसके बाद पैंतिसवें में सदाचारहै ॥ १५ ॥ तदनन्तर छत्तिसवें में ब्रह्मचारीका प्रकरण है सैंतिसवें में स्त्रियों के लक्षणहैं अड़तिसवें में कृत्य (करने योग्य) व अकृत्यका प्रकरणहै और उन्तालिसवें में अविमुक्तेश्वरका वर्णनहै ॥ १६ ॥ उसके बाद चालिसवें में गृहस्थके धर्महैं तदनन्तर इकतालिसवें में योगका निरूपण है उससे परे बयालिसवें में कालज्ञान कहा गयाहै और तेंतालिसवें में दिवोदास राजाका वर्णन है ॥ १७ ॥ व उसके आगे चौवालिसवें में काशीका वर्णनहै तदनन्तर पैतालिसवें में योगिनियोंका वर्णनहै और

थभैरवाविर्भवस्ततः ॥ १४ ॥ दण्डपाणेःसमुद्भूतिर्ज्ञानवाप्युद्भवस्ततः ॥ आख्यानञ्चकलावत्याःसदाचारस्ततःपरम् ॥ १५ ॥ ब्रह्मचारिप्रकरणन्ततःस्त्रीलक्षणानिच ॥ कृत्याकृत्यप्रकरणमविमुक्तेशवर्णनम् ॥ १६ ॥ ततोगृहस्थधर्माश्चततो योगनिरूपणम् ॥ कालज्ञानन्ततःप्रोक्तंदिवोदासस्यवर्णनम् ॥ १७ ॥ काश्याश्चवर्णनन्तस्माद्योगिनीवर्णनन्ततः ॥ लोलार्कस्यसमाख्यानमुत्तरार्ककथाततः ॥ १८ ॥ साम्बादित्यस्यमहिमाद्रुपदादित्यशंसनम् ॥ ततस्तुगरुडाख्यानम रुणार्कादयस्ततः ॥ १९ ॥ दशाश्वमेधिकन्तीर्थंमन्दराच्चगणागमः ॥ पिशाचमोचनाख्यानंगणेशप्रेषणन्ततः ॥ २० ॥ मायागणपतेश्चाथढुण्ढिप्रादुर्भवस्ततः ॥ विष्णुमायाप्रपञ्चोथदिवोदासविसर्जनम् ॥ २१ ॥ ततःपञ्चनदोत्पत्तिर्बिन्दुमाध

छियालिसवेंमें लोलार्कका भलीभांति आख्यान है उसके बाद सैंतालिसवेंमें उत्तरार्ककी कथाहै ॥ १८ ॥ अड़तालिसवें में साम्बादित्यकी महिमाहै उनचासवें में द्रुपदादित्य व मयूखादित्यका कथन है तदनन्तर पचासवें में गरुडका आख्यानहै उसके बाद इक्कावनवें में अरुणार्कादिक याने अरुणादित्य, वृद्धादित्य केशवादित्य, विमलादित्य और गंगादित्यहैं ॥ १९ ॥ व बावनवें में दशाश्वमेधिक तीर्थ है तिरपनवें में मन्दरा चलसे गणोंका आनाहै चौवनवें में पिशाचमोचनका आख्यानहै उसकेबाद पचपनवें में गणेशका पठाना है ॥ २० ॥ और छप्पनवें में गणेशजीकी मायाहै अनन्तर सत्तावनवें में ढुंढिराजका प्रकट होनाहै अट्ठावनवें में विष्णुजीकी मायाका प्रपंच है उसके बाद दिवोदासका विसर्जन (कैलास प्रस्थान) है ॥ २१ ॥ तदनन्तर उनसठवें में पंचनदतीर्थकी उत्पत्ति है साठिवें में बिन्दुमाधवकी समुत्पत्तिहै उसके बाद इकसठवें

में वैष्णवतीर्थोंका सब ओरसे वर्णनहै ॥ २२ ॥ बासठवें में वृषभध्वज व त्रिशूलधारी शिवजीका काशीके प्रतिप्रयाण है और तिरसठवें में ज्येष्ठ स्थानमें जैगीषव्यके साथ महेशजीका संवाद है ॥ २३ ॥ तदनन्तर चौंसठवें में पापोंका नाशक क्षेत्ररहस्यका कथनहै इससे आगे पैंसठवे में मंगलमय कन्दुकेश्वर और व्याघ्रेश्वरका समुद्भव है॥ २४ ॥ तदनन्तर छियासठवें में शैलेश्वरकी कथाहै व सतसठवें में रत्नेश्वरका दर्शनहै उसके बाद अडसठवें में कृत्तिवासकी समुत्पत्तिहै और उनहत्तरवें में आयतन याने सब ओरसे स्थानवासी शिव लिंगादिकोंका आनाहै ॥ २५ ॥ और सत्तरवें में देवताओं का अधिष्ठानहै इकहत्तरवें में दुर्गदैत्यका पराक्रम है अनन्तर बहत्तरवें में दुर्गाजी का विजयहै उसके बाद तिहत्तरवें में ॐकारका वर्णनहै ॥ २६ ॥ फिर चौहत्तरवेंमें ॐकारेश्वरका माहात्म्यहै ऐसे पचहत्तरवें में त्रिलोचनकी समुत्पत्ति है तदनन्तर छियत्तरवें

वसम्भवः ॥ ततोवैष्णवतीर्थानांमाहात्म्यपरिवर्णनम् ॥ २२ ॥ प्रयाणम्मन्दरात्काशींवृषभध्वजशूलिनः ॥ जैगीषव्येन संवादोज्येष्ठस्थानेमहेशितुः ॥ २३ ॥ ततःक्षेत्ररहस्यस्यकथनम्पापनाशनम् ॥ अथातःकन्दुकेशस्यव्याघ्रेशस्यसमुद्भवः ॥ २४ ॥ ततःशैलेश्वरकथारत्नेशस्यचदर्शनम् ॥ कृत्तिवासःसमुत्पत्तिस्ततश्चायतनागमः ॥ २५ ॥ देवतानामधिष्ठानंदुर्गासुरपराक्रमः ॥ दुर्गायाविजयश्चाथततॐकारवर्णनम् ॥ २६ ॥ पुनरोङ्कारमाहात्म्यंत्रिलोचनसमुद्भवः ॥ त्रिलोचनप्रभावोथकेदाराख्यानमेवच ॥ २७ ॥ ततोधर्मेशमहिमाततःपक्षिकथाशुभा ॥ ततोविश्वभुजाख्यानन्दुर्दमस्यकथाततः ॥ २८ ॥ ततोवीरेश्वराख्यानंवीरेशमहिमापुनः ॥ गङ्गातीर्थैश्चसंयुक्ताकामेशमहिमाततः ॥ २९ ॥ विश्वकर्मेशमहिमादक्षयज्ञसमुद्भवः ॥ सत्यादेहविसर्गश्चततोदक्षेश्वरोद्भवः ॥ ३० ॥ ततोवैपार्वतीशस्यमहिम्नःपरिकीर्तनम् ॥ गङ्गेशस्याथ

में त्रिलोचनका प्रभावहै और सतत्तरवें में केदारेश्वरका आख्यान है ॥ २७ ॥ उसके बाद अठत्तरवें में धर्मेश्वरकी महिमाहै तदनन्तर उन्नासिवें में मंगलमयी पक्षियों की कथाहै उससे आगे असीवें में विश्वभुजा देवीका आख्यानहै उसके उपरान्त इक्यासिवें में दुर्दमकी कथाहै ॥ २८ ॥ तदनन्तर बयासिवें में वीरेश्वरका आख्यान है फिर तिरासिवें में वीरेशकी महिमा है और चौरासिवें में तीर्थों से संयुत गंगाहैं उसके बाद पच्चासिवें में कामेश्वरकी महिमा है ॥ २९ ॥ और छियासिवें में विश्वकर्मेश्वरकी महिमाहै सत्तासिवें में दक्षके यज्ञका समुद्भवहै अट्ठासिवें में सतीजीका देहत्याग है तदनन्तर नवासिवें में दक्षेश्वरकी समुत्पत्ति है ॥ ३० ॥ उसके बाद नब्बेवें में पार्वतीश्वर

की महिमाका प्रसिद्धता से परिकीर्त्तनहै अनन्तर इक्यान्नवेंमें गंगेश्वरकी महिमा है और बान्नवें में नर्मदेश्वरका समुद्भवहै ॥ ३१ ॥ तिरान्नवें में सतीश्वरकी समुत्पत्तिहै चौरान्नवें में अमृतेश्वरादिकोंका वर्णनहै पंचान्नवें में व्यासजीकी बाहुकाही स्तम्भन है व छियान्नवें में काशीके प्रति व्यासशापका विमोक्षणहै ॥ ३२ ॥ और सत्तान्नवें में क्षेत्र व तीर्थोंका समूहहै फिर अट्ठान्नवें में मुक्तिमण्डपकी भलीभांति कथाहै उसके बाद निन्नानवें में श्रीविश्वनाथजीका प्रकट होनाहै तदनन्तर सवें अध्यायमें क्षेत्रयात्राका परिक्रमहै ॥ ३३ ॥ यहआख्यानोंका सैकड़ा क्रमसे परिकीर्तितहै, जिसके सुननेमात्रसे सबखण्डके श्रवणकाफलहै और अनुक्रमणिका अध्यायमें यात्राका

महिमानर्मदेशसमुद्भवः ॥ ३१ ॥ सतीश्वरसमुत्पत्तिरमृतेशादिवर्णनम् ॥ व्यासस्यहिभुजस्तम्भोव्यासशापविमोक्षणम् ॥ ३२ ॥ क्षेत्रतीर्थकदम्बञ्चमुक्तिमण्डपसङ्कथा ॥ विश्वेशाविर्भवश्चाथततोयात्रापरिक्रमः ॥ ३३ ॥ एतदाख्यानशतकंक्रमेण परिकीर्तितम् ॥ यस्यश्रवणमात्रेणसर्वखण्डश्रुतेःफलम् ॥ अनुक्रमणिकाध्यायेप्यस्तियात्रापरिक्रमः ॥ ३४ ॥ सूतउवाच ॥ यात्रापरिक्रमम्ब्रूहिजनानांहितकाम्यया ॥ यथावत्सिद्धिकामानांसत्यवत्याःसुतोत्तम ॥ ३५ ॥ व्यासउवाच ॥ निशामयमहाप्राज्ञलोमहर्षणवच्मिते ॥ यथाप्रथमतोयात्राकर्तव्यायात्रिकैर्मुदा ॥ ३६ ॥ सचैलमादौसंस्नायचक्रपुष्करिणीजले ॥ सन्तर्प्यदेवान्सपितॄन्ब्राह्मणांश्चतथार्थिनः ॥ ३७ ॥ आदित्यन्द्रौपदींविष्णुंदण्डपाणिम्महेश्वरम् ॥ नमस्कृत्य ततोगच्छेद्द्रष्टुंढुण्ढिविनायकम् ॥ ३८ ॥ ज्ञानवापीमुपस्पृश्यनन्दिकेशन्ततोर्चयेत् ॥ तारकेशन्ततोभ्यर्च्यमहाका

परिक्रम भी है ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले कि, हे सत्यवतीके पुत्रोत्तम व्यासजी ! आप सिद्धिचाही जनोंके हितकी कामनासेयात्राके परिक्रमको यथावत्कहो ॥ ३५ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि,हे महाप्राज्ञ, लोमहर्षणनामक सूत ! जैसे आनन्दसमेत यात्रिक जनोंकोप्रथमसे यात्राकरनाचाहिये वैसेही मैं तुमसेकहताहूं और तुम सुनो ॥ ३६ ॥ कि पहले चक्र पुष्करिणी (मणिकर्णिका)के जलमें वस्त्रसमेत भलीभांति स्नानकर देवोंसमेत पितर तथा धनके अर्थी ब्राह्मणोंको संतृप्तकर ॥ ३७ ॥ आदित्य द्रौपदी विष्णु दण्डपाणि और महेश्वरके नमस्कारकर तदनन्तर ढुंढि विनायकको देखनेके लिये जावे ॥ ३८ ॥ फिर ज्ञानवापी में स्नानकर उसके बाद नन्दिकेशको पूजे तदनन्तर तारकेशको सामनेसे

पूजकर उनसे आगे महाकालेश्वरकी पूजाकरे ॥ ३९ ॥ तदनन्तर फिर दण्डपाणिकोपूजे ऐसे यह पंच तीर्थिका ॥ ४० ॥ जोकि दिन दिनकी है वह बड़े फलको वांछते हुये जनों को करना चाहिये तदनन्तर सब अर्थोंकी सिद्धिके लिये श्रीविश्वनाथजी की यात्रा करनेयोग्य है ॥ ४१ ॥ और बहत्तर आयतनोंकी यात्रा कृष्णपक्षकी प्रतिपदा को प्राप्तहोकर चतुर्दशी तक यथाविधि प्रयत्नसे करना चाहिये ॥ ४२ ॥ अथवा क्षेत्रकी सिद्धि को चाहते हुये जनों से प्रतिचतुर्दशी में यात्रा करने योग्य है और उन उन तीर्थों में स्नानकर्त्ता व उन उन लिंगों की पूजाकरनेवाला ॥ ४३ ॥ यात्रिक मौनसे यात्राको करता हुआ फलको प्राप्तहोताहै मत्स्योदरी में स्नानादि जल

लेश्वरन्ततः ॥ ३९ ॥ ततःपुनर्दण्डपाणिमित्येषापञ्चतीर्थिका ॥ ४० ॥ दैनन्दिनीविधातव्यामहाफलमभीप्सुभिः ॥
ततोविश्वेश्वरीयात्राकार्यासर्वार्थसिद्धिदा ॥ ४१ ॥ द्विसप्तायतनानाञ्चकार्यायात्राप्रयत्नतः ॥ कृष्णाम्प्रतिपदम्प्राप्यभू
तावधियथाविधि ॥ ४२ ॥ अथवाप्रतिभूतञ्चक्षेत्रसिद्धिमभीप्सुभिः ॥ तत्तत्तीर्थकृतस्नानस्तत्तल्लिङ्गकृतार्चनः ॥ ४३ ॥
मौनेनयात्रांकुर्वाणःफलम्प्राप्नोतियात्रिकः ॥ ॐकारम्प्रथमम्पश्येन्मत्स्योदर्याकृतोदकः ॥ ४४ ॥ त्रिविष्टपंमहादेवं
ततोवैकृत्तिवाससम् ॥ रत्नेशञ्चाथचन्द्रेशंकेदारञ्चततोव्रजेत् ॥ ४५ ॥ धर्मेश्वरञ्चवीरेशंगच्छेत्कामेश्वरन्ततः ॥ विश्व
कर्मेश्वरञ्चाथमणिकर्णीश्वरन्ततः ॥ ४६ ॥ अविमुक्तेश्वरन्दृष्ट्वाततोविश्वेशमर्चयेत् ॥ एषायात्राप्रयत्नेनकर्तव्या
क्षेत्रवासिना ॥ ४७ ॥ यस्तुक्षेत्रमुषित्वातुनैतांयात्रांसमाचरेत् ॥ विघ्नास्तस्योपतिष्ठन्तेक्षेत्रोच्चाटनसूचकाः ॥ ४८ ॥
अष्टायतनयात्रान्याकर्तव्याविघ्नशान्तये ॥ दक्षेशःपार्वतीशश्चतथापशुपतीश्वरः ॥ ४९ ॥ गङ्गेशोनर्मदेशश्चगभस्ती

क्रिया किये हुआ जन पहले ॐकारेश्वर को देखे ॥ ४४ ॥ उसके बाद त्रिलोचन फिर महादेव तदनन्तर कृत्तिवास अनन्तर रत्नेश्वर व चन्द्रेश्वर और केदारेश्वर को भी जावे ॥ ४५ ॥ व धर्मेश्वर अनन्तर वीरेश्वर तदनन्तर कामेश्वर और विश्वकर्मेश्वर उसके बाद मणिकर्णिकेश्वर को जावे ॥ ४६ ॥ तदनन्तर अविमुक्तेश्वर को देखकर श्रीविश्वेश्वरजी को सामने से पूजे यह यात्रा क्षेत्रवासी को बड़े यत्नके साथकरना चाहिये ॥ ४७ ॥ और जो क्षेत्रमें बसकर भी इस यात्रा को भलीभांति न करे उसको क्षेत्रसे उच्चाटनसूचक विघ्न समीपमें टिकते हैं ॥ ४८ ॥ और विघ्नोंकी शान्तिके लिये अन्यभी आठ स्थानों की यात्रा करना चाहिये दक्षेश्वर व पार्वतीश्वर तथा

पशुपतीश्वर ॥ ४६ ॥ व गङ्गेश्वर, नर्मदेश्वर, गभस्तीश्वर, सतीश्वर और अष्टमतारकेश्वर प्रति अष्टमी में विशेषसे ॥ ५० ॥ महापापों की शान्तिके लिये ये लिंग देखने योग्यहैं व सदैव योग क्षेम करनेवाली शुभ अन्य भी, यात्रा ॥ ५१ ॥ जो कि सब विघ्नोंकी समीपता से नाशिका है वह क्षेत्रवासियों को करना चाहिये व पहले वरणा में स्नान पूर्वक शैलेश्वर को विशेषता से देखकर ॥ ५२ ॥ संगम में स्नान को कर संगमेश्वर देखने योग्य हैं फिर स्वलीनतीर्थ में अच्छे प्रकार से नहाया हुआ स्वलीनेश्वरको देखे ॥ ५३ ॥ व मन्दाकिनीतीर्थ में स्नानकर मध्यमेश्वर का दर्शन करना चाहिये और उस तीर्थ में स्नानादि जलक्रिया किये हुआ जन हिरण्यगर्भेश्वर

शःसतीश्वरः ॥ अष्टमस्तारकेशश्चप्रत्यष्टमिविशेषतः ॥ ५० ॥ दृश्यान्येतानिलिङ्गानिमहापापोपशान्तये ॥ अपरा पिशुभायात्रायोगक्षेमकरीसदा ॥ ५१ ॥ सर्वविघ्नोपहन्त्रीचकर्तव्याक्षेत्रवासिभिः ॥ शैलेशंप्रथमंवीक्ष्यवरणास्नानपूर्वकम् ॥ ५२ ॥ स्नानंतुसङ्गमेकृत्वाद्रष्टव्यःसङ्गमेश्वरः ॥ स्वलीनतीर्थेसुस्नातःपश्येत्स्वलीनमीश्वरम् ॥ ५३ ॥ स्नात्वा मन्दाकिनीतीर्थेद्रष्टव्योमध्यमेश्वरः ॥ पश्येद्धिरण्यगर्भेशंतत्रतीर्थेकृतोदकः ॥ ५४ ॥ मणिकर्ण्यान्ततःस्नात्वापश्येदीशानमीश्वरम् ॥ ततःकूपमुपस्पृश्यगोप्रेक्षमवलोकयेत् ॥ ५५ ॥ कापिलेयह्रदेस्नात्वावीक्षेतवृषभध्वजम् ॥ उपशान्तशिवंपश्येत्तत्कूपविहितोदकः ॥ ५६ ॥ पञ्चचूडाह्रदेस्नात्वाज्येष्ठस्थानंततोर्चयेत् ॥ चतुःसमुद्रकूपेतुस्नात्वादेवंसमर्चयेत ॥ ५७ ॥ देवस्याग्रेतुयावापीतत्रोपस्पर्शनेकृते ॥ शुक्रेश्वरंततःपश्येत्तत्कूपविहितोदकः ॥ ५८ ॥ दण्डखाते ततःस्नात्वाव्याघ्रेशम्पूजयेत्ततः ॥ शौनकेश्वरकुण्डेतुस्नानंकृत्वाततोर्चयेत् ॥ ५६ ॥ जम्बुकेशंमहालिङ्गंकृत्वाया

को देखे ॥ ५४ ॥ तदनन्तर मणिकर्णिका में स्नानकर ईशानईश्वर को देखे उसके बाद कूप में नहाकर गोप्रेक्षको अवलोकनकरे ॥ ५५ ॥ व कापिलेय कुण्डमें स्नानकर वृषभध्वज को विशेषतासे देखे फिर उनके कूपमें स्नानादि जलक्रिया को किये हुआ उपरान्त शिवजी के दर्शन करे ॥ ५६ ॥ तदनन्तर पञ्च चूडाकुण्डमें स्नानकर ज्येष्ठ स्थानकी पूजाकरे फिर चतुःसमुद्र कूपमें नहाकर देवको भलीभांति पूजे ॥ ५७ ॥ और देव के आगे वहां वापीमें स्नान किये होतेही तदनन्तर उनके कूपमें जलक्रिया किये हुआ शुक्रेश्वर को देखे ॥ ५८ ॥ उसके बाद दण्डखातमें स्नानकर तदनन्तर व्याघ्रेश्वरको पूजे और शौनकेश्वर कुण्डमें स्नानकोकर उसके बाद पूजाकरे ॥ ५६ ॥

फिर जम्बुकेश्वर महालिंग को पूजे इस यात्राको कर मनुष्य फिर दुःखसागर संसार में कभी, या, कहीं नहीं उपजता है ॥ ६० ॥ प्रतिपदा से लगाकर कृष्णपक्ष की चतुर्दशी तक इस क्रमसे ये आयतन (स्थान) निश्चय से करने योग्य हैं ॥ इस यात्राको कर भी मनुष्य फिर नहीं उत्पन्नहोताहै और ग्यारह स्थानोंसे उपजीहुई अन्य यात्रा अधिकता से करनाचाहिये ॥ ६२ ॥ कि आग्नीध्र कुण्ड में भलीभांति नहाये हुआ आग्नीध्रेश्वरको देखे उसके बाद उर्वशीश्वर और तदनन्तर नकुलीश्वर को जावे ॥ ६३ ॥ उसके बाद आषढ़ीश्वर तदनन्तर भारभूतेश्वर को देखकर अनन्तर लांगलीश्वर और तदनन्तर त्रिपुरान्तकको देखकर ॥६४॥ उसके बाद मनःप्रका

त्रामिमांनरः ॥ कश्चिन्नजायतेभूयःसंसारेदुःखसागरे ॥ ६०समारभ्यप्रतिपदंयावत्कृष्णाचतुर्दशी ॥ एतत्क्रमेणकर्तव्या न्येतदायतनानिवै ॥ ६१ ॥ इमांयात्रांनरःकृत्वानभूयोप्यभिजायते ॥ अन्यायात्राप्रकर्तव्यैकादशायतनोद्भवा ॥ ६२॥ आग्नीध्रकुण्डेसुस्नातःपश्येदाग्नीध्रमीश्वरम् ॥ उर्वशीशन्ततोगच्छेत्ततस्तुनकुलीश्वरम् ॥ ६३ ॥ आषाढीशन्त तोदृष्ट्वाभारभूतेश्वरंततः ॥ लाङ्गलीशमथालोक्यततस्तुत्रिपुरान्तकम् ॥ ६४ ॥ ततोमनःप्रकामेशंप्रीतिकेशमथोव्र जेत् ॥ मदालसेश्वरंतस्मात्तिलपर्णेश्वरंततः ॥ ६५ ॥ यात्रैकादशलिङ्गानामेषाकार्याप्रयत्नतः ॥ इमांयात्रांप्रकुर्वाणोरु द्रत्वंप्राप्नुयान्नरः ॥ ६६ ॥ अतःपरंप्रवक्ष्यामिगौरीयात्रामनुत्तमाम् ॥ शुक्लपक्षेतृतीयायांयायात्राविश्वगृद्धिदा ॥ ६७॥ गोप्रेक्षतीर्थेसुस्नायमुखनिर्मालिकांव्रजेत् ॥ ज्येष्ठावाप्यांनरःस्नात्वाज्येष्ठागौरींसमर्चयेत् ॥ ६८ ॥ सौभाग्यगौरीस म्पूज्याज्ञानवाप्यांकृतोदकैः ॥ ततःशृङ्गारगौरीञ्चतत्रैवचकृतोदकः ॥ ६९ ॥ स्नात्वाविशालगङ्गायांविशालाक्षींततोव्र

मेश्वर अनन्तर प्रीतिकेश्वर उनसे आगे मदालसेश्वर तदनन्तर तिलपर्णेश्वरको जावे ॥ ६५ ॥ यह ग्यारह लिंगोंकी यात्रा बड़े यत्नसे करना चाहिये इस यात्राको बहुत करताहुआ नर रुद्रभावको प्राप्त होवेहै ॥ ६६ ॥ इसके उपरान्त मैं अत्यन्त उत्तम गौरीयात्राको अधिकता से कहूंगा कि शुक्लपक्षकी तृतीयामें जो यात्राहै वह सब ओर से ऋद्धियोंकी देनेवाली है ॥ ६७ ॥ गोप्रेक्ष तीर्थमें भलीभांति नहाकर मुखनिर्मालिकाको जावे फिर ज्येष्ठा वापीमें स्नानकर मनुष्य ज्येष्ठा गौरीको संपूजनकरे ॥ ६८ ॥ व ज्ञानवापी में स्नानादि जल क्रियाको कियेहुये जनों से सौभाग्यगौरी भलीभांति पूजने योग्यहै और तदनन्तर वहांही ...

उसके बाद विशाल गंगामें स्नानकर विशालाक्षी देवी के दर्शन को जावे तदनन्तर ललितातीर्थ में अच्छेप्रकार से नहायेहुश्रा ललिताकी पूजाकरे ॥ ७० ॥ अनन्तर भवानी तीर्थमें स्नानकर भवानीको सब ओरसे पूजे फिर तदनन्तर बिन्दुतीर्थ में जल क्रिया करनेवाले मनुष्यों से मंगलादेवी सामने से पूजने योग्यहैं ॥ ७१ ॥ उसके बाद निश्चल लक्ष्मी की समृद्धिके लिये महालक्ष्मी को जावे मुक्तिके उपजानेवाले इस क्षेत्रमें मनुष्य इस यात्राकोकर ॥ ७२ ॥ इसलोक और उस लोकमें भी कहीं दुःख से तिरस्कृत नहीं होवेहै और यहां सदैव प्रतिचौथिमें विघ्नेश्वर गणेशजीकी यात्राकोकरे ॥ ७३ ॥ व उन गणेशजी के उद्देश से आनन्दके अर्थ ब्राह्मणों के लिये निश्चय से

जेत् ॥ सुस्नातोललितातीर्थेललितामर्चयेत्ततः ॥ ७० ॥ स्नात्वाभवानीतीर्थेथभवानींपरिपूजयेत् ॥ मङ्गलाचततोभ्यर्च्याबिन्दुतीर्थकृतोदकैः ॥ ७१ ॥ ततोगच्छेन्महालक्ष्मींस्थिरलक्ष्मीसमृद्धये ॥ इमांयात्रान्नरःकृत्वाक्षेत्रेस्मिन्मुक्तिजन्मनि ॥ ७२ ॥ नदुःखैरभिभूयेतइहामुत्रापिकुत्रचित् ॥ कुर्यात्प्रतिचतुर्थीहयात्रांविघ्नेशितुःसदा ॥ ७३ ॥ ब्राह्मणेभ्यस्तदुद्देशाद्देयावैमोदकामुदे ॥ भौमेभैरवयात्राचकार्यापातकहारिणी ॥७४ ॥ रविवारेरवेर्यात्राषष्ठ्यांवारविसंयुजि ॥ तथैवरविसप्तम्यांसर्वविघ्नोपशान्तये ॥७५॥ नवम्यामथवाष्टम्यांचण्डीयात्राशुभामता॥ अन्तर्गृहस्यवैयात्राकर्तव्याप्रतिवासरम् ॥ ७६ ॥प्रातःस्नानंविधायादौनत्वापञ्चविनायकान्॥ नमस्कृत्वाथविश्वेशंस्थित्वानिर्वाणमण्डपे ॥ ७७॥ अन्तर्गृहस्ययात्रांवैकरिष्येघौघशान्तये ॥ गृहीत्वानियमञ्चेतिगत्वाथमणिकर्णिकाम् ॥ ७८ ॥ स्नात्वामौनेनचागत्यमणि

लड्डू देना चाहिये और मंगलवारमें पापहारिणी भैरवजीकी यात्रा करने योग्यहै ॥ ७४ ॥ ऐसेही सूर्य्यवार व सूर्य्यवारसमेत षष्ठी तथा सूर्य्यवार संयुत सप्तमी में सब विघ्नों के विनाश के लिये सूर्य्यदेवकी यात्रा करना चाहिये ॥ ७५ ॥ नवमी अथवा अष्टमी में चंडिकाजी की यात्रा शुभ मानीगई है व अन्तर्गृहकी यात्रा निश्चयसे प्रतिदिन करना चाहिये ७६ ॥ पहले प्रातःकालमें स्नानकोकर पांच विनायकों (गणेशों) के नमस्कारकर अनन्तर श्रीविश्वेश्वरजी के नमस्कारकर मुक्तिमण्डपमें टिककर ॥ ७७ ॥ फिर मैं पापसमूहोंकी शान्तिके लिये अन्तर्गृहकी यात्राको करूंगा ऐसे नियमको ग्रहणकर अनन्तर मणिकर्णिकाको जाकर ॥ ७८ ॥ स्नानकर और मौन (चुपचाप) से आकर

मणिकर्णिकेश्वरको पूजे व कम्बल और अश्वतरनागके नमस्कारकर फिर वासुकीश्वरके प्रणामकर ॥ ७९ ॥ उसके बाद पर्वतेश्वर अनन्तर गंगाकेशवको भी देखकर तदनन्तर ललितादेवी तदनन्तर जरासन्धेश्वरके दर्शनकर ॥ ८० ॥ व उसके बाद सोमनाथ और तदनन्तर वाराहेश्वरको निश्चयसे जावे तदनन्तर ब्रह्मेश्वरके नमस्कार कर तदनन्तर अगस्तीश्वरके नमस्कारकर ॥ ८१ ॥ फिर कश्यपेश्वरके नमस्कारकर तदनन्तर हरिकेशवन उसके बाद वैद्यनाथ अनन्तर ध्रुवेश्वरको बिशेषता से देखकर ८२ ॥ गोकर्णेश्वरको सामने से पूजकर अनन्तर हाटकेश्वरको जावे और अस्तिक्षेप तड़ागमें कीकसेश्वरको निश्चयसे देखकर ॥ ८३ ॥ उसके बाद भारभूतेश्वरके नम-

कर्णीशमर्चयेत् ॥ कम्बलाश्वतरौनत्वावासुकीशंप्रणम्यच ॥ ७९ ॥ पर्वतेशन्ततोदृष्ट्वागङ्गाकेशवमप्यथ ॥ ततस्तुल लितांदृष्ट्वाजरासन्धेश्वरंततः ॥ ८० ॥ ततोवैसोमनाथञ्चवाराहञ्चततोव्रजेत ॥ ब्रह्मेश्वरंततोनत्वानत्वागस्तीश्वरंत तः ॥ ८१ ॥ कश्यपेशंनमस्कृत्यहरिकेशवनंततः ॥ वैद्यनाथंततोदृष्ट्वाध्रुवेशमथवीक्ष्यच ॥ ८२ ॥ गोकर्णेश्वरमभ्य र्च्यहाटकेशमथोव्रजेत् ॥ अस्थिक्षेपतडागेचदृष्ट्वावैकीकसेश्वरम् ॥ ८३ ॥ भारभूतंततोनत्वाचित्रगुप्तेश्वरंततः ॥ चि त्रघण्टांप्रणम्याथततःपशुपतीश्वरम् ॥८४॥ पितामहेश्वरंगत्वाततस्तुकलशेश्वरम्॥चन्द्रेशस्त्वथवीरेशोविद्येशोग्नी शएवच ॥ ८५ ॥ नागेश्वरोहरिश्चन्द्रश्चिन्तामणिविनायकः ॥ सेनाविनायकश्चाथद्रष्टव्यःसर्वविघ्नहृत् ॥८६॥ वसिष्ठ वामदेवौचमूर्तिरूपधरावुभौ ॥ द्रष्टव्यौयत्नतःकाश्यांमहाविघ्नविनाशिनौ ॥ ८७ ॥ सीमाविनायकश्चाथकरुणेशंततो व्रजेत् ॥ त्रिसन्ध्येशोविशालाक्षीधर्मेशोविश्वबाहुका ॥ आशाविनायकश्चाथवृद्धादित्यस्ततःपुनः ॥ ८८॥ चतुर्वक्त्रे

स्कारकर तदनन्तर चित्रगुप्तेश्वर अनन्तर चित्रघण्टादेवी तदनन्तर पशुपतीश्वरके प्रणामकर ॥ ८४ ॥ उसके बाद पितामहेश्वर और तदनन्तर कलशेश्वर को जाकर फिर चन्द्रेश्वर अनन्तर वीरेश्वर विद्येश्वर और अग्नीश्वर भी ॥ ८५ ॥ अनन्तर नागेश्वर, हरिश्चन्द्रेश्वर, चिन्तामणि विनायक और सब विघ्नों के हर्त्ता सेना विनायक देखने योग्यहैं ॥ ८६ ॥ और काशीमें महाविघ्नविनाशी मूर्तिरूपधारी दोनों जन बसिष्ठ व वामदेवजी यत्नसे देखने योग्य हैं ॥ ८७ ॥ अनन्तर सीमा विनायक और अरुणेश्वरको जावे उसके बाद त्रिसन्ध्येश्वर, विशालाक्षी तदनन्तर धर्मेश्वर और विश्वभुजा, अनन्तर आशा विनायक फिर वृद्धादित्य ॥ ८८ ॥ व चतुर्वक्त्रेश्वर लिंग

उससे पर ब्राह्मीश्वर तदनन्तर मनःप्रकामेश्वर उससे पर ईशानेश्वरलिंग ॥ ८९ ॥ तदनन्तर चण्डी, चण्डीश्वर भवानी और शंकर देखने योग्यहैं उनके आगे ढुंढिराज गणेशके प्रणामकर फिर राजराजेश्वरको पूजे ॥ ९० ॥ तदनन्तर लांगलीश्वर तदनन्तर नकुलीश्वर सामने से पूजनीयहैं अनन्तर परान्नेश्वर तदनन्तर परद्रव्येश्वरके नमस्कारकर ॥ ९१ ॥ व प्रतिग्रहेश्वर भी और निष्कलंकेश्वर भी व मार्कण्डेयेश्वर तदनन्तर अप्सरसेश्वरकी पूजाकरे ॥ ९२ ॥ तदनन्तर गंगेश्वर पूजने योग्यहैं व ज्ञान वापी में स्नानको भलीभांतिकरे तदनन्तर नन्दिकेश्वर तारकेश्वर महाकालेश्वर ॥ ९३ ॥ और दण्डपाणि, महेश्वर तदनन्तर मोक्षेश्वरके प्रणामकरे उसके बाद वीरभद्रे

श्वरंलिङ्गंब्राह्मीशस्तुततःपरः ॥ ततोमनःप्रकामेशईशानेशस्ततःपरम् ॥ ८९ ॥ चण्डीचण्डीश्वरौदृश्यौभवानीशं करौततः ॥ ढुण्ढिंप्रणम्यचततोराजराजेशमर्चयेत् ॥ ९० ॥ लाङ्गलीशस्ततोभ्यर्च्यस्ततस्तुनकुलीश्वरः ॥ परान्नेशम थोनत्वापरद्रव्येश्वरंततः ॥ ९१ ॥ प्रतिग्रहेश्वरंवापिनिष्कलङ्केशमेवच ॥ मार्कण्डेयेशमभ्यर्च्यततअप्सरसेश्वरम् ॥ ९२ ॥ गङ्गेशोर्च्यस्ततोज्ञानवाप्यांस्नानंसमाचरेत् ॥ नन्दिकेशंतारकेशंमहाकालेश्वरंततः ॥ ९३ ॥ दण्डपाणिंमहेशं च मोक्षेशंप्रणमेत्ततः ॥ वीरभद्रेश्वरंनत्वाअविमुक्तेश्वरंततः ॥ ९४ ॥ विनायकांस्ततःपञ्चविश्वनाथंततोव्रजेत् ॥ ततो मौनंविसृज्याथमन्त्रमेतमुदीरयेत् ॥ ९५ ॥ अन्तर्गृहस्ययात्रेयंयथावद्यामयाकृता ॥ न्यूनातिरिक्तयाशम्भुःप्रीयता मनयाविभुः ॥ ९६ ॥ इतिमन्त्रंसमुच्चार्यक्षणंवैमुक्तिमण्डपे ॥ विश्रम्ययायाद्भवनंनिष्पापःपुण्यवान्नरः ॥ ९७ ॥ सं प्रप्यवासरंविष्णोर्विष्णुतीर्थेषुसर्वतः ॥ कार्यायात्राप्रयत्नेनमहापुण्यसमृद्धये ॥ ९८ ॥ नभस्यपञ्चदश्याञ्चकुलस्तम्भं

श्वर और अविमुक्तेश्वरके नमस्कारकर ॥ ९४ ॥ तदनन्तर पांचो विनायक तदनन्तर श्रीविश्वनाथजी के मन्दिरको जावे उसके बाद मौनको त्यागकर अनन्तर इस मन्त्र को उच्चारणकरे ॥ ९५ ॥ कि जो यह अन्तर्गृहकी यात्रा मुझसे यथावत कीगई है इस न्यून और अतिरिक्त यात्रासे समर्थ शंकरजी प्रसन्नहोवें ॥ ९६ ॥ ऐसे मन्त्रको भली-भांति उच्चारणकर मुक्तिमण्डप में क्षणभर निश्चयसे विश्रामकर पापहीन पुण्यवान् मनुष्य घरको जावे ॥ ९७ ॥ और महापुण्योंकी समृद्धिके लिये एकादशीसमेत द्वादशी को भलीभांति प्राप्तहोकर सब श्रीविष्णुजी के तीर्थों में यात्रा करना चाहिये ॥ ९८ ॥ और भादोंकी पंचदशी में कुलस्तम्भको भलीभांतिपूजे क्योंकि जिसकी पूजासे दुःख व

रुद्रपिशाचत्व नहीं होवैहै ॥ ६६ ॥ क्षेत्रवासियोंको ये यात्रायें श्रद्धापूर्वक करना चाहिये और पर्वों में विशेष से सर्वत्रयात्रा करना चाहिये ॥ १०० ॥ इससे पुण्यवान् जन यात्राके विना कभी या कहीं दिनको विफल नहीं करे व दो यात्रायें प्रतिदिन बड़े यत्नसे करना चाहिये ॥ १ ॥ कि पहले स्वर्ग नदी गंगाकी तदनन्तर विश्वेश्वर की यात्रा निश्चितहै और काशीमें निवसतेहुए जिस सज्जनका दिन विफल बीतगया ॥ २ ॥ उसके पितर उसही दिनमें निराशहुये व वह कालसर्प्प से डसागया वह मृत्यु से स्पष्ट डसागया ॥ ३ ॥ और वह उस दिनमें चोरागया किसने जिस दिनमें श्रीविश्वनाथजीको न देखा व उसने सब तीर्थों में नहाया और उसने सब यात्राको किया ॥

समर्चयेत् ॥ दुःखंरुद्रपिशाचत्वंनभवेद्यस्यपूजनात् ॥९९॥ श्रद्धापूर्वमिमायात्राःकर्तव्याःक्षेत्रवासिभिः ॥ पर्वस्वपिविशेषेणकार्यायात्राश्चसर्वतः ॥ १००॥ नबन्ध्यंदिवसंकुर्याद्विनायात्रांकचित्कृती॥ यात्राद्वयंप्रयत्नेनकर्तव्यंप्रतिवासरम् ॥ १ ॥ आदौस्वर्गतरङ्गिण्यास्ततोविश्वेशितुर्ध्रुवम् ॥ यस्यबन्ध्यन्दिनंयातंकाश्यांनिवसतःसतः ॥ २ ॥ निराशाःपितरस्तस्यतस्मिन्नेवदिनेऽभवन् ॥ सदष्टःकालसर्पेणसदष्टोमृत्युनास्फुटम् ॥ ३॥ समुष्टस्तत्रदिवसेविश्वेशोयत्रनेक्षितः॥ सर्वतीर्थेषुसस्नौससर्वयात्रांव्यधात्सच ॥ ४॥ मणिकर्ण्यांतुयःस्नातोयोविश्वेशंनिरैक्षत ॥ सत्यंसत्यंपुनःसत्यंसत्यं सत्यंपुनःपुनः ॥ दृश्योविश्वेश्वरोनित्यंस्नातव्यामणिकर्णिका ॥ ५ ॥ व्यासउवाच ॥ सूतस्कान्दमिदंश्रुत्वाकाशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ नरोननिरयंयातिकृत्वाप्यघसहस्रकम् ॥ ६ ॥ स्नात्वासर्वाणितीर्थानियच्छ्रेयःसमुपार्ज्यते ॥ काशीखण्डस्यश्रवणात्तत्स्यात्सूतनसंशयः ॥ ७ ॥ दत्त्वादानानिसर्वाणिकृत्वायज्ञाननेकशः ॥ यत्पुण्यंलभ्यतेमर्त्यैस्तदेत

४ ॥ जोकि मणिकर्णिका में स्नातहुआ और जिसने श्रीविश्वेश्वरको निश्शेषता से देखा सत्यहै सत्यहै फिर सत्यहै सत्यहै बार बार सत्यहै कि मणिकर्णिका नहाने योग्य है और विश्वेश्वरदेव देखने योग्यहै ॥ ५ ॥ श्रीव्यासजी बोले कि, हे सूत ! मनुष्य हजारों पापोंको कर भी स्कन्दपुराणके इस उत्तम काशी माहात्म्यको सुनकर नरक को नहीं जाताहै ॥ ६ ॥ और हे सूत ! सब तीर्थों में स्नानकर जो पुण्य या कल्याण भलीभांति बटोराजाता है वह काशीखण्डके सुनने से होवे इसमें संशय नहीं है ॥ ७

व अनेकों दानोंको देकर सब यज्ञोंको कर जो पुण्य मनुष्यों से पाईजाती है वह इसके सुनने से निश्चितहै ॥ ८ ॥ व उग्र तपस्याओं को तपकर जो बडा फल मिलताहै उसको इसके सुनने से पाताहै संशय नहीं है ॥ ९ ॥ व अंगों समेत चारों वेदोंको पढ़कर जो फल प्राप्त कियाजाताहै वह फल काशीखण्डको भलीभांति सुनकर मनुष्यो से पायाजाताहै ॥ १० ॥ और जैसे गयामें श्राद्ध देने से पूर्वज तृप्त होतेहैं वैसेही इसके सुनने से मनुष्यों के पितर तृप्त होजाते हैं ॥ ११ ॥ और उन निश्चल बुद्धिवालोंने सब पुराणों को सुना कि जिन्होने सब पुण्यों और सब फलोंके स्थान काशीखण्ड को श्रवण किया है ॥ १२ ॥ और महापुण्यैकराशिरूप उन लोगों से सब धर्म सुनेगये हैं कि

च्छ्रवणाद्ध्रुवम् ॥ ८ ॥ तप्त्वातपांसिचोग्राणिप्राप्यतेयन्महत्फलम् ॥ श्रवणादस्यखण्डस्यलभतेतन्नसंशयः ॥ ९ ॥ अधीत्यचतुरोवेदान्साङ्गान्यत्फलमाप्यते ॥ काशीखण्डंसमाकर्ण्यतत्फलंलभ्यतेनरैः ॥ १० ॥ गयायांश्राद्धदानाच्चयथातृप्यन्तिपूर्वजाः ॥ तथैतच्छ्रवणान्नॄणान्तृप्नुवन्तिपितामहाः ॥ ११ ॥ तैश्चसर्वपुराणानिश्रुतानिस्थिरबुद्धिभिः ॥ काशीखण्डंश्रुतंयैश्चसर्वेषांश्रेयसांपदम् ॥ १२ ॥ श्रुताश्चसर्वधर्मास्तैर्महापुण्यैकराशिभिः ॥ श्रुतंयैःस्थिरचेतोभिःकाशीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥ इदमेवहिदेवेज्यापरमापरिकीर्तिता ॥ जपेत्तत्खण्डमखिलंश्रोतव्यंश्रद्धयाद्विजाः ॥१४॥ शृणुयादेकमपियआख्यानंकाशिखण्डजम् ॥ श्रुतानितेनसर्वाणिधर्मशास्त्राण्यसंशयम् ॥ १५ ॥ महाधर्मैकजननंमहार्थप्रतिपादकम् ॥ कारणंसर्वकामाप्तेःकाशीखण्डमिदंस्मृतम् ॥१६॥ एतच्छ्रवणतःपुंसांकैवल्यंनैवदूरतः ॥ तुष्यन्तिसर्वेपितरःश्रुत्वैतत्खण्डमुत्तमम् ॥ १७ ॥ प्रीणन्त्यमर्त्याःसर्वेपिब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ मुनयःपरिमोदन्तेमाद्यन्तिस

जिन स्थिर चित्तवालों से उत्तम काशीमाहात्म्य सुनागया है ॥ १३ ॥ हे ब्राह्मणो ! यहही परमोत्तम देवपूजा सब ओर से कहीगई है कि सम्पूर्ण काशीखण्ड को जपे (पढ़े) और वह सुनने योग्य है ॥ १४ ॥ व जो काशीखण्ड से उपजेहुये एकभी आख्यानको सुने उस करके निस्सन्देह सब धर्मशास्त्र सुनेगये हैं ॥ १५ ॥ यह काशीखण्ड महाधर्मोंका मुख्य उपजानेवाला महाअर्थोंका प्रतिपादक और सब कामों की प्राप्तिका कारण कहा गयाहै ॥ १६ ॥ इसके सुनने से मनुष्यो की मुक्तिभी दूर नहीं है और इस उत्तम खण्डको सुनकर सब पितर तृप्त होते हैं ॥ १७ ॥ व सब मनुष्य और ब्रह्मा विष्णु व शिवादि देव प्रसन्न होते हैं व मुनिलोग सब ओर से

आनन्दित होते हैं और सनकादिक भी हर्षित होते हैं॥ १८ ॥ और इस काशी की महिमा सुनने से चारभांतिके सब जन्तु समूह हृष्टही होवेहैं संशय नहीं है ॥१९॥ और जो पण्डित सम्पूर्ण व आधासी व चौथाईमात्र व उसका आधा अथवा एक भी उत्तम आख्यान को सुनावे ॥ २० ॥ वह बड़े यत्नसे नमस्कारके योग्यहै व इष्टदेवके समान भलीभांति पूजनीयहै और विश्वेश्वरकी प्रीति के लिये उसको सदा सब कुछ देना चाहिये ॥ २१ ॥ जिससे उसके तुष्ट होतेही श्रीविश्वनाथजी सन्तुष्टहैं इसमें संशय नहीं है व उत्तम आनन्द का निधान यह खण्ड जहां पढ़ा जाताहै॥ २२ ॥ वहां कोई भी अमंगलका समुद्भव समर्थ नहीं होवे है व जो विद्वान् और जो सुबुद्धिमान्

नकादयः ॥ १८ ॥ हृष्टःसर्वोभवेदेवभूतग्रामश्चतुर्विधः ॥ महिमश्रवणादस्माद्वाराणस्यानसंशयः ॥ १९ ॥ यइदंश्राव
येद्विद्वान्समस्तंत्वर्धमेववा ॥ पादमात्रन्तदर्धंवात्वेकंव्याख्यानमुत्तमम् ॥ २० ॥ सनमस्यःप्रयत्नेनसम्पूज्यस्त्विष्ट
देववत् ॥ तस्मैदेयंप्रयत्नेनविश्वेशप्रीतयेसदा ॥ २१ ॥ तस्मिंस्तुष्टेहिसन्तुष्टोविश्वेशोनात्रसंशयः ॥ यत्रैतत्पठ्यते
खण्डंपरानन्दसमाश्रयम् ॥ २२ ॥ नतत्रप्रभवेत्कश्चिदमङ्गलसमुद्भवः ॥ यइदंशृणुयाद्विद्वान्यश्चेदंश्रावयेत्सुधीः॥२३॥
यःपठेदपिपुण्यात्मातेसर्वेरुद्रमूर्तयः ॥ यएतत्पुस्तकंरम्यंलेखयित्वासमर्पयेत् ॥ २४ ॥ अखिलानिपुराणानितेनदत्तानि
नान्यथा ॥ अत्राख्यानानियावन्तिश्लोकायावन्तएवहि ॥ २५ ॥ तथापदानियावन्तिवर्णायावन्तएवहि ॥ यावन्त्यपि
चमात्राणियावत्यःपदपङ्क्तयः ॥ २६ ॥ गुणेसूत्राणियावन्तियावन्तःपटतन्तवः ॥ चित्ररूपाणियावन्तिरम्यपुस्तकसंच
के ॥ २७ ॥ तावद्युगसहस्राणिदातास्वर्गेमहीयते ॥ एतद्द्वादशकृत्वोयःशृणुयात्खण्डमुत्तमम् ॥ २८ ॥ ब्रह्महत्यापि

इसको सुनावे ॥ २३ ॥ व जो पुण्यात्मा इसको पढ़े भी वे सब रुद्ररूपहैं और जो इस रम्य पुस्तक को लिखाकर भलीभाति दानकरे ॥ २४ ॥ उसने सम्पूर्ण पुराणों का दान किया यह अन्यथा नहीं है इसमें जितने आख्यान हैं और जितने श्लोक भी हैं॥ २५ ॥ तथा जितने पाद हैं ऐसेही जितने अक्षर भी हैं व जितनी मात्रायें है और जितनी पदोंकी पंक्तियां भी हैं॥ २६ ॥ व पुस्तक बन्धन के डोरामें जितने सूत्र हैं व जितने वस्त्रमें सूत्रहैं और रम्यपुस्तक सञ्चक याने पुस्तक के शुभ सिंहासनमें जितने चित्ररूप हैं॥ २७॥ उतने हजार युगोंतक पुस्तकका दाता स्वर्ग में पूजा जाताहै और जो कोई इस उत्तम खण्ड को बारह बार सुने ॥ २८ ॥ उसकी ब्रह्महत्या भी शम्भु

की दयासे शीघ्रही नष्ट होवे है और भलीभांति नहाये हुआ श्रद्धासमेत जो अपुत्रभी सुने ॥ २९ ॥ उसके पुत्र शङ्करजी की आज्ञाके प्रभाव से होताही है हे सूत ! बहुत कहने से क्याहै यहां जिस जिसका मनोरथ ॥ ३० ॥ जो जो होवे वह वह उस उसको पुण्यवान् सुकर्मी इसको सुनकर सदैव पावे व जो दूरदेशमें भी उत्तम काशीखण्डको सुने ॥ ३१ ॥ वह शिवजीकी आज्ञासे काशीवास पुण्यका पात्र होवे व इसके सुनने से सर्वत्र पुरुषोंका विजय होवे है और निर्मल अन्तःकरणवाला श्रोता सर्वत्र सौभाग्य को भी प्राप्तहोवे ॥ ३२ ॥ किन्तु जिससे विश्वेश्वरजी सन्तुष्टहैं उस निर्मल चित्तवाले पुण्यवान् की मति इसके सुननेमें होतीहै ॥ ३३ ॥ और यह उत्तम खण्ड सब मङ्गलों के मध्यमें महामंगलहै व सब मंगलोंकी सिद्धि के लिये घरमें भी लिखा हुआ पूजने योग्यहै ॥ १३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेभाषाबन्धेरायबरेलीप्रदेशान्त

तस्याशुनश्येच्छम्भोरनुग्रहात् ॥ अपुत्रःशृणुयाद्यस्तुसुस्नातःश्रद्धयान्वितः ॥ २९ ॥ तस्यपुत्रोभवत्येवशम्भोराज्ञाप्रभावतः ॥ किम्बहूक्तेनसूतेहयस्ययस्यमनोरथः ॥ ३० ॥ योयस्तन्तंसमसदाश्रुत्वैतत्प्राप्नुयात्कृती ॥ शृणुयाद्दूरदेशेपियःकाशीखण्डमुत्तमम् ॥ ३१ ॥ सकाशीवासपुण्यस्यभाजनंस्याच्छिवाज्ञया ॥ एतच्छ्रवणतःपुंसांसर्वत्रविजयोभवेत ॥ सौभाग्यञ्चापिसर्वत्रप्राप्नुयान्निर्मलाशयः ॥ ३२ ॥ यस्यविश्वेश्वरस्तुष्टस्तस्यैतच्छ्रवणेमतिः ॥ जायतेपुण्ययुक्तस्यमहानिर्मलचेतसः ॥ ३३ ॥ सर्वेषांमङ्गलानाञ्चमहामङ्गलमुत्तमम् ॥ गृहेपिलिखितम्पूज्यंसर्वमङ्गलसिद्धये ॥ १३४ ॥ इति श्रीस्कन्दपुराणेकाशीखण्डेऽनुक्रमणिकानामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ॐ समाप्तञ्चेदंकाशीखण्डम् ॥

र्गतडिघौरग्रामधामसिद्धिनाथत्रिवेदिविरचितेऽनुक्रमणिकानामशततमोऽध्यायः ॥ १०० ॥ ❀ ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

दोहा । श्रीयुत मथुरानाथ गुरुचरण शरण ममअस्तु । जिनकी कृपा कटाक्षमे काशीखण्ड समस्तु ॥ षट्पदछन्द ॥ श्रीयुत भारद्वाज त्रिवेदी रामनिरंजन । तासुत गंगादत्त मत्तविद्वन्मदभंजन ॥ तासुत लालाराम तदङ्गज शालग्रामा । तासुत रामदयाल पुत्र सिधिनाथ सुनामा ॥ यह ताकृत काशीखण्डकी भाषाटीका जानिये । ज्याहि पढ़त सुनत सब फल सुलभ श्रीशिवप्रीति प्रमानिये ॥ चतुष्पदीछन्द ॥ मालिकमतबा नवलकिशोर । बाबू प्रागनरायण ओर ॥ पण्डित सूर्य्यदीन अधिकार । मैं उनकी रुचि के अनुसार ॥ दोहा ॥ टीका काशीखण्डकी भाषामें शुभ कीन । बालबात सुनि मात पितु मोद शिवा शिव लीन ॥ ॐ शुभमस्तु ॥ ❀ ॥ ❀ ॥

॥ इश्तहार ॥

प्रकट हो कि इस पुस्तकको हमने बहुतसा रुपया व्यय करके उल्था करायाहै और सर्कारी नियमानुसार रजिस्ट्री भी कराली है इसलिये किसी महाशयको इसके छापनेका अधिकार नहीं है ॥

मालिक मतबा अवधअख़बार.

प्रथमवार

लखनऊ

मुंशी नवलकिशोर (सी, आई, ई) के छापेखाने में छपा

सन् १६०७ ई० ॥

॥ इति श्रीमद्देवीभागवतं समाप्तम् ॥